अथ स्कन्दपुराणनागरखण्डस्य सूचीपत्रमाह ॥

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१	लिङ्गपातकी भय को देखकर सब देवताओं को शिवजीके समीप जाना ...	८
२	त्रिशङ्कु राजा को सदेह स्वर्ग जाने के लिये वशिष्ठमुनि से प्रार्थना करना ...	११
३	महर्षि वशिष्ठ के पुत्रों को त्रिशङ्कु को शाप देना	१४
४	त्रिशङ्कु को चाण्डाल होकर विश्वामित्र के पास जाना	२२
५	त्रिशङ्कु को शाप से छुड़ाने के लिये विश्वामित्र को यज्ञ कराना ...	२५
६	गाधिनन्दन विश्वामित्र को सृष्टि के लिये शिव जी से विनती करना ...	२७
७	क्रोधित होकर विश्वामित्र को सब जातियों का सृष्टि बनाना	२६
८	वृत्रासुर को मारकर इन्द्र को देवताओं का राजा होना	४३
९	इन्द्र को रक्तश्रृङ्ग से महानाग बिल को पूरण करना	४८
१०	कुष्ठरोग से युक्त चमत्कार राजा को शङ्खतीर्थ में नहाकर पवित्र होना ...	५०
११	ऋषियों को सूत जी से चमत्कार राजा का उपाख्यान पूंछना ...	५७
१२	चमत्कार राजा को द्विजपुरी की पालना के लिये पुत्रों को शिक्षादेना ...	५६
१३	चमत्कार राजा को अपने नगर में अचलेश्वर नाथ का प्रतिष्ठापन करना ...	६३
१४	चमत्कारपुर में किसी गूगे वैश्य को पशुओं समेत विमानारूढ़ होकर परमपद पाना	६७
१५	राजा के पुरकी प्रदक्षिणा करने से बड़े प्रभाव का उपजना ...	७०
१६	सूत को मुनियों से चमत्कार पुर की सेवा करने को कहना	७१
१७	शिकार खेलने के लिये राजा विदूरथ को वन में जाना	७३
१८	विदूरथ राजा से बिगड़े आकारवाले प्रेतों का वार्तालाप करना ...	८५
१९	गया को कर विदूरथ राजा को प्रेतों को स्वर्गमें पहुँचाना	८६
२०	सीता लक्ष्मण समेत श्रीराम को गयाकर मार्कण्डेय से मिलाप करना ...	९७
२१	मृकण्ड को मार्कण्ड पुत्र को पाना व उनका चिरजीवी होना ...	१०७
२२	बालमण्डन तीर्थ में स्वामिद्रोह से मुक्त होने के लिये मुनियों को सूत से पूंछना	११३
२३	मृगतीर्थ में वधिक व मृगों को छविधाम होना	११६
२४	विष्णुपद नामक तीर्थ में आत्मनिवेदन का उपाय	१२०
२५	विष्णुपद तीर्थ में सुरापान से भ्रष्ट ब्राह्मण का पवित्र होना	१२५
२६	गोकर्ण नामक ब्राह्मण से धर्मराज को नरकादिकों का कहना ...	१३५
२७	चारों युगों का प्रमाण कहकर उनके समस्त चरितों को कहना ...	१४६
२८	हाटकेश क्षेत्र में सब तीर्थों को आकर टिकना	१४६
२९	वत्स मुनीश को शिवका तपकर ज्ञान को पाना .. .	१७६
३०	हसासिद्ध को शिवका तपकर सुत को पाना	१७९
३१	नागतीर्थ में इन्द्रसेन नरपाल को मुक्त होना	१९१
३२	उसी तीर्थ में सप्तर्षियों के आश्रम का उपाख्यान	२०२
३३	अगस्त्य मुनि जी को अपने उद्धत शिष्य विन्ध्याचल को नीचाकर देना ...	२०८
३४	देवताओं से संग्राम कर असुरों को समुद्र में आछिपना	२११
३५	अगस्त्य जी को समुद्र सोखनेपर देवताओं को निहाल होना ...	२१८
३६	चित्रेश्वर नामक पीठ को पूजकर समस्त कार्यों की सिद्धि का होना ...	२२५
३७	श्रीमहादेव के लिये दुर्वासा मुनि को दुश्शीलक नामक मन्दिर का बनाना	२३०
३८	ऋषियों से सूत जी को धुन्धुमार का आख्यान कहना	२३२
३९	ययातिराजा को ययातीशनामक शिवलिङ्ग का स्थापन करना ...	२३३

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
४०	मङ्कणकमुनि को मङ्कणेश लिङ्गका स्थापन करना	२४१
४१	जलशायी नारायण को पूजकर सुरराज को सुखी होना	२४७
४२	विश्वामित्रमुनि को मेनका से वार्तालाप करना	२५२
४३	मेनका को रति मांगने पर विश्वामित्र को निन्दा करना	२५३
४४	विश्वामित्रमुनीश को शिवलिङ्ग का स्थापन करना	२५७
४५	त्रिपुष्करतीर्थ में स्नान करनेका प्रभाव	२६४
४६	सारस्वत तीर्थ में नहाकर मूकराजा को मुदित होना	२६६
४७	महाकाल को पूजकर वैश्य को भूप होना	२७६
४८	हरिश्चन्द्र राजा को शिवका तपकर पुत्र पाना	२८२
४९	दुर्वासामुनि को कलशराजा को शाप देना	२८५
५०	व्याघ्ररूपधारी कलशराजा को नन्दिनीनाम धेनु से वार्तालाप करना ...	२८८
५१	सूत को मुनियों से कलशराजा का उपाख्यान कहना	२९८
५२	दाक्षिणात्य महात्माओं से पूजित रुद्रकोटि का माहात्म्य	३०१
५३	भ्रूणगर्ता के प्रभाव से सौदास राजा को ब्रह्महत्या से छूटना	३१२
५४	चर्मशिरा भगवती की विनतीकर नलराजा को निहाल होना ..	३१६
५५	नलराजा को नलेश शिवलिङ्ग को स्थापितकर मुदित होना	३१८
५६	अपत्यहीन गालव ब्राह्मण को सूर्यकी आराधनाकर पुत्र को पाना ...	३२१
५७	भीष्मपितामहजी को वासुदेवादि चार मूर्तियोंका स्थापन करना ...	३२७
५८	शिव गङ्गा का माहात्म्य समेत पौण्ड्रक का चरित	३२८
५९	विदुर को हरिहर समेत सूर्यका स्थापन करना	३३२
६०	अर्जुनवीर को नरादित्य नामक सूर्यका स्थापन करना ...	३३५
६१	बृहद्राजा से ज्योतिषियों को विषकन्याका योग कहना	३३८
६२	शर्मिष्ठा तीर्थ के चरित्रका उपाख्यान	३५१

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
६३	चन्द्रमा को सोमनाथ के लिङ्गका स्थापनकर यक्ष्मरोग से छूटना .	३५६
६४	चमत्कारपुरकी प्रदक्षिणा से प्रभुताका होना	३६०
६५	आनर्तेश्वर और शूद्रेश्वरका उपाख्यान	३६८
६६	हैहयाधिप सहस्रार्जुन को जमदग्निका वध करना	३[illegible]
६७	परशुरामजी को सहस्रार्जुनका वध करना	३७६
६८	परशुरामजी को क्षत्रियों के विना भूमि करना	३८१
६९	परशुरामजी को क्षत्रियों के रुधिर से कुण्डका बनाना .. .	३८४
७०	तारकासुर को विनाशने के लिये षडाननदेव को उपजना ..	३९१
७१	तारकासुर को मारकर स्कन्द को शक्तिका स्थापन करना	३९६
७२	हाटकेश क्षेत्र में धृतराष्ट्र को शिवलिङ्गका स्थापन करना ..	३९९
७३	बलभद्रकी पुत्री भानुमतीका दुर्योधन के साथ ब्याह होना	४०४
७४	मित्रों व कुरुवों समेत पाण्डवों को बहुलिङ्गोंका स्थापन करना ..	४०६
७५	षडाननजी के मन्दिर के पास देवताओं को यज्ञ करना	४०७
७६	मुण्डीरादि तीनों सूर्यों के प्रभाव से कुष्ठी को कुष्ठ से छूटना . ..	४१४
७७	शिवशिरतीर्थ के प्रभाव से निन्दित नर नारियों का पवित्र होना ..	४२०
७८	वालखिल्य नामक मुनियों को इन्द्रपै कोप करना	४२६
७९	मित्र ब्राह्मण को साथले गरुड़ को विष्णु के पास जाना	४३२
८०	शाण्डिल्य मुनीश के शाप से गरुड़ को विना पंख होजाना . .	४३७
८१	शङ्कर को पूजकर गरुड़ को पखों समेत होना	४४१
८२	गरुडेश को पूजकर वेणुराजा को नीरोग होना	४४४
८३	हरिजी को घोड़मुखी माधवी को सुरूपवती करना . . .	४४६
८४	सत्ताईस दक्षपुत्रियों को देवीजीका पूजन करना	४५१
८५	सूत को ऋषियों से सोमसदनका माहात्म्य कहना	४५४

अध्यायाः	विषया	पृष्ठाङ्काः
८६	चमत्कारपुरेश की आथा, वृद्धा दोनों कन्याओं का उपाख्यान	४६१
८७	अम्बा माता की पादुका पूजन का माहात्म्य	४६६
८८	निर्वपण का हाल कहकर अग्नितीर्थ का माहात्म्य	४७५
८९	शापित हुये शुक, गज और दर्दुरों को देवताओं को वरदेना	४७६
९०	ब्रह्मकुण्ड की उत्पत्ति समेत माहात्म्य का निरूपण	४७९
९१	गोमुखद्वारा उपजे गोमुखतीर्थ का माहात्म्य	४८४
९२	परशुराम को अपना कुठार तोड़कर लोहयष्टिका निर्माण करना ...	४८७
९३	अजापाल राजाको महादेवी की स्थापनाकर शिवके साथ शिवलोक को जाना ...	४९७
९४	दशरथ महाराज को शनैश्चरदेव से वार्त्तालाप करना	५०१
९५	दशरथ महाराज का चरित कह रामजन्म की कथाका निरूपण ...	५०६
९६	श्रीरामचन्द्रजी से देवदूत को वार्त्तालाप करना	५११
९७	रामचन्द्रजी को सुग्रीवजी के घरजाना	५१६
९८	लंका में जाकर रघुनाथ को विभीषण के लिये शिक्षादेना . .	५२३
९९	हाटकेशक्षेत्र में रामजी के पुष्पक विमान का निश्चल होना	५२५
१००	आनर्तीय तड़ाग की महिमाका चरित्र	५३७
१०१	श्रीकुश राजाको विभीषण के पास दूतको भेजना	५५०
१०२	शिवलिंग के छेदन से बृहदश्वनामक भूपालका विनाश होना ..	५५१
१०३	भूतोंको धूरि से शिवलिंगों का पूर्ण करना	५५४
१०४	चित्रशर्मा ब्राह्मणको शिवलिंग का स्थापन करना . ..	५६२
१०५	श्रीशिवजी को शिवाजी से अड़सठि क्षेत्रोंका निरूपण करना	५६६
१०६	प्रत्येकतीर्थों में कीर्तनीय शिवनाम की महिमा	५६९
१०७	सूतको ऋषियों से क्षेत्रसमूहों का प्रभाव कहना . ..	५७०
१०८	दमयन्तीरानी को द्विजपत्नियों के लिये आभूषणों का प्रदान करना ...	५८०

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१०९	धरातल में ऊपर की उत्पत्तिका निरूपण करना	५८३
११०	सूत को मुनियों से त्रिजातक द्विज की कथाका निरूपण करना	५९५
१११	नागर ब्राह्मणों की सुखदायक कथाका निरूपण	६०४
११२	नागपुरवाली द्विजों के गोत्रों का वर्णन	६१०
११३	रेवतीदेवी के रुचिर माहात्म्य का निरूपण	६१६
११४	भूतल में उपजे भद्रिकातीर्थ का माहात्म्य	६२४
११५	क्षेमङ्करी व रेवतेश्वर दोनों देवोंका स्थापन	६२८
११६	महिषासुर को इन्द्र समेत देवताओं को जीतना	६३६
११७	महिषासुर के वध के लिये कात्यायनी देवीका उपजना	६३९
११८	इन्द्रादिक देवताओं को निज २ स्थानों को पाना	६४८
११९	सुरनायक को केदारनामक शिवलिंग का स्थापन करना	६५६
१२०	श्याम वसनों को श्वेत करनेवाले शुक्लतीर्थ का निरूपण	६६२
१२१	सूतको ऋषियों से मुखरतीर्थ का माहात्म्य कहना	६७१
१२२	सत्यसन्ध राजाको निजपुत्री को ले ब्रह्मा के पास जाना	६८२
१२३	सत्यसन्ध को ब्राह्मणों के लिये शिवका समर्पण करना . ..	६८५
१२४	पृथ्वीमण्डल में कर्णोत्पलतीर्थ का विख्यात होना .	६८९
१२५	बृहद्बलके अष्टभूपक्षेत्रज सुतका होना	६९५
१२६	मनुष्यों को सिद्धिदायक याज्ञवल्क्यमुनि का स्थान .	७०२
१२७	गङ्गाजी को सौति मानकर गिरिजा का तप करना . ..	७०९
१२८	पञ्चपिण्डिका गौरी का स्थापन विधान	७१५
१२९	हाटकेशक्षेत्र में वास्तुपद नामक तीर्थ का माहात्म्य ..	७१९
१३०	पृथ्वीमण्डल में अजागृह नामक तीर्थ का होना .	७२९
१३१	सुभाग्यकूपिका और शिलखण्ड नामक तीर्थ का माहात्म्य ...	७३४

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१३२	देवताओं को पतिव्रता को वरदेना व माण्डव्य को शूल से मुक्त होना	७४३
१३३	पतिव्रता को दीर्घिका नामक तीर्थ का स्थापन करना	७४७
१३४	माण्डव्यमुनीश की शूली पै चढ़ने की कथा	७४८
१३५	शिवजी को आराधना कर यमराज को सनाथ होना	७५०
१३६	यमराजेश्वर के अत्युत्तम माहात्म्य का निरूपण	७५७
१३७	सत्यसेन राजा को भिष्टप्रदायक शिवानायक का स्थापन करना	७६३
१३८	हाटकेशक्षेत्र में तीन गणनाथों का स्थापन होना	७६८
१३९	देवताओं को जावालि के पास रम्भाको भेजना	७७४
१४०	जावालि को अपनी कन्या व चित्रांगद को शापदेना	७६१
१४१	सूतको ऋषियों से अमरेश्वर का माहात्म्य कहना	७६७
१४२	वसुरुद्रादिकों के भिन्न भिन्न नामों का कीर्तन	७६८
१४३	व्यासदेव से शुकदेव को बहुत भांति का वार्तालाप करना	८०६
१४४	चेटिकानारी को चेटिकेश्वर लिङ्ग का स्थापन करना	८०८
१४५	योगिनियों से अन्धकासुर का युद्ध करना	८१८
१४६	होमकरने पै केलीश्वरी देवी का प्रकट होना	८२१
१४७	भैरव, सदाशिव माहात्म्यकी कथा	८२८
१४८	धनुर्द्धारी वीर अर्जुन को चक्रपाणि हरिका स्थापन करना	८३३
१४९	अप्सराकुण्ड व रूपतीर्थ का माहात्म्य	८३६
१५०	तामसी व सात्त्विकी सुखदायक सिद्धियों का होना	८४३

इति प्रथमखण्डः ॥

अथ द्वितीयखण्ड आरभ्यते ॥

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१५१	सूर्यकी आराधना कर पुष्पको दो गुटिकाओं का पाना	८४६
१५२	माणिभद्रकी नारी को पुष्पनामक द्विजको पति पाना	८५८
१५३	पुष्पब्राह्मण को ब्राह्मणों के लिये अनेकानेक दान देना	८५६
१५४	अपने पति के समान रूप देखकर नारीको पूछना	८६१
१५५	द्वादश मासों में सूर्यपूजा का विधान	८६६
१५६	चण्डशर्मा ब्राह्मण को नागर ब्राह्मणोंसे अलग होना	८७३
१५७	शिवलिंग को पूजकर चण्डशर्मा को कैलास जाना	८७८
१५८	श्यामकर्ण घोड़ों की प्राप्ति के लिये ऋचीक का तप करना	८८२
१५९	मुनिनायक जमदग्निके पुत्र परशुराम का होना	८८७
१६०	राज्य को छोड़ गाधिनन्दन विश्वामित्र को तप करने के लिये जाना	८९४
१६१	वसिष्ठ वधके लिये विश्वामित्र को शक्ति का उपजाना	६००
१६२	विश्वामित्र की रची शक्ति का धारानाम से विख्यात होना	६०४
१६३	शक्ति के पसीना से गङ्गाजी का निकलना	६०६
१६४	सरस्वती नदी के जलका रक्तवर्ण होजाना	६०८
१६५	याज्ञवल्क्य के वीर्य से कंसारी नामक बहिन में पिप्पलाद नामक बालक का होना	६२०
१६६	पिप्पलाद को कंसारीश्वर नामक शिवलिङ्ग का स्थापन करना	६२२
१६७	अपनी सौतियों से उमा को अपना हाल कहना	६२६
१६८	लक्ष्मी महारानी को पञ्चपिण्डिका गौरी का स्थापन करना	६३७
१६९	हाटकक्षेत्र में पितामह को त्रिपुष्कर तीर्थ लाना	६४५
१७०	मुनीश्वरों को बुलाय ब्रह्मा को यज्ञका आरम्भ करना	६४६

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१७१	ब्रह्मा को गायत्री के साथ विवाह करना	९५७
१७२	नहाकर करोड़ों मुनियों को उत्तम रूप पाना	९६४
१७३	ब्रह्मा के समीप किसी ब्रह्मचारी को जलका सांप फेंकना	९६९
१७४	ब्रह्मा की यज्ञ में किसी सर्वज्ञ ब्राह्मण का आना	९७३
१७५	ब्रह्माकी यज्ञ में किसी एक पाहुन का आना	९८६
१७६	समय के भेदसे तीन प्रकार के अतिथियों का निरूपण	९८९
१७७	राक्षसों के योग्य श्राद्ध व यज्ञादिकों का होना	९९४
१७८	सावित्रीदेवी को योगिनियों के लिये शाप देना	१००२
१७९	मातांओं को उदुम्बरी के लिये वरदान देना	१००५
१८०	यज्ञान्तस्नान में नर व देवताओं का आना	१०१४
१८१	देवियों के साथ सावित्री को यज्ञमें जाना	१०१६
१८२	यज्ञमें सबों के लिये सावित्री का शाप देना	१०२७
१८३	देवताओं व ब्राह्मणों के लिये गायत्री को वरदान देना	१०२९
१८४	कालादिकों का परिमाण व ब्रह्मज्ञान का उपाय	१०३५
१८५	द्विज और राजाकी कन्याओं से समागमका होना	१०३६
१८६	चित्रमें देखकर रत्नावती को पतिका अंगीकार करना	१०४०
१८७	मद्यका पानकर परावसुको प्रायश्चित्त करना	१०५३
१८८	रत्नावती और ब्राह्मणीको तप करना	१०६४
१८९	शुभङ्करशर्मा को भ्रमसे अन्त्यज के साथ अपनी पुत्रीका व्याहदेना	१०८१
१९०	भर्तृयज्ञको ब्राह्मणों से प्रायश्चित्त कहना	१०८६
१९१	ब्रह्मसभामें जाकर ब्राह्मणोंकी शुद्धिहोना	१०९०
१९२	मध्यग ब्राह्मणको सबासे अपार निर्णय करना	१०९२
१९३	माता, पिता व कुलको पूँछ तत्काल शुद्धिकरना	१०९४
१९४	समरमें मरेहुये देवताओं की गति हरिजी से इन्द्रका पूँछना	१०९८
१९५	ब्राह्मणों के लिये देवराजको हिमाचल के पास जाना	११००
१९६	सुरपाल को देवताओं के लिये श्राद्धका करना	१११७
१९७	गौतममहर्षिको अपनी नारी (अहल्या) व इन्द्रको शापदेना	११२५
१९८	पुत्र कलत्र समेत गौतमजीको तीनलिंगोंका स्थापन करना	११३५
१९९	शङ्खनामक ब्राह्मण को शङ्खतीर्थ का स्थापन करना	११४४
२००	स्वर्ग से नागवल्ली (पान) का भूमि में आना	११५३
२०१	ब्राह्मणों के लिये स्थानोंको देकर राजाको निजराज्यपाना	११५१
२०२	रत्नादित्य जलाशयको नहाय पशुपाल को सुभगरूपसे होना	११६३
२०३	कृष्णकुमार साम्ब को साम्बादित्य का स्थापन करना	११७४
२०४	ब्राह्मण होने के लिये विश्वामित्र को गणपतिका पूजन करना	११८२
२०५	सूतजी से ऋषियों को श्राद्धका विधान पूँछना	११८८
२०६	भूखे पितरोंको ब्रह्माजी का समझाना	१२०२
२०७	भर्तृयज्ञको श्राद्धके लिये मन्वादि समयों का निरूपण करना	१२०९
२०८	श्राद्धभोजी ब्राह्मण व यजमान के धर्मोंका निरूपण करना	१२१२
२०९	मनोरथ भेदसे श्राद्धोंका भिन्न भिन्न निरूपण	१२१४
२१०	गजछायादिक श्राद्धके समस्त कालों का निरूपण	१२२२
२११	श्राद्ध के लिये मांसादिकों का वर्णन	१२३०
२१२	एकोद्दिष्टश्राद्ध और सपिण्डीकर्मका विधान	१२३३
२१३	नरकों में दुःखदायक वस्तुओंका निरूपण	१२४१
२१४	जिनकर्मों के करनेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता है उन्होंका निरूपण	१२४३
२१५	सदाशिवजी को अन्धकासुरके पास दूतका भेजना	१२४८
२१६	अन्धकदानवको भृङ्गिरीटि नामसे गणों में विख्यात होना	१२५१

अध्यायाः	विषया	पृष्ठाङ्काः
२१७	इन्द्रासनपै दनुपाल वृकासुरका वैठना	१२५३
२१८	वृकासुर से इन्द्रको इन्द्रासनपाना	१२६३
२१९	चतुर्मासामें फल मिलनेकेलिये नियमोंका निरूपण	१२६७
२२०	सूतको ऋषियों से भीष्मपञ्चादिकोंका विधानकहना	१२७१
२२१	शिवरात्रि की अमित अपार महिमा का निरूपण	१२८०
२२२	सूतको मुनियोंसे तुलापुरुष के दान का विधान कहना	१२८५
२२३	स्वर्णमयी रची भूमिके दानका विधान	१२८६
२२४	देवराजको वज्रसे वृत्रासुरका वध करना	१३०४
२२५	पापपुरुष का निर्माणकर ब्राह्मणको दान देना	१३०६

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२२६	कमठ, वकादिकों को सातलिङ्गोंका स्थापन करना	१३५२
२२७	सतयुगादि के चरित व परिमाणोंका निरूपण	१३५८
२२८	सौरादिक चारिभांति के वर्षों का वर्णन	१३६०
२२९	दुश्शील को दुश्शीलेश्वर लिङ्गका स्थापन करना	१३७२
२३०	ग्यारह रुद्रोंकी उत्पत्तिका प्रकार	१३७८
२३१	गुणआदि की धेनु का यथाविधि दानदेना	१३७९
२३२	याज्ञवल्क्य मुनीशको द्वादशादित्यका स्थापन करना	१३९४
२३३	स्कन्दपुराणके श्रवण कराने में फलका निरूपण	१३९९

इति श्रीशक्तिधरविरचितनागरखण्डस्यसूचीपत्रं समाप्तं पफाण ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराण नागरखण्ड सटीक ॥

श्रीसिद्धिप्रदमिन्दुभालतनयं विघ्नेश्वरदैवतं नत्वास्वर्गपयत्तपप्रभृतिभिर्देवैःसदावन्दितम् ॥ एतंस्कन्दपुराणकीयशकलं तार्तीयकंनागरं सर्वस्यापिजनस्ययारितसुखदाकुर्वेतयाभाषया ॥ १ ॥ दो० ॥ देव सबै शिवपै गये लिङ्गपात भय देखि। सोइ प्रथम अध्याय महँ कहत कथा सुविशेखि ॥ वह शिवजीका जटाजूट आप लोगोंके विजय के लिये वृद्धिको प्राप्तहो कि जिसमें एक तरफ के बालोंमें पकेहुये का भ्रम गङ्गाजी आजतक भी करती हैं ॥ १ ॥ शौनकादिक ऋषि बोले कि हे बुद्धिमन् सूतजी ! देवता व दैत्यों

श्रीगणेशाय नमः ॥ सधूर्जटिजटाजूटो जयतांविजयायवः ॥ यत्रैकपलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापिजाह्नवी ॥ १ ॥ ऋषयऊचुः ॥ हरस्यपूज्यतेलिङ्गंकस्मादेतन्महामते ॥ विशेषात्सम्परित्यज्य शेषाङ्गानिसुरासुरैः ॥ २ ॥ तस्मादेतन्महाभागयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ साम्प्रतंसूतकात्स्न्र्येनपरंकौतूहलंहिनः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ प्रश्नभारोमहानेष योभवद्भिरुदाहृतः ॥ कीर्तयिष्येतथाप्येनं नमस्कृत्यस्वयम्भुवे ॥ ४ ॥ आनर्त्तविषयेचास्ति वनंमुनिजनाश्रयम् ॥ मनोज्ञंसर्वसत्त्वा

करके महादेवजी के शेष अगोंको भलीभांति छोड़कर विशेषता से इस लिंगका पूजन किस कारण कियाजाता है ॥ २ ॥ हे महाभाग सूतजी ! जिस लिये इससमय हम लोगोंको बड़ा आश्चर्य है इससे इसको तुम सम्पूर्णता से कहने के योग्यहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि आप लोगोंने जो यह बड़ाभारी प्रश्नभार कहाहै तो भी ब्रह्माको प्रणामकर इसको मैं कहूंगा ॥ ४ ॥ आनर्तदेश में ऐसा वनहै कि जिसमें मुनिलोग रहते हैं और जो सब प्राणियों को अच्छा लगता है व जिस वनमें सब

ऋतुओं में फलनेवाले वृक्ष लगे हैं ॥ ५ ॥ उस वनमें ऐसा सुन्दर आश्रम है कि जो अच्छे स्वभाववाले प्राणियों से सेवित व तपस्वियों से व्याप्त तथा वेदध्वनियों से सुशोभित है ॥ ६ ॥ जोकि केवल जलही पीनेवाले व पवन भोजन करनेवाले व वृक्षोंसे गिरेहुये पत्तोंके खानेवाले तथा दन्तरूप ओखली में फलआदि कूटकर खानेवाले और पत्थरों में कूटकर खानेवाले ब्राह्मणों से सेवितहै ॥ ७ ॥ स्नान व होम करनेमें परायण व जप और अपने वेदको पढ़नेमें तत्पर वानप्रस्थ व त्रिदण्डी व परमहंस व कुटीमें रहनेवाले ॥ ८ ॥ व ब्रह्मचारी व इन्द्रियजित् संन्यासी तथा पञ्चाग्नि तापनेवाले तपस्वियों से सुसेवित उसी वनमें किसी समय त्रिपुर को वि-

नांसर्वर्तुफलितद्रुमम् ॥ ५ ॥ तत्राश्रमपदंरम्यंसौम्यसत्त्वनिषेवितम् ॥ अस्तितापससङ्कीर्णं वेदध्वनिविराजितम् ॥ ६ ॥ अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्चशीर्णपर्णाशिभिस्तथा ॥ दन्तोलूखलिभिर्विप्रैःसेवितंवाश्मकुट्टकैः ॥ ७ ॥ स्नानहोमपरैश्चैव जप स्वाध्यायतत्परैः॥वानप्रस्थैस्त्रिदण्डैश्चहंसैश्चापिकुटीचरैः ॥ ८ ॥ स्नातकैर्यतिभिर्दान्तैस्तथापञ्चाग्निसाधकैः ॥ कस्य चित्त्वथकालस्यभगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ ९ ॥ सतीवियोगसम्प्राप्तोभ्रममाणइतस्ततः ॥ तस्मिन्वनेसमायातःसौम्यस त्त्वनिषेविते ॥ १० ॥ क्रीडन्तिनकुलायत्र सार्द्धंसर्प्पैःप्रहर्षिताः ॥ पञ्चाननाश्चमातङ्गैर्वृषदंशास्तथाखुभिः ॥ ११ ॥ काकाःकौशिकसङ्घैश्चवैरभावविवर्ज्जिताः ॥ ततश्चभगवान्रुद्रोदृष्ट्वाश्रमपदंततः ॥ १२ ॥ नग्नःकपालमादायभिक्षा र्थंप्रविवेशसः ॥ अथतस्यसमालोक्यरूपंगात्रसमुद्भवम् ॥ १३ ॥ अदृष्टपूर्वंतापस्यःसर्वाःकामवशङ्गताः ॥ गृहकर्म्मप

नाशनेवाले सतीजी के विरहमें प्राप्त शिवजी इधर उधर घूमतेहुये आये कि जो वन अच्छे स्वभाववाले प्राणियोंसे सेवितहै ॥ ९ । १० ॥ जिस वनमें नेउला हर्षित होकर सर्प्पोंके साथ और हाथियों के साथ सिंह तथा मूसोंके साथ बिलार खेलरहेहैं ॥ ११ ॥ और जिस वनमें कौवा घुघुवों के साथ वैरभाव को छोड़ेहुये खेलरहे हैं तदनन्तर उसी वनमें भगवान् शिवजी तपस्वियोंका आश्रम स्थान देखकर तिसके उपरान्त ॥ १२ ॥ जोकि शिवजी नङ्गेहैं वह खोपड़ी का कोपरा हाथमें लेकर भिक्षा के लिये आश्रममें पैठे इसके अनन्तर उन शिवजी के अङ्गोंसे उपजीहुई सुन्दरता जोकि पहले कहीं नहीं देखीथी उसे देखकर सबरी तपस्विनियां कामदेवके अधीन

होगई और घरके कामोंको व माता पितादि गुरुजनों की सेवाको छोड़कर ॥ १३ । १४ ॥ वे स्त्रियां स्थान २ में स्थितहुई आपस में वार्तालाप करनेलगीं उनमें से एक कोई धन्यथी जोकि उन शिवजीका आलिङ्गन किया ॥ १५ ॥ और तपस्वी महात्मा शिवजी के सब अङ्गोंमें विश्रामकर तथा और स्त्रियां कौतुक में प्रासहो सब दि-शाओं मे दौरनेलगीं ॥ १६ ॥ उन्हीं शिवजीको भलीभांति उद्देश करके कोई आधे अङ्गोंमें उबटन लगाये व कोई एकही आंखोंमें अञ्जन लगाये नेत्रोंको फैलायेहुये देख रहीहैं ॥ १७ ॥ इस भांति उन महादेवजी को कोई स्त्रियां आधेबालों को बांधे तथा कोई छोटे लड़कोंको छोड़कर आलोकन किया ॥ १८ ॥ मुझे भिक्षादो यह कहते

रित्यज्यगुरुशुश्रूषणानिच ॥ १४ ॥ मिथःसम्भाषणंचक्रुःस्थानेस्थानेचताःस्थिताः ॥ एकासाकापिधन्यायाचक्रेत
स्यावगूहनम् ॥ १५ ॥ विश्रम्यसर्वगात्रेषु तापसस्यमहात्मनः ॥ तथान्याःकौतुकाविष्टाधावन्त्यस्सर्वतोदिशम् ॥ १६ ॥
दृश्यन्तेतंसमुद्दिश्यविस्तारितविलोचनाः ॥ काश्चिदर्द्धानुलिप्ताङ्ग्यःकाश्चिदर्द्धाञ्जितेक्षणाः ॥ १७ ॥ अर्द्धसंयमितैःकेशै
स्तथान्यास्त्यक्तबालकाः ॥ एवमालोक्यमानःसकामिनीभिर्महेश्वरः ॥ १८ ॥ बभ्रामराजमार्गेणभिक्षान्देहीतिकीर्त्तय
न् ॥ अथतेमुनयोदृष्ट्वा तन्तथाविगताम्बरम् ॥ १९ ॥ कामोद्भवकरंस्त्रीणांप्रोचुःकोपारुणेक्षणाः ॥ यस्मात्पापत्वया
स्माकमाश्रमोयंविडम्बितः ॥ २० ॥ तस्माल्लिङ्गंपतत्वाशुतथैववसुधातले ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्य लिङ्गंभूमौपपाततत् ॥
२१ ॥ भित्त्वाथधरणीपृष्ठंपातालम्प्रविवेशह ॥ सोपिलिङ्गपरित्यक्तो लज्जायुक्तोमहेश्वरः ॥ २२ ॥ गर्त्तांगुर्वींसमाश्रि
त्यभ्रूणरूपःसमाविशत् ॥ अथलिङ्गस्यपातेनत्रैलोक्यभयशंसिनः॥ २३ ॥उत्पातादारुणास्तस्थुस्सर्वत्रद्विजसत्तमाः॥

हुये शिवजी राजमार्ग में भ्रमण कररहे हैं इसके उपरान्त वे मुनिलोग इस भांति उन शिवजी को वसनहीन देखकर ॥ १९ ॥ और स्त्रियोंके हृदयमें कामदेव उत्पन्न करनेवाले सदाशिवको देखकर क्रोधसे लाल नेत्रवाले मुनिलोग बोले कि हे पापिन्! जिस लिये हम लोगोंके आश्रम को तुमने दूषित करदियाहै ॥ २० ॥ इससे तैसेही यह लिंग पृथ्वीतल में जल्दी गिरपड़ै उसीक्षण शिवजी का वह लिंग पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर वह लिंग धरातल को फोड़कर पाताल में पैठगया और वह महादेवभी लिंगसे रहित होकर लज्जायुक्त हुये ॥ २२ ॥ शिवजी भ्रूणरूप अर्थात् श्रेष्ठ द्विजके रूपसे बड़ेगढ़े में भलीभांति प्रवेश किया इसके अनन्तर

हे ब्राह्मणोत्तमो ! लिंगपात के कारणसे त्रिलोक को भय जनानेवाले घोर उत्पात सब कहींहुये पर्वतोंके शिखर गिरनेलगे और दिनमें भी उल्का गिरनेलगे ॥ २३ । २४ ॥ और सब समुद्र धीरे २ अपनी सीमाको छोड़नेलगे इसके अनन्तर सब देवतों के समूहों के मन भयभीत हुये ॥ २५ ॥ इन्द्र व विष्णु इत्यादि देवता जहां पर श्रीब्रह्माजी हैं वहांको गये और वेदोंसे उत्पन्न हुये स्तोत्रों से स्तुति करके प्रणामकरतेहुये ब्रह्माजी से बोले ॥ २६ ॥ हे ब्रह्माजी! जो यह त्रिलोक में नीचेसे ऊपर तक लिंग सदृश वर्तमानहै वह क्याहै क्या है ॥ २७ ॥ कि जिससे त्रिलोक व्याकुलीको प्राप्तहै औरहे ब्रह्माजी ! प्रलय कैसे लक्षण देख पड़तेहैं ॥ २८ ॥ क्या इस समय

शीर्य्यन्तेगिरिशृङ्गाणिपतन्त्युल्कादिवापिच ॥ २४ ॥ त्यजन्तिसागराःसर्वेमर्यादाञ्चशनैःशनैः॥ अथदेवगणाःसर्वेभय संत्रस्तमानसाः ॥ २५ ॥ शक्रविष्णुमुखाजग्मुर्यत्रदेवःपितामहः ॥ प्रोचुश्चप्रणताःस्तुत्वास्तोत्रैस्तंश्रुतिसम्भवैः॥ २६ ॥ त्रैलोक्येसृष्टिरूपंयत् कमलासनसंस्थितम् ॥ किमिदंकिमिदंदेव वर्त्ततेह्यधरोत्तरम् ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यंसकलंयेन व्याकुलत्वमुपागतम् ॥ प्रलयस्येवचिह्नानिदृश्यन्तेपद्मसम्भव ॥ २८ ॥ किंसाम्प्रतमकालेपि भविष्यतिपरिक्षयः ॥ सर्वे षांसुरमर्त्यानां दैत्यानांमन्त्रकोविदः ॥ २९ ॥ गतिर्भयार्त्तदेहानांसर्वलोकपितामह ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुध्वंयन्नि मित्तोत्थामहोत्पाताभवन्त्यमी ॥ ऋषिभिःपातितंलिङ्गं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३१ ॥ शापेनानर्त्तकेदेशेकलत्रार्थंमहात्म भिः ॥ तेनैतद्व्याकुलीभूतंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३२ ॥ तस्माद्गच्छामहेतत्रयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ येनास्मद्वचनाच्छी घ्रंतल्लिङ्गंनिदधातिसः ॥ ३३ ॥ नोचेद्भविष्यतिव्यक्तमकालेनापिसङ्क्षयः ॥ त्रैलोक्यस्यापिकृत्स्नस्य सत्यमेतन्मयो

विना युगान्तही के सब नाश होजायगा आप सब देवता, दैत्य, मनुष्यों की गुप्तवार्ता के जाननेवाले हैं ॥ २९ ॥ हे सब लोकोंके पितामह याने बाबा ! दुःखीजनों के आपही रक्षक हैं ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले आप सब सुनिये कि जिस कारण बड़े २ उत्पात उठरहे हैं देवतों के देवता श्रीशिवजीका लिंग ऋषियोंने गिरादियाहै ॥ ३१ ॥ जोकि नग्नहोकर शिवजी मुनियोंके आश्रम को गये स्त्रियां देखकर मोहितहुई इस से शाप देकर लिंग गिरादिया उसीसे यह स्थावर, जङ्गम समेत त्रिलोक व्याकुल है ॥ ३२ ॥ इस कारण जहां महादेवजी हैं वहां हम तुम सब चलैं क्योंकि हमारे कहने से शिवजी वह लिंग धारण करैंगे ॥ ३३ ॥ अगर हम न जायँ तौ विना स-

मयहीके त्रिलोकनाश होजायगा यह मैंने सत्य कहा ॥ ३४ ॥ यह सुनकर ब्रह्मा विष्णुको आगे करके सब देवता, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा तथा अश्विनीकुमार जल्दी वहांको गये जहां कि गढ़ेमें बड़ी लज्जासे युक्त श्रीशिवजी सोये रहैं ॥ ३५ । ३६ ॥ देवता बोले कि हे भक्तोंके अभय देनेवाले व देवतों के स्वामी ! आपके लिये नमस्कार है हे चन्द्रमा से शोभित मस्तकवाले व हे ससार के आधार ! आपके लिये नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ तुम्हीं यज्ञहो, तुम्हीं वषट्कार याने स्वाहाहो, हे प्रभो ! तुम्हीं पृथ्वीहो यह स्थावर जङ्गमसमेत सब त्रिलोक तुम्हारा बनाया हुआहै ॥ ३८ ॥ हे देवतोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हीं पालन करतेहो व तुम्हीं नाश करोगे, तुम्हीं विष्णुहो, तुम्हीं

दितम् ॥ ३४ ॥ अथदेवगणास्सर्वेब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ आदित्यावसवोरुद्राविश्वेदेवास्तथाश्विनौ ॥ ३५ ॥ प्रजग्मुस्त्वरितास्तत्रयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ गर्त्तामध्यगतःसुप्तोलज्जयापरयावृतः ॥ ३६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेशभक्तानामभयप्रद ॥ नमस्तेजगदाधारशशिराजितशेखर ॥ ३७ ॥ त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्वमापस्त्वंमहीविभो ॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३८ ॥ त्वंपासिचसुरश्रेष्ठतथानाशंनयिष्यसि॥ त्वंविष्णुस्त्वंचतुर्वक्रस्त्वंचन्द्रस्त्वंदिवाकरः॥ ३९ ॥ त्वयाविनामहादेवनकिञ्चिदिहविद्यते ॥ अपिकृत्वामहत्पापंनरोदेवधरातले ॥ ४० ॥ महादेवमहादेवमहादेवेतिकीर्तनात् ॥ कोटयोब्रह्महत्यानामगम्यागमनस्यच॥ ४१ ॥ सद्यःप्रलयमायान्तिमहादेवेतिकीर्तनात् ॥ तवनामापिसङ्कीर्त्यप्रयातित्रिदशालयम् ॥ ४२ ॥ विप्रोयथामनुष्याणांनदीनांवामहार्णवः ॥ तथात्वंसर्वदेवानामाधिपत्येऽव्यवस्थितः ॥ ४३ ॥ नक्षत्राणांयथाचन्द्रःप्रदीप्तानांदिवाकरः ॥ तथात्वंसर्वदेवानामाधिपत्येऽव्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ धातूनांकाञ्च

ब्रह्माहो, तुम्हीं चन्द्रमाहो, तुम्हीं सूर्य्यहो ॥ ३९ ॥ हे महादेव ! संसार में तुम्हारेविना कुछ नहींहै हे देव ! भूतलमें मनुष्य बड़े पापकोभी कर ॥ ४० ॥ हे महादेव ! ऐसा तीनबार कहके कोटियों ब्रह्महत्या और जिन स्त्रियोंका प्रसङ्ग धर्मशास्त्रमें विशेषकर वर्जित है उनके प्रसंग के पाप ॥ ४१ ॥ बहुत जल्दी नाश होतेहैं आपका महादेव यह नाम कहके स्वर्गको जाताहै ॥ ४२ ॥ जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, नदियोंमें समुद्र स्वामीहै तैसेही सब देवतोंके स्वामित्व में तुम स्थितहो ॥ ४३ ॥ नक्षत्रों में

जैसे चन्द्रमा तेजवालों में जैसे सूर्य्यनारायण स्वामीहैं तैसेही सब देवतों के स्वामित्व में तुम स्थितहो ॥ ४४ ॥ धातुओंमें जैसे सोना और गन्धर्व्वोंमें जैसे नारद स्वामी हैं तैसेही सब देवतों के स्वामित्व में तुम टिकेहो ॥ ४५ ॥ ओषधियों में जैसे अन्न व पर्वतों में जैसे सुमेरुगिरि है तैसेही सब देवतोंमें तुम विशेषता से स्थितहो ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! हे देवतोंमें श्रेष्ठ ! इससे हम सब देवतों के ऊपर व सब मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न होकर फिर अपना लिंग धारण करिये ॥ ४७ ॥ हे देव ! अगर आप लिंग न धारण किया तो निश्चय करके तीनोंलोक नाश को प्राप्त होजायँगे ॥ ४८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि देवतों के ऐसे वचन सुनकर भगवान् महादेवजी लज्जासे युक्त सब

नंयद्वद्गन्धर्व्वाणाञ्चनारदः ॥ तथात्वंसर्वदेवानामाधिपत्येऽव्यवस्थितः ॥ ४५ ॥ ओषधीनांयथासस्यं नगानांहेमपर्वतः ॥ तथात्वंसर्वदेवानामाधिपत्येऽव्यवस्थितः ॥ ४६ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंनःसर्वेषाञ्चनृणांविभो ॥ सन्धारयपुनर्लिङ्गं स्वकीयं सुरसत्तम ॥ ४७ ॥ नोचेज्जगत्रयन्देवनूनंनाशमुपेष्यति ॥ ४८ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाभगवान्वृषभध्वजः ॥ प्रोवाचप्रणतान्सर्वान्भगवान्व्रीडयान्वितः ॥ ४९ ॥ मयासतीवियोगार्त्तियुक्तेनसुरसत्तमाः ॥ लिङ्गमेतत्परित्यक्तंशाप ठ्याजाद्द्विजन्मनाम् ॥ ५० ॥ कोलम्पातयितुंलिङ्गंमयैतद्भुवनत्रये ॥ देवोवादानवोवापिवेत्थयूयमपिस्फुटम् ॥ ५१ ॥ तस्मान्नैतद्धरिष्यामिलिङ्गमेतद्धरातलात् ॥ किमनेनकरिष्यामिभार्य्ययापरिवर्ज्जितः ॥ ५२ ॥ देवाऊचुः ॥ तवका न्तासतीनामयामृताप्राक्सुरोत्तम ॥ साजातामेनकागर्भेगौरीनामहिमाचलात् ॥ ५३ ॥ भविष्यतिपुनर्भार्य्या तवैवत्रिपु रान्तक ॥ तस्माल्लिङ्गंसमादायकुरुक्षेमंदिवौकसाम् ॥ ५४ ॥ शिवउवाच ॥ अद्यप्रभृतियेलिङ्गंयदिदेवाद्विजातयः ॥ पूजय

देवतों से जिन्होंने कि प्रणाम कियाहै उनसे बोले ॥ ४९ ॥ हे श्रेष्ठदेवताओ ! सतीके विरहमें दुःखी मैंने ऋषियों के शापके बहाने से यह लिंग त्यागकिया है ॥ ५० ॥ यह बात तुम लोगभी प्रसिद्ध में जानते हो कि चाहै देवताहो चाहै दैत्यहो हमारा यह लिंग त्रिलोक में गिराने को कौन समर्थ है ॥ ५१ ॥ इस लिये भूतलसे इस लिंगको न धारण करूंगा मैं इस लिंगकरके क्या करूंगा क्योंकि स्त्रीकरके विहीनहूं ॥ ५२ ॥ देवता बोले कि हे देवतों में श्रेष्ठ ! सतीनामक जो तुम्हारी स्त्री पहले मरगई थी वह हिमाचल से मेनका स्त्री मे जिसका गौरीनाम है पैदा होचुकी है ॥ ५३ ॥ हे त्रिपुर भस्म करनेवाले ! वह फिर तुम्हारीही स्त्री होगी इससे लिंगको

अच्छी वाणीसे तीनोंलोकों को प्रसन्न करतेहुये व सब देवतों के सुनते हुये बोले कि हे ब्राह्मणलोगो ! ॥ ६४ ॥ यह सुवर्ण का लिंग निर्माण करके प्रथम पाताल में स्थापित किया है सब कही हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ६५ ॥ तिसी प्रकार और मनुष्य सोनेका लिंग व मणि, मोती, रत्नोंका सम्पूर्णरूप से लिंग बना कर और नीचधातु व मिट्टीका लिंगछोड़कर उपर्युक्त लिंगका पूजन त्रिकालमें करेंगे ते मनुष्य उत्तमगति को जावेंगे॥ ६६ । ६७ ॥ ब्रह्माजी ऐसा कहकर सब देवतों सहित वैकुण्ठ को गये और चन्द्रभाल भी कैलास चलेगये ॥ ६८ ॥ इसी कारण इस लोकमें देवता और दैत्य महादेवजी के उत्तम अङ्गोंको छोड़कर लिंगका पूजन वि-

ङ्गंहाटकेनविनिर्मितम् ॥ ख्यातिंयास्यतिसर्वत्रपातालेहाटकेश्वरम् ॥ ६५ ॥ तथान्येमनुजायेचहाटकादीनिभक्तितः ॥ मणिमुक्तासुरत्नैश्चकृत्वालिङ्गानिकृत्स्नशः॥६६॥त्रिकालंपूजयिष्यन्तितेयास्यन्तिपराङ्गतिम्॥ मृन्मयंसम्परित्यज्यनी चधातुमयंतथा ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रःसहसर्वैर्दिवालयैः ॥ जगामत्रिदिवंसोपि कैलासंशशिशेखरः ॥ ६८ ॥ एत स्मात्कारणाल्लिङ्गंपूज्यतेत्रसुरासुरैः ॥ हरस्यचोत्तमाङ्गानिपरित्यज्यविशेषतः ॥६९॥ ततःप्रभृतितल्लिङ्गेस्वयंब्रह्माव्यत्र स्थितः ॥ भगवान्वासुदेवश्च तेनपूज्यंशिवंहितत् ॥ ७० ॥यस्तुपूजयतेनित्यंश्रद्धायुक्तेनचेतसा ॥ त्र्यम्बकाच्युतब्रह्मा द्यास्तेनस्युःपूजितास्त्रयः ॥ ७१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनशिवलिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ स्पर्शयेदीक्षयेन्नित्यंकीर्त्तयेत्तुद्विजोत्तमाः॥ ७२॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेलिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्येप्रथमोध्यायः॥ १ ॥ * ॥ * ॥

शेषता से करते हैं ॥ ६९ ॥ तब से लगाकर ब्रह्मा और विष्णु भगवान् उस लिंग में विशेषता से टिकेहैं इसीसे वह लिंग पूजन के योग्य है ॥ ७० ॥ जो कोई प्रति-दिन श्रद्धायुक्त चित्त होकर लिंगका पूजन करता है वह ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सब देवतों का पूजन करचुका ॥ ७१ ॥ तिससे हे ब्राह्मणलोगो ! प्रयत्न करके प्रति-दिन शिवलिंग का पूजन, स्पर्शन, दर्शन व कीर्तन करना चाहिये ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेलिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

धारण करके देवतों का कल्याण कीजिये ॥ ५४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवतालोगो ! यदि आजसे लगाकर ब्राह्मण लोग बड़ी विधिसे लिंगको पूजन करैंगे तौ मैं यह धारण करूंगा ॥ ५५ ॥ ब्रह्मा बोले हे शङ्करजी ! हम आपही तुम्हारे लिंगका पूजन करैंगे तथा सब देवता लिंग पूजैंगे फिर पृथ्वीमें मनुष्योंको क्या कहना है ॥ ५६ ॥ यह कहकर सब देवतों सहित ब्रह्माजी पाताल में पैठकर आपही उस लिंगका भक्तिसे पूजन किया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर श्रद्धासे पवित्रचित्त करके विष्णु व और सब देवता श्रद्धायुक्तहो लिंगपूजन किया ॥ ५८ ॥ तब महादेवजी प्रसन्नहोकर विनय से झुकेहुये विष्णु और ब्रह्मासे यह वचन बोले ॥ ५९ ॥ हे बड़ेभाग्य

न्तिप्रयत्नेनतदिदन्धारयाम्यहम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहंतवस्वयंलिङ्गंपूजयिष्यामिशङ्कर ॥ तथान्येविबुधाःसर्वेकिम्पुनर्भुविमानवाः ॥५६॥ ततःप्रविश्यपातालंदेवैःसार्द्धंपितामहः ॥ स्वयमेवाकरोत्पूजां तस्यलिङ्गस्यभक्तितः ॥ ५७ ॥ तस्मादनन्तरंविष्णुःश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तथान्येविबुधाःसर्वेशक्राद्याःश्रद्धयान्विताः ॥ ५८ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः पितामहमिदंवचः ॥ प्रोवाचवासुदेवंचविनयावनतंस्थितम् ॥ ५९ ॥ भवद्भ्याम्परितुष्टोस्मितस्मान्मत्तःप्रगृह्यताम् ॥ वरमिष्टंमहाभागौ यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ६० ॥ ब्रह्मविष्णूऊचतुः ॥ यदितुष्टोसिदेवेशत्रिभागेनसमाश्रयम् ॥ आवाभ्यांदेहिलिङ्गेनयेनैकत्रत्रयम्भवेत् ॥ ६१ ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायलिङ्गमादायवैप्रभुः ॥ स्थानेनियोजयामास सर्वदेवाधिपूजितम् ॥ ६२ ॥ ततोहाटकमादायतदाकारंपितामहः ॥ कृत्वालिङ्गंस्वयंतत्रस्थापयामासहर्षितः ॥ ६३ ॥ प्रोवाचचाथभोविप्राःसाधुनादेननादयन् ॥ लोकत्रयंसमस्तानांशृण्वतांत्रिदिवौकसाम् ॥ ६४ ॥ मयाह्याद्यंत्विदंलि

वाले ! तुम दोनोंसे हम प्रसन्न हैं इससे दुर्लभभी मनोभिलषित वरदान हमसे मांगो ॥ ६० ॥ ब्रह्मा और विष्णु बोले कि हे देवतों के पति ! जो तुम प्रसन्नहो तो तीन हिस्सों करके समाश्रित लिंग हम दोनोंके लिये दीजिये जिससे तीनों एकजगह इकट्ठे होवैं ॥ ६१ ॥ सूतजी बोले कि महादेव ने कहा बहुत अच्छा और सब देवतों सें पूजित लिंगको लेकर स्थान में धारण किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी हर्षितहो सुवर्ण लेकर लिंग सदृश बनाकर आपही स्थापना किया ॥ ६३ ॥ और

दो० ॥ कह द्वितीय अध्यायमें नृप त्रिशंकु शिरनाय । मोहिं वसिष्ठमुनि देह सह स्वर्ग देहु पहुँचाय ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! भूतल से उखाड़ते हुये वह लिंग पातालगंगाजलमें उस मार्गसे निकला ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वहांपर मनुष्यों के सब पाप हरनेवाला व सब मनोरथों का देनेवाला आपही आप जो हुआ है मनुष्योंका विस्मय करानेवाला वह हम कहते हैं तुम सब आज सुनो ॥ २ । ३ ॥ त्रिशंकुनामक राजाओं का स्वामी चाण्डालता को प्राप्त हुआहै वह उसी स्थान में स्नानकर फिर मनुष्यके योग्य शरीर को प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि राजोंमें श्रेष्ठ त्रिशंकु किस तरह चाण्डालता को प्राप्तहुआ है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि पुरा-

श्रीसूतउवाच ॥ तस्मिन्नुत्पाटितेलिङ्गे भूतलाद्द्विजसत्तमाः ॥ पातालजाह्नवीतोयेतेनमार्गेणनिस्सृतम् ॥ १ ॥ सर्वपापहरंनृणांसर्वकामप्रदायकम् ॥ तत्रस्वयमभूत्पूर्वं यत्तद्द्विजवरोत्तमाः ॥ २ ॥ शृणुध्वंवदतोमेद्यलोकविस्मयकारकम् ॥ ३ ॥ त्रिशङ्कुर्नामराजेन्द्रश्चाण्डालत्वंसमागतः ॥ तत्रस्नातःपुनर्लेभेशरीरंमानुषोचितम् ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ चाण्डालत्वंकथम्प्राप्तस्त्रिशङ्कुर्नृपसत्तमः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ सूर्य्यवंशोद्भवःपूर्वंत्रिशङ्कुरितिविश्रुतः॥ आसीत्पार्थिवशार्दूलःशार्दूलसमविक्रमः ॥ ६ ॥ वसिष्ठस्यमुनेःशिष्योयज्वादानपतिःप्रभुः ॥ तेनेष्टञ्चमखैःसर्वैरग्निष्टोमादिभिःसदा ॥ ७ ॥ सम्पूर्णदक्षिणैरेववत्सरंवत्सरम्प्रति ॥ तथादानानिसर्वाणिप्रदत्तानिमहात्मना ॥ ८ ॥ ब्राह्मणेभ्योविशिष्टेभ्योदानेभ्यश्चविशेषतः ॥ व्रतानिचप्रचीर्णानिरक्षिताःशरणागताः ॥ ९ ॥ पुत्रवल्लालितालोकाश्शत्रवश्चनिषूदिताः ॥ भ्रान्तानिभूतलेयानितीर्थान्यायतनानिच ॥ १० ॥ तपस्विभ्योयथाकामंयच्छतावाञ्छितंधनम् ॥ कस्यचित्त्वथकाल

तनसमय में सूर्य्यवंशमें उत्पन्न त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध व शार्दूल के समान पराक्रमवाला राजाओं में प्रधान हुआ ॥ ६ ॥ वसिष्ठमुनि का शिष्य यज्ञ करनेवाला, दानस्वामी राजा सदैव अग्निष्टोम इत्यादि सब यज्ञोंको किया ॥ ७ ॥ वह महात्मा राजा सब प्रकार के दक्षिणा व सब दान प्रतिवर्ष में दिया ॥ ८ ॥ उत्तम ब्राह्मणोंको विशेषता से दान दिया व व्रत किया और शरणागत की रक्षाकिया ॥ ९ ॥ प्रजाजनों को पुत्र के समान प्यार किया व शत्रुवों को नाश किया और पृथ्वीतल में जितने तीर्थ,

देवस्थान हैं सब कहीं गया ॥ १० ॥ तपस्वियों के लिये मनोभिलषित द्रव्य दिया किसीसमय भगवान् वसिष्ठमुनिजी आये ॥ ११ ॥ सभामें बैठेहुये वसिष्ठजी से विनयपूर्वक कहा ॥ १२ ॥ त्रिशंकु बोला कि हे भगवन् ! हम इस समय वह यज्ञ किया चाहते हैं कि जिससे जल्दी शरीर के सहित स्वर्गको चलेजावैं ॥ १३ ॥ तिस से हमारे ऊपर प्रसन्न होकर उस यज्ञ सिद्धहोने के लिये अद्भुत सामग्री और यज्ञकरानेवाले ब्राह्मणोंको इकट्ठा कराइये ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कोई यज्ञ नहीं है जिससे इसी शरीर करके स्वर्गको जाय यह हम सत्य कहते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! जिन अग्निष्टोमादिक यज्ञोंको प्राचीन समयमें ब्रह्माने कहाहै उन

स्यवसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ ११ ॥ तेनप्रोक्तःसभामध्येसंस्थितोनतिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ त्रिशङ्कुरुवाच ॥ भगवन्यष्टुमिच्छामितेनयज्ञेनसाम्प्रतम् ॥ गम्यतेत्रिदिवंयेन सशरीरेणसत्वरम् ॥ १३ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे सम्भारानाहराद्भुतान् ॥ तस्ययज्ञस्यसिद्ध्यर्थं यथार्हान्ब्राह्मणांस्तथा ॥ १४ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ नसकश्चित्क्रतुर्येन गम्यतेत्रिदिवंनृप ॥ अनेनैवशरीरेणसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १५ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञायेप्रोक्ताःप्राक्स्वयम्भुवा ॥ अन्यदेहान्तरेस्वर्गःप्राप्यतेतैःकृतैर्नृप ॥ १६ ॥ यदिवापृथिवीपालत्वयायज्ञप्रभावतः ॥ पार्थिवोवाद्विजोवाथवैश्योवान्यतरोपिवा ॥ १७ ॥ स्वयंदृष्टःश्रुतोवापिसञ्जातोत्रधरातले ॥ स्वर्गगतःशरीरेणसहितस्तत्प्रकाङ्क्षय ॥ १८ ॥ त्रिशङ्कुरुवाच ॥ यदिमांविप्रशार्दूलनत्वंयाजयितुंक्षमः ॥ स्वर्गप्रदेनयज्ञेनवपुषानेनवैविभो ॥ १९ ॥ तत्किन्तेतपसःशक्त्याब्राह्मण्यस्यविवक्षया ॥ अपरंशृणुमेवाक्यंयद्ब्रवीमिपरिस्फुटम् ॥ २० ॥ शृण्वतांमुनिवृन्दानांतथान्येषांद्विजोत्तम ॥ यदिमेनकरोषित्वंवचनं

के करने से दूसरी देह से स्वर्ग प्राप्तहोता है ॥ १६ ॥ अथवा हे भूमिपाल ! आपने राजा या ब्राह्मण अथवा वैश्य या और किसी को इस धरातलमें उत्पन्न होकर यज्ञ के प्रभावसे इस शरीरके सहित स्वर्गगयाहुआ देखाहो या सुनाहो तो तुमभी इच्छा करो ॥ १७ । १८ ॥ त्रिशंकु बोला कि हे ब्राह्मणोंमें प्रधान! हे प्रभो ! यदि हमारे इसी शरीरको स्वर्ग देनेवाले यज्ञको नहीं करासक्तेहो तो तुम्हारी तपस्या तथा ब्राह्मणत्व की क्या शक्तिहै और जो हम प्रसिद्ध वचन कहते हैं उनको सुनो ॥ १९ । २० ॥

हे ब्राह्मणोत्तम! मुनिसमूहों के तथा औरों के सुनते यदि बार २ कहेहुये हमारे वचन नहीं करतेहो ॥ २१ ॥ तो और ब्राह्मण को गुरु करके हम उस यज्ञसे पूजन करैंगे ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उस त्रिशंकुके यह वचन सुनकर तिस पीछे भगवान् वसिष्ठजी उच्चप्रकार से हँसकर उससे बोले कि हे पृथ्वीनाथ! आजही करिये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिशङ्कूपाख्यानंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ मुनि वसिष्ठ के सुतन सब दीन त्रिशंकुहिं शाप। यहि तिसरे अध्यायमें वरणत सुनिये आप ॥ सूतजी बोले कि त्रिशंकुराजा मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी को

वदतोसकृत् ॥ २१ ॥ तेनयज्ञेनयक्ष्येहंतत्कृत्वान्यंद्विजंगुरुम् ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वावसिष्ठोभगवांस्ततः ॥ तमुवाचविहस्योच्चैः कुर्वद्यैवमहीपते ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेत्रिशङ्कूपाख्यानन्नाम द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ प्रणम्यभूपतिस्तंवै वसिष्ठंमुनिपुङ्गवम् ॥ ययौतत्रसुतायस्ययत्रतेशतसङ्ख्यकाः ॥ १ ॥ तानपिप्राहनत्वासतमेवार्थंनराधिपः ॥ वसिष्ठवचनंकृत्स्नंतस्यतैरपिशंसितम् ॥ २ ॥ ततस्तान्सपुनःप्राहयुष्माकंजनकोधुना ॥ अशक्तोमांदिवन्नेतुंसशरीरंविसर्जितः ॥ ३ ॥ तस्माद्यदिनमांयूयंयाजयिष्यथसाम्प्रतम् ॥ परित्यज्यकरिष्यामिशीघ्रमन्यपुरोहितम् ॥ ४ ॥ योमांयज्ञप्रभावेणनयिष्यतिसुरालयम् ॥ अनेनैवशरीरेणसहितंगुरुपुत्रकाः ॥ ५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासर्वेतेमुनिसत्तमाः ॥ परंकोपंसमाविष्टास्तमूचुःपरुषाक्षरैः ॥ ६ ॥ यस्मात्त्वयागुरुस्त्यक्तोहितकृत्पापवानसि ॥

प्रणाम करके वहांको गया जहां वसिष्ठजी के सौसंख्यक पुत्रथे ॥ १ ॥ त्रिशंकुराजा उनको भी प्रणाम करके वही प्रयोजन कहा और सब वसिष्ठजी के कहेहुये वचनों को भी कहा ॥ २ ॥ तदनन्तर वह फिर उनसे कहा कि इस समय तुम्हारा पिता मुझे शरीर समेत स्वर्ग भेजने को असमर्थहुआ इससे बिदा कियागया ॥ ३ ॥ तिस से यदि तुमलोग मुझे इस समय यज्ञ न करावोगे तो तुम्हें छोंड़कर जल्दी और पुरोहित करूंगा ॥ ४ ॥ हे गुरुके पुत्रो! जो मुझे यज्ञके प्रभावसे इसी शरीर समेत स्वर्ग पहुँचावैगा ॥ ५ ॥ उसके यह वचन सुनकर वे सब मुनिलोग बड़े क्रोधमें होकर उससे कठोर वचनों से बोले ॥ ६ ॥ हे पापिन्! जिस कारण तूने हितैषी गुरुको

छोड़ा इससे पापीहै इस कारण इसी समय मनुष्योंसे निन्दित चाण्डाल होजाय ॥ ७ ॥ उनके वचनों के अनन्तर वह राजा उसी समय बिगड़े शरीरवाला चाण्डाल रूप होगया ॥ ८ ॥ यवके समान कटिवाला, पतली घींचवाला, पीले नेत्रवाला, टेढ़ी नासिकावाला तथा काले शरीरवाला व शंकु अर्थात् (कील) के समान खड़े कांनवाला दुर्गन्ध से घिराहुवाहै ॥ ९ ॥ वह राजा इसके अनन्तर चाण्डाल के सदृश बिगड़े हुये अपने शरीर को देखकर उसी समय लज्जासे आगे समीप में स्थित हुवा ॥ १० ॥ यहांसे जावो २ इस तरह विप्र लोगोंसे बार २ निन्दित, निरंकुश वह सब ओरसे कुत्तों करके दुःखी होरहाहै ॥ ११ ॥ तदनन्तर कौवा, कोकिलके समान

तस्माद्भवाधुनापापचण्डालोलोकनिन्दितः ॥ ७ ॥ अथतद्वचनान्तेसतत्क्षणात्पृथिवीपतिः ॥ बभूवान्त्यजरूपाद्यो विकृताकारदेहभृत् ॥ ८ ॥ यवमध्यःकृशग्रीवः पिङ्गाक्षोभुग्ननासिकः ॥ कृष्णाङ्गःशङ्कुकर्णश्चदुर्गन्धेनसमावृतः ॥ ९ ॥ अथात्मानंसमालोक्य विकृतंसनराधिपः ॥ चण्डालधर्मिणंसद्योलज्जयाग्रउपस्थितः ॥ १० ॥ याहियाहीतिविप्रैस्तैर्भर्त्स्यमानोमुहुर्मुहुः ॥ सर्वतःसारमेयैश्चक्लिश्यमानोनिरर्गलः ॥ ११ ॥ काककोकिलसङ्काशो जीर्णवस्त्रावगुण्ठितः ॥ ततःसचिन्तयामासदुःखेनमहतावृतः ॥ १२ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंशान्तिर्भविष्यति ॥ किंमयैतन्नुमूर्खेणवाञ्छितंदुर्लभम्पदम् ॥ १३ ॥ तत्प्रभावेणमेभ्रष्टःकुलधर्मोपिमेधिकः ॥ किंजलंप्रविशाम्यद्य किंवादीप्तंहुताशनम् ॥ १४ ॥ भक्षयामिविषंकिंवा कथंस्यान्मृत्युरद्यमे ॥ अनेनवपुषादारान्वीक्षयिष्यामितान्कथम् ॥ १५ ॥ तादृशेनशरीरेणयाभिःसंक्रीडितंमया ॥ कथंपुत्रांस्तथापौत्रान्सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ १६ ॥ वीक्षयिष्यामितद्भूयस्तथान्यंसेवकं

काला तथा पुराने वस्त्र पहने बड़े क्लेशसे युक्त होकर विचारनेलगा ॥ १२ ॥ मैं क्या करूं, कहांजाऊं, किस प्रकार शान्ति होगी इस दुर्लभ पदार्थको मूर्खता से क्यों इच्छा किया ॥ १३ ॥ मूर्खताके प्रभाव से मेरा बढ़ाहुवा कुलधर्म जाता रहा क्या जलमें प्रवेश करूं या जलती हुई अग्नि में पैठजाऊं ॥ १४ ॥ या मै विष भक्षण करूं किस प्रकार आज मेरी मृत्यु होजाय इस शरीर से मैं उन स्त्रियों को कैसे देखूंगा ॥ १५ ॥ जिन स्त्रियों के साथ मै उस शरीर से क्रीड़ा कियाहै मित्र,

कुटुम्बी, नातेदार, पुत्र और पोतोंको कैसे देखूंगा ॥ १६ ॥ उन सेवकों और उन शत्रुवों को कैसे देखूंगा जिनको अगले समय युद्धमें जीताहै ॥ १७ ॥ वे शत्रुलोग आज मुझे इस दशामें प्राप्त सुनकर निडर होकर आनंद होंगे जिन वेदपाठी ब्राह्मणों को मैंने दानों से तृप्त किया है ॥ १८ ॥ वे मुझे ऐसे सुनकर दुःखी होंगे इसी प्रकार जे हमारे प्रतिदिन हित करनेवाले इष्ट मित्रहैं ॥ १९ ॥ वे मुझे इस दशा में प्राप्त सुनकर किस अवस्था को प्राप्तहोंगे जे साठि वर्षवाले मदसे अन्ध भद्रजातीय हाथी हैं ॥ २० ॥ हमारे विना आज उन हाथियों को युद्धमें कौन नियुक्त करैगा जे तित्तिरके समान कर्बुर वर्णवाले तथा दृढ़ सवारों के वशमें न आनेवाले

जनम् ॥ येमयानिर्जिताःसर्वे रिपवःसङ्गरेपुरा ॥ १७ ॥ तेद्यमामीदृशंश्रुत्वा हर्षयास्यन्तिनिर्भयाः ॥ येमयातर्पितादानैर्ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ १८ ॥ तेद्यमामीदृशंश्रुत्वासम्भविष्यन्तिदुःखिताः ॥ तथायेसुहृदोभीष्टानित्यंममहितेरताः ॥ १९ ॥ कामवस्थांप्रयास्यन्ति दृष्ट्वामांस्थितमीदृशम् ॥ भद्रजात्यागजायेमेमदान्धाःषष्टिहायनाः ॥ २० ॥ मयाविनामिथोयुद्धेकस्तानद्यनियोक्ष्यति ॥ अश्वास्तित्तिरकल्माषाःस्वदान्ताःसादिभिर्दृढैः ॥ २१ ॥ कस्तांश्चित्रपदन्यासैर्नियास्यतिमयाविना ॥ तथामेभृत्यवर्गास्तेकुलीनायुद्धदुर्मदाः ॥ २२ ॥ मांविनाकस्ययास्यन्तिसमीपेद्यसुदुःखिताः ॥ सङ्ख्याहीनस्तथाकोशस्तादृश्बहुरत्नभाक् ॥ २३ ॥ कस्ययास्यतिसम्भोगंमयाहीनःस्वरक्षितः ॥ तथामेसङ्ख्ययाहीनंधान्यंगोजीविकंमहत् ॥ २४ ॥ भविष्यतिकथंहीनंममाभीष्टैःसुरक्षितम् ॥ एवंबहुविधंराजासविलप्यचदुःखितः ॥२५॥ जगामनगराभ्याशंपद्भ्यामेवशनैश्शनैः ॥ ततोरात्रौसमासाद्यस्वंपुरञ्जनवर्जितम् ॥ २६ ॥ द्वारेस्थित्वासमाहूयपुत्रं

घोड़े हैं ॥ २१ ॥ हमारे विना उन घोड़ोंको चित्रविचित्र कदमों से कौन चलावैगा तिसी प्रकार हमारे वे भृत्यसमूह जे अच्छे कुलीन और युद्धमें अहङ्कारी हैं ॥ २२ ॥ वे आज दुःखी होकर मुझ विना किसके निकट जावैंगे बहुत रत्नोंवाला उस प्रकार का कोश (ख़ज़ाना) संख्या से रहित होगया ॥ २३ ॥ हमसे रक्षित राज्य हमारे विना किसके भोगमें जावैगी उसी प्रकार अन्न व बहुत पशुसमूह संख्या से हीन होगया ॥ २४ ॥ अच्छे प्रकार से रक्षित हमारे इष्ट मित्रो से रहित किस प्रकार होगा वह दुःखी राजा इस प्रकार बहुत भांति से विलाप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर धीरे२ पांवों से नगर के समीप गया मनुष्यों से रहित अपने पुरमें रात्रिको प्राप्तहो ॥ २६॥

द्वारेपै बैठकर मंत्रियों सहित पुत्रको बुलाकर सम्पूर्ण शापोत्पन्नका वृत्तान्तकहा ॥ २७ ॥ दूर टिकेहुये उसका वह महात्मा वसिष्ठजी के पुत्रों का वज्रके समान वचन सुन कर वे भी ॥ २८ ॥ शोचसे संयुक्त होकर आंसुओं से सबओर संकुल मुखोंसे रोनेलगे कि हे स्वामिन् ! हे महाराज ! हे प्रतिदिन धर्मवत्सल ! ॥२९॥ हमलोग दुःखी होकर तुम्हारे विना आज कैसे होवैंगे उन वसिष्ठजीके दुष्ट पुत्रों को कैसे यह योग्यहै ॥ ३० ॥ अपना से यज्ञ कराने योग्य और विशेषकर नयेहुये को शाप दिया हे राजशार्दूल ! हम सबलोग गृह इत्यादि को छोड़ निस्सन्देह तुम समेत चाण्डालताको प्राप्त होवैंगे ॥ ३१ । ३२ ॥ त्रिशंकु बोले कि यदि तुम सबों की अचला

मन्त्रिभिरन्वितम् ॥ कथयामासवृत्तान्तंसर्वंशापसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ दूरेस्थितस्यपुत्राणांवसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ वज्रपातोपमंवाक्यंतेपितस्यनिशम्यतत् ॥ २८ ॥ बाष्पपर्य्याकुलैरास्यैरुरुदुःशोकसंयुताः ॥ हानाथहामहाराजहानित्यंधर्मवत्सल ॥ २९ ॥ त्वयाहीनाभविष्यामःकथमद्यसुदुःखिताः ॥ किमेतद्युज्यतेतेषांवसिष्ठानांपुरात्मनाम् ॥ ३० ॥ शापंददुःस्वयाज्यस्यविशेषाद्विनतस्यच ॥ तेवयंराजशार्दूलपरित्यज्यगृहादिकम् ॥ ३१ ॥ अन्त्यजत्वङ्गमिष्यामस्त्वयासार्द्धमसंशयम् ॥ ३२ ॥ त्रिशङ्कुरुवाच ॥ भक्तिश्चेदस्तियुष्माकंममोपरिनिरर्गला ॥ तन्मेपुत्रस्यमन्त्रित्वंसर्वेकुरुत साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ हरिश्चन्द्रःसुपुत्रोयंममज्येष्ठःसुवल्लभः ॥ नियोजयध्वमव्यग्राःपदव्यांममसत्वरम् ॥ ३४ ॥ अहंपुनःकरिष्यामियन्मेमनसिसंस्थितम् ॥ मृत्युंवासम्प्रयास्यामिसदेहोवासुरालयम् ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वापरित्यज्यसर्वांस्तान्समहीपतिः ॥ जगामारण्यमाश्रित्यपद्भ्यामेवशनैःशनैः ॥३६॥ तेपिसन्मन्त्रिणस्तूर्णंपुत्रंतस्यसुसम्मतम् ॥ राज्येनियोजयामासुर्नानावादित्रनिस्स्वनैः ॥३७॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहरिश्चन्द्रराज्योपलम्भोनामतृतीयोध्यायः ॥३॥

भक्तिहोय तो इससमय तुम सब हमारे पुत्रका मन्त्रीभाव करो॥३३॥ इस हमारे ज्येष्ठ व प्यारे पुत्र हरिश्चन्द्रनामकको जल्दीसे हमारे स्थानमें चैतन्यहोकर नियुक्त करो ॥ ३४ ॥ फिर जो हमारे मनमें स्थित है वह करैंगे या मृत्युको प्राप्त होवेंगे या तो देह समेत स्वर्ग जावैंगे ॥ ३५ ॥ वह राजा ऐसा कहकर उन सबों को छोंड़कर धीरे २ पांवों से वनको गया ॥ ३६ ॥ वे भी सब मन्त्री केहेहुये उनके पुत्रको जल्दीसे अनेकों प्रकार के बाजन बजवाकर राज्य पै बिठादिया ॥ ३७ ॥ इति तृतीयोऽध्यायः॥३॥

दो० ॥ गे त्रिशंकु चण्डालहै गाधिसुवन के पास । सो चौथे अध्याय में वरणतहैं इतिहास ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि त्रिशंकु मनसे बहुतकाल पर्यन्त महामुनि विश्वामित्रको भलीभांति इसप्रकार चिन्तनकर तदनन्तर यह निश्चय किया॥ १ ॥ कि विश्वामित्रको परित्यागकर तीनों भुवन में ऐसा कोई नही है जो इस कठिन दुःख से मेरी रक्षाकरे ॥ २ ॥ तदनन्तर वह कुरुक्षेत्र को उद्देशकर यात्रा किया क्षुधा,पियास से दुःखी, राह चलने से थकाहुआ मार्ग पूछनेमें परायणहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह राजा कुछकाल में कुरुक्षेत्र में प्राप्त होकर विश्वामित्र का आश्रम यत्न से अन्वेषण करनेलगा ॥४॥ इसप्रकार वह ढूंढताहुआ राजा उस समय दूरहींसे काले धुवांका

श्रीसूतउवाच ॥ त्रिशङ्कुरितिसञ्चिन्त्यविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ मनसासुचिरंकालं ततश्चेतिविनिश्चयम् ॥ १ ॥ वि
श्वामित्रंपरित्यज्यनान्योस्तिभुवनत्रये ॥ यःकुर्यान्मेपरित्राणंदुःखादस्मात्सुदारुणात् ॥ २ ॥ कुरुक्षेत्रंसमुद्दिश्यप्रत
स्थेसततःपरम् ॥ सुश्रान्तःक्षुत्पिपासार्तोमार्गपृच्छापरायणः ॥ ३ ॥ ततःकालेनसम्प्राप्यकुरुक्षेत्रंसपार्थिवः ॥ यत्ने
नान्वेषयामास विश्वामित्राश्रमंततः ॥ ४ ॥ एवंचान्वेषमाणेनतेनभूमिभृतातदा ॥ सुदूरादेवसन्दृष्टंनीलधूमकदम्ब
कम् ॥ ५ ॥ उपरिष्टाद्बकैर्हंसैर्भ्रममाणंसमन्ततः ॥ आडिभिर्मद्गुभिश्चैवसमन्ताज्जलपक्षिभिः ॥ ६ ॥ समत्वास
लिलंतत्रपिपासार्त्तोमहीपतिः ॥ प्रतस्थेसत्वरोहृष्टोजलवातहृतश्रमः ॥ ७ ॥ अथापश्यन्मनोहारिसौम्यसत्त्व
निषेवितम् ॥ आश्रमंनदितीरस्थंमनःशोकविनाशनम् ॥ ८ ॥ पुष्पितैःफलितैर्वृक्षैःसमन्तात्परिवारितम् ॥ विविधैर्म
धुरारावैर्नादितंविहगोत्तमैः ॥ ९ ॥ क्रीडन्तिनकुलाःसर्पैरुलूकायत्रवायसैः ॥ मूषकैर्वृषदंशाश्चद्वीपिनोविविधैर्मृ

समूह देखा ॥ ५ ॥ कि जिस धुवां के ऊपर बगुला, हंस, आडि (और देशका तीतर) जलमुर्गा तथा और जलपक्षी सबओर से घूम रहेहैं ॥ ६ ॥ वह राजा प्याससे दुःखी जलके पवनसे परिश्रम को दूरकर उस स्थान में जल जानकर हर्षितहोकर बहुत जल्दी चला ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर मनोहर और अच्छे प्राणियों से सेवित तथा मनके शोच को नाश करनेवाला नदी के किनारे में स्थित आश्रमको देखा ॥ ८ ॥ सब ओर से फूले फरे वृक्षों करके घिराहुआहै अनेकों प्रकारके मीठे वचनवाले पक्षी

बोल रहेहैं ॥ ९ ॥ जिस आश्रममें नेउरा सप्पोंसे और घुघुवा कौवोंसे, बिलार मूसोंसे और हाथी अनेकोंप्रकार के मृगों से खेलरहे हैं ॥ १० ॥ इसके अनन्तर नदी के किनारे उसने तपस्वी लोगों से घिरे व वेदपाठ में परायण तथा चक्षुआदि इन्द्रियों को दमन किये और तपस्या के निधान विश्वामित्रजी को देखा ॥ ११ ॥ तेज व तपस्या के कारण बहुतही दीप्त अग्नि के समान हैं और चीर, वल्कलोंको पहिरे सांखू वृक्षके भलीभांति आश्रित हैं ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर वह राजाओं का स्वामी दूर में स्थित भी अपने नामको कहतेहुये अष्टाङ्ग से मुनिको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ तिसीप्रकार बड़ीश्रद्धासे युक्तहो हाथजोड़े स्थित क्रमसे बड़ों से प्रारम्भ कर

गैः ॥ १० ॥ अथापश्यन्नदीतीरेसतपस्विगणावृतम् ॥ स्वाध्यायनिरतंदान्तंविश्वामित्रंतपोनिधिम् ॥ ११ ॥ तेजसातपसा तीव्रदीप्यमानमिवानिलम् ॥ चीरवल्कलसंवीतं शालवृक्षसमाश्रितम् ॥ १२ ॥ अथगत्वासराजेन्द्रो दूरस्थोपिप्रण म्यतम् ॥ अष्टाङ्गेनप्रणामेनस्वनामपरिकीर्त्तयन् ॥ १३ ॥ तथान्यानपितच्छिष्यान् कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ यथाक्र मंयथाज्येष्ठंश्रद्धयापरयायुतः ॥ १४ ॥ धूलिधूसरिताङ्गंतंतेतुदृष्ट्वामहीपतिम् ॥ चण्डालइतिमन्वानाश्चिह्नैर्गात्रसमु द्भवैः ॥ १५ ॥ भर्त्सयामासुरेवात्रवचनैःपरुषाक्षरैः ॥ धिक्शब्दैश्चतथैवान्यैर्याहियाहीतिवासकृत् ॥ १६ ॥ कस्त्वंपापेह सम्प्राप्तोमुनीनामाश्रमोत्तमे ॥ वेदध्वनिसमाकीर्णेसाधूनामपिदुर्लभे ॥ १७ ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंयावन्नकश्चित्तापसस्त व ॥ शापंदत्त्वाकरोत्याशुप्राणानामपिसङ्क्षयम् ॥ १८ ॥ त्रिशङ्कुरुवाच ॥ सोहंशरणमापन्नःशापमुक्त्यैद्विजोत्तमाः ॥ विश्वामित्रंजगन्मित्रंनान्यामेस्तिगतिःपुरा ॥ १९ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ वसिष्ठस्यभवान्याज्यस्तत्पुत्राणांविशेष

और भी जो विश्वामित्र के शिष्यथे उनको प्रणामकिया ॥ १४ ॥ वे धूरिसे भरेहुये महीपति के शरीर को देख और सब अङ्गोंसे उत्पन्न लक्षणोंकरके चाण्डालहै यह जाना ॥ १५ ॥ और कठोर आखरवाले वचनों से उसी जगह निन्दा किया इसी प्रकार और मुनि के शिष्य धिक्कार शब्दोंसे निन्दाकर यहांसे चलेजावो २ यह बार २ कहा ॥ १६ ॥ हे पाप ! वेदध्वनि से व्याप्त और साधुजनों को भी दुर्लभ इस मुनियों के आश्रम में तू कौन भलीभांति प्राप्तहुआ है ॥ १७ ॥ इससे जबतक कोई तपस्वी शाप देकर तुम्हारे प्राणों को भी न नाश करै तभीतक जल्दी चलेजावो ॥ १८ ॥ त्रिशंकु बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! शाप छूटने के लिये मैं संसारके मित्र विश्वामित्र

के शरण में प्राप्त हूं क्योंकि पहले मेरा रक्षक और नहीं हुआ है ॥ १९ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि आप वसिष्ठजी और विशेपकर उनके पुत्रों करके यज्ञ कराने के योग्य हैं उनने किसकारण तुम्हें आज ऐसे पापमें नियुक्त किया ॥ २० ॥ हे भूपालसत्तम ! तुमने उनका क्या अपराध किया है प्राणों का वैर या स्त्रीधर्षणवाला अपराध किया है ॥ २१ ॥ त्रिशङ्कु बोले कि मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी से मैं इसी शरीर से स्वर्ग जाने के लिये उस यज्ञ की प्रार्थना किया ॥ २२ ॥ उन्हों ने कहा कि हे नृप ! ऐसी कोई यज्ञ नहीं है जिससे दूसरी देह छोड़ इसी शरीर से स्वर्ग चलाजाय ॥ २३ ॥ यह सुनकर मैं उनसे कहा कि यदि अच्छे यज्ञ के प्रभावसे इसी

तः ॥ तत्कस्मादीदृशेपापे तैस्त्वमद्यनियोजितः ॥ २० ॥ कोपराधस्त्वयातेषांकृतःपार्थिवसत्तम ॥ प्राणद्रोहःकृतःकिं वादारधर्षणसम्भवः ॥ २१ ॥ त्रिशङ्कुरुवाच ॥ अनेनैवशरीरेणस्वर्गायगमनंप्रति ॥ मयासप्रार्थितोयज्ञो वसिष्ठान्मुनिसत्तमात् ॥ २२ ॥ तेनोक्तंनसयज्ञोस्तियेनस्वर्गेप्रगम्यते ॥ अनेनैवशरीरेणमुक्त्वादेहान्तरंनृप ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वासमयाप्रोक्तोयदिमांननयिष्यसि ॥ स्वर्गवानेनकायेनसद्यज्ञस्यप्रभावतः ॥ २४ ॥ तदन्यंगुरुमेवाद्यकर्त्ताहंनास्तिसंशयः ॥ एतज्ज्ञात्वामुनिश्रेष्ठयत्क्षेमंतत्समाचर ॥ २५ ॥ ततोहंतेनसन्त्यक्तस्तत्पुत्रान्प्राप्यनिष्ठुरान् ॥ प्रोक्तवानथतेसर्वं यद्वसिष्ठस्यकीर्तितम् ॥ २६ ॥ ततस्तैःशोकसन्तप्तैःशप्तोस्मिमुनिसत्तम ॥ नीतश्चेमांदशांपापां चण्डालत्वेनियोजितः ॥ २७ ॥ सोहंत्वांमनसाध्यात्वासुदूरादिहसङ्गतः ॥ आशाङ्गरीयसींकृत्वाकुरुक्षेत्रेमुनीश्वर ॥ २८ ॥ नासाध्यंविद्यतेकिञ्चित्रिषुलोकेषुतेमुने ॥ तस्मात्कुरुप्रतीकारं दुःखितस्यममाधुना ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वामित्रोमु

देह करके तुम स्वर्ग को न पहुँचावोगे ॥ २४ ॥ तो और गुरु को निस्सन्देह मैं आजही करूंगा हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समझकर जिसमें कुशलहो वह कीजिये ॥ २५ ॥ तदनन्तर उनसे त्यागकियागया मैं उनके कठोर पुत्रों के पास जाकर वसिष्ठजीका कहाहुआ सब कहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे मुनिसत्तम ! शोच से सन्तप्त वे सब मुझे शाप दिया और इस पाप दशा को प्राप्तकर चाण्डालता में नियुक्त किया ॥ २७ ॥ हे मुनिनाथ ! बड़ी आशा करके मन से तुम्हैं ध्यानकर इस कुरुक्षेत्र में बड़ी दूर से आया हूं ॥ २८ ॥ हे मुने ! तीनों लोक में कुछ तुमसे असाध्य नहीं है इस से मेरे दुःखी के दुःखको इस समय निवारणकरो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि मुनि-

नाथ विश्वामित्रजी मुनियों के मध्य में स्थित उसके वह वचन सुनकर वसिष्ठजीकी ईर्षासे बोले ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हम उस यज्ञ से तुम्हें पूजन करावैंगे कि जिस यज्ञ के करने से इसी क्षण स्वर्ग को जातेहो ॥ ३१ ॥ हे भूप ! वसिष्ठजीके पुत्रोंने तुम्हें ऐसा चाण्डाल किया है फिरभी हम तुम्हें निस्सन्देह राजा करतेहैं ॥ ३२ ॥ तिस से हे भूपाल ! आइये हमारे साथ तीर्थयात्राकरो कि जिस तीर्थयात्रा के प्रभाव से तुम फिर पवित्र होजावो ॥ ३३ ॥ तिसी प्रकार चाण्डालता से रहित होकर यज्ञ करने के योग्य होजावो कोई ऐसा पातक नहीं है जो तीर्थ स्नान से नाश न होजाय ॥ ३४ ॥ सूतजीबोले कि इस भांति गाधिमुनि के पुत्र मुनिनाथ निश्चय करके इसके अनन्तर त्रिशंकु

नीश्वरः ॥ वसिष्ठस्पर्द्धयोवाचमुनिमध्येऽयवस्थितः ॥ ३० ॥ अहंत्वांयाजयिष्यामितेनयज्ञेनपार्थिव ॥ गच्छसित्रिदिवं येनइष्टमात्रेणतत्क्षणात् ॥ ३१ ॥ त्वमेवंविहितोभूपवासिष्ठैरन्त्यजःसुतैः ॥ मयाभूयोपिभूपालःकर्त्तव्योनात्रसंशयः ॥ ३२ ॥ तस्मादागच्छभूपालतीर्थयात्रांमयासह ॥ कुरुतीर्थप्रभावेणयेनत्वस्याःशुचिःपुनः ॥ ३३ ॥ तथायज्ञक्रियार्हश्च चण्डालत्वविवर्जितः ॥ नास्तितत्पातकंयद्यत्तीर्थस्नानान्ननश्यति ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वागाधिपुत्रो मुनीश्वरः ॥ त्रिशङ्कुंपृष्ठतःकृत्वातीर्थयात्रामथाव्रजत् ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रेसरस्वत्यांप्रभासेकुरुजाङ्गले ॥ पृथूदकेगयाशीर्षेनैमिषेपुष्करत्रये ॥ ३६ ॥ वाराणस्यांप्रयागेचकेदारेप्रवणेनदे ॥ चित्रकूटेचगोकर्णे शालग्रामेचलेश्वरे ॥ ३७ ॥ शुक्लतीर्थेसुराज्याख्येदृषद्वतिनदेशुभे ॥ अथान्येषुसुपुण्येषुतीर्थेष्वायतनेषुच ॥ ३८ ॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्यसार्द्धंतस्यमहात्मनः ॥ अतिक्रान्तोमहान्कालो भ्रमभाणस्यभूतले ॥ ३९ ॥ मुच्यतेनचपापेनचण्डालत्वेनसद्विजाः ॥ एवंविधेषु

को पीछेकर तीर्थयात्राको चलेगये ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रमें, सरस्वती नदी में, प्रभासक्षेत्रमें, कुरु जाङ्गल देशोंमें, बहुत जलवाले गयाशिर तीर्थमें, नैमिष में, तीनों पुष्करों में ॥ ३६ ॥ काशी में, प्रयाग में, केदारनाथ में, प्रवणनद में, चित्रकूट पर्वत में, गोकर्णनाथ में, शालग्राम क्षेत्र में, अचलेश्वर में ॥ ३७ ॥ सुराज्य नामक शुक्लतीर्थ में, अच्छे दृषद्वत नद में गये इसके अनन्तर और पवित्र तीर्थों व देवमन्दिरों में गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उन महात्मा के साथ पृथ्वीतल में घूमतेहुये उस राजाका बहुत

समय व्यतीत हुवा ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार के तीर्थों में पृथक् २ भी स्नान किया परन्तु चाण्डालता और पापसे न छूटा ॥ ४० ॥ तब क्रमसे वह अर्बुदपर्वत के समीप भलीभांति आया वहांपर पापनाशक अचलेश्वर को देख ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिनाथ उस मन्दिर से निकले तभीतक मुनिसत्तम मार्कण्डजी को देखा ॥ ४२ ॥ वहभी संसारके मित्र मुनिनाथ विश्वामित्रजीको देखकर इसके अनन्तर कहा कि हे मुनिनाथ ! इस समय तुम कहां से प्राप्तहुये हो ॥ ४३ ॥हे सन्मुने ! यह तुम्हारा अनुगामी चाण्डाल के आकारवाला कौन देख पड़ताहै यह सब हम पूंछते हैं तुम कहो ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि यह भूपालशार्दूल त्रिशंकु ऐसे नाम से

तीर्थेषुस्नातोपिचपृथक्पृथक् ॥ ४० ॥ ततःक्रमात्समायातःसोर्बुदंपर्वतंप्रति ॥ तत्रारुह्यसमालोक्यपापघ्नमचलेश्वरम् ॥ ४१ ॥ यावदायतनात्तस्मान्निर्गच्छतिमुनीश्वरः ॥ तावत्तेनेक्षितोनाममार्कण्डोमुनिसत्तमः ॥ ४२ ॥ सोपिदृष्ट्वा जगन्मित्रंविश्वामित्रंमुनीश्वरम् ॥ प्रोवाचाथकुतःप्राप्तस्साम्प्रतंत्वंमुनीश्वर ॥ ४३ ॥ कोयंतवानुगोरौद्रोदृश्यतेचान्त्यजाकृतिः ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्वपृच्छतोममसन्मुने ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एषपार्थिवशार्दूलस्त्रिशङ्कुरितिविश्रुतः ॥ वसिष्ठस्यसुतैर्नीतश्चण्डालत्वंप्रकोपतः ॥ ४५ ॥ मयाचास्यप्रतिज्ञातं सप्तद्वीपवतीमही ॥ प्रभ्रमिष्याम्यहंयावन्मेध्यत्वंत्वमुपेष्यसि ॥ ४६ ॥ भ्रान्तोहंभूतलेयानितीर्थान्यायतनानिच ॥ नचैषमेध्यतांप्राप्तःपरिश्रान्तोस्मिसाम्प्रतम् ॥ ४७ ॥ तस्मात्सर्वांमहींत्यक्त्वालज्जयापरयायुतः ॥ द्वीपान्महार्णवांस्त्यक्त्वासम्प्रयास्याम्यतःपरम् ॥ ४८ ॥ मावसिष्ठस्यपुत्राणामुपहास्यपदङ्गतः ॥ प्रतिज्ञारहितोविप्रसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४९ ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ यद्येवंमु

प्रसिद्ध है वसिष्ठके पुत्रों ने क्रोधसे चाण्डालता को प्राप्त कियाहै ॥ ४५ ॥ मैं इस से प्रतिज्ञा की है कि सातद्वीपवाली पृथ्वी मैं भ्रमण करूंगा जबतक तुम पवित्रता को प्राप्त होगे ॥ ४६ ॥ पृथ्वीतल में जितने तीर्थ और देवतों के मन्दिर हैं मैं सबमें भ्रमण किया परन्तु यह पवित्रता को न प्राप्तहुवा इस समय मै बहुत थकगयाहूं ॥ ४७ ॥ इस से मैं बड़ी लज्जा से युक्तहो सम्पूर्ण पृथ्वी को त्यागकर और द्वीपों को तथा बड़े समुद्रों को त्यागकर इससे आगे भलीभांति जाऊंगा ॥ ४८ ॥ हे विप्र !

प्रतिज्ञासे रहित हम वसिष्ठके पुत्रोंके उपहास्य स्थान में न जावैंगे यह सत्य कहते हैं ॥ ४९ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे मुनिशार्दूल ! यदि ऐसा है तो तुम हमारे वचन करो सातद्वीपवाली पृथ्वी को त्यागकर कहीं मत जावो ॥ ५० ॥ हे तात्र ! इस पर्वत से नैर्ऋत्य दिशाके भाग में आनर्त नामक देश में हाटकेश्वर संज्ञक महादेवहैं ५१ ॥ वहांपर पहले देवतों ने सुवर्ण करके जो लिङ्ग स्थापित किया है वह पाताल लोक में हाटकेश्वर कहाजाता है ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! जहांहीपर पातालगंगा जी का जल है महादेवसे लिंग उखाड़तेहुये रसातल से निकला है ॥ ५३ ॥ वहां पर यत्न से पृथ्वीपति पाताल में प्रवेश करै और श्रद्धासे युक्तहो गंगाजलमें स्नान

निशार्दूलकुरुष्ववचनंमम ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वीमात्यक्त्वाकुत्रचिद्व्रज ॥ ५० ॥ एतस्मात्पर्वतात्त्तात्रहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ अस्तिनैर्ऋत्यदिग्भागेदेशेचानर्तसञ्ज्ञके ॥ ५१ ॥ तत्राद्यस्थापितंलिङ्गंहाटकेनसुरोत्तमैः ॥ यत्तत्सङ्कीर्त्यतेलोकेपातालेहाटकेश्वरम् ॥ ५२ ॥ पातालजाह्नवीतोयं यत्रैवास्तिद्विजोत्तम ॥ उद्धृतेशम्भुनालिङ्गे विनिष्क्रान्तंरसाततलात् ॥ ५३ ॥ तत्रप्रविशयत्नेनपातालंवसुधाधिपः ॥ करोतुजाह्नवीतोयेस्नानंश्रद्धासमन्वितः ॥ ५४ ॥ पश्चात्पश्यतितल्लिङ्गंहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ भविष्यतिततःशुद्धश्चण्डालत्वविवर्जितः ॥ ५५ ॥ त्वमपिप्राप्स्यसिश्रेयः परांहृदयसंस्थितिम् ॥ ततोन्यदपियत्किञ्चित्तत्रैवतपसिस्थितिः ॥ ५६ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वामित्रोमुनीश्वरः ॥ त्रिशङ्कुनासमायुक्तोगतस्तत्रद्रुतंततः ॥ ५७ ॥ पातालंदेवमार्गेणप्रविश्यनृपसत्तमम् ॥ त्रिशङ्कुंस्नापयामासविधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ ५८ ॥ स्नातस्तत्राथराजासहाटकेश्वरदर्शनात् ॥ चण्डालत्वेननिर्मुक्तोबभूवार्कसमद्युतिः ॥ ५९ ॥ त

करै ॥ ५४ ॥ तत्पश्चात् वह हाटकेश्वर नामक लिंग दर्शन करै तब चाण्डालता से विशेष कर वर्जितहो शुद्ध होवैगा ॥ ५५ ॥ तुमभी कल्याण और भलीभांति मन की उत्तम स्थितिको प्राप्तहोगे इससे और भी जो कुछहै वह होगा और वहींपर तपस्या में स्थिति होती है ॥ ५६ ॥ सूतजी बोले कि मुनिनाथ विश्वामित्रजी उनके यह वचन सुनकर तदनन्तर त्रिशंकु से भलीभांति युक्तहो जल्दी से वहांगये ॥ ५७ ॥ देवमार्ग से पाताल में पैठकर विधिसे देखेहुये कर्म से नृपोत्तम त्रिशंकु को स्नान कराया ॥ ५८ ॥

इसके अनन्तर वहां स्नान करके वह राजा हाटकेश्वरके दर्शन से चाण्डालता से मुक्तहो सूर्य्य के समान दीप्तिवाला होगया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर पापसे छूटेहुये व प्रणाम करते हुये उस त्रिशंकु से मुनि बोले कि हे नृपेन्द्र ! बड़ी भाग्य से इस समय तुम चाण्डालता से मुक्तहुये हो ॥ ६० ॥ व बड़ीभाग्य से उत्तम तेज को प्राप्तहुये हो और बड़ीभाग्य से उत्तम तपको प्राप्तहुयेहो इस से विधिपूर्वक दक्षिणावाले यज्ञ से पूजन करो ॥ ६१ ॥ जिस यज्ञ से नित्य हृदय में टिकनेवाली सिद्धिको प्राप्तहोगे तुम्हारे लिये मैं आपही जाकर पितामह से प्रार्थना करूंगा ॥ ६२ ॥ हे मित्र ! जिससे सब देवतोंके आदिभूत (ब्रह्माजी) यज्ञभाग को ग्रहण करेंगे ॥ ६३ ॥ तिस

तस्तंसमुनिःप्राहप्रणतङ्गतकल्मषम् ॥ दिष्ट्यामुक्तोसिराजेन्द्रचण्डालत्वेनसाम्प्रतम् ॥ ६० ॥ दिष्ट्याप्राप्तःपरंतेजोदि
ष्ट्याप्राप्तःपरंतपः ॥ तस्माद्यजस्वसत्रेण विधिवद्दक्षिणावता ॥ ६१ ॥ येनसम्प्राप्स्यसेसिद्धिंनित्यंयांहृदयस्थिताम्॥
त्वत्कृतेप्रार्थयिष्यामिस्वयंगत्वापितामहम् ॥ ६२ ॥ मखांशंसर्वदेवाद्योयेनगृह्णातिमेसखे ॥ ६३ ॥ तस्मादत्रैवसम्भा
रानहंयज्ञसमुद्भवान् ॥ आनयंब्रह्मलोकाच्चयावदागमनंमम ॥ ६४ ॥ बाढमित्येवसोप्याह समुनिःशंसितव्रतः ॥ पिता
महमुपागम्यप्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ ६५ ॥ याजयिष्याम्यहंभूपंत्रिशङ्कुंप्रपितामह ॥ मानुषेणशरीरेणयेनगच्छतिते
पदम् ॥ ६६ ॥ तस्मादागच्छत्वंतत्रयज्ञवाटंपितामह ॥ सर्वैःसुरगणैःसार्द्धंशिवविष्णुपुरस्सरैः ॥ ६७ ॥ प्रगृहाणस्वह
स्तेनयज्ञभागंयथोचितम् ॥ सशरीरोदिवंयातुयेनासौतत्प्रसादतः ॥ ६८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नयज्ञकर्म्मणास्वर्गस्तेनपापे
नलभ्यते ॥ मुक्त्वादेहान्तरंब्रह्मंस्तस्मादेवंनयाचय ॥ ६९ ॥वयमग्निमुखाःसर्वेहविर्गृह्णामहेमखे ॥ वेदोक्तंविधिनासम्य

से हम यहींपर भलीभाति यज्ञहोनेवाले सामान ब्रह्मलोकसे आगमन करके जबतक लिये आते हैं ॥ ६४ ॥ वह राजा भी हां यह कहा प्रशंसित कर्मवाले वे मुनि ब्रह्मा के समीप जाकर प्रणाम करके वचन बोले ॥ ६५ ॥ हे प्रपितामह ! हम त्रिशंकु राजा को यज्ञ करावैंगे जिससे मनुज शरीर से तुम्हारे स्थान में गमन करै ॥ ६६ ॥ हे पितामह ! तिस से वहां शिव, विष्णु आगे चलनेवाले सब देवगणों के समेत तुम यज्ञमण्डप में आवो ॥ ६७ ॥ तुम अपने हाथ से यथायोग्य यज्ञ भागको अवश्य ग्रहण करो कि जिससे उस प्रसादसे वह शरीर समेत स्वर्ग को जावै ॥ ६८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! विना देहान्तर को छोड़े उस पाप के कारण यज्ञ कर्म से

स्वर्ग को नहीं प्राप्त होता है इसलिये ऐसा मत मांगो ॥ ६९ ॥ अग्निमुखवाले हम सब देवता यजमान के कल्याण के लिये अवश्य वेदोक्त विधि से यज्ञ मे हव्य को ग्रहण करैंगे ॥ ७० ॥ इससे हे ब्राह्मण ! वह राजा अग्नि के मुख में हव्य को हवन करै तब उसके प्रसादसे निस्सन्देह होकर भलीभाति स्वर्ग को प्राप्त होगा ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविश्वामित्रमाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ यहि पञ्चम अध्याय में शाप छोंड़ावन काज। कीन्हो यज्ञ त्रिशंकु नृप सो वरणत मुनिराज ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्माके यह वचन सुनकर क्रोध से

ग्यजमानहितायवै ॥ ७० ॥ तस्माद्वह्निमुखेभूपःसज्जुहोतुहविर्द्विज ॥ ततस्सम्प्राप्स्यतिस्वर्गंतत्प्रसादादसंशयः ॥ ७१ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेविश्वामित्रमाहात्म्येचतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यं विश्वामित्रोरुषान्वितः ॥ पितामहमुवाचेदं पश्यमेतपसोबलम् ॥ १ ॥ याजयित्वात्रिशङ्कुंतंविधिवद्दक्षिणावता ॥ यज्ञेनात्रनयिष्यामिपश्यतस्तेपितामह ॥ २ ॥ एवमुक्त्वाद्रुतंगत्वा विश्वामित्रोधरातलम् ॥ चकारयजनेयत्नंत्रिशङ्कोःसुमहात्मनः ॥ ३ ॥ ददौदीक्षांसमाहूयब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ यज्ञकर्म्मोचितेकाले तस्मिन्नेववनेशुभे ॥ ४ ॥ बभूवसस्वयंधीमानध्वर्युर्यज्ञकर्म्मणि ॥ तस्मिन्होताचशाण्डिल्यो ब्रह्मागौतमएवच ॥ ५ ॥ आग्नीध्रश्च्यवनोनाम मित्रावरुणकर्म्मणि ॥ उद्गातायाज्ञवल्क्यश्चप्रतिहर्त्ताचजैमिनिः ॥ ६ ॥ प्रस्तोताशङ्कुकर्णश्चत

युक्त हो विश्वामित्रजी पितामह से यह बोले कि हमारे तपस्या का बल तुम देखो ॥ १ ॥ हे पितामह ! उस त्रिशंकु को विधिपूर्वक दक्षिणावाले यज्ञ से पूजन कराकर तुम्हारे देखते हुये यहां लाऊंगा ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी ऐसा कहकर पृथ्वीतल में शीघ्र जाकर महात्मा त्रिशंकु के पूजन के यत्न को किया ॥ ३ ॥ उसी अच्छे वनमें यज्ञ कर्म के योग्य समय में वेद के पारजानेवाले ब्राह्मणों को भलीभांति बुलाकर दीक्षाको दिया ॥ ४ ॥ उस यज्ञ कर्म मे बुद्धिमान् आपही अध्वर्यु अर्थात् (यजुर्वेदी) हुये शाण्डिल्यमुनि होता अर्थात् (ऋग्वेदी) और गौतमऋषि ब्रह्मा हुये ॥ ५ ॥ मित्रावरुण कर्म में च्यवननामक महर्षि आग्नीध्रहुये याज्ञवल्क्य महर्षि उद्गाता अर्थात्

(सामवेदी) हुये ॥ ६ ॥ शंकुकर्णजी प्रस्तोता और गालवजी उन्नेताहुये पुलस्त्यजी उच्छंसी और मुनिनायक गर्गजीहोता अर्थात् (हवनसम्पादक) हुये॥ ७ ॥ तिसीप्रकार अत्रिजी नेष्टा और भृगुजी आपही अच्छावाक हुये श्रद्धायुक्त त्रिशंकु उन सबको ऋत्विक् किया ॥ ८ ॥ वस्त्रों से और मुकुट तथा बहूंटों से भलीभांति भूपित कर केश परित्यागकर और मृगचर्म धारण किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर मृगशृङ्गसे भलीभांति युक्तहो और पयोव्रत में अर्थात् (दूधपीनेवाला व्रत) परायणहो निश्चय करके उन सबको बहुतकाल पर्य्यन्त यज्ञ के लिये युक्त किया ॥ १० ॥ इसप्रकार यथायोग्य उस दीर्घसत्र के होतेहुये वेद व वेदोंके अंगोंके पारजानेवाले ब्राह्मण दि-

थोन्नेताचगालवः ॥ पुलस्त्यआसीदुच्छंसीहोतागर्गोमुनीश्वरः ॥ ७ ॥ नेष्टाचैवतथात्रिस्तुअच्छावाकोभृगुःस्वयम् ॥ तान्सर्वान्ऋत्विजश्चक्रेत्रिशङ्कुःश्रद्धयान्वितः ॥ ८ ॥ वासोभिर्मुकुटैश्चैवकेयूरैःसमलङ्कृतान् ॥ कृत्वाकेशपरित्यागं दधत्कृष्णाजिनंतथा ॥ ९ ॥ एणशृङ्गसमायुक्तःपयोव्रतपरायणः ॥ दीर्घसत्रायतान्सर्वान्योजयामासवैततः ॥ १० ॥ एवंतस्मिन्प्रवृत्तेचदीर्घसत्रेयथोचिते ॥ आजग्मुर्ब्राह्मणादिग्भ्यो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ११ ॥ तथान्येतार्किकाश्चैवगृहस्थाःकौतुकान्विताः ॥ दीनान्धकृपणाश्चैवयेचान्येनटनर्तकाः ॥ १२ ॥ दीयतांदीयतामाशु चैतेषामेतदेवहि ॥ भुज्यतांभुज्यतांलोकाःप्रमादःक्रियतामिति ॥ १३ ॥ इत्येषनिनदस्तत्रश्रूयतेसततंमहान् ॥ यज्ञवाटेश्रुतोनादो नान्यश्चैवकदाचन ॥ १४ ॥ तत्रसस्यमयाःशैलादृश्यन्तेपरिकल्पिताः ॥ सुवर्णस्यचरूप्यस्यरत्नानाञ्चविशेषतः ॥ १५ ॥ दानार्थंब्राह्मणेन्द्राणामसङ्ख्याश्चापिधेनवः ॥ तथैववाजिनोदान्तामदोन्मत्तामहागजाः ॥ १६ ॥ समन्तात्कल्पितास्तत्रदृश्यन्तेपर्वतोप

शास्त्रों से आये ॥ ११ ॥ तिसीप्रकार और तार्किक व कौतुक में युक्तहोकर गृहस्थ, दीन, अन्ध, कृपण और नाचनेवाले नट आये ॥ १२ ॥ इनको निश्चय करके शीघ्रही यही दियाजाय २ और लोक भोग कियेजाय २ प्रसन्नता कीजाय ॥ १३ ॥ वहांपर निरन्तर यह बडा शब्द सुनपडता है उस यज्ञवाट में किसीतरह और शब्द नहीं सुनपड़ना ॥ १४ ॥ वहांपर सबओर से बनायेहुये अन्नमय और सोने व चांदी व विशेषतासे रत्नों के पर्वत हैं ॥ १५ ॥ और उत्तम ब्राह्मणों को दान के लिये अ-

सञ्जय तुर्त की व्यानी गौ व दमन कियेहुये घोड़े व मदसे उन्मत्त बड़े हाथी हैं ॥ १६ ॥ विस्तारसे होते हुये उसी महायज्ञमें सबओरसे पर्वतके समान बनायेहुये देखपड़तेहैं॥ १७ ॥ यज्ञभाग के लिये बुलायेहुये देवता नहीं आते हैं केवल उसकी हव्य को अग्नि के मुख से ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ इसप्रकार उस राजा को यज्ञ करतेहुये बारहवर्ष व्यतीत होगये परन्तु मनके वाञ्छित फलको भलीभांति न पाया ॥ १९ ॥तदनन्तर चाण्डाल राजाभी यज्ञके अवभृथस्नान (यज्ञ करने के अनन्तर स्नान)को करके उन ऋत्विजों को यथायोग्य दक्षिणाओं से तृप्त किया ॥२०॥ हे मुनिसत्तम ! त्रिशंकुराजाने उन सबको औरभी आयेहुये नातेदारों और मित्रोंको बिदाकिया॥ २१॥

माः ॥ वर्तमानेमहायज्ञेतस्मिन्नेवसुविस्तरे ॥ १७ ॥ आहूतायज्ञभागाय नाभिगच्छन्तिदेवताः ॥ केवलंवह्निवक्त्रेणतस्य गृह्णन्तितद्धविः ॥ १८ ॥ एवंद्वादशवर्षाणियजतस्तस्यभूपतेः ॥ व्यतीतानिनसम्प्राप्तमभीष्टंमनसःफलम् ॥ १९ ॥ ततश्चावभृथस्नानंकृत्वासत्रस्यचान्त्यजः ॥ ऋत्विजस्तर्प्पयित्वातान्दक्षिणाभिर्यथार्हतः ॥ २० ॥ विससर्जसमस्तांश्च तथान्यानपिसङ्गतान् ॥ सम्बन्धिनोवयस्यांश्च त्रिशङ्कुर्मुनिसत्तमम् ॥ २१ ॥ ततःप्रोवाचविनतो विश्वामित्रंमुनीश्वरम् ॥ सव्रीडंव्रीडयायुक्तःप्रणिपातपुरःसरम् ॥ २२ ॥ त्वत्प्रसादान्मयाप्राप्तंदीर्घसत्रसमुद्भवम् ॥ परिपूर्णफलंब्रह्मन्दुर्लभंसर्वमानवैः ॥ २३ ॥ तथाजातिःपुनर्लब्धामयानष्टाचसन्मुने ॥ त्वत्प्रसादेनविप्रर्षेचण्डालत्वंप्रणाशितम् ॥ २४ ॥ परंमेदुःखमेवैकंहृदिशल्यमिवार्पितम् ॥ अनेनैवशरीरेणयन्नप्राप्तंत्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥ उपहासंकरिष्यन्तिवासिष्ठस्यसुतामुने ॥ अद्यव्यर्थश्रमंश्रुत्वामामप्राप्तंत्रिविष्टपम् ॥ २६ ॥तथातद्वचनंसत्यंवसिष्ठस्यव्यवस्थितम् ॥ यत्तेनोक्तंनयज्ञेन

तदनन्तर प्रणामपूर्वक विनय करताहुआ लज्जा से युक्त मुनिनायक विश्वामित्रजीसे बोला ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे प्रसादसे बहुतकालीन यज्ञ से उत्पन्न, सब मनुष्यों को दुर्लभ, परिपूर्ण फलको मैं पाया ॥ २३ ॥ हे सन्मुने ! तिसीप्रकार नष्टहुई जातिको फिरमैं पाया हे विप्रर्षे ! तुम्हारी प्रसन्नता से चाण्डालता नष्ट होगई ॥ २४ ॥ जो कि इसी शरीर से स्वर्ग नहीं मिला यह एक बड़ा दुःख हृदयमें गांसी के समान अर्पित है ॥ २५ ॥ हे मुने ! आज वसिष्ठके पुत्र निरर्थक परिश्रमवाले तथा स्वर्ग को न प्राप्तहुये मुझे सुनकर उपहास करेंगे ॥ २६ ॥ तिसी प्रकार जो वसिष्ठजीने कहाथा कि इस शरीर से स्वर्ग नहीं प्राप्त होता है वह उनका वचन विशेषता

से सत्य स्थित हुआ ॥ २७ ॥ इस समय फिर भी मैं वनमें आश्रितहोकर तपस्या को करूंगा और पुत्र से दीहुई राज्य को न करूंगा॥ २८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां विश्वामित्रमाहात्म्येपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ जिमि शिवकी बिनती करी गाधिपुत्र मुनिराज । सो छठये अध्यायमें वर्णतहैं सब आज ॥ सूत जी बोले कि त्रिशंकु के यह सत्यवचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी कुछ लज्जासे युक्त हो वचन बोले ॥ १ ॥ हे पृथ्वीपते ! इसके विषय में शोच न करो इसी शरीर से हम तुम्हें स्वर्ग को पहुँचावैंगे ॥ २ ॥ हे नृपोत्तम !

सदेहोगम्यतेदिवि ॥ २७ ॥ सोहंतपःकरिष्यामिसाम्प्रतंवनमाश्रितः ॥ नकरिष्यामिभूयोपिराज्यंपुत्रनिवेदितम् ॥ २८॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे विश्वामित्रमाहात्म्येपञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंसत्यंत्रिशङ्कोर्मुनिपुङ्गवः ॥ विश्वामित्रोब्रवीद्वाक्यंकिञ्चिल्लज्जासमन्वितः ॥ १ ॥ माविषादंमहीपालविषयेत्रकरिष्यसि ॥ अनेनैवशरीरेणत्वांनयिष्याम्यहंदिवम् ॥ २ ॥ तत्तत्कर्म्मकरिष्यामिस्वर्गार्थेनृपसत्तम ॥ तवाभीष्टंकरिष्यामिकिंवायास्यामिसङ्क्षयम् ॥ ३ ॥एवमुक्त्वापरंकोपंकृत्वोपरिदिवौकसाम् ॥ उवाचचततोरौद्रंप्रत्यक्षंतस्यभूपतेः ॥ ४ ॥ यथामयाद्विजत्वंहिस्वयमेवार्जितंबलात ॥ तथासृष्टिंकरिष्यामिस्वकीयांनात्रसंशयः ॥ ५ ॥ ततस्तंससमालोक्यशङ्करंशशिशेखरम् ॥ प्रणम्यविधिवद्भक्त्यास्तुतिंचक्रेमहामुनिः ॥ ६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ जयदेवजयाचिन्त्यजयपार्वतिवल्लभ ॥ जयकृष्णजगन्नाथजयकृष्णजगद्गुरो ॥ ७ ॥ जयाचिन्त्यजयामेयजयानन्त

इस से मैं स्वर्ग के लिये वह काम करूंगा या तो तुम्हारा अभीष्ट करूंगा या भलीभांति नाश होजाऊंगा ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर देवतों के ऊपर वड़ा कराल कोपकर उस राजा के सामने बोले ॥ ४ ॥ जैसे मैंने बलसे आपही ब्राह्मणताको इकट्ठा कियाहै वैसेही अपनी सृष्टिको करूंगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ ५ ॥ तदनन्तर महामुनि विश्वामित्रजी चन्द्रभाल शिवजीको भलीभांति देखकर विधिपूर्वक प्रणाम करके स्तुतिकिया ॥ ६ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे देव ! जयकरो हे अचिन्त्य ! जयकरो हे पार्वतीप्रिय !

जय करो हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! जय करो हे कृष्ण ! हे संसारगुरो ! जयकरो ॥ ७ ॥ हे अचिन्त्य ! जय करो हे अमेय ! जयकरो हे अनन्त ! जयकरो हे अच्युत! जय करो हे अमर ! जयकरो हे अजेय ! जयकरो हे अव्यय व ! हे देवतों के नायक ! जयकरो ॥ ८ ॥ अहो सर्वगामिन्, सर्वाध्यत्त ! जयकरो हे सब देवतों के आश्रय ! जयकरो अहो सर्व जनोंके ध्यान करने योग्य ! जयकरो हे सबके पापों के नाशक ! जयकरो ॥ ९ ॥ तुम्हीं धाता और तुम्हीं विधाता हो तुम्हीं कर्त्ता और तुम्हीं रत्तक हो हे देवतों के नायक ! चार प्रकार के प्राणियों के समूह के तुम्हीं कल्याण करनेवालेहो ॥ १० ॥ जैसे तैल तिल में व्याप्त है जैसे घृत दधि में प्राप्त है तैसेही निश्चय

जयाच्युत ॥ जयामरजयाजेयजयाऽव्ययसुरेश्वर ॥ ८ ॥जयसर्वगसर्वेशजयसर्वसुराश्रय ॥ जयसर्वजनध्येयजयसर्वाघनाशन ॥ ९ ॥ त्वंधाताचविधाताचत्वंकर्तात्वंचरत्तकः ॥ चतुर्विधस्यदेवेशभूतग्रामस्यशङ्करः ॥ १० ॥ यथा तिलस्थितंतैलंयथादधिगतंघृतम् ॥ तथैवाधिष्ठितंकृत्स्नंत्वयागुप्तेनवैजगत् ॥ ११ ॥ त्वंब्रह्मात्वंहृषीकेशस्त्वंशक्रस्त्वंहुताशनः ॥ त्वंब्रह्मात्वंवषट्कारस्त्वंयज्ञस्त्वंदिवाकरः ॥१२॥ अथवाबहुनोक्तेनकिंस्तवेनतवप्रभो ॥ समासादेववक्ष्यामिविभूतिंश्रुतिनोदिताम् ॥ १३ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषुलोकेषुस्थावरंजङ्गमंविभो ॥ तत्सर्वंभवताऽव्याप्तं काष्ठंहव्यभुजायथा ॥ १४ ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मिभद्रंते वरंप्रार्थयसन्मुने ॥ यत्तेहृदिस्थितंनित्यंसर्वंदास्याम्यसंशयम् ॥१५॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेशयदिदेयोवरोमम ॥ तन्मेस्यात्सृष्टिमाहात्म्यंत्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ १६ ॥ एव

करके छिपे हुये तुमसे संसार अधिष्ठित है ॥ ११ ॥ तुम्हीं ब्रह्मा हो तुम्हीं विष्णु हो तुम्हीं इन्द्र हो तुम्हीं अग्नि हो तुम्हीं यज्ञ के ब्रह्मा हो तुम्हीं स्वाहाकार हो तुम्हीं यज्ञ हो तुम्हीं सूर्य हो ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! अथवा तुम्हारे बहुत स्तोत्र करने से क्या है हे देव ! वेद से कही हुई तुम्हारी विभूति को मैं संत्तेप से कहता हूं ॥ १३ ॥ हे विभो ! जैसे अग्नि से काष्ठ व्याप्त है वैसेही तीनों लोकों में जो कुछ जड़, चैतन्य है वह सब आपसे व्याप्त है ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् शिवजी बोले कि हे सन्मुने ! मैं प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याण हो वरकी प्रार्थना करो जो तुम्हारे हृदय में निरन्तर टिकाहै वह सब मैं निस्सन्देह दूंगा ॥ १५॥ विश्वामित्र जी बोले कि हे देवेश ! यदि

तुम प्रसन्न हो और यदि मुझे वरदेने योग्य हो तो हे महेश्वर ! तुम्हारी प्रसन्नतासे हमारी सृष्टिका माहात्म्य होय ॥ १६ ॥ भगवान् शिवजीने उससे यह कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर तदनन्तर भलीभांति गणों से युक्त होकर फिर अन्तर्द्धान होगये ॥ १७ ॥ विश्वामित्र भी वहींपर स्थितहो और ध्यान में परायणहो ब्रह्माकी ईर्षा से चारप्रकार की सृष्टि किया ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविश्वामित्रवरप्राप्तिर्नामषष्ठोऽध्यायः ६ ॥

दो० । गाधिसुवन जिमि क्रोधकरि सृष्टि कीन सब जाति । सो सतयें अध्याय में वर्णत हैं भलभांति ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! कामना से जल में आवेश

मस्त्वितितंचोक्त्वाभगवान्वृषभध्वजः ॥ सर्वैर्गणैस्समायुक्तस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ १७ ॥ विश्वामित्रोपितत्रैवस्थितो ध्यानपरायणः॥चक्रेचतुर्विधांसृष्टिंस्पर्द्धयाहंसगामिनः ॥१८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे विश्वामित्रवरलब्धिर्नामषष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तेनैवंध्यायमानेनजलमाविश्यकाम्यया ॥ सृष्टंसन्ध्याद्वयेद्यापिदृश्यतेयद्द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ ततोदेवगणास्सर्वेसृष्टास्तेनमहात्मना ॥ वैमानिकाश्चयेकेचिन्नक्षत्राणिग्रहास्तथा ॥ २ ॥ मनुष्योरगरक्षांसिवीरुधोवृक्षसंयुताः॥ सप्तर्षयोध्रुवाद्याश्चयेचान्येगगनेचराः ॥ ३ ॥ एवंसभगवान्सृष्ट्वाविश्वामित्रःसुमन्युमान् ॥ स्वकीयेष्वथकृत्येषुयोजयामासतांस्तथा ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुद्वौसूर्य्यौयुगपद्दिवि ॥ उदितौरात्रिनाथौच जाताश्चद्विगुणाग्रहाः ॥ ५ ॥ द्विगुणानिचभान्येव सहसप्तर्षिभिर्द्विजाः ॥ एवंवियतितेसर्वेस्पर्द्धमानाःपरस्परम् ॥६॥ दृश्यन्तेद्विगुणीभूताजनविभ्रमकार

कर इसप्रकार ध्यानकरनेवाले उनसे जो रचागयाहै वह आजभी दोनों सन्ध्याओं में देख पड़ता है ॥ १ ॥ तदनन्तर उन महात्मा से सब देवतों के गण और विंमानवाले देवता व जितने कुछ नक्षत्र तथा ग्रहहैं वे सब रचित कियेगये ॥ २ ॥ मनुष्य,नाग, राक्षस, वृक्षों से भलीभांति युक्त लता, सप्तर्षि और ध्रुव आदिक जे आकाशचारीहैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार बड़े कोपवाले वह भगवान् विश्वामित्रजी उन सब को रचकर इसके अनन्तर अपनी कर्तव्याओं में योजित किया ॥ ४ ॥ उसी समय आ- में एकही साथ दो सूर्य्य और दो चन्द्रमा उदय हुये और द्विगुण ग्रह उत्पन्नहुये ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! सप्तर्षियों करके समेत नक्षत्रभी द्विगुण होगये इसप्रकार

वे सब आकाश में अन्योन्य ईर्षा कररहे हैं ॥ ६ ॥ मनुष्यों को विशेषता से भ्रमकरानेवाले द्विगुण हुये सब देख पड़ते हैं उसी क्षण में सब देवतों समेत इन्द्रजी वहां गये जहांपर भगवान् ब्रह्माजी हैं जाने के अनन्तर हाथ जोड़कर खड़ेहो उच्च प्रकार से प्रणाम करके बोले ॥ ७ । ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेदोक्त स्तोत्रों से देवतों सहित स्तोत्रकर कहा हे देवश्रेष्ठ ! इससमय विश्वामित्र ने सृष्टि रची है ॥ ९ ॥ हे पितामह ! मनुष्य,यक्ष,सर्प्पों की और देवता, गन्धर्व, राक्षसों की सृष्टि रची है तिस से तुम आपही जाकर उनको मनाकरो ॥ १० ॥ जबतक उनकी सृष्टि से यह सब स्थावर, जङ्गम व्याप्त न होजाय उनके यह वचन सुनकर उनके समेत ब्रह्मा जी

काः ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रःसहसर्वैर्दिवालयैः ॥ ७ ॥ जगामतत्रयत्रास्ते भगवान्कमलासनः ॥ प्रोवाचाथप्रणम्योच्चैःकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ८ ॥ स्तुतिंकृत्वासुरैःसार्द्धंवेदोक्तैःस्तवनैर्द्विजाः ॥ सृष्टिःकृतासुरश्रेष्ठ विश्वामित्रेणसाम्प्रतम् ॥९॥ मनुष्ययक्षसर्प्पाणांदेवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ तस्माद्वारयतंगत्वास्वयमेवपितामह ॥ १० ॥ यावन्नव्याप्यतेसर्वंतत्सृष्ट्येदंचराचरम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वातेनैवसहितोविधिः ॥ ११ ॥ गत्वोवाचजगन्मित्रंविश्वामित्रंमुनीश्वरम् ॥ निवृत्तिंकुरुविप्रर्षेसाम्प्रतंवचनान्मम ॥ १२ ॥ सृष्टेर्यावन्ननश्यन्तिसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ १३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अनेनैवशरीरेण त्रिशङ्कुर्नृपसत्तमः ॥ यदिगच्छतितेलोकेतत्सृष्टिंनकरोम्यहम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषगच्छतुभूपालो मयासहात्रिविष्टपम् ॥ अनेनैवशरीरेणत्वत्प्रसादान्मुनीश्वर ॥ १५ ॥ विरामंकुरुसृष्टेश्चनैतदन्यःकरिष्यति ॥ नकृतंकेनचिल्लोके तत्कर्म्मभवताकृतम् ॥ १६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यन्मयाकोपयुक्तेनकृतेयंसृष्टिरब्जज ॥ तत्क्षन्तव्यंत्वयादेवसर्वलो

जाकर मुनिनायक व संसार के हितैषी विश्वामित्र जी से बोले कि हे विप्रर्षे ! इससमय हमारे वचन से सृष्टिको निवृत्त करो ॥ ११ । १२ ॥ जबतक इन्द्रसमेत सब देवता नष्ट न होजावैं ॥ १३ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि यदि नृपों में उत्तम त्रिशंकुराजा इसी शरीरसेही तुम्हारे लोक को जाय तो मैं सृष्टि को न करूं ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे मुनिनाथ ! तुम्हारी प्रसन्नता से यह पृथ्वीपालक इसी शरीरसेही हमारे साथ स्वर्गको चलै ॥ १५ ॥ और तुम सृष्टि को बन्दकरो और जो काम आपने किया है यह कोई न करैगा न किसी ने लोक में किया है ॥ १६ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! क्रोधयुक्त होकर जो मैंने इस सृष्टिको किया है हे देव !

और हे सब लोकों के पितामह ! वह तुमको क्षमा करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे देव ! तिसीप्रकार जो हमारी की हुई सृष्टिहै वह तुम्हारी प्रसन्नता से अविनाशी होवै हे कमलोत्पन्न ! फिर मैं और सृष्टि को न करूंगा ॥ १८ ॥ ब्रह्मा बोले कि जो सृष्टि आपने जहांपर की है वह अचला होवैगी परन्तु सब कार्य्यों में यज्ञ के योग्य न होवैगी ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी ऐसा कहकर और त्रिशंकु को भलीभांति लेकर ब्रह्मलोक को चलेगये और विश्वामित्र मुनि हर्षित होकर वहींपर भलीभांति टिकेरहे॥२०॥इति श्री स्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिशंकुस्वर्गप्राप्तिर्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

कपितामह ॥ १७॥ तथाक्षयास्तुमेदेव सृष्टिस्त्वत्प्रसादतः ॥ याकृतानकरिष्यामिभूयोन्यांपद्मसम्भव ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भविष्यतिध्रुवायत्रसृष्टिर्याभवताकृता ॥ परंसर्वेषुकृत्येषुयज्ञार्हानभविष्यति ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वासमादायत्रिशङ्कुंप्रपितामहः ॥ ब्रह्मलोकंगतोहृष्टोमुनिस्तत्रैवसंस्थितः ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेत्रिशङ्कुस्वर्गप्राप्तिर्नामसप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥ ※ ॥ ※ ॥ ※ ॥ ※ ॥

सूतउवाच ॥ एवंस्वर्गमनुप्राप्तेत्रिशङ्कौनृपसत्तमे ॥ सशरीरेद्विजश्रेष्ठाविश्वामित्रसमुद्यमात् ॥ १ ॥ तत्तीर्थंख्यातिमायातंसमस्तेभुवनत्रये ॥ ततःप्रभृतिलोकानां धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ॥ २ ॥ अस्पृष्टंकलिदोषेणतथान्यैरुपपातकैः ॥ ब्रह्महत्यादिकैश्चैवत्रिपुरारेःप्रसादतः ॥ ३ ॥ यस्तत्रत्यजतिप्राणाञ्छ्रद्धायुक्तेनचेतसा ॥ समोक्षमाप्नुयान्मर्त्योयद्यपिस्यात्सपापकृत् ॥ ४ ॥ कृमिपक्षिपतङ्गायेपशवःपक्षिणोमृगाः ॥ तेपितत्रमृतायान्तिशिवलोकमसंशयम् ॥ ५ ॥ स्ना

दो० ॥ सो अठयें अध्याय में वर्णत हैं सब काज । जिमि वृत्रासुर मारिकै इन्द्रभये सुरराज ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! इस भांति विश्वामित्रके बडे उद्यम से राजसत्तम त्रिशंकु नरेश सदेह जब स्वर्ग को प्राप्तहुये ॥ १ ॥ तबसे लगाकर मनुष्यों को धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को देनेवाला वह तीर्थ सम्पूर्ण तीनों लोकों में विख्याति को प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ महादेवजी के प्रसाद से वह तीर्थ कलियुग के दोषसे तथा और उपपातकों से ब्रह्महत्या इत्यादि पापों से नही स्पर्श होता है ॥ ३ ॥ श्रद्धायुक्त चित्त करिकै जो वहां प्राणों को छोड़ताहै वह मनुष्य पापकारी भी होय तो भी मोक्ष को भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ कीट, पक्षी, पांखी, पशु, मृगादिक

जे जन्तु हैं वेभी वहांपर मरेहुये निस्सन्देह शिवलोक को जाते हैं ॥ ५ ॥ श्रद्धासे पवित्र चित्त करके जे वहां स्नान करते हैं अधर्मी भी त्रिशंकु की भांति स्वर्गको अवश्य जाते हैं ॥ ६ ॥ जहांपर कि महादेवजी देवता हैं उस तीर्थ के जलको जे घाम से दुःखित या प्यास से दुःखित हुये अवगाहन (स्नान पानादि) करतेहैं वे भी उत्तम स्थान को जातेहैं ॥ ७ ॥ इसके अनंतर विश्वामित्र मुनि भी उस उत्तम तीर्थ माहात्म्यको देखकर कुरुक्षेत्र को परित्याग करके वहांपर निवास किया ॥ ८ ॥ तैसेही शान्त स्वभाववाले और मुनियों ने दूर के तीर्थों को छोड़कर वहांपर निवास स्थान किया जहांपर कि उत्तम पदको जाते हैं ॥ ९ ॥ तैसेही सब मनुष्य सैकड़ों पापोंको करके

नंयेतत्रकुर्वन्तिश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ त्रिशङ्कुरिवतेस्वर्गंप्रयान्त्यपिविधर्म्मिणः ॥ ६ ॥ घर्मार्त्तावातृषार्तावायेवगाहन्ति तज्जलम् ॥ तेपियान्तिपरंस्थानंयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रोपितद्दृष्ट्वातीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कुरुक्षेत्रंप रित्यज्यतत्रवासमथाकरोत् ॥ ८ ॥ तथान्येमुनयःशान्तास्त्यक्त्वातीर्थानिदूरतः ॥ तत्राश्रमपदंचक्रुःप्रयान्तिपरमंप दम् ॥ ९ ॥ तथैवमनुजाःसर्वेदूरादागत्यसत्वराः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्तिकृत्वापापशतान्यपि ॥ १० ॥ एवंतस्यप्रभा वेणतीर्थस्यमुनिसत्तमाः ॥ गच्छमानेषुलोकेषुसुखेनापिदिवालयम् ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादिकाःसर्वाःसमुच्छेदंगताःक्रियाः ॥ नकश्चिद्यजतेमर्त्यो नव्रतङ्कुरुतेनरः ॥ १२ ॥ नयच्छतितथादानं नचतीर्थंनिषेवते ॥ केवलङ्कुरुतेस्नानंलिङ्गभेदेसमा हितम् ॥ १३ ॥ ततःप्रगच्छतिस्वर्गंविमानवरमाश्रितः ॥ ततःप्रपूरिताःसर्वेस्वर्गलोकानरैर्द्विजाः ॥ १४ ॥ ब्रह्मविष्णु शिवान्तायेस्पर्द्धमानैःसुरोत्तमान् ॥ ततोदेवगणास्सर्वेयज्ञभागविवर्जिताः ॥ १५ ॥ कृच्छ्रंपरमनुप्राप्तामन्त्रंचक्रुःपर

भी जल्दी समेत दूर से आकर वहांपर स्नान करके स्वर्ग को जाते हैं ॥ १० ॥ हे मुनिसत्तमो ! इसभांति उस तीर्थ के प्रभावसे जब सुखसे भी मनुष्य स्वर्ग को जाने लगे ॥ ११ ॥ अग्निष्टोम इत्यादिक सबकर्म भलीभांति नाशको प्राप्त होगये न कोई मनुष्य यज्ञ करता है और न कोई मनुष्य व्रत करता है ॥ १२ ॥ तैसेही न कोई दान को देता है और न तीर्थसेवन करताहै केवल लिङ्गभेद तीर्थ में एकाग्रचित्त होकर स्नान करता है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर उत्तम विमानपर चढ़ा हुआ अवश्य स्वर्ग को जाता है तदनन्तर सब स्वर्गलोक मनुष्यों से सम्पूरित होगये ॥ १४ ॥ सुरोत्तमों से स्पर्द्धा करनेवाले जनों से स्वर्ग को प्रपूरित देखकर

ब्रह्मा, विष्णु, शिवपर्यन्त सब देवतों के गण यज्ञभागों से विशेषता से वर्जितहुये ॥ १५ ॥ बड़े क्लेश में प्राप्तहो अन्योन्य में सम्मति किया कि हाटकेश्वर
त्म्य से स्वर्गलोक सम्पूर्ण होगया ॥ १६ ॥ चारोंओर से ईर्षा करनेवाले ऊर्ध्वबाहु तपस्वियों से व्याप्त है इससे वह काम कियाजाय कि जिससे नाश होजाय ॥ १७ ॥ हे
ब्राह्मणो ! तदनन्तर धरातल में हाटकेश्वर नामक जो तीर्थ है उस क्षेत्र को इन्द्रकी आज्ञा से संवर्तक वायुने चारोंओर से धूरिसे पूर्ण करदिया इसप्रकार वह
तीर्थस्थल (चट्टान) के समान भलीभांति प्राप्त होगया ॥ १८।१९ ॥ तिस पीछे पवनजी चलेगये तब फिरभी सबकर्म यज्ञ से होनेलगे तदनन्तर बहुतकाल से भलीभांति

स्परम् ॥ हाटकेश्वरमाहात्म्यात्स्वर्गलोकःप्रपूरितः ॥ १६ ॥ऊर्द्ध्वबाहुभिराकीर्णःस्पर्द्धमानैःसमन्ततः ॥ तस्मात्तत्क्रिय
तांकर्म्मयेनोच्छेदंप्रगच्छति ॥ १७ ॥ तीर्थमेतद्धरापृष्ठेहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ततःसंवर्तकोवायुःशक्रादेशात्समन्त
तः ॥ १८ ॥ तत्क्षेत्रंपूरयामास पांशुभिर्द्विजसत्तमाः ॥ एवंतमनुसम्प्राप्ते तस्मिंस्तीर्थेस्थलोपमे ॥ १९ ॥ यातेजाताः
क्रियास्सर्वा भूयोपिक्रतुसम्भवाः ॥ ततःकालेनमहतावल्मीकंसमपद्यत ॥ २० ॥ तस्मिन्क्षेत्रेसपाताले सम्प्रयातः
शनैःशनैः ॥ अथपातालतोनागास्तेनमार्गेणकौतुकात् ॥ २१ ॥ मर्त्यलोकंसमायान्ति भ्रमन्तिचधरातले ॥ तत्रतेमा
नवान्भोगान्भुक्त्वाचैवयथेच्छया ॥ २२ ॥ पुनर्निर्यान्तितेनैवमार्गेणनिजमन्दिरम् ॥ ततोनागबलिःख्यातःससर्वस्मि
न्धरातले ॥ २३ ॥ गतागतेननागानां सवल्मीकोद्विजोत्तमाः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यभगवान्पाकशासनः ॥ २४ ॥
ब्रह्महत्यासमोपेतो निस्तेजास्समपद्यत ॥ ततःपितामहादेशंलब्ध्वामार्गेणतेनसः ॥ २५ ॥ प्रविश्यचेक्षयामास पाता

बांबी होगई ॥ २० ॥ उस क्षेत्र में वह बेंबौरि धीरे २ भलीभांति पाताल में चलीगई इसके अनन्तर पाताल से नाग कौतुक से उस मार्ग से मृत्युलोक को भलीभांति
आते हैं और पृथ्वीतलमें घूमते हैं भूतल में वे नाग मनुष्यों के भोगों को इच्छापूर्वक भोगकर॥ २१।२२ ॥ फिर उसी राहसे अपने मन्दिरको जाते हैं तदनन्तर
वह बल्मीक (बेंबौरि) नागों के आने जाने से सम्पूर्ण धरातल में नागबलि नाम से प्रसिद्धहुआ हे ब्राह्मणोत्तमो ! कुछकाल में भगवान् इन्द्रजी ॥ २३।२४ ॥ ब्रह्म-

हत्याके समान बिन तेज के होगये तदनन्तर ब्रह्माकी आज्ञा पाकर इन्द्रने उस मार्ग से पैठकर पाताल में हाटकेश्वरको देखा इसके अनन्तर उनके दर्शनसे उसीक्षण दुःख से छूटगये ॥ २५।२६ ॥ और भलीभांति तेज से युक्तहुये फिर स्वर्गमें प्राप्तहुये इन्द्रजी लिङ्गदेव श्रीशिवजी के प्रभावको देखकर ॥ २७ ॥ मनुष्यों से उत्पन्न वाले भयको किया यदि कोई पुरुष त्रिशंकु राजाकेसमान प्रणामकर बिनपापवाला मनुष्य श्रद्धासमेत उस लिंगका पूजन करैगा वह निश्चयसे मुझे इस स्वर्गसे गिरावैगा ॥ २८।२९ ॥ इससे पाताल से-उत्पन्नवाले इस मार्ग को भलीभांति पूर्ण करते हैं तदनन्तर जल्दी से युक्तहो रक्तशृङ्गनामक उत्तम पर्वत को ॥ ३० ॥ उसी बिल में

लेहाटकेश्वरम् ॥ अथाभूत्तापनिर्मुक्तस्तत्क्षणात्तस्यदर्शनात् ॥ २६ ॥ तेजसाचसमायुक्तःपुनःप्राप्तस्त्रिविष्टपम् ॥ सदृ ष्ट्वातुप्रभावन्तल्लिङ्गदेवस्यशूलिनः ॥ २७ ॥ हाटकेश्वरसञ्ज्ञस्यभयञ्चक्रेनरोद्भवम् ॥ यदिकश्चित्पुमान्नत्वा त्रिशङ्कु रिवभूपतिः ॥ २८ ॥ पूजयिष्यतितल्लिङ्गं विपाप्माश्रद्धयासह॥पातयिष्यतितन्नूनंमामस्मात्रिदशालयात् ॥ २९ ॥ तस्मा त्सम्पूरयाम्येनंमार्गपातालसम्भवम्॥ततश्चत्वरयायुक्तोरक्तशृङ्गंनगोत्तमम् ॥ ३० ॥ प्रतिक्षेपेबिलेतस्मिंस्त्वयमेवशत क्रतुः ॥ ३१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्महत्याकथंजाता देवेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ कस्मिन्कालेचसर्वंनो विस्तरात्सूतकीर्तय ॥ ३२ ॥ रक्तशृङ्गोगिरिःकोयं सङ्क्षिप्तस्तेनतत्रयः ॥ मानुषाणांभयंतस्य कतमाद्यच्छचीपतेः ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ पुरात्व ष्ट्राद्विजश्रेष्ठा हिरण्यकशिपोःसुता ॥ विवाहितारमानामश्रेष्ठरूपगुणान्विता ॥ ३४ ॥ अथतस्याययौकालःसुप्रसूतं सुतंविना ॥ ततोवैराग्यसम्पन्ना सुतार्थंतपसिस्थिता ॥ ३५ ॥ ध्यायमानासुराधीशं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ बलिपूजोपहारेण

आपही इन्द्र ने फेंक दिया ॥ ३१ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! महात्मा इन्द्रके ब्रह्महत्या किस भांति हुई और किस समय में यह सब हमलोगों से तुम विस्तार से कहो ॥ ३२ ॥ यह रक्तशृङ्ग पर्वत कौनसा है कि जिसको इन्द्र ने उस बिल में फेंक दिया है मनुष्यों के बीचमें किससे इन्द्रको भय हुआ है ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय में हिरण्यकशिपु की कन्या उत्तम रूप और गुणों से संयुक्त जिसका रमा नाम है वह त्वष्टा देवता से ब्याही गई ॥ ३४ ॥ इस के अनन्तर उस स्त्री का समय बिना पुत्रहुये व्यतीत हुवा तब वैराग्य से सम्पन्न वह पुत्र के लिये तपस्या में स्थित हुई ॥ ३५ ॥ भलीभांति श्रद्धा से युक्त बलि,

पूजन, उपहार से देवतों के देवता देवाध्यक्ष महेश्वरजीको ध्यान कररहीहै ॥ ३६ ॥ नियम से भोजन करनेवाली व स्नान और जप में परायण, निश्चय किये हुई
और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये अनेकों प्रकारके दानों को देरही है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर हज़ार वर्ष के पीछे महादेवजी प्रसन्न हुये यह बोले कि मैं वरदायक हूं जो मनोभि-
लषित हो उसको ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ वह बोली कि हे भगवन्! तुम्हारी प्रसन्नता से शस्त्रों से न मरने के योग्य और सदैव ब्राह्मण तथा दानव के रूपका धारण
करनेवाला हमारे पुत्र होवै ॥ ३९ ॥ वेद के पढ़ने में प्रवीण और यज्ञ के कामों में भलीभांति उद्योगी और इस संसारमें सब देहधारियों को तेज से प्रसिद्धतामें आवै ॥ ४० ॥

यच्छमानाद्विजाग्र्येभ्यो दानानिविविधा
सम्यक्श्रद्धासमन्विता ॥ ३६ ॥ नियतानियताहारास्नानजप्यपरायणा ॥
ततोवर्षसहस्रान्ते तस्यास्तुष्टोमहेश्वरः ॥ उवाचवरदोस्मीतिवृणुष्वयदभीप्सितम् ॥ ३८ ॥ सावब्रेम
निच ॥ ३७ ॥
शस्त्रैरवध्यश्चसदाविप्रदानवरूपधृक् ॥ ३९ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नो यज्ञकर्म्मसमुद्यतः ॥
मपुत्रोस्तुभगवंस्त्वत्प्रसादतः ॥
तेजसाख्यातिमायातस्सर्वेषामिहदेहिनाम् ॥ ४० ॥ महादेवउवाच ॥ भविष्यतिनसन्देहः पुत्रस्तेबलवान्सुधीः ॥ अव
ध्यः सर्वशस्त्राणांमहातेजोभिरन्वितः ॥ ४१ ॥ यज्वादानपतिःशूरोवेदवेदाङ्गपारगः ॥ ब्राह्मणोक्ताःक्रियास्सर्वाःकरिष्य
तिसकृत्स्नशः ॥ ४२ ॥ अजेयःसङ्गरेचैव कृत्स्नैरपिसुरासुरैः ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ ४३ ॥ ऋतौ
सापिदधेगर्भंसकाशाद्विश्वकर्म्मणः ॥ ततश्चसुषुवेपुत्रंदशमेमासिशोभनम् ॥ ४४ ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशं सर्वलक्षणल
क्षितम् ॥ तस्यचक्रेपितानाम प्राप्तेद्वादशमेदिने ॥ ४५ ॥ प्रसिद्धंवृत्रइत्येव पूजयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ अथासौववृधेबा

महादेवजी बोले कि तुम्हारा पुत्र बली व अच्छी बुद्धिवाला व सब शस्त्रों के न मरने योग्य और निस्सन्देह बडे तेजों से युक्त होगा ॥ ४१ ॥ विधि से यज्ञक-
रनेवाला और दानाध्यक्ष व वीर और वेद वेदाङ्गों के पार जानेवाला वह ब्राह्मणों के लिये कहेहुये सब कर्मोंको सम्पूर्णतासे पूर्ण करैगा ॥ ४२ ॥ और युद्ध में सब
देवता और दैत्यों से भी न जीताजावैगा ऐसा कहकर वह सुरेश अदृश्य होगया ॥ ४३ ॥ वह भी ऋतुसमय में (रजस्वला के पीछे सोरह दिन) विश्वकर्माके स-
काश से गर्भ को धारण किया तिसके पीछे दशवें महीने में उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ४४ ॥ बारह सूर्य्यों के समान तेजवाला व सब लक्षणों से विहित है

बारहवां दिन प्राप्त होनेपर पिता ने उसका नामकरण किया ॥ ४५॥ ब्राह्मणों को पूजन करके वृत्र ऐसाही प्रसिद्ध हुआ इसके अनन्तर जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है वैसेही वह बालक बढ़ा ॥ ४६ ॥ बन्धु समूह से लालित और अपने माता पिता को आनन्ददायक है तदनन्तर उन ब्राह्मण शुक्रजीने आपही भलीभांति आकर उस दानव को भी समय में ब्राह्मण जनों के योग्य यज्ञोपवीत को दिया और उसने भी ब्रह्मचारी के नियम में स्थितहो चारों वेदों को॥४७।४८॥ हे विप्र ! गुरुको प्यारा वह वेदाङ्गों समेत पढ़ा तदनन्तर युवाअवस्था को प्राप्त होकर वह सम्पूर्ण पृथ्वीपालों को जीतकर पृथ्वी को वश में किया तिस पीछे पाताल

लः शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ ४६ ॥ पितृस्वमातृकानन्दो बन्धुवर्गेणलालितः॥ ततोऽस्यप्रददौकाले व्रतंविप्रजनोचितम् ॥ ४७॥ समभ्येत्यस्वयंशुक्रो दानवस्यापिसद्विजः॥ सचापिचतुरोवेदान्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः॥ ४८ ॥ वेदाङ्गैःसहितान्वि प्रपपाठगुरुवत्सलः ॥ ततोयौवनमासाद्यभूमिपालानशेषतः॥४९॥ जित्वाधरांवशेचक्रेपातालंतदनन्तरम् ॥ ततश्चे न्द्रजयाकाङ्क्षीसमासाद्यसुरालयम् ॥ ५० ॥ सहस्राक्षमुखान्देवान्युद्धेचक्रेपराङ्मुखान् ॥ अथतेनसमंवज्री चक्रेष्टादश संयुगान् ॥ ५१ ॥ एकस्मिन्नपिनोलेभेविजयंद्विजसत्तमाः॥ हतशेषैःसुरैःसार्द्धं सर्वाङ्गक्षतविक्षतैः ॥ ५२ ॥ ततोजगा मवित्रस्तो ब्रह्मलोकंदिवालयात् ॥ वृत्रोपिबुभुजेकृत्स्नंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ५३ ॥ शाक्रंपदंसमास्थायनिहताशे षकण्टकः॥ यज्ञभागभुजश्चक्रेदानवान्बलगर्वितान्॥५४॥देवस्थानेषुसर्वेषुयथोक्तेषुमहाबलान्॥ एवंत्रैलोक्यराज्येपि

को वश में किया तदनन्तर इन्द्रको जीतने की इच्छा करनेवाला वह देवलोक में भलीभांति प्राप्तहोकर ॥ ४६ । ५० ॥ इन्द्रआदिक देवतों को समर में विमुख कर दिया इसके अनन्तर उसके साथ इन्द्रजीने अठारह संग्रामों को किया ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! मरने से बचे व कटेफटे सब अगों वाले देवतों समेत इन्द्रजीने एक संग्राम में भी जीत को न पाया ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे भयभीतहो स्वर्ग से इन्द्र जी ब्रह्मलोक को गये वृत्र ने भी स्थावर जंगम समेत सब त्रिलोकका भोगकिया॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण कण्टकों को मारनेवाला वह इन्द्र के स्थानपर भलीभांति स्थित होकर बलसे अहंकारवाले दैत्यों को यज्ञभागको भोगनेवाले करदिया ॥ ५४ ॥ बडे

पराक्रमवाले दैत्यों को सब यथोक्त देवस्थानों में बिठा दिया है ब्राह्मणोत्तमो ! इस प्रकार त्रिलोक का राज्य मिलने से भी उसके ॥ ५५ ॥ भलीभाति सन्तोष न उत्पन्न हुवा तब ब्रह्मलोक की कामना से शुक्राचार्य्यजी को भलीभांति बुलवाकर और विनय से नम्र होकर चार मन्त्रियों समेत उसने मीठे वचन को कहा ॥ ५६ । ५७ ॥ वृत्रासुर बोला कि हे गुरुकुलको उत्तमस्थानपर प्राप्तकरनेवाले ! इन्द्र जी भय से ब्रह्मलोक को चलेगये वहापर मेरा जाना किसप्रकार होवै सो यथायोग्य तुम कहो ॥ ५८ ॥ जिससे इन्द्र और ब्रह्मा को मैं नाश करूं तैसेही सम्पूर्ण ब्रह्मलोकको लेकर इसके अनन्तर स्वर्गको आपही भोग करूंगा ॥ ५९ ॥ शुक्रजी बोले

लब्धेतस्यद्विजोत्तमाः ॥ ५५ ॥ नसन्तोषश्चसञ्जज्ञे ब्रह्मलोकाभिकाङ्क्षया ॥ ततःशुक्रंसमाहूय प्रोवाचमधुरंवचः ॥५६॥ विनयावनतोभूत्वाचतुर्भिःसचिवैःसह ॥ ५७ ॥ वृत्रउवाच ॥ ब्रह्मलोकेगतःशक्रोभयाद्गुरुकुलोद्वह ॥ कथंगतिर्भवेत्तत्रमम ब्रूहियथातथम् ॥ ५८ ॥ येनशक्रंविरिञ्चिंचसूदयिष्येतथाखिलम् ॥ ब्रह्मलोकंप्रदायाथ भोक्ष्यामित्रिदिवंस्वयम् ॥ ५९ ॥ शुक्रउवाच ॥ नगतिर्विद्यतेतत्रतवदानवसत्तम ॥ तस्मात्त्रैलोक्यराज्येनसन्तोषंकर्त्तुमर्हसि ॥ ६० ॥ वृत्रउवाच ॥ यावत्तिष्ठतिसुत्रामा तावन्नास्तिसुखंमम ॥ तस्मान्निष्कण्टकार्थाय यतिष्येहंद्विजोत्तम ॥ ६१ ॥ कथंशक्रस्य सञ्जातागतिस्तत्रभृगूद्वह ॥ नभविष्यतिमेब्रूहिकथंसाद्यमहामते ॥ ६२ ॥ शुक्रउवाच ॥ तेनपूर्वंतपस्तप्तं नैमिषेदानवोत्तम ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तंध्यायमानेनशङ्करम् ॥ ६३ ॥ तत्प्रभावाद्गतिस्तस्य तत्रजातासदैवहि ॥ सभृत्यपरिवारस्य नान्यदस्तीहकारणम् ॥ ६४ ॥ योन्योपिनैमिषारण्ये तद्रूपंकुरुतेतपः ॥ ब्रह्मलोकेगतिस्तस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ ६५ ॥

कि हे दानवोत्तम ! तुम्हारी गति वहांपर नहीं है तिससे त्रिलोकी की राज्य से तुम सन्तोष करनेको योग्य हो ॥ ६० ॥ वृत्रासुर बोला हे ब्राह्मणोत्तम ! जबतक इन्द्र स्थित है तबतक हमको सुख नहीं है तिससे निष्कंटक करने के लिये मैं यत्नकरूंगा ॥ ६१ ॥ हे भृगूद्वह ! तिस स्थान में इन्द्रकी गति भलीभांति कैसे हुईहै हे बड़ी बुद्धिवाले ! वही गति मेरी आज क्यों न होगी ॥ ६२ ॥ शुक्रजी बोले कि हे दानवोत्तम ! जबतक हज़ारवर्ष बीते तबतक शङ्कर को ध्यानकरते हुये उसने नैमिषारण्य में तपस्या को किया है ॥ ६३ ॥ उस प्रभाव से निश्चय करके सदैव सहित नौकरों व परिवार के उसकी वहांपर गतिहुई है इसमें और कुछ कारण नहीं है ॥ ६४ ॥

और भी जो कोई उसके समान नैमिषारण्य में तपको करता है उसकी गति ब्रह्मलोकमें होतीहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले कि यह सुनकर जल्दी से उत्तम नैमिषारण्यतीर्थ में जाकर तदनन्तर श्रीमहादेवजीका ध्यान करता हुआ बड़ी तपस्या को किया ॥ ६६ ॥ उन दैत्यपुत्रों को जोकि इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी तथा बडे बलसे युक्तहैं उनको भलीभांति त्रिलोकी की रक्षाके लिये नियुक्त किया ॥ ६७ ॥ वर्षाकाल में आकाश में स्थित हुआ व हेमन्तऋतु में जलाश्रित हुआ और ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि साधन किया और केवल पवन को भोजन किया ॥ ६८ ॥इस भांति नियमों में स्थितहुये उसके सौवर्ष व्यतीत होगये तब ब्रह्मा और विष्णु

सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंगत्वानैमिषंतीर्थमुत्तमम् ॥ तपश्चक्रेततस्तीव्रं ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ ६६ ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थायसन्निरूप्यदनूसुतान् ॥ महाबलसमोपेताञ्छक्राधिकपराक्रमान् ॥ ६७ ॥ वर्षास्वाकाशस्थायीस हेमन्तेसलिलाश्रयः ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे सम्बभूवानिलाशनः ॥६८ ॥ एवंतस्यव्रतस्थस्य जग्मुर्वर्षशतानिच ॥ तेनैभीतास्ततोदेवाब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ ६९ ॥ चक्रुश्चसततंमन्त्रंतद्विनाशायकेवलम् ॥ वीक्षयन्तिचच्छिद्राणिनचपश्यन्तिदुःखिताः ॥ ७० ॥ अथाब्रवीत्स्वयंविष्णुश्चिरंनिश्चित्यचेतसा ॥ वधोपायंसमालोक्यवृत्रस्यप्रमुदान्वितः ॥ ७१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तस्यशक्रवधोपायो मयाज्ञातोधुनाध्रुवम् ॥ तच्छ्रुत्वाकुरुशीघ्रंत्वमुपायोनास्तिकश्चन ॥ ७२ ॥ अवध्यःसर्वशस्त्राणांसकृतःशूलपाणिना ॥ तस्मादस्थिमयंवज्रंतद्वधार्थंनिरूपय ॥ ७३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अस्थिभिःकस्यजीवस्य वज्रंदेवभविष्यति ॥ गजस्यशरभस्यापि किंवान्यस्यवदस्वमे ॥ ७४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शतहस्तप्रमाणंतत्षडस्रंचसुरा

हैं अग्रणीय जिनमें वे देवता भयभीत हुये ॥ ६९ ॥ और निरन्तर केवल उस के नाश के लिये सम्मति किया दुःखित हो उसके दोषोंको देखरहे हैं परन्तु न देखते हैं ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी आपही बहुत दिनोंमें निश्चयकर और वृत्रासुरके मारने का यत्न भलीभांति देखकर हर्षितहो बोले ॥ ७१ ॥ विष्णुजी बोले कि हे इन्द्र ! मैंने उसके मरने का यत्न इस समय जाना उसको सुनकर तुम जल्दीकरो और कोई यत्न नहीं है ॥ ७२ ॥ उसको महादेवजी ने सब शस्त्रोंसे अवध्य (न मरनेयोग्य) कियाहै इससे उसके मारने के लिये हड्डियों का वज्र बनावो ॥ ७३ ॥ इन्द्रजी बोले-कि हे देव! किस जन्तुकी हड्डियों से वज्र होगा हाथी या शरभ (मृग

भेद) या और किसीकी हड्डियों से यह तुम मुझसे कहो ॥ ७४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे सुरनायक ! सौ हाथ के प्रमाणवाला और षट्कोण (छः कोनेका) व
बीच में पतला और पांजरों में मोटा तथा घोर सदृश आकार होवै ॥ ७५ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे देवेश ! त्रिलोक में भी वैसा कोई प्राणी नहीं देखपड़ता है
कि जिसकी हड्डियों से इसप्रकार के आकार का वज्र बनाया जाय ॥ ७६ ॥ विष्णु जी बोले कि सरस्वती नदी के किनारे आश्रम को बनाये हुये और बड़ी तपस्या
में भलीभांति स्थित इससे दूना लम्बा दधीचि नामक ब्राह्मण है ॥७७॥ वहां जल्दी जाकर तुम प्रार्थना करो अपनी हड्डियों को वह ब्राह्मण अवश्य देवैगा भलीभांति

धिप ॥ मध्येक्षामंतुपार्श्वाभ्यांस्थूलंरौद्रसमाकृति ॥ ७५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ नतादृग्दृश्यतेसत्त्वंत्रैलोक्येपिसुरेश्वर ॥ य
स्यास्थिभिर्विधीयेत वज्रमेवंविधाकृति ॥ ७६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ दधीचिनामाविप्रोस्तितपःपरममास्थितः ॥ द्विगुणंच
तथादीर्घःसरस्वत्याकृताश्रमः ॥ ७७ ॥ तंगत्वाशुप्रार्थयत्वंस्वान्यस्थीनिप्रयास्यति ॥ नादेयंविद्यतेकिञ्चित्तस्यस
म्प्रार्थितस्यहि ॥ ७८ ॥ ततःशक्रःसुरैःसार्द्धंगत्वातस्यतदाश्रमम् ॥ प्राचीसरस्वतीतीरेपुष्करेद्विजसत्तमाः ॥ ७९ ॥
अथदेवान्समालोक्यसम्प्राप्तान्निजमन्दिरम् ॥ दधीचिःसम्प्रहृष्टात्मासत्वरःसम्मुखंययौ ॥ ८० ॥ सप्रणम्यसहस्रा
क्षंतथान्यानपिसन्मुनिः ॥ देवानर्घादिभिःपूजांचक्रेतेषांततःपरम् ॥ ८१ ॥ ततःप्रोवाचहृष्टात्मा विनयावनतःस्थितः॥
स्वयमेवसहस्राक्षंप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ८२ ॥ दधीचिरुवाच॥किमर्थमागतादेवाःकृत्यंवासुनिवेद्यताम् ॥ धन्योहमागतो
यस्य गृहेचबलसूदनः ॥ ८३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ वृत्रेणनिर्जितास्सर्वे वयंब्राह्मणसत्तम ॥ सवध्योनहिशस्त्राणां सर्वेषांवर

याचना करने से उसको कुछ अदेय अर्थात् न देने के योग्य नहीं है ॥ ७८ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणोत्तमो ! उसी समय प्राची सरस्वती के किनारे पुष्कर क्षेत्र में देवतों
समेत इन्द्रजी उसके आश्रमको गये ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर अपने सदनमें भलीभांति प्राप्तहुये देवतोंको देखकर बहुत हर्षितहो जल्दी समेत दधीचि जी सामने प्राप्त हुये ॥
८० ॥ उत्तम मुनि दधीचि जीने इन्द्रको तथा और देवतोंको भी भलीभांति प्रणामकर तिस पीछे उन देवतों का अर्घ पाद्याचमनीय से पूजन किया ॥ ८१ ॥ तदनन्तर हर्षित
हो विनय से झुकेहुये स्थित बारबार प्रणाम करके आपही इन्द्रजीसे कहा ॥ ८२ ॥ दधीचि बोले कि देवता किसलिये आये हैं या जो कार्य्यहो वह आप कहो मैं धन्य हूं

कि जिसके मन्दिर में इन्द्रजी आये ॥ ८३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तम ! वृत्रासुरने हम सबको जीत लिया है वह वरदान की प्रबलता से सब शस्त्रों के अवध्य है ॥ ८४ ॥ विष्णुजी ने कहा है कि सौ हाथ के प्रमाणवाले हड्डियोंसे बनायेहुये वज्रसे वह मरैगा हे द्विजोत्तम ! तुमको छोड़कर और कोई वैसा उत्पन्न नहीं हुआहै इससे अपनी हड्डियों को हम सबको दीजिय कि जिससे उसके नाश करनेवाला वज्रहोवै ॥ ८५ । ८६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! देवतों के क्लेशनाशक कार्य्यको तुम करो नहीं तो सब देवता नाश होजावैंगे ॥ ८७ ॥ सूतजी बोले कि यह सुनकर भगवान् दधीचिमुनि ने उन देवतों के कल्याण के लिये जीवनको त्याग करदिया ॥ ८८ ॥

पुष्टितः ॥ ८४ ॥ सोऽस्थिसम्भववज्रस्यवध्यःस्यादब्रवीद्धरिः ॥ शतहस्तप्रमाणस्य नचजातोस्तितादृशः ॥ ८५ ॥ त्वांमुक्त्वाब्राह्मणश्रेष्ठ तस्मादस्थीनियच्छनः ॥ स्वकीयानिभवेद्येनवज्रंतस्यविनाशकम् ॥ ८६ ॥ कुरुकृत्यंद्विजश्रेष्ठ देवानामार्तिनाशनम् ॥ अन्यथाविबुधाःसर्वेनाशंयास्यन्तिकृत्स्नशः ॥ ८७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासम्प्रहृष्टात्माद धीचिर्भगवान्मुनिः ॥ अत्यजज्जीवितंतेषां हितार्थायदिवौकसाम् ॥ ८८ ॥ ततोदेवाःप्रहृष्टास्ते गृहीत्वास्थीनिकृत्स्न शः ॥ ततश्चक्रुर्महावज्रंयादृशंविष्णुनोदितम् ॥ ८९ ॥ अथशक्रस्तदादाय नैमिषाभिमुखोययौ ॥ भयेनमहतायुक्तो वेपमानोनिशागमे ॥ ९० ॥ तत्रध्यानस्थितंवृत्रंदूरस्थंत्रिदशाधिपः ॥ वज्रेणताडयामासपलायनपरायणः ॥ ९१ ॥ सोपिवज्रप्रहारेण भस्मसात्समपद्यत ॥ वृत्रोदानवशार्दूलोवह्निंप्राप्यपतङ्गवत् ॥ शक्रोपिभयसन्त्रस्तो गत्वासा गरमध्यगम् ॥ पर्वतंसुदुरारोहं तुङ्गशृङ्गसमाश्रितः ॥ ९२ ॥नजानातिहतंवृत्रं वज्राघातेनतेनतम् ॥ केवलंवीक्षतेमार्गं

तदनन्तर वे देवता आनन्दित हो सम्पूर्ण हड्डियों को लेकर जैसा विष्णुजी ने कहाथा वैसाही बड़े वज्रको निर्मित किया॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रजी बड़े भयसमेत कांपतेहुये उस वज्रको लेकर नैमिषारण्य के सम्मुख रात्रिमें गये॥ ९० ॥ नैमिषमें ध्यान में प्राप्त और दूरमें स्थित वृत्रासुर को भागने में परायण इन्द्रजी ने वज्र से मारा॥ ९१ ॥ वह दानवोत्तम वृत्रासुर भी वज्रके प्रहार से सब भस्म होगया जैसे अग्निमें प्राप्त होकर पतंग भस्महोजातेहैं इन्द्रभी भयभीतहो बहुत कठिनता से चढ़नेवाले समुद्र के बीचमे स्थित पर्वत के ऊंचे शिखरपर भलीभांति स्थित हुये॥ ९२ ॥ उस वज्रके मारने से वृत्रासुर को मराहुआ न जानते हैं केवल वृत्रासुर के आनेवाले

मार्गको देखरहे हैं ॥ ९३ ॥ इसीसमय में हर्षित रोमाञ्चवाले सब देवताओंने वृत्रासुरको मराहुआ देखकर इन्द्रकी स्तुति किया ॥ ९४ ॥ और भयसे अदृश्यहुये इन्द्र को देवता नहीं जानते हैं बहुत दिनोंतक ढूंढकर तदनन्तर उस समुद्र के पर्वत में बड़े क्लेशसे इन्द्रको पाकर ॥ ९५ ॥ विषमपर्वत के बिलमें बैठेहुये और ब्रह्महत्या से घिरे व दुःखी व तेजसे रहित उन इन्द्रजी को देखा ॥ ९६ ॥ अंगोंमें दुर्गन्धिके संसर्ग से दशोदिशाओं में पूर्णकररहा है इस प्रकार के इन्द्रको देखकर इसके अनन्तर पापके भयसे दूरमें स्थित ब्रह्माजी उन सब देवतों से बोले कि हे देवतोत्तमो ! यह ब्रह्महत्या से घिराहुआ इन्द्रहै ॥ ९७ । ९८ ॥ इससे बहुत दूरही से यह त्याग

वृत्रागमनसम्भवम् ॥ ९३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवाःसम्प्रहृष्टतनूरुहाः ॥ वृत्रंविनिहतंदृष्ट्वातुष्टुवुस्त्रिदशाधिपम् ॥ ९४ ॥ नजानन्तिभयान्नष्टंतस्मिन्सागरपर्वते ॥ अन्विष्यचिरकालेनकृच्छ्रात्सम्प्राप्यतंततः ॥ ९५ ॥ वीक्षांचक्रुःसमासीनं विषमेगिरिगह्वरे ॥ तेजोहीनंतथादीनं ब्रह्महत्यापरिप्लुतम् ॥ ९६ ॥ गात्रदुर्गन्धितासङ्गैःपूरयन्तंदिशोदश ॥ अथो वाचचतुर्वक्त्रोदृष्ट्वाशक्रंतथाविधम् ॥ ८७ ॥ समस्तान्देवसङ्घांस्तान्दूरस्थःपापशङ्कया ॥ शक्रोयंविबुधश्रेष्ठाब्रह्मह त्यापरिप्लुतः ॥ ९८ ॥ तस्मात्त्याज्यस्सुदूरेण नोचेत्पापमवाप्स्यथ ॥ पश्यध्वंसर्वलिङ्गानि ब्रह्महत्यान्वितानिच ॥ ९९ ॥ अस्यगात्रेषुदृश्यन्ते तस्माद्गच्छामहेदिवि ॥ पितामहमुखान्दृष्ट्वादेवान्प्राप्तान्सुराधिपः ॥ १०० ॥ पराङ्मु खानकस्माच्चसञ्जातोविस्मयान्वितः ॥ ततःप्रोवाचसम्भ्रान्तःकिमिदंगम्यतेसुराः ॥ १ ॥ दृष्ट्वापिमामनाभाष्य कच्चि त्क्षेमंगृहेमम ॥ कच्चित्सनिहतस्तेनममवज्रेणदानवः ॥ २ ॥ कच्चिन्नमांसयुद्धार्थमन्वेषयतिदुर्मतिः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नि

करने के योग्यहै नहीं तो तुम सबपापको प्राप्तहोगे और ब्रह्महत्यासे युक्त सब लक्षणों को तुम सब देखो ॥ ९९ ॥ इसके सब अंगोंमें ब्रह्महत्या के चिह्न देख पडते हैं इस से स्वर्गको हम जातेहैं इन्द्रजी ब्रह्मादिक सब देवतोंको उपस्थित देखकर ॥ १०० ॥ और एकाएकी विमुख देवतों से विस्मययुक्त तथा सम्भ्रमचित्त होकर यह बोले कि हे देवतो ! किसलिये तुम लोग जातेहो ॥ १ ॥ मुझको देखकर भी विना सम्भाषण किये क्या हमारे मन्दिर में कुशल है और क्या वह दैत्य मेरे उस वज्रसे मर

गया ॥ २ ॥ क्या वह दुर्बुद्धि युद्ध के लिये मुझे ढूंढ़ता तो नहीं है ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! तुम्हारे उस वज्रसे माराहुआ वह दुष्ट दैत्य मृत्युके वशमें प्राप्त होगया अब तुमको भय न करनाचाहिये ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! परन्तु उसके मारने से तुम्हारे बड़ी निन्दित ब्रह्महत्या उत्पन्न हुईहै इससे स्पर्श की योग्यता को न प्राप्त हुये तुम्हैं आज हम नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र बोले कि यह प्रसिद्ध है मैंने पहले बहुत दैत्यों को मारा है तब ब्रह्महत्या न पैदाहुई इस समय में कैसे हुईहै ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! विशेषता से शुद्ध उन सब दैत्योंको तुमने संग्राममें क्षत्रियधर्म से माराहै इससे पाप नहीं हुआ है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! यह यज्ञोंसे विशेष

हतःसत्वयाशक्रतेनवज्रेणदानवः ॥ गतोमृत्युवशंपापोनभयंकर्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ परंतस्यवधाज्जाता ब्रह्महत्यासुगर्हिता ॥ तवशक्रनतेनाद्यस्पृशामोस्पृश्यताङ्गतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ मयाविनिहताःपूर्वंबहवःकिलदानवाः ॥ ब्रह्महत्यानसञ्जातातदाजाताधुनाकथम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तेत्वयानिहतायुद्धेक्षात्रधर्म्मेणवासव ॥ विशुद्धादानवास्सर्वेतेनजातंनपातकम् ॥ ७ ॥ एषयज्ञविशेषाढ्यो विशेषात्तपसिस्थितः ॥ छलेननिहतःशक्रतेनत्वंपापसंयुतः ॥८॥ इन्द्रउवाच ॥ जानाम्यहंचतुर्वक्रस्वकार्य्यंपापसंयुतम् ॥ चिह्नैर्ब्रह्मवधोद्भूतैस्तस्माच्छुद्धिंवदस्वमे ॥ ९ ॥ ययायातिद्रुतंपापं ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ स्पृश्योभवामिदेवानां सर्वेषांप्रपितामह ॥१०॥ब्रह्मोवाच ॥ तीर्थयात्रांसुरश्रेष्ठतदर्थंकर्तुमर्हसि ॥ तस्माद्यत्नेनतेपापंनाशमायातिकृत्स्नशः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तद्वचनाच्छक्रस्तीर्थयात्रापरायणः ॥ बभ्रामसकलांपृथ्वींस्नानंकुर्वन्पृथक्पृथक् ॥ १२ ॥ तीर्थेषुसुप्रसिद्धेषु नदीनदयुतेषुच ॥ वाराणस्यांप्रयागेच प्रभासेकुरुजाङ्ग

कर सम्पन्न और विशेषता से तपस्या में स्थितथा इसको तुमने छलसे माराहै इस से तुम पापसे संयुक्तहो ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे चतुरानन ! ब्रह्मघात से उत्पन्न हुये लक्षणों से हम पापसे संयुक्त अपने कार्य्य को जानते हैं इससे उस पवित्रताको तुम मुझ से कहो ॥ ९ ॥ हे ब्रह्माजी ! जिससे ब्रह्महत्या से उपजाहुआ पातक जल्दी चलाजावै और हम सब देवतों के स्पर्शके योग्यहोवैं ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवतोत्तम ! उस ब्रह्महत्याके छूटने के लिये तुम्हैं तीर्थयात्रा करना चाहिये उस यत्नसे तुम्हारा सब पाप नाश होवैगा ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर ब्रह्माके वचन से इन्द्रजी तीर्थयात्रा में परायण अलग २ नहातेहुये सम्पूर्ण पृथ्वी

का भ्रमणकिया ॥ १२ ॥ अच्छे प्रसिद्ध तीर्थोंमें नदियोंमें और नदसे मिलेहुये तीर्थों में, काशीमें व प्रयाग में व प्रभासक्षेत्र में और कुरुजांगलदेश में ॥ १३ ॥ तिसी भांति और तीर्थोंमें स्नान करताहुआ इन्द्र विशेषता से पातकों से रहित न हुआ तब विरागता में प्राप्तहो चित्तमें चिन्तन किया ॥ १४ ॥ पृथ्वीतल में सब तीर्थोंमें मैंने स्नान किया परन्तु पापसे न छूटा इस समयमें मैं क्या करूं ॥ १५ ॥ क्या पर्वतके शिखर से गिरूं अथवा विषको भोजन करूं त्रिलोकीके राज्य से भ्रष्टहुआ मै जीनेकी अभिलाषा नहीं करताहूं ॥ १६ ॥ इस प्रकार विराग में भलीभांति प्राप्त इन्द्रजी पर्वतपर चढ़कर और मरण में निश्चय कियेहुये जबतक अपने शरीर को प्रक्षेप करता है

ले ॥ १३ ॥ तथान्येषुसहस्राक्षोविपाप्मानव्यजायत ॥ ततोवैराग्यमापन्नश्चिन्तयामासचेतसि ॥ १४ ॥ अहंस्नातःसमस्ते षुतीर्थेषुधरणीतले ॥ नचपापेननिर्मुक्तःकिंकरोमिचसाम्प्रतम् ॥ १५ ॥ किंपतामिगिरेःशृङ्गाद्विषंवाभक्षयामिकिम् ॥ त्रैलोक्यराज्यविभ्रष्टो नाहंजीवितुमुत्सहे ॥ १६ ॥ एवंवैराग्यमापन्नोगिरिमारुह्यवासवः ॥ यावत्क्षिपतिचात्मानंमर णेकृतनिश्चयः ॥ १७ ॥ तावदेवोत्थितावाणी गगनाद्द्विजसत्तमाः ॥ माशक्रसाहसंकार्षीर्वैराग्यंप्राप्यचेतसि ॥ १८ ॥ त्वयाराज्यंप्रकर्तव्यं स्वर्गेद्यापियुगादिकम् ॥ तस्मात्पापविशुद्ध्यर्थंशृणुशक्रसमाहितः ॥ १९ ॥ कुरुष्ववचनंशीघ्रं पावनीयंतवाच्युत ॥ यत्त्वयापांशुभिःपूर्वं विवरःपूरितस्तदा ॥ २० ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेयत्रदेवःस्वयंहरः ॥ तत्रनाग बिलोजातोवल्मीकात्त्रिदशाधिप ॥ २१ ॥ येननागाधरापृष्ठेनिर्गच्छन्तिव्रजन्तिच ॥ तेनमार्गेणगत्वात्वंपातालेहाट केश्वरम् ॥ २२ ॥ स्नात्वापातालगङ्गायां तंपूजयमहेश्वरम् ॥ ततःपापविनिर्मुक्तोभविष्यसिनसंशयः ॥ २३ ॥ सम्प्रा

अर्थात् नीचे गिराता है ॥ १७ ॥ तभीतक हे ब्राह्मणोत्तमो ! आकाश से वाणीहुई कि हे इन्द्र ! चित्तमें वैराग्य को प्राप्त होकर सहसाकर्म तुम मतकरो ॥ १८ ॥ तुम आजभी स्वर्गमें राज्यको अवश्य करो हे इन्द्र ! इससे पातक से पवित्र होनेके लिये तुम सावधान होकर सुनो ॥ १९ ॥ तुमको अतिपवित्र करनेवाले वचनको जल्दी करो जोकि उस समय में पहले तुमने बिलको सम्पूर्ण करदिया है ॥ २० ॥ हे देवाध्यक्ष ! हाटकेश्वरजी के क्षेत्रमें जहांपर कि शिवजी आपही प्राप्तहैं वहां पर बंबौरि से सर्प्पोंका विवर होगया था ॥ २१ ॥ जिस बिलसे धरातल में सर्पलोग आतेजाते थे उसी मार्गसे तुम पाताल में हाटकेश्वर क्षेत्रमें जाकर ॥ २२ ॥ पातालगंगा में

नहाकर उन महादेवजी का पूजन करो तब अवश्य पातक से छूटोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ और फिर भी निष्कंटक देवतांकी राज्यको भलीभांति प्राप्तहोगे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर आकाश से उपजी हुई उस वाणीको इन्द्र जी भलीभांति सुनकर वहां को जल्दी समेत गये जहांपर कि वह सर्पोंका विवर है ॥ २५ ॥ उस बिलमें पैठकर पातालगंगाजलमें अच्छीभांति नहाकर हाटकेश्वर नामक उस लिंगका पूजन किया ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर क्षणमात्र में उसका देह निर्मल होगया और दुर्गन्ध नष्ट होगया व तेजकी बढ़ती हुई ॥ २७ ॥ उसीसमय में ब्रह्मा, विष्णु इत्यादिक देवता प्राप्तहुये और बड़े आनन्दित होकर पापसे छुटेहुये

प्स्यसिचभूयोपिदेवराज्यमकण्टकम् ॥ २४ ॥ सूतउवाच ॥ अथशक्रःसमाकर्ण्यतांगिरंगगनोत्थिताम् ॥ जगाम सत्वरंतत्रयत्रनागबिलस्सच ॥ २५ ॥ तंप्रविश्यचपातालगङ्गातोयपरिप्लुतः ॥ पूजयामासतल्लिङ्गंहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ २६ ॥ अथतस्यक्षणाज्जातं शरीरंमलवर्जितम् ॥ दुर्गन्धश्चगतोनाशंतेजोवृद्धिर्बभूवह ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताब्रह्मविष्णुमुखाःसुराः ॥ प्रोचुश्चदेवराजंतंमुक्तपापंप्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ प्राप्तस्त्वंमेध्यतांशक्रविमुक्तोब्रह्महत्यया ॥ तस्मादागच्छगच्छामःसहितास्त्रिदशालयम् ॥ २९ ॥ एतन्नागबिलंशक्रपुनःपूरयपांशुभिः ॥ नोचेदागत्यचान्येचमानुषास्सिद्धिहेतवः ॥ ३० ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्यस्नात्वाभागीरथीजले ॥ अपिपापसमायुक्तायास्यन्तिपरमांगतिम् ॥३१॥ ततस्तेत्रिदशाःसर्वेसचदेवःशतक्रतुः ॥ प्रणिपत्यपुनःप्रोच्चैःप्रजग्मुस्त्रिदशालयम् ॥ ३२ ॥ ततोजज्ञेमहांस्तत्र स्वर्गेवृत्रवधोत्सवः ॥ देवेन्द्रत्वमनुप्राप्तेपुनःशक्रेद्विजोत्तमाः ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंहाटकेश्वरसम्भवम् ॥

उस देवराजसे बोले ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! ब्रह्महत्या से निर्मुक्त होकर तुम पवित्रता को प्राप्तहुये हो इससे आवो तुम समेत हम सब स्वर्गको चलैं ॥ २९ ॥ हे इन्द्र ! इस सर्पबिल को तुम फिर धूरिसे पूरितकरो नहीं तो और भी मनुष्य कार्य्य सिद्धि के लिये आकर और गङ्गाजल में स्नानकर इस लिंगको भलीभांति पूजन करके पापोंसे संयुक्त भी वे उत्तमगति को जावैंगे ॥ ३० । ३१ ॥ तदनन्तर वे सब देवता और इन्द्र फिर उच्चप्रकार से प्रणाम करके देवलोक को चलेगये ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर इन्द्रको फिर देवतोंका राज्य प्राप्त होतेहुये उस स्वर्गमें वृत्रासुरके मारनेसे बड़ा उत्सव (जल्सा) हुआ ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो !

ने उसी सर्पबिलके पूर्ण करने को भलीभांति चिन्तन किया और कुछ भी न देखा ॥ ७ ॥ तदनन्तर देवतों के पूज्य बृहस्पतिजी आपही उस इन्द्रसे कहा कि हे देवाध्यक्ष ! इस कार्य्य में तुम किस लिये दुःखीहो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! पर्वतोंमें नामी यहांपर हिमालयनाम से प्रसिद्ध है जिस भांति उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुयेहैं सो हमसे सुनो ॥ ९ ॥ पहला मैनाक और दूसरा नन्दिवर्धन कहाजाता है और तीसरा रक्तशृङ्ग कीर्तन कियाजाता है ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! वह मैनाकपर्वत तुम्हारे भयसे समुद्र के बीचमें पैठगया वहींपर दोनों पंखोंके समेत आजभी विशेषतासे टिकाहुआ है॥११॥ और जो दूसरा नन्दिवर्धन कहागया है उसने वसिष्ठजी के आश्रम में उत्पन्न हुये स-

मासपूरणंत्रिदशाधिपः ॥ तस्यनागबिलस्यैव नचकिञ्चिदवैक्षत ॥ ७ ॥ ततस्तंप्राहदेवेज्यःस्वयमेवशतक्रतुम् ॥ क स्मात्त्वंव्याकुलीभूतः कृत्येस्मिंस्त्रिदशाधिप ॥ ८ ॥ अस्तिपर्वतमुख्योत्रनाम्नाख्यातोहिमालयः ॥ तस्यपुत्रत्रयंजातं यथाशक्रशृणुष्वमे ॥ ९ ॥ मैनाकःप्रथमःप्रोक्तो द्वितीयोनन्दिवर्द्धनः ॥ रक्तशृङ्गस्तृतीयस्तु पर्वतःपरिकीर्तितः ॥१०॥ समैनाकःसमुद्रान्तःप्रविष्टःशक्रतोभयात् ॥ पक्षाभ्यांसहितोद्यापिसतत्रैवव्यवस्थितः ॥ ११ ॥ नन्दिवर्द्धनइत्येष द्वितीयःपरिकीर्तितः ॥ वसिष्ठाश्रमजोरन्ध्रस्तेनकृत्स्नःप्रपूरितः ॥ १२ ॥ हिमाचलसमादेशाद्वसिष्ठस्यचसन्मुनेः ॥ देवभूमिंपरित्यज्यसगतस्तत्रसत्वरम् ॥ १३ ॥ तृतीयस्तिष्ठतेद्यापिरक्तशृङ्गःस्मृतोत्रयः ॥ तमानयसहस्राक्ष बिलंसार्प्पंप्रपूरय ॥ १४ ॥ नान्यथापूरितुंशक्यो बिलोयंत्रिदशाधिप ॥ तंमुख्यपर्वतश्रेष्ठंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १५ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वादेवपूज्यस्यवचनंत्रिदशाधिपः ॥ जगामसत्वरंतत्रतुहिनाचलमालयम् ॥ १६ ॥ ततःप्रोवाचतंगत्वासामपूर्व

म्पूर्ण छिद्रको भलीभांति पूर्ण करदिया है ॥ १२ ॥ अच्छे महर्षि वसिष्ठजी की और हिमाचल की आज्ञा से देवतोंकी पृथ्वीको छोड़कर वह जल्दीसे वहांगया है ॥ १३ ॥ तीसरा जोकि रक्तशृङ्गनाम से कहागया है वह आजभी यहां स्थितहै हे इन्द्र ! उसको लेआवो और नागोंके विवर को भलीभांति सम्पूरित करो ॥ १४ ॥ हे सुरेश ! उस मुख्य पर्वत के विना दूसरी भांति से यह बिल पूर्ण नहीं होसक्ता है यह मैंने सत्य कहा है ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्रजी बृहस्पतिजी के यह वचन सुनकर

यह हाटकेश्वर से उत्पन्न हुआ माहात्म्य जोकि सब पापोंको नाश करता है वह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमने तुम लोगोंसे कहा ॥ ३४ ॥ जो कोई इसको वर्णन करता है तथा सावधान होकर भक्तिसे जो श्रवण करता है वह वृद्धावस्था व मृत्युसे रहितहोकर उत्तमस्थान को जाताहै॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येवृत्रासुरवधोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० ॥ सो नवयें अध्याय में कथा कही समुझाय । रक्तश्रृङ्ग सों इन्द्र जिमि अहिबिल पूर्यो जाय ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर इन्द्रजीने संवर्तक पवनको भलीभांति बुलाकर कहा कि हाटकेश्वरजी के क्षेत्रमें सर्पोंका बड़ा विवर है॥ १ ॥उस बिलको हमारी आज्ञा से जल्दी जाकर धूरि से पूर्णकरदो कि जिससे वहांपर

माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाःसर्वपातकनाशनम् ॥ ३४ ॥ यश्चैतत्कीर्त्तयेद्भक्त्याशृणोतिचसमाहितः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रवधोनामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

सूतउवाच ॥ अथशक्रःसमाहूय प्रोचेसंवर्तकानिलम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे महान्नागबिलोस्तिवै ॥ १ ॥ तंपूरयममादेशाद्द्रुतंगत्वासुपांशुभिः ॥ येननस्याद्गतिस्तत्रकस्यचिन्मृत्युधर्मिणः ॥ २॥ वायुरुवाच ॥ तवादेशान्मयापूर्वंपूरितोविवरोयदा ॥ लिङ्गोद्भवस्तदाशापःप्रदत्तोमेपुरारिणा ॥ ३ ॥ यस्माल्लिङ्गंममैतद्वैत्वयापांशुभिरावृतम् ॥ तस्मात्समानधर्मात्वंगन्धवाहीभविष्यसि ॥ ४ ॥ यद्वत्कर्पूरजंगन्धं समग्रंत्वंहिवक्ष्यसि ॥ अमेध्यसम्भवंतद्वन्ममवाक्यादसंशयम् ॥ ५ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे विदित्वैतत्सुरेश्वर ॥ कृत्येस्मिन्युज्यतामन्यस्त्रिपुरारेर्बिभेम्यहम् ॥ ६ ॥ ततःसञ्चिन्तया

किसी प्राणीकी गति न होवै ॥ २ ॥ वायुजी बोले कि तुम्हारी आज्ञासे जब पहले मैंने बिलको मूंद दियाथा तब हमको शिवजी के लिङ्गसे शाप दियागया है ॥ ३ ॥ जिससे तुमने हमारे इस लिंगको आवरण करदिया (झांपदिया) है इससे तुम समानधर्मा अर्थात् जिस दुर्गन्ध सुगन्ध में जावोगे उसीके सदृश धर्म होकर उस गन्ध के वाहनहोगे ॥ ४ ॥ जैसे कपूर से उपजीहुई सम्पूर्ण गन्धको तुम निश्चय से ले जातेहो इसीतरह से हमारे वचन से निस्सन्देह तुम अशुचिवस्तु से उत्पन्न गन्ध को प्राप्तकरोगे ॥५॥ इससे हे देवेश! यह जानकर हमारे ऊपर प्रसन्नताकरो याने प्रसन्नहो और इस काममें और किसीको नियुक्त करो हम शिवजी से डरतेहैं॥६॥ तदनन्तर देवेश

जल्दी समेत वहां हिमाचल पर्वत के स्थानमें गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर वहां जाकर सिद्ध चारणों से सेवित व पर्वतोंमें उत्तम हिमाचलपर्वत से प्रियवचनरचनापूर्वक यह वचन बोले ॥ १७ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे पर्वतोत्तम ! हाटकेश्वरजी के क्षेत्रमें एक बड़ा सर्प्पोंका विवरहै उस मार्गसे पाताल में जाकर जे कोई पापमें परायणहैं वे भी हाटकेश्वर देवता का पूजन करैंगे तदनन्तर हमारे साथ ईर्षाको करैंगे ॥ १८ । १९ ॥ तिससे हे हिमालय ! रक्तशृङ्ग नामक इस पुत्रको वहांपर तुम भेजदो कि जिससे निश्चय करके वह विवर पूर्ण होजावै ॥ २० ॥ हे पर्वत ! गेहमें आयेहुये हमारा आतिथ्य (पहुनई) करो अपने पुत्रको देनेसे लोकमें उपजेहुये यशको प्राप्तहोगे ॥ २१ ॥

मिदंवचः ॥ हिमाचलंगिरिश्रेष्ठंसिद्धचारणसेवितम् ॥ १७ ॥ इन्द्रउवाच ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेमहान्नागबिलःस्थितः ॥ ते
नगत्वानरादेवंपातालेहाटकेश्वरम् ॥ १८ ॥ पूजयिष्यन्तियेकेचिदपिपापपरायणाः ॥ मयासार्द्धंकरिष्यन्ति ततःस्प
र्द्धांनगोत्तम ॥ १९ ॥ तस्मात्पुत्रमिमंतत्ररक्तशृङ्गंहिमालय ॥ प्रेषयस्वबिलोयेनपूर्य्यतेसोहिसम्भवः ॥ २० ॥ कुरुष्व
त्वंममातिथ्यंगृहप्राप्तस्यपर्वत ॥ आत्मपुत्रप्रदानेनकीर्तिंप्राप्स्यस्यलौकिकीम् ॥ २१ ॥ बाढमित्येवसोप्युक्त्वापूज
यित्वाचदैवतम् ॥ ततःप्रोवाचतंपुत्रं रक्तशृङ्गंहिमालयः ॥ २२ ॥ तवार्थायसहस्राक्षःपुत्रप्राप्तोममान्तिकम् ॥ तस्मा
द्गच्छद्रुतंतत्रयत्रनागबिलःस्थितः ॥ २३ ॥ पूरयित्वाममादेशात्त्वंशक्रस्यकृत्स्नशः ॥ सुखीभवसहानेनतथान्यैस्सु
रसत्तमैः २४ ॥ रक्तशृङ्गउवाच ॥ नाहंतत्रगमिष्यामिमर्त्यभूमौकथञ्चन ॥ यत्रकण्टकिनोवृक्षारूक्षाःफलविवर्जिताः ॥
२५ ॥ नसिद्धानचगन्धर्वा नदेवानचकिन्नराः ॥ नचतीर्थानिरम्याणिननद्योविमलोदकाः ॥ २६ ॥ तथापापसमाचारा

हां ऐसेही करैंगे यह कहकर वह भी इन्द्र देवता का पूजन करके तदनन्तर हिमालयजी ने उस रक्तशृङ्ग पुत्र से कहा ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे लिये इन्द्रजी हमारे समीप प्राप्तहुये इससे वहां बहुत जल्दी जावो जहांपर कि नागबिल स्थितहै ॥ २३ ॥ हमारी और इन्द्रकी आज्ञासे तुम उसको सम्पूर्ण पूरित करदो और इन्द्र तथा और देवतोत्तमों के सहित सुखी होवो ॥ २४ ॥ रक्तशृङ्ग बोला कि मैं वहां मनुजभूमि में किसी भांति से न जाऊंगा कि जिस भूमिमें फलों से रहित व रूखे तथा कांटावाले वृक्ष हैं ॥ २५ ॥ न वहां सिद्ध देवता हैं न गन्धर्वहैं और न देवता हैं न किन्नर हैं न मनोहर तीर्थ हैं और न निर्मलजलवाली नदियां हैं ॥ २६ ॥ पाप

तुम्हारा प्रभाव प्रसिद्ध होवैगा तुम्हारे लिये कल्याणहो इससमय हम स्वर्गको जावैंगे ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले किसुरेशजी ऐसा कहकर तदनन्तर स्वर्गमें प्राप्तहुये और रक्तशृङ्ग भी उसीसमय सर्प्पविवर में व्याप्तहोकर स्थित होगया ॥ ४८ ॥ उसके ऊपर सुन्दर प्रसिद्ध तीर्थ व देवालय होगये और तैसेही मुनियों के आश्रम होगये ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येनागबिलपूर्तिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥

दो० ॥ चमत्कारनृप कुष्ठयुत शङ्खतीर्थ में न्हाय । भयो पुनीत यथा वही कथा दशम अध्याय ॥ सूतजी बोले कि उसी समय में आनर्तदेश का स्वामी चमत्कार

ष्यति ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामिसाम्प्रतंत्रिदिवालयम् ॥४७॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षस्ततःप्राप्तस्त्रिविष्टपम् ॥ रक्तशृङ्गोपितस्थौचव्याप्यनागबिलंतदा ॥४८॥तस्योपरिसुमुख्यानितीर्थान्यायतनानिच॥ सञ्जातानिमुनीनांच सञ्जाताश्चतथाश्रमाः ॥ ४९॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येनागबिलपूर्तिर्नामनवमोध्यायः॥६॥

सूतउवाच ॥ आनर्त्ताधिपतिर्भूपश्चमत्कारइतिस्मृतः॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तस्तत्रहन्तुंवनेमृगान् ॥ १ ॥ सददर्शमृगीं दूरान्निश्चलाङ्गींतरोरधः ॥ स्तनंसुताययच्छन्तीं विश्वस्तामकुतोभयाम् ॥ २ ॥ अथतांपार्थिवोदृष्ट्वाकृष्ट्वाकर्णशरेण सः ॥ जघानाकर्णकृष्टेनमर्मस्थानेप्रहर्षितः ॥ ३ ॥ साहतासहसातेनगार्द्धपत्रेणपत्रिणा ॥ दिशोविलोकयामाससमन्ताद्व्यथयार्दिता ॥ ४ ॥ अथदृष्ट्वामहीपालंनातिदूरेधनुर्धरम् ॥ प्रोवाचाश्रुपरिक्लिन्नवदनासुतवत्सला ॥ ५ ॥ मृग्युवाच ॥ अयुक्तंपृथिवीपालयत्त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ हताहंबालवत्साद्यशरेणनतपर्वणा ॥ ६ ॥ नाहंशोचामिभूपाल मरणं

नामसे विख्यात भूपति वनमें मृगोंको मारने के लिये उस स्थान में प्राप्तहुआ॥१॥ वह राजा दूरसे हरिणी को देखा कि जिसके सब अंग अचल हैं और सबओर से निर्भय तथा विश्वास को कियेहुये वृक्षके नीचे पुत्रको दूध पियारही है ॥ २ ॥ इसके अनन्तर हर्षित हुआ वह राजा उस मृगीको देखकर कर्णपर्यन्त बाणको खींच कर और उसी कर्ण पर्य्यन्त खींचेहुये बाणसे मर्मस्थान (अंगके जोड़) में मारा॥ ३ ॥ गृध्रके पङ्ख जिस बाणमें लगेहैं उस बाणसे अचानक ताड़ित वह मृगी सब ओरसे पीडासे दुःखित दिशाओं मे अवलोकन करती भई॥ ४ ॥इसके उपरान्त समीपहीमें धनुष को धारण कियेहुये नृपति को देखकर पुत्रवत्सला व आंसुओं से भीजे

हुये मुखवाली वह मृगी बोली ॥ ५ ॥ मृगी बोली कि हे वसुधाधिप ! यह तुमने अयोग्य काम किया जोकि झुकेहुये ग्रन्थिवाले बाणसे आज मुझे मारा क्योंकि मेरा पुत्र छोटाहै ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैं उस भांति अपने शरीर के मरनेको नहीं शोचतीहूं जैसा कि इस पुत्रको जोकि दुग्ध भोजन करने में चतुर तथा दीन है ॥ ७ ॥ जिस लिये तुमने ऐसे निर्दय कामको कियाहै इससे इसीसमय तुम कुष्ठरोग से संयुक्त होवोगे ॥ ८ ॥ राजा बोले कि यह राजाओं का निजधर्म है जो मृगोंका नाश करते हैं इससे अपने धर्ममें भलीभांति युक्त मुझे तुम शाप देनेके योग्य नहींहौ ॥ ९ ॥ मृगी बोली कि हे नृपति ! जो तुमने कहाहै यह सत्यहै क्षत्रियों के मारने के

स्वशरीरगम् ॥ यथेमंबालकंदीनंक्षीरास्वादनलम्पटम् ॥ ७ ॥ यस्मात्त्वयेदृशंकर्म्मनिर्दयंसमनुष्ठितम् ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तस्तस्मात्सद्योभविष्यसि ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वधर्म्मएषभूपानां कुर्वन्तिमृगसङ्क्षयम् ॥ तस्मात्स्वधर्म्मसंयुक्तंनमांत्वंशप्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ मृग्युवाच ॥ सत्यमेतन्महीपालयत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ क्षत्रियाणांवधार्थायमृगाःसृष्टाःस्वयम्भुवा ॥ १० ॥ परन्तेनविधिस्तेषां कृतोयस्तंमहीपते॥शृणुष्वावहितोभूत्वावदन्त्याममसाम्प्रतम् ॥ ११ ॥ सुप्तंमैथुनसंयुक्तं स्तनपानक्रियोद्यतम् ॥ हत्वामृगंजलासक्तंनरःपापेनलिप्यते ॥ १२ ॥ एतस्मात्कारणाच्छापस्तवदत्तोमया नृप ॥ नकामतोनमृत्योर्वासत्येनात्मानमालभे ॥ १३ ॥एवमुक्त्वामृगीप्राणान्सामुमोचव्यथार्दिता ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तःसोपिराजाबभूवह ॥ १४ ॥ सदृष्ट्वाकुष्ठसंयुक्तंपार्थिवःस्वंकलेवरम् ॥ ततःस्वान्सेवकानाह समाहूयसुदुःखितः ॥ १५ ॥ अहंतपश्चरिष्यामिपूजयिष्यामिशङ्करम् ॥ तावद्यावत्प्रणाशोमेकुष्ठव्याधेर्भविष्यति ॥ १६ ॥ यत्कि

लिये ब्रह्माने मृगोंको उत्पन्न कियाहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! परन्तु उन ब्रह्माने क्षत्रियोंको जो विधि अर्थात् कर्तव्य कीन्हींहै उसको इससमय कहती हुई मुझसे सावधान होकर सुनो ॥ ११ ॥ कि सोतेहुये व मैथुन में युक्त होतेहुये और दूध पिलानेके काममें उद्यत हुये तथा जलपान करते हुये मृगको मारकर मनुष्य पापसे संयुत होताहै ॥ १२ ॥ हे नृप ! इस कारणसे मैंने तुमको शाप दियाहै न कामसे शापको दियाहै और न मृत्युसे किन्तु सत्यतासे देहको त्याग करतीहूं ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर पीड़ा से दुःखित उस मृगीने प्राणोंको त्याग दिया और वह राजाभी कुष्ठरोग से भलीभांति संयुत होगया ॥ १४ ॥ वह राजा अपने शरीर को कुष्ठ से समन्वित देखकर

तदनन्तर बहुत दुःखित होकर नौकरों को भलीभांति बुलाकर यह कहा ॥ १५ ॥हम तबतक तपस्या करैंगे और शिवजी का पूजन करैंगे कि जबतक मेरा कुष्ठरोग भलीभांति नष्ट न होजावैगा ॥ १६ ॥ मनुष्य तीनोंलोकमें जो कुछसुखकी प्रार्थना करते हैं वह सब तपस्या से साध्य है अर्थात् तप से प्राप्तहोता है इस लिये हमको तपस्या करना चाहिये ॥ १७ ॥ इससमय मैं एकहीहूं और एकही मैं एक २ वनस्पतिमें नियमों से भिक्षाटन करता हुआ पृथ्वीतल में गमन करूंगा ॥ १८॥ धूरि से भलीभांति आच्छादित व शून्य मन्दिर में आश्रित या वृक्षके जड़में स्थानकर सम्पूर्ण हिताहित को छोड़ेहुये ॥ १९ ॥ शत्रु व मित्रमें समभाव और ढेला, पत्थर, सुवर्ण में समदृष्टि होकर तबतक समय को व्यतीत करैंगे कि जबतक मृत्युकी भलीभांति प्राप्तिहोगी ॥ २० ॥ वह नृप इस प्रकार नौकरों से कहकर और विदाकरके

स्त्रिषुलोकेषुप्रार्थयन्तिनराःसुखम् ॥ तत्सर्वंतपसासाध्यंतस्मात्कार्यंमयातपः ॥ १७ ॥ अधुनैकोहमेकोहमेकैक स्मिन्वनस्पतौ ॥ चरन्भैक्ष्यंतुनियमैश्चरिष्यामिधरातले ॥१८॥ पांशुनासमवच्छन्नःशून्यागारप्रतिश्रयः ॥ वृक्षमूल निकेतोवामुक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥ १९ ॥ समःशत्रुषुमित्रेषुसमलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ भूत्वाकालंनयिष्यामियावत्कालस्य संस्थितिः ॥ २० ॥ एवंतान्सेवकान्भूपस्सोभिधायविसर्ज्यच ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वाबभ्रामवसुधातले ॥ २१ ॥ ततःका लेनमहताप्राप्यविप्रसमुद्भवम् ॥ उपदेशंनृपःप्राप्तःशङ्खतीर्थंमहोदयम् ॥ २२ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वव्याधिविनाश कम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषुपूरितंस्वच्छवारिणा ॥ २३ ॥ तत्रासौस्नातमात्रस्तुतत्क्षणात्पार्थिवोत्तमः ॥ कुष्ठव्याधिवि निर्मुक्तस्सञ्जातस्समहाद्युतिः ॥ २४ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदशमोध्यायः १० ॥

तीर्थयात्रा में तत्पर पृथ्वीतलमें भ्रमण किया ॥ २१ ॥ तिसके उपरान्त बहुत समयसे ब्राह्मण से भलीभांति कहेहुये उपदेशको पाकर बड़े ऐश्वर्यवाले शङ्खनामक तीर्थ में प्राप्तहुआ ॥ २२ ॥ हाटकेश्वरजी के क्षेत्रमें सम्पूर्ण रोगोंका विनाशी व निर्मल जलसे परिपूर्ण वह तीर्थ तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ उसी शङ्खतीर्थमें केवल नहाया हुआ वह नृपोत्तम कुष्ठरोगसे छूटकर बड़ा दीप्तिमान् होगया ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहा टकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० ॥ ऋषि पूँछयो है सूतसों चमत्कार आख्यान । एकादश अध्याय में सो सब करत बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! चमत्कार नामक राजा कैसे कुष्ठसे छूटा है और उसने किसभांति तपस्या को कियाहै और किस स्थानमें विशेषता से टिकाहै ॥ १ ॥ तथा किस प्रकार का तीर्थका सब प्रभाव है यह सम्पूर्ण तुम विस्तार से कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! चमत्कार राजासे उपजीहुई व सब पातकों को नाश करनेवाली तथा मनोहर उस कथाको हम तुम सबोंसे कहैंगे ॥ ३ ॥ नियताहारी उस तपस्वी ने भिक्षान्न भोजन करतेहुये प्रभासादिक सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें भ्रमण किया ॥ ४ ॥ व प्रसिद्ध वैद्योंसे बार २ औषधों को पूँछतेहुये

ऋषयऊचुः ॥ चमत्कारःकथंराजामुक्तःकुष्ठेनसूतज ॥ कथंतेनतपस्तप्तं कस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ किंप्रभावं चनिःशेषंसर्वंविस्तरतोवद ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिकथामेतांमनोहराम् ॥ सर्वपापहरांविप्राश्चमत्कारनृपोद्भवाम् ॥ ३ ॥ सम्भ्रान्तस्सर्वतीर्थानिप्रभासाद्यानिकृत्स्नशः ॥ तपस्वीनियताहारोभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ४ ॥ पृच्छमानोभिषग्मुख्यानौषधानिमुहुर्मुहुः ॥ मन्त्रान्मन्त्रविदश्चैवरोगनाशायनित्यशः ॥ ५ ॥ नलेभेकिञ्चिदिष्टंवासमन्त्रंभिषजंहिवा ॥ तीर्थंवान्नृपशार्दूलोयेनस्याद्व्याधिसङ्क्षयः ॥ ६ ॥ ततश्चपार्थिवश्रेष्ठो वैराग्यंपरमंगतः ॥ एकाकीजितचित्तात्मासर्वसत्त्वविराजिते ॥ ७ ॥ निवासमकरोत्तस्मिन्क्षेत्रेपुण्यतमेचिरम् ॥ शीर्णपर्णफलाहारो भूमौशेते सदानिशि ॥ ८ ॥ अन्यस्यान्यस्यवृक्षस्यमदाहङ्कारवर्जितः ॥ ततःकतिपयाहस्य भ्रममाणोमहीपतिः ॥ ९ ॥ सोपश्यद्ब्राह्मणश्रेष्ठांस्तीर्थयात्राश्रयान्बहून् ॥ १० ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वानुपविष्टान्धरातले ॥ विश्वामित्राश्रमस्यान्ते

और प्रतिदिन मन्त्रके जाननेवाले पुरुषों से रोगनाशके लिये मन्त्रों को पूँछरहाहै ॥ ५ ॥ उस नृपोत्तमने कोई सिद्ध मन्त्र या कोई ओषधि या तीर्थको न पाया कि जिससे रोगका भलीभांति नाशहोवै ॥ ६ ॥ तिसके उपरान्त नृपोत्तमने अकेले चित्त और मनको जीतेहुये उत्तम विरागता को प्राप्तहुआ व सब प्राणियों से सुशोभित व अतिपवित्र उस क्षेत्रमें बहुत दिनोंतक निवास किया है गिरेहुये पत्तोंका भोजनकरते हुये रात्रिको निरन्तर पृथ्वीमें शयन करता है ॥ ७ । ८ ॥ मद व अहङ्कार से रहित और २ वृक्षोंके आश्रित रहता है तिसके उपरान्त उस पृथ्वीपति ने घूमतेहुये किसी दिन तीर्थयात्रा में आश्रित बहुतेरे उत्तम ब्राह्मणोंको देखा ॥ ९ । १० ॥ तिस

के उपरान्त विश्वामित्रजी के आश्रम के समीप पृथ्वीतल में बैठेहुये उन सबको विनययुक्त होकर प्रणामकर बोला ॥ ११ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! चमत्कार नामक नृपति मैं सूर्य्यवंश में उत्पन्न व आनर्तदेश का स्वामी इस समय कुष्ठसे व्याप्तहूं ॥ १२॥ कोई दैवीयत्न या मनुष्य का यत्न इस कुष्ठमेंहै अथवा ऐसी कोई ओषधि या मन्त्रहै जिससे कुष्ठ भलीभांति शान्त होताहै ॥१३॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! हमारे ऊपर कृपा करके तुम सब कहो तिसके उपरान्त उनब्राह्मणोंने दयासे युक्त होकर उस पृथ्वीपति से कहा ॥ १४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इस स्थानसे समीपही में सब रोगोंका नाश करनेवाला शङ्खनामक तीर्थ है ॥ १५॥ जे मनुष्य रोगोंसे ग्रसित

प्रोवाचविनयान्वितः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ अहंनाम्नाचमत्कारःपार्थिवःसूर्य्यवंशजः ॥ आनर्त्ताधिपतिर्व्याप्तः कुष्ठेनद्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्रदैवोवामानुषोपिवा ॥ भेषजंवाथमन्त्रोवा येनकुष्ठंप्रशाम्यति ॥ १३ ॥ ममोपरिदयांकृत्वावदध्वंद्विजसत्तमाः ॥ प्रोचुस्ततःकृपाविष्टा द्विजास्तंपृथिवीश्वरम् ॥ १४ ॥ अस्थिपार्थिवशार्दूल स्थानादस्मादद्दूरतः ॥ शङ्खतीर्थमितिख्यातं सर्वरोगक्षयावहम् ॥ १५ ॥ येनराव्याधिनाग्रस्ताःकाणाश्चान्धास्तथा जडाः ॥ हीनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्चकुरूपाविकृताननाः ॥१६॥तेपिचैत्रस्यकृष्णादौ स्नातास्तत्रकृताशनाः ॥ भवन्तिनीरुजःसद्यश्चित्रासंस्थेनिशाकरे ॥ १७ ॥ अस्माभिःशतशोदृष्टाद्वादशार्कसमप्रभाः ॥ कामदेवसमाकारास्तेजोवीर्य्यसमायुताः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ शङ्खतीर्थंकथंज्ञेयं मयाब्राह्मणसत्तमाः ॥ कथंचैवसमुत्पन्नंवदध्वंममविस्तरात् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ आसीत्पूर्वंमुनिश्रेष्ठोलिखिताख्योमहीतले॥शिण्डिलस्यमुनेःपुत्रस्तपोवीर्य्यसमन्वितः ॥ २० ॥ अथ

और काने या अन्धे तथा मूर्ख हैं और न्यूनाङ्ग तथा अधिकाङ्ग व कुरूप या बिगड़ेहुये मुखके हैं ॥ १६ ॥ वे मनुष्य भी चैत्र महीनेके प्रथम पक्षमें चन्द्रमा को चित्रा नक्षत्र में स्थित होतेहुये उस क्षेत्रमें स्नान करके भोजन करतेहुये उसी क्षण रोगसे रहित होजाते हैं ॥ १७ ॥ व बारह सूर्यों के समान तेजको धारण किये व कामदेव के सदृश आकारवाले और तेज व पराक्रम से भलीभांति संयुक्त हम सबोंने सैकड़ों मनुष्य देखेहैं ॥ १८ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! शङ्खनामक तीर्थको मैं कैसे जानूंगा और वह किस प्रकार उत्पन्न हुआ है यह मुझसे तुम सब विस्तार से कहो ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले कि पहले पृथ्वीतल में शिण्डिलमुनि का पुत्र

तप और बलसे संयुक्त व मुनियों में उत्तम लिखितनामक हुआहै ॥ २० ॥ इसके उपरान्त उसका छोटाभाई शङ्खनामक उत्पन्न हुआ जो धर्मशास्त्र का जाननेवाला व कन्दमूल, फल भोजन करनेवाला तथा निरन्तर तपस्या में स्थितहुआ है ॥ २१ ॥ किसी समयमें क्षुधासे बहुत व्यथित होकर स्वादिष्ठ फलोंको भोजन करनेके लिये शङ्ख लिखित के आश्रमको गया ॥ २२ ॥ उस शङ्खने लिखित महात्मा का आश्रम शून्य पाकर तदनन्तर फलोंको अपनेही मानकर ग्रहण किया ॥ २३ ॥ बहुत से पके और मीठे फलोंको भोजन किया उसीसमय शिष्योंसे समन्वित लिखित प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ वह लिखित फलोंको ग्रहण कियेहुये शङ्खको देखकर बड़ेक्रोध से

तस्यानुजोजज्ञेशङ्खाख्योधर्म्मशास्त्रवित् ॥ कन्दमूलफलाहारःसदैवतपसिस्थितः ॥ २१ ॥कस्यचित्त्वथकालस्यलिखितस्याश्रमंययौ ॥ शङ्खस्स्वादुफलार्थाय पीडितोतिबुभुक्षया ॥ २२ ॥ सशून्यमाश्रमंप्राप्यलिखितस्यमहात्मनः ॥ आत्मीयानीतिमत्वासफलानिजगृहेततः ॥ २३ ॥ भक्षयामासभूरीणिपक्वानिमधुराणिच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोलिखितःशिष्यसंयुतः ॥ २४ ॥ सगृहीतफलंदृष्ट्वाशङ्खंप्रोवाचकोपतः ॥ अदत्तानिमयापापफलानिहृतवानसि ॥ २५ ॥ कस्मात्त्वंचौर्य्यरूपेणनानुबन्धमवेक्षसे ॥ २६ ॥ शङ्खउवाच ॥ सत्यमेतद्द्विजश्रेष्ठयत्त्वयापरिकीर्त्तितम् ॥ फलानिप्रगृहीतानिविजनेत्रतवाश्रमे ॥ २७ ॥ तस्मात्कुरुयथार्हंमेनिग्रहंचौर्य्यसम्भवम् ॥ इहलोकःपरश्चैवयेनमेस्यात्सुखावहः ॥ २८ ॥ ततःसशस्त्रमादायहस्तौशङ्खस्यतत्क्षणात् ॥ चकर्त्तकोपमाविष्टो वार्य्यमाणोपितापसैः ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ छिन्नहस्तोपिशङ्खस्तुतपश्चक्रेसुदारुणम् ॥ विशेषेणसमासाद्यस्वाश्रमेभूयएवतु ॥ ३० ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यका

बोला कि हे दुष्ट ! मेरे न दियेहुये फलोंको तुमने लेलिया है ॥ २५ ॥ तुम चोरीरूपसे दोषोत्पादन को किसलिये नहीं देखतेहो ॥ २६ ॥ शङ्ख बोला कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुमने जो कहाहै यह सत्यहै इस तुम्हारे निर्जन आश्रम में मैंने फलोंको अधिकतासे ग्रहण कियाहै ॥ २७ ॥ इससे चोरीसे उपजेहुये यथायोग्य दण्डको मेरे लिये तुम करो जिससे यह लोक व परलोक मेरे लिये सुखको प्राप्तकरै ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वह लिखित क्रोधावेश होकर उसीक्षण शस्त्रको लेकर तपस्वियों से मना करते हुये भी शङ्खके दोनों हाथोंको काटडाला ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि कटे हाथवालेभी उस शङ्खने फिरभी निज आश्रम में प्राप्त होकर विशेषता से बडे घोरतप को

किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ समयमें महादेवजी प्रसन्न होतेहुये दर्शन प्राप्तकरके यह बोले कि तुम मनोभिलषित वरदानको मांगो ॥ ३१ ॥ शङ्खमुनि बोले कि हे देव ! यदि तुम प्रसन्न हो और हे स्वामिन् ! यदि वरदान को देतेहो तो हे सुरश्रेष्ठ ! मेरे हाथ फिरभी वैसेही होजावैं ॥ ३२ ॥ हे सुरोत्तम ! तैसेही मनुष्यों के सब पाप हरनेवाला यह तीर्थ मेरे नाम से चिह्नित देवलोकों में प्रसिद्ध होवै ॥ ३३ ॥ न्यूनअङ्गोंवाला या अधिकअङ्गोंवाला या रोगोंसे ग्रसित जो कोई यहां स्नान करताहै वह जल्दीसे फिर नवीन होताहै ॥ ३४ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजेन्द्र ! यह तीर्थ तो आजसे लगाकर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा जोकि देहधारियों के सब पातकोंका विनाशक

लेनकेनचित ॥ प्रोवाचदर्शनंगत्वावृणुष्वाभिमतंवरम् ॥३१॥ शङ्खउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंचेद्यच्छसिप्रभो॥ स्यातांमेतादृशौहस्तौ भूयोपिसुरसत्तम ॥ ३२ ॥ तथेदंममनामाङ्कंतीर्थंस्यात्सुरसत्तम ॥ विख्यातंसुरलोकेषु सर्वपापहरंनृणाम् ॥ ३३ ॥ हीनाङ्गोवाधिकाङ्गोवाव्याधिनाग्रस्तएवच ॥ अत्रस्नानंकरोत्याशु सभूयःस्यात्पुनर्नवः ॥ ३४ ॥ भगवानुवाच ॥ एतत्तीर्थंतुविख्यातंतवनाम्नाभविष्यति ॥ अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्रदेहिनांपापनाशनम् ॥ ३५ ॥ हीनाङ्गोवाधिकाङ्गोवायोत्रस्नानंकरिष्यति ॥ चैत्रेशुक्लेनिराहारश्चित्रासंस्थेनिशाकरे ॥ ३६ ॥ सुवर्णाङ्गःसतेजस्वी भविष्यतिनसंशयः ॥ सकामोयदिविप्रेन्द्रध्यायमानःसुरूपताम् ॥ ३७ ॥ निष्कामोवापरंस्थानंगमिष्यतिशिवात्मकम् ॥ अत्रश्राद्धेकृतेब्रह्मंश्चतुर्दश्यांनिशाकरे ॥ ३८ ॥ चित्रास्थितेप्रयास्यन्तिपितरस्तृप्तिमुत्तमाम् ॥ अद्यैवविप्रशार्दूलचैत्रशुक्लान्तउत्तमः ॥ ३९ ॥ अपराह्णेनिशानाथश्चित्रायोगंप्रयास्यति॥तत्रोपवासयुक्तस्यसम्यक्स्नातस्यतत्क्षणात् ॥ ४० ॥ स्या

है ॥ ३५ ॥ चैत्रमहीने के शुक्लपक्ष में चन्द्रमा को चित्रानक्षत्र में स्थित होतेहुये जो कोई न्यूनाङ्ग या अधिकाङ्ग निराहार व्रत कियेहुये इस तीर्थमें स्नान करैगा ॥ ३६ ॥ हे द्विजेन्द्र ! यदि वह सकाम होकर सुन्दर रूपको चिन्तन कररहाहै तो निस्सन्देह कनक के समान अंगवाला व तेजस्वी होवैगा ॥ ३७ ॥ अथवा अकामहो तो शिवजीके उत्तम स्थानको जावैगा हे ब्रह्मन् ! चित्रानक्षत्र में चन्द्रमाको प्राप्त होतेहुये चतुर्दशी तिथिको इस तीर्थस्थान में श्राद्ध करनेसे पितरलोग उत्तम तृप्तिको प्राप्त होतेहैं हे विप्रोत्तम ! आजही उत्तम चैत्रमहीनेके शुक्लपक्ष का अन्त है ॥ ३८। ३९ ॥ व तीसरे पहर चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा प्राप्तहोवैगा उसी समय उस तीर्थमें उपास

संयुत भलीभांति तुम्हारे स्नान करने से स्वरूप से संयुक्त दोनों हाथ होवेंगे जैसे कि वे पहले थे ऐसा कहकर तदनन्तर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४० । ४१ ॥
व शङ्खमुनिने भी कुतुपसमय याने दिनके आठवें मुहूर्त्तमें उस तीर्थमें स्नान किया तदनन्तर उसी समय उसके हाथ वैसेही होगये जैसे कि पहले थे ॥ ४२ ॥ मछलीके
चिह्नसे अंकित व लालकमल के समान मनोहर होगये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! देवतों के देवता चन्द्रचिह्नित शिवजी के प्रभावसे धरातल में
इस भांति शुभदायक तीर्थहुआ है ॥ ४४ ॥ हे नृपेन्द्र ! इसलिये चैत्रमास में त्रयोदशीको चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा के स्थित होतेहुये तुमभी उस तीर्थ में भलीभांति स्नान

तौहस्तौसुरूपाढ्यौयथापूर्वंतथाहितौ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ ४१ ॥ शङ्खोपिकुतुपेकालेतत्रस्नानमथा
करोत् ॥ ततश्चतत्क्षणाज्जातौ हस्तौतस्ययथापुरा ॥ ४२ ॥ रक्तोत्पलनिभौकान्तौ मत्स्यचिह्नेनचिह्नितौ ॥ ४३ ॥ ब्राह्म
णाऊचुः ॥ एवंतद्धरणीपृष्ठेतीर्थंजातंनृपोत्तम ॥ प्रभावाद्देवदेवस्य चन्द्राङ्कस्यशुभावहम् ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र
तत्रस्नानंसमाचर ॥ चैत्रेशुक्लत्रयोदश्यां चित्रासंस्थेनिशाकरे ॥ ४५ ॥ भविष्यसिनसन्देहः सर्वरोगविवर्जितः ॥ वय
न्तेदर्शयिष्यामःप्राप्तेकालेयथोदिते ॥ ४६ ॥ सूतउवाच ॥ ततःकतिपयाहस्यचैत्रशुक्लादिरागतः ॥ चित्रासंस्थेनिशाना
थेसम्प्राप्ताचचतुर्दशी ॥ ४७ ॥ ततस्तेब्राह्मणाभूपं समादायाथतत्क्षणात् ॥ शङ्खतीर्थंसमुद्दिश्य गतास्तस्यहितैषिणः ॥
४८ ॥ ततःसमनसिध्यात्वाकुष्ठव्याधिपरिक्षयम् ॥ स्नानंचक्रेयथान्यायंभक्त्याचश्रद्धयायुतः ॥ ४९ ॥ ततःकुष्ठवि
निर्मुक्तोद्वादशार्कसमप्रभः ॥ निष्क्रान्तःसलिलात्तस्माद्धर्षेणमहतान्वितः ॥ ५० ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान्ब्राह्मणान्वदपा

करो ॥ ४५ ॥ तो निस्सन्देह तुम अवश्य सब रोगोंसे रहित होजावोगे जैसा समय कहागया वैसाही समय प्राप्तहोने पर हम सब तुम्हें उस तीर्थको दिखावेंगे ॥ ४६ ॥
सूतजी बोले कि तिसके उपरान्त कितेक दिनों में चैत्र महीना व शुक्लपक्ष इत्यादि प्राप्तहुआ और चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा के स्थितहोते हुये चतुर्दशी भी प्राप्तहुई ॥
४७ ॥ तब वे नृपके हितैषी ब्राह्मण उसी समय राजाको भलीभांति लेकर और शङ्खतीर्थका उद्देश करके वहांगये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उस राजाने श्रद्धाभक्ति से सयुत
कुष्ठरोग का संक्षय मनमें चिन्तनकर यथायोग्य स्नान किया ॥ ४९ ॥ स्नानकरनेके अनन्तर वह कुष्ठरोग से छूटाहुआ व बारह सूर्य्यों के समान तेजस्वी बड़ेहर्ष से

समन्वित उस तीर्थजलसे निकला ॥ ५० ॥ तदनन्तर वेदके पार जानेवाले उन ब्राह्मणोंको वह राजा प्रणाम करके और हाथ जोड़कर हर्षसे यह वचन बोला ॥ ५१ ॥
हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगोंकी प्रसन्नतासे मैं कुष्ठरोगसे छूटगया व सदैव सब मनुष्योंने मेरी निन्दा कियाहै ॥ ५२ ॥ इस लिये हे द्विजोत्तमो ! मैं राज्यको न करूंगा इस
समय इसी तीर्थमें मैं सदैव बड़े तपको करूंगा॥५३॥यह राज्य और देश तथा हाथी घोड़ा आदि व अन्य जो कुछ हमारा वर्त्तमानहै उसको हमारेही अनुग्रहके लिये बड़ीभारी
दया कर श्रेष्ठ ब्राह्मण ग्रहण करैं क्योंकि मैं दीन और भक्तिसंयुत तथा विशेषतासे वैराग्यमें प्राप्तहूं ॥ ५४।५५॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे नृपोत्तम ! हम सबराज्य रक्षा

रगान् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यमेतदुवाचह ॥ ५१ ॥ प्रसादेनहियुष्माकंमुक्तोहंब्राह्मणोत्तमाः ॥ कुष्ठव्याधेःसदाका
लंगर्हितस्सर्वदेहिनाम् ॥ ५२ ॥ तस्मान्नाहंकरिष्यामिराज्यंब्राह्मणसत्तमाः ॥ तीर्थेत्रैवाधुनानित्यंचरिष्यामिमहत्त
पः ॥ ५३ ॥ एतद्राज्यंचदेशश्चहस्त्यश्वादितथापरम् ॥ यत्किञ्चिद्विद्यतेमह्यं तद्गृह्णन्तुद्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥ ममैवा
नुग्रहार्थायदयांकृत्वाबृहत्तराम् ॥ दीनस्यभक्तियुक्तस्यविरक्तस्यविशेषतः ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नवयंरक्षितुंशक्ता
राज्यंपार्थिवसत्तम ॥ तत्किंतेनगृहीतेनयेनस्याद्राज्यविप्लवः ॥ ५६ ॥ जामदग्न्येनरामेण पुरादत्तावसुन्धरा ॥ त्रिःस
प्तक्षत्रियैर्हीनांकृत्वासाबलवत्तरैः ॥ ५७ ॥ तिरस्कृत्यद्विजान्सर्वाल्लीलयापिमुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥ राजोवाच ॥ अहंवःप्रक
रिष्यामिरक्षांब्राह्मणसत्तमाः ॥ तपःस्थितोपिकार्य्येत्रनभीःकार्य्याकथञ्चन ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ अवश्यंयदितेश्र
द्धाविद्यतेदानसम्भवा ॥ क्षेत्रेत्रापिमहापुण्ये कृत्वादेहिपुरोत्तमम् ॥ ६० ॥ सर्वेषांब्राह्मणेन्द्राणां प्राकारपरिवान्वितम् ॥

करने के लिये समर्थ नहीं हैं उसके ग्रहण करने से क्या है कि जिससे राज्यमें उपद्रवहोवै ॥ ५६ ॥ पुरातन समय में जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने बड़े बलवान्
क्षत्रियों से इक्कीसबार इस पृथ्वीको छुड़ाकर और लीलासे बार २ सम्पूर्ण ब्राह्मणों को तिरस्कार करदिया था ॥ ५७ । ५८ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! तपमें
स्थितभी मैं तुम्हारी रक्षा बहुत अच्छीतरह से करूंगा इस काममें कदापि भय करना न चाहिये ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण बोले कि यदि दानसे उपजी हुई श्रद्धा तुम्हारे
अवश्यही वर्तमान है तो इसी बड़े पवित्रक्षेत्र में सबओर से परिखा व छहरदिवालीसे समन्वित कर उस पुरोत्तम को सब श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दीजिये कि जिससे अ-

नेक प्रकार के तीर्थ स्नान करके सुखसे हम सब स्थित होवैं ॥ ६० । ६१ ॥ क्योंकि सब गृहस्थों के धर्म करनेवाले व सदैव वेदमें परायण हैं ॥ ६२ ॥ यह सुनकर नृपतिने तथा अर्थात् ऐसाही करैंगे यह कहकर बहुत प्रसन्नहो उस स्थान में बहुतबड़ा नगर बनवाया ॥ ६३ ॥ जोकि सबओर से बहुत ऊंची छहरदिवाली व परिखादिकोंसे और कोस परिमित लम्बान तथा चौड़ान से सुन्दर है ॥ ६४ ॥ वह पुर सब ओरसे चूनादिक से पोतेहुये बड़े ऊंचे राजमन्दिरों से शोभित है जो मन्दिर कि सब ओरसे ध्वजाओंसे और त्रिकोण तथा चतुष्कोण यज्ञकी वेदियों से भलीभांति शुद्धहैं ॥ ६५ ॥ जो पुर मत्त हाथियों से समन्वित मन्दिरों से और बड़े ऐश्वर्यों से शो-

सुखेनयेनतिष्ठामःस्नात्वातीर्थैःपृथग्विधैः ॥ ६१ ॥ गृहस्थधर्म्मिणःसर्वेस्वाध्यायनिरतास्सदा ॥ ६२ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासमहीपालस्तथेत्युक्त्वाप्रहर्षितः ॥ नगरंकल्पयामासस्थानेतत्रमहत्तमम् ॥ ६३ ॥ प्राकारेणसुतुङ्गेनपरिखाद्येनसर्वतः ॥ आयामव्यासतश्चैवक्रोशमात्रंमनोहरम् ॥ ६४ ॥ त्रिकचत्वरसंशुद्धंशोभितंसर्वतोध्वजैः ॥ प्रासादैःप्रोन्नतैस्तत्रसमन्तात्सुधयावृतैः ॥ ६५ ॥ मत्तवारणकोपेतैर्बहुभूतिभिरेवच ॥ सम्पूर्णंसत्पताकाद्यैःसाधुलोकप्रशंसितैः ॥ ६६ ॥ ततोगृहाणिसर्वाणिपूरयित्वासभूमिपः ॥ सुवर्णमणिमुक्तादिपदार्थैरपरैरपि ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणेभ्यःकुलीनेभ्यो वेदविद्भ्यो विशेषतः ॥ श्रोत्रियेभ्यश्चदान्तेभ्यस्सतुश्रद्धासमन्वितः ॥ ६८ ॥ यथाज्येष्ठंयथाश्रेष्ठं प्रक्षाल्यचरणौततः ॥ शास्त्रोक्तेनविधानेनप्रददौद्विजसत्तमाः॥६९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे शङ्खतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ११॥

भित तथा साधुजनों से प्रशंसित अच्छे पताकादिकों से सम्पूर्ण है ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उस नृपति ने सब मन्दिरों को सुवर्ण, मणि, मोती इत्यादि तथा अन्यद्रव्यों से पूर्ण कराकर ॥ ६७ ॥ कुलीन ब्राह्मणों के लिये व विशेषता से वेद जाननेवाले द्विजोंके लिये व इन्द्रियजित् वेदपाठियों के लिये श्रद्धासंयुक्त उस भूपाल ने ॥ ६८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जैसा बडा व जैसा उत्तम जो ब्राह्मण है उसके चरणों को प्रक्षालन करके तदनन्तर शास्त्रमें कहीहुई विधिसे देदिया ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्खतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

दो०॥ बारहवें अध्याय में चमत्कार नृपराज। सिखयो पुत्रादिकनकहँ द्विजपुर रक्षणकाज॥ इसभांति उस भूपाल ने इन्द्रपुर के समान अपने नगर को बनवा कर अपनी शक्तिसे ब्राह्मणों को देदिया॥ १॥ जो नगर कि जिसप्रकार नक्षत्रसमूहों से आकाश शोभित होताहै उसीतरह मोती व मूँगा व वैदूर्य्यमणि तथा रत्न व सुवर्ण से तथा चित्रविचित्र उत्तम मन्दिरों से शोभितहै॥ २॥ जो नगर कैलासशिखर के समान व पताका से शोभित उत्तम बिल्लौर के मन्दिरों से सबओरसे घिराहुआहै॥ ३॥ अच्छे व निर्मल तथा बहुत ऊंचे और सुन्दर सुवर्णके चित्रविचित्र हजारों बाहरी फाटकों से बहुत सुन्दर शोभित है और सबओर से मणियोंकी सीढ़ियों से शोभित बावलियों और बगीचा व कूपके फुहारों तथा सब सामग्रियों से युक्तहै॥ ४। ५॥ ऐसा नगर वह भूपतिश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निवेदन कर कृतार्थ होगया तदनन्तर निरन्तर शङ्खतीर्थ में टिकाहुआ पुत्रों और नातियों तथा सेवकों को भलीभांति बुलाकर हर्षसे यह वचन कहा कि मैंने इस नगर को बनाकर ब्राह्मणों के लिये निवेदन करदिया॥ ६। ७॥ व हमारे वचन से आपलोगों को बड़ेयत्न से उस नगर की रक्षा करना चाहिये कि जिस प्रकार सब ब्राह्मण सन्तुष्ट मानस तथा सुखी होवैं॥ ८॥ उस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तुम सबोंको पालन करना चाहिये जो कोई भूपति भक्तिसमन्वित इन द्विजोंका पालन करैगा॥ ९॥ व दूसरा भी

सूतउवाच॥ एवंसवसुधापालो ब्राह्मणेभ्यस्स्वशक्तितः॥ ददौतुनगरंकृत्वापुरन्दरपुरोपमम्॥ १॥ मुक्ताप्रवालवैदूर्य्य रत्नहेमविचित्रितैः॥ भ्राजमानंगृहश्रेष्ठैर्व्योमनक्षत्रगणैरिव॥ २॥ प्रासादैःस्फाटिकैश्चैव कैलासशिखरोपमैः॥ पताकाशोभितैर्दिव्यैस्समन्तात्परिवारितम्॥ ३॥ काञ्चनैःसुविचित्रैश्चप्रोन्नतैरमलैःशुभैः॥ तोरणानांसहस्रैश्चशोभितंसुमनोहरम्॥ ४॥ मणिसोपानशोभाभिर्दीर्घिकाभिःसमन्ततः॥ आरामकूपयन्त्राद्यैःसर्वोपकरणैर्युतम्॥ ५॥ निवेद्यब्राह्मणेन्द्राणांकृतकृत्योबभूवसः॥ शङ्खतीर्थेस्थितोनित्यं समाहूयततःसुतान्॥ ६॥ पुत्रान्पौत्रांस्तथाभृत्यान्वाक्यमेतदुवाचह॥ एतत्पुरंमयाकृत्वाब्राह्मणेभ्योनिवेदितम्॥ ७॥ भवद्भिर्ममवाक्येनरक्षणीयंप्रयत्नतः॥ यथास्युर्ब्राह्मणाःसर्वेसुखिनोहृष्टमानसाः॥ ८॥ युष्माभिःपालनंकार्य्यं तथासर्वैःसमाहितैः॥ यश्चैतान्भक्तिसंयुक्तःपालयिष्यतिभूमिपः॥ ९॥ अन्योपिपरमंतेजस्ससम्प्राप्स्यतिभूतले॥ अजेयःसर्वशत्रूणांप्रतापीस्फीतिसंयुतः॥ १०॥ भविष्यतिनसन्देहो

नृपति पृथ्वीतल मे बड़े तेजको भलीभांति प्राप्तहोवैगा और प्रतापवान् व वृद्धिसे संयुक्त तथा सब शत्रुओं के अजेय अर्थात् न जीतने के योग्य होगा ॥ १० ॥ वह नृपति ब्राह्मणों का पालन करने से निस्सन्देह पुत्र, पौत्र, सेवकों से संयुत व रोग से रहित और बहुत आयुर्बली होगा ॥ ११ ॥ ब्राह्मणों की प्रसन्नता से व हमारे वचनसे उपर्युक्त पदार्थों से युक्त होवैगा और जो कोई वैरभाव से समन्वित इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे शत्रुता करैगा वह अवश्य नरक को जावैगा और अनेकों तिरस्कारोंको देखकर तथा दुःखोंको पाकर ॥ १२ । १३ ॥ और भाइयोंके विरहको पाकर व रोगोंसे ग्रसित और निन्दित व कुलके नाशको प्राप्त होकर यमस्थानको जावैगा ॥ १४ ॥

ब्राह्मणानांसपालनात ॥ पुत्रपौत्रसुभृत्याढ्यो दीर्घायूरोगवर्जितः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणानांप्रसादेनममवाक्याद्भविष्यति ॥ यःपुनर्द्वेषसंयुक्तस्सन्तापंचनयिष्यति ॥ १२ ॥ एतान्ब्राह्मणशार्दूलान्नरकंसप्रयास्यति ॥ तथादुःखानिसम्प्राप्यद्दष्ट्वानेकान्पराभवान् ॥ १३ ॥ वियोगानिचबन्धूनां व्याधिग्रस्तोविगर्हितः ॥ वंशोच्छेदंसमासाद्य गमिष्यतियमालयम् ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयमिदम्पुरम् ॥ ममवाक्याद्विशेषेण हितमिच्छद्भिरात्मनः ॥ १५ ॥ एवंसभूपतिस्सर्वांस्तानुक्त्वातपसिस्थितः ॥ तेपिचक्रुस्तथासर्वेयथातेनचशिक्षिताः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे चमत्कारपुरोत्पत्तिर्नामद्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ एवंनिवेद्यपुत्राणांसराज्यंपृथिवीपतिः ॥ पुरंचतद्द्विजातिभ्यःप्रदायस्वयमेवहि ॥ १ ॥ ततआराधया

इस लिये विशेष कर हमारे वचन से व अपने लिये हित चाहनेवाले तुम सबोंको अवश्य सब उपायों से इस नगर की रक्षा करना चाहिये ॥ १५ ॥ वह नृपति उन सबोंसे इस प्रकार कहकर तपस्या में स्थित होगया उन सबमें भी जिसभांति उन्होंने सिखाया है वैसाही किया ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमत्कारपुरोत्पत्तिर्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ चमत्कार नृप भांति जेहि श्रीअचलेश्वरनाथ । थाप्यो है निज नगर में सो तेरहें में गाथ ॥ सूतजी बोले कि उस भूपतिने इसभांति पुत्रोंको राज्य देकर और

ब्राह्मणों के लिये आपही नगर को देकर ॥ १ ॥ तदनन्तर बड़ीश्रद्धा से युक्त शंखतीर्थ में आश्रम बनाकर देवतों के देवता महादेवजी का आराधन किया ॥ २ ॥ व वह राजा सौ वर्षतक फलाहारी हुआ व तत्पश्चात् सावधान होकर सौ वर्षतक गिरेहुये पत्तोंका भोजन किया ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त सौ वर्षतक पानीका आहार किया तदनन्तर सौ वर्षतक पवनभोजी हुआ ॥ ४ ॥ तिसके उपरान्त पवन भोजन करतेहुये उसके चार सौ वर्ष बीतनेपर महादेवजी प्रसन्न हुये व दर्शन में भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ व यह बोले कि मैं अच्छीतरह से प्रसन्नहूं मुझ से मनोभिलषित को मांगो देवतों से भी दुर्लभ मनोरथ को मैं भलीभांति

मासदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ कृत्वातदाश्रमंतत्र श्रद्धयापरयायुतः ॥ २ ॥ सबभूवफलाहारो यावद्वर्षशतंनृपः ॥ शीर्णपर्णाशनःपश्चात्तावत्कालंसमाहितः ॥ ३ ॥ ततःपरंजलाहारोजातोवर्षशतंहिसः ॥वायुभक्षस्ततोभूत्वायावद्वर्षशतंपरम्॥ ४ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यवर्षशतेगते ॥ चतुर्थेवायुभक्षस्यदर्शनेसमुपस्थितः ॥ ५ ॥ उवाचपरितुष्टोस्मि मत्तःप्रार्थयवाञ्छितम् ॥ अहंतेसम्प्रदास्यामिदुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ ६ ॥राजोवाच ॥ एतत्पुण्यतमंक्षेत्रंनानातीर्थसमाश्रयम् ॥ हाटकेश्वरमाहात्म्यात्सर्वपापक्षयावहम् ॥ ७ ॥ तस्मात्तवनिवासेनभूयान्मेध्यतमंपुनः ॥ एतंमेवाञ्छितंदेव देहितुष्टिंगतोयदि ॥ ८ ॥ मयैतदग्रंचनिर्माय ब्राह्मणेभ्योनिवेदितम् ॥ पुरंसर्वामराधीश श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ९ ॥ तस्मिंस्त्वयासदावासःकर्तव्योममवाक्यतः ॥ निश्चलत्वेनयेनस्याद्गुणैस्सर्वैःसमन्वितः ॥ १० ॥ भगवानुवाच ॥ अचलोहंभविष्यामिस्थानेत्रतवभूमिप ॥ अचलेश्वरइत्येव नाम्नाख्यातोजगत्त्रये ॥ ११ ॥ योमामत्रस्थितंमर्त्यो वीक्षयिष्यतिभक्तितः ॥

दूंगा ॥ ६ ॥ राजा बोले कि अनेक तीर्थोंसे समाश्रित यह अतिपवित्र क्षेत्र हाटकेश्वरजी के माहात्म्य से सम्पूर्ण पातकों का विनाशक है ॥ ७ ॥ हे देव ! इससे तुम्हारे निवास से फिर अतिपुनीत होवै यदि तुम प्रसन्नता में प्राप्तहो तो यह अभीष्ट दीजिये ॥ ८ ॥ हे सब देवतों के अधिपति ! मैंने श्रद्धा से पवित्र चित्तसे इस के ऊपर उत्तम नगरको निर्माण करके ब्राह्मणों के लिये निवेदन करदिया है ॥ ९ ॥ हमारे वचन से इसी नगर में तुम अचलता से निरन्तर निवास करो कि जिससे सब गुणोंसे भलीभांति संयुतहोवै॥१०॥ महादेवजी बोले कि हे वसुधाधिप ! इस तुम्हारे स्थानमें मैं अचल हूंगा इसीसे तीनोंलोक में अचलेश्वर नामसे प्रसिद्धहूंगा॥११॥

इस स्थानमें स्थित हुये मुझको जो मनुष्य भक्ति से देखैगा उसके सब देवतों के ऐश्वर्य्य निश्चल होवैंगे ॥ १२ ॥ व माघमास में शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में बड़ी श्रद्धासे समन्वित जो पुरुष हमारे लिंगको घृतकम्बल करैगा याने (घृतसे स्नान करावैगा)॥ १३ ॥ उससे शिशुता में व वृद्धतामें या युवावस्था में जो पाप हुआहो वह पातक उसका नाश होजावैगा जैसे सूर्य्योदयमें अन्धकार नाश होजाता है ॥१४॥ हे भूपति ! इससे तुम इसी स्थानमें मेरा लिंग स्थापित करो कि जिससे उस लिंग में सदैव अवश्य मैं निश्चल निवास करूंगा ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि देवनाथ शिवजी ऐसा कहकर तिसके उपरान्त अदृश्य होगये और नृपतिभी शीघ्रही सुन्दर

भविष्यन्त्यचलास्तस्यसर्वेदेवविभूतयः ॥ १२ ॥ माघशुक्लचतुर्दश्यांममलिङ्गस्ययोनरः ॥ श्रद्धयापरयायुक्तःकर्तायो घृतकम्बलम् ॥ १३ ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ तद्यास्यतिक्षयंतस्य तमःसूर्य्योदयेयथा ॥ १४ ॥ तस्मात्स्थापयमेलिङ्गंत्वमत्रैवमहीपते ॥ अहंयेनकरोम्येवतत्रवासंसदाचलः ॥ १५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ सोपिराजाचकाराशुप्रासादंसुमनोहरम् ॥ १६ ॥ तत्रसंस्थापयामास लिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ श्रद्धयापरयायुक्तःसर्वलक्षणलक्षितः ॥ १७ ॥ यस्मिन्दृष्टेप्यदृष्टेवास्पृष्टेध्यानेचपूजिते ॥ नरोविमुच्यतेपापादाजन्मामरणान्तकात् ॥ १८ ॥ ततःसंचिन्तयामासभूपालःकिंमहेश्वरः ॥ सान्निध्यंनिश्चलोभूत्वा लिङ्गेत्रैवकरिष्यति ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातावाणीगगनगोचरा ॥ हर्षयन्तीमहीपालंचमत्कारंसुनिस्वना ॥ २० ॥ माचत्वंभूपशार्दूलकार्य्यचिन्तांकरिष्यसि ॥ अस्मिन्वासंसदात्रैवलिङ्गेकर्त्तास्मिनित्यशः ॥ २१ ॥ तथान्यमपितेवच्मि प्रत्ययार्थंवचोनृप ॥ तच्छ्रु

मन्दिरको बनवाया ॥ १६ ॥ उस मन्दिरमें त्रिशूलधारी महादेवजी के लिंगको सम्पूर्ण लक्षणों से अङ्कित व बड़ी श्रद्धासे समन्वित उस नृपने भलीभांति स्थापन किया ॥ १७ ॥ जिस लिंगके देखने से या न देखने से अथवा स्पर्श करने से या ध्यान करने से अथवा पूजने से मनुज जन्म से लगाकर मृत्युपर्यन्त के पातक से अवश्य छूट जाताहै ॥ १८ ॥ तदनन्तर उस भूपति ने यह चिन्तन किया कि महादेवजी अचल होकर इसी लिंगमें क्या समीपता करैंगे ॥ १९ ॥ उसी समय सुन्दर शब्दवाली व चमत्कार नृपति को हर्षित करतीहुई आकाशवाणी हुई ॥ २० ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुम कार्य्यकी चिन्ता मत करो इसी लिंगमें सदैव मैं निवास करूंगा ॥ २१ ॥

हे नृप ! तैसेही तुम्हारे विश्वासकेलिये मैं और भी वचन कहताहूं उसको सुनकर आनन्द को प्राप्तहो और यत्नसे देखो ॥ २२ ॥ मेरे इस लिङ्गकी छाया निरन्तर अ-चलाहोगी केवल पृष्ठस्थान में स्थित रहैगी और दिशाओंमें न स्थितहोगी ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस नृपति ने सब दिशाओं में सूर्य्यको स्थित होतेहुये लिंगसे उपजी हुई उस छायाको सदैव उसी प्रकारकी अचला देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर उस नृपोत्तमने बड़े हर्षको प्राप्त होकर और उस लिंगको भूमिमें प्रणामकर के अपना को कृतार्थसा माना ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस तरहकी वह कान्ति सदैव आजभी देख पड़ती है जो कि विस्मय करनेवाली उस लिंगसे उत्पन्न हुई है ॥ २६ ॥

त्वानिर्वृतिंगच्छवीक्षयस्वचयत्नतः ॥ २२ ॥ सदामेनिश्चलाछायालिङ्गस्यास्यभविष्यति ॥ एकेनपृष्ठदेशस्था नदिक्सं
स्थाभविष्यति ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ ततःसर्वाच्चयामासतांछायांलिङ्गसम्भवाम् ॥ तद्रूपांनिश्चलांनित्यां तद्दिक्संस्थे
दिवाकरे ॥ २४ ॥ ततोहर्षपरंगत्वा प्रणिपत्यचतंभुवि ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंसमेनेपार्थिवोत्तमः ॥ २५ ॥ अद्यापिदृ
श्यतेछायाताद्दृग्रूपासदाहिसा ॥ तस्यलिङ्गस्यविप्रेन्द्रा जाताविस्मयकारिणी ॥ २६ ॥ षण्मासाभ्यन्तरेमृत्युर्यस्यस्या
द्भाविनीद्विजाः ॥ नसपश्यतितांछायामेषोन्यःप्रत्ययःपरः ॥२७॥ सूतउवाच ॥ एवंसभगवांस्तत्रसर्वदैवव्यवस्थितः ॥
अचलेश्वररूपेणचमत्कारपुरान्तिके ॥ २८॥ निश्चलत्वेनदेवेशश्चाष्टषष्टिषुमध्यतः ॥ क्षेत्राणांचमतेतत्रतस्यवाक्यान्म
हेश्वरः ॥ २९ ॥ तेनतत्पावनंक्षेत्रंसर्वेषामिहकीर्तितम् ॥ कामदंमुक्तिदंचैवजायतेसर्वदेहिनाम् ॥ ३० ॥ तथान्यदपिय
द्वृत्तवृत्तान्तंतत्प्रभावजम् ॥ तदहंसम्प्रवक्ष्यामिश्रूयतांद्विजसत्तमाः ॥ ३१ ॥ अचलेश्वरमाहात्म्यात्तस्मिन्क्षेत्रेनरा

हे ब्राह्मणो ! जिसकी मृत्यु छः महीने के मध्यमें होनेवाली है वह उस छाया को नहीं देखता है यह और दूसरा विश्वास है ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि इसभांति वि-शेषता से सब देवतों में स्थित भगवान् शिवजी चमत्कारपुर के समीप उस स्थान में अचलेश्वर रूपसे टिके ॥ २८ ॥ व अरसठि क्षेत्रोंके मध्यमें सुरेश्वर महादेवजी उस नृपति के वचन से उस स्थान में अचलता से स्थितहुये ॥ २९ ॥ इससे इस संसार में वह तीर्थ सबको पवित्रकारी कहागयाहै और सब देहधारियों की कामना तथा मुक्तिका दायक होताहै ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तैसेही उस लिंग के प्रभाव से उत्पन्न और भी जो चरित्र हुआहै वह मैं भलीभांति कहूंगा तुम सब सुनो ॥ ३१ ॥

उस क्षेत्र में अचलेश्वरजी के माहात्म्य से सब मनुष्य शीघ्रही सम्पूर्ण वाञ्छित फल को पातेहैं ॥ ३२ ॥ कोई स्वर्ग को और कोई मोक्ष को तथा कितेक द्रव्य, धान्य व पुत्रोंको पातेहैं जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तन करके अचलेश्वर को पूजता है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर वह मनुष्य थोड़ेही परिश्रम से और शीघ्रही उस फलको प्राप्तहोता इसके अनन्तर इन्द्रजी भूतलमें सब पापीजनों को स्वर्ग जातेहुये तथा सामनेही मोक्षको पाते देखकर तदनन्तर क्रोध, काम, लोभ, वैर और भय, रति व मोह और कठिन व्यसन अर्थात् काम क्रोधसे उपजेहुये दोष ईर्षा व स्नेह इन सब देहधारियों को भलीभांति बुलाकर तिसके उपरान्त आदर-

द्भुतम् ॥ वाञ्छितंमनसःसर्वे लभन्तेसकलंफलम् ॥ ३२ ॥ स्वर्गमेकेपरेमोक्षंधनधान्यसुतांस्तथा ॥ योयंकाममभिध्यायपूजयेदचलेश्वरम् ॥ ३३ ॥ ततस्सलभतेमर्त्यःस्वल्पायासेनचद्रुतम् ॥ अथदृष्ट्वासहस्राक्षःसर्वेपापनराभुवि॥ ३४ ॥ स्वर्गंयातास्तथामोक्षंप्राप्नुवन्तिचसम्मुखम् ॥ ततःक्रोधंचकामंचलोभंद्वेषंभयंरतिम् ॥ ३५ ॥ मोहंचव्यसनंदुर्गमत्सरंरागमेवच ॥ सर्वान्मूर्त्तान्समाहूय ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३६ ॥ स्वयमेवसहस्राक्षो रहस्येद्विजसत्तमाः ॥ नरोवायदिवानारी चमत्कारपुरम्प्रति ॥ ३७ ॥ योगच्छतिधरापृष्ठे युष्माभिर्वार्य्यएवसः ॥ तत्रैवचसमानोपि योगच्छेदचलेश्वरम् ॥ ३८ ॥ मद्वाक्यात्सविशेषेण सर्वैर्वार्य्यःप्रयत्नतः ॥ तेतथेतिप्रतिज्ञायगत्वाशक्रस्यशासनात् ॥ ३९ ॥ चक्रुस्ततःसमुच्छेदं तन्माहात्म्यंगतंभुवि ॥ ४० ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातमाख्यानंपापनाशनम् ॥ अचलेश्वरदेवस्यतस्मिन्क्षेत्रेनिवासिनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे नागरखण्डेऽचलेश्वरमाहात्म्यन्नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

पूर्वक बोले ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! एकान्त में इन्द्रजी आपही यह कहा कि मनुष्य अथवा स्त्री चमत्कार नृपति के नगर में ॥ ३७ ॥ भूमिपृष्ठ में जो जावै उसे तुम सबोंको अवश्य वारण करना चाहिये उस क्षेत्रमें अचलेश्वर को जो देवताभी जावै ॥ ३८ ॥ हमारे वचन से उसे अवश्य तुम सबोंको बड़े उपाय से रोंकना चाहिये उन्होंने तथा अर्थात् ऐसाही करैंगे यह प्रतिज्ञा कर और इन्द्रकी आज्ञा से वहां जाकर ॥ ३९ ॥ तदनन्तर भूतलमें प्राप्तहुये व उस माहात्म्य को भलीभांति नाश करदिया ॥ ४० ॥ उस क्षेत्रके निवासी अचलेश्वर देवता के इस सम्पूर्ण पापनाशक इतिहास को मैंने तुम सबोंसे कहदिया ॥ ४१ ॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो० ॥ चौदहवें अध्याय में वर्णत रुचिर प्रकार । यथा वैश्य अरु पशुगये व्योमविमान सवार ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस क्षेत्रमें और जो आश्चर्य उत्पन्न हुआ है वह मैं कहूँगा जोकि गुप्त स्थित है ॥ १ ॥ चमत्कार नृपके नगर में वैश्यजाति में उपजाहुआ कोई मनुष्य हुआहै जोकि निर्धनता से संयुक्त व गूंगा था ॥ २ ॥ जिस किसीसे सन्तुष्ट जो पुरुष परिवारपालन के लिये अपने सब लोगों के पशुओं की रक्षा करता था ॥ ३ ॥ किसीसमय वनभूमियों में उन पशुओं की रक्षा करतेहुये उसका एक पशु तृणके लालच से पशुसमूह से निकलगया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में अपनी इच्छासे जाते

सूतउवाच ॥ यदन्यत्तत्रसञ्जातमाश्चर्यंद्विजसत्तमाः ॥ तदहंकीर्तयिष्यामिरहस्यंयदिसंस्थितम् ॥ १ ॥ चमत्कारपुरेक श्चिद्वैश्यजातिसमुद्भवः ॥ बभूवपुरुषोमूको दरिद्रेणसमन्वितः ॥ २ ॥ योस्वानांसर्वलोकानां करोतिपशुरक्षणम् ॥ कुटुम्बभरणार्थायसन्तुष्टोयेनकेनचित् ॥ ३ ॥ कदाचिद्रक्षतस्तस्यपशूंस्तान्वनभूमिषु ॥ पशुरेकोविनिष्क्रान्तःसयूथा तृणलोभतः ॥ ४ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां चैत्रमासेद्विजोत्तमाः ॥ नतदालक्षितस्तेनगच्छमानोयदृच्छया ॥ ५ ॥ अथ यावद्गृहंप्राप्तःसमूकःपशुपालकः ॥ निष्क्रान्तोयष्टिमादायनिराहारोपिमन्दिरात् ॥ ६ ॥ ततोरण्यंसमासाद्यवीक्षाञ्चक्रे समन्ततः ॥ सूक्ष्मंदृष्ट्वासुदुर्गाणि गहनानिवनानिच ॥ ७ ॥ अथतेनक्वचिद्दृष्टंपदंतस्यपशोःस्फुटम् ॥ अटव्यांभ्रममाणेनपरिज्ञातंचकृत्स्नशः ॥ ८ ॥ ततश्चसपदान्वेषीसजगामवनाद्वनम् ॥ चमत्कारपुरस्यास्यसमन्ताद्द्विजसत्तमाः ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणावसानेचपशुर्लब्धश्चतेनसः ॥ निशांतथागृहंनीत्वास्वामिनेविनिवेदितः ॥ १० ॥ चैत्रेपुण्यतमेमा

हुये उस पशुको वैश्यने न देखा ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त वह गूंगा पशुरक्षक जबतक गेहमें प्राप्तहुआ तबतक निराहार भी दण्डको लेकर घरसे निकला ॥ ६ ॥ तिसके उपरान्त वनमें भलीभांति होकर सबओर से बड़े कठिन व घनेजङ्गलों को सूक्ष्मदृष्टिसे आलोकन किया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जङ्गल में घूमते हुये उसने किसी स्थानमें उस पशुके चरणको भूमिमें प्रकट देखा औरसम्पूर्णतासे भलीभांति जाना ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर वह वैश्य पशुके चरणों को ढूंढ़ता हुआ उस चमत्कार नृपके नगर के चारोंओर जंगल से दूसरे जंगल में गया ॥ ९ ॥ और प्रदक्षिणा के अन्त में वैश्य ने उस पशुको पाया वैसेही रात्रिको घरमें व्यतीत करके

अपने स्वामीसे विशेषतापूर्वक निवेदन किया ॥ १० ॥ कि अतिपवित्र चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को अत्यन्त पवित्र क्षेत्रमें सबओर से देवता व तीर्थ आते हैं ॥ ११ ॥ इस भांति उस क्षेत्रमें अतिपवित्र दिवस में बिन जानेहुये भावसे वह पशुपालक व पशु दोनोंने प्रदक्षिणा किया है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! बिन भोजन कियेहुये उस वैश्यको तथा भोजन कियेहुये उस पशुको कुछकाल व्यतीत होनेसे एकको विना स्नान के भोजन न करने से व दूसरे को दैवयोग से न प्राप्त होने से अपने २ कर्मसे पृथक् २ आयुर्बल के नाश होतेहुये वे दोनों मृत्युको प्राप्तहुये ॥ १३ । १४ ॥ तिसके उपरान्त वह पशुरक्षक वैश्य जोकि प्रदक्षिणा के प्रभाव से प-

सिकृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ क्षेत्रेपुण्यतमेदेवास्तीर्थान्यायान्तिसर्वतः ॥ ११ ॥ एवमज्ञानभावेन कृताताभ्यांप्रदक्षिणा ॥
पशुपालपशुभ्यांचसुपुण्येतत्रवासरे ॥ १२ ॥ निराहारस्यसाहारस्यमूकस्यचतथापशोः ॥ विनास्नानेनभक्ष्याच्चदैवा
द्द्विजवरोत्तमाः ॥ १३ ॥ ततःकालेव्यतिक्रान्ते कियन्मात्रेस्वकर्म्मतः ॥ उभौपञ्चत्वमापन्नौ पृथक्त्वेनायुषःक्षये ॥
१४ ॥ ततश्चपशुपालश्चदशार्णाधिपतेःसुतः ॥ सञ्जातस्तत्प्रभावेणपूर्वंजातिमनुस्मरन् ॥ १५ ॥ सोपिजज्ञेपशुस्तस्यस
चिवोद्विजसत्तमाः ॥ जातिस्मरोयथाराजा सर्वदानृपसम्मतः ॥ १६ ॥ अथागत्यसराजेन्द्रस्तेनैवसहमन्त्रिणा ॥ कृ
ष्णपक्षेचतुर्दश्यांपुरस्तस्यप्रदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ चक्रेसवत्सरस्यान्तेश्रद्धयापरयापुनः ॥ निराहारश्चमौनेन पदातिर्द्विज
सत्तमाः ॥ १८ ॥ एकदातत्रचायाता मुनयःशंसितव्रताः ॥ तीर्थेपापहरेपुण्ये विश्वामित्रसमुद्भवे ॥ १९ ॥ याज्ञवल्क्यो
भरद्वाजःशुनःशेफश्चगालवः ॥ देवलोभागुरिर्धान्यः कश्यपश्च्यवनोभृगुः ॥ २० ॥ तथान्येशंसितात्मानो ब्रह्मचर्य्य

हिली जातिको स्मरण कररहा है दशार्णदेश के स्वामीका पुत्र हुआहै ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वह पशुभी उसका मन्त्री उत्पन्न हुआहै जोकि राजाके सदृश पूर्व जातिका स्मरण करनेवाला व सदैव राजाके सम्मत है ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उस नृपेन्द्रने उसी मन्त्री समेत आकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उस पुरकी प्रदक्षिणा किया ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस राजाने बड़ी श्रद्धासे फिर एक वर्षके अन्तमें निराहार व पैदर व मौनता से प्रदक्षिणा किया ॥ १८ ॥ विश्वामित्र से उपजेहुये पापहारी व पुण्यकारी उस तीर्थमें एकसमय प्रशंसित नियमोंवाले मुनिलोग आये ॥ १९ ॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, शुनःशेफ और गालव, देवल, भागुरि, धान्य, कश्यप,

च्यवन, भृगुजी ॥ २० ॥ वैसेही और भी प्रशंसित बुद्धिवाले व ब्रह्मचर्य्य में तत्पर मुनिलोग तीर्थयात्रा के प्रसंगसे उस क्षेत्रमें भलीभांति प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ उस नृपतिने उनको देखकर हाथ जोड़ेहुये प्रणाम करके जो जैसा ज्येष्ठ व श्रेष्ठ था उसको भक्ति से वैसाही पूजन किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर वह भूपति उन मुनियों के बीच में भलीभांति बैठगया उन सबोंने कुशलक्षेम पूँछा व प्रशंसा किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर उन मुनियोंने राजासे देवतों की कथा व महात्माओं के वृत्तान्त प्रसिद्ध मुनियों के आगे वर्णन किया ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस राजर्षि के आनन्द को पैदा करतेहुये धर्मशास्त्र से भलीभांति उपजेहुये पुरातन राजर्षियोंके चरित्रों को मुनियोंने

परायणाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तस्मिन्क्षेत्रेसमागताः ॥ २१ ॥ तान्दृष्ट्वासमहीपालःप्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ यथा ज्येष्ठंयथाश्रेष्ठंपूजयामासभक्तितः ॥ २२ ॥ ततस्तेषांसमध्येचसन्निविष्टोमहीपतिः ॥ सुस्वागतेनभूपालस्तैस्सर्वैश्चाभिनन्दितः ॥ २३ ॥ ततश्चक्रुःकथादिव्यामुनयस्तेमहीपतेः ॥ पुरतोमुनिमुख्यानां चरितानिमहात्मनाम् ॥ २४ ॥ राजर्षीणांपुराणानां धर्मशास्त्रसमुद्भवाः ॥ आनन्दंतस्यराजर्षेर्जनयन्तोद्विजोत्तमाः ॥२५॥ अथकापिकथान्तेस पार्थिवस्तैर्महर्षिभिः ॥ पृष्टःकौतूहलाविष्टैर्दत्त्वाश्रौतीस्तदाशिषः ॥ २६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ वर्षेवर्षेमहीपालत्वमत्रागत्ययत्नतः ॥ करोषि मन्त्रिणासार्द्धंपुरस्यास्यप्रदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेसुतीर्थानिसन्तिपार्थिवसत्तम ॥ तथान्यानिप्रसिद्धानिदेवतायतनानिच ॥ २८ ॥ आदरस्तेषुतेराजन्नास्तिस्वल्पोपिकर्हिचित् ॥ एतन्नःकौतुकंजातंनचेद्गुह्यंप्रकीर्तय ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ सप्रोवाचवचोभूपःकिञ्चिद्व्रीडासमन्वितः ॥ ३० ॥ यत्पृष्टोस्मिद्वि

कहा ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त कथा समाप्त होनेपर श्रुतियों से उपजे हुये आशीर्वादोंको देकर किसी समय कौतुकमें व्याप्त होकर उन महर्षियों ने उससमय उस भूपति से पूँछा ॥ २६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे वसुधाधिप ! प्रतिवर्ष में मन्त्रियोंके समेत तुम यहां उपाय से आकर इस नगरकी प्रदक्षिणा करतेहो ॥ २७ ॥ हे भूपालशिरोमणि ! इस क्षेत्र में अच्छे तीर्थ तथा अन्य देवतों के प्रसिद्ध मन्दिरहैं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उन तीर्थों व मन्दिरों में किसीसमय थोड़ा भी तुम्हारा आदर नहींहै यह हमलोगोंके आश्चर्य्य हुआहै यदि गुप्त न हो तो तुम विस्तार से कहो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि उनके यह वचन सुनकर वह भूपति विनयसे

दो० ॥ पन्द्रहवें अध्यायमे वर्णित है सो भाव । नृप पुर किये प्रदक्षिणा उपजत जौन प्रभाव ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! यह क्या कारणहै कि जिससे मनुष्य उरा नगर की एकवार प्रदक्षिणा करके इस पवित्र कल्याण को पाते है ॥ १ ॥ हे बडे बुद्धिमान् ! यह सब हम सबोंसे तुम विस्तारपूर्वक कहो इसमें आश्चर्य्यहुआ है और तुम सम्पूर्ण जानतेहो ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! जो पर्वतोत्तम कि रक्तशृङ्ग ऐसा कहागयाहै उसके प्रभावसे उसस्थानमें कल्याण प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ उस स्थान में चैत्र महीने की कृष्णचतुर्दशी को सदैव ब्रह्मा व विष्णु व शिव आदि देवता भलीभांति आश्रित होतेहैं ॥ ४ ॥ सब देवता व तीर्थ व सब दे-

ऋषयऊचुः ॥ किमेतत्कारणंसूतयेनैतत्प्राप्यतेनृभिः ॥ श्रेयःपुण्यंपुरस्यास्यसकृत्कृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ १ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ॥ अत्रकौतूहलंजातंसर्वंत्वंवेत्स्यशेषतः ॥ २ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ रक्तशृङ्गइतिख्यातो यःसपर्वतसत्तमः ॥ तत्प्रभावादिहश्रेयो लभ्यतेद्विजसत्तमाः ॥ ३ ॥ तत्रकृष्णचतुर्दश्यां चैत्रमासेसदैवहि ॥ समाश्रयंप्रकुर्वन्ति ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ४ ॥ सर्वेदेवाश्चतीर्थानिसर्वाण्यायतनानिच ॥ तथानद्यःसमुद्राश्चयच्चान्यदपिपावनम् ॥ ५ ॥ तत्सर्वंवासरेतस्मिन्सान्निध्यंतत्रपर्वते ॥ रक्तशृङ्गेकरोत्येवतस्माद्देशाच्छतक्रतोः ॥ ६ ॥ यदिन्द्रेणसमानीतस्तस्मिन्देशेसपर्वतः ॥ तदाप्रोक्तोदिनेदेवाःसमेष्यन्तितवान्तिकम् ॥ ७ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ चमत्कारपुरंतस्यमुख्यशृङ्गेव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥ तेनतत्प्राप्यतेश्रेयःसकृत्कृत्वाप्रदक्षिणाम् ॥ तस्मिन्दिनेचयत्किञ्चिद्दीयतेदानमादरात् ॥ ९ ॥ तदक्षयंभवेद्विप्रायावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ परमान्नेनयःकश्चिद्ब्राह्मणान्भोजयेन्नरः ॥ १० ॥ पितृ

वस्थान तथा नदी और समुद्र व और भी जो पवित्रकारी है ॥ ५ ॥ वह सब उन स्थानोसे इन्द्र के उस रक्तशृङ्ग नामक पर्वत में उस दिन याने चैत्रकृष्णचतुर्दशी को सामीप्यता अवश्य करताहै ॥६॥ इन्द्रजीने जिस समय उस देशमें उस रक्तशृंग पर्वतको भलीभांति प्राप्त कियाहै उसी दिन उससे कहाहै कि देवता तुम्हारे समीप भलीभांति आवैंगे ॥ ७ ॥ और भूमिमें जितने तीर्थ व पवित्र देवस्थान हैं वेभी आवैंगे रक्तशृंग के नामी शिखर पै चमत्कार नगर विशेषता से स्थित है ॥ ८ ॥ इस लिये एकबार प्रदक्षिणा कर उत्तम कल्याण प्राप्त होताहै और उस दिन आदरसे जो कुछ दान दियाजाता है ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! जबतक चन्द्रमा व सूर्य्य हैं तबतक

झुकाहुआ स्थित व कुछ लज्जासंयुत वचन बोला ॥ ३० ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! इस समय तुम सबोंने जो मुझसे पूंछा है वह मेरे गुप्तहै और पृथ्वीतल में मैंने किसी से नहीं कहाहै ॥ ३१ ॥ यदि अत्यन्त गोपनीय भी होवै तौभी आपलोगों से अवश्यकर सत्यही कहना चाहिये हे मुनिश्रेष्ठो ! आप सब सुनो ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! तिसके उपरान्त उस नृपति ने पूर्वजाति में उत्पन्न हुये उस चरित्रको उन मुनीन्द्रों से कहा ॥ ३३ ॥ जिस भांति पशु अदृश्य होगयाथा व जिस भांति प्रदक्षिणा किया और जिस प्रकार चमत्कार नृपके नगरकी प्रदक्षिणा हुईहै ॥ ३४ ॥ उस प्रदक्षिणा के प्रभावसे जिस प्रकार पहले जन्मवाला स्मरण हुआहै य

जश्रेष्ठायुष्माभिःसाम्प्रतंमम ॥ तद्गुह्यंनमयाख्यातंकस्यचिद्धरणीतले ॥ ३१ ॥ तथापिहिप्रकर्तव्यंयुष्माभिःसत्यमेवहि ॥ अपिगुह्यतमंचेत्स्याच्छृण्वन्तुमुनिसत्तमाः ॥ ३२ ॥ सूतउवाच ॥ ततःसकथयामासपूर्वजातिसमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तंतन्मुनीन्द्राणांतेषांब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३३ ॥ यथानष्टःपशुस्तस्य कृतायद्वत्प्रदक्षिणा ॥ यथाप्रदक्षिणाजाताचमत्कारपुरस्यच ॥ ३४ ॥ जातिस्मृतिर्यथाजाताप्राक्तनीतत्प्रभावतः ॥ राज्यप्राप्तिर्विभूतिश्चतथेष्टाप्तिःपदेपदे ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वामुनयस्सर्वेप्रहृष्टाःपृथिवीपतेः ॥ आशीर्वादान्बहून्दत्त्वासाधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ ३६ ॥ समुत्थायततश्चक्रुःपुरस्तस्याःप्रदक्षिणाम् ॥ यथोक्तविधिनासर्वेश्रद्धयापरयायुताः ॥ ३७ ॥ गताश्चपरमांसिद्धिंतत्प्रभावात्सुदुर्लभाम् ॥ जपयज्ञप्रदानैर्यातीर्थसेवादृतैरपि ॥ ३८ ॥ सोपिराजासमन्त्रीच जातौवैमानिकौसुरौ ॥ अद्यापितौहिदृश्येते तारारूपौनभस्थले ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चमत्कारपुरप्रदक्षिणामाहात्म्यन्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जिस भांति पद २ में याने क्षण २ में राज्यकी प्राप्ति व ऐश्वर्य तथा मनोरथ की प्राप्ति हुई है ॥ ३५ ॥ यह सुनकर सब मुनीश्वरोंने हर्षित होतेहुये भूपतिको बहुतेरे आशीर्वाद देकर बहुत अच्छा २ यह कहा ॥ ३६ ॥ तिसके बाद बड़ी श्रद्धासे संयुत सब मुनिलोगों ने भलीभांति उठकर कहीहुई विधि से उस नगरकी प्रदक्षिणा किया ॥ ३७ ॥ और उस प्रदक्षिणाके प्रभावसे परमसिद्धिको प्राप्तहुये जो सिद्धि कि जप, यज्ञ व बड़े २ दान तथा तीर्थसेवा के आदरों से भी बहुत दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ और वह राजा व वह सचिव देवरूप होकर विमान पर सवार होकर चलेगये वे आज भी आकाशस्थानमें नक्षत्ररूपसे देख पड़ते है ॥ ३९ ॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

भी दोनोंके लिये उस प्रकार का उत्तम फल प्राप्तहुआ और जो मनुज श्रद्धासे संयुक्त व उपासमें तत्पर होतेहुये मौनव्रत से उस नगर की प्रदक्षिणा करताहै वह दशार्णदेश के राजाके समान स्वर्ग में विमानचारी होता है ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देत्रीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमत्कारपुरप्रदक्षिणामाहात्म्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥

दो० ॥ सोलहवें अध्यायमें कहत सूत मुनिदेव । चमत्कार नृप नगर की करिय भली विधि सेव ॥ सूतजी बोले कि इसलिये और सब कार्य्योंको त्यागकर सब उपाय

णः ॥ १९ ॥ मौनेनकुरुतेमर्त्यःपुरस्यास्यप्रदक्षिणाम् ॥ दशार्णाधिपवत्स्वर्गेसविमानचरोभवेत् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे चमत्कारपुरप्रदक्षिणमाहात्म्यंनामपञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनत्यक्त्वान्यानिखिलाःक्रियाः ॥ रक्तशृङ्गस्यसान्निध्यंसेवनीयंविचक्षणैः ॥ १ ॥ किंदानैःकिंक्रियाकाण्डैःकिंयज्ञैःकिंव्रतैरपि ॥ तत्क्षेत्रंसेवयेद्भक्त्याहाटकेश्वरसम्भवम् ॥ २ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञाः सर्वेसम्पूर्णदक्षिणाः ॥ तस्यक्षेत्रस्यतेग्रेणकलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ३ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि तथासान्तपनानिच ॥ तस्यक्षेत्रस्यतेग्रेणकलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ४ ॥ तत्रराजर्षयःपूर्वं प्रभूताःसिद्धिमागताः ॥ पशवःपक्षिणःसर्पाःसिंहव्याघ्रामृगादयः ॥ ५ ॥ तत्रकालवशान्नष्टास्तेपिप्राप्तादिवालयम् ॥ यस्तत्रव्रतहीनोपि कृषिकर्म्मरतोपिवा ॥ ६ ॥

से चतुरजनों को रक्तशृङ्ग पर्वत की समीपता सेवा करनी चाहिये ॥ १ ॥ दान व कर्मकाण्डों से क्या है तथा यज्ञ और व्रतोंसे क्याहै याने कुछ नहीं भक्तिसे हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रकी सेवाकरै ॥ २ ॥ सम्पूर्ण दक्षिणावाले अग्निष्टोम इत्यादि सब यज्ञ उस क्षेत्रके सामने सोलहवींकलाके योग्य नहीं होतेहैं ॥३॥ कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत और वैसेही सान्तपन याने पञ्चाग्नितपन भी उस क्षेत्र के सामने सोलहवीं मात्राके योग्य नहीं होतेहैं ॥ ४ ॥ उस क्षेत्रमें बहुत से राजर्षि सिद्धिको प्राप्त हुयेहैं और पशु, पक्षी, सर्प, सिंह व व्याघ्र तथा मृग इत्यादि ॥ ५ ॥ जे मृत्युवशसे उस क्षेत्रमें नाशहुये वे भी स्वर्गको प्राप्तहुये है जो वहां व्रतरहित भी या कृषीकर्म में

वह दान अविनाशी होताहै जो कोई मनुज अच्छी भक्तिसे पितरोंको उद्देशकर उत्तम अन्न याने खीर पूरी आदिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै वह गयाजी के फलको प्राप्त होताहै व जो जिस कामनाको ध्यान करते हुये प्रदक्षिणा करताहै ॥ १०।११ ॥ वह उस मनोरथको प्राप्त होताहै और जो कोई मनोरथ नहीं चाहता है वह मुक्ति-भागी होताहै और जो समेत उपस्कर याने सुवर्णसे शृंगादि मढ़ाकर तुर्तकी ब्यानी गौ उत्तम ब्राह्मण को देताहै ॥ १२ ॥ वह सब पृथ्वीदान के अतिउत्तम फलको प्राप्त होताहै हे ब्राह्मणोत्तमो ! जो मुझसे पूँछाहै वह सब मैंने तुम सबोंसे वर्णन किया ॥ १३ ॥ कि जिसभांति प्रदक्षिणासे कियेहुये कल्याणको मनुष्य भलीभांति

नुद्दिश्यसद्भक्त्या सगयाफलमाप्नुयात् ॥ योयंकाममभिध्यायन्कुरुतेत्रप्रदक्षिणाम् ॥ ११ ॥ सतंकाममवाप्नोतिनि
ष्कामोमुक्तिभाग्भवेत् ॥ यस्तुसोपस्करांधेनुं प्रदद्याद्ब्राह्मणोत्तमे ॥ १२ ॥ सम्पूर्णपृथिवीदानफलमाप्नोतिपुष्कलम् ॥ ए
तद्वःसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ प्रदक्षिणकृतंश्रेयोयथासम्प्राप्यतेनृभिः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्य्या
तस्यप्रदक्षिणा ॥ १४ ॥ पुरस्यचैत्रकृष्णायां चतुर्दश्यांसमाहितैः ॥ उपवासपरैःशान्तैर्मौनव्रतपरायणैः ॥ १५ ॥ शु
चिभिःशुक्लवस्त्रैश्चरागद्वेषविवर्जितैः ॥ मूकत्वात्पशुपालस्यमौनंजातंद्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥ पशोरवाचिकत्वाच्चअन
योःश्रद्धयाविना ॥ उपवासश्चसञ्जातःपशुपालस्यतस्यसः ॥ १७ ॥ भयेनपशुसक्तस्यस्वामिनःश्रद्धयानतु ॥ सञ्जाताभ्र
ममाणस्यपशोरर्थेप्रदक्षिणा ॥ १८ ॥ तथापिताद्दशंजातमुभाभ्यांफलमुत्तमम् ॥ यःपुनःश्रद्धयोपेतउपवासपराय

प्राप्तहोते हैं इसलिये सब उपायसे उस नगर की प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ १४ ॥ चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को सावधान व उपास में तत्पर तथा शान्त व मौनव्रत में परायण ॥ १५ ॥ व पवित्र और स्वच्छ वसन पहनेहुये तथा वैर व प्रीतिसे रहितवाले जनोंको उस नगरकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये हे ब्राह्मणो-त्तमो ! पशुरक्षकके गूंगे होनेके कारण मौनव्रत होगया ॥ १६ ॥ व पशुके न बोलने के कारण मौनत्व होगया पशु तथा उस पशुपालक इन दोनोंको श्रद्धाके विना भलीभांति उपास होगया ॥ १७ ॥ व श्रद्धासे नहीं किन्तु पशुमें स्नेहकारी स्वामी के भयसे पशुके लिये घूमते हुये उसकी प्रदक्षिणा भलीभांति होगई ॥ १८ ॥ तौ

समय में हुआहै वह क्षेत्र सब पातकों का विनाशक ससार में प्रसिद्धहै ॥ ५ ॥ उन चमत्कार नामक नृप महात्मा ने जबसे लगाकर ब्राह्मणों के लिये देदिया तब से लोकमें उसके नामसे वह स्थान प्रसिद्धता को प्राप्तहुआ ॥ ६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे सूतपुत्र ! जो आपने यह कहा कि उस क्षेत्रके पूर्वमें गयाशिर तीर्थहै उसका माहात्म्य हमलोगोंसे विस्तार सहित तुम कहो ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय में हैहयदेश का स्वामी विदूरथ नामक हुआ जोकि यज्ञ करनेवाला व दानपति तथा प्रवीण व शत्रुपक्षको नाश करनेवाला था ॥ ८ ॥ सेनासे घिराहुआ वह राजा किसी समय मृगोंको मारनेके लिये जङ्गली पशुओंसे व्याप्त तथा अनेक प्रकारके

नम् ॥ ५ ॥ यतःप्रभृतिविप्रेभ्यो दत्तंतेनमहात्मना ॥ चमत्कारेणतत्स्थानंनाम्नाख्यातिंततोगतम् ॥ ६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंपूर्वेतस्यगयाशिरः ॥ माहात्म्यंतस्यनोब्रूहि सूतपुत्रसविस्तरम् ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्विदूरथोनामहैहयाधिपतिःपुरा ॥ यज्वादानपतिर्दक्षःशत्रुपक्षक्षयावहः ॥ ८ ॥ सकदाचिन्मृगान्हन्तुं नृपःसेनावृतोययौ ॥ नानावृक्षलताकीर्णंवनंश्वापदसङ्कुलम् ॥ ९ ॥ सजघानमृगांस्तत्रशरैराशीविषोपमैः ॥ महिषांश्चवराहांश्च तरक्षूञ्छम्बरान्रुरून् ॥ १० ॥ सिंहान्व्याघ्रान्गजान्मत्ताञ्छतशोथसहस्रशः ॥ आशितेनमृगोवद्धः शरेणानतपर्वणा ॥ ११ ॥ नपपातधरापृष्ठे सशरोदुद्रुवेभृशम् ॥ ततःसकौतुकाविष्टस्तस्यपृष्ठेहयोत्तमम् ॥ १२ ॥ प्रेरयामासवेगेन मनोमारुतवेगधृक् ॥ ततःसैन्यंपरित्यज्य मृगलिप्सुर्महामतिः ॥ १३ ॥ अन्यद्वनान्तरंप्राप्तोरौद्रंचित्तभयावहम् ॥ कण्टकी

वृक्ष व लताओंसे संकुल वनमें गया ॥ ९ ॥ व उस नृपने उसी वनमें महिष,शूकर,चीता,शम्बर व रुरुआदि मृगविशेषों को विषधारी सर्पोंके समान बाणोंसे मारा ॥ १० ॥ और सैकडों व हजारों सिंह, व्याघ्र व उन्मत्त हाथियों को मारा इसके बाद नये ग्रन्थिवाले पैनेबाण से मृगको ताडन किया ॥ ११ ॥ परन्तु धरातल में न गिरा किन्तु बाणसमेत जल्दीसे बहुत दौरा तदनन्तर उस नृपतिने आश्चर्य्य में व्याप्त होकर उसके पीछे उत्तम घोडेको ॥ १२ ॥ जल्दीसे प्रेरणा किया जो नृप कि मन तथा पवनके समान वेगधारी व बडे बुद्धिमान् व मृगके मनोरथी हैं वे तदनन्तर सेनाको छोडकर चित्तको भयदायक दूसरे वनमें पहुचे जो वन कि सेमर व कांटेदार बेरी

तत्पर भी ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो उस क्षेत्रमें निवास करता है वह मरकर स्वर्गको जाताहै अथवा हे ब्राह्मणोत्तमो ! वार २ बहुत कहनेसे क्याहै ॥ ७ ॥ अत्यन्त गोपनीय उस क्षेत्रका सम्भव तुम सब सुनो यहांपर भलीभांति निवास करने से क्षेत्र के तीर्थ मनुष्यों को पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! हाटकेश्वरजी से उपजा हुआ क्षेत्र स्मरण करनेसे भी पवित्र करताहै फिर दर्शन तथा विशेषतासे स्पर्शकरने से क्या कहना है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

निवासंकुरुतेविप्रामृतस्तत्रादिवंव्रजेत् ॥ किंवाचबहुनोक्तेनभूयोभूयोद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ श्रूयतांपरमंगुह्यंतस्यक्षेत्रस्य सम्भवम् ॥ पुनन्तिक्षेत्रतीर्थानिसंवासादिहमानवान् ॥ ८ ॥हाटकेश्वरजंक्षेत्रं पुनातिस्मरणादपि ॥ किंपुनर्दर्शनाद्विप्राः स्पर्शनाच्चविशेषतः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यंनामषोडशोध्यायः १६ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ चमत्कारपुरोत्पत्तिःश्रुतात्वत्तोमहामते ॥ तत्क्षेत्रस्यप्रमाणंयत्तदस्माकंप्रकीर्तय ॥ १ ॥ यानितत्रच पुण्यानितीर्थान्यायतनानिच ॥ सहितानिप्रभावेणतानिसर्वाणिकीर्त्तय ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्षेत्रं ब्राह्मणसत्तमाः ॥ आयामाद्व्यासतश्चैव चमत्कारपुरोद्भवम् ॥ ३ ॥ प्राच्यांतस्यगयाशीर्षपश्चिमेनृहरेःपदम् ॥ दक्षिणोत्तरयोश्चैवगोकर्णेश्वरसञ्ज्ञिते ॥ ४ ॥ हाटकेश्वरसञ्ज्ञंतत्पूर्वमासीद्द्विजोत्तमाः ॥ तत्क्षेत्रंप्रथितंलोकेसर्वपातकनाश

दो० ॥ गयो अरण्य शिकार हित नृपति विदूरथ नाम । सत्रहवें अध्याय में वर्णत सो मतिधाम ॥ ऋषि लोग बोले कि हे महामते ! चमत्कार नगरकी उत्पत्ति तुम से सुनीगई उस क्षेत्रका जो प्रमाण है उसको हमलोगों से अवश्य कहो ॥ १ ॥ और उस क्षेत्रमें प्रभाव समेत जितने पवित्र तीर्थ व देवमन्दिरहैं उन सबको तुम कहो २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! लम्बाई तथा चौड़ाईसे पांचकोसके प्रमाण का वह क्षेत्रहै जोकि चमत्कार नगर से उत्पन्न है ॥ ३ ॥उस क्षेत्रके पूर्वमें गयाशिरतीर्थ है पश्चिममें नृसिंहजी का स्थानहै और दक्षिण तथा उत्तर में गोकर्णनाथ नामक महादेवजी हैं ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! हाटकेश्वर नामक क्षेत्र तो पुरातन

इत्यादि वृक्षोंसे व्याप्तहै ॥ १३ । १४ ॥ वैसेही कांटोंसे व्याप्त अन्य रूखे वृक्षों से संयुक्तहै उस बनमें सम्पूर्ण भूमि जलहीन व रूखी तथा पत्थरोंसे घिरीहुई है ॥ १५॥ व झिल्ली, घुघुवा, गृध्रसे युक्त तथा शोभन छायासे विहीन है ग्रीष्मऋतु में सूर्य्यको मध्यमें प्राप्त होतेहुये याने मध्याह्न समय में मृग से आकर्षित वह भूपति ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर भाला हाथमें लिये व उत्तम घोड़ेपर सवार बहुत दूर पन्थ चलागया जिससे उसके सब अनुगामी नौकरोंके वाहन बहुत थकगये ॥ १७ ॥ व थकेहुये व क्षुधा प्याससे दुःखी वे स्थान स्थानमें भलीभांति स्थित हुये व अचैतन्य व गिरेहुये मनुजोंको सिंह व व्याघ्र तथा अन्य जीव खारहे हैं ॥ १८ ॥ वैसेही अन्य

बदरीप्रायंशाल्मलीद्रुमसङ्कुलम् ॥ १४ ॥ तथान्यैःकण्टकाकीर्णैरूक्षैर्वृक्षैःसमन्वितम् ॥ तत्ररूक्षाखिलाभूमिर्निर्जला श्मसमावृता ॥ १५ ॥ चीरिकोलूकगृध्राढ्याशुभच्छायाविवर्जिता ॥ ग्रीष्मेमध्यगतेसूर्य्ये मृगाकृष्टःसपार्थिवः ॥ १६ ॥ दूराध्वानंजगामाथप्रासपाणिर्वराश्वगः ॥ येनतस्यानुगाभृत्याःसर्वेसुश्रान्तवाहनाः ॥ १७ ॥ क्षुत्पिपासाकुलाःश्रान्ताः स्थानेस्थानेसमाश्रिताः ॥ सिंहैर्व्याघ्रैस्तथाचान्यैःपतितानष्टचेतनाः ॥ १८ ॥ भक्ष्यन्तेचेतयन्तेपि तथान्येचलनेक्ष माः ॥ ततःसोपिमहीपालःक्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वातद्व्यसनंप्राप्तमात्मानंसेवकैःसमम् ॥ कान्तारस्यान्त मन्विच्छन्प्रेरयामासतंहयम् ॥ २० ॥ जात्यंसर्वगुणोपेतंकशाघातैःप्रताडयन् ॥ ततःसनृपतिस्तेनवायुवेगेनवाजिना ॥ २१ ॥ नीतोदूरंदुर्गमार्गं सर्वजन्तुविवर्जितम् ॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्यकान्दिशीकेव्यवस्थिते ॥ २२ ॥ सैन्येपतद्धरापृष्ठेसो प्यधस्तात्तुरङ्गमः ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेचमत्कारपुरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥

चैतन्यभी चलने में असमर्थ हैं तदनन्तर वह भूपति भी क्षुधा प्याससे बहुत दुःखी हुआ ॥ १९ ॥ व समेत नौकरों के अपने को दुःखमें प्राप्त देखकर दुर्गम पंथ का अन्त ढूंढ़ता हुआ उस घोड़ेको प्रेरणा किया ॥ २० ॥ व सब गुणोंसे संयुत व कुलीन जातिमें उपजेहुये घोडेको कोड़ासमूहों से बहुत ताड़न करतेहुये तदनन्तर वह राजा उस पवनके समान वेगवाले घोडेके द्वारा ॥ २१ ॥ सब प्राणियोंसे हीन व बहुत दूर कठिनमार्गमें प्राप्तहुआ इसभांति उस नरेशकी सेनाको भयसे भागने में तत्पर होतेहुये वह तुरङ्गभी नीचे धरातलमें गिरपड़ा ॥ २२ । २३ ॥ इति नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमत्कारपुरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

दो० ॥ यथा विदूरथ नृपति सों कीन बतकही प्रेत । अष्टादश अध्याय में सो विस्तार समेत ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर क्षुधा व प्यास से बहुत आकुल वह भूपति पांवोंसे दूसरे वनमें जाकर धरातल में गिरपड़ा ॥ १ ॥ इसके बाद आकाशमें खड़ेहुये अतिभयानक तीन प्रेतोंको उस राजाने देखा कि जिनके ऊपर उठेहुये बाल व बहुत लाल लोचन व श्यामदांत तथा उदर दुबला था ॥ २ ॥ उन प्रेतों को देखकर भयभीत वह महीपाल विशेपता से जीनेमें निराश होकर क्लेशसे यह वचन बोला कि ॥ ३ ॥ बिगड़े आकारवाले तुम कौनहो इस नरलोकमें घूमते हुये मैंने पहले इस प्रकारके भयानक कभी नहीं देखे ॥४॥ क्षुधा व प्याससे बहुत पीड़ित

सूतउवाच ॥ ततःसोपिमहीपालःक्षुत्पिपासासमाकुलः ॥पपातधरणीपृष्ठेपद्भ्यांगत्वावनान्तरम् ॥१॥ अथापश्यद्वियस्थान्सत्रीन्प्रेताननतिदारुणान् ॥ ऊर्ध्वकेशान्सुरक्ताक्षान्कृष्णदन्तान्कृशोदरान् ॥ २ ॥ तान्दृष्ट्वाभयसन्त्रस्तोविशेषेणसभूपतिः ॥ निराशोजीवितेकृच्छ्रादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ केयूयंविकृताकारामयादृष्टानकर्हिचित् ॥ एवंविधान्हिलोकेत्र भ्रमताप्राग्विभीषणाः ॥ ४ ॥ विदूरथोनरेन्द्रोहंक्षुत्पिपासानिपीडितः ॥ मृगलिप्सुरिहप्राप्तो वनेजन्तुविवर्जिते ॥ ५ ॥ ततस्तेषांचयोज्येष्ठो मांसादःप्रत्युवाचतम् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ ६ ॥ वयंप्रेतामहाराजनिवसामोत्रकानने ॥ स्वकर्म्मजनिताद्दोषाद्दुःखेनमहतावृताः ॥ ७ ॥ अहंमांसादकोनामद्वितीयोयंविदैवतः ॥ कृतघ्नश्चतृतीयस्तुत्रयाणामेवपापकृत् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ सर्वेषांदेहिनांनामजायतेपितृमातृजम् ॥ किमेतत्कारणंयेनसर्वेयूयंस्वनामकाः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वाप्राहमांसादःकर्म्मनामानिपार्थिव ॥ मिथःकृतानिसञ्ज्ञार्थमस्माभिःस्वयमेव

मैं विदूरथ नरेशहूं मृगका मनोरथी मैं इस प्राणी रहित अरण्य में प्राप्तहुआ ॥५॥ तदनन्तर उनमें बड़ा मांसाद नामक हाथ जोड़कर व विनय से नीचे झुँकाहुआ स्थित उस नृपसे बोला ॥ ६ ॥ कि हे महाराज ! हम तीनों प्रेतहैं जोकि इस वनमें बसरहे हैं अपने कर्मसे उपजे हुये दोषसे बड़े क्लेशसे घिरेहुये हैं ॥ ७ ॥ मैं मांसाद नामकहूं और यह दूसरा विदैवतहै और तीनोंमें निश्चय कर पापकारी तीसरा कृतघ्नहै ॥ ८ ॥ राजा बोले कि सब देहधारियों का नाम पिता व माता से उत्पन्न होता है यह क्या कारण है कि जिसलिये तुम सब अपने नामसेहो ॥ ९ ॥ यह सुनकर मांसाद बोला कि हे भूपति ! हमलोगोंने आपही से परस्पर सूचित करने के लिये

कर्मवाले नाम कियेहैं ॥ १० ॥ तुम सावधान होकर सुनो कि जिस भिन्न भिन्न कर्मसे इस वनमें हम सबोंका एकही साथ प्रेतका भाव भलीभांति उत्पन्न हुआ है॥ ११॥ हे नृप ! हम तीनों ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न हैं वैदेश नामक नगर में महात्मा देवरात नामक ब्राह्मण के गृहमें पैदाहुये हैं ॥ १२ ॥ सदैव शुभकर्मों से रहित होकर उस पुरमें नास्तिक व मर्य्यादा के विनाशक तथा परस्त्रियोंमें रत हुये क्योंकि पूर्वबुद्धि याने बाल्यावस्था की बुद्धिमें प्राप्तहोगये ॥ १३ ॥ जिह्वा की सतृष्णता के प्रसंग से मैंने सदैव मांस भोजन किया इससे मेरे कर्मसे उपजा हुआ मांसाद नाम स्थित हुआ ॥ १४ ॥ व हे महाराज ! यह दूसरा जोकि तुम्हारे आगे स्थित है इसने

हि ॥१०॥ शृणुष्वावहितोभूत्वासर्वेषांनःपृथक्पृथक् ॥ कर्म्मणायेनसञ्ज्ञातंप्रेतत्वमिहनोसकृत् ॥ ११ ॥ वयंवैब्राह्मणा जात्यावैदेशाख्येपुरेनृप ॥ देवरातस्यविप्रस्यगृहेजातामहात्मनः ॥ १२ ॥ नास्तिकाभिन्नमर्य्यादाःपरदाररताःसदा॥ पूर्वबुद्धिगतास्तत्रशुभकर्म्मविवर्जिताः ॥ १३ ॥ जिह्वालौल्यप्रसङ्गेनमयाभुक्तंसदामिषम् ॥ तेनमेकर्म्मजन्नाम मांसा दाख्यंव्यवस्थितम् ॥१४॥ द्वितीयोयंमहाराजयस्तिष्ठतितवाग्रतः ॥ अनेनान्नंसदाभुक्तमकृत्वादेवतार्चनम् ॥१५॥ तेन कर्म्मविपाकेनप्रेतयोनिंसमाश्रितः ॥विदैवतइतिख्यातोद्वितीयोयंसुपापकृत् ॥१६॥ सदैवानुष्ठितायेनसुपापेनकृतघ्नता ॥ कृतघ्नःप्रोच्यतेतेनकर्म्मणानृपसत्तम ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ आहारेणनृलोकेस्मिन्सर्वेजीवन्तिजन्तवः ॥ युष्माकंकत मोयोत्रप्रोच्यतांमेसविस्तरम् ॥ १८ ॥ मांसादउवाच ॥ भोज्यकालेगृहेयत्र स्त्रीणांयुद्धंप्रवर्तते ॥ अपिमन्त्रौषधीप्राये प्रेताभुञ्जन्तितत्राहि ॥ १९ ॥ भुज्यतेयत्रभूपाल वैश्वदेवंविनानरैः ॥ पाकस्याग्रमदत्त्वाच प्रेताभुञ्जन्तितत्रच ॥ २० ॥

सदैव बिन देवोंको पूजन किये अन्न भोजन कियाहै ॥ १५ ॥ उस कर्मफल से प्रेतयोनिमें भलीभांति प्राप्त यह बड़ा पापकारी दूसरा विदैवत ऐसा प्रसिद्धहै ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम ! सदैव जिसने बड़े पापसे कृतघ्नता अनुष्ठान किया याने किसीके उपकारको न माना उसी कर्मसे कृतघ्न कहाजाता है ॥ १७ ॥ राजा बोले कि इस नर-लोकमें सब प्राणी भोजन से प्राण धारण करते हैं इस वनमें जो तुमलोगों का भोजन है वह कौनसा है उसको मुझ से विस्तार समेत कहिये ॥ १८ ॥ मांसाद बोला कि जिस गेहमें भोजन समय स्त्रियोंका युद्ध प्रवृत्त होताहै प्रायः मन्त्र व ओषधी होनेसे भी उस गेहमें अवश्य प्रेत भोजन करते हैं ॥ १९ ॥ हे भूपाल !

जहांपर विना बलिवैश्वदेव व विना अग्रासन दिये मनुष्य भोजन करते हैं वहां पर भी प्रेत भोजन करतेहैं॥२०॥हे नृपतिशार्दूल ! पर्वसे रहित रात्रिमें जो श्राद्ध या दान किया जाताहै वह सब प्रेतोंका भोजन होवै है ॥२१॥ जिस मन्दिरमें न मार्जन कियाजाताहै न गोमय आदिसे उपलेपन कियाजाताहै और न मङ्गलकार्य्य न सत्कार किया जाताहै उस सदनमें अवश्य प्रेत भोजन करते हैं ॥ २२ ॥ जिस गेहमें फूटे बरतनोंका परित्याग नहीं कियाजाताहै व वेदोंकी ध्वनि जहां नहीं होतीहै वहां आनन्दित होकर प्रेत भोजन करते हैं ॥ २३ ॥ हे नृप ! जो श्राद्ध दक्षिणासे रहित व कर्मसे हीन तथा रजस्वला स्त्री से देखागयाहै वह हमलोगोंको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ जिस

रात्रौयत्क्रियतेश्राद्धंदानंवापर्ववर्जितम् ॥ तत्सर्वंनृपशार्दूलप्रेतानांभोजनंभवेत् ॥ २१ ॥ यस्मिन्नोमार्जनंहर्म्ये क्रियते नोपलेपनम् ॥ नमाङ्गल्यंनसत्कारःप्रेताभुञ्जन्तितत्रहि ॥ २२ ॥ भिन्नभाण्डपरित्यागो यत्रनक्रियतेगृहे ॥ नचवेदध्वनिर्यत्रप्रेताभुञ्जन्तिहर्षिताः ॥ २३ ॥ यच्छ्राद्धंदक्षिणाहीनंक्रियाहीनंचवानृप ॥ तथारजस्वलादृष्टंतदस्माकंप्रजायते॥ २४ ॥ हीनाङ्गाअधिकाङ्गावायस्मिञ्छ्राद्धेद्विजातयः ॥ भुञ्जतेवृषलीनाथास्तदस्माकंप्रजायते ॥ २५ ॥ अतिथिर्यत्रसम्प्राप्तःश्राद्धकालउपस्थिते ॥ अपूजितोगृहाद्यातितच्छ्राद्धंप्रेततृप्तिदम् ॥ २६ ॥ किंवातेबहुनोक्तेनशृणुसङ्क्षेपतोनृप ॥ अस्माकंभोजनंनिन्द्यंयच्छ्रुत्वात्वंविगर्हसि ॥ २७ ॥ यदन्नंकेशमूत्रास्थिश्लेष्मादिभिरुपप्लुतम् ॥ हीनजात्यैश्चसंस्पृष्टंतदस्माकंप्रजायते ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ केनकर्म्मविपाकेनप्रेतत्वंजायतेनृणाम् ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्वमांसादममपृच्छतः ॥ २९ ॥ मांसादउवाच ॥ योभवेन्मानवःक्षौद्रस्तथापैशुन्यसूचकः ॥ मृष्टमांसाशनेसक्तस्सप्रेतोजायतेनरः॥३०॥

श्राद्धमें न्यूनाङ्ग या अधिकाङ्ग अथवा शूद्रा स्त्री के पति ऐसे ब्राह्मण भोजन करते हैं वह हमको होताहै ॥ २५ ॥ श्राद्धसमय प्राप्त होनेपर जहां अतिथि याने पाहुन प्राप्तहुआ और बिन पूजेहुये गेहसे जाताहै वह श्राद्ध प्रेतोंको तृप्तिदायकहै ॥ २६ ॥ हे नृप ! अथवा बहुत कहने से क्या है तुम संक्षेप से हमारे निन्दित भोजन सुनो कि जिसको सुनकर तुम निन्दा करोगे ॥ २७ ॥ जो अन्न केश व मूत्र या हड्डी तथा कफादि से संयुक्त व हीनजातिवालों से छुवागयाहै वह हम सबोंको होताहै ॥ २८ ॥ राजा बोले कि हे मांसाद ! किस कर्मके फलसे मनुष्यों को प्रेतभाव होताहै पूँछते हुये मुझसे यह समस्त वृत्तान्त तुम कहो ॥ २९ ॥ मांसाद बोला कि जो मनुष्य

अधम होवै है और चुगुली करनेवाला तथा वृथा मांस भोजनमें संसक्त है वह प्रेत होताहै ॥ ३० ॥ पराये क्लेशमें बहुत प्रसन्न व कृतघ्न याने उपकार का नाशक या गुरुकी शय्यापर गयाहै व देवद्विजों का निन्दक है वह प्रेत होताहै ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण के कुलमें पैदा होकर वृथा मांस याने यज्ञादिकर्म से हीन मांसको भोजन करता है और सदैव सब प्राणियों की हिंसा करता है वह प्रेत होताहै ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य देवोंका कार्य्य तथा पितरों का तर्पण नहीं कर नीचके समान भोजन करता है वह बहुधा प्रेत होताहै ॥ ३३ ॥ जो नर पराई स्त्रीमें रत व पराये धनका अपहारी तथा पराई निन्दामें अतिप्रसन्न होताहै वह प्रेतहोताहै ॥ ३४ ॥ जो मनुज

परव्यसनसन्तुष्टःकृतघ्नोगुरुतल्पगः ॥ दूषकोदेवविप्राणांसप्रेतोजायतेनरः ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणान्वयसम्भूतो वृथामांसादकश्चयः ॥ प्राणिनांहिंसकोनित्यंसप्रेतोजायतेनरः ॥ ३२ ॥ अकृत्वादेवकार्य्यंच तथाचपितृतर्प्पणम् ॥ योश्नातिभृत्यवत्प्रायस्सप्रेतोजायतेनरः ॥ ३३ ॥ परदाररतश्चैवपरवित्तापहारकः ॥ परापवादसन्तुष्टस्सप्रेतोजायतेनरः ॥ ३४ ॥ कन्यांयच्छतिवृद्धायनीचायधनलिप्सया ॥ कुरूपायकुशीलायसप्रेतोजायतेनरः ॥ ३५ ॥ कुलेजातांविनीतांच धर्म्मपत्नींसुखोच्छ्रिताम् ॥ यस्त्यजेद्दोषनिर्मुक्तां सप्रेतोजायतेनरः ॥ ३६ ॥ देवस्त्रीगुरुवित्तानि योगृहीत्वानयच्छति ॥ विशेषाद्ब्राह्मणेन्द्रोयस्सप्रेतोजायतेनरः ॥ ३७ ॥ दीयमानस्यवित्तस्य ब्राह्मणेभ्यःसुपापकृत् ॥ विघ्नमारभतेयस्तुसप्रेतोजायतेनरः ॥ ३८ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन ब्राह्मणोम्रियतेयदि ॥ सप्रेतोजायतेराजन्यद्यपिस्यात्षडङ्गवित् ॥ ३९ ॥

धनकी इच्छासे वृद्धके लिये व नीचके लिये तथा कुरूप या दुष्टचरितवाले मनुज के लिये कन्याको देताहै वह प्रेत होताहै ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य उत्तमकुल में पैदाहुई व सुखसे बढ़ीहुई धर्मसे विवाहितास्त्री को त्यागकरै है जोकि दोषोंसे रहित है वह प्रेत होताहै ॥ ३६ ॥ जो नर देवता व स्त्री व गुरुका धन लेकर नहीं देताहै जोकि विशेषकर द्विजोंमें श्रेष्ठहो वह प्रेत होताहै ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये द्रव्य देतेहुये विघ्न प्रारम्भ करता है वह बड़ा पापकारी प्रेत होताहै ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मण यदि उदरमें शूद्रान्न के स्थित होतेहुये प्राणोंको त्यागता है यद्यपि वह षट् शास्त्रोंके अङ्गका जाननेवाला होवै तथापि प्रेत होताहै ॥ ३९ ॥ जो

प्राणी कामना या लालच से अपने कुल व देशके योग्य धर्मको छोंड़कर दूसरे धर्मको भलीभांति करता है वह प्रेत होता है ॥ ४० ॥ हे भूपालशिरोमणि ! यह सम्पूर्ण मैंने तुमसे वर्णन किया कि जिस कर्मके फलसे प्राणी प्रेत होताहै ॥ ४१ ॥ राजा बोले कि हे मांसाद ! जिस कर्मके करने से मनुष्य प्रेत नहीं होताहै उसको अवश्यकर विस्तार से तुम मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ मांसाद बोला कि जो मनुज पराई स्त्रीको माताके समान व दूसरे के द्रव्यको ढेलाके समान तथा सब प्राणियों को अपने समान देखता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अन्नदान में परायण व विशेषकर जिसको अतिथि प्याराहै तथा अपने वेद व व्रतोंके

कुलदेशोचितंधर्म्मंयस्त्यक्त्वान्यत्समाचरेत् ॥ कामाद्वायदिवालोभात्सप्रेतोजायतेनरः ॥ ४० ॥ एतत्तेसर्वमाख्या तंमयापार्थिवसत्तम॥ येनकर्म्मविपाकेनप्रेतःसञ्जायतेनरः॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ कृतेनकर्म्मणायेन नप्रेतोजायतेनरः ॥ तन्मेकीर्त्तयमांसाद विस्तरेणविशेषतः ॥ ४२ ॥ मांसादउवाच ॥ मातृवत्परदारान्यःपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥ यःपश्य त्यात्मवज्जन्तून्नप्रेतोजायतेनरः ॥ ४३ ॥ अन्नदानपरोनित्यंविशेषेणातिथिप्रियः॥ स्वाध्यायव्रतशीलोयो नप्रेतोजा यतेनरः ॥ ४४ ॥ समःशत्रौचमित्रेच समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ समोमानापमानेषुनप्रेतोजायतेनरः ॥ ४५ ॥ दानध र्म्मप्रवृत्तानांधर्म्ममार्गानुयायिनाम् ॥ प्रोत्साहंवर्द्धयेद्यस्तुनप्रेतोजायतेनरः ॥ ४६ ॥ यूकमत्कुणदंशादीन्सर्वसत्त्वा नियोनरः ॥ पुत्रवत्पालयेन्नित्यंनप्रेतोजायतेनरः ॥ ४७ ॥ सदायज्ञक्रियोपेतःसदातीर्थपरायणः ॥ शास्त्रश्रवणसंयुक्तो नप्रेतोजायतेनरः ॥ ४८ ॥ वापीकूपतडागानामारामाणांविशेषतः ॥ आरोपकःप्रपाणांचनप्रेतोजायतेनरः ॥ ४९ ॥

करने का स्वभाव रखता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ४४ ॥ जो शत्रु व मित्रमें समभाव रखता है और ढेला व पत्थर तथा सुवर्ण में समदृष्टि होताहै और मान व अपमान में समहै वह प्राणी प्रेत नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ दान धर्ममें तत्पर व धर्मपथमें अनुगामीजनों के अधिक उत्साह को जो मनुज बढ़ाताहै वह प्रेत नहीं होता है ॥ ४६ ॥ जो प्राणी सदैव जुवां व खटमल तथा डांस इत्यादि सब जीवोंको पुत्रके समान पालन करता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुज निरन्तर यज्ञ कर्मोंमें संयुक्त व सदैव तीर्थयात्रामें तत्पर तथा शास्त्र सुनने में संयुक्त होताहै वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ४८ ॥ जो नर बावली, कुवां, तड़ागों को निर्माण करताहै और

विशेष कर बगीचों का आरोपण करता है तथा पौशाला को चलाता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ४९ ॥ हे भूपति ! अपने में गुप्त इस समस्त वृत्तान्त को तुमसे वर्णन किया प्रेतयोनिमें जन्मसे मैं निर्वेदको प्राप्तहूं याने प्रेतभावसे छूटना चाहताहूं इसलिये तुम हम सबोंकी गतिहोवो याने रक्षाकरो ॥ ५० ॥ हे भूपाल ! पवित्र गयाशीर्ष तीर्थमें जाकर तुम तीनोंको भी आदर समेत भिन्न २ एक एकको श्राद्ध पिण्डदान करो ॥ ५१ ॥ कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से बहुत कठिन प्रेतभाव जातारहै और किसीभांति से हम सबोंकी मुक्ति न होवैगी ॥ ५२ ॥ राजा बोले कि जिस प्रेतयोनि में इस प्रकार जातिका स्मरण व आकाश में गति तथा भलीभांति

एतद्वः सर्वमाख्यातंस्वगुह्यंवसुधाधिप ॥ निर्विण्णाःप्रेतभावेनतस्मात्त्वन्नोगतिर्भव ॥ ५० ॥ गत्वागयाशिरःपुण्यमेकैक स्यपृथक्पृथक् ॥ श्राद्धंदेहिमहीपाल त्रयाणामपिसादरम् ॥ ५१ ॥ प्रेतत्वंयातियेनेदंत्वत्प्रसादात्सुदारुणम् ॥ नान्यथा मुक्तिरस्माकंभविष्यतिकथञ्चन ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ ईदृग्जातिस्मृतिर्यत्रप्रेतयोनौचखेगतिः ॥ धर्म्माधर्म्मपरिज्ञानं तांत्वंकस्मात्प्रणिन्दसि ॥ ५३ ॥ मांसादउवाच ॥ प्रेतयोनिरियंराजन्नवमादेवसञ्ज्ञिता ॥ गुणत्रयसमायुक्ताशेषैर्दोषैःस मन्ततः ॥ ५४ ॥ एकाजातिस्मृतिःसम्यगस्यामेवप्रजायते ॥ खेचरत्वंतथैवान्यद्धर्म्माधर्मविनिश्चयः ॥ ५५ ॥ एत द्गुणत्रयंप्रोक्तंप्रेतयोनौनृपोत्तम ॥ दोषानपिचतेवच्मितांञ्छृणुष्वसमाहितः ॥ ५६ ॥ यदितावद्वनादस्माद्यामोन्यत्र वयंनृप ॥ अदृष्टमुद्गराघातैर्नूनंहन्यामहेततः ॥ ५७ ॥ तथाधर्म्मक्रियास्सर्वामानुषाणामुदाहृताः ॥ नप्रेतानांनदेवानां

धर्म, अधर्मका ज्ञानहै उसकी तुम किसलिये बहुत निन्दा करतेहो ॥ ५३ ॥ मांसाद बोला कि हे राजन् ! यह देवसंज्ञक अधम प्रेतयोनि तीनगुणों से समन्वितहै और सब ओरसे शेष दोषोंसे संयुक्त है ॥ ५४ ॥ एक तो इसी योनिमें समस्त जातिका स्मरण होताहै वैसेही दूसरा आकाशगमन है और तीसरा धर्म, अधर्म का विशेष कर निश्चय होताहै ॥ ५५ ॥ हे नृपोत्तम ! प्रेतयोनि में ये तीनगुण कहे हैं और दोषोंको भी तुमसे कहताहूं उनको तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५६ ॥ हे नृप ! जो हम हमलोग इस वनकी अवधि से और कहीं जाते हैं तो अवश्य बिन देखेहुये मुद्गरोंके ताड़न से ताड़ित होतेहैं ॥ ५७ ॥ ऐसेही सम्पूर्ण धर्मकार्य मनुष्यों को

कहेगये हैं मनुष्योंको छोड़कर अन्य देवतों व प्रेतोंको नहीं ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वृषराशि में सूर्य्यनारायणको स्थित होतेहुये प्याससे दुःखितहोकर व शान्त दूरसे जलसे भरेहुये जलाशयोंको हम देखते हैं ॥ ५९ ॥ हे भूपालोत्तम ! यदि उनके समीप हम जाते हैं तो बिन देखेहुये मुद्गरोंके ताड़नसे ताड़ित होते हैं ॥ ६० ॥ हे नृप ! वैसेही गृहस्थोंके गेहमें अनेक प्रकारकी सिद्ध रसोइयोंको क्षुधासे व्यास व दूरमें स्थितहुये देखते हैं ॥ ६१ ॥ और अच्छे फलेहुये वृक्षोंके सेवनेके लिये नहीं प्राप्तहोते हैं जोकि अव्यक्त मधुर शब्दवाले पक्षियोंसे संयुक्त व प्यारे तथा उत्तम छाया से समन्वित हैं ॥ ६२ ॥ अथवा तुमसे बहुत कहनेसे क्याहै जो २ कर्म

नान्येषांमानुषंविना ॥ ५८ ॥ पश्यामोदूरतोराजञ्जलपूर्णाञ्जलाशयान् ॥ पिपासाकुलिताःशान्ताःभास्करेवृषसंस्थिते ॥ ५९ ॥ गच्छामःसन्निधौतेषां यद्दिपार्थिवसत्तम ॥ अदृष्टमुद्गराघातैर्वयंहन्यामहेततः ॥ ६० ॥ तथारसवतीःसिद्धाः पश्यामोदूरसंस्थिताः ॥ क्षुधाविष्टागृहस्थानां गृहेषुविविधान्नृप ॥६१॥ तथासुफलिनोवृक्षान्कलपक्षिभिरावृतान्॥स्निग्धान्सच्छाययोपेतान्सेवितुंनलभामहे ॥ ६२ ॥ किंवातेबहुनोक्तेनयद्यत्कर्म्मविगर्हितम् ॥ क्लेशदंचतदस्माकंस्वयमेवोपतिष्ठते ॥ ६३ ॥ नच्छिद्रेणविनास्माकंप्राणयात्राप्रजायते ॥ नजलानिनचच्छाया तथान्नंनचवाहनम् ॥ ६४ ॥ एतस्मात्कारणान्नित्यंभ्रमामश्छिद्रहेतवे ॥ प्राप्तेरात्रिमुखेराजन्नप्रातर्नचवासरे ॥ ६५ ॥ यत्त्वंशंससिचास्माकं खेचरत्वंमहीपते ॥ व्यर्थंतदपिनश्रेयःशृणुष्वाद्यात्रकारणम् ॥६६॥क्रियतेखेचरत्वेन किंकिंधर्म्मविनिश्चयैः॥ययानसिद्ध्यतेमोक्षोजातिस्मृत्याहिकिंतया ॥ ६७ ॥ तस्माद्दोषाइमेराजन्गुणायद्यपिकीर्तिताः ॥ प्रेतानांयान्समाश्रित्यकाचित्सिद्धिर्न

निन्दित व क्लेशदायक है वह हमारे समीप आपही प्राप्तहोताहै ॥ ६३ ॥ छिद्र याने दोषके विना हम सबोंकी प्राणयात्रा अर्थात् भोजन निर्वाह नहीं होताहै जल व छाया व अन्न व सवारी ये हमारे लिये नहीं होते हैं ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! इसकारण हम छिद्रके लिये सदैव सन्ध्या होतेहुये भ्रमण करते है न प्रातःकाल में और न दिन में ॥ ६५ ॥ हे पृथ्वीपति ! जो तुम हमारे आकाशगमन की प्रशंसा करते हो वह भी निरर्थक है कल्याण नहीं है इस समय तुम इसका कारण सुनो ॥ ६६ ॥ आकाश गामित्वसे क्याहै व धर्मके निश्चयसे क्याहै और उस जातिके स्मरण से क्याहै कि जिससे मोक्षकी सिद्धि नहीं होतीहै ॥६७॥ हे राजन् ! इससे जो गुण भी

दीजिये जिसको पीकर मैं वर्णन क... है वे प्रेतयोनि समस्त शुभ कम
होगया तदनन्तर नीचे गिरेहुये वृक्षोंके पकेहुये ... ७० ॥ व बड़े यत्न और सब
समीप जाकर ॥ ८६ । ८९ ॥ व उच्च प्रकार से प्रणामकर ... सेवित जलको बत-
युक्त समस्त तपस्वियों से पूंछा हुआ अपने वृत्तान्तको कहा कि मैं विदूर... अनेक प्रकार

दर्शितंतोयंसमीपेपिमहीपतेः ॥ ८७ ॥ सोपिपीत्वावगाह्यांस्म...
तान्यधः ॥ ८८ ॥ सुमृष्टानिसमादायभक्षयामासवाञ्छया ॥ततस्तृप्तिपराप्र...
ष्टःप्रणम्योच्चैस्तथान्यांश्चमुनीन्क्रमात् ॥ उवाचचनिजांवार्त्तांकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥
श्शुचिस्मयसमन्वितैः ॥ विदूरथोमहीपोहं माहिष्मत्यांकृतास्पदः ॥ ९१ ॥ मृगलिप्सुर्वनेघोरे प्रा...
ततोमेभ्रममाणस्यप्रणष्टाःसर्वसैनिकाः ॥ ९२ ॥ गुल्मैरन्तरिताश्चान्येनजानेहंकथंस्थिताः ॥ आसीद्धयोमम...
ज्जात्यःसर्वगुणान्वितः ॥ ९३ ॥ सोपिकर्म्मविपाकेनपञ्चत्वंसमुपस्थितः ॥ भ्रममाणस्त्वहंप्राप्तःस्वायुश्शेषतयात्र
च ॥ ९४ ॥ तत्प्रोच्यतप्रदेशोयंकियद्दूरेचमेपुरी ॥ ततस्तेतापसाःप्रोचुर्विद्महेनवयंपुरीम् ॥ ९५ ॥ त्वांचदेशंचतेराज
न्कोयंदेशश्चकीर्त्यते ॥ नरेन्द्रैर्नैवनोकार्य्यंनदेशैर्नपुरैर्नृप ॥ ९६ ॥ वनेचरावयंनित्यंशिवाराधनतत्पराः ॥ स्वयंशीर्णा

दारुणवन में प्रवेश किया तदनन्तर भ्रमतेहुये मेरी सब सेना अदृश्य होगई ॥ ९२ ॥ और अन्य सेना झाड़ियों के बीचमें पड़गई मैं नहीं जानताहूं कि वे मनुष्य कैसे स्थित हैं और सब गुणोंसे संयुत व कुलीन मेरा तुरंग नीचे गिरपड़ा है ॥ ९३ ॥ वह अश्वभी कर्मके फलसे मृत्युको प्राप्त होगया और मैं आयुर्बलके शेषसे घूमता हुआ इस स्थानमें पहुँच गया ॥ ९४ ॥ इससे आपलोग यह कहिये कि यह कौन देशहै व मेरी पुरी कितनी दूरहै तदनन्तर वे तपस्वी बोले कि हम पुरीको नहीं जानतेहैं ॥९५॥ हे नृप ! तुमको व तुम्हारे देशको व यह कौनसा देश कहाजाताहै यह नहीं जानतेहैं हे राजन्! नरेश व देश व नगरोंसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है॥९६॥

जाकर उस शीत पवन से बुलाया सा जल्दी पहुँचगया इसके अनन्तर उस नृपति ने मनोहर व सौम्य प्राणियों से सुसेवित आश्रम को देखा ॥ ७७ । ७८ ॥
जो आश्रम कि कुण्ड के किनारे स्थित व सबओर तपस्वियों से संयुत तथा सब ओरसे फूले फले वृक्षोंसे घिराहुआहै ॥ ७९ ॥ व चित्र विचित्र और मधुरशब्द वाले
उत्तम पक्षियों के शब्द से व्याप्तहै वहांपर पर्वतके नीचे तपस्वियोंके वर्गसे सेवित॥ ८० ॥ व सदा शिवजी के धर्ममें तत्पर व शान्त स्वभाववाले मुनिश्रेष्ठ जैमिनिजी
को देखा इसके बाद उस नृपेन्द्रने जाकर व मुनिनायक को प्रणामकर ॥ ८१ ॥ वैसेही और उनके शिष्य जोकि पृथ्वीतल में समीप बैठेथे उनको भी प्रणाम

म्यसत्त्वनिषेवितम् ॥ ७८ ॥ आश्रमंह्रदतीरस्थंतापसैःसर्वतोवृतम् ॥ पुष्पितैःफलितैर्वृक्षैःसमन्तात्परिवेष्टितम् ॥ ७९ ॥
विचित्रैर्मधुरारावैर्नादितंविहगोत्तमैः ॥ तत्रापश्यन्नगाधस्तात्तपस्विगणसेवितम् ॥ ८० ॥ शिवधर्मपरंशान्तं जैमि
निंमुनिसत्तमम् ॥ अथगत्वासराजेन्द्रःप्रणिपत्यमुनीश्वरम् ॥ ८१ ॥ तथान्यानपितच्छिष्यानुपविष्टान्धरातले ॥ ते
दृष्ट्वादृष्टपूर्वंतंराजलक्षणलक्षितम् ॥ ८२ ॥ धूरिधूसरिताङ्गंचभस्मावृतमिवानलम् ॥ मन्यमानामहीपालंविस्मयो
त्फुल्ललोचनाः ॥ ८३ ॥ प्रोचुश्चमधुरैर्वाक्यैराशीर्वादपुरस्सरम् ॥ कुतस्त्वमनुसम्प्राप्तो वनेस्मिञ्जनवर्जिते ॥ ८४ ॥ एका
कीसुकुमाराङ्गः पदातिश्रमविह्वलः ॥ पार्थिवस्येवलिङ्गानिदृश्यन्तेतवभूरिशः ॥ ८५ ॥ नविद्मोनिश्चयंतस्माद्वदागमन
कारणम् ॥ अथोवाचनृपःकृच्छ्रात्पिपासामांप्रबाधते ॥ ८६ ॥ तस्माद्ददथपानीयंयत्पीत्वाकीर्त्तयाम्यहम् ॥ ततस्ते

किया उन सबोंने राजोंके लक्षण से चिह्नित उस नृपको देखकर कि जिसे पहले कभी नहीं देखाथा ॥ ८२ ॥ जिस नृपके अङ्ग धूरि से व्याप्तहैं जैसे राखसे ढकीहुई
अग्निहो पृथ्वीपति जानकर विस्मय से जिन तपस्वियों के नेत्र हर्षित होगये हैं ॥ ८३ ॥ और आशीर्वाद पूर्वक मधुर वचनों से बोले कि इस निर्जनवन में तुम भली
भांति कहांसे प्राप्तहुयेहो ॥ ८४ ॥ अकेले व बहुत सुकुमार अंगोंवाले तथा पैदर चलनेके परिश्रम से विकलहो तुम्हारे बहुत से चिह्न नृपोंके समान देख पड़ते हैं ॥
८५ ॥ हम निश्चय को नहीं जानतेहैं इस लिये तुम आनेका हेतु कहो इसके बाद नृपति बोले कि मुझको प्यास बहुत पीड़ित कररही है ॥८६॥ इससे आपलोग जल

दीजिये जिसको पीकर मैं वर्णन करूं तिसके बाद भूपतिके समीपही उन्होंने जलको दिखा दिया ॥ ८७ ॥ वह नृप भी उसमें प्रवेशकर व जल पीकर प्याससे रहित होगया तदनन्तर नीचे गिरेहुये वृक्षोंके पकेहुये फल जोकि बहुत मधुर थे उनको लेकर इच्छापूर्वक भोजन किया तिसके बाद बडी तृप्तिको प्राप्तहोकर जैमिनिमुनिके समीप जाकर ॥ ८८ । ८९ ॥ व उच्च प्रकार से प्रणामकर समीप बैठगया तैसेही और मुनियों को भी प्रणाम कर हाथ जोड़ेहुये स्थित व पवित्र और विस्मय से संयुक्त समस्त तपस्वियों से पूंछा हुआ अपने वृत्तान्तको कहा कि मैं विदूरथनामक भूपहूं माहिष्मतीपुरीमें मेरा स्थानहै ॥ ९० । ९१ ॥ मृगका अभिलाषी मैंने सेना समेत

दर्शितंतोयंसमीपेपिमहीपतेः ॥ ८७ ॥ सोपिपीत्वावगाह्यास्मिन्वितृष्णःसमपद्यत ॥ ततःफलानिपक्वानितरूणांपति
तान्यधः ॥ ८८ ॥ सुमृष्टानिसमादायभक्षयामासवाञ्छया ॥ततस्तृप्तिंपरांप्राप्यगत्वाजैमिनिसन्निधिम् ॥ ८९ ॥ उपवि
ष्टःप्रणम्योच्चैस्तथान्यांश्चमुनीन्क्रमात् ॥ उवाचचनिजांवार्त्तांकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ९० ॥ सम्पृष्टस्तापसैस्सर्वै
श्शुचिस्मयसमन्वितैः ॥ विदूरथोमहीपोहं माहिष्मत्यांकृतास्पदः ॥ ९१ ॥ मृगलिप्सुर्वनेघोरे प्रविष्टस्सैनिकैस्सह ॥
ततोमेभ्रममाणस्यप्रणष्टाःसर्वसैनिकाः ॥ ९२ ॥ गुल्मैरन्तरिताश्चान्येनजानेहंकथंस्थिताः ॥ आसीद्धयोममाधस्ता
ज्जात्यःसर्वगुणान्वितः ॥ ९३ ॥ सोपिकर्म्मविपाकेनपञ्चत्वंसमुपस्थितः ॥ भ्रममाणस्त्वहंप्राप्तःस्वायुश्शेषतयात्र
च ॥ ९४ ॥ तत्प्रोच्यतप्रदेशोयंकियद्दूरेचमेपुरी ॥ ततस्तेतापसाःप्रोचुर्विद्महेनवयंपुरीम् ॥ ९५ ॥ त्वांचदेशंचतेराज
न्कोयंदेशश्चकीर्त्यते ॥ नरेन्द्रैर्नैवनोकार्य्यंनदेशैर्नपुरैर्नृप ॥ ९६ ॥ वनेचरावयंनित्यंशिवाराधनतत्पराः ॥ स्वयंशीर्णा

दारुणवन में प्रवेश किया तदनन्तर भ्रमतेहुये मेरी सब सेना अदृश्य होगई ॥ ९२ ॥ और अन्य सेना झाड़ियों के बीचमें पड़गई मैं नहीं जानताहूं कि वे मनुष्य कैसे स्थित हैं और सब गुणोंसे संयुत व कुलीन मेरा तुरंग नीचे गिरपड़ा है ॥ ९३ ॥ वह अश्व भी कर्मके फलसे मृत्युको प्राप्त होगया और मैं आयुर्बलके शेषसे घूमता हुआ इस स्थानमें पहुँच गया ॥ ९४ ॥ इससे आपलोग यह कहिये कि यह कौन देशहै व मेरी पुरी कितनी दूरहै तदनन्तर वे तपस्वी बोले कि हम पुरीको नहीं जानतेहैं ॥९५॥ हे नृप ! तुमको व तुम्हारे देशको व यह कौनसा देश कहाजाताहै यह नहीं जानतेहैं हे राजन्! नरेश व देश व नगरोंसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है॥९६॥

हमलोग वनचारी व सदैव शिवजी के आराधन में परायण तथा आपही से गिरेहुये वृक्षों के फल व फूलों को भोजन करते हैं ॥ ९७ ॥ अथवा हे नृपति ! शरीर के स्थित होनेके लिये पत्तोंको भोजन करते हैं मनुष्यों के साथमें सम्भाषण व संसर्ग हम नहीं करते और न देखते हैं किन्तु दूरसे अन्यत्र चलेजाते हैं एक २ वृक्षके नीचे एक दिन या दो दिन स्थित होतेहैं ॥ ९८ । ९९ ॥ जिससे उनसे उपजीहुई ममता न होवै हे नृपेन्द्र ! तुम्हारे कारण हमलोग वनस्पति में इस रात्रिको निवास करते हैं ॥ १०० ॥ प्रातःकाल हम अन्यत्र दूसरे वनमें जावैंगे हे भूपति ! तुमको अकेले व पैदर तथा कुशलहीन व परिश्रम से विकल देखकर हमारे दया

निवृक्षाणांपुष्पाणिचफलानिच ॥ ९७ ॥ भक्षयामोथपत्राणिशरीरस्थितिहेतुना ॥ मानुषैःसहसंसर्गं सम्भाषांचनराधिप ॥ ९८ ॥ नकुर्म्मोनचपश्यामो गच्छामोन्यत्रदूरतः ॥ एकैकस्यतरोरेव दिवसंवादिनद्वयम् ॥ ९९ ॥ तिष्ठामोनभवेद्येनममत्वंतत्समुद्भवम् ॥ कारणात्तवराजेन्द्र निशामेतांवनस्पतौ ॥ १०० ॥ वसामोन्यत्रयास्यामः प्रभातेन्यत्रकानने ॥ एकाकिनंपदातिंच विशस्तंश्रमविह्वलम् ॥ १ ॥ त्वांदृष्ट्वाभूपतेस्माकंदयाजाताततोधिका ॥ एकाकीपार्थिवेन्द्रोयंनयिष्यतिकथंनिशाम् ॥ २ ॥ वनेस्मिन्मन्त्रयित्वैतत्ततोत्रैवव्यवस्थितम् ॥ तस्मादत्रैववनेष्यामःसमेताःशर्वरीमिमाम् ॥ ३ ॥ गन्तव्यंप्रातरुत्थाय ततःसर्वैर्यदृच्छया ॥ एवंसंवदतांतेषांभगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ ४ ॥ अस्ताचलमनुप्राप्तःकुङ्कुमाक्षोदसन्निभः ॥ अथतांस्तापसान्राजा प्रोवाचप्रणतःस्थितः ॥ ५ ॥ सन्ध्याकालःसमायातः साम्प्रतंमुनिसत्तमाः ॥ तस्मात्सन्ध्याविधिःकार्य्यःसर्वैरेवयथोचितम् ॥ ६ ॥ अथतेमुनयस्सर्वेसचराजातथाद्विजाः ॥ चक्रुःसायन्तनंक

उत्पन्न हुई है इससे और भी अधिक दयाहुई है कि अकेले यह नरेन्द्र कैसे रात्रि को व्यतीत करैगा ॥ १ । २ ॥ इस वनमें यह सम्मति करके तदनन्तर यहींपर स्थित होगई इसलिये यहींपर साथही इस रात्रिको हम व्यतीत करैंगे ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त प्रातःकाल उठकर सब अपनी इच्छासे जावैंगे इस भांति उन मुनियों के कहते हुये कुम्कुम चूर्णके समान भगवान् सूर्य्यनारायण अस्ताचल को प्राप्त होगये इसके बाद प्रणाम करतेहुये स्थितहुआ वह नृपति उन तपस्वियोंसे बोला ॥ ४ । ५ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठो ! इस समय सायंकाल प्राप्तहुआ इसलिये सबोंको भी यथायोग्य सन्ध्योपासन विधि करना चाहिये ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त उन समस्त

मुनि व राजा तथा ब्राह्मणोंने सन्ध्योपासन कर्मकोकिया जैसा कि प्राचीन पुरुषोंने उद्देश कियाहै ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रियवचनवाले कामीपुरुषों से व विशेषकर असती स्त्रियों से कामिनी चाहीहुई रात्रि भलीभांति प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ जिस रात्रिको एकही साथ घुघुवा व चकवाक अमृतसमुद्र की वेलाके समान व विषवृक्ष की लताके समान देखते हैं ॥९॥ जैसे किसानलोग शोभनवृष्टि को चाहते हैं वैसेही घुघुवा व राक्षस,चोर, कामीपुरुष तथा कुलमर्य्याद को नष्ट करनेवाली स्त्रियां उत्कण्ठित होकर सदैव जिस रात्रिकी इच्छा करती हैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

र्म्मयथोद्दिष्टंपुरातनैः॥७॥कामिभिःकामिनीलोकैःप्रियोक्तैरभिवाञ्छिता ॥ असतस्त्रीभिर्विशेषेणसम्प्राप्तारजनीततः॥८॥ पीयूषार्णववेलेव विषवृक्षलतेवच॥ उलूकैश्चक्रवाकैश्चयुगपद्याविलोक्यते ॥९॥ उलूकाराक्षसाश्चौराःकामिनःकुलटाङ्गनाः ॥ यांवाञ्छन्तिसदासोत्काःसुवृष्टिमिवकार्षुकाः ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्तस्यभूपस्यसैनिकाः ॥ केचिच्चदैवयोगेनश्वापदैरर्धभक्षिताः ॥१॥ क्षुत्पिपासातुरा दीनादुःखेनमहतान्विताः ॥ पदपद्धतिमार्गेण येनयातस्सभूपतिः ॥ २ ॥ तेदृष्ट्वापार्थिवंतत्र दिष्ट्यादिष्ट्येतिसादरम् ॥ ब्रुवन्तःपादयोस्तस्य पतिताहर्षसंयुताः ॥ ३ ॥ ततस्तस्यनरेन्द्रस्यव्यसनंसैन्यसम्भवम् ॥ प्रोचुश्चैवयथादृष्टमनुभूतं यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥ अथतेतापसास्सर्वे सचराजाससेवकः ॥ प्रसुप्ताःपादपस्याधःपर्णान्यास्तीर्य्यभूतले ॥ ५ ॥ ततस्तेषां

दो० ॥ ऊनविंश अध्यायमें नृपति विदूरथ जाय । करिकै प्रेतनकी गया स्वर्गदीन पहुंचाय ॥ सूतजी बोले कि उसी समय उस नृपतिकी सेनाके मनुज प्राप्त हुये जिनमें दैवयोगसे वनजन्तुओं से कोई अधखाये हुये हैं ॥ १ ॥ क्षुधा व प्याससे आकुल व दीन तथा बड़े दुःखसे संयुत वे उस भूपति के चरण चिह्नित मार्गसे प्राप्त हुये कि जिस राहसे राजा आया था ॥ २ ॥ वे उस स्थान में राजाको देखकर व आदर पूर्वक हर्षसे संयुत अहोभाग्य है २ यह कहते हुये उसके चरणों में गिर पड़े ॥ ३ ॥ उसके उपरान्त उन्होंने सेनामें उपजेहुये दुःखको जैसा कि देखा व सुना व भोग किया था वैसाही उस नरेशसे कहा ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वे सब

तपस्वी व नौकरों समेत वह राजा वृक्षके नीचे पृथ्वीतलमें पत्तोंको बिछाकर सोरहे ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस वनमें उन सबको सोतेहुये महात्माओंकी वह रात्रि सुखही से व्यतीत हुई ॥ ६ ॥ तिसके बाद उस भूपति ने प्रातःकाल उठकर दिनके पहले भागके स्नान, सन्ध्यादि कर्म्मोंको कियेहुये जैमिनि मुनिको उच्चप्रकारसे प्रणामकर और बार २ आज्ञा लेकर ॥ ७ ॥ व माहिष्मती नामक पुरीको भलीभांति उद्देश कर व धीरे २ पन्थ पूंछकर अपने उन सेवकों समेत अपनी पुरी प्रति यात्रा किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अपने गेहमें प्राप्तहोकर उस भूपति ने कुछ समय विश्रामकर इसके बाद शीघ्रही पवित्र गया शिर क्षेत्रको यात्रा किया ॥ ९ ॥ व समय

प्रसुप्तानां सर्वेषांतत्रकानने ॥ अतिक्रान्तासुखेनैवरजनीसामहात्मनाम् ॥ ६ ॥ ततःसप्रातरुत्थायकृतपूर्वाह्णिकक्रियः ॥ तंमुनिंप्रणिपत्योच्चैरनुज्ञाप्यमुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ निजैस्तैःसेवकैस्सार्द्धंप्रस्थितःस्वपुरींप्रति ॥ माहिष्मतींसमुद्दिश्यपृष्ट्वामार्गंशनैःशनैः ॥ ८ ॥ ततोनिजगृहंप्राप्यकिञ्चित्कालंमहीपतिः ॥ विश्रम्यप्रययौपश्चात्तूर्णंपुण्यंगयाशिरः ॥ ९ ॥ तत्रकालेनसम्प्राप्यस्नात्वाधौताम्बरःशुचिः ॥ मांसादायददौश्राद्धंश्रद्धापूतेनचेतसा॥१०॥अथासौपृथिवीपालःस्वप्रान्तेचददर्शतम् ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ११ ॥ विमानवरमारूढंस्तूयमानंचकिन्नरैः ॥ १२ ॥ मांसादउवाच ॥ प्रसादात्तवभूपालमुक्तोहंप्रेतयोनितः ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामिसाम्प्रतंत्रिदिवालयम् ॥ १३ ॥ ततःसप्रातरुत्थायहर्षाविष्टोमहीपतिः॥विदैवतंसमुद्दिश्यचक्रेश्राद्धंयथोचितम् ॥१४॥ सोपितेनैवरूपेण तस्यसन्दर्शनंगतः ॥ स्वप्रा

से वहां प्राप्तहोकर स्नानकर पवित्र व धौतवस्त्र पहने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उसने मांसादके लिये श्राद्धपिण्ड दिया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उस भूपाल ने शयनके बाद उस मांसादको देखा जोकि उत्तम विमानपर सवार और किन्नर जिसकी स्तुति करते हैं व उत्तम माला तथा वसनको धारणकिये और उत्तम सुगन्ध वस्तुका लेपन किये है ॥ ११ । १२ ॥ मांसाद बोला कि हे भूपाल ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं प्रेतयोनिसे छूटगया तुम्हारे लिये कल्याणहो इस समय मैं स्वर्गको जाऊंगा ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस भूपति ने प्रातःकाल उठकर हर्षसंयुत विदैवतको उद्देशकर यथायोग्य श्राद्ध किया ॥ १४ ॥ तब वह विदैवत भी उसी रूपसे शयन

के बाद उस भूपतिके दर्शन में प्राप्तहुवा और मांसादके सदृश कहकर स्वर्गको चलागया ॥ १५ ॥ तिसके उपरान्त तीसरा दिन प्राप्तहोनेपर उस भूपति ने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके पहलेके समान कृतघ्नका श्राद्ध किया ॥ १६ ॥ तब बड़े दुःखसे संयुत वह भी उस भूपति के सोते में उसी प्रेत रूपसे आया ॥ १७ ॥ कृतघ्न बोला कि हे महाराज ! तड़ाग व द्रव्यका चोर व कृतघ्न तथा पाप कर्मकारी मेरेकी गति नहीं हुई ॥ १८ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! जिसप्रकार मेरी मुक्तिहोय आज तुम वैसा ही करो व सत्य वाक्य में तत्परहो ॥ १९ ॥ सत्यही परंब्रह्म है सत्यही परम तपस्याहै सत्यही उत्तम ज्ञानहै सत्यही परमशास्त्र है ॥ २० ॥ व सत्य से पवन चलता है

न्तेभूमिपालस्यतद्वचोक्त्वादिवंगतः ॥ १५ ॥ ततोजातेतृतीयेह्नि कृतघ्नस्यमहीपतिः ॥ चक्रेश्राद्धंयथापूर्वं श्रद्धापूतेन
चेतसा ॥ १६ ॥ ततःसोपिसमायातस्तस्यस्वप्नेमहीपतेः ॥ तेनैवप्रेतरूपेणदुःखेनमहतावृतः ॥ १७ ॥ कृतघ्नउवाच ॥
नमेगतिर्महाराजसञ्जातापापकर्मिणः ॥ तडागवित्तचौरस्यकृतघ्नस्यतथैवच ॥ १८ ॥ तस्मात्सञ्जायतेमुक्तिर्यथामेपा
र्थिवोत्तम ॥ तथैवत्वंकुरुष्वाद्यसत्यवाक्यपरोभव ॥ १९ ॥ सत्यमेवपरंब्रह्मसत्यमेवपरंतपः ॥ सत्यमेवपरंज्ञानंसत्यमेव
परंश्रुतम् ॥ २० ॥ सत्येनवायुर्वात्येव सत्येनतपतेरविः ॥ सागरःसत्यवाक्येनमर्य्यादांनविलङ्घयेत् ॥ २१ ॥ तीर्थसे
वातपोदानंस्वाध्यायोगुरुसेवनम् ॥ सर्वंसत्यविहीनंचव्यर्थंसञ्जायतेयतः ॥ २२ ॥ सर्वेधर्म्माधृताःपूर्वमेकतोन्यत्रवैकृ
तम् ॥ तुलायांकौतुकाद्देवैर्जातंतत्रकृतंगुरु ॥ २३ ॥ तस्मात्सत्यंपुरस्कृत्यमांतारयमहामते ॥ एतत्तेपरमंश्रेयस्तपसो
पिभविष्यति ॥ २४ ॥ विदूरथउवाच ॥ कथंतेजायतेमुक्तिर्वदमेप्रेतसत्वरम् ॥ करोमियेनतत्कर्मयद्यपिस्यात्सुदुष्कर

सत्यसे सूर्य्यनारायण तपते हैं सत्य वाक्यसे समुद्र अपनी सीमाको उल्लङ्घन नहीं करताहै ॥ २१ ॥ जिसलिये कि तीर्थ सेवन व तपस्या व दान तथा वेदपाठ यह सब सत्य से रहित निरर्थक होजाताहै ॥ २२ ॥ पुरातन समय देवतोंने कौतुक से तराजूमें एकओर समस्त धर्मोंको धरा और दूसरे ओर सत्यको धरा उसमें सत्यही गरुआ हुआ ॥ २३ ॥ हे महामते ! इसलिये आप सत्यको आगेकर मुझे तारदीजिये यह तुम्हारे तपका भी उत्तम कल्याण होगा ॥ २४ ॥ विदूरथ बोले कि हे प्रेत !

तुम्हारी मुक्ति किसभांति होगी यह जल्दी कहो जिससे मैं उस कामको करूं यदपि कठिनभी होवै ॥२५॥ प्रेत बोला कि हे भूप ! चमत्कार नगर में श्रीहाटकेश्वरजीके क्षेत्रमें कलियुग से डराहुआ और धूरिसे आच्छादित गयाशिरतीर्थ है ॥ २६ ॥ जो कि पकरिया के वृक्षके नीचे सबओर से दर्भस्थान व वनमें उपजेहुये नाडीकेशाक व अनेक तिलवृक्षों से उपलक्षित है ॥ २७ ॥ वहां जाकर तिल अन्नसे व शाक तथा कुशोंसे तुम जल्दी श्राद्धपिण्ड दान को करो जिससे मेरी मुक्ति होजाय ॥ २८ ॥ सदैव दुःखित उस प्रेतके उस वचनको सुनकर दया संयुत वह भूप वहांगया जहां कि पकरिया नामकवृक्ष है ॥ २९ ॥ जैसा प्रेतने कहाथा वैसेही शाक व तिल तथा कुशों

म् ॥ २५ ॥ प्रेतउवाच ॥ चमत्कारपुरेभूपश्रीक्षेत्रेहाटकेश्वरम् ॥ आस्तेपांशुभिराच्छन्नंकलेर्भीतंगयाशिरः ॥ २६ ॥ अ
धस्तात्प्लक्षवृक्षस्यदर्भस्थानैःसमन्ततः ॥ कालशाकैस्तथानेकैस्तिलैश्चारण्यसम्भवैः ॥ २७ ॥ तत्रगत्वातिलैस्त्वन्नै
श्शाकैश्चैवकुशैस्तथा ॥ श्राद्धंदेहिद्रुतंयेनमुक्तिःसञ्जायतेमम ॥ २८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासदार्तस्यदयान्वितः ॥ ज
गामतत्रयत्रास्ते सवृक्षःप्लक्षसञ्ज्ञकः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाशाकांस्तिलांस्तांश्चदर्भांस्तेनयथोदितान् ॥ अखनत्तत्रदेशेचज
लार्थेलघुकूपिकाम् ॥ ३० ॥ ततःकृतघ्नमुद्दिश्यश्राद्धंचक्रेयथोदितम् ॥ आनीयब्राह्मणाञ्छ्रेष्ठान्वेदवेदाङ्गपारगान् ॥
३१ ॥ कृतमात्रेततःश्राद्धे दिव्यरूपधरःपुमान् ॥ विमानवरमारूढो विदूरथमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ मुक्तोहंत्वत्प्रसादाच्च प्रे
तत्वाद्दारुणाद्विभो ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामि साम्प्रतंत्रिदशालयम् ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिसातत्र कूपिका
ख्यातिमागता ॥ पितॄणांपुष्टिदानित्यंगयाशीर्षसमुद्भवा ॥ ३४ ॥ प्रेतपक्षस्यदर्शायांयस्तस्यांश्राद्धमाचरेत् ॥ काल

को देखकर उसी स्थान में पानीके लिये छोटेकूप को खनन किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर वेद व वेदाङ्गके पार जानेवाले उत्तम ब्राह्मणों को लाकर उस भूपने जैसा कहा है वैसाही कृतघ्न को उद्देशकर श्राद्ध किया ॥ ३१ ॥ तिसके उपरान्त श्राद्ध करनेसे उत्तम विमानपर सवार दिव्यरूपधारे वह पुरुष इसके अनन्तर विदूरथसे बोला ॥ ३२ ॥ कि हे प्रभो ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं कठिन प्रेतभाव से छूटाहूं तुम्हारा कल्याणहोवै इससमय मैं स्वर्गको जाऊंगा ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि तबसे लगाकर गयाशिरक्षेत्र में उपजा हुआ वह लघुकूप सदैव पितरों को पुष्टिदायक प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! उस कूपके समीप पितरपक्ष की अमावस को कालशाक से

व वनमें उत्पन्न हुये तिलों से व बनायेहुये अन्न व कुशोंसे जो पुरुष श्रद्धा संयुत होकर श्राद्ध करता है वह उस क्षेत्रमें कृतघ्नवाले पितर तीर्थसे मनुष्य फल को प्राप्त होताहै ॥ ३५ । ३६ ॥ अग्निष्वात्त व बर्हिषद तथा वे आज्यप व सोमप संज्ञक पितरोंके समूह उस क्षेत्रमें भलीभांति स्थित रहते हैं ॥ ३७ ॥ इसलिये सब उपाय से उस तीर्थमें श्राद्धके समयमें या असमय में पितरों की प्रसन्नता के लिये सदैव भलीभांति श्राद्धकरै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयाशिरःकूपिकामाहात्म्यंनामएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

शाकेनविप्रेन्द्रास्तथारण्योद्भवैस्तिलैः ॥ ३५ ॥ कृतान्नैश्चतथादर्भैःसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ सप्राप्नोतिफलंतस्मिन्कृतघ्न पितृतीर्थतः ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताःपितृगणास्तथाबर्हिषदश्चते ॥ तत्रसन्निहितानित्यमाज्यपास्सोमपास्तथा ॥ ३७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनश्राद्धंतत्रसमाचरेत् ॥ कालेवायदिवाकालेपितॄणांतुष्टयेसदा ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येगयाशिरःकूपिकामाहात्म्यंनामैकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूतउवाच ॥ तत्रदाशरथीरामोवनवासायदीक्षितः ॥ भ्रममाणोधरापृष्ठेसीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ १ ॥ समायातो द्विजश्रेष्ठायत्रसापितृकूपिका ॥ तृषार्त्तश्चश्रमार्तश्चनिषसादधरातले ॥ २ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो भगवान्दिननायकः ॥ अस्ताचलंजपापुष्पसन्निभोद्विजसत्तमाः ॥ ३ ॥ ततःप्लक्षनगाधस्तात्पर्णान्यास्तीर्य्यभूतले ॥ सायन्तनंविधिंकृत्वा सुष्वापरघुनन्दनः ॥ ४ ॥ अथावलोकयामास स्वप्नेदशरथंनृपम् ॥ यःपूर्वंप्रिययालापसंसक्तंहृष्टमानसम् ॥ ५ ॥ ततःप्र

दो० ॥ लषण सियायुत रामजी गया कीन जिमिजाय । अरु मार्कण्ड मिलाप पुनि विंशति के अध्याय ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! दशरथ के पुत्र रामजी वनवासके लिये दीक्षामें प्राप्त सीता व लक्ष्मण समेत धरातलमें घूमतेहुये वहांपर आये जहां कि वह लघुकूप है प्यास व परिश्रम से विकल धरातलमें बैठगये ॥ १ । २ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! उसीसमय गुडहर के फूलके समान लालरंगवाले भगवान् सूर्य्यनारायणजी अस्ताचल में प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त रघुनाथजीने सन्ध्योपासन विधि करके पकरियावृक्ष के नीचे पृथ्वीतलमें पत्तोंको बिछाकर शयन किया ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर उन रघुनाथजी ने स्वप्नमें दशरथ नृपति को देखा कि जो

पहिले प्रसन्न मनवाले व प्रियाके सम्भाषण में तत्पर थे ॥ ५ ॥ तिसके उपरान्त प्रातःकाल निर्मल सूर्य्यमण्डल उदय होतेहुये रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर वह समस्त वृत्तान्त कहा ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! मैंने पिताजी को स्वप्नमें देखा कि अत्यन्त प्रसन्न मानस व श्वेतमाला व चन्दनादि लेपन कियेहुये तथा प्यारीके सम्भाषण में तत्परहैं ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस स्वप्नका कैसा फलहोगा उसको तुम अवश्य कहो क्योंकि हमको बड़ा आश्चर्य है ॥ ८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे नृप ! श्राद्धपिण्ड की कामनावाले जो पितर वृद्धिको देखते हैं वे निश्चयकर स्वप्नमें पुत्रोंकी दृष्टिमें प्राप्त होतेहैं हमलोगों ने यह सुनाहै ॥ ९ ॥ जिससे कि इस छोटे

भातेनिर्मलेचोद्गतेरविमण्डले ॥ विप्रानाहूयतत्सर्वंकथयामासराघवः ॥ ६ ॥ अथस्वप्नेमयाविप्राःप्रियालापपरःपिता ॥ अतिहृष्टमनादृष्टश्श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ७ ॥ तत्कीदृक्परिणामोस्यस्वप्नस्यद्विजसत्तमाः ॥ भविष्यतिप्रजल्पध्वंप रंकौतूहलंहिनः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ पितरःश्राद्धकामायेवृद्धिंपश्यन्तिवान्नृप ॥ तेस्वप्नेदर्शनंयान्तिपुत्राणामितिनः श्रुतम् ॥ ९ ॥ यदस्यांकूपिकायांच स्वयमेवगयास्थिता ॥ तेनत्वयापितादृष्टःस्वप्नेश्राद्धस्यवाञ्छकः ॥ १० ॥ तस्मात्कु रुरघुश्रेष्ठश्राद्धमत्रयथोदितम् ॥ नीवारैःशाकमूलैश्चतथारण्योद्भवैस्तिलैः ॥ ११ ॥ अथैवमन्त्रयामासतान्विप्रान्रघुस त्तमः ॥ श्राद्धेषुश्रद्धयायुक्तःप्रसादःक्रियतामिति ॥ १२ ॥ बाढमित्येवतेचोक्त्वास्नानार्थंद्विजसत्तमाः ॥ गताःसर्वेसुसंहृ ष्टाःस्वकीयानाश्रमान्प्रति ॥ १३ ॥ अथतेषुप्रयातेषुरामचन्द्रोरघूद्वहः ॥ प्रोवाचलक्ष्मणंपार्श्वे विनयावनतंस्थितम् ॥ १४ ॥ शाकमूलफलान्याशुश्राद्धार्थंसमुपानय ॥ सौमित्रानयवैदेही स्वयंपचतिभामिनी ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणस्तू

कूपमें आपही गया स्थितहै इसलिये स्वप्नमें तुमने श्राद्धके मनोरथवाले पिताजी को देखाहै ॥ १० ॥ हे रघूत्तम ! इससे यहांपर जैसा कहाहै वैसेही नीवार याने तिन्नी फसाही और वनमें उपजेहुये तिलोंसे तुम श्राद्धकरो ॥ ११ ॥ इसके बाद श्रद्धासे संयुत रघुनाथजी ने उन ब्राह्मणों का श्राद्धमें निमन्त्रण किया व यह कहा कि प्रसन्नता कीजाय ॥ १२ ॥ व सब श्रेष्ठ ब्राह्मण हां यह कहकर स्नानके लिये बहुत प्रसन्न होकर अपने आश्रमों को चलेगये ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर उन मुनियों के जानेपर रघुवंशनाथ रामचन्द्रजीने बगलमें विनय से झुकेखड़ेहुये लक्ष्मणजी से कहा ॥ १४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! श्राद्धके लिये शाक, मूल व फलोंको जल्दी लाइये

यह सुनकर लक्ष्मणजी शीघ्रही वनको गये व श्राद्धके लिये शीघ्रही अनेक प्रकार के फलोंको लाये॥
जिनको परमसुन्दरी जानकीजी आपही पकावैंगी ॥ १५ ॥ आंवले, आम, ककरी, इंगुदी, करील, कैथा, तथा और बहुत से फलोंको लाये ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस श्राद्धके लिये विनय से संयुक्त व पतिव्रता जानकीजी
१६ ॥ ने रामचन्द्रजी की आज्ञा से सब फलादिकों को पकाया ॥ १८ ॥ तिसके उपरान्त वे द्विजोत्तम दिनके कर्मकाण्ड को कियेहुयेव रामचन्द्रजी की भक्तिसे भलीभांति
बुलायेगये कुतुप समय याने दिनके पन्द्रह भागोंके आठवें भागके प्राप्त होनेपर आगये ॥ १९ ॥ उसीसमय सीताजीने पकरियावृत्त के अन्तर याने आड़ में

णिजगामारण्यमेवहि ॥ श्राद्धार्थमानिनायाशु फलानिविविधानिच ॥ १६ ॥ धात्रीफलानिचाम्राणिचिर्भिटानीङ्गुदा
निच ॥ करीराणिकपित्थानितथैवान्यानिभूरिशः ॥ १७ ॥ ततश्चश्रपयामासतदर्थंजनकात्मजा ॥ रामादेशात्स्वयंसा
ध्वी विनयेनसमन्विता ॥ १८ ॥ ततश्चकुतुपेप्राप्तेकालेतेद्विजसत्तमाः ॥ कृताह्निकास्समायातारामभक्तिसमाहुताः ॥
१९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसीताप्लक्षवृक्षान्तरेस्थिता ॥ आत्मानंगोपयामासयथावेत्तिनराघवः ॥ २० ॥ सतांसीतेतिसीतेति
व्याहृत्याथमुहुर्मुहुः ॥ स्त्रीधर्म्मिणीतिमत्वातु लक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ विप्रलक्ष्मणशुश्रूषां विप्राणांश्राद्धसम्भवा
म् ॥ पादप्रक्षालनाद्यान्त्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ बाढमित्येवसप्रोक्त्वालक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ चक्रेसर्वंतथाकर्म्म
यथानारीविचक्षणा ॥ २३ ॥ ततोनिवर्त्तितेश्राद्धेब्राह्मणेषुगतेष्वथ ॥ जनकस्यसुतासाध्वी तत्क्षणात्समुपस्थिता ॥
२४ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःसीतां कोपसंरक्तलोचनः ॥ प्रोवाचपरुषैर्वाक्यैर्भर्त्समानोमुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥ आयातेषुद्विजेष्वत्र श्रा

खड़ीहुई जिस प्रकार कि रघुनाथजी न जानैं वैसेही अपना को छिपालिया ॥ २० ॥ वह रामचन्द्रजी उसे बारंवार हे सीते, हे सीते ! ऐसा पुकार कर स्त्री धर्मवती है
यह मानकर फिर लक्ष्मणजी से यह बोले ॥ २१ ॥ कि हे बुद्धिमन् लक्ष्मण ! पादप्रक्षालनसे लगाकर भोजन पर्य्यन्त श्राद्धसे उपजी हुई ब्राह्मणों की सेवा को तुम
यथायोग्य करने के योग्य हो ॥ २२ ॥ शुभलक्षणवाले वह लक्ष्मणजी ने हां यही कहकर वैसाही सब काम किया जैसे परम चतुर स्त्री करती है ॥ २३ ॥ तदन-
न्तर श्राद्ध निवृत्त होते हुये ब्राह्मणोंके जानेपर इसके अनन्तर उसी क्षण पतिव्रता जनककी कन्या समीप में प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ उन सीताजी को क्रोधसे लाललोचन

वाले श्रीरघुनाथजी देखकर वारंवार निन्दा करते हुये कठोर वचनोंसे बोले ॥ २५ ॥ कि हे पापे ! श्राद्धसमय समीप प्राप्त होनेपर यहां ब्राह्मणों को आतेहुये मुझको छोड़कर तुम दूर कहां चलीगई रहो यह कहो ॥ २६ ॥ यह कुलवती स्त्रियों को न चाहिये व इस शून्य वनमें विशेषकर दूर विहार करनेके लिये अयोग्यहै हे मैथिलि ! इस लिये तुम त्यागकरनेके योग्य हो ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन रामचन्द्रजीके उस वचनको सुनकर जनकजीसे उपजीहुई वे जानकीजी डरपीहुई व कांपते हुये अङ्गोंवाली लरखराती हुई वाणीको बोलीं ॥ २८ ॥ कि हे रघूत्तम ! इस काममें मुझे तुम निन्दा करनेके लिये नहीं योग्य हो जिससे मैं इस स्थानसे चली गईथी उसको सुनो ॥ २९ ॥

द्धकालउपस्थिते ॥ क्वगतावदपापेत्वं मांपरित्यज्यदूरतः ॥ २६ ॥ नैतद्युक्तंकुलस्त्रीणां विशेषादत्रकानने ॥ विहर्तुंदूरतः शून्येतस्मात्त्याज्यासिमैथिलि ॥ २७ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभीतासाजनकोद्भवा ॥ उवाचवेपमानाङ्गी प्रस्खलन्तींगिरांततः ॥ २८ ॥ नमामर्हसिकार्य्येऽस्मिन्गर्हितुंरघुसत्तम ॥ यस्मादहमतिक्रान्तास्थानादस्माच्छृणुष्वतत् ॥ २९ ॥ पितातवमयादृष्टःसाक्षाद्दशरथःस्वयम् ॥ ब्राह्मणस्यशरीरस्थोद्वितीयस्यपितामहः ॥ ३० ॥ पितुःपितामहोन्यश्चतृतीयस्यरघूत्तम ॥ त्रयाणांचतथान्येषां त्रयोन्येनृपसत्तम ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणानांमयादृष्टाश्शरीरस्थाःसुहर्षिताः ॥ मातामहानहंमन्ये तानपित्रीनपिस्फुटम् ॥ ३२ ॥ ततोहंलज्जयानष्टादृष्ट्वाश्वशुरसङ्गमात् ॥ येनभुक्तानिभोज्यानिपुरामृष्टान्यनेकशः ॥ ३३ ॥ तथास्वाद्यानिलेह्यानि चोष्याणिचविशेषतः ॥ पितातवकथंसोद्य कषायाणिकटूनिच ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणके शरीर में स्थित तुम्हारे पिता साक्षात्दशरथजीको व दूसरे ब्राह्मणके शरीर में तुम्हारे बाबा अजको मैंने आपही देखा ॥ ३० ॥ हे रघूत्तम ! तीसरे विप्रके शरीर में प्रपितामह (परबाबा) को देखा हे नृपोत्तम ! वैसेही और तीन ब्राह्मणोंके शरीरों में प्राप्त बहुत प्रसन्न अन्य तीन पुरुषोंको मैंने देखाहै उन तीनोंको भी मैं प्रकटही मातामह (नाना इत्यादि) मानतीहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर देखकर श्वशुर जी के समागमसे मैं वृक्षके अन्तर में अदृश्य होगई जिन श्वशुर जीने पुरातन समय में अनेकों प्रकारके भोजन भोग लगाये हैं ॥ ३३ ॥ तथा विशेषकर स्वादिष्ठ लेह्य (चाटनेवाले भोजन) व चोष्य (चूसने वाले) भोजन किये हैं हे प्रभो !

तुम्हारे वह पिता जी आज मुझसे अपने हाथसे दिये हुये कसैले व कड़वे भोजन कैसे करैंगे हे विभो ! इस कारण मैं तुम्हारे समीप से अदृश्य होगई ॥ ३४ । ३५ ॥
श्राद्धसमय भलीभांति प्राप्त होनेपर भी मैं अदृश्य होगई यह मैं सत्य से अपनी शपथ करतीहूं यह सुनकर भलीभांति प्रसन्नमनवाले, कमलदललोचन, राम-
चन्द्र जी ॥ ३६ ॥ वारंवार लिपटकर बहुत अच्छा २ यह उससे कहा तदनन्तर लक्ष्मणसंयुत रामचन्द्र जी आपही भोजन कर ॥ ३७ ॥ व सायङ्काल प्राप्तहोनेपर
सन्ध्योपासन कर्म को कर लषणजीसे बोले कि हे वत्स ! पृथ्वीतल में पत्तों को बिछाकर ॥ ३८ ॥ शय्या रचो व पांय पवित्र करने के लिये उत्तमजलको भलीभांति

भक्षयिष्यतिदत्तानिस्वहस्तेनमयाविभो॥ एतस्मात्कारणान्नष्टात्वत्समीपादहंप्रभो ॥ ३५ ॥ श्राद्धकालेपिसम्प्राप्तेस
त्येनात्मानमालभे ॥ तच्छ्रुत्वासम्प्रहृष्टात्मा रामोराजीवलोचनः ॥ ३६ ॥ साधुसाध्वितितांप्राह परिष्वज्यमुहुर्मुहुः ॥
ततोभुक्त्वास्वयंरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ ३७ ॥ सायाह्नेसमनुप्राप्तेसन्ध्याकार्य्यंविधायच ॥ प्रोवाचलक्ष्मणंवत्सपर्णा
न्यास्तीर्य्यभूतले ॥ ३८ ॥ शय्यांकुरुसमानीय पादशौचायसज्जलम् ॥ ततःकोपपरीतात्मा सौमित्रिःप्राहराघवम् ॥
३९ ॥ नाहंशय्यांकरिष्यामिपादप्रक्षालनंनच ॥ तथान्यदपियत्किञ्चित्कर्म्मस्वल्पमपिप्रभो ॥ ४० ॥ प्रेष्यत्वेनरघुश्रेष्ठ
सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ सीतायाःकिंसमादेशंनकिञ्चित्सम्प्रयच्छसि ॥ ४१ ॥ अपिस्वल्पतरंराममयात्वंकिंकरिष्यसि ॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविकृतंचापिराघवः ॥ ४२ ॥ तूष्णींबभूवमेधावीहास्यंकृत्वामनाक्ततः ॥ ततःस्वयंसमुत्थायकृत्वा
स्वस्तरकंशुभम् ॥ ४३ ॥ सीतयाक्षालिताङ्घ्रिस्तुसुष्वापतदनन्तरम् ॥ लक्ष्मणोपिविदूरस्थःकोपसंरक्तलोचनः ॥ ४४ ॥

लावो तदनन्तर कोप से संयुत मनवाले लषणजीने रघुनाथजीसे कहा ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! दासभाव से मैं न शय्या करूंगा न पाद प्रक्षालन करूंगा तथा और भी जो
कुछ थोड़ाभी कामहोगा वह न करूंगा ॥ ४० ॥ हे रघूत्तम ! यह मैंने सत्य कहाहै तुम जानकीजीको कुछ आज्ञा क्यों नहीं देतेहो ॥ ४१ ॥ हे रामचन्द्रजी ! बहुत थोड़ीभी
आज्ञा सीताजी को नहीं देतेहो तुम हमसे क्या करोगे रामचन्द्रजी उन लषणके उस बिगड़ेहुये भी वचन को सुनकर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान् रामचन्द्रजी
थोड़ा हँसकर चुपहोरहे तिसके उपरान्त आपही उठकर उत्तम बिछौना बिछाकर ॥ ४३ ॥ व जानकीजी से पांव धुलाकर तिसके बाद सोरहे और क्रोधसे अरुणनेत्र

वाले दूरमें खड़ेहुये लषणलालभी ॥ ४४ ॥ वृक्षकी जड़में भलीभांति टिककर चित्त में यह चिन्तन करते हुये सोरहे कि सोतेहुये इन रामचन्द्रजी को मारकर व जानकीको अपनी स्त्री बनाकर॥ ४५ ॥क्या मैं अपने स्थानको चलाजाऊं यातो दूर परदेश चलाजाऊं ऐसा बहुत भांति उन लक्ष्मणजीको चिन्तन करतेहुये ॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! बड़े क्लेशसे वह रात्रि व्यतीत होगई तदनन्तर उस यज्ञमें किसीभांति निश्चय उपजा ॥ ४७ ॥ कोपसे नष्टनिद्रावाले लषणजी बार बार उष्णता समेत सांस ले रहे हैं तदनन्तर जब निर्मल प्रातःकाल हुआ तब दिनके प्रथमकालके कर्मकाण्डको किया ॥ ४८ ॥ व रघुनाथजीने जानकीजीको भलीभांति लेकर दक्षिण

वृक्षमूलंसमाश्रित्यसुप्तश्चित्तेविचिन्तयन् ॥ हत्वैनंराघवंसुप्तंसीतांपत्नींविधायच ॥ ४५ ॥ किंगच्छामिनिजंस्थानंविदेशं वापिदूरतः ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यबहुधालक्ष्मणस्यसा॥४६॥व्यतिक्रान्तानिशाविप्राःकृच्छ्रेणमहताततः ॥ ततश्चनिश्चयोजज्ञे तस्मिन्यज्ञेकथञ्चन ॥ ४७ ॥ कोपात्प्रणष्टनिद्रस्यसोष्णंनिश्वसतोमुहुः ॥ ततःप्रभातेविमलेकृतपूर्वाह्णिकक्रियः ॥ ४८ ॥ रामःसीतांसमादायप्रस्थितो दक्षिणांदिशम् ॥ लक्ष्मणोपिधनुःसज्यंकृत्वासन्धायशायकम् ॥ ४९ ॥ अनुव्रजतिपृष्ठस्थस्तस्यच्छिद्रंविलोकयन् ॥ ततोगोकर्णमासाद्यप्रणम्यचमहेश्वरम् ॥ ५० ॥ प्रतस्थेराघवोयावत्सौमित्रिस्तावदागतः ॥ बाष्पपर्य्याकुलाक्षश्चव्रीडयाधोमुखःस्थितः ॥ ५१ ॥ प्रणम्यशिरसारामंततःप्राहसुदुःखितः ॥ कुरुमेनुग्रहंनाथस्वामिद्रोहसमुद्भवम् ॥ ५२ ॥ अतिपापस्यदुष्टस्यकृतघ्नस्यरघूत्तम ॥ उत्तराणिविरुद्धानितवदत्तानिभूरि

दिशा को यात्रा किया लषणलालभी धनुष चढ़ाकर व शरासनमें बाणको संधान कर ॥ ४९ ॥ उन रघुनाथ जीके पृष्ठदेशमें स्थित होकर छिद्र याने मारने का अवसर देखते हुये पाछे जारहे हैं तदनन्तर गोकर्णनाथ जीके क्षेत्र में जाकर व महादेवजी को प्रणामकर ॥ ५० ॥ श्रीरघुनाथ जीने जबतक प्रस्थान किया तबतक लक्ष्मणजी आगये जो लज्जा से नीचे मुख किये खड़े हैं व आंसुओंसे जिनके नेत्र सबओर व्याप्तहैं ॥ ५१ ॥ ऐसे लषणजीने दुःखित रघुनाथजीको शिरसे प्रणामकर कहा कि हे नाथ स्वामिद्रोह से उपजे अनुग्रह को मेरे ऊपर करो ॥ ५२ ॥ हे रघूत्तम ! अतिपापी व दुष्ट तथा कृतघ्न जो मैंहूं उसके ऊपर दया करो क्योंकि तुम्हारे

प्रतिकूल मुझसे बहुत प्रत्युत्तर दिये गये ॥ ५३ ॥ व विनाअपराधसे मैंने मारनेका उपाय चिन्तन किया तदनन्तर रामचन्द्र भी अपने अनुजको लिपटकर॥ ५४ ॥ आंसुओंसे आर्द्रमुखवाले रघुनाथजीने कहा कि हे अनुज ! मैंने तुम्हारा क्षमापनकिया यह मैं प्रकट जानता हूं कि मुझको छोड़कर और तुमको कोई प्यारा नहीं है ॥ ५५ ॥ इससे आइये पन्थचलैं समय अधिक होवैहै ॥ ५६ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे नाथ ! इस समय जो तुम मुझे दण्ड न करोगे तौ मैं अपनी पवित्रताके लिये अग्नि में प्राण त्याग करूंगा ॥ ५७ ॥ उस वनमें राम लक्ष्मण को ऐसा कहतेहुये मुनिश्रेष्ठजी आगये कि जो मार्कण्ड ऐसे कहेगये हैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर सीता लक्ष्मण

शः ॥५३॥ मयाविनापराधेनवधोपायश्चचिन्तितः ॥ ततश्चतंपरिष्वज्यरामोपिनिजबान्धवम् ॥५४॥ बाष्पक्लिन्नमुखःप्राहत्वान्तंवत्समयातव ॥ नतेत्वन्यःप्रियःकश्चिन्मांमुक्त्वावेद्म्यहंस्फुटम् ॥ ५५ ॥ तस्मादागच्छगच्छामो मार्गेवेलाधिकाभवेत् ॥ ५६ ॥ लक्ष्मणउवाच ॥ यदिमेनिग्रहंनाथनकरिष्यसिसाम्प्रतम् ॥ प्राणत्यागंकरिष्यामिवह्नावात्मविशुद्धये ॥ ५७ ॥ रामलक्ष्मणयोरेवंवदतोस्तत्रकानने ॥ आजगाममुनिश्रेष्ठो मार्कण्डइतियःस्मृतः ॥ ५८ ॥ ततःप्रणम्यतंरामःसीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ प्रोवाचस्वागतंतेस्तु कुतःप्राप्तोसिसन्मुने ॥ ५९ ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ प्रभासादहमायातःसाम्प्रतंरघुनन्दन ॥स्वमाश्रमंगमिष्यामिक्षेत्रेत्रैवव्यवस्थितम् ॥६० ॥ मयाराघवतत्रास्तिस्थापितःप्रपितामहः॥ तस्याद्यदिवसेयात्राबहुश्रेयःप्रदास्मृता ॥ ६१ ॥ तस्मात्त्वमपितत्रैवतूर्णमेवमयासह ॥ ममाश्रमपदेस्नात्वा पश्यदेवंपितामहम् ॥६२॥ येनस्याःसर्वशत्रूणामगम्यस्त्वंरघूद्वह ॥ ज्येष्ठीपञ्चदशीयोगेज्येष्ठाभेसुसमाहितः॥६३॥ यस्तत्रकुरु

समेत रामचन्द्रजी ने उन मार्कण्डमुनि को प्रणामकर कहा कि हे सन्मुने ! तुम्हारा आगमन अच्छीतरह से हुआ तुम कहांसे प्राप्तहुयेहो ॥ ५९ ॥ श्रीमार्कण्डेयमुनि बोले कि हे रघुनन्दन ! इस समय हम प्रभासक्षेत्र से आये हैं व अपने आश्रम को जावैंगे जोकि इसी क्षेत्रमें स्थित है ॥ ६० ॥ हे राघव ! उस मेरे आश्रम में मुझसे स्थापन कियेहुये श्रीब्रह्माजी हैं आजके दिन वहां की यात्रा बहुत कल्याणदायिनी कहीगई है ॥ ६१ ॥ इसलिये तुमभी मेरे साथ उसी मेरे आश्रमस्थानमें स्नान कर श्रीब्रह्मा देवताके दर्शन करो ॥ ६२ ॥ जिससे कि हे रघूत्तम ! तुम सब शत्रुओंके अगम्यहो याने शत्रु तुम्हारे समीप न आसकैं जेठी पौर्णमासीमें ज्येष्ठानक्षत्रका

योग आनेपर अच्छीतरह सावधान होतेहुये ॥ ६३ ॥ जो वहां स्नान करता है उसको मृत्युका डर कहांसे है हे रामजी ! आज ज्येष्ठमास में उपजी हुई पौर्णमासी ॥ ६४ ॥ ज्येष्ठानक्षत्र से युक्तहै इसलिये तुम स्नान करने के योग्यहो तदनन्तर भलीभांति गमन करतेहुये रामचन्द्रजी को देखकर लक्ष्मणजी बोले ॥ ६५ ॥ कि हे प्रभो ! पहले मुझे दण्ड कीजिये तब तीर्थको गमन करो ॥ ६६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे वत्स लक्ष्मणजी ! इन मुनिपुङ्गव को समीप में स्थित होतेहुये हम दण्ड करने के अयोग्य हैं इससे इन मार्कण्डेयजी से तुम प्रार्थना करो ॥ ६७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! स्वामीका द्रोह करनेपर जो प्रायश्चित्त प्राप्त होताहै

तेस्नानंतस्यमृत्युभयंकुतः ॥ अद्यपञ्चदशीरामज्येष्ठमाससमुद्भवा ॥ ६४ ॥ ज्येष्ठानक्षत्रसंयुक्तातस्मात्स्नातुंत्वमर्हसि ॥ ततःसम्प्रस्थितंरामंदृष्ट्वाप्रोवाचलक्ष्मणः ॥ ६५ ॥ कुरुमेनिग्रहंतावद्गच्छतीर्थंतथाप्रभो ॥ ६६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्थितेस्मिन्मुनिशार्दूले समीपेवत्सलक्ष्मण ॥ अनर्हानिष्कृतिंकर्त्तुंतस्मादेनंप्रयाचय ॥ ६७ ॥ लक्ष्मणउवाच ॥ स्वामिद्रोहकृतेब्रह्मन्प्रायश्चित्तंयदाप्यते ॥ तन्मेदेहिस्फुटंयेनकायशुद्धिःप्रजायते ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ममाश्रमसमीपेस्तिसुतीर्थंबालमण्डनम् ॥ स्वामिद्रोहरताःस्नातामुच्यन्तेतत्रपातकैः ॥ ६९ ॥ तत्रशक्रोविपाप्माभूद्धत्वा गर्भंदितेःपुनः ॥ विश्वस्तायाविशेषेणमातुःकाकुत्स्थसत्तम ॥ ७० ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगत्वा स्नानंकुरुमहामते ॥ ततः प्रमुच्यसेपापात्स्वामिद्रोहसमुद्भवात् ॥ ७१ ॥ अपरंनास्तितेदोषो मनसापातकंकृतम् ॥ मनस्तापेनशुध्येत मतमेतन्मनीषिणाम् ॥ ७२ ॥ यत्त्वयामनसाद्रोहः कृतोरामकृतेयतः ॥ ईदृक्षान्मनसस्तापात्तस्माच्छुद्धोसिलक्ष्मण ॥ ७३ ॥

उसको मुझे प्रकटही दीजिये कि जिससे शरीर की शुद्धिहोतीहै ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे बाल ! मेरे आश्रमके समीप मण्डननामक तीर्थहै स्वामीके द्रोहमें लगेहुये पुरुष उस तीर्थमें स्नान करतेहुये पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ६९ ॥ हे ककुत्स्थ वंशमें उत्तम लक्ष्मणजी ! विशेषकर विश्वास कियेहुई दितिमाताके गर्भको इन्द्रने मारकर व उस तीर्थमें स्नानकर फिर पापसे रहित होगये हैं ॥ ७० ॥ इसलिये हे महामते ! तुम वहां शीघ्र जाकर स्नानकरो तब स्वामीके द्रोहसे उपजेहुये पातक से छूटोगे ॥ ७१ ॥ और दोष तुम्हारे नहीं है केवल मनसे पाप कियागया है यह बुद्धिमानोंका मतहै कि मनके तापसे शुद्ध होवै है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस कारण रघुनाथजीके

लिये तुमने जो मनसे द्रोह किया है उससे ऐसे मनके तापसे तुम शुद्धहो ॥ ७३ ॥ हे सौमित्रे ! थोड़ा भी पातक तुम्हारे कहीं नहीं है तबतक मनुज स्नेहमें तत्पर है व तभीतक कोमल वचन कहता है ॥ ७४ ॥ कि जबतक चमत्कारपुर से उपजेहुये क्षेत्रको चरणों से स्पर्श नहीं करता है और भी जो पशु, पक्षी, मृग उस क्षेत्र में निवास करते हैं ॥ ७५ ॥ वे भी मित्रभाव को छोड़ेहुये आपस में ईर्षा सहित हैं किसीकाभी किसीके साथ मित्रभाव नहीं है ॥ ७६ ॥ इससे तुम्हारा अपराध नहीं है ऐसा क्षेत्रका प्रभाव है तिसपरभी यदि तुम्हारे चित्तमें कोई सन्देह विशेषता से स्थितहै ॥ ७७ ॥ तो उस बहुत सुन्दरतीर्थ में जाकर स्नान करो जहां इन्द्रजी बहुत

अपिस्वल्पंनसौमित्रेतेंहःसञ्जायतेक्वचित् ॥ तावत्स्नेहपरोमर्त्यस्तावद्वदतिकोमलम् ॥ ७४ ॥ चमत्कारोद्भवक्षेत्रं यावन्न स्पृश्यतेङ्घ्रिभिः ॥ येन्येपिनिवसन्त्यत्र पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ७५ ॥ तेपिसौहार्दनिर्मुक्ताःसस्पर्धाइतरेतरम् ॥ कस्यचित्के नचित्सार्द्धंसौहार्द्दंनैवविद्यते ॥ ७६ ॥ तस्मान्नैवास्तितेदोषईदृक्क्षेत्रस्यसंस्थितिः ॥ तथापियदितेकाचिच्छङ्काचित्ते व्यवस्थिता ॥ ७७ ॥ तत्स्नानंकुरुगत्वातु तस्मिंस्तीर्थेसुशोभने ॥ यत्रशक्रोविपाप्माभूद्द्रोहंकृत्वासुदारुणम् ॥ ७८ ॥ विश्वस्तायादितेःपूर्वंगर्भपातसमुद्भवम् ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्गत्वातत्रद्विजोत्तमाः ॥ ७९ ॥ तीर्थेस्नानादिकंकृत्वाविशुद्धःशक्रसेविते ॥ रामोपितत्रगत्वाशुमार्कण्डेयवराश्रमे ॥ ८० ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं ददर्शाथपितामहम् ॥ जगामाथदिशंयाम्यां सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ८१ ॥ तत्प्रभावाज्जघानाथखरादीन्राक्षसोत्तमान् ॥ तथावैरावणंरौद्रं मेघनादसमन्वितम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येविंशोध्यायः ॥ २० ॥ * ॥

कठिन द्रोहकर पापरहित हुयेहैं ॥ ७८ ॥ जो द्रोह कि पुरातन समय में विश्वास कियेहुई दितिके गर्भपात से उपजा है हे ब्राह्मणोत्तमो ! ऐसा मुनिजी ने कहा तब लक्ष्मणजी उस तीर्थ में जाकर ॥ ७९ ॥ व इन्द्रसे सेवित तीर्थ में स्नान इत्यादिकर अतिपुनीत होगये मार्कण्डेयजी के उस उत्तम आश्रम में रघुनाथजीने भी जाकर ॥ ८० ॥ व स्नानकर इसके अनन्तर ब्रह्माजीका यथायोग्य दर्शन किया इसके बाद सीता लषण समेत दक्षिणदिशाको चलेगये ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर उसके प्रभाव से खरदूषणादिक उत्तम राक्षसों को तथा मेघनाद संयुत कराल रावण को हनन कियाहै ॥ ८२ ॥ इति हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० ॥ एकविंश अध्यायमें सुतमृकण्ड वयहीन । चिरजीवीभे यथा विधि सोइ कथित सबकीन ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि जब मार्कण्डेयमुनि ने वहां पितामह का थापन किया तब उनने किस स्थानमें अपना आश्रम कियाहै इसको तुम कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि वानप्रस्थ आश्रम में प्राप्त व वेदके जाननेवालों में श्रेष्ठ मृकण्डनामक उत्तम ब्राह्मण चमत्कारनगरके समीप हुये हैं ॥ २ ॥ शान्तचित्तवाले नियम संयुत मुनिजीने बहुत उत्तम तप किया वानप्रस्थ आश्रम में इस प्रकार उनको वर्तमान होतेहुये ॥ ३ ॥ जब पिछली अवस्था प्राप्तहुई तब पूर्णचन्द्रमा के समान प्रभावाला व सब लक्षणोंसे समन्वित बहुत सुन्दर पुत्र उत्पन्नहुआ ॥ ४ ॥

ब्राह्मणाऊचुः ॥ मार्कण्डेनयदातत्रस्थापितःप्रपितामहः ॥ कस्मिन्स्थानेकृतस्तेनस्वाश्रमोमुनिनावद ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ मृकण्डाख्योद्विजश्रेष्ठ आसीद्वेदविदांवरः ॥चमत्कारपुराभ्याशे वानप्रस्थाश्रमेस्थितः ॥ २ ॥ शान्तात्मानियमोपेतश्चकारसुमहत्तपः ॥ तस्यैवंवर्त्तमानस्यवानप्रस्थस्यचाश्रमे ॥ ३ ॥ पश्चिमेवयसिप्राप्तेपुत्रोजज्ञेसुशोभनः ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नःपूर्णचन्द्रसमप्रभः ॥ ४ ॥ मार्कण्डइतिनामापितस्यचक्रेपितास्वयम् ॥ सोतीववृद्धेबालस्तस्मिन्नाश्रमसत्तमे ॥ ५ ॥ शुक्लपक्षंसमासाद्यतारापतिरिवाम्बरे ॥ वर्धमानस्यतस्यैवमतीताःपञ्चवत्सराः ॥ ६ ॥ बालक्रीडाप्रसक्तस्यपितुरुत्सङ्गवर्त्तिनः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यकश्चित्तत्रसमागतः ॥ ७ ॥ सामुद्रिकस्यकृत्स्नस्यवेत्ताज्ञाननिधानभूः ॥ सतंशिशुंसमालोक्यनखाग्रान्मूर्धजावधि ॥ ८ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनईषद्धास्यमथाकरोत् ॥ मृकण्डोपिसमालोक्यज्ञानिनंसस्मिताननम् ॥ ९ ॥ पप्रच्छविनयोपेतःकिञ्चित्तुष्टेनचेतसा ॥ १० ॥ मृकण्डउवाच ॥ कस्मात्त्वं

पिताने आपही उसका मार्कण्ड ऐसाही नाम किया उस उत्तम आश्रम में वह बालक बहुतही बढ़ा ॥ ५ ॥ जैसे शुक्लपक्ष को प्राप्तहोकर आकाश में चन्द्रमा बढ़ता है वैसेही बढ़तेहुये उसको पांचवर्ष व्यतीत होगये ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर बालक्रीड़ामें परायण पिताके गोदमें बैठेथे उसी समय कोई विद्वान् प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ जो कि समस्त सामुद्रिक शास्त्रका ज्ञाता व ज्ञानरूपी ख़ज़ानेका स्थान था उसने नखके अग्रभागसे केश पर्य्यन्त उस बालक को भलीभांति अवलोकनकर ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर आश्चर्य्य से प्रफुल्लित नेत्रवाले उसने कुछ हास्य किया मृकण्ड मुनिने भी हंसते हुये मुखवाले ज्ञानीको भलीभांति देखकर ॥ ९ ॥ व विनय

समन्वित होतेहुये कुछ हर्षितचित्तसे उससे प्रश्न किया ॥ १० ॥ मृकण्ड मुनि बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम मेरे इस पुत्रको देखकर बहुत देरतक आश्चर्य्यसे व्याप्तहुये फिर तुम्हारा आनन मुसक्यान युक्त होगया ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उस मुनि से वारंवार पूंछने से उस उत्तम ब्राह्मण ने फिर क्लेश से हंसने का कारण निश्चय कर कहा ॥ १२ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे सन्मुने ! इस बालकके शरीरमें प्राप्तहुये जो लक्षण देखपडते हैं उनसे पुरुष वृद्धतासे रहित अमर होवै है ॥ १३ ॥ और फिर आजके दिनसे छा महीने में इस बालक का काल होवैगा इसमें सन्देह नहीं है यह मैंने सत्य कहा ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! ऐसा जानकर इस लोकमें व

विप्रशार्दूल वीक्ष्येमंममदारकम् ॥ सुचिरंविस्मयाविष्टस्ततोभूःसस्मिताननः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ असकृत्तेनपृष्ट स्सःकृच्छ्राद्ब्राह्मणसत्तमः ॥ ततश्चकथयामासहास्यकारणमेवहि ॥ १२ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ लक्षणानिशिशोरस्य दृश्यन्तेयानिसन्मुने ॥ गात्रस्थानिभवेत्सत्यंतैःपुमानजरामरः ॥ १३ ॥ अस्यभाविपुनश्चास्माद्दिवसान्निधनंशिशोः ॥ षड्भिर्मासैर्नसन्देहःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १४ ॥ एवंज्ञात्वाद्विजश्रेष्ठकुरुष्वास्यहितंचयत् ॥ इहलोकेपरेचैवबालकस्य ममाज्ञया ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रो जगामाभीप्सितांदिशाम् ॥ मृकण्डोपिततस्तस्यचक्रेमौञ्जीनिबन्धनम् ॥ १६ ॥ अकालेपिकुमारस्यकिञ्चिद्ध्यात्वानिजेहृदि ॥ कारणंकारणज्ञस्सततःप्रोवाचतंसुतम् ॥ १७ ॥ यंकञ्चिद्वीक्षसेपुत्र भ्रममाणंद्विजोत्तमम् ॥ तस्यावश्यंत्वयाकार्य्यंविनयादभिवादनम् ॥ १८ ॥ एवंतस्यव्रतस्थस्य षण्मासाद्दिवसैस्त्रि भिः ॥ हीनाःस्युर्ब्राह्मणेनोक्ता नमस्कारपरस्यच ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताअग्नितीर्थपरायणाः ॥ सप्तर्षयःस्थितो

परलोक में इस शिशुका जो हितहोवै उसको मेरी आज्ञासे तुम करो ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर वह द्विजेन्द्र स्वेच्छित दिशाको चलागया तदनन्तर मृकण्ड मुनिने भी उस बालक का यज्ञोपवीत विन समयमें भी किया व कारण के ज्ञाता अपने हृदयमें कुछ कारण चिन्तवनकर फिर उस पुत्र से बोले ॥ १६ । १७ ॥ कि हे पुत्र ! तुम घूमते हुये जिस किसी उत्तम ब्राह्मण को देखना उसका प्रणाम विनय से तुमको अवश्य करना चाहिये ॥ १८ ॥ इसभांति व्रत में स्थित व प्रणाम में परायण उस बालक के ब्राह्मण से कहेहुये छामासमें से तीनदिन न्यून रहे ॥ १९ ॥ इसी समय में अग्निरूपतीर्थ में तत्पर सप्तर्षि वहां प्राप्तहुये जहांपर कि मेखलाको

धारण किये मार्कण्डजी हैं ॥ २० ॥ उस मुनिके पुत्र ने उन सबको देखकर प्रणाम किया उन सबों ने भी पृथक् २ यह कहा कि तुम्हारा आयुर्बल बहुतहो ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर मुनि श्रेष्ठ बशिष्ठजी शिशुतासे उस ब्रह्मचारीको कौतुकसे देरतक देखकर यह वचन बोले ॥२२॥ कि सब मुनियोंने इससे आदरपूर्वक चिरंजीव ऐसा कहाहै और यह तीसरे दिन निस्सन्देह प्राणों को त्यागकरैगा ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस कारण हमलोगों के ऐसे वचन योग्य न होंगे इसलिये वह काम कियाजाय कि जिससे यह दीर्घ आयुर्बल धारी होवै ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन सब मुनि श्रेष्ठोंने परस्पर समालोचनाकर कहा कि ब्रह्माको छोड़कर और जीनेका यत्न नहीं होवै है ॥२५॥

यत्रमार्कण्डोधृतमेखलः ॥ २० ॥ तान्दृष्ट्वासमुनीन्सर्वान्नमश्चक्रेमुनेःसुतः ॥ दीर्घायुर्भवतेरुक्तःसर्वैरपिपृथक्पृथक् ॥ २१ ॥ अथतंबालभावेनकौतुकाद्ब्रह्मचारिणम् ॥ चिरंदृष्ट्वाब्रवीद्वाक्यंवसिष्ठोमुनिपुङ्गवः ॥ २२ ॥ सर्वैरेषशिशुःप्रोक्तोदीर्घायुरितिसादरम् ॥ तृतीयेह्निपुनःप्राणांस्त्यक्ष्यत्ययमसंशयम् ॥ २३ ॥ तन्नयुक्तंभवेदीदृगस्माकंवचनंद्विजाः ॥ तस्मात्तत्क्रियतांकर्म्मयेनायंस्याच्चिरायुधृक् ॥ २४ ॥ ततोमिथःसमालोच्यसर्वेतेमुनिपुङ्गवाः ॥ प्रोचुर्नजीवनोपायो भवेन्मुक्त्वापितामहम् ॥ २५ ॥ तस्मात्तस्यपुरोनीत्वाबालोयंक्षीणजीवितः ॥ क्रियतांतस्यवाक्येन यथास्याच्चिरजीवभाक् ॥ २६ ॥ ततस्तुतेसमादायसत्वरंब्रह्मचारिणम् ॥ ब्रह्मलोकंसमाजग्मुस्त्यक्त्वातीर्थपरिक्रमम् ॥ २७ ॥ ततःप्रणम्यतंदेवंवेदोक्तैःस्तवनैर्द्विजाः ॥ स्तुत्वाथसन्निधौतस्य निषेदुस्तदनन्तरम् ॥ २८ ॥ तेषामनन्तरंसोपि नमश्चक्रेपितामहम् ॥ बालःप्रोक्तश्चदीर्घायुर्भवेतिचस्वयम्भुवा ॥ २९ ॥ अथोवाचमुनीन्सर्वान्विश्रान्तान्पद्मयोनिजः ॥ कुतोयूयंसमा

इसलिये नष्ट आयुर्बलवाले इस बालक को ब्रह्माके आगे प्राप्तकर उनके वचनसे ऐसा कियाजाय कि जिसभांति दीर्घआयुर्बल का भागीहोय ॥ २६ ॥ तदनन्तर तीर्थकी परिक्रमाको छोड़कर उन सातों ऋषियोंने जल्दीसे ब्रह्मचारीको लेकर ब्रह्म लोकको भलीभांति गमन किया ॥ २७ ॥ तिसके उपरान्त वे ब्राह्मण उन पितामह देवको प्रणामकर व वेदमें कहेहुये स्तोत्रोंसे स्तुतिकर इसके बाद फिर उन ब्रह्माजीके समीप में बैठगये ॥ २८ ॥ उन सप्तर्षियोंके पश्चात् उस बालक ने भी ब्रह्माजी को प्रणाम किया व ब्रह्माने उससे यही कहा कि तू बहुत आयुष्मान् हो ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर विश्राम कियेहुये उन सब मुनियोंसे पितामहजीने कहा कि इस

समय तुम लोग किसकारण व कहांसे आयेहो ॥ ३० ॥ व हमारे गृहमें भलीभांति प्राप्तहुये तुम लोगोंका जो कार्य्य कियाजाता है उसको भी इसी समय कहिये और यह उत्तम व्रतवाला बालक कौनहै ॥ ३१ ॥ मुनिलोग बोले कि हे पितामह! तीर्थयात्राके प्रसङ्ग से भूतल में भ्रमतेहुये हम चमत्कार नगर के समीप प्राप्त हुये ३२ ॥ हे देव! वहां इस बालक ने हम लोगोंका प्रणाम किया और क्रमसे सबोंने भी आदर से यही कहा कि तू चिरंजीवहो ॥ ३३ ॥ हे देवतोत्तम! परन्तु इसका आयुर्बल तीन दिन शेषहै इससे हमलोग बहुत लज्जित हुये ॥ ३४ ॥ तदनन्तर इसको लेकर हम सब तुम्हारे निकट प्राप्तहुये आपने भी इस बालकसे यही कहा

यातःसाम्प्रतंकेनहेतुना ॥ ३० ॥ प्रोच्यतांचापियत्कृत्यंयुष्माकंक्रियतेधुना ॥ मद्गेहेसम्प्रयातानांकोयंबालोपिसद्व्र
ती ॥ ३१ ॥ मुनयऊचुः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रममाणामहीतलम् ॥ चमत्कारपुराभ्याशेवयंप्राप्ताःपितामह ॥ ३२ ॥
तत्रानेनवयंदेवबालकेनाभिवादिताः ॥ क्रमात्सर्वैरपिप्रोक्तोदीर्घायुरितिसादरम् ॥ ३३ ॥ एतस्यतुपुनःशेषमायु
षोदिवसत्रयम् ॥ विद्यतेविबुधश्रेष्ठव्रीडितास्तेनवैवयम् ॥ ३४ ॥ ततश्चैनंसमादायवयंप्राप्तास्तवान्तिकम् ॥ भवतापि
तथाप्रोक्तोदीर्घायुर्बालकोह्ययम् ॥ ३५ ॥ तस्माद्यथावयंसत्याभवतासहपद्मज ॥ भवामःकुरुतत्कृत्यमेतस्मादागता
वयम् ॥ ३६ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वामुनीनांपद्मसम्भवः ॥ प्रोवाचप्रहसन्वाक्यंसमादायाथबालकम् ॥ ३७॥
मत्प्रसादादयंबालोजरामृत्युविवर्जितः ॥ भविष्यतिनसन्देहोवेदविद्याविचक्षणः ॥ ३८ ॥ तस्मात्प्राग्धरणीपृष्ठंव्रजध्वं
मुनिसत्तमाः ॥ बालमेनंसमादाय तस्मिन्नेवास्यमन्दिरे ॥ ३९ ॥ यावदस्यपितावृद्धःपुत्रादर्शनविह्वलः ॥ नयातिनिध

कि तू बहुत आयुष्मान्हो ॥ ३५ ॥ हे पितामहजी! इससे आप समेत हम लोग जिस प्रकार सत्य होवैं उस कार्य्यको तुम करो इसी लिये हम सब आयेहैं ॥ ३६॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन मुनियों के उस वचन को सुनकर ब्रह्माजी बालक को लेकर हँसते हुये यह वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हमारी प्रसन्नता से यह बालक वेदविद्यामें चतुर व वृद्धता तथा मृत्युसे रहित अवश्य होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ इससे हे मुनिश्रेष्ठो! तुम इस बालक को लेकर पाहिले धरातल में

इसके उसी मन्दिर में जावो ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुत्रके न देखने से व्याकुल इसका पिता धर्मवती स्त्री के सहित जबतक मृत्युको न प्राप्त होवै ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर वे सब उत्तम मुनि उस बालक को लेकर धरातल में आकर उसके आश्रमके समीप में आये ॥ ४१ ॥ व उस बालक को अग्नि के स्थान में छोड़ दिया तिसके उपरान्त सम्भाषणकर फिर तीर्थयात्रा के लिये शीघ्रही अन्यत्र चलेगये ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीसमय पुत्रके स्नेहसे युत मृकण्डजी ने अपने पुत्रको न देखा तिस पीछे बहुत दुःखित होतेहुये विलाप किया ॥ ४३ ॥ और यह कहा कि मेरा प्रियपुत्र आज क्यों नहीं देख पड़ता है क्या कूपके मध्यमें गिरपड़ा या सर्पों

नंसार्द्धंधर्म्मपत्न्याद्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥ अथायाताश्चतंबालंसर्वेतेमुनिसत्तमाः ॥ आगत्यवसुधापृष्ठंतस्यैवाश्रमसन्निधौ॥४१॥अमुञ्चंश्चाग्नितीर्थेचसमाभाष्यततःपरम्॥तीर्थयात्राकृतेपश्चाज्जग्मुरन्यत्रसत्वरम्॥४२॥एतस्मिन्नन्तरेविप्रामृकण्डःसुतवत्सलः ॥ नापश्यत्स्वसुतंपश्चाद्विललापसुदुःखितः ॥ ४३ ॥ आहमेतनयोभीष्टःकथमद्यनदृश्यते ॥ कूपान्तःपतितःकिन्तुकिंव्यालैर्वानिपातितः ॥ ४४ ॥ कृत्वामांदुःखसन्तप्तंमातरंचापिपुत्रक ॥ प्रस्थितोदीर्घमध्वानंविरुद्धंकृतवानसि ॥ ४५ ॥ पश्यब्राह्मणिपापेन मयादुष्कृतकारिणा ॥ नबालस्यमुखंदृष्टंप्रस्थितस्ययमालये ॥ ४६ ॥ कथितंज्ञानिनातेन ममपूर्वंमहात्मना ॥ षड्भिर्मासैस्सुतस्तेयंदेहत्यागंकरिष्यति ॥ ४७॥ सोहंपुत्रस्यदुःखेनसाधयिष्ये हुताशनम् ॥ यावच्छोकाग्निनाकायोदह्यतेनवरानने ॥ ४८ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ममापिमतमेतद्धियत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ तत्किंचिरयसिब्रह्मन्शीघ्रंदारूणिचानय ॥ ४९ ॥ येनाहंभवतासार्द्धंप्रविशामिहुताशनम् ॥ पुत्रशोकेनसन्त

ने नष्ट करदिया ॥ ४४ ॥ हे पुत्र ! मुझको व अपनी माताको दुःखसे सन्तप्त कर बहुत दूर पन्थमें तुमने प्रयाण किया यह विरोध किया ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणि ! देखो कि अधर्मकारी व पापी मैंने यमस्थान को जातेहुये पुत्रके मुखको न देखा ॥ ४६ ॥ उस महात्मा ज्ञानीने पहले मुझसे कहाथा कि तुम्हारा यह पुत्र छः महीने में शरीर को त्याग करैगा ॥ ४७ ॥ हे सुमुखि ! जबतक शोकरूप अग्नि से शरीर भस्म न होजाय तभीतक पुत्रके क्लेशसे मैं अग्नि का साधन करूंगा अर्थात् अग्निमें भस्म होजाऊंगा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणी बोली कि हे ब्रह्मन् ! जो तुमने कहाहै मेरी भी अवश्य यही सम्मतिहै तो किसलिये देर करतेहो तुम जल्दी काष्ठोंको लावो ॥ ४९ ॥ जिस

से पुत्रके शोचसे बहुत दुःखी अत्यन्त दुःख की निवृत्ति के लिये आपके साथ मैं अग्नि में प्रवेश करूँ ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उन स्त्री पुरुषों को
इस प्रकार वार्तालाप करते हुये इसके अनन्तर बहुत प्रसन्न वह बालक उन दोनों के निकट आगया ॥ ५१ ॥ उस समय ब्राह्मणी समेत वह ब्राह्मण प्रसन्न हुआ कि
जिनके नेत्र आनन्द के आंसुवों से संयुत हैं इसके बाद उसके सामने दौरे ॥ ५२ ॥ उस समय स्त्रीसमेत उस ब्राह्मण ने वारंवार लिपटकर पूँछा कि हे पुत्र ! अपने
आश्रमसे तुम कहांगये थे और बहुत देरमें कहांसे यहां आयेहो ॥ ५३ ॥ बहुत अवस्थावाले स्त्री समेत मुझको शोकसमुद्रमें फेंककर चलेगये इससे हे पुत्र ! फिर तुम

प्रासुभृशंदुःखशान्तये ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ एवंतयोःप्रवदतोर्दम्पत्योर्द्विजसत्तमाः ॥ आजगामाथसंहृष्टःसवालस्स
न्निधौतयोः ॥ ५१ ॥ तंदृष्ट्वाब्राह्मणोहृष्टो ब्राह्मण्यासहितस्तदा ॥ आनन्दाश्रुप्लुवाक्षोथ सम्मुखस्तमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥
भूयोभूयःपरिष्वज्यसभार्य्यःपृष्टवांस्तदा ॥ क्वगतःस्वाश्रमाद्वत्सचिरात्कस्मादिहागतः ॥ ५३ ॥ शोकार्णवेपरिक्षिप्य
मांसभार्य्यंवयोधिकम् ॥ तन्मापुत्रकभूयस्त्वमीदृक्कर्म्मंकरिष्यसि ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अत्राद्यमुनयःप्राप्ता
मयातेचाभिवन्दिताः ॥ क्रमेणविनयाताततस्मरमाणेनतेवचः ॥ ५५ ॥ दीर्घायुर्भवतैरुक्तस्सर्वैरेवद्विजोत्तमैः ॥ दृष्ट्वामां
विस्मयाविष्टैर्बालकंव्रतिनंविभो ॥ ५६ ॥ अथतातसमालोक्यतेषांमध्यगतोमुनिः ॥ वसिष्ठस्तान्मुनीन्सर्वान्प्रोवाचप्र
हसन्निव ॥ ५७ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ दीर्घायुर्भवयःप्रोक्तोयुष्माभिर्मुनिपुङ्गवाः ॥ तृतीयेदिवसेसोयंबालःपञ्चत्वमेष्य
ति ॥ ५८ ॥ ततस्तेमुनयोभीताअसत्यान्मांचतत्क्षणात् ॥समादायययुस्तत्रयत्रब्रह्माव्यवस्थितः ॥ ५९ ॥ नमस्कृते

ऐसा काम न करना ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पिताजी ! यहांपर आज मुनि लोग प्राप्तहुये व तुम्हारे वचनको स्मरण करतेहुये मैंने क्रमसे विनयपूर्वक उन
का प्रमाण किया ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! नियमयुक्त मुझ बालक को देखकर आश्चर्यमें होकर उन सब ब्राह्मणोंने भी यही कहा कि तुम बहुत आयुष्मान् होवो ॥५६॥
हे पिताजी ! इसके अनन्तर भलीभांति देखकर उनके बीचमें प्राप्त वसिष्ठजी हँसते हुयेसे उन समस्त मुनियों से बोले ॥ ५७ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे मुनिपुङ्गवो !
तुम लोगोंने जिमको दीर्घायुष्मान् कहाहै वह बालक तीसरे दिनमें मृत्युको प्राप्त होगा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर झूंठसे डरेहुये ये मुनि उसीक्षण मुझे भलीभांति लेकर

वहांको गये जहां कि श्रीब्रह्माजी विशेषकर ध्यान लगाये बैठेथे ॥ ५९ ॥ प्रणाम करने से उन पितामह ने भी मुझसे कहा कि तू दीर्घायुष्मान् हो और यह पूँछा कि तुम यहां कहांसे आयेहो ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर कहेहुये उन मुनियों ने आशीर्वादसे उपजेहुये उस मेरे समस्त वृत्तान्तको कीर्त्तन किया कि उसके लिये हम आये हैं ॥ ६१ ॥ हे पितामह देव ! तुम्हारी प्रसन्नता से यह बालक जिस प्रकार लोकमें बहुत आयुष्मान् होवै वैसाही तुम करने के योग्यहो ॥ ६२ ॥ हे पिताजी ! तिसके उपरान्त पितामहजीने मुझे वृद्धता व मृत्युसे रहित करदिया व उन मुनियों समेत जल्दी से मैं गेहको पठायागया ॥ ६३ ॥ उन सब मुनिलोगोंने तो आश्रम

नतेनापिप्रोक्तोहंपद्मयोनिना ॥ दीर्घायुर्भवपृष्टश्च कुतस्त्वमिहमागतः ॥ ६० ॥ अथतैर्मुनिभिस्सर्ववृत्तान्तंतस्यकीर्तितम् ॥ आशीर्वादोद्भवंप्रोक्तैस्ततोवयमिहागताः ॥ ६१ ॥ यथायंबालकोदेवत्वत्प्रसादात्पितामह ॥ दीर्घायुर्जायतेलोकेतथात्वंकर्त्तुमर्हसि ॥ ६२ ॥ ततोहंब्रह्मणातातजरामरणवर्जितः ॥ विहितःप्रेषितस्तूर्णंस्वगृहंप्रतितैःसमम् ॥ ६३ ॥ तेतुमांमुनयोत्रैव प्रमुच्याश्रमसन्निधौ ॥ स्नानार्थंविविशुःसर्वेह्रदेचैवसुशोभने ॥६४॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमृकण्डोहर्षसंयुतः ॥ प्रययौसत्वरंतत्रयत्रतेमुनयस्थिताः ॥ ६५ ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान्कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ प्रोवाचचप्रसादेन कुलंमेवृद्धिमागतम् ॥ ६६ ॥ साधुप्रोक्तमिदंकैश्चिदाचार्य्यैर्मुनिसत्तमाः ॥ साधुलोकंसमाश्रित्यविख्यातञ्चजगत्त्रये ॥ ६७ ॥ साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥ तीर्थफलतिकालेनसद्यःसाधुसमागमः ॥ ६८ ॥ तस्मादतिथयःप्रा

के निकट में यहींपर मुझे छोड़कर और स्नानके लिये बहुत उत्तम कुण्डमें प्रवेश किया ॥ ६४ ॥ उस बालक के उस वचन को सुनकर हर्ष समन्वित मृकण्ड जी जल्दी वहांगये जहांपर वे मुनिलोग स्थित थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर हाथ जोड़ेहुये स्थित मृकण्डमुनि उन सब मुनियों को प्रणाम कर बोले कि तुम्हारी प्रसन्नता से मेराकुल वृद्धिको प्राप्तहुआ॥६६॥ हे मुनि पुङ्गवो ! कोई आचार्य्योंने इसको अच्छा कहाहै कि साधुजन की भलीभांति सेवाकर तीनलोक में प्रसिद्ध होता है ॥६७॥ साधुजनोंका दर्शन पवित्र होताहै कि जिससे साधुलोग तीर्थके तुल्यहोतेहैं तीर्थसमयसे फलीभूत होताहै और साधुका समागम शीघ्रही फल देताहै ॥६८॥

हे द्विजोत्तमो ! इस लिये तुम सब मेरे गृहमें आज अतिथि प्राप्त हुयेहो उस को आप लोग कहो कि मैं क्या पहुनई करूं ॥ ६९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! मेरी कोटिगुना यही आतिथ्य है कि जो अल्पायुवाला भी तुम्हारा बालक मृत्युसे रहित होगया ॥ ७० ॥ मृकण्डमुनि बोले कि हे मुनीश्वरो ! मृत्युसे लिपटेहुये मेरे बालक को आप लोगों ने यहां भली भांति रक्षाकर सम्पूर्ण कुलको उद्धार कर लिया ॥ ७१ ॥ ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला व चोर तथा व्रतको भङ्गकिये हुये इन सबों में पण्डितों ने प्रायश्चित का विधान कियाहै परन्तु कृतघ्नके लिये प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ७२ ॥ इस लिये हे मुनीश्वरो ! जिस प्रकार मुझको कृतघ्न वाला दोष

प्राप्तायूयंसर्वेद्यमेगृहे ॥ प्रकरोमिकिमातिथ्यंप्रोच्यतांद्विजसत्तमाः ॥ ६९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ एतदेवमुनेस्माकमातिथ्यं कोटिसम्मितम् ॥ अल्पायुरपितेबालो यज्जातोमृत्युवर्जितः ॥ ७० ॥ मृकण्डउवाच ॥ मृत्युनालिङ्गितंबालमस्मदीयंमुनीश्वराः ॥ भवद्भिरत्रसंरक्ष्यकुलंकृत्स्नंसमुद्धृतम् ॥ ७१ ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापेचचौरेभग्नव्रतेतथा ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ७२ ॥ तस्मात्कृतघ्नतादोषोनस्यान्ममसुनीश्वराः ॥ यथाकार्य्यंभवद्भिश्च तथासर्वंनसंशयः ॥ ७३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदिप्रत्युपकारायमन्यसेत्वंद्विजोत्तम ॥ गृहंकुरुष्वनोवाक्याद्देवस्यपरमेष्ठिनः ॥ ७४ ॥ येनायंबालकास्तेद्यकृतोमृत्युविवर्जितः ॥ तस्मात्स्थापयतीर्थेत्र देवन्तंप्रपितामहम् ॥ ७५ ॥ पुत्रेणसहितःपश्चादाराधयदिवानिशम् ॥ वयमेवत्वयासार्द्धंतंचदेवंपितामहम् ॥ ७६ ॥ नित्यंप्रपूजयिष्यामस्तथान्येपिद्विजोत्तमाः ॥ बालेनानेनसार्द्धंतेसख्यमत्रस्थितंयतः ॥ ७७ ॥ बालसख्यमितिख्यातंनाम्नातेनभविष्यति ॥ तीर्थमन्यैरितिख्यातंवा

न होवै निस्सन्देह आप लोगोंको वैसाही करना चाहिये ॥ ७३ ॥ ऋषि लोग बोले कि, हे द्विजोत्तम ! यदि प्रत्युपकार (उपकारके वदले) के लिये तुम मानते हो तो हमारे वाक्यसे भक्त सुखदायक पितामह जी के मन्दिर का निर्माण करो ॥ ७४ ॥ जिन ब्रह्माजी ने तुम्हारे इस पुत्रको आज मृत्युसे रहित कर दियाहै इस लिये इस तीर्थ में तुम उन पितामह देवताकी थापना करो ॥ ७५ ॥ तिसके उपरान्त पुत्रके समेत तुम अहर्निश ब्रह्माका आराधन करो और हमभी तुम्हारे सहित उन पितामह देवता का नित्य प्रति अवश्यही पूजन करैंगे वैसेही और भी उत्तम ब्राह्मण पूजैंगे, जिस लिये कि तुम्हारे इस बालकके साथ यहां मैत्री प्राप्तहुई है ॥ ७६ । ७७ ॥

उस से बालसख्य ऐसे नामसे यह तीर्थ प्रसिद्ध होगा व बालकों के हितको प्राप्त करैगा इस लिये और लोगोंसे बालसख्य ऐसा कहा जायगा ॥ ७८ ॥ हे द्विज ! हमारे बचन से रोग या भयसे दुःखित मनुष्यों को सदैव यह तीर्थ हितको प्राप्त करैगा व इस तीर्थ में जो मनुष्य बालकको स्नान करावैंगे ॥ ७६ ॥ तो रोग से या भय से या प्रेतादि ग्रहोंसे दुःखित वह बालक निस्सन्देह सब दोषों से रहित होजायगा ॥ ८० ॥ हे द्विज ! ब्रह्माजी की प्रसन्नतासे तथा हमारे बचन से उपरोक्त फल होगा हे विप्र ! फिर श्रद्धासे संयुत व निष्काम याने कोई कामना न रखनेवाले जो मनुष्य ॥ ८१ ॥ इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे प्रशंसित

लकानांहितावहम् ॥ ७८ ॥ रोगार्तानांभयार्त्तानामस्माकंवचनात्सदा ॥ अस्मिंस्तीर्थेशिशुंलोकाःस्नापयिष्यन्तिये द्विज ॥ ७९ ॥ रोगार्त्तंवाभयार्त्तंवा पीडितंवाग्रहादिभिः ॥ भविष्यतिनसन्देहस्सर्वदोषैर्विवर्जितः ॥ ८० ॥ पितामहप्रसादेनतथास्मद्वचनाद्द्विज ॥ येपुनर्मानुषाविप्रनिष्कामाःश्रद्धयान्विताः ॥ ८१ ॥ स्नानमत्रकरिष्यन्ति तेयान्तिपरमांगतिम् ॥ एवमुक्त्वाथतेसर्वेमुनयश्शंसितव्रताः ॥ ८२ ॥तमामन्त्र्यमुनिंजग्मुस्तीर्थान्यन्यानिसत्वराः ॥ मृकण्डोपिसपुत्रश्च तस्मिन्स्थानेपितामहम् ॥ ८३ ॥ स्थापयामाससंहृष्टो ज्येष्ठेज्येष्ठास्थितेरवौ ॥ ततश्चाराधयामास दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ८४ ॥ सपुत्रःश्रद्धयायुक्तः सम्प्राप्तश्चपरांगतिम् ॥ ८५ ॥ सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थंबालसख्यमितिस्मृतम् ॥ पावनंसर्वजन्तूनांबालानांरोगनाशनम् ॥ ८६ ॥ ज्येष्ठेज्येष्ठासुयोबालस्तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ नसपी

व्रतवाले वे समस्त मुनीश्वर ऐसा कहकर इसके अनन्तर ॥ ८२ ॥ उन मृकण्ड मुनिकी सम्मति लेकर जल्दी से अन्य तीर्थोंको चलेगये और उस स्थान में पुत्र समेत मृकण्ड मुनिने भी बहुत प्रसन्न होकर ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठा नक्षत्र में चन्द्रमा को स्थित होतेहुये ब्रह्माकी थापना की तदनन्तर श्रद्धासे युक्त पुत्र समेत मृकण्ड मुनिने आलस्य रहित होकर अहर्निश आराधन किया व परम गतिको भली भांति प्राप्तहुये ॥ ८३ । ८४ । ८५ ॥ सूतजी बोले कि बालसख्य ऐसा कहा गया वह तीर्थ तबसे लगाकर सब प्राणियों का पवित्रकर्ता व बालकों के रोगोंका नाशकर्ता हुवा है ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! ज्येष्ठ के महीने में ज्येष्ठा नक्षत्र का योग

होतेहुये जो बालक वहां भलीभांति स्नान करताहै वह वर्ष पर्य्यन्त बाधा को नहीं प्राप्त होताहै ॥ ८७ ॥ व ग्रह, भूत, पिशाच, व विशेषता से डाकिनी शाकिनी तथा और सब दुष्टोंको अगम्य होताहै याने कोई उसके समीप नहीं आसक्ता है ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येबालसख्यतीर्थनिरूपणंनामएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा ॥ बाइस के अध्याय में कहत सूत मुनिराय । जिमि शिशुमण्डन तीर्थ में पाप रहित भे जाय ॥ ऋषि लोग बोले कि इन्द्रसे उपजे हुये उस तीर्थको जो

डामवाप्नोतियावत्संवत्सरंद्विजाः ॥ ८७ ॥ ग्रहभूतपिशाचानांशाकिनीनांविशेषतः ॥ अगम्यःसर्वदुष्टानां तथान्येषां प्रजायते ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येबालसख्यतीर्थमेकविंशो ध्यायः ॥ २१ ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंतीर्थंशक्रसमुद्भवम् ॥ स्वामिद्रोहकृतात्पापान्निर्मुक्तोयत्रलक्ष्मणः ॥ १ ॥ कथंतत्र पुराशक्रःस्वामिद्रोहसमुद्भवात् ॥ पातकादेवनिर्मुक्तःकस्मिन्कालेचसूतज ॥ २ ॥ कस्माद्दितेर्महेन्द्रेण कृतंकृत्यंयथाविधम् ॥ येनसंसूदितोगर्भःसर्वंविस्तरतोवद ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ ब्रह्मणोदक्षिणाङ्गुष्ठाज्जज्ञेदक्षःप्रजापतिः ॥ सचसञ्जनयामासपञ्चाशत्कन्यकाःशुभाः ॥ ४ ॥ ददौचदशधर्म्मायकश्यपायत्रयोदश ॥ दिव्येनविधिनादत्तःसप्तविंशतिरिन्दवे ॥ ५ ॥ अदितिश्चदितिश्चैव द्वेभार्य्येमुख्यतांगते ॥ कश्यपस्यद्विजश्रेष्ठाःप्राणेभ्योपिप्रियेसदा ॥ ६ ॥ ततःसजन

आपने कहाहै कि जहांपर स्वामीके द्रोहसे किये हुये पातकसे लक्ष्मणजी छूटगये हैं ॥ १ ॥ हे सूतजी ! पुरातन समयमें उस तीर्थमें स्वामीके द्रोहसे उपजेहुये पातकसे इन्द्रजी किस समय मुक्तहुये हैं ॥ २ ॥ व किस लिये महेन्द्रने दितिका जिस प्रकारका कार्य्य कियाहै और जिस से गर्भका नाश कियाहै तुम सबको विस्तारसे कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्माके दहिने अंगूठेसे दक्षनामक प्रजापति उत्पन्नहुयेहैं और उन्हीं दक्षने उत्तम सौ कन्याओंको पैदा कियाहै ॥ ४ ॥ व दक्षजीने दश कन्या धर्मराज के लिये और तेरह कश्यपजी के लिये तथा सत्ताईस कन्या उत्तमविधि से चन्द्रमा के लिये देदीं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! कश्यपजी के दिति व अदिति दो

स्त्रियां मुख्यताको प्राप्तथीं जोकि सदैव प्राणोंसे भी अधिक प्यारीथीं ॥ ६ ॥ तदनन्तर उन कश्यपजीने अदिति स्त्रीमें देवतों को उत्पन्न किया जिनमें इन्द्र पहले हुये हैं और दिति नामक स्त्रीमें बड़े बलवान् दैत्योंको पैदाकिया ॥ ७ ॥ व त्रिलोकी की राज्यके लिये देवता व दैत्योंका आपस में बड़ा संग्राम हुआ उसके उपरान्त इन्द्र जीने संग्राम में उन सब दैत्यों का नाश करदिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर नियम संयुत व शोक में परायण दिति महारानी ने सावधान होतीहुई पुत्रके लिये इसी क्षेत्रमें बहुत उत्तम व्रत किया ॥ ९ ॥ उसके बाद हजार वर्ष के बीतने पर प्रसन्न होतेहुये सदाशिवजी उस दितिसे बोले कि मैं प्रसन्नहूं तुम मनोवाञ्छित वरदानकी

यामासदेवान्शक्रपुरःसरान् ॥ अदित्यांचैवदित्यांचदैत्येयान्बलवत्तरान् ॥ ७ ॥ तेषांत्रैलोक्यराज्यार्थेमिथोयज्ञेम
हाहवः ॥ ततःशक्रेणतेदैत्याःसङ्ग्रामेविनिपातिताः ॥ ८ ॥ ततःशोकपराचक्रेदितिर्व्रतमनुत्तमम् ॥ पुत्रार्थेनियमोपेता
क्षेत्रेत्रैवसमाहिता ॥ ९ ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेतस्यास्तुष्टोमहेश्वरः ॥ प्रोवाचपरितुष्टोस्मिवरंप्रार्थय वाञ्छितम् ॥ १० ॥
साब्रवीद्यदिमेतुष्टस्त्वंदेवशशिशेखर ॥ तत्पुत्रंदेहिदेवानांसर्वेषांबलवत्तरम् ॥ ११ ॥ यज्ञभागप्रभोक्तारंदेवानांदर्पना
शनम् ॥ अवध्यंसङ्गरेपूर्वंसर्वैर्देवैस्सवासवैः ॥ १२ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायजगामादर्शनंहरः ॥ दितिश्चैवादधद्गर्भंकश्यपा
न्मुनिपुङ्गवात् ॥ १३ ॥ ततःशक्रोभयंचक्रेज्ञात्वातंगर्भसम्भवम् ॥ वदतोमुनिमुख्यस्यनारदस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥ त
तोदुष्टांमतिंकृत्वातस्यगर्भस्यनाशने ॥ चक्रेतस्याःसशुश्रूषांदिवारात्रमतन्द्रितः ॥ १५ ॥ छिद्रमन्वीक्षमाणस्तु सुसू

प्रार्थना करो ॥ १० ॥ उस दितिने कहा कि हे चन्द्रभालजी ! यदि तुम मुझसे प्रसन्नहो तो सब देवतों में बड़े बलिष्ठ पुत्रको दीजिये ॥ ११ ॥ कि जो यज्ञकेभाग का भोजन करनेवाला व देवतोंके अभिमान का नाशकर्त्ता तथा पहले इन्द्र समेत सब देवतोंसे अवध्यहोवै ॥१२॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकरके सदाशिवजी अदृश्य होगये व दिति महरानीने भी मुनिश्रेष्ठ कश्यपजी से गर्भको धारण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर मुनियों में मुख्य महात्मा नारदजीको कहतेहुये उस गर्भसम्भव को जानकर इन्द्रने भयकिया ॥ १४ ॥ उसके उपरान्त उस गर्भके नाश करने के लिये दुष्टबुद्धि को कर आलस्य रहित इन्द्रने अहर्निश उस दितिकी सेवा किया ॥ १५ ॥

हे ब्राह्मणो ! उस दितिके बहुत थोड़ेंभी छिद्र (दोष) को देखतेहुये कभी न पाया और नवही मास व्यतीत हुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर गर्भसम्भव को दशम महीना
भलीभांति प्राप्त होतेहुये गर्भ के आलस से वह दिति महारानी रात्रि के मुख में सन्ध्यासमय दक्षिणदिशा में मुँह करहे सोरही ॥ १७ ॥ व निद्राके वशमें भली
भांति प्राप्त होतीहुई अचेतनता को प्राप्तभई इन्द्रजीके हाथोंके मीड़नेसे जो सुख उठाहै उससे निश्चल पड़ी थी ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर सञ्ज्ञारहित उस दितिको
देखकर इन्द्रने पात्रोंको छोड़कर तीक्ष्णशस्त्र को करतलमें धारण कियेहुये उस दितिके पेटमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उन सुरेश ने उस शस्त्रसे गर्भके सात खण्ड

नतस्यालभतेकापि गतामासानवैवतु ॥ १६ ॥ ततश्चदशमेमासिसम्प्राप्तेप्रसवोद्भवे ॥ गर्भालसा
क्षमपिचद्विजाः ॥ नतस्यालभतेकापि गतामासानवैवतु ॥ १६ ॥ ततश्चदशमेमासिसम्प्राप्तेप्रसवोद्भवे ॥ गर्भालसा

निशावक्रेसुप्तासादक्षिणामुखी ॥ १७ ॥ निद्रावशंचसम्प्राप्ताविसञ्ज्ञांसमपद्यत ॥ शक्रहस्तावमर्द्दोत्थयावत्सौख्येन
निश्चला ॥ १८ ॥ तांविसञ्ज्ञामथोवीक्ष्यत्यक्त्वापादौशतक्रतुः ॥ प्रविवेशोदरंतस्यास्तीक्ष्णंशस्त्रंकरेदधत् ॥ १९ ॥
तेनासौसप्तधाचक्रेगर्भंशस्त्रेणदेवपः ॥ अथापश्यत्क्षणात्सप्तबालकान्पूर्णविग्रहान् ॥ २० ॥ ततस्तानपिसप्तैवसप्तधा
कृतवान्हरिः ॥ जाताएकोनपञ्चाशदथतत्रैवबालकाः ॥ २१ ॥ तान्दृष्ट्वावृद्धिमापन्नांस्ततोभीतःशतक्रतुः ॥ निश्च
क्रामोदरात्तूर्णंदित्यायावन्नलक्षितः ॥ २२ ॥ ततःप्रभातेविमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ दितिःसञ्जनयामाससप्तघ्नान्सप्त
बालकान् ॥ २३ ॥ ततोभ्येत्यसहस्राक्षोदुर्गन्धेनसमावृतः ॥ निस्तेजाम्लानवक्त्रश्चलज्जयाधोमुखःस्थितः ॥ २४ ॥

करडाला इसके बाद क्षणभरमें समस्त शरीरवालें सात बालकोंको देखा ॥ २० ॥ तदनन्तर इन्द्रजीने उन सातों बालकों को भी सात सात खण्ड करडाला इसके
बाद उसी उदरमें उंचास बालक होगये ॥ २१ ॥ वृद्धिको प्राप्त उन बालकों को देखकर तदनन्तर डरेहुये इन्द्रजी जबतक दितिने न देखा तभीतक बहुत शीघ्र
उसके उदरसे निकले ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में निर्मल सूर्य्यमण्डल उदय होतेहुये दिति महारानी ने सातसे गुणित सात उंचास बालकोंको उत्पन्न
किया ॥ २३ ॥ उसके उपरान्त दुर्गन्ध से घिरेहुये व तेजरहित तथा कुम्हिलाये हुये मुखवाले इन्द्रजी आकर लाजसे नीचे मुख किये खड़ेहुये ॥ २४ ॥

व प्रणाम करतेहुये भयसे व्याकुलचित्तवाले व बगलमें खड़े वैसे उन इन्द्रको देखकर दितिजी आदर समेत बोलीं ॥२५॥ कि हे इन्द्र ! प्रभाव व प्रकाशसे रहित होकर तुम उत्साहसें हीन क्योंहो और तुम्हारे शरीरसे ऐसा दुर्गन्ध किस कारण आता है ॥ २६ ॥ क्या तुमने ब्राह्मण या गुरु या बालक अथवा स्त्रीको मारडाला है कि जिस से शरीर से उपजा हुआ प्रभाव नाश होगया ॥ २७ ॥ व सहसाकर्म करनेवाले तुम नखके जलसे या सूपके पवन से ताड़ित हुयेहो अथवा बकरी या मार्जनी (बढ़नी) से उठीहुई धूलिसे भलीभांति सेवित हुयेहो ॥ २८ ॥ इन्द्र बोले किहे महाभाग्यवति ! इस समय तुमने जो मुझसे कहाहै यह सत्य है रात्रिको जब तुम

तंदृष्ट्वातादृशंशक्रं दितिःप्रोवाचसादरम् ॥ प्रणतंसंस्थितंपार्श्वेभयव्याकुलचेतसम् ॥ २५ ॥ किन्त्वंशक्रनिरुत्साह स्तेजसाद्युतिवर्जितः ॥ शरीरात्तवदुर्गन्धः कस्मादीदृक्प्रजायते ॥ २६ ॥ किन्त्वयानिहतोविप्रोगुरुर्वाबालकोथवा ॥ नारीवायेनतेनष्टन्तेजोगात्रसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ हतोनखाम्भसावात्वंघृष्टःशूर्पानिलेनवा ॥ अजामार्जनिकोत्थैश्चर जोभिर्वासमाश्रितः ॥ २८ ॥ शक्रउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागेयत्त्वयोक्तोस्मिसाम्प्रतम् ॥ रात्रौप्रविष्टःसुप्तायाजठ रंतवपापकृत् ॥ २९ ॥ ततश्चैकोनपञ्चाशत्कृतोगर्भोमयाशुभे ॥ तावन्मात्रास्ततोजाताबालकाःसर्वएवते ॥ ३० ॥ त तोभीत्याविनिष्क्रान्तस्त्वयादेविनलक्षितः ॥ एतस्मात्कारणाज्जातातेजोहानिरनिन्दिते ॥ ३१ ॥ दितिरुवाच ॥ य स्मात्सत्यंत्वयाप्रोक्तंपुरतोममदेवप ॥ तस्मात्प्रार्थयमत्तस्त्वंवरंयन्मनसेच्छितम् ॥ ३२ ॥ शक्रउवाच ॥ एतेतवसुतादे विच्छिद्यमानामयासिना ॥ रुदन्तोवारितामन्दमारुदन्तुमुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ मरुतोनामविख्यातास्तस्मात्सन्तुजगत्त्र

सोगईथी तब पापकारी मैं तुम्हारे उदरमें पैठगया था ॥ २९ ॥ हे शुभे ! तदनन्तर मैंने गर्भको उंचास करदिया तब वे सब बालक उतनेही होगये ॥ ३० ॥ हे प्रशंसिते देवि ! उसके उपरान्त मैं डरसे निकलआया और तुमने मुझे न देखा इसी कारण से तेजकी हानि होगई ॥ ३१ ॥ दिति महारानी बोलीं कि हे सुरपालक ! जिस लिये तुमने मेरे आगे सत्य कहदिया इससे जो मनोवाञ्छित वरदानहो मुझ से तुम उसकी प्रार्थना करो ॥ ३२ ॥ इन्द्र बोले कि हे देवि ! तलवार से काटे व वारंवार रोतेहुये तुम्हारे इन बालकोंको मैंने धीरेसे मनाकिया कि तुम मत रोवो ॥३३॥ इससे दैत्योंके स्वभावसे छूटेहुये मुझको परमप्रिय व मेरे आज्ञाकारी ये तीनों लोकों

में मरुत् नामक प्रसिद्ध होंगे ॥ ३४ ॥ व मेरे सहित समस्त यज्ञभाग के भोगी होवैंगे जिससे कि तुम्हारे बहुत बालकों से मैंने इस तीर्थको मण्डित (शोभित)
कियाहै इससे बालमण्डन ऐसेही नामसे प्रसिद्ध होगा और गर्भसंयुत जो नारी भक्तिसे इस तीर्थमें स्नान करैगी ॥ ३५ । ३६ ॥ उसके गर्भमें किसी प्रकार का
दोष न होगा और गर्भका उत्पन्न समय प्राप्त होतेहुये जो स्त्री इस तीर्थका जल पियेगी वह सुखहीसे उत्तम अपत्य याने सन्तानको पैदा करैगी ॥ ३७ । ३८ ॥ दिति
बोलीं कि हे सुरेश ! तुम्हारे नाशके लिये पहले मैंने सदाशिवजी से प्रार्थना किया कि हे देव ! ऐसा पुत्र दीजिये जो सब देवतोंका नाशकर्त्ता होय ॥ ३९ ॥ उस पुत्र

ये ॥ दैत्यभावविनिर्मुक्तामद्विधेयाममप्रियाः ॥ ३४ ॥ यज्ञभागभुजःसर्वेभविष्यन्तिमयासह ॥ यस्मादेतन्मयातीर्थं
बालकैस्तवमण्डितम् ॥ ३५ ॥ बहुभिर्यास्यतिख्यातिंबालमण्डनमित्युत ॥ याचस्त्रीगर्भसंयुक्ताभक्तयास्नानंकरिष्य
ति ॥ ३६ ॥ नभविष्यन्तिच्छिद्राणितस्यागर्भेकथञ्चन ॥ प्राप्तेप्रसवकालेतुयाजलंप्राशयिष्यति ॥ ३७ ॥ तीर्थस्या
स्यसुखेनैवप्रसविष्यतिसाशुभम् ॥ ३८ ॥ दितिरुवाच ॥ तवोच्छेदायदेवेशयाचितःप्राङ्मयाहरः ॥ एवंदेयसुतंदेहि
सर्वदेवनिबर्हणम् ॥ ३९ ॥ त्वयाचैकोनपञ्चाशत्प्रकारःसविनिर्मितः ॥ यस्माच्चशक्रऋतंप्रोक्तंतस्मादेतद्भविष्यति ॥
४० ॥ सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतितेसर्वेमरुतोविबुधैःसमम् ॥ यज्ञभागस्यभोक्तारोदितेःशक्रस्यशासनात् ॥ ४१ ॥ अथ
प्राहसहस्राक्षोदेवाचार्य्यंबृहस्पतिम् ॥ मातुर्द्रोहकृतंपापंकथंयास्यतिमेक्षयम् ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अत्रैवकुरु
देवेन्द्रतपः पापविशुद्धये ॥ तीर्थेयत्रकृतंपापंसर्वपातकनाशने ॥ ४३ ॥ नचयज्ञैर्नदानेननान्यैस्तीर्थसमाश्रयैः ॥ मा

को तुमने उंचास प्रकारका करडाला हे इन्द्र ! जिस लिये तुमने सत्य कहाहै इस से यह होवैगा ॥४०॥ सूतजी बोले कि तबसे लगाकर दिति व इन्द्रजीकी आज्ञा से
वे समस्त मरुत् देवतोंके साथ यज्ञभागके भोगीहुये ॥४१॥ इसके अनन्तर इन्द्रजी ने देवतों के आचार्य्य बृहस्पतिजी से कहा कि माताके द्रोहसे कियाहुआ मेरा पाप
किस प्रकार नाश होवैगा ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे सुरेन्द्र ! सब पातकोंके नाश करनेवाले जिस तीर्थमें तुमने पाप कियाहै उसी तीर्थमें पापसे पवित्र होनेके
लिये तपस्या करो ॥ ४३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी मातासे सेवित ऐसे इस तीर्थको छोड़कर न यज्ञसे न दानसे और न अन्य तीर्थोंके सेवन से माताके द्रोहसे कियाहुआ

पातक नाश होताहै तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! इन्द्रजीने जल्दीसे सहस्राक्षेश नामक लिङ्गको आपही भलीभांति स्थापित किया व पुष्प, धूप और चन्दनादिलेपनों से त्रिकाल (प्रातः समय मध्याह्न सायाह्न) में पूजन किया ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ वैसेही बलि, सत्कार, नृत्य, गीत व अन्य भिन्न २ प्रकारों से पूजन किया उसके उपरान्त हज़ार वर्ष के बाद उस सुरेशके ऊपर सदाशिवजी प्रसन्न हुये ॥ ४७ ॥ व यह बोले कि हे इन्द्र ! मैं वरदायक हूं तुम मनोऽभिलषित को याचनाकरो ॥४८॥ इन्द्र बोले कि हे त्रिपुरनाशक ! माताके द्रोहसे कियाहुवा मेरा पातक नाश होजावै वैसेही श्रद्धासे संयुत व सावधान चित्तवाले और जो मनुज उत्तम भक्तिसे इस

तुर्द्रोहकृतंपापंनाशंयातिपुरन्दर ॥ ४४ ॥ एवमेतत्परित्यज्यतीर्थंमातुस्तवाश्रयम् ॥ ततस्तूर्णंसहस्राक्षःसहस्राक्षेश सञ्ज्ञितम् ॥ ४५ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासस्वयमेवद्विजोत्तमाः ॥ त्रिकालंपूजयामासपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ ४६ ॥ तथा न्यैर्बलिसत्कारैर्गीतैर्नृत्यैःपृथग्विधैः ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेतुष्टस्तस्यमहेश्वरः ॥ ४७ ॥ प्रोवाचवरदोस्मीतिशक्रप्रार्थ यवाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ शक्रउवाच ॥ मातुर्द्रोहकृतंपापंयातुमेत्रिपुरान्तक ॥ तथान्येषांमनुष्याणांयेत्रत्वांश्रद्धयान्वि ताः ॥ ४९ ॥ पूजयिष्यन्तिसद्भक्त्यास्नानंकृत्वासमाहिताः ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायजगामादर्शनं हरः ॥ शक्रोपिरहितःपापैर्जगामत्रिदशालयम् ॥ ५१ ॥ एवंतत्रसमुत्पन्नंतीर्थंतद्बालमण्डनम् ॥ स्वामिद्रोहकृता त्पापान्मुच्यन्तेयत्रमानवाः ॥ ५२ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंबालमण्डनसम्भवम् ॥ माहात्म्यन्तुद्विजश्रेष्ठाःशृणुध्वम थसादरम् ॥ ५३ ॥ आश्विनस्यासितेपक्षेदशम्यादियथाक्रमम् ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धंयावत्पञ्चदशीतिथिः ॥ ५४ ॥

तीर्थ में स्नानकर तुम्हारा पूजन करैं उनका भी पातक नाश होवै ॥ ४९ । ५० ॥ सूतजी बोले कि, वैसाही होगा यह इन्द्रसे प्रतिज्ञाकर सदाशिवजी अन्तर्द्धान होगये और सुरेशभी पापोंसे रहित होकर स्वर्गको चलेगये ॥ ५१ ॥ इसप्रकार वहांपर वह बालमण्डन नामक तीर्थ उत्पन्न हुवाहै कि जहांपर स्वामीके द्रोहसे कियेहुये पातकसे मनुज लोग छूटजाते हैं ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तुम लोगोंसे यह समस्त बालमण्डन की उत्पत्ति कहीगई और इसके बाद आदरसे माहात्म्य को सुनो ॥ ५३ ॥ कि कुँवार महीने के शुक्लपक्ष में दशमी से लगाकर पौर्णमासीपर्य्यन्त क्रमपूर्वक उस बालमण्डन तीर्थ में जो श्राद्ध करता है ॥ ५४ ॥

हे ब्राह्मणो ! वह अवश्य सम्पूर्ण तीर्थोंके स्नानसे उपजेहुये फलको प्राप्तहोताहै और श्राद्धके करनेसे भी अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्तहोताहै ॥५५॥ उस समयमें मनुष्यों से उपजेहुये भागों को सेवन करने के लिये इन्द्रजी सदैव निश्चयकर भूमितलमें भलीभांति आगमन करते हैं ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इसप्रकार भूतलमें इन्द्र जी जबतक टिके रहते हैं तबतक उस तीर्थमें समस्त तीर्थ अवश्य स्थित रहते हैं ॥ ५७ ॥ इसलिये उस समय में अर्थात् कुँवार महीनेमें श्रवणादिक पांच नक्षत्रों के प्राप्त होतेहुये विशेषकर सब उपायसे उस उत्तम तीर्थमें जो मनुष्य स्नानकर इसके बाद इन्द्रेश्वरके दर्शन करता है वह भूतलमें जन्म से लगाकर मृत्युपर्य्यन्त के

तीर्थानांसहिसर्वेषांस्नानजंलभतेफलम् ॥ श्राद्धस्यकरणाद्वापिवाजिमेधफलंद्विजाः ॥ ५५ ॥ तस्मिन्कालेसहस्राक्षः समागच्छतिभूतले ॥ भागानांमर्त्यजातानांसेवनायसदैवहि ॥ ५६ ॥ यावद्भूमितलेशक्रस्तिष्ठत्येवद्विजोत्तमाः ॥ तीर्थेतीर्थानिसर्वाणितावत्तिष्ठन्तितत्रवै ॥ ५७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतस्मिन्कालेविशेषतः ॥ स्नात्वातत्रशुभेतीर्थेशक्रेश्वरमथेक्षयेत् ॥ ५८ ॥ यःपुमानाश्विनेमासिप्राप्तेश्रवणपञ्चके ॥ सपापैर्मुच्यतेसर्वैराजन्ममरणाद्भुवि ॥ ५९ ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्यसत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येबालमण्डनतीर्थमाहात्म्यंनामद्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूतउवाच ॥ तस्यैवपश्चिमेभागेमृगतीर्थमनुत्तमम् ॥ अस्तिपुण्यतमंख्यातंसमस्तेधरणीतले ॥ १ ॥ तत्रयेमानवास्तीर्थेसम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यांस्नानंकुर्वन्तिभास्करे ॥ २ ॥ मध्येस्थितेनतेयान्तितिर्य्यग्योनौ

समस्त पातकों से छूटजाता है ॥ ५८।५९ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस तीर्थके प्रभावसे यह सत्य है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येबालमण्डनतीर्थमाहात्म्यंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ तेइसके अध्याय में तीरथ मृग उपनाम । कह्यो जहांपर वधिक अरु मृगा भये छविधाम ॥ श्रीसूतजी बोले कि उसी बालमण्डन के पश्चिम दिशा के भाग में अतिपवित्र व बहुत उत्तम मृग नामक तीर्थ है जो कि समस्त धरातलमें प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ चैत्र महीने में शुक्लपक्षकी चतुर्दशी को सूर्य्यनारायण

को मध्य में स्थित होते हुये याने मध्याह्न समय में जे मनुज भलीभांति श्रद्धासंयुत उस तीर्थ में स्नान करते हैं वे समस्त दोषों से संयुक्त व पापों से समन्वित भी किसी प्रकार तिर्यग्योनि (पशुपक्षी की योनि) में नहीं जाते हैं ॥ २ । ३ ॥ और जे कृतघ्न व नास्तिक (देव वेदादि के निन्दक) तथा चोर व राजाओ के निन्दक हैं वे उस उत्तम तीर्थ में स्नान करनेके उपरान्त परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ व उत्तम विमान पर सवार होतेहुये किन्नरोंसे स्तुति किये जाते हैं ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर मृगतीर्थ कैसे उत्पन्न हुवा और उसका क्या प्रभाव है यह कहिये कि जिस लिये हमलोगों को बड़ा आश्चर्य्य है ॥ ६ ॥ सूतजी बोले

कथञ्चन ॥ अपिपापसमोपेतादोषैःसर्वैःसमन्विताः ॥ ३ ॥ कृतघ्नानास्तिकाश्चौरास्तथाराजाभिनिन्दकाः ॥ स्नाना न्तेयत्रसत्तीर्थेतेप्रयान्तिपराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ विमानवरमारूढाःस्तूयमानाश्चकिन्नरैः ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ मृगतीर्थं कथंतत्रसञ्जातंसूतनन्दन ॥ किम्प्रभावंसमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वन्तत्रमहारण्येनानामृगग णावृते ॥ नानाविहङ्गसङ्घुष्टेनानावृक्षसमाकुले ॥ ७ ॥ समायातामहारौद्रालुब्धकाश्चापपाणयः॥ कृष्णाङ्गाभ्रममाणा स्तेयमदूताइवापरे ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदृष्टंमृगयूथन्तरोरधः ॥ उपविष्टंसुविश्रब्धंतैस्तदाद्विजसत्तमाः ॥ ९ ॥ अथ ताल्ँलुब्धकान्दृष्ट्वादूरतोपिभयातुराः ॥ पलायनपराः सर्वेमृगाजग्मुर्द्रुतन्तदा ॥ १० ॥ अथतेसन्निधौदृष्ट्वागम्भीरंस लिलाशयम् ॥ प्रविष्टाहरिणास्सर्वेभयार्ताःशरपीडिताः ॥ ११ ॥ ततस्तुसलिलस्यान्तस्तेमृगास्सर्वएवहि ॥ मानुष

कि उस महावन में जोकि अनेक प्रकार के मृगसमूहों से घिरा हुवा व अनेकों प्रकार के वृक्षों से संयुक्त तथा जिस वन में अनेकों प्रकार के पक्षी शब्द कर रहे हैं वहां पुरातन समयमें ॥ ७ ॥ धनुष हाथों में लिये काले शरीरवाले व बड़े विकराल वे बहेलिया घूमते हुये भलीभांति प्राप्त हुये मानो दूसरे यमदूत हैं ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसी समयमें वृक्ष के नीचे बहुत विश्वास किये समीप में बैठे हुये मृगोंके गण को उन्होंने उस समय देखा ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर दूरसे भी उन बहेलियों को देखकर भागने में तत्पर समस्त हरिणोंने उस समय शीघ्रही गमन किया ॥१०॥ इसके अनन्तर बाण से दुःखित व भयसे व्याकुल वे सब हरिण समीप में अगाध

जलाशय को देखकर पैठ गये ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर वेही सब मृग उस तीर्थके प्रभावसे मनुजशरीरको प्राप्त होगये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त मनुष्य के शरीर को प्राप्त हुये उन मृगों से बहेलियों ने पूछा कि इस समय इस मार्गसे मृगोंका गण आया है ॥ १३ ॥ वह किस मार्ग से निकल गया उसको तुमलोग मुझसे बहुत जल्दी कहो ॥ १४ ॥ मनुष्य बोले कि वे सब हरिण हमही लोग हैं इस तीर्थके प्रभाव से बहुत दुर्लभ मनुजशरीर को प्राप्त हुये हैं निस्सन्देह यह सत्य है ॥ १५ ॥ उसको सुनकर तदनन्तर आश्चर्य्य में व्यास उन बहेलियों ने जल्दी से धनुष व बाणों को त्याग कर उस जलाशय में स्नान किया ॥ १६ ॥ केवल स्नानही

त्वमनुप्राप्तास्तत्प्रभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥ अथतान्मानुषीभूतानपृच्छल्लुब्धकामृगान् ॥ मृगयूथंसमायातंमार्गेणानेनसाम्प्रतम् ॥ १३ ॥ केनमार्गेणनिर्यातन्तन्मेवदतमाचिरम् ॥ १४ ॥ मानुषाऊचुः ॥ वयन्तेहरिणाःसर्वेमानुषत्वंसुदुर्लभम् ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेणसत्यमेतन्नसंशयः ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मयाविष्टास्ततस्तेलुब्धकाद्रुतम् ॥ त्यक्त्वाधनूंषिबाणांश्चस्नानंतत्रप्रचक्रिरे ॥ १६ ॥ स्नानमात्रात्तथासर्वेदिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ दिव्यगात्रधराःसर्वेसञ्जाताःपार्थिवोत्तमाः ॥ १७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्याश्चर्य्यमिदंसूतयत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ स्नानमात्रेणतेप्राप्तालुब्धकास्तादृशंवपुः ॥ १८ ॥ तथामानुष्यमापन्नामृगास्तोयावगाहनात् ॥ तत्कथंमेदिनीपृष्ठेतत्तीर्थंसम्बभूवह ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ लिङ्गभेदोद्भवंतोयंयत्पुरावःप्रकीर्त्तितम् ॥ आच्छन्नंपांशुभिःकृत्स्नंवायुनाशक्रशासनात् ॥ २० ॥ बल्मीकरन्ध्रमासाद्यतन्निष्क्रान्तंपुनर्द्विजाः ॥ कालेनमहतातत्रप्रदेशेस्वल्पमेवहि ॥ २१ ॥ यत्रस्नातःपुरासद्यस्त्रिशङ्कुःपृथिवी

करने से उत्तम शरीरों को धारण किये व सुन्दर माला तथा चन्दनादि लेपन किये हुये अत्युत्तम पृथ्वीपति होगये ॥ १७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहा यह अत्यन्त आश्चर्य्यहै कि केवल स्नानकरके उन बहेलियोंने वैसे शरीरको पायाहै ॥ १८ ॥ तैसेही मृग जलके संस्पर्शसे मनुष्यशरीरको प्राप्त हुये हैं तो वह तीर्थ पृथ्वीतल में किस प्रकार हुवा है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले कि लिंगभेदन से उत्पन्नहुये जलको मैंने पहले जो तुमसे वर्णन कियाहै उस सबको इन्द्रकी आज्ञासे पवन ने धूरिसे आच्छादित करदिया है ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! बहुत समय से बेंबौरि के छिद्र को पाकर उसी स्थान में बहुतही थोड़ा वह जल फिर निकला है ॥ २१ ॥ पुरा-

तन समयमें चांडालतासे भलीभांति टिकाहुवा त्रिशंकु नामक भूपति जिस जलमें स्नानकर फिर उत्तम शरीर को प्राप्तहुवा है ॥ २२ ॥ इसी कारणसे बहेलिये उस जलाशयमें स्नान करतेहुये सबपापों से छूटकर उत्तम शरीरको प्राप्तहोगये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरमाहात्म्ये मृगतीर्थमाहात्म्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । चौविस के अध्यायमें विष्णुपदी उत्पत्ति । आत्मनिवेदन आदिकी कथित कीन सब युक्ति ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस उत्तम तीर्थ में समस्त

पतिः ॥ दिव्यंवपुःपुनःप्राप्तश्चण्डालत्वेनसंस्थितः ॥ २२ ॥ एतस्मात्कारणात्तत्रस्नाताःसारङ्गलुब्धकाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्सम्प्राप्ताःपरमंवपुः ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्ये मृगतीर्थमाहात्म्यंनामत्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्रविष्णुपदंनामतीर्थंतीर्थेशुभेस्थितम् ॥ अपरंब्राह्मणश्रेष्ठःसर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ अयनेदक्षिणे प्राप्तेयत्पूज्यचसमाहितः ॥ निवेदयेत्तथात्मानंसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ २ ॥ समृतोप्ययनेयाम्येतद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ प्राप्नोतिनात्रसन्देहस्तत्प्रभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ तथावैचोत्तरेप्राप्तेपूजयित्वायथाविधि ॥ सम्यग्निवेदयेद्भक्त्याय आत्मानंसमाहितः ॥ ४ ॥ सोपिविष्णोःपदंपुण्यंप्राप्यसञ्जायतेसुखी ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंतत्रपदंजातंविष्णोरव्य

पातकों का विनाशक विष्णुपदनामक दूसरा तीर्थ है ॥ १ ॥ सूर्यको दक्षिणायनमें प्राप्तहोते हुये सावधान होकर व श्रद्धासे संयुक्त जो मनुष्य भलीभांति जिस विष्णुपदको पूजनकर तथा आत्माको निवेदन करता है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! दक्षिणायनमें भी मराहुवा वह उसके प्रभाव से उस उत्तम विष्णु के स्थान को निस्सन्देह प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ और वैसेही सूर्य्यनारायणको उत्तरायणमें प्राप्तहोतेहुये जो सावधानचित्त होकर व विधिपूर्वक पूजनकरके भलीभांति भक्ति से आत्माको निवेदन करै ॥ ४ ॥ वह भी उत्तम विष्णु जीके स्थानको प्राप्तहोकर भलीभांति सुखी होताहै ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि उस स्थानमें अप्रकट जन्मवाले विष्णुजीका चरण कैसे

प्राप्तहुवाहै और दोनों अयनों में वहां किस प्रकार आत्मा निवेदन किया जाता है॥ ६॥ हे सूतपुत्र! उसको देखने तथा स्पर्शकरने से मनुष्य जिस फल को प्राप्त होतेहैं उस सबको तुम कहो हमलोगों को बड़ा आश्चर्य्य है॥ ७॥ सूतजी बोले कि सर्वशक्तिमान् उन विष्णु जीने जिस समय में बलिनामक दैत्य को बांधाहै उस समय तीन चरणों से स्थावर जङ्गम समेत तीनों लोक व्याप्त होगये॥ ८॥ हाटकेश्वर जीसे उपजे हुये उस क्षेत्र में उन विष्णु महात्माने प्रथम चरण धारण किया और उसी समय दूसरे चरण को महर्लोक में धरा है॥ ९॥ हे ब्राह्मणोत्तमो! जब उन चक्रधारी भगवान् ने तीसरा चरण धरने का यत्न किया तब सूक्ष्मता को

क्तजन्मनः॥ कथंनिवेद्यतेतत्रसम्यगात्मायनद्वये॥ ६॥ तस्मिन्दृष्टेथवास्पृष्टेयत्फलंलभ्यतेनरैः॥ तत्सर्वंसूतजब्रूहिपरंकौतूहलंहिनः॥ ७॥ सूतउवाच॥ बलिर्बद्धोयदातेनविष्णुनाप्रभविष्णुना॥ तदाक्रमैस्त्रिभिर्व्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम्॥८॥हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसन्न्यस्तप्रथमःक्रमः॥ महर्लोकेद्वितीयस्तुतदातेनमहात्मना॥ ९॥ तृतीयस्यसमुद्योगंयदाचक्रेसचक्रधृक्॥ तदाभिन्नंद्विजश्रेष्ठाब्रह्माण्डंलघुतांगतम्॥१०॥ पादाग्रेणाथसम्भिन्नेब्रह्माण्डेनिर्गतंजलम्॥ अङ्गुष्ठाग्रेणसम्प्राप्तंक्रमेणधरणीतले॥ ११॥ ब्रह्मलोकंतदाकृत्स्नंप्लावयित्वाजलंहितत्॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशंकुन्देन्दुसदृशद्युति॥ १२॥ मत्स्यकच्छपसङ्कीर्णंग्राहयूथैःसमाकुलम्॥ ततःप्रभृतिसालोकेगङ्गाविष्णुपदीस्मृता॥ १३॥ पवित्रमपितत्क्षेत्रंनयन्तीसापवित्रताम्॥ एवंविष्णोःपदंतत्रसञ्जातंमुनिसत्तमाः॥ १४॥ सर्वपापहरापुंसांतदाविष्णुप

प्राप्त होता हुवा ब्रह्माण्ड विदीर्ण होगया॥ १०॥ इसके अनन्तर जब चरण के अग्रभाग से ब्रह्माण्ड विदीर्ण होगया तब जल निकला व अंगूठा के अग्रभाग के क्रमसे पृथ्वीतलमें भलीभांति प्राप्त होगया॥ ११॥ उसीसमय निर्मल बिल्लौर पत्थर के समान व कुन्द के पुष्प तथा चन्द्रमा के सदृश चमकदार वह जल सम्पूर्ण ब्रह्मलोक को डुबाकर॥ १२॥ मछली व कछुओं से व्याप्त तथा मगर के यूथों से संकुल हुवा संसार में तब से लगाकर वे विष्णुपदी गङ्गा कहलाती हैं॥१३॥ हे मुनीश्वरो! पवित्रभी उस क्षेत्र को वे गङ्गा पवित्रताको प्राप्त कररही हैं इसप्रकार जब उस क्षेत्र में विष्णु जी का चरण प्राप्तहुवा है॥ १४॥ उससमय मनुष्यों के स-

म्पूर्ण पातकोंको नाशकरनेवाली विष्णुपदी नामक नदीहुई है श्रद्धासंयुक्त जो मनुष्य उस नदीमें जैसा कहाहै वैसेही स्नानकर ॥१५॥ और विष्णु जी के उस चरण को स्पर्शकरता है वह परमपद को प्राप्तहोता है व श्रद्धासे संयुक्त जो उस विष्णुपदी में भलीभांति श्राद्ध करता है ॥ १६ ॥ व विष्णुपदीके जल में स्नान कर गया में श्राद्ध करने के फलको प्राप्तहोता है जो मनुष्य माघमासमें प्रातःकाल उठकर उस विष्णुपदी में सदैव स्नान करता है ॥ १७ ॥ वह मनुष्य प्रयागके स्नानके फल को प्राप्त होता है अथवा वर्षपर्य्यन्त उत्सवकर यहां पर भक्ति से ॥ १८ ॥ उस तीर्थमें जो मनुज स्नान करता है वह मुक्ति को प्राप्तहोताहै और जिस मनुष्य की हड्डियां उस

दीनदी ॥ यस्तस्यांश्रद्धयायुक्तःस्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ १५ ॥ स्पर्शयेत्तत्पदंविष्णोस्सयातिपरमंपदम् ॥ यस्तत्र कुरुतेश्राद्धंसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ १६ ॥ स्नात्वाविष्णुपदीतोयेगयांश्राद्धफलंलभेत् ॥ माघमासेनरःस्नानंप्रातरुत्थायतत्रयः ॥१७॥ करोतिसततंमर्त्यःसप्रयागफलंलभेत् ॥ अथवावत्सरंयावत्त्क्षणंकृत्वात्रभक्तितः ॥ १८ ॥ तत्रस्नानंच यःकुर्य्यात्समुक्तिंलभतेनरः ॥ यस्यास्थीनिजलेतत्रक्षिप्यन्तेमनुजस्यच ॥ १९ ॥ अपिपापसमाचारःसप्राप्नोतिपरां गतिम् ॥ अपिपक्षिपतङ्गायेपशवःकृमियोनयः ॥ २० ॥ प्रविष्टाःसलिलेतस्मिंस्तृषार्त्ताभक्तिवर्जिताः ॥ तेपिपापविनिर्मुक्तादेहान्तेप्राप्यतेपरम् ॥२१॥ चक्रिणस्तत्पदंयान्तिजरामरणवर्जितम् ॥ किम्पुनःश्रद्धयोपेताःपर्वकालउपस्थिते ॥ २२ ॥ दत्त्वादानंद्विजेन्द्राणांनरोवेदविदांद्विजाः ॥ तत्रगाथापुरागीतानारदेनमहर्षिणा ॥ २३ ॥ विष्णुपद्याःसमालोक्य

तीर्थ के जल में फेंकदीजाती हैं ॥ १९ ॥ तो पाप आचरण करनेवाला भी वह परमगतिको प्राप्त होताहै पक्षी पांखी व पशु तथा जे कीटयोनिभीहैं ॥ २० ॥ वेभी भक्ति से रहित व प्यास से दुःखित उस जलमें पैठेहुये पाप से छूटकर शरीर के अन्तमें सुदर्शनचक्रधारीके उस परम पदको प्राप्त होते हैं जो कि वृद्धता व मृत्युसे रहित है फिर पर्वकाल (विशेषयोग) के प्राप्तहोतेहुये श्रद्धासे संयुक्त जो मनुष्य स्नान करतेहैं उनको क्या कहना है ॥२१।२२॥ हे ब्राह्मणो ! वेदके जाननेवाले उत्तम ब्राह्मणोंको दान देकर मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होताहै पुरातन समय में उस क्षेत्र के पापनाशक प्रभावको अवलोकन कर नारद महर्षिने गाथा को गान कियाहै कि व्रत व नियम और

तपस्या तथा अनेक प्रकारके यज्ञोंसे क्या है याने कुछ नहीं॥ २३। २४॥ कलियुगमें विष्णुपदी के जलको पृथ्वीतलमें स्थित होतेहुये एक मनुष्य सबतीर्थोंमें स्नानकरै॥ २५॥ व एक मनुज विष्णुपदी के जल में स्नान करता है उन दोनों का फल बराबरहै एक मनुष्य सब दानोंको ब्राह्मणों के लिये देता है॥ २६॥ व एक विष्णुपदी के जल में स्नानकरै उन दोनों का वह फल बराबर है एक मनुज ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्नि साधनकरै व वर्षा ऋतुमें आकाश में आश्रय करै व हेमन्त ऋतुमें जलशयनकरै तथा दूसरा पुरुष पृथ्वी में विष्णुपदी के जलमें स्नान करके विष्णुपद कोस्पर्श करै॥ २७। २८॥ वे दोनों भी पुरुषोत्तम तुल्य कहे गये हैं व जो एक पुरुष जीवन

प्रभावंपापनाशनम्॥ किंव्रतैर्नियमैर्वापितपोभिर्विविधैर्मखैः॥ २४॥ कलौविष्णुपदीतोयेसंस्थितेधरणीतले॥ एकःस
र्वेषुतीर्थेषुस्नानंमर्त्यःसमाचरेत्॥ २५॥ एकोविष्णुपदीतोयेस्नातिद्वाभ्यांसमंफलम्॥ एकोदानानिसर्वाणिब्राह्मणे
भ्यःप्रयच्छति॥ २६॥ एकोविष्णुपदीतोयेस्नातिद्वाभ्यांसमंहितत्॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मेवर्षास्वाकाशमाश्रितः॥
२७॥ जलाश्रयश्चहेमन्तेएकःस्यात्पुरुषःक्षितौ॥ अन्योविष्णुपदीतोयेस्नात्वाविष्णुपदंस्पृशेत्॥ २८॥ तावुभाव
पिनिर्दिष्टौसमौपुरुषसत्तमौ॥ एकान्तरोपवासीयएकःस्याज्जीवितावधि॥ २९॥ एकोविष्णुपदीतोयेस्नातिद्वाभ्यां
समंफलम्॥ त्रिरात्रोपोषितस्त्वेकोयावद्वर्षशतंनरः॥ ३०॥ सूतउवाच॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठोनारदोद्विजसत्तमाः॥ विर
राममुनीनांसबहूनांपुरतोसकृत्॥ ३१॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनस्नानंतत्रसमाचरेत्॥ संस्पृशेच्चपदंविष्णोर्यइच्छेच्छ्रेय
आत्मनः॥३२॥ ऋषयऊचुः॥ यदेतद्भवताप्रोक्तमात्मानंविनिवेदयेत्॥ विष्णोःपदस्यसम्प्राप्तेअयनेदक्षिणोत्तरे॥३३॥

पर्य्यन्त एक दिनको अन्तर देकर उपास करता है॥ २९॥ और एक विष्णुपदी के जल में स्नान करता है उन दोनोंका फल बराबर है तथा एक पुरुष सौ वर्ष पर्य्यन्त तीनरात्रि उपवास करता है दूसरा विष्णुपदी के जल में स्नान करता है उन दोनों का फल सम है॥ ३०॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो! बहुतेरे मुनियों के अगाड़ी वे मुनिश्रेष्ठ नारद जी इस प्रकार वारंवार कहकर चुपहोरहे॥ ३१॥ इसलिये जो मनुष्य अपने कल्याण की इच्छा करै वह सब उपायसे उस तीर्थ में स्नान करै और भलीभांति विष्णु के पदको स्पर्शकरै॥ ३२॥ ऋषिलोग बोले कि जो आपने यह कहा कि उत्तरायण व दक्षिणायन को प्राप्त होतेहुये विष्णुके पदको विशेषता

se आत्माको निवेदन करै ॥ ३३ ॥ हे सूतजी ! वह किस विधान से और किन मंत्रों से किया जाताहै यह शीघ्र कहिये कि जिससे भक्तिसे संयुक्त हम सब उस को करैं ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि जब दोनों अयनों में से दक्षिण तथा उत्तर अयन प्राप्तहो तब विष्णुके पदको पूजन कर इस मन्त्रको उच्चारण करै ॥ ३५ ॥ कि यदि छह महीने के बीचमें अचानक से हमारी मृत्युहोवै तो आपके स्थान में मेरी गति होय क्योंकि मैं दास के भावको प्राप्तहूं ॥ ३६ ॥ विष्णु प्रति ऐसा उच्चारण कर उसके उपरान्त ब्राह्मणों का पूजन करै इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों के सहित भोजन करै तब उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयप रिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये विष्णुपदोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तत्केनविधिनासूतमन्त्रैश्चवदसत्वरम् ॥ वयंयेनचतत्कुर्म्मस्सर्वेभक्तिसमन्विताः ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ दक्षिणेचोत्तरे वापिसम्प्राप्तेचायनद्वये ॥ पूजयित्वापदंविष्णोरिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ३५ ॥ षण्मासाभ्यन्तरेमृत्युर्यदकस्माद्भवेन्मम ॥ तत्त्वपदंगतिर्मेस्यात्स्वामहंभृत्यतांगतः ॥ ३६ ॥ एवंप्रोच्यहरिंपश्चात्पूजयेद्ब्राह्मणांस्ततः ॥ अथतैःसममश्नीयात्ततः प्राप्नोतिसद्गतिम् ॥ ३७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये विष्णुपदोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूतउवाच ॥ तत्राश्चर्य्यमभूत्पूर्वंयत्तद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ तद्वोहंसम्प्रवक्ष्यामिगङ्गामाहात्म्यसम्भवम् ॥ १ ॥ चमत्कार पुरेविप्रःपुरासीच्छंसितव्रतः ॥ चण्डशर्म्मेतिविख्यातोरूपौदार्य्यगुणान्वितः ॥ २ ॥ सयदायौवनोपेतस्तदावेश्यानुरा गकृत् ॥ श्रोत्रियोप्यभवद्विप्रोयौवनोद्भारपीडितः ॥ ३ ॥ सकदाचिन्निशीथेथतृषार्त्तश्चसमुत्थितः ॥ प्रार्थयामासतां

दो० । सुरापान करि भ्रष्ट द्विज विष्णुपदी में न्हाय । भयो पुनीत कह्यो सोई पचिसयें अध्याय ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! वहांपर पुरातन समय मे गङ्गाजी के माहात्म्य से उपजाहुवा जो आश्चर्य्य हुवाहै उसको मैं तुम लोगों से भलीभांति कहूंगा ॥ १ ॥ कि पुरातन समय में रूप व उदारतादि गुणों से संयुत व प्रशंसित व्रतवाला चण्डशर्म्मा ऐसे नामसे प्रसिद्ध ब्राह्मण चमत्कार नगर में हुवाहै ॥ २ ॥ व वेदपात्र भी वह ब्राह्मण जिस समय युवावस्थासे संयुत हुवा तब यौवन के बड़े भारसे व्यथित हो वेश्या में स्नेहकारी होगया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय आधीरातको वह ब्राह्मण प्यासमे विकलहो उठ बैठा व उस

वेश्यासे प्रार्थना किया कि मैं जल पीने के लिये चाहताहूं ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त उस वेश्याने जलके भ्रमसे मदिरावाले करवाको लेकर व उस निद्रासे व्याकुल ब्राह्मण के लिये पीनेको दिया ॥ ५ ॥ मदिरा को मुखके बीचमें जातीहुई क्रोधसे युक्त उस ब्राह्मणने भी उस वेश्याको धिक्कार धिक्कार शब्दों से वारंवार निन्दा किया ॥ ६ ॥ हे पापकारिणि ! यह क्याहै यह क्याहै जो तूने अत्यन्त निन्दित कामको किया क्योंकि निन्दा कीहुई मदिरा मेरे मुखके बीचमें प्रक्षेप कीगई याने फेंकी गई॥ ७ ॥ मदिराके पीनेसे आज मेरी ब्राह्मणता निस्सन्देह नष्ट होगई इस लिये अपनी पवित्रता के लिये मैं प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर दुःख समेत उसके

वेश्यांपानीयंपातुमुत्सहे ॥ ४ ॥ अथसासलिलभ्रान्त्याकरकंमद्यसम्भवम् ॥ समादायददौपानंतस्मैनिद्राकुलायच ॥ ५ ॥ मुखमध्यगतेमद्येसोपितांकोपसंयुतः ॥ वेश्यांप्रभर्त्सयामासधिग्धिक्शब्दैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ किमिदंकिमिदंपापे त्वयाकर्म्मविगर्हितम् ॥ कृतंयन्मुखमध्येमेप्रक्षिप्तानिन्दितासुरा ॥ ७ ॥ ब्राह्मण्यमद्यमेनष्टंमद्यपानादसंशयम् ॥ प्राय श्चित्तंकरिष्यामितस्मादात्मविशुद्धये ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाविनिष्क्रम्यतद्गृहाद्दुःखसंयुतः ॥ रुरोदाथतदागत्वाकरुणंनिर्ज नेवने ॥ ९ ॥ ततःप्रभातवेलायांस्नात्वावस्त्रसमन्वितः ॥ त्यक्त्वागात्रस्यरोमाणिसमस्तानिद्विजोत्तमः ॥ १० ॥ सम्प्राप्तो विप्रमुख्यानांसभायत्रव्यवस्थिता ॥ पठन्तिसर्वशास्त्राणिवेदान्तानिचकृत्स्नशः ॥ ११ ॥ अथासौप्रणिपत्योच्चैःप्रोवा चद्विजसत्तमान् ॥ जलभ्रान्त्यासुरापीतामयाकुरुतनिग्रहम् ॥ १२ ॥ अथतेधर्म्मशास्त्राणिप्रविचार्य्यपुनःपुनः ॥ तमू चुर्ब्राह्मणास्सर्वेप्रायश्चित्तकृतेस्थितम् ॥ १३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः॥अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिसुरांचेद्ब्राह्मणःपिबेत् ॥ अग्निवर्णघृतं

गेहसे निकलकर इसके अनन्तर मनुजहीन वनमें जाकर उस समय उसने करुणारससे रोदन किया ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर प्रातःकालमें शरीरके सम्पूर्ण रोमों को त्यागकर व स्नानको कर वसनसंयुक्त हो वहांपर प्राप्तहुवा कि जहां श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सभा टिकीथीं और जिस स्थान में सब शास्त्रों को तथा समस्त वेदान्तके ग्रंथोंको पढ़रहे थे ॥ १० । ११ ॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मणने उत्तम ब्राह्मणों को उच्च प्रकार से प्रणामकर कहा कि जलके भ्रमसे मैंने मदिराको पीलिया है तुमलोग दण्ड करो ॥ १२ ॥ इसके बाद उन समस्त ब्राह्मणों ने धर्मशास्त्रोंको वारंवार अच्छीतरह से विचारकर प्रायश्चित्तके लिये खड़ेहुये उस ब्राह्मण से

बोले ॥ १३ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि ज्ञान से अथवा अज्ञान से ब्राह्मण यदि मदिरा को पानकरै तो उतनाही अग्निके समान लाल वर्णवाले घृतको पीकर विशेषता से शुद्ध होताहै ॥ १४ ॥ यदि सो तुम पवित्रता को चाहते हो तो जितनी मदिरा पीगईहो पवित्रता के लिये उतनाही अग्निके समान वर्णवाले घृतको पान करो ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! ऐसाही करूंगा यह प्रतिज्ञाकर उसने उसी क्षण घृतको लेकर पीनेके लिये जबतक अग्निके सदृश किया ॥ १६ ॥ तबतक इस वार्ता को सुनकर स्त्री समेत उसका पिता प्राप्तहुवा व दुःखसंयुक्त कहरहा है कि हे पुत्र ! यह क्याहै यह क्याहै ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस दीनद्विजने रात्रिमें उपजे हुये सम-

पीत्वातावन्मात्रंविशुध्यति ॥ १४ ॥ सत्वंवाञ्छसिचेच्छुद्धिमग्निवर्णघृतंपिव ॥ यावन्मात्रासुरापीतातावन्मात्रंविशुद्धये ॥ १५ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायघृतमादायतत्क्षणात् ॥ चक्रेवह्निसमंयावत्पानार्थंद्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥ तावत्तस्यापिताप्राप्तःश्रुत्वावार्त्तांसभार्य्यकः ॥ किमिदंकिमिदंपुत्रब्रुवाणोदुःखसंयुतः ॥ १७ ॥ अश्रुपूर्णेक्षणोदीनोबाष्पगद्गदया गिरा ॥ ततःसकथयामाससर्वंरात्रिसमुद्भवम् ॥ १८ ॥ वृत्तान्तंतच्चविप्राणांप्रायश्चित्तंयथोचितम् ॥ अथसब्राह्मणःप्राह सर्वांस्तान्द्विजसत्तमान् ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तंसुतायास्मैममान्यत्सम्प्रदीयताम् ॥ सञ्चिन्त्यधर्म्मशास्त्राणिविचार्य्यच पुनःपुनः ॥ २० ॥ सर्वस्वमपिदास्यामिपुत्राद्धेतोरसंशयम् ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वेभूयोभूयश्चसादरम् ॥ २१ ॥ विचिन्त्यधर्म्मशास्त्राणितमूचुर्मुनिसत्तमम् ॥ नान्यदस्तिसुरापानेप्रायश्चित्तंद्विजन्मनाम् ॥ २२ ॥ मौञ्जीहोमंविनाविप्र

स्त चरित्रको आंसुवों से गद्गदी वाणी से वर्णन किया कि जिसके लोचन आंसुवोंसे परिपूर्ण हैं ॥ १८ ॥ और यथायोग्य ब्राह्मणों के उस प्रायश्चित्तचरित्रको कहा इसके अनन्तर उस विप्रके पिताने उन उत्तम ब्राह्मणों से कहा ॥ १९ ॥ कि धर्म्मशास्त्रोंको वारंवार भलीभांति चिन्तन कर मेरे इस पुत्र लिये दूसरा प्रायश्चित्त दिया जावे ॥ २० ॥ मैं पुत्रके कारण निस्सन्देह सर्वस्वभी देदूंगा तदनन्तर उन सब ब्राह्मणों ने आदरपूर्वक व वारंवार ॥ २१ ॥ धर्मशास्त्रों को विचारकर उस मुनिश्रेष्ठसे बोले कि हे विप्रजी ! ब्राह्मणों को मदिरा पीनेमें मौञ्जी होमके विना अन्य प्रायश्चित्त नहीं है जो योग्यहो उसको करो तिसके उपरान्त उस ब्राह्मणने अपने

पुत्रसे कहा कि तुम ऐसा करने के लिये अयोग्यहो ॥ २२ । २३ ॥ ब्राह्मणों के लिये दानों को दीजिये व नियमसंयुक्त तुम तीर्थयात्राको करो तिसके उपरान्त क्रमसे अनेकों प्रकारके व्रतों के करने से पवित्रता को प्राप्तहोगे इसको मैं सत्य कहताहूं ॥ २४ । २५ ॥ पुत्र बोला कि हे महाभाग ! ब्राह्मणों से उपदेश कियाहुवा प्रायश्चित्त क्या पवित्रता के लिये नहीं है जो मुझसे इस व्रतादिकको तुम वर्णन करतेहो ॥ २६ ॥ हे पिताजी ! इससे मौञ्जी होम मुझको निस्सन्देह करना चाहिये और मैंने जो शिशुतामें कियाहै उस समस्त को तुम क्षमा करने के योग्यहो ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि पुत्रके प्रियकारक उस पिताने उस पुत्रके उस निश्चय को जानकर

यद्युक्तंतत्समाचर ॥ ततःसस्वसुतंप्राहनैवंकर्तुंत्वमर्हसि ॥ २३ ॥ यच्छदानानिविप्रेभ्यस्तीर्थयात्रांसमाचर ॥ ततःशुद्धिमवाप्नोपिक्रमान्नियमसंयुतः ॥ २४ ॥ व्रतैश्वविविधैश्चीर्णैस्सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥ पुत्रउवाच ॥ नब्राह्मणसमादिष्टंप्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ एतन्ममहाभागयद्ब्रवीषिव्रतादिकम् ॥ २६ ॥ तस्मात्कार्य्योमयाताततमौञ्जीहोमोनसंशयः ॥ यन्मयात्रुकृतंबाल्येतत्सर्वंक्षन्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वासपितासुतवत्सलः ॥ सर्वंस्वंप्रददौहृष्टोमरणेकृतनिश्चयः ॥ २८ ॥ सापितस्यसतीभार्य्याकृत्वामृत्युविनिश्चयम् ॥ तमुवाचसुतंदृष्ट्वादत्त्वासर्वंगृहादिकम् ॥ २९ ॥ आवाभ्यांसम्प्रविष्टाभ्यांवह्नौपुत्रततस्तदा ॥ मौञ्जीहोमस्त्वयाकार्य्योमाताततयदिमन्यसे ॥ ३० ॥ ततस्तौदम्पतीहृष्टौयावद्वह्निसमीपगौ ॥ सञ्जातौमरणार्थायसचताभ्यांसमुद्भवः ॥ ३१ ॥ तावत्प्राप्तोमुनिर्नामशाण्डिल्योवेदपारगः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेनतत्रदेशेद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥ सवृत्तान्तंसमाकर्ण्यकोपसंरक्तलोचनः ॥ अब्रवीद्ब्रा

मरण में निश्चय कियेहुये प्रसन्न होकर सर्वस्व देदिया ॥ २८ ॥ व उसकी जो पतिव्रता पत्नी है वह भी मरणका निश्चय कर व सब गेहादिको देकर उस पुत्रको देखकर बोली ॥ २९ ॥ कि हे पुत्र! हे तात ! यदि मुझको तुम मानते हो तो जब हम दोनों स्त्री पुरुष अग्निमें प्रवेश करजावें उसके उपरान्त उस समय में तुमको मौञ्जी होम करना चाहिये ॥ ३० ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये वे स्त्री पुरुष व उनदोनों से उपजा हुवा वह पुत्र जबतक मरणके लिये अग्निके निकट जावे ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तबतक वेदके पार जानेवाले शाण्डिल्य नामक मुनि तीर्थयात्राके प्रसङ्ग से उस स्थान में प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥ क्रोधसे लाल नेत्रवाले वह मुनीश्वर

उस चरित्रको सुनकर वारंवार ब्राह्मणों को निन्दते हुये वचन बोले ॥ ३३ ॥ कि तुमलोग अतिमूढ़हो यह विस्मयहै जोकिं सुगम निग्रह (प्रायश्चित्त) के होते हुये ये तीन ब्राह्मण व्यर्थ मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रायश्चित्तके विषयमें अच्छे महात्मा कात्यायनजी ने जिस वचन को कहा है उसको समस्त ब्राह्मण व यह प्रायश्चित्त करनेवाला श्रवण करै ॥ ३५ ॥ कि कृच्छ्र चान्द्रायणादिक व पंचाग्नितापन इत्यादिक प्रायश्चित्त वहां दिये जाते हैं जहां श्रीगङ्गाजी नहीं हैं ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस क्षेत्रमें तो विष्णुपदी गङ्गाहैं यह ब्राह्मण उसमें स्नानकरै तदनन्तर पवित्रताको प्राप्तहोगा ॥ ३७ ॥ यदि मुनिजी के वचन न होवैं तो मौञ्जी

ह्मणान्सर्वान्भर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ अहोमूढतमायूयंयदेतद्ब्राह्मणत्रयम् ॥ वृथामृत्युमवाप्नोतिनिग्रहेसुगमेसति ॥ ३४ ॥ अत्रकात्यायनेनोक्तंयद्वचःसुमहात्मना ॥ तच्छृण्वन्तुद्विजाःसर्वेप्रायश्चित्तीतथाप्ययम् ॥ ३५ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणितथासान्तपनानिच ॥ प्रायश्चित्तानिदीयन्तेयत्रगङ्गानविद्यते ॥ ३६ ॥ अस्तिविष्णुपदीगङ्गातत्क्षेत्रेतुद्विजोत्तमाः ॥ तस्यांस्नानंकरोत्येषततःशुद्धिमवाप्स्यति ॥ ३७ ॥ मौञ्जीहोमःप्रमाणंस्यान्मुनिवाक्यंनचेद्भवेत् ॥ साधुसाध्वितितेप्रोच्यप्रोचुस्सत्यमिदंमुने ॥ ३८ ॥ ततःप्रबोध्यतंविप्रंनिन्युस्तत्रद्विजोत्तमाः ॥ यत्रविष्णुपदीगङ्गास्वयमेवव्यवस्थिता ॥ ३९ ॥ ततःसब्राह्मणोयावद्गङ्गातोयसमुद्भवम् ॥ गण्डूषंकुरुतेवक्त्रेतावच्छुद्धोबभूवसः ॥ ४० ॥ उदरादखिलंतोयंनिष्क्रान्तंद्विजसत्तमाः ॥ ततोवगाहतेयावत्तस्यास्तोयेसुशोभनम् ॥ ४१ ॥ तावदाकाशसम्भूतागम्भीराभारतीस्फुटम् ॥ शुद्धोयंब्राह्मणःसाक्षाद्विष्णुपद्याःसमागमात् ॥ ४२ ॥ स्नानादाचमनादेवतस्माद्यातुनिजंगृहम् ॥ ततस्तेब्राह्म

होमका प्रमाण होय वे सब बहुत अच्छा बहुत अच्छा यह उच्च स्वर से कहकर बोले कि हे मुने ! यह सत्य है ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वे ब्राह्मणोत्तम उस ब्राह्मण का भलीभांति बोधकर वहां ले आये कि जहां विष्णुपदी नामक गङ्गाजी आपही टिकी हुई हैं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर वह ब्राह्मण गङ्गाजलसे उपजे हुये कुल्लेको जबतक मुख में करताहै तबतक वह पवित्र होगया ॥ ४० ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! पेटसे सम्पूर्ण जल निकल आया तदनन्तर उस गङ्गाजी के जलमें जबतक भलीभांति स्नान करता है ॥ ४१ ॥ तबतक आकाश से उपजीहुई गम्भीर वाणी प्रकट हुई कि विष्णुपदीके प्रत्यक्ष समागमसे यह ब्राह्मण शुद्ध होगया ॥ ४२ ॥ स्नान से तथा आचमनही के

करने से पवित्र होगया इसलिये तुमलोग निज गेहको गमन करो तदनन्तर जे चण्डशर्मा इत्यादिक ब्राह्मण थे वे॥ ४३ ॥ आनन्दहै आनन्द है यह कहते हुये अपने २ गृहों को चलेगये ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस क्षेत्रकी सीमा (हद्द) के अन्त में पश्चिम दिशामें ऐसे प्रभाववाली व पापोंको नाशनेवाली विष्णुपदी गङ्गाजी स्थितहैं ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! विष्णुपदीसे उपजे हुये इस समस्त माहात्म्य को मैंने तुमलोगों से कहा जोकि सम्पूर्ण पातकों का नाशक है ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येविष्णुपदीगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥

णास्सर्वेचण्डशर्म्मादयश्चये॥४३॥दिष्ट्यादिष्ट्येतिजल्पन्तस्स्वानिहर्म्याणिभेजिरे ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रभावासा विप्रागङ्गाविष्णुपदीस्थिता ॥ तस्यक्षेत्रस्यसीमान्तेपश्चिमेपापनाशिनी ॥ ४५ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंविष्णुपद्याःसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाःसर्वपातकनाशनम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्ये विष्णुपदीगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चविंशोध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ यत्पूर्वापरसीमान्तंतन्मयासम्प्रकीर्त्तितम् ॥ दक्षिणोत्तरसम्भूतंतद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नःसर्वशास्त्रविचक्षणः ॥ अथापरोस्तितन्नामातत्रविप्रोवयोन्वितः ॥ २ ॥ तन्नामाब्राह्मणश्रेष्ठःसर्वविद्यासुपारगः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्ययमःप्राहस्वकिङ्करम् ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वकेशंसुरक्ताक्षंकृष्णदन्तंभयानकम् ॥ अद्यगच्छद्रुतं

दो० । छब्बिस के अध्याय में कहत सूत मतिसाज ॥ नरकादिक वर्णन कियो जिमि द्विजसों यमराज ॥ सूतजी बोले कि पूर्व व पश्चिम दिशाकी सीमाके पर्य्यन्त जो तीर्थविशेष है उसको मैंने तुमलोगों से कहा और दक्षिण तथा उत्तरदिशा में जो उपजाहै उस वृत्तान्त को इस समय में तुमलोगों से कहूंगा ॥ १ ॥ इसके अनन्तर सब शास्त्रों में चतुर व वेद पढ़ने में तत्पर तन्नामक याने गोकर्णनामक दूसरा ब्राह्मण अवस्था संयुक्त उस क्षेत्रमें था ॥ २ ॥ जोकि सब विद्याओं में पार जानेवाला उस नामका उत्तम ब्राह्मण था इसके अनन्तर कुछ कालके उपरान्त यमराज ने अपने दूतसे कहा ॥ ३ ॥ कि हे दूत ! आज तुम मथुरा नामक महापुरी

को शीघ्रजावो उस पुरी से गोकर्ण नामक भयङ्कर द्विजोत्तमको लेआवो कि जिसके उठेहुये केश व अति अरुण नेत्र तथा दांत काले हैं आजके दिन मध्याह्न समय में उसका आयुर्बल क्षीण होगया ॥ ४ । ५ ॥ व उसी स्थान में वैसाही वह दूसरा ब्राह्मण दीर्घ आयुर्बलवालाहै ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर यमराजकी आज्ञा से वह दूत उस मथुरा पुरीको जल्दी से जाकर व भ्रान्ति से दीर्घजीवी गोकर्णनामक ब्राह्मणको लेआया ॥ ७ ॥ तदनन्तर कोप से संयुक्त चित्तवाले यमराज ने दूत से कहा कि हे पापी ! धिक्कार है तू इस चिरञ्जीवी को लेआया यह पाप क्यों किया ॥ ८ ॥ इसलिये तुम तबतक वहीं प्रासकरो कि जबतक अपने भाइयों से

दूतमथुराख्यांमहापुरीम् ॥ ४ ॥ आनयस्वद्विजश्रेष्ठंतस्यागोकर्णसंज्ञितम् ॥ तस्यायुषःक्षयोजातोमध्याह्नेद्यतनेदिने ॥ ५ ॥ तदन्योस्तिचतत्रैवचिरायुस्तादृशोद्विजः ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ अथदूतोद्रुतंगत्वातांपुरींयमशासनात् ॥ विभ्रमा दानयामासगोकर्णंचचिरायुषम् ॥ ७ ॥ ततःकोपपरीतात्मायमःप्रोवाचकिङ्करम् ॥ दीर्घायुरेषआनीतोधिक्पापकि मिदंकृतम् ॥ ८ ॥ तस्मात्प्रापयतत्रैवयावदस्यस्वबन्धुभिः ॥ नगात्रंदह्यतेशोकात्सुसमिद्धेनवह्निना ॥ ९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ नाहंतत्रगमिष्यामिदिष्ट्याप्राप्तोस्मितेन्तिकम् ॥ वाञ्छमानःसदामृत्युंदरिद्रेणकदर्थितः ॥ १० ॥ यमउवाच ॥ निमिषेणापिनोमर्त्यमानयामिमहीतलात् ॥ आयुश्शेषेणविप्रेन्द्रपूर्णेनापित्यजामिभोः ॥ ११ ॥ ततएवाहमेनामध र्मराजइतिस्मृतम् ॥ समत्वंसर्वजन्तूनांपक्षपातविवर्जनात् ॥ १२ ॥ तस्माद्गच्छगृहंविप्रयावद्गात्रंनदह्यते ॥ बन्धुभि स्तवशोकार्तैर्नाधुनाप्यत्रतेस्थितिः ॥ १३ ॥ प्रार्थयस्वमनोभीष्टंवरंब्राह्मणसत्तम ॥ नवृथादर्शनंमेस्यात्कथञ्चिदपिदे

शोच से बहुत बढ़ेहुये अग्नि से इसका शरीर न जलाया जाय ॥ ९ ॥ ब्राह्मण बोला कि मैं वहां नहीं जाऊंगा क्योंकि दरिद्रता से आदररहित सदैव मरण को चाहता हुवा मैं तुम्हारे समीप में पहुँचा यह आनन्द है ॥ १० ॥ यमराज बोले कि हे विप्रेन्द्र ! पूर्णभी आयुर्बल में से केवल निमेषमात्रके शेष रहनेपर भी मैं भूतलसे मनुष्य को नहीं लाताहूं इससे छोडताहूं ॥ ११ ॥ उससेही मेरा धर्मराज ऐसा नाम कहा गयाहै क्योंकि पक्षपात (तरफ़दारी) से रहित सब जन्तुओं में समभाव है ॥ १२ ॥ हे विप्र ! जबतक शोचसे व्यथित तुम्हारे बन्धुओं से शरीर न जलाया जावै तबतक तुम गेहको जाओ इस समयभी तुम्हारा यहां रहना नहीं है ॥ १३ ॥

हे ब्राह्मणोत्तम ! तुम अपने मन वाञ्छित वरदान की प्रार्थना करो देहधारियों को मेरा दर्शन किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं होताहै ॥ १४ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देव ! यदि अवश्य गेहको फिर जानाहै तो मैं पूछताहूं मुझसे कहिये और यही मेरा वरदान होवै ॥ १५ ॥ कि पापकारियों से सेवित जे इतने भयानक नरक देख पडते हैं इनमें किस कर्म से कौनसा नरक मनुष्यों से सेवित होताहै इसको तुम कहो ॥ १६ ॥ यमराज बोले कि हे विप्र ! जैसे पृथ्वी में प्राणियों के गण अगणित हैं वैसे ही नरक हैं वे सम्पूर्णता से सैकडों वर्षोंसे भी नहीं कहे जासके हैं ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! उनमें मुख्यतासे मैं उन नरकों को कहूंगा जोकि इक्कीस संख्यावाले

हिनाम् ॥ १४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अवश्यंयदिगन्तव्यंमयादेवगृहंपुनः ॥ तन्ममाचक्ष्वपृच्छामिवरश्चैषभवेन्मम ॥१५॥ एतेयेनरकारौद्राःसेविताःपापकर्म्मिभिः ॥ दृश्यन्तेवदकःकेनकर्म्मणासेव्यतेजनैः ॥ १६ ॥ यमउवाच ॥ असंख्या नरकाविप्रयथाप्राणिगणाःक्षितौ ॥ कृत्स्नशःकथितुंशक्यानैववर्षशतैरपि ॥ १७ ॥ कीर्तयिष्यामितेषान्तेप्राधान्येन द्विजोत्तम ॥ एकविंशतिसंख्यायेपापलोककृतेकृताः ॥१८॥ आद्योयंरौरवोनामनरकोद्विजसत्तम ॥ प्रतप्ततैलकुण्डेषुप च्यन्तेयत्रजन्तवः ॥ १९ ॥ हामातस्तातपुत्रेतिप्रकुर्वन्तिसुदारुणम् ॥ परपाकरताःक्षुद्राःपरद्रव्यापहारकाः ॥ २० ॥ द्वितीयएषविप्रेन्द्रमहारौरवसञ्ज्ञितः ॥ कृतघ्नैःसेव्यतेनित्यंतथाचगुरुतल्पगैः ॥ २१ ॥ रोरूयमाणैर्दाहार्तैःपच्यमानै र्हविर्भुजा ॥ खण्डशःक्रियमाणैश्चतीक्ष्णशस्त्रैरनेकधा ॥२२॥ तृतीयोन्धतमोनामनरकःसुभयावहः ॥ अत्रयेपुरुषायान्ति

पापी लोगोंके लिये किये गये हैं ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! पहला यह रौरव नामक नरक है कि जिसमें अत्यन्त तप्ततैल से भरेहुये कुण्डों में प्राणी पक रहे हैं ॥१९॥ व हे माता ! हे पिता ! हे पुत्र ! इस प्रकार बहुत कठिनता से पुकार रहे हैं जिन्होंने कि पराई द्रव्यको हरलिया है व जो क्षुद्र दूसरे का मांस पकाने में तत्परहैं ॥ २०॥ हे विप्रेन्द्र ! यह दूसरा महारौरव नामक नरक है जोकि गुरुकी शय्या में जानेवाले व कृतघ्न पुरुषोंसे समाश्रित है ॥ २१ ॥ व जिसमें मनुज अग्निसे पकाते हुये दाहसे दुःखित बहुत रोरहे हैं और तीक्ष्ण धारके शस्त्रों से अनेकों प्रकार के खण्ड किये जातेहैं ॥२२॥ हे उत्तम द्विज ! तीसरा बहुत भयदायक अन्धतम नामक नरकहै

यहांपर जो मनुष्य आते हैं उनको मैं कहताहूं ॥ २३ ॥ कि जिन नीच मनुजों ने पराई स्त्रियोंको दुष्ट दृष्टिसे देखाहै उनके नेत्रोंको यहांपर लोहसे कठोरमुखवाले पक्षी फोड़ते हैं ॥ २४ ॥ यह चौथा प्रतप्त नामक नरक कहा गयाहै यहांपर वे मनुष्य तीव्र वेदना (पीड़ा) को भोगकर और शुद्ध होतेहैं ॥ २५ ॥ कि जिन्होंनें निरन्तर गुरु व देवता तथा तपस्वियों की निन्दा किया है यहांपर वारंवार उपजी हुई उन की जीभ बहुत अधिक उखाड़ लीजाती है ॥ २६ ॥ यह अन्य पांचवां विदारक नाम से बहुत प्रसिद्धहै यहांपर मित्रके द्रोहमें तत्पर पुरुष आरासे विदीर्ण किये जाते हैं ॥ २७ ॥ छठा लोगोंको भयदायक निकुम्भ ऐसा प्रसिद्धहै जोकि बहुत तप्तबारूसे

तेतान्वक्ष्यामिसद्द्विज ॥ २३ ॥ दुष्टेनचक्षुषादृष्टाःपरदारानराधमैः ॥ सुलोहास्याःखगास्तेषांहरन्त्यत्रविलोचने ॥ २४ ॥ चतुर्थोयंप्रतप्ताख्योनरकःसम्प्रकीर्तितः ॥ अत्रतेयातनांभुक्त्वातथाशुद्धाभवन्तिच ॥ २५ ॥ यैःकृतासततंनिन्दा गुरुदेवतपस्विनाम् ॥ तेषामुत्पाट्यतेजिह्वाजाताजातात्रभूरिशः ॥ २६ ॥ एषोन्यःपञ्चमोनाम्नासुप्रसिद्धोविदारकः ॥ मित्रद्रोहरताश्चात्रच्छिद्यन्तेकरपत्रकैः ॥ २७ ॥ प्रतप्तबालुकापूर्णोध्मायतेयस्तुवह्निना ॥ निकुम्भइतिविख्यातःषष्ठो लोकभयावहः ॥२८॥ प्राणान्तिकंपुरादत्तंयैर्दुःखंप्राणिनांनरैः ॥ अपराधंविनातेत्रपच्यन्तेबालुकोत्करैः ॥२९॥ बीभत्सुरि तिविख्यातःसप्तमोनरकाधमः ॥ मूत्रामेध्यसमाकीर्णःसमन्तादतिगर्हितः ॥३०॥ राजगामिचपैशुन्येयैःकृतंसुदुरात्म भिः ॥ अमेध्यपूर्णवक्त्रास्तेधार्य्यन्तेत्रनराधमाः ॥ ३१ ॥ कुत्सितोनामविख्यातोद्विजायंचाष्टमोधमः ॥ श्लेष्ममूत्रा भिसम्पूर्णस्तथागन्धैश्चकुत्सितैः ॥ ३२ ॥ गुरुदेवातिथिभ्यश्चस्वभृत्येभ्योविशेषतः ॥ अदत्त्वाभोजनंयैस्तुकृतं

पूर्ण व अग्निसे तप्त रहाहै ॥२८॥ जिन मनुजोंने पहले जन्तुओंको प्राणनाशक दुःख दियाहै वे बिन अपराधके यहांपर बालुका की राशिसे पकाये जातेहैं ॥ २९ ॥ सातवां नरकों में अधम बीभत्सु ऐसा प्रसिद्ध है जोकि अतिनिन्दित व सब ओर से मूत्र तथा अशुचि वस्तुओंसे व्याप्त है ॥ ३० ॥ जिन दुष्ट स्वभाववाले पुरुषों ने राजाके पास पहुँचकर चुगुली कियाहै वे नीचनर अशुचि वस्तुओं से पूर्ण मुखवाले होकर यहांपर धारे जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! यह आठवां कुत्सित नामक नरक प्रसिद्धहै जोकि श्लेष्मा (कफ) मूत्रसे और निन्दित दुर्गन्धों से सब ओर सम्पूर्ण है ॥ ३२ ॥ जिन जनों ने गुरु, देवता, अतिथि तथा विशेष कर अपने नौकरो के लिये बिन दिये

हुये भोजन कर लिया है वे यहांपर टिके हुये हैं ॥ ३३ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह नवां दुर्गम नामक नरकहै जोकि सांप बीछूसे संयुक्त व तीक्ष्ण कांटोंसे व्याप्तहै ॥ ३४ ॥
साथियों के साथ जातेहुये व क्षुधा से दुर्बल तथा दुःखित जनके लिये जिन्हों ने भोजन न देकर आपही भोजन करलियाहै वे यहांपर विशेषकर स्थित होते हैं ॥
३५ ॥ यह दशम दुस्सह नामक नरक प्रसिद्धहै जोकि तचेहुये लोहमय खम्भों से सब ओरसे घिराहुवाहै ॥ ३६ ॥ जे मनुष्य पराई स्त्रियों से स्नेह करते हैं व मांस
भोजन में तत्पर हैं वे यहांपर तचेहुये लोहे के खम्भों को लिपटते हैं ॥ ३७ ॥ हे द्विजपुङ्गव ! यह अन्य गेरहवां नरक आकर्षक नामसे कहा गयाहै जोकि तचाई

तेत्रव्यवस्थिताः ॥ ३३ ॥ एषदुर्गमनामाचनवमोद्विजसत्तम ॥ तीक्ष्णकण्टकसङ्कीर्णः सर्प्पवृश्चिकसंकुलः ॥
३४ ॥ एषसार्थंप्रयातायक्षुत्क्षामायावसीदते ॥ अदत्त्वाभोजनंयैस्तुकृतंतेत्रव्यवस्थिताः ॥ ३५ ॥ दशमोयंसुवि
ख्यातोनरकोनामदुस्सहः ॥ तप्तलोहमयैःस्तम्भैस्समन्तात्परिवारितः ॥ ३६ ॥ येपापाःपरदारेषुरक्ताश्चैवामिषेषुच ॥
तप्तलोहमयान्स्तम्भांस्तेत्रालिङ्गन्तिमानवाः ॥ ३७ ॥ एकादशोपरश्चायमाकर्षाख्यःप्रकीर्तितः ॥ नरकोविप्रशार्दू
लतप्तसन्दंशसङ्कुलः ॥ ३८ ॥ स्त्रीविप्रगुरुदेवानांवित्तंवाश्नन्तियेनराः ॥ सन्दंशैरुपकृष्यन्तेतेत्रतप्तैःसमन्ततः ॥
३९ ॥ द्वादशोनरकश्चायन्तथाभक्ष्यप्रभक्ष्यकः ॥ लोहदन्तमुखैर्गृध्रैर्भक्ष्यन्तेत्रनराधमाः ॥ ४० ॥ एषत्रयोदशोना
मसुविख्यातोनियन्त्रकः ॥ समन्तात्कृमिभिर्व्याप्तस्तथाचदृढबन्धनैः ॥ ४१ ॥ न्यासापहारकाःपापास्तेत्रबद्धाश्च
बन्धनैः ॥ कृमिवृश्चिककीटाद्यैर्भक्ष्यन्तेद्विजसत्तम ॥ ४२ ॥ तथाचतुर्दशोनामनरकोधोमुखःस्थितः ॥ नरकानांसम

हुई संगसियों से संयुक्तहै ॥ ३८ ॥ जे मनुज स्त्री ब्राह्मण और गुरु तथा देवताओं के धनको भोजन करते हैं वे इस नरक में सब ओर से तचीहुई संगसियों से खींचे
जातेहैं ॥ ३९ ॥ वैसेही यह बारहवां भक्ष्यप्रभक्ष्यक नामक नरक है यहां लोह के समान दन्त व मुखवाले गीधों से नीच नर भक्षण किये जाते हैं ॥ ४० ॥ यह तेर-
हवां नियन्त्रक नामक नरक बहुत प्रसिद्ध है जोकि सब ओरसे कीटों और पुष्ट बन्धनों से संकुल है ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तम ! जे पापी लोग धरोहरिको हरलेते हैं
वे बन्धनों से बँधेहुये यहांपर कीट व बीछू तथा कृमि आदिकों से भोजन किये जाते हैं ॥ ४२ ॥ वैसेही चौदहवां अधोमुख नामक नरक स्थित है यह समस्त नर-

कों में अत्यन्त भयङ्कर है ॥ ४३ ॥ जे मनुष्य ब्राह्मणको हनन करनेवाले हैं वे इस नरक में वृक्षकी शाखों में लटकेहुये व नीचे मुखको किये बँधे हैं और नीचे अग्नि से पक रहे हैं ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! यह पन्द्रहवां भीषण नामक नरक बहुत प्रसिद्धहै जोकि जुँआं व खटमल तथा मशा इत्यादि जीवोंसे व्याप्तहै ॥ ४५ ॥ झूंठी गवाही में तत्पर पुरुषोंको व झूठ बोलनेवाले तथा अन्य कुकर्मियों को मैंने इस नरक में निवास दियाहै ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह सोलहवां क्षुद्ध्रद नामक नरक कहा गयाहै जो कि सब ओरसे क्षुधासे व्याकुल मनुष्यों से व्याप्त है ॥ ४७ ॥ जिन पापी ब्राह्मणों ने पीठके मांस को भोजन किया है वे मनुज इस नरक में

स्तानामेषरौद्रतमस्त्वति ॥ ४३ ॥ अत्रचाधोमुखाबद्धावृक्षशाखावलम्बिताः ॥ पच्यन्तेवह्निनाधस्ताद्ब्रह्मघ्नायेचमानवाः ॥ ४४ ॥ यूकमत्कुणदंशाद्यैस्सङ्कीर्णोयंद्विजोत्तम ॥ नरकोभीषणोनामख्यातःपञ्चदशोमहान् ॥ ४५ ॥ कूटसाक्षिरतानाञ्चतथैवानृतवादिनाम् ॥ अत्राश्रयोमयादत्तस्तथान्येषांकुकर्मिणाम् ॥ ४६ ॥ एषषोडशउद्दिष्टोनरकोनामक्षुद्ध्रदः ॥ क्षुधार्तैर्मानवैर्व्याप्तःसमन्ताद्द्विजसत्तम ॥ ४७ ॥ पृष्ठमांसानियैःपापैर्भक्षितानिद्विजन्मभिः ॥ क्षुधार्त्तास्तेनिजङ्गायंभक्षयन्त्यत्रसंस्थिताः ॥ ४८ ॥ तथासप्तदशश्चायंक्षाराख्योनरकःस्मृतः ॥ सुक्षारेणसमाकीर्णःसर्वप्राणिभयावहः ॥ ४९ ॥ व्रतभङ्गकरायेचयेचपाखण्डिनोनराः ॥ तेत्रान्यत्रशतैःशस्त्रैःपिष्यन्तेपापकृत्तमाः ॥ ५० ॥ एषचाष्टादशोनामकथितश्चनिदाघकः ॥ ज्वालिनाङ्गारसङ्कीर्णोदुस्सेव्यःसर्वदेहिनाम् ॥ ५१ ॥ दूषयन्तिचयेशास्त्रंकाव्यंविप्रञ्चकन्यकाम् ॥ अङ्गारान्तःस्थितास्तेत्रध्रियन्तेमानवाद्विज ॥ ५२ ॥ एकोनविंशतिश्चायंप्रख्यातःकूटशाल्म

टिके हुये क्षुधा से व्याकुल होकर अपने शरीर को भक्षण करते हैं ॥ ४८ ॥ वैसेही यह सत्रहवां क्षार नामक नरक कहागया है जो कि सब प्राणियों को भयदायक व बहुत कांच से व्याप्त है ॥ ४९ ॥ जो व्रत के भङ्ग करनेवाले व जो पाखण्डी मनुज हैं वे बड़े पापकारी इस नरक में व अन्यत्र सैकड़ों शस्त्रों से पीसे जाते हैं ॥ ५० ॥ और यह अठारहवां निदाघ नामक कहागया है जोकि जलतेहुये अङ्गारोंसे व्याप्तहै व सब प्राणियों से क्लेश से सेवनेके योग्य है ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! जो मनुष्य शास्त्र व काव्य तथा ब्राह्मण व कन्या को दूषित करते हैं वे यहांपर स्थित होकर अङ्गार के बीच में धरे जाते हैं ॥ ५२ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह उन्नीसवां नरक कूटशा-

ल्मलि प्रसिद्ध है जोकि सब ओर से बहुत तीक्ष्ण कांटों से व्याप्त है ॥ ५३ ॥ जो नास्तिक व मर्य्याद को भेदन करनेवाले याने अनुचित मार्ग में गमन करने वाले तथा ब्रह्मघाती हैं वे समस्त मनुज यहांपर सदैव चढ़ते व गिरते हैं ॥ ५४ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह बीसवां नरक असिपत्रवन नामकहै जो कि दुष्टचित्तवाले जनोंको कष्टसे सेवनीय है ॥ ५५ ॥ हे विप्र ! जो मनुष्य पराये दोषोंको देखनेवाले व शास्त्रों के बेंचनेवाले तथा कपटकर्म के करनेवाले हैं वे यहांपर आते हैं ॥ ५६ ॥ इक्कीसवीं यह वैतरणी नामक नदी है जोकि समस्त अधर्म व पापके अनुगामी जनोंसे गमन कीजाती है ॥ ५७ ॥ जब मृत्युका समय प्राप्त होवै तब जो मनुष्य गौको

लिः ॥ सुतीक्ष्णकण्टकाकीर्णःसमन्ताद्द्विजसत्तम ॥ ५३ ॥ नास्तिकाभिन्नमर्य्यादायेचविप्रस्यघातकाः ॥ तेसर्वेत्रनरा नित्यमारुहन्तिपतन्तिच ॥५४॥ एषविंशतिमोनामनरकोद्विजसत्तम ॥ असिपत्रवनाख्यश्चकष्टसेव्योदुरात्मभिः ॥५५॥ अत्रायान्तिनराविप्रपररन्ध्रनिरीक्षकाः ॥ कूटकर्म्मरतायेचशास्त्रविक्रयकारकाः ॥ ५६ ॥ एकविंशतिमाचैषानाम्ना वैतरणीनदी ॥ सर्वैरेवनरैर्गम्याधर्म्मपापानुयायिभिः ॥ ५७ ॥ मृत्युकालेसमुत्पन्नेधेनुंयच्छन्तियेनराः ॥ तस्यालाङ्गूलमाश्रित्यतारयन्तिसुखेनच ॥ ५८ ॥ अदत्त्वागाञ्चयेमर्त्याम्रियन्तेद्विजसत्तम॥तीर्त्वाहस्तादिभिर्दुर्गान्तइमांसन्तरन्तिच ॥५९॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तम ॥ विस्तरेणतवप्रीत्यास्वरूपनरकोद्भवम् ॥ ६० ॥ तस्माद्गच्छगृहंशीघ्रंयावद्गात्रंनदह्यते ॥ बन्धुभिस्तवशोकार्तैर्गृहीत्वावाञ्छितन्धनम् ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यदिदेवमयासम्यग्गन्तव्यंनिजमन्दिरम् ॥ तद्ब्रूहिकर्म्मणायेननरकंयातिनोनरः ॥ ६२ ॥ यमउवाच ॥ तीर्थयात्रापरोनित्यंदेवता

देते हैं वे उसकी पूंछका सहारा भरकर सुखसे उतर जाते हैं ॥५८॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य बिन गौको दिये मरजाते हैं वे इस दुर्गम नदीको हाथ इत्यादिकों से उतरते हैं ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो तुमने मुझ से पूंछा तुम्हारी प्रीतिसे नरकसे उपजे हुये इस समस्त वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा ॥ ६० ॥ इससे शोच से विकल तुम्हारे बन्धुओंसे जब तक शरीर न जलाया जाय तब तक चाहे हुये धनको ग्रहणकर शीघ्र तुम गेहको चलेजावो ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देव ! यदि मुझको भलीभांति अपने गेहको जाना है तो तुम यह कहो कि मनुष्य जिस कामके करने से नरकको नहीं जाता है ॥ ६२ ॥ यमराज बोले कि जो तीर्थयात्रा में तत्पर है वह निरन्तर

देवता व अतिथि को पूजता है और ब्राह्मणों को मानता है व शरण में आये हुयेकी रक्षा करता है वह नर नरक को नहीं जाता है ॥ ६३ ॥ जो सदैव पराये उपकार में युक्त है और हेमन्तऋतु में अग्निको तपाता है व ग्रीष्मऋतु में जलदान करता है वह नरकको नहीं देखताहै ॥ ६४ ॥ व वर्षाऋतु में जो रहने का स्थान देता है वह नरकको नहीं देखता है और जो व्रत तथा उपासमें तत्पर है व जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है व जिसका चित्त शान्त है ॥ ६५ ॥ और जो ब्रह्मचारी है व सदैव ध्यान करताहै वह नर नरकको नहीं जाताहै जो मनुष्य अन्नको देताहै व विशेषकर तिलों को देताहै ॥ ६६ ॥ व अहिंसा में निरत याने किसी प्राणी का

तिथिपूजकः ॥ ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्चनयातिनरकंनरः ॥ ६३ ॥ परोपकारयुग्नित्यंनरकंसनपश्यति ॥ हेमन्तेवह्निदो यःस्यात्तथाग्रीष्मेजलप्रदः ॥ ६४ ॥ वर्षास्वाश्रयदश्चैवनरकंसनपश्यति ॥ व्रतोपवाससंयुक्तःशान्तात्माविजितेन्द्रियः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मचारीसदाध्यानीनरकंयातिनोनरः ॥ अन्नप्रदोनरोयःस्याद्विशेषेणतिलप्रदः ॥ ६६ ॥ अहिंसानिरतश्चैवनरकंनसपश्यति॥ वेदाध्ययनसम्पन्नःशास्त्रासक्तस्तुमृष्टवाक्॥६७॥ धर्म्माख्यानपरोनित्यंनरकंनसपश्यति ॥६८॥ ब्राह्मणउवाच ॥ एतन्मूर्खोपिजानातिशुभकर्म्मकरःपुमान् ॥ नयातिनरकंस्वर्गंतथापापक्रियारतः ॥ ६९ ॥ तस्मादशुभकर्त्तापिकर्म्मणायेनपातकम् ॥ स्वल्पेनापिनिहन्त्याशुयातिस्वर्गंनरस्ततः ॥ ७० ॥ तन्मेब्रूहिसुरश्रेष्ठव्रतंनियममेववा ॥ तीर्थंवाजपहोमंवासर्वलोकसुखावहम् ॥ ७१ ॥ यमउवाच ॥ अत्रतेसुमहद्गुह्यंकीर्त्तयिष्येद्विजोत्तम ॥ गोप

प्राण नहीं नाश करता है वह नरकको नहीं देखता है जो शास्त्र में परायण है व वेदके पढ़ने में भलीभांति तत्पर है व जिसकी वाणी शुद्ध है ॥ ६७ ॥ व सदैव धर्म के व्याख्यान में जो तत्परहै वह नरक को नहीं देखताहै ॥ ६८ ॥ ब्राह्मण बोला कि यह तो मूर्ख भी जानताहै कि उत्तम कर्म का कर्ता पुरुप नरकको नहीं जाता वैसेही पापकर्मों में परायण पुरुष स्वर्गको नहीं जाता है ॥ ६९ ॥ इसलिये अशुभकर्मकर्ता भी पुरुष जिस थोडे भी कर्म से पातकको नाशकर तदनन्तर शीघ्र स्वर्ग को जाताहै ॥ ७० ॥ हे सुरोत्तम ! मुझ से तुम उसको वर्णन करो व्रतहो या नियम हो या तीर्थहो या जप अथवा हवनहो जोकि सब लोगोंके सुखको प्राप्त करताहै ॥७१॥

यमराज बोले कि हे द्विजोत्तम ! इस विषय में तुम से मैं अत्यन्त गुप्त वस्तुको कहूंगा मेरे वचन से वह बड़े यत्न से सदैव गुप्त करने के योग्य है ॥ ७२ ॥ कि जिस कर्मका अनुष्ठान करने से बड़े पापसे युक्तभी पुरुष दुःखकारक नरकको नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ आनर्त देश में सब तीर्थोंमें मुख्य व मनोहर हाटकेश्वरजीसे उपजाहुआ शुभक्षेत्र है जो कि महापातकों का नाशकारक है ॥ ७४ ॥ उस क्षेत्रमें एक पक्ष पर्यन्तभी जो भक्तिसे सदा शिवजीका पूजन करै तो सब पापों से युक्त भी वह पुरुष शिवजीके लोक में पूजित होता है ॥ ७५ ॥ उसलिये उस क्षेत्रमें शीघ्र जाकर तुम शिवजीका आराधन करो जिससे दश पुरिखयों समेत मोक्षको प्राप्त

नीयंप्रयत्नेनवचनान्ममसर्वदा ॥७२॥ महापातकयुक्तोपिपुरुषोयेनकर्म्मणा॥अनुष्ठितेननोयातिनरकंक्लेशकारकम्॥
७३॥ आनर्तविषयेरम्यंसर्वतीर्थमयंशुभम्॥हाटकेश्वरजंक्षेत्रंमहापातकनाशनम्॥७४॥तत्रैकमपिमासार्द्धंयोभक्त्या
पूजयेद्धरम्॥ ससर्वपापयुक्तोपिशिवलोकेमहीयते॥७५॥तस्मात्तत्रद्रुतंगत्वात्वमाराधयशङ्करम्॥येनगच्छसिनिर्वा
णंदशभिःपुरुषैःसह ॥ ७६ ॥ सूतउवाच ॥ उपदेशंसमाकर्ण्यसयदाप्रस्थितोगृहम् ॥ धर्म्मराजस्यसंहृष्टोमथुरान्नग
रींप्रति ॥ ७७ ॥ तावद्वितीयंगोकर्णंदूतआदायसङ्गतः॥ दर्शयामासधृत्वाग्रेधर्मराजस्यसत्वरम्॥७८॥ ततःप्रोवाच
तंदूतंधर्मराजःप्रहर्षितः ॥ गोकर्णंपुरतोदृष्ट्वाद्वितीयेप्रस्थितेगृहे॥७९ ॥ यस्मात्कालात्ययंकृत्वानीतोयंब्राह्मणस्त्व
या ॥ तस्मादेनमपिक्षिप्रंद्वितीयेनसमंत्यज ॥ ८० ॥ ततस्तौतत्क्षणान्मुक्तौ गोकर्णौब्राह्मणौसमम् ॥ स्वंस्वंकलेवरं

होवो ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि धर्मराजके उपदेशको सुनकर अतिआनन्दितहोते हुये उस ब्राह्मण ने जिससमय मथुरानगरीके सामने गेहको प्रस्थान किया ॥ ७७ ॥ तबतक यमदूत दूसरे गोकर्ण को लेकर शीघ्रही भलीभांति आगया व धर्मराजके आगे धरकर दिखलाया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर जब दूसरा गोकर्ण गृहको चलागया तब उस गोकर्णको देखकर व प्रसन्न होकर धर्मराजजीने उस दूत से कहा ॥ ७९ ॥ जिसलिये समयको उल्लंघनकर तुम इस ब्राह्मण को लायेहो इस से दूसरे के साथही इसको भी शीघ्रही छोड़दो ॥ ८० ॥ तदनन्तर उसीक्षण साथही छोड़ेहुये वे दोनों गोकर्ण नामक ब्राह्मण अपने २ शरीर को पाकर इसके अनन्तर अचा-

नक शरीर से संयुक्त होगये ॥ ८१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तिसके उपरान्त वे दोनों ब्राह्मण श्रीसदाशिवजी का आराधन व यथायोग्य तपस्या कर उसके प्रभाव से शरीर सहित स्वर्गको प्राप्तहुये ॥८२॥ अगहन महीनेमें कृष्णपक्ष की चतुर्दशीको उन दोनोंने जागरण कियाहै जो मनुष्य भक्तिसे जागरण करताहै वह श्रीशिवजी के स्थान को जाताहै ॥ ८३ ॥ जिसके पुत्र नहीं हैं वह पुत्रोंको प्राप्त होताहै और निर्धनी धनको पाताहै और जो अकाम है याने किसी कामना को नहीं रखता है वह पुरुष निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! सीमा (हद) पर्य्यन्त इस क्षेत्रकी चारों दिशाओं का विस्तारपूर्वक प्रमाण

प्राप्य सहसाऽथसमन्वितौ ॥ ८१ ॥ ततःशिवंसमाराध्य तपःकृत्वायथोचितम् ॥ सशरीरौदिवंप्राप्तौ तत्प्रभावाद्द्विजो त्तमाः ॥ ८२ ॥ ताभ्यांमार्गचतुर्दश्यां कृष्णायांजागरःकृतः ॥ यःकरोतिनरोभक्त्या सगच्छति शिवालयम् ॥ ८३ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान्निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ निष्कामस्तुपुनर्मोक्षंनरोयातिनसंशयः ॥ ८४ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्व माख्यातंसीमान्तंद्विजसत्तमाः ॥ क्षेत्रस्यास्यप्रमाणंचविस्तरेणचतुर्दिशम् ॥ ८५ ॥ अत्रान्तरे नरा येचनिवसन्तिद्वि जोत्तमाः ॥ कृषिकर्म्मोद्यताश्चापि यान्तितेपरमाङ्गतिम् ॥ ८६ ॥ किम्पुनर्नियतात्मानः शान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ अपिकीटपतङ्गा ये पशवःपक्षिणोमृगाः ॥८७॥ तस्मिन्क्षेत्रेमृतायान्तिस्वर्गलोकमसंशयम् ॥ किम्पुनर्येनरास्तत्रकृ त्वाप्रायोपवेशनम् ॥ ८८ ॥ संन्यस्ताःश्रद्धयोपेताहृदयस्थेजनार्दने ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्क्षेत्रंसेव्यमेवहि॥८९॥

व यह समस्त वृत्तान्त तुम लोगोंसे कहागया ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इस सीमाके मध्यमें जो पुरुष बसते हैं कृषिकर्म के उद्योगी भी वे उत्तमगतिको जातेहैं ॥८६॥ फिर एकाग्रचित्तवाले व शान्तस्वभाववाले और इन्द्रियोंको दमन कियेहुये इन्द्रियजित् पुरुषों को क्या कहना है क्योंकि जे पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और मृग भी हैं ॥८७॥ वे उस क्षेत्रमें मरकर निस्सन्देह स्वर्गलोकको जातेहैं फिर जो मनुष्य उस क्षेत्रमें उपास कर बैठते हैं उनको क्या कहना है ॥ ८८ ॥ व जनार्दन भगवान् को हृदय में स्थित होतेहुये श्रद्धासे संयुत जो सन्यासी होतेहैं वे उत्तमगति को प्राप्त होतेहैं इसलिये सब उपायसे वह क्षेत्र अवश्य कर सेवाके योग्यही है ॥ ८९ ॥

त्र जब पापसे घिराहुआ कलियुग प्राप्तहै तब विशेष कर सेवाके योग्य है क्योंकि दान व मान से निस्सन्देह सब तीर्थ पवित्र करते हैं ॥ ९० ॥ हे ब्राह्मणो ! हाटके-
श्वरजी से उत्पन्न हुआ क्षेत्र मनुष्य को फिर निवास करनेसे पवित्र करता है और जहां जहां कि बावली, कुँआ व तड़ागादिक हैं ॥ ९१ ॥ वहां वहां नहाया हुआ मनु-
ष्य सब पापों से छूटजाता है यज्ञों के करने से क्या है व व्यर्थ दानोंके करने से क्या है और व्रत व जपों के करने से भी क्या है याने कुछ नहीं है ॥ ९२ ॥ स्वर्ग
की इच्छावाले पुरुषों को उस हाटकेश्वर जी के क्षेत्रमें निवास करना श्रेष्ठ है हे प्रभो ! इस पवित्र हाटकेश्वर जी से उपजे हुये क्षेत्रमाहात्म्य को सुनते हुये पुरु-
षोंका आयुर्बल बढ़ता है व मङ्गलकार्य्य होते हैं तथा पापोंका विनाश होता है ॥ ९३ । ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

हाटकेश्वरजंक्षेत्रंपुनर्वा विशेषेणकलौप्राप्ते युगेपापसमावृते ॥ पुनन्तिदानमानाभ्यां सर्वतीर्थान्यसंशयम् ॥ ९० ॥ सातुनातिच ॥ वापीकूपतडागेषुयत्रयत्रद्विजा जनम् ॥ ९१ ॥ तत्रतत्रनरःस्नातःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ किंयज्ञैःकिंवृथादा नैःकिंव्रतैःकिंजपैरपि ॥ ९२ ॥ वरंतत्रकृतोवासःक्षेत्रेस्वर्गमभीप्सुभिः ॥ एतत्पवित्रमायुष्यंमाङ्गल्यंपापनाशनम् ॥ ९३ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रंमाहात्म्यंशृण्वतांविभो ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये गोकर्णतीर्थवर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ चतुर्युगस्वरूपन्तु माहात्म्यंचैवसूतज ॥ प्रमाणंवदकात्स्न्र्येनपरंकौतूहलंहिनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ इममर्थंपुरापृष्टोवासवेनबृहस्पतिः ॥ यथाप्रोवाचविप्रेन्द्रास्तथावक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ २ ॥ पुराशक्रंसमासीनंसभायांत्रिदशैःसह ॥

भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगोकर्णतीर्थवर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सत्ताइस अध्याय में सतयुगादि परमान । अरु उनके सब चरित को कीन्ह्यो सूत बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! चारों युगों के स्वरूप
व माहात्म्य तथा प्रमाण को तुम सम्पूर्णता से कहो क्योंकि हम लोगोंको परम कुतूहल है ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणेन्द्रो ! पुरातन समय इसी प्रयोजन
को इन्द्रजी ने बृहस्पति जी से पूंछा है जिस प्रकार उन्होंने कहाहै इस समय वैसेही मैं कहूंगा ॥ २ ॥ कि पुरातन समय जब देवतों के सहित महात्मा इन्द्रजी

सभा में भलीभांति बैठे थे उसी समय देवता व गन्धर्व, अप्सरा और सिद्ध तथा जे विद्याधर व गुह्यक, किन्नर दैत्य, राक्षस व नाग हैं व कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र तथा ग्रह व अङ्गों समेत स्वरूप धारण किये हुये वेद व तीर्थ और देवस्थान इन सबोंने इन्द्रकी उपासना की ॥ ३ । ४ । ५ ॥ वैसेहीं देवता, दानव, राक्षस व पुराने राजर्षि और विशेषकर ब्रह्मर्षियों की अद्भुत कथाओं का कथन किया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर जब किसी कथा का प्रस्ताव प्राप्त हुवा तब विनय से संयुत सुरेश्वर ने ब्राह्मणों में उत्तम बृहस्पति जी से प्रश्न किया ॥ ७ ॥ कि हे भगवन्! युग में उपजे हुये पुराने स्वरूप व माहात्म्य को मैं सुना चाहताहूं तुम

तदाचैवमहात्मानमुपासाञ्चक्रिरेसुराः ॥ ३ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धविद्याधराश्चये ॥ गुह्यकाःकिन्नरादैत्या राक्षसा उरगास्तथा ॥ ४ ॥ कलाकाष्ठानिमेषाश्च नक्षत्राणिग्रहास्तथा ॥ साङ्गावेदास्तथामूर्तास्तीर्थान्यायतनानि च ॥ ५ ॥ तथाचक्रुःकथाश्चित्रादेवदानवरक्षसाम् ॥ राजर्षीणांपुराणानांब्रह्मर्षीणांविशेषतः ॥ ६ ॥ कस्मिंश्चिदथसम्प्राप्ते प्रस्तावेत्रिदशेश्वरः ॥ पप्रच्छविनयोपेतो विप्रश्रेष्ठंबृहस्पतिम् ॥ ७ ॥ भगवञ्श्रोतुमिच्छामिपुराणंयुगसम्भवम् ॥ माहात्म्यं चस्वरूपंचयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अहन्तेकीर्तयिष्यामिमाहात्म्यंयुगसम्भवम् ॥ यत्प्रमाणंस्वरूपंच शृणुष्वावहितःस्थितः ॥ ९ ॥ अष्टाविंशत्सहस्राणिलक्षाःसप्तदशैवतु ॥ प्रमाणेनकृतंप्रोक्तंयत्रशुक्लोजनार्दनः ॥ १० ॥ चतुष्पादस्तथाधर्म्मस्सुसम्पूर्णावसुन्धरा ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ता भयद्वेषविवर्ज्जिताः ॥ ११ ॥ जनाश्चिरायुषस्तत्र शान्तात्मानोजितेन्द्रियाः ॥ पञ्चतालप्रमाणाश्चदीप्तिमन्तोबहुश्रुताः ॥ १२ ॥ यत्रषोडशसाहस्रंबालत्वंजा

उसको यथायोग्य कहने के योग्यहो ॥ ८ ॥ बृहस्पति जी बोले कि युग में उपजे हुये माहात्म्य को मैं तुमसे कहूंगा उसका जो प्रमाण व स्वरूप है उसको तुम सावधान स्थित होकर सुनो ॥ ९ ॥ कि सत्रह लाख अट्ठाईस हज़ार वर्ष के प्रमाण से सतयुग कहा गया है जिस में विष्णुजीने श्वेतवर्णको धारण कियाहै ॥१०॥ वैसेही धर्म चार पांवसे रहता है और पृथ्वी भलीभांति सम्पूर्ण रहती है उस सतयुग में काम व क्रोधसे छूटे हुये और भय व वैरभाव से रहित तथा इन्द्रियों को जीते हुये शान्तचित्तवाले दीर्घजीवी मनुज होते हैं जोकि बहुत शास्त्रों को पढ़ेहुये व तेजस्वी और पांच तारके प्रमाण भर लम्बे होते हैं ॥ ११ । १२ ॥ जिस

सतयुग में सोलह हजार वर्ष तक मनुष्यों की शिशुता होती है तिसके उपरान्त बत्तीस हजार वर्ष पर्य्यन्त युवावस्थाही कहीगई है ॥ १३ ॥ उसके उपरान्त धीरे से मनुष्यों की वृद्धावस्था प्राप्तहोती है लक्षवर्ष के अन्ततक परमायु होती है अन्य पुरुषोंका आयुर्बल कहीं अधिक भी होता है ॥ १४ ॥ उस सतयुग में जो कोई प्राणी पशु, पक्षी व मृग होते हैं वे देवतोंकी वाणी को बोलते हैं और वैरभावको नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ नेउलोंके साथ सांप व मूसोंके साथ बिलार खेलतेहैं और सदैव सिंहों के साथ मृग तथा कौवोंके साथ घुघुवा भी खेलते हैं ॥ १६ ॥ व बिनखोदी हुई पृथ्वी धान, मूंग, यव इत्यादि अन्नों को बहुत अधिकता से उत्पन्न

यतेनृणाम् ॥ ततश्चयौवनंप्रोक्तंद्वात्रिंशद्यावदेवहि ॥ १३ ॥ततःपरंचवार्द्धक्यंशनैःसञ्जायतेनृणाम् ॥ लक्षान्तेपरमंथा
वदन्येषामधिकंकचित् ॥ १४ ॥ तत्रसत्त्वाश्चयेकेचित्पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ दैवींवाचंप्रजल्पन्ति नविरोधंव्रजन्तिच ॥
१५ ॥ क्रीडन्तिनकुलैःसर्प्पाविडालामूषकैःसमम् ॥ पञ्चाननैर्मृगानित्यमुलूकाश्चापि वायसैः ॥ १६ ॥ अकृष्टाचम
हीसस्यंजनयत्यतिभूरिशः ॥ व्रीहिमुद्गयवप्रायंसुस्वादुबलवृद्धिदम् ॥ १७ ॥ सर्वर्तुफलिनोवृक्षाःसुपुष्पफलधारिणः ॥
सुपत्राःकण्टकैर्हीनाःकल्पपादपसन्निभाः ॥ १८ ॥ धेनवश्चप्रयच्छन्ति वाञ्छितंस्वादुसत्पयः ॥ सर्वेष्वपिहिकालेषुभूरि
सर्पिःप्रदंनृणाम् ॥ १९ ॥ नवीक्षतेपितापुत्रं मृतंवापिकथञ्चन ॥ नतत्रविधवानारीजायतेतत्रदुर्भगा ॥ २० ॥ काकव
न्ध्यास्तनैर्हीनानचशीलविवर्जिता ॥ यथाजन्मतथामृत्युःक्रमात्सञ्जायतेनृणाम् ॥ २१ ॥ वेदव्याख्यानसंहृष्टा

करती है जो अन्न कि उत्तम स्वादिष्ठ व बल को वृद्धिदायक होता है ॥ १७ ॥ और उत्तम फूल फल धारण करनेवाले व सब ऋतुओंमें फूलनेवाले कल्पतरु के समान वृक्ष होते हैं जोकि उत्तम पातों से संयुक्त व कांटों से रहित होते हैं ॥ १८ ॥ व सब समयों में भी गौवें चाहे हुये उत्तम स्वादुवाले दूधको देतीं हैं जोकि मनुष्यों को बहुत घृतदायक होताहै ॥ १९ ॥ उस सतयुग में किसी प्रकार भी मरेहुये पुत्र को पिता नहीं देखताहै और उसमें विधवा व अभाग्यवती स्त्री नहीं होती हैं ॥ २० ॥ उस सतयुग में स्तनों से हीन व शील से रहित और काकवन्ध्या (एक पुत्रवाली) स्त्री नहीं होती जैसे जन्म होताहै तैसेही क्रमसे मनुष्यों का मरण होता

है ॥ २१ ॥ वेदके व्याख्यान में बहुत प्रसन्न व वेदके कर्मों में चतुर क्षत्रिय लोग भी उत्तम भक्तिसे भूपालोंको भूषितकर ॥ २२ ॥ व उनकी आज्ञासे नित्यप्रति धर्मसे पृथ्वीका पालन करते हैं और वैश्यलोगों ने वैश्यजनों के योग्य बहुत से कर्मोंको किया ॥ २३ ॥ और पशुरक्षापूर्वक मोल लाने व बेंचने से उपजे हुये कर्मों को किया हे सुरोत्तम ! उस सतयुग में परमश्रद्धा से संयुक्त शूद्र लोगों ने एक ब्राह्मणोंकी सेवा को छोड़कर और कुछ काम नहीं किया उस युगमें अन्त्यज वर्ण नहीं हुआ है और न सङ्करवर्णसे उत्पत्ति हुई है ॥ २४।२५ ॥ व पृथ्वीमें अशुचि पांचवां वर्ण नहीं देखपड़ताहै यज्ञ करना व यज्ञ का कराना और दान, व्रत, नि-

ब्रह्मकर्म्मविचक्षणाः ॥ क्षत्रियावापिभूपालानलंकृत्वासुभक्तितः ॥ २२ ॥ तदादेशात्प्रभुञ्जन्तिमहींधर्म्मेणनित्यशः ॥ वैश्यावैश्यजनार्हाणि चक्रुःकर्म्माणिभूरिशः ॥ २३ ॥ पशुपालनपूर्वाणिक्रयविक्रयजानिच ॥ मुक्त्वैकांद्विजशुश्रूषांनशूद्रास्तत्रचक्रिरे ॥ २४ ॥ किञ्चित्कर्म्मसुरश्रेष्ठश्रद्धयापरयायुताः ॥ नतत्रचान्त्यजोजज्ञे नचसङ्करसम्भवः ॥२५॥ नापवित्रो न वर्णानां पञ्चमोदृश्यतेभुवि ॥ यजनंयाजनंदानंव्रतंनियमएवच ॥ २६ ॥ तीर्थयात्रांनरास्तत्र निष्कामाएवकुर्वते ॥ एवंविधंसहस्राक्ष मयातेपरिकीर्त्तितम् ॥ २७ ॥ आद्यंकृतयुगंपुण्यंसर्वलोकसुखावहम् ॥ ततस्त्रेतायुगंनाम द्वितीयंसम्प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥ वर्षाणांषण्णवत्याढ्यालक्षाद्वादशसङ्ख्यया ॥ सोपिसाक्षाज्जगन्नाथःश्वेतद्वीपाश्रयःस्थितः ॥ २९ ॥ तत्ररक्तत्वमायातिभगवान्गरुडध्वजः ॥ त्रिपादस्तत्रधर्म्मःस्यात्पादेनैकेनपातकम् ॥ ३० ॥ तेनापिजायतेस्पर्द्धावर्णानामितरेतरम् ॥ ततःफलानिवाञ्छन्तितीर्थयज्ञोद्भवानि ते ॥ ३१ ॥ व्रतानांनियमानांचस्वर्गवासादिहेतवः ॥

यम व तीर्थयात्राको भी ॥ २६ ॥ उस सतयुग में अकामनावाले ही पुरुष करते हैं हे इन्द्रजी ! इस प्रकार के वृत्तान्त को मैंने तुमसे कीर्तन किया ॥ २७ ॥ पहला सतयुग नामक पवित्र युग सब मनुष्योंके सुखको प्राप्त करताहै उसके उपरान्त दूसरा त्रेतायुग नामक वर्तमान होताहै ॥ २८ ॥ जोकि बारह लाख छानवे हजार वर्षतक रहताहै और वे साक्षात् जगदीश भी श्वेतद्वीप में आश्रित होतेहुये टिकते हैं ॥ २९ ॥ उस युगमें गरुडध्वज भगवान् अरुणता को प्राप्तहोते हैं उसमें तीन पांव से धर्म व एक पांव से पाप होताहै ॥ ३० ॥ उस पापहीसे ब्राह्मणादि वर्णोंकी आपसमें ईर्षा होती है इसलिये तीर्थ व यज्ञसे उपजेहुये फलोंको वे चाहतेहैं ॥ ३१ ॥

व्रत व नियमों के स्वर्गवास इत्यादिक हेतु होते हैं याने व्रतादिकों का करना स्वर्गवासादिके लिये होता है इससे कामना के वश से सब मनुष्य अज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अज्ञान से द्रोहको प्राप्तहोकर अनुक्रम से पापको करते हैं हे देवेन्द्र ! तदनन्तर इक्कीस संख्यक रौरवादिक नरकों को यमराज आपही तैयार करते हैं नीच नर अपने कर्मों के अनुसार उन नरकों को जाते हैं ॥ ३३ । ३४ ॥ व कोई अन्य पुरुष महेन्द्रादि के लोको को जाते है वैसेही अन्य पुरुष मोक्षको प्राप्तहोते हैं उस त्रेतायुग में उत्तम, अधम, मध्यम तीन प्रकार के पुरुष होते हैं ॥ ३५ ॥ हे सुरेश ! तेज व पराक्रम से संयुत व ताल प्रमाण के ऊंचे

ततःकामवशान्मोहं सर्वेगच्छन्तिमानवाः ॥ ३२ ॥ मोहाद्द्रोहंततोगत्वापापंकुर्वन्त्यनुक्रमात् ॥ ततस्तुरौरवादीन्निरकाणियमःस्वयम् ॥ ३३ ॥ सज्जीकरोतिदेवेन्द्र एकविंशतिसङ्ख्यया ॥ कर्म्मानुसारतस्तानि सेवयन्तिनराधमाः ॥ ३४॥ केचिदन्येमहेन्द्रादिलोकान्मोक्षंतथापरे ॥ त्रिविधाःपुरुषास्तत्रश्रेष्ठाश्चाधममध्यमाः ॥ ३५ ॥ त्रिविधानिचकर्म्माणिप्रकुर्वन्तिसुरेश्वर ॥ उन्नतास्तालमात्रेणतेजोवीर्य्यसमन्विताः ॥ ३६ ॥ चक्रुश्चकृषिकर्म्माणिवैश्याश्चैवान्नलिप्सया ॥ उप्तंक्षेत्रंसकृच्चापि सप्तवारंलुनन्तिते ॥ ३७॥ यथर्तुफलिनोवृक्षायथर्तुकुसुमान्विताः ॥ यथर्तुपत्रसंयुक्तास्तत्रस्युस्सुमनोहराः ॥ ३८ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञाःप्रवर्तन्तेसहस्रशः ॥ इतरेतरसंस्पर्द्धैःक्रियमाणान्नृपोत्तमैः ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणैश्चसुरश्रेष्ठ स्वर्गलोकमभीप्सुभिः ॥ तीर्थयात्राव्रतंदानंनियमंसंयमं तथा ॥ ४० ॥ परलोकमभीप्सन्तस्तत्रकुर्वन्तिमानवाः ॥ सहस्रेणतुवर्षाणांतत्रस्याद्यौवनंनृणाम् ॥ ४१ ॥ सहस्रंपञ्चकंयावद्वृद्धत्वंवार्द्ध

वे पुरुष तीन प्रकार के कर्मों को करते हैं ॥ ३६ ॥ और वैश्यलोग अन्नकी चाहना से कृपिकर्म को करते हैं व खेत में एकबार बीजको बोकर वे सातबार काटते हैं ॥ ३७ ॥ वृक्षोंमे ऋतुके अनुसार फूल लगते हैं व ऋतु के अनुसार वृक्ष फूलोंसे संयुक्त होते हैं वैसेही उस त्रेतायुग मे बहुत सुन्दर वृक्ष ऋतुके अनुसार पत्तों से संयुक्त होते हैं ॥ ३८ ॥ व आपसमें ईर्षा करनेवाले नृपोत्तमों से किये हुये अग्निष्टोम इत्यादिक हज़ारों यज्ञ वर्तमान होते हैं ॥ ३९ ॥ हे सुरोत्तम ! स्वर्गलोक की इच्छा करनेवाले ब्राह्मण तीर्थयात्रा, व्रत, दान, नियम, तथा संयम को करतेहैं ॥ ४० ॥ उस त्रेतायुग में उत्तम लोक को चाहते हुये पुरुष उपर्युक्त सब वस्तुको

करते हैं उस युग में हजार वर्ष के उपरान्त मनुष्यों की युवावस्था होती है ॥ ४१ ॥ वह अवस्था पांच हजार वर्ष तक रहती है इसके उपरान्त वृद्धावस्था कहीजाती है हे विभो ! धोबी, चमार, नट और वरट, कैवर्त, भिल्ल, मेद व शूद्र मनुज कैवर्त उस युगमें पापियों के संयोग से उत्पन्न होतेहैं ॥ ४२ । ४३ ॥ वैसेही इनसे निन्दित अन्य नर संख्या से हीन हैं याने इनके सिवाय और वर्ण नहीं होतेहैं ॥ ४४ ॥ इन्द्र बोले कि हे ब्राह्मणोत्तम ! इन अन्त्यज मनुजों की उत्पत्ति किस प्रकार है इसमें बड़ा आश्चर्य्य है तुम सम्पूर्णता से इसको यथायोग्य कहो ॥ ४५ ॥ बृहस्पति जी बोले कि हे सुरोत्तम ! अन्त्यज से उपजी हुई इन मनुष्योंकी सृष्टि

कथमुच्यते ॥ रजकश्चर्म्मकारश्चनटोवरटएवच ॥४२॥ कैवर्त्तमेदभिल्लाश्चकैवर्ताश्शूद्रमानवाः ॥ सम्भवन्तियुगेतस्मिन्पापिसंसर्गतोविभो ॥ ४३ ॥ तथान्येसङ्ख्ययाहीनाएतेभ्योनिन्दितानराः ॥ ४४ ॥ इन्द्रउवाच ॥ उत्पत्तिःकथमेतेषामन्त्यजानांद्विजोत्तम ॥ यथावद्वदकात्स्न्र्येन अत्रकौतूहलंमहत् ॥ ४५ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सतेषामष्टधासृष्टिर्जायतेन्त्यजसम्भवा ॥ योनिदोषात्सुरश्रेष्ठ जातेर्वक्ष्याम्यहंस्फुटम् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण्यांक्षत्रियाज्जातःसूतइत्यभिधीयते ॥ सूतेनरजकश्चैवरजकेणचचर्म्मकृत् ॥ ४७ ॥ चर्म्मकारेणसञ्जज्ञेनटश्चान्त्यजसञ्ज्ञिकः ॥ चत्वारःक्षेत्रसम्भूताएतेक्षेत्रेद्विजन्मनाम् ॥ ४८ ॥ तथाचमागधोजज्ञेवैश्येनद्विजसम्भवे ॥ क्षेत्रेमागधवीर्य्येणवरटोमरसत्तम ॥ ४९ ॥ वरटेनचकैवर्त्तःकैवर्तेनचमेदकः ॥ चत्वारोवैश्यसम्भूता एतेक्षेत्रेद्विजन्मनाम् ॥ ५० ॥ प्रजायन्तेसुरश्रेष्ठ सर्वकर्म्मसुगर्हिताः ॥

जाति के योनि दोषसे आठ प्रकार की होती है उसको मैं प्रकट कहूंगा ॥ ४६ ॥ कि क्षत्रिय पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री में उपजा हुवा सूत ऐसा कहा जाता है व सूत पुरुष से रजक (धोबी) होताहै और रजक से चर्मकृत् (चमार) होताहै ॥ ४७ ॥ और चर्मकृत् से अन्त्यज नामक नट पैदा हुवा ये चारों जातियां ब्राह्मणों के क्षेत्र में उपजी हैं याने स्त्री ब्राह्मणी है और पुरुषों में भेद है ॥ ४८ ॥ हे देवोत्तम ! वैसेही ब्राह्मणसे उपजे हुये क्षेत्र में वैश्य वर्णके पुरुष से मागध जाति पैदा हुई और मागध के वीर्य्य से वरट पैदा हुवा ॥ ४९ ॥ हे सुरोत्तम ! वरट से कैवर्त व कैवर्तसे मेदक पैदा हुवा ये चारोंवर्ण ब्राह्मणों के क्षेत्र मे अर्थात् ब्राह्मणी स्त्री में वैश्य

वर्ण के पुरुष से पैदा होते हैं जोकि सब कार्य्यों में निन्दित हैं हे देवोत्तम ! वैसेही शूद्र जाति के पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री में भिल्ल नामक जाति भी पैदा हुई व भिल्ल से चाण्डाल पैदा हुआ ये दोनों भी जाति शूद्र पुरुषसे ब्राह्मण से उपजे हुये क्षेत्र में पैदा हुये हैं ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ हे सर्वसुराध्यक्ष ! यह मैंने सत्य कहा है हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे इस त्रेतायुग को वर्णन किया ॥ ५३ ॥ इस समय बडे यत्न से तुम द्वापर की स्थिति को सुनो कि वह द्वापरयुग आठलाख चौंसठि हजार वर्षोंकी गिनती के प्रमाण से कहा गया है उस युग में गरुड़ध्वज भगवान् पीत वर्ण के होते हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ और दोही चरण धर्म के व दो पाप के स्थित होते हैं

तथाशूद्रेणसञ्जज्ञे ब्राह्मण्याःसुरसत्तम ॥ ५१ ॥ भिल्लाख्यश्चापिभिल्लेन चण्डालश्चप्रजायते ॥ एतौद्वावपिशूद्रेणभवतोद्विजसम्भवे ॥ ५२ ॥ क्षेत्रेसर्वसुराधीश सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एतत्त्रेतायुगंप्रोक्तंमयातेसुरसत्तम ॥ ५३ ॥ आकर्णयप्रयत्नेन द्वापरस्याधुनास्थितिम् ॥ लक्षाष्टकप्रमाणेनतद्युगंपरिकीर्तितम् ॥ ५४ ॥ चतुष्षष्टिसहस्राणिवर्षाणांपरिसङ्ख्यया ॥ कपिशोजायतेतत्र भगवान्गरुडध्वजः ॥ ५५ ॥ द्वौपादौचैवधर्म्मस्यद्वौपापस्यव्यवस्थितौ ॥ तत्रस्याद्यौवनंनृणांगतेवर्षशतेखिले ॥ ५६ ॥ ततोन्यैस्समतिक्रान्तैर्वार्द्धक्यंपञ्चभिःशतैः ॥ तत्रत्याह्यनृतालोका देवभूपास्तथाऽपरे ॥ ५७ ॥ नार्य्यश्चापिसुरश्रेष्ठतद्वद्रूपाःप्रकीर्तिताः ॥ पञ्चहस्तप्रमाणेनचतुर्हस्तास्तथापरे ॥ ५८ ॥ नातिरूपेणसंयुक्ता नचरूपविवर्जिताः ॥ अव्यक्तजल्पकाश्चापिपशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ५९ ॥ नातिपुष्पफलैर्युक्ता वृक्षाश्चापिसुरेश्वर ॥ सस्यानि तानि जायन्ते तत्र चोप्तानिकर्षकैः ॥ ६० ॥ भवन्तिजलदाःकामंभवन्त्योषधयोखिलाः ॥ यत्कि

उस युगमें जब पूर्ण सौ वर्ष व्यतीत होते हैं तब मनुष्योंकी युवावस्था होती है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर पांच सौ वर्ष और व्यतीत होनेसे वृद्धता होती है हे देव ! उस द्वापरयुग में उत्पन्न हुये भूपति तथा अन्य पुरुष असत्यवादी होते हैं ॥ ५७ ॥ हे सुरोत्तम ! स्त्रियां भी वैसेही रूपवती कहीगई हैं व पांच हाथके प्रमाण से व अन्य चार हाथके प्रमाणसे होते हैं ॥ ५८ ॥ और न अत्यन्त रूपसंयुत होतेहैं न तो रूपरहित होतेहैं व पशु, पक्षी, मृग भी अप्रकट शब्दको बोलते हैं ॥ ५९ ॥ ! वृक्षभी बहुत फूल फलोंसे संयुत नहीं होते और उस द्वापरयुग में किसानों से बोये गये वे अन्न उत्पन्न होते हैं ॥ ६० ॥ हे सुरोत्तम ! मेघ कामवर्षी होते

हैं और समस्त ओषधियां होतीहैं जो कुछ पृथ्वीतलमें शास्त्र व ज्ञानहै ॥ ६१ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! वह सब झूंठ तथा सत्य उस द्वापरयुग में मिश्रभाव से याने मिलेहुये भावसे होताहै यज्ञ और तीर्थ व यज्ञ व दानोका फल अभिप्रायके अनुकूल होता है हे सुरेश ! इस द्वापरनामक युग के समस्त वृत्तान्त को जैसा देखा व सुना था वैसा तुमसे मैंने वर्णन किया व मुझसे कहतेहुये कराल कलियुग नामक को इस समय सावधान होकर सुनो ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ हे प्रभो ! जिस युगमें विष्णुजी कृष्ण वर्ण होते है और चार लाख बत्तीस हजार वर्ष उसका प्रमाण है जोकि साधुजनों से रहित होता है उस कलियुगमें धर्म एक चरणसे युक्तहोताहै और पाप तीन

ञ्चिद्भूतलेज्ञानंशास्त्रंचसुरसत्तम ॥ ६१ ॥ तत्तत्रमिश्रभावेननसत्यंनैवचानृतम् ॥ तीर्थानाञ्चमखानांच द्वापरेसुरसत्त
म ॥ ६२ ॥ फलंभावानुरूपेण दानानांचैवजायते ॥ एतत्तवसमाख्यातंयुगंद्वापरसञ्ज्ञिकम् ॥ ६३ ॥ मयासर्वंसुराधीश
यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वावदतोममसाम्प्रतम् ॥ ६४ ॥ रौद्रंकलियुगंनामयत्रकृष्णोजनार्दनः ॥ द्वा
त्रिंशच्चसहस्राणिवर्षाणांकथितंविभो ॥ ६५ ॥ तथालक्षचतुष्केणसाधुलोकविवर्जितम् ॥ तत्रैकपादयुक्तश्च धर्म्मः
पापंत्रिभिःस्मृतम् ॥ ६६ ॥ पूर्वार्द्धेभ्यःपरंसर्वं सम्भविष्यतिपातकम् ॥ नशृण्वन्तिपितुःपुत्रास्ततस्नुषाभ्रातरोनच ॥
६७ ॥ नभृत्यानकलत्राणियत्रयत्रपरस्परम् ॥ यत्रषोडशमे वर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ ६८ ॥ तत्रद्वादशमेवर्षेगर्भन्धा
स्यन्तिचाङ्गनाः ॥ आयुःपरंमनुष्याणां शतसङ्ख्यंसुरेश्वर ॥ ६९ ॥ नराणांचतरूणांच वर्षाणांयत्रनाधिकम् ॥ द्वात्रिंश
द्धयमुख्यानां चतुर्विंशत्खरोष्ट्रयोः ॥ ७० ॥ अजानांषोडशप्रोक्तं शुनांद्वादशसङ्ख्यया ॥ चतुष्पदानामन्येषां विंशत्प

चरणोंसे कहा गया है ॥ ६५ । ६६ ॥ पहले का आधा कलियुग बीतने के उपरान्त समस्त पापहोजायगा जिस कलियुगमे पिताके वचन को पुत्र व पतोहू नहीं सुनतीहै और न भाई सुनते हैं ॥ ६७ ॥ व नौकर व स्त्रियां जिस कलियुग में आपसमें नहीं सुनतीहैं जिस कलियुग में मनुष्य सोलहवें वर्ष में युवा व अति बूढ़े होजाते हैं ॥ ६८ ॥ हे सुरेश ! उस कलियुग में बारहवें वर्षमें स्त्रियां गर्भको धारण करैंगी व मनुष्योंका परमायु सौ वर्षके प्रमाण का है ॥ ६९ ॥ जिस कलियुगमे मनुष्य और वृक्षों का आयुर्बल बराबर है अधिक नहीं है और बत्तीसवर्ष प्रसिद्ध तुरङ्गों का आयुर्बल है व गर्दभ तथा ऊंटका आयुर्बल चौबीस वर्ष है ॥ ७० ॥

व छगरों का सोलह वर्ष और कुत्तोंका आयुर्बल बारह वर्ष व अन्य चौपायों का आयुर्बल पचीस वर्ष है ॥ ७१ ॥ जिस कलियुग में कौवा, गीध, घुघुवा, दीर्घजीवी होतेहैं वैसेही पापमें परायण व दुष्टकामों में लगे हुये नर विशेषकर चिरजीवी होते हैं ॥ ७२ ॥ वैसेही जिस कलियुगमें समस्त वृक्ष कांटेदार व रूखे तथा फूल फलसे रहित व छायासे हीन और गीध आदि पक्षियों से सेवित होते हैं ॥ ७३ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! जिस कलियुग में अधर्मसे धर्म दुःखित होताहै वैसेही असत्य से सत्य व निरन्तर चोरों से भूपति पीड़ित होतेहैं ॥ ७४ ॥ व शिष्यों से आचार्य्य और स्त्रियों से नीच नर तथा नौकरोंके समूह से स्वामीलोग व मूर्खों से बहुत

अभिरन्वितम् ॥७१॥ यत्रकाकाश्चगृध्राश्चकौशिकाश्चिरजीविनः ॥तथापापपरालोकादुःस्थिताश्चविशेषतः ॥७२॥ तथा कण्टकिमोवृक्षारूक्षाःपुष्पफलच्युताः ॥ सेविताश्चैवगृध्राद्यैर्यत्रच्छायाविवर्जिताः ॥ ७३ ॥ यत्रधर्म्मोह्यधर्म्मेणपी ड्यतेसुरसत्तम ॥ असत्येनतथासत्यं भूपाश्चौरैःसदैवतु ॥ ७४ ॥ गुरवश्चतथाशिष्यैःस्त्रीभिश्चपुरुषाधमाः ॥ स्वामिनो भृत्यवर्गैश्चमूर्खैश्चापिबहुश्रुताः॥७५॥यत्रसीदन्तिधर्मिष्ठानरास्सत्यपरायणाः ॥ दान्ताविवेकिनःशान्तास्तथापरहिते रताः ॥ ७६ ॥ आधयोव्याधयश्चैव तथापीडामहाद्भुता ॥ सदैवसंस्थितायत्र साधुपीडानवाह्वया ॥ ७७ ॥ अल्पायुष स्तथामर्त्याजायन्तेवर्णसङ्करात ॥ येकेचनप्रजीवन्तितेदुःखेनसमन्विताः ॥ ७८ ॥ नवर्षतिघनःकाले सम्प्राप्तेऽपियथो चिते ॥ नसस्यंस्यात्सुवृष्टेऽपि कर्षकस्यापिवाञ्छितम् ॥७९॥ नचक्षीरप्रदागावो यद्यपिस्यात्सुपोषिताः ॥ नभवन्तिप्रसू

सुनेहुये विद्वान् व्यथितहोते हैं ॥ ७५ ॥ जिस कलियुगमें सत्य में तत्पर व इन्द्रियोंको दमन किये व शान्तचित्तवाले और पराये हितमें लगेहुये धर्मवान् मनुष्य क्लेशको प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ व आधि (मानसी व्यथा) और रोग तथा बड़ी अद्भुत पीड़ा व उत्तम जनोंको नवीन नामसे क्लेश जिस कलियुगमें सदैव टिका रहता है ॥ ७७ ॥ वैसेही वर्णसङ्कर से मनुष्य अल्पायुवाले होतेहैं व जो कोई जीते हैं वे दुःख से संयुत होते हैं ॥ ७८ ॥ व यथायोग्य समय प्राप्त होने पर भी मेघ नहीं बरसता है और भलीभांति वृष्टि होने पर भी किसान का भी चाहा हुवा अन्न नहीं होताहै ॥ ७९ ॥ यद्यपि गौवें अच्छी तरह पुष्टकीगई हैं तथापि दूध नहीं

देती हैं व उपाय से बहुत रक्षित भी नहीं ब्याती हैं ॥ ८० ॥ और द्रव्यसे हीन पुरुष जिस कलियुगमें भेड़ व ऊंटिनीके दूधकी प्रशंसा करते हैं वैसेही अन्यभी पुरुष मलिन होते हैं ॥ ८१ ॥ व शूद्रोंके धर्म में तत्पर शूद्र पुरुष तपस्या करतेहैं व वेदके विचार को जाननेवाले शूद्रलोग यज्ञके कर्ममें उद्यत होते हैं ॥ ८२ ॥ और शूद्र जन दानको देवैंगे व शूद्रही दानको ग्रहण करैंगे तथा शूद्रही प्रणाम किये जावैंगे व शूद्रही तीर्थों में भलीभांति टिकैंगे ॥ ८३ ॥ व अज्ञान से अचेतन नीच नर मृत्युके समय में शिरसे व हाथों से व चरणोंसे पांच गढ़ोंको खोदते ही हैं याने प्राण निकलते समय इन पांच अङ्गोंको भूमिमें पटकनेसे पांच गढ़े से होजाते

ताश्च यत्नेनापिसुरक्षिताः ॥ ८० ॥ आविकानामथोष्ट्राणांयत्रक्षीरप्रशंसकाः ॥ लोकाभवन्ति निःश्रीकास्तथान्येपि मलिम्लुचाः ॥ ८१ ॥ तथातपस्विनःशूद्राःशूद्रधर्म्मपरायणाः ॥ शूद्रावेदविचारज्ञा यज्ञकर्म्मणिचोद्यताः ॥ ८२ ॥ शूद्राःप्रतिग्रहीतारःशूद्रादानप्रदास्तथा ॥ शूद्राश्चापितथावन्द्याश्शूद्रास्तीर्थेषुसंस्थिताः ॥ ८३ ॥ पञ्चगर्त्तान्खनन्त्येव मृत्युकाले नराधमाः ॥ शिरसाहस्तपादाभ्यांमोहात्सन्नष्टचेतसः ॥ ८४ ॥ वेदविक्रयकर्तारो ब्राह्मणाश्शौचवर्ज्जिताः ॥ स्वाध्यायनिरताश्चैव शूद्रान्ननिरतास्तथा ॥ ८५ ॥ असत्प्रतिग्रहाःपापाजिह्वालौल्यसमुत्सुकाः ॥ पाखण्डिनोविकर्म्मस्थाःपरदारोपजीविनः ॥ ८६ ॥ कार्य्यकारणमाश्रित्ययत्रस्नेहःप्रजायते ॥ नस्वभावात्सहस्राक्षकथञ्चिदपिदेहिनाम् ॥ ८७ ॥ यास्यन्तिम्लेच्छभावत्वंसर्वेवर्णाद्विजातयः ॥ नष्टोत्सवाविधर्म्मज्ञानित्यंसङ्करकारकाः ॥ ८८ ॥ प्रागेवहस्तत्र

हैं ॥ ८४ ॥ अपने वेदमें तत्पर ब्राह्मण पवित्रतासे हीन व शूद्र के अन्नको भोजन करते हुये वेदोंको बेचते हैं ॥ ८५ ॥ व जिह्वाकी चञ्चलता या विषयोंके भोजन में तृष्णा से दुष्ट दानको ग्रहण करते हैं व पापी और पाखण्डी पुरुष दूसरे वर्णके कर्मको करैंगे व पराई स्त्रियों के द्वारा जीविका करैंगे ॥ ८६ ॥ हे इन्द्रजी ! जिस कलियुगमें कार्य्य कारण का आसरा कर शरीरधारियों का स्नेह उत्पन्न होताहै स्वभाव से किसी भांति भी नहीं होताहै ॥ ८७ ॥ व उत्साहहीन और पराये धर्म के जाननेवाले तथा नित्यही सङ्करवर्णकारी समस्त द्विजातिवर्ण (विप्र क्षत्रिय वैश्य) म्लेच्छों के स्वभाव को प्राप्तहोवैंगे ॥ ८८ ॥ व पहले युग के प्रारम्भ से

साढ़े तीन हाथके मनुज होवैंगे तदनन्तर कलियुग के बढ़तेहुये न्यूनताको प्राप्त होवैंगे ॥ ८९ ॥ तदनन्तर कलियुगके अन्तमें दुर्लभता से व अल्पतासे गेह के बनाने में असमर्थ मनुष्य बिलशायी होवैंगे याने गडहे में शयन करैंगे ॥ ९० ॥ और वेद, व्रत, यज्ञ, नियम, संयम तैसेही सब मन्त्रवाद निष्फल होवैंगे ॥ ९१ ॥ हे इन्द्रजी ! म्लेच्छों के संस्पर्श से दूषित व जलों से हीन सब तीर्थ अपने प्रभावसे रहित होवैंगे ॥ ९२ ॥ व जे निन्दित मन्त्रवाद व निन्दित तपस्वी और जे निन्दित मनुष्य हैं वे उस कलियुगमें होवैंगे ॥ ९३ ॥ और अच्छे कुलमें उपजेहुये भी उत्तम रूप व अवस्था से संयुत पुरुषको छोड़कर द्रव्यके लोभसे निन्दित वरके

याःपूर्वम्भविष्यन्तियुगादितः ॥ ततोह्रासंप्रयास्यन्तिवृद्धिंयातेकलौयुगे ॥ ८९ ॥ भविष्यन्तिततश्चान्ते मनुष्याबिल
शायिनः ॥ अल्पत्वाद्दुर्लभत्वाच्चअसक्तागृहकर्म्मणि ॥ ९० ॥ भविष्यन्त्यफलायज्ञास्तथावेदव्रतानिच ॥ नियमाः
संयमास्सर्वेमन्त्रवादास्तथैवच ॥ ९१ ॥ तीर्थानिम्लेच्छसंस्पर्शाद्दूषितानिशतक्रतो ॥ स्वप्रभावविहीनानिहीनानि
चतथाजलैः ॥ ९२ ॥ कुत्सितामन्त्रवादाये कुत्सिताश्चतपस्विनः ॥ तत्रतेसम्भविष्यन्तिकुत्सितायेचमानवाः ॥ ९३ ॥
कुलीनमपिसन्त्यज्य वररूपवयोन्वितम् ॥ वित्तलोभात्प्रदास्यन्तिकुत्सितायनराःसुताम् ॥ ९४ ॥ कन्यकाःप्रसवि
ष्यन्तिकन्यकाःसुरतोत्सुकाः ॥ कन्यकाःप्रकरिष्यन्तिपुरुषैःसहसङ्गतिम् ॥ ९५ ॥ भर्तारंवञ्चयिष्यन्ति कुलीनाअपि
योषितः ॥ सर्वकृत्येषुदुःशीलाःसुयत्नेनापिरक्षिताः ॥ ९६ ॥ निर्दयाश्चापिभूपालाः पीडयिष्यन्तिकर्षकान् ॥ पीडयि
ष्यन्तिनिर्दोषान् वित्तलोभादसंशयम् ॥ ९७ ॥ वधार्हमपिसम्प्राप्यवित्तलोभान्मलिम्लुचम् ॥ संरक्षन्तियुगेतस्मिन्

लिये मनुष्य अपनी कन्याको देवैंगे ॥ ९४ ॥ व बिन व्याही कन्या पुत्रादिक पैदा करैंगी और कन्या रतिकी उत्कण्ठा करैंगी तथा कन्या पुरुषोंके साथ सङ्गति करैंगी ॥ ९५ ॥ उत्तम कुलमें उपजीभी स्त्रियां सब कार्य्योंमें दुष्ट स्वभाववाली व बड़े उपायसे रक्षित भी पतिको छलैंगी ॥ ९६ ॥ और दयासे हीन भूपति भी द्रव्य के लोभसे निरसन्देह किसानोंको दुःखित करैंगे व निर्दोष नरोंको दुःखदेवैंगे ॥ ९७ ॥ उस कलियुग में मलिन पुरुषको वध के योग्य भी भलीभांति पाकर प्राणके

द्रोहको भी वर्त्तमान होतेहुये द्रव्य के लालचसे भूपाल उसकी रक्षाकरते हैं ॥ ९८ ॥ वैसेही भूपतिलोग क्षत्रिय धर्मको परित्यागकर युद्धकरैंगे ॥ ९९ ॥ बृहस्पति जी बोले कि हे सुरोत्तम ! चारों भी युगोंके इस समस्त लक्षण व प्रमाण को मैंने निस्सन्देह तुम लोगोंसे वर्णन किया ॥ १०० ॥ व जो मनुष्य सावधान होतेहुये सदैव इस कथा का कीर्तन करताहै वह जन्म से लगाकर मरण पर्य्यन्तके पातक से निश्चय कर छूटजाता है ॥ १०१ ॥ अथवा जो मनुष्य श्रद्धासे पवित्रचित्त करके इस वृत्तान्त का श्रवण करताहै वह भी दिन में उपजेहुये पापसे निस्सन्देह छूटजाताहै ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा

प्राणद्रोहेपिवर्तिते ॥ ९८ ॥ क्षात्रधर्म्मंपरित्यज्य करिष्यन्तितथारणम् ॥ ९९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं युगानांलक्षणम्मया ॥ प्रमाणञ्चसुरश्रेष्ठ चतुर्णामप्यसंशयम् ॥ १०० ॥ यश्चैतत्कीर्तयेन्मर्त्यःसदैवसुसमाहितः ॥ स नूनंमुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १०१ ॥ शृणुयाद्वानरोयश्चश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ सोपिमुच्येन्नसन्देहःपापाचादिवसोद्भवात् ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येयुगस्वरूपवर्णनन्नामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सूतउवाच ॥ तस्यांदेवसभायांच संस्थितानिद्विजोत्तमाः ॥ प्रभासादीनितीर्थानि मूर्तानिसकलानिच ॥ १ ॥ तानिश्रुत्वावचस्तस्य देवाचार्य्यस्यतादृशम् ॥ भयंकृत्वामहच्चित्तेप्रोचुश्चत्रिदिवेश्वरम् ॥ २ ॥ यद्येवंदेवदेवेशभविष्यत्यशुभंयुगम् ॥ वयंनाशंसमेष्यामःस्थानंकिञ्चिज्जगत्त्रये ॥ ३ ॥ पुरन्दराद्यचास्माकंस्थानंकिञ्चित्प्रदर्शय ॥ त

टीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येयुगस्वरूपवर्णननामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । हाटकेश के क्षेत्र में सब तीरथ जिमि आय । टिके यथा सो कहत यहि अट्ठाइस अध्याय ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस देवतोंकी सभामें प्रभास क्षेत्र इत्यादिक समस्त तीर्थ मूर्त्तिको धारण किये भलीभांति बैठे थे ॥ १ ॥ उन तीर्थोंमें देवतोंके आचार्य्य उन बृहस्पति जी के वैसे वचन सुनकर व चित्तमें बहुत डरकर स्वर्गनायकजीसे कहा ॥ २ ॥ कि हे देवदेवेश्वर ! यदि ऐसा अशुभयुग होगा तो हम लोग नाश होजावैंगे क्या तीनों लोकमें कोई स्थान है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र जी !

हमको आजही कोई स्थान दिखलाइये हे पुरन्दर ! इस लिये कहीं भी किसी स्थानको हम लोगों से तुम कीर्तन करो ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! प्रभाव सहित व म्लेच्छ नरों से न छुये हुये हम लोग जिस स्थानका आश्रय कर कराल कलियुगको व्यतीत करैं ॥ ५ ॥ हे देवतोत्तम ! वह स्थान स्वर्ग में हो या पातालमें अथवा मृत्युलोकमें हो उन तीर्थों के वे वचन सुनकर दयायुक्त इन्द्रजी ॥ ६ ॥ फिर भी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बृहस्पति जी से बोले कि हे बृहस्पते ! कलियुगसे न छुयेहुये किसी स्थानको तुम यदि तीनों लोकमें जानते हो तो तीर्थोंको भलीभांति आश्रय के लिये बतलाइये इन्द्रजीके उस वचनको सुनकर बृहस्पतिजी देरतक विचारकर ॥ ७ । ८ ॥

स्मात्कीर्तयनःस्थानंकिञ्चित्क्वापिपुरन्दर ॥ ४ ॥ यदाश्रित्यनयिष्यामोरौद्रंकलियुगंविभो ॥ अस्पृष्टानिनरैर्म्लेच्छैःप्र भावसहितानिच ॥ ५ ॥ पातालेस्वर्गलोकेवामर्त्त्येवासुरसत्तम ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाकृपाविष्टःशतक्रतुः ॥ ६ ॥ प्रोवा चब्राह्मणश्रेष्ठंभूयएवबृहस्पतिम् ॥ अस्पृष्टंकलिनास्थानंकिञ्चिद्वदबृहस्पते ॥ ७ ॥ समाश्रयायतीर्थानां यदिवेत्सिज गत्रये ॥ शक्रस्यतद्वचःश्रुत्वा चिरंध्यात्वाबृहस्पतिः ॥ ८ ॥ तत्रप्रोवाचतीर्थानिभयाद्भीतानिहर्षयन् ॥ हाटकेश्वरमित्यु क्तमस्तिक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ लिङ्गस्यपतनाज्जातन्देवदेवस्यशूलिनः ॥ यत्रपूर्वन्तपस्तप्तंविश्वामित्रेणधीमता ॥ १० ॥ त्रिशङ्कोर्भूमिपालस्यकृतेतीर्थेमहात्मना ॥ यत्रस्थित्वासभूपालस्त्रिशङ्कुःपापवर्जितः ॥ ११ ॥ चण्डालत्वंपरित्यज्य सदेहस्त्रिदिवंययौ ॥ यत्रशक्रसमादेशात्पूरितंपांशुभिःपुरा ॥ १२ ॥ संवर्तकेनरौद्रेणवायुनातीर्थमुत्तमम् ॥ यत्ररक्षत्यध स्ताच्चसस्वयंहाटकेश्वरः ॥ १३ ॥ उपरिष्टात्प्रवेशंच कलौदेवोऽचलेश्वरः ॥ हाटकेश्वरमाहात्म्यादस्पृष्टं कलिनापित

उस सभा में भयसे डरेहुए तीर्थोंको हर्षित करते हुये बोले कि हाटकेश्वर ऐसा कहा गया अति उत्तम क्षेत्र है ॥ ९ ॥ जोकि देवतोंके देवता त्रिशूलधारी सदाशिवजी के लिङ्गके गिरनेसे उपजा है व जिस क्षेत्रमें पुरातन समय में त्रिशङ्कु भूपाल के लिये बुद्धिमान् विश्वामित्र महात्मा ने तपस्या की है और वह त्रिशंकु भूपाल जिस तीर्थमें टिककर पाप रहित होगया ॥ १० । ११ ॥ व चाण्डालता छोड़कर देह सहित स्वर्गको चलागया और जिस क्षेत्रमें पुरातन समय इन्द्र की आज्ञा से संवर्तक नामक कराल पवन ने धूरिसे उत्तम तीर्थ को पूर्ण करदिया है व जिस क्षेत्र में वह हाटकेश्वरजी आपही नीचे से रक्षा करते हैं ॥ १२ । १३ ॥

कलियुगमें पैठने के स्थान को ऊपरसे अचलेश्वरजी रक्षा करते हैं वह क्षेत्र हाटकेश्वरजीके माहात्म्य से अचलेश्वर जी से पैदाहुये पांचकोसके प्रमाण से कलियुग से भी वह नहीं स्पर्श किया गयाहै इसलिये उस क्षेत्रमें तीर्थ सम्पूर्णतासे अपने अंशसेचले जावैं ॥ १४। १५॥ हे इन्द्रजी ! जिन तीर्थोंको कलियुग के डरके सिवाय और भय निस्सन्देह नहीं है उन बृहस्पति जी के उस वचनको सुनकर आदर से समस्त तीर्थ ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! हाटकेश्वरनामक उस क्षेत्रको गये व यज्ञोपवीत के प्रमाणवाले अपने स्थानों को बनाकर उस समस्त क्षेत्रमें स्थित हुये हे ब्राह्मणोत्तमो ! इस कारण से हाटकेश्वर देवता का वह क्षेत्र बडे पापोंका नाशक व

त् ॥ १४ ॥ पञ्चक्रोशप्रमाणेन अचलेश्वरजेनच ॥ तस्मात्स्वांशेनगच्छन्तु तत्रतीर्थान्यशेषतः ॥ १५ ॥ येषांकलिभ
यंशक्रनान्यदस्तीत्यसंशयम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य सर्वतीर्थानिचादरात् ॥ १६ ॥ हाटकेश्वरसञ्ज्ञन्तत्क्षेत्रंजग्मुर्द्वि
जोत्तमाः ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि कृत्वास्थानानिचात्मनः ॥ १७ ॥ क्षेत्रमासादयामासुस्तत्सर्वंहिद्विजोत्तमाः ॥ एतस्मा
त्कारणाज्जातं क्षेत्रंपुण्यतमंमहत् ॥ १८ ॥ हाटकेश्वरदेवस्यमहापातकनाशनम् ॥ १९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्याश्च
र्य्यमिदंसूत यत्त्वयैतदुदाहृतम् ॥ सङ्गमस्सर्वतीर्थानांक्षेत्रेतत्रप्रकीर्तितः ॥ २० ॥ तावन्मात्रप्रभावानितत्रस्थानिभव
न्तिकिम् ॥ तानितीर्थानिनोब्रूहि विस्तरेणमहामते ॥२१॥ नामतःस्थानतश्चैव यथाचैवप्रभावतः ॥ सर्वाण्यपिमहाभा
ग परंकौतूहलंहिनः ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तिस्रःकोट्योऽर्द्धकोटीश्च तीर्थानांद्विजसत्तमाः ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं व्याप्य
सर्वाव्यवस्थिताः ॥ २३ ॥नतेषांकीर्तनंशक्यंकर्तुंवर्षशतैरपि ॥ तथास्वायम्भुवस्यादौकल्पस्यप्रथमस्यच ॥ २४ ॥ कृ

अत्यन्त पुण्यवान् होगया ॥ १७ । १८ । १९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! यह बहुत आश्चर्य्य है कि जो तुमने उस क्षेत्र में सब तीर्थोंका यह समागम कहा ॥ २० ॥ हे महामते ! उस क्षेत्रमें टिकेहुये वे तीर्थ क्या उतनेही प्रभाववाले होते हैं यह विस्तारपूर्वक हम लोगोंसे कहिये ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! सब तीर्थभी जैसे नाम से व जिस स्थानसे और जैसे प्रभावसे उस क्षेत्रमे होवैं उनको कहो क्योंकि हम लोगोंको परम आश्चर्य्य है ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! साढ़े तीन करोड़ वे सब तीर्थ हाटकेश्वरजीके क्षेत्रको व्यापितकर टिकते भये ॥ २३ ॥ उन क्षेत्रोंका कीर्त्तन करना सैकडों वर्ष से भी नहीं होसक्ता तथा स्वायम्भुव मनुजी

के पहले कल्पके प्रारम्भमें ॥२४॥ उस क्षेत्रमें सब तीर्थोंने शुभदायक ठिकाना कियाहै हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर समयकी अधिकाईसे अनेक तीर्थ व देवमन्दिर प्रभाव सहित उच्छेदको प्राप्तहोगये कि जिन तीर्थोंको हम सम्पूर्णतासे जानतेहैं ॥ २५।२६ ॥ उन तीर्थोंको मैं तुमलोगोंसे कहूंगा बहुत सावधान होतेहुये सुनिये ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन तीर्थोंको भलीभांति सुननेहीसे मनुष्य पातकसे छूटजाताहै और ध्यान व स्नानकरनेसे तदनन्तर दान व स्पर्श करनेसे भी पापरहित होताहै ॥२८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सर्व्वतीर्थसमाश्रयोनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥

तःसमाश्रयस्तत्र क्षेत्रेतीर्थैःशुभावहः ॥ बहुत्वादथकालस्यबहूनिद्विजसत्तमाः ॥ २५ ॥ उच्छेदंसम्प्रयातानि तीर्थान्या यतनानिच ॥ यान्यहंवेदकात्स्न्र्येन प्रभावसहितानिच ॥२६ ॥ तानिवःकीर्तयिष्यामिशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ २७॥ येषांसंश्रवणादेव नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ ध्यानात्स्नानात्ततोदानात्स्पर्शनाच्चद्विजोत्तमाः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा णेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसर्वतीर्थसमाश्रयो नामाऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसर्वेषुतीर्थेषुसंस्थितेषुद्विजोत्तमाः ॥ तत्क्षेत्रंख्यातिमापन्नं समस्तेधरणीतले ॥ १ ॥ समभ्येत्यत तोदूरान्मुनयःशंसितव्रताः ॥ संश्रयन्तितथाभूपास्तपोर्थंजरयान्विताः ॥ २ ॥ तथातेलिङ्गिनोदान्ताः सिद्धिकामा स्समन्ततः ॥ समाश्रयन्तितत्क्षेत्रं सर्वतीर्थसमाश्रयम् ॥ ३ ॥ तत्रसिद्धेश्वरन्नाम लिङ्गमस्तिद्विजोत्तमाः ॥ सर्वसिद्धि

दो० । उन्तिसके अध्याय में वरस मुनीश चरित्र ॥ बरणत शिवतप करि यथा पायो ज्ञान विचित्र ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! इस भांति समस्त तीर्थो को भलीभांति टिकते हुये वह क्षेत्र सम्पूर्ण धरातल में मुख्यताको प्राप्त हुवा ॥१॥ तदनन्तर प्रशंसित व्रतवाले मुनि और भूपतिलोग वृद्धावस्थासे युक्तहोकर तपस्या करने के लिये दूरसे आकर उस तीर्थ का आश्रय करते थे ॥ २ ॥ वैसेही सब तीर्थोंसे समाश्रित उस क्षेत्रको जे सिद्धिकी चाहनावाले व इन्द्रियोंको दमन कियेहुये लिङ्गार्च्चक लोगहैं वे सब ओरसे आश्रय करते थे ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! मनुष्योंको सम्पूर्ण सिद्धिदायक उस क्षेत्रमें सिद्धेश्वर नामक लिङ्गहै जोकि आपही सब

सिद्धियोंका विधानकारक है ॥ ४ ॥ सर्वव्यापक सदाशिव महेश्वरदेवजी निर्वेद (ज्ञान) को प्राप्तहोकर पृथ्वीतलमें हाटकेश्वर नामक इस क्षेत्रमें आपही विराजमानहैं ॥ ५ ॥ व सदाशिव भगवान् जी आपही लिङ्गरूपसे प्रकट हुये हैं जोकि स्मरण और दर्शनहीके करने से सदैव सब सिद्धियों को देते हैं ॥ ६ ॥ जिस लिये कि सिद्धने आराधन किया है इससे सिद्धेश्वर कहेगये हैं और उसी के वरदानही से महादेवजी यहांही पर स्थित हुये ॥ ७ ॥ जो पवित्र मनुष्य अच्छी भक्तिसे उन सिद्धेश्वरजी के दर्शन करताहै या स्पर्श करताहै वह अपने मनोरथको प्राप्त होताहै यद्यपि बहुत दुर्लभ भी होवै ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमे पुरातन समय मे सैकड़ो पुरुष

प्रदंनृणांस्वयंसिद्धिविधायकम् ॥ ४ ॥ निर्विघ्नभूतलेशर्वःसर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ हाटकेश्वरसञ्ज्ञेऽस्मिन् क्षेत्रेदेवःस्वयं स्थितः ॥ ५ ॥ लिङ्गरूपेणभगवान्प्रादुर्भूतःस्वयंहरः ॥ स्मरणाद्दर्शनाच्चैव सर्वसिद्धिप्रदःसदा ॥ ६ ॥ सिद्धेनाराधितो यस्मात्तस्मात्सिद्धेश्वरःस्मृतः ॥ तस्यैववरदानाद्धिअत्रैवावस्थितोहरः ॥ ७ ॥ यस्तंपश्यतिसद्भक्त्या शुचिःस्पृशति वानरः ॥ वाञ्छितं लभते सद्यो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ तत्रसिद्धिंगताःपूर्वं शतशःपुरुषाभुवि ॥ दर्शनात्स्पर्शना च्चान्येप्रणामादपरे नराः ॥ ९ ॥ दक्षिणामूर्तिमाश्रित्यमन्त्रंतस्यषडक्षरम् ॥ योजपेच्छ्रद्धयोपेतस्तस्यायुःसम्प्रवर्धते ॥ १० ॥ यावत्सङ्ख्यंजपेन्मन्त्रंतावत्सङ्ख्यान्यहानिसः ॥ आयुषःपरमोमर्त्यो जायतेनात्रसंशयः ॥ ११ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्याश्चर्यमिदंसूत यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ आयुषोऽप्यधिकंमर्त्यो जीवतेयदिमानवः ॥ १२ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवः कीर्तयिष्यामिस्वयमेवमयाश्रुतम् ॥ वदतस्तत्सुमुद्रस्ययद्वत्सस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ पुरामेवसमानस्य पुरतोऽत्र

दर्शन व स्पर्श करने से भूतलमें सिद्धिको प्राप्तहोगये और अन्य नर प्रणाम करनेसे सिद्ध होगये हैं ॥ ९ ॥ दाहिनी मूर्त्ति यानी शिवजीकी आराधना कर व उन शिवजीके षडक्षर मन्त्रको श्रद्धा संयुत जो मनुष्य जपता है उसका आयुर्बल बढ़ताहै ॥ १० ॥ वह मनुष्य जितनी संख्या मन्त्र की जप करै उतनेही दिन आयुर्बल अधिक होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! तुमने जिसको कहाहै यह बड़ा आश्चर्य्य है यदि मनुष्य आयुर्बल से भी अधिक जीता है ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि इस विषय में तुम लोगोंसे मैं उसको कहूंगा जोकि शोभन मुद्रावाले महात्मा वत्सजी के कहते हुये मैंने आपही सुना है ॥ १३ ॥

पुरातन समय में मुझे पिताके गेहमें बसतेहुये बड़े तेजस्वी वे वत्स नामक महर्षि घूमते हुये वहां पर प्राप्त हुये ॥ १४ ॥ कि जिनकी युवावस्थाहै और बारह सूर्य्योंके समान जिनकी दीप्तिहै व सब अङ्गोंके स्वरूपसे युक्तहैं मानो दूसरे कामदेवजी हैं ॥ १५ ॥ उस समय में हमारे पिताजीने उन को देखा तदनन्तर भक्तिसे प्रणाम किया उसके उपरान्त अर्घको देकर सहताये हुये उन मुनिसे विनयपूर्वक कहा ॥ १६ ॥ हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारा आगमन अच्छी तरहसे हुवा और तुम यहां कहांसे आये हो मेरे लिये यथायोग्य आज्ञा दीजाय मैं क्या करूं॥ १७ ॥ वत्स महर्षि बोले कि हे सूतजी ! यदि मेरी सेवा करो तो तुम्हारे आश्रम में चातुर्मास्य से उपजेहुये

पितुर्गृहे ॥ आयातःसमुनिस्तत्रवत्सोनाममहाद्युतिः ॥ १४ ॥ अटमानोयुवावस्थो द्वादशार्कसमद्युतिः ॥ अङ्गैःसर्वैःसुरू
पाढ्यःकामदेवइवापरः ॥ १५ ॥ मत्पित्रासतदादृष्टस्ततोभक्त्याभिवादितः ॥ अर्घ्यंदत्वाततःप्रोक्तोविश्रान्तोविनयेन
च ॥ १६ ॥ स्वागतंतवविप्रेन्द्रकुतस्त्वमिह चागतः ॥ आदेशोदीयतांमह्यंकिंकरोमियथोचितम् ॥ १७॥ वत्सउवाच ॥
तवाश्रमपदेसूतचातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ कर्तुमिच्छाम्यनुष्ठानंशुश्रूषांचेत्करोषिमे ॥ १८ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ एवंविप्र
करिष्यामितवादेशमसंशयम् ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियत्त्वंमेगृहमागतः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वाऽथमामाहसपिताद्विज
सत्तमाः ॥ त्वयावत्सास्यकर्तव्या शुश्रूषानित्यमेवहि ॥ २० ॥ ततोहंविनयोपेतस्तस्यकृत्यानिकृत्स्नशः ॥ करोमि
सचमेरात्रौ चित्राःकीर्तयतेकथाः ॥ २१ ॥ राजर्षीणांपुराणानां देवदानवरक्षसाम् ॥ द्वीपानांपर्वतानाञ्च स्वयंदृष्टाः
सहस्रशः ॥ २२ ॥ एकदासमयापृष्टःकथान्तेप्राप्यकौतुकम् ॥ विस्मयाविष्टचित्तेन सद्विजोद्विजसत्तमाः ॥ २३ ॥ भग

अनुष्ठान (व्रतादिक) करने के लिये चाहताहूं ॥ १८ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि हे विप्रजी ! तुम्हारी आज्ञाको निस्सन्देह ऐसीही करूंगा मैं धन्यहूं मेरे ऊपर तुमने अनुग्रह किया कि जो मेरे गेहको आये ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर उन पिताजीने मुझसे कहा कि हे पुत्र ! तुमको इन महर्षिकी सेवा नित्यही करना चाहिये॥२०॥तदनन्तर विनयसंयुक्त होकर मैं उन महर्षिके सम्पूर्ण कार्य्योंको करूं और वे महर्षि मुझसे रात्रिमें विचित्र कथाओं का कीर्तन करैं॥२१॥ कि जिन महर्षि ने पुराने राजर्षि व देव, दानव, राक्षस तथा द्वीप व पर्वतोंके हजारों चरित्रोंको देखाथा॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! एक समय कथा के अन्त में

आश्चर्य्य में प्राप्त होकर विस्मययुक्त चित्तसे मैंने उन वत्स ब्राह्मण से यह पूंछा ॥ २३ ॥ कि हे भगवन् ! तुम्हारा प्रथम अवस्थावाला यह शरीर बहुत सुकुमार है और द्वीपोंकी चित्र विचित्र कथाओं को तुम पृथक् २ कीर्तन करतेहो ॥ २४ ॥ हे तात ! समुद्र सहित सम्पूर्ण धरातलको थोड़ी अवस्था से तुमने कैसे देखाहै इस सबको विस्तार से कहिये ॥ २५ ॥ जिन द्वीप व समुद्र तथा पर्वतोंको तुमने कहा है उनको किसी भांति मनुष्य मनसे भी नहीं जासक्ते हैं ॥ २६ ॥ इस कथा के विषय में आश्चर्य्य उत्पन्न हुवा और वचन श्रद्धाके योग्य न हुये इस लिये सत्य कहिये जिस वाक्यको सुनकर मैं श्रद्धाकरूं ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वर ! क्या यह

वन्सुकुमारन्ते शरीरंप्रथमंवयः ॥ द्वीपानांचकरोषित्वंकथाश्चित्राःपृथक्पृथक् ॥ २४ ॥ कथंसर्वन्धरापृष्ठंससमुद्रंनिरीक्षितम् ॥ स्वल्पेनवयसातातसर्वंविस्तरतोवद ॥ २५ ॥ त्वयायेकीर्तिताद्वीपाः समुद्राःपर्वतास्तथा ॥ मनसापिनशक्यास्तेगन्तुंमर्त्यैःकथञ्चन ॥ २६ ॥ अत्रकौतूहलंजातमश्रद्धेयं वचस्तथा ॥ श्रुत्वाश्रद्धेयवाक्यंस्यात्तस्मात्सत्यंप्रकीर्तय ॥ २७ ॥ तपसःकिंप्रभावोयं किंवामन्त्रपराक्रमः ॥ येनपृथ्वीतलंकृत्स्नंत्वयादृष्टंमुनीश्वर ॥ २८ ॥ किंवादेवप्रसादस्तुतवौषधिकृतोथवा ॥ तवपुण्यतमंतातदब्रवीहिसविस्तरम् ॥ २९ ॥ अथमांसमुनिःप्राहविहस्यमुनिसत्तमाः ॥ सत्यमेतत्त्वयाज्ञातंममन्त्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥ सदाहमष्टसंयुक्तंसहस्रंशिवसन्निधौ ॥ जपामिशिवमन्त्रस्यषडक्षरमितस्यच ॥ ३१ ॥ त्रिकालंतेनमेजातंसुस्थिरंयौवनंमुने ॥ अतीतानागतज्ञानंजीवितंचसुखोदयम् ॥ ३२ ॥ ममवर्षसह

तपस्या का प्रभाव है अथवा मन्त्रका पराक्रम है कि जिससे सम्पूर्ण भूतलको तुमने देखा है ॥ २८ ॥ हे तात ! क्या तुम्हारे देवताकी प्रसन्नता है अथवा तुम्हारे ओषधि से किया हुवा बलहै उस अत्यन्त पवित्र वृत्तान्त को विस्तार समेत तुम कहो ॥ २९ ॥ हे मुनीश्वरो ! इसके अनन्तर उन वत्स मुनिने हँसकर मुझसे कहा कि तुमने यह सत्य जाना मेरे मन्त्रका ऐसा पराक्रम है ॥ ३० ॥ शिवजीके समीपमें छः अक्षरके प्रमाणवाले शिवजी के मन्त्रको मैंने सदैव आठ हज़ार जप किया है ॥ ३१ ॥ हे मुने! उससे मेरी युवावस्था तीनोंकाल में भलीभांति स्थिर रहती है और भूत भविष्य का ज्ञान व सुखको बढ़ानेवाला जीवन जिस जपके प्रभाव से है॥३२॥

हे महामते ! सदाशिवजीकी प्रसन्नता से मैंने जिसप्रकार सि-
हे महाभाग ! मेरा जन्महुये बहुत हज़ार वर्षहुये परन्तु प्रथम अवस्था देखपड़ती है ॥ ३३ ॥ हे महामते ! सदाशिवजीकी प्रसन्नता से मैंने जिसप्रकार सि-
द्धिको पाया है इस विषय में विस्तार से तुमसे कहूंगा ॥ ३४ ॥ कि पुरातन समयमें मैं वत्स नामक विप्र भूतलमें प्रसिद्ध हुवा व अनेक प्रकार के शास्त्रोंमें अभ्यास
करता हुवा वेदोंके पारङ्गतहोगया ॥ ३५ ॥ इसी समय में मेनका नामक उत्तम अप्सरा वसन्त ऋतुके समय में अकस्मात् मृत्युलोक में प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ इसके अ-
नन्तर घूमतीहुई वह अप्सरा काम्यक नामक उत्तम वनमें प्राप्तहुई कि जो वन मत्तकोकिलोंके शब्द से संयुत व मनोहर वृक्षों से व्याप्त था ॥ ३७ ॥ व जिस वन में

॥ सञ्जातस्यमहाभाग दृश्यतेप्रथमंवयः ॥ ३३ ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामिविस्तरेणमहामते ॥
यथासिद्धिर्मयाप्राप्ता प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ३४ ॥ अहंहिब्राह्मणोनाम्नावत्सःख्यातोमहीतले ॥ नानाशास्त्रकृताभ्या
स्राणिबहूनिप्रयुतानिच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुमेनकाचवराप्सराः ॥ वसन्तसमयेप्राप्तामर्त्यलोकेयदृच्छया ॥ ३६ ॥
सःपुरासंवेदपारगः ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुमेनकाचवराप्सराः ॥ वसन्तसमयेप्राप्तामर्त्यलोकेयदृच्छया ॥ ३६ ॥
सागताभ्रममाणाथ काम्यकंनामसद्वनम् ॥ मत्तकोकिलनादाढ्यंमनोज्ञद्रुमसङ्कुलम् ॥ ३७ ॥ यत्रास्तेमुनिशार्दूलो
देवरातइतिश्रुतः ॥ व्रतस्वाध्यायसम्पन्नस्तपसाध्वस्तकिल्बिषः ॥ ३८ ॥ उपविष्टोनदीतीरे देवतार्चापरायणः ॥ अ
द्वयापरयोपेत एकाकीनिर्जनेवने ॥ ३९ ॥ अथसापश्यतस्तस्यविवस्त्राप्राविशज्जलम् ॥ दिव्यरूपसमोपेता घर्मार्ता
वरवर्णिनी ॥ ४० ॥ अथतस्यमुनीन्द्रस्य रेतश्चस्कन्दतत्क्षणात् ॥ दृष्ट्वातांचारुसर्वाङ्गीं जलमध्यसमाश्रिताम् ॥ ४१ ॥
एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तासारङ्गीसुपिपासिता ॥ जलमिश्रंतयारेतःपीतंसर्वमशेषतः ॥ ४२ ॥ अथसापिदधेगर्भमानुषंतत्प्र

और परमश्रद्धासंयुत देवतोंके पूजन में तत्पर निर्जन
देवरात ऐसे सुनेगये मुनिपुङ्गव रहतेथे जोकि व्रत व वेदपाठसे सम्पन्न तथा तपस्या से पापरहित थे ॥ ३८ ॥ और परमश्रद्धासंयुत देवतोंके पूजन में तत्पर निर्जन
वन में नदीके किनारे अकेले बैठेथे ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर उत्तम वर्णावाली व दिव्य स्वरूपसे संयुत वह अप्सरा घाम से दुःखितहोतीहुई उन मुनिके देखते हुये
वस्त्ररहित होकर जलमें पैठगई ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त मनोहर सब अङ्गोंवाली उस अप्सरा को जलके बीचमें भलीभांति स्थित देखकर उसी क्षण उन मुनीश्वर
का वीर्य्य स्खलितहोगया ॥ ४१ ॥ इसी समय में बहुत प्यासी हरिणी वहांपर प्राप्तहुई उसने जलसे मिलाहुवा वीर्य्य सम्पूर्णतासे पीलिया ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर

सफलवीर्य्यवाले उन मुनिके प्रभावसे उस हरिणी ने भी मनुष्य के गर्भको धारण किया तदनन्तर दशवें महीने में देवरातजीके आश्रम के समीप उसी पवित्र जलमें प्रकाशित अङ्गोंवाली कन्याको पैदा किया कि जिसके कमलदलके तुल्य नेत्र थे ॥ ४३ । ४४ ॥ इसके अनन्तर उन देवरात मुनिने अपने ज्ञानसे उस कन्या को अपनेही वीर्य्य से उपजी हुई जानकर व बड़ी दयायुत होकर ग्रहण किया व पालन किया ॥ ४५ ॥ जिससे कि वनमें जङ्गली जीवों से सब ओरसे रक्षित व बड़े स्नेह से संयुत उत्सव से मङ्गलकार्य्योंको कियेहुये ॥ ४६ ॥ वे देवरातनामक मुनि जङ्गली जीवोंसे समाकुल उस वनमें आप बहुत दूर जाकर उस कन्या के

भावतः ॥ अमोघरेतसोमासे सुषुवेदशमेततः ॥ ४३ ॥ जनयामासदीप्ताङ्गींकन्यांपद्मदलेक्षणाम् ॥ तस्मिन्नेवजलेपुण्ये देवराताश्रमंप्रति ॥ ४४ ॥ अथतांसमुनिर्ज्ञात्वास्वज्ञानेनस्ववीर्य्यजाम् ॥ कृपयापरयाविष्टो जग्राहचपुपोषच ॥ ४५ ॥ स्नेहेनमहतायुक्तःकृतकौतुमङ्गलः ॥ रक्षमाणोवनेयस्माच्छ्वापदेभ्यःसमन्ततः ॥ ४६ ॥ आजहारसुमृष्टानितत्कृतेसुफलानिसः ॥ स्वयंगत्वासुदूरंचकाननेश्वापदाकुले ॥ ४७ ॥ तत्रस्थाववृधेसाच नाम्नाख्यातामृगावती ॥ शुक्लपक्षेयथाव्योम्निकलाचशशलक्ष्मणः ॥ ४८ ॥ अथसाभ्रममाणेनमयादृष्टामृगेक्षणा ॥ ततोहंकामबाणेन तत्क्षणात्ताडितोहृदि ॥ ४९ ॥ विज्ञायचकुमारींतां सवर्णांचारुहासिनीम् ॥ आदरेणगृहङ्गत्वासमुनिर्याचितस्ततः ॥ ५० ॥ प्रयच्छैनांममब्रह्मन्पुत्रार्थंनिजकन्यकाम् ॥ यथात्मापोषयिष्यामिभोजनाच्छादनादिभिः ॥ ५१ ॥ ततस्तेनप्रदत्तामे तत्क्षणा

लिये बहुत मीठे व सुन्दर फलोंको लेआये ॥ ४७ ॥ व मृगावती नामसे प्रसिद्ध वह कन्या उसी वन में स्थितहोकर वृद्धिको प्राप्तहुई जैसे कि शुक्लपक्षमें चन्द्रमा की कला आकाशमें बढ़तीहै ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये मैंने उस मृगाक्षीको देखा तदनन्तर उसी क्षण कामके बाणसे मैं हृदय में ताड़ित हुवा ॥ ४९ ॥ व सुन्दरहास्यवाली उस कन्याको सवर्णा (ब्राह्मण वर्ण की कन्या) जानकर तदनन्तर गेहको जाकर उन मुनिसे आदरपूर्वक मैंने यह याचना किया ॥ ५० ॥ कि हे ब्रह्मन् ! इस अपनी कन्याको मुझे पुत्रके लिये दीजिये उस कन्याको आत्माके तुल्य भोजनाच्छादनादिकसे पालना करूंगा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उसी क्षण पूर्वांफा-

ल्गुनी नक्षत्र में शास्त्र में देखेहुये विधानसे उन मुनिने मुझको उस सुन्दरी कन्या को देदिया ॥ ५२ ॥ तिसके उपरान्त पवित्रहास्यवाली वह स्त्री मुझसे व्याही हुई कितेक दिनोंके बाद अपनी सखीजनोंसे संयुतहोकर फलोंके लिये वनमें निकली ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर लताओंसे आच्छादित व भलीभांति से स्थित उस वनमें तृणसे छिपेहुये सर्पके शिरपर उस स्त्री ने चरणको रखदिया ॥ ५४ ॥ उस सर्पने अचानक उसको काटखाया उसी क्षण भूतलमें गिरपड़ी व विषसे व्यथित होकर वह सुन्दरी प्राणरहित होगई ॥ ५५ ॥ हे सूतपुत्र ! इसके अनन्तर उस स्त्री के दुःखसे दुःखित रोतीहुई वे सब सखी जैसा वृत्तान्त था वैसा मुझ से वर्णन करती

देवसुन्दरी ॥ विधिनाशास्त्रदृष्टेन नक्षत्रेभगदैवते ॥ ५२ ॥ ततःकतिपयाहस्य मयोढासाशुचिस्मिता ॥ सखीजनसमायुक्ताफलार्थंनिर्गतावने ॥ ५३ ॥ अथवीरुधसञ्छन्नेवनेतस्मिन्सुसंस्थिते ॥ तयान्यस्तंपदंमूर्द्धितृणच्छन्नस्यभोगिनः ॥ ५४ ॥ सादष्टासहसातेन पतितावसुधातले ॥ विषार्दितागतप्राणातत्क्षणादेवभामिनी ॥ ५५ ॥ अथसख्यःसमागत्यतस्यादुःखेनदुःखिताः ॥ शशंसुस्तायथावृत्तंरुदन्त्योममसूतज ॥ ५६ ॥ ततोऽहंसत्वरंगत्वादृष्ट्वातांपतितांभुवि ॥ विलापान्कृतवान्दीनो रुदन्वैकरुणास्वरम् ॥ ५७ ॥ इयम्मेस्यविशालाक्षी मनःप्राणसमाप्रिया ॥ मृताभूमौययाहीनोनाहंजीवितुमुत्सहे ॥ ५८ ॥ सोहमद्यगमिष्यामिपरलोकंसहानया ॥ प्रियारहितहर्म्यस्यजीवितस्यचकिंफलम् ॥ ५९ ॥ पुत्रैःपौत्रैर्बन्धुभिश्च भृत्यवर्गयुतस्यच ॥ पत्नीहीनानिनोरेजुर्गृहाणिगृहमेधिनाम् ॥ ६० ॥ यदीयंकर्णनेत्रान्ता तन्वङ्गीमधुरस्वरा ॥ नजीवतिपृथुश्रोणी मरिष्येहमसंशयम् ॥ ६१ ॥ एवंविलपमानस्यममसूतकुलोद्वह ॥ आगताः

भई ॥ ५६ ॥ तदनन्तर जल्दी से जाकर व उसको भूमि में गिरीहुई देखकर करुणास्वरसे रोताहुवा दीनहोकर मैंने बहुत विलाप किया ॥ ५७ ॥ विशाल नेत्रोंवाली यह मुझे मन व प्राणके समान प्रिय भूमिमें मरीपड़ी है कि जिससे रहित मैं जीने के लिये उत्साह नहीं करताहूं ॥ ५८ ॥ मैं आजही इसके साथ परलोक को जाऊंगा क्योंकि प्रिया (स्त्री) से रहित मन्दिर और जीवन का क्या फलहै याने कुछ नहीं है ॥ ५९ ॥ पुत्र, पौत्र, बन्धु व नौकरों के समूह से युत भी हो परन्तु स्त्रीसे रहित गृहस्थोंके गृह शोभित नहीं होतेहैं ॥६०॥ सूक्ष्म अङ्गोंवाली व मीठे शब्द बोलनेवाली यह स्त्री कि जिसके नेत्र कर्णपर्य्यन्तहैं व जिसका नितम्ब स्थूलहै यदि न

जियेगी तौ मैं अवश्य मरजाऊंगा ॥ ६१ ॥ हे सूतजी के कुलके नायक ! मुझको इसप्रकार विलाप करतेहुये जे मित्रजन आये उन्हों ने भी दुःखितहोकर रोदन किया ॥ ६२ ॥ उन मित्रों समेत वहांपर बहुत देरतक रोकर इसके अनन्तर बड़ी चिताको बनाकर व उस स्त्रीको चितामें धरकर अग्नि दीगई ॥ ६३ ॥ तदनन्तर रोतेहुये व मोहमें प्राप्त तथा पग पग पै लरखराते हुये मुझको लेकर वे मित्र जन क्लेश से निज गेह प्रति लेआये ॥ ६४ ॥ उसके उपरान्त स्त्री के दुःख से घिरेहुये चित्तवाला मैं शीघ्रता समेत कुछ रात्रि बाकी रहे उठकर उसी समय वनको चला गया ॥ ६५ ॥ व कामदेव से उन्मत्तताको प्राप्त मैं मनुष्यहीन उस वन में इधर

सुहृदःसर्वेरुरुदुस्तेपिदुःखिताः ॥ ६२ ॥ रुदित्वासुचिरन्तत्रतैःसमम्महतीञ्चिताम् ॥ कृत्वातांसन्निधायाऽथ प्रदत्तोहव्य वाहनः ॥ ६३ ॥ ततआदायमांकृच्छ्रान्निन्युश्चस्वगृहंप्रति ॥ रुदन्तंप्रस्खलन्तञ्चमुह्यमानंपदेपदे ॥ ६४ ॥ ततोनिशाव शेषेऽहमुत्थायत्वरयान्वितः ॥ कान्तादुःखपरीतात्मागतोरण्यंतदैवहि ॥ ६५ ॥ कामेनोन्मत्ततांप्राप्तो भ्रममाणइतस्त तः ॥ विलपन्नेवदुःखार्तो वनेजनविवर्जिते ॥ ६६ ॥ क्वगतासिविशालाक्षिविपिनेऽस्मिन्विहायमाम् ॥ नाहंगृहङ्गमिष्या मिममदुःखायनिर्दयः ॥ ६७ ॥ एषोरुणकरस्पर्शात्स्वांभांत्यजतिचन्द्रमाः ॥ निशाक्षयेनिरुत्साहो यथाहंविधिनाकृतः ॥ ६८ ॥ अयंननुसमायाति सवितारक्तमण्डलः ॥ निगदिष्यतिमेवार्त्तां नूनंकाञ्चित्त्वदुद्भवाम् ॥ ६९ ॥ गगनंव्यापयन्सू र्य्यःसन्तापयतिमांभृशम् ॥ बाह्येचाभ्यन्तरेकामः कथंरक्षामिजीवितम् ॥ ७० ॥ करीन्द्रःस्वयमभ्येतितत्कुचाभौस मुद्वहन् ॥ कुम्भौगत्वातुपृच्छामि यदिशंसतितांप्रियाम् ॥ ७१ ॥ एवंप्रलपमानस्यममोहोमहानभूत् ॥ भास्करांशु

उधर घूमता हुवा विलाप करते ही दुःखसे विकल होगया ॥ ६६ ॥ हे विशालाक्षि ! इस वन में मुझको छोड़कर तुम कहां चलीगई हो मै गृहको न जाऊंगा निशा के नाश समय में अरुणजी (सूर्य्यके सारथी) की किरणों के स्पर्शसे यह निर्दयी चन्द्रमा मेरेदुःखके लिये अपनी दीप्तिको त्याग करताहै जैसे कि मैं दैवसे उत्साहहीन कर दिया गया ॥ ६७ । ६८ ॥ व लालमण्डलवाले सूर्य्यनारायणजी ये अवश्य आरहे है और तुमसे उपजी हुई किसी वार्ताको मुझसे निश्चयकर कहैं-गे ॥ ६९ ॥ आकाशमें व्याप्त होतेहुये सूर्य्यजी मुझको बाहरी तरफ़ बहुत सन्तप्त करते हैं और भीतर कामदेवजी क्लेश देरहे हैं मै जीवकी रक्षा किस प्रकार करूं ॥ ७० ॥

व उसके कुचोंकी शोभावाले कुम्भों (लिलारों) को धारण कियेहुये हाथियों का स्वामी आपही आरहाहै यदि मेरी प्यारीका कीर्तनकरै तो मैं जाकर प्रश्न करूं ॥ ७१ ॥ इसप्रकार प्रलापकरते हुये व कामदेव से व्याकुल तथा सूर्य्य की किरणों से सन्तप्त मुझको बड़ा अज्ञान हुवा ॥ ७२ ॥ उस महावन में घूमता हुवा मैं जिस वृक्ष या जिस प्राणीको देखताहूं उस वृक्ष और उस प्राणीको अज्ञान से देखताहूं ॥ ७३ ॥ हे गज ! मुशलके तुल्य तुम्हारे दांतोंके समान जिस स्त्री के दोनों जङ्घस्थलहैं यदि उसको तुमने देखाहै तो मेरे ऊपर दया करके बतलाइये ॥ ७४ ॥ हे जम्बुक (सियार) ! जिस मेरी स्त्रीके जम्बूफल (फरेंद) के सदृश ओष्ठहैं यदि तुमने उसको देखा है तो कहो तुम्हारा बड़ा कल्याणहोगा ॥ ७५ ॥ हे बिल्व! अथवा बिल्वफलके समान जिसके स्तनहैं व मुझको प्राणोंके समान प्यारीहै यदि

प्राप्तस्य मदनाकुलितस्यच ॥ ७२ ॥ यंयंपश्यामितत्राहंभ्रममाणोमहावने ॥ वृक्षंवाप्राणिनंवापि तंतंपश्यामिमोह तः ॥ ७३ ॥ त्वद्दन्तमुशलप्रख्यं यस्याऊरुयुगंगज ॥ ताम्बात्वांवेदचेद्दृष्टा दयांकृत्वाममोपरि ॥ ७४ ॥ त्वयाजम्बुकचे द्दृष्टाजम्बूफलनिभाधरा ॥ दयिताममतद्ब्रूहि श्रेयस्तेभवितामहत् ॥ ७५ ॥ अथवाबिल्वशंसत्वंयदिबिल्वोपमस्त नी ॥ भ्रममाणावनेदृष्टाममप्राणसमाप्रिया ॥ ७६ ॥ त्वत्पुष्पसदृशाङ्गीसा ममभार्य्यामनस्विनी ॥ सत्वंचम्पकजानीषे यदितच्छंसमेद्रुतम् ॥ ७७ ॥ मधूकतवपुष्पेणदयितायाःसमौशुभौ ॥ कपोलौपाण्डुरच्छायौ दृष्ट्वात्वांस्मृतिमाग तौ ॥ ७८ ॥ कदलिस्तम्भसुव्यक्तौ प्रियायाश्चसुकोमलौ ॥ऊरूत्वत्तोपितन्वङ्ग्याः सत्येनात्मानमालभे ॥ ७९ ॥ भोभो मृगनमेदृष्टात्वयाभार्य्याऽत्रकानने॥ त्वत्समैर्लोचनैःस्पष्टैःकज्जलेनसमावृतैः॥ ८० ॥ तृणादोपिसुवृद्धोपिवनवृद्धोऽपि

वन में भ्रमण करतीहुई उसको तुमने देखा है तो तुम कहो ॥ ७६ ॥ हे चम्पक ! तुम्हारे फूलोंके समान जिसके अङ्गहैं उस मेरी मनस्विनी स्त्री को यदि तुम जानते हो तो मुझसे शीघ्रही कहो ॥ ७७ ॥ हे मधूक ! तुम्हारे फूलके समान उज्ज्वल कान्तिवाले मेरी प्यारीके उत्तम कपोल हैं तुमको देखकर उन कपोलोंका स्मरण आगया ॥ ७८ ॥ हे कदलि ! सूक्ष्म अङ्गोंवाली प्यारीके दोनों जङ्घस्थल तुम्हारे स्तम्भके समान कान्तिमान् व तुमसे भी बहुत कोमलथे यह मैं सत्य से अपनी शपथ करताहूं ॥ ७९ ॥ अहोमृग ! इस कानन में तुमने मेरी स्त्रीको नहीं देखा है जोकि कज्जल संयुक्त खुलेहुये तुम्हारे समान नेत्रोंसे उपलक्षितथी ॥ ८० ॥ तृण

भोजन करनेवाला भी व बहुत वृद्ध भी तथा वनमें बूढ़ा हुवा जो पशु है वह भी स्त्रीसे विहीन क्षणभर वनमें रमण नहीं करता है ॥ ८१ ॥ व पक्षीकी योनि में उत्पन्न भी मयूर कामदेव के बढ़ने के लिये अपनी स्त्रीके अगाड़ी शरीरको नित्यही विधान करताहै ॥८२॥ जो यह हंस भलीभांति देख पड़ताहै जोकि हंसीके पीछे गमन करता है इस हंसकी भी वैसी गति नहीं है जैसी कि मेरी प्यारीकी गतिथी ॥ ८३ ॥ व ऐसेही यह चक्रवाक (चकवा) पक्षी बहुत धन्यहै जोकि अपनी प्यारी चक्रवाकी को मुहूर्तमात्र भी नहीं छोड़ता है ॥ ८४ ॥ मुझको भ्रान्ति पैदा करताहुवा जो यह शब्द सुनपड़ताहै क्या मेरी प्यारीसे उपजा हुवा यह शब्दहै अथवा कोकिला

यःपशुः ॥ सोऽपिकान्तापरित्यक्तो नवनेरमतेक्षणम् ॥ ८१ ॥ कान्तायाःपुरतोनित्यंविधत्तेऽङ्गंकलापधृक् ॥ विहङ्गयोनिजातोऽपि वृद्ध्यर्थंपुष्पधन्वनः ॥ ८२ ॥ योयंसन्दृश्यतेहंसोहंसीमनुसरत्यसौ ॥ गतिस्तादृग्नचाप्यस्यमत्प्रियायाश्चयादृशी ॥ ८३ ॥ एवमेवसुधन्योयंचक्रवाकोविहङ्गमः ॥ मुहूर्तमपियोभीष्टां नत्यजेच्चक्रवाकिकाम् ॥ ८४ ॥ यएषश्रूयतेरावो विभ्रमंजनयन्मम ॥ किंवापिकसमुत्थोयंकिंवामेदयितोद्भवः ॥ ८५ ॥ मांदृष्ट्वायंमृगोयातितंमृगीयातिपृष्ठतः ॥ धावमानाममाप्येवमनुयान्तीपुराप्रिया ॥ ८६ ॥ वारणोयंप्रियांकान्तामनुरागानुयायिनीम् ॥ स्पर्शयत्यग्रहस्तेन ममसंस्मारयन्प्रियाम् ॥ ८७ ॥ हाप्रियेमृगशावाक्षितप्तकाञ्चनसन्निभे ॥ कथंमांनविजानासि भ्रमन्तमिहकानने ॥ ८८ ॥ क्वसाप्रीतिःक्वसाभक्तिःक्वसातुष्टिःक्वसादया ॥ निगदन्तंसुदीनंमां सम्भाषयसिनोयतः ॥ ८९ ॥ एवंप्रलपमान

से उठाहुवा शब्दहै ॥ ८५ ॥ मुझको देखकर यह मृग जारहाहै उसके पीछे दौड़ती हुई मृगी जारही है इसीतरह पहले मेरी प्यारी भी पीछे गमन करतीथी ॥ ८६ ॥ और स्नेहसे पीछे जातीहुई प्यारी हथिनीको यह हाथी मुझे प्रियाका स्मरण कराताहुवा अपनी सूंड़ से स्पर्श करता है ॥ ८७ ॥ हे प्रिये ! हे मृगशावकनयनि ! व हे तप्तकाञ्चनसन्निभे याने तचेहुये सुवर्णके समान सुन्दरि ! इस वन में भ्रमतेहुये मुझको तुम क्यों नहीं जानतीहो ॥ ८८ ॥ वह स्नेह कहां है वह भक्ति कहां है और वह प्रसन्नता कहां है तथा वह दया कहांहै कि जिससे बहुत दीन वचन बोलते हुये मुझसे तुम सम्भाषण नहीं करती हो ॥ ८९ ॥ इसप्रकार मुझको निर-

र्थक वचन कहतेहुये व वनमें तथा विषम स्थानों में स्थान को ढूंढ़तेहुये मित्रजन वहां पर प्राप्तहुये ॥ ६० ॥ हे सूतपुत्र ! तदनन्तर क्रोधसे लालनेत्रवाले उन मित्र जनोंने कठोर वाक्योंसे तिरस्कार करते हुये मुझसे यह कहा कि हे कामिन् ! इस समय तुमको धिक्कारहै ॥ ६१ ॥ हे मूढ़चित्तवाले ! तुम क्यों शोचते हो मनुष्यों का जीवन शोचने योग्य नहीं है कि जिससे शोचकरतेहुये तुमको भी और दूसरे जन शोचकरैंगे ॥ ६२ ॥ हम, तुम तथा और जे प्राणी भूमि में उत्पन्न हुये हैं वे सबही मरैंगे इस विषयमें क्या विलापहै ॥ ६३ ॥ पहले न देखने से प्यारी स्त्री मिलीथी और फिर अदर्शन में प्राप्तहोगई न वह तुम्हारी है न उसके तुम हो व्यर्थ क्यों

स्यममप्राप्ताःसुहृज्जनाः ॥ अन्वेषन्तःपदंतत्र वनेषुविषमेषुच ॥ ९० ॥ ततस्तैःकोपरक्ताक्षैःप्रोक्तोहंसूतनन्दन ॥ भर्त्सद्भिःपरुषैर्वाक्यैर्धिक्त्वांकामिन्नथोधुना ॥ ६१ ॥ त्वंकिंशोचसिमूढात्मन्नशोच्यंजीवितंनृणाम् ॥ यतस्त्वामपिशोचन्तेशोचयिष्यन्तिचापरे ॥ ९२ ॥ यूयंवयंतथाचान्ये सञ्जाताःप्राणिनोभुवि ॥ सर्वएवमरिष्यामस्तत्रकापरिदेवना ॥ ६३ ॥ अदर्शनात्प्रियाप्राप्ता पुनश्चादर्शनङ्गता ॥ नसातवनतस्यास्त्वंवृथाकिमनुशोचसि ॥ ९४ ॥ नायमत्यन्तसंवासःकस्यचित्केनचित्सह ॥ अपिस्वेनशरीरेणकिमुतान्यैःपृथग्जनैः ॥ ९५ ॥ मृतंवायदिवानष्टं योतीतमनुशोचति ॥ सदुःखेनलभेद्दुःखंद्वावनर्थौप्रपद्यते ॥ ९६ ॥ एवंसम्बोधयित्वायो गृहीत्वातेसुहृज्जनाः ॥ निन्युर्गृहंततःसर्वे वनात्तस्मात्सुदारुणात् ॥ ९७ ॥ ततोममगृहस्थस्य स्मरमाणस्यताम्प्रियाम् ॥ उत्पन्नःसुमहान्कोपः सर्प्पान्प्रतिमहामते ॥ ९८ ॥ ततःकोपपरीतेन प्रतिज्ञातंमयास्फुटम् ॥ सर्प्पानुद्दिश्ययत्सर्वं तन्निबोधयदारुणम् ॥ ६६ ॥ अद्यप्रभृतिचेन्नाहं

शोच करते हो ॥ ६४ ॥ किसीका किसीके साथ बहुत दिन तक एकत्र वास नहीं होताहै अन्य पृथग्जनों से क्या अपने शरीर से भी नहीं होता है ॥ ६५ ॥ खोई हुई वस्तु को या व्यतीत वार्ताको अथवा मरेहुये प्राणीको जो पुरुष शोच करता है वह दुःखसे दुःखको प्राप्तहोता है याने दोनों अनर्थों को पाताहै ॥ ६६ ॥ इस प्रकार वे सब मित्रजन मुझको समझाकर तदनन्तर पकडकर उस विकराल वनसे गेहको लेआये ॥ ६७ ॥ हे महामते ! उसके उपरान्त उस प्रियाको स्मरण करते हुये मुझ गृहस्थके सर्प्पोंके ऊपर बडा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ६८ ॥ तदनन्तर कोप संयुत मैंने सर्पोंको उद्देशाकर प्रकटमें जो घोर प्रतिज्ञा कियाहै उस

सबको जानिये ॥ ९९ ॥ कि आजसे लगाकर दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको यदि मैं दण्डताड़नसे न मारूं तो मुझको अवश्य पातकहोवै ॥ १०० ॥ व विश्वासघाती तथा धरोहरि हरनेवालोंको जो पातक होता है मुझको वही पातक होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १ ॥ साधुओंकी निन्दा में व माता पिता के वधमें जो पातक होता है उस समस्त जन्तुओं के उपजेहुये पातक से मैं लिप्तहोऊं ॥ २ ॥ जीवहिंसा करनेवाले व पराई स्त्रियों में आसक्त मनुष्यों को जो पातक होताहै वही पातक मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्प को न मारूं ॥ ३ ॥ घूसलेने में तत्पर व विषदेनेवाले मनुष्यों को जो

सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ निहन्मिदण्डघातेनतत्पापंस्याद्ध्रुवंमम ॥ १०० ॥ यच्चनिक्षेपहर्तॄणां पापंविश्वासघातिनाम् ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥१॥ तेनलिप्यामिपापेनसर्वजन्तूद्भवेनच ॥ यत्पापंसाधुनिन्दायां मातापितृवधेचयत् ॥ २ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ परदाररतानांचयत्पापंजीवघातिनाम् ॥ ३ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ उत्कोचाभिरतानांचयत्पापंगरदायिनाम् ॥ ४ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ कृतघ्नानांचयत्पापंपरवित्तापहारिणाम् ॥ ५ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशङ्गतम् ॥ यत्पापं शस्त्रकर्तॄणां तथावह्निप्रदायिनाम् ॥ ६ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मिसर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ व्रतभङ्गेनयत्पापं व्रतिनांनिन्दयाचयत् ॥ ७ ॥ तन्मेस्याद्यदिनोहन्मि सर्प्पंदृष्टिवशंगतम् ॥ यत्पापंभ्रूणहत्यायां पृष्ठमांसाशिनांचयत् ॥ ८ ॥ त

पाप होताहै वही मुझकोहोवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ ४ ॥ पराये धनको हरनेवाले व कृतघ्नमनुष्यों को जो पातकहोता है वही पातक मुझको होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ ५ ॥ यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्प को मैं न मारूं तो वह पातक मुझे होवै कि जो शस्त्रबनानेवाले व अग्निलगानेवाले पुरुषों को होता है ॥ ६ ॥ व्रत रहनेवाले पुरुषों को व्रत के भङ्गसे व निन्दाकरने से जो पातक होताहै वही मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको मैं न मारूं ॥ ७ ॥ व गर्भनाश करनेवाले व पीठके मांसको भोजन करनेवाले जनोंको जो पातक होता है वही पातक मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ ८ ॥

व गांसीबनानेवाले व वृक्षके काटने में परायण पुरुषों को जो पातक होता है वही पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको मैं न मारूं ॥ ९ ॥ व पाखण्डी और नास्तिक पुरुषों को जो पातक होवै है वही मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्प को न मारूं ॥ १० ॥ व मांस, मदिरा में आसक्त व शठ या लम्पट मनुष्यों के सेवकों को जो पातक होता है वही पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ ११ ॥ व झूंठे विवाद में आसक्त व पराये दोषों को देखने वाले पुरुषों को जो पातक होताहै वही मुझको होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १२ ॥ व साक्षी करने वाले व अन्नका संग्रहकरनेवाले जनोंको जो पातक होताहै वही मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १३ ॥ फसरी देनेवाले व शिकार खेलने में तत्पर जनोंको जो पातक होता है वह पातक

न्मेस्याद्यदिनोहन्मि० ॥ वृक्षच्छेदप्रसक्तानां यत्पापंशल्यकारिणाम् ॥ ९ ॥ तन्मे० ॥ पाखण्डिनांचयत्पापं नास्तिकानांचयद्भवेत् ॥ १० ॥ तन्मे० ॥ मांसमद्यप्रसक्तानांयत्पापंविटभाजिनाम् ॥ ११ ॥ तन्मे० ॥ मृषावादप्रसक्तानांपररन्ध्रावलोकिनाम् ॥ १२ ॥ तन्मे० ॥ यत्पापंसाक्ष्यकर्तृणांधान्यसङ्ग्रहकारिणाम् ॥ १३ ॥ तन्मे० ॥ आखेटकरतानांच यत्पापं पाशदायिनाम् ॥ १४ ॥ तन्मे० ॥ नित्यंप्रेषणकर्तृणांयत्पापंमधुजीविनाम् ॥ १५ ॥ तन्मे० ॥ अदृष्टदेववक्त्राणांयत्पापंमत्स्यजीविनाम् ॥ १६ ॥ तन्मे० ॥ विवादेपृच्छमानानां पक्षपातेनजल्पताम् ॥ १७ ॥ भयाद्वायदिवालोभाद्द्वेषाद्वाकामतोपिवा ॥ यत्पापंतुभवेत्तेषां निर्दयानांदुरात्मनाम् ॥ १८ ॥ तन्मे० ॥ कन्याविक्रयकर्तृणां यत्पापं

मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १४ ॥ मदिरा से जीविका करनेवाले व नित्यही सेवकादिकोंको पठानेवाले जनों को जो पाप होताहै वही पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १५ ॥ मछली से जीविका करनेवाले व देवताओं के मुखारविन्दको न देखनेवाले पुरुषों को जो पाप होता है वही पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १६ ॥ व विवाद (झगडे) में पूंछेहुये पक्षपात (तरफदारी) से कहनेवाले मनुष्यों को जो पापहोताहै वह मुझको पातक होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं ॥ १७ ॥ व भयसे अथवा लोभसे या वैरसे या कामसे भी उन निर्दयी व दुष्ट चित्तवाले

जनोंको जो पातक होवै है ॥१८॥ वह मुझको होवै यदि दृष्टिवशमें प्राप्तहुये सर्पको न मारूं और कन्या बेंचनेवाले व पापीके साथियोंको जो पाप होताहै ॥१९॥ वह पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्त हुये सर्पको न मारू व विद्याके बेंचनेवाले पुरुषोंको जो पातक कहा गयाहै ॥ २० ॥ वह पाप मुझको होवै यदि दृष्टिवश में प्राप्तहुये सर्पको न मारूं हे सूतपुत्र ! क्रोधसे व्यापित मैंने इसप्रकार प्रतिज्ञाकर ॥ २१ ॥ तबसे लगाकर पवन भोजन करनेवाले सर्पोंको मारने के लिये मोटे दण्डे को हाथमें लिया व दण्डरूप अस्त्रको धारण किये हुये मैं भूमिमें भ्रमण करताहूं ॥ २२ ॥ ब्राह्मणोंकी वृत्तिको छोड़कर सर्पोंको ढूंढ़ते हुये व क्रोधसे संयुत मैंने

पापसङ्गिनाम् ॥ १९ ॥ तन्मे० ॥ विद्याविक्रयकर्तॄणां यत्पापंसमुदाहृतम् ॥२०॥ तन्मे० ॥ एवंमयाप्रतिज्ञाय कोपाविष्टेनसूतज ॥ २१ ॥ गृहीतोलगुडस्स्थूलोवधार्थं पवनाशिनाम् ॥ ततःप्रभृत्यहंभूमौभ्रमामिलगुडायुधः ॥ २२ ॥ ब्राह्मीं वृत्तिम्परित्यज्यमार्गमाणोभुजङ्गमान् ॥ मयाकोपपरीतेन बहवःपन्नगाहताः ॥ २३ ॥ विषोल्बणामहाकायास्तथान्येमध्यमाधमाः ॥ एकदाहंवनंप्राप्तोगहनंलगुडायुधः ॥ २४ ॥ शयानंतत्रचापश्यंजलसर्प्पंवयोधिकम् ॥ ततोहंदण्डमुद्यम्यकालदण्डोपमंरुषा ॥ २५ ॥ अभ्यघ्नंयावदेवाहंसमांप्रोवाचपन्नगः ॥ नापराध्यामितेकिञ्चिदहंब्राह्मणसत्तम ॥ २६ ॥ संरम्भात्तत्किमर्थंमांजिघांससिवयोधिकम् ॥ ततोमयासम्प्रोक्तः कोपात्सलिलपन्नगः ॥ २७ ॥ महामन्युपरीतेनस्मृत्वाभार्य्यांमृगावतीम् ॥ ममभार्य्या प्रियापूर्वं सर्प्पेणासीद्विनाशिता ॥ २८ ॥ ततोहन्तेनवैरेणसूदयामि

बहुतेरे सर्प्पोंको मारडाला ॥२३॥ जोकि विषसे तीक्ष्ण व बड़े शरीरवाले तथा अन्य मध्यम व नीचजातिवाले सर्प थे एक समयमें दण्डास्त्रको लिये हुये मैं सघन वन में प्राप्त हुवा ॥ २४ ॥ उस वन में अधिक अवस्थावाले जलके सांपको मैंने देखा तदनन्तर यमदण्ड के सदृश दण्डको मैं क्रोधसे उठाकर ॥ २५ ॥ जब तक मैं मारू तबतक वह सर्प मुझसे बोला कि हे ब्राह्मणोत्तम ! मैं तुम्हारा कुछ अपराधी नहीं हूं ॥ २६ ॥ तो बहुत अवस्थावाले मुझको तुम कोपसे किस लिये मारतेहो तदनन्तर बड़े क्रोधसे संयुत मैंने मृगावती स्त्रीको स्मरणकर रोषसे उस जलके सर्पसे यह कहा कि प्राचीन समयमें मेरी प्यारी कान्ताको सर्पने नाशकर दियाहै ॥२७।२८॥

इसलिये उस वैरसे मैं बड़े सर्प्योंको नाशकररहाहूं फिर बड़े भयसंयुत उस सर्पने मुझसे यह कहा ॥ २६ ॥ कि पहले हमारे वचनको सुनो तदनन्तर यथायोग्य करो हे द्विज ! वे और सर्प हैं कि जे इस संसार में मनुष्योंको काटते हैं ॥ ३० ॥ सर्पके रूपको धारण किये व जल में उपजेहुये हम विषसे रहित हैं हे सूतजी ! इसप्रकार कहतेहुये भी उस सर्पके मारने के लिये विचाररहित चित्तसे मैंने दण्डसे ताड़न किया इसके अनन्तर दण्डके स्पर्शसे उसी क्षण वह सर्प ॥ ३१ । ३२ ॥ बारह सूर्य्योंके समान तेजस्वी महापुरुष होगया इसके उपरान्त उस आश्चर्य्य को देखकर मैं विस्मयसंयुत हुआ ॥ ३३ ॥ व उच्च प्रकारसे प्रणाम

महोरगान् ॥ ससर्पोमांपुनःप्राहभयेनमहतावृतः ॥ २६ ॥ शृणुतावद्वचोस्माकंततःकुरुयथोचितम् ॥ अन्येतेपन्नगा विप्रयेदशन्तीहमानवान् ॥ ३० ॥ वयंसलिलसम्भूतानिर्विषाः सर्प्परूपिणः ॥ एवंप्रजल्पमानोपिसदण्डेनमयाह तः॥ ३१ ॥ सूततत्सूदनार्थायनिर्विकल्पेनचेतसा ॥ अथासौलगुडस्पर्शात्तत्क्षणादेवपन्नगः ॥ ३२ ॥ द्वादशार्कप्रती काशोबभूवपुरुषोमहान् ॥ तदाश्चर्य्यंसमालोक्यततोहंविस्मयान्वितः ॥ ३३ ॥ उक्तवांस्तम्प्रणम्योच्चैःक्षम्यतामिति सादरम् ॥ कोभवान्किमिदंरूपंकृतंस्पर्शमयंविभो ॥ ३४ ॥ किंवातेब्रह्मशापोयंकिंवाक्रीडासदेदृशी ॥ ततःप्रोवाचमां हृष्टःसनरःप्रश्रयान्वितः ॥ ३५ ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वावृत्तान्तंस्वंवदामिते ॥ अहमासीत्पुराविप्रश्चमत्कारपुरोत्तमे ॥ ३६ ॥ युवापरमतेजस्वी धनवान्स्वसमृद्धिभाक् ॥ तत्रैवनगरेरम्ये चास्तिपुण्यंशिवालयम् ॥ ३७ ॥ सिद्धेश्वरस्यदेव

कर उससे आदरपूर्वक मैंने यह कहा कि हे विभो ! क्षमा कीजिये आप कौन हो व इस स्पर्शमय रूप को तुमने क्यों किया है ॥ ३४ ॥ अथवा क्या तुमको यह ब्राह्मण का शाप था या सदैव तुम्हारी ऐसी क्रीडा होतीहै तदनन्तर विनयसंयुत व प्रसन्न होकर वह मनुष्य मुझसे बोला ॥ ३५ ॥ कि सावधान होकर सुनो मैं अपने वृत्तान्तको तुमसे वर्णन करताहूं कि पुरातन समय परमतेजस्वी व धनवान् तथा निजसमृद्धियों का भागी व युवावस्थाको प्राप्त व ब्राह्मण कुल में हुवा मैं चमत्कार नृप के उत्तम नगर में होता भया उसी सुन्दर पुर में पुण्यदायक सिद्धेश्वरदेवजीका उत्तम शिवालय है जोकि पताकाओं से शोभित है इसके

अनन्तर किसी समय में वहां पर यात्राहुई ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ इस स्थान के बाजाओंके शब्दसे तीनों लोक शब्दित होगये इसके अनन्तर वहां पर प्रशंसित व्रतवाले मुनिलोग भलीभांति आये ॥ ३९ ॥ हे सूतजी ! महादेवजीके स्पर्शके लिये सैकड़ों व हजारों शैव, पाशुपत तथा जे काल के उपासक थे ॥ ४० ॥ व सदाशिवजी की भक्तिमें तत्पर अन्य नर महाव्रतको धारण कियेहुये व एकबार भोजन करनेवाले व उपास करनेवाले तथा और पुरुष पवनभक्षण करनेवाले ॥ ४१ ॥ और जलही पीनेवाले व फलाहारी तथा गिरेहुये पत्तोंका भोजन करनेवाले थे वे सब देवोंके देव महादेवजी को यथायोग्य प्रणामकर ॥ ४२ ॥ व उन सदाशिवजीके आगे स-

स्यपताकाभिरलङ्कृतम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तत्रयात्राऽभ्यजायत ॥ ३८ ॥ अस्यवादित्रघोषेण नादितंभुवनत्रयम् ॥ अथतत्रसमायातामुनयःशंसितव्रताः ॥ ३९॥ देवस्यस्पर्शनार्थाय शतशोथसहस्रशः ॥ शैवाःपाशुपताःसूततथाकालस्तुषाश्चये ॥ ४० ॥ महाव्रतधराश्चान्येशिवभक्तिपरायणाः ॥ एकाहारानिराहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥ ४१ ॥ अब्भक्षाःफलभक्षाश्च शीर्णपर्णाशिनस्तथा ॥ तेभिवन्द्ययथान्यायंदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ ४२ ॥ उपविष्टाःपुरस्तस्य कथाश्चक्रुःपरस्परम् ॥ राजर्षीणांपुराणानां देवेन्द्राणांचहर्षिताः ॥ ४३ ॥ दयाधर्म्मसमोपेतास्तथान्याश्चपिभूरिशः॥ केचिद्देवालयेतत्र प्रनृत्यन्तितथापरे ॥ ४४ ॥ साधवोभक्तिसंयुक्तावाद्यंचक्रुस्तथापरे ॥ अन्येदानानियच्छन्ति धनिनः श्रद्धयान्विताः ॥ ४५ ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्चतपस्विभ्योविशेषतः ॥ एवंमहोत्सवेतत्र वर्त्तमानेमहोदये ॥ ४६ ॥ आगतोबहुभिःसार्द्धमहंयौवनगर्वितः ॥ शैवदर्शनविद्वेषी तमसासंवृताशयः ॥ ४७ ॥ यात्रोत्सवविनाशायप्रेरितोन्यैःसु

मीपमें बैठगये व प्रसन्नहोकर उन्होंने पुराने राजर्षि और सुरनायकोंकी कथाओंको आपसमें कथन किया ॥ ४३ ॥ तथा दया व धर्म से संयुत उन्होंने और भी अनेक कथाओंको कहा व कोई अन्य साधुजन उस देवमन्दिर में नृत्य कररहे थे ॥ ४४ ॥ तथा भक्तिसे संयुत अन्य साधुजन बजारहे थे व श्रद्धासे समन्वित अन्य धनी पुरुष दीन, अन्ध, कृपणों के लिये तथा विशेषकर तपस्वियों के लिये दानों को दे रहेथे इसप्रकार वहां पर जब बड़े ऐश्वर्यवाला भारी उत्सव वर्तमान हुवा तब ॥ ४५ । ४६ ॥ तमोगुण से आच्छन्न अभिप्रायवाला व शिवजी के दर्शन का वैरी तथा युवावस्था से अहङ्कार में प्राप्त मैं बहुतजनो के साथ आया ॥ ४७ ॥ क्योंकि

विकराल आकारवाले व बडे भारी जलके सांपको लेकर मैं अन्य दुष्टपुरुषों से यात्रा के उत्सव के विनाशकरने के लिये पठायागयाथा ॥ ४८ ॥ जो सर्प
कि वारबार जिह्वा को चाटरहाथा अतिवृद्धता से युक्त था तदनन्तर उस महापुरुषों के संयोग मे मैंने उसको फेंकदिया ॥ ४९ ॥ उस सर्प को देखकर मृत्युके भय
से दुःखित सब मनुष्य भगगये वहांपर प्रशंसित व्रतवाला सुप्रभनामक तपस्वी हुआहै ॥ ५० ॥ जो कि उत्तम शिष्यों से संयुत व समाधि में स्थित और तपस्या से जले
हुये पातकोंवालाथा वह मुनीश्वर बहुतपुष्ट व सीधी तथा निश्चल व मोटी ग्रीवाको धारण किये था जो ग्रीवा कि अतिकठोर व टेढ़ी नहीं थी वह सबओर यत्न से

ततश्चाक्षिप्तवांस्त
दुर्जनैः ॥ जलसर्पसमादाय सुदीर्घंभीषणाकृतिम् ॥ ४८ ॥ लेलिहानंमुहुर्जिह्वां जरयापरयावृतम् ॥
त्र महाजनसमागमे ॥ ४९ ॥ तंदृष्ट्वाविद्रुताःसर्वे जनामृत्युभयार्दिताः ॥ तत्रासीत्तापसोनाम सुप्रभःशंसितव्रतः ॥ ५० ॥
समाधिस्थःसुशिष्याढ्यस्तपसादग्धकिल्बिषः ॥ निष्कम्पांसुदृढामृज्वीं नातिस्तब्धांनकुञ्चिताम् ॥ ५१ ॥ ग्रीवांदध
त्स्थिरांयत्नाद्गात्रयष्टिंचसर्वतः ॥ सम्पश्यन्नासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ ५२ ॥ तालुमध्यगतेनैवजिह्वाग्रेणाच
लेनच ॥ आवर्त्तपङ्कजान्तस्थमष्टपत्रमधोमुखम् ॥ ५३ ॥ तन्मध्यकर्णिकासंस्थं सम्पश्यन्रविमण्डलम् ॥ तस्यापि
मध्यमेचान्यंनरमङ्गुष्ठमात्रकम् ॥ ५४ ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशमप्रतर्क्यतमाकृतिम् ॥ ५५ ॥ पश्यन्पद्मासनस्थंच वेद
नाथंमहेश्वरम् ॥ यमक्षरंवदन्त्येवसर्वगंसर्ववेदिनम् ॥ ५६ ॥ अनिन्द्यंचाप्यभेद्यंच जरामरणवर्जितम् ॥ पुलकाञ्चितस

शरीररूप को धारण किये और दिशाओं को न देखता हुवा अपने नासिका के अग्रभाग को सबओर से देखरहा था ॥ ५१ । ५२ ॥ व तालु के बीच में प्राप्त अचल
जिह्वाग्र से उपलक्षित था और आवर्त कमल के बीच में नीचे मुखवाला जो अष्टदलकमल स्थित है ॥ ५३ ॥ उस कमलकी बीचवाली गुजरी में सूर्य्यमण्डल को
देखता हुआ व उसके बीचमें भी अंगूठेके प्रमाणवाले अन्य नरको जो कि बारह सूर्य्योंके समान व तर्कणारहित आकारवालाथा ॥ ५४।५५ ॥ उन वेदनायक महेश्वरजीको
कमलासन के ऊपर स्थित देखरहा था जिनको प्राचीनपुरुष सर्वज्ञ व सर्वव्यापक व अविनाशी और अनिन्दित व निर्भेद्य तथा वृद्धता व मृत्युसे रहित कहते हैं वह

तपस्वी सब अङ्गोंमें रोमाञ्चवाला और योगनिद्रा के बीचमें प्राप्त था ॥ ५६ । ५७ ॥ व इन्द्रिय और आकारको रोकेहुये आनन्दके आंसुवोंसे समाकुल था वह तपस्वी उदर के मध्यवर्ती पांच पवनोंको अपने प्राणायामके अभ्याससे कुम्भक श्वास में कर याने रोंककर ॥ ५८ ॥ व अंगूठा और तर्जनीके योगको हृदयमें प्राप्तकर इस भांति उस तीर्थके समीप बैठेहुये उस अचल महात्माके शरीर को उस सर्पने अपने देह से लपेट लिया उसी समय में बड़ी तपस्यासे संयुत उस महात्मा का शिष्य आ-गया ॥ ५९ । ६० ॥ जोकि अनेक प्रकार के शास्त्रोंमें परिश्रमको कियेहुये श्रीवर्धन ऐसा प्रसिद्ध था उसने सर्पके शरीरसे सब ओर लिपटेहुये गुरुको देखकर ॥ ६१ ॥

र्वाङ्गो योगनिद्रान्तरंगतः ॥ ५७ ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नस्सन्निरुद्धेन्द्रियाकृतिः ॥ कुम्भयित्वोदरान्तस्थं स्वाभ्यासाद्वा
युपञ्चकम् ॥ ५८ ॥ अङ्गुष्ठतर्जनीयोगंकृत्वाहृदयसङ्गतम् ॥ एवंतत्रोपविष्टस्यससर्प्पस्तस्यविग्रहम् ॥ ५९ ॥ वेष्टयामा
सभोगेननिश्चलस्यमहात्मनः ॥ एतस्मिन्नन्तरेशिष्यस्तस्यागात्सुतपोन्वितः ॥ ६० ॥ श्रीवर्धनइतिख्यातो नाना
शास्त्रकृतश्रमः ॥ सदृष्ट्वासर्प्पभोगेनसमन्ताद्वेष्टितंगुरुम् ॥ ६१ ॥ नातिदूरस्थितंमांचज्ञात्वातत्कर्मकारिणम् ॥ उवाच
परुषंवाक्यंकोपसंरक्तलोचनः ॥ ६२ ॥ स्फुरताधरयुग्मेनबाष्पगद्गदयागिरा ॥ मयावैसुतपस्तप्तं गुरुशुश्रूषयासदा ॥
६३ ॥ निर्विकल्पेनचित्तेन यदिध्यातोमहेश्वरः ॥ तेनसत्येनदुष्टोयंपापात्मा ब्राह्मणाधमः ॥ ६४ ॥ ईदृक्कायोभव
त्वाशुगुरुर्मेयेनधर्षितः ॥ अथाहंसर्प्पतांप्राप्तस्तत्क्षणादेवदारुणम् ॥ ६५ ॥ पश्यतांसर्वलोकानां वदतांसाधुसाध्विति ॥
अथगत्वासमाधेस्तुपर्य्यन्तंसततोमुनिः ॥ ६६ ॥ ददर्शनिजगात्रस्थंद्विजिह्वंदारुणाकृतिम् ॥ अथसर्प्पाकृतिंमांचदुःखे

व थोड़ीदूर में खड़ेहुये मुझको उस कर्मके करनेवाले जानकर व क्रोध से नेत्रों को अरुणकर फरकतेहुये दोनों ओठों के द्वारा आंसुवों से गद्गद वाणीसे कठोर वाक्यको बोला कि निरन्तर गुरुजी की सेवासे मैंने बड़ी तपस्या किया है ॥ ६२ । ६३ ॥ व यदि मैंने विकल्परहित चित्तसे महादेवजीका ध्यान किया है तो उस सत्य से यह दुष्ट ब्राह्मणोंमें नीच व पापमानस शीघ्रही इस सर्पके समान शरीरवान् होजाय जिसने कि मेरे गुरुकी धर्षणा कियाहै इसके अनन्तर उसी क्षण सब मनुष्यों को देखतेहुये व बहुत अच्छा २ ऐसा कहते हुये मैं उसी क्षणही दारुण सर्पके शरीर को प्राप्त हुवा इसके अनन्तर वे मुनि समाधि के पर्य्यन्तमें पहुँचकर तदनन्तर ॥ ६४ । ६५ । ६६ ॥

उन मुनिने घोर आकारवाले सर्पको अपने शरीर मे स्थित देखा और सर्प के आकारवाले मुझको भी बड़े दुःखसे संयुत देखा ॥ ६७ ॥ वैसेही उस समय समीप में बैठेहुये समस्त मनुष्यों को भयभीत देखा तदनन्तर वे मुनीश्वर ज्ञानदृष्टिसे उस समस्त वृत्तान्तको जानकर ॥ ६८ ॥ व दयासंयुत होकर क्रोधसे श्रीवर्धन नामक शिष्यसे यह बोले कि हे शिष्य ! इस कर्मके करनेवाले तुमने मेरा हित नहीं किया ॥ ६९ ॥ क्योंकि दीन ब्राह्मणको शाप दिया यह तपस्वियोंका धर्म नहीं है जो मान व अपमान में सम है तथा ढेला व पत्थर और सुवर्णमें समदृष्टि है ॥ ७० ॥ व जो शत्रु और मित्रमें सम आकारवाला है वह तपस्वी सिद्धिको प्राप्त

नमहतान्वितम् ॥ ६७ ॥ तटस्थंभयसन्त्रस्तं तथासर्वजनंतदा ॥ ततोविज्ञायतत्सर्वं मुनिर्ज्ञानेनचक्षुषा ॥ ६८ ॥ अत्र वीत्कृपयाविष्टःशिष्यंश्रीवर्द्धनंरुषा ॥ नमेप्रियंकृतंशिष्यत्वयैतत्कर्म्मकुर्वता ॥ ६९ ॥ शपताब्राह्मणंदीनंनैषधर्म्म स्तपस्विनाम् ॥ समोमानेपमानेच समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ७० ॥ तपस्वीसिद्धिमायाति सुहृच्छत्रुसमाकृतिः ॥ तस्मा दजानतावत्सशप्तोयंब्राह्मणस्त्वया ॥ ७१ ॥ बाल्यभावात्प्रसादोस्यभूयोयुक्तोममाज्ञया ॥ अथश्रीवर्द्धनःप्राहप्रणि पत्यनिजंगुरुम् ॥ ७२ ॥ अमर्षवशमापन्नःकृताञ्जलिपुटस्थितः ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानान्मयायद्व्याहृतंवचः ॥ ७३ ॥ तत्तथैवनसन्देहस्तस्मान्मौनंगुरोकुरु ॥ नमृषावचनंप्रोक्तंस्वैरेणापिगुरोमया ॥ ७४ ॥ किंपुनर्यत्तवार्थाय तस्मान्मौ नंसमाचर ॥पश्चादुदयतेसूर्य्यःशोषंयातिमहार्णवः ॥ ७५ ॥ अपिमेरुश्चशीर्य्येतनमेस्यादन्यथावचः ॥ तमुवाचगुरुःशि

होताहै जिस लिये कि हे शिष्य ! बिन जाने हुये तुमने शिशुके स्वभाव से इस ब्राह्मण को शाप दिया है ॥ ७१ ॥ इस लिये हमारी आज्ञासे इस ब्राह्मणकी बहुत प्रसन्नता योग्य है इसके अनन्तर क्रोधके वश में प्राप्त व हाथ जोड़े खड़ेहुये श्रीवर्द्धन जी प्रणामकर अपने गुरुसे बोले कि ज्ञानसे अथवा अज्ञान से मैंने जो वचन कहा है ॥ ७२ । ७३ ॥ वह निस्सन्देह वैसाही होता है इस लिये हे गुरो ! मौन कीजिये यानें चुपचाप रहिये हे गुरो ! स्वच्छन्दता से भी मैंने असत्य वचन को नहीं कहा है ॥ ७४ ॥ फिर तुम्हारे लिये जो कहागयाहै वह कैसे झूंठ होसक्ताहै इस लिये मौनको ग्रहण कीजिये चाहै सूर्य्यनारायण पश्चिम दिशामें उदय

होयँ व महासागर सूखजाय ॥ ७५ ॥ व सुमेरुगिरि भी टूटजावै परन्तु हमारा वचन अन्यथा न होवैगा उन गुरुजी ने नम्रवाणी से फिर उस शिष्य से कहा ॥ ७६ ॥
कि मैं जानताहूं तुम्हारी वाणी किसी प्रकार से भी अन्यथा नहीं होती है व अवस्था में प्राप्त भी शिष्य बड़े यत्न से सदैव शिक्षा करनेके योग्य होता है ॥ ७७ ॥
फिर तुम तो बालकही हो इससे क्या कहनाहै इसलिये तुमसे बहुतही कहताहूं कि पहले से इकट्ठा किया हुवा मुनियोंका कोई भी धर्म नाश नहीं होताहै ॥ ७८ ॥
तपस्या व धर्म से रहित उन मुनियोंकी गति नहीं है क्योंकि विशेषकर केवल क्षमाही यतियों को सिद्धिदात्री है ॥ ७९ ॥ इस लिये क्षमाको अगाड़ीकर तपस्वियों

ष्यंसपुनःश्लक्ष्णयागिरा ॥ ७६ ॥ जानाम्यहंनतेवाणीकथंचिज्जायतेन्यथा ॥ सदाशिष्योवयस्थोपि शासनीयः
प्रयत्नतः ॥ ७७ ॥ किंपुनर्बालएवत्वं तेनत्वांवच्मिभूरिशः ॥ धर्म्मोनव्ययतेकोपि मुनीनांपूर्वसञ्चितः ॥ ७८ ॥ तपोधर्म्म
विहीनानांगतिस्तेषांनविद्यते ॥ क्षमैकासिद्धिदाप्रोक्ता यतीनांचविशेषतः ॥ ७९ ॥ तस्मात्क्षमांपुरस्कृत्य वर्तितव्यंतप
स्विभिः ॥ नपापंप्रतिपापःस्याद्बुद्धिरेषासनातनी ॥ ८० ॥ आत्मनैवहतःपापो यःपापंतुसमाचरेत् ॥ दग्धःसदहतेभूयो
हतमेवनिहन्तिच ॥ ८१ ॥ सम्यग्ज्ञानपरित्यक्तो यःपापेपापमाचरेत् ॥ उपकारिषुयःसाधुः साधुत्वेतस्यकोगुणः ॥
८२ ॥ अपकारिषुयःसाधुःससाधुःकीर्त्यतेजनैः ॥ एवमुक्त्वासतंशिष्यंततोमामिदमब्रवीत् ॥ ८३ ॥ दययापरयायुक्तः
सुव्रतःशंसितव्रतः ॥ नान्यथावचनंभावि ममशिष्यस्यपन्नग ॥ ८४ ॥ किञ्चित्कालंप्रतीक्षस्वतस्मात्सर्प्पवपुःस्थितः ॥ ८५ ॥

को बर्तना चाहिये व पापी मनुष्यके प्रति पापी न होवै यह सनातनवाली बुद्धि है ॥ ८० ॥ और जो पापी पापको करैहै वह अपनाहीसे नाश होजाता है व जलाहुवा
फिर जलाताहै और मरेहीको मारता है ॥ ८१ ॥ जो पापीजन में पाप करताहै वह सम्पूर्ण ज्ञानसे परित्यक्तहै व जो उपकारी जनोंमें साधुहै उसकी साधुता मे कौन गुण
है ॥ ८२ ॥ क्योंकि जो अपकारियोंमें साधुहै वह मनुष्योंसे साधु कहा जाता है उन मुनिने उस शिष्य से ऐसा कहकर तदनन्तर प्रशंसित व्रतवाले व परम दयासे संयुत
सुव्रतजीने मुझसे यह कहा कि हे पन्नग! मेरे शिष्यका वचन अन्यथा न होगा ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ इस लिये सर्प के शरीर में टिके हुये कुछसमय को परखिये ॥ ८५ ॥

स्त्रियों से सेवित स्वर्ग में देवतों के समान सुखी होताहै ॥ ४१ ॥ हे सूतनन्दन ! वह महात्मा ऐसा कहकर व मेरे देखतेहुये उत्तम विमानपर सवार होकर स्वर्ग को चलागया ॥ ४२ ॥ हे महामते ! षडक्षर मन्त्र के माहात्म्यसे उस पुरुष का गन्धर्व लोग गान करतेथे व किन्नर स्तुति करते थे ॥ ४३ ॥ उस मनुजके चले जानेपर उस समय मारेहुये व टूटे फूटे अङ्ग व उत्सववाले पहले के सर्पों को स्मरण कर मेरे समीप बड़ा उग्र दुःख प्राप्तहुवा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उसी महावन में अपने कर्म के भयसे बहुत डरेहुये मैंने उस स्थान में अनेकों प्रकार के विप्रलापोंको किया याने बहुत विरुद्धि वाले वचन कहे ॥ ४५ ॥ कि यह बड़ा विस्मय है जो

मारुह्यगतश्चत्रिदिवालयम् ॥ ४२ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानश्चस्तूयमानश्चकिन्नरैः॥ षडक्षरस्यमन्त्रस्यमाहात्म्येनमहामते॥ ४३ ॥ तस्मिन्गतेतदासूग्रं दुःखंमेसमुपस्थितम् ॥ स्मृत्वापूर्वान्हतान्सर्पान्भग्नगात्रोत्सवांस्तथा ॥ ४४ ॥ ततोहंकृतवांस्तत्र विप्रलापाननेकशः॥स्वकर्म्मभयसन्त्रस्तस्तस्मिन्नेवमहावने ॥ ४५ ॥ अहोमयान्नृशंसेन बहवःप्राणिनोहताः ॥ निन्दितश्चमहादेवो नरकार्तिर्भविष्यति ॥ ४६ ॥ सोहंहिंसांपरित्यज्य चरिष्यामिमहत्तपः ॥ शिवदीक्षांसमासाद्यपूजयिष्येमहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषुलोकेषु प्रार्थयन्तिनराःसुखम् ॥ तत्सर्वंतपसासाध्यं तस्मात्कार्य्यमयातपः ॥ ४८ ॥ अधुनैकोहमेकाहमेकैकस्मिन्वनस्पतौ ॥ चरन्भैक्ष्यंमुनिर्मौनी चरिष्याम्याश्रमानिमान् ॥ ४९ ॥ पांशुनासमवच्छन्नःशून्यागारप्रतिश्रयः ॥ एवंविलप्ययत्नेन मयासूतकुलोद्वह ॥ ५० ॥ गृहीतंभक्तियुक्तेन शिवदीक्षाव्रतंततः ॥

कि क्रूर मैंने बहुतेरे जन्तुवों को मारडाला व महादेवजी की निन्दाकी है इस से नरक में क्लेश होगा॥ ४६ ॥ सो मैं जीवहिंसा को छोड़कर बड़ी तपस्या को करूँगा व शिवजी के मन्त्रको भलीभांति प्राप्तहोकर महादेवजी का पूजन करूँगा ॥ ४७ ॥ तीनों लोकों में मनुष्य जिस किसी सुखकी प्रार्थना करते हैं वह सब तपस्या से साधनीय है याने तप करने से सब सुख मिल सक्ते हैं इसलिये मुझको तप करना चाहिये ॥ ४८ ॥ इस समय मौनधारी मुनि मैं अकेले एक २ दिन एक एक वनस्पति में भिक्षाटन करता हुवा इन आश्रमों में गमन करूँगा ॥ ४९ ॥ व धूरि से आच्छादित व शून्य मन्दिर में आश्रित हूँगा हे सूतकुलनायक ! इस प्रकार

विलापकर तदनन्तर यत्नसे भक्तियुक्त मैंने शिवदीक्षा के व्रतको ग्रहण किया व तीनों सन्ध्याओं में श्रद्धासंयुत मैं सिद्धेश्वरजी के समीप षडक्षर मन्त्र का दश हजार जप करताहूं उसी के प्रभावसे मेरे युवावस्था से उपजी हुई स्थिरता उत्पन्न हुई है ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ हे सूतनन्दन ! वैसेही दूसरे लोक का ज्ञान व आकाशगामित्व भी उसके प्रभावसे है द्वापर के अन्तको समीप में प्राप्त होनेपर मैं सिद्धेश्वरजी को देखूंगा ॥ ५३ ॥ व सदाशिवजी को प्राप्तहूँगा यह मैंने सत्य कहा है हे सूतपुत्र ! मैंने इस मोक्षदायक समस्त षडक्षरमाहात्म्य को तुमसे वर्णन किया ॥ ५४ ॥ जो कि सब पापों का विनाशकहै इसको भलीभांति श्रद्धासंयुत जो मनुष्य

षडक्षरस्यमन्त्रस्य अयुतंप्रजपाम्यहम् ॥ ५१ ॥ त्रिसन्ध्यंश्रद्धयायुक्तःसिद्धेश्वरसमीपतः ॥ तत्प्रभावेणमेस्थैर्य्यं सञ्जातंयौवनोद्भवम् ॥ ५२ ॥ तथालोकान्तरज्ञानं खेचरत्वंचसूतज ॥ सिद्धेश्वरंप्रपश्यामि द्वापरान्तेह्युपस्थिते ॥ ५३ ॥ सदाशिवंप्रयास्यामिसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंमयासूतजमोक्षदम् ॥ ५४ ॥ षडक्षरस्यमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यंसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ५५ ॥ आजन्ममरणात्पापात्सोपिमुच्येतमानवः ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभागमन्त्रमेनंसदाजप ॥ ५६ ॥ सम्प्राप्स्यसिपरान्कामान्मनसावाञ्छितांस्तदा ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ एतच्छ्रुतंमयापूर्वं सकाशात्तस्यसद्गुरोः ॥ षडक्षरस्यमाहात्म्यंयद्युष्माभिःप्रकीर्तितम् ॥ ५८ ॥ धन्यंयशस्यमायुष्यंशत्रुपक्षक्षयावहम् ॥ पठतांशृण्वतांवापि सर्वकामाभयप्रदम् ॥ २५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे सिद्धेश्वराख्यानेषडक्षरमन्त्रमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नित्यही सुनैगा ॥ ५५ ॥ वह भी मनुष्य जन्मसे लगाकर मरण पर्य्यन्त के पापसे छूट जावैगा इसलिये हे महाभाग ! तुमभी इस मन्त्रको सदैव जपकरो ॥ ५६ ॥ तो मनसे चाहे हुये परम अभिलाषों को प्राप्त होगे ॥ ५७ ॥ सूतजी बोले कि उन उत्तम गुरुके संकाशसे मैंने इस षडक्षर मन्त्रके माहात्म्य को पहलेही सुना है जो कि तुम लोगों से कीर्तन किया ॥ ५८ ॥ यह चरित्र यशदायक व आयुर्बलदायक और शत्रुओं के पक्षको क्षयकारक व धन्यहै तथा पढ़नेवाले व सुननेवाले मनुष्यों को भी यह समस्त कामनाओंका दाता व अभयदाताहै ॥ २५९ ॥ इति भाषाटीकायांसिद्धेश्वराख्यानेषडक्षरमन्त्रमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा । जिमि शिव तपकरि सुत लह्यो हंस सिद्ध जननाथ । कहत तीस अध्याय महँ अतिविचित्र सो गाथ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतपुत्र! उस स्थान में सिद्धेश्वर विभुजी को किस सिद्धने प्रसन्न कियाहै इस समस्त चरितको विस्तारसे भलीभांति कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय में हंस इस नामसे कहा गया सिद्धों का अधीश्वर हुवा उसका बिन सन्तान हुये बहुतसा समय व्यतीत होगया ॥ २ ॥ तदनन्तर चिन्ताको प्राप्तहुये उसने ब्राह्मणों में उत्तम व अङ्गिरा महर्षिके पुत्र व देवों के पुरोहित बृहस्पति जी के पास जाकर पूँछा कि ॥ ३ ॥ हे भगवन्! सन्तान से हीनवाले मेरे बुढ़ापा आगया इसलिये सन्तान लाभ

ऋषयऊचुः ॥ तोषितःकेनसिद्धेन तत्रसिद्धेश्वरोविभुः ॥एतत्सर्वंसमाचक्ष्वविस्तरात्सूतनन्दन॥१॥सूतउवाच॥आसीत्सिद्धाधिपोनाम पुराहंसइतिस्मृतः॥ अनपत्यतयातस्यकालश्चक्रामभूरिशः ॥ २ ॥ ततश्चिन्तांप्रपन्नस्स गत्वादेव पुरोहितम् ॥ पप्रच्छाङ्गिरसःपुत्रं विप्रश्रेष्ठंबृहस्पतिम् ॥ ३ ॥ भगवंश्चानपत्यस्य वार्द्धकंमेसमागतम् ॥ तस्मादपत्यलाभायममोपायंप्रकीर्तय ॥ ४ ॥ तीर्थयात्रांव्रतन्नाम शान्तिकंवाद्विजोत्तम ॥ येनस्यात्सन्ततिःशीघ्रंत्वत्प्रसादाद्बृहस्पते ॥ ५ ॥ बृहस्पतिश्चिरंध्यात्वा सिद्धंप्राहततःपरम् ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रंगत्वातत्रतपःकुरु ॥ ६ ॥ ततःप्राप्स्यसिसत्पुत्रं वंशोद्धारक्षमंशुभम् ॥ नान्यंपश्यामिसिद्धेशसुतोपायंशुभावहम् ॥ ७ ॥ ततस्तंक्षेत्रमासाद्य ससिद्धःश्रद्धयान्वितः ॥ लिङ्गंसम्पूजयामास यथोक्तविधिनास्वयम् ॥ ८ ॥ ततस्त्वाराधयामास दिवानक्तमतन्द्रितः ॥ बलिपूजोपहारेण गीत

के लिये मुझसे उपायको कहिये ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम बृहस्पतिजी! प्रसिद्ध में तीर्थयात्रा या व्रत अथवा शान्तिक कर्म को कहिये जिससे शीघ्रही तुम्हारी प्रसन्नतासे सन्तान होवै ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने बहुत देरतक विचारकर सिद्धसे कहा कि चमत्कारनगर के क्षेत्रमें जाकर वहां तुम तपस्या करो ॥ ६ ॥ उसीसे वंशके उद्धारमें समर्थ व शुभदायक सत्पुत्र को प्राप्तहोगे हे सिद्धनायक! शुभदायक दूसरा सुतका उपाय मैं नहीं देखताहूँ ॥ ७ ॥ तदनन्तर श्रद्धासे संयुत उस सिद्धने उस क्षेत्रमें प्राप्त होकर यथोक्त विधिसे आपही लिङ्गका भलीभांति पूजन किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर निरालस्य होकर अहर्निश बलि, पूजन, भेंट, गीत,

वाद्य व उत्सवादिकोंसे शिवजीका आराधन किया ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पराक याने बारह दिनके उपवाससे व चान्द्रायण व कृच्छ्रचान्द्रायण तथा महीनेभर के उपवासों से शङ्करजीको सन्तुष्ट किया ॥ १० ॥ तदनन्तर दो हजार वर्ष के बाद उसकेऊपर महादेवजी प्रसन्न हुये व पार्वतीजीके सहित बैलपर सवार हो दर्शन में जाकर बोले ॥ ११ ॥ श्रीसदाशिवजी बोले कि हे हंस ! आज मैं तुमसे प्रसन्न हुआ इसलिये प्रार्थित की चाहना करो याने वरदान मांगो मैं दुर्लभ पदार्थ को तुमको दूंगा यह निश्चय है ॥ १२ ॥ हंस बोला कि हे विभो ! पुरातन समय में मैंने सन्तानके लिये इस तपका प्रारम्भ कियाहै इस लिये तुम मुझको वंशके उद्धारमें

वाद्योत्सवादिभिः ॥ ९ ॥ चान्द्रायणैस्तथाकृच्छ्रैः पाराकैर्द्विजसत्तमाः ॥ तथामासोपवासैश्च तोषयामासशङ्करम् ॥ १० ॥ ततोवर्षसहस्राभ्यांतस्यतुष्टोमहेश्वरः ॥ प्रोवाचदर्शनंगत्वावृषारूढःसहोमया ॥ ११ ॥ शिवउवाच ॥ हंसाद्यत वतुष्टोहं तस्माद्वाञ्छयप्रार्थितम् ॥ अहन्तेसम्प्रदास्यामिदुष्प्रापमितिनिश्चितम् ॥ १२ ॥ हंसउवाच ॥ अपत्यार्थसमारम्भोमयायंविहितःपुरा ॥ तस्मात्त्वंदेहिमेपुत्रान्वंशोद्धारक्षमान्विभो ॥ १३ ॥ त्वयाचैवसदालिङ्गेस्थेयमत्रसुरोत्तम ॥ ममवाक्यादसन्दिग्धं सर्वलोकहितार्थतः ॥ १४ ॥ भगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिलिङ्गेस्मिन्नाश्रयोमेभविष्यति ॥ तववाक्येनसिद्धेशसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १५ ॥ योमामत्रस्थितंमर्त्यः पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ तस्याहंसम्प्रदास्यामि चित्तस्थंसकलंफलम् ॥ १६ ॥ योमेलिङ्गस्ययाम्याशांस्थित्वामन्त्रंजपिष्यति ॥ षडक्षरंप्रदास्यामि तस्यायुष्यंसुतान्वितम् ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ हंसोपिचगृहंगत्वा पुत्रानापमहोदयान् ॥ १८ ॥ तस्मात्सर्व

सामर्थ्यवाले पुत्रोंको दीजिये ॥ १३ ॥ और हे देवतोत्तम ! सब मनुष्यों के हितार्थसे इस लिंगमें हमारे वाक्य से निस्सन्देह तुमको सदैव टिकना चाहिये ॥ १४ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे सिद्धनायक ! तुम्हारे वाक्यसे आजसे लगाकर इस लिङ्ग में मेरी स्थिति होगी यह मैंने सत्य कहा है ॥ १५ ॥ यहांपर टिके हुये मुझको जो मनुष्य भक्ति से पूजन करैगा उसके चित्तमें टिकेहुये समस्त फल को मैं भलीभांति दूँगा ॥ १६ ॥ और मेरे लिंग की दक्षिण दिशामें स्थितहोकर जो मनुष्य षडक्षर मन्त्रका जप करैगा उसको पुत्र समेत आयुर्बल को मैं दूँगा ॥१७॥ ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी अदृश्य होगये व हंसनामक सिद्ध भी गेह में

जाकर बड़े ऐश्वर्य्यवाले पुत्रों को प्राप्त हुआ॥ १८॥ इसलिये हे ब्राह्मणो! सब उपाय से वह लिंग यत्नसे स्पर्श करने के योग्यहै व बड़े यत्नसे पूजनीय तथा प्रणाम करने के योग्यहै॥ १६॥ व देवताओं से भी चाहेहुये दुर्लभ पदार्थों को चाहनेवाले पुरुषों को अपनी शक्तिसे षडक्षरमन्त्र के द्वारा उस लिंगका कीर्तन करना चाहिये॥२०॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिंशोध्यायः॥ ३०॥

दो०। इकतिसवें अध्याय में बरणत चरित रसाल। नागतीर्थ जहँ मुक्त भो इन्द्रसेन नरपाल॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर और भी बहुत उत्तम नागतीर्थ

प्रयत्नेन तल्लिङ्गंयत्नतोद्विजाः॥ स्पर्शनीयंचपूज्यंच नमस्कार्य्यंप्रयत्नतः॥ १६॥ षडक्षरेणमन्त्रेण कीर्तनीयंचश क्तितः॥ वाञ्छद्भिर्वाञ्छितान्कामान्दुर्लभांस्त्रिदशैरपि॥ २०॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेश्रीहाट केश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच॥ तथान्यदपितत्रास्ति नागतीर्थमनुत्तमम्॥यत्रस्नातस्यसर्पाणां नभयंजायतेक्वचित्॥ १॥ तत्रश्राव णपञ्चम्यां योनरःस्नानमाचरेत्॥ कृष्णायांनभयंतस्य कुलेपिस्यादहेःक्वचित्॥ २॥ तत्रपूर्वंतपस्तप्तं मातुःशापप्रपी डितैः॥ शेषप्रभृतिनागैस्तुमुक्तिहेतोर्हुताशनात्॥ ३॥ ऐरावतस्तथाशङ्खः पुण्डरीकोमहाविषः॥शेषपूर्वाःस्मृतानागा एतेत्रनवनायकाः॥ ४॥ एतेषांपुत्रपौत्राश्च तेषामपिविभूतिभिः॥ असङ्ख्याभिरिदंव्याप्तं समस्तधरणीतलम्॥ ५॥ अथतेकुटिलाद्दुष्टा भक्षिष्यन्तिसदाजनान्॥ बहुत्वादपिसंस्पर्शादपराधंविनापिच॥ ६॥ ततःप्रजाइमाःसर्वाब्रह्माणं

हैं जिसमें नहाये हुए मनुष्य को कभी सर्पोंका भय नहीं होताहै॥ १॥ उस नागतीर्थमें श्रावण महीने में कृष्णपक्ष की पंचमी को जो मनुष्य स्नान करता है उसके कुलमें भी कभी सर्पसे भय नहीं होताहै॥ २॥ व अग्निदेव से छूटनेके कारण माताके शापसे बहुत पीड़ित शेष इत्यादि नागों ने वहां पर पहले बहुत तप कियाहै॥३॥ ऐरावत, शङ्ख, पुण्डरीक, महाविष व शेष इत्यादि ये नव नाग इस संसारमें कहे गयेहैं॥ ४॥ इनके पुत्र व पौत्र और उनके भी असंख्यात ऐश्वर्य्यों से यह सब पृथ्वी-तल व्याप्तहै॥ ५॥ इसके अनन्तर वे दुष्ट व कुटिल नाग बहुताई से अपराध के विनाभी भलीभांति स्पर्श होनेसे मनुष्यों को सदैव भक्षण करते थे॥ ६॥ तदन-

न्तर ये सब प्रजाजन ब्रह्माजीके शरणमें गये व बोले कि हे सुरसत्तम ! सर्पोंसे हम सब दुःखितहैं इससे तुम तबतक रक्षाकरो कि ॥ ७ ॥ जबतक विषसंयुत व अति भयानक सब नागोंसे व्याप्त समस्त पृथ्वीतल शून्यता को न प्राप्त होजाय ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर श्रीब्रह्माजी उन शेष इत्यादिक नव नायकों से बोले कि अपनी सन्तानसे भक्षण की जातीहुई इन प्रजाओं की तुमलोग रक्षाकरो ॥ ९ ॥ ऐसाही होगा उन ब्रह्माजी से यह प्रतिज्ञाकर सम्पूर्ण सर्प चलेगये इसके अनन्तर उन सर्पोंकी अधिकता से रक्षा नहीं होतीथी ॥ १० ॥ जिस लिये कि निवारण किये हुये भी वे सर्प नष्ट कररहेथे उसी कारण कोपसे व्याप्त चित्तवाले ब्रह्माजी आपही

शरणंगताः ॥ पीडिताःस्मसुरश्रेष्ठसर्पेभ्योरक्षसत्वरम् ॥७॥ यावन्नशून्यतांयातिसकलंवसुधातलम् ॥ व्याप्तंसर्पैस्तथा सर्वैर्विषाढ्यैरतिभीषणैः ॥८॥ अथतानब्रवीद्ब्रह्मा शेषाद्यान्नवनायकान् ॥स्वसन्ततेःप्ररक्षध्वं भक्ष्यमाणाइमाःप्रजाः॥ ९॥ तंतथेतिप्रतिज्ञाय जग्मुःसर्वेभुजङ्गमाः ॥ अथतेषांवहुत्वाच्चनैवरक्षाप्रजायते ॥ १० ॥ वारिताअपितेयस्मात्प्रकुर्वन्तिप रिक्षयम् ॥ ततःकोपपरीतात्मातानाहूयकुलाधिपान् ॥ ११ ॥ तानुवाचस्वयंब्रह्मासर्वदेवसमागमे ॥ भक्षयन्तियतःसर्वा अपराधंविनाप्रजाः ॥ १२ ॥वारिताअपितेतस्मात्तान्निगृह्णामिसाम्प्रतम् ॥भविष्यतिमहीपालोभूतलेजनमेजयः॥१३॥ चित्रभानुर्मखेतस्य सर्वान्सम्भक्षयिष्यति ॥ मातुःशापाद्विशेषेणमन्त्राकृष्टान्द्विजोत्तमैः ॥ १४॥ स्वयमेवपतिष्यन्ति सुसमिद्धेहुताशने ॥ तच्छ्रुत्वावेपमानास्तं सर्प्पाणांनवनायकाः ॥ १५ ॥ प्रोचुःप्राञ्जलयःसर्वे प्रणिपत्यपितामहम् ॥ भ गवन्कुटिलाजातिरस्माकंभवताकृता ॥ १६ ॥ तत्कस्मात्कुरुषेकोपं जातिधर्मानुवर्त्तिनाम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥

उन नागवंश के नायकों को बुलाकर सब देवतों के समागम (संयोग) में यह बोले कि जिस लिये निवारण कियेहुये वे नाग बिन अपराध के सब प्रजाओं को भक्षण करते हैं ॥ ११ । १२ ॥ इस लिये इस समय उनको निग्रह करूँगा याने दण्डदूँगा कि धरातल में जनमेजय नामक भूपाल होवैगा ॥ १३ ॥ उसके यज्ञमें ब्राह्मणोत्तमों के मन्त्रों से खींचेहुये व विशेषकर माताके शापसे अग्नि सब सर्पोंको भक्षण करैंगे ॥ १४ ॥ व बहुत बढ़ेहुये अग्निमे आपही गिरैंगे यह सुनकर कॉपते हुये सर्पोंके नवों नायक ॥ १५ ॥ हाथ जोड़ेहुये सबोंने उन ब्रह्माजी को प्रणामकर कहा कि हे भगवन् ! हमारी जातिको आपहीने कुटिल किया है ॥ १६ ॥ तो जाति

धर्मके अनुकूल बर्ताव करनेवाले हमलोगों के ऊपर तुम किस लिये क्रोध करते हो ॥ १७ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि यद्यपि विषसे भयङ्कर देखकर तुमलोगोंको मैंने उत्पन्न कियाहै तो अपराध के विना किस लिये इन प्रजाओंको भक्षण करते हो॥ १८ ॥ नाग बोले कि हे देवनायक ! मनुष्योंके साथ हमारी मर्य्यादा करिये अथवा मनुष्यों से रहित स्थानको दीजिये ॥ १९ ॥ व उस परीक्षित के यज्ञमें सब ओर अग्नि में जलतेहुये सर्पोंकी रक्षाका यत्न विचारिये ॥ २० ॥ हे प्रपितामहजी ! जैसे कि सब लोकोंमें हमारे सन्तान का उच्छेद (नाश) न होय वैसाही तुम करने के योग्य हो ॥ २१ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि जरत्कारु ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण कहीं

यदिनाममयासृष्टा यूयंदृष्ट्वाविषोल्बणाः ॥ अपराधंविनाकस्माद्भक्षयध्वमिमाःप्रजाः ॥ १८ ॥ नागाऊचुः ॥ मर्य्यादां कुरुदेवेशअस्माकंमानवैस्सह ॥ अथवासम्प्रयच्छस्व स्थानंमानुषवर्जितम् ॥ १९ ॥ परीक्षितमखेतस्मिन् सर्पाणां चित्रभानुना ॥ समन्ताद्दह्यमानानां रक्षोपायंप्रचिन्तय ॥ २० ॥ यथानसन्ततिच्छेदोजायतेप्रपितामह ॥ अस्माकंसर्वलोकेषु तथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जरत्कारुरितिख्यातो भविष्यतिकश्चिद्द्विजः ॥ ससन्तानकृतेभार्य्यांभूमावन्वेषयिष्यति ॥ २२ ॥ भाविनीचभवद्वंशेजरत्कन्यासुशोभना ॥ सादेयाचादरात्तस्मै पुत्रार्थंवरवर्णिनी ॥ २३ ॥ ताभ्यांयोभवितापुत्रोवशेषान्रक्षयिष्यति ॥ सर्प्पाञ्छुद्धसमाचारान् मर्यादासुव्यवस्थितान् ॥ २४ ॥ सुतलंनितलंचैव तथैववितलंचयत् ॥ तस्याधस्ताच्चतुर्थेच वसतिर्वोधरातले ॥ २५ ॥ मयादत्तेतिरम्येचसर्वभोगातिसंयुते ॥ तस्माद्व्रजतत्रैव परित्यज्यमहीतलम् ॥ २६ ॥ तत्रभुञ्जथसद्भोगान् गत्वाथममशासनात् ॥ पुत्रपौत्रसमो

होवैगा वह सन्तान के लिये स्त्रीको भूमिमें ढूँढ़ैगा ॥२२॥ और आपके वंशमें बहुत उत्तम जरत्कन्या होगी उन जरत्कारु को पुत्रके लिये उस वरवर्णिनी ❀ को देना चाहिये ॥ २३ ॥ उन दोनोंसे जो पुत्र होगा वह शुद्ध आचरणवाले व मर्यादाओं में स्थित शेष नागों की रक्षा करैगा ॥ २४ ॥ व सुतल, नितल वैसेही जो वितल लोकहै उसके नीचे सब भोगोंसे अत्यन्तही संयुत व मनोहर चौथे धरातलमें मैंने निवासस्थानको दिया इसलिये तुमलोग पृथ्वीतलको छोडकर वहींपर जावो॥२५।२६॥

❀ शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे च सुखशीतला । भर्तृभक्ता च या नारी सा भवेद्वरवर्णिनी ॥

इसके अनन्तर पुत्र और पौत्रों से संयुत तुमलोग हमारी आज्ञासे वहां जाकर देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम पदार्थों का भोग करो ॥ २७ ॥ नाग बोले कि हे कमलसे उपजे हुये पितामहजी ! भोगोंको भी भोगते हुये हमलोग वहां बसने के लिये समर्थ नहीं हैं इस लिये भूमिमें स्थानको दिखलाइये ॥ २८ ॥ यहां मर्यादा वर्तमान है जहां कि मनुष्यों के सहित स्थिति है ॥ २९ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि धरातलमें तुमलोगों को मैंने पञ्चमी तिथि को दिया और उस रसातल में उन मनुष्यों के लिये शेष समय को दिया ॥ ३० ॥ वहां आनेसे दोषरहित मनुष्य वधके योग्य नहीं हैं जोकि मन्त्रोंसे भलीभांति रक्षित अङ्गवाले व ओषधियों में

पेतास्त्रिदशैरपिदुर्लभान् ॥ २७ ॥ नागाऊचुः ॥ भोगानपिप्रभुञ्जानानवयंतत्रपद्मज ॥ शक्नुमोवस्तुमुर्व्यां नस्तस्मा त्स्थानंप्रदर्शय ॥ २८ ॥ मर्यादावर्तमानात्रयत्रास्थामानवैःसमम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषातिथिर्मयादत्ता युष्मा कंधरणीतले॥ पञ्चमीशेषकालस्तु तेषांतत्ररसातले ॥३०॥ तत्रागतैर्नहन्तव्यामानवादोषवर्जिताः ॥ मन्त्रसंरक्षिताङ्गाश्च तथौषधिकृतादराः ॥ ३१ ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे मयादत्तास्थितिस्सदा ॥ पृथिव्यांकुलमुख्यानां नागानांनागसत्त माः ॥ ३२ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्ताश्चतेनागा ब्रह्मणासत्वरंययुः ॥ पातालंकुलमुख्याश्च तस्मिन्क्षेत्रेव्यवस्थि ताः ॥ ३३ ॥ तत्रश्रावणपञ्चम्यां यस्तान्पूजयतेनरः ॥ सप्राप्नोतिनरोभीष्टं तेषामेवप्रसादतः ॥ ३४ ॥ तस्यवंशेपिसर्पा णां नभयंस्यान्नकिल्बिषम् ॥ नरोगोनोपसर्गश्चनचभूतभयंक्वचित् ॥ ३५ ॥ अपुत्रस्तत्रयःश्राद्धं करोतिसुतवाञ्छया॥

आदर को कियेहैं ॥ ३१ ॥ हे नागोत्तमो ! कुलमें प्रसिद्ध नागोंको मैंने पृथ्वीतल में चमत्कार नगर के क्षेत्रमें सदैव ठिकाना दियाहै ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा से इस प्रकार कहेहुये वे नाग जल्दीसे पाताल को चलेगये व कुलमें प्रसिद्ध नाग उस क्षेत्रमें विशेषता से टिकगये ॥ ३३ ॥ उस चमत्कार नगर के क्षेत्रमें श्रावण की पञ्चमी तिथि में जो मनुष्य उन नागोंको पूजता है वह नर उन्हीं नागोंकी प्रसन्नता से प्रिय पदार्थको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ व उसके वंशमें भी सर्पोंका भय व पातक नहीं होवै है और कभी रोग व उपद्रव तथा प्राणियों से भय नहीं होवैहै ॥ ३५ ॥ पुत्रहीन जो मनुष्य सुतकी चाहना से उस तीर्थ में श्राद्ध को करता है वह

३९ ॥ तो सब शत्रुसमूहोंको मारकर फिर राज्यको प्राप्त होताहै और सर्पके भक्षण याने काटने से जिन मनुष्यों की मृत्यु होजाती है ॥ ४० ॥ उन नरोंका श्राद्ध उस
होताहै ॥ ३८ ॥ अथवा जिस मनुष्य का राज्य छूटगया है वह उस नागतीर्थ में श्रावण महीने में पञ्चमी के दिन स्नान करता है तदनन्तर नागोंको पूजता है ॥
में जो बांझस्त्री स्नान करती है ॥ ३७ ॥ वह अपने वंशके उद्धार में समर्थ पुत्रको उसी क्षण प्राप्त होतीहै जोकि सुन्दर व नम्रता से संयुत तथा सब रोगों से रहित
बहुत उत्तम पुत्रको प्राप्त होकर पितरों के ऋणसे अवश्य कर उद्धार होजाता है ॥ ३६ ॥ वैसेही विशेषकर श्रावण महीने में कृष्णपक्षकी पञ्चमी में सूर्योदय समय

पुत्रंसुश्रेष्ठमासाद्य पितॄणामनृणोहिसः ॥ ३६ ॥ तथाबन्ध्याचयानारी पञ्चम्यांभास्करोदये ॥ श्रावणेकुरुतेस्नानं कृष्ण
पक्षेविशेषतः ॥ ३७ ॥ सासद्योलभतेपुत्रं स्ववंशोद्धरणक्षमम् ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तं सुरूपंविनयान्वितम् ॥३८॥ भ्रष्टरा
ज्योनरोयोवा तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ ततःपूजयतेनागाञ्छ्रावणेपञ्चमीदिने ॥ ३९ ॥ संहत्यारिगणान्सर्वान् भूयोराज्य
मवाप्नुयात्॥ येषांमृत्युर्मनुष्याणां जायतेसर्पभक्षणात्॥४०॥श्राद्धंकार्यंप्रयत्नेन तस्मिंस्तीर्थेऽहिसम्भवे ॥ अत्रवःकीर्त्तयि
ष्यामिपुरावृत्तांकथांशुभाम् ॥ ४१ ॥ इन्द्रसेनस्यराजर्षेः सर्वपातकनाशिनीम् ॥ इन्द्रसेनोमहीपालः पुरासीद्रिपुदर्प
हा ॥ ४२ ॥ अश्वमेधसहस्रेण इष्टंतेनमहात्मना ॥ ततःसदैवयोगेन प्रसुप्तःशयनेशुभे ॥ ४३ ॥ दष्टःसर्पेणमुक्तश्च इन्द्र
सेनोमहीपतिः ॥ विमुक्तश्चैवसहसा जीवितव्येनतत्क्षणात् ॥ ४४ ॥ ततस्तस्यसुतोभीष्टस्तस्यादेशेनकृत्स्नशः ॥
चकारप्रेतकार्य्याणि स्मृत्युक्तानिसुभक्तितः ॥ ४५ ॥ गङ्गायामस्थिपातंच कृत्वाश्राद्धानिषोडश ॥ गङ्गांगत्वाततश्चक्रे

नागोंसे उपजे हुये तीर्थमें बड़े उपाय से करना चाहिये इस विषय में पुरातन चरित्रोंवाली व सब पापों की नाशिनी इन्द्रसेनराजर्षिकी उत्तम कथाको तुम लोगों
से मैं कीर्तन करूंगा कि पुरातन समयमें शत्रुओंके गर्भका नाशक इन्द्रसेन नामक भूपाल हुआहै ॥ ४१ । ४२ ॥ उस इन्द्रसेन महात्माने हजार अश्वमेधयज्ञोंसे पूजन
किया तदनन्तर वह राजर्षि दैवयोग से उत्तम शय्या के ऊपर सोगया ॥ ४३ ॥ व सर्पने काटखाया और सर्पसे छूटाहुआ वह इन्द्रसेन भूपति उसी क्षण अचानक
जीवनसे मुक्त होगया याने मरगया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उस नृपतिकी आज्ञासे उसके प्रियपुत्रने अच्छी भक्तिसे स्मृतियोंमें कहेहुये प्रेतकर्मोंको किया ॥ ४५ ॥ व श्रीगंगा

जीमें हड्डियों को फेंका तथा सोलह श्राद्धों को किया तदनन्तर गंगाजी को जाकर श्रद्धासंयुत हो श्राद्ध किया ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर स्वप्न समय में उसका पिता वह भूपति प्राप्त हुआ व दुःखित होकर आंसुवों से विकलनेत्रवाले पुत्र से बोला ॥ ४७ ॥ कि हे पुत्र ! सर्पसे मृत्युके सकाश से मुझको प्रेतभाव प्राप्तहुआ है इसलिये आपसे दियाहुआ मुझको कुछ नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४८ ॥ इसलिये हे पुत्र ! चमत्कारनगर के क्षेत्रको तुम शीघ्रही जावो व उस तीर्थमें मेरे लिये सर्पोंका श्राद्ध करो ॥ ४९ ॥ जिससे कठिन प्रेतयोनिसे मेरा मोक्ष होवै तदनन्तर उसने प्रातःकाल उठकर प्रेतरूपवाले नृपति के उस वचन को स्मरणकर ॥ ५० ॥ व दुःखित होकर

श्राद्धंश्रद्धासमन्वितः ॥ ४६ ॥ अथस्वप्नान्तरेप्राप्तः पितातस्यसभूपतिः ॥ प्रोवाचदुःखितःपुत्रं बाष्पव्याकुललोचनम् ॥ ४७ ॥ सर्पमृत्योःसकाशान्मे प्रेतत्वंपुत्रसंस्थितम् ॥ तेनमेभवतादत्तं नकिञ्चिदुपतिष्ठते ॥ ४८ ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रं तस्मात्त्वंगच्छसत्वरम् ॥ तत्रतीर्थेकुरुश्राद्धं सर्प्पाणांमत्कृतेसुत ॥ ४९ ॥ येनसंजायतेमोक्षः प्रेतत्वाद्दारुणान्मम ॥ स ततःप्रातरुत्थाय तत्स्मृत्वानृपतेर्वचः ॥ ५० ॥ प्रेतरूपस्यदुःखार्तस्तत्तीर्थंसत्वरङ्गतः ॥ चकारचततःश्राद्धं श्रावणेपञ्चमीदिने ॥ ५१ ॥ स्नात्वाश्रद्धासमोपेतः संनिवेश्यपुरोधसम् ॥ ततःसदर्शनंप्राप्तो भूयोपिचयथापुरा ॥ ५२ ॥ प्रेतरूपेणदुःखार्तो वाक्यमेतदुवाचह ॥ नमयासादितं किञ्चिद्यत्त्वयामत्कृतेकृतम् ॥ ५३ ॥ फलंश्राद्धस्यवात्रत्वं कारणंशृणुपुत्रक ॥ श्राद्धार्हाब्राह्मणाश्चात्र चमत्कारपुरोद्भवाः ॥ ५४ ॥ क्षेत्रेपिगर्हिताःश्राद्धे येऽन्यत्रव्यङ्गकादयः ॥ अत्रयत्क्रियतेकिञ्चिद्दानंब्राह्मणमेवच ॥ ५५ ॥ तथान्यदपिविप्रार्हंकर्म्मयज्ञसमुद्भवम् ॥ तत्तेषांवचनात्सद्यः पूर्णंस्यादपिखण्डित

शीघ्रही उस तीर्थमें जाकर तदनन्तर श्रावणमास में पञ्चमी दिनमें स्नानकर श्रद्धासंयुत पुरोहित को भलीभांति बिठाकर श्राद्ध किया तब जैसे पहले दर्शन में प्राप्त हुवाथा वैसेही फिर भी वह दर्शन में प्राप्तहुवा ॥ ५१ । ५२ ॥ व प्रेतरूप से दुःखसे विकल यह वचन बोला कि जो तुमने मेरे लिये किया वह श्राद्ध का फल मुझको कुछ नहीं मिला ॥ ५३ ॥ और हे पुत्र ! इस विषय में तुम कारण सुनो कि जो बिगड़े हुये अङ्गादिवाले ब्राह्मण अन्य स्थान में श्राद्धमें निन्दित हैं वे भी इस चमत्कार नगर के क्षेत्रमें उपजे हुये श्राद्धके योग्य होतेहैं व यहां जो कुछ ब्राह्मणको दानही किया जाताहै ॥ ५४ । ५५ ॥ वैसेही यज्ञ से उपजा हुवा और भी जो

ब्राह्मण के योग्य कर्म होताहै उनके वचन से खण्डित भी शीघ्रही सम्पूर्ण होजाताहै ॥ ५६ ॥ व उनके परोक्ष में सम्पूर्ण भी कर्म प्रकटही निरर्थक होजाताहै इस लिये
इस नगर से ब्राह्मण को भलीभांति लाकर उसके उपरान्त ॥ ५७ ॥ मेरे नाम से श्राद्धको करो जिससे मोक्ष होजाय इसके अनन्तर प्रातःकाल उठकर व पिता के
वचन को स्मरण करता हुवा इसने ॥ ५८ ॥ बड़े दुःख से युक्त होकर उत्तम नगर में प्रवेश किया तदनन्तर श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को ढूंढ़ा ॥ ५९ ॥ परन्तु बड़े
उपायसे भी न पाया जिस लिये कि ब्राह्मण धनाढ्य थे उस पुरमें न कोई आकुलथा न दुःखी था न तो निर्धनी था ॥ ६० ॥ जैसे पाखण्ड कर्ममें तत्पर होताहै वैसे

तस्मादस्मात्पुराद्विप्रं समानीयततःपरम् ॥ ५७ ॥ ममनाम्ना
म् ॥ ५६ ॥ परोक्षेवापिसम्पूर्णं वृथासञ्जायतेस्फुटम् ॥
कुरुश्राद्धं येनमुक्तिःप्रजायते ॥ अथासौप्रातरुत्थाय स्मरमाणःपितुर्वचः ॥ ५८ ॥ दुःखेनमहतायुक्तः प्रविवेशपुरोत्त
मे ॥ ततश्चान्वेषयामास श्राद्धार्हान्ब्राह्मणान्नृपः ॥ ५९ ॥ यत्नतोपिनलेभेस धनाढ्याब्राह्मणायतः ॥ नतत्रदुःखितःक
श्चिद्दरिद्रोपिनदुःखितः ॥ ६० ॥ नकर्म्मनिरतोवापि पाखण्डनिरतोयथा ॥ स्थानेस्थानेमहानादा उत्सवाश्चगृहेगृ
हे ॥ ६१ ॥ वेदविद्याविनोदाश्च स्मृतिवादास्तथैवच ॥ श्रूयन्तेयाज्ञिकानांच यज्ञकर्मसमुद्भवाः ॥ ६२ ॥ नदुर्भिक्षंनचव्या
धिर्नाकालमरणंनृणाम् ॥ नभयंकस्यचित्तत्रपुरेब्राह्मणसेविते ॥ ६३ ॥ यथर्तुवर्षीपर्जन्यः सस्यानिगुणवन्तिच ॥ भूरि
क्षीरस्रवागावः क्षीराण्याजीविकानिच ॥ ६४ ॥ यंयंप्रार्थयतेविप्रं स श्राद्धार्थंमहीपतिः ॥ सतुतंभर्त्सयामासदुरुक्तैः
कोपसंयुतः ॥ ६५ ॥ धिग्धिक्पापसमाचार क्षत्रपापसदात्मक ॥ किंकश्चिद्ब्राह्मणोश्नातिप्रेतश्राद्धेविशेषतः ॥ ६६ ॥

कर्म में कोई भी तत्पर नहीं था और स्थान २ स्थान में बड़े शब्द होरहे थे व गृह गृह में उछाह होतेथे ॥ ६१ ॥ और वैसेही वेदविद्या के विनोद व स्मृतियों की वार्तायें
होरही थीं और यज्ञ करनेवाले पुरुषों के यज्ञ से उपजे हुये शब्द सुन पड़ते थे ॥ ६२ ॥ उस पुर में दुर्भिक्ष व रोग व मनुष्यों की अकाल मृत्यु नहीं होती है और
ब्राह्मणों से सेवित उस नगर में किसी को भय नहीं है ॥ ६३ ॥ व ऋतु में जैसा चाहिये वैसेही मेघ बरसता है और गौवें बहुत सा दूध देती हैं व जीवनपर्य्यन्त
दूध देती हैं ॥ ६४ ॥ वह भूपति श्राद्ध के लिये जिस २ ब्राह्मण से प्रार्थना करता है वह क्रोधसंयुत दुष्ट वचनोंसे उसकी निन्दा करताहै ॥ ६५ ॥ कि हे पापआचर-

णवाले, क्षत्रियों में नीचबुद्धि या स्वभाववाले ! क्या कोई ब्राह्मण विशेष कर प्रेतश्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६६ ॥ इस लिये तुम तबतक शीघ्रही चले जावो कि जबतक कोई ब्राह्मण क्रोध से स्वर्गमार्ग के रोकनेवाले तुमको शाप न देवै तथा हनन न करै ॥ ६७ ॥ तदनन्तर विस्मय में प्राप्त व भय से विकल वह राजा दुःखित होकर उस चमत्कार नगर से निकला ॥ ६८ ॥ और पिताकी उस दशाको स्मरणकर नृपेन्द्रने चिन्तन किया कि मैं क्या करूं कहां जाऊं मेरे पिता की गति किस प्रकार होवैगी ॥ ६९ ॥ तदनन्तर वह नृपति सब मन्त्रियों को गेह प्रति पठाकर उसी उत्तम नगर में भिक्षुक रूप से अकेले टिकगया ॥ ७० ॥ व उस नगर में प्रशं-

तस्माद्गच्छद्रुतंयावन्नकश्चिच्छपतेद्विजः ॥ निहन्तिवाप्रकोपेण स्वर्गमार्गनिरोधकम् ॥ ६७ ॥ सूतउवाच ॥ ततःसदुःखितोराजानिश्चक्रामभयार्दितः ॥ चमत्कारपुरात्तस्माद्वैलक्ष्यंपरमंगतः ॥ ६८ ॥ चिन्तयामासराजेन्द्रः स्मृत्वावस्थां पितुश्चताम् ॥ किंकरोमिक्कगच्छामि कथंमेस्यात्पितुर्गतिः ॥ ६९ ॥ ततःससचिवान्सर्वान्प्रेषयित्वागृहंप्रति ॥ एकाकीभिक्षुरूपेण स्थितस्तत्रैवसत्पुरे ॥ ७० ॥ सज्ञात्वानगरेतत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ सर्वेषांब्राह्मणेन्द्राणां मध्येदाक्षिण्यभाजनम् ॥ ७१ ॥ देवशर्माभिधानन्तु शरणागतवत्सलम्॥आहिताग्निंचतुर्वेदस्मृतिमार्गानुयायिनम् ॥ ७२ ॥ ततस्तुप्रातरुत्थाय कृत्वान्त्यजमयंवपुः ॥ शोधयामासकृच्छ्रेण मलोत्सर्गनिकेतनम् ॥ ७३ ॥ अथयःकुरुतेकर्म तत्र विष्ठाप्रशोधकम् ॥ सोभ्येत्यतमुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः ॥ ७४ ॥ कुतस्त्वमिहसंप्राप्तो मद्वृत्तेरुपघातकृत् ॥ त

सित व्रत या कर्मवाले देवशर्मा नामक ब्राह्मण को जानकर जो कि सब द्विजेन्द्रोंके बीच में दक्षिणा पाने के योग्य या चातुरी का पात्र था ॥ ७१ ॥ व जिसको शरणागत प्रिय थे और आहिताग्नि (यज्ञादिके निमित्त अग्नि का रक्षक) व चारोंवेद व स्मृतियों के मार्ग का अनुगामी था ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल उठकर व चाण्डाल कासा शरीर कर उसने बड़े क्लेश से मल त्यागने का गृह याने जाजरूर को साफ किया ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर उस जाजरूर में जो मलशोधक कर्म करता था वह क्रोध से अरुणनेत्रवाला होकर यह बोला ॥ ७४ ॥ कि मेरी जीविका के नाशकर्ता तुम कहां से यहां भलीभांति प्राप्तहुये हो इससे तुम शीघ्रही

चलेजावो नहीं तो मैं यमके मन्दिर को भेजदूंगा ॥ ७५ ॥ उसके इसप्रकार कहते हुये भी उस भूपति ने देवशर्मा से उपजे हुये उस स्थानको शीघ्रही हठ
से शोधन किया ॥ ७६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर वर्ष के अन्त में योग्य समय में दूरही से प्रणामकर चाण्डाल ने उस भूपति से कहा ॥ ७७ ॥ कि हे स्वामिन् !
तुम्हारे कुल में भी ऐसा मलशोधन का कर्म करनेवाला है क्योंकि वह कर्म हमारा है तुम्हारा व अन्यका नहीं है तो तुम किरा लिये पठाये गये हो ॥ ७८ ॥
इसके अनन्तर उस चाण्डाल का वाक्य सुनकर वह नृप क्रोधयुक्त बोला तब उस भूपति के मारने के लिये शस्त्र को लेकर भलींभांति प्राप्तहुवा ॥ ७९ ॥ व

तस्यैववदतोप्याशुबलात्सपृथिवीपतिः ॥ शोधयामासतत्स्थानं देवशर्मसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ ततःसंवत्सरस्यान्ते चण्डालेनद्विजोत्तमाः॥सप्रोक्तउचितेकाले प्रणिपत्यचदूरतः ॥७७॥ स्वामिंस्तवकुलेप्येवं गूथशोधनकर्मकृत् ॥तदस्माकंतवान्यस्यनत्वंकिंतत्प्रवेशितः ॥ ७८ ॥ अथश्रुत्वाचतद्वाक्यं सप्राहकोपसंयुतः ॥ शस्त्रमादायसम्प्राप्तो वधार्थंतस्यभूपतेः ॥ ७९ ॥ शस्त्रोद्यतकरंदृष्ट्वा प्रहारेकृतनिश्चयम् ॥ ततस्तंलीलयाभूपो मुष्टिनामूर्ध्न्यताडयत् ॥ ८० ॥ ततस्तस्यविनिष्क्रान्तेलोचनेतत्क्षणाद्द्विजाः ॥ सुस्रावरुधिरंपश्चात्पपातगतजीवितः ॥ ८१ ॥ तच्छ्रुत्वानिहतंतेन चण्डालंनिजकिङ्करम् ॥ देवशर्मातिकोपेन तद्वधार्थमुपागतः ॥ ८२ ॥ ततःपुत्रैश्चपौत्रैश्च सहितोन्यैश्चबन्धुभिः ॥ लोष्टैस्तंताडयामास भर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ८३ ॥ सोपिसंताड्यमानस्तु प्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ वेदघोषंततश्चक्रे दर्शयित्वोपवीतकम् ॥ ८४ ॥ अथतेविस्मितास्सर्वे देवशर्मपुरस्सराः ॥ ब्राह्मणास्तंसमुद्वीक्ष्य

स्मात् उच्छ्रद्धुतं ...

इसके अनन्तर उस भूपति ने उसके मस्तक में मुष्टि से मारा ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो !
प्रहार (ताडन) में निश्चय किये व शस्त्र से उन्नत हाथवाले उस चाण्डाल को देखकर तदनन्तर भूपति ने उसके मस्तक में मुष्टि से मारा ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो !
उस के उपरान्त उसी क्षण उस चाण्डाल के नेत्र निकलआये व रुधिर बहचला पश्चात् जीव जातारहा ॥ ८१ ॥ अपने दास चाण्डाल को उस भूपति से माराहुवा
सुनकर देवशर्मा जी बड़े क्रोध से उसके वध के लिये समीप में आये ॥ ८२ ॥ तदनन्तर पुत्र, पौत्र व अन्य बन्धुओं समेत बार २ निन्दा करते हुये देवशर्मा ने उस
भूपतिको ढेलों से ताडन किया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर प्रहारों से जर्जर किया गया व बहुतही ताडित उस भूपति ने भी यज्ञोपवीत (जनेऊ) को दिखाकर वेद का शब्द

किया ॥ ८४ ॥ इसके अनन्तर जो कि वेद में कहे हुये आचारों में तत्पर थे वे सब देवशर्मा के आगे चलनेवाले ब्राह्मण उस भूपति को भलीभांति देखकर विस्मय में प्राप्तहुये ॥ ८५ ॥ व उन्होंनें राजा से यह पूंछा कि चाण्डाल जनके योग्य यह तुम्हारा कर्म क्यों है क्योंकि स्फुटवर्णोवाली व मधुर तथा प्रियशब्दवाली यह वेदात्मिका वाणी है ॥ ८६ ॥ तो क्या शापसे भ्रष्टहुये तुम कोई द्विजश्रेष्ठ हो जिससे कि चाण्डालोंसे भी निन्दित ऐसे कर्मको करते हो ॥ ८७ ॥ तदनन्तर हँसताहुवा वह भूपति बोला कि हैहय के वंश में उत्पन्न विष्णुसेन ऐसा प्रसिद्ध मैं क्षत्रियहूं ॥ ८८ ॥ हे स्वामिन् ! सो मैं आराधनाके लिये उस कर्म में प्राप्तहुवा इस कर्म में लगे हुये मुझको आज

वेदाचारपरायणाः ॥ ८५ ॥ पृष्टश्चकिमिदंकर्म तवान्त्यजजनोचितम् ॥ एषावेदात्मिकावाणीस्पष्टाक्षरकलस्वनी ॥ ८६ ॥ तत्किंशापपरिभ्रष्टस्त्वं कश्चिद्ब्राह्मणोत्तमः ॥ येनैवंकुरुषेकर्मगर्हितंचान्त्यजैरपि ॥ ८७ ॥ ततःसप्रहसन्नाह क्षत्रियोहंम हीपतिः ॥ विष्णुसेनइतिख्यातो हैहयान्वयसंभवः ॥ ८८ ॥ सोहमाराधनार्थाय तस्मिन्स्वामिन्नुपागतः ॥ अद्यसंवत्स रोजातः कर्मण्यस्मिन्परस्यच ॥ ८९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सविप्रःकृपयान्वितः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा तमुवाचमहीपतिम् ॥ ९० ॥ किंतत्कृत्यंसमुद्यम्य त्वयैतत्कर्मगर्हितम् ॥ कृतंकीर्तययेनाशुतवाभीष्टंकरोम्यहम् ॥ ९१ ॥ नास्तिमेकिञ्चिदप्राप्तंतथासाध्यंमहीपते ॥ तस्मात्तवकरिष्यामि कृत्यंयद्यपिदुर्लभम् ॥ ९२ ॥ राजोवाच ॥ पिताम माहिनादष्टः प्रेतत्वंसमुपागतः ॥ सोत्रनागह्रदेश्राद्धे कृतेमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ९३ ॥ तस्मात्तत्तारणार्थाय विप्रकृत्यं समाचर ॥ एतदर्थंमयातत्र कृतंकर्मविगर्हितम् ॥ ९४ ॥ देवशर्मोवाच ॥ एवंकुरुनृपश्रेष्ठ श्राद्धंहन्तेपितुःस्वयम् ॥ ब्रा

वर्ष भर व्यतीत होगया ॥ ८९ ॥ सूतजी बोले कि उस राजा के उस वचनको सुनकर दयासंयुक्त वह विप्र हाथ जोड़कर उस भूपति से बोला ॥ ९० ॥ कि वह कौन कार्य्य है जिसका भलीभांति उद्यमकर तुमने इस निन्दित कर्मको किया उसको कहिये जिससे शीघ्रही तुम्हारे प्रिय को मैं करूं ॥ ९१ ॥ हे महीपते ! मुझको कुछ दुर्लभ व असाध्य नहीं है इसलिये यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि तुम्हारे कार्य्यको करूंगा ॥ ९२ ॥ राजा बोले कि सर्पसे काटाहुवा मेरा पिता प्रेतयोनि को प्राप्त हुवा है वह यहां नागकुण्ड के समीप श्राद्धकरने पर मुक्ति को पावैगा ॥ ९३ ॥ हे विप्रजी ! इससे उसके तारनेके लिये कार्य्यको करिये इसीके लिये मैने यहांपर निन्दित

कर्म किया है ॥ ९४ ॥ देवशर्मा जी बोले किहे नृपोत्तम! ऐसा कीजिये तुम्हारे पिताके श्राद्धमें मैं आपही ब्राह्मण हूंगा इस लिये श्राद्धकरिये ॥ ९५ ॥ सूतजी बोले कि
इसके अनन्तर उसके मित्रजन, पुत्र, पौत्र व बन्धुलोग यह बोले कि तुमको श्राद्धमें भोजन करना यह उचित नहीं है क्योंकि निन्दितहै ॥ ९६ ॥ इसलिये यदि आप
इस के श्राद्धमें भोजन करैंगे तो हमसब व और भी ब्राह्मणोत्तम आपको आपही त्यागकरैंगे ॥ ९७ ॥ देवशर्मा जी बोले कि और भी जो ब्राह्मण हैं वे व तुम सब इ-
च्छापूर्वक छोड़दीजिये परन्तु मैंनेही इस भूपति के श्राद्ध में भोजन करने के लिये प्रतिज्ञा किया है ॥ ९८ ॥ ऐसा कहकर उससमय उसी भूपति समेत उस द्विजेन्द्रने

ह्मणः संभविष्यामितस्माच्छ्राद्धंसमाचर ॥ ९५ ॥ सूतउवाच ॥ अथातःसुहृदस्तस्य पुत्रपौत्राश्चबान्धवाः ॥ प्रोचुर्नैत
त्प्रयुक्तंते श्राद्धेभोक्तुर्विगर्हितम् ॥ ९६ ॥ तस्माद्यदिभवानस्यश्राद्धेभोक्तातततःस्वयम् ॥ सर्वेभवन्तंत्यक्ष्यामस्तथान्येऽ
पिद्विजोत्तमाः ॥ ९७ ॥ देवशर्मोवाच ॥ कामंत्यजतमांसर्वेयूयमन्येपियेद्विजाः ॥ मयैवास्यप्रतिज्ञातं भोक्तुंश्राद्धेमहीपते ॥ ९८ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रस्तेनैवसहितस्तदा ॥ नागहृदंसमासाद्यतच्छ्राद्धेभोक्तवानथ ॥ ९९ ॥ भुक्तमात्रेतत
स्तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ नादयन्तीजगत्सर्वं हर्षयन्तीमहीपतिम् ॥ १०० ॥ प्रेतभावाद्विनिर्मुक्तो पुत्राहंत्वत्प्र
भावतः ॥ स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिसाम्प्रतंत्रिदिवालयम् ॥ १ ॥ ततःकृत्वानृपतिर्हृष्टस्तम्प्रगम्यद्विजोत्तमम् ॥ प्रोवाचकु
रुमेवाक्यंयद्ब्रवीमिद्विजोत्तम ॥ २ ॥ अस्तिमाहिष्मतीनामनगरीनर्मदातटे ॥ साचास्माकंराजधानी पितृपर्यागता
विभो ॥ ३ ॥ अहंपृच्छामितेब्रह्मन् समस्तविषयान्वितः ॥ मयाभृत्येनतत्रस्थःकुरुराज्यमकण्टकम् ॥ ४ ॥ देवशर्मा

नागकुण्ड में पहुँचकर इसके अनन्तर उसके श्राद्ध में भोजन किया ॥ ९९ ॥ उसके भोजनमात्र करने से तदनन्तर सब संसारको शब्दायमान करती हुई व भूपति
को हर्षित करती हुई अशरीरिणी याने आकाशवाणी बोली ॥ १०० ॥ कि हे पुत्र ! तुम्हारे प्रभाव से मैं प्रेतयोनि से छूटगया तुम्हारा कल्याण होवै इससमय मैं स्वर्ग
को जाऊंगा ॥ १ ॥ नृपति ने उस श्राद्धको कर प्रसन्नहुवा व उस ब्राह्मणोत्तम को प्रणामकर कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ ! जो मैं कहताहूं उस मेरे वाक्यको करो ॥ २ ॥
हे विभो ! नर्मदा नदी के किनारे माहिष्मती नामक पुरी है और वही पितरोंकी परम्परा से हम लोगों की राजधानी चलीआई है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं तुमसे पूंछताहूं

कि सब विषयों (आशयों) से संयुक्त तुम मुझ दास के सहित उस राजधानी में टिककर निष्कण्टक राज्यको कीजिये ॥ ४ ॥ देवशर्मा जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! यह कहने के लिये नहीं योग्य है क्योंकि ब्राह्मण राज्यके योग्य नहीं होता है इसलिये तुम अपने राज्यको जावो व परिपालन करो ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इस भांति उस ब्राह्मण से बिदा किया हुवा वह भूपति हर्षसंयुत व कृतार्थ होकर अपने देशको चलागया ॥ ६ ॥ और वह देवशर्मा ब्राह्मण भी सब पुरवासी ब्राह्मणों से त्याग किया हुवा श्राद्ध से उपजे हुये दोषका भलीभांति उद्योगकर ॥ ७ ॥ तदनन्तर उस नागकुण्ड के समीप अपने मन्दिर को बनाकर पवित्र व वेदपाठ में परायण उस

वाच ॥ नचैतद्युज्यतेवक्तुंनविप्रोराज्यमर्हति ॥ तस्माद्गच्छनिजंराज्यंपरिपालयपार्थिव ॥ ५ ॥ एवंविसर्जितस्तेन ज
गामसमहीपतिः ॥ स्वदेशंहर्षसंयुक्तः कृतकृत्योद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ सोपिसर्वैःपरित्यक्तो ब्राह्मणैःपुरवासिभिः ॥ देव
शर्मासमुद्यम्यदोषंश्राद्धसमुद्भवम् ॥ ७ ॥ ततोनागहृदेतस्मिन्सकृत्वानिजमन्दिरम् ॥ निवासमकरोत्तत्र स्वाध्यायनि
रतःशुचिः ॥ ८ ॥ तत्रस्थस्यनिरस्तस्य येपुत्रास्तुद्विजोत्तमाः ॥ तेषांसंज्ञानजाड्यापितेविप्राबाह्यवासिनः ॥ ९ ॥ एत
द्वःसर्वमाख्यातं नागतीर्थसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाःसर्वपातकनाशनम् ॥ १० ॥ यश्चैतत्पठ्यतेभक्त्या स
म्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ शृणुयाद्वानवंशेपि तस्यस्यात्सर्पजंभयम् ॥ ११ ॥ तथाविमुच्यतेपापात्पक्षजान्नात्रसंशयः ॥ कृ
तादज्ञानतोविप्राःसत्यमेतन्ब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागतीर्थमनुत्तमम् ॥ माहात्म्यंपठनीयंवा श्रोत

ब्राह्मणने वहीं पर निवास किया ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! निकाले गये व वहां पर टिकेहुये उस विप्र के जे पुत्र थे उनकी बुद्धि भी जड़ नहीं थी और वे ब्राह्मण बाहरके निवासी हुये ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! नागतीर्थ से उपजे हुये इस समस्त माहात्म्यको मैंने तुमलोगोंसे कहा जोकि सबपातकों का विनाशक है ॥ १० ॥ व पञ्चमी तिथि प्राप्त होते हुये जो मनुष्य इस चरित्र को पढ़ता है या सुनता है उसके वंशमें भी सर्पसे उत्पन्न हुवा भय नहीं होवै है ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! वैसेही बिन जाने कियेहुये व पक्षभर में उपजे हुये पातक से छूटजाता है इस में सन्देह नहीं है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १२ ॥ इसलिये बहुत उत्तम नागतीर्थके माहात्म्य को सब

उपाय से सावधान मनुष्योंको पढ़ना व सुनना चाहिये ॥ १३ ॥ और श्राद्धसमय भलीभांति प्राप्त होनें पर जो ब्राह्मण इसको पढ़ता है वह गयाश्राद्धसे संयुत सम्पूर्ण फलको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ वैसेही श्राद्धकी सामग्रीसे उपजे व व्रतकी विकलतासे उत्पन्न व ब्राह्मण से उपजे हुये जो दोष हैं ॥ १५ ॥ वे श्राद्धसमय प्राप्तहोने पर सावधान मनुष्यों से नागकुण्डका माहात्म्य कहते हुये समस्तदोष नाश होजाते हैं ॥ १६ ॥ तैसेही पशुओं से व जङ्गली जीवों से जो मारे गये हैं श्राद्धमें ब्राह्मणों को इस चरित्रके पढ़ते हुये वे परमगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरमाहा-

ठ्यंवासमाहितैः ॥ १३ ॥ श्राद्धकालेतुसम्प्राप्ते यश्चैतत्पठ्यतेद्विजः ॥ सप्राप्नोतिफलंकृत्स्नं गयाश्राद्धसमन्वितम् ॥ १४॥ तथायेकीर्तितादोषाःश्राद्धद्रव्यसमुद्भवाः॥ व्रतवैकल्यजाश्चापि तथाब्राह्मणसम्भवाः ॥ १५ ॥ तेसर्वेनाशमायान्तिकीर्त्यमानेसमाहितैः ॥ नागह्रदस्यमाहात्म्ये श्राद्धकालउपस्थिते ॥ १६ ॥ तथाविनिहतागोभिर्ब्राह्मणैःश्वापदैरपि ॥ एतस्मिन्पठितेश्राद्धे गच्छन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्ये नागह्रदमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योस्तिद्विजश्रेष्ठास्तस्मिन्क्षेत्रेशुभावहः ॥ सप्तर्षीणांसुविख्यात आश्रमस्सर्वकामदः ॥ १ ॥ तत्रश्रावणमासस्य पञ्चदश्यांसमाश्रितः ॥ यःकरोतिनरःस्नानंसलभेद्वाञ्छितंफलम् ॥ २ ॥ कन्दमूलफलैःशाकैर्यस्तत्रश्राद्धमाचरेत् ॥ सप्राप्नोतिफलंकृत्स्नंराजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३ ॥ पञ्चम्यांशुक्लपक्षेतु मासिभाद्रपदेद्विजाः ॥ यः

त्म्येनागकुण्डमाहात्म्यंनामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सप्तऋषिन के आश्रमहिं अह चरित्र आख्यान । बत्तिस के अध्याय में कीन्हों सूत बखान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उसी क्षेत्र में औरभी शुभदायक व बहुतप्रसिद्ध सप्तर्षियों का आश्रम है जो कि समस्त कामनाओं को देता है ॥ १ ॥ उस आश्रम में भलीभांति प्राप्तहुवा जो मनुष्य श्रावण महीने की पौर्णमासी में स्नान करता है वह मनोऽभिलाष को प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ और कन्द, मूल, फल व शाकों से जो मनुष्य वहां श्राद्ध करता है वह राजसूय व अश्वमेध दोनों यज्ञों के

समग्रफल को पाता है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! व भाद्रपद महीने में शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिमें स्नानकर व पुष्प, धूप, चन्दनादि के लेपन से सबही द्विजेन्द्रों को क्रम-
पूर्वक भक्ति से व इस विधिसे याने आगे कही हुई विधिसे जो नर पूजन करताहै ॥ ४ ॥ अत्रिमुनि के लिये नमस्कार है व वशिष्ठ के लिये नमस्कार है व कश्यपजी
के लिये नमस्कार है व भरद्वाज मुनिके लिये नमस्कार है व गौतम ऋषि के लिये नमस्कार है व विश्वामित्र जी के लिये नमस्कार है व जमदग्नि के लिये नमस्कार
है तथा अरुन्धती महारानी जी के लिये नमस्कार है ये पूजन के मन्त्र हैं इन से पूजन करै ॥ ५ ॥ व जपमाला को लिये पवित्र अङ्गोंवाली जह्नुजी की कन्या जो
कि सब कामनाओं को देती है वह मुझसे दिये हुये अर्घ को कृपा से ग्रहण करै ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! सप्तर्षियों से वहां किस समय तीर्थ

स्नात्वापूजयेद्भक्त्यापुष्पधूपानुलेपनैः ॥ विधिनानेनविप्रेन्द्रान्सर्वानेवयथाक्रमम् ॥ ४ ॥ ॐअत्रयेनमः ॐवशिष्ठाय
नमः ॐकश्यपायनमः ॐभरद्वाजायनमः ॐगोतमायनमः ॐकौशिकायनमः ॐजमदग्नयेनमः ॐअरुन्धत्यैन
मः पूजामन्त्रः ॥ ५ ॥ जह्नुकन्यापवित्राङ्गा गृहीतजपमालिका ॥ गृहाणार्घंमयादत्तं कृपयासर्वकामदा ॥ ६ ॥ ऋषय
ऊचुः ॥ तत्रसप्तर्षिभिस्तीर्थं कस्मिन्कालेऽव्यवस्थितम् ॥ विस्तरात्सूतजब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ अना
वृष्टिःपुराविप्रा लोकेद्वादशवार्षिकी ॥ सर्वौषध्यःक्षयंजातास्ततोलोकाःक्षुधार्दिताः ॥ ८ ॥ अस्थिशेषानिरुत्साहास्त्य
क्तधर्मपरिक्रमाः ॥ अभक्ष्यभक्षणपरास्तथैवापेयपायिनः ॥ ९ ॥ त्यजन्तिमातरःपुत्रान् कलत्राणितथानराः ॥ भृत्या
न्स्वानपिवित्तेशाः काकथान्यसमुद्भवा ॥ १० ॥ संत्यक्तान्यग्निहोत्राणि ब्राह्मणैर्याजकैरपि ॥ व्रतानिव्रतिभिर्दानैर

टिका गयाहै इसको विस्तारसे कहिये क्योंकि हमलोगों को बहुतही आश्चर्य्य है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय संसार मे बारह वर्ष की अनावृ-
ष्टि हुई तब सम्पूर्ण ओषधी नाश होगई व मनुष्य क्षुधा से विकल हुये ॥ ८ ॥ व अस्थिमात्र जिन नरों के शेष रहे वे उत्साहहीन व धर्मके सब कर्मों को छोडेहुये अ-
भक्ष्य के भोजनमें तत्पर हुये व अपेय (न पीने के योग्य वस्तु) को पीने लगे ॥ ९ ॥ व माताने पुत्रों को तथा मनुष्यों ने स्त्रियोंको त्याग करदिया व धनेश्वर जनोंने
अपने नौकरों को भी त्यागदिया तो औरों से उपजी हुई कथा को क्या कहना है ॥ १० ॥ हे विप्रो ! यज्ञ करनेवाले भी ब्राह्मणों ने अग्निहोत्र (यज्ञादिकर्म) को

त्याग दिया व अतिवृद्ध तथा बाह्य इन्द्रिय याने नेत्र, कर्णादिकोंको दमनकियेभी व्रती द्विजों ने व्रतों को त्याग दिया ॥ ११ ॥ व जिसी स्थान में किसी प्रकार से अन्न भी नहीं देखपड़ता है वहां लज्जा से रहित व क्षुधासे दुबले मनुष्य हरलेते हैं ॥ १२ ॥ इसभांति यहां अन्नादि नाशहोने पर जब पृथ्वीतल दुःखित होगया तब क्षुधासे व्याप्त सप्तर्षि लोग जहां तहां भ्रमण करने लगे ॥ १३ ॥ अत्रि मुनि व वसिष्ठ और बड़े तपस्वी कश्यप जी व भरद्वाज तथा प्रशंसित व्रत या कर्मवाले गौतम मुनि ॥ १४ ॥ व विश्वामित्र और जमदग्नि वैसेही पतिव्रता अरुन्धती महारानी और उन सबोंकी दासी चण्डा नामक हुई है ॥ १५ ॥ वैसेही विनय से संयुत पशुवक्

पिवृद्धतमैर्द्विजाः ॥ ११ ॥ दृश्यतेनैवयत्रैव सस्यंवापिकथञ्चन ॥ हीयतेलज्जयाहीनैस्तत्रक्षुत्क्षामकैर्नरैः ॥ १२ ॥ एवमन्नक्षयेजाते पीडितेधरणीतले ॥ सप्तर्षयःक्षुधाविष्टाबभ्रमुस्तत्रतत्रहि ॥ १३ ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्च कश्यपस्तुमहातपाः ॥ भरद्वाजस्तथैवान्यो गौतमःशंसितव्रतः ॥ १४ ॥ कौशिकोजमदग्निश्चतथैवारुन्धतीसती ॥ अथतेषांसमस्तानांचण्डाभूत्परिचारिका ॥ १५ ॥ पशुवक्रस्तथाभृत्योविनयेनसमन्वितः ॥ ततस्तेविषयंप्राप्ता वृषादर्भिमहीपतेः ॥ १६ ॥ क्षुत्क्षामामुनयोत्यर्थं देशेचानर्तसंज्ञके ॥ तत्रभिक्षाकृतेभ्रान्तास्ततश्चैवगृहाद्गृहम् ॥ १७ ॥ नग्रासमपिसस्यस्य प्राप्नुयुस्तेद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तैःपतितोभूमौ दृष्टोमृतकुमारकः ॥ १८ ॥ मन्त्रयित्वामिथःपश्चाद्गृहीत्वाभक्षणायच ॥ अपचन्यावदग्नौते क्षुधयापरिपीडिताः ॥ १९ ॥ वृषादर्भिर्नृपःप्राप्तः श्रुत्वातेषांविचेष्टितम् ॥ २० ॥ वृषादर्भिरुवाच ॥ किमिदंगर्हितंकर्मक्रियतेमुनिसत्तमाः ॥ राक्षसानामयंधर्मोमहामांसस्यभक्षणम् ॥ २१ ॥ सोहंसस्यंप्रदास्यामि ग्रामा

नामक दास था तदनन्तर वे सब वृषादर्भि नामक भूपतिके देशमें प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर क्षुधा से अत्यन्तही दुर्बल मुनिलोगों ने आनर्तनामक देश में भिक्षा के लिये गृह गृह में भ्रमण किया ॥ १७ ॥ परन्तु उन ब्राह्मणोत्तमों ने अन्न का एक कवल भी न पाया तदनन्तर उन्होंने मरे हुये बालक को भूमि में गिराहुवा देखा ॥ १८ ॥ व आपस में सम्मति कर उसके पीछे भक्षण के लिये ग्रहणकर क्षुधा से बहुतही पीडित उनमुनियों ने जबतक अग्नि में पकाया ॥ १९ ॥ तबतक उनका कर्म सुनकर वृषादर्भि नामक नृपति प्राप्तहुवा ॥ २० ॥ वृषादर्भि नृपबोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! यह निन्दित कर्म क्यों किया जाता है क्योंकि महामांसका भोजनकरना

यह राक्षसोंका धर्म है ॥ २१ ॥ सो मैं अन्न, ग्राम, धान व यवों को भी दूंगा हमारे वाक्य से तुमलोग निस्सन्देह मरे हुये बालकको छोड़दो ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे नृप ! महामांस के भोजनसे प्रायश्चित्त कहागया है परन्तु विपत्तिकाल में भी प्राणियों के प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २३ ॥ हम लोग पीछे को तपकरैंगे व महामांससे उपजेहुये पातकको नाशकरैंगे इस लिये भक्षण करते हैं ॥ २४ ॥ वृषादर्भि जी बोले कि ब्राह्मणोंको दानलेना अनिन्दित जीविका कही गई है इस लिये हम से सब लोग ग्रहण करने के योग्य हो इस विषय में विचार करना न चाहिये ॥२५॥ ऋषिलोग बोले कि हे नृप ! मीठे या मदिराके स्वादवाला व विषके सदृश

नव्रीहियवानपि ॥ ममवाक्यादसंदिग्धं त्यजध्वंमृतबालकम् ॥ २२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ प्रायश्चित्तंसमादिष्टं महामांसस्यभक्षणात् ॥ प्रतिग्रहस्यभूतानामापत्कालेपिनोनृप ॥ २३ ॥ पश्चात्तपश्चरिष्यामो महामांससमुद्भवम् ॥ पातकंनाशयिष्यामो भक्षयामोवयंततः ॥ २४ ॥ वृषादर्भिरुवाच ॥ प्रतिग्रहोद्विजातीनां प्रोक्तावृत्तिरनिन्दिता ॥ ग्राह्यामत्तस्ततःसर्वे नात्रकार्य्याविचारणा ॥ २५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ राजप्रतिग्रहोघोरो मद्वास्वादोविषोपमः ॥ सदूराद्ब्राह्मणैस्त्याज्यो विशेषात्कृतिभिर्नृप ॥ २६ ॥ दशसूनासहस्रैस्तुतुल्यंपापंसमाचरेत् ॥ कस्तस्यप्रतिगृह्णातिलोभान्धोब्राह्मणोयथा ॥ २७ ॥ रौरवादिषुसर्वेषु नरकेषुसपच्यते ॥ तस्माद्गच्छगृहेभूप स्वस्तितेऽस्तुसदैवहि ॥ २८ ॥ वयमन्यत्रयास्यामो ग्रहीष्यामोनतेधनम् ॥ एवमुक्त्वापितेसर्वे मुनयःशंसितव्रताः ॥ २९ ॥ परित्यज्यकुमारंते मृतंतमपिभूमिपम् ॥

कराल राजाओं का प्रतिग्रह (दान) होताहै वह ब्राह्मणोंको दूरसे त्याग करने केयोग्य है व पुण्यवान् जनों को विशेषकर त्यागने योग्य है ॥ २६ ॥ जो नृप कि दश हजार हत्याओं के समान पातक करताहै उसके प्रतिग्रहको लोभसे अन्धे ब्राह्मणके समान कौन लेताहै ॥ २७ ॥ जो प्रतिग्रह लेताहै वह रौरवादि सब नरकों में पचता है इस लिये हे भूपति ! तुम गृहको जावो व तुम्हारा सदैव कल्याण होवै ॥ २८ ॥ व हमलोग अन्यत्र चले जावैंगे परन्तु तुम्हारे धनको नहीं ग्रहण करैंगे ऐसाकहकर इसके अनन्तर प्रशंसित व्रत या कर्मों वाले वे सब मुनि लोग ॥ २९ ॥ मरेहुये बालक व उस भूपति को भी छोड़कर तदनन्तर भलीभांति कार्य्यका उद्देशकर चम-

त्कार नगरको चलेगये ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! तदनन्तर उन से निन्दित व क्रोध युत उसराजाने भी उन मुनियोंकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) के लिये धर्मको किया ॥३१॥ तदनन्तर गूलर फलोंको सुवर्णसे पूरितकर इसके अनन्तर उन मुनियोंके मार्ग के अगारी सबओर भूमि में फेंक दिया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर क्षुधा से विकल व हर्षित उन मुनियों ने धरातलमें गिरे हुये गूलरों को भलीभांति देखकर उनको ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! इसके अनन्तर उन फलोंको गरुएदेखकर अत्रि मुनि एकफलको फोडकर व सुवर्ण को देखकर बोले ॥ ३४ ॥ अत्रि जी बोले कि हम लोगोंका विज्ञान शिथिल नहीं है व हमलोगों की

चमत्कारपुरेकृत्यंसमुद्दिश्यततोययुः ॥ ३० ॥ सोपिराजाततस्तैस्तुभर्त्सितोपिरुषान्वितः ॥ जिज्ञासार्थंततस्तेषांचक्रे धर्मंद्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥ ततःसुवर्णपूर्णानिविधायोदुम्बराणिच ॥ तेषांमार्गाग्रतोभूमौसमन्तादथचाक्षिपत् ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ अथतेमुनयोहृष्टाःपतितानिधरातले ॥ उदुम्बराणिसन्दृष्ट्वाजगृहुःक्षुधयार्दिताः ॥ ३३ ॥ अथतानिसमालक्ष्यगुरूणिमुनिसत्तमाः ॥ अत्रिरेकंपरिस्फोट्य सुवर्णंवीक्ष्यचाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ अत्रिरुवाच ॥ नास्माकंमन्दविज्ञानंनास्माकंमूढबुद्धयः ॥ हैमानीमानिजानन्तो ग्रहीष्यामउदुम्बरान् ॥ तस्मादेतान्परित्यज्य हेमगर्भाणिदूरतः ॥ ३५ ॥ औदुम्बराणियास्यामः फलानिविगतस्पृहाः ॥ सर्वभूमिमहीपालएकोन्यश्चनिरीहकः ॥ सुभगस्तुतयोर्नित्यंभूयान्नूनंनिरीहकः ॥ ३६ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ योर्थंप्राप्याधमोविप्रः शोचितव्येपिहृष्यति ॥ नचपश्यतिमन्दात्मानरकेचततोभयम् ॥ ३७ ॥ प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानांप्रतिग्रहात् ॥ यएवददतांलोकास्तएवप्रतिगृह्णताम् ॥ ३८ ॥ कश्च

बुद्धियां मूढनहीं हैं इनफलों को सुवर्ण मय जानते हुये हमलोग ग्रहण करैंगे इसलिये सुवर्णगर्भवाले उदुम्बरफलों को दूरही से परित्यागकर व व्यतीत इच्छावाले हम चलेजावैंगे एक सब भूमि का भूपाल है व दूसरा चेष्टा रहित है और उनदोनोंमें चेष्टा रहित याने परमेश्वर निश्चयकर उत्तम ऐश्वर्य्यवान् होवै ॥ ३५ । ३६ ॥ जमदग्नि मुनि बोले कि जो नीच ब्राह्मण द्रव्य को प्राप्त होकर शोचनीय वस्तु मेंभी प्रसन्न होता है और मन्दबुद्धिवाला उसवस्तु से नरक में भी भयनहींदेखता है ॥ ३७ ॥ प्रतिग्रह में समर्थ पुरुषों को व प्रतिग्रह से निवृत्तजनों के लिये दान देनेवाले जनोंको जो लोक होते हैं वेही लोक दान लेनेवाले मनुजोंको होते हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि ॥ ३९ ॥ वह कल्याण से छूटजाता है ॥ ३९ ॥ क्योंकि
कश्यप जी बोले कि हे मुने ! जो द्रव्यका ग्रहण करना है यह अनर्थ प्राप्तहुवाहै और जो ऐश्वर्य से मूढ़चित्त वाला है वह कल्याण से छूटजाता है ॥ ३९ ॥ क्योंकि कल्याण का चाहने वाला पुरुष द्रव्य को दूरहीसे त्याग करै ॥ ४० ॥ क्यों-
द्रव्य व संपत्ति बड़े अज्ञान के लिये होती है और अज्ञान नरके के लिये होता है इस लिये कल्याण का चाहने वाला पुरुष द्रव्य को दूरहीसे त्याग करै ॥ ४० ॥ क्यों-
कि द्रव्य से जो धर्म साधनकिया जाताहै वह नाशवान् कहागयाहै और जो तपस्यासे साधन कियाजाताहै वह मोक्षके लिये होताहै ऐसी मेरी मतिहै ॥ ४१ ॥ भरद्वाज
मुनि बोले कि वृद्धपुरुष के केश जीर्ण होजाते हैं व जीर्ण होते हुये वैसेही दांत जीर्ण होजाते हैं वैसेही नेत्र व कर्ण जीर्ण होजाते हैं परन्तु एक तृष्णायुवतीही बनी

अर्थसम्पद्वि पउवाच ॥ अनर्थोयंमुनेप्राप्तो यदर्थस्यपरिग्रहः ॥ अर्थैश्वर्य्यविमूढात्मा श्रेयमामुच्यतेहिसः ॥ ३९ ॥ अर्थसम्पद्वि
मोहायविमोहोनरकायच ॥ तस्मादर्थंप्रयत्नेन श्रेयोर्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ ४० ॥ योर्थेनसाध्यतेधर्मः क्षयिष्णुःसप्रकीर्ति
तः ॥ यःपुनस्तपसासाध्यः समोक्षायेतिमेमतिः ॥ ४१ ॥ भरद्वाजउवाच ॥ जीर्यन्तिजीर्यतःकेशादन्ताजीर्यन्ति
जीर्यतः ॥ चक्षुःश्रोत्रेतथापुंसस्तृष्णैकातरुणायते ॥ ४२ ॥ सूच्यासूत्रंयथावस्त्रंसञ्चारयतिसूचिकः ॥ तद्वत्संसारसूत्रंच
वाञ्छयात्मानयत्यसौ ॥ ४३ ॥ यथाश्रृङ्गंक्षयेकायेवर्धमानेप्रवर्धते ॥ तद्वत्तृष्णापिवित्तेन वर्धमानेनवर्धते ॥ ४४ ॥ अ
नन्तपारादुष्पूरा तृष्णादुःखशतावहा ॥ अधर्मबहुलाचैवतस्मात्तांपरिवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ गौतमउवाच ॥ सन्तुष्टःकोन
शक्नोतिफलैरपिविचर्चितुम् ॥ एवमिन्द्रियलौल्येन संकटंभ्रमतिद्विजः ॥ ४६ ॥ सर्वत्रसम्पदस्तस्य संतुष्टंयस्यमान

रहती है ॥ ४२ ॥ जैसे सूचिक (दरजी) सूजीसे सूत्रको वस्त्र के ऊपर भलीभांति चलाताहै वैसेही यह आत्मा (परमेश्वर) इच्छा से संसार रूपी सूत्रको प्राप्तकरता
है याने रचता है ॥ ४३ ॥ जैसे क्षीणशरीर के बढ़ते हुये अङ्गबढ़ता है वैसेही धनके बढ़नेसे तृष्णाभी बढ़ती है ॥ ४४ ॥ विन अन्तके पारवाली व क्लेश से पूर्ण होने-
हारी व सैकडों दुःखोंको देनहारी और बहुतेरे अधर्मवाली तृष्णाहै इस लिये उसको सब तरहसे वर्जित करै याने अलग करै ॥ ४५ ॥ गौतम जी बोले कि फलों से भीसेवा
करनेके लिये कौन सा नर समर्थ नहीं है ऐसेही इन्द्रियकी चञ्चलतासे ब्राह्मण संकटमें भ्रमताहै ॥४६॥ जिस मनुष्यका मनसन्तुष्टहै उसको सबकहीं सम्पत्ति है क्योंकि

पनही पहिने पांववाले जनको निश्चयकर भूमि चर्म से आच्छन्नही है ॥ ४७ ॥ व सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त व शान्त चित्त वाले मनुष्यों को जो सुख होता है वह सुख इधरउधर दौड़ते हुये धनके लोभियों को कहां है ॥ ४८ ॥ असन्तोष बड़ाभारी दुःख है और सन्तोष परमसुख है इस लिये सुखका चाहने वाला पुरुष निरन्तर सन्तुष्ट होवै ॥ ४९ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि कामकी कामनाकरने वाले पुरुषका जब कामबढ़ता है तब इसके अनन्तर दूसरे कामकी तृष्णाउसको बाणके समान वेधती है॥ ५० वसिष्ठ जी बोले कि कामी पुरुष हजारों कामों से भी कभी नहींतुष्टहोता है किन्तु हव्य से अग्नि की नाईं उसकी तृष्णा विशेष करबढ़ती है ॥ ५१ ॥

सम् ॥ उपानद्गूढपादस्य ननुचर्मावृतैवभूः ॥ ४७ ॥ सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखंशान्तचेतसाम् ॥ कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥ ४८ ॥ असन्तोषंपरंदुःखंसन्तोषंपरमंसुखम् ॥ सुखार्थीपुरुषस्तस्मात्सन्तुष्टःसततंभवेत् ॥ ४९ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ कामंकामयमानस्य यदाकामःसमृध्यते ॥ अथैनमपरकामतृष्णाविद्ध्यतिबाणवत् ॥ ५० ॥ वसिष्ठउवाच ॥ नजातुकामीकामानां सहस्रैरपितुष्यति ॥ हविषाकृष्णवर्त्मेव वाञ्छातस्यविवर्धते ॥ ५१ ॥ कामानभिलषन्मोहान्नरोनसुखमाप्नुयात् ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ बिशतन्तुर्यथानन्तो नालमासाद्यसंस्थितः ॥ तृष्णाचैवमनर्थान्ता।स्थितादेहेशरीरिणाम् ॥ ५२ ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्या नजीर्यतिजीर्यते ॥ योसौप्राणान्तकोरोगस्तांतृष्णांत्यजतःसुखम् ॥ ५३ ॥ चण्डोवाच ॥ सर्पादिवधनादस्माद् बिभ्यतीमेममेश्वराः ॥ यतस्ततोविशेषेण कस्मान्नस्याद्भयंमम ॥ ५४ ॥ पशुमुखउवाच ॥ यदाचरन्तिविद्वांसःसदाधर्मपरायणाः ॥ तदेवविदुषाकार्य्यमात्मनोहित

व अज्ञान से कामों का अभिलाष करताहुवा पुरुष सुखको नहीं पाता है अरुन्धतीजी बोलीं कि जैसे कमल मूलका डोरा कमलनाल में प्राप्तहोकर अनन्तहोता हुवा भलीभांति टिका है वैसेही देहधारियोंके देह में अनर्थअन्त वाली तृष्णा भी टिकीहै ॥ ५२ ॥ व जो दुष्ट बुद्धियों को क्लेश से त्यागी जाती है व जो देह के जीर्णहोने पर जीर्ण नहीं होती है और जो यह प्राणान्तक रोगहै उस तृष्णाको त्यागते हुये जनकोसुख होता है ॥ ५३ ॥ चण्डा बोली कि जिसलिये इसधन से ये मेरे स्वामी सर्प के समान डरतेहैं इसलिये मुझको विशेष कर क्यों न भयहोय ॥ ५४ ॥ पशु मुख बोला कि सदैव धर्म में तत्पर विद्वान् जन जिस धर्म का आचरण करते हैं

उसी को अपना हित चाहने वाले पुरुषको करना चाहिये ॥ ५५ ॥ सूत जी बोले कि ऐसा कहकर व सुवर्ण गर्भवाले उन फलोंको छोड़कर पुष्टव्रत या कर्म वाले सब ही ऋषि लोग अन्यस्थानको चले गये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर उन ऋषियोंने चमत्कार नगरके क्षेत्रमें प्रवेश किया व अकस्मात् प्राप्तहुये शुनोमुख नामभिक्षुक को देखा ॥ ५७ ॥ व उसीके साथवहां किसी दूसरे वनमें जाकर तदनन्तर उन ऋषियोंने कमलों से शोभित मनोहरतड़ाग को देखा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर क्षुधासे व्याप्त उन ऋषियोंने बहुत से भसींड़ों को लेकर व तड़ागके किनारे पर धरकर पुण्यरूप सूर्य्याञ्जलि कर्मको किया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर जल से निकलकर व आपस में मिलकर

इत्युक्त्वाहेमगर्भाणित्यक्त्वातानिफलानिच ॥ ऋषयोजग्मुरन्यत्र सर्वएवदृढव्रताः ॥ ५६ ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे विविशुस्तेततःपरम् ॥ ददृशुःसहसाप्राप्तंपरिव्राजंशुनोमुखम् ॥ ५७ ॥ तेनैवसहितास्तत्रगत्वाकिञ्चिद्वनान्तरम् ॥ दृष्टवन्तस्ततोहृद्यंसरःपङ्कजशोभितम् ॥ ५८ ॥ ततोबुभुक्षयाविष्टा विशान्यादायभूरिशः ॥ तीरेनिक्षिप्यसरसश्चक्रुःपुण्याञ्जलिक्रियाम् ॥ ५९ ॥ तदुत्तीर्यजलात्सर्वे तेसमेत्यपरस्परम् ॥ विशानितान्यपश्यन्त इदंवचनमब्रुवन् ॥ ६० ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनक्षुधाभितप्तानामस्माकंनिर्दयात्मना ॥ मृणालानिसमस्तानिस्थानादस्माद्धृतानिच ॥ ६१ ॥ तेशङ्कमानाअन्योन्यंऋषयःशंसितव्रताः ॥ प्रचक्रुःशपथान्रौद्रानात्मनःप्रविशुद्धये ॥ ६२ ॥ कश्यपउवाच ॥ सर्वभक्षःसदासोस्तुन्यासंलोभंकरोतुवा ॥ कूटसाक्षित्वमभ्येतु विशस्तेयंकरोतियः ॥ ६३ ॥ सूतउवाच ॥ ... मिच्छता ॥ ५५ ॥

मधुमांससदाऽश्नातुविशस्तेयंकरोतियः ॥ ६४ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ अनृतौमैथुनंधर्मंकरोतुदम्भेन राजानंचोपसेवतु ॥

ऋषिलोगबोले कि क्षुधासे बहुतही दुःखित हमलोगों के समग्र कमलमूलों को इसस्थान से किस निर्दयचित्त वाले ने हरलिया है ॥ ६१ ॥ प्रशंसित व्रतों या कर्मोंवाले उन ऋषियोंने आपसमें शङ्काकरते हुये अपनी शुद्धताके लिये घोर शपथोंको किया ॥ ६२ ॥ कश्यप जी बोले कि वह पुरुष सदैव सर्वभक्षी होय या मांसका लोभकरै अथवा झूठीगवाहीमें प्राप्तहोय जिसने कमलमूलकी चोरी की है ॥ ६३ ॥ व वहजनपाखण्डसे धर्म को करै और नृपकी सेवाकरै तथा सदैव मदिरा मांसका भोजनकरै जिसने कि कमलमूलको चुराया है ॥ ६४ ॥ वसिष्ठ जी बोले कि वह पुरुष अनृतु (ऋतुसमय में) उन कमलमूलोंको न देखतेहुये वे सब इसवचन को बोले ॥ ६० ॥

कों ॥ ६५ ॥ भरद्वाज मुनि बोले कि गुरु जी
या दिन में मैथुन को जाय याने मैथुन करै अथवा त्योहार में अतिथि होय जिसने कि आपस में कमलमूलों को चुराया है ॥ ६५ ॥ भरद्वाज मुनि बोले कि गुरु जी
के सकाश से शास्त्र को पढ़कर जो नर निष्क्रय याने गुरुदक्षिणा को नहीं देता है उसके पातक से वह पुरुष युक्त होवै जिसने कमलमूलकी चोरी की है ॥ ६६ ॥
वह सबकहीं क्रूर होवै व बहुत ऐश्वर्य्यकी बढ़तीसे अहङ्कारी होय या ईर्षक व चुगुल होय जिसने कि कमलमूलकी चोरी की है ॥ ६७ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि वह नर
अकेले मधुर भोजन करै या अपनी प्रशंसा करै व वेद का विक्रयकर्ता याने बेंचनेवाला होय जिसने कमलमूलों को चुराया है ॥ ६८ ॥ जमदग्नि जी बोले कि जिस

अतिथिःस्यात्ततोन्योन्यं विशस्तेयंकरोतियः ॥ ६५ ॥ भरद्वाजउवाच ॥ योधिगम्यगुरोः
जातु दिवावाप्यथपर्वणि ॥ अतिथिःस्यात्ततोन्योन्यं विशस्तेयंकरोतियः ॥ ६६ ॥ नृशंसोस्तुससर्वत्र समृद्ध्यावाप्यहंकृ
शास्त्रंनिष्क्रयंनप्रयच्छति ॥ तस्यैनसासयुक्तोस्तु विशस्तेयंकरोतियः ॥ ६७ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एकाकीमिष्टमश्नाति प्रशंस्यादथवात्मनः ॥
तः ॥ मत्सरीपिशुनश्चैवविशस्तेयंकरोतियः ॥ ६८ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ कन्यांयच्छतुवृद्धाय सभूयाद्वृषलीपतिः ॥ अस्तु
वेदविक्रयकर्त्तास्तु विशस्तेयंकरोतियः ॥ ६९ ॥ गौतमउवाच ॥ संगृह्णात्वम्बिकादानं करोतिहयविक्रयम् ॥ प्रकरोतुगु
वार्धुषिकीनित्यं विशस्तेयंकरोतियः ॥ ७० ॥ अत्रिरुवाच ॥ मातरंपितरंनित्यंदुर्मनाःसनमन्यताम् ॥ शूद्रंपृच्छतुधर्मार्थंवि
रोर्निन्दां विशस्तेयंकरोतियः ॥ ७१ ॥ प्रतिश्रुत्यनयोदद्याद् ब्राह्मणायगवादिकम् ॥ तस्यैनसासयुक्तोस्तु विशस्तेयंकरोतियः ॥
शस्तेयंकरोतियः ॥ ७१ ॥ प्रतिश्रुत्यनयोदद्याद् ब्राह्मणायगवादिकम् ॥ नारीदुष्टसमाचारा विशस्तेयंकरोतिया ॥ ७३ ॥ च
७२ ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ करोतुयत्पतेःपूर्वं भोजनंशयनंतथा ॥ नारीदुष्टसमाचारा विशस्तेयंकरोतिया ॥ ७३ ॥ च

ने कमलमूलों की चोरी की है वह कन्या को वृद्धके लिये देवै व शूद्रा स्त्री का पति होवै और नित्यही व्याजकी जीविकावाला होय ॥ ६९ ॥ गौतम जी बोले कि जिसने
कमलमूलोंको चुरायाहै वह अम्बिका के दानको ग्रहणकरै व घोड़े का विक्रयकरै तथा गुरुकी निन्दाकरै ॥ ७० ॥ अत्रिमुनि बोले कि दुष्टमानस वह नित्यही माता,
पिताको न मानै व धर्मके लिये या धर्म, अर्थको शूद्रसे पूछै जो कि कमलमूलोंको चुरायाहै ॥७१॥ जो पुरुष गौइत्यादिक देनेको सुनाकर ब्राह्मणके लिये न देवै उसके
पातकसे वह युक्त होवै जिसने कमलमूलोंको चुरायाहै ॥ ७२ ॥ अरुन्धती जी बोलीं कि जिसने कमलमूलोंकी चोरी कीहै वह पतिसे पहिले भोजन व शयनकरनेवाली

तथा दुष्टसमाचारवाली स्त्री होवै ॥ ७३ ॥ चण्डा बोली कि जिसने कमलमूलोंको चुराया है वह स्त्री पराये सदन में रमी हुई विश्वास सें प्राप्तहुये पति को सदैव छलै ॥ ७४ ॥ पशुमुख बोला कि जिसने कमलमूलोंको चुरायाहै वह नर नित्यही पापकारी व स्वामी के द्रोहमें तत्पर तथा साधुजनके वैर से बहुत दुःखी होवै ॥७५॥ शुनमुख बोला कि जिसने कमलमूलों की चोरी कियाहै वह सामादि वेदोंको पढ़ै व प्रिय पाहुनवाला गृहस्थ होवै और निरन्तर सत्य बोलै ॥ ७६ ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने जो शपथ किया है वह ब्राह्मणों को प्रियही है और हमलोगों की उस कमलमूलों की चोरी को आपने अवश्य किया है ॥ ७७ ॥ शुनमुख बोला कि हे

एडोवाच ॥ कान्तंविश्वासमापन्नं सावञ्चयतुसर्वदा ॥ परहर्म्येरतानारी विशस्तेयंकरोतिया ॥ ७४ ॥ पशुमुखउवाच ॥ स्वामिद्रोहरतोनित्यंसभूयात्पापकृन्नरः ॥ साधुद्वेषपरिखिन्नःविशस्तेयंकरोतियः ॥ ७५ ॥ शुनमुखउवाच ॥ वेदान् पठतुसामादीन् गृहस्थःस्यात्प्रियातिथिः ॥ सत्यंवदतिचाजस्रं विशस्तेयंकरोतियः ॥ ७६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ इष्टएवद्वि जातीनां यस्त्वयाशपथाःकृताः ॥ विशस्तेयंहिचास्माकंतन्नूनंभवताकृतम् ॥ ७७ ॥ शुनमुखउवाच ॥ मयाहृतानिसर्वे षांविशानीमानिवोद्विजाः ॥ धर्मान्वैश्रोतुकामेन माञ्जानीतपुरन्दरम् ॥ ७८ ॥ युष्माकंपरितुष्टोस्मि लोभाभावाद् द्विजोत्तमाः ॥ तस्मात्स्वर्गंमयासार्द्धं शीघ्रमागम्यतामिति ॥ ७९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ मोक्षमार्गसमासक्ता नवयंस्व र्गलिप्सवः ॥ तस्मात्तपश्चरिष्यामः सरसीहविमुक्तये ॥ ८० ॥ जमदग्निरुवाच ॥ पूर्णांसागरपर्य्यन्तां पृथ्वींभ्रान्तः सुरेश्वर ॥ प्राणयात्रांप्रकुर्वाणो मृणालैःसुरसत्तम ॥ ८१ ॥ तस्माद्गच्छतवश्रेयो भूयादस्मात्समागमात् ॥ ८२ ॥ शक्र

ब्राह्मणो ! निश्चयकर धर्म सुनने की इच्छावाले मैंने तुम सब लोगोंके इन कमलमूलों को हरलिया है और तुमलोग मुझको इन्द्र जानो ॥ ७८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! लोभके अभावसे मैं तुमलोगोंके ऊपर प्रसन्न हुवाहूं इसलिये मेरे साथ शीघ्रही स्वर्गको आइये ॥ ७९ ॥ ऋषिलोग बोले कि मोक्षमार्ग में भलीभांति लगे हुये हमलोग स्वर्गके अभिलाषी नहीं हैं इसलिये इस तड़ागमें विशेषकर मोक्षके लिये तपको करैंगे ॥ ८० ॥ जमदग्नि जी बोले कि हे देवतोत्तम, देवेश जी ! कमलमूलोंसे प्राण-यात्रा याने प्राणोंका निर्वाह करतेहुये हमलोगोंने समुद्र पर्य्यन्त समस्त पृथ्वीका भ्रमण कियाहै ॥८१॥ इसलिये इस मिलापसे तुम्हारा कल्याणहोवै तुम चलेजावो ॥८२॥

इन्द्रजी बोले कि हे उत्तम व्रत या कर्मवाले मुनीश्वरो ! मेरा दर्शन कभी भी व्यर्थ नहीं होता है इस लिये तुमलोग सदैव चित्त में टिके हुये अभिलाष को मुझसे ग्रहण करो ॥ ८३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे इन्द्र जी ! यह आश्रम पृथ्वीतलमें हमलोगों के नाम से प्रसिद्ध हो व भूमि में मनुष्यों के सबपापों का विनाशक प्रसिद्ध होवै ॥ ८४ ॥ व हे सुरोत्तम ! जबतक अचला मोक्ष की गति न होवैगी तब तक भुनेहुये आत्मा के विकारवाले हमलोग तपकरनेके लिये नित्य यहांही पर टिके रहैंगे ॥ ८५ ॥ इन्द्रजी बोले कि तुमलोगों का आश्रम त्रिलोक में भी प्रसिद्ध होगा व जिस कामनाका ध्यान करताहुवा जो नर यहांपर श्रावण महीने में पूर्णमासी को

उवाच॥नवृथादर्शनंमेस्यात् कदाचिदपिसुव्रताः ॥ तस्माद्गृहीतमेचित्ते सदाभीष्टंव्यवस्थितम्॥८३॥ऋषयऊचुः॥ आश्रमोयंभुविख्यातोभूयाच्छक्रमहीतले॥ नाम्नास्माकंतथानृणां सर्वपातकनाशनः॥८४॥वयंस्थास्यामहेनित्यमत्रैवसुरसत्तम ॥ तपोर्थंभर्जितात्मानो यावन्मोक्षगतिर्ध्रुवा ॥ ८५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ त्रैलोक्येपिचविख्यातो आश्रमोवोभविष्यति ॥ योयंकाममभिध्यायञ्छ्राद्धमत्रकरिष्यति ॥ ८६ ॥ श्रावणेपूर्णमास्यांच सतंसर्वमवाप्स्यति ॥ निष्कामोवानरोयस्तु श्राद्धंदानमथापिवा ॥ ८७ ॥ प्रकरिष्यतिमोक्षंससमवाप्स्यत्यसंशयः ॥ येवात्रदेहंत्यक्ष्यन्ति युष्माकंचाश्रमेशुभे ॥ ८८ ॥ अपिपापसमायुक्तास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ इङ्गुदैर्बदरैर्वापि बिल्वैर्भल्लातकैरपि ॥ ८९ ॥ पितॄनुद्दिश्ययः श्राद्धंकरिष्यतिसमाहितः ॥ सयातिपरमांसिद्धिं दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ ९० ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःस्तूयमानश्चकिङ्करैः ॥ ९१ ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः सर्वैरप्यभिनन्दितः ॥ जगामदर्शनंतेपि स्थितास्तत्रद्विजोत्तमाः ॥ ९२ ॥ ततःकालेगतेते

श्राद्धकरैगा वह उस सब कामनाको पावैगा अथवा अकामनावाला जो पुरुष श्राद्ध या दानको करैगा ॥८६॥८७॥ वह मोक्षको भलीभांति प्राप्तहोवैगा इसमें सन्देह नहीं है अथवा तुम लोगों के इस उत्तम आश्रममें जो मनुष्य शरीर को त्याग करैंगे ॥८८॥ तो पापसे संयुत भी वे परमगति को जावैंगे और गोंदी फल व बदरीफल व बिल्व तथा भिलावां के फलों से भी ॥ ८९ ॥ पितरों का उद्देश कर सावधान होताहुवा जो मनुष्य श्राद्धको करैगा वह सब पापोंसे छूटा व किङ्करोंसे स्तुति कियाहुवा देवतों भी दुर्लभ परमसिद्धि को प्राप्तहोवैगा ॥ ९० । ९१ ॥ ऐसा कहकर सब ऋषियों से भी प्रशंसित हजारनेत्रोंवाले इन्द्र जी अन्तर्द्धान होगये और वे द्विजोत्तम भी वहां

पर टिकते भये ॥ ९२ ॥ तदनन्तर समय व्यतीत होनेपर वे मुनि भी बड़े भारी अत्यन्ततप को कर जरा मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ९३ ॥ और वहांपर देवताओं के देवता त्रिशूलधारी शिवजीके लिंग को उन मुनियों ने स्थापन किया है उसके भलीभांति दर्शनही के करने से मनुष्य पापसे छूटजाता है ॥ ९४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! फिर जो मनुष्य भक्तिसे पुष्प, धूप, चन्दनादि लेपनोंसे लिंगका पूजन करताहै वह अवश्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ यह सप्तर्षियों के आश्रम का इतिहास कहागया जो कि पवित्र व आयुर्बलदायक तथा समस्त पातकोंका विनाशकहै ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि

पि कृत्वातीवमहत्तपः ॥ सम्प्राप्ताःपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ९३ ॥ तैस्तत्रस्थापितंलिङ्गं देवदेवस्यशूलिनः ॥ तस्यसन्दर्शनादेव नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ ९४ ॥ यस्तुलिङ्गंपुनर्भक्त्याधूपपुष्पानुलेपनैः ॥ अर्चयेत्सध्रुवंमुक्तिंप्राप्नोतिद्विजसत्तमाः ॥ ९५ ॥ एतत्पवित्रमायुष्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ सप्तर्षीणांसमाख्यातमाश्रमस्यानुकीर्त्तनम् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येसप्तर्ष्याश्रममाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अगस्त्यस्याश्रमोन्योस्ति तथातत्रद्विजोत्तमाः ॥ यत्रतिष्ठतिविश्वात्मास्वयन्देवोमहेश्वरः ॥ १ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां चैत्रमासेदिवाकरः ॥ स्वयमभ्येत्यदेवेशंपूजयत्येवशङ्करम् ॥ २ ॥ तस्मादन्योपियस्तस्य भक्त्या चागत्यशङ्करम् ॥ तमेवपूजयेद्भक्त्या सयातिदेवमन्दिरम् ॥ ३ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ पि

तायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येसप्तर्ष्याश्रममाहात्म्यंनामद्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । तेंतिसके अध्याय में कहत सूत मतिमान । मुनि अगस्त्य विन्ध्याचलहि कीन्हों नीच निदान ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! वैसेही उस हाटकेश्वरक्षेत्र में दूसरा अगस्त्य मुनिका आश्रमहै जहांपर जगदात्मा महेश्वर देवजी आपही स्थित हैं ॥ १ ॥ चैत्र महीने में शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथिको सूर्य्यनारायण जी आपही आकर देवनायक श्रीशङ्करजी को पूजतेही हैं ॥ २ ॥ उन सूर्य्यनारायण से अन्य भी जो पुरुष उन शिवजी की भक्ति से आकर व उन्हीं शङ्कर जी को अनुराग से

पूजता है वह सुरसदन को जाताहै ॥ ३ ॥ और श्रद्धासे संयुत होता हुवा जो पुरुष वहांपर भलीभांति श्राद्ध करताहै उसके पितर वैसेही तृप्तहोते हैं जैसे कि पितृयज्ञ करने से तृप्तहोते हैं ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि अगस्त्य मुनि के आश्रम में प्राप्त होकर श्रद्धासे संयुत होते हुये दिवाकर देवजी किस लिये भलीभांति प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो! इस कथाको मैं कहूंगा तुमलोग सुनो कि बहुत विस्तारको प्राप्त विन्ध्याचल नामक पृथ्वीतलमें प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ जिस पर्वत के वृक्षकी अगली शाखाओंमें भलीभांति लगीहुई सूर्य्य की किरणें ऊपर टिके हुये अनजान सिद्धों से पुष्पसमूहोंके समान देखी जाती हैं ॥ ७ ॥ व जिस

तरस्तस्यतृप्यन्ति पितृमेधेकृतेयथा ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अगस्त्यस्याश्रमम्प्राप्य कस्माद्देवोदिवाकरः ॥ प्रदक्षिणंप्र कुरुते सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ कथयिष्यामिकथामेतां शृणुतद्विजसत्तमाः ॥ अस्तिविन्ध्यसमा ख्यातो विस्तीर्णःपृथिवीतले ॥ ६ ॥ यस्यवृक्षाग्रशाखायांसंलग्नास्तरणेःकराः ॥ पुष्पपूगाइवोर्ध्वस्थैर्लक्ष्यन्तेमुग्धसि द्धकैः ॥ ७ ॥ अनभिज्ञास्तमिस्रस्य यस्यसानुनिवासिनः ॥ रत्नप्रभाप्रणुन्नस्य कृष्णपक्षेनिशास्वपि ॥ ८ ॥ यस्यसानु पुमुञ्चन्तो भान्तिपुष्पाणिपादपाः ॥ वायुवेगवशान्नूनंनीरौघंनीरदाइव ॥ ९ ॥ यस्मिन्नानामृगाभान्ति च्यवमाना इतस्ततः ॥ कलत्रपुत्रपुष्ट्यर्थंलोभान्धामानवाइव ॥ १० ॥ निर्यासच्छद्मनाबाष्पं वासिताशेषदिङ्मुखम् ॥ मुञ्चन्तितर वोयत्रदन्तिदन्तप्रभात्वचः ॥११॥ चीरिकाविरुतैर्दीर्घैरुदन्तइवचापरे ॥ हस्तिहस्तक्षतावृक्षा मन्यन्तेयस्यसानुषु॥१२॥

पर्वतके शिखरोंके निवासी जन कृष्णपक्ष की रात्रियों में भी रत्नोंकी कान्तिसे दूर किये हुये अन्धकारको नहीं जानतेहैं ॥ ८ ॥ और जिस पर्वतके शिखरोंमें पवनके वेग वशसे फूलोंको छोड़ते हुये वृक्ष अवश्यकर वैसेही शोभित होतेहैं जैसे जलको छोडते हुये जलद शोभतेहैं ॥ ९ ॥ व जिस अचल पर इधरउधर जातेहुये अनेक प्रकार के मृग शोभित होतेहैं जैसे कि स्त्री व पुत्रके पालने के लिये लोभसे अन्ध मनुष्य शोभतेहैं ॥ १० ॥ और हाथीदांतकी कान्तिके समान वल्कलवाले वृक्ष जिस पर्वत पर गोंदके छलसे समस्त दिशाओंके मुखको गंधयुत किये आंसुओंको ढीलतेहैं ॥ ११ ॥ व जिस पर्वतके शिखरों में हाथी के सूंड़से विदीर्णहुयेअन्य वृक्ष झिल्लीके बड़े भारी

शब्दोंसे रोते हुये से मानेजाते हैं ॥ १२ ॥ व इधरउधर चलते हुये झरनोंके जलोंसे घिराहुवा वह पर्वत श्वेत वस्त्रादिकोंसे विशेषकर अलंकृत पुरुषके समान शोभित हुवा है ॥ १३ ॥ और पहले जिस पर्वत को सुमेरु गिरि के साथ स्पर्द्धा (डाह) उपजी है तदनन्तर क्रोध से मूर्च्छित होताहुवा वह विन्ध्याचल हजारों किरणवाले सूर्यनारायणके निकट जाकर बोला ॥ १४ ॥ कि हे दीप्तिमन् ! तुम सुमेरु गिरि की प्रदक्षिणा किस लिये करते हो और कुलपर्वत नामक में कभीभी नहीं करते हो ॥ १५ ॥ सूर्यनारायण जी बोले कि हम श्रद्धासे उस पर्वत की प्रदक्षिणा नहीं करतेहैं किन्तु जिसने इस संसार को बनाया है उसीने मेरे इस मार्गको रचाहै ॥ १६ ॥ व

इतश्चेतश्चगच्छद्भिर्निर्भराम्भोधिरावृतः ॥ शुशुभेसितवस्त्राद्यैः पुमानिवविभूषितः ॥ १३ ॥ यस्यस्पर्द्धासमुत्पन्नापूर्वं सहसुमेरुणा ॥ ततःप्राहसहस्रांशुङ्गत्वासक्रोधमूर्च्छितः ॥ १४ ॥ कस्माद्भास्करमेरोस्त्वं प्रकरोषिप्रदक्षिणाम् ॥ कुल पर्वतसंज्ञेपिनकरोषिकदापिच ॥ १५ ॥ भास्करउवाच ॥ नवयंश्रद्धयातस्य गिरेःकुर्मःप्रदक्षिणाम् ॥ एषमेविहितःपन्था येनेदंविहितंजगत् ॥ १६ ॥ तस्यतुङ्गानिशृङ्गाणिव्याप्यखंसंश्रितानिच ॥ तेनसञ्जायतेतस्यबलादेवप्रदक्षिणा ॥१७॥ एतच्छ्रुत्वाविशेषेण संक्रुद्धोविन्ध्यपर्वतः ॥ प्रोवाचपश्यभोभानोस्तर्हितुङ्गत्वमद्यमे ॥ १८ ॥ रुरोधचनभोमार्गं येनग च्छतिभास्करः ॥ अथरुद्धंसमालोक्य मार्गंवासरनायकः ॥१९ ॥ चिन्तयामासचित्तेस्वे साम्प्रतञ्चकरोमिकिम् ॥ करो मियद्यहंचास्य पर्वतस्यप्रदक्षिणाम् ॥ २० ॥ तद्भविष्यतिकालस्यचलनंभुवनत्रयम् ॥ मासर्त्तुसवनानाञ्च तथाभावी

उस सुमेरुगिरि पर्वतके ऊंचे शिखर आकाशमें व्याप्त होकर भलीभांति स्थितहैं उस कारण बलसेही उसकी प्रदक्षिणा होती है ॥ १७ ॥ इस वचनको सुनकर विशेषता से बहुत क्रोधित विन्ध्याचल बोला कि हे भानो (सूर्यनारायण जी) ! यदि ऐसाहै तो आज हमारी ऊँचाईको तुम देखो ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर जिस मार्ग से दिननाथ जातेहैं उस आकाश पन्थको रोकलिया इसके अनन्तर रोंके हुये मार्गको दिननायकजीने देखकर ॥ १९ ॥ अपने चित्त में चिन्तन किया कि इस समय मैं क्याकरूं यदि मैं इस पर्वतकी प्रदक्षिणा करूं ॥ २० ॥ तो तीनों भुवनमे कालका व्यतिक्रम होजावैगा वैसेही महीना, ऋतु, यज्ञादि के समयों का भी विपरीत भाव

होजावैगा ॥२१॥ अग्निष्टोम इत्यादिक समस्तकर्म नाश होजावैंगे व यज्ञके उछाहमें मैं समर्थ न हूंगा और देवताओंको बड़ा क्लेशहोगा ॥ २२ ॥ इसप्रकार चित्तमें भली भांति चिन्तनकर रुकेहुये मार्गवाले व तीखे किरणों वाले तथा मनसे डरेहुये वे सूर्यनारायणजी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके निकटगये ॥ २३ ॥ क्योंकि मित्रावरुणसे उपजे हुये उन द्विजोत्तम अगस्त्यजी के बिना दूसरा पुरुष इस विन्ध्याचल के निवारणमें समर्थ नहीं है ॥ २४ ॥ तदनन्तर तीखे किरणों वाले वे सूर्य्यनारायण ब्राह्मण का रूपकर चमत्कार नगरके क्षेत्र में उन अगस्त्य मुनिके आश्रम स्थान को गये ॥ २५ ॥ तदनन्तर वेदोच्चारण में तत्पर वे दिननायक भी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ !

विपर्ययः ॥ २१ ॥ अग्निष्टोमादिकास्सर्वाः क्रियायास्यन्तिसङ्क्षयम् ॥ नचयज्ञोत्सवेकल्पेदेवानाञ्चमहाव्यथा ॥ २२ ॥ एवंसंचिन्त्यचित्तेन रुद्धाध्वातीक्ष्णदीधितिः ॥ जगाममनसाभीतः सोगस्त्यंमुनिपुङ्गवम् ॥ २३ ॥ नान्योस्तिवारणे शक्तोविन्ध्यस्यास्यहितंविना ॥ अगस्त्यम्ब्राह्मणश्रेष्ठंमित्रावरुणसम्भवम् ॥ २४ ॥ ततोद्विजमयंरूपं सकृत्वातीक्ष्ण दीधितिः ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे तस्याश्रमपदंययौ ॥ २५ ॥ ततश्चवैश्वदेवोपि वेदोच्चारपरायणः ॥ प्रोवाचसोतिथिःप्रा प्तस्तवाहंमुनिसत्तम ॥ २६ ॥ ततोगस्त्यःकृतानन्दः स्वागतंस्वागतंमुने ॥ मनोरथइवाध्यातो योग्निकार्यान्तआगतः ॥ २७ ॥ तत्त्वंब्रूहिमुनेश्रेष्ठं यद्ददामितवेप्सितम् ॥ अदेयंनास्तिमेकिञ्चित् कालेस्मिन्प्रार्थितस्यच ॥ २८ ॥ भास्करउ वाच ॥ अहंभास्करआयातो विप्ररूपेणसम्मुखे ॥ सर्वकार्यक्षमंमत्वा त्वामेकंभुवनत्रये ॥ २९ ॥ त्वयापूर्वंसुरार्थायप्र पीतःपयसांनिधिः ॥ वातापिश्चतथादैत्यो भक्षितोद्विजकण्टकः ॥ ३० ॥ तस्माद्गतिर्भवास्माकं साम्प्रतंमुनिसत्तम ॥

मैं तुम्हारे अतिथि प्राप्त हुवाहूं ॥ २६ ॥ उसके उपरान्त आनन्द किये हुये अगस्त्यमुनि बोले कि हे मुने ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहुवा बहुतअच्छाहुआ जो तुम कि अग्निकर्म के अन्त में चिन्तित मनोरथ की नाई आये हो ॥ २७ ॥ हे मुने ! तुम्हारा जो श्रेष्ठ मनोरथ हो उस को तुम कहो मैं दूंगा क्योंकि इस समय में प्रार्थना कियेगये मुझको कुछ अदेय नहीं है ॥ २८ ॥ भास्करजी बोले कि हे विप्रजी ! तीनों भुवनमें सब कार्य्यों में प्रवीण एक तुमको मानकर विप्ररूप से सम्मुख आयाहुवा मैं दिननायक हूं ॥ २९ ॥ पुरातन समय देवताओं के लिये तुमने वारिधिको पीलिया तथा द्विजों के कण्टकरूप वातापी दैत्यको भक्षण करलिया ॥३०॥

इस लिये हे मुनि श्रेष्ठ ! तुमइस समय हमारीगति होवो जिसलिये कि इससंसार में वर्णों के व देवताओं के तुम्हीं रक्षकहो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि उसवचन को सुनकर वे ब्राह्मण अगस्त्य मुनि विशेषता से प्रसन्नहुये तदनन्तर दिननाथ केलिये अर्घदेकर आदरपूर्वक बोले ॥ ३२ ॥ कि मैं धन्यहूं व अनुग्रहीत हूं जिस लिये कि तुम मेरे गेह में आये हो इसलिये तुमकहो तुम्हारी सम्पूर्ण वाक्यको मैं करूंगा ॥ ३३ भास्कर जी बोले कि हे मुनिसत्तम ! पर्वतों में मुख्यसुमेरु गिरिकी ईर्षा से यह विन्ध्यपर्वत हमारा मार्ग रोंककर संस्थित है ॥ ३४ ॥ इसलिये साम याने प्रियवचनइत्यादिक अनेकप्रकार के उपायों से इस को निवारण करो जिसप्रकार

देवानामिहवर्णानां त्वमेवशरणंयतः ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥तच्छ्रुत्वासमुनिर्विप्रो विशेषेणप्रहर्षितः ॥ अर्घंदत्त्वादिनेशाय ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३२ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियन्मेत्वंगृहमागतः ॥ तस्माद्ब्रूहिकरिष्यामि तववाक्यमखण्डितम् ॥ ३३ ॥ भास्करउवाच ॥ एषविन्ध्याचलोस्माकंमार्गमावृत्यसंस्थितः ॥ स्पर्द्धयागिरिमुख्यस्य सुमेरोर्मुनिसत्तम ॥ ३४॥ सामाद्यैर्विविधोपायैस्तस्मादेनंनिवारय ॥ कालात्ययोयथानस्याद्गतेर्भङ्गात्तथाकुरु ॥ ३५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहंतंवारयिष्यामि वर्द्धमानंकुलाचलम् ॥ स्वंस्थानंगच्छतस्मात्त्वं सुखीभवदिवाकर ॥ ३६ ॥ ततोसौप्रेषितस्तेन भास्करस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ स्वंस्थानंप्रययौहृष्टस्तमामन्त्र्यमुनीश्वरम् ॥ ३७॥ अगस्त्योपिद्रुतंगत्वाविन्ध्यंप्रोवाचसादरम् ॥ न्यूनतांव्रजमद्वाक्याच्छीघ्रंपर्वतसत्तम ॥ ३८॥ दाक्षिणात्येषुतीर्थेषु स्नानेयाताद्यमेमतिः ॥ तवायत्तंगिरीशैव तत्कुरुत्वंयथोचितम् ॥ ३९ ॥ सतस्यवचनंश्रुत्वाविन्ध्यःपर्वतसत्तमः ॥ अभजन्निम्नतांसद्यो विनयेनसम

गति के भङ्गहोने से कालव्यतीत न होवै वैसाही तुमकरो ॥ ३५ ॥ अगस्त्य जी बोले कि हे दिनकर ! बढ़ते हुये उस कुलपर्वत को मैं निवारण करूंगा इसलिये तुम सुखी होवो व निजस्थानको जावो ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उनसे पठाये हुयेतीखे किरणों वाले भास्करजी उन अगस्त्य मुनिनायक को भलीभांति पूंछकर प्रसन्नहोते हुये निजस्थान को चलेगये ॥ ३७ ॥ व अगस्त्य मुनि भी शीघ्रही जाकर विन्ध्याचल से आदर सहित बोले कि हे पर्वतोत्तम ! मेरे वाक्य से तुमशीघ्रही न्यूनता को प्राप्तहोजावो ॥३८॥ क्योंकि दक्षिण दिशावाले तीर्थोंके स्नानमें आज मेरी बुद्धि प्राप्तहुई है हे गिरीश ! वह तुम्हारेही अधीनहै इसलिये तुम यथोयाग्यको करो ॥३९॥

वह पर्वतोत्तम विन्ध्याचल उनअगम्स्य मुनि के वचनसुनकर उसी क्षणविनय से संयुत होताहुवा नीचेंता को धारण किया ॥ ४० ॥ व अगस्त्य ब्राह्मणभीउस
पर्वत के दक्षिण दिशाके अन्त में प्राप्तहोकर यहकहा कि जबतक मेरा प्रवासित (परदेश) वाला आगमन न होवै तबतक ऐसीही स्थितसे तुमको स्थित रहनाचा-
हिये इसमें विचार न करना चाहिये नहीं तो मैं शाप दूंगा कि जिससे तुम नाशको प्राप्तहोगे ॥ ४१ । ४२ ॥ शाप से डराहुवा वह पर्वतोत्तम यह प्रतिज्ञाकर किऐसा
ही होगा व उनअगस्त्य जी की आने की इच्छा से फिर वृद्धि को न प्राप्तहुवा ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! वे अगस्त्य मुनि भी उसी मार्ग से न लौटे औरआजतक

त्वयैवंसंस्थितेनैव स्थातव्यंचसुवासितम् ॥ ४१ ॥
न्वितः ॥ ४० ॥ अगस्त्योपिसमासाद्य तस्यान्तंदक्षिणंद्विजः ॥ नोचेच्छापंप्रदास्यामि येनसंयास्यसिक्षयम् ॥ ४२ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय
यावदागमनंमह्यंनात्रकार्याविचारणा ॥ सोपितेनैवमार्गेण निवृत्तिंनकरोतिच ॥ यावद
शापाद्भीतोनगोत्तमः ॥ नजगामपुनर्वृद्धिंतस्यागमनवाञ्छया ॥ ४३ ॥ समाहूयसहस्रांशुं ततःप्रोवाचसाद
द्यापिविप्रेन्द्रादक्षिणांदिशमाश्रितः॥ ४४ ॥ अथतत्रैवचानीयलोपामुद्रांमुनीश्वरः ॥ यन्मयास्थापितंतत्रलिङ्गंपूज्यंहितत्त्वया ॥ ४६ ॥ भास्कर
रम् ॥ ४५ ॥ तववाक्यान्मयात्यक्तः स्वाश्रमस्तीक्ष्णदीधिते ॥ योन्योहितद्दिनेलिङ्गं पूजयिष्यतिमानवः ॥ ममलोकेसमासाद्यसभ
उवाच ॥ एवंमुनेकरिष्यामि लिङ्गंतेस्वयमेवहि ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सान्निध्यंकु
विष्यतिमुक्तिभाक् ॥ ४७ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मात्कारणात्तत्र भगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥

लोपामुद्रा नामक अपनी भार्या को लाकर व सूर्य्यनारायण को भलीभांति
भी दक्षिण दिशा में टिके हैं ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर मुनीश्वर अगस्त्य जी उसीस्थान में लोपामुद्रा नामक अपनी भार्या को लाकर व सूर्य्यनारायण को भलीभांति
बुलाकर तदनन्तर आदरपूर्वक बोले ॥ ४५ ॥ कि हे तीखे किरणों वाले दिवाकरजी ! तुम्हारे वाक्य से मैंने अपने आश्रम को त्याग दिया इसलिये वहांपर जो लिङ्ग
मैंने थापन किया है वहतुमको अवश्यपूजना चाहिये ॥ ४६ ॥ भास्कर जी बोलेकि हे मुनि ! तुम्हारे थापेहुये लिङ्ग को मैं आपही ऐसा करूंगा याने पूजन करूंगा और
अन्य भी जो पुरुष उसदिन में लिङ्ग को पूजैगा वह मेरे लोकमें प्राप्तहोकर मुक्तिका भागी होवैगा ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले कि इसी कारणसे चैत्र महीने में शुक्लपक्ष

की चतुर्दशी को तीखे किरणवाले भगवान् दिवाकर जी उसस्थान में सदैवसमीपताकरते हैं ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो मुझसे पूछागया इससमस्त वृत्तान्त को मैंने तुमलोगों से कहा यदि तुमलोगों के हृदय में कोई सन्देह टिका हो उसको फिर कहिये ॥ ४९ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । असुरसमर करि सुरनसन छिपे समुद्रहिंजाय । सो चौंतिस अध्यायमहं कहतकथा समुझाय ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जो यह आपने कहा कि

रुतेसदा ॥ ४८ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ भूयोवदतवैकश्चित्सन्देहोहृदिसंस्थितः ॥ ४९ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेत्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंतम्मुनिम्प्रतिसूतज ॥ त्वयापुरासुरार्थायप्रपीतःपयसान्निधिः ॥ १ ॥ तत्त्वंसूतजनोब्रूहिविस्तरेणमहामते ॥ यथातेनपुरापीतो मुनिनापयसान्निधिः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥कालेयाइतिविख्याता पुरादानवसत्तमाः ॥ सम्भूतास्सर्वदेवानां वीर्य्योत्साहप्रणाशकाः ॥ ३ ॥ ततस्तैःपीडितंदृष्ट्वा विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ त्रैलोक्यंशक्तियोगेन देवःप्रोक्तोमहेश्वरः ॥ ४ ॥ एतदीशानदैतेयैस्त्रैलोक्यंपरिपीडितम् ॥ कालिकेयैर्महावीर्यैस्तस्मात्कार्योमहाहवः ॥ ५ ॥ अद्यैवतैस्समन्देव समासाद्यधरातलम् ॥ ततोविष्णुश्चरुद्रश्चसहस्राक्षःसुरारिहा ॥ ६ ॥ सितशस्त्रध

उन अगस्त्य मुनिसे दिवाकरने कहा कि पहले तुमने वारिधि पीलियाहै ॥ १ ॥ हेबड़ी बुद्धिवाले,सूतनन्दन ! आप विस्तार पूर्वक हमलोगों से उसको कहिये जिसप्रकार पहले उन मुनिने समुद्रको पी लिया है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि सब देवताओं के पराक्रम व उत्साह के नाश कारक कालेय ऐसे प्रसिद्ध दानवोत्तम पुरातन समय में उत्पन्न हुये हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर उनदेवतोंसे त्रिलोकको पीडित देखकर शक्तियोग वाले व समर्थवान् विष्णु जीने महादेव जीसे कहा ॥ ४ ॥ कि हे ईशान ! बड़े पराक्रम वाले कालिकेय नामक दैत्योंसे यह त्रिलोक परिपीडितहै इसलिये हेदेव ! धरातलमें प्राप्तहोकर आजही उन देवतोंके साथ बड़ा युद्धकरना चाहिये तदनन्तर रुद्र,

विष्णु व दैत्यों के नाशक इन्द्र ॥ ५ । ६ ॥ ये सब पैनेशस्त्रों को धारण कियेहुये धरातलमें प्राप्तहुये इसके अनन्तर वे सब दैत्यक्रोधसे देवतोंको आये हुये जानकर ॥ ७ ॥ व क्रोधसे संयुत होकर अचानक युद्धके लिये आये तदनन्तर दानवोंके साथ देवताओंका बडा युद्धहुवा ॥ ८ ॥ कि जिस युद्धसे सबत्रिलोक भयसे विकलहोगया इसके अनन्तर बलसे गर्वित कालप्रभ नामक दानव ॥ ९ ॥ वह वज्रसे उन्नत करनेवाले इन्द्र जीको आगे खड़ेहुये देखकर हंसताहुवा मेघके तुल्यगम्भीर शब्दों से वाक्यको बोला ॥ १० ॥ कि हे हजारनेत्रवाले इन्द्र ! वज्रको छोड़ो मैं तुम्हाराबल देखूं हे स्वर्गनायक ! बड़ा आनन्दहै क्योंकि बहुतदिनोंसे तुम मेरी दृष्टि में प्राप्त

रास्सर्वे सम्प्राप्ताधरणीतलम् ॥ अथतेदानवास्सर्वे श्रुत्वामर्षात्समागतान् ॥ ७ ॥ युद्धार्थंसहसाजग्मुः सम्मुखाःको पसंयुताः ॥ ततोभवन्महायुद्धं देवानांदानवैस्सह ॥ ८ ॥ त्रैलोक्यंकम्पितंयेन समस्तम्भयविह्वलम् ॥ अथकालप्र भोनामदानवोबलगर्वितः ॥ ९ ॥ सशक्रंपुरतोदृष्ट्वा वज्रोच्छ्रितकरंस्थितम् ॥ प्रोवाचप्रहसन्वाक्यं मेघगम्भीरनि स्स्वनैः ॥ १० ॥ मुञ्चवज्रंसहस्राक्ष पश्यामितवपौरुषम् ॥ चिरात्प्राप्तोसिमेदृष्टिं दिष्ट्यात्वंत्रिदिवेश्वर ॥ ११ ॥ ततश्चि क्षेपसंक्रुद्धस्तस्यवज्रंशतक्रतुः ॥ सोपितंलीलयाधृत्वा जगृहेसव्यपाणिना ॥ १२ ॥ ततःशक्रंसमुद्दिश्यगदांगुर्वींमुमोच सः ॥ सर्वायसमयींरौद्रां यमजिह्वामिवापराम् ॥ १३ ॥ तयाहतस्सहस्राक्षो विसंज्ञोरुधिरप्लवः ॥ ध्वजयष्टिंसमाश्रित्य सन्निविष्टोरथोपरि ॥ १४ ॥ अथतम्मातलिर्दृष्ट्वा विसंज्ञंबलघातिनम् ॥ पराङ्मुखंरथंचक्रेसंस्मरन्सारथेर्नयम् ॥ १५ ॥ ततःपराङ्मुखीभूते रथेशक्रस्यसङ्गरे ॥ दुद्रुवुर्भयसंत्रस्तास्सर्वेदेवास्समन्ततः ॥ १६ ॥ आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवाम

हुयेहो ॥ ११ ॥ तदनन्तर बहुत क्रोधित हो इन्द्रजीने उसके ऊपरवज्रको फेंका और उस कालप्रभने भी लीला पूर्वक धारणकर वज्रको बाँयें हाथसे पकड लिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उस कालप्रभने इन्द्रको भलीभांति उद्देशकर समस्त लोहमयी गरुईगदाको छोड़ा जो कि दूसरी यम जिह्वाके समान कराल थी ॥ १३ ॥ उस गदासे ताडित व रुधिर से डूबे हुये सहस्रनेत्र वाले इन्द्रजी अचेतन होतेहुये ध्वजाके दण्डकासहारा भरकर रथके ऊपरबैठरहे ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर मातलि (इन्द्रके सारथी) ने बल दैत्यके घातक इन्द्रको मूर्च्छित देखकर सारथी की नीतिको स्मरण करतेहुये रथको विमुख करलिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर युद्धमें इन्द्र के रथको विमुखहोते हुये

भयसे डरेहुये सबदेवता सब ओर भगगये ॥ १६ ॥ व तीखे बाणों से पृष्ठस्थानमें मारे हुये आदित्य,वसु,रुद्र, विश्वेदेवा व पवनके गण लज्जाको छोड़कर भगगये ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दानवों से सेनाको अङ्गभङ्गदेखकर विष्णु जी शीघ्रही गरुड़ पर सवार होकर कालप्रभके निकट गये ॥ १८ ॥ तदनन्तर बार बार गर्जतेहुये उन सब दैत्योंने घेरकर तीखेशरोंसे सब ओर आच्छादित करदिया ॥ १९ ॥ उन बाणोंसे घिरे व भलीभांति पुलकित अङ्गवाले वे विष्णुजी दूसरे रक्तपर्वत की नाईं शोभित हुये ॥ २० ॥ तदनन्तर उन विष्णुजीने कङ्कपक्षी के पङ्खोंसे संयुत व शार्ङ्ग धन्वासे छुटेहुये बाणोंरो शर समूहों को काटकर दैत्योंको हनन किया ॥ २१ ॥

रुद्गणाः ॥ व्रीडांविहायविध्वस्ताः पृष्ठदेशेशितैःशरैः ॥ १७ ॥ अथभग्नंबलंदृष्ट्वादानवैर्मधुसूदनः ॥ आरुह्यगरुडं तूर्णंकालप्रभमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥ ततस्तेदानवास्सर्वे परिवार्य्यशितैःशरैः ॥ सम्यगाच्छादयामासुर्गर्जमानामुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥ सतैराच्छादितोविष्णुःशुशुभेचसमन्ततः ॥ सम्यक्पुलकिताङ्गश्चरक्ताचलइवापरः ॥ २० ॥ ततःशार्ङ्गविनिर्मुक्तैःशरैःकङ्कस्यपत्रिभिः ॥ छेदयित्वेषुजालानिदैतेयान्निजघानसः ॥ २१ ॥ ततोदैत्यगणास्सर्वे हन्यमानासुरारिणा ॥ त्रातारंनाभ्यगच्छन्त मृगाःसिंहार्दिताइव ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्यः कालखञ्जइतिस्मृतः ॥ सुकोपवशमापन्नो वासुदेवमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥ सहत्वापञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवंशितैःशरैः ॥ जघानगरुडंक्रुद्धो दशभिर्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥ ततःसुदर्शनञ्चक्रंतस्यदैत्यस्यमाधवः ॥ प्रमुमोचवधार्थायज्वालामालासमावृतम् ॥ २५ ॥ सोपितच्चक्रमालोक्य वासुदेवकराच्च्युतम् ॥आगच्छन्तम्प्रसार्य्यास्यंग्रस्तुंतत्सम्मुखेययौ ॥ २६ ॥ अग्रसच्चमहादैत्यस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥

तदनन्तर मुरदैत्य के मारक विष्णुजी से मारेहुये सब दैत्य समूह सिंहसे दुःखित मृगोंके नाईं रक्षकको न प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ इसी मध्यमें बड़े क्रोधवश में प्राप्तहोता हुआ कालखञ्ज ऐसा कहागया दैत्य विष्णु के सामने दौरा ॥ २३ ॥ व पैने पांच बाणोंसे विष्णुजी को मारकर और क्रोधित होकर उसने झुकेहुये ग्रन्थिवाले दश बाणोंसे गरुड़जी को मारा ॥ २४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी ने ज्वाला की मालाओं से घिरेहुये सुदर्शनचक्र को उस कालखञ्ज दैत्यके बध के लिये छोड़ा ॥ २५ ॥ और वह दैत्य भी वासुदेवजीके हाथसे छूटेहुये उस चक्रको आते देख मुंह फैलाकर ग्रसने के लिये उस चक्रके सामने आया ॥ २६ ॥ व महादैत्यने उस चक्र को

लील लिया व वासुदेवजी को भलीभांति उद्देशकर खड़ेहो खड़ेहो ऐसा कहा तदनन्तर बाणोंका प्रक्षेप किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर शरोंसे विशेषकर कटेहुये चक्रधारी
विष्णुजी चक्रके ग्रसने से गरुड़ समेत कठिन पीडाको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ इसी बीचमें त्रिपुर को भस्म करनेवाले शिवभगवान् वैसी दशामें प्राप्तहुये विष्णुजी को
व इन्द्रको भी विमुख देखकर क्रोधित हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर शूल के प्रहारसे उस दैत्य पुत्रको मारकर व पिनाक नामक धनुष को छुटेहुये बाणोंसे उच्च प्रकार से
अपर दैत्योंको मारा ॥ ३० ॥ और सदाशिव भगवान्ने कालप्रभ, प्रकाल, कालास्य व कालविग्रह तथा अन्यभी नायकों को मारा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बड़े विकराल वे

वासुदेवंसमुद्दिश्य ततश्चिक्षेपसायकान् ॥ २७ ॥ ततश्चक्रीसचक्रेण ग्रस्तेनशरविक्षतः ॥ सुपर्णेनसमायुक्तो जगामवि
षमांव्यथाम् ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेक्रुद्धो भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ दृष्ट्वाहरिंतथाभूतंशक्रंचापिपराङ्मुखम् ॥ २९ ॥
ततःशूलप्रहारेण तंनिहत्यादितेस्सुतम् ॥ शरैःपिनाकनिर्मुक्तैर्जघानोच्चैस्तथापरान् ॥ ३० ॥ कालप्रभंप्रकालंचकाला
स्यंकालविग्रहम् ॥ जघानभगवाञ्छम्भुस्तथान्यानपिनायकान् ॥ ३१ ॥ ततोविषण्णास्तेसर्वे दानवाअतिदारुणाः ॥
पलायनपराजाता निरुत्साहाद्विषःक्षये ॥ ३२ ॥ ततःशक्रश्चविष्णुश्चनष्टसंज्ञौधृतायुधौ ॥ श्लाघयन्तौमहादेवं संस्थि
तौरणमूर्द्धनि ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेभग्नान् समुद्वीक्ष्यादितेस्सुतान् ॥ जघ्नुःशरशतैःशस्त्रैः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥३४॥
अथतेहतभूयिष्ठादानवाबलसत्वराः ॥ हन्यमानाःशितैर्बाणैस्त्रिदशैर्जितकाङ्क्षिभिः ॥ ३५ ॥ अगम्यंमनसातेषां प्रविष्टा
वरुणालयम् ॥ शस्त्रैश्चक्षतसर्वाङ्गा हतनाथाःसुदुःखिताः ॥ ३६ ॥इति श्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येचतुस्त्रिंशोध्यायः ॥३४॥

सब दैत्य शत्रुके नाशन में उत्साह हीन व दुःखित होतेहुये भागने में तत्पर हुये ॥ ३२ ॥ उसके उपरान्त आयुध को धारण किये व रणशीर्ष में प्राप्त व संज्ञारहित
इन्द्र व विष्णुजी महादेव की प्रशंसा कररहे थे ॥ ३३ ॥ इसी मध्यमें दिति महारानीके पुत्रोंको अङ्ग भङ्ग देखकर इन्द्र समेत सब देवताओंने सैकडों शर इत्यादिक
से मारा ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर बहुत से मारेहुये व बलसे शीघ्रगामी दानवोंको जयके अभिलाषी देवताओं ने हनन किया ॥ ३५ ॥ व मारेहुये नायकों वाले
शस्त्रोंसे कटे पिटे अङ्गोंवाले दैत्योंने उन देवताओं के मनसे अगम्य (न जानेयोग्य) वरुणालय समुद्र में प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४ ॥

दो० । पैंतिसके अध्यायमें कहत चरित्र रसाल । जब कुंभज शोष्यो जलधि तब सुर भये निहाल ॥ इसभांति उन दैत्योंके नाश होते व पीडित होतेहुये सब देवतोत्तम प्रसन्न मनसे महेश्वर देवजीके निकट जाकर ॥ १ ॥ इसके अनन्तर उन शिवजीसे विनिर्मुक्त (बिदा कियेहुये) इन्द्र व विष्णुको आगे किये सब देवता अपने २ स्थानको यथा योग्य गये ॥ २ ॥ और देवतोत्तमों से नष्ट आशावाले उनसबदानव श्रेष्ठोंने देवताओंके नाशके लिये सम्मति किया ॥ ३ ॥ व उन दैत्यो के सम्मति करतेहुये यह निश्चय प्राप्तहुवा कि धर्म नष्टकरने के सिवा अन्य कर्म में देवतोंका नाश न होगा ॥ ४ ॥ इसलिये जे तपस्वी हैं वे और जे यज्ञके कर्म में

सूतउवाच ॥ एवंतेषुप्रभग्नेषु हतेषुचसुरोत्तमाः ॥ प्रहृष्टमनसासर्वे गत्वादेवंमहेश्वरम् ॥ १ ॥ तेनैवाथविनिर्मुक्ताःप्रणम्यचमुहुर्मुहुः ॥ स्वंस्वंस्थानंयथाजग्मुःशक्रविष्णुपुरस्सराः ॥ २ ॥ तेपिदानवशार्दूला हताशाश्चसुरोत्तमैः ॥ मन्त्रम्प्रचक्रिरेसर्वे नाशायत्रिदिवौकसाम् ॥ ३ ॥ तेषांमन्त्रयतामेषनिश्चयःसमपद्यत ॥ नान्यत्रधर्मविध्वंसाद्देवानांजायतेक्षयः ॥ ४ ॥ तस्मात्तपस्विनोयेते येचयज्ञपरायणाः ॥ तथान्येनिरताधर्म्मे निहन्तव्यानिशागमे ॥ ५ ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा निष्क्रम्यवरुणालयात् ॥ रात्रौसदैवनिघ्नन्ति जनान्धर्मपरायणान् ॥ ६ ॥ यत्रयत्रभवेद्यज्ञः सत्रंवायज्ञमेववा ॥ तत्रतत्रनिशायोगे प्रकुर्वन्तिजनक्षयम् ॥ ७ ॥ तैःप्रभूतामखाध्वस्ता दीक्षिताविनिपातिताः ॥ ऋत्विग्यज्ञस्तथान्येपि सामान्याद्द्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ आश्रमेमुनिमुख्यस्य शाण्डिल्यस्यमहात्मनः ॥ सहस्रंब्राह्मणेन्द्राणां भक्षितंतैर्दुरात्मभिः ॥ ९ ॥ शतानिचसहस्राणिनिहतानिद्विजन्मनाम् ॥ विश्वामित्रस्यपञ्चैव सप्तात्रेयस्यधीमतः ॥ १० ॥ एतस्मि

तत्पर तथा अन्य नर धर्म में लगेहुये हैं वे रात्रिके आनेपर मारनेके योग्यहैं ॥ ५ ॥ इसप्रकार वे निश्चयकर व समुद्रसे निकलकर सदैव रात्रिमें धर्म में तत्पर जनोंको नाश करनेलगे ॥ ६ ॥ जिस जिस स्थानमें पूजन व सदावर्त और यज्ञही होताथा उस उस स्थानमें रात्रिके योगमें मनुष्योंका नाश कररहे थे ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उन दैत्योंने बहुत से यज्ञोंको विध्वंस किया व यज्ञमें दीक्षित नरोंको नाश किया तथा यज्ञ व ऋत्विक् (धनसे वरण किये) और अन्य भी सामान्यनरों को नष्ट करदिया ॥ ८ ॥ व दुष्टचित्त या मनवाले उन दैत्योंने मुनियों में प्रधान महात्मा शांडिल्यजीके आश्रम में हज़ार ब्राह्मणोत्तमों को भक्षण कर लिया ॥ ९ ॥ व सैकड़ों

तथा हजारों ब्राह्मणोंको मारा और विश्वामित्रजीके आश्रममें पांच विद्वान् व अत्रिजीके आश्रम में सात ब्राह्मणों को नाश किया ॥ १० ॥ इसी समयमें कालेय नामक दैत्योंके भयसे दुःखित समस्त पृथ्वीतल यज्ञके उत्साहोंसे नष्ट होगया ॥११॥ और रात्रिमें कोई पुरुष भूतल में नहीं सोताथा और सब नर अस्त्रोंको धारण किये व अचानक बाणोंको हाथमें लिये रहते थे ॥ १२ ॥ और धर्म पात्र विध्वंस किये हुये जो कोई मनुष्य रात्रिमें सोते थे प्रातःकालही उनकी केवल हड्डियां देख पड़तीथीं ॥ १३॥ इसके अनन्तर सब देवताओंके समूह कि जिनके आगे ब्रह्मा, विष्णु चलते थे वे यज्ञ भागसे रहित कियेहुये परमात्मा सदाशिवजीके समीप गये ॥१४॥

न्नेवकालेतु समस्तंधरणीतलम् ॥ नष्टयज्ञोत्सवंजातंकालेयभयपीडितम् ॥ ११ ॥ नकश्चिच्छयनंरात्रौ प्रकुर्व्वीतमही
तले ॥ धृतायुधाजनाःसर्वे सहसाबाणकराअपि ॥ १२ ॥ रात्रौस्वपन्तियेकेचिद्विध्वस्ताधर्मभाजनाः ॥ तेषामस्थीनि
दृश्यन्ते प्रातरेवहिकेवलम् ॥ १३ ॥ अथदेवगणास्सर्वेयज्ञभागंविनाकृताः ॥ प्रजग्मुःपरमात्मानंब्रह्मविष्णुपुरस्सराः॥
१४ ॥ ततोगत्वासमुद्रान्तं वधायचसुरद्विषाम् ॥ नशेकुर्विषमस्थांस्तान् मनसापिप्रधर्षितुम् ॥ १५ ॥ ततःसमुद्रनाशा
यमन्त्रंचक्रुःसुदुःखिताः ॥ नास्मिन्स्थितेभवन्त्येव वध्यादानवसत्तमाः ॥ १६ ॥ अगस्त्येनविनानैष शोषंयास्यति
सागरः ॥ तस्मात्तम्प्रार्थनाकृत्या गत्वायत्रमुनीश्वरः ॥ १७ ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे सतिष्ठतिचसन्मुनिः ॥ तस्मात्तत्रा
पिगच्छामो येनागच्छेत्ससत्वरम् ॥ १८ ॥ एवंनिश्चित्यतेसर्वे त्रिदशास्तस्यचाश्रमम् ॥ संप्राप्तामुनिमुख्यस्य मित्रा

तदनन्तर सुर शत्रुओंके मारनेके लिये समुद्र पर्य्यन्त जाकर विषम स्थानमें टिकेहुये उन दैत्योंको मनसे भी प्रधर्षणा (तिरस्कार) करने के लिये न समर्थ हुये ॥ १५ ॥ तदनन्तर बहुतही दुखित उन देवतोंने समुद्रके नाश करनेके लिये सम्मति किया क्योंकि इस समुद्रमें टिकेहुये दानवोत्तम मारने के योग्य नहीं हैं ॥ १६ ॥ व अगस्त्य मुनिके विना यह समुद्र शोषको न प्राप्त होवैगा इसलिये जहां मुनिनाथ हैं वहां जाकर भलीभांति प्रार्थना करना चाहिये ॥ १७ ॥ वे उत्तम मुनि चमत्कार नगर के क्षेत्रमें टिके हैं इसलिये वहां भी जावैं जिससे कि वे मुनि शीघ्रही आजावै ॥ १८ ॥ ऐसा निश्चयकर वे सब देवता मित्रावरुण से उपजे व

मुनियोंमें मुख्य उन अगस्त्यज़ीके आश्रममें प्राप्तहुये ॥ १९ ॥ और वे उत्तम मुनि अगस्त्य भी देवतोत्तमों को भलीभांति प्राप्तहुये देखकर प्रसन्न होतेहुये अति शीघ्र सामने प्राप्तहुए ॥ २० ॥ और विस्मय से प्रफुल्लित नेत्रोंवाले व हाथ जोड़े हुये अगस्त्य ब्राह्मण उन देवताओं को देखकर हर्ष से गद्गदी वाणी से वचनको बोले ॥ २१ ॥ कि भूमि मे यह चमत्कार नगरका क्षेत्र पवित्र भी स्थित था परन्तु तुमलोगोंके समाश्रय से अति पुनीतहोगया ॥ २२ ॥ इस लिये इससमय जो कार्य मुझ से भलीभांति सिद्ध होय उसको तुमलोग कहो यद्यपि बहुत कठिन होगा तथापि उस सबको मैं करूंगा ॥ २३ ॥ देवता बोले कि कालेय ऐसे देवता जो कि देवताओं के

वरुणजन्मनः ॥ १९ ॥ सोपिसर्वान्समालोक्य सम्प्राप्तान्सुरसत्तमान् ॥ प्रहृष्टःसम्मुखस्तूर्णं जगामातीवसन्मुनिः ॥
२० ॥ प्रोवाचप्राञ्जलिर्वाक्यंहर्षगद्गदयागिरा ॥ ब्राह्मणस्तान्सुरान्दृष्ट्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २१ ॥ चमत्कारपुरंक्षे
त्रमेतन्मेध्यमपिस्थितम् ॥ भूमौमेध्यतरंजातंयुष्माकंहिसमाश्रयात् ॥ २२ ॥ तस्माद्वदतयत्कृत्यं मयासंसिद्ध्यतेऽधु
ना ॥ तत्सर्वंप्रकरिष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुस्तरम् ॥ २३ ॥ देवाऊचुः ॥ कालेयाइतिदैतेया हतशेषाःसुरैःकृताः ॥ तेसमु
द्रंसमाश्रित्य निघ्नन्त्यशुभकारिणः ॥ २४ ॥ शुभेनाशमनुप्राप्ते ध्रुवंनाशोदिवौकसाम् ॥ तस्मात्तेषांवधार्थाय त्वंशोष
यमहार्णवम् ॥ २५ ॥ येनतेगोचरप्राप्ता दृष्टेर्दानवसत्तमाः॥वध्यन्तेविबुधैःसाध्या जायन्तेचमखाइह ॥ २६ ॥ अगस्त्य
उवाच ॥ अहंसंवत्सरस्यान्ते शोषयिष्यामिसागरम् ॥ यावद्भूयोपिवर्षान्ते कार्यमागमनंध्रुवम् ॥ २७ ॥ ततोमयासमं
गत्वाशोषितेवरुणालये॥हन्तव्यादानवादुष्टा यैरिदंपीडितंजगत् ॥ २८ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे गताःस्वेस्वेनिकेतने ॥

मारने से शेष रहे वे अशुभ कर्म के कारी समुद्र में समाश्रित होकर नाशकर रहे हैं ॥ २४ ॥ और शुभकार्य्य को नाश में प्राप्तहोने पर अवश्य देवताओं का नाशहोगा इसलिये उन दैत्यों के वध के लियेतुम महासागर को शोषो ॥ २५ ॥ जिमसे दृष्टिगोचर में प्राप्तहुये वे दानवोत्तम देवताओं से वध कियेजावैं और इससंसार में यज्ञों की साधना होवै ॥ २६ ॥ अगस्त्य मुनि बोले कि वर्ष के अन्त में मैं समुद्र को शोषूंगा जबतक फिर भी वर्ष के अन्त में तुमलोगों को अवश्य आगमन करनाचाहिये ॥ २७ ॥ तदनन्तर मेरे साथही जाकर समुद्र को शोषते हुये वे दुष्टदैत्य मारनेके योग्य होवैंगे कि जिनसे यह संसार पीडित है ॥ २८ ॥ तदनन्तर सब देवसमूह

अपने २ स्थान को चले गये व अगस्त्य मुनिने भी विद्या से उपजे हुये उद्योग को किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर जितने पीठ (पूज्याधार) भूतल में हैं उन सबको महा मुनि अगस्त्यजी मन्त्रकी शक्तिसे वहां लेआये ॥ ३० ॥ उन पीठोंमें अष्टमी व चतुर्दशी तिथि को योगिनियों तथा विशेष कर कन्याओं के समूह को भक्तिसे पूजकर ॥ ३१ ॥ उस ब्राह्मण ने विशोषिणी नामक विद्याका आराधन किया व उस द्विजने दिक्पाल व क्षेत्रपालोंको भी पूजकर ॥ ३२ ॥ उस विप्रने श्रद्धासे आकाशगामियोंके देवताओं का पूजन किया तदनन्तर एक संवत्सर के अन्तमें उन अगस्त्य मुनिकी देवता भलीभांति सिद्ध होगई ॥ ३३ ॥ व यह बोली कि हे सन्मुने ! मैं तुम्हारे

अगस्त्योपिसमुद्योगं चक्रेविद्यासमुद्भवम् ॥ २९ ॥ ततस्सर्वाणिपीठानियानिसन्तिधरातले ॥ तानितत्रानयामासम न्त्रशक्त्यामहामुनिः ॥ ३० ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां तेषुसम्पूज्यभक्तितः ॥ योगिनीनांचवृन्दानि कन्यकानांविशे षतः ॥ ३१ ॥ विद्यांविशोषिणींनाम समाराधयतद्विजः ॥ पूजयित्वादिशांपालान् क्षेत्रपालानपिद्विजः ॥ ३२ ॥ आ काशचारिणांचैव देवताःश्रद्धयाद्विजः॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेसुसिद्धातस्यदेवता ॥ ३३ ॥ प्रोवाचवदयत्कृत्यं सिद्धाहंत वसन्मुने ॥ ३४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यदिदेविप्रसन्नामेतदास्यंविशसत्वरम् ॥ येनसंशोषयाम्याशु समुद्रंतववाक्यतः॥ ३५ ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय प्रविष्टासत्वरंमुखे ॥ संशोषणीमहाविद्या तस्यर्षेर्भावितात्मनः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ वरायुधधराहृष्टाःसन्नद्धायुद्धहेतवे ॥ ३७ ॥ ततःसम्प्रस्थितोविप्रो देवैस्सर्वैस्समाहितः ॥ पारेवि शत्समुद्रस्य संशुष्कवदनस्तदा ॥ ३८ ॥ अथगत्वासमुद्रान्तं स्तूयमानोदिवालयैः ॥ पिपासाकुलितोतीव सर्वा

सिद्धहूं जो कार्यहो उसको कहो ॥ ३४ ॥ अगस्त्यमुनि बोले कि हे देवि ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हुईहो तो मुखमें शीघ्रही प्रवेश करो जिससे तुम्हारे वाक्य से जल्दी मैं समुद्रका संशोषणकरूं ॥ ३५ ॥ उस संशोषणी महाविद्याने वैसाही होगा ऐसी प्रतिज्ञाकर उन शुद्धमन या चित्तवाले अगस्त्य महर्षि के मुखमें शीघ्रही प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ इसी मध्यमें श्रेष्ठ अस्त्रोंको धारण किये व युद्धके लिये सजे यथा प्रसन्न होतेहुये इन्द्र समेत सब देवता प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सब देवताओंसे भलीभांति प्रस्थान किये हुये व सावधान तथा सूखे मुखवाले वे अगस्त्यमुनि उस समय समुद्रके पार बैठगये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर देवोंसे स्तुति कियेहुये व प्यास से बहुतही व्याकुल अग-

स्त्यमुनि समुद्र के समीप जाकर प्रसन्नता से सब देवताओं से बोले ॥ ३९ ॥ कि इस समय मैं समुद्रको शीघ्रही शोषलूंगा व तुम लोग दैत्योंके मारनेके लिये शीघ्रही उद्योग सहित होवो ॥ ४० ॥ सूतजी बोले कि मुनि श्रेष्ठ अगस्त्यजी ने ऐसा कहकर व गण्डूषसम्पुट (अंगूठेके निकट गढ़े) को बांधकर निरादरसे ग्राहादिकोंसे व्याप्त समस्त महासागरको पीलिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर स्थल (चट्टान) के सदृशहोनेपर जयकी इच्छा करनेवाले सब देवतालोग पैनेबाणों से चारों ओर उन दैत्योंको मारनेलगे ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर यथा शक्तिसे अति कराल बड़ायुद्धकर व बहुत से मारने से जे बचे वे भूमिको फोड़कर नीचे चलेगये ॥ ४३ ॥ तद-

न्देवानुवाचह ॥ ३९ ॥ इदानींसागरंसद्यःशोषयिष्यामिसत्वरम् ॥ यूयंभवतसोद्योगा वधायचसुरद्विषाम् ॥ ४० ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो बद्धागण्डूषसम्पुटम् ॥ हेलयाप्रययौसर्वंग्राहैःकीर्णंमहार्णवम् ॥ ४१ ॥ ततःस्थलोपमे याते ते दैत्याःसुरसत्तमैः ॥ वध्यन्तेनिशितैर्बाणैस्समन्ताद्विजिगीषुभिः ॥ ४२ ॥ अथकृत्वामहद्युद्धं यथाशक्त्यातिदारुणम् ॥ हतभूयिष्ठशेषाये भित्त्वाभूमिंगताअधः ॥ ४३ ॥ ततःप्रोचुःसुरास्सर्वे गत्वातन्मुनिसत्तमम् ॥ परित्यजजलंभूयःपूरणार्थंमहोदधेः ॥ ४४ ॥ नैषावसुमतीविप्र समुद्रेणविनाकृता ॥ राजतेवस्त्रसंत्यक्ता यथानारीविभूषिता ॥ ४५ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यामयाराधिताविद्या वर्षनामप्रशोषिणी ॥ तयापीतमिदंतोयं परिणामगतंतथा ॥ ४६ ॥ एषयास्यतिवैपूर्णं भूयोपिवरुणालयम् ॥ खातश्चागाधतांप्राप्तोगङ्गातोयैःसुनिर्मलैः ॥ ४७ ॥ सगरोनामभूपालो भविष्यतिमहीतले ॥ तत्पुत्राःषष्टिसाहस्राः खनिष्यन्तिनसंशयः ॥ ४८ ॥ तस्यैवान्वयवाञ्राजा भविष्यतिभगीरथः ॥ सज्ञा

नन्तर सब देवता उन मुनिश्रेष्ठ के समीप जाकर बोले कि महासागर के पूर्णहोनेके लिये जलको फिर परित्याग करिये ॥ ४४ ॥ क्योंकि हे द्विज ! समुद्र से रहित कीगई यह पृथ्वी नहीं शोभती है जैसे कि भूषणों से भूषित नारी वसन के विना नहीं सोहती है ॥ ४५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि वर्षभर में मैंने जिस प्रशोषिणी नाम विद्या का आराधन कियाहै उसने इस जलको पीलिया वैसेही परिणाम को प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ और फिर भी यह समुद्र पूर्ण होजायगा व बहुत निर्मल गङ्गाजी के जलोंसे खोदाहुआ गम्भीरताको प्राप्तहोगा ॥ ४७ ॥ सगर नामक भूपति भूतलमें होवैगा उसके साठि हजार पुत्र निरसन्देह समुद्रको खोदैंगे ॥ ४८ ॥ उसी के वंशवाले

भगीरथ राजा होंगे वे कुटुम्बियों के कारण ब्रह्माण्ड से श्री गङ्गाजी को लावैंगे ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस गङ्गाजी के प्रवाह से जलनिधि (समुद्र) सबओर भलीभांति पूर्ण होजायगा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ५० ॥ देवता बोले कि हे मुनि श्रेष्ठ ! देवताओंके कार्यको आपने सिद्ध किया इस लिये हे सब मुनियोंके नायक ! तुमचित्त में टिके हुये वरदान की प्रार्थना करो ॥ ५१ ॥ अगस्त्य जी बोले कि हे देवतोत्तमो ! चमत्कार नगर के क्षेत्र में मंत्रों के प्रभाव से मैं समस्त पीठों को लाया हूं ॥ ५२ ॥ इसलिये उनसब योगिनी व विशेषकर मातृ देवताओं के प्रभावसे उपजाहुवा निवास सदैव वहांही पर होवै ॥ ५३ ॥ व अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को जो मनुष्य श्रद्धा

तिकारणाद्गङ्गां ब्रह्माण्डादानयिष्यति ॥ ४९ ॥ प्रवाहेणततस्तस्याःसमन्तादम्भसान्निधिः ॥भविष्यतिसुसम्पूर्णः सत्य
मेतन्मयोदितम् ॥ ५० ॥ देवाऊचुः ॥ देवकृत्यंमुनिश्रेष्ठ भवताह्युपपादितम् ॥तस्मात्प्रार्थयचित्तस्थं वरंसर्वमुनीश्वर ॥
५१ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रेमयापीठान्यशेषतः ॥ आनीतानिप्रभावेण मन्त्राणांसुरसत्तमाः ॥ ५२ ॥
तस्मात्तेषांसदावासस्तत्रैवास्तुप्रभावजः ॥ सर्वासांयोगिनीनांच मातॄणांचविशेषतः ॥ ५३ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां ता
नियःश्रद्धयानरः ॥ पूजयिष्यतितस्यस्यात्समस्तंमनसेप्सितम् ॥ ५४ ॥ देवाऊचुः ॥ यस्माच्चित्राणिपीठानि त्वयानी
तानितत्रहि ॥ तस्माच्चित्रेश्वरन्नाम पीठमेकंभविष्यति ॥ ५५ ॥ योयंकाममभिध्याय तत्रपूजांकरिष्यति ॥ योगिनी
नांचमातॄणां विद्यानाञ्चविशेषतः ॥ ५६ ॥ तंतंकामन्नरश्शीघ्रंसम्प्राप्स्यतिमहामुने ॥ अस्माकंवरदानेन यद्यपिस्यात्सु
पापकृत् ॥ ५७ ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे तमामन्त्र्यमुनीश्वरम् ॥ गतास्त्रिविष्टपंहृष्टाः सोप्यगस्त्यःस्वमाश्रमम् ॥ ५८ ॥

से उन पीठ देवताओं का पूजन करै उसके सम्पूर्ण मनोभिलाष होवैं ॥ ५४ ॥ देवता बोले कि जिसलिये तुमसे चित्र विचित्र पीठ वहां लायेगये इस से अवश्य चित्रेश्वरनामक एक पीठ होगा ॥ ५५ ॥ और जो मनुष्य जिस कामना का चिन्तवन कर वहां योगिनी व मातृ देवताओं व विशेषतासे विद्याओं का पूजन करैगा ॥५६॥ हे महामुने ! यद्यपि बड़ा पापकारी होगा तथापि हमलोगों के वरदान से उसउस कामना को वह मनुष्य शीघ्रही प्राप्त होवैगा ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर सब

देवता उन मुनिनाथ से पूंछकर प्रसन्न होतेहुये स्वर्गको चले गये व वे अगस्त्य मुनि भी अपने आश्रम को गये ॥ ५८ ॥ यह समस्त वृत्तान्त तुमलोगों से कहा गया जिस प्रकार देवताओं के विशेषकर कार्यसिद्धि के लिये पहले अगस्त्य मुनिने उस जलनिधि को पिया है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येअगस्त्याश्रमवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पीठि पूजि चित्रेश्वरी होहिं सिद्ध सब काज। सो छत्तिस अध्यायमें कहत सूत मुनिराज ॥ ऋषिलोग बोले कि अगस्त्य मुनिसे निर्मित यह चित्रेश्वरपीठ जिस

सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यथासपयसान्निधिः ॥ अगस्त्येनपुरापीतो देवकार्यविसिद्धये ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येपञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ चित्रेश्वरमिदंपीठमगस्त्यमुनिनिर्मितम् ॥ यत्प्रमाणप्रभावञ्च तदस्माकंप्रकीर्त्तय ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ यस्यपीठस्यमाहात्म्यं वक्तुंनोशक्यतेद्विजाः ॥ सहस्रेणापिवर्षेण देवानामयुतैरपि ॥ २ ॥ तत्रपीठेह्यनुप्राप्ताःशतशोथसहस्रशः ॥ अनुध्यानसमायुक्ता योगिनःशंसितव्रताः ॥ ३ ॥ अथपीठेषुयासिद्धिर्वर्षानुष्ठानतोभवेत् ॥ दिनेनैकेनतांसिद्धिंलभन्तेयोगिनोध्रुवम् ॥ ४ ॥ यस्तत्राथर्वणांमन्त्राञ्जपेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ तेषामर्थंभवेत्सर्वंफलम्प्राप्नोतिसध्रुवम् ॥ ५ ॥ पुत्रकामोनरस्तत्र पुंलिङ्गान्योजपेन्नरः ॥ सलभेतेप्सितान्पुत्रान् यद्यपिस्याज्जरान्वितः ॥ ६ ॥

प्रमाण व प्रभाव का होवै उसको हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! देवताओं के हजार बर्ष व दशहजार वर्षसे भी जिसपीठ का माहात्म्य नहीं कहा जासक्ताहै ॥ २ ॥ उसी पीठमें प्रशंसित व्रत या कर्मवाले व ध्यानसंयुक्त सैकड़ों व हजारों योगी जन प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर पीठोंमें वर्षभर अनुष्ठान करने से जो सिद्धि होती है उस सिद्धिको योगीजन एकही दिन से अवश्य प्राप्तहोते हैं ॥ ४ ॥ श्रद्धासे संयुत जो मनुष्य वहांपर अथर्व वेद के मन्त्रों को जपते हैं उन मन्त्रोंके सब अर्थ होतेहैं और वह जपकर्तानर अवश्यफलको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ व पुत्रकी कामनावाला जो पुरुष वहांपर पुलिङ्ग मन्त्रोंको जपेगा यद्यपि वृद्धता

से संयुत भी होगा तथापि वह प्रिय पुत्रों को पावैगा ॥ ६ ॥ और वहांपर पुत्रका अभिलाषी जो मनुष्य गर्भोपनिषद् मंत्रको जपता है वह बांझ स्त्री के प्रसङ्गसे भी पुत्र संयुत होता है ॥ ७ ॥ व शत्रु जनको विनाश करने के लिये जो नर उसपीठके समीप शतरुद्री को जपता है उसके शत्रु शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ ८ ॥ वहां पर जो मनुष्य भूत, प्रेत, पिशाचादिकों से रक्षाके लिये वामदेव ऐसे मंत्र को जपताहै वह अवश्यकर उपद्रव रहित होताहै ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वहांपर जिस कन्या का ध्यान करता हुवा कन्याके लिये जो मनुष्य ददाति ऐसे मंत्रको जपता है वह उसको निस्सन्देह प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ और जो मनुज भूपति की प्रसन्नता

गर्भोपनिषदंतत्र पुत्रकामोजपेन्नरः ॥ अपिबन्ध्याप्रसङ्गेनस्यात्सपुत्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ शत्रुलोकविनाशाय योजपे च्छतरुद्रियम् ॥ तस्मिन्पीठेरयस्तस्य सद्योगच्छन्तिसङ्क्षयम् ॥ ८ ॥ भूतप्रेतपिशाचादिरक्षार्थंतत्रमानवः ॥ योजपे द्वामदेवंच सस्याद्धिनिरुपद्रवः ॥ ९ ॥ यांकन्यांध्यायमानस्तुसतांप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ कोददातिनरस्तत्र कन्यार्थंयो जपेदथ ॥ १० ॥ योभूपालप्रसादार्थमिमंदेवंतुसंजपेत् ॥ निरर्गलःप्रसादःस्यात्तस्यपार्थिवसम्भवः ॥ ११ ॥ स्वस्त्री स्नेहकृतेविप्रास्तंपत्नीभिर्जपेदिति ॥ यस्तुभार्य्याभवेत्साध्वी तस्यसास्नेहवत्सला ॥ १२ ॥ योलोकानुग्रहार्थायजपे ददितिरित्यपि ॥ तस्यलोकानुरागःस्यात्सुलाभश्चविशेषतः ॥ १३ ॥ वित्तार्थीयोजपेत्तत्र श्रीसूक्तंमनुजोद्विजाः ॥ स वंतस्तस्यवित्तानि समागच्छन्त्यनेकशः ॥ १४ ॥ भूमीतियोजपेत्सामभूम्यर्थंतत्रमानवः ॥ सभवेद्भूपतिर्नूनं नीच जातिरपिध्रुवम् ॥ १५ ॥ जपेद्रथन्तरंसाम यानार्थंतत्रयोनरः ॥ सप्राप्नोतिहियानानिशीघ्रगानिशुभानिच ॥ १६ ॥

के लिये इमं देव ऐसे मंत्रको जपताहै उसके भूपसे उपजाहुवा अप्रतिबन्ध प्रसाद होताहै ॥ ११ ॥ हे द्विजो ! जो पुरुष अपनी स्त्रीके नेहके लिये तं पत्नीभिः ऐसे मंत्रका जप करताहै उसकी नारी नेहसे प्यारी व पतिव्रता होती है ॥ १२ ॥ और जो नर मनुष्यों के अनुग्रह के लिये ददिति ऐसेही मंत्रको जपताहै उसके ऊपर मनुष्यों का स्नेह व विशेषता से लाभ होताहै ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस स्थान में द्रव्य का अभिलाषी जो पुरुष लक्ष्मीसूक्त को जपताहै उसके अनेकों प्रकार के द्रव्य सब ओर से भलीभांति आते हैं ॥ १४ ॥ उस तीर्थमें भूमिके लिये जो मनुष्य भूमि ऐसे साम मंत्रको जपताहै वह नीच जाति भी अवश्य भूपति होताहै ॥ १५ ॥

और वहांपर जो पुरुष रथन्तरं ऐसे सामवेद के मंत्रको जपता है वह अवश्य शीघ्रगामी व उत्तम वाहनों को पाताहै ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहांपर हाथी का अभिलाषी जो नर गणानां ऐसे मन्त्रको जपताहै वह भूमिको मदसे डुबानेवाले हाथियों को प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य रक्षाके लिये नतद्रक्षा ऐसे मन्त्र को जपताहै उसकी सम व विषम स्थानों में सब ओर से रक्षा होतीहै ॥ १८ ॥ और सावधान होताहुवा जो पुरुष रोग विनाश होने के लिये ससर्पय ऐसी श्रेष्ठ ऋचाको जपताहै वह रोगोंसे छूट जाताहै ॥ १९ ॥ वहांपर ग्रहोंकी पीड़ासे दुःखित जो मनुष्य यद्दुभी ऐसे मन्त्रको जपता है उसके ग्रह निरसन्देह सानुकूल याने

गजार्थीयोजपेत्तत्र गणानांद्विजसत्तमाः ॥ सप्राप्नोतिगजान्मर्त्यो मदप्लावितभूतलान् ॥ १७ ॥ नतद्रक्षेतियोमन्त्रं जपेद्रक्षःकृतेनरः ॥ तस्यस्यात्सर्वतोरक्षा समेषुविषमेषुच ॥ १८ ॥ ससर्पयइतिश्रेष्ठांयोजपेत्तुसमाहितः ॥ ऋचंरोग विनाशायसरोगैःपरिमुच्यते ॥ १९ ॥ यद्दुभीयोजपेत्तत्रग्रहपीडार्दितोनरः ॥ सानुकूलाग्रहास्तस्य प्रभवन्तिनसंश यः ॥ २० ॥ भूतपीडार्दितोयश्च बृहत्सामजपेन्नरः ॥ पितृवज्जायतेतस्य सम्भूतोह्यन्तकोपिचेत् ॥ २१ ॥ यात्रासि द्धिकृतेयश्च जपेत्सूक्तंचशाकुनम् ॥ तस्यसंसिद्ध्यतेयात्रायद्यपिस्यादकिञ्चनः ॥२२॥ सर्प्पनाशाययस्तत्रसार्प्पसूक्तंज पेन्नरः ॥ नतस्यमन्दिरेसर्प्पाः प्रविशन्तिकथञ्चन ॥ २३ ॥विषनाशाययस्तत्र जपेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ उत्तिष्ठेतिविषं सद्यस्तस्यनाशंप्रयास्यति ॥ २४ ॥ स्थावरंजङ्गमंवापिकृत्रिमंयदिवाविषम् ॥ तस्यनाम्नाविनिर्यातितमःसूर्य्योदये

अरिष्टतासे रहित होजाते हैं ॥ २० ॥ और भूत पीड़ासे विकल जो पुरुष बृहत्साम ऐसे मन्त्रको जपताहै उसके यदि यमराज भी हुयेहों तो पिताके तुल्य होते हैं ॥ २१ ॥ व जो मनुज यात्राकी सिद्धिके लिये शकुन वाले सूक्तको जपता है यदि वह निर्द्रव्यभी हो तथापि उसकी यात्रा भलीभांति सिद्ध होती है ॥ २२ ॥ और जो नर वहां सर्पों के नाश के लिये सर्पसूक्तको जपता है उसके मन्दिर में सर्प किसी प्रकार नहीं प्रवेश करते हैं ॥ २३ ॥ व उस स्थान में श्रद्धा संयुत जो पुरुष विष नाशने के लिये उत्तिष्ठ ऐसे मन्त्रको जपता है उसका विष उसी क्षण नाश होजाताहै ॥ २४ ॥ चर या अचर अथवा बनाया हुवा विषहो उसके नामसे वैसेही नष्ट

होजाताहै जैसे कि सूर्य्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ २५ ॥ व उस स्थानमें श्रद्धा संयुत जो मनुज व्याघ्र साम ऐसे मन्त्रको जपताहै उसके सर्प व व्याघ्रा-
दिक पशु सौम्य चित्तवाले होजाते हैं ॥ २६ ॥ और जो पुरुष कृषी कर्म के प्रसिद्धिके लिये लाङ्गली ऐसे मन्त्रको जपताहै तो वृष्टि रहितभी इस संसार में उसकी
कृषी प्रसिद्ध होतीहै ॥ २७ ॥ और जो नर वहांपर ईति ⊛ नाशनेके लिये देवव्रत मन्त्रको जपताहै उसके भलीभांति कीर्तनहीके करनेसे ईतियां नष्ट होजाती हैं ॥२८॥
और अनावृष्टि से संसारको नष्ट होतेहुये वहांपर जो पुरुष पञ्चेन्द्र ऐसे मन्त्रका जप करताहै उसको हाथ में होम याने हव्यादिके करने पर उन मन्त्रों से जलका

यथा ॥ २५ ॥ व्याघ्रसामजपेद्यस्तु तत्रश्रद्धासमन्वितः ॥ तस्यव्याघ्रादयोव्याला जायन्तेसौम्यचेतसः ॥ २६ ॥ कृषिकर्म्मप्रसिद्ध्यर्थं योजपेल्लाङ्गलीतिच ॥ वृष्टिहीनेपिलोकेस्मिन् कृषिस्तस्यप्रसिद्ध्यति ॥ २७ ॥ ईतिनाशाययस्तत्र जपेद्देवव्रतन्नरः ॥ ततःसङ्कीर्तनादेव ईतयोयान्तिसङ्क्षयम् ॥ २८ ॥ अनावृष्टिहतेलोके पञ्चेन्द्रंतत्रयोजपेत् ॥ तस्यहस्तकृतेहोमेतन्मन्त्रैःस्याज्जलागमः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाभ्यामितियस्तत्र नरश्चौरार्दितःपठेत् ॥ नोपद्रवोभवेत्तस्य कदाचिच्चौरसम्भवः ॥ ३० ॥ विवाहार्थंजपेद्यस्तु संसृष्टिमितितत्रच ॥ विवाहेविजयस्तस्य पापस्यापिप्रजायते ॥ ३१ ॥ योरिपूच्चाटनार्थाय नरोरुद्रशिरोजपेत् ॥ तस्यतेरिपवोयान्तिदेशंत्यक्त्वाकुबुद्धितः ॥ ३२ ॥ मोहनायरिपूणांच योजपेद्विष्णुसंहिताम् ॥ तस्यमोहाभिभूतास्ते जायन्तेरिपवोध्रुवम् ॥ ३३ ॥ वशीकरणहेतोर्यः कूष्माण्डांप्रजपेन्नरः ॥ शत्रु

आगमहोताहै ॥२९॥ व उस तीर्थमें चोरोंसे विकल जो पुरुष दृष्टाभ्यां ऐसे मन्त्रको पढ़ताहै उसके चोरोंसे उपजाहुवा उपद्रव कभी नहीं होताहै ॥ ३० ॥ और विवाहके
लिये वहांपर जो नर संसृष्टि ऐसे मन्त्रको जपताहै तो पापकारी भी उस पुरुषके विवाहमें विजय होताहै ॥ ३१ ॥ व जो पुरुष शत्रुओं के उच्चाटन के लिये रुद्रशिर
को जपताहै उसके वे शत्रुजन दुष्टबुद्धिसे देशको त्यागकर अन्यत्र चलेजातेहैं ॥ ३२॥ और शत्रुओं के मोहनेके लिये जो पुरुष विष्णुसहिता का जपकरता है उसके शत्रु

⊛ अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाश्शलभाश्शुकाः । अत्यासन्नाश्चराजानोषडेताईतयस्मृताः ॥

अवश्य मोहसे तिरस्कृत होजाते हैं ॥ ३३ ॥ व जो पुरुषवशीकरण के कारण कूष्माण्डमन्त्र का जपकरता है उसके वश में शत्रु भी होजाते हैं फिर स्त्री आदिकोंको क्या कहनाहै ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! शत्रुओं के स्तम्भन के लिये भलीभांति श्रद्धामें तत्पर जो पुरुष प्रजापति व वरुण जी के मन्त्रको निश्चयकर जपताहै ॥ ३५ ॥ उस के सब शत्रु मंत्र से भलीभांति स्तम्भित होजाते हैं हे ब्राह्मणो ! जो पुरुष शोषने के लिये काली कराली ऐसे मन्त्रको जपता है ॥ ३६ ॥ वह पुरुष चित्त मे जिसवस्तु को धारण करै उस सबको शोषलेता है यह मन्त्र अगस्त्य महात्मा से उस समय जपागया है ॥ ३७ ॥ कि जिस के प्रभाव से उन अगस्त्य जीने नदियों

वोपिवशेतस्य किंपुनःप्रमदादयः ॥ ३४ ॥ यःस्तम्भायरिपूणांवै प्राजापत्यंचवारुणम् ॥ मन्त्रंजपेद्द्विजश्रेष्ठाः सम्य क्श्रद्धापरायणः ॥ ३५ ॥ मन्त्रसंस्तम्भितास्तस्य जायन्तेसर्वशत्रवः ॥ जपेत्कालीकरालीति यःशोषायनरोद्वि जाः ॥ ३६ ॥ सशोषयतितत्कृत्स्नं यच्चित्तेधारयेन्नरः ॥ एषमन्त्रस्तदाजप्तोप्यगस्त्येनमहात्मना ॥ ३७ ॥ यत्प्रभा वान्नदीनाथस्तेनसंशोषितोध्रुवम् ॥ एतत्प्रभावंयत्पीठं मन्त्राणांसिद्धिकारकम् ॥ ३८ ॥ ऐहिकानांफलानांच तन्म यावःप्रकीर्तितम् ॥ योवाञ्छतिपुनःस्वर्गं सतत्रद्विजसत्तमाः ॥ ३९ ॥ स्नानंकरोतिदानंच श्राद्धंवापिविशेषतः ॥ अथ वाञ्छतियोमोक्षं विरक्तोभवसागरात् ॥ ४० ॥ निष्कामस्तत्रसन्तुष्टस्तपस्तप्येत्सुबुद्धिमान् ॥ ४१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ म न्त्रजाप्यस्यमाहात्म्यं यत्त्वयानःप्रकीर्तितम् ॥ तत्कथंसिद्धिमायाति मन्त्रजाप्यंहिसूतज ॥ ४२ ॥ सूतउवाच ॥ अत्र

के नायक समुद्र को शोष लिया है इस प्रभाव वाला जो पीठ मन्त्रों का सिद्धिकारक है ॥ ३८ ॥ व इस संसार के फलों का सिद्धिकारी है उसको मैंने तुम लोगों से कीर्तन किया है हे द्विजोत्तमो ! फिर वहांपर जो पुरुष स्वर्गका अभिलाष करता है वह स्नान, दान या विशेषतासे श्राद्धहीको करताहै अथवा भवसागर जन्ममरण से विराग में प्राप्त जो नर मोक्ष को चाहताहै ॥ ३९ । ४० ॥ वह बडा बुद्धिमान् व अकाम व सन्तुष्ट होकर वहांपर तपकरै ॥ ४१ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! मंत्रके जपका प्रभाव जो तुमने हमलोगों से कहा है वह किस प्रकार मंत्रका जप सिद्धि को प्राप्तहोता है ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले कि जो मैंने पहले ब्राह्मणों में इन्द्र

के समान दुर्वासा मुनि से पिता जी के कहते हुये सुना है उसको मैं कहूंगा ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले उन दुर्वासा मुनि ने हमारे पिता जी से पूंछा है व जो मन्त्र की वार्ता किया है उसको बहुत सावधान होकर सुनिये ॥ ४४ ॥ दुर्वासा जी बोले कि व्रतको धारण किये हुये मैं किसी भी प्रिय मन्त्र की साधना करूं उस की सिद्धि के लिये शास्त्र में उपजे हुये विधान को कहिये ॥ ४५ ॥ लोमहर्षण जी बोले कि हे सन्मुने ! समस्त भी मन्त्रों का साधन क्लेशदायक व बहुत से दोषों से सकुल और विघ्नों से संयुक्त होताहै ॥ ४६ ॥ इस लिये हे द्विज ! यदि तुम मन्त्र के लिये सिद्धि को चाहते हो तो तुम उस चमत्कार नगर के क्षेत्र में जाने के योग्य

यत्कथयिष्यामि तन्मयापितृतःश्रुतम् ॥ वदतोब्राह्मणेन्द्रस्यपुरादुर्वाससोमुनेः ॥ ४३ ॥ तेनपूर्वंपितास्माकं पृष्टो दुर्वाससाद्विजाः ॥ मन्त्रवादकृतंयच्च शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ ४४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ साधयिष्याम्यहंमन्त्रमभीष्टंकमपिव्रती ॥ तस्यसिद्धिकृतेब्रूहि विधानंशास्त्रसम्भवम् ॥ ४५ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ मन्त्राणांसाधनंकष्टं सर्वेषामपिसन्मुने ॥ प्रत्यवायसमोपेतं बहुच्छिद्रसमाकुलम् ॥ ४६ ॥ तस्मान्मन्त्रकृतेसिद्धिं यदित्वंवाञ्छसिद्विज ॥ चमत्कारपुरे क्षेत्रे तत्रत्वंगन्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥ तत्रचित्रेश्वरीपीठमगस्त्येनविनिर्मितम् ॥ सद्यःसिद्धिकरंप्रोक्तं मन्त्राणांहृदिवर्तिनाम् ॥ ४८ ॥ नतत्रजायतेछिद्रं प्रत्यवायोनचद्विज ॥ नासिद्धिर्वरदानेन सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ ४९ ॥ चातुर्युग्यंहितत्पीठं स्थितानांसिद्धिमाहरेत् ॥ युगानुरूपतःसद्यस्ततोवक्ष्याम्यहंद्विज ॥ ५० ॥ योयंसाधयितुंमन्त्रमिच्छतिद्विजसत्तम ॥ सतस्यपूर्वमेवाथ जपेल्लक्षमितंनरः ॥ ५१ ॥ ततोभवतिसंसिद्धो मन्त्रार्हस्सनरश्शुचिः ॥ जपेद्ब्राह्मणशा

हो ॥ ४७ ॥ वहांपर अगस्त्य मुनि से निर्माण किया हुवा चित्रेश्वरी नामक पीठ है जो कि हृदय में वर्तमान होनेवाले मन्त्रोंका उसी क्षण सिद्धिकारक कहा गयाहै ॥ ४८ ॥ हे द्विज ! सब देवतों के वरदान से वहांपर न विघ्न होताहै न छिद्र (दोष) होता है और न असिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! चारों युगवाला वह पीठ टिके हुये जनों को युगके सदृश उसी क्षण सिद्धिको प्राप्तकरताहै इस लिये मैं कहूंगा ॥ ५० ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष जिस मंत्रकी साधना करने की इच्छाकरताहै वह

पहलेही लक्षसंख्यक उस मंत्रका जपकरै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर हे द्विजपुङ्गव ! वह पवित्र पुरुष मन्त्र के योग्य सिद्ध होताहै उसके उपरान्त चार लक्ष मंत्र जपै ॥ ५२ ॥ व दशांश के प्रमाण से बहुत बढ़े हुये अनल में हवन करै तदनन्तर निश्चय कर उस मंत्र मे उपजी हुई सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वहांपर सौम्य कार्य्यों में सरसों चमेली के पुष्पों से होम होताहै व ब्राह्मणोंका भोजन कहा गयाहै ॥ ५४ ॥ तैसेही रोगादिक कार्य्यों में गुग्गुल समेत अरुण पुष्पों से होम व कन्याओं के तृप्त करनेसे हवन सुफलदायक होताहै ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! यह उत्तम मंत्रसाधन सत्ययुगमें कहागयाहै व सब साधकोंको मैंने यह कहा है ॥ ५६ ॥ यही मं-

द्धेल्लततोलक्षचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥ दशांशेनतुहोमःस्यात्सुसमिद्धेहुताशने ॥ ततस्तुजायतेसिद्धिर्नूनंतन्मन्त्रसम्भवा ॥ ५३ ॥ तत्रसौम्येषुकृत्येषु होमःसिद्धार्थकैर्भवेत् ॥ जातीपुष्पैश्चविप्रेन्द्र स्मृतंब्राह्मणभोजनम् ॥ ५४ ॥ तथारोगेषुकृत्येषुरक्तपुष्पैःसगुग्गुलैः ॥ तर्प्पणैःकन्यकानांच होमःस्यात्सुफलप्रदः ॥ ५५ ॥ एतत्कृतयुगेप्रोक्तं मन्त्रसाधनमुत्तमम् ॥ सर्वेषांसाधकानांच मयाप्रोक्तंद्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ एतत्त्रेतायुगेकार्य्यं पादोनंमन्त्रसाधनम् ॥ युग्मार्धंसाधकैःकार्य्यंचतुर्थांशंकलौयुगे ॥ ५७ ॥ एवंतत्रसमासाद्यसिद्धिंमन्त्रसमुद्भवाम् ॥ तत्रपीठेततःसत्यंसाधयेत्स्वेच्छयानरः ॥५८॥ शापानुग्रहसामर्थ्यसंयुतस्तेजसान्वितः ॥ अजेयःसर्वभूतानांसाधूनांसम्मतस्सदा ॥ ५९ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासमुनिस्तस्य पितुर्ममवचोखिलम् ॥ ततश्चित्रेश्वरंपीठं समायातस्ससन्मुनिः ॥ ६० ॥ तत्रसंसाधयामास सर्वान्मन्त्रान्य

त्रसाधन त्रेतायुग में चौथाई न्यून करना चाहिये व व द्वापरयुगमें साधकों को आधा व कलियुग में चौथाई भागको करना चाहिये ॥५७॥ वहांपर इस प्रकार मन्त्रसे उपजी हुई सिद्धि को प्राप्त होकर तदनन्तर मनुष्य अपनी इच्छा से उस पीठ में सत्यको साधनकरै ॥५८॥ तो शापानुग्रह याने शाप देनेकी सामर्थ्यसे संयुत व तेज से युक्त तथा सब प्राणियोंके न जीतने योग्य व सदैव साधुजनोंसे भलीभांति माना जावै ॥ ५९ ॥ सूतजी बोले कि वे मुनि उन मेरे पिता जी के उस सम्पूर्ण वचन को सुनकर तदनन्तर वे उत्तम मुनि चित्रेश्वर पीठ को भलीभांति आये ॥ ६० ॥ व उस चित्रेश्वर पीठ में परमश्रद्धा से संयुत मुनिने शास्त्र में देखेहुये विधान से

क्रमपूर्वक सब मंत्रों को भलीभांति साधन किया ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार भलीभांति सिद्धमंत्रवाले वे दुर्वासा मुनि भूमिखण्ड के निमित्त ब्राह्मणों से प्रार्थना के लिये चमत्कार नगर को गये ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरमाहात्म्ये चित्रेश्वरीपीठ माहात्म्यंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दुर्वासा मुनि गृह रच्यो दुःशीलक शिव हेत । सो सैंतिस अध्याय महँ वर्णत चाव समेत ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर उन दुर्वासा मुनि

थाक्रमम् ॥ विधिनाशास्त्रदृष्टेन श्रद्धयापरयायुतः ॥ ६१ ॥ इतिसंसिद्धमन्त्रस्स चमत्कारपुरंगतः ॥ विप्राणांप्रार्थना र्थाय भूमिखण्डकृतेद्विजाः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येचित्रेश्वरीपीठमाहात्म्य न्नामषट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथापश्यत्सविप्राणां वृन्दंवृन्दारकोपमम् ॥ सन्निविष्टंधरापृष्ठे लीलाभाजंद्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ एकेवे दविदस्तत्र वेदव्याख्यानतत्पराः ॥ परस्परंसुसंक्रुद्धा विवदन्तिजिगीषवः ॥ २ ॥ यज्ञविद्याविदोन्येपि यज्ञाख्यानपरा यणाः ॥ तत्रविप्राःप्रदृश्यन्ते शतशोब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥ अन्येब्राह्मणशार्दूला वेदाङ्गेषुविचक्षणाः ॥ प्रवदन्तिचसन्दे हान् वृन्दानामग्रतःस्थिताः ॥ ४ ॥ वेदाभ्यासपराश्चान्येतारनादेनसर्वशः ॥ नादयन्तोदिशांचक्रंतत्रसम्यग्द्विजोत्त माः ॥ ५ ॥ अन्येकौतूहलाविष्टाः संवदन्तोऽसमान्मिथः ॥ पप्रच्छुर्जहसुश्चान्येज्ञात्वामार्गप्रवर्तिनम् ॥ ६ ॥ स्मृतिवाद

ने धरातल में भलीभांति बैठे व विलाप करते हुये देवतों के समान द्विजोंकेसमूहको देखा ॥ १ ॥ वहांपर वेद के व्याख्यान में लगे हुये व जयके अभिलाषी अन्य पुरुष आपस में बहुत क्रोधित होकर विवाद कररहे थे ॥ २ ॥ व यज्ञविद्या के जाननेवाले अन्य भी पुरुष यज्ञ के कथानक में लगे हुये थे व वहांपर सैकड़ों ब्राह्मण ब्रह्मवादी देख पड़ते थे ॥ ३ ॥ व वेदों के अंगों में चतुर दूसरे द्विजपुङ्गव द्विजसमूहों के आगे खड़ेहुये सन्देहों को कहरहे थे ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहांपर वेद के अभ्यास में तत्पर अन्यपुरुष ॐकार के शब्द से सब ओर दिशाओं के मण्डलको भलीभांति शब्दायमान कर रहे थे ॥ ५ ॥ व अन्य नर कौतुक में व्याप्त होकर

आपस में विषम प्रश्नोंको कहतेहुये पूंछरहेथे व अन्यपुरुष मार्गमें वर्तमान नरको जानकर हँस रहेथे ॥ ६ ॥ तैसेही अन्य नर स्मृतियों के वाद में परायण थे व दूसरे मनुज श्रुतियों का पाठ कर रहे थे और अन्य नर स्मृतियोंमें उपजेहुये सन्देहोंको आपसमें पूंछरहेथे ॥ ७ ॥ तैसेही सभाके मध्यमें बैठेहुये अन्य द्विजोत्तम वहांपर वृद्धों के आगे पुराण का कीर्तन कररहे थे ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उन ब्राह्मणोंको देखकर तदनन्तर प्रणामकर व विनययुक्त होतेहुये प्रशंसितव्रतवाले वे दुर्वासामुनि आदरपूर्वक यह बोले ॥ ९ ॥ कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! मेरी बुद्धि शिवजीके मन्दिरको निर्माण करनेमें भलीभांति उपजीहै इसलिये स्थानको दिखलाइये ॥ १० ॥ कि वहांपर देवताओं

पराश्चान्ये तथान्येश्रुतिपाठकाः ॥ सन्देहान्स्मृतिजानन्येपृच्छन्तिचपरस्परम् ॥ ७ ॥ कीर्तयन्तितथाचान्ये पुराणं ब्राह्मणोत्तमाः ॥ वृद्धानांपुरतस्तत्र सभामध्येव्यवस्थिताः ॥ ८ ॥ अथतान्समुनिर्दृष्ट्वा ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् ॥ अभिवाद्यततःप्राहसादरंविनयान्वितः ॥ ९ ॥ ममबुद्धिःसमुत्पन्नाशम्भोरायतनंप्रति ॥ कर्तुंब्राह्मणशार्दूलास्तस्मात्स्थानंप्रदर्श्यताम् ॥ १० ॥ तत्राहंदेवदेवस्य शम्भोःप्रासादमुत्तमम् ॥ विद्ययाराधयिष्यामि तमेववृषभध्वजम् ॥ ११ ॥ सएवंजल्पमानोपि मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ॥ नतेषामुत्तरंलेभेशुभंवायदिवाशुभम् ॥ १२ ॥ ततःकोपपरीतात्मा समुनिस्तान्द्विजोत्तमान् ॥ शशापतारशब्देन यथाशृण्वन्तिकृत्स्नशः ॥ १३ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ विद्यामदोधनमदस्तृतीयोभिजनोमदः ॥ एतेमदावलिप्तानां तएवचसतांदमाः ॥ १४ ॥ तत्रयेपिहियुष्माकं मदाएवव्यवस्थिताः ॥ यतस्ततोन्वये

के देवता श्रीसदाशिवजीका मन्दिर मैं बनवाऊं व उन्हीं वृषभध्वज (शिव) को विद्यासे आराधन करूं ॥ ११ ॥ उस निरालसी ने बार २ इसप्रकार कहता हुवा भी उन ब्राह्मणों के शुभ या अशुभ प्रत्युत्तर को न पाया ॥ १२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरे हुये चित्तवाले उन मुनि ने ॐकार शब्द से इस भांति उन द्विजोंको शाप दिया कि जैसे सम्पूर्णतासे सुनैं ॥ १३ ॥ दुर्वासा मुनि बोले कि विद्या का गर्व व धनका अहङ्कार व तीसरा कुलीनता का मद ये गर्बीले नरो को गर्वकारकहैं व सज्जनों को येही दम याने बाह्येन्द्रियोंको शान्तिकारकहैं ॥ १४ ॥ जिसलिये कि उन मदों मेंसे जो तुमलोगों के भी सर्व टिके हुये हैं इस कारण वंश में भी ऐसेही गर्व

युत जन होवैंगे ॥ १५ ॥ व इस पुर में पुत्रों के साथ पिता भी सदैव मित्रभावसे छूटे होवैं फिर बन्धुआदिकोंको क्या कहनाहै ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वह विप्रेन्द्र ऐसा कहकर व ब्राह्मणों के सकाशसे परम अपमानको प्राप्तहोकर तदनन्तर निवृत्त हुआ याने लौटचला ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वेद व वेदाङ्गों के पार जानेवाला व वृद्धजनों से माना हुआ उन द्विजोंके बीचमें प्राप्त उत्तम बुद्धिवाला सुशील ऐसा द्विज प्रसिद्ध हुआ है ॥ १८ ॥ वह द्विज अपमान किये हुये व क्रोधित जातेहुये उन मुनि के पीछे खड़े हो खडे हो ऐसा कहता हुआ शीघ्रही गया ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर दूरमें गये हुये उन मुनि के निकट जाकर वह सुशील नामक द्विज प्रणामकर

प्येवं भविष्यन्तिमदान्विताः ॥ १५ ॥ सदासौहृदनिर्मुक्ताःपितरोपिसुतैस्सह ॥ भविष्यन्तिपुरेप्यस्मिन् किंपुनर्बान्धवादयः ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रो निवृत्तस्तदनन्तरम् ॥ अपमानंपरंप्राप्यब्राह्मणानांद्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ अथतन्मध्यगोविप्रआसीद्वृद्धमतःसुधीः ॥ सुशीलइतिविख्यातोवेदवेदाङ्गपारगः ॥ १८ ॥ सदृष्ट्वातंमुनिंक्रुद्धं गच्छन्तमपमानितम् ॥ सत्वरंप्रययौपृष्ठे तिष्ठतिष्ठेतिचब्रुवन् ॥ १९ ॥ अथासाद्यगतंदूरं प्रणिपत्यमुनिंचसः ॥ प्रोवाचक्षम्यतांविप्रविप्राणांवचनान्मम ॥ २० ॥ एतैःस्वाध्यायसम्पन्नैर्नश्रुतंवचनंतव ॥ नोत्तरंतेनसन्दत्तं सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २१ ॥ तस्माद्भूमिर्मयादत्ता शम्भुहर्म्यंकृतेतव ॥ अस्मिन्स्थानेद्विजश्रेष्ठ प्रासादंकर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा दुर्वासाहर्षसंयुतः ॥ क्षितिदानोद्भवांचक्रे स्वस्तिब्राह्मणसत्तमाः ॥ २३ ॥ प्रासादंनिर्ममेपश्चात्तस्यवाक्येऽव्यवस्थितः ॥ अथतेब्राह्मणाज्ञात्वा सुशीलेनवसुन्धरा ॥ २४ ॥ देवतायतनार्थाय दत्तातस्मैतपस्विने ॥ सर्वेकोपसमायुक्ताः सुशीलं

बोला कि हे विप्र ! मेरे वचन से द्विजोंके ऊपर क्षमा कीजावै ॥ २० ॥ क्योंकि वेदपाठमें तत्पर इन द्विजोंने तुम्हारे वचन को नहीं सुना इससे प्रत्युत्तर नहीं दिया गया मैं इसको सत्य कहता हूं ॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिये श्रीशम्भुजी के मन्दिर के निमित्त मैंने तुमको पृथ्वी दिया व इसी स्थान में तुम मन्दिर बनाने के योग्य हो ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उस सुशील द्विज के उस वचन को सुनकर हर्षसंयुत दुर्वासा मुनि ने भूमिदान से उपजे हुये स्वस्तिवाचन को किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर उस ब्राह्मण के वचन में विशेषतासे स्थित होतेहुये उन दुर्वासा मुनि ने मन्दिर को निर्मित किया इसके अनन्तर उन ब्राह्मणोंने सुशील द्विज से देवमन्दिर

के निमित्त उन दुर्वासा मुनि के लिये पृथ्वी को दी हुई जानकर वे सब सुशीलप्रति क्रोधसंयुत हुये ॥ २४ । २५ ॥ तदनन्तर जाकर यह बोले कि जिस दुष्टचित्त या मनवाले तपस्वी ने हम सबों को शाप दिया उसी के लिये तुमने मन्दिर के निमित्त पृथ्वी को देदिया ॥ २६ ॥ इस लिये तुमभी हमलोगों से अलगही होगे व सुशील भी तुम बुधजनोंसे दुःशील नामसे कहेजावोगे ॥ २७ ॥ व यह दुष्टतपस्वी भी जो कि शिवालय को निर्मित करता है वह सैकड़ों वर्षसे भी सिद्धिके लिये न होवैगा ॥२८॥ वैसेही कीर्तिके लिये कियेहुये कर्मको संसारमें मनुष्य कीर्तन करते हैं इस कर्मके उस कीर्तनको इस लोकमें दुष्टबुद्धिवाला नर नहीं देखता है ॥ २९ ॥

प्रतितेद्विजाः ॥ २५ ॥ ततःप्रोचुस्समासाद्य येनशप्ताद्दुरात्मना ॥ वयंतस्मैत्वयादत्ता प्रासादार्थंवसुन्धरा ॥ २६ ॥ तस्मा त्त्वमपिचास्माकं बाह्यएवभविष्यसि ॥ सुशीलोपिहिदुश्शीलो नाम्नासङ्कीर्त्यसेबुधैः ॥ २७ ॥ एषोपितापसोदुष्टो यःकरो तिशिवालयम् ॥ नैवतद्यास्यतेसिद्ध्यै चापिवर्षशतैरपि ॥२८॥ तथाकीर्तिकृतंलोके कीर्तनंक्रियतेनरैः ॥ तन्नसम्पश्यते चास्य कीर्तनंचात्रदुर्मतिः ॥ २९ ॥ एषदुश्शीलसञ्ज्ञोवै तवनाम्नाभविष्यति ॥ प्रासादोनाममात्रेण नसम्पूर्णःकदाचन॥ ३० ॥ यस्मात्सौहृदनिर्मुक्ताः कृतास्तेनवयंद्विजाः ॥ मदैस्त्रिभिस्समायुक्ताः सर्वाश्चर्यसमन्विताः ॥ ३१ ॥ तस्मादेषोपि पापात्मा भविष्यतिसकोपभाक् ॥ तप्तंतप्तंतपोयेन सम्प्रयास्यतिसङ्क्षयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाथतेविप्राः कोपसंरक्तलो चनाः ॥ दुश्शीलंसम्परित्यज्य प्रविष्टाःस्वपुरेततः ॥ ३३ ॥दुश्शीलोपिबहिश्चक्रे गृहंतस्यपुरस्यच ॥ देवशर्म्मायथापू

व तुम्हारे नाम से यह देवमन्दिर अवश्यकर दुःशीलसंज्ञक होगा व नाममात्र से कभी न सम्पूर्ण होगा ॥ ३० ॥ जिसलिये कि सब आश्चर्य्यों से संयुत हम समस्त ब्राह्मण उन मुनिसे तीन मदोंसे संयुत व मित्रभावसे रहित कियेगये ॥ ३१ ॥ इस लिये पापचित्तवाला वही यह कोपभागी होवैगा जिसने कि तप किया और वह तपाहुवा तप नाशको प्राप्त होजावैगा ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर क्रोधसे अत्यन्त लाल लोचनवाले उन ब्राह्मणोंने दुःशील को परित्याग कर तदनन्तर अपने नगरमें प्रवेशकिया ॥ ३३ ॥ और दुःशीलने भी उस पुरके बाहर मन्दिरको निर्मित किया जैसे कि पहले पुरवासियों से भलीभांति त्यागेहुये देवशर्माने नगर

वैं सन्त्यक्तःपुरवासिभिः ॥ ३४ ॥ तस्यान्वयेचयेजातास्तेबाह्याःसम्प्रकीर्तिताः ॥ बाह्याःक्रियासुसर्वासु सर्वेषांपुरवासिना म् ॥ ३५ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ एवंतेषुद्विजेन्द्रेषु शापंदत्त्वागतेषुच ॥ दुर्वासाप्राहदुश्शीलं कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३६ ॥ म मसिद्धिंगतामन्त्राः समर्थाश्शत्रुसङ्क्षये ॥ आथर्वणास्तथाचान्येवेदत्रयसमुद्भवाः ॥ ३७ ॥ तस्मादेतत्पुरंकृत्स्नं पशु पक्षिसमन्वितम् ॥ नाशमद्यनयिष्यामि तथारात्रौहिदुष्करम् ॥ ३८ ॥ दुश्शीलउवाच ॥ नैतद्युक्तंनरश्रेष्ठ तवकर्तुंक थञ्चन ॥ ब्राह्मणैर्निर्जितैर्मेने यआत्मानंजयान्वितम् ॥ ३९ ॥ तामिस्रादिषुघोरेषु नरकेषुसपच्यते ॥ आत्मनश्चप राभूतिं तस्माद्विप्रात्समानयेत् ॥ ४० ॥ यइच्छेद्वसतींस्वर्गेशाश्वतींद्विजसत्तमाः ॥ एतेषांब्राह्मणेन्द्राणां क्षेत्रेसिद्धिंस मागताः ॥ ४१ ॥ मन्त्रायेतत्कथंनाशं त्वमेतेषांकरिष्यति॥ब्राह्मणघ्नेसुरापेच चौरेभग्नव्रतेतथा ॥ ४२ ॥ निष्कृतिर्वि हितासद्भिः कृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ तस्मात्कोपोनकर्तव्यःक्षेत्रेत्रैवव्यवस्थितः ॥ ४३ ॥ तपःकुरुमुनिश्रेष्ठ क्षमां

के बाहर गेह बनाया है ॥ ३४ ॥ और उसके वंश में जो उत्पन्न हुये वे बाहर वाले कहे गये हैं व सब पुरवासियों के सब कार्य्यों में बाहर किये गये ॥ ३५ ॥ श्री सूत जी बोले कि इसप्रकार शापदेकर जब वे द्विजेन्द्र चले गये तब क्रोध से अतिलाल लोचन वाले दुर्वासा मुनिने दुःशील से कहा ॥ ३६ ॥ कि शत्रु के नाश में समर्थ मेरे अथर्वण वेदवाले मत्र सिद्धि को प्राप्त हुये हैं व तीनों वेदों से उपजे हुये अन्य भी मंत्र वैसेही हैं ॥ ३७ ॥ इसलिये पशु, पक्षी समन्वित इस समस्त नगरको आज रात्रि में मैं नाशको प्राप्तकरूंगा क्योंकि वह कर्म क्लेशाकारकहै ॥३८॥ दुःशील बोले कि हे नरोत्तम ! तुमको यह करने के लिये किसी प्रकारयोग्य नहीं है क्योंकि ब्राह्मणो को जीतने से जो पुरुष अपनेको जयसंयुत मानता है ॥ ३९ ॥ वह तमिस्रादिक घोर नरकों में पचता है इसलिये हे ब्राह्मणोत्तमो ! जो स्वर्ग मे सदैव की स्थिति चाहै वह ब्राह्मण से अपने पराभव को प्राप्तकरै याने हारको प्राप्तहोवै व इन ब्राह्मणेन्द्रोंके जो मंत्रक्षेत्र में सिद्धि को प्राप्तहुये हैं तो इन ब्राह्मणों का नाश तुम कैसे करोगे क्योंकि ब्राह्मण के मारने वाले व मदिरा पीनेहारे व चोर तथा व्रतको भङ्ग कियेहुये जन में ॥ ४० । ४१ ॥ ४२ ॥ उत्तम जनोंसे निष्कृति (प्रायश्चित्त की शुद्धि) विधान की गई है और कृतघ्न में प्रायश्चित्तसे शुद्धि नहीं है इसलिये क्रोध न करना चाहिये हे मुनि श्रेष्ठ ! इसी क्षेत्र में टिकते हुये तुम मेरे ऊपर क्षमाकर तपस्या

को करो ॥ ४३ । ४४ ॥ सूतजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उन मुनिने वहां तपस्याकर निवास किया व देवताओंसे भी दुर्लभ परम सिद्धिको पाया ॥४५॥ और दुःशील नामक वह देवमन्दिर भी भूमि में प्रसिद्ध हुआ जिसके भलीभांति दर्शनहीं से मनुष्य पाप से छूटजाता है ॥ ४६ ॥ व शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में उस मन्दिर के बीच में प्राप्तहुये लिंगको जो मनुष्य सदैव देखता है वह क्षणभर ध्यानकर नरकको नहीं देखता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांदुःशीलप्रासादोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

कृत्वाममोपरि ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायतत्रकृत्वावसत्तपः ॥ प्राप्तश्चपरमांसिद्धिं दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ ४५ ॥ दुश्शीलाख्यःक्षितौसोपि प्रासादःख्यातिमागतः ॥ यस्यसन्दर्शनादेव नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ ४६ ॥ तस्यमध्यगतंलिङ्गं शुक्लाष्टम्यांसदानरः ॥ यःपश्यतिक्षणंध्यात्वानरकंसनपश्यति ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदुश्शीलप्रासादोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्रैवस्थापितंलिङ्गं धुन्धुमारेणभूभुजा ॥ सर्वरत्नमयंकृत्वा प्रासादंसुमनोहरम् ॥ १ ॥ तत्रकृत्वाश्रमश्रेष्ठं तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ यत्प्रभावादयंदेवस्तस्मिल्लिँङ्गेव्यवस्थितः ॥ २ ॥ तस्यसन्निहितावापी कृतातेनमहात्मना ॥ सुनिर्मलजलापूर्णा सर्वतीर्थोपमाशुभा ॥ ३ ॥ धुन्धुमारेश्वरंपश्येत्तत्रस्नातोद्विजोत्तमाः ॥ नसपश्यतिदुर्गाणि नरका

दो० । अरतियें अध्याय महं धुन्धुमार आख्यान । शौनकादिकन ऋषिन सन कीन्हो सूतबखान ॥ सूतजी बोले कि वहीं पर बहुत मनोहर व समस्त रत्नमय मन्दिर को बनाकर धुन्धुमार भूपति ने लिंग को स्थापित किया है ॥ १ ॥ और वहांपर उत्तम आश्रम को बनाकर बहुत घोर तपको किया जिस के प्रभाव से ये सदाशिव देव उस लिंग में टिके हुये हैं ॥ २ ॥ व उस धुन्धुमार माहात्मा ने उस मन्दिर के समीप उत्तम बावली को रचित किया है जो कि सब ओर शुभदायक व निर्मल जल से पूर्ण व सब तीर्थों के समान है ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस बावली में नहायाहुवा जो पुरुष धुन्धुमारेश्वर जी को देखता है वह यममन्दिर में घोर नरकोंको नहीं

देखताहै ॥४॥ ऋषिलोग बोले कि वह धुन्धुमार भूपाल किसवंशमें हुवाहै व उस उत्तम महात्माने यहांपर किस समय तपको कियाहै ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि सूर्य्य वंश में उपजा हुआ बृहदश्व-नृपका पुत्र बडा बलवान् वह कुवलयाश्व तथा धुन्धुमार ऐसा प्रसिद्ध हुवा है ॥ ६ ॥ उस ने मरुजांगल देश में धुन्धुनामक बड़े दैत्यको मारा है उसी से तीनों भुवन में धुन्धुमार ऐसा कहागया प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ उस धुन्धुमार ने चमत्कार नगर के क्षेत्र को अत्यन्त पवित्रकारक मानकर व वहींपर महादेव जी को ध्यानकरते हुये तपस्या किया ॥ ८ ॥ व रत्नों से रचे हुये मन्दिर में उत्तम महालिंग को भलीभांति थापकर व भेंट, पूजा, उपहारादिकों से व पुष्प, धूपतथा

णियमालये ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ धुन्धुमारोमहीपालःकस्मिन्वंशेवभूवसः ॥ कस्मिन्कालेतपस्तप्तं तेनात्रसुमहात्मना ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ सूर्य्यवंशसमुद्भूतो बृहदश्वसुतोबली ॥ ख्यातःकुवलयाश्वेति धुन्धुमारस्तथैवसः ॥ ६ ॥ तेनधुन्धुर्महादैत्यो निहतोमरुजाङ्गले ॥ धुन्धुमारःस्मृतस्तेनविख्यातोभुवनत्रये ॥ ७ ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रं समत्वापावनंमहत् ॥ तपस्तेपेचतत्रैव ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ सुस्थाप्यसुमहालिङ्गं प्रासादेरत्ननिर्मिते ॥ बलिपूजोपहाराद्यैःपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ ९ ॥ ततस्तस्यमहादेवः स्वयमेवमहेश्वरः ॥ प्रत्यक्षोभूद्वृषारूढो गौर्य्यासहतथागणैः ॥ १० ॥ उवाचवरदोस्मीति प्रार्थयस्वयथेप्सितम् ॥ सर्वंतेहंप्रदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ११ ॥ धुन्धुमारउवाच ॥ यदिदेयोवरोस्माकं त्वयासर्वसुरेश्वर ॥ सन्निधानंप्रकर्तव्यं लिङ्गेस्मिन्वृषभध्वज ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सान्निध्यंनृपसत्तम ॥ अहंसदाकरिष्यामिगौर्य्यासार्द्धंनसंशयः ॥ १३ ॥ तत्रवाप्यांनरःस्नात्वा योमां

चन्दनादि लेपनों से उस ने पूजन किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पार्वती जी व गणोंसमेत बैलपै चढ़े महेश्वर महादेव जी॰ आपही उस धुन्धुमार के सामने हुये ॥ १० ॥ यह बोले कि मैं वरदायक हूं तुम कामना की प्रार्थनाकरो यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं तुम को समस्त दूंगा ॥ ११ ॥ धुन्धुमार बोला कि हे सब देवता के नायक वृषभध्वज ! यदि हमको वरदान देने योग्यहै तो इस लिंगमें तुमको सामीप्य करनाचाहिये ॥ १२ ॥ श्रीशिव भगवान् बोले कि हे नृपोत्तम ! चैत्र महीनेमें शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि में पार्वती समेत मैं सदैव इस लिंग में सन्निधान करूंगा याने टिकूंगा ॥ १३ ॥ हे भूपति ! वहांपर जो मनुष्य बावलीमें नहाकर इस लिंग में भली

भाति टिकेहुये मुझको देखेगा वह मेरे लोकको प्राप्तहोगा ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर वह शिव भगवान् अन्तर्द्धानहोगये व मुक्ति का भागी अति प्रसन्न मनवाला वहराजा भी वहींपर टिकगया ॥ १५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये धुन्धुमारेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ययातीश नामक शिवहिं थाप्योनृपति ययाति । उन्तालिस अध्याय में वर्णतसो भलभांति ॥ सूतजी बोले कि उसी धुन्धुमारेश्वरजीके उत्तर दिशाके भाग

संवीक्षयिष्यति ॥ लिङ्गेस्मिन्संस्थितंभूप ममलोकंसयास्यति ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनं गतः ॥ सोपिराजाप्रहृष्टात्मा स्थितस्तत्रैवमुक्तिभाक् ॥१५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे हाटकेश्वरमाहात्म्येधुन्धुमारेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशोध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे धुन्धुमारेश्वरस्यच ॥ ययातिनानरेन्द्रेण स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥ देवयान्या तथान्यच्च तथाशर्मिष्ठयाद्विजाः ॥ भार्य्ययाभूपतेस्तस्यसर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ २ ॥ सयदासर्वभोगानां तृप्तिंप्राप्तो द्विजोत्तमाः ॥ तदापुत्रस्यराज्यंस्वंवपुश्चैवन्यवेदयत् ॥ ३ ॥ जरामादायतद्गात्राद्भार्य्याभ्यांसहितस्तदा ॥ पप्रच्छविनयोपेतो मार्कण्डंमुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥ भगवन्सर्वतीर्थानां क्षेत्राणांचवदस्वमे ॥ यत्प्रधानंपवित्रंयत्तदस्माकंप्रकीर्त्तय ॥ ५ ॥ मार्कण्डउवाच ॥ क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थैःसर्वैरलङ्कृतम् ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रं साम्प्रतंप्रतिभातिनः ॥ ६ ॥ यत्रवि

में ययाति नामक नरेन्द्र ने उत्तम लिंगका स्थापन किया है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! वैसेही उस भूपतिकी देवयानी व शर्मिष्ठा स्त्रियों से अन्य भी लिङ्ग स्थापित किया गयाहै जोकि मनुष्योंके सब कामनाओं का दायक है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब उस भूपति नें सब भोगोंकी तृप्तिको पाया तब अपनी राज्य शरीर और पुत्रको निवेदन करदिया ॥ ३ ॥ व उस पुत्रके शरीर से वृद्धता को लेकर उस समय दोनों स्त्रियो समेत व विनय संयुत उस भूपति ने मुनि श्रेष्ठ मार्कण्डजी से पूंछा ॥ ४ ॥ कि हे भगवन् ! सब तीर्थों व क्षेत्रों के मध्य में जो पवित्र व जो मुख्यहो उसको हमसे कहिये ॥ ५ ॥ मार्कण्डमुनि बोले कि सब क्षेत्रों के भी समस्त तीर्थों

से भूषित चमत्कार नगर का क्षेत्र इस समय हमको प्रकाशित होताहै याने जान पडता है ॥ ६ ॥ हे नृपोत्तम ! जहां पर कि प्राणियों के पापोंकी विनाशिनी विष्णु पदी गङ्गाजी प्राप्त हैं वैसेही महादेवादिक देवता टिके हुये हैं ॥ ७ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! वैसेही अन्य भी जो जो तीर्थ भूतलमें हैं उनकी समीपता सदैव जहीं पर रहती है ॥ ८ ॥ व जहां पर हाथोंकी गणना से बावन हाथ पृथ्वी पितामह (ब्रह्मा) ने ब्राह्मणों के आनन्दके लिए छोड़ दी है ॥ ९ ॥ हे क्षितिनायक ! अन्य स्थान में जो शुभकर्म एक वर्ष से सिद्ध होताहै वह वहां पर एक दिनसे भी सिद्ध होजाताहै ॥ १० ॥ इस लिये हे भूपति ! वहां पर शीघ्रही जाकर तपस्या को करो जिससे

ष्णुपदीगङ्गा जन्तूनांपापनाशिनी ॥ स्वयंस्थितान्नृपश्रेष्ठतथादेवाहरादयः ॥ ७ ॥ तथान्यानिचतीर्थानि यानियानिमहीतले ॥ तेषांयत्रचसान्निध्यं सर्वदान्नृपसत्तम ॥ ८ ॥ यत्रद्विपञ्चाशद्धस्ता हस्तानांपरिसङ्ख्यया ॥ पितामहेनानिर्मुक्ता प्रमोदायद्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥ यदन्यत्रशुभंकर्म्म वर्षेणैकेनसिद्ध्यति ॥ तत्तत्रदिवसेनापि सिद्धिंयातिक्षितीश्वर ॥ १० ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगत्वा तपःकुरुमहीपते ॥ येनप्राप्स्यसिचित्तस्थाँल्लोकान्भार्य्यासमन्वितः ॥ ११ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासराजानहुषात्मजः ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे भार्य्याभ्यांसहितोययौ ॥ १२ ॥ ततःसंस्थाप्यतल्लिङ्गं देवदेवस्यशूलिनः ॥ सम्यगाराधयामास श्रद्धयापरयायुतः ॥ १३ ॥ ततस्तस्यप्रभावेण भार्य्याभ्यांसहितोनृपः ॥ विमानवरमारूढो जगामत्रिदिवालयम् ॥ १४ ॥ किन्नरैर्गीयमानश्च स्तूयमानश्चचारणैः ॥ स्पर्द्धमानःसमंदेवैर्द्वादशार्कसमप्रभः ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्ये ययातीश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ ✻ ॥

स्त्री समेत तुम चित्तमें टिकेहुये लोकोंको पावोगे ॥ ११ ॥ उन मार्कण्ड मुनिके उस वचनको सुनकर नहुष का पुत्र वह ययाति नृपति दोनों स्त्रियों समेत चमत्कार नगरके क्षेत्रको गया ॥ १२ ॥ तदनन्तर देवताओंके देवता त्रिशूलधारी सदाशिवजीके उस लिंगको भलीभांति स्थापनकर परम श्रद्धा से संयुत उस नृपने भली भांति आराधन किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर दोनों स्त्रियों समेत वह नृप उसके प्रभावसे उत्तम विमान पर चढ़ा किन्नरों से गाया व चारणोंसे स्तुति किया व देवतों के साथ ईर्षाकरता हुआ बारह सूर्यों के समान प्रभावान् होकर देवलोकको चलागया ॥ १४ । १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ✻ ॥

दो० । थाप्यो जिमिमङ्कणक मुनि मङ्कणेश शिवनाम । चालिसके अध्याय में सोइ कहत मतिधाम ॥ ऋषिलोग बोले कि जो यह वहां पै आपने ब्राह्मीनामक शिला कही है वह सब प्राणियोंको मोक्षदेनेवाली व पापोंकी विनाशिनी है ॥ १ ॥ हे सूतनन्दन ! वह वहां पर किस प्रकार स्थापितहुई व किस प्रभाववाली है इस सबको हम लोगोंसे कहो क्योंकि हम तृप्त नहीं होते हैं ॥ २ ॥ सूतजीबोले कि पुरातन समय ब्रह्मलोक में बैठे हुये अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजीको तीर्थयात्रासे उपजीहुई बड़ी चिन्ताहुई है ॥ ३ ॥ कि मुझको छोड़कर सबही देवताओंके तीर्थ पृथ्वीतलमें हैं इससे धरणीतलमें एकतीर्थ मुझको भी करना चाहिये ॥ ४ ॥ क्योंकि

ऋषयऊचुः ॥ यदेषाभवताप्रोक्ता ब्राह्मीतत्रमहाशिला ॥ मोक्षदासर्वजन्तूनां तथापातकनाशिनी ॥ १ ॥ साकथं स्थापितातत्र किम्प्रभावाचसूतज ॥ एतन्नोब्रूहिनिश्शेषंनहितृप्यामहेवयम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ ब्रह्मलोकनिविष्टस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ पुराभून्महतीचिन्ता तीर्थयात्रासमुद्भवा ॥ ३ ॥ सर्वेषामेवदेवानां सन्तितीर्थानिभूतले ॥ मुक्त्वामांतन्मयाकार्य्यं तीर्थमेकंधरातले ॥ ४ ॥ यत्रत्रिकालमासाद्य कर्म्मसन्ध्यासमुद्भवम् ॥ मर्त्यलोकंसमासाद्य करोमितदनन्तरम् ॥ ५ ॥ तथान्यदपियत्किञ्चित्कर्म्मधर्म्यंहितावहम् ॥ तत्करोमियथान्येपि चक्रुर्देवाःशिवादयः ॥ ६ ॥ नस्वर्गेस्तिहिकृत्यानामधिकारोस्तिकश्चन ॥ शुभानांकर्म्मणामेव केवलंयुज्यतेफलम् ॥ ७ ॥ तस्माद्यत्रधरापृष्ठे शिलेयंतुपतिष्यति ॥ त्रिसन्ध्यंतत्रगन्तव्यमनुष्ठानार्थमेवहि ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वासुविस्तीर्णां शिलांतामासनोद्भवाम्॥ प्राचिक्षेपधरापृष्ठं समुद्दिश्यपितामहः ॥ ९ ॥ अथसापतिताभूमौ सर्वरत्नमयीशिला ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे सर्वक्षेत्रमहो

मृत्युलोक में प्राप्तहोकर तदनन्तर जिसतीर्थ में जाकर सन्ध्यासे उपजेहुये कर्मको मैं करूं ॥ ५ ॥ वैसेही और भी जो कुछ हितदायक धर्मवाला कर्म है उसको मैं करूं जैसे कि और भी शिवादिक देवताओंने कियाहै ॥ ६ ॥ क्योंकि स्वर्गमें कार्योंके करनेका अधिकार नहीं है केवल शुभकर्मोंहीके फलों का संयोग होता है ॥ ७ ॥ इस लिये धरातल में जहांपर यह शिला गिरैगी वहां तीनों सन्ध्याओं में अनुष्ठानही के लिये जाना चाहिये ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर ब्रह्मा जीने आसन से उपजी हुई बहुत चौड़ी उस शिला को धरातलको भलीभांति उद्देशकर फेंकदिया ॥ ९ ॥ इस के अनन्तर समस्त रत्नमयी वह शिला सब क्षेत्रों से बड़े ऐश्वर्य वाले चमत्कार

पुर के क्षेत्र में गिरपडी ॥ १० ॥ तदनन्तर ब्रह्मा जीने आपही भूमितल में आकर तीर्थों से सब ओर व्याप्त उस क्षेत्रको देखा ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस शिला को अति-पवित्र देश में प्राप्तहुई देखकर आनन्द को प्राप्त हुये उसके उपरान्त बोले ॥ १२ ॥ कि बड़े हर्ष की बात है कि मुझ से अधिक अतिधन्य दूसरा तीनों भुवन में नहीं है जिस लिये समस्त तीर्थमय इस क्षेत्र में भलीभाति स्थित हुई ॥ १३ ॥ जिससे कि जलके विना कर्म भलीभांति वर्तमान नहीं होता है इसलिये यहांपर पवित्रजल वाले महाकुण्ड को मुझको करना चाहिये ॥ १४ ॥ तदनन्तर सरस्वती नामक अपनी कन्या को भलीभांति ध्यान किया जो कि नरों के संस्पर्शन (स्नानादिक) के

दये ॥ १० ॥ ततआगत्यलोकेशस्स्वयमेवधरातलम् ॥ तत्क्षेत्रंवीक्षयामास व्याप्तंतीर्थैस्समन्ततः ॥ ११ ॥ ततःपुण्यतमेदेशेदृष्ट्वातांसमुपस्थिताम् ॥ शिलामानन्दमापन्नः प्रोवाचतदनन्तरम् ॥ १२ ॥ अहोधन्यतमोमत्तो नान्योस्तिभुवनत्रये ॥ सर्वतीर्थमयेक्षेत्रे यतोजातात्रसंस्थितिः ॥ १३ ॥ सलिलेनविनायस्मान्नक्रियासम्प्रवर्तते ॥ तस्मादत्रमयाकार्यः शुचितोयोमहाह्रदः ॥ १४ ॥ ततःसञ्चिन्तयामास स्वसुतांचसरस्वतीम् ॥ जनसंस्पर्शभीत्याच पातालतलवाहिनीम् ॥ १५ ॥ अथभूमितलंभित्त्वा प्रादुर्भूतामहानदी ॥ तांशिलाममलैस्तोयैः क्षालयन्तीसमन्ततः ॥ १६ ॥ अथमूर्तिमतीभूत्वा प्रोवाचप्रपितामहम् ॥ किमर्थंसंस्मृतादेवममादेशःप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयात्रैवसदास्थेयंशिलायांममसन्निधौ ॥ सन्ध्यात्रयेपित्वत्तोयैर्येनकृत्यंकरोम्यहम् ॥ १८ ॥ तथायेमानवाःस्नानं करिष्यन्तिजलेतव ॥ तेयास्यन्तिपरांसिद्धिं दुर्लभांदेवमानुषैः ॥ १९ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ अहंकन्यासुरश्रेष्ठ पातालतलवाहिनी ॥

भय से पातालतल में बहरही थीं ॥ १५ ॥ इस के अनन्तर पृथ्वीतल को फोडकर उस शिला को निर्मल जलों से सब ओर प्रक्षालन करती हुई महानदी प्रकट हो गई ॥ १६ ॥ इस के बाद मूर्त्तिमती होकर ब्रह्मा जी से बोली कि हे देव ! किस लिये मैं स्मरण कीगई मुझ को आज्ञा दीजावै ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यहीं पर तुमको सदैव मेरी शिला के समीप में टिकना चाहिये जिस से तीनों संध्याओंमें तुम्हारे जलों से मैं कर्मकाण्ड को करूं ॥ १८ ॥ वैसेही जे मनुष्य तुम्हारे जल में स्नान करैंगे वे देवता व मनुजों से दुर्लभ परमसिद्धि को प्राप्त होवैंगे ॥ १९ ॥ सरस्वती जी बोलीं कि हे सुरोत्तम ! मैं पातालतल में बहनेवाली कुमारिका हूं

मनुष्यों के स्पर्श भय से डरी हुई भूतलमें नहीं आती हूं ॥ २० ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारी आज्ञा मुझको किसी प्रकार अन्यथा न करनी चाहिये ऐसा मानकर जो योग्य हो उस को करो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि इसी स्थान में सब मनुष्यों के अगम्य (न जाने योग्य) इस महाकुण्डको तुम्हारे लिये मैं कल्पित करूंगा उस में तुम टिकने के योग्य हो ॥ २२ ॥ ऐसा कहकर उन देवनायक ब्रह्मा जी ने उसी स्थान में बड़े भारी कुण्ड को निर्मित किया तदनन्तर सरस्वती जीने उसी में टिकाश्रय किया ॥ २३ ॥ उस के उपरान्त ब्रह्मा जीने दृष्टि में बिषैले सर्पोंको आज्ञा दिया कि मेरी आज्ञा से तुमलोगों को सदैव इस कुण्ड में स्थित रहना चाहिये ॥ २४ ॥ हे

जनस्पर्शभयाद्भीता नागच्छामिमहीतले ॥ २० ॥ तवादेशोन्यथानैव मयाकार्य्यःकथञ्चन ॥ एवंमत्वासुरश्रेष्ठ यद्यु
क्तंतत्समाचर ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तवार्थेकल्पयिष्यामिस्थानेत्रेमंमहाह्रदम् ॥ अगम्यंसर्वमर्त्यानां तत्रत्वंस्थातु
मर्हसि ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्तत्रदेशेमहाह्रदम् ॥ चक्रेसरस्वतीतत्रसंस्थानमकरोत्ततः ॥ २३ ॥ ततोदृष्टिविषा
न्सर्पानादिदेशपितामहः ॥ युष्माभिःसर्वदास्थेयं ह्रदेस्मिञ्छासनान्मम ॥ २४ ॥ यथासरस्वतींमर्त्या नस्पृशन्ति
कथञ्चन ॥ भवद्भिस्सर्वथाकार्य्यं तथापन्नगसत्तमाः ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ एवंब्रह्माव्यवस्थाप्य तत्रक्षेत्रेसरस्वतीम् ॥
तांचचित्रशिलांमध्ये ब्रह्मलोकंजगामह ॥ २६ ॥ अथमङ्कणकोनाममहर्षिश्शंसितव्रतः ॥ क्षेत्रेतत्रसमायातो विषविद्या
विचक्षणः ॥ २७ ॥ सक्रमाद्भ्रममाणस्तु तस्मिन्क्षेत्रेसमन्ततः ॥ वीक्षमाणस्तुमेध्यानि तीर्थान्यायतनानिच ॥ २८ ॥

सर्पोत्तमो ! आप लोगोंको सर्वथा वैसाही करना चाहिये जैसे कि मनुष्य सरस्वतीजी को किसी प्रकार स्पर्श न करैं ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि उस क्षेत्र में इस प्रकार ब्रह्मा जी सरस्वतीजी को व मध्यमे उस अद्भुत शिला को स्थापितकर हर्ष से ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर प्रशंसितव्रत या कर्मोंवाले व विषविद्या में चतुर मङ्कणक नामक महर्षि उस क्षेत्र में आये ॥ २७ ॥ और वे मुनि उस क्षेत्रमें घूमते व सब ओर पवित्र तीर्थों तथा मन्दिरों को देखते हुये उस कुण्ड में भली भांति प्राप्त हुये जो कि दुष्ट सर्पों से सब ओर रक्षित था तदनन्तर क्रोधित होतेहुये उन सर्पोंने रक्षा के लिये चारों ओर से लपेट लिया व फँसरियों से बांध लिया व

व उस कुण्ड में नहाकर तथा पवित्र होकर व पितरों का तर्पण कर
उन मुनि ने भी विद्या के बल से उन सर्पों को विपरहितही कर दिया ॥ २८ । २९ । ३० ॥ तदनन्तर उस मुनिने जबतक कुशका भलीभांति ग्रहण किया तभीतक इसका कराग्र कुश
आनन्दयुक्त व कृतार्थ होता हुआ वह मुनि उस जलसे निकला ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उसके उस घाव से बहुतही शाकरस उपजा उसको देखकर वह आश्चर्य्यसंयुत होताहुवा विशेषकर हर्पितहुआ ॥
के अग्रभाग से फटगया ॥ ३२ ॥ इस के अनन्तर उसके उस घाव से बहुतही शाकरस उपजा उसको देखकर वह आश्चर्य्यसंयुत होताहुवा विशेषकर हर्पितहुआ ॥
३३ ॥ तदनन्तर मैं सिद्ध होगया यह जानकर आनन्द के आंसुओंसे डूबा हुआ उस मुनिने ब्राह्मी शिला के ऊपर भलीभांति चढ़कर नृत्यकिया ॥ ३४ ॥ इसके अन-

समायातोहृदेतस्मिन्दुष्टसर्प्पाभिरक्षिते ॥ ततस्तेपन्नगाःक्रुद्धारक्षणार्थंसमन्ततः ॥ २९ ॥ तंमुनिंवेष्टयामासुर्बन्धुश्चै
वपाशकैः ॥ सोपिविद्याबलात्सर्प्पान्निर्विषांस्तांश्चकारह ॥ ३० ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा कृत्वाचपितृतर्प्पणम् ॥ नि
ष्क्रान्तःसलिलात्तस्मात्कृतकृत्योमुदान्वितः ॥ ३१ ॥ ततश्चक्रेमुनिर्यावत्सम्यक्कुशपरिग्रहम् ॥ दर्भाग्रेणास्यहस्ताग्रं
पाटितंतावदेवहि ॥ ३२ ॥ अथतस्मात्क्षताज्जातस्तस्यशाकरसोमहान् ॥ तंदृष्ट्वासविशेषेण हर्षितोविस्मयान्वितः ॥
३३ ॥ सिद्धोहमितिविज्ञाय नृत्यंचक्रेततःपरम् ॥ ब्राह्मींशिलांसमारुह्य चानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ ३४ ॥ अथैवंनृत्यमान
स्य मुनेस्तस्यमहात्मनः ॥ लास्यंचक्रेततःसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३५ ॥ चमत्कारपुरंकृत्स्नं भग्नंनष्टंद्विजोत्त
माः ॥ प्रासादैर्भ्रंशितैस्तत्र हाहाकारोमहानभूत् ॥ ३६ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे तद्दृष्ट्वातस्यचेष्टितम् ॥ लास्यस्यवार
णार्थायप्रोचुर्वृषभवाहनम् ॥ ३७ ॥ अनेननृत्यमानेन जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ नृत्यंकरोतिदेवेश तस्माद्गत्वानिवारय ॥ ३८ ॥

॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दिरों के गिरने से सब चमत्कार नगर
न्तर इसप्रकार उस माहात्मा मुनिको नाचतेहुये उस समय समस्त चराचर संसार ने नृत्य किया ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दिरों के गिरने से सब चमत्कार नगर
टूटफूट कर नष्ट होगया और वहांपर बड़ा भारी हाहाकार हुआ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस मुनिके उस कर्म को देखकर सब देवोंके समूह नृत्यको निवारणके लिये बैल
वाहनवाले शिवजी से बोले ॥ ३७ ॥ कि हे देवनायक ! नृत्य करते हुये इस मुनिसे स्थावर, जङ्गम समेत संसार नृत्य कररहाहै इसलिये तुम जाकर मनाकरो ॥ ३८ ॥

हे ईशान सुरश्रेष्ठ ! अन्य जन इन मुनिको किसी प्रकार निवारण करने को समर्थ नहीं है उस लिये संसार के हित को कीजिये ॥ ३९ ॥ इस के अनन्तर उन देवताओंके वचन को सुनकर वृषभध्वज शिव भगवान् विप्रेन्द्र का रूप कर उसके समीपगये ॥ ४० ॥ और बोले कि हे मुने ! इस समय तुम से यह नृत्य किसलिये कियाजाता है उस से शीघ्रही कार्य्य को कहो क्योंकि हमको परम आश्चर्य है ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! कल्याणकारक शिवजी से इस प्रकार कहे हुये उस द्विजेन्द्रने शाकरससे संयुत अपने हाथ को भलीभांति दिखाया ॥ ४२ ॥ व कहा कि हे ब्रह्मन् ! क्या तुम नहीं देखते हो मेरे हाथ से बहुतही शाकरस उत्पन्न हुआ इस लिये

नान्यःशक्तस्सुरश्रेष्ठ मुनिमेनंकथञ्चन ॥ निषेधयितुमीशान ततःकुरुजगद्धितम् ॥ ३९ ॥ अथतेषांवचःश्रुत्वाभगवान्वृषभध्वजः ॥ कृत्वारूपंद्विजेन्द्रस्य तत्सकाशमुपाद्रवत् ॥ ४० ॥ अब्रवीच्चमुनेकस्मात्त्वयैतन्नृत्यतेधुना ॥ तस्मात्कार्य्यंवदस्वाशु परंकौतूहलंहिनः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तःसविप्रेन्द्रश्शङ्करेणद्विजोत्तमाः ॥ हस्तंसन्दर्शयामास स्वस्यशाकरसान्वितम् ॥ ४२ ॥ किन्नपश्यसिमेब्रह्मन्कराच्छाकरसोमहान् ॥ सञ्जातःक्षतवक्त्रेण तस्मात्सिद्धिरुपस्थिता ॥ ४३ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्र नृत्यमेतत्करोम्यहम् ॥ आनन्दंपरमंप्राप्य सिद्धिजंसिद्धसत्तम ॥ ४४ ॥ एवन्तुवदतस्तस्यभगवान्वृषभध्वजः ॥ अङ्गुष्ठंताडयामासस्वाङ्गुल्यग्रेणतत्क्षणात् ॥ ४५ ॥ निश्चक्रामततोभस्म हिमस्फटिकसन्निभम् ॥ क्षताग्रात्सहसातस्य महाविस्मयकारकम् ॥ ४६ ॥ ततःप्रोवाचतंविप्रं सदेवोद्विजसत्तमाः ॥ पश्याङ्गुष्ठाग्रतोमध्यान्निष्क्रान्तंभस्मपाण्डुरम् ॥ ४७ ॥ तथाप्यहंमुनिश्रेष्ठ न नृत्यंकर्त्तुमुत्सहे ॥ त्वंपुनर्नृत्यसेकस्माद

घावरूप मुखके द्वारा सिद्धि समीप में प्राप्तहुई है ॥ ४३ ॥ इसी कारण से हे सिद्धसत्तम विप्रजी ! सिद्धि से उपजे हुये परम आनन्द को पाकर मैं इस नृत्य को करता हूं ॥ ४४ ॥ ऐसाकहतेहुये उस मुनिके अंगूठे को वृषभध्वज शिव भगवान् ने उसीक्षण अपनी अंगुली के अग्रभाग से ताडन किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उस अंगूठे के घावके अग्रभागसे अचानक भस्म निकली जो कि महा विस्मयकारकव हिम (बर्फ) व बिल्लौरपत्थरके समान श्वेत थी ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर वह सदाशिव देव उस ब्राह्मण से बोले कि अंगूठे के आगे मध्यभागसे निकलती हुई श्वेतवर्णवाली भस्म को देखो ॥ ४७ ॥ हे मुनि सत्तम ! तिसपर भी मैं नृत्य करने

के लिये उत्साह नहीं करता हूं फिर तुम शाकरसके देखने से भी किस लिये नृत्य करते हो ॥ ४८ ॥ हे द्विजेन्द्र ! इस लिये इस निन्दित नृत्य से तुम निवृत्त होओ क्योंकि नाचने गाने से ब्राह्मणकी तपस्या नष्ट होती है ॥ ४९ ॥ इस के अनन्तर घाव से निकली हुई उस निन्दित भस्मको देखकर लज्जायुत होते हुये उस मुनि ने नृत्य को छोड़कर उन शिव जी को नमस्कार किया ॥ ५० ॥ व कहा कि महेश्वर देवता से अन्य तुमको मैं नहीं मानताहूं याने तुम महादेवही हो इसलिये मेरेऊपर प्रसन्नता कीजिये जैसे कि तप की हानि न होवै ॥ ५१ ॥ श्रीशिव भगवान् बोले कि मेरी प्रसन्नता से तुम्हारी तपस्या नित्यही वृद्धि को प्राप्तहोवैगी व इसी स्थान में

पिशाकरसेक्षणात् ॥ ४८ ॥ विरामंकुरुतस्मात्त्वं नृत्यादस्माद्विगर्हितात् ॥ तपःक्षरतिविप्रेन्द्र नृत्यगीताद्द्विजन्मनः ॥ ४९ ॥ अथासौतत्समुद्वीक्ष्य क्षताद्भस्मविगर्हितम् ॥ नृत्यंव्रीडान्वितस्त्यक्त्वा तस्यचक्रेनमस्कृतिम् ॥ ५० ॥ अब्रवीत्त्वामहंमन्ये नान्यंदेवान्महेश्वरात् ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे यथानस्यात्तपःक्षतिः ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्तेमत्प्रसादेन वृद्धिंयास्यतिनित्यशः ॥ स्थानेत्रभवतासार्द्धमिहस्थास्यामिसर्वदा ॥ ५२ ॥ आनन्दितेनभवताप्रार्थितोहंयतोमुने ॥ आनन्देश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्यातिंयास्यामिभूतले ॥ ५३ ॥ एतत्पुरंचमेनाम्ना चानन्दाख्यंभविष्यति ॥ एवमुक्त्वामहादेवो गतश्चादर्शनंततः ॥ ५४ ॥ सोपिमङ्कणकस्तत्र तपस्तेपेमुनीश्वरः ॥ अथतेपन्नगाःप्रोचुः प्रणिपत्यमुनीश्वरम् ॥ ५५ ॥ भगवन्निर्विषास्सर्वे वयंहिभवताकृताः ॥ तस्मात्कुरुप्रसादेन यथास्याद्दारुणंविषम् ॥ ५६ ॥ नोचेद्यंगमिष्यामः सर्वलोकपराभवम् ॥ ५७ ॥ मङ्कणकउवाच ॥ अनृतंनमयाप्रोक्तं स्वैरेणापिकदाचन ॥ तस्मादेवंविधास्स

यहांपर तुमसमेत मैं सदैव टिकूंगा ॥ ५२ ॥ हे मुने ! जिस लिये आनन्द में प्राप्त होते हुये तुमने मुझ से प्रार्थना की इस से पृथ्वीतल में आनन्देश्वरनामक मैं प्रसिद्धि को प्राप्तहूंगा ॥ ५३ ॥ व यह नगर भी मेरे नामसे आनन्द नामक होगा ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ५४ ॥ व मुनिनायक उस मङ्कणक ने भी व्हांपर तप किया इस के अनन्तर वे सर्प मुनिनाथ को प्रणामकर बोले ॥ ५५ ॥ कि हे भगवन् ! आपने हम सबों को भी विषहीन कर दिया इस लिये जैसे कि प्रसन्नतासे दारुण विष होवै वैसाहीकरो ॥५६॥ नहीं तो हमलोग सब मनुष्योंसे अनादरको प्राप्त होवैंगे ॥५७॥ मङ्कणक मुनि बोले कि मैंने अपनी इच्छा

से भी कभी असत्य नहीं कहा है इस लिये तुम सब इसी प्रकार के जल सर्प होवोगे ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि तब से लगाकर केवल विप से रहित उसीप्रकार के रूपवाले व दो जिह्वावाले जलके सर्प भूतल में उत्पन्नहुये ॥ ५९ ॥ इसके अनन्तर उस उत्तम सारस्वतकुण्ड में मनुष्य नहाकर व उस चित्रशिलाका स्पर्शकर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर डरेहुये हजारनेत्रोंवाले इन्द्रजी यमराज सहित पितामह (ब्रह्मा) देवता के समीप शीघ्रही जाकर प्राप्त हुये व उस समय बोले ॥ ६१ ॥ कि हे पितामह ! पृथ्वीतल में जो तुमने बडे भारीतीर्थ को निर्मित किया है उस को मनुष्य भलीभांति देखकर तुम्हारी प्रसन्नता से

वैंजलसर्प्पाभविष्यथ ॥ ५८ ॥ सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिसञ्जाता जलसर्प्पामहीतले ॥ तद्रूपाद्विजिह्वाश्च केवलंविषवर्जिताः ॥ ५९ ॥ अथतस्मिन्ह्रदेमर्त्याःस्नात्वासारस्वतेशुभे ॥ स्पृष्ट्वाचित्रशिलांतांच प्रयान्तिपरमांगतिम् ॥६०॥ अथभीतःसहस्राक्षो गत्वादेवंपितामहम्॥ यमेनसहितस्तूर्णंप्रोवाचचतदागतः ॥ ६१ ॥ त्वत्प्रसादात्समुद्वीक्ष्यगच्छन्ति मनुजादिवम् ॥ पितामहमहातीर्थं यत्त्वयाविहितंक्षितौ ॥ ६२॥ सारस्वतेनरास्तत्र स्नात्वायान्तित्रिविष्टपम् ॥ अपिपापसमाचारास्सर्वधर्म्मबहिष्कृताः ॥ ६३ ॥ तत्रस्नात्वाशिलांस्पृष्ट्वातदैवायान्तिसद्गतिम् ॥ ६४ ॥ यमउवाच ॥ अप्रमाणंविभोकर्म्मं सम्प्रयातंममोचितम् ॥ शुभाशुभपरिज्ञाने सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥६५ ॥तस्माद्ब्रह्मंस्त्यजत्वंमां यद्वातत्तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्प्रभावाज्जनैर्हीनाः सञ्जातानरकाममम ॥ ६६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा यमस्यप्रपितामहः ॥ प्राहपार्श्वस्थितंशक्रं तत्तीर्थंनयसङ्क्षयम् ॥ ६७ ॥ ततःशक्रोह्रदंगत्वापूरयामासपांशुभिः ॥ ह्रदंसारस्वतंचैवतां चचित्रशिलांद्वि

स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६२ ॥ और सब धर्मों से अलग किये हुये व पापाचरणों में तत्पर मनुष्य भी वहांपर सारस्वतकुण्ड में नहाकर स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६३ ॥ व वहांपर नहाकर तथा शिला का स्पर्शकर उसी समय उत्तमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ यमराज बोले कि हे विभो ! सबही देहधारियोंके शुभ, अशुभकर्म के भलीभांति जानने में उचित मेरा कर्म प्रमाण रहित होता हुआ चलागया ॥ ६५ ॥ इस लिये हे ब्रह्मन् ! तुम मुझ को अथवा उस तीर्थ को त्यागो कि जिस के प्रभाव से मेरे नरक नरों से हीन होगये ॥ ६६ ॥ उन यमराज जी के उस वचन को सुनकर ब्रह्माजीने पास खड़े हुये इन्द्रजीसे कहा कि उस तीर्थको नाशकरदो ॥ ६७ ॥

तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! इन्द्रजी ने जाकर उस सारस्वत कुण्ड को व उस चित्रशिला को धूलि से पूर्ण करदिया ॥ ६८ ॥ उस स्थान में आज भी भली भांति टिकता हुआ जो मनुष्य तपस्या को करता है वह शीघ्रही सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहांपर दानादिगुणसम्पन्न महादेव जी के सहित वह मङ्कणक और धूलि से पूरित वह तीर्थ आज भी प्राप्त है ॥ ७० ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहांपर बहुतही ऐश्वर्य्यवान् मङ्कणकेश नामक लिङ्ग है उसको स्पर्शकर मनुष्य पापों से छूटजाते हैं ॥ ७१ ॥ माघमास की शुक्लपक्षवाली चतुर्दशी तिथि में जो मनुष्य उन शिव जी को पूजता है पापोंसे संयुत भी वह शिवलोक में पूजित होता है ॥ ७२ ॥

जाः ॥ ६८ ॥ अद्यापिमनुजःसम्यक् तस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ यःकरोतितपश्चर्य्यां सशीघ्रंसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ सोपिमङ्कणकस्तत्रसार्द्धंदेवेनशम्भुना ॥ अद्यापितिष्ठतेविप्राःपूरितंचैवपांशुना ॥ ७० ॥ लिङ्गमङ्कणकेशाख्यं तत्रास्तिसुमहोदयम् ॥ तत्स्पृष्ट्वामानवाःपापैर्मुच्यन्तेद्विजसत्तमाः ॥ ७१ ॥ माघशुक्लचतुर्दश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ सपापैरपिसंयुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येचित्रशिलामाहात्म्यं नामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे देवस्यजलशायिनः॥स्थानमस्तिसुविख्यातं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ यस्तंपूजयतेविप्राः शयनेबोधनेहरिम् ॥ उपवासपरोभूत्वा सगच्छेद्वैष्णवंपदम् ॥ २ ॥ अशून्यशयनानाम द्वितीयादयिता तिथिः ॥ सदैवदेवदेवस्य कृष्णाशुक्लस्ययाभवेत् ॥ ३ ॥ तस्यांयःपूजयेत्तत्र तंदेवंजलशायिनम् ॥ शास्त्रोक्तेनविधाने

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरमाहात्म्येचित्रशिलामाहात्म्यंनामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ ❀ ॥

दो॰ । इकतालिस अध्याय में जलशायी उत्पत्ति । जिनहिं पूजि वासव सुखी भये कही सो युक्ति ॥ सूतजी बोले कि उसी मङ्कणकेश लिंगके उत्तर दिशा के भाग में जलशायी विष्णु जीका बहुत प्रसिद्ध व महापापोंका विनाशक स्थानहै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उपास में तत्पर होकर जो मनुष्य शयन, बोधन समय में उन विष्णु जी को पूजता है वह विष्णु जीके स्थान को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ आषाढ़ महीने की शुक्लपक्षवाली जो अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि है वह देवताओं के

देवता श्रीविष्णु जी को सदैव प्यारी है ॥ ३ ॥ उस स्थान में उस द्वितीया तिथि के दिवस जो मनुष्य शास्त्र में कही हुई विधि से उन जलशायी विष्णु को पूजता है वह विष्णु जी के स्थान को जाता है ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर जलशायी विष्णु किस प्रकार प्राप्तहुये हैं व किस विधान से पूजे जाते हैं उस सबको विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ सूत जी बोले कि पुरातन समय दैत्यों का स्वामी बड़ा बलवान् बाष्कलि नामक हुआ है जो कि सब देवता व गन्धर्व, नाग, राक्षसों के अजेय (न जीतने योग्य) था ॥ ६ ॥ इस के अनन्तर बड़ा बलवान् वह दैत्य समस्त भूमितल को वश में कर तदनन्तर दैत्यसमूहों से सहित स्वर्ग

न सगच्छतिहरेःपदम् ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ जलशायीकथंतत्र सम्प्राप्तःसूतनन्दन ॥ पूज्यतेविधिनाकेन तत्सर्वंविस्तराद्वद ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीद्बाष्कलिर्नाम दानवेन्द्रोमहाबलः ॥ अजेयःसर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ६ ॥ अथासौभूतलंसर्वं वशेकृत्वामहाबलः ॥ ततोदैत्यगणैस्सार्द्धं जगामत्रिदशालयम् ॥७॥ तत्राभवन्महायुद्धं देवासुरविनाशकम् ॥ देवानांदानवानांच क्रुद्धानामितरेतरम् ॥ ८ ॥ वर्षाणामयुतंयुद्धं तद्बभूवातिदारुणम् ॥ तत्रासृक्कर्दमोजातः पर्वतश्चास्थिसम्भवः ॥ ९ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते दशमेसमुपस्थिते ॥ जितस्तेनसहस्राक्षः ससैन्यःसपरिग्रहः ॥ १० ॥ ततःस्वर्गंपरित्यज्य सर्वैर्देवगणैस्सह ॥ जगामशरणंविष्णोःश्वेतद्वीपंप्रतिश्रितम् ॥ ११ ॥ यत्रास्तेभगवान्विष्णुर्योगनिद्रावशंगतः ॥ शयानःशेषपर्य्यङ्के लक्ष्म्यासंवाहिताङ्घ्रियुक् ॥ १२ ॥ ततोवेदोद्भवैस्सूक्तैः स्तुतिंचक्रुःसमन्ततः ॥

को गया ॥ ७ ॥ वहांपर परस्पर में क्रोधित देवता व दानवों का बड़ा भारी युद्ध हुवा जो कि सुर व असुरोंका विशेषकर नाशक हुआ है ॥ ८ ॥ व दश हज़ार वर्ष पर्यन्त वह बड़ा घोर युद्ध हुआ उस में रक्तका कीचड व हड्डियों से उपजा हुआ पर्वत होगया ॥ ९ ॥ तदनन्तर दशयें हजार वर्ष के अन्त को समीप में प्राप्त होते हुये उस दैत्य ने सेना सहित व परिवार समेत हज़ार नेत्रवाले इन्द्रजीको जीतलिया ॥ १० ॥ तदनन्तर स्वर्गको छोड़कर सब देवताओं समेत इन्द्र जी श्वेतद्वीप प्रतिटिके हुये विष्णुजी के शरण में गये ॥ ११ ॥ जहांपर कि लक्ष्मी जी से भलीभांति मींजे हुये चरणयुगलवाले विष्णु भगवान् योगनिद्रा के वश मे प्राप्त व शेषशय्या

के ऊपर सोते हुये वर्तमानथे ॥ १२ ॥ तदनन्तर इन्द्र समेत सब देवता उत्तम भक्तिसे वेद में उपजे हुये स्तोत्रों से उन विष्णुदेव की स्तुति किया ॥ १३ ॥ इस के अनन्तर संसार के स्वामी विष्णु जी उठकर बल दैत्य के मारनेवाले इन्द्र से बोले कि हे सहस्राक्ष ! क्या इस समय तीनों भुवन में कुशल है ॥ १४ ॥ क्योंकि सुरसमूहों से सहित जो तुम आपही यहांपर आये हो ॥ १५ ॥ इन्द्र जी बोले कि महादेव जी से वरदान को पायाहुआ दैत्यों का स्वामी बाष्कलि नामक जो कि समर में देवतों से अजेय (न जीतने योग्य) है उसने मुझको युद्ध में जीतलिया ॥ १६ ॥ हे मधु दैत्य के मारनेहारे विष्णु जी ! इस समय स्वर्ग में उसने भली

तस्यदेवस्यसद्भक्त्या सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १३ ॥ अथोत्थायजगन्नाथः प्रोवाचबलसूदनम् ॥ कच्चित्क्षेमंसहस्राक्ष सा म्प्रतंभुवनत्रये ॥ १४ ॥ यस्त्वंदेवगणैस्सार्द्धं स्वयमेवत्विहागतः ॥ १५ ॥ शक्रउवाच ॥ बाष्कलिर्नामदैत्येन्द्रो हरल ब्धवरोबली ॥ अजेयःसङ्गरेदेवैस्तेनाहंविजितोरणे ॥१६ ॥ संस्थितिश्चकृतास्वर्गे साम्प्रतंमधुसूदन ॥ तेनैवशरणंप्राप्तो देवैस्सार्द्धंसुरोत्तम ॥ १७ ॥ हिरण्याक्षभयाद्देवा हिरण्यकशिपोःपुरा ॥ त्वयात्रातावयंसर्वे तथान्येषांदुरात्मनाम् ॥ १८ ॥ तस्मादस्मादपित्राहि दानवाद्बलवत्तरात् ॥ बाष्कलेर्नास्तिदेवेश त्वांमुक्त्वान्यापरागतिः ॥१९॥ श्रीभगवानु वाच ॥ अहंतंनिग्रहिष्यामि सम्प्राप्तेसमयेस्वयम् ॥ तस्मात्त्वंसमयंयावत्कुरुशक्रतपोमहत् ॥ २० ॥ येनतेजायतेश क्तिस्तपोवीर्य्येणवासव ॥ वधायतस्यदैत्यस्य बलयुद्धस्यबाष्कलेः ॥ २१ ॥ शक्रउवाच ॥ कस्मिन्क्षेत्रेजगन्नाथ क

भांति ठिकाना भी करलिया उसी से हे सुरश्रेष्ठ ! देवताओं समेत मैं शरण में प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ पुरातन समय में हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु तथा और दुष्टचित्त या मानसवाले दैत्योंके भय से तुमने हम सब देवताओं की रक्षा कियाहै ॥ १८ ॥ इसलिये हे देवनायक, विष्णुजी ! इस बड़े बलवान् बाष्कलि नामक दानव से भी रक्षाकरिये क्योंकि तुमको छोड़कर और उत्तमगति नहीं है ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे इन्द्र ! जब समय प्राप्त होगा तब मैं आपही उस दैत्य का निग्रह याने वध करूगा इसलिये समय पर्य्यन्त तुम बड़ी तपस्या करो ॥ २० ॥ जिस लिये हे इन्द्र ! बलसे युद्ध करनेवाले उस बाष्कलि नामक दैत्यके मारने के

लिये तपस्या के प्रभावसे तुम्हारे सामर्थ्य उत्पन्न होवै ॥ २१ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे जगदीश्वर ! उस दैत्यके नाशने के लिये किस स्थान में मैं बड़ी तपस्या को करूं तुम उसको हमसे कहो ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उसको सुनकर इसके अनन्तर विष्णुभगवान् ने वहुत देरतक क्षेत्र व देवमन्दिरों को मनमें चिन्तनकर इन्द्र से कहा ॥ २३ ॥ कि हे इन्द्र ! चमत्कारनगर का क्षेत्र सिद्धिदायक है इस लिये वहांपर शीघ्रही जाकर उसके मारने के लिये तुम तप करो ॥ २४ ॥ इन्द्र बोले कि हे केशव ! बाष्कलि दानवेशके भयसे डरेहुये वे हम लोग आपसे विना इस स्थानमें किसी प्रकार न जावैंगे ॥ २५ ॥ इसलिये हे सुरनायक ! वहांपर तुम

रोमिसुमहत्तपः ॥ तस्यदैत्यस्यनाशार्थं तदस्माकंप्रकीर्तय॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्विष्णुः प्रोवाचाथपु
रन्दरम् ॥ चिरंमनसिनिश्चित्य क्षेत्राण्यायतनानिच ॥ २३ ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रं शक्रसिद्धिप्रदायकम् ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंग
त्वा तद्वधार्थंतपःकुरु ॥ २४ ॥ इन्द्रउवाच ॥ तेवयंभवताहीनायास्यामोनात्रकेशव ॥ बाष्कलेर्दानवेन्द्रस्यभयाद्भीताः
कथञ्चन ॥ २५ ॥ तस्मादागच्छतत्रत्वं स्वयमेवसुरेश्वर ॥ त्वयासंरक्षितोयेन करोमिसुमहत्तपः ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥
तदासभगवान्विष्णुस्तथेत्युक्त्वासुरैस्सह ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रमाजगामसहश्रिया ॥ २७ ॥ अथदेवगणास्सर्वे तत्रगत्वा
तदाश्रमान् ॥ चक्रुःपृथक्पृथग्दृष्ट्वा तपोर्थकृतनिश्चयाः ॥ २८ ॥ वासुदेवोपिसंस्मृत्य क्षीरोदंतत्रसागरम् ॥ आनिना
यसुविस्तीर्णे ह्रदेतस्मिन्पुरातने ॥ २९ ॥ चकारशयनंतत्रश्वेतद्वीपेयथापुरा ॥ स्तूयमानःसुरैःसर्वैः समन्ताद्विनयान्वि

आपही आवो कि जिसलिये तुमसे भलीभांति रक्षित मैं बड़ेभारी तपको करूं ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि उस समय विष्णुभगवान्जी तथा अर्थात् वैसाही होगा यह कहकर लक्ष्मीजी समेत देवताओं के साथ चमत्कार नगरके क्षेत्रको आये ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस समय तपस्या के लिये निश्चयको कियेहुये समस्त सुरसमूहोंने वहां जाकर व देखकर भिन्न २ आश्रमोंको निर्मित किया ॥ २८ ॥ व वासुदेवभगवान् भी क्षीरसागरको भलीभांति स्मरणकर वहांपर बहुत चौड़े उस प्राचीन कुण्ड में ले आये ॥ २९ ॥ व विनयसंयुत सब देवताओं से चारोंओर स्तुति कियेजातेहुये विष्णु ने जैसे पहले श्वेतद्वीप में शयन कियाहै वैसेही वहां

शयन किया ॥३०॥ इसके अनन्तर आषाढ़महीनेके कृष्णपक्षमें शुभदायक द्वितीया दिन प्राप्तहोनेपर बृहस्पतिजी आपही आंसुओंसे विकल लोचनवाले व हजारनेत्रवाले इन्द्रजी से नम्रवचनको बोले ॥ ३१ । ३२ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्र ! आज अशून्यशयना नाम द्वितीया तिथि है जोकि जलाशय में सोयेहुये विष्णुजी को अत्यन्तही प्यारी है ॥ ३३ ॥ इस तिथि में भलीभांति पूजे व सदैव चित्तमें ध्यान कियेहुये विष्णुजी चार महीने पर्य्यन्त समस्तकामनाओंको देते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार भलीभांति व्रतमें टिकेहुये वे इन्द्रजी शास्त्रमें कहेहुये विधानसे चार महीने द्वितीयादिवस में जलशायी विष्णुजी को पूजकर तेज समेत होगये उनको तेज

तैः ॥ ३० ॥ अथाषाढस्यचप्राप्ते द्वितीयादिवसेशुभे ॥ कृष्णपक्षेसहस्राक्षं स्वयमेवबृहस्पतिः ॥ ३१ ॥ प्रोवाचवचनं श्लक्ष्णंबाष्पव्याकुललोचनम् ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अशून्यशयनानाम द्वितीयाद्यपुरन्दर ॥ अतीवदयिताविष्णोःप्रसुप्तस्यजलाशये ॥ ३३ ॥ अस्यांसम्पूजितोविष्णुर्यावन्मासचतुष्टयम् ॥ ददातिसकलान्कामान्ध्यातश्चेतसि सर्वदा ॥ ३४ ॥ शास्त्रोक्तविधिनासम्यग्व्रतस्थोजलशायिनम् ॥ एवंसचतुरोमासान् द्वितीयादिवसेहरिम् ॥ ३५ ॥ पूजयित्वासहस्राक्षस्तेजसासहितोभवत् ॥ तंदृष्ट्वातेजसायुक्तंपरितुष्टोजनार्दनः ॥ ३६ ॥ प्रोवाचशक्रगच्छाद्यवधार्थं तस्यबाष्कलेः ॥ सर्वैर्देवगणैःसार्द्धं विजयस्तेभविष्यति ॥ ३७ ॥ शक्रउवाच ॥ बिभेमितस्यदेवाहं दानवेन्द्रस्यदुर्मतेः ॥ त्वयाविनानगच्छामि सार्द्धंसर्वैःसुरैरपि ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयासहसहस्राक्ष चक्रमेतत्सुदर्शनम् ॥ गमिष्यतिवधार्थाय मदीयंसुरविद्विषाम् ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वाहरिश्चक्रं प्रमुमोचसुदर्शनम् ॥ वधार्थंदानवेन्द्राणां शक्रेण

संयुत देखकर जनार्दन भगवान् प्रसन्न हुये ॥ ३५ । ३६ ॥ व बोले कि हे इन्द्र ! आज सब देवताओं समेत तुम उस बाष्कलिके मारने के लिये जावो तुम्हारी विशेषकर जीत होगी ॥ ३७ ॥ इन्द्र जी बोले कि हे देव ! उस दुष्टबुद्धिवाले दैत्येन्द्रसे मैं डरता हूं इसलिये सब देवताओं समेत भी तुम्हारे विना न जाऊंगा ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे हज़ार नेत्रोंवाले इन्द्र ! देववैरियों के मारने केलिये मेरा यह सुदर्शनचक्र तुम्हारे साथ जावैगा ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर भक्तदुःखहारी विष्णु

जी ने उस समय दानवेन्द्रों के मारने के लिये इन्द्र समेत सुदर्शनचक्र को छोड़ा ॥ ४० ॥ इन्द्र ने भी उस चक्र समेत जाकर रणशीर्ष में सब दैत्यों को सम्पूर्णता से काटडाला ॥ ४१ ॥ और वह बाष्कलि दैत्य भी उस चक्र से समस्त कटगया व वज्र से ताड़ित पर्वत के समान पृथ्वी के ऊपर गिरपड़ा ॥ ४२ ॥ व वैसेही बल से गर्वित और बहुतेरे शूर दानव गिर गये और सुदर्शनचक्र दैत्यों को मारकर फिर विष्णु जीके हाथ में प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर संशयरहित व प्रसन्न होतेहुये इन्द्रादिक देवता भी फिर विष्णु जी के निकट जाकर व प्रणामकर उस के उपरान्त बोले ॥ ४४ ॥ कि हे देवेश विष्णु जी ! मेरे सब शत्रु मरगये और नष्टकण्टक

सहितंतदा ॥ ४० ॥ शक्रोपिसहितस्तेन गत्वाचक्रेणकृत्स्नशः ॥ सर्वानुच्छेदयामास दानवान्रणमूर्द्धनि ॥ ४१ ॥ सचापिबाष्कलिस्तेनच्छिन्नश्चक्रेणकृत्स्नशः ॥ पपातधरणीपृष्ठे वज्राहतइवाचलः ॥ ४२ ॥ तथान्येबहवश्शूरा दानवाबलदर्पिताः ॥ हत्वासुदर्शनंचक्रं भूयःप्राप्तंहरेःकरम् ॥ ४३ ॥ तेपिशक्रादयोदेवाः प्रहृष्टागतसंशयाः ॥ भूयोविष्णुंसमेत्याथ प्रोचुर्नत्वाततःपरम् ॥ ४४ ॥ प्रभावात्तवदेवेशहताःसर्वेममारयः ॥ प्राप्तंत्रैलोक्यराज्यंच भूयोनिहतकण्टकम् ॥४५॥ तस्मात्कीर्तयकृत्यंतद्यच्छ्रेयस्करंमम ॥ सदास्यात्पुण्डरीकाक्ष तथाशत्रुभयावहम् ॥४६॥ भगवानुवाच ॥ मयात्रैवसदास्थेयं रूपेणानेनवासव ॥ सर्वलोकहितार्थाय ह्रदेपुण्यजलाश्रये ॥ ४७ ॥ त्वयातस्मात्समागम्य चातुर्मास्यंशचीपते ॥ प्रयत्नेनप्रकर्तव्यमशून्यशयनव्रतम् ॥ ४८ ॥ नभवन्तिसहस्राक्ष येनतेपरिपन्थिनः ॥ तथाभीष्टफलावाप्तिर्मत्प्रसादादसंशया ॥४९॥ अन्योपियोनरोभक्त्या पूजयिष्यतिमामिह ॥ सम्प्राप्स्यतिसताँल्लोकान्

वाला त्रिलोक का राज्य फिर मिला ॥ ४५ ॥ इसलिये हे कमलदललोचन विष्णु जी ! उस कार्य्य को कहिये जो कि मुझको सदैव कल्याणकारक व शत्रुओं को भयदायक हो ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे इन्द्र ! सब जनों के कल्याण के लिये यहींपर पुण्यरूपी जलाशय कुण्ड में मुझको इसी रूप से सदैव टिकनाचाहिये ॥ ४७ ॥ इसलिये हे इन्द्राणी के पति इन्द्र जी ! भलीभांति जाकर चौमासे में होनेवाले अशून्यशयन नामक व्रत को बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ४८ ॥ जिस से हे इन्द्र ! तुम्हारे शत्रु नहीं होतेहैं और मेरी प्रसन्नतासे सन्देहरहित वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥ व और भी जो मनुष्य यहांपर मुझको भक्ति

से पूजैगा वह देवताओंसे भी दुर्लभ उन लोकोंको भलीभांति प्राप्तहोवैगा ॥ ५० ॥ इसलिये हे हजार नेत्रवाले देवेश इन्द्रजी ! तुम जावो स्वर्गमें राज्यकरो और फिर भी कार्यका समय भलीभांति आनेपर जैसे श्वेतद्वीप में वैसेही यहांपर मैं देखने के योग्य हूं इस में सन्देह नहीं है ॥ ५१ । ५२ ॥ सूत जी बोले कि तदनन्तर उन विष्णु जी को प्रणामकर व देखकर इन्द्र जी चलेगये और वासुदेव भी संसार के हित के लिये वहींपर टिकगये ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार वहांपर सब मनुष्यों के हित के लिये जलमें शयन करनेवाले जनार्दन परमेश्वर जी भलीभांति स्थितहुये ॥ ५४ ॥ चातुर्मास्य (चौमासे) में विशेषकर परमश्रद्धासंयुत जो मनुष्य भक्ति

दुर्लभांस्त्रिदशैरपि ॥ ५० ॥ तस्माद्गच्छसहस्राक्ष कुरुराज्यंत्रिविष्टपे ॥ भूयोप्यत्रैवदेवेश द्रष्टव्योस्मिन्नसंशयः ॥ ५१ ॥ कार्य्यकालेसमायाते श्वेतद्वीपेयथातथा ॥ ५२ ॥ सूतउवाच ॥ ततःप्रणम्यतंदृष्ट्वा प्रजगामशतक्रतुः ॥ वासुदेवोपितत्रैव स्थितोलोकहितायच ॥ ५३ ॥ एवंतत्रद्विजश्रेष्ठाजलशायीजनार्दनः ॥ सर्वलोकहितार्थाय संस्थितःपरमेश्वरः॥५४॥यस्तंपूजयतेभक्त्या श्रद्धयापरयायुतः॥ चातुर्मास्येविशेषेण सयातिपरमांगतिम् ॥ ५५ ॥ यथादेवगणैः सर्वैर्द्वारकातत्रसाकृता ॥ सम्पूज्यचनरायान्तिचातुर्मास्येत्रिविष्टपम् ॥ ५६ ॥ शेषकालेपिचित्तस्थान्कामान्मर्त्यः समाप्नुयात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यासाद्वारकानरैः ॥ ५७ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्ये जलशायिविष्णूत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से उन विष्णुजी को पूजताहै वह उत्तमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार वहां समस्त सुरसमूहों से वह द्वारका कीगई व चौमासेमें भलीभांति पूजकर मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ ५६ ॥ व शेषसमय में भी विष्णु जी को पूजकर मनुष्य मन में टिके हुये अभिलाषों को भलीभांति प्राप्त होता है इसलिये वह द्वारका मनुष्यो से सब यत्नों से पूजने योग्यहै ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये जलशायिविष्णूत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । कीन बतकही मेनका सों मुनि विश्वामित्र । बयालिसें अध्याय में बरणत सोइ चरित्र ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वहांपर विश्वामित्र से उपजा दूसरा उत्तमकुण्ड विद्यमानहै जो कि समस्त कामनाओं को देताहै ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! उस कुण्ड में चैत्र महीने की तीज तिथिमें स्नान करता हुआ मनुष्य उत्तम रूपधारी साक्षात् दूसरा कामदेवही होजाता है ॥ २ ॥ अथवा उस कुण्ड में नहाई हुई श्रद्धासंयुत स्त्री पुत्रवती व सौभाग्य संयुत तथा पृथ्वी में अत्यन्तही चाह के योग्य होती है ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर उन मुनिका अमल तीर्थ किस समयमें व किस पुरुष से विशेपतासे स्थित हुआहै उस समस्त वृत्तान्त

सूतउवाच ॥ विश्वामित्रसमुद्भूतं कुण्डंतत्रापरंशुभम् ॥ सन्तिष्ठतेद्विजश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदायकम् ॥ १ ॥ तत्र चैत्रतृतीयायां कृतेस्नानेभवेन्नरः ॥ दिव्यरूपधरःसाक्षात्कामोन्योद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ नारीवाश्रद्धयोपेता तत्रस्नाताप्रजावती ॥ भवेत्सौभाग्यसंयुक्ता स्पृहणीयतमाक्षितौ ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ तीर्थंतत्रमुनेस्तस्य कस्मिन्कालेऽयवस्थितम् ॥ निर्मलंकेननिश्शेषं वदत्वंसूतनन्दन ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रास्तिनिर्झरःपूर्वं सामान्योद्विजसत्तमाः ॥ अवधूतोधराप्रष्ठे माहात्म्येनव्यवस्थितः ॥ ५ ॥ तत्रदेवनदीगङ्गा स्वयमेवव्यवस्थिता ॥ यस्यांस्नातःपुमान्सद्यःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यभावयुक् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मृगीव्याधशरार्दिता ॥ ७ ॥ प्रविष्टासलिलेतस्मिंस्तत्रपञ्चत्वमागता ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांमध्याह्नेद्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ नक्षत्रेयमदैवत्ये मार्त्तण्डस्यचवासरे ॥ अथयत्तोयमाहात्म्यान्मेनकानामसाभवत् ॥ ९॥ अप्सरास्त्रिदशेन्द्रस्यसमन्ताच्चारुहासिनी ॥ स्मरमाणा

को तुम कहो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वहांपर पहले साधारण झरना था वही भूमिपृष्ठ में नीचे गिरा हुआ माहात्म्य से विशेषकर स्थित होगया ॥ ५ ॥ वहांपर देवताओंकी नदी श्रीगङ्गाजी आपही प्राप्तहैं जिनमें नहाया हुआ जो नर भक्तिसंयुत पितरोंको उद्देशकर वहांपर श्राद्ध करताहै वह उसी क्षण पापोसे छूट जाता है हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर किसी समय बहेलियाके बाणसे व्याकुल मृगी॥६।७॥वहां पर उस जलमें पैठी व चैत्रमास शुक्लपक्ष तीज तिथि व रविवासर तथा यमदेवता वाले (भरणी) नक्षत्र में मध्याह्न के समय मृत्यु को प्राप्तहुई इसके अनन्तर जिस गङ्गाजल के प्रभाव से वह मृगी मेनका नामक अप्सरा हुई है ॥ ८ । ९ ॥ इसके

अनन्तर सब ओर से शोभन हास्यवाली व उत्तम वर्णवाली वह देवनायककी अप्सरा (वेश्या) उस के प्रभाव को स्मरण करती हुई ॥ १० ॥ चैत्रशुक्लतृतीया तिथि मे भरणी नक्षत्र में रविवार के दिन तीर्थ में आकर उस कुण्ड में स्नान करतीथी ॥ ११ ॥ एक समय घूमते हुये तपसंयुत विश्वामित्र ऐसे प्रसिद्ध मुनिनाथ वहां पर उसी दिन आये ॥ १२ ॥ और वह अप्सरा भी देवता के दर्शन के प्रयोजन से भलीभांति आई इसके अनन्तर उन देवकी पूजाकर स्वर्ग प्रति गमन करती हुई उस अप्सरा ने वहांपर स्वरूप से युत व युवाअवस्था में प्राप्त दूसरे कामदेव के समान इधर उधर घूमते हुये उन मुनि को देखकर ॥ १३ । १४ ॥ जो कि व्रत के

थसातस्य प्रभावंवरवर्णिनी ॥ १० ॥ तीर्थमागत्यसद्भक्त्यास्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां याम्यर्क्षेसूर्य्यवासरे ॥ ११ ॥ एकदादिवसेतस्मिन् भ्रममाणोमुनीश्वरः ॥ विश्वामित्रइतिख्यातस्तत्रायातस्तपोन्वितः ॥ १२ ॥ सापि स्वर्गात्समायाता देवतादर्शनार्थतः ॥ पूजयित्वाथतंदेवंप्रस्थितात्रिदिवंप्रति ॥ १३ ॥ सादृष्ट्वातंमुनिंतत्र भ्रममाणमितस्ततः ॥ यौवनस्थंसुरूपाढ्यं पञ्चबाणमिवापरम् ॥ १४ ॥ व्रतप्रभावजैःप्राप्तं तेजोभिर्भास्करंयथा ॥ बाल्यात्प्रभृतिचीर्णेन तपसादग्धकिल्बिषम् ॥ १५ ॥ सातस्यदर्शनादेव कामबाणप्रपीडिता ॥ सानन्दासुरतार्थाय समीपंसमुपाद्रवत् ॥ १६ ॥ सदृष्ट्वादृष्टपूर्वांतामपृच्छद्धृतचेतनः ॥ सम्मुखःप्रययौतूर्णं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १७ ॥ उवाचदेवींतांपृच्छन्स्त्रीधर्म्मांश्चविशेषतः ॥ अङ्गानांचेष्टितंतस्या विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ १८ ॥ शुभलाभोस्तुतेभद्रे मनसाकर्म्मणागिरा ॥ सदैववासुदेवस्य भक्तिश्चाव्यभिचारिणी ॥ १९ ॥ कच्चित्त्वंवर्त्तसेबाले पतिपादपरायणा ॥ चारित्रविनयोपेता स

प्रभावसे उपजे हुये तेजों से सूर्य्य के समान प्राप्त व शिशुता से लगाकर इकट्ठा कियेहुये तपसे पातकोंको जलाये हुयेथे ॥ १५ ॥ उन मुनिके देखनेहीसे कामके बाणसे बहुत दुःखित होती हुई वह अप्सरा आनन्दसहित होकर रमण करनेके लिये समीप दौडगई ॥ १६ ॥ और पहले न देखी हुई उस अप्सराको उस हरी हुई बुद्धिवाले मुनिने देखकर पूंछा व अतिप्रसन्न अन्तःकरणसें शीघ्रही सामने गमन किया ॥ १७ ॥ व विशेषकर स्त्रीधर्मोंको तथा विशुद्ध अन्तःकरणसे उसके अङ्गोंके व्यापारको पूंछते हुये मुनि जी उस स्त्रीसे बोले ॥ १८ ॥ कि हे कल्याणकारिणि ! तुम्हारे मन से,वचनसे, कर्म से सदैव वासुदेव विष्णु जी की अचला भक्ति व उत्तमलाभ होवै ॥१९॥

हे बाले ! चरित्र व विनय से संयुत तथा सदैव प्रिय बोलनेवाली तुम क्या पतिके पांवों में परायणहो ॥ २० ॥ व पति को तुम क्या सदैव प्रिय हो और उस पतिके सामने या पीछे भी दानोंसे अपने मित्रवर्ग व बन्धुओंको पूजती हो ॥ २१ ॥ व उत्तमवर्णवाली तुम क्या जब पति भलीभांति सोजाता है तब निद्राके वशमें प्राप्त होतीहो व उसके न जागने से पहले उत्थान करतीहो याने उठतीहो ॥ २२ ॥ हे उत्तम नितम्बवाली ! क्या प्रभात भलीभांति उठकर घरको बहोरतीहो व भूषण तथा उबटनादिकों को आपही करतीहो ॥ २३ ॥ क्या देवताओं व गुरु (पति आदि) को प्रणामकर उसके उपरान्त यथाशक्ति अन्न जलको देकर तुम प्राणयात्रा

र्वदाप्रियवादिनी ॥ २० ॥ कच्चित्त्वंसर्वदाभीष्टा पत्युर्दानैस्तथार्चसि ॥ बन्धून्स्वमित्रवर्गंच तत्पुरःपृष्ठतोपिवा ॥ २१ ॥ कच्चिद्भर्तरिसंसुप्ते त्वंनिद्रावशमेष्यसि ॥ उत्थानमप्रबुद्धेनकरोपिवरवर्णिनी ॥ २२ ॥ कच्चित्प्रातःसमुत्थाय करोषिगृहमार्जनम् ॥ स्वयमेववरारोहे मण्डनंचोपमण्डनम् ॥ २३ ॥ कच्चिद्देवान्नमस्कृत्य गुरुंचतदनन्तरम् ॥ करोषित्वं प्राणयात्रां दत्त्वान्नंशक्तितोजलम् ॥ २४ ॥ कच्चिदस्तंगतेसूर्य्ये नान्नमश्नासिभामिनि ॥ अदत्त्वावास्वभृत्येभ्यः साधुभ्यश्चविशेषतः ॥ २५ ॥ कच्चित्पिबसिपानीयं सप्तवारविशोधितम् ॥ निविडेनस्ववस्त्रेण पालयन्तीजलोद्भवान् ॥ २६ ॥ कच्चिद्दयासमोपेता गात्रक्लेशकरानपि ॥ यूकमत्कुणदंशादीन्पुत्रवत्परिरक्षसि ॥ २७ ॥ कच्चित्साधुमुखान्नित्यं शिवधर्म्मंसुभक्तितः ॥ शृणोषिभक्तितोभद्रे प्रकरोषिचसादरा ॥ २८ ॥ कच्चिच्छ्रुत्वागमंपुण्यं प्रकरोषिचपूजनम् ॥

याने भोजनको करती हो ॥ २४ ॥ व हे स्वरूपवती ! क्या सूर्य्यको अस्त होते हुये व अपने सेवकों तथा विशेषकर साधुजनोंके लिये अन्नको न देकर भोजन तो नहीं करतीहो ॥ २५ ॥ व जलसे उपजेहुये जन्तुओंको पालतीहुई तुम क्या अपने सघन याने मोटे वसनसे सातवार शोधे हुये जलको पीती हो ॥ २६ ॥ क्या दया संयुत होती हुई तुम शरीर के क्लेशकारक जुओं, खटमल, मच्छरआदिकों को भी पुत्र के समान परिपालन करती हो ॥ २७ ॥ हे कल्याणरूपे ! क्या साधुजन के मुख से सदाशिवजी के धर्मको उत्तम भक्तिसे नित्यही तुम सुनती हो व आदर समेत करती हो ॥ २८ ॥ व पुण्यकारक शास्त्र को सुनकर क्या तुम शास्त्र व बांच-

नेहारे तथा विशेषकर व्याख्यान करनेवालेका भी पूजन करती हो ॥ २९ ॥ व मुनिनायकों से भलीभांति कहे हुये पुराण,शास्त्रों को क्या तुम साधुजनों के लिये भलीभांति देतीहो जो कि उत्तम पत्रों व अक्षरों से मनोहर हैं ॥ ३० ॥ जो पुरुष सब शास्त्रों को सुनकर निष्क्रय (दक्षिणा) को नहीं देता है वह विशेषकर शास्त्र का चोर जानने योग्य है और उत्तम फल को भी नहीं पाताहै ॥ ३१ ॥ क्या तुम शिवालय में नित्य प्रति गीत, वाद्यादिक कर्म तथा भेंट, पूजा, उपहारादिकों को शक्तिसे करती हो ॥ ३२ ॥ अहो शोभनभाग्यवाली ! क्या तुम दुपट्टे आदि समस्त भी वसन को प्रणामपूर्वक साधुजनों के लिये भलीभांति देती हो ॥ ३३ ॥ हे

शास्त्रस्यवाचकस्यापि व्याख्यातुश्चविशेषतः ॥ २९ ॥ कच्चित्पुराणिशास्त्राणि समुक्तानिमुनीश्वरैः ॥ सत्पत्राक्षररम्याणि साधुभ्यःसम्प्रयच्छसि ॥ ३० ॥ यःश्रुत्वासर्वशास्त्राणिनिष्क्रयंनप्रयच्छति ॥ शास्त्रचौरःसविज्ञेयो नचैवाप्नोतिसत्फलम् ॥ ३१ ॥ कच्चिच्छिवालयेनित्यं गीतवाद्यादिकाःक्रियाः ॥ बलिपूजोपहारांश्च त्वंकरोषिचशक्तितः ॥ ३२ ॥ कच्चित्प्रावरणंवस्त्रं सुभगेसर्वमेवच ॥ सम्प्रयच्छसिसाधुभ्यःप्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ३३ ॥ वृथापर्य्यटनंनित्यं कच्चिन्नपरमन्दिरे ॥ त्वंकरोषिविशालाक्षि विशेषेणनिशागमे ॥३४॥कच्चिन्नाश्नासिभद्रेत्वं स्वभर्तरिवुभुक्षिते ॥ आज्ञाभङ्गंप्रयत्नेनकच्चित्तत्रप्ररक्षसि ॥ ३५ ॥ कच्चित्प्रकुपिताकान्ते नोत्तराणिप्रयच्छसि ॥ तस्यपापप्रणाशार्थं प्रियंवल्गुप्रजल्पसि ॥ ३६ ॥ कच्चित्त्वंप्रोषितेकान्ते मलिनाम्बरधारिणी ॥ जायसेचतथादीना विवर्णवदनाकृशा ॥ ३७ ॥ कच्चिन्मन्दिरपृष्ठेत्वं नधत्सेभिन्नभाजनम् ॥ उच्छिष्टंवाजनैस्त्यक्तमपिकार्य्यकरंपरम् ॥ ३८ ॥ कच्चिद्व्रजसिनोरात्रौ जागरेषुक

विशाललोचनि ! विशेषकर रात्रिके आनेपर क्या तुम पराये मन्दिरमें नित्यही व्यर्थ पर्य्यटन तो नहीं करती हो ॥ ३४ ॥ हे कल्याणकारिणि ! अपने पतिको क्षुधित होनेपर क्या तुम भोजन तो नहीं करती हो और उस पति में आज्ञाभङ्गको क्या बड़े उपाय से रक्षा करती हो ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरि ! क्रोधित होतीहुई क्या तुम प्रत्युत्तर नहीं देती हो व उसके पाप विनाशने के लिये तुम प्रिय व मनोहर वचन को बोलती हो ॥ ३६ ॥ व जब पति परदेश को जाता है तब रंगरहितमुखवाली व दुबली तथा मलिन वसनको धारनेवाली और दुःखी होती हो ॥ ३७ ॥ और क्या तुम उत्तमकार्यकारी भी नरों से त्यागे हुये व जूंठे तथा फूटे वर्तन को

मन्दिर के पीठ पै तो नहीं धरतीहो ॥ ३८ ॥ व रात्रिमें जागनेवाले मनुज तथा कथाओं के मध्य में व झरना, एकान्त स्थान, वन और नदीतट में क्या तुम नहीं जाती हो ॥ ३९ ॥ हे शुभे, भामिनि ! असती व धाई तथा मालियों व धोवियोंकी स्त्रियों के साथ मित्रता तो नहीं करती हो ॥ ४० ॥ और नित्यप्रति क्या तुम कुंकुम से रँगे हुये मुखको धारती हो ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये मेनकांप्रतिविश्वामित्रस्योक्तिर्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । रति मांग्यो मेनका जब तब निदर्‌यो मुनिनाथ । तेंतालिस अध्यायमहँ कह्यो रुचिर सो गाथ ॥ मेनका बोली कि हे द्विज ! जिनके धर्म को तुमने कहाहै वे

थासु च ॥ निर्झरेषुविविक्तेषु पुलिनेषुवनेषु च ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नकुरुषेमैत्रीं बन्धकीभिस्तमंशुभे ॥ धात्रीभिर्मालिकस्त्री भीरजकीभिश्चभामिनि ॥ ४० ॥ कच्चिद्धासिनित्यंत्वं मुखंकुङ्कुमरञ्जितम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमेनकांप्रतिविश्वामित्रस्योक्तिर्नामद्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥

मेनकोवाच ॥ अन्यास्तानारिकाविप्र यासांधर्म्मस्त्वयोदितः ॥ स्वेच्छाचारविहारिण्यो वयंवेश्यादिवौकसाम् ॥ १ ॥ सत्वंवदमहाभाग कस्माद्देशात्समागतः ॥ ममचित्तहरोवापि तीर्थेधर्म्मिष्ठसंश्रये ॥ २ ॥ त्वांदृष्ट्वाचमहाभाग कामदेवसमाकृतिम् ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कामबाणप्रपीडिता ॥ ३ ॥ तस्माद्भजस्वमांरक्तां नोचेद्यास्यामिसङ्क्षयम् ॥ कामबाणप्रदग्धाहं पुरोपितवतापस ॥४॥ ततःस्त्रीवधपापेनलिप्यसेत्वन्नसंशयः ॥५॥ विश्वामित्रउवाच ॥ वयंव्रतधराः

और स्त्रियां हैं क्योंकि अपनी इच्छापूर्वक आचार व विहार करनेवाली हम स्वर्गनिवासियों की वेश्या हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! सो तुम किस देशसे भलीभांति आये हो उसको कहो क्योंकि धर्मिष्ठजनों से आश्रित तीर्थ मे भी मेरे मनको हरते हो ॥ २ ॥ हे महाभाग ! कामदेव के समान आकारवाले तुम को देखकर मैं रोमांचित समस्त अङ्गवाली व कामदेव के बाणसे बहुत ही दुःखितहूं ॥ ३ ॥ इसलिये हे तपस्वीजी ! स्नेह कियेहुई मुझको तुम भजो याने स्वीकार करो नहीं तो नाश होजाऊंगी यदि तुम्हारे आगे भी मैं कामबाण से भस्म हुई तो तुम निस्सन्देह स्त्री के मारनेवाले पाप से संयुत होगे ॥ ४ । ५ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि हे सुन्दर भोह-

वाली, कल्याणकारिणी ! हम सदाशिव जी की आज्ञामें तत्पर व व्रतको धारण किये हुये तथा ब्रह्मचर्य्यमें तत्परहैं और कामके विधान में मूर्ख याने अज्ञानहैं ॥ ६ ॥ क्योंकि सब व्रतधारियों तथा विशेषकर शिवभक्तों का मूल (जड़) ब्रह्मचर्य्य है इस से तुम फिर ऐसा मत कहना ॥ ७ ॥ पशुपति (शिव) जी के व्रत वाला पुरुष सौ वर्ष से अगारी भी जिस तपको किया है वह एकही बार स्त्री के सङ्गम से नष्टहोजाता है ॥ ८ ॥ पाप मानस या चित्त वाला जो पुरुष स्त्री को भजता है उसका शिव जी का व्रत व्यर्थहोजाता है और वह व्यतीत (मरे हुये) दश पुरुषों को लेकर नरक में पचता है ॥ ९ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तबतक समा-

सुभ्रुब्रह्मचर्य्यपरायणाः ॥ मूर्खाःकामविधौभद्रे निरताःशिवशासने ॥ ६ ॥ सर्वेषांव्रतिनांमूलं ब्रह्मचर्य्यमुदाहृतम् ॥ विशेषाच्छिवभक्तानां मैवंभूयोभिधास्यसि ॥ ७ ॥ अपिवर्षशतंसाग्रं यत्तपःकुरुतेव्रती ॥ सकृत्स्त्रीसङ्गमान्नाशं यातिपाशुपतस्यच ॥ ८ ॥ यःस्त्रींभजतिपापात्मा वृथापाशुपतंव्रतम् ॥ सोतीतान्दशचादाय पुरुषान्नरकेपचेत् ॥ ९ ॥ आस्तांतावत्समासङ्गःसंस्पर्शश्चवरानने ॥ सम्भाषापिचपापायस्त्रीभिःपाशुपतस्यच ॥ १० ॥ तस्माद्द्रुततरंगच्छ स्थानादस्माद्वराङ्गने ॥ यत्रावाप्स्यसिचाभीष्टं तत्रत्वंगन्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मेनकोवाच ॥ नूनंहिकामधर्म्मेत्वं नप्रवीणोमहाद्युते ॥ तेनमामीदृशैर्वाक्यैर्निवारयसिरागिणीम् ॥ १ ॥ एवमुक्त

गम व भलीभांति स्पर्श होय शिव जी के भक्त को स्त्रियों के साथ सम्भाषण भी पाप के लिये होता है ॥ १० ॥ इस से हे उत्तम अङ्गोंवाली ! तुम इसस्थान से बहुतही शीघ्र चलीजावो जहांपर वाञ्छित को पावो वहां तुम जाने के योग्यहो ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । विश्वामित्र मुनीश शिव लिङ्गथाप जिमिकीन । चवालिसें अध्याय महँ कह्यो सो चरित नवीन ॥ मेनका बोली कि हे महादीप्तिमान् ! तुम निश्चयकर

काम धर्ममें चतुर नहीं हो इस कारण अनुरागवाली मुझको इस प्रकारके वचनोंसे निवारण करते हो ॥ १ ॥ ऐसा कहे हुये विश्वामित्र मुनि तदनन्तर उस मेनका के परिग्रहण में निर्लोभ व बड़े कोप संयुत होकर फिर यह बोले ॥ २ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि तुम जियो या मृत्यु को प्राप्त होवो मैं तुम्हारे वचनको न करूंगा क्योंकि व्रतवान् पुरुषों को स्त्रीवध से अधिक पाप उससे याने नारी के संगमसे होवै है ॥ ३ ॥ क्योंकि व्रतवान् जनों को स्त्री वधकरने पर पण्डितों से प्रायश्चित्त कहागया है परन्तु उन के सङ्गम से नहीं उसी कारण तुम जाने के योग्यहो ॥ ४ ॥ केवल व्रत संयुक्तही पुरुष स्त्री के सङ्ग से पापको नहीं प्राप्त होते बरन

स्ततोभूयोविश्वामित्रोब्रवीदिदम् ॥ कोपेनमहतायुक्तो निःस्पृहस्तत्परिग्रहे ॥ २ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ त्वंजीवगच्छ वामृत्युं नाहंकर्त्तास्मितेवचः ॥ व्रतिनांस्यात्ततःपापमधिकंस्त्रीवधाद्भवेत् ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तंबुधैरुक्तंव्रतिनांस्त्रीवधेकृते ॥ नसङ्गात्तुपुनस्तासां तस्मात्त्वंगन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ नकेवलंव्रतोपेताः स्त्रीसङ्गात्पापमाप्नुयुः ॥ व्रतबाह्याअपिनराः सक्ताः स्त्रीषुपतन्त्यधः ॥ ५ ॥ संसारभ्रमणंनारी प्रथमेपिसमागमे ॥ वह्निप्रदक्षिणाव्याजन्यायेनैवप्रदर्शयेत् ॥ ६ ॥ तस्मात्स्त्रीभिस्समंप्राज्ञः सम्भाषामपिवर्जयेत् ॥ आस्तांतावत्समासङ्गो यइच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ ७ ॥ अङ्गारसदृशीनारीघृतकुम्भसमःपुमान् ॥ अस्पर्शाद्दृढतामेति तत्सम्पर्काद्विलीयते ॥ ८ ॥ स्त्रियोमूलमनर्थानां सर्वेषांप्राणिनांभुवि ॥ तस्मात्त्याज्याःसुदूरेण ताःस्वर्गस्यनिरोधकाः ॥ ९ ॥ कुलीनावीरवत्यश्च नाथवत्योपियोषितः ॥ एकस्मिन्ननरेरागंकु

व्रत से बाहर वाले भी मनुष्य स्त्रियों में सङ्ग किये हुये नीचे गिरते हैं याने नरकको जाते हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि प्रथम मिलाप में भी स्त्री अग्नि की प्रदक्षिणा के व्याज (बहाने) के न्यायही से संसार में भ्रमण को दिखाती है ॥ ६ ॥ उस लिये तबतक समागम भी होय परन्तु जो बुद्धिमान् अपने कल्याण को चाहै वह स्त्रियों के साथ सम्भाषण भी वर्जितकरै ॥ ७ ॥ लुकेठे के समान स्त्री व घृतके घड़ा के तुल्य पुरुषहै स्पर्श न होने से कठोरताको प्राप्तहोता है और उस के भलीभांति मिलाप से नाश होजाता है ॥ ८ ॥ भूतल में स्त्रियां सब प्राणियों के अनर्थों का मूल (आदि कारण) हैं इस लिये स्वर्ग को रोंकनेवाली वे बहुत दूरही से त्याग करने

के योग्य हैं ॥ ९ ॥ उत्तम वंश में उपजीं व पति पुत्रवती तथा नाथवती भी अति चंचल ये स्त्रियां एक पुरुष में स्नेह नहीं करती हैं ॥१०॥ भूमिमें पापके लिये स्त्रियों से और कुछ निश्चयकर नहीं है क्योंकि मनुष्य जिन के सङ्ग को प्राप्तहोकर संसारमें भ्रमता है ॥ ११ ॥ नीच भी जो पुरुष देवताओं मे भी उन स्त्रियों की सेवा करता है उस कुरूप या अधम मनुष्य को स्त्रियां सेवती हैं ॥ १२ ॥ व मनुष्यों के अनर्थ से तथा परिवार के भय से मर्याद हीन स्त्रियां मर्य्याद में पतियों के समीप-स्थित होती हैं ॥ १३ ॥ सूत जी बोले कि उन मुनि से बहुत निन्दित व फरकतेहुये ओष्ठ सम्पुटों वाली क्रोध संयुत मेनका ने उस मुनि श्रेष्ठ को शाप दिया ॥ १४ ॥

र्वन्त्येताःसुचञ्चलाः ॥ १० ॥ नस्त्रीभ्यःकिञ्चिदन्यद्धि पापायविद्यतेभुवि ॥ सङ्गंयासांसमासाद्य संसारेभ्रमतेजनः ॥
११ ॥ नीचोपिकुरुतेसेवां यस्तासांदैवतेष्वपि ॥ विरूपंवापिनीचंवा तंसेवन्तेनरंस्त्रियः ॥ १२ ॥ अनर्थत्वान्मनुष्या
णांभयात्परिजनस्यच ॥ मर्य्यादायाममर्य्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्तिभर्तृषु ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसम्भर्त्सितातेन मेन
काकोपसंयुता ॥ शशापतंमुनिश्रेष्ठं स्फुरमाणोष्ठसम्पुटा ॥१४ ॥ यस्मात्त्वयापरित्यक्ता सकामाहंसुदुर्मते ॥ त्यजत्वं
कामजंधर्म्मं तस्माच्छापंगृहाणमे ॥ १५ ॥ अद्यैवभवदुर्बुद्धेबलीपलितसंयुतः ॥ जराजर्ज्जरिताङ्गश्च तुच्छदृष्टिविरिङ्गि
तः ॥ १६ ॥ सूतउवाच ॥ उच्यमानेचवचने तत्क्षणान्मुनिसत्तमः ॥ बभूवतादृशस्सद्यस्तयायादृक्प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
ततःकोपपरीतात्मा सोपितांशप्तुमुद्यतः ॥ कमण्डलोर्जलंगृह्य सन्तापाद्रक्तलोचनः ॥ १८ ॥ निर्दोषोपित्वयायस्मा

कि हे दुष्ट बुद्धिवाले ! जिस लिये सकामवती मैं तुम से परित्याग की गई इसलिये तुम मुझ से शाप को ग्रहण करो व काम से उपजे हुये धर्म को छोड़ो ॥१५॥ हे दुष्ट बुद्धिवाले मुनि ! तुम आजही बुढ़ापे से जीर्ण अङ्गोंवाले व सिमटे और श्वेतबालों समेत तथा तुच्छ दृष्टि व गति रहित होओ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि इस वचन के कहते हुये उसी क्षण मुनि श्रेष्ठ वैसेही होगये जैसे कि उस ने कहा था ॥ १७ ॥ तदनन्तर कोप से घिरे हुये मानस वाले व सन्ताप से लाल लोचन वाले वे मुनि भी कमण्डलु से जल लेकर उस को शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ १८ ॥ हे वेश्याओं में अधम ! जिसलिये तुमने दोष रहित भी मुझको

शापदिया इससे तुमभी शीघ्रही जरा (वृद्धता) से जर्जरित अङ्गों वाली होजावो ॥ १९ ॥ उन मुनिके वचन से वह भी उसीक्षण वैसे रूप वाली होगई जैसे कि ये मुनि सत्तम सिमटे व श्वेत बालोंको केवल धारण किये थे ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उस जलाशय में उसी प्रकारके स्वरूप से नहाई हुई वह फिर भी वैसीही होगई जैसी कि पहले भलीभांति स्थित थी ॥ २१ ॥ उस परम आश्चर्य्य को देखकर अत्यन्तही शीघ्रता समेत उन मुनि ने भी उस जलाशयमें स्नान किया व जैसे पहले थे वैसेही होगये ॥ २२ ॥ तदनन्तर तीर्थ के माहात्म्य से रूप व उदारतादि गुणसम्पन्न वे मेनका व विश्वामित्र मुनि बहुत प्रसन्न होते हुये परस्पर में सम्मति कर

च्छप्तोहंगणिकाधमे ॥ तस्माद्भवत्वमप्याशु जराजर्ज्जरिताङ्गका ॥ १९ ॥ सापितद्वचनात्सद्यस्तादृग्रूपाऽप्यजायत ॥ यादृशोसौमुनिश्रेष्ठो वलीपलितमात्रभृत् ॥ २० ॥ अथतादृक्स्वरूपेण स्नातातत्रजलाशये ॥ भूयोपितादृशीजाता यादृशीसंस्थितापुरा ॥ २१ ॥ तद्दृष्ट्वापरमाश्चर्यमतीवत्वरयान्वितः ॥ सोपितत्राकरोत्स्नानं सञ्जातश्चयथापुरा ॥ २२ ॥ ततस्तौतीर्थमाहात्म्याद्रूपौदार्य्यगुणान्वितौ ॥ मिथआमन्त्र्यसंहृष्टौ गतौदेशंयथेप्सितम् ॥ २३ ॥ एवंतीर्थस्य माहात्म्यं विज्ञायभगवानृषिः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ २४ ॥ तपश्चचारसुमहत्ततस्तीर्थवरेतदा ॥ कुशस्तम्बेनकृतवांस्तत्सरोविपुलंविभुः ॥ २५ ॥ तत्रस्नात्वानरोयस्तुपूजयेल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ विश्वामित्रेश्वरंख्यातं सगच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥ २६ ॥ अद्यापिदृश्यतेतत्र गङ्गोदकसमंजलम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंसर्वकामप्रदायकम् ॥ २७ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ सयातिवैष्णवंलोकंसर्वदेवैःप्रपूजितम् ॥ विश्वामित्रीयमाहात्म्यं सर्वपातक

यथेच्छित देश को चले गये ॥ २३ ॥ ऐसा तीर्थ का माहात्म्य जानकर भगवान् विश्वामित्र मुनि ने देवताओं के देवता त्रिशूलधारी शिव जी के लिङ्गकी थापना की ॥ २४ ॥ व उत्तम तीर्थ में उस समय समर्थ मुनि ने बड़े भारी तप को किया और उस तड़ाग को कुशोंके समूहसे विस्तार किया ॥ २५ ॥ उस तड़ाग में नहाकर जो मनुष्य विश्वामित्र नामक लिङ्ग को पूजन करै है वह शिवसदन को जावैगा ॥ २६ ॥ उस तड़ाग में गङ्गाजल के समान आज भी सर्वपापहारी व पुण्यकारी जल देख पड़ता है जो कि सब कामनाओंको देता है ॥ २७ ॥ जो पुरुष श्रद्धा से पवित्र चित्तकरके उस त्रिपुष्कर मे स्नान करता है वह सब देवों से पूजित विष्णु

जी के लोक को जाता है क्योंकि विश्वामित्र जी का माहात्म्य सब पापोंका विनाशकहै ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येविश्वामित्रीय माहात्म्यतीर्थोत्पत्तिर्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तीर्थ त्रिपुष्कर न्हाय करि उपजत जौन प्रभाव । पैंतलिसें अध्याय में वर्णत सो मुनिराव ॥ सूतजी बोले किहे द्विजोत्तमो ! वहांहींपर बहुत पुण्यदायक त्रिपुष्करक्षेत्र है जहां पर पुरातन समय आनर्तदेश के अधिपति भूपति ने तपस्या की है ॥ १ ॥ कार्त्तिक महीने में जब कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा स्थितहो तब

नाशनम् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे हाटकेश्वरमाहात्म्येविश्वामित्रीयमाहात्म्यतीर्थोत्पत्तिर्नामचतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्रैवास्तिद्विजश्रेष्ठाःसुपुण्यंपुष्करत्रयम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तमानर्ताधिपभूभुजा ॥ १ ॥ यस्तत्रकार्त्तिके मासिकृत्तिकास्थेनिशाकरे ॥ मध्याह्नेकुरुतेस्नानं सगच्छतिपराङ्गतिम् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंतत्रसमायातं सुपुण्यंपुष्करत्रयम् ॥ कस्मिन्स्थानेचविज्ञेयं कैश्चिह्नैर्वदसूतज ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ अहंचकीर्तयिष्यामि यैश्चिह्नैःपुष्करत्रयम् ॥ प्राग्लब्धंमुनिनातत्र विश्वामित्रेणधीमता ॥ ४ ॥ पुरानिवसतस्तस्य विश्वामित्रस्यसन्मुनेः ॥ सम्प्राप्ताकार्त्तिकीपुण्या कृत्तिकायोगसंयुता॥५॥सर्वतीर्थमयंक्षेत्रंतद्विज्ञायतपोनिधिः॥ततश्चिन्तयामास स्वचित्तेगाधिनन्दनः॥६॥

मध्याह्न के समय उस तीर्थमें जो स्नान करता है वह परमगति को प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! वहांपर बहुत पुण्यदायक त्रिपुष्कर किस प्रकार आया है व किस स्थानमें किन लक्षणों से जाननेयोग्यहै उसको कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि मैं उसको कहूंगा वहां पहले जिन चिह्नोंसे बुद्धिमान् विश्वामित्रने त्रिपुष्करको पायाहै ॥४॥ पुरातन समय उन उत्तममुनि विश्वामित्रको निवास करते हुए कृत्तिका नक्षत्र संयुत पुण्यदायक कार्त्तिकी भलीभांति प्राप्त हुई ॥५॥ तदनन्तर तपस्या के निधान गाधि महर्षि के पुत्र विश्वामित्रजी ने समस्त तीर्थमय उस क्षेत्रको विशेषता से जानकर अपने चित्तमें चिन्तवन किया ॥ ६ ॥

कि आज कृत्तिका नक्षत्रके योग समेत वह पुण्यदायक कार्त्तिकी है जिसमें पुष्कर तीर्थके जलमें नहाये हुये पुरुषोंको कल्याण प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ आदि पुष्कर तो दूरमें इस समय जानेके लिये समर्थ नहीं है इस लिये यहांपर जो स्थितहै उसमें मैं स्नान करूंगा ॥ ८ ॥ उस मुनिने ऐसा निश्चय कर तदनन्तर श्रद्धासे पवित्र चित्त करके सबओर पुष्करोंको अन्वेषण (खोज) किया ॥ ९ ॥ वहांपर तीर्थोंकी अधिकता से निश्चय को न प्राप्तहुआ व सब ओर जलस्थान को देख २ कर उस मुनिने स्नान किया ॥ १० ॥ व इधर उधर घूमता हुआ जब वह परिश्रमको प्राप्तभया तब वृक्षकी जड़के भलीभांति आश्रित होकर पृथ्वीमें बैठगया ॥ ११ ॥ इसके

अद्यसाकार्त्तिकीपुण्या कृत्तिकायोगसंयुता ॥ यस्यांस्नातैर्नरैःश्रेयः प्राप्यतेपुष्करोदके ॥ ७ ॥ आद्यन्तुपुष्करंदूरे नगन्तुंशक्यतेधुना ॥ तस्मादत्रस्थितंयच्च तस्मिन्स्नानंकरोम्यहम् ॥ ८ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ततश्चान्वेषयामास पुष्कराणिसमन्ततः ॥ ९ ॥ बहुत्वात्तत्रतीर्थानां निश्चयंनाभ्यपद्यत ॥ दृष्ट्वादृष्ट्वाजलस्थानं स्नानंचक्रेसमन्ततः ॥ १० ॥ सयदाश्रममापन्नो भ्रममाणइतस्ततः ॥ वृक्षमूलंसमाश्रित्य निविष्टश्चक्षितौतदा ॥ ११ ॥ तुष्टावाथशुचिर्भूत्वा श्रद्धयाचत्रिपुष्करम् ॥ मध्यमाद्योजनंस्वर्गः कनिष्ठादर्धयोजनम् ॥ १२ ॥ ज्येष्ठकुण्डात्पुनःख्यातो हस्तप्राप्यःशुभात्मभिः ॥ पावयन्तिहितीर्थानिस्नानदानादसंशयम् ॥ १३ ॥ पुष्करालोकनादेव नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ पुष्करारण्यमाश्रित्य शाकमूलफलैरपि ॥ १४ ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे कोटिर्भवतिभोजिता ॥ पुष्करेदुष्करंस्नानंपुष्करेदुष्करंतपः ॥ १५ ॥ पुष्करोदुष्करेवासःसर्वंपुष्करदुष्करम् ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे पुष्करेस्नाति

अनन्तर पवित्र होकर श्रद्धासे त्रिपुष्करकी स्तुति की कि उत्तम चित्तवाले जनों को मध्य पुष्कर में स्नान करने से योजन भर स्वर्ग रहताहै व लघुपुष्कर में नहाने से आध योजन तथा जेठे पुष्कर में स्नान करनेसे हाथसे पानेयोग्य होताहै क्योंकि तीर्थ, स्नान व दानसे निस्सन्देह पवित्र करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ पुष्करक्षेत्र को देखनेही से मनुष्य पातक से छूटजाता है व पुष्कर वनप्रति आश्रित होकर शाक (भाजी) मूल फलोंसे भी एक ब्राह्मण को भोजन कराते हुये करोरि भोजित (जिंवाये हुये) होते हैं पुष्कर में स्नान कठिन है व पुष्कर में तप बहुतही कठिनहै ॥ १४ । १५ ॥ और पुष्कर में निवास दुष्कर है तथा पुष्कर में रामस्तवस्तु

दुष्करहै कार्त्तिकी पौर्णमासीमें कृत्तिकानक्षत्रका योग होतेहुये जो मनुष्य पुष्कर में स्नान करता है ॥ १६ ॥ तो दिनकर की किरणों से छुआहुआ जैसे अन्धकार नष्ट होजाताहै वैसेही पुष्करक्षेत्रके जलके भलीभांति स्पर्शसे पाप शीघ्रही चलाजाताहै ॥ १७ ॥ भूमिमें ब्रह्मघात इत्यादिक पापोंको करके भी मनुष्य कार्त्तिकी पौर्णमासी में पुष्करक्षेत्रमें नहाकर निर्दोषताको प्राप्तहोताहै ॥ १८ ॥ दानोसे क्याहै, व्रतोंसे क्याहै होमोंसे क्याहै व बहुत विस्तारवाले यज्ञोंसे क्याहै याने कुछ नहीं क्योंकि कार्त्तिकी पौर्णमासी में पुष्करतीर्थ में नहायेहुये पुरुषोंको सब कर्मोंके फल मिलते हैं ॥ १९ ॥ यदि यह वाणी मुझसे भलीभाति सत्य कही गई है तो इसी क्षण पुष्कर से उपजे

योनरः ॥ १६ ॥ दिवाकरकरैःस्पृष्टं तमोयद्वत्प्रणश्यति ॥ पुष्करोदकसंस्पर्शाच्छीघ्रंगच्छतिपातकम् ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं कृत्वापिपुरुषोभुवि ॥ कार्त्तिक्यांपुष्करेस्नात्वा निर्दोषत्वंप्रपद्यते ॥ १८ ॥ किन्दानैःकिंव्रतैर्होमैः किंयज्ञैर्बहुविस्तरैः ॥ कार्त्तिक्यांपुष्करेस्नातैः सर्वेषांलभ्यतेफलम् ॥ १९ ॥ यद्येषाभारतीसत्या मयासम्यगुदीरिता ॥ तन्मेस्याद्दर्शनंशीघ्रंसद्यःपुष्करसम्भवम् ॥ २० ॥ एवंतस्यब्रुवाणस्यविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ अशरीराभवद्वाणीगगनाद्द्विजसत्तमाः ॥ २१ ॥ विश्वामित्रमुनिश्रेष्ठसदामेगगनेस्थितिः ॥ मुक्त्वैकांकार्त्तिकींचैवकृत्तिकायोगसंयुताम् ॥ २२ ॥ तदत्रदिवसेवासोममभूमितलेध्रुवम् ॥ अस्मिन्नेवजलेपुण्येतत्त्वंस्नानंसमाचर ॥ २३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ सर्वेषामेवतीर्थानांश्रूयतेचसमाश्रयः ॥ तत्कथंवेद्मितीर्थेशत्वामत्रैवव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ तदोत्थितापुनर्वाणीतारागगनगो

हुये दर्शन मुझको शीघ्रही होवैं ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उन मतिमान् विश्वामित्र जी को इस प्रकार कहते हुये आकाश से शरीररहित वाणी हुई ॥ २१ ॥ कि हे मुनिसत्तम, विश्वामित्र जी ! कृत्तिका नक्षत्र के योग समेत एक कार्त्तिकीही पौर्णमासी को छोड़कर सदैव आकाश में मेरी स्थिति रहती है ॥ २२ ॥ उस कारण इस दिन भूमितल में निश्चयकर मेरा निवास रहता है इसलिये इसी पुण्यदायक जलमें तुम स्नान करो ॥ २३ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि अहो तीर्थनायक ! सबही तीर्थों का टिकाश्रय यहींपर सुनाजाताहै तो तुम को विशेषता से टिके हुये मैं कैसे जानूं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समय मुनिसत्तम विश्वामित्र जी को प्रत्यक्ष

करतीहुई नक्षत्र व आकाशके गोचरभूत वाणी फिर उठी ॥ २५ ॥ कि यहांपर इस वनसे कुछ दूर में तीन जलाशयहैं उनमेंसे एक में नीचे मुखवाले अरुण कमल वि-
द्यमान हैं ॥ २६ ॥ वैसेही द्वितीय जलाशयमें ऊपर मुखवाले व तीसरे में तिरछा मुखवाले कमल हैं वहांपर ऊपर मुखवाले कमलों से चिह्नित ज्येष्ठपुष्कर जानने
योग्य है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! बगलमें मुखवाले कमलोंसे अङ्कित मध्यम पुष्कर कहागयाहै वैसेही नीचे मुखवाले कमलों से उपलक्षित पृथ्वी में कनिष्ठ (लघु)
पुष्कर जानना चाहिये ॥ २८ ॥ हे मुनिसत्तम ! इन चिह्नों से जानकर स्नान करै उस को सुनकर उस समय वह मुनि उठकर चले गये ॥ २९ ॥ वहांपर उसी प्रकार

चरा ॥ विश्वामित्रंमुनिश्रेष्ठंहर्षयन्तीद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥नातिदूरेवनादस्मादत्रसन्तिजलाशयाः ॥ तेषामेकेताम्रप
द्माविद्यन्तेधोमुखास्तथा ॥ २६ ॥ ऊर्ध्ववक्राद्वितीयेचतिर्य्यग्वक्रास्तृतीयके ॥ तत्रोर्ध्वास्यैस्सरोजैश्चविज्ञेयंज्येष्ठ
पुष्करम् ॥ २७ ॥पार्श्ववक्रैर्द्विजश्रेष्ठमध्यमंपरिकीर्तितम् ॥ अधोवक्रैस्तथाज्ञेयंकनिष्ठंपुष्करंक्षितौ ॥ २८ ॥ एतैश्चिह्नैर्मु
निश्रेष्ठज्ञात्वास्नानंसमाचरेत ॥ तच्छ्रुत्वासमुनिस्तूर्णंसमुत्थायययौतदा ॥ २९ ॥ तादृशैःकमलैस्तत्रसंस्थितास्ते
जलाशयाः ॥ तान्दृष्ट्वाश्रद्धयोपेतः कृत्वास्नानंयथाक्रमम् ॥ ३० ॥ ततश्चविधिनासम्यक्चकारपितृतर्प्पणम् ॥
ततःशाकैश्चमूलैश्चनीवारैःफलसंयुतैः ॥ ३१ ॥ चकारविधिनाश्राद्धंतत्रैवद्विजसत्तमाः ॥ तत्रतस्यैवतीरस्थोवीक्षां
चक्रेसमाहितः ॥ ३२ ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेचिह्नंदर्शनलालसः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कीदृशंजायतेचिह्नंका
र्त्तिक्यांज्येष्ठपुष्करे ॥ सम्प्राप्तेकृत्तिकायोगेसर्वंतत्रवदाशुनः ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेयदागच्छ

के कमलों से उपलक्षित वे जलाशय भलीभांति स्थितथे उन को देखकर श्रद्धासंयुत विश्वामित्र मुनि ने क्रमपूर्वक स्नानकर ॥ ३० ॥ तदनन्तर भलीभांति विधि
से पितरों का तर्पण किया उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! फल समेत साग, मूल व तिन्नी पसाही से वहींपर विधि से श्राद्ध किया व वहांपर उसी तीर्थ के किनारे
टिके व सावधान होते हुये दर्शन के लालची विश्वामित्र मुनि ने कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र के योग में चिह्न को देखा ॥ ३१ । ३२ । ३३ ॥
ब्राह्मण बोले कि कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिकानक्षत्र के योगको भलीभांति प्राप्त होतेहुये उस तीर्थमें कैसा लक्षण उत्पन्न होताहै उसको तुम हमलोगों से शीघ्रही

कहो ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि कार्त्तिकी पौर्णमासी में जब कृत्तिकानक्षत्र के योग में चन्द्रमा आता है तब जलके बीचसे उत्तम कमल निकलता है ॥ ३५ ॥ उसके बीचमें अँगूठे के प्रमाणभर पुरुष मनुष्यों से देखाजाता है तदनन्तर श्रद्धासंयुत भलीभांति नहाया हुआ नर तीर्थ के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३६ ॥ इसी कारण बडे यत्नको प्राप्तहोते हुये महामुनि विश्वामित्रजीने स्नानकर उस चिह्नको देखा ॥ ३७ ॥ उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीको इस प्रकार देखतेहुये वहांपर आनर्तदेशका स्वामी बृहद्बल नामक राजा प्राप्तहुआ ॥ ३८ ॥ जो कि बहुतेरे मृगगणों व और भी पशुओंको मारकर शिकार से अत्यन्तही थकाहुआ मध्याह्न के समय उस मार्ग से

तिचन्द्रमाः ॥ तदानिष्क्रामतिश्रेष्ठंकमलंजलमध्यतः ॥ ३५ ॥ तन्मध्येङ्गुष्ठमात्रस्तुपुरुषोदृश्यतेजनैः ॥ सुस्नातःश्रद्धयोपेतस्ततस्तीर्थफलंलभेत् ॥ ३६ ॥ एतस्मात्कारणात्स्नात्वाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ तच्चिह्नंवीक्षयामाससमहद्यत्नसमाश्रितः ॥ ३७ ॥ तस्यैवंवीक्षमाणस्यविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ आनर्ताधिपतिस्तत्रप्राप्तोराजाबृहद्बलः ॥ ३८ ॥ अत्यन्तमृगयाश्रान्तोहत्वामृगगणान्बहून् ॥ तथान्यानपिमध्याह्नेतेनमार्गेणसङ्गतः ॥ ३९ ॥ अथापश्यद्ध्रदोपान्तेविश्वामित्रंमुनीश्वरम् ॥ उपविष्टंकृतस्नानंवीक्षमाणंजलाशयम् ॥ ४० ॥ ततस्तंप्रणिपत्योच्चैरवतीर्य्यतुरङ्गमात् ॥ श्रमार्तःसलिलेतस्मिन्प्रविवेशनृपोत्तमः ॥ ४१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्मात्कमलंतद्विनिर्गतम् ॥ सहस्रपत्रसञ्जुष्टंद्वादशार्कसमप्रभम् ॥ ४२ ॥ तद्दृष्ट्वासमहीपालःपद्ममत्यद्भुतंमहत् ॥ जग्राहकौतुकाविष्टःस्वयंसव्येनपाणिना ॥ ४३ ॥ स्पृष्टमात्रेततस्तस्मिन् कमलेद्विजसत्तमाः ॥ उत्थितःसुमहाञ्छब्दोविश्वंयेनप्रपूरितम् ॥ ४४ ॥ तंशब्दंसमहीपालःश्रुत्वा

भलीभांति प्राप्त हुआथा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर उस नृपने कुण्डके समीप स्नान कियेहुये बैठे व जलाशय को देखते हुये मुनिनायक विश्वामित्रजीको देखा ॥ ४० ॥ तदनन्तर घोडेसे उतरकर उन मुनिको उच्च प्रकार से प्रणामकर परिश्रमसे विकल उस नृपोत्तमने उस जलमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥ इसी समय में हजार पत्रोंसे शोभित व बारह सूर्य्यों के समान कान्तिमान् उस कमल को उस जलसे निकलाहुआ देखा ॥ ४२ ॥ उस भूपाल ने अतिअद्भुत बड़ेभारी उस कमल को देखकर कौतूहल से व्याप्त होकर आपही बायें हाथसे ग्रहण करलिया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस कमल को केवल स्पर्श करते हुये बड़ाभारी शब्द उठा कि

जिससे संसारभर पूर्ण होगया ॥ ४४ ॥ और वह भूपाल उस शब्दको सुनकर मूर्च्छामें प्राप्तहुआ व उस जलमें गिरपडा और कमल भी अदृश्य होगया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर दुःख शोच से विकल व हाय २ ऐसा शब्द बकतेहुये नौकरोंसे बडे क्लेशके द्वारा वह भूप जलके बाहर खींचागया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर किनारे प्राप्तहोकर क्लेश से चैतन्यतासंयुत होताहुआ वह भूपति जबतक अपने शरीर को देखै तबतक कुष्ठ प्राप्त होगया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर टूटेफूटे चरण,नासिका, हाथवाले वैसे अपने शरीरको घर्घरशब्द समेत देखकर क्लेशमें प्राप्तहुआ ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर भूमिका पालक राजा विश्वामित्रमुनिके समीप जाकर आंसुओंसे गद्गदा वाणीसे

मूर्च्छामुपाविशत् ॥ पतितश्चजलेतस्मिन्पद्मंचादर्शनंगतम् ॥ ४५ ॥ ततःकृच्छ्रेणमहताकर्षितःसलिलाद्बहिः ॥ सेवकैर्दुःखशोकार्तैर्हाहेतिप्रतिजल्पकैः ॥ ४६ ॥ ततस्तीरंसमासाद्यकृच्छ्राद्भूपःसचेतनः ॥ यावद्वीक्षयतिस्वाङ्गंतावत्कुष्ठंसमागतम् ॥ ४७ ॥ ततोविषादमापन्नोदृष्ट्वातादृग्निजंवपुः ॥ शीर्णघ्राणाङ्घ्रिहस्तञ्च घर्घरस्वरसंयुतम् ॥ ४८ ॥ अथगत्वा मुनेःपार्श्वेविश्वामित्रस्यभूमिपः ॥ उवाचवचनंराजाबाष्पगद्गदयागिरा ॥ ४९ ॥ भगवन्पश्यमेजातंयादृशंवपुरेवहि ॥ अकस्मादेवमग्नस्यसलिलेत्रविगर्हिते ॥ ५० ॥ तत्किंपानीयदोषोयंकिंवाभूमेर्मुनीश्वर ॥ येनेदृक्सहसाजातंविकृतंमे शरीरकम् ॥ ५१ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ आराधयसहस्रांशुमस्मिन्क्षेत्रेमहीपते ॥ ततःप्राप्स्यसिसंसिद्धिंकुष्ठनाशसमुद्भवाम् ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वासमुनेर्वाक्यंभूमिपालोबृहद्बलः ॥ तत्क्षणात्स्थापयामाससूर्य्यस्यप्रतिमांतदा ॥ ५३ ॥ अर्चयामासविधिवत्पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ श्रद्धयापरयायुक्तोरविवारेविशेषतः ॥ ५४ ॥ उपवासपरोभूत्वारक्तचन्दनसंयुतैः ॥ पू

बोला ॥ ४९ ॥ कि हे भगवन् ! अचानकहीं इस निन्दित जलमें स्नान कियेहुये मेरा जैसा शरीर होगया है उसको तुम देखो ॥ ५० ॥ हे मुनिनाथ ! तो क्या पानी का दोष है या भूमिका कि जिससे एकाएकी मेरा शरीर ऐसे विकार को प्राप्त होगया ॥ ५१ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि हे भूपति ! इस क्षेत्र में हज़ार किरणोंवाले सूर्य्यनारायण की आराधना करो तदनन्तर कुष्ठ के नाशसे उपजी हुई सिद्धि को प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥ उस बृहद्बल भूपालने मुनि के उस वचन को सुनकर उस समय में उसीक्षण सूर्य्यनारायण की प्रतिमा की थापना किया ॥ ५३ ॥ व परमश्रद्धासंयुत भूपतिने पुष्प, धूप व चन्दनादिक लेपनों से रविवारके दिन विशेषकर

विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ५४ ॥ व उपास में तत्पर होकर उत्तम श्रद्धा से संयुत अरुण चन्दन समेत लाल फूलोंसे पूजता हुआ वह भूपति ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वर्ष के अन्तमें कुष्ठ रोग से छूटकर बारह सूर्य्यों के समान कान्तिमान् होगया ॥ ५६ ॥ उस के उपरान्त, अपने राज्य में प्राप्तहोकर अनेकों प्रकार के भोगों को भोगकर और शरीरके अन्त में दिननायकके मन्दिरको भलीभांति प्राप्त होता भया ॥ ५७ ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वहांपर इस भांति बुद्धिमान् विश्वामित्र जी ने त्रिपुष्कर को समस्त मनुष्यों के प्रकट करदिया ॥ ५८ ॥ यदि पुरुष रोगसंयुत होवै तो वर्षपर्य्यन्त रविवारके दिन उत्सव कर वह रोगों से छूटजाता है ॥ ५९ ॥ अ-

जयन्रक्तपुष्पैश्चश्रद्धयापरयायुतः ॥५५॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेसबभूवमहीपतिः ॥ कुष्ठव्याधिविनिर्मुक्तोद्वादशार्कसमप्रभः ॥ ५६ ॥ ततःस्वराज्यमासाद्यभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ देहान्तेदिननाथस्यसम्प्राप्तोमन्दिरंतथा ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रद्विजश्रेष्ठाविश्वामित्रेणधीमता ॥ प्रकटंसर्वलोकस्यविहितंपुष्करत्रयम् ॥५८॥ वत्सरंरविवारेणयावत्कृत्वाक्षणंनरः ॥ समुच्यतेनरोरोगैर्यदिस्याद्रोगसंयुतः ॥ ५९ ॥ नीरोगोवानरःसद्योलभतेमानसेप्सितम् ॥ निष्कामोमोक्षमाप्नोतिप्रसादात्तीक्ष्णदीधितेः ॥ ६० ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेवृषोत्सर्गंकरोतियः ॥ पुष्करेषुसुपुण्येषुसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ ६१ ॥ यष्टव्याबहवःपुत्रायद्येकोपिगयांव्रजेत् ॥ यजेतवाश्वमेधेननीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ ६२ ॥ एकतःसर्वदानानिपृथिव्यादीनिचैकतः ॥ एकतस्तुवृषोत्सर्गःकार्त्तिक्यांपुष्करेषुच ॥६३॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यंपठेद्वाश्रद्धयान्वितः ॥

थवा नीरोग नर उसी समय मनोवाञ्छित को पाता है व अकाम मनुष्य तीखे किरणोंवाले सूर्यनारायण की प्रसन्नता से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ व कृत्तिका नक्षत्र का योग होते हुये कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुज बहुत पुण्यदायक तीनोंपुष्करोंमें वृषोत्सर्ग कर्म करता है वह अश्वमेध यज्ञ के फलको पाता है ॥ ६१ ॥ यज्ञ करने के योग्य बहुत पुत्र हों यदि एक भी गयामें जावै तो अश्वमेध से पूजन करै या नीले बैल को छोड़ै ॥ ६२ ॥ भूमि इत्यादिक दान एक ओर हैं व पुष्करों कार्त्तिकी पौर्णमासी के दिन वृषोत्सर्ग कर्म एक ओर है ॥ ६३ ॥ श्रद्धा समेत जो पुरुष नित्यही इस चरित्र को पढ़ता है या सुनता है वह निश्चयकर सब काम-

नाओंको प्राप्त होकर ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिपुष्करमाहात्म्यंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । छियालिसें अध्याय में बरणत चरित अनूप । तीर्थ न्हाय सारस्वतहिं मूक मुदित भो भूप ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! वहांपर और जो तीर्थ हैं उन सबोंको कहिये हमलोगोंको बड़ा कौतुक (आश्चर्य) है ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि वहांपर बहुत उत्तम अन्य (दूसरा) सारस्वत नामक तीर्थहै जिसमें नहायाहुआ

सम्प्राप्यसर्वकामान्वैब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिपुष्करमाहात्म्यं नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ अन्यानितत्रतीर्थानियानिसन्तिमहामते ॥ तानिकीर्तयसर्वाणिपरंकौतूहलंहिनः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रसारस्वतंतीर्थमन्यदस्तिसुशोभनम् ॥ यत्रस्नातोविमूकोपिभवेद्वाक्यविचक्षणः ॥ २ ॥ लभतेचेप्सितान्कामान्मानुषान्दैविकानपि ॥ ब्रह्मलोकादिपर्य्यन्तांस्तथालोकान्द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ पुरासीत्पार्थिवोनामविख्यातोबलवर्धनः ॥ समुद्रवसनामुर्वींबुभुजेयोनिजार्जिताम् ॥ ४ ॥ तस्यपुत्रःसमुत्पन्नस्सर्वलक्षणसंयुतः ॥ तस्यनामपिताचक्रेसम्प्राप्तेद्वादशेहनि ॥ ५ ॥ अम्बुवीचिरितिस्पष्टंसमाहूयद्विजोत्तमान् ॥ ततःसवर्वृधेबालोलालितस्तेनभूभुजा ॥ ६ ॥ मूकभावात्समुत्पन्नोनशक्नोतिप्रजल्पितुम् ॥ ततोस्यसप्तमेवर्षेसम्प्राप्तेबलवर्धनः ॥ ७ ॥ पञ्चत्वंसमनुप्राप्तः

विशेष कर गूंगाभी पुरुष वाक्यमें चतुर होवैहै ॥ २ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! चाहे हुये मनुष्योंके व देवतों के भी कामनाओंको तथा ब्रह्मलोकादिक पर्य्यन्त लोकोंको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ पुरातन समयमें बलवर्द्धननाम से प्रसिद्ध भूपति हुआहै जिस ने अपनी इकट्ठा कीहुई सागर वसनवाली पृथ्वीको भोग किया ॥ ४ ॥ उसके सब लक्षणों से संयुत पुत्र उत्पन्न हुआ पिताने जब बारहवां दिन भलीभांति प्राप्त हुआ तब ब्राह्मणोत्तमों को बुलाकर अम्बुवीचि ऐसा उसका नाम प्रकट किया तदनन्तर उस भूपालसे प्यार कियाहुआ वह बालक बढ़ा ॥ ५ । ६ ॥ भलीभांति उपजा हुआ वह बालक गूंगेपन से बोलने को समर्थ नहींथा तदनन्तर इस

बालकको सातवां वर्ष प्राप्त होतेहुये युद्धमें शत्रुओंसे माराहुआ वह बलवर्धन मृत्युको प्राप्त होगया उसके उपरान्त और पुत्रके प्रभावसे उस भूपतिका वह गूंगा भी बालक मन्त्रियोंसे राज्य पै बिठायागया इस प्रकार शिशुतामें वर्तमान जड़मानसवाले व राज्य पै बैठेहुये उस भूपका राज्य नष्ट होगया तदनन्तर भूतलमें जलचारी जन्तुओंका न्याय भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ७ । ८ । ९ । १० ॥ क्योंकि चारोंओर बड़े बलिष्ठजनों से निर्बल मनुष्य पीड़ित कियेजाते थे तदनन्तर वे मन्त्रीलोग अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे बोले ॥ ११ ॥ कि हे महामुने ! इस नृपति की अवस्था के लिये यत्न करिये क्योंकि इस नृपतिकी जड़ता से सम्पूर्ण धरातल शून्यता को-

॥ ८ ॥ ससुतःस्थापितोराज्येभावादन्यसुतस्यच ॥ सङ्ग्रामेशत्रुभिर्हतः ॥ ततोमूकोपिबालोपिमन्त्रिभिस्तस्यभूपतेः ॥ ततोजलचरन्यायःसम्प्र वृत्तोमहीतले ॥ १० ॥ पीड्यन्तेसर्वतोलोकादुर्बलाबलवत्तरैः ॥ ततस्तेमन्त्रिणःप्रोचुर्वसिष्ठंस्वपुरोहितम् ॥ ११ ॥ वयोर्थं नृपतेरस्यकुरूपायंमहामुने ॥ पश्यकृत्स्नंधरापृष्ठंशून्यतांसमुपस्थितम् ॥ १२ ॥ जाड्यत्वान्नृपतेरस्यतस्मात्कुरुयथो चितम् ॥ ततस्तुसचिरंध्यात्वादीनान्प्राहचमन्त्रिणः ॥ १३ ॥ सर्वानार्तिसमोपेताञ्छ्रुएवतस्तस्यभूपतेः ॥ अस्तिसार स्वतंतीर्थंसर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ १४ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेतत्रायंस्नातुभूपतिः ॥ अथतद्वचनात्सद्यःसगत्वातत्रवैत तः ॥ १५ ॥ स्नातस्तीर्थेथसञ्जातस्तत्क्षणात्सकलस्वनः ॥ तत्प्रभावंसरस्वत्याःसविज्ञायमहीपतिः ॥ १६ ॥ श्रद्धया परयायुक्तोध्यायमानःसरस्वतीम् ॥ ततस्तूर्णंसमादायमृत्तिकांसनदीतटात् ॥ १७ ॥ चकारभारतीन्देवींस्वयमेवचतु

प्राप्त होगया उसको देखिये इस लिये जैसा योग्यहो वैसा करो तदनन्तर उन वसिष्ठमुनि ने बहुत देरतक ध्यानकर व उस भूपति के सुनतेहुये दुःखमें प्राप्त सब मन्त्रियों से कहा कि हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें मनुष्यों के सब अभिलाषोंका दायक सारस्वत नामक तीर्थ है ॥ १२ । १३ । १४ ॥ उसमें यह भूपति स्नान करै इसके अनन्तर उन वसिष्ठजी के वचन से उस भूपतिने उसी क्षण वहींपर जाकर तदनन्तर ॥ १५ ॥ तीर्थमें स्नान किया इसके अनन्तर वह भूपति उसीक्षण मधुर स्वरवाला होगया व सरस्वतीजी के उस प्रभाव को जानकर ॥ १६ ॥ उसके उपरान्त परम श्रद्धासंयुत सरस्वतीजी का ध्यान करतेहुये उस भूपतिने नदीके किनारे

से शीघ्रही मृत्तिकाको लेकर ॥ १७ ॥ व आपही चार भुजावाली सरस्वती देवीका निर्माण किया जोकि दहिने हाथमें बहुत मनोहर कमल को धारेथी ॥ १८ ॥ वैसे ही और हाथमें नक्षत्रोंके तेजको जीतेहुई रुद्राक्षमाला को धारण किये और अन्य हाथमें उत्तमजल से भरेहुये कमण्डलु को धारेथी ॥ १९ ॥ और वैसेही बायें हाथ में सब विद्याओं से उपजी हुई पुस्तकको लियेथी तदनन्तर पत्थर के पीठपै बीचमें उन सरस्वतीजी को बड़े उपाय से बिठाया ॥ २० ॥ व उत्तमभक्तिसे धूप,माला, चन्दनादिक लेपों से पूजन किया उसके उपरान्त उस नृपने पवित्र होकर श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उन सरस्वतीजी के आगे बड़े उच्चस्वरसे स्तुति की कि हे देवि !

भुजाम् ॥ दधतींदक्षिणेहस्तेकमलंसुमनोहरम् ॥ १८ ॥ अक्षमालांतथान्यस्मिञ्जिततारकवर्चसम् ॥ कमण्डलुं तथान्यस्मिन्दिव्यवारिप्रपूरितम् ॥ १९ ॥ पुस्तकञ्चतथावामेसर्वविद्यासमुद्भवम् ॥ ततोमध्येशिलापृष्ठेतांनिवेश्य प्रयत्नतः ॥ २० ॥ पूजयामाससद्भक्त्याधूपमाल्यानुलेपनैः ॥ चकारचस्तुतिंपश्चाच्छ्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २१ ॥ तदग्रेप्रयतोभूत्वास्वरेणमहतान्नृपः ॥ सदसद्देवियत्किञ्चिद्बन्धमोक्षात्मकंपरम् ॥ २२ ॥ तत्सर्वंगुप्तयाव्याप्तंत्वयाकाष्ठंयथाग्निना ॥ सर्वस्यासिद्धिरूपेणत्वंजनस्यहृदिस्थिता ॥२३ ॥ वाचारूपेणजिह्वायांज्योतीरूपेणचक्षुषि ॥ भक्तिग्राह्यासिदेवेशित्वमेकाभुवनत्रये ॥ २४ ॥ शरणागतदीनार्त्तिपरित्राणपरायणा ॥ त्वंकीर्तिस्त्वंधृतिर्मेधात्वंभक्तिस्त्वं प्रभास्मृता ॥ २५ ॥ त्वंनिद्रात्वंक्षुधाकान्तिःसर्वभूतनिवासिनी ॥ तुष्टिःपुष्टिर्वपुःप्रीतिःस्वधास्वाहाविभावरी ॥ २६ ॥

कार्यकारण रूप व परमबन्धन तथा मोक्षात्मक जो कुछहै ॥ २१ । २२ ॥ वह सब तुम्हारे गुप्तरूप से वैसेही व्याप्तहै जैसे कि अग्निसे इन्धन व्याप्तहै और सब मनुष्योंके हृदय में तुम सिद्धिरूप से टिकीहुईहो ॥ २३ ॥ हे सुरेश्वरी ! जिह्वामें वाणी रूपसे व नेत्रमें प्रकाशरूप से स्थित हो तीनों भुवन में एक तुम भक्तिसे ग्रहण करने के योग्यहो ॥ २४ ॥ व शरण में आयेहुये दीनजनों को दुःखसे सब ओर रक्षामें तत्परहो तुम कीर्त्तिहो तुम्हीं धैर्य्यहो तुम्हीं बुद्धिहो तुम्हीं भक्ति और तुम्हीं प्रकाशक होगई हो ॥ २५ ॥ और सब प्राणियों में निवास करनेवाली तुम निद्राहो तुम्हीं क्षुधाहो तुम्हीं छविहो तोषण, पोषण, शरीर, स्नेह व स्वाहा, स्वधा, तथा

रात्रि तुम्हींहो ॥ २६ ॥ व हे सुरेश्वरी ! रति, प्रीति, पृथ्वी, गंगा, सत्य, धर्म, मनस्विनी, लज्जा, शान्ति, स्मृति, दक्षा, क्षमा, गौरी, रोहिणी ॥ २७ ॥ शिनीवाली (चन्द्रमा देख पडनेवाली अमावस) कुहू चन्द्रमा न देख पड़नेवाली अमावस राका याने पौर्णमासी व देवताओं की माता अदिति व दिति ब्रह्माणी, विनता, लक्ष्मी, कद्रू, दक्षकी कन्या सती शिवा ॥ २८ ॥ या गायत्री, अथवा सावित्री, कृषि, वृष्टि, श्रुति, कला, वेला, नाडी, त्रुटि, काष्ठा, रसना, सरस्वती ॥ २९ ॥ व अधिकता से जो कुछ नहीं कहागया वह सब चेष्टित व अचेष्टित तुम्हाराही रूपहै ॥ ३० ॥ गन्धर्व, किन्नर, देवता, सिद्ध विद्याधर, नाग, यक्ष, गुह्यक और भूत व

रतिःप्रीतिःक्षितिर्गङ्गासत्यधर्ममनस्विनी ॥ लज्जाशान्तिःस्मृतिर्दक्षाक्षमागौरीचरोहिणी ॥ २७ ॥ सिनीवालीकुहू राकादेवमातादितिस्तथा ॥ ब्रह्माणीविनतालक्ष्मीःकद्रूर्दाक्षायणीशिवा ॥ २८ ॥ गायत्रीवाथसावित्रीकृषिर्वृष्टिःश्रुतिः कला ॥ वेलानाडीत्रुटिःकाष्ठारसनाचसरस्वती ॥ २९ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषुलोकेषुबहुत्वान्नप्रकीर्तितम् ॥ इङ्गितंनेङ्गितंतच्च त्वद्रूपंतुसुरेश्वरी ॥ ३० ॥ गन्धर्वाःकिन्नरादेवाःसिद्धाविद्याधरोरगाः ॥ यक्षगुह्यकभूताश्चदैत्यायेचविनायकाः ॥ ३१ ॥ त्वत्प्रसादेनतेसर्वेसंसिद्धिंपरमांगताः ॥ तथान्येपिबहुत्वाद्येनमयापरिकीर्तिताः ॥ ३२ ॥ आराधितास्तुकृच्छ्रेणपूजितास्तुसुविस्तरैः ॥ हरन्तिदेवताःपापमन्यास्त्वन्तुप्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥ एवंस्तुतासादेवेशीभूभुजातेनभारती ॥ ययौप्रत्यक्षतांतूर्णंप्राहचेदंसुहर्षिता ॥ ३४ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ स्तोत्रेणानेनभूपालभक्त्यासुस्थिरयासदा ॥ परितुष्टास्मितेनाशुवरंवृणुयथेप्सितम् ॥ ३५ ॥ राजोवाच ॥ अद्यप्रभृतिमद्वाक्यात्त्वयास्थेयमसंशयम् ॥ अत्रतेर्चात्रिलोकेस्मिन्

जो दैत्य तथा विनायक हैं ॥ ३१ ॥ व और भी जोकि अधिकता के कारण मुझसे नहीं कहेगये वे सब तुम्हारी प्रसन्नता से भलीभांति सिद्धिको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३२ ॥ और क्लेशसे आराधना कियेहुये व बहुत विस्तारोंसे पूजेहुये अन्य देवता पातकको हरते हैं परन्तु भलीभांति कीर्तन कीहुई तुम पापको हरतीहो ॥ ३३ ॥ उस भूपाल से इसभांति स्तुति कीहुई वह सुरेश्वरी सरस्वती सामने प्राप्त व बहुत प्रसन्न होतीहुई यह बोली ॥ ३४ ॥ श्रीसरस्वतीजी बोलीं कि हे भूपाल ! बड़ी दृढ़भक्तिके कारण इस स्तोत्रसे मैं सदैव बहुतही प्रसन्नहूं इसलिये जैसा इष्टहो वैसा वरदान शीघ्रही मांगो ॥ ३५ ॥ राजा बोले कि आजसे लगाकर मेरे वाक्य से तुमको यहां

पर निस्सन्देह टिकना चाहिये जबतक इस त्रिलोक में मेरा यश अचल रहैगा तबतक तुम्हारी पूजाहोगी ॥ ३६ ॥ व यहांपर टिकीहुई तुमको जो मनुष्य जिस कारण भलीभांति आराधन करै उसके लिये भक्तिके अनुकूलही तुमको शीघ्रही उस मनोरथ को देना चाहिये ॥ ३७ ॥ सरस्वतीजी बोलीं कि इस उत्तमजल में नित्यही नहाकर जो मनुष्य अष्टमी व चौदसि तिथिको यहांपर टिकीहुई मुझको पूजैगा ॥ ३८ ॥ हे भूपाल ! उसके मनोभिलषित कामोंको मैं भलीभांति दूंगी ॥३९॥ सूतजी बोले कि तबसे लगाकर मनुष्यों के हितके लिये वहांपर परमस्वामिनी सरस्वती देवी आपही इस प्रकार टिकतीभई ॥ ४० ॥ अष्टमीं व चतुर्दशी तिथि

यावत्कीर्तिर्ममस्थिरा ॥ ३६ ॥ यस्त्वामाराधयेत्सम्यगत्रस्थांयन्निमित्ततः ॥ भक्त्यानुरूपमेवाशुतस्मैदेयंत्वयाहित
त् ॥ ३७ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ योमामत्रस्थितांनित्यंस्नात्वात्रसलिलेशुभे ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांपूजयिष्यतिमानवः॥
३८ ॥ तस्याहंवाञ्छितान्कामान्सम्प्रदास्यामिपार्थिव ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रास्थितादेवीस्वयमेवसरस्वती ॥
ततःप्रभृतिलोकानांहितायपरमेश्वरी ॥ ४० ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यामुपवासपरायणः॥यस्तांपूजयतेमर्त्यःश्वेतपुष्पा
नुलेपनैः ॥ ४१ ॥ सम्यग्वाग्मीसुमेधावी सदाजन्मनिजन्मनि ॥ सरस्वत्याःप्रसादेनजायमानःपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ अ
न्वयेपिनतस्यैवकश्चिन्मूर्खःप्रजायते ॥ योधर्म्मश्रवणंतस्याःपुरतःकुरुतेनरः ॥ ४३ ॥ सनूनंवसतिस्वर्गेतत्प्रभावा
द्युगत्रयम् ॥ विद्यादानंनरोयश्चतस्याश्चायतनेसदा ॥४४॥ करोतिश्रद्धयायुक्तः सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ योयच्छतिद्वि
जेन्द्राय धर्म्मशास्त्रसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ पुस्तकंवाजिमेधस्यसमग्रस्यफलंलभेत्॥योवेदाध्ययनंतस्याःकरोतिपुरतःस्थि

में उपास में तत्पर होताहुआ जो मनुष्य श्वेतफूल व चन्दनादिक लेपनों से उन सरस्वतीजी को पूजता है ॥ ४१ ॥ वह बार २ उपजा हुआ सरस्वतीजी की प्रसन्नतासे प्रत्येक जन्ममें सदैव भलीभांति प्रसंशित वचनवाला व उत्तम बुद्धिमान् होताहै ॥ ४२ ॥ व उसकेही वंशमें भी कोई मूर्ख नहीं होताहै और जो मनुष्य उन सरस्वतीजी के अगारी धर्मका श्रवण करता है ॥ ४३ ॥ वह उनके प्रभाव से तीन युगतक निश्चय कर स्वर्ग में बसताहै व उन सरस्वतीजी के मन्दिरमें सदैव श्रद्धा समेत जो पुरुप विद्याका दान करता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै और जो नर धर्मशास्त्र से उपजी हुई पोथीको द्विजोत्तम के लिये देताहै ॥ ४४ । ४५ ॥

वह सम्पूर्ण अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्त होताहै व जो पुरुष उन सरस्वतीजी के आगे टिककर वेद पाठकरता है ॥ ४६ ॥ वह समस्त अग्निष्टोमयज्ञ के फलको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ इति स्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेसरस्वतीतीर्थवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । सैंतालिसें अध्याय में महाकाल माहात्म्य । जिनहिं पूजि वैश्यहु भयो भूप सोई याथात्म्य ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते सूतपुत्र ! महाकालजी का माहात्म्य विस्तार से हमलोगों से कहिये जिस लिये कि आप सब जानते हो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय इक्ष्वाकुवंश का बढ़ानेहारा रुद्रसेन ऐसा प्रसिद्ध

तः ॥ ४६ ॥ सोऽग्निष्टोमस्ययज्ञस्यकृत्स्नस्यफलमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रेसरस्वतीतीर्थवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ महाकालस्यमाहात्म्यंविस्तरेणमहामते ॥ अस्माकंसूतजब्रूहिसर्वंवेत्तियतोभवान् ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पूर्वंमहीपालइक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ रुद्रसेनइतिख्यातः सर्वशत्रुनिषूदनः ॥ २ ॥ समुद्रइवगाम्भीर्य्येसौम्यत्वेशशिसम्भवः ॥ वीर्य्येयथासहस्राक्षोरूपेकन्दर्प्पसन्निभः ॥ ३ ॥ तस्यकान्तीतिविख्याता पुरीसर्वगुणान्विता ॥ राजधान्यभवच्छ्रेष्ठाप्रोच्चप्राकारतोरणा ॥ ४ ॥ तथैवासीत्प्रियातस्यभार्य्यापरमसम्मता ॥ ख्यातापद्मावतीनामरूपौदार्य्यगुणान्विता ॥ ५ ॥ सतयासहितोराजावैशाख्यादिवसेसदा ॥ समभ्येतिनिजस्थानात्सैन्येनाल्पेनसंवृतः ॥ ६ ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रेपीठेतत्रद्विजोत्तमाः ॥ महाकालस्यदेवस्यपुरतोरात्रिजागरम् ॥ ७ ॥ करोतिश्रद्धयायुक्तःसभार्य्यःसम

भूपाल हुआहै वह निश्चयकर शत्रुओं का विनाशक था ॥ २ ॥ जोकि गम्भीरतामें समुद्र के समान व सौम्यता में चन्द्रमा से उपजे हुये बुधके समान व पराक्रम में इन्द्रके तुल्य तथा रूपमें कामदेव के समान था ॥ ३ ॥ उस भूपकी सब गुणोंसे संयुत व ऊंचे फाटकों तथा घेरोंसे उपलक्षित कान्ती ऐसी प्रसिद्धपुरी उत्तम राजधानी हुई है ॥ ४ ॥ वैसेही रूप व उदारतादि गुणोंसमेत व बहुतही सम्मत पद्मावती नामक उसकी प्रियपत्नी प्रसिद्धहुई है ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस स्त्रीसमेत व थोड़ी सेना से घिराहुआ वह नृप सदैव बैसाखी के दिन अपने स्थान से चमत्कार नगर के क्षेत्रमें आताथा ॥ ६ ॥ हे द्विजसत्तमो ! उस पीठ पै श्रद्धासंयुत व

स्त्री समेत महेश्वरजी का ध्यान करता हुआ वह भूपति उपवास में तत्पर होकर गाने, बजाने, मनोहर नाचने तथा धर्मके आख्यान व ब्राह्मणों के वेद पाठके विस्तारों से महाकाल देवजीके आगे रात्रि जागरण करता था ॥ ७ । ८ । ९ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल उठकर नहाकर धोये वसनों को पहने पवित्र होकर ब्राह्मणों के लिये व विशेषकर तपस्वियों तथा दीन, अन्ध, कृपण व अन्य नरों के लिये हजारों दान देता था इस प्रकार सदैव प्रतिवर्ष उस भूपतिने जाकर ॥ १० । ११ ॥ वैशाखी पौर्णमासी में उन महादेव के आगे जागरण किया वह भूपाल जैसे महाकालजी के आगे रात्रि जागरण करता था वैसेही उस भूप की वृद्धि होती थी व शत्रु

हीपतिः ॥ उपवासपरोभूत्वाध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ गीतवाद्येनहृद्येननृत्येनद्विजसत्तमाः ॥ धर्म्माख्यातेनविप्राणांवेदाध्ययनविस्तरैः ॥ ९ ॥ ततःप्रातःसमुत्थायस्नात्वाधौताम्बरःशुचिः ॥ दत्तेदानानिविप्रेभ्यस्तपस्विभ्योविशेषतः ॥ १० ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्चतथान्येभ्यःसहस्रशः ॥ वर्षेवर्षेसदैवंससमभ्येत्यमहीपतिः ॥ ११ ॥ वैशाख्यांजागरंतस्यदेवस्यपुरतोकरोत् ॥ यथायथासभूपालःकुरुतेरात्रिजागरम् ॥ १२ ॥ महाकालाग्रतस्तस्य तथावृद्धिःप्रजायते ॥ शत्रवोविलयंयान्तिलक्ष्मीर्वृद्धिंप्रयच्छति ॥ १३ ॥ एकदाससमायातस्तत्रयावन्महीपतिः ॥ तत्रैवदिवसेतावन्महाकालस्यचाग्रतः ॥ १४ ॥ अपश्यद्ब्राह्मणश्रेष्ठान्नानादिग्भ्यःसमागतान् ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नान्व्रतनिष्ठापरायणान् ॥ १५ ॥ एकेतत्रकथाश्चक्रुस्सुपुण्याब्राह्मणोत्तमाः ॥ राजर्षीणांपुराणानांदेवर्षीणान्तथापरे ॥ १६ ॥ तीर्थानाञ्चतथाचान्येब्रह्मर्षीणांतथापरे ॥ यज्ञाणांसागराणाञ्चद्वीपानाञ्चमुनीश्वराः ॥ १७ ॥ अथतान्पृथिवीपालःसप्रणम्ययथाक्रमम् ॥ उपविष्टः

नाश हो जाते थे और लक्ष्मी की वृद्धि को देती थी ॥ १२ । १३ ॥ एकसमय उसीदिन वहांपर जबतक वह भूपति आया तबतक महाकाल जी के आगे अनेक दिशाओं से आये हुये वेदपाठ में तत्पर व व्रत की सिद्धि में लगे हुये उत्तम ब्राह्मणोंको उसने देखा ॥ १४।१५ ॥ वहांपर कितेक ब्राह्मणोत्तम पुराने राजर्षियों की बहुतपुण्यदायक कथाओं को कहरहे थे वैसेही दूसरे देवर्षियों की कथाओं को कहते थे ॥ १६ ॥ हे मुनीश्वरो ! अन्य ब्राह्मण तीर्थों की व दूसरे द्विज देवर्षियों व यज्ञ समुद्र व द्वीपों की कथाओं को कहतेथे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वह भूपाल क्रमपूर्वक उन द्विजों को प्रणामकर व उन सबों से प्रशंसित होताहुआ सभा के बीच

में समीप बैठगया ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर जब किसी कथा का अन्तहुआ तब उन मुनीश्वरों ने कौतुकसंयुत होतेहुये उस भूपाल से पूछा ॥ १९ ॥ कि हे राजन् ! तुम सदैव प्रतिवर्ष वैशाखी पौर्णमासी के दिन आकर अन्य स्नान दानादिक सब कार्य्यों को छोड़कर इन महाकाल जी के आगे बडे उपाय से रात्रिजागरण करते हो जो कर्म कि शास्त्रों के चिन्तन करनेवाले जनों से कहे गये हैं ॥ २० । २१ ॥ यदि वह समस्त तुम से गुप्त न हो तो रात्रिजागरण में जो फलहो उस सबको निश्चयकर कहिये ॥ २२ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! जो मुझ से पूंछा गयाहै वह बहुतही गुप्त है तिसपर भी सबही चरित्र को मैं निश्चयकर तुम लोगोंसे

सभामध्ये तैः सर्वैश्चाभिनन्दितः ॥ १८ ॥ कस्मिंश्चिदथसम्प्राप्तेकथान्तेतेमुनीश्वराः ॥ पप्रच्छुर्भूमिपालन्तंकौतूहलसमन्विताः ॥ १९ ॥ वैशाखीदिवसेराजंस्त्वंसदाभ्येत्यदूरतः ॥ वर्षेवर्षेस्यदेवस्यपुरतोरात्रिजागरम् ॥ २० ॥ प्रकरोषिप्रयत्नेनत्यक्त्वान्याःसकलाःक्रियाः ॥ स्नानदानादिकायाश्चनिर्दिष्टाःशास्त्रचिन्तकैः ॥ २१॥ नतेयदिरहस्यंस्यात्तदशेषंप्रकीर्तय ॥ नूनंतस्मिन्हितत्सर्वंयत्फलंरात्रिजागरे ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ रहस्यंपरमंचैवयत्पृष्टोहंद्विजोत्तमाः ॥ युष्माभिःकीर्तयिष्यामितथाप्यखिलमेवहि ॥ २३ ॥ अहमासंवणिग्जात्यापुरावैवैदिशेपुरे ॥ निर्धनोबन्धुभिर्मुक्तःपरिभूतःपदेपदे ॥ २४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यभगवान्पाकशासनः ॥ वैदिशेनाकरोद्वृष्टिंसप्तवर्षाणिपञ्चच ॥ २५ ॥ ततोवृष्टिनिरोधेनसर्वलोकाःक्षुधार्दिताः ॥ अन्नाभावान्मृतःकश्चित्कश्चिद्देशान्तरङ्गतः ॥ २६ ॥ ततोहंस्वांसमादायपत्नींक्षुत्क्षामगात्रिकाम् ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांप्रस्खलन्तींपदेपदे॥२७ ॥ सौराष्ट्रंमनसिध्यात्वाप्रस्थितस्तदनन्तरम् ॥ सु

कहूंगा ॥ २३ ॥ पुरातन समय वैश्य जाति से उपजा मैं वैदिश नगर में हुआहूं जो कि निर्धनी व पग पग पै भाइयों से निरादर होकर छोंडागया ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर किसी समय भगवान् इन्द्र ने वैदिश नगर में सात और पांच याने बारह वर्ष तक वृष्टि न किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर वृष्टि के रुँकने से सब मनुष्य क्षुधा से विकल होते हुये अन्न के न होने से कोई मरगया व कोई अन्य देशको चलागया ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैंने आंसुओं से पूर्णमुखवाली व दीन तथा पग पै लरखराती हुई व क्षुधा से दुर्बल अङ्गवाली अपनी स्त्री को लेकर व मन में चिन्तनकर तदनन्तर मनुष्यों से सौराष्ट्र देश को सुभिक्ष सुनकर जीवन

के लिये प्रस्थान किया ॥ २७ । २८ ॥ इसके अनन्तर भिक्षान्न से भोजन करता हुआ व क्रम से जाताहुआ मैं चमत्कार नगरके समीप आनर्त देश मे प्राप्तहुआ ॥ २९ ॥ वहांपर जलपक्षियों से घिरे हुये व निर्मल जल से पूरित तथा कमलिनीके समूह से शोभित व मनोहर तड़ाग को देखा तदनन्तर क्षुधा से विकल व विशेषतासे परिश्रम से दुःखी तथा प्याससे विह्वल मैंने उस तड़ाग को पाकर शीत जलसे स्नान किया ॥ ३० । ३१ ॥ इसके अनन्तर स्त्रीने मुझसे कहा कि हे नाथ ! कार्य्य के लिये कमलोंको ग्रहण करिये कि जिससे आज भोजन होवै ॥ ३२ ॥ दूरही से यह पुरोत्तम पुरन्दरपुर याने इन्द्रनगर के समान भलीभांति देखपड़ता है वहां

भिक्षंलोकतःश्रुत्वाजीवनायद्विजोत्तमाः ॥ २८ ॥ क्रमेणगच्छमानोथभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ आनर्तविषयेप्राप्तश्चमत्कारपुरान्तिके ॥ २९ ॥ तत्ररम्यंमयादृष्टंपद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ सरःस्वच्छजलापूर्णंजलपक्षिभिरावृतम् ॥ ३० ॥ ततोहंतत्समासाद्यस्नानंशीतेनवारिणा ॥ क्षुधार्तश्चतृषार्तश्चश्रमार्तश्चविशेषतः ॥ ३१ ॥ अथाहंभार्य्ययाप्रोक्तोगृहाणेशजलाशयात् ॥ जलजानिक्रियार्थाययेनस्याद्द्यभोजनम् ॥ ३२ ॥ एतत्सन्दृश्यतेदूरात्पुरन्दरपुरोपमम् ॥ पुरश्रेष्ठंसमासाद्यविक्रयंकर्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ ततोमयागृहीतानिपद्मानिद्विजसत्तमाः ॥ विक्रयार्थंप्रभूतानि वाञ्छमानेनभोजनम् ॥ ३४ ॥ चमत्कारपुरंप्राप्यततोहंद्विजसत्तमाः ॥ भ्रान्तस्त्रिकेषुसर्वेषुचत्वरेषुगृहेषुच ॥ ३५ ॥ नकश्चित्प्रतिगृह्णातितानिपद्मानिमानवः ॥ ममभाग्यवशाल्लोकोजातःक्रयपराङ्मुखः ॥ ३६ ॥ अथक्षुत्क्षामकण्ठस्यश्रान्तस्यममभास्करः ॥ अस्ताचलमनुप्राप्तःसन्ध्याकालस्ततोभवत् ॥ ३७ ॥ ततोवैराग्यमापन्नः सुप्तोहंभग्नमन्दिरे ॥ तानिपद्मानिभूपृष्ठे नि

पर जाकर तुम विक्रय करने के योग्य हो ॥ ३३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर भोजन की इच्छा करते हुये मैंने बेंचने के लिये बहुत से कमलों को ग्रहण किया ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस के उपरान्त चमत्कार नगर को प्राप्तहोकर मैंने समस्त त्रिकोण व चौकोन चौतरों तथा गेहों में भ्रमण किया ॥ ३५ ॥ कोई मनुष्य उन कमलों को नहीं ग्रहण करता है मेरे भाग्यके वश से संसार लेनेसे विमुख होगया ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर क्षुधा से क्षाम (सूखे हुये) कण्ठवाले मुझको थकते हुये सूर्य्यनारायण जी अस्ताचलको प्राप्त हुये तदनन्तर सन्ध्यासमय होगया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर वैराग्य में प्राप्तहोकर स्त्री समेत मैं उन कमलों को भूमिपृष्ठ पै धरकर टूटे

फूटे मन्दिर में सोगया॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर जब आधीरात्रि भलीभांति प्राप्तहुई तब मैंने गाने की ध्वनि सुनी उसके उपरान्त चित्त में चिन्तन किया कि यह निस्सन्देह जागरण है ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं जाताहूं कोई मनुष्य मेरे इन कमलों को मोल से ग्रहण करैगा उससे भोजन होगा ॥ ४० ॥ ऐसा विशेष निश्चयकर कमलों को लेकर स्त्री समेत मैं वहां शीघ्रही चला जहांपर कि गाने की ध्वनिका शब्द होरहा था ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हे मुनीश्वरो ! मैं उस मन्दिर में पहुँचा व देवताओं के देवनायक महाकाल जी के आगे खड़े हुये जपव गान में तत्पर द्विजोत्तमोंसे भली विधिसे पूजित देखा एक मनुष्य नृत्य करते हैं व दूसरे अतिउत्तम गान

धायसहभार्य्यया ॥ ३८ ॥ अथार्धरात्रेसम्प्राप्ते श्रुतागीतध्वनिर्मया॥ ततश्चिन्तितंचित्तेजागरोयमसंशयम् ॥ ३९ ॥
तस्माद्गच्छाम्यहं कश्चित्पद्मान्येतानिमेनरः ॥ मूल्येनप्रतिगृह्णातिभोजनंजायतेततः ॥ ४० ॥ एवंविनिश्चयंकृत्वा प
द्मान्यादायसत्वरम्॥ सभार्य्यःप्रस्थितस्तत्रयत्रगीतध्वनिस्वनः ॥ ४१ ॥ ततश्चायतनेतस्मिन् प्राप्तोहंमुनिपुङ्गवाः ॥
अपश्यंदेवदेवेशं महाकालंप्रपूजितम् ॥ ४२ ॥ अग्रस्थितैर्द्विजश्रेष्ठैर्जपगीतपरायणैः ॥ एकेनृत्यंप्रकुर्वन्ति गीतमन्ये
परंपरे ॥ ४३ ॥ अन्येहोमंद्विजश्रेष्ठा धर्म्माख्यानमथापरे॥ततःकश्चिन्मयापृष्टः क्रियतेजागरोत्रकिम् ॥ ४४ ॥ कएते
जागरासक्ता लोकाःकीर्तयमेद्रुतम् ॥ तेनोक्तमेषदेवस्यमहाकालस्यजागरः॥ ४५ ॥ क्रियतेब्राह्मणैर्भक्त्याचोपवासपरा
यणैः ॥ अद्यपुण्यातिथिर्नाम वैशाखीपुण्यदापरा ॥ ४६ ॥ यस्यामस्यपुरोभक्त्यानरःकुर्य्यात्प्रजागरम् ॥ महाकाल
स्यदेवस्य स्वर्गंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४७॥ राजोवाच ॥ सन्तिपद्मानिमेयच्छमूल्यमादायभद्रक ॥ भोजनार्थंततोदत्तं

कररहे हैं ॥ ४२ । ४३ ॥ व अन्य द्विजोत्तम होम करतेहैं तथा अपर मनुष्य धर्मका आख्यान करतेहैं तदनन्तर मैंने किसीसे पूंछा कि यहांपर किस लिये जागरण किया जाताहै ॥ ४४ ॥ व जागरणमें परायण ये कौन मनुष्य हैं मुझसे इसको शीघ्रही कहिये उसने कहा कि भक्तिसे उपासमें तत्पर ब्राह्मणोंसे महाकाल देवजीका यह जागरण किया जाताहै आज परम पुण्यदायक वैशाखी नामक तिथि है ॥ ४५ । ४६ ॥ जिस में इन महाकाल देवजीके आगे जो मनुष्य जागरण करैगा वह निस्सन्देह स्वर्ग को प्राप्तहोवैगा ॥ ४७ ॥ राजा बोले कि हे कल्याण रूप ! मेरे समीप कमल हैं उन को लेकर भोजन के लिये मूल्य दीजिये यह सुनकर उसने तीन पल याने

चौविस तोले सुवर्ण को दिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणोत्तमो ! मैंने चित्त में निश्चय किया कि इन कमलों से सुरनायक महाकाल जी का पूजनकरूं क्योंकि अन्य देह में मैंने कुछ पुण्य नहीं किया है ॥ ४९ ॥ उसी से निश्चयकर उपजाहुआ मैं इस प्रकार की दुर्गति में प्राप्तहूं परन्तु क्षुधा से क्षाम (सूखे) कण्ठवाली मेरी यह प्रियवचन बोलनेवाली स्त्री अन्न के न मिलने से प्रातःकाल निरसन्देह नाशको प्राप्त होवैगी इस प्रकार मुझ को चिन्तन करते हुये तदनन्तर विनय से नीचे झुकी खड़ी हुई उस प्यारी स्त्री ने मधुर वाक्य को कहा कि हे नाथ ! धनके लालच से कमलों का विक्रय मत करो ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ किन्तु तुम से जो मैं

कलधौतपलत्रयम् ॥ ४८ ॥ ततोवधारितंचित्तेमयाब्राह्मणसत्तमाः ॥ पूजयामिमहाकालंपद्मैरेतैःसुरेश्वरम् ॥ नम
यासुकृतंकिञ्चिदन्यदेहान्तरेकृतम् ॥ ४९ ॥ नियतंतेनसम्भूतइत्थंभूतोस्मिदुर्गतः ॥ परंक्षुत्क्षामकण्ठेयंभार्य्यामे
प्रियवादिनी ॥ ५० ॥ अन्नाभावान्नसन्देहः प्रातर्यास्यतिसङ्क्षयम् ॥ एवंचिन्तयमानस्य ममसादयितातत: ॥ ५१ ॥ प्रो
वाचमधुरंवाक्यंविनयावनतास्थिता ॥ मानाथकुरुपद्मानांविक्रयंधनलोभतः ॥ ५२ ॥ कुरुष्वावहितंवाक्यंयत्तेवक्ष्या
मिसाम्प्रतम् ॥ उपवासोबलाज्जातोभक्ष्याभावादसंशयम् ॥ ५३ ॥ अस्माकंजागरोवापि भविष्यतिबुभुक्षया ॥ तत्रोभा
भ्यांकृतंस्नानंदिवासरसिशोभने ॥ ५४ ॥ घर्मार्ताभ्यांश्रमार्ताभ्यांकृतंदेवार्चनंतथा ॥ तस्माद्देवंमहाकालंपूजयामो
धुनावयम् ॥ ५५ ॥ पद्मैरेतैःपरंश्रेयआवयोर्येनजायते ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ उभाभ्यामथहृष्टाभ्यांपूजितोयंमहेश्वरः ॥
तैःपद्मैःसत्त्वमास्थायकृतापूजाद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ क्षुत्पीडयासमायाता नैवनिद्राकथञ्चन ॥ स्वल्पापिमन्दिरेचात्र

इस समय कहूं उस निश्चित वाक्यको करो भोजन के अभाव से निस्सन्देह बल (हठ) से उपास होगया ॥ ५३ ॥ और हमारा जागरण भी क्षुधा के कारण होजा-यगा व दिन को घामसे दुःखित व परिश्रमसे विकल हम दोनोंने उस उत्तम तड़ाग में स्नान किया वैसेही देवपूजन को भी कियाहै इसलिये इस समय महाकाल देवजीको हम इन कमलोंसे पूजैंगी जिससे कि हम दोनोंका परमकल्याण होवैगा ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर पराक्रममें टिक

कर मैंने पूजन किया ॥ ५७ ॥ व इस मन्दिरमें सदाशिवजीके समीप टिकेहुये मुझ दोनोंको क्षुधाकी व्यथासे थोड़ी भी निद्रा नहीं आई ॥ ५८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! प्रातःकाल सूर्यमण्डल को उदय होतेहुये क्षुधासे विकल मैं स्थानहींमें मरगया ॥ ५९ ॥ इसके अनन्तर वह मेरी स्त्री मेरे उस शरीरको लेकर बड़े हर्षसे व्याप्त होतीहुई अग्निमें पैठगई ॥ ६० ॥ उसके प्रभावसे कान्तीपुरीका स्वामी मैं भूपतिहुआ और वह भी जातिका स्मरण करती हुई दशार्ण देशके अधिप की कन्या हुई ॥ ६१ ॥ तदनन्तर अपना पति जानकर मुझको स्वयंवर में प्राप्तहुई और पूर्व जन्मकी पत्नी जानकर मैं भी उसीको लेआया ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसी

स्थितयोर्हरसन्निधौ ॥ ५८ ॥ ततःप्रभातसमयेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ मृतोहंक्षुधयाविष्टः स्थानेचैवद्विजोत्तमाः ॥ ५९ ॥ अथसादयितामह्यं तदादायकलेवरम् ॥ हर्षेणमहताविष्टा प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ ६० ॥ तत्प्रभावादहंजातः कान्तीनाथोमहीपतिः ॥ दशार्णाधिपतेःकन्या सापिजातिस्मरासती ॥ ६१ ॥ ततःस्वयंवरेप्राप्तामांविज्ञायनिजंपतिम् ॥ मयापिसैवविज्ञाय पूर्वपत्नीसमाहृता ॥ ६२ ॥ एतस्मात्कारणादस्य महाकालस्यजागरम् ॥ वर्षेवर्षेचवैशाख्यांकरोमिद्विजसत्तमाः ॥ ६३ ॥ अनयाप्रियया सार्द्धं पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ पूजयित्वामहाकालं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ६४ ॥ कृतोविप्रामयात्वेष सतदारात्रिजागरः ॥ तथाप्येतत्फलंजातं देवस्यास्यप्रभावतः ॥ ६५ ॥ अधुनाश्रद्धयायुक्तो यथोक्तविधिनाततः ॥ यत्करोमिनजानामि किंमेसम्पत्स्यतेफलम् ॥ ६६ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं मयासत्यंद्विजोत्तमाः ॥ येनसत्येनतेनैष महाकालःप्रसीदतु ॥ ६७ ॥ सूतउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठाविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ प्रचक्रुर्नृपते

कारणसे प्रतिवर्ष वैशाखी पौर्णमासीमें इस प्रिया समेत मैं पुष्प, धूप, चन्दनादि लेपनोंसे महाकालजीको पूजकर व इन महाकालजीका जागरण करताहूं यह मैंने सत्य कहा ॥ ६३ । ६४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय मैंने इस रात्रिजागरणको किया तिस पर भी इन महादेवजी के प्रभावसे यह फल उत्पन्न हुआ ॥ ६५ ॥ व इस समय श्रद्धायुक्त मैं यथोक्त विधिसे जिस रात्रिजागरण को करताहूं उससे मुझको क्या फल मिलैगा इसको नहीं जानताहूं ॥ ६६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस समस्त वृत्तान्तको मैंने तुमलोगों से सत्य कहा है जिस उस सत्यसे महाकालजी प्रसन्न होवैं ॥ ६७ ॥ सूतजी बोले कि इसको सुनकर आश्चर्य्यसे फूले लोचनोंवाले

द्विजोत्तमोंने उस नृपका अनेकों प्रकारसे प्रशंसितवाद किया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर [illegible]
हे भूपाल ! तुमने इस समस्त वचनको सत्य कहा क्योंकि महाकालजीकी प्रसन्नतासे भूतल में कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ ७० ॥ इस लिये हे नृपति ! हम सब लोग
विशेष कर प्रतिवर्ष श्रद्धासे इन महाकालदेवजी का रात्रिजागरण करैंगे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर वह नृप और हर्षसमेत उन सबही ब्राह्मणों ने अनेक प्रकारके गान,
बाजन, धर्मकथानक, नृत्य व भिन्न विधिके वेदोच्चारोंसे उन महाकालजी के समीप विशेषतासे रात्रिजागरणको किया ॥ ७२ । ७३ ॥ उसके उपरान्त जब प्रातःकाल

स्तस्यसाधुवादाननेकशः ॥ ६८ ॥ ततश्चपार्थिवाःसर्वेप्रचक्रुर्विस्मयान्विताः ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सत्यमुक्तंमही
पाल त्वयैतदखिलंवचः ॥ महाकालप्रसादेन नकिञ्चिद्दुर्लभंभुवि ॥ ७० ॥ तस्माद्विशेषतःसर्वे वर्षेवर्षेवयंन्नृप ॥ करि
ष्यामोस्यदेवस्य श्रद्धयारात्रिजागरम् ॥ ७१ ॥ ततःसपार्थिवस्तेच सर्वएवद्विजातयः ॥ प्रचक्रुर्जागरंतस्यमहाकालस्य
सन्निधौ ॥ ७२ ॥ विशेषाद्धर्षसंयुक्ताविविधैर्गीतवादनैः ॥ धर्म्माख्यानैश्चनृत्यैश्चवेदोच्चारैःपृथग्विधैः ॥ ७३ ॥ ततःप्रभा
तेविमले समुत्थायसभूपतिः ॥ पूजयित्वामहाकालंतांश्चसर्वान्द्विजोत्तमान् ॥ ७४ ॥ अनुज्ञाप्यययौहृष्टःससैन्यःस्वपु
रंप्रति ॥ ततःकालेनसम्प्राप्य देहान्तंसमहीपतिः ॥ ७५ ॥ सम्प्राप्तःपरमंस्थानंजरामरणवर्जितम् ॥ एतद्वःसर्वमाख्या
तंमहाकालसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाःसर्वपातकनाशनम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे
हाटकेश्वरक्षेत्रेमहाकालमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

निर्मल हुआ तब भलीभांति उठकर वह भूपति महाकालजीको पूजकर व उन सब द्विजोत्तमोसे आज्ञा लेकर सेना समेत प्रसन्न होताहुआ निजपुर को चलागया उस
के उपरान्त वह भूपति समयसे शरीरान्तको प्राप्तहोकर ॥ ७४ । ७५ ॥ वृद्धता, मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को भलीभांति प्राप्तहुआ हे ब्राह्मणोत्तमो ! महाकालजी से
उपजेहुये इस समस्त माहात्म्यको मैंने तुमलोगों से वर्णन किया जोकि समस्त पातकोंका विनाशक है ॥ ७६ । ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेमहाकालमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। अर्तलिसे अध्यायमें हरिश्चन्द्र इतिहास। जिमि शिव तपकरि पाय सुत भूपतिभयो हुलास॥ श्रीसूतजी बोले कि वहींपर इन्हींके समीप स्थानमें हरिश्चन्द्र भूपति का बहुत प्रसिद्ध आश्रम है जो कि अनेकों प्रकार के वृक्षों से घिरा है॥ १॥ जहांपर शिवाशिव जीको भलीभांति थापकर व ब्राह्मणों के लिये चाहेहुये अनेक प्रकार के दानों को देते हुये उस नृपने तपस्या किया है॥ २॥ पुरातन समय सूर्य्यवंशमें उपजा हुआ अयोध्याधिप त्रिशंकु का पुत्र श्रीमान् हरिश्चन्द्र नामक हुआ है॥ ३॥ जब वह नृप धर्म से शासन करता था तब न दुर्भिक्ष होता था न रोग होता था और न अकालमृत्यु होती थी व चोरों से किया हुआ भय न था॥ ४॥ व मेघ

श्रीसूतउवाच॥ तत्रैवास्यसमुद्देशे हरिश्चन्द्रस्यभूपतेः॥ आश्रमोस्तिसुविख्यातो नानाद्रुमसमावृतः॥ १॥ यत्र तेनतपस्तप्तंसंस्थाप्योमामहेश्वरौ॥ यच्छताविविधंदानंब्राह्मणेभ्योभिवाञ्छितम्॥ २॥ आसीद्राजाहरिश्चन्द्रस्त्रिशङ्कुतनयःपुरा॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्सूर्य्यवंशसमुद्भवः॥ ३॥ नदुर्भिक्षंनचव्याधिर्नाकालमरणंतथा॥ तस्मिञ्छासतिधर्म्मेणनचचौरकृतंभयम्॥ ४॥ कालवर्षीसदामेघः सस्यानिरसवन्तिच॥ रसवन्तिचतोयानि सर्वर्तुफलिताद्रुमाः॥ ५॥ दण्डस्तत्राभवद्धस्तेगृहरोधोक्षदैवते॥ एकोदोषाकरश्चन्द्रःप्रियदोषाश्चकौशिकाः॥ ६॥ स्नेहक्षयश्चदीपेषु वधबन्धोपिपद्यके॥ व्रतभङ्गस्तथागद्ये दानोच्छित्तिर्गजानने॥ ७॥ तस्यैवंगुणयुक्तस्य सार्वभौमस्यभूपतेः॥ एकएवमहानासीद्दोषःपुत्रविवर्जितः॥ ८॥ ततःपुत्रकृतेगत्वाचकारसुमहत्तपः॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रे लिङ्गंसंस्थाप्यभक्तितः॥ ९॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मेवर्षास्वाकाशसंस्थितः॥ जलाश्रयश्चहेमन्ते सध्यायातिमहेश्वरम्॥ १०॥

सदैव समयवर्षी थे व अन्न रसवान् होते थे और जल रसवान् थे तथा सब ऋतुओं में वृक्ष फलते थे॥ ५॥ उस समय दण्ड हाथमे था व गृहरोध सूर्य्यनारायण में था और दोषाकर केवल चन्द्रमा था व प्रियदोष घुघुवा थे॥ ६॥ व नेह का नाश दीपों में व वध बन्धन भी छन्दबद्ध में था वैसेही व्रतका भङ्ग सरलभाषा मे व दान का नाश हाथी के मुख में था॥ ७॥ ऐसे गुण समेत उस चक्रवर्ती राजाका पुत्र से रहित होना यह एकही बडा भारी दोष था॥ ८॥ तदनन्तर उस नृपने चमत्कार नगर के क्षेत्र में जाकर व भक्ति से लिङ्ग का थापनकर पुत्र के लिये बड़ेभारी तपको किया॥ ९॥ ग्रीष्ममें पंचाग्नि को साधा व वर्षाऋतुमे आकाश में

उसके उपरान्त हजार वर्षके बाद
टिका याने मन्दिरादिकोंके बाहर रहा और हेमन्त ऋतुमें जलाश्रित होता हुआ वह भूपति महादेव जी का ध्यान करताथा ॥ १० ॥ उसके उपरान्त हजार वर्षके बाद
गणसमूहों से घिरे हुये महादेव जी प्रसन्न होतेहुये पार्वती समेत उस नृपके सामने होते भये ॥ ११ ॥ व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तुम इष्ट को मांगो यद्यपि
बहुत दुर्लभ भी होगा तथापि मैंतुमको भलीभांति दूंगा ॥ १२ ॥ तदनन्तर विनयसंयुत हाथ जोड़े खड़ेहुये नृप उन महादेव जी को प्रणामकर व सुने हुये याश्रुति
में उपजे हुये स्तोत्रों से भी स्तुति करके बोले ॥ १३ ॥ कि हे सुरोत्तम ! धरातलमें अपने चित्तसे जो कुछ चाहागया तुम्हारी प्रसन्नतासे वहसब मेरे घरमेंहै॥ १४ ॥

ततोवर्षसहस्रान्ते तस्यतुष्टोमहेश्वरः ॥ प्रत्यक्षोभूत्समंगौर्य्यागणसङ्घैःसमावृतः ॥ ११ ॥ उवाचवरदोस्मीति प्रार्थय
स्वयथेप्सितम् ॥ अहंतेसम्प्रदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ १२ ॥ ततस्तंप्रणिपत्योच्चैः स्तुत्वासूक्तैःश्रुतैरपि ॥ प्रो
वाचविनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ १३ ॥ त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ यत्किञ्चिद्धरणीतले ॥ तदस्तिमेगृहेसर्ववाञ्छि
तंस्वेनचेतसा ॥ १४ ॥ सुरूपाणिकलत्राणिराज्यंनिहतकण्टकम् ॥ शरीरंरोगनिर्मुक्तं सङ्ख्याहीनंतथाधनम् ॥ १५ ॥
एकंमेसुमहद्दुःखं यदपत्यंनविद्यते ॥ तस्माद्देहिसुतंदेव प्रसन्नोयदिशङ्कर ॥ १६ ॥ भगवानुवाच ॥ अचिरेणनृपश्रेष्ठ
पुत्रस्तवभविष्यति ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहस्तस्माद्गच्छद्रुतंगृहम् ॥ १७ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेगौरी कोपसंर
क्तलोचना ॥ भर्त्सयित्वामहादेवं ततःप्रोवाचतंनृपम् ॥ १८ ॥ यस्मात्त्वयामहामूर्ख न प्रणामःकृतोमम ॥ हरादनन्तरं
तस्माच्छापंदास्याम्यहंमहत् ॥ १९ ॥ तवसम्पत्स्यतेपुत्रोयथोक्तःशूलपाणिना ॥ परंतन्मृत्युजंदुःखं त्वंशिशुत्वेपि

व उत्तमरूपवती स्त्रियां और निष्कण्टक राज्य व रोगरहित शरीर तथा सङ्ख्यारहित (असङ्ख्य) धन है ॥ १५ ॥ परन्तु जो सन्तान वर्तमान नहीं है यही एक
मेरे बड़ाभारी दुःखहै इस लिये हे शङ्कर, देवजी ! यदि तुम प्रसन्नहो तो पुत्रको दीजिये ॥ १६ ॥ शिवभगवान् बोले कि हे नृपोत्तम ! मेरी प्रसन्नतासे थोड़ेही दिन
में निस्सन्देह तुम्हारे पुत्र होगा इस लिये शीघ्रही गेहको जावो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले कि इसी समय क्रोधसे अतिलाल लोचनवाली पार्वतीजी महादेवजीको नि-
न्दकर उसके उपरान्त उस नृपति से बोलीं ॥ १८ ॥ कि हे महामूर्ख ! जिस लिये तुमने शिवजी के बाद मुझको प्रणाम न किया इसलिये मैं बड़ेभारी शापको

[illegible] ॥ और उस पुत्र को कहा है वैसा पुत्र तुमको प्राप्त होगा परन्तु शिशुतामें ही उसके मरणसे उपजे हुये दुःखको तुम पावो-
गी ॥ १९ ॥ [illegible] त्रिशूलधारी शिव जी ने जैसे पुत्र को कहा है वैसा पुत्र तुमको प्राप्त होगा परन्तु शिशुतामें ही उसके मरणसे उपजे हुये दुःखको तुम पावो- [illegible] शम्भु देव समेत व अन्य भी समीपगामियों सहित अन्तर्द्धान होगई ॥ २१ ॥ और उस राजाने भी वरदान व उसके
गे ॥ २० ॥ ऐसा कहकर [illegible] फिर बड़े भारी तपको किया ॥२२॥ पार्वती, महादेव को एकही आसन पै चढ़ाकर तदनन्तर साथही फूल व चन्दनादि
उपरान्त शापको पाकर गेह को न गया किन्तु फिर बड़े भारी तपको किया ॥२२॥ पार्वती, महादेव को एकही आसन पै चढ़ाकर तदनन्तर साथही फूल व चन्दनादि
लेपनों से आराधना किया ॥ २३ ॥ व शान्त चित्त वा मानसवाले व भूमि में शयन करनेहारे तथा छठेकाल में भोजन करनेवाले उस भूपतिने ब्राह्मणों के लिये

लप्स्यसे ॥ २० ॥ एवमुक्त्वाभवानीसा सार्द्धंदेवेनशम्भुना ॥ अदर्शनंययौपश्चात्तथान्यैरपिपार्श्वगैः ॥ २१ ॥ सोपिरा
जावरंलब्ध्वा शापंचतदनन्तरम् ॥ नजगामगृहंभूयश्चकारसुमहत्तपः ॥ २२ ॥ एकासनंसमारूढौ कृत्वागौरीमहे
श्वरौ ॥ ततश्चाराधयामास समंपुष्पानुलेपनैः ॥ २३ ॥ विशेषेणददौदानंब्राह्मणेभ्योमहीपतिः ॥ भूमिशायीप्रशान्ता
त्मा षष्ठकालकृताशनः ॥ २४ ॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेभगवान्वृषभध्वजः ॥ पार्वत्यासहितोभूयस्तस्यसन्दर्शनंगतः ॥
२५ ॥ ततःसनृपतिस्ताभ्यांयुगपद्विधिपूर्वकम् ॥ कृत्वानतिंततोवाक्यं विनयादिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ पुरादेविमयानन्द
पूरव्याकुलचेतसा ॥ ननतात्वंनमेकोपं तस्मात्त्वंकर्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ देहार्द्धधारिणिदेवि सदात्वंशूलधारिणः ॥
तस्मात्ताभ्यांनतेकस्मान्ननतात्वंवदस्वमे ॥ २८ ॥ यस्त्वंनमतिदेवेशंतेनत्वंसर्वदानता॥नतायान्त्वयिदेवेशोनतःस्या

विशेषता से दान भी दिया ॥ २४ ॥ वर्ष के उपरान्त वर्ष के अन्त में पार्वती समेत वृषभध्वज भगवान् फिर उस नृप के दर्शन को प्राप्तहुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह
[illegible] विधिपूर्वक एकही साथ उन दोनोंके लिये प्रणामकर उसके उपरान्त नम्रताले इस वचन को बोला ॥ २६ ॥ कि हे देवि ! [illegible] आनन्द से [illegible] ने
[illegible] मैंने तुमको प्रणाम नहीं किया था इस कारण तुम मेरे ऊपर कोप करने के योग्य नहीं हो ॥ २७ ॥ हे देवि ! तुम त्रिशूलधारी शिवजी के [illegible]
[illegible] हो इस लिये अब उन दोनों का प्रणाम किया गया तो तुम क्यों न प्रणाम हुई सो हमसे तुमने कहो ॥ २८ ॥ जो तुम्हें उन देवेश्वर

शिवजीको प्रणाम करताहै उससे तुम सदैव प्रणामकीहुईहो व तुम्हारे प्रणाम करनेपर सुरेश शिवजी प्रणाम कियेहोवैं हैं मेरी यह बुद्धिहै ॥२९॥ तिस पर भी हे देवि ! मैंने शम्भुजी समेत तुमको भिन्नतासे एकही आसन पै आरूढ़ किया (बिठाया) व उनके समेत पूजनकिया ॥३०॥ उसीकारण हे सबोंसे स्तुति करनेके योग्य पार्वती जी! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जो त्रिपुरारिजी ने पुरातन समय मुझसे पुत्रके लिये वरदानको कहाहै वह अवश्य होवै ॥ ३१ ॥ हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस प्रकार पुष्ट पराक्रमवाला व दीर्घ आयुर्बलवाला तथा वंशधारी पुत्र होवै वैसाही तुम करनेके योग्यहो ॥ ३२ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे राजन् ! इस विषय में मेरा

दितिमेमतिः ॥ २९ ॥ तथापिचपृथक्त्वेनमयात्वंशम्भुनासह ॥ एकासनंसमारूढा तत्समंदेविपूजिता ॥ ३० ॥ तस्मा त्कुरुप्रसादंमेयःपुरोक्तःपुरारिणा ॥ सोस्तुवैसकलस्तव्येवरःपुत्रकृतेमम ॥ ३१ ॥ यथावंशधरःपुत्रो दीर्घायुर्दृढविक्र मः ॥ त्वत्प्रसादाद्भवेद्देवि तथात्वंकर्त्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नान्यथामेवचोराजञ्जायतेत्रकथञ्चन ॥ तस्मा द्बालोपितेपुत्रः पञ्चत्वंसमुपैष्यति ॥ ३३ ॥ दर्शयित्वातुतेदुःखमात्ममृत्युसमुद्भवम् ॥ भूयःसम्प्राप्स्यतिप्राणानचिरा न्मत्प्रसादतः ॥ ३४ ॥ भविष्यतिचदीर्घायुस्ततोवंशधरोजयी ॥ सार्वभौमप्रधानश्च दानीयज्वाचधर्म्मवित् ॥ ३५ ॥ तस्माद्राजन्गृहंगत्वाकुरुराज्यमभीप्सितम् ॥ सम्प्राप्स्यसिसुतंश्रेष्ठं यादृशःकीर्तितोमया ॥ ३६ ॥ अन्योपिमानवो योमांरूपेणानेनसंस्थिताम् ॥ पूजयिष्यतिचात्रैव समंदेवेनशम्भुना ॥ ३७ ॥ तस्याहंसम्प्रदास्यामि पुत्रान्हृदयवा

वचन अन्यथा किसीप्रकार नहीं होता है इस लिये बालक ही तुम्हारा पुत्र मृत्युको प्राप्तहोगा ॥ ३३ ॥ और अपने मरण से उपजेहुये दुःखको तुमको दिखाकर मेरी प्रसन्नतासे थोडेही समय में फिर प्राणोंको भलीभांति प्राप्तहोवैगा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर दीर्घआयुर्बलवाला व वंश धारनेवाला और जीतनेहारा व दानी तथा यज्ञ करनेवाला व धर्मजाननेवाला तथा मुख्यचक्रवर्त्ती होवैगा ॥ ३५ ॥ इसलिये हे राजन् ! घर जाकर राज्यको करो मैंने जैसा पुत्र कहाहै वैसेही चाहेहुये उत्तम पुत्र को तुम भलीभांति प्राप्तहोगे ॥ ३६ ॥ व और भी जो मनुष्य यहीं पर शम्भु देव समेत इस रूपसे टिकीहुई मुझको पूजन करैगा ॥ ३७ ॥ उसको हृदयसे चाहेहुये

पुत्रोंको व और भी जो कुछ चाहैगा उसको शीघ्रही भलीभांति दूंगी इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! फिर भी मुझसे वाञ्छित की इच्छा करो याने मनोरथ को मांगो क्योंकि मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होवैहै इसको तुमसे मैं सत्य कहताहूं ॥ ३९ ॥ हरिश्चन्द्र बोले कि हे देवनायक ! मैं कृतार्थ हूं मेरे घरमें पुत्रको छोड़कर समस्त वस्तुहै उस वंशधारी व जयवालेको भी तुमने दिया ॥ ४० ॥ हे देव ! तिसपर भी तुम्हारी आज्ञा किसीप्रकार व्यर्थ करनेके योग्य नहीं है इसीकारण मैं मनोरथको मांगूंगा ॥ ४१ ॥ कि राजसूययज्ञ करने के लिये मेरी बुद्धि सदैव वर्तमानहै परन्तु सब मन्त्री व मित्रजन मुझको निषेध करते हैं॥ ४२॥

ञ्छितान् ॥ तथान्यदपियत्किञ्चिदचिरान्नात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ भूयएवनृपश्रेष्ठ मत्तोवाञ्छयवाञ्छितम् ॥ नवृथादर्शनंमेस्यात्सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३९ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ कृतकृत्योस्मिदेवेश सर्वमस्तिगृहेमम ॥ पुत्रंमुक्त्वात्वयासोपि दत्तोवंशधरोजयी ॥ ४० ॥ तथापिनतवादेशोऽव्यर्थःकार्य्यःकथञ्चन ॥ एतस्मात्कारणाद्देवयाचयिष्यामिवाञ्छितम् ॥ ४१ ॥ राजसूयकृतेस्माकं सदाबुद्धिःप्रवर्तते ॥ निषेधयन्तिमांसर्वे मन्त्रिणःसुहृदस्तथा ॥ ४२ ॥ सर्वैस्तैर्जायतेयज्ञःपार्थिवैःकरदीकृतैः ॥ युद्धंविनाकरंतेपिनयच्छन्तियतोविभो ॥ ४३ ॥ ततोयुद्धार्थिनंमान्तेवारयन्तिहितैषिणः ॥ कृतोत्साहंमखःप्राप्तो नीतिमार्गसमाश्रिताः ॥ ४४ ॥ तस्मात्तवप्रसादेन राजसूयोभवेन्मखः ॥ अविघ्नःसिद्धिमायातु ममनान्यद्वृणोम्यहम् ॥ ४५ ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय जगामादर्शनंहरः ॥ सोपिलब्धवरोभूपः स्वमेवभवनंगतः ॥ ४६ ॥ एवंतेननरेन्द्रेण पूर्वंतत्रविनिर्मितौ ॥ उमामहेश्वरौपश्चान्निर्मितावितैररपि ॥ ४७ ॥

हे विभो ! उन सब भूपोंको करदायक करने से यज्ञ होतीहै जिसलिये कि युद्धके विना वे कर नहीं देते हैं ॥ ४३ ॥ उसीकारण नीतिमार्गमें भलीभांति टिकेहुये वे हितैषी लोग युद्धके चाहनेवाले मुझको वारण करतेहैं और यज्ञ कियेहुये उत्साहों को प्राप्तहै ॥ ४४ ॥ इसलिये तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा राजसूययज्ञ निर्विघ्न होकर सिद्धिको प्राप्तहोवै और कुछ नहीं मांगताहूं ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर सदाशिवजी अन्तर्धान होगये व वरदानको पायाहुआ वह भूप भी अपने मन्दिरही को गया ॥ ४६ ॥ पुरातन समय इसप्रकार उस नरेशसे वहां पर शिवाशिवजी विशेषता से निर्मितहुये उसके बाद और मनुष्यों से भी निर्माण किये

गये ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वर्षपर्य्यन्त पञ्चमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोने पर उन शिवाशिवजी के सब अङ्गों में जो मनुष्य फलोंसे पूजन करताहै वह अपने वंशको उद्धार करने में सामर्थ्यवाले प्रिय पुत्रको पाता है ॥ ४८ । ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां हाटकेश्वरमाहात्म्ये उमामहेश्वरोत्पत्तिर्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । उंचसयें अध्याय में दुर्वासा मुनिनाथ । कलश भूपकहँ शापदिय सो वरणत हैं गाथ ॥ सूतजी बोले कि वहींपर महापुण्यदायक कुण्ड है उसके किनारे पै टिके हुये कलशेश्वर जीको देखकर मनुष्य पाप से छूटजाता है ॥ १ ॥ पुरातन समय विधि से यज्ञ करनेवाला व समस्त मनुष्यों के हित में तत्पर व दानपति

यस्ताभ्यांकुरुतेपूजांसम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ फलैःसर्वेषुगात्रेषु यावत्संवत्सरंद्विजाः ॥ ४८ ॥ सुतंप्राप्नोतिसोभीष्टंस्ववंशोद्धारणक्षमम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेउमामहेश्वरोत्पत्तिर्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सूतउवाच ॥ तत्रैवास्तिमहापुण्यं ह्रदंतीरेऽव्यवस्थितम् ॥ दृष्ट्वाप्रमुच्यतेपापान्मनुष्यःकलशेश्वरम् ॥ १ ॥ पुरासीत्कलशोनाम यदुवंशसमुद्भवः ॥ यज्वादानपतिर्दक्षःसर्वलोकहितेरतः ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य दुर्वासामुनिसत्तमः ॥ चातुर्मास्यव्रतंकृत्वातद्गृहंसमुपस्थितः ॥ ३ ॥ अथोत्थायनृपस्तूर्णंसम्मुखंप्रययौमुदा ॥ स्वागतंस्वागतंतेद्य ब्रुवाणइतिसादरम् ॥ ४ ॥ ततःप्रणम्यतंभक्त्या प्रक्षाल्यचरणौस्वयम् ॥ दत्त्वार्घमितिहोवाचहर्षबाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५ ॥ इदंराज्यममीपुत्रा इमानार्य्यइदंधनम् ॥ ब्रूहिसर्वमुनेत्वञ्च तवकार्य्यंददाम्यहम् ॥ ६ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ युक्तमे

तथा प्रवीण व यदुवंश में उपजा हुआ कलश नामक नृपति हुआ है ॥ २ ॥ इसके अनन्तर किसी समय चौमासे के व्रतको करके दुर्वासा मुनिश्रेष्ठ उसके घरमें भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रही उठकर आज तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ यह आदर समेत कहते हुये नृपति ने हर्ष से उस मुनि के सामने प्रयाण किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन मुनिको भक्ति से प्रणामकर व आपही चरणप्रक्षालन कर व अर्घ को देकर आनन्द के आंसुओं से आकुल लोचन वाले नृपति ने यह कहा ॥ ५ ॥ कि हे मुने ! यह राज्य, ये पुत्र, ये स्त्रियां व यह समस्त धन तुम्हारा है तुम कार्य्य को कहो मैं दूंगा ॥ ६ ॥ दुर्वासा जी बोले कि

हे महाराज ! गृह में आये हुये हमारे समान व्रतवान् ब्राह्मण के निमित्त ऐसा कार्य्य कहनेके लिये यह तुमको योग्य है ॥ ७ ॥ हे नृपोत्तम ! धन से व राज्य से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि चातुर्मास्य व्रत में टिका हुआ मैं पारण करने के लिये उत्साह करताहूं ॥ ८ ॥ इसलिये हे नृपति ! तुम्हारे घर में जो कुछ अन्न सिद्ध (तैयार) है वह मुझको भोजन के लिये देना चाहिये क्योंकि भूंख अत्यन्तही बढ़रही है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर बहुत अच्छा संस्कृत (बनाया हुआ) जैसा सिद्ध था वैसाही अन्न भोजन के निमित्त उन मुनिके लिये उस भूपाल ने आपही दिया ॥ १० ॥ व चित्र विचित्र व्यञ्जन बहुतेरे पकवान व पीने योग्य, चूसने योग्य व भोजन के योग्य व लेह्य (चाटने के योग्य) अनेक प्रकार के अन्नको ॥ ११ ॥ और लवणादिकों से भलीभांति बनाये हुये विचित्र मांस को उस नृप ने दिया इसके अनन्तर क्षुधासे क्षाम (दुबला) व रसके स्वादका न जाननेवाला व शीघ्रता समेत व प्रसन्नतासंयुत होते हुये इस विप्रने बड़े भारी कवलों से भोजन किया हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर तृप्तहुये उस मुनिने मांस को जाना ॥ १२ । १३ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरे हुये मानस या चित्तवाले मुनिनायकने उस नृपको शापदिया कि जिस लिये तुमने मांसको देकर मेरा व्रतभङ्ग करदिया ॥ १४ ॥ इससे तुम मांसाहारी घोर व्याघ्र होवोगे उसके उपरान्त बहुत दुःखित व दीनवदन

तन्महाराज वक्तुंतेकार्य्यमीदृशम् ॥ गृहागतायविप्रायव्रतिनेस्मद्विधायच ॥ ७॥ नमेकिञ्चिद्धनैःकार्य्यंनराज्येननृपोत्तम ॥ चातुर्मास्यव्रतस्थोहंपारणंकर्तुमुत्सहे ॥ ८ ॥ तस्माद्यत्किञ्चिदन्नन्ते सिद्धमस्तिगृहेनृप ॥ तद्देयंभोजनार्थंमेबुभुक्षातिविवर्धते ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ ततःसपृथिवीपालोयथासिद्धंसुसंस्कृतम् ॥ अन्नंभोज्यकृतेतस्मैप्रददौस्वयमेवहि ॥ १० ॥ व्यञ्जनानिविचित्राणि पक्वान्नानिबहूनिच ॥ पेयंचोष्यंचखाद्यंचलेह्यमन्नमनेकधा ॥ ११ ॥ तथामांसंविचित्रञ्च लवणाद्यैःसुसंस्कृतम् ॥ अथासौबुभुजेविप्रः क्षुत्क्षामस्त्वरयान्वितः ॥ १२ ॥ अविदितरसास्वादो बृहद्ग्रासैर्मुदान्वितः ॥ अथतृप्तेनमांसस्य ज्ञानंतेनद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ ततःकोपपरीतात्मा तंशशापमुनीश्वरः ॥ यस्मान्मांसंत्वयादत्त्वा व्रतभङ्गःकृतोमम ॥ १४ ॥ तस्मात्त्वमामिषाहारोरौद्रोव्याघ्रोभविष्यसि ॥ ततःसभूपतिर्भीतःप्रणम्यचमुनी

तथा कांपता हुआ वह भीत भूपति उन मुनि को प्रणामकर बोला कि हे मुने ! क्षुधासे क्षाम (सूखे या दुबले) कण्ठवाले तुम्हारी मैंने यथासिद्ध भोजन से भक्ति किया इसलिये हे ब्राह्मणोत्तम ! आपके अनुग्रहहीसे विशेषतासे प्रणाम कियेहुये मुझ भक्तके ऊपर शीघ्रही प्रसन्नता कीजिये ॥ १५ । १६ । १७ । १८ ॥ दुर्वासा जी बोले कि श्राद्ध व यज्ञ को छोड़कर ब्राह्मण मांस को भोजन न करै और चौमासे से उपजे हुये व्रतके अन्तमें विशेषकर मांस भोजन न करै ॥ १९ ॥ हे राजन् ! उपवास में परायण होकर जो ब्राह्मण मांसको खाताहै वह मांस वृथाहै और उस मांसभोजी का जो यह व्रतादिकार्य्य है वह निश्चयकर व्यर्थ है ॥ २० ॥ इसलिये

ज्वरम् ॥ १५ ॥ प्रोवाचदीनवदनो वेपमानःसुदुःखितः ॥ तवक्षुत्क्षामकण्ठस्य मयाभक्तिःकृतामुने ॥ १६ ॥ यथा सिद्धेनभोज्येनतस्माच्छप्तुंसमुद्यतः ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेभक्तस्यविनतस्यच ॥ १७ ॥ शापस्यानुग्रहेणैव शीघ्रंब्रा ह्मणसत्तम ॥ १८ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ मुक्त्वाश्राद्धंतथायज्ञंनमांसंभक्षयेद्द्विजः ॥ विशेषेणव्रतस्यान्ते चातुर्मास्योद्भव स्यच ॥ १९ ॥ उपवासपरोभूत्वामांसमश्नातियोद्विजः ॥ वृथामांसंवृथाचैतत्तस्ययन्नृपतेध्रुवम् ॥ २० ॥ तस्माद्व्र तंविनष्टंमे चातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ तेनशप्तोसिराजेन्द्रमयाकोपेनसाम्प्रतम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ तथापिकुरुमेविप्र शापस्यान्तंयथेप्सितम् ॥ भक्तियुक्तस्यदीनस्य निर्दोषस्यविशेषतः ॥ २२ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ यदातेनन्दिनीधेनुर्लिङ्गं बाणार्चितम्पुरा ॥ दर्शयिष्यतितेमुक्तिस्तदासद्योभविष्यति ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रोजगामनिजमाश्रमम् ॥ बभूवसोपि भूपालो व्याघ्रोरौद्रतमाकृतिः ॥ २४ ॥ नष्टस्मृतिस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वाजन्तून्पुरःस्थितान् ॥ जघानोच्चाटितोन्यैश्च प्रविवे

हे नृपेन्द्र ! चातुर्मास्य से उपजा हुआ मेरा व्रत विनाश होगया उसीसे इससमय मैंने क्रोध से तुमको शाप दिया है ॥ २१ ॥ राजा बोले कि हे विप्र ! तिसपर भी भक्तियुक्त व दीन तथा विशेषता से निर्दोष मेरे शापके अन्तको तुम जैसी इच्छाहो वैसा करो ॥ २२ ॥ दुर्वासा जी बोले कि जिस समय नन्दिनी नामक धेनु पहले बाणासुर से पूजे हुये लिङ्गको तुमको दिखावैगी तब उसीसमय तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर वह द्विजेन्द्र अपने आश्रमको चलागया और वह भू-पाल भी अतिविकराल आकारवाला होगया ॥ २४ ॥ उसके उपरान्त शीघ्रही नष्टस्मरणवाले उस नृपतिने आगे खड़ेहुये प्राणियों को मारडाला व अन्य जन्तुओं

से उच्चाटित (भगाया हुआ) बड़े भारी वनमें पैठगया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस भूपतिके शापके अन्तको चाहते हुये उन मन्त्रियोंने उसकी उस राज्यको भली भांति रक्षित किया ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमत्कारपुरक्षेत्रमाहात्म्येकलशेश्वराख्याने कलशशाप प्रदानंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पचासवें अध्याय में व्याघ्र कलश भूपाल । कीन बतकही धेनुसन बरणत सोइ हवाल ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार व्याघ्ररूपवाले उस नरेशको वनमें अ-

शमहावनम् ॥ २५ ॥ अथतेमन्त्रिणस्तस्य शापस्यान्तंमहीपतेः ॥ वाञ्छन्तस्तस्यतद्राज्यं चक्रुरेवसुरक्षितम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेचमत्कारपुरक्षेत्रमाहात्म्ये कलशेश्वराख्यानेकलशशापप्रदानंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्य व्याघ्ररूपस्यकानने ॥ जगामसुमहान्कालो निघ्नतोविविधान्द्विजान् ॥ १ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्मिन्देशेद्विजोत्तमाः ॥ आयातंगोकुलंरम्यंगोपगोपीसमाकुलम् ॥ २ ॥ तत्रास्तिनन्दिनीनाम धेनुःपीनपयोधरा ॥ विस्तीर्णजघनाभोगा हंसवर्णाघटस्रवा ॥ ३ ॥ अथसानिजयूथस्य सदाग्रेतृणवाञ्छया ॥ भ्रममाणानिकुञ्जान्तेलिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ ४ ॥ अपश्यत्तेजसायुक्तंस्वयमेवव्यवस्थितम् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशं चित्ता

नेक प्रकार के द्विजों (ब्राह्मणों या पशुओं) को मारते हुये बहुत सा समय व्यतीतहुआ ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इसके अनन्तर किसी समय उसी स्थानमें गोप व गोपियोंसे संकुल व मनोहर गोकुल (गौवों का समूह) आया ॥ २ ॥ उसी गोकुलमें पुष्ट या स्थूल स्तनोंवाली व चौड़े जङ्घस्थल व शरीरवाली तथा घड़ाभर दूध देनेवाली व हसके समान श्वेतवर्णवाली नन्दिनी नामक धेनु थी ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर तृणके लोभ से सदैव अपने यूथके आगे घूमतीहुई उस धेनुने निकुञ्ज (लतादि से छिपे स्थान) में त्रिशूलधारी देवता के लिङ्ग को देखा ॥ ४ ॥ जो कि तेजसे समेत आपही टिका हुआ व बारह सूर्यों के समान व मनको परम आनन्दका-

रक था ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजो ! उस लिङ्गके ऊपर खडी होकर उन शिवजीके स्नानके लिये परम श्रद्धासंयुत धेनुने बहुतसे दूधको बहाया ॥ ६ ॥ इसप्रकार वृक्षों से संकुल वनमें सदैव उस लिङ्ग को स्नान कराती हुई उस नन्दिनी धेनुको कोई जन नहीं जानताथा ॥ ७ ॥ अन्य दिन उसी स्थान में तीखी दाढ़वाला व समस्त प्राणियों को भयङ्कर तथा बड़े भारी शरीरवाला व्याघ्र भलीभांति आगया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वहांपर आईहुई वह नन्दिनी धेनु दैवयोग से उस व्याघ्र के दृष्टिगोचर में पडी ॥ ९ ॥ उसके उपरान्त तृणके न खानेवाले व दूधही के जीविकावाले व गोष्ठ में बँधे हुये छोटे बछड़ा को स्मरणकर उस धेनुने

ह्लादकरंपरम् ॥ ५ ॥ ततस्तस्योपरिस्थित्वासुस्रावसुमहत्पयः ॥ श्रद्धयापरयायुक्तातस्यस्नानकृतेद्विजाः ॥ ६ ॥ एवंतां स्नपनंतस्यसदालिङ्गस्यकुर्वतीम् ॥ नजानातिजनःकश्चिद्वनेवृक्षसमाकुले ॥ ७ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेतत्रस्थानेव्याघ्रः समागतः ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रोमहाकायःसर्वजन्तुभयावहः ॥ ८ ॥ अथसातत्रचायाता पतितादृष्टिगोचरे ॥ नन्दिनीद्वीपिनस्तस्य दैवयोगाद्द्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ ततःसागोकुलेबद्धं संस्मृत्यलघुबालकम् ॥ अतृणादंपयोवृत्तिं करुणंपर्य्यदेवयत् ॥ १० ॥ अहोहंकेनसम्प्राप्ता काननेजनवर्जिते ॥ पुत्रंबालंपरित्यज्य गोपैर्गोष्ठेनियन्त्रितम् ॥ ११ ॥ येनसत्येनभक्त्याद्य स्नपनायाहमागता ॥ शिवस्यतेनसत्येन भूयान्मेसुतसङ्गमः ॥ १२ ॥ एवंसाकरुणंयावन्नन्दिनीविलपत्यलम् ॥ तावद्व्याघ्रःस्मितंकृत्वाप्रोवाचपरुषाक्षरम् ॥ १३ ॥ व्याघ्रउवाच ॥ प्रलापान्किंमुधाधेनोकरोषिवशगाम्मम ॥ तस्मादिष्टतमंदेवं स्मरस्वर्गकृतेशुभे ॥ १४ ॥ धेनुरुवाच ॥ नाहमात्मकृतेव्याघ्र विलपामिसुदुःखिता ॥ शिवार्चनंकृतेमृ

करुणास्वरसे रोदन किया ॥ १० ॥ कि बड़ाखेद है जो कि गोकुल में गोपों से बांधेहुये छोटे पुत्र को छोड़कर मनुष्योंसे हीन काननमें मुझको किसने प्राप्त करादिया ॥ ११ ॥ जिस सत्यसे मैं आज भक्तिसे शिवजी के स्नान करानेके लिये आईहूं उसी सत्यसे मेरे पुत्रका समागम होवै ॥ १२ ॥ इसप्रकार जबतक उस नन्दिनी ने करुणा से बहुत विलाप किया तबतक व्याघ्रने हँसकर कठोर वचन को कहा ॥ १३ ॥ व्याघ्र बोला कि हे धेनु ! मेरे वशमें प्राप्त तुम व्यर्थ विलाप क्यो करती हो इससे हे शुभे ! स्वर्ग के लिये बड़े प्रिय देवताको स्मरणकरो ॥ १४ ॥ धेनु बोली कि हे व्याघ्र ! बहुतही दुःखित मैं अपने लिये नहीं विलाप करती हूं क्योंकि शिवजीका

पूजन करने पर मेरी शुभदायक मृत्यु हुई ॥ १५ ॥ परन्तु मेरे आगमनको स्मरण करता हुआ व गोकुल में बँधा मेरा बछड़ा दूधकी जीविकावाला होकर स्थित है वह मेरे विना कैसे होगा ॥ १६ ॥ इसी कारण हे व्याघ्र ! बहुतही दुःखित मैं विलाप करतीहूं और अपने जीने के लिये नहीं यह सत्य से अपनी शपथ करतीहूं ॥ १७ ॥ इसलिये हे महाव्याघ्र ! प्रिय पुत्रवाली मुझको आज छोडदो उस पुत्रको सखीजन को देकर मैं तुम्हारे समीप आऊंगी ॥ १८ ॥ व्याघ्र बोला कि मृत्यु के मुखको पहुँचकर और किसी प्रकार से निकलकर तुम फिर वहीं पर याने मृत्युके मुखमें कैसे जावोगी इसलिये मैं तुमको भक्षता हूं ॥ १९ ॥ नन्दिनी बोली कि

त्युर्ममजातःशुभावहः ॥१५॥ वत्सोमेगोकुलेबद्धःस्मरमाणोममागमम् ॥ सन्तिष्ठतेपयोवृत्तिः कथंस्यात्समयाविना ॥
१६॥ एतस्मात्कारणाद्व्याघ्र विलपामिसुदुःखिता ॥ नचात्मजीवनार्थाय सत्येनात्मानमालभे ॥ १७ ॥ तस्मान्मुञ्च
महाव्याघ्र मामद्यसुतवत्सलाम् ॥ सखीजनस्यतंदत्त्वासमागच्छामितेन्तिकम् ॥१८॥ व्याघ्रउवाच ॥ कथंमृत्युमुखं
प्राप्यनिष्क्रम्यचकथञ्चन॥भूयस्तत्रैवनिर्यासितस्मात्त्वांभक्षयाम्यहम् ॥ १९ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ शपथैरागमिष्यामि
यैःपुनर्व्याघ्रतेन्तिकम् ॥ तानाकर्णयमेवक्त्रात्ततोयुक्तंसमाचर ॥ २० ॥ यत्पापंब्रह्महत्यायां मातापित्रोश्चवञ्चने ॥ ते
नपापेनलिप्येहं नागच्छामिपुनर्यदि ॥ २१ ॥ विवस्त्रस्नानसक्तानां दिवामिथुनगामिनाम् ॥ यत्पापंस्यात्तदस्माकंना
गच्छामिपुनर्यदि ॥ २२ ॥ रजस्वलासुसक्तानांयत्पापंनग्नशायिनाम् ॥ तेनपापेनलिप्यामि नागच्छामिपुनर्यदि ॥
२३ ॥ गोकन्याब्राह्मणानांच दूषकानाञ्चयद्भवेत् ॥ तेनपापेनलिप्यामिनागच्छामिपुनर्यदि ॥ २४ ॥ विश्वासघात

हे व्याघ्र ! जिन सौगन्दों से मैं फिर तुम्हारे निकट आऊंगी उनको मेरे मुखसे सुनो तदनन्तर योग्य को करिये ॥ २० ॥ कि माता, पिताके छलने में व ब्रह्मघात में जो पापहै उसी पापसे मैं लिप्तहोऊं यदि तुम्हारे समीप मैं फिर न आऊं ॥ २१ ॥ वसनहीन होकर स्नान में तत्पर पुरुषोंको व दिन में मैथुनगामीजनों को जो पाप होवै है वही पाप हमको होय यदि फिर न आजाऊं ॥ २२ ॥ व रजस्वला स्त्रियों में आसक्त व नङ्गे शयन करनेवाले जनोंको जो पाप होता है उसी पापसे मैं लिप्त (संयुक्त) होऊं यदि फिर न आजाऊं ॥ २३ ॥ गौ, कन्या व ब्राह्मणों के दूषक जनों को जो पाप होताहै उसी पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आजाऊं ॥ २४ ॥ व

विश्वासघाती व कृतघ्न पुरुषों को जो पाप होता है उसी पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आजाऊं ॥ २५ ॥ व्यर्थही पाप करनेवाले व वृथा मांसको खानेवाले जनों को जो पाप होताहै उसी पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आजाऊं ॥ २६ ॥ व्रतको भङ्ग करनेवाले व ऋतुरहित समय में जानेवाले जनोंको जो पापहोताहै उसी पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आजाऊं ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकलशेश्वरमाहात्म्येपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

क्नानाञ्च कृतघ्नानाञ्चयद्भवेत् ॥ तेनपापेनलिप्यामिनागच्छामिपुनर्यदि ॥ २५ ॥ वृथापापप्रकर्तॄणांवृथामांसाशिनांचयत् ॥ तेनपापेनलिप्यामिनागच्छामिपुनर्यदि ॥ २६ ॥ व्रतभङ्गप्रकर्तॄणामनृतौ गामिनाञ्चयत् ॥ तेनपापेनलिप्यामिनागच्छामिपुनर्यदि ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेकलशेश्वरमाहात्म्येपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सूतउवाच ॥ अथताञ्छपथाञ्छ्रुत्वा सव्याघ्रोविस्मयान्वितः ॥ सत्यंमत्वापुनःप्राह नन्दिनींसुतवत्सलाम् ॥
१ ॥ यद्येवंतद्गृहंगच्छ वीक्षयस्वनिजात्मजम् ॥ सखीनामर्पयित्वाथ भूयआगमनंकुरु ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ गतालयंसमुद्दिश्य यत्रबालःसुतःस्थितः ॥ अथाकालगतांदृष्ट्वामातरंत्रस्तचेतसम् ॥ ३ ॥ रम्भमाणांसमालोक्यवत्सःप्रोवाचविस्मयात् ॥ कस्मात्प्राप्तास्यकालेतु कस्मादुद्भ्रान्तमानसा ॥ ४ ॥ बाष्पक्लिन्नमुखाकस्माद्वदमातर्द्रुतंमम ॥५॥

दो० । इक्यावन अध्याय महँ कलशेश्वर आख्यान । शौनकआदिक ऋषिन सन कहत सूत सज्ञान ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन सौगन्दोंको सुनकर उस विस्मयसंयुक्त व्याघ्रने सत्यमानकर प्रिय पुत्रवाली नन्दिनी धेनुसे फिर कहा ॥ १ ॥ कि यदि ऐसाहै तो घरको जावो व अपने पुत्रको देखो इसके अनन्तर सखियोंको देकर फिर आगमन करो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि मन्दिर को भलीभांति उद्देशकर वहांगई जहांपर कि छोटा पुत्र प्राप्तहै इसके अनन्तर अकाल में आई व डरेहुये चित्तवाली तथा रंभती हुई माताको भलीभांति देखकर बछड़ा विस्मयसे बोला कि हे माता ! ऊबे हुये चित्त या मनवाली क्योंहो व अकाल में किसलिये प्राप्तहुईहो व

आंसुओंसे भीगे मुखवाली तुम क्योंहो इसलिये मुझसे शीघ्रही कहो ॥ ३ । ४ । ५ ॥ नान्दिनी बोली कि हे वत्स ! यदि मुझसे पूंछते हो तो दुग्धपानको करो जिसलिये कि तृप्तहुये तुमसे मैं उस समस्त वृत्तान्तको कहूंगी॥६॥सूतजी बोले कि उस धेनुसे मस्तकमें सूंघाहुआ वह बछड़ा भी उस वचनको सुनकर व यथायोग्य दूधको पीकर उसके उपरान्त शीघ्रही बोला ॥ ७॥ कि हे माता ! आज जङ्गलमें उपजे हुये समस्त वृत्तान्त को कहो जिससे तुम्हारे मुखसे सुनकर मुझको स्वस्थता होवै ॥ ८ ॥ नन्दिनी बोली कि हे पुत्र ! मैं इधर उधर घूमती हुई यथेच्छा से आज महावनमें गई वहांपर व्याघ्रसे आसादित हुई (क्लेशित की गई) ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! नख अस्त्रवाला व भक्षण

नन्दिन्युवाच ॥ यदिपृच्छसिमांवत्स दुग्धपानंसमाचर ॥ येनतृप्तस्यतेसर्वं वृत्तान्तंतद्वदाम्यहम् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ सोपितद्वचनंश्रुत्वापीत्वाक्षीरंयथोचितम् ॥ आघ्रातश्चतयामूर्ध्नि ततःप्रोवाचसत्वरम् ॥ ७ ॥ सर्वंकीर्तयवृत्तान्तमद्यारण्यसमुद्भवम् ॥ येनमेजायतेस्वास्थ्यं श्रुत्वामातस्तवास्यतः ॥ ८ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ अहंगतामहारण्ये त्वद्यपुत्रयथेच्छया ॥ व्याघ्रेणासादितातत्र भ्रममाणात्वितस्ततः ॥ ९ ॥ समयाप्रार्थितःपुत्रभक्षमाणोनखायुधः ॥ शपथैरागमिष्यामि गोकुलेवीक्ष्यचात्मजम् ॥ १० ॥ साहन्तेनविनिर्मुक्ता शपथैर्बहुभिःकृतैः ॥ साहंतत्रैवयास्यामिदृष्टःसम्भाषितोभवान् ॥ ११ ॥ वत्सउवाच ॥ अहंतत्रैवयास्यामियत्राद्यत्वंगमिष्यसि ॥ श्लाघ्यंहिमरणं सम्यङ्मातुरग्रेममाधुना ॥ १२ ॥ एकाकिनापिमर्त्तव्यं त्वयाहीनेनवैमया ॥ विनापिक्षीरपानेन पक्षपातयुतेनच ॥ १३ ॥ यदिमातस्त्वया सार्द्धं व्याघ्रोमांसूदयिष्यति ॥ यागतिर्मातृभक्तानां सामेनूनंभविष्यति ॥ १४ ॥ अथवायेत्वयातस्यविहिताःशप

करता हुआ वह व्याघ्र मुझसे शपथों के द्वारा प्रार्थना किया गया कि गोकुल में पुत्रको देखकर आजाऊंगी ॥ १० ॥ सो मैं बहुत सौगन्दों के करनेसे उस व्याघ्र से छोड़ीगई सो मैंने आपको देखा व सम्भाषण किया अब वहींपर जाऊंगी ॥ ११ ॥ बछड़ा बोला कि आज तुम जहांपर जावोगी मैं वहींपर चलूंगा क्योंकि माताके आगे इससमय मेरा मरण भलीभांति प्रशंसनीयहै ॥ १२ ॥ व पक्षपातसंयुत दूधपीनेके विनाभी तुमसे रहित मैं अकेले भी निश्चयकर मरण के योग्य हूंगा ॥१३॥ हे माता ! यदि तुम समेत मुझको व्याघ्र मारडालैगा तो माता के भक्तों की जो गति होतीहै वही निश्चयकर मेरी होवैगी ॥ १४ ॥ या हे शुभे ! जो सौगन्दैं तुमने उसके आगे

की हैं वे मुझको होवैं उसी कारण तुम इसी गोकुल में टिको ॥ १५ ॥ दूधकी जीविकावाले बालकों को माता के समान बन्धु (मित्र) नहीं है व माता के समान नाथ नहीं है और माता के समान गति नहीं है ॥ १६ ॥ व इस लोक में तथा परलोक में माता के समान पूजनीय नहीं है व माता के समान सखा (स्नेही) नहीं है और माता के बराबर देवता नहीं है ॥ १७ ॥ ऐसा मानकर उत्तम जनों को सदैव माता की भक्ति करनी चाहिये क्योंकि ब्रह्मासे रचेहुये उस उत्तम धर्मकोही जो पुत्र करते हैं वे परमगतिको जाते हैं इसलिये मैं जाऊंगा और तुम इसी गोकुल में टिको ॥ १८ । १९ ॥ मैं अपने प्राणोंसे तुम्हारे प्राणों की निःसन्देह रक्षा

थाःशुभे ॥ तेसन्तुममतिष्ठत्वं तस्मादत्रैवगोकुले ॥ १५ ॥ नास्तिमातृसमोबन्धुर्बालानांक्षीरजीविनाम् ॥ नास्तिमातृसमोनाथो नास्तिमातृसमागतिः ॥ १६ ॥ नास्तिमातृसमःपूज्यो नास्तिमातृसमःसखा ॥ नास्तिमातृसमोदेव इहलोकेपरत्रच ॥ १७ ॥ एवंमत्वासदामातुः कर्त्तव्याभक्तिरुत्तमैः ॥ तमेवपरमंधर्म्मंप्रजापतिविनिर्मितम् ॥ १८ ॥ अनुतिष्ठन्तियेपुत्रास्तेयान्तिपरमांगतिम् ॥ तस्मादहंगमिष्यामि त्वञ्चातिष्ठात्रगोकुले ॥ १९ ॥ आत्मप्राणैस्तवप्राणान् रक्षयिष्याम्यसंशयम् ॥ २० ॥ नन्दिन्युवाच ॥ ममैवविहितोमृत्युर्नतेपुत्राद्यवासरे ॥ तत्कथंममजीवंत्वं रक्षस्यसुभिरात्मनः ॥ २१ ॥ सुनिश्चितमिदंपुत्र मातृसन्दिष्टमुत्तमम् ॥ त्वयाकार्य्यंप्रयत्नेन मद्वाक्यमनुतिष्ठता ॥ २२ ॥ भ्रममाणोवनेपुत्र माप्रमादंकरिष्यसि ॥ लोभात्सञ्जायतेनाश इहलोकेपरत्रच ॥ २३ ॥ समुद्रमटवींयुद्धं विशतेलोभमोहितः ॥ इहतन्नास्तिलोभेनयन्नकुर्वन्तिमानवाः ॥ २४ ॥ लोभात्प्रमादाद्विश्रम्भात्पुरुषोवध्यतेत्रिभिः ॥ तस्माल्लोभो

करूंगा ॥ २० ॥ नन्दिनी बोली कि हे पुत्र ! आजके दिन मेरीही मृत्यु विहित(रची)गई है तुम्हारी नहीं तो अपने प्राणोंसे मेरे जीवकी तुम कैसे रक्षा करोगे ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! मेरे वाक्य को अनुष्ठान करते हुये तुमको बहुतही निश्चित इस माताके उपदेश को बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! वनमें घूमते हुये तुम प्रमाद (असावधानता) को न करना क्योंकि इसलोक में व परलोक में लोभसे नाश होजाता है ॥ २३ ॥ व लोभसे मोहित प्राणी समुद्र, युद्ध व जङ्गल में पैठ

लोभसे, भूलसे, विश्वास से इन ती- ॥ २४ ॥
जाता है इस संसार में वह वस्तु नहीं है कि जिसको मनुष्य लोभसे नहीं करते हैं याने लोभसे सब काम को करते हैं ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! सघन वनमें घूमतेहुये तुमको सब जङ्गली जीवोंसे
नही से मनुष्य बँधता है इस कारण लोभ व असावधानी न करना चाहिये न तो विश्वास करै ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! विषमस्थान में प्राप्त तृण तुमको किसी प्रकारसे न खाना चाहिये व अपने यूथको छोड़कर अकेले तुमको कहीं न
अपनी जीवरक्षा सदैवही करना चाहिये ॥ २७ ॥ इसप्रकार सम्भाषण कर व उस बछड़ा को वारवार चाटकर आंसुओंसे विकललोचनोंवाली वह धेनु बड़े शोच से व्याप्त हुई ॥ २८ ॥ उसके
जाना चाहिये ॥

सर्वेभ्यःश्वापदेभ्यश्च भ्रमतागहनेवने ॥
नकर्तव्यो नप्रमादोनविश्वसेत् ॥ २५ ॥ आत्मापुत्रत्वयारक्ष्यःसर्वदैवप्रयत्नतः ॥ एवंसम्भाष्य ॥ २७ ॥
२६ ॥ विषमस्थंतृणंनाद्यं कथञ्चित्पुत्रकत्वया ॥ नैकाकिनाप्रगन्तव्यंयूथंत्यक्त्वानिजंकचित् ॥ २८ ॥ ततःसखीजनंसर्वं गतंदृष्ट्वाद्विजोत्त
तंवत्समवलिह्यमुहुर्मुहुः ॥ शोकेनमहताविष्टा बाष्पव्याकुललोचना ॥ २९ ॥ ततःप्रोवाचताःसर्वा गत्वारण्यंद्विजोत्तमाः ॥ चरन्तीःस्वेच्छ
माः ॥ नन्दिनीपुत्रशोकेन पीडिताङ्गीसुविह्वला ॥ ३० ॥ बहुलेचम्पकेदामेवसुधारेघटस्रवे ॥ हंसनादेश्रियानन्दे शुभक्षीरेमहोदये ॥
याहृष्टा वाञ्छितानितृणानिताः ॥ ३१ ॥ तथान्याधेनवोयाश्चसंस्थितागोकुलान्तिके ॥ शृण्वन्तुवचनंमह्यं कुर्वन्तुचततःपरम् ॥ ३२ ॥ अद्याहंनिजयूथ
३१ ॥ तथान्याधेनवोयाश्चसंस्थितागोकुलान्तिके ॥
स्य भ्रमन्तीनातिदूरतः ॥ ततश्चगहनंप्राप्ता वनंमानुषवर्जितम् ॥ ३३ ॥ व्याघ्रेणासादितातत्र भ्रमन्तीतृणवाञ्छया ॥

तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! ॥ २९ ॥
उपरान्त हे ब्राह्मणोत्तमो ! समस्त सखीजनको गयेहुये देखकर पुत्रके शोच से दुःखित अङ्गोंवाली नन्दिनी धेनु बहुतही विकलहुई ॥ ३० ॥ कि हे बहुले ! हे चम्पके ! हे दामे ! हे वसुधारे !
जङ्गलको जाकर चाहे हुये तृणोको अपनी इच्छा से चरती हुई व प्रसन्न मनवाली उन सब धेनुओं से बोली ॥ ३१ ॥ व और जो धेनु गोकुलके समीप स्थितहैं वे मेरे वचनको सुनैं व उसके उपरान्त उसको करै ॥
हे घटस्रवे ! हे हंसनादे ! हे श्रियानन्दे ! हे शुभक्षीरे ! हे महोदये ! ॥ ३२ ॥ कि आज मैं अपने यूथके थोड़ेही दूर पै घूमती थी उसके उपरान्त नरविहीन व सघन वनको पहुँचगई ॥ ३३ ॥ वहां पर तृणके लोभसे घूमती हुई मुझ

को व्याघ्र ने क्लेशितकिया परन्तु नख अस्त्रवाले उस व्याघ्रको शपथों से विश्वासकर बड़े क्लेशसे तुम सबों को देखने के लिये व पुत्रके देखने के लिये भलीभांति प्रासहुईहूं मैंने पुत्रको देखा व सिखलाया व सम्भाषण किया ॥ ३४ । ३५ ॥ व इस समय आपलोगोंको पुत्रको देदिया हे कल्याणकारिणियो ! अज्ञानसे या ज्ञानसे भी जिसप्रकार आप लोगोंका मैंने जो कुछेक अपराध कियाहो उसको प्रसन्नता से क्षमा करना चाहिये व समस्थानमें घूमता तथा अन्य गौओंके समूह में जाताहुवा अनाथ व अबल, दीन और दूध पीनेवाला तथा माताके शोचसे बहुतही दुःखित मेरा वह बालक सब गौओंसे भी पालने के योग्य है ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ और

युष्माकंदर्शनार्थाय सुतसन्दर्शनायच ॥ ३४ ॥ सम्प्राप्ताशपथैःकृच्छ्रात्तं विश्वास्यनखायुधम् ॥ दृष्टःसम्भाषितःपुत्रः शासितश्चमयाहिसः ॥ ३५ ॥ अधुनाभवतीनाञ्च प्रदत्तःपुत्रकोयथा ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि भवतीनांमयाकृतम् ॥ ३६ ॥ यत्किञ्चिद्दुष्कृतंभद्रास्तत्क्षन्तव्यंप्रसादतः ॥ अनाथोह्यबलोदीनःक्षीरपोममबालकः ॥ ३७ ॥ मातृशोकाभिस न्तप्तः पाल्यःसर्वाभिरेवसः ॥ भ्रममाणोसमेस्थाने व्रजमानोन्यगोकुले ॥ ३८ ॥ अकार्य्येषुचसंसक्तो निवार्य्यःसर्वदा दरात् ॥ अहंतत्रगमिष्यामि सव्याघ्रोयत्रसंस्थितः ॥ ३९ ॥ अपश्चिमःप्रणामोयं सर्वासांविहितोमया ॥ ४० ॥ धेनवऊ चुः ॥ नगन्तव्यंत्वयातत्र कथञ्चिदपिनन्दिनी ॥ आपद्धर्म्मंनचेद्वेत्सित्वंनूनंयेनगच्छसि ॥ ४१ ॥ ननर्म्मयुक्तंवचनंहि नस्तिनस्त्रीषुजातंनविवाहकाले ॥ प्राणात्ययेसर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ४२ ॥ तस्मात्तत्रनगन्तव्यंदो षोनास्त्यत्रतेशुभे ॥ पालयस्वनिजंपुत्रं व्रजास्माभिर्निजंगृहम् ॥ ४३ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ परेषांप्राणयात्रार्थं तत्कर्तुर्यु

अकार्य्य याने दुष्ट कामोंमें लगाहुआ सदैव आदरसे मना करने के योग्य है मैं वहां जाऊंगी जहांपर कि वह व्याघ्र भलीभांति टिकाहै ॥ ३९ ॥ यह अपश्चिम याने पहला प्रणाम मैंने सब धेनुओंका किया ॥ ४० ॥ धेनु बोलीं कि हे नन्दिनि ! तुमको किसी प्रकार भी वहां पर न जाना चाहिये क्या विपत्ति के धर्मको तुम निश्चय कर नहीं जानती हो जिससे जातीहो ॥ ४१ ॥ कि नर्म याने हँसी के वचन व स्त्रियोंमें उपजेहुये व विवाहसमयमें व प्राणके नाशमें और समस्त धनके अपहरण में झूंठे वचन पीडित नहीं करते क्योंकि पांच स्थानोंमें झूंठ निष्पाप कहा गयाहै ॥ ४२ ॥ हे शुभे ! इसलिये वहां न जाना चाहिये इस विषयमें तुम्हारा दोष नहीं है हम सबों

के साथ अपने घरको चलो व अपने पुत्रको पालनकरो ॥ ४३ ॥ नन्दिनी बोली कि हे शुभ धेनुओ! दूसरे की प्राणयात्रा (प्राणनाश) के लिये वह करनेवालेको योग्यहै और अपने प्राणोंके हितके लिये साधुओंको प्रशंसित नहीं है ॥ ४४ ॥ सत्यमें लोक प्रतिष्ठितहै व सत्यमें धर्म प्रतिष्ठितहै व समुद्र सत्य वचनसे मर्य्यादा (हद्द) को नहीं उल्लंघन करताहै ॥ ४५ ॥ दैत्यों का नायक बलिराजा सत्य वाक्यमें भलीभांति आश्रित होकर विष्णुजी के लिये पृथ्वीको देकर पातालमें टिकाहै निकलता नहीं है ॥ ४६ ॥ जो वाक्यकी प्रतिज्ञाकर यथोदितको नहीं करताहै उस अकृतबुद्धिवाले व चोरने किस पापको नहीं किया याने सब पापको किया ॥ ४७ ॥ सखी बोलीं कि हे न-

ज्यतेशुभाः ॥ आत्मप्राणहितार्थाय नसाधूनांप्रशस्यते ॥ ४४ ॥ सत्येप्रतिष्ठितोलोको धर्म्मःसत्येप्रतिष्ठितः ॥ उदधिः सत्यवाक्येन मर्य्यादांनविलङ्घयेत् ॥ ४५ ॥ विष्णवेपृथिवीन्दत्त्वाबलिःपातालमाश्रितः ॥ सत्यवाक्यंसमाश्रित्यननि ष्क्रामतिदैत्यपः ॥ ४६ ॥ यस्तुवाक्यंप्रतिज्ञाय नकरोतियथोदितम् ॥ किन्तेननकृतंपापं चौरेणाकृतबुद्धिना ॥ ४७ ॥ सख्यऊचुः ॥ त्वंनन्दिनिनमस्कार्य्या सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ यात्वंसत्यप्रतिष्ठार्थं प्राणांस्त्यजसिदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ किंत्वां कल्याणिवक्ष्यामः स्वयंधर्म्मार्थवादिनीम् ॥ सर्वैरपिगुणैर्युक्तां नित्यंसत्येप्रतिष्ठिताम् ॥ ४९ ॥ तस्माद्गच्छमहाभागे न शोच्यःपुत्रकस्तव ॥ भवत्यायद्वयंप्रोक्तास्तत्करिष्यामएवहि ॥ ५० ॥ एतत्पुनर्वयंविद्मःसदासत्यवतांनृणाम् ॥ न निष्फलःक्रियारम्भः कथञ्चिदपिजायते ॥ ५१ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसम्भाष्यतंसर्वं नन्दिनीस्वंसखीजनम् ॥ प्रस्थिता

न्दिनि ! तुम समस्त भी देवता दैत्योंसे नमस्कारके योग्य हो जो तुम सत्यकी प्रतिष्ठा के लिये दुस्त्यज प्राणोंको छोड़ती हो ॥ ४८ ॥ हे कल्याणि ! समस्त भी गुणोंसे युक्त व नित्यही सत्य में प्रतिष्ठित होनेवाली व आपही धर्म के लिये कहनेवाली तुमसे हमसब क्या कहैंगी ॥ ४९ ॥ इसलिये हे महाभागे ! तुम जावो तुम्हारा पुत्र शोच करने के योग्य नहीं है आपने जिसको हम सबोंसे कहाहै उसको निश्चयही करैंगी ॥ ५० ॥ परन्तु हमलोग इसको जानती हैं कि सदैव सत्यवान् मनुष्योंके कर्मों का आरम्भ किसीप्रकार भी निष्फल नहीं होताहै ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले कि उन अपने समस्त सखीजनसे इसप्रकार सम्भाषणकर पुत्रके शोच से दुःखित नन्दिनी

धेनुने व्याघ्र को उद्देशकर प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ जो कि शोचरूपी अग्नि से भी बहुतही तपाई हुई व पुत्रके दर्शनमें आशारहित व चक्रवाकी (चकई) के समान वियोगिनी व वृक्षसे गिरीहुई लताके समानथी ॥ ५३ ॥ व दृष्टिसे रहित अन्ध के समान पग पगपै लरखराती हुई वह धेनु समस्त वनके अधिदेवताओं से पुत्रके लिये प्रार्थना कर रहीथी ॥ ५४ ॥ कि सोते व घूमते हुये मेरे छोटे पुत्रको समस्त वनके रहनेवाले देवता मेरे वचनसे रक्षाकरैं ॥ ५५ ॥ इसप्रकार प्रलाप करती हुई वह धेनु वहांपर प्राप्तहुई जहांपर कि वह व्याघ्र था ॥ ५६ ॥ जो व्याघ्र कि वज्र के समान शब्दित मुखवाला व तीखी दाढ़ोंवाला व भयानक तथा क्षुधासे क्षाम

व्याघ्रमुद्दिश्य पुत्रशोकेनपीडिता ॥ ५२ ॥ शोकाग्निनापिसन्तप्ता निराशापुत्रदर्शने ॥ वियुक्ताचक्रवाकीवलतेवपतिता तरोः ॥ ५३ ॥ अन्धेवदृष्टिनिर्मुक्ता प्रस्खलन्तीपदेपदे ॥ वनाधिदेवताःसर्वाःप्रार्थयन्तीसुतार्थतः ॥ ५४ ॥ प्रसुप्तंभ्रम माणंवाममपुत्रंसबालकम् ॥ वनाधिदेवतास्सर्वा रक्षन्तुवचनान्मम ॥ ५५ ॥ एवंप्रलपमानासासम्प्राप्तातत्रयत्रसः ॥ ५६ ॥ आस्तेविस्फूर्जितास्यश्चतीक्ष्णदंष्ट्रोभयावहः ॥ व्याघ्रःक्षुत्क्षामकण्ठश्च तस्यामार्गावलोककः ॥ ५७ ॥ संरम्भा टोपसंयुक्तः सृक्किणीपरिलेलिहन् ॥ ५८ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ आगताहंमहाव्याघ्र सत्येचशपथेस्थिता ॥ कुरुतृप्तिंयथाप्री ति ममांसेनसाम्प्रतम् ॥ ५९ ॥ तांदृष्ट्वासोपिदुष्टात्मावैराग्यंपरमंगतः ॥ सत्याश्रयांपुनःप्राप्तांसन्त्यज्यप्राणजंभय म् ॥ ६० ॥ व्याघ्रउवाच ॥ स्वागतंतवकल्याणि सुधेनोसत्यवादिनि ॥ नहिसत्यवतांकिञ्चिदशुभंविद्यतेक्वचित् ॥ ६१ ॥ त्वयोक्तंशपथैर्भद्रे आगमिष्याम्यहंपुनः ॥ तेनमेकौतुकंजातं किमेषाप्रकरिष्यति ॥ ६२ ॥ सोहंभद्रेदुराचारो

कण्ठवाला व उस धेनुका मार्ग देखता हुआ और क्रोधसे गर्वसंयुत व ओठोंको चाटते हुये बैठाथा ॥ ५७ । ५८ ॥ नन्दिनी बोली कि हे महाव्याघ्र ! सत्यमें व शपथमें टिकी हुई मैं आगई इससमय प्रीतिपूर्वक मेरे मांस से तुम तृप्ति को करो ॥ ५९ ॥ प्राणसे उपजेहुये भयको छोड़कर फिर प्राप्तहुई व सत्य में टिकीहुई उस को देखकर दुष्ट चित्त या मानसवाला वह व्याघ्र भी बडे वैराग्य मे प्राप्तहुआ ॥ ६० ॥ व्याघ्र बोला कि हे कल्याणि ! हे सुधेनो ! हे सत्यवादिनि ! तुम्हारा आना अच्छी तरह से हुआ क्योंकि सत्यवान् प्राणियों को कहींपर कुछ अशुभ नहीं विद्यमान होता है ॥ ६१ ॥ हे कल्याणकारिणि ! तुमने शपथों से कहा कि मैं फिर आजाऊंगी

उससे मुझको आश्चर्य्य हुआ कि यह क्याकरैगी ॥ ६२ ॥ हे कल्याणकारिणि ! सो दुष्ट आचरणवाला व क्रूर और जीवहिंसक मैं सदैव इसी कर्म से विकराल नरक को जाऊंगा ॥ ६३ ॥ इसलिये हे महाभागे ! अतिदुष्टमन या चित्त वाले मुझपापी को तुम उपदेश के दानसे प्रसन्नता करनेके योग्यहो ॥ ६४ ॥ जिससे इस लोक में व परलोकमें मेरा परम कल्याण होवै क्योंकि सत्यके आचरण से तुमको कुछ अनजान नहीं है यहमेरी बुद्धि है ॥ ६५ ॥ इसलिये तुमसर्वस्व धर्मको मुझसे संक्षेप से कहो जिससे मुझको उत्तमजन के समागम का सम्पूर्ण फलहोवै ॥ ६६॥ नन्दिनी बोली कि उत्तमजन सतयुग में तपस्या की व त्रेतायुग में ध्यानही की

नृशंसोजीवघातकः ॥ यास्यामिनरकंघोरं कर्म्मणानेनसर्वदा ॥ ६३ ॥ तस्मात्त्वंमेमहाभागे पापस्यातिदुरात्मनः ॥ उपदेशप्रदानेन प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ ६४ ॥ येनमेस्यात्परंश्रेयइहलोकेपरत्रच ॥ नतेस्त्यविदितंकिञ्चित्सत्याचारान्स्मृतिर्मम ॥ ६५ ॥ तस्मात्त्वंधर्म्मसर्वस्वं संक्षेपान्ममकीर्तय॥सत्सङ्गमफलंयेन ममसञ्जायतेखिलम् ॥ ६६॥ नन्दिन्युवाच ॥ तपःकृतेप्रशंसन्ति त्रेतायांध्यानमेवच ॥ द्वापरेयज्ञदानंच दानमेकंकलौयुगे ॥ ६७ ॥ सर्वेषामेवदानानां नास्तिदानमतःपरम् ॥ चराचराणांभूतानामभयंयःप्रयच्छति ॥ ६८ ॥ व्याघ्रउवाच ॥ अन्येषांचैवभूतानां तद्दानंयुज्यतेशुभे ॥ अहिंसयाभवेद्येषां प्राणयात्रान्नपूर्वकम् ॥ ६९ ॥ नहिंसयाविनास्माकं यतःस्यात्प्राणधारणम् ॥ तस्माद्ब्रूहिमहाभागे किञ्चिन्ममसुखावहम् ॥ ७० ॥ उपदेशंसुधर्माय हिंसकस्यापिदेहिनाम् ॥ ७१ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ अत्रास्तिसुमहल्लिङ्गं पुराबाणप्रतिष्ठितम् ॥ गहनेयत्प्रभावेणत्वयामुक्तास्म्यहंध्रुवम् ॥ ७२ ॥ तस्यत्वंप्रातरुत्थाय कुरुनित्यं

और द्वापरयुगमेंयज्ञ व दानकी तथा कलियुगमें केवल दानकी प्रशंसाकरते हैं॥६७॥ और सबही दानों के मध्य में इससे परेदान नहीं है जो कि स्थावर, जङ्गमके प्राणियों को अभय देता है ॥ ६८ ॥ व्याघ्र बोला कि हे शुभे ! अन्यही प्राणियों को वह दान युक्त होता है कि जिनकी प्राणयात्रा अन्नपूर्वक होती है ॥ ६९ ॥ जिसलिये कि विना हिंसाके हमलोगोंका प्राणधारण नहीं होवै है इसलिये हे महाभागे ! देहधारियों के हिंसक भी मुझसे उत्तम धर्मके लिये कुछेक सुखदायक उपदेश को कहो ॥ ७० । ७१ ॥ नन्दिनी बोली कि पुरातन समय बाणासुर से थापित महालिङ्ग इस वनमें है कि जिसके प्रभावसे मैं निश्चयकर तुमसे छूटगई ॥ ७२ ॥ प्रातःकाल उठ

कर नित्यही तुम उसलिङ्ग की प्रदक्षिणा व प्रणामकरो उसीसे चाहीहुई सिद्धिको भलीभांति पावोगे ॥ ७३ ॥ हे नखायुध ! हाथों के न होने के कारण अन्य पूजादिक कर्मकी तुम्हारे शक्ति नहीं है यह मेरी बुद्धि है ॥ ७४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा कहकर व इसके अनन्तर वनके अन्त (मध्य) में टिके हुये उसलिङ्ग को उस धेनुने आगे खड़ी होकर व्याघ्र को दिखला दिया ॥ ७५ ॥ वह भी उसलिङ्ग के भलीभांति दर्शन से उसीक्षण व्याघ्रयोनि से मुक्तिको पागया और जैसा पहलेथा वैसाही फिर भूपति होगया ॥ ७६ ॥ तदनन्तर वह नृपोत्तम दुर्वासासे दियेहुये शाप को व धनों के समेत अपने राज्य को स्मरण करताहुआ नन्दिनी से बोला ॥ ७७ ॥

प्रदक्षिणाम् ॥ प्रणामंचततःसिद्धिं वाञ्छितांसमवाप्स्यसि ॥ ७३ ॥ नान्यस्यकर्म्मणःशक्तिर्विद्यतेतेनखायुध ॥ पूजादिकस्यहीनत्वाद्धस्ताभ्यामितिमेमतिः ॥ ७४ ॥ एवमुक्त्वाथसाधेनुर्व्याघ्रस्याथवनान्तगम् ॥ तल्लिङ्गंदर्शयामासपुरःस्थित्वाद्विजोत्तमाः ॥ ७५ ॥ सोपिसन्दर्शनात्तस्य तत्क्षणान्मुक्तिमाप्तवान् ॥ व्याघ्रत्वात्पार्थिवोभूयः सबभूवयथापुरा ॥ ७६ ॥ शापंदुर्वाससादत्तं राज्यंस्वंसहितैर्धनैः ॥ संस्मरन्सनृपश्रेष्ठस्ततःप्रोवाचनन्दिनीम् ॥ ७७ ॥ नृपःकलशनामाहं हैहयान्वयसम्भवः ॥ शप्तोदुर्वाससापूर्वं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ७८ ॥ ततःप्रासादितेनोक्तस्तेनाहंनन्दिनी यदा ॥ दर्शयिष्यतितल्लिङ्गं ततोमुक्तिर्भविष्यति ॥ ७९ ॥ सानूनंनन्दिनीत्वंहि ज्ञाताशापान्ततोमया ॥ तत्त्वंब्रूहिप्रदेशोयं कतमोवरधेनुके ॥ ८० ॥ येनगच्छाम्यहंभूयः सगृहंप्रतिसत्वरम् ॥ मार्गंदृष्ट्वामहाभागे मानुषंप्राप्यकञ्चन ॥ ८१ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रमेतत्पातकनाशनम् ॥ सर्वतीर्थमयंराजन्सर्वकामप्रदायकम् ॥ ८२ ॥ यद

कि हैहयके वंशमें उपजा हुआ मैं कलशनामक नृपति हूं पहले किसी कारणान्तरमें दुर्वासा मुनिने शापदिया है ॥ ७८ ॥ उसके उपरान्त प्रसन्न करायेहुये उन मुनिने मुझसे कहा कि जिससमय नन्दिनीनामक धेनु उसलिङ्ग को दिखावैगी उसके उपरान्त मुक्ति होगी ॥ ७९ ॥ मैंने शापके अन्तसे जाना कि तुम निश्चयकर वही नन्दिनी हो हे श्रेष्ठधेनुके ! इसलिये तुमकहो कि यह कौन सा देश है ॥ ८० ॥ जिससे हे महाभागे ! मार्ग को देखकर व किसी मनुष्य को पाकर मैं फिर शीघ्रही घरको जाऊं ॥ ८१ ॥ नन्दिनी बोली कि हे राजन् ! सब कामनाओं का दायक व पापोंका विनाशक तथा समस्त तीर्थोंमें प्रधान यह चमत्कार नगरका क्षेत्र है ॥८२॥

एवंमत्वामयालिङ्गं स्नापितं न्यत्रभवेच्छ्रेयो वत्सरेणतपस्विनाम् ॥ दिनेनैवात्रतत्सम्यग्जायतेनात्रसंशयः ॥ ८३ ॥ गच्छनन्दिनिभद्रंते निजंप्राप्नुहिबालकम् ॥ पयसासदा ॥ एतद्यूथंपरित्यज्य भक्त्यापूतेनचेतसा ॥ ८४ ॥ राजोवाच ॥ वाञ्छितंचसदाद्रष्टुं गोकुलंचसखीःस्वास्तु तथान्यंचसुहृज्जनम् ॥ ८५ ॥ एतत्क्षेत्रंमयापूर्वंब्राह्मणानांमुखाच्छ्रुतम् ॥ नाहंत्यक्तुंसमुत्सहे ॥८७॥ नद्रष्टुंतुप्रपादितम् ॥ ८६ ॥ राज्यकर्म्मप्रसक्तेन भोगासक्तेननन्दिनि ॥ स्वयमेवाधुनालब्धं एवमु दिष्ट्यामेमुनिनातेन दत्तःशापोमहात्मना ॥ कथंस्यादन्यथाप्राप्तिः क्षेत्रस्यास्यसुशोभने ॥ ८८ ॥ सूतउवाच ॥ प्रासादंतत्कृतेमुख्यं वि क्त्वामहीपालो नन्दिनींतांविसृज्यच ॥ स्थितस्तत्रैवतल्लिङ्गंध्यायमानोदिवानिशम् ॥ ८९ ॥ सम्प्राप्तः धायाद्भुतदर्शनम् ॥ कैलासशिखराकारं तपस्तेपेतदग्रतः ॥ ९० ॥ ततस्तस्यप्रभावेण स्वल्पैरेवदिनैर्द्विजाः ॥ शिवलोकेम परमांसिद्धिं दुर्लभांयाज्ञिकैरपि ॥ ९१ ॥ तत्रयःकार्त्तिकेमासि दीपकंसम्प्रयच्छति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः

अन्यस्थान में तपस्वियों को सालभर से जो पुण्यहोता है वह यहांपर एकही दिनसे भलीभांति होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ ऐसा मानकर व इस यूथ को छोड़कर भक्तिसे पवित्रचित्त करके सदैव मैंने दूधसे लिङ्ग को नहवाया है ॥ ८४ ॥ राजा बोले कि हे नन्दिनि ! तुम्हारा कल्याण होवै तुम जावो व अपनेपुत्रको व गोकुल को तथा अपनी सखियों को व अन्य मित्र जनको प्राप्तहोवो ॥ ८५ ॥ इस क्षेत्रको मैंने ब्राह्मणों के मुखसे सुना था व देखने के लिये सदैव चाहाथा परन्तु देखने में न प्राप्तहुआ ॥ ८६ ॥ हे नन्दिनि ! राज्यके काम में आसक्त व भोगों में परायण मैं आपही पागया इस समय मैं छोड़ने के लिये उत्साह नहीं करताहूं ॥ ८७ ॥ हे सुशोभने ! यह आनन्द है कि जो उन महात्मा मुनिने शाप दिया था नहीं तो इस क्षेत्रकी कैसे प्राप्ति होती ॥ ८८ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर व उस नन्दिनीको बिदाकर वह भूपाल अहर्निश उस लिङ्गका ध्यान करताहुआ वहीं पर टिकगया ॥ ८९ ॥ व कैलास के शिखरके आकारवाले व विचित्र दर्शनवाले मुख्यमन्दिर को उस लिङ्गके लिये बनाकर उसके आगे उस भूपति ने तपस्या को किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस लिङ्गके प्रभावसे थोड़ेही दिनों से परम सिद्धिको भलीभांति पागया जोकि याज्ञिकों (यज्ञकारी) पुरुषोंको भी दुर्लभ है ॥ ९१ ॥ कार्त्तिकके महीने में जो पुरुष उस मन्दिरमें दीपक दान देता है वह समस्त पातकों

से छूटकर शिवजी के लोकमें पूजित होताहै ॥ ९२ ॥ व अगहन महीने को प्राप्त होतेहुये उस लिङ्गके आगे जो पुरुष भक्ति से गीत, नृत्यादि को करता है वह परम गतिको जाताहै ॥ ९३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! समस्त पातकोंके विनाशक कलशेश्वरजीके इस समस्त माहात्म्यको मैंने तुम लोगोंसे विस्तारसे वर्णन किया ॥९४॥ परमश्रद्धा संयुत जो पुरुष इस चरित्र को पढ़ता है वह भी पातकोंसे छूटकर शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकलशेश्वरमाहात्म्यं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

हीयते ॥ ९२ ॥ मार्गशीर्षेचसम्प्राप्ते गीतनृत्यादिकंनरः ॥ तदग्रेकुरुतेभक्त्या सगच्छतिपरांगतिम् ॥ ९३ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ कलशेश्वरमाहात्म्यं विस्तरेणद्विजोत्तमाः ॥ ९४ ॥ भक्त्यापठतियश्चैतच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ सोपिपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेकलशेश्वरमाहात्म्यन्नामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ उमामहेश्वरौतत्रस्थापितौतेनभूभुजा ॥ प्रासादंपरमंकृत्वासाधुदृष्टिसुखप्रदम् ॥ १ ॥ तस्याग्रतःशुभंकुण्डं तत्रचैवविनिर्मितम् ॥ स्वच्छोदकेनसम्पूर्णं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ २ ॥ स्नात्वातत्रनरोभक्त्या तौपश्येद्यःसमाहितः ॥ माघशुक्लचतुर्दश्यां नचभूयोत्रजायते ॥ ३ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागेगस्त्यकुण्डंसमीपतः ॥ अत्रवापीमहा

दो० । बावनवें अध्याय में यथा देव ईशान । भये कोटि तेहि चरित को कीन्ह्यो सूत बखान ॥ सूतजी बोले कि वहांपर उस भूपति ने उत्तम मन्दिर को बनाकर शिवाशिवजीको थापाहै जोकि उत्तम जनोंकी दृष्टिको सुखदायकहैं ॥ १ ॥ और वहींपर उसीके आगे उत्तम कुण्डको निर्मित कियाहै जोकि निर्मल जलसे पूरित व कमलिनियोंके समूहसे शोभितहै ॥ २ ॥ माघमासकी शुक्लपक्षवाली चतुर्दशी में उस कुण्ड में नहाकर सावधान होतेहुये जो मनुष्य भक्तिसे उन शिवाशिवजीको देखताहै वह फिर इस संसारमें उत्पन्न नहीं होताहै ॥ ३ ॥ व उसीके समीप पूर्वदिशाके भाग में अगस्त्यकुण्ड है यहां पर महापुण्यदायिनी व समस्त पापोंकी विना-

शिनी बावली है ॥ ४ ॥ फागुन महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में उस बावली में उपास समेत जो मनुष्य स्नान करता है वह वाञ्छित फलको पाता है ॥ ५ ॥ उसी बावलीके दक्षिण दिशाके भागमें वहां पर कपिला नदी है जहां पर कि कपिलजी साङ्ख्यशास्त्रसे उपजीहुई सिद्धिको प्राप्त हुये हैं ॥ ६ ॥ और कपिला नदी के पूर्व दिशामें सिद्धक्षेत्र कहागया है जिस क्षेत्र में पुरातन समय सैकड़ों व हजारों सिद्ध सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य जिस कामनाको चिन्तनकर उस सिद्धि क्षेत्रमें तपस्या को करताहै वह उस कामको छह महीने के बीचमें निश्चयकर पाताहै ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीके नीचे समस्त पापोंकी विनाशिनी व चतुष्कोण तथा

पुण्या सर्वपातकनाशिनी ॥ ४ ॥ तस्यांयःकुरुतेस्नानं मासिवैफाल्गुनेनरः ॥ सोपवासःसिताष्टम्यां वाञ्छितंलभते चसः ॥ ५ ॥ तस्यादक्षिणदिग्भागे तत्रास्तिकपिलानदी ॥ कपिलोयत्रसंसिद्धिं प्राप्तःसाङ्ख्यसमुद्भवाम् ॥ ६ ॥ कपिलायाश्चपूर्वेणसिद्धक्षेत्रंप्रकीर्त्तितम् ॥ यत्रसिद्धिंगताःसिद्धाःपुराशतसहस्रशः ॥७॥ योयंकाममभिध्याय तपस्तत्रसमाचरेत् ॥ षण्मासाभ्यन्तरेनूनं सतमाप्नोतिमानवः ॥८॥ तस्याधस्ताच्छिलाविप्रा विद्यतेवैष्णवीशुभा ॥ भ्रमन्तीचतुरस्राचसर्वपातकनाशिनी ॥ ९ ॥ सदामहानदीतोयक्षालितामुक्तिदानृणाम् ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये सन्निविष्टासरस्वती ॥ १० ॥ त्रिवेणीवहतेतस्याः पुरतोभुक्तिमुक्तिदा ॥ तस्याउपरिदग्धानांब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ११ ॥ नूनंमुक्तिर्भवेत्तेषांचिताभस्मनिगोष्पदम् ॥ दृश्यतेतत्रतज्ज्ञात्वा संस्कार्य्याब्राह्मणाःस्मृताः ॥१२॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे रुद्रकोटिर्द्विजोत्तमाः ॥ अस्तिसम्पूजिताविप्रैर्दाक्षिणात्यैर्महात्मभिः ॥ १३ ॥महायोगिस्वरूपेण दाक्षिणात्याद्विजोत्तमाः ॥ चमत्कारपुर

घूमती हुई उत्तम वैष्णवी शिला विद्यमान है ॥ ९ ॥ जोकि सदैव महानदीके जलसे प्रक्षालित (धोई हुई) व मनुष्यों को मुक्तिदायिनी है और गङ्गा व यमुना के बीचमें सरस्वतीजी भलीभांति प्राप्त हैं ॥ १० ॥ उसीके आगे भोग व मोक्षकी दायिनी त्रिवेणी जी बहती हैं उसके ऊपर जलायेहुये व विशेषकर ब्राह्मणोंकी मुक्ति निश्चय कर होवै है उनकी चिताके भस्म में वहां पर गोपद देखपड़ता है उसको जानकर ब्राह्मण संस्कारके योग्य कहेगये हैं ॥ ११ । १२ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! उसी के उत्तरदिशाके भागमें दाक्षिणात्यमहात्माओं से पूजेहुये रुद्रकोटि (करोड़रुद्र) जीहैं ॥ १३ ॥ चमत्कार नगरके क्षेत्रमें महायोगीके स्वरूपसे आपही शिवजीको सुनकर

तदनन्तर कौतुकमें व्यास कोटिसङ्ख्यक दक्षिणीय द्विजश्रेष्ठ परमश्रद्धासे संयुत होकर उन शिवजीके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रहीगये ॥१४।१५॥ व श्रद्धासंयुत जातेहुये उन ब्राह्मणों ने उन महादेवजीको मैं पहले देखूंगा मैं पहले देखूंगा इस प्रकार कहतेहुये इस सौगन्दको किया॥१६॥कि उन महायोगी ईश्वरदेवको इन ब्राह्मणोंके मध्यमेंसे जो पीछेको देखैगा वह पापभागी होवैगा ॥ १७ ॥ उसके उपरान्त महेश्वरदेवजी उन ब्राह्मणों के अभिप्राय को जानकर भक्तिकी प्रीतिके हितके लिये कोटिरूप में टिकते भये ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! लीला से सब ब्राह्मणों के दर्शन को प्राप्तहुये तब से लगाकर वह स्थान रुद्रकोटि ऐसा प्रसिद्धहुआ ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! पु-

क्षेत्रे श्रुत्वास्वयमुमापतिम् ॥ १४ ॥ ततःकौतूहलाविष्टाःश्रद्धयापरयायुताः ॥ कोटिसङ्ख्याद्रुतंजग्मुस्तस्यदर्शनवाञ्छ या ॥ १५ ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वं वीक्षयिष्यामितंहरम् ॥ इतिश्रद्धासमोपेताश्चक्रुस्तेशपथंगताः ॥ १६ ॥ एतेषांमध्यतोयस्तं महायोगिनमीश्वरम् ॥ चरमंदेवमीक्षेत भविष्यतिसपापभाक् ॥ १७ ॥ ततस्तेषामभिप्रायं ज्ञात्वादेवोमहेश्वरः ॥ भ क्तिप्रीतिहितार्थाय कोटिरूपेऽव्यवस्थितः ॥१८॥ हेलयादर्शनंप्राप्तः सर्वेषांद्विजसत्तमाः ॥ ततःप्रभृतितत्स्थानं रुद्रकोटी तिविश्रुतम् ॥ १९ ॥ तदर्थंपठितःश्लोको नारदेनपुराद्विजाः ॥ रुद्रावर्त्तसमालोक्य प्रहृष्टेनद्विजोत्तमाः॥२०॥आषा ढींकार्त्तिकींमाघीं तथाचैत्रसमुद्भवाम् ॥ धन्याःपृथिव्यांलप्स्यन्तेरुद्रावर्त्तेचतुर्दशीम्॥२१॥आजन्मशतसाहस्रं कृत्वा पापंनरःक्षितौ ॥ रुद्रावर्त्तंसमालोक्य विपाप्मत्वंप्रपद्यते ॥ २२ ॥ रुद्रावर्त्तंनरोगत्वा दृष्ट्वायोगेश्वरंहरम् ॥ शुक्लपक्षेच तुर्दश्यां विपाप्माजायतेध्रुवम् ॥ २३ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धंमहायोगिपुरेततः ॥ रुद्रावर्त्तेसमाप्नोति फलंशतमखोद्भव

रातन समय प्रसन्न नारद महर्षिने रुद्रावर्तको देखकर उसके लिये श्लोकको पढ़ाहै ॥ २० ॥ कि रुद्रावर्त क्षेत्रमें आषाढ़ी, कार्त्तिकी, माघी व चैत्रसे उपजीहुई चतुर्दशी को पृथ्वी में धन्य पुरुष पाते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि पृथ्वी में मनुष्य सैकड़ों व हजारों जन्मसे लगाकर पाप को कर रुद्रावर्तजी को देखकर पापराहित्य को प्राप्त होता है याने पापरहित होजाताहै ॥२२॥शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें मनुष्य रुद्रावर्त क्षेत्रको जाकर व योगेश्वर महादेवजीको देखकर निश्चयकर पापहीन होजाता है ॥ २३ ॥

और उस महायोगी के नगर में रुद्रावर्त क्षेत्रमें जो पुरुष श्राद्धको करता है वह सौ यज्ञोंसे उपजेहुये फलको भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ व उपास में परायणहोकर जो मनुष्य रात्रिजागरण को करता है वह इच्छा के अनुकूल जानेवाले विमान से स्वर्ग में जाता है ॥ २५ ॥ वहांपर जो मनुष्य आहिताग्नि (अग्नि का रक्षक) या अग्निहोत्री ब्राह्मणके लिये कपिला धेनुको देवै है वह सदाशिवजीका प्यारा गण निस्सन्देह होवै है ॥ २६ ॥ और महायोगीके नगरमें टिकाहुआ जो पुरुष षडक्षर मन्त्रको जपै है उसको राजसूययज्ञसे छह गुना पुण्य होवे है ॥ २७ ॥ अथवा जो पुरुष उन महादेवजीके आगे दशरुद्रियको जपैहै वह निश्चय चारों वेदोके पढ़े

म् ॥ २४ ॥ उपवासपरोभूत्वा यःकुर्य्याद्रात्रिजागरम् ॥ कामगेनविमानेन सस्वर्गेयातिमानवः ॥ २५ ॥ तत्रयःकपिलां दद्याद्ब्राह्मणायाहिताग्नये ॥ सगणःस्यान्नसन्देहो हरस्यदयितस्तथा ॥ २६ ॥ षडक्षरंजपेद्यस्तु महायोगिपुरेस्थितः॥ मन्त्रंतस्यभवेच्छ्रेयः षड्गुणंराजसूयतः ॥ २७ ॥ यस्तस्यपुरतोभक्त्या जपेद्दादशरुद्रियम् ॥ चतुर्णामपिवेदानां सोधीतानांलभेत्फलम् ॥ २८ ॥ गीतंवायदिवानृत्यं तत्पुरःकुरुतेनरः ॥ ससर्वेषांभजेच्छ्रेयो मखानांनात्रसंशयः ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वाद्विजश्रेष्ठाः समुनिर्ब्रह्मसम्भवः ॥ विररामततोहृष्टस्तीर्थयात्रांगतोद्रुतम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येमिश्रकथनंरुद्रकोटिमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्रचोज्जयिनीपीठमस्तिकामप्रदंनृणाम् ॥ प्रभूताश्चर्य्यसंयुक्तं बहुसिद्धनिषेवितम् ॥ १ ॥ यस्यम

हुये फलको पावै है ॥ २८ ॥ या उन शिवजीके आगे जो पुरुष गाना या नाच करताहै वह सब यज्ञों के पुण्यको भजताहै ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा कहकर ब्रह्मा से उपजेहुये वह मुनि चुपहोरहे तदनन्तर हर्षित होते हुये शीघ्रही चलेगये ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरमाहात्म्ये मिश्रकथनंरुद्रकोटिमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तिरपन के अध्याय में भ्रूणगर्त परभाव । जहँ शापित सौदास नृप भयो रुचिर युत चाव ॥ सूतजी बोले कि वहीं पर मनुष्यों को समस्तकामदानी उज्ज-

थिनी पीठहै जोकि बहुतेरे आश्चर्यों से संयुत व बहुतसे सिद्धोंसे निरन्तर सेवित है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस पीठके बीचमें प्राप्त वह आपही महादेवजी महाकाल
स्वरूपसे स्थित हैं ॥ २ ॥ वहांपर वैशाखी पौर्णमासीमें सावधान होताहुआ जो पुरुष श्राद्धको कर तदनन्तर महाकाल ऐसे कहेहुये देवेश को देखताहै ॥ ३ ॥ व हे द्वि-
जोत्तमो ! समाश्रित होकर दक्षिणा मूर्त्तिको पूजताहै वह दश पूर्वके व दश बीतेहुये पुरुषोंको वैसेही अपना को भी निश्चयकर भलीभांति उद्धारकर शिवलोकमें पूजित
होता है और जो मनुष्य जिस कामनाको चिन्तकर वहांपर पीठको पूजन करता है ॥ ४ । ५ ॥ व योगिनीवृन्द तथा कन्यकावृन्द को भी भलीभांति पूजकर यद्यपि

ध्यगतोनित्यं स्वयमेवमहेश्वरः ॥ महाकालस्वरूपेण सतिष्ठतिद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ वैशाख्यांयोनरस्तत्र कृत्वाश्रा
द्धंसमाहितः ॥ ततःपश्यतिदेवेशं महाकालइतिस्मृतम् ॥ ३ ॥ पूजयेद्दक्षिणामूर्त्तिं समाश्रित्यद्विजोत्तमाः ॥ दशपूर्वा
न्दशातीतानात्मानंचतथैवहि ॥ ४ ॥ पुरुषात्ससमुद्धृत्यशिवलोकेमहीयते ॥ योयंकाममभिध्याय तत्रपीठंप्रपूजये
त् ॥ ५ ॥ सम्पूज्ययोगिनीवृन्दं कन्यकावृन्दमेवच ॥ सतुकृत्स्नमवाप्नोति यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ६ ॥ तत्रवैशाख
मासस्य पूर्णिमायांसमाहितः ॥ श्रद्धायुक्तोनरोयःस्यादुपवासपरःशुचिः ॥ ७ ॥ करोतिजागरंतस्य पुरतःश्रद्धयान्वितः ॥
सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ८ ॥ किंव्रतैःकिंवृथादानैः किंजपैर्नियमेनवा ॥ महाकालस्यतेसर्वे कलांना
र्हन्तिषोडशीम् ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रैवास्तिमहाभागभ्रूणगर्त्तेतिविश्रुता ॥ गर्त्तातिविपुलाकारा महापातकना
शिनी ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः सौदासोयत्रपार्थिवः ॥ स्त्रीहत्ययाविनिर्मुक्तस्सुषेणोवसुधाधिपः ॥ ११ ॥ ऋषयऊ

बहुत दुर्लभ होवै तथापि वह सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ ६ ॥ वहांपर वैशाख महीनेकी पौर्णमासीमें उपवास में परायण व श्रद्धायुक्त व पवित्र तथा सावधान और
श्रद्धासंयुत होतेहुये जो पुरुष उन महादेवजीके आगे रात्रिजागरण करता है वह वृद्धता व मृत्यु से रहित व उत्तम स्थानको जाताहै ॥ ७ । ८ ॥ व्रतोंसे क्याहै व व्यर्थ
दानोंसे क्या है व जपोंसे तथा नियमसे क्या है क्योंकि वे समस्त महाकालजीकी सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि हे महाभाग ! वहीं
पर भ्रूणगर्ता ऐसा प्रसिद्ध अत्यन्त विस्तीर्ण आकारवाला गढ़ाहै जोकि महापातकोंका विनाशकहै ॥ १० ॥ जहांपर सौदास नामक नृप ब्रह्महत्यासे छूटगयाहै व सुषेण

भूपति स्त्रीहत्या से विशेषकर छूटा है ॥ ११ ॥ ऋषि लोग बोले कि ब्रह्मण्य भी उस सौदास भूपतिके ब्रह्महत्या किसप्रकार हुई है उसको हमलोगोंसे कहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि वह भूपाल कर्मसे, मनसे, वचनसे, ब्राह्मणों के हितमें परायण सुनाजाताहै वह ब्रह्मघाती किस प्रकार हुआहै ॥ १३ ॥ व भ्रूणगर्तांको भलीभांति आश्रित होकर फिर किस प्रकार छूटा है और वह गढ़ा भी किस प्रकार उपजा है इस समस्त चरित को हम लोगोंसे विस्तार से कहिये ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! जिस समय देवतोंके देवता त्रिशूलधारी शिवजीके लिंगका पात हुआ था उस समय वे सदाशिवजी लिंगके न होनेसे लज्जासंयुत हुये ॥ १५ ॥ व उसके

चुः ॥ ब्रह्महत्याकथंतस्य सौदासस्यमहीपतेः ॥ ब्रह्मण्यस्यापिसञ्जाता तदस्माकंप्रकीर्तय ॥ १२ ॥ श्रूयतेसहिभूपालो ब्राह्मणानांहितेरतः ॥ कर्म्मणामनसावाचा ब्रह्मघ्नःसोभवत्कथम् ॥ १३ ॥ विमुक्तश्चकथंभूयो भ्रूणगर्तामुपाश्रितः ॥ सापिगर्ताकथंजाता सर्वंनोवदविस्तरात् ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ यदालिङ्गस्यपातोभूद्देवदेवस्यशूलिनः ॥ तदासलज्जयाविष्टो लिङ्गाभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ कृत्वातिविपुलांगर्तां प्रविवेशततःपरम् ॥ नकस्यचित्तदात्मानं दर्शयामासशूलधृक् ॥ १६ ॥ एवंसातत्रसञ्जाता गर्ताब्राह्मणसत्तमाः ॥ यथातत्स्थोविपाप्माभूत्सौदासस्तद्वदाम्यहम् ॥ १७ ॥ आसीन्मित्रसहोनाम राजापरमधार्म्मिकः ॥ सौदासस्तत्सुतःसाक्षात्सूर्य्यवंशसमुद्भवः ॥ १८ ॥ तेनेष्टंविपुलैर्यज्ञैः सुवर्णाम्बरदक्षिणैः ॥ असङ्ख्यातानिदानानि प्रदत्तानिमहात्मना ॥ १९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ वर्त्तमानेयथान्यायं विधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ २० ॥ क्रूराक्षःक्रूरबुद्धिश्च राक्षसौबलवत्तरौ ॥ यज्ञविघ्नायसम्प्राप्तौ सम्प्राप्तेर

उपरान्त त्रिशूलधारी शिव अतिविस्तारवाले गढ़ेको बनाकर पैठगये व उस समय किसीको अपनाको न दिखलाया ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वहांपर इसप्रकार वह गढ़ा हुआहै उसमें टिकाहुआ सौदास नृप जिस प्रकार पापहीन हुआ है उसको मैं कहताहूं ॥ १७ ॥ कि परमधर्मवान् मित्रसह नाम राजा हुआ उसका पुत्र साक्षात् सूर्यवंशमें उपजाहुआ सौदासनामक भया ॥ १८ ॥ उस महात्माने सुवर्ण व वस्त्र दक्षिणावाले बहुत यज्ञों से पूजन किया व असङ्ख्य दानोंको दिया ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर किसी समय जब विधि से देखेहुये कर्मसे बारहवर्षवाला यज्ञ यथायोग्य वर्तमान हुआ तब ॥ २० ॥ रात्रिको प्राप्तहोनेपर बहुतेरे राक्षस व अन्य भूतसंज्ञक

व दुराधर्ष पिशाचों समेत यज्ञके विध्वंसमें परायण बड़े बलवान् क्रूराक्ष व क्रूरबुद्धि दो राक्षस यज्ञ में विघ्नके लिये प्राप्तहुये ॥ २१ । २२ ॥ इसके अनन्तर कुछेक छिद्र (दोष) को देखकर सब ओरसे विघ्न करतेहुये वे समस्त राक्षस उस यज्ञवाटमें पैठगये ॥ २३ ॥ व ब्राह्मणोत्तमों को मारते व हव्य तथा यज्ञके लिये बनाई हुई अन्य विचित्र वस्तुओं को भक्षण करतेहुये ॥ २४ ॥ इसीसमय वहांपर बडे बलिष्ठ दैत्यों से ब्राह्मणोंको भक्षित होतेहुये बड़ा हाहाकार हुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतेहुये मित्रसह नृपने दीक्षाके व्रतको छोड़कर व बाण समेत धनुषको लेकर राक्षसोंको विध्वंसन किया ॥ २६ ॥ व पुरोहित वसिष्ठसे आपही रक्षाकिये

जनीमुखे ॥ २१ ॥ राक्षसैर्बहुभिःसार्द्धं तथान्यैर्भूतसञ्ज्ञितैः ॥ पिशाचैश्चदुराधर्षैर्यज्ञविध्वंसतत्परैः ॥ २२ ॥ अथतेराक्षसास्सर्वे किञ्चिच्छिद्रमवेक्ष्यच ॥ विविशुर्यज्ञवाटंतं प्रकुर्वन्तस्समन्ततः ॥ २३ ॥ निघ्नन्तोब्राह्मणश्रेष्ठान् भक्षयन्तोहवींषिच ॥ तथान्यानिविचित्राणि यज्ञार्थंकल्पितानिच ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र हाहाकारोमहानभूत् ॥ भक्ष्यमाणेषुविप्रेषु राक्षसैर्बलवत्तरैः ॥ २५ ॥ ततोमित्रसहःक्रुद्धस्त्यक्त्वादीक्षाव्रतंनृपः ॥ आदायसशरंचापं ध्वंसयामासराक्षसान् ॥ २६ ॥ कृतरक्षोवसिष्ठेन स्वयमेवपुरोधसा ॥ क्रूराक्षंसूदयामास राक्षसैर्बहुभिस्सह ॥ २७ ॥ क्रूरबुद्धिरथोवीक्ष्य हतंश्रेष्ठंसहोदरम् ॥ तंचपार्थिवशार्दूलमगम्यंब्रह्मतेजसा ॥ २८ ॥ हतशेषान्समादाय राक्षसान्बलसंयुतः ॥ पलायनं भयाच्चक्रे क्षताङ्गस्तस्यशायकैः ॥ २९ ॥ ततस्तद्वैरमाश्रित्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्यराक्षसः ॥ छिद्रमन्वेषयामास तद्वधार्थंदिवानिशम् ॥ ३० ॥ एवंसंवीक्षमाणस्य तस्यच्छिद्रंमहात्मनः ॥ समाप्तिमगमद्विप्राः सत्रंद्वादशवार्षिकम् ॥ ३१ ॥ न

हुये नृपने क्रूराक्ष को बहुत राक्षसों समेत मारडाला ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर क्रूरबुद्धि उत्तम सगेभाई को मरे देखकर व उस नृपोत्तम को ब्रह्मतेजसे अगम्य (न जानेके योग्य) देखकर ॥ २८ ॥ व उस नृपति के बाणोंसे कटेहुये अंगोंवाला वह क्रूरबुद्धि मरने से बचेहुये राक्षसोंको लेकर भयसे भागगया ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस क्रूरबुद्धि राक्षस ने बड़ेभाई के उस वैरके आश्रितहोकर उस नृपके मारने के लिये अहर्निश छिद्र को अन्वेषण किया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस

राक्षसको छिद्र देखतेहुये सौदास महात्मा का बारहवर्षवाला यज्ञ समाप्त होगया ॥ ३१ ॥ व उस दुष्टात्मा राक्षस ने थोड़ेभी छिद्रको न पाया क्योंकि उस भूपतिके यज्ञ में वशिष्ठ ने रक्षा किया था ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर यह सौदास नृप पायेहुये दक्षिणावाले समस्त ब्राह्मणों को विदाकर व हाथ जोडकर वसिष्ठसे यह बोला ॥ ३३ ॥ कि हे गुरो ! आज तो मैं तुमको अपने हाथसे भोजन कराने के लिये उत्साह करताहूं आज बहुत अच्छी तरह से बनाये हुये नृपेन्द्रोंके भोजनको कीजिये ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उस भूपति ने भोजनके लिये आपही बिठाया इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! दुष्टबुद्धि उस भोजन के लिये रसोईदारोंसे वडे विधान से बनाये

सूक्ष्ममपिसम्प्राप्तं छिद्रंतेनदुरात्मना ॥ वसिष्ठविहितारक्षासत्रेतस्यमहीपतेः ॥ ३२ ॥ अथासौब्राह्मणान्सर्वान्विसृज्याहितदक्षिणान् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ स्वहस्तेनगुरोत्वद्य त्वांभोजयितुमुत्सहे ॥ क्रियतामद्यराजेन्द्र भोजनंसुविभावितम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वाचस्वयंतेन निविष्टोभोजनायवै ॥ दुष्टबुद्धिरथोवीक्ष्य तदर्थंचामिषंशुभम् ॥ ३५ ॥ सुसंस्कृतंविधानेन सूपकारैर्द्विजोत्तमाः ॥ उखांकृत्वाततस्तादृक् तत्प्रमाणामतर्किताम् ॥ ३६ ॥ महामांसाभृतांकृत्वा तांजहारमिषान्वितः ॥ अथासौमुनिशार्दूलो भुञ्जानोबुबुधेहितत् ॥ ३७ ॥ महामांसमितिज्ञात्वा तत्रप्रोवाचमन्युमान् ॥ महामांसाशनंयस्मात्कारितोहंत्वयाधम ॥ ३८ ॥ रक्षोवद्राक्षसस्तस्मात्त्वमद्यैवभविष्यसि ॥ ततःसंशोधयामास तस्यमांसस्यचागमम् ॥ ३९ ॥ निपुणान्सूपकारांस्तान्पृष्ट्वाराजापृथक्पृथक् ॥ तेब्रुवन्नैतदस्माभिः अर्पितंमांसमीदृशम् ॥ ४० ॥ आद्यायतेमहीपालनान्येनमनुजेनच ॥ राक्षसंवापिशाचंवा दानवंवाविनावि

हुये उत्तम मांसको देखकर तदनन्तर वैसीही व उसी प्रमाणवाली तथा अतर्कित याने विचाररहित उस स्थाली को बनाकर व उसको मनुष्य के मांससे पूर्णकर कपटसंयुत होता हुआ लेआया इसके अनन्तर मुनिपुङ्गव ने भोजन करतेहुये उसको जानलिया ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ उस भोजन मे मनुष्य का मांस यह जानकर क्रोधित होकर वसिष्ठ जी बोले कि हे अधम ! जिसलिये तुमने मुझको राक्षसके समान मनुष्य के मांसको भोजन करादिया इसलिये तुम आजही राक्षस होजावो तदनन्तर राजाने अलग २ उनरसोईदारो से पूछकर उस मांसके आगमनको संशोधन किया उन्होंने कहा कि हे विभो, भूपाल ! राक्षस या दानव या पिशाचके विना

तुम्हारे श्राद्धके लिये हमसबों ने व अन्य मनुष्यने ऐसे इस मांस को नहीं पकायाहै ॥ ३८ । ३९ । ४० । ४१ ॥ हे नाथ ! इसको जानकर जो योग्यहो उसको करिये इसी अवसर में मुनिश्रेष्ठ नारद जीने आकर उस राक्षसके समस्त कर्मको उस भूपति से कहा उसको सुनकर क्रोधसंयुत होताहुआ वह राजा शाप देनेके लिये उद्यत हुआ ॥ ४२ । ४३ ॥ नारद बोले कि हे भूपाल ! ब्राह्मण लोग यदि शाप देतेहों या मारते हों या वैर करतेहों तिसपरभी द्विजोत्तम प्रणाम करनेके योग्य हैं ॥ ४४ ॥ हे नृपोत्तम ! फिर यह इन्द्रियों को दमन किये हुये तुम्हारा गुरु है इसलिये शापके बदले से तुम उन मुनिको शापदेने के लिये योग्य नहीं हो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर

भो ॥ ४१ ॥ एतज्ज्ञात्वाततोनाथ यद्युक्तंतत्समाचर ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४२ ॥ समागत्याब्रवीत्सर्वं तद्राक्षसविचेष्टितम् ॥ तच्छ्रुत्वाकोपमापन्नः सराजाशप्तुमुद्यतः ॥ ४३ ॥ नारदउवाच ॥ निघ्नन्तोवाशपन्तोवा द्विषन्तोवाद्विजातयः ॥ नमस्कार्य्यामहीपाल तथापिद्विजसत्तमाः ॥ ४४ ॥ गुरुरेषपुनर्दान्तस्तवपार्थिवसत्तम ॥ तस्मान्नार्हसिशप्तुंत्वं प्रतिशापेनतम्मुनिम् ॥ ४५ ॥ निषिद्धःस्त्रियाभूपोयदातत्सलिलंतदा ॥ पादयोःकृत्स्नमुपरिप्रमुमोचततःपरम् ॥ ४६ ॥ अथतौचरणौतस्य प्राप्तशापोदकप्लुतौ ॥ दग्धौकृष्णत्वमापन्नौ तस्माच्चद्विजसत्तमाः ॥४७॥ कल्माषपादइत्युक्तस्ततःप्रभृतिसत्तितौ ॥ भूपालोद्विजशार्दूला नाम्नातेनविशेषतः ॥ ४८ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रो वसिष्ठोलज्जयान्वितः ॥ ज्ञात्वादत्तंवृथाशापं तस्यभूमिपतेस्तथा ॥ ४९ ॥ उवाचव्यर्थशापोयं तवदत्तोमयानृप ॥ नचमेजायतेवाक्यमसत्यंहिकथञ्चन ॥ ५० ॥ तस्मात्त्वंराक्षसोभूत्वा कञ्चित्कालंनृपोत्तम ॥ स्वरूपंलप्स्यसेभूयोय

जब स्त्रीसे मनाकिया गया तब उस भूपने उससमय उस समस्त जलको चरणोंके ऊपर छोडदिया ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! शापको प्राप्तवाले जलसे डूबेहुये उस भूपतिके वे चरण जलगये व उसीसे श्यामता को प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तबसे लगाकर वह भूपाल पृथ्वीमें विशेषकर उसी नामसे कल्माषपाद ऐसा कहागया ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले कि इसी समय वसिष्ठ ब्राह्मण दियेहुये शापको वृथा जानकर लज्जासंयुत हुये व उस भूपति से बोले ॥ ४९ ॥ कि हे नृप ! मैंने इस वृथा शापको तुमको दिया जिसलिये कि मेरे वचन किसी प्रकार असत्य नहीं होते हैं ॥ ५० ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! तुम कुछेक काल राक्षस होकर जिस

समय फिर स्वरूपको पावोगे उसको सुनो ॥ ५० ॥ कि जिस समय तुम उसदुष्ट बुद्धि राक्षसको मारोगे उसी समय बड़े विकराल राक्षसत्वसे तुम मुक्ति को पावोगे॥ ५१॥ सूतजी बोले कि इसी अन्तर मे वह राजा उठेहुये बालोंवाला व कालेदांतोंवाला व बड़े शरीरवाला भयानक राक्षस होगया ॥ ५२॥ उसके उपरान्त राक्षसके स्वभाव में आश्रित होकर उसने द्विजेन्द्रों को मारा व मुनियों के यज्ञ व आश्रमोंका भी विध्वंस किया ॥ ५३ ॥ इसीके अनन्तर किसी समय वह दुष्टबुद्धि राक्षस आयुध रहित व अकेले उसको राक्षसहुये जानकर ॥ ५४ ॥ व भाईके वधकरनेवाले वैरको स्मरण करताहुआ तदनन्तर उसके मारने के लिये बहुतसे राक्षसों से घिरा

स्मिन्कालेशृणुष्वतम् ॥५०॥ यदात्वंदुष्टबुद्धिन्तं राक्षसंनिहनिष्यसि ॥ तदात्वंलप्स्यसेमोक्षं राक्षसत्वात्सुदारुणात् ॥ ५१ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा यातुधानोबभूवसः ॥ ऊर्ध्वकेशोमहाकायः कृष्णदन्तोभयानकः ॥ ५२ ॥ ततोजघानविप्रेन्द्रान् राक्षसंभावमाश्रितः ॥ यज्ञान्विध्वंसयामास मुनीनामाश्रमानपि ॥ ५३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य दुष्टबुद्धिःसराक्षसः ॥ ज्ञात्वा तं राक्षसीभूतमेकमायुधवर्जितम् ॥ ५४ ॥ भ्रातुर्वधकृतंवैरं स्मरमाणस्ततःपरम् ॥ तद्वधार्थंसमायातो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ५५ ॥ ततस्तंवेष्टयित्वापि समन्ताद्राक्षसोनृपम् ॥ प्रोवाचवचनंक्रुद्धो नादेनापूरयंन्दिशः ॥ ५६ ॥ त्वयायन्निहतोभ्राता स्माकंज्येष्ठःसुदुर्मते ॥ वसिष्ठस्यबलाद्यज्ञे तस्याद्यफलमाप्नुहि ॥ ५७ ॥ राजोवाच ॥ यद्ब्रवीषिदुराचार कर्म्मणातत्समाचर ॥ शारदस्येवमेघस्य गर्जितंतवनिष्फलम् ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वासमादाय तंचवृक्षंसपार्थिवः ॥ प्राद्रवत्सम्मुखंतस्य गर्जमानोयथाघनः ॥ ५९ ॥ सोपिवृक्षंसमुत्पाट्य क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ त्रि

हुआ आया ॥ ५५ ॥ उसके उपरान्त क्रोधित राक्षस उस नृपको चारों ओरसे घेरकर भी शब्द से दिशाओं को पूर्णकरते हुये वचन बोला ॥ ५६ ॥ कि हे दुष्टबुद्धि वाले ! वसिष्ठके यज्ञ में जो तुमने बड़े भाईको हठसे मारा है उसका फलआज पावोगे ॥ ५७ ॥ राजा बोले कि हे दुष्टकर्मकारी ! जिसको कहते हो उसको कर्मसे शरद्काल के मेघ की नाईं तुम्हारा गर्जना निष्फल है ॥ ५८ ॥ उससे ऐसाकहकर मेघ के समान गर्जता हुआ वह नृप वृक्षको लेकर उसके सामने दौडा ॥ ५९ ॥

व क्रोधसे लाललोचनवाला वह दुष्टबुद्धि भी भौंह को तीनशिखा वाली (टेढ़ी) कर व वृक्षको उखाड़कर उस नृपके भी सामनें गया ॥ ६० ॥ इसप्रकार उस वनमें बड़े बली उन दोनों शूरोंने भी बहुत वृक्षों से भयानक वृक्षयुद्ध को किया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर भूपतिने उस दुष्टबुद्धि को थकित देखकर पांवों को पकड़ कर आकाश में घुमाया ॥ ६२ ॥ व क्रोध संयुत उस भूपतिने आकाशसे भूमि में गिरा दिया व बार २ पीस २ कर मांस के खण्डकर दिया ॥ ६३ ॥ जब वह शूरराक्षस मरगया तब राक्षस योनि से छूटे हुये उन भूपति ने नृपतिसे उपजेहुये शरीर को पाया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर बचेहुये उन राक्षसों ने भूपति को सबओर से घेरकर बड़े

शिखांभ्रुकुटींकृत्वा तस्याप्यभिमुखंययौ ॥ ६० ॥ एवंतावपिद्वौशूरौ वृक्षयुद्धंमहाबलौ ॥ कृतवन्तौवनेतत्र बहुवृक्षै र्भयावहम् ॥ ६१ ॥ अथतंश्रान्तमालोक्य दुष्टबुद्धिंमहीपतिः ॥ प्रगृह्यपादयोर्वेगाद्भ्रामयामासपुष्करे ॥ ६२ ॥ आ काशात्पातयामास भूमौकोपसमन्वितः ॥ चक्रेचामिषखण्डंसः पिष्ट्वापिष्ट्वामुहुर्मुहुः ॥ ६३ ॥ तस्मिंस्तुनिहतेशूरे राक्षसेसमहीपतिः ॥ राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो लेभेकायंनृपोद्भवम् ॥ ६४ ॥ ततस्तेराक्षसाःशेषाः समन्तात्तंमहीपतिम् ॥ परिवार्य्यमहावृक्षैर्जघ्नुःपाषाणवृष्टिभिः ॥ ६५ ॥ ततस्तानपिभूपालो जघानप्रहसन्निव ॥ वृक्षहस्तस्तुविष्टब्धाँल्लील याद्विजसत्तमाः ॥ ६६ ॥ ततश्चस्वपुरंप्राप्तः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ राक्षसानांवधंकृत्वा लब्ध्वादेहंपुरातनम् ॥ ६७ ॥ तत स्तंतेजसाहीनं दुर्गन्धेनसमावृतम् ॥ ब्रह्महत्योद्भवैश्चिह्नैरन्यैरपिपृथग्विधैः ॥ ६८ ॥ दृष्ट्वातेमन्त्रिणस्तस्य पुत्रपौ त्रास्तथापरे ॥ नोपसर्प्पन्तिभूपालं पापस्पर्शभयान्विताः ॥ ६९ ॥ ऊचुश्चपार्थिवश्रेष्ठ नत्वमर्हसिसङ्गमम् ॥ कर्त्तुंसार्द्धंवि

भारी वृक्षोंसे व पत्थरोंकी वृष्टिसे ताडन किया ॥ ६५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके उपरान्त वृक्षको हाथमें लिये हंसते हुये उस भूपालने उन मूर्ख राक्षसोंको भी लीलासे मारडाला ॥ ६६ ॥ तदनन्तर प्रसन्नरोमवाला वह नृप राक्षसों को मारकर व पुरातन देह को पाकर अपने नगरमें प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥ उसके उपरान्त दुर्गन्ध से घिरे तथा ब्रह्मघात से उपजेहुए व और भी भिन्न प्रकारके लक्षणों से उस नृपको तेजहीन देखकर ॥ ६८ ॥ पाप स्पर्श के भयसे संयुत उसके वे मन्त्रीजन व पुत्र, पौत्र तथा अन्यजन भूपाल के समीप नहीं गये ॥ ६९ ॥ और बोले कि हे विभो नृपोत्तम ! जिसलिये कि तुम ब्रह्महत्या से संयुत हो इससे हम लोगो के साथ

संयोग करने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ७० ॥ उसलिये वसिष्ठजी को बुलाकर प्रायश्चित्त को करो कि जिससे यह तुम्हारा अशुद्ध शरीर शुद्धताको प्राप्त होवै ॥ ७१ ॥ तदनन्तर दूर में टिका हुआ भी वह नृप शीघ्रही मुनिपुङ्गव वसिष्ठजीको बुलाकर विनय संयुत होता हुआ वाक्य को बोला ॥ ७२ ॥ कि हे द्विज ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने राक्षस को संहार किया व शापसे छूटगया परन्तु हे मुने ! मेरे वचन को सुनिये ॥ ७३ ॥ कि मेरे शरीर से सबओर दुर्गन्ध फैलती है और सब अंगभार से लदेहुए व निर्बलहैं ॥ ७४ ॥ हेद्विजश्रेष्ठ ! मेरे उस तेजकी अत्यन्तही हानि होगई यह क्या है जिसलिये कि पुत्र व मन्त्री भी आज मुझको स्पर्श नहीं करते हैं ॥ ७५ ॥

भोस्माभिर्ब्रह्महत्यान्वितोयतः ॥ ७० ॥ तस्माद्वसिष्ठमाहूयप्रायश्चित्तंसमाचर ॥ अशुद्धंशुद्धिमायाति येनगात्रमिदं तव ॥ ७१ ॥ ततःसपार्थिवस्तूर्णं वसिष्ठंमुनिपुङ्गवम् ॥ समाहूयाब्रवीद्वाक्यं दूरस्थोपिनयान्वितः ॥ ७२ ॥ तवप्रसादतोविप्र संहृतोराक्षसोमया ॥ मुक्तशापोस्मिसञ्जातः परंशृणुवचोमुने ॥ ७३ ॥ ममगात्रात्सुदुर्गन्धः समुच्छलतिसर्वतः ॥ भराक्रान्तानिगात्राणि सर्वाण्येवाबलानिच ॥ ७४ ॥ तत्किमेतद्द्विजश्रेष्ठ तेजोहानिरतीवमे ॥ मन्त्रिणोपितथापुत्रानस्पृशन्तियतोद्यमाम् ॥ ७५ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ राक्षसत्वेप्रयत्नेन त्वयापार्थिवसत्तम ॥ ब्राह्मणाबहवोध्वस्तास्तथाविध्वंसितामखाः ॥ ७६ ॥ तेषांत्वंपार्थिवश्रेष्ठ संस्पृष्टोब्रह्महत्यया ॥ ७७ ॥ राजोवाच ॥ तदर्थंदेहिमेविप्र प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ येननिर्मुक्तपापोहं राज्यंप्राप्नोमिचात्मनः ॥ ७८ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ अत्रार्थेतीर्थयात्रांत्वं कुरुपार्थिवसत्तम ॥ निर्ममोनिरहङ्कारस्ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ७९ ॥ ततःसपार्थिवश्रेष्ठः सुजितात्माजितेन्द्रियः ॥ प्रयागाद्येषुतीर्थेषु

वसिष्ठ जी बोले कि हे भूपालशिरोमणि ! तुमने राक्षसता में बड़े उपायसे बहुत ब्राह्मणों का नाश किया व यज्ञोंका विध्वंस किया है ॥ ७६ ॥ हे नृपोत्तम ! उन की ब्रह्महत्या से तुम स्पर्श किये गयेहो ॥ ७७ ॥ राजा बोले कि हे द्विज ! उसके लिये विशेषता से शुद्धताके निमित्त मुझको प्रायश्चित्त दीजिये जिससे पापसे छूटा हुआ मैं अपनी राज्यको पाऊँ ॥ ७८ ॥ वसिष्ठ जी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! इस शुद्धि के लिये तुम निर्ममता व गर्वरहित होतेहुए तीर्थयात्रा को करो उससे सिद्धि को

प्राप्त होगे ॥ ७९ ॥ तदनन्तर मन या चित्तको जीते तथा इन्द्रियों को जीतेहुए व सावधान होकर उस नृप ने प्रयागादिक तीर्थों में स्नान किया ॥ ८० ॥ परन्तु दुर्गन्ध न नष्ट हुई व तेज न बढ़ा और शरीर हलका न हुआ व न आलस्य से छूटा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! घूमता हुआ वह नृप किसी समय स्नान के लिये चमत्कार नगर के समीप भलीभांति आया ॥ ८२ ॥ व क्षुधा,तृषा से दुःखित तथा बहुत थका हुआ वह नृपति अन्धकार से घिरेहुए अर्धरात्र के समय एकाएकी जल से पूर्ण गढ़ेमें गिर पड़ा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर जबतक बड़े क्लेश से उस तीर्थ से भूपति निकला तबतक अपने शरीरको बारह सूर्य्यों के समान देदीप्यमान देखा ॥ ८४ ॥

स्नानंचक्रेसमाहितः ॥ ८० ॥ ननश्यतिसुदुर्गन्धो नचतेजःप्रवर्धते ॥ नकायोलघुतांयाति नालस्येनविमुच्यते ॥ ८१ ॥ ततःसम्भ्रममाणस्तु कदाचिद्द्विजसत्तमाः ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रे स्नानार्थसमुपागतः ॥ ८२ ॥ सुश्रान्तःक्षुत्पिपासार्त्तो निशीथेतमसावृते ॥ गर्तायांपतितोकस्मात्पूर्णायांपयसान्नृपः ॥ ८३ ॥ कृच्छ्रात्ततोविनिष्क्रान्तस्तीर्थात्तस्मान्महीपतिः ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ ८४ ॥ दुर्गन्धेनपरित्यक्तं सोद्यमंलघुताङ्गतम् ॥ दृष्ट्वासचिन्तयामास नूनंमुक्तोस्मिपातकात् ॥ ८५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुवागुवाचाशरीरिणी ॥ हर्षयन्तीमहीपालं विमुक्तंब्रह्महत्यया ॥ ८६ ॥ विमुक्तोसिमहाराज साम्प्रतंपूर्वपातकैः ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण तस्माद्गच्छनिजंगृहम् ॥ ८७ ॥ अत्रसन्निहतोनित्यं भ्रूणरूपेणशङ्करः ॥ कृष्णपक्षेविशेषेण चतुर्दश्यांमहीपते ॥ ८८ ॥ यदाप्रपतितंलिङ्गं दिविदेवस्यशूलिनः ॥ द्विजशापेनगर्तैषा तदातेनविनिर्मिता ॥ ८९ ॥ लज्जितेनस्वसामर्थ्यान्महादुःखयुतेनच ॥ सतीवियोगयुक्तेन भ्रूण

व दुर्गन्धरहित तथा उद्यम समेत व लघुताको प्राप्तहुए अपने शरीरको देख कर उस नृपने चिन्तवन किया कि मैं निश्चयकर पापसे छूट गयाहूं ॥ ८५ ॥ इसी समय में ब्रह्महत्या से छूटेहुए भूपति को प्रसन्न करतीहुई अशरीरिणी (आकाश) वाणी बोली ॥ ८६ ॥ कि हे महाराज ! इस समय इस तीर्थके प्रभावसे तुम पहले के पातकोंसे छूटगये हो इसलिये अपने घरको जावो ॥ ८७ ॥ हे भूपति ! यहांपर शङ्करजी भ्रूणरूप से नित्यही टिके हैं व कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें विशेषकर टिकते हैं ॥ ८८ ॥ जिससमय आकाशमें ब्राह्मणोंके शापसे त्रिशूलधारी शिवजीका लिङ्ग गिरा है उससमय लज्जित व महादुःख युक्त व सतीजीके वियोगसंयुत व भ्रूण-

'ता (ब्राह्मणके रूप) को प्राप्त उन महादेवजी ने अपनी सामर्थ्य से इस गढ़ेका निर्माण किया है ॥ ८९ । ९० ॥ उसीसे हे भूपति ! उनके नामसे तीनों भुवन में भ्रूणगर्त ऐसा प्रसिद्ध यह गढ़ा समस्त पातकोंका हरनेवाला है ॥ ९१ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर वह आकाशगामिनी वाणी चुप होरही और वह भूपशार्दूल भी प्रसन्न होता हुआ अपने पुरको चलागया ॥ ९२ ॥ तदनन्तर तेज से सूर्य्यनारायणके समान व पापसे छूटेहुए उस नृपति को मनुष्य तथा पुत्रों ने देखकर प्रसन्नता समेत होतेहुए प्रणाम किया ॥ ९३ ॥ व वे द्विजपुङ्गव वसिष्ठजी भी उस भूपतिके निकट आकर तदनन्तर हर्ष से गद्गदवाणी से बोले ॥ ९४ ॥ हे नृपेन्द्र ! आनन्द

त्वंप्रगतेनवै ॥ ९० ॥ सर्वपापहरातेन गर्त्तेयंपृथिवीपते ॥ भ्रूणगर्त्तेतिविख्याता तस्यनाम्नाजगत्त्रये ॥ ९१ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथसावाणी विररामान्तरिक्षगा ॥ सोपिपार्थिवशार्दूलः प्रहृष्टःस्वपुरंययौ ॥ ९२ ॥ ततस्तंपापनिर्मुक्तं तेजसाभास्करोपमम् ॥ दृष्ट्वापुत्रास्तथामर्त्याः प्रणेमुस्तुष्टिसंयुताः ॥ ९३ ॥ सोपिब्राह्मणशार्दूलो वसिष्ठस्तंमहीपतिम् ॥ समभ्येत्यततःप्राह हर्षगद्गदयागिरा ॥ ९४ ॥ दिष्ट्यामुक्तोसिराजेन्द्र पापाद्ब्रह्मवधोद्भवात् ॥ दिष्ट्यात्वंतेजसायुक्तः पुनःप्राप्तोनिजंपुरम् ॥ ९५ ॥ तस्मात्कीर्तयभूपाल कस्मिंस्तीर्थेसमागमः ॥ त्वंमुक्तः पातकाद्घोराद्ब्रह्महत्यासमुद्भवात् ॥ ९६ ॥ ततःसकथयामास भ्रूणगर्त्तासमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तं तस्यब्रह्मर्षेरनुभूतंयथातथा ॥ ९७ ॥ ततस्तेमन्त्रिणोवृद्धाःसचराजामुनीश्वराः ॥ पुत्रंप्रतर्दनंनाम राज्येसंस्थाप्यतत्क्षणात् ॥ ९८ ॥ भ्रूणगर्त्तांसमासाद्य तामेवद्विजसत्तमाः ॥ तपश्चेरुर्महादेवं ध्यायमानादिवानिशम् ॥ ९९ ॥ गताश्चपरमांसिद्धिं कालेनान्येनदुर्लभाम् ॥ भ्रूणरूपधरंदेवं

है कि तुम ब्रह्मघात से उपजेहुए पातकसे छूट गये हो अहोभाग्य है कि तुम तेजसे संयुत होकर फिर अपने नगर में प्राप्तहुए ॥ ९५ ॥ इससे हे भूपाल ! कहिये कि किस तीर्थ में समागम होतेहुए तुम ब्रह्महत्या से उपजेहुए घोरपातक से छूटे हो ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त उस भूपति ने भ्रूणगर्ता से उपजेहुए वृत्तान्तको जैसा भोग कियाथा वैसाही उन ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीसे कहा ॥९७॥ तदनन्तर हे मुनीश्वरो ! उन मन्त्रियोंने और उस नृपतिने प्रतर्दननामक पुत्रको राज्यपै बिठाकर उसी क्षण ॥ ९८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसी भ्रूणगर्ताको प्राप्त होकर अहर्निश महादेवजीका ध्यान करतेहुए तप किया ॥ ९९ ॥ व भ्रूणरूपधारी महेश्वरदेवजी को पूजकर

उत्तम सिद्धि को प्राप्त होगये जोकि अन्य समय से दुर्लभ है ॥ १०० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! तबसे लगाकर वह गढ़ा समस्त पातकों का विनाशक भ्रूणगर्ता ऐसा धरातल में प्रसिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ वहांपर कृष्णपक्षवाली चतुर्दशी में जो पुरुष श्राद्ध करताहै वह दश बीतेहुए व दश आगामी पितरोको निश्चयकर तारै है ॥ २ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! वहांपर सब उपायसे श्राद्धको करै व स्नान तथा अपनी शक्तिसे दानको भी करै ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभ्रूणगर्तामाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पूजयित्वामहेश्वरम् ॥१००॥ ततःप्रभृतिसागर्ता प्रख्याताधरणीतले ॥ भ्रूणगर्तेतिविप्रेन्द्राः सर्वपातकनाशिनी ॥ १ ॥ तत्रकृष्णचतुर्दश्यां यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ सपितॄंस्तारयेन्नूनंदशपूर्वान्दशापरान् ॥ २ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रश्राद्धं समाचरेत् ॥ स्नानंचब्राह्मणश्रेष्ठा दानंवापिस्वशक्तितः ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्र माहात्म्येभ्रूणगर्तामाहात्म्यन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ चर्ममुण्डातथादेवी तस्मिन्कालेव्यवस्थिता ॥ नलेनस्थापितापूर्वं स्वयमेवमहात्मना ॥ १ ॥ अभ्यर्चयतितांभक्त्या योमहानवमीदिने ॥ सकामान्वाञ्छिताँल्लब्ध्वा पदंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ २ ॥ वीरसेनसुतःपूर्वं नलो नाममहीपतिः ॥ आसीत्सर्वगुणोपेतः सर्वशत्रुक्षयावहः ॥ ३ ॥ भार्य्यातस्याभवत्साध्वी प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ दमयन्तीतिविख्याता विदर्भाधिपतेःसुता ॥ ४ ॥ अथासौकलिनाविष्टो द्यूतंचक्रेमहीपतिः ॥ पुष्करेणसमंविप्रा दायादेन

दो० । चौवनके अध्याय में नल नामक भूपाल । चर्मशिरा भगवतीकी स्तुतिकरि भयो निहाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही उसी समय पहले महात्मा नल से आपही थापीहुई चर्ममुण्डा देवी विशेषता से टिकीहुई हैं ॥ १ ॥ उन चर्ममुण्डाको महानवमी के दिन जो पुरुष भक्तिसे पूजता है वह अभिलषित कामोंको पाकर अविनाशी स्थान को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ पुरातन समय वीरसेन का पुत्र समस्तगुणसंयुत व सब शत्रुओंका विनाशकारक नल नामक भूपति हुआ है ॥ ३ ॥ व विदर्भदेशके स्वामीकी सुता दमयन्ती ऐसी प्रसिद्ध उसकी पतिव्रतास्त्री हुई है जो कि प्राणों से भी अधिक गरीयसी (प्यारी) थी ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजो !

कलियुग से व्यास हुए इस भूपति ने पुष्कर नामक बान्धवके साथ अहर्निश द्यूतको किया याने जुआ खेला ॥ ५ ॥ तदनन्तर सज्जनोंसे मनाकिया हुआ भी व्यसन में आसक्त वह नल नृपति उस स्त्रीको छोडकर सात अङ्गोंवाले राज्यको हारगया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर दुःखसे विकल इन्द्रियोंवाला व लज्जासे व्याप्त वह नृपति उस स्त्रीको भलीभांति लेकर जनहीन व सघनवन में पैठगया ॥ ७ ॥ तदनन्तर उसने चिन्तवन किया कि यदि यह दमयन्ती भीमके सदन में चलीजावै तो वनवास से उपजे हुये दुःखसे छूटजाय ॥ ८ ॥ वहांपर मुझ मानी को किसी प्रकार भी न जाना चाहिये इसलिये रात्रिमें इसको छोडकर मैं दूर चला जाऊंगा ॥ ९ ॥ जिससे कि

दिवानिशम् ॥ ५ ॥ ततःसव्यसनासक्तो वार्य्यमाणोपिसज्जनैः ॥ हारयामाससप्ताङ्गं राज्यंमुक्त्वाचतांस्त्रियम् ॥ ६ ॥ अथतांससमादाय प्रविष्टोगहनंवनम् ॥ निर्जनंलज्जयाविष्टो दुःखव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ ततःसचिन्तयामास यद्येषाभीममन्दिरे ॥ यातितन्मुच्यतेकष्टाद्वनवाससमुद्भवात् ॥ ८ ॥ नमयातत्रगन्तव्यं कथञ्चिदपिमानिना ॥ तस्मादेनांपरित्यज्य रात्रौगच्छामिदूरतः ॥ ९ ॥ येनत्यक्तामयासाध्वी कुण्डिनंयातितत्पुरम् ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा सुखसुप्तांविहायताम् ॥ १० ॥ प्रजगामवनंघोरं वन्यश्वापदसङ्कुलम् ॥ प्रत्यूषेचापिसोत्थाय यावत्पश्यतिभामिनी ॥ ११ ॥ तावत्पश्यतिशून्यंतं पार्श्वेयंचनलस्थितः ॥ ततोविलप्यदुःखार्ता करुणंतत्रकानने ॥ १२ ॥ जगाममार्गमाश्रित्यपितुर्हर्म्येशनैःशनैः ॥ नलोपित्यक्तवांस्तस्मिन्भ्रममाणोमहीपतिः ॥ १३ ॥ एकाकीवृक्षकुञ्जानि सेवयामास सर्वदा ॥ ततस्तद्वनमुत्सृज्य जगामान्यन्महद्वनम् ॥ १४ ॥ नानावृक्षगणैर्युक्तं बहुश्वापदसङ्कुलम् ॥ एवंसपृथिवीपालो

मुझसे त्यागी हुई पतिव्रता दमयन्ती उस कुण्डिनपुरको जायगी वह नृपति ऐसा निश्चयकर व सुखसे सोती हुई उस स्त्री को छोड़कर जङ्गली जीवों से समाकुल घोरवनको चलागया और प्रातःकाल वह सुन्दरी उठकर जबतक देखै ॥ १० । ११ ॥ तबतक जिस बगल में नल टिके थे उसको शून्य देखा तदनन्तर दुःखसे विकल होतीहुई उस कानन में करुणास्वरसे विलापकर ॥ १२ ॥ व मार्गके आश्रित होकर धीरे२ पिताके मन्दिर को चलीगई और छोड़ेहुये नलभूपति ने भी उसी वनमें अकेले घूमते हुये सदैव वृक्षोंके कुंजों (लतादिसे छिपे स्थानों) को सेवन किया उसके उपरान्त उस वनको त्यागकर दूसरे महावनको गमन किया ॥१३।१४॥

जो वन कि अनेक प्रकार के वृक्ष समूहों से संयुत व बहुतेरे जङ्गली जीवोंसे व्याप्त था इसप्रकार जनके विना वह भूपाल घूमता हुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर हाटकेश्वर जीसे उपजे हुये क्षेत्रको पहुँचगया इसीबीचमें वह महानवमी का दिन प्राप्तहुवा ॥ १६ ॥ कि जिस महानवमीके दिनमें भूपाल लोग विशेषतासे सुरेश्वरीको पूजते हैं तदनन्तर उस नलनामक नृपति ने चर्ममुण्डधारिणी मृन्मयी (मृत्तिका) की मूर्त्ति को बनाकर ॥ १७ ॥ उसके पीछे विभव (ऐश्वर्य्य) के अभाव से फलमूलों से तृप्त किया तदनन्तर परमश्रद्धा संयुत नैषधाधिप नलजी आपही हाथ जोड़हुये उसमूर्त्तिके आगेखड़े होकर व स्तुतिको कर ॥ १८।१९ ॥ नलबोले कि हे उत्तमे, हे चर्ममुण्ड

भ्रममाणोविनाजनम् ॥ १५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रमाससादततःपरम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तं तन्महानवमीदिनम् ॥१६॥ विशेषाद्यत्रभूपालाः पूजयन्तिसुरेश्वरीम् ॥ ततःसमृन्मयींकृत्वा चर्म्ममुण्डधरांनृपः ॥ १७ ॥ विभवाभावतःपश्चात्फलमूलैरतर्प्पयत् ॥ ततस्तस्याःस्तुतिंकृत्वा पुरःस्थित्वाकृताञ्जलिः ॥ १८ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो नैषधाधिपतिःस्वयम् ॥ १९ ॥ नलउवाच ॥ जयसर्वगतेदेवि चर्म्ममुण्डधरेवरे ॥ जयसर्वाधिपनुते दक्षेदक्षात्मजेशुभे ॥ २० ॥ कालरात्रिजयाचिन्त्ये नवम्यष्टमिवल्लभे ॥ त्रिनेत्रेत्र्यम्बकाभीष्टेजयदेविसुरार्चिते ॥ २१ ॥ भीमरूपेसुरूपेच महाविद्येमहाबले ॥ महोदयेमहाकाये जयदेविमहाव्रते ॥ २२ ॥ नित्यरूपेजगद्धात्रि सुरामांसवसाप्रिये ॥ विकरालिमहाकालि जयप्रेतजनानुगे ॥ २३ ॥ शवयानरतेरम्ये सुराधीशेनमोस्तुते ॥ पाशहस्तेमहाहस्ते रुधिरौघकृतास्पदे ॥ २४ ॥

धारिणी, हे सर्वव्यापिनी, हे देवि ! तुमजय करो हे समस्त अधिपतियों से प्रणाम की हुई, हे शुभे, हे दक्षे, हे दक्षात्मजे ! तुम जयकरो ॥ २० ॥ हे कालरात्रि, हे चिन्तवनरहिते, हे अष्टमी व नवमीकी प्यारी ! तुम जयकरो हे त्रिलोचने, हे त्रिलोचनप्रिये, हे भक्तवरदायिनि, हे देवपूजिते ! तुम जयकरो ॥ २१ ॥ हे करालरूपे, हे उत्तम रूपे, हे महाविद्ये, हे महाबले, हे महैश्वर्य्ये, हे महाशरीरे, हे महाव्रते, हे देवि ! जयकरो ॥ २२ ॥ हे नित्यरूपे, हे संसारधारिणि, हे मदिरा व मांस व मेदाप्रिये, हे विकरालि, महाकालि, हे प्रेतजनानुगामिनि ! तुम जयकरो ॥ २३ ॥ हे शववाहनतत्परे, हे सुन्दरि, हे देवेशि, हे पाशहस्ते ! हे महाहस्ते ! हे रक्तप्रवाहकृतस्थाने ! तुम्हारे लिये

सूतजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वह देवी अन्तर्द्धान होगई और उस नृपतिपुङ्गवने भी उससे कहेहुये समस्त पदार्थको पाया ॥३४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनलनृपकृतचर्ममुण्डास्तुतिर्नामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सो पचपन अध्याय में बरणत शुभ उपदेश । जिमि नलेश शिव थापिकै प्रमुदित भयो नरेश ॥ सूतजी बोले कि उसी चर्ममुण्डाही के समीप में टिके व नलभूपाल से थापेहुये देवताओं के देवता महेश्वरजीको देखकर मनुष्य पापसे छूटजाता है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! माघमास के शुक्लपक्ष में छठि तिथिमें जो मनुष्य

लो लेभेसर्वंतयोदितम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे नलनृपकृतचर्म्ममुण्डास्तुतिर्नामचतुःपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्याएवसमीपस्थं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ दृष्ट्वाविमुच्यतेपापात्स्थापितंनलभूभुजा ॥ १ ॥ यस्तंपश्ये न्नरोभक्त्यामाघषष्ठ्यांसितेद्विजाः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तः प्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ २ ॥ कण्डूःपामाथदारूणि मण्डलानि विचर्चिका ॥ दर्शनात्तस्यनश्यन्ति जन्तूनांभावितात्मनाम् ॥ ३ ॥ अस्तितस्याग्रतःकुण्डं स्वच्छोदकसुपूरितम् ॥ मत्स्यकूर्म्मसमाकीर्णं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ ४ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं प्रत्यूषेसूर्य्यवासरे ॥ अपिकुष्ठामयग्रस्तः सभूयःस्यात्पुनर्नवः ॥ ५ ॥ यदासंस्थापितःशम्भुर्नलेनपृथिवीभुजा ॥ तदातुष्टेनसंप्रोक्तो ब्रूहिकिन्तेकरोम्यहम् ॥ ६ ॥

भक्ति से उन महादेवजीको देखता है वह समस्त रोगोंसे विशेषकर छूटाहुआ परम पदको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इसके अनन्तर शुद्धमन या चित्त वाले प्राणियों के दाद व खाज व कुष्ठके कठिन मण्डलाकार (चिह्ने) उन शिवाजीके दर्शनसे नष्टहोजाते हैं ॥ ३ ॥ उन्हीं शिवजीके आगे निर्मलजलसे पूर्ण कुण्ड है जो कि मछलियों व कछुओं से व्याप्त व कमलिनी के समूहों से शोभित है ॥ ४ ॥ उस कुण्ड में रविवारके दिन प्रातःकाल जो स्नान करता है वह कुष्ठरोगसे ग्रस्त (गँसाहुआ) भी फिर नवीन होजाता है ॥ ५ ॥ जिस समय नल भूपालने शिवजी को भलीभांति थापा है उसी समय प्रसन्नहुये उन सदाशिव जीने उस नृप से कहा कि कहिये मैं

प्रणाम होवै ॥ २४ ॥ हे मनोहरशरीरलते, हे प्रियगानवाद्यविभूषिते, हे अनन्ते ! जयकरो हे शिव शरीरार्धसंस्थिते, हे ध्यानयोग्ये ! जयकरो ॥ २५ ॥ तुम्हीं स्नेह हो तुम्हीं धैर्य्य हो तुम्हीं प्रसन्नताहो तुम्हीं पार्वती हो तुम्हीं देवेशी हो तुम्हीं लक्ष्मी हो तुम्हीं सावित्री हो व निस्सन्देह तुम्हीं गायत्री हो ॥ २६ ॥ हे देवि ! जिस से तीनों लोकों में जो कुछ स्त्रीका रूप देख पड़ता है सब कहीं वह तुम्हारे अंशसे है मुझको कुछ विकल्पना नहीं है ॥ २७ ॥ उसी सत्य से हे सुर व असुरों से नम स्कार की हुई ! समीपता की भक्ति से प्रसन्न होतीहुई तुम शीघ्रही यहां निवासकरो ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार नल नृपति से स्तुति कीहुई वह भक्तप्रिया

सुशरीरलतेभीष्टगीतवाद्यविराजिते ॥ जयानन्तेजयध्येयेभर्गदेहार्धसंश्रये ॥ २५ ॥ त्वंरतिस्त्वंधृतिस्तुष्टिस्त्वंगौरीत्वंसुरेश्वरी ॥ त्वंलक्ष्मीस्त्वंचसावित्री गायत्रीत्वमसंशयम् ॥२६॥ यत्किञ्चित्रिषुलोकेषु स्त्रीरूपंदेविदृश्यते ॥ तत्सर्वंत्रतवांशेन विकल्पोस्तिनमेक्कचित् ॥ २७ ॥ येनसत्येनतेनत्वमत्रावासंद्रुतंकुरु ॥ सान्निध्यभक्तितस्तुष्टा सुरासुरनमस्कृते ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ एवंस्तुताचसादेवी नलेनचचतुर्भुजा ॥ प्रोवाचदर्शनंगत्वा तंनृपंभक्तवत्सला ॥ २९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेवत्सस्तोत्रेणानेनसाम्प्रतम् ॥ तस्माद्गृहाणमत्तस्त्वं वरंमनसिसंस्थितम् ॥ ३० ॥ नलउवाच ॥ दमयन्तीतिमेभार्य्या प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ सामयानिर्जनेमुक्ता वनेमृगगणान्विते ॥ ३१ ॥ अखण्डशीलांनिर्दोषां यथाहंत्वत्प्रसादतः ॥ लभेभूयोपितांदेवि तथात्रकुरुसत्वरम् ॥ ३२ ॥ स्तोत्रेणानेनयोदेवि स्तुतिंकुर्य्यात्पुरस्तव ॥ तत्रैवदिवसेतस्मैत्वयादेयंमनोगतम् ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय जगामादर्शनंततः ॥ सोपिपार्थिवशार्दू

व चार भुजाओंवाली देवी दर्शन को प्राप्तहोकर उस नृपति से बोली ॥ २९ ॥ श्रीदेवी बोली कि हे वत्स ! तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं इस समय बहुतही प्रसन्न हूं इस लिये मनमें भलीभांति टिके हुये वरदान को तुम मुझसे ग्रहण करो ॥ ३० ॥ नल बोले कि दमयन्ती ऐसी मेरी स्त्री जोकि प्राणोंसे भी प्यारी थी वह मृगगणों से संयुत व निर्जन वनमें मुझसे छोड़दीगई ॥ ३१ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से अखण्डितशीलवाली व निर्दोष उस स्त्रीको मैं फिर भी पाऊं वैसाही शीघ्र कीजिये ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तुम्हारे आगे जो पुरुष इस स्तोत्र से स्तुति करै है उसके लिये उसी दिन तुमको मनमें प्राप्तहुये वाञ्छित को देना चाहिये ॥ ३३ ॥

तुम्हारे किस कार्य्य को करूं ॥ ६ ॥ नल बोले कि हे शङ्करदेव जी ! समस्त मनुष्यों के हितके लिये व रोगों के नाशके लिये तुमको समीपतासे यहां सदैव टिकना चाहिये ॥ ७ ॥ शङ्करजी बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे वचन से सोमवार का दिन प्राप्तहोने पर प्रातःकाल मैं मन्दिर में निवास करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ हे भूपति ! माघमहीने में शुक्लपक्ष की अष्टमी मे सम्पूर्ण दिनरात्रि प्राणियों के रोगोंके नाशके लिये विशेषता से यहां टिकेहुये मुझको उस दिन जो मनुष्य भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर अतिनिर्मल कुण्ड में नहाकर देखैगा ॥ ९ । १० ॥ उसके शरीर से उपजेहुये रोग नाश होजावैंगे और जो मनुष्य सोमवार को निशानाश होने

नलउवाच ॥ अत्रस्थेयंत्वयादेव सदासन्निहितेनच ॥ सर्वलोकहितार्थाय रोगनाशायशङ्कर ॥ ७ ॥ शङ्करउवाच ॥ अहंत्वद्वचनाद्राजन्सम्प्राप्तेसोमवासरे ॥ प्रत्यूषेचनिवत्स्यामिप्रासादेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ माघाष्टम्यामहोरात्रं सकलंच महीपते ॥ प्राणिनांरोगनाशाय शुक्लपक्षेविशेषतः ॥ ९ ॥ योमामत्रस्थितंतत्र दिवसेवीक्षयिष्यति ॥ स्नात्वासुविमले कुण्डे सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ १० ॥ तस्यनाशंप्रयास्यन्ति व्याधयोगात्रसम्भवाः ॥ योस्यकुण्डस्यसम्भूतां मृत्तिकामपिमानवः ॥ ११ ॥ सन्धास्यतिनिजेदेहे सोमवारेनिशाक्षये ॥ सोपिरोगैर्विनिर्मुक्तः सुभविष्यतिपुष्टिमान् ॥ १२ ॥ निष्कामोवीक्ष्ययोमांतु तस्मिन्कालेनृपोत्तम ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्त्रैलोक्यदीपकोहरः ॥ अन्तर्द्धानंगतोविप्रायथादीपोत्रतत्क्षणात् ॥ १४ ॥ नलोपितुष्टिमापन्नस्तमाराध्यविधिंनृपः ॥ तदाहूयाखिलान्विप्रांश्चमत्कारपुरोद्भवान् ॥ १५ ॥ एषसंस्थापितःशम्भुर्मयायुष्मत्पुरान्तिके ॥ ये

पर इस कुण्ड की मिट्टी को भी अपनी देहमें धारैगा वहभी रोगों से छूटकर बडा बलवान् होवैगा ॥ ११ । १२ ॥ हे नृपोत्तम ! उसी समय में जो अकाम पुरुष मुझ को देखकर व भक्तिसे पुष्प, धूप, चन्दनादि लेपनोंसे पूजैगा वहभी रोगोंसे छूटकर पुष्टिमान् होगा ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहकर त्रिलोकके दीपकरूप सदाशिव भगवान् जी अन्तर्द्धान होगये जैसे कि यहां उसी क्षण दीपक अदृश्य होजाता है ॥ १४ ॥ नल नृपति ने भी विधिसे उन शिवजी की आराधनाकर प्रसन्नता को पाया उस समय चमत्कार नगर में उपजे हुये समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर कहा ॥ १५ ॥ कि तुम्हारे नगरके समीप मैंने इन शिव जीको थापा है जिन

को देखने से समस्त रोगों का नाश होजाता है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस समय मैं अपने राज्य के लिये अपनी नैषधनगरी को जाऊंगा और ये सदाशिवजी सावधान होतेहुये तुम सबों से पूजने योग्य हैं ॥ १७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे नृपपुङ्गव ! जहांपर यात्राओं में व उत्तम कर्मों में सावधान होतेहुये तुम्हारे देवताके लिये हम ऐसाही करैंगे ॥ १८ ॥ और बड़ी श्रद्धासंयुतवाले पूजनको करैंगे व हमलोगों के जो पुत्र, पौत्र होवैंगे तथा और जे वंशमें होवैंगे वेभी उत्तम भक्तिसे इन शिवजीकी पूजा करैंगे ॥ १९ । २० ॥ सूतजी बोले कि उन ब्राह्मणों से इसप्रकार कहेहुये उस भूपालने प्रसन्नता समेत होकर उनको उच्चप्रकार से प्रणामकरव उन सबों

नदृष्टेनरोगाणां सर्वेषांजायतेक्षयः ॥ १६ ॥ अधुनाहंगमिष्यामि स्वराज्यस्यकृतेद्विजाः ॥ नैषधींस्वांपुरीमेष सर्वैःपूज्यःसमाहितैः ॥ १७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एवंपार्थिवशार्दूलकरिष्यामःसमाहिताः ॥ तवदेवकृतेयत्र यात्रासुसुक्रियासु च ॥ १८ ॥ तथापूजांकरिष्यामः श्रद्धयापरयायुताम् ॥ अस्माकंपुत्रपौत्राये भविष्यन्तितथापरे ॥ १९ ॥ वंशजास्ते करिष्यन्ति पूजांयस्यसुभक्तितः ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तःसभूपालस्तैर्विप्रैस्तुष्टिसंयुतः ॥ प्रतस्थेतान्प्रणम्योच्चैः सर्वैस्तैश्चाभिनन्दितः ॥ २१ ॥ एवंसभगवाञ्छम्भुस्तस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ हितायसर्वलोकानां सर्वरोगक्षयावहः ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वीक्षणीयःसदाशिवः ॥ विशेषात्सोमवारेण शाश्वतंश्रेयइच्छता ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेनलेश्वरमाहात्म्यन्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्यापिनातिदूरस्थं साम्बादित्यंसुरेश्वरम् ॥ दृष्ट्वाकामानवाप्नोति सर्वान्मर्त्योहृदिस्थितान् ॥ १ ॥

से प्रशंसित होतेहुये प्रस्थान किया ॥ २१ ॥ इसप्रकार समस्त रोगोंके क्षयकारक शम्भु भगवान् सब मनुष्यों के कल्याण के लिये उस स्थानमें विशेषता से टिकगये ॥ २२ ॥ इसलिये सदैव कल्याणके चाहनेवाले मनुष्य को सोमवार में विशेषता से सदाशिव जीको देखना चाहिये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनलेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥- ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छप्पनके अध्यायमें द्विजगालव सुतहीन । रविहि अराधि सपुत्र भे कथा कथित सोइ कीन ॥ सूतजी बोले कि उसी के कुछ दूर में टिकेहुये साम्बादित्य सुर-

नायक को देखकर मनुष्य मनमे टिकेहुये समस्त मनोरथों को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ व माघमास की शुक्लपक्षवाली सप्तमी में रविवार को जो मनुष्य भक्तिसे भलीभांति देखता है वह निश्चयकर नरकों को नहीं देखता है ॥ २ ॥ पुरातन समय गालव नामक ब्राह्मण हुये हैं जोकि वेद व वेदांगों के पार जानेवाले व नित्यही वेदपाठमें तत्परथे ॥ ३ ॥ व पवित्रव्रत या कर्मों में परायण तथा देवता व द्विजों में तत्पर व किये उपकारको जाननेवाले व यज्ञके कर्म में चतुर व उत्तम स्वभाव या चरित्र वाले थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार वर्तमान होतेहुये उस बिन पुत्रवाले द्विजोत्तम की पिछली अवस्था प्राप्तहुई इसीकारण दुःख उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त समस्त गृह

यस्तुमाघस्यशुक्लायां सप्तम्यांरविवासरे ॥ भक्त्यासम्पश्यतेमर्त्यो नरकान्नैवपश्यति ॥ २ ॥ आसीत्पूर्वंद्विजोनाम गालवःसमहामुनिः ॥ स्वाध्यायनिरतोनित्यं वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३ ॥ शुचिव्रतपरःशान्तो देवद्विजपरायणः ॥ कृतज्ञश्चसुशीलश्चयज्ञकर्म्मविचक्षणः ॥ ४ ॥ तस्यैवंवर्त्तमानस्यसम्प्राप्तंपश्चिमंवयः ॥ अपुत्रस्यद्विजश्रेष्ठस्यातोदुःखंविजायते ॥ ५ ॥ ततःसर्वंपरित्यज्य गृहकृत्यंसभक्तिमान् ॥ सूर्य्यमाराधयामास क्षेत्रेत्रैवसमाहितः ॥ ६ ॥ वटवृक्षंसमाश्रित्य श्रद्धयापरयायुतः ॥ स्थापयित्वारवेरर्घान्यथोक्तान्पञ्चरात्रके ॥ ७ ॥ वर्षास्वाकाशशायीच हेमन्तेजलसंश्रयः ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे निराहारोजितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ ततःपञ्चदशेवर्षे सम्प्राप्तेभगवान्रविः ॥ वटवृक्षंसमाश्रित्य समीपस्थमुवाचतम् ॥ ९ ॥ वरदोस्मीतिभद्रंते वरंप्रार्थयगालव ॥ १० ॥ गालवउवाच ॥ अपुत्रोहंसुरश्रेष्ठ पश्चिमेवय

कार्य्य को त्यागकर उस भक्तिमान्ने सावधान होकर इसी क्षेत्र में सूर्य्यको आराधन किया ॥ ६ ॥ व परमश्रद्धासंयुत होतेहुये बरगद वृक्षके भलीभांति आश्रित होकर जैसे कहे हैं वैसेही पञ्चरात्रकर्मे सूर्य्यनारायण जीके अर्घों को स्थापितकर ॥ ७ ॥ वह जितेन्द्रिय निराहार होकर वर्षा में आकाशशायी व हेमन्त में जलसंश्रयी तथा ग्रीष्म में पञ्चाग्नि का साधक हुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर जब पन्द्रहवां वर्ष भलीभांति प्राप्तहुआ तब भगवान् सूर्य्यनारायण जी वटवृक्षका भलीभांति आश्रितकर समीप में टिकेहुये उन गालवसे यह बोले ॥ ९ ॥ कि हे गालव ! तुम्हारा कल्याणहो मैं वरदायकहूं तुम वरदानको मांगो ॥ १० ॥ गालवजी बोले कि हे सुरोत्तम !

पिछली अवस्थामें प्राप्त मैं पुत्ररहित हूं इस कारण मेरे लिये वंशके वृद्धिकारक परमपुत्रको दीजिये ॥ ११ ॥ श्रीसूर्य्यनारायणजी बोले कि हे द्विज ! तेजस्वी, यशस्वी
व वेदका पारगामी तथा शास्त्रका ज्ञाता व वंशका वृद्धिकर्त्ता पुत्र तुम्हारे निश्चय होवैगा ॥ १२ ॥ और साम्बसूर्य्य जीके समीप तुमने जो इस अर्घके पूजनको किया है
धरणीतल में यह साम्बसूर्य्य के नामसे होवैगी ॥ १३ ॥ व श्रद्धा समेत और भी जो पुरुष जबतक द्वादश (बारह) सूर्य्य रहैं तबतक रविवार सहित सप्तमी तिथि
में इसको पूजैगा ॥ १४ ॥ व हे द्विजोत्तम ! सप्तमी तिथि में भी पुत्रकी इच्छासे निराहार होतेहुये जो पूजैगा वह निस्सन्देह वंशके बढ़ानेवाले पुत्रको पावैगा ॥ १५ ॥

सिस्थितः ॥ तस्माद्देहिसुतंमह्यं वंशवृद्धिकरंपरम् ॥ ११ ॥ श्रीसूर्य्यउवाच ॥ वंशवृद्धिकरोविप्र पुत्रस्तेहिभविष्यति ॥ ते
जस्वीचयशस्वीच शास्त्रज्ञोवेदपारगः ॥ १२ ॥ येयंत्वयाकृतार्घार्चा साम्बसूर्य्यस्यसन्निधौ ॥ साम्बसूर्य्याभिधानेयं भवि
ष्यतिधरातले ॥ १३ ॥ अन्योपिश्रद्धयोपेतो यएनांपूजयिष्यति ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण यावद्द्वादशभास्कराः ॥ १४ ॥
सप्तम्याञ्चद्विजश्रेष्ठ निराहारःसुतेच्छया ॥ सप्राप्स्यतिनसन्देहः पुत्रंवंशविवर्धनम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाचसप्ताश्वो
विरराममदिवाकरः ॥ गालवोपिप्रहृष्टात्मा जगामनिजमन्दिरम् ॥ १६ ॥ नातिदीर्घेणकालेन ततस्तस्याभवत्सुतः ॥
यथोक्तस्तेनदेवेन सर्वलक्षणलक्षितः ॥ १७ ॥ ततश्चक्रेपितानाम वटेश्वरइतिस्वयम् ॥ वटस्थेनयतोदत्तः सन्तुष्टेनां
शुमालिना ॥ १८ ॥ वटेश्वरसुतान्दृष्ट्वा पौत्रांश्चद्विजसत्तमाः ॥ गालवःसूर्य्यमापन्नः कृत्वासुविपुलंतपः ॥ १९ ॥ वटे
श्वरोपिसञ्ज्ञाय पित्रासंस्थापितंरविम् ॥ तदर्थंकारयामास प्रासादंसुमनोहरम् ॥ २० ॥ ततःप्रभृतिलोकेस्मिन् सव

ऐसा कहकर सात घोड़ेवाले दिनकरजी चुप होगये व प्रसन्नमनवाले गालवभी अपने घरको चलेगये ॥ १६ ॥ तदनन्तर नहीं अतिदीर्घ याने थोड़ेही समय से
जैसा उन दिनकरदेवजीने कहाथा वैसाही उन गालव के समस्त लक्षणोंसे चिह्नित पुत्र हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर जिसलिये कि वटमें टिकेहुये प्रसन्न सूर्यनारायण
जीने दियाथा इससे पिताने आपही वटेश्वर इस नामको किया ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वटेश्वर के पुत्र व पौत्रोंको देखकर गालवजी बड़ेभारी तपको कर सूर्य्यना-
रायण को प्राप्त होगये ॥ १९ ॥ वटेश्वर ने भी पितासे थापेहुये सूर्य्यनारायण को जानकर उनके लिये बहुतही मनोहर मन्दिर को निर्मित कराया ॥ २० ॥ तब से

लगाकर इस लोकमें पुत्रहीन जनोंको पुत्रदायक वे वटादित्य तीनों भुवनमें प्रसिद्धहुये ॥ २१ ॥ रविवार समेत सप्तमी तिथिमें उपास में तत्पर होताहुआ जो मनुष्य भक्तिसे सप्तमी तिथिमें उन दिनकर को बारह के क्रमसे पूजता है ॥ २२ ॥ वह अपने वंश को विशेषकर बढ़ानेहारे उत्तमपुत्र को पाताहै व जो मनुष्य निष्काम होताहै व उन शिवजी को पूजता है ॥ २३ ॥ वह निश्चय कर देवतोंसेभी दुर्लभ मोक्षको पाताहै इसके अनन्तर पुरातन समय नारद महर्षि ने वटादित्य नामक सुरनायक देवको पुत्रदायक देखकर गाथा (कथा) को गान कियाहै कि सौवर्षसेभी बांझ या दुर्भगा स्त्रीभी हो ॥ २४ । २५ ॥ परन्तु साम्बसूर्य्यकी प्रसन्नता से उसी

टादित्यसञ्ज्ञितः ॥ पुत्रप्रदोह्यपुत्राणां विख्यातोभुवनत्रये ॥ २१ ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण चोपवासपरायणः ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या सप्तम्यांद्वादशक्रमात् ॥ २२ ॥ सप्राप्नोतिसुतंश्रेष्ठं स्ववंशस्यविवर्धनम् ॥ निष्कामोजायतेयस्तु तंपूजयतिमानवः ॥ २३ ॥ समोक्षमाप्नुयान्नूनं दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ अथगाथापुरागीता नारदेनसुरर्षिणा ॥ २४ ॥ दृष्ट्वापुत्रप्रदंदेवं वटादित्यंसुरेश्वरम् ॥ अपिवर्षशतेनारी बन्ध्यावादुर्भगापिवा ॥ २५ ॥ साम्बसूर्य्यप्रसादेन सद्योगर्भवतीभवेत् ॥ किंदानैःकिंव्रतैर्ध्यानैः किंजपैःसोपवासकैः ॥ २६ ॥ पुत्रार्थेविद्यमानेथ साम्बसूर्य्येश्वरेश्वरे ॥ वर्षमेकंनरोभक्त्या यः पश्येत्सूर्य्यवासरे ॥ २७ ॥ कृतक्षणोत्रपुत्रंस लभतेचोत्तमंसुखम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्देवंयत्नतोद्विजाः ॥ २८ ॥ पश्येदात्महितार्थाय स्ववंशपरिवृद्धये ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेसाम्बादित्यमाहात्म्यन्नाम षट्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

क्षण गर्भवती होवै है इसके अनन्तर जब ईश्वरेश्वर साम्बसूर्य्यजी पुत्र के लिये वर्तमान हैं तब दानोंसे क्या है व व्रतों, ध्यानोंसे क्या है व उपास समेत जपोंसे क्या है रविवार में जो मनुष्य एक वर्षभर भक्तिसे देखता है ॥ २६ । २७ ॥ व जो पुरुष यहां उद्योग कियाहुआ होताहै वह उत्तम पुत्रको तथा सुखको प्राप्त होताहै इसलिये हे ब्राह्मणो ! अपने हितके लिये व अपने वंशकी सबओर से वृद्धिकेलिये सब उपाय से उन सूर्य्यनारायण देवके दर्शन करै ॥ २८ । २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसाम्बादित्यमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सत्तावन अध्याय महँ बरणत सुभग चरित्र । यथा भीष्मजी सूर्य्य की थाप्यो मूर्ति विचित्र ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसेही उस क्षेत्रमें द्विजेन्द्रों तथा अपने समेत भीष्मजी ने सूर्य्यनारायण को थापाहै ॥ १ ॥ पुरातन समय मनुष्यों में श्रेष्ठ व ऊर्ध्वरेता याने वीर्य्यको ऊपर प्राप्त करनेवाले तथा बहुतही प्रसिद्ध शन्तनुजी के प्रियपुत्र गाङ्गेय ऐसे विख्यात हुयेहैं ॥ २ ॥ उन भीष्मजीका भृगु के पुत्र परशुरामजी के साथ अम्बाके लिये देवता व दैत्योंके संग्राम के समान अस्त्र व शस्त्रोंसे तेईस दिन निश्चय बड़े बांधका व बड़ाभारी युद्ध हुआहै तदनन्तर उसके उपरान्त उन दोनोके मना करनेके लिये व देहधारियोंकी शान्तिके निमित्त ब्रह्मादिक

सूतउवाच ॥ तस्मिन्क्षेत्रेतथादित्यः स्थापितोद्विजसत्तमाः ॥ भीष्मेणब्राह्मणेन्द्राणां समेतेनतथात्मनः ॥ १ ॥ शन्तनोर्दयितःपुत्रो गाङ्गेयइतिविश्रुतः ॥ आसीत्पुरावरोनृणामूर्ध्वरेताःसुविश्रुतः ॥ २ ॥ तस्यासीत्तुमुलंयुद्धं भार्गवेण सममहत् ॥ त्रयोविंशद्दिनान्येव देवासुररणोपमम् ॥ ३ ॥ अम्बाकृतेशतैश्शस्त्रैरस्त्रैश्चतदनन्तरम् ॥ ततोब्रह्मादयोदेवाः स्वयमेवव्यवस्थिताः ॥ ४ ॥ ताभ्यांनिवारणार्थायशान्त्यर्थंसर्वदेहिनाम् ॥ गताश्चतेसमेस्थाप्य पुनरेवत्रिविष्टपम् ॥ ५ ॥ अम्बापिप्राप्यपरमं गाङ्गेयोत्थंपराभवम् ॥ प्रविष्टाकोपरक्ताक्षी सुसमिद्धेहुताशने ॥ ६ ॥ भर्त्सयित्वातदापुत्रं बाष्पव्याकुललोचना ॥ ततःप्रोवाचमध्यस्था वह्नेःकुरुपितामहम् ॥ ७ ॥ यस्मात्त्यक्तात्वयाभीष्म कामार्त्ताहंसुदुर्मते ॥ तस्मात्तववधार्थाय भविष्यामिपुनःक्षितौ ॥ ८ ॥ स्त्रीहत्ययासमायुक्तस्त्वंचनूनंभविष्यसि ॥ प्रमाणंयदिधर्मोत्रस्मृतिशास्त्रसमुद्भवः ॥ ९ ॥ ततःसघृणयाविष्टोभीष्मःकुरुपितामहः ॥ मार्कण्डेयंमुनिश्रेष्ठं पप्रच्छविनया

देवता आपही प्राप्त हुये व समभाव में स्थापितकर फिर स्वर्गको चलेगये ॥ ३ । ४ । ५ ॥ अम्बाभी भीष्मजी से उठेहुये बड़े पराभव (अनादर) को प्राप्त होकर क्रोध से लाल लोचनवाली होतीहुई बढ़ेहुये अग्निमें पैठगई ॥ ६ ॥ आंसुओं से विकल लोचनोंवाली व अग्निके मध्य में टिकीहुई अम्बा उस समय पुत्रहीन कुरुपितामह भीष्म को निन्दकर तदनन्तर बोलीं कि हे दुष्टबुद्धिवाले, भीष्म ! जिसलिये तुमने कामसे दुःखित मुझको छोड़ा है उसी लिये तुम्हारे मारने के निमित्त मैं पृथ्वी में फिर हूंगी ॥ ७ । ८ ॥ और यदि इस विषय में स्मृतिशास्त्र से उपजा हुआ धर्म प्रमाण है तो निश्चयकर तुम स्त्रीकी हत्यासे संयुत होगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर कुरुवंश

के पितामह (बाबा) वे भीष्म जी घृणा (निन्दा) से युक्तहुये व विनयसंयुत होकर मुनिसत्तम मार्कण्डेय जी से पूंछा ॥ १० ॥ कि हे भगवन् ! काशिराज की कन्याने मेरे मृत्युकारक वचनको कहा है वह सब मुझको होवैगा ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! क्या वह वचन वाक्यमात्रही होगा या नहीं इसमें मुझको सन्देह है तुम उसको यथायोग्य कहने के योग्य हो ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि निरादर किया हुआ या ताड़ित भी स्त्रीजन या द्विज भी जिसको उद्देश कर प्राणों को त्याग करै वह पाप तो उसको होवै है ॥ १३ ॥ इसलिये यदि अपना कल्याण चाहै तो मारते या शाप देते हुये स्त्री को अथवा ब्राह्मणको भी क्रोध न करावै ॥ १४ ॥ फिर

न्वितः ॥ १० ॥ भगवन्काशिराजस्य सुतयामेप्रजल्पितम् ॥ ममम्रृत्युकरंवाक्यं सकलंतद्भविष्यति ॥ ११ ॥ तत्किं स्याद्वाक्यमात्राणि नोवाब्राह्मणसत्तम ॥ अत्रमेसंशयस्तत्त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आक्षिप्तस्ताडितोवापि यमुद्दिश्यत्यजेदसून् ॥ स्त्रीजनोवाद्विजोवापि तस्यपापन्तुतद्भवेत् ॥ १३ ॥ स्त्रियंवाब्राह्मणंवापि तस्मान्नैवप्रकोपयेत् ॥ निघ्नन्तंवाशपन्तंवा यदीच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ १४ ॥ त्वयापुनर्वराकन्या कामार्तासमुपेक्षिता ॥ जित्वास्वयंवरेभूपात्तत्कथंस्यान्नपापभाक् ॥ १५ ॥ भीष्मउवाच ॥ तदर्थमेवदब्रह्मन्प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ तपोवायदिवादानं व्रतंनियममेववा ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दशानांब्राह्मणेन्द्राणां यद्वधेपातकंस्मृतम् ॥ तत्पापंस्त्रीवधेकृत्स्नं जायतेभरतर्षभ ॥ १७ ॥ तदत्रविषयेनैव तपोदानव्रतानिच ॥ तीर्थसेवांपरित्यज्य तस्मात्त्वंतांसमाचर ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ सतस्यवचनंश्रुत्वा भीष्मःकुरुपितामहः ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वा बभ्रामक्षितिमण्डले ॥ १९ ॥ ततःक्रमा

तुमने स्वयंवर में भूप से जीतकर कामसे विकल उत्तम कन्याको त्याग दिया तो कैसे पापभागी न होगे ॥ १५ ॥ भीष्मजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! विशेषता से शुद्धता के निमित्त उसके लिये मुझसे प्रायश्चित्त को कहिये तपहो अथवा दानहो या व्रतहो अथवा नियमहीहो ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भरतर्षभ ! दश द्विजेन्द्रों के मारने में जो पाप कहा है वही समस्त पातक स्त्री के वध में होता है ॥ १७ ॥ इसलिये तीर्थसेवा को छोड़कर इस विषय में न तप है न दान है न व्रतहीहै उस कारण तुम उसी तीर्थयात्रा को करो ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि कौरवोंके पितामह उन भीष्मजी ने उन मार्कण्डेय जी के वचनको सुनकर तीर्थयात्रा में तत्पर हो-

कर पृथ्वीमण्डल में भ्रमण किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर क्रम से पृथ्वीतल में घूमतेहुये भीष्मजी अनेक तीर्थों से संकुल चमत्कार नगरके क्षेत्रमें भलीभांति आये ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उन महात्मा ने बहुत पुण्यदायक उस गयाशिर तीर्थ को देखा व श्रद्धासंयुत होतेहुये जबतक विधिपूर्वक श्राद्धकरें ॥ २१ ॥ तबतक आकाशगामिनी वाणी इस वाक्यको प्रकटही बोली कि हे भीष्म ! हे भीष्म ! हे महाबाहो ! तुम श्राद्धसे उपजे हुये विधि के करने के लिये योग्य नहीं हो ॥ २२ ॥ क्योंकि स्त्रीकी हत्या से युक्तहो इसलिये मेरे वचनको सुनिये कि शर्मिष्ठातीर्थ ऐसाही प्रसिद्ध पातकों का विनाशक है ॥ २३ ॥ जो कि बड़ा पुण्यकारी इस स्थानसे पश्चिम दिशा

त्समायातो भ्रममाणोमहीतले ॥ चमत्कारपुरक्षेत्रे नानातीर्थसमाकुले ॥ २० ॥ अथापश्यन्महात्मासः सुपुण्यंत द्गयाशिरः ॥ स्नात्वाश्राद्धंचविधिवद्यावच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ २१ ॥ तावदाकाशगावाणी वाक्यमेतदुवाचह ॥ भीष्मभीष्ममहाबाहो नार्हस्त्वंश्राद्धजंविधिम् ॥ २२ ॥ कर्तुंस्त्रीहत्ययायुक्तस्तस्माच्छृणुवचोमम ॥ शर्मिष्ठातीर्थमित्येव ख्यातंपातकनाशनम् ॥ २३ ॥ अस्मात्स्थानात्समीपस्थं वारुण्यांदिशिपुण्यकृत् ॥ कृष्णाङ्गारकषष्ठ्यांयोनरःस्नानंसमाचरेत् ॥ २४ ॥ सस्त्रीहत्याकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ यस्मादद्यदिनेपुत्र भौमवारसमन्विता ॥ २५ ॥ सैव षष्ठीतिथिःपुण्या तस्मात्तत्रद्रुतंव्रज ॥ अहंतवपितापुत्र शन्तनुःपृथिवीपतिः ॥ २६ ॥ स्त्रीहत्ययान्वितंज्ञात्वा ततस्तूर्णमिहागतः ॥ ततोभीष्मोद्रुतंगत्वा तत्रस्थानेसमाहितः ॥ २७ ॥ स्नानंकृत्वाततःश्राद्धं चक्रेश्रद्धासमन्वितः ॥ ततोभूयःसमागत्य ततःप्रोवाचशन्तनुः ॥ २८ ॥ विपाप्मात्वंकुरुश्रेष्ठ सञ्जातोसिनसंशयः ॥ तस्मान्निजंगृहंगच्छ राज्यचि

में समीपही स्थितहै उसमें अङ्गारछठि के दिन जो मनुष्य स्नान करता है ॥ २४ ॥ वह स्त्री की हत्या कियेहुये पातकसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है जिसलिये हे पुत्र ! आज दिनमें वही पुण्यदायक छठितिथि मङ्गलवार से संयुत है इसलिये हे पुत्र ! वहांपर शीघ्रही जाओ और मैं तुम्हारा पिता शन्तनु नामक भूपति हूं ॥ २५ । २६ ॥ मैं तुम को स्त्रीहत्या से संयुत जानकर तदनन्तर शीघ्रही यहां आया उसके उपरान्त सावधान होते हुये भीष्मजीने उस स्थान में शीघ्रही जाकर ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्रद्धासंयुत होकर श्राद्ध को किया तदनन्तर फिर शन्तनुजी भलीभांति आकर उसके उपरान्त बोले ॥ २८ ॥ कि हे कुरूत्तम ! तुम निस्सन्देह पापविहीन

होगये हो इसलिये अपने घरको जावो व राज्यचिन्तनको भलीभांतिकरो ॥ २९ ॥ तदनन्तर विस्मयसे घिरे हुये उन कुरुश्रेष्ठ भीष्म जीने अति उत्तम तीर्थको जानकर जैसे समस्त वासुदेवात्मिका मूर्तिको थापा वैसेही श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उत्तम प्रमाणवाली व उत्तम रूपवाली तथा लक्षणोंसे लक्षित (चिह्नित) दूसरी पारिजातमयी सूर्य्यनारायण की मूर्तिको थापन किया ॥ ३० । ३१ ॥ व जैसे दानादिगुणयुक्त त्रिशूलधारी शिवजीके अन्य लिङ्गको थापा वैसेही भक्तिसंयुत होतेहुये विधिपूर्वक देखे कर्मसे दुर्गादेवी को थापन किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर कुरुवंशमें उपजे भीष्मजी नगरमें उपजेहुये समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर व विनयसे नीचे झुककर खड़ेहोते

न्तांसमाचर ॥ २९ ॥ ततःसविस्मयाविष्टो ज्ञात्वातीर्थमनुत्तमम् ॥ वासुदेवात्मिकांसर्वां यथान्यांकुरुसत्तमः ॥ ३० ॥ पारिजातमयींमूर्तिं रवेर्लक्षणलक्षिताम् ॥ सुप्रमाणांसुरूपांच श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ३१ ॥ यथान्यत्स्थापयामास लिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ दुर्गांचभक्तिसंयुक्तो विधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ ३२ ॥ ततःसर्वान्समाहूय सविप्रान्पुरसम्भवान् ॥ प्रोवाचकौरवोभीष्मो विनयावनतःस्थितः ॥ ३३ ॥ मयाविनिर्मितंविप्रा देवागारचतुष्टयम् ॥ एतत्क्षेत्रेचयुष्माकं दयांकृत्वाममोपरि ॥ ३४ ॥ अहमद्यप्रयास्यामि स्वगृहंप्रतिसत्वरम् ॥ प्रेरितःपितृभिश्चाद्य दिव्यैःस्वर्गसमाश्रितैः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ गच्छगच्छकुरुश्रेष्ठ सुविश्रब्धःस्वमायया ॥ वयंसर्वेकरिष्यामो युष्मच्छ्रेयोभिवर्धनम् ॥ ३६ ॥ देवश्रेणिरियंराजन् यात्वयात्रविनिर्मिता ॥ अस्याःपूजादिकंसर्वं करिष्यामोवयंसदा ॥ ३७ ॥ तथापिविनयंतेद्य सर्वेदृष्ट्वा वयंनृप ॥ सर्वान्प्रार्थयतस्मात्त्वं वरंस्वमनसिस्थितम् ॥ ३८ ॥ भीष्मउवाच ॥ एषएववरोस्माकं यत्सन्तुष्टाद्विजो

हुये बोले ॥ ३३ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे क्षेत्रमें मैंने इन चार देवमन्दिरोंको निर्माण किया है मेरे ऊपर दयाकर इनको पूजियेगा ॥ ३४ ॥ और स्वर्ग में भलीभांति टिकेहुये दिव्य पितरोंसे आज प्रेरणाकिया हुआ मैं अपने घरको शीघ्रही आज जाऊंगा ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे कुरूत्तम ! अपनी मायासे विश्वासको प्राप्त हुये तुम जावो २ हम सब तुम्हारे कल्याण या पुण्य के बढ़ानेवाले कर्मको करैंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! यहांपर तुमने जो इस देवताओं की पंक्ति का निर्माण किया है इसके समस्त पूजादिक को हमलोग सदैव करैंगे ॥ ३७ ॥ हे नृप ! तथापि आज तुम्हारे विनय को देखकर हमलोग प्रसन्नहुये हैं इसलिये सबों से तुम अपने मन

मे टिकेहुये वरदान को मांगो ॥ ३८ ॥ भीष्म जी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! जो तुम लोग प्रसन्नहो तो यही हमारा वर है तिसपर भी तुमलोगों के वचन इससमय मुझको शीघ्रही करना चाहिये ॥ ३९ ॥ कि भूतल में श्रद्धासंयुत होता हुआ जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तकर मेरे इन देवमन्दिरों का पूजनकरै उसकी वह कामना तुमलोगों की प्रसन्नता से निस्सन्देह होवै ॥ ४० । ४१ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि सावधान होतेहुये हमलोग भाद्रपद के मासमें रविवार समेत सप्तमी तिथि मे सदैवही सूर्य्यनारायण की यात्रा करैंगे ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! वैसेही चैतमासके शुक्लपक्ष में अष्टमी तिथिमें व विशेषकर चतुर्दशी में तुम्हारे स्नेहसे निस्सन्देह शिव

त्तमाः ॥ तथाप्याशुवचःकार्य्यं युष्मदीयंमयाधुना ॥३९॥एतानिदेवसद्मानि मदीयानिनरोभुवि ॥ योयंकाममभि ध्याय पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ४० ॥ प्रसादेनचयुष्माकंतस्यतस्यादसंशयम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ आदित्य स्यकरिष्यामो यात्रांभाद्रपदेवयम् ॥ सप्तम्यासूर्य्यवारेणसर्वदैवसमाहिताः ॥ ४२ ॥ तथाशिवस्यचाष्टम्यां चैत्रशुक्ले विशेषतः ॥ चतुर्दश्यांमहाभाग तवस्नेहादसंशयम् ॥४३॥शयनेबोधनेविष्णोः सम्प्राप्तेद्वादशीदिने ॥ विष्णोरपिचदु र्गायाः सम्प्राप्तेनवमीदिने ॥ ४४ ॥ आश्विनेशुक्लपक्षेच गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ महोत्सवैस्तथाचित्रैर्हास्यलास्यैःपृथ ग्विधैः ॥ ४५ ॥ यस्तत्रमानवोनित्यं श्रद्धयापरयायुतः ॥ करिष्यतिचगीतादि सयास्यतिपरांगतिम् ॥ ४६ ॥ वयंत स्यभविष्यामः सदैवप्रीतमानसाः ॥ प्रदास्यामस्तथाकामान्मनसावाञ्छितान्नृप ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वाथतेविप्राः स्वस्व

जीकी यात्राको करैंगे ॥ ४३ ॥ व विष्णु जीके शयन व बोधन द्वादशी दिनको भलीभांति प्राप्तहोने पर विष्णु जीकी भी तीर्थयात्राको करैंगे और कुवारके शुक्लपक्ष में नवमी दिन प्राप्त होनेपर गाने, बजानेके शब्दोंसे व बड़े उत्साहोंसे तथा भिन्नप्रकारके विचित्र हास्य, लास्य (नृत्यों) से दुर्गादेवी की तीर्थयात्राको करैंगे ॥४४।४५॥ वहांपर परमश्रद्धा संयुत जो मनुष्य नित्यही गीतादि को करैगा वह उत्तम गतिको जावैगा ॥ ४६ ॥ हे नृप ! और उस मनुष्यके ऊपर हमलोग सदैव प्रसन्न मनवाले होवैंगे तथा मनसे चाहेहुये अभिलाषों को अवश्य देवैंगे ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर वे ब्राह्मण अपने अपने स्थानों को चलेगये तदनन्तर प्रस-

न्नतासयुत भीष्मजीने भी अपने घरको प्रस्थान किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगाङ्गेयोपाख्यानंनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अट्ठावन अध्याय महँ शिव गङ्गा माहात्म्य । अरु पौण्ड्रक के चरितको कहत सूत याथात्म्य ॥ सूत जी बोले कि हे महाभाग्यवाले ! गङ्गाजी के पुत्र भीष्मजी ने इसप्रकार पुण्यदायक चार देवों को भलीभांति थापकर तदनन्तर शिवलिङ्ग के पूर्व ओर तीन मार्गों से गामिनी श्रीगङ्गाजीको बावलीमें भलीभांति थापन किया

स्थानानिभेजिरे ॥ भीष्मोपिहर्षसंयुक्तः स्वगृहंप्रस्थितस्ततः ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेगाङ्गेयोपाख्यानन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसंस्थाप्यगाङ्गेयः पुण्यंदेवचतुष्टयम् ॥ ततःसंस्थापयामास गङ्गांत्रिपथगामिनीम् ॥ १ ॥ वापिकायांमहाभाग शिवलिङ्गस्यपूर्वतः ॥ ततःप्रोवाचतान्हृष्टःसम्पूज्यद्विजसत्तमान् ॥ २ ॥ अस्यांयःपुरुषःस्नानं कृत्वा सुंवीक्षयिष्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकंप्रयास्यति ॥ ३ ॥ करिष्यतियथावद्यःशपथंचात्रमानवः ॥ असत्यं यास्यतिक्षिप्रं सयमस्यगृहंप्रति ॥ ४ ॥ एवमुक्त्वामहाभागो भीष्मःकुरुपितामहः ॥ जगामस्वपुरंयस्माद्धर्षेणमहता वृतः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रासीद्रौद्रसम्भूतः पौण्ड्रकोनामनामतः ॥ बालभावेसमंमित्रैः सक्रीडतिदिवानिशम् ॥ ६ ॥ हास्यभावाच्चयुष्माकं चिन्तनीयंसदैवतत् ॥ सदैवयत्नमास्थाय हृतंमित्रस्यपुस्तकम् ॥ ७ ॥ कृतश्चशपथस्तत्र

उसके उपरान्त उन ब्राह्मणोंको भलीभांति पूजकर प्रसन्न होकर कहा ॥१।२॥ कि जो पुरुष इन गङ्गाजीमें नहाकर इन शिवजीको देखैगा वह सब पापोंसे विशेषकर छूटा हुआ शिवलोकको जावैगा ॥ ३ ॥ और यहांपर जो मनुष्य यथायोग्य झूंठे शपथको करैगा वह शीघ्रही यमराजके मन्दिर प्रति जावैगा ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर कौरवों के पितामह महाभाग्यवाले भीष्मजी अपने नगर को चलेगये जिसलिये कि बडे हर्ष से घिरे थे ॥ ५ ॥ सूत जी बोले कि वहांपर रौद्रसे उपजा हुआ नाम से पौण्ड्रक नामक हुआ है वह शिशुता में मित्रों के साथ अहर्निश खेलताथा ॥ ६ ॥ वह तुमलोगों को सदैव हास्यभाव से चिन्तन करने के योग्य है उसने दैवयत्न में स्थित

होकर मित्र की पुस्तक को हर लिया ॥ ७ ॥ और गंगाजल में नहाकर वहांपर उसने सौगन्द किया व दुष्टताहीन चित्तसे जो पुस्तक थी उसको दे दिया ॥ ८ ॥ फिर उस मित्र के साथ सुन्दर हास्य को किया इसके अनन्तर उसी क्षणही से यह निन्दित कुष्ठी होगया ॥ ९ ॥ व भाइयों तथा समस्त प्यारी स्त्रियों से भी छोड़ाहुआ वह उसके उपरान्त वैराग्य में प्राप्तहोकर भृगुपात से गिरपड़ा ॥ १० ॥ उसके प्रभाव से वह कुष्ठ से रहित होगया और हास्यकारी पाण्डव शास्त्रकी चोरी करने के दोषसे मूकरूप (गूंगा) होगया ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसलिये अपने सुखको चाहनेवाले पुरुषको उन शिवजीके आगे हास्योपचारसे थोड़े भी शपथ को न करना

स्नात्वाभागीरथीजले ॥ अदुष्टचेतसातेन दत्तवान्पुस्तकंचयत् ॥ ८ ॥ पुनश्चसुचिरंहास्यं कृत्वातेनसमंबहु ॥ अथासा वभवत्कुष्ठी तत्क्षणादेवगर्हितः ॥ ९ ॥ सत्यक्तोबान्धवैःसर्वैः कलत्रैरपिवल्लभैः ॥ ततोवैराग्यमापन्नो भृगुपातात्पपात सः ॥ १० ॥ जातश्चतत्प्रभावेण कुष्ठेनपरिवर्जितः ॥ शास्त्रचौर्य्यकृताद्दोषान्मूकरूपःसहास्यकृत् ॥ ११ ॥ नकार्य्यःशप थस्तस्मात्तस्याग्रेपिलघुर्द्विजाः ॥ अपिहास्योपचारेण आत्मनःसुखमिच्छता ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागर खण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येशिवगङ्गामाहात्म्यन्नामाष्टपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तस्मिन्क्षेत्रेरविःपूर्वंविदुरेणप्रतिष्ठितः ॥ शिवश्चपरयाभक्त्यातथाविष्णुर्द्विजोत्तमाः ॥१॥ यस्तान्पूजय तेभक्त्यामानुषोभक्तितस्ततः ॥ सयास्यतिपरंस्थानं यज्ञैरपिसुदुर्लभम् ॥ २ ॥ हस्तिनापुरसंस्थेन विदुरेणपुराद्वि जाः ॥ गालवोमुनिशार्दूलः पृष्टःस्वगृहमागतः ॥ अपुत्रस्यगतिर्लोकेकीदृक्सञ्जायतेपरे ॥ ३ ॥ एतन्मेपृच्छतोब्रूहिक्त

चाहिये ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशिवगङ्गामाहात्म्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ❀ ॥

दो० । उनसठि के अध्याय में यथा विदुर बुधिमान । हरिहर दिनकरको थप्यो सोई करत बखान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय विदुरने उत्तम भक्तिसे उसी क्षेत्रमें सूर्य्यनारायण को व सदाशिव तथा विष्णुजीको थापा है ॥ १ ॥ जो पुरुष भक्तिसे उन तीनों देवोंको पूजैगा तदनन्तर वह भक्तिसे यज्ञोंसे भी बहुत दुर्लभ परम स्थानको जावैगा ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय हस्तिनापुर में भलीभांति टिकेहुये विदुरने अपने गृहमें आयेहुये मुनिपुङ्गव गालव जीसे पूंछा है

को कर कहिये ॥ ४ ॥ गालव जी बोले कि यदि
कि पुत्रहीन पुरुषकी परलोक में कैसी गति होती है ॥ ३ ॥ इसको पूंछतेहुये मुझसे उत्तम भाव (स्वभाव या अभिप्राय) को कर कहिये ॥ ४ ॥ गालव जी बोले कि यदि
बारह प्रकारके पुत्रों में एक भी नहीं है तो पुत्रहीन पुरुषकी लोकमें गति है परन्तु मराहुआ स्वर्ग को नहींजाताहै ॥ ५ ॥ औरस (अपने वीर्य्य से विवाहिता स्त्रीमें उ-
त्पन्न) क्षेत्रज (देवरादि से निज स्त्रीमें उत्पन्न) क्रयक्रीत (मोल लिया हुआ) पालित (रक्षा कियाहुआ) पौनर्भव (उढ़री का पुत्र) दत्त (दियाहुआ) कुण्ड
(पतिके जीते समय जारसे उत्पन्न) गोल (पतिके मरनेपर जारसे पैदाहुआ) कानीन (कन्यापन में उत्पन्न) सहोढ (विवाहके साथ गर्भमें आयाहुआ) अश्व-
त्थ (पीपल वृक्षको पुत्रभाव करना) या ब्राह्मणको पुत्रभाव से मानना इन बारहों में यदि पुरुषके एकभी न उत्पन्नहो तो निश्चयकर पुरुषों का नरकमें निवास होता

अपुत्रस्यगतिर्लोकेमृतःस्वर्गंनगच्छति ॥ द्वादशानामपितथायद्वै
त्वासद्भावमुत्तमम् ॥ ४ ॥ गालवउवाच ॥ अपुत्रस्यगतिर्लोकेमृतःस्वर्गंनगच्छति ॥ पौनर्भवःपुनर्दत्तःकुण्डोगोलस्तथापरः ॥ ६ ॥ का
कोपिनविद्यते ॥ ५ ॥ औरसःक्षेत्रजश्चैवक्रयक्रीतश्चपालितः ॥ पौनर्भवःपुनर्दत्तःकुण्डोगोलस्तथापरः ॥ ६ ॥ का
नीनश्चसहोढश्चअश्वत्थोब्रह्मवृक्षकः ॥ एतेषामपियद्येकःपुरुषाणांनजायते ॥ ७ ॥ तन्नूनंनरकेवासः पुंसांचैवविजा
यते ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यगालवस्यमहात्मनः ॥ अपुत्रत्वात्परंदुःखंजगामविदुरस्तदा ॥ ९ ॥ त
तस्तंगालवःप्राहमात्वंदुःखपदंव्रज ॥ मद्वाक्यात्पुत्रकंवृक्षंविष्णुसञ्ज्ञंद्रुतंकुरु ॥ १० ॥ तस्मादाप्स्यसिनिःशेषं फलं
पुत्रसमुद्भवम् ॥ गत्वापुरातनेदेशेरक्तशृङ्गस्यमूर्द्धनि ॥ ११ ॥हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसर्ववृद्धिमहोदये ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविदु
रस्तत्क्षणाद्ययौ ॥ १२ ॥ तत्स्थानंगालवोद्दिष्टंहर्षेणमहतान्वितः ॥ तत्राश्वत्थतरुंस्थाप्यपुत्रत्वेचाभिषेच्यच ॥ १३ ॥

है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ सूतजी बोले कि उस गालव महात्मा के उस वचन को सुनकर विदुर जी उस समय पुत्र न होनेके कारण बड़े दुःखको प्राप्तहुये ॥ ९ ॥ तदनन्तर
गालव जीने उन विदुरसे कहा कि दुःखके स्थानको तुम मत प्राप्त होवो मेरे वचनसे विष्णु नामक (पीपल) वृक्षको शीघ्रही पुत्रकरो ॥ १० ॥ पुराने देशमें व रामस्त
वृद्धि तथा बडे ऐश्वर्य्यवाले हाटकेश्वर जीसे उपजे हुये क्षेत्रमें रक्तशृङ्गके शिखर पै जाकर उस पीपलके वृक्षसे पुत्रसे उपजेहुये समस्त फलको पावोगे उन गालव
जीके उस वचन को सुनकर बड़े हर्षसंयुत विदुरजी गालव से उद्देश किये हुये उस स्थानको उसी क्षण चले गये वहांपर पीपल के वृक्षको थापकर व पुत्रता में

अभिषेक कर ॥ ११ । १२ । १३ ॥ विवाह की विधिसे कृतार्थ होगये तदनन्तर तीर्थयात्रा में तत्पर होतेहुये विदुरने उस क्षेत्रका भ्रमण किया ॥ १४ ॥ और उन विदुर जीने महात्मा राजर्षियों के अद्भुत कीर्तनों को सुन तथा महात्मा कुरुवृद्ध (भीष्म) जी के कीर्तनों को देखकर ॥ १५ ॥ तदनन्तर वहांपर देवमन्दिर के कार्य्य में बुद्धि को किया तदनन्तर उन विदुर ने शिल्पी के हाथसे महादेव जीके लिङ्गको व विष्णु को वनवाकर पीपल वृक्षके नीचे स्थापन किया वैसे ही सूर्य्यनारायण को भी विठाकर ब्राह्मणों के लिये निवेदन करदिया ॥ १६ । १७ ॥ जिसलिये कि तुम लोगोंके क्षेत्र में मैंने इन तीन देवों को थापन किया इसलिये आपलोगों को सदैव

वैवाहिकेनविधिनाकृतकृत्योबभूवह ॥ ततोबभ्रामतत्क्षेत्रंतीर्थयात्रापरायणः ॥ १४ ॥ कीर्तनानिविचित्राणिराजर्षीणांमहात्मनाम् ॥ सदृष्ट्वाकुरुवृद्धस्यकीर्तनानिमहात्मनः ॥ १५ ॥ ततश्चक्रेमतिंतत्र दिव्यप्रासादकर्म्मणि ॥ ततोमाहेश्वरंलिङ्गं शिल्पिहस्ताद्विधायसः ॥ १६ ॥ विष्णुंचस्थापयामास त्वश्वत्थस्यतरोरधः ॥ निवेश्यचतथादित्यंब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १७ ॥ एतद्देवत्रयंक्षेत्रे युष्माकंहिमयाकृतम् ॥ भवद्भिःसकलाचास्य चिन्ताकार्य्यासदैवहि ॥ १८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ वयमस्यकरिष्यामो यात्राद्याःसकलाःक्रियाः ॥ तथावंशोद्भवायेच पुत्रपौत्रास्तथापरे ॥ १९ ॥ करिष्यन्तिक्रियाःसर्वास्त्वंगच्छस्वगृहंप्रति ॥ ततोजगामविदुरःस्वपुरंप्रतिहर्षितः ॥२०॥ कृतकृत्योद्विजास्तेचचक्रुर्वाक्यंतदुद्भवम् ॥ माघमासस्यसप्तम्यांसूर्य्यवारेणयोनरः ॥२१॥ पूजयेद्भास्करंतत्रसयातिपरमांगतिम् ॥ शिवंवासोमवारेणशुक्लाष्टम्यांविशेषतः ॥ २२ ॥ शयनेबोधनेविष्णुं सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवानांतत्रयंशुभम् ॥ २३ ॥

इनका ध्यान करना चाहिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हमलोग इन देवोंके समस्त यात्रादिक कार्य्यको करैंगे वैसे ही वंशमें उपजेहुये पुत्र, पौत्र तथा अन्य जो पुरुष होंगे ॥ १९ ॥ वेभी समस्त कार्य्यों को करैंगे तुम अपने घर प्रति जावो तदनन्तर प्रसन्न होते हुये व कृतार्थ विदुरजी अपने नगरके सामने चलेगये ॥ २० ॥ और उन ब्राह्मणों ने भी उनसे उपजेहुये वाक्य को किया माघ मासकी रविवार समेत सप्तमी में वहांपर जो मनुष्य सूर्य्यनारायण को पूजता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होताहै या विशेषकर सोमवार समेत शुक्लपक्ष की अष्टमी में शिवजी को पूजताहै ॥ २१ । २२ ॥ व शयन तथा बोधन समय मे भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर विष्णुजी

को पूजताहै वह भी उत्तम गतिको प्राप्त होताहै इसलिये स्वर्गके अभिलाषी पुरुषोंको सब उपायसे उस देवताओं के त्रयको विशेषकर पूजना चाहिये वहांपर पुरातन समय सैकड़ों व हजारों प्रशंसितव्रत या कर्मवाले मुनिलोग विदुरेश्वर को आराधकर सिद्धिको प्राप्त होगये तदनन्तर इन्द्रजी ने उस लिङ्गको सिद्धिदायक जान कर इस प्रकार धूरिसे पूर्ण करादिया कि जैसे कोई न जानै इसके अनन्तर किसी समय विदुरजी वहां आये ॥ २३ । २४ । २५ । २६ ॥ व लोपहुये लिङ्गको देखकर बड़े दुःख से संयुत हुये इसी समय आकाशवाणी बोली ॥ २७ ॥ कि हे विदुर ! तुम इस समय लिङ्गके लिये मत विषादको करो क्योंकि इस बरगद के नीचे जो यह

पूजनीयंविशेषेण नरैःस्वर्गमभीप्सुभिः ॥ तत्रसिद्धिंगताःपूर्वं मुनयःशंसितव्रताः ॥ २४ ॥ विदुरेश्वरमाराध्य शतशोथ सहस्रशः ॥ ततस्तुसिद्धिदंज्ञात्वातल्लिङ्गंपाकशासनः॥२५॥पांशुभिःपूरयामास यथाकश्चिन्नबुध्यते ॥ कस्यचित्त्वथका लस्यविदुरस्तत्रचागतः ॥ २६ ॥ दृष्ट्वालोपगतंलिङ्गंदुःखेनमहतान्वितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ २७ ॥ मात्वंकुरुविषादंहि लिङ्गार्थेविदुराधुना॥ योयंसंदृश्यतेबालो वटस्यास्यतलेस्थितः ॥ २८ ॥ देवश्रेणिःसुरेशेन पांशुभिःपरिपूरिता ॥ ततोगजाह्वयात्तूर्णं समानीयधनंबहु ॥ २९ ॥ शोधयामासतत्स्थानं दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ त तोविलोक्यतान्देवान्हर्षेणमहतान्वितः ॥ ३० ॥ प्रासादंनिर्ममेतेषांयोग्यंसाध्वभिसंस्थितम् ॥ कैलासशिखराकारंभा स्करार्थंमहामुनिः ॥ ३१ ॥ अथमध्यगतंदृष्ट्वा वटस्यचमहेश्वरम् ॥ प्रासादंनाकरोत्तत्र लिङ्गंयावन्नचालयेत् ॥ ३२ ॥ वासुदेवस्ययोग्यांच कृत्वाशालांबृहत्तराम् ॥ दत्त्वावृत्तिंचसंहृष्टो ब्राह्मणेभ्योनिवेद्यच ॥ ३३ ॥ जगामस्वाश्रमं भूयोवि

बालक बैठा हुआहै वही इन्द्रसे धूरिसे परिपूर्ण कीहुई देवपंक्ति है तदनन्तर शीघ्रही हस्तिनापुरसे बहुत धन को लाकर विदुरजी ने निरालस्य होकर उस स्थानको अहर्निश शोधन कराया उसके उपरान्त उन देवोंको देखकर बडे हर्षसे संयुत हुये ॥ २८ । २९ । ३० ॥ व उन देवोंके योग्य महामुनि विदुरनें शोभन स्थितिवाले मन्दिर को निर्मित किया कैलासशिखरके आकारवाले मन्दिर को दिनकरके लिये निर्माणकिया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर बरगदके बीचमें बैठेहुये महादेवजी को देखकर वहां पर तबतक मन्दिर को न किया जबतक लिंगको नहीं चलाया ॥ ३२ ॥ और वासुदेव के योग्य बड़े भारी मन्दिर को बनवाकर व वृत्ति याने जीविका को देकर

बहुत प्रसन्न होतेहुये विदुरजी ब्राह्मणों के लिये निवेदनकर तदनन्तर उन ब्राह्मणोंसे पूंछकर फिर अपने आश्रम को चलेगये ॥ ३३ । ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येविदुरागमनदेवस्थानोद्धारणंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नरादित्य नामक रविहि थाप्यो अर्जुनवीर । सो साठिहिअध्याय में कहत सूत मतिधीर ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने पहले जो इस माहिस्था को कहा है उसको वहांपर किसने स्थापन किया है उस समस्त वृत्तान्तको सम्पूर्णता से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय अगस्त्य जीने अथर्वण

प्रानामन्त्र्यतांस्ततः॥३४॥इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेविदुरागमनदेवस्थानोद्धारणंनामैकोनषष्टितमोध्यायः५९॥

ऋषयऊचुः ॥ माहिस्थेयंत्वयाख्यातायापुरासूतनन्दन ॥ केनसंस्थापितातत्र वदसर्वमशेषतः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ शोषणीनामयाविद्या पुरागस्त्येनसाधिता ॥ आथर्वणेनमन्त्रेण सेयंचपरमेश्वरी ॥ २ ॥ ततःसंशोषितस्तेनससमुद्रो महात्मना ॥ मित्रावरुणपुत्रेण साप्रोक्तापुरतःस्थिता ॥ ३ ॥ महिस्थंसाधितंयस्मात्त्वयामेसकलंशुभम् ॥ माहिस्थानामतस्मात्त्वंदेवतासम्भविष्यसि ॥ ४ ॥ चमत्कारपुरेक्षेत्रेपूजांप्राप्स्यस्यनुत्तमाम् ॥ यस्त्वामाथर्वणैर्मन्त्रैस्तत्रस्थां भक्तिसंयुतः ॥ ५ ॥ पूजयिष्यतिवृद्धिंच सर्वकालमवाप्स्यति ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगच्छ मयासार्द्धंपुरोत्तमे ॥ ६ ॥ द्विज संरक्षणार्थाय नित्यंसन्निहिताभव ॥ एवंसातत्रसम्भूता माहिस्थावरदेवता ॥ ७ ॥ ययायंचलितःशैलः स्वशक्त्यानि

वेद के मन्त्र से जिस शोषणी नामक विद्याको साधन किया है यह वही परमेश्वरी है ॥ २ ॥ मित्रावरुणके पुत्र उन अगस्त्य महात्माने समुद्रको संशोषण किया तदनन्तर आगे खड़ीहुई उससे यह कहा ॥ ३ ॥ कि जिसलिये मैंने पृथ्वीतल में प्राप्त समस्त उत्तम पदार्थको तुमसे साधन किया उससे तुम माहिस्था नामक देवता भलीभांति होगी ॥ ४ ॥ व चमत्कार नगर के क्षेत्र मे अतिउत्तम पूजन को पावोगी वहांपर टिकीहुई तुमको भक्तिसंयुत होताहुवा जो पुरुष अथर्वण वेदवाले मन्त्रो से पूजन करैगा वह सब समय में वृद्धिको प्राप्तहोगा इसलिये मेरे साथ तुम उस पुरोत्तम में शीघ्रही चलो ॥ ५ । ६ ॥ व ब्राह्मणों की भलीभांति रक्षाके लिये सदैव सन्निहित

होवो याने टिको इस प्रकार वहांपर वह माहिस्था नामक उत्तम देवता हुई है ॥ ७॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस माहिस्था ने अपनी शक्तिसे इस पर्वतको चलादिया है जो कि इस स्थानमें स्वामिकार्त्तिकेयजीसे शक्तिद्वारा उसके अग्रभागमें बेधाहुआ अचल करदिया गयाथा ॥ ८ ॥ उससे अन्य नरादित्य नामकहैं जो मनुष्यसे थापेगये हैं उनको रविवारके दिन छठि तिथिमें दर्शन कर मनुष्य पातकसे छूट जाताहै ॥ ९ ॥ व अर्जुन के समान शत्रुओं के पराभव को नहीं प्राप्त होताहै रोगी नर रोगसे छूट जाताहै व दरिद्री द्रव्यको पाताहै ॥ १० ॥ व कार्त्तिकके शुक्ल पक्षमें प्रथम दिन प्राप्त होतेहुये जो मनुष्य वहां गोवर्धनधारी जनार्दनदेव को देखैगा ॥ ११ ॥ हे द्विजो-

अचलीकृतः ॥ स्कन्देनेहद्विजश्रेष्ठाः शक्त्याविद्धस्तदग्रतः ॥ ८ ॥ नरादित्यस्ततश्चान्यो योनरेणप्रतिष्ठितः ॥ षष्ठ्यांतं सूर्य्यवारेण दृष्ट्वापापात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ नशत्रूणांपराभूतिंप्रयास्यतियथार्जुनः ॥ रोगीप्रमुच्यतेरोगाद्दरिद्रोधनमाप्नुयात् ॥ १० ॥ तथागोवर्धनधरं तत्रदेवंजनार्दनम् ॥ यःपश्येत्कार्त्तिकेशुक्लेसम्प्राप्तेप्रथमेदिने ॥ ११ ॥ तस्यगावःप्रभूताः स्युर्नीरोगाद्विजसत्तमाः ॥ नरसिंहवपुःसाक्षात्तथादेवोहरिःस्वयम् ॥ १२ ॥ तथाविनायकस्तत्र सर्वकामप्रदायकः ॥ सर्वविघ्नहरश्चैव स्थापितश्चार्जुनेनहि ॥ १३ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या चतुर्थ्यांनक्तभुग्जनः ॥ ससर्वविघ्ननिर्मुक्तो लभतेवाञ्छितंफलम् ॥ १४ ॥ तत्रस्थितोद्विजेन्द्राणांहितायद्विजसत्तमाः ॥ यस्तमाथर्वणैर्मन्त्रैः पूजयेद्द्वादशीदिने ॥ १५ ॥ कार्त्तिकस्यसितेपक्षे सयातिपरमांगतिम् ॥ तथातत्रद्विजश्रेष्ठानरनारायणावुभौ ॥ १६ ॥ देवौपरमतेजाढ्यौ यस्तौ

त्तमो ! उसके रोगरहित बहुतसी गौवें होवैंगी वैसेही वहांपर नृसिंहशरीरवाले विष्णु देवजी आपही प्राप्तहैं ॥ १२ ॥ और वहांपर निश्चयकर अर्जुन से स्थापन कियेहुये समस्त विघ्नोंके हारक व सकल कामनाओं के दायक विनायक जी हैं ॥ १३ ॥ चौथि तिथिमें रात्रिको भोजन करनेवाला जो मनुष्य भक्तिसे उन गणेश जीको पूजताहै वह समस्त विघ्नोंसे छूटाहुवा वाञ्छित फलको प्राप्तहोता है ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहांपर ब्राह्मणोत्तमों के हितके लिये टिकेहुये हैं उनको कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें द्वादशीदिनमें जो पुरुष अथर्वणवेदके मंत्रोंसे पूजताहै वह परमगतिको प्राप्तहोताहै और हे ब्राह्मणोत्तमो ! वहां पर परम प्रभावसे संयुत उनदोनों नरनारायण देवों

कोजो पुरुष देखताहै व हे द्विजोत्तमो ! द्वादशीके दिन आपही भक्तिसे पूजन करताहै ॥१५।१६।१७॥ वह जरामरणसे रहित उत्तम स्थानको जाताहै हे द्विजोत्तमो ! तीर्थ यात्रामें प्रारम्भ कियेहुये कुन्ती के पुत्र अर्जुनजी हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें भलीभांति आये व तीर्थवृन्दों से बहुतही पूर्ण उस पवित्रकारक क्षेत्रको देखकर ॥ १८ । १९ ॥ अर्जुनने बहुत मनोहरमन्दिर में दिनकर को स्थापन किया तदनन्तर उनके आगे नरनारायण देवों को स्थापित किया ॥ २० ॥ व उत्तम श्रद्धासंयुत होते हुए वहांपर गोवर्धनको स्थापन किया वैसेही देवतों के देवता अन्य नृसिंहजीको स्थापित किया ॥ २१ ॥ इसप्रकार कुन्तीके पुत्र अर्जुनजी पांचदेव मन्दिरोंको भली

पश्यतिभक्तितः ॥ पूजयेच्चद्विजश्रेष्ठा द्वादश्यांदिवसेस्वयम् ॥१७॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ तीर्थयात्रा कृतारम्भः कुन्तीपुत्रोधनञ्जयः ॥ १८ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसमायातोद्विजोत्तमाः ॥ दृष्ट्वातत्पावनंक्षेत्रं तीर्थपूगप्रपूरितम् ॥ १९ ॥ आदित्यंस्थापयामास प्रासादेसुमनोहरे ॥ नरनारायणौदेवौ तस्याग्रेस्थापितौततः ॥ २० ॥ तथागोवर्धनस्तत्र देवदेवंप्रतिष्ठितम् ॥ नरसिंहन्तथैवान्यं श्रद्धयापरयायुतः ॥ २१ ॥ एवंसंस्थाप्यकौन्तेयो देवायतनपञ्चकम् ॥ ततोविप्रान्समाहूय सर्वांस्तान्पुरसम्भवान् ॥ २२ ॥ प्रोवाचप्रणतोभक्त्या धनंदत्त्वासुपुष्कलम् ॥ मयासंस्थापितःसूर्य्यः सर्वरोगक्षयावहः ॥ २३ ॥ तथार्पितश्चयुष्माकंचिन्तनीयंसदैवतु ॥ २४ ॥ विप्राऊचुः ॥ गच्छत्वंपाण्डवश्रेष्ठ सुविसृज्यस्वमालयम् ॥ वयंसर्वेकरिष्यामस्तवश्रेयोभिवर्धनम् ॥ २५ ॥ ततोर्जुनःप्रहृष्टात्मा तेभ्योदत्त्वाधनंबहु ॥ तानामन्त्र्यनमस्कृत्य जगामस्वपुरंप्रति ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं नरादित्यस्यसम्भवम् ॥

भांति स्थापितकर तदनन्तर नगरमें उपजेहुए उन समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर व बहुत धनको देकर भक्तिसे प्रणाम करतेहुये बोले कि मैंने समस्त रोगोंके नाशकारक सूर्य्यनारायण को थापा व अर्पण किया इसलिये तुम लोगों को सदैव चिन्तवन करना चाहिये ॥ २२ । २३ । २४ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम भलीभांति विसर्जनकर अपने घरको जावो हम सबलोग तुम्हारे कल्याणको बढ़ानेहारेकर्मको करैंगे ॥ २५ ॥ तदनन्तर अतिप्रसन्नमनवाले अर्जुनजी उन ब्राह्मणों के लिये बहुतसा धन देकर व उनसे पूँछकर तथा उनको प्रणामकर अपने घरको चलेगये ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! नरादित्य के उपजेहुए इस

समस्त माहात्म्य को मैंने तुम लोगोंसे वर्णन किया जोकि सुननेवाले मनुष्यों का पापविनाशक है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येनरादित्यमाहात्म्यंनामषष्टितमोध्यायः ॥ ६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसठिके अध्याय में विष कन्याको योग । वृकनामक नरपालसन कह्यो ज्योतिषी लोग ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग, महामते, सूतजी ! तुमने शर्मिष्ठा ऐसे कहेहुए तीर्थको कहा है वह किस प्रभाववाला व किसप्रकार उत्पन्नहुआ है उसको कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि चन्द्रवंश मे उपजाहुआ वृकनामक

माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाः शृण्वतांपापनाशनम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे नागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येनरादित्य माहात्म्यंनामषष्टितमोध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ शर्मिष्ठातीर्थमित्युक्तं त्वयाप्रोक्तंमहामते ॥ कथंजातंमहाभाग किंप्रभावंतुतद्वद ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्राजावृकोनाम सोमवंशसमुद्भवः ॥ ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्चसर्वलोकहितेरतः ॥ २ ॥ तस्यभार्याभवत्साध्वी प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिव्रतपरायणा ॥ ३ ॥ अथताभ्यांसमुत्पन्ना प्राप्तेवयसिपश्चिमे ॥ कन्यकादिवसेप्राप्तेसर्वशास्त्रविगर्हिते ॥ ४ ॥ ततआनीयविप्रान्स ज्योतिर्ज्ञानविचक्षणान् ॥ पप्रच्छकीदृशीकन्या ममेयंसम्भविष्यति ॥ ५ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ याकन्याप्राप्नुयाज्जन्म चित्रासंस्थेदिवाकरे ॥ चन्द्रेचापिचतुर्दश्यां साभवेद्विषकन्यका ॥ ६ ॥ यस्तस्याःप्रतिगृह्णाति पाणिंपार्थिवसत्तमः ॥ षण्मासाभ्यन्तरान्मृत्युं सप्राप्नोतिनरोध्रुवम् ॥ ७ ॥ यस्मि

भूपति हुआ है जोकि ब्राह्मणों को माननेवाला व शरणागत जनोंका रक्षक तथा समस्त मनुष्यों के हितमें तत्पर था ॥ २ ॥ उस नृपति की स्त्री प्राणोंसे भी अधिक प्यारी व पतिव्रता हुई है जोकि समस्त लक्षणोंसे संयुत व पतिव्रतधर्म में परायणथी ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर जब पिछली अवस्था प्राप्तहुई तब समस्त शास्त्रोंसे निन्दित दिन प्राप्तहोनेपर उन दोनोंसे कन्या उत्पन्नहुई ॥४॥ तदनन्तर उस भूपने ज्योतिपके जाननेमें चतुर ब्राह्मणोंको लाकर पूँछा कि मेरी यह कन्या किसप्रकारकी होवैगी ॥५॥ ब्राह्मण लोग बोले कि चित्रा नक्षत्रमें दिनकर व चतुर्दशी तिथि में चन्द्रमाको भी प्राप्त होनेपर जो कन्या जन्मको प्राप्तहोवै वह विषकन्या होवै है॥६॥उस कन्याका जो नृपोत्तम

पाणिग्रहण करता है वह मनुष्य छः महीने के बीच में निश्चयकर मृत्युको प्राप्तहोता है ॥ ७ ॥ व जिस मन्दिर में वह उत्पन्न होती है तो कुबेर के भी उस घर को छः महीने के बीच में निस्सन्देह ऐश्वर्य्य से रहित कर देतीहै ॥ ८ ॥ हे राजन्! तुम्हारी यह कन्या जैसी कहीहै वैसीही विषकन्या है इससे यह पिता तथा श्वशुर के भी दोनों घरों को नाश करैगी ॥ ९ ॥ इसलिये हे नराधिप, प्रभो! यदि हितदायक कहेहुये हमलोगों के वचनकी श्रद्धा करतेहो तो इस कन्या को छोड़कर सुखितहोवो ॥ १० ॥ राजा बोले कि यदि प्रसिद्ध में मैं इसको त्याग करूं या घरमें धारूं तिसपर भी दूसरेदेह से उपजाहुआ कर्म फलैगा ॥ ११ ॥ चाहै शुभ हो

न्साजायतेहर्म्ये षण्मासाभ्यन्तरेचतत् ॥ करोतिविभवैर्हीनंधनदस्याप्यसंशयम् ॥ ८ ॥ सेयंतवसुताराजन् यथोक्ता विषकन्यका ॥ पैतृकंश्वशुरीयंच हनिष्यतिगृहद्वयम् ॥ ९ ॥ तस्मादिमांपरित्यज्य सुखीभव नराधिप ॥ श्रद्दधासिवचोस्माकं हितमुक्तंयदिप्रभो ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ त्यक्ष्यामियदिनामैतां धारयिष्यामिवागृहे ॥ अन्यदेहोद्भवंकर्म्म फलिष्यतितथापिमे ॥ ११ ॥ शुभंवायदिपापं वा नतुशक्यंप्रमार्जितुम् ॥ तस्मात्कर्म्मपुरस्कृत्य नैवत्यक्ष्यामिकन्यकाम् ॥ १२ ॥ येनयेनशरीरेण यद्यत्कर्म्मकरोतियः ॥ तेनतेनैवभूयः सप्राप्नोतिसकलंफलम् ॥ १३ ॥ यस्यांयस्यामवस्थायां क्रियतेत्रशुभाशुभम् ॥ तस्यांतस्यांध्रुवंतस्य फलंतद्भुज्यतेनरैः ॥ १४ ॥ ननश्यतिपुराकर्म्म कृतंसर्वेन्द्रियैरिह ॥ अकृतंजायतेनापि तस्मान्नास्तिभयंमम ॥ १५ ॥ पञ्चैतानीहसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ आयुःकर्म्मचवित्तं

या पापहो वह मिटाने के लिये समर्थ नहीं होता इस लिये कर्म को आगेकर मैं कन्या को नहीं त्यागूंगा ॥ १२ ॥ क्योंकि जो पुरुष जिस २ शरीर से जिस २ कर्म को करता है वह उस २ शरीर से फिर समस्त फल को प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ इस लोक में जिस २ अवस्था में शुभाशुभ कर्म कियाजाता है उस २ अवस्था में उस कर्म के उस फल को मनुष्य निश्चय कर भोग करता है ॥ १४ ॥ पुरातन समय समस्त इन्द्रियों से कियाहुआ फल इस संसार में नष्ट नहीं होता और बिनकिया हुआ उत्पन्न नहीं होता है इसलिये मुझको डर नहीं है ॥ १५ ॥ आयुर्बल, कर्म, द्रव्य, विद्या व मृत्युभी ये पांच वस्तुएं शरीरधारी के गर्भ में टिकतेही रची जातीं

हैं ॥ १६ ॥ जैसे वृक्ष, वल्लियों में फूल व फल अपने समयको उल्लंघन नहीं करते उसी प्रकार पुरातन में कियाहुआ कर्म उल्लंघन नहीं करता है ॥ १७ ॥ पहले जिसनेही जिसप्रकार के जिस शुभाशुभ कर्मको कियाहै वही अपने किये हुये उस कर्मको सदैव उसी प्रकार भोग करता है ॥ १८ ॥ जैसे हजारों गाइयोंमें बछड़ा माताको पाजाता है वैसेही करोड़ मनुष्यो के बीच में टिकेहुये कर्ता पुरुषको कर्म प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ दूसरे शरीर में कियेहुये कर्मको भूतल में कोई पुरुष बल से व बुद्धिसे भी अन्यथा करने के लिये समर्थ नहीं है ॥ २० ॥ शास्त्र के गर्भवाली बुद्धिसे विद्वान् अन्यथा पूजित होता है वहभी पहले उस किये हुये कर्म को उस से अन्यथा नहीं धारण

चविद्यानिधनमेवच ॥ १६ ॥ यथावृक्षेषुवल्लीषु कुसुमानिफलानिच ॥ स्वंकालंनातिवर्त्तन्ते तद्वत्कर्म्मपुराकृतम् ॥१७॥ येनैवयद्यथापूर्वं कृतंकर्म्मशुभाशुभम् ॥ सएवतत्तथाभुङ्क्तेनित्यंविहितमात्मनः ॥ १८ ॥ यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोविन्दतिमातरम् ॥ तथैवकोटिमध्यस्थं कर्त्तारंकर्म्मविन्दति ॥ १९ ॥ अन्यदेहकृतंकर्म्म नकश्चित्पुरुषोभुवि ॥ बलेनप्रज्ञयावापि समर्थःकर्तुमन्यथा ॥ २० ॥ अन्यथाशास्त्रगर्भिण्या धियाधीरोमहीयते ॥ सोपितत्प्राकृतं कर्म्मनदधाति तदन्यथा ॥ २१ ॥ स्वकृतान्युपतिष्ठन्ति सुखदुःखानिदेहिनाम् ॥ हितभूतोहियस्तेषां सोहङ्कारेणबध्यते ॥ २२ ॥ सुशीघ्रमभिधावन्तं निजंकर्म्माभिधावति ॥ शेतेसहशयानेन तिष्ठन्तमनुतिष्ठति ॥ २३ ॥ यथाछायातरूनित्यं सुसम्बद्धौपरस्परम् ॥ तथाकर्म्मचकर्ताच नात्रकार्य्याविचारणा ॥ २४ ॥ येनयत्रापिभोक्तव्यं सुखंवादुःखमेववा ॥ नरःसबद्धो रज्ज्वेवबलात्तत्रैवनीयते ॥ २५ ॥ प्रमाणंकर्म्मभूतानां सुखदुःखोपपादने ॥ सावधानतयायच्च जाग्रतांस्वपतामपि ॥ २६ ॥

करता है ॥ २१ ॥ अपने कियेहुये सुख दुःख देहधारियों के समीप प्राप्त होते हैं उनके मध्य में जो हितभूत है सो अहङ्कारसे बँधता है ॥ २२ ॥ व बहुतशीघ्र दौड़ते हुये पुरुष के सामने अपना कर्म दौड़ता है सोतेहुये के साथही सोता है बैठतेहुयेके पीछे बैठता है ॥ २३ ॥ जैसे वृक्ष व छाया दोनो आपस में सदैव भलीभांति बँधे हैं वैसेही कर्म, कर्ता परस्पर में बँधा है इसमें विचार करने योग्य नहीं है ॥ २४ ॥ जिस को जहांपर भी सुख या दुःखही भोगना है वह मनुष्य रसरी से बँधे हुयेके समान वहींपर बलसे प्राप्त करदियाजाता है ॥ २५ ॥ जो कर्म कि सावधानता से जागते व सोते हुयेभी प्राणियोंके सुख दुःखादिके सिद्ध होने में प्रमाण है ॥ २६ ॥

जैसे कि तैलनाश होनेपर दीपक शान्तिको प्राप्त होजाता है वैसेही कर्मके नाश होनेपर प्राणी मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ २७ ॥ मन्त्र, तपस्या, दान , तीर्थ और मिलाप ये पूर्व कर्मों से पीड़ित प्राणी को पालने के लिये समर्थ नहीं हैं ॥ २८ ॥ ऋतुसमय में मनुष्य सङ्गम से पेट में वीर्य्य के अचेतन बिन्दु (बूंद) को धरता है वह कर्मके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ यह प्रसिद्ध है कि जिसमें अन्न, पान जीर्ण (नाश) होजाते हैं व भोजन देख पड़ता है उसी उदर में गर्भ क्यों नहीं नाश होता है ॥ ३० ॥ इसलिये इस लोक में शुभ या अशुभ समस्त कर्म देहधारियोंका किया हुआ उपजताहै यह मुझको निरन्तर निश्चयहै ॥ ३१ ॥ रक्षारहित पदार्थ

तैलक्षयेयथादीपो निर्वाणमधिगच्छति ॥ कर्म्मक्षयेतथाजन्तुर्निर्वाणमधिगच्छति ॥ २७ ॥ नमन्त्रानतपोदानं नतीर्थंनचसन्धयः ॥ समर्थारक्षितुंजन्तुं पीडितंपूर्वकर्म्मभिः ॥ २८ ॥ सङ्गत्याजठरेन्यस्तं रेतोबिन्दुमचेतनम् ॥ ऋतुकालेमनुष्येण वृद्धिंगच्छतिकर्म्मणा ॥ २९ ॥ अन्नपानानिजीर्य्यन्ति यत्रभक्ष्यंचलक्षितम् ॥ तस्मिन्नेवोदरेगर्भः कथंनामनजीर्य्यते ॥ ३० ॥ तस्मात्कर्म्मकृतंसर्वं देहिनामत्रजायते ॥ शुभंवायदिवापापमितिमेनिश्चयस्सदा ॥ ३१ ॥ अरक्षितंतिष्ठतिदैवरक्षितं सुरक्षितंदैवहतंविनश्यति ॥ जीवत्यनाथोपिवनेविसर्जितः कृतप्रयत्नोपिगृहेनजीवति ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेविषकन्योत्पत्तिर्नामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥

एवंसनिश्चयंकृत्वा पार्थिवोद्विजसत्तमाः ॥ नात्यजत्तांतथोक्तोपिदैवज्ञैर्विषकन्यकाम् ॥ १ ॥ दीयमानंनगृह्णातिप्रीत्याचापिमहीभुजा ॥ शर्म्मणःस्तावनंयस्मात्तस्मात्स्वापितुरादितः ॥ २ ॥ शर्मिष्ठेतिसुविख्याता ततःसाह्यभवद्भुवि ॥

दैवसे रक्षित हुआ टिकता है और भलीभांति रक्षाकिया हुआ दैवसे हत नष्ट होजाताहै व वनमें त्यागा हुआ नाथहीन भी जीवता है और बडे उपायसे किया हुआ भी घरमें नहीं जीता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां विषकन्योत्पत्तिर्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दो० । बासठि के अध्याय में बरणत बुद्धि विशाल । शर्मिष्ठा के तीर्थ को रुचिर चरित्र रसाल ॥ हे द्विजोत्तमो ! ज्योतिर्विदों से वैसा कहेहुये भी उस भूपति ने इसप्रकार निश्चयकर उस विषकन्याको त्यागन किया ॥ १ ॥ जिसलिये कि भूपति से प्रीति से भी दियेहुये कल्याणकारक पदार्थ को नहीं ग्रहण करती थीं

इसलिये अपने पितादिकों से वह कन्या भूतल में शर्मिष्ठा ऐसी प्रसिद्ध हुई तदनन्तर इसी बीचमें उस भूपति के शत्रुओंने क्रोधसंयुत होतेहुये राज्यको सब ओरसे पीडित किया इसके अनन्तर यह भूपति क्रोधित होकर नगर से बाहर निकला ॥ २ । ३ । ४ ॥ व मृत्युको अनुवर्तन याने पीछेकर स्थान से बहुतही शीघ्र चला तदनन्तर उस नृपति ने चतुरङ्गिणी सेनासे उन शत्रुओं को प्राप्त होकर यमराजके राज्यको बढ़ानेहारे बडे भारी युद्धको किया तदनन्तर दशम दिन प्राप्त होने पर समस्त शत्रुओं से सबओर घेरकर वह भूपति मारागया उसके उपरान्त उस नरेश के जो मनुष्य मरने से शेष रहे थे ॥ ५।६।७ ॥ वे भय से विकल व दुःखित होते

एतस्मिन्नन्तरेतस्य शत्रवःपृथिवीपतेः ॥ ३ ॥ सर्वतःपीडयामासूराष्ट्रंक्रोधसमन्विताः ॥ अथासौपार्थिवःक्रुद्धो निर्ययौनगराद्बहिः ॥ ४ ॥ स्थानात्क्षिप्रंप्रचलितो मृत्योःकृत्वानुवर्तनम् ॥ ततःसम्प्राप्यताञ्छत्रूंश्चकारसुमहाहवम् ॥ ५ ॥ चतुरङ्गेणसैन्येन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ततश्चदशमेप्राप्ते शत्रुभिःसमहीपतिः ॥ ६ ॥ निहतोदिवसेसर्वैर्वेष्टयित्वासमन्ततः ॥ ततस्तस्यनरेन्द्रस्य हतशेषाश्चयेनराः ॥ ७ ॥ भयार्तास्तेद्रुतंजग्मुः स्वपुरंप्रतिदुःखिताः ॥ तेपिशत्रुगणाःसर्वेसम्प्रहृष्टाजिगीषवः ॥ ८ ॥ तत्पुरंवेष्टयामासुस्तत्पुत्रोच्छेदनायवै ॥ एतस्मिन्नन्तरेपौराः सर्वेशोकपरायणाः ॥ ९ ॥ जगदुःपरुषैर्वाक्यैर्दुष्टान्तांविषकन्यकाम् ॥ अस्यादोषेणपापाया मृतश्चसमहीपतिः ॥ १० ॥ तथाराष्ट्रस्यविध्वंसो भविष्यतिपुरःक्षयः ॥ उक्तःसनृपतिःपूर्वं ब्राह्मणैर्ज्ञातिभिःसदा ॥ ११ ॥ त्यजैनांबहुदोषाढ्यां निन्दितांविषकन्यकाम् ॥ नतेनतत्कृतंवाक्यमपितेषांहितैषिणाम् ॥ १२ ॥ स्नेहपाशनिबद्धेन दयाढ्येनमहात्मना ॥ तस्मादद्यापिपापैषा बध्यता

हुये शीघ्रही अपने नगर को चलेगये और अतिप्रसन्न व जीत की इच्छावाले उन समस्त शत्रुसमूहों ने भी ॥ ८ ॥ उसके पुत्रके नाश करने के लिये उसके नगर को घेरलिया इसी अवसर में समस्त पुरवासियोंने शोक में परायण होतेहुये कठोर वचनों से उस दुष्टरूपा विषकन्यासे कहा कि इसी पापिनी के दोष से वह भूपति मर गया ॥ ९ । १० ॥ वैसे ही राज्यका विध्वंस व नगर का नाश होजायगा पहले ब्राह्मणों व कुटुम्बियों ने सदैव उस भूपति से कहाथा ॥ ११ ॥ कि बहुत दोषों से संयुत व निन्दित इस विषकन्या को छोडदो उन हितैषियों के भी उस वाक्य को स्नेहरूप फँसरी से बँधा व दया से युक्त उस महात्मा नृपति ने न किया इसलिये

यह पापिनी कन्या आज भी शीघ्रही बांधी जाय ॥ १२। १३ ॥ व जबतक पुर का नाश न होवै तबतक इस नगर से निकाल दीजाय ॥ १४॥ सूतजी बोले कि उस कन्या ने भी मनुष्यों से कहेहुये उन भिन्न प्रकारों के अपवादों को सुनकर, बड़े वैराग्य में प्राप्त होकर अपनी निन्दा को किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर भय व शोच से संयुत व मरण में निश्चय किये हुई उस विपकन्याने रात्रि में निकलकर व जङ्गलमें प्राप्त होकर प्रस्थान किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उसने तपस्वियों से व्याप्त व मनको परम आनन्दकारक हाटकेश्वरजी से उपजे हुये बड़ेभारी क्षेत्र को देखा ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उसको पूर्वजन्म से उपजा हुआ स्मरण भया कि मैंने पहले

माशुकन्यका ॥ १३ ॥ निर्यास्यतांपुरादस्माद्यावन्नस्यात्पुरःक्षयः ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ सापिश्रुत्वाजनोक्तांस्तानप
वादान्पृथग्विधान् ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा निन्दांचक्रेतथात्मनः ॥ १५ ॥ ततोरात्रौविनिष्क्रम्य भयशोकसमन्विता ॥ प्र
तस्थेरण्यमासाद्य मरणेकृतनिश्चया ॥ १६ ॥ अथदृष्टंतयाक्षेत्रं हाटकेश्वरजंमहत् ॥ तपस्विभिःसमाकीर्णं चित्ताह्ला
दकरंपरम् ॥ १७ ॥ अथतस्याःस्मृतिर्जाता पूर्वजन्मसमुद्भवा ॥ चण्डालत्वेमयापूर्वं गौरेकावितृषीकृता ॥ १८ ॥ तत्प्र
भावादहंजाता सुपुण्येनृपमन्दिरे ॥ क्षेत्रस्यास्यप्रभावेण तस्मादत्रैवमेस्थितिः ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ अन्यदेहान्तरे
ह्यासीच्चण्डालीसाविगर्हिता ॥ बहुप्रसूतिसंयुक्ता दरिद्रेणकदर्थिता ॥ २० ॥ अथसाभ्रममाणात्र क्षेत्रेप्राप्तातृपार्दिता ॥
मध्यंदिनंगतेसूर्ये ज्येष्ठमासेसुदारुणे ॥ २१ ॥ अथापश्यत्स्तोकजलां सातत्रलघुकूपिकाम् ॥ तृषार्त्तांकपिलांगांच व
र्तमानांतदन्तिके ॥ २२ ॥ ततोदयांसमाश्रित्य त्यक्त्वास्नेहंसुतोद्भवम् ॥ आत्मनश्चतथाप्राणान् गांवितृष्णामथाक

चाण्डाल की योनि में एक गौ को तृषाहीन किया याने पानी पिलायाहै ॥ १८ ॥ उसके प्रभावसे मैं बहुतही पुण्यकारक नृपमन्दिरमें उत्पन्नहुई इस लिये इस क्षेत्रके प्रभावके कारण यहीं पर मेरी स्थिति होगी ॥१९॥ सूतजी बोले कि दूसरे देहान्तरमें वह बड़ी निन्दित चाण्डालीहुईहै जो कि बहुत से सन्तानों से संयुत व दरिद्रसे तुच्छथी॥ २० ॥ इसके अनन्तर बड़े विकराल जेठ के महीनेमें सूर्य्यनारायणको मध्यदिनमें प्राप्त होनेपर घूमती हुई वह प्याससे विकल होकर इस क्षेत्र में प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर वहापर उस चाण्डाली ने थोड़े जलवाले छोटे कुयें को देखा व उसीके समीप वर्तमान होतीहुई प्याससे विकल कपिला गौ को देखा ॥ २२ ॥ तदनन्तर

पुत्रमें उपजे हुये स्नेह को व अपने प्राणों को त्यागकर उस चाण्डाली ने दया में समाश्रित होकर इसके अनन्तर गौको प्यास से रहित किया याने उसीको उस जल को पीलेने दिया ॥ २३ ॥ व गौकी भक्ति में मनको धारे हुई वह चाण्डाली जलके न होनेसे समस्त बालकों समेत यमराज के मन्दिर को प्राप्तहुई ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो। तदनन्तर उसीके प्रभावसे राजाके मन्दिर मे उत्पन्न हुई व पूर्वजन्मके कर्मफलसे विपकन्या होती भई ॥ २५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! किस कर्म के फलसे वह अपने कुल को नाश करनेवाली विपकन्या हुई है उस समस्त वृत्तान्तको हमलोगों से कहिये ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! चाण्डालता में वर्तमान

रोत् ॥ २३ ॥ जलाभावात्तथासाच समस्तैर्बालकैःसह ॥ वैवस्वतगृहंप्राप्ता गोभक्तिधृतमानसा ॥ २४ ॥ ततोनृपगृहेजाता तत्प्रभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेन सञ्जाताविषकन्यका ॥ २५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनकर्म्मविपाकेन सञ्जाताविषकन्यका ॥स्वकुलोच्छेदनकरी सर्वंसूतब्रवीहिनः ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ चण्डालत्वेतयाविप्रा वर्तन्त्याभ्रममाणया ॥ देवतायतनेदृष्टा गौरीहेममयींशुभाम् ॥ २७ ॥ ततस्तामजनेप्राप्य गत्वादेशान्तरंमुदा ॥ यावत्करोतिखण्डानि विक्रयार्थंसुनिन्दिता ॥ २८ ॥ तावदन्वेषमाणास्तांसम्प्राप्तान्नृपसेवकाः ॥ आगत्यतांसमालोक्य भर्त्सयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥ ताडितालकुटाघातैर्लोष्टघातैश्चमुष्टिभिः ॥ ततःसुवर्णमादाय त्यक्त्वातांरुधिरप्लुताम् ॥ ३० ॥ अवध्यैषेतिसञ्चिन्त्य स्वपुरंप्रतितेगताः ॥ यत्तयापार्वतीस्पृष्टा ततोवैखण्डशःकृता ॥ ३१ ॥ तेनकर्म्मविपाकेन सञ्जाता

व घूमती हुई उस कन्या ने देवमन्दिरमें सुवर्णमयी उत्तम पार्वतीजीको देखा ॥ २७ ॥ तदनन्तर अतिनिन्दित उस चाण्डालीने उस मूर्तिको निर्जन स्थान मे पाकर व हर्ष से दूसरे देशको जाकर बेंचने के लिये जबतक खण्डों को करै ॥ २८ ॥ तबतक उस मूर्तिको ढूंढ़ते हुये नृपतिके नौकर लोग भलीभांति प्राप्तहुये व आकर उसको देखकर और बार बार घुड़ककर ॥ २९ ॥ दण्डघातसे व ढेलोंके मारनेसे व मुष्टियों से ताडन करतेभये तदनन्तर रक्तसे डूबीहुई उस चाण्डालीको छोडकर व सुवर्णको लेकर तथा यह मारनेके योग्य नहीं है यह विचारकर वे नृपसेवक अपने नगरको चलेगये जिस लिये कि उस चाण्डाली ने पार्वती जीको स्पर्शकिया तदनन्तर निश्चयकर खण्ड

खण्ड करडाला॥ ३०। ३१॥ उसी कर्म के फल से विषकन्या होती भई तदनन्तर स्मरणको प्राप्त होकर पूर्वजन्म में उपजे व गौसे पियेहुये जलदान के माहात्म्यको विचारकर उसने कुआंके स्थानमें निर्मल जलवाले तड़ागको निर्मित किया॥ ३२। ३३॥ जो कि समुद्र के समान व मनोहर कमलिनियों के समूह से शोभित व मछली कछुओं से व्याप्त और सूँसियोंसे सुशोभित॥ ३४॥ व सब ओर बहुतेरे हंस, बगुला, चकवा पक्षियों से सेवित तथा गम्भीर जलवाला व पुण्यदायक और जलजन्तुओं से सेवितथा॥ ३५॥ उस राजकन्याने उसीके समीप अतिभक्तिसे कैलासशिखरके समान व देखनेमें मनोहर व सुन्दर मन्दिरको निर्माणकर तदनन्तर उसीमें भक्तिसे

विषकन्यका॥ ततःसंस्मृतिमासाद्य पूर्वजन्मसमुद्भवाम्॥ ३२॥ माहात्म्यंजलदानस्य गोपीतस्यविचार्य्यच॥ चका रकूपिकास्थाने तडागंविमलोदकम्॥ ३३॥ समुद्रप्रतिमंचारु पद्मिनीषण्डमण्डितम्॥ मत्स्यकच्छपसङ्कीर्णं शि शुमारविराजितम्॥ ३४॥ सेवितंबहुभिर्हंसैर्बकैश्चक्रैःसमन्ततः॥ अगाधसलिलंपुण्यं सेवितंजलजन्तुभिः॥ ३५॥ प्रासादंतत्समीपस्थं साधुदृष्टिमनोहरम्॥ कारयित्वातिसाभक्त्या कैलासशिखरोपमम्॥ ३६॥ ततस्तत्रतपस्तेपे गौरींसंस्थाप्यभक्तितः॥ तदग्रेव्रतमास्थाय यथोक्तंशास्त्रसम्भवम्॥ ३७॥ प्रातःस्नात्वातुहेमन्ते गौरींसम्पूज्यभक्ति तः॥ बलिपूजोपहारैश्च विप्रदानादिभिस्तथा॥ ३८॥ ततश्चशिशिरेप्राप्ते सायंप्रातःसमाहिता॥ एकान्तरोपवासैश्च स्नानंचक्रेविधानतः॥ ३९॥ वसन्तेनृत्यगीतैश्च तोषयामासपार्वतीम्॥ षष्ठकालाशनासाध्वी सस्यदानपरायणा॥ ४०॥ पञ्चाग्निसाधनाग्रीष्मे फलाहारातपस्विनी॥ चकारश्रद्धयोपेता वृकभूमिपतेःसुता॥ ४१॥ वर्षासुचजलाहारा

पार्वती जी को भलीभांति स्थापित कर व शास्त्र में उपजे हुये यथोक्त व्रत में टिककर उन्हीं पार्वती जी के आगे तपस्या को किया॥ ३६। ३७॥ व हेमन्तऋतु में प्रातःकाल नहाकर तथा भक्तिसे ब्राह्मणों के दानादिकों से व भेंट, पूजन, उपहारों से पार्वती जी को भलीभांति पूजकर॥ ३८॥ तदनन्तर जब शिशिरऋतु प्राप्तहुआ तब एक दिन के अन्तर के उपवास से सायङ्काल व प्रातःकाल में सावधान होती हुई विधि से स्नान को किया॥ ३९॥ व वसन्त ऋतु में अन्नदान में परायण व छठवें समय में भोजन करती हुई उस उत्तम स्वभाववाली विषकन्या ने नाचने गाने से पार्वतीजी को प्रसन्न किया॥ ४०॥ व तपस्विनी वृकनामक भूपति की कन्या ने

श्रद्धासे संयुत व फलाहारिणी होतीहुई ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्निका साधनकिया ॥ ४१ ॥ व उस भूपकी कन्याने वर्षाऋतुमें कुटी को छोड़े हुई व जलाहारिणी होकर आकाश में शयन किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर नित्यही जप करने मे तत्पर व पार्वतीजी में मनको प्राप्त किये व पवनको भोजन करती हुई उस विषकन्या ने शरदृऋतु को व्यतीत किया ॥ ४३ ॥ इसप्रकार पर्वत की पुत्री पार्वतीदेवी का आराधन करतीहुई उस विष कन्या को बहुतसा समय होगया परन्तु वाञ्छित फल न मिला ॥ ४४ ॥ कन्यापन में भी वर्तमान होतीहुई उस विषकन्या का मुख सिमिटों से आक्रान्त होगया व श्वेत केशों से शिर चिह्नित होगया परन्तु शिवप्रिया पार्वतीजी प्रसन्न

भूत्वासाभूपकन्यका ॥ आकाशेशयनंचक्रे परित्यक्तकुटीरका ॥ ४२ ॥ वायुभक्षासतीसाथ सानयच्छरदंततः ॥ कृत जाप्यपरानित्यं पार्वतीगतमानसा ॥ ४३ ॥ एवमाराधयन्त्याश्च तस्यादेवींगिरेःसुताम् ॥ जगामसुमहान्कालो न ले भेफलमीहितम् ॥ ४४ ॥ मुखंवलिभिराक्रान्तं पलितैरङ्कितंशिरः ॥ कन्याभावेपिवर्तन्त्या नच तुष्टाहरप्रिया ॥ ४५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तत्परीक्षार्थमेवसा ॥ शक्राणीरूपमास्थाय ततःसन्दर्शनंगता ॥ ४६ ॥ सुधावदातासूर्य्याभा कैलासशिखरोपमा ॥ सुप्रलम्बकरंमत्तं चतुर्दन्तंमहागजम् ॥ ४७ ॥ समास्थायवृतास्त्रीभिर्देवानांसर्वतोदिशम् ॥ दधतीमुकुटंमूर्द्ध्नि हारकेयूरभूषिता ॥ ४८ ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेनमूर्द्धनि ॥ सेव्यमानाप्सरोभिश्च स्तूयमा नाचकिन्नरैः ॥ ४९ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानासा ततःप्रोवाचसादरम् ॥ वरंयच्छामितेपुत्रि प्रार्थयस्वयथेप्सितम् ॥ ५० ॥

न हुई ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस विषकन्या की परीक्षाही के लिये इन्द्राणीके रूपमें स्थित होकर तदनन्तर भलीभांति दर्शन में प्राप्तहुई ॥ ४६ ॥ जो कि कैलास के शिखर के समान व दिनकर की दीप्ति के तुल्य छविवाली व अमृत सम निर्मल होकर बड़े शुण्डादण्डवाले व चार दांतोंवाले मस्तीले महागजपै बैठ कर सब दिशाओं में देवतों की स्त्रियों से घिरीहुई व हार व बहूटों से शोभित तथा मस्तक में मुकुटको धारण कियेथीं ॥ ४७ । ४८ ॥ व मस्तक पै धरेहुये श्वेतछत्रसे उपलक्षित और किन्नरों से स्तूयमान तथा अप्सराओं से सेव्यमान थीं ॥ ४९ ॥ व गन्धर्वों से गाईहुई वे इन्द्राणी तदनन्तर आदर समेत बोली कि हे पुत्रि ! यथेप्सित

को मांगो मैं तुमको वरदान दूंगी ॥ ५० ॥ इससमय तुम्हारी इरा बड़ीभारी तपस्या से प्रसन्न हुई मैं सुरेशकी स्त्री त्रिलोक में भी शची ऐसीकही गई तुम्हारे ऊपर दयाकर प्राप्तहुईहूं क्योंकि शिवप्रिया को ध्यान करतीहुई तुमेनबड़ी तपस्या की है ॥ ५१ । ५२ ॥ व बहुत निठुर पार्वतीजी तपस्या से प्रसन्नता को प्राप्त हुई हैं ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन इन्द्राणी के वचनको सुनकर श्रुति में कहेहुये आचरणमें तत्पर व हाथजोड़े आगे टिकीहुई उस विषकन्याने उन को प्रणामकर कहा ॥ ५४ ॥ विषकन्या बोली कि हे इन्द्राणि, देवि ! तुमसे व और देवताओं से भी किसी प्रकार मैं निस्सन्देह वरदान न मॉगूंगी ॥ ५५ ॥ हेइन्द्र

अनेनतपसातुष्टा पुष्कलेनतवाधुना ॥ अहंभार्य्यासुरेन्द्रस्यशचीतिपरिकीर्तिता ॥५१॥ त्रैलोक्येपिस्वयंप्राप्ता दयां कृत्वातवोपरि ॥ त्वयामहत्तपस्तप्तं ध्यायन्त्याहरवल्लभाम् ॥ ५२ ॥ तपसातुष्टिमायाता भवानीचसुनिष्ठुरा ॥ ५३ ॥ सूतउवाच ॥ सातस्यावचनंश्रुत्वा श्रौताचारपरायणा ॥ नमस्कृत्वाथतामूचे कृताञ्जलिपुटस्थिता ॥ ५४ ॥ विषकन्योवाच ॥ नाहंत्वत्तोवरंदेवि प्रार्थयामिकथञ्चन ॥ तथान्यासामपीन्द्राणि देवतानामसंशयम् ॥ ५५ ॥ अप्यहंनरकंरौद्रंप्रगच्छामीन्द्रवल्लभे ॥ हरकान्तासमादेशान्नस्वर्गेपितवाज्ञया ॥ ५६ ॥ अनादिमध्यपर्य्यन्ता ज्ञानैश्वर्य्यसमन्विता ॥ यादेवीपूज्यतेदेवैर्वरंतस्यावृणोम्यहम् ॥ ५७ ॥ यामाराधयतेविष्णुर्ब्रह्मारुद्रश्चवासवः ॥ वाञ्छितार्थंसदादेवा वरंतस्यावृणोम्यहम् ॥ ५८ ॥ ययाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ स्त्रीरूपैर्विविधैर्देव्यावरंतस्यावृणोम्यहम् ॥ ५९ ॥ देव्युवाच ॥ अहंभार्य्यासुरेन्द्रस्य प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ममाज्ञांपालयन्तिस्म देवदानवपन्नगाः ॥ ६० ॥

की प्यारी ! सदाशिवजीकी सुन्दरीके समादेश (आज्ञा) से मैं घोरनरक को भी जाऊंगी परन्तु तुम्हारी आज्ञा से स्वर्ग में भी न जाऊंगी ॥ ५६ ॥ जो देवी आदि, मध्य, अन्त से रहित व ज्ञान, ऐश्वर्य्य से संयुत तथा देवताओं से पूजी जाती है उस से मैं वरदान मॉगूँगी ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र व देवता मनोरथ के लिये सदैव जिस देवी को आराधते हैं उसीसे मैं वर माँगूंगी ॥ ५८ ॥ व जिसने अनेक प्रकार के स्त्रियों के रूपों से स्थावर जङ्गम समेत इस समस्त त्रिलोकको व्याप्त किया है उसी देवी से मैं वरदान को माँगूंगी ॥ ५९ ॥ देवी बोलीं कि मैं प्राणों से भी अधिक प्यारी सुरेश की स्त्रीहूं देवता, दानव, नाग, किन्नर, गुह्यक, यक्षों ने

मेरी आज्ञा को पालन किया है फिर मनुष्यों का क्या कहना है इसलिये हे दुष्टतापसि ! तुम मुझसे वरको क्योंनहीं ग्रहण करतीहो ॥ ६० । ६१ ॥ उसी कारण निश्चयकर तुम्हारे शिरको वज्रघात से मैं चूर्ण करूंगी हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर उन इन्द्राणीके उस वचनको सुनकर उस तपस्विनीने धैर्य्य को अवलम्बनकर फिर भी उन सुरेश्वरी से कहा कि तुम निश्चयकर देवताओं की स्वामिनी हो यह निस्सन्देह है ॥ ६२ । ६३ ॥ हे सुरेश्वरि ! तुमने जिससे ऐश्वर्य्य को पाया है उस उत्तम देवता को मैं प्रसन्न करती हूं तुम्हारे थोड़े भी अपराधको नहीं करती हूं ॥६४॥ तिसपर भी मुझको मारने के योग्य मानती हो तो अस्त्र को फेंको (चलावो) हे इन्द्राणि !

किन्नरागुह्यकायक्षाः किंपुनर्मर्त्यधर्म्मिणः ॥ तस्मात्त्वंकिंनगृह्णासिवरंमत्तःकुतापसि ॥ ६१ ॥ तन्नूनंवज्रघातेन चूर्णयिष्यामितेशिरः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा तापसीचततोद्विजाः ॥ ६२ ॥ धैर्य्यमालम्ब्यतांप्राह भूयएवसुरेश्वरीम् ॥ स्वामिनीत्वंहिदेवानां सत्यमेतदसंशयम् ॥ ६३ ॥ यस्याःप्राप्तंत्वयैश्वर्य्यं परांतांतोषयाम्यहम् ॥ स्वल्पमप्यपराधन्ते न करोमिसुरेश्वरि ॥ ६४ ॥ तथापिवधयोग्यांमां मन्यसेक्षिपायुधम् ॥ अन्यथापिवचोमह्यं शक्राणिशृणुसादरम् ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वाकुरुचश्रेयो विचिन्त्यमनसाततः ॥ नत्वंनतेपतिःशक्रोनचान्येपिसुरासुराः ॥ ६६ ॥ मांनिषूदयितुंशक्ताः पार्वत्याःशरणंगताम् ॥ तस्माद्द्रुतंदिवंगच्छ मात्वंकोपंवृथाकुरु ॥ ६७ ॥ सन्मार्गवर्तमानाया ममसर्वसुरेश्वरि ॥ ६८ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसातांशचीमुक्त्वा दुःखिताविषकन्यका ॥ चिन्तयामासतदिदं मरणेकृतनिश्चया ॥ ६९ ॥ नप्रसीदति मेदेवी यस्मात्पर्वतनन्दिनी ॥ तस्मान्मांयदिशक्राणी नैषाव्यापादयिष्यति ॥ ७० ॥ तन्नूनंज्वलनंदीप्तं सेवयिष्या

अन्य प्रकार के भी मेरे वचन को आदर समेत सुनो ॥ ६५ ॥ उसको सुनकर तदनन्तर मनसे कल्याण को विचारकर उसको करो कि तुम व तुम्हारे पति इन्द्र व और भी देवता, दैत्य पार्वतीजी के शरण में प्राप्तहुई मुझको मारनेके लिये समर्थ नहीं हैं इसलिये शीघ्रही स्वर्गको जावो हे समस्त सुरेश्वरि ! उत्तम मार्ग में वर्तमान होने वाली मेरे ऊपर तुम निरर्थक कोप मतकरो ॥ ६६ । ६७ । ६८ ॥ सूतजी बोले कि मरण में निश्चय किये उस दुःखित विषकन्या ने इसप्रकार उन इन्द्राणीसे उस वचनको कहकर यह चिन्तवन किया॥६९॥कि जिसलिये पर्वतकी पुत्री पार्वतीजी मेरे ऊपर प्रसन्न नहीं हैं इसलिये यदि यह इन्द्राणी मुझको विशेष कर न मारेंगी॥७०॥

तो निश्चयकर जलते हुये ज्वलन (अग्नि) को शीघ्रही सेयन करूंगी इसके अनन्तर क्षणहीभर में ऐरावत हाथी को न देखा ॥ ७१ ॥ किन्तु अचानक दूध, कुन्द, चन्द्रमा के समान श्वेतहुये बैलको व उसी के ऊपर सदाशिव समेत बैठीहुई उत्तम रूप से संयुत व प्रसन्नमुखवाली व श्वेतमाला व वसनों को धारे तथा आधे चन्द्रमा को मस्तक में किये व चार भुजाओं वाली पार्वती जी को देखा ॥ ७२ । ७३ ॥ तदनन्तर भलीभांति अवलोकनकर विपकन्या ने उनको पर्वत की कन्या (पार्वती) को जानकर बार २ प्रणामकर स्तुति की ॥ ७४ ॥ हे देवदेवेश्वरि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सर्वकामदायिनि, हे सत्ये, हे वृद्धता व मृत्यु

मिसत्वरम् ॥ अथापश्यत्त्क्षणेनैव नचैरावतवारणम् ॥७१॥दुग्धकुन्देन्दुसङ्काशं सञ्जातंसहसावृषम् ॥ तस्योपरिस्थितांदेवीं शम्भुनासहपार्वतीम् ॥ ७२ ॥ चतुर्भुजांप्रसन्नास्यांदिव्यरूपसमन्विताम् ॥ शुक्लमाल्याम्बरधरां चन्द्रार्धकृतमस्तकाम् ॥ ७३ ॥ ततःसम्यक्समालोक्य ज्ञात्वातांपर्वतात्मजाम् ॥ विपकन्यास्तुतिंचक्रे प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ७४॥ नमस्तेदेवदेवेशि नमस्तेसर्ववासिनि॥ सर्वकामप्रदेसत्येजरामरणवर्जिते ॥ ७५ ॥ शक्रादयोपिदेवास्ते परमार्थेननोविदुः ॥ स्वरूपवर्णनंकर्तुं किंपुनर्देविमानुषी ॥ ७६॥ यस्याःसर्वंमहीव्योम जलाग्निपवनात्मकम् ॥ ब्रह्माण्डमङ्गसम्भूतं सदेवासुरमानुषम् ॥ ७७ ॥ नतस्याजन्मनिब्रह्मा ननाशायमहेश्वरः ॥ पालनायनगोविन्दस्तांस्तोष्यामहेकथम् ॥ ७८ ॥ तथाष्टगुणमैश्वर्यं यस्याःस्वाभाविकंपरम्॥ निरस्तातिशयंलोके स्पृहणीयतमंमुदा ॥ ७९ ॥ यस्यारूपाणयने

से रहित, समस्तजननिवासिनि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ७५ ॥ हे देवि ! इन्द्रादिक देवता भी परमार्थ से तुम्हारे स्वरूप वर्णन करने के लिये नहीं जानते हैं फिर मानुषी कैसे जानै ॥ ७६ ॥ सुरासुर नर समेत समस्त पृथ्वी आकाश, जल, अग्नि, पवनात्मक ब्रह्माण्ड जिसके अङ्ग से उत्पन्न हुआ है ॥ ७७ ॥ उसके जन्म में ब्रह्मा व नाश के लिये महादेव तथा पालन के लिये विष्णु जी समर्थ नहींहोते उसकी हम किसप्रकार स्तुतिकरैं ॥ ७८ ॥ व संसार में हर्ष से अति चाहना के योग्य व अत्यन्तही उत्कर्षवाला व आठगुणवाला उत्तमऐश्वर्य्य जिन पार्व्वतीजी के स्वभावही से है ॥ ७९ ॥ व भलीभांति ध्यान में परायण होते हुये मुनिलोग भक्ति

से जिसके अनेक रूपों को ध्यानकरते हैं व अभिलाप को प्राप्तहोते हैं ॥ ८० ॥ व मोक्षके लिये निश्चय को कियेहुये योगी जन जिसके रूप को ध्यान से हृदय में कल्पितकर भलीभांति भावरूप फूलों से पूजन करते हैं ॥ ८१ ॥ उसी महेश्वरी देवी को मैं मानुषी होकर कैसे स्तुति करूं ॥ ८२ ॥ श्री देवीजी बोलीं कि हे पुत्रि ! तुम से मैं बहुतही प्रसन्न हूं चाहेहुये वरदानको मांगो जो तुम्हारे हृदय में निरन्तर टिका है उसको मैं निस्सन्देह दूंगी ॥ ८३ ॥ विषकन्याबोली कि हे देवि ! मैंने पति के लिये इस तपस्या का उद्यम किया है तो इस समय वृद्धता से घिरीहुई मैं उस पति से क्या करूंगी ॥ ८४ ॥ इसलिये हे पार्वतीजी ! समस्त स्त्रियों के हित

कानि सम्यग्ध्यानपरायणाः ॥ ध्यायन्तिमुनयोभक्त्याप्राप्नुवन्तिचवाञ्छितम् ॥ ८० ॥ हृदिसङ्कल्प्ययद्रूपं ध्याने नार्चन्तियोगिनः ॥ सम्यग्भावात्मकैःपुष्पैर्मोक्षायकृतनिश्चयाः ॥ ८१ ॥ तांदेवींमानुषीभूत्वा कथंस्तौमिमहेश्वरीम् ॥ ८२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेपुत्रि वरंप्रार्थयवाञ्छितम् ॥ असन्दिग्धंप्रदास्यामि यत्तेहृदिसदास्थितम् ॥ ८३ ॥ विषकन्योवाच ॥ भर्तुरर्थेमयादेवि कृतोयंतपउद्यमः ॥ तत्किंतेनकरिष्यामि साम्प्रतंजरयावृता ॥ ८४ ॥ तस्मादत्रा श्रमेस्माकं त्वयास्थेयंसदैवतु ॥ हितायसर्वनारीणां वचनान्ममपार्वति ॥ ८५ ॥ देव्युवाच ॥ अद्यप्रभृत्यहंभद्रे श्रेष्ठेस्मि न्नाश्रमेशुभे ॥ स्वमाश्रयंकरिष्यामि यत्तेहृदिसमाश्रितम् ॥ ८६ ॥ माघशुक्लतृतीयायां योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ ना रीवामत्प्रसादेन लप्स्यतेवाञ्छितंफलम् ॥ ८७ ॥ अपिकृत्वामहत्पापं नारीवापुरुषोथवा ॥ अत्रस्नात्वाप्रसादान्मे वि पाप्मासम्भविष्यति ॥ ८८ ॥ यातत्रकन्यकाभद्रे स्नानंभक्त्याकरिष्यति ॥ तस्मिन्दिनेपतिंश्रेष्ठं लप्स्यतेनात्रसंशयः ८९ ॥

के लिये मेरे वचन से हमारे इस आश्रम में तुमको सदैव टिकना चाहिये ॥ ८५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे कल्याणरूपे ! आजसे लगाकर इसी शुभदायक उत्तम आश्रम में मैं अपने आश्रय को करूंगी जो कि तुम्हारे हृदय में भली भांति टिका है ॥ ८६ ॥ माघमास में शुक्लपक्षवाली तीज में जो नर या नारी यहां स्नान करैगा वह मेरी प्रसन्नता से अभिलषित फल को पावैगा ॥ ८७ ॥ व बडेभारी पाप को करके भी स्त्री या पुरुष इस तड़ाग में नहाकर मेरी प्रसन्नता से पापहीन होजावैगा ॥ ८८ ॥ हे कल्याणरूपे ! उस तड़ाग में जो कन्या भक्ति से स्नानकरैगी वह उसी दिन उत्तम पति को पावैगी इस में सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥

जो पुरुष स्त्री को भी मारकर माघमास की शुक्लपक्षवाली तीजमें इस तडागमें स्नानकरैगा वह पाप विहीन होजावेगा ॥ ९० ॥ यहांपर जो मनुष्य फलदान करैंगे उनके समस्त मनोरथ सफलहोंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९१ ॥ सूतजी बोले कि कि पार्वतीजी ने ऐसा कहकर व उस विषकन्या को हाथसे स्पर्श किया तदनन्तर उसी क्षण दिव्यरूपवाले शरीरको धारनेवाली होगई ॥ ९२ ॥ व वृद्धतासे छूटकर उत्तममाला व लेपनोंवाली तथा पुष्ट या स्थूल व ऊंचे कुचों व शरीरवाली और मस्तीले गज से गमनवाली होगई ॥ ९३ ॥ तदनन्तर उन पार्वतीजी ने उस विषकन्या को भली भांति लेकर व अपनी दासी बनाकर शिवजीसमेत कैलास पर्वतो-

अपिहत्वास्त्रियंमर्त्यो योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ माघशुक्लतृतीयायां विपाप्मासंभविष्यति ॥ ९० ॥ अत्रयेफल
दानंच प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ सफलासकलास्तेषामाशास्स्युर्नात्रसंशयः ॥ ९१ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वात
तोगौरी तांचपस्पर्शपाणिना ॥ ततश्चतत्क्षणाज्जाता दिव्यरूपवपुर्धरा ॥ ९२ ॥ वृद्धत्वेनपरित्यक्ता दिव्यमाल्यानुलेप
ना ॥ पीनोन्नतकुचाभोगा प्रमत्तगजगामिनी ॥ ९३ ॥ ततस्तांसासमादाय विधायनिजकिङ्करीम् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठं
जगामहरसंयुता ॥ ९४ ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थं शर्मिष्ठातीर्थमुच्यते ॥ प्रख्यातंत्रिषुलोकेषु सर्वपातकनाशनम् ॥ ९५ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ माघशुक्लतृतीयायांतथाचद्विजसत्तमाः ॥ ९६ ॥ एतत्पवित्रमायुष्यं सर्वपातक
नाशनम् ॥ स्त्रीतीर्थमभवन्नृणां यन्मोक्षायमयोदितम् ॥ ९७ ॥ यश्चैतत्प्रातरुत्थाय सदापठतिमानवः ॥ ससर्वाल्लँभते
कामान्मनसावाञ्छितान्सदा ॥ ९८ ॥ तथापर्वणिसम्प्राप्तेयश्चैतत्पठतेनरः ॥ शृणोतिवासुभक्त्यायःसयातिशिवमन्दिर

त्तम को चलीगई ॥ ९४ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ शर्मिष्ठातीर्थ कहाजाता है जो कि तीनों लोकों में समस्त पातकों का नाशक प्रसिद्ध है ॥ ९५ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! माघमासकी शुक्लपक्षवाली तीज में सब उपाय से उस तड़ाग में स्नान करै ॥ ९६ ॥ मैंने जिस स्त्रीतीर्थ को कहा है यह मनुष्यो के मोक्ष के लिये व पवित्र तथा आयुर्बलदायक व समस्त पातकों का नाशक हुआ है ॥ ९७ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर सदैव इस चरित्रको पढ़ता है वह मनसे चाहेहुये समस्त कामनाओंको सदैव प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ वैसेही पर्व के प्राप्त होने पर जो मनुष्य इस चरित्र को पढ़ता है या उत्तम भक्तिसे जो सुनता है वह शिवजी के मन्दिरको

प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये शर्मिष्ठातीर्थमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तिरसठवें अध्याय महँ सो बरणत शुभ गाथ । सोमनाथ के लिङ्गको थाप्यो जिमि निशिनाथ ॥ सूत जी बोले कि इसके अनन्तर वहांपर अति उत्तम सोमेश्वरनामक लिङ्ग इस त्रिलोक में प्रसिद्ध है जोकि चन्द्रमा से आपही निर्मित हुआहै ॥ १ ॥ वहांपर सोमवार को उछाहकर जो पुरुष वर्षपर्य्यन्त पूजन करता है वह

म् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येशर्मिष्ठातीर्थमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोध्यायः ६२ ॥

सूतउवाच ॥ अथसोमेश्वराख्यंच तत्रलिङ्गंसुशोभनम् ॥ अस्तिख्यातंत्रिलोकेत्र स्वयंसोमेननिर्मितम् ॥ १ ॥ सोमंवारेणयस्तत्र वत्सरंयावदर्चयेत् ॥ क्षणंकृत्वासरोगेणदारुणेनापिमुच्यते ॥ २ ॥ यक्ष्मणापिनसन्देहः किम्पुनः कुष्ठपूर्वकैः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोगार्त्तोत्रप्रपूजयेत् ॥ ३ ॥ तदाराध्यपुरासोमः क्षयव्याधिप्रपीडितः ॥ लेभेकलारजोदेहो यथापाण्ड्योनराधिपः ॥४॥ ऋषयऊचुः ॥ ओषधीनामधीशस्य कथंसोमस्यसूतज ॥ क्षयव्याधिःपुराजात उपशान्तिंकथंगतः ॥ ५ ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्व विस्तरेणमहामते ॥ तथातस्यमहीपस्य पाण्ड्यस्यापिकथांशुभाम् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ दक्षस्यकन्यकाः पूर्वं सप्तविंशतिसंख्यया ॥ उपयेमेनिशानाथो देवाग्निगुरुसन्निधौ ॥७॥ नक्षत्रसञ्ज्ञि

कठिन यक्ष्मा रोग से भी निस्सन्देह छूटजाता है फिर कुष्ठ आदि रोगों को क्या कहना है इसलिये रोग से विकल मनुष्य सब उपाय से यहांपर पूजन करै ॥ २ । ३ ॥ पुरातन समय रजोगुणी शरीरवाले व क्षय रोग से बहुतही दुःखित चन्द्रमा में उन सोमेश्वर जीको आराधनकर पाण्डय नृपति की नाईं कलाओं को पायाहै ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! ओषधियों के स्वामी चन्द्रमा के किसप्रकार पहले क्षयरोग उत्पन्न हुआ व कैसे शान्ति को प्राप्तभया है ॥ ५ ॥ हे महामते ! विस्तार से इस समस्त वृत्तान्त को व उस पाण्डय भूपति की भी उत्तम कथा को कहिये ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय निशानायक ने देवता, अग्नि, गुरु के

समीप सत्ताइस संख्यक दक्ष की कन्याओं का विवाह किया है ॥ ७ ॥ जोकि लोक में ब्राह्मणों से नक्षत्र नामक कहीजाती हैं इसके अनन्तर उन समस्त स्त्रियों के बीचमें उस निशानाथको प्राणों से भी अधिक गरिष्ठ रोहिणी प्यारी हुई है तदनन्तर उस चन्द्रमाने उन समस्त दक्ष की कन्याओं को छोड़कर दिन रात्रि रोहिणी के साथ संयुत हुआ तदनन्तर दुर्भाग्यता से संयुत व काम से अतिसन्तप्त होतीहुई व आंसुओं से आकुल मुखवाली वे स्त्रियां दुःखसंयुत होकर दक्षजीके समीप जाकर बोलीं कि हे पिता जी ! तुमने जिस सदैव पापचित्त या मानसवाले के लिये हम सबों को दिया है ॥ ८ । ९ । १० । ११ ॥ वह प्रीति से हम सबों को ऋतुमात्र

तालोके कीर्त्यन्तेयाद्विजोत्तमैः ॥ अथतासांसमस्तानां मध्येतस्यनिशापतेः ॥ ८ ॥ रोहिणीवल्लभाजज्ञे प्राणेभ्योपि गरीयसी ॥ ततःससम्परित्यज्य सर्वास्तादक्षकन्यकाः ॥ ९ ॥ रोहिण्यासहसंयुक्तः सम्बभूवदिवानिशम् ॥ ततस्ताः कामसन्तप्ता दौर्भाग्येनसमन्विताः ॥ १० ॥ प्रोचुर्दुःखान्वितादक्षं गत्वाबाष्पप्लुताननाः ॥ वयंयस्मैत्वयादत्तास्तात पापात्मनेसदा ॥ ११ ॥ ऋतुमात्रमपिप्रीत्या सोस्माकंनप्रयच्छति ॥ तस्मात्प्राणान्विहास्यामः सम्प्रविश्यहुताशनम् ॥ १२ ॥ अविलम्बान्महाभाग सत्यंब्रूमस्तवाग्रतः ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वा दक्षोदुःखसमन्वितः ॥ स र्वास्ताःस्वयमादाय जगामशशिसन्निधौ ॥ १४ ॥ ततःप्रोवाचसोन्वक्षं तासांदक्षःप्रजापतिः ॥ भर्त्सयन्परुषैर्वाक्यैर्निशानाथंमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ किमिदंयुज्यतेकर्त्तुं त्वयारात्रिपतेधमं ॥ कर्ममूढसतांबाह्य धर्म्मशास्त्रविगर्हितम् ॥ १६ ॥ ऋतुकालेपिसम्प्राप्ते सुताममसमुद्भवाः ॥ यन्नसम्भाषसेप्रीत्या धर्म्मशास्त्रंनवेत्सिकिम् ॥ १७ ॥ ऋतुस्नातांतुयोभा

भी याने ऋतुसमय में भी रतिको नहीं देता है इसलिये हे महाभाग ! अग्नि में पैठकर शीघ्रही प्राणों को त्यागकरैंगी यह तुम्हारे आगे हमसब सत्य कहती हैं ॥ १२ । १३ ॥ सूतजी बोले कि उन कन्याओं के उस वचनको सुनकर दक्षजी दुःखसमन्वित होतेहुये उन सबों को आपही लेकर निशाकर के समीपगये ॥ १४ ॥ तदनन्तर वे दक्षप्रजापति उन कन्याओं के सामने निशानायक को बार बार कठोर वचनों से निन्दते हुये बोले ॥ १५ ॥ कि हे निशानायक ! हे नीच ! हे मूढ़ ! हे उत्तम जनों से भिन्न करने के योग्य ! क्या तुमको धर्मशास्त्र से निन्दित यह कर्म करनेके लिये योग्य है ॥ १६ ॥ क्योंकि ऋतुसमय भी भलीभांति प्राप्त होनेपर मुझसे

जो पुरुष ऋतुसमय में नहाई हुई स्त्रीके समीप नहीं जाता है वह विकराल भ्रूण (गर्भ) हत्या से संयुत होता है इसमें सन्देह नहीं है॥ १८ ॥ उन दत्तजीके उस वचनको सुनकर सलज्जित निशानायक अधोमुख हो-कर दत्तजीसे बोले कि मैं तुम्हारे वचनको करूंगा॥ १९ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनवाले दत्तजी सब सुताओं को चन्द्रमाको निवेदनकर व उनसे पूंछकर उसके पीछे अपने घरको चलेगये ॥ २० ॥ चन्द्रमाने भी पहले की नाईं दत्तसे उपजीहुई उन समस्त कन्याओं को त्यागकर स्नेह से रोहिणी के साथ संसर्ग (सङ्गति) किया ॥ २१ ॥

र्यां सन्निधौनोपगच्छति ॥ घोरायांभ्रूणहत्यायां युज्यतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सलज्जोरात्रिनायकः ॥ प्रोवाचाधोमुखो दत्तं प्रकरिष्येवचस्तव ॥ १९ ॥ ततोहृष्टमनादत्तः सुताःसर्वाहिमद्युतेः ॥ निवेद्यामन्त्र्यतंपश्चाज्जगामनिजमन्दिरम् ॥ २० ॥ चन्द्रोपिपूर्ववत्सर्वास्ताःपरित्यज्यदत्तजाः ॥ रोहिण्यासहसंसर्गं प्रचकारानुरागतः ॥ २१ ॥ अथतादुःखिताभूयो जग्मुर्यत्रपितास्थितः ॥ प्रोचुश्चबाष्पपूर्णाक्ष्यस्तत्कालसदृशंवचः ॥ २२ ॥ एतत्तातमहद्दुःखमस्माकंवर्ततेहृदि ॥ यद्दौर्भाग्यंप्रसञ्जातं सर्वस्त्रीजनगर्हितम् ॥ २३ ॥ यत्पुनस्त्वंकृतस्तेन कामुकेनदुरात्मना ॥ व्यर्थश्रमोऽप्रमाणीव पृष्ठेस्माकंगतःस्वयम् ॥ २४ ॥ तद्दुःखंनवयंशक्ता हृदिधर्तुंकथञ्चन ॥ रमतेसहिरोहिण्याचन्द्रमास्सहितोनिशम् ॥ २५ ॥ विशेषात्तववाक्येन निषिद्धोरात्रिनायकः ॥ अनुज्ञांदेहितस्मात्त्वमस्माकंतवसाम्प्र

इसके अनन्तर आंसुओंसे परिपूरितलोचनोंवाली वे क्लेशित कन्या फिर वहांपर गईं जहांपर पिता टिकाथा व उस समय के समान वचनको बोलीं ॥ २२ ॥ कि हे पिता जी ! हम सबों के हृदय में यह बडाभारी दुःख वर्तमान है जोकि समस्त स्त्रीजनों से निन्दित दुर्भाग्यता उपजी है ॥ २३ ॥ फिर जो तुम हमलोगों के पीछे आपही गयेथे उनको अप्रमाणिक पुरुष के समान उस दुष्ट चित्त या मनवाले कामीने व्यर्थ परिश्रमवाले करदिया ॥ २४ ॥ उस दुःख को हृदय में धरने के लिये हम सब किसीप्रकार समर्थ नहीं हैं क्योंकि तुम्हारे वाक्य से विशेपकर मना किया हुआ वह निशानायक चन्द्रमा रोहिणी के साथ निरन्तर रमण करता है इसलिये इस

समय तुम उस विषय में हमसबों को आज्ञा दीजिये ॥ २५ । २६ ॥ जिससे दुर्भाग्यताके दुःख से बहुतही तपीहुई हम सब जीवनको त्यागकरैं ॥ २७ ॥ सूतजी
बोले कि उन कन्याओं के उस वचन को सुनकर दक्षजी ने क्रोधसंयुक्त होतेहुये फिर उन निशानायक के निकट जाकर शाप दिया ॥ २८ ॥ कि हे पापरूप !
जिसलिये तुमने धर्मसंयुक्त मेरे वचनको नहीं किया उसलिये अतिघोर क्षयरोग भलीभांति टिकैगा ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! दक्षजी ऐसा कहकर चलेगये व चन्द्र-
माभी यक्ष्मारोगसे आलिङ्गित होताहुआ उसी क्षणसे दिन दिन प्रति क्षीणताको प्राप्त होने लगा ॥ ३० ॥ तदनन्तर दुर्बलताको प्राप्त व कामको सेवनेके लिये असमर्थ

तम् ॥ २६ ॥ दौर्भाग्यदुःखसन्तप्तास्त्यजामोयेनजीवितम् ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वा दक्षःकोपसम
न्वितः ॥ शशापशर्वरीनाथं गत्वातत्सन्निधौपुनः ॥ २८ ॥ यस्मात्पापनमेवाक्यं त्वयाधर्मसमन्वितम् ॥ कृतंतस्मा
त्क्षयव्याधिः संश्रयिष्यतिदारुणः ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वाययौदक्षश्चन्द्रोपिद्विजसत्तमाः ॥ तत्क्षणाद्यक्ष्मणाश्लिष्टः क्ष
यंयातिदिनेदिने ॥ ३० ॥ ततोसौकृशतांप्राप्तः सम्परित्यज्यरोहिणीम् ॥ अशक्तःसेवितुं कामंबभ्रामजगतीतले ॥
३१ ॥ क्षयव्याधिप्रणाशाय पृच्छमानश्चिकित्सकान् ॥ औषधानिविचित्राणि प्रकुर्वाणोजितेन्द्रियः ॥ ३२ ॥ तथा
पिमुच्यतेनैव यक्ष्मणासनिशापतिः ॥ दक्षशापेनरौद्रेणक्षयंयातिदिनेदिने ॥ ३३ ॥ ततोवैराग्यमापन्नस्तीर्थयात्रा
परायणः ॥ बभूवश्रद्धयायुक्तस्त्यक्त्वाभेषजमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ अथासौभ्रममाणस्तु तीर्थान्यायतनानिच ॥ सम्प्राप्तोब्रा
ह्मणश्रेष्ठाः प्रभासंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा प्रभासंवीक्ष्यरात्रिपः ॥ यावत्सम्प्रस्थितोन्यत्र तावद

होताहुआ चन्द्रमाने रोहिणीको छोड़कर भूमितलमें भ्रमण किया ॥ ३१ ॥ क्षयरोगके नाशके लिये वैद्योंसे पूंछताहुआ जितेन्द्रिय होकर विचित्र ओषधियोंको करता
रहा ॥ ३२ ॥ तिसपर भी वह निशानायक यक्ष्मारोगसे न छूटा किन्तु बड़े विकराल दक्षजीके शापसे दिनोदिन क्षीणताको प्राप्त होतारहा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उ-
त्तम ओषधीको कर वैराग्य में प्राप्त होताहुआ वह चन्द्रमा श्रद्धासंयुक्त होकर तीर्थयात्रामें तत्पर हुआ ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणोत्तमो ! यह चन्द्रमा तीर्थ व
देवमन्दिरों को भ्रमता हुआ उत्तम प्रभास क्षेत्र में भलीभांति प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ व निशानाथने प्रभासक्षेत्रको देखकर उसमें नहाकर व पवित्र होकर जबतक

दूसरे स्थानको प्रस्थान किया तबतक प्रशंसितव्रत या कर्मवाले व समस्त प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले व तपोबलसे संयुक्त आगे टिकेहुये रोमक नामक मुनिको देखा ॥ ३६ । ३७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! क्षयरोगसे संयुक्त उस चन्द्रमाने उन मुनि को देखकर व उच्चप्रकारसे प्रणामकर निर्वेद (अपमानादि) के कारण आदर समेत कहा ॥ ३८ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! शरणमें प्राप्तहुआ मैं क्षयरोगके प्रभावसे बहुतही क्षीणहूं इसलिये बडेभारी प्रतीकार (उपाय) को करिये ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! मैंने वैद्योंसे पूंछा व उनसे कहीहुई अनेकप्रकारकी ओषधिको किया परन्तु दिनोदिन क्षीण होतारहा ॥ ४० ॥ मुझको तुम यदि किसी उपदेशको न दोगे तो आजही शापसे

ग्रेऽग्यवस्थितम् ॥ ३६ ॥ अपश्यद्रोमकंनाम समुनिंशंसितव्रतम् ॥ तपोवीर्य्यसमोपेतं सर्वसत्त्वानुकम्पकम् ॥ ३७ ॥ तंदृष्ट्वासप्रणम्योच्चैस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ क्षयव्याधियुतश्चन्द्रो निर्वेदाद्द्विजसत्तमाः ॥ ३८ ॥ परिक्षीणोस्मिविप्रेन्द्र क्षयव्याधिप्रभावतः ॥ तस्मात्कुरुप्रतीकारं महान्तंशरणंगतः ॥ ३९ ॥ मयाचिकित्सकाःदृष्टास्तैरुक्तंभेषजंकृतम् ॥ अनेकधामहाभाग परिक्षीणोदिनेदिने ॥ ४० ॥ यदिनैवोपदेशंमे कञ्चित्त्वंसम्प्रदास्यसि ॥ विधिनाशापतप्तेन त्यक्ष्याम्यद्यकलेवरम् ॥ ४१ ॥ रोमकउवाच ॥ अन्यस्यापिनिशानाथ नशापःकर्त्तुमन्यथा ॥ शक्यतेकिंपुनस्तस्य दक्षस्यामिततेजसः ॥ ४२ ॥ तस्मादत्रोपदेशंते प्रयच्छामिसुसम्मतम् ॥ येनतेस्यादसन्दिग्धं क्षयव्याधिपरिक्षयः ॥ ४३ ॥ नादेयंकिञ्चिदस्तीह देवदेवस्यशूलिनः ॥ सम्प्रहृष्टस्यमद्वाक्यात्तस्मादाराधयस्वतम् ॥ ४४ ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषु सत्यं वासःसदान्वितौ ॥ तेषुसंस्थाप्यतल्लिङ्गं प्राप्स्यसिव्याधिसङ्क्षयम् ॥ ४५ ॥ मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारि

तचीहुई विधिसे शरीरको त्याग करूंगा ॥ ४१ ॥ रोमकजी बोले कि हे निशानायक ! अन्य पुरुष का भी शाप अन्यथा करनेके लिये समर्थ नहीं है फिर अमिततेजवाले उन दक्षजीके शापको क्या कहना है ॥ ४२ ॥ इसलिये इस विषयमें तुमको भलीभाँति मानेहुये उपदेश को देताहूं जिससे निस्सन्देह तुम्हारे क्षयरोगका नाश होजावैगा ॥ ४३ ॥ इस संसार में देवतों के देवता त्रिशूलधारी सदाशिवजीको कुछ अदेय (न देनेके योग्य) नहीं है इसलिये मेरे वचनसे तुम उनका आराधनकरो ॥ ४४ ॥ पृथ्वीतलमें अरसठि तीर्थों में निरन्तर सत्यका निवास है उन तीर्थों में उन शिवजीके लिङ्गको भलीभाँति थापकर रोगके नाशको प्राप्तहोगे ॥ ४५ ॥

काक्काथः ॥ पीतःसकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरंनिहन्ति ॥ ४६ ॥ महौषधामृतामुस्ताचन्दनोदीच्यनागरैः ॥ क्काथस्तृतीयकंहन्ति शर्क्करामधुयोजितः ॥ ४७ ॥ अपामार्गजटाकट्यां लोहितैःसप्ततन्तुभिः ॥ बद्धावारेरवेस्तूर्णं ज्वरंहन्ति तृतीयकम् ॥ ४८ ॥ पलङ्कषावचाकुष्ठं निम्बपत्रैर्यवैर्घृतैः ॥ पथ्यासिद्धार्थकैर्धूपः शस्तःसर्वज्वरापहः ॥ ४९ ॥ किरांततिक्तत्रिफलापटोलतिक्तेन्द्रबीजंसुरदारुदार्वी ॥ व्योषंशटीचन्दननिम्बयुग्मं पुनर्नवापर्पटपद्मकंच ॥ ५० ॥ त्रायन्तिकोशीरविषागुडूचीदुरालभापिप्पलिमूलतुल्यम् ॥ चूर्णंविलिह्यान्मधुनाहिमोदकं तथानुपानेत्वमृतारसोवा ॥ ५१ ॥ ज्वरंपुराणंविनिहन्तिशीघ्रं तृतीयकंवावमिदाहमूर्च्छाः ॥ चातुर्थिकंचास्यगतंचरोगं सपीनसंकामलमाशुरोगम् ॥ ५२ ॥ व्यायामंचव्यवायंच स्नानंचङ्क्रमणानिच ॥ ज्वरमुक्तोनसेवेत यावन्नबलवान्भवेत् ॥ ५३ ॥ मन्त्रभेषजयोर्यत्र साफल्यंनैवदृश्यते ॥ तत्रनक्षत्रजांपीडां जानीयाद्भिषगुत्तमः ॥ ५४ ॥ कर्म्मणालभतेयस्माद्देवत्वंमानुषोदिवि ॥ तत

नागरमोथा, आँवला, गुर्च, सोंठि, भटकैया का क्काथ शहद समेत व पिप्पलीचूर्ण सहित पियाहुआ विषमज्वरको नाश करता है ॥ ४६ ॥ सोंठि, गुर्च, नागरमोथा, चन्दन, सुगन्धबाला, नागरमोथा से कियाहुआ क्काथ शक्कर व शहद से युक्त होकर तृतीयज्वर (तिजारी) को नाश करता है ॥ ४७ ॥ व रविवारको सात लाल तागोंसे कटिमें बाँधीहुई लटजीराकी जड़ तृतीय ज्वरको नाशती है ॥ ४८ ॥ व गोखुरू या रास्नादि, बच, कूट, नींबके पात, यव, घृत, बहेड़ा, सरसोंसे बनायाहुआ धूप समस्त ज्वरों का विनाशक कहा है ॥ ४९ ॥ चिरायता, आँवला, हर्र, बहेड़ा, परवर, पित्तपापड़ा, इन्द्रयव, देवदारु, गोभी, सोंठि, मिर्च, पीपरि, कचूर, चन्दन, दोनों नींब, पुनर्नवा, पित्तपापड़ा, पद्माख, त्रायमाणालता, खस, अतीस, गुर्च, जवासा, पिप्पलीमूल इन समस्त ओषधियों के समभाव चूर्णको शहद से चाटै और अनुपान में शीत जल या गुर्चका रस लेवै तो पुराने ज्वरको व तिजारी को और वमन, दाह (जलन) मूर्च्छा, चौथियाज्वरको व पीनस समेत मुखमें प्राप्तहुये रोगको व कांवले रोग को शीघ्रही नाश करता है ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ ज्वर से छूटाहुआ नर व्यायाम (कसरत) व मैथुन, स्नान, अतिगमन को तब तक न सेवन करै जबतक कि बलवान् न होवै ॥ ५३ ॥ जिस रोगमें मन्त्र व ओषधिकी सफलता नहीं देख पडती है उस रोगमें उत्तम वैद्य नक्षत्रसे उपजी हुई

पीड़ा को जानै ॥ ५४ ॥ मनुष्य जिसलिये मनुष्य कर्म से स्वर्ग में देवत्व को पाताहै उसी स्वर्ग से गिराहुआ फिर पृथ्वी में उपजता है ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले कि उस रोमक मुनिके उस वचनको सुनकर चन्द्रमा ने बहुतही प्रसन्न होकर उत्तम भक्ति से उस प्रभासक्षेत्र में उसी समय अपने नामसे चिह्नित त्रिशूलधारी देवताके लिङ्ग कास्थापन किया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी उन चन्द्रमा के भलीभांति दर्शन में प्राप्तहुये ॥ ५६ । ५७ ॥ व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तुम कामना को मांगो ॥ ५८ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे देवेश ! मैं यक्ष्मा रोगसे बहुतही क्षीण हूं व अप्रतिबन्धताको प्राप्तहूं इसलिये रक्षाकरिये मैं और कुछ नहीं मांगता हूं ॥ ५९ ॥

श्चैवच्युतःस्वर्गात्क्षितौभूयःप्रजायते ॥ ५५ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सम्प्रहृष्टोनिशापतिः ॥ तस्मिन्प्रभासकेक्षेत्रे लिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ ५६ ॥ स्थापयामाससद्भक्त्या निजनामाङ्कितंतदा ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यसन्दर्शनंगतः ॥ ५७ ॥ प्रोवाचवरदोस्मीति प्रार्थयस्वयथेप्सितम् ॥ ५८ ॥ चन्द्रउवाच ॥ परिक्षीणोस्मिदेवेश यक्ष्मणाहंनिरर्गलम् ॥ प्राप्तस्तस्मात्परित्राहि नान्यत्सम्प्रार्थयाम्यहम् ॥ ५९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भगवान्वृषभध्वजः ॥ दक्षमाहूयतत्रैव ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ६० ॥ एषचन्द्रस्त्वयाशप्तो जामातानकृतंशुभम् ॥ तस्मादनुग्रहंचास्य ममवाक्यात्समाचर ॥ ६१ ॥ दक्षउवाच ॥ मयाधर्म्यमपिप्रोक्तंवाक्यमेपकुबुद्धिमान् ॥ नाकरोन्मेपुरःप्रोच्य करिष्यामीत्यसत्यवाक् ॥ ६२ ॥ तेनशप्तस्तुकोपेन सुतीर्थेवृषभध्वज॥हास्येनापिमयाप्रोक्तं नान्यथासम्प्रजायते ॥ ६३ ॥ देवदेवउवाच ॥ अद्यप्रभृतिसर्वास्ताः सुताएषनिशाकरः ॥ समाःसंवीक्षतेनित्यं ममवाक्यादसंशयम् ॥ ६४ ॥ तस्मात्पक्षंच

श्री वृषभध्वज शिव भगवान् ने उन चन्द्रमा के उस वचन को सुनकर तदनन्तर वहींपर दक्षको बुलाकर आदर समेत यहकहा ॥ ६० ॥ कि तुमने इस चन्द्रमा जामातृ (दामाद) को शापदिया यह अच्छा नहीं किया इसलिये मेरे वाक्यसे इसकेऊपर दयाकरो ॥६१॥ दक्षजी बोले कि मैंने धर्मवाले वाक्यको भी कहा परन्तु इस कुबुद्धि वाले असत्यवादी चन्द्रमाने मेरे आगे यह कहकर कि (करूंगा) फिर न किया ॥६२॥ उसी से हे वृषभध्वज ! उत्तमतीर्थ में क्रोधसे मैंने शाप देदिया हास्यमें भी मुझ से कहा हुआ अन्यथा नहीं होता है ॥ ६३ ॥ देवताओं के देवता महादेवजी बोले कि आजसे लगाकर निरन्तर यह चन्द्रमा उन समस्त कन्याओं को मेरे वचन से

निरसन्देह समभाव से देखैगा ॥६४॥ इसलिये पक्षभर क्षीण होवै व पक्षभर वृद्धि कोप्राप्तहोवै जिससे मेरी प्रसन्नता समेत तुम्हारा वचन सत्य होवै ॥ ६५ ॥ तदनन्तर ऐसाही होगा यह कहकर दक्षजी अपने घरको चलेगये व शङ्कर देवभी शशाङ्कसे फिर बोले ॥ ६६ ॥ कि हे शशाङ्क ! तुम फिरभी मुझसे प्रिय पदार्थ को मांगो जिस से यद्यपि दुर्लभ होगा तथापि समस्त वस्तुओंको दूंगा ॥ ६७ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदेना योग्य है तो सब कहीं मुझसे थापे हुये उन लिङ्गों में तुमको मनुष्यों के हित की कामना से समीपता करना चाहिये ॥ ६८ । ६९ ॥ देवदेव महादेवजी बोले कि हे विभो ! तुमसे थापे

यंयातु पक्षंवृद्धिंप्रगच्छतु ॥ येनतेस्याद्वचःसत्यं मत्प्रसादसमन्वितम् ॥ ६५ ॥ ततोदक्षस्तथेत्युक्त्वा जगामनिजमन्दिरम् ॥ देवोपिशङ्करोभूयः प्रोवाचशशलाञ्छनम् ॥ ६६ ॥ भूयोपिप्रार्थयाभीष्टं मत्तस्त्वंशशलाञ्छन ॥ येनसर्वंप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ६७ ॥ चन्द्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ तत्स्थापितेषुलिङ्गेषु मयासर्वत्रसर्वदा ॥ ६८ ॥ सन्निधानंत्वयाकार्य्यं लोकानांहितकाम्यया ॥ ६९ ॥ देवदेवउवाच ॥ अष्टषष्टिषुलिङ्गेषु स्थापितेषुत्वयाविभो॥सोमवारेणसान्निध्यं करिष्येवचनात्तव॥७०॥सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्ततश्चादर्शनंगतः॥ चन्द्रोपिहर्षसंयुक्तः समाःपश्यतितास्ततः ॥ ७१ ॥ सुतादक्षस्यविप्रेन्द्राः शङ्करस्यवचःस्मरन् ॥ ततोहर्षसमायुक्तो बभूवतदनन्तरम् ॥ ७२ ॥ एवंसोमेश्वरस्तत्र बभूवद्विजसत्तमाः ॥अष्टषष्टिषुतीर्थेषु तथान्येषुततःपरम् ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्येनागरखण्डेसोमनाथोत्पत्तिर्नामत्रिषष्टितमोध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥

हुये अरसठि लिङ्गों में मैं तुम्हारे वचनसे सोमवार को समीपता करूंगा ॥ ७० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वे देवनायक शिवजी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये व प्रसन्नता संयुत होकर चन्द्रमा भी शिवजी के वचन को स्मरणकरता हुआ उन दक्षकी कन्याओंको समभाव से देखने लगा उसके उपरान्त हर्ष से संयुत होगया ॥ ७१।७२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके उपरान्त वहांपर इसप्रकार अरसठि तीर्थोंमें व अन्य तीर्थोंमें सोमेश्वरजी हुये हैं ॥७३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येसोमनाथोत्पत्तिर्नामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । चमत्कारिकी प्रदक्षिणकरि जो प्रभुताहोत । चौंसठिवें अध्यायमें कह्यो सो चरित उदोत ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वहींपर चमत्कारी देवी है जो कि पुरातन समय चमत्कार नामक नरेश से स्थापित हुई है ॥ १ ॥ कन्यापन के व्रतको धारनेवाली जिसदेवीने पहिले युद्ध में सैकड़ों, हजारों मायाके धारनेवाले महिषासुर को मारा है ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिस समय उस चमत्कार महात्माने वहांपर उस चमत्कारनगरको निर्मित किया उसी रामय उसकी रक्षाके लिये उन देवीजीको स्थापित किया ॥ ३ ॥ उसपुरकी रक्षाके लिये व उस नगरके निवासी समस्त ब्राह्मणों की रक्षाके लिये भक्तिसे शुद्ध चित्तकरके उस नृपने चमत्कारीदेवी

सूतउवाच ॥ चमत्कारीपुरादेवी तत्रैवास्तिद्विजोत्तमाः ॥ चमत्कारनरेन्द्रेण स्थापिताश्रद्धयापुरा ॥ १ ॥ ययासमहिषःपूर्वं निहतोदानवोरणे ॥ कौमारव्रतधारिण्या मायाशतसहस्रधृक् ॥२॥ यदातंनिर्मितंतत्र पुरंतेनमहात्मना ॥ तस्य संरक्षणार्थाय तदासास्थापिताद्विजाः ॥ ३ ॥ पुरस्यतस्यरक्षार्थं तथातत्पुरवासिनाम् ॥ सर्वेषांब्राह्मणेन्द्राणां भक्त्या भावितचेतसा ॥ ४ ॥ यस्तामभ्यर्चयेत्सम्यङ्महानवमिवासरे ॥ कृत्स्नंसंवत्सरंतस्य नभयंजायतेक्वचित् ॥ ५ ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यः शत्रुतश्चविशेषतः ॥ रोगेभ्यस्तस्करेभ्यश्च दुष्टेभ्योऽन्येभ्यएवच ॥ ६ ॥ यंयंकाममभिध्यायञ्छुक्लाष्टम्यांनरःशुचिः ॥ तांपूजयतिसद्भक्त्या सतमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥ निष्कामःसुखमाप्नोति मोक्षंनास्त्यत्रसंशयः ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८ ॥ तामाराध्यगताःपूर्वं सिद्धिंभूरिमहीभुजः ॥ ब्राह्मणाश्चतथान्येपि यो

को थापा है ॥ ४ ॥ महानवमी के दिन जो पुरुष भलीभाँति उन देवीको पूजता है उसको समस्त वर्षभर कहीं पर भूत, प्रेत, पिशाच से व विशेषकर शत्रुसे व रोगोंसे तथा चोरों और अन्य दुष्टोंसे भी भय नहीं होता है ॥ ५ । ६ ॥ शुक्लपक्षकी अष्टमीमें पवित्र होकर जो मनुष्य जिस २ कामना का चिन्तवन करताहुआ उत्तम भक्तिसे उन चमत्कारी देवी को पूजता है वह उस अभिलाषाको निस्सन्देह प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ व अकाम पुरुष उन देवीकी प्रसन्नतासे सुख पूर्वक मोक्षको पाता है इसमें सन्देह नहीं है मैंने इसको सत्य कहा है ॥ ८ ॥ पुरातन समय में बहुतसे भूपति व ब्राह्मण तथा अन्य भी योगीजन उन परमेश्वरीका आराधन कर सिद्धिको

प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ संवत्सर पर्य्यन्त श्रद्धा संयुक्त जो मनुष्य नित्यही उन भगवतीकी प्रदक्षिणा करता है वह तिर्य्यक् याने पशुपक्षी इत्यादि की योनिमें नहीं जाता है ॥ १० ॥ पुरातन समय उस देवी के मन्दिर में जो बड़ाभारी आश्चर्य्य हुआ है उसको तुम लोगों से कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ ११ ॥ कि पुरातन समय दशार्णदेशका स्वामी चित्ररथनामक हुआ है जोकि समस्त शत्रुओं का विनाशक प्रसिद्धथा ॥ १२ ॥ शुक्लपक्ष की अष्टमी में श्रद्धा संयुत वह भूपति भक्ति से उस चमत्कारी देवीकी एकसौ आठ प्रदक्षिणा करताथा ॥१३॥ तदनन्तर उन देवीकोप्रणामकर सब ओर चतुरङ्गिणी सेना से घिराहुआ वह नृपति फिर घरको जाताथा ॥१४॥

गिनःपरमेश्वरीम् ॥ ९ ॥ यस्तस्याःश्रद्धयोपेतः प्रकरोतिप्रदक्षिणाम् ॥ नित्यंसंवत्सरंयावत् तिर्य्यग्योनौनसंव्रजेत् ॥
१० ॥ तस्याआयतनेपूर्वमाश्चर्य्यमभवन्महत् ॥ यत्तद्वःकीर्तयिष्यामि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ ११ ॥ आसीच्चित्ररथो
नाम पूर्वपार्थिवसत्तमः ॥ दशार्णाधिपतिःख्यातः सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ १२ ॥ शुक्लाष्टम्यांसदाभक्त्या सतस्याःश्रद्धया
न्वितः ॥ अष्टोत्तरंशतंयावत् प्रचकारप्रदक्षिणाम् ॥ १३ ॥ ततःप्रणम्यतांदेवीं संप्रयातिपुनर्गृहम् ॥ सैन्येनचतुरङ्गेण स
मन्तात्परिवारितः ॥१४॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्य प्रदक्षिणरतस्यच ॥ जगामसुमहान्कालो देव्याभक्तिरतस्यच ॥ १५ ॥ क
स्यचित्त्वथकालस्य राजातत्रसमागतः ॥ अपश्यद्ब्राह्मणश्रेष्ठान् देवीगृहसमाश्रितान् ॥ १६ ॥ ततःप्रदक्षिणांकृत्वा
तांदेवींसमहीपतिः ॥ अग्रस्थांस्तान्द्विजान्सर्वान्नमश्चक्रेसमाहितः ॥ १७ ॥ ततस्तैःसहितैस्तत्र सहासीनःकथाःशु
भाः ॥ राजर्षीणांपुराणानां विप्रर्षीणांचकारह ॥ १८ ॥ ततःकस्मिन्कथान्तेसः पृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ कौतूहलसमोपेतैर्वि

इस प्रकार देवीकी भक्तिमें तत्पर व प्रदक्षिणा में परायण वाले उस नरेश का बहुत सा समय बीतगया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वहांपर नृपति भली-भांति आया व देवी के मन्दिर में टिकेहुये उत्तम ब्राह्मणों को देखता भया ॥ १६ ॥ तदनन्तर सावधान होतेहुये उस भूपति ने उन देवीकी प्रदक्षिणाकर आगे बैठेहुये समस्त ब्राह्मणोंको प्रणाम किया ॥१७॥ उसके उपरान्त उन ब्राह्मणों समेत बैठेहुये उस भूपतिने पुराने ब्रह्मर्षियों व राजर्षियों की उत्तम कथाओंको कहा ॥१८॥ तदनन्तर

किसी कथाके अन्तमें विनयसे झुके बैठेहुये उस भूपतिसे कौतुक समेत उन द्विजोत्तमोने पूंछा ॥१९॥ कि हे राजन् ! हमसब लोग कौतुकसे संयुत होतेहुये तुमसे पूंछते हैं इसलिये यदि गुप्त न होतो ऐसी व्यवस्था वाले वृत्तान्त को कहिये ॥ २० ॥ क्योंकि प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्ष वाली अष्टमीमे तुम सदैव बहुत दूरसे आकर व अन्य समस्त पूजादिक कर्मोंको छोडकर बडे यत्नसे देवताकी प्रदक्षिणा करते हो इसलिये जो प्रदक्षिणासे फल उपजताहै उस समस्तको तुम निश्चयकर जानतेहो ॥२१॥२२॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! जो आपलोगों ने कहा है यह सत्य है इससमय तुम लोगो से बहुत गुप्तभी वृत्तान्त मुझको कहना चाहिये ॥ २३ ॥ पुरातन समय देवीजीके इसी

नयावनतःस्थितः ॥ १९ ॥ राजन्पृच्छामहेसर्वे त्वांवयंकौतुकान्विताः ॥ तस्मात्कीर्तयगुह्यंनो यत्तदेवंव्यवस्थितम् ॥
२० ॥ मासिमासिसदाष्टम्यां त्वंशुक्लायांसुदूरतः ॥ आगत्यदेवतायाश्च प्रकरोपिप्रदक्षिणाम् ॥ २१ ॥ यत्नेनान्याःपरि
त्यज्य सर्वाःपूजादिकाःक्रियाः ॥ नूनंवेत्सिफलंकृत्स्नं यत्प्रदक्षिणसम्भवम् ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ सत्यमेतद्द्विजश्रे
ष्ठा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ रहस्यमपिवक्तव्यं युष्माकंसाम्प्रतंमया ॥ २३ ॥ अहमासंशुकःपूर्वमस्मिन्नायतनेशुभे ॥
देव्याःपश्चिमदिग्भागे कुलायकृतसंश्रयः ॥ २४ ॥ तत्रनिर्गच्छतोनित्यं कुर्वतश्चप्रवेशनम् ॥ प्रदक्षिणाभवद्देव्यानि
त्यमेवद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ ततःकालेनमेमृत्युः सञ्जातोत्रैवमन्दिरे ॥ तत्प्रभावेणसञ्जातो राजाजातिस्मरोऽत्रहि ॥२६॥
एतस्मात्कारणाद्दूरात्समभ्येत्यप्रदक्षिणाम् ॥ करोम्यस्याद्विजश्रेष्ठा देवतायाःसमाहितः ॥ २७ ॥ पुराभक्तिविही
नेन कुलायेवसतामया ॥ कृताप्रदक्षिणादेव्यास्तेनजातोस्मिभूपतिः ॥ २८ ॥ अधुनाश्रद्धयायुक्तो यत्करोमिप्रदक्षि

उत्तम मन्दिर में पश्चिम दिशाकी ओर कुलाय (घोंसले) के बीच टिकाश्रय को किये हुये मैं शुक (सुवा) हुआहूँ ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस मन्दिर में नित्यही निकलते व प्रवेश करतेहुये नित्यही देवी की प्रदक्षिणा होगई ॥ २५ ॥ तदनन्तर कालसे इसी मन्दिर में मेरी मृत्यु होगई उसीके प्रभाव से यहींपर राजा उत्पन्न हुआहूं ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इसी कारण मैं दूरसे आकर सावधान होताहुआ इनदेवताकी प्रदक्षिणा करताहूं ॥ २७ ॥ क्योंकि पुरातन समय घोंसले में निवास करतेहुये

व भक्ति से रहित मैने देवी की प्रदक्षिणा की है उसीसे भूपति हुआहूं ॥ २८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस समय श्रद्धा संयुत मैंजो प्रदक्षिणा करता हूं तो मेरा क्या कल्याण होगा उसको नहीं जानताहूं ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि उस भूपति के उस वचन को सुनकर तदनन्तर प्रसन्न व विस्मय से प्रफुल्ल लोचनों वाले उन द्विजोंने उस भूपतिके लिये साधुवाद किया याने प्रशंसित वचनोंको कहा ॥ ३० ॥ तदनन्तर वह भूपति समस्त द्विजोत्तमोंको प्रणामकर व उनकी आज्ञा लेकर सेना समेत शीघ्रही घरके लिये चलागया ॥ ३१ ॥ इस समय श्रद्धा संयुत होकर जो पुरुष प्रदक्षिणा करता है वह समस्त पातकोंसे छूटाहुआ चाहेहुये फलको प्राप्तहोताहै ॥ ३२ ॥

णाम् ॥ किम्मेभविष्यतिश्रेयस्तन्नवेद्मिद्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वातस्यतेविप्रा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ साधुवादंततश्चक्रुस्तस्यभूपस्यहर्षिताः ॥ ३० ॥ ततःसपार्थिवःसर्वान्प्रणम्यद्विजसत्तमान् ॥ अनुज्ञाप्ययतौतूर्णं स्वगृहायससैनिकः ॥ ३१ ॥ अधुनाश्रद्धयायुक्तो यःकरोतिप्रदक्षिणाम् ॥ ससर्वपापनिर्मुक्तो लभतेवाञ्छितंफलम् ॥ ३२ ॥ ततःप्रभृतितेविप्राः सर्वेभक्तिपुरःसराः ॥ तस्याःप्रदक्षिणांचक्रुस्तथान्येमुक्तिहेतवः ॥ ३३ ॥ प्राप्ताश्चपरमांसिद्धिं वाञ्छितांतत्प्रभावतः ॥ इहलोकेपरेचैव दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ ३४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तांदेवीमिहसंश्रयेत् ॥ सर्वकामप्रदांनृणां तस्मिन्क्षेत्रेव्यवस्थिताम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चमत्कारीदुर्गामाहात्म्यंनामचतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तबसे लगाकर भक्ति को अगाड़ी कियेहुये उन समस्त ब्राह्मणों ने व मुक्तिके चाही अन्य जनोंने उन देवीकी प्रदक्षिणा की ॥ ३३ ॥ व उसके प्रभाव से इस लोक में व परलोक में भी देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम मनोरथवाली सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ३४ ॥ इसलिये उस क्षेत्रमें विशेषता से टिकीहुई व इस संसार में मनुष्य के समस्त अभिलाषों को देनेवाली उन देवीको सब उपायसे भलीभांति आश्रय करै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येचमत्कारीदेवीमाहात्म्यंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । आनर्तेश्वर और पुनि शूद्रेश्वर को हाल । पैंसठिवें अध्याय में बरणत अतिहि रसाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर देवताओं से रचित और भी तड़ाग है जहांपर आनर्तदेशका नृपति नामसे सुहय नामक सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ उसी भूपतिने वहांपर आनर्तेश्वर नामक उत्तम लिङ्ग को थापन किया है जोकि मनुष्यों के समस्त कामनाओं का दायक है ॥ २ ॥ भौमवारको छठि तिथि में जो पुरुष उस तड़ाग में स्नान करता है वह सिद्धि को प्राप्तहोता है जैसे कि पहले आनर्तदेशके स्वामी ने सिद्धि पाया है ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! आनर्तदेशके नरेश माहात्माने किस प्रकार सिद्धिको पाया है उस समस्त वृत्तान्त को हमलोगों से कहिये क्योंकि

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति तटाकंदेवनिर्मितम्॥यत्रानर्त्तनृपःसिद्धस्सुहयोनामनामतः ॥ १ ॥ तेनैवभूभुजा तत्र लिङ्गंसंस्थापितंशुभम् ॥ आनर्त्तेश्वरसञ्ज्ञंच सर्वसिद्धिप्रदंनृणाम् ॥ २ ॥ तत्राङ्गारकषष्ठ्यांयस्तटाकेस्नानमाच रेत् ॥ सप्राप्नोतिनरःसिद्धिं यथानर्त्ताधिपःपुरा ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंसिद्धिस्तुसम्प्राप्ता चानर्त्तेनमहात्मना ॥ सर्वं कथय नःसूत सर्ववेत्सिनसंशयः ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ आनर्त्तःसुहयोनाम पुरासीत्पृथिवीपतिः ॥ सवैरिभिर्हतोयुद्धे प लायनपरायणः ॥ ५ ॥ उच्छिन्नोम्लेच्छसंस्पृष्ट एकाकीबहुभिर्वृतः ॥ अथतस्यकपालंच कापालिकव्रतान्वितः ॥ ६ ॥ जगृहेनिजकर्म्मार्थं ज्ञात्वातुम्बीसमुद्भवम् ॥ आनर्त्तेश्वरसान्निध्ये वसमानोवनेस्थितः ॥ ७ ॥ सरात्रौतेनतोयेन सर्वदेव मयेनच ॥ तटाकोत्थेनसम्पूर्णं रात्रौक्षिप्त्वाप्रमुञ्चति ॥ ८ ॥ आसीत्पूर्ववणिङ्नाम्ना सिद्धसेनइतिस्मृतः ॥ धनीभूतिसमो

तुम निस्सन्देह समस्त चरित को जानते हो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय आनर्तदेशमें उपजाहुआ सुहय नामक भूपति हुआ है वह वैरियों से ताड़ित होकर भागने में तत्पर हुआ ॥ ५ ॥ और म्लेच्छों से छुआ व बहुतों से घिराहुआ वह अकेले नाश होगया इसके अनन्तर कापालिक व्रत से संयुत पुरुष ने उसके कपालको तुम्बी से उपजा हुआ जानकर अपने कार्य्य के लिये ग्रहण किया जोकि आनर्तेश्वरके समीपवाले वनमें टिककर बस रहाथा ॥ ६ । ७ ॥ वह कापालिक व्रतवाला पुरुष तड़ाग से उठेहुये उस समस्त देवमयी जलसे रात्रिमें उस कपाल को भरकर छोड़देता था ॥ ८ ॥ पुरातन समय नामसे सिद्धसेन कहा हुआ वैश्य हुआ है जोकि

धनवान् और ऐश्वर्य्य से संयुत व सदैव पुण्य में परायण था ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! इसके अनन्तर किसी समय सामर्थ्य से संयुत उस बनिये ने पुण्य की वृद्धिसे उत्तर दिशा को प्रस्थान किया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर समस्त साथियों समेत चलता हुआ क्रमसे मरुमण्डल (निर्जलदेश) में प्राप्तहुआ जो कि समस्त प्राणियों से रहित व वृक्ष तथा जलसे हीन था ॥ ११ ॥ वहांपर रात्रिको पाकर थकेहुये पथिकजन स्थानों में भलीभांति जाकर निद्राके वश में प्राप्तहोते हुये सबओर सो रहे ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल को प्राप्तहोकर शीघ्रही उठकर केवल उस शूद्रही को छोड़कर उत्तर दिशाको चलेगये ॥ १३ ॥ यात्रासमय में बहुत शब्द होनेपर भी

पेतः सदापुण्यपरायणः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पुण्यबुद्ध्याद्विजोत्तमाः ॥ प्रस्थितश्चोत्तरांकाष्ठां समर्थेनसमन्वितः ॥ १० ॥ अथप्राप्तःक्रमात्सर्वैः सगच्छन्मरुमण्डलम् ॥ वृक्षोदकपरित्यक्तं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ ११ ॥ तत्ररात्रिंसमासाद्य सुप्ताःपान्थाःसमन्ततः ॥ श्रान्ताःस्थानानिसंसृत्य गतानिद्रावशंतथा ॥ १२ ॥ ततःप्रत्यूषमासाद्य समुत्थायचसत्वरम् ॥ प्रस्थिताउत्तरांकाष्ठां मुक्त्वैकंशूद्रमेवतम् ॥ १३ ॥ सविमार्गपरिश्रान्तो गत्वानिद्रावशंभृशम् ॥ नजजागारजातेपि प्रयाणेबहुशब्दिते ॥ १४ ॥ नचतैःसंस्मृतःसार्थैर्यैःसमंप्रस्थितोगृहात् ॥ नचकेनापिसन्दृष्टः शैलरोधसिसंस्थितः ॥ १५ ॥ एवंगतेततःसार्थेप्रोद्गतेसूर्य्यमण्डले ॥ तीव्रतापपरिस्पृष्टो जजागारततःपरम् ॥ १६ ॥ यावत्पश्यतिनोकिञ्चित्तस्मिन्स्थानेससार्थकम् ॥ नचतेषांमरौतस्मिँल्लक्ष्यतेपदपद्धतिः ॥ १७ ॥ ततोदुःखपरीतात्मा धावमानइतस्ततः ॥ पतितोमेदिनीपृष्ठे मध्याह्नेक्षुत्तृषार्दितः ॥ १८ ॥ एवंतस्यतृषार्त्तस्यपतितस्यधरातले ॥ धृतप्राणस्यकृच्छ्रेण स

मार्ग से थकाहुआ वह बनिया बहुतही निद्राके वश में प्राप्तहोकर न जागा ॥ १४ ॥ व जिनके साथ घरसे चलाथा उन्होंने न स्मरण किया न तो किसी ने भी पर्वत के किनारे टिकेहुये उस शूद्रको देखा ॥ १५ ॥ तदनन्तर इसभांति उन बनियों के चलेजानेपर जब सूर्य्यमण्डल बहुतही उदय हुआ तब बड़ेतेज तपनसे सबओर से छुवागया उसके उपरान्त जागता भया ॥ १६ ॥ जबतक देखता है तबतक उस स्थानमें न कोई बनियाहै न तो मरुदेशमें उन वैश्यों के पांवोंसे चिह्नित मार्ग देख पड़ताहै ॥ १७ ॥ तदनन्तर दुःखसे घिरेहुये चित्त या मनवाला वह वैश्य इधर उधर घूमता हुआ मध्याह्न (दुपहर) में भूंख प्याससे विकल होकर पृथ्वी में गिरपड़ा ॥१८॥

इसप्रकार प्याससे पीड़ित उस बनिये को धरणीतल में गिरे तथा क्लेश से प्राणों को धारण कियेहुये सूर्य्यनारायण जी अस्ताचल को प्राप्त होगये ॥ १९ ॥ तदनन्तर दिनकर को मन्द होनेपर कुछ सचेत हुआ व चित्त से चिन्तन किया कि मैं इस समय कहां जाऊं ॥ २० ॥ न कहीं मार्ग देख पडता है नतो मनुष्य दिखाता है न यहां जल है न छाया है इसलिये निश्चयकर मेरी मृत्यु आगई ॥ २१ ॥ उस निर्जन मरुदेश में इस प्रकार उस शूद्रको चिन्तामें प्राप्त होतेहुये तदनन्तर रात्रि आगई ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर क्षणभर में उस शूद्रने बूढ़े वन्दी जनोंको पढ़ते हुये मीठी ध्वनिवाले व मनोहर शब्दवाले गानेको सुना ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर

ज्ञातोस्ताचलंरविः ॥ १९ ॥ ततःकिञ्चित्ससञ्ज्ञोभून्मन्दीभूतेदिवाकरे ॥ चिन्तयामासचित्तेन क्वाहंगच्छामिसाम्प्रतम् ॥ २० ॥ नलक्ष्यतेक्वचिन्मार्गो दृश्यतेनचमानुषः ॥ नात्रतोयंनचच्छाया नूनंमेमृत्युरागतः ॥ २१ ॥ एवंचिन्ताप्रपन्नस्य तस्यशूद्रस्यनिर्जने ॥ मरौतस्मिन्समायाता शर्वरीतदनन्तरम् ॥ २२ ॥ अथक्षणेनशुश्राव सगीतंमधुरध्वनि ॥ पठतांवन्दिवृद्धानां तथाशब्दमनोहरम् ॥ २३ ॥ अथापश्यत्क्षणेनैव प्रेतसङ्घैःसमावृतम् ॥ प्रेतमेकंचसर्वेषामाधिपत्येऽव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ ततस्तेपार्श्वगाःप्रेता एकेनृत्यंप्रचक्रिरे ॥ तत्पुरोगीतमन्येतु स्तुतिंचैवतथापरे ॥ २५ ॥ अथासौप्राहतंशूद्रमतिथेकुरुभोजनम् ॥ स्वेच्छयापिबतोयंचश्रेयोयेनभवेन्मम ॥ २६ ॥ ततस्सभोजनंचक्रे क्षुधार्त्तश्चपपौजलम् ॥ भयंत्यक्त्वासुविश्रब्धः प्रेतराजस्यशासनात् ॥ २७ ॥ ततःप्रेताश्चतेसर्वे प्रेतत्वेनसमन्विताः ॥ यथाज्येष्ठंयथान्यायं प्रचक्रुर्भोजनक्रियाम् ॥ २८ ॥ एवंतेषांसमस्तानां विलासैःपार्थिवोचितैः ॥ अतिक्रान्तानिशासर्वा क्रीड

उसने क्षणही भर में प्रेतसमूहों से घिरे व सबके स्वामित्व में टिकेहुये एक प्रेतको देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर प्रेतके समीपगामी वे कितेक प्रेत नृत्य कररहेथे व अन्य प्रेत उसके आगे गान करतेथे तथा दूसरे प्रेत स्तुति करतेथे ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर वह प्रेत उस शूद्र से बोला कि हे अतिथि (पाहुन)! अपनी इच्छासे भोजन करो व जल पियो जिससे मेरा कल्याण होवै ॥ २६ ॥ उसके उपरान्त बहुतही विश्वासमें प्राप्त उस क्षुधार्त शूद्रने भय छोडकर प्रेतराज की आज्ञासे भोजन किया व जल पिया ॥ २७ ॥ तदनन्तर प्रेतभावसे संयुत उन समस्त प्रेतोंने जैसा जेठा व जैसा न्यायथा वैसेही भोजन कर्मको किया ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो! इसप्रकार उन समस्त

प्रेतों को राजाओंके योग्य खेलोंसे खेलतेहुये समस्त रात्रि व्यतीत होगई ॥ २९॥ तदनन्तर निर्मल प्रभात होनेपर जब सूर्य्यमण्डल उदयहुआ तब जबतक वह शूद्र देखताहै तबतक वहांपर कुछ नहींहै ॥ ३०॥ तदनन्तर उसने चिन्तन किया कि क्या यह स्वप्नदर्शन है या चित्तका भ्रम है अथवा इन्द्रजाल (माया) है ॥ ३१ ॥ अथवा यह सत्यही है जिसलिये कि भूंखसे विकल व प्याससे आकुल मेरी यह उत्तम तृप्ति होगई ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उसको चिन्तन करतेहुये सूर्य्यनारायण जी पृथ्वीतल को तापसे तपातेहुये आकाशरूप आंगन में भलीभांति चढ़गये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर क्षुधा, प्याससे पीडित वह शूद्र थोड़ीछायावाले किसी वृक्षके आश्रित होकर

तांद्विजसत्तमाः ॥ २९ ॥ ततःप्रभातेविमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ यावत्पश्यतिशूद्रःसतावत्तत्रनकिञ्चन ॥ ३० ॥ ततश्चिन्तयामास किमेतत्स्वप्नदर्शनम् ॥ चित्तभ्रमोथवास्माकमिन्द्रजालमथापिवा ॥ ३१ ॥ अथवासत्यमेतद्धि यतोमेतृप्तिरुत्तमा ॥ सञ्जातेयंक्षुधार्त्तस्य पिपासाकुलितस्यच ॥ ३२ ॥ एवंचिन्तयमानस्य भास्करोगगनाङ्गणम् ॥ समारुरोहतापेन तापयन्धरणीतलम् ॥ ३३ ॥ ततःकञ्चित्समाश्रित्य स्वल्पच्छायंमहीरुहम् ॥ प्राप्तवान्दिवसस्यान्तं क्षुत्पिपासाप्रपीडितः ॥ ३४ ॥ ततोनिशामुखेप्राप्ते भूयोपिप्रेतराजकम् ॥ प्रेतैस्तैश्चसमोपेतं तथारूपंव्यलोकयत् ॥ ३५ ॥ तथैवभोजनंचक्रे तस्यातिथ्यसमुद्भवम् ॥ भयेनरहितःशूद्रो हर्षेणमहतान्वितः ॥ ३६ ॥ एवंतस्यनिशाचक्रेनित्यमेवसभूतपः ॥ आतिथ्यंप्रकरोत्येव समागत्यतथैवच ॥३७॥ ततोन्यदिवसेप्राप्ते तेनशूद्रेणभूतपः ॥ पृष्टःकिमेतदाश्चर्यं दृश्यतेरजनीमुखे ॥ ३८ ॥ विभवस्तेमहाभागप्रणश्यतिनिशाक्षये ॥ एतत्कीर्त्तयमेगुह्यं नचेत्प्रेतपसंस्थितम् ॥ ३९ ॥

दिनान्त को प्राप्तहुआ ॥ ३४ ॥ उसके उपरान्त निशामुख (सन्ध्या) प्राप्त होनेपर फिरभी उस शूद्रने उन्हीं प्रेतोंसे संयुत व वैसेही रूपवाले प्रेतराजको देखा ॥ ३५ ॥ व बड़े हर्ष से संयुत व डरसे रहित उस शूद्रने उस प्रेतकी पहुनई से उपजेहुये भोजन को उसी प्रकार किया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वह प्रेतराज वैसेही नित्यही आकर रात्रिको उस शूद्रकी पहुनई को करताहीथा ॥ ३७ ॥ तदनन्तर जब अन्य दिन प्राप्त हुआ तब उस शूद्रने प्रेतराजसे पूंछा कि हे महाभाग ! हे प्रेतपते ! यह क्या आश्चर्य्य है कि निशामुख में तुम्हारा ऐश्वर्य्य देख पड़ता है व निशाके नाशमें नष्ट होजाता है यदि गुप्त न टिका हो तो इस वृत्तान्त को मुझसे कहिये ॥ ३८ । ३९ ॥

क्योंकि इस उत्तम कर्मको देखकर इस विषय में आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ है ॥ ४० ॥ प्रेत बोला कि हाटकेश्वर नामक पुण्यदायक महाक्षेत्रहै वहींपर गङ्गा, यमुना एक में मिलकर टिकी हैं ॥ ४१ ॥ उन दोनों के समीप शिवजीका उत्तम मन्दिर स्थितहै वहांपर महाव्रत का धारी व नैष्ठिक (सिद्ध) तपस्वी है ॥४२॥ वह तपस्वी रात्रि में शौच (पवित्रता) के लिये सदैव मेरे कपालको जलसे पूर्णकर व उसी में अपने कार्य को करके शयन करता है ॥ ४३ ॥ हे महामते ! उसीके प्रभाव से रात्रि में निश्चयकर मेरा यह ऐश्वर्य्य होजाता है और दिनमें कपाल को खाली करनेपर फिरभी ऐश्वर्य चलाजाता है ॥ ४४ ॥ इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्नता करो कि वहां जाकर

अत्रकौतूहलंजातं दृष्ट्वेदंसुविचेष्टितम् ॥ ४० ॥ प्रेतउवाच ॥ अस्तिपुण्यंमहाक्षेत्रं हाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ गङ्गा चयमुनाचैव स्थितेतत्रचसङ्गमे ॥ ४१ ॥ ताभ्यामस्तिसमीपस्थं शिवस्यायतनंशुभम् ॥ महाव्रतधरस्तत्र तपस्व्य स्तिचनैष्ठिकः ॥४२॥ ससदारात्रिशौचार्थं कपालंजलपूरितम् ॥ मदीयंशयनंचक्रे तत्रकृत्वानिजांक्रियाम् ॥ ४३ ॥ तत्प्रभावान्ममेयंहि विभूतिर्जायतेनिशि ॥ दिवारिक्तेकृतेयाति भूयएवमहामते ॥ ४४ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे तत्रगत्वा कपालकम् ॥ चूर्णीकृत्वामदीयंतत्तस्मिंस्तोयेविनिक्षिप ॥ ४५ ॥ येनमेजायतेमोक्षः प्रेतभावात्सुदारुणात् ॥ तथातत्रास्तिपूर्वस्यां दिशितत्तीर्थमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ गयाशिरइतिख्यातं प्रेतत्वान्मुक्तिदायकम् ॥ तत्रगत्वाकुरुश्राद्धं सर्वेषां त्वंमहामते ॥ ४७ ॥ दृश्यतेतवपार्श्वस्था भद्रसम्पुटिकाशुभा ॥ अस्यांनामानिसर्वेषां यथाज्येष्ठंसमालिख ॥ ४८ ॥ ततःश्राद्धंकुरुष्वाशु दयांकृत्वागरीयसीम् ॥ वयंत्वांतत्रनेष्यामः सुखोपायेनभद्रक ॥ ४९ ॥ निधिंचदर्शयिष्यामः

मेरे कपालको चूर्णकर उसको उसी जलमें फेंकदो ॥ ४५ ॥ जिससे बहुतही कठिन प्रेतभावसे मेरी मुक्ति होजाय व हे महामते ! वहांपर पूर्वदिशा में वह उत्तमतीर्थ है जो कि प्रेतयोनि से मुक्तिदायक गयाशिर ऐसा प्रसिद्धहै उस तीर्थमें जाकर तुम समस्त प्रेतोंकी श्राद्ध करो ॥ ४६।४७ ॥ हे कल्याणरूप ! तुम्हारे बगलमें टिकीहुई शुभदायक दोनिया देख पड़ती है उसमें जेठेके क्रमसे सबके नामोंको लिखो ॥४८॥ तदनन्तर हे कल्याणकारक ! बड़ी भारी दयाको कर शीघ्रही श्राद्धकरो हमलोग वहांपर तुमको सुखदायक

उपायसे ले चलैंगे ॥ ४६ ॥ व श्राद्धके लिये बड़ेभारी खज़ाने को दिखलावैंगे जब उस शूद्रने यह आज्ञा दिया कि वैसाही होगा तब ॥ ५० ॥ उस शूद्रको शीघ्रही कन्धेपै चढ़ाकर जैसा कहाथा वैसे क्षेत्रको लेगये व बहुतही द्रव्यसे उपजे हुये खज़ाने को दिखलाही दिया ॥ ५१ ॥ व उस खज़ाने को लेकर वहांगया जहांपर यह निष्ठा (सिद्धि) वाला तपस्वी टिकाथा तदनन्तर भक्तिसे उसको प्रणामकर व विनयसंयुक्त होतेहुये शूद्रने उस प्रेतराज के समस्त वृत्तान्तको कहा तदनन्तर कपाल को पाकर व सावधान होतेहुये उसको चूर्णकर ॥ ५२ । ५३ ॥ व हर्षसंयुक्त होकर गङ्गा, यमुना के बीचमें फेंकदिया इसी अवसरमें उत्तमरूपवाले शरीर को धारे व प्रस-

श्राद्धार्थंसुमहत्तरम्॥तथेतिसमनुज्ञाते तेनशूद्रेणसत्वरम्॥५०॥ निन्युस्तंस्कन्धमारोप्यशूद्रंक्षेत्रंयथोदितम्॥दर्शयामा सुरेवास्य निधानंभूरिवित्तजम् ॥ ५१ ॥ तदादायगतस्तत्रयत्रासौनैष्ठिकःस्थितः ॥ ततःप्रणम्यतंभक्त्या कथयामास विस्तरात् ॥ ५२ ॥ तस्यभूतपतेःसर्वं वृत्तान्तंविनयान्वितः ॥ ततोलब्ध्वाकपालंतच्चूर्णयित्वासमाहितः ॥५३॥ गङ्गाय मुनयोर्मध्येप्रचिक्षेपमुदान्वितः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्रेतो दिव्यरूपवपुर्धरः ॥ ५४ ॥ विमानस्थोब्रवीद्वाक्यं शूद्रंतंहर्षसं युतः ॥ प्रसादात्तवमुक्तोहं प्रेतत्वाद्दारुणात्ततः ॥ ५५ ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामि साम्प्रतंत्रिदिवालयम् ॥ एतेषामेवस र्वेषामिदानींश्राद्धमाचर ॥ ५६ ॥ गत्वागयाशिरःपुण्यं येनमुक्तिःप्रजायते ॥ ततःसविस्मयाविष्टस्तेषामेवपृथक्पृथ क् ॥ ५७ ॥ श्राद्धंचक्रेचभूतानां नित्यमेवसमाहितः ॥ तेपिसर्वेगताःस्वर्गं प्रेतास्तस्यप्रभावतः ॥ ५८ ॥ ददुश्चदर्शनंत स्य स्वप्नेहर्षसमन्विताः ॥ ततःशूद्रःसविज्ञाय तत्क्षेत्रंपुण्यवर्धनम् ॥ ५९ ॥ नजगामगृहंभूयस्तत्रैवतपसिस्थितः ॥

न्नता समेत विमानपै बैठे हुये प्रेतने उस शूद्रसे वचन कहा कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं उस विकराल प्रेतभाव से छूट गयाहूं ॥ ५४ । ५५ ॥ तुम्हारा कल्याण होवै मैं इस समय स्वर्गको जाऊंगा और तुम पुण्यदायक गयाशिर तीर्थको जाकर निश्चयकर इससमय इन सबोंकी श्राद्धको करो जिससे मुक्ति होवै तदनन्तर विस्मयसे घिरे व सावधान होतेहुये उस शूद्रने नित्यही उन प्रेतोंकी अलग २ श्राद्ध किया उसके प्रभाव से वे सब प्रेतभी स्वर्ग को चलेगये ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ व हर्षसंयुक्त होतेहुये उन प्रेतोंने उस शूद्रको स्वप्नमें दर्शन दिया तदनन्तर वह शूद्र उस क्षेत्रको पुण्यका बढ़ानेवाला जानकर ॥ ५९ ॥ फिर घरको न गया किन्तु वहींपर

तपस्या में टिक गया व उस शूद्रने गङ्गा यमुना के समीप समस्त पातकों के नाशक शूद्रकेश्वर नामक लिंगको थापन किया जो पुरुष उन गङ्गा यमुना में विधिपूर्वक नहाकर व भलीभांति श्रद्धासंयुत होता हुआ शूद्रकेश्वर लिङ्गको पूजताहै वह समस्त पातकोंसे छूटकर उत्तम विमान पै बैठा गन्धर्वों से स्तुति किया हुआ शिवमन्दिर को प्राप्त होताहै व जो पुरुष वहांपर अन्न जल को त्यागेहुये मरने पर उतारू होकर प्राणों को छोड़ता है ॥ ६०। ६१। ६२। ६३ ॥ वह पुरुष इस संसारमें फिर जन्मको नहीं पाताहै व निवास करता हुआ जो नर उस गङ्गा यमुनाके सङ्गमके जलको कुल्ला या पसरभर भी पीताहै ॥ ६४ ॥ वहभी जन्मसे लेकर मरणपर्य्यन्त

गङ्गायमुनयोःपार्श्वे शूद्रकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ६० ॥ लिङ्गंसंस्थापितंतेन सर्वपातकनाशनम् ॥ यस्तयोर्विधिवत्स्नानं कृत्वापूजयतेनरः ॥ ६१ ॥ शूद्रकेश्वरलिङ्गंच सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ससर्वैःपातकैर्मुक्तः प्रयातिशिवमन्दिरम् ॥ ६२ ॥ स्तूयमानश्चगन्धर्वैर्विमानवरमाश्रितः ॥ यस्तत्रत्यजतिप्राणान्कृत्वाप्रायोपवेशनम् ॥ ६३ ॥ नचभूयोत्रसंसारे जन्मप्राप्नोतिमानवः ॥ गण्डूषमपितोयस्य यस्तस्यनिवसन्पिबेत् ॥ ६४ ॥ सोपिसम्मुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ यस्तत्रब्राह्मणेन्द्राणां सम्प्रयच्छतिभोजनम् ॥ ६५ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावत्कल्पशतत्रयम् ॥ त्रुटिमात्रंचयोदद्यात्तत्रस्वर्णंसमाहितः ॥ ६६ ॥ सप्राप्नोतिफलंकृत्स्नंराजसूयाश्वमेधयोः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतत्तीर्थवरमाश्रयेत् ॥ ६७ ॥ यइच्छेच्छाश्वतंस्वर्गंसदैवमनुजोद्विजाः ॥ अत्रगाथापुरागीता गौतमेनमहर्षिणा ॥ ६८ ॥ गङ्गाय

के पातकों से छूट जाताहै और वहांपर जो पुरुष द्विजेंद्रों को भोजन देताहै ॥ ६५ ॥ उसके पितर तीनसौ कल्प पर्य्यन्त तृप्त रहते हैं और वहांपर सावधान होताहुआ जो पुरुष कणमात्र भी कनक को देताहै ॥ ६६ ॥ वह राजसूय अश्वमेध यज्ञों के समस्त फलको प्राप्त होताहै इसलिये हे ब्राह्मणो ! जो पुरुष सदैव स्वर्गको चाहै वह निरन्तर उस उत्तम तीर्थका आश्रय करै पुरातन समय गौतम महर्षि ने विस्मयसे गङ्गा यमुनाके उस प्रभावको देखकर इस विषयमें गाथाको गान कियाहै कि गङ्गा यमुनाके सङ्गम में सावधान होताहुआ मनुष्य नहाकर व शूद्रेश्वर को देखकर उसी क्षण स्वर्गको प्राप्त होताहै हे द्विजोत्तमो ! इस गङ्गा यमुना के माहात्म्य

को जोकि समस्त पातकों का विनाशक है उसको मैंने तुम लोगों से वर्णन किया ॥ ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानर्तकेश्वरशूद्रकेश्वरमाहात्म्यं नामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मार्यो मुनि जमदग्नि को हैहय देश नृपाल । छाछठिवें अध्याय में कह्यो सो चरित विशाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर परशुराम कुण्ड ऐसा कहा हुआ प्रसिद्ध है जहांपर वे पितर उन परशुरामसे रक्तसे तृप्त कियेगये हैं ॥ १ ॥ वहांपर भाद्रपद महीनेमें अमावसको पाकर जो पुरुष भक्तिसे पितरों का भलीभाँति तर्पणकरै है

मुनयोस्तंच प्रभावंवीक्ष्यविस्मयात् ॥ गङ्गायमुनयोस्सङ्गेनरःस्नात्वासमाहितः ॥ ६९ ॥ शूद्रेश्वरंसमालोक्य सद्यः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं गङ्गायमुनयोर्मया ॥ ७० ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाः सर्वपातकनाशनम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे आनर्तकेश्वरशूद्रकेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोध्यायः ॥ ६५ ॥ ❋ ॥

सूतउवाच ॥ तथातत्रास्तिविख्यातो रामह्रदइतिस्मृतः ॥ यत्रतेपितरस्तेनरुधिरेणप्रतर्प्पिताः ॥ १ ॥ तत्रभाद्रपदे मासियोमावास्यामवाप्यच ॥ पितॄन्सन्तर्प्पयेद्भक्त्या सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्याश्चर्यमिदंसूतय द्ब्रवीषिमहामते ॥ यत्तेनपितरस्तत्र रुधिरेणप्रतर्प्पिताः ॥ ३ ॥ पितॄणांतर्प्पणार्थाय मेध्याःसङ्कीर्तिताबुधैः ॥ पदार्थारुधिरंप्रोक्तं राक्षसानांप्रतर्प्पणे ॥ ४ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धंच कर्म्मसद्भिर्विगर्हितम् ॥ जामदग्न्येनसङ्कीर्णं कस्मात्सूतवद स्वनः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ तेनकोपवशात्कर्म्मप्रतिज्ञांपरिरक्षता ॥ तत्कृतंतर्प्पितायेन पितरोरुधिरेणते ॥ ६ ॥ पितात

वह अश्वमेध यज्ञके फलको पावै है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते, सूतजी ! यह बड़ा आश्चर्य्य है जिसको कहते हो जो कि उस कुण्ड में उन परशुराम जी ने पितरों को रक्त से तर्पण कियाहै ॥ ३ ॥ पितरों के तर्पण के लिये पण्डितोंने पवित्र पदार्थों को कहा है और राक्षसों के तर्पण के लिये रुधिर कहा है ॥ ४ ॥ हे सूतजी ! उत्तम जनों से निन्दित व श्रुति, स्मृति से विरोधवाले कर्म को परशुरामजीने किसलिये सङ्कर याने मिलावमें करदिया उसको कहिये ॥ ५ ॥ सूतजीबोले कि प्रतिज्ञाको परिपालन करतेहुये उन परशुरामजीने क्रोधके वशासे उस कर्मको किया है कि जिससे वे पितर रुधिरसे तृप्त कियेगये ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो, द्विजो !

पुरातन समय अपने धर्ममें टिके उन परशुरामजीके पिता जमदग्निजीको बिन दोषहीके क्षत्रियने नाश किया है ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये उन परशुराम महात्माने कहा कि क्षत्रियोंसे उठेहुये रक्तसे मुझको पितरों का तर्पण करना चाहिये ॥ ८ ॥ इसीकारण उन महात्माने भक्तिसे तिलसे मिलेहुये रक्तसे भलीभांति पितरोंका तर्पण किया है ॥ ९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जमदग्नि महामुनिको किसलिये क्षत्रियने मारा है और वह किस नामका भूपाल था उसको विस्तार से कहिये ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि पहिले उस हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें जलेहुये पातकोंवाले ऋचीकके पुत्र जमदग्नि इस नाम से प्रसिद्ध हुये हैं ॥ ११ ॥ उन

स्यपुराविप्रा जमदग्निर्निपातितः ॥ क्षत्रियेणस्वधर्म्मस्थोविनादोषंद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ ततःकोपपरीतेन तेनप्रोक्तं महात्मना ॥ रक्तेनक्षत्रियोत्थेन सन्तर्प्याःपितरोमया ॥८॥ एतस्मात्कारणात्तेन रुधिरेणमहात्मना ॥ पितरस्तर्पिताःस म्यक् तिलमिश्रेणभक्तितः ॥ ९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ जमदग्निर्हतःकस्मात्क्षत्रियेणमहामुनिः॥किन्नामासचभूपालो विस्त राद्वदसूतज ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ ऋचीकतनयःपूर्वं जमदग्निरितिस्मृतः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तत्रासीद्दग्धकल्म षः ॥ ११ ॥ चत्वारस्तस्यपुत्राश्च बभूवुर्गुणसंयुताः ॥ जघन्योपिगुणज्येष्ठस्तेषांरामोबभूवह ॥ १२॥ कदाचिद्वसतस्त स्य जमदग्नेर्महावने ॥ पुत्रेषुकन्दमूलार्थं निर्गतेषुवनाद्बहिः ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो हैहयाधिपतिर्बली ॥ सह स्रार्जुनइत्येव विख्यातोयोमहीतले ॥ १४ ॥ मृगलिप्सुर्वनेतस्मिन्भ्रममाणइतस्ततः ॥ श्रमार्तोवृषराशिस्थे भास्करे दिनमध्यगे ॥ १५ ॥ ततःसआश्रमं दृष्ट्वानानाद्रुमसमाकुलम् ॥ चतुरङ्गेणसैन्येन सहितःप्रविवेशह ॥ १६ ॥ अथाप

जमदग्निजीके गुणों से संयुक्त चार सुत हुये उनमें छोटे भी परशुरामजी गुणों से जेठे हुये ॥ १२ ॥ किसी समय उन जमदग्निजीको महावन में बसतेहुये उनके पुत्र कन्द, मूल लानेके लिये वनसे बाहर निकल गये ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें बलवान् हैहय देशका स्वामी प्राप्तहुआ जोकि भूतलमें सहस्रार्जुन इसी नामसे प्रसिद्ध था ॥ १४ ॥ मृगका लालची वह नृपति उसी वनमें इधर उधर घूमताहुआ जब वृषराशिमें टिकेहुये दिनकरजी दिनके मध्यभाग में गये तब परिश्रम से दुःखित हुआ ॥ १५ ॥

तदनन्तर वह भूप अनेक प्रकार के वृक्षोंसे संकुल वाले आश्रम को देखकर चतुरङ्गिणी सेना समेत पैठगया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उस नृपने वहां टिके व स्नान किये समीप में बैठे तथा देवपूजनमें तत्परहुये जमदग्नि महामुनि को देखा ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उस भूपति को देखकर वे मुनि यथायोग्य अर्घको देकर व कुशल को पूंछकर प्रसन्नतासंयुत हुये ॥ १८ ॥ व विनयसंयुत उस नृपने भी उन मुनि को उच्चप्रकार से प्रणामकर सम्भाषण किया व कुशल पूंछा ॥ १९ ॥ राजा बोले कि हे द्विज ! पुत्र व शिष्यों समेत तथा स्त्री व अग्निहोत्र सहित व परिवार संयुत तुम्हारा कुशल है ॥ २० ॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ व जीवन सफल होगया

ददर्शसतत्रस्थं जमदग्निमहामुनिम् ॥ उपविष्टंकृतस्नानंदेवार्चनपरायणम् ॥ १७ ॥ अथतंपार्थिवंदृष्ट्वा समुनिस्तुष्टिसंयुतः ॥ अर्घंदत्त्वायथान्यायं स्वागतेनाभिनन्द्यच ॥ १८ ॥ सोपितंप्रणिपत्योच्चैर्विनयेनसमन्वितः ॥ प्रतिसम्भाषयामास कुशलंपर्य्यपृच्छत् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कच्चित्तेकुशलं विप्र पुत्रशिष्यान्वितस्यच ॥ साग्निहोत्रकलत्रस्य परिवारयुतस्यच ॥ २० ॥ अद्यमेसफलंजन्म जीवितंसफलंचमे ॥ यत्त्वंतपोनिधिर्दृष्टः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वासराजर्षिर्विश्रम्यसुचिरन्ततः ॥ पीत्वापस्तमुवाचेदं प्रणिपत्यमहामुनिम् ॥ २२ ॥ अनुज्ञांदेहिमेब्रह्मन् प्रयास्यामिनिजंगृहम् ॥ ममकृत्यंसमादेश्यं येनतेस्यात्प्रयोजनम् ॥ २३ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ देवतार्चनवेलायां त्वंमेगृहमुपागतः ॥ मनोरथइवध्यातः सर्वदेवमयोतिथिः ॥ २४ ॥ तस्मान्मेस्तिपराप्रीतिर्भक्तिश्चनृपसत्तम ॥ तत्कुरुष्वमया दत्तं स्वहस्तेनैवभोजनम् ॥ २५ ॥ राजावाब्राह्मणोवाथ शूद्रोवाप्यन्त्यजोपिवा ॥ वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तः सोतिथिःस्वर्ग

क्योंकि समस्त मनुष्योंसे प्रणाम किये हुये व तपस्याके निधान तुमको देखा ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर वह राजर्षि बहुत देरतक विश्रामकर तदनन्तर जलको पीकर उन मुनिको प्रणामकर बोला ॥ २२ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं अपने घरको जाऊंगा मुझसे कार्य्य कहना चाहिये जिससे तुम्हारा प्रयोजन होवै ॥ २३ ॥ जमदग्नि जी बोले कि देवपूजनके समय में चिन्तित मनोरथ के समान तुम मेरे घरमें आयेहो क्योंकि अतिथि समस्त देवमय होता है ॥ २४ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! मेरे परमप्रीति व भक्तिहै उस कारण मुझसे अपने हाथसे दियेहुये भोजनको करो ॥ २५ ॥ क्योंकि राजाहो या ब्राह्मणहो अथवा शूद्र या चाण्डालहो जो वैश्वदेव

के अन्तसमयमें भलीभांति प्राप्तहुआहै वह स्वर्गका मार्ग है याने उसीके द्वारा स्वर्गको पहुँचताहै ॥ २६॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन्! ये सैकडों व हजारों मेरे सेना के मनुज हैं उनके बिन भोजन किये मुझको भोजन करने के लिये कैसे योग्यहै यह कहिये॥ २७॥ जमदग्नि जी बोले कि तुम्हारे सब सैनिकों को मैं भलीभांति भोजन दूंगा इस विषय में तुमको चिन्ता न करना चाहिये कि यह अकिञ्चन मुनि है ॥ २८ ॥ हे नृपेन्द्र ! मेरे समीप बँधीहुई जो यह गौ देखती है याचनाकी हुई यह सदैवही मनोवाञ्छित को पैदा करती है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर आश्चर्य्य से घिराहुआ वह नृपति बहुत अच्छा ऐसाही कहकर उसी आश्रम में

सङ्गमः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ ममैतेसैनिकाब्रह्मञ्छतशोथसहस्रशः ॥ तैरभुक्तैःकथंभोक्तुं युज्यतेममकीर्त्तय ॥ २७ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ सर्वेषांसैनिकानां ते सम्प्रदास्यामिभोजनम् ॥ नात्रचिन्तात्वयाकार्य्या मुनिर्निष्किञ्चनोह्यय म्॥२८॥ यैषापश्यतिराजेन्द्रधेनुर्बद्धाममान्तिके ॥ एषासूतेमनोभीष्टं प्रार्थितासर्वदैवहि ॥ २९ ॥ सूतउवाच॥ततश्चकौ तुकाविष्टः सनृपोद्विजसत्तमाः ॥ बाढमित्येवसम्प्रोच्य तस्मिन्नेवाश्रमेस्थितः ॥ ३० ॥ ततःसन्तर्प्यदेवांश्च पितॄंश्चत दनन्तरम् ॥ पूजयित्वाहविर्वह्निं ब्राह्मणांश्चततःपरम् ॥३१॥उपविष्टस्ततःसार्द्धं सर्वैर्भृत्यैर्बुभुक्षितैः ॥ श्रमार्तैर्विस्मयावि ष्टैः क्षतेतस्यद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥ ततःसप्रार्थयामासतांधेनुंमुनिसत्तमः ॥ योयंप्रार्थयतेदेहि भोज्यार्थंतस्यतच्छु भे॥ ३३ ॥ ततःसासुषुवेधेनुरन्नमुच्चावचंशुभम् ॥ पक्कान्नंचविशेषेण चित्ताह्लादकरंपरम् ॥ ३४॥ ततःखाद्यंचचर्व्यंच ले ह्यंचोष्यंतथैवच ॥ व्यञ्जनानिविचित्राणि कषायकटुकानिच ॥ ३५ ॥ अम्लानिमधुराण्येव तिक्तानिगुणवन्ति

टिकगया ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! देवों को भलीभांति तर्पणकर उस के बाद पितरों को तृप्तकर उसके उपरान्त हव्यसे अग्नि को व ब्राह्मणों को तृप्तकर तदनन्तर विस्मय से घिरे व श्रम से विकल तथा भूंखे समस्त नौकरों समेत वह नृप उस भोजन के लिये समीप बैठगया ॥ ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर उन मुनिनायक ने उस धेनुसे प्रार्थना किया कि हे शुभे ! यह नृपति भोजनके लिये जो प्रार्थना करताहै उसे उसको दीजिये ॥ ३३ ॥ उसके उपरान्त उस धेनुने शुभदायक उच्च, नीच अन्नको व विशेषकर मनको अति आनन्दकारक पक्कान्नको पैदा किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर खानेवाले,चबानेवाले, चाटनेवाले, चूसनेवाले व कसैले तथा कडुये, खट्टे,

मीठे, तीखे व गुणवान् विचित्र व्यंजनों को उत्पन्न किया व उस भूपति ने बलिष्ठ सेना समेत उस धेनुके द्वारा अमृतके तुल्य उपजे हुये अन्नों से इस प्रकार परम तृप्ति को पाकर तदनन्तर भोजन करनेके बाद विस्मयसे घिरेहुये उस भूपति ने जमदग्नि महामुनि से उस धेनुकी प्रार्थना किया कि हे ब्रह्मन् ! वनके निवासी व शान्त चित्तवाले मुनियों के यह कामधेनु योग्य नहीं है ॥ ३५ । ३६ । ३७ । ३८ ॥ इस लिये मुझको आपही दीजिये जिससे उस धेनुके प्रभाव से आजही लोकोंको खानि रूप करदूंगा व बड़ी सेनासे संयुत किले में टिके हुये शत्रुओं को साधन करूंगा याने विजय करलूंगा ऐसा करने से इस लोक में व परलोक में तुम्हारा उत्तम यश

च ॥ एवंप्राप्यपरांतृप्तिं तयाधेन्वासभूपतिः ॥ ३६ ॥ सैनिकैःसबलैःसार्द्धमन्नैरमृतसम्भवैः ॥ ततोभुक्त्वावसानेतु प्रार्थयामासभूपतिः ॥ ३७ ॥ तांधेनुंविस्मयाविष्टो जमदग्निंमहामुनिम् ॥ कामधेनुरियंब्रह्मन्नार्हारण्यनिवासिनाम्॥३८॥मुनीनांशान्तचित्तानांतस्माद्यच्छममस्वयम् ॥ येनाकरान्करोम्यद्य लोकांस्तस्याःप्रभावतः ॥ ३९ ॥ साधयामिचदुर्गस्थाञ्छत्रून्भूरिबलान्वितान् ॥ एवंकृतेतवश्रेयोभविष्यतिचसद्यशः ॥ ४० ॥ इहलोकेपरेचैव तस्मात्कुरुमयोदितम् ॥ ४१ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ होमधेनुरियंराजन्ममैकाप्राणसम्मता ॥ अदेयासर्वदापूज्या तस्मान्नार्हसियाचितुम् ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ अहंशतसहस्रंतेयच्छाम्यस्याःकृतेद्विज ॥ धेनूनामपरंवित्तं यावन्मात्रंप्रवाञ्छसि॥४३॥जमदग्निरुवाच॥ अविक्रेयामहाराज सामान्यापिहिगौःस्मृता ॥ किंपुनर्होमधेनुर्या प्रभावैरीदृशैर्युता ॥ ४४ ॥ विमोहाद्ब्राह्मणोयोगां विक्रीणातिधनेच्छया ॥ विक्रीणातिनसन्देहस्सनिजांजननीमिह ॥ ४५ ॥ सुरांपीत्वाद्विजं

व कल्याण होगा इसलिये मुझसे कहेहुये वचन को कीजिये ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥ जमदग्नि जी बोले कि हे राजन्! प्राणों के समान मानीहुई यह एकही होम सामग्री को उपजानेवाली धेनुहै जो कि न देनेके योग्य व सदैव पूज्यहै इस कारण तुम मांगने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि हे द्विज ! इसके लिये मैं सैकडों व हज़ारों धेनुओं को व जितने प्रमाणवाले अन्य धनको चाहतेहो उसको दूंगा ॥ ४३ ॥ जमदग्नि जी बोले कि हे महाराज ! साधारणभी गौ बेंचने के योग्य नहीं कही है फिर जो होम के निमित्त धेनु ऐसे प्रभावो से संयुत है उसे क्या कहना है ॥ ४४ ॥ इस संसारमें जो द्विज अज्ञान से धनकी इच्छासे गौ को

बेचता है वह निरसन्देह अपनी माताको बेचताहै ॥ ४५ ॥ मदिराको पीकर व ब्राह्मणको मारकर द्विजों का प्रायश्चित्त होवेहै परन्तु धेनु बेचनेवाले ब्राह्मणोंका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ४६ ॥ राजा बोले कि हे द्विज ! यदि समझानें से मुझे इस गौको नहीं देतेहो तो बलसेही लेलूंगा इसलिये समझाने से देदीजिये ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस वचन को सुनकर क्रोधसंयुत जमदग्नि जी 'अस्त्र शस्त्र' यह कहकर सभातल से उठपडे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर चित्तके जानने वाले उस नृपतिके नौकरोंने शस्त्र न पायेहुये उस द्विजको तीखे अस्त्रोंसे हनन किया ॥ ४९ ॥ इस प्रकारमारे हुये उस जमदग्नि महात्मा की रेणुका नामक प्रियनारी

हत्वा द्विजानांनिष्कृतिर्भवेत् ॥ धेनुविक्रयकर्तॄणां प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४६ ॥ राजोवाच ॥ यदिनोयच्छसेविप्रसाम्नाधेनुमिमांमम ॥ बलादपिहरिष्यामि तस्मात्साम्नाप्रदीयताम् ॥ ४७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाकोपसंयुक्तो जमदग्निर्द्विजोत्तमाः ॥ अस्त्रमस्त्रमितिप्रोच्यसमुत्तस्थौसभातलात् ॥ ४८ ॥ ततस्तेसेवकास्तस्य नृपतेश्चित्तवेदिनः ॥ अप्राप्तशस्त्रंतंविप्रं निजघ्नुर्निशितायुधैः ॥ ४९ ॥ तस्यैवंवध्यमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः ॥ रेणुकाख्याप्रियाभार्या पपातोपरिदुःखिता ॥ ५० ॥ सापिनानाविधैस्तीक्ष्णैः खण्डितावरवर्णिनी ॥ आयुःशेषतयाप्राणैर्नकथंचिद्वियोजिता ॥ ५१ ॥ एवंहत्वासविप्रेन्द्रं जमदग्निंमहीपतिः ॥ तांधेनुंकालयामास यत्रमाहिष्मतीपुरी ॥ ५२ ॥ अथसाकाल्यमानाच धेनुःकोपसमन्विता ॥ जमदग्निंहतंदृष्ट्वा रुरम्भकरुणंमुहुः ॥ ५३ ॥ तस्याःसंरम्भमाणाया वक्त्रमार्गेणनिर्गताः ॥ पुलिन्दादारुणामेदाः शतशोथसहस्रशः ॥ ५४ ॥ नानाशस्त्रधराःसर्वे यमदूताइवापरे ॥ प्रोचुस्तांसादरंधेनुमा

दुःखित होतीहुई ऊपर गिरपड़ी ॥ ५० ॥ व उत्तम अङ्गोंवाली वह रेणुका भी अनेक प्रकारके पैने अस्त्रों से काटीगई परन्तु आयुर्बल के शेष से किसी प्रकार प्राणोंसे वियोग को न प्राप्तहुई ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उस भूपति ने उन द्विजेन्द्र जमदग्नि को मारकर जहां माहिष्मतीपुरी थी वहांउस धेनुको गमन कराया ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर क्रोध से सयुत व गमन कराई हुई वह धेनु मरेहुये जमदग्नि को देखकर करुणा से बार २ रांभती भई ॥ ५३ ॥ रांभती हुई उस धेनु के मुख मार्ग से बडे विकराल सैकड़ों व हजारों पुलिन्द व मेद निकले ॥ ५४ ॥ व समस्त लोग नाना प्रकार के शस्त्रोंको धारण किये दूसरे यमदूत के समान वे आदर समेत उस धेनु

से बोले कि हमलोगों को शीघ्रही आज्ञा दीजिये ॥ ५५ ॥ वह धेनु बोली कि हैहयाधीश की सेना को हननकरो इसके अनन्तर कोप से संयुत व बड़ी घोर म्लेच्छ जातियों ने पैने शस्त्रोंसे बेरोक टोक विनाश करना प्रारम्भ किया युद्धमें कोई भी पुरुष उनके सामने न हुआ ॥ ५६ । ५७ ॥ फिर एकाएकी बड़ेडर से संयुत युद्ध के लिये कैसे सम्मुख होवै ? इसके अनन्तर सबओर घोरआकारवाले पुलिन्दोंसे मारी जातीहुई तितर बितर सेना को देखकर मन्त्री लोग उस नृपसे बोले कि हे विभो ! ब्रह्मघातसे आज तुम्हारे तेजकी बहुतही हानि होगई ॥ ५८ । ५९ ॥ इस लिये जबतक उसके रामनामक बलवान् पुत्र न आवैं तबतक धेनुकों छोड़कर

ज्ञांदेहिद्रुतंहिनः ॥ ५५ ॥ साब्रवीद्धन्यतामेतद्धैहयाधिपतेर्बलम् ॥ अथतैःकोपसंयुक्तैर्दारुणैर्म्लेच्छजातिभिः ॥ ५६ ॥ विनाशयितुमारब्धं शितैःशस्त्रैर्निर्गलम् ॥ नकश्चित्पुरुषस्तेषां सम्मुखोप्यभवद्रणे ॥ ५७ ॥ किंपुनःसहसायोद्धुं भयेनमहतान्वितः ॥ अथभग्नंबलंदृष्ट्वा वध्यमानंसमन्ततः ॥ ५८ ॥ पुलिन्दैर्दारुणाकारैः प्रोचुस्तंमन्त्रिणोन्नृपम् ॥ तेजोहानिःपरातेद्य जाताब्रह्मवधाद्विभो ॥ ५९ ॥ तस्माद्धेनुंपरित्यज्य गम्यतांनिजमन्दिरम् ॥ यावन्नागच्छतेतस्य रामोनामसुतोबली ॥ ६० ॥ नोचेत्तेनहतोत्रैव सबलोवधमेष्यसि ॥ नैषाशक्याबलान्नेतुं कामधेनुर्महोदया ॥ ६१ ॥ शक्तिरूपाकरोत्येवं यासृष्टिंस्वयमेवहि ॥ ततःसपार्थिवोभीतस्तेषांवाक्याद्विशेषतः ॥ ६२ ॥ जगामहित्वातांधेनुं स्वस्थानंहतसेवकः ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येजमदग्निवधोनामषट्षष्टितमोध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अपने घरको चलिये ॥ ६० ॥ नहीं तो उन परशुरामजी से सेना समेत तुम मारे हुये मृत्यु को प्राप्तहोगे और बड़े ऐश्वर्य्यवाली यह कामधेनु पराक्रम या हठसे ले जाने के लिये समर्थ नहींहै ॥ ६१ ॥ जो धेनु कि शक्तिरूपवाली होकर आपही सृष्टिको करती है, तदनन्तर मारेहुये सेवकों वाला वह भूपति उन मन्त्रियों के वचनसे विशेषकर डराहुआ उस धेनुको छोड़कर अपने स्थान को चलागया ॥ ६२ । ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येजमदग्निवधोनामपट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ❀ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । हैहयाधिपति भूपकहं वध्यो परशुधरराम । सरसठिके अध्याय में कह्यो सो चरित ललाम ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसरमें कन्द, मूल, फलोंको लेकर भाइयों समेत परशुराम जी आश्रम के सामने प्राप्तहुये ॥ १ ॥ उन परशुरामजीने बहुतेरे पुलिन्दमनुजों से घिरे एवं विध्वंस कियेहुये निज आश्रमको व दण्ड, पत्थलों के प्रहारोंसे जर्जरकी हुई उस धेनुको देखकर पूंछा ॥ २ ॥ कि पुलिन्दों व अहीरों से घिराहुआ यह समस्त आश्रमस्थान कैसे व्याकुलता को प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ व मेरी इस धेनुको किसने प्रहारों से जर्जर करदिया और समस्त तपस्विनियां व तपस्वी किसलिये रोरहे हैं ॥ ४ ॥ व आज मेरे वृद्ध पिताजी कहांहैं और पुत्रोंको प्यार करने

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो रामोभ्रातृभिरन्वितः ॥ फलानिकन्दमूलानि गृहीत्वाश्रमसम्मुखः ॥ १ ॥ सदृष्ट्वा स्वाश्रमंध्वस्तं पुलिन्दैर्बहुशोवृतम् ॥ लकुटाश्मप्रहारैस्तुतांधेनुंजर्जरीकृताम् ॥ २ ॥ पप्रच्छकिमिदंसर्वं व्याकुलत्व मुपागतम् ॥ आश्रमास्पदमाभीरैः पुलिन्दैश्चसमावृतम् ॥ ३ ॥ केनैषामामिकाधेनुः प्रहारैर्जर्जरीकृता ॥ तापस्यस्ता पसाःसर्वे कस्मादेतेरुदन्तिच ॥ ४ ॥ क्वसमेद्यपितावृद्धोमाताचसुतवत्सला ॥ नममाद्ययथापूर्वं स्नेहाच्चायातिसम्मु खी ॥ ५ ॥ अथतस्यसमाचख्युर्वृत्तान्तंसर्वतापसाः ॥ यथादृष्टंसुदुःखार्ताः सहस्रार्जुनचेष्टितम् ॥ ६ ॥ ततस्तेभ्रातरःसर्वे व ज्रपातोपमंवचः ॥ श्रुत्वादृष्ट्वाचतंशस्त्रैः खण्डितंजनकंनिजम् ॥ ७ ॥ मातरंक्षतसर्वाङ्गीं प्राणशेषांव्यथान्विताम् ॥ रुरुदुःशोकसन्तप्ता मुक्त्वाराममहाबलम् ॥ ८ ॥ रुदित्वाथचिरंकालं विप्रलप्यमुहुर्मुहुः ॥ अन्त्येष्टिंचक्रिरेतस्य वेदोक्त

वाली मेरी माता जैसे पहले स्नेह से सामने आती थी वैसे आज न आई ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर बहुतही दुःखसे विकल तपस्वियों ने जैसा वृत्तान्त देखाथा वैसाही सहस्रार्जुन के कर्मको उन परशुरामजी से कहा ॥ ६ ॥ तदनन्तर उन समस्त भाइयों ने वज्रपातके समान वचनको सुनकर व अपने उन पिताको शस्त्रोंसे कटेहुये देखकर ॥ ७ ॥ और कटेहुये समस्त अंगोंवालीव दुःखसे संयुत तथा प्राणमात्र शेषवाली माता को देखकर बडे बलवान् परशुरामजी को छोड़कर शोचसे संतप्त हुये सबोंने रोदन किया ॥ ८ ॥ इसकेअनन्तर बहुत समयतक रोकर व बार २ विलापकर तदनन्तर वेदमें कहेहुये विधानसे उन जमदग्निजीकी अन्त्येष्टि याने दाहादि

क्रिया की ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर दाहके अन्त में यथायोग्य गढ़ेको बनाकर परशुरामजीको छोड़कर उन पुत्रों ने पिताको तिलोंसे मिले हुये जलको दिया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर अन्य तपस्वियों ने शस्त्रधारियों में उत्तम परशुरामजी से कहा कि तुम मरेहुये पिताको जल की अञ्जलि क्यों नहीं देते हो ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर तीखेशस्त्रों से किये माताके प्रहारों को गिनते हुये इन परशुरामजीसे तपस्वियों ने बहुत प्रकार कहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर श्वास लेकर परशुराम जी उन मुनीश्वरों से बोले कि मैंने जिसलिये जलदान का निषेध कियाहै उसको सुनिये ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! क्षत्रिय ने मेरे पिता को बिन अपराध

विधिनाततः ॥ ९ ॥ अथदाहावसानेते कृत्वागर्तांयथोचिताम् ॥ मुक्त्वारामंददुस्तोयं पितुःपुत्रास्तिलान्वितम् ॥ १० ॥ अथान्यैस्तापसैःप्रोक्तो रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ नयच्छसिपितुः कस्मात्त्वंप्रेतस्यजलाञ्जलिम् ॥ ११ ॥ अथासौबहुधा प्रोक्तस्तापसैर्जमदग्निजः ॥ प्रहारान्गणयन्मातुः शितशस्त्रविनिर्मितान् ॥ १२ ॥ ततस्तानब्रवीद्रामो विनिःश्वस्य मुनीश्वरान् ॥ निषेधस्तोयदानस्य श्रूयतांयन्मयाकृतः ॥ १३ ॥ अपराधंविनाताततः क्षत्रियेणहतोमम ॥ तस्मान्निःक्षत्रियामुर्वीं यद्यहंनकरोमिवै ॥ १४ ॥ प्रहारसङ्ख्ययाविप्रास्तन्मेस्यात्सर्वपातकम् ॥ मातुरङ्गेप्रहाराणां दृश्यतेचैकविंशतिः ॥ १५ ॥ पितृमातृवधाज्ज्ञातं यत्कृतंतेनपाप्मना ॥ क्षत्रियापसदेनापि तथान्यदपिकुत्सितम् ॥ १६ ॥ ततस्तस्यैवचान्येषां क्षत्रियाणांदुरात्मनाम् ॥ रुधिरैःपूरयित्वेमांगर्तां पितृजलोचिताम् ॥ १७ ॥ तर्पयिष्यामिरक्तेन पितरंनाहमम्भसा ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वातेदारुणांतस्य प्रतिज्ञांतापसोत्तमाः ॥ परंविस्मयमापन्ना नोचुःकिञ्चित्ततःप

मारडाला है इसलिये यदि प्रहारों की संख्या से मैं पृथ्वी को क्षत्रियोंसे हीन न करूं तो निश्चयकर मुझको समस्त पातक होवैं क्योंकि माताके अंग में इक्कीस प्रहार देखपड़ते हैं ॥ १४ । १५ ॥ क्षत्रियों में नीच उस पापीने वैसेही और भी जिस निन्दित कर्मको किया है वह पिता, माताके मारने से जानागया है ॥ १६ ॥ उससे उसीके व और दुष्ट चित्त या मनवाले क्षत्रियों के रक्तोंसे इसगढ़े को पितरोंको जल देने के योग्य पूर्णकर ॥ १७ ॥ मैं पिताका रक्तसे तर्पण करूंगा जलसे नहीं ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर सूतजी बोले कि वे उत्तम तपस्वी लोग उन परशुरामजीकी घोर प्रतिज्ञा को सुनकर बडे विस्मय में प्राप्तहुये उसके उपरान्त कुछ नं बोले ॥ १६ ॥
शौचान्त याने पवित्रता के अन्त को प्राप्तहोकर क्रोध संयुत परशुरामजी अंगुलियोंकी रक्षाके लिये दस्तानों को बाधे व उत्तम धनुष बाणोंको धारे उन समस्त शबर,
पुलिन्द, मेदक जातियों के साथ पैने परशुको लेकर माहिष्मतीनगरी के सामनेगये ॥ २० । २१ ॥ वह सहस्रार्जुन भी वैसीप्रतिज्ञा को धारे व बड़ी सेनासे संयुत
व भृगुवंश में श्रेष्ठ उन परशुरामजी को भलीभांति आयेहुये सुनकर तदनन्तर देवता, दैत्यों के समान व अनेक प्रकारके समस्त योधाओं के साथ प्रसन्न होताहुआ

माहिष्मत्युन्मुखंययौ ॥ २० ॥ सर्वैस्तैः
रम् ॥ १९ ॥ अथाशौचान्तमासाद्य रामःक्रोधसमन्वितः ॥ तीक्ष्णंपरशुमादाय
शबरैःसार्द्धं पुलिन्दैर्मेदकैस्तथा ॥ वद्धगोधाङ्गुलित्राणैर्वरबाणधनुर्धरैः ॥ २१ ॥ तथार्जुनोपितंश्रुत्वा समायातंभृगूत्तम
म् ॥ सैन्येनमहतायुक्तं प्रतिज्ञाधारिणंतथा ॥ २२ ॥ ततस्तुसम्मुखोहृष्टो युद्धार्थंसविनिर्ययौ ॥ सार्द्धंनानाविधैर्योधैः स
वैर्देवासुरोपमैः ॥ २३ ॥ ततस्तेहैहयास्सर्वे शरैराशीविषोपमैः ॥ वध्यन्तेशबरैःसङ्ख्ये गर्जमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ ब्रह्म
हत्यासमुत्थेन पातकेनततश्चते ॥ जातानिस्तेजसःसर्वे प्रपतन्तिधरातले ॥ २५ ॥ नकश्चित्पौरुषंतत्र सम्प्रदर्शयितुंक्ष
मः ॥ पलायनपराःसर्वे वध्यन्तेनिशितैःशरैः ॥ २६ ॥ अथभग्नंबलंदृष्ट्वा हैहयाधिपतिःक्रुधा ॥ स्वचापंवाञ्छयामास
सज्यंकर्तुंत्वरान्वितः ॥ २७ ॥ शक्नोतिनारोपयितुं सुयत्नमपिचाश्रितः ॥ ततश्चाकर्षयामास खड्गं कोशात्सुनिर्मलम् ॥ २८ ॥

युद्धके लिये सामने निकल आया ॥ २२ । २३ ॥ तदनन्तर युद्धमें बार २ गर्जतेहुये शबरोंसे सर्प के समान शरों से वे सब हैहयदेशके निवासी मारे जातेथे ॥ २४ ॥
तदनन्तर ब्रह्महत्या से उठेहुये पातक से तेजहीन होतेहुये वे सब धरातलमें गिरतेथे ॥ २५ ॥ उस युद्धमें पराक्रम दिखलाने के लिये कोई न समर्थ हुआ क्योंकि
भागने में तत्पर समस्त योधा पैने बाणों से वधेजातथे ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर हैहयदेशके स्वामी सहस्रार्जुन ने अपनी सेनाको कटीपिटी देखकर शीघ्रता समेत होते
हुये क्रोधसे अपने धनुषको प्रत्यञ्चायुक्त करनेके लिये इच्छाकिया ॥ २७ ॥ व बड़े यत्नमें भी टिकाहुआ वह नृप प्रत्यञ्चाको आरोपण करने के लिये न समर्थ हुआ तब

म्यानसे चमचमाती हुई तलवार को खींचा ॥ २८ ॥ बड़ी विलक्षणता में प्राप्त वह खैंचने कोभी न समर्थहुआ व जिस गदा से लोकको रुलाने वाले विकराल रावण को जीतलिया है वह भी उसी क्षण उसके हाथसे पृथ्वीमें गिरपड़ी व उसने शुभदायक हजार हाथों से नर्मदा के प्रवाह समूह को रोक लियाथा वे सब कांपने से विकल होगये और दैवयोग से किसीप्रकार शस्त्रको उठाने के लिये समर्थ न हुये ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ व देवास्त्रोंके सब मन्त्र भूलगये इसी अवसर में क्रोध से मूर्च्छित होतेहुये परशुरामजी भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर पैने परशुको उठाकर उस हैहयार्जुनसे निठुर वचन बोले कि हे दुष्ट, हैहयाधिपते ! जिन हाथों

आकृष्टंनचशक्नोति वैलक्ष्यंपरमंगतः ॥ गदयानिर्जितोरौद्रो रावणोलोकरावणः ॥ २९ ॥ ययासाप्यपतद्धस्तात्तत्क्षणात्पृथिवीतले ॥ नर्मदायाःप्रवाहौघःसहस्राख्यैःकरैःशुभैः ॥ ३० ॥ विधृतस्तेनतेसर्वे बभूवुःकम्पविह्वलाः ॥ न शस्त्रंशेकुरुद्धर्तुं दैवयोगात्कथञ्चन ॥ ३१ ॥ दिव्यास्त्राणांस्तथासर्वे मन्त्राविस्मृतिमागताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेरामः सम्प्राप्तःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ३२ ॥ तीक्ष्णंपरशुमुद्यम्य ततस्तंप्राहनिष्ठुरम् ॥ हैहयाधिपतेपाप यैःकरैर्जनकोमम ॥ ३३ ॥ त्वयाविनिहतस्तान्मे शीघ्रंदर्शयसाम्प्रतम् ॥ ब्रह्मतेजोहतःसोपि प्रोक्तस्तेनसुनिष्ठुरम् ॥ ३४ ॥ नोवाचप्रोत्तरंकिञ्चिदालेख्येलिखितोयथा ॥ ततोभुजवनंतस्य रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ ३५ ॥ मुहुर्मुहुर्विनिर्भर्त्स्य प्रचकर्त्तशनैःशनैः ॥ ततश्छित्त्वाशिरस्तस्य कुठारेणभृगूद्वहः ॥ ३६ ॥ जग्राहरुधिरंयत्नात्प्रहारेभ्यःस्वयंद्विजाः ॥ पूरयित्वामहाकुम्भाञ्छबरेभ्योददौततः ॥ ३७ ॥ म्लेच्छेभ्योलुब्धकेभ्यश्च ततःप्रोवाचसादरम् ॥ हाटकेश्वरजक्षेत्रे गर्तामेभ्रातृभिःकृताः ॥३८॥

से तूने मेरे पिताको मारा है उनको शीघ्रही इस समय मुझको दिखला ब्रह्मतेजसे हत वह भी उन परशुरामजीसे बहुतही निठुर कहागया ॥ ३३ । ३४ ॥ परन्तु चित्र (तसवीर) में लिखेहुये के समान ने कुछ प्रत्युत्तरको न दिया तदनन्तर शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ परशुरामजीने बार २ घुड़ककर उसनृप के भुजाओं के वनको धीरे २ काटडाला तदनन्तर हे द्विजो ! भृगुवंश के नायक ने कुठार से उसके शिरको काटकर व प्रहारों से आपही उपायसे रुधिर को ग्रहण किया व महाकुम्भों को भरकर तदनन्तर शबरजनोंके लिये व म्लेच्छ तथा बहेलियों के लिये देदिया उसके उपरान्त आदर समेत यहकहा कि हाटकेश्वरजीसे उपजे हुयेक्षेत्र में मेरे भाइयों ने गढ़े

को कियाहै ॥ ३५ । ३६ । ३७ । ३८ ॥ जोकि पितरोंके भलीभांति तर्पणके लिये जलसे सबओर भराहै वहां शीघ्र जाकर उस कुण्ड में असावधानता समेत इस पापी के इस बहुतसे रक्तको मेरी आज्ञासे निस्सन्देह फेंकिये जिससे अपने पिताको भक्तिके द्वारा विधान से तर्पणकर शीघ्रही पितावाले ऋणसे मेरी मुक्तिहोवै ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येसहस्राजुर्नवधोनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

दो० । परशुरामजी भूमिको बिन क्षत्रिन की कीन । अरसठि के अध्यायमें कह्यो सो चरित नवीन ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर वे शबर लोग हैहय से उपजे हुये

पितृसन्तर्पणार्थाय सलिलेनपरिप्लुता ॥ प्रक्षिपध्वंद्रुतंगत्वा तस्यांरक्तमिदंमहत् ॥ ३९ ॥ पापस्यास्यप्रमत्तस्य ममादेशादसंशयम् ॥ येनतातंनिजंभक्त्या तर्प्पयित्वाविधानतः ॥ ४० ॥ ऋणस्यमुक्तिर्भवति क्षिप्रंमेपैतृकस्यच ॥४१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येसहस्रार्जुनवधोनामसप्तषष्टितमोध्यायः ॥ ६७ ॥ ✻ ॥

सूतउवाच ॥ अथतेशबरायत्नाद्रक्तंतद्धैहयोद्भवम् ॥ तत्रनिन्युःस्थितायत्र गर्त्तासापितृसम्भवा ॥ १ ॥ भार्गवोऽपि च तंहत्वा रक्तमादायकृत्स्नशः ॥ ततःसम्प्रेषयामास यत्रगर्त्ताथपैत्रिकी ॥ २ ॥ नसबालंनवृद्धंच परित्यजतिभार्गवः ॥ यौवनस्थंविशेषेण गर्भस्थंवाथक्षत्रियम् ॥ ३ ॥ स्वयंजघानभूपान्स तेषांपार्श्वेतथापरान् ॥ विध्वंसयतिसक्रुद्धः सैनिकानांसमन्ततः ॥ ४ ॥ तथैवासृक्प्रगृह्णातिप्रग्राहयतिचादरात् ॥ तेषांपार्श्वात्ततस्तूर्णं प्रेषयामासतत्रच ॥ ५ ॥ एवंनिःक्षत्रियांकृत्वा कृत्स्नांपृथ्वींभृगूद्वहः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे जगामतदनन्तरम् ॥ ६ ॥ ततस्तैरुधिरैःस्नात्वा स

उस रक्त को उपायसे वहांपर लेगये जहां पितरों से उपजाहुआ वह गढ़ाथा ॥ १ ॥ तदनन्तर भृगुवंश में उपजेहुये परशुराम जीने भी उस नृपको मारकर व सम्पूर्णता से रक्त को लेकर इसके अनन्तर वहां पठादिया जहां कि पितावाला गढ़ाथा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर परशुराम जीने बाल, वृद्ध व विशेषकर युवावस्था में टिके व गर्भ में प्राप्तहुये क्षत्रियों को न छोड़ा ॥ ३ ॥ उन परशुराम जीने भूपोंको व उनके समीपमें अन्य नरों को मारा व क्रोधित होतेहुये सबओर से सेनावाले मनुष्यों को विध्वंस किया ॥ ४ ॥ वैसेही उनके समीप से रक्तको ग्रहण किया व औरोंको आदरसे ग्रहण कराया तदनन्तर शीघ्रही उस कुण्ड मे पठादिया ॥ ५ ॥ इस प्रकार भृगुनायक ने

समस्त पृथ्वी को क्षत्रिय से हीनकर तदनन्तर हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें गमन किया ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त उन रक्तोंसे नहाकर व बहुत से तिलों को लेकर तथा अपसव्य होकर पितरों का तर्पण किया ॥ ७ ॥ वे परशुराम जी समस्त ब्राह्मणों तथा अन्य तपस्वियों के सामने प्रतिज्ञाको पूर्णकर अनन्तर शोचरहित होगये ॥ ८ ॥ तदनन्तर जब लोक में क्षत्रिय न रहे तब उन परशुराम जीने अश्वमेध यज्ञकर ब्राह्मणों के लिये सब पृथ्वी को दक्षिणा देदी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वरदान को पायेहुये ब्राह्मणों ने उन भृगूत्तम से कहा कि हमारी भूमि में तुमको न टिकना चाहिये क्योंकि राजा एकही रहता है ॥ १० ॥ उन परशुराम नेभी बहुत अच्छा यहकर

मादायतिलान्बहून् ॥ अपसव्यंसमाधाय प्रचक्रेपितृतर्पणम् ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षंसर्वविप्राणां तथान्येषांतपस्विनाम् ॥ प्रतिज्ञांपूरयित्वाथ विशोकःसबभूवह ॥ ८ ॥ ततोनिःक्षत्रियेलोके कृत्वाहयमखंचसः ॥ प्रायच्छत्सकलामुर्वीं ब्राह्मणेभ्यश्चदक्षिणाम् ॥ ९ ॥ अथलब्धवराविप्रास्तमूचुर्भृगुसत्तमम् ॥ नास्मद्भूमौत्वयास्थेयमेकोराजायतःस्थितः ॥ १० ॥ सोपिबाढमितिप्रोच्य हर्षेणमहतान्वितः ॥ महीपर्य्यन्तमासाद्य प्रोवाचाथनदीपतिम् ॥ ११ ॥ आरोप्यसुमहच्चापमाग्नेयास्त्रंप्रयुज्यच ॥ त्रिशिखांभृकुटींकृत्वाकोपेनमहतान्वितः ॥ १२ ॥ रामउवाच ॥ मयानिःक्षत्रियाभूमिःकृताशैलवनान्विता ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ततोदत्तावाजिमेधेमहामखे ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वंदेहिमेस्थानं कृत्वापसरणंस्वयम् ॥ नहि दत्त्वाग्रहीष्यामिब्राह्मणेभ्योमहींपुनः ॥ १४ ॥ नकरोष्यथवावाक्यं ममाद्यत्वंनदीपते ॥ स्थलरूपंकरिष्यामि वह्न्यस्त्रपरिशोषितम् ॥ १५ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासमुद्रोभयसङ्कुलः ॥ अपसारंततश्चक्रेयावत्तस्याभिवाञ्छि

बड़े हर्ष से संयुत होतेहुये पृथ्वी के अन्तको पाकर अनन्तर बड़े भारी धनुषको चढ़ाकर व आग्नेयास्त्र को लगाकर व भौंह को तीन शिखावाली कर बड़े क्रोधसंयुत होतेहुये नदीपति (समुद्र) से कहा ॥ ११ । १२ ॥ परशुराम जी बोले कि जङ्गल, शैल समेत पृथ्वी को मैंने क्षत्रियों से हीन करदिया तदनन्तर अश्वमेधनामक महायज्ञ में उसे ब्राह्मणों के लिये देदिया ॥ १३ ॥ इसलिये तुम आपही हठकर मुझको स्थान दो क्योंकि पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये देकर फिर न ग्रहण करूंगा ॥ १४ ॥ हे नदीपते ! अथवा आज तुम मेरे वचनको नहीं करते हो तो आग्नेयास्त्र से सबओर सुखाये हुये तुमको स्थलरूप याने चट्टान के समान करूंगा ॥ १५ ॥

सूतजी बोले कि तदनन्तर उन परशुराम जीके उस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल हुआ समुद्र उनको जितना मनोरथ था उतनाही हटगया ॥ १६ ॥ उसके उपरान्त तपस्याकरने में तत्पर व पिताके वधको स्मरण करतेहुये उन भृगुनायक ने वहीं पर निवास किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर भृगुवंश में उपजे हुये उन परशुराम ने मेद जातिके समेत शबर व पुलिन्दों को पृथ्वीके अन्त में पर्वतों में धारण कराया ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तम् ॥ १६ ॥ ततश्चकारतत्रैव वसतिंसभृगूद्वहः ॥ तपश्चर्य्यासमायुक्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ १७ ॥ ततःसर्वान्पुलिन्दांश्चशबरान्मेदसंयुतान् ॥ भूम्यन्तेधारयामासपर्वतेषुसभार्गवः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ ततोनिःक्षत्रियेलोके क्षत्रियोवंशकारणात् ॥ क्षेत्रजान्ब्राह्मणेभ्यश्च सुषुवुस्तनयान्वरान् ॥ १ ॥ तेवृद्धिंचसमासाद्य क्षेत्रजाःक्षत्रियोपमाः ॥ ब्राह्मणेभ्यःपुनःपृथ्वीं जहुर्बलसमन्विताः ॥ २ ॥ ततस्तेब्राह्मणश्रेष्ठाः क्षत्रियैस्तुनिराकृताः ॥ जामदग्निंसमासाद्य प्रोचुर्वृत्तंनृपैःकृतम् ॥ ३ ॥ रामराममहाबाहो यात्वयावसुधाचनः ॥ वाजिमेधेमखेदत्तात्क्षत्रियैःसाहृताबलात् ॥ ४ ॥ तस्मान्नोदेहितांभूयो हत्वातान्क्षत्रियाधमान् ॥ कुरुश्रेयोभिवृद्धिंतांयद्य

दो० । जिमि क्षत्रिनके रुधिरसों रच्यो कुण्ड यक राम । उनहत्तरि अध्याय में सोई चरित अभिराम ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर संसार को क्षत्रियरहित होनेपर क्षत्रियों की स्त्रियों ने वंशके कारण ब्राह्मणों से उत्तम क्षेत्रज पुत्रों को पैदा किया ॥ १ ॥ क्षत्रियों के समान व बलसयुत उन क्षेत्रज पुत्रों ने बढ़तीको प्राप्तहोकर ब्राह्मणों से फिर पृथ्वी को हरलिया ॥ २ ॥ तदनन्तर क्षत्रियोंसे निकालेहुये उन द्विजोत्तमोंने जमदग्निके पुत्र परशुरामके समीप जाकर नृपोंसे कियेहुये चरितको कहा ॥ ३ ॥ कि हे महाबाहो ! हे राम ! हे राम ! तुमने अश्वमेध यज्ञमें हमलोगों को जिस पृथ्वीको दियाथा उसको क्षत्रियोंने बलसे हरलिया ॥ ४ ॥ इसलिये यदि तुम्हारे

पुरुषार्थ है तो फिर उन अधम क्षत्रियों को मारकर उस भूमिको हमलोगों को दीजिये व कल्याणकी बढ़ती कीजिये ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त उन पुलिन्दों व मेदकों समेत क्रोध से व्याप्त होतेहुये परशुराम जी फिर क्षत्रियों के नाशने के लिये निकले ॥ ६ ॥ और वैसेही क्षत्रियोंको मारकर परशुराम जीने उस बहुत रक्तको लेकर उस गढ़े को पूर्णकिया व पितरोंका तर्पण किया ॥ ७ ॥ व अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणों के लिये फिर पृथ्वी को दिया व उनसे निकाले हुये उस समुद्रके समीप गमन किया ॥ ८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार उन परशुराम जीने पृथ्वी को इक्कीसबार समस्त क्षत्रियोंसे विहीन किया व ब्राह्मणों के लिये निवेदन करदिया ॥ ९ ॥ उसके बाद पितरों

स्तितवपौरुषम् ॥ ५ ॥ ततोरामःक्रुधाविष्टोभूयस्तैःशबरैःसह ॥ पुलिन्दैर्मेदकैश्चैव क्षत्रियान्तायनिर्ययौ ॥ ६ ॥ तथैव क्षत्रियान्हत्वारक्तमादायतद्बहु ॥ तांगर्त्तांपूरयामासचकारपितृतर्पणम् ॥ ७ ॥ प्रददौब्राह्मणेभ्यश्च वाजिमेधेधरां पुनः ॥ तैश्चनिर्वासितस्तत्रजगामोदधिसन्निधौ ॥ ८ ॥ एवंतेनकृतापृथ्वी सर्वक्षत्रविवर्जिता ॥ त्रिःसप्तवारंविप्रेन्द्रा द्विजेभ्यश्चनिवेदिता ॥ ९ ॥ अशरीराभवद्वाणी स्वस्थापितृसमुद्भवा ॥ रामराममहाभाग त्यजैतत्कर्म्मगर्हितम् ॥ १० ॥ वयंतेतुष्टिमापन्नाः स्ववाक्यपरिपालनात् ॥ यत्त्वयाविहितंकर्मनैतदन्यःकरिष्यति ॥ ११ ॥ नकृतंकेनचित्पूर्वं पितृवैरसमुद्भवम् ॥ तस्मात्तुष्टावयंवत्स दास्यामश्चित्तवाञ्छितम् ॥ १२ ॥ प्रार्थयस्वद्रुतंतस्माद्दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ १३ ॥ रामउवाच ॥ पितरोयदितुष्टामे प्रदेयंयदिवाञ्छितम् ॥ तस्मात्तीर्थमिदंपुण्यं मन्नाम्नालोकविश्रुतम् ॥ १४ ॥ रक्तदोषवि

से उपजी व स्वर्ग में टिकीहुई आकाशवाणी होतीभई कि हे महाभाग ! हे राम ! हे राम ! इस निन्दित कर्मको छोडदो ॥ १० ॥ अपने वचनके परिपालनसे हमलोग तुमसे प्रसन्नता को प्राप्तहैं तुमने जिस कर्मको किया है इसको अन्य नर न करैगा ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! पिताके वैर से उपजेहुये कर्मको पहले किसीने नहीं किया है इस लिये प्रसन्न हुये हमलोग चित्तसे चाहेहुये पदार्थ को देवैंगे ॥ १२ ॥ उसलिये देवताओं सेभी दुर्लभ पदार्थको तुम शीघ्रही प्रार्थना करो ॥ १३ ॥ परशुराम जी बोले कि हे पितरो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मनोवाञ्छित देने योग्यहै तो उस वाञ्छित से यह तीर्थ उत्तम तपस्वियों से सेवित व रुधिर के दोषसे विशेषकर मुक्त

पितरलोग बोले कि तुमने पितरों के तर्पण से उपजेहुये जिस गढ़े को निर्मित किया है यह रामकुण्ड इस नाम ॥ १४ । १५ ॥
होकर मेरे नामसे लोकमें प्रसिद्ध होवै ॥ व भक्तिसे संयुत होतेहुये जो पुरुष इस कुण्ड में पितरों का तर्पण करेंगे वे अश्वमेध के फल को पाकर उत्तम गतिको जा-
से तीनों लोक में प्रसिद्ध होगा ॥ १६ ॥ और भाद्रपदके महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में शस्त्रसे मरेहुये मनुष्य के श्राद्धको जो मनुष्य भक्तिसे करैगा ॥ १८ ॥ वह पापसे संयुत व प्रेतभाव,
वैंगे ॥ १७ ॥ सूतजी बोले कि वे पितर लोग परशुराम जीसे ऐसा कहकर तदनन्तर चुप होगये व परशु-
में प्राप्तभी तथा नरक वास में टिकेहुये मरे मनुज को उद्धार करैगा ॥ १९ ॥

पितरऊचुः ॥ पितृतर्पणजागर्ता त्वयायेयंविनिर्मिता ॥ रामह्रदइतिख्यातिंप्रयास्य
निर्मुक्तं सेवितंवरतापसैः ॥ १५ ॥ तिजगत्रये ॥ १६ ॥ येत्रभक्तियुतालोकास्तर्पयिष्यन्तिवैपितॄन् ॥ तेश्वमेधफलंप्राप्य प्रयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ १७ ॥
कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां मासिभाद्रपदेनरः ॥ करिष्यतिचयःश्राद्धं भक्त्याशस्त्रहतस्यच ॥ १८ ॥ अपिप्रेतत्वमापन्नं नर
केवासमाश्रितम् ॥ उद्धरिष्यतिसप्रेतमपिपापसमन्वितम् ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वातुरामन्ते विरेमुस्तदन
न्तरम् ॥ रामोपिचतपस्तेपेतत्रैवक्रोधवर्जितः ॥ २० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रशस्त्रहतस्यच ॥ तस्मिन्दिनेप्रकर्त्त
व्यं श्राद्धंश्रद्धासमन्वितैः ॥ २१ ॥ उपसर्गमृतानाञ्चसर्पाग्निविषबन्धनैः ॥ तत्रमुक्तिप्रदंश्राद्धं दिनेतस्मिन्नुदाहृत
म् ॥ २२ ॥ यःपितॄंस्तर्पयेत्तत्र प्रेतपक्षेजलैरपि ॥ सतेषामनृणीभूत्वा पितृलोकेमहीयते ॥ २३ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं
रामह्रदसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठाः सर्वपातकनाशनम् ॥ २४ ॥ श्राद्धकालेनरोभक्त्या यश्चैतत्पठतेस्वयम् ॥ स

इसलिये उस दिन श्रद्धासे संयुत पुरुषोंको शस्त्रसे मरेहुये मनुष्य के श्राद्धको सब उपायसे करना चाहिये ॥
रामने भी क्रोधसे रहित होकर वहींपर तपस्या किया ॥ २० ॥ पितरपक्ष में उस कुण्ड में जो मनुष्य पितरोंका
२१ ॥ सर्प, अग्नि, विष, बन्धन, उत्पात से मरेहुये पुरुषों की उस दिन वहांपर श्राद्ध मुक्तिदायक कही है ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! परशुराम जीके कुण्ड से उपजेहुये इस समस्त माहात्म्य को
तर्पण करता है वह इन पितरों के ऋणसे छूटकर पितृलोक में पूजित होता है ॥ २३ ॥ श्राद्धके समय में जो मनुष्य भक्तिसे आपही इस चरित्र को पढ़ता है वह निस्सन्देह गया
तुमलोगों से वर्णन किया जो कि समस्त पातकों का विनाशक है ॥ २४ ॥

श्राद्धसे उपजेहुये समस्त फलको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ अथवा पर्व (त्योहार) समय के प्राप्त होनेपर ब्राह्मण के समीप जो मनुष्य इस चरित को पढ़ताहै वह निश्चयकर पितरयज्ञके फलको प्राप्तहोताहै ॥२६॥ तथा भक्तिसे जो मनुज कहतेहुये इस चरित्रको सुनताहै वह सौत्रामणि यज्ञके कियेहुये समस्त फलको निस्सन्देह पाता है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामह्रदोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ❀ ॥

दो० । भये षडानन देव जिमि तारक मारन काज । सत्तरिवें अध्याय में कहत सोई मुनिराज ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर पापोंके विनाशनेवाली और भी

गयाश्राद्धजंकृत्स्नं फलमाप्नोत्यसंशयः ॥ २५ ॥ पर्वकालेथवाप्राप्ते पठेद्ब्राह्मणसन्निधौ ॥ पितृमेधस्ययज्ञस्य सफलंलभतेध्रुवम् ॥ २६ ॥ शृणुयाद्वापियोभक्त्या कीर्त्यमानमिदंनरः ॥ सौत्रामणेःकृतंकृत्स्नंफलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेरामह्रदोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ✻ ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यापिचतत्रास्तिशक्तिःपापप्रणाशिनी ॥ कार्त्तिकेयेननिर्मुक्ता हत्वावैतारकंरणे ॥ १ ॥ तथास्ति सुमहत्कुण्डंस्वच्छोदकसमावृतम् ॥ तेनैवनिर्मितंतत्रयःस्नात्वातांप्रपूजयेत् ॥ २ ॥ सपापान्मुच्यतेसद्यआजन्ममरणान्तिकात् ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मिन्कालेविनिर्मुक्तासाशक्तिस्तेननोवद ॥ किमर्थंस्वामिनातत्र किम्प्रभावात्वसंशयम् ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीत्तारकोनामदानवोतिबलान्वितः ॥ हिरण्याक्षस्यदायादस्त्रैलोक्यस्यभयावहः ॥ ५ ॥ सज्ञात्वाजनकंध्वस्तंविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ततस्तेपेतपस्तीव्रं गोकर्णंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६ ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं शीर्णपर्णा

शक्ति है जिसको स्वामिकार्त्तिकेय जीने युद्ध में तारकासुर को मारकर छोडा है ॥ १ ॥ और उन्हीं स्वामिकार्त्तिकेय जीसे रचाहुआ निर्मल जलसे भलीभांति पूरित बड़ाभारी कुण्ड है जो मनुष्य उसमें नहाकर उस शक्ति को भलीभांति पूजता है ॥ २ ॥ वह जन्म से लगाकर मरणपर्य्यन्त के पातकसे उसी क्षण छूटजाताहै ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि वहांपर स्वामिकार्त्तिकेय जीने किससमय व किसलिये व किस प्रभाववाली उस शक्तिको छोडा है इस चरित्र को हमलोगों से कहिये ॥ ४ ॥ सूत जी बोले कि पुरातन समय हिरण्याक्ष का पुत्र बहुतबल से संयुत व त्रिलोक को भयदायक तारकासुर नामक हुआ है ॥ ५ ॥ उसने अपने पिताको समर्थवान् विष्णु

जीसे नष्ट हुये जानकर तदनन्तर गोकर्ण पर्वतपर प्राप्तहोकर बडी तीव्र तपस्याको किया॥६॥वह दैत्य मन, वचन, कर्म से व उत्तम पूजन, भेंट तथा अनेक प्रकार के नैवेद्यों से महादेव जी को ध्यान धरते व हज़ार वर्ष पर्य्यन्त गिरेहुये पत्तोंको भोजनकरता हुवा टिकता भया तदनन्तर हज़ार वर्षके बाद महादेवजी को अप्रसन्न जानकर उसके बाद दुःखसंयुत होकर उस दैत्य ने घोर तपको किया व अपने मांसों को काटकर अग्नि में हवन किया॥७।८।९॥ तदनन्तर बैल पै चढ़े व प्रसन्न, पार्वती के पति महादेवजी सबही गणों के साथ उस दैत्य के भलीभांति दर्शन को प्राप्त हुये॥ १०॥ उसके बाद वहांपर अतिप्रसन्न महादेवजी ॐकारशब्दसे समस्त

शनःस्थितः॥ ध्यायमानोमहादेवंकायेनमनसागिरा॥७॥वरपूजोपहारैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥ ततोवर्षसहस्रान्तेस
दैत्योदुःखसंयुतः॥ ८॥ ज्ञात्वारुद्रमसन्तुष्टं ततोरौद्रंतपोकरोत्॥विनिकृत्यात्ममांसानिजुहोतिस्महुताशने॥९॥ततस्तु
ष्टोमहादेवो वृषारूढउमापतिः॥ सर्वैरेवगणैःसार्द्धं तस्यसन्दर्शनंययौ॥ १०॥ तत्रप्रोवाचसंहृष्टस्तारनादेननादय
न्॥ दिशःसर्वामहादेवोहर्षगद्गदयागिरा॥ ११॥ भोभोस्तारकतुष्टोस्मिसाहसंमेदृशंकुरु॥ प्रार्थयस्वमनोभीष्टंयेन
तेप्रददाम्यहम्॥ १२॥ तारकउवाच॥ अजेयःसर्वदेवानांत्वत्प्रसादादहंविभो॥ यथाभवामिसङ्ग्रामे त्वांविहायतथाकु
रु॥ १३॥ भगवानुवाच॥ मत्प्रसादादसन्दिग्धंसर्वमेतद्भविष्यति॥ त्वयायत्प्रार्थितंदैत्य त्वमेकोबलवानिह॥ १४॥
एवमुक्त्वामहादेवः स्वमेवभवनंगतः॥ तारकश्चापिसंहृष्टस्तथैवनिजमन्दिरम्॥ १५॥ ततोदानवसैन्येन महताप

दिशाओं को शब्दायमान करते हुये हर्षसे भरी गद्गदा वाणी से बोले॥ ११॥ कि हे तारक! ऐसे साहसको मतकरो मैं प्रसन्न हूं तुम मनोवाञ्छितको मांगो जिस लिये कि मैं उसको तुम्हें अवश्यकर दूंगा॥ १२॥ तारक बोला कि हे विभो! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं युद्धमें जिसप्रकार तुमको छोडकर सब देवों के जीतने योग्य न होऊं वैसाही करो॥ १३॥ शिवभगवान् बोले कि हे दैत्य! तुमने जो प्रार्थना कियाहै मेरी प्रसन्नतासे निरसन्देह यह समस्त होगा व इस संसार में तुम एकही बलवान् होगे॥ १४॥ महादेवजी ऐसा कहकर निज भवनको चलेगये वैसेही प्रसन्न होता हुवा तारक भी अपने घरको चलागया॥ १५॥ तदनन्तर बड़ीभारी दानवों की

सेनासे घिराहुवा वह दैत्य प्रसिद्ध अमरावती इन्द्रकी पुरीको युद्ध करने के लिये गया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर मृत्युको लौटाकर हजार वर्ष के अन्त तक देवताओं का दैत्योंके साथ बड़ा भारी युद्ध हुवा ॥ १७ ॥ उस संग्राम शीशमें नित्यही देवोंका क्षय हुया व शूलपाणि (शिव) जीकी प्रसन्नता से दैत्यों की जीत हुई ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन देवता लोगों ने विजयके लिये बहुतही विचित्र बख्तरों को व यन्त्रों को व खाईं आदि उपायों को किया ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वैसेही विशेषकर प्रसिद्ध योधाओंके शरीर की रक्षाके लिये बड़े यत्नसे अन्य भी उपायों को किया ॥ २० ॥ उस समय उन देवताओं ने दैत्यों के लिये अहर्निश मुद्गर, गोफना व तोपों को

रिवारितः ॥ गतःशक्रपुरींयोद्धुंविख्याताममरावतीम् ॥ १६ ॥ अथाभवन्महद्युद्धं देवानांदानवैःसह ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तंमृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ १७ ॥ तत्राभवत्क्षयोनित्यं देवानांरणमूर्द्धनि ॥ विजयोदानवानाञ्चप्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ १८ ॥ ततश्चक्रुरुपायांस्ते विजयायदिवौकसः ॥ वर्म्माणिसुविचित्राणि यन्त्राणिपरिखास्तथा ॥ १९ ॥ अन्यान्यपिशरीरस्यरक्षणार्थंप्रयत्नतः ॥ तथैवयोधमुख्यानां विशेषाद्द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ ससृजुस्तेसुराधीशा दानवेभ्योदिवानिशम् ॥ मुद्गरान्भिन्दिपालांश्चशतघ्न्योथवरेषवः ॥ २१ ॥ प्रासाःकुन्ताश्चभल्लाश्च तस्मिन्कालेविनिर्मिताः ॥ विशेषाहवसंबन्धे व्यूहानांप्रक्रियाश्चयाः ॥ २२ ॥ तथान्यानिविचित्राणिरूढयुद्धान्यनेकशः ॥ भीषिकाःकुहकाश्चैव शक्रजालानिकृत्स्नशः ॥ २३ ॥ नतुतेविजयंप्रापुस्तथापिद्विजसत्तमाः ॥ दानवेभ्योमहायुद्धे प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ २४ ॥ अथप्राहसहस्राक्षो भयत्रस्तोबृहस्पतिम् ॥ दिनेदिनेवयंदैत्यैर्विजयामोद्विजोत्तम ॥ २५ ॥ यथायथारणार्थाय सदुपायान्करोम्य

बनाया इसके अनन्तर उत्तम बाणों को व गांसियों को व बरछियों व भालों को निर्मित किया व विशेष युद्धके सम्बन्ध में जो चक्रव्यूहादिक कार्य्य है उनको रचा ॥ २१ । २२ ॥ व अन्यप्रकार के विचित्र कठिन युद्धों को और भीषिक (डरपानेवाली) व कुहक (छलप्रपञ्चवाली) सम्पूर्ण इन्द्रजाल मायाओंका निर्माण किया ॥ २३ ॥ परन्तु हे द्विजोत्तमो ! तिसपर भी महायुद्ध में दैत्यों के प्रहारोंसे जर्जर किये हुये उन देवों ने जीतको न पाया ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर भयसे डरे हुये हजार नेत्रोंवाले इन्द्रजी बृहस्पति से बोले कि हे द्विजोत्तम ! हमलोग दिनोदिन दैत्यों से जीते जाते हैं ॥ २५ ॥ व महायुद्ध में संग्राम के लिये मैं जैसेही जैसे

उत्तम उपायों को करताहूं वैसेही वैसे मेरा पराभव होता है ॥ २६ ॥ इस लिये हे सुराचार्य्य ! अपनी बुद्धिसे तुम उस उपाय को विचारो कि जिससे युद्धमें हमारा विजय हो और तुम्हारा प्रशंसित यश होवै ॥ २७ ॥ सूतजी बोले तदनन्तर बहुत काल तक ध्यानकर प्रसन्न मुखवाले बृहस्पति जी महायुद्ध में जीतका यत्न जानकर कर्म्मों के या शचीके पति इन्द्रजी से बोले ॥ २८ ॥ कि हे इन्द्र ! मैंने उस उपायको जानाहै कि जिससे बहुतेरे शत्रु भी महायुद्ध में खेलही से जीते जाते हैं॥ २९ ॥ जिसप्रकार उस दैत्यने बार २ प्रणामकर व उसी वचन को कहकर त्रिपुरके विनाशक शिवजीसे वाञ्छित वरदान को मांगा है ॥ ३० ॥ कि हे विभो ! तुम्हारी प्रस-

हम् ॥ तथातथापराभूतिर्जायतेमेमहाहवे॥ २६ ॥ तदुपायंसुराचार्य्य स्वबुद्धयात्वंप्रचिन्तय ॥ येनमेस्याज्जयोयुद्धे तव कीर्तिरनिन्दिता ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ ततोबृहस्पतिःप्राहचिरंध्यात्वाशचीपतिम् ॥ प्रहृष्टवदनोज्ञात्वा जयोपायं महाहवे ॥ २८ ॥ मयाशक्रपरिज्ञातः स उपायोमहाहवे ॥ जीयन्तेशत्रवोयेन लीलयैवापिभूरिशः ॥ २९ ॥ यथा भीष्टंवरंतेन प्रार्थितस्त्रिपुरान्तकः ॥ तदैववचनंप्रोक्त्वाप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥ अजेयःसर्वदेवानां त्वत्प्र सादादहंविभो ॥ यथाभवामिसङ्ग्रामेत्वांविहायतथाकुरु ॥ ३१ ॥ नतंस्वयंमहादेवः स्वशिष्यंसूदयिष्यति ॥ विषवृ क्षमपिस्थाप्य कश्छिनत्तिचतंस्वयम् ॥ ३२ ॥ योवैपितासपुत्रःस्याच्छ्रुतिवाक्यमिदंस्मृतम् ॥ तस्माज्जनयतुक्षि प्रं हरस्तन्नाशकृत्सुतम् ॥ ३३ ॥ येनसेनाधिपत्येतं विनियोज्यमहाहवम् ॥ कुर्म्मोदैत्यैःसमंशस्त्रैःप्राप्नुयामस्ततो जयम् ॥ ३४ ॥ एषएवउपायोत्र मयातेपरिकीर्तितः ॥ विजयायसहस्राक्ष नान्योस्तिभुवनत्रये ॥ ३५ ॥ ततोदेवग

न्नतासे मैं संग्राम में जिसप्रकार तुमको छोड़कर सब देवोंके जीतने योग्य न होऊं वैसाही करिये ॥ ३१ ॥ उस अपने शिष्य दैत्यको महादेवजी आपही नाश न करेंगे क्योंकि कौन सा पुरुष विष वृक्षको भी लगाकर व उसको आपही काटताहै॥३२॥जो पिताहै निश्चयकर वही पुत्र होता है यह श्रुतिका वचन कहाहै इस लिये महादेवजी उस दैत्यके नाशकरनेवाले पुत्रको पैदाकरैं ॥ ३३ ॥ जिससे हम लोग उस पुत्रको सेनाकी स्वामिता में नियोगकर दैत्योंके साथ शस्त्रों से महायुद्धको करैं तदनन्तर युद्धको प्राप्त होवैंगे ॥३४॥ हे इन्द्र ! इस विषयमें तुमसे मैंने यह उपाय कहा अन्य उपाय तुम्हारी जीतके लिये त्रिलोक में नहीं है ॥ ३५ ॥ तदनन्तर समस्त सुर समूहों

समेत व विनयसे नीचे झुके खड़ेहुये इन्द्रने उसी प्रयोजनको शिवजीसे कहा ॥३६॥ कि हे वृषध्वज ! पुत्र पैदा होनेके लिये यत्न करो जिससे देवताओंकी सेनाके स्वामित्वमें उसको योजित करूं॥ ३७ ॥ व तुम्हारी प्रसन्नतासे युद्धमें तारक समेत समस्त दैत्योंको मारकर मैं विजयको प्राप्त होऊं॥ ३८ ॥ अन्यथा दैत्यों के साथ युद्धमें मेरी जीत न होगी क्योंकि बडी बुद्धिवाले बृहस्पतिजीने भलीभांति जानकर मुझसे यह कहाहै ॥३९॥ इसके अनन्तर शङ्करजी उच्च प्रकारसे हँसकर सुरेशसे बोले कि हे इन्द्र ! मैं निस्सन्देह तुम्हारे वचनको शीघ्रही करूंगा॥ ४० ॥ व दैत्योंके दर्प (गर्व)को नाशनेवाले पुत्रको उत्पन्नकरूंगा जिसको तुम सेनापति करके सदैव जयको पावोगे ॥ ४१ ॥

ऐःसर्वैः समेतःपाकशासनः ॥ तमर्थंप्रोक्तवाञ्छम्भुं विनयावनतःस्थितः ॥ ३६ ॥ सुतस्यजननार्थायकुरुयत्नंवृषध्वज ॥ येनसेनाधिपत्येतं योजयामिदिवौकसाम् ॥ ३७ ॥ प्राप्नोम्यहंचसङ्ग्रामे विजयंत्वत्प्रसादतः ॥ निहत्यदानवान्सर्वान्स्तारकेणसमन्वितान् ॥ ३८ ॥ नान्यथाविजयोमेस्यात्सङ्ग्रामेदानवैःसह ॥ इतिमांप्राहदेवेज्यो ज्ञात्वासम्यङ्महामतिः ॥ ३९ ॥ अथोवाचविहस्योच्चैःशङ्करस्त्रिदशेश्वरम् ॥ करिष्यामिवचःक्षिप्रं तवशक्रनसंशयः ॥ ४० ॥ पुत्रमुत्पादयिष्यामि दैत्यदर्पविनाशकम् ॥ यंत्वंसेनापतिंकृत्वा जयंप्राप्स्यसिसर्वदा ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वामहादेवो गत्वाकैलासपर्वतम् ॥ हावैर्भावैस्समोपेतैर्हास्यैरन्यैस्तदात्मिकैः ॥ ४२ ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं दिव्यंचैवनिमेषवत् ॥ अथदेवगणाःसर्वे भयसन्त्रस्तमानसाः ॥ ४३ ॥ चक्रुर्मन्त्रंतदर्थंहितारकेणप्रपीडिताः ॥ सहस्रंवत्सराणान्तुरतासक्तस्यशूलिनः ॥ ४४ ॥ अतिक्रान्तंनदेवानां तेनकृत्यंविनिर्मितम् ॥ तस्माद्गच्छामहेतत्रयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ४५ ॥ सन्तिष्ठतेसमंगौर्य्या कैला

ऐसा कहकर महादेवजीने कैलास पर्वतपर जाकर रमणवाले अन्य हास्यों से संयुत हावभाव से देवों के हजार वर्षतक क्षणभर के तुल्य रमण किया इसके अनन्तर भयसे डरेहुये मनवाले समस्त सुरसमूहों ने तारकासुर से अतिपीड़ित होकर सलाह किया कि रमणमें लगेहुये त्रिशूलधारी शिवजीको हजार वर्ष बीत गये ॥ ४२ । ४३ । ४४ ॥ उन शिवजीने देवतोंके कार्य्य को न किया इसलिये उस कैलासपर्वतपर चलैं जहांपर एकान्त में पार्वती समेत महेश्वर देवजी टिके हैं

तदनन्तर तारक शत्रुसे उपजी हुई पीडाको प्राप्त होतेहुये इन्द्र समेत सब देवता वहींपर भलीभांति गये इसके अनन्तर कैलाश पर्वतपर पहुँचकर जबतक शिवजी
के समीप जावैं ॥ ४५ । ४६ । ४७ ॥ तबतक नन्दीश्वर ने रोकदिया कि इसके आगे नहींजाने योग्य है क्योंकि भगवान् शिवजी पार्वती समेत एकान्त में भलीभांति
स्थित हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये हमारे भी जाने योग्य नहीं है तबतक न जाइये तदनन्तर उन समस्त देवताओंने वहांपर पवन देवको पठाया ॥ ४९ ॥ कि महादेवजी क्या
करते हैं यह शीघ्रही जानिये इसके अनन्तर पवन वहां गये जहांपर पार्वती समेत रमण करने में परायण व परम आनन्द में प्राप्त भगवान् सदाशिवजी बैठेथे तद-

सेविजनेस्थितः ॥ ततस्तत्रैवसञ्जग्मुः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ४६ ॥ उद्वहन्तःपरामार्तिं तारकारिसमुद्भवाम् ॥ अथकैला
समासाद्ययावद्यान्तिभवान्तिकम् ॥ ४७ ॥ निषिद्धानन्दिनातावन्नगन्तव्यमतःपरम् ॥ रहस्येभगवान्सार्द्धं पार्वत्यास
मवास्थितः ॥ ४८ ॥ अस्माकमपिनोगम्यं तस्मात्तावन्नगम्यताम् ॥ ततस्तैर्विबुधैःसर्वैः प्रेषितस्तत्रचानिलः ॥ ४९ ॥
किङ्करोतिमहादेवः शीघ्रंविज्ञायतामिति ॥ अथवायुर्गतस्तत्र यत्रास्तेभगवाञ्छिवः ॥ ५० ॥ गौर्य्यासहरतासक्तआ
नन्दं परमंगतः ॥ ततोव्रीडासमोपेतस्तत्क्षणादेवचोत्थितः ॥ ५१ ॥ भावसक्तांप्रियांत्यक्त्वा त्वंमोत्तिष्ठेतिवादिनी
म् ॥ अब्रवीदथतंवायुं विनयावनतांस्थितम् ॥ ५२ ॥ किमर्थंत्वमिहायातः कच्चित्क्षेमंदिवौकसाम् ॥ ५३ ॥वायुरुवाच॥
एतेशक्रादयोदेवा नन्दिनाविनिवारिताः॥ तारकेणहतोत्साहास्तिष्ठन्तिगिरिरोधसि ॥ ५४ ॥ तस्मादेतान्समाभाष्यस
माश्वास्यचसादरम् ॥ प्रेषयस्वद्रुतंतत्र यत्रतेदानवाःस्थिताः ॥ ५५ ॥ अथतानाह्वयामास तत्क्षणात्त्रिपुरान्तकः ॥

नन्तर तुम मत उठो यह कहती हुई व भाव में तत्पर प्यारी को छोड़कर लज्जा संयुत होतेहुये शिवजी उसीहीं क्षण उठखड़े भये इसके अनन्तर विनय से झुके हुये,
स्थित पवनदेवसे बोले ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ कि तुम किसलिये यहांआयेहो क्या देवताओं का कल्याण है ? ॥ ५३ ॥ वायु बोले कि तारकासुर से हतउत्साहवाले व
नन्दीश्वर से रोकेहुये ये इन्द्रादि देवता पर्वतके किनारेपर टिकेहैं ॥ ५४ ॥ इसलिये इनसे सम्भाषण कर व आदर समेत भलीभांति आश्वासनकर शीघ्रही वहां पठा-

हुये जहांपर वे दैत्य टिकेहैं ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर त्रिपुर के विनाशी उन शिवजीने उसीक्षण उन देवों को बुलाया व विषाद संयुत मुखवाले तथा हाथ जोड़ेखड़े हुये उनसे यह कहा ॥ ५६ ॥ शिव भगवान् बोले कि तुमलोगों के लिये मैंने पुत्रकेलिये जो प्रारम्भ किया उसको आज अपने स्थान से वीर्य्यके चलने पर वायु ने व्यर्थ करदिया ॥ ५७ ॥ व लिङ्गके बीचमें प्राप्तहुये इस वीर्य्यको मैंने धैर्य्य से रोकाहै वह समस्त सफल होकर टिकाहै निवेदन करिये कि कहां धरूं ॥५८॥ कि जिससे दैत्यों का विनाशकारक उत्तम पुत्र उपजै व संग्राम में शत्रुओं से दुर्धर्ष होकर तुमलोगोंका सेनापति होवै ॥ ५९ ॥ कल्पाग्नि के समान इस सनातन वीर्य्यको

सप्राहचविषण्णास्यान्कृताञ्जलिपुटान्स्थितान् ॥ ५६ ॥ भगवानुवाच ॥ युष्मत्कृतेसमारम्भः पुत्रार्थंयोमयाकृतः ॥ स्वस्थानाच्चलितेशुक्रेकृतोमोघोद्यवायुना ॥ ५७ ॥ एतद्वीर्य्यंमयाधैर्य्यात्स्तम्भितंलिङ्गमध्यगम् ॥ अमोघंतिष्ठतेसर्वं क्व दधामिनिवेद्यताम् ॥ ५८ ॥ येनसञ्जायतेपुत्रो दानवान्तकरःपरः ॥ सेनानाथश्चयुष्माकं दुर्धरःसमरेपरैः ॥ ५९ ॥ एतत्कल्पाग्निसङ्काशं धर्तुंशक्नोतिनापरः ॥ विनावैश्वानरंतस्माद्दधात्वेषसनातनम् ॥ ६० ॥ येनतत्रप्रमुञ्चामिसुतायविजयायच ॥ एतद्वीर्य्यंमहातीव्रं द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ ६१ ॥ अथप्राहुःसुराःसर्वे वह्निंसंश्लाघ्यसादराः ॥ त्वंधारयाग्नेवक्त्रान्तेवीर्य्यमेतद्भवोद्भवम् ॥ ६२ ॥ ततःप्रसारयामासस्वंवक्त्रंपावकोद्रुतम् ॥ कुर्वञ्छक्रसमादेशमविकल्पेनचेतसा ॥ ६३ ॥ शङ्करोप्यक्षिपत्तत्रकामबाणप्रपीडितः ॥ गौरींभगवतींध्यायन्नानन्दंपरमंगतः ॥ ६४ ॥ पावकोपिभृश

अग्निके विना दूसरा धारनेके लिये समर्थ नहीं है इसलिये ये अग्निदेवजी धारणकरैं ॥ ६० ॥ जिससे बारह सूर्य्यों के समान देदीप्यमान व महातीव्र इस वीर्य्य को पुत्रके लिये व जीतके लिये उस अग्निमें छोड़दूं ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर आदर समेत समस्त देवताओंने प्रशंसाकर अग्नि देवसे कहा कि हे अग्ने ! सदाशिवजी से उपजेहुये इस वीर्य्यको तुम मुखमध्यमें धारण करो ॥ ६२ ॥ तदनन्तर भ्रान्तिरहित चित्तसे इन्द्रकी आज्ञाको करतेहुये अग्निने शीघ्रही अपने मुखको फैलाया ॥ ६३ ॥ व पार्वती भगवती का ध्यान करतेहुये परमआनन्दमें प्राप्त व कामदेवके बाणसे बहुतही पीडित सदाशिवनेभी उस मुखमें फेंक दिया ॥ ६४ ॥ कल्पाग्निके

समान उस वीर्य्य से बहुतहीं जलतेहुये अग्निदेवने भी भूमि में बड़े विस्तारवाले शरस्तम्ब (रामसरसमूह) में प्रक्षेप करदिया ॥ ६५ ॥ इसी अवसर में इधरउधर घूमतीहुई वे सप्तर्षियों की स्त्रियां व शुभदायक छः कृत्तिकायें छठितिथि में प्राप्तहुई ॥ ६६ ॥ उनको इन्द्रजीने आपही दिखलाया कि तीन नयनोंवाले सदाशिवजीका यह वीर्य्य बडे उपाय से परिपालन करनेके योग्यहै ॥ ६७ ॥ इस वीर्य्यमें बारह सूर्य्योंके समान तेजस्वी पुत्रहोवैगा वह मुख्यकर तुमसबोंकीभी पुत्रताको प्राप्तहोगा ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांस्वामिकार्त्तिकेयोत्पत्त्युपाख्यानेसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

न्तेनकल्पाग्निसदृशेनच॥दह्यमानोक्षिपद्भूमौशरस्तम्बेसुविस्तरे ॥ ६५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताभ्रममाणाइतस्ततः॥ भार्य्याःसप्तमुनीनान्ताः षष्ठ्यांषट्कृत्तिकाःशुभाः ॥ ६६ ॥ तासांनिदर्शयामासस्वयमेवशतक्रतुः ॥ एतद्बीजंत्रिनेत्रस्य परिपाल्यंप्रयत्नतः ॥ ६७ ॥ अत्रसम्पत्स्यतेपुत्रोद्वादशार्कसमप्रभः ॥ भवतीनामपिप्रायःपुत्रत्वंसप्रयास्यति ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेकुमारोत्पत्त्युपाख्यानेसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

सूतउवाच ॥ तास्तथेतिप्रतिज्ञायचक्रुस्तच्छक्रशासनम्॥सूतिकागृहधर्मेयास्तच्चक्रुस्तस्यसर्वशः॥१॥अथान्यदिवसे बालो द्वादशार्कसमद्युतिः ॥ संजज्ञेतेनवीर्येण द्विभुजैकमुखःशुभः॥२॥अथासौजातमात्रस्तुप्ररुरोदसुदुःखितः॥तच्छ्रुत्वा रुदितंसर्वास्तत्समीपमुपागताः ॥ ३ ॥ महासेनोपिसंवीक्ष्यमातॄस्ताःसमुपागताः ॥ सोत्कण्ठंषण्मुखोजातो द्वादशा

दो० । इकहत्तरि अध्याय में वरणत कथा सभक्ति । स्कन्द यथा तारकहिं हनि थप्यो अचल पै शक्ति ॥ सूतजी बोले कि उन कृत्तिकाओंने वैसाही करैंगी यह प्रतिज्ञाकर उस इन्द्रकी आज्ञाको किया व सूतिकागृह (सँवरि) के घर में जो कर्म होते हैं उनको उन महासेनके लिये सम्पूर्णतासे किया॥ १ ॥ इसके अनन्तर अन्यदिन में उस वीर्य्यसे बारह सूर्य्योंके समान दीप्तिवाला व एक मुख तथा दो भुजाओंवाला शुभदायक पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर इसने पैदा होतेही बहुत दुःखित होकर रोदन किया उस रोदनको सुनकर वे समस्त स्त्रियां उसके समीप आई ॥ ३ ॥ उन आई हुई माताओं को भलीभांति देखकर स्वामिकार्त्तिकेय भी उत्कंठा

समेत छह मुखोंवाले व बारह नेत्र और भुजाओंवाले होगये ॥ ४ ॥ उन महासेनने पृथक्ता से एक २ माताके स्तनसे दूधको पिया व स्नेहपूर्वक दोनों भुजाओं से आलिङ्गन किया ॥ ५ ॥ इसी समय में इन्द्र समेत ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक समस्त देवता व अप्सरा तथा गन्धर्व लोग प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर उस स्थान में रोंक टोंक रहित बड़ाभारी उत्साह हुवा कि जिससे गाने, बजाने के शब्द से संसार भर परिपूर्ण होगया ॥ ७ ॥ वहांपर देवताओं की विलासिनी रम्भादिकों ने नृत्य किया व चित्राङ्गद इत्यादि जो मुख्य गन्धर्व थे उन्होंने गान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर समस्त देवताओं ने वीर्य्य को भूमि में गिरने के कारण आदर समेत उस बालक

क्षभुजस्तथा॥४॥ एकैकस्याःपृथक्त्वेन प्रपपौसपयःस्तनात् ॥ द्वाभ्यामालिङ्गयामासभुजाभ्यांस्नेहपूर्वकम्॥५॥एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥सर्वेदेवाःसहेन्द्रेणगन्धर्वाप्सरसस्तथा॥६॥महोत्सवोथसंजज्ञेतस्मिन्स्थानेनिरर्गलः॥ गीतवाद्यप्रणादेन येनविश्वंप्रपूरितम् ॥ ७ ॥ रम्भाद्याननृतुस्तत्र विलासिन्योदिवौकसाम् ॥ जगुश्चमुख्यागन्धर्वाश्चित्राङ्गदमुखाश्चये ॥ ८ ॥ ततस्तुदेवताःसर्वास्तस्यनामप्रचक्रिरे ॥ स्कन्दनाद्रेतसोभूमौ स्कन्दइत्येवसादरम् ॥ ९ ॥ अथतस्यकुमारस्य तदातत्राभिषेचनम् ॥ सेनापत्यंकृतंसाक्षाद्देवानांशम्भुनास्वयम् ॥ १० ॥ तस्यशक्तिःस्वयंदत्ता विधिनाद्भुतदर्शना ॥ अमोघाविजयार्थाय दैत्यपक्षक्षयायच ॥ ११ ॥ मयूरोवाहनार्थाय त्र्यम्बकेनसशीघ्रतः ॥ दिव्यास्त्राणिमहेन्द्रेण विष्णुनासुमहात्मना ॥ १२ ॥ ततोभीष्टानिशस्त्राणि देवैःसर्वैःपृथक्पृथक् ॥ तस्यदत्तानिसंतुष्टैस्तथामातृगणैरपि ॥ १३ ॥ ततस्तमग्रतःकृत्वा सेनानाथंसुरेश्वराः ॥ जग्मुःससैनिकास्तत्र तारकोयत्रसंस्थितः ॥ १४ ॥

का स्कन्द यही नाम किया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर उस समय वहांपर देवताओं के सेनापतिवाले अभिषेक को उस कुमारके साक्षात् सदाशिव जीने आपही किया ॥ १० ॥ व अद्भुतदर्शनवाली व सफला शक्तिको उस कुमार के विजयके लिये व दैत्यपक्षों के क्षयके लिये शिवजीने विधिसे आपही दिया ॥ ११ ॥ व तीन नेत्र वाले शिवजीने शीघ्रता समेत सवारी के लिये मयूर को दिया तथा बड़े भारी महात्मा महेन्द्र विष्णु जीने दिव्य अस्त्रों को दिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर अतिप्रसन्नहोते हुये सब देवताओं ने व मातृगणों नेभी पृथक् २ उन महासेन जीको प्रिय शस्त्रों को दिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उन स्वामिकार्त्तिकेय सेनापति को अगाड़ी कर सेना

॥ १४ ॥ प्रसन्नतासंयुत होताहुआ तारकभी आपही आयेहुये देवताओं को देखकर युद्ध करने के लिये
समेत समस्त सुरेश्वर वहांगये जहांपर तारक भलीभांति टिकाथा ॥ १४ ॥ प्रसन्नतासंयुत होताहुआ तारकभी आपही आयेहुये देवताओं को देखकर युद्ध करने के लिये
शीघ्रही सामने प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर मृत्युको लौटाकर क्रोध से अतिलाल लोचनोंवाले देवताओं का दैत्यों के साथ बड़ाभारी युद्धहुआ ॥ १६ ॥ इसके
अनन्तर महासेन जीने युद्धमें दूर टिकेहुये तारकको बुलाकर तदनन्तर उसकी मृत्यु के लिये उस शक्ति को छोडदिया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर यह विकराल शक्ति उस
दैत्यके हृदयको विदारण कर रुधिर से भरीहुई चमत्कार नगरके निकट गिरपड़ी ॥१८॥ और प्राणों से छूटाहुआ तारकासुर उसी क्षण नाश होगया तदनन्तर उसके

तारकोऽपिसमालोक्य देवान्स्वयमुपागतान् ॥ युद्धार्थेहर्षसंयुक्तः सम्मुखःसत्वरंययौ ॥ १५ ॥ ततोऽभूत्सुमहायुद्धं दे
वानांदानवैस्सह ॥ कोपसंरक्तनेत्राणां मृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ १६ ॥ अथस्कन्देनसंवीक्ष्य दूरस्थंतारकंरणे ॥ समा
हूयततोमुक्ता साशक्तिस्तस्यमृत्यवे ॥ १७ ॥ अथासौहृदयंभित्त्वा तस्यदैत्यस्यदारुणा ॥ चमत्कारपुरोपान्ते पतिता
रुधिरोक्षिता ॥ १८ ॥ तारकस्तुगतोनाशं मुक्तःप्राणैश्चतत्क्षणात् ॥ ततोदेवगणाःसर्वे संहृष्टास्तंमहाबलम् ॥ १९ ॥
स्तोत्रैर्बहुविधैःस्तुत्वा प्रोचुस्तस्मिन्हतेसति ॥ तूर्णंकृतामहासेन सहशक्रेणनिर्भयाः ॥ २० ॥ स्कन्दोपितांसमादाय श
क्तितत्रपुरोत्तमे ॥ स्थापयामासयेनैव रक्तशृङ्गोभवेद्दृढः ॥ २१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रक्तशृङ्गःकथंतेन निश्चलोपिदृढीकृ
तः ॥ कस्यवाक्येननोब्रूहि विस्तरेणमहामते ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ यदावैभूमिकम्पस्तु संप्रजातःसुदारुणः ॥ रक्तशृङ्गः
प्रचलितः स्वस्थानादतिवेगतः ॥ २३ ॥ तस्यदैत्यस्यपातेन यथान्येपर्वतोत्तमाः ॥ अथहर्म्याणिसर्वाणि चमत्कारपु

मरनेपर भलीभांति प्रसन्न होतेहुये समस्त सुरसमूहों ने उन बड़े बलवान् महासेनजीकी अनेक प्रकारसे स्तुतिकर कहा कि हे महासेन ! इन्द्र समेत हमसबों को आ-
पने शीघ्रही अभय करदिया ॥ १९ । २० ॥ स्वामिकार्त्तिकेय नेभी उस शक्ति को लेकर उस पुरोत्तम में स्थापन किया कि जिससे रक्तशृंग पुष्ट होजावै ॥ २१ ॥ ऋषि
लोग बोले कि हे महामते ! उन महासेनने किसके वचनसे व किसप्रकार अचलभी रक्तशृंग को दृढ़ किया है इसको हमलोगों से विस्तारसे कहिये ॥ २२ ॥ सूत
जी बोले कि उस दैत्य के गिरनेसे जब बड़ा दारुण भूमिकम्प हुआ तब जैसे अन्य पर्वतोत्तम चलतेथे वैसेही रक्तशृङ्ग अपने स्थानसे अतिवेगसे चला इसके अ-

नन्तर उस पर्वतके चलनेपर उस समय चमत्कारपुर में समस्त मन्दिर गिरपड़े व बहुतसे द्विजलोग दुःखित होतेहुये मृत्युको प्राप्त होगये वैसेही अन्य ब्राह्मणलोग मूर्च्छा से विकल होगये ॥ २३ । २४ । २५ ॥ तदनन्तर मरनेसे बचेहुये ब्राह्मण लोग क्रोधसंयुत होकर व स्वामिकार्त्तिकेय के समीप जाकर बोले कि हे पापी ! तुम्ह निर्बुद्धि ने यह क्या किया ॥ २६ ॥ कि जिससे पुत्र, पशु, बान्धवों समेत हम सब लोग नाशको प्राप्त होगये इसलिये दुःखसे दुःखित हम सब लोग शाप देवैंगे ॥ २७ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने सबलोगों के हितके लिये इस कल्याण को किया जिसलिये कि घोर दैत्य को मारा है यह अन्यथा नहीं है ॥ २८ ॥ इसलिये

रेतदा ॥ २४ ॥ शीर्णानिचलितेतास्मिन् पर्वतेऽव्यथिताद्विजाः ॥ प्रायशोनिधनंप्राप्तास्तथान्येमूर्च्छयार्दिताः ॥ २५ ॥ हतशेषास्ततोविप्रा गत्वास्कन्दंक्रुधान्विताः ॥ प्रोचुश्चकिमिदंपाप त्वयाकृतमबुद्धिना ॥ २६ ॥ नाशंनीतावयंसर्वे सपुत्र पशुबान्धवाः ॥ तस्माच्छापंप्रदास्यामो वयंदुःखेनदुःखिताः ॥ २७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ हितायसर्वलोकानां मयैतत्सम नुष्ठितम् ॥ यद्धतोदानवोरौद्रो नान्यथाद्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ प्रसादःक्रियतांतस्मान्मान्यामेब्राह्मणाःसदा ॥ मृ तानपिद्विजान्सर्वानहंतानमृताश्रयात् ॥ २९ ॥ पुनर्जीवितसंयुक्तान् करिष्यामिनसंशयः ॥ यथास्तेनिश्चलश्शैलः करिष्यामिस्वशक्तितः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वासमादाय ताञ्छक्तिंरुधिरोक्षिताम् ॥ चक्रेस्थानस्यतस्याशु रक्तशृङ्गस्यमू र्द्धनि ॥ ३१ ॥ ततःप्रोवाचसंहृष्टो देवतानांचतुष्टयम् ॥ आपद्बद्धांतथैवाग्र्यां माहित्थांचचमत्करीम् ॥ ३२ ॥ युष्माभिर्नि श्चलःकार्यो भूयोयंनगसत्तमः ॥ प्रलयेऽपियथास्थानाद्रक्तशृङ्गश्चलेन्नहि ॥ ३३ ॥ सदैवख्यातिमायातु मन्नाम्नापुर

प्रसन्नता कीजिये क्योंकि मुझको ब्राह्मण सदैव मानने के योग्य हैं इससे मैं सब मरेहुये उन ब्राह्मणों को अमृत के सेवन से फिर निस्सन्देह जीव से संयुत करूंगा व जिस प्रकार पर्वत अचल होकर टिकैगा अपनी शक्ति से वैसाही करूंगा ॥ २९ । ३० ॥ ऐसा कहकर स्वामिकार्त्तिकेय जीने रुधिर से भरीहुई उस शक्तिको लेकर शीघ्रही उस स्थान के रक्तशृङ्ग पर्वत के मस्तक पै धारण किया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अतिप्रसन्न होकर आपद्बद्धा व अग्रया व माहित्था तथा चमत्कारी नामक चार देवताओं से कहा ॥ ३२ ॥ कि तुमलोगों को इस रक्तशृङ्ग पर्वतोत्तम को वैसाही अचल करना चाहिये कि जिस प्रकार प्रलय मेभी स्थानही से न चलै ॥ ३३ ॥ और

सदैव उत्तम नगर मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै सब ब्राह्मण लोग सदैव तुमलोगों को पूजन देवैंगे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेय जीके वचन से प्रसन्न होतेहुये उन देवताओं ने हां यही कहकर चारों दिशाओं में उस पर्वतको शूलके अग्रभागों से बहुत पुष्ट करदिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर द्विजों की भक्ति में तत्पर महासेन नेभी अमृत को लेकर मरेहुये भी द्विजोत्तमों को जिलादिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर वहांपर बहुतही प्रसन्न होतेहुये उन ब्राह्मणोंने उन महासेन जीको उत्तम वरदान दिया और उन नेभी कहा कि यह पुरोत्तम मेरे नाम से सदैव प्रसिद्ध होवै यही मेरे हृदय में मनोरथ है ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! जैसे चमत्कार नगर हुआ है

मुत्तमम् ॥ युष्माकंब्राह्मणाःसर्वे पूजांदास्यन्तिसर्वदा॥३४॥बाढमित्येवताःप्रोच्य चतुर्दिक्षुततश्चतम् ॥ शूलाग्रैःसुदृढं चक्रुः स्कन्दवाक्येनहर्षिताः ॥ ३५ ॥ ततश्चामृतमादाय मृतानपिद्विजोत्तमान् ॥ स्कन्दोपिजीवयामास द्विजभक्तिपरायणः ॥ ३६ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्तत्र संहृष्टावरमुत्तमम् ॥ ददुस्तस्यसचप्राह मन्नाम्नैतत्पुरोत्तमम् ॥ सदैवख्यातिमायातु एतन्मेहृदिवाञ्छितम् ॥ ३७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ एतत्स्कन्दपुरन्नाम तवनाम्नाभविष्यति ॥ चमत्कारपुरंतद्वत् साम्प्रतंसुरसत्तम ॥ ३८ ॥ पूजांतवकरिष्यामः कृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ तथैवदेवतास्सर्वाश्चतस्रोयात्वयाधृताः ॥ ३९ ॥ सर्वाःसंपूजयिष्यामः सर्वकृत्येषुसादरम् ॥ एतांचतावकींशक्तिं सदासुरवरोत्तम ॥ ४० ॥ विशेषात्पूजयिष्यामः षष्ठ्यांश्रद्धासमन्विताः ॥ ४१ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसब्राह्मणैःप्रोक्तोमहासेनोमहाबलः ॥ स्थितस्तत्रैवतद्वाक्याज्ज्ञात्वाततत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या चैत्रषष्ठ्यांसुभावतः ॥ शुक्लायांतस्यसंतुष्टिं कुरुतेबर्हिवाहनः ॥ ४३ ॥ तस्यां

वैसेही इस समय तुम्हारे नाम से यह स्कन्दपुर होवैगा ॥ ३८ ॥ व उत्तम मन्दिर को रचकर हमलोग तुम्हारा पूजन करैंगे वैसेही जो समस्त चार देवताओं को तुमने धारण किया है ॥ ३९ ॥ हे सुरवरोत्तम ! उन सबको समस्त कार्य्यों मे आदर समेत पूजैंगे व श्रद्धासंयुत होतेहुये छठि तिथि में सदैव तुम्हारी इस शक्ति को विशेषता से पूजन करैंगे ॥ ४० । ४१ ॥ सूतजी बोले कि उन ब्राह्मणों से इस प्रकार कहेहुये महाबलवान् महासेन जी उस क्षेत्र को उत्तम जानकर उनके वाक्यसे वहींपर टिके गये॥४२॥चैत्र महीनेकी शुक्लपक्षवाली छठिमें जो पुरुष उत्तमभाव, भक्तिसे उन स्वामिकार्त्तिकेयजीको पूजताहै उसके सन्तोषको मयूरवाहन (महासेन)जी करते हैं॥४३॥

व भलीभांति श्रद्धासंयुत होताहुआ जो पुरुष पुष्पादिकों से पूजकर उस शक्ति में पृष्ठघर्षण करता है याने पीठको घिसता है ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह वर्ष पर्य्यन्त रोग से संयुत नहीं होताहै इस प्रकार उन बुद्धिमान् स्वामिकार्त्तिकेय जीने रक्तशृङ्ग की रक्षाके लिये व विशेषकर उस पुर के रक्षण के निमित्त वहांपर शक्ति को धारण किया है ॥ ४५ । ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशक्तिमाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोध्यायः ॥ ७१ ॥

दो० । हाटकेशके क्षेत्र में गे धृतराष्ट्र नृपाल । बहत्तरिवें अध्याय में कही सो कथा रसाल ॥ सूतजी बोले कि वहींपर धृतराष्ट्र भूपतिने व दुर्य्योधन ने लिंग को स्था-

शक्तौनरोयश्च कुर्य्यात्पृष्ठनिघर्षणम् ॥ पूजयित्वातुपुष्पाद्यैस्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ४४ ॥ सनस्याद्रोगसंयुक्तो यावत्संवत्सरंद्विजाः ॥ एवंतत्रधृताशक्तिस्तेनस्कन्देनधीमता ॥ ४५ ॥ रक्तशृङ्गस्यरक्षार्थं तत्पुरस्यविशेषतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेशक्तिमाहात्म्यन्नामैकसप्ततितमोध्यायः ॥ ७१ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्रैवस्थापितंलिङ्गं धृतराष्ट्रेणभूभुजा ॥ दुर्योधनेनचालोक्य सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मिन्कालेनरेन्द्रेण धृतराष्ट्रेणभूभुजा ॥ तत्रसंस्थापितंलिङ्गं वदत्वंरौमहर्षणे ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्भानुमती नाम बलभद्रसुतापुरा ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपौदार्य्यगुणान्विता ॥ ३ ॥ तांददावथपत्यर्थं धार्तराष्ट्रायधीमते ॥ दुर्योधनायसंमन्त्र्य विष्णुनासहयादवः ॥ ४ ॥ अथनागपुरात्सर्वेभीष्मद्रोणादयश्चये ॥ कौरवाःप्रस्थितास्तूर्णं पुरींद्वारवतींप्रति ॥ ५ ॥ तथापाण्डुसुताःपञ्च परिवारसमन्विताः ॥ सौभ्राजंमन्यमानास्ते दुर्योधनसमन्विताः ॥ ६ ॥ जग्मुर्द्वा

पित किया है उसको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे रोमहर्षण के पुत्र सूतजी ! धृतराष्ट्र नामक नरेश भूपति ने वहांपर किस समय लिङ्गको थापन कियाहै उसको तुम कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय रूप व उदारतादि गुणोंसे सम्पन्न व समस्त लक्षणोंसे संयुत भानुमती नामक बलभद्रकी कन्या हुई है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर यदुवंश में उत्पन्न बलभद्र जीने कृष्णासे सलाहकर उस कन्या को पतिके निमित्त धृतराष्ट्र के पुत्र बुद्धिमान् दुर्योधन के लिये देदिया ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर भीष्म द्रोणादिक जे समस्त कौरव थे उन्होंने शीघ्रही हस्तिनापुर से द्वारकापुरी के सामने प्रस्थान किया ॥ ५ ॥ व उत्तम भाईके

भावको मानतेहुये व परिवारसंयुत तथा दुर्य्योधन समेत व बड़ीभारी सेना से संयुक्त पांचों पाण्डुपुत्रों ने प्रसन्न होकर द्वारकापुरी को गमन किया इसके अनन्तर क्रमसे जातेहुये वे समस्त कौरव व पाण्डव ॥ ६ । ७ ॥ धन, धान्य से संयुत आनर्त देश में प्राप्तहुये जिस आनर्त देशमें हाटकेश्वरदेवजी का वह उत्तम क्षेत्रहै जोकि तीनों भुवन में प्रसिद्ध व समस्तपापहारी तथा पुण्यकारी है इसके अनन्तर शुद्ध मन या चित्तवाले व वृद्ध तथा कौरवों के पितामह भीष्म जीने हँसते हुये से पुत्रों समेत धृतराष्ट्र भूपाल से कहा कि हे वत्स ! पुरातन समय मैंने समस्त पापनाशक हाटकेश्वरदेवजीके इस अति उत्तम क्षेत्रको देखा है व स्त्रीहत्या से उपजेहुये पा-

रवतींहृष्टाःसैन्येनमहतान्विताः॥ अथक्रमेणगच्छन्तस्तेसर्वेकुरुपाण्डवाः ॥ ७ ॥ आनर्तविषयंप्राप्ता धनधान्यसमा कुलम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंयत्रतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥ हाटकेश्वरदेवस्य विख्यातंभुवनत्रये ॥ अथप्राहविशुद्धात्मा वृ द्धःकुरुपितामहः ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्रंमहीपालं सपुत्रंप्रहसन्निव॥एतद्वत्सपुरादृष्टं मयाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ १० ॥ हाटकेश्वरदेव स्य सर्वपातकनाशनम्॥अत्राहंचैवनिर्मुक्तः स्त्रीहत्योद्भवपातकात् ॥ ११ ॥ तस्मादत्रैवराजेन्द्रतिष्ठामःपञ्चवासरान् ॥ येनसर्वाणिपश्यामस्तीर्थाण्यायतनानिच ॥ १२ ॥ यान्यत्रसन्तिपुण्यानि मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ अथतद्वचना द्राजाधृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥१३॥ शतसंख्यैःसुतैःसार्द्धंकौतूहलसमन्वितः ॥ जगामसत्वरंतत्र यत्रतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ १४ ॥ तपस्विगणसंकीर्णं युक्तंचैवाश्रमैःशुभैः ॥ ब्रह्मघोषेणमहता नादितंसर्वतोदिशम् ॥ १५ ॥ वह्निहोमोत्थधूमेन कलुषीकृतपादपम् ॥ क्रीडामृगैश्चसंकीर्णं धावद्भिर्बहुभिस्सदा ॥ १६ ॥ ततोनिवार्य्यसैन्यंस्वमुपद्रवभयान्नृपः ॥

तक से मैं यहींपर छूटाहूं ॥ ८ । ९ । १० । ११ ॥ इसलियेहे नृपेन्द्र ! हमलोग पांच दिन यहींपर टिकैं जिससे यहांपर शुद्धमन या चित्तवाले मुनियोंके जो पुण्यदायक मन्दिर व तीर्थ हैं उन सबों को देखैं इसके अनन्तर उन भीष्म जी के वचन से कौतुकसंयुत अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र राजा सौ संख्यावाले पुत्रों समेत शीघ्रही वहां गये जहांपर वह उत्तम क्षेत्रथा ॥ १२ । १३ । १४ ॥ जो क्षेत्र कि तपस्वियोंके समूहों से व्याप्त व शुभदायक आश्रमों से संयुत तथा सब दिशाओंमें बड़ेभारी वेदके शब्दसे शब्दायमानथा ॥ १५ ॥ व अग्नि में होमसे उठेहुये धुयें से मलिन कियेहुये वृक्षोंवाला व दौड़ते हुये बहुत से क्रीड़ामृगोंसे सदैव व्याप्तथा ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन

धृतराष्ट्र नृपति ने उपद्रव के डरसे अपनी सेना को मनाकर पांचों पाण्डवों व सौ संख्यक पुत्रों समेत ॥१७॥ व भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक व वीर द्रोणाचार्य्य तथा उस के पुत्र कृपाचार्य्य से संयुत होकर ॥ १८ ॥ व सौबल, कर्ण तथा परिवार को त्यागे हुये अन्य भूपतियों समेत उन धृतराष्ट्रने उस क्षेत्रमें भ्रमण किया ॥ १९ ॥ वहांपर टिकेहुये उन समस्त महात्मा क्षत्रियों ने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उन समस्त धर्म्मकार्य्यों को किया ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्य मनुष्यों ने माहात्म्य को सुन सुनकर व अतिपुण्यदायक तीर्थों में घूम घूम कर विधिसे स्नान किया व ब्राह्मणोंको उत्तम दानों को दिया तथा अपर नरोंने दीनों व कृपणों तथा विशेषकर तपस्वियों

पञ्चभिःपाण्डवैःसार्द्धं शतसंख्यैस्तथासुतैः ॥ १७ ॥ भीष्मेणसोमदत्तेन बाह्लीकेनसमन्वितः ॥ द्रोणाचार्य्येणवीरेण त
त्पुत्रेणकृपेणच ॥ १८ ॥ सौबलेनचकर्णेन तथान्यैरपिपार्थिवैः ॥ परिवारपरित्यक्तैस्तस्मिन्क्षेत्रेचचारसः ॥ १९ ॥
तेपिसर्वेमहात्मानः क्षत्रियास्तत्रसंस्थिताः ॥ चक्रुर्द्धर्मक्रियाःसर्वाः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २० ॥ स्नानंचक्रुर्विधानेन ती
र्थेषुद्विजसत्तमाः॥भ्रान्त्वाभ्रान्त्वासुपुण्येषु श्रुत्वाश्रुत्वाद्विजन्मनाम् ॥२१॥ दानानिचविशिष्टानि ददुरिष्टानिचापराः॥
दीनेभ्यःकृपणेभ्यश्च तपस्विभ्योविशेषतः ॥ २२ ॥ चक्रुःश्राद्धक्रियाश्चान्ये पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ पितॄणांतर्पणं
चान्ये तिलमिश्रजलेनच ॥ २३ ॥ अन्येहोमक्रियाभूपाजपमन्येनिरर्गलम् ॥ स्वाध्यायमपरेशान्ताः सम्यक्श्रद्धास
मन्विताः ॥ २४ ॥ देवतायतनान्यन्ये माहात्म्यसहितानिच ॥ श्रुत्वापूर्वन्नृपाणांचपूजयन्तिविशेषतः ॥ २५ ॥ बलिदा

के लिये प्रिय पदार्थों को दानदिया ॥ २१ । २२ ॥ व अन्य मनुजों ने पितरोंको उद्देशकर भक्ति से श्राद्ध कर्मों को किया तथा अपर नरोंने तिल से मिलेहुये जलसे पितरों का तर्पण किया ॥ २३ ॥ व अन्य भूपों ने हवनकर्मको किया व अपर नरोंने अप्रतिबन्धक जपको किया तथा और शान्तचित्तवाले मनुष्यों ने भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर वेदपाठ किया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्य भूपोंने माहात्म्य सहित पहलेवाले नृपों की कथाओं को सुनकर बलिदानों से, वस्त्रों से व चन्दन, पुष्प, उपले-पनों से व बढ़ोरने तथा ध्वजदानों से व उत्तम आइनों व सबओर से फूलोंकी मालाओं से व भूषणों से विशेषकर देवमन्दिरों का पूजन किया और उन नृपोंने वहांपर

भक्तिसे गौ, वस्त्र, सुवर्ण, हाथी, घोड़े व रथोंके दानोंसे समस्त ब्राह्मणोंको कृतार्थ करदिया इस प्रकार नृपोत्तम लोग नहाकर व देवताओं तथा द्विजों को पूजकर ॥ २५ । २६ । २७ । २८ ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्र से संयुत होकर विस्मय से घिरेहुये वे सब उस क्षेत्रमें तीर्थों व देवमन्दिरों व ब्राह्मणों तथा प्रशंसित व्रत या कर्मोंवाले तपस्वियों को प्रशंसते हुये अपने सेनानिवास स्थान को चलेगये ॥ २९ । ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मण्डनैःपुष्पमालाभिः समन्ताद्धि तथाप्रेक्षणकैःशुभैः ॥ २६ ॥ मार्जनैर्ध्वजदानैश्च नैःसुवस्त्रैश्च गन्धपुष्पोपलेपनैः॥ कृतास्तैस्तत्रभक्तितः ॥ हस्त्यश्वरथदानैश्चगोभिर्वस्त्रैश्चकाञ्चनैः॥ २७॥ कृतार्थाब्राह्मणाःसर्वे एवंस्नात्वात जसत्तमाः॥ धृतराष्ट्रसमायुक्ता जग्मुःस्वशिबिरंततः ॥ शंसन्तोविस्मयाविष्टास्तीर्था थाभ्यर्च्य देवान्विप्रान्नृपोत्तमाः ॥ २८ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेद्विजांश्चैव तापसाञ्छंसितव्रतान् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहा न्यायतनानिच ॥ २९ ॥ टकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतेकौरवाःसर्वे पाण्डोःपुत्राश्चशालिनः ॥ तस्मात्स्थानात्ततोजग्मुर्यत्रद्वारवतीपुरी ॥ १ ॥ तत्रग त्वाविवाहन्तु चक्रुःसंहृष्टमानसाः ॥ दुर्योधनस्यभूपस्यभानुमत्यासमंतदा ॥ २ ॥ नानावादित्रघोषेण वेदध्वनियुतेन च ॥ गीतैर्मनोहरैःपाठैर्वन्दिनाञ्चसहस्रशः ॥ ३ ॥ एवंमहोत्सवोजज्ञे तत्रयावद्दिनाष्टकम्॥ यादवानांकुरूणांचमिलिता

दो० । दुर्य्योधन को ब्याह भो भानुमती के साथ । तिहतरिवेंअध्यायमहँ वर्णत सोई गाथ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर इस प्रकार वे समस्त सुशोभित कौरव और पाण्डु के पुत्र उस स्थानसे वहांगये जहांपर कि द्वारकापुरी है ॥ १ ॥ वहां जाकर उस समय प्रसन्नमनवाले कुरु पाण्डवों ने दुर्योधन भूपतिका भानुमती के साथ विवाह किया ॥ २ ॥ व उस द्वारकापुरी में इस प्रकार वेदध्वनि से संयुत अनेक भांति के बाजाओं के शब्द व मनोहर गीतों से व हज़ारों वन्दी जनोंके पाठोंसे

कौरवों यादवों के परस्पर मिलने का आठ दिनतक बड़ाभारी उत्सव हुआ ॥ ३ । ४ ॥ उस उत्सव में सूत, मागध, वन्दीलोग, चारण, द्विजेन्द्र व अन्य तार्किक भी कृतार्थ होगये ॥ ५ ॥ तदनन्तर नवम दिनप्राप्त होनेपर भीष्मादिक कौरव, पाण्डवोंने स्नेह समेत श्रीकृष्णजीसे यह कहा ॥ ६ ॥ कि हे पुण्डरीकाक्ष ! स्नेहरूप फँसरी में बँधेहुये हमलोग तुम्हारे व बलराम जीके आश्रय को किसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहते हैं ॥ ७ ॥ तिसपर भी हे माधव ! अपने नगरको अवश्य जाना चाहिये इस लिये बलभद्र समेत तुम हमलोगों को बिदाकरिये ॥ ८ ॥ विष्णुजी बोले कि यहांपर टिकेहुये तुमलोगों को तबतक न वर्ष व्यतीत हुआ न महीना, न पक्षही भया है तो

नांपरस्परम् ॥ ४ ॥ कृतार्थास्तत्रसंजाताः सूतमागधवन्दिनः ॥ चारणाब्राह्मणेन्द्राश्च तथाऽन्येपिचतार्किकाः ॥ ५ ॥ ततस्तुनवमेप्राप्ते दिवसेकुरुपाण्डवाः ॥ भीष्माद्याःपुण्डरीकाक्षमिदमूचुःससौहृदम् ॥ ६ ॥ नवयंपुण्डरीकाक्ष तव रामस्यचाश्रयम् ॥ कथंचित्त्यक्तुमिच्छामःस्नेहपाशनियन्त्रिताः ॥ ७ ॥ तथापिचप्रगन्तव्यं स्वपुरंप्रतिमाधव ॥ बलभद्रसमायुक्तस्तस्मान्नःकुरुमोक्षणम् ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नतावद्वत्सरोजातो नमासःपक्षएवच ॥ स्थितानामत्रयुष्माकंतत्किमौत्सुक्यमागतम् ॥ ९ ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठामःसहिताःकुरुपाण्डवाः ॥ यूयंवयंविनोदेनमृगयाक्षोद्भवेनच ॥ १० ॥ शस्त्रशिक्षाक्रियाभिश्च दमनोनचदन्तिनाम् ॥ तथाभिवाञ्छितैरन्यैःस्नेहोस्तियदिवोमयि ॥ ११ ॥ भीष्मउवाच ॥ उपपन्नमिदंविष्णो यत्त्वयाव्याहृतंवचः ॥ परंशृणुष्वमेवाक्यं यदर्थंह्युत्सुकावयम् ॥ १२ ॥ आनर्त्तविषयेस्माभिरागच्छद्भिस्तवान्तिकम् ॥ दृष्टमत्यद्भुतंक्षेत्रं हाटकेश्वरजंमहत् ॥ १३ ॥ तत्रलिङ्गानिदृष्टानि भूपतीनांमहात्मनाम् ॥

कैसे उत्कण्ठा आगई ॥ ९ ॥ इस लिये यदि तुमलोगो का मुझमें स्नेह है तो कौरवपाण्डव समेत हमलोग व तुम सब शिकार, पांसाके उपजे हुये खेलों से व शस्त्र सीखने के कार्य्यों से व हाथियों को दमन (शान्त) करने से तथा और अभिलाषोंसे समय व्यतीत करते हुये यहीं पर टिकें ॥ १० । ११ ॥ भीष्मजी बोले कि हे विष्णो ! तुमने जो वचन कहा है यह योग्य है परन्तु उस वाक्य को सुनिये जिस लिये हमलोग उत्कण्ठित हैं ॥ १२ ॥ कि तुम्हारे निकट आते हुये हमलोगों ने आनर्तदेश में बड़ेभारी व अतिअद्भुत हाटकेश्वरजी के क्षेत्र को देखा है ॥ १३ ॥ उस क्षेत्र में सूर्य्यवंश, व चन्द्रवंश में उपजे हुये महात्मा भूपतियों के व अन्य

महात्माओं के तथा विशेषकर देवताओं, दानवों व मुनियों के थापे हुये लिङ्गों को देखा है जो कि अनेकों प्रकार के मन्दिरोंवाले व सत्कारवाले व बडे तेजवाले हैं ॥ १४ । १५ ॥ इस लिये हे माधव ! मुख्य कौरवों को व पाण्डवों को वहां पर लिङ्ग थापने के लिये दृढबुद्धि उपजी है ॥ १६ ॥ वे हमलोग वहां शीघ्रही जाकर यथाशक्ति से व यथेच्छासे अपने २ लिङ्गों को पृथक् २ थापन करेंगे ॥ १७ ॥ हे अच्युत ! इसी कारण हमलोग शीघ्रही चले अन्यथा मोक्षके सैकडो सेभी तुम्हारे सङ्ग से न जाते ॥ १८ ॥ इसलिये हे विभो ! चित्तको दृढ़कर आज आज्ञा दीजिये फिर भी तुम्हारे दर्शनकी लालसावाले हमलोग यहां आवैंगे ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि अतिपुण्यदायक व पापनाशक उस क्षेत्र को मैं जानताहूं क्योंकि तपस्वियों व अन्य तीर्थयात्रियों ने मुझसे नित्यही कहा है ॥ २० ॥ इसलिये तुम सबों के समेत हमलोग क्षेत्रदर्शन की इच्छा से व लिङ्ग थापन के लिये वहांपर भलीभांति चलेंगे ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर समस्त कौरव व पाण्डु के पुत्र और वहांपर अन्य जे भूप थे वे भी परमआनन्दको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ व मिलेहुये उन समस्त कौरव पाण्डवों ने हाथी घोड़ों के मर्दने

सत्काराणिसुतेजांसि नानाप्रासादवन्तिच ॥ १५ ॥ ततश्चकुरुमुख्यानांपाण्डवानाञ्चमाधव ॥ लिङ्गसंस्थापनार्थाय तत्रजातामतिर्दृढा ॥ १६ ॥ तेवयंतत्रगत्वाशु यथाशक्त्यायथेच्छया ॥ लिङ्गानि स्थापयिष्यामःस्वानिस्वानिपृथक्पृथक् ॥ १७ ॥ एतस्मात्कारणात्तूर्णं चलितावयमच्युत ॥ नवयंतवसङ्गस्यान्यथामोक्षशतैरपि ॥ १८ ॥ तस्मादाज्ञापयस्वाद्य कृत्वाचित्तंदृढंविभो ॥ भूयोप्यत्रागमिष्यामस्तवदर्शनलालसाः ॥ १९ ॥ भगवानुवाच ॥ अहंजानामितत्क्षेत्रं सुपुण्यंपापनाशनम् ॥ तापसैःकीर्तितंनित्यं ममान्यैस्तीर्थयात्रिकैः ॥ २० ॥ तस्मात्तत्रसमेष्यामो युष्माभिस्सहितावयम् ॥ लिङ्गसंस्थापनार्थाय क्षेत्रदर्शनवाञ्छया ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाकौरवास्सर्वे परंहर्षमुपागताः ॥ तथापाण्डुसुताश्चैव येचान्येतत्रपार्थिवाः ॥ २२ ॥ तेतुसंप्रस्थिताःसर्वेमिलिताःकुरुपाण्डवाः ॥ गजवाजिविमर्देन कम्पयन्तोवसुन्धराम् ॥ २३ ॥

सूर्यचन्द्रान्वयोत्थानामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ देवानांदानवानाञ्च मुनीनाञ्चविशेषतः ॥

से पृथ्वी को कँपातेहुये भलीभांति प्रस्थान किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उस क्षेत्र में पहुँचकर व दूरमें टिककर कौरव तथा मुख्य यादव चमत्कारपुरको गये ॥ २४ ॥ उस क्षेत्र में विनयसंयुत उन्होंने समस्त द्विजों को बुलाकर व विचित्र भूषण, वसनों को देकर कहा ॥ २५ ॥ कि इस क्षेत्र में हम सबलोग भिन्नता से व अपनी शक्ति से मुख्य मन्दिरों के निर्माण करने व लिङ्गस्थापन कर्मको चाहते हैं ॥ २६ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता व दयाकर शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि जिससे कार्य्य वर्तमान होवै ॥ २७ ॥ व तुम्हीं लोग सब कार्य्यों में हवनसम्पादक होगे बाहरका दूसरा द्विज यद्यपि बृहस्पति भी होवै तथापि न होगा ॥ २८ ॥ क्योंकि उस

अथतत्क्षेत्रमासाद्य दूरेकृत्वानिवेशनम् ॥ कौरवायादवामुख्याश्चमत्कारपुरंगताः ॥ २४ ॥ तत्रसर्वान्समाहूय ब्राह्मणान्विनयान्विताः ॥ प्रोचुर्दत्त्वाविचित्राणि भूषणाच्छादनानिच ॥२५॥ वयंसर्वेत्रवाञ्छामो लिङ्गसंस्थापनक्रियाम्॥ कर्त्तुंप्रासादमुख्यानां पृथक्त्वेनस्वशक्तितः ॥ २६ ॥ तस्मात्कृत्वाप्रसादंनोदयांचद्विजसत्तमाः ॥ आज्ञापयतशीघ्रंहियेनकर्मप्रवर्त्तते ॥ २७ ॥ भविष्यथतथायूयं होतारःसर्वकर्मसु ॥ नचान्योब्राह्मणोबाह्यो यद्यपिस्याद्बृहस्पतिः ॥ २८ ॥ यतोस्माभिःश्रुतावार्ता कीर्त्यमानापुरातनी ॥ विष्णुनातस्यराजर्षेः प्रेतश्राद्धसमुद्भवा ॥ २९ ॥ यथातेनकृतंश्राद्धं पितुःप्रेतस्ययत्नतः ॥ ब्राह्मणानांपुरोन्येषां यथोक्तानामपिद्विजाः ॥ ३० ॥ यथोक्तविधिनातीर्थे नागानांपञ्चमीदिने ॥ श्रावणेमासिनोमुक्तः पितातस्यतथापिसः ॥ ३१ ॥ प्रेतत्वात्सर्पदोषेण संजातोद्विजसत्तमाः ॥ देवशर्मपुरोयावत्तत्कृतंश्राद्धमादरात्॥३२॥तावत्पिताविनिर्मुक्तः प्रेतत्वाद्दारुणाद्द्विजाः॥यदत्रक्रियतेकिञ्चित्कर्मधर्मंद्विजोत्तमाः॥३३॥

राजर्षिके प्रेतभाव से उपजी व विष्णुजी से कहीहुई पुरानी वार्ता को हमलोगोंने सुनाहै ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसप्रकार श्रावण महीने में नागपञ्चमीके दिन उस ने यथोक्त विधिसे उस तीर्थ में यथोक्त भी अन्य ब्राह्मणोंके अगाड़ी प्रेत हुये पिता के श्राद्धको यत्नसे किया है तथापि सर्पदोषसे उपजा हुवा उसका वह पिता प्रेत भावसे न छूटा हे द्विजोत्तमो ! जब तक देवशर्माके अगाडी आदर से उस श्राद्धको किया ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ तबतक हे ब्राह्मणो ! दारुण प्रेतभावसे पिता छूटगया

हे द्विजोत्तमो ! इस क्षेत्रमें जो कुछ धर्मकर्म कियाजाता है वह बाह्य याने बाहर के ब्राह्मण से करायाहुआ व्यर्थ होजाता है इसको हमलोग प्रकट जानते हैं उसी से दीनतामें प्राप्तहुये हम विशेषकर प्रार्थना करते हैं ॥ ३३ । ३४ ॥ इससे प्रसन्नता करिये आज्ञादीजिये विलम्ब मत करिये ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर उन ब्राह्मणों ने उसके लिये आपसमें सम्मति किया कि क्याकरने पर पुण्य होगा ॥ ३६ ॥ कितेक बोले कि इनके मध्यमें एकको भी मन्दिर के लिये भूमि को न देवैंगे इसलिये शीघ्रही चलेजावैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि पांच कोसके प्रमाण से यह क्षेत्र व्यवस्थित है वह पूर्व देवतोंके भी मन्दिरों से भलीभांति घिरा है ॥ ३८ ॥

तद्बाह्यं च भवेद्व्यर्थं एतद्विद्मःस्फुटंवयम् ॥ प्रार्थयामोविशेषेणतेनदैन्यंसमागताः ॥ ३४ ॥ प्रसादःक्रियतांतेन चाज्ञांयच्छतमाचिरम् ॥ ३५ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाब्राह्मणास्तेपरस्परम् ॥ मन्त्रंचक्रुस्तदर्थंहिकिंकृतेसुकृतंभवेत् ॥ ३६ ॥ एकेप्रोचुर्नदास्यामः प्रासादार्थंवसुन्धराम् ॥ एतेषामपिचैकस्य तस्माद्गच्छन्तुसत्वरम् ॥ ३७ ॥ पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्षेत्रमेतद्व्यवस्थितम् ॥ पूर्वेषामपिदेवानांप्रासादैस्तत्समावृतम् ॥ ३८ ॥ अन्येप्रोचुर्धनोन्मत्तायूयं च सुखमाश्रिताः ॥ दारिद्र्यार्त्तिं न जानीथ ब्रूततेनभृशंवचः ॥ ३९ ॥ तस्माद्वयंप्रदास्यामएतेषां हि वसुन्धराम् ॥ अर्थसिद्धिर्भवेद्येन भूषास्थानस्यजायते ॥ ४० ॥ तथान्येमध्यमाप्रोचुर्यत्रसाक्षाज्जनार्दनः ॥ स्वयंप्रार्थयतेभूमिंतत्कस्मान्नदीयते ॥ ४१ ॥ तस्माद्येत्रसमायाताःकुरुपाण्डवयादवाः ॥ प्राधान्येनप्रकुर्वन्तु प्रासादांस्तेनचापरे ॥ ४२ ॥ याचतेयत्रगाङ्गेयस्स्वयमेवतथापरः ॥ धृतराष्ट्रःसपुत्रश्च पाण्डवाश्चमहाबलाः ॥ ४३ ॥ लिङ्गसंस्थापनार्थाय निषेधस्त

व धनसे उन्मत्त अन्य नर बोले कि तुमलोग सुखके आश्रितहो और दरिद्रताके दुःखको नहीं जानते हो उसी से बहुवचनको कहतेहो ॥ ३९ ॥ इसलिये हमलोग इनको अवश्य भूमिको देवैंगे जिससे द्रव्यकी सिद्धि होगी व स्थानकी शोभा होगी ॥ ४० ॥ वैसेही अन्य मध्यम मनुष्य बोले कि जहांपर साक्षात् जनार्दनजी आपही भूमिको मांगते हैं तो किसलिये न दीजाय ॥ ४१ ॥ इसलिये यहांपर जो कौरव, पाण्डव व यादव आये हैं वे मुख्यतासे मन्दिरों का निर्माण करैं और अपर नर नहीं ॥ ४२ ॥ जहांपर गङ्गाजीके पुत्र भीष्मजी आपही याचते हैं और अपर पुत्रों समेत धृतराष्ट्र व बड़े बलवान् पाण्डव लिङ्ग थापने के लिये याचना करतेहैं

वहांपर मनाकरना योग्य नहीं है उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर सम्पन्न द्विजोत्तमों से व निर्धनी तथा द्रव्यवानों से भी व अभिलाषी तथा अनभिलाषियोंसे भी उन सब ब्राह्मणों ने सम्मति का निश्चयकर व मिलकर कुरूत्तमों व यादवों तथा पाण्डवों से कहा ॥ ४३ । ४४ । ४५ । ४६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि समस्त भी भूपों के मन्दिरों से सब ओर यह अतिछोटा क्षेत्र व्याप्त है इसलिये इस समय हमलोग क्याकहैं ॥ ४७ ॥ इसलिये यथा श्रेष्ठ व यथा ज्येष्ठ प्रधानता से टिकेहुये आपलोग अपनी इच्छासे इसी क्षेत्रही के सामने भिन्नतासे अतिमनोहर मन्दिरों का निर्माण करिये इसके अनन्तर हर्ष से संयुक्त होतेहुये धृतराष्ट्र इत्या-

त्रनार्हति ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा प्रतिपन्नाद्विजोत्तमैः ॥ ४४ ॥ निर्धनैस्सधनैश्चापिसस्पृहैर्निःस्पृहैरपि ॥ ततःसमेत्यतेस वै ब्राह्मणाःकुरुसत्तमान् ॥ ४५ ॥ यादवान्पाण्डवान्प्रोचुःकृत्वावैमन्त्रनिश्चयम् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एतत्स्वल्प तरंक्षेत्रं सर्वेषामपिभूभुजाम् ॥ प्रासादैःसर्वतोव्याप्तंतत्किंब्रूमोधुनावयम् ॥ ४७ ॥ तद्भवन्तःप्रकुर्वन्तुप्राधान्येनयदृच्छ या ॥ क्षेत्रेत्रैवाभिमुख्येन प्रासादात्सुमनोहरान् ॥४८॥ यथाज्येष्ठंयथाश्रेष्ठं पृथक्त्वेनव्यवस्थिताः ॥ अथहर्षसमायुक्ता धृतराष्ट्रमुखाःक्रमात् ॥ ४९ ॥ प्राधान्येनयथाश्रेष्ठं चक्रुःप्रासादपद्धतिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेना गरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ धृतराष्ट्रेणभूपेन शतपुत्रान्वितेनच ॥ लिङ्गानांस्थापितंतत्र शतमेकोत्तरंद्विजाः ॥ १ ॥ तथाचपाण्ड वैःसर्वैः स्थापितंलिङ्गपञ्चकम् ॥ द्रौपद्याचाथकुन्त्याचगान्धार्याचयदृच्छया ॥ २ ॥ भानुमत्याचगौरीणांस्थापितं

दिकोंने मुख्यतासे व श्रेष्ठके क्रमसे प्रासादपद्धतिको किया ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिसप्ततितमोध्यायः ॥ ७३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चौहत्तरि अध्याय में वर्णत सोइ चरित्र । जिमिबहु लिङ्गन को थप्यो कुरु पाण्डवन समित्र ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! सौ पुत्रों समेत धृतराष्ट्र भूपति ने उस क्षेत्र में एकसौएक लिङ्गोंका स्थापन किया ॥ १ ॥ वैसेही समस्त पाण्डवों ने पांचलिंगोंको स्थापित किया इसके अनन्तर द्रौपदी, कुन्ती व गान्धारी व

भानुमती इन सबोंने अपनी इच्छासे चारपार्वतीकी मूर्तियों का स्थापन किया इसके अनन्तर विदुर, शल्य, युयुत्सु, कलिङ्ग बाह्लीक, सोमदत्त व पुत्र समेत कर्ण, शकुनी, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य व अश्वत्थामा इन सबोंने परमभक्तिसे वहांपर रुचिरमन्दिर में आश्रित हुयेएक २ उत्तम लिंगको पृथक् २ स्थापन किया ॥ २ । ३ । ४ । ५ ॥ वैसेही उसक्षेत्र में सर्वशक्तिमान् विष्णुजीने बडेऊंचे शिखरवाले मान्दिर को निर्माणकर लिंगको स्थापित कियाहै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर सात्वत साम्ब व बुद्धिमान् बलभद्रजी व अनिरुद्ध, तथा अन्यमुख्य यादवों ने लिंगों की स्थापना की ॥ ७ ॥ व श्रद्धासे संयुत उन चारुदेष्णआदिक रुक्मिणीजीके दश

चचतुष्टयम् ॥ विदुरेणाथशल्येन कलिङ्गेनयुयुत्सुना ॥ ३ ॥ बाह्लीकसोमदत्ताभ्यां कर्णेनाथससूनुना ॥ तथाशकुनिना तत्रद्रोणेनचकृपेणच ॥ ४ ॥ अश्वत्थाम्नापृथक्त्वेन लिङ्गमेकैकमुत्तमम् ॥ स्थापितंपरयाभक्त्यावरप्रासादमाश्रितम् ॥ ५ ॥ तथासंस्थापितंतत्रविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ लिङ्गंप्रासादमाधाय प्रोत्तुङ्गशिखरान्वितम् ॥ ६ ॥ सात्वतेनाथसाम्बेन बलभद्रेणधीमता ॥ प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन तथान्यैर्मुख्ययादवैः ॥ ७ ॥ चारुदेष्णादिभिःपुत्रैः रुक्मिण्यादशभिश्चतैः ॥ लिङ्गानांदशकंमुख्यं स्थापितंश्रद्धयान्वितैः ॥ ८ ॥ एवंसंस्थाप्यलिङ्गानि तेसर्वेकुरुपाण्डवाः ॥ यादवाश्चतदाहृष्टाः कृतकृत्यास्तदाभवन् ॥ ९ ॥ तत्रस्थित्वाचिरंकालं दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ धनाढ्यान्ब्राह्मणान्कृत्वा चमत्कारपुरोद्भवान् ॥ १० ॥ दत्त्वातेभ्योवरान्नागान्हयाञ्जात्याननेकशः ॥ सद्ग्रामाणिविचित्राणि क्षेत्राणिसुरभीःशुभाः ॥ ११ ॥ महोक्षांश्चसुवस्त्राणि भूस्थानान्याश्रयांस्तथा ॥ दासींदासांस्तथाभृत्यान्दानानिविविधानिच ॥ १२ ॥ ततश्चा

पुत्रों ने मुख्य दशलिङ्गों को स्थापित किया है ॥ ८ ॥ इस प्रकार प्रसन्न होतेहुये वे समस्त कुरु, पाण्डव व यादव उन लिंगों की भलीभांति स्थापना कर कृतार्थ होगये ॥ ९ ॥ और वहां बहुतसमय तक टिककर चमत्कारपुरमें उपजेहुये ब्राह्मणों को अनेकप्रकार के दान देकर धनाढ्यकर ॥ १० ॥ व उनके लिये अनेकप्रकारकी जातिवाले उत्तम गज, वाजियों को देकर व उत्तमग्रामों, विचित्रक्षेत्रों व शुभदायक धेनुओं को व बड़े बैलों तथा उत्तमवसनों को व भूमिस्थानों व आश्रयों को व दास,

दासियों नौकरों तथा विविधप्रकार के दानों को दिया ॥ ११ । १२ ॥ तदनन्तर उनसब ब्राह्मणों को बार २ प्रणामकर व पूंछकर अति प्रसन्न होतेहुये वे सभी लोग अपने २ स्थानको चलेगये ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि जिस प्रकार उन धृतराष्ट्र भूपतिने पातकों के विनाशक उस लिंगको स्थापित किया है यह सब तुमलोगों से कहागया ॥ १४ ॥ वैसेही विशेषता से टिकेहुये पाण्डवों व यादवों ने तथा प्रधानतासे टिकेहुये अन्यभूपालों नेभी अलग २ लिंगों को थापन किया ॥ १५ ॥ उन लिङ्गों को जो पुरुष भक्तिभावसे भलीभांति पूजनकरैहै वह अपने चित्तसे चाहेहुये समस्त अभिलाषों को पावैहै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे

मन्त्र्य तान्सर्वान्प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ स्वस्थानंप्रतिसंहृष्टाःप्रजग्मुस्सर्वएवते ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्या तं स्थापितंतेनभूभुजा ॥ यथातद्धृतराष्ट्रेण लिङ्गंपातकनाशनम् ॥ १४ ॥ तथान्यैरपिभूपालैःप्राधान्येनव्यवस्थितैः ॥ पाण्डवैर्यादवैश्चैव पृथक्त्वेनव्यवस्थितैः ॥ १५ ॥ यस्तानिपुरुषःसम्यक्पूजयेद्भक्तिभावतः ॥ सलभेचाखिलान्कामा न्वाञ्छितान्स्वेनचेतसा ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वमाहात्म्येयादवादिलिङ्गप्र तिष्ठानामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुराकल्पेभगवताचैतत्क्षेत्रमनुत्तमम् ॥ रुद्रेणब्रह्मणेदत्तं तुष्टेनद्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ यदा तु स्थापि तंलिङ्गं हाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ देवैःप्रीतेनरुद्रेण प्रदत्तंब्रह्मणे पुनः ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रंतदादत्तं शम्भुनाषण्मुखस्पृहा ॥ रक्षणार्थंहिविप्राणां कलिकालादिदोषतः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितेनेदं स्वीयमादावनुत्तमम् ॥ पित्रादिष्टस्तुगाङ्गेयस्तत्रवा

देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेयादवादिलिङ्गप्रतिष्ठानाम चतुःसप्ततितमोध्यायः ॥ ७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पछतरिवें अध्यायमें कहत सूत वेदज्ञ । यथा षडानन सदन ढिग देवन कीन्हों यज्ञ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुराने कल्पमें प्रसन्नहोते हुये भगवान् सदाशिवजीने इस अतिउत्तम क्षेत्रको ब्रह्माके लिये दियाहै ॥ १ ॥ व जब देवताओंने हाटकेश्वर नामक लिंगको स्थापन किया है तब फिर प्रसन्नहुये शिवजी ने ब्रह्मा के लिये दिया है ॥ २ ॥ उसी समय छःमुखवाले महासेन को चाहनेवाले शिवजी ने कलिकालादिक दोषों से रक्षा के लिये इस क्षेत्रको ब्राह्मणों को दियाहै ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर पुरातनसमय ब्रह्मा से प्रार्थना कियेहुये पिताजी से इस अपने अत्युत्तमक्षेत्र प्रति आज्ञापित स्वामिकार्त्तिकेयजीने उस क्षेत्रमें निवास किया ॥ ४ ॥ कृत्तिकानक्षत्र का योग होनेपर कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयजीका दर्शन करै है वह सात जन्मतक धनाढ्य ब्राह्मण होकर वेदों के पार जाने वाला होवैहै ॥ ५ ॥ व आकाश गमनके लिये मनवाला सा महासेनजी का अति मनोहर मन्दिर समस्त संसारभर में अति ऊँचाई से स्थित है ॥ ६ ॥ उस मन्दिर को सुनकर समस्तदेवताओं ने कौतुक से शीघ्रही आकर व अतिपवित्रपुरको जाकर व प्रसन्न होकर अवलोकन किया ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! उन देवताओं ने मन्दिर के उत्तर

समथाकरोत् ॥ ४ ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यःकुर्य्यात्स्वामिदर्शनम् ॥ सप्तजन्मभवेद्विप्रो धनाढ्योवेदपारगः ॥ ५ ॥ महासेनस्यदेवस्य प्रासादंसुमनोहरम् ॥ उच्चैःस्थितंसर्वलोकेयातुकाममिवाम्बरम् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे कौतुकादेत्यसत्वरम् ॥ वीक्षांचक्रुस्ततोगत्वाहृष्टामेध्यतमंपुरम् ॥ ७ ॥ प्रासादस्योत्तरेदेशे प्राच्येदेशेतथाद्विजाः ॥ यज्ञक्रियासमारम्भांश्चक्रुर्विप्रैर्यथोदितान् ॥ ८ ॥ इष्ट्वाचविबुधाःसर्वे दत्त्वातेभ्यश्चदक्षिणाम् ॥ जग्मुस्त्रिविष्टपंहुत्वालब्ध्वातत्स्थानजंफलम् ॥ ९ ॥ ततस्तुदेवयजनंनामतस्यबभूवह ॥ यदन्यत्रशतंकृत्वाक्रतूनांफलमाप्नुयात् ॥ १० ॥ तदत्रैकेनलभते क्रतुनादक्षिणावता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवयज्ञभूमिमाहात्म्यंनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देश में व पूर्वदेशमें ब्राह्मणोंने जैसा कहा वैसेही यज्ञके कर्मोंको भलीभांति प्रारम्भ किया ॥ ८ ॥ व सब देवताओं ने यज्ञकर व हवनकर व उन द्विजों के लिये दक्षिणा को देकर तथा उस स्थानसे उपजेहुये फलको पाकर स्वर्गको गमन किया ॥ ९ ॥ तबसे उस स्थान का नाम देवयजन हुआ अन्यस्थान में सौ यज्ञों को कर जिस फलको प्राप्तहोता है ॥ १० ॥ उसी फलको इस स्थान में दक्षिणावाले एकही यज्ञसे प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदेवयज्ञभूमिमाहात्म्यंनाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छिहतरिवें अध्याय में दिनकर त्रय परभाव । कहत सूत जहँ कुष्ठ सों छूट्यो है द्विजराव ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर और भी दिनकर का त्रितय है तीनों लोकों में जिनको प्रसन्न होनेपर मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहोताहै ॥ १ ॥ उन तीनों में प्रथम मुण्डीरव दूसरे कालप्रिय व तीसरे मूलस्थान नामक हैं जो कि समस्त रोगोंके विनाशक हैं ॥ २ ॥ वहां प्रत्येक निशाके अन्तमें याने प्रातःकाल सूर्य्यनारायण मुण्डीरमें जाते हैं व मध्याह्न समय कालप्रियमें तथा रात्रिके आनेपर मूल स्थान में जाते हैं ॥ ३ ॥ उस समय जो मनुष्य भक्तिसे एकही दिनकरको देखता है वह दर्शनकर मोक्ष को भलीभांति प्राप्तहोता है इसमें सन्देह नहीं

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्तिभास्करत्रितयंशुभम् ॥ यत्तुष्टेत्रिषुलोकेषु मानवोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ १ ॥ मुण्डीरंप्रथमंतत्र तथाकालप्रियंपरम् ॥ मूलस्थानंतृतीयं च सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ २ ॥ तत्रसङ्क्रमतेसूर्य्यो मुण्डीरेरजनीक्षये ॥ कालप्रियेचमध्याह्ने मूलस्थानेनिशागमे ॥ ३ ॥ तस्मिन्कालेनरोभक्त्यापश्येदप्येकमेवच ॥ कृतेक्षणोनरो मोक्षं समंयातिनसंशयः ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ मुण्डीरःपूर्वदिग्भागे धरित्र्याःश्रूयतेकिल ॥ मध्येकालप्रियोदेवो मूलस्थानंतदन्तरे ॥ ५ ॥ तत्कथंतेत्रयस्तत्रसञ्जाताःसूतभास्कराः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वंनोब्रूहिविस्तरात् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ अस्तिसागरपर्य्यन्ते विटङ्कपुरमुत्तमम् ॥ समुद्रवीचिभिर्नित्यं प्रोच्चप्राकारमण्डितम् ॥ ७ ॥ तत्राभूद्ब्राह्मणःकश्चित्कुष्ठव्याधिसमन्वितः ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेन यौवनेसमुपस्थिते ॥ ८ ॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वी कुलीनाशी

है ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! प्रसिद्धमें धरणी के पूर्व दिशाके भागमें मुण्डीर व मध्य में कालप्रिय देव तथा उन दोनों के बीचमें मूलस्थान सुनेजाते हैं तो उस हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें वे तीनोंदिवाकर किस प्रकार प्राप्तहुये हैं इस समस्त वृत्तान्त को हमलोगों से विस्तार समेत कहिये ॥ ५ । ६ ॥ सूतजी बोले कि समुद्र के समीप उत्तम विटङ्कपुर है जोकि नित्यही समुद्र की लहरियों से बड़ी ऊंची शहरदिवाली से शोभित है ॥ ७ ॥ उस नगर में कोई ब्राह्मण भलीभांति युवावस्था के प्राप्त होनेपर पूर्वजन्म के कर्मसे कुष्ठरोग से संयुत होगया ॥ ८ ॥ उस द्विज की स्त्री कुलीन व शीलसे शोभित तथा पतिव्रता थी जोकि वैसे (कुष्ठी) हुये

पति को बहुधा कामदेव के समान देखतीथी ॥ ९ ॥ व विचित्र तथा बड़े मूल्यवाली भी औषधियों व उसके लिये उपलेपनों व अनेक प्रकार के पथ्य पदार्थोंको लाती थी ॥ १० ॥ व उस पतिके लिये निरन्तर आदरसमेत उत्तम वैद्यों को लाती थी तथापि उसके शरीर से उपजाहुआ गुण न हुआ ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह ज्यों ज्यों औषधियों को ग्रहण करताथा त्यों त्यों समस्त अंगों में कुष्ठसे व्यापित होताथा ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार वर्तमान होतेहुये उस उत्तमद्विजके घरमें कोई पथिक पाहुन आया जोकि श्रमसे सयुतथा ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर अनजानेभी द्विजको घरमें प्राप्त देखकर उस कुष्ठीकी पतिव्रता प्यारीने उत्तमभक्तिसे भले

लमण्डना॥तथाभूतंपतिंप्रायःसापश्यतियथास्मरम्॥९॥औषधानि विचित्राणि महार्घ्याण्यपि चाददे।तदर्थमुपलेपांश्च पथ्यानिविविधानि च ॥ १० ॥ तथाभिषग्वरान्नित्यमानिनीय च सादरम् ॥ तदर्थेनगुणस्तस्य तथापिस्याच्छरीरजः ॥ ११ ॥ यथायथासगृह्णाति भेषजानि द्विजोत्तमाः ॥ कुष्ठेनसर्वगात्रेषु व्याप्यते च तथातथा ॥ १२ ॥ अथैवंवर्त्तमानस्य तस्यविप्रवरस्य च ॥ गृहेतिथिःसमायातः कश्चित्पान्थःश्रमान्वितः ॥ १३ ॥ अथविप्रंगृहप्राप्तं दृष्ट्वा तस्यसतीप्रिया ॥ अज्ञातमपिसद्भक्त्या सूपचारैरतोषयत ॥ १४ ॥ अथतंस्नानमाचान्तं कृताहारंद्विजोत्तमम् ॥ विश्रान्तं शयनेविप्रः प्रोवाच स गृहाधिपः ॥ १५ ॥ तेजोन्वितं यथाभानुं रूपौदार्य्यगुणान्वितम् ॥ यौवनेवर्त्तमानं च मूर्त्तकाममिवापरम् ॥ १६ ॥ कुष्ठ्युवाच ॥ कुतआगम्यते विप्र कुत्रयासिवदाधुना ॥ एवंलावण्ययुक्तोपि किमेकाकी यथार्तिभाक् ॥ १७ ॥ पथिकउवाच ॥ अस्तिकान्तीपुरीनामपुरन्दरपुरीयथा ॥ सुस्थितैःसेवितानित्यं जनैर्धर्म्मव्रतान्वितैः ॥ १८ ॥

उपचारों से सन्तुष्ट किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर वह गृहाधिपति ब्राह्मण स्नान,आचमन,भोजन किये व शय्यापै सरतायेहुये उस द्विजोत्तमसे बोला ॥ १५ ॥ जोकि सूर्य्य के समान तेजसे संयुत व रूप तथा उदारतासे समन्वित व दूसरे कामके नाई मूर्त्तिमान् तथा युवावस्थामें वर्तमानथा ॥ १६ ॥ कुष्ठी बोला कि हे द्विज ! इससमय कहांसे आतेहो व कहां जाते हो इसको कहिये व इस प्रकार की सुन्दरतासे संयुत भी क्यों अकेले होकर पन्थके क्लेश को भोगतेहो ॥ १७ ॥ पथिक बोला कि

इन्द्रपुरीके सदृश कान्तीनामक पुरी है जोकि धर्म व व्रतोंसे संयुत तथा भलीभांति टिकेहुये मनुष्यों से निरन्तर सेवित है ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! उसी पुरीमें निवास किये गृहस्थाश्रमवालाभी मैं वैसेही करालकुष्ठरोग से ग्रसित होगया जैसे कि तुमहो ॥ १९ ॥ तदनन्तर तबतक मैंने स्कन्दनामकपुराणमें सुना कि समस्त रोगों का विनाशक भूमि में भास्करत्रितय है ॥ २० ॥ तदनन्तर खारी, खट्टी, कसैली, कड़ुई व तीखी दवाइयोंसे बहुत समय तक दुःखित होकर मैं निर्वेदको प्राप्तहुआ ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त चित्तमें निश्चयकर व बहुतसा धन लेकर मैं मुण्डीरस्वामीके यहां जाकर व उन्हीं के निकट टिकता भया ॥ २२ ॥ तदनन्तर मैं नित्यही प्रातःकाल

तस्यामहंकृतावासो गृहस्थाश्रमवानपि ॥ ग्रस्तःकुष्ठेनरौद्रेण यथात्वंद्विजसत्तम ॥ १९॥ ततःश्रुतंमयातावत्पुराणेस्कान्दसञ्ज्ञिते ॥ भास्करत्रितयं भूमौ सर्वव्याधिविनाशनम् ॥२० ॥ ततोनिर्वेदमापन्नो भेषजैःक्लेशितश्चिरम् ॥ क्षारैश्चाम्लैःकषायैश्च कटुकैरथतिक्तकैः ॥ २१ ॥ ततोविनिश्चयं चित्ते कृत्वादायधनंमहत् ॥ मुण्डीरस्वामिनंगत्वा स्थितस्तस्यैवसन्निधौ ॥ २२ ॥ ततःप्रातःसमुत्थाय नित्यंपश्यामितंविभुम्॥पूजयामिस्वशक्त्या च प्रणमामि ततःपरम् ॥२३॥ सूर्य्यवारेविशेषेण निराहारोजितेन्द्रियः ॥ करोमिजागरंरात्रौगीतवादित्रनिस्वनैः ॥ २४ ॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेतंप्रणम्यदिनाधिपम् ॥कालप्रियंततःपश्चाच्छ्रद्धयापरयायुतः॥ २५॥ तेनैवविधिनाविप्रतस्यापिदिवसस्पतेः ॥ पूजांकरोमिमध्याह्ने श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २६ ॥ ततोपिवत्सरस्यान्ते तंप्रणम्याथ शक्तितः ॥ मूलस्थानं गतोदेवमपरस्यांदिशिस्थितम् ॥ २७॥ तेनैवविधिनापूजा तस्यापिविहितामया ॥ सन्ध्याकालेद्विजश्रेष्ठ यावत्संवत्सरंस्थितः ॥ २८ ॥ ततःसं

उठकर उन व्यापक मुण्डीरस्वामीको देखता व अपनी शक्तिसे पूजता था उसके उपरान्त प्रणाम करताथा ॥ २३ ॥ व रविवारको इन्द्रियोंको जीतेहुये व निराहार होकर मैं रात्रि में गाने बजाने के शब्दोंसे जागरण करताथा ॥ २४ ॥ तदनन्तर हे द्विज ! वर्षके अन्ततक उन मुण्डीर दिननायक को प्रणामकर उसके पीछे परम श्रद्धा से संयुत मैं कालप्रिय को प्रणामकर व श्रद्धा से पवित्र चित्तकरके उसी विधिसे मध्याह्न में उन्ही दिननायक का पूजन करता था ॥ २५ । २६ ॥ इसके अनन्तर वर्षके अन्त में शक्तिसे उन कालप्रियजीको प्रणामकर उसस्थान सेभी अन्यदिशामें टिकेहुये मूलस्थानदेवजीके निकटगया ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वर्षपर्य्यन्त टिके

हुये मैंने सन्ध्यासमय में उसी विधि से उन मूलस्थान काभी पूजन किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे द्विज ! वर्षके अन्तमें हँसतेहुये भास्करजी भलीभांति आकर स्वप्न में मुझसे अतिप्रसन्नचित्तसे बोले ॥ २९ ॥ कि हे द्विज ! भक्तिसे भलीभांति आराधनही से उपजेहुये इस कर्मसे मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्नहूं इसलिये तुम्हारा कुष्ठ नष्ट होजावै ॥ ३० ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम थकेहुये हो इसलिये शीघ्रही अपने घरको जावो व तुम्हारे लिये उत्कंठा समेत टिकेहुये जे समस्त बन्धुजनहैं उनको देखो ॥ ३१ ॥ पुरातनसमय तुमने महात्माब्राह्मण के सुवर्णको हरलिया है उसी कर्म के फलसे कुष्ठरोग समीप स्थित हुआ ॥ ३२ ॥ हे द्विज ! इससमय तुम्हारे लिये प्रसन्न होतें

वत्सरस्यान्ते स्वप्नेमांभास्करोब्रवीत् ॥ समेत्यप्रहसन्विप्र सम्प्रहृष्टेनचेतसा ॥ २९ ॥ परितुष्टोस्मितेविप्र कर्म्मणाने नभक्तितः ॥ समाराधनजेनैव तस्मात्कुष्ठंप्रयातु ते ॥ ३० ॥ गच्छशीघ्रंद्विजश्रेष्ठ श्रान्तोसिनिजमन्दिरम् ॥ पश्य बन्धु जनंसर्वं सोत्कण्ठंत्वत्कृतेस्थितम् ॥ ३१ ॥ त्वयाहृतंपुरारुक्मंब्राह्मणस्यमहात्मनः ॥ तेनकर्म्मविपाकेन कुष्ठव्याधिरुप स्थितः ॥ ३२ ॥ समयानाशितस्तुभ्यं प्रहृष्टेनाधुना द्विज ॥ एतज्ज्ञात्वा न कर्त्तव्यं सुवर्णाहरणं पुनः ॥ ३३ ॥ दृश्यन्तेये नरा लोके कुष्ठव्याधिसमाकुलाः ॥ सुवर्णाहरणंसर्वैस्तैः कृतंपापकर्म्मभिः ॥ ३४ ॥ तस्माद्देयंयथाशक्त्या न स्तेयं कन कम्बुधैः ॥ इच्छद्भिःपरमंसौख्यं स्वशरीरस्यशाश्वतम् ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ अहंचवि स्मयाविष्टः प्रोत्थितःशयनाद्द्रुतम् ॥ ३६ ॥ यावत्पश्यामिदेहंस्वंकुष्ठव्याधिपरिच्युतम् ॥ द्वादशार्कप्रभंदिव्यंयथात्वं पश्यसिद्विज ॥ ३७ ॥ तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्रभक्त्यातद्भास्करत्रयम् ॥ अनेनविधिनापश्य येनकुष्ठंप्रणश्यति ॥ ३८ ॥

हुये मैंने उस रोगको नाशकिया इसको जानकर फिर सुवर्णका आहरण न करना ॥ ३३ ॥ क्योंकि संसार में जो मनुष्य कुष्ठरोग से संकुल देख पड़ते हैं उन सब पाप-कर्मियोंने सुवर्णका आहरण कियाहै ॥ ३४ ॥ इसलिये निरन्तर अपने शरीरको परमसुख चाहनेवाले पण्डितोंको यथाशक्तिसे सुवर्ण देनाचाहिये चुराना न चाहिये ॥ ३५ ॥ हजारकिरणोंवाले दिवाकरजी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये और विस्मय से व्याप्त मैं भी शीघ्रही शय्या से उठपड़ा ॥ ३६ ॥ हे द्विज ! जबतक अपने शरीर को देखूं तबतक जैसा तुम देखते हो वैसाही कुष्ठरोग से परिमुक्त व बारहसूर्योंके समान प्रभावान् व दिव्य होगया ॥ ३७ ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! तुम

भी भक्ति से व इसी विधि से उस भास्करत्रयके दर्शन करो जिससे कुष्ठ नाशहोवै ॥ ३८ ॥ जब समस्तरोगों के नाशने के स्वामी ये तीनदिनकर टिके हैं तब औषधियों से क्या है व कटु वस्तुओं से मिलाये हुये भोजनों से भी क्या है याने कुछनहीं ॥ ३९ ॥ हे द्विज ! तुम्हारा कल्याण होवै निज गृहकी नाईं आज तुम्हारे गृह में विश्राम कियाहुआ मैं इस समय अपनी पुरी प्रति जाऊंगा ॥ ४० ॥ वह कुष्ठभागी द्विज उस पथिकसे इसप्रकार कहागया तदनन्तर दुःखसंयुत होकर उसने अपनीस्त्रीके मुखको देखा ॥ ४१ ॥ वह बोली कि हे प्यारे ! इस पथिकने तुमसे योग्य कहाहै इसलिये वहां शीघ्रही चलिये जहांपर कि तीनों भास्करहैं ॥४२॥ हे विभो !

किमौषधैःकिमाहारैः कटुकैरपियोजितैः ॥ सर्वव्याधिप्रणाशेशेस्थितेस्मिन्भास्करत्रये ॥ ३९ ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामिसाम्प्रतंस्वांपुरींप्रति ॥ गृहेद्यतवविश्रान्ते यथाविप्रनिजेगृहे ॥ ४० ॥ एवमुक्तःसपान्थेन तेनविप्रःसकुष्ठभाक् ॥ वीक्षांचक्रेततोवक्त्रं स्वपत्न्यादुःखसंयुतः ॥४१॥ साब्रवीद्युक्तमुक्तंते पान्थेनानेनवल्लभ ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगच्छ यत्रतद्भास्करत्रयम् ॥ ४२ ॥ अहंत्वयासमंतत्र शुश्रूषानिरतासती ॥ गमिष्यामिनसन्देहस्तस्माद्गच्छद्रुतंविभो ॥ ४३ ॥ एवमुक्तस्तयासोथ वित्तमादायभूरिशः ॥ प्रस्थितःकान्तयासार्द्धंमुण्डीरस्वामिनंप्रति ॥ ४४ ॥ प्रतिज्ञयागमिष्यामि दृष्ट्वातद्देवतात्रयम् ॥ मुण्डीरंकालनाथंच मूलस्थानंचभास्करम् ॥४५ ॥ ततःकृच्छ्रेणमहताकुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सम्प्राप्तःसद्विजोत्तमः ॥ ४६ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्क्षेत्रंतापसौघेनसेवितम् ॥ निर्विण्णःकुष्ठरोगेण पथिश्रान्तोब्रवीत्प्रियाम् ॥ ४७ ॥ अहंनिर्वेदमापन्नो रोगेणाथबुभुक्षया ॥ मुण्डीरस्वामिनंयावन्नशक्तोमिप्रसर्प्पितुम् ॥ ४८ ॥ तस्मा

सेवामें लगीहुई मैं तुम्हारे साथ निस्सन्देह वहांको चलूंगी इसलिये शीघ्रही चलिये ॥४३॥ इसके अनन्तर उस स्त्रीसे इस प्रकार कहेहुये उस द्विजने बहुतसे धनको लेकर स्त्री समेत मुण्डीरस्वामीप्रति इस प्रतिज्ञासे प्रस्थानकिया कि उस देवत्रय याने मुण्डीर व कालनाथ तथा मूलस्थान भास्कर को देखकर आऊंगा ॥ ४४ । ४५ ॥ तदनन्तर कुष्ठरोग से बहुतही आकुल वह द्विजोत्तम बड़ेक्लेशसे हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ व उस बड़ेभारी क्षेत्रको तपस्वियों के समूह से सेवित देखकर कुष्ठरोग से वैराग्य में प्राप्त व थकाहुआ वह विप्र पन्थ में प्यारी से बोला ॥ ४७ ॥ कि रोगसे व क्षुधासे निर्वेद को प्राप्त मैं मुण्डीरस्वामी तक चलने के लिये समर्थ

नहीं हूं ॥ ४८ ॥ इसलिये हे कान्ते ! यहींपर मैं अपने शरीरको निस्सन्देह त्यागूंगा तुम अच्छे साथको पाकर अपने घरको चलीजावो ॥ ४९ ॥ स्त्री बोली कि हे महा भाग, कान्त ! तुम्हारे बिन भोजन किये मैंने कभी भोजन नहीं कियाहै व एकान्त मेंभी तुम्हारे जागतेहुये मैं नहीं सोयी हूं ॥ ५० ॥ इसलिये इस महाक्षेत्र को भलीभांति प्राप्तहोकर व परलोक के लिये व्यवस्थित हुये तुमको त्यागकर मैं कैसे घरको जाऊं ॥ ५१ ॥ व तुमसे विहीन मैं उन भाइयों व गुरुओं तथा अन्य मित्रों कोभी किस प्रकार मुखको दिखाऊंगी ॥५२॥ इसलिये हे नाथ ! स्नेहरूपी पाशसे पुष्टबँधी हुई मैं तुम्हारे साथ अग्निमें पैठूंगी यह सत्यसे अपनी शपथ करतीहूं ॥५३॥ हे महामते !

दत्रैवदेहंस्त्वं विहास्यामिनसंशयः ॥ त्वंगच्छस्वगृहंकान्तेसार्थमासाद्यशोभनम् ॥ ४९ ॥ पत्न्युवाच ॥ अभुक्तेत्वयिनो भुक्तंकदाचित्कान्तवैमया ॥ एकान्तेपिमहाभाग नसुप्तंजाग्रतित्वयि ॥ ५० ॥ तस्मादेतन्महाक्षेत्रं सम्प्राप्यत्वांव्यव स्थितम् ॥ परलोकायसन्त्यज्य कथंगच्छाम्यहंगृहम् ॥ ५१ ॥ दर्शयिष्येमुखंतेषां त्वयाहीनात्वहंकथम् ॥ बान्धवानांगु रूणां च अन्येषांसुहृदामपि ॥ ५२ ॥ तस्मात्त्वयासमन्नाथप्रवेश्यामिहुताशनम् ॥ स्नेहपाशविनिर्बद्धा सत्येनात्मान मालभे ॥ ५३ ॥ यावन्तस्तवसञ्जाता उपवासामहामते ॥ तावन्तश्चतथास्माकं कथंगच्छामितद्गृहम् ॥ ५४ ॥ एवं तस्याविदित्वास निश्चयंब्राह्मणस्तदा ॥ चितिंकृत्वातुदाहार्थंतयासार्द्धंततोविशत् ॥ ५५ ॥ भास्करंमनसिध्यात्वाया वदग्निंसमाददे ॥ तावत्पश्यतिचाग्रस्थंसुदीप्तंपुरुषत्रयम् ॥ ५६ ॥ तत्क्षणादभवद्विप्रो भास्करत्रयदर्शनात् ॥ कुष्ठव्या धिविनिर्मुक्तो युवाकान्तिसमन्वितः ॥ ५७ ॥ एवमेवसुविख्यातं भास्करत्रयमत्रच ॥ दर्शनादपिसर्वेषां जनानामि

जितने उपवास तुमकोहुये हैं उतनेही हमकोहुये हैं तो किस प्रकार घरको जाऊं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण उस स्त्री के निश्चयको जानकर व उससमय चिता को बनाकर तदनन्तर जलने के लिये उसस्त्रीसमेत बैठगया ॥ ५५ ॥ व जबतक उसने मनमें दिनकर का ध्यानकर अग्नि को लिया तभीतक आगे टिकेहुये बहुतही प्रकाशवाले तीनपुरुषोंको देखा ॥ ५६ ॥ व तीनोंपुरुषों के देखने से उसीक्षण वह ब्राह्मण कुष्ठरोग से छूटकर युवा व शोभासे संयुत होगया ॥ ५७ ॥

ऐसाही इस क्षेत्रमें दिनकरत्रय अति प्रसिद्धहै जोकि दर्शन सेभी समस्तमनुष्योंके लिये प्रिय पदार्थों का दायकहै ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभास्करत्रयमाहात्म्यं नामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। सतहत्तरि अध्याय महं बरणत सूत सचाव। कुनरनारि पावनकरन शिवशिर तीर्थप्रभाव ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उस क्षेत्रमें स्त्री समेत वे वृषभध्वज भगवान् वेदी के बीच में टिकेहुये विद्यमान है जोकि मनुष्यों के पातकोंके विनाशक हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय ब्रह्माने तपस्या की है व उन

दृदायकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रे भास्करत्रयमाहात्म्यंषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसभगवांस्तत्र सभार्य्योवृषभध्वजः ॥ विद्यतेवेदिमध्यस्थो लोकानांपापनाशनः ॥ १ ॥ ब्रह्मणा तुतपस्तप्तं पुराचैवद्विजोत्तमाः ॥ तस्यप्रसन्नोभगवान् वरदोवृषनायकः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्मणाकतमेस्थाने तत्रसूतकृतंतपः ॥ बालखिल्यैश्चसर्वैस्तै मुनिभिःशंसितव्रतैः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यावायव्यदिग्भागे हरवेद्याद्विजोत्तमाः ॥ सम्यक्छ्रद्धाप्रयत्नेन ब्रह्मणाविहितंतपः ॥ ४ ॥ पश्चिमेबालखिल्यैश्च जपस्नानपरायणैः ॥ तत्राश्चर्य्यमभूद्यद्वै पूर्वंब्राह्मणसत्तमाः ॥ ५ ॥ आश्रमेचतुरास्यस्य तद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ तत्रदुश्चारिणीकाचिद्रात्रौब्राह्मणवंश

के ऊपर भगवान् वरदायक वृषभध्वज प्रसन्न हुये हैं ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत जी ! उस क्षेत्रमें ब्रह्माने किसस्थानपै तप किया है व प्रशंसित व्रत या कर्मों वाले उन समस्तबालखिल्यामुनियोंने किस स्थानमें तपस्या की है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस सदाशिवजी की वेदीसे वायव्यदिशा के भाग में ब्रह्माने भलीभांति श्रद्धाके उपाय से तपस्या किया है ॥ ४ ॥ व जप तथा स्नान में लगेहुये बालखिल्यामुनियों ने उस वेदी के पश्चिम में तपकिया है हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय में उस क्षेत्रमें चारमुखवाले ब्रह्माके आश्रम में जो आश्चर्य्य हुआ है उसको मैं इस समय निश्चयकर तुम लोगोंसे कहूंगा कि वहांपर

ब्राह्मण वंश में उपजी हुई कोई दुष्ट आचरणों वाली स्त्रीथी जोकि प्रसन्नमन वाली व पति व माता तथा अन्य भाइयों सेभी न जानीहुई कृष्णपक्ष को प्राप्तहोकर निर्जनस्थानमें देवदत्तनामक प्रिय को पाकर सदैव रमण करतीथी हे ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर किसी समय उस स्थानमें टिकी व जार याने उपपति से संयुत उस स्त्रीको किसीने देखा व निज पति रो बतला दिया इसके अनन्तर क्रोधसे संयुत व अति निठुर उसके इस पतिने ॥ ५ । ६ । ७ । ८ । ९ ॥ उस स्त्रीकी वचनोंसे निन्दा किया और प्रहारों सेभी ताडन किया इसके अनन्तर धृष्टता को प्राप्तहोकर आंसुवों से पूर्णनेत्रोंवाली व दीन तथा स्त्री स्वभाव में समाश्रित व अञ्जलिपुटों

जा ॥ ६ ॥ देवदत्तंसमासाद्य वल्लभंरमतेसदा ॥ अज्ञातापतिनामात्रा तथान्यैरपिबान्धवैः ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षंसमासाद्य विजनेहृष्टमानसा ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य दृष्टासाकेनचिद्द्विजाः ॥ ८ ॥ तत्रस्थाजारसंयुक्ता स्वभर्त्तुश्चनिवेदिता ॥ अथासौकोपसंयुक्तस्तस्यभर्त्तासुनिष्ठुरः ॥ ९ ॥ वाक्यैस्तांगर्हयामास प्रहारैश्चाप्यताडयत् ॥ अथसाधाष्ट्र्यमासाद्य स्त्रीस्वभावंसमाश्रिता ॥ १० ॥ प्रोवाचवाष्पपूर्णाक्षी दीनाञ्जलिपुटास्थिता ॥ किंमांदुर्जनवाक्येन संताडयसिनिष्ठुर ॥ ११ ॥ प्रहारैर्दोषनिर्मुक्तां त्वत्पादप्रणतांविभो ॥ अहंत्वांशपथंकृत्वा भक्षयित्वाथवाविषम् ॥ १२ ॥ प्रविश्यहव्यवाहंवा करिष्येप्रत्ययान्वितम् ॥ अथतांब्राह्मणःप्राहयदित्वंपापवर्जिता ॥ १३ ॥ पुरतोदेवविप्राणां कुरुदिव्यगृहंस्वयम् ॥ सातथेतप्रतिज्ञाय साहसेनसमन्विता ॥ १४ ॥ दिव्यगृहंततश्चक्रे यथोक्तविधिनासती ॥ शुद्धिंप्राप्ताचसर्वेषां बन्धूनांचद्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥ पुरतश्चगुरूणांच देवानामपिपापकृत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्याःसाधुवादोमहानभूत् ॥ १६ ॥

को जोड़े खड़ीहुई उस स्त्रीने कहा कि हे निष्ठुर विभो ! दोषोंसे छूटी व तुम्हारे पावों में प्रणाम करतीहुई मुझको तुम दुर्जन के वाक्यों से व प्रहारों से क्यों अति ताडन करते हो मैं सौगन्द कर या विषखाकर या अग्नि में पैठकर तुमको विश्वाससे संयुत करूंगी इसके अनन्तर ब्राह्मण ने उस से कहा कि यदि तू पाप रहित है ॥ १० । ११ । १२ । १३ ॥ तो देवताओं व द्विजों के अगाडी आपही अग्नि आदिक देव सम्बन्धी सौगन्द कर वैसाही करूंगी यह प्रतिज्ञाकर तदनन्तर साहस से संयुत उस पापकारिणी व कुलटा स्त्रीने यथोक्त विधिसे दिव्यगृह याने अग्निदेवमें शपथ किया और समस्त भाइयों व ब्राह्मणों तथा गुरुओं व देवताओं केभी आगे पवित्रता

को प्राप्तहुई इसी अवसर में उस का बहुत प्रशंसित वाद हुआ ॥ १४ । १५ । १६ ॥ सब मनुष्यों ने वैसेही अति निन्दित धिक्कारशब्द को पतिको दिया कि बड़े विस्मय की बात है यह द्विजों में नीच व दुष्ट व पाप आचरण वाला है ॥ १७ ॥ जो पापहीन धर्मपत्नीको झूंठेदोषसे युक्त करता है हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर सब मनुष्यों से इस प्रकार निन्दित व बहुतही दुःखित हो उसने अग्निको उद्देशकर क्रोध किया तदनन्तर बार २ उस निन्दित द्विजने अग्निको शापदेने के लिये बुद्धिकिया व कठोरवचनको कहा कि उपपति के साथ सङ्गकी हुई इस स्त्रीको मैंने आपही देखा है ॥ १८ । १९ । २० ॥ हे अग्ने ! इस अत्यन्तपापिनी को तुमने क्योंनहीं सब

धिक्छब्दश्चतथापत्युः सर्वैर्दत्तःसुगर्हितः ॥ अहोपापसमाचारो दुष्टोयंब्राह्मणाधमः ॥ १७ ॥ अपापांधर्म्मपत्नीं यो मिथ्यादोषेणयोजयेत् ॥ एवंसनिन्द्यमानस्तु सर्वलोकैर्द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ कोपंचक्रेततोवह्निं समुद्दिश्यसुदुःखितः ॥ शापंदातुंमतिंचक्रे ततोवह्नेश्चसद्विजः ॥ १९ ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं निन्द्यमानःपुनःपुनः ॥ मयास्वयंप्रदृष्टेयं जारेणसहसङ्गता ॥ २० ॥ त्वयावह्नेसुपापेयंनकस्माद्भस्मसात्कृता ॥ तस्मात्त्वांपापकर्म्माणमसत्यंपक्षपातिनम् ॥ २१ ॥ असन्दिग्धंशपिष्यामि रौद्रशापेनसाम्प्रतम् ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासक्रोधस्यद्विजन्मनः ॥ सप्तार्चिर्भयसन्त्रस्तःकृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ २३ ॥ अग्निरुवाच ॥ नैषदोषोममब्रह्मन्यन्नदग्धातवप्रिया ॥ कृतागसापिमेवाक्यं श्रृणुष्वात्रस्फुटेरितम् ॥ २४ ॥ अनयापरकान्तेन कृतःसहसमागमः ॥ चिरंकालंद्विजश्रेष्ठत्वयाज्ञाताद्यवासरे ॥ २५ ॥ परंयस्माद्विशुद्धैषामयादग्धानसाद्विज ॥ कारणंतेचतद्वच्मिश्रृणुष्वैकमनाःस्थितः ॥ २६ ॥ यत्रान

भस्मकिया इसलिये झूंठे व पक्षपाती पापकर्मवाले तुमको मैं इस समय निस्सन्देह घोरशापसे शापदूंगा ॥ २१ । २२ ॥ सूतजी बोले कि क्रोध समेत उस द्विज के उस वचन को सुनकर अग्निदेवजी भयभीत हो हाथजोड़ उससे बोले ॥ २३ ॥ अग्नि बोले कि हे ब्रह्मन् ! अपराध की हुईभी तुम्हारी प्यारी नहीं जली यह मेरा दोष नहीं है इस विषयमें प्रकट कहीहुई मेरी वाक्यको सुनिये ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसने बहुत समयतक पराये पति के साथ सङ्गम कियाहै परन्तु तुमने आजही जाना ॥ २५ ॥ हे विप्रजी ! जिसलिये कि यह विशेषकर शुद्धथी उसी से मैंने उसको न जलाया उस कारण को तुमसे कहताहूं एक मनवाले स्थित होकर याने

एकही ठिकाने चित्तकर सुनिये ॥ २६ ॥ हे द्विज! पराये कान्त के साथ जहांपर इसने रमण किया है उसी मन्दिर में रुद्रशीर्ष ब्रह्माजी विशेषता से टिके हैं ॥ २७ ॥ उस मन्दिर में उस समय पराये पति के साथ विचित्रप्रकारसे रमणकर तदनन्तर ब्रह्माके मस्तक पै भलीभाति टिकेहुये सदाशिवजी को देखा ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त आगे प्राप्तहुये उस कुण्ड में अंग को प्रक्षालन करती है उसीसे स्वच्छ मुसक्यानवाली पापको किये हुईभी यह पवित्र हो जाती है ॥ २९ ॥ पुरातनसमय वहांपर पापकारी व काम से विकलभी लोकों के पितामह (बाबा) वह ब्रह्माजी सतीका मुख देखकर पापहीन होगये ॥ ३० ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! इसविषय में मेरा कुछ भी

याकृतःसङ्गःपरकान्तेनवैद्विज ॥ तस्मिन्नायतनेब्रह्मारुद्रशीर्षोऽव्यवस्थितः ॥ २७ ॥ तत्रकृत्वारतंचित्रंपरकान्तसमंतदा ॥ पश्यतेस्मततोरुद्रंब्रह्ममस्तकसंस्थितम् ॥ २८ ॥ ततःप्रक्षालयत्यङ्गं कुण्डेतत्राग्रतःस्थिते॥कृतपापापितेनैषा शुद्धिया तिशुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तत्रपूर्वंविपाप्माभूद् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ सतीवक्त्रंसमालोक्यकामार्तोपिसपापकृत् ॥ ३० ॥ तस्मान्नास्त्यत्रमेदोषःस्वल्पोपिद्विजसत्तम ॥ रुद्रशीर्षप्रभावोयंतस्यकुण्डोदकस्यच ॥ ३१ ॥ तस्मादेनांसमादाय शुद्धांपापविवर्जिताम् ॥ गृहंगच्छद्विजश्रेष्ठ सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यामयासहसादृष्टास्वयमेवहुताशन ॥ परकान्तेनतांनाद्य शुद्धामपिगृहंनये ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वाचद्विजश्रेष्ठस्तांत्यक्त्वाचशुभव्रतः ॥ जगामस्वगृहं पश्चाज्जग्मुश्चैवनरागृहान् ॥ ३४ ॥ सापितेनपरित्यक्ता पतिनाहृष्टमानसा ॥ ज्ञात्वातत्तीर्थमाहात्म्यं वैश्वानरमुखेरितम् ॥ ३५ ॥ तेनैवपरकान्तेन विशेषेणरतिक्रियाम् ॥ तस्मिन्नायतनेचक्रे कुण्डेतोयावगाहनम् ॥ ३६ ॥ अथान्ये

दोष नहीं है किन्तु रुद्रशीर्षका व उसकुण्ड के जलका यह प्रभाव है ॥ ३१ ॥ इस लिये हे द्विजोत्तम ! पापसे रहित व पवित्र इस स्त्रीको भलीभांति लेकर घरको जाओ मैंने यह सत्य कहा है ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे अग्निदेव ! मैंने आपही जिस स्त्रीको अचानक परपतिके साथ देखा है उस पवित्र कोभी आज घर न लेजाऊंगा ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर शुभदायक व्रतों या कर्मोंवाला वह द्विजोत्तम उस स्त्रीको त्यागकर पीछे घरको चलागया व और नरभी घरोंको चलेगये ॥ ३४ ॥ व उस पति से त्यागी हुई व प्रसन्नमनवाली उस स्त्रीने भी अग्नि के मुखसे कहेहुये उसतीर्थके माहात्म्य को जानकर उस मन्दिर में उसी परपति के साथ विशेषकर रतिकर्म

को किया व उसी कुण्डमें जलसे स्नानादिक किया ॥ ३५ । ३६ ॥ इसके अनन्तर जो और मनुष्य परलोक के डरसे पराई स्त्रियों में विमुखथे व जो पतिव्रतायें स्त्रियां थीं ॥ ३७ ॥ वे सब दूरसे ही उस रुद्रशीर्षनामक मन्दिर में भलीभांति आकर रति के उत्साहको करतेथे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उस पापनाशककुण्ड में स्नान करतेथे व रुद्रशीर्ष के अवलोकन से पापसे मुक्त होतेथे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर इसी समय में पुरुषोंका स्त्रीसे उपजाहुआ व स्त्रियोंका निजपतिसे उपजाहुआ धर्म नाश होगया ॥४०॥ हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष कुल में उपजीहुई भी रूपसे संयुत जिस स्त्रीको देखताथा वह उस स्थानपै लाकर व अतिप्रसन्न होकर भजता याने रति करताथा ॥ ४१ ॥

परलोकस्य भीत्यातीवव्यवस्थिताः ॥ विमुखाःपरदारेषु नार्य्यश्चापिपतिव्रताः ॥ ३७ ॥ दूरतोपिसमभ्येत्यतेसर्वेतत्र मन्दिरे ॥ रुद्रशीर्षाभिधानेचप्रचक्रुःसुरतोत्सवम् ॥ ३८ ॥ निमज्जन्तिततःकुण्डे तस्मिन्पातकनाशने ॥ भवन्तिपापनिर्मुक्ता रुद्रशीर्षविलोकनात् ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनष्टोधर्म्मःपत्नीसमुद्भवः ॥ पुरुषाणांततःस्त्रीणां निजकान्तसमुद्भवः ॥ ४० ॥ योयांपश्यतिरूपाढ्यां नारीमपिकुलोद्भवाम् ॥ सतत्रानीयसंहृष्टो भजतेद्विजसत्तमाः ॥ ४१ ॥ तथानारीसुरूपाढ्यं यंपश्यतिनरंकाचित् ॥ सापितत्रसमानीय कुरुतेसुरतोत्सवम् ॥ ४२ ॥ लिप्यतेनचपापेन कथञ्चित्तत्कृतेनच ॥ नरोवायदिवानारी तत्तीर्थस्यप्रभावतः ॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तत्रराजाविदूरथः ॥ आनर्त्तविषयेजज्ञेवार्द्धक्यंचक्रमाद्ययौ ॥ ४४ ॥ तस्यभार्य्याभवत्तन्वीतरुणीवररूपधृक् ॥ पश्चिमेवयसिप्राप्तेप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ४५ ॥ नतस्याःसजराग्रस्तश्चित्तेवसतिपार्थिवः ॥ तस्मिंस्तीर्थेसमागत्यवाञ्छितंरमतेनरम् ॥ ४६ ॥ पार्थिवोपिपरिज्ञाय

वैसेही जो स्त्री कहींपर स्वरूपसे संयुत जिस पुरुपको देखती थी वह भी उसको वहांपर लाकर सुरत के उत्साहको करतीथी ॥ ४२ ॥ व उस तीर्थ के प्रभाव से नर या नारी उस कियेहुये पातकसे किसी प्रकार लिप्त न होतेथे ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस आनर्तदेश में विदूरथ राजा उत्पन्न हुआ व क्रमसे वृद्धता को प्राप्तभया ॥४४॥ उस विदूरथ की पिछली अवस्था प्राप्तहोनेपर उसकी स्त्री उत्तमरूप धारिणी व सूक्ष्मअङ्गोंवाली व युवती तथा प्राणों सेभी प्रियपत्नी हुई है ॥ ४५ ॥ उस स्त्रीके चित्त में वह वृद्धता से ग्रसाहुआ भूपति नहीं बसताथा इससे उस तीर्थ में भलीभांति जाकर चाहेहुये पुरुषसे रमतीथी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरे

हुये उस भूपतिने भी उस स्त्रीके उस रमण के कर्मको जानकर व उस अत्युत्तम क्षेत्र में जाकर उस भूमिके कुण्ड को धूरिकी राशियों से पूर्णकर दिया व उस मन्दिर को तोड़ फोडडाला तदनन्तर बड़े विकराल वचन कहे ॥ ४७ । ४८ ॥ किजो पुरुष धूरिसे पूरित इसकुण्ड को फिर खोदैगा व इस मन्दिरको फिर नवीन करैगा ॥ ४९ ॥ उसको पराई स्त्रियों से कियाहुआ वह समस्त पाप प्राप्तहोगा जोकि यहांपर काम से मोहित मनुज करैंगे ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि वह भूपति इसप्रकार कहकर तदनन्तर उस प्यारी को लेकर पीछेको प्रसन्न अन्तःकरण से अपने घरको चलागया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर वह नृपति अन्यपुरुष में चित्तवाली उसप्यारीको विशेषकर

तस्यास्तस्यविचेष्टितम् ॥ कोपाविष्टस्ततोगत्वातस्मिन्क्षेत्रेसुशोभने ॥ ४७ ॥ तत्कुण्डंपूरयामासभुवःपांशूत्करैर्द्रुतम् ॥ बभञ्जतंचप्रासादं ततःप्रोवाचदारुणम् ॥ ४८ ॥ यश्चैतत्पूरितंकुण्डंपांशुनानिखनिष्यति ॥ प्रासादंचपुनश्चैनंकरिष्यतिपुनर्नवम् ॥ ४९ ॥ परदारकृतंपापं तस्यसम्पत्स्यतेखिलम् ॥ यदत्रप्रकरिष्यन्तिमानवाःकाममोहिताः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ एवंसपार्थिवःप्रोच्यतामादाय ततःप्रियाम् ॥ जगामस्वगृहंपश्चात्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५१ ॥ अथतांविरतांज्ञात्वासोन्यचित्तांप्रियांनृपः ॥ यत्नेनरक्षयामास विश्वासंनैव गच्छति ॥ ५२ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशस्त्रंसूक्ष्मंवेण्यांनिधायसा ॥ जगामशयनेतस्यवधार्थंवरवर्णिनी ॥ ५३ ॥ ततस्तेनसमंहास्यंकृत्वाक्षत्रियभावजम् ॥ सुरतंराचैर्भावैर्हावैर्भूरिभिरेवच ॥ ५४ ॥ ततोनिद्रावशंप्राप्तंतंनृपंसानृपप्रिया केशात्साशस्त्रमादायनिजघानसुनिर्दया ॥ ५५ ॥ एवंतस्यफलंजातंसद्यस्तीर्थस्यभङ्गजम् ॥ आनर्ताधिपतेराज्ञःसर्वलोकविगर्हितम् ॥ ५६ ॥ अद्यापितत्रदेवेशो रुद्रशीर्ष सतिष्ठ

रमणकी हुई जानकर यत्नसे रक्षा करताथा और विश्वासको नहीं प्राप्त होताथा ॥ ५२ ॥ वह उत्तम वर्णवाली स्त्री और दिनमें उस भूपतिके मारने के लिये छोटे शस्त्रको वेणीमें धरकर शय्यापैगई ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उस पतिके साथ क्षत्रियसे उपजेहुये हास्यको कर व बहुतेरे सुन्दरे चोंचलोंसे रतिकरके उसके उपरान्त उस अतिनिर्दयी नृपतिकी प्यारीने बालोंसे शस्त्रको लेकर निद्रावश में प्राप्तहुए उस नृपति को मार डाला ॥ ५४ । ५५ ॥ इस प्रकार उस आनर्तदेशके अधिपति नृपतिको तीर्थभङ्ग से उपजाहुआ व समस्त मनुष्यों से निन्दित फल उसीक्षण प्राप्तहुआ ॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस स्थानमें वे रुद्रशीर्षदेवजी आज भी बैठेहैं जिनको उस नृपने

लिङ्गभेदनके भयसे भलीभांति भग्न नहीं कियाथा ॥ ५७ ॥ उस तीर्थमें माघशुक्ल चौदसि में जो पवित्रपुरुष मालादिकोंसे पूजकर व अगाड़ी बैठकर रुद्र शीर्षको जपताहै वह उस लिङ्ग के प्रसाद से शीघ्रही वाञ्छित फलको पाता है व अगाड़ी टिकाहुआ जो मनुष्य रुद्रशीर्ग को एक सौ आठबार तक जपताहै वह निस्सन्देह उत्त-मगतिको जाताहै अथवा हे ब्राह्मणो! जो मनुष्य उन सदाशिवजी के आगे निरन्तर उस रुद्रशीर्ष को एकबार जपता अथवा पढ़ता है वह दिनमें कियेहुये पातक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है इस रुद्रशीर्ष से उपजेहुये समस्त माहात्म्यको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ५८ । ५९ । ६० । ६१ ॥ यह रुद्रशीर्ष का माहात्म्य परम

ति ॥ लिङ्गभेदभयात्तेननसंभग्नोद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ यस्तत्रपुरतःस्थित्वा जपेद्रुद्रशिरःशुचिः ॥ माघशुक्लचतुर्दश्यां
पूजयित्वास्रगादिभिः ॥ ५८ ॥ वाञ्छितंलभतेचाशु तस्येशस्यप्रसादतः ॥ अष्टोत्तरशतंयावद्योजपेत्पुरतःस्थितः ॥
५९ ॥ रुद्रशीर्षंनसन्देहःसयातिपरमांगतिम् ॥ एकवारंनरोयोवातत्पुरःपठतिद्विजाः ॥ ६० ॥ नित्यंदिनकृतात्पापान्मु
च्यतेनात्रसंशयः ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंरुद्रशीर्षसमुद्भवम् ॥ ६१ ॥ माहात्म्यंसर्वपापानां सद्योनाशनकारकम् ॥ म
ङ्गलंपरमंह्येतदायुष्यंकीर्तिवर्धनम् ॥ ६२ ॥ रुद्रशीर्षस्यमाहात्म्यंतस्माच्छ्रोतव्यमादरात् ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
णेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रशीर्षयागेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥
सूतउवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेभागेबालखिल्यैःप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गमस्तिसुविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥
यमाराध्यचतैःपूर्वंशक्रामर्षसमन्वितैः ॥ गरुडोजनितःपक्षीख्यातोविष्णुरथोत्रयः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंतेषांसमु

मङ्गल व आयुर्बलवर्द्धक व यशका वृद्धिकारक तथा उसीक्षण समस्त पापोंका नाशकारक है इस लिये आदर से सुनना चाहिये ॥ ६२ । ६३ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रशीर्षयागेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तसप्ततितमोध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥

दो० । बालखिल्य मुनिनायकन कीन इन्द्रपे कोप । अठहत्तरि अध्याय में कह्योसोसूत सचोप ॥ सूतजी बोले कि उसी रुद्रशीर्ष के दक्षिणदिशा के भाग में बालखिल्या मुनियोंसे स्थापित प्रसिद्ध लिङ्गहै जोकि समस्त पातकों का विनाशकहै ॥ १ ॥ पुरातन समय इन्द्रके ऊपर क्रोधसयुत उन बालखिल्या मुनियोंने जिस

लिङ्गका आराधन कर गरुड़पक्षी को पैदाकिया है जोकि इस समय श्रीविष्णु का वाहन है॥ २॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन! उन बालखिल्य मुनियोंका इन्द्र के ऊपर कैसे क्रोध उत्पन्न हुआहै व गरुड़ किस प्रकार पैदाहुये हैं॥ ३॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय उस सुशोभनक्षेत्र में दक्षप्रजापतिजी ने विधिपूर्वक समस्त श्रेष्ठ दक्षिणावाले यज्ञको कियाहै॥ ४॥ तदनन्तर दक्षजी ने सहायता के लिये इन्द्रादिक देवताओंको व निर्मल चित्तवाले मुनियों व राजर्षियों का निमन्त्रण किया॥ ५॥ वैसेही यज्ञकर्म में चतुर व वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों को व जो गृहस्थाश्रम वाले और जो जङ्गल में निवास करने वालेथे उनकाभी निमन्त्रण किया॥ ६॥

त्पन्नःशक्रस्योपरिसूतज॥प्रकोपोबालखिल्यानांसञ्जज्ञेगरुडःकथम्॥ ३॥ सूतउवाच॥ पुराप्रजापतिर्दक्षस्तस्मि
न्क्षेत्रेसुशोभने॥ चकारविधिवद्यज्ञंसम्पूर्णवरदक्षिणम्॥ ४॥ ततःशक्रादयोदेवाःसहायार्थंनिमन्त्रिताः॥ दक्षेणमु
नयश्चैवतथाराजर्षयोमलाः॥ ५॥ तथावेदविदोविप्रायज्ञकर्म्मविचक्षणाः॥ गृहस्थाश्रमिणोयेचयेचारण्यनिवासिनः॥
६॥ अथतेबालखिल्याख्यामुनयःशंसितव्रताः॥ एकांसमिधमादायसहायार्थंप्रजापतेः॥ ७॥ प्रस्थितायज्ञवाटंतंभा
रार्ताःक्लेशसंयुताः॥ अथतेषांसमस्तानांमार्गेगोपदमागतम्॥ ८॥ जलपूर्णंसमायातमकालजलदागमे॥ ततस्तरी
तुकामास्तेक्लिश्यमानाइतस्ततः॥ ९॥ समिद्भारश्रमोपेतादेवराजेनवीक्षिताः॥ गच्छतातेनमार्गेणमखेदक्षप्रजाप
तेः॥ १०॥ ततश्चिरंसमालोक्यस्मितंकृत्वासकौतुकात्॥ जगामाथसमुल्लङ्घ्य ऐश्वर्य्यमदगर्वितः॥ ११॥ ततस्तेको

इसके अनन्तर एक समिधा को लेकर बोझसे विकल व दुःख से संयुत होतेहुये प्रशंसित व्रतों या कर्मोंवाले उन बालखिल्य नामक मुनियों ने दक्ष प्रजापतिजी के उसवाट को प्रस्थान किया इसके अनंतर बिन समय मेघके आगमन में जल से पूर्णहुआ गोपद उन सबों के मार्गमें प्राप्तभया तदनन्तर दक्ष प्रजापति के यज्ञ में उसी मार्ग से जातेहुये सुरराजने उन मुनियों को देखा जोकि तरने की इच्छावाले व समिधा के भारसे संयुत तथा इधर उधर क्लेशको प्राप्तहो रहेथे॥ ७। ८। ९। १०॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्य के मदसे गर्वित वे इन्द्रजी बहुत कालतक देखकर व मुसकराकर इसके अनन्तर कौतुक से भलीभांति नांघकर चलेगये॥ ११॥ उसके

उपरान्त इन्द्रसे तिरस्कार को देखकर क्रोध संयुत होतेहुये उन मुनियोंने लौटकर व अपने आश्रमको जाकर सम्मति का निश्चय किया ॥ १२ ॥ जिसलिये कि इन्द्रके पदको पाकर इसपापी ने हमसबों को उल्लंघन किया है उसी से वह उत्तमस्थान से गिराने योग्य है ॥ १३ ॥ व अभिचार याने उच्चाटनादि कर्मों से उपजेहुये अथर्वण वेदवाले महासूक्तों से मन्त्रोंके पराक्रमसे उपजेहुये दूसरे इन्द्रको करना चाहिये ॥ १४ ॥ उस इन्द्रसे इसका स्थान नाश होजायगा व यज्ञके माहात्म्य से सम्पन्न व बहुतकम बुद्धि व पराक्रम वाला यह मदसे गर्वित इन्द्र नाशकियाजायगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर मण्डप के मध्यमें जलसे भरेहुये कलश को धरकर उद्यम समेत

पसंयुक्ताद्दृष्ट्वाशक्रपराभवम् ॥ निवर्त्यस्वाश्रमंगत्वाचक्रुर्मन्त्रस्यनिश्चयम् ॥ १२ ॥ शाक्रंपदंसमासाद्ययस्मादेते नपाप्मना ॥ अतिक्रान्तावयंसर्वे तस्मात्पात्यःससत्पदात् ॥ १३ ॥ अन्यःशक्रःप्रकर्तव्यो मन्त्रवीर्य्यसमुद्भवः ॥ आथर्वणैर्महासूक्तैरभिचारकसम्भवैः ॥ १४ ॥ पदंव्यापाद्यतेतेनशक्रोयंमदगर्वितः ॥ मखमाहात्म्यसम्पन्नःस्वल्पबुद्धिपराक्रमः ॥ १५ ॥ ततस्तेसूत्रप्रोक्तेनस्कन्दसूक्तेनपावकम् ॥ जुहुवुश्चदिवारात्रौक्षुरिकोक्तेनसोद्यमाः ॥ १६ ॥ गर्भोपनिषदेनैवनीलरुद्रैर्द्विजोत्तमाः ॥ रुद्रशीर्षेणकाम्येन विष्णुसूक्तयुतेनच ॥ १७ ॥ निधायकलशंमध्येमण्डपस्योदकावृतम् ॥ होमान्तेतस्यसंस्पर्शं चक्रुस्तत्रजलैःशुभैः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रःप्रपश्यतिसुदारुणान् ॥ उत्पातानात्मनाशायजायमानान्समन्ततः ॥ १९ ॥ वामोबाहुश्चनेत्रंचमुहुःस्फुरतिचास्यवै ॥ नचपश्यतिनासाग्रं जिह्वाग्रंचतथाहनुम् ॥ २० ॥ शिरोहीनांतथाछायांगगनेभास्करद्वयम् ॥ अरुन्धतींध्रुवंचैवपश्यन्विष्णुपदानिखे ॥ २१ ॥ नचपादंनचाकाशे

उन द्विजोत्तमोंने सूत्र में कहेहुये स्कन्दसूक्तसे व क्षुरिकोक्त, गर्भोपनिषद् व नीलरुद्रों से तथा विष्णुसूक्त संयुत कामदायक रुद्रशीर्ष से अहर्निश अग्नि में हवन किया व उस होमके अन्त में शुभदायक जलोंसे उस कलश का भलीभांति स्पर्शकिया ॥ १६ । १७ । १८ ॥ इसी अवसर मे इन्द्रने अपने नाश के लिये उत्पन्न होतेहुये सब ओर अतिउग्र उत्पातों को देखा ॥ १९ ॥ इन इन्द्रजीका वामबाहु व वामनयन बार २ फरकने लगा व नासाके अग्रभाग व जिह्वाके अग्रभाग तथा दाढ़ी को इन्द्र ने न देखा ॥ २० ॥ व शिरसे हीन परछाहीं को तथा आकाशमें दो दिनकरोंको देखा व आकाश में अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु पदोंको न देखा ॥ २१ ॥ व पांय को अर्थात्

भूमिमें पांय के चिह्नको व एकान्त में आकाश में भलीभांति टिकीहुई श्रीगङ्गा जीको न देखा और सोतेहुये नित्यही कालेअंग वाली व छूटे बालों वाली तथा अस्त्र को धारनेहारी नारी को देखा ॥ २२ ॥ उन दुष्ट शकुनोंवाले बड़े उत्पातों को देखकर इन्द्रजी बृहस्पति से बोले कि हे विद्वन्! क्या मेरा विनाश होगा या त्रिलोक के राज्यका अथवा धनादि का नाश होगा बृहस्पति जी बोले कि हे शचीपते! मदसे मत्त तुमने मार्ग में टिकेहुये व गोपद के तरने की इच्छावाले जिन बालखिल्य महर्षियों को उल्लंघन किया है उन्हीं मुनियों ने अथर्वण वेद वाले मन्त्रों से तुम्हारे लिये होम किया है ॥ २३ । २४ । २५ ॥ व भलीभांति कलश का अभि-

संस्थितांस्वर्धुनींरहः ॥ स्वपन्पश्यतिकृष्णाङ्गींनित्यंनारींधृतायुधाम् ॥ २२ ॥ मुक्तकेशींमहोत्पातान्दुर्निमित्तानिता निच ॥ किंमेभविष्यतिप्राज्ञविनाशःसाम्प्रतंवद ॥ २३ ॥ किंवात्रैलोक्यराजस्यकिंवावित्तादिकस्यच ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ येत्वयामदमत्तेनबालखिल्यामहर्षयः ॥ २४ ॥ उल्लङ्घिताःस्थितामार्गेगोष्पदंतर्तुमिच्छवः ॥ तैरेवाथर्वणैर्मन्त्रैस्त्वत्कृतेस्तिशचीपते ॥ २५ ॥ कृतोहोमःसुसम्पूर्णःकलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ युष्माकंसुविनाशायसर्वस्याधिपनायकः ॥ २६ ॥ भविष्यतिनसन्देहो मन्त्रैराथर्वणैर्हरिः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासहस्राक्षोभयान्वितः ॥ २७ ॥ दक्षंगत्वाचदीनास्यः प्रोवाचतदनन्तरम् ॥ अस्मन्नाशायमुनिभिर्बालखिल्यैःप्रजापते॥२८॥प्रोद्यमोविहितस्सम्यक्शक्रस्यान्यस्यवैकृते॥ तान्वारयस्वयंगत्वायावन्नोजायतेपरः ॥ २९ ॥ शक्रोस्मद्भ्रंशनार्थायनास्तितेषामसाध्यता॥अथदक्षोद्रुतंगत्वाशक्राद्यैरमरैर्वृतः ॥ ३० ॥ प्रहमंस्तानुवाचेदं विनयेनसमन्वितः ॥ किमेतत्क्रियतेविप्राःकर्मरौद्रतमंमहत् ॥ ३१ ॥ त्रैलो

मन्त्रण किया है इस से तुम लोगों के विनाश के लिये अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से समस्त सुरोंके स्वामी व नायक इन्द्र निस्सन्देह होंगे उन बृहस्पति जी के उस वचन को सुनकर दीनमुखवाले व भय संयुत हजार नयनों वाले इन्द्र जी ॥ २६ । २७ ॥ दक्ष के समीप जाकर तदनन्तर बोले कि हे प्रजापते! हमारे नाश के लिये बालखिल्य मुनियों ने दूसरे इन्द्र के निमित्त भलीभांति उद्यम किया है जबतक दूसरे इन्द्र हमारे अधःपात के लिये न उत्पन्न होवें तबतक आपही जाकर उनको मनाकरो क्योंकि उन मुनियों के असाध्यतानहीं है इसके अनन्तर इन्द्रादि देवों से घिरे व विनय से संयुत दक्षजी शीघ्रही जाकर उन मुनियों से

॰पु॰
२३

हँसतेहुये यह बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस बड़े भारी विकराल कर्म को क्यों करते हो ॥ २८।२९।३०।३१ ॥ कि जिससे यह समस्त त्रिलोक व्याकुलता को प्राप्तहै इस के अनन्तर अपने आश्रम में भलीभांति आयेहुये दक्षजी को देखकर अर्घ को हाथ में लियेहुये उन मुनियों ने शीघ्रही सामने गमन किया व अर्घ को देकर तथा भक्तिसे यथायोग्य पूजनकर व प्रणतहोकर याने प्रणामकर कहा कि हे प्रजापते ! तुम्हाराआना अच्छाहुआ व शीघ्रही वह आज्ञा दीजाय कि जिसलिये तुम यहांआये हो ॥ ३२।३३।३४ ॥ मैं प्राण के दानसे भी तुम्हारे प्रिय को करूंगा दक्षजी बोले कि आकुली हीन तुमलोगोंको इस अतिकराल व सब देवों के भयदायक कर्मको

कथंव्याकुलंयेन सर्वमेतद्व्यवस्थितम् ॥ अथतेदक्षमालोक्यसमायातंस्वमाश्रमम् ॥ ३२ ॥ संमुखाश्चाभ्ययुस्तूर्णं प्रगृहीतार्घपाणयः ॥ अर्घंदत्त्वायथान्यायंपूजांकृत्वाचभक्तितः ॥ ३३ ॥ प्रोचुश्चप्रणताभूत्वास्वागतन्तेप्रजापते ॥ आदेशोदीयतांशीघ्रंयदर्थंत्वमिहागतः ॥ ३४ ॥ अपिप्राणप्रदानेन करिष्यामप्रियंतव ॥ दक्षउवाच ॥ एतद्रौद्रतमंकर्म्म सर्वदेवभयावहम् ॥ ३५ ॥ त्याज्यंयुष्माभिरव्यग्रैस्तदर्थंचाहमागतः ॥ मुनयऊचुः ॥ वयंशक्रेणतेयज्ञेसमायातास्सुभक्तितः ॥ ३६ ॥ उल्लङ्घितामदोद्रेकात्कृत्वाहास्यंमुहुर्मुहुः ॥ शक्रोच्छेदायचास्माभिःशक्रोन्योवीर्य्यमन्त्रतः ॥ ३७ ॥ प्रारब्धः कर्तुमत्युग्रैर्होमान्तश्चव्यवस्थितः ॥ तत्कथंमन्त्रवीर्य्यंचक्रियतेमोघमित्यहो ॥ ३८ ॥ वेदोक्तंचविशेषेण तस्मादत्रवद प्रभो ॥ त्वमेवयदिशक्तःस्यास्त्वन्यथाकर्तुमेवहि ॥ ३९ ॥ कुरुष्ववास्वयंनाथनास्माकंशक्तिरीदृशी ॥ दक्षउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागायद्युष्माभिःप्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ नान्यथाशक्यतेकर्तुंवेदमन्त्रोद्भवंबलम् ॥ एषयत्तुकृतोहोमोयु

त्यागना चाहिये उसी के लिये मैं आया हूं मुनिलोगबोले कि तुम्हारे यज्ञमें बड़ी भक्ति से आतेहुये हमलोगों को इन्द्र ने मद के आधिक्य से बार २ हँसकर उल्लंघन किया व अतिउग्र हम लोगों ने इन्द्र के नाश करने के लिये वीर्य्य मन्त्र से दूसरे इन्द्रको करनेके लिये प्रारम्भ किया व होमका अन्त प्राप्त हुआ है तो किस प्रकार विशेषकर वेदोक्त मन्त्रका वीर्य्य व्यर्थ कियाजाय यह विस्मयहै ॥ ३५।३६। ३७।३८ ॥ इसलिये हे विभो,नाथ ! इस विषयमें कहिये यदि तुम अन्यथा करनेही के लिये समर्थ हो तो आपही करिये हम लोगों की ऐसी शक्तिनहीं है दक्ष बोले कि हे महाभाग मुनियो ! जो तुम लोगों ने कहा है यह सत्य है ॥ ३९।४० ॥ कि

वेद मन्त्र से उपजाहुआ पराक्रम अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होताहै परन्तु बिन व्याकुल चित्तवाले तुम लोगों ने सुरराजके लिये जो यह होम किया व कलशको अभिमन्त्रित किया है सो यह मेरेवचनसे पक्षियों का राजा होवै ॥ ४१ । ४२ ॥ जो वह पक्षिराज तेज व बलसे संयुत तथा इन्द्रसे भी बलिष्ठ होगा और अज्ञानता से इसने जिस कर्मको कियाहै इस देवराजके उस कर्मको मेरेवचनसे क्षमा करना चाहिये ऐसा कहकर इसके अनन्तर दक्षजीने भयसे विकल व नम्रता से नीचेझुके खड़ेहुये उन हज़ार नेत्रवाले इन्द्रको उन मुनियोंको दिखलाया उन्होंनेभी कांपतेहुये व अञ्जलियोंको किये (हाथजोडे) हुये इन्द्रको देखकर कहा ॥ ४३ । ४४ । ४५ ॥

ष्माभिर्वेदमन्त्रतः ॥ ४१ ॥ देवराजार्थमव्यग्रैःकलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ सोयंमद्वचनाद्राजाभविष्यतिपतत्रिणाम् ॥ ४२ ॥ तेजोवीर्य्यसमोपेतःशक्रादपिसवीर्य्यवान् ॥ एतस्यदेवराजस्यक्षन्तव्यंममवाक्यतः ॥ ४३ ॥ तत्कृतंमूढभावेन यदनेनविचेष्टितम् ॥ एवमुक्त्वाथतेषांतंसहस्राक्षंभयातुरम् ॥ ४४ ॥ दर्शयामासदक्षस्तु विनयावनतंस्थितम् ॥ ते पिदृष्ट्वासहस्राक्षं वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ४५ ॥ प्रोचुर्मातिक्रमंशक्रब्राह्मणानांकरिष्यसि ॥ भूयोयदिदिवेशानामा धिपत्यंप्रवाञ्छसि ॥ ४६ ॥ अपिमन्दोपिमूर्खोपिक्रियाहीनोपिवाद्विजः ॥ नावज्ञेयोबुधैःक्वापिलोकद्वयमभीप्सुभिः ॥ ४७ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाद्यन्मयादुष्कृतंकृतम् ॥ तत्क्षन्तव्यंभवद्भिश्चविशेषाद्दक्षवाक्यतः ॥ ४८ ॥ प्र गृह्यतांवरोस्मत्तोयःसदावर्ततेहृदि ॥ प्रदास्यामिनसन्देहोनादेयंविद्यतेमम ॥ ४९ ॥ मुनयऊचुः ॥ अस्मिन्कुण्डेनरो होमंयःकुर्य्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्यतस्यास्तुहृदिवाञ्छितम् ॥ ५० ॥ इन्द्रउवाच ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्य

कि हे इन्द्र ! यदि स्वर्गेशों की स्वामिता को चाहते हो तो फिर ब्राह्मणों को उल्लंघन न करियेगा ॥ ४६ ॥ क्योंकि दोनों लोकोंके चाहनेवाले पण्डितों को निश्चयकर मूढ़भी व मूर्खभी व कर्मसे हीनभी द्विजका अपमान कहींपर भी न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ इन्द्रबोले कि मैंने अज्ञान से या ज्ञानसे जिस अपराध को किया है उसे आपलोगों को दक्षजी के वचन से विशेषकर क्षमा करना चाहिये ॥ ४८ ॥ व जो सदैव हृदय में वर्तमान है उस वरदान को हमसे ग्रहण करिये मैं निस्सन्देह दूंगा क्योंकि मुझको कुछ न देनेकेयोग्य नहींहै अर्थात् सब देसक्ताहूं॥ ४९॥मुनि लोग बोले कि श्रद्धासे संयुत जो मनुष्य इस लिंगको भलीभांति पूजकर इस कुण्ड

में होमकरैगा वह शीघ्रही समस्त वाञ्छितफलको पावैगा ॥५०॥ इन्द्रबोले कि जो मनुष्य इस लिंगको भलीभांति पूजकर यहांपर इस कुण्डमें होम करैगा वह निश्चयकर उसीक्षण सम्पूर्ण मनोरथ को पावैगा ॥ ५१ ॥ अथवा अकाम याने कोई कामना न रखनेवाला मनुष्य इस शुभदायक लिंगको भलीभांति पूजकर देवोंसे भी दुर्लभ परमसिद्धि को प्राप्तहोगा ॥ ५२ ॥ इन्द्रजी बालखिल्य मुनीश्वरोंसे इस प्रकार कहकर तदनन्तर ऐरावत हाथी गै भलीभांति सवारहोकर दक्षजी के यज्ञको चलेगये ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! दक्षजीने भी समीप बैठेहुये उन प्रसन्न बालखिल्य मुनियोंसे विधिपूर्वक यज्ञको किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे

च्चर्ययोत्रहोमंकरिष्यति ॥ कुण्डेत्रवाञ्छितंसद्यःसकलंसहिलप्स्यते ॥ ५१ ॥ निष्कामोवायसंपूज्यलिङ्गमेतच्छुभावहम् ॥ प्रयास्यतिपरांसिद्धिंत्रिदशैरपिदुर्लभाम् ॥ ५२ ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षोबालखिल्यान्मुनीश्वरान् ॥ ऐरावतंसमारुह्यदक्षयज्ञंततोगतः ॥ ५३ ॥ दक्षोपिविधिवद्यज्ञंचकारद्विजसत्तमाः ॥ संहृष्टैर्बालखिल्यैस्तैरुपविष्टैःसमीपतः ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेबालखिल्याश्रमकथनंनामअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥ * ॥

अथसुपर्णाख्यमाहात्म्यंभविष्यति ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं तेजोवीर्य्यसमन्वितः ॥ गरुडस्तेनसंजज्ञे मुनीनांहोमकर्म्मणा ॥१॥ सकथंतत्रसम्भूत एतन्नोविस्तराद्वद ॥ विनतायास्समुद्भूत इत्येषाश्रूयतेश्रुतिः ॥ २॥ सूतउवाच ॥ योसावाथर्वणैर्मन्त्रैः कलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ तैर्मन्त्रैर्बालखिल्यैश्च महाहर्षसमन्वितैः ॥ ३ ॥ निवारितैश्चदक्षेण

देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांबालखिल्याश्रमवर्णनंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । उन्नासी अध्याय में वरणत सो मुनिनाथ । गये विष्णुपहँ गरुड़ जिमि मित्र विप्र लै साथ ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि आपने जो यह कहा है कि मुनियों के उस होमकर्म से तेज व पराक्रम संयुत गरुड जी उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ उस हवन कर्म में वे गरुड़ किसप्रकार पैदाहुये हैं इस चरित्र को हम लोगों से विस्तार समेत कहिये क्योंकि विनता से उपजे हैं यही श्रुति सुनीजाती है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि दक्षजीको गरुड़ की सूचना करने पर बड़े हर्ष से संयुत व उन मन्त्रों से

मना कियेहुये बालखिल्य महर्षियों ने अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से जो यह कलश अभिमन्त्रित कियाथा उस कलश को कश्यप जी भलीभांति लेकर घरको
चलेगये ॥ ३।४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहोते हुये कश्यपजी अपनी प्यारी विनतासे बोले कि हे कल्याण कारिणि ! मन्त्र से पवित्र व अतिउत्तम इस जलको पिओ ॥ ५ ॥
कि जिससे पराक्रम में इन्द्र से अधिक व तेजवान् यशवान् तथा समस्त दैत्यों से न जीतने योग्य पुत्र तुम्हारे उत्पन्न होगा ॥ ६ ॥ उन कश्यपजीके उस
वचन को सुनकर उत्तम नितम्बवाली विनता ने उसीक्षण जल को पी लिया ॥ तदनन्तर उस जल से शीघ्रही गर्भ को धारण किया ॥ ७ ॥ इसप्रकार उस जल

सूचितेविहगाधिपे ॥ कश्यपस्तंसमादाय कलशंप्रययौगृहम् ॥४॥ ततःप्रोवाचसंहृष्टो विनतांदयितान्निजाम् ॥ एतत्पि
बजलंभद्रे मन्त्रपूतंमहत्तरम् ॥ ५ ॥ येनतेजायतेपुत्रस्सहस्राक्षाधिकोबले ॥ तेजस्वीचयशस्वीच अजेयःसर्वदानवैः ॥६॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तत्क्षणादेवसंपपौ ॥ तत्तोयेनवरारोहासद्योगर्भंततोदधे ॥ ७ ॥ एवंतज्जलपानेन तेजोवीर्य्यसम
न्वितः॥कश्यपाद्गरुडोजज्ञे सरीसृपभयावहः ॥८॥ येनामृतंहृतंवीर्य्यात्परिभूयपुरन्दरम् ॥ मातृभक्तिपरीतेन तत्सर्पाणां
निवेदितम् ॥ ६ ॥ योजातोदयितोविष्णोर्वाहनत्वमुपागतः ॥ ध्वजाग्रेतुरथस्यापि सदैवचाव्यवस्थितः ॥१०॥ येनपूर्वंतप
स्तप्त्वा क्षेत्रेऽस्मिन्सुमहात्मना॥ त्रिनेत्रस्तुष्टिमानीतोगतपक्षेणवेपता ॥ ११ ॥ पक्षसौयेनसंजाते यस्यभूयोपितादृशौ ॥
देवदेवप्रसादेन विशिष्टेचाथनिर्मिते ॥ १२ ॥ मुनयऊचुः ॥ कथंतस्यगतौपक्षौ गरुडस्यमहात्मनः ॥ पुनर्लब्धौकथंते

के पीने से कश्यपजी के सकाश से तेज व बल से संयुत तथा सांप बिच्छुओं को भयदायक गरुड़जी पैदाहुये हैं ॥ ८ ॥ माता की भक्ति में तत्पर जिन गरुडजी ने
बल से इन्द्र का तिरस्कार कर अमृत को हरलिया व उसको सांपों को निवेदन करदिया ॥ ६ ॥ जो गरुडजी विष्णु की सवारी में प्राप्त होकर प्रिय हुये हैं व स-
दैव रथके भी ध्वजा के अगाड़ी टिके हैं ॥ १० ॥ प्राचीन समय गिरेहुये पङ्खवाले व कांपतेहुये जिन गरुड़ महात्मा ने इस क्षेत्र में तपस्या को तपकर तीननयनवा-
ले शिवजी को प्रसन्नता में प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर देवताओं के देवता याने महादेवजी की जिस प्रसन्नता से सुन्दर रचेहुये व वैसेही जिन गरुड़जी

के पखने फिरभी होगये ॥ १२ ॥ मुनिलोग बोले कि उन गरुड़ महात्माके किसप्रकार पङ्ख गिरे थे व कैसे फिर मिले और उनने किसप्रकार महादेवजीको प्रसन्न किया है ॥ १३ ॥ हे सूतनन्दन ! इस चरित्र को यथायोग्य विस्तारसे कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय भृगुवंशके समूह का नायक द्विज शिशुता से भी गरुड़का मित्रहुआ प्राचीनसमय उस शक्तिमान् ब्राह्मण के भलीभांति मानीहुई माधवी नामक कन्या हुई है ॥ १४।१५ ॥ हे बड़ेभाग्यवाले ऋषियो ! रूप व उदारता से संयुत तथा समस्त लक्षणों से चिह्नित व शोभन कटिवाली जिसप्रकार की वह थी वैसे रूपवाली न देवी न गन्धर्विणी न दैत्यों की स्त्री न

न कथंतुष्टोमहेश्वरः ॥ १३ ॥ एतन्नोविस्तराद्ब्रूहि सूतपुत्रयथातथम् ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीद्ब्राह्मणोमित्रं भृगुवंश
कुलोद्वहः ॥ १४ ॥ गरुडस्यद्विजश्रेष्ठा बालभावादपिप्रभोः ॥ तस्यकन्यापुराजाता माधवीनामसंमता ॥ १५ ॥ रूपौदा
र्य्यसमोपेता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचपन्नगी ॥ १६ ॥ तादृग्रूपामहाभागा यादृशीसासुम
ध्यमा ॥ अथतस्यावरार्थाय गरुडंविहगाधिपम् ॥ १७ ॥ सप्रोवाचपरंमित्रो विनयावनतःस्थितः ॥ एतस्याममकन्या
यां वरंत्वंविहगाधिप ॥ १८ ॥ सदृशंवरमन्वीक्ष्व येनतस्मैददाम्यहम् ॥ गरुडउवाच ॥ ममपृष्ठंसमारुह्य समस्तंक्षि
तिमण्डलम् ॥ १९ ॥ त्वंभ्रमस्वद्विजश्रेष्ठ गृहीत्वेमांचकन्यकाम् ॥ ततस्तस्याःकुमार्य्यावै अनुरूपंगुणान्वितम् ॥ २० ॥
स्वयंचाहरभर्तारमेषामैत्रीममोद्भवा ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोथविप्रःसतत्क्षणात्कन्ययासह ॥ २१ ॥ आरूढोगारुडं

नागों की स्त्री थीं इस के अनन्तर विनय से झुकाहुआ स्थित वह परममित्र उस कन्या के वर के लिये पक्षियों के अधिपति गरुड़जी से बोला कि हे पक्षियों के पति ! तुम इस मेरी कन्या के समान वर को ढूंढ़ो जिससे मैं उसके लिये देऊं गरुड़ जी बोले कि हे द्विजोत्तम ! इस कन्या को लेकर व मेरी पीठपर चढ़कर समस्त भूमिमण्डल में भ्रमणकरो तदनन्तर उस कन्याके सदृशरूपवाले व गुणों से संयुत पतिको आपही लेआओ मुझ से उपजीहुई यही मित्रता है सूतजी बोले कि इस प्रकार कहाहुआ वह ब्राह्मण इसके अनन्तर उसी क्षण वरके लिये कन्या समेत गरुड़की पीठपै चढ़कर ॥ १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ ॥ उस द्विजोत्तम ने

वरके लिये उस समय जिस २ कुमार ब्राह्मणको देखा वह उसके चित्तमें किसी प्रकार न वर्तमानहुआ क्योंकि किसीके अति उग्ररूपथा परन्तु निर्मल कुल व धन नहीं था ॥ २२ । २३ ॥ व जिसके कुल व रूपथा उसके गुण सञ्चय न था व जिसके गुणसञ्चय था उसके उत्तमरूप व पक्षपात व द्रव्य तथा और वरके लक्षण न थे इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार वरके लिये उस ब्राह्मण व पक्षिनायक को भूतल में भ्रमते हुये हजार वर्ष होगये व किसी समय इधर उधर घूमते हुये वे दोनों थकगये ॥ २४ । २५ । २६ ॥ वे विष्णुजीको देखनेकी इच्छा से इसी क्षेत्रमें भलीभांति आयेहुये वे स्वेतद्वीप को भलीभांति देखकर व शुभदायक अन्य

कस्य पृष्ठं वरार्थायद्विजोत्तमः ॥ यंयंपश्यतिविप्रंस कुमारंवरणायच ॥ २२ ॥ तदानतस्याश्चित्तेस वर्ततेस्मकथंचन ॥ कस्यचिद्रूपमत्युग्रं नकुलंवसुनिर्मलम् ॥ २३ ॥ कुलंरूपंचयस्यस्यात्तस्यनोगुणसंचयः ॥ यस्यस्याद्गुणसंदोहस्तस्यनोरूपमुत्तमम् ॥ २४ ॥ पक्षपातंचवित्तंच तथान्यद्वरलक्षणम् ॥ एवंवर्षसहस्रान्तं भ्रमतस्तस्यभूतले ॥ २५ ॥ विप्रस्यपक्षिनाथस्य वरार्थायद्विजोत्तमाः ॥ कदाचिदथतौश्रान्तौ भ्रममाणावितस्ततः ॥ २६ ॥ क्षेत्रेऽत्रैवसमायातौ वासुदेवदिदृक्षया ॥ श्वेतद्वीपंसमालोक्य तथान्यांबदरींशुभाम्॥२७॥क्षीरोदंचसवैकुण्ठं तथान्यंतस्यसंश्रयम् ॥ अथताभ्यांमुनिर्दृष्टोनारदोब्रह्मसम्भवः ॥ २८ ॥ सान्त्वपूर्वंतदापृष्टो विष्णुंब्रह्मसनातनम्॥कदेवःपुण्डरीकाक्षस्साम्प्रतंवर्ततेमुने ॥ २९ ॥ नारदउवाच ॥ विष्णोःस्थानानिसर्वाणि वीक्षितानिसमन्ततः ॥ आवाभ्यांसंप्रहृष्टाभ्यां नसंदृष्टःसकेशवः ॥ ३० ॥ तस्मात्तद्दर्शनार्थाय गजलशायीतिरूपेण यावन्मासचतुष्टयम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे ससंतिष्ठतिसर्वदा ॥ ३१ ॥

बदरिकाश्रमको तथा वैकुण्ठ समेत क्षीरसागर को और उनके अन्य स्थानको देखकर इसके अनन्तर उन दोनोंने ब्रह्मासे उपजे हुये नारदमुनि को देखा ॥२७।२८॥ उस समय उन्होंने प्रियवचन पूर्वक सनातन ब्रह्म विष्णु जीको पूंछा कि हे मुने ! इस समय पुण्डरीकाक्ष देवजी किस स्थानपै वर्तमान हैं ॥ २९ ॥ श्रीविष्णु जीके समस्त स्थान सबओर से देखेगये परन्तु अति प्रसन्न हमदोनों ने उन केशवजीको भलीभांति न देखा ॥ ३० ॥ नारद बोले कि वे विष्णुजी चारमास पर्य्यन्त जलशायी

इसरूपसे निरन्तर हाटकेश्वर जीसे उपजेहुये क्षेत्रमें भलीभांति टिकेरहते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिये उनके दर्शनके लिये उस क्षेत्रमें शीघ्रही जाइये जिससे वे चक्रधारी विष्णु जी दोनोंके दर्शनमें प्राप्तहोगे ॥ ३२ ॥ मैंनेभी उन विष्णुजीके दर्शनमें वहांको प्रस्थान किया है व किसी देवकार्य्यसे प्रस्थान कियेहुये मैं तुमसे संयुत भया ॥ ३३ ॥ इस के अनन्तर वे पक्षी व द्विजेन्द्र तथा वे ब्रह्माके पुत्र (नारद) मुनि ये सबलोग वहांपर प्राप्तहुये जहांपर जलशायी भगवान् टिकेहुयेथे ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर दूरसे भी उस बड़ेभारी विष्णुजीके तेजको देखकर गरुड व मुनि-नाथ नारदजी ब्राह्मणसे बोले ॥३५॥ कि हे द्विजोत्तम ! कन्या समेत तुम कल्पान्ताग्निके समान वैष्णव तेज

म्यतांतत्रमाचिरम् ॥ येनसंदर्शनंयाति द्वाभ्यामपिसचक्रधृक् ॥ ३२ ॥ अहमप्येवतत्रैव प्रस्थितस्तस्यदर्शने ॥ प्रस्थितश्चत्वयायुक्तो देवकार्येणकेनचित् ॥ ३३ ॥ अथतौपक्षिविप्रेन्द्रौ सचब्रह्मसुतोमुनिः ॥ प्राप्तास्सर्वेस्थितोयत्र जलशायीजनार्द्दनः ॥ ३४ ॥ अथदृष्ट्वामहत्तेजो वैष्णवंदूरतोपितम् ॥ ब्राह्मणंगरुडःप्राह नारदश्चमुनीश्वरः ॥ ३५ ॥ अत्रैवत्वंद्विजश्रेष्ठ तिष्ठदूरेतितेजसः ॥ वैष्णवस्यसुतायुक्तः कल्पान्ताग्निसमस्यच ॥ ३६ ॥ नोचेत्संपत्स्यसेभस्म पतङ्ग इवपावके ॥ समासाद्यनिशायोगं गूढभावंसमाश्रितः ॥३७॥ आवाभ्यांतत्प्रसादेन सोढुमेतत्सुदुःसहम् ॥ नकरोतिशरीरार्तिं तथान्यदपिकुत्सितम् ॥ ३८ ॥ एवंतंब्राह्मणंतत्र उक्त्वादूरेसुतान्वितम् ॥ गतौतौतत्रसंसुप्तस्तोयेयत्रजनार्दनः ॥ ३९ ॥ दिव्यस्तुतिपरौमूर्ध्नि धृतहस्ताञ्जलीउभौ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौचानन्दाश्रुप्लुताननौ ॥ ४० ॥ त्रिःपरिक्रम्यतंदे

के अति दूरमें यहींपर टिको ॥३६॥ नहीं तो वैसेही भस्म होजाओगा जैसे कि रात्रिके योगको पाकर गुप्तभाव में समाश्रित पांखी पावक में जलजाती है ॥ ३७ ॥ उन विष्णुजीकी प्रसन्नता से वह दुःसह तेज हमदोनों के सहने के लिये योग्य है क्योंकि शरीर को क्लेश व औरभी निन्दित कर्मको नहीं करता है ॥ ३८ ॥ उन दोनोंने उस दूरस्थान में कन्यासे संयुत उस ब्राह्मण से इसप्रकार कहकर वहां चलेगये जहांपर कि जनार्दनजी जलमें सोतेथे ॥३९॥ उन भक्त दुःखहारींदेव की तीन परिक्रमाकर प्रणाम करतेहुये व दिव्य स्तुति में परायण व हाथों की अञ्जलियों को मस्तकपै धारे व रोमावली से चिह्नित समस्त अङ्गोंवाले व आनन्द के आंसुओं से संकुल मुखवाले

उन दोनोने पांयके समीप भलीभांति बैठी व समुद्र से उपजीहुई लक्ष्मी जीको देखा ॥ ४० । ४१ ॥ जो लक्ष्मीजी कि पांवमीडने में परायण व विष्णु जीके मुख की ओर नेत्रों को किये थीं इसके अनन्तर उन लक्ष्मी जीके समीप बैठीहुई अवस्थासे वृद्ध अन्यस्त्रीको देखा जोकि दुबले अङ्गोंवाली व बारह सूर्य्यों की छवि से संयुत व रोमावली से युक्त व स्वेत वसनसे लपेटीहुई तथा भलीभांति ध्यान में परायणथी ॥ ४२ । ४३ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न चित्तवाले उनदोनों सेभी विष्णु जीने हर्ष से सम्भाषण किया व जिसलिये आयेथे उसको पूंछा ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि हे केशव ! जो मुझसे पूछतेहो उसको सुनो कि मैं यहांपर तुम्हारे समीप देवताओंके

वमष्टाङ्गंप्रणतौहरिम् ॥ दृष्टवन्तौचपादान्ते सन्निविष्टांसमुद्रजाम् ॥ ४१ ॥ पादसंवाहनासक्तां विष्णुवक्त्राहितेक्षणा
म् ॥ अथापरांवयोवृद्धां श्वेतवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥ ४२ ॥ सन्निविष्टांतदभ्याशे सम्यग्ध्यानपरायणाम् ॥ द्वादशार्कप्र
भायुक्तां कृशाङ्गींपुलकान्विताम् ॥ ४३ ॥ अथतौविष्णुनाहर्षादुभावपिप्रहर्षितौ ॥ सम्भाषितौचसंपृष्टौयदर्थञ्चसमा
गतौ ॥ ४४ ॥ नारदउवाच ॥ अहंहिसुरकार्येण सम्प्राप्तोत्रतवान्तिके ॥ गरुडोवैब्राह्मणार्थेयन्मांपृच्छसिकेशव ॥ ४५ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ कच्चित्क्षेमंमुनिश्रेष्ठ सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ कच्चिदिन्द्रस्यसञ्जातं भयंदानवसम्भवम् ॥ ४६ ॥ य
ज्ञभागंलभन्तेस्मकच्चिद्देवाःसवासवाः॥ कच्चिन्नदानवःकश्चिदुत्कटोभूद्धरातले ॥ ४७॥ नारदउवाच ॥ साम्प्रतंधरणीप्रा
प्ता चतुर्वक्त्रस्यसन्निधौ ॥ रोरूयमाणाभारार्तादानवैःपीडिताभृशम् ॥ ४८ ॥ प्रोवाचपद्मजंतत्र दुःखेनमहतान्विता॥
धरण्युवाच ॥ कालनेमिर्हतोयोसौ विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ४९ ॥ उग्रसेनसुतःकंसः सम्भूतःसमहासुरः ॥ अरिष्टोधेनु

कार्य्य से भलीभांति प्राप्तहुआहूं और गरुड़ जी निश्चयकर ब्राह्मण केलिये आये हैं॥ ४५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुनिनाथ ! क्या समस्त देवताओं का कुशल है क्या दैत्योंसे उपजा हुआ डर इन्द्रके उत्पन्न हुआहै ॥ ४६ ॥ क्याइन्द्र समेत देवता यज्ञभाग को पातेहैं क्याकोई दैत्य धरातल में विकरालतो नहीं हुआहै ॥ ४७ ॥ नारद जी बोले कि इस समय दैत्यों से अति दुःखित व भारसे विकल तथा बहुत रोतीहुई पृथ्वी चारमुख वाले ब्रह्माके समीप प्राप्तहुई ॥४८॥ और वहांपर बड़े दुःखसे संयुत होतीहुई कमलसे उपजेहुये चतुराननसे बोली कि सर्वशक्तिमान् विष्णु जीसे जो यह कालनेमि मारागया है ॥ ४९ ॥ वह महादैत्य उग्रसेन का पुत्र कंसहुआ

है व अरिष्ट, धेनुक, केशी व अपर बकादि नामक हुआहै उसकी छोटी बहिन बड़ी विकराल पूतना नामक राक्षसी हुई है इधरउधर धावने वाले इन्हीं दानवों से व और भी भयङ्कर दैत्यों से मेरा योग व्यर्थ होजाता है इस समय मृत्युलोक में ऊर्ध्वबाहुनर नहीं उत्पन्न हुआहै ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ व दैत्यों की बहुताई से मेरे ऊपरभार की वृद्धि कैसे नहींहुई याने बड़ाभार हुआहै हे देव ! यदि पत्थरके नाई भारावतरणको न करोगे याने भारको न उतारोगे ॥ ५३ ॥ तोमैं रसातलको चली जाऊंगी इस में सन्देह नहीं है उस पृथ्वीके वचनको सुनकर लोकों के कर्ता ब्रह्माजीने देवों के साथ सम्मतिकर मुझको तुम्हारे समीप पठायाहै कि तुम जनार्दन देव भगवान् से

कःकेशी प्रलम्बोनामचापरः ॥५०॥ तस्यानुजामहारौद्रा पूतनानामराक्षसी ॥ इतश्चेतश्चधावद्भिर्दानवैरेभिरेवच ॥५१॥ वृथामेजायतेयोगस्तथान्यैरपिदारुणैः ॥ ऊर्ध्वबाहुस्तथाजातो मर्त्यलोकेनचाधुना ॥ ५२ ॥ बहुत्वान्नप्रयातिस्मकथंवृद्धिर्ममोपरि ॥ भारावतरणंदेव नकरिष्यसिचाश्मवत् ॥ ५३ ॥ रसातलंप्रयास्यामि तदहंनात्रसंशयः ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥५४॥ संमन्त्र्यविबुधैःसार्द्धं प्रेषितोहन्तवान्तिकम् ॥ प्रोक्तव्योभगवान्वाक्यंत्वयादेवोजनार्दनः॥५५॥यथावतीर्यभूपृष्ठे भारमस्याःप्रणाशयेत् ॥ तस्माद्भूमितलेदेव कृत्वाजन्मस्वयंविभो ॥ ५६ ॥ भारंनाशयमेदिन्या एतदर्थमिहागतः॥भगवानुवाच॥ एवंसर्वंकरिष्यामि संमन्त्र्यब्रह्मणासह ॥५७॥ भारावतरणंभूमेः सार्कंदेवैःसवासवैः॥एवमुक्त्वासतंविष्णुर्नारदंमुनिपुङ्गवम्॥५८॥ततस्तुगरुडंप्राह त्वंकिमर्थमिहागतः॥५९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्येविष्णुदर्शनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

उस भांतिवचनको कहना कि जिस प्रकार धरापृष्ठपै अवतारलेकर इस भूमिके भारको नाशकरैं हे व्यापक, देव ! इसलिये भूमितल में आपही जन्मकर ॥ ५४।५५।५६ ॥ पृथ्वीके भारको नाशकरो इसी के लिये मैं यहांआयाहूं भगवान् बोले कि इन्द्र समेत समस्त देवताओंके साथ व ब्रह्माके साथ सम्मतिकर पृथ्वीके समस्त भारावतरणको ऐसाही करूंगा याने भूमिका भार उतारूंगा वे विष्णुजी उन मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे ऐसाकहकर ॥५७।५८॥ तदनन्तर गरुड़से बोले कि तुम यहां किसलिये आयेहो ॥५९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्येएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❀ ॥

दो० । शाण्डिल्या के शापसों गरुड भये विनपक्ष । अस्सी के अध्याय में बरणत सोइ समक्ष ॥ श्रीगरुड जी बोले कि भृगुवंश में उपजाहुआ ब्राह्मण मेरा प्रिय मित्रहै उसके कमलदल लोचनो वाली माधवी नामक कन्या है ॥ १ ॥ जिसलिये उस महात्मा द्विजने उस कन्याके समान कान्त (पति) को न पाया उसीसे मुझ को आज्ञादिया कि यदि मैं आपको प्रिय हूं तो इसी के समान रूपवाले द्विजोत्तम पतिको तुम लेआवो तदनन्तर मैंने कन्याके वरके लिये सम्पूर्ण पृथ्वी को विलोकन किया ॥ २ । ३ ॥ परन्तु समस्त गुणों से संयुत वरको उसके लिये न पाया तदनन्तर सबही गुणों से संयुत व उसके सदृश रूपवाले पति पुण्डरीकाक्ष जी मेरे

श्रीगरुडउवाच ॥ ममास्तिदयितंमित्रं ब्राह्मणोभृगुवंशजः ॥ तस्यास्तिमाधवीनाम कन्याकमललोचना ॥ १ ॥ अनुरूपंद्विजश्रेष्ठं यद्य नतस्याःसदृशःकान्तःप्राप्तस्तेनमहात्मना ॥ यतस्ततोहमादिष्टः कान्तमस्यास्त्वमानय ॥ २ ॥ ततदर्थंवरोलब्धस्सर्वैःसमुचितोगुणैः ॥ ततस्तुपुण्डरी हंभवतःप्रियः ॥ ततोमयाखिलाभूमिस्तद्वरार्थंविलोकिता ॥ ३ ॥ नतदर्थंवरोलब्धस्सर्वैःसमुचितोगुणैः ॥ ततस्तुपुण्डरी काक्षोममचित्तेऽव्यवस्थितः ॥ ४ ॥ अनुरूपःपतिस्तस्याःसर्वैरेवगुणैर्युतः ॥ तस्मात्पाणिग्रहंतस्याःस्वीकुरुष्वसुरेश्वर ॥ ५ ॥ अत्यन्तरूपयुक्ताया ममवाक्यप्रणोदितः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अत्रानयद्विजश्रेष्ठ तांकन्यांकमलेक्षणाम् ॥ ६ ॥ मयादूरेवि यांचदृष्ट्वास्वयंपश्चात्प्रकरोमियथोचितम् ॥ गरुडउवाच ॥तवतेजोभयादेव साकन्याजनकान्विता ॥ ७ ॥ मयादूरेवि निर्मुक्ता तत्कथंतामिहानये ॥ भगवानुवाच ॥ अत्रतांप्रमदांतेजो जनकेनसमन्विताम् ॥ ८ ॥ नदहिष्यतितस्मात्त्वं शीघ्रंद्विजवरानय ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ९ ॥ तांकन्यामानयामासतंचविप्रंभृगूद्वहम् ॥ अथासौ

को स्वीकारकरो श्रीभगवान् बोले कि हे पक्षियों में श्रेष्ठ ! उस कमल नयनवाली कन्याको यहांलावो ॥ ४ । ५ । ६ ॥ कि जिसको देखकर पश्चात् जैसा योग्यहो वैसा करूं गरुड़जी बोले कि तुम्हारे तेजके भयसे पिता समेत उसकन्या को मैंने दूरमें छोडदिया है तो उसको किसप्रकार यहांलाऊं श्रीभगवान् बोले कि द्विजोत्तम ! पिता से संयुत उस कन्या को यहांपर तेज न जलावैगा इसलिये तुम शीघ्रही आनो सर्व शक्तिमान् विष्णु जीसे इस प्रकार कहेहुये गरुड़जी ॥ ७ । ८ । ९ ॥ उस कन्याको व उस भृगुनायक ब्राह्मण को लेआये इसके

चित्तमें व्यवस्थित हुये इसलिये हे सुरेश्वर ! मेरे वचनसे प्रेरित होतेहुये तुम अत्यन्त रूपसे युक्त उसके पाणिग्रहण

अनन्तर यह द्विज उच्चप्रकार से मधुसूदन को प्रणामकर गरुड़ के समीप लक्ष्मी की नाईं बगल में बैठगया व उन दोनोंके वचन से प्रशंसित तथा उत्तम नितम्ब
वाली वह कन्या भी मुरशत्रु (विष्णुजी) की शय्या पै दाहिने ओर भलीभांति बैठगई इसके अनन्तर क्रोधसे घिरेहुये अङ्गोंवाली व धर्म में टिकीहुई पटरानी ॥ १०।
११ । १२ ॥ लक्ष्मी जीने यह चिन्तवन किया कि यह सौति है इससे उस कन्या को शाप दिया कि हे पापिनि ! जिसलिये प्रसन्न होतीहुई तुम दूरही से लज्जाको
त्यागकर मेरे पतिकी शय्यापै मेरे अगाड़ी भलीभांति बैठगई इससे निश्चयकर बिगड़ीहुई व घोड़े के मुखवाली होगी ॥ १३ । १४ ॥ जब इसप्रकार लक्ष्मीने शाप

प्रणिपत्योच्चैर्ब्राह्मणोमधुसूदनम् ॥ १० ॥ लक्ष्मीवन्न्यविशत्पार्श्वे गरुडस्यसमीपतः ॥ सापिकन्यावरारोहा ताभ्यां
वाक्यादनिन्दिता ॥ ११ ॥ शय्यैकान्तेसमाविष्टा दक्षिणेमुरविद्विषः ॥ अथकोपपरीताङ्गी महिषीधर्म्ममाश्रिता ॥ १२॥
लक्ष्मीःशशापतांकन्यां सपत्नीतिव्यचिन्तयत् ॥ यस्मान्मेपुरतःपापे कान्तस्यममहर्षिता ॥ १३ ॥ शय्यायांत्वंसमा
विष्टा लज्जांत्यक्त्वासुदूरतः ॥ तस्मादश्वमुखीनूनं विकृतात्वंभविष्यसि ॥ १४ ॥ एवंशापेश्रियादत्ते हाहाकारोमहा
नभूत् ॥ सर्वेषांतत्रसंस्थानां कोपश्चापिद्विजन्मनः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सहस्रमिष्यतेकन्या करोत्येकःकरग्रहम् ॥
वाङ्मात्रेणनतस्यासीत्पत्नीभावःकथञ्चन ॥ १६ ॥ यावन्नापिद्विजातीनां प्रत्यक्षंगुरुसन्निधौ ॥ सुसंकल्प्यस्वयंदत्ता गृह्यो
क्तविधिनाजनैः ॥ १७ ॥ तस्मात्तुदोषनिर्मुक्ता शप्तासैषासुतात्वया ॥ कृतावाजिमुखीपापे त्वंगजास्याभविष्यसि ॥
१८ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रस्ततःप्रोवाचकेशवम् ॥ आतिथ्यंविहितंत्वेतत्तवपत्न्यायथोचितम् ॥ १९ ॥ तस्मात्तत्रप्र

दिया तबवहांपै टिकेहुये समस्त मनुष्योंका बड़ाभारी हाहाकार हुआ व द्विजकेभी क्रोधहुआ ॥ १५ ॥ ब्राह्मण बोला कि कन्याके लिये हजारों वर इच्छाकिये जाते हैं
परन्तु एकही पाणिग्रहण करताहै वचन मात्रसे उन विष्णु जीका किसीप्रकार स्त्री भावनहीं हुआ है ॥ १६ ॥ क्योंकि जबतक ब्राह्मणों के सामने व गुरुओं के समीप
गृह्यसूक्त की कहीहुई विधिसे मनुष्योंसे भलीभांति सङ्कल्पकर आपही नहीं दीजातीहै तबतक पत्नीभाव नहीं होताहै ॥ १७ ॥ जिसलिये हे पापिनि ! तुमने दोषसे रहित
उसीइस कन्याको शापदिया व अश्वमुखी किया इससे तुम गजमुखी होगी ॥ १८ ॥ उस द्विजेन्द्रने ऐसा कहकर तदनन्तर केशवजीसे कहा कि तुम्हारी स्त्रीने इसयथा-

योग्य पहुनई को किया ॥ १६ ॥ इसलिये वहां जाऊंगा जहांपर वैसीही कन्याहोगी भगवान् बोले किहे द्विजोत्तम ! तुमको इस कार्य्यमें खेद न करना चाहिये ॥ २० ॥
क्योंकि मेरे समीप प्राप्तहुये पुरुषोंको कहीं अशुभ नहीं होता है इसलिये यहकन्या इस जन्म में अश्वमुखी न होगी ॥ २१ ॥ तुम इसकन्या को लेकर घरजावो व अन्य
मनुष्य के लिये देदो शय्यापै वामदिशाका भाग स्त्रियोंको कहागयाहै ॥ २२ ॥ व उस समय में योग्य शयन करनेवाले बन्धुजनों को दाहिनाभाग कहागया है हे द्विज !
सो यह तुम्हारी कन्या भाइयों के स्थानपै भलीभांति बैठगई इसलिये दूसरे जन्ममें किसी देवकार्य्य से भूमिपृष्ठ में अवतरेहुये मेरी छोटी बहिन होगी ॥ २३।२४ ॥

यास्यामि यत्रस्यात्तादृशीसुता ॥ भगवानुवाच ॥ नसन्तापस्त्वयाकार्य्यः कृत्योस्मिन्द्विजसत्तम ॥ २० ॥ ममान्ति
कंप्रयातानांनाशुभञ्जायतेकचित् ॥ तस्मान्नाश्वमुखीत्वेषाजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥ २१ ॥ गृहीत्वेमांगृहंगच्छ
प्रयच्छस्वेतरायच ॥ शयनेवामदिग्भागः कलत्राणामुदाहृतः ॥ २२ ॥ दक्षिणोबन्धुलोकानां तत्कालोचितशायिना
म् ॥ सेयंतवसुताविप्र बन्धुस्थानंसमाश्रिता ॥ २३ ॥ भविष्यतितत‌ोजामिः कनिष्ठामेन्यजन्मनि ॥ अवतीर्णस्यभू
पृष्ठे देवकार्य्येणकेनचित् ॥ २४ ॥ वाजिवक्त्रधराप्रोक्तायदेषाममकान्तया ॥ ततोहंसुमहत्कृत्वा तपश्चैवानयासह ॥
२५ ॥ करिष्यामिशुभास्यांच ततोलक्ष्मीमपिद्विज ॥ एवंसभगवान्विप्रं तंसन्तोष्यतदागिरा ॥ २६ ॥ गरुडेनसमं
चक्रेकथाश्चित्रामनोरमाः ॥ अथकस्मिन्कथान्तेस गरुडःपुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥ प्रोवाचतांस्त्रियंदृष्ट्वा वृद्धांतेजःसम
न्विताम् ॥ अपूर्वेयंसुरश्रेष्ठ स्त्रीवृद्धातवपार्श्वगा ॥ २८ ॥ किमर्थंकेयमाख्याहि कुतःप्राप्ताजनार्दन ॥ श्रीभगवानुवा

कि हे द्विज ! जिसलिये मेरी स्त्रीने इसको अश्वमुख को धारनेवाली कहा है इसीसे मैं इसके साथ बडे भारी तपकोकर शोभन मुखवाली करूंगा व लक्ष्मीको
भी शुभदायक मुखारविन्द वाली करूंगा उन विष्णु भगवान् ने उस समय उस ब्राह्मण को इसप्रकार वाणीसे सन्तोषकर गरुडके साथ मनोहर व विचित्र कथाओं
को किया इसके अनन्तर किसी कथाके अन्त में गरुड़ जीने तेजसे संयुत व बूढ़ी उस स्त्रीको देखकर कहा कि हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारे समीपमें प्राप्तयह अपूर्व वृद्धास्त्री है ॥

२५ । २६ । २७ । २८ ॥ हे जनार्दन ! यह स्त्री किसलिये व कौन और कहांसे प्राप्त हुई है श्रीभगवान् बोले कि हे पक्षियों में उत्तम ! यह वृद्धकन्या शाण्डिली नामक इस लोकमें प्रसिद्ध है जोकि ब्रह्मचर्य्यमें लगी व तपस्या रूप बलसे संयुत व समस्त देवताओं से प्रणामकीहुई तथा समस्त वस्तुओंको जानने वाली है ॥ २६।३० ॥ हे गरुड ! इस त्रिलोक में ऐसी व इसके समान स्त्री निश्चयकर नहीं है सूतजी बोले कि तदनन्तर उन विष्णु जीके वचनको सुनकर व विहंसकर गरुड़ जीने प्रत्युत्तर को कहा ॥ ३१ ॥ कि हे पुरुषोत्तम ! जैसे जिस स्थान में दानदिया जाता है वह आश्चर्य्य नहीं है वैसेही संग्राम में युद्ध करने में निपुण पुरुषों से जो युद्ध किया

च ॥ एषाख्याताखगश्रेष्ठ लोकेस्मिन्वृद्धकन्यका ॥ २९ ॥ शाण्डिलीनामसर्व्वज्ञा ब्रह्मचर्य्यपरायणा ॥ तपोवीर्य्यसमो
पेता सर्वदेवाभिवन्दिता ॥ ३० ॥ नास्तिचैवेदृशीताक्ष्यसमानात्रजगत्त्रये ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वाविहस्यो
वाचचोत्तरम् ॥ ३१ ॥ यथाचदीयतेदानं यत्रतन्नास्तिचाद्भुतम् ॥ तथाचक्रियतेयुद्धं सङ्ग्रामेयुद्धशालिभिः ॥ ३२ ॥
नाश्चर्य्यंचित्रमेतत्तु ब्रह्मचर्य्यंतदद्भुतम् ॥ विशेषाद्यौवनावस्थां संप्राप्यपुरुषोत्तम ॥ ३३ ॥ विशेषेणचनारीभिस्तन्नैव
श्रद्दधाम्यहम् ॥ अवश्यंयौवनस्थेन तिर्यग्योनिगतेनच ॥ ३४ ॥ विकारःखलुकर्तव्यो नाविकाराययौवनम् ॥ यदिन
प्राप्नुवन्त्येताः पुरुषंयोषितःक्वचित् ॥ ३५ ॥ अन्योन्यंमैथुनंचक्रुः कामबाणप्रपीडिताः ॥ कुष्ठिनंव्याधिनंवापि स्थविरं
व्यङ्गमेवच ॥ ३६ ॥ प्राप्यैताःपुरुषाभावे मन्यन्तेपञ्चशायकम् ॥ नाग्निस्तृप्यतिकाष्ठानां नापगानांमहोदधिः ॥ ३७ ॥

जाता है वह भी अद्भुत नहीं है परन्तु विशेषतासे युवावस्थाको भलीभांति पाकर यह ब्रह्मचर्य्य आश्चर्य्य है ॥ ३२ । ३३ ॥ व स्त्रियों को विशेषकर ब्रह्मचर्य्य करना आश्चर्य्य है मैं उसको नहीं विश्वास करताहूं क्योंकि पशुपक्षी की योनि में प्राप्त व युवावस्था में टिकाहुआ पुरुष अवश्यकर विकारकरने के योग्य होताहै यदि कामदेव के बाणसे पीड़ित होतीहुई ये स्त्रियां कहीं पुरुषको नहीं पातीहैं तो आपस में मैथुन करती हैं ये स्त्रियां पुरुषके न होनेपर कुष्ठी व रोगी भी अथवा वृद्ध या बिगडेहुये अङ्गों वालेही नर को पाकर पांचबाणवाले अर्थात् कामदेवहीको मानतीहैं काष्ठोंसे अग्नि व नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता है ॥ ३४ । ३५ । ३६ । ३७ ॥

और समस्त प्राणियों से यमराज व पुरुषों से स्त्रियां नहीं तृप्तहोती हैं येस्त्रियां एक तो भूपोंके भयको या गुरुजनों (माता पितादिकों) से उपजेहुये भयको छोडकर परलोक के भयसे मर्य्यादा को नहीं धारती हैं सूतजी बोले कि उन गरुड़ जीके ऐसे वचनको सुनकर मौनव्रत धारिणी भी उस शाण्डिली नामक ब्रह्मचारिणी ने चित्तमें क्रोधको धारणकिया इसी अवसर मे उन पक्षियों के नायक गरुड जीके दोनों पंख उसीक्षण नाश होगये इसके अनन्तर वे गरुडजी समस्त लोमों से रहित व मांस के पिण्डमय व विकराल तथा रुण्ड के आकारवाले होगये ॥ ३८ । ३९ । ४० । ४१ ॥ और वैसेही कहींपर पगभर भी जाने के लिये असमर्थ होगये ॥ ४२ ॥

नान्तकःसर्व्वभूतानां नपुंसांवामलोचना ॥ नपरत्रभयादेता मर्य्यादांविदधुःस्त्रियः ॥ ३८ ॥ मुक्त्वाभूपभयंचैकमथ वागुरुजंभयम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वा शाण्डिलीब्रह्मचारिणी ॥ ३९ ॥ मौनव्रतधराप्येवं हृदिकोपंदधार सा ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्य पक्षिनाथस्यतत्क्षणात् ॥ ४० ॥ उभौपक्षौगतौनाशं रुण्डाकारोथसोभवत् ॥ मांसपिण्ड मयोरौद्रःसर्वरोमविवर्जितः ॥ ४१ ॥ अशक्तश्चतथागन्तुंपदमात्रमपिकंचित् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयप रिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णपक्षपातवर्णनंनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तद्दृष्ट्वापुण्डरीकाक्षोगरुडस्यविचेष्टितम् ॥ विस्मितश्चिन्तयामास किमिदंसाम्प्रतंस्थितम् ॥ १ ॥ अ पिवज्रप्रहारेण यस्यरोमापिनच्युतम् ॥ तौपक्षौसहसाचास्यकथंनिपतितौभुवि ॥ २ ॥ नूनमेतेनयास्त्रीणां कृतानिन्दाम

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगरुड़पक्षपातवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥

दो० । इक्यासी अध्याय में कहत रुचिर सो गाथ । पूजि शङ्करहिं गरुड़ जिमिभये सपक्ष सनाथ ॥ सूतजी बोले कि गरुड़ जीके उसकर्म को देखकर विस्मय में प्राप्त होतेहुये पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) ने चिन्तवन किया कि इस समय यह क्या स्थित होगया ॥ १ ॥ कि वज्रके प्रहारसे भी जिन गरुड़ जीका लोम भी न गिरा इन्हीं गरुड़ जीके वे दोनों पक्ष अचानक भूमिमें कैसे गिर पड़े ॥ २ ॥ इस महात्माने शाण्डिली को भलीभांति देखकर निश्चयकर स्त्रियों की निन्दाकिया व

ब्रह्मचर्य्य को दूषित किया इसलिये इस स्त्रीने तपस्याकी शक्ति के प्रभावसे पङ्खोंको गिराया है क्योंकि त्रिभुवन में अन्य पुरुषके ऐसी शक्ति नहीं है ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! करुणता व विनय से संयुत गरुड़ध्वज (विष्णु) ने मुसकराकर शाण्डिलीको प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे महाभागे ! समस्त स्त्रियों के मनको नहीं कहा किन्तु सामान्य वचन को इनगरुड़ने कहा है तो किस लिये तुमनेही ऐसाकर दिया ॥ ६ ॥ शाण्डिली बोली कि हे मुसक्यान युक्तमुख वाले, जगद्गुरो, जनार्दनजी ! बहुतही अकोसतेहुये भी उस गरुड़ने मेरे मुखको भलीभांति देखकर नारियों की निन्दा किया ॥ ७ ॥ हे केशव ! इसी कारणसे मैंने

हात्मना ॥ दूषितंब्रह्मचर्य्यंतच्छाण्डिलींसमवेक्ष्यच ॥ ३ ॥ अनयापातितौपक्षौ ततःशक्तिप्रभावतः ॥ नान्यस्यविद्यते शक्तिरीदृशीभुवनत्रये ॥ ४ ॥ ततःप्रसादयामास शाण्डिलींगरुडध्वजः ॥ कारुण्यविनयोपेतः स्मितंकृत्वाद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सामान्यवचनंप्रोक्तंसर्वस्त्रीणांमनोनहि ॥ तत्किमर्थंमहाभागे त्वयाचैवेदृशःकृतः ॥ ६ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ ममवक्त्रंसमालोक्य स्मितवक्त्रजनार्दन ॥ स्त्रीनिन्दाविहितातेन सुशप्त्वापिजगद्गुरो ॥७॥ एतस्मात्कारणादस्य निग्रहोयंमयाकृतः ॥ मनसानचवाक्येन नचकेशवकर्म्मणा ॥ ८ ॥ भगवानुवाच ॥ तथापिकुरुचास्यत्वं प्रसादंगतकल्मषे ॥ ममवाक्यानुरोधेन यदिमांमन्यसेशुभे ॥ ९ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ मनसापिमयाध्यातं शुभंवायदिवाशुभम् ॥ नान्यथाजायतेदेव विशेषात्कोपयुक्तया ॥ १० ॥ तस्मादेषममादेशादाराधयतुशङ्करम् ॥ पक्षलाभायनान्यस्य शक्तिर्दातुंव्यवस्थिता ॥ ११ ॥ अथवापुण्डरीकाक्षरूपमीदृग्व्यवस्थितः ॥ एषसंस्थास्यतेलोके

इसके इस दण्डको किया व मन, वचन, कर्म से नहीं किया है ॥ ८ ॥ भगवान् बोले कि हे पापों से रहिते, शुभे ! यदि मुझको मानती होतो तिसपर भी मेरे वचनके रोक से तुम इस गरुड़ के ऊपर प्रसन्नताकरो ॥ ९ ॥ शाण्डिली बोली कि हे देव ! मैंने यदि मन सेभी शुभ या अशुभ का ध्यान कियातो अन्यथा नहीं होता है और कोपयुक्त वाली मुझसे चिन्तित कार्य्य विशेषकर अन्यथा नहीं होता ॥ १० ॥ इसलिये पङ्खलाभ के निमित्त यह गरुड़ हमारी आज्ञासे शङ्करजीका आराधन करै अन्यदेवकी शक्ति देनेके लिये विशेषकर स्थित नहीं है ॥ ११ ॥ अथवा हे पुण्डरीकाक्ष ! यह ऐसेही रूपमें विशेषता से प्राप्तहोकर संसार में भलीभांति टिकै

मैं इसको सत्य कहतीहूं ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि उस शाण्डिलीके उस वचनको सुनकर जनार्दन जीने मांसपिण्ड के समान टिकेहुये व पङ्खोंसे रहित उन गरुड़
जीसे कहा ॥ १३ ॥ कि ये चन्द्रभाल देवजी संसार में भलीभांति टिके हैं तुम सावधान चित्त में टिककर व निरालस्य होकर अहर्निश इनका आराधन करो ॥ १४ ॥
जिस से कि हे कश्यपके पुत्र, गरुड़ ! उन देवके माहात्म्य से व उनके प्रभाव से थोड़ेही काल मेंभी तुम्हारा फिर वैसाही शरीर होजावै ॥ १५ ॥ उस वचन को सुन
कर शीघ्रही सदाशिवके व्रतको धारेहुये गरुड़जीने ईशान (शिव) देवको भलीभांति थापकर तदनन्तर उनको प्रसन्नता में प्राप्त किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उन गरुड़

सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा तंप्रोवाचजनार्दनः ॥ गरुडंपक्षसंत्यक्तं मांसपिण्डो
पमंस्थितम् ॥ १३ ॥ एषसंस्थास्यतेलोके देवस्तुशशिशेखरः ॥ अव्यग्रंचित्तमास्थाय दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ १४ ॥
येनतेतत्प्रभावेण भूयस्स्यात्तादृशंवपुः ॥ तस्यदेवस्यमाहात्म्यादचिरादपिकाश्यप ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वागरुडस्तूर्णं धृतपा
शुपतव्रतः ॥ संस्थाप्यदेवमीशानं ततस्तंतोषमानयत् ॥ १६ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि तथासान्तपनानिच ॥ प्रा
जापत्यानिचक्रेथ पाराकाणितदग्रतः ॥ १७ ॥ स्नात्वात्रिषवणंपश्चाद्भस्मस्नानपरायणः ॥ जपन्रुद्रशिरोवेदं शतरुद्रि
यमथापराम् ॥ १८ ॥ चक्रेपूजांस्वयंतस्य स्नापयित्वायथाविधि ॥ बलिपूजोपहारांश्च विधानेनप्रयच्छति ॥ १९ ॥
एवंतस्यव्रतस्थस्य जपपूजापरस्यच ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेगतस्तुष्टिंमहेश्वरः ॥ २० ॥ अब्रवीद्वरदोस्मीति वृणुष्वेष्टं
द्विजोत्तम ॥ गरुडउवाच ॥ पश्यावस्थांममेशान शाण्डिल्यायाविनिर्मिता ॥ २१ ॥ पक्षपातःकृतोस्माकं तमहंप्रा

जीने कृच्छ्र चान्द्रायणों व कृच्छ्र सान्तपनों व प्राजापत्यों व्रतों को किया उसके अगाड़ी कृच्छ्र पाराक व्रतोंको किया ॥ १७ ॥ व प्रातःकाल, मध्याह्न, सायाह्न में न-
हाकर पश्चात् विभूति के स्नान में तत्पर होकर इसके अनन्तर आपही वेदमय रुद्रशिरको व अन्य शतरुद्रिय को जपते हुये विधिपूर्वक स्नान कराकर उन शिव
जीका विधिपूर्वक पूजन किया व विधान से भेंट, पूजन, उपहारों को दिया ॥ १८ । १९ ॥ इस प्रकार जप, पूजन में परायण व व्रतमें टिकेहुये उन गरुड़ जीके ऊपर
हज़ार वर्षके बाद महादेव जी प्रसन्नहुये ॥ २० ॥ व यह बोले कि हे पक्षियों में उत्तम, गरुड़ ! मैं वरदायकहूं तुम मनोरथ को मागो गरुड़ जी बोले कि हे ईशान !

स्कं०पु० ४३९

शाण्डिली नामक ब्राह्मणी से बनाईहुई मेरी दशाको देखिये ॥ २१ ॥ हे हरजी ! हमारा पक्षपात किया है याने मेरे पङ्ख गिरादिये गये हैं उन्हींको मैं निश्चयकर मांगताहूं व यदि इससमय तुम मनोरथ को देते हो तो मेरे वचन से निस्सन्देह मेरे इसी लिङ्गमें तुमको सदैव टिकना चाहिये श्रीभगवान् शिवजी बोले कि आजसे लगाकर इस लिङ्गमें मेरा निवास होगा ॥ २२ । २३ ॥ हे विहङ्गम ! मेरी प्रसन्नतासे तुम उसी रूपसे संयुत व विशेषतासे बल, वेग के भागी होगे इसमें सन्देह नहीं है २४ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर शङ्कर देव जीने आपही उन गरुड़ को हाथसे स्पर्श किया तदनन्तर इन गरुड़ के उसी क्षणही सुन्दर पङ्ख होगये ॥ २५ ॥ और

र्थयामिवै ॥ त्वयात्रैवसदालिङ्गेस्थेयंहरममाधुना ॥ २२ ॥ ममवाक्यादसंदिग्धं यदिचेष्टंप्रयच्छसि ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिचैवात्र लिङ्गेवासोभविष्यति ॥ २३ ॥ त्वंचतद्रूपसम्पन्नो विशेषाद्बलवेगभाक् ॥ भविष्यतिनसन्देहो मत्प्रसादाद्विहङ्गम ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाथतंदेवःस्वयंपस्पर्शपाणिना ॥ ततोस्यपक्षौसंजातौ तत्क्षणादेवसुन्दरौ ॥ २५ ॥ तथा रोमाणिदिव्यानि जातरूपमयानिच ॥ अपिपापसमाचारो कल्मषीनिर्घृणोपिवा ॥ २६ ॥ ब्रह्मघ्नोवासुरापोवा चौरो वाभ्रूणहापिवा ॥ त्रिकालंपूजयेद्यस्तु श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २७ ॥ योवत्सरंवसेत्सोपि शिवलोकेमहीयते ॥ अथवासोमवारेण यस्तंपश्यतिमानवः ॥ २८ ॥ कृत्वाक्षणंसुभक्त्यायो यावत्संवत्सरंद्विजाः ॥ सोपियातिनसन्देहः पुरुषःशिवमन्दिरम् ॥ २९ ॥ विमानवरमारूढो सेव्यमानोप्सरोगणैः॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलिकालेविशेषतः ॥ ३० ॥ द्रष्टव्योवैसुपर्णाख्योदेवःश्रद्धासमन्वितैः ॥ सन्त्याज्याश्चतथाप्राणास्तदानियममाश्रितैः ॥ ३१ ॥ वाञ्छद्भिःशिवसान्निध्यं सत्य

वैसेही स्वर्णमय उत्तम रोयें होगये पाप आचरणवालाभी व पातकी तथा निर्दयी भी या मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा गर्भसङ्घाती भी जो पुरुष श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके उन सदाशिव जीका त्रिकाल पूजन करै ॥ २६ । २७ ॥ और जो वर्षभर निवासकरै वहभी शिवलोक में पूजित होताहै अथवा हे ब्राह्मणो ! वर्षभरतक सोमवारको जो पुरुष उत्तम भक्ति से उछाहकर उन सदाशिव जीको देखता है वहभी मनुष्य उत्तम विमानपै चढ़ा व अप्सराओं के समूहोंसे सेवित होताहुआ निस्सन्देह शिव जीके मन्दिर को जाता है इसलिये कलिकाल में विशेषकर श्रद्धासंयुत जनोंको सब उपायसे सुपर्ण नामक शिव देवको देखना चाहिये व उसी समय नियमों

में टिकेहुये तथा शिव जीकी समीपताके चाहनेवाले पुरुषोंको प्राणोंको भलीभांति त्यागना चाहिये यह मैंने सत्य कहाहै ॥ २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्यंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ❀ ॥

दो० । बयासिवें अध्याय में कह गरुडेश हवाल । पूजि जिनहिं नीरुज भयो वेणु नाम नरपाल ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय वहांपर जो आश्चर्य्य
हुआ है उसको मैं कहूंगा जोकि पुराण में कहा है ॥ १ ॥ प्राचीन समय सूर्य्य वंशमें उत्पन्न वेणुनामक भूपाल हुआ है जोकि सदैव पापसे संयुत व दुष्ट बुद्धिवाला तथा

मेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सुपर्णाख्यमाहा
त्म्यन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्राश्चर्य्यमभूत्पूर्वं यत्तद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ अहंचकीर्तयिष्यामि पुराणेयदुदाहृतम् ॥ १ ॥ वेणुर्नाम
महीपालः पुरासीत्सूर्य्यवंशजः ॥ सदैवपापसंयुक्तो दुर्मेधाःकामपीडितः ॥ २ ॥ शासनानिप्रदत्तानि ब्राह्मणानांमहा
त्मनाम् ॥ अन्यैःपार्थिवशार्दूलैस्तेनतानिहतान्यलम् ॥ ३ ॥ वध्वोनीताःस्त्रियोनेका विधवाश्चविशेषतः ॥ कुमार्य्योरू
पवत्यश्च तथानिजकुलोद्भवाः ॥ ४ ॥ देवताराधनंपूजांकर्तुंनैवददातिसः ॥ नचयज्ञञ्चहोमञ्च स्वाध्यायंनचपापकृ
त् ॥ ५ ॥ प्रोवाचचजनान्सर्वान्मांपूजयथसर्वदा ॥ नमत्तोभ्यधिकोन्योस्ति देवोवाब्राह्मणोपिवा ॥ ६ ॥ मयातुष्टेनसर्वे
षांसंपत्स्यतिहृदीप्सितम् ॥ दैवतेष्वपिसंदिग्धंशुभंवायदिवाशुभम् ॥ ७ ॥ तेनशास्त्रविहीनानांविश्वस्तानांवधःकृतः ॥

कामदेव से दुःखितथा ॥ २ ॥ उसने महात्मा ब्राह्मणोंको उन आज्ञाओं को दिया कि जो अन्य नृपपुङ्गवों ने बहुतही नष्ट करदियाथा ॥ ३ ॥ उसने अनेकों बहू स्त्रियों
व विशेषकर विधवा, कुमारी तथा स्ववंश मे उपजी हुई रूपवती स्त्रियों को लाया ॥ ४ ॥ वह पापकारी नृप यज्ञ, होम, वेदपाठ व देवाराधन तथा पूजनको नहीं
करने देताथा ॥ ५ ॥ व समस्त मनुष्यों से उसने कहा कि तुमलोग सदैव मुझको पूजो क्योंकि मुझसे अधिक दूसरा देवता या ब्राह्मणभी नहीं है ॥ ६ ॥ क्योंकि
प्रसन्नहुये मुझसे समस्त नरों के हृदय का मनोरथ भलीभांति प्राप्तहोगा जोकि देवताओं मेंभी शुभ या अशुभ का सन्देहभूत है ॥ ७ ॥ उस नृपति ने विश्वास में

प्राप्तहुये व शस्त्र से रहित पुरुषों को वध किया व भयसे विकल तथा शरण में प्राप्त हुये पुरुषों को त्यागकिया है ॥ ८ ॥ और वह महायुद्ध में समीप प्राप्तहुये शत्रु समूहोंको देखकर प्राणों की रक्षाके लिये क्षत्रियके धर्मको छोड़कर भग जाताथा ॥ ९ ॥ व उसने चोरी न करनेवाले जनोंको भलीभांति ग्रहण किया याने पकड़ा है व नित्य उनके द्रव्यको हरतेहुये चोरोंकी भलीभांति रक्षाकिया व सदैव साधु जनों को क्लेशित किया है ॥ १० ॥ व उसने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके कभी व्रतको नहीं किया व पूजन के योग्य पदार्थको ब्राह्मणों के लिये कभी नहीं दियाहै ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार नित्यही पापमें परायण उस नरेश के उसी कारण बहुतही क-

संत्यक्ताःशरणम्प्राप्ताःपुरुषाभयविह्वलाः ॥ ८ ॥ नष्टोमहाहवेदृष्ट्वाशत्रुसङ्घानुपस्थितान् ॥ क्षात्रधर्मम्परित्यज्य प्राणरक्षार्थमेवहि ॥ ९ ॥ अचौराःसंगृहीताश्चचौरास्संरक्षिताःसदा ॥ साधवःक्लेशितानित्यंतेषाञ्चहरताधनम् ॥ १० ॥ नकदाचिद्व्रतन्तेनश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ नदत्तंब्राह्मणेभ्यश्चनयष्टव्यंकदाचन ॥ ११ ॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्यपापासक्तस्यनित्यशः ॥ कुष्ठव्याधिरभूत्तीव्रावंशोच्छेदश्चतद्द्विजाः ॥१२॥दायादास्सहसातस्यराज्यञ्जहुस्ततःपरम् ॥ ततस्तुव्याधिनाग्रस्तंपुत्रैःपौत्रैर्विवर्जितम् ॥ १३ ॥ तञ्चनिर्वासयामासुस्तस्माद्देशात्पदातिनम् ॥ एकाकिनम्परित्यक्तंसर्वैरपिसुहृद्गणैः ॥ १४ ॥ सोपिसर्वैःपरित्यक्तस्तेनपापेनकर्म्मणा ॥ कलत्रैरपिचात्मीयैः स्मृत्वापूर्वविचेष्टितम् ॥ १५ ॥ एकाकी भ्रममाणोथ सोपिकुष्ठवशङ्गतः ॥ क्षुत्तृष्णाभ्याम्परिश्रान्तःक्षेत्रमेतत्समागतः ॥ १६ ॥ ततःप्रासादमासाद्यसुपर्णाख्यसमुद्भवम् ॥ यावत्प्राज्ञःपरित्यक्तस्तावत्प्राणैरुपोषितः ॥ १७ ॥ ततोदिव्यवपुर्भूत्वा विमानवरमाश्रितः ॥ जगामशि

ठिन कुष्ठरोग व वंशका उच्छेद हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर उसके बन्धुओंने एकाएकी राज्यको हरलिया उसके उपरान्त रोगसे ग्रॅसे व पुत्र, पौत्रोंसे रहित व समस्त भी मित्रगणोंसे त्यागेहुये व पैदरि तथा अकेले उस नृपतिको उस देशसे निकालदिया॥१३।१४ ॥ उस पापकर्म से अपनी समस्त स्त्रियों सेभी त्यागाहुआ वह भूपति पहलेके कर्मको स्मरणकर ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर कुष्ठके वशमें प्राप्त व अकेले घूमताहुआ वह नृपतिभी भूख प्यासरो बहुत थककर इस क्षेत्रको भलीभांति आया ॥ १६ ॥ तदनन्तर गरुड़ नामसे उपजेहुये मन्दिर में आकर उसबुद्धिमान् ने जबतक उपास किया तबतक उसके प्राण छूटगये ॥ १७ ॥ तदनन्तर उत्तम विमानपै टिकाहुआ

वह दिव्य शरीरवाला होकर धार्मिक जनोंसेभी दुर्लभ शिवलोक को चलागया ॥ १८ ॥ व अप्सराओं से सेवित तथा किन्नरों से स्तुति कियाहुआ व गन्धर्वों से गाया हुआ वह शिवजीके समीपमें टिका ॥१९॥ इसके अनन्तर पार्वतीने उसको समीपमें देखकर आदर समेत पूंछा कि हे देव ! तुम्हारे मन्दिरमें यह कौन पुण्यवान् भलीभांति आयाहै ॥ २० ॥ इसने कौन कर्म कियाहै कि जिससे विभूतिधारी होकर यहां प्राप्त हुआहै श्रीभगवान् बोले कि यह भूमिपृष्ठ में वेणु नामक भूपति होकर सदैव पाप का आचरण करनेवाला यह कुष्ठरोगसे संकुलहुआ वह शत्रुवर्गसे पराभवको प्राप्त होकर अपनी स्त्रियों से त्याग कियागया ॥ २१ । २२ ॥ और उपास में तत्पर तथा

वल्लोकंस दुर्ल्लभंधार्मिकैरपि ॥ १८ ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्चस्तूयमानश्चकिन्नरैः ॥ गीयमानश्चगन्धर्वैः शिवपार्श्वेऽयव स्थितः ॥ १९ ॥ अथतंसन्निधौदृष्ट्वा गौरीपप्रच्छसादरम् ॥ कोयन्देवसमायातस्सुकृतीतवमन्दिरे ॥ २० ॥ अनेनकिं कृतंकर्म्मयत्प्राप्तोत्रविभूतिधृक् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एषपापसमाचारस्सदासौपृथिवीपतिः ॥ २१ ॥ वेणुःसन्वैधरा पृष्ठे कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ ससन्त्यक्तोनिजैर्दारैः शत्रुवर्गेणधर्षितः ॥ २२ ॥ भ्रममाणःसमायातस्सुपर्णाख्यस्यम न्दिरे ॥ उपवासपरःश्रान्तः सान्निध्यंममयत्रच ॥ २३ ॥ सर्वप्राणैःपरित्यक्तः तस्मिन्नायतनेशुभे ॥ तत्प्रभावादिहप्रा प्तस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २४ ॥ अन्योप्यनशनंकृत्वाप्राणान्यस्तत्रसन्त्यजेत् ॥ सचास्याभ्यधिकांभूतिमाप्नु याद्वरवर्णिनि ॥ २५ ॥ यानेतान्पश्यसेदेवि गणान्मेपार्श्वसंस्थितान् ॥ एतैस्तत्रकृतंसर्वैस्तत्रप्रायोपवेशनम् ॥ २६ ॥ अपिकीटपतङ्गायेपशवःपक्षिणोमृगाः॥प्रासादेतत्रनिर्मुक्ताःप्राणैर्यान्तिममान्तिकम् ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापा

घूमताहुआ व थककर वह नृपति सुपर्णाख्य मन्दिर में भलीभांति आया जहांपर कि मेरी समीपता है ॥ २३ ॥ उसी शुभदायक मन्दिर में समस्त प्राणों से त्यागाहुआ वह उसीके प्रभावसे यहां प्राप्तहुआ है यह मैंने सत्य कहा है ॥ २४ ॥ हे उत्तम वर्णवाली, पार्वती जी ! और भी जो मनुष्य भोजनको न कर उस मन्दिर में प्राणोंको त्यागताहै वह इस सेभी अधिक ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ हे देवि ! इन मेरे बगल में भलीभांति टिकेहुये जिन गणोंको तुम देखती हो इन सबोंने वहांपर अन्न, पानको त्यागन किया है ॥ २६ ॥ जे पशु, पक्षी, पांखी, कीड़ा व मृग भी हैं वे उस मन्दिर में प्राणों को त्यागकर मेरे समीप प्राप्तहोते हैं ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि शिव

जी से कहेहुये उस वचनको सुनकर विस्मयसे व्याप्त हृदयवाली वे पार्वतीजी बहुत अच्छा बहुत अच्छा यह बोलीं ॥ २८ ॥ तबसे लगाकर इस लोक में मोक्षको चाहने वाले परमश्रद्धासे संयुत पुरुष वहांपर दूरसे भी भलीभांति आकर व अन्न, पानको त्यागकर मरनेपै उतारू होकर अपने प्राणोंको त्यागते भये जिस सुपर्ण नामक शिव जीके माहात्म्यको मैंने अपने पितासे सुनाथा उसको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ २९ । ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिता यांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सुपर्णाख्यमाहात्म्यंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

र्वतीवाक्यं प्रोक्तंदेवेनशम्भुना ॥ विस्मयाविष्टहृदयासाधुमाध्वितिसाब्रवीत् ॥ २८ ॥ ततःप्रभृतिलोकेत्र पुरुषामुक्ति मिच्छवः ॥ दूरतोपिसमभ्येत्य स्वान्प्राणांस्तत्रतत्यजुः ॥ २९ ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा श्रद्धयापरयायुताः ॥ सुपर्णाख्य स्यमाहात्म्यं यन्मयास्वपितुःश्रुतम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहा त्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्यन्नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तन्देवदेवेनविष्णुना ॥ माधवींभगिनीम्प्राप्य जन्मान्तरमुपस्थिताम् ॥ १ ॥ अश्व वक्त्रांकरिष्यामि तपसासुशुभाननाम् ॥ साकथंविहितातेनतपस्तप्तंतथाकथम् ॥ २ ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहि नः ॥ सूतउवाच ॥ नारदस्यसमाकर्ण्य तंसन्देशंसुरोद्भवम् ॥ ३ ॥ गत्वाविष्णुस्सुरैस्सार्द्धम्प्रचक्रेमन्त्रनिश्चयम् ॥ भारावतारणार्थाय दानवानांवधायच ॥ ४ ॥ वसुदेवगृहेश्रीमान्द्वापरान्तेततोहरिः ॥ देवकीजठरेदेवस्सञ्जातोदैत्यद

दो० । तिरासिवें अध्याय में वरणत चरित अनूप । अश्वमुखी माधवीको जिमि हरि कियो सुरूप ॥ ऋषि लोग बोले कि जो आपने यह कहाथा कि देवताओं के देवता विष्णु जीने दूसरे जन्म में समीप टिकीहुई माधवी बहिनको पाकर यह कहा था कि अश्वके मुखवाली तुमको मैं तपस्या से शोभन मुखवाली करूंगा उन विष्णु जीने उसको किसप्रकार बनायाहै व कैसे तप कियाहै ॥ १।२ ॥ इसको विस्तारसे कहिये क्योंकि हमलोगोंको परम आश्चर्य्यहै सूतजी बोले कि देवताओंसे उपजे हुये नारदके सकाशसे उस संदेशको सुनकर॥३॥उन विष्णुजीने जाकर दानवोंके मारनेकेलिये व भार उतारनेके निमित्त देवताओंके साथ सम्मतिका निश्चय किया॥४॥तदन-

न्तर श्रीमान् भक्तदुःखहारी दैत्योंके दर्पप्रहारी विष्णु देवजी द्वापरयुगके अन्तमें वसुदेव के घर देवकीके पेटमें पैदाहुये ॥ ५ ॥ वैसेही उन वसुदेव जीकी जो दूसरी रोहिणी नामक स्त्रीहुई है उसमें हलधारी व प्रताप वाले बलभद्र नामक उत्पन्न हुये हैं ॥ ६ ॥ तीसरी वसुदेव की प्यारी जो सुप्रभा नामकथी घोड़ेके मुखवाली व स्वरूपको धारनेवाली वह माधवी उत्पन्नहुई है ॥ ७ ॥ वसुदेव समेत सुप्रभा उस कन्याको बिगड़ेहुये आकारवाली उपजी जानकर बड़े शोचको प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर शान्तिक, पौष्टिक कर्मोंको कियेहुये व मन्त्रके जाननेवाले उन यादवोंने यह कहा कि हमारे इस कुलमें कल्याणहो कल्याणहो ॥ ९ ॥ इसप्रकार वह दुःखसे संयुत व युवावस्था

प्पेहा ॥ ५ ॥ तथान्यारोहिणीनाम भार्य्यातस्यचयाभवत्॥तस्याञ्जज्ञेहलीनाम बलभद्रःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ तृतीयासुप्रभानाम वसुदेवप्रियाचया ॥ तस्यांसामाधवीजज्ञे अश्ववक्त्रास्वरूपधृक् ॥ ७ ॥ तांदृष्ट्वाविकृताकारां सुतांजातांचसुप्रभा ॥ वसुदेवसमायुक्ताविषादंपरमङ्गता ॥ ८ ॥ अथतेयादवाःसर्वे कृतशान्तिकपौष्टिकाः॥स्वस्तिस्वस्तीतिमन्त्रज्ञाः प्रोचुर्भूयात्कुलेत्रनः ॥ ९ ॥ एवंसायौवनोपेता तथादुःखसमन्विता॥नकश्चिद्वरयामास वाजिवक्त्रांविलोक्यताम्॥१०॥ ततश्चभगवान्विष्णुर्ज्ञात्वातांभगिनींतथा॥ मातरम्पितरञ्चैवतथादुःखसमन्वितम् ॥ ११ ॥ तामादायगतस्तूर्णम्बलदेवसमन्वितः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेतपस्तप्तन्ततःशुभम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणन्तोषयामाससम्यग्यज्ञपरायणः ॥ व्रतैश्चविविधैर्दानैर्ब्राह्मणानाञ्चतर्प्पणैः ॥ १३ ॥ ततस्तुष्टिङ्गतोब्रह्मावरार्थंविष्णुमव्ययम् ॥ उवाचवरदोस्मीतिप्रार्थयस्वाभिवाञ्छितम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषाशुभाननासाध्वी मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ सुभद्रानामविख्याता वीरसूःपतिवल्लभा॥१५॥

से युक्तहुई, उस कन्याको अश्वमुखी देखकर किसीने स्वीकार न किया ॥ १० ॥ तदनन्तर भगवान् विष्णु जी उस बहिन को उसप्रकारकी जानकर व माता, पिताको दुःखसे संयुत जानकर उस माधवी को लेकर बलदेव समेत हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें गये उसके उपरान्त उनने शुभदायक तपस्याको किया ॥ ११ । १२ ॥ व भलीभांति यज्ञ में तत्पर होतेहुये विष्णु ने व्रतोंसे व अनेक प्रकारके दानों से व ब्राह्मणोंकी तृप्ति करने से ब्रह्मा जीको प्रसन्न किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर प्रसन्नता को प्राप्तहुये ब्रह्मा जी वरदानके लिये अविनाशी विष्णु जीसे यह बोले कि मैं वरदायकहूं तुम मनोरथ को मांगो ॥ १४ ॥ ब्रह्मा बोले कि मेरी प्रसन्नता से यह शोभन मुखवाली

प्रसिद्धहोगी ॥ १५ ॥ हे विष्णो ! माघ महीने की द्वादशी में यहांपर तुम्हारे व इन बलभद्र जी व पतिव्रता व पतिकी प्यारी व वीरको पैदाकरनेहारी व सुभद्रा नामक के समेत इसत्रय कोजो पुरुष भक्तिसे चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजन करैगा वहभी जो चित्तमें वर्तमान होवै उसको प्राप्त होवैगा ॥ १६ । १७ ॥ हे केशव ! पति से त्यागीहुई व पतिसे संयुत जो स्त्री तीज के दिन भक्तिसे इस माधवी कन्या को पूजैगी ॥ १८॥ वह समस्त गुणों से संयुत व नित्यही ऐश्वर्य्य से युक्त व सुन्दरमुखसे समन्वित तथा सौभाग्यवती तथा शोभन पुत्रसे युक्त होवैगी॥ १९ ॥ चारमुख वाले ब्रह्माजी ऐसा कहकर तदनन्तर चुपहो रहे व प्रसन्न मन या चित्तवाले वासुदेव (विष्णु) भी

एनांविष्णोत्वयासार्द्धंतथानेनबलेनच ॥ १६ ॥ द्वादश्यांमाघमासस्य एतत्त्रयंपुमान्योत्र पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ सोप्यवाप्स्यतियच्चित्तेवर्त्ततेनात्रसंशयः ॥ १७ ॥ यानारीपतिनात्यक्ताभक्तयावाभर्तृसंयुता ॥ तृतीयादिवसेचैनाम्पूजयिष्यतिकेशव ॥ १८ ॥ भविष्यतिसुपुत्राढ्यासुभगासुमुखान्विता ॥ ऐश्वर्य्यसहितानित्यंसर्वैस्समुचितागुणैः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रोविरराम ततःपरम् ॥ वासुदेवोपिहृष्टात्मायायौद्वारावतींपुरीम् ॥ २० ॥ तामादायविशालाक्षींचन्द्रबिम्बसमाननाम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंसामाधवीविप्राःसुभगारूपमास्थिता ॥ २१ ॥ अवतीर्णाधरापृष्ठे लक्ष्मीशापप्रपीडिता ॥ उपयेमेसुतःपाण्डोर्यांपार्थश्चारुहासिनीम् ॥ २२ ॥ जज्ञेतस्याःसुतोवीरोयोऽभिमन्युरितिस्मृतः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातंमाधवीजन्मसम्भवम् ॥ २३ ॥ सुपर्णाख्यस्यदेवस्यकथासर्वाद्विजोत्तमाः ॥ यश्चैतत्पठतेमर्त्यो भक्त्यायुक्तःशृणोतिवा ॥ २४ ॥ मुच्यतेसनरःपापात्तद्दिनैकसमुद्भवात् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥ * ॥

रूपमें स्थित व लक्ष्मीजीके शापसे दुःखित व सौभाग्यवती उसमाधवी स्त्रीने इस प्रकार धरातल में अवतारलियाहै सुन्दर हास्यवाली जिस माधवी का पाण्डुके पुत्र पार्थ (अर्जुन) ने विवाह किया है ॥ २० । २१ । २२ ॥ उसी माधवी के जो अभिमन्यु ऐसेवीर कहेगये हैं वे उत्पन्न हुयेहैं हे द्विजोत्तमो ! इस माधवी के जन्म से उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको मैंने तुम लेकर द्वारकापुरी को चलेगये सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! चन्द्रमण्डल के समान मुखवाली व विशाल लोचनोंवाली उस कन्या को

लोगोंसे वर्णन किया व सुपर्णनामक देवताकी समस्त कथाको कहा भक्ति संयुत जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ताहै या सुनताहै॥२३।२४॥वह पुरुष एक दिनमें उपजेहुये पातकसे छूटजाताहै ॥२५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभापाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

दो० । दक्षसुता सत्ताइसौ देविहिं पूजन कीन । चौरसिवें अध्याय में कही सो कथा नवीन ॥ ऋषिलोग बोले कि माधवीके लिये जो शापदीगई है उसके परिपाकसे उपजा जो फल हुआहै उस समस्त चरित्र को हम लोगोंने आज सुना ॥ १ ॥ व उस महात्मा ब्राह्मण ने जो लक्ष्मी जी को शापदिया था वे गजमुखवाली फिर कैसे शोभन मुखवाली हुई हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस ब्राह्मणके शापसे उसी क्षणही वे लक्ष्मी जी महा विस्मयको करानेवाली व गजमुखवाली

ऋषयऊचुः ॥ माधव्यैरमयादत्तो यःशापस्तस्ययत्फलम् ॥ परिणामोद्भवंसर्वं श्रुतमस्माभिरद्यतत् ॥ १ ॥ तेन यत्कमलाशप्ता ब्राह्मणेनमहात्मना ॥ साकथंगजवक्त्राचपुनर्जाताशुभानना ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ शापेनतस्यविप्रस्य तत्क्षणादेवसाद्विजाः ॥ गजवक्त्रासमुत्पन्ना महाविस्मयकारिणी ॥ ३ ॥ साप्रोक्ताहरिणातिष्ठ कञ्चित्कालान्तरंशुभे ॥ अनेनैवतुरूपेण यावत्स्याद्द्वापरक्षयः ॥४॥ ततोहंमेदिनीपृष्ठमवतीर्य्यसमुद्रजे ॥ तपःशक्त्याकरिष्यामि भूयस्त्वांतुशुभाननाम् ॥ ५ ॥ अवज्ञायाथसातस्य तद्वाक्यंशार्ङ्गधन्वनः ॥ शुभास्यातत्कृतेतेपे तपस्तीव्रंतुहर्षिता ॥ ६ ॥ एतत्क्षेत्रंसमासाद्य त्रिकालंस्नानमाचरत् ॥ ब्रह्माणंतोषयामास दिवारात्रमतन्द्रिता ॥ ७ ॥ तामुवाचततोब्रह्मा वर्षान्तेतु

उत्पन्न हुई हैं ॥ ३ ॥ भक्त दुःखहारी विष्णुजीने उन लक्ष्मी जी से कहा हे शुभे ! तुम कुछ समय तक इसी रूपसे टिको जबतक कि द्वापरका नाश होवे ॥ ४ ॥ उसके उपरान्त हे समुद्र से उपजी हुई लक्ष्मी ! मैं धरापृष्ठ में अवतार लेकर तपस्याकी शक्तिसे फिर तुमको शोभन मुखवाली करूंगा ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर उन शार्ङ्ग धनुषवाले विष्णुजी के उस वचन को अनादरकर उन शुभानना लक्ष्मी जी ने प्रसन्न होतीहुई उस रुचिर आनन के लिये बड़ी तीव्र तपस्या को किया ॥ ६ ॥ उन लक्ष्मी जी ने इस क्षेत्र में प्राप्तहोकर त्रिकाल स्नान को किया व निरालस्य होकर अहर्निश ब्रह्माजी को प्रसन्न कराया ॥ ७ ॥ तदनन्तर वर्ष भरके बाद प्रसन्न-

ता को प्राप्तहुये ब्रह्माने उन लक्ष्मी जी से कहा कि हे केशववल्लभे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुम वरदान को मांगो ॥ ८ ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे देव ! किसी
दूसरे कारण में बड़े क्रोधित ब्राह्मण ने बड़े विकराल शापको देकर मुझको गजमुखी किया है ॥ ९ ॥ इस लिये हे पितामहजी ! यदि मुझसे प्रसन्नता को प्राप्तहुये
हो तो फिर मुझको उसी रूपवाली करिये और कुछ नहीं मांगतीहूं ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि मेरी प्रसन्नतासे निस्सन्देह तुम्हारा उत्तम मुखहोगा व विशेषकर कल्याण
होगा इस लिये तुम अपने घरको चली जाओ ॥ ११ ॥ हे शोभने ! आजसे लगाकर मैंने तुमको महत्त्व (बड़ाई) को दिया इस लिये तुम्हारा महालक्ष्मी यह नाम

ष्टिमागतः ॥ वरंप्रार्थयतुष्टोहं तवकेशववल्लभे ॥८॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ गजास्याहंकृतादेवशापंदत्त्वासुदारुणम् ॥ ब्राह्मणे
नसुक्रुद्धेन कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥९॥तस्मात्तद्रूपिणींभूयोमांकुरुष्वपितामह ॥ यदिमेतुष्टिमापन्नो नान्यत्किंचिद्वृ
णोम्यहम् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच॥ भविष्यतिशुभंवक्त्रं मत्प्रसादादसंशयम् ॥ तवभद्रंविशेषेणतस्मात्त्वंस्वगृहंव्रज ॥११॥
महत्त्वंतेमयादत्तमद्यप्रभृतिशोभने ॥ महालक्ष्मीतितेनामतस्मात्त्विप्रंभविष्यति ॥ १२॥ गजवक्त्रांनरोयस्त्वां पूजयि
ष्यतिभक्तितः॥ सगजाधिपतिर्भूपोभविष्यतिचभूतले॥१३॥गजवक्त्रांनरोयस्त्वां पूजयिष्यतिभक्तितः॥ द्वितीयादिवसे
सोपि महालक्ष्मीरितिब्रुवन् ॥ १४ ॥ श्रीसूक्तेनसुभक्त्याचयस्त्वांसंपूजयिष्यति ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नभविष्यति
सोऽधनः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रो विररामततःपरम् ॥ सापिहृष्टागतादेवी यत्रातिष्ठतिकेशवः ॥ १६ ॥ नक्षत्रैःस्था
पितादेवी वाञ्छितस्यप्रदायिनी ॥ दक्षस्यतनयाःख्याताःसप्तविंशतिसंख्यया ॥ १७ ॥ उद्वाहिताहिसोमेन पूर्वंब्राह्म

शीघ्रही होगा ॥ १२ ॥ और गजमुखवाली तुमको जो पुरुष भक्ति से पूजैगा वह भूतल में हाथियोंका अधिपति होकर भूपति होगा ॥ १३ ॥ और दुइजके दिन गज
मुखवाली तुमको महालक्ष्मी ऐसा कहता हुवा जो पुरुष भक्तिसे पूजैगा वह भी भूपति होगा ॥ १४ ॥ और जो मनुष्य श्रीसूक्तके द्वारा सुन्दरी भक्तिसे तुमको भली
भांति पूजैगा वह सात जन्मों के बीचमें निश्चयकर निर्धनी न होगा ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर चतुराननजी चुपहोरहे और वे प्रसन्न लक्ष्मी देवी भी वहांपरगईं
जहां कि केशवजी टिके थे ॥ १६ ॥ और मनोरथको देनेवाली देवीको नक्षत्रोंने स्थापन कियाहै हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय सत्ताईस संख्यासे प्रसिद्ध दक्षकी

कन्याओं का चन्द्रमा ने विवाह किया है उनके बीचमें एक रोहिणी उस चन्द्रमा को प्यारी थी ॥ १७ । १८ ॥ व प्राणोंसे भी परायणहोतेहुये वे चन्द्रमा उसी के साथ टिकते थे तदनन्तर दुर्भाग्यता से अति दुःखितहोतीहुई वे समस्त दक्षकी कन्यायें बड़े वैराग्यको प्राप्तहोकर तपस्या में टिकतीभई व परमश्रद्धा से संयुत उन दक्षकी कन्याओं ने सुरेश्वरी दुर्गा देवताको भलीभांति थापकर भेंट, पूजन व उपहारोंसे पूजन किया तदनन्तर वे गजमुखी लक्ष्मी जी बहुत समय से उन सबों के ऊपर प्रसन्नता को प्राप्तहुई ॥ १९ । २० । २१ ॥ इसके अनन्तर बोली कि हे पुत्रियो ! प्रसन्नहोतीहुई मैं वरको दूंगी इस लिये तुम सबों के चित्तमें जो स्थित हो उसको

णसत्तमाः ॥ तासांमध्येऽभवच्चैका रोहिणीतस्यवल्लभा ॥ १८ ॥ प्राणेभ्योपिसदासक्तस्तयासार्द्धंसतिष्ठति ॥ ततोदौ
र्भाग्यसंतप्तास्सर्वास्तादक्षकन्यकाः ॥ १९ ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा क्षेत्रेऽस्मिंस्तपसिस्थिताः ॥ संस्थाप्यदेवतांदुर्गां श्रद्धया
परयायुताः ॥ २० ॥ बलिपूजोपहारैस्ताः पूजयन्त्यःसुरेश्वरीम् ॥ ततःकालेनमहता तासांसातुष्टिमागमत् ॥ २१ ॥ अ
ब्रवीचाथतुष्टाहं वरंदास्यामिपुत्रिकाः ॥ तस्मात्तत्प्रार्थ्यतांचित्ते यद्युष्माकंव्यवस्थितम् ॥ २२ ॥ सर्वदास्यास्यसंदि
ग्धं यद्युष्माकंहृदिस्थितम् ॥ ततःप्रोचुश्चतास्सर्वाः प्रसादात्तववाञ्छितम् ॥ २३ ॥ अस्माकंविद्यतेदेवि यत्त्रैलोक्येत्रसं
स्थितम् ॥ एकंपत्युर्मुखंमुक्त्वा यत्सौभाग्यसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ तस्मात्तद्देहिचास्माकंयदितुष्टासिचण्डिके ॥ वयंदौर्भाग्य
दोषेण सर्वाःक्लेशंपरङ्गताः ॥ २५ ॥ नशक्नुमःप्रियान्प्राणान्देहेभर्तुंकथञ्चन ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अद्यप्रभृतियुष्माकं सौ
भाग्यंपतिसम्भवम् ॥ २६ ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धंभविष्यतिसुखोदयम् ॥ अन्यापियापतित्यक्ता स्त्रीचात्रसंस्थितास

मांगिये ॥ २२ ॥ जो तुम सबोंके चित्तमें स्थित है उस समस्त को मैं निस्सन्देह दूंगी तदनन्तर उन सबोंने कहा कि हे देवि ! जिस लिये कि सौभाग्यसे उपजेहुये केवल पतिके मुखको छोड़कर इस त्रिलोक में जो पदार्थ है वह हम सबोंके विद्यमान है ॥ २३ । २४ ॥ इस लिये हे चण्डिके ! यदि तुम प्रसन्नहो तो हमको उस पतिकी सम्मुखता को दीजिये क्योंकि दुर्भाग्यताके दोषसे हम सब बड़े क्लेशको प्राप्तहैं ॥ २५ ॥ व प्रिय प्राणोंको देहमें धारने के लिये किसीभांति समर्थ नहीं हैं श्रीदेवी बोलीं कि आजसे लगाकर मेरी प्रसन्नता से तुम सबोंको सुखके उदयवाला पति से उपजा हुआ सौभाग्य निस्सन्देह होवैगा व पति से त्यागी जो अन्य भी

स्त्री सदैव इस क्षेत्र में भलीभांति टिकी व उपासी हुई चतुर्दशी में उत्तम भक्तिसे पूजैगी वह सौभाग्य से संयुत व पुत्रवती व पतिव्रता होवैगी ॥ २६ । २७ । २८ ॥
जबतक वर्षभर पूर्णहो तबतक एकबार भोजनमें तत्पर व बिनखारी लोन को भोजन करतीहुई जो स्त्री मुझको पूजैगी ॥ २९ ॥ उसको पतिसे उपजाहुआ दुःख या
दुर्भाग्य न होगा व कुँआर महीने के शुक्लपक्ष में नवमीके दिन भलीभांति प्राप्तहोने पर उपास में तत्परहोतीहुई जो स्त्री नित्यही आधीरात में पूजैगी उसका अतिउग्र
समस्त सौभाग्य भलीभांति होगा॥ ३० । ३१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वह देवी तो ऐसा कहकर चुप होगई व बहुतही प्रसन्न होतीहुई वे सबदक्ष जीके मन्दिर को चली

दा ॥ २७ ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या चतुर्दश्यामुपोषिता ॥ साभविष्यतिसौभाग्ययुक्तापुत्रवतीसती ॥ २८ ॥ यावत्संव
त्सरंतावदेकभक्तपरायणा ॥ अक्षारलवणाशाया नारीमांपूजयिष्यति ॥ २९ ॥ नतस्याःपतिजंदुःखं दौर्भाग्यंवाभवि
ष्यति ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे संप्राप्तेनवमीदिने ॥ ३० ॥ उपवासपरानित्यं निशीथेपूजयिष्यति ॥ तस्यास्सौभाग्य
मत्युग्रंसर्वंसम्यग्भविष्यति ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वातुसादेवीविरराममहद्विजोत्तमाः ॥ ताश्चसर्वास्सुसन्तुष्टा जग्मुर्दक्षस्यमन्दि
रम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदक्ष आहूतःशूलपाणिना ॥ प्रोक्तःकस्मात्त्वया चन्द्रोयक्ष्मणासंनियोजितः ॥ ३३ ॥ तदयु
क्तंकृतंदक्षजामातायंयतस्तव ॥ दक्षउवाच ॥ अनेनतनयामह्यं अष्टाविंशतिसंख्यया ॥ ३४ ॥ ऊढाअखण्डचारित्रा
स्तास्त्यक्तादोषवर्जिताः ॥ मुक्त्वैकांरोहिणींदेवनिषिद्धेनमयासकृत ॥ ३५ ॥ ततोमयातिकोपेन नियुक्तोराजयक्ष्म
णा ॥ असत्यजल्पकोमन्दः कामदेववशंगतः ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिसर्वासां समंसद्मचरिष्यति ॥

गई॥ ३२ ॥ इसी अवसरमें त्रिशूलपाणि (शिव) जीने दक्षको बुलाया व कहा कि तुमने किस कारण चन्द्रमाको यक्ष्मारोग से संयुत किया ॥ ३३ ॥ हे दक्षजी ! वह
अयोग्य किया जिसलिये कि यह तुम्हारा दामाद है दक्षजी बोले कि हे देव ! इसने सम्पूर्ण चरितवाली अट्ठाईश सङ्ख्यक मेरी कन्याओं को ब्याहा है व बार २ मुझ
से मना कियेहुये इसने एक रोहिणी को छोड़कर दोषरहित उन कन्याओंको त्याग दिया ॥ ३४ । ३५ ॥ उसी कारण कामदेव के वशमें प्राप्त व असत्यवादी तथा मूढ़
चन्द्रमाको मैंने अति क्रोधसे राजयक्ष्मासे सयुत किया ॥३६॥ शिव भगवान् बोले कि आजसे लगाकर मेरे वचन से चन्द्रमा सब स्त्रियोंके घरको बराबर जावैगा इसमें सन्देह

नहींहै यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ३७ ॥ हे सद्द्विज ! तुमने भी जो वचन कहाहैं वह कहीं झूंठ नहीं होवैहै इसलिये यह चन्द्रमा पक्षभर क्षीण व पक्षभर वृद्ध होवै ॥३८॥ त-दनन्तर उस क्षेत्र में विशेषता से टिकीहुई वह सप्तविंशतिका देवी भी पृथ्वीतलमें स्त्रियोंको समस्त सौभाग्य की दायिनी कहीगई ॥ ३९ ॥ अष्टमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोनेपर पवित्र होकर जो मनुष्य उस देवीके इस चरितको पढ़ैहै वह सौभाग्यताको प्राप्त होवैहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तविंशतिकामाहात्म्यंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मद्वाक्यान्नात्रसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ त्वयापियद्वचःप्रोक्तमसत्यंस्यान्नतत्क्वचित् ॥ तस्माद्देषक्षयंपक्षं पक्षंवृद्धिंचसद्द्विज ॥ ३८ ॥ सापिदेवीततःप्रोक्ता सप्तविंशतिकाक्षितौ ॥ सर्वसौभाग्यदास्त्रीणां तस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिता ॥ ३९ ॥ यश्चैतत्पुरुषस्तस्यास्संप्राप्तेचाष्टमीदिने ॥ शुचिर्भूत्वापठेद्भक्त्या ससौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेसप्तविंशतिकामाहात्म्यन्नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथातत्रास्तिविप्रेन्द्रास्सोमस्यायतनंशुभम् ॥ यस्यापिदर्शनादेव मुच्यतेपातकैर्नरः ॥ १ ॥ सोमवारेतुसम्प्राप्ते सोमस्यग्रहणेनरः ॥ यस्तंपश्यतिपापोपि नरकंसनपश्यति ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सर्वेषामेवदेवानां दृश्यन्तेत्रसमाश्रयाः ॥ अथचन्द्रस्यतत्रैव कथञ्जातःसमाश्रयः ॥ ३ ॥ एतन्नःसूतपुत्रातिचित्रंमनसिवर्तते ॥ तस्माद्वदमहाभाग सर्वंत्वंवेत्स्यशेषतः ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ एतज्जगद्द्विजश्रेष्ठास्सर्व्वंसोममयंस्मृतम् ॥ तस्मात्प्रतिष्ठितेतस्मि

दो० । पचासिवें अध्याय में सोम सदन माहात्म्य । शौनकादिकन ऋषिनसन कह्यो सूत याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! वैसेही उस क्षेत्रमें शुभदायक चन्द्रमाका मन्दिर है जिसकेभी दर्शनहीसे मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ १ ॥ और सोमवार को भलीभांति प्राप्त होनेपर चन्द्रमा के ग्रहण में जो मनुष्य उन सोमजी को देखता है वह पापीभी नरकको नहीं देखता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि इस क्षेत्रमें सबही देवोंके स्थान हैं और वहांपर चन्द्रमा का समाश्रय क्यों नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हे महाभाग, सूतनन्दन ! हमलोगोंके चित्तमें यह अत्यन्त आश्चर्य्य वर्तमान है इसलिये इस चरितको कहिये क्योंकि तुम समस्त वृत्तान्तको सम्पूर्णता से

जानतेहो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! यह समस्त संसार सोममय कहागयाहै इसलिये उन सोमजीको प्रतिष्ठित होनेपर त्रिलोक प्रतिष्ठित होवै है ॥ ५ ॥ इस भूतल में जो ये समस्त ओषधियाँ व अन्नादिक हैं वे सबभी सोममयी हैं कि जिनसे प्राणी प्राणोंको धारते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये कि प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मादिक देवता क्रमसे चन्द्रमाको पाकर परम तृप्तिको पाते हैं उसी कारण इस चन्द्रमा में वह (अमृतमयत्व) वरदान है ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वैसेही अग्निष्टोमादिक यज्ञ चन्द्रमा में प्रतिष्ठित हैं जिसलिये कि उस चन्द्रमा में उस अमृत के पीने से देवादिक तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ८ ॥ इसी कारण चन्द्रमा सबमें अधिक कहागया

त्रैलोक्यंस्यात्प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ एताश्चौषधयस्सर्वास्सस्याद्याश्चेहभूतले ॥ सर्वास्सोममयास्ताश्च याभिर्जीवन्तिजन्तवः ॥ ६ ॥ तस्माद्ब्रह्मादयोदेवास्सोमम्प्राप्यक्रमाद्विजाः ॥ तृप्तिंयान्तिपरांहृष्टा यतस्तस्माद्वरोत्रसः ॥ ७ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञास्तथासोमेप्रतिष्ठिताः ॥ तस्यपानाद्यतस्तृप्तिंतत्रयान्तिद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणात्सोमस्सर्वेषामधिकःस्मृतः ॥ देवानान्दानवानाञ्चसहिपूज्यतमःस्मृतः ॥ ९ ॥ यथान्येषांसुरेन्द्राणां हर्म्याणिधरणीतले ॥ क्रियन्तेरात्रिनाथस्य तद्वत्कुर्वन्तिमानवाः ॥ १० ॥ यैर्नरैरात्रिनाथस्य प्रासादोविहितःक्षितौ ॥ तेतेमुक्तिपदम्प्राप्ताः कृत्वाथशुभसञ्चयम् ॥ ११ ॥ यन्महेश्वरहर्म्याणां सहस्रेणभवेच्छुभम् ॥ तदेकेनैवचन्द्रस्य प्राप्नुवन्तियतोनराः ॥ १२ ॥ अथचन्द्रस्यहर्म्यस्य माहात्म्यंतुद्विजोत्तमाः ॥ ज्ञात्वाब्रह्मादयोदेवा भयसन्त्रस्तमानसाः ॥ १३ ॥ तत्सद्मार्थमिदम्प्रोचुर्म्मेरुमूर्द्धानमाश्रिताः ॥ सौम्यर्क्षेसोमवारेण सौम्येमासिचसंस्थितौ ॥ १४ ॥ तिथौचसोमदैवत्येप्राप्तेसोमग्रहेतथा ॥

है और वह चन्द्रमा देवता व दैत्यों को अत्यन्त पूजनीय कहागया है ॥ ९ ॥ जैसे कि धरातल में और देवेन्द्रों के मन्दिर निर्माण किये जाते हैं वैसेही मनुष्य निरानायक चन्द्रमा के मन्दिर को करते हैं ॥ १० ॥ और पृथ्वी में जिन मनुष्योंने निशानाथके मन्दिरको बनाया है वे वे शुभदायक कर्मको इकट्ठाकर मुक्ति के पदको पाते हैं ॥ ११ ॥ जिसलिये कि हज़ार महादेव मन्दिरोंके निर्माणसे जो कल्याण होताहै उसी कल्याणको मनुष्य चन्द्रमाके एकही मन्दिरसे पाते हैं ॥ १२ ॥ इसकेअनन्तर हे द्विजोत्तमो ! चन्द्रमाके मन्दिरके माहात्म्य को जानकर सुमेरुके मस्तकपै टिकेहुये भयभीत मनवाले ब्रह्मादिक देवता उस चन्द्रमाकेमन्दिर के लिये यह कहा कि सोमवार

व सौम्य नक्षत्र तथा सौम्य महीने को भलीभांति स्थित होनेपर ॥ १३ । १४ ॥ व सोमदेवतावाली तिथि सोमग्रहण के प्राप्त होनेपर पांच सकारोंसे संयुत समयमें पाराक व्रतवाले दिन के द्वारा सोम जीके मन्दिर में भलीभांति प्राप्तहोकर जो मनुष्य भलीभांति श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके चन्द्रमाके मन्दिर को स्थापन करैगा वह सब देवताओं के मन्दिर के हज़ार गुने उत्तम फलको पावैगा और जो पुरुष अन्यथा चन्द्रमाके मन्दिर को स्थापन करैगा॥ १५ । १६ । १७ ॥ वह वंशके विनाशको प्राप्त कर नरकको जावैगा हे सद्द्विजो ! इसी कारणसे डरेहुये मनुष्य भूतलमें अतिपुण्यदायक भी निशानाथके मन्दिरको नहीं निर्माण करतेहैं इस क्षेत्रमें जो यह रात्रिना-

पाराकाहेनसम्प्राप्य प्रासादंस्थापयिष्यति ॥ चन्द्रस्यसर्वदेवस्यह
सकारैःपञ्चभिर्युक्तेकालेसोमस्यमन्दिरे ॥ १५ ॥
सहस्रगुणितंसम्यक्श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ अन्यथायस्तुचन्द्रस्य प्रासादंप्रकरिष्यति ॥
र्म्यस्याप्नोतिसत्फलम् ॥ १६ ॥
वंशोच्छेदंसमासाद्य नरकंसप्रयास्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्भीतानकुर्वन्तिनराभुवि ॥ १८ ॥ प्रासादंरात्रिनाथस्य
१७॥
सुपुण्यमपिसद्द्विजाः॥ यएषरात्रिनाथस्य क्षेत्रेस्मिन्वैव्यवस्थितः ॥१९॥ प्रासादस्त्वम्बरीषेण भूभुजासविनिर्मितः ॥
कथञ्चित्समयम्प्राप्य यथोक्तंशास्त्रचिन्तकैः ॥ २० ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे द्वितीयोन्यःप्रतिष्ठितः ॥ चन्द्रमाधुन्धुमारे
णतद्वत्सोपिप्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥ ततश्चतौमहीपालौ तत्प्रभावाद्भुभौद्विजाः॥ गतौचपरमांसिद्धिञ्जन्ममृत्युविवर्जिताम् ॥
२२ ॥ प्रासादोन्यस्तृतीयस्तुक्षेत्रेप्राभासिकेतथा ॥ इक्ष्वाकुणानरेन्द्रेणश्रद्धायुक्तेननिर्मितः ॥ २३ ॥ प्रासादत्रयमेत
द्विमुक्त्वात्रधरणीतले ॥ अपरोनास्तिचन्द्रस्य सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२४॥ एकोस्तिनर्मदातीरे पुण्येरेवाहिसङ्गमे ॥

यक का मन्दिर विशेषतासे स्थित है वह अम्बरीष भूपति से विरचित हुआ है किसी प्रकार शास्त्रके चिन्तकों से यथोक्त समय को पाकर उसी मन्दिर के उत्तर दिशा के भागमें दूसरा और मन्दिर प्रतिष्ठित है धुन्धुमारने उस चन्द्रमा कोभी भलीभांति स्थापन किया है ॥ १८ । १९ । २० । २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर उस चन्द्रस्थापन के प्रभावसे वे दोनों भूपाल जन्म, मृत्युसे विशेषकर रहितवाली उत्तम गतिको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ वैसेही प्रभासक्षेत्रमें श्रद्धासंयुत इक्ष्वाकु नरेशने अन्य तीसरे मन्दिर का निर्माण किया है ॥ २३ ॥ इस धरातल में इन तीन मन्दिरों को छोड़कर और चन्द्रमाका मन्दिर निश्चयकर नहींहै यह मैंने सत्य कहा है ॥ २४ ॥ व पुण्यदायक

रेवानदी के सङ्गममें नर्मदा के किनारे एक मन्दिर है इस समस्त चन्द्रमाके उत्तम माहात्म्य को मैंने तुमलोगों से वर्णन किया ॥ २५ ॥ जोकि पढ़नेवाले व सुननेवाले भी मनुष्यों के समस्त पातकोंका विनाशक है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमप्रासादमाहात्म्यंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अम्बा अरु वृद्धा दोऊ थपित भई जिमि शक्ति । छियासिवें अध्याय में वर्णित सोइ सभक्ति ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने चमत्कारपुर की

एतद्वस्सर्वमाख्यातञ्चन्द्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥ पठतांशृण्वताञ्चापिसर्वपातकनाशनम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेसोमप्रासादमाहात्म्यन्नामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यास्त्वयादेवताःप्रोक्ताश्चतस्रस्सूतनन्दन ॥ चमत्कारमहिस्थावा महालक्ष्मीस्तथापरा ॥ १ ॥ अम्बा वृद्धाचतुर्थीच तासांतिस्रःप्रकीर्तिताः ॥ विस्तरेणचभोःसूतअम्बावृद्धानकीर्तिता ॥ २ ॥ एतस्यास्सर्वमाचक्ष्व प्रभावंसूतसम्भव ॥ केनैषानिर्म्मिताचाम्बा सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एषातपोमयीशक्तिरम्बावृद्धासुरेश्वरी ॥ यथात्रसंस्थितापूर्वं तत्सर्वंश्रूयतांमम ॥ ४ ॥ चमत्कारमहीपेन पुरमेतद्यदाकृतम् ॥ तदातद्रक्षणार्थाय निर्म्मिताभावितात्मना ॥ ५ ॥ चतस्रोदेवताह्येतास्संमतेनद्विजन्मनाम् ॥ अथतस्यमहीपस्य अम्बानामाभवत्सुता ॥ ६ ॥ वृद्धाचान्या

भूमि में टिकेहुये चारदेवताओं को कहा व अपर महालक्ष्मी जी को कहा ॥ १ ॥ हे सूतजी ! चौथी अम्बावृद्धा भगवती हैं उनमें से तीनको विस्तारसे कहा और अम्बावृद्धा नहीं कहीगई हैं ॥ २ ॥ हे सूतनन्दन ! इसके समस्त प्रभावको कहिये और यह अम्बा किससे स्थापित हुईहै इस समस्त चरितको विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि तपोमयी शक्ति यह अम्बावृद्धा सुरेश्वरी जिसप्रकार इस पुरमें पहले स्थापितहुई है उस समस्त चरितको मुझसे सुनिये ॥ ४ ॥ कि जिससमय शुद्धमनया चित्तवाले चमत्कार भूपतिने इस नगरका निर्माण किया है उसी समय उसकी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे इन चार देवताओं का निर्माण कियाहै इसके अनन्तर

उस भूपति के अम्बा नामक कन्या हुई ॥ ५ । ६ ॥ व रूप तथा उदारतादि गुणोंसे संयुत व प्यारी दूसरी वृद्धा नामक कन्या हुई हे ब्राह्मणोत्तमो ! काशी के राजाने देवता, द्विज व अग्नि के समीप गृह्यसूक्त में कहीहुई विधिसे उन दोनों को पाणिग्रहणकर स्वीकार किया ॥ ७ । ८ ॥ इसके अनन्तर किसी समय काशीनरेश भूपतिका उन कितेक म्लेच्छों के साथ बड़ाभारी संग्राम हुआ है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वरदानसे पायेहुये पराक्रमवाले उन विकराल म्लेच्छोंने युद्ध में प्रतापवान् पार्थिव को मारडाला ॥ १० ॥ इसके अनन्तर अम्बा और वृद्धा दुःखदायक वैधव्यता को पाकर तदनन्तर उन दोनोंने मनोरथदायक हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाकर पतिके शत्रुओ के नाश

तुदयिता रूपौदार्य्यगुणान्विता ॥ उभेतेकाशिराजेनपाणीगृह्यद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ गृह्योक्तेनविधानेन देवविप्राग्निसन्निधौ ॥ ८ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य काशिराजस्यभूपतेः ॥ तैःकियद्यवनैस्सार्द्धमन्वभूत्सङ्गरोमहान् ॥ ९ ॥ अथतैर्निहतस्संख्ये सभृत्यबलवाहनः ॥ वरलब्धबलैरौद्रैःकाशिराजःप्रतापवान् ॥ १० ॥ अथाम्बाचैववृद्धाच वैधव्यंप्राप्यदुःखदम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं गत्वातेवाञ्छितप्रदम् ॥ ११ ॥ देव्याआराधनेयत्नं कृतवत्यौततःपरम् ॥ नाशार्थंपतिशत्रूणां तपःकर्म्मशुभप्रदम् ॥ १२ ॥ यावद्वर्षशतंसाग्रं नचतुष्टासुरेश्वरी ॥ ततोवैराग्यमासाद्य वाञ्छन्त्यौस्वतनुक्षयम् ॥ १३ ॥ मन्त्रैराथर्वणैर्विप्राः क्षुरिकासूक्तसम्भवैः ॥ छित्त्वाछित्त्वास्वमांसानिमन्त्रपूतानिभक्तितः ॥ १४ ॥ कृतवत्यौततोहोमं सुसमिद्धेहुताशने ॥ अग्निकुण्डात्ततस्तस्माच्चतुर्हस्ताशुभानना ॥ १५ ॥ श्वेतवस्त्राविनिष्क्रान्ता धाम्नाबालार्कसन्निभा ॥ तथान्यावसुनेत्रास्या तप्तहाटकसन्निभा ॥ १६ ॥ तस्मात्कुण्डाद्विनिष्क्रान्ता धृतखड्गाभयावहा ॥ अपरापित

के लिये कुछ अधिक सौवर्षतक देवीके आराधन में शुभदायक तप कर्मरूप यत्नको किया ॥ ११ । १२ ॥ परन्तु सुरेश्वरी भगवती जी प्रसन्न न हुई तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! वैराग्य को प्राप्तहोकर अपने देहके नाशको चाहती हुई उन दोनों ने क्षुरिकासूक्त से उपजे हुये अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से अपने मांसोंको काटकाटकर तदनन्तर भक्तिसे बहुतही बढ़ेहुये अग्नि में मन्त्र से पवित्र मांसों का हवन किया उसके उपरान्त उसी अग्निकुण्ड से शोभन मुखवाली चौभुजी मूर्त्ति निकली ॥ १३ । १४ । १५ ॥ जोकि श्वेत वसनोंको पहने व तेजसे बाल याने प्रातःकालवाले सूर्य्यनारायण के समान थी वैसेही तेजसंयुत नयन व आननवाली या उत्तम नेत्र, मुखवाली व

तचेहुये सोने के समान तथा तलवारको धारे व भयानक अपर देवी उस कुण्डसे निकली और अन्य भी परम विकराल व वैसेही रूपवाली शक्ति निकली॥ १६ । १७ ॥ और वे बोलीं कि हृदय में टिकेहुये अतिदुर्लभ वरदान को मांगो वे दोनों बोलीं कि हे महादेवियो ! कालादिक क्रोधित म्लेच्छों ने समर में हमारे प्रिय पति व प्रतापी काशीनरेशको मारडाला है इस लिये तुम सबोंको यही प्रसाद देनाचाहिये कि जिस प्रकार उन म्लेच्छों का सब ओर से नाश होवै वैसाही निस्सन्देह करना चाहिये और तैसेही यहां पर तुम दोनों को भी आदर समेत टिकना चाहिये॥ १८ । १९ । २० ॥ इसी समय संख्यासे हीन याने असंख्य व अनेक रूपवाली सैकड़ों हज़ारो

थारूपा शक्तिःपरमदारुणा॥ १७ ॥ प्रोचुश्चतावरंहृत्स्थं प्रार्थयावोतिदुर्लभम् ॥ तेऊचतुः ॥ अस्माकंदयितोभर्ता का
शिराजःप्रतापवान् ॥ १८ ॥ निहतस्सङ्गरेक्रुद्धैर्यवनैःकालपूर्वकैः ॥ युष्मद्देयःप्रसादोयंयथातेषांपरिक्षयः॥ १९ ॥ संजा
यतेमहादेव्यस्तथाकार्य्यमसंशयम् ॥ स्थातव्यंचतथात्रैवउभाभ्यामपिसादरम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्मात्कुण्डा
च्छतसहस्रशः॥ निष्क्रान्ताःसंख्ययाहीना मातरोनैकरूपिकाः ॥ २१ ॥ एकागजमुखातत्र तथान्यातुरगानना ॥ सा
रमेयमुखाचान्या पक्षिराजमुखापरा ॥ २२ ॥ तिर्य्यञ्चवपुषाचान्या वक्त्रैर्मानुषसम्भवैः ॥ त्रिशीर्षाःपञ्चशीर्षाश्च सप्त
शीर्षास्तथापराः ॥ २३ ॥ गुह्यस्थानस्थितैर्वक्त्रैरेकाश्चान्याहृदिस्थितैः ॥ पार्श्वसंस्थैःस्थिताश्चान्या अन्याःपृष्ठाङ्गजैर्मु
खैः ॥ २४ ॥ एकहस्ताद्विहस्तावा दशहस्तास्तथापराः ॥ अन्याविंशतिहस्ताश्च विहस्ताश्चतथापराः ॥ २५ ॥ बहुपा

मातायें उस कुण्ड से निकलीं ॥ २१ ॥ उस स्थान पै एक गजमुखी व अन्य वाजिमुखी व अपरा कुत्ते के मुखवाली तथा अन्य गरुड़ के मुखवालीथी ॥ २२ ॥ और अपर मातायें पशु, पक्षियों के मुखों से उपलक्षित तथा अन्य मनुष्यसे उपजे हुये मुखोंसे उपलक्षित थीं वैसेही अपर शक्तियां तीन शिरवाली, पांच शिरवाली और सात शिरोंवाली थीं ॥ २३ ॥ व कितेक मातायें गुह्य इन्द्रिय में प्राप्त मुखसे उपलक्षित व कितेक हृदय में प्राप्तहुये मुखसे उपलक्षितथीं व अन्य मातायें बगल में प्राप्त हुये मुखो से तथा अपर मातायें पीठके अंग में उपजे हुये मुखों से उपलक्षितथीं॥ २४ ॥ वैसेही अपर शक्तियां एक हाथोंवाली व दोहाथोंवाली व दश हाथोंवाली थीं

व अन्य मातायें हाथों से हीन तथा अपर बीस हाथोंवाली थीं ॥ २५ ॥ वैसेहीं अन्य कितेक मातायें बिन पांवोंवाली व एक पांवोंवाली और अनेक पांवोंवाली थीं वैसे ही अपर शक्तियां आधे पांवोंवाली व नीचे मुखवाली तथा भयङ्कर थीं ॥ २६ ॥ व अपर मातायें एक नयनोंवाली व दो नयनोंवाली तथा तीन नेत्रोंवाली थीं कोई हाथियों पै सवार व अन्य घोड़ों पै सवारथीं ॥ २७ ॥ व अपर मातायें बैल, वानर, सिंह, छाग, व्याघ्र, व सांपों पै टिकीहुई थीं वैसेही कितेक शक्तियां गोहों, मूसों व गदहों पै सवार व पक्षियों पै बैठी थीं ॥ २८ ॥ वैसेहीं अन्य शक्तियां कछुओं, मुर्गों व सर्पादिकों पै चढ़ीहुई रोती, गाती और विकार को करती याने मुखादिकों को बिदोरतीथीं ॥ २९ ॥

दाविपादाश्च एकपादास्तथापराः ॥ तथान्याअर्द्धपादाश्चअधोवक्त्राविभीषणाः ॥ २६ ॥ एकनेत्राद्विनेत्राश्च बहुनेत्रा स्तथापराः ॥ काश्चिद्गजसमारूढा हयारूढास्तथापराः ॥ २७ ॥ वृषवानरसिंहाजव्याघ्रसर्पास्थिताःपराः ॥ गोधाखु रासभारूढास्तथाचविहगाश्रिताः ॥ २८ ॥ कूर्म्मकुक्कुटसर्पादिसमारूढाःसहस्रशः ॥ प्रकुर्वन्त्योरुदन्त्यश्चगायन्त्यश्च तथापराः ॥ २९ ॥ नृत्यन्तश्चहसन्त्यश्च क्रीडासक्ताःपरस्परम् ॥ ऊर्ध्वकेशाविकेशाश्च गात्रकेशाश्चभूरिशः ॥ ३० ॥ लम्बकेशाविकेशाश्च वाजिकेशास्तथैवच ॥ ह्रस्वदन्त्योविदन्त्यश्च दीर्घदन्त्योविभीषणाः ॥ ३१ ॥ गजद न्त्यस्तथैवान्या लोहदन्त्योभयावहाः ॥ लम्बकर्ण्योविकर्ण्यश्च शूर्पकर्ण्यस्तथापराः ॥ ३२ ॥ शङ्कुकर्ण्यःकुकर्ण्यश्च बहुकर्ण्यःसुकर्णिकाः ॥ एकवस्त्राविवस्त्राश्च बहुवस्त्रास्तथापराः ॥ ३३ ॥ चर्म्मप्रावरणाश्चैव कन्थाप्रावरणान्विताः ॥

व आपस में खेल में लगीहुई कितेक हँसती व नाचतीथीं और बहुतसी शक्तियां ऊपर उठे हुये बालोंवाली व बिन बालोंवाली व अंगों में केशों से उपलक्षितथीं ॥ ३० ॥ वैसेही लम्बे बालोंवाली व बिन बालोंवाली व घोड़े के से केशोंवाली थीं और छोटे दांतोंवाली व बिन दांतोंवाली तथा लम्बे दांतोंवाली व भयङ्करथीं ॥ ३१ ॥ व अपर मातायें हाथियोंकेसे दांतोंवाली व लोहेसे दांतोंवाली व भयदायकथीं व अन्य शक्तियां लम्बे कानोंवाली व बिन कानोंवाली व सूपसे कानोंवाली थीं ॥ ३२ ॥ व गांसी या भाला के समान उठे कानोंवाली व कुत्सित कानोंवाली तथा बहुत कानोंवाली व उत्तम कानोंवाली थीं व अपर मातायें एक वसनवाली व बिन

वस्त्रवाली तथा बहुतसे वसनोंवाली थीं ॥ ३३ ॥ व चमड़ोंको ओढ़े तथा गुदड़ियोंके ओहारसे संयुतथीं व अन्य मातायें तलवारोंको हाथमें लिये व बाणोंको हाथमें लिये व भालोंको हाथोंमें लिये और भयङ्कर थीं ॥३४॥ वैसे ही अन्य शक्तियां फॅसरियोंको हाथोंमें लियेथीं व अपर मातायें सांगियों व धनुषोंको धारेथीं व शूलों तथा मुद्गरोंको हाथों में लिये व काँती या लोहेकी कीलोंसे चुभेहुये अस्त्रविशेषसे संयुत हाथोंसे शोभितथीं॥३५॥ इसके अनन्तर उन दोनोंसे उस भांति वृत्तान्तको सुनकर वे सब हर्षसंयुतहुई और उन्होंने वहांको प्रस्थान किया जहांपर कि वे कालयवनादिक टिकेथे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर देवीसे उपजीहुई उस सेना को वे सब विकारयुत मुखोंसे विकृत व भयङ्कर

खड्गहस्ताबाणहस्ताः कुन्तहस्ताश्चभीषणाः ॥ ३४ ॥ पाशहस्तास्तथैवान्याः प्राशचापधराःपराः ॥ शूलमुद्गरहस्ताश्च भुशुण्डिकरभूषिताः ॥ ३५ ॥ अथताभ्यांतथाकर्ण्य तास्सर्वाहर्षसंयुताः॥ प्रस्थितास्तत्रतायत्र तेकालयवनास्स्थिताः ॥ ३६ ॥ ततस्तेतत्समालोक्य बलंदेवीसमुद्भवम् ॥ रौद्ररूपधरंतीव्रंविकृतंविकृतैर्मुखैः ॥ ३७ ॥ विवर्णवदनास्सर्वे भय भीतास्समन्ततः ॥ धावन्तिभक्षितास्ताभिर्देवताभिस्सुनिर्दयम् ॥ ३८ ॥ बालवृद्धसमोपेतन्तेषांराष्ट्रंदुरात्मनाम् ॥ स्त्री भिश्चसहितंताभिर्देवताभिःप्रभक्षितम् ॥ ३९ ॥ एवंनिर्वास्यतद्राष्ट्रं सर्वास्ताहर्षसंयुताः ॥ भूयएवनिजंस्थानं सम्प्राप्ताद्वि जसत्तमाः ॥ ४० ॥ ततःप्रोचुःप्रणम्योच्चैस्तास्संविनयपूर्वकम् ॥ हतास्तेयवनाःकृत्स्नास्सपुत्रपशुबान्धवाः ॥ ४१ ॥ उ द्वासितस्तथायावद्देशस्तेषांसर्वमहान् ॥ साम्प्रतन्दीयतांकश्चिदाहारस्सर्वहेतवे ॥ ४२ ॥ वासायवैततःस्थानं किञ्चिचा

रूपधारिणी तथा उग्र देखकर मलिनमुखवाले होगये जोकि उन देवतोंसे निर्दयीके समान खायेहुये भयसे भीत होकर चारोंओर भाग रहेथे ॥ ३७ । ३८ ॥ और उन दुष्टचित्त या मनवाले म्लेच्छोंका राज्य बालवृद्ध समेत व स्त्रियों सहित उन देवताओंसे भक्ष लिया गया ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो! इसभांति उन म्लेच्छोंके राज्यको उजाड़ कर हर्षसंयुत होतेहुये वे समस्त देवता फिरभी अपने स्थानको भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ४० ॥ तदनन्तर उच्चप्रकारसे प्रणामकर उन्होंने विनयपूर्वक भलीभांति कहा कि हमने पुत्र, पशु व भाइयों समेत उन समस्त म्लेच्छों को मारडाला ॥ ४१ ॥ और उनका बड़ाभारी वह समस्त देश उजाड़दिया गया इस समय सबके लिये किसी

भोजन को दीजिये ॥ ४२ ॥ तदनन्तर निवासके लिये हमलोगों को किसी स्थानको बतलाइये देवी बोलीं कि इस मृत्युलोक में सन्ध्यासमय व प्रातःकाल जो स्त्रियां सोतीहैं उनका गर्भ तुम्हारे भोजनके लिये शीघ्रही होवै व रोतीहुई जो स्त्रियां वनों में व चौतरों या चौराहों में विशेषकर निकलती हैं ॥ ४३ । ४४ ॥ उनका गर्भ तुम सबोंको दियागया उसको भोजन करिये व उच्छिष्ट होकर जो स्त्रियां चलतीहैं व रमणकरती हैं तथा सोती हैं ॥ ४५ ॥ उन सबोंका गर्भ तुम्हारे भोजनके लिये होवै और जिस बालककी छठीका जागरण नहीं हुआहै ॥४६॥ वह तुम सबोंके भोजनके लिये होवैगा इसमें सन्देह नहींहै व जिस सौरि के घरमें अग्नि नहीं जातीहै॥४७॥

वेद्यतांहिनः ॥ देव्युवाच ॥ मर्त्यलोकेत्रयानार्य्यो गर्भवत्यस्स्वपन्तिच ॥ ४३ ॥ सन्ध्याकालेप्रभातेच तासाङ्गर्भोस्तुवो द्रुतम् ॥ रुदन्त्योयाविनिर्यान्तिचत्वरेषुवनेषुच ॥ ४४ ॥ तासाङ्गर्भस्तुयुष्माकंसम्प्रदत्तःप्रभुज्यताम् ॥ उच्छिष्टायाःप्र सर्प्पन्तिरमन्तेचस्वपन्तिच ॥ ४५ ॥ तासाङ्गर्भस्समस्तानांयुष्माकम्भोजनायच ॥ नषष्ठीजागरोयस्य बालकस्यभवि ष्यति ॥ ४६ ॥ सभविष्यतिभोज्याय युष्माकंनात्रसंशयः ॥ नसंयास्यतिवायत्र पावकंसूतिकागृहे ॥ ४७ ॥ सभविष्यति भोज्याय युष्माकंबालरूपधृक् ॥ मङ्गल्यैस्सम्परित्यक्तंयद्भवेत्सूतिकागृहम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्यस्तिष्ठतेबालस्सयु ष्माकंप्रकल्पितः ॥ सन्ध्यायांबालकायेवा स्वपन्त्याकाशदेशगाः ॥ ४९ ॥ तेसर्वेभोजनार्थाययुष्माकंसंनिवेदिताः॥ यस्यजन्मदिनेप्राप्तेवर्षान्तेक्रियतेनच ॥ ५० ॥ मङ्गल्यन्तस्यतद्गात्रंयुष्माकंपरिकल्पितम् ॥ तैलाभ्यङ्गंनरःकृत्वा यश्च स्नानंकरोतिन ॥ ५१ ॥ सदत्तोभोजनार्थाय युष्माकंनात्रसंशयः ॥ उच्छिष्टोयःपुमांस्तिष्ठेद्योवाचत्वरमध्यगः॥ ५२॥

वह बालरूपधारी तुमसबों को भोजन के लिये होवै और जो सौरिका घर मांगल्य पदार्थोंसे रहित होवे है ॥ ४८ ॥ उसमें जो बालक टिकता है वह तुम सबोंको कल्पित कियागया अथवा जो बालक आकाश देशमें प्राप्त होतेहुये सन्ध्याके समय सोते हैं॥४९॥वे सब तुम्हारे भोजनके लिये भलीभांति निवेदन कियेगये व वर्षके अन्तमें जिसका जन्मदिन प्राप्त होनेपर मङ्गल (उत्साह) नहीं कियाजाता है उसीका-वह शरीर तुमसबों को कल्पित कियागया और जो पुरुष तैलाभ्यङ्गकर स्नानको नहीं करताहै ॥ । ५० । ५१ ॥ वह तुम सबोंको भोजन के लिये दियागया इसमें सन्देह नहींहै और जो पुरुष जूठा होकर टिकता है या जो चौतरे, आंगन या चौराहे में प्राप्त

होताहै ॥ ५२ ॥ वह तुम सबोंको भेदरहित चित्तसे भोजन करनेके योग्य है और कामदेव से मोहित जो पुरुष रजस्वला स्त्रीके समीप जाता है ॥ ५३ ॥ व नङ्गे होकर नहाता या सोताहै वह शीघ्रही तुम सबों को भक्षण करनेके योग्य है व विशेषकर मूढ़बुद्धिवाला जो पुरुष दक्षिणाभिमुख होकर रात्रिमें भोजन करताहै व शय्यापै सोताहै वहभी शीघ्रही भक्षण करने योग्य है और जो पुरुष रात्रिमें उत्तरमुख होकर व दिन में दक्षिणमुख होकर मूत्रोत्सर्ग, मलत्याग करता है वही भक्षण करने योग्य है और जो नर निशामुख (सन्ध्या) में दही, सत्तू को भोजन करता है ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ या अन्य जातिका प्रसङ्ग करताहै वह शीघ्रही भक्षण करनेके योग्य है

भक्षणीयस्ससर्वाभिर्निर्विकल्पेनचेतसा ॥ रजस्वलांव्रजन्योवापुरुषःकाममोहितः ॥ ५३ ॥ नग्नःशेतेतथास्नाति भक्षणीयोथसत्वरम् ॥ दक्षिणाभिमुखोरात्रौयश्चाश्नातिविमूढधीः ॥ ५४ ॥ शेतेचशयनेसोपि भक्षणीयश्चसत्वरम् ॥ उदङ्मुखश्चयोरात्रौदिवावादक्षिणामुखः ॥ ५५ ॥ मूत्रोत्सर्गपुरीषंवाप्रकुर्य्याद्भक्ष्यएवसः ॥ यःकुर्य्याद्रजनीवक्रेदधिसक्तुप्रभक्षणम् ॥ ५६ ॥ अन्यजातिगमोवाथ भक्षणीयोद्भुतंहिसः ॥ सूतउवाच ॥ एवंताभ्यांयदाप्रोक्तादेवतास्तास्समन्ततः ॥ ५७ ॥ परिवार्य्यतदातस्थुस्सम्प्रहृष्टेनचेतसा ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा चमत्कारःप्रतापवान् ॥ ५८ ॥ प्रासादंनिर्म्ममेताभ्यां कैलासशिखरोपमम् ॥ ततःप्रभृतितेख्यातेक्षेत्रेतत्रमहोदये ॥ ॥ ५९ ॥ अम्बावृद्धाभिधानेन पुररक्षतेसदा ॥ यःपुमान्प्रातरुत्थाय ताभ्यांपश्यतिचाननम् ॥ ६० ॥ तस्यसंवत्सरंयावन्नतच्छिद्रम्प्रजायते ॥ वर्षादौवाथचान्तेवा ताभ्याम्पूजांकरोतियः ॥ ६१ ॥ नतस्यजायतेछिद्रंकथञ्चिदपिभूतले ॥ यात्राकालेपुमान्यश्चताभ्यांपूजां

सूतजी बोले कि जिससमय उन दोनों याने अम्बा, वृद्धासे वे देवता इसप्रकार कहेगये उस समय सबओर से घेरकर अतिप्रसन्न चित्तसे बैठगये इसी समय में प्रतापवान् चमत्कार नामक नृपति ने ॥ ५७ । ५८ ॥ उन दोनोंके लिये कैलास शिखर के समान मन्दिर को निर्मित किया तबसे लगाकर उस बड़े ऐश्वर्य्यवाले क्षेत्र में अम्बावृद्धा के नामसे वे दोनों प्रसिद्धहुई व सदैव वे दोनों नगरकी रक्षामें नियुक्तहुई प्रातःकाल उठकर जो पुरुष उन दोनों के मुखको देखताहै ॥ ५९ । ६० ॥ उस मनुष्यका पूर्वोक्त दोष नहीं होताहै व वर्षके आदि में या अन्त में जो पुरुष उनदोनों के लिये पूजन करताहै भूतल में उसके किसी प्रकारभी दोष नहीं होताहै व यात्राके समय जो मनुष्य

उन दोनों के लिये भलीभांति पूजन करता है ॥ ६१ । ६२ ॥ वह मनोरथ फलको पाकर शीघ्रही निजवरको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष सदैव अष्टमी व चतुर्दशी तिथि में उनदोनों के लिये बलि देताहै ॥ ६३ ॥ वह चाहीहुई कामनाको पाताहै व अन्तमें उत्तम गतिको प्राप्त होताहै व महानवमीसे प्राप्त दिनमें श्रद्धासंयुत जो पुरुष उन दोनों के लिये पूजन करताहै वह सदैव निष्कण्टक होकर रहताहै ॥ ६४ । ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वर माहात्म्येऽम्बावृद्धामाहात्म्यंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

समाचरेत् ॥ ६२ ॥ सवाञ्छितंफलंप्राप्यशीघ्रंस्वगृहमाप्नुयात् ॥ सदाष्टम्याञ्चतुर्दश्यांयस्ताभ्याम्बलिमाहरेत् ॥
६३ ॥ सकामनामुपादिष्टांलभेदन्तेचसद्गतिम् ॥ योमहानवमीप्राप्तेदिवसेश्रद्धयान्वितः ॥ ६४ ॥ ताभ्यांसमाचरेत्पूजां
ससदास्यादकण्टकी ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येम्बावृद्धामाहा
त्म्यंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥एवंतत्रस्थितेनित्यंतस्मिन्मातृगणेद्विजाः ॥ बालकानांक्षयोजज्ञे ब्राह्मणानांगृहेगृहे ॥ १ ॥ तरुणीनांवि
शेषेण चमत्कारपुरोत्तमे ॥ छिद्रमन्वेषमाणास्ता भ्रमन्त्यखिलदेवताः ॥ २ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे ज्ञात्वाछिद्रसमुद्भ
वम् ॥ विघातंबालकानांच देवताभिर्विनिर्मितम् ॥ ३ ॥ अम्बावृद्धेसमासाद्य पूजयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्रोचुश्चदुःखसंतप्ता
देवताभिर्निजांस्थितिम् ॥४॥ रक्षार्थंसर्वविप्राणां चमत्कारेणभूभुजा ॥ भवद्भ्यांनिर्म्मितःश्रेष्ठः प्रासादोयंमनोहरः॥५॥

दो० । अम्ब मातुकी पादुका पूजनको सुप्रभाव । सत्तासी अध्याय में कहत सूत मुनिराव ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस स्थानपै इस प्रकार नित्यही उस मातृगण को टिकतेहुये घरघरमें ब्राह्मणों के बालकोंका विनाशहुआ ॥ १ ॥ व उत्तम चमत्कार नगर में विशेषकर युवती स्त्रियोंके दोषोंको ढूंढ़तीहुई वे समस्त देवतायें घूम रहीथीं ॥ २ ॥ तदनन्तर छिद्रसे उपजेहुये व देवताओं से विशेषकर कियेहुये बालकों के विनाश को जानकर बहुतही दुःखित उन समस्त ब्राह्मणों ने अम्बावृद्धा के समीप जाकर व बड़े उपायसे पूजकर देवताओं से कीहुई अपनी स्थितिको कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि समस्त ब्राह्मणों की रक्षाके लिये चमत्कार भूपति ने आप दोनों के

लिये इस उत्तम व मनोहर मन्दिरका निर्माण कियाहै ॥ ५ ॥ रात्रि में छिद्रको पाकर तुम्हारे ये देवता सबओरसे हजारों बालकों को हरते हैं ॥ ६ ॥ इस कारण महात्मा ब्राह्मणों के ऊपर प्रसन्नता कीजाय नहीं तो हमलोग पुरको परित्यागकर अन्यत्र भूमितलमें चले जावेंगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर उनके उस वचनको सुनकर कृपासंयुत होतीहुई अम्बिकाने पांवके प्रहारसे भूमिको हनकर गुहाका निर्माण किया उसके उपरान्त उसी गुहामें निज पादुकाओं को धरकर तदनन्तर विनयसंयुत व झुकेहुये सब अङ्गोंवाली उन समस्त देवताओं से कहा ॥ ८ । ९ ॥ कि तुम सबोंको गुहाके बीचमें प्राप्त इन मेरी उत्तम पादुकाओंकी सदैव सेवा करनी चाहिये कहीं बाहर न

ह्रियन्तेबालकारात्रौ छिद्रंप्राप्यसहस्रशः ॥ युष्मदीयाभिरेताभिर्देवताभिस्समन्ततः ॥ ६ ॥ प्रसादःक्रियतांतस्माद्ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ नोचेत्पुरंपरित्यज्य यास्यामोन्यत्रभूतले ॥ ७ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ततोम्बाकृपयान्विता ॥ हत्वा पादप्रहारेण भूमिंचक्रेगुहांततः ॥ ८ ॥ तस्यांस्वपादुकेन्यस्य ततःप्रोवाचदेवताः ॥ सर्वास्तानतसर्वाङ्ग्यो विनयेनसमन्विताः ॥ ९ ॥ इमेमत्पादुकेदिव्ये गुहामध्येगतेसदा ॥ सर्वाभिस्सेवनीयंच नगन्तव्यंबहिःक्वचित् ॥ १० ॥ याकाचिल्लौल्यमास्थायनिष्क्रमिष्यतिमोहतः ॥ सादिव्यभावनिर्मुक्ता शृगालीसंभविष्यति ॥ ११ ॥ अत्रागत्यविनिर्मुक्ता योगिनोध्यानचिन्तकाः ॥ पूजांसम्यक्करिष्यन्ति सर्वासांभक्तिसंयुताः ॥ १२ ॥ पादुकेमेप्रपूज्यादौ मांसमद्यादिभिःक्रमात् ॥ अवाप्स्यन्तिचसंसिद्धिं दुर्लभाममरैरपि ॥ १३ ॥ ततस्तथेतिताःप्रोच्य गुहामध्येव्यवस्थिताः ॥ परिवार्य्यशुभे तस्याः पादुकेमोक्षदायिके ॥१४॥ ततस्तत्रसमागत्य पुरुषाअपिदूरतः ॥ प्रपूज्यपादुकेसम्यग् देवताश्चततःपरम् ॥१५॥

जाना चाहिये ॥ १० ॥ और जोकोई चञ्चलता में टिककर अज्ञानसे निकलैगी वह देवताके भावसे छूटकर सियारी होवैगी ॥ ११ ॥ और भक्तिसे संयुत व ध्यान के चिन्तक तथा विशेषकर मुक्तहुये योगी जन यहां आकर सबोंके पूजनको भलीभाति करैंगे ॥ १२ ॥ व पहले क्रमसे मेरी पादुकाओं को मांस मद्यादिकोंसे पूजकर देवताओंसेभी दुर्लभ संसिद्धि को पावैंगे ॥ १३ ॥ वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर वे सब मोक्ष देनेवाली व शुभ करनेवाली उन अम्बा जीकी पादुकाओं को घेरकर गुहाके बीचमें टिकगईं ॥ १४ ॥ तदनन्तर दूर से भी मनुष्य वहांपर भलीभांति आकर व पादुकाओं को भलीभांति पूजकर तदनन्तर देवताओं को पूजकर जन्म मृत्युसे रहित

परमसिद्धि को प्राप्त होनेलगे इसी अवसर में अग्निष्टोमादिक कर्म नाश होगये ॥ १५ । १६ ॥ और जो तीर्थयात्रा व व्रतादिक तथा संयम, नियम थे वेभी नष्ट होगये व जो सदैव मांसके दूषक तथा शान्तचित्तवालेभी ब्राह्मणथे वेभी उसी कारण अनेकों प्रकारके मद्योंसे पूजन करनेलगे व सम्पूर्ण यज्ञके कर्मोंको छोड़ेहुये वे मांसों से तर्पण करने लगे ॥ १७ । १८ ॥ वैसेही मातृदेवताओं ने धूप व अनुलेपनों से पादुकाओं की सेवाक्रिया इसी अवसर में यज्ञकर्म के विनाश को देखकर डरे व क्षुधा प्यास से व्याकुल इन्द्र समेत समस्त देवता महादेव जीके समीप जाकर व नम्रता से नीचे झुककर स्थित होतेभये ॥ १९ । २० ॥ व अनेकों प्रकार के वेदोक्त शतरु-

प्रयान्तिचपरांसिद्धिं जन्ममृत्युविवर्ज्जिताम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेनष्टा अग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ १६ ॥ तीर्थया
त्राव्रतादीनि संयमानियमाश्रये ॥ येचापिब्राह्मणाश्शान्तास्सदामांसस्यदूषकाः ॥ १७ ॥ प्रकुर्वन्तिततःपूजां तेपिमद्यैः
पृथग्विधैः ॥ तर्प्पयन्तितथामांसैस्त्यक्ताशेषमखक्रियाः ॥ १८ ॥ पादुकेमातृभिर्जुष्टे तथाधूपानुलेपनैः ॥ एतस्मिन्नन्तरे
भीतास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वायज्ञक्रियाच्छेदं क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ प्रोचुर्महेश्वरङ्गत्वा विनयावनताःस्थि
ताः ॥ २० ॥ स्तुत्वापृथग्विधैस्स्तोत्रैर्वेदोक्तैःशतरुद्रियैः ॥ देवाऊचुः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पादुकेदेवसंस्थिते ॥ २१ ॥
अम्बायामातृभिस्सार्द्धं गुहामध्येसुगुप्तके ॥ ब्राह्मणाअपिदेवेश मद्यमांसेनभक्तितः ॥ २२ ॥ ताभ्यांपूजांप्रकुर्वन्ति
प्रयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ नष्टाधर्म्मक्रियास्सर्वा मर्त्यलोकेचसाम्प्रतम् ॥ २३ ॥ अस्माकंसंशयोजातो यज्ञभागंविनाप्र
भो ॥ तस्मात्त्वंकुरुदेवेश यथास्यात्पादुकाक्षयः ॥ २४ ॥ प्रभवन्तिमखाभूयश्चास्माकंस्यात्परामुदा ॥ भगवानुवाच ॥

द्रिय स्तोत्रों से स्तुति करके बोले देवता बोले कि हे देव ! हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें अतिगुप्त गुहाकेबीचमें मातृदेवताओं समेत अम्बा भगवतीकी पादुकायें भलीभांति स्थितहैं हे देवेश ! ब्राह्मण लोगभी भक्तिसे मद्यमांसके द्वारा उन दोनों पादुकाओं की पूजाकरते हैं व उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं इसलिये इस समय मृत्यु लोकमें समस्त धर्मके कर्म नष्ट होगये हैं ॥ २१ । २२ । २३ ॥ हे प्रभो ! यज्ञभाग के विना हमलोगोंके सन्देह उत्पन्न हुआ है इसलिये हे देवेश ! जिसप्रकार पादुकाओं

का विनाश होवै तुम वैसाही करो ॥ २४ ॥ क्योंकि फिर यज्ञ होवैं व हमलोगों को परम आनन्द होवै शिव भगवान् बोले कि जो अम्बा ऐसी प्रसिद्ध है वह परमेश्वर की शक्ति है ॥ २५ ॥ और वह संसार की माता व अविनाशिनी तथा साक्षात् मेरी भी जननी है इसलिये उसका विनाश करने के लिये किसी केभी मनसेभी समर्थ नहीं है हे बड़े भाग्यवाले देवेश्वरो ! तुमलोग उन पादुकाओंका सेवनकरो मैं वहां पर उत्तम सुखके उपायको करूंगा ॥ २६।२७ ॥ जिससे उन पादुकाओंसे तुम लोगों के लिये बड़ाई होगी ऐसा कहकर तदनन्तर महेश्वर देव जीने ध्यान किया ॥२८॥कि हृदयमें टिकेहुये आठ पत्तोंवाले कमलको कर्णिका (गुजरी) समेत घुमाकर

यासाअम्बेतिविख्याता शक्तिस्सापरमेश्वरी ॥ २५ ॥ जगन्माताक्षयासाक्षान्ममापिजननीचसा ॥ तत्कथंसंक्षयन्त
स्याः कर्तुङ्केनापिशक्यते ॥ २६ ॥ मनसापिमहाभागाःपादुकेतेनिषेवत ॥ परन्तत्रकरिष्यामि सुखोपायंसुरेश्वराः ॥
२७॥ युष्मभ्यंपादुकाभ्यांच महत्त्वंयेनजायते॥एवमुक्त्वाततोध्यानंचक्रेदेवोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ व्यावृत्यकमलंहृत्स्थ
मष्टपत्रंसकर्णिकम् ॥ तस्यान्तर्गतमासीनमङ्गुष्ठाग्रनिभंशुभम् ॥ २९ ॥ द्वादशार्कप्रभंसूक्ष्मंस्वमात्मानंव्यलोकयत् ॥
तस्यैवन्ध्यायमानस्य तृतीयनयनात्ततः ॥ ३० ॥ श्वेताम्बरधराशुभ्रा निर्गताकन्यकाशुभा ॥ अथसाप्राहतन्देवं प्रणि
पत्यमहेश्वरम् ॥ ३१ ॥ किमर्थन्देवसृष्टास्मि ममादेशःप्रदीयताम् ॥ भगवानुवाच ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पादुकेसंस्थि
तेशुभे ॥ ३२ ॥ श्रीमातुर्जगतांमुख्येताभ्यांपूजान्त्वमाहर ॥ कन्यकांसम्परित्यज्य तवान्वयसमुद्भवाम् ॥ ३३ ॥ यःकरि

उसके अन्तर्गत बैठेहुये अपने आत्मा को देखा जोकि अँगूठाके अग्रभाग के समान व शुभदायक तथा बारह सूर्य्योंके समान प्रभावान् व सूक्ष्म था तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करतेहुये उन शिवजी के तीसरे नेत्रसे शुभदायक कन्या निकली जोकि श्वेतवर्णवाली व श्वेतही वसनोंको धारे थी इसके अनन्तर उसने उन महेश्वर देवजीको प्रणामकर कहा ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ कि हे देव ! मैं किस लिये उत्पन्न कीगई हूं मुझको आज्ञा दीजावै शिवभगवान् बोले कि हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें श्रीमती संसारकी माता की शुभदायिकायें व प्रसिद्ध पादुकायें भलीभांति स्थित हैं तुम उनका पूजनकरो तुम्हारे वंशमें उपजीहुई कन्याको परित्याग

कर ॥ ३२ । ३३ ॥ जो पुरुष उनकी पूजा करैगा वह मातृदेवताओंका आहार होगा और तुमको भी कुमारतारूप ब्रह्मचर्य्य के द्वारा उत्तम भक्तिसे उन पादुकाओं के लिये पूजन करना चाहिये नहीं तो नाशको प्राप्तहोगी और भक्तिमें लगेहुये जे पुरुष तुम्हारी पूजाको करैंगे ॥ ३४ । ३५ ॥ वे सदैवही सुखसे संयुत व मातृदेवताओं के सम्मत होंगे ऐसा कहकर शिवजी ने तदनन्तर उस कन्या से यथोचित मन्त्रमार्ग को व विशेषकर विस्तारसे पूजनमार्गको कहा उसके उपरान्त छत्रादि भूषण को देकर बिदाकिया ॥ ३६ । ३७ ॥ वैसेही महादेवजी ने समस्त सुरेश्वरों को सिद्धिको देकर बिदाकिया कुमारी बोली कि हे देव ! तुमने यह कहा है कि तुम्हारे वंशमें

ष्यतितत्पूजामाहारःस्यात्समातृषु ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येणत्वयापिचसुभक्तितः ॥३४॥ ताभ्यांपूजाप्रकर्तव्यानोचेन्नाशम
वाप्स्यसि ॥ तवपूजांकरिष्यन्ति येनराभक्तितत्पराः ॥ ३५ ॥ मातृणांसंमतास्तेस्युस्सर्वेदेवसुखान्विताः ॥ एवमुक्त्वा
ततस्तस्या मन्त्रमार्गंयथोचितम् ॥ ३६ ॥ पूजामार्गंविशेषेण कथयामासविस्तरात् ॥ ततोविसर्जयामास दत्त्वाछ
त्रादिभूषणम् ॥ ३७ ॥ प्रतिपत्तिंमहादेवस्तथासर्वान्सुरेश्वरान् ॥ कुमार्य्युवाच ॥ त्वयैतत्कथितन्देव तवान्वयसमुद्भ
वाः ॥ ३८ ॥ कन्यकाःपूजयिष्यन्ति पादुकेतेसुशोभने ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येण भविष्यत्यन्वयःकथम् ॥ ३९ ॥ एतन्मे
विस्तरात्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यस्यायस्याःप्रसन्नात्वं कन्यकायावदिष्यसि ॥ ४० ॥ मन्त्रग्राम
मिमंसम्यक् त्वद्भवासाभविष्यति ॥ एवंचान्यामहाभागेपारम्पर्य्येणकन्यकाः ॥४१॥ तववंशोद्भवास्सर्वाः प्रभविष्यन्ति
मन्त्रतः ॥ ततस्सातांसमासाद्य पादुकासम्भवांगुहाम् ॥ ४२ ॥ पूजांचक्रेयथान्यायंयथोक्तंत्रिपुरारिणा ॥ सूतउवाच ॥

उपजीहुई कन्यायें उन सुन्दरी पादुकाओं को पूजैंगी तो कुमार ब्रह्मचर्य्यसे वंश कैसे होगा ॥ ३८ । ३९ ॥ इस समस्त चरित्रको तुम विस्तार से यथायोग्य कहने के योग्यहो श्रीशिवभगवान् बोले कि प्रसन्न होतीहुई तुम जिस २ कन्यासे इस मन्त्रसमूहको भलीभांति कहोगी वह तुमसे उपजीहुई होगी हे महाभागे ! इसप्रकार परम्परासे मन्त्रके द्वारा तुम्हारे वंशमें उपजीहुई अन्य समस्त कन्यायें होंगी तदनन्तर उस कन्याने पादुका से उपजीहुई उस गुहाको प्राप्तहोकर ॥ ४० । ४१ । ४२ ॥ जैसा कि त्रिपुरारि ने

कहाथा वैसेही यथायोग्य पूजनको किया सूतजी बोले कि सावधान होता हुवा जो नर उस कुमारीके वंशमें उपजीहुई कन्याके हाथसे पादुकाओंके लिये पूजन करावैगा वह इस लोक में सुखको पाकर अत्यन्त सुखसे संयुत होवैगा ॥ ४३ । ४४ ॥ इसलिये इस लोक में व परलोक में सदैव सुखके चाहनेवाले व भक्तिसंयुत मनुष्यों को सब उपायसे कन्या के हाथसे पादुकाओं को पूजना चाहिये और वह कन्या भी विशेषकर पूजने योग्य है यह महादेवने कहा है ॥ ४५ । ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! श्रीमाता अम्बा देवीके प्रसङ्गके द्वारा पादुकाओं से उपजेहुये इस समस्त माहात्म्यको मैंने तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ४७ ॥ चतुर्दशी में व विशेषकर अष्टमी तिथि में

तदन्वयसमुत्थायाः कन्यकायाःकरेणतु ॥ ४३ ॥ पादुकाभ्यांनरःपूजां कारयेद्यःसमाहितः ॥ इहलोकेसुखम्प्राप्य सस्यादतिसुखान्वितः ॥ ४४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कन्याहस्तेनपादुके ॥ पूजनीयेविशेषेण पूज्यासाचापिकन्यका ॥ ४५ ॥ वाञ्छद्भिःशाश्वतंसौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ मानवैर्भक्तिसंयुक्तैरित्युवाचमहेश्वरः ॥ ४६ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं माहात्म्यम्पादुकोद्भवम् ॥ श्रीमातुरनुषङ्गेणअम्बादेव्याद्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ तथाष्टम्यांविशेषेणसप्राप्नोतिपरम्पदम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे श्रीमातुःपादुकामाहात्म्यंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॰ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ अग्नितीर्थन्त्वयाप्रोक्तं ब्रह्मतीर्थञ्चयत्पुरा ॥ तयोःकथयचोत्पत्तिं माहात्म्यञ्चमहामते ॥ १ ॥ तस्मात्तद्विस्तराद्ब्रूहिएकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ नवयन्तृप्तिमापन्नाःशृण्वन्तस्तेगिरामृतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्त

सावधान होताहुआ जो मनुष्य भक्तिसे इस चरित्र को सुनता है वह परमपद को प्राप्तहोता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमातुःपादुकामाहात्म्यंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । निर्वर्षण को हाल अरु अग्नितीर्थ माहात्म्य । अट्ठासी अध्याय में वर्णित है याथात्म्य ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! पुरातन समय तुमने जिस अग्नितीर्थ को व ब्रह्मतीर्थ को कहा है उन दोनों की उत्पत्ति व माहात्म्य को कहिये ॥ १ ॥ जिसलिये कि तुम्हारी वाणीके द्वारा अमृतरूपी कथाको सुनतेहुये हमलोग तृप्ति

को नहीं प्राप्तहुये हैं इसलिये एक २ के उस चरितको अलग २ विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि इस विषयमें समस्त सुखोंकी प्रापक व शुभदायक तथा पातकों को विनाश करनेवाली अग्नितीर्थ से उपजीहुई कथाको मैं तुमलोगों से कहूंगा ॥ ३ ॥ पुरातन समय शूरतासे संयुत व ब्रह्मज्ञान में चतुर चन्द्रवंशमें उपजाहुआ प्रतीप नामक भूपति हुआहै ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस नृपति के समस्त लक्षणोंसे चिह्नित दोपुत्र पैदाहुये उनमें पहला देवापि व दूसरा शन्तनु हुआहै ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर जब नृपोत्तम प्रतीप शिवपदको प्राप्त होगया तब देवापि राज्यको छोड़कर तपस्याके लिये वनको निकलगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर समस्त मंत्रियोंने उसके छोटेभाई

यिष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् ॥ अग्नितीर्थसमुद्भूतांसर्वसौख्यावहांशुभाम् ॥ ३ ॥ सोमवंशसमुद्भूतः प्रतीपोनाम भूपतिः ॥ पुरासीच्छौर्य्यसम्पन्नोब्रह्मज्ञानविचक्षणः ॥ ४ ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञेसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ देवापि प्रथमस्तत्रद्वितीयःशन्तनुर्द्विजाः ॥ ५ ॥ अथोशिवपदंप्राप्ते प्रतीपेनृपसत्तमे ॥ तपोर्थंराज्यमुत्सृज्य देवापिर्निर्ययौवनम् ॥ ६ ॥ ततश्चमन्त्रिभिःसर्वैः शन्तनुस्तस्यचानुजः ॥ पितृपैतामहेराज्येसत्वरंसंनियोजितः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रोनववर्षक्रुधान्वितः ॥ यावद्द्वादशवर्षाणि तस्मिन्राज्यंप्रशासति ॥ ८ ॥ अतःकृच्छ्रङ्गतस्सर्वोलोकःक्षुत्परिपीडितः ॥ चामुण्डासदृशोजातोयोनमृत्युवशङ्गतः ॥ ९ ॥ सन्त्यक्ताःपतिभिर्नार्य्यःपुत्राश्चपितृभिर्निजैः ॥ मातरश्चतथापुत्रैर्लोकेष्वन्येषु काकथा ॥ १० ॥ दैवयोगात्कचित्किञ्चित्कस्यचिद्यदिदृश्यते ॥ सस्यंसिद्धमसिद्धंवाह्रियतेवीर्य्यतःपरैः ॥ ११ ॥ शुष्कास्तु

शन्तनु को पिता, पितामह वाले राज्यपै शीघ्रही भलीभांति नियुक्त किया ॥ ७ ॥ इसी अवसरमें उन शन्तनुको राज्यका पालन करतेहुये क्रोधसंयुत इन्द्रने बारहवर्षतक वृष्टि न किया ॥ ८ ॥ इसी कारण क्षुधासे बहुतही दुःखित होताहुआ समस्त संसार क्लेशको प्राप्तहुआ व जो मृत्युके वशमें नहींगया वह चामुण्डाके समान होगया याने भक्ष्याभक्ष्य में तत्परहुआ ॥ ९ ॥ पतियोंने स्त्रियोंको त्यागदिया व अपने पिताओंने पुत्रों को छोड़दिया वैसेही पुत्रोंने माताओंको त्यागदिया तो अन्य मनुष्यों की क्या कथा कहनी है ॥ १० ॥ यदि कहींपर दैवयोग से किसीके सिद्ध या असिद्ध कोई अन्न देखपड़ताथा तो बलसे दूसरे लोग हरलेतेथे ॥ ११ ॥ और समस्त वृक्ष सूखगये

वैसेही जो जलाशय थे वे सूखगये व गङ्गादिक भी नदियां थोड़े जलवाली होकर भलीभांति टिकती भईं ॥ १२ ॥ इस प्रकार वृष्टिका विनाशहोतेहुये व धर्ममार्ग को नष्ट होतेहुये और इस संसार को हड्डियोंके समूहों से पूरित होनेपर व भस्मसे आच्छादित होनेपर ॥ १३ ॥ किसीने यज्ञ व वेदपाठ व्रतको नहीं किया उस चरितको इस प्रकार देखकर क्षुधा बढ़ती के लिये प्राप्तहुई ॥१४॥ इसी अवसरमें चर्म व हड्डी शेष समस्त अङ्गवाले व भूंखसे दुःखित महामुनि विश्वामित्र इधरउधर भ्रमण करतेहुये तदनन्तर बिन जलवाले व मरेहुये मनुजों से उपजेहुये हड्डियों के समूहों से व्याप्तवाले किसी गाँवको पाकर अनन्तर उसी में घूमतेहुये मुनिने चाण्डाल के स्थान

भूरुहास्सर्वे तथायेचजलाशयाः॥नद्यश्चस्वल्पतोयाश्चगङ्गाद्याअपिसंस्थिताः ॥ १२ ॥ एवंवृष्टेःक्षयेजातेनष्टेधर्म्मपथेत था ॥ लोकेऽस्मिन्नस्थिसंघातैःपूरितेभस्मनावृते ॥ १३ ॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे नस्वाध्यायंनचव्रतम् ॥ एवमालोक्यत द्वृत्तंवृद्धयर्थंक्षुत्समाययौ ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ चर्म्मास्थिशेषसर्वाङ्गो बुभुक्षार्तइतस्त तः ॥ १५ ॥ परिभ्रमंस्ततःप्राप्यकञ्चिद्ग्रामंनिरूदकम् ॥ मृतमर्त्योद्भवैर्व्याप्तमस्थिसङ्घैःसमन्ततः ॥ १६ ॥ अथतत्र भ्रमन्प्रापचाण्डालस्यनिवेशनम् ॥ शून्यंगोस्थिसमाकीर्णंदुर्गन्धेनसमावृतम् ॥ १७ ॥ अथापश्यन्मृतन्तत्रसारमेयंचि रोषितम् ॥ संशुष्कङ्गन्धनिर्मुक्तंगृहप्रान्तेऽवस्थितम् ॥ १८ ॥ समादायततस्तञ्चआपद्धर्म्मपरायणः ॥ प्रक्षाल्यसलिले पश्चात्प्रचकर्ततदामुनिः ॥ १९ ॥ ततश्चश्रपयामाससुसमिद्धेहुताशने ॥ क्षुत्क्षामोभोजनार्थायततःपाकाग्रमेवच ॥ २० ॥ समादायपितॄंस्तर्प्ययावदग्नौजुहोतिसः ॥ तावद्वह्निःपरित्यज्यसमस्तमपिभूतलम् ॥ २१ ॥ गतश्चादर्शनंसद्यस्सर्वेषां

को पाया जोकि शून्याकार व गाइयोंके हड्डियोंके समूहोंसे व्याप्त व दुर्गन्धसे सब ओर घिराथा ॥ १५ । १६ । १७ ॥ इसके अनन्तर उसी स्थानमें बहुत दिनोंसे बसे व अत्यन्त सूखे तथा गन्धसे हीन व घरके समीप में स्थित मरेहुये कुत्तेको देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर उस समय आपत्तिके धर्ममें तत्पर मुनिने उस कुत्तेको लेकर व जल में भलीभांति धोकर पश्चात् काटडाला ॥ १९ ॥ तदनन्तर क्षुधासे दुबले विश्वामित्र ने भोजन के लिये बहुतही बढ़ेहुये अग्नि में पकाया उसके उपरान्त पकेहुये मांस के अग्रभागही को भलीभांति लेकर पितरोंका तर्पणकर वे मुनि जबतक अग्नि में हवनकरैं तबतक इन्द्रके ऊपर मनमें बहुतही क्रोधको धारकर अग्निदेव जी समस्त

भी भूतलको छोड़कर शीघ्रही सब भूमिनिवासियों के अदृश्य होगये ॥ २० । २१ । २२ ॥ इसी समय में ब्रह्मा व विष्णु को अगाड़ी किये सब देवताओं ने अग्निदेव को ढूंढ़नेके लिये धरातलमें भ्रमण किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये उन देवताओं ने बडेभारी हाथीको देखा जोकि अग्निके तापसे अत्यन्तपीड़ित व भूमि में पड़ाहुआ श्वास लेरहाथा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रता या संभ्रम संयुत देवताओं ने हाथीको देखकर पूंछा कि हे गज ! इस वनमें क्या तुमने अग्नि को नहीं देखा है ॥ २५ ॥ हाथी बोला कि इस सघन बाँसके गुच्छे में अग्निने भलीभांति प्रवेश किया है उन्हीं से जलायाहुआ मैं इस समय क्लेशसे यहां आयाहूं ॥ २६ ॥ इसके अ-

क्षितिवासिनाम् ॥ चित्तेकोपंसमाधाय शक्रस्योपरिभूरिशः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवा ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ वह्ने रन्वेषणार्थाय बभ्रामधरणीतलम् ॥ २३ ॥ अथतैर्भ्रममाणैश्चप्रदृष्टोभूद्गजोमहान् ॥ निःश्वसन्पतितोभूमौ वह्नितापप्रपीडितः ॥ २४ ॥ अथदेवागजंदृष्ट्वापप्रच्छुस्त्वरयान्विताः ॥ कच्चित्त्वयानदृष्टोत्रकाननेपावकोगज ॥ २५ ॥ गज उवाच ॥ वंशस्तम्बेत्रसंकीर्णे संप्रविष्टोहुताशनः ॥सांप्रतन्तेननिर्दग्धः कृच्छ्राच्चात्राहमागतः ॥ २६ ॥ अथतैर्वेष्टितस्तस्मिन्वंशस्तम्बेहुताशनः॥देवैर्दत्त्वागजेन्द्रस्य शापंपश्चाद्विनिर्गतः ॥ २७॥ यस्मात्त्वयाहमादिष्टोदेवानांवारणाधम ॥ तस्मात्तवमुखेजिह्वा विपरीताभविष्यति ॥ २८ ॥ एवंशप्त्वागजंशीघ्रं नष्टोवैश्वानरःपुनः ॥ देवाश्चापितथाष्टष्ठेसंलग्नास्तद्दिदृक्षया ॥ २९ ॥ अथदृष्टःशुकस्तैश्च भ्रममाणैर्महावने ॥ भोभोःशुकत्वयावह्निर्यदिदृष्टोनिवेद्यताम् ॥ ३० ॥ शुकउवाच ॥ योयंसंदृश्यतेदूराच्छमीगर्भेचपिप्पलः ॥ सतस्मिंस्तिष्ठतेवह्निरश्वत्थेसुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ अश्वत्थेयः

नन्तर उन देवोंसे उस बाँसके गुच्छेमें घिरे हुये अग्निदेवजी गजेन्द्रको शापदेकर पश्चात् निकलगये ॥२७॥ हे हाथियों में नीच ! जिसलिये कि तुमने मुझको बतलादिया इससे तुम्हारे मुखमें उलटी जीभ होगी ॥ २८ ॥ इस प्रकार हाथीको शापदेकर फिर शीघ्रही अग्निदेव अदृश्य होगये और देवता भी उन अग्नि के देखनेकी इच्छासे पीछे लगचले ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर महावन में घूमतेहुये उन देवताओं ने सुआको देखा व पूंछा कि हे हे शुक ! यदि तुमने अग्निको देखाहै तो बतलाइये ॥ ३० ॥ सुआ बोला कि हे देवतोत्तमो ! शमीवृक्षके गर्भ (बीच) में जो यह दूरसे पीपल देख पड़ताहै उसी पीपलमें वे अग्निदेवजी टिके हैं ॥ ३१ ॥ पीपल मे पुत्रों समेत

जो मेरा घोंसलाथा उसको जिस अग्निने जलादिया और मैं क्लेशसे निकल आयाहूं ॥ ३२ ॥ उसको सुनकर उन समस्त देवताओं ने उसी क्षण शमीगर्भको घेरलिया और अग्निदेवभी सुआको शाप देकर निकल गये ॥ ३३ ॥ हे पक्षिन्, शुक ! जिसकारण तुमने मुझे देवताओं को भलीभांति बतलादिया इसलिये तुम्हारी वाणी विशेषकर प्रकट न होवैगी ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर अग्निदेवजी हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें पितामह देव जीके बडेगहरे जलाशय को देखकर जोकि पूर्व व उत्तरवाली विदिशा में स्थितथा देवताओं के न देखने की इच्छासे उसमें पैठगये व नम्र होकर भलीभांति टिके ॥ ३५ । ३६ ॥ इसी अवसरमें उस जलाशय में सैकड़ों मच्छ,

कुलायोमेआसीच्छिशुसमन्वितः ॥ सन्दग्धस्तत्तुवायेनअहंकृच्छ्राद्विनिर्गतः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वातैस्सुरैःसर्वैः शमीगर्भस्तुतत्क्षणात् ॥ वेष्टितःपावकोप्याशु शुकंशप्त्वाविनिर्गतः ॥ ३३ ॥ अहंयस्मात्त्वयापक्षिन्देवानांसंनिवेदितः ॥ तस्माच्छुकनतेवाणी विस्पष्टासंभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवमुक्त्वाजातवेदा देवादर्शनवाञ्छया ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे देवस्यपरमेष्ठिनः ॥ ३५ ॥ जलाशयंसुगम्भीरं पूर्वोत्तरविदिक्स्थितम् ॥ दृष्ट्वातत्रप्रविष्टस्तुनिभृतश्चसमाश्रितः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रमत्स्यकच्छपदर्दुराः ॥ वह्निप्रवेशनिर्दग्धादृश्यन्तेशतशोमृताः ॥ ३७ ॥ अथचैकोर्द्धनिर्दग्धआयुःशेषेणदर्दुरः ॥ तस्माज्जलाद्विनिष्क्रान्तो दृष्टोदेवैश्चदूरतः ॥३८॥ पृष्टश्चब्रूहिचेद्वेकत्वयादृष्टोहुताशनः ॥ तदर्थमिहसंप्राप्तास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ३९ ॥ भेकउवाच ॥ अस्मिञ्जलाशयेवह्निस्सांप्रतंपर्य्यवस्थितः ॥ तस्मात्तुजलमध्यस्थामृताभूरिजलोद्भवाः ॥ ४० ॥ अस्माकंनिधनंप्राप्तं वंशन्तुसुरसत्तमाः ॥ अहंकृच्छ्रेणनिष्क्रान्तएतस्माज्जलसंश्रयात् ॥ ४१ ॥

कच्छप व मेढ़क अग्निके पैठने से जलेहुये मरे देखपड़तेथे ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर आयुर्बलके शेषसे एक अधजला मेढ़क उस जलसे निकला व देवताओं ने दूरसे देखा ॥ ३८ ॥ व पूंछा कि हे दर्दुर ! यदि तुमने अग्निको देखा है तो कहिये क्योंकि उसीके लिये इन्द्र समेत हम सब देवता यहांपर भलीभांति प्राप्तहुये हैं ॥ ३९ ॥ मेढ़क बोला कि इस समय अग्निदेवजी इस जलाशय में टिके हैं उसी कारण जलके बीचमें टिके व जलसे उपजेहुये बहुतेरे जन्तु मरगये ॥ ४० ॥ हे देवतोत्तमो !

हमारा वंश तो नाशको प्राप्त होगया और मैं इस जलाशय से बड़े क्लेशसे निकला ॥ ४१ ॥ उस वचनको सुनकर वे समस्त देवता उस जलाशय को सबओर से घेरकर टिके और अग्निने मेढ़कको शापदिया ॥ ४२ ॥ कि हे मूढ़ मेढ़क ! जिस लिये तुमने देवताओं से मुझको निवेदन करदिया उसी कारण इस धरातल में तुम निश्चयकर जिह्वासे हीन होवो ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर अग्निदेव जी जबतक उस स्थानसे निकलैं तबतक महात्मा ब्रह्माने आपही उन अग्निसे कहा ॥ ४४ ॥ कि हे हे अग्निदेव ! तुम देवोंको देखकर किसलिये जातेहो तुम इन समस्त देवताओं के आदिभूत होकर मुखमें भलीभांति टिकेहो ॥ ४५ ॥ तुममें भलीभांति हवन कीहुई

तच्छ्रुत्वातुसुरास्सर्वेसर्वतस्तञ्जलाश्रयम्॥वेष्टयित्वास्थितास्तेचवह्निर्भेकंशशापह ॥ ४२ ॥ यस्माद्भेकत्वयामूढदेवेभ्यो हंनिवेदितः ॥ तस्मात्त्वम्भववैनूनंविजिह्वोत्रधरातले ॥ ४३ ॥ एवमुक्त्वाततस्स्थानाद्यावद्वह्निर्विनिर्गतः ॥ तावत्स ब्रह्मणाप्रोक्तस्स्वयमेवमहात्मना ॥ ४४ ॥ भोभोवह्नेकिमर्थन्त्वन्देवान्दृष्ट्वाप्रगच्छसि ॥ त्वमाद्यश्चैवसर्वेषामेतेषांसंस्थि तोमुखम् ॥ ४५ ॥ त्वय्याहुतिर्हुतासम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततःप्रजाः ॥ ४६ ॥ तस्मा द्धाताविधाताच त्वमेवजगतःस्थितः ॥ सन्तुष्टेधार्य्यतेविश्वन्त्वयिरुष्टेविनङ्क्ष्यति ॥ ४७ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञास्त्व यिसर्वेप्रतिष्ठिताः ॥ अथसर्वाणिभूतानिजीवन्तितवसंश्रयात् ॥ ४८ ॥ त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिसर्वदा ॥ यस्मा दन्नञ्चपानञ्चजठरस्थम्पचस्यलम् ॥ ४९ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादन्त्वंसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥कोपस्यकारणम्ब्रूहियतस्त्य क्त्वाप्रगच्छसि ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वादेवस्यपरमेष्ठिनः ॥ प्रोवाचप्रणयाद्वाक्यं कोपंमुक्त्वाचपद्म

आहुति सूर्य्यनारायणके समीप प्राप्त होती है सूर्य्यसे वृष्टि होतीहै व वृष्टिसे अन्न होता है और उस अन्नसे प्रजाहोती हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये संसार के धारने या पालने हारे व बनानेवारे तुम्हीं टिकेहो तुम्हारे सन्तुष्ट होनेपर संसार धारण कियाजाताहै और तुम्हारे क्रोधित होनेपर विनाश होजाता है ॥ ४७ ॥ व अग्निष्टोमादिक समस्त यज्ञ तुममें प्रतिष्ठित हैं व सबप्राणी तुम्हारे आश्रय से जीतेहैं ॥ ४८ ॥ हे अग्ने ! तुम सदैव समस्त प्राणियों के भीतर चलतेहो क्योंकि उदर में स्थित हुआ अन्नपान भलीभांति पचता है ॥ ४९ ॥ इसलिये तुम समस्त देवताओंके ऊपर कृपाकरो और क्रोधका कारण कहो कि जिसलिये त्यागकर जातेहो ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि उन

पितामहदेवजीके उस वचनको सुनकर क्रोधको त्यागकर अग्निदेव ब्रह्माजीसे नम्रतासे वचन बोले ॥ ५१ ॥ अग्नि बोले कि हे पद्मज ! जिस लिये मैं इन्द्रके ऊपर क्रोधको धारकर व संसार को छोड़कर अदृश्य होगया उस कारणको सुनिये ॥ ५२ ॥ कि महेन्द्र की अनावृष्टि से ओषधियों का नाश होगया उसी कारण विश्वामित्रने मुझको मांससे योजित किया ॥ ५३ ॥ इसी कारण अभक्ष्य के भक्षण से डराहुआ मैं अदृश्य होगया न कामनासे न उद्वेगसे यह मैंने सत्य कहा है ॥ ५४॥ उसको सुनकर तदनन्तर वे चार मुखवाले ब्रह्माजीने इन्द्रसे कहा कि अग्निदेवजी योग्यही कहाहै तुम किसलिये नहीं बरसतेहो ॥ ५५ ॥ इन्द्र बोले कि हे पितामह !

जम् ॥ ५१ ॥ अग्निरुवाच ॥ अहंकोपंसमाधाय शक्रस्योपरिपद्मज ॥ प्रणष्टोजगदुत्सृज्य यस्मात्तत्कारणंशृणु ॥
५२ ॥ अनावृष्ट्यामहेन्द्रस्य सञ्जातश्चौषधीक्षयः ॥ ततोस्म्यहञ्चमांसेन विश्वामित्रेणयोजितः ॥५३॥ एतस्मात्का
रणान्नष्टो नकामान्नचसम्भ्रमात् ॥ अभक्ष्यभक्षणाद्भीतःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वासचतुर्वक्त्रः शक्रमाह
ततःपरम् ॥ युक्तमेवाशिखीप्राह किमर्थंन्नचवर्षसि ॥ ५५ ॥ शक्रउवाच ॥ ज्येष्ठभ्रातरमुल्लङ्घ्यशन्तनुःपृथिवीपतिः ॥ पि
तृपैतामहेराज्ये संनिविष्टःपितामह ॥ ५६ ॥ एतस्मात्कारणाद्वृष्टिस्संनिरुद्धामयाप्रभो ॥ तद्ब्रूहिकिंकरोम्यद्यप्रमा
णन्त्वंपितामह ॥ ५७ ॥ पितामहउवाच ॥ तस्याक्रमस्यसंप्राप्तंपापन्तेनमहीभुजा ॥ उपभुक्तंसमुद्योगन्तस्माद्वृष्टिंकु
रुष्वतम् ॥ ५८ ॥ मद्वाक्ययाद्यातिनोनाशंयावदेतज्जगत्त्रयम् ॥ अकालेनापिदेवेन्द्रसस्याभावाद्बुभुक्षया ॥ ५९ ॥ एत
स्मिन्नन्तरेशक्र आदिदेशत्वरान्वितः ॥पुष्करावर्तकान्मेघान्वृष्ट्यर्थंधरणीतले ॥ ६० ॥ तेपिशक्रसमादेशात्समस्तंधर

जेठेभाई को छोडकर शन्तनु भूपाल पिता, पितामह वाले राज्यपै भलीभांति बैठ गया ॥ ५६ ॥ हे प्रभो, पितामह ! इसी कारण मैंने वृष्टिको रोकलिया है आज मैं क्याकरूं उसको कहिये क्योंकि तुम प्रमाणहो ॥ ५७ ॥ पितामह जी बोले कि उस बिन क्रमके पापको उस भूपति ने भलीभांति पाया है और समुद्योग (उपाय) का उपभोग किया इसलिये हे देवेन्द्र ! जबतक अन्न न होनेके कारण अकालसे भी क्षुधाके कारण यह त्रिलोक नाश न होजाय तबतक मेरे वचनसे शीघ्रही वृष्टि करिये ॥ ५८ । ५९ ॥ इसी अवसर में शीघ्रतासंयुत इन्द्रने धरातल में बरसने के लिये पुष्करावर्त नामक मेघोंको आज्ञादिया ॥ ६० ॥ उसी क्षण गर्जतेहुये व बिजुली से

संयुत उन मेघों नेभी इन्द्रकी आज्ञासे समस्त धरातलको पूर्ण करदिया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर देवताओं समेत ब्रह्मा जीने फिर अग्निसे कहा कि हे पावक ! अग्निहोत्रों में ब्राह्मणों के दृष्टिगोचर होवो ॥ ६२ ॥ व इस समय तुम चाहेहुये वरदानको मुझसे मांगो अग्नि बोले कि हे चतुरानन ! यह पुण्यदायक जलाशय मेरे नामसे वह्नितीर्थ ऐसा कहाहुआ पृथ्वीतल मे प्रसिद्ध होवै व प्रभातकाल उठकर श्रद्धासयुत होताहुआ जो पुरुष इस तीर्थ में नहाकर ॥ ६३ । ६४ ॥ व अग्निसूक्तको जपकर आदर समेत तुमको देखै हे प्रभो ! मेरे वचनसे उसके ऊपर शीघ्रही तुमको प्रसन्नता करनी चाहिये ॥ ६५ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रभात उठकर वेदका जाननेवाला जो

णीतलम् ॥ तत्क्षणात्पूरयामासुर्गर्जन्तोविद्युतान्विताः ॥ ६१ ॥ अथाब्रवीत्पुनर्ब्रह्मादेवैस्सार्द्धंहुताशनम् ॥ अग्निहोत्रेषुविप्राणांप्रत्यक्षोभवपावक ॥ ६२ ॥ सांप्रतन्त्वंवरंमत्तःप्रार्थयस्वाभिवाञ्छितम् ॥ अग्निरुवाच ॥ अयञ्जलाशयःपुण्योमन्नाम्नापृथिवीतले ॥ ६३ ॥ ख्यातिंयातिचतुर्वक्त्रवह्नितीर्थमितिस्मृतम् ॥ अत्रयःप्रातरुत्थायस्नात्वाश्रद्धासमन्वितः ॥ ६४ ॥ अग्निसूक्तञ्चजप्त्वाचत्वांप्रपश्यतिसादरम् ॥ तस्यतुष्टिस्त्वयाकार्य्याद्रुतंमद्वाक्यतःप्रभो ॥ ६५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अत्रयःप्रातरुत्थाय स्नात्वावैवेदविद्द्विजः ॥ अग्निसूक्तंजपित्वाचवीक्षयिष्यतिमान्ततः ॥ ६६ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य सकलंलप्स्यतेफलम् ॥ अन्यस्मिन्दिवसेपापं नाशंनेष्यतिवह्निजम् ॥ ६७ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वा सभगवान्विररामपितामहः ॥ पावकोपिचविप्राणामग्निहोत्रेषुसंस्थितः ॥ ६८ ॥ एवमत्रसमुद्भूतंवह्नितीर्थमहाद्भुतम् ॥ तत्रस्नातोनरःप्रातस्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६९ ॥ अग्निरुवाच ॥ ममातृप्तस्यलोकेश तावद्द्वादशवत्सरान् ॥ क्षुधयासं

ब्राह्मण इस तीर्थ में नहाकर व अग्निसूक्तको जपकर तदनन्तर मुझको देखैगा ॥ ॥ ६६ ॥ वह अग्निष्टोम के समस्त फलको पावैगा व अन्य दिनमें अग्निसे उपजा हुआ पातक नाशको प्राप्त होवैगा ॥ ६७ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर वे पितामह भगवान् चुप होरहे व अग्निदेव भी ब्राह्मणों के अग्निहोत्रों में भलीभांति स्थित हुये ॥ ६८ ॥ इस प्रकार यहांपर बड़ा अद्भुत वह्नितीर्थ भलीभांति हुआहै उसमें प्रातःकाल नहाया हुआ मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाताहै ॥ ६९ ॥ अग्नि बोले कि

हे लोकेश अर्थात् पितामह ! मनुष्योंको क्षुधासे आच्छादित होनेपर तृप्तिसे रहित मुझको बारह वर्षतक कहींपर कुछ नहीं मिलाहै ॥ ७० ॥ वैसेही हे विभो ! बड़े भारी समय से फिर उपजेहुये पशुओंसे व अन्य अन्नादिकों सेभी यज्ञ होवैं ॥ ७१ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे अग्निदेव ! यहांपर जो कोई ब्राह्मण निवास करते हैं वे सदैव उत्तम भक्तिसे वसुधाराप्रदानके द्वारा तुमको तृप्त करैंगे उसीसे तुम पुष्टिको पावोगे और वेभी मनोभिलषित कामनाओं से संयुत होवैंगे ॥ ७२ । ७३ ॥ हे अनल ! संक्रान्ति के समय में जिन वसुधाराके देनेवाले मनुष्यों से तुम्हारा मुख हवन किया हुआ होवैगा ॥ ७४ ॥ हे तात ! जन्मसे लगाकर मरण समीप तक उन मनुष्योंका जो कुछ पातक

वृतेमर्त्यैनप्राप्तंकुत्रचित्कचित ॥ ७० ॥ भविष्यन्तितथायज्ञाः कालेनमहताविभो ॥ सञ्जातैःपशुभिर्भूयःसस्याद्यैरप
रैरपि ॥ ७१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अत्रयेब्राह्मणाःकेचिन्निवसन्तिहुताशन ॥ वसोर्द्धाराप्रदानेनतेत्वांनक्तन्दिनंसदा ॥ ७२ ॥
तर्प्पयिष्यन्तिसद्भक्त्याततःपुष्टिमवाप्स्यसि ॥ तेपिकामैर्मनोभीष्टैर्भविष्यन्तिसमन्विताः ॥ ७३ ॥ संक्रान्तिसमयेयेषां
वसोर्द्धाराप्रदायिनाम् ॥ भविष्यतिकृतंवक्त्रं हूयमानन्तवानल ॥ ७४ ॥ तेषांपापञ्चयत्किञ्चित्तातअज्ञानतःकृतम् ॥
संयास्यतित्क्षयंसर्वमाजन्ममरणान्तिकम् ॥ ७५ ॥ त्वयितुष्टिङ्गतेपश्चाद्भविष्यतिमहीपतिः ॥ शिबिनेमिःसुविख्यातउ
शीनरसमुद्भवः ॥ ७६ ॥ सकृत्वाश्रद्धयायुक्तस्सत्रन्द्वादशवार्षिकम् ॥ वसोर्द्धाराप्रदानेनवर्षन्त्वांतर्प्पयिष्यति ॥ ७७ ॥
कलशस्यचवक्त्रेणविक्लिन्नेनदिवानिशम् ॥ ततस्तुष्टिंपरांप्राप्यपरांपुष्टिमवाप्स्यसि ॥ ७८ ॥ पूज्यमानोधरापृष्ठेसर्वैर्वेद
विदांवरैः ॥ अद्यप्रभृतियत्किञ्चित्कर्मचात्रभविष्यति ॥ ७९ ॥ शान्तिकंपौष्टिकंवापिवसोर्द्धारासमन्वितम् ॥ संभ

अज्ञानसे कियाहुआहै वह समस्त नाश होजावैगा ॥७५॥ व तुम्हारे सन्तुष्ट होनेपर पश्चात् उशीनर देशमें उपजाहुआ शिबिनेमि नामक अतिप्रसिद्ध भूपति होवैगा॥७६॥ व श्रद्धासंयुत वह शिबिनेमि बारहवर्ष वाले यज्ञको कर रात,दिन वसुधाराके प्रदानसे व भीगेहुये कलशके मुखसे सालभरतक तुमको तृप्तकरैगा तदनन्तर धरापृष्ठ में वेदके जाननेवालोंने श्रेष्ठ समस्त जनोंसे पूजित होतेहुये तुम परम प्रसन्नताको पाकर उत्तम पुष्टिको प्राप्त होगे व आजसे लगाकर यहांपर वसुधारासे संयुत जो कुछ शान्तिक

या पैष्टिक भी कर्म होगा वह सब तुमको परमतृप्तिकारक होगा ॥ ७७ । ७८ । ७९ । ८० ॥ और ब्राह्मणों का वैश्वदेववाला जो कुछ कर्म भी वसुधारा से रहित होगा वह निश्चयकर निष्फल होगा ॥ ८१ ॥ जिसलिये कि शान्तिक व वैश्वदेव और वह यज्ञादिक कर्म पूर्ण होताहै इस कारण पूर्णाहुति कही जातीहै ॥ ८२ ॥ श्रद्धासे संयुत जो पुरुष वसुधाराको देवैगा वह मनसे चिन्तित मनोरथ को सम्पूर्णतासे भलीभांति पावैगा ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नितीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विष्यतितत्सर्वन्तवतृप्तिकरम्परम् ॥ ८० ॥ अपियद्वैश्वदेवीयंकर्म्मकिञ्चिद्द्विजन्मनाम् ॥ वसोर्द्धाराविहीनंहिनिष्फलंसंभविष्यति ॥ ८१ ॥ यस्माद्भवतिसम्पूर्णंकर्म्मयज्ञादिकंहितत् ॥ शान्तिकंवैश्वदेवञ्चपूर्णाहुतिरतोच्यते ॥ ८२ ॥ यस्सम्यक्श्रद्धयायुक्तोवसोर्द्धारांप्रदास्यति ॥ सकामंमनसाध्यातंसमवाप्स्यतिकृत्स्नशः ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेऽग्नितीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाततोवह्निं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ सर्वैर्देवगणैस्सार्द्धं शक्रविष्णुशिवादिभिः ॥ १ ॥ जगामब्रह्मलोकञ्चदेवास्तेचनिजंपदम् ॥ पावकोपिद्विजेन्द्राणामग्निहोत्रेषुसंस्थितः ॥ २ ॥ हविर्जग्राहविधिवद्वसोर्द्धारोद्भवंतथा ॥ एवंतत्रसमुद्भूतमग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्रस्नातोनरःप्रातर्मुच्यतेदिनजादघात् ॥ अथतुप्रस्थितान्दृष्ट्वातान्देवा

दो० । शापित शुक गज दर्दुरन दिय देवन वरदान । नवासिवें अध्याय में सोई करत बखान ॥ सूतजी बोले कि इन्द्र, विष्णु व शिवादिक समस्त सुरसमूहों समेत मनुष्यों के पितामह (बाबा) ब्रह्माजी अग्निसे इस प्रकार कहकर तदनन्तर ब्रह्मलोक को चलेगये वे देवता अपने स्थानको गये और अग्निभी ब्राह्मणेन्द्रोंके अग्निहोत्रोंमें भलीभांति स्थितहुये ॥ १।२ ॥ और विधिपूर्वक वसुधारासे उपजेहुये हव्यको अग्निने ग्रहण किया इस प्रकार वहांपर अतिउत्तम अग्नितीर्थ उत्पन्न हुआहै ॥ ३ ॥ जिस तीर्थ में प्रभात नहायाहुआ पुरुष दिनमें उपजेहुये पातकसे छूटजाता है इसके अनन्तर अपने आश्रम को प्रस्थान करतेहुये उन देवताओं को देखकर दुःख

से संयुत होतेहुये उन गजेन्द्र, सुआ व दर्दुरों ने उनसे कहा कि हे देवेश्वरो ! तुम सबोंके लिये हमको अग्निने शापदिया है ॥ ४ । ५ ॥ इसलिये हमसबों की जीभके लिये उपाय भी चिन्तन किया जावे देवता बोले कि हे गजोत्तम ! जैसे कि अन्य प्राणियों की जिह्वा कार्य्य में समर्थ होतीहै वैसेहीं उलटी भी तुम्हारी जिह्वा विशेषता से होगी व तुमसब नरेशों के मन्दिरों में विशेषकर स्थित होगे ॥ ६ । ७ ॥ व बहुत आदर से संयुत होतेहुये मिष्टान्नका भोजन करोगे वैसेही हे शुक ! तुम्हारी जिह्वा अग्निसे मन्द कीगई है ॥ ८ ॥ तिसपर भी भूपालों के प्रशंसनीय होगी व हमारी प्रसन्नतासे अन्यपक्षियों के मध्यमें सुन्दरता होगी ॥ ९ ॥ हे मेढ़क ! जो तुम

न्स्वाश्रमंप्रति ॥ ४ ॥ गजेन्द्रशुकमण्डूकास्तेप्रोचुर्दुःखसंयुताः ॥ युष्मत्कृतेवयंशप्ताःपावकेनसुरेश्वराः ॥ ५ ॥ तस्माज्जिह्वाकृतेस्माकमुपायश्चिन्त्यतामपि ॥ देवाऊचुः ॥ विपरीतापितेजिह्वायथान्येषाङ्गजोत्तम ॥ ६ ॥ कार्य्यक्षमातथा तेऽपिभविष्यतिविशेषतः ॥ तथायूयंनरेन्द्राणांमन्दिरेषुव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ बहुमानसमायुक्तामिष्टान्नंभक्षयिष्यथ ॥ तथाचशुकतेजिह्वाकृतामन्दाहविर्भुजा ॥ ८ ॥ तथापिभूमिपालानां शंसनीयाभविष्यति ॥ श्रीमत्त्वञ्चतथान्येषामस्मदीयप्रसादतः ॥ ९ ॥ त्वञ्चमण्डूकयोनेनविजिह्वोवह्निनाकृतः ॥ तद्भविष्यन्तितेशब्दाविजिह्वस्यापिदीर्घगाः ॥ १० ॥ एवमुक्त्वाथतेदेवास्स्वस्थानंप्रस्थितास्ततः ॥ तेषामनुग्रहंकृत्वाकृपयापरयायुताः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेऽग्नितीर्थोत्पत्तिर्नामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अग्नितीर्थस्यमाहात्म्यमेतद्वःपरिकीर्तितम् ॥ ब्रह्मकुण्डसमुत्पत्तिरधुनाश्रूयतांद्विजाः ॥ १ ॥ यदासंस्था

अग्निसे जिह्वारहित कियेगयेहो इसलिये जिह्वारहितभी तुम्हारे शब्द दीर्घगामी होवैंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहकर अनन्तर परम कृपासे संयुत उन देवताओंने उन सबोंके ऊपर दया करके तदनन्तर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नितीर्थोत्पत्तिर्नामनवाशीतितमोध्यायः ॥ ८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मकुण्ड माहात्म्य अरु उत्पत्तिक वृत्तान्त । नब्बेके अध्याय में बरणत शुभ सिद्धान्त ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह अग्नितीर्थ का माहात्म्य तुमलोगों

से कहागया इस समय ब्रह्मकुण्ड की भलीभांति उत्पत्तिको सुनिये ॥ १ ॥ जिस समय मार्कण्डेय महात्माने ब्रह्माका भलीभांति स्थापन किया है उसी समय वहांपर पवित्र जलसे संयुत कुण्डका निर्माण कियागया है ॥ २ ॥ व यह कहा कि कार्त्तिक महीने में कृत्तिका नक्षत्र पै चन्द्रमा को टिकने पर मनुष्य भलीभांति भीष्मव्रतको करके ब्रह्मलोक को जावैगा ॥ ३ ॥ उस समय ऐसा कहते हुये उन उत्तम मुनि मार्कण्डेयजी के उस वाक्य को किसी पशुपालक ने सुना ॥ ४ ॥ तदनन्तर कार्त्तिक महीने को भलीभांति प्राप्तहोने पर श्रद्धासंयुत उस पशुपालने यथायोग्य उस भीष्मपञ्चक व्रतको भलीभांति किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त पौर्णमासीमें कृत्तिका नक्षत्र

पितोब्रह्मामार्कण्डेनमहात्मना ॥ तदाविनिर्म्मितन्तत्रकुण्डंशुचिजलान्वितम् ॥ २ ॥ प्रोक्तञ्चकार्त्तिकेमासिकृत्तिकास्थेनिशाकरे ॥ कृत्वाभीष्मव्रतंसम्यग्ब्रह्मलोकंप्रयास्यति॥३॥ एवंप्रवदतस्तस्य मार्कण्डेयस्यसन्मुनेः॥श्रुतंतत्तुतदावाक्यंपशुपालेनकेनचित् ॥ ४ ॥ ततःश्रद्धाप्रयुक्तेनतेनतद्भीष्मपञ्चकम् ॥ यथावद्विहितंसम्यक् कार्त्तिकेमासिसंस्थिते ॥ ५ ॥ ततश्चकृत्तिकायोगेपौर्णमास्यांयथाविधि ॥ सम्पूज्यपद्मजम्पश्चात्पूजितःपुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ ततःकालविपाकेनसपञ्चत्वमुपागतः॥ब्राह्मणस्यगृहेजातः पुरेत्रैवद्विजोत्तमाः॥ ७ ॥ जातिस्मरःप्रभायुक्तोपितृमातृप्रतिष्ठितः॥ एवंप्रगच्छतस्तस्यवृद्धिन्तत्रपुरोत्तमे ॥ ८ ॥ पितृमातृसमुद्भूतोयादृक्स्नेहोव्यवस्थितः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशूद्रेयःपितापूर्वजन्मनः ॥ ९ ॥ सतुपञ्चत्वमापन्नस्सम्प्राप्तेचायुषःक्षये ॥ अथतस्यमहाशोकंसकृत्वातदनन्तरम् ॥ १० ॥ चकारप्रेतकार्य्यां

का योग होनेपर विधिपूर्वक कमलसे उपजेहुये ब्रह्माको भलीभांति पूजकर पश्चात् पुरुषोत्तम (विष्णु) का पूजन किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! कालके परिणामसे वह पशुपाल मृत्यु को प्राप्तहुवा व इसी नगर में ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुवा ॥ ७ ॥ जोकि जातिका स्मरण करनेवाला व कान्तिसे संयुत व प्रतिष्ठित माता, पितावालाथा इस प्रकार उसी उत्तम नगर में उसको वृद्धिको प्राप्त होतेहुये जैसा पिता माता से उपजाहुआ स्नेह होताहै वैसाही हुआ अन्य दिन में जो पूर्वजन्मका शूद्र पिताथा वह आयुर्बल क्षीण होनेपर मृत्युको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उस द्विजने उसका बड़ा शोचकर तदनन्तर ॥ ८ । ९ । १० ॥ बड़ीभक्ति से सम्पूर्ण

प्रेतकर्मोंको किया अनन्तर उसके वैसे उस विचेष्टित (कर्म) को भलीभांति देखकर भाइयों व ब्राह्मणों तथा पिता, माता, पुत्रादिकोंने पूंछा कि निर्लोभी भी तुम सदैव इस लालचरहित भी नीच पशुपालसे किस कारण संयुतहो तिसपरभी मरेहुये केभी प्रेतकर्मों को करतेहो उसको कहो ॥ ११।१२ । १३ ॥ तबतक इस गुप्त टिकेहुये समस्त चरित को हमलोगों से कहिये उनके उस वचनको सुनकर कुछ लज्जासंयुत हुआ ॥ १४ ॥ व यह बोला कि सुनिये मैं तुमलोगों से निस्सन्देह कहूगा कि अन्य शरीर में मैं इसका सुसंमत पुत्र हुआहूं ॥ १५ ॥ जोकि मैं पशुपालन कर्मका जाननेवाला व सदैव प्राणोंसे प्रियथा अनन्तर किसी समय ब्रह्मकुण्ड से उपजे व मार्कण्ड

णिनिःशेषाणिप्रभक्तितः ॥ अथतस्यसमालोक्यतादृशन्तद्विचेष्टितम् ॥ ११ ॥ पृष्टस्तुभ्रातृभिर्विप्रैः पितृमातृसुता
दिभिः ॥ कस्मात्त्वमस्यनीचस्यपशुपालस्यसर्वदा ॥१२॥ अनीहोपिसमायुक्तोनिस्स्पृहस्यापिशंसतत् ॥ तथापिप्रेतका
र्य्याणिमृतस्यापिकरोषिच ॥ १३ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्वतावद्गुह्यंव्यवस्थितम् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाकिञ्चिल्लज्जासम
न्वितः ॥ १४ ॥ तानब्रवीच्छृणुध्वंवःकथयिष्याम्यसंशयम् ॥ अहमस्यान्यदेहत्वे पुत्रआससुसंमतः ॥ १५ ॥ पशुपा
लनकर्म्मज्ञः प्राणेभ्योवल्लभस्सदा ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मार्कण्डस्यमहामुनेः ॥१६॥ श्रुतंप्रवदतोवाक्यंब्रह्मकुण्ड
समुद्भवम् ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेभीष्मपञ्चककृन्नरः ॥१७॥ सम्यक्श्रद्धासमायुक्तो यस्तुस्नानंकरिष्यति ॥ दृष्ट्वा
पितामहन्देवम्पूजयित्वाजनार्दनम् ॥१८॥ सभविष्यतिशूद्रोपिब्राह्मणश्चान्यजन्मनि ॥ तन्मयाविहितंसम्यक्स्नात्वात
त्रशुभावहे॥१९॥तत्कुण्डेकार्त्तिकेमासितेनजातोस्मिचद्विजः॥चन्द्रात्रेयस्यविप्रर्षेरन्वयेचभुविश्रुते॥२०॥संस्मरन्पूर्वं

महामुनि के कहतेहुये वचनको मैंने सुना कि कृत्तिकानक्षत्र का योग होनेपर कार्त्तिकी में भलीभांति श्रद्धासंयुत व भीष्मपंचक व्रतका कर्ता जो मनुष्य स्नानकरैगा वह शूद्रभी पितामह देवको देखकर व जनार्दन जीको पूजकर अन्य जन्ममें ब्राह्मण होगा मैंने कार्त्तिक के महीने में उस शुभदायक कुण्ड में भलीभांति नहाकर उस वचनको किया उसीसे भूमिमें प्रसिद्ध चन्द्रात्रेय विप्रर्षि याने चन्द्रमा के वंशमें उत्पन्न हुआहूं ॥ १६ । १७ । १८ । १९ । २० ॥ उसी कारण पहले की जातिका भली

भांति स्मरण करताहुआ व बड़ाही बिनरोंकटोंकवाला मैं उस शूद्र केभी ऊपर स्नेहसंयुत हुआ ॥ २१ ॥ व भक्तिसंयुत मैं कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिकानक्षत्र के योग को सुनकर व जानकर उत्तम भीष्मपञ्चकव्रत करताहूं ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उसके ऐसे वचन को सुनकर उन और अन्य द्विजोत्तमों ने भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर भीष्मपञ्चक व्रतको किया ॥ २३ ॥ तबसे लगाकर उत्तर दिशाके भागमें स्थित ब्रह्मकुण्ड ऐसा कहाहुआ वह कुण्ड धरातल में प्रसिद्ध हुआ ॥ २४ ॥ उस कुण्ड में सदैव जो ब्राह्मण स्नान करताहै वह बार बार पैदा होताहुआ निश्चयकर द्विजेन्द्र होताहै ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालु

काञ्जातिन्तेनस्नेहसमन्वितः ॥ तस्योपरिमहान्नित्यंशूद्रस्यापिनिरर्गलः ॥ २१ ॥ श्रुत्वाहंकृत्तिकायोगंकार्त्तिक्यांभक्तिसंयुतः ॥ ज्ञात्वाकरोमिभीष्मस्यपञ्चकंव्रतमुत्तमम् ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वातेचान्येच द्विजोत्तमाः ॥ भीष्मस्यपञ्चकञ्चक्रुःसम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ २३ ॥ ततःप्रभृतितत्कुण्डंविख्यातंधरणीतले ॥ स्थितमुत्तरदिग्भागेब्रह्मकुण्डमितिस्मृतम् ॥ २४ ॥ यःस्नानंसर्वदातत्रब्राह्मणःप्रकरोतिवै ॥ ससम्भवतिविप्रेन्द्रोजायमानः पुनःपुनः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेब्रह्मकुण्डमाहात्म्यंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्ति गोमुखस्थंसुशोभनम् ॥ यद्गोवक्त्रात्पुरालब्धंसर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ पुरासीदत्रगोपालः कश्चित्कुष्ठसमावृतः ॥ चमत्कारपुरेविप्रो ह्यतीवक्षामताङ्गतः ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतेनमार्गेगगोकुलम् ॥ मध्याह्नसमयेप्राप्तञ्चन्द्रेचित्रासमन्विते ॥ ३ ॥ एकादश्यान्तृषार्तञ्चभास्करेवृषसंस्थिते ॥ एकयापिततो

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मकुण्डमाहात्म्यंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गोमुख द्वारा भयो जिमि तीरथ गोमुख नाम । इक्यनबे अध्याय में बरणत सो मतिधाम ॥ सूतजी बोले कि वहांपर इसके अनन्तर औरभी गोमुखस्थ नामक अतिउत्तम तीर्थ है जोकि समस्त पातकों का नाशक पुरातन समय गौके मुखसे मिलाहै ॥ १ ॥ पुरातन समय इस चमत्कारपुर में गौवों का रक्षक कोई ब्राह्मण कुष्ठरोगसे घिरा व अत्यन्तही दुर्बलता को प्राप्तथा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वृषराशि में सूर्य्य को टिकते व चन्द्रमा को चित्रानक्षत्र से संयुत होतेहुये

एकादशी के दिन मध्याह्न समय में उसी मार्गसे प्यासप्ते विकल गौओंका समूह प्राप्तहुआ तदनन्तर वहांपर दूरसे अत्यन्तही तिनुके के गुच्छे को एक गौने भी न देखा हे ब्राह्मणो ! प्रसन्न होतीहुई एक धेनुने जबतक शीघ्रही दन्तों से तृणको उखाड़कर खींचा ॥ ३ । ४ । ५ ॥ तबतक उस जलमार्गसे जलकी धारा निकली अनन्तर प्यासप्ते विकल उस धेनुने तृणको खाकर धीरे धीरे श्रद्धापूर्वक उस सुन्दर स्वादुवाले व दूधके समान जलको पिया उस जलको उस धेनुको शीघ्रतासे पीतेहुये उस भूतलमें जलसे घिरे हुये व बहुत चौड़े गढ़े होगये तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! प्यासप्ते व्याकुल अन्य सैकड़ों गाइयोंने अमृतरसके समान व अतिनिर्मल उस पानीको पिया

धेन्वातृणस्तम्बमतीवहि ॥ ४ ॥ नसमालोकितन्तत्रदूरादेकाप्रहर्षिता ॥ दन्तैर्द्रुतंसमुत्पाट्ययावदाकर्षतिद्विजाः ॥ ५ ॥ तावत्तज्जलमार्गेणतोयधाराविनिर्गता ॥ अथास्वाद्यतृणंसातुतृषार्ताताच्छनैःशनैः ॥ ६ ॥ पपौजलंयथाश्रद्धंसुस्वादुक्षीरसन्निभम् ॥ तस्यावेगेनतत्तोयंपिबत्यास्तत्रभूतले ॥ ७ ॥ गर्ताजाताःसुविस्तीर्णाःसलिलेनसमावृताः ॥ ततोन्याःशतशो गावःपपुस्तोयंसुनिर्म्मलम् ॥ ८ ॥ तृषार्तास्तद्द्विजश्रेष्ठाः पीयूषरससन्निभम् ॥ यथायथागतागावस्तत्रतोयंपिबन्ति ताः ॥ ९ ॥ तेग ावक्रसंस्पर्शाद्वृद्धिंयान्तितथापिच ॥ तद्गोकुलेकृतेपानेजातेतृष्णाविवर्जिते ॥ १० ॥ गोपालोपितृषार्तस्तुतस्मिंस्तोयेविवेशच ॥ अङ्गंप्रक्षाल्यपीत्वापोयावन्निष्क्रमतिद्रुतम् ॥ ११ ॥ तावत्पश्यतिगात्रंस्वन्द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ ततोविस्मयमापन्नोगत्वास्वीयन्निकेतनम् ॥ १२ ॥ वृत्तान्तंकथयामासलोकानांपुरतोखिलम् ॥ तृणस्तम्बोयथा तत्रगवाचोत्पाट्यभक्षितः ॥ १३ ॥ यथाविनिर्गतन्तोयंयथातेनावगाहितम् ॥ तद्दृष्ट्वामानवास्सर्वेगत्वादिव्यंजलञ्च

व वहांपर गईहुई गाइयां ज्यों २ जलको पीतीथीं ॥ ६ । ७ । ८ । ९ ॥ तिसपर भी वे गढ़े मुखके भलीभांति स्पर्श से वृद्धिको प्राप्त होतेथे उस गौओं के वृन्द को जलपान करनेपर व प्यासप्ते रहित होनेपर ॥ १० ॥ प्यासप्ते दुःखी वह गौओंका रक्षकभी उसी जलमें प्रवेश किया व अङ्गको धोकर तथा जलको पीकर जबतक वह शीघ्रही निकला ॥ ११ ॥ तबतक बारह सूर्य्य के समान छविवाले अपने शरीरको देखताहै तदनन्तर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये गोपालने अपने घरको जाकर ॥ १२ ॥ मनुष्यों के अगाड़ी समस्त वृत्तान्त को कहा जिस प्रकार कि वहांपर गऊने तृणके गुच्छेको खायाथा ॥ १३ ॥ व जिस प्रकार जल निकलाथा व जैसे उसने स्नान किया

था उसको देखकर समस्त मनुष्यों ने व विशेषकर रोगोंसे ग्रसेहुये नरोंने जो उत्तम या देवसम्बन्धी जल था उसके निकट जाकर सावधान होकर स्नान किया व उसी क्षण पापों व रोगोंसे विशेषकर छूटगये ॥ १४ । १५ ॥ व फिर पापसे रहित मनुष्य उसीक्षण स्वर्ग को जातेथे हे द्विजोत्तमो ! जिसलिये यह तीर्थ गऊके मुख से उत्पन्नहुआ उसी कारण तबसे लगाकर गोमुखसंस्थित तीर्थ प्रसिद्ध हुआ इसके अनन्तर बिन क्लेशही के मनुष्यों को श्रेष्ठपदार्थदायक तीर्थको देखकर डरेहुये इन्द्र ने धूरिसे पूर्णकरदिया ऋषिलोग बोलेकि हे सूतपुत्र ! वह क्या कारण कहागयाहै कि जिससे उस स्थानसे वैसा जल निकला उस चरित को हमलोगों से

यत् ॥ १४ ॥ व्याधिग्रस्ताविशेषेणस्नानंचक्रुस्समाहिताः ॥ भवन्तिस्मविनिर्मुक्तारोगैःपापैश्चतत्क्षणात् ॥ १५ ॥ अपा पाश्चपुनर्यान्तितत्क्षणात्त्रिदिवालयम् ॥ ततःप्रभृतितत्ख्यातन्तीर्थंगोमुखसंस्थितम् ॥ १६ ॥ गोमुखाद्भूतलेजातंयत श्चैतद्द्विजोत्तमाः॥अथभीतस्सहस्राक्षस्तद्दृष्ट्वाग्र्यप्रदायिकम् ॥ १७ ॥ अक्लेशेनमनुष्याणां पूरयामासपांशुभिः ॥ ऋष यऊचुः ॥ किन्तत्कारणमादिष्टंयेनतत्तादृशञ्जलम् ॥ तस्मात्स्थानाद्विनिष्क्रान्तंसूतपुत्रवदस्वनः ॥ १८ ॥ सूतउ वाच ॥ अत्रपूर्वन्तपस्तप्तमम्बरीषेणभूभुजा ॥ पुत्रशोकाभिभूतेनतोषितोगरुडध्वजः ॥ १९ ॥ तस्यपुत्रस्सुविख्यातः सुवर्चाइतिविश्रुतः ॥ एकोबभूववृद्धत्वेकथञ्चिद्द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेनसबालोपिचतत्सुतः ॥ कुष्ठव्या धिसमाक्रान्तःपिताचाभूत्सुदुःखितः ॥ २१ ॥ अथतत्कामिकंक्षेत्रंसम्प्राप्यपृथिवीपतिः ॥ चकाररोगनाशायस्वपुत्रार्थं महत्तपः ॥ २२ ततस्तुष्टिङ्गतस्तस्यस्वयमेवजनार्दनः ॥ प्रदायदर्शनंवाक्यन्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २३ ॥ परितुष्टोस्मि

कहिये॥१६।१७।१८॥सूतजी बोले कि पुरातन समय इसस्थानपै पुत्रके शोचसे तिरस्कृत याने दुःखी अम्बरीषभूपालने तप किया व गरुड़ध्वजको प्रसन्न किया है ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस अम्बरीषकी वृद्धावस्था में किसीभांति सुवर्चा ऐसा सुना हुवा अति प्रसिद्ध एक पुत्र हुवा है ॥ २० ॥ उसका पुत्र वह बालक भी पूर्वजन्मके कर्मफलसे कुष्ठरोग से घिरगया व पिता अत्यन्त दुःखित हुवा ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर अम्बरीष भूपति ने उस गोमुखस्थ कामदायक क्षेत्रको भलीभांति पाकर अप- ने पुत्र के निमित्त रोगनाशके लिये बडेभारी तपको किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्नताको प्राप्तहुये जनार्दन (विष्णु) जी आपही उसको दर्शन देकर उसके उपरान्त

आदर समेत वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे वत्स, पुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं इस लिये चित्तमें चाहे हुये वरको मांगो मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे केशव ! मेरा यह बालकभी सम्मत (प्यारा) पुत्र कुष्ठरोगसे ग्रसित होगया है तुम इसके कुष्ठरोग को नाशकरो ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि पुरातन समय में यह मेघ वाहन नामक राजा हुवा है जोकि ब्राह्मणको माननेवाला व कियेहुये उपकार का जाननेवाला व समस्त शास्त्रार्थ के पारजानेवाला था ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर इस ने किसीकाल में रात्रि के समय रनिवास में पैठे व जार कर्म (छिबोरी) करने वाले ब्राह्मणको मारा है ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर प्रातःकाल सूर्य्य उदयहोनेपर जब

तेवत्सतस्माच्चित्तेभिवाञ्छितम् ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामिवरंपुत्रनसंशयः ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ ममायंसम्मतःपुत्रोग्रस्तः कुष्ठेनकेशव ॥ बालोपित्वंकुरुष्वास्यकुष्ठव्याधिपरिक्षयम् ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एषआसीत्पुराराजामेघवाहनस ञ्ज्ञितः ॥ ब्रह्मण्यश्चकृतज्ञश्चसर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ २६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यब्राह्मणोनेनघातितः ॥ अन्तःपुरेरात्रिका लेप्रविष्टोजारकर्म्मकृत ॥ २७ ॥ अथपश्यतियावत्तम्प्रभातेऽभ्युदितेरवौ ॥ यज्ञोपवीतसंयुक्तस्तावत्सद्विजरूपधृक् ॥ २८ ॥ अथतंब्राह्मणंमत्वाघृणाविष्टस्सुदुःखितः ॥ गत्वाकाशींपुरीम्पश्चात्तपश्चक्रेसमाहितः ॥ २९ ॥ राज्येपुत्रंसमाधायवैरा ग्यंपरमङ्गतः ॥ ३० ॥ नियतोनियताहारोभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ततःकालेनसम्प्राप्तोयमस्यसदनम्प्रति ॥ ३१ ॥ विपाप्मा पिचचिह्नेनयुतोयम्पृथिवीपतिः ॥ ब्रह्मघातोद्भवेनैवप्रभवेत्तस्यचस्थितिः ॥ ३२ ॥ येतुकुष्ठेनचग्रस्तादृश्यन्तेमानवाभुवि ॥ तैर्नरैर्ब्राह्मणाघातोविहितश्चान्यजन्मनि ॥ ३३ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेयोगत्वाश्राद्धमाचरेत् ॥ पितॄणाञ्चैवसर्वेषामनृणोपि

तक उसको देखा तबतक वह द्विजरूपधारी व जनेऊ से संयुतथा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर उसको ब्राह्मण मानकर अति दुःखित व लज्जा संयुक्त होतेहुये परम वैराग्य में प्राप्त उसने राज्य पै पुत्रको बिठाकर व काशीपुरीको जाकर पश्चात् सावधान होकर तपस्या की ॥ २९ । ३० ॥ जोकि नियममें प्राप्त व नियम से भोजन करनेवाला व भिक्षान्नसे भोजन करनेहारा था तदनन्तर मृत्यु के द्वारा यमराजके मन्दिर प्रति प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ वं पापरहित भी यह भूपति ब्रह्महत्या से उपजेहुये चिह्नसे संयुत हुवा व उसका वहीं पर ठिकानाहुआ ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य कुष्ठरोगसे ग्रसित देखपड़ते हैं उन मनुष्योंने अन्यजन्म में ब्रह्मघात कियाहै ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें जाकर श्राद्धको करताहै वह समस्त पितरोंके ऋणसे उद्धार भी होजाताहै ॥ ३४ ॥ हे भूपते ! मुझसे कहते हुये इस व-
चन को सत्य जानो कि ब्रह्मघातसे बाहर याने विना कुष्ठरोग नहीं होता है ॥३५॥ अम्बरीष बोले कि हे देवेश सुरेश प्रभो ! इसीलिये मैंने तुमको पूजाहै कि तुम्हारे
प्रसन्न होनेपर पृथ्वी में कुछ असाध्य (न होने योग्य) नहीं रहता है ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस अम्बरीषसे इस प्रकार कहेहुये उन भगवान् मधुसूदनजी ने समाधि से
पातालजाह्नवी के जलको स्मरण किया ॥ ३७ ॥ अनन्तर उन समर्थवान् विष्णु जी से मनके द्वारा ध्यानकीगई वे पातालगङ्गा छोटे छिद्रको कर उसी क्षण निकल

एतत्सत्यंविजानीहिवदतोममभूपते॥३५॥अम्बरीषउवाच॥
चजायते॥३४॥ नब्राह्मणवधाद्बाह्यंकुष्ठव्याधिःप्रजायते॥ एतत्सत्यंविजानीहिवदतोममभूपते ॥३५॥ ... ३६ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन भगवान्म
एतदर्थंसुराधीश मयात्वंपूजितःप्रभो ॥ प्रसन्नेत्वयिदेवेशनासाध्यंविद्यतेभुवि ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन भगवान्म
धुसूदनः ॥ पातालजाह्नवीतोयं ससस्मारसमाधिना ॥३७॥ साध्यातामनसातेन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृत्वातुविवरं
सूक्ष्मं विनिष्क्रान्ताथतत्क्षणात् ॥ ३८ ॥ ततःप्रोवाचवचनमम्बरीषंचतुर्भुजः ॥ निमज्जतुसुतस्तेत्र सुशुभेजाह्नवीज
ले ॥ ३९ ॥ येनकुष्ठविनिर्मुक्तस्तत्क्षणादेवजायते ॥ तथाब्रह्मवधोद्भूतैः पातकैरुपपातकैः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु
समानीयसुतंनृपः॥स्नापयामासतत्तोयैः प्रत्यक्षंशार्ङ्गधन्वनः ॥ ४१ ॥ ततस्सबालकःसद्यस्स्नातमात्रोद्विजोत्तमाः ॥
कुष्ठव्याधिविनिर्मुक्तो जातोबालार्कसन्निभः ॥ ४२ ॥ ततोननामतन्देवं यथानोवेत्तिकश्चन ॥ एतस्मात्कारणात्पूर्वं त

आई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर चार भुजावाले विष्णुजीने अम्बरीषसे कहा कि तुम्हारा पुत्र इस अतिउत्तम जाह्नवीजल में स्नानकरै ॥ ३९ ॥ जिससे कि उसी क्षण कु-
ष्ठरोग से निर्मुक्त होवै व ब्रह्मघातसे उपजे हुये पातकों तथा उपपातकों से छूटजावै ॥ ४० ॥ इसी समय में अम्बरीष नृपति ने पुत्रको भलीभांति लाकर शार्ङ्गधन्वा
वाले विष्णु के सामने उसी जाह्नवीके जलोंसे स्नानकराया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! केवल नहाया हुवा वह बालक उसी क्षण कुष्ठरोग से छूटकर बाल
सूर्य्य याने प्रातःकाल के दिनकरके समान होगया ॥ ४२ ॥ उसके उपरान्त जिस प्रकार कोई न जानै वैसेही उसने प्रणाम किया इसीकारण वह जल पूर्व समय में

समस्त पापहारी हुवा है ॥ ४३ ॥ जोकि गोमुखसे भूतल में फिर भी प्रकट किया गया आज भी उस तीर्थ के जलस्पर्शसे धरातल अत्यन्त पुण्यदायक है ॥ ४४ ॥ रविवार को जो पुरुष सूर्य्य उदय होने पर स्नान करता है उसके गलगण्डादिक रोग शीघ्रही नाशहोजाते हैं ॥ ४५ ॥ और पापसे उपजे व उपद्रव से उत्पन्न हुये जो फोड़ा व खजुली बड़े विकराल भी रोग हैं वे भी नाशहोजाते हैं ॥ ४६ ॥ व फिर जो अकाम मनुष्य भक्तिसे उस तीर्थ में स्नानकरता है वह चक्रधारी देवदेव याने विष्णु के लोकको प्राप्तहोताहै ॥ ४७ ॥ वहां पर वे गङ्गाजी विष्णु से जिस दिन भलीभांति लाईगई हैं उस दिन वृषराशि में सूर्य्य व चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा

त्तोयंसर्वपापहृत् ॥ ४३ ॥ यद्गोमुखेनभूयोपि भूतलेप्रकटीकृतम् ॥ अद्यापि तज्जलस्पर्शात्सुपवित्रंधरातलम् ॥ ४४ ॥ यःस्नानंसूर्य्यवारेण कुरुतेर्कोदयंप्रति ॥ तस्यनाशंद्रुतंयान्ति गलगण्डादिकागदाः ॥ ४५ ॥ व्याधयोपिमहारौद्रा येतु पापसमुद्भवाः ॥ उपसर्गोद्भवाश्चैव विस्फोटकविचर्चिकाः ॥४६ ॥ निष्कामस्तुपुनर्मर्त्यो यस्स्नानंतत्रभक्तितः ॥ कुरुते यातिलोकं स देवदेवस्यचक्रिणः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्दिनेसमानीता सागङ्गातत्रविष्णुना ॥ तस्मिन्दिनेवृषेसूर्य्यस्स्थित श्चित्रासुचन्द्रमाः ॥ ४८ ॥ तिथिश्चैकादशीचैव देवदेवस्यशार्ङ्गिणः ॥ गोवक्त्रेणतृणस्तम्बस्तस्मिंश्चैवतुवासरे ॥ ४९ ॥ समाकृष्टस्तुतत्रैव योगएवंव्यवस्थितः ॥ तथान्योपिदिनेतस्मिन् यदितोयमवाप्यच ॥ ५० ॥ स्नानंकरोतिसद्भक्त्या तत्फलंसोपिचाप्नुयात्॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेगोमुखतीर्थमाहात्म्यन्नामैकनवतित मोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

टिकाथा ॥ ४८ ॥ और देवताओंके देवता शार्ङ्गधनुषवाले (विष्णु) की एकादशी तिथि थी उसी दिन गऊके मुखसे तृणका गुच्छा खींचागया और वहीं पर ऐसा योग विशेषतासे प्राप्तहुवा वैसेही अन्य भी पुरुष यदि उस दिन जलको पाकर उत्तम भक्ति से स्नान करता है वह भी उसी फलको प्राप्तहोता होता है ॥ ४९ । ५० । ५१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमुखतीर्थमाहात्म्यंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । थप्यो रामके परशु सन विरचित दण्डविशाल । सो बनवे अध्याय में बरणत मुनि नरपाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही उस क्षेत्रमें परशुराम जीने अपने कुठार को तोड़कर उत्तम अन्य लोहेके दण्डको छोड़ा है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उपवास में तत्पर होताहुआ मनुष्य उस दण्डको भलीभांति छूकर उसीक्षण निश्चयकर अपने पातकसे छूटजाता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि परशुराम जीने अपने परशुको तोड़कर किसलिये लोहदण्डका निर्माण किया है और वहांपर वह किस लिये फेंकागया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि जिससमय परशुराम जीने रामकुण्ड को जाकर व अपने पितरों को तृप्तकर और यज्ञमें द्विजेन्द्रों को भूमि देकर कोप र-

सूतउवाच ॥ तथान्यालोहयष्टिस्तु तस्मिन्क्षेत्रेतिशोभना ॥ मुक्तापरशुरामेण भङ्क्त्वानिजकुठारकम् ॥ १ ॥ तां स्पृष्ट्वामानवस्सम्यगुपवासपरायणः ॥ मुच्यतेहिस्वकात्पापात्तत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कुतःपरशुरामेण भङ्क्त्वानिजकुठारकम् ॥ निर्म्मितालोहयष्टिस्तुतत्रोत्क्षिप्ताचसाकुतः ॥ ३॥ सूतउवाच ॥ यदारामह्रदंगत्वा तर्पयित्वानिजान्पितॄन् ॥ गतामर्षोद्विजेन्द्राणां दत्त्वायज्ञेवसुन्धराम् ॥ ४ ॥ रामस्सम्प्रास्थितोहृष्टो धृत्वामनसिसागरम् ॥ स्नानार्थंतंसमादाय कुठारंभास्करप्रभम् ॥ ५ ॥ तदातुमुनिभिस्सर्वैः पृष्टोरामस्तुसत्वरम् ॥ वाञ्छद्भिश्चद्विजत्वस्य सिद्धिंशमपरायणैः ॥ ६ ॥ रामराममहाभाग यद्धारयसिपाणिना ॥ शस्त्रंपुण्यप्रतीतेपि रामयुक्तंभवेन्नच ॥ ७ ॥ अनेनकरसंस्थेन तवकोपःकथञ्चन ॥ नयास्यतिशरीरस्यतस्मादेनंपरित्यज ॥ ८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ततोरामःकृताञ्जलिः ॥ प्रोवाचविनयोपेतो गृहसंस्थान्द्विजोत्तमान् ॥९॥ कुठारश्चैवविप्रेन्द्रा रुद्रतेजोद्भवेन च ॥ लोहेननिर्म्मितःपूर्वम

हित व प्रसन्न होतेहुये उस सूर्य्य के समान तेजवाले परशुको भलीभांति लेकर स्नानके लिये मनमें समुद्रको धरकर भलीभांति प्रस्थान किया है ॥ ४ । ५ ॥ उस समय शान्ति में परायण व ब्राह्मणता की सिद्धि को चाहने वाले समस्त मुनियोंने परशुराम जीसे पूंछा है ॥ ६ ॥ कि हे राम, राम, राम, महाभाग ! जिसलिये पुण्य की प्रसिद्धि मेंभी हाथसे शस्त्रको धारेहो वह योग्य नहीं होवै है ॥ ७ ॥ क्योंकि इस शस्त्रको हाथमें भलीभांति प्राप्त होतेहुये तुम्हारे शरीर का कोप किसी प्रकार न जावैगा इसलिये इसको छोड़दीजिये ॥ ८ ॥ उन मुनियों के उस वचनको सुनकर तदनन्तर हाथजोड़े व नम्रता से संयुत होतेहुये परशुराम जीने घरमें प्राप्तहुये द्विजो-

त्तमों से कहा ॥ ६ ॥ कि हे द्विजेन्द्रो ! पुरातन समय विश्वकर्माने रुद्रजीके तेजसे उपजेहुये लोहसे अविनाशी कुठारको बनाया है ॥ १० ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार क्षत्रिय के धर्म में तत्पर भी मैं कैसे इस परशुको छोड़कर दिगन्तर को जाऊं ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुझसे छोड़ेहुये इस कुठार को यदि कोई अन्य पुरुष ग्रहण करैगा तो वह मेरे अवध्य (न मारने योग्य) होगा ॥ १२ ॥ मुख्य ब्राह्मणके भी इस अपराधको सहने के लिये मैं किसी प्रकार समर्थ नहींहूं अन्य मनुष्य की क्याकथा है ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तिसपर भी इस परशुको छोड़ने व ग्रहण करने परभी मेरे शान्ति नहीं है इसलिये तुमलोगों को बड़े उपायसे इस कुठारकी

त्वयोविश्वकर्म्मणा ॥ १० ॥ तदहंसंपरित्यज्य कथमेनंद्विजोत्तमाः॥ क्षात्रधर्म्मपरोप्येवं प्रगच्छामिदिगन्तरम्॥११॥ यदिचैनंमयामुक्तं कुठारंचद्विजोत्तमाः ॥ गृहीष्यतिपरःकश्चिन्ममावध्योभविष्यति ॥ १२ ॥ नापराधमिमंशक्तस्सोढुंचाहंकथञ्चन ॥ अपिब्राह्मणमुख्यस्य जनस्यान्यस्यकाकथा ॥ १३ ॥ तथापिनास्तिमेशान्तिर्मुक्तेप्यस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥ गृहीतेपिचयुष्माभिस्तस्माद्रक्ष्यःप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यद्येनंत्वंमहाभाग रक्षार्थंसंप्रयच्छसि ॥ अस्माकंतत्प्रभङ्क्त्वाशु खण्डंकृत्वासमर्प्पय ॥ १५ ॥ एतद्रक्षामहेसर्वे परमंयत्नमाश्रिताः ॥ नचगृह्णातिवैकश्चित्कृतेकालान्तरेपिच ॥ १६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ चक्रेलोहमयींयष्टिं तंभङ्क्त्वासकुठारकम् ॥ १७ ॥ ततस्सब्राह्मणेन्द्राणामर्प्पयामाससादरम् ॥ रक्षार्थंभार्गवश्रेष्ठोविनयावनतःस्थितः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ लोहयष्टिमिमांरामत्वत्कुठारसमुद्भवाम् ॥ परमंयत्नमास्थाय रक्षयिष्यामएवहि ॥ १९ ॥ यथाशक्तिमयीकीर्तिस्स्कन्दस्यात्रप्र

रक्षाकरना चाहिये ॥ १४ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे महाभाग ! यदि हमलोगों को रक्षाके लिये इस परशु को देते होतो शीघ्रही तोड़ खण्डकरके दीजिये ॥ १५ ॥ क्योंकि बडे उपायमें टिकेहुये हमसब लोग इसकी रक्षा करैंगे और अन्य समय प्राप्तहोनेपरभी कोई ग्रहण न करैगा ॥ १६ ॥ उन द्विजोंके उस वचनको सुनकर शस्त्रधारियोंमें उत्तम उन परशुराम जीने उस कुठार को भञ्जनकर लोहमय दण्डको निर्मित किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर नम्रता से झुके हुये उन भृगूत्तम परशुराम जीने रक्षाके लिये आदर समेत अर्पण किया ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे राम ! तुम्हारे कुठारसे उपजेहुये इस लोहदण्ड को हम बड़े उपायमें टिककर रक्षा

तिष्ठिता ॥ लोहयष्टिमयीतद्वत्तवरामभविष्यति ॥ २० ॥ भ्रष्टराज्यस्तुयोराजा एतामाराधयिष्यति ॥ स्वंराज्यमचिरा
त्प्राप्य सप्रतापीभविष्यति ॥ २१ ॥ विद्याकृतेद्विजोवायः सदैनांपूजयिष्यति ॥ सविद्यांपरमांप्राप्य सर्वज्ञत्वंप्रपत्स्यते ॥
२२ ॥ अपुत्रोवानरोयोथ नारीवापूजयिष्यति ॥ एतांयष्टिंत्वदीयांच पुत्रवान्सभविष्यति ॥ २३ ॥ उपवासपरोभूत्वा
यश्चैनांपूजयिष्यति ॥ आश्विनस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ सप्राप्स्यतितदाकामानभीष्टान्मनसिस्थितान् ॥
२४ ॥ एवंश्रुत्वाततोरामस्तानेवद्विजसत्तमान् ॥ प्रणम्यप्रययौतूर्णं समुद्रसदनंप्रति ॥ २५ ॥ तेपिविप्रास्ततस्तस्याश्चक्रुः
प्रासादमुत्तमम् ॥ तत्रसंस्थाप्यतांयष्टिं चक्रुःपूजांसमाहिताः ॥ २६ ॥ प्राप्नुवन्तिचतांस्पृष्ट्वा कामानेवहृदिस्थितान् ॥ सु
स्तोकेनापिकालेनदुर्लभांस्त्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे लोहयष्टिमाहात्म्यन्ना
मद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तुम्हारी लोहदण्डमय कीर्ति होवैगी ॥ २० ॥ और भ्रष्टराज्यवाला जो राजा इस दण्डका आराधन करैगा वह थोड़ेही समय में अपनी राज्यको पाकर प्रतापी होगा ॥ २१ ॥ अथवा जो ब्राह्मण विद्या के लिये सदैव इसको पूजैगा वह उत्तम विद्या को पाकर सर्वज्ञता को प्राप्त होवैगा ॥ २२ ॥ अथवा जो पुत्रहीन नर या नारी तुम्हारे इस दण्ड को पूजैगा वह पुत्रवान् होगा ॥ २३ ॥ व उपवास में तत्पर होकर जो पुरुष कुँआर के कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में विशेषतासे इस दण्डको पूजैगा वह उस समय मनमें टिकेहुये प्रिय कामों को पावैगा ॥ २४ ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर परशुराम जी उन्हीं द्विजोत्तमों को प्रणामकर शीघ्रही समुद्र के घरको चलेगये ॥ २५ ॥ उसके उपरान्त उन द्विजोंनेभी उस दण्डके उत्तम मन्दिर को बनाया उसमें उस दण्डको भलीभांति थापकर व सावधान होकर पूजन किया ॥ २६ ॥ और उस दण्डको छूकर थोड़े ही समय से देवों से भी दुर्लभ हृदय में टिकेहुये अभिलाषों को पातेथे ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोहयष्टिमाहात्म्यंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अजापालि ईश्वरहि जिमि थाप्योहै अजभूप । तिरानबे अध्याय में कहत सुचरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उस तीर्थ में मनुष्यों को कामना की देनेवाली व पापों को नाशनेवाली और भी देवी है जोकि अजापाल नामक भूपसे थापित हुई है ॥ १ ॥ उसी कारण माघमहीने की शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो पुरुष भक्तिसे पुष्प, धूप व अनुलेपनों से अजापालेश्वरी को पूजता है ॥ २ ॥ वह उन देवीकी प्रसन्नता से समस्त मनुष्यों से दुर्लभ व चाहेहुये अभिलाषों को पाता है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ३ ॥ पुरातन समय उत्तम नरोंसे भलीभांति मानाहुआ अजापाल नामक भूपाल हुआहै जोकि माता व पिताकी नाई समस्त मनुष्यों का हित-

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्तिदेवीकामप्रदानृणाम्॥अजापालेनभूपेनस्थापितापापनाशिनी ॥१॥ माघशुक्लच तुर्दश्यामजापालेश्वरीन्ततः ॥ योवैपूजयतेभक्त्याधूपपुष्पानुलेपनैः ॥ २ ॥ सप्राप्नोतीप्सितान्कामान्दुर्लभान्सर्वमान वैः ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेनसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३ ॥ अजापालोमहीपालःपुरासीत्सम्मतःसताम् ॥ हितकृत्सर्वलो कानां यथामातायथापिता ॥ ४ ॥ तेनराज्यंसमासाद्य पितृपैतामहंशुभम् ॥ चिन्तितंमनसापश्चात्स्वयमेवमहात्मना॥ ५ ॥ मयातत्कर्म्मकर्तव्यंयदन्यैरिहभूमिपैः ॥ नकृतंनकरिष्यन्तियेभविष्यन्त्यतःपरम् ॥ ६ ॥ एषएवपरोधर्म्मोभूप तीनामुदाहृतः ॥ यत्प्रजापालनंशश्वत्तासांचसुखसंस्थितिः ॥ ७ ॥ यथायथाकरंभूपास्तासांगृह्णन्तिलोलुपाः ॥ तथा तथामनःक्षोभोहृदयेसम्प्रजायते ॥ ८ ॥ नकरेणविनाभूपाहस्त्यश्वादिबलञ्चयत् ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुम्पादातञ्चवि शेषतः ॥ ९ ॥ विनातेनसगम्यःस्यान्नीचानामपिसत्वरम् ॥ एतस्मात्कारणाद्भूपाःकरंगृह्णन्तिलोकतः ॥ १० ॥ तस्मा

कारीथा ॥ ४ ॥ उस महात्माने पितृ पितामह वाले राज्यको भलीभांति पाकर पश्चात् आपही मनसे चिन्तन किया ॥ ५ ॥ कि मुझको वह कर्म करना चाहिये कि जिस को इस संसार में अन्य नरोंने न कियाहो और जो इसके उपरान्त होंगे वे न करैं ॥ ६ ॥ क्योंकि भूपोंको यही परम धर्म कहागया है जोके सदैव प्रजाओंका पालन व उनकी सुखसे संस्थिति होवै ॥ ७ ॥ लालची भूपति लोग ज्यों ज्यों उन प्रजाओंके कर को ग्रहण करते हैं त्यों त्यों हृदय में मनका क्षोभ होताहै ॥ ८ ॥ जो हाथी घोड़े आदि व विशेष कर पैदर सेनाहै उसकी रक्षाके लिये भूपति लोग कर के विना समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥ और वह भूपति उस सेनाके विना शीघ्रही नीचजनों

केभी गम्य (जाने योग्य) होताहै इसी कारण से भूप मनुष्यों से कर लेते हैं ॥ १० ॥ इसलिये हाथियों व मनुष्योंके विनाभी मुझको तपस्याकी शक्तिसे राज्य को निष्कण्टक करना चाहिये ॥ ११ ॥ सदैव मनुष्यों को अनुराग करातेहुये व विशेषकर अन्य भूपालों के करोंको न ग्रहण करतेहुये उस महात्माने इसको चित्तमें धर या निश्चयकर तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ व पुरोहित वशिष्ठ जीको भलीभांति बुलाकर आदर समेत कहा ॥ १२ । १३ ॥ हे विप्रजी ! इस भूतल में सबतीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थहो जहांपर कि महादेव या वासुदेव अथवा ब्रह्मा जी थोड़ेही समयमें प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं इसको शीघ्रही मुझसे कहिये कि जिससे हे द्विजोत्तम ! अपने लिये

न्मयाविनाप्याशुनागैश्चैवनरैस्तथा ॥ तपःशक्त्याप्रकर्तव्यंराज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ११ ॥ करानगृह्णतातेनलोकान्रञ्जयतासदा ॥ अन्येषांभूमिपालानां विशेषेणमहात्मना ॥ १२ ॥ एतच्चित्तेसमाधाय वशिष्ठंमुनिपुङ्गवम् ॥ पुरोधसंसमाहूयततःप्रोवाचसादरम् ॥ १३ ॥ अत्रभूमितलेविप्रसर्वेषांतीर्थमुत्तमम् ॥ अल्पकालेनसन्तुष्टिंयत्रयातिमहेश्वरः ॥ १४ ॥ वासुदेवोथवाब्रह्मा एतच्छीघ्रंवदस्वमे ॥ येनाहंसर्वलोकस्य हितार्थंतपआदधे ॥ १५ ॥ नस्वार्थम्ब्राह्मणश्रेष्ठ सत्येनात्मानमालभे ॥ वशिष्ठउवाच ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्चतीर्थानामिहभूतले ॥ १६ ॥ सन्तिपार्थिवशार्दूलप्रभावसहितानिच ॥ अष्टषष्टिस्ततोराजन्क्षेत्राणामस्तिभूतले ॥ १७ ॥ येषांसान्निध्यमभ्येतिसर्वदैवमहेश्वरः ॥ तथासर्वेसुरास्तुष्टाब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १८ ॥ परंसिद्धिप्रदंशीघ्रंमानुषाणांमहीपते ॥ हाटकेश्वरदेवस्यक्षेत्रंपातकनाशनम् ॥ १९ ॥ देवानामपिसर्वेषान्तुष्टिङ्गच्छतिचण्डिका ॥ शीघ्रमाराधितासम्यक्श्रद्धायुक्तैर्नरैर्भुवि ॥ २० ॥ तस्मात्क्षेत्रं

नहीं किन्तु समस्त संसार के हित के लिये तपस्याको करूं यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं वशिष्ठ जी बोले कि हे नृपोत्तम, राजन् ! इस संसारमें तीन कोटि व अर्ध कोटि याने साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ प्रभाव समेत हैं वैसेही भूतल में अरसठि क्षेत्रहैं ॥ १४ । १५ । १६ । १७ ॥ कि जिनकी समीपता मे सदैवही महादेव जी प्राप्तहोते हैं और ब्रह्मा विष्णु व शिवादिक समस्त देवता प्रसन्न होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे भूपते ! मनुष्योंकी परम सिद्धि का दायक व पातको का विनाशक हाटकेश्वर देवका क्षेत्र है ॥ १९ ॥ और भूतल में समस्त देवताओं के बीच में भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्यों से आराधन कीहुई अम्बिका जी शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं ॥ २० ॥

इसलिये उस क्षेत्र में प्राप्त होकर श्रद्धासंयुत व पवित्र तथा नियम में प्राप्त व नियम से भोजन करतेहुये तुम व्रतमें तत्पर व ब्रह्मचर्य्य में परायण होकर उन देवी का आराधन करो व त्रिकाल स्नान करो उस क्षेत्र में भूपति ने इस प्रकार चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से आराधन किया ॥ २१ । २२ ॥ उसके उपरान्त पूजन में तत्पर हुये उस भूपतिके ऊपर वह देवी प्रसन्न होगई देवी बोलीं कि हे वत्स ! नित्यप्रति के इस व्रतसे व आपही कियेहुये इस बलिपूजन के विधानसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहुईहूं इसलिये हे भूपाल ! कहिये कि जिससे मैं तुम्हारे मनमें टिकेहुये देवताओं सेभी दुर्लभ समस्त पदार्थ को शीघ्रही करूं राजा बोले कि मैंने मनुष्यों

समासाद्यतान्देवींश्रद्धया।न्वितः ॥ ब्रह्मचर्य्यपरोभूत्वाशुचिर्व्रतपरायणः ॥ २१ ॥ नियतोनियताहारस्त्रिकालंस्नानमाच र ॥ एवमाराधयत्तत्रगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ २२ ॥ पूजापरस्यसादेवीतस्यतुष्टिन्ततोगता ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मि तेवत्सव्रतेनानेननित्यशः ॥ २३ ॥ वलिपूजाविधानेनविहितेनामुनास्वयम्॥तद्ब्रूहियेनतेसर्वंप्रकरोमिहृदिस्थितम्॥२४॥ सद्यएवमहीपालत्रिदशैरपिदुर्लभम्॥ राजोवाच॥लोकानांहितकामेनमयैतद्व्रतमाहितम् ॥२५॥ येनतेषांभवेत्सौख्यंम त्प्रसादादनुत्तमम्॥तस्माद्देहिमहाभागेज्ञानयुक्तानिभूरिशः ॥ २६ ॥ ममास्त्राणिविचित्राणिखेचराणिसमन्ततः ॥ यानि जानन्तिभूपृष्ठेममपार्श्वेस्थितान्यपि ॥ २७ ॥ अपराधंसदालोकेपरदारादिकञ्चयत् ॥ अनुरूपन्ततस्तस्यपातकस्यवि निग्रहम् ॥ २८ ॥ प्रकुर्वन्तिमिथोयेननतेषांसङ्करोभवेत् ॥ मन्त्रग्रामन्तथादेविममदेहिपृथग्विधम् ॥ २९ ॥ निग्रहंव्या धिसत्त्वानांयेनशीघ्रङ्करोम्यहम्॥ येनस्युर्मनुजाःसर्वेममराज्येसुखान्विताः ॥ ३० ॥ नीरोगाःपुष्टिसम्पन्नाभयशोकवि

के हितकी कामनासे इस व्रत को किया है ॥ २३।२४।२५ ॥ जिससे कि मेरी प्रसन्नतासे उन मनुष्यों को अतिउत्तम आनन्द होवै इसलिये हे महाभागे ! सबओर से आकाशचारी व विचित्र तथा ज्ञानसे संयुत बहुतेरे अस्त्रों को मुझे दीजिये कि मेरे समीप में स्थित भी जिन अस्त्रोंको भूतल में मनुष्य जानते हैं ॥ २६ । २७ ॥ व संसार में पराई भार्य्यादिकों में मनुष्य जिस अपराध को करते हैं उसीकारण उस पातक के सदृश दण्डको दीजिये क्योंकि जिससे उन मनुष्यों का सङ्कर वर्ण होताहै वैसेही हे देवि ! भिन्न प्रकार के मंत्रसमूह को मुझको दीजिये ॥ २८ । २९ ॥ कि जिससे शीघ्रही मैं रोगों व प्राणियों को दण्डकरूं जिससे मेरे राज्य में

समस्त मनुष्य सुखसे संयुत होवै ॥ ३० ॥ व रोगरहित होकर पुष्टिसे संयुत व भय तथा शोचसे रहित होवैं हे देवि ! मैं हाथी, घोड़ा व रथको संग्रह न करूंगा ॥ ३१॥ जिसलिये कि इस संसार में समस्त मनुष्यों के धनादिक सब पदार्थ को लेकर हाथी इत्यादि शोभित होते हैं उसी कारण मुझको वह प्रिय नहीं है ॥ ३२ ॥ देवी बोलीं कि हे भूपते ! तुमने इस अत्यन्तही अद्भुत कर्मका प्रारम्भ कियाहै जिसको किसी ने भी नहीं किया है न कोई करैगा ॥ ३३ ॥ तिसपर भी ऐसाही करूंगा तुम को ज्ञानयुक्त अस्त्रोंको व उसी प्रकार के मंत्रसमूह को मैं सम्पूर्णतासे दूंगी ॥ ३४ ॥ जिससे बड़े विकराल भी रोग तुमसे ग्रहण किये जावैंगे परन्तु उत्तम मंत्रोंसे

वर्जिताः ॥ नाहन्देविकरिष्यामिहस्त्यश्वरथसंग्रहम् ॥ ३१ ॥ यतोहस्त्यादिकंसर्वंराजतेऽत्रधनादिकम् ॥ गृहीत्वासर्वं लोकानांतस्मात्तन्नममेप्सितम् ॥३२॥ देव्युवाच ॥ अत्यद्भुततरङ्कर्म्मत्वयैतत्पृथिवीपते ॥ प्रारब्धंयन्नकेनापिकृतंनच करिष्यति ॥ ३३ ॥ तथाप्येवंकरिष्यामितवदास्यामिकृत्स्नशः ॥ ज्ञानयुक्तानिशस्त्राणिमन्त्रग्रामञ्चतादृशम् ॥ ३४ ॥ गृह्यन्तेयेनतेसर्वेव्याधयोपिसुदारुणाः ॥ परंसदैवतेरक्ष्यास्सन्मन्त्रैरपिसंयताः ॥ ३५ ॥ यदिदृष्टिपथात्त्वत्तःक्वचिद्या स्यन्तिदूरतः ॥ मानवान्पीडयिष्यन्तिचिरात्प्राप्याधिकन्ततः ॥ ३६ ॥ यदात्वंपृथिवीपालस्वर्गंयास्यसिभूपते ॥ तदात्र सलिलेस्थाप्यामदग्रेयद्व्यवस्थितम् ॥ ३७ ॥ सर्वेमन्त्रास्तथास्त्राणिममवाक्यादसंशयम् ॥ येनस्यात्पूर्ववत्सर्वोव्यवहा रोनयोद्भवः ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतेनोक्तेतत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ प्रादुर्भूतानिदिव्यानितस्यास्त्राणिबहू निच ॥ ३९ ॥ ज्ञानसम्पत्प्रयुक्तानियादृशानिमहात्मना ॥ तेनसंयाचितान्येवव्याधिमन्त्रास्तथैवच ॥४०॥ व्याधयोयै

कीलित भी वे रोग रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ ३५ ॥ क्योंकि यदि तुम्हारे दृष्टिमार्गसे कहीं दूर जावैंगे तो बहुत दिनोंसे पाकर उससे अधिक मनुष्यों को दुःखित करैंगे ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपाल, भूपते ! जब तुम स्वर्ग को जावोगे तब ये समस्त मंत्र व अस्त्र मेरे वचनसे निरसन्देह इस जल में स्थापन के योग्य हैं जोकि मेरे आगे विशेषतासे प्राप्तहैं जिससे नीतिसे उपजाहुआ समस्त व्यवहार पूर्वके तुल्य होवै ॥ ३७ । ३८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस भूपति को हां यह कहने पर उसी क्षण जैसे कि उस महात्मा भूपतिने मागेथे वैसेही ज्ञानरूपी संपत्ति से संयुत बहुतेरे दिव्यअस्त्र उसके आगे प्रकट होगये और वैसेही रोगोंके मंत्र प्रकटहुये ॥ ३९ । ४० ॥ कि

जिन मंत्रों से सदैव अपनी इच्छासे रोग ग्रहण कियेजाते व छोड़े जातेथे व दृष्टिगोचर में भलीभांति टिकेहुये सबलोगोंका सुखसे परिपालन होताथा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नृपतिने चण्डिकासे उपजेहुये उस समस्त प्रसादको पाकर एक अपनी स्त्रीको व एक दशरथ पुत्रको छोड़कर उस समस्त हाथी इत्यादिक पदार्थको द्विजोंके लिये देदिया और उन समस्तभी रोगोंको यत्नसे मंत्रोंके द्वारा भलीभांति रोंककर ॥ ४२ । ४३ ॥ व छागरूपवाले रोगोंको वह नृप आपही पीछे दण्डको लेकर रक्षा करताथा भूतल में उस नरेश को इसप्रकार वर्तमान होनेपर ॥ ४४ ॥ किसी पुरुषका छिपा भी अपराध न हुआ प्रकट कहांसे होवै यदि कोई असावधानता से भूलोकमें पापको

अगृह्यन्तेमुच्यन्तेस्वेच्छयासदा ॥ सुखेनपरिपाल्यन्तेदृष्टिगोचरसंस्थिताः ॥४१॥ ततस्तंसकलम्प्राप्यप्रसादञ्चण्डिकोद्भवम् ॥ तच्चहस्त्यादिकंसर्वंब्राह्मणेभ्योददौनृपः ॥ ४२ ॥ एकांमुक्त्वानिजांभार्य्यामेकन्दशरथंसुतम् ॥ तांश्चापिसकलान्व्याधीन्मन्त्रैस्संयम्ययत्नतः ॥ ४३ ॥ अजारूपान्स्वयंपश्चाद्यष्टिमादायरक्षति ॥ एवन्तस्यनरेन्द्रस्यवर्तमानस्य भूतले ॥४४॥ गुप्तोपिनापराधस्स्यात्कस्यचित्प्रकटःकुतः ॥ प्रमादाद्यदिभूलोकेकश्चित्पापंसमाचरेत् ॥ ४५ ॥ तद्रूपोनिग्रहस्तस्यतत्क्षणादेवजायते ॥ वधंवायदिवाबन्धंक्लेशञ्चार्तिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ अदृष्टान्यपिशस्त्राणितानिकुर्वन्ति तत्क्षणात् ॥ अन्येषांचमहीपानांराज्येगुप्तान्यनेकशः ॥४७॥ कुर्वन्तिमनुजास्तेपाञ्चक्रेवैवस्वतोगृहम् ॥ नतत्रभयसन्त्रस्तस्ततःपापंसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षंवाविशेषेणज्ञात्वाशस्त्रभयञ्चतत् ॥ ततस्तेपापनिर्मुक्तालोकास्संशुद्धगात्रकाः ॥ ४९ ॥ रोगेषुनिगृहीतेषुप्राप्तास्सुखमनुत्तमम् ॥ एवंस्थितेषुलोकेषुगतपापभयेषुच ॥ ५० ॥ प्रयाताःशून्यतांसर्वेनरका

करताथा ॥ ४५ ॥ तो उसी क्षणही उसको उस अपराध के समान दण्ड होताथा क्योंकि वध या बन्धन या पीडासे उपजेहुये क्लेश को वे न देखेहुये भी शस्त्र करते थे और अन्य भूपोंके राज्यमें छिपेहुये पापोंको जिन मनुष्यों ने किया उनके लिये यमराजने घर बनाया उसी कारण उस शस्त्रके भयको जानकर उस राज्यमें भयसे डराहुआ मनुष्य सामने विशेषकर पातक को नहीं किया उसी कारण पातकोंसे छूटेहुये व भलीभांति पवित्र अङ्गोंवाले वे मनुष्य ॥ ४६ । ४७ । ४८ । ४९ ॥ रोगों के पकड़लेने पर अतिउत्तम सुखको प्राप्तहुये और गयेहुये पाप भयवाले मनुष्य जब इसप्रकार स्थित हुये तब ॥ ५० ॥ जो यममन्दिर में नरक थे वे सब

शून्यताको प्राप्तहोगये कोई पुरुष नरकको नहीं जाता था व मृत्यु के मार्गको नहीं प्राप्त होता था ॥ ५१ ॥ जैसे सतयुग में व्यवहार था वैसेही त्रेता में भी भलीभांति
स्थितहुआ उसी कारण जब यमलोक में उपजाहुआ व्यवहार नष्टहोगया व मृत्युरहित प्राणी स्वर्ग की समताको प्राप्तहोगये तब दुःखसे संयुत यमराज ने ब्रह्माके
मन्दिर प्रति जाकर व पितामह जीको प्रणामकर कहा कि हे देव ! पुरातन समय धर्म व अधर्म के देखने की इच्छा से तुमने मुझको ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ मनुष्यों
के निग्रह (दण्ड) व अनुग्रह (दया) में भलीभांति आज्ञा दियाथा हे सुरोत्तम ! अजापाल भूपति ने चण्डिका देवीको आराधकर तपस्या की शक्तिसे उस समस्त

व्यवहारेततोन
येयमालये ॥ नकश्चिन्नरकंयातिनचमृत्युपथन्नरः ॥ ५१ ॥ यथाकृतयुगेतादृक्त्रेतायामपिसंस्थितम् ॥ व्यवहारेततोन
ष्टेयमलोकसमुद्भवे ॥ ५२ ॥ स्वर्गेणतुल्यतांप्राप्तेप्राणिभिर्मृत्युवर्जितैः ॥ ततोवैवस्वतोगत्वाब्रह्मणस्सदनम्प्रति ॥ ५३ ॥
प्रोवाचदुःखसम्पन्नःप्रणिपत्यपितामहम् ॥ अहंपुरात्वयादेवधर्म्माधर्म्मदिदृक्षया ॥ ५४ ॥ मानुषाणांसमादिष्टोनिग्र
हानुग्रहम्प्रति ॥ अजापालेनभूपेनतत्सर्वंनिष्फलीकृतम् ॥ ५५ ॥ तपःशक्त्यासुरश्रेष्ठ देवीमाराध्यचण्डिकाम् ॥ नाध
योव्याधयस्तेननपापानिमहीतले ॥५६॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वाब्रह्मालोकपितामहः ॥ समीपउपविष्टस्यशिवस्यास्यंव्यलो
कयत् ॥ ५७ ॥ अथाब्रवीत्प्रहस्योच्चैस्त्रिनेत्रश्चतुराननम् ॥ अत्यद्भुततमांश्रुत्वा तांवार्तांयमसम्भवाम् ॥ ५८ ॥ महे
श्वरउवाच ॥ धर्म्ममार्गप्रवृत्तस्य सदाचारस्यभूपतेः ॥ कथन्निवारणन्तत्रक्रियतेकश्चनिग्रहः ॥ ५९ ॥ तस्मात्तेनमही
पेनयस्मान्मार्गःप्रदर्शितः ॥ अपूर्वोधर्म्मसम्भूतःकृतस्सम्यग्महात्मना॥६०॥तन्मयापियथाचास्यप्रसादस्सुरसत्तम ॥

उन यमराज के उस वचन को सुनकर लोकोंके पितामह ब्रह्मा
वस्तुको निष्फल करदिया उसी कारण भूतल में मानसी व्यथा व व्याधि व रोग नहीं है ॥ ५५ । ५६ ॥ उन यमराज के उस वचन को सुनकर लोकोंके पितामह ब्रह्मा
जीने समीप में बैठेहुये शिव जीके मुखको विलोकन किया ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर तीन नेत्रवाले शिवजी यमराज से उपजीहुई अत्यन्तही अद्भुत उस वार्ताको सुन
कर व उच्चप्रकार से हँसकर चतुर्मुख (ब्रह्मा) से बोले ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले कि धर्ममार्ग में वर्तमान व उत्तम, आचारवाले भूपका उस कर्ममें कैसे वारण (रोंक)
कियाजावे व कौन निग्रह कियाजावे ॥ ५९ ॥ जिसलिये कि उस महात्मा भूपतिने धर्मसे उपजेहुये अपूर्व मार्गको दिखलाया है व भलीभांति किया है ॥ ६० ॥ इस

लिये हे सुरोत्तम ! जिसप्रकार इस नृपतिकी अपूर्व प्रसन्नता होवै वैसाही करना चाहिये जैसे कि धर्म दूषित न होवै ॥ ६१ ॥ शिवजीने चतुरानन से ऐसा कहकर तदनन्तर यमराज से कहा कि इस अजापाल भूपति के आयुर्बल का जो शेषहो उसको कहो ॥ ६२ ॥ कि जिससे वह समय प्राप्त होनेपर उस भूपको अपने स्थानको लेजाऊं यमराज बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! उसके आयुर्बल मेंसे पांचहजारवर्ष व्यतीत हुयेहैं व पचपन हज़ारवर्ष बीतने से अन्य याने शेष आयुर्बल स्थित है तभीतक निजाश्रम शून्य होगया ॥ ६३ । ६४ ॥ इसलिये उसके विनाशवाले किसी उपाय को शीघ्रही करिये यमराज के ऐसा कहनेपर इसके अनन्तर उन यमराजको घर

अपूर्वःकरणीयश्च यथा धर्म्मोनदुष्यति ॥ ६१ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्रंयमम्प्राहततःशिवः ॥ वदायुषोस्ययच्छेषमजापाल स्यभूपतेः ॥ ६२ ॥ येनतत्समयेप्राप्तेतन्नयामिनिजं क्षयम् ॥ यमउवाच ॥ पञ्चवर्षसहस्राणितस्यातीतानिचायुषः ॥ ६३ ॥ तिष्ठन्तिपञ्चपञ्चाशदतीतान्यन्तथावयः ॥ तावत्कालंसुरश्रेष्ठशून्यञ्जातंस्वमाश्रमम् ॥ ६४ ॥ तस्मात्कुरुद्रुतं किञ्चिदुपायन्तद्विनाशनम् ॥ एवमुक्तेयमेनाथतंविसृज्यगृहम्प्रति ॥ ६५ ॥ व्याघ्ररूपंसमास्थायस्वयन्तत्सन्निधौय यौ ॥ यत्रसंस्थोमहीपस्सप्रजापालनतत्परः ॥ ६६ ॥ मेघगम्भीरनिर्घोषङ्गर्ज्जमानोमुहुर्मुहुः ॥ अजास्ताश्चाथसंवीक्ष्य व्याघ्रंरौद्रवपुर्द्धरम् ॥ ६७ ॥ अजापालंसमुद्दिश्यसन्त्रस्ताःशरणङ्गताः ॥ तस्ययत्नपरस्यापिरक्ष्यमाणस्यभूपतेः ॥ ६८ ॥ अजास्ताव्याघ्ररूपेणशङ्करेणप्रभक्षिताः ॥ अजानांकदनन्दृष्ट्वाततस्सपृथिवीपतिः ॥ ६९ ॥ स्वहस्ताद्यष्टिमुत्सृ ज्यजग्राहनिशितायुधम् ॥ यत्तस्यतुष्टयादत्तञ्चण्डंचण्डार्चिषासमम् ॥ ७० ॥ अथतस्यतथान्यानिदेवीदत्तानिशङ्करः ॥

प्रति बिदाकर ॥ ६५ ॥ आपही व्याघ्ररूपमें भलीभांति स्थित होकर मेघोंके समान गम्भीर शब्दको बार बार गर्जतेहुये शिवजी उसके समीप गये जहांपर कि प्रजापालन में परायण होताहुआ वह भूप भलीभांति टिकाथा इसके अनन्तर विकराल शरीर को धारेहुये व्याघ्रको भलीभांति देखकर डरीहुई उन छागियोंने अजापाल भूपका भलीभांति उद्देशकर शरण में गमनकिया रक्षा करतेहुये व उपाय में परायण भी उस भूपतिकी ॥ ६६ । ६७ । ६८ ॥ उन छागियों को शङ्कर जीने व्याघ्ररूप से भक्षण करलिया तदनन्तर उस अजापाल भूपने छागियोंका विनाश देखकर ॥ ६९ ॥ अपने हाथसे दण्डको छोड़कर उस तीखे किरणों के तुल्य प्रचंड व पैने अस्त्रको

शनैःशनैःप्रजग्राहस्ववक्त्रेणमहेश्वरः ॥ ७१ ॥ अस्त्राभावात्ततस्तूर्णंध्रियमाणोपिकान्तया ॥ द्वन्द्वयुद्धेनतंशीघ्रंयोध
यामासभूपतिः ॥ ७२ ॥ ततस्तस्याङ्गसंस्पर्शान्मुक्त्वाव्याघ्रतनुंचताम् ॥ दधारभस्मसन्दिग्धांस्वान्तनुञ्चन्द्रभूषिता
म् ॥ ७३ ॥ मुण्डमालाधरान्दिव्यांसखट्वाङ्गांसपन्नगाम् ॥ तान्दृष्ट्वासमहीपालस्सभार्य्यःप्रणतस्ततः ॥ ७४ ॥ प्रोवा
चाथस्तुतिंकृत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नोहर्षगद्गदयागिरा ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ अज्ञानाद्यन्मया
देवप्रहारास्तवनिर्मिताः ॥ तिरस्कारतयादत्तास्तत्सर्वंक्षम्यतांविभो ॥ ७६ ॥ भगवानुवाच ॥ क्षान्तस्तुक्षमयापुत्रमया
सर्वःपराभवः ॥ परितुष्टेनतेकर्म्मदृष्ट्वाचैवातिमानुषम् ॥ ७७ ॥ यथाकृतन्त्वयाराज्यंप्रजास्संरक्षितानृप ॥ तथान्योभूपतिः
कश्चिन्नकर्तानकरिष्यति ॥ ७८ ॥ तस्माद्गच्छमयासार्द्धंपातालम्पार्थिवोत्तम ॥ अनेनैवशरीरेणधर्म्मपत्न्यानयासह ॥ ७९ ॥

लिया कि जिसको प्रसन्नहुई भगवतीने दियाथा ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर उस भूप को देवीसे दियेहुये अन्यभी अस्त्रोंको शङ्कर (कल्याणकारक) महादेव जीने धीरे धीरे अपने मुखके द्वारा ग्रहण किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अस्त्रके अभावसे शीघ्रही स्त्रीसे धारण कियेहुये भी भूपतिने तुर्तही द्वंद्वयुद्धसे उन शिव जीसे समर किया ॥ ७२ ॥ उसके उपरान्त उस भूपके अङ्गस्पर्श से उस बाघके शरीरको छोड़कर शिव जीने चन्द्रमासे भूषित व विभूति से लिपटेहुये अपने शरीरको धारण किया ॥ ७३ ॥ जो कि खट्वाङ्ग सहित व सर्पों समेत व दिव्य (उत्तम) मुण्डोंकी मालाको धारण कियेथा उस शरीर को देखकर तदनन्तर स्त्री समेत प्रणाम करताहुआ व नम्रतासे नीचे झुका व टिका तथा आनन्द के आंसुओंसे सबओर भीगाहुआ वह भूप स्तुति को कर अनन्तर प्रसन्नता से गद्गदा वाणी से बोला ॥ ७४ । ७५ ॥ राजा बोले कि हे व्यापक, देव ! जोकि अज्ञानताके कारण मुझसे कियेहुये प्रहार तुमको निरादरतासे दियेगये उस समस्त अपराधको क्षमा करिये ॥ ७६ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे पुत्र ! मनुष्यसे अतिरिक्तवाले तुम्हारे कर्मको देखकर प्रसन्नहुये मैंने सहनशीलतासे समस्त तिरस्कारको क्षमाकिया ॥ ७७ ॥ हे नृप ! जिसभांति तुमने राज्य को किया व प्रजाओं की भलीभांति रक्षाकियाहै उस प्रकार दूसरा कोई भूपति न करताहै न करैगा ॥ ७८ ॥ इसलिये हे भूपसत्तम ! इस धर्मपत्नी समेत इसी शरीरसे मेरे साथ

पाताल को चलो ॥ ७९ ॥ जिसलिये कि तुमसे उपजाहुआ कर्म समस्त देवताओंसे विरुद्ध है उसी कारण इसके उपरान्त तुमको मृत्युलोक में किसी प्रकार न टिकना चाहिये ॥ ८० ॥ राजा बोले कि हे देव ! अयोध्या महापुरी को जाकर व राज्यपै पुत्रको बिठाकर तथा मंत्रियों को भलीभांति निवेदनकर ऐसाही करूंगा ॥ ८१ ॥ व हे देव ! पुरातन समय जिसने अनेकों प्रकारके शस्त्रोंको व मंत्रसमूह को दियाहै उस प्रसन्न महादेवीने मुझसे कहाथा ॥ ८२ ॥ कि हे प्राज्ञ ! तुम जब अतिदुस्त्यज मृत्यु लोक को छोड़ियेगा तब मेरे इस कुण्डमें शस्त्र सम्पूर्णता से फेंकने योग्य हैं ॥ ८३ ॥ हे सुरेश ! उन अस्त्रों को फिरभी दीजिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से मैं इस

नातःपरन्त्वयास्थेयम्मर्त्यलोकंकथञ्चन ॥ विरुद्धंसर्वदेवानांयतःकर्म्मत्वदुद्भवम् ॥ ८० ॥ राजोवाच ॥ एवन्देव करिष्यामिगत्वायोध्यांमहापुरीम् ॥ पुत्रंराज्येप्रतिष्ठाप्यमन्त्रिणांसन्निवेद्यच ॥ ८१ ॥ तथाहन्देवदेव्याचप्रोक्तस्सन्तुष्टयापुरा ॥ मन्त्रग्रामोययादत्तःशस्त्राणिविविधानिच ॥ ८२ ॥ यदात्वन्त्यजसिप्राज्ञमर्त्यलोकंसुदुस्त्यजम् ॥ तदात्रमामकेकुण्डेप्रक्षेप्तव्यानिकृत्स्नशः ॥ ८३ ॥ तानिचार्प्पयभूयोपियेनानृण्यंव्रजाम्यहम् ॥ तस्यादेव्याःसुराधीशत्वत्प्रसादेनसाम्प्रतम् ॥ ८४ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनभगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ आज्ञाप्यतानिसर्वाणिददौतत्रद्रुतङ्गतः ॥ ८५ ॥ अब्रवीच्चसुतस्तेत्रस्वयंराजाभविष्यति ॥ वीर्य्यौदार्य्यशमोपेतोवंशस्यधारणक्षमः ॥ ८६ ॥ त्वञ्चगच्छमयासार्द्धमद्यैवममममन्दिरम् ॥ प्रविश्यात्रजलेपुण्येदेवीकुण्डसमुद्भवे ॥ ८७ ॥ अद्यमाघचतुर्दश्यांशुक्लायामपरोपियः ॥ देवीमिमाञ्चसम्पूज्यजलेस्मिन्भक्तिसंयुतः ॥ ८८ ॥ करिष्यतिप्रवेशेनप्राणत्यागन्नृपोत्तम ॥ सचयास्यतियत्रास्तेपातालेहा

समय उस देवीसे उऋण होजाऊं ॥ ८४ ॥ उस भूपति से इसभांति कहेहुये त्रिपुरान्तक (शिव) भगवान् ने उन समस्त शस्त्रोंको दिया तदनन्तर आज्ञाको देकर शीघ्रही वहांगये व बोले कि तुम्हारा पुत्र आपही यहां राजाहोगा जोकि पराक्रम व उदारता व शान्ति से संयुत तथा वंशके धारनेमें समर्थ होगा ॥ ८५।८६ ॥ और तुम इस देवीकुण्डसे उपजेहुये पुण्यदायक जलमें पैठकर आजही मेरेसाथ मेरे मन्दिरको चलो ॥ ८७ ॥ हे नृपोत्तम ! आज शुक्लपक्षवाली माघमास की चतुर्दशी में भक्ति

संयुत अन्यभी जो पुरुष इन देवीको भलीभांति पूजकर व इस जलमें प्रवेशसे प्राणोंका त्याग करैगा वह पाताल में जावैगा जहांपर कि हाटकेश्वर जी टिके हैं ॥८८ । ८९ ॥ हे नृपोत्तम ! अथवा जो नर स्नान करैगा उसके एकसौ आठ रोगों के मध्यमें कोई रोग न होगा ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा कहकर व स्त्री समेत उस नृपको लेकर महादेव जीने उन छागियों व उन अस्त्रों सेभी समेत देवीके कुण्डसे उपजे हुये उस जल में प्रवेश किया तदनन्तर अपने मन्दिर को प्राप्तकिया ॥ ९१ । ९२ ॥ उस पाताल में निज पत्नी समेत उन हाटकेश्वर देवजीकी श्रद्धा करताहुआ वह नृप वृद्धता व मृत्युसे रहित होकर उसी मनुज शरीरसे आजभी टिका है वहांपर

टकेश्वरः ॥ ८९ ॥ स्नानंवापार्थिवश्रेष्ठयःकरिष्यतिमानवः॥अष्टोत्तरशतन्तस्यव्याधीनांनभविष्यति॥९०॥ एवमुक्त्वातमादायनृपम्भार्य्यासमन्वितम्॥अजाभिस्ताभिरस्त्रैश्चतैश्चापिपरमेश्वरः॥९१॥प्रविवेशजलेतस्मिन्देवीकुण्डसमुद्भवे॥ततश्चमन्दिरन्नीतस्स्वकीयन्द्विजसत्तमाः ॥ ९२ ॥ तेनैवनरदेहेन स्वकलत्रसमन्वितः ॥ अद्यापितिष्ठतेतत्रजरामरणवर्जितः ॥ ९३ ॥ श्रद्दधानश्चतन्देवम्पातालेहाटकेश्वरम् ॥ एवंतत्रसमुद्भूतासादेवीयामहेश्वरी ॥ ९४ ॥ स्थापितानेनभूपेनश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजापालीश्वरीमाहात्म्यंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

एवंतस्मिन्गतेभूपे अजापालेरसातले ॥ पुत्रस्तस्याभवद्राजा मन्त्रिभिस्तुपुरस्कृतः ॥ १ ॥ योनित्यमगमत्स्वर्गेवासवंरमतेसदा ॥ शनैश्चरोजितोयेन रोहिणींपरिभेदयन् ॥ २ ॥ गृहेयस्यस्वयंविष्णुर्भूत्वाचैवचतुर्विधः ॥ रावणस्य

वह देवी इस प्रकार उत्पन्नहुई है कि जिस महेश्वरीको इस अजापाल भूपने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके स्थापन किया है ॥ ९३ । ९४ । ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजापालीश्वरीमाहात्म्यंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दशरथनृप शनिदेव सों कीन बतकही जौन । चौरनबे अध्यायमें कहत चरित सब तौन ॥ इसप्रकार जब वह अजापाल भूपति रसातल को चलागया तब मन्त्रियों से पुरस्कृत (माना हुआ) उस का पुत्र राजा हुआ ॥ १ ॥ जो नित्यही स्वर्ग में जाताथा व सदैव इन्द्रके साथ क्रीड़ा करताथा व जिसने रोहिणी को भेदन

करतेहुये शनैश्चरको जीताहै ॥ २॥ व रावणके विनाशके लिये प्रसन्न होतेहुये विष्णुजीने आपही चार भांतिके होकर जिसके घरमें जन्म लियाहै ॥ ३ ॥ उस नृपति ने यहांपर उस क्षेत्रमें आकर व सुन्दर मन्दिरको रचकर तदनन्तर मधुसूदन (विष्णु) जीको प्रसन्न कियाहै ॥ ४ ॥ उसकी भी प्रसिद्ध बावलीहै जो कि आपही उससे रची हुई राजवापी ऐसी इस संसार में परमप्रसिद्धताको प्राप्तहै ॥ ५ ॥ पंचमी दिनको भलीभांति प्राप्त होने पर व विशेष कर पितरपक्षमें जो पुरुष उस बावली के निकट श्राद्ध करताहै वह सज्जनों का प्यारा होताहै ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि उस नृपने किस प्रकार शनैश्चरको जीता है जो कि रोहिणी रूप शकट को भेदन करता

विनाशार्थं जन्मचक्रेप्रहर्षितः ॥ ३ ॥ तेनागत्यात्रतत्क्षेत्रे तोषितोमधुसूदनः ॥ प्रासादंशोभनंकृत्वा ततश्चैवप्रतिष्ठि
तः ॥ ४ ॥ तस्यापिविश्रुतावापी स्वयन्तेनविनिर्म्मिता ॥ राजवापीतिलोकेस्मिन्विख्यातिम्परमङ्गाता ॥ ५ ॥ तस्यां
यःकुरुतेश्राद्धं सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने॥ प्रेतपक्षेविशेषेण सनरस्स्यात्सताम्प्रियः ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथन्तेनाजितस्सौ
रोरोहिणीशकटंचयः ॥ भिनत्तितोषितस्तेन कथंनारायणोवद ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ तस्मिञ्छासतिधर्म्मज्ञेस्वधर्म्मे
णवसुन्धराम्.॥ अतिसौख्यान्वितोलोकस्सर्वदैवव्यजायत ॥ ८ ॥ बहुक्षीरप्रदागावःसस्यानिगुणवन्तिच ॥ कामवर्षी
चपर्जन्योयथर्तुफलिताद्रुमाः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यदैवज्ञैस्तस्यभूपतेः ॥ कथितंरोहिणीभेदंरविपुत्रःकरिष्यति॥
१० ॥ तस्यानन्तरमेवाशुदुर्भिक्षंसम्भविष्यति ॥ अनावृष्टिश्चभवितारौद्राद्वादशवार्षिकी ॥ ११ ॥ यथासम्पत्स्यते

था व उसने किसप्रकार नारायण को प्रसन्न कियाहै इस चरित्र को कहो॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि धर्मके जाननेहारे उस नृपतिको निज धर्मसे पृथ्वी को शासते (सिखलाते या परिपालन करते) हुये सदैवही अतिआनन्दसे संयुक्त संसार हुआ ॥ ८ ॥ व गौवें बहुत दूधदेनेवाली और अन्न गुणवान् तथा मेघ इच्छाके अनुकूल बरसनेवाले और वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल फलनेवाले हुयेहैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर किसी समय ज्योतिर्वित् पण्डितोंने उस भूपसे कहा कि रविपुत्र (शनैश्चर) रोहिणी का भेदन करैगा ॥ १० ॥ उसके बाद शीघ्रही दुर्भिक्ष होगा व ऐसा विकराल बारहवर्ष का अवर्षण होगा ॥ ११ ॥ कि जिस प्रकार समस्त पृथ्वीतल पुरुषों

से रहित होगा उन परिडतोंके उस वचनको सुनकर क्रोधित होता हुआ वह राजा विमानपै चढ़कर व शनैश्चरका उद्देश कर गया पुरातन समयं प्रसन्न हुयें इन्द्रने उस नृपको इच्छाके अनुकूल जानेवाले विमानको भलीभांति दिया था उसीपै संस्थित होताहुआ भूपति शनैश्चरके समीप शीघ्रही गया तदनन्तर सूर्य्यके पन्थको छोड़ कर उसके उपरान्त चन्द्रमाकी नक्षत्ररूप पद्धतिको पाकर व बड़े भारी धनुषको चढ़ाकर व उसमें बाणको समारोपणकर शनैश्चर अतिशीघ्रगामी हुआ ॥ १२। १३ । १४ । १५ ॥ व आगे खड़े होकर नीचे मुखवाले रविपुत्र (शनैश्चर) से बोला कि हे शनैश्चर ! इससमय तुम मेरे वचनसे इस रोहिणीके मार्गको छोड़

सर्वम्भूतलंगतमानवम् ॥ तेषान्तद्वचनंश्रुत्वासराजाकुपितोभ्यगात् ॥ १२ ॥ शनैश्चरंसमुद्दिश्यविमानमधिरुह्यच ॥ तस्यतुष्टेनसन्दत्तंविमानंकामगम्पुरा ॥ १३ ॥ शक्रेणतत्रसन्तिष्ठञ्छनैश्चरमुपाद्रवत् ॥ ततःसूर्य्यपथंमुक्त्वाततश्चन्द्रस्यपार्थिवः ॥ १४ ॥ नक्षत्रसरणिंप्राप्यसज्जंकृत्वामहद्धनुः॥ तत्रबाणंसमारोप्यशनैश्चरमुपाद्रवत् ॥ १५ ॥ प्रोवाचपुरतस्स्थित्वासूर्य्यपुत्रमधोमुखम् ॥ त्यजैनंरोहिणीमार्गंसांप्रतंत्वंशनैश्चर ॥ १६ ॥ मद्वाक्यादन्यथाहन्त्वान्नयिष्यामियमक्षयम् ॥ एतेननिशिताग्रेणशरेणानतपर्वणा ॥ १७ ॥ दिव्यास्त्रमन्त्रयुक्तेनसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वातादृग्रौद्रतमम्महत् ॥ १८ ॥ मन्दोविस्मयमापन्नस्ततश्चेदमभाषत ॥ कस्त्वम्ब्रूहिमहाभागममामार्गरुणत्सियः ॥ १९ ॥ अगम्यंकेनचिल्लोकेसर्वैरपिसुरासुरैः ॥ राजोवाच ॥ अहंदशरथोनामवंशेसूर्य्यभवेन्नृपः ॥ २० ॥ अजस्यतनयःप्राप्तःकामंवारयितुंक्रुधा ॥ मन्दउवाच ॥ नत्वयासहसम्बन्धः कश्चिदस्तिमहीपते ॥ २१ ॥ ममयस्त्वतिकोपाद्धेम

दो ॥ १६ ॥ नहीं तो मैं इस झुकेहुये गाँठिवाले व पैने अग्रभागवाले तथा दिव्यास्त्रोंके मंत्रसे छोड़े हुये इस बाणसे तुमको यमस्थान को पहुँचाऊँगा यह मैं सत्य कहता हूँ उस नृपके वैसे उस बड़े भारी विकराल वचनको सुनकर ॥ १७।१८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्तहोते हुये शनैश्चरने यह कहा कि हे महाभाग ! तुम कौनहो जो कि मेरे मार्ग को रोंकतेहो ॥ १९ ॥ जो मार्ग कि समस्तभी देवता व दैत्यों मेंसे किसीसे नहीं जाने योग्यहै राजा बोले कि सूर्य्यसे उपजे हुये वंशमें अजका पुत्र मैं दशरथ नामकहूँ और क्रोधसे रोंकने के लिये इच्छापूर्वक प्राप्तहुआहूं शनैश्चर बोले कि हे भूपते ! तुम्हारे साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥ २० । २१ ॥ जो तुम अतिक्रोधसे

मेरे मार्ग को रोंकनेके लिये चाहते हो राजा बोले कि रोहिणीसे उपजे हुये शकटको तुम निश्चयकर भेदन करोगे ॥ २२ ॥ हे शनैश्चर! इससमय दैवज्ञ याने ज्योतिषी पंडितोंने मुझसे इस वाक्य को कहाहै कि उस शकटको तुम्हारे भेदन करने पर इन्द्रजी नहीं वरसैंगे इसको ज्योतिषशास्त्रमें प्रवीण पण्डित लोग कहतेहैं अनन्तर वृष्टिका रोंक होजानेपर पृथ्वीमें अन्न नहीं उपजतेहैं ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर अन्न न होनेसे भूतलमें मनुष्य नाश होजाते हैं उसके उपरान्त नरों का नाश होनेपर धरणीपृष्ठमें अग्निष्टोमादिक क्रियायें नहीं होतीहैं उसके उपरान्त विनाशही होवै है इसी कारण हे सूर्य्यसम्भव (शनैश्चर) ! रोहिणी प्रति जानेकेलिये कामनावाले

न्मार्गंहन्तुमिच्छसि ॥ राजोवाच ॥ रोहिणीसम्भवन्त्वंहिशकटम्भेदयिष्यसि ॥ २२ ॥ साम्प्रतंममदैवज्ञैर्वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ तस्मिन्मन्दत्वयाभिन्नेनवर्षतिशतक्रतुः ॥२३ ॥ एतद्वदन्तिदैवज्ञाज्योतिःशास्त्रविचक्षणाः ॥ जातेवृष्टिनिरोधेथजायन्तेन्नानिनक्षितौ ॥२४॥ अन्नाभावात्क्षयंयान्तिततोभूमितलेजनाः॥जनोच्छेदेततोजातेअग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ २५ ॥ नभवन्तिधराप्रष्ठेततस्स्यादेवसंक्षयः ॥ एतस्मात्कारणाद्रुद्धोमार्गस्तेसूर्य्यसम्भव ॥ २६ ॥ रोहिणींगन्तुकामस्यसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ शनिरुवाच ॥ गच्छपुत्रनिजङ्गेहंममापित्वंवरंवृणु ॥ २७ ॥ तुष्टोहन्तववीर्य्येणनत्वन्येनमहीपते ॥ नकेनचित्कृतंकर्म्मयदेतद्भवताकृतम् ॥ २८ ॥ नकरिष्यतिचैवान्योदेवोवामानवोथवा ॥ नाहंपश्यामिभूपालकथञ्चिदपिचोर्ध्वतः ॥ २९ ॥ यतोदृष्ट्याभवेद्दग्धम्भस्मसाज्जायतेखिलम् ॥ जातमात्रेणबालेनमयापादौनिरीक्षितौ ॥ ३० ॥ जातस्यसहसादग्धौततोहंवारितोम्बया ॥ नत्वयातुप्रद्रष्टव्यंकिञ्चिद्देहंकथञ्चन ॥ ३१ ॥ प्रमाणंय

तुम्हारे मार्ग को रोंका यह मैंने सत्य कहाहै शनैश्चर बोले कि हे पुत्र ! तुम अपने घरको जावो व मुझसे भी वरदानको स्वीकारकरो ॥ २५ । २६ । २७ ॥ हे भूपते ! मैं तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्नहूं क्योंकि आपने जो इस कामको किया उसको अन्य किसी ने नहीं कियाहै ॥ २८ ॥ और न तो अन्य देवता या मनुष्य करैगा हे भूपाल ! मैं किसी प्रकार भी ऊपरसे नहीं देखताहूं ॥ २९ ॥ क्योंकि दृष्टिसे जलाहुआ सम्पूर्ण पदार्थ भस्म होजाताहै मुझ उत्पन्नमात्र बालकसे पांय देखेगये ॥३०॥ व पैदाहुये मेरे

अचानकही भस्म होगये तदनन्तर मुझको माताने रोंका कि यदि माताके वचन से उपजाहुआ धर्म तुमको प्रमाणहै तो तुमको किसी प्रकार किसी देहको न देखनाचाहिये उसीकारण तुमने बडे भारी इस दुष्कर (कठिन) कर्मको किया ॥ ३१।३२ ॥ हे नृपोत्तम ! जिसलिये कि प्रजाओंके लिये तुमने मेरे डरको दूरसे छोड़दिया उसी कारण तुम्हारे लिये मैं रोहिणीको भेदन न करूंगा ॥ ३३ ॥ राजा बोले कि तुम्हारा दिन प्राप्तहोनेपर जो पुरुष तैलाभ्यङ्ग करै उसकी व्यथाको तुमको अन्यदिन तक न करना चाहिये ॥ ३४ ॥ व तुम्हारे दिन में जो पुरुष शक्तिसे तिलदान व लोहदानही को करता हैं वह वर्ष भरतक क्लेशों समेत संकटों में सदैवही तुमसे रक्षाकरने

दितेधर्म्मोमातृवाक्यसमुद्भवः ॥ तस्मात्त्वयामहत्कर्म्मकृतमीदृक्सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ प्रजानाम्पार्थिवश्रेष्ठत्यक्तन्दूराद्भयंमम ॥ तस्मात्तवकृतेनाहंभेदयिष्यामिरोहिणीम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ तवयोवासरेप्राप्तेतैलाभ्यङ्गंकरोतिवै ॥ तस्यान्यदिवसंयावत्पीडाकार्य्यानचत्वया ॥ ३४ ॥ तिलदानंकरोत्येवलोहदानन्तुयस्तव ॥ करोतिदिवसेशक्त्यायावद्वर्षन्त्वयाहिसः ॥ ३५ ॥ रक्षणीयस्सकृच्छ्रेषुसङ्कटेषुसदैवहि ॥ त्वयिगोचरपीडायांसंस्थितेवार्कसम्भव ॥ ३६ ॥ यःकुर्य्याच्छान्तिकंसम्यक्तिललोहञ्चभक्तितः ॥ वासरेतवसम्प्राप्तेतवपूजांकरिष्यति ॥ ३७ ॥ तस्यसार्द्धानिवर्षाणिसप्तकार्य्याप्रयत्नतः ॥ त्वयारक्षाप्रकर्तव्याअयमेववरोस्तुमे ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ तथास्त्वितिनृपंचोक्त्वाविरराम ततःपरम् ॥ शनैश्चरोमहीपालवचनाद्द्विजसत्तमाः ॥ ३९ ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यंशृणुयाद्योविशेषतः ॥शनैश्चरकृतापीडातस्यनाशंहिगच्छति ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदशरथशनिसंवादोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

योग्य है और हे सूर्य्यसम्भव ! तुमको गोचरवाली पीडामें भलीभांति टिकनेपर ॥ ३५ । ३६ ॥ जब तुम्हारा दिन भलीभांति प्राप्तहोवै तब जो पुरुष भक्तिसे भलीभांति तिल लोहवाले शान्तिककर्मको करै व तुम्हारा पूजनकरै ॥ ३७ ॥ उस पुरुषकी रक्षा तुमको बड़े उपायसे साढ़े सातवर्षतक करना चाहिये यही मेरा वरदान होवै ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा यह नृपतिसे कहकर तदनन्तर शनैश्चर भूपालके वचन से चुपहोरहे ॥ ३९ ॥ जो पुरुष इस चरितको नित्यही पढ़ैगा व जो विशेषकर सुनैगा उसकी शनैश्चर से कीहुई पीड़ा निश्चय नाशको प्राप्त होतीहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेभाषाटीकायांचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

दो०। दशरथ नृपको चरित अरु राम जन्मको हाल। पञ्चनबे अध्यायमें बरणत अतिहि रसाल ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस दशरथ नृपति के वचनसे तब से लगाकर शनैश्चर रोहिणीशकटको नहीं भेदन करते हैं ॥ १ ॥ उस प्रकारके उत्पन्नहुये चरितको भलीभांति सुनकर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रजी उन दशरथ भूपाल के समीप जाकर तदनन्तर आदर समेत बोले ॥ २ ॥ कि हे भूपते ! तुमने इस अत्यन्त उत्तम कर्मका साधन किया कि जिससे मनसेभी नहीं चिन्ता कीजाती है॥ ३ ॥ इसीसे आज मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हुआहूं मुझसे आज उस प्यारे वरको ग्रहणकरिये कि जो हृदय में स्थितहो ॥ ४ ॥ राजा बोले कि हे सुरोत्तम ! मैं तुम्हारे साथ

सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिनोमन्दो रोहिणीशकटंद्विजाः ॥ भिनत्तिवचनात्तस्य राज्ञोदशरथस्यच ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा तंसमाकर्ण्य तस्यशक्रःप्रहर्षितः ॥ भूपालन्तंसमभ्येत्यततश्चोवाचसादरम् ॥ २ ॥ अत्यद्भुततरंकर्म्मत्वयैतत्पृथिवीपते ॥ संसाधितम्परंयेनमनसापिनचिन्त्यते ॥ ३ ॥ अतएवहिसन्तुष्टस्सञ्जातोद्यतवोपरि ॥ वरंमत्तोगृहाणाद्ययदभीष्टंहृदिस्थितम् ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ त्वयासहसुरश्रेष्ठमैत्रींसम्प्रार्थयाम्यहम् ॥ शाश्वतींसर्वकृत्येषुपरमांलोकसंस्थिताम् ॥ ५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्रत्वयासहसदामम ॥ सम्पत्स्यतेसदामैत्रीवसोरिवचशाश्वती ॥ ६ ॥ त्वया सदैवमेपार्श्वंसन्ध्यायान्देवसन्निधौ ॥ आगन्तव्यंविशेषेणयेनमैत्रीप्रवर्द्धते ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षोजगामत्रिदशालयम् ॥ राजापिचागतोहर्म्यंस्वकीयंहर्षसंयुतः ॥ ८ ॥ रक्षयित्वाजगत्सर्वंशनैश्चरकृताद्भयात् ॥ अयोध्यांप्राप्यसत्कीर्तिंस्तूयमानस्स्ववन्दिभिः ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिनित्यंससन्ध्याकालउपस्थिते ॥ सायाह्नंसंविधायाथयातिशक्रस्यमन्दिर

समस्त कार्य्यों में सदैववाली उत्तम मैत्रीको मांगताहूं जोकि संसार में भलीभांति स्थित होवै ॥ ५ ॥ इन्द्र बोले कि हे नृपेन्द्र ! ऐसाही होगा वसुके समान मेरी निरन्तर वाली मैत्री तुम्हारे साथ सदैव भलीभांति प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ हे देवि ! सन्ध्यासमय में सदैव तुमको विशेषकर मेरे समीप आना चाहिये कि जिससे मित्रता बढ़ती है ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर हजार नेत्रवाले इन्द्रजी स्वर्ग को चलेगये व हर्षसंयुत होतेहुये नृपतिभी अपने घर को चलेआये ॥ ८ ॥ सब संसार को शनैश्चर से कीहुई भयसे बचाकर अयोध्यापुरी में उत्तम यशको पाकर निज वन्दीजनों से स्तुति कियेगये ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर नित्यही सन्ध्या समय समीप प्राप्तहोनेपर वे दशरथजी सन्ध्यो-

पासन कर्मको भलीभांतिकर अनन्तर इन्द्रके मन्दिरको जातेथे ॥ १० ॥ वहांपर बैठकर देरतक गन्धर्वों के मनोहर गीतको सुनकर व तालादिक से कियेहुये सुख-दायक नाचको देखकर ॥ ११ ॥ व देवर्षियों के मुखसे निकलीहुई विचित्र अर्थवाली कथाओं को सुनकर व आपभी कहकर अपने मन्दिरको जातेथे ॥ १२ ॥ हंस, मयूरों से शब्दायमान व मनोहर ध्वजाओंसे सबओर अलंकृतवाले उत्तम विमानपै चढ़ेहुये जब जब वे दशरथ जी इन्द्रके स्थानसे अपने घरको जातेथे तब तब सदैव उन इन्द्रके आमनपै इन्द्रकी आज्ञासे छिरकाव किया जाताथा ॥ १३ । १४ ॥ उस समय वह भूप किसीभांति नहीं जानताथा अन्य दिन में उन्हीं दशरथके घरमें आयेहुये

म् ॥ १० ॥ तत्रस्थित्वाचिरंश्रुत्वागन्धर्वाणांमनोहरम् ॥ गीतंदृष्ट्वाथनृत्यञ्चतालादिविहितंशुभम् ॥ ११ ॥ विचित्रा
र्थाःकथाःश्रुत्वादेवर्षीणांमुखाच्च्युताः ॥स्वयञ्चकीर्तयित्वाचप्रयातिनिजमन्दिरम् ॥ १२ ॥ विमानवरमारूढोहंसबर्हिण
नादितम् ॥ मनोहरपताकाभिःसमन्ताच्चविभूषितम् ॥१३॥ यदायदासनिर्यातिशक्रस्थानान्निजालयम् ॥ तदातदास
नेतस्यक्रियतेभ्युक्षणंसदा ॥ १४ ॥ शक्रादेशात्तथावेत्तिनसभूपःकथञ्चन ॥ अन्यस्मिन्दिवसेतस्यनारदोमुनिसत्त
मः ॥ १५ ॥ कथयामासतत्सर्वमभ्युक्षणसमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तन्तस्यराजर्षेस्तस्यैवगृहमागतः ॥ १६ ॥ तीर्थयात्राप्रस
ङ्गेनविद्वेषपरिवृद्धये॥तच्छ्रुत्वानारदेनोक्तंश्रद्धेयमपिभूपतिः ॥ १७ ॥ नचक्रेहृदयेऽधर्म्ममात्मानंपरिचिन्तयन् ॥ तथा
पिकौतुकाविष्टोगत्वाशक्रनिवेशनम् ॥ १८ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेस्थित्वाचिरन्तत्रचसंस्थितः॥अनन्तंवीक्षयामासस्वा
सनन्दूरमास्थितः ॥ १९ ॥ किञ्चित्सत्वन्तरम्प्राप्यकौतूहलसमन्वितः ॥ ततःशक्रसमादेशादुत्थायसुरकिङ्करः ॥ २० ॥

मुनिनायक नारद जीने तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उन इन्द्र जीके प्रोक्षण से उपजेहुये उस समस्त वृत्तान्तको वैर बढ़ने के लिये उन दशरथ राजर्षिसे कहा श्रद्धाके योग्य भी नारदसे कहेहुये उस वचनको सुनकर भूपतिने ॥ १५ । १६ । १७ ॥ आत्मा (विश्वव्यापक) को सबओर से चिन्तन करतेहुये चित्तमें अधर्मको न किया तिस परभी कौतुकमें व्याप्त होताहुआ वह अन्य दिनमें इन्द्रके स्थान को जाकर वहां बहुत देरतक बैठकर भलीभांति स्थितहुआ और किसी छिद्रको पाकर कौतुक से संयुत

व दूर टिकेहुये उस भूपने परोक्ष में निज आसन को देखा उसके उपरान्त इन्द्रकी आज्ञासे सुरसेवक ने उठकर ॥ १८ । १९ । २० ॥ भूपके उस आसनको जलसे प्रोक्षण किया याने धोया उसको देखकर क्रोधसंयुत होताहुआ वह नृप इन्द्रके समीपजाकर बोला ॥ २१ ॥ कि हे इन्द्र ! यह क्याहै कि जो मेरा आसन धोयाजाता है क्या मैंने ब्राह्मणों को माराहै अथवा क्या द्विजसे उपजीहुई किसी आज्ञाको लोप किया है या ब्राह्मणों की निन्दा कियाहै अथवा युद्ध में भलीभांति आयेहुये वैरियों को देखकर मैं भगाहूं ॥ २२ । २३ ॥ या उन शत्रुओं के भयभीत चित्तवाले मैंने दीन वचन कहाहै या हे इन्द्र ! मेरी राज्य में बड़े बलिष्ठ नरोंसे दुर्बल पीडित होता

प्रोक्षयामासतोयेनपार्थिवस्यतदासनम् ॥ तद्दृष्ट्वाकोपसम्पन्नः सराजाभ्येत्यवासवम् ॥ २१ ॥ प्रोवाचकिमिदंशक्र प्रोक्ष्यतेयन्ममासनम् ॥ किंमयानिहताविप्राःकिंवाविप्रसमुद्भवम् ॥ २२ ॥ शासनंलोपितंकिञ्चित्किंवाविप्राविनिन्दिताः ॥ किंवानष्टोस्मिसंग्रामेदृष्ट्वाशत्रून्समागतान् ॥ २३ ॥ दैन्यंवाजल्पितन्तेषांभयत्रस्तेनचेतसा ॥ ममराज्येऽथवा शक्रदुर्बलोबलवत्तरैः ॥ २४ ॥ पीड्यतेवाऽथचौराद्यैर्मुष्यतेवञ्चकैस्तथा ॥ किंवाराज्येमदीयेचजायतेयोनिविप्लवः ॥ सङ्करोवाथवर्णानांपरित्यक्तोविधानतः ॥ २५ ॥ किंवादुर्जनवाक्येनदूषितोदोषवर्जितः ॥ बाध्यतेममराज्येचकेनचित्रिदशेश्वर ॥ २६ ॥ किंवाचौरोथपापोवागृहीतोदोषवान्स्वयम् ॥ मुच्यतेद्रव्यलोभेनतथान्योवाजुगुप्सितः ॥ २७ ॥ कच्चिन्मयापरित्यक्तःकोप्यत्रशरणङ्गतः ॥ भयत्रस्तोविभीतेनप्राणानांत्रिदशाधिप ॥ २८ ॥ कस्यवापृष्ठमांसानिभक्षितानिमयाकचित् ॥ कच्चित्त्रिदशाधीशब्राह्मणस्यविशेषतः ॥ २९ ॥ किंवादानंमयादत्त्वाब्राह्मणाय

है अथवा चौरादिक व छली मनुष्यों से चोरी कीजाती है अथवा क्या मेरी राज्यमें योनिविल्लव याने जातियों में भ्रष्टता होतीहै याने नहीं अथवा विधिसे त्याग किया हुआ क्या वर्णसङ्कर होता है ॥ २४ । २५ ॥ अथवा हे सुरनायक ! क्या मेरे राज्यमें दुर्जन से दूषित होताहुआ दोषरहित पुरुष किसी से क्लेशित होताहै॥२६॥अथवा ग्रहण कियाहुआ आपही दोषवाला या चोर अथवा पापी या अपर निन्दित पुरुष क्या द्रव्यके लालचसे छोडदिया जाताहै ॥ २७ ॥ अथवा हे सुराधीश ! इस संसार में क्या प्राणों के भय से रहित मैंने भयभीत किसी भी शरणागत को परित्याग कियाहै ॥ २८ ॥ व हे देवनायक ! कहींपर किसी मनुष्यके व विशेष कर ब्राह्मणके पृष्ठ

मांसों का मैंने कभी भक्षण कियाहै ॥ २९ ॥ या मैंने महात्मा ब्राह्मणके लिये दानको देकर क्या पीछे पश्चात्ताप कियाहै या मैंने दिये हुये पदार्थ की अपेक्षा (लेने की इच्छा) कियाहै ॥ ३० ॥ अथवा मेरे राज्यमें दिन या रात्रिको सब ओर से दुःखित व दीन मनुष्यों के अश्रुपात होते हैं ॥ ३१ ॥ अथवा हे सुरेश ! मेरे घर में देवताओं व पितरों काभी कर्म क्या लोपको प्राप्त होताहै या विधि से हीन कियाजाता है ॥ ३२ ॥ जिस लिये कि तुमसे मुझ भूपति के आसन का प्रोक्षण नित्यही किया जाताहै उसी कारण मैंने जिस पापको कियाहै उसको कहिये ॥ ३३ ॥ इन्द्र बोले कि हे महाराज ! तुम्हारे शरीर में पातक नहीं है ॥ ३४ ॥ और राज्य में व

महात्मने ॥ पश्चात्तापःकृतःपश्चाद्दत्तंवापेक्षितंमया ॥ ३० ॥ किंवाराज्येमदीयेचदीनानांप्रपतन्तिच ॥ अश्रुपातादि वारात्रौदुःखितानांसमन्ततः ॥ ३१ ॥ दैवंवापैतृकंवापिकिंवाकर्म्मगृहेमम ॥ लोपङ्गच्छतिदेवेन्द्रक्रियतेवाविधिच्युत म् ॥ ३२ ॥ यत्त्वयाभूपतेर्नित्यन्तोयैरभ्युक्षणंमम ॥ आसनस्यकृतंब्रूयायत्पापंविहितंमया ॥ ३३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ नविद्यतेमहाराजशरीरेतवपातकम् ॥ ३४ ॥ नराष्ट्रेचकुलेगेहेभृत्यवर्गेविशेषतः ॥ परंशृणुप्रवक्ष्यामियत्तेपापंभविष्य ति ॥ ३५ ॥ तेनसम्प्रोक्ष्यतेचैवआसनंसर्वदैवतु ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्तिनचस्वर्गंप्रपद्यते ॥ ३६ ॥ पैतृकेप्यसमापन्नः स त्क्षणेनसदानृप ॥ द्वेष्यतांयातिदेवानांपितॄणाञ्चविशेषतः॥ ३७ ॥ यदापश्यतिपुत्रस्यवदनंपुरुषोनृप ॥ सोनृण्यंसमवा प्नोतिपितॄणाञ्चतदाध्रुवम् ॥ ३८ ॥ सत्वन्नैवगतोराजन्नानृण्यंयन्मयोदितम् ॥ पितॄणान्तेनतेनित्यमासनेऽभ्युक्षणंकृ तम् ॥ ३९ ॥ तस्माद्यतस्वपुत्रार्थंयदीच्छसिपराङ्गतिम् ॥ आत्मानन्नरकात्त्रातुंपुंसंज्ञाच्चतथानृप ॥ ४० ॥ एवमुक्तःस

कुल में व घरमें व विशेष कर सेवक समूहमें पाप नहींहै परन्तु जो पातक तुम्हारे होगा उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ ३५ ॥ उसी से सदैवही आसन धोया जाता है हे नृप ! पुत्रहीन पुरुषकी गति नहीं है और न स्वर्ग को प्राप्त होताहै और वह पुरुष सदैव हर्ष से पितरों के कर्म में परिपूर्ण नहीं होताहै व देवताओं तथा विशेषकर पितरों की शत्रुता को प्राप्त होता है॥ ३६ । ३७ ॥ हे नृप ! जिस समय पुरुष पुत्र के मुखको देखताहै उसी समय वह निश्चय कर पितरों की उऋणता को भलीभांति प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो मैंने कहा है उस पितरों की उऋणताको सो तुम नहीं प्राप्त हुये हो उसी से सदैव आसन में प्रोक्षण किया गयाहै ॥ ३९ ॥ इस लिये

हे नृप ! यदि तुम उत्तम गति को व जीवात्माको पुन्नामक नरकसे रक्षा करनेके लिये चाहतेहो तो पुत्रके निमित्त यत्न करो ॥ ४० ॥ उस समय इस प्रकार इन्द्रजी से कहेहुये राजादशरथजी पुत्रके लिये लज्जा के कारण बड़े दुःखसे संयुत हुये ॥ ४१ ॥ व उसी समय उन दशरथ जी ने पुत्र पैदा होनेवाले यज्ञको किया उस यज्ञ से जेठीरानी कौसल्याने उत्तम धर्मवान् रामचन्द्र नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ व उन दशरथ भूपकी जो कैकयी नामक छोटीरानीथी उसके भरत नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥ ४३ ॥ वैसेही उन दशरथ की जो सुमित्रा नामक अपर मध्यमा स्त्री टिकीहुईथी उस के बड़े बलिष्ठ लषणलाल व शत्रुघ्नजी पैदाहुये ॥ ४४ ॥ व उत्तम वर्णवाली

शक्रेणराजादशरथस्तदा ॥ दुःखेनमहतायुक्तोतनयार्थन्तुलज्जया ॥ ४१ ॥ वशिष्ठेनसवैचक्रेपुत्रेष्टिन्तेनवैतदा ॥ ज्येष्ठाप्रासूतकौसल्यारामंपुत्रंसुधार्म्मिकम् ॥ ४२ ॥ कैकयीनामभूपस्यतस्यभार्य्याकनिष्ठिका ॥ भरतोनामविख्यातस्तस्याःपुत्रोभवत्तथा ॥ ४३ ॥ सुमित्राख्यातथाचान्यापत्नीयामध्यमास्थिता ॥ शत्रुघ्नलक्ष्मणौपुत्रौतस्याजातौमहाबलौ ॥ ४४ ॥ तथान्याकन्यकाचैकाबभूववरवर्णिनी ॥ दत्तायापुत्रहीनस्यलोमपादस्यभूपतेः ॥ ४५ ॥ आनृण्यंभूपतिःप्राप्य एवंदशरथस्तदा ॥ पितॄणांप्रययौस्वर्गंकृतकृत्यस्तथाद्विजाः ॥ ४६ ॥ अथराजाभवद्रामस्सार्वभौमस्ततःपरम् ॥ रावणोयेनदुर्द्धर्षोनिहतोदेवकण्टकः ॥ ४७ ॥ येनरामेश्वरश्चात्रनिर्मितोलक्ष्मणेश्वरः ॥ सीतादेवीतथामूर्तायेनचात्रप्रतिष्ठिता ॥ ४८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेराजवापीमाहात्म्यंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

और एक कन्याहुई है जोकि पुत्रसे रहित लोमपाद भूपति को दीगई है ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय इस प्रकार दशरथ भूपजी पितरों की उऋणता को पाकर कृतार्थ होते हुये स्वर्गको चलेगये ॥ ४६ ॥ और तदनन्तर रामचन्द्र जी चक्रवर्तीराजा हुये जिनने देवताओं के कण्टकरूप अतिउद्भट रावणको मारा है ॥ ४७ ॥ व जिनने यहांपर रामेश्वर व लक्ष्मणेश्वर का निर्माण कियाहै वैसेही यहांपर मूर्तिमती सीता देवीकी स्थापना किया है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजवापीमाहात्म्यंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। देवदूत जिमि रामसों कीन बतकही आय। कह छनबे अध्याय में सो चरित्र सुखदाय॥ ऋषिलोग बोले कि जो आपने यह कहा है कि उन रामचन्द्र जी ने वहांपर रामेश्वर व सीता जीका निर्माण कियाहै उसमें सन्देह है॥ १॥ वैसेही रामचन्द्र जीने लक्ष्मण के लिये लक्ष्मणेश्वर का निर्माण कियाहै उससे सन्देह है क्योंकि यह तुम्हारा समस्त वचन अतिविरोधवाला जान पड़ताहै॥ २॥ हे सूतजी! पहले जो तुमने कहाहै कि वनको चलेहुये रामचन्द्रजी सहित वे लषणलाल जी सीता समेत इस वनमें प्राप्तहुये॥ ३॥ व तुमने कहाहै कि जब श्राद्धको कर लक्ष्मण जीसे रामचन्द्र अपमानितहुये व उन लक्ष्मण जीके ऊपर क्रोधसंयुत होकर उन्हों

ऋषयऊचुः॥ यदेतद्भवताप्रोक्तन्तत्ररामेणनिर्मितः॥ रामेश्वरस्तथासीतातेनतत्रतुसंशयः॥ १॥ तथाचलक्ष्मणा
र्थायनिर्म्मितस्तेनसंशयः॥ एतन्महद्विरुद्धन्तेप्रतिभातिवचोखिलम्॥ २॥त्वयासूतपुराप्रोक्तंयत्सरामेणसंयुतः॥ सी
तयासहितःप्राप्तःक्षेत्रेऽत्रप्रस्थितोवनम्॥ ३॥ श्राद्धंकृत्वागयाशीर्षेलक्ष्मणेनविमानितः॥ पुनःकृतन्तपोरण्येक्रोधा
विष्टश्चतंप्रति॥ ४॥ ॥ यत्त्वयोक्तन्तदातेननिर्म्मितोऽत्रमहेश्वरः॥ सूतउवाच॥ अत्रमेनास्तिसन्देहोयुष्माकंचपुनः
स्थितः॥ ५॥ ततोवक्ष्याम्यशेषेणश्रूयतान्द्विजसत्तमाः॥ एतत्क्षेत्रयुतश्चायंकोपःपापंनकुत्रचित्॥ ६॥ अन्यस्मि
न्दिवसेप्राप्तेसतदारघुनन्दनः॥ यदाविरोधमापन्नःसार्द्धंसौमित्रिणासह॥ ७॥ एतत्क्षेत्रंपुनःप्राप्यचात्रतेनप्रतिष्ठितः॥
रामेश्वरस्स्वयम्भक्त्यादुःखितेनमहात्मना॥ ८॥ऋषयऊचुः॥ अन्यस्मिन्दिवसेतत्रकस्मिन्कालेरघूत्तमः॥ सम्प्रा.

ने वनमें फिर तपस्या किया है तब यहांपर उन रामचन्द्रजी ने महादेव जीका निर्माण कियाहै सूतजी बोले कि इसमें मुझको सन्देह नहीहै फिर तुमलोगों के सन्देह स्थित है॥ ४। ५॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो! मैं सम्पूर्णता से कहूंगा उसको सुनिये कि इस क्षेत्रसे संयुत यह कोपहै इसलिये कहींपर पाप नहीं होताहै॥ ६॥ वे रामचन्द्रजी जब अन्य दिन प्राप्तहोनेपर लषणलाल जीके साथ वैरको प्राप्तहुये तब॥ ७॥ इस क्षेत्रको पाकर यहांपर उन दुःखित महात्मा रामचन्द्र जीने आपही भक्तिसे रामेश्वर जीका स्थापन कियाहै॥ ८॥ ऋषिलोग बोले कि अन्य दिन में वहांपर रघूत्तम (रघुनाथ) जी किस समय भलीभांति प्राप्तहुये हैं व इनको क्या दुःख उत्पन्न

हुआ है इस चरित को हमलोगों से कहिये ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि कमललोचम रामचन्द्रजीने सीताजीको परित्यागकर तदनन्तर लोककी निन्दासे डरकर राज्यको किया है ॥ १० ॥ और उन महाभाग्यवाले रामचन्द्र जीने यज्ञकी प्रसिद्धि के लिये स्वर्णमयी सीताको करके अन्य स्त्रीको किसी प्रकार न किया ॥ ११ ॥ व उन रघुनाथ जीने दशहजार व दशसौ याने गेरहहज़ारवर्ष ब्रह्मचर्य्य से निष्कण्टक राज्यको किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब गेरहहज़ारवर्ष का अन्त प्राप्तहुआ तब रामचन्द्र जीके मन्दिर में देवदूत भलीभांति आया ॥ १३ ॥ व उसने यह कहा कि सुरराज (इन्द्र) ने मुझको पठायाहै इसलिये तुम मेरेसाथ निर्जन स्थानका

प्तोस्यचकिंदुःखंसञ्जातंनःप्रकीर्तय ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ कृत्वासीतापरित्यागंरामोराजीवलोचनः ॥ लोकापवादसन्त्रस्तस्ततोराज्यञ्चकारह॥१०॥कृत्वास्वर्णमयींसीतांपत्नींयज्ञप्रसिद्धये ॥ नसचक्रेमहाभागोभार्यामन्यांकथञ्चन ॥११॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ ब्रह्मचर्य्येणचक्रेसराज्यंनिहतकण्टकम् ॥ १२ ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेप्राप्तेचैकादशेद्विजाः ॥ देवदूतस्समायातोरामस्यसदनंप्रति ॥ १३ ॥ तेनोक्तन्देवराजेनप्रेषितोहंतवान्तिके ॥ तस्मात्कुरुसमालोकंविजनन्त्वम्मयासह ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तदातेनदूतेनरघुनन्दनः ॥ परंरहस्समासाद्यमन्त्रञ्चक्रेततःपरम् ॥ १५ ॥ तस्यैवमुपविष्टस्यमन्त्रस्थानेमहात्मनः ॥ ततोबहुत्वाविष्टस्यनरहस्यंप्रजायते ॥ १६ ॥ ततःकोपपरीतात्माद्दूतःप्रोवाचसादरम् ॥ विहस्यजनसंसर्गंदृष्ट्वैकान्तेपिसंस्थितम् ॥ १७ ॥ यथादंष्ट्राच्युतस्सर्पोनागोवामदवर्जितः ॥ आज्ञाहीनस्तथाराजामानवैःपरिभूयते ॥ १८ ॥ कोयंविनारघुश्रेष्ठनाज्ञप्तंप्रतिवेद्यचहम् ॥ शङ्कालापमपित्वंयन्नैकान्तेश्रोतु

समालोकन करिये याने एकान्त में चलिये ॥ १४ ॥ उस समय उस दूत से इस भांति कहे हुये रघुनन्दन जी ने उत्तम एकान्त में प्राप्त होकर तदनन्तर सम्मति किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर बहुत जनोंसे घिरेहुये उन महात्मा रघुनाथजी को इस प्रकार सम्मति करनेके स्थान में बैठते हुये एकान्त नहीं हुआ ॥ १६ ॥ तदनन्तर एकान्त में भी भलीभांति प्राप्तहुये मनुष्यों के संसर्ग को देखकर क्रोध से घिरेहुये मन या चित्तवाले दूतने विहँसकर आदर समेत कहा ॥ १७ ॥ कि जैसे दाढ़ोंसे रहित सर्प व मदसे वर्जित हाथी मनुष्योंसे तिरस्कार किया जाता है वैसेही आज्ञासे रहित राजाका मनुष्य तिरस्कार करते हैं ॥ १८ ॥ हे रघूत्तम ! क्रोधके विना

मैं आज्ञा दीहुई वाक्य को नहीं जानूंगा क्योंकि एकान्त में शङ्कापूर्वक परिभाषणकोभी तुम नहीं सुनने के योग्य हो ॥ १९ ॥ तदनन्तर उस दूतके उस वचन को सुनकर क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाले उन रामचन्द्रजी ने भौंह को तीन शिखावालीकर याने टेढ़ीकर लक्ष्मणजी से कहा ॥ २० ॥ कि हे लक्ष्मण ! यहांपर मुझ को इसके साथ बैठेहुये यदि कोई वार्त्ताकारी मनुष्य अज्ञानसे आवैगा ॥ २१ ॥ तो निस्सन्देह उसको शीघ्रही अपने हाथसे नाश करूंगा यदि यहांपर स्वदृष्टिगोचर में प्राप्तहुये मनुष्य को मैं न मारूं ॥ २२ ॥ तो धर्मवान् जनोंको जो उत्तम गति होतीहै वह मुझको न होवै ऐसा जानकर राजद्वार में प्राप्तहुये तुमको निस्सन्देह वैसाही

समात्रमर्हसि ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकोपसंरक्तलोचनः ॥ त्रिशाखांभ्रुकुटींकृत्वाततःसप्राहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥ स्वहस्तेननसन्देहस्सूदयिष्या संनिविष्टस्यसहानेनप्रजल्पकः ॥ यदिकश्चिन्नरोमोहादागमिष्यतिलक्ष्मण ॥ २१ ॥ स्वहस्तेननसन्देहस्सूदयिष्यामितन्द्रुतम् ॥ नहन्मियदिचापन्नमत्रमद्दृष्टिगोचरम् ॥ २२ ॥ तन्माभून्मेगतिः श्रेष्ठाधर्म्मिणांयाप्रपद्यते ॥ एवंज्ञात्वाप्रपन्नेनत्वयाभाव्यमसंशयम् ॥ २३ ॥ राजद्वारियथाकश्चिन्नमयावध्यतेऽधुना ॥ तमोमित्येवसम्प्रोच्यलक्ष्मणश्शुभलक्षणः ॥ २४ ॥ राजद्वारंसमासाद्यचकारविजनन्ततः ॥ देवदूतोपिरामेणसमंचक्रेततःपरम् ॥ २५ ॥ मन्त्रंशक्रसमादिष्टन्तथान्यैस्स्वर्गवासिभिः ॥ दूतउवाच ॥ त्वंरावणविनाशार्थमवतीर्णोधरातले ॥ २६ ॥ सचव्यापादितोदुष्टःपापस्त्रैलोक्यकण्टकः ॥ कृतंसर्वंमहाभागदेवकृत्यंत्वयाऽधुना ॥ २७ ॥ तस्मात्सन्तुसनाथास्तेदेवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ यदि

होना चाहिये जिस प्रकार कि इस समय मुझसे कोई न माराजाय शुभ लक्षणोंवाले लक्ष्मणजीने ऐसाही होगा यह रघुनाथजीसे कहकर ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर राजद्वार को प्राप्त होकर निर्जन स्थान करदिया उसके उपरान्त देवदूतने रामचन्द्र जीके साथ इन्द्र व अन्य स्वर्गवासियों से कही हुई सम्मति को किया दूतने कहा कि रावण के विनाशके लिये तुमने धरातलमें अवतार लियाहै ॥ २५ । २६ ॥ हे महाभाग ! इससमय तुमने उस त्रिलोकके कण्टकरूप पापी व दुष्ट रावण का नाश किया व सम्पूर्ण देवताओंके कार्य्य को किया ॥ २७ ॥ इसलिये उपरोध (घेरने) से नहीं किन्तु यदि तुमको रुचिहो तो जिनके इन्द्र अगाड़ी चलते हैं वे देवता

इस समय सनाथ होवैं ॥ २८ ॥ इस लिये देवताओं के ऊपर प्रसन्नता करिये व अतिनिन्दित मृत्युलोक को छोड़कर शीघ्रही स्वर्गलोकको आइये ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर इसी अवसरमें क्षुधा से संयुत मुनिनायक दुर्वासाजी प्राप्त हुये व बोले कि ये रघूत्तम (रघुनाथ) जी कहां हैं ॥ ३० ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! यह नृपोत्तम रामचन्द्रजी किसी देवकार्य्यसे आकुलहैं इसलिये जब तक इन्द्रसे उपजेहुये दूतको रामचन्द्रजी समझाते हैं तब तक विनयसे झुकेहुये मेरे ऊपर दयाकरके मुहूर्तभर याने कच्ची दो घड़ी परिपालन करिये याने परखिये ॥ ३१ । ३२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि यदि रामचन्द्र राजा मेरी दृष्टिमें न प्राप्त होवैंगे तो

तेरोचतेरामनोपरोधेनसाम्प्रतम् ॥ २८ ॥ प्रसादंकुरुदेवानांतस्मादागच्छसत्वरम् ॥ स्वर्गलोकम्परित्यक्त्वामर्त्यलोकं मुनिन्दितम् ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोदुर्वासामुनिपुङ्गवः ॥ प्रोवाचाथक्षुधाविष्टःक्वचासौरघुसत्तमः ॥ ३० ॥ लक्ष्मणउवाच ॥ व्यग्रोसौपार्थिवश्रेष्ठोदेवकार्य्येणकेनचित् ॥ तस्मादत्रैवविप्रेन्द्रमुहूर्तंपरिपालय ॥ ३१ ॥ यावत्सान्त्वयतेरामोदूतंशक्रसमुद्भवम् ॥ ममोपरिदयांकृत्वाविनयावनतस्यहि ॥ ३२ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ यदियास्यति नोदृष्टिंममराजारघूत्तमः ॥ शापन्दत्त्वाकुलंसर्वन्तद्धक्ष्यामिनसंशयः ॥ ३३ ॥ ममापिदर्शनादन्यन्नकिञ्चिद्विद्यतेध्रुरु ॥ कृत्यंलक्ष्मणयावत्त्वमन्यन्मूढप्रकथ्यसे ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणश्चित्तेचिन्तयामासदुःखितः ॥ उवाचदण्डवद्भूमौप्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥ दुर्वासामुनिशार्दूलोदेवतेद्वारितिष्ठति ॥ दर्शनार्थंक्षुधाविष्टःकिङ्करोमिप्रशाधिमाम् ॥ ३६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाततोदूतमुवाचतम् ॥ गत्वेमम्ब्रूहिदेवेशंममवाक्यादसंशयम् ॥ ३७ ॥ अहंसंवत्सरस्यान्तआ

शाप देकर निस्सन्देह समस्त कुलको भस्म करदूंगा ॥ ३३ ॥ क्योंकि हे मूढ़, लक्ष्मण ! जो तुम अन्य कार्य्यको कहते हो वह मेरे भी दर्शन से गरुआ कुछ अन्य कार्य्य निश्चयकर नहीं है ॥ ३४ ॥ उस वचनको सुनकर दुःखित हुये लक्ष्मणजीने चित्त से चिन्तन किया व हाथ जोडे हुये भूमिमें दण्डके समान प्रमाणकर कहा ॥ ३५ ॥ कि हे देव ! तुम्हारे दर्शनके लिये क्षुधासे संयुत मुनिनायक दुर्वासाजी द्वारपै खडे हैं मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूं ॥ ३६ ॥ उन लक्ष्मणजीके उस वचन को सुनकर तदनन्तर रामचन्द्रजीने उस दूतसे कहा कि सुरेशके समीप जाकर मेरे वचनसे निस्सन्देह इस वाक्यको कहियेगा ॥ ३७ ॥ कि मैं वर्षके अन्तमें तुम्हारे

समीप आऊंगा ऐसा कहकर व उस दूतको बिदाकर अनन्तर लक्ष्मणजीसे कहा ॥३८॥ कि हे वत्स ! उन दुर्वासा मुनिको तुम शीघ्रही प्रवेश करावो तदनन्तर रामचन्द्र जी अर्घ, पाद्यको लेकर सामने गये ॥ ३९ ॥ व मंत्रियों से घिरे तथा प्रसन्नमन या चित्तवाले रामचन्द्र देवजी विधिपूर्वक अर्घको देकर व उन दुर्वासा मुनिको बार बार प्रणामकर ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर रामदेव जी हर्ष के हेतु गद्गदा वाणी से बोले कि हे मुनिसत्तम ! तुम्हारा आना अच्छी तरहसे हुआ व हे मुनिश्रेष्ठ, प्रभो ! अ-त्यन्त सुखमें प्राप्त मेरी यह राज्य व ये पुत्र व ऐश्वर्य्य तुम्हाराही है उसको मेरे ऊपर प्रसन्नता करके ग्रहण करिये ॥ ४१ । ४२ ॥ मैं धन्यहूं अनुगृहीतहूं जोकि समस्त

प्रवेशयद्रुतंवत्सतंत्वन्दुर्वाससंमुनिम् ॥ गमिष्यामितेऽन्तिकम् ॥ एवमुक्त्वाविसृज्याथतन्दूतम्प्राहलक्ष्मणम् ॥ ३८ ॥ दत्त्वाऽर्घंविधिवत्तस्यप्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ ततश्चार्घञ्चपाद्यञ्चगृहीत्वासंमुखोययौ ॥३९॥ रामदेवःप्रहृष्टात्मासचिवैःपरिवारितः ॥ एतद्राज्यममी पुत्राविभवश्चतवप्रभो ॥ प्रोवाचरामदेवोथहर्षगद्गदयागिरा ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठभूयःसुखगतञ्चमे ॥ ४१ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियत्त्वंमेगृहमागतः ॥ पू ज्योलोकत्रयस्यापिनिःशेषतपसांनिधिः॥४३॥मुनिरुवाच॥ कृत्वाममप्रसादञ्चगृहाणमुनिसत्तम ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्यव्रतंकृत्वानिराहारोरघूत्तम ॥ अद्यतेभवनम्प्राप्त आहारार्थंबुभुक्षितः ॥ ४४ ॥ नान्यत्तुकारणंकिञ्चित्सन्न्यस्तस्यधनादि ना ॥ ४५ ॥ तस्मात्त्वंयच्छमेशीघ्रम्भोजनंरघुनन्दन ॥ लेह्यैश्चोष्यैस्त थाचर्व्यैस्स्वाद्यैरेवपृथग्विधैः ॥ ततस्तम्भोजयामासश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ स्वयमेवाग्रतःस्थित्वामिष्टान्नैर्भोजनैःशुभैः ॥४६॥ यावदिच्छामुनेस्तस्यतथाऽन्यैर्विविधैरपि ॥ ४७ ॥ इति षण्णवतितमोध्यायः ॥ ९६ ॥

तपस्याओं के निधान व त्रिलोक के भी पूजनीय तुम मेरे घरको आयेहो ॥ ४३ ॥ दुर्वासा मुनि बोले कि हे रघूत्तम ! चौमासे के व्रतको कर निराहार व क्षुधित मैं भो-जन के लिये आज तुम्हारे घरमें प्राप्तहुआहूं ॥ ४४ ॥ संन्यासी पुरुषको धनादिक से और कुछ कारण नहीं होताहै ॥४५॥ इसलिये हे रघुनन्दनजी ! मुझको शीघ्रही भोजन दीजिये चूसनेवाले व अनेक प्रकारके स्वादिष्ठ चबानेवाले व चाटनेवाले, तदनन्तर उन रामचन्द्रजीने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके आपही अगाड़ी बैठकर उन मुनिकी इच्छा पूर्णतक सुखदायक मिष्टान्न भोजनोंसे व अन्यभी विविध प्रकारके भोजनोंसे उन दुर्वासा मुनिको तृप्तकिया ॥ ४६ । ४७ ॥ इति षण्णवतितमोध्यायः ॥ ९६ ॥

दो० । गये सदन सुग्रीव के रामचन्द्र जगदीश । सत्तनबे अध्याय में बरणत सोइ मुनीश ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार इच्छासे राम जीके घरमें भोजनकर वे दुर्वासा मुनि आशीर्वाद को देकर पश्चात् राघवजीसे पूंछकर चलेगये ॥ १ ॥ इसके अनन्तर जब वे दुर्वासा मुनि उन रामचन्द्र जीके समीपसे चलेगये तब लक्ष्मणजी ने तलवार को लेकर रामदेव जीसे कहा ॥ २ ॥ हे प्रभो ! इस खड्ग को लेकर मुझको मारिये कि जिससे जो तुमने पहले प्रतिज्ञा कियाहै वह वचन सत्य होवै ॥ ३ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र जीने अपनीही कीहुई प्रतिज्ञा को देरतक स्मरणकर उसके उपरान्त दुःखित अन्तःकरण से समीप बैठेहुये पुरुष (लक्ष्मण) जीके मारनेके लिये

सूतउवाच ॥ एवंभुक्त्वासविप्रर्षिर्वाञ्छयाराममन्दिरे ॥ दत्ताशीर्निर्गतःपश्चादामन्त्र्यरघुनन्दनम् ॥ १ ॥ अथयाते मुनौतस्मिन्दुर्वाससितदन्तिकात् ॥ लक्ष्मणःखड्गमादायरामदेवमुवाचह ॥ २ ॥ एतत्खड्गंगृहीत्वातुमांप्रभोविनिपातय ॥ येनतेस्यादृतंवाक्यम्प्रतिज्ञातञ्चयत्पुरा ॥ ३ ॥ ततोरामश्चिरात्स्मृत्वाप्रतिज्ञाञ्चस्वयंकृताम् ॥ वधार्थसंप्रविष्टस्यसमीपेपुरुषस्यच ॥ ४ ॥ ततोविचिन्तयामासव्याकुलेनान्तरात्मना ॥ जलव्याकुलनेत्रश्चनिःश्वसन्पन्नगोयथा ॥ ५ ॥ तन्दीनवदनंदृष्ट्वानिःश्वसन्तंमुहुर्मुहुः ॥ ततःप्रोवाचसौमित्रिर्विनयावनतःस्थितः ॥ ६ ॥ एषएवपरोधर्म्मोभूपतीनांविशेषतः ॥ यथात्मीयंवचस्तथ्यंक्रियतेनिर्विकल्पितम् ॥७॥ तस्मात्त्वयाप्रभोप्रोक्तंस्वयमेवमृषायतः ॥ तस्यैवदेवदूतस्यवाक्यवादेनकोपतः ॥ ८ ॥ यस्त्वागच्छतिसौमित्रेममदूतस्यसन्निधौ ॥ तञ्चेद्धन्मिस्वहस्तेननाहन्तस्मात्तुपापकृत् ॥ ९ ॥ यदहआगतस्तातभयाद्दुर्वाससोमुनेः ॥ निषिद्धोपित्वयाऽतीवतस्माच्छीघ्रन्तुघातय ॥ १० ॥ ततःसं

चिन्तन किया जो रामचन्द्रजी कि जलसे विकल नयनवाले व सर्पके समान श्वास ले रहेथे ॥ ४ । ५ ॥ तदनन्तर बार बार श्वास लेतेहुये व दीनमुखवाले रघुनाथ जीको देखकर विनयसे नीचेनये खड़ेहुये लक्ष्मण जी बोले ॥ ६ ॥ कि जिसप्रकार विकल्परहित अपने वचन सत्य कियेजाते हैं यही विशेषता से भूपोंका परम धर्म है ॥७॥ जिसलिये कि उसी देवदूतकी बतकहीसे क्रोधके द्वारा जो आपही तुमने कहाहै वह उसी कारण असत्य होवैगा ॥ ८ ॥ कि हे सौमित्रे,लक्ष्मण ! मेरे व दूतके समीप जो आवैगा उसको यदि मैं अपने हाथसे मारूं तो उस वधसे पापकारी न हूंगा ॥ ९ ॥ हे तात ! जिसलिये कि तुमसे अत्यन्तही मना कियाहुआ भी मैं दुर्वासा

मुनि के डरसे आयाहूं उसी कारण शीघ्रही मारिये ॥ १० ॥ तदनन्तर बारबार श्वास लेतेहुये व आंसुओं से आर्द्रतासंयुत रामचन्द्र नृपने धर्मशास्त्रके जाननेवाले व वेदों के पारङ्गत अन्य मन्त्रियों समेत बहुत समय तक सम्मतिकर पश्चात् नम्रतासे नये खड़े हुये लक्ष्मणजीसे गद्गदा वाणीसे कहा ॥ ११ । १२ ॥ कि हे लक्ष्मण ! मुझसे छोडेहुये तुम शीघ्रही अन्य देशको जावो क्योंकि उत्तम जनोंका त्याग अथवा वध दोनों बराबर हैं ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण ! फिर न मुझको दर्शन करना चाहिये और न तुमको देखना चाहिये तदनन्तर ये लक्ष्मण जी अपने घर में मातासे व स्त्रीसे या पुत्रसे या किसी मित्रसे सम्मतिको न करके भी सरयू जीके समीप जाकर व उसके

ब्राह्मणैर्द्धर्म्मशास्त्रज्ञैस्तथाऽन्यैर्वेदपारगैः ॥ ११ ॥ प्रोवाचलक्ष्मणंपश्चाद्विनयावनतंस्थितम् ॥ बाष्पक्लिन्नयुतोरामोगद्गदन्निःश्वसन्मुहुः ॥ १२ ॥ व्रजलक्ष्मणमुक्तस्त्वंमयादेशान्तरंद्रुतम् ॥ त्यागोवावधोवाथसाधूनामुभयंसमम् ॥ १३ ॥ नमयादर्शनंभूयस्त्वयाकार्य्यंञ्चलक्ष्मण ॥ अकृत्वाऽपिसमाम्नायङ्केनचिन्निजमन्दिरे ॥ १४ ॥ मात्रावाभार्य्ययावाथसुतेनसुहृदेनवा ॥ ततोसौसरयूङ्गत्वाअवगाह्यचतज्जलम् ॥ १५ ॥ शुचिर्भूत्वानिविष्टोथतत्तीरेविजनेशुभे ॥ पद्मासनंविधायाथन्यस्यात्मानन्तथात्मनि ॥ १६ ॥ ब्रह्मद्वारेणतत्पश्चात्तेजोरूपंव्यसर्ज्जयत् ॥ अथतद्राघवोदृष्ट्वामहातेजोवियद्गतम् ॥ १७ ॥ विस्मयेनसमायुक्तश्चिन्तयन्किमिदन्ततः ॥ अथप्राणेपरित्यक्तेतेजसातेनतत्क्षणात् ॥ १८ ॥ वैष्णवेनानुरागेणभावेनद्विजसत्तमाः ॥ पपातभूतलेकायंकाष्ठलोष्टोपमन्द्रुतम् ॥ १९ ॥ लक्ष्मणस्यगतश्रीकंसरय्वाःपुलिनेशुभे ॥ ततस्तुराघवःश्रुत्वालक्ष्मणङ्गतजीवितम् ॥ २० ॥ पतितंसरितस्तीरेविललापमुहुः

जलमें नहाकर ॥ १४ । १५ ॥ इसके अनन्तर पवित्र होकर सुखदायक व निर्जन उस सरयूके किनारेपै कमलासन को कर व परमात्मा में जीवात्मा को न्यासकर बैठ गये ॥ १६ ॥ उसके पीछे ब्रह्मद्वार से तेजरूपवाले जीवात्मा को त्यागकिया अनन्तर रघुनाथजी आकाश में गयेहुये उस बडे भारी तेजको देखकर ॥ १७ ॥ तदनन्तर यह क्या है इसको चिन्तन करतेहुये आश्चर्य्य से संयुत हुये इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब विष्णु में स्नेहरूपी भक्तिसे उस तेजसे प्राणोंको परित्याग किया तब उसी क्षण शीघ्रही सरयू जीके सुखदायक किनारेपै पृथ्वीमें काठ व ढेलाके समान व शोभारहित लक्ष्मण जीका शरीर गिरपड़ा तदनन्तर रामचन्द्र जीने जीवन से

रहित सरयू के किनारे पड़ेहुये लक्ष्मणजीको सुनकर बहुत दुःखितहो विलाप किया व मित्रजन सहित तथा मंत्रियों समेत रामचन्द्रजीने उनको उद्देशकर आपही जाकर ॥ १८ । १९ । २० । २१ ॥ व गिरेहुये लक्ष्मण को देखकर करुणापूर्वक विलाप किया कि हे वत्स ! सदैव तुम्हारे मतमें स्थित व प्राणके समान प्रिय मुझ उत्तम बन्धुको छोड़कर क्या तुमने स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥ २२ ॥ व भलीभांति धारितहुये भी तुमने पुरसे उस महावन मेंभी जातेहुये मेरे पीछे सदैव गमन किया ॥ २३ ॥ व अत्यन्तही बलिष्ठ राक्षसोंके घोर युद्धमें भी भयानक सन्ध्यासमय में तुमने स्त्री समेत मुझको किसप्रकार रक्षण कियाहै ॥ २४ ॥ जिसने युद्धमें वैसे रूपवाले मेघनाद

खितः ॥ स्वयङ्गत्वातमुद्देशंसामात्यःससुहृज्जनः ॥ २१ ॥ लक्ष्मणम्पतितंदृष्ट्वाकरुणंपर्य्यदेवयत् ॥ हावत्समांपरित्यज्यकिन्त्वंसंप्रस्थितोदिवम् ॥ प्राणेष्टंभ्रातरंश्रेष्ठंसदातवमतेस्थितम् ॥२२॥ तस्मिन्नपिमहारण्येगच्छमानःपुरादहम् ॥ अपिसंधार्य्यमाणेनअनुयातस्त्वयासदा ॥ २३ ॥ संग्रामेऽपिकथंघोरेराक्षसेबलवत्तरे ॥ त्वयारात्रिमुखेघोरेसभार्य्योहंप्ररक्षितः ॥ २४ ॥ येनेन्द्रजिद्धतोयुद्धेतादृग्रूपोनिशाचरः ॥ सएषपतितश्शेतेगतासुर्धरणीतले ॥ २५ ॥ येनशूर्पणखाध्वस्ताराक्षसीसाचदारुणा ॥ लीलयापिसमादेशात्सोयमेवंविधःस्थितः ॥ २६ ॥ यद्बाहुबलमाश्रित्यमयाध्वस्तोनिशाचरः ॥ सोयंनिपतितश्शेतेममभ्राताह्यनाथवत् ॥ २७ ॥ हावत्सक्वगतोमान्त्वंविमुच्यभ्रातरंनिजम् ॥ ज्येष्ठम्प्राणसमंकिन्तेस्नेहोयंविगतःक्वचित् ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ एवंबहुविधान्कृत्वाप्रलापान्रघुनन्दनः ॥ मातृभिस्सहितोदीनःशोकेनमहतान्वितः ॥ २९ ॥ ततस्तेमन्त्रिणस्तस्यप्रोचुस्तंवीक्ष्यदुःखितम् ॥ विलपन्तंरघुश्रेष्ठंस्त्रीजनेनसमन्वित

राक्षसको माराहै वही यह प्राणसे रहित होकर पृथ्वीमें पड़े सोतेहैं ॥ २५ ॥ जिसने उस भयङ्कर शूर्पणखा राक्षसीको आज्ञासे खेलके द्वाराही विध्वंस कियाहै वही यह इस प्रकारका होकर स्थित है ॥ २६ ॥ जिसकी भुजाके बलमें आश्रित होकर मैंने निशाचर(रावण) को माराहै वही यह मेरा भाई अनाथ के तुल्य पड़ाहुआ सोताहै ॥२७॥ हा वत्स ! प्राणके समान मुझ अपने बड़े बन्धुको छोड़कर तुम कहां चलेगये क्या तुम्हारा यह स्नेह कहीं जातारहा ॥२८॥ सूतजी बोले कि माताओं समेत दुःखित रघुनन्दन जी ऐसे बहुतप्रकार के विलापोंको करके शोचसे संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर स्त्रीजनों समेत उन दुःखित रघुनन्दन जीको विलाप करतेहुये देखकर उन रामचन्द्रजीके

उन मंत्रियों ने कहा ॥ ३० ॥ मंत्रीलोग बोले कि हे नृपेन्द्र ! जैसे अन्य सामान्य नर स्थितहो वैसेही शोक मत करिये इस समय आज्ञासे प्रेतकर्मको कीजिये क्योंकि खोये हुये पदार्थ को व मरे मनुष्यको जो शोचते हैं वे कुबुद्धिहैं ॥३१।३२॥ हे राजन् ! धीर मनुष्योंको फिर नष्ट पदार्थ नष्ट नहीं है व मराहुआ प्राणी मरा नहीं है याने ज्ञानके द्वारा नष्टवस्तु व मृत मनुष्यको नहीं शोचते हैं उन मंत्रियोंने ऐसा कहकर व उच्च प्रकारसे विलापकर तदनन्तर उन लक्ष्मणजीके शरीरको कपूर अगुरु मिलेहुये चन्दन खस व कुंकुमों से तथा अन्य सुगन्धियों से लेपनकर ॥ ३३ । ३४ ॥ व उत्तम वसनों से लपेटकर और सुन्दर फूलों से भलीभांति भूपितकर व चन्दन, अगुरु

म्॥३०॥ मन्त्रिणऊचुः ॥ माशोकंकुरुराजेन्द्रयथान्यःप्राकृतःस्थितः ॥३१॥ कुरुष्वचसमादेशात्सांप्रतञ्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ नष्टंमृतंमनुष्यञ्चयेशोचन्तिकुबुद्धयः ॥ ३२ ॥ धीराणांनपुनाराजन्नष्टंनष्टंमृतंमृतम् ॥ एवन्तेमन्त्रिणःप्रोच्यततस्तस्यकलेवरम् ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणस्यविलप्योच्चैश्चन्दनोशीरकुङ्कुमैः ॥ कर्पूरागुरुमिश्रैश्चतथाऽन्यैस्सुसुगन्धिभिः ॥ ३४ ॥ परिवेष्ट्यशुभैर्वस्त्रैःपुष्पैस्सम्भूष्यशोभनैः ॥ चन्दनागुरुकाष्ठैश्चचितिंकृत्वासुविस्तृताम् ॥ ३५ ॥ न्यदधुस्तस्यतद्गात्रन्तत्रदक्षिणादिङ्मुखे ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातंतत्राश्चर्यन्द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ तन्मेनिगदतःसर्वं शृण्वन्तुद्विजसत्तमाः॥ यावद्रामस्समारोप्य चितांतस्यकलेवरम् ॥ ३७ ॥ प्रयच्छतिबहिर्वह्निस्तावन्नष्टङ्कलेवरम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेवाणीनिर्गतागगनाङ्गणात् ॥ ३८ ॥ नादयन्तीदिशस्सर्वाःपुष्पवर्षादनन्तरम्॥रामरामममहाबाहोमात्वंशोकपरोभव॥३९॥नचास्ययुज्यतेवह्निर्दातुञ्चैवकथञ्चन ॥ ब्रह्मज्ञानप्रयुक्तस्यसंन्यस्तस्यविशेषतः ॥ ४० ॥ अग्निदाहोनयुक्तःस्यात्सर्वेषामपि

के काष्ठोंसे अतिचौडी चिताको बनाकर उसमें उन लक्ष्मणजीके उस शरीरको दक्षिण दिशाके सम्मुख धरदिया हे द्विजोत्तमो ! वहांपर इसी अवसर में जो आश्चर्य हुआ है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समस्त वृत्तान्तको कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जब तक रामचन्द्रजी उन लक्ष्मणके शरीरको चितामें आरोपणकर बाहर अग्निदेवैं तब तक शरीर अदृश्य होगया इसी अवसरमें फूलोंकी वृष्टिके पीछे समस्त दिशाओंको शब्दायमान करतीहुई आकाशमण्डल से वाणी निकली कि हे महाबाहो, राम, राम ! तुम शोच में तत्पर न होवो ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ क्योंकि ब्रह्मज्ञानसे संयुत व विशेषकर कर्मोंको न्यास कियेहुये इन लक्ष्मणजी को

अग्निदेनेके लिये किसीप्रकारसे योग्य नहीं है ॥ ४० ॥ व समस्तभी योगियों को अग्निदाह योग्य नहीं होवैहै वैसेही हे राम ! ये बड़ेयशस्वी बन्धु (लक्ष्मणजी) ब्र-
ह्मछिद्रके द्वारा जीवात्मा को निकालकर ब्रह्ममन्दिर को चलेगये अनन्तर उन मंत्रियोंने उस आकाशगामी वचनको सुनकर कहा ॥ ४१ । ४२ ॥ कि हे महाराज !
परमसिद्धि को प्राप्त हुये ये लक्ष्मणजी शोचने योग्य नहीं हैं इस लिये हे विभो ! अपने मन्दिर को जाइये ॥ ४३ ॥ व राजकार्य्योंका चिन्तन करिये और स्नेहके
योग्य जो उन लक्ष्मणजी का प्रेतकार्य्य है उसको द्विजोत्तमोंसे पूँछकर कीजिये ॥ ४४ ॥ रामचन्द्र राजा बोले कि लक्ष्मणके विना मैं इस समय घरको न जाऊँगा व

योगिनाम् ॥ तथाऽयंबान्धवोराम ब्रह्मणस्सदनङ्गतः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मरन्ध्रेणचात्मानं निष्क्रम्यसुमहायशाः॥अथतेमन्त्रि
णःप्रोचुस्तच्छ्रुत्वाऽऽकाशगंवचः ॥ ४२ ॥ अशोच्योऽयंमहाराजसंसिद्धिपरमाङ्गतः ॥ लक्ष्मणोगम्यतांशीघ्रंतस्मा
त्स्वभवनंविभो ॥ ४३ ॥ चिन्त्यतांराजकार्य्याणितथाऽन्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ कुरुस्नेहोचितंतस्य पृष्ट्वाब्राह्मणसत्तमान् ॥
४४ ॥राजोवाच॥ नाहंगृहंगमिष्यामिलक्ष्मणेनविनाऽधुना॥प्राणानत्रविहास्यामियथातेनमहात्मना ॥ ४५ ॥ एषपुत्रो
मयादत्तःकुशाख्योममसंमतः ॥ युष्माभिःक्रियतांराज्येमदीयेयदिरोचते ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाततोरामोगन्तुकामो
दिवालयम् ॥ चिन्तयामासभूयोपिस्मृत्वामित्रंविभीषणम् ॥ ४७ ॥ मयातस्यतदादत्तंलङ्कायांराज्यमक्षयम् ॥ बहुभ
क्तिप्रतुष्टेनयावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ४८ ॥ अतिक्रूरतराणाञ्चराक्षसानांयुतिःपुनः ॥ विशेषाद्वरपुष्टानांजायतेऽत्रधरातले॥
४९ ॥ तच्चेद्राक्षसभावेनसमहात्माविभीषणः ॥ करिष्यतिसुरैस्सार्द्धंविरोधंरावणोयथा ॥ ५० ॥ तन्देवास्सूदयिष्यन्ति

जैसे उन महात्माने प्राणोंको छोड़ाहै वैसेही यहांपर मैं प्राणोंको त्याग करूंगा ॥ ४५ ॥ व यदि रुचि होवे तो भलीभांति माने व मुझसे दियेहुये मेरे कुशनामक पुत्रको तुम
लोग मेरे राज्यपै करो ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर स्वर्गको जानेके लिये चाहनेवाले रामचन्द्रजीने फिर भी विभीषण मित्रको स्मरणकर चिन्तन किया ॥ ४७ ॥ कि
उससमय अत्यन्त भक्तिसे प्रसन्नहुये मैंने चन्द्रमा, सूर्य्य व नक्षत्रोंकी अवधितक लंकामें उस विभीषणको अविनाशी राज्यको दियाहै ॥ ४८ ॥ और इस धरातलमें
विशेषकर वरदानसे पुष्ट व अत्यन्तही क्रूर राक्षसोंका फिर योग होगा ॥ ४९ ॥ तो यदि यह महात्मा विभीषण राक्षसके स्वभावसे देवताओंके साथ रावणके नाईं वैर

करैगा ॥ ५० ॥ तो देवता प्रियवचनपूर्वक उपायोंसे उसको नाश करैंगे जिस प्रकार कि त्रिलोकी का कण्टकरूप उसका भाई दशानन नाश हुआ है ॥ ५१ ॥ उसी कारण मेरी वाणी असत्य होगी इसलिये उसके समीप जाकर उसप्रकार मैं उस विभीषणको शिक्षा दूंगा कि जिसप्रकार देवताओंको दूषित न करै ॥ ५२ ॥ वैसेही महाभाग सुग्रीवनामक वानरमेरे दूसरे परममित्र टिकेहैं व अन्य जाम्बवान् हैं ॥ ५३ ॥ और बालिपुत्र (अङ्गद) संयुत व सेवकों समेत पवनपुत्र (हनूमान्जी) हैं व कुमुदनामक वानर व तार तथा अन्यभी वानर हैं ॥ ५४ ॥ उसी कारण उन सबोंसे सम्भाषणकर व आदर समेत सम्मतिकर उसके उपरान्त देवताओंके कार्य्यको किये

उपायैस्सामपूर्वकैः॥ त्रैलोक्यकण्टकोयद्वत्तस्यभ्रातादशाननः ॥ ५१ ॥ ततोमेस्यान्मृषावाणीतस्माद्गत्वातदन्तिकम् ॥ शिक्षांददामितस्याहंयथादेवान्नदूषयेत् ॥ ५२ ॥ तथामेपरमंमित्रन्द्वितीयंवानरस्स्थितः ॥ सुग्रीवाख्योमहाभागोजाम्बवांश्चतथाऽपरः ॥ ५३ ॥ सभृत्योवायुपुत्रश्चबालिपुत्रसमन्वितः ॥ कुमुदाख्यश्चतारश्चतथाऽन्येऽपिचवानराः ॥ ५४ ॥ तस्मात्तानपिसम्भाष्यसर्वान्संमन्त्र्यसादरम् ॥ ततोगच्छामिदेवानांकृतकृत्योगृहम्प्रति ॥ ५५ ॥ एवंसञ्चिन्त्यसुचिरंसमाहूयचपुष्पकम् ॥ तत्राऽऽरुह्ययथौतूर्णंकिष्किन्धाख्यांपुरींप्रति ॥ ५६ ॥ अथतेवानराद्दृष्ट्वाप्रद्योतंपुष्पकोद्भवम् ॥ विज्ञायराघवंप्राप्तंसत्वरंसंमुखाययुः ॥ ५७ ॥ ततःप्रणम्यतेदूराज्जानुभ्यामवनिङ्गताः ॥ जयेतिशब्दमाधायमुहुर्मुहुरितस्ततः ॥ ५८ ॥ ततस्तेनैवसंयुक्ताः किष्किन्धान्तांमहापुरीम् ॥ विविशुःसत्पताकाभिस्समन्तात्समलंकृताम् ॥ ५९ ॥ अथोत्तीर्य्यविमानाग्रात्सुग्रीवभवनेशुभे॥ प्रविवेशद्रुतंरामस्सर्वतश्शुचिभूषिते ॥ ६० ॥ तत्ररामंनिविष्टन्ते

हुये मैं घर प्रति जाऊंगा ॥ ५५ ॥ इसप्रकार बहुत कालतक भलीभांति विचारकर व पुष्पक विमानको बुलाकर रामचन्द्रजी उसपै चढ़कर शीघ्रही किष्किन्धा नामक पुरी को गये ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर पुष्पकसे उपजेहुये प्रकाशको देखकर वे वानर रघुनाथजी को प्राप्तहुये जानकर शीघ्रही सामने प्राप्तहुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर घुटुरुओंसे पृथिवीको प्राप्तहोतेहुये उन वानरों ने इधर उधर बार बार जय ऐसा शब्द कहकर व दूरही से प्रणामकर उसके उपरान्त उन रघुनाथजीसे संयुत उत्तम पताकाओं से सब ओर भलीभांति भूपित उस किष्किन्धामहापुरी में प्रवेश किया ॥ ५८ । ५९ ॥ इसके अनन्तर उत्तम विमानसे उतर कर रामचन्द्रजीने सब ओरसे पवित्र वस्तुओंसे

भूषित व शुभदायक सुग्रीवके मन्दिरमें शीघ्रही प्रवेश किया ॥ ६० ॥ उस मन्दिरमें विश्राम किये बैठेहुये रामचन्द्रजीको उन वानरोंने देखकर व अर्घादिकोंसे भली भांति पूजकर उसके उपरान्त पूंछा ॥ ६१ ॥ वानर बोले कि हे रघुनन्दन ! तुम तेजसे परित्यक्त व दुर्बल मुखवाले व अत्यन्तही ऊबेहुये देखपड़ते हो क्या तुम्हारे घरमें कल्याण है ॥ ६२ ॥ हे रघुनाथजी ! वैसेही नित्यही अनुगामी तुम्हारे छोटेभाई लक्ष्मणजी कहां हैं क्योंकि आज तुम्हारे समीप में स्थित नहीं देखपड़ते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! वैसेही प्राणों के समान प्यारी तुम्हारी नारी जानकीजी क्यों नहीं बगल में स्थित देख पड़ती हैं यह हमलोगोंको परमआश्चर्य्य है ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले कि हे

विश्रान्तंवीक्ष्यवानराः ॥ अर्घादिभिश्चसम्पूज्यपप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ६१ ॥ वानराऊचुः ॥ तेजसात्वंविनिर्मुक्तोदृश्यसे रघुनन्दन ॥ कृशास्योऽतीवचोद्विग्नःकच्चित्क्षेमंगृहेतव ॥ ६२ ॥ क्वास्तिवाऽनुगतोनित्यन्तथातेलक्ष्मणोऽनुजः ॥ नदृश्यतेसमीपस्थः किमद्यतवराघव ॥ ६३ ॥ तथाप्राणसमाऽभीष्टासीताभार्य्यातवप्रभो ॥ दृश्यतेकिन्नपार्श्वस्थाएतन्नः कौतुकंपरम् ॥ ६४ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाचिरंनिःश्वस्यराघवः ॥ वाष्पपूर्णेक्षणोभूत्वासर्वन्तेषांन्यवेदयत् ॥ ६५ ॥ यथासीतापरित्यक्तायथाभ्रातासलक्ष्मणः ॥ यदर्थंतत्रसम्प्राप्तःस्वयमेवद्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ तच्छ्रुत्वावानरास्सर्वेसुग्रीवप्रमुखास्ततः ॥ रुरुदुस्तेसुदुःखार्तास्समालिङ्ग्यपरस्परम् ॥ ६७ ॥ एवंचिरंप्रलप्योच्चैस्तमूचूरघुसत्तमम् ॥ आदेशोदीयतांराजन्योऽस्माभिरिहसिद्ध्यति ॥ ६८ ॥ धन्यावयंधरापृष्ठेयेषान्त्वंरघुसत्तमः ॥ ईदृक्स्नेहसमायुक्तस्समाग

द्विजोत्तमो ! उन वानरोंके उस वचनको सुनकर रामचन्द्र जीने बहुतकालतक उसांस लेकर व आंसुओंसे पूर्ण नयनवाले होकर जिसप्रकार सीता त्यागीगई व जैसे वे लक्ष्मण जी त्यक्तहुये व जिसलिये वहांपर आपही भलीभांति प्राप्तहुये इस समस्त चरित को उन वानरों से निवेदन किया ॥ ६५ । ६६ ॥ तदनन्तर उस वृत्तान्त को सुनकर अतिदुःखित होतेहुये उन सुग्रीवादिक समस्त वानरोंने आपस में लिपटकर रोदन किया ॥ ६७ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक उच्चप्रकार से विलापकर उन रघूत्तम (रामचन्द्र) जीसे कहा कि हे राजन् ! वह आज्ञा दीजावै कि जो यहांपर हमलोगों से सिद्ध होवै ॥ ६८ ॥ धरातलमें हमलोग धन्यहैं कि जिनके मन्दिर

में ऐसे स्नेहसे संयुत व रघूत्तम तुम भलीभांति आयेहो ॥ ६९ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे सुग्रीव ! तुम्हारे मन्दिरमें मैं एकरात्रि निवासकर तदनन्तर लङ्काको जाऊंगा जहांपर वह विभीषण है ॥ ७० हे कपिनायक ! दीवान व मन्त्रियों सयुत तुमको भी मेरेसाथ विभीषणके घरको आनाचाहिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जाय विभीषणपै यथा शिक्षा दी रघुवीर । अट्ठनवें अध्याय में बरणत सो मतिधीर ॥ इस प्रकार वहांपर उन समस्त वानरों से भक्ति समेत उपासित वे

श्रीरामउवाच ॥ उषित्वारजनीमेकांसुग्रीवतवमन्दिरे ॥ ततोलङ्कांङ्गमिष्यामियत्राऽऽस्तेसविभीषणः ॥ ७० ॥ प्रधानाऽमात्ययुक्तेनत्वयापिकपिसत्तम ॥ आगन्तव्यंमयासार्द्धंविभीषणगृहम्प्रति ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतांरजनीन्तत्रसउषित्वारघूत्तमः ॥ उपास्यमानस्सर्वैस्तैस्सभक्त्यावानरोत्तमैः ॥ १ ॥ ततःप्रभाते विमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ कृत्वाप्राभातिकंकर्म्मसमाहूयाथपुष्पकम् ॥ २ ॥ सुग्रीवेणसुषेणेनतारेणकुमुदेनच ॥ अङ्गदेनाऽथकुण्डेनवायुपुत्रेणधीमता ॥ ३ ॥ गवाक्षेणनलेनैवतथाजाम्बवताऽपिच ॥ दशभिर्वानरैस्सार्द्धंसमारूढस्सपुष्पकम् ॥४॥ ततःसंप्रस्थितःकालेलङ्कामुद्दिश्यराघवः ॥ मनोजवेनतेनैवविमानेनसुवर्चसा ॥ ५ ॥ सम्प्राप्तस्तत्क्षणादेवलङ्काख्याञ्चमहापुरीम् ॥ वीक्षयंस्तान्प्रदेशांश्चयत्रयुद्धंपुराऽभवत् ॥ ६ ॥ ततोविभीषणोदृष्ट्वाप्रद्योतंपुष्पकोद्भवम् ॥ रामं

रघूत्तम (राम) जी उस रात्रिको बसकर तदनन्तर जब प्रातःकाल में निर्मल सूर्य्यमण्डल उदय हुआ तब प्रातःकालवाले कर्मको कर अनन्तर पुष्पक विमानको बुलाकर ॥ १ । २ ॥ सुग्रीव, सुषेण, तार, कुमुद व अङ्गद, कुण्ड तथा बुद्धिमान् पवनसुत (हनूमान्) व गवाक्ष, नल तथा जाम्बवान् से भी इन दश वानरों समेत वे रामचन्द्र जी पुष्पक विमानपै चढ़तेहुये ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर समय में लङ्का को उद्देश कर रघुनाथ जीने उसी उत्तम तेजवाले व मनके समान वेगवाले विमानके द्वारा प्रस्थान किया ॥ ५ ॥ व पहले जहांपर युद्ध हुआथा उन स्थानोंको दिखलातेहुये उसी क्षणहीं लङ्कानामक महापुरी में भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर पुष्पकसे उपजे

हुये प्रकाशको देखकर प्रसन्न होतेहुये विभीषण रामचन्द्र जीको प्राप्तहुये जानकर समस्त मंत्रियों व सेवकों तथा पुत्रों समेत भी सामने प्राप्तहुये अनन्तर दूरहीसे विभीषण उन रामदेव को देखकर ॥ ७ । ८ ॥ जय शब्दको कहतेहुये भूमिमें दण्डके समान गिरपड़े इसके अनन्तर उन रामचन्द्र जीने आकर व आदर समेत विभीषण को लिपटकर पश्चात् उन्हीं विभीषण के साथ उस लङ्का में प्रवेश किया उस पुरीमें विभीषण के घरमें प्राप्तहोकर उन वानरोंसे सबओर घिरेहुये रामजी सुखदायक सिंहासनपै बैठगये तदनन्तर विभीषण ने राज्य, पुत्र व और भी जो कुछ स्त्री आदिक पदार्थथा वह सब उन रामचन्द्र जीके लिये निवेदन करदिया ॥ ६ । १० । ११ । १२ ॥

विज्ञायसम्प्राप्तंप्रहृष्टस्संमुखोययौ ॥ ७ ॥ मन्त्रिभिस्सकलैस्सार्द्धन्तथाभृत्यैस्सुतैरपि ॥ अथदृष्ट्वासुदूरात्तंरामदेवंविभीषणः ॥ ८ ॥ पपातदण्डवद्भूमौजयशब्दमुदीरयन् ॥ अथाऽऽगत्यपरिष्वज्यसादरंसविभीषणम् ॥ ९ ॥ तेनैवसहितःपश्चाल्लङ्कांतांप्रविवेशह ॥ विभीषणगृहंप्राप्यतत्रसिंहासनेशुभे ॥ १० ॥ निविष्टोवानरैस्तैश्चसमन्तात्परिवारितः ॥ ततोनिवेदयामासतस्मैसर्वंविभीषणः ॥ ११ ॥ राज्यंपुत्रकलत्रादियच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ १२ ॥ ततःप्रोवाचतंरामंकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ आदेशोदीयतान्देवब्रूहिसत्यंकरोमिकिम् ॥ १३ ॥ अकस्मादेवसम्प्राप्तःकिमर्थंवदमेप्रभो ॥ किन्नाऽऽयातिससौमित्रिस्त्वयासार्द्धञ्चजानकी ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ निवेद्यराघवस्तस्मैसर्वङ्गद्गदयागिरा ॥ बाष्पपूरप्रतिच्छन्नवक्त्रोभूयोपिनिःश्वसन् ॥ १५ ॥ ततःप्रोवाचसत्यार्थंविभीषणकृतेहितम् ॥ तंचापिशोकसन्तप्तंसंबोध्यरघुनन्दनः ॥ १६ ॥ अहंराज्यंपरित्यज्यसाम्प्रतंराक्षसोत्तम ॥ यास्यामित्रिदिवन्तूर्णंलक्ष्मणोयत्रसंस्थितः ॥ १७ ॥ नते

तदनन्तर हाथजोड़े खड़ेहुये विभीषण उन रामचन्द्र जीसे बोले कि हे देव ! आज्ञा दीजावै सत्यही कहिये मैं क्याकरूं ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! अचानकही तुम किस लिये प्राप्तहुयेहो उसको मुझसे कहो क्या तुम्हारे साथ वे लक्ष्मण व जानकी जी नहीं आतीहैं ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कि रामचन्द्र जी गद्गद वाणीसे फिरभी उन विभीषण के लिये समस्त वस्तुको निवेदनकर उसांस लेतेहुये व आंसुओंके प्रवाहसे छिपेहुये मुखवाले होगये ॥ १५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन जीने शोचसे अतिदुःखित उन विभीषण कोभी प्रबोधकर विभीषण के लिये उस सत्यार्थ वचनको कहा ॥ १६ ॥ कि हे राक्षसोत्तम ! इससमय राज्यको छोड़कर मैं शीघ्रही वैकुण्ठको जाऊँगा जहां

पर किं लक्ष्मणजी भलीभांति टिकेहैं ॥१७॥ हे राक्षसर्षभ! उन महात्मा बन्धु (लक्ष्मण) से रहित मैं मुहूर्तभरभी मृत्युलोकमें ठहरनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ १८ ॥
हे विभीषण! मैं तुम्हारे सिखानेके लिये प्राप्तहुआहूं इसलिये सावधान चित्तसे सुनिये व कीजिये ॥१६॥ कि यह राज्यसे उपजीहुई लक्ष्मी मदिराकी नाईं अत्यल्पबुद्धिवाले
मनुष्योंके मदको उपजाती है इसलिये तुमको वह मद न करना चाहिये॥२०॥और इन्द्रादिक समस्त देवता तुमसे सदैव पूजने योग्य व मानने योग्यहैं जिससे सदैव तुम्हारा
राज्य अविनाशी होवै॥२१॥व मेरा वचन सत्यहोवै इसीकारण मैं आयाहूं क्योंकि राज्यकी प्रतिष्ठाको प्राप्त भी तुम्हारा बड़ा बलिष्ठ बन्धु(रावण)अचानक नाशको प्राप्तहोगया

अहञ्चशिक्षणार्थायतवप्राप्तोविभी
नरहितोमर्त्येमुहूर्तमपिचोत्सहे ॥ स्थातुंराक्षसशार्दूलबान्धवेनमहात्मना ॥ १८ ॥ अहञ्चशिक्षणार्थायतवप्राप्तोविभी
षण ॥ तस्मादव्यग्रचित्तेनसंश्रृणुष्वकुरुष्वच ॥ १९ ॥ एषाराज्योद्भवालक्ष्मीर्मदंसञ्जनयेन्नृणाम् ॥ मद्यवत्स्वल्पबु
द्धीनान्तस्मात्कार्य्योनसत्वया ॥ २० ॥ शक्राद्याअमरास्सर्वेत्वयापूज्यास्सदैवहि ॥ मान्याश्चयेनतेराज्यंजायतेशाश्व
तंसदा ॥ २१ ॥ ममसत्यंभवेद्वाक्यमेतस्मादहमागतः ॥ प्राप्तराज्यप्रतिष्ठोपितवभ्रातामहाबलः ॥ २२ ॥ नाशंससह
साप्राप्तस्तस्मान्मान्याःसुराःसदा ॥ यदिकश्चित्समायातिमानुषोऽत्रकथञ्चन ॥ २३ ॥ सत्कार्य्यएवसंहृष्टैस्सर्वैरेव
निशाचरैः ॥ तथानिशाचरास्सर्वेत्वयावार्य्याविभीषण ॥ २४ ॥ ममसेतुंसमुल्लङ्घ्यनगन्तव्यन्धरातले ॥ विभीषणउ
वाच ॥ एवंविभोकरिष्यामितवादेशमसंशयम् ॥ २५ ॥ परन्त्वयापरित्यक्तेमर्त्येमेजीवितंव्रजेत ॥ तस्मान्ममापित
त्रैवत्वंविभोनेतुमर्हसि ॥ २६ ॥ आत्मनासहयत्रास्तेयद्गतोलक्ष्मणस्तदा ॥ श्रीरामउवाच ॥ मयातेऽक्षयमादिष्टंराज्यं

इसलिये सदैव देवता माननेके योग्यहैं यदि यहांपर किसीप्रकार कोई मनुष्य भलीभांति आवै ॥ २२।२३ ॥ तो वह प्रसन्न होतेहुये सबही निशाचरोंसे सत्कारके योग्यही
होगा वैसेही हे विभीषण! तुमको समस्त निशाचरोंको मना करना चाहिये ॥२४॥ कि मेरे सेतुको नाँघकर धरातलमें जाने योग्य नहीं है विभीषण बोले कि हे विभो!
तुम्हारी आज्ञाको मैं निस्सन्देह ऐसाही करूंगा ॥२५॥ परन्तु मृत्युलोक को तुम्हारे छोड़नेपर मेरा जीव चलाजावेगा इसलिये हे विभो! तुम मुझको भी अपने साथ वहां

पर लेजाने योग्यहो कि जहांपर उससमय गयेहुये लक्ष्मणजी टिके हैं श्रीरामजी बोले कि हे राक्षसोत्तम ! मैंने तुमको अविनाशी राज्यको दियाहै ॥ २६ । २७ ॥ इस लिये तुम मुझको मिथ्या आचारवाले करनेके लिये किसीप्रकार योग्य नहीं हो और मैं यशके लिये इस अपने सेतुमें शुभदायक तीन सदाशिवो को स्थापन करूंगा उनको दिनकर व निशाकर की अवधि तक सदैव भक्तिको हृदयमें भलीभांति धरकर आपको पूजना चाहिये ॥ २८।२९ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषणसे इसप्रकार कहकर तदनन्तर वानरों समेत रघुश्रेष्ठ (रामचन्द्र) जी जो पहलेही कीगईथीं उन अद्भुत युद्ध की कथाओंको करते व अनेकप्रकारके समस्त युद्धके स्थानोंको देखते व संग्राममें सामने

राक्षससत्तम ॥ २७ ॥ तस्मान्नार्हसिमांकर्तुंमिथ्याचारंकथञ्चन ॥ अहमस्मिन्स्वकेसेतौशङ्करत्रितयंशुभम् ॥ २८ ॥ स्थापयिष्यामिकीर्त्यर्थंतत्पूज्यंभवतासदा ॥ भक्तिंहृत्प्रतिसन्धाययावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वारघुश्रेष्ठोरा क्षसेन्द्रंविभीषणम् ॥ दशरात्रन्ततस्तस्थौलङ्कायांवानरैःसह ॥ ३० ॥ कुर्वन्युद्धकथाश्चित्रायाःकृताःपूर्वमेवहि ॥ पश्य न्युद्धस्यसर्वाणिस्थानानिविविधानिच ॥ ३१ ॥ शंसमानःप्रवीरांस्तान्राक्षसान्बलवत्तरान् ॥ कुम्भकर्णेन्द्रजित्पूर्वान्सं ख्येचाभिमुखागतान् ॥ ३२ ॥ ततश्चैकादशेप्राप्तेदिवसेरघुनन्दनः ॥ पुष्पकन्तत्समारुह्यप्रस्थितःस्वपुरीम्प्रति ॥ ३३ ॥ वानरैस्तैःसमोपेतोविभीषणपुरस्सरैः ॥ ततश्चस्थापयामाससेतुप्रान्तेमहेश्वरम् ॥ ३४ ॥ मध्येचैवतथादौचश्रद्धापूते नचेतसा ॥ रामेश्वरत्रयंरामएवन्तत्रविधायमः ॥ ३५ ॥ सेतुबन्धंसमासाद्यप्रस्थितःस्वगृहम्प्रति ॥ तावद्विभीषणेनोक्तःप्र णिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ विभीषणउवाच ॥ अनेनसेतुमार्गेणरामेश्वरदिदृक्षया ॥ मानवाआगमिष्यन्ति कौतुका

आयेहुये कुम्भकर्ण मेघनादपूर्वक उन बड़े बलिष्ठ व वीर राक्षसों की प्रशंसा करतेहुये दशरात्रि पर्य्यन्त लङ्कापुरीमें टिकतेभये ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर गेरहवां दिन प्राप्तहोनेपर जिनके विभीषण अगाड़ी चलनेवाले हैं उन वानरों समेत रघुनन्दनजी ने उस विमानपै चढ़कर अपनी पुरीके सामने प्रस्थान किया उसके उपरान्त श्रद्धासे पवित्र चित्त करके सेतुके अन्तमें व मध्य तथा आदिमें तीन रामेश्वरोंको स्थापन किया इसप्रकार उन रघुनाथजीने सेतुबन्धपै प्राप्तहोकर वहांपर रामेश्वरत्रय को वि- धानकर अपनी पुरीके सामने प्रस्थानकिया तबतक बार बार प्रणामकर विभीषणने कहा ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ विभीषण बोले कि श्रद्धासयुत मनुष्य उत्सवके कारण

रामेश्वरजीके दर्शनकी इच्छासे इसी सेतुमार्गके द्वारा आवैंगे ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! राक्षसोंकी जाति अत्यन्तक्रूर मानीगईहै क्योंकि आतेहुये मनुष्यको देखकर उनके
भोजनकी इच्छा उपजतीहै ॥ ३८ ॥ जब कोई राक्षस किसी मनुजको भक्षण करैगा तब अवश्यकर भक्तिमें तत्परहुये मेरी आज्ञाभङ्ग होगी ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कलि-
कालमें जो मनुष्य निर्धनी होवेंगे वे राक्षसोंसे कियेहुये डरको छोड़कर सुवर्णके लोभसे व देवदर्शनके लिये यहांपर नित्यही आवैंगे यदि कोई राक्षस उन मनुजोंके वध
को प्राप्त करैगा ॥४०।४१॥ तो हे प्रभो ! समुद्रसे उपजाहुआ वह दोष मुझको होगा इस लिये तुम किसी उपायको चिन्तनकरो कि जिसप्रकार हे रघूत्तम ! आज्ञाभंग से

**चक्षुर्द्वयान्विताः ॥ ३७ ॥ राक्षसानांमहाराजजातिःक्रूरतमामता ॥ दृष्ट्वामानुषमायान्तमशनेच्छाप्रजायते ॥ ३८ ॥
यदाकश्चिज्जनंकञ्चिद्राक्षसोभक्षयिष्यति ॥ आज्ञाभङ्गोध्रुवंभावीममभक्तिरतस्यच ॥ ३९ ॥ भविष्यन्तिकलौकालेद
रिद्रान्नृपमानवाः ॥ तेऽत्रस्वर्णस्यलोभेनदेवतादर्शनायच ॥ ४० ॥ नित्यञ्चैवागमिष्यन्तित्यक्त्वारक्षःकृतंभयम् ॥ तेषां
यदिवधंकश्चिद्राक्षसःप्रापयिष्यति ॥ ४१ ॥ भविष्यतिचमेदोषःससमुद्रोद्भवःप्रभो ॥ तस्मात्कञ्चिदुपायन्त्वञ्चिन्तयस्व
यथामम ॥ ४२ ॥ आज्ञाभङ्गकृतम्पापंजायतेनरघूत्तम ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाततःसरघुसत्तमः ॥ ४३ ॥ बाढमित्येवचो
क्त्वाथचापंसज्जीचकारसः ॥ ततस्तंकीर्तिरूपञ्चमध्यदेशेरघूत्तमः ॥ ४४ ॥ अच्छिनन्निशितैर्बाणैर्दशयोजनविस्तृत
म् ॥ तेनसंस्थापितोयत्रशिखरेशङ्करःस्वयम् ॥ ४५ ॥ शिखरन्तत्सलिङ्गञ्चपतितंवारिधेर्जले ॥ एवंमार्गमगम्यन्तंकृत्वा
सेतुसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ वानरैराक्षसैःसार्द्धंततःसंप्रस्थितोगृहम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीनागरखण्डेष्टनवतितमोध्यायः ॥ ९८ ॥**

कियाहुआ पातक मुझको न होवै वे रघूत्तमजी उन विभीषणके उस वचनको सुनकर तदनन्तर ॥ ४२ । ४३ ॥ हां यही कहकर इसके अनन्तर उन रघूत्तम जीने
धनुष्को चढ़ाया उसके उपरान्त मध्यदेशमें जिस शिखरपै उन रामजीने आपही शिवजीको स्थापन कियाथा उसी दश योजन विस्तारवाले यशरूपी शिखरको पैने बाणों
से काटडाला ॥ ४४ । ४५ ॥ व लिङ्ग समेत वह शिखर समुद्र के जलमें गिरपड़ा इस भांति सेतुसे उपजेहुये उस मार्गको अगम्य (न जाने योग्य) कर तदनन्तर
वानरों व राक्षसों समेत घरको भलीभांति प्रस्थान किया ॥ ४६ । ४७ ॥ इति श्रीनागरखण्डेभाषाटीकायांरामेश्वरप्रतिष्ठाकथनंनामाष्टनवतितमोध्यायः ॥ ९८ ॥ ❀ ॥

दो० । हाटकेश के क्षेत्रमें निश्चल भयो विमान । नव नब्बे अध्याय में बरणत सूत सुजान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! रामचन्द्र जीको अपने सदनके सामने भलीभांति प्रस्थान करतेहुये मार्ग में जो आश्चर्य्य हुआहै उसको सुनिये ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! आकाश मार्गसे जाताहुआ अत्यन्तही आश्चर्य्यकारक पुष्पक विमान अचानकही अचल होगया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर आकाशरूपी आंगनमें उस पुष्पकको अचल देखकर रामचन्द्रजीने विस्मयसे पवनसुत (हनूमान्)जीसे कहा ॥ ३ ॥ कि हे मारुते याने पवनपुत्र ! तुम भूमिमें जाकर यह कारण जानो कि यह पुष्पक विमान आकाश में क्यों अचलता को प्राप्त होगया ॥ ४ ॥ क्योंकि ब्रह्माकी दृष्टिसे उपजे

सूतउवाच ॥ संप्रस्थितस्यरामस्यस्वकीयंसदनंप्रति ॥ यदाश्चर्य्यमभून्मार्गेश्रूयतान्द्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ नभोमार्गेणगच्छत्तुविमानंपुष्पकंद्विजाः ॥ अकस्मादेवसंजातंनिश्चलंचित्रकृत्तमम् ॥ २ ॥ अथतन्निश्चलंदृष्ट्वापुष्पकंगगनाङ्गणे ॥ रामोवायुसुतश्चेदंवचनंप्राहविस्मयात् ॥ ३ ॥ त्वङ्गत्वामारुतेशीघ्रंभूमौजानीहिकारणम् ॥ किमेतत्पुष्पकंव्योम्निनिश्चलत्वमुपागतम् ॥ ४ ॥ कदाचिद्वार्य्यतेनास्यगतिःकुत्रापिकेनचित् ॥ ब्रह्मदृष्टिप्रसूतस्यपुष्पकस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥ बाढमित्येवसप्रोच्यहनूमान्धरणीतलम् ॥ गत्वाशीघ्रंपुनःप्राहप्रणिपत्यरघूत्तमम् ॥ ६ ॥ अत्रास्त्यधःशुभंक्षेत्रंहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ यत्रसाक्षाज्जगत्कर्तास्वयंब्रह्माव्यवस्थितः ॥ ७ ॥ आदित्यावसवोरुद्रादेववैद्यौतथाऽश्विनौ ॥ तत्रतिष्ठन्तितेसर्वेतथाऽन्येसिद्धकिन्नराः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणान्नैतदतिक्रामतिपुष्पकम् ॥ तत्क्षेत्रंनिश्चलीभूतंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकौतूहलसमन्वितः ॥ पुष्पकंप्रेरयामासतत्क्षेत्रंप्रतिराघवः ॥ १० ॥

हुये इस पुष्पक महात्माकी गति किसी समय व कहींपर भी किसीसे नहीं रुकतीहै ॥ ५ ॥ उन हनूमान्जीने हां यही कहकर व शीघ्रही धरातलको जाकर फिर रघूत्तम (राम) जीको प्रणामकर कहा ॥ ६ ॥ कि यहांपर नीचे शुभदायक हाटकेश्वर नामक क्षेत्र है जहांपर साक्षात् जगत्के कर्ता ब्रह्माजी आपही टिके हैं ॥ ७ ॥ और जे आदित्य, वसु, रुद्र व देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं वे तथा और सब सिद्ध किन्नर टिके हैं ॥ ८ ॥ इसी कारणसे उस क्षेत्रप्रति अचल हुआ यह पुष्पक विमान नहीं नांघता है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि उन हनूमान्जीके उस वचनको सुनकर आश्चर्य्यसे संयुत रघुनाथजीने उस क्षेत्रमें पुष्पकको प्रेरणा किया ॥१०॥

तदनन्तर उन समस्त वानरों व अनेकप्रकारके राक्षसों समेत उतरकर प्रसन्न होतेहुये उस क्षेत्रमें सब ओर तीर्थ व पुण्यदायक देवमन्दिरों को देखा उसके उप-
रान्त ब्रह्माजीसे निर्मितहुई चामुण्डाको देखा ॥ ११ । १२ ॥ और वहांपर कामदायक कुण्ड में स्नानकर उसके उपरान्त रामचन्द्रजीने अपने पितासे निर्माण किये
हुये देवेशको देखा व मानो अपनेही चतुर्भुज देवको देखकर व राजवापीमें स्नानकर पवित्र होकर और अपने पितरोंको तर्पणकर उसके उपरान्त चिन्तन किया व
बहुत पुण्यदायक क्षेत्र में अलग २ अपने २ लिङ्गोंको स्थापन किया ॥ १३ । १४ । १५ ॥ व उसी क्षेत्र में श्रद्धासंयुत होतेहुये वे सब बहुत समय तक टिके उसके

सर्वैस्तैर्वानरैःसार्द्धंराक्षसैश्चपृथग्विधैः ॥ अवतीर्य्यततोहृष्टस्तस्मिन्क्षेत्रेसमन्ततः ॥ ११ ॥ तीर्थमालोकयामासपुण्या
न्यायतनानिच ॥ ततोविलोकयामासपितामहविनिर्म्मिताम् ॥ १२ ॥ चामुण्डांतत्रचस्नात्वाकुण्डेकामप्रदायिनि ॥
ततोविलोकयामासपित्रास्वस्यविनिर्म्मितम् ॥ १३ ॥ रामःस्वमिवदेवेशंदृष्ट्वादेवंचतुर्भुजम् ॥ राजवाप्यांशुचिर्भूत्वा
स्नात्वातर्प्यनिजान्पितॄन् ॥ १४ ॥ ततश्चचिन्तयामासक्षेत्रेचबहुपुण्यदे ॥ लिङ्गानिस्थापयामासुःस्वानिस्वानिपृथक्
पृथक् ॥ १५ ॥ तत्रैवसुचिरंकालंस्थितास्तेश्रद्धयान्विताः ॥ ततोजग्मुरयोध्याञ्चविमानवरमाश्रिताः ॥ १६ ॥ एतद्वः
सर्वमाख्यातंयथारामेश्वरोमहान् ॥ लक्ष्मणेश्वरसंयुक्तस्तस्मिंस्तीर्थेसुशोभने ॥ १७ ॥ यस्तौप्रातःसमुत्थायसदापश्य
तिमानवः ॥ सकृत्स्नंफलमाप्नोतिश्रुतंरामायणेऽत्रयत ॥ १८ ॥ अथाष्टम्याञ्चतुर्दश्यांयोरामचरितंपठेत् ॥ तदग्रेवा
जिमेधस्यसकृत्स्नंलभतेफलम् ॥ १९ ॥ इति श्रीनागरखण्डेरामेश्वरप्रतिष्ठाकथनंनामनवनवतितमोध्यायः ॥ ९९ ॥

उपरान्त उत्तम विमानपै चढ़कर अयोध्यापुरीको गमन किया ॥१६॥ उस अतिउत्तम तीर्थमें जिसप्रकार लक्ष्मणेश्वर संयुत श्रेष्ठ रामेश्वरजी स्थापितहुये इस समस्त च-
रित को तुमलोगोंसे वर्णन किया ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सदैव प्रातःकाल उठकर उन दोनों महादेवोंको देखता है वह उस समस्तफलको प्राप्त होता है कि जो यहां रामा-
सुननेपर मिलता है ॥ १८ ॥ अथवा अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें उन रामेश्वरजीके अगाडी जो पुरुष रामचरित को पढ़ताहै वह अश्वमेधके समस्त फलको पाता
१९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरप्रतिष्ठाकथनंनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ॥

दो० । आनर्तीय तड़ागकी महिमा कर सुचरित्र । यहि सौके अध्याय में बरणत अतिहि विचित्र ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! जो तुमने कहा है कि उन राक्षसों व वानरोंने भी लिङ्गोंको स्थापन कियाहै यह आश्चर्य्य है ॥ १ ॥ इसलिये हे सूतपुत्र ! जहां जहांपर व जिस जिस२ भांति तथा जिन२स्थानोंमें उन्होंने लिङ्गोंको स्थापन किया है उसको विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि सावधान होतेहुये सुग्रीवने समस्त क्षेत्रको सम्पूर्णतासे भ्रमणकर अनन्तर बालमण्डन तीर्थमें प्राप्त होकर व उसमें नहाकर तदनन्तर वहींपर त्रिशूलधारी (शिवजी) के मुख्य लिङ्गको स्थापन किया वैसेही हे द्विजोत्तमो ! अन्य समस्त वानरोंने अपने नामके

ऋषयऊचुः ॥ आश्चर्य्यंसूतपुत्रैतद्यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ तैःस्थापितानिलिङ्गानिराक्षसैरपिवानरैः ॥ १ ॥ तस्मा द्विस्तरतोब्रूहियत्रयत्रयथायथा ॥ तैःस्थापितानिलिङ्गानियेषुस्थानेषुसूतज ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ सुग्रीवस्संभ्रमित्वाश्च क्षेत्रंसर्वमशेषतः ॥ बालमण्डनकेप्राप्यतत्रस्नात्वासमाहितः ॥ ३ ॥ मुख्यलिङ्गंततस्तत्रस्थापयामासशूलिनः ॥ तथा ऽन्यैर्वानरैःसर्वैर्मुख्यलिङ्गानिशूलिनः ॥ ४ ॥ स्वसंज्ञार्थन्द्विजश्रेष्ठाःस्थापितानियथेच्छया ॥ यस्तेषांमुख्यलिङ्गानांक रोतिघृतकम्बलम् ॥ मकरस्थेनसूर्य्येणशिवलोकंसगच्छति ॥ ५ ॥ ततःपश्चिमदिग्भागेतस्यक्षेत्रस्यराक्षसैः ॥ संस्था पितानिलिङ्गानिचतुर्वक्त्राणिचद्विजाः ॥ ६ ॥ रामेणपूर्वदिग्भागेप्रासादानाञ्चपञ्चकम् ॥ स्थापितंभक्तियुक्तेनसर्वपात कनाशनम् ॥ ७ ॥ तथादक्षिणदिग्भागेकूपिकातेननिर्म्मिता ॥ आनर्तीयतडागस्यसमीपेपापनाशिनी ॥ ८ ॥ यस्त स्यांकुरुतेश्राद्धंसम्प्राप्तेदक्षिणायने ॥ सोऽश्वमेधफलम्प्राप्यपितृलोकेमहीयते ॥ ९ ॥ यस्तत्रदीपकंदद्यात्कार्त्तिके

लिये यथेच्छासे महादेवजीके मुख्य लिङ्गोंको स्थापन किया सूर्य्यको मकरराशिमें टिकतेहुये जो पुरुष उन मुख्य लिङ्गोंको घृतकम्बल करताहै याने कम्बल ओढ़ाता है वह शिवलोकको जाताहै ॥ ३ । ४ । ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजो ! उस क्षेत्रके पश्चिम दिशाके भागमें राक्षसोंने चारमुखवाले लिङ्गोंको भलीभांति स्थापन किया है ॥ ६ ॥ व पूर्वदिशाके भागमें भक्तिसंयुत रामचन्द्रजीने समस्त पातकोंके नाशक पांच मन्दिरोंको स्थापन किया ॥ ७ ॥ वैसेही उन रामजीने दक्षिणदिशा के भागमें आनर्त देशवाले तड़ागके समीप पातकों के विनाशक लघुकूपका निर्माण कियाहै ॥ ८ ॥ सूर्य्यको दक्षिणायनमें प्राप्तहोनेपर उस कूपके समीप जो पुरुष श्राद्धको करता

है वह अश्वमेधके फलको पाकर पितरोंके लोकमें पूजित होताहै ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! कार्त्तिकमहीनेमें वहांपर जो पुरुष दीपक देता (धरता) है वह उन इक्कीस घोरनरकों
को नहीं देखताहै ॥ १० ॥ व जहां २ उत्पन्न होताहै कहीं भी अन्ध नहीं होताहै ॥ ११ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर उस आनर्तीय तड़ाग को किसने
निर्माण कियाहै और किस प्रभाववालाहै इसको सम्पूर्णता से कहिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! आनर्तीय तड़ागकी महिमा एक मुखसे कहनेके लिये
सौवर्ष सेभी समर्थ नहीं है ॥ १३ ॥ कुँवार के शुक्लपक्ष में चतुर्दशी तिथि में सावधान होताहुआ मनुष्य नहाकर विधिपूर्वक देवताओं तथा पितरोंको तर्पण करै ॥ १४ ॥

मासिचद्विजाः ॥ नसपश्यतिरौद्रांस्तान्नरकानेकविंशतिम् ॥ १० ॥ नचान्धोजायतेक्वापियत्रयत्रप्रजायते ॥ ११ ॥ ऋष
यऊचुः ॥ आनर्तीयतडागन्तत्केनतत्रविनिर्म्मितम् ॥ किम्प्रभावश्चकात्स्न्येनसूतपुत्रप्रकीर्तय ॥ १२ ॥ सूतउवाच ॥
आनर्तीयतडागस्यमहिमाद्विजसत्तमाः ॥ एकवक्त्रेणनोशक्तोवक्तुंवर्षशतैरपि ॥ १३ ॥ आश्विनस्यासितपक्षेचतुर्दश्यां
समाहितः॥स्नात्वादेवान्पितॄंश्चैवतर्प्पयेद्विधिपूर्वकम्॥१४॥ततोदीपोत्सवदिनेश्राद्धंकृत्वासमासतः॥दामोदरंयमम्पूज्य
दीपन्दद्यात्स्वभक्तितः ॥ १५ ॥ सम्पूज्योधर्म्मराजस्तुगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ माषास्तिलाश्चदातव्यागोविन्दःप्रीयतामि
ति ॥ १६ ॥ तिलमाषप्रदानेनद्विजानान्तर्प्पणेनच ॥ यमेनसहितोदेवः प्रीयतांपुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ यएवंकुरुतेविप्रा
स्तीर्थेचानर्तसञ्ज्ञिते ॥ सोऽश्वमेधफलम्प्राप्यब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १८ ॥ यस्मिन्दिनेसमायातोरामस्तत्रप्रहर्षितः ॥ त
स्मिन्द्विजोत्तमैस्सर्वैःप्रोक्तःसोभ्येत्यसादरम् ॥ १९ ॥ अत्रागस्त्योमुनिश्रेष्ठस्तिष्ठतेरघुनन्दन ॥ तङ्गत्वापश्यविप्रेन्द्रंमि

उसके उपरान्त दीपोत्सव (दिवाली) के दिन में संक्षेपसे श्राद्धकोकर व अपनी भक्तिसे दामोदर व यमराज को पूजकर दीपको देवै ॥ १५ ॥ और धर्मराजजी चन्दन
पुष्प व अनुलेपनों से भलीभांति पूजने योग्य हैं व गोविन्द प्रसन्न होवैं इस हेतुसे उड़द व तिलों को देना चाहिये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणोंको तिल व उड़दोंके दानसे व त-
र्पणसे यमराज समेत पुरुषोत्तम (विष्णु जी) प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! आनर्त नामक तीर्थ में जो इसप्रकार करता है वह अश्वमेध के फलको पाकर ब्रह्म-
लोकमें पूजाजाताहै ॥ १८ ॥ उस क्षेत्रमें जिस दिन प्रसन्नहोतेहुये रामचन्द्र जी भलीभांति आयेहैं उसी दिन समस्त द्विजोत्तमोंने आकर उनसे आदर समेत कहा ॥ १९ ॥

कि हे रघुनन्दन ! यहांपर मुनिनायक अगस्त्य जी टिके हैं उनके समीप जाकर मित्रावरुण से उपजेहुये द्विजेन्द्रको देखिये ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उन द्विजोंके वचनको सुनकर प्रसन्न होतेहुये कमललोचन रामचन्द्र जी वानरों व राक्षसों समेत शीघ्रही गये ॥ २१ ॥ व रघूत्तम (रामचन्द्र) जी आठ अङ्गोंके प्रणिपात (गिराने) के द्वारा उन अगस्त्य मुनिको प्रणामकर व आनन्द समेत उन महात्मासे पुष्टतापूर्वक लिपटा लियेगये ॥२२॥ तदनन्तर हाथ जोड़ेहुये स्थित व नम्रतासंयुत रघुनाथ जी उन अगस्त्य मुनिके नहीं अतिदूरमें याने कुछ दूरपै धरणीपृष्ठमें समीपही बैठगये ॥ २३ ॥ उसके उपरान्त मुनिसे स्वर्गके गमन प्रति पूछेहुये रामचन्द्र जीने अ-

त्रावरुणसम्भवम् ॥ २० ॥ अथतेषांवचःश्रुत्वारामोराजीवलोचनः ॥ वानरैराक्षसैस्सार्द्धम्प्रहृष्टःमत्वरंययौ ॥ २१ ॥
अष्टाङ्गप्रणिपातेनतम्प्रणम्यरघूत्तमः ॥ परिष्वक्तोदृढंतेनसानन्देनमहात्मना ॥ २२ ॥ नाऽतिदूरेततस्तस्यविनयेनसम
न्वितः ॥ उपविष्टोधरापृष्ठेकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ २३ ॥ ततःपृष्टस्तुमुनिनाकथयामासविस्तरात् ॥ वृत्तान्तंसर्वमा
त्मीयंस्वर्गस्यगमनम्प्रति ॥ २४ ॥ यथासीतापरित्यक्तायथासौमित्रिणाकृतः ॥ परित्यागःस्वकायस्यसन्त्यक्तेन
महात्मना ॥ २५ ॥ यथासुग्रीवमासाद्ययथैवचविभीषणम् ॥ सम्भाष्यआगमस्तत्रकृतःपुष्पकसंस्थितिः ॥ २६ ॥
ततोऽगस्त्यःकथाश्चित्राश्चक्रेतस्यपुरस्तदा ॥ राजर्षीणाम्पुराणानांदृष्टान्तैर्बहुभिर्मुनिः ॥ २७ ॥ ततःकथावसा
नेचबलवन्तंरघूत्तमम् ॥ विलोक्यप्रददौतस्मैरत्नाभरणमुत्तमम् ॥ २८ ॥ यक्षदेवषुयक्षेषुसिद्धविद्याधरेषुच ॥ नागेषु

पने समस्त वृत्तान्तको विस्तारसे कहा ॥२४॥ कि जिसप्रकार सीताजी छोड़ीगई व जिसप्रकार छुटेहुये महात्मा लक्ष्मणजीने अपने शरीरको त्यागकियाथा ॥ २५॥ व जिस प्रकार सुग्रीव पै प्राप्तहोकर जैसेही विभीषण से संभाषणकर वहांपर आगमन किया व जैसे पुष्पककी संस्थितिहुई याने गति रुकगईथी ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस समय अगस्त्य मुनिने उन रघुनाथ जी के आगाडी बहुतेरे दृष्टान्तों से पुराने राजर्षियों की विचित्र कथाओं को किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर कथाके अन्तमे बलवान् रघूत्तमजी को देखकर उन के लिये उत्तम रत्नालङ्कार को दिया ॥ २८ ॥ जोकि देवता, यक्ष, सिद्ध व विद्याधरों मे और नाग तथा राक्षसेन्द्रो में न था और मनुष्योंमे क्या कहना

है ॥ २९ ॥ व जिससे हजारों वज्रके समूह याने बिजुली निकलतीथीं रात्रिमें उस आभूषण के न देखनेपर भी यह देख पड़ताथा कि यह कौन उठा ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विस्मयसे फूले लोचनोंवाले रामचन्द्रजीने उस आभूषण को लेकर आश्चर्यसंयुत होतेहुये पूंछा कि हे मुने ! अत्यन्तही अद्भुत करनेवाला व अन्धकारका नाशक यह रत्नोंसे रचित कण्ठाभरण तुमको कहां से मिलाथा इसको कहिये क्योंकि यह त्रिलोक में नहीं है ॥ ३१ । ३२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे रघूत्तम ! मेरे आश्रम के समीप में प्राप्त जो इस तड़ाग को देखतेहो, वही यह देवता से रचित है ॥ ३३ ॥ हे रघुनन्दन ! उसके किनारेपै मैंने जो अतिउत्तम आश्चर्यको देखा है उसको मैं तुमसे

राक्षसेन्द्रेषुमानुषेषुचकाकथा ॥ २९ ॥ यस्येन्द्रायुधसङ्घाश्चनिष्क्रामन्तिसहस्रशः ॥ रात्रौतस्मिन्नलक्ष्येऽपिलक्ष्य
तेकोयमुत्थितः ॥ ३० ॥ तद्रामस्तुगृहीत्वाथविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ पप्रच्छकौतुकाविष्टःकुतस्त्वेतन्मुनेतव ॥ ३१ ॥
अत्यद्भुतकरंरत्नैर्निर्मितंतिमिरापहम् ॥ कण्ठाभरणमाख्याहिनेदमस्तिजगत्त्रये ॥ ३२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यत्पश्यसि
रघुश्रेष्ठतडागमिदमुत्तमम् ॥ ममाश्रमसमीपस्थन्तदेतद्देवनिर्म्मितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीरेमयादृष्टंयदाश्चर्य्यमनुत्तमम् ॥
तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामिशृणुष्वरघुनन्दन ॥ ३४ ॥ कदाचिद्राघवश्रेष्ठनिशीथेऽहंसमुत्थितः ॥ पश्यामिव्योममार्गेणप्रद्यो
तम्भास्करोपमम् ॥ ३५ ॥ यावत्तावद्विमानन्तदप्सरोगणराजितम् ॥ तत्रमध्यगतश्चैकःपुरुषस्तरुणस्तथा ॥ ३६ ॥ अ
धस्तत्रसमारूढःस्तूयतेकिन्नरैर्नृप ॥ रत्नाभरणमेतच्चबिभ्रत्कण्ठेसुनिर्म्मलम् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशःकामदेवइवापरः ॥
३७ ॥ अथोत्तीर्य्यविमानाग्राद्भूमिलग्नाद्रघूद्वह ॥ एकेनदेवदूतेनसलिलान्तमुपागतः ॥ ३८ ॥ ततश्चसलिलात्तस्मा

भलीभांति कहूंगा सुनिये ॥ ३४॥ हे रघूत्तम ! किसी समय आधी रातमें उठा हुआ मैं जबतक आकाशमार्ग से सूर्य्य के समान प्रकाश को देखूं तबतक अप्सराओं के समूह से शोभित उस विमान को देखा व हे राजन् ! उसके बीचमें प्राप्त एक युवा पुरुषको देखा जो कि उस विमानमें नीचे चढ़ा व किन्नरों से प्रशंसित तथा इस निर्मल रत्नाभरणको गलेमें धारण किये बारह सूर्य्योंके समान व दूसरे कामदेवके सदृशथा ॥ ३५।३६।३७॥ इसके अनन्तर हे रघुवंशनायक ! वह पुरुष भूमि में लगेहुये विमान के अग्रभाग

से उतरकर एक देवदूत के साथ जलके समीप प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसने उस जलसे मुरदेके शरीर को खींचकर उसके उपरान्त दांतों से शीघ्रतापूर्वक भक्षण किया ॥ ३९ ॥ हे राघव ! ज्यों ज्यों वह मनुज मांस को भक्षण करता था त्यों त्यों वह शरीर (फिर उसी रूपवाला) याने वैसाही होजाता था ॥ ४० ॥ उसके उपरान्त बहुत समयसे तृप्तिको पाकर व पवित्र होकर प्रसन्न होता हुआ वह जलसे निकलकर जबतक विमान पै चढ़ै ॥ ४१ ॥ तबतक हे नृप ! मैंने शीघ्रही जाकर बुद्धि में परायण गन्धर्वों से सब ओर सेवित भी उस पुरुष से कुतूहलसे पूंछा ॥ ४२ ॥ कि हे हे वैमानिकोत्तम ! मुहूर्तभर परिपालन करिये याने रुक जाइये मैं मित्रावरुण से

दाकृष्यचकलेवरम् ॥ मृतकस्यततोदन्तैर्भक्षयामाससत्वरम् ॥ ३९ ॥ यथायथामहामांसंसभक्षयतिराघव ॥ तथातथा पुनःकायन्तद्रूपंतत्प्रजायते ॥ ४० ॥ ततस्तृप्तिञ्चिरात्प्राप्यशुचिर्भूत्वाप्रहर्षितः ॥ निष्क्रम्यसलिलाद्यावद्विमानमधिरोहति ॥ ४१ ॥ तावन्मयाद्रुतङ्गत्वासपृष्टःकौतुकान्नृप ॥ सेव्यमानोपिगन्धर्वैःसमन्ताद्बुद्धितत्परैः ॥ ४२ ॥ भोभोवैमानिकश्रेष्ठमुहूर्तंपरिपालय ॥ अगस्तिर्नामविप्रोहंमित्रावरुणसम्भवः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वासम्मुखोभूत्वाप्रणाममकरोत्ततः ॥ तैश्चवैमानिकैस्सार्द्धंसर्वैस्तैःकिन्नरादिभिः ॥ ४४ ॥ कस्त्वमीदृग्वपुःश्रीमान्विमानवरमाश्रितः ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्च गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यतडागान्तेमहामांसप्रभक्षणम् ॥ कृतवानसिवैकृत्यङ्कस्मात्तेदृष्टिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ वैमानिकउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठयस्त्वंप्राप्तोममान्तिकम् ॥ ४७ ॥ अवश्यंसानुकूलोमेविधिर्यत्त्वंसमागतः ॥ साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥ ४८ ॥ कालेनफलतेतीर्थंसद्यस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्सर्वंतवाख्यानंक

उपजा हुआ अगस्त्य नामक ब्राह्मणहूं ॥ ४३ ॥ उस वचन को सुनकर सामने होकर तदनन्तर उन विमानवाले पुरुषों व समस्त किन्नरादिकों समेत उसने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर मैंने पूंछा कि अप्सराओं व गन्धर्वों तथा किन्नरों से सेवित व उत्तम विमान पै आश्रय किये हुये और ऐसे शरीर व शोभावाले तुम कौनहो ॥ ४५ ॥ जो कि यहां पर तड़ाग के समीप आकर तुमने मनुष्य मांसको भक्षण कियाहै व तुम्हारे दृष्टि से उपजा हुआ विकार किस कारण है ॥४६ ॥ वैमानिक बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ! जो तुम मेरे समीप प्राप्त हुये हो यह बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ ॥ ४७ ॥ जिस लिये कि तुम भलीभांति आयेहो उसी कारण मेरे दैव सानुकूलहै क्योंकि साधुओं

में तुम ने कहीं पर किसी को कुछ नहीं दिया है ॥ ६८ ॥ उसी से हे दुर्मते ! यहां पर तुम्हारे क्षुधा वृद्धि को प्राप्त होती है और जो रत्न तुम्हारी दृष्टि में प्राप्त हुये उनको तुम ने हरलिया ॥ ६९ ॥ उसी कारण मेरे लोक में प्राप्तहुये भी तुम नेत्रों से रहित होगये और पाप संयुत भी जो तुम मेरे मन्दिर में भलीभांति प्राप्त हुयेहो ॥ ७० ॥ उस समस्त वृत्तान्त को मैं कहूंगा तुम एकमनवाले स्थित होकर सुनो कि पापमन या चित्तवाले भी तुमने जिस जलमें प्राणों को छोड़ाहै पुरातन समयमें कलिकाल के भय से दुःखित श्वेतद्वीप का स्वामी वहांपर इसके स्पर्श से उसीक्षण समस्त पातकों से छूटगया ॥ ७१ । ७२ ॥ अन्न के न देने से तुम्हारे क्षुधा से उपजी हुई अत्यन्त पीडा

थिवीतले ॥ ६८ ॥ तेनात्रापिबुभुक्षातेवृद्धिङ्गच्छतिदुर्मते ॥ तथाहृतानिरत्नानियानिदृष्टिङ्गतानिते ॥ ६९ ॥ चक्षुर्हीनस्त तोजातोममलोकगतोपिच ॥ यस्त्वंपातकयुक्तोपिसंप्राप्तोममममन्दिरे ॥ ७० ॥ तद्वक्ष्याम्यखिलंवृत्तंशृणुचैकमनाःस्थि तः ॥ यस्मिञ्जलेत्वयामुक्ताःप्राणाःपापात्मनापिच ॥ ७१ ॥ श्वेतद्वीपपतिस्तत्रकलिकालभयातुरः ॥ पुरास्यस्पर्शनात्स द्योविमुक्तःसर्वपातकैः ॥ ७२ ॥ अन्नादानात्परापीडाजायतेक्षुत्समुद्भवा ॥ तथारत्नापहारेणसंजाताचान्धतातव ॥ ७३ ॥ नैवान्यत्कारणंकिञ्चित्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ततोमयाविधिःप्रोक्तःपुनरेवद्विजोत्तमाः ॥ ७४ ॥ एषोपिब्रह्मलोकस्तेनर कादतिरिच्यते ॥ तस्मात्तत्रैवमान्देवप्रेषयस्वाकिमत्रवै ॥ ७५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्तत्रैवगच्छेस्त्वंप्रेषितोपितदत्रवै ॥ नर केणचवासेनश्वेतद्वीपसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ माहात्म्यंनाशमायातिशास्त्रंस्यात्सत्यवर्जितम् ॥ तस्मात्त्वंनित्यमारूढोविमा नेत्रैवसुन्दरे ॥ ७७ ॥ गत्वाजलाशयेतस्मिन्यत्रप्राणाःसमुज्झिताः ॥ तमेवनिजदेहंचभक्षयस्वयथेच्छया ॥ ७८ ॥ तद्ध

उत्पन्न हुई है वैसेही रत्नों के अपहरण से तुम्हारे अन्धता उत्पन्न हुई है ॥ ७३ ॥ और कुछ कारण नहीं है यह मैंने सत्य कहा है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैंने फिर भी ब्रह्माजी से कहा ॥ ७४ ॥ हे देव ! यह तुम्हारा ब्रह्मलोक भी नरक से अधिक है इस लिये मुझ को वहींपर पठाइये यहां क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यदि यहांपर पठाये हुये भी तुम उसी नरक में जाते हो तो नरक के निवास से श्वेतद्वीप से उपजा हुआ माहात्म्य नाश होवै है व शास्त्र सत्य से रहित होवैगा इस लिये नित्यही इसी शोभन विमान पै चढ़ेहुये तुम वहींपर जाकर जहांकि प्राण छूटे हैं उसी अपने शरीर को यथेच्छा से भक्षण करो ॥ ७६ । ७७ । ७८ ॥ जल के बीच

से उतरकर एक देवदूत के साथ जलके समीप प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसने उस जलसे मुरदेके शरीर को खींचकर उसके उपरान्त दांतों से शीघ्रतापूर्वक भक्षण किया ॥ ३९ ॥ हे राघव ! ज्यों ज्यों वह मनुज मांस को भक्षण करता था त्यों त्यों वह शरीर (फिर उसी रूपवाला) याने वैसाही होजाता था ॥ ४० ॥ उसके उपरान्त बहुत समयसे तृप्तिको पाकर व पवित्र होकर प्रसन्न होता हुआ वह जलसे निकलकर जबतक विमान पै चढ़ै ॥ ४१ ॥ तबतक हे नृप ! मैंने शीघ्रही जाकर बुद्धि में परायण गन्धर्वों से सब ओर सेवित भी उस पुरुष से कुतूहलसे पूंछा ॥ ४२ ॥ कि हे हे वैमानिकोत्तम ! मुहूर्तभर परिपालन करिये याने रुक जाइये मैं मित्रावरुण से

दाकृष्यचकलेवरम् ॥ मृतकस्यततोदन्तैर्भक्षयामाससत्वरम् ॥ ३९ ॥ यथायथामहामांसंसभक्षयतिराघव ॥ तथातथा पुनःकायन्तद्रूपंतत्प्रजायते ॥ ४० ॥ ततस्तृप्तिञ्चिरात्प्राप्यशुचिर्भूत्वाप्रहर्षितः ॥ निष्क्रम्यसलिलाद्यावद्विमानमधिरो हति ॥ ४१ ॥ तावन्मयाद्रुतङ्गत्वासपृष्टःकौतुकान्नृप ॥ सेव्यमानोपिगन्धर्वैःसमन्ताद्बुद्धितत्परैः ॥ ४२ ॥ भोभोवैमानिक श्रेष्ठमुहूर्तंपरिपालय ॥ अगस्तिर्नामविप्रोहंमित्रावरुणसम्भवः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वासम्मुखोभूत्वाप्रणाममकरोत्ततः ॥ तै श्चवैमानिकैस्सार्द्धंसर्वैस्तैःकिन्नरादिभिः ॥ ४४ ॥ कस्त्वमीदृग्वपुःश्रीमान्विमानवरमाश्रितः ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्च गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यतडागान्तेमहामांसप्रभक्षणम् ॥ कृतवानसिवैकृत्यङ्कस्मात्तेदृष्टिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ वैमानिकउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठयस्त्वंप्राप्तोममान्तिकम् ॥ ४७ ॥ अवश्यंसानुकूलोमेविधिर्यत्त्वंसमागतः ॥ साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थंभूताहिसाधवः ॥ ४८ ॥ कालेनफलतेतीर्थंसद्यस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्सर्वंतवाख्यानंक

उपजा हुआ अगस्त्य नामक ब्राह्मणहूं ॥ ४३ ॥ उस वचन को सुनकर सामने होकर तदनन्तर उन विमानवाले पुरुषों व समस्त किन्नरादिकों समेत उसने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर मैंने पूंछा कि अप्सराओं व गन्धर्वों तथा किन्नरों से सेवित व उत्तम विमान पै आश्रय किये हुये और ऐसे शरीर व शोभावाले तुम कौनहो ॥ ४५ ॥ जो कि यहां पर तड़ाग के समीप आकर तुमने मनुष्य मांसको भक्षण कियाहै व तुम्हारे दृष्टि से उपजा हुआ विकार किस कारण है ॥४६ ॥ वैमानिक बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ! जो तुम मेरे समीप प्राप्त हुये हो यह बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ ॥ ४७ ॥ जिस लिये कि तुम भलीभांति आयेहो उसी कारण मेरे दैव सानुकूलहै क्योंकि साधुओं

में तुम ने कहीं पर किसी को कुछ नहीं दिया है ॥ ६८ ॥ उसी से हे दुर्मते! यहां पर तुम्हारे क्षुधा वृद्धि को प्राप्त होती है और जो रत्न तुम्हारी दृष्टि में प्राप्त हुये उनको
तुम ने हरलिया ॥ ६९ ॥ उसी कारण मेरे लोक में प्राप्तहुये भी तुम नेत्रों से रहित होगये और पाप संयुत भी जो तुम मेरे मन्दिर में भलीभांति प्राप्त हुयेहो ॥ ७० ॥
उस समस्त वृत्तान्त को मैं कहूंगा तुम एकमनवाले स्थित होकर सुनो कि पापमन या चित्तवाले भी तुमने जिस जलमें प्राणों को छोडाहै पुरातन समयमें कलिकाल के
भय से दुःखित श्वेतद्वीप का स्वामी वहांपर इसके स्पर्श से उसीक्षण समस्त पातकों से छूटगया ॥ ७१ । ७२ ॥ अन्न के न देने से तुम्हारे क्षुधा से उपजी हुई अत्यन्त पीड़ा

थिवीतले ॥ ६८ ॥ तेनात्रापिबुभुक्षातेवृद्धिङ्गच्छतिदुर्मते ॥ तथाहृतानिरत्नानियानिदृष्टिङ्गतानिते ॥ ६९ ॥ चक्षुर्हीनस्त
तोजातोममलोकगतोपिच ॥ यस्त्वंपातकयुक्तोपिसंप्राप्तोममममन्दिरे ॥ ७० ॥ तद्वक्ष्याम्यखिलंवृत्तंशृणुचैकमनाःस्थि
तः ॥ यस्मिञ्जलेत्वयामुक्ताःप्राणाःपापात्मनापिच ॥ ७१ ॥ श्वेतद्वीपपतिस्तत्रकलिकालभयातुरः ॥ पुरास्यस्पर्शनात्स
द्योविमुक्तःसर्वपातकैः ॥ ७२ ॥ अन्नादानात्परापीडाजायतेक्षुत्समुद्भवा ॥ तथारत्नापहारेणसंजाताचान्धतातव ॥ ७३ ॥
नैवान्यत्कारणंकिञ्चित्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ततोमयाविधिःप्रोक्तःपुनरेवद्विजोत्तमाः ॥ ७४ ॥ एषोपिब्रह्मलोकस्तेनर
कादतिरिच्यते ॥ तस्मात्तत्रैवमान्देवप्रेषयस्वकिमत्रवै ॥ ७५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्तत्रैवगच्छेस्त्वंप्रेषितोपितदत्रवै ॥ नर
केणचवासेनश्वेतद्वीपसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ माहात्म्यंनाशमायातिशास्त्रंस्यात्सत्यवर्जितम् ॥ तस्मात्त्वंनित्यमारूढोविमा
नेत्रैवसुन्दरे ॥ ७७ ॥ गत्वाजलाशयेतस्मिन्यत्रप्राणाःसमुज्झिताः ॥ तमेवनिजदेहंचभक्षयस्वयथेच्छया ॥ ७८ ॥ तद्भ

उत्पन्न हुई है वैसेही रत्नों के अपहरण से तुम्हारे अन्धता उत्पन्न हुई है ॥ ७३ ॥ और कुछ कारण नहीं है यह मैंने सत्य कहा है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैंने फिर भी
ब्रह्माजी से कहा ॥ ७४ ॥ हे देव ! यह तुम्हारा ब्रह्मलोक भी नरक से अधिक है इस लिये मुझ को वहींपर पठाइये यहां क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७५ ॥ ब्रह्माजी बोले
कि यदि यहांपर पठाये हुये भी तुम उसी नरक में जाते हो तो नरक के निवास से श्वेतद्वीप से उपजा हुआ माहात्म्य नाश होवैहै व शास्त्र सत्य से रहित होवैगा इस
लिये नित्यही इसी शोभन विमान पै चढ़ेहुये तुम वहींपर जाकर जहांकि प्राण छूटे हैं उसी अपने शरीर को यथेच्छा से भक्षण करो ॥ ७६ । ७७ । ७८ ॥ जल के बीच

में प्राप्त वह शरीर मेरे वचन से नाशरहित होगा व भोजन के समय में उतने काल तक तुम्हारे दृष्टि होगी ॥ ७९ ॥ उसी कारण उन ब्रह्मा के वचन से मैं सदैव दीपोत्सव के दिन अर्धरात्र मे यहां आकर अपने शरीर को भक्षण करता हूं ॥ ८० ॥ व उसी कारण ऐसे रूपवाला मैं तबतक तृप्तिको प्राप्त होता हूं कि जबतक देवताओं का दिन स्थित रहता है व मनुष्यों का आधा वर्ष व्यवस्थित होता है ॥ ८१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोक में तुमको कुछ असाध्य नहीं है याने तुम सबकुछ करसक्तेहो क्योंकि जिन तुमने समुद्र को एक चुल्लू करके पीलिया ॥ ८२ ॥ इसलिये हे मुने ! मेरे ऊपर बडीभारी दया करके समस्त मनुष्योंसे विशेषकर निन्दित इस अकार्य्य से मुझको

विष्यतिमद्वाक्यादक्षयंजलमध्यगम् ॥ तावत्कालंचदृष्टिस्तेभोज्यकालेभविष्यति ॥ ७९ ॥ ततोहन्तस्यवाक्येनदीपोत्सवदिनेमदा ॥ निशीथेत्रसमागत्यभक्षयामिनिजान्तनुम् ॥ ८० ॥ ततस्तृप्तिंप्रगच्छामियावद्दैवंदिनंस्थितम् ॥ मानुषश्चतथाब्दार्धमीदृग्रूपोव्यवस्थितः ॥ ८१ ॥ नास्त्यसाध्यंमुनिश्रेष्ठतवकिञ्चिज्जगत्त्रये ॥ येनैकञ्चुलुकंकृत्वानिपीतःपयसांनिधिः ॥ ८२ ॥ तस्मान्मुनेदयांकृत्वाममोपरिमहत्तराम् ॥ अकृत्याद्रक्षमामस्मात्सर्वलोकविगर्हितात् ॥ ८३ ॥ तथादृष्टिप्रदानंमेकुरुष्वमुनिसत्तम ॥ निर्विण्णोस्म्यवमानेननान्यात्वत्तोस्तिमेगतिः ॥ ८४ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकृपाविष्टोमुनीश्वरः ॥ तम्प्रोवाचाथदुःखार्तंमृतंसञ्जीवयन्निव ॥ ८५ ॥ त्वमेनंविश्रुतन्देहिकण्ठस्थमिहभूषणम् ॥ येननाशंप्रयात्येषाबुभुक्षाजठरोद्भवा ॥ ८६ ॥ त्वमद्यप्रभृतिप्राज्ञरत्नदीपान्सुनिर्म्मलान् ॥ अत्रैवसरसस्तीरेदेहिदामोदरायच ॥ ८७ ॥ येनसञ्जायतेदृष्टिःशाश्वतीतवनिर्म्मला ॥ ममवाक्यादसन्दिग्धंसत्येनात्मानमालभे ॥ ८८ ॥ राजोवाच ॥

पालन करिये ॥ ८३ ॥ व हे मुनिसत्तम ! मेरे लिये दृष्टिदान को करिये क्योंकि मैं अपमान से वैराग्यको प्राप्त हूं और तुमसे अन्य मेरी गति नहीं है ॥ ८४ ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर अनन्तर दयासंयुत मुनिनायक ने मरेको जिलातेहुये से उस दुःख मे विकल पुरुषसे कहा ॥ ८५ ॥ कि गलेमें स्थित (पहनेहुये) इस अलंकार को यहांपर तुम देवो जिससे कि पेटमें उपजीहुई यह क्षुधा नाश होजावै ॥ ८६ ॥ व हे बुद्धिमन् ! आजसे लगा कर तुम इसी तडाग के किनारे दामोदर (विष्णु) के लिये अतिनिर्मल रत्नों के दीपकों को दीजिये ॥ ८७ ॥ कि जिससे निस्सन्देह मेरे वचन से तुम्हारी सदैववाली निर्मल दृष्टि होगी यह मै सत्यसे अपनी शपथ करताहूं ॥ ८८ ॥

राजा बोले कि हे मुनिसत्तम ! तुम मेरे ऊपर कृपाको कर रत्नमे उपजेहुये इस उत्तम कण्ठाभरण को लीजिये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर सत्यवादी मुनिने भयसे तिरस्कृत व निर्लोभ भी मुझको उस कण्ठाभरण के प्रतिग्रह (दान) को भलीभांति धारण कराया ॥ ९० ॥ तदनन्तर मेरे पांवोंको धोकर जबतक उस शुद्ध चित्तवाले नृपने उत्तम भक्तिसे इस अमूल्य आभूषण को दिया ॥ ९१ ॥ तबतक हे नृपदेव ! उसीक्षण उसकी क्षुधा नष्टहोगई व अमृत से उपजीहुई उत्तम तृप्ति होगई ॥ ९२ ॥ व पुरातन समयमें उपजा उसका वह पुराना व मराहुआ शरीर नाश होगया जोकि नित्यही उसजलमें पड़ाहुआ अविनाशीथा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर हे रघूत्तम ! उसी स्थान

ममोपरिदयांकृत्वात्वमेनंमुनिसत्तम ॥ गृहाणरत्नसम्भूतंकण्ठाभरणमुत्तमम् ॥ ८९ ॥ ततोभयाभिभूतेनमयातस्यप्रतिग्रहः ॥ निःस्पृहेणापिसंधार्य्योमुनिनासत्यवादिना ॥ ९० ॥ ततःप्रक्षाल्यमेपादौयावत्तेनात्रनिष्क्रयम् ॥ विभूषणमिदंदत्तंसद्भक्त्याभावितात्मना ॥ ९१ ॥ तावत्तस्यप्रणष्टातुबुभुक्षातत्क्षणान्नृप ॥ संजातापरमातृप्तिर्दैवपीयूषसम्भवा ॥ ९२ ॥ तस्यनष्टंमृतंकायन्तच्चजीर्णंपुरोद्भवम् ॥ यदासीदक्षयंनित्यन्तस्मिंस्तोयेव्यवस्थितम् ॥ ९३ ॥ ततःसंस्थापितस्तेनतस्मिन्स्थानेसुभक्तितः ॥ दामोदरोरघुश्रेष्ठकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ९४ ॥ तस्याग्रेश्रद्धयायुक्तोदीपंदद्याद्यथायथा ॥ तथातथाभवेद्दृष्टिस्तस्यनित्यंसुनिर्मला ॥ ९५ ॥ ततोमांससमासाद्यदिव्यचक्षुर्महीपतिः ॥ सबभूवनृपश्रेष्ठःस्पृहणीयतमःसताम् ॥ ९६ ॥ ततःप्रोवाचमांहृष्टःप्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ हर्षगद्गदयावाचाप्रस्थितस्त्रिदिवम्प्रति ॥ ९७ ॥ त्वत्प्रसादात्प्रणष्टामेबुभुक्षाऽतिसुदारुणा ॥ तथादृष्टिश्चसञ्जातादिव्याब्राह्मणसत्तम ॥ ९८ ॥ अनुज्ञान्देहिमेतस्माद्येनगच्छामि

में उसने उत्तम मन्दिरको बनाकर भलीभक्तिसे विष्णुजीको स्थापनकिया ॥ ९४ ॥ व उन विष्णुजीके आगे श्रद्धासंयुत होताहुआ ज्यों ज्यों दीपको देताथा त्यों त्यों उसकी नित्यही निर्मल दृष्टि होतीथी ॥ ९५ ॥ तदनन्तर वह दिव्यनयनवाला भूपति मेरे निकट आकर सज्जनों से अत्यन्त चाहा हुआ वह नृपोत्तम होगया ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त स्वर्ग को प्रस्थान करते व हाथजोडे हुये प्रसन्न भूपतिने प्रणामकर आनन्द से गद्गदवाणीके द्वारा मुझसे कहा ॥ ९७ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी अत्यन्तही विकराल क्षुधा नष्टहोगई व दिव्य दृष्टि भलीभांति उत्पन्नहुई ॥ ९८ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझको आज्ञा दीजिये कि जिससे इस तीर्थके प्रभावसे मैं

इस समय ब्रह्मलोक को जाऊं ॥ ९९ ॥ तदनन्तर मुझसे बिदाकिया हुआ व प्रसन्न मनवाला वह नृपति बार बार प्रणामकर सनातन (अविनाशी) ब्रह्मलोकको चला गया ॥ १०० ॥ इस प्रकार पुरातन समय यह अलङ्कार मेरे हाथमें प्राप्तहुआ इसको तुम्हारे योग्य जानकर उसीसे तुम्हारे लिये निवेदन किया ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! तबसे लगाकर मनुष्य यहांपर भलीभांति आकर कार्त्तिक महीने में उच्चप्रकार से रत्नदीपकों को देकर व शुभदायक जल में नहाकर इसके अनन्तर देहान्त में स्वर्ग को जाताथा हे रघूत्तम ! फिर सावधान होतेहुये जे नर प्राणों का त्याग करतेथे पाप चित्तवाले भी वे ब्रह्मलोक को जातेथे उसके उपरान्त उस जलसे

साम्प्रतम् ॥ ब्रह्मलोकंमुनिश्रेष्ठतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ९९ ॥ ततोमयाविनिर्मुक्तःप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ सजगामप्रहृष्टात्माब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ १०० ॥ एवंमेभूषणमिदंजातंहस्तङ्गमम्पुरा ॥ तवयोग्यमिमंज्ञात्वातुभ्यन्तेननिवेदितम् ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ततःप्रभृतिराजेन्द्रसमागत्यात्रमानवः ॥ रत्नदीपान्प्रदायोच्चैःस्नात्वाचसलिलेशुभे ॥ २ ॥ कार्त्तिकेमासिनिर्यातिदेहान्तेथदिवालयम् ॥ येपुनःप्राणसन्त्यागंप्रकुर्वन्तिसमाहिताः ॥ ३ ॥ पापात्मानोपितेयान्तिब्रह्मलोकंरघूत्तम ॥ ततोदृष्ट्वासहस्राक्षःप्रभावन्तज्जलोद्भवम् ॥ ४ ॥ पांशुभिःपूरयामाससमन्ताद्भयसंकुलः ॥ तदद्यादिवसःप्राप्तोदीपोत्सवसमुद्भवः ॥ ५ ॥ सुपुण्येऽत्रसमादेशेत्वंकुरुष्वसुकूपिकाम् ॥ तस्यांस्नानंविधायाथपितॄंस्तर्पयराघव ॥ ६ ॥ देवस्यास्यपुरोदेहिरत्नदीपमनुत्तमम् ॥ येनमंजायतेसिद्धिर्ब्रह्मलोकसमुद्भवा ॥ अनेनैवशरीरेणसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७ ॥ ततस्तेराघवादेशात्सर्वेराक्षसवानराः ॥ तस्मिन्देशेविनिदधुःकूपिकांविमलोदकाम् ॥ ८ ॥ तत्रस्नात्वापितॄंस्तर्प्यरत्नदीपंप्र

उपजे हुये प्रभाव को देखकर भयसंयुत होतेहुये इन्द्रने सब ओर से धूरि से पूर्ण करदिया आज दीपोत्सव से उपजा हुआ दिन प्राप्तहै इसलिये ॥ २ । ३ । ४ । ५ ॥ हे राघव ! इस अतिपुण्यदायक देशमें तुम उत्तम लघुकुयें को कीजिये उसी में स्नान कर इसके उपरान्त पितरों को तर्पण करिये ॥ ६ ॥ व इन देवके अगाड़ी अत्युत्तम रत्नदीप को दीजिये जिससे इसी शरीर से ब्रह्मलोक से उपजी हुई सिद्धि भलीभांति होती है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजीकी आज्ञासे उन समस्त राक्षसों व वानरोंने उसदेशमें निर्मल जलवाले छोटेकुयें को बनाया ॥ ८ ॥ व उसी में नहाकर तथा पितरों को तर्पणकर व सम्पूर्ण कार्त्तिक भर रत्नदीपको देकर तदन-

न्तर अयोध्या को प्रस्थान किया ॥ ९ ॥ उसके उपरान्त विभीषण व हनूमान् वानर को छोड़कर उस तीर्थ के प्रभाव से सब ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ १० ॥ सूतजी बोले
कि कार्त्तिक महीने को भलीभांति प्राप्तहोने पर उस शुभदायक जलमें नहाकर जो पुरुष आदर समेत आजभी दीपदान करता है वह समस्त पातकों से छूटकर ब्रह्म-
लोक में पूजित होता है ॥ ११ । १२ ॥ इस प्रकार वहांपर शुभदायक आनर्तीय तड़ाग और वह सुन्दर विष्णुकूप भलीभांति उत्पन्न हुआहै ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानर्तकमाहात्म्यंनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ततोविभीषणंमुक्त्वाहनूमन्तञ्चवानरम् ॥ ब्रह्मलोकङ्गतास्सर्वे
तस्यतीर्थप्रभावतः ॥ ९ ॥ ततोविभीषणं ... प्रास्थितस्ततः ॥ ९ ॥

दायच ॥ समस्तंकार्त्तिकंयावदयोध्यांप्रास्थितस्ततः ॥ ९ ॥ ततोविभीषणंमुक्त्वाहनूमन्तञ्चवानरम् ॥ ब्रह्मलोकङ्गतास्सर्वे
तस्यतीर्थप्रभावतः ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ अद्यापिदीपदानन्तुकुरुतेयस्तुसादरम् ॥ ११ ॥ संप्राप्तेकार्त्तिकेमासिस्नात्वातत्रजलेशुभे ॥ मसर्वपातकैर्मुक्तोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ एवंतत्रसमुत्पन्नन्तडागन्तुशुभावहम् ॥ आनर्तीयन्तथाविष्णुकूपिकासाचशोभना ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदआनर्तकमाहात्म्यंनामशततमोध्यायः १०० ॥

ऋषयऊचुः ॥ राक्षसैस्तत्रलिङ्गानियानिभक्त्यासमन्वितैः ॥ स्थापितानिचमाहात्म्यंतेषांसूतप्रकीर्तय ॥ १ ॥ सूत
उवाच ॥ तेषांपूजाकृतेरौद्राराक्षसाबलवत्तराः ॥ लङ्कापुर्य्याःसमायान्तिसदैवशतशःपुरा ॥ २ ॥ आगच्छन्तोव्रजन्त
स्तेह्यस्मिन्क्षेत्रेत्रतत्रच ॥ भक्षयन्तिजनौघांश्चबालवृद्धान्द्विजानपि ॥ ३ ॥ ततस्तेमानवाःसर्वेप्रगच्छन्तःसमन्ततः ॥ इत
श्चेतश्चधावन्तिप्राणरक्षणतत्पराः ॥ ४ ॥ तथाऽन्येबहवोगत्वाअयोध्याख्यांमहापुरीम् ॥ रामपुत्रंनृपश्रेष्ठंकुशंप्रोचुःसुदुः

दो० । इकसौ यक अध्याय में बरणत सो इतिहास । जिमि पठयो कुश दूत को नृपति विभीषण पास ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! भक्तिसंयुत राक्षसोंने वहांपर
जिन लिङ्गों को स्थापन किया है उनके माहात्म्य को कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय उन लिङ्गों के पूजन के लिये विकराल व बड़े बलिष्ठ सैकड़ों राक्षस
सदैव लङ्कापुरी से भलीभांति आतेथे ॥ २ ॥ व यहांपर इस क्षेत्रमें आते व लङ्कापुरी को जातेहुये वे राक्षस बालक व बूढ़े जन समूहों को तथा ब्राह्मणों को भी भक्षण
करतेथे ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्राणों के रक्षणमें परायण व सब ओर जातेहुये वे मनुष्य इधर उधर धावने लगे ॥ ४ ॥ व अतिदुःखित होतेहुये अन्य बहुत से मनुष्य अयोध्या

नामक महापुरी को जाकर रामजी के पुत्र नृपोत्तम कुशजी से बोले ॥ ५ ॥ कि हे राजन्! पुरातन समय जिनमें विभीषण आगे चलनेवालेथे वे राक्षस हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्रमें तुम्हारे पिताके साथ प्राप्त हुयेथे ॥ ६ ॥ और वहांपर उसी क्षेत्रके पश्चिम में उन राक्षसेन्द्रों ने अपने मन्त्रों से पांच मुखवाले लिङ्गोंको भलीभांति स्थापन किया है ॥ ७ ॥ और उसी प्रसङ्ग से उस क्षेत्रमें राक्षस नित्यही आते हैं व मनुष्यका भक्षण करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा यदि कोई मनुष्य उन लिङ्गों को भलीभांति पूजता है तो उसी क्षण विनाश को प्राप्त होताहै वहभी बड़ाभारी अनर्थ कहागया है ॥ ९ ॥ उसी कारण हे भूपते! यदि आप हमलोगों की रक्षा न करेंगे तो धीरे २ यह समस्त

स्थिताः ॥ ५ ॥ तवपित्रासमंप्राप्ताःपूर्वंयेराक्षसान्नृप ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेविभीषणपुरस्सराः ॥ ६ ॥ संस्थापितानिलिङ्गानिपञ्चवक्त्राणितत्रवै ॥ राक्षसेन्द्रैःस्वमन्त्रैस्तैस्तस्यक्षेत्रस्यपश्चिमे ॥ ७ ॥ तेनैवचानुषङ्गेणसमागच्छन्तिनित्यशः ॥ तस्मिन्क्षेत्रेप्रकुर्वन्तितथालोकस्यभक्षणम् ॥ ८ ॥ यदिवातानिलिङ्गानिकश्चित्सम्पूजयेन्नरः ॥ सद्योविनाशमायाति सोप्यनर्थोमहान्स्मृतः ॥ ९ ॥ तस्माद्यदिनरक्षांनःकरिष्यतिमहीपते ॥ तच्छनैर्यास्यतेलोकःसर्वोयंसंक्षयंध्रुवम् ॥ १० ॥ तच्चक्षेत्रंविशेषेणयत्रागच्छन्तितेसदा ॥ राक्षसाःक्रूरकर्म्माणोमहामांसस्यलोलुपाः ॥ ११ ॥ ततःश्रुत्वानृपस्तूर्णंस्वामात्यानांन्यवेदयत् ॥ राज्यभारन्ततस्तत्रबलेनसहितोययौ ॥ १२ ॥ अथप्राप्तंकुशंदृष्ट्वाहतशेषाद्विजोत्तमाः ॥ प्रोचुस्तंभर्त्सयित्वातुवचनैःपरुषाक्षरैः ॥ १३ ॥ किमेवंक्रियतेराज्यंयथात्वंक्षत्रियाधमः ॥ करोषियत्रविध्वंसंराक्षसैर्नीयतेजनः ॥ १४ ॥ नूनंजातोनरामेणभवान्रावणसम्भवः ॥ यन्नोरक्षसिसर्वान्नोराक्षसैःपरिपीडितान् ॥ १५ ॥ सत्यमेतत्पुराप्रो

संसार निश्चयकर नाश होजायगा ॥ १० ॥ और वह क्षेत्र विशेषकर नाश होजायगा कि जहांपर क्रूर कर्मोंवाले व मनुष्यमांस के लोभी वे राक्षस सदैव आते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर नृपति ने उस वचन को सुनकर शीघ्रही निज मन्त्रियों को राज्यका भार निवेदन किया उसके उपरान्त उस क्षेत्र में सेना समेत गमन किया ॥ १२ ॥ इस के अनन्तर प्राप्त हुये कुशको देखकर मरने से बचेहुये ब्राह्मणोत्तमोंने उनको निन्दकर कठोर आखरवाले वचनों से कहा ॥ १३ ॥ कि क्या इसप्रकार राज्य कीजाती है जिस प्रकार कि क्षत्रियों में नीच तुम करते हो कि जिस राज्य में राक्षस मनुष्यों को विध्वंस करते हैं ॥ १४ ॥ आप रामचन्द्र जी से उत्पन्न नहीं हुयेहो किन्तु रावण से उपजे हो

क्योंकि राक्षसोंसे अत्यन्तही दुःखित हमसबों की रक्षा नहीं करतेहो ॥ १५ ॥ पुरातन समय नीतिशास्त्र में प्रवीण पुरुषों ने यह सत्य कहा है कि जिस जाति का जो राजा
होता है वही जाति सुख को प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ इसलिये तुम राक्षस के भाव को प्राप्तहुये उसी कारण राक्षसों से भक्षण किये जाते हुये समस्त द्विजोत्तमों व अन्य नरों को
त्याग करते हो ॥ १७ ॥ व नृपति से उपजे हुये दोषों से दुःखित मनुष्यों के आंसू जिस भूतल में गिरते हैं वहां का जो राजा है वही दोषभागी होता है ॥ १८ ॥ कुश
बोले कि हे ब्राह्मणो ! प्रसन्नता कीजावै क्योंकि मैंने ऐसे चरित्र को नहीं जाना जोकि राक्षसों से तुम सबों ब्राह्मणों का तिरस्कार पैदाहुआ ॥ १९ ॥ व आज से लगाकर कहीं

तस्मात्त्वंराक्षसीभूतोराक्षसैर्द्विजसत्तमान् ॥
क्तंनीतिशास्त्रविचक्षणैः ॥ यस्यवर्णस्ययोराजासवर्णःसुखमेधते ॥ १६ ॥
उपेक्ष्यसेततःसर्वान्भक्ष्यमाणांस्तथापरान् ॥ १७ ॥ आर्तानांयत्रलोकानांदोषैःपार्थिवसम्भवैः ॥ पतन्त्यश्रूणिभूपृष्ठेत
त्रराजासदोषभाक् ॥ १८ ॥ कुशउवाच ॥ प्रसादःक्रियतांविप्रानमयाज्ञातमीदृशम् ॥ राक्षसैर्वःसमुत्पन्नोब्राह्मणानांपरा
भवः ॥ १९ ॥ अद्यप्रभृतियःकश्चिद्विनाशंनीयतेकचित् ॥ ब्राह्मणोवाथवान्योपितद्भवेन्ममपातकम् ॥ २० ॥ एवमुक्त्वात
तस्तूर्णंप्रेषयामासराघवः ॥ विभीषणायसंक्रुद्धोदूतम्भयविवर्जितम् ॥ २१ ॥ गच्छदूतद्रुतङ्गत्वात्वयावाच्योविभीष
णः ॥ रामोचितस्त्वयास्नेहोमयासहकृतोमहान् ॥ २२ ॥ यद्राक्षसगणैःसार्द्धंममभूमिसमन्ततः ॥ त्वंक्लेशयासिदुर्बुद्धे
मांविश्वास्यसुभाषितैः ॥ २३ ॥ ममपित्राकृतेयन्तेप्रतिष्ठाराक्षसाधम ॥ तेननोहन्मितेभ्रातायथावातेननाशितः ॥
२४ ॥ विषवृक्षोपियोवृद्धिंस्वयमेवप्रतीयते ॥ कथंसंछिद्यतेसोत्रस्वयमेवमनीषिभिः ॥ २५ ॥ तस्मादद्यदिनादूर्ध्वंयदि

पर जो कोई ब्राह्मण या अन्य नर भी नाश होवै वह पातक मुझको होवैगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर अत्यन्त क्रोधित व रघुवंश में उपजे हुये कुशने शीघ्रही डर
से रहित दूत को विभीषण के लिये पठाया ॥ २१ ॥ कि हे दूत ! तुम जाओ व शीघ्रही जाकर तुम को विभीषण से कहना चाहिये कि तुम ने मेरे साथ रामचन्द्र के योग्य
बड़े स्नेह को किया ॥ २२ ॥ जो कि हे दुष्टबुद्धिवाले ! तुम मुझ को उत्तम वचनों से विश्वास कराकर राक्षसगणों समेत सब ओर से मेरी भूमिको दुःख देतेहो ॥ २३ ॥
हे राक्षसों में नीच ! मेरे पिताने तेरी इस प्रतिष्ठा को किया है उसी से मैं नहीं मारता हूं जिस प्रकार कि उन राम जी ने तेरे भाई (रावण) को मारा है ॥ २४ ॥ क्योंकि

जो विषका वृक्ष भी आपही वृद्धि को प्राप्त किया जाता है वह इस संसार में किसप्रकार आपही बुद्धिमानों से काटाजाय ॥ २५ ॥ इसलिये आज दिन से उपरान्त यदि कोई राक्षस किसी प्रकार समुद्र के उत्तर किनारे पै आवैगा ॥ २६ ॥ तो सेनासमेत मैं शीघ्रही तुम्हारी इस लङ्कापुरी को प्राप्त होकर विध्वंस करूंगा वह दूत सेतु के समीप जाकर व रामेश्वर के दर्शन कर जबतक अगाड़ी स्थित हुआ तबतक कुछ जनों ने पूंछा कि हे वत्स ! तुम कौनहो व यहां किस कार्य्य से आये हो इसको कहो क्योंकि यहां पर मनुष्य नहीं आताहै दूत बोला कि कुश भूपने कार्य्यको उद्देशकर मुझको विभीषण के घर को पठाया है वहांपर मैं किस प्रकार जाऊंगा मनुष्य बोले कि इस

कश्चिन्निशाचरः ॥ समुद्रस्योत्तरंपारंकथंचिदागमिष्यति ॥ २६ ॥ तदहंसत्वरंप्राप्यलङ्कान्तवपुरीमिमाम् ॥ ससैन्यो ध्वंसयिष्यामिसगत्वासेतुमन्तिकम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वारामेश्वरंयावदग्रेदूतोऽव्यवस्थितः ॥ तावत्पृष्टोजनैःकैश्चित्कस्त्वंवत्स इहागतः ॥ २८ ॥ केनकार्य्येणभोब्रूहिनात्रागच्छतिमानवः ॥ दूतउवाच ॥ अहंकुशेनभूपेनविभीषणगृहम्प्रति ॥ २९ ॥ प्रेषितःकार्य्यमुद्दिश्यतत्रयास्याम्यहङ्कथम् ॥ जनाऊचुः ॥ नातःपरंनरःकश्चिद्गन्तुंशक्तःकथञ्चन ॥ ३० ॥ भग्नःसेतुर्य तोमध्येरामेणाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ तस्मादत्रैवतेकार्य्यंसिद्धिंदूतप्रयास्यति ॥ ३१ ॥ विभीषणकृतंसर्वन्दर्शनात्पश्यरक्षसः ॥ सर्वदाराक्षसेन्द्रोसौशुभंरामेश्वरत्रयम् ॥ ३२ ॥ त्रिकालम्पूजयत्येवनियमंसमुपाश्रितः ॥ लङ्काद्वारेस्थितोयोवैसेतुखण्डे महेश्वरः ॥ ३३ ॥ प्रभातेकुरुतेतस्यस्वयंपूजांविभीषणः ॥ जलमध्यगतंयत्तुसेतुखण्डंद्वितीयकम् ॥ ३४ ॥ तत्ररामेश्व रोयश्चमध्याह्नेतम्प्रपूजयेत् ॥ एनन्देवंनिशीथेचसर्वदागत्यभक्तितः ॥ ३५ ॥ सम्पूजयेन्नसन्देहःसत्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥

के उपरान्त जाने के लिये कोई मनुष्य किसी प्रकार समर्थ नहीं है ॥ २७।२८।२९।३० ॥ जिस लिये कि उत्तम कर्मवाले रामचन्द्र जी ने बीच में सेतु को तोड़डाला है उसी कारण हे दूत ! यहींपर तुम्हारा कार्य्य सिद्ध होजावैगा ॥ ३१ ॥ व राक्षस के दर्शन से विभीषण से किये हुये समस्त कार्य्य को देखियेगा नियम में भलीभांति टिका हुआ यह राक्षसेन्द्र (विभीषण) सदैव शुभदायक तीनों रामेश्वरों को तीनोकाल में पूजताही है लङ्का के द्वारवाले सेतु के टुकड़े पै जो ये महादेव जी टिके हैं ॥ ३२ । ३३ ॥ उनका पूजन प्रभात काल में आपही विभीषण करता है व जो दूसरा सेतु का खंड जल के बीच में प्राप्त है ॥ ३४ ॥ उस खण्ड पै जो रामेश्वर जी हैं उनको दुपहर में

पूजताहै व सदैव आधीरात में आकर भक्ति से इन देवको निस्सन्देह पूजन करताहै यह सत्य कहागया है इसलिये हे द्विज ! तबतक सावधान चित्तवाले तुम साथही इसी
स्थान पै टिको ॥ ३५।३६ ॥ जबतक कि उस राक्षस (विभीषण) महात्मा का आगमन होवै पश्चात् अपनी इच्छासे उसीके साथ उसके घरको जाइयेगा या उससे बिदा
होकर अपनेही घरको जाइयेगा वह दूत उन सबों के उस वचन को सुनकर आनन्दसंयुत हुआ ॥ ३७ । ३८ ॥ इसके उपरान्त हां यही कहकर वहींपर विशेषता से
टिका इसके अनन्तर जब आधीरात प्राप्तहुई तब राक्षसों से घिरे व उत्तम विमानपै चढ़े व सब ओरसे राक्षसों से प्रशंसित तथा वन्दीजनों के रूपवाले अन्य निशाचरों

तस्मात्तिष्ठत्वमव्यग्रःस्थानेत्रैवसमंद्विज ॥ ३६ ॥ यावदागमनन्तस्यराक्षसस्यमहात्मनः ॥ तेनैवसहितःपश्चात्स्वेच्छ
यातस्यमन्दिरम् ॥ ३७॥ प्रयास्यसिगृहंवापिस्वकीयन्तद्विसर्जितः ॥ तेषांवचस्तदाकर्ण्यसदूतोहर्षसंयुतः ॥ ३८ ॥ बा
ढमित्येवचोक्त्वाथतत्रैवव्यवस्थितः ॥ अथप्राप्तेनिशार्द्धेसराक्षसैःपरिवारितः ॥ ३९ ॥ विभीषणस्समायातस्तस्मि
न्नायतनेशुभे ॥ विमानवरमारूढःस्तूयमानःसमन्ततः ॥ ४० ॥ राक्षसैर्वन्दिरूपैस्तैर्गीयमानस्तथापरैः ॥ उत्तीर्य्यच
विमानाग्रात्कृत्वाथत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वरंप्रणम्योच्चैःस्तोत्रमेतच्चकारह ॥ नमस्तेदेवदेवेशभक्तानामभयप्र
द ॥४२॥ सर्वतःपाणिपादन्तेसर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्वंचन्द्रस्त्वंप्रभाकरः ॥ ४३ ॥ त्वंविष्णुस्त्वं
चतुर्वक्त्रःशक्रस्त्वंपरमेश्वरः ॥ यथातिलगतन्तैलंगूढन्तिष्ठतिसर्वदा ॥ ४४ ॥ तथात्वंसर्वलोकेषुगूढस्तिष्ठसिशङ्कर ॥

से गाये हुये उस विभीषण ने उसी शुभदायक मन्दिर में भलीभांति आगमन किया इसके अनन्तर विमान के आगे से उतरकर व रामेश्वर की तीन प्रदक्षिणाओं
को करके व उच्च प्रकार से प्रणामकर इस स्तोत्र को किया कि हे देव ! हे देवनायक ! हे भक्तों को अभय देनेवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३९।४०।४१।४२ ॥ सब
ओर तुम्हारे हाथ पांव हैं व सब ओर तुम्हारे नेत्र व शिर तथा मुख हैं व तुम्हीं यज्ञहो तुम्हीं वषट्कार (स्वाहा) हो तुम्हीं चन्द्रमाहो व तुम्हीं प्रकाश करनेवाले दिवा-
कर हो ॥ ४३ ॥ तुम्ही विष्णु हो तुम्हीं चतुरानन (ब्रह्मा) हो तुम्हीं इन्द्रहो तुम्हीं परमेश्वरहो जैसे तिल में प्राप्त छिपा हुआ तैल सदैव टिका है ॥ ४४ ॥ वैसेही हे शङ्कर !

समस्त मनुष्यों में छिपेहुये तुम टिके हो जैसे भलीभांति टिकी हुई भी काठ में प्राप्त अग्नि नहीं देख पड़ती है ॥ ४५ ॥ व जैसे दही में प्राप्त घी गुप्तता से टिका है वैसेही हे देव ! स्थावर जङ्गम प्राणियों में तुम भलीभांति स्थितहो ॥ ४६ ॥ जैसे मेघ के बरसनेसे मनुष्य अन्न को पाता है वैसेही नित्य तुमको पूजता हुआ पुरुष निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ हे देव ! तबतक स्वर्ग दुर्लभहै व शूरमा शत्रुहैं जबतक कि तुम देहधारियों को सन्तोष नहीं करते हो ॥ ४८ ॥ हे देवदेव ! मनुष्यों के तभीतक लक्ष्मी चलायमान है व तभीतक अनेकों प्रकार के रोग हैं जबतक कि तुम भलीभांति प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होते हो ॥ ४९ ॥ हे देव ! इस संसार में तबतक पुत्र से उपजा व प्यारे

यथाकाष्ठगतोवह्निःसंस्थितोपिनलक्ष्यते ॥ ४५ ॥ यथादधिगतंसर्पिर्निगूढत्वेनसंस्थितम् ॥ चराचरेषुभूतेषुतथात्वंदेव संस्थितः ॥ ४६ ॥ यथाजलधराद्वृष्टादन्नंप्राप्नोतिमानवः ॥ तथात्वाम्पूजयन्नित्यंमोक्षमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४७ ॥ तावच्च दुर्लभःस्वर्गस्तावच्छूराश्चशत्रवः ॥ यावद्देवनसन्तोषंत्वङ्करोषिशरीरिणाम् ॥ ४८ ॥ तावल्लक्ष्मीश्चलानृणान्तावद्रोगाःपृ थग्विधाः॥नयावद्देवदेवत्वंसन्तोषञ्चप्रयास्यसि ॥ ४९ ॥ तावत्पुत्रोद्भवंदुःखंतथाप्रियसमुद्भवम् ॥ यावत्त्वंदेवनोयासिसंतो षंदेहिनामिह ॥ ५० ॥ एवंस्तुत्वाततोलिङ्गंस्थापयित्वायथाविधि ॥ गन्धानुलेपनैर्दिव्यैर्मर्द्दयामासवैततः ॥ ५१ ॥ पा रिजातकपुष्पैश्चतथासंतानसंभवैः ॥ कल्पपादपसंभूतैस्तथामन्दारजैरपि ॥ ५२ ॥ पूजांचक्रेसुविस्तीर्णांश्रद्धयापरया युतः ॥ दिव्यैराभरणैर्भूष्यदिव्यवस्त्रैस्ततःपरम् ॥ ५३ ॥ कृत्वागीतंस्वयंचक्रेतालमादायपाणिना ॥ मूर्च्छातालकृतं रम्यंसप्तस्वरविराजितम् ॥ ५४ ॥ तालयुक्त्यासमोपेतंमान्यैरागैस्सुसंस्कृतम् ॥ एवंकृत्वातुशुश्रूषांतस्यदेवस्यभ

से उत्पन्न हुआ दुःख है जबतक कि शरीरधारियों के ऊपर तुम प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होते हो ॥ ५० ॥ इसप्रकार स्तुति कर तदनन्तर विधिपूर्वक लिङ्ग को थापकर उसके उपरान्त विभीषण ने चन्दनादि अनुलेपनों से मर्दन किया ॥ ५१ ॥ व परमश्रद्धा से संयुत होते हुये उसने सन्तान (कल्पवृक्षविशेष) से उपजे हुये व पारिजात के पुष्पों से तथा कल्पवृक्ष से उपजे व मन्दार से उत्पन्न हुये भी फूलों से बड़े विस्तारवाली पूजा को किया उसके उपरान्त उत्तम वस्त्रों व दिव्य आभूषणों से भूषितकर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ व आपही हाथ से तालको लेकर तालकी युक्ति से संयुत व मान्य (उत्तम) रागो से भलीभांति संस्कार को प्राप्त व मूर्च्छा (स्वर के चढ़ाने व उतारने के क्रम) से

व ताल से किये हुये तथा सातों स्वरों से शोभित मनोहर गानको किया इस प्रकार उन रामेश्वर देव की भक्ति से सेवाकर विभीषण ने जबतक फिर लङ्कापुरी को प्रस्थान किया तबतक दूत ने आगे खड़े होकर कुशजी के वचन को कहा ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ अत्यन्त कोप से तिरस्कृत व लाल लोचनोंवाले उस दूत ने पत्र के पहले समीप में विशेषतासे कहा ॥ ५७ ॥ उस वचन को सुनकर अनन्तर जुड़े हुये हाथोंवाले होकर नम्रता से नीचेनये स्थित विभीषण ने दूत को उच्चप्रकार से प्रणामकर कहा ॥ ५८ ॥ कि हे दूतोत्तम ! जो कि राम जी के पुत्र (कुश) की राज्य को राक्षसों ने इसप्रकार विध्वंस किया वह सब निश्चय कर मुझ से किया हुआ है ॥ ५९ ॥ इसलिये

क्तितः ॥ ५५ ॥ यावत्संप्रस्थितोभूयोलङ्कांप्रतिविभीषणः ॥ तावद्दूतोग्रतःस्थित्वाकुशवाक्यमुवाचह ॥५६॥ विशेषतस्तु तेनोक्तंपत्रस्यपुरतःपुरा ॥ अतिकोपाभिभूतेनसंरक्तनयनेनच ॥ ५७ ॥ तच्छ्रुत्वाथप्रणम्योच्चैर्दूतंप्राहविभीषणः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ ५८ ॥ यदेवंविहतंराज्यंरामपुत्रस्यराक्षसैः ॥ तन्नूनंतुमयासर्वंविहितंदूतसत्तम ॥ ५९ ॥ तस्मान्महाप्रसादोत्रकृतस्तेनमहात्मना ॥ कुशेनप्रेषितोयस्त्वंममर्खस्यसन्निधौ ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वासतान्सर्वाञ्छोधयामासराक्षसान् ॥ येगत्वाभूतलेमर्त्यान्ध्वंसयन्तिसदैवहि ॥ ६१ ॥ ततस्तथैवचानीयतस्यदूतस्यराक्षसः ॥ प्रत्येकंतानुवाचेदंकोपादश्रूणिचोत्सृजन् ॥ ६२ ॥ कृतोयैर्जनविध्वंसोराक्षसैस्सुदुरात्मभिः ॥ राज्येकुशस्यसंप्राप्तैःप्रभोर्ममहात्मनः ॥ ६३ ॥ तेसर्वेतितरंरौद्राःप्रभवन्तुसुदुःखिताः ॥ लङ्काद्वारगतानित्यंक्षुत्पिपासानिपीडिताः ॥ ६४ ॥ सर्वभोगपरित्यक्ताःशीतातपसहिष्णवः ॥ श्लेष्ममूत्रकृताहारानिन्द्याःसर्वजनस्यच ॥ ६५ ॥ एवंदत्त्वातुतेषांसशापं

इस विषयमें उन कुश महात्माने बडी प्रसन्नता किया जो तुम को मुझ मूर्ख के समीप पठाया ॥ ६० ॥ ऐसा कहकर उन विभीषणने उन समस्त राक्षसों को शोधन कराया (खोजवाया) जोकि सदैव भूतल में जाकर मनुष्यों का विनाश करते थे ॥ ६१ ॥ तदनन्तर वैसेही उस दूत को लाकर क्रोध से आंसुओं को छोडते हुये राक्षस (विभीषण) ने उन प्रत्येक राक्षसों से यह कहा ॥ ६२ ॥ कि मेरे स्वामी व महात्मा कुश की राज्यमें भलीभांति प्राप्त हुये जिन दुष्टचित्त या मनवाले राक्षसों ने जनोंका विध्वंस कियाहै ॥ ६३ ॥ अत्यन्तही विकराल व नित्यही लंकापुरी के द्वारपै प्राप्त हुये वे समस्त राक्षस क्षुधा, प्यास से विकल होकर बहुतही दुःखित होवैं ॥ ६४ ॥ व समस्त भोगों से छूटे

हुये व शीतातप (जाड़े, घाम) के सहनेवाले व श्लेष्मा (कफ) तथा मूत्रको आहार करनेवाले व समस्त नरों से निन्दा करने के योग्य होवैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार उन राक्षसों को शाप देकर उसके उपरान्त हाथ जोड़े हुये उस राक्षसोत्तम ने फिर भी उस दूत से कहा ॥ ६६ ॥ कि आज से लगाकर कोई राक्षस न जावैगा इसलिये वे रघूत्तम कुश जी मेरे वचन के द्वारा तुमसे कहने योग्य हैं ॥ ६७ ॥ कि मेरा यह अपराध क्षमा किया जाय जो कि दुष्टजातिवाले व मनुष्य मांस के लोभी राक्षसों से किया गयाहै ॥ ६८ ॥ हे दूत! क्योंकि तुम्हारे सामने उन राक्षसों को दण्ड किया गया है व जब जब भी देवसम्बन्धी या मनुष्यवाला कार्य्य होवै ॥ ६९ ॥ वह सब निःशंकपूर्वक मुझ

राक्षससत्तमः ॥ ततःप्राहचतंदूतंपुनरेवकृताञ्जलिः ॥ ६६ ॥ अद्यप्रभृतिनोकश्चिद्राक्षसःसंप्रयास्यति ॥ तस्माद्वाच्योरघुश्रेष्ठोमद्वाक्यात्सकुशस्त्वया ॥ ६७ ॥ क्षम्यतामपराधोमेयदज्ञानादयंकृतम् ॥ राक्षसैर्दुष्टजातीयैर्महामांसस्यलोलुपैः ॥ ६८ ॥ कृतश्चनिग्रहस्तेषांप्रत्यक्षंतवदूतयत् ॥ यदायदापिकृत्यंस्याद्दैवंवामानुषञ्चवा ॥ ६९ ॥ ममभृत्यस्यतत्सर्वंकथनीयमशङ्कितम् ॥दूतउवाच॥ यानितत्रचलिङ्गानिराक्षसैर्निर्म्मितानिच ॥ ७० ॥ तानिगत्वास्वयंशीघ्रंत्वमुत्पाटयराक्षस ॥ अजानन्मानवःकश्चिद्यदिपूजांसमाचरेत् ॥ ७१ ॥ तत्क्षणान्नाशमायातिएतद्दृष्टंमयास्वयम् ॥ एतस्मात्कारणाद्वच्मित्वामहंराक्षसाधिप ॥ ७२ ॥ तैःस्थितैर्भूतलेलिङ्गैःस्थितास्सर्वेनिशाचराः ॥ विभीषणउवाच॥ मयापूर्वंप्रतिज्ञातंरामस्यपुरतःकिल ॥ ७३ ॥ रामेश्वरमतिक्रम्यनगन्तव्यंधरातले ॥ अन्यच्चकारणंदूतप्रोक्तमत्रमनीषिभिः ॥ ७४ ॥ उत्थितंसुस्थितंवापिशिवलिङ्गंनचालयेत् ॥ तत्कथंतत्रगत्वाथलिङ्गभेदंकरोम्यहम् ॥ ७५ ॥ स्वयंमाहे

दास से कहना चाहिये दूत बोला कि हे राक्षस! वहांपर राक्षसों ने जिन लिंगोंका निर्माण किया है शीघ्रही जाकर तुम उन लिंगों को आपही उखाड़ो क्योंकि न जानता हुआ कोई मनुष्य यदि पूजन करता है ॥ ७० । ७१ ॥ तो हे राक्षसाधिप! उसी क्षण वह नाश होजाता है इसको मैंने आपही देखा है इसी कारण मैं तुम से कहता हूं ॥ ७२ ॥ कि भूतल में उन लिंगों के स्थित होने से समस्त राक्षस टिके हैं विभीषण बोले कि प्रसिद्ध में पहले मैंने रामचन्द्र के आगे प्रतिज्ञा किया है ॥ ७३ ॥ कि रामेश्वर को लांघकर भूतल में न जाना चाहिये हे दूत! इस विषय में याने प्रतिमा के उखाड़ने में पण्डितों ने और भी कारण को कहा है ॥ ७४ ॥ कि उठे या भलीभांति स्थित

हुये भी शिव जी के लिंग को न चलावै उसी कारण वहां जाकर इसके उपरान्त आपही प्रतिज्ञाकर व आपही शैव होकर मैं कैसे लिंगको भेदन करूं इसलिये वे नरेश (कुश जी) मेरे वचन से प्रसन्नता कराने के योग्यहैं ॥ ७५।७६ ॥ और जो मैंने अयोग्य कहाहो तो तुम दण्ड को करो ऐसा कहकर इसके उपरान्त समुद्र से उपजे हुये बहुतेरे भूषणों से उस दूत को भूषितकर अनन्तर कुशनृपति प्रति बिदा किया ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन विभीषणसे शाप दियेहुये उन राक्षसोंने अतिदुःखित होकर कहा कि हे राक्षसेश्वर ! हम सबों के शापका मोक्ष कीजिये ॥ ७८ ॥ विभीषण बोले कि हे राक्षसाधमो ! विशेषतामे शठों व शाप दिये हुये तुमलोगों के ऊपर मैं फिर भी

शवरोभूत्वाप्रतिज्ञायचवैस्वयम् ॥ तस्मात्प्रसादनीयस्तुमद्वाक्यात्सनराधिपः ॥ ७६ ॥ यदयुक्तंमयाप्रोक्तंतत्त्वंकुरुविनिग्र हम् ॥ एवमुक्त्वाथतंदूतंरत्नैस्सागरसंभवैः ॥ प्रभूतैर्भूषयित्वाथविससर्ज्जनृपंप्रति ॥ ७७ ॥ अथतेराक्षसास्तेनशप्ताःप्रोचुः सुदुःखिताः ॥ कुरुशापस्यमोक्षंनःसर्वेषांराक्षसाधिप ॥ ७८ ॥ विभीषणउवाच ॥ नाहंकरोमिभूयोपियुष्माकंराक्षसाधमाः ॥ अनुग्रहःप्रशप्तानांवञ्चकानांविशेषतः ॥ ७९ ॥ तस्मात्सोपिरघुश्रेष्ठःप्रसादंवःकरिष्यति ॥ ममवाक्यादसंदिग्धं कालःकश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वाथराजेन्द्रःप्रेषयामाससत्वरम् ॥ दूतंकुशमहीपस्यमानुषंदेवपूजकम् ॥ ८१ ॥ गत्वाब्रूहिकुशम्भूपंसत्वरंवचनान्मम ॥ ८२ ॥ एतेषांमत्प्रशप्तानांराक्षसानांदुरात्मनाम् ॥ अनुग्रहंकुरुविभोदीनानांभोजनायवै ॥ ८३ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनदूतोदूतेनसंयुतः ॥ कुशसक्तेननिर्यातःसत्वरंद्विजसत्तमाः ॥ ८४ ॥ ततोगत्वाद्भुतं दूतःकुशंप्रोवाचसादरम् ॥ प्रणिपत्ययथान्यायंविनयावनतःस्थितः ॥ ८५ ॥ विभीषणोमयादृष्टोदेवरामेश्वरेविभो ॥

दया न करूंगा ॥ ७९ ॥ इसलिये वे रघूत्तम (कुश) जी निश्चय कर मेरे वचन से तुम लोगों के ऊपर निस्सन्देह प्रसन्नता करैंगे किसी कालको परखिये ॥ ८० ॥ ऐसा कहकर इसके उपरान्त नृपेन्द्र विभीषण ने देवताओं के पूजनेवाले मनुष्य दूत को कुशभूपति के समीप शीघ्रही पठाया ॥ ८१ ॥ कि कुश भूपति के निकट शीघ्रही जाकर मेरे वचन से कहिये ॥ ८२ ॥ कि हे विभो ! मुझसे शापित इन दुष्ट चित्तवाले व दीन राक्षसों के भोजन के लिये दया कीजिये ॥ ८३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उन विभीषण से इस प्रकार कहाहुआ वह दूत कुशमें आसक्तवाले दूत से संयुत होकर शीघ्रही निकला ॥ ८४ ॥ उसके उपरान्त शीघ्रही जाकर व नम्रता से नीचेनये खड़े

हुये दूतने कुशभूपति को यथायोग्य प्रणामकर आदर समेत कहा ॥ ८५ ॥ कि हे व्यापक ! रामेश्वरदेव में मैंने विभीषणको देखा जोंकि बहुत राक्षसों से घिराहुआ वहांपर पूजन के लिये आयाथा ॥ ८६ ॥ हे रघुनन्दन कुशजी ! मैंने समस्त आपके वचनको कहा व विनय से झुकेहुये उस विभीषण ने भी उस सम्पूर्ण वाक्यको सुना ॥ ८७ ॥ हे प्रभो ! उसके न जानने से मनुष्यमांसके लोभी व दुष्ट चित्तवाले राक्षसोंने भूतलमें मनुष्यों को दुःखित कियाथा ॥ ८८ ॥ हे नृपोत्तम ! उस वचनको सुनकर सामनेही उन विभीषणने सब राक्षसों को दण्ड किया कि जिन्हों ने तुम्हारी भूमि में विनाश कियाथा ॥ ८९ ॥ पाप आहार विहारवाले वे सब विशेषता से बाहर कियेगये कि तुम

पूजार्थंतत्रचायातोराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ८६ ॥ प्रोक्तंमयाभवद्वाक्यमशेषंरघुनन्दन ॥ श्रुतंतेनापितत्सर्वंविनयावनतेन च ॥ ८७ ॥ अजानतःप्रभोतस्यराक्षसैस्सुदुरात्मभिः ॥ मनुष्याःपीडिताभूमौमहामांसस्यलोलुपैः ॥ ८८ ॥ तच्छ्रुत्वासंमुखंतेनसर्वेषांनिग्रहःकृतः ॥ यैःकृतंकदनंभूमौतवपार्थिवसत्तम ॥ ८९ ॥ कृतास्तेऽन्यन्तरास्सर्वेपापाहारविहारिणः ॥ भविष्यथतथायूयंक्षुत्पिपासानिपीडिताः ॥ ९० ॥ तैस्सर्वैःपार्थिवःसोपिभूयोभूयःप्रसादितः ॥ आशप्तायद्वयंसर्वेप्रसादंकुरुतद्विभो ॥ ९१ ॥ तेतेनाथततःप्रोक्तानाहंवोराक्षसाधमाः ॥ अनुग्रहंकरिष्यामिनदास्यामिचभोजनम् ॥ ९२ ॥ कुशादेशान्मयासर्वेयूयंपापसमन्विताः ॥ निगृहीतास्सयुष्माकंप्रसादंप्रकरिष्यति ॥ ९३ ॥ तदर्थंप्रेषितोदूतस्त्वत्सकाशंमहीपते ॥ रक्षसातेनयद्युक्तमखिलंतत्समाचर ॥ ९४ ॥ किंवातेबहुनोक्तेननास्तिभक्तस्तथाविधः ॥ भक्तिशक्तिसमोपेतोयथातेसविभीषणः ॥ ९५ ॥ अद्यप्रभृतिनोभूमौविचरिष्यन्तिराक्षसाः ॥ तस्यवाक्यादसंदेहंत्वंराजन्सुखभाग्भ

लोग क्षुधा, प्याससे दुःखित होवोगे ॥ ९० ॥ उन सबोंने उस नृपतिको भी बारबार प्रसन्न किया कि जिस लिये हम सब शापित हुये हैं उसी कारण हे विभो ! प्रसन्नता करिये ॥ ९१ ॥ इसके उपरान्त उन विभीषण ने उन राक्षसों से कहा कि हे राक्षसाधमो ! मैं तुम लोगों के ऊपर अनुग्रह न करूंगा और न भोजन दूंगा ॥ ९२ ॥ क्योंकि कुशनृपतिकी आज्ञा से मैंने पापसंयुत तुमलोगोंको दण्ड दिया है और वे कुशजी तुमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता करैंगे ॥ ९३ ॥ हे भूपते ! उसीके लिये उस विभीषण राक्षस ने तुम्हारे समीप दूतको पठाया है जो योग्यहो उसको कीजिये ॥ ९४ ॥ अथवा तुम से बहुत कहने से क्याहै उस प्रकारका कोई भक्त नहीं है जैसा कि तुम्हारी भक्तिकी

शक्ति से संयुत वह विभीषण है ॥ ९५ ॥ हे राजन् ! आजसे लगाकर उस विभीषण के वचन से राक्षस भूमिमें नहीं विचरैंगे तुम निस्सन्देहपूर्वक सुखभागी होत्रो ॥ ९६ ॥
हे नृपेन्द्र, राजन् ! लिङ्गोंके लिये उस राक्षस ने कहा है कि मुझको यहां पर किसी प्रकार न आना चाहिये ॥ ९७ ॥ क्योंकि रामचन्द्र देवके वचन से जम्बूद्वीप में
मेरी गति नहीं है यहां पर टिकेहुये मुझसे देवताओं व मनुष्योंवाला जो कार्य्य होवै ॥ ९८ ॥ मैं तुम्हारी आज्ञाको करूंगा यद्यपि दुष्कर (कठिन) भी होगी इसलिये
हे महाराज ! रामेश्वरके पूजनेवाले जिस मनुष्य दूतको उन विभीषणने पठायाहै हे भूपते ! उसको देखिये और उन विभीषण की आज्ञासे अनेकों प्रकारके देखने

व ॥९६॥ लिङ्गानांचकृतेराजन्त्वंसितंतेनरक्षसा ॥ नमयाचात्रराजेन्द्रआगन्तव्यंकथंचन ॥ ९७॥ रामदेवस्यवाक्येनज
म्बूद्वीपेनमेगतिः ॥ अत्रस्थितस्ययत्कार्य्यं दैवंवामानुषञ्चवा ॥ ९८॥ तवादेशंकरिष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ त
स्मात्तेनमहाराज रामेश्वरप्रपूजकः ॥९९ ॥ मनुष्यःप्रेषितोदूतो यस्त्वंपश्यमहीपते ॥ अथतस्यसमादेशाल्लोकनीयैः
पृथग्विधैः॥ १०० ॥ सहितःसमयाऽऽयातोदूतोरक्षेन्द्रनोदितः ॥ धात्रीफलप्रमाणानां तेनप्रस्थास्त्रयोदश ॥१ ॥ मौक्ति
कानांसमानीताः कृतेतस्यमहीपतेः ॥ वैदूर्य्याणांमारकतानां वज्राणाञ्चद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ जपानांषोडशद्रोणास्स
मानीतास्सुनिर्म्मलाः ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि तथादेवमयानिच ॥ ३ ॥ असङ्ख्यातानिवैहेमजात्यंसङ्ख्याविवर्ज्जित
तम् ॥ तत्सर्वंदर्शयित्वाऽथकुशायसुमहात्मने ॥४॥ कृत्वाप्रदक्षिणंपश्चात्प्रणाममकरोद्द्विजाः ॥ एषपार्थिवशार्दूल रा
क्षसेन्द्रोविभीषणः ॥ ५ ॥ प्रणामंकुरुतेभक्त्या सम्मुखोवेदमन्त्रवित् ॥ प्रसादात्तेपितुःक्षेमं ममराज्येमहीपते ॥ ६ ॥

योग्य भेटों से सहित रक्षेन्द्र (विभीषण) से प्रेरित (पठाया) हुआ वह दूत मेरे साथ आयाहै वह धात्रीफल (आँवलों) के प्रमाणवाले मोतियोंको तेरह प्रस्थ याने
तेरह सेर उन कुश भूपति के लिये लाया था व हे द्विजोत्तमो ! अत्यन्तही निर्मल वैदूर्य्यों, मारकतों व हीरों तथा जपानामक जवाहिरों को सोलह द्रोण (दो सौ
छप्पन सेर) लाया था व अग्नि से शोधे हुये तथा देवमय (देवताओं के योग्य) असङ्ख्य वस्त्रों को लाया था ॥ ९९ । १०० । १ । २ । ३ ॥ व सुवर्ण जातिवाले प-
दार्थों को असङ्ख्य लायाथा इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस दूतने उस समस्त वस्तु को कुश महात्माके लिये दिखलाकर व प्रदक्षिणाकर पश्चात् प्रणाम किया

व कहा कि हे नृपपुंगव ! वेदके मन्त्रोंका जाननेवाला यह राक्षसेन्द्र विभीषण सामने होकर भक्तिसे प्रणाम करताहै कि हे भूपते ! तुम्हारे पिताकी प्रसन्नता से मेरे राज्य में कुशल है ॥ ४ । ५ । ६ ॥ व यह मैं नित्यही तुम्हारे पिताके महादेवको पूजताहुआ टिकाहूं हे राजन् ! मेरे न जानेहुये इन जिन दुष्टचित्तवाले राक्षसों ने भूतल में जो कोई उत्पात किया है वह मेरा अपराध क्षमा कियाजावै हे प्रभो ! मैंने तुम्हारे लिये इन जिन राक्षसों को शाप दिया है ॥ ७ । ८ ॥ इन प्रेतरूपवाले राक्षसों के भोजन को तुम कहो कुशजी बोले कि मेरी आज्ञासे वे राक्षस यहां आकर बड़े यत्नके द्वारा धूलि से सब दिशाओं में लिंगोंको पूर्ण करदेवैं उसके उपरान्त

एषतिष्ठाम्यहंनित्यं पूजयंस्तेपितुर्हरम् ॥ ममराजन्नविज्ञातैर्यैरेतैस्सुदुरात्मभिः ॥ ७ ॥ महीतलेकृतःकश्चिदुत्पातःक्ष म्यतांमम ॥ एतेयेराक्षसाश्शप्तास्तवार्थञ्चमयाप्रभो ॥ ८ ॥ एतेषांप्रेतरूपाणां त्वमाहारंप्रकीर्तय ॥ कुशउवाच ॥ म मादेशात्समागत्य तेऽत्रलिङ्गानिकृत्स्नशः ॥ ९ ॥ पूरयन्तुप्रयत्नेन पांशुभिःसर्वतोदिशम् ॥ ततस्तुभोजनंतेषां यद्भवि ष्यतिभूतले ॥ १० ॥ तद्वक्ष्यामिस्थिरोभूत्वा शृणुदेवप्रपूजक ॥ तुलागतेसदाऽऽदित्ये तैरागत्यधरातले ॥ ११ ॥ विह र्तव्यंप्रयत्नेन यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥ कन्यास्थेवारवौयावत्तत्तुलायांगतिर्भवेत् ॥ १२ ॥ तत्रयैर्नकृतंश्राद्धंप्रेतपक्षेनरा धमैः ॥ ज्वररूपैस्तदङ्गस्थैर्भक्ष्यमन्नंपृथग्विधम् ॥ १३ ॥ मयादिष्टमसन्दिग्धं मासमेकंनिशाचरैः ॥ विधिहीनञ्चयैर्द त्तं भुक्तञ्चविधिवर्जितम् ॥ १४ ॥ श्राद्धंवामानुषास्सेव्याज्वररूपैश्चतेसदा ॥ एवंवाच्यास्त्वयासर्वे प्रेतास्तेमद्वचोखि

भूतल में जो उनका भोजन होगा ॥ ९ । १० ॥ उसको मैं कहूंगा हे देवपूजक ! तुम स्थिर होकर सुनो कि सूर्यको तुलाराशिमें आने पर वे राक्षस सदैव धरातल में आकर वृश्चिक राशिके दर्शन तक अथवा कन्याराशि में स्थित होतेहुये जबतक उन सूर्य्यका तुलाराशिमें गमन होवै तबतक बड़े यत्नसे विहार करने के योग्य हैं उस तुलाराशिके सूर्य्यों में पितरपक्ष में जिन नीचनरों ने श्राद्धको नहीं कियाहै उनके अंगमें टिकेहुये ज्वररूपवाले प्रेतोंको अनेक प्रकारका अन्न खाना चाहिये ॥ ११ । १२ । १३ ॥ व मुझसे कहेहुये एक महीने तक जिन्होंने विधिहीन दिया है या विधिरहित भोजन किया है अथवा विधिहीन श्राद्धको किया है उन मनुष्यों को

ज्वर रूपवाले निशाचरों को सदैव निस्सन्देहपूर्वक सेवन करना चाहिये इस प्रकार मेरे सम्पूर्ण वचन तुमको उन समस्त प्रेतोंसे कहना चाहिये ॥ १४ । १५ ॥ इसलिये कार्त्तिक महीने में आकर मेरे वचन को करैं हे दूत ! वैसेही मेरे वचन से तुमको विभीषण से कहना चाहिये ॥ १६ ॥ कि हे महाभाग ! असावधानता से जो मैंने तुम को कठोर वचन कहाहै मैं जानताहूं उससे तुमको कहीं पर विकार नहींहै ॥ १७ ॥ हे दूत ! इन राक्षसों से मनुष्यों को सब ओर से पीड़ित देखकर मेरे वचन कहेगये हैं जब भूमि में राक्षसेश तुम सदैव टिकेहो तब मैं जानताहूं ॥ १८ ॥ कि मेरे लिये शस्त्रधारियों में उत्तम पिता रामचन्द्रजी

लम् ॥ १५ ॥ तस्मादागत्यकुर्वन्तु कार्त्तिकेमासिमद्वचः ॥ तथादूतत्वयावाच्यो ममवाक्याद्विभीषणः ॥ १६ ॥ प्रमादाद्यन्मयाप्रोक्तं परुषंवचनंतव ॥ जानाम्यहंमहाभाग नतेऽस्तिविकृतिःक्वचित् ॥ १७ ॥ परिक्लिष्टंजनंदृष्ट्वा एतेषांदूतमद्वचः ॥ राक्षसेन्द्रेस्थितेभूमौ त्वयिजानाम्यहंसदा ॥ १८ ॥ तिष्ठतेजनकोमह्यं रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ एवमुक्त्वाततोदूतं पूजयामासराघवः ॥ १९ ॥ वस्त्रैर्बहुविधैरत्नैर्महीस्थैश्चपृथग्विधैः ॥ विभीषणकृतेपश्चात्प्रेषयामासराघवः ॥ २० ॥ लोकनीयान्यनेकानि यानिसन्तिधरातले ॥ सूतउवाच ॥ एवंससुखसंयुक्तान्कृत्वासर्वान्द्विजोत्तमान् ॥ २१ ॥ एतत्सर्वं ददौपश्चात्तेभ्योमुक्तादिकंनृपः ॥ लोकनीयंतथाऽऽयातंतल्लङ्कायांपृथग्विधम् ॥ २२ ॥ आसनानितथाऽन्यानि गजाश्वसहितानिच ॥ पत्तनानिविचित्राणि ग्रामाणिनगराणिच ॥ २३ ॥ यच्चान्यद्वाञ्छितंयेन तद्दत्तंतेनतस्यवै ॥ ततःकुशेश्च

टिकेहैं ऐसा कहकर तदनन्तर राघव (कुश) जी ने बहुत प्रकारके वस्त्रोंसे व भूमि में स्थित अनेक प्रकारके रत्नोंसे दूतको पूजन किया पश्चात् भूतल में देखने योग्य जो अनेक पदार्थ थे उनको राघव (कुश) जी ने विभीषणके लिये पठाया सूत जी बोले कि उन कुश नृपति ने इस प्रकार समस्त द्विजोत्तमों को सुखसे संयुक्त कर ॥ १९ । २० । २१ ॥ पश्चात् उनके लिये इस मोती आदि समस्त पदार्थ को दिया और देखने योग्य वह अनेक प्रकार की वस्तु लङ्कापुरी में आई ॥ २२ ॥ वैसे ही आसनों तथा हाथी, घोड़ों समेत अन्य वस्तुओंको व शहरों और विचित्र ग्रामों व नगरों को ॥ २३ ॥ व और जिस पदार्थको जिसने चाहा उस नरको उन कुशजीने

वही दिया तदनन्तर बड़े भाग्यवाले उन रघूत्तम भाइयों ने कुशेश्वर व लवेश्वर महादेवजी को थापकर व अपने शरीरको निवेदनकर और यथायोग्य द्विजेन्द्रों की जीविका करके कृतार्थ होकर शीघ्रही अयोध्यापुरी को गमन किया ॥२४।२५।२६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकुशेश्वरलवेश्वरमाहात्म्यंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । इकसौदै अध्याय में बृहदश्वक भूपाल। भयो नाश शिवलिंगके छेदनसों ततकाल॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर जब दिननायक (सूर्य)

रंदेवं विधायचलवेश्वरम् ॥ २४ ॥ स्वान्तनुञ्चमहाभागौभ्रातरौतौरघूत्तमौ ॥ निवेद्यब्राह्मणेन्द्राणां कृत्वावृत्तिंयथोचिताम् ॥२५॥ अयोध्यांनगरींतूर्णं कृतकृत्यौविनिर्गतौ ॥२६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकुशेश्वरलवेश्वरमाहात्म्यंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथप्राप्तेदिनाधीशे तुलायांद्विजसत्तमाः ॥ प्रेतालिङ्गोद्भवांभूमिं पूरयामासुरेवहि ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्तत्र संस्थंतुआद्यतीर्थंसुरालयम् ॥ तत्सर्वंव्यन्तरैस्तैश्च पांशुभिःपरिपूरितम् ॥ २ ॥ ततःक्षेमंसमुत्पन्नं क्षेत्रेतत्रद्विजोत्तमाः ॥ अन्येषामपिलोकानां लिङ्गैस्तैर्लुप्तिमागतैः ॥ ३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य बृहदश्वोमहीपतिः ॥ शाल्वदेशात्समायातः कस्मिंश्चिद्युगपर्यये ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वाविपुलांभूमिं प्रासादैःपरिवर्जिताम् ॥ प्रासादार्थंमतिंचक्रे तत्रक्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ शिल्पिनश्चसमाहूयानेकांस्तत्रसहस्रशः ॥ शोधयामासतांभूमिमधस्ताद्बहुविस्तृताम् ॥ ६ ॥ भूमौनिखन्य

तुलाराशि में प्राप्तहुये तब प्रेतों ने लिंगसे उपजीहुई भूमिको पूर्णही करदिया ॥ १॥ वहांपर जो कुछ आदिवाला तीर्थ व देवालय भलीभांति स्थितथा उस सबको बाहर कियेहुये उन प्रेतोंने धूरिसे सबओर पूर्णकरदिया ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके उपरान्त उस क्षेत्रमें अन्य मनुष्यों के भी उन लिंगोंको लुप्तहोनेपर कल्याण उत्पन्न हुआ॥३॥इसके उपरान्त किसी समय किसी युगके पलटनेपर बृहदश्व नामक भूपति शाल्वदेशसे भलीभांति आया ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस नृपने बहुतसी भूमिको मन्दिरों से रहित देखकर उस क्षेत्रमें मन्दिर के लिये बुद्धि किया॥ ५ ॥ और वहांपर अनेकों हज़ार कारीगरों को बुलाकर उस बहुत विस्तारवाली भूमि को नीचेसे शोधन

कराया ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त भूमिके खोदनेपर वेही पांचमुखवाले बहुतसे लिंग दृष्टिगोचरहुये ॥७॥ तदनन्तर उन लिंगोंसे घिरीहुई भूमिको देखकर शिल्पियों समेत वह नृप उसी क्षण मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ तबसे लगाकर उस भूतलमें भय से कोई मनुष्य मन्दिर व तड़ाग व कूपकोभी नहीं निर्माण करताहै ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येलिङ्गोच्छेदनंनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ⊛ ॥

दो० । कौन धूरिसों पूर जिमि शिवलिङ्गन सब भूत । कहत एकसौ तीसरे माहिं चरित सो सूत ॥ ऋषिलोग बोले कि प्रेतोंको धूरिसे भूतलको परिपूर्ण करनेपर जो

मानायां ततोलिङ्गानिभूरिशः ॥ पञ्चवक्त्राणितान्येव यान्तिदृष्टेश्चगोचरम्॥७॥ ततःसपार्थिवस्तैश्च लिङ्गैर्दृष्ट्वावृतां भुवम् ॥ तत्क्षणान्मृत्युमापन्नः शिल्पिभिश्चसमन्वितः ॥ ८ ॥ ततःप्रभृतिनोतत्र कश्चिन्मर्त्योमहीतले ॥ प्रासादंकुरुतेभीत्या तडागंकूपमेवच ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्ये लिङ्गोच्छेदनं नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ भूपृष्ठेपांशुभिस्तस्मिन्प्रेतैस्तुपरिपूरिते ॥यानितीर्थानिलुप्तानिलिङ्गानिचवदस्वनः ॥१॥ सूतउवाच॥ असंख्यातानितीर्थानि तथालिङ्गानिचद्विजाः॥ लोपंगतानिवक्ष्यामिप्राधान्येनप्रबोधत ॥ २ ॥ तत्रलोपंगतंतीर्थंचक्रतीर्थमितिस्मृतम् ॥ यत्रचक्रंपुरान्यस्तं विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ३ ॥ मातृतीर्थन्तथैवान्यत्सर्वकामप्रदन्नृणाम् ॥ यत्रमातरोदिव्याःकार्त्तिकेयप्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥ मुचुकुन्दस्यराजर्षेस्तथान्यल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ तत्रलोपङ्गतंविप्राःसगरस्य

तीर्थ व लिङ्ग लोप होगये हैं उनको हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! असंख्य तीर्थ व लिंग लोप होगयेहैं मैं मुख्यतासे कहता हूं तुम लोग जानो ॥ २ ॥ वहांपर चक्रतीर्थ ऐसा कहा हुआ तीर्थ लोप होगया है जहांपर कि पुरातन समय सर्वशक्तिमान् विष्णुजीने चक्रको धराहै ॥ ३ ॥ वैसेही मनुष्यों को समस्त कामनाओंका दायक अन्य मातृतीर्थ लोप हुआहै जहांपर कि स्वामिकार्त्तिकेयजीसे थापीहुई वे दिव्य मातायें थीं ॥४॥ हे द्विजो ! वैसेही वहांपर मुचुकुन्द

राजर्षिका उत्तम अन्य लिंग लोप होगया व सगर भूपतिका लिंग लुप्त होगया॥५॥व इक्ष्वाकु, सुषेण, महात्मा काकुत्स्थ व चन्द्रदेववाले पुरूरवा तथा अच्छी बुद्धिवाले
काशिराजका लिंग लोप होगया है ॥ ६ ॥ व अग्निवेश, रैभ्य व च्यवन तथा भृगु व याज्ञवल्क्यजीका आश्रम वहांपर लोपको प्राप्तहोगया ॥ ७ ॥ व हारीत, रैभ्य व म-
हात्मा हर्य्यश्व तथा कुश, वसिष्ठ, नारद व त्रितजीका लिंग लोप होगयाहै ॥ ८ ॥ वैसेही वहांपर ऋषिपत्नियोंके बहुतसे लिंग लोप होगये हैं व पुरातन समय कात्या-
यनी (कात्यायन महर्षिकी स्त्री) व शाण्डिली तथा मैत्रेयीका लिंग लोप होगयाहै ॥ ९ ॥ व जिनकी गिनती नहीं है ऐसी अन्य मुनिपत्नियोंके लिंग लोप होगये हैं

तुभूपतेः॥ ५ ॥ इक्ष्वाकोस्तुसुषेणस्यकाकुत्स्थस्यमहात्मनः ॥ ऐलस्यचन्द्रदेवस्यकाशिराजस्यसन्मतेः ॥ ६ ॥ अग्निवे
शस्यरैभ्यस्यच्यवनस्यभृगोस्तथा ॥ आश्रमोयाज्ञवल्क्यस्यतत्रलोपंसमाययौ ॥ ७ ॥ हारीतस्यचरैभ्यस्यहर्यश्वस्य
महात्मनः ॥ कुशस्यचवसिष्ठस्यनारदस्यत्रितस्यच ॥ ८ ॥ तथैवऋषिपत्नीनांतत्रलिङ्गानिभूरिशः ॥ कात्यायन्याश्चशा
ण्डिल्यामैत्रेय्याश्चतथापुरा ॥ ९ ॥ अन्यासांमुनिपत्नीनांयासांसंख्यानविद्यते ॥ तत्राश्चर्य्यमभूदन्यत्पूर्य्यमाणेमहीत
ले ॥ १० ॥ पांशुनाराक्षसैरेतैःप्रेतैर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ तद्वोहंसम्प्रवक्ष्यामिश्रोतव्यन्तुसमाहितैः ॥ ११ ॥ कृतापांशुम
यावृष्टिः किञ्चित्तत्रनपूर्य्यते ॥ ततस्तेऽन्यन्तराःखिन्नानिराशास्तस्यपूरणे ॥ १२ ॥ भूतास्तेपुरतोगत्वाचुक्रुशुःकुश
भूपतेः ॥ अस्माभिर्विहितातत्रपांशुवृष्टिर्महीपते ॥ १३ ॥ नीयतेशतधान्यत्रमातृयुक्तेनवायुना ॥ सत्वंतासांविघातार्थ
मुपायंभूपतेवद ॥ १४ ॥ येनतांपांशुभिर्भूमिंपूरयामःसमन्ततः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाततःकुशमहीपतिः ॥ १५ ॥ रुद्र

हे द्विजोत्तमो ! जब इन प्रेत राक्षसोंने धूरिसे भूतलको पूर्ण करदिया तब वहांपर अन्य आश्चर्य हुआहै उसको मैं तुमलोगोंसे भलीभांति कहूंगा सावधान होतेहुये सुनना
चाहिये ॥ १० । ११ ॥ कि वहांपर धूरिमयी वर्षा कीगई परन्तु कुछ नहीं पूर्ण होताथा तदनन्तर बाहर कियेहुये व दुःखित वे प्रेत उसके पूर्ण करनेमें निराशहुये ॥ १२ ॥
व उन प्रेतों ने कुश भूपतिके आगे जाकर रोदन किया कि हे भूपते ! हमलोगों ने वहां धूरिकी वर्षा किया ॥ १३ ॥ परन्तु माताओंसे संयुत पवन ने सैकड़ोंप्रकार से
अन्य स्थान में प्राप्त करदिया हे भूपते ! सो तुम उन माताओंके विनाशके लिये उपाय कहो ॥ १४ ॥ कि जिससे सब ओर उस भूमिको हमलोग धूरिसे पूर्ण करदेवें

उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर हे उत्तम द्विजो ! कुश भूपतिने उस क्षेत्र में प्राप्तहोकर शिवजीका आराधन किया उसके उपरान्त वर्षके अन्त में शिव भगवान्
उन कुश जीके ऊपर प्रसन्न होगये ॥ १५ । १६ ॥ व बोले कि जो प्रिय अभिलाप तुम्हारे मनमें होवै उसको मांगो कुशाजी बोले कि हे देव ! तुम्हारी प्रसन्नतासे इन
प्रयुक्त (लगेहुये) प्रेतोंसे धूरिके द्वारा यह भूमिमण्डल जिसप्रकार शीघ्रही पूर्णहोवै वैसाही कीजिये उसके पूर्ण करनेमें मैंने प्रेतगणोंको आयसु दिया है ॥ १७ । १८ ॥
हे विभो ! मातृदेवताओंसे भलीभांति रक्षित वही यह पूर्ण करनेके लिये समर्थ नहीं है वहां राक्षसोंसे उपजेहुये मंत्रोंसे प्रतिष्ठित लिंगहैं उनके स्पर्शन व दर्शनसे नरोंका

मारावयामासतत्क्षेत्रम्प्राप्यसद्द्विजाः ॥ ततस्तस्यगतस्तुष्टिंवर्षान्तेभगवान्हरः॥१६॥ प्रोवाचप्रार्थयाभीष्टंयत्तेमनसि
वाञ्छितम् ॥ कुशउवाच ॥ यथासम्पूर्यतेचाशुपांशुभिर्भूमिमण्डलम् ॥ १७ ॥ एतदेतैःप्रयुक्तैश्चप्रसादात्तेनथाकुरु ॥
मयाप्रेतगणादेवनिर्दिष्टास्तस्यपूरणे ॥ १८ ॥ मातृसंरक्ष्यमाणन्तच्छक्यञ्चैतन्नपूरितम् ॥ तत्राक्षसजैर्मन्त्रैस्सन्ति
लिङ्गानिवैविभो ॥ १९ ॥ प्रतिष्ठितानितत्स्पर्शाद्दर्शनात्स्याज्जनक्षयः ॥ अचलत्वात्तथादेवलिङ्गानांशास्त्रजाद्भयात् ॥
२० ॥ अन्यदुत्पाटनाद्यञ्चनैवकुर्म्मःकथञ्चन ॥ तस्माल्लिङ्गकृतोनाशोब्राह्मणानांतपस्विनाम् ॥ २१ ॥ यथानस्या
त्सुरश्रेष्ठतथानीतिर्विधीयताम् ॥ ततश्चभगवान्रुद्रस्तास्समाहूयमातरः ॥ २२ ॥ मातरऊचुः ॥ त्यक्ष्यामश्चतवादेशा
त्तत्स्थानंवृषभध्वज ॥ परंदर्शयचास्माकंकिञ्चिदन्यत्तथाविधम् ॥ २३ ॥ क्षेत्रेऽत्रैवनिवत्स्यामोयेनस्कन्दकृतेवय
म् ॥ तेनसंस्थापिताश्चात्रप्रोक्ताःस्थेयंसमासतः ॥ २४ ॥ ततःप्रोवाचभगवांस्तस्मात्स्थानान्महत्तरम् ॥ स्थानन्दास्या

नाश होवैहै व हे देव ! देवलिंगोंकी अचलताके कारण हमलोग शास्त्रमें उपजेहुये डरसे उत्पाटन(उखाड़ना)आदि कर्मको किसी प्रकारसे नहीं करतेहैं इसलिये जिसप्रकार
लिंगोंसे कियाहुआ ब्राह्मणों व तपस्वियोंका नाश न होवै ॥ १९ । २० । २१ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! वैसाही न्याय कियाजाय तदनन्तर शिवभगवान् ने उन माताओंको बुला
कर कहा कि इस स्थानको छोड़दो ॥ २२ ॥ मातायें बोलीं कि हे वृषभध्वज, शिव ! तुम्हारी आज्ञासे हमसब उस स्थानको छोड़देवैंगी परन्तु उसी प्रकार के किसी और
स्थानको दिखलाइये ॥ २३ ॥ क्योंकि हमसब इसी क्षेत्रमें स्वामिकार्त्तिकेयजी के लिये बसती हैं व उन्होने भलीभांति स्थापन किया व कहाथा कि संक्षेप से यहां

टिकने योग्य है॥ २४॥ उसके उपरान्त शिवभगवान् बोले कि सबोंको उस स्थान से अत्यन्तही बड़े व शुभदायक स्थानको भिन्नतासे दूंगा॥२५॥ हे महाभागाओ ! मेरे क्षेत्रों के मध्यमें सबओर अरसठि क्षेत्रहैं जिनमें सदैव मेरा टिकाश्रय रहता है ॥ २६ ॥ तुम सब अरसठि विभागों से भिन्न २ होकर इसके अनन्तर उन उन क्षेत्रों में मेरे वचनसे उत्तम पूजनको पावोगी ॥ २७॥ उस समय उन महादेव के उस वाक्य को सुनकर प्रसन्न होतीहुई उन माताओंने महासेन से बनायेहुये उस स्थान को छोड़कर ॥२८॥ अरसठि विभागसे होकर भिन्न २ प्रकारके रूपोंसे अरसठि क्षेत्रोंमें सदैव उस टिकाश्रय को किया ॥ २९ ॥ उसके उपरान्त उन माताओं से छोड़ा

मिसर्वासांपृथक्त्वेनशुभावहम् ॥ २५ ॥ अष्टषष्टिस्तुक्षेत्राणांमदीयानांसमन्ततः ॥ संस्थितास्ति महाभागायेषुमत्सं स्थितिःसदा ॥ २६ ॥ अष्टषष्टिविभागेनभूत्वासर्वाःपृथक्पृथक् ॥ तेषुतेष्वथमद्वाक्यात्पूजामग्र्यामवाप्स्यथ ॥२७॥ त स्यदेवस्यतच्छ्रुत्वावाक्यन्तामातरस्तदा ॥ प्रहृष्टास्तत्परित्यज्यस्थानंस्कन्दविनिर्मितम् ॥ २८ ॥ अष्टषष्टिविभागेन भूत्वारूपैःपृथग्विधैः ॥ अष्टषष्टिषुक्षेत्रेषुकृतासासांस्थितिःसदा ॥ २९ ॥ ततस्ताभिर्विनिर्मुक्तंतत्सर्वम्भूमिमण्डलम् ॥ पांशुभिःपूरितंप्रेतैर्दिवारात्रिमतन्द्रितैः ॥ ३० ॥ एवंतस्यवरन्दत्त्वाभगवान्वृषवाहनः ॥ जगामादर्शनंपश्चात्सार्द्धंसर्वै र्गणैर्द्विजाः॥३१॥कुशोपिब्राह्मणैस्सर्वैस्तापसैश्चप्रशंसितः ॥ लब्धाशीःप्रययौतस्मादयोध्यांनगरीम्प्रति ॥३२॥ इति श्री स्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येलुप्ततीर्थकथनन्नामत्र्यधिकशततमोध्यायः॥१०३॥

हुआ वह समस्त भूमण्डल अहर्निश निरालसी प्रेतों से धूरिसे भरदियागया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! बैल वाहनवाले शिवभगवान् इसप्रकार उन कुशजीको वरदान देकर पश्चात् समस्त गणों समेत अन्तर्द्धान होगये ॥ ३१ ॥ व समस्त ब्राह्मणों तथा तपस्वियों से आशीर्वाद को पायेहुये व प्रशंसित कुशभी उस स्थान से अयोध्या नगरी के सामने गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येलुप्ततीर्थकथनंनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसौचौथेऽध्याय में बरणत सो शुभगाथ । थाप्यो है शिवलिंग जिमि चित्रशर्म द्विजनाथ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! देवताओं के देवता महादेव जीके जो ये अरसठि क्षेत्र कहेगये हैं वहांपर वे कैसे भलीभांति स्थितहुये ॥ १ ॥ इस समस्त वृत्तान्त को कहिये क्योंकि हमलोगों को बडा आश्चर्य्य है सूतजी बोले कि जो आपलोगोंने कहा है यह बडा प्रश्नभार है ॥ २ ॥ तिसपर भी महादेव जीको प्रणामकर कहूंगा पुरातन समय इस चमत्कारपुर में वत्सके वंशमें उपजाहुआ बड़ा यशस्वी चित्रशर्मा नामक द्विजोत्तम हुआहै ॥ ३ ॥ उसके यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि हाटकेश्वर जीको पातालसे यहां लाकर तदनन्तर दिन रात्रि भक्तिसे पूजनकरूं ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ अष्टषष्टिरियंप्रोक्तायात्वयासूतनन्दन ॥ क्षेत्राणान्देवदेवस्यकथंसातत्रसंस्थिता ॥ १ ॥ एतत्सर्वंस माचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ प्रश्नभारोमहानेपयोभवद्भिःप्रकीर्तितः ॥ २ ॥ तथापिकीर्तयिष्यामिनमस्कृ त्वापिनाकिनम् ॥ चमत्कारपुरेत्रासीत्पूर्वंब्राह्मणसत्तमः ॥ वत्सस्यान्वयसम्भूतश्चित्रशर्म्मामहायशाः ॥ ३ ॥ तस्यबु द्धिरियञ्जातापाताल्लाद्धाटकेश्वरम् ॥ अत्रानीयततोभक्त्यापूजयामिदिवानिशम् ॥ ४ ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वातपश्चक्रे ततःपरम् ॥ नियतोनियताहारःपरान्निष्ठांसमाश्रितः ॥ ५ ॥ तस्यापिभगवाञ्छम्भुःकालेनमहताततः ॥ सन्तुष्टोब्राह्मण श्रेष्ठास्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ६ ॥ वरंप्रार्थयविप्रेन्द्रयत्तेमनसिवर्तते ॥ ७ ॥ अपित्रैलोक्यराज्यन्तेतुष्टोदास्याम्यसंश यम् ॥ तस्मात्प्रार्थयतन्नित्यंयच्चचित्तेव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥ दुर्लभंसर्वदेवानांमनुष्याणांविशेषतः ॥ चित्रशर्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेववरंयन्ममयच्छसि ॥ ९ ॥ तदत्रायातुपातालाल्लिङ्गरूपीसुरेश्वरः ॥ यत्पातालेस्थितंलिङ्गंब्रह्मणातुप्र

उसके उपरान्त ऐसा निश्चयकर नियम में प्राप्त व नियत भोजन करनेवाले तथा उत्तम सिद्धि में टिकेहुये उसने तपस्याको किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! बहुत समय से भगवान् शिवजी उस चित्रशर्मा के ऊपरभी प्रसन्नहुये तदनन्तर आदर समेत बोले ॥ ६ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमानहै उस वरदान को मांगिये ॥ ७ ॥ क्योंकि प्रसन्नहुआ मैं तुमको निस्सन्देह त्रिलोक की राज्य भी दूंगा इसलिये जो नित्यही चित्तमें टिकाहो उसको मांगिये ॥ ८ ॥ जोकि समस्त देवताओं को व विशेषकर मनुष्यों को दुर्लभ होवै चित्रशर्मा बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व मुझको जो वरदान देतेहो ॥ ९ ॥ तो लिंगरूपवाले सुरनायक

पातालसे यहां आवैं ब्रह्मासे थापाहुआ हाटकेश्वर नामक जो लिंग पाताल में स्थितहै वह यहांपर शीघ्रही आवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरा लिंग सब कहींभी अचलहै॥१०।११॥फिर जो कि ब्रह्मासे आपही निर्मित हुआहै उसको क्या कहनाहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! उस लिंगको सुवर्णसे थापनकरो ॥१२॥ वही हाटकेश्वर नामक लिंग संसारमें प्रसिद्ध होगा हे द्विज! शुक्लपक्षवाली सोमवार चतुर्दशीमें श्रद्धासंयुत व भक्तिसंयुत जो पुरुष उस लिंगको पूजैगा वह आदिलिंग से उपजेहुये कल्याण को पावैगा ॥ १३ । १४ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये इसके अनन्तर चित्रशर्मा नेभी अतिमनोहर मन्दिर को बनाकर उसमें भक्ति

तिष्ठितम् ॥ १० ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तुतदिहायातुसत्वरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अचलंममलिङ्गंस्यात्सर्वत्रापिद्विजोत्तम॥ ११ ॥ किंपुनःप्रथमंयच्चब्रह्मणानिर्म्मितंस्वयम् ॥ तस्मात्स्थापयलिङ्गंतद्धाटकेनद्विजोत्तम ॥ १२ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञंतुलोकेख्यातंभविष्यति ॥ सोमवारेचतुर्दश्यांशुक्लायांश्रद्धयान्वितः ॥१३॥ यस्तद्भक्तिसमायुक्तःपूजयिष्यतिमानवः॥ आद्यलिङ्गोद्भवंश्रेयःपूजयालभ्यतेद्विज ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चित्रशर्म्मापिकृत्वाऽथप्रासादंसुमनोहरम् ॥ १५ ॥ तत्रहेममयंलिङ्गंस्थापयामासभक्तितः ॥ शास्त्रोक्तेनविधानेनपूजांचकृतवान्पुनः ॥ १६ ॥ तत्रत्रैलोक्यविख्यातंतल्लिङ्गंसचवैद्विजः ॥ दूरादभ्येत्यलोकाश्चपूजयन्तिततःपरम् ॥ १७ ॥ अथतत्रद्विजाश्चापिसंस्थितागुणवत्तराः ॥ तेषांस्पर्द्धाततोजातादृष्ट्वातस्यविचेष्टितम्॥१८॥ एकस्थानप्रसूतानांसर्वेषांगुणशालिनाम् ॥ अयंगुणविहीनोपिप्रख्यातोभुवनत्रये ॥ १९ ॥ हराराधनमासाद्ययस्मात्तस्माद्वयंहरम् ॥ तदर्थन्तोषयिष्यामिसाम्यंयेनप्रजाय

से सुवर्णमय लिंगको थापन किया व फिर शास्त्रमें कहेहुये विधानसे पूजन किया ॥ १५ । १६ ॥ उसके उपरान्त वह ब्राह्मण व मनुष्य दूरसे वहां आकर त्रिलोक मे प्रसिद्धहुये उस लिंगका पूजन करतेथे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वहांपर बड़े गुणवान् ब्राह्मण भी भलीभांति टिके तदनन्तर उस चित्रशर्मा के कर्मको देखकर उन ब्राह्मणों के डाह उत्पन्नहुई ॥ १८ ॥ कि एकही स्थान में पैदाहुये व गुणसे शोभित सम्पूर्ण मनुष्यों के मध्य में यह गुणरहित भी जिसलिये शिवजी का आराधनकर

त्रिलोक में प्रसिद्धहुआ उसी कारण हमलोग उसके लिये सदाशिव जीको प्रसन्न करेंगे जिससे समता होवै ॥ १९ । २० ॥ शूलपाणि (शिव) जीके ये अरसठि क्षेत्र कहेगये हैं जहांपर कि परमेश्वर शिव त्रिकालमें समीपता को प्राप्तहोते हैं ॥ २१ ॥ व इस मूढ़ मनवाले द्विज समेत हमलोगोंके सामान्य लक्षणवाले ये अरसठि क्षेत्र यहांपर भलीभांति स्थित हैं ॥ २२ ॥ इसलिये इसने त्रिनयन (शिव) भगवान्को आराधकर पातालमें टिकेहुये उस लिंगको वहां भलीभांति प्राप्तकियाहै ॥ २३ ॥ वैसेही तपस्या की शक्तिसे उन महादेव जीको आराधकर सबोंसे क्षेत्रों के लिंग सम्पूर्णता से लायेजावैं ॥ २४ ॥ इन सब क्षेत्रोंका समूह आवैगा व क्षेत्र समेत जो

ते ॥ २० ॥ अष्टषष्टिःस्मृताचेयंक्षेत्राणांशूलपाणिनः ॥ यत्रसान्निध्यमभ्येतित्रिकालंपरमेश्वरः ॥२१॥ अष्टषष्टिश्चक्षेत्रा णामस्माकंचात्रसंस्थिता ॥ एतेनमूढमनसासार्द्धंसामान्यलक्षणा ॥ २२ ॥ तस्मादनेनचाराध्यभगवन्तन्त्रिलोचन म् ॥ तच्चलिङ्गंसमानीतन्तत्रपातालसंस्थितम् ॥ २३ ॥ तथासर्वैश्चसर्वाणिक्षेत्रलिङ्गानिकृत्स्नशः ॥ आनीयतान्तमा राध्यतपःशक्त्यामहेश्वरम् ॥ २४ ॥ एतेषांसर्वक्षेत्राणामागमिष्यतिसञ्चयः ॥ यद्गोत्रंक्षेत्रसंयुक्तंयच्चान्यद्वाभविष्यति ॥ २५ ॥ ततस्तेशमसंयुक्तास्सर्वेयावद्द्विजोत्तमाः ॥ चक्रुस्तपःक्रियांसर्वान्दुष्करांसर्वजन्तुभिः ॥ २६ ॥ जपहोमोपवासै श्चनियमैश्चपृथग्विधैः॥बलिपूजोपहारैश्चस्नानदानादिभिस्तथा॥२७॥लिङ्गंसंस्थाप्यदेवस्यनाम्नाख्यातन्द्विजेश्वरम्॥ मनोहरतरेप्रोच्चैःप्रासादेपर्वतोत्तमे ॥ २८ ॥ त्यक्त्वागृहक्रियास्सर्वास्तथायज्ञसमुद्भवाः ॥ अन्याश्चलोकपालोत्थास्तो षयन्तिमहेश्वरम् ॥२९॥ एवमाराध्यमानोपिसतेषांपरमेश्वरः ॥ नाभ्यगच्छत्परान्तुष्टिंकथञ्चिदपिसद्द्विजाः ॥३०॥

गोत्रहै या जो अन्य भीहै वह होगा ॥२५॥ तदनन्तर जितने द्विजोत्तम थे शान्तिसे संयुत होतेहुये उन सबोंने सब प्राणियोंसे दुष्कर समस्त तपस्याके कर्मको किया ॥ २६ ॥ व जप, होम, उपास व भिन्न प्रकारके नियमों से तथा भेंट पूजन उपहार व स्नान, दानादिकोंसे पर्वतोत्तमपै अत्यन्तही मनोहर व ऊंचे मन्दिरमें महादेव जीके उस लिंगको भलीभांति थापकर जोकि नामसे द्विजेश्वर प्रसिद्धथा ॥ २७ । २८ ॥ व यज्ञ से उपजेहुये तथा गृहकार्य्यों व लोकपालोंसे उठेहुये अन्य कर्मोंको छोड़ कर महादेव जीको प्रसन्न करतेथे ॥ २९ ॥ हे उत्तम द्विजो ! इसप्रकार आराधित भी वे परमेश्वर उन ब्राह्मणोंके ऊपर किसी प्रकार सेभी उत्तम प्रसन्नता को न प्राप्त

हुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर हजारवर्ष पर्य्यन्त उन महादेव जीको आराधकर व कुछेक फल को न पाकर उसके उपरान्त समस्त द्विज क्रोधितहुये ॥ ३१ ॥ कि हे त्रिशूलधारी, शिवजी ! इस अत्यन्तहीमूर्ख भी चित्रशर्माके ऊपर तुम अति थोड़े भी समयसे परम प्रसन्नताको प्राप्तहोगये ॥ ३२ ॥ व हे शङ्कर जी ! शिशुता से लगाकर पूजतेहुये भी हमलोग वृद्धताको प्राप्त होगये तिसपर भी परमेश्वर (शिव) जी न देखपड़े ॥ ३३ ॥ इसलिये यह निश्चय कियागया है कि हमसबों को अग्नि में प्रवेश करना चाहिये जोकि बिन आदिवाला माहात्म्य है ॥ ३४ ॥ सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण अग्निको बहुतही बढ़ाकर व पुत्रों समेत जाकर जबतक प्रवेश करैं ॥ ३५ ॥

ततोवर्षसहस्रान्तंतमाराध्यमहेश्वरम् ॥ नचकिञ्चित्फलम्प्राप्ययात्क्रुद्धास्ततोखिलाः ॥ ३१ ॥ अस्यमूर्खतमस्यापित्वंशूलिंश्चित्रशर्म्मणः ॥ सुस्तोकेनापिकालेनसन्तोषंपरमङ्गतः ॥ ३२ ॥ वयंवार्द्धक्यमापन्नाबाल्यात्प्रभृतिशङ्कर ॥ पूजयन्तोपिनोदृष्टस्तथापिपरमेश्वरः ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वैःप्रकर्तव्यंहव्यवाहप्रवेशनम् ॥ अस्माभिर्निश्चयोह्येपमाहात्म्यंयदनादिकम् ॥ ३४ ॥ कृत्वातेब्राह्मणास्सर्वेसुसमिद्धंहुताशनम् ॥ यावद्गत्वासुतैस्सार्द्धंप्रविशन्तिसमाहिताः ॥ ३५ ॥ तावत्सभगवांस्तुष्टस्तेषांसन्दर्शनंययौ ॥ अब्रवीच्चप्रहस्योच्चैर्मेघगम्भीरयागिरा ॥ ३६ ॥ सर्वांस्तान्ब्राह्मणश्रेष्ठान्मृतान्सञ्जीवयन्निव ॥ भोभोब्राह्मणशार्दूलामामैवंसाहसंमहत् ॥ ३७ ॥ यूयंकुरुतमद्वाक्यात्सन्तुष्टस्यविशेषतः ॥ तस्माद्धृदयच्चित्तेयुष्माकञ्चैवसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ तदुक्त्वाप्रगच्छामिस्वमेवभवनम्पुनः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेसुरश्रेष्ठपुरस्यास्यचसन्निधौ ॥ ३९ ॥ क्षेत्राणामष्टषष्टिर्याधन्यासङ्कीर्त्यतेजनैः ॥ सदापूज्यतमालिङ्गैस्तैशवैस्सु

तबतक प्रसन्न होतेहुये वे शिव भगवान् उन ब्राह्मणों के भलीभांति दर्शन में प्राप्तहुये व मरेहुये उन सब द्विजोत्तमो को जिलातेहुये से उच्चप्रकार से हँसकर मेघ के समान गम्भीर गिरा (वाणी) से बोले कि हे द्विजपुंगवो ! विशेषकर सन्तुष्टहुये मेरे वचनसे तुमलोग ऐसे भारी साहसको मतकरो इसलिये तुमलोगों के चित्त मे जो भलीभांति टिकाहो उसको कहिये ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ उसको मैं देकर फिर अपने मन्दिर को जाऊ ब्राह्मण लोग बोले कि हे सुरोत्तम ! इस नगरके समीप इस क्षेत्र

में जो असठि क्षेत्रहैं वे जनोंसे धन्य कहेजातेहैं व हे सुरसत्तम ! उन आदिवाले लिंगोंसे वे सदैव अत्यन्त पूजनीयहैं ॥ ३९ । ४० ॥ इस संसारमें जिससे हमसबोंका क्रोध शान्त होवै क्योंकि तुम्हारे लिंगके प्रतापसे यह हमसबोंके साथ डाह करताहै वही यह गुणोंसे हीनहै इसलिये इसको भलीभांति कहिये सूतजी बोले, कि हे द्विजोत्तमो ! इसी अवसरमें चित्रशर्मा द्विजने महादेवको वरदायक जानकर डाहसे संयुत होतेहुये कहा ॥ ४१ । ४२ ॥ चित्रशर्मा बोला कि हे देवेश ! इन्होंने बड़ीभारी तपस्या करके तदनन्तर प्राणोंके परित्याग को प्रारम्भकर तुमको प्रसन्न किया है ॥ ४३ ॥ जोकि केवल गुणसे गर्वित व मेरेसाथ डाह कररहेहैं ॥ ४४ ॥ इसलिये हे

रसत्तम ॥ ४० ॥ येनामर्षप्रशान्तिर्नःसर्वेषामिहजायते ॥ एषसंस्पर्द्धतेस्माभिःसोयंगुणविवर्जितः ॥ ४१ ॥ त्वल्लिङ्गस्य
प्रभावेणतस्मादेतत्समावद ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रोज्ञात्वातुवरदंहरम् ॥ उवाचस्पर्द्धयायुक्तश्चित्रशर्म्माद्वि
जोत्तमाः ॥ ४२ ॥ चित्रशर्म्मोवाच ॥ एतैःप्राणपरित्यागमारभ्यतदनन्तरम् ॥ तुष्टिंनीतोसिदेवेशकृत्वातुसुमहत्तपः ॥
४३ ॥ मयासंस्पर्द्धमानैश्चकेवलंगुणगर्वितैः ॥ ४४ ॥ तस्मादेषांप्रदातव्यन्त्वयाकिञ्चित्सुरेश्वर ॥ देवमामनतिक्रम्य
सम्प्रदास्यसिवाञ्छितम् ॥ ४५ ॥ एतैःपुत्रकलत्रैश्चसार्द्धंवैप्रेक्षतस्तव ॥ पावकंसाधयिष्यामितस्माद्युक्तन्त्वमावह ॥
४६ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभगवाञ्छशिशेखरः ॥ चिन्तयामासचित्तेनकिमत्रसुकृतंभवेत् ॥ ४७ ॥ एतेब्राह्म
णशार्दूलाविनाशंयान्तिमत्कृते ॥ एषोपिगुणसंसिद्धोगणतुल्योद्विजोत्तमः ॥ ४८ ॥ तस्माद्द्वाभ्यांमयाकार्य्यंक्षेत्रे
सौख्यंयशोभवेत् ॥ ब्राह्मणानांविशेषेणक्षेत्रेचात्रनिवासिनाम् ॥ ४९ ॥ ममापिसर्वदाचित्तेकृत्यमेतद्धिवर्तते ॥ एक

सुरेश्वर देव ! तुमसे इनको कुछ देने योग्य है मुझको उल्लङ्घन न कर मनोरथ को दीजियेगा ॥ ४५ ॥ व मैं तुम्हारे देखतेहुये इन पुत्रों व स्त्रियों समेत अग्निका साधन करूंगा इसलिये जो योग्यहो सो कीजिये ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि उस द्विजके उस वचन को सुनकर चन्द्रभाल (शिव) भगवान् ने चित्तसे चिन्तवन किया कि इस विषयमें क्या सुकृत होगा ॥ ४७ ॥ क्योंकि मेरेलिये ये द्विजपुङ्गव नाशको प्राप्तहोंगे व गुणों से भलीभांति सिद्धहुआ यह द्विजोत्तम मेरे गण के समान है ॥ ४८ ॥ इसलिये दोनों के लिये मुझको क्षेत्रों को करना चाहिये जिससे सुख व यशहोवै व इस क्षेत्र में निवासकरने वाले ब्राह्मणों के लिये विशेषकर

करना चाहिये ॥ ४९ ॥ व मेरे भी चित्तमें यह कार्य्य सदैव वर्तमान रहता है कि जो मेरे समस्त क्षेत्र हैं उनको निश्चयकर एकस्थान में करूं ॥ ५० ॥ क्योंकि वैसेही कलियुग से उपजाहुआ करालकाल होगा उसमें पृथ्वीतल में क्षेत्र व तीर्थ नष्ट हो जावैंगे ॥ ५१ ॥ उसी के डरसे तीर्थों समेत भलीभांति टिकेहुये इस समस्त क्षेत्रको व निज क्षेत्रोंको सम्पूर्णता से मैंभी लाऊंगा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर महादेव जी ने उस चित्रशर्मासे यह कहा कि मेरे समस्त वचनको सुनो उसके उपरान्तकरो ॥ ५३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे समस्त क्षेत्र यहां भलीभांति आवैं और वे ब्राह्मण प्रसन्न होवैं ॥ ५४ ॥ हे महामते, द्विजोद्भव ! यदि ईर्षा को छोड़कर मेरे वचन में

स्थानेकरोम्येवसर्वक्षेत्राणियानिमे॥ ५० ॥ भविष्यतितथाकालोरौद्रःकलिसमुद्भवः ॥ तत्रक्षेत्राणितीर्थानिनाशंयास्यन्तिभूतले ॥ ५१ ॥ सतीर्थन्तद्भयात्सर्वक्षेत्रमेतत्समाश्रितम् ॥ आनयिष्याम्यहमपिस्वानिक्षेत्राणिकृत्स्नशः ॥ ५२ ॥ ततस्तञ्चित्रशर्म्माणंप्राहचेदंमहेश्वरः ॥ शृणुमद्वचनंकृत्स्नंकुरुष्वतदनन्तरम् ॥ ५३ ॥ अत्रक्षेत्राणिसर्वाणिमदीयानिद्विजोत्तम ॥ समागच्छन्तुविप्राश्चतेभवन्तुप्रहर्षिताः ॥५४॥ तवापियोग्यतांश्रेष्ठांकरिष्यामिमहामते ॥ यदिमेवर्तसेवाक्यंमुक्त्वास्पर्द्धांद्विजोद्भव ॥ ५५ ॥ त्वदीयमपितेगोत्रंवेदोक्तेनक्रमेणच ॥ आद्यताञ्चापितेसर्वेकीर्तयिष्यन्तिसद्विजाः ॥५६॥ तथान्यदपिसम्मानंतवयच्छामिसद्द्विज ॥ आचन्द्रार्कमसन्दिग्धम्पुत्रपौत्रादिकञ्चयत् ॥ ५७ ॥ त्वदन्वयेभविष्यन्तिपुत्रपौत्रास्तथापरे ॥ कृतेश्राद्धेतर्पणेवाक्रियमाणेविधानतः ॥ ५८ ॥ आद्यस्यवत्ससञ्ज्ञस्यनामउच्चार्य्यगोत्रजम् ॥ ततोनामानिचाप्येवंकीर्तयिष्यन्तिभक्तितः ॥५९॥ ततःसन्तर्पयिष्यन्तिपितॄन्मातामहानपि ॥ तथान्यानपिवं

वर्तमान होते हो तो तुम्हारी भी उत्तम योग्यताको करूंगा ॥ ५५ ॥ कि वे समस्त उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे भी उत्तम गोत्रको व प्रथमताको भी वेदोक्त क्रमसे कीर्तन करैंगे ॥ ५६ ॥ हे सद्द्विज ! वैसेही और भी सम्मान तुमको देताहूं जोकि पुत्र, पौत्रादिक सूर्य्य, चन्द्रमा पर्य्यन्त तक निस्सन्देह होवैंगे ॥ ५७ ॥ कि तुम्हारे वंश में जो पुत्र पौत्रादिक व अन्य नर होवैंगे वे विधि से श्राद्ध करनेपर व तर्पण करतेहुये आदिवाले वत्ससंज्ञा के गोत्रसे उपजेहुये नामको कहकर तदनन्तर इसी प्रकार भक्तिसे नामोंको भी कहैंगे ॥ ५८ । ५९ ॥ तदनन्तर पितरों व मातामहों (नाना इत्यादिकों) कोभी भलीभांति तर्पण करैंगे वैसेही वंशके और भी मित्र व

तुम्हारे वंशमें विशेषकर मोहित जो पुरुष तुम्हारे नाम के बिना पितरों का तर्पण करैंगे उनका श्राद्ध या दान या उसी सम्बन्धी व भाइयों को तर्पण करैंगे ॥ ६० ॥ से उपजाहुआ तर्पण व्यर्थ होवैगा इसलिये अहंकार को छोड़कर केवल मेरा आराधन करो ॥ ६१ । ६२ ॥ कि जिससे सिद्धभी तुम सदैववाली उत्तमसिद्धि को पावो इसप्रकार उस द्विजको भलीभांति बोधकर व पिछले कोभी पहले करके उस के उपरान्त शिवजी ने उन ब्राह्मणों से यह कहा कि मन्दिर किया जावै व गोत्र २ आगे कर अति उत्तम लिंग स्थापनकरने के योग्य है ॥ ६३ । ६४ ॥ जिससे हे ब्राह्मणो ! उनलिंगोंमें मेरा भली भांति गमन होवै इसके अनन्तर उस

येपितॄंस्तर्पयिष्यन्तितेपांऽयर्थंभवि शस्यसुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ ६० ॥ त्वदन्वयेविनानाम्नात्वदीयेनविमोहिताः ॥ श्राद्धंवायदिवादानन्तर्पणञ्चतदुद्भवम् ॥ तस्मादहङ्कृतिंमुक्त्वामामाराधयकेवलम् ॥ ६२ ॥ येनसिद्धो ष्यति ॥ ६१ ॥ पिसंसिद्धिम्परामाप्नोषिशाश्वतीम् ॥ एवंसम्बोध्यतंविप्रंकृत्वाद्यमपिपश्चिमम् ॥ ६३ ॥ ततस्तान्ब्राह्मणानाहप्रासादः क्रियतामिति ॥ गोत्रंगोत्रम्पुरस्कृत्यस्थाप्यंलिङ्गमनुत्तमम्॥ ६४ ॥ येनसंक्रमणन्तेषुममसञ्जायतेद्विजाः ॥ अथतेब्रा ह्मणास्तत्रभूमिभागान्मनोहरान्॥६५॥ दृष्ट्वादृष्ट्वाप्रचक्रुश्चतदाहर्षेणसंयुताः ॥ अष्टषष्टिमितान्दिव्यान्कैलासशिखरो पमान् ॥ ६६ ॥ तेषुसंस्थापयामासुर्लिङ्गानिविविधानिच ॥ क्षेत्रेक्षेत्रेचयन्नामतत्तत्सञ्ज्ञांप्रचक्रिरे ॥ ६७॥ अथतेषांपुन र्दृष्टिङ्गत्वादेवस्त्रिलोचनः । प्रोवाचमधुरंवाक्यंकस्मिंश्चित्कालपर्य्यये ॥ ६८ ॥ आराधितस्तपःशक्त्यालिङ्गसंस्थापना दनु ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मिविप्रेन्द्रायुष्माकमहमद्यवै ॥ ६९ ॥ एतन्ममकृतंकृत्यम्भवद्भिरखिलंकृतम् ॥ अस्म

समय वहांपर हर्षसंयुतहोतेहुए उन द्विजों ने मनोहर भूमिभागों को देखदेखकर कैलाश शिखरके समान अरसठि संख्यक दिव्य मन्दिरों को निर्माणकिया ॥ ६५ । ६६ ॥ व उन मन्दिरों में अनेक प्रकार के लिंगोको स्थापन किया व क्षेत्र क्षेत्रमे जोनाम था उस उस संज्ञाको किया ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर लिंगस्थापन से पीछे किसी समयके पलटनेपर तपस्याकी शक्तिसे आराधन किये हुए तीननयनो वाले शिवजी फिर उनब्राह्मणों की दृष्टि को प्राप्त होकर मधुर वचन बोले श्रीशिवभगवान् बोले कि हेद्विजेन्द्रो ! आज मैं तुमलोगोके ऊपर अत्यन्तप्रसन्नहूं॥६८।६९॥ आपलोगोंने मेरे लिये इस समस्त कार्य्यको किया जोकि कलियुगके भयसे मेरे लिग व क्षेत्र

लाये गये इसकारण तुमलोगों के विना अन्यनर प्रिय न होगा इसलिये हे द्विजोत्तमो ! चित्तमें टिके हुए मनोरथ को शीघ्रही मांगिये ॥ ७० । ७१ ॥ जिससे शीघ्र ही मैं उसको दूं यद्यपि दुर्लभभी होवै ब्राह्मण लोग बोले कि हे सुरनायक देव ! यदि तुम हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नहो ॥ ७२ ॥ तो जिसप्रकार पिछला चित्रशर्मा आप से पहला कियागयाहै वैसेही निस्सन्देह हमारा नाम सदैव कहना चाहिये ॥ ७३ ॥ कि जिस प्रकार इस समय तुम्हारी प्रसन्नतासे समस्त श्राद्धकार्य्यों में हमलोग उस चित्रशर्माके बराबर होवैं ॥ ७४ ॥ शिवभगवान् बोले कि तुमलोगोंके भी वंशमें जो कोई मनुष्य पैदाहोवैंगे वे युवा व शास्त्रोंसे संयुत तथा वेदविद्यामें चतुर व इसकी

दीयानिलिङ्गानिक्षेत्राणिचकलेर्भयात् ॥७०॥ आनीतानिविनायुष्मान्नप्रियोतोभविष्यति ॥ तस्माच्चित्तस्थितंशीघ्रंप्रार्थयन्तुद्विजोत्तमाः ॥७१॥ सम्प्रयच्छामियेनाशु यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदिदेवप्रसन्नस्त्वमस्माकञ्चसुरेश्वर ॥७२॥ पश्चिमश्चित्रशर्म्माचयथाद्योभवताकृतः ॥ अस्मदीयंसदानामकीर्तनीयमसंशयम् ॥७३॥ श्राद्धकृत्येषुसर्वेषु यथातेनसमावयम् ॥ भवामस्त्वत्प्रसादेनसाम्प्रतञ्चित्रशर्म्मणा ॥ ७४ ॥ भगवानुवाच ॥ युष्माकमपियेकेचिद्वंशेयास्यन्तिमानवाः ॥ युवानःशास्त्रसंयुक्तावेदविद्याविशारदाः ॥७५॥ आनयिष्यन्तिवैपूर्वमामुष्यायणसञ्ज्ञिताः ॥ नित्यंस्थिताश्च तेक्षेत्रेश्राद्धस्याक्षय्यकारकाः ॥ ७६ ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ तेपिविप्रास्सुसन्तुष्टास्तत्रस्थानेऽव्यवस्थिताः ॥७७॥ एवंतत्रसमस्तानिक्षेत्राण्यायतनानिच ॥ कलिभीतानिविप्रेन्द्रानिवसन्तिसदैवहि ॥ ७८ ॥ एवंतेब्राह्मणाःप्राप्य सिद्धिञ्चेश्वरपूजनात् ॥ ख्यातास्सर्वत्रभुवनेश्राद्धस्याक्षय्यकारकाः ॥७९॥ इति चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

संज्ञामें प्राप्तहोते हुए निश्चयकर पूर्व संज्ञाको लावैंगे व श्राद्धके अक्षय कारक होकर नित्यही क्षेत्र में टिकैंगे ॥ ७५ । ७६ ॥ ऐसाकहकर तदनन्तर वे देवनायक शिवजी अन्तर्द्धान होगये और संतुष्ट होते हुये वे ब्राह्मण भी उसी स्थान में विशेषता से टिके ॥ ७७ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार कलियुग से डरेहुये समस्त क्षेत्र व देवमन्दिर वहांपर सदैवही निवास करते हैं ॥ ७८ ॥ इसप्रकार वे ब्राह्मण ईश्वर (शिव) जीके पूजनसे सिद्धिको पाकर संसारमें सबकहीं श्राद्धके अक्षयकारक प्रसिद्ध हुये ॥ ७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रशर्माद्विजलिंगस्थापनंनाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

दो० । अरसठि क्षेत्रनको कह्यो यथा उमासन शर्व । इकसौपंचममें कथा कथित सोइहै सर्व ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जिन अरसठि संख्यावाले क्षेत्रों को कहाहै उन्हींके नाम हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ वैसेही और जो तीर्थ भूतल में हैं उनको सम्पूर्णता से कहिये हमलोगों को बड़ा कौतुक है ॥ २ ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! भूतल में जो अरसठि संख्यक क्षेत्र व तीर्थ आपलोगोंसे कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वरो ! जब यहां कलियुग प्राप्तहुआ तब वे समस्त क्षेत्र व तीर्थ रसातलमें पैठगये ॥ ४ ॥ हे द्विजो ! पुरातन समयमें पार्वती नें परमेश्वरसे इसीको पूंछाहै जो कि तीर्थयात्राके लिये आपलोगोंने मुझसे पूंछा ॥५॥ पुरातन

ऋषयऊचुः ॥ अष्टषष्टिप्रमाणानियानिक्षेत्राणिसूतज ॥ त्वयोक्तानिचतान्येवनामतोनःप्रकीर्तय ॥ १ ॥ तथाऽन्यानिचतीर्थानियानिसन्तिधरातले ॥ तानिकीर्तयकात्स्न्येनपरंकौतूहलंहिनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ यानिप्रोक्तानितीर्थानिभवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ अष्टषष्टिप्रमाणानितथाक्षेत्राणिभूतले ॥ ३ ॥ तानिसर्वाणिक्षेत्राणिप्रविष्टानिरसातले ॥ तीर्थानिमुनिशार्दूलाःप्राप्तेचात्रकलौयुगे ॥ ४ ॥ एतदेवपुरापृष्टःपार्वत्यापरमेश्वरः ॥ यद्भवद्भिरहंपृष्टस्तीर्थयात्राकृतेद्विजाः ॥ ५ ॥ कैलासशिखरासीनःपुरादेवोमहेश्वरः ॥ सर्वैर्गणगणैस्सार्द्धमुपविष्टोवरासने ॥ ६ ॥ प्रणामकरणार्थायआगतेष्वमरेषुच ॥ गतेषुतेषुविप्रेन्द्रास्सर्वेषुत्रिदिवालयम् ॥ ७ ॥अर्द्धासनगतादेवीवाक्यमेतदुवाचह ॥ देव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवगङ्गाक्षालितशेखर ॥ ८ ॥ वदमेतीर्थमाहात्म्यंयद्यहंवल्लभातव ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्चतीर्थानामिहभूतले ॥ ९ ॥ संख्ययानामतोदेवमह्यंकीर्तयसाम्प्रतम् ॥ यानितीर्थान्यनेकानिक्षेत्राणिवदमेप्रभो ॥ १० ॥ तानिकीर्तयदेवेशसु

समय में कैलासके शिखरपै स्थित महेश्वर देवजी समस्त गणसमूहोंके साथ उत्तम आसनपै बैठेथे ॥६॥ हे द्विजेन्द्रो ! जिस समय प्रणाम करनेके लिये समस्त देवता आये व स्वर्गको चलेगये तब ॥ ७ ॥ आधे, आसनपै प्राप्तहुई पार्वतीदेवी इस प्रसिद्ध वचनको बोलीं कि हे देवताओंके देव, हे महादेव, हे गंगासे धोयेहुये मस्तक वाले ! ॥८॥ यदि मैं तुमको प्यारीहूं तो मुझसे तीर्थमाहात्म्यको कहिये हेदेव ! इसभूतलमें गिनतीसे साढ़ेतीन करोड़ तीर्थहैं उनको इस समय मेरे लिये नामसे कहिये हे प्रभो !

जो अनेक तीर्थ व क्षेत्रहैं उनको मुझसे कहिये व हे देवेश ! शरीरधारियों के जो भली भांति जाने योग्यहोवै उसको भी कहो क्योंकि कीर्तन से भी समस्ततीर्थों का फल मिलताहै ॥ ९ । १० । ११ ॥ ईश्वरजी बोले कि हे वरारोहे (उत्तमकटिवाली) ! तीर्थशब्द धर्मकार्य्योंमें व समस्त धर्मस्थानोंमें वर्तमानहै उसको सावधान होती हुई तुम सुनो ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! अथवा उत्तम मुनीन्द्रों के तथा देवताओं के आश्रयवाले भूमि भाग पवित्र होतेहैं वही तीर्थ यह कीर्त्तनीयहै ॥ १३ ॥ उन भूमि भागों के दर्शनसे व स्मरणसे तथा स्नानसे प्राणी सैकड़ों जन्मोंसे उपजे हुए पातकोसेभी छूटजाते हैं ॥ १४ ॥ वैसेही जोपापी हैं व जो विश्वासघाती हैं वे सब भी उन्हींके

गम्यञ्चैवदेहिनाम् ॥ कीर्तनाच्चसमग्राणान्तीर्थानांलभ्यतेफलम् ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तीर्थशब्दोवरारोहेधर्मकृत्येषुवर्तते ॥ धर्म्मस्थानेषुसर्वेषुतत्त्वंशृणुसमाहिता ॥ १२ ॥ आश्रयाःसन्मुनीन्द्राणान्देवानाञ्चतथाप्रिये ॥ भूमिभागाः पवित्राःस्युस्तत्कीर्त्यन्तीर्थमित्युत ॥ १३ ॥ तेषांसन्दर्शनादेवस्मरणाच्चावगाहनात् ॥ मुच्यन्तेजन्तवःपापैरपिजन्मशतोद्भवैः ॥ १४ ॥ तथापातकिनोयेचयेचविश्वासघातकाः ॥ तेपिसर्वेतथामुक्तास्तेषांचैवावगाहनात् ॥ १५ ॥ एवंपापानिसंयान्तिनाशंसर्वाङ्गसुन्दरि ॥ अपिब्रह्मवधात्पापंयद्भवेद्देहिनामिह ॥ १६ ॥ तच्चापितीर्थसंसर्गात्प्रलयंयात्यसंशयम् ॥ ममापिकरसँल्लग्नंकपालंब्रह्मणःपुरा ॥ १७ ॥ पतितन्तीर्थसंसर्गात्तेषांचैवावगाहनात् ॥ एवंसर्वेषुतीर्थेषुक्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥ १८ ॥ स्नातव्यंभक्तियुक्तेनचेतसानन्यगामिना ॥ यत्रस्नातैर्नरैस्सम्यक्सर्वेषांलभ्यतेफलम् ॥ १९ ॥ ममाश्रमंविशालाक्षिसर्वपातकनाशनम् ॥ कामदंचतथानृणांनारीणांचविशेषतः ॥ २० ॥ एतद्गुह्यतमंदेविमसनित्यंव्यव

स्नान से उसी प्रकार छूटजातेहैं ॥ १५ ॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! इसप्रकार पाप नाशको प्राप्तहोते हैं इस संसार मे ब्रह्मघात सेभी जो पातक शरीरधारियों को होता है ॥ १६ ॥ वहभी तीर्थके संसर्ग से निस्सन्देह नाशहोजाताहै पुरातन समयमे मेरेभी हाथमें लगाहुआ ब्रह्मा का कपाल तीर्थ के संसर्गसे व उनमें स्नानसे गिरा पड़ा था इसप्रकार सबतीर्थों क्षेत्रों व देवमन्दिरों में ॥ १७ । १८ ॥ भक्तिसंयुत व अनन्यगामी(एकाग्र)चित्तसे स्नान करना चाहिये क्योंकि जिनमे भली भांति नहाये हुए पुरुषोंको समस्त तीर्थों का फल मिलताहै ॥ १९ ॥ हे विशालाक्षि ! मेरा आश्रम समस्त पातकोंका विनाशक व मनुष्यों तथा विशेषकर स्त्रियों को कामदायक है ॥ २० ॥ हे देवि !

यह मेरे नित्यही अतिगुप्त टिकाथा कि जिसको मैंने पूछते हुये इन्द्र से व किसीसे भी नहीं कहा है ॥ २१ ॥ हे कल्याणकारिणि, उत्तम आननवाली ! उस तीर्थ को मैंने तुझ प्यारी से कहा मनुष्यों से जो अरसठि तीर्थ भक्ति से जाने योग्य हैं ॥ २२ ॥ हे उत्तमकटिवाली ! वेही मेरे स्थान मेरे प्रभाव से निस्सन्देह कामनाओंके दायक व समस्त पातकों के हारक है ॥ २३ ॥ मनुष्य जिस २ कामना को समाधानकर यदि उस तीर्थ में स्नान करके व उस समय महेश्वरदेव को पूजन करैहै ॥ २४ ॥ व हे उत्तमकटिवाली ! मनमें पुण्य को ध्यान कर जिन नरोंने महादेवजीको पूजा है उनका दर्शन व स्पर्शन होवै ॥ २५ ॥ मनुष्य स्मरणसे भी पहले किये

स्थितम् ॥ नकस्यापिमयाख्यातन्देवेन्द्रस्यापिपृच्छतः ॥ २१ ॥ वाल्लभ्यात्तवमेभद्रेकथितंवैवरानने ॥ अष्टषष्टिःप्रग
म्यानिभक्त्यातीर्थानिमानवैः ॥ २२ ॥ ममाश्रयाणितान्येवसर्वपापहराणिच ॥ कामदानिवरारोहेमत्प्रभावादसंशय
म् ॥२३॥ यंयंकामंसमाधायतत्रतीर्थेपुमान्यदि ॥ कृत्वास्नानंतदादेवमर्चयेच्चमहेश्वरम्॥२४॥सुकृतंमनसिध्यात्वायैर्न
रैःपूजितोहरः ॥ आस्तान्तेषांवरारोहेदर्शनंस्पर्शनंतथा ॥ २५ ॥ स्मरणादपिमुच्यन्तेनराःपापैःपुराकृतैः ॥ एतेशक्रा
दयोदेवास्तेषुतीर्थेषुसुन्दरि ॥ २६ ॥ मांपूज्यत्रिदिवम्प्राप्तास्तथाऽन्येनारदादयः ॥ तान्यहन्तेप्रवक्ष्यामिविस्तरेणपृ
थक्पृथक् ॥ २७ ॥ नामतःशृणुदेवेशिसमाहितमनास्थिता ॥ वाराणसीप्रयागञ्चनिमिषञ्चापरन्तथा ॥२८॥ गया
शिरःसुपुण्यंचपवित्रंकुरुजाङ्गलम् ॥ प्रभासंपुष्करञ्चैवविश्वेश्वरमथापरम् ॥ २९ ॥ अट्टहासंमहेन्द्रञ्चतथैवोज्जयिनी
मता ॥ मरुकोटिंविशालाक्षिगोकर्णंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३० ॥ रुद्रकोटिःस्थलेशञ्चहर्षितंवृषभध्वजम् ॥ भद्रकर्णञ्चविख्या

हुये पातकों से छूट जाते हैं हे सुन्दरि ! ये इन्द्रादिक देवता उन तीर्थों में मुझको पूजकर स्वर्गको प्राप्त हुये वैसेही जो अन्य नारदादिक स्वर्गको प्राप्तहुये हैं उनतीर्थों को अलग अलग मैं विस्तार से तुमसे कहताहूं ॥ २६ । २७ ॥ हे देवेशि ! सावधान मनवाली स्थित होती हुई तुम नाम से सुनो कि काशी, प्रयाग, नैमिष और वैसेही पुण्यदायक गयाशिर व पवित्रकारक कुरुजाङ्गल, प्रभास व पुष्कर और ॥ २८ । २९ ॥ हे विशालाक्षि ! अट्टहास, महेन्द्र वैसेही मानीहुई उज्जयिनी, मरुकोटि

व उत्तम गोकर्णक्षेत्र ॥ ३० ॥ व रुद्रकोटि, स्थलेश व हर्षित, वृषभध्वज तथा प्रसिद्ध भद्रकर्ण व देवदारुवन ॥ ३१ ॥ वै हे देवेशि ! दण्डकारण्यक्षेत्र, सकाग्र, कार्त्तिकेश्वर, कालञ्जर वैसेही अन्य मण्डलेश्वर ॥ ३२ ॥ व काश्मीर, मरुकेश व अतिउत्तम हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र व वामेश, कुक्कुटेश्वर ॥ ३३ ॥ व भस्मगात्र और उंकार, त्रिसन्ध्या व वीरजा, अर्केश्वर, नेपाल, दुष्कर्ण व करवीरक ॥ ३४ ॥ वैसेही हे देवि ! जालेश्वर व पर्वतोत्तम श्रीशैल, पाताल, तीर्थवर्ण और बड़ाभारी कारोहणक्षेत्र ॥ ३५ ॥ व पुण्यदायक देविका नदी और सागर से संयुक्त श्रीगङ्गाजी (गङ्गासागर) व प्रसिद्ध अमरकण्टक तथा सप्तगोदावरी ॥ ३६ ॥ वैसेही निर्मलेश

तंदेवदारुवनंतथा ॥ ३१ ॥ दण्डकारण्यकंक्षेत्रंसकाग्रंकार्त्तिकेश्वरम् ॥ कालञ्जरंचदेवेशि।तथान्यंमण्डलेश्वरम् ॥
३२ ॥ काश्मीरंमरुकेशञ्चहरिश्चन्द्रंसुशोभनम् ॥ पुरश्चन्द्रञ्चवामेशंकुक्कुटेश्वरमेवच ॥ ३३ ॥ भस्मगात्रमथोङ्कारंत्रि
सन्ध्यावीरजातथा ॥ अर्केश्वरञ्चनेपालन्दुष्कर्णंकरवीरकम् ॥ ३४ ॥ जालेश्वरन्तथादेविश्रीशैलम्पर्वतोत्तमम् ॥ पा
तालंतीर्थवर्णञ्चतथाकारोहणंमहत् ॥ ३५ ॥ देविकाचनदीपुण्यागङ्गासागरसंयुता ॥ ख्यातञ्चामरकण्टञ्चसप्तगोदाव
रीतथा ॥ ३६ ॥ निर्मलेशंतथाचान्यत्कर्णिकारंसुशोभनम् ॥ कैलासंजाह्नवीतीरेजललिङ्गंमनोहरम् ॥ ३७ ॥ तथावि
न्ध्याचलञ्चैवहेमकूटंतथैवच ॥ लिङ्गेश्वरंविराजंचलङ्काद्वारञ्चखाण्डवम् ॥ ३८ ॥ बदरीतीर्थवीर्य्यञ्चकोटितीर्थंतथैवच ॥ न
लेश्वरंतुमध्येशङ्केदारंरुद्रजालकम् ॥ ३९ ॥ सुपर्णाख्यञ्चवामोरुतथान्यत्षष्टिकापथम् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
णेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेऽष्टषष्टितीर्थानान्नामकथनन्नामपञ्चाधिकशततमोध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥

व अन्य अतिउत्तम कर्णिकार और गङ्गाजी के किनारे कैलास व मनोहर जललिङ्ग ॥ ३७ ॥ व विन्ध्याचल और वैसेही हेमकूट, लिङ्गेश्वर व विराज, लङ्काद्वार और खाण्डव ॥ ३८ ॥ व बदरिकाश्रम, तीर्थवीर्य वैसेही कोटितीर्थ, नलेश्वर, मध्येश, केदार व रुद्रजालक ॥ ३९ ॥ व हे उत्तम जङ्घस्थलोंवाली ! सुपर्णनामक व अन्य षष्टिकापथ तीर्थहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टषष्टितीर्थानांनामकथनंनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

दो०। इकसौ छठयें में कह्यो रुचिर चरित सुखधाम। जेहि तीरथ में जौन है कीर्तनीय शिवनाम ॥ ईश्वरजी बोले कि हे उत्तममुखवाली ! जो मुझसे पूंछागया
इस सबही तीर्थोंके सारांशभूत तीर्थ समुदायवाले समस्त चरित को तुमसे कहा ॥ १ ॥ हे उत्तमकटिवाली ! इन सबही तीर्थोंमें देवताओं के हितके लिये मैं अन्य २
नाम से व्यवस्थित (टिका) हूं ॥ २ ॥ इन तीर्थों में नहाकर जो मनुष्य मुझको देखता है व कीर्तन करने के योग्य नाम से कीर्तन करता है वह निश्चयकर मोक्ष
को पाताहै ॥ ३ ॥ देवी बोलीं कि हे प्रभो ! यदि मैं तुमको प्यारीहूं तो जिन तीर्थोंमें तुम्हारा जो नाम कीर्तन करनेके योग्यहो उसको मुझसे सम्पूर्णतासे कहिये ॥ ४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिवरानने॥ सर्वेषामेवतीर्थानांसारन्तीर्थसमुच्चयम् ॥ १ ॥ एतेष्वहंवरारोहेसर्वेष्वेवव्यवस्थितः ॥ नाम्नाचान्येनचान्येनत्रिदशानांहितार्थतः ॥ २ ॥ योमामेतेषुतीर्थेषुस्नात्वापश्यतिमानवः ॥ कीर्तयेत्कीर्त्यनाम्नाचसनूनंमोक्षमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ येषुतीर्थेषुयन्नामकीर्तनीयन्तवप्रभो ॥ तत्कात्स्न्र्येनममब्रूहियद्यहन्तववल्लभा ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वाराणस्यांमहादेवम्प्रयागेचमहेश्वरम् ॥ नैमिषेदेवदेवञ्चगयायांप्रपितामहम् ॥ ५ ॥ कुरुक्षेत्रेविदुःस्थाणुंप्रभासेशशिशेखरम् ॥ पुष्करेतुअजोगन्धंविश्वंविश्वेश्वरेतथा ॥ ६ ॥ अट्टहासेमहानादंमहेन्द्रेचमहाव्रतम् ॥ उज्जयिन्यांमहाकालंमरुकोटेमहोत्कटम् ॥ ७ ॥ शंकुकर्णेमहातेजंगोकर्णेचमहाबलम् ॥ रुद्रकोट्यांमहायोगीमहालिङ्गंस्थलेश्वरे ॥ ८ ॥ हर्षितेतुतथाहर्षंवृषभंवृषभध्वजे ॥ केदारेचैवईशानंशर्वंमध्यमकेश्वरे ॥ ९ ॥ सुपर्णाख्येसहस्रांशुंसुसूक्ष्मंकार्त्तिकेश्वरे ॥ भवंवस्त्रपथेदेविउग्रंकनखलेतथा ॥ १० ॥ भद्रकर्णे

ईश्वरजी बोले कि काशी में महादेव व प्रयाग में महेश्वर नैमिष में देवदेव (विष्णु) गया में प्रपितामह (ब्रह्मा) जी ॥ ५ ॥ व कुरुक्षेत्र में मुनियोंने स्थाणु
को कहा है व प्रभास में शशिशेखर, पुष्कर में अजोगन्ध वैसेही विश्वेश्वर में विश्व कीर्तनीय हैं ॥ ६ ॥ अट्टहास में महानाद व महेन्द्र में महाव्रत, उज्जयिनी में
महाकाल, मरुकोट में महोत्कट कीर्तनीय हैं ॥ ७ ॥ व शंकुकर्ण में महातेज, गोकर्ण में महाबल, रुद्रकोटि मे महायोगी और स्थलेश्वर मे महालिङ्ग ॥ ८ ॥ वैसेही
हर्षित में हर्ष, वृषभध्वज में वृषभ, केदार में ईशान, मध्यमेश्वर में शर्व कीर्तनीयहैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! सुपर्ण नामक क्षेत्र में सहस्रांशु, कार्त्तिकेश्वर में सुसूक्ष्म, वस्त्र-

पथ में भव वैसेही कनखल में उग्र ॥ १० ॥ व भद्रकर्ण में शिव, दण्डक में दण्डी व त्रिदण्डा में ऊर्ध्वरेता, कुरुजांगल में चण्डीश ॥ ११ ॥ व आम्र में कृत्तिवास, छागलेय में कपर्दी, कालंजर में नीलकण्ठ व मण्डलेश्वर में श्रीकण्ठ कीर्तनीय हैं ॥ १२ ॥ व काश्मीर में विजय, मरुकेश्वरमें जयन्त, हरिश्चन्द्र में हर, पुरश्चन्द्रमें शङ्कर ॥ १३ ॥ व वामेश्वर में जटि व कुक्कुटेश्वर में सौम्य को जानिये व भस्मगात्र, ॐकार व अमरकण्टक में भूतेश्वर ॥ १४ ॥ व त्रिसन्ध्या में त्रैयम्बक, वीरज़ामें त्रिलोचन, अर्केश्वर में दीप्त, नैपाल में पशुपालक जानने के योग्यहैं ॥ १५ ॥ और दुष्कर्णमें यमलिंग, करवीरक में कपाली, जलेश्वर में त्रिशूली व श्रीशैल में त्रिपु-

शिवञ्चैवदण्डकेदण्डिनंतथा ॥ ऊर्द्ध्वरेतास्त्रिदण्डायाञ्चण्डीशंकुरुजाङ्गले ॥ ११ ॥ कृत्तिवासंतथैवाम्रेछागलेयेकप
र्दिनम् ॥ कालञ्जरेनीलकण्ठंश्रीकण्ठंमण्डलेश्वरे ॥ १२ ॥विजयंचैवकाश्मीरेजयन्तंमरुकेश्वरे ॥ हरिश्चन्द्रेहरंचैव
पुरश्चन्द्रेचशङ्करम् ॥ १३ ॥ जटिंवामेश्वरेविद्यात्सौम्यंवाकुक्कुटेश्वरे ॥ भूतेश्वरंभस्मगात्रेचोङ्कारेमरकण्टके ॥
१४ ॥ त्रैयम्बकंत्रिसन्ध्यायां वीरजायांत्रिलोचनम् ॥ दीप्तमर्केश्वरेज्ञेयं नेपालेपशुपालकम् ॥१५॥ यमलिङ्गंतुदुष्कर्णे
कपालीकरवीरके ॥ जलेश्वरेत्रिशूलीचश्रीशैलेत्रिपुरान्तकम् ॥ १६ ॥ नागेश्वरमयोध्यायां पातालेहाटकेश्वरम् ॥
कारोहणेनकुलीशन्देविकायामुमापतिम् ॥ १७ ॥ भैरवेभैरवाकारममरंपूर्वसागरे ॥ सप्तगोदावरीभीमं विमलेशेस्वय
म्भुवम् ॥ १८ ॥ कर्णिकारेगणाध्यक्षं कैलासेतुगणाधिपम् ॥ गङ्गाद्वारेहिमस्थानं जललिङ्गेजलप्रियम् ॥ १९ ॥ अतलंवा
पाण्डवेचभीमंबदरिकाश्रमे॥ अष्टषष्टिरियंदेवि तवाख्याताविशेषतः ॥ २० ॥ पठतांशृण्वतांवापि सर्वपातकनाशिनी ॥

रान्तक कीर्तनीय हैं ॥ १६ ॥ व अयोध्या में नागेश्वर, पाताल में हाटकेश्वर, कारोहण में नकुलीश, देविका में उमापति ॥ १७ ॥ व भैरव में भैरवाकार, पूर्वसागर में अमर व सप्तगोदावरी में भीम व विमलेश में स्वयम्भू कीर्तनीय हैं ॥ १८ ॥ व कर्णिकार में गणाध्यक्ष और कैलास में गणाधिप, गंगाद्वार में हिमस्थान, जललिंग में जलप्रिय ॥ १९ ॥ व पाण्डव में अतल, बदरिकाश्रम मे भीम कीर्तनीय हैं हे देवि ! इन अरसठि क्षेत्रों को विशेषता से तुमसे कहा ॥ २० ॥ जो कि पढ़ने व सुनने

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कीर्तनीयाविचक्षणैः ॥ २१ ॥ कालत्रयेपिशुचिभिर्विशेषाच्छिवदीक्षितैः ॥ लिखितापिवरारोहे यस्यैषातिष्ठतेगृहे ॥ २२ ॥ नतत्रजायतेदोषो भूतप्रेतसमुद्भवः ॥ नव्याधेर्नचसर्पाणांनचौराणांवरानने ॥ २३ ॥ नान्येषांभूभुजादीनां कदाचिदपिकुत्रचित ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यंनामषडधिकशततमोध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ नैतेष्वपिसुरश्रेष्ठ सर्वेषुभुविमानवाः ॥ अपिदीर्घायुषोभूत्वा स्नातुंशक्ताःकथंचन ॥ १ ॥ एतेषामपिसाराणि ममतीर्थानिकीर्तय ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वेषांलभतेफलम् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एतेषांमध्यतोदेवि तीर्थाष्टकमनुत्तमम् ॥ अस्तिस्नातोनरस्तत्रसर्वेषांलभतेफलम् ॥ ३ ॥ नैमिषंचैवकेदारंपुष्करंकुरुजाङ्गलम् ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रम्प्रभासंहाटकेश्वरम् ॥ ४ ॥ अष्टस्वेतेषुयःस्नातःसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ सस्नातस्सर्वतीर्थेषुसत्यमेतन्म

वाले भी मनुष्यों के समस्त पातकों के विनाशक हैं इसलिये चतुर जनोंको त्रिकालमें भी यत्न से कीर्तन करने के योग्य हैं व पवित्र शिवदीक्षावाले (शैव) जनों को विशेषता से कीर्तन करने योग्यहैं हे उत्तमकटिवाली (पार्वती) ! लिखेहुयेभी ये अरसठि क्षेत्र जिसके घरमें स्थित होतेहैं ॥ २१।२२ ॥ हे उत्तममुखवाली (पार्वती) ! उस घरमें भूत, प्रेतसे उपजा हुआ दोष नहीं होताहै व और न रोग का न सर्पोंका न चोरोंका दोष होता है ॥ २३ ॥ व कहींपर कभी भी अन्य भूपालादिकों का दोष नहीं होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यंनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

दो० । इकसौ सप्तम में रुचिर क्षेत्र समूह प्रभाव । शौनकादिकन ऋषिनसन वरण्यो सूत सचाव ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! भूतलमें मनुष्य बड़े आयुर्बलवाले भी होकर इन सबों मेंभी नहानेके लिये किसी प्रकार समर्थ नहीं हैं ॥१॥ इसलिये इन क्षेत्रोंके मध्य मेंभी सारांशभूत याने मुख्य तीर्थों को कहिये जिनमें नहाया हुआ पुरुष सबतीर्थों के फलको पाता है ॥ २ ॥ ईश्वरजी बोले कि हे देवि ! इन तीर्थों के मध्य में अतिउत्तम आठ तीर्थ हैं उनमें नहायाहुआ नर समस्त तीर्थों के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ नैमिष, केदार, पुष्कर, कुरुजाङ्गल, काशी, कुरुक्षेत्र, प्रभास व हाटकेश्वर ॥ ४ ॥ इन आठोंतीर्थों में श्रद्धासंयुत होतेहुये जिस पुरुष ने

स्नान कियाहै वह समस्त तीर्थों में नहायाहुआहै यह मैंने सत्य कहा है ॥ ५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे महादेवजी ! कलिकालमें मनुष्य उन आठक्षेत्रोंमें नहानेके लिये किसी प्रकार समर्थ न होवैंगे हे देवदेव त्रिनयन शिवजी ! यदि मैं प्यारी व भक्ता व चित्तके अनुकूल बर्ताव करनेवालीहूं तो इन आठों क्षेत्रों के मध्य में जो मुख्य तीर्थहो उसको निश्चयकर मुझसे कहिये ॥ ६ । ७ ॥ ईश्वर बोले कि हे सुरेशि ! इन आठों क्षेत्रों के मध्य मेंभी वह हाटकेश्वर नामक क्षेत्र उत्तम है ॥ ८ ॥ जिस क्षेत्र में कलिकाल के भी संस्थित होनेपर मेरी आज्ञासे समस्त क्षेत्र व अन्यतीर्थ भलीभांति टिके हैं ॥ ९ ॥ इसलिये मोक्ष चाहनेवाले पुरुषों को सब उपायसे वह

योदितम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कलिकालेमहादेवभविष्यन्तिकथञ्चन ॥ स्नातुंतत्रममब्रूहियत्सारंतीर्थमेवहि ॥ ६ ॥ अष्टानामपिचैतेषांदेवदेवत्रिलोचन ॥ यद्यहंवल्लभाभक्तातथाचित्तानुवर्तिनी ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अष्टानामपिदेवेशिक्षेत्राणामस्तिचोत्तमम् ॥ एतेषामपितत्क्षेत्रंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ ८ ॥ यत्रसर्वाणिक्षेत्राणिसंस्थितानिममाज्ञया ॥ तथान्यानिचतीर्थानिकलिकालेपिसंस्थिते ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतत्क्षेत्रंसेव्यमेवहि ॥ मानुषैर्मोक्षमिच्छद्भिःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातमष्टषष्टिसमुद्भवम् ॥ समुच्चयंद्विजश्रेष्ठानामदेवसमन्वितम् ॥ ११ ॥ यथादेवेनचाख्यातंपार्वत्यागुह्यमुत्तमम् ॥ प्रसन्नेनमयाकृत्स्नंयुष्माकंसमुदाहृतम् ॥ १२ ॥ यश्चैतत्पठतेभक्त्याह्यष्टषष्टिसमुद्भवम् ॥ स्नानजंलभतेपुण्यंशृण्वानःश्रद्धयान्वितः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥

क्षेत्र सेवा करनेके योग्यहीहै यह मैंने सत्य कहाहै॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अरसठि क्षेत्रोंसे उपजेहुये इस नामों व देवताओंसे संयुत समस्त समुदायको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ११ ॥ जिस प्रकार प्रसन्न देव (शिव) जीने पार्वती जीसे उत्तम गुप्त चरितको कहाथा वैसेही मैंने समस्त वृत्तान्तको तुमलोगोंसे वर्णन किया॥ १२ ॥ जो कोई मनुज अरसठि क्षेत्रों से उपजेहुये इस चरितको भक्तिसे पढ़ताहै वह और श्रद्धासंयुत सुनताहुआ भी पुरुष स्नानसे उपजे हुये पुण्यको पाता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ❀ ॥

होतीहुई शीघ्रही अपने पुरको प्रयाण करती भई व उस समय ईर्षा समेत तपस्विनियों ने भी घरको जाकर अनेक प्रकारके वस्त्रों व आभूषणों को धारण किया व व्रतोंको
ग्रहण किये हुई चार तपस्विनियोंको छोड़कर ॥ ६०।६१ । ६२ ॥ शेष तपस्विनियों ने यथेच्छा से आभूषणोंको ग्रहण किया तदनन्तर प्रातःकाल जब निर्मल सूर्यमण्डल
उदय हुआ तब ॥ ६३ ॥ फिर भी उस राजपत्नीने भूषणों व वस्त्रोंको उसीप्रकार उन तपस्विनियों को दिया व उन्होंने भी वैसेही ग्रहण किया ॥ ६४ ॥ इस प्रकार
उस दमयन्ती को दिन दिन भक्ति से देतेहुये पांच रात्रियां व्यतीत होगई परन्तु वे तापसप्रियायें तृप्त न हुई ॥ ६५॥ व बड़ी भक्तिसे भूषणोंको देतीहुई रानी (दमयन्ती)

तापस्योपिगृहंगत्वावस्त्राणिविविधानिच ॥ ६१ ॥ भूषणानिचगात्रेषुसस्पर्द्धानिदधुस्तदा ॥ तापसीनाञ्चतुष्कञ्चपरित्य
ज्ययतव्रतम् ॥ ६२ ॥ शेषाभिःप्रगृहीतानिमण्डनानियथेच्छया ॥ ततःप्रभातेविमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ६३ ॥ भूयो
पिराजपत्नीसाभूषणान्यम्बराणिच ॥ तथैवप्रददौतासांजगृहुश्चतथैवताः ॥ ६४ ॥ एवंतस्याःप्रयच्छन्त्याअहन्यहनि
भक्तितः ॥ पञ्चरात्रमतिक्रान्तंनतृप्तास्तापसप्रियाः ॥ ६५ ॥ नराज्ञीतृप्तिमायातिप्रयच्छन्तीप्रभक्तितः ॥ ततःशुश्रावता
सान्तुचतस्रोयामुनिप्रियाः ॥ ६६ ॥ वल्कलाजिनधारिण्योनतस्याःपार्श्वमागताः ॥ नचान्याभूषितादृष्ट्वाचक्रुरीर्षांकथञ्च
न ॥ ६७ ॥ अथसात्वरितंगत्वातासांपार्श्वमनिन्दिता ॥ भूषणानिमहार्हाणिगृहीत्वापञ्चमेदिने ॥ ६८ ॥ ततःप्रोवाचताःसर्वाः
प्रसादःक्रियतामिति ॥ इमानिभूषणार्थायभूषणानिप्रगृह्यताम् ॥ ६९ ॥ तापस्यऊचुः ॥ नास्माकंभूषणैःकार्यंभूषितावल्कलैर्व
यम् ॥ तस्माद्गच्छनिजंहर्म्यमर्थिभ्यस्सम्प्रदीयताम् ॥ ७० ॥ एवंसंवदतान्तासान्तयासार्द्धंद्विजोत्तमाः ॥ चत्वारःपतयःप्राप्ता

तृप्तिको न प्राप्तहुई तदनन्तर उसने उनके मध्य में जो चार मुनिप्रियायेंथीं उनके चरित को सुना ॥ ६६ ॥ व वल्कल और मृगचर्मको धारनेवाली वे उस दमयन्ती
के समीप न आईं और अन्य तपस्विनियोंको भूषित देखकर न किसी प्रकार ईर्षा किया ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर उस प्रशंसित दमयन्ती ने पांचवें दिन बड़े मूल्यवाले
आभूषणों को लेकरके शीघ्रही उन चारों के समीप जाकर ॥ ६८ ॥ तदनन्तर उन सबों से यह कहा कि प्रसन्नता कीजावै व भूषणके लिये इन अलंकारोंको ग्रहण
कीजिये ॥ ६९ ॥ तपस्विनियां बोलीं कि हम सबोंका भूषणों से कार्य्य नहीं है क्योंकि हम बकलों से भूषितहैं इस लिये अपने घरको जाओ व याचकों के लिये दीजिये ॥ ७० ॥

हे द्विजोत्तमो ! उसके साथ इस भांति उनको संभाषण करतेहुये एक एकके अलग २ चारों पति प्राप्तहुये ॥ ७१ ॥ जो कि शुनःशेप, शाक्रेय, बौद्ध व चौथे दान्त थे चारों आकाशमार्ग को पाकर अपने आश्रम को आये ॥ ७२ ॥ व शेप सब गतिभ्रंश (भूल) को प्राप्त होकर भूमिके मार्ग में आश्रितहुये इसके अनन्तर बिगड़े हुये आकार व भूषणोंवाले वे अपने आश्रम को देखकर ॥ ७३ ॥ यह क्याहै यह क्या है ऐसा कहा जो कि तपस्विनियों की विडम्बना कीगई व तपस्वियों को भूषणों, वसनों को देकर किस पापी ने हमलोगों के आश्रम को विकार किया है ॥ ७४।७५॥ उनकी स्त्रियां बोलीं कि चमत्कार भूपतिकी जो यह स्त्री विशेपतासे टिकी है इसने

एकैकस्याःपृथक्पृथक् ॥ ७१ ॥ शुनःशेपोथशाक्रेयोबौद्धोदान्तश्चतुर्थकः ॥ वियन्मार्गंहिचत्वारःप्राप्यस्वाश्रममाययुः ॥ ७२ ॥ शेषाःसर्वेगतिभ्रंशंप्राप्यभूमार्गमाश्रिताः ॥ अथतेस्वाश्रमन्दृष्ट्वाविकृताकारभूषणम् ॥ ७३ ॥ किमिदंकिमिदंप्रोचुर्यत्तापस्योविडम्बिताः॥ केनैवपाप्मनास्माकमाश्रमोयञ्चव्याकृतः ॥७४॥ प्रदत्त्वातापसानाञ्चभूषणान्यम्बराणिच ॥७५॥ तत्पत्न्यऊचुः ॥ चमत्कारस्यभूपस्ययैषाभार्याव्यवस्थिता ॥ अनयासंप्रदत्तानिसर्वासांभूषणानिवै ॥ ७६ ॥ अस्माकमपिसम्प्राप्तागृहेसौनृपवल्लभा ॥ दातुंविभूषणान्येवंनिषिद्धास्माभिरद्यसा ॥ ७७ ॥ सूतउवाच ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वाततस्तेकोपमूर्च्छिताः ॥ प्रोचुस्तेनृपतेर्भार्यान्तच्छापायमुहुर्मुहुः ॥ ७८ ॥ द्विसप्ततिर्वयंपापेस्नानार्थंपुष्करेगताः ॥ कार्त्तिक्यांव्योममार्गेणमनोमारुतरंहसा ॥ ७९ ॥ चत्वारस्तइमेप्राप्तायेषांदारैःप्रतिग्रहः ॥ नकृतस्तस्यभूपस्यकुभार्यायाःकथंचन ॥८०॥ यस्माद्विडम्बितोस्माकमाश्रमोयन्तपस्विनाम् ॥ शिलारूपासुनिश्चेष्टातस्माद्भवतुकुत्सि

सबों को अलंकारों को भलीभांति दियाहै ॥ ७६ ॥ व यह नृपप्रिया भूषणों को देने के लिये ऐसेही हमसबों के भी घर में भलीभांति प्राप्तहुई और वह आज हमसबों से निषेध कीगई ॥ ७७ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर क्रोध से मूर्च्छित होतेहुये उनमुनीश्वरों ने उसके शाप के लिये नृपपत्नी से बारबार कहा ॥ ७८ ॥ कि हे पापिनि ! बहत्तरि संख्यावाले हमलोग कार्त्तिकी में पुष्कर तीर्थ में नहाने के लिये मन व पवनकेवेगसे आकाशमार्ग के द्वारा गये थे ॥ ७९॥ उनमें से वे चार हम प्राप्तहुये जिनकी स्त्रियों ने उस भूपकी कुनारी के प्रतिग्रह (दान) को किसीप्रकार न ग्रहण किया ॥ ८० ॥ जिसलिये कि तपस्यावाले हमलोगों के इस आश्रम

की विडंबना किया इस लिये तुम निन्दित होकर चेष्टारहित पत्थर रूपवाली होवो ॥८१॥ इसके अनन्तर मुनिवचन के उपरान्त उसी क्षणही शिलारूप होगई व उसी क्षण चेष्टारहित होगई ॥ ८२॥ तदनन्तर उसके दुःख से अत्यन्त आकुल व दीन तथा आँसुओं से पूर्ण नयनोंवाले इसके उस परिवारने निज नगरको प्रस्थान किया॥८३॥ हे द्विजोत्तमो ! उस दमयन्ती से उत्पन्न व शापसे उपजेहुये उस समस्त चरितको कहा ॥ ८४॥ इसके अनन्तर शापसे उपजेहुये वृत्तान्तको सुनकर दुःखित होताहुआ वह नृपति ब्राह्मणों की प्रसन्नता के लिये वनको गया ॥ ८५॥ तदनन्तर वे चारों भी मुनि स्त्री के निमित्त प्रसन्न करने के लिये शीघ्रही समीप में स्थितहुये भूपको जान

ताः ॥ ८१ ॥ अथसातत्क्षणादेवशिलारूपाबभूवह ॥ निश्चेष्टातत्क्षणादेवमुनिवाक्यादनन्तरम् ॥ ८२ ॥ ततस्सपरिवारोस्यास्तद्दुःखेनसमाकुलः ॥ बाष्पपूर्णेक्षिणोदीनःप्रस्थितस्स्वपुरंप्रति ॥ ८३ ॥ कथयामासतत्सर्वंदमयन्त्याःसमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तम्ब्राह्मणश्रेष्ठास्तस्याःशापसमुद्भवम् ॥ ८४॥ श्रुत्वाथपार्थिवस्तूर्णंवृत्तान्तंशापजन्तथा ॥ प्रसादनायविप्राणांदुःखितस्सवनंययौ॥ ८५॥ ततस्तेमुनयस्तूर्णञ्चत्वारोपिमहीपतिम्॥ ज्ञात्वाप्रसादनार्थायभार्यार्थंसमुपस्थितम्॥ ८६॥ अग्निहोत्राणिदारांश्चसमादायततःपरम्॥ कुरुक्षेत्रेसमाजग्मुःखमार्गगमनेनते ॥८७॥ पार्थिवोपिसमन्वेष्ययत्नात्तान्सर्वतोमुनीन् ॥ सुनिर्विण्णःश्रमार्त्तश्चभार्याव्यसनदुःखितः ॥ ८८ ॥ ततोजगामतन्देशंयत्रभार्याशिलामयी ॥ सास्थितातापसीवृन्दैस्सर्वतोपिसमन्विता ॥ ८९ ॥ अथतान्तादृशीन्दृष्ट्वासेवकैस्सकलैर्वृतः ॥ हाहेतिवचनंप्रोच्यमूर्च्छितोन्यपतत्क्षितौ॥९०॥ततःकृच्छ्रात्समासाद्यसंज्ञान्तोयसमुक्षितः॥ प्रलापमकरोत्पश्चात्स्मृत्वास्मृत्वाप्रियान्गुणा

कर ॥ ८६ ॥ तदनन्तर वे मुनि उस समय अग्निहोत्रों व स्त्रियों को भलीभांति लेकर कुरुक्षेत्र में आकाशमार्ग के गमन से गये॥८७॥ व सब ओर यत्नसे उन मुनियों को भलीभांति खोजकर भूपतिभी स्त्री के व्यसन (कामजदोष) से दुःखित व श्रमसे विकल व निर्वेद को प्राप्त हुआ ॥८८॥ तदनन्तर उस देश को गया जहां कि तपस्विनियों के समूहों से सब ओर संयुत भी वह शिलामयी स्त्री स्थितथी ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर उस स्त्री को उस प्रकार की देखकर समस्त सेवकों से घिराहुआ वह भूपति हाय२ बड़ा खेद है ऐसा वचन कहकर मूर्च्छित होताहुआ भूमि में गिरपड़ा ॥ ९० ॥ तदनन्तर जलसे छिड़केहुये उस भूपने क्लेशसे चैतन्यता को भलीभांति प्राप्तहोकर पश्चात्

प्यारे गुणों को बार २ स्मरणकर प्रलाप किया ॥ ९१ ॥ कि हे प्रिये ! हे मृगशावकनयनि ! हे मेरे प्राणों को मोहनेवाली ! हे शुभानने ! आज मुझ प्रियपति को छोड़कर कहां गई हो ॥ ९२ ॥ तुम मेरे भोजन न करने पर नहीं खाती थी व नहीं सोनेपर शयन को नहीं प्राप्त होती थी और कहीं पर सौभाग्य के गर्व से मेरी आज्ञा नहीं उल्लङ्घन की गई ॥ ९३ ॥ हे अतिविशालनयनि ! एकान्त में तुम से कहेहुये विकारवाले वचन को मैं कभी नहीं स्मरण करताहूं व भोजनसभा में क्या कहना है ॥ ९४ ॥ सूतजी बोले कि उस भूपको इसप्रकार करुणापूर्वक बहुत विलाप करते हुये उस के मन्त्री लोग वैसे भूपको सुनकर आये ॥ ९५ ॥ तदनन्तर उन मंत्रियों ने आंसुओं

न् ॥ ९१ ॥ हाप्रियेमृगशावाक्षिममप्राणविमोहिनि ॥ मांमुक्त्वाद्यप्रियंकान्तंक्वगतासिशुभानने ॥ ९२ ॥ नाभुक्तेमयिभुक्तासिनशेषेऽशयनङ्गते ॥ नसौभाग्यस्यगर्वेणममाज्ञालङ्घिताक्वचित ॥ ९३ ॥ नस्मरामित्वयाप्रोक्तंकदापिविकृतंवचः ॥ रहस्येऽतिविशालाक्षिकिमुभोजनसंसदि ॥ ९४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रलपतस्तस्यभूपतेःकरुणंबहु ॥ आयातामन्त्रिणस्तस्यश्रुत्वाभूपंतथाविधम् ॥ ९५ ॥ ततस्संबोध्यतंकृच्छ्राद्दृष्टान्तैर्बहुविस्तरैः॥राजर्षीणांपुराणानांमहद्वचसनसम्भवैः ॥ ९६ ॥ पतितंभूपतिंदीनंबाष्पव्याकुललोचनम् ॥ निःश्वसन्तंयथानागंतेजसापरिवर्जितम् ॥ ९७ ॥ सोपिकृत्वालयन्तस्यास्समन्तात्सुमनोहरम् ॥ कर्पूरागुरुधूपाद्यैर्वस्त्रकुंकुमचन्दनैः ॥ ९८ ॥ पूजयामासतांभार्य्यांशिलारूपामपिस्थिताम् ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदमयन्त्युपाख्यानंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से विकल लोचनोवाले व तेजसे रहित व सर्प के समान श्वास लेते व दीन तथा पड़ेहुये उस भूपति को बड़े विस्तारवाले व पुराने राजर्षियों के दृष्टान्तो से कष्ट से भलीभांति समझाकर बोध किया ॥ ९६।९७ ॥ व उस राजाने भी उस शिलामयी स्त्री के सब ओर अतिमनोहर मन्दिरको बनाकर व कपूर, अगुरु, धूपादिकों से व वसन, कुंकुम व चन्दन से शिलारूप भी स्थित हुई उस स्त्री का पूजन किया ॥ ९८ । ९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदमयन्त्युपाख्याननामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । ऊषरकी उत्पत्ति जिमि भई धरातलमाहिं । सोइ एकसौ नवम में कही कथा चितचाहि ॥ तदनन्तर परिवारसंयुत व दुःखसे विकल उस भूपतिके निजघर प्रति चले जानेपर किसी दिन धूलि से धूसरित मुखवाले व दुबले अङ्गोंवाले व थकेहुये अरसठि द्विजोत्तम चरणोंही से भलीभांति आये ॥ १ । २ ॥ व जब तक दिव्य आभूषणों से भूषित व उत्तम वस्त्रों से आच्छादित दूसरी नृपनारियों के समान अपनी स्त्रियों को देखा ॥ ३ ॥ तबतक विस्मय से संयुत व क्षुधासे विकल उन ब्राह्मणों ने पूंछा कि यह क्या है यह क्या है जो कि पापसे विरुद्ध वेष बनाया गया है ॥ ४ ॥ हे अतिनिन्दितनारियो ! जो ये उत्तम भूषण, वसन प्राप्तहुये हैं निश्चय

सूतउवाच ॥ ततःकतिपयाहस्यगतेतस्मिन्महीपतौ॥ स्वगृहम्प्रतिदुःखार्तेपरिवारसमन्विते ॥ १ ॥ पद्भ्यामेवसमा
याताअष्टषष्टिर्द्विजोत्तमाः॥ परिश्रान्ताःकृशाङ्गाश्चधूलिधूसरिताननाः ॥ २ ॥ यावत्पश्यन्तिदाराःस्वादिव्याभरणभूषि
ताः ॥ दिव्यवस्त्रैस्सुसंवीताराजपत्न्यइवापराः ॥ ३ ॥ तावच्चविस्मयाविष्टाःपप्रच्छुस्तेक्षुधार्दिताः ॥ किमिदंकिमिदंपा
पाद्विरुद्धंविहितंवपुः ॥ ४ ॥ यानिप्राप्तानिवस्त्राणिभूषणानिवराणिच ॥ नूनमस्मद्गतेर्भ्रंशःखेपातोनान्यथाभवत् ॥
५ ॥ विकारमेनंसन्त्यक्त्वायुष्मदीयंसुगर्हिताः ॥ अथताःसर्ववृत्तान्तमूचुस्तापसयोषितः ॥ ६ ॥ यथाराज्ञीसमायातादम
यन्तीनृपप्रिया ॥ भूषणानिचदत्तानितयाचैवयथाद्विजाः ॥ ७ ॥ यथाशापश्चसंयातोब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ अथते
मुनयःक्रुद्धास्तच्छ्रुत्वागर्हितंवचः ॥ राजप्रतिग्रहोनिष्ठस्तापसानांविशेषतः ॥ ८ ॥ ततोभूपस्यराष्ट्रस्यनाशार्थंजगृहुर्ज
लम् ॥ क्रोधेनमहताविष्टावेपमानानिरर्गलम् ॥ ९ ॥ अनेनपाप्मनास्माकंकुभूपेनप्रणाशिता ॥ खेगतिर्लोभयित्वातुप

कर इसी तुम सबों के विकार को छोड़कर अन्यथा मेरी गति की भ्रष्टता व आकाश से पात नहीं हुआ है इसके उपरान्त उन तपस्वियों की स्त्रियों ने समस्त चरित को कहा ॥ ५ । ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार नृपति की प्यारी दमयन्ती रानी भलीभांति आई थी व उसी ने जिस प्रकार भूषणों को दियाथा ॥ ७ ॥ व जिस प्रकार महात्मा ब्राह्मणों का शाप हुआथा उसको कहा इसके अनन्तर उस निन्दित वचन को सुनकर वे मुनि क्रोधितहुये क्योंकि तपस्वियों को विशेष कर राजाओं का प्रतिग्रह अशुभ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोध से संयुत व निरर्गल (अत्यन्तही) कांपतेहुये उन तपस्वियों ने भूपति की राज्य के नाशके लिये जलको ग्रहण किया ॥ ९ ॥

कि इस पापी व कुत्सित भूपने बिन बनावटवाली व सरल स्वभाववाली हमारी स्त्रियों को लुभाकर आकाश की गतिको नष्ट करदिया कि जिस से वे हम लोग ऐसी विपत्ति में स्थितहुये ॥ १० । ११ ॥ सूतजी बोले कि इस भांति वे मुनि जबतक उस भूपको शाप देवैं तबतक संयुत होती हुई वे स्त्रियां बोलीं ॥ १२ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! उस भूपति को शाप न देना चाहिये तबतक निःशङ्क होतेहुये आप लोगों को हमारेवचन सुनना चाहिये ॥ १३ ॥ कि हम सबोंको नरेश की स्त्रीने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उत्तम वस्त्रों व दिव्य भूषणों से भलीभांति भूषित किया है ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम लोगों के गृह में प्राप्त हुई हम सब दरिद्रके दोषसे दुबली होगई और मनुज से

त्न्योस्माकमकृत्रिमाः ॥ १० ॥ सरलास्तेवयंसर्वेयेनेदृग्व्यसनास्थिताः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ एवन्तेमुनयोयावच्छापं तस्यमहीपतेः ॥ प्रयच्छन्तिचतास्तावदूचुर्भार्याःसमन्विताः ॥ १२ ॥ नदेयोभूपतेस्तस्यशापोब्राह्मणसत्तमाः ॥ अ स्मदीयंवचस्तावच्छ्रोतव्यमविशङ्कितैः ॥ १३ ॥ वयंसर्वानरेन्द्रस्यभार्ययासमलंकृताः ॥ सुवस्त्रैर्भूषणैर्दिव्यैःश्रद्धापू तेनचेतसा ॥ १४ ॥ वयंदरिद्रदोषेणसदायुष्मद्गृहङ्गताः ॥ कार्शितानचसम्प्राप्तंसुखंमर्त्यैसमुद्भवम् ॥ १५ ॥ एते षांपरलोकोत्रविद्यतेयेतपोरताः ॥ नचमर्त्यफलंकिञ्चित्यदिस्वल्पतरम्भवेत् ॥ १६ ॥ अन्येषांविषयस्थानामिहलो कःप्रकीर्तितः ॥ भोगसक्तप्रचित्तानांनीचानांसुदुरात्मनाम् ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रमिणांचैवस्वधर्म्मरतचेतसाम् ॥ इहलोकःपरश्चैव जायतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ तावयन्नात्रसन्देहो गृहस्थाश्रममुत्तमम् ॥ संसेव्यसाधयिष्यामो लोकद्व यमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ तस्माद्गृहाणिरम्याणि प्रवदन्तिसमाहिताः ॥ भूपालाद्भूमिमादाय वृत्तिञ्चैवाभिवाञ्छिताम् ॥ २० ॥

उपजेहुये सुख को न प्राप्तहुईं ॥ १५ ॥ इस लोक में जो पुरुष तपस्या में परायण है इनको परलोक विद्यमान है और मनुष्यों का फल जो अत्यन्त थोड़ा भी होवै वह नहीं ॥ १६ ॥ व विषय में टिके तथा भोगों में लगे हुये चित्तवाले नीच व दुष्टात्मा अन्य जनों को यह लोक कहा गया है ॥ १७ ॥ व निज धर्म में लगेहुये चित्तवाले गृहस्थाश्रमी नरों को निश्चयकर यह लोक व परलोक होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ और वे हम सब उत्तम गृहस्थाश्रम को भलीभांति सेवन कर अति उत्तम दोनों लोकों को साधन करूंगी ॥ १९ ॥ इसलिये भूपति से भूमि को लेकर व जीविका चाहनेवाले जनोंको सावधान होते हुये सज्जन लोग उत्तम गृहोंको कहतेहैं ॥ २० ॥

क्योंकि उसी गृहस्थाश्रमही से पुत्र, पौत्रोंसे उपजेहुये व कन्याओं तथा विशेषकर भाइयोंके सुखको तुमलोग देखो ॥ २१ ॥ यदि हमसबों से कहेहुये इस वचनको
तुमलोग न करोगे तो निस्सन्देह हमसब प्राणों का परित्याग करैंगी ॥ २२ ॥ तदनन्तर स्त्रीहत्याके पापसे युक्त होतेहुये तुमलोग निश्चयकर कठिन रौरवनरक
को जावोगे ॥ २३ ॥ इसप्रकार उन मुनियोंने उन स्त्रियोंके उन वचनों को सुनकर भूपृष्ठ में उस जलको छोड़दिया जोकि शापके लिये हाथोंमें धारण किया गयाथा ॥
२४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस समय उस जलसे जलाहुआ वह पृथ्वीका विभाग आजभी ऊपरताको प्राप्तहै ॥ २५ ॥ उस भूमिमें जो अन्नादिक बोयाजाता

ततश्चैवाथवीक्षध्वं पुत्रपौत्रसमुद्भवम् ॥ सौख्यंचापिकुमारीणां बान्धवानांविशेषतः ॥ २१ ॥ नकरिष्यथचेद्वा
क्यमेतदस्मदुदीरितम् ॥ सर्वाःप्राणपरित्यागं करिष्यामोनसंशयः ॥२२॥ यूयंस्त्रीवधपापेन युक्ताःसन्तस्ततःपरम् ॥
नरकंरौरवंदुर्गं गमिष्यथसुनिश्चितम् ॥ २३ ॥ एवंतेमुनयःश्रुत्वा तासांवाक्यानितानिच ॥ भूपृष्ठेतत्यजुस्तोयं शापा
र्थेयत्करैर्धृतम् ॥ २४ ॥ ततस्तत्तोयनिर्दग्धं तद्विभागंक्षितेस्तदा ॥ ऊषरत्वमनुप्राप्तमद्यापिचद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ भू
मावन्नादिकंतत्र यदुप्तंनप्ररोहति ॥ नजन्मचाप्नुयाद्भूयःपक्षीवाकीटएववा ॥ २६ ॥ तृणंवाथमृगंतत्र किंपुनर्भक्ति
मान्नरः ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं फाल्गुन्यांफाल्गुनेनरः ॥ २७ ॥ पौर्णिमास्यांरवेर्वारे सपितॄनुद्धरिष्यति ॥ अपिस्वकर्मणा
प्राप्तान्नरकेदारुणाकृतौ ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्यऊषरोत्पत्तिर्नाम
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है वह नहीं जमताहै व फिर पक्षी और कीट निश्चयकर जन्मको नहीं प्राप्त होवै है ॥ २६ ॥ व तृण अथवा मृग वहांपर जन्मको नहीं पातेहैं फिर भक्तिमान् नरको क्या
कहनाहै और फाल्गुन महीने में फाल्गुनी पौर्णमासी को रविवार में जो नर वहांपर श्राद्ध करताहै वह निज कर्मसे दारुण आकारवाले नरकमें प्राप्तहुये भी पितरोंको
उद्धार करैगा ॥ २७ । २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्यऊषरोत्पत्तिर्नामनवाधिकशततमो
ध्यायः ॥ १०९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । शौनकादिकन ऋषिनसन सूत बुद्धि आगार । कही त्रिजातक द्विज कथा इकसौदशम मँझार ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर गयेहुये कोपवाले उन समस्त ब्राह्मणों ने पुत्र, पौत्र उपजनेवाले व यज्ञकर्मवाले सुन्दर गृहस्थाश्रम में बुद्धिको धारण किया ॥ १ ॥ इसी अवसर में स्त्रियों से उपजेहुये वचनों से गृहस्थाश्रम में प्राप्तहुये ब्राह्मणों की क्रोध में कीहुई व शान्तिमें कीहुई बतकही को सुन व उन द्विजोत्तमोंको भलीभांति प्राप्तहुये सुनकर वह राजा प्रणामके लिये समीप आया ॥ २ ।३॥ तदनन्तर उस भूपतिने उन मुनियों को साष्टांग प्रणामकर उसके उपरान्त हाथोंको जोड़करके व नम्रतासे स्थित होकर कहा ॥ ४ ॥ कि तुमलोगों की प्रसन्नता से

सूतउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे गतकोपादधुर्मतिम् ॥यज्ञकर्मसुगार्हस्थ्ये पुत्रपौत्रसमुद्भवे ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरेरा जातान्संप्राप्तान्द्विजोत्तमान् ॥ श्रुत्वाभक्तिसमायुक्तो प्रणामार्थमुपागतः ॥ २ ॥ श्रुत्वाकोपकृतांवार्त्तामुपशामकृतां तथा ॥ गार्हस्थ्यप्रतिपन्नानांवाक्यैर्भार्यासमुद्भवैः ॥ ३ ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान्साष्टाङ्गंसमहीपतिः ॥ ततःकृताञ्ज लिपुटःप्रोवाचविनतस्थितः ॥ ४ ॥ युष्मदीयप्रसादेनसम्प्राप्तंजन्मनःफलम् ॥ मयारोगविनाशेन तस्माद्ब्रूतकरोमि किम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ भार्ययातवराजेन्द्र वयंसर्वेप्रवासिनः ॥ नीताःकृतार्थतांदत्त्वारत्नानिविविधानिच ॥ ६ ॥ तस्मात्पुरवरंकृत्वा क्षेत्रेत्रैवसुशोभने ॥ अस्माकंदेहिगार्हस्थ्यं येनसम्यक्प्रजायते ॥ ७ ॥ जयामोविविधैर्यज्ञैस्सदास म्पूर्णदक्षिणैः॥इमंलोकंपरंलोकंसाधयामस्सदास्थिताः ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोहृष्टस्तथेत्युक्त्वाततःपरम् ॥ अनुकूलेदि नेप्राप्ते शिल्पीनाहूयभूरिशः ॥ ९ ॥ पुरंप्रकल्पयामासबहुप्राकारसङ्कुलम् ॥ प्राकारपरिखायुक्तं गोपुरैःसमलङ्कृत

रोगनाश होनेके कारण मैंने जन्मका मूल भलीभांति पाया इसलिये कहिये मैं क्या करूं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे नृपेन्द्र ! तुम्हारी स्त्रीने अनेक प्रकार के रत्नों को देखकर हम सब परदेशनिवासियों को कृतार्थता में प्राप्त करदिया ॥ ६ ॥ इस लिये इसी अतिउत्तम क्षेत्रमें उत्तम पुरको निर्माणकर हम लोगोंको दीजिये कि जिससे भलीभांति गृहस्थी होवै ॥ ७ ॥ व सदैव स्थित होतेहुये हमलोग निरन्तर समस्त दक्षिणावाले अनेक भांति के यज्ञों से पूजन करैंगे व इसलोक व परलोक को साधन करैंगे ॥ ८ ॥ उसको सुनकर प्रसन्नहोतेहुये नृपतिने वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर अनुकूल दिन प्राप्त होनेपर बहुतसे कारीगरो को बुलाकर ॥ ९ ॥

बहुतेरे घेरोंसे व्याप्त व छहरदिवाली, खाईं व बाहरी फाटकों से भलीभांति भूषित नगरको बनवाया ॥ १० ॥ वैं उस नृपोत्तम ने उस पुरके बीच में अरसठि ब्राह्मणों के अरसठिही घरोंको पुष्टतापूर्वक निर्माण किया ॥ ११ ॥ व मस्तीले हाथियों से सेवित व बावलियों समेत व घरके निकटवाले बगीचों सहित जैसे राजाओंके घर होते हैं वैसेही करके इसके अनन्तर रत्नसमूहों व अन्य वस्तुओंसे पूर्णकर उसके उपरान्त उन ब्राह्मणों के लिये अरसठि ग्रामोंको दिया ॥ १२ । १३ ॥ तदनन्तर उन्हीं ब्राह्मणों के अगाड़ी समस्त पुत्रों व पौत्रों को भलीभाति बुलाकर ॐकार शब्दसे कहा कि मुझसे कहतेहुये वचनको सुनिये ॥ १४ ॥ कि मैंने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके

म् ॥ १० ॥ अष्टषष्टिःसविप्राणां तत्रमध्येनृपोत्तमः ॥ अष्टषष्टिर्गृहाण्येवचकारसुदृढंहिच ॥ ११ ॥ मत्तवारणजुष्टानि दीर्घिकासहितानिच ॥ गृहोद्यानैस्समेतानियथाराजगृहाणिच ॥ १२ ॥ तथाकृत्वाथरत्नौघैर्पूरयित्वातथापरैः ॥ ददौतेभ्योष्टषष्टिञ्च ग्रामाणांतदनन्तरम् ॥ १३ ॥ ततःसर्वान्समाहूय पुत्रपौत्रांस्तदग्रतः ॥ प्रोवाचतारनादेन श्रूयतां जल्पतोमम ॥ १४ ॥ एतत्पुरंमयादत्तमेभिर्ग्रामैस्समन्वितम् ॥ एतेभ्योब्राह्मणेन्द्रेभ्यो श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ १५ ॥ तस्माद्दृष्ट्वाप्रकर्तव्यं यथानस्यात्क्षतिःक्वचित् ॥ नकष्टंब्राह्मणेन्द्राणां तथाचैवपराभवम् ॥ १६ ॥ अस्मद्वंशसमुद्भूतो यस्त्वेतांस्तोषयिष्यति ॥ अन्योवाभूपतिर्वृद्धिमग्र्यांनूनंसयास्यति ॥ १७ ॥ यश्चापराधसंयुक्तानेतान्सर्वान्नियिष्यति ॥ योजयिष्यतिवाक्लेशैर्विविधैर्वापराभवैः ॥ १८ ॥ सशत्रुभिःपराभूतो वेष्टितोविविधैर्गदैः ॥ इहलोकेवियोगादीन्प्राप्यक्लेशान्सुदारुणान् ॥ १९ ॥ रौरवादिषुनरकेषु रौद्रेषुप्रयास्यति ॥ एवमुक्त्वाथतान्सर्वांस्तेपांकृत्यंमहीपतिः ॥

इन द्विजेन्द्रों के लिये इन ग्रामों समेत इस पुर को दिया है ॥ १५ ॥ इसलिये देखकर वैसा करना चाहिये कि जिसप्रकार द्विजेन्द्रों को क्लेश व तिरस्कार और कहीं पर हानि न होवै ॥ १६ ॥ व हमारे वंशमें उपजाहुआ जो पुरुष व अन्य भूपति इन ब्राह्मणों का सन्तोष करैगा वह उत्तम वृद्धिको प्राप्त होगा ॥ १७ ॥ व अपराधसंयुत इन समस्त पुरुषोंको लेजावैगा अथवा क्लेशों व अनेक भांतिके अनादरों से युक्त करैगा ॥ १८ ॥ वह शत्रुओंसे पराजित होकर अनेक भांतिके रोगोंसे घिरैगा व इस लोकमें विरह आदिक अतिभयानक कष्टों को पाकर ॥ १९ ॥ रौरवादिक कराल नरकों में जावैगा उन सबों से ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस भूपतिने दिन रात्रि

निरालसी होकर आपही उन ब्राह्मणोंके कार्यको सदैव किया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! स्नेहप्रियवाली द्विजेन्द्रों की उन समस्त स्त्रियोंने दमयन्तीके मन्दिरको भलीभांति जाकर कुंकुम, अगुरु, कपूर, पुष्प व अनेक विधिके गन्धोंसे उसका भलीभांति पूजन किया व उस राजाने भी दिन, दिनमें पूजन किया ॥ २१ । २२ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस भूपके सन्तोष उपजाती व उसके अगाड़ी टिकी हुई वे तपस्विनियां आपस में बोलीं ॥ २३ ॥ कि जबकभी हमसबों के घरमें बड़ी बढ़ती होगी ॥ २४ ॥ तब आगे व पीछे दमयन्ती का पूजन सदैव सबकार्य्यों में निस्सन्देह करेंगी ॥ २५ ॥ और जो कन्या इस दमयन्ती को देखने के लिये जावेगी

स्वयमेवाकरोन्नित्यं दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ २० ॥ अथताब्राह्मणेन्द्राणां भार्य्यास्सर्वाद्विजोत्तमाः ॥ दमयन्त्यास्समासाद्य प्रासादंस्नेहवत्सलाः ॥ २१ ॥ कुङ्कुमागुरुकर्पूरैः पुष्पैर्गन्धैःपृथग्विधैः ॥ तांसमभ्यर्चयामास सचराजादिनेदिने ॥ २२ ॥ अथताःप्रोचुरन्योन्यं तापस्यस्तत्पुरःस्थिताः ॥ तस्यभूपस्यसन्तोषं जनयन्त्योद्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥ यदास्माकंगृहेवृद्धिः कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २४ ॥ तदग्रतश्चपश्चाच्च दमयन्त्याःप्रपूजनम् ॥ करिष्यामिनसन्देहः सर्वकृत्येषु सर्वदा ॥ २५ ॥ एनांद्रष्टुंकुमारीया दमयन्तींगमिष्यति ॥साभविष्यत्यसन्देहःपत्युःप्राणसमासदा ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कन्यापक्षउपस्थिते ॥ दमयन्तीप्रद्रष्टव्यापूजनीयाप्रयत्नतः ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रपुरेतेन भूभुजासुमहात्मना ॥ अष्टषष्टिञ्चसंस्थाप्य गोत्राणांनिवृतिःकृता ॥ २८ ॥ तेषामपिचचत्वारि गोत्राण्युरगजाद्भयात् ॥ गतानितत्रयत्रस्युस्तानिपूर्वोद्भवानिच ॥ २९ ॥ चतुःषष्टिःस्थितातत्र पुरेशेषाद्विजन्मनाम् ॥ ३० ॥ ऋषयऊचुः ॥

वह सदैव निस्सन्देह प्राणोंके सम प्रिय होगी ॥ २६ ॥ इसलिये कन्यापक्ष (विवाहादिक) समीप प्राप्त होनेपर सब उपायसे दमयन्तीको देखना चाहिये व बड़े यत्नसे पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि उस महात्मा भूपतिने इसभांति उस पुरमें अरसठि गोत्रों को भलीभांति थापकर निवारण किया ॥२८॥ उनके मध्य में भी चारगोत्र सर्पोंसे उपजीहुई भयसे वहां चलेगये जहां कि वे पहले उपजनेवाले थे ॥ २९ ॥ और शेष चौसठि ब्राह्मण उसी पुरमें टिके ॥ ३० ॥ ऋषिलोग बोले कि

हे विभो ! उनको कैसा सर्पोंका डरथा कि जिससे वे अपने स्थानको छोड़कर चलेगये इसको हमलोगोंसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय आनर्त देशका स्वामी प्रभंजननामसे हुआहै जोकि धर्मज्ञ,प्रतापवान् व शत्रुपक्षको क्षयकारक था ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब पिछली अवस्था प्राप्तहुई तब ग्रहोंको अशुभस्थानों में स्थित होनेपर उस प्रभंजन के पुत्र पैदाहुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उस भूपने शास्त्रों के जाननेवाले ज्योतिषियों को भलीभांति बुलाकर उनसे उस पुत्रके उपजनेवाले समस्त समय को कहा ॥ ३४ ॥ दैवज्ञ पण्डित बोले कि हे भूपाल ! तीन गंडान्तों से उपजेहुये अरिष्टदायक व विकराल तथा अतिनिन्दित

कीदृग्नागभयन्तेषांयेनतेविगताविभो ॥ परित्यज्यनिजंस्थानमेतन्नोविस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीन्नाम्नाप्रभञ्जनः ॥ धर्मज्ञश्चप्रतापीच परपक्षक्षयावहः ॥ ३२ ॥ ततस्तस्यसुतोजज्ञे प्राप्तेवयसिपश्चिमे ॥ अनिष्टस्थानसंस्थेषु ग्रहेषुद्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥ ततस्तेनसमाहूय दैवज्ञाञ्छास्त्रपण्डितान् ॥ तेषांनिवेदितंसर्वं कालंतस्यसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥ दैवज्ञाऊचुः ॥ एषतेपृथिवीपाल जातःपुत्रःसुगर्हिते ॥ कालेनिष्टप्रदेरौद्रे गण्डान्तत्रितयोद्भवे ॥ ३५ ॥ कथंचिदपियद्येष जीवयिष्यतिपार्थिव ॥ पितृमातृपुरार्थंच देशानुत्सादयिष्यति ॥ ३६ ॥ राजोवाच ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषोपिवा ॥ येनसञ्जायतेक्षेमं पुत्रस्यविषयस्यच ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यथासमुच्छ्रितंयन्त्रं यन्त्रेणप्रतिहन्यते ॥ यथाबाणप्रहाराणां कवचंवारणंभवेत् ॥ ३८ ॥ तथाग्रहविकाराणां शान्तिर्भवतिवारणम् ॥ तस्मान्नित्यमनुद्विग्नः शान्तिंचकुरुभूपते ॥ ३९ ॥ येनसर्वेग्रहाःसौम्या जायन्तेचशुभास्तथा ॥ अनिष्ट

समयमें यह तुम्हारा पुत्र पैदाहुआ है ॥ ३५ ॥ हे पार्थिव ! किसी प्रकारभी यदि यह जीवैगा तो पिता,माता, नगर धन व देशोंको नाश करैगा ॥ ३६ ॥ राजा बोला कि इस विषय में कोई देवसम्बन्धी या मनुष्यवाला भी उपायहै कि जिससे पुत्र व देशका कुशल भलीभांति होवै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण बोले कि जैसे उठीहुई कल औज़ार से ताड़ित होतीहै व जैसे बाणों के प्रहारों की बख़्तररोक होती है ॥ ३८ ॥ वैसेही ग्रहके विकारों की शान्ति वारण होतीहै इसलिये हे भूपते ! सावधानहोतेहुये तुम

नित्यही शान्तिकरो ॥ ३९ ॥ कि जिससे विषय व अरिष्ट स्थानोंमें संस्थित ग्रहोंके मध्यमें समस्त ग्रह सौम्य व शुभ होवैं ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस प्रभंजन नृपने शीघ्रही चमत्कारपुरको जाकर वहां ब्राह्मणोंको भलीभांति विठाकर सबोंसे आदरसमेत कहा ॥ ४१ ॥ कि हमलोग तुमसबोंकी प्रसन्नतासे निरन्तर राज्य करते हैं इस वंश में जो नृपोत्तम गत होचुकेहैं व जो होवैंगे ॥ ४२ ॥ इस विषय में उनकी आपलोग गति हैं जैसे कि अन्नोंकी गति मेघ होतेहैं जोकि ग्रहोंको दुष्टस्थानो में स्थित होतेहुये मेरेपुत्र उत्पन्न होताहै इस विषय में पंडितों ने उस पुत्रके अरिष्टका शान्तिदायक शान्तिक कर्मको कहा है इसलिये हे द्विजेन्द्रो ! जैसी कहीहो वैसीही शान्ति

स्थानसंस्थेषुग्रहेषुविषमेषुच ॥ ४० ॥ ततःससत्वरंगत्वाचमत्कारपुरंनृपः ॥ तत्रविप्रान्समावेश्य सर्वान्प्रोवाचसादरम् ॥ ४१ ॥ वयंयुष्मत्प्रसादेन राज्यंकुर्मःसदैवहि ॥ येतीतायेभविष्यन्ति वंशेऽस्मिंस्तुनृपोत्तमाः ॥४२॥ भवन्तोऽत्रगतिस्तेषां सस्यानांनीरदोयथा ॥ यदत्रमत्सुतोजातो दुष्टस्थानस्थितैर्ग्रहैः ॥ ४३ ॥ दैवज्ञैश्शान्तिकंप्रोक्तं तस्यानिष्टस्य शान्तिदम् ॥ तस्मात्कुरुतविप्रेन्द्रा यथोक्तंशान्तिकंमम ॥ ४४ ॥ येनपुत्रश्चराष्ट्रश्च विभवश्चविवर्द्धते ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुः संमन्त्र्याथपरस्परम् ॥ ४५ ॥ त्वेमायतवभूनाथकरिष्यामोत्रशान्तिकम् ॥ सदैवनियताःसन्तः शान्ताःषोडशतेद्विजाः ॥ ४६ ॥ उपहाराःसदाप्रेष्यास्त्वयाभक्त्यामहीपते ॥ मासान्तेचाभिषेकश्च ग्राह्योरुद्रघटोद्भवः ॥ ४७ ॥ एवंप्रकुर्व्वतस्तुभ्यं पुत्रोवृद्धिम्प्रयास्यति ॥ तथाराष्ट्रश्चकोशञ्च यच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ ४८ ॥ ततःप्रणम्यतान्हृष्टो गत्वानिजनिवेशनम् ॥ उत्सवंपुत्रजन्मोत्थं चक्रेतैःप्रेरितस्तदा ॥ ४९ ॥ सम्भारान्प्रेषयामासचमत्कारपुरेततः ॥

करो ॥ ४३ । ४४ ॥ कि जिससे पुत्र, राज्य व ऐश्वर्य्य विशेषकर बढ़ै तदनन्तर उन ब्राह्मणोंने आपस में सलाह करके इसके अनन्तर कहा ॥ ४५ ॥ कि हे पृथ्वीनाथ ! नियममें प्राप्त व शान्त होतेहुये वे हमलोग सोलह ब्राह्मण यहांपर तुम्हारे कल्याणके लिये सदैव शान्तिक कर्मको करैंगे ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! तुमको भक्तिसे उपहार (बलि आदिक) को सदैव पठाना चाहिये और महीनेके अन्त में रुद्रघटसे उपजेहुये अभिषेक को ग्रहण करना चाहिये ॥ ४७ ॥ तुम्हारे लिये ऐसा करतेहुये पुत्र, राज्य व खज़ाना व और भी जो कुछहै वह वृद्धिको प्राप्तहोगा ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उनको प्रणामकर उनसे प्रेरित प्रसन्न होतेहुये उस भूपने अपने घर जाकर उससमय पुत्र

जन्म से उठेहुये उद्वाह को किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर चमत्कारपुर में सामग्रियों को पठाया व महीने के अन्तमें विधिपूर्वक अभिषेक को ग्रहण किया ॥ ५० ॥ और
शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य्य में तत्पर उन द्विजोत्तमोंने भी महीने महीने प्रति सदैव क्रमसे पुरश्चरण से उपजेहुये शान्तिक कर्मको किया तदनन्तर
महीने के अन्तमें अन्य ब्राह्मणोंने उस शान्तिक कर्मको किया॥ ५१।५२ ॥ इसके अनन्तर वह राजाभी महीने के अन्तमें भलीभांति आकर व उत्तम भक्तिसे अभिषेक
को ग्रहणकरके द्विजोत्तमों को पूजकर ॥ ५३ ॥ व वस्त्रों और मुकुटों तथा केवल गौ व भूमिदान में ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर वह भूपति अपने स्थानको जा-

मासान्तेचाभिषेकश्च ग्राह्योवैविधिपूर्वकम् ॥५०॥ तेपिब्राह्मणशार्दूलाः पुरश्चरणसम्भवम् ॥ क्रमेणशान्तिकंचक्रुर्ब्रह्म
चर्य्यपरायणाः ॥ ५१ ॥ मासंमासंप्रतिसदाशान्तादान्ताजितेन्द्रियाः॥ततोमासावसानेन्येचक्रुस्तच्छान्तिकंद्विजाः॥
५२ ॥ सोपिराजाथमासान्ते समागत्यसुभक्तितः ॥ अभिषेकंसमादाय पूजयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ ५३ ॥ वासोभिर्मुकुटै
श्चैव गोभूदानेनकेवलम् ॥ सन्तर्प्यचतथाविप्रान् स्वस्थानंयातिभूपतिः ॥ ५४ ॥ एवंप्रवर्तमानेच शान्तिकेतत्रभूप
तेः ॥ जगामसुमहान्कालः क्षेमारोग्यधनार्थिनः ॥ ५५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मासादावथभूपतेः ॥ प्रारब्धेशान्ति
केतस्मिन् महाव्याधिरजायत ॥ ५६ ॥ तत्पुत्रस्यविशेषेणतथैवान्तःपुरस्यच ॥ राष्ट्रस्यचसमग्रस्य वाहनानांतथा
त्ययः ॥ ५७ ॥ सततःप्रेषयामास शान्त्यर्थंचविशेषतः॥ यथायथाद्विजास्सर्वे होमंकुर्वन्तिपावके ॥ ५८ ॥ तथासर्वे
विशेषेण रोगावर्द्धन्तिसर्वतः ॥ म्रियन्तेवाजिनस्सर्वेबृंहन्तोवारणास्तदा ॥५९॥ शत्रवःसर्वकाष्ठासु विग्रहार्थमुपागताः॥

ताथा ॥५४॥ वहांपर कुशल निरोग व द्रव्यके चाहनेवाले भूपतिके शान्तिक कर्मको इसभांति वर्तमान होतेहुये बहुतही समय व्यतीतहुआ ॥५५॥ इसके अनन्तर किसी
समय महीने के आदिमें उस शान्तिक कर्म के प्रारंभ होनेपर भूपतिके व विशेषकर उसके पुत्र व स्त्रियों के व समस्त राज्य के बड़ी व्याधि उत्पन्नहुई व सवारियों का
विनाश हुआ ॥ ५६ । ५७ ॥ तदनन्तर उस भूपतिने शान्ति के लिये विशेषता से सामग्री को पठाया समस्त ब्राह्मण अग्नि में ज्यों २ होम करतेथे ॥ ५८ ॥ त्यों २
विशेषकर सबओर रोग बढ़तेथे उससमय सब घोड़े मरनेलगे व हाथी गर्जने लगे ॥ ५९ ॥ सब दिशाओं में शत्रुजन विग्रह के लिये समीप आगये तदनन्तर रोगसे

असे व व्याकुलहुये उस भूपने चमत्कारपुर में प्राप्तहोकर समस्त ब्राह्मणोंसे कहा कि तुमलोग स्वामियोंके स्थित होनेपर मुझको विपत्तियां विकल कररहीहैं ॥६०।६१॥ हे महाभागो ! तो यह क्याहै कि मेरी सम्पदा क्षीण होती हैं व शत्रु समूहों समेत रोगही बढ़तेहैं ॥ ६२ ॥ इसलिये रोगों की शान्ति के लिये विशेषतासे होमकरना चाहिये मैं ब्राह्मणों के लिये बहुत मोलवाले दानोंको दूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर सावधान होकर उन समस्त ब्राह्मणोंने उस भूपके सामने दूसरे शान्तिक कर्मको किया ॥ ६४ ॥ सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण ज्यों २ होमका प्रयोग करतेथे त्यों २ इस भूपके रोग वृद्धिको प्राप्त होतेथे ॥ ६५ ॥ इसी अवसर में क्रोधित होतेहुये वे समस्त

ततःस०व्याकुलीभूतो रोगग्रस्तोमहीपतिः ॥६०॥ चमत्कारपुरंप्राप्य सर्वान्विप्रानुवाचह ॥युष्माभिःस्वामिभिस्संस्थैरा पदोभिभवन्तिमाम् ॥ ६१ ॥ तत्किमेतन्महाभागाःक्षीयन्तेममसम्पदः ॥ रोगाश्चैवविवर्द्धन्ते शत्रुसङ्घैस्समन्विताः॥ ६२ ॥ तस्माद्विशेषतोहोमः कार्य्योरोगप्रशान्तये॥ दानानिबहुमौल्यानिदास्यामिचद्विजन्मनाम् ॥ ६३ ॥ ततस्तेब्राह्म णास्सर्वे प्रत्यक्षंतस्यभूपतेः ॥ चक्रुस्समाहिताभूत्वाशान्तिकंचद्वितीयकम् ॥ ६४ ॥ यथायथाप्रयुञ्जीरन् होमन्तेसुस माहिताः ॥तथातथास्यभूपस्य रोगावृद्धिंव्रजन्तिहि॥६५॥एतस्मिन्नन्तरेक्रुद्धास्तेसर्वेद्विजसत्तमाः ॥ ग्रहानुद्दिश्यसूर्य्या दीञ्छापायकृतनिश्चयाः ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ पूजिताअपिसद्भक्त्या विधानेनयथाग्रहाः ॥ पीडयन्तिपुरंराज्ञः स पुत्रपशुबान्धवम् ॥ ६७॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वा शुचिभूताःसमाहिताः॥ यावद्दास्यन्तिसंशापंग्रहेभ्यःक्रोधमूर्च्छिताः॥ ६८॥तावदग्निरुवाचेदम्मूर्तिंभूत्वाद्विजोत्तमान्॥ माप्रयच्छथविद्वासः शापंकोपात्कथञ्चन ॥ ६९ ॥ ग्रहेभ्योदोषमुक्ते

द्विजोत्तम सूर्य्यादिक ग्रहों को उद्देशकर शापके लिये निश्चय करते भये ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण बोले कि उत्तम भक्तिसे विधि पूर्वक पूजेहुयेभी ग्रह पुत्र,पशु,भाइयों समेत राजाके पुरको पीडितकररहे हैं ॥ ६७ ॥ इसप्रकार निश्चयकरके पवित्र व क्रोधसे मूर्च्छित व सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण जबतक ग्रहोंके लिये शापदेवैं ॥ ६८ ॥ तबतक मूर्त्तिमान होकर अग्नि देवजी यह बोले कि हे विद्वान् लोगो ! दोषसे छुटेहुये ग्रहोंके लिये क्रोधसे किसी प्रकार शापको मतदीजिये किन्तु मेरे वचनको

सुनिये कि महीने २ में वे सोलह ब्राह्मण होम को करते हैं ॥ ६९ । ७० ॥ उनके मध्य में एक नीच ब्राह्मण त्रिजात (तीन से पैदाहुआ) है उसने होमसे उपजी हुई समस्त वस्तुको अति दूषितकर दियाहै ॥ ७१ ॥ इसी कारण वे सूर्य्यादिक ग्रह मुझसे दियेहुये हव्यादिको ग्रहण नहीं करतेहैं उसीसे भूपको इस अधिक पीडाको करते हैं ॥ ७२ ॥ इसलिये इस ब्राह्मण को परित्यागकर शीघ्रही हवन करिये जिससे सूर्य्य पूर्व वाले समस्तग्रह परम प्रीति को प्राप्तहोवैं ॥ ७३ ॥ व उत्तम शान्तिके प्रभावसे राजा पुत्रसे संयुत व नष्ट शत्रुओं वाला व निरोगहोवै और निरन्तर सुखको प्राप्तहोवै ॥ ७४ ॥ ऐसा कहकर वे प्रिय दर्शन वाले भगवान् अग्नि देवजी चुप

भ्योश्रूयतांवचनंमम ॥ मासिमासिप्रकुर्वन्ति होमन्तेषोडशद्विजाः ॥ ७० ॥ तेषांमध्येस्थितश्चैकस्त्रिजातोब्राह्मणाधमः ॥ तेनसंदूषितंद्रव्यं समग्रंहोमसम्भवम् ॥ ७१ ॥ मयादत्तंनगृह्णन्ति तेग्रहाभास्करादयः ॥ तेनकुर्वन्तिभूपस्य पीडामप्यधिकामिमाम् ॥ ७२ ॥ तस्मादेतंपरित्यज्यहोमंकुरुतमाचिरम् ॥ येनप्रीतिंपरांयान्तिग्रहास्सर्वेऽर्कपूर्वकाः ॥ ७३ ॥ आरोग्यश्चभवेद्राजा गतशत्रुःसुतान्वितः ॥ सततंसुखमभ्येति सुशान्तिकप्रभावतः ॥ ७४ ॥ एवमुक्त्वासभगवाननलश्चारुदर्शनः ॥ तेपिविप्राविषण्णास्यालज्जयापरयावृताः ॥ ७५ ॥ ततस्तम्पावकम्भूयःस्तुवन्तोतत्रसंस्थिताः ॥ प्रोचुर्वैश्वानरंब्रूहि त्रिजातोस्त्यत्रयोद्विजः ॥ ७६ ॥ येनतंसंपरित्यज्य शान्तिकुर्मःप्रशान्तये ॥ निःशेषाणांहि दोषाणां भूपस्यास्यमहात्मनः ॥ ७७ ॥ वह्निरुवाच ॥ नाहंदोषंद्विजेन्द्राणां जानन्नपिकथंचन ॥ ब्रवीमिब्राह्मणास्सर्वे वेदाममधरातले ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदितंब्राह्मणंवह्नेनास्माकंकीर्तयिष्यसि ॥ तत्तेशापंप्रदास्यामस्तस्माच्छी

होरहे और दीन मुखवाले वे द्विज भी बडी लज्जासे संयुतहुये ॥ ७५ ॥ तदनन्तर वहांपर टिकेहुये उन ब्राह्मणोंने फिर उन अग्नि देवजी की स्तुति करतेहुये अग्नि से कहा कि यहां जो त्रिजात ब्राह्मण है उसको कहो ॥ ७६ ॥ कि जिससे उस ब्राह्मण को छोडकर इस महात्मा भूपति के समस्त दोषोंकी शान्तिके लिये हमलोग शान्ति कर्म को करैं ॥ ७७ ॥ अग्नि देवजी बोले द्विजेन्द्रों के दोषको जानताहुआ भी मैं न कहूगा क्योंकि भूतल में समस्त ब्राह्मण मेरे वेदहैं ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण बोले

कि हे अग्नि देव ! यदिउस ब्राह्मण को हमलोगों से न कहोगे तो तुमको शाप देवैंगे इसलिये हमलोगों से शीघ्रही कहिये ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले कि उन ब्राह्मणों के उस वचनको सुनकर भय संयुत होतेहुये अग्नि देवने देरतक चिन्तवन किया कि क्या करतेहुये मुझको शुभदायक होगा ॥ ८० ॥ यदि तबतक ब्राह्मण को दोषित करूं तो उससे उपजीहुई शापभी निस्सन्देह होगी ॥ ८१ ॥ अथवा वर्तमान द्विजोत्तमको न कहूं तो सर्पके समान क्रोधित ये ब्राह्मण लोग निस्सन्देह शापदेवैंगे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार चिन्तवन करतेहुये उन अग्नि देवजी के शरीर में बड़ा पसीना उत्पन्न हुआ कि जिससे वह कुण्ड पूर्णहोगया जोकि होमके लिये रचा गया

घ्रंवदस्वनः ॥ ७९ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा वह्निर्भयसमन्वितः ॥ चिरंविचिन्तयामास कुर्वतःकिंशुभावहम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणंदूषयिष्यामि यदितावच्चपातकम् ॥ भविष्यतिनसन्देहो शापश्चापितदुद्भवः ॥ ८१ ॥ कीर्त्तयिष्याम्नि वानैव विद्यमानंद्विजोत्तमम् ॥ शपिष्यन्तिनसन्देहःक्रुद्धाआशीविषोपमाः ॥ ८२ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य गात्रेस्वेदो भवन्महान् ॥ येनतत्पूरितंकुण्डं होमार्थंयत्प्रकल्पितम् ॥ ८३ ॥ ततःप्रोवाचतान्विप्रान् कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ वेपमानोभयत्रस्तः कुण्डान्निष्क्रम्यपावकः ॥ ८४ ॥ नाहंस्वजिह्वयादोषं ब्राह्मणस्यसमुद्भवम् ॥ कथंचित्कीर्तयिष्यामि तस्माच्छृण्वन्तुमेद्विजाः ॥ ८५ ॥ अत्रस्वेदजलेविप्रायेस्थिताःषोडशद्विजाः ॥ तेस्नानमद्यकुर्वन्तु प्रशुद्ध्यर्थायचात्मनः ॥ ८६ ॥ एतेषांमध्यगोयश्च त्रिजातःसभविष्यति ॥ तस्यविस्फोटकैर्युक्तंतस्याङ्गंचभविष्यति ॥ ८७ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे क्रमात्तत्रनिमज्जनम् ॥ चक्रुःशुद्धिंगताश्चापि मुक्त्वैकंब्राह्मणंतदा ॥ ८८ ॥ हाहाकारस्ततोजज्ञे

था॥८३॥ तदनन्तर कुण्डसे निकलकर भयभीत व कांपते तथा हाथोंको जोड़े खडेहुये अग्निदेवने उन ब्राह्मणोंसे कहा ॥८४॥ कि हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मणके उपजेहुये दोषको मैं किसीप्रकार अपनी जिह्वासे न कहूंगा इसलिये मेरे वचनको सुनिये ॥ ८५ ॥ कि यहांपर जो सोलह ब्राह्मण स्थितहैं वे अपनी शुद्धिके लिये आजइस पसीनेके जलमें स्नानकरैं ॥ ८६ ॥ इनके बीचमें प्राप्तजो वह त्रिजात होगा उस नहायेहुये ब्राह्मणका शरीर फोड़ोंसे सयुक्त होवैगा ॥ ८७ ॥ तदनन्तर उससमय उन समस्त ब्राह्मणों ने क्रमसे उस पसीने के जलमें स्नान किया व एक ब्राह्मणको छोड़कर शुद्धता कोभी प्राप्तहोगये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर अचानक उस ब्राह्मणोत्तम को फोड़ोंसे संयुत देखकर

उस के उपरान्त लज्जा संयुत वह ब्राह्मण भी मुखको नीचे करके इसके अनन्तर ब्राह्मणों से उपजे
वहांपर मनुष्यों से उपजाहुआ बड़ाभारी हाहाकारहुआ ॥ ८९ ॥ अग्निदेव जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने तुमलोगों के इस अपूर्व कार्य्यको साधन किया इसलिये आपलोगों
हुये सभामध्य वाले स्थान से निकलगया ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! स्वप्न मेंभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होताहै इसलिये चित्तमें भलीभांति टिकेहुये किसी अभिलाष
से परम आनंदित मैं अपने स्थानको जाऊंगा ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे अग्निदेवजी ! तुम्हारे पसीनेसे उपजाहुआ जो जलहै यह ब्राह्मणों की विशुद्धताके लिये यहींपर अचल होवै ॥९३॥
की प्रार्थना करिये ॥९२॥

सोऽपिलज्जान्वितोविप्रः कृत्वाधोवद
महांस्तत्रजनोद्भवः ॥ दृष्ट्वाविस्फोटकैर्युक्तमकस्मात्तंद्विजोत्तमम् ॥ ८९ ॥ वह्निरुवाच ॥ एतद्वःसाधितंकृत्यं मयाऽपूर्वंद्विजोत्त
नंततः ॥ निर्गतोथसभामध्यात्स्थानाद्विप्रसमुद्भवात् ॥ ९० ॥ नवृथादर्शनंचैव मेऽपिस्वप्नेद्विजोत्तमाः ॥ तस्मात्संप्रा
माः ॥ तस्माद्यास्येनिजंस्थानं भवद्भिःपरमोत्सितः ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एतत्तवजलंवह्ने स्वेदजंतुयदेवहि ॥ स्थिरंभवतुचात्रैव विशु
ध्यर्थंद्विजन्मनाम् ॥९३॥ अन्यजातोनरोयोत्र प्रकरोतिनिमज्जनम् ॥ तस्यचिह्नंत्वयाकार्य्यं विस्फोटकसमुद्भवम् ॥
र्थ्यतांकिञ्चिदभीष्टंहृदिसंस्थितम् ॥ ९२ ॥
९४ ॥ बाढमित्येवसम्प्रोक्त्वा गतश्चविपिनेहिसः ॥ पावकस्तेद्विजास्सर्वे मन्त्रञ्चक्रुःपरस्परम् ॥ ९५ ॥ अद्यप्रभृतिस
र्वेषां ब्राह्मणानांसमुद्भवे ॥ शुद्धिरत्रप्रकर्तव्या पितृमातृसमुद्भवा ॥ ९६ ॥ चमत्कारपुराच्छीघ्रं कश्चिद्विप्रःप्रकीर्तितः ॥
सोत्रस्नातोविशुद्धश्चविज्ञेयःकुलपुत्रकः ॥ ९७ ॥ तस्मैकन्याप्रदातव्या श्रद्धोद्वाहोभविष्यति ॥ धर्मकृत्येषुसर्वेषुयोजनी

व अन्यसे उपजाहुआ जो पुरुष इस जलमें स्नानकरै उसके विस्फोटकसे उपजेहुये चिह्नको तुम्हैंकरना चाहिये ॥ ९४ ॥ वे अग्निदेव जी हां यही कहकर वन
में चलेगये और उन सब ब्राह्मणोंने आपस में सलाह किया ॥ ९५ ॥ कि आजसे लगाकर समस्त ब्राह्मणों की उत्पत्ति में पितामाता से उपजीहुई शुद्धता यहांकरना
चाहिये ॥ ९६ ॥ कोई प्रकीर्तित (प्रसिद्ध) ब्राह्मण चमत्कारपुरसे शीघ्रही यहांआवै और स्नानकरके विशेषकर शुद्ध होताहुआ वह कुल पुत्रक जानने के योग्यहै ॥ ९७ ॥

व उसी के लिये कन्याको अवश्य देना चाहिये वह श्रद्धोद्वाह होगा और समस्तधर्म कर्मोंमें वही योजित करने योग्यहै ॥ ६८ ॥ व मिलेहुये अरसठि गोत्रोंके मध्य में क्रम पूर्वक उसके सामने जो विशेषकर शुद्ध होवै वह शुद्धहुआ पुरुष पंक्तिपावक होगा ॥ ६६ ॥ और जो अन्य अपवाद इत्यादिक हैं वे सब नाश होजावैंगे ॥ १०० ॥ जो कोई अन्य ब्रह्महत्यादिक पापभी स्थितहै व मनुष्यों से कहेहुये धर्मके सन्देहकारक और भी जो पुरुष हैं ॥ १ ॥ वे सब यहां शुद्धहोकर कुलपौत्रक जानने योग्यहैं जबतक सब ब्राह्मणों के सामने स्नान न कीजावै तबतक वह प्रगटमें उत्तम द्विजनहीं होवैहै ॥ २ । ३ ॥ सूतजी बोले कि चमत्कारपुर से उपजे

यःसएवहि ॥ ९८ ॥ अष्टषष्टिषुगोत्रेषुमिलितेषुयथाक्रमम् ॥ तत्प्रत्यक्षंविशुद्धोयःसशुद्धःपंक्तिपावकः ॥ ९९ ॥ अपवादाश्चयेचान्येनाशंयास्यन्तिचाखिलाः ॥ १०० ॥ येकेपिपापाश्चान्येचब्रह्महत्यादिकाःस्थिताः ॥ अन्येपिचजनैःप्रोक्ताधर्मसन्देहकारकाः ॥ १ ॥ तेसर्वेऽत्रविशुद्धाःस्युर्विज्ञेयाःकुलपौत्रकाः ॥ यावन्नात्रकृतंस्नानंप्रत्यक्षंचद्विजन्मनाम् ॥ २ ॥ सर्वेषांतावदेवात्रनसद्विप्रोभवेत्स्फुटम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतेसमयंकृत्वाचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ ब्राह्मणाःशान्तिकंचक्रुःहितार्थन्तस्यभूपतेः ॥ ४ ॥ तस्मिन्कुण्डेततःस्नानंकृतंसर्वैर्महात्मभिः ॥ तैर्विशुद्धमनोभिश्चशेषहोमस्यसम्भवे ॥ ५ ॥ मयादत्तंनगृह्णन्तिभास्कराद्याश्चतेग्रहाः ॥ तेनकुर्वन्तिभूपस्यपीडामप्यधिकामिमाम् ॥ ६ ॥ तस्मादेनांपरित्यज्यपूजाचान्याभविष्यति ॥ एषायुगत्रयेशुद्धिरासीत्तत्रद्विजन्मनाम् ॥७॥ हितार्थञ्चैवसर्वेषामन्येषामपिपाप्मनाम् ॥ अथोयत्कलियुगंघोरंपरदारासुरञ्जितम् ॥८॥ तत्रशुद्धिंपरित्यज्यविप्राःप्रावञ्चिकास्तथा ॥ पुरतोदेवदेवस्यब्राह्मणाद्विजसत्तमाः ॥९॥

हुये उन ब्राह्मणोंने ऐसी प्रतिज्ञा करके उस भूपके हितके लिये शान्तिक कर्मको किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर शेष होमके संभव में विशुद्ध मनवाले उन समस्त महात्माओं ने उस कुण्ड में स्नान किया ॥ ५ ॥ व यह चिन्तवन किया कि मुझसे दीहुई हव्यादि को वे सूर्य्यादिकग्रह नहीं ग्रहण करतेहै उसीसे भूपके इस अधिक पीडाको करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये इसको छोडकर और पूजा होगी वहांपर ब्राह्मणोंके हितके लिये यह शुद्धि तीनों युगमें हुई है ॥ ७ ॥ व अन्यभी समस्त पापियोंके हितके लिये यह शुद्धि हुईहै हे द्विजोत्तमो, ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर पराई स्त्रियों में-अनुरागवाला जो कलियुगहै उसमे शुद्धिको छोड़कर क्योंकि देवदेव विष्णु जीके

अगाड़ी भी ब्राह्मण प्रवञ्चक (छली) होते हैं ॥ १०८।१०९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पिता मातासे उपजेहुये वंशकी शुद्धिके लिये निरालसी पुरुष आजभी उस कुण्डमें स्नान
करते हैं ॥ ११० ॥ और जो पुरुष त्रिजात होताहै वह उस कुण्ड में निस्सन्देह अग्नि से जलाया जाता है ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरत्रिजातक माहात्म्यंतथाग्निमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नागर नामक द्विजनकी कथा अतिहि सुखदाय। इकसौ गेरह मध्यमहँ कहत सूत मुनिराय॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! त्रिस्फोटक से सब ओर स्फुटित

अद्यापिक्रियतेतत्रस्नानमेवद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ त्रिजातोदह्यतेतत्रवह्निनास
पितृमातृजवंशस्यविशुद्ध्यर्थमतन्द्रितैः ॥ अद्यापिक्रियतेतत्रस्नानमेवद्विजोत्तमाः ॥ ११० ॥ त्रिजातोदह्यतेतत्रवह्निनास
नसंशयः ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्रिजातकमाहात्म्यंतथा
ग्निमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सोपिविप्रोद्विजश्रेष्ठाविस्फोटकपरिस्फुटः॥ लज्जयापरिसंसिक्तोगत्वादूरेवनान्तरम् ॥ १ ॥ ततोवैराग्य
मापन्नोरौद्रेतपसिसंस्थितः ॥ त्यक्त्वासर्वंगृहंकृत्यंस्नेहंदारसुतोद्भवम् ॥ २ ॥ नियमैस्संयमैश्चैवशोषयन्नात्मनस्तनुम् ॥
कञ्चिज्जलाशयंस्थित्वास्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ ३ ॥ ततःकालेनमहतातुष्टस्तस्यमहेश्वरः ॥ प्रोवाचदर्शनङ्गत्वाप्रार्थ
यस्वमनोरथम् ॥ ४ ॥ त्रिजातउवाच ॥ मातृदोषादहन्देववैलक्ष्यंपरमंगतः ॥ मध्येब्राह्मणमुख्यानामानर्ताधिपतेस्त
था ॥ ५ ॥ अहंशक्नोमिनोकिञ्चिद्वक्तुंदृष्टुञ्चहेप्रभो ॥ त्रिजातोस्मीतिविज्ञायभूरिविद्यान्वितोपिच ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वोत्त

(फूटाहुआ) व लज्जासे संयुत वह ब्राह्मण भी वैराग्य में प्राप्तहोकरके समस्त गृहकार्य्य व स्त्री,पुत्र से उपजे हुये स्नेहको छोड़कर तदनन्तर दूरवनके बीचमें जाकर विकराल
तपस्या में भलीभांति स्थितहुआ ॥ १।२ ॥ व नियमों और संयमों से अपने शरीरकोसुखातेहुये उसने किसी जलाशयके समीप टिकर व महादेवजी को थापकर आराधन
किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्नहोतेहुये महादेवजी दर्शनमें प्राप्तहोकर बोले कि मनोरथको मांगो ॥ ४ ॥ त्रिजात बोला कि हे देव ! माताके
दोष से मैं मुख्य ब्राह्मणों व आनर्ताधिपतिके बीचमें बड़ी विलक्षणता को प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! मैं त्रिजात (तीन से पैदाहुआ) हूं यह जानकर बड़ीविद्या से संयुत

भी मैं कुछ कहने व देखने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ ६ ॥ इसलिये हे देवनायक ! जिसभांति उन ब्राह्मणों के बीच में मैंही सर्वोत्तम होऊं वैसीही नीतिकीजावै ॥ ७ ॥ शिवभगवान् बोले कि चमत्कार पुरमें जो द्विजोत्तम बसते हैं उनके मध्य में तुम मेरी प्रसन्तासे निश्चयकर सबसे उत्तमहोगे ॥ ८ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! तुम कुछेक समय को परखो जब समय प्राप्तहोगा तब वहां मैं तुमको ले चलूंगा ॥ ९ ॥ ऐसाकहकर इसके अनन्तर देवेश्वर शिवजी अन्तर्द्धानहोगये और ब्राह्मणने भी वैसेही शिवजी को भलीभांति पूजतेहुये तपस्या किया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणों ! किसीसमय चमत्कार पुरमें मौद्गल्यवंश में उपजाहुआ देवराज नामक ब्राह्मण

मस्तेषांमहञ्चैवद्विजन्मनाम् ॥ यथाभवामिदेवेशतथानीतिर्विधीयताम् ॥ ७ ॥ भगवानुवाच ॥ चमत्कारपुरेविप्रायेवसन्ति द्विजोत्तमाः ॥ तेषांसर्वोत्तमंनूनंमत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मात्कालंप्रतीक्षस्वकञ्चित्त्वंब्राह्मणोत्तम ॥ समयेसमनुप्राप्तेतत्रनेष्यामित्वामहम् ॥ ९ ॥ एवमुक्त्वाथदेवेशस्तदादर्शनकङ्गतः ॥ ब्राह्मणोपितपस्तेपेतथासम्पूजयन्हरम् ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यचमत्कारपुरेद्विजाः ॥ मौद्गल्यान्वयसम्भूतोदेवराजोभवद्द्विजः ॥ ११ ॥ तस्यपुत्रःक्रथोनामयौवनोद्धतविग्रहः ॥ सदागर्वसमायुक्तःपौरुषेचव्यवस्थितः ॥ १२ ॥ सकदाचिद्ययौविप्रोनागतीर्थंप्रतिद्विजाः ॥ श्रावणस्यसितेपक्षे पञ्चम्यांपर्य्यटन्वने ॥ १३ ॥ अथापश्यत्सनागेन्द्रतनयम्भूरिवर्चसम् ॥ रुद्रमालमितिख्यातंजनन्यासहसङ्गतम् ॥ १४ ॥ अथासौतंसमालोक्यसुलघुंसर्प्पपुत्रकम् ॥ जलसर्प्पमितिज्ञात्वालगुडेनव्यपोहयत ॥ १५ ॥ हन्यमानेनतेनाथचकारसुमहान्स्वनः ॥ हामाततातेतिलपन्हतोस्मिहिनिरागसः ॥ १६ ॥ सोपिश्रुत्वाथतंशब्दम्ब्राह्मणोमानुषोद्भवम् ॥ सर्पस्यभयसंत्र

हुआ है ॥ ११ ॥ उसका पुत्रयौवन से उठे हुये शरीरवाला व सदैव गर्व से संयुत तथा पराक्रम में व्यवस्थित क्रथ नामक हुआ है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणों ! किसीसमय वनमें घूमताहुआ वह क्रथ ब्राह्मण श्रावण की शुक्लपक्ष वाली पंचमी में नाग तीर्थ को गया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर उसने माता के साथ आयेहुये बड़े तेजवाले रुद्रमाल ऐसे प्रसिद्ध नागराजके पुत्रको देखा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इस द्विजने अतिछोटे साँप के पुत्र को देखकरके जलसर्प है यह जानकर उसको दण्ड से मारा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर उसके मारतेहुये सर्पने हा माता ! हा पिता ! मैं बिन अपराध मारागया ऐसाकहतेहुये बड़ा शब्द किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मणने भी मनुष्यसे

उपजेहुये उस शब्दको सुनकर सर्प से भयभीतहोकर शीघ्रही घरको प्रयाणकिया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उस सर्पकी माता जलाशय से निकली और उसने जबतक देखा तबतक किनारेपै स्थित पुत्रको मराहुआ देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर समस्त अंगोंमें रुधिर से सींचेहुये व दण्डताडनसे विदीर्ण वैसे पुत्र को देखकर मूर्च्छा को प्राप्तहुई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर फिर चैतन्यताको पाकर शोचसे अत्यन्तही तचीहुई व आंसुओं से सबओर विकल लोचनोंवाली उसने करुणा पूर्वक बहुतेरे प्रलापों को किया ॥ २० ॥ कि हे पुत्र! मैं छोड़दीगई और मुझको छोड़कर तुम न लौटनेवाले स्थानको चलेगये क्या मुझमें तुम्हारा स्नेह नहींहै ॥ २१ ॥ हे पुत्र! किस दुष्टात्मा पापीने तुझ निष्पाप

स्तःसत्वरन्तुगृहंययौ ॥ १७ ॥ अथसाजननीतस्यनिष्क्रान्तासलिलाश्रयात् ॥ यावत्पश्यतितीरस्थंतावत्पुत्रंनिपातितम् ॥ १८ ॥ ततोमूर्च्छामनुप्राप्तादृष्ट्वापुत्रंतथाविधम् ॥ यष्टिप्रहारनिर्भिन्नंसर्वाङ्गरुधिरोक्षितम् ॥ १९ ॥ अथलब्ध्वापुनर्संज्ञांप्रलापानकरोद्बहून् ॥ करुणंशोकसन्तप्ताबाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ २० ॥ हाहापुत्रपरित्यक्तामात्यक्तासिविनिर्गतः ॥ अनावृत्तिकरंस्थानंकिंस्नेहोनास्तितेमयि ॥ २१ ॥ केनवैनिहतःपुत्रपापेनचदुरात्मना ॥ निष्पापोपिचपुत्रस्त्वंकस्यक्रुद्धोद्यवैयमः ॥ २२ ॥ सपुरस्यसराष्ट्रस्यसकुटुम्बस्यदुर्मतेः ॥ येनत्वंनिहतोद्यापिपञ्चम्यांपूजितोनच ॥ २३ ॥ रजसाक्रीडयित्वाद्यसमागत्यचिरादथ ॥ कामेनोत्सङ्गमागत्यम्लानंनेष्यतिकोम्बरम् ॥ २४ ॥ गद्गदानिमनोज्ञानिजनहास्यकराणिच ॥ त्वयाविनाद्यवाक्यानिकोवदिष्यतिमेपुरः ॥ २५ ॥ पितुरुत्सङ्गमाश्रित्यकुर्चाकर्षणसङ्गमम् । कःकरिष्यतिपुत्राद्यसन्तोषंभवताविना ॥ २६ ॥ निषिद्धोसिमयावत्सत्वयियातेनुपृष्ठतः ॥ मर्त्यलोकमिमंतातबहुदोषसमाकुलम् ॥ २७ ॥

पुत्रको मारा है आज पुर सहित व राज्य समेत व परिवार सहित किस दुष्टबुद्धिवाले नरके ऊपर यमराजजी क्रोधित हुयेहैं कि जिसने आज पञ्चमी कोभी तुम्हारा पूजन न किया किन्तु तुमको मारडाला ॥ २२ । २३ ॥ धूलिसे खेलकर व बहुत देरसे समागम कर इच्छा से अंकमें आकर आज बसन को कौन मलिनतामें प्राप्त करैगा ॥ २४ ॥ व मनुष्यों को हास्यकारक व मनोहर तथा गद्गदीले वचनों को आज तुम्हारे विना कौन मेरे अगाडी कहैगा ॥ २५ ॥ व पिताकी गोदमें भलीभांति बैठकर भौंह मध्य के खींचने से समागम वाले सन्तोष को आपके विना कौन करैगा ॥ २६ ॥ हे वत्स! तुम्हारे आतेहुये पीछे से मैंने तुमको मनाकियाथा कि हे पुत्र! यह मृत्यु

लोक बहुत दोषों से संयुतहै ॥ २७ ॥ शोचसे दुबली वह नागिनि इसप्रकार विलाप करके व उस मरेहुये पुत्रको लेकर नागराज के समीप गई ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस मरे निज बालक को उन नागाधिप के अगाड़ी फेंककर दीन नागिनिने वियोगिनी मृगी के नाईं प्रलापों को किया ॥ २९ ॥ नागराज भी मारेहुये उस अपने पुत्रको देखकर पुत्रके शोचसे दुःखित होते हुये वेभी मूर्च्छा को प्राप्तहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शीतलजल से छिड़के हुये नागराजने बड़े क्लेशसे चैतन्यता को पाकर पामर (सामान्य) पुरुष के समान बहुत से प्रलापों को किया ॥ ३१ ॥ इसी अवसर मे आंसुओं से सब ओर आकुल लोचनोंवाले व उन नागराज के दुःखसे दुःखित होतेहुये

एवंविलप्यनागीसासंक्रुद्धाशोककर्शिता ॥ तंमृतंसुतमादायजगामानन्तसन्निधौ ॥ २८ ॥ ततस्तदग्रतःक्षिप्त्वातंमृतं निजबालकम् ॥ प्रलापानकरोद्दीनावियुक्ताकुररीयथा ॥ २९ ॥ नागराजोपितंदृष्ट्वास्वपुत्रंविनिपातितम् ॥ जगामसोपिमूर्च्छाञ्चपुत्रशोकेनपीडितः ॥ ३० ॥ ततस्सिक्तोजलैःशीतैस्सञ्ज्ञाँल्लब्ध्वाप्रकृच्छ्रतः ॥ प्रलापान्कृतवान्भूरिप्राकृतःपुरुषोयथा ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तानागास्सर्वेसमागताः ॥ तद्दुखदुःखितास्सन्तोबाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ ३२ ॥ वासुकिःपद्मजःशङ्खस्तक्षकश्चमहाविषः ॥ शङ्खचूडःसुचूडश्चपुण्डरीकश्चदारुणः ॥ ३३ ॥ अञ्जनोवामनश्चैवकुमुदश्चतथापरः ॥ कम्बलाश्वतरौनागौनागःकर्कोटकश्चवा ॥ ३४ ॥ पुष्पदन्तःसुदन्तश्चरेणुकोमूषकादकः ॥ एलपुत्रःसुपुत्राश्चदीर्घास्यःपुष्पवाहनः ॥ ३५ ॥ ऐतेचान्येतथानागास्तत्रायातास्सहस्रशः ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तंज्ञात्वातम्पन्नगाधिपम् ॥ ३६ ॥ ततसम्बोध्यतेसर्वेतमीशम्पवनाशनम् ॥ पूर्ववृत्तैःकथोद्भवैर्दृष्टान्तैर्विविधैरपि ॥ ३७ ॥ एवंसम्बोधितस्तैस्तुचिरात्पन्न

समस्त नाग भलीभांति आकर प्राप्त हुये ॥ ३२ ॥ वासुकी, पद्मज, शंख, तक्षक व महाविष, शंखचूड, सुचूड, व विकराल पुण्डरीक ॥ ३३ ॥ व अञ्जन और वामन व कुमुद तथा अन्य कुमुद, कम्बल, अश्वतर नाग व कर्कोटक नाग ॥ ३४ ॥ व पुष्पदन्त, सुदन्त, रेणुक, मूषकादक, एलपुत्र व सुपुत्र, दीर्घास्य, पुष्पवाहन ॥ ३५ ॥ ये तथा और हज़ारों नाग उन सर्पनायकको पुत्रशोचसे अति सन्तप्त जानकर वहां आये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उन सबोंने पुरातन समय के चरित्रों और कथाओं से उपजे हुये दृष्टान्तों के द्वारा भी उन पवनाशी ईश (नागराज) को भलीभांति समझाकर बोध किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर इस प्रकार उन नागोंसे देरमें बोधित हुये व दुःखित सर्पों-

नमने उस पुत्रका अग्नि दाह किया ॥ ३८ ॥ व जलदान के समय उन नागराजने जलदान के लिये समीप में स्थित हुये समस्त नागों व सब सर्पों से कहा ॥ ३९॥
कि आपलोगों से व अन्य भाइयों से भी इसभांति प्रेरणा किया हुआ भी मैं तब तक किसी प्रकार पुत्रको जल न दूंगा ॥४०॥ जबतक कि स्त्री, पुत्र, सेवकों समेत
उस मेरे पुत्रके विनाशकारक दुष्ट पुरुषका संहार न किया जावैगा ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर शेषने उस ब्राह्मणका शोधन (खोज) कराया कि जिस पापीने
दण्ड रूप काष्ठसे पुत्रको नाश कियाथा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर नागराजने समीप में टिके हुये उन नागोंसे कहा कि हे मेरे उत्तम मित्रो! आप लोग हाटकेश्वरजक्षेत्रमें

सर्वान्नागा गसत्तमः ॥ अग्निदाहन्ततश्चक्रेतस्यपुत्रस्यदुःखितः ॥ ३८ ॥ जलदानस्यकालेचसर्पान्सर्वानुवाचसः ॥ भवद्भिःप्रेरितोप्येवन्तथान्यैर न्प्रदानार्थंतोयस्यसमुपस्थितान् ॥ ३९ ॥ नाहन्तोयंप्रदास्यामिस्वपुत्रस्यकथञ्चन ॥ सदारपुत्रभृत्यस्यविहतोनपरिच्चयः ॥ ४१॥ एवमुक्त्वाततः पिबान्धवैः ॥४०॥ यावत्तस्यनदुष्टस्यममपुत्रान्तकारिणः ॥ ततःप्रोवाचतान्नागान्पार्श्वस्थान्पन्नगा शेषःशोधयामासतंद्विजम् ॥ येनसंसूदितःपुत्रोदण्डकाष्ठेनपाप्मना ॥ ४२ ॥ पुत्रघ्नन्तंनिहत्याशुसकुटुम्बपरिग्रहम् ॥ चमत्कारपुरंसर्वंभक्ष धिपः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेयान्तुमेसुहृदोत्तमाः ॥ ४३ ॥ तत्रैववसतिःकार्यासमस्तैःपन्नगैरपि ॥ यथाभूपोवसेन्नैवतथाकार्यंचतत्पुरम् ॥४५॥ एवमुक्ता णीयन्ततःपरम् ॥ ४४ ॥ देवरातसुतंसुप्तम्भक्षयित्वाततःप ततस्तेननागाःप्राधान्यतस्तुये ॥ तेगत्वासत्वरन्तत्रप्रथमन्तंद्विजोत्तमम् ॥ ४६ ॥ तेसर्वेभक्षयामा रम् ॥ सकुटुम्बंसमग्रंच क्रोधेनमहतान्विताः ॥ ४७ ॥ ततोन्यानपिसंक्रुद्धा बालान्वृद्धान्कुमारकान् ॥

जाइये ॥ ४३ ॥ क्योंकि उस पुत्रहन्ता को स्त्री व पुत्र समेत मारकर तदनन्तर समस्त चमत्कार नगर भक्षण करना चाहिये ॥ ४४ ॥ व समस्त सर्पोंको भी वहीं निवास
करना चाहिये व जिस प्रकार वह पुर फिर निश्चय कर न बसै वैसाही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर इस प्रकार उन नागराज से कहे हुये नाग जे मुख्यता से थे
उन्होंने शीघ्रही वहां जाकर पहले सोते हुये उस द्विजोत्तम देवरात के पुत्रको खाकर उसके उपरान्त बड़े क्रोधसे संयुत होकर परिवार समेत सम्पूर्ण भक्षणकर लिया ॥
४६ । ४७ ॥ तदनन्तर अति क्रोधित होते हुये उन समस्त नागोंने अन्यभी बालों, व वृद्धों व कुमारों को व पशु पक्षी की योनिमें प्राप्तहुये भी जन्तुओं को भक्षणकर

लिया ॥ ४८ ॥ इसी अवसर में उस पुरके बीच सर्प भक्षण से उपजे हुये अति भयङ्कर द्विजेन्द्रों के शब्द उत्पन्न हुये ॥ ४९ ॥ वैसेही उस भूमि में और जो कुछ भी देख पड़ताथा वह सब काले शरीर के धारनेवाले विकराल सर्पोंसे व्याप्त होगया ॥ ५० ॥ इसी अवसर में कोई मृत्यु के वशमें जाकर प्राप्त हुये व विषसे आघूर्णित होते हुये कोई भूतल में गिरपड़े ॥ ५१ ॥ व डरे हुये अन्य नर पुत्रादिक व समस्त गृहादिक को परित्यागकर दूरवाले वन को उद्देशकर सब ओर दौड़तेथे ॥ ५२ ॥ व मन्त्रों के जाननेवाले अन्य ब्राह्मण यत्नकर रहेथे व डरेहुये अपर पुरुष औषधियों को लेकर सब ओर धावतेथे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उस पुरको उद्देशकर वे समस्त स-

सुस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥४८॥ एतस्मिन्नन्तरेजाताः पुरेतत्रसुदारुणाः ॥ आक्रन्दाब्राह्मणेन्द्राणांसर्पभक्षणसम्भवाः ॥ ४९ ॥ तत्रभूमौतथान्यच्च यत्किञ्चिदपिदृश्यते ॥ तत्सर्वंपन्नगैर्व्याप्तं रौद्रैःकृष्णवपुर्द्धरैः ॥५०॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः केचिन्मृत्युवशंगताः ॥ विषसंघूर्णिताकेचित्पतिताधरणीतले ॥ ५१ ॥ अन्येगृहादिकंसर्वं परित्यज्यसुतादिकम् ॥ वित्रस्ताःपरिधावन्ति वनमुद्दिश्यदूरतः ॥ ५२ ॥ अन्येमन्त्रविदोविप्राः प्रयतन्तेसमन्ततः ॥ मन्दंधावन्तिसंत्रस्ता गृहीत्वौषधयःपरे ॥ ५३ ॥ एवंतत्पुरमुद्दिश्यसर्वेतेपन्नगोत्तमाः ॥ प्रचरन्तितथाकश्चिन्नतत्रब्राह्मणोयथा ॥ ५४ ॥ अथशून्यं पुरंकृत्वा सर्वेतेपन्नगोत्तमाः ॥ व्यचरन्स्वेच्छयातत्र तीर्थेष्वायतनेषुच ॥ ५५ ॥ नकश्चित्पन्नगःक्षेत्रंत्यक्त्वानिर्याति बाह्यतः ॥ प्रविशेन्नपरःकश्चित्तत्रक्षेत्रेचमानवः ॥ ५६ ॥ व्यवस्थैवंसमुद्भूता सर्पाणांमानुषैस्सह ॥ वधभक्षणाभ्यामन्योन्यं बाह्याभ्यन्तरमेवच ॥ ५७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशेषो मुक्त्वादुःखंसुतोद्भवम् ॥ प्रहृष्टःप्रददौतोयंतस्यज्ञातिभिर

र्पोत्तम उस प्रकार चलतेथे कि जिस प्रकार कोई ब्राह्मण वहां न बसै ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर उन समस्त पन्नगोत्तमोंने नगर को शून्य करके वहांपर अपनी इच्छा से तीर्थों व देवमन्दिरों में भ्रमण किया ॥ ५५ ॥ कोई सर्पक्षेत्र को छोडकर बाहर नहीं निकलताथा व और कोई मनुष्य उस क्षेत्रमें नहीं पैठताथा ॥ ५६ इस प्रकार बाहर व भीतरही आपस में वध तथा भक्षण से मनुष्यों के साथ सर्पोंकी व्यवस्था उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ इसी अवसर में कुटुम्बियों से संयुत व प्रसन्न होते हुये शेषजीने पुत्रसे

उपजे हुये दुःख को छोडकर उसको जल दिया ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर सांपों के भयसे विकल वे कोई ब्राह्मण शोच संयुत होते हुये वे सब दिशाओंके सामने शीघ्र ही आपसमें मिलकर तदनन्तर वनको भलीभांति गये जहां कि त्रिजात टिकाहुआ था ॥ ५९ । ६० ॥ जो कि शिवजी से वरदानको पाये व प्रसन्न हुये बड़ी तपस्या में स्थितथा वह स्थान में उपजे हुये समस्त मनुष्यों को दुःखमें डूबे हुये देखकर ॥ ६१ ॥ व पुत्र, स्त्री आदि को स्मरणकर करुणा पूर्वक बहुत रोते हुये उन निजपुर में उत्पन्न हुये द्विजेन्द्रों को देखकर वह भी दुःख संयुत हुआ ॥ ६२ ॥ तदनन्तर आंसुओं से विकल लोचनोंवाले उस त्रिजात ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! इस समय

न्वितः ॥ ५८ ॥ अथतेब्राह्मणाःकेचित्सर्पेभ्योभयविह्वलाः ॥ ५९ ॥ सशोकादिग्मुखान्याशु तेसर्वेसङ्गतामिथः ॥ ततोवनं समाजग्मुस्त्रिजातोयत्रसंस्थितः ॥ ६० ॥ हरलब्धवरोहृष्टः सुमहत्तपसिसंस्थितः ॥ सदृष्ट्वास्थानजान्सर्वांस्तथादुःखपरिप्लुतान् ॥ ६१ ॥ पुत्रदारादिकंस्मृत्य रुदन्तःकरुणंबहु ॥ सोपिदुःखसमायुक्तो दृष्ट्वातान्स्वपुरोद्भवान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणेन्द्रांस्ततःप्राहबाष्पव्याकुललोचनाः ॥ शृएवन्तुब्राह्मणास्सर्वे वचनंसाम्प्रतम्मम ॥ ६३ ॥ मयाविनिर्गतेनैव तत्पुरात्तोषितोहरः ॥ तेनमह्यंवरोदत्तो वाञ्छितोद्विजसत्तमाः ॥ ६४ ॥ गृहीतोनमयाद्यापि प्रार्थयिष्यामिसाम्प्रतम् ॥ यथास्यात्संक्षयस्तेषां नागानांसुदुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ यैःकृतंनःपुरंसर्वंसुद्वासंपापकर्म्मभिः ॥ एवमुक्त्वासविप्रश्च त्रिजातःपरमेश्वरम् ॥ ६६ ॥ प्रार्थयामासमेदेव तंवरंयच्छसाम्प्रतम् ॥ ततःप्रोवाचदेवेशः प्रार्थयस्वद्रुतंद्विज ॥ ६७ ॥ येनाभीष्टंप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ ६८ ॥ त्रिजातउवाच ॥ नागैरस्मत्पुरंसर्वं कृतंजनविवर्जितम् ॥ तस्मा

मेरे वचनको आप सब सुनो ॥ ६३ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! उसपुर से निकलेही हुये मैंने सदाशिव जीको प्रसन्न किया उन शिव जीने मेरेलिये वाञ्छित (चाहेहुये) वरदान को दिया ॥ ६४ ॥ परन्तु मैंने आजतकभी नहीं ग्रहण किया आज वैसीही प्रार्थना करूंगा कि जिसप्रकार उन दुष्ट चित्त या मनवाले नागोंका संहार होवै ॥ ६५ ॥ कि जिन पापकर्मियों ने हमलोगों के समस्त पुरको उद्वास किया याने उजाड़दिया ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर उस त्रिजात ब्राह्मणने परमेश्वर शिव जीसे प्रार्थना किया कि हे देव ! इससमय उस वरको मुझे दीजिये तदनन्तर देवनायक शिवजी बोले कि हे द्विज ! शीघ्रही मांगिये ॥ ६७ ॥ कि जिससे अभिलापको देऊं यद्यपि दुर्लभभी होवै ॥ ६८ ॥

त्रिजात बोला कि हे वृषवाहन ! नागोंने हमारे समस्त नगरको जनों से विहीन करदिया इसलिये वे सब विनाश को प्राप्तहोवैं ॥६९॥ जिससे कि हे सुरसत्तम ! फिर भी वह पुर ब्राह्मणोंसे पूर्ण होजावै और स्वस्थान के उधारनेसे उपजीहुई मेरीभी कीर्त्ति होवै॥७०॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम,द्विज! उन महात्मा सर्पोंने यह अयोग्य नहीं किया है क्योंकि पंचमी दिनके भलीभांति प्राप्त होनेपर उसमें भी श्रावणमास में जब कि सर्प विशेषकर पूजेजाते हैं उससमय जिन सर्पोंका निर्दोष भी पुत्र ब्राह्मण से मारागया ॥ ७१ । ७२ ॥ इसलिये मैं तुमसे अतिउत्तमसिद्ध मंत्रको कहूंगा कि जिसके उच्चारणमात्र से सर्पोंका विष नाश होजाता है ॥ ७३ ॥

त्तेसंक्षयंयान्तुसर्वेवृषभवाहन ॥ ६९ ॥ येनतत्पूर्यतेविप्रैर्भूयोपिसुरसत्तम ॥ ममापिजायतेकीर्तिः स्वस्थानोद्धारणोद्भवा ॥ ७० ॥ भगवानुवाच ॥ नायुक्तंविहितंविप्र पन्नगैस्तैर्महात्मभिः ॥ निर्दोषश्चापिपुत्रश्च येषांविप्रेणसूदितः ॥ ७१ ॥ विशेषेणद्विजश्रेष्ठ सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ तत्रापिश्रावणेमासे पूज्यन्तेयत्रपन्नगाः ॥ ७२ ॥ तस्मात्तेहंप्रवक्ष्यामि सिद्धंमन्त्रमनुत्तमम् ॥ यस्योच्चारणमात्रेण सर्पाणांनश्यतेविषम् ॥ ७३ ॥ तन्मन्त्रन्तत्रगत्वात्वं तद्विप्रैरखिलैर्वृतः ॥ श्रावयस्वमहाभाग तारशब्देनसर्वशः ॥ ७४ ॥ तंश्रुत्वायेनयास्यन्ति पातालंपन्नगाधमाः ॥ युष्मद्वाक्याद्भविष्यन्ति निर्विषास्तुनसंशयः ॥ ७५ ॥ त्रिजातउवाच ॥ ब्रूहितन्मेमहामन्त्रं सर्वतीक्ष्णविनाशनम् ॥ येनगत्वानिजंस्थानं सर्वानुत्सादयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ भगवानुवाच ॥ गरंविषमितिप्रोक्तं नतत्रास्तिचसाम्प्रतम् ॥ मत्प्रसादात्त्वयाह्येतदुच्चार्यंब्राह्मणोत्तम ॥ ७७ ॥ नगरंनगरंचैतच्छ्रुत्वायेपन्नगाधमाः ॥ तत्रस्थास्यन्तितेवध्या भविष्यन्तियथासुख

हे महाभाग ! उन समस्त ब्राह्मणों से संयुत होतेहुये तुम वहां जाकर सबओर ओङ्कार शब्दसे उस मंत्रको सुनावो ॥ ७४ ॥ कि जिससे उस मंत्रको सुनकर नीच सर्प पातालको जावैंगे व तुमलोगों के वचन सेवे निस्सन्देह निर्विष होवेंगे ॥ ७५ ॥ त्रिजात बोला कि समस्त तीखे विषों के विनाशनेवाले उस महामंत्र को मुझ से कहिये कि जिससे अपने स्थानको जाकर मैं समस्त सर्पोंको उजाडदूं ॥ ७६ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम ! गर यह विष कहागयाहै उस गर में न यह वर्णहै याने नगर मेरी प्रसन्नतासे इससमय तुमको यह उच्चारण करना चाहिये ॥७७ ॥ नगर नगर यह सुनकर जो नीच सर्प वहां ठहरैंगे वे सुखपूर्वक मारने योग्य

होवैंगे ॥ ७८ ॥ आजसे लगाकर तुम्हारे यशका बढ़ानेवाला नगर नामक वह स्थान भूतल में अतिप्रसिद्ध होगा ॥ ७९ ॥ वैसेही शुद्धवंश में उत्पन्न और भी नागर ब्राह्मण नगर नामक मंत्रसे तीनबार जलको अभिमंत्रितकर ॥ ८० ॥ सर्पसे डसे व मृत्यु को प्राप्तहुये भी प्राणीको मुखमें आपही प्रक्षेपकर सजीव करैगा ॥ ८१ ॥ अन्यत्रभी टिका व भलीभांति सोताहुआ जो मनुष्य इस त्र्यक्षरमंत्र को स्मरणकरैगा वह सर्पके विषसे निर्विषहोगा ॥ ८२ ॥ व स्थावर जङ्गम व बनायाहुआ जो विषहै वह इसमंत्र से भलीभाति छुआहुआ नाशको प्राप्तहोताहै ॥ ८३ ॥ व अजीर्णसे उपजेहुये जो रोगहैं व अन्य जे ज्वरसे उत्पन्नहुये हैं वे सब इस मंत्र के प्रभावसे शीघ्रही

म् ॥ ७८ ॥ अद्यप्रभृतितत्स्थानं नगराख्यंधरातले ॥ भविष्यतिसुविख्यातं त्वत्कीर्तिविवर्द्धनम् ॥ ७९ ॥ तथान्योपि चयोविप्रो नागरःशुद्धवंशजः ॥ नागराख्यनमन्त्रेण चाभिमन्त्र्यत्रिधाजलम् ॥ ८० ॥ प्राणिनंकालसंदष्टमपिमृत्यु वशंगतम् ॥ प्रकरिष्यतिजीवाढ्यं प्रक्षिप्यवदनेस्वयम् ॥ ८१ ॥ अन्यत्रापिस्थितोमर्त्यो मन्त्रमेतंत्रिरक्षरम् ॥ यस्स्मरिष्यतिसंसुप्तो निर्विषःस्यादहेर्हिसः ॥ ८२ ॥ स्थावरंजङ्गमञ्चैव कृत्रिमंवागरंहियत् ॥ तदनेनचमन्त्रेण संस्पृष्टं यातिसंक्षयम् ॥ ८३ ॥ अजीर्णप्रभवारोगा येचान्येचज्वरोद्भवाः ॥ मन्त्रस्यास्यप्रभावेण सर्वेयान्तिद्रुतंक्षयम् ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वाथतंविप्रं भगवान्वृषभध्वजः ॥ जगामादर्शनंपश्चात्तैलंदीपोयथाविना ॥ ८५ ॥ त्रिजातोपिममांविप्रैर्हतशेषैस्तुतैर्द्रुतम् ॥ जगामसम्प्रहृष्टात्माचमत्कारपुरम्प्रति ॥ ८६ ॥ एवंतेब्राह्मणास्सर्वे त्रिजातेनसमन्विताः ॥ नगरं नगरंप्रोच्चैरुच्चरन्त समाययुः ॥८७॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रंयत्तद्व्याप्तंसमन्ततः॥रौद्रैराशीविषैःक्रूरैश्शेषवंशसमुद्भवैः ॥८८॥

नाश होजातेहैं ॥ ८४ ॥ उस द्विजसे ऐसा कहकर इसके अनन्तर पश्चात् जैसे कि तैलके विना दीपक अदृश्य होजाताहै वैसेही वृषभध्वज शिव भगवान् अन्तर्द्धान हो गये ॥ ८५ ॥ व मरनेसे बचेहुये उन समस्त ब्राह्मणों समेत प्रसन्न मनवाला वह त्रिजात भी चमत्कारपुरको गया ॥८६॥ त्रिजातसे संयुत वे समस्त ब्राह्मण नगर २ ऐसा उच्चस्वर से कहतेहुये उस हाटकेश्वर जोंसे उपजेहुये क्षेत्रको भलीभांति आये जोकि शेषके वंशमें उपजे हुये भयंकर व क्रूरसर्पों से सबओर व्याप्तथा ॥ ८७ । ८८ ॥

इसके अनन्तर शिव से उपजेहुये सिद्ध मंत्रको सुनकर विषवर्जित व तेजरहित होते हुये वे सर्प सबओर दौड़े॥ ८९ ॥ कोई सर्प वृक्षके नीचे विचित्र छिद्रवाली बँबौ-रियों में जाकर स्थितहुये व अन्य सर्पभी पातालको चलेगये ॥ ९०॥ व जे कोई अन्य सर्प वृद्धतासे व शिशुतासे पीड़ित होतेहुये बहुत चलनेको समर्थ न हुये उन सब ग्रसेहुये हजारों सर्पोंको उस पुरमें कियेके प्रतिकारी (बदलालेनेवाले) उन समस्त ब्राह्मणोंने दण्डमय काठोंसे मारा ॥ ९१ । ९२ ॥ इसप्रकार उन समस्त सर्पोंको उजाड़कर पीड़ारहित उनसब ब्राह्मणोंने उस त्रिजातको अगाड़ीकर स्थान कार्य्योंको किया ॥ ९३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! देवदेव शिव जीकी प्रसन्नता के द्वारा उस त्रिजात

अथतेपन्नगाःश्रुत्वा सिद्धंमन्त्रंशिवोद्भवम् ॥ निर्विषास्तेजसाहीनास्समन्तात्तेप्रदुद्रुवुः ॥ ८९ ॥ वल्मीकान्कोचिदासाद्य चित्ररन्ध्रान्तरोरधः ॥ अन्येचापिप्रजग्मुश्चपातालंदन्दशूककाः॥ ९० ॥ येकेचिद्भयसंत्रस्तावार्द्धक्येनानिपीडिताः ॥ बालत्वेननचान्येच शक्नुवन्तिप्रसर्पितुम् ॥ ९१ ॥ तेसर्वेब्राह्मणैर्ग्रस्ताः कृतस्यप्रतिकारकैः॥ निहताःपन्नगास्तत्रदण्डकाष्ठैस्सहस्रशः ॥ ९२ ॥ एवमुत्साद्यतान्सर्वान् ब्राह्मणास्तेगतव्यथाः ॥ तन्त्रिजातम्पुरस्कृत्य स्थानकृत्यानिचक्रिरे ॥ ९३ ॥ एवन्तन्नगरंयातं तस्मात्कालान्तरंपुनः ॥ देवदेवस्यभर्गस्य प्रसादेनद्विजोत्तमाः ॥ ९४ ॥ एतद्यःपठतेनित्यमाख्यानंनगरोद्भवम् ॥ नसर्पजम्भयंतस्य कथञ्चिज्जायतेक्वचित् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येनागरसंज्ञोत्पत्तिर्नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

ऋषयऊचुः॥ त्रिजातोब्राह्मणस्तत्र किंनामाकस्यसम्भवः ॥ किङ्गोत्रःकिञ्चसञ्ज्ञश्च कीर्तयस्वमहामुने ॥ १ ॥

ब्राह्मणसे दूसरे समय फिर वह नगर हुआहै ॥ ९४ ॥ जो पुरुष नगरसे उपजेहुये इस कथानक को पढ़ताहै उसको कहींपर किसी प्रकार भी सर्पसे उपजाहुआ डर नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये नागरसंज्ञोत्पत्तिर्नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । नागरपुरमें बसे द्विज तिन गोत्रनके नाम । इकसौ बारहवें कह्यो सूत सुबुद्धि ललाम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामुने ! उस पुरमें किस गोत्रवाला व किस

नामवाला व किससे उपजाहुआ त्रिजात ब्राह्मणथा इसको कहिये ॥ १ ॥ क्या कुलीन व गुणसंयुत व तेज, विद्यामें प्रवीण पुरुषोंसे वह त्रिजात (तीनसे पैदाहुआ) भी था कि जिसने अपने उत्तम स्थानको उद्धरण कियाहै ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि वह द्विजोत्तम सांकृत मुनि के वंशमें उत्पन्नहुआ और दत्तसंज्ञक निमिका पुत्र प्रभाव ऐसे नामसे प्रसिद्धहुआ है ॥ ३ ॥ उसने इसभांति स्थानको उधारकर याने फिर बसाकर त्रिजातेश्वर नामसे देवदेव त्रिशूलधारी शिवजीके शुभदायक मन्दिर का निर्माण किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर भलीभांति श्रद्धासंयुत होताहुआ वह त्रिजात अहर्निश उन शिव जीको आराधकर किसी समय शरीर समेत स्वर्गको चला

किङ्कुलीनैर्गुणाढ्यैर्वातेजोविद्याविचक्षणैः ॥ त्रिजातोपिवरंसोपि स्वस्थानंयेनचोद्धृतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ साङ्कृतस्यमुनेर्वंशे ससम्भूतोद्विजोत्तमः ॥ प्रभावइतिविख्यातोदत्तसंज्ञोनिमेस्सुतः ॥ ३ ॥ सएवंस्थानमुद्धृत्य चकारायतनंशुभम् ॥ त्रिजातेश्वरनाम्नाच देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४ ॥ तमाराध्यदिवानक्तं सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः॥सशरीरोगतस्स्वर्गं ततःकालेनकेनचित् ॥ ५ ॥ यस्तम्पश्यतिसद्भक्त्यास्नापयेद्विषुवेसदा॥ नत्रिजातोकुलेतस्य कथञ्चिदपिजायते ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यानिगोत्राणिनष्टानि यानिसंस्थापितानिच ॥ नामानितानिनोब्रूहितत्पुरेसूतनन्दन ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रोपमन्युगोत्रायेक्रौञ्चगोत्रसमुद्भवाः ॥ कैशोर्य्यगोत्रसम्भूतास्त्रैवणेयेद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ तेभूयोपिनसम्प्राप्ता यथागोत्रचतुष्टयम् ॥ तत्पूर्वकंशुकादीनां यन्नष्टंनागजाद्भयात् ॥ ९ ॥ शेषान्वःसम्प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान्गोत्रसम्भवा

गया ॥ ५ ॥ उन शिव जीको जो देखताहै व सदैव उत्तम भक्तिसे विषुव (सम रात्रिदिनवाले) समयमें स्नान कराताहै उसके वंशमें किसीप्रकार भी त्रिजात नहीं उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! उस पुरमें जो गोत्रनष्ट होगये व जो भलीभांति थापितहुये उन नामोंको हमलोगोंसे कहिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि उस पुरमें जो उपमन्यु गोत्रवालेथे व जो क्रौंच गोत्रसे उपजेहुये थे व कैशोर्य्य गोत्रमें उत्पन्न व त्रैवण गोत्रमें जो द्विजोत्तम पैदाहुयेथे ॥ ८ ॥ वे फिरभी गोत्र चतुको यथोक्त भलीभांति न प्राप्तहुये व उन्हींके साथ नागोंसे उपजेहुये डरसे जो शुकादिकोंका गोत्रनष्ट होगयाथा वह भी न प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ व गोत्रोंमें उपजेहुये शेष

ब्राह्मणों को मैं आपलोगों से कहताहूं कि जो कौशिक वंशमें पैदाहुयेथे वे छब्बीस कहेगये हैं ॥ १० ॥ व कश्यप वंशमें उपजेहुये सत्तासी द्विजोत्तम व लक्ष्मणवंशमें उत्पन्नहुये इक्कीस ब्राह्मण आयेथे ॥ ११ ॥ वही नष्टहोकर दुःखित होतेहुये फिर उसीस्थान में प्राप्तहुये तीन भरद्वाज गोत्रवाले व चौदह कुण्डन गोत्रवाले प्राप्तहुये ॥ १२ ॥ वैसेही बीस रैतिक गोत्रवाले व आठ पराशर गोत्रवाले व बाईसगर्ग गोत्र वाले और तेईस हारीत गोत्रवाले प्राप्तहुये ॥ १३ ॥ व पचीस भार्गव गोत्रवाले कहेगये और गौतम गोत्रवाले छब्बीस व दालभ गोत्रवाले बीस कहेगये है ॥ १४॥ व माण्डव्य गोत्रवाले तेईस तथा बह्वृचगोत्रवाले तेईस व पृथक्तासे अतिउत्तम

-न् ॥ कौशिकान्वयसम्भूताये षड्विंशतितेस्मृताः॥१०॥कश्यपान्वयसम्भूताः सप्ताशीतिर्द्विजोत्तमाः ॥ लक्ष्मणान्वयसम्भूता एकविंशतिरागताः॥११॥तत्रनष्टाःपुनःप्राप्तास्तस्मिन्स्थानेसुदुःखिताः ॥ भरद्वाजास्त्रयःप्राप्ताः कौण्डनीयाश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ रैतिकानांतथाविंशत्पाराशर्याष्टकंतथा ॥ गर्गाणांचद्विविंशञ्चहारीतानांत्रिविंशतिः ॥ १३ ॥ विदुर्भार्गवगोत्राणां पञ्चविंशदुदाहृता ॥ गौतमानाञ्चषड्विंशद्दालभानांचविंशतिः ॥ १४ ॥ माण्डव्यानान्त्रिविंशच्चबह्वृचानांत्रिविंशतिः ॥ सांकृत्यानांविशिष्टानां पृथक्त्वेनदशैवच॥ १५ ॥ वात्साःपञ्चसमाख्याताः कौशाख्यानवसप्तच ॥ शाण्डिल्याभार्गवाःपञ्चमौद्गल्याविंशतिःस्मृताः॥१६ ॥ बौद्धायनाःकौशिलाश्चत्रिंशन्मात्राप्रकीर्तिताः ॥ अथर्वापञ्चपञ्चाशन्मौशनास्सप्तसप्ततिः ॥१७॥ यजुषास्त्रिंशतिख्याताश्च्यावनास्सप्तविंशतिः ॥ आगस्त्याश्चत्रयस्त्रिंशज्जैमिनेयादशैवतु ॥ १८ ॥ नैवृताःपञ्चपञ्चाशत् पाठीनाःसप्ततिर्द्विजाः ॥ गोभिलाश्चापिकाकाश्च पञ्चपञ्चाद्वि

सांकृत गोत्रवाले दशही प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ व वत्स गोत्रवाले पांच कौशनामक सोलह कहेगये हैं व शांडिल्य और भार्गव गोत्रवाले पांच व मुद्गल गोत्रवाले बीस कहेगयेहैं ॥ १६ ॥ व बौद्धायन, कौशिल गोत्रवाले तीस संख्यक व अथर्व गोत्र वाले पचपन व उशना गोत्रवाले सतहत्तरि कहेगये हैं ॥ १७ ॥ व यजुष गोत्रवाले तीस, च्यवन् गोत्रवाले सत्ताईस, अगस्त्य गोत्रवाले तेतीस व जैमिनि गोत्रवाले दशही कहेगयेहैं ॥ १८ ॥ व निवृत गोत्रवाले पचपन, पाठीन गोत्रवाले सत्तरि

ब्राह्मण व गोभिल और काक गोत्रवाले भी पांच २ ब्राह्मण कहेगये हैं ॥ १९ ॥ व अशनस्य व दशम गोत्रवाले तीन तीन वैसेही लोकनामक साठि व ऐणिसगोत्र
वाले बहत्तरि कहेगये हैं ॥ २० ॥ व काविष्ठल, शार्कर नामक व अक्षण नामक सतहत्तरि व शार्कव गोत्रवाले सौ तथा दर्प गोत्रवाले सतहत्तरि कहेगये हैं ॥ २१ ॥
व कात्यायन गोत्रवाले तीन जानने योग्य हैं व वैदश गोत्रवाले तीन कहेगये हैं वैसेही कृष्णात्रेय गोत्रवाले व दत्तात्रेय गोत्रवाले पांच कहेगये हैं ॥ २२ ॥ व ना-
रायण, शौनक व जाबालि गोत्रवाले सौ संख्यक कहेगये हैं व हे द्विजोत्तमो! गोपाल, जामदग्न्य, शालिहोत्र व कर्णिक व भागुरायण, मातृक व त्रैणव गोत्रवाले

जाःस्मृताः ॥ १९ ॥ अशनस्याश्चदशमास्त्रयस्त्रयउदाहृताः ॥ लोकाख्यातास्तथाषष्टिरैणिसानांद्विसप्ततिः ॥ २० ॥
काविष्ठलाःशार्कराख्या अक्षणाख्यास्सप्तसप्ततिः ॥शार्कवानांशतंप्रोक्तंदार्पानांसप्तसप्ततिः ॥ २१ ॥ कात्यायनास्त्रयो
ज्ञेया वैदशाश्चत्रयःस्मृताः ॥ कृष्णात्रेयास्तथापञ्च दत्तात्रेयास्तथैवच ॥२२॥ नारायणाःशौनकेया जाबाल्याःशतस
ङ्ख्यकाः ॥ गोपालाजामदग्न्याश्चशालिहोत्राश्चकर्णिकाः॥२३॥भागुरायणकाश्चैव मातृकास्त्रैणवास्तथा॥सर्वेतेब्राह्मणाः
श्रेष्ठाः क्रमेणद्विजसत्तमाः ॥२४॥ एतेषामेवसर्वेषां संस्कारायेद्विजोत्तमाः॥चत्वारिंशतिचाष्टौच पुराप्रोक्ताःस्वयम्भुवा॥
२५ ॥ तेसर्वेंचपृथक्त्वेन निर्दिष्टाःपद्मयोनिना॥ सन्ध्यातर्पणकृत्यानि वैश्वदेवोद्भवानिच ॥ २६ ॥ श्राद्धानिपत्त्रकृत्या
निं पितृपिण्डांस्तथैवच॥यज्ञोपवीतसंयुक्ताःप्रवराश्चैवकृत्स्नशः ॥२७ ॥ तथामौञ्जीविशेषाच्च शिखाभेदाःप्रकीर्तिताः ॥
त्रिजातेनसमाराध्य देवदेवंपितामहम् ॥ २८ ॥ तेषांकृतेद्विजेन्द्राणामात्मकीर्तिकृतेसदा ॥ २९ ॥ ऋषयऊचुः ॥

जे थे वे सब द्विजोत्तम क्रमसे प्राप्तहुये ॥ २३ । २४ ॥ हे द्विजोत्तमो! इन्हीं सबोंके जिन अड़तालीस संस्कारों को पुरातन समय ब्रह्माने कहाथा ॥ २५ ॥ उन सबोंको
पितामह जीने पृथक्ता से निर्देश कियाहै व सन्ध्या, तर्पण कार्य्य व वैश्वदेवसे उपजेहुये कर्मोंको ॥ २६ ॥ व श्राद्धों,पत्त्रकार्य्यों को वैसेही पितृपिण्डों को व यज्ञो-
पवीत संयुत सम्पूर्णतासे प्रवरों को और मौञ्जी के भेदसे शिखाओं के भेदोंके त्रिजातने देवदेव पितामह जीको भलीभांति आराधकर सदैव अपने यशके लिये उन

द्विजेन्द्रों के निमित्त कीर्त्तन किया है ॥ २७ । २८ । २९ ॥ ऋषिलोग बोले कि त्रिजात महात्माने किस प्रकार ब्रह्मा जीको सन्तोषित कियाहै व उन महात्मा पितामह जीने कैसे कर्मकांड को अलग कियाहै ॥३०॥ इस सब वृत्तान्तको विस्तारसे कहिये क्योंकि हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि उस त्रिजात के लिये समस्त ब्राह्मणोंने ब्रह्माको प्रसन्न किया कि हे विभो ! इसीने हमलोगोंके समस्त स्थानको उद्धार कियाहै ॥ ३२ ॥इसलिये हे विभो ! इसको अतिउत्तम वेद ज्ञानको दीजिये कि जिससे इस पुरोत्तम में कर्म विशेषहोवैं ॥ ३३॥ व हे पद्मज, देवनायक ! तुम्हारी प्रसन्नतासे जिसभांति इस त्रिजातकी गुरुता होवै वैसा न्याय

कथंसन्तोषितोब्रह्मा त्रिजातेनमहात्मना ॥ कर्मकाण्डंकथंभिन्नं कृतंतेनमहात्मना ॥ ३० ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यार्थंब्राह्मणैस्सर्वैस्तोषितःप्रपितामहः ॥ अनेनैवोद्धृतंस्थानमस्माकंसकलंविभो॥ ३२ ॥ तस्मादस्यविभोयच्छ वेदज्ञानमनुत्तमम् ॥ येनकर्मविशेषाश्च जायन्तेत्रपुरोत्तमे ॥ ३३ ॥ एतस्यचगुरुत्वंच प्रसादात्तवपद्मजा ॥ यथाभवतिदेवेश तथानीतिर्विधीयताम् ॥ ३४॥ येनविज्ञायतेसर्वं वेदार्थंकर्मयाज्ञिकम् ॥ ततःप्रोवाचतान् विप्रान्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥ एषवेदार्थसम्पन्नो भविष्यतिमहायशाः ॥ भर्तृयज्ञइतिख्यातो यज्ञकर्म्मविचक्षणः ॥ ३६ ॥ यत्किञ्चिद्वक्तियुष्माकं क्रियाकाण्डमशङ्कितैः ॥ तत्कार्यंस्वर्गमोक्षाय ममवाक्यात्प्रबोधितैः ॥ ३७ ॥ वेदार्थानेषसर्वेषां युष्माकंयोजयिष्यति॥येचान्येषुचदेशेषु स्थानेषुचगताःक्वचित् ॥ ३८ ॥ एतत्स्थानम्परित्यज्य सत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ वेदार्थानेवबुद्ध्वैष सत्कर्म्मप्रचरिष्यति ॥ ३९ ॥ नानृतेवाथपापेच वाणीचास्यचरिष्यति॥

किया जावै ॥ ३४ ॥ कि जिससे वेदार्थक समस्त याज्ञिक कर्म विशेषकर जानाजावै तदनन्तर ब्रह्मा जीने प्रसन्न अन्तःकरण से उन ब्राह्मणों से कहा ॥ ३५ ॥ कि यह वेदोंके अर्थमें सम्पन्न व बड़ा यशस्वी और यज्ञके कार्य्यमें प्रवीण भर्तृयज्ञ ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ ३६ ॥ व तुमलोगों से जो कुछ कर्मकाण्ड यह कहै स्वर्ग व मोक्षके लिये वह मेरे वचनसे समझाये हुये व सन्देहरहित तुम सबोंको करना चाहिये ॥ ३७॥ व हे द्विजोत्तमो ! यह तुम सबोंको व जो इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यदेशों व स्थानों को चलेगये हैं उनको वेदार्थों में युक्त करैगा यह सत्यहै व यह वेदार्थोंहीको जानकर उत्तम कर्मका प्रचार करैगा ॥ ३८ । ३९ ॥ व झूंठ तथा पापमें इस

की वाणी न जावैगी ऐसा कहकर इसके अनन्तर पितामह (ब्रह्मा) जी चुपहोरहे॥ ४० ॥ व भर्तृयज्ञनेभी ब्राह्मणों के हितके लिये उनसब शुभदायक यज्ञकर्मों को किया केवल उस भर्तृयज्ञ के वेदार्थ के लिये दशप्रमाण वाले वे सब द्विजोत्तम भलीभांति कहेगये इसप्रकार चौंसठि गोत्रोंके मध्यमें वे द्विजोत्तमहुये ॥ ४१।४२ ॥ उसी कारण त्रिजात महात्मासे वे द्विजोत्तम भलीभांति लायेगये उन ब्राह्मणों के बीचमें जो पन्द्रह सौ एक ठिकाने पैदाहुये ॥ ४३ ॥ उनको पहले आय व्ययोद्भव पूर्वक याने पैदाहुये व मरेहुये मनुष्यों समेत उन भर्तृयज्ञ ने अरसठि के विभागसे सामान्य भागों के भोगी किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर तबसे लगाकर सब पुरुषों

एवमुक्त्वासदैवेशोविररामपितामहः ॥ ४० ॥ भर्तृयज्ञोपितास्सर्वाश्चक्रेयज्ञक्रियाःशुभाः ॥ ब्राह्मणानांहितार्थाय श्रुत्यर्थंतस्यकेवलम् ॥ ४१ ॥ दशप्रमाणसम्प्रोक्तास्सर्वेतेब्राह्मणोत्तमाः ॥ चतुष्षष्टिषुगोत्रेषु एवन्तेब्राह्मणोत्तमाः ॥ ४२ ॥ तेनतत्रसमानीतास्त्रिजातेनमहात्मना॥ तेषामेकत्रजातानिदशपञ्चशतानिच ॥ ४३ ॥ सामान्यभागभुक्तानि तानिते नकृतानिच ॥ अष्टषष्टिविभागेन पूर्वमायव्ययोद्भवम् ॥ ४४॥ तत्रासीदथगोत्रेषु पुरुषाणांप्रसङ्ख्यया ॥ ततःप्रभृतिसर्वेषां सामान्येनव्यवस्थितिः ॥ ४५ ॥ त्रिजातस्यचवाक्येनयेनदूरादपिद्रुतम् ॥ समागच्छन्तिविप्रेन्द्राः पुरवृद्धिःप्रजायते ॥ ४६ ॥ नकश्चिद्यातिसंत्यक्त्वा स्थानादन्यत्रचद्विजः ॥ ततस्तेषांसुतैःपौत्रैर्नप्तृभिश्चसहस्रशः ॥ ४७ ॥ दौहित्रैर्भागिनेयैश्च भूयोभूरिप्रपूरितम् ॥ तत्पुरंवृद्धिमापन्नैर्दूर्वाङ्कुरमिवद्विजाः ॥ ४८ ॥ काण्डात्काण्डात्प्ररोहद्भिस्संख्याहीनैरनेकधा ॥ ४९ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंगोत्रसङ्ख्यानकंशुभम् ॥ ऋषीणांकीर्त्तनञ्चापि सर्वपातकनाश

की संख्यासे वहां सामान्यतासे गोत्रोंमें विशेषकर स्थितहुई ॥ ४५ ॥ कि जिससे उस त्रिजात के वचनसे दूरसेभी शीघ्रही द्विजेन्द्र भलीभांति आयेथे व पुरकी बढ़ती होतीथी॥४६॥और कोई ब्राह्मण पुरको छोडकर स्थानसे अन्यत्र नहीं जाताथा तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! फिर वृद्धिको प्राप्तहुये उनके हजारों पुत्रों व पौत्रों व नातियों तथा कन्याओं के पुत्रोंसे व भागिनेयों (भानजों) से वह पुर बहुतही परिपूर्ण होगया जैसे कि प्रति ग्रन्थिसे जमेहुये असंख्य व अनेक प्रकार के पौडोंसे दूबका अंकुर वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४७ । ४८ । ४९ ॥ सूतजी बोले कि यह शुभदायक समस्त गोत्रसंख्यानक तुमलोगोंसे कहागया समस्त पातकोंके नाश करनेवाले ऋषियोंका कीर्त्तन भी कहा

व जन्मसे लगाकर
गया ॥ ५०॥ जो मनुष्य भक्तिसे सदैव इस चरितको निश्चयकर भलीभांति पढ़ताहै उसके सन्तान का नाश भूतलमें कभी नहीं होताहै ॥ ५१ ॥ व जन्मसे लगाकर
मरण पर्य्यन्त के पातकोंसे छूटजाता है व कभी प्रियसे उपजेहुये वियोग को नहीं देखताहै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविर
चितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येमुनिगोत्रसंख्यादिकीर्त्तनंनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥
दो० । अम्बरेवती कर रुचिर अहै जौन माहात्म्य । इकसौतेरह मध्य महँ कह्यो सोई याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि वहांपर वैसेही और भी अतिप्रसिद्ध रेवती देवीहै

नम् ॥ ५० ॥ यश्चैतत्पठतेसम्यक्सदाचापिचभक्तितः ॥ नस्यात्तस्यकुलच्छेदः कदाचिदपिभूतले ॥ ५१ ॥ अथवि
मुच्यतेपापैराजन्ममरणोद्भवैः॥नपश्यतिवियोगञ्चकदाचित्प्रियसम्भवम् ॥ ५२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृ
तीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्ये मुनिगोत्रसंख्यादिकीर्तनंनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ तथान्यापिचतत्रास्तिसुविख्याताचरेवती॥देवीकामप्रदापुंसां बालकानांसुखप्रदा ॥ १ ॥ यांदृष्ट्वापूजयि
त्वाथ चैत्राष्टम्यांविशेषतः ॥ शुक्लायांनाप्नुयान्मर्त्यः कुटुम्बव्यसनंकचित् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनसंस्थापितातत्र
सादेवीवाथरेवती ॥ किम्प्रभावासुरूपासासूतपुत्रवदस्वनः॥ ३॥ सूतउवाच॥ यदाशेषेणसंदिष्टानानानागाविषोल्बणाः॥
पुरस्यास्यविनाशाय क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ ४ ॥ तदातस्यप्रियासाच पुत्रशोकेनपीडिता ॥ स्वयमेवाग्रतोगत्वा भ
क्षयामासतंद्विजम् ॥ ५ ॥ कुटुम्बेनसमायुक्तं येनपुत्रोनिपातितः ॥ अथतस्यद्विजेन्द्रस्य बालवैधव्यसंयुता ॥ ६ ॥

जोकि पुरुषोंको वाञ्छितदायिनी व बालकोंको सुखदात्री है ॥ १ ॥ जिसको देखकर व विशेषतासे शुक्लपक्षवाली चैत्रकी अष्टमीमें पूजकर मनुष्य कहीं परिवार के क्लेश
को नहीं पावैहै ॥२॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहां पर उस रेवती देवी को किसने भलीभांति थापन कियाहै और वह रूपवती किस प्रभाववाली है इसको हम
लोगोंसे कहिये ॥३॥ सूतजी बोले कि जब शेषजीने इस पुरके विनाशनेके लिये विषसे विकराल व क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाले अनेक प्रकारके नागोंको आज्ञा दिया
है ॥४॥ तब पुत्रशोचसे पीड़ित उन शेषजीकी उस प्यारी (स्त्री)ने आपही अगाड़ी जाकर परिवार समेत उस ब्राह्मण को भक्षण करलिया कि जिसने पुत्रको मारा था

इसके अनन्तर जो भद्रिका नामक उस द्विजेन्द्रकी बहिन हुई है बालवैधव्यसे संयुत व तपस्या युक्त तथा ब्रह्मचर्य्य में हर्ष कियेहुई उसने सब परिवारको खाया हुआ
देखकर॥ ५। ६। ७॥ तदनन्तर हाथ से जललेकर नागकी स्त्री से कहा कि हे दोजिह्वावाली नागिनि ! जिस लिये कि तुमने मेरे परिवारको नाश करदिया व मेरे
भाई लोगोंसे उपजेहुयेदुःखको दिखलाया उसीसे नागयोनिमें वर्तमानहुई तुमको मैं शापदेतीहूं कि वैसेही तुमभी अतिनिन्दित मनुष्यभावको भलीभांति पाकर व मनुष्य
से उपजे हुये पतिको पाकर व पुत्र,पोतोंको प्राप्तहोकर और उनसबोंके विनाशसे उपजेहुये बड़े भारी मनुष्यवाले दुःखको पावो इसके अनन्तर भद्रिकासे उपजे हुये उस

भगिन्यासीत्तपोयुक्ताब्रह्मचर्य्यकृतक्षणा॥ साहृष्ट्वाभक्षितंसर्वं भद्रिकाख्याकुटुम्बकम्॥ ७॥ नागपत्नींततःप्राहजल
मादायपाणिना॥ यस्मात्त्वयाकुटुम्बंमे नाशंनीतंद्विजिह्वके॥ ८॥ दर्शितंचमहद्दुःखं ममबन्धुजनोद्भवम्॥ तथा
त्वमपिसम्प्राप्य मानुषत्वंसुगर्हितम्॥ ९॥ मानुषंपतिमासाद्य पुत्रपौत्रानवाप्यच॥ तेषांविनाशजंदुःखं महान्तम्मा
नुषंतथा॥ १०॥ नागत्वेवर्तमानायाशापंतेनददामिते॥ सापिश्रुत्वाथतंशापं रेवतीभद्रिकोद्भवम्॥ ११॥ क्रोधेनम
हताविष्टा अपश्यत्तांद्रुतंतथा॥ अथतस्यास्तनुंप्राप्य नागीदंष्ट्राविषोल्बणा॥ १२॥ जगामशतधानाशं विविधेनत्वचं
क्वचित्॥ततस्सालज्जयाविष्टा स्वरक्तप्लुताननना॥१३॥ विषसाविश्रमार्थाय सन्निविष्टाधरातले॥ एतस्मिन्नन्तरेनागा
स्तथान्येचसमागताः॥ १४॥ रेवतींतेसमालोक्य तथारूपांभयान्विताम्॥ प्रोचुश्चकिमिदंदेवि तववक्त्रेरुजास्पदम्॥
१५॥ अथवाकिम्प्रभावोयं कस्यचिद्रक्तसम्पदा॥१६॥ रेवत्युवाच॥ येयंदुष्टतमाकाचिद्दृश्यतेदुष्टतापसी॥अस्याजा

शापको सुनकर उस रेवतीनेभी॥८।९।१०।११॥बड़े क्रोधसे संयुक्त होकर उसको शीघ्रही डसलिया इसकेअनन्तर विषसे भयङ्कर नागिनीकी दाढ़ सौ खंड होकर नाश होगई
व कहींपर त्वचाको न बेध किया इसके अनन्तर लज्जासे संयुक्त व अपने रक्तसे डूबे हुये मुखवाली वह नागिनि॥ १२।१३॥ विषादमें प्राप्त होतीहुई विश्राम करने
के लिये भूमिमें भलीभांति बैठगई इसी अवसरमें वैसेही और भी नाग भलीभांति आये॥ १४॥ व उन्होंने वैसे रूपवाली व भयसंयुक्त रेवतीको भलीभांति देखकर
कहा कि हे देवि ! तुम्हारे मुखमें क्या यह व्याधिस्थान है॥ १५॥ अथवा किसीके रक्तकी सम्पदासे यह क्या प्रभावहै॥ १६॥ रेवती बोली कि हे नागोत्तमो! जो

यह अतिदुष्टा कोई निन्दित तपस्विनी देखपड़तीहै मेरे मुखमें यह विकार इसीसे उत्पन्नहुआ है ॥ १७ ॥ हे सर्पोत्तमो ! जिस दुर्बुद्धि ब्राह्मण के पुत्रने इस समय मेरे पुत्रको मारा है उसी की यह बडी दुष्टा बहिन है जोकि मेरे नाशके लिये भलीभाति स्थित है व उसी से इससमय मेरे मुख में रक्त है इसलिये शीघ्रही भक्षण करिये भक्षण करिये ॥ १८ । १९ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित होतेहुये उन सर्पोंने साधारण स्त्रीकी नाई उस तपस्विनीके समस्त अङ्गोंमें साथही डसलिया ॥ २० ॥ तदनन्तर जैसे शेषपत्नी (नागिनि) की दाढ़ टूटगईथी वैसेही उन सर्पोंकेभी मुखसे दाढ़ निकलगई उसके उपरान्त रुधिर पैदाहुआ ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर नागों

तोविकारोयं ममास्येनागसत्तमाः ॥ १७ ॥ तस्मादेषामहादुष्टा भगिनीतस्यदुर्मतेः ॥ येनमेनिहतःपुत्रो द्विजपुत्रेणसा
म्प्रतम् ॥ १८ ॥ भक्ष्यतांभक्ष्यतांशीघ्रं ममनाशायसंस्थिता ॥ साम्प्रतम्मन्मुखेतेन रुधिरंपन्नगोत्तमाः ॥ १९ ॥ अथ
तेपन्नगाःक्रुद्धाददंशुस्तान्तपस्विनीम् ॥ समंसर्वेषुगात्रेषु यथान्याम्प्राकृतांस्त्रियम् ॥ २० ॥ ततस्तेषामपितथासुखा
द्दंष्ट्राविनिर्गता ॥ रुधिरंचततोजज्ञे शेषपत्न्यायथातथा ॥२१॥ अथतस्याःप्रभावन्तं दृष्ट्वातेनागसुन्दराः ॥ शेषाभयप
रित्रस्ताः प्रजग्मुश्चदिशोदश ॥ २२ ॥ भद्रिकापिजगामाशु स्वाश्रमंप्रतिदुःखिता ॥ भयत्रस्तैस्समन्ताच्चवीक्ष्य
माणामहोरगैः ॥ २३ ॥ ततस्सर्वंसमालोक्य त्यज्यमानंमहोरगैः ॥ तत्स्थानंस्वजनैर्मुक्तंदुःखेनमहतान्वितैः ॥ २४ ॥
जगामान्यत्रसासाध्वी सम्यग्व्रतपरायणा ॥ तीर्थयात्राम्प्रकुर्वाणा परिबभ्राममेदिनीम् ॥ २५ ॥ एवमुद्वासितेस्थाने त
स्मिन्सारेवतीतदा ॥ स्मृत्वातंभद्रिकाशापंदुःखेनमहतान्विता ॥ २६ ॥ कथम्मेमानुषेगर्भेशापाद्वासोभविष्यति ॥ मानु

में सुन्दर वे शेष उसके उस प्रभाव को देखकर भयभीत होतेहुये दशो दिशाओंमें चलेगये ॥२२॥ व भयभीत महासर्पोंसे चारोंओर देखी जातीहुई वह दुःखित भद्रिका भी शीघ्रही अपने आश्रम को चलीगई ॥ २३ ॥ तदनन्तर बड़े दुःखसे संयुत अपने जनों से छूटे व महासर्पों से त्यागेहुये उस समस्त स्थान को भलीभांति देखकर भलीभांति व्रतों में तत्पर उस पतिव्रता भद्रिका ने अन्यत्र गमन किया व तीर्थयात्राको करतीहुई पृथ्वीका भ्रमण किया ॥ २४ । २५ ॥ व जब वह स्थान इस प्रकार उजाड़ होगया तब रेवती उस भद्रिकाके शापको स्मरणकर बड़े दुःखसे संयुतहुई ॥ २६ ॥ कि शापसे मनुष्यवाले गर्भ में मेरा कैसे निवास होगा व मनुष्य पति से

मेरा कैसे संयोग होगा ॥ २७ ॥ यह पुत्रसे उपजाहुआ दुःख हृदय में वैसे नहीं बाधाकरता है कि जैसे यह मनुष्यगर्भ में मनुज प्रति निवास दुःख देताहै ॥ २८ ॥ वैसेही दांतोंसे त्यागेहुये अपने मुखको कैसे पतिको दिखलाऊंगी क्योंकि मेरे इस घावमें क्षार (प्रवाह) स्थितहै ॥ २९ ॥ इसलिये इसी क्षेत्रमें विशेषकर टिकीहुई मैं तपस्या करूंगी और बिन पुत्रके कियेहुये घरको प्राप्तहोकर मैं क्या करूंगी ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस समय भलीभांति श्रद्धासंयुत होतीहुई उस रेवतीने सुरेश्वरी पार्वती देवीको थापकर चन्दन,पुष्प, उपहार से व अनेकप्रकारके नैवेद्यों से व गाने, नाचने और मनोहर बाजनों से आराधन किया ॥ ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई सुरे-

षेणचकान्तेनप्रभविष्यातिसङ्गमः ॥ २७ ॥ नैतत्पुत्रोद्भवंदुःखन्तथामांबाधतेहृदि ॥ यथेयंमानुषङ्गर्भेसंवासोमानुषम्प्र
ति ॥ २८ ॥ तथादशनसंत्यक्तंकथंभर्तुस्स्वमाननम् ॥ दर्शयिष्यामिभूयोपित्तेत्क्षारोत्रमेस्थितः ॥ २९ ॥ तस्मात्तप
श्चरिष्यामिक्षेत्रेऽत्रैवव्यवस्थिता ॥ किङ्करिष्यामिसम्प्राप्यगृहम्पुत्रंविनाकृतम् ॥ ३० ॥ ततश्चाराधयामाससम्यक्छ्र
द्धासमन्विता ॥ अम्बिकांसातदादेवींस्थापयित्वासुरेश्वरीम् ॥ ३१ ॥ गन्धपुष्पोपहारेणनैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ गीतनृत्यै
स्तथावाद्यैर्मनोहारिभिरेवच ॥ ३२ ॥ ततःकतिपयाहस्यतस्यास्तुष्टासुरेश्वरी ॥ प्रोवाचवरदास्मीतिप्रार्थयस्वहृदिस्थि
तम् ॥ ३३ ॥ रेवत्युवाच ॥ अहंशप्तापुरादेविब्राह्मण्याकारणान्तरे ॥ पतिंमानुषमासाद्यस्वयम्भूत्वाचमानुषी ॥ ३४ ॥
ततस्सम्प्राप्स्यसिफलंतेषांनाशसमुद्भवम् ॥ महद्दुःखंस्वपुत्रोत्थंममशापान्निपीडिता ॥ ३५ ॥ तथाममसुखाद्दंष्ट्रास्स
न्नीताश्चसुरेश्वरि ॥ तेषांचसम्भवस्तावत्कथंस्यात्तेप्रभावतः ॥ ३६ ॥ भवन्तुतनयास्माकंयथावंशविवर्द्धनाः ॥ एतन्मे

श्वरी पार्वतीने किसी दिन उस रेवती से कहा कि मैं वर देनेवालीहूं तुम हृदय में टिकेहुए मनोरथको मांगो ॥ ३३ ॥ रेवती बोलीं कि हे देवि ! पुरातन समय अन्य कारण मे मुझको ब्राह्मणीने शाप दियाहै कि तुम आपही मानुषी (स्त्री) होकर व मनुष्य पतिको पाकर ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मेरे शापसे पीड़ित होती हुई तुम उनके नाशसे उपजेहुए फलको व अपने पुत्रसे उठेहुए दुःखको पावोगी ॥ ३५ ॥ हे सुरेश्वरि ! वैसेही मेरे मुखसे दाढ़ें हरलीगई तुम्हारे प्रभावसे उनकी उत्पत्ति निश्चयकर किस

प्रकार होवै ॥ ३६ ॥ व हे देवि ! जिसप्रकार मेरे पुत्र वंशके विशेषकर बढ़ानेवाले होवैं यही मेरा अभिलाषहै मैं और वस्तु नहीं मांगतीहूं ॥ ३७ ॥ देवी बोली कि हे शोभने ! इस विषय में तुमको किसीप्रकार भी भय न करना चाहिये जोकि मनुष्य गर्भमें निवास व मनुष्य पति होगा ॥ ३८ ॥ इसलिये हे उत्तम वर्णवाली रेवती ! इस समय तुम्हारे लिये जो दुःख नाशकारक व सत्य वचनको तुमसे कहतीहूं उस मेरी वाक्यको सुनो ॥ ३९ ॥ कि देवताओं के कार्यकी अवश्य सिद्धिके लिये तुम्हारा पति इस त्रिलोक में मनुष्यके शरीरको करके निरसन्देह उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ हे शुभे ! वैसेही ब्राह्मण की शापसे तक्षकनामक नाग सौराष्ट्रदेशमें रैवतनामक राजा

वाञ्छितन्देविनान्यत्संप्रार्थयाम्यहम् ॥ ३७ ॥ देव्युवाच ॥ नात्रत्रासस्त्वयाकार्यःकथञ्चिदपिशोभने ॥ मनुष्यगर्भसंवासोभर्त्ताचभवितानरः ॥ ३८ ॥ तस्माच्छृणुष्वमेवाक्यंयत्त्वांवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ दुःखनाशकरन्तुभ्यंसत्यञ्चवरवर्णिनि ॥ ३९ ॥ उत्पत्स्यतिनसन्देहोदेवकार्यप्रसिद्धये ॥ तवभर्त्तात्रिलोकेस्मिन्कृत्वामानुषविग्रहम् ॥ ४० ॥ तत्क्षकाख्यस्तथानागःद्विजशापात्तथाशुभे ॥ सौराष्ट्रविषयेराजारैवताख्योभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यक्षेमङ्करीभार्यानागवंशसमुद्भवा ॥ भविष्यतिनसन्देहोविशिष्टाविप्रशापतः ॥ ४२ ॥ तस्यागर्भंसमासाद्यत्वंजन्मसमवाप्स्यसि ॥ समरूपस्यशेषस्यपुनर्भार्याभविष्यसि ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वन्देविमाशोकङ्कार्य्येस्मिन्कुरुशोभने ॥ तेनमानुषजेगर्भेसम्भूतिस्सम्भविष्यति ॥ ४४ ॥ तत्रपश्यसियन्नाशंस्वकुटुम्बसमुद्भवम् ॥ हितायतदवस्थायास्त्वंभविष्यस्यसंशयम् ॥ ४५ ॥ ततःपरंयुगंप्राप्तंयतोभीरुभविष्यति ॥ तदूर्ध्वमृत्युधर्माणोम्लेच्छास्स्थास्यन्तिसर्वतः ॥ ४६ ॥ ततस्स्वर्गनिवासार्थंभगवान्देव

होगा ॥ ४१ ॥ व उसकी नागवंशमें उपजीहुई उत्तमा क्षेमंकरीनामक स्त्री निरसन्देह होगी ब्राह्मणकी शापसे उसके गर्भको प्राप्तहोकर तुम जन्म पावोगी फिर शेषके समान रूपवाले पुरुषकी स्त्री होगी ॥ ४२।४३ ॥ इसलिये हे शोभने, देवि ! तुम इस कार्य्य में शोच मतकरो उसी कारण मनुष्य से उपजेहुए गर्भमें उत्पत्ति होगी ॥४४॥ व उसी मनुष्य योनिमें अपने जो कुटुम्ब से उपजाहुआ नाशहै उसको देखोगी व उस दशाके हितके लिये तुम निरसन्देह होगी ॥ ४५ ॥ हे भीरु ! तदनन्तर और युग प्राप्त होगा उसके उपरान्त मृत्यु धर्मवाले याने मनुष्य म्लेच्छ होकर सब ओर स्थित होवैंगे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर स्वर्ग में निवास के लिये देवकी के पुत्र भगवान्

(कृष्ण) जी आपही समस्त कुलको नाश करैंगे ॥ ४७ ॥ व तुम्हारे मुखमें फिर मनोहर दाढ़ैं होंगी इसलिये तुम पातालको जाओ जहां कि तुम्हारा पति टिकाहै ॥ ४८ ॥ हे कल्याणि ! और भी जो कुछ मनोरथ तुम्हारे चित्तमें विशेषतासे टिकाहो उसको कहो क्योंकि मेरे बड़ी प्रसन्नता स्थितहै ॥ ४९ ॥ रेवतीजी बोलीं कि हे देवेशि ! मेरे नामसे तुमको सदैव इसी स्थान में टिकना चाहिये जिससे स्थावर, जङ्गम समेत त्रिलोकमें मेरा यश होवै ॥ ५० ॥ वैसेही नागलोक से आकर मैं सदैव अष्टमी, चतुर्दशीमें और विशेषकर नवमी दिनमें तुमको पूजूंगी ॥ ५१ ॥ व कुआरके शुक्लपक्षमें समस्त नागों से संयुत व परम श्रद्धायुक्त होकर मैं तुम्हारा बड़ा पूजन करूंगी ॥

तस्मात्त्वङ्गच्छपाताले स्वभर्त्ता यत्र तिष्ठति ॥ भविष्यन्ति पुनर्द्दंष्ट्रास्तव वक्त्रे मनोरमाः ॥ हरिष्यति कुलं सर्वे स्वयमेव न संशयः ॥ ४७ ॥ कीसुतः ॥ हरिष्यतिकुलंसर्वंस्वयमेवनसंशयः ॥ ४७ ॥

कीसुतः ॥ हरिष्यतिकुलंसर्वंस्वयमेवनसंशयः ॥ ४७ ॥ भविष्यन्तिपुनर्द्दंष्ट्रास्तववक्त्रेमनोरमाः ॥ तस्मात्त्वङ्गच्छपा
तालंस्वभर्त्तायत्रतिष्ठति ॥ ४८ ॥ अन्यच्चापियदिष्टन्तेकिञ्चिच्चित्तेऽव्यवस्थितम् ॥ तत्कीर्तयस्वकल्याणिमहांस्तोषोमम
स्थितः ॥ ४९ ॥ रेवत्युवाच ॥ स्थानेस्थेयंसदात्रैवममनाम्नासुरेश्वरि ॥ येनमेजायतेकीर्तिस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ५० ॥
तथाहंनागलोकाच्चचतुर्द्दश्यष्टमीषुच ॥ सदात्वांपूजयिष्यामिविशेषान्नवमीदिने ॥ ५१ ॥ आश्विनस्यसितेपक्षेसर्वैर्नागैः
समन्विता ॥ प्रपूजांतेविधास्यामिश्रद्धयापरयायुता ॥ ५२ ॥ तस्मिन्नहनियेऽन्येचपूजान्दास्यन्तितेनराः ॥ मापश्यन्तुप्र
सादात्तेनरास्तेवल्लभक्षयम् ॥ ५३ ॥ देव्युवाच ॥ एवंभद्रेकरिष्यामिवासोमेत्रभविष्यति ॥ त्वन्नाम्नापूजकानाञ्चश्रेयोदा
स्यामितेसदा ॥ ५४ ॥ महानवमिजेचाह्निविशेषेणशुचिस्मिते ॥ ५५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तातपासाथरेवतीशेषव
ल्लभा ॥ जगामस्वगृहंपश्चाद्धर्षेणमहतान्विता ॥ ५६ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीतस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिता ॥ तन्नाम्नाकामदानन्दा

॥ ५२ ॥ व उसी दिन जे अन्य पुरुष तुमको पूजन देवैं वे तुम्हारी प्रसन्नता से प्रियका विनाश मतिदेखैं ॥ ५३ ॥ देवी बोलीं कि हे कल्याणि ! मैं ऐसाही करूंगी व यहां मेरा निवास होगा और तुम्हारे नामसे पूजक पुरुषोंको मैं सदैव कल्याण दूंगी ॥ ५४ ॥ व हे शुचिस्मिते याने पवित्र मुसक्यानवाली ! महा नवमी से उपजेहुए दिनमें पूजन करनेवाले जनोंको विशेषकर कल्याण दूंगी ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले कि उस देवीसे इसभांति कहीहुई वे शेषजी की प्यारी (स्त्री) रेवती पश्चात् बड़े हर्षसे संयुत होती हुई निजघरको चलीगई ॥ ५६ ॥ तबसे लगाकर कामनाओंकी दात्री व समस्त विपत्तियों की विनाशनेवाली व आनन्दरूपिणी वे देवीजी उस नामसे विशेषकर टिकती

भई ॥ ५७ ॥ वे दुर्गा अम्बा कहीजाती हैं और वह नागपत्नी रेवती कहलाती है उसी कारण भूतलमें मनुष्यों से अम्ब रेवती भलीभांति कहीजाती हैं ॥ ५८ ॥ व कुं-
वार महीने के शुक्लपक्षमें नवमी तिथिको सावधान होताहुआ श्रद्धासंयुत जो पुरुष पवित्र होकर उन अम्ब रेवतीको पूजन करै है ॥ ५९ ॥ वह बर्ष भरतक निजवंश से
उपजेहुए दुःखको नहीं पाताहै व ग्रह भूत पिशाचों से उठेहुए व अन्य आपत्तियों से संयुत बालक उसके आगे धराहुआ दोषो से छूटजाताहै ॥ ६० । ६१ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येअम्बारेवतीमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ❀ ॥

सर्वव्यसननाशिनी ॥ ५७ ॥ अम्बासाकीर्त्यतेदुर्गारेवतीसोरगप्रिया ॥ ततस्सङ्कीर्त्यतेलोकैर्भूतलेचाम्बरेवती ॥ ५८ ॥ य
स्तांश्रद्धासमेपेतःशुचिर्भूत्वाप्रपूजयेत् ॥ नवम्यामश्विनेमासेशुक्लपक्षेसमाहितः ॥ ५९ ॥ नससंवत्सरंयावद्व्यसनंस्वकुलो
द्भवम् ॥ तस्याग्रेनिहितंबालंयुक्तंदोषैर्विमुच्यते ॥ ६० ॥ ग्रहभूतपिशाचोत्थैस्तथान्यैरपिचापदैः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येअम्बारेवतीमाहात्म्यन्नामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥
ऋषयऊचुः ॥ भर्तृकाख्यापुराप्रोक्तायात्वयासूतनन्दन ॥ कस्मात्तस्याःशरीरात्तादंष्ट्रानागसमुद्भवाः ॥ १ ॥ विशी
र्णाःकिंप्रभावश्चतत्तपस्सूतनन्दन ॥ किंवामन्त्रप्रभावश्चएतन्नःकौतुकम्परम् ॥ २ ॥ यन्मानुषशरीरेपिविशीर्णास्तावि
षोल्वणाः ॥ नागानान्तुविशेषेणतस्मात्सर्वंप्रकीर्तय ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ सापुराब्राह्मणीबाल्येवर्तमानापितुर्गृहे ॥ वैध
व्येनसमायुक्ताजाताकर्मविपाकतः ॥ ४ ॥ ततोबाल्येपिसुश्रावशास्त्राणिविविधानिच ॥ देवयात्राम्प्रचक्रेथतीर्थेस्नाति

दो० ॥ भूतलमें उपज्यो यथा तीर्थ भद्रिका नाम । इकसौ चौदहवें कह्यो सोइ चरित अभिराम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत पुत्र! पुरातन समय तुमसे जो भद्रिका
नामक कहीगई है उसके शरीरके स्पर्श से वे नागसे उपजीहुई दाढ़ें किसकारण टूट गई व हे सूतनन्दन! क्या उसके तपका प्रभाव था अथवा क्या मंत्रका प्रभाव था
यह हमको परम आश्चर्य्य है ॥ १ । २ ॥ जिस कारण कि विशेषकर विषसे भयङ्करनागोंकी वे दाढ़ें मनुष्यके शरीर में भी टूटगईं इसलिये समस्त वृत्तान्त को कहिये ॥
३ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय पिताके घरमें बाल्यावस्थामें वर्तमान वह ब्राह्मणी कर्म के फलसे वैधव्यता से संयुतहुई ॥ ४ ॥ तदनन्तर शिशुता में भी उसने

अनेकप्रकारों के शास्त्रोंको सुना व देवयात्रा किया इसके अनन्तर सावधान होतीहुई वह तीर्थमें स्नान करती थी ॥ ५ ॥ वैसेही सावधान होतीहुई उसने नित्य प्रातःकाल उठकरके केदारदेवको जाकर भक्तिसे उनके अगाड़ी गानकिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उसके गानेकी आकांक्षा से ब्राह्मणरूपके धारनेवाले तक्षक व वासुकी दोनों पाताल से भलीभांति आकर प्राप्तहुए ॥ ७ ॥ और उसने भी वहांपर उससमय समस्त तालों से भूषित व मूर्छना (स्वर के चढ़ाने व उतारने के क्रम) से संयुत व सातों स्वरों से शोभित व अलग २ यतियों (विरामों) और ग्रामों व वर्णग्रामों से संयुत बड़ा भारी गानकिया व तत (बीणादिक बाजा) व वितत, घन (झांझ मंजीरादि) व सुषिर

समाहिता ॥ ५ ॥ तथाकेदारदेवञ्चगत्वानित्यंसमाहिता ॥ प्रातरुत्थायगीतञ्चभक्त्याचक्रेतदग्रतः ॥ ६ ॥ ततस्तद्गीतलौल्येनपातालात्समुपेत्यच ॥ तक्षकोवासुकिश्चैवद्विजरूपधरावुभौ ॥ ७ ॥ सापितत्रमहद्गीतंतालैस्सर्वैरलंकृतम् ॥ मूर्च्छनाभिस्समोपेतंसप्तस्वरविराजितम् ॥ ८ ॥ यतिभिश्चतदाग्रामैर्वर्णग्रामैःपृथक्पृथक् ॥ ततश्चविततञ्चैवघनंसुषिरमेवच ॥ ९ ॥ तालःकालक्रियामानोवर्द्धमानादिकञ्चयत् ॥ अविदग्धापिसातेषाङ्गीताङ्गानांद्विजाङ्गना ॥ १० ॥ केवलंकण्ठसंशुद्ध्यातायाभ्यान्तोपंसमादधे ॥ ततस्तद्गीतलोभेनसर्वेतत्पुरवासिनः ॥ ११ ॥ प्रातरुत्थायकेदारंसमागच्छन्तिकौतुकात् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यनागौतौस्वपुरंप्रति ॥ १२ ॥ आनिन्यतुःसमुद्यम्यसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ नागरूपंसमाधायरौद्रंजनविभीषणम् ॥ १३ ॥ भोगाग्रेणचसंवेष्ट्यपातालतलमीयतुः ॥ अथतांस्वगृहंनीत्वाप्रोचतुर्कामपीडितौ ॥ १४ ॥

(वंशीआदि) ॥ ८ । ९ ॥ व समय और कर्मके प्रमाणवाला ताल व जो वर्द्धमान याने लय आदिका बढ़ानाहै उन गानेके अंगोंमें अप्रवीण भी उस द्विज कन्याने ॥ १० ॥ केवल गलेकी संशुद्धिसे उन दोनों के लिये प्रसन्नताको समाधान किया तदनन्तर उसके गानकेलोभसे वे समस्त उस पुरके वासी ॥ ११ ॥ प्रातःकाल उठकर कुतूहलसे केदार क्षेत्रको भलीभांति आतेथे इसके अनन्तर किसी समय वे दोनों नाग मनुष्यों के डरपाने वाले भयङ्कर नाग रूपको धारणकर समस्त जनों के देखतेहुये भलीभांति उद्योग कर लेआये ॥ १२ । १३ ॥ व शरीर के अग्रभाग से भलीभांति लपेटकर पाताल तलको आये इसके अनन्तर उसको अपने घरमें लाकर कामदेव से व्यथितहोतेहुए

वे दोनोंबोले ॥ १४ ॥ कि हे चौड़े नयनवाली ! धर्म में लगीहुई तुम हम दोनों कीस्त्रीहोवो इसीलिये भूतल से तुम पातालको भलीभांति लाई गई हो ॥ १५ ॥ भद्रिका बोली कि हे तक्षक ! जिसकारण ब्राह्मणके वंशमें उपजी व रतिके उछाहको न चाहतीहुई मुझको तुम शीघ्रही अपहरण करलायेहो ॥ १६ ॥ व मनुष्यवाले रूपको प्राप्तहोकर कामदेव से ताडित चित्त या मनवाले तुम मेरेआगे भलीभांति टिकेहो इसलिये मनुष्यहोगे ॥ १७ ॥ व दुष्ट आचरणवाले तुम यदि बलसे मेरी घर्षणकरोगे तो शीघ्रही तुम्हारा मस्तक सौ खंड होजावैगा ॥ १८ ॥ उसभद्रिकाकी उसबड़ीभारी शापको सुनकर तदनन्तर हाथ जोड़कर खड़े व भयसे विकलहोतेहुये उसतक्षकने

भवाभ्यांविशालाक्षिभार्याधर्मपरायणा ॥ एतदर्थंसमानीतात्वंपातालेमहीतलात् ॥१५॥ भद्रिकाउवाच ॥ यत्त्वंतत्तक मांशान्तामनपेक्ष्यरतोत्सवम् ॥ आनैषीरपहृत्याशुब्राह्मणान्वयसम्भवाम् ॥ १६ ॥ मानुषंरूपमास्थायपुरोमेत्वंसमाश्रितः ॥ कामोपहतचित्तात्मातस्मान्मर्त्योभविष्यसि ॥ १७ ॥ यदिमान्त्वंदुराचारोधर्षयिष्यसिवीर्यतः ॥ शतधातवमूर्द्धा चसद्यएवभविष्यति ॥ १८ ॥ तंश्रुत्वातुमहाशापंतस्याःसभयविह्वलः ॥ ततःप्रसादयामासकृताञ्जलिपुटःस्थितः॥१९॥ मयात्वङ्कामसक्तेनसमानीतासुमुह्यता ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेशापस्यान्तोयथाभवेत् ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रसादितातेनतत्तकेनद्विजात्मजा ॥ ततःप्रोवाचतन्नागंबाष्पव्याकुललोचना ॥ २१ ॥ यदिमांमर्त्यलोकेत्वंभूयोनयसितत्तक ॥ तस्यशापस्यपर्य्यन्तंकरिष्यामिनसंशयम् ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेज्ञात्वामानुषीस्वगृहागताम् ॥ तत्तकेनसमानीतां कामोपहतचेतसा ॥ २३ ॥ ततस्तस्यकलत्राणिमहेर्ष्यासंश्रितानिच ॥ तस्यानाशार्थमाजग्मुःकोपरक्तेक्षणानिच ॥ २४ ॥

प्रसन्नकराया ॥ १९ ॥ कि कामदेवमें आसक्त व अतिमोहित होतेहुये मुझसे तुम लाईगईहो इसलिये मेरे ऊपर वैसी प्रसन्नताकरो कि जिसप्रकार शापका अन्तहोवै ॥ २० ॥ सूतजीबोले कि तदनन्तर इसप्रकार उस तक्षकसे प्रसन्नकराईगई द्विजकन्या आंसुओं से विकललोचनोंवाली होकर उसनाग से बोली ॥२१॥ कि हे तक्षक ! यदि तुम मृत्युलोक को मुझे फिर लेचलोगे तो निस्सन्देह उस शाप का अन्तकरूंगी ॥ २२ ॥ इसी अवसर में कामदेव से ताडित चित्तवाले तक्षक से भलीभांति लाई व घर में आईहुई मानुषीको जानकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर कोपसे लाललोचनोंवाली व बड़ी ईर्षा से संयुत उस तक्षककी स्त्रियां उसभद्रिका के नाश करने के लिये आईं ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर शापके अन्तको चाहताहुआ व उस पापसे भय संयुत उस तक्षक ने उन स्त्रियों के इङ्गितको जानकर ॥ २५ ॥ उनसर्पों से उपजीहुई विद्याको स्मरण किंया तदनन्तर वैसेही उसके शरीरको रक्षाकेलिये युक्त किया इसके अनन्तर नागिनिप्राप्तहुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर सौतिको मानतीहुई क्रोधितहोकर सांपिनिने पतिव्रता द्विजकन्या को डसलिया व उच्चप्रकारसे गिरीहुई दाढ़ोंवाली होगई ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मण से उपजीहुई उसक्रोधित द्विजकन्या ने भी ईर्षा समेत सौतिसे उपजेहुये भावों से बर्तमानहुई उस नागिनिको देखकर शापदिया ॥ २८ ॥ कि हे पापिनि ! जिसकारण तुम दोषरहित मुझको सदोपासी मानतीहो इसलिये शीघ्रहीदुःख

अथतासाम्परिज्ञायतक्षकःसविचेष्टितम् ॥ वाञ्छञ्छापस्यपर्यन्तन्तत्पापाद्भयसंयुतः ॥ २५ ॥ तज्जातामस्मरद्विद्यांतस्यागात्रन्ततस्तथा ॥ योजयामासरक्षार्थंप्राप्ताचाथभुजङ्गमी ॥ २६ ॥ अदशत्तान्ततःक्रुद्धाब्राह्मणस्यसुतांसतीम् ॥ सपत्नींमन्यमानोच्चैःशीर्षादंष्ट्राव्यजायत ॥ २७ ॥ अथतामपिसाक्रुद्धाशशापद्विजसम्भवा ॥ दृष्ट्वासापत्न्यजैर्भावैर्वर्तमानांसहेर्ष्यया ॥ २८ ॥ यस्मात्त्वंदोषहीनांमांसदोषामिवमन्यसे ॥ तस्माद्भवद्रुतंपापेमानुषीदुःखभागिनी ॥ २९ ॥ अथतांसंगृहीत्वासतक्षकोनागसत्तमः ॥ केदारायतनेतस्मिन्नर्द्धरात्रौमुमोचह ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतान्देवींकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ शापान्तंकुरुमेसाध्विस्वगृहंयेनयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ सौराष्ट्रविषयेराजात्वंभविष्यसिपन्नग ॥ भूमौरैवतकोनामभोगानांभाजनंसदा ॥ ३२ ॥ ततश्चायतनंकृत्वाक्षेत्रेष्वाश्रममध्यतः ॥ तंप्राप्स्यसिनिजंस्थानंतत्क्षेत्रस्यप्रभावतः ॥ ३३ ॥ तक्षकउवाच ॥ एषाममप्रियाकान्तात्वयाशापेनयोजिता ॥ यासाभवतुमेभार्यामानुषत्वेपिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

को भजनेवाली मानुषीहोवो ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर उस नागोत्तम तक्षक ने उस को भलीभांति लेकर आधीरातको उस केदारजी के मन्दिर में छोडदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर हाथ जोडेखड़े हुये उसने उस देवीसे कहा कि हे सतीजी ! मेरे शापका अन्तकीजिये कि जिससे मैं घरको जाऊं ॥ ३१ ॥ भद्रिका बोली कि हे पन्नग ! सदैव भोगों के पात्ररूप तुम भूमिमें सौराष्ट्रदेश में रैवतक नामक राजाहोगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्षेत्रों में आश्रम के बीचमें मन्दिरको बनाकर उस क्षेत्रके प्रभाव से अपने स्थानको प्राप्तहोगे ॥ ३३ ॥ तक्षक बोला कि जो यह मेरी प्यारी तुमसे शापसे योजितकीगई है वह मनुष्य योनिके भी वर्तमान होनेपर मेरी स्त्री होवै ॥ ३४ ॥

सब भांति से यांचतेहुये व मुझदीनके ऊपर इसप्रसन्नताको करिये क्योंकि अन्य पुरुषके साथ इसका संयोग मतहोवै ॥ ३५ ॥ भद्रिका बोली कि यह आनर्तदेशके स्वामी की शुभदायक कन्याहोगी तदनन्तर पाणिग्रहणको प्राप्तहोकर रूपयौवनसे शोभित क्षेमंकरी ऐसी प्रसिद्ध तुम्हारी स्त्रीहोगी इसके अनन्तर भूतल में उसके साथ बहुत से भोगोंको भोगकर फिर तुम उत्तम परलोकको जावोगे ॥ ३६।३७।३८ ॥ सूतजीबोले कि इस भांति उस भद्रिकासे कहा हुआ वह तक्षक क्षमाकरिये यह वचन से आदर पूर्वक कहकर व प्रणाम कर शीघ्रही अपने घरको चलागया ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर फिर केदार क्षेत्रकी भक्तिसे उसकेदारके देखने की इच्छावाले सैकड़ों ब्राह्मण व

एतत्कुरुप्रसादम्मेदीनस्यपरियाचतः ॥ मास्याभवतुचान्येनपुरुषेणसमागमः ॥ ३५ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ आनर्ता
धिपतेरेषाभवित्रीदुहिताशुभा ॥ ततःपाणिग्रहंप्राप्यभार्यातवभविष्यति ॥ ३६ ॥ क्षेमंकरीतिविख्यातारूपयौवनशा
लिनी ॥ तयासार्द्धंबहून्भोगान्भुक्त्वाथधरणीतले ॥ ३७ ॥ परलोकंपुनस्त्वंवैचानुपास्यसिशोभनम् ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥
एवंचसतयाप्रोक्तःक्षम्यतांवचसादरम् ॥ प्रणिपत्यजगामाशुतक्षकोनिजमन्दिरम् ॥ ३९ ॥ अथतस्यसमायाताःकेदार
स्यदिदृक्षवः ॥ पुनःकेदारभक्त्याचब्राह्मणाःशतशःपरे ॥ ४० ॥ ततोदृष्ट्वासमायातांभद्रिकान्तांद्विजोद्भवाम् ॥ विस्मये
नसमायुक्ताःपप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ४१ ॥ कोसौब्राह्मणरूपेणनागःप्राप्तःसुशोभने ॥ तेनत्वंकुत्रनीतासिकिमर्थञ्चवद
स्वनः ॥ ४२ ॥ कस्मात्पुनःप्रमुक्तासिसर्ववदयथातथम् ॥ अत्रनःकौतुकञ्जातंसुमहत्त्वत्कारणात् ॥ ४३ ॥ सूतउवाच ॥ तत
स्साकथयामाससर्वंतक्षकसम्भवम् ॥ वृत्तान्तंनागसम्भूतंशापानुग्रहजन्तथा ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तंसर्वंतस्याःकु

अन्य पुरुषभलीभांतिआये ॥ ४० ॥ तदनन्तर द्विजसे उपजीहुई उस भद्रिकाको भली भांति आई हुई देखकर विस्मय से संयुतहुये व उसके उपरान्त उन्हों ने पूछा ॥ ४१ ॥ कि हे सुशोभने ! यह कौन नाग ब्राह्मण के रूप से प्राप्तहुआ था और वह किसलिये तुमको कहां लेगया था इसको हमलोगों से कहिये ॥ ४२ ॥ व फिर किस कारण तुमछोड़ीगई हो इससमस्त चरितको यथा तथ्य कहिये क्योंकि इस विषयमें तुम्हारे कारण हमलोगोंको बड़ाभारी आश्चर्य हुआहै ॥ ४३ ॥ सूतजीबोले कि तद-नन्तर उसने तक्षक से उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको कहा व नागसे उत्पन्नवाले शापके अनुग्रहसे उपजेहुये चरितकोकहा ॥ ४४ ॥ इसी अवसरमें उसको वहां आईहुई

सुनकर दुःखसे विकल व अत्यन्तही रोताहुआ उस भद्रिका का समस्त परिवार प्राप्तहुआ ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर आंसुओंसे आकुल लोचनोंवाली उसकी उसमाताने व अन्य सखियों ने स्नेहवाले चित्तसे उस भद्रिकाको लिपटालिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर नागलोकसे उपजीहुई वार्ताकोबार २ सुनतेहुये विस्मयसे प्रवेशित चित्तवाले कुटुम्बी लोग अपने घरको लेगये ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर उस पुरमें समस्त पुरवासियोंने आपसमें कहा कि इस दुष्टात्मा ब्राह्मणने अयोग्यकिया ॥ ४८ ॥ क्योंकि पराये घरमें बसीहुई युवती कन्याको ले आया और भी जो ब्राह्मणोंकी अनेकों स्त्रियां युवती,रूपवती व वैधव्य से संयुतहैं उन सबों को भी यही न्यायहोजावैगा ॥ ४९।५० ॥ व उसी से

अथसाजननीतस्याबाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ सस्वजेता
टुम्बकम् ॥ रोरूयमाणन्दुःखार्तंश्रुत्वातान्तत्रचागताम् ॥ ४५ ॥
न्तथाचान्यासख्यःस्निग्धेनचेतसा ॥ ४६ ॥ ततोनिन्युर्गृहंस्वञ्चशृण्वन्तश्चमुहुर्मुहुः ॥ नागलोकोद्भवांवार्तांविस्मयावि
ष्टचेतसः ॥ ४७ ॥ अथतत्रपुरेपौरास्सर्वेप्रोचुःपरस्परम् ॥ अयुक्तंकृतमेतेनब्राह्मणेनदुरात्मना ॥ ४८ ॥ यदानीतासुतरुणी
परहर्म्योषितासुता ॥ अन्येषामपिविप्राणांसन्तिनार्योह्यनेकशः ॥ ४९ ॥ तरुण्योरूपवन्त्यश्चवैधव्येनसमन्विताः ॥
तासामपिचसर्वासामेषन्याय्योभविष्यति ॥ ५० ॥ योनिसङ्करजंनूनन्तस्यान्निर्वास्यतामिति ॥ एकीभूयततस्सर्वेब्राह्म
णन्तंद्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ सामपूर्वमिदंवाक्यंप्रोचुःशास्त्रसमुद्भवम् ॥ एषातवसुताविप्रतरुणीरूपसंयुता ॥ ५२ ॥ सानुरागेण
नागेनपातालेचसमाहृता ॥ साप्रवक्तिप्रमुक्ताहंनिर्दोषातेनरागिणा ॥ ५३ ॥ नश्रद्धांयातिलोकोयंशुद्धैषासमपाकृता ॥ त
स्माच्छुद्धिंद्विजेन्द्राणांप्रयच्छतुद्विजोत्तम ॥ ५४ ॥ येनान्येषामपिप्राज्ञविनश्यन्तिनयोषितः ॥ बाढमित्येवसप्रोक्त्वा

निश्चयकर योनि से उपजाहुआ दोषहोगा इसलिये यह निकालदियाजावै तदनन्तर समस्त द्विजोत्तमों ने एकताहोकर प्रिय वचन पूर्वक शास्त्रमें उपजेहुये इसवचनको उसब्राह्मण से कहा कि हे द्विज ! रूपसे संयुत व युवती यह तुम्हारी कन्या ॥ ५१।५२ ॥ स्नेह समेत नाग से पाताल में भलीभांति आहरण की गई और वह कहती है कि उस अनुरागी नागसे मैं निर्दोष छोड़ीगई ॥ ५३ ॥ परन्तु यह मनुष्य श्रद्धाको नहीं प्राप्तहोताहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! भलीभांति त्यागकीहुई यह शुद्ध कन्या

द्विजेन्द्रों को शुद्धिदेवै ॥ ५४ ॥ हे प्राज्ञ ! जिससे और मनुष्यों की भी स्त्री न विनाश होवै तदनन्तर हां यही कहकर उस ब्राह्मण ने एकान्तमें उस कन्या से पूछा ॥ ५५ ॥ कि यदि तुझमें कोई दोषहै तो कहो नहीं तो ब्राह्मणों की प्रसन्नताके लिये भलीभांति शुद्धिको देवो ॥ ५६ ॥ भद्रिकाबोली कि हे तात ! तुमने तथा और ब्राह्मणों ने भी योग्य कहाहै क्योंकि द्वारके नाँघनेसे भी स्त्री की शुद्धियोग्यहै ॥ ५७ ॥ फिर स्नेहवाले पुरुषके साथ परदेशको गई हुई स्त्रीको क्या कहनाहै इसलिये निस्सन्देह मैं प्रातःकाल नहाकर व अग्निमें पैठकर समस्त ब्राह्मणोंको निस्सन्देह शुद्धिकोदेऊंगी मैं मंत्रको तथा और भी जो कुछ है उसको जानतीहूं ॥ ६८।६९ ॥ व भलीभांति

ततस्तांविजनेसुताम् ॥ ५५ ॥ पप्रच्छयदितेदोषःकश्चिदस्तिप्रकीर्तय ॥ नोचेत्प्रयच्छसंशुद्धिंब्राह्मणानांप्रतुष्टये ॥ ५६ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ युक्तमुक्तन्त्वयातात तथान्यैरपिचद्विजैः ॥ युक्तास्याद्योषितःशुद्धिर्द्वारातिक्रमणादपि ॥ ५७ ॥ किम्पुनःपरदेशङ्गगतायारागिणासह ॥ तस्मादहंनसन्देहःप्रातःस्नात्वाहुताशनम् ॥ ५८ ॥ प्रविश्यसर्वविप्राणांशुद्धिंदास्याम्यसंशयम् ॥ अहम्मन्त्रञ्चजानामियच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ ५९ ॥ दर्शयिष्यामिसम्प्रार्थ्यशुद्धिश्चैवहुताशनात् ॥ एवमुक्तस्तथासोथहर्षेणमहतान्वितः ॥ ६० ॥ प्रातरुत्थायदारूणिपुरबाह्येन्ययोजयत् ॥ भद्रिकापिततःस्नात्वाशुक्लाम्बरधराशुचिः ॥ ६१ ॥ सर्वैःपरिजनैस्सार्द्धंतथानिजकुटुम्बकैः ॥ प्रसन्नवदनाहृष्टाविष्णुध्यानपरायणा ॥ ६२ ॥ जगामतत्रयत्रास्तेसुमहान्दारुपर्वतः ॥ ततोवह्निसमादायस्वयंतत्रद्विजोत्तमाः ॥ ६३ ॥ प्रदक्षिणात्रयंकृत्वाप्राहचैवकृताञ्जलिः ॥ यदिमेस्तिकचिद्दोषःकामजोल्पोपिगात्रके ॥ ६४ ॥ कृतोवापिबलात्तेनतक्षकेनदुरात्मना ॥ अन्येनापिचके

प्रार्थनाकर अग्निसे शुद्धिको दिखलाऊंगी इसके अनन्तर इसभांतिकहेहुये उस द्विजने बड़े हर्षसे संयुतहोकर ॥६०॥ व प्रातःकाल उठकर पुरकेबाहर लकड़ियोंको इकट्ठा किया तदनन्तर पवित्र भद्रिका भी नहाकर श्वेतवसनों को धारे व प्रसन्न मुखी व विष्णुके ध्यानमें तत्पर तथा प्रसन्नहोतीहुई समस्त सखी आदिकों व कुटुम्बियो समेत ॥ ६१।६२ ॥ वहांगई जहां कि बड़ाभारी काठका पर्वत था तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वहांपर आपही अग्निको लेकर ॥ ६३ ॥ व तीन प्रदक्षिणाओं को करके हाथजोड़े हुई बोली कि यदि कामदेव से उपजाहुआ थोड़ा भी दोषमेरे किसी अंगमें है ॥ ६४ ॥ व उस दुष्टात्मा तक्षक ने बलसे दोषको कियाभीहो अथवा और किसी से अन्य

दोषहुआहो या होवै ॥ ६५ ॥ तो उसीकारण यह बढ़ीहुई अग्नि मुझको शीघ्रही जलावै ऐसाकहकर इसके अनन्तर वह पतिव्रता अपने घरके नाई पैठगई ॥६६॥ व अतिबढ़ी हुई अग्निचलीगई याने शान्तहोगई व क्षणभरमें जलमयहोगया व उस शुभदायककन्याने जलके बीच में प्राप्तहुये अपने शरीरको देखा ॥६७॥ इसके अनन्तर आकाश तलसे फूलोंकी बड़ीभारी बर्षाहुई व विमान पै बैठेहुये देवदूतने प्रगटही यह वचनकहा ॥ ६८॥ कि हे महाभागे! अपने शरीरसे उपजेहुये चरित्रों से तुमपवित्रहो व तुम्हारे समान और कोई स्त्री न होगी ॥ ६९ ॥ हे महाभागे! मनुष्यके शरीर में सब अंगोंमें जो साढ़ेतीन करोड़ रोम सदैव होते हैं ॥ ७० ॥ हे साध्वि! उनके मध्यमें एक

नापिभविष्यत्यथवापरः ॥ ६५ ॥ तस्मात्प्रदहतुक्षिप्रंसमिद्धोयंहुताशनः ॥ एवमुक्त्वाथसासाध्वीप्रविष्टानिजहर्म्यंव
त् ॥ ६६ ॥ सुसमिद्धोगतोवह्निर्यातोजलमयःक्षणात् ॥ साचपश्यतिचात्मानंजलमध्यगतंशुभा ॥ ६७॥ पपाताथमहा
वृष्टिःकुसुमानांनभस्तलात् ॥ देवदूतोविमानस्थइदंवाक्यमुवाचह ॥ ६८ ॥ शुद्धासित्वंमहाभागेचरित्रैर्निजगात्रजैः ॥
नत्वयासदृशीचान्याकाचिन्नारीभविष्यति ॥ ६९॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीचयानिलोमानिमानुषे ॥ प्रभवन्तिमहाभागे
सर्वगात्रेषुसर्वदा ॥ ७० ॥ तेषांमध्येनतेसाध्विपापमेकमपिक्वचित् ॥ तस्माच्छीघ्रंगृहंगच्छनिजबान्धवसंयुता ॥ ७१ ॥
कुरुयज्ञानिपुण्यानिसमाराधयकेशवम् ॥ एतच्चैवचितास्थानंत्वदीयंजलपूरितम् ॥ ७२ ॥ तवनाम्नासुविख्यातंतीर्थंलो
केभविष्यति॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्तिशयनेबोधनेहरेः॥७३॥तेयास्यन्तिपरांसिद्धिंदुष्प्राप्यममरैरपि॥ उक्त्वैवंविरतावाणी
देवदूतसमुद्भवा ॥ ७४ ॥ भद्रिकातुततोहृष्टाप्रणम्यजनकंनिजम् ॥ नाहंगृहंगमिष्यामिकिंकरिष्याम्यहंगृहे ॥ ७५ ॥

भी रोम तुम्हारे किसी अंगमें पापी नहीं है इसलिये अपने भाइयोंसे संयुतहोतीहुई तुमशीघ्रही घरकोजावो ॥ ७१ ॥ व पुण्यदायक यज्ञोंकोकरो और विष्णुजीका आराधनकरो और जलसे पूरित यह तुम्हारा चिताका स्थान ॥ ७२ ॥ तुम्हारे नामसे लोक में तीर्थ प्रसिद्धहोगा इस तीर्थ में विष्णुजी के शयन बोधन समय में जो मनुष्य स्नानकरैंगे ॥ ७३ ॥ वे देवताओं से दुर्लभ परमसिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ऐसाकहकर देवदूतसे उपजीहुई वाणी चुपहोरही ॥ ७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहोतीहुई भद्रिकाने अपने

पिताको प्रणाम करकहा कि मैं घरको न जाऊंगी क्योंकि घरमें जाकर मैं क्या करूंगी ॥ ७५ ॥ व इसी अपने तीर्थ में सदैव विष्णुजी को आराधन करूंगी व भिक्षाके अन्नसे भोजन करती हुई मैं तपको करूंगी ॥ ७६ ॥ इसलिये हे पिताजी ! तुम घरको जावो मैं इसी स्थान में टिकूंगी तदनन्तर उस कन्या का वह पिता और वे पुरवासी भी ॥ ७७ ॥ प्रसन्न होतेहुये व अलग अलग उस भद्रिकाकी प्रशंसा करते हुये घरको चले गये और पहले वहां पर उसने विष्णुजी की प्रतिमा को विशेषकर निर्माण किया ॥ ७८ ॥ पश्चात् उत्तम मन्दिर को बनाकर महादेवजी के लिङ्ग को स्थापन किया तदनन्तर चमत्कारपुरमें उपजे हुये समस्त नरों से प्रशंसित होतीहुई व भिक्षान्नसे किये

अत्रैवाराधयिष्यामिनिजतीर्थेसदाच्युतम् ॥ तथातपःकरिष्यामिभिक्षान्नकृतभोजना ॥ ७६ ॥ तस्मात्तातगृहंगच्छ स्थिताहंचात्रसंश्रये ॥ ततस्सजनकस्तस्यास्तेचापिपुरवासिनः ॥ ७७ ॥ सम्प्रहृष्टागृहंजग्मुःशंसन्तस्तांपृथक्पृथक् ॥ तथात्रैविक्रमीतत्रप्रतिमाप्राग्विनिर्मिता ॥ ७८ ॥ पश्चान्माहेश्वरंलिङ्गंकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ततःपरन्तपश्चक्रेभिक्षान्नकृतभोजना ॥ शंस्यमानाजनैस्सर्वैश्चमत्कारपुरोद्भवैः ॥ ७९ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ यथास्यात्सुदृढङ्कायमभेद्यंसंस्थितंसदा ॥ ८० ॥ सर्पाणाञ्चतथान्येषांशस्त्रादीनामपिद्विजाः ॥ यश्चैतत्पठते नित्यंभद्रिकाख्यानमुत्तमम् ॥ ८१ ॥ नापवादोभवेत्तस्यकुकृतोद्विजसत्तमाः ॥ ८२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेभद्रिकातीर्थोत्पत्तिर्नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भोजनोंवाली उस भद्रिकाने तपस्या किया ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो द्विजो ! मुझसे जो आप लोगों ने पूंछा इस समस्त चरित को मैंने कहा कि जिस भांति इस भद्रिका का अतिपुष्ट शरीर सर्पों व अन्य शस्त्रादिकों के भी न विदारने योग्य होकर सदैव स्थित था जो मनुष्य इस उत्तम भद्रिका के कथानक को नित्यही पढ़ता है ॥ ८० । ८१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस को कुकर्म से किया हुआ अपवाद नहीं होताहै ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभद्रिकातीर्थोत्पत्तिर्नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षेमंकरी व रेवतेश्वर नामक दोउ देव । थापितभे सोइ एकसौ पन्द्रहवें महँ भेव ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जो कहा है कि वह तक्षक सौराष्ट्र देशमें बड़ा बलिष्ठ रैवतक नामक राजा होगा ॥ १ ॥ व वैसेही क्षेमंकरी ऐसे नाम से उस की प्यारी स्त्री होगी जो कि आनर्तदेशाधिपति के मन्दिर में भामिनी (सुन्दरी) कन्या पैदा होगी ॥ २ ॥ हे सूतनन्दन ! उन दोनों के समस्त चरितको भली भांति कहिये इस विषय में हम लोगों को आश्चर्य हुआ है क्योंकि विचित्र कहा गया है ॥ ३ ॥ हे सूतपुत्र ! हम लोगों ने केदारजी को हिमाचल पर्वत पै सुनाहै वह कैसे वहां पर उत्पन्न हुआ है इस समस्त चरित को विस्तार से कहिये ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ यत्त्वयासूतजप्रोक्तंतत्तक्षकस्सम्भविष्यति ॥ सौराष्ट्रविषयेराजारैवताख्योमहाबलः ॥ १ ॥ तथातस्यप्रियाभार्यानाम्नाक्षेमङ्करीतिया ॥ आनर्ताधिपतेर्हर्म्येसम्भविष्यतिभामिनी ॥ २ ॥ ताभ्यांसर्वंसमाचक्ष्ववृत्तान्तंसूतनन्दन ॥ अत्रनःकौतुकंजातंविचित्रञ्जल्पितञ्चयत् ॥ ३ ॥ केदारश्चश्रुतोस्माभिस्सूतपुत्रहिमाचले ॥ सकथन्तत्रसञ्जातस्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामि सर्वंब्राह्मणसत्तमाः ॥ यथामयाश्रुतंपूर्वंन्निजतातमुखाद्द्विजाः ॥५॥ पूर्वन्तच्छापदोषेण तक्षकोधरणीतले ॥ सौराष्ट्राधिपतेर्हर्म्ये रैवताख्योबभूवह ॥६॥ आनर्ताधिपतेश्चापि सञ्जातातस्ययागृहे ॥ तस्याश्चापिसुविख्यातन्नामजातन्धरातले ॥ ७ ॥ क्षेमङ्करीतिविप्रेन्द्राः कर्मणाप्रकटीकृतम् ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीद्राजाप्रभञ्जनः ॥ ८ ॥ तस्यवैरंसमुत्पन्नं बहुभिस्सहभूमिपैः ॥ ततोनिर्वास्यतेदेशो नीयन्ते

सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो द्विजो ! पुरातन समय इस विषय में मैंने जिसप्रकार अपने पिताके मुख से सुना है उस समस्त चरित को तुम लोगों से कहूंगा ॥ ५ ॥ कि पुरातन समय उस भाद्रिका को शापके दोषसे तक्षक भूतल में सौराष्ट्र देश के स्वामी के मन्दिर में रैवत नामक हुआ है ॥ ६ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! जो उस आनर्त देश के स्वामी के घर में भी भली भांति उत्पन्न हुई है उसका भी कर्म से प्रकट कियाहुआ क्षेमंकरी ऐसा नाम भूतल में प्रसिद्ध हुआ पुरातन समय आनर्त देशका स्वामी प्रभञ्जन नामक राजा हुआ है ॥ ७ । ८ ॥ उस राजाका बहुत से भूपों के साथ वैर उत्पन्न हुआ तदनन्तर देश उजड़ने लगा व पशु पराक्रम से हरेजाने

लगे ॥ ९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! शत्रुओं के साथ दिन रात युद्ध होनेलगा तदनन्तर कुछ दिनों के बाद ऋतुसमयमें नहाई हुई प्रियवादिनी स्त्री ने अपने पेट में पुण्य दायक गर्भ को धारण किया तब से लगाकर वह गर्भ उसके पेट में आश्रित हुआ ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर उसके कमल के समान चौड़े नयनोंवाली, शुभ दायक कन्या उत्पन्नहुई उस रात्रिको अंधियारेमें भी सवरिका घर प्रकाशितहुआ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नतासंयुत इस नृपति ने गाने, बजाने के शब्दोंसे पुत्रके समान उस कन्या के बड़े भारी उछाहको किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! जब तेरहवां दिन प्राप्तहुआ तब उस भूपति ने ब्राह्मणों के आगे उसका यथायोग्य

पशवोबलात् ॥ ९ ॥ शत्रुभिर्जायतेयुद्धं दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ततःकतिपयाहस्य तस्यभार्याप्रियंवदा ॥ १० ॥ ऋ-
तुस्नातादधाराथ गर्भंपुण्यन्निजोदरे ॥ ततःप्रभृतितस्यास्सगर्भोभूदुदराश्रयः ॥ ११ ॥ ततोजज्ञेशुभाकन्या तस्याः
पद्मायतेक्षणा ॥ अन्धकारोपितद्रात्र्यां द्योतितंसूतिकागृहम् ॥ १२ ॥ अथासौपार्थिवश्चक्रे सुतवत्सुमहोत्सवम् ॥ त
स्यास्तोषसमायुक्तो गीतवाद्यैश्चनिःस्वनैः ॥ १३ ॥ ततस्त्रयोदशेप्राप्ते नामतस्यायथोचितम् ॥ विहितंभूभुजातेन विप्रा
णाम्पुरतोद्विजाः ॥ १४ ॥ एवंसुविहिताख्यासा वृद्धिंयातिदिनेदिने ॥ शुक्लपक्षेकलाचान्द्री यथैवगगनाङ्गणे ॥ १५ ॥
ततस्तांयौवनोपेतां रैवतायमहीपतिः ॥ ददौसौराष्ट्रनाथाय कालेवैवाहिकेशुभे ॥ १६ ॥ अथताभ्यांसुताजाता रैवती
नामविश्रुता ॥ भद्रिकाशापदोषेण शेषपत्नीयशस्विनी ॥ १७ ॥ याव्यूढारामरूपेण नागराजेनधीमता ॥ पुत्रपौत्रवती
जाता सौभाग्यमदगर्विता ॥ १८ ॥ नचताभ्यांसुतोजातःकथञ्चिदपिवंशजः ॥ वयसोन्तेपिविप्रेन्द्रास्ततोदुःखंव्यजा

नाम किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार भली भांति कियेहुये नामवाली वह कन्या वैसेही दिनों दिन वृद्धिको प्राप्त होती थी कि जैसे आकाशरूपी आंगन में शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ती है ॥ १५ ॥ तदनन्तर शुभदायक विवाहवाले समय में यौवन संयुक्त उस कन्या को सौराष्ट्र देश के स्वामी रैवत के लिये दे दिया ॥ १६ ॥ इस के अनन्तर उन दोनों से रेवती नामक प्रसिद्ध कन्या उत्पन्न हुई जो कि भद्रिका के शापके दोषसे कीर्तिमती शेषजीकी स्त्री थी ॥ १७ ॥ व जिसको बलराम रूपवाले बुद्धिमान् नागराज ने व्याहा है जो कि सौभाग्य के अहंकारसे गर्वित व पुत्र पौत्रवती हुई है ॥ १८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! अवस्थाके अन्त भागमें भी उन दोनोंके सकाश

से वंशमें उपजाहुआ पुत्र किसी प्रकार भी न पैदा हुआ उसी कारण दुःख उत्पन्न भया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों समस्त राज्यको सम्पूर्णतासे मन्त्रियोंके वर्गको देकर पुत्रकेलिये तपोभूमि को भलीभांति आये ॥ २० ॥ तदनन्तर सावधान होते हुये वे दोनों अपने आश्रम को बनाकर व कात्यायनी देवी को थापकर उसके आराधन में तत्पर होतेहुये वहांपर टिके ॥ २१ ॥ कि उस विन्ध्याचल नामक महापर्वत पै कुँआरपनेके व्रतको धारेहुये जिन कात्यायनी देवीने भयङ्कर महिष नामक महासुर को मारा है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होती हुई उन कात्यायनीदेवीने उनदोनोंके लिये वंश के बढ़ाने वाले पुत्र को दिया जो कि नाम से क्षेमजित् ऐसा प्रसिद्ध

यत् ॥ १९ ॥ अथतौमन्त्रिवर्गस्य राज्यंसर्वमशेषतः ॥ अर्प्पयित्वातुपुत्रार्थं तपोभूमिंसमागतौ ॥ २० ॥ ततस्तौस्वाश्रमंकृत्वा स्थितौतत्रसमाहितौ ॥ देवींकात्यायिनींस्थाप्यतदाराधनतत्परौ ॥ २१ ॥ ययाविनिहितोरौद्रो महिषाख्यो महासुरः ॥ कौमारव्रतधारिण्या तस्मिन्विन्ध्येमहाचले ॥ २२ ॥ ततस्ताभ्यांददौतुष्टा सापुत्रंवंशवर्द्धनम् ॥ नाम्नाक्षेमजितंख्यातं परपक्षभयापहम् ॥ २३ ॥ ततःस्वंराज्यमासाद्य भूयोपिसमहीपतिः ॥ तंपुत्रंवर्द्धयामास हर्षेणमहतान्वितः ॥ २४ ॥ यदासयौवनोपेतस्सञ्जातःक्षेमजित्सुतः ॥ तदाराजानियोज्याथ स्वस्थानेसपुनर्ययौ ॥ २५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं तमेवद्विजसत्तमाः ॥ भार्ययासहितंत्यक्त्वा शेषमन्यंपरिच्छदम् ॥ २६ ॥ तत्रसंस्थापयामास लिङ्गंदेवस्य शूलिनः ॥ प्रासादंचमनोहारि ततश्चक्रेसमाहितः ॥ २७ ॥ रैवतेश्वरमित्युक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ दर्शनादेवसर्वेषां देहिनांद्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ यापूर्वंस्थापितादुर्गा तस्मिन्क्षेत्रेमहीभुजा ॥ तस्याक्षेमङ्करीचक्रे प्रासादंश्रद्धयान्विता ॥ २९ ॥

व शत्रुओंके पक्षको क्षयदायक था ॥ २३ ॥ तदनन्तर बड़े हर्ष से संयुत उस भूपतिने फिर भी अपनी राज्यको प्राप्तहोकर उस पुत्रको बढ़ाया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब वह क्षेमजित् पुत्र यौवन से संयुत हुआ तब वह राजा अपने स्थान पै उस पुत्र को नियुक्त (बिठा) करके व स्त्री समेत सम्पूर्ण सामग्रीको छोडकर फिरउसी हाटकेश्वर क्षेत्र को चलागया ॥ २५ । २६ ॥ सावधान होतेहुये भूपति ने वहांपर त्रिशूल वाले (शिव) देवजी के लिङ्ग को भलीभाति स्थापन किया तदनन्तर मनोहर मन्दिर को बनवाया ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रैवतेश्वर ऐसा कहाहुआ शिवजी का लिङ्ग दर्शनही से समस्त देहधारियों के सब पापों का विनाशक है ॥ २८ ॥

उस क्षेत्रमें पहले भूपालने जिस दुर्गाको थापन कियाहै उसके मन्दिरको श्रद्धासंयुत होती हुई क्षेमंकरीने निर्माण कियाहै ॥२९॥ तब से लगाकर महिषासुरको मर्दने वाली जो कात्यायनी भी कही गई है वह भी क्षेमंकरी नामसे कही जाती है ॥३०॥ हे द्विजोत्तमो ! चैत्रके शुक्ल पक्षमें अथवा अष्टमीके दिन जो पुरुष इन दुर्गाजीको पूजनकरैहै उसका अभिलाष सदैवही सिद्धहोवैहै॥ ३१ ॥ इस रैवतेश्वरके समस्त वर्णनको व सब पापों के विनाशने वाले क्षेमंकरीके प्रभाव को तुम लोगों से वर्णन किया ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेमंकरीरैवतेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

सापिक्षेमङ्करीनाम ततःप्रभृतिकीर्त्यते ॥ कात्यायन्यपियाप्रोक्ता महिषासुरमर्द्दिनी ॥ ३० ॥ यश्चतांतुसितेप क्षे चैत्रेवाचाष्टमीदिने ॥ तस्याभीष्टंभवेत्सिद्धिः सर्वदैवद्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं रैवतेश्वरवर्णनम् ॥ क्षेमङ्कर्याःप्रभावश्चसर्वपातकनाशनम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेक्षेमङ्करीरैवतेश्वरोत्प त्तिर्नामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यात्वयासूतजप्रोक्ता देवीकात्यायनीतथा ॥ माहिषान्तकरीजाता कथंसामेप्रकीर्त्तय ॥ १ ॥ कीदृ ग्दानववर्योसौ माहिषंरूपमाश्रितः ॥ कस्मात्ससूदितोदेव्यातन्मेविस्तरतोवद ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्त्तयिष्या मिदेव्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुतमात्रेपिमर्त्यानां येनशत्रुक्षयोभवेत् ॥ ३ ॥ हिरण्याक्षसुतःपूर्वं महिषोनामदानवः ॥ आसीन्महिषरूपेण येनभुक्तंजगत्त्रयम् ॥४॥ ऋषयऊचुः॥माहिषेणस्वरूपेण किञ्जातस्सूतनन्दन ॥ अथवाशापदोषे

दो० । महिषासुर जीत्यो सकल देवन इन्द्रसमेत । इकसौ सोलह में सोई बरणत सूतसचेत ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जिस कात्यायनी देवी को कहाहै वह कैसे महिषासुर की अन्तकारिणी हुई है इसको मुझसे कहो ॥ १ ॥ व कैसा यह दानवोत्तम भैंसे के रूपमें टिकताभया और किसकारण देवीने उसको मारा है उस चरितको मुझसे विस्तार समेत कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि इस विषय में मैं तुमलोगों से देवीके उत्तम माहात्म्य को कहूंगा कि जिसके सुननेमात्र सेभी मनुष्यों के शत्रुओं का नाशहोवैहै ॥ ३ ॥ कि पुरातन समय हिरण्याक्षका पुत्र महिष नामक दैत्य हुआहै जिसने भैंसे के रूपसे त्रिलोक को भोग किया ॥ ४ ॥

ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! क्या महिषके रूपसे वह पैदाहुआथा अथवा किसी शापके दोषसे महिष होगयाथा उसको कहो ॥ ५ ॥ सूतजी बोलेकि समस्त लक्षणोंसे चिह्नित व मोटी ग्रीवावाला व लम्बी भुजाओं वाला व कमलके समान मुखवाला वह स्वरूपसे संयुत पैदाहुआथा ॥ ६ ॥ जोकि तेज व पराक्रमसे संयुत नामसे चित्रसम कहागया है वह शिशुता से लगाकर बहुधा समस्त घोड़े आदि वाहनों को छोड़कर भैंसोंकी सवारी करताथा किसी समय उस दैत्यके पुत्रने भैंसे पै चढ़कर प्रस्थान किया ॥ ७ । ८ ॥ गंगाजीके किनारे जाकर जल पक्षियों को मारताहुआ वह भ्रमताभया इसकेअनन्तर गंगा के किनारे उच्चप्रकारसे अतिउत्तम

णसञ्जातःकेनचिद्वद ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ सञ्जातोहिसुरूपाढ्यो शतपत्रनिभाननः ॥ दीर्घबाहुःपृथुग्रीवस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६ ॥ नाम्नाचित्रसमःप्रोक्तस्तेजोवीर्यसमन्वितः ॥ सबाल्यात्प्रभृतिप्रायो माहिषाणांचधोरणम् ॥ ७ ॥ करोतिसम्परित्यज्य सर्वमश्वादिवाहनम् ॥ कदाचिन्महिषारूढस्सम्प्रतस्थेदनोस्सुतः ॥ ८ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य विनिघ्नञ्जलपक्षिणः ॥अथासीत्सुसमाधिस्थोदुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ९ ॥ गङ्गातीरेविधायोच्चैः पद्मासनमनुत्तमम् ॥ विहङ्गासक्तचित्तेन दैत्येनसमुनीश्वरः ॥ १० ॥ दृष्टोनमहिषक्षुण्णः खुरैर्वेगवशाद्द्विजाः ॥ ततःक्षतजदिग्धाङ्गः सदृष्ट्वादानवंपुरः ॥ ११ ॥ अथदृष्ट्वाप्रणामेन रहितंकोपमाविशत् ॥ ततःप्रोवाचतंक्रुद्धस्तोयमादायपाणिना ॥ १२ ॥ यस्मात्पापममक्षुण्णं गात्रंमहिषजैःखुरैः ॥ समाधेश्चकृतोभङ्गस्तस्मात्त्वंमहिषोभव ॥ १३ ॥ यावज्जीवसिदुर्बुद्धे सम्यग्ज्ञानसमन्वितः ॥ अथासौमहिषोजातः कृष्णगात्रधरोमहान् ॥ १४ ॥ अतिदीर्घविषाणश्च अञ्जनाद्रिरिवापरः ॥ ततःप्रसादयामास त

कमलासन को करके मुनिनायक दुर्वासा जी भलीभांति समाधि में स्थितथे हे ब्राह्मणो ! पक्षियों में लगेहुये चित्तवाले उस दैत्यने खुरोंके वेग वशसे भैंसे से कचरे हुये उन दुर्वासा जीको न देखा तदनन्तर रक्तसे लिपटेहुये अंगोवाले उन दुर्वासाजीने अगाड़ी दैत्यको देखकर ॥ ९ । १० । ११ ॥ व इसके अनन्तर प्रणामसे रहित देखकर क्रोधमें प्रवेश किया तदनन्तर क्रोधित होकरके हाथसे जल लेकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे पापी ! जिसकारण भैंसे से उपजेहुये खुरोंसे मेरा शरीर कटगया व समाधिका भंग कियागया इसलिये हे दुष्टबुद्धे ! जबतक जियो तबतक भलीभांति ज्ञानसे संयुत तुम महिषहोवो इसके अनन्तर अति लम्बे सींगोंवाला व काले शरीर

का धारनेवाला वह दूसरे अंजनाचल के समान बडाभारी भैंसाहोगया तदनन्तर विनय संयुत होतेहुये उसने उनमुनिको प्रसन्न कराया ॥ १३ । १४ । १५ ॥ हे द्विज ! बालभावसे न जानतेहुये मेरे शापान्तको कीजिये इसके अनन्तर वे दुर्वासामुनि उस दैत्यसे बोले कि मेरा वचन व्यर्थ न होवैगा ॥ १६ ॥ इसलिये दुष्ट बुद्धिवाले व भैंसे के स्वरूपसे निन्दित तुम्हारे जबतक प्राणस्थित रहैंगे तबतक ऐसाहीहोगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर मुनिनायक दुर्वासा जी गंगाके किनारेको छोड़कर अन्यत्र चलेगये और उस दैत्य नेभी शीघ्रही जाकर शुक्रजीसे कहा ॥ १८ ॥ कि मैं किसी कारण के बीचमें दुर्वासा से शापितहुआ भैंसे के शरीरको प्राप्तकर दियागया इस

न्मुनिंविनयान्वितः ॥१५॥ शापान्तंकुरुमेविप्र बाल्यभावादजानतः ॥ अथतंसमुनिःप्राह नमेस्याद्वचनंवृथा ॥ १६ ॥ तस्माद्यावत्स्थिताःप्राणास्तावदित्थंभविष्यति ॥ महिषस्यस्वरूपेण निन्दितस्यसुदुर्मतेः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वापरित्यज्य गङ्गातीरंमुनीश्वरः ॥ जगामान्यत्रसोप्याशु गत्वाशुक्रमुवाचह ॥ १८ ॥ अहंदुर्वाससाशप्तः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ महिषत्वंसमानीतस्तस्मात्त्वंमेगतिर्भव ॥ १९ ॥ यथास्यात्पूर्वजंदेहं तिर्यक्त्वंनश्यतेयथा ॥ प्रसादात्तवविप्रेन्द्र तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २० ॥ शुक्रउवाच ॥ तस्यशापोन्यथाकर्तुंनैवशक्यःकथंचन ॥ केनापिसम्परित्यज्य देवमेकंमहेश्वरम् ॥ २१ ॥ तस्मादाराधयाशुत्वं गत्वालिङ्गमनुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदायके ॥ २२ ॥ तत्रसञ्जायते सिद्धिः शीघ्रंदानवसत्तम ॥ अपिपापयुगेप्राप्ते किंपुनःप्रथमेयुगे ॥ २३ ॥ एवमुक्तस्सशुक्रेण दानवस्सत्वरंययौ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसर्वसिद्धिप्रदायके ॥ २४ ॥ स्थापयित्वामहल्लिङ्गं भक्त्यादेवस्यशूलिनः ॥ प्रासादंचतथाचक्रे कैला

लिये तुम मेरी गतिहोवो ॥ १९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जिसप्रकार प्रथम उपजीहुई देह होवै व तुम्हारी प्रसन्नता से तिर्यक्ता याने महिषत्व नाशहोवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ २० ॥ शुक्र बोले कि एक महेश्वर देवको छोडकर किसीसेभी उसका शाप किसी प्रकार अन्यथा करनेके लिये समर्थित नहींहै ॥ २१ ॥ इसलिये तुम शीघ्रही समस्त सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाकर अतिउत्तम लिंगका आराधन करो॥ २२ ॥ हे दैत्योत्तम ! पापयुगके भी प्राप्त होनेपर वहां शीघ्रही सिद्धि भलीभांति होतीहै फिर प्रथम याने सतयुगमें क्या कहनाहै ॥ २३ ॥ इसप्रकार शुक्र जीसे कहाहुआ वह दैत्य समस्त सिद्धियों के दायक हाटकेश्वर जीसे उपजेहुये क्षेत्र में

शीघ्रही गया ॥ २४ ॥ व उसने भक्तिसे त्रिशूल वाले (सदाशिव) जीके बड़ेभारीलिङ्गको थापकर और कैलास शिखर के समान मन्दिर को किया ॥ २५ ॥ तपस्या में टिके व इसप्रकार वर्तमान् होते हुये उस महात्मा का बहुतही समय व्यतीत हुआ फिर वह कृच्छ्र (कठिन) तपस्यामें वर्तमान हुआ ॥ २६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये महादेव जी उसके दृष्टिगोचर में प्राप्तहोकर बोले कि हे दानव ! मैं प्रसन्नहूं तुम वरदानको स्वीकार करो ॥ २७ ॥ महिषासुर बोला कि दुर्वासामुनि से शापदिया हुआ मैं भैंसेकी योनि में नियुक्त कियागया इसलिये तुम्हारी प्रसन्नता से तिर्यक्ता याने भैंसे का भावनाश को प्राप्त होवै ॥ २८ ॥ शिव भगवान् बोले कि उन

सशिखरोपमम् ॥ २५ ॥ तस्यैवंवर्तमानस्य तपस्थस्यमहात्मनः ॥ जगामसुमहान्कालः कृच्छ्रेतपसिवर्त्तितः ॥ २६ ॥
ततस्तुष्टोमहादेवो गत्वातद्दृष्टिगोचरम् ॥ प्रोवाचपरितुष्टोस्मिवरंवरयदानव ॥ २७ ॥ महिषउवाच ॥ अहंदुर्वाससाश
प्तोमहिषत्वेनियोजितः ॥ तिर्यक्त्वंनाशमायातु तस्मान्मेत्वत्प्रसादतः ॥ २८ ॥ भगवानुवाच ॥ नान्यथाशक्यतेकर्त्तुं त
स्यवाक्यंकथञ्चन ॥ तस्मात्तवकरिष्यामि सुखोपायंशृणुष्वतम् ॥ २९ ॥ येकेचिन्मानवाभोगा दैविकायेतथासुराः ॥
तेसर्वेतवगात्रेत्रसम्प्रयास्यन्तिसंश्रयम् ॥ ३० ॥ भोगार्थमिष्यतेकायंयतोमर्त्यंसुरासुरैः ॥ समवाप्स्यसितान्सर्वान्त
स्मात्तवकलेवरम् ॥ ३१ ॥ महिषउवाच ॥ यद्येवंदेवदेवेशभोगप्राप्तिर्भवेन्मम ॥ तस्मादवध्यमेवास्तुगात्रमेतन्ममप्रभो ॥
३२ ॥ दशानांनवयोनीनांमनुष्याणांविशेषतः ॥ तिर्यञ्चानाञ्चनागानांपक्षिणांसुरसत्तम ॥ ३३ ॥ भगवानुवाच ॥ नावध्यो

दुर्वासा जी का शाप किसी प्रकार अन्यथा करने के लिये समर्थित नहीं है इस लिये तुम्हारे सुख का उपाय करूंगा उसको सुनो ॥ २९ ॥ कि जो कोई मनुष्यों व देवताओं तथा दैत्यों वाले सुखहैं वे सब तुम्हारे इस शरीर में भलीभांति आश्रयको प्राप्तहोंगे ॥ ३० ॥ जिसकारण कि देवताओं व दैत्यों से भोगके लिये मनुष्य का शरीर इच्छा कियाजाता है इसलिये तुम्हारा शरीर उन समस्त भोगों को भलीभांति पावैगा ॥ ३१ ॥ महिषासुर बोला कि हे देवदेवेश ! यदि मुझको ऐसी सुख की प्राप्तिहोगी तो उसी कारण हे सुरोत्तम, प्रभो ! नवलाख जलचर व दशलाख आकाशचर योनियों से व विशेषकर मनुष्यों व तिर्यक् कीटादिको व नागों और पक्षियों

से मेरा यह शरीर निश्चयकर अवध्य (न मारने योग्य) होवै ॥ ३२।३३ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे दैत्यपते ! भूपृष्ठ में कोई देहधारी व दैत्य अवध्य नहीं है इस लिये एकको छोड़कर शेष वरदानों को मांगिये ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उसने देरतक चिन्तवनकर वृषभध्वज शिवजी से कहा कि एक स्त्रीको छोड़कर अन्य प्राणियों से मेरा वध न होवै ॥ ३५ ॥ वैसेही अतिउग्र जो कोई पुरुष श्रद्धासे हमारे इस तीर्थ में स्नानकरै तदनन्तर तुमको देखै ॥ ३६ ॥ हे शङ्करजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से उसकी समस्त कामनाओंवाली संसिद्धिहोवै व सब उपद्रवोंका नाश और तेजकी बढ़ती होवै ॥ ३७ ॥ शिव भगवान् बोले कि अगहन महीनेकी शुक्ल पक्षवाली चौदसि में जो

स्तिधरापृष्ठेकश्चिद्देहीचदानवः ॥ तस्मादेकंपरित्यज्यशेषान्प्रार्थयदैत्यज ॥ ३४ ॥ ततस्ससुचिरन्ध्यात्वाप्रोवाचवृषभध्वजम् ॥ स्त्रियमेकांपरित्यज्यनान्येभ्यस्तुवधोमम ॥ ३५ ॥ तथात्रमामकेतीर्थेयःकश्चिच्छ्रद्धयानरः ॥ करोतिस्नानमत्युग्रःत्वांपश्यतिततःपरम् ॥ ३६ ॥ तस्यस्यात्त्वत्प्रसादेनसंसिद्धिस्सार्वकामिकी ॥ सर्वोपद्रवनाशश्चतेजोवृद्धिश्चशङ्कर ॥ ३७ ॥ भगवानुवाच ॥ मार्गशुक्लचतुर्दश्यांतीर्थेस्नात्वात्रतावके ॥ विलोकयिष्यतिप्रीत्याममलिङ्गन्ततःपरम् ॥ ३८ ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यःसम्भवास्तस्यतत्क्षणात् ॥ दोषास्संक्षयमायान्तितथारोगाःक्षयादयः ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वाचदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ महिषोपिनिजस्थानंप्रजगामततःपरम् ॥ ४० ॥ सगत्वादानवान्सर्वान्समाहूयततःपरम् ॥ प्रोवाचामर्षसंयुक्तस्सभामध्येव्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ पितामम पितृव्यश्चयेचान्येममपूर्वजाः ॥ दानवानिहतादेवैर्वासुदेवपुरोगमैः ॥ ४२ ॥ तस्मात्तांनाशयिष्यामि देवानपिमहाहवे ॥ अहंत्रैलोक्यराज्यंहिग्रहीष्यामिततःपरम् ॥ ४३ ॥

पुरुष तुम्हारे इस तीर्थ में नहाकर तदनन्तर प्रीतिसे मेरे लिङ्गको देखैगा ॥ ३८ ॥ उसके भूत, प्रेत, पिशाचों से उपजेहुए दोष व क्षयादिक रोग उसी क्षण नाश को प्राप्त होवेंगे ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर देवेश (शिव) जी अन्तर्द्धान होगये उसके उपरान्त महिषासुर भी अपने स्थानको चलागया ॥ ४० ॥ सभाके बीचमें बैठेहुए व क्रोध संयुक्त उस महिषासुरने जाकर समस्त दैत्यों को भलीभांति बुलाकर तदनन्तर कहा ॥ ४१ ॥ कि मेरे पिता व चचा और मेरे पहले उपजेहुए तथा विष्णुजीके आगे चलने वाले जो अन्य दानवहैं वे देवताओं से मारेगये हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये बड़े भारी युद्धमें मैं उन देवताओंको भी नाश करूंगा तदनन्तर त्रिलोककी राज्य निश्चय करलेलूंगा ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर उन दानवोंने कहा कि यह उचितहै क्योंकि स्वर्ग में जिस अतिउत्तम राज्यको इन्द्रजी करते हैं यह हम लोगोंकाहै ॥ ४४ ॥ इसलिये आजही जाकर रणशीर्ष में उन देवताओं को शीघ्रही मारकर दिव्य भोगों को भोगते व सुखी होतेहुए हम लोग स्वर्ग में टिकैंगे ॥ ४५ ॥ इसभांति वे सब दैत्य सम्मतिका विशेषकर निश्चयकर तदनन्तर सेवक, सेना व सवारियोंसमेत होकर सुमेरुगिरिके शिखरपै गये ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रादिक देवता शस्त्र व अस्त्रसे संयुत व अचानकही भली भांति प्राप्त दानवों से उपजीहुई उस सेनाको देखकर ॥ ४७ ॥ तदनन्तर जे आदित्य, वसु, रुद्र व उत्तमवैद्य अश्विनीकुमार व विश्वेदेवा, साध्य, सिद्ध व विद्याधर थे वे

अथतेदानवाःप्रोचुर्युक्तमेतदनुत्तमम् ॥ अस्मदीयमिदंराज्यंयच्छक्रःकुरुतेदिवि ॥ ४४ ॥ तस्मादद्यैवगत्वाशुहत्वातान्र णमूर्द्धनि ॥ दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जानाःस्थास्यामस्सुखिनोदिवि ॥ ४५ ॥ एवंतेदानवास्सर्वेकृत्वामन्त्रविनिश्चयम् ॥ मेरु शृङ्गन्ततोजग्मुःसभृत्यबलवाहनाः ॥ ४६ ॥ अथशक्रादयोदेवादृष्ट्वातद्दानवोद्भवम् ॥ अकस्मादेवसम्प्राप्तंबलंशस्त्रास्त्र संयुतम् ॥ ४७ ॥ युद्धार्थन्तेपुरद्वारिनिर्ययुस्तदनन्तरम् ॥ आदित्यावसवोरुद्रानासत्यौचभिषग्वरौ ॥ ४८ ॥ विश्वेदेवा स्तथासाध्यासिद्धाविद्याधराश्चये ॥ ततस्समभवद्युद्धन्देवानांसहदानवैः ॥ ४९ ॥ मिथःप्रभत्स्यमानानांमृत्युंकृत्वानि वर्तनम् ॥ एवंसमभवद्युद्धंयावद्वर्षत्रयंदिवि ॥ ५० ॥ रक्तनद्योतिविपुलास्तत्रातीवप्रसुस्रुवुः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशक्रंद द्दैरावतसंस्थितम् ॥ ५१ ॥ सुशुक्लेनातपत्रेणध्रियमाणेनमूर्द्धनि ॥ देवैःपरिवृतंदेवंशस्त्रपाणिभिरेवच ॥ ५२ ॥ ततःकोप परीतात्मामहिषोदानवाधिपः ॥ महावेगंसमासाद्यतस्यैवाभिमुखोययौ ॥ ५३ ॥ शृङ्गाभ्यांसुतीक्ष्णाभ्यांततश्चैरावतञ्च

समरके लिये पुरके द्वारपै निकले उसके उपरान्त मृत्युको लौटाकर आपसमें घुडकतेहुए देवताओंका दैत्यों के साथ भलीभांति युद्धहुआ इसभांति स्वर्ग में तीन वर्षतक युद्धहुआ ॥४८।४९।५०॥ और वहांपर अत्यन्तही विस्तारवाली रुधिरकी नदियां बहतीभई अन्य दिनमें मस्तकपै घेरेहुए श्वेतछत्र से उपलक्षित व शस्त्र हाथोंवाले देवता-ओं से घिरे व ऐरावत पै भलीभांति बैठेहुए इन्द्रदेवजीको देखकर ॥५१।५२॥ तदनन्तर क्रोधमे घिरेहुए चित्त या मनवाला दैत्यनायक महिषासुर बड़े वेगको प्राप्तहोकर

उन्ही इन्द्रके सामने गया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उसने बड़े पैने सींगों से उस ऐरावतके हृदय में वेधनकिया इसके अनन्तर उस ऐरावतने बड़ेभयंकर शब्दको किया ॥५४॥ तदनन्तर विमुखहोकर भागने में तत्पर वह ऐरावत वेगसे उसी सामने दौड़ा कि जहां अमरावतीपुरी थी ॥ ५५ ॥ बहुतेरे अंकुशों के उठेहुए प्रहारों से कटेहुए मस्तक वाला भी व हाथीवान् से रोंकाहुआ भी वह ऐरावत किसीप्रकार न खड़ाहुआ ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर हजार नेत्रवाले इन्द्रजीने गर्वमें प्राप्तहुए महिषासुरको व सिंहनादों के शब्दादिकों से गर्जतेहुए दैत्यों को देखकर कहा ॥ ५७ ॥ कि हे दैत्य ! जिसलिये तुम जानतेहो कि त्रिदशनायक (इन्द्र) जी भागगये क्योंकि मेरा यह विवश हाथी

तम् ॥ विव्याधहृदयेसोथचक्रेरावंसुदारुणम् ॥ ५४ ॥ ततःपराङ्मुखोभूत्वापलायनपरायणः ॥ अभिदुद्राववेगेनपुरीयत्रामरावती ॥ ५५ ॥ अंकुशोत्थप्रहारैश्चक्षतकुम्भोपिभूरिशः ॥ महामात्रनिरुद्धोपिनसतस्थौकथञ्चन ॥ ५६ ॥ अथाब्रवीत्सहस्राक्षोमहिषंवीक्ष्यगर्वितम् ॥ गर्जमानान्तथादैत्यान्क्ष्वेडानांक्रन्दनादिभिः ॥ ५७ ॥ मांदैत्यप्रविजानीषियन्नष्टस्त्रिदशाधिपः ॥ एषनागोरणंहित्वाविवशोयातिमेबलात् ॥ ५८ ॥ तस्मात्तिष्ठमुहूर्तंत्वंयावदास्थायस्वंरथम् ॥ नाशयामिचतेदर्प्पंनिहत्वानिशितैश्शरैः ॥ ५९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोमातलिःशक्रसारथिः ॥ सहस्रैर्दशभिर्युक्तंवाजिनांवातरंहसाम् ॥ ६० ॥ तेथमातलिनाश्वाःप्रतोदेनसमाहताः ॥ उत्पतन्तइवाकाशेसत्वरम्प्रतिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ अथचापंसमारोप्यसत्वरंपाकशासनः ॥ शरैराशीविषैर्घोरैश्छादयामासदानवम् ॥ ६२ ॥ ततोवेगंसमास्थायभूयोपिक्रोधमूर्च्छितः ॥ अभिदुद्राववेगेनसयत्रत्रिदशाधिपः ॥ ६३ ॥ ततस्तान्सुहयान्तस्यश्टङ्गाभ्यांवेगमाश्रितः ॥ दारयामाससंकु

युद्धको छोडकर बलसे जाताहै ॥ ५८ ॥ इसलिये तुम मुहूर्तभर याने कच्ची दो घड़ीतक ठहरिये जबतक मैं अपने रथपै बैठकर व पैने बाणों से मारकर तुम्हारे गर्व को नाश करूंगा ॥ ५९ ॥ इसी अवसरमें पवनके समान वेगवाले दशहजार घोड़ों से संयुत (जुतेहुए) रथको लेकर इन्द्रका सारथी मातलिनामक प्राप्तहुआ ॥ ६० ॥ मातलि से चाबुकके द्वारा अतिताड़ित होते हुए वे घोड़े आकाशमें उछलतेहुए से सामने शीघ्रही दौड़े ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रजीने शीघ्रही धनुषको चढ़ाकर सर्पों के समान भयंकर बाणों से दैत्यको आच्छादन करलिया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वेगको प्राप्तहोकर फिर भी कोप्रसे मूर्छित होताहुआ वह दैत्य वेगसे सामने दौड़ा जहां कि

इन्द्रजी थे ॥६३॥ तदनन्तर वेगमें आश्रित होतेहुए उस महिषासुरने उन इन्द्रजी के उन उत्तम घोडों को सींगों से बार २ बेध २ कर विदारणकिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर कटे हुए वक्षस्थलवाले व-रुधिर से डूबेहुए समस्त अंगोंवाले व डरेहुए घोड़े ऐरावतके मार्गको भलीभांति चलेगये ॥ ६५ ॥ तदनन्तर इन्द्रजी के रथको विमुख देखकर डरेहुए समस्त देवतोत्तम उस रथके मार्गका आश्रयकर भागगये ॥ ६६ ॥ उसके उपरान्त शस्त्रोंकी वृष्टिको छोड़तेहुए समस्त दैत्य संग्राम में कटे पिटे या भागेहुए देवताओं को देखकर मेघों के समान गर्जतेहुए ॥ ६७ ॥ इसी अवसरमें अन्धकार से घिरीहुई रात प्राप्तहुई उस रातमें किसी के दृष्टिगोचरमें कुछ न प्राप्तहोता था ॥ ६८ ॥ तदनन्तर

द्धश्चाविध्याविध्यचासकृत् ॥ ६४ ॥ ततस्तेवाजिनस्त्रस्तास्सञ्जग्मुःक्षतवक्षसः ॥ रक्तप्लावितसर्वाङ्गामार्गमैरावतस्य च ॥ ६५ ॥ ततःशक्ररथंदृष्ट्वाविमुखंसुरसत्तमाः ॥ सर्वेविदुद्रुवुर्भीतास्तस्यमार्गमुपाश्रिताः ॥ ६६ ॥ ततस्तुदानवास्स र्वेभग्नान्दृष्ट्वारणेसुरान् ॥ शस्त्रवृष्टिञ्चमुञ्चन्तोगर्जमानायथाघनाः ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तारजनीतमसावृता ॥ नकिञ्चित्तत्रसंयातिकस्यचिद्दृष्टिगोचरे ॥ ६८ ॥ ततस्तुदानवास्सर्वेयुद्धान्निर्वृत्यसर्वतः ॥ मेरुशृङ्गंसमाश्रित्यरम्यंवास म्प्रचक्रमुः ॥ ६९ ॥ विजयेनसमायुक्तास्तुष्टिञ्चपरमाङ्गताः ॥ कथाञ्चक्रुश्चयुद्धोत्थायुद्धंयस्ययथाभवत् ॥ ७० ॥ देवाश्चापि हतोत्साहाःप्रहारैःक्षतवक्षसः ॥ मन्त्रञ्चक्रुर्मिथोभूत्वाबृहस्पतिपुरस्सराः ॥ ७१ ॥ साम्प्रतन्दानवैस्सैन्यमस्माकंविमुखं कृतम् ॥ विध्वस्तञ्चनिरुत्साहमत्त्रमंयुद्धकर्मणि ॥ ७२ ॥ तस्मात्त्यक्त्वाप्रवेक्ष्यामःपुरीञ्चैवामरावतीम् ॥ ब्रह्मणस्सदनंयत्र नस्याद्दानवजम्भयम् ॥ ७३ ॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वाब्रह्मलोकंततोगताः ॥ शून्यांशक्रपुरींकृत्वासर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ७४ ॥

समस्त दैत्यों ने युद्धसे लौटकर व सुमेरुगिरिके शिखरपै सब ओर भलीभांति टिकाश्रयकर सुन्दर निवासकिया ॥ ६९ ॥ व जीतसे संयुत तथा परम प्रसन्नताको प्राप्तहुए उन दैत्योंने वैसेही युद्धसे उठीहुई कथाओं को किया कि जिसका जिसप्रकार युद्ध हुआथा ॥ ७० ॥ व प्रहारों से कटेहुए वक्षस्थलोंवाले व नष्ट उत्साहवाले तथा बृहस्पति अग्रगामीवाले देवताओं ने भी आपसमें होकर सम्मति किया ॥ ७१ ॥ कि इस समय दैत्योंने हम लोगोंकी सेनाको विमुख व विध्वंस व उत्साहहीन व युद्ध कर्ममें असमर्थ कियाहै ॥ ७२ ॥ इसलिये अमरावतीपुरीको छोड़कर ब्रह्माके मन्दिर में प्रवेश करेंगे कि जहांपर दैत्यों से उपजाहुआ डर नहीं है ॥ ७३ ॥ वे इन्द्रसमेत समस्त देवता

इसप्रकार निश्चयकरके व इन्द्रपुरीको शून्यकर तदनन्तर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ७४ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल उठकर इन्द्रपुरीको शून्य देखकर उसके उपरान्त प्रसन्न होतेहुए उन दैत्योंने प्रवेशकिया ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नता संयुत उन दैत्योंने इन्द्रजी के स्थानपै महिषासुरको भलीभांति बिठाकर प्रणामकिया व बड़ा उछाह किया ॥ ७६ ॥ व जिन्होंने देवताओं को जीतलिया है उन्होंने समस्त देवस्थानों में सब देवताओं के यज्ञभागों को ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवसैन्यपराजयोनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ततःप्रातःसमुत्थायदानवास्तेप्रहर्षिताः ॥ शून्यांशक्रपुरींदृष्ट्वाविविशुस्तदनन्तरम् ॥ ७५ ॥ अथशाक्रेपदेदैत्यं महिषंसन्निधायच ॥ प्रणेमुस्तुष्टिसंयुक्ताश्चक्रुश्चैवमहोत्सवम् ॥ ७६ ॥ जगृहुर्यज्ञभागांश्चसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ देव स्थानेषुसर्वेषुदेवतानिर्जितास्तुयैः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवसेनापराजयोनामषो डशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंशक्रादयोदेवाजितास्तेतुरणाजिरे ॥ महिषेणततोराज्यंत्रैलोक्येपिचकारसः ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्त्रि षुलोकेषुसारभूतम्प्रपश्यति ॥ गजवाजिरथास्त्रादिसर्वंगृह्णातिसोसुरः ॥ २ ॥ एवंप्रवर्तमानस्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ वधार्थंमिलिताश्चक्रुःकथादुःखसमन्विताः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोनारदोमुनिसत्तमः ॥ तदातंमाहिषंसर्वंव्यवहारंम होत्कटम् ॥ ४ ॥ ततश्चकथयामाससर्वंतेषांसविस्तरम् ॥ तस्यसञ्चेष्टितम्भूरिलोकत्रयप्रपीडनम् ॥ ५ ॥ अथतेषांम

दो० । कात्यायनि देवीभई महिषासुर वध हेत । इकसौ सत्रहमें सोई बरणत बुद्धि निकेत ॥ सूतजी बोले कि रणरूपी आंगन में महिषासुरने इसभांति उन इन्द्रादिक देवताओं को जीताहै तदनन्तर उसने त्रिलोक में भी राज्यकिया ॥ १ ॥ वह महिषासुर तीनों लोकों में हाथी, घोड़ा, रथ व स्त्री आदिक जो कुछ वस्तु सारभूत (श्रेष्ठ) देखता था उस सबको ग्रहण करता था ॥ २ ॥ उस दैत्यको इसप्रकार वर्तमान होनेपर दुःखसंयुत होतेहुए इन्द्रसमेत समस्त देवताओंने मिलकर उस महिषासुरके मारने के लिये कथाओं को किया ॥ ३ ॥ इसी अवसर मे मुनिनायक नारदजी प्राप्त हुये तदनन्तर उन ने उस समय महिषासुर के उस समस्त बड़े उग्र ब्योहार

को व बहुतही तीनों लोकों के पीड़ावाले उसके समस्त कर्मको उन देवताओं से विस्तार समेत कहा ॥ ४ । ५ ॥ इसके अनन्तर लोककी कथाओं से उपजे हुये नारद जी के वैसे वचन को सुनकर फिर भी उन देवताओं के बड़ाभारी क्रोध बढ़ा ॥ ६ ॥ व उन देवताओं के क्रोधसे उपजाहुआ धुवाँ मुख के द्वारसे निकला कि जिससे उसी क्षण समस्त दिशाओं का मण्डल मलिन करदियागया ॥ ७ ॥ इसी अवसर में वहांपर स्वामिकार्त्तिकेय जीने भलीभांति आगमन किया व पूंछा कि हे मुने ! यह क्या देवताओंके क्रोधका कारणहै कि जिससे समस्त दिग्मंडल मलिनता को प्राप्त होगया ॥ ८ ॥ नारद जी बोले कि हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! जिसप्रकार उन

हाकोपोभूयएवाभ्यवर्द्धत ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वाताद्दग्लोककथोद्भवम् ॥ ६ ॥ तेषांकोपोद्भवोधूमोवक्त्रद्वारेणनिर्ययौ ॥ येनदिग्मण्डलंसर्वंतत्क्षणात्कलुषीकृतम् ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रकार्त्तिकेयःसमभ्ययात् ॥ पप्रच्छचकिमेतद्धिदेवानांकोपकारणम् ॥ येनकालुष्यताम्प्राप्तं दिक्चक्रंसकलंमुने ॥ ८ ॥ नारदउवाच ॥ एतेषांसाम्प्रतंस्कन्द मयावार्ता निवेदिता ॥ त्रैलोक्यंदानवैस्सर्वैर्यथानीतंमहोत्कटैः ॥ ९ ॥ स्त्रीरत्नमश्वरत्नंवा नकिञ्चित्कस्यचिद्गृहे ॥ तद्दृष्ट्वामोचयन्तिस्म दुर्निवार्यामदोत्कटाः ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वाकार्त्तिकेयस्य विशेषाज्जायतेचरुट् ॥ वक्त्रमार्गेणदेवानां यथाकोपःसमागतः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजाता तत्कोपान्तेकुमारिका ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ना दिव्यतेजोन्विताशुभा ॥ १२ ॥ कार्त्तिकेयस्यकोपेन कोपेमिश्रेदिवौकसाम् ॥ यस्माज्जाताचसाकन्या तस्मात्कात्यायनीस्मृता ॥ १३ ॥ ततस्तस्याद

बड़ेभारी उग्र समस्त दैत्योंने त्रिलोकको प्राप्तकिया इससमय मैंने वही वार्ता इन देवताओं से निवेदन किया ॥ ९ ॥ कि उत्तम स्त्री व श्रेष्ठ घोड़ा इत्यादि कुछ किसी के घरमें नहीं है क्योंकि क्लेशसे मना करने के योग्य व गर्वसे उग्र उन दैत्योंने देख कर लेलियाहै ॥ १० ॥ उस वचनको सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जीके विशेषता से क्रोध उत्पन्नहुआ जैसे कि देवताओं के मुखमार्गसे क्रोध पैदाहुआथा ॥ ११ ॥ इसी अवसरमें उस क्रोध के बाद दिव्य तेजसे संयुत व समस्त लक्षणों से चिह्नित शुभदायक कन्या पैदाहुई ॥१२॥ जिस कारण देवताओंके क्रोधको स्वामिकार्त्तिकेयजीके क्रोधसे मिलनेपर कन्या उत्पन्नहुई उसी लिये वह कात्यायनी कहीगई है ॥१३॥

तदनन्तर इन्द्र जीने वज्रास्त्र को व महासेन जीने अति पैने अग्रभागवाली शक्तिको व विष्णुदेव जीने उस को धनुष् दिया ॥ १४ ॥ व महादेव जीने त्रिशूल व आपही वरुणजीने फँसरी व सूर्य्यजीने पैने बाणोंको व चन्द्रमाने उत्तम ढालको दिया॥ १५ ॥ व प्रसन्न होतेहुये निर्ऋति देवने तलवार व अग्निदेवजीने उत्कल अस्त्रको व पवन ने पैनी छुरीको तथा कुबेरजीने परिघको दिया ॥ १६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! दैत्योंके मारनेके लिये यमराजजीने भयंकर दंडको दिया तदनन्तर उस कात्यायनीने ऐसे बारह अस्त्रों को भलीभांति देखकर बारह भुजाओंको किया व देवताओं के उन सुन्दरे अस्त्रोंको शीघ्रही ग्रहण किया ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर भ-

दौवज्रमायुधंत्रिदशाधिपः ॥ शक्तिंस्कन्दस्सुतीक्ष्णाग्रां चापंदेवोजनार्द्दनः ॥ १४ ॥ त्रिशूलञ्चमहादेवः पाशञ्चवरुणस्स्वयम् ॥ आदित्यश्चाशितान्बाणांश्चन्द्रमाश्चर्मचोत्तमम् ॥ १५ ॥ निस्त्रिंशंनिर्ऋतिस्तुष्ट उत्कलंचहुताशनः ॥ वायुश्चक्षुरिकांतीक्ष्णां धनदःपरिघंतथा ॥ १६ ॥ दण्डंप्रेताधिपोरौद्रं वधायसुरविद्विषाम् ॥ द्वादशैवंसमालोक्य सायुधानिद्विजोत्तमाः ॥१७॥ कात्यायनीततश्चक्रे भुजद्वादशकन्तथा ॥ जग्राहचद्रुतंतानि सुशस्त्राणिदिवौकसाम् ॥ १८ ॥ ततःप्रोवाचतान्सर्वान् सम्प्रहृष्टतनूरुहान् ॥ यदर्थंविबुधश्रेष्ठाः सृष्टातद्ब्रूतमाचिरम् ॥ १९ ॥ सर्वंकार्यंकरिष्यामि युष्माकंनात्रसंशयः ॥ २० ॥ देवाऊचुः ॥ महिषोदानवोरुद्रःसमुत्पन्नोत्रसाम्प्रतम् ॥ अवध्यस्सर्वभूतानां मानुषाणांविशेषतः ॥ २१ ॥ मुक्त्वैकायोषितंतेन त्वमस्माभिर्विनिर्मिता ॥ तस्मात्त्वंसाम्प्रतंगच्छ विन्ध्याख्यंपर्वतोत्तमम्॥२२॥ तपस्तत्रकुरुष्वोग्रं तेजोयेनाभिवर्द्धते ॥ ततस्तुतेजसायुक्तांत्वांज्ञात्वावयमेवहि ॥ २३ ॥ अग्रेकृत्वाकरिष्यामो युद्धंतेन

लीभांति प्रसन्न लोमोंवाले उन समस्त देवताओं से कहा कि हे देवतोत्तमो ! जिस लिये मैं रचीगईहूं उसको शीघ्रही कहिये ॥ १९ ॥ मैं तुमलोगों के समस्त कार्य्य को करूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ देवतालोग बोले कि इससमय इस भूतल में महिष नामक विकराल दैत्य उत्पन्नहुआ है जोकि एक स्त्रीको छोड़कर सम्पूर्ण प्राणियों के व विशेषकर मनुष्योंके न मारने योग्यहै उसीसे हमलोगोंने तुमको रचा है इसलिये इससमय तुम विन्ध्याचल नामक पर्वतोत्तम को जावो ॥ २१ । २२ ॥ और वहांपर उग्र तपस्याको करो कि जिससे तेज बढ़ै तदनन्तर तेजसे संयुतहुई तुमको जानकर हमलोग निश्चयकर अगाड़ीकरके उस दुष्टात्मा के साथ युद्धकरैंगे

तदनन्तर तुम्हारे बाणसे जलाहुआ वह मृत्युको प्राप्तहोगा ॥ २३ । २४ ॥ व मरेहुये शत्रुवाले हमलोग देवताओं के ऐश्वर्य्यको पावैंगे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृ
तीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां कात्यायन्युत्पत्तिर्नामसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इन्द्रादिक देवन सकल पायो निज निज थान । सोइ एकसौ अठारह माहिं कहत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर देवताओंके उस वचनको सुनकर उन
कात्यायनी परमेश्वरीने कहा कि हे देवताओ! मुझको शीघ्रही किसी वाहनको दीजिये ॥ १ ॥ तदनन्तर सवारीके लिये पार्वती जीने बीभत्सित मुखवाले सिंहको दिया

दुरात्मना ॥ ततस्त्वच्छरसंदग्धः पञ्चत्वंसंप्रयास्यति ॥ २४ ॥ वयंचत्रिदशैश्वर्यं लभिष्यामोहतद्विषः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येकात्यायन्युत्पत्तिर्नामसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सूतउवाच ॥ देवानांतद्वचः श्रुत्वाततः सापरमेश्वरी ॥ प्रोवाचवाहनंकिञ्चिद्देवायच्छन्तुमेद्रुतम् ॥ १ ॥ ततस्सिंहंद
दौगौरी यानार्थंविकृताननम् ॥ तमारुह्यप्रतस्थेसा ततोविन्ध्यंनगम्प्रति ॥ २ ॥ तस्यैवंशृङ्गमास्थायरम्यंश्रेष्ठसमन्वि
तम् ॥ फलपुष्पसमाकीर्णं तालमण्डपमण्डितम् ॥ ३ ॥ ततस्तपोकरोत्साध्वी तीव्रव्रतपरायणा ॥ संयम्येन्द्रियवर्गंस्वं
ध्यायमानामहेश्वरम् ॥ ४ ॥ यथायथातपोवृद्धिस्तस्यास्संजायतेद्विजाः ॥ तथारूपंचकान्तिश्च शरीरेपिचवर्धते ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्तत्रदैत्येश्वरेश्वराः ॥ तेतांदृष्ट्वाव्रतोपेतामत्यद्भुतवपुर्धराम् ॥ ६ ॥ गत्वाप्रोचुस्स्वनाथस्य माहि

उसके उपरान्त उस भगवतीने उस सिंहपै चढकर विन्ध्याचलके सामने प्रस्थान किया ॥ २ ॥ उस विन्ध्याचलके उत्तमता संयुक्त तथा मनोहर व फल, फूलोंसे व्याप्त
और तालोंके मण्डपोंसे शोभित शिखरपै टिककर ॥ ३ ॥ तदनन्तर तीव्र (उग्र) व्रतोंमें परायण व महादेवजीको ध्यान करतीहुई उस उत्तम आचरणोंवाली कात्या-
यनीने इन्द्रियोंके समूहको भलीभांति रोंककर तपस्या किया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! ज्यों ज्यों उस कात्यायनीके तपकी वृद्धि होती थी त्यों त्यों शरीरमेंभी रूप व शोभा
बढ़तीथी ॥ ५ ॥ इसी अवसर में दैत्येश्वर महिषासुरके सेवक लोग वहांपर प्राप्तहुये उन्होंने अतिअद्भुत शरीरको धारनेवाली व व्रतसे संयुक्त उस भगवतीको देखकर

व जाकर दुष्टात्मा महिषासुर नामक अपने स्वामीसे कहा ॥ ६ । ७ ॥ निशाचर बोले कि धरातलमें घूमते हुये हमलोगोंने विन्ध्याचल पर्वतपै नाना प्रकारके शस्त्रोंको धारनेवाले व प्रकाशवाले बारह भुजाओंसे संयुत व ढालसे ढके हुये मस्तकवाली अपूर्व कन्याको देखाहै पुरातन समय हमलोगोंने वैसे रूपवाली किसीभी देवी व गन्धर्विणी व दैत्यपत्नी व नागकन्याको नहीं देखा है और हम नहीं जानते हैं कि उस नितम्बिनी याने उत्तमनितम्बवाली व कीर्तिमती स्त्रीने जिसलिये तपस्या किया है ॥ ८ । ९ । १० ॥ हे विभो ! स्वर्गकी इच्छावाली या द्रव्य चाहनेवाली अथवा पतिके अभिलाषवाली है ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उन सेवकोंके उस वचन

षस्यदुरात्मनः ॥ ७ ॥ निशिचराऊचुः ॥ भ्रममाणैर्धरापृष्ठेदृष्टापूर्वाकुमारिका ॥ विंध्याचलेतुचास्माभिर्भुजैर्द्वादश भिर्युता ॥ ८ ॥ नानाशस्त्रधरैर्दीप्तैश्चर्मच्छादितमस्तका ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनागकन्यका ॥ ९ ॥ तादृग्रूपापुरा स्माभिर्नापिदृष्टानितम्बिनी ॥ नविद्मोयन्निमित्तंसा तपश्चक्रेयशस्विनी ॥ १० ॥ स्वर्गकामार्थकामावा पतिकामाथ वाविभो ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा महिषोदानवाधिपः ॥ कामदेववशम्प्राप्तः श्रवणादपितत्क्षणात् ॥ १२ ॥ ततस्तानग्रतःकृत्वा सैन्येनमहतान्वितः ॥ जगामकौतुकाविष्टो यत्रास्तेसातुकन्यका ॥ १३ ॥ यथामृत्युकृते मन्दः शृगालःसिंहवल्लभाम् ॥ वनेसुप्तांसुविश्वस्तां सर्वतोप्यकुतोभयाम् ॥ १४ ॥ तस्यास्सन्दर्शनादेव ततःकामशरै र्हतः ॥ सदानवप्रधानश्च तत्क्षणादेवसद्द्विजाः ॥ १५ ॥ अथप्राहप्रियंवाक्यमेकाकीतत्पुरःस्थितः ॥ धृत्वादूरतरे

को सुनकर महिषनामक दैत्यनायक सुनने से भी उसी क्षण कामदेवके वशमें प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन सेवकों को अगाड़ी करके बड़ीसेनासे संयुत व कौतुक से पैठाहुआ महिषासुर वहांगया जहाँकि वह कन्या बैठीथी ॥ १३ ॥ जैसे कि भलीभांति विश्वास कियेहुई व सबओर सेभी निर्भय व वनमें सोतीहुई सिंह की प्यारी (सिंहिनी) के निकट मृत्युके लिये मूर्ख सियार जावै ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो ! वह दैत्योंमें मुख्य (महिषासुर) उन भगवती जीके भलीभांति दर्शनहीसे कामदेव के बाणोंसे ताड़ितहुआ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर बड़ी दूर में सेनाको धरकर याने टिकाकर उस देवीके रूपसे मोहित व अकेले उसके अगाड़ी

टिकाहुआ महिषासुर प्यारे वचनको बोला ॥ १६॥ कि हे मनोहरहास्यवाली ! यह व्रत तुम्हारे यौवनके विरुद्धहै इसलिये इसको छोड़कर त्रिलोक की स्वामिनी होवो ॥ १७ ॥ यदि सुनागयाहूं याने कदाचित् तुमने सुनाहो तो मैं महिषासुर नामक दैत्येन्द्रहूं कि जिस मैंने इन्द्र याने दोही के युद्धमें हजार नेत्रवाले इन्द्र जी को विशेषकर जीताहै ॥ १८ ॥ हे उत्तम कटिवाली ! इससमय समस्त त्रिलोक मेरे वशमें स्थितहै इसलिये तुम मेरी अतिप्यारी नारी होवो ॥ १९ ॥ व मेरे और अति उत्तम हजार स्त्रियाहै इस समय आज वे सब तुम्हारी सेवकाई करैंगी ॥ २० ॥ व हे उत्तम कटिवाली ! दीहुई समस्त सम्पदाओंवाला मैंही तुम्हारे अत्यन्त दासभाव

सैन्यंतस्यारूपेणमोहितः ॥ १६ ॥ विरुद्धंयौवनस्येदंव्रतन्तेचारुहासिनि ॥ तस्मादेतत्परित्यक्त्वात्रैलोक्यस्वामिनी भव ॥ १७ ॥ अहंहिमहिषोनाम दानवेन्द्रोयदिश्रुतः ॥ मयायेनसहस्राक्षो इन्द्रयुद्धेविनिर्जितः ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यंस कलंमह्यं साम्प्रतञ्चवशेस्थितम् ॥ तस्मात्त्वंभवसुश्रोणिभार्याममसुवल्लभा ॥ १९ ॥ सहस्रंममभार्याणामन्यदस्ति सुशोभनम् ॥ तत्सर्वंतेद्यभृत्यत्वं साम्प्रतंप्रकरिष्यति॥२०॥अहञ्चैवतवात्यन्तं दासभावंसमाश्रितः ॥ वर्त्तयिष्यामिसु श्रोणिप्रदत्ताशेषसम्पदः ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा ततस्सापरमेश्वरी ॥ प्रोवाचभर्त्समानातंकोपसंर क्तलोचना ॥ २२ ॥ धिग्धिक्पापसमाचार कुमारव्रतधारिणीम् ॥ कामोपहतचित्तात्मा किंमामित्थंप्रभाषसे ॥ २३ ॥ अहंतववधार्थाय निर्मिताविबुधोत्तमैः ॥ तस्मात्त्वांनाशयिष्यामिस्मरेष्टंयद्धृदिस्थितम् ॥ २४ ॥ महिषउवाच ॥ य द्येवंतद्वरारोहेयुक्तंस्याचकुमारिका ॥ प्रार्थनीयाभवेदत्र सर्वेषांप्राणिनांयथा ॥ २५ ॥ स्वर्गार्थेक्रियतेधर्मं तपश्चवरव

में भलीभांति टिककर वर्तमान हूंगा ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस महिषासुर के उस वचनको सुनकर क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाली व उसको घुड़कतीहुई वह कात्यायनी परमेश्वरी बोली ॥ २२ ॥ कि हे पाप आचरणोंवाले ! तुमको धिक्कारहै धिक्कार है कामदेवसे ताड़ित चित्त या मनवाले तुम कन्याव्रतके धारने वाली मुझसे क्यों ऐसा कहतेहो॥२३॥देवतोत्तमोंने तुम्हारे मारनेके लिये मुझको रचाहै इसलिये हृदयमें टिकाहुआ जो प्रियपदार्थ हो उसको स्मरणकरो क्योंकि मै तुमको नाश करूंगी॥२४॥महिषासुर बोला कि हे वरारोहे याने सुशोभने ! यदि ऐसाहै तो योग्यहै जैसे कि इस संसारमें कन्या समस्त प्राणियोंके प्रार्थना योग्य होतीहै ॥२५॥

वैसेही हे सुशोभने ! स्वर्गके लिये धर्म व तप कियाजाता है कि जिससे जो देवताओंवाले व जो मनुष्योंवाले भोगहैं उनको भोग करते हैं ॥ २६ ॥ इसलिये हे सुशोभने ! गन्धर्वविवाहसे मुझे आत्माको दीजिये जिस लिये कि अन्य विवाहोंके मध्यमें वह मुख्य कहागयाहै ॥ २७ ॥ उस महिषासुर को इसप्रकार कहतेहुये वह देवी क्रोधसे मूर्च्छितहुई व देवीने उसके मुखमध्य को भलीभांति उद्देशकर बाणको छोड़ा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर वह बाण उसके मुखमें वैसेही पैठगया जैसे कि बेंबैरिमें सर्प पैठजाता है तदनन्तर उन बाणोंसे मुखके बीचमें वेधित वह महिषासुर शब्द करताभया ॥ २९ ॥ तदनन्तर गेरूवाले पर्वत के समान बहुत रुधिर बहा

णिनि ॥ येनभोगाःप्रभुञ्जन्ति येदिव्यायेचमानुषाः ॥ २६ ॥ तस्माद्देहिममात्मानं गान्धर्वेणसुशोभने ॥ विवाहेनय तोन्येषां सप्रधानःप्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ एवंप्रवदतस्तस्यसादेवीक्रोधमूर्च्छिता ॥ तद्वक्रान्तंसमुद्दिश्य शरोदेव्याविमोचितः ॥ २८ ॥ विवेशवदनंतस्य वल्मीकंपन्नगोयथा ॥ अथतैर्मार्गणैर्विद्धो सवक्रान्तेनदंस्ततः ॥ २९ ॥ सुस्रावरुधिरम्भूरिगैरिकंपर्वतंयथा ॥ ततःकोपपरीतात्मा निर्वर्त्याथशनैश्शनैः ॥ ३० ॥ स्वसैन्यंत्वरितम्भेजे कामेनचवशीकृतः ॥ प्रोवाचसैनिकान्सर्वान् दुष्टास्त्रीयम्प्रगृह्यताम् ॥ ३१ ॥ यथानत्यजतिप्राणान् प्रहारैर्जर्जरीकृता ॥ एषाममनसन्देहोविप्राभार्याभविष्यति ॥ ३२ ॥ यदिनोशस्त्रपातेनपञ्चत्वमुपयास्यति ॥ एवमुक्तास्तदातेनदानवायुद्धदुर्मदाः ॥ ३३ ॥ दुद्रुवुःसम्मुखास्तस्या मुञ्चन्तोनिशिताञ्छरान् ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवीसादृष्ट्वातानुपस्थितान् ॥ ३४ ॥ युद्धायकृतसङ्कल्पांस्तर्जतश्चमुहुर्मुहुः ॥ ततस्तुलीलयादेवीमुक्त्वातीक्ष्णान्महाशरान् ॥ ३५ ॥ तान्सर्वांस्ताडयामास सर्वमर्मसु

इसके अनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाला व कामदेवसे वश कियाहुआ वह महिषासुर धीरे २ लौटकर शीघ्रही अपनी सेनाको प्राप्तहुआ वह सेनावाले समस्त मनुष्योंसे बोला कि यह दुष्टा स्त्री उस प्रकार पकड़लीजाय ॥ ३० । ३१ ॥ कि जिस प्रकार प्रहारों से जर्जर कीहुई वह प्राणों को न त्यागकरै यदि शस्त्रोंके ताड़नसे मृत्यु को न प्राप्तहोगी तो हे ब्राह्मणो ! यह निस्सन्देह मेरी स्त्रीहोगी उससमय उससे इसभांति कहेहुये युद्धमें दुर्मदवाले दैत्य ॥ ३२।३३ ॥ पैने बाणोंको छोड़तेहुये उस कात्यायनी-के सामने दौड़े इसी अवसरमें उस देवीने युद्धके लिये कियेहुये संकल्पोंवाले व बार बार डरवातेहुये उन दैत्योंको समीपमें प्राप्तहुये देखकर तदनन्तर देवीने लीलासे पैने

महाबाणोंको छोडकर ॥ ३४ । ३५ ॥ व उसीक्षण उन समस्त दैत्योंके सब मर्मस्थानों में ताड़न किया इसके अनन्तर उससमय पैने बाणोंसे मारेहुये कितेक दैत्य मृत्युको प्राप्तहुये व ताड़ित होतेहुये अन्य दानव दिशाओं में चलेगये तदनन्तर युद्ध में उस भगवती से उस सेनाको कटीपिटी देखकर ॥ ३६ । ३७ ॥ तदनन्तर क्रोध संयुत होताहुआ वह दैत्य आपही उन भगवती के समीप दौड़ा व उस देवीको सैकड़ों हज़ारों सींगोंके प्रहारोंको देतेहुये उसने हर्षसे शरद्समय के मेघों के समान घोर गर्जन किया इसी अवसर में शब्दको कियेहुई उस देवीने हास्यकिया ॥ ३८ । ३९ ॥ कि जिस हास्यके शब्दसे त्रैलोक्य का रन्ध्र पूर्ण होगया इसके

अथतीव्रैःशरैर्दैत्यानिहतादानवास्तदा ॥३६॥ एकेपञ्चत्वमापन्ना गतान्येदिक्षुसंहताः ॥ ततस्सैन्यंसमातत्क्षणात् ॥ कोपाविष्टस्ततोदैत्यः स्वयंतांसमुपाद्रवत् ॥ यच्छञ्छृङ्गप्रहारांश्च तस्याःशतसहस्रशः ॥ ३८ ॥ गर्जितंविदधेचोग्रं शारदाभ्रसमंमुदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवी साजहासकृतस्वना ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्य लोक्य तद्गगनञ्चतयारणे ॥३७॥ विवरंसर्वं यच्छब्देनप्रपूरितम् ॥ एवंतस्याहसन्त्याथ वक्रान्तादथनिर्ययुः ॥ ४० ॥ पुलिन्दाःशबराम्लेच्छास्तथान्येरण्यवासिनः ॥ शकाश्चयवनाश्चैव शतशस्तुवपुर्धराः ॥ ४१ ॥ वर्मस्थगितगात्राश्च यमदूताइवापरे ॥ तेप्रोचुःदेविनोब्रूहियेनसृष्टावयंक्षितौ ॥ ४२ ॥ कार्येणक्रियतेसर्वंयेनशीघ्रंवरानने ॥ ४३ ॥ देव्युवाच ॥ एतानस्यसुदुष्टस्य सैनिकान्बलगर्वितान् ॥ सूदयध्वंद्रुतंवाक्यादस्मदीयाद्यथेच्छया ॥ ४४ ॥ अथतेतद्वचःश्रुत्वा बलवन्तोधनुर्धराः ॥ दैत्येय

अनन्तर इसप्रकार उस भगवती के हँसतेहुये मुखके मध्यसे शरीर के धारनेवाले सैकड़ों पुलिन्द, शबर, म्लेच्छ व और वनके निवासी शक व यवन लोग निश्चयकर निकले ॥ ४०।४१ ॥ जोकि बख्तरोंसे आच्छादित अङ्गोंवाले दूसरे यमदूतोंके समानथे उन्होंने कहा कि हे देवि ! जिस कार्यके लिये हमलोग भूमिमें रचेगये हैं उसको हमलोगों से कहो कि जिससे हे वरानने ! वह सब किया जावै ॥ ४२ । ४३ ॥ देवीबोलीं कि इस अतिदुष्ट महिषासुर की सेनावाले बलसे गर्वित इन दैत्योंको हमारी वाक्यसे तुमलोग शीघ्रही यथेच्छासे नाशकरो ॥४४॥ इसके अनन्तर धनुषधारनेवाले वे बलिष्ठ पुलिन्दादिक उस वचनको सुनकर स्वर्गमें टिकीहुई दैत्योंकी सेनाको

उद्देशकर दौड़े ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन सबोंका आपसमें बड़ाभारी घोर युद्ध हुआ उसमें कहींपर किसीसे अपना, पराया नहीं जानाजाताथा ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर देवीसे उपजेहुये योधाओंने उन समस्त दैत्योंको भंगकरदिया व मारडाला तथा अन्य दानवों को प्रहारों से जर्जर करदिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर कटीपिटी सेना को देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होतेहुये महिषासुर ने उस देवीसे क्रोध के कारण कठोर आखरवाले वचनोंसे कहा ॥ ४८ ॥ कि अहो पापिनि ! जिसकारण मुझसे तुम स्त्री के निमित्त युद्धमें नहीं मारीगईहो उसको तुम अन्यथा जानतीहो इसलिये मेरे प्रभाव को देखिये ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर बार२ घुड़कतेहुये उस बड़ेवेगवान् महिषा-

बलमुद्दिश्य दुद्रुवुःस्वर्गमाश्रितम् ॥ ४५ ॥ ततस्तेषांमहद्युद्धं मिथोजज्ञेसुदारुणम् ॥ नात्मीयंनपरन्तत्र केनचिज्ज्ञायतेकचित् ॥ ४६ ॥ अथतेदानवास्सर्वे योधैर्देवीसमुद्भवैः ॥ भग्नाव्यापादिताश्चान्येप्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ ४७ ॥ ततोभग्नंबलंदृष्ट्वा महिषःक्रोधमूर्च्छितः ॥ तामुवाचक्रुधादेवींवचनैःपरुषाक्षरैः ॥ ४८ ॥ आःपापेस्त्रीनिमित्ताद्यन्नहतासिमयायुधि ॥ तस्मात्पश्यप्रभावंमे तत्त्वंबुध्यसिचान्यथा ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वाविशेषेण प्रहारैस्तांसचिक्षिपे ॥ विषाणाभ्यांमहावेगोभर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ५० ॥ ततोभ्युपगतंदृष्ट्वा सादेवीदानवंचतम् ॥ आरुरोहाथवेगेन पृष्ठदेशेनकोपतः ॥ ५१ ॥ ततश्चुक्रोशदैत्योसौ व्योममार्गसमाश्रितः ॥ पृष्ठ्यास्तलेननिर्भिन्नो रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसिंहः सतस्याज्योतिसम्भवः ॥ जग्राहपश्चिमेभागे दंष्ट्राग्रैर्निशितैःक्रुधा ॥ ५३ ॥ ततोनिश्चलतांप्राप्तः पादाक्रान्तश्चदानवः ॥ अकरोद्भैरवान्नादानशक्तश्चलितुंपदम् ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ व्योमस्थास्तांत

सुरने विशेषकर सींगों के प्रहारों से उस भगवतीको फेंकदिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर वह देवी समीप में आयेहुये उस दैत्यको देखकर इसके अनन्तर क्रोधसे पृष्ठदेश (पीठ) पै चढ़गई ॥ ५१ ॥ तदनन्तर आकाशमार्गमें टिका व पीठके नीचे भागसे विदीर्णहुये इस दैत्यने रुधिरके प्रवाहसे डूबकर शब्दकिया ॥ ५२ ॥ इसी अवसरमें उस देवी की दीप्ति से उपजेहुये उस सिंहने क्रोधसे पैनी दाढ़ोंके अग्रभाग से पिछले भागमें पकड़लिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर पांवोंसे घिराहुआ वह दैत्य अचलताको प्राप्तहुआ व पगभर चलनेके लिये न समर्थहुआ और भयंकर शब्दोंको किया ॥ ५४ ॥ इसी अवसरमें इन्द्र समेत समस्त देवता प्राप्तहुये व आकाश में टिके तथा

हर्षसे संयुत होतेहुये उन्होंने उस देवीसे कहा ॥५५॥ कि हे सुरेश्वरि ! जबतक अन्यत्र न जावै तबतक इस पैनी तलवार से शीघ्रही इसके शिरका छेदनकरो ॥ ५६ ॥ उन देवताओं के वचनको सुनकर क्रोधसंयुत होतीहुई उस देवीने उस महिषासुरके मोटे भी गले में तलवार को मारा ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर देवताओंकी प्रसन्नता को धारण करतीहुई दैत्यकी वह मोटी व पुष्ट भी ग्रीवा उस तलवारके ताड़न से दो खंड होगई ॥ ५८ ॥ उससमय उस महादेवीको घुड़कतेहुये व बारह सूर्य्योंके समान मुखमध्य वाले व ढाल तलवार को धारनेहारे व खड्गसे उद्यत हाथवाले महिषासुरने बालसूर्य्य के समान तलवारको उस भगवतीके शरीर में व्यापारकिया याने

थाप्रोचुर्देवींहर्षसमन्विताः॥ ५५ ॥ एतस्यशिरसश्छेदं शीघ्रंकुरुसुरेश्वरि ॥ खड्गेनानेनतीक्ष्णेन यावन्नोयातिचान्य
तः ॥ ५६ ॥ साश्रुत्वावचनंतेषां देवीकोपसमन्विता ॥ खड्गंव्यापारयामास कण्ठेतस्यापिपीवरे ॥ ५७ ॥ सतेनखड्गघा
तेन कण्ठःपीनोपिनिष्ठुरः॥ द्विधाजज्ञेथदैत्यस्य दधंस्तुष्टिंदिवौकसाम् ॥५८॥ द्वादशार्कप्रतीकाशवक्रान्तश्चर्मखड्गधृ
क् ॥ भर्त्सयंस्तांमहादेवीं खड्गोद्यतकरस्तदा ॥ ५९ ॥ खड्गंव्यापारयन्गात्रे तस्याबालार्कसन्निभम् ॥ ततःकेशेषुचादा
य यावत्तस्यापिचिक्षिपे ॥ ६० ॥ प्रहारंगात्रनाशाय तावदूचेसदानवः ॥ ६१ ॥ दानवउवाच ॥ जयदेविजयाचिन्त्ये
जयसर्वसुरेश्वरि ॥ जयसर्वगतेदेवि जयसर्वजनप्रिये ॥ जयकामप्रदेनित्यं जयत्रैलोक्यसुन्दरि ॥ ६२ ॥ जयदेविकृ
तानन्दे जयदैत्यविनाशिनि ॥ यतस्त्रैलोक्यरक्षार्थमुद्यतास्यकुतोभये ॥ ६३ ॥तस्मात्कुरुप्रसादम्मे प्राणान्रक्षदयां

चलाया तदनन्तर बालोंको पकड़कर जबतक उस दैत्य केभी शरीरको नाश करनेके लिये प्रहार फेंकागया तबतक वह महिषासुर दैत्य बोला ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ दैत्य बोला कि हे देवि ! जयकरो हे अचिन्त्ये ! जयकरो हे सर्वसुरेश्वरि ! तुम जयकरो हे सर्वव्यापिनि ! जयकरो हे सर्वजनप्रिये ! तुम जयकरो हे नित्यकामप्रदायिनि ! जयकरो हे त्रैलोक्यसुन्दरि ! तुम जयकरो ॥ ६२ ॥ हे देवि, हे कृतानन्दे ! तुम जयकरो हे दैत्यविनाशिनि ! जयकरो व हे अकुतोभये याने सबकहीं से भयरहिते ! जिसलिये कि तुम त्रिलोककी रक्षाके लिये उद्यतहो ॥ ६३ ॥ उसी लिये प्रणाम कियेहुये व अतिदीन तथा विशेषकर नमेहुये मेरे ऊपर प्रसन्नता करो व

मेरे प्राणोंकी रक्षाकरो व दयाकरो मैं दुर्वासा मुनिसे शापित हिरण्याक्षका बलिष्ठ पुत्रहूं ॥ ६४ । ६५ ॥ हे देवि ! मैंसेके भावको भलीभांति प्राप्तहुआ मैं तुमसे छुड़ाया गया इसलिये आज मैंने दानवसे उपजेहुये अहंकार को छोड़दिया ॥ ६६ ॥ हे सर्वव्यापिनि, हे देवि, हे सर्वदुष्टविनाशिनि ! तुम जयकरो हे सुरेश्वरि ! इससमय मैं तुम्हारे दासभावको प्राप्तहूंगा ॥ ६७ ॥ तदनन्तर उस महिषासुरके ऐसे दीन वचनको सुनकर दयासंयुत होतीहुई उस सुरेश्वरीने आकाशमें खड़ेहुये देवताओंसे कहा ॥ ६८॥ कि हे देवताओ ! मैं क्याकरूं क्योंकि इस दैत्यके ऊपर मेरे दया उत्पन्नहुईहै इसलिये मैं दीन वचनको कहनेवाले दैत्यको न मारूंगी ॥ ६९ ॥ क्योंकि विमुख

कुरु ॥ ६४ ॥ प्रणतस्यसुदीनस्य विनतस्यविशेषतः ॥ अहंदुर्वाससाशप्तो हिरण्याक्षसुतोबली ॥ ६५ ॥ महिषत्वंस मानीतस्त्वयादेविविमोक्षितः ॥ तस्माद्दर्प्पःप्रमुक्तोद्य मयादानवसम्भवः ॥ ६६ ॥ किङ्करत्वंप्रयास्यामि साम्प्रतन्तेसु रेश्वरि ॥ जयसर्वगतेदेवि सर्वदुष्टविनाशिनि ॥ ६७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा कृपणंसासुरेश्वरि ॥ कृपाविष्टाब्रवीद्वाक्यं ततोऽव्योमस्थितान्सुरान् ॥ ६८ ॥ किङ्करोमिदयाजाता ममैनंप्रतिहेसुराः ॥ तस्मान्नाहंहनिष्यामि दानवंदीनजल्पक म् ॥ ६९ ॥ विमुखंचाप्यशस्त्रञ्च तवास्मीतिप्रवादिनम् ॥ अपिमेपितृवधकरंनहन्मिरिपुमाहवे ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ नहि चेद्धंसिदेवेशि त्वमेनंदानवाधमम् ॥ नाशयिष्यतितत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥७१॥ एषऽयर्थःश्रमस्सर्वस्तथास्माकम्भ विष्यति ॥ तवसम्भूतिसम्भूतस्तवक्लेशस्तथाखिलः ॥ ७२॥ देव्युवाच ॥ नाहमेनंहनिष्यामि त्यजिष्यामितथामराः ॥ एनङ्कचग्रहंकृत्वा धारयिष्यामिसर्वदा ॥ ७३ ॥ देवाऊचुः ॥साधुसाधुमहाभागे युक्तमुक्तंत्वयावचः ॥ एताद्धियुज्यतेकर्तु

व शस्त्ररहित व तुम्हाराहूं ऐसा कहताहुआ यदि मेरेपिताका वधकारक भी शत्रु होवै तो मैं युद्धमें न मारूं ॥७०॥ देवता बोले कि हे देवेश्वरि ! यदि इस नीच दैत्य को तुम न मारोगी तो स्थावर जङ्गम समेत समस्त त्रिलोकको नाशकरैगा ॥ ७१ ॥ व हमलोगों का यह समस्त परिश्रम व तुम्हारे ऐश्वर्य्योंसे उपजाहुआ व तुम्हारा सम्पूर्ण क्लेश व्यर्थ होवैगा॥ ७२ ॥ देवी बोली कि हे देवताओ ! मैं इस दैत्यको न मारूंगी और न छोड़ूंगी किन्तु बालोंको पकड़कर सदैव धारण करूंगी॥७३॥देवता बोले कि

हे महाभागे ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ तुमने योग्य वचनको कहाहै हे सुरेश्वरि ! इससमय में यही करनेके लिये योग्यहै ॥ ७४ ॥ इससमय शस्त्रसे उठेहुये
हाथवाली व विकराल व भैंसे के ऊपर भलीभांति बैठीहुई तुम मृत्युलोक में इस रूपप्रति समाश्रित होवो याने टिको ॥ ७५ ॥ इस मृत्युलोक में देवताओं सेभी दुर्लभ
व उत्तम पूजनको पावोगी व जो पुरुष इस रूपसे भलीभांति टिकीहुई तुमको पूजैगा वह अपने मनोरथ को प्राप्तहोगा ॥ ७६ ॥ व इस महिष के ऊपर बैठीहुई तुम
विन्ध्यवासिनी प्रसिद्धहोगी अथवा तुमसे बहुत कहनेसे क्या है समस्त मनुष्यों के हितके लिये हमारे सत्य व उत्तम वचन को संक्षेप से सुनिये कि हे देवि ! युद्ध

साम्प्रतंमर्त्यलोकेत्वं रूपमेतत्समाश्रिता ॥ शस्त्रोद्यतकरारौद्रा महिषोपरिसंस्थि
ता ॥७५॥ अत्राप्स्यसिपराम्पूजां दुर्लभाममरैरपि ॥ यस्त्वामेतेनरूपेण संस्थिताम्पूजयिष्यति ॥७६॥ त्वमस्यसङ्क
ल्पसिद्धिं प्राप्स्यतिनात्रसंशयः ॥ महिषस्योपरिस्थात्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ ७६ ॥ अस्मदीयंपरंतथ्यं सर्वलोकहिता
तादेवि विख्याताविन्ध्यवासिनी ॥ किन्तेवाबहुनोक्तेन शृणुसंक्षेपतोवचः ॥ ७७ ॥ अस्मदीयंपरंतथ्यं सर्वलोकहिता
यच ॥ पार्थिवानांत्वदायत्तं बलंदेविभविष्यति ॥ युद्धकालेसमुत्पन्ने भक्तानांनात्रसंशयः ॥ ७८ ॥ प्रस्थानंवाप्रवेशं
वा यःकरिष्यतिमानवः ॥ त्वांस्मृत्वाप्रणिपत्याशु पूजयित्वाविशेषतः ॥ ७९ ॥ तस्यसंजायतेसिद्धिस्सर्वकृत्येषुसर्व
दा ॥ इहकापुरुषस्यापि किम्पुनस्सुभटस्यच ॥ ८० ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे नवम्यामष्टमीदिने ॥ पूजयिष्यतियोमर्त्य
स्त्वासुभक्तिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ तस्यसंवत्सरंयावत् समग्रंसुरसुन्दरि ॥ नभविष्येत्क्वचिद्रोगो नभयन्नपराभवः ॥ ८२ ॥
नापमृत्युर्नचौरादिसमुद्भूतउपद्रवः ॥ ८३ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथतेदेवास्तांदेवींहर्षसंयुताः ॥ अनुज्ञातास्तयाज

समय को भलीभांति उत्पन्न होनेपर तुम्हारे भक्तराजाओं का बल तुम्हारे वशहोगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७७ । ७८ ॥ व जो पुरुष तुमको स्मरणकर व शीघ्रही प्रणाम
कर व विशेषता से पूजकर प्रस्थान या प्रवेशकरैगा ॥ ७९ ॥ उस कायर या निन्दित पुरुषकी भी सदैव इस लोक में समस्त कार्यों में सिद्धि होतीहै फिर सुवीरको क्या
कहनाहै ॥ ८० ॥ व कुँवार महीने के शुक्लपक्ष में अष्टमी व नवमी दिन में जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे संयुत होकर तुमको पूजैगा ॥ ८१ ॥ हे सुरसुन्दरि ! उसके पूर्ण वर्ष
भरतक कहीं रोग न होगा व न डर न तिरस्कार न अपमृत्यु व न चौरादिकों से उपजाहुआ उपद्रव होताहै ॥ ८२ । ८३ ॥ सूतजी बोले कि हर्षसंयुत होतेहुये वे देवता

उस देवी प्रति इसप्रकार कहकर इसके अनन्तर उससे आज्ञालेकर अमरावती नामक अपने स्थानको चलेगये ॥ ८४ ॥ वहां जाकर व बहुत दिनोंसे अपनी राज्यको पाकर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रजीने नष्टहुये कंटकोंवाले त्रिलोकको पालन किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर समस्त मनुष्य सुखसे सम्पन्नहुये व त्रिलोक में फिर देवता यज्ञभागों के भोजन करनेवाले हुये ॥ ८६ ॥ व उसके उपरान्त समस्त तीर्थों व स्थानों वक्षेत्रोंमें व विशेषकर त्रिलोक में वह देवी प्रसिद्धि को प्राप्तहुई ॥ ८७ ॥ इसी अवसर में आनर्तदेशीय सुरथ नामक भूपति हुआहै उसने उत्तम भक्तिसे इसी क्षेत्रमें उस भगवती को विशेषकर निर्माण कियाहै ॥ ८८ ॥ चैत्र महीनेके शुक्लपक्ष में अष्टमी

गमुस्स्वस्थानममरावतीम् ॥ ८४ ॥ तत्रगत्वाचिरात्प्राप्य स्वंराज्यंपाकशासनः ॥ पालयामाससंहृष्टस्त्रैलोक्यंहतकण्टकम् ॥ ८५ ॥ लोकाश्चसुखसम्पन्नास्सर्वेजातास्ततःपरम् ॥ यज्ञभागभुजोदेवा भूयोजाताजगत्त्रये ॥ ८६ ॥ ततःपरञ्चसा देवी त्रैलोक्येख्यातिमागता ॥ सर्वतीर्थेषुस्थानेषु क्षेत्रेषुचविशेषतः ॥ ८७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातस्सुरथोनामभूपतिः ॥ आनर्तस्तेनसम्भक्त्या क्षेत्रेत्रैवविनिर्मिता ॥ ८८ ॥ यस्ताम्पश्यतिसद्भक्त्या चैत्राष्टम्यांसितेहनि ॥ सपुमान्वत्सरंयावत् कृतार्थस्स्यान्नसंशयः ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येमहिषासुरपराजयकात्यायनीमाहात्म्यन्नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ यथासनिहतोदेव्या महिषाख्योदनूत्तमः ॥ साम्प्रतङ्कीर्त्तयिष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् ॥ १ ॥ केदारसम्भवाम्पुण्यां तांशृणुध्वंसमाहिताः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केदारःश्रूयतेसूत गङ्गाद्वारेहिमाचले ॥ सकथंचेहसम्प्रा

के दिन जो पुरुष उत्तम भक्तिसे उस भगवती को देखताहै वह वर्षभरतक कृतार्थ (प्रसन्न) होवैहै इस में सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येमहिषासुरपराजयकात्यायनीमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि केदार नामक शिवहिं थापन कियो सुरेश । इकसौ उन्नीसवें महँ वरणत सूत सुवेश ॥ सूतजी बोले कि जिसप्रकार वह महिषनामक दैत्योत्तम देवीसे मारा गया उसको कहा इससमय केदार से उपजीहुई पुण्यदायक व पातकोंके विनाशनेवाली कथाको कहूंगा उसको सावधान होतेहुये तुमलोग सुनो ॥ १ । २ ॥ ऋषि

लोग बोले कि हे सूतजी ! केदार जी हिमालय पर्वतपै गंगाके द्वारमें सुनेजाते हैं वे यहां कैसे प्राप्तहुये इस समस्त चरितको विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह सत्यहै उस पर्वतपै समर्थवान् ब्रह्माजी भलीभांति बैठेहैं परन्तु वहांपर आठमहीने तक शिवदेव जी बसतेहैं ॥ ४ ॥ जबतक उष्ण समय व वर्षा रहतीहै तबतक सदाशिव प्रभुजी वहां बसते हैं व सदैव शीतकालमें फिर इसी क्षेत्रमें भलीभांति टिकतेहैं ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वह क्या कार्य होवैहै कि जिससे चारमहीने क्षेत्रमें और वैसेही आठमहीने हिमालय पर्वतपै बसतेहैं उसको हमलोगों से कहिये ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय स्वायम्भुवमनुके आदि

प्तस्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एतत्सत्यंगिरौतस्मिन्स्वयम्भूस्संस्थितःप्रभुः ॥ परन्तत्रवसेद्देवो यावन्मासाष्टकंद्विजाः ॥ ४ ॥ यावद्घर्मश्चवर्षाच तावत्तत्रवसेत्प्रभुः ॥ शीतकालेपुनश्चात्र क्षेत्रेसन्तिष्ठतेसदा ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ किंतत्कार्यंभवेद्येन क्षेत्रेमासचतुष्टयम् ॥ हिमाचलेतथैवाष्टौ सूतपुत्रवदस्वनः ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंस्वायम्भुवस्यादौ मनोर्दैत्योमहाबलः ॥ हिरण्याक्षोमहातेजास्तपोवीर्यसमन्वितः ॥ ७ ॥ तैर्व्याप्तंजगदेतद्धि निरस्यत्रिदशाधिपम् ॥ यज्ञभागाश्चदेवानां हृतावीर्यप्रभावतः ॥ ८ ॥ अथशक्रःसुरैःसार्द्धं गङ्गाद्वारंसमाश्रितः ॥ तपस्तेपेसुदुःखार्त्तः स राज्येनोपवर्जितः ॥ ९ ॥ तस्यैवन्तप्यमानस्य तपस्तीव्रंमहात्मनः ॥ माहिषंरूपमास्थाय निश्चक्रामधरातलात् ॥ १० ॥ स्वयमेवमहादेवस्ततःशक्रमुवाचह ॥ केदारयामिमेशीघ्रं ब्रूहिसर्वंसुरोत्तम ॥ ११ ॥ दैत्यानामथसर्वेषां रूपेणानेनवासव ॥ १२ ॥ इन्द्रउवाच ॥ हिरण्याक्षोमहादैत्यस्सुबाहुर्वक्रकन्धरः ॥ त्रिशृङ्गोलोहिताक्षश्च पञ्चैवदारयप्र

में हिरण्याक्ष नामक बड़ाबली दैत्य हुआहै जोकि बड़ा तेजस्वी और तपोबल से संयुक्तथा ॥ ७ ॥ उन दैत्योंने इन्द्रको निकालकर इस ससारको व्याप्त करलिया व पराक्रमके प्रभावसे देवताओं के यज्ञभाग हरलियेगये ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर राज्यसे रहित होकर अतिदुःखित होतेहुये उन इन्द्रजीने देवताओं समेत गंगाद्वारपै भलीभांति टिककर तपस्या किया ॥ ९ ॥ उन इन्द्र महात्माको इसप्रकार तीव्रतपस्या तपतेहुये आपही महादेव जी भैंसेका रूप धारणकर भूतल से निकले तदनन्तर इन्द्र से बोले कि हे सुरोत्तम, इन्द्रजी ! मुझसे शीघ्रही सब कहिये कि इस रूपसे जलमें विदारण करूं अथवा समस्त दैत्योंके मध्य में किसीको भेदनकरूं ॥ १०।११ । १२ ॥

इन्द्रजी बोले कि हे प्रभो ! महादैत्य हिरण्याक्ष व सुबाहु, वक्रकन्धर, त्रिश्रृंग, लोहिताक्ष ये पांचही हैं उनको विदारण करिये ॥ १३ ॥ इनके मरने से निस्सन्देह सब दैत्य मरे हैं इसलिये अन्य दीन दैत्योंके विध्वंसनसे क्याहै कि जिनसे यहां कुछ नहीं सिद्ध होताहै ॥ १४ ॥ उन इन्द्रजी के उस वचन को सुनकर भगवान् शिव जी शीघ्रही वहांगये जहांपर कि बड़ा बलवान् हिरण्याक्ष नामक मुख्य दैत्यथा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर पर्वत के समान व भयंकर रूपसे आयेहुये उस भैंसे को देखकर तदनन्तर जो दैत्यथे उन्होंने सबओर पत्थरोंसे व दण्डोंसे मारा वैसेही बल से गर्वित अन्य दैत्य सिंहनादको करते व तालोंको ठोंकतेथे ॥ १६ । १७ ॥ इसके

भो॥१३॥हतैरेतैर्हतंसर्वं दानवानामसंशयम् ॥ किमन्यैःकृपणैर्ध्वस्तैर्यैःकिञ्चिन्नात्रसिध्यति ॥१४॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा
भगवांस्तूर्णमभ्यगात् ॥ यत्रदानवमुख्योस्ति हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ १५ ॥ अथतंदूरतोदृष्ट्वा महिषम्पर्वतोपमम् ॥
आयातंरौद्ररूपेणदानवास्सर्वतश्चये ॥ १६ ॥ ततोजघ्नुश्चपाषाणैर्लगुडैश्चतथापरे ॥ क्ष्वेडिताःस्फोटिताश्चैव तथा
न्येबलगर्विताः ॥ १७ ॥ अथावमन्यतान्देवःप्रहारंलीलयाददौ ॥ यत्रासौदानवेन्द्रोसौ चतुर्भिस्सचिवैस्सह ॥ १८ ॥
ततःशस्त्रंसमुद्यम्ययावद्धावतिसम्मुखः ॥ तावच्छृङ्गप्रहारेणसोनयद्यमसादनम् ॥ १९ ॥ हत्वातंसचिवान्पश्चात्सुबा
हुप्रमुखांश्चतान् ॥ जघानहन्यमानोपिसमन्ताद्दानवैःपरैः ॥ २० ॥ नतस्यलगतेक्वापिशस्त्रंगात्रेकथञ्चन ॥ यत्नतोपिवि
सृष्टञ्चलक्ष्यलक्षैःप्रहारिभिः ॥ २१ ॥ एवंपञ्चप्रधानांस्तान्हत्वादैत्यान्महेश्वरः ॥ भूयोजगामतद्देशंयत्रशक्रोऽव्यव

अनन्तर शिव देवजीने उन दैत्योंको अनादरकर जहांपर चारों मंत्रियों समेत यह हिरण्याक्ष दैत्यथा वहांपर लीलासे प्रहार को दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर शस्त्रको भली भांति उवाकर जबतक हिरण्याक्ष सामने दौडा तभीतक उन शिवजी ने सींगों के प्रहारोंसे यमराज के मन्दिरमें प्राप्त करदिया ॥ १९ ॥ उस हिरण्याक्षको मारकर पश्चात् अन्य दैत्योंसे सबओर मारेजाते हुयेभी शिवजीने सुबाहु आदिक उन दैत्यों को मारा ॥ २० ॥ व निशाना के देखनेवाले प्रहारकर्ता दैत्योंसे उपायपूर्वक छोड़ा हुआभी शस्त्र किसीप्रकार उन महादेव जीके अंगमें कहींपर भी न लगताथा ॥ २१ ॥ इसप्रकार महादेव जी उन मुख्य पांच दैत्योंको मारकर फिर उस देशको चलेगये

जहां कि इन्द्रजी विशेषतासे टिकेथे ॥ २२ ॥ व प्रसन्न मनवाले शिवजीने वैसेही तपस्या में संयुत इन्द्र जीसे कहा कि जिन पांच दानवों को तुमने कहाथा उनको मैंने मारडाला ॥ २३ ॥ इसलिये हे सुरेश ! तुम फिर त्रिलोक की राज्यकरो व मुझ से और भी चाहेहुये वरदानको मांगो ॥ २४ ॥ कि जिससे शीघ्रता संयुत मैं कैलास के शिखरपै जाऊं ॥ २५ ॥ इन्द्र बोले कि हे शंकर जी ! त्रिलोक की रक्षाके लिये व धर्म तथा कल्याण के लिये तुम इसी रूपसे यहां टिको ॥ २६ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे इन्द्रजी ! उस हिरण्याक्ष के मारने के लिये मैंने इस रूपको कियाहै जिसलिये कि अन्य समस्त प्राणियोंके न मारने योग्य वह मुझसे मारागया ॥२७॥

स्थितः ॥ २२ ॥ अब्रवीच्चप्रहृष्टात्मातथाशक्रंतपोन्वितम् ॥ मयातेनिहताःपञ्चदानवायेत्वयेरिताः ॥ २३ ॥ त
स्मात्त्रैलोक्यराज्यंस्वंभूयएवसमाचर ॥ मत्तोन्यदपिदेवेशवरम्प्रार्थयवाञ्छितम् ॥ २४ ॥ कैलासशिखरंयेनगच्छा
मित्वरयान्वितः ॥ २५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अनेनैवहिरूपेणतिष्ठत्वंचात्रशङ्कर ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थायधर्मायचशिवाय
च ॥ २६ ॥ भगवानुवाच ॥ एतद्रूपंमयाशक्रकृतंतस्यवधायवै ॥ अवध्यस्सर्वभूतानांयतोन्येषांमयाहतः ॥ २७ ॥
तस्मादत्रैवतेवाक्यात्स्थास्यामिसुरसत्तम ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थायधर्मायचशिवायच ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वाविरूपाक्षश्च
क्रेकुण्डंततःपरम् ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशंसुस्वादुक्षीरवत्प्रियम् ॥ २९ ॥ ततःप्रोवाचदेवेन्द्रंमेघगम्भीरयागिरा ॥ शृण्व
तांसर्वदेवानांभगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ ३० ॥ योमांदृष्ट्वाशुचिर्भूत्वा कुण्डमेतत्प्रपश्यति ॥ त्रिःपीत्वावामसव्येनद्वाभ्यां
चैवततोजलम् ॥३१॥ कराभ्यांसपुमान्नूनं तारयिष्यतिकुलत्रयम् ॥ अपिपापसमाचारं नरकेपिऽव्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥

इसलिये हे सुरोत्तम ! त्रिलोककी रक्षाके लिये व धर्म तथा कल्याण के लिये तुम्हारे वाक्यसे मैं यहींपर टिकूंगा ॥ २८ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर शिवजीने शुद्ध स्फटिकके समान व सुस्वादु जलवाले प्रिय कुण्डको किया ॥२९॥ तदनन्तर त्रिपुरके मारनेवाले भगवान् शिवजीने समस्त देवोंके सुनतेहुये मेघके समान गंभीर वाणी से सुरेशसे कहा ॥३०॥ कि जो पुरुष पवित्र होकर मुझको देखकर इस कुण्डको देखैगा तदनन्तर बायें व दाहिनेसे व दोनों हाथोंसे तीनबार जलको पीकर वह पुरुष निश्चय

कर पाप आचरणवाले भी व नरक मेंभी टिकेहुये तीनोंकुलोंको तारैगा ॥ ३१।३२ ॥जैसे कि मेरे वचन हैं वैसेही बायें हाथ से मातावाले व दाहिनेसे पितावाले पक्षको व दोनों हाथों से अपनाको तारैगा ॥ ३३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे बैल वाहनवाले शिवजी ! मैं नित्यही स्वर्ग से यहां आकर तुमको भलीभांति पूजूंगा व वैसेही जल को पीऊँगा ॥ ३४ ॥ व जिसलिये महिपरूपवाले तुमसे यह कहागया कि केदारयामि याने जलमें विदारणकरूं उसीसे तुम केदार ऐसे नामसे प्रसिद्ध होगे ॥ ३५॥ शिव भगवान् बोले कि हे इन्द्रजी ! यदि ऐसा करोगे तो तुमको दैत्योंका डर न होगा व शरीर में समस्त उत्तम तेज देखपड़ैगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर इसभांति कहे

वामेनमातृकंपक्षं दक्षिणेनाथपैतृकम् ॥ उभाभ्यामथचात्मानं कराभ्यांमद्वचोयथा ॥ ३३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अहमाग त्यनित्यंत्वां स्वर्गाद्वृषभवाहन ॥ अत्रसम्पूजयिष्यामिपास्यामिचतथोदकम् ॥ ३४ ॥ केदारयामियत्प्रोक्तं त्वया महिषरूपिणा ॥ केदारइतिनाम्नात्वं ततःख्यातोभविष्यसि ॥ ३५ ॥ भगवानुवाच ॥ यद्येवंकुरुषेशक्र ततोदैत्यभयं नते ॥ भविष्यातिपरंतेजो गात्रेसम्पश्यतेखिलम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्सहस्राक्षस्तत्रःप्रासादमुत्तमम् ॥ तदर्थंनिर्मयामा स साध्वालोकंमनोहरम् ॥ ३७ ॥ ततःप्रणम्यतंदेवमनुमन्त्र्यततःपरम् ॥ जगामनिजमावासं मेरुश्रृङ्गाग्रसंस्थितम्॥ ३८ ॥ ततश्चागत्यनित्यंस स्वर्गाद्देवस्यशूलिनः ॥ केदारस्यसुभक्त्याढ्यः पूजांचक्रेसमाहितः ॥ ३९ ॥ कुण्डोदकं चत्रिःपीत्वा ययौब्राह्मणसत्तमाः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्ययावत्तत्रसमाययौ ॥ ४० ॥ तावद्धिमेनतत्सर्वं गिरेःश्रृङ्गंप्रपू रितम् ॥ तच्चकुण्डंसदेवंच प्रासादेनसमन्वितम् ॥ ४१ ॥ ततोदुःखपरीतात्मा भक्त्यापरमयायुतः ॥ तांदिशंप्रणिप

हुये हज़ारनेत्रवाले इन्द्रजीने उन शिवजीके लिये अच्छे दर्शनवाले व उत्तम तथा मनोहर मन्दिर का निर्माण किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उन शिवदेवजीको प्रणामकर उसके उपरान्त सम्मति कर सुमेरु गिरिके शिखरके अग्रभागपै संस्थित निज निवासस्थानको चलेगये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उत्तम भक्ति से संयुत व सावधान होतेहुये उन इन्द्रजीने नित्यही स्वर्ग से आकर त्रिशूलवाले केदार देवका पूजन किया ॥ ३९ ॥ व हे ब्राह्मणोत्तमो ! कुण्डके जलको तीनवार पीकर प्रयाण किया इसके अनन्तर किसी समय जबतक वे इन्द्रजी वहां भलीभांति आये ॥ ४० ॥ तबतक मन्दिर समेत व देव सहित वह कुण्ड और पर्वतका सम्पूर्ण शिखर पालासे पूर्ण

होगया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर दुःखसे घिरेहुये मन या चित्तवाले व उत्तम भक्तिसे संयुक्त इन्द्रजी उस दिशाको उच्च प्रकारसे प्रणामकर अपने घरको चलेगये ॥४२॥ इसप्रकार उन इन्द्रजीको आते व शिवजीको न देखते और उस दिशाको प्रणाम करते हुये चार महीने व्यतीत होगये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! फिर उष्ण समय प्राप्त होनेपर उस समय हिमालय पर्वतपै रूपमें भलीभांति प्राप्त वे शिवदेवजी दृष्टिपथमें प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर श्रद्धासंयुक्त होकर इन्द्रने चौमासे से उपजी हुई पूजाको उच्चप्रकार से करके व उन महादेवजी के अगाड़ी गाना, बजाना आदिक किया ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर त्रिपुर के अन्तकारक भगवान् शिवदेवजीने उन

त्योच्चैर्जगामनिजमन्दिरम् ॥ ४२ ॥ एवमागच्छतस्तस्यगतंमासचतुष्टयम् ॥ अपश्यतोमहादेवं तद्दिशाप्रणतस्यच ॥
४३ ॥ ततःप्राप्तेपुनर्विप्रा घर्मकालेहिमालये ॥ सञ्जातोदृक्पथंदेवस्सतदारूपसंस्थितः ॥ ४४ ॥ ततःपूजांविधायोच्चै
श्चातुर्मास्यसमुद्भवाम् ॥ गीतवाद्यादिकञ्चक्रे तत्पुरःश्रद्धयान्वितः ॥ ४५ ॥ अथदेवस्समालोक्यतांश्रद्धांतस्यगोपतेः ॥
प्रोवाचदर्शनंगत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ ४६ ॥ परितुष्टोस्मिदेवेशभक्त्याचानन्ययानया ॥ तस्मात्प्रार्थयदास्या
मि यंकामंहृदिसंस्थितम् ॥ ४७ ॥ शक्रउवाच ॥ तवप्रसादात्सञ्जातं ममैश्वर्यमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥ पर्वतोयंभवेद्रम्यो
मासानष्टौसुरेश्वर ॥ यावन्मीनस्थितोभानुः प्रगच्छतिश्रुतंमया ॥ ४९ ॥ ततःपरमगम्यश्च हिमपूरेणसंवृतः ॥ तदा
स्याच्चतुरोमासान् यावत्कुम्भगतोरविः ॥ ५० ॥ सञ्जायतेप्यगम्यश्च ममापित्रिपुरान्तक ॥ किम्पुनस्स्वल्पसत्त्वानां

इन्द्रजीकी उस श्रद्धाको भलीभांति देखकर दर्शन में जाकर कहा ॥ ४६ ॥ कि हे देवेश ! इस अनन्य भक्ति से मैं अतिप्रसन्नहूं इसलिये जो कामना हृदय में भलीभांति टिकीहो उसको मांगिये मैं दूंगा ॥ ४७ ॥ इन्द्र बोले कि तुम्हारी प्रसन्नतासे मेरे अति उत्तम ऐश्वर्य्य हुआ है ॥ ४८ ॥ हे सुरेश्वर शिवजी ! मैंने सुनाहै कि मीनराशि में प्राप्तहोकर सूर्यनारायणजी जबतक आठ महीने गमन करते हैं तबतक यह पर्वत मनोहर होवै है ॥ ४९ ॥ उसके उपरान्त याने जब वृश्चिक राशिमे दिनकरजी स्थितहोकर चलते हैं तबसे जबतक कुंभराशिमें प्राप्तरहैंगे तबतक चारमहीने पालाके प्रवाहसे घिराहुआ वह पर्वत न जानेयोग्य होगा ॥ ५० ॥ हे त्रिपुरान्तक,

सुरेश्वर, शिवजी ! चारमहीने तक वह पर्वत-मुझको भी अगम्य होगा फिर थोड़े पराक्रमवाले मनुष्यादिकों को क्या कहना है ॥ ५१ ॥ इसलिये हे त्रिदशनायक शिवजी ! चारमहीने स्वर्ग या पाताल या मृत्युलोकमें इसी रूपसे टिकाश्रय करिये ॥ ५२ ॥ कि जिससे हे सुरेश्वर सदाशिवजी ! मेरी प्रतिज्ञाकी हानि न होवै ॥५३॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर बड़ी देरतक विष्णुदेव जीको ध्यानकर परम प्रसन्नताको प्राप्तहुये शिवजीने बलदैत्यके नाशनेवाले इन्द्रसे मेघ गर्जन के समान शब्दवाले वचनको कहा ॥ ५४ ॥ कि हे सहस्र लोचनवाले इन्द्रजी ! भूतलपै आनर्त देशमें हाटकेश्वरनामक हमारा क्षेत्र विद्यमान है ॥ ५५ ॥ हे इन्द्रजी ! वृश्चि-

नरादीनांसुरेश्वर ॥ ५१ ॥ तस्मात्स्वर्गेथपाताले मर्त्येवात्रिदशेश्वर ॥ कुरुष्वानेनरूपेण स्थितिंमासचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥ येननस्यात्प्रतिज्ञाया हानिर्ममसुरेश्वर ॥ ५३ ॥ सूतउवाच ॥ ततोदेवंचिरंध्यात्वा प्रोवाचबलसूदनम् ॥ परंसंतोषमापन्नो मेघनिर्घोषनिस्स्वनम् ॥ ५४ ॥ आनर्तविषयेक्षेत्रंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ अस्मदीयंसहस्राक्ष विद्यतेधरणीतले॥५५॥तत्राहंवृश्चिकेस्थेर्केसदास्थास्यामिवासव ॥ यावत्कुम्भस्यपर्यन्तं तववाक्यादसंशयम् ॥ ५६ ॥ तस्मात्तत्रद्रुतं गत्वा कृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ममरूपंप्रतिष्ठाप्यकुरुपूजांयथोचिताम्॥५७॥येनतत्रनिजंतेजोधारयामितवार्थतः॥५८॥ सूतउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वासहस्राक्षो देवदेवस्यशूलिनः॥गत्वातत्रततश्चक्रे यद्देवेनेरितंवचः ॥ ५९ ॥ प्रासादंनिर्मयित्वाथ रूपंसंस्थाप्यशूलिनः ॥ कुण्डंचक्रेसतद्रूपं स्वच्छोदकसमावृतम् ॥ ६० ॥ ततश्चाराधयामास पुष्पधूपानुलेपनैः ॥

कराशिमें स्थित होते हुये सूर्य्यनारायणजी जबतक कुंभराशिके अन्तको प्राप्तहोंगे तबतक निरसन्देह तुम्हारे वचनसे सदैव हम उस हाटकेश्वरक्षेत्रमें टिकैंगे ॥ ५६ ॥ इसलिये यहां शीघ्रही जाकर व उत्तम मन्दिर को बनाकर और मेरे रूपको स्थापनकर यथायोग्य पूजनको कीजिये ॥ ५७ ॥ कि जिससे तुम्हारे लिये उस लिंगमें मैं अपने तेजको धारणकरूं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्र जीने त्रिशूलवाले देवदेव सदाशिव जीके इस वचनको सुनकर वहां जाकर उसके उपरान्त शिवदेवजीने जो वचन कहाथा उसको किया ॥५९॥कि मन्दिरको निर्माणकराकर इसके अनन्तर उन इन्द्रजीने त्रिशूलधारी शिवजीके रूपको भलीभांति थापकर निर्मल जलसे परि-

पूर्ववाले तद्रूप (वैसेही) कुण्डको किया ॥ ६० ॥ तदनन्तर कुण्ड में नहाकर पुष्प,धूप व अनुलेपनों से शिवजीका आराधन किया व पहलेकी नाईं तीनबारकर जलको पिया ॥ ६१ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! पुरातनसमय इन्द्र जीसे इसभांति आराधन कियेहुये वे शिव भगवान् अतिमनोहर हिमाचल से यहां भलीभांति आये हैं ॥ ६२ ॥ हिमपातसे उपजेहुये समयमें याने शीतकाल में सदैव चार महीने जो पुरुष उन शिवजी को आराधन करता है वह कल्याण के लिये प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ व शेष समय में भी जो प्रवीण पुरुष उत्तम भक्तिसे निश्चय कर पूजन करताहै वह जन्म से लगाकर मरण पर्यन्त के पातक को प्रक्षालन याने नाश करता है ॥ ६४ ॥ समस्त शास्त्रों

स्नात्वाकुण्डेऽपिबत्तोयं त्रिःकृत्वाचयथापुरा ॥ ६१ ॥ एवंसभगवांस्तत्र शक्रेणाराधितःपुरा ॥ समायातोत्रविप्रेन्द्राः सुरम्यात्तुहिमाचलात् ॥ ६२ ॥ यस्तमाराधयेत्सम्यक् सदामासचतुष्टयम् ॥ हिमपातोद्भवेमर्त्यः सशिवायप्रपद्यते ॥ ६३ ॥ शेषकालेपियःपूजां करोत्येवसुभक्तितः ॥ सपापंक्षालयेत्प्राज्ञ आजन्ममरणान्तिकम् ॥ ६४ ॥ तत्रगीतंप्रशंसन्ति नृत्यञ्चैवपृथग्विधम् ॥ देवस्यपुरतःप्राज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ६५ ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो नारदेनसुरर्षिणा॥ तद्वोहंकीर्त्तयिष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ६६ ॥ केदारेसलिलंपीत्वा गयापिण्डंप्रदायच ॥ ब्रह्मज्ञानमथासाद्य पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ६७ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं केदारस्यचसम्भवम् ॥ आख्यानंब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम् ॥ ६८ ॥ यश्चैतच्चरितंभक्त्या पठेद्वातस्यचाग्रतः ॥ शृणुयाद्वापिभोविप्रास्सर्वपातकनाशनम् ॥ ६९ ॥ केदारस्यचमा

में प्रवीण व विद्वान् पुरुष उस हाटकेश्वर क्षेत्रमें उन शिवदेवजी के आगे गानकी व अनेक भांतिके नृत्यकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६५ ॥ हे मुनीश्वरो ! पुरातन समय इस विषय में नारद देवर्षिने श्लोकको गायाहै उसको मैं तुम लोगोंसे कहूंगा सुनिये ॥६६॥ कि केदार क्षेत्रमें जल पीकर व गया तीर्थ मे पिण्डदेकर व ब्रह्मज्ञान को प्राप्तहोकर फिर जन्मको नहीं पाता है ॥ ६७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! केदार से उपजेहुये इस समस्त कथानकको मैंने तुमलोगों से कहा जोकि सब पातकोंका विनाशक है ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मणो ! समस्त पातकों के विनाशक व पुत्र,पौत्रों को विशेषकर बढ़ानेहारे इस केदार जीके माहात्म्यवाले चरितको जो पुरुष भक्तिसे उनके अगाड़ी पढ़ता है या सुनता

भी है उसके समस्त मनोरथ परिपूर्ण होते हैं ॥ ६९ । ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये केदारोत्पत्तिकथनंनामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । बरणत इकसौ बीसमहँ शुक्ल तीर्थको हाल । जहां श्याम वसनादि सब श्वेत होहिं ततकाल ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! वैसेही वहां पर और भी अति उत्तम शुक्ल तीर्थ है जोकि आजभी श्वेत कुशोंसे भलीभांति सूचित है ॥ १ ॥ पुरातन समय उत्तम कारीगरीको जाननेवाला व पुत्रपौत्रोंसे संयुत कोई शुद्धक नामक धोबी हुआ

हात्म्यं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये केदारोत्पत्तिकथनन्नामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्तिशुक्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ दर्भैःसंसूचितंश्वेतैर्यदद्यापिद्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ चमत्कारपुरे पूर्वमासीत्कश्चित्सुशिल्पवित् ॥ रजकःशुद्धकोनाम पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ २ ॥ ससर्वरजकानांच प्राधान्येनव्यवस्थितः ॥ प्रधानब्राह्मणानांच करोत्यम्बरशोधनम् ॥ ३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नीलीकुण्ड्यांसमाहितः ॥ प्राक्षिपद्ब्राह्मणेन्द्राणां वासोविज्ञातवाञ्चिरात् ॥ ४ ॥ अथासौमन्दचित्तश्च समाहूयकुटुम्बिनीम् ॥ पुत्रांश्चवचनंप्राह रहस्येभयविह्वलः ॥ ५ ॥ निर्मूल्यानिसुवस्त्राणि ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ नीलीमध्येविमोहेन प्रक्षिप्तानिबहूनिच ॥ ६ ॥ वधबन्धादिकंकर्म तेकरिष्यन्त्यसंशयम् ॥ तस्मादन्यत्रगच्छामो गृहीत्वारजकीमिमाम् ॥ ७ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा सार

है ॥ २ ॥ वह समस्त धोबियों के मध्यमें मुख्यतासे विशेषकर स्थित था व प्रसिद्ध ब्राह्मणोंके वस्त्रशोधनको करता था याने कपड़े धोताथा ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय सावधान होतेहुये उस रजकने ब्राह्मणेन्द्रों के वस्त्रोंको नीलके घड़े या कूंड़ेमें फेंकदिया व बहुत देरसे जाना ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर मूढ़चित्तवाला व भयसे विकल यह अपनी कुटुम्बिनी (स्त्री) व पुत्रोंको एकान्त में बुलाकर वचन बोला ॥ ५ ॥ कि महात्मा ब्राह्मणों के बहुत से अमूल्य वस्त्रोंको मैंने अज्ञान से नील के मध्यमें फेंक दिया ॥ ६ ॥ और वे ब्राह्मण लोग निस्सन्देह वध बन्धनादिक कर्म को करेंगे इसलिये इस धोबिनिको लेकर मैं अन्यत्र चलाजाऊंगा ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो! उस भयभीतने

ऐसा निश्चयकर व घरसे श्रेष्ठ वस्तुको लेकर जबतक स्त्री समेत प्रस्थान किया ॥ ८ ॥ तबतक उसकी कन्याने सेवकसे उपजी हुई अपनी सखी के पास जाकर कहा कि हे भद्रे! तुम्हारे साथ खेलती हुई मैंने अज्ञान या ज्ञानसे भी या नम्रता, शिशुता, क्रोध अथवा ईर्ष्या से जो कुछ दुष्कृत कियाहो उसको क्षमाकरियेगा ॥ ९।१०॥ इसके अनन्तर आंसुओं से आकुल लोचनोंवाली उस सखी ने अचानक जाकर कहा कि हे भद्रे ! यह क्या है कि जो मुझसे ऐसा कहतीहो ॥ ११ ॥ कन्या बोली कि हे सुनयनि! मेरे पिताने ब्राह्मणों के बड़े मोलवाले वसनों को भूलसे नीलमें फेंकदिया ॥ १२ ॥ प्रातःकाल उसको जानकर वे ब्राह्मण दारुण दण्ड देवेंगे ऐसा चित्त में स-

मादायमन्दिरात्॥ प्रस्थितोभार्ययासार्द्धं कान्दिशीकोद्विजोत्तमः ॥ ८ ॥ तावत्तस्यसुतागत्वा स्वांसखींदाससम्भवाम् ॥ उवाचक्षम्यतांभद्रे यन्मयाकुकृतंकृतम् ॥ ९ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि प्रक्रीडन्त्यात्वयासह ॥ प्रणयाद्बाल्यभावाच्च क्रोधाद्वाथोचईर्ष्यया ॥ १० ॥ अथसासहसागत्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ उवाचकिमिदंभद्रे यन्मामित्थंप्रभाषसे ॥ ११ ॥ कन्योवाच ॥ ममतातेननीलायां प्रक्षिप्तान्यम्बराणिच ॥ ब्राह्मणानांमहार्घाणि विभ्रमेणसुलोचने ॥ १२ ॥ तत्प्रभातेपरिज्ञाय दण्डंदास्यन्तिदारुणम् ॥ एवंचित्तेसमाधाय तातःसम्प्रस्थितोधुना ॥ १३ ॥ अहंतवान्तिकंप्राप्ता दर्शनार्थमनिन्दिते ॥ अनुज्ञाताप्रयास्यामित्वयातस्मात्समुच्यताम् ॥ १४ ॥ अथसातद्वचःश्रुत्वा प्रसन्नवदनाब्रवीत् ॥ यद्येवंमासरोजाक्षि कुत्रचित्सम्प्रयास्यसि ॥ १५ ॥ निवारयद्द्रुतंगत्वातातंनोगम्यतामिति ॥ अस्तिपूर्वोत्तरेभागेस्थानादस्माज्जलाशयः ॥ १६ ॥ तत्रैकदाविनिक्षिप्तं ममतातेनजालकम् ॥ अतीवकृष्णकेशोत्थं तावच्छुक्लत्वमागतम् ॥ १७ ॥ तत

माधान कर मेरे पिताने इस समय प्रस्थान किया है ॥ १३ ॥ व हे अनिन्दिते! मैं दर्शन के लिये तुम्हारे समीप प्राप्तहुई हूं क्योंकि तुमसे आज्ञाको प्राप्तहोती हुई मैं जाऊंगी इस लिये कहिये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उसके वचन को सुनकर उस प्रसन्नमुखवाली सखीने कहा कि हे कमललोचनि! यदि ऐसा है तो कहीं मतजावो ॥ १५ ॥ व शीघ्रही जाकर न जाइये यह कहकर पिताको मनाकरिये क्योंकि इस स्थान से पूर्व व उत्तर दिशाके भागमें जलाशयहै ॥ १६ ॥ उसमें एक समय मेरे पिताने

जबतक अत्यन्तही काले बालों से उठे (बने) हुये जालको फेंका तबतक श्वेतताको प्राप्तहोगया ॥ १७ ॥ तदनन्तर जबतक विस्मय संयुत होते हुये काले शरीर के धारनेवाले मेरे पिताजी आपही कौतुकसे खड़े होरहे तबतक उसी क्षण अति श्वेत बालोंवाले व स्त्रियोंको वैराग्य करानेवाले वे पिताजी श्वेतभाव को प्राप्तहोगये तबसे लगाकर यह जानकर वहां कोई नहीं जाता है ॥ १८ । १९ ॥ इस लिये हे शुभे ! शीघ्रही उसी जलाशय में वस्त्रोंको प्रक्षालन करै तो तुम्हारे पिताके वे वसन उत्तम शुद्धता को प्राप्तहोवेंगे ॥ २० ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नमुखवाली होतीहुई उसने शीघ्रही जाकर अपने पितासे उस वचनको शीघ्रतासे कहा ॥ २१ ॥ कि मेरी सखीसे भली

स्सविस्मयाविष्टःस्वयंतस्थौकुतूहलात् ॥ यावच्छुक्लत्वमापन्नस्तावत्कृष्णवपुर्धरः ॥ १८ ॥ सुश्वेतमूर्द्धजस्सद्यस्स्त्रीणां वैराग्यकारकः ॥ ततःप्रभृतिनोज्ञात्वा कश्चित्तत्रप्रगच्छति ॥१९॥ तस्मात्तत्रैववस्त्राणिप्रक्षालयतुसत्वरम् ॥ तातस्यत वयास्यन्ति विशुद्धिपरमांशुभे ॥ २० ॥ अथसासत्वरंगत्वानिजतातस्यतद्वचः ॥ सत्वरंकथयामास प्रहृष्टवदनासती ॥ २१ ॥ ममसख्यासमादिष्टो नातिदूरेजलाशयः ॥ तत्रश्वेतत्वमायाति सर्वंक्षिप्तंसितेतरम् ॥ २२ ॥ तस्मात्प्रक्षालय प्रातस्तत्रगत्वाजलाशये ॥ वस्त्राण्यमूनिशुक्लत्वंसम्प्रयास्यन्त्यसंशयम् ॥ २३ ॥ रजकउवाच ॥ नैतत्सम्पश्यतेपुत्रि यत स्तस्यपरिक्षयः ॥ वस्त्रलग्नस्यजायेत यतःप्रोक्तंपुरातनैः ॥ २४ ॥ वज्रलेपस्यमूर्खस्य नारीणांकर्कटस्यच ॥ एकोग्रह स्तुमीनानां नीलीमद्यपयोस्तथा ॥ २५ ॥ कन्योवाच ॥ तत्रप्रगम्यतांयावद्वस्त्राण्यादायसर्वशः ॥ तावच्छुद्धिंप्रयास्य न्ति तदागन्तव्यमेवहि ॥ २६ ॥ भूयोपिमन्दिरेप्राप्य तस्मात्स्थानाद्दिगन्तरम् ॥ गन्तव्यंसकलैस्सर्वं ममैतद्दृष्टिदिसं

भांति बतलाया हुआ कुछ दूरपै जलाशय है उस में फेंकीहुई समस्त कालीवस्तु श्वेतताको प्राप्तहोती है ॥ २२ ॥ इसलिये प्रातःकाल वहां जाकर इन वस्त्रोंको उस जलाशय में धोइये तो निस्सन्देह श्वेतभाव को प्राप्तहोजावैंगे ॥ २३ ॥ रजक बोला कि हे पुत्रि ! यह नहीं देख पड़ता कि जिससे वस्त्रमें लगेहुये उस नीलका संक्षय होवै क्योंकि प्राचीन पुरुषोंने कहाहै ॥ २४ ॥ कि वज्रलेप (लुक) मूर्ख व स्त्री व गेंगटे व मछलियां तथा नील मदिरा पीनेवाले मनुष्य का एकही हठ होता है ॥ २५ ॥ कन्या बोली कि जबतक सम्पूर्णता से बस्त्रोंको लेकर वहां चलिये तबतक जो शुद्धिको प्राप्तहोवैंगे तो निश्चयकर आनाही चाहिये ॥ २६ ॥ व फिरभी मन्दिर में प्राप्तहोकर

उस स्थान से दिशाओं के मध्यमें सबोंको जानाचाहिये यह सब मेरे हृदयमें भलीभांति टिकाहै ॥ २७ ॥ उस कन्या के उस वचन को सुनकर वे भाई व सेवक बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बार २ कहकर इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! अपने ऐश्वर्य्यसे संयुत व बड़े विस्मय में प्राप्तहोते हुये दासकन्या (सखी) को अगाड़ी कर रात्रिहीको चलेगये ॥ २८ । २९ ॥ तदनन्तर उस दासकन्याने बहुतेरी लताओं से अत्यन्त छिपेहुये व शरीरधारियों के क्लेश से पैठने योग्य जलाशय को दिखलाया ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो! वहांपर वह धोबी वसनों को सम्पूर्णता से लेकर उस जलमें पैठगया व वस्त्रोंको धोया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर उसी क्षण वे काले

स्थितम् ॥ २७ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा साधुसाध्वितितेऽसकृत् ॥ प्रोक्ताबान्धवभृत्याथ रात्रावेवप्रजग्मिरे ॥ २८ ॥ दासकन्यांपुरस्कृत्वा संशयंपरमङ्गताः ॥ विभवेनसमायुक्तानिजेनद्विजसत्तमाः ॥ २९ ॥ ततस्सादर्शयामासदासकन्या जलाशयम् ॥ बहुवीरुधसञ्छन्नंदुष्प्रवेश्यञ्चदेहिनाम् ॥३०॥ ततस्सरजकस्तत्रवस्त्राण्यादायसर्वशः ॥ प्रविष्टःसलिलेतस्मिन्क्षालयामाससद्द्विजाः ॥ ३१ ॥ अथतानिसुवस्त्राणिमेचकाभानितत्क्षणात् ॥ जातानिस्फाटिकाभानितत्क्षणादेवकृत्स्नशः ॥ ३२ ॥ ततस्तुष्टिसमायुक्तोसाधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ समालिङ्गयसुतांप्राहदासकन्याञ्चसादरम् ॥ ३३ ॥ सुवस्त्राणिद्विजेन्द्राणामर्प्पयामोयथाक्रमम् ॥ ततश्चस्वगृहङ्गत्वातानिवस्त्राणिकृत्स्नशः ॥ ३४ ॥ सर्वाणितानिसंहृष्टःप्रददौद्विजसत्तमाः ॥ अथतेब्राह्मणादृष्ट्वातांशुद्धिंवस्त्रसंभवाम् ॥ ३५ ॥ तञ्चश्वेतीकृतंदृष्ट्वारजकंविस्मयान्विताः ॥ पप्रच्छुःकिमिदञ्चित्रंवस्त्रमूर्द्धजसम्भवम् ॥ ३६ ॥ नानौपम्यञ्चसञ्जातंवदस्वयदिमन्यसे ॥ ३७ ॥ रजकउवाच ॥ एतानिवि

वर्णवाले समस्त उत्तम वसन शीघ्रही बिल्लौर पत्थरके समान श्वेत होगये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर प्रसन्नता में प्राप्तहुये उस धोबीने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा व कन्या और दासपुत्री को आदर समेत भलीभांति लिपटाकर कहा ॥ ३३ ॥ कि हमलोग उत्तम वसनों को ब्राह्मणेन्द्रों के लिये क्रमपूर्वक देवेंगे तदनन्तर हे द्विजोत्तमो! अपने घर को जाकर प्रसन्न होतेहुये उस रजकने उन समस्त वस्त्रोंको सम्पूर्णता से देदिया इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों ने वस्त्रोंसे उपजी हुई उस शुद्धता को देखकर ॥ ३४ । ३५ ॥ व श्वेत कियेहुये उस रजकको देखकर आश्चर्य्य संयुत होतेहुये पूंछा कि वसन व बालों से उपजा हुआ यह क्या आश्चर्य्य है ॥ ३६ ॥

जोकि नानाप्रकार की उपमावाला होगया यदि मानते हो तो कहिये ॥ ३७ ॥ रजक बोला कि हे ब्राह्मणो ! मैंने अज्ञान से इन वसनों को नीलके मध्य में फेंक
दिया व वे उत्तम वसन सम्पूर्णता से नष्ट होगये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बड़ा डर हुआ व कुटुम्ब संयुक्त मैं निशामुख याने सन्ध्यासमय में दिशा के अन्त को
गमन किया ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर दुःख से विकल व फिर देखने की लालसावाली हमारी यह कन्या दास से उपजी हुई अपनी सखी के पास गई ॥ ४० ॥ उस
दासकन्या ने मेरे दुःखहेतुवाले समस्त प्रयोजन को जानकर तदनन्तर खड़ी होकर आगे जलाशय को भलीभांति दिखलाया ॥ ४१ ॥ उस जलाशय में केवल

प्रावस्त्राणिमयाक्षिप्तानिमोहतः ॥ नीलीमध्येसुवस्त्राणिविनष्टानिचकृत्स्नशः ॥ ३८ ॥ ततोभयम्महद्भूतंकुटुम्बेनसम
न्वितः ॥ चलितोरजनीवक्त्रेदिगन्तेब्राह्मणोत्तमाः ॥ ३९ ॥ अथैपातनयास्माकङ्गतानिजसखीम्प्रति ॥ दासात्मजांसुदुः
खार्त्तांपुनर्दर्शनलालसा ॥ ४० ॥ तयासर्वमभिप्रायंज्ञात्वामेदुःखहेतुकम् ॥ ततस्सन्दर्शयामासस्थिताचाग्रेजलाशयम् ॥
४१ ॥ तस्मिन्प्रक्षिप्तमात्राणिवस्त्राणीमानितत्क्षणात् ॥ ईदृग्वर्णानिजातानिविस्मयस्यहिकारणम् ॥ ४२ ॥ तथामेमू
र्द्धजाःकृष्णास्तत्रस्नातस्यतत्क्षणात् ॥ परंशुक्लत्वमापन्नाएतत्प्रोक्तंमयास्फुटम् ॥ ४३ ॥ एवंतेब्राह्मणास्सर्वेकौतूहलसम
न्विताः ॥ तत्रजग्मुःपरीक्षार्थंविक्षिप्यतदनन्तरम् ॥ ४४ ॥ कृष्णद्रव्याणिभूरीणिकेशादीनिसहस्रशः ॥ सर्वन्तच्छुक्
तांजातंत्यक्त्वावर्णंमलीमसम् ॥ ४५ ॥ ततोवृद्धतयायुक्ताविशेषान्मूर्द्धजाःस्थिताः ॥ तेसस्नुःश्रद्धयायुक्तास्तरुणाश्चा
पिधर्मिणः ॥ ४६ ॥ ततःशुक्लत्वमापन्नास्तेजोवीर्यसमन्विताः ॥ भवन्तितत्प्रभावेणप्रयान्तिचपराङ्गतिम् ॥ ४७ ॥

फेंकेहुये वसन उसी क्षण ऐसे रंगवाले होगये यही विस्मयका कारण है ॥ ४२ ॥ और वैसेही उस जलाशय में नहाये हुये मेरे कालेबाल उसी क्षण अतिश्वेतताको
प्राप्त हुये मैंने इसको प्रकटही कहा है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार कौतुक संयुत होते हुये समस्त ब्राह्मण वहां गये तदनन्तर परीक्षा के लिये बहुतसी काली वस्तुओं को व
हज़ारों बालों को उस जलाशय में फेंककर खड़े होगये और वह सब काली वस्तु मलिन रंग को छोड़कर श्वेतता को प्राप्त होगई ॥ ४४ । ४५ ॥ तदनन्तर धर्मवान्
व युवा भी उन ब्राह्मणों ने श्रद्धायुक्त होकर स्नान किया व बाल विशेषता से वृद्धता संयुत स्थित होगये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर श्वेतता को प्राप्तहुये वे तेज पराक्रम से

संयुत होते थे और उत्तम गतिको जाते थे ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर उस शुक्ल तीर्थ को निश्चयकर मुक्तिदायक देखकर इन्द्रजीने मनुष्यों से उपजे हुये भय के कारण धूरिसे पूर्णकरदिया ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर आज भी वहांपर जो कुछ तृणादिक उत्पन्न होता है वह सब उस जलके प्रभाव से शुक्लता को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ व श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहांपर उठे याने उपजे हुये श्वेत कुशों से श्राद्ध करताहै वह उससे नरकगामी भी समस्त पितरों को तार देताहै ॥ ५० ॥ व उस तीर्थ से उठी हुई मिट्टी को अंग में लेपन कर इसके अनन्तर जो पुरुष स्नान करता है वह समस्त तीर्थोंके फलको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो पुरुष भक्ति से उन कुशों से

अथतद्वासवोदृष्ट्वाशुक्लतीर्थंप्रमुक्तिदम्॥ पूरयामासरजसामानुषोत्थभयेनच॥ ४८ ॥ अद्यापितत्रयत्किञ्चिज्जायतेऽथतृणादिकम् ॥ तत्सर्वंशुक्लतामेतितत्तोयस्यप्रभावतः ॥४९॥ तत्रोत्थैर्यःकुशैश्श्राद्धंकुरुतेश्रद्धयान्वितः ॥ श्वेतैस्तैस्तारयेत्पितॄन्सर्वान्नरकगानपि ॥ ५० ॥ तत्तीर्थोत्थांमृदङ्गात्रेलेपयित्वाथयोनरः ॥ स्नानङ्करोतितीर्थानांसर्वेषांलभतेफलम् ॥ ५१॥यस्तैर्दर्भैर्नरोभक्त्यातिलैश्चारण्यसम्भवैः ॥ करोतितर्प्पणंविप्राःसप्रीणातिपितामहान् ॥५२॥ अथाश्वमेधात्सम्प्राप्यंगयाश्राद्धेनयत्फलम् ॥ नीलवृषस्यतूत्सर्गेतदत्रापिद्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ शुक्लंतीर्थंकथञ्जातन्तत्रत्वंसूतनन्दन ॥ विस्तरेणसमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ ५४॥ सूतउवाच ॥ श्वेतद्वीपःसमानीतोविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ तत्क्षेत्रेकलिभीतेनयेनशौक्ल्यंनसन्त्यजेत् ॥ ५५ ॥ कलिकालेनसंस्पृष्टःश्वेतदीपोपिश्यामताम् ॥ सम्प्रयातिद्विजश्रेष्ठा

और वन में उपजे हुये तिलों से तर्पण करता है वह पितामह आदिकों को तृप्त करता है ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! अश्वमेध व गया के श्राद्ध से व नीले बैल के उत्सर्ग याने छोडने में जो फल भलीभांति प्राप्त होनेके योग्य होताहै वह इस शुक्लतीर्थ में भी होता है ॥ ५३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर शुक्ल तीर्थ कैसे पैदाहुआ है इसको विस्तारसे भलीभांति कहिये क्योंकि हमलोगों को बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि कलियुगसे डरेहुये सामर्थ्यवान् विष्णुजी उस क्षेत्रमें श्वेत द्वीपको भलीभांति लायेहैं कि जिससे श्वेतताको न त्यागकरै ॥ ५५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! कलिकाल से भलीभांति छुवाहुआ श्वेत द्वीपभी श्यामताको प्राप्त

होताहै उसीसे विशेषकर वहां लायागयाहै॥५६॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

दो० । इकसौ इक्कीसवेंमहँ मुषरतीर्थ इतिहास । शौनकादिकनसन कह्यो सूत समेत विलास ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर वहांपर और भी उत्तम मुपरतीर्थ है जहांपर कि मुनिश्रेष्ठों का चोरसे समागम हुआ है ॥ १ ॥ व जहांपर उसके प्रभावसे सिद्धिको प्राप्तहुआ वह चोर बाल्मीकि ऐसे नाम से प्रसिद्ध होकर रामायणका निबन्धकारक याने बनानेवाला हुआ है ॥ २ ॥ पुरातन समय चमत्कार नगर में माण्डव्य मुनिके वंशमें उत्पन्न व पितामाताकी भक्ति में तत्पर

स्तत्रतेनविशेषतः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरतीर्थमाहात्म्येशुक्लतीर्थमाहात्म्येनामविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्तिमुषरन्तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रतेमुनयःश्रेष्ठाविप्राश्चौरेणसङ्गताः ॥ १ ॥ यत्रसिद्धिंसमापन्नस्सचौरस्तत्प्रभावतः ॥ बाल्मीकिरितिविख्यातोरामायणनिबन्धकृत् ॥ २ ॥ चमत्कारपुरेपूर्वंमाण्डव्यान्वयसम्भवः ॥ लोहजङ्घोद्विजोह्यासीत्पितृमातृपरायणः ॥ ३ ॥ तस्यैकाचाभवत्पत्नीप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ पतिव्रतापतिप्राणापतिप्रियहितेरता ॥ ४ ॥ अथतस्यास्थितस्यात्रब्रह्मवृत्त्याभिवर्ततः ॥ जगामसुमहान्कालःपितृमातृरतस्यच ॥ ५ ॥ एकदाभगवाञ्छक्रोनववर्षधरातले ॥ आनर्तविषयेकृत्स्नेयावद्द्वादशवत्सराः ॥ ६ ॥ ततस्संकष्टमापन्नोलोहजङ्घोद्विजोत्तमः ॥ नप्राप्नोतिक्वचिद्भिक्षांनचकिञ्चित्प्रतिग्रहम् ॥ ७ ॥ ततस्तौपितरौद्वौतुदृष्ट्वाक्षुत्परिपीडितौ ॥ भार्याञ्चचिन्तया

लोहजंघ नामक ब्राह्मण हुआहै ॥ ३ ॥ उसके एक प्राणोंसेभी गरुई (प्यारी) स्त्री हुईहै जोकि पतिमें प्राणोंवाली व पतिके प्रिय व हितमें तत्पर व पतिव्रताथी ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर यहां टिके व पितामाता की भक्तिमें तत्पर व ब्राह्मणकी जीविका से वर्तमानहुये उसका बहुत सा समय व्यतीतहुआ ॥ ५ ॥ एकसमय भगवान् इन्द्रजी ने भूतलपै समस्त आनर्त देशमें बारहवर्षतक वृष्टि न किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर वह लोहजंघ द्विजोत्तम कष्टको प्राप्तहुआ क्योंकि न कहीं भिक्षा पाताथा व न कुछ दान

प्रासहोताथा ॥ ७ ॥ तदनन्तर भूखसे अत्यन्तही दुःखित उन दोनों माता पिताओं को व स्त्रीको देखकर बड़े दुःख से संयुत होतेहुये उस ब्राह्मणने चिन्तन किया ॥ ८ ॥ कि मैं क्याकरूं व कहांजाऊं किसप्रकार मेरा भोजन होवै व विशेषकर इन माता पिताओं केभी व स्त्रीके कैसे भोजन होवै ॥ ९ ॥ तदनन्तर दुःखसे संयुत होताहुआ वह फलोंके लिये वनको गया परन्तु कुछ नहीं मिला क्योंकि सब वृक्ष सूखगयेथे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मणने वसन व अन्नसे संयुत व उसीसे बडे परिश्रमसे युक्त व जातीहुई बूढ़ी स्त्रीको देखा ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह निर्दयी ब्राह्मण अन्न व वसनों को लेकर प्रसन्न होताहुआ अपने घरको गया व माता पिताओं के लिये

मासदुःखेनमहतान्वितः ॥ ८ ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामिकथंस्यादशनंमम ॥ एताभ्यामपिवृद्धाभ्यांपत्न्याश्चैवविशेषतः ॥ ९ ॥ ततस्सदुःखसंयुक्तःफलार्थंप्रययौवनम् ॥ नचकिञ्चिदवाप्तंयत्सर्वेशुष्कामहीरुहाः ॥ १० ॥ अथापश्यत्सवृद्धांस्त्रींवस्त्रसस्यसमन्विताम् ॥ गच्छमानांतथातेनश्रमेणमहतान्विताम् ॥ ११ ॥ ततस्तुसस्यमादायवस्त्राणिचसनिर्दयः॥ जगामस्वंगृहंहृष्टःपितृभ्याञ्चन्यवेदयत् ॥ १२ ॥ सएवंलक्षलक्ष्योपिदस्युकर्माणिनित्यशः ॥ कृत्वाचौर्यंपुपोषाथनिजमेवकुटुम्बकम् ॥ १३ ॥ सुभिक्षेचापिसम्प्राप्तेनान्यत्कर्मकरोतिसः ॥ ब्राह्मींवृत्तिंपरित्यक्त्वाचौर्यकर्मसमाचरत् ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ तत्रसप्तर्षयःप्राप्तामरीचिप्रमुखाद्विजाः ॥ १५ ॥ ततस्तान्विजनेदृष्ट्वाद्रोहकोपसमन्वितः ॥ यष्टिमुद्यम्यवेगेनतिष्ठध्वमितिचाब्रवीत् ॥ १६ ॥ त्रिशिखाम्भृकुटींकृत्वासत्वरंसमुपाद्रवत् ॥

निवेदन करताभया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर चोरी के काममें लक्षणों से लक्षणीय भी उसने नित्यही चोरी करके अपनेही कुटुम्बको परिपालन किया ॥ १३ ॥ वह सुभिक्षके भी भलीभाति प्रासहोनेपर और काम को नहीं करताथा उसने ब्राह्मणवाली जीविका को छोडकर चोरीके कामको भलीभांति किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसंग से वहांपर मरीचि इत्यादिक सप्तर्षि प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन सप्तर्षियोंको एकान्त में देखकर द्रोह व कोधसे संयुत होतेहुये उस ब्राह्मणने वेगसे दंडको उठाकर खड़े रहिये यह कहा ॥ १६ ॥ व घुड़कता हुआ व कठोर वचनोंसे उन सप्तर्षियों को ताड़न करताहुआ सा

वह भौंहको तीन शिखावाली (टेढ़ी) कर शीघ्रही दौड़ा ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने यमदूतके समान उस को देखकर जिसलिये कि यज्ञोपवीत से संयुत था उसी कारण दयासंयुत होकर कहा ॥ १८ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह आश्चर्य्य है कि तुम ब्राह्मण हो तो किस लिये मूर्ख होकर इस म्लेच्छों के कार्य्य को करते हो ॥ १९ ॥ व समस्त परिवार या द्रव्यादिक को छोड़े हुये व शान्तचित्तवाले हमलोग मुनि हैं व हमलोगों के समीप स्थित भी कुछ नहीं है कि जिसको तुम ग्रहण करोगे ॥ २० ॥ लोहजंघ बोला कि हे ब्राह्मणो ! पनहियों समेत इन श्वेत वसनों व बक्कलों और मृगचर्म्मों को मेरे लिये शीघ्रही दीजिये ॥२१॥

भर्त्सयान्स्सपरुषैर्वाक्यैस्तान्ताडयन्निव ॥१७॥ ततस्तेमुनयोदृष्ट्वायमदूतोपमञ्चयत् ॥ यज्ञोपवीतसंयुक्तंप्रोचुस्तत्कृप यान्विताः ॥ १८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अहोत्वंब्राह्मणोसीतितत्कस्मादतिगर्हितम् ॥ करोषिकर्मचैतद्धिम्लेच्छकृत्यन्तुबालि शः ॥ १९ ॥ वयञ्चमुनयःशान्तास्त्यक्ताशेषपरिग्रहाः ॥ नास्माकमपिपार्श्वस्थंकिञ्चिद्गृह्णातियद्भवान् ॥ २० ॥ लो हजङ्घउवाच ॥ एतानिशुभ्रचीराणिवल्कलान्यजिनानिच ॥ उपानहसमेतानिशीघ्रंयच्छन्तुमेद्विजाः ॥ २१ ॥ नोचेद्व त्वाप्रहारेणयष्ट्यावज्रोपमेनच ॥ प्रापयिष्याम्यसन्दिग्धंधर्मराजनिवेशनम् ॥२२॥ ऋषयऊचुः ॥ सर्वंदास्यामहेतुभ्यंव यन्तावन्मलिम्लुच ॥ किंवदन्तींवदास्माकंयांपृच्छामःकुतूहलात् ॥ २३ ॥ किमर्थंकुरुषेचौर्य्यन्त्वंविप्रोसिसुनिर्घृणः ॥ किञ्जितोव्यसनैरौद्रैःकिंवाव्याधद्विजोभवान् ॥ २४ ॥ लोहजङ्घउवाच ॥ व्यसनार्थंनमेकृत्यमेतच्चौर्यसमुद्भवम् ॥ कुटु म्बार्थंविजानीथधर्ममेतन्नसंशयः ॥ २५ ॥ पितरौममवार्द्धक्येवर्तमानौव्यवस्थितौ ॥ तथापतिव्रतापत्नीगृहधर्मविचक्ष

नहीं तो निस्सन्देह वज्र के समान दण्डके ताड़न से मारकर शीघ्रही यमराजके स्थान को पठाऊंगा ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे चोर ! हमलोग तुम्हारे लिये सब देवेंगे तबतक कौतुक से जिस वार्त्ता को पूंछते हैं उसको हम लोगों से कहिये ॥ २३ ॥ कि तुम निर्दयी ब्राह्मणहो तो किसलिये चोरी करतेहो क्या विक- राल व्यसनों याने काम व क्रोध से उपजेहुये दोषों से जीतेगये हो या आप बहेलिया ब्राह्मणहो ॥ २४ ॥ लोहजंघ बोला कि मेरा यह चोरी से उपजा हुआ कार्य्य व्यसनके लिये नहीं है किन्तु इस धर्म को परिवार के लिये जानिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ क्योंकि मेरे माता पिता वृद्धतामें वर्तमान होकर विशेषतासे स्थित

हैं वैसेही घर के धर्म में चतुर पतिव्रता स्त्री है ॥ २६ ॥ मैं जो कुछ इस कर्म से इकट्ठा करता हूं वह सब निश्चय कर उन्हीं के लियेहै यह सत्य से अपनी सौगन्द करता हू ॥ २७ ॥ इसलिये पहले सब ऐश्वर्यको छोड दीजिये वृथा कियेहुये वचनों से क्या है याने कुछ नहीं और मेरा यह हाथ मारनेही के लिये फरकताहै ॥ २८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे चोर ! यदि ऐसा है तो तुम जाकर परिवार से पूंछो कि क्या मेरे पापांशके भागी होंगे या नहीं ॥ २९ ॥ यदि भलीभांति विभाग (बॉट) से तुम्हारे पाप का अंश भी जाता रहै तो करिये अथवा विकराल रौरव नरक में गिरेहुये तुझ अतिदुष्ट बुद्धिवाले का समस्त पाप दुर्वह याने क्लेश से लेजानेवाला

णा ॥ २६ ॥ उपार्जयामियत्किञ्चिदहमेतेनकर्मणा ॥ तत्सर्वन्तत्कृतेनूनंसत्येनात्मानमालभे ॥ २७ ॥ तस्मान्मुञ्चथ प्राक्सर्वंविभवंकिंवृथोक्तिभिः ॥ कृताभिःस्फुरतेहस्तोममायंहन्तुमेवहि ॥ २८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यद्येवञ्चोरतद्गत्वात्वंपृच्छस्वकुटुम्बकम् ॥ ममपापांशभागीत्वंकिम्भविष्यसिकिन्नवा ॥ २९ ॥ यदितेसंविभागेनपापस्यांशोपिगच्छति॥ तत्कुरुष्वाथवापापंदुर्वहन्तेभविष्यति ॥ ३० ॥ सकलंरौरवेरौद्रेपतितस्यसुदुर्मतेः ॥ वयन्त्वांब्राह्मणंमत्वाब्रूमएतदसंशयम् ॥ ३१ ॥ कृपाविष्टैःसहास्माभिः सञ्जातोपिसुदर्शने ॥ मुनीनांयतचित्तानांदर्शनाद्धिशुभंभवेत् ॥ ३२ ॥ एकःपापानिकुरुतेफलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ भोक्तारोपिप्रमुच्यन्तेकर्तादोषेणलिप्यते ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ एतेषांतद्वचःश्रुत्वा चौरःकिञ्चिद्भयान्वितः ॥ सत्यमेतन्नसन्देहो यदेतैर्व्याहृतंवचः ॥ ३४ ॥ तस्मात्पृच्छामितद्गत्वा निजमेवकुटुम्बकम् ॥ यदिस्यात्संविभागोमे पापांशस्यकरोमिवै ॥ ३५ ॥एतत्कर्म्मनगृह्णन्ति यदिवासन्त्यजाम्यहम् ॥ महद्भयंस

होगा हमलोग तुम को ब्राह्मण मानकर इसको निस्सन्देह से कहते हैं ॥ ३० । ३१ ॥ व दयासंयुत हमलोगों के साथ उत्तम दर्शनमें भलीभांति प्राप्तहुयेभी हो क्योंकि वश कियेहुये चित्तोंवाले मुनियों के दर्शन से शुभ होवै है ॥ ३२ ॥ व एकही महापुरुष पापों को करताहै व फल को भोगता है व भोग करनेवाले भी छूट जाते हैं और कर्त्ता दोष से संयुक्त होताहै ॥ ३३ ॥ सूत जी बोले कि वह चोर उन सप्तर्षियों के वचन को सुनकर कुछ भयसंयुक्त हुआ कि इन्होंने जो वचन कहाहै यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ इसलिये जाकर अपनेही उस कुटुम्ब से पूंछूंगा कि यदि मेरे पापांश का भलीभांति विभाग होवै तो मैं निश्चय कर इस कर्म को

करूं और यदि न ग्रहण करैंगे तो मैं इसको छोड़दूंगा क्योंकि इससमय मेरे चित्तमें बड़ाभारी डर उत्पन्न हुआहै ॥ ३५।३६ ॥ हे मुनीश्वरो ! यदि तुम लोग अन्यत्र न जावो तो मैं पलायन में परायण होकर याने दौड़कर अपने घरको जाकर विशेषता से तुम लोगों के वचन को पालन के योग्य वर्ग (मातापितादिकों) से पूंछूं व यदि मेरे पाप के भाग को परिवार ग्रहण करैगा ॥ ३७ । ३८ ॥ तो जो कुछ तुम लोगों के समीप में स्थित होगा उसको मैं ग्रहण करूंगा अथवा वह कुटुम्ब मेरे इस पाप को मना करैगा ॥ ३९ ॥ तो निरसन्देह सामग्री समेत तुम सबों को मैं छोड़ दूंगा तदनन्तर उस चोर के विश्वास के कारण उन मुनियों ने सौगन्दोंको

मुत्पन्नं ममचेतसिसाम्प्रतम् ॥ ३६ ॥ यदियूयंनचान्यत्र प्रयास्यथमुनीश्वराः ॥ पलायनपरोभूत्वातद्गत्वानिजमन्दिरम् ॥ ३७ ॥ पृच्छामिपोष्यवर्गञ्च युष्मद्वाक्यंविशेषतः ॥ यदितत्पातकांशोमेग्रहीष्यतिकुटुम्बकम् ॥ ३८ ॥ तद्युष्माकंग्रहीष्यामि यत्किञ्चित्पार्श्वसंस्थितम् ॥ अथवातन्निषेधंमेपापस्यास्यकरिष्यति ॥ ३९ ॥ तत्त्यजिष्याम्यसंदिग्धं सर्वान्वस्सपरिच्छदान् ॥ ततस्तेशपथान्कृत्वातस्यप्रत्ययकारणात् ॥ ४० ॥ तस्योपरिदयांकृत्वामुमुचुस्तंगृहम्प्रति ॥ सोपिगत्वाथपप्रच्छत्वरितंपितरंप्रति ॥ ४१ ॥ शृणुतातवचोस्माकंततःप्रत्युत्तरङ्कुरु ॥ यत्कृत्वाहमकृत्यानिचौर्यादीनिसहस्रशः ॥ ४२ ॥ पुष्टिङ्करोमितेनित्यं तद्भागस्तेऽस्तिवानवा ॥ पापस्यममप्रब्रूहि पृच्छतोऽत्रयथातथम् ॥ ४३ ॥ अत्रमेसंशयोजातस्तस्माच्छीघ्रंप्रकीर्तय ॥ ४४ ॥ पितोवाच ॥ बाल्येपुत्रमयानीतस्त्वम्पुष्टिंव्याकुलात्मना ॥ शुभा

करके व उसके ऊपर दया कर उस लोहजंघको घर प्रति छोड़दिया याने जानेदिया उसने भी शीघ्रही जाकर अपने पिता से पूंछा ॥ ४० । ४१ ॥ कि हे पिताजी ! हमारे वचनको सुनिये, तदनन्तर प्रत्युत्तर को करिये याने जवाब दीजिये कि जो मैं न करने के योग्य चोरी आदि हजारों कार्यों को करके नित्यही तुम्हारा परिपालन करता हूं तुम्हारा उसमें भाग है या नहीं इस विषय में पूंछते हुये मुझ पापी से यथायोग्य वचन को कहिये ॥ ४२ । ४३ ॥ इस विषय में मेरे सन्देह उत्पन्न हुआहै इसलिये शीघ्रही कहिये ॥ ४४ ॥ पिता बोला कि हे पुत्र ! व्याकुल चित्त या मनवाले मैंने भले, बुरे कर्मों को करके स्नेहवाले चित्तसे तुम्हें शिशुता में

इसीलिये पुष्टिको प्राप्तकिया है ॥ ४५॥ कि जिससे फिर वृद्धता को भलीभांति प्राप्तहोनेपर तुम शुभाऽशुभ कर्मकरके मुझको फिर भी पालनकरो ॥ ४६ ॥ हे पुत्र ! जिसप्रकार उस शुभ या पाप कर्म में तुम्हारा भाग नहीं है वैसेही इससमय मेरा भाग नहीं है ॥ ४७ ॥ अपनेही से कियाहुआ शुभ या अशुभकर्म आपही से भोग कियाजाता है और भोक्ता याने भोजन करनेवाले अन्य नर कहेगये हैं ॥ ४८ ॥ उत्तमता, चोरी, खेती व व्यापार से तुम भोजनको समीप लातेहो परन्तु मुझको चिन्ता नहीं होतीहै ॥ ४९ ॥ इसलिये यह हृदयमें स्थापित करनेके योग्य नहीं है जो तुम निन्द्यकर्म करोगे उसके पापके भोगनेवाले तुमहोगे व हमसब भोजन

शुभानिकृत्यानिकृत्वास्निग्धेनचेतसा ॥ ४५ ॥ एतदर्थम्पुनर्येनवार्द्धक्येसमुपस्थिते ॥ माम्पालयसिभूयोपिकृत्वाक
र्मशुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ नतस्याविद्यतेभागस्तवस्वल्पोपिपुत्रक ॥ शुभस्यवाथपापस्यसाम्प्रतञ्चतथामम ॥ ४७ ॥
आत्मनैवकृतङ्कर्मस्वयमेवोपभुज्यते॥शुभंवायदिवापापंभोक्तारोन्यजनाःस्मृताः॥४८॥साधुत्वेनाथचौर्य्येणकृष्यावाव
णिजेनवा॥त्वमुपानयसेभोज्यं नमेचिन्ताप्रजायते॥४९॥तस्मान्नैतद्धृदिस्थाप्यङ्कर्मनिन्द्यङ्करिष्यसि॥यत्तस्यांहःप्रभो
क्तात्वंवयंसर्वेप्रभुञ्जकाः ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ सएतद्वचनंश्रुत्वा व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ पप्रच्छमातरंगत्वा तमे
वार्थम्प्रयत्नतः ॥ ५१ ॥ ततस्तयापितच्चोक्तंयत्पित्रापिचजल्पितम् ॥ असामान्यंशुभेपापे कृत्येतस्याद्विजोत्तमाः ॥
५२ ॥ ततःपप्रच्छतांभार्याङ्गत्वादुःखसमन्वितः ॥ साप्युवाचततस्तादृक्पापंगुरुजनोद्भवम् ॥ ५३ ॥ ततस्सशोकस
न्तप्तः पश्चात्तापेनसंयुतः ॥ गर्हयन्नेवचात्मानंययौयत्रैवतापसाः ॥ ५४ ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान् कृताञ्जलिपुटःस्थि

करनेवाले हैं ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इस वचनको सुनकर उसने विकल अन्तःकरण से जाकर मातासे उसी प्रयोजन को बड़ी यत्नसे पूंछा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! शुभ व अशुभ कार्य में विभाग कर्मको जो पिताने निश्चयकर कहाथा उसीको उस मातानेभी कहा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर दुःखसे संयुत होतेहुये द्विजने उस स्त्रीके समीप जाकर पूंछा उसके उपरान्त उसनेभी गुरुजनोंसे उपजे याने सासु व श्वशुरसे कहेहुये वैसेही पापको कहा ॥ ५३ ॥ तदनन्तर शोचसे अत्यन्तही तचा व पश्चात्तापसे संयुत व अपनेको निन्दताही हुआ वह लोहजंघ वहां गया कि जहांही वे तपस्वी लोगथे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उन सबोंको प्रणामकर हाथों को

जोड़े खड़ेहुये उस ब्राह्मणने कहा कि हे ब्राह्मणो ! जाइये २ व क्षमा करिये क्षमा करिये ॥ ५५ ॥ जिसलिये कि मूर्खता में टिककर अतिपापी व विशेषकर मन्द मैंने तुमलोगोंकी निन्दा किया उसीलिये आज मेरा क्षमापन करना चाहिये ॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरे गुरुओं (माता पिताओं) ने व स्त्रीने तुम्हारे सम्पूर्ण वचन को कहा उसीसे मेरे दुःख आगया ॥ ५७ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! उपदेशके प्रदानसे मेरे ऊपर समस्त प्रसन्नताको करिये कि जिससे मैं पापको नाशकरूं ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने सदैव नित्यही ऐसा कर्म कियाहै कि स्त्रीभी व द्विजोत्तम व विशेषकर तपस्वी लोग जे जे अत्यन्तही दीन मनुष्य युद्धके लिये समर्थ न थे मैंने उन

तः ॥ गम्यतांगम्यतांविप्राःक्षम्यतांक्षम्यतांमम ॥ ५५ ॥ यन्मयामौर्ख्यमास्थाययुष्मन्निर्भर्त्सनाकृता ॥ सुपापमना विमूढेन तस्मात्कार्याक्षमाद्यमे ॥ ५६ ॥ युष्मदीयंवचःकृत्स्नंमद्गुरुभ्याम्प्रजल्पितम् ॥ भार्ययाचद्विजश्रेष्ठास्तेन मेदुःखमागतम् ॥ ५७ ॥ तस्मात्कुर्वन्तुमेसर्वम्प्रसादम्मुनिसत्तमाः ॥ उपदेशप्रदानेन येनपापंक्षिपाम्यहम् ॥ ५८ ॥ मयाकर्मकृतान्नित्यं सदैवद्विजसत्तमाः ॥ स्त्रियोपिचद्विजेन्द्राश्च तापसाश्चविशेषतः ॥ ५९ ॥ येयेदीनतरा लोकानसमर्थाःप्रयोधितुम् ॥ तेमयामुषितास्सर्वेनसमर्थाःकदाचन ॥ ६० ॥ कुटुम्बार्थंविमूढेनसाधुसङ्गविवर्जता ॥ यथैवपठितंशास्त्रन्तन्मेद्यपतितंहृदि ॥ ६१ ॥ यदिनस्याद्भवद्भिर्मेदर्शनञ्चाद्यसत्तमाः ॥ तदन्यानपिपापानिकर्त्ताहन्नात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ तेषाम्मध्यगतश्चासीत्पुलहोनामसन्मुनिः ॥ हास्यशीलस्सतम्प्राह विप्लवार्थंद्विजोत्तमम् ॥ ६३ ॥ अहन्तेकीर्त्तयिष्यामि मन्त्रमेकंसुशोभनम् ॥ यन्ध्यायञ्जपमानश्च सिद्धियास्यसिशाश्वतीम् ॥ ६४ ॥

सबों की चोरी कियाहै और सामर्थ्यवाले पुरुषोंकी कभी नहीं ॥ ५९।६० ॥ परिवार के लिये विशेषकर मूढ़ व साधुके संगसे रहित मैंने जैसाही शास्त्र पढ़ाथा वह आज मेरे हृदय में प्राप्तहुआ ॥ ६१ ॥ हे उत्तम मुनियो ! आज यदि मुझको आपलोगों का दर्शन न होता तो मैं और भी पापोंको करता इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ उन मुनियों के मध्यमे हास्य स्वभाववाले पुलह नामक उत्तम मुनिथे उनने पाप नाशने के लिये उस द्विजोत्तम से कहा ॥ ६३ ॥ कि मैं तुमसे एक अतिउत्तम मंत्रको

कहूंगा कि जिसको ध्यानकरते व जपतेहुये तुम सदैववाली सिद्धिको प्राप्तहोगे ॥ ६४ ॥ राटघोट ऐसा यह मंत्र समस्त सिद्धियों का अवश्यकर दायकहै हे विप्र ! निरालसी होतेहुये तुम दिनरात उसी इस मंत्रको जपो ॥ ६५ ॥ उसी जप से देवताओं सेभी दुर्लभ संसिद्धिको प्राप्तहोगे ऐसा कहकर तदनन्तर वे ब्राह्मण तीर्थयात्राको चलेगये ॥ ६६ ॥ व जपमें तत्पर होताहुआ वह चोरभी वहांही स्थितहुआ उससमय उसने अनन्य याने एकाग्र मनसे जपका प्रारम्भ किया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थितहुआ कि जिससे उत्तम दशाको प्राप्तभया उस मंत्रका स्मरण करते हुये उस द्विजका शरीर अचलताको प्राप्तहुआ और वह द्विज कार्य में स्थिरहुआ

राटघोटेतिमन्त्रोयंसर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ तमेनञ्जपविप्रत्वं दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ६५ ॥ ततोयास्यसिसंसिद्धिंदुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ एवमुक्त्वाथतेविप्रास्तीर्थयात्रान्ततोययुः ॥ ६६ ॥ सोपितत्रैवचौरस्तु स्थितोजपपरायणः ॥ अनन्यमनसातेन प्रारब्धस्सतदाजपः ॥६७॥ ततोभवत्समाधिस्थो येनावस्थाम्यसङ्गतः ॥ तस्यैवंस्मरमाणस्यतन्मन्त्रंब्राह्मणस्यच ॥ ६८ ॥ निश्चलत्वङ्गतंकायंकार्येचनिश्चलस्तथा ॥ ततःकालेनमहतावल्मीकेनसमावृतः ॥ ६९ ॥ समन्ताद्ब्राह्मणश्रेष्ठा ध्यानस्थस्यमहात्मनः ॥ तौमातापितरौतस्य साचभार्यापतिव्रता ॥ ७० ॥ जातामृत्युवशंसर्वे तमन्वेष्यप्रयत्नतः ॥ नविज्ञातस्तुतैस्सर्वैस्ततस्सचमहाव्रती ॥ ७१ ॥ संसारभावनिर्मुक्तस्तस्मान्मुनिसमागमात् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तेनमार्गेणतेपुनः ॥ ७२ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन मुनयस्समुपस्थिताः ॥ प्रोचुश्चैतद्द्विजस्थानंयत्रचौरेणसङ्गमः ॥७३॥ आसीनस्तेनरौद्रेण ब्राह्मणच्छद्मधारिणा ॥ ततोवल्मीकमध्यस्थं शुश्रुवुर्निःस्वनञ्चते ॥ ७४ ॥

तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बड़े समय के बाद सबओर बँबौरिसे घिरगया व ध्यानमें टिकेहुये उस महात्मा के वे माता पिता और वह पतिव्रता स्त्री उसको बड़े उपायसे ढूंढ़कर वे सब मृत्युवशको प्राप्तहोगये तदनन्तर उन सबोंसे न जानाहुआ वह महाव्रतवाला लोहजंघ ॥ ६८ । ६९ । ७० । ७१ ॥ उस मुनिके संयोग से संसारके भाव से छूटगया इसके अनन्तर किसी समय तीर्थयात्राके प्रसंग से वे मुनि फिर उसी मार्ग से समीप मे प्राप्तहुये व बोले कि यह ब्राह्मणका स्थानहै जहांपर कपट से ब्राह्मणके रूपको धारनेवाले उस भयंकर चोरसे हमसबोंका समागम हुआथा तदनन्तर उसी लोहजंघ द्विज महात्माके बँबौरि के मध्यमें स्थितहुये शब्दको उन्होंने

सुना इसके अनन्तर उन्होंने भूमिमें सबओर दिशाओंमें देखा ॥ ७२ । ७३ । ७४ । ७५ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने बँवौरिको देखकर उसीके मध्यमें वह चोर प्राप्तथा और पुलहमुनि से बतलायेहुये उस मंत्रको जप करताथा ॥ ७६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जोकि हास्यरूपवाले पुलहमुनिसे दियागयाथा वह सिद्धहोगया अथवा शास्त्रके देखनेवाले आचार्य्योंसे यह सिद्ध कहागयाहै ॥ ७७ ॥ जिसलिये कि उसकी सिद्धि के लिये सिद्धिका समूह समीप में स्थितहुआ मंत्र, तीर्थ, जप, देवता, यज्ञ, ओषधि व गुरुमें जिसकी जैसी भावना होतीहै उसकी वैसीही सिद्धि होती है ॥ ७८ ॥ इसके अनन्तर दुष्टमंत्रसे भी सिद्धहुये उस चोरको देखकर वे ब्राह्मण आश्चर्य्य से व वि-

लोहजङ्घस्यविप्रस्यतस्यैवचमहात्मनः ॥ अथभूम्यांद्विजास्तेतु ददृशुस्सर्वतोदिशम् ॥ ७५ ॥ तेवल्मीकंततो दृष्ट्वा सचौरस्तस्यमध्यगः॥जपमानस्तुतन्मन्त्रंपुलहेननिवेदितम्॥७६॥ हास्यरूपेणयद्दत्तं सिद्धञ्चद्विजसत्तमाः॥ यद्वासिद्धमिदंप्रोक्तमाचार्यैःशास्त्रदृष्टिभिः ॥ ७७ ॥ स्तोमःसिद्धिकृतेतस्ययस्मात्सिद्धेरुपस्थितः ॥ मन्त्रेतीर्थेजपे देवे यज्ञेचभेषजेगुरौ॥ यादृशीभावनायस्य सिद्धिर्भवतितादृशी ॥ ७८ ॥ अथतंवीक्ष्यसंसिद्धं कुमन्त्रेणापितस्करम्॥ तेविप्राविस्मयाविष्टाः कृपयाचविशेषतः ॥ ७९ ॥ समाध्यर्हैस्ततोद्रव्यैस्तैलैःसद्भेषजैरपि ॥ ममर्दुस्तस्यतद्गात्रंसमाधिस्थञ्चिराद्द्विजाः॥८०॥ततस्सर्वान्मुनीँल्लब्ध्वाविलोक्यचमुहुर्मुहुः॥ प्रोवाचविस्मयाविष्टस्तान्मुनीन्पुनरागतान्॥ ८१ ॥ लोहजङ्घउवाच ॥ किमर्थन्नगतायूयंमयामुक्ताद्विजोत्तमाः ॥ नाहङ्किञ्चिद्ग्रहीष्यामियुष्मदीयङ्कथञ्चन॥८२॥ कुटुम्बार्थमतस्तस्माद्व्रजध्वंस्वेच्छयाधुना॥८३॥मुनयऊचुः॥चिरकालाद्वयंप्राप्ताः पुनर्भ्रान्त्वाथकानने॥

शेपकर दयासे संयुतहुये ॥ ७९ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों ने बहुत दिनोंसे समाधिमें टिके हुये उस लोहजंघके उस अंगको समाधिके योग्य वस्तुओं से व तैलों तथा उत्तम दवाइयों सेभी मर्दन किया ॥ ८० ॥ तदनन्तर सब मुनियोंको पाकर व बार २ देखकर आश्चर्य्य संयुत होताहुआ वह द्विज फिर आयेहुये उन मुनियोंसे बोला ॥ ८१ ॥ लोहजंघ बोला कि हे द्विजोत्तमो ! मुझ से छोडेहुये तुम लोग किसलिये नहीं गये मैं कुटुम्ब के लिये तुम्हारी कुछ वस्तु को न लूंगा इसलिये उसीकारण इससमय तुम लोग अपनी इच्छा से चलेजावो ॥ ८२ । ८३ ॥ मुनिलोग बोले कि हमलोग वन में घूमकर इसके अनन्तर बहुत समय से फिर प्राप्त हुये हैं समाधि में टिकेहुये

तुमने बहुतसे बीतेहुये समय को नहीं जाना है॥ ८४ ॥ व तुमसे छोड़ेहुये वे माता पिता नाश होगये और तुम मेरी प्रसन्नतासे उत्तम संसिद्धिको प्राप्तहुयेहो ॥ ८५ ॥ जिसकारण कि वँबौरि के बीच में स्थित होतेहुये तुम उत्तम सिद्धिको प्राप्तभये हो इसलिये संसार में तुम वाल्मीकि नाम से प्रसिद्धहोगे ॥ ८६ ॥ हे द्विज ! पुरातन समय जिसलिये यहां टिकेहुये तुमने मनुष्यों की चोरी किया है उसीकारण यह मुपरनामक तीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ८७ ॥ हे द्विज ! श्रावणी पौर्णमासी में जो पुरुष श्रद्धासे इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे चोरी के काम से उपजे हुये पापको नाशकरैंगे ॥ ८८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! ऐसा कहकर इसके अनन्तर

समाधिस्थेननज्ञातःकालोतीतस्त्वयाबहु ॥ ८४ ॥ तौमातापितरौवृद्धौ त्वयामुक्तौक्षयङ्गतौ ॥ त्वञ्चसंसिद्धिमापन्नः परामस्मत्प्रसादतः ॥ ८५ ॥ वल्मीकान्तस्थितोयस्मात्संसिद्धिंपरमाङ्गतः ॥ वाल्मीकिर्नामविख्यातस्तस्माल्लोकेभविष्यति ॥ ८६ ॥ अत्रस्थेनत्वयामुष्णायतोलोकाःपुराद्विज ॥ मुपराख्यंततस्तीर्थमेतत्ख्यातिंगमिष्यति ॥ ८७ ॥ यत्रस्नानंकरिष्यन्ति श्रावण्यांश्रद्धयाद्विज ॥ क्षालयिष्यन्तितेपापञ्चौर्यकर्मसमुद्भवम् ॥ ८८ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथविप्रेन्द्रास्तमामन्त्र्यमुनिंतथा ॥ प्रणतानेनसञ्जग्मुर्वाञ्छिताशांततःपरम् ॥ ८९ ॥ तपःस्थस्सोपितत्रैववाल्मीकिरितियःस्मृतः॥मुनीनाम्प्रवरःश्रेष्ठस्ततोजातस्ततःपरम्॥९०॥ अद्यापितिष्ठतेमूर्त्तस्सतत्रस्थोमुनीश्वरः ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्यासकविर्जायतेध्रुवम् ॥ ९१ ॥ अष्टम्यांचविशेषेण सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे नागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रेमुपरतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

उन मुनिसे पूंछकर तदनन्तर उन वाल्मीकिसे प्रणाम कियेहुये वे सप्तर्षि चाहीहुई दिशाको चलेगये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर जो वाल्मीकि ऐसे कहेगये हैं वहींपर तपस्या में टिकेहुये वे भी उसके उपरान्त मुनीश्वरोंमें श्रेष्ठ हुये हैं ॥ ९० ॥ व वहांपर टिकेहुये वे मूर्तिमान् मुनिनायक आजभी स्थित हैं जो पुरुष उन मुनिनायकको भक्तिसे पूजताहै वह निश्चयकर कवि होताहै ॥९१॥ व भलीभांति श्रद्धा संयुत होताहुआ जो पुरुष विशेषकर अष्टमीतिथिको पूजैगा वहभी अवश्यकर कविहोगा ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रे मुपरतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

दो० । सत्यसन्ध निज सुतालै गये चतुर्मुख पास । इकसौ बाइसमें सोई वर्णित है इतिहास ॥ सूतजी बोले कि वैसेही कर्णोत्पल नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है जिसमें भलीभांति नहायाहुआ पुरुष प्रियसे व धन से व निज जनसे व पराक्रम, धर्म तथा विशेषकर स्त्री आदिकोंसे किसी प्रकारभी विरहको नहीं प्राप्तहोता है ॥१।२॥ पुरातन समय इक्ष्वाकु वंशमें उपजाहुआ समस्त रूप व गुणों से संयुत सत्यसन्ध ऐसा प्रसिद्ध भूपति हुआहै ॥ ३ ॥ बहुत पुत्रवाले उस सत्यसन्ध के समस्त लक्षणों से चिह्नित वह एक कर्णोत्पला नामक कन्या पैदाहुई ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर बारहवें दिन पिताने ब्राह्मणों, नौकरों और मंत्रियों के साथ बार २ सलाह करके उस

सूतउवाच ॥ तथाकर्णोत्पलन्तीर्थंविख्यातञ्चास्तिशोभनम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यङ्नवियोगंसमाप्नुयात् ॥ १ ॥ कथञ्चिदपिचेष्टेन धनेनस्वजनेनच ॥ पराक्रमेणधर्मेण कलत्रेणविशेषतः ॥ २ ॥ सत्यसन्धइतिख्यातः पुरासीत्पृथिवीपतिः ॥ इक्ष्वाकुकुलसम्भूतस्सर्वरूपगुणैर्युतः ॥ ३ ॥ तस्यकर्णोत्पलानाम जाताकन्यासुशोभना ॥ बहुपुत्रस्यचैकासा सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ४ ॥ अथतस्याःपितानाम चक्रेद्वादशमेदिने ॥ सम्मन्त्र्यब्राह्मणैस्सार्द्धम्भृत्यामात्यैर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ यस्मात्कर्णोत्पलाचेवंजाताममकुमारिका ॥ तस्मात्कर्णोत्पलानाम जायतांद्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ कृतनामाथसाबाला वृद्धिंयातिदिनेदिने ॥ आह्लादकारिणीनित्यङ्कलाचाद्रमसीयथा ॥ ७ ॥ अथसाक्रमशःप्राप्ता यौवनम्बन्धुलालिता ॥ हस्ताद्धस्तम्प्रगच्छन्तीसर्वेषांद्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ अथतांयौवनोपेतां दृष्ट्वासपृथिवीपतिः ॥ चिन्तयामास चित्तेन कस्येमाम्प्रददाम्यहम् ॥ ९ ॥ नतस्यास्सदृशःकश्चिद्वरोत्रधरणीतले ॥ नस्वर्गेनचपाताले किंकृत्यम्मेधुना

का नाम किया ॥ ५ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! जिस कारण यह मेरी कन्या कमल सरीखे कानोंवाली उत्पन्नहुईहै इसलिये कर्णोत्पला नाम होवै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कियेहुये नामवाली व आनन्द करानेवाली वह कन्या दिनोदिन वृद्धिको प्राप्तहोतीथी जैसे कि नित्यही चन्द्रमाकी कला बढ़ती है ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! सब मनुष्यों के हाथसे हाथमें जाती व भाइयोंसे प्यार कीहुई वह कन्या क्रम से वृद्धिको प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त उस कन्याको यौवनसे संयुत देखकर उस भूपति ने चित्तसे चिन्तन किया कि मैं इसे किसको देऊं ॥ ९ ॥ इस भूतल में व स्वर्ग और पाताल में उसके समान कोई वर नहीं है इससमय मुझको क्या कार्य

होवै है ॥ १० ॥ उस भूपति ने उस कन्याके लिये ऐसा बहुत भांतिसे ध्यान करके चित्तमें निश्चय किया कि मुझको इस विषय में आज ब्रह्मा से पूंछना चाहिये वे पितामह इस कार्य में जिसके लिये प्रेरणा करेंगे उसीके निमित्त कन्याको दूंगा और पुरुषके लिये किसी प्रकार से न दूंगा ॥ ११ । १२ ॥ वह भूपाल इस भांति निश्चयकर तदनन्तर उस कन्या को लेकर इसके अनन्तर उसके निमित्त वरको पूंछनेके लिये ब्रह्मलोक को गया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! वह नरनायक ज़बतक ब्रह्मलोकको भलीभांति प्राप्तहुआ तबतक ब्राह्मी याने ब्रह्मावाली सन्ध्या भलीभांति उत्पन्नहुई ॥ १४ ॥ इसी अवसर में सन्ध्योपासन कर्ममें उत्कंठित ब्रह्माजी समाधि में स्थितहोकर बैठे उसी समय में सत्यसन्ध प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ और वे सत्यसन्ध भी समाधि में टिकेहुये ब्रह्माजीको देखकर समाधि के अन्त को परखतेहुये समीप बैठगये ॥ १६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी आत्मामें परब्रह्मको देखकर जोकि हृदयमें टिके व भलीभांति पलटेहुये आठपत्तोंवाले कमलमें गुजरी के बीचमें प्राप्त व अत्यन्तही अचल व बहुरंगवाला तथा प्रकाशमानथा तदनन्तर आनन्दके आंसुओंसे सबओर भीगे मुखवाले व रोमांचसे चिह्नितहुये ॥१७।१८॥ तदनन्तर समस्त ब्रह्मलोकनिवासियों से प्रणाम कियेहुये ब्रह्माजीने आचमनकर व चरणोंको धोकर सब दिशाओंमें देखा ॥ १९ ॥ इसी अवसर में सत्यसन्ध राजाने उस शोभन

भवेत् ॥ १० ॥ सएवम्बहुधाध्यात्वातदर्थम्पृथिवीपतिः ॥ निश्चयम्प्राकरोच्चित्ते प्रष्टव्योऽत्रपितामहः ॥ ११ ॥ मयाद्यविषयेचास्मिन्सदेवःप्रेरयिष्यति ॥ तस्मैपुत्रींप्रदास्यामिनान्यस्मैवैकथञ्चन ॥ १२ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा तामादायततःपरम् ॥ ब्रह्मलोकञ्जगामाथप्रष्टुन्तस्याःकृतेवरम्॥१३॥अथयावत्ससम्प्राप्तोब्रह्मलोकंनरेश्वरः ॥ तावत्सन्ध्यासमुत्पन्ना ब्राह्मीब्राह्मणसत्तमाः ॥ १४॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मासायन्तनक्रियोत्सुकः ॥ उपविष्टस्समाधिस्थस्तत्कालेसमपद्यत ॥ १५ ॥ सत्यसन्धोपितंदृष्ट्वा समाधिस्थम्पितामहम् ॥ समाध्यन्तम्प्रतीक्षन्सउपविष्टस्समीपतः ॥ १६ ॥ ततोविलोक्यचात्मानमात्मनिप्रपितामहः ॥ पद्मेप्रवर्तितेसम्यगष्टपत्रेहृदिस्थिते ॥ १७ ॥ कर्णिकामध्यगंदीप्तं बहुवर्णमतिस्थिरम् ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नवदनःपुलकाङ्कितः ॥१८॥ ततआचम्यप्रक्षाल्य चरणौसर्वतोदिशम् ॥ अपश्यत्प्रणतस्सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा तामादायशुभाननाम् ॥ नमस्कृत्यतयासार्द्धं

मुखवाली कन्याको लेकर व उसके सहित प्रणामकर तदनन्तर आदर समेत कहा॥ २० ॥ कि हे देव ! आनर्त भूमिमें सत्यसन्ध ऐसा विख्यात मैं मृत्युलोक से तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं ॥ २१ ॥ यह अतिशुभदायक कर्णोत्पला नामक मेरी कन्याहै इस भूमि में मैंने कहीं इसके समान पतिको न पाया ॥ २२ ॥ उसीसे हे सुरनायक ! तुम्हारे समीप आयाहूं इसलिये मुझसे इसके पतिको कहिये कि जिससे मैं इसको देऊं ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस भूपतिके उस वचनको सुनकर तदनन्तर विहँसकर ब्रह्माजीने समस्त देवताओं की सभामें कहा॥ २४ ॥ कि हे भूप ! यदि मुझसे कन्याके धर्मपति को पूंछते हो तो यह कन्या इस

न्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २० ॥ अहंदेवसमायातो मर्त्यलोकात्तवान्तिकम् ॥ सत्यसन्धोमहीपाल आनर्तभुविविश्रुतः ॥
२१ ॥ इयंकर्णोत्पलानाम ममकन्यासुशोभना ॥ अस्याभुविमयालब्धोनसमोत्रपतिःक्वचित् ॥ २२ ॥ सद्दशंतेनचा
यातंस्तवपार्श्वेसुरेश्वर ॥ तस्मान्मेब्रूहिभर्तारमस्यायेनददाम्यहम् ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा ततः
प्रोवाचपद्मजः ॥ विहस्यसर्वदेवानां समजेद्विजसत्तमाः ॥ २४ ॥ यदिपृच्छसिमेभूपकन्याधर्म्मपतिम्प्रति ॥ तदेषाक
स्यचिद्देया साम्प्रतंश्शृणुकारणम् ॥ २५ ॥ आत्मश्रेणीप्रसूताय वयोज्येष्ठायभूपते ॥ कन्यादेयाचधर्माय यशसेकुल
वृद्धये ॥२६॥ सेयन्तवसुतामर्त्ये ज्येष्ठभावंसमाश्रिता ॥ सर्वेषाम्भूमिपालानां यत्तत्त्वंकारणंश्शृणु ॥२७॥ ममान्तिकम्प्र
पन्नस्यतवजातंयुगत्रयम् ॥ अतीताभूतलेमर्त्यायेदृष्टाःप्राक्त्वयानृप ॥ २८ ॥ अन्यासृष्टिस्समुत्पन्ना साम्प्रतन्धरणी
तले ॥ नत्वंजानासिमाहात्म्यं ममलोकसमुद्भवम् ॥ २९ ॥ नदेवामानुषीम्भार्य्यांकुर्वन्तिचकथञ्चन ॥ श्लेष्ममूत्रपुरी

समय किसको देने योग्य है क्योंकि कारणको सुनिये ॥ २५ ॥ हे भूपते ! धर्म व यश व वंशकी वृद्धिके निमित्त अपनी पंक्ति में पैदाहुये व अवस्था में बडे के लिये कन्याको देना चाहिये ॥ २६ ॥ जिस कारण वही यह तुम्हारी कन्या मृत्युलोक में सबही भूपालों की ज्येष्ठता में प्राप्तहै तुम उस कारणको सुनो ॥ २७ ॥ कि हे नृप ! तुमको मेरे समीप प्राप्तहुये तीन युग बीतगये भूतल में पहले तुमने जिन मनुष्योंको देखाथा वे गत होगये ॥ २८ ॥ और इससमय भूतल में अन्य सृष्टि भलीभांति पैदाहुई है तुम मेरे लोकसे उपजेहुये माहात्म्यको नहीं जानतेहो ॥ २९ ॥ और कफ, मूत्र, विष्ठा की स्थानवाली व अतिनिन्दित मानुषी को देवता किसी प्रकार स्त्री न

करैंगे ॥ ३० ॥ इसलिये हे नृप ! कन्या समेत तुम यहींपर टिको क्योंकि हे नृप ! जो हाथी घोड़े आदिक थे वे सब नाशको प्राप्तहोंगये ॥ ३१ ॥ पृथ्वी में आयके जो
कोई पुत्र व पौत्र तथा सेवक व अन्य भाईथे वे सब व जो और स्नेही आदि थे वे मृत्युको प्राप्त होगये ॥ ३२ ॥ वह नृपोत्तम वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर जबतक
स्थितहुआ तबतक दुःखसे विकल व रोतीहुई वह कन्या बोली ॥ ३३ ॥ कि उसी कारण मैं वहां जाऊंगी जहांपर कि वह मेरी माता व कियेहुये आनन्दोंवाली वे स-
खियां है कि जिनके साथ मैंने क्रीड़ा कियाहै ॥ ३४ ॥ जिसकारण कि मैं विना माताके यहां समयकी स्थिति को न व्यतीत करूंगी इसलिये शीघ्रही वहां चलिये कि

यद्धस्त्यश्वादिकंसर्वं क्षयन्नीतन्तुतन्नृप ॥ ३० ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठत्वं सुतयासहितोनृप ॥ षाणांसंस्थानमतिगर्हिताम् ॥ ३१ ॥ पुत्राःपौत्रास्तथाभृत्या येचान्येबान्धवास्तथा ॥तेसर्वेनिधनंप्राप्ता येचान्येभवतःक्षितौ ॥ ३२ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय स्थितःपार्थिवसत्तमः ॥ यावत्तावत्सुदुःखार्त्ता रुदतीसाब्रवीत्सुता ॥ ३३ ॥ तस्माद्यास्यामितत्रैव यत्रसाजननीमम ॥ ताश्चसख्यःकृतानन्दायैस्सार्द्धंक्रीडितंमया ॥ ३४ ॥ मात्राविनायतोनाहंनयिष्येकालसंस्थितिम् ॥ तस्मात्त्वद्रुतङ्गच्छ यत्रमेजननीस्थिता ॥ ३५ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा स्नेहार्द्रेणसचेतसा ॥ तामादायततःप्राप्तःस्वदेशस्पार्थिवोत्तमः ॥३६॥ यावत्पश्यतितावत्सस्थलस्थानेजलाशयाः॥जलस्थानेषुसञ्जातास्स्थलसङ्घाःसुदुर्गमाः ॥ ३७ ॥ अन्येलोकास्तथाधर्म्मास्तेषाम्मध्येव्यवस्थिताः ॥ पृच्छन्नपिनजानातिसम्बन्धंकेनचित्सह ॥ ३८ ॥ तथामर्त्यानिलस्पृष्टस्तत्क्षणात्समहीपतिः ॥ पृच्छन्नपिनजानाति सम्बन्धङ्केनचित्सह ॥३९॥ तथामर्त्यानिलस्पृष्टस्तत्क्षणात्समहीपतिः ॥

जहां मेरी माता टिकी है ॥ ३५ ॥ उस कन्याके उस वचनको सुनकर वह भूपसत्तम स्नेह से भीगे चित्तसे उसको लेकर तदनन्तर अपने देशको प्राप्तहुआ ॥ ३६ ॥ व
जबतक वह देखताहै तबतक स्थलके स्थानपै जलाशय व जलके स्थान में अतिक्लेश से जाने योग्य स्थलों के समूह होगये ॥ ३७ ॥ व उन स्थलसमूहोंके मध्यमें
औरही मनुष्य व औरही धर्म विशेषता से टिकगये व पूंछतेहुये भी कोई किसी के साथ सम्बन्धको नहीं जानताहै ॥ ३८ ॥ वैसेही मृत्युलोक के पवनसे छुवा हुआ
वह भूपति उसी क्षण पूंछताहुआ भी किसी के साथ सम्बन्धको नहीं जानता है ॥ ३९ ॥ वैसेही मृत्युलोक के पवनसे स्पर्श किया हुआ वह भूप और वह कन्या उसी

साचकन्याजराग्रस्ता सञ्जाताश्वेतमूर्द्धजा ॥ ४० ॥ वलिभिःपूर्णताङ्गीचशीर्णदन्ताकुचच्युता ॥ असनोज्ञाविरूपा ङ्गीचिपिटाक्षीद्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ सोपिराजातथाभूतो वेपमानःपदेपदे ॥ पप्रच्छभूपतिःकोत्र देशःकोयम्पुरञ्चकिम् ॥ ४२ ॥ अथप्रोचुर्जनास्तस्य देशानर्तइतिस्मृतः ॥ अयम्भूपोपिविख्यातो सुधर्मज्ञोबृहद्बलः ॥ ४३ ॥ एतत्प्राप्तिपुरंनाम एषाशुभ्रमतीनदी ॥ गर्तातीर्थमिदम्प्रोक्तमेतस्याःपरिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥ यत्रैतेमुनयःशान्तादान्ताःश्रेष्ठगुणे रताः ॥ तपोरतामहाभागा जपस्नानपरायणाः ॥ ४५ ॥ ततस्तुससमाकर्ण्यरुरोदकृतनिःस्वनः ॥ स्वसुतान्तांसमालिङ्ग्य दुःखशोकसमन्वितः ॥ ४६ ॥ तौचवृद्धतमौदृष्ट्वारुदन्तौकृपयान्विताः ॥ सर्वेलोकास्समाजग्मुःपप्रच्छुश्चसुदुःखिताः ॥ ४७ ॥ किन्त्वंवृद्धसुदुःखार्तःप्रोदिषिनिर्गलम् ॥अनयावृद्धयासार्द्धंतस्मान्नःकारणंवद ॥ ४८ ॥ किन्तेनष्टःप्रियःकश्चित्किंवाजातोधनक्षयः ॥ पराभूतोसिवाकिन्त्वं केनापिवदमाचिरम् ॥ ४९ ॥ धर्मज्ञोदुष्टहन्ताच साधू

त्वण श्वेतबालोंवाली व वृद्धतासे ग्रसित होगई ॥ ४० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सिमिटोंसे पूर्ण अङ्गोंवाली, गिरे दांतोंवाली व गिरे याने नये स्तनोंवाली व अमनोहारिणी और कुरूप अङ्गोंवाली व चिपटे नयनोंवाली होगई ॥ ४१ ॥ व पग २ पै कांपते और उस प्रकार के हुये उस भूपनेभी पूंछा कि यहां राजा कौनहै व यह देश कौनहै और यह कौन पुरहै ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर मनुष्यों ने उस भूपसे कहा कि आनर्त ऐसा कहाहुआ देशहै व उत्तम धर्मको जाननेवाला यह भूपभी बृहद्बल ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ४३ ॥ व यह प्राप्तिपुर नामक नगरहै और यह शुभ्रमती नदीहै व इसीका यह गर्तातीर्थ कहागयाहै ॥४४॥ जहां कि शान्त स्वभाववाले व इन्द्रियोंको दमन कियेहुये व स्नान, जप में लगे व श्रेष्ठगुणों में तत्पर ये बड़े भाग्यवाले मुनिलोग तपस्यामें परायण हैं ॥ ४५ ॥ तदनन्तर वह भूप सुनकर अपनी उस कन्याको लिपटाकर व दुःख शोचसे संयुत होकर शब्द करताहुआ रोताभया ॥ ४६ ॥ रोतेहुये व अत्यन्तही बूढ़े उन कन्या पिताओं को देखकर दयायुक्त व अतिदुःखित होते हुये सब मनुष्य भलीभांति आये व पूछते भये ॥ ४७ ॥ कि हे वृद्ध ! दुःखसे विकल तुम इस वृद्धा समेत बिन रोंक टोंक याने अत्यन्तही क्यों रोतेहो इसलिये हमलोगों से कारण कहो ॥ ४८ ॥ क्या तुम्हारा कुछ प्रियपदार्थ नष्टहोगया है व धनका नाश हुआहै अथवा क्या तुम किसीसे तिरस्कृत हुये हो शीघ्रही कहिये ॥ ४९ ॥ क्योंकि

धर्मका जाननेवाला व दुष्टों को मारनेहारा और उत्तम जनोंकी रक्षा में लगाहुआ हम लोगों का बृहद्बल राजा जिससे तुम्हारे सुखको करै ॥ ५० ॥ सत्यसन्ध बोले कि सत्यसन्ध ऐसा कहाहुआ मैं आनर्त देशका स्वामीहूं व सदैव प्यारी यह कर्णोत्पला नामक मेरी कन्या है ॥ ५१ ॥ सो मैं इसको देनेके लिये ब्रह्मादेवजी से पूंछने के निमित्त यहां से ब्रह्मलोक को गया वहां मुहूर्त तुल्य याने कच्ची दो घड़ीतक स्थितरहा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर फिर भलीभांति आयाहुआ मैं जब तक पृथ्वीतलको देखा तबतक सर्व विलोमताको प्राप्त होगया याने उलटा होगया मैं कुछ नहीं जानताहूं ॥ ५३ ॥ उस वचनको सुनकर आश्चर्य्य से फूलेहुये

नाम्पालनेरतः ॥ राजाबृहद्बलोस्माकं येनतेकुरुतेसुखम् ॥ ५० ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ आनर्ताधिपतिश्चाहं सत्यसन्ध इतिस्मृतः ॥ ममकर्णोत्पलानाम सुतेयंदयितासदा ॥ ५१ ॥ सोहमस्याःप्रदानार्थं ब्रह्मलोकमितोगतः ॥ प्रष्टुम्पितामहंदेवं स्थितस्तत्रमुहूर्तवत् ॥ ५२ ॥ ततोभूयःसमायातोयावत्पश्यामिभूतलम् ॥ तावद्विलोमतांप्राप्तं सर्वंनोवेद्मिकिञ्चन ॥ ५३ ॥ तच्छ्रुत्वातेजनागत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ बृहद्बलायतत्सर्वमाचख्युस्तुष्टिसंयुताः ॥ ५४ ॥ सोपितत्सर्वमाकर्ण्यततःशीघ्रतरङ्गतः ॥ पद्भ्यामेवस्थितोयत्रसत्यसन्धोमहीपतिः ॥ ५५ ॥ ततस्तम्प्रणिपत्योच्चैः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ स्वागतम्मेमहीपाल भूयस्सुस्वागतञ्चते ॥ ५६ ॥ इदंराज्यन्निजम्भूयो मयाभृत्येनसादरम् ॥ कुरुथस्वेच्छयादेहि दानानिविविधानिच ॥ ५७ ॥ ततस्तञ्चसमालिङ्ग्य शिरस्याघ्रायचासकृत् ॥ उवाचाश्रुपरिक्लिन्न

लोचनोंवाले व हर्षसंयुक्त होतेहुये उन मनुष्यों ने बृहद्बल नृपतिके लिये उस समस्त वृत्तान्तको कहा ॥ ५४ ॥ वह बृहद्बल भी उस समस्त चरित्रको सुनकर चरणोंही से (पैदल) अत्यन्तही शीघ्र वहांगया जहांपर कि सत्यसन्ध भूपति टिकाथा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उच्च प्रकार से प्रणामकर हाथों को जोड़े खड़ेहुये उस भूपति ने कहा कि हे भूपाल ! मेरा आना अच्छी तरह से हुआ व हे भूप ! तुम्हारा आना बहुत भलीभांति हुआ है ॥ ५६ ॥ मुझ दास समेत इस अपनी राज्यको फिर आदर सहित कीजिये व अपनी इच्छासे अनेक भांतिके दानों को दीजिये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर उस भूपको भलीभांति लिपटाकर व बार २ मस्तक में सूंघकर आंसुवों

से भीगेहुये मुखवाले सत्यसन्धने गद्गदीले आखरोंसे कहा ॥ ५८ ॥ कि हे वत्स ! मैंने राज्य किया व अनेक भांतिके दानको दिया व सम्पूर्ण दक्षिणावाले अश्वमेधादिक यज्ञों से पूजन किया है ॥ ५९ ॥ इस लिये इस कन्या समेत मैं वैसेही तपकरूंगा कि जैसे पहलेवाली उत्तमतरुणता फिर मिलै ॥ ६० ॥ बृहद्बल बोला कि हे नृपेन्द्र ! परम्परा से मैंने यह सब सुनाहै उसको मुझसे सुनिये कि सत्यसन्ध भूपाल कन्याको लेकर कहीं निकलगया था वह भूपभी जब न आया तदनन्तर हे नृप ! उस के मन्त्रियो ने बहुत दिनोंतक राज्यको परिपालन कर ॥ ६१ । ६२ ॥ उन्होंने सुहयनामक प्रसिद्ध पुत्रका अभिषेक किया हे विभो ! क्रमसे उस सुहयके

दनोगद्गदाक्षरम् ॥ ५८ ॥ वत्सचीर्णंमयाराज्यं दानंदत्तंपृथग्विधम् ॥ वाजिमेधमुखैर्यज्ञैरिष्टंसम्पूर्णदक्षिणैः ॥५९॥ तस्मात्तपश्चरिष्यामि सुतयाचानयासह ॥ यथैवलभ्यतेभूयस्तारुण्यम्प्राक्तनंशुभम् ॥६०॥ बृहद्बलउवाच ॥ पारम्पर्येणराजेन्द्र मयैतत्सकलंश्रुतम् ॥ सत्यसन्धोमहीपालकन्यामादायनिर्गतः ॥ ६१ ॥ कुत्रचिन्नसमायातस्सभूपोपिशृणुष्वमे ॥ ततस्तत्सचिवैराज्यम्प्रतिपाल्यचिरान्नृप ॥ ६२ ॥ अभिषिक्तस्तुतैःपुत्रस्सुहयोनामविश्रुतः ॥ तस्याहंक्रमशोजातस्सप्तसप्ततिमेविभो ॥ ६३ ॥ पुरुषेतववंशस्य समुद्धर्तामहीपतिः ॥ तस्मादत्रैवकल्याणे स्थानेस्मिन्मेध्यताङ्गते ॥ ६४ ॥ गर्तातीर्थेकुरुविभोतपस्त्वमनयासह ॥ येनतेचरणौनित्यम्प्रणिपत्यत्रिसन्ध्यजम् ॥ ६५ ॥ श्रेयःप्राप्नोम्यसंदिग्धम्प्रसादःक्रियतामिति ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयासीत्स्थापितम्पुरा ॥ लिङ्गंवृषभनाथस्य तावद्स्तिसुपुत्रक ॥६६॥ यत्तस्याराधनन्नित्यंकरिष्यामिदिवानिशम् ॥ तस्मात्प्रापयमान्तत्र अनयासुतयासह॥६७॥

सतहत्तरिवें पुरुष (पुश्त) में पैदाहुआहूं जोकि तुम्हारे वंशको भलीभांति उद्धार करनेवाला भूपतिहूं इसलिये हे विभो ! पवित्रताको प्राप्तहुये इसी कल्याणदायक गर्तातीर्थवाले स्थान में तुम इस कन्या समेत तपस्याकरो जिससे नित्यही तीनों सन्ध्याओ से उपजेहुये समयों में तुम्हारे चरणों को प्रणामकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ निस्सन्देह कल्याणको प्राप्तहोऊं इसकारण प्रसन्नता कीजावै सत्यसन्ध बोला कि हे उत्तम पुत्र ! तबतक पुरातन समय हाटकेश्वरसे उपजेहुये क्षेत्रमें मुझसे थापन कियाहुआ वृषभनाथ जीका लिङ्गहै ॥६६॥ जिसलिये कि मैं नित्य अहर्निश उस लिङ्गका आराधन करूंगा उसी कारण इस कन्या समेत मुझको वहां पठाइये ॥ ६७ ॥

उन दोनों भूपोंको इस भांति कहतेहुये बहुत दिनवाले गुरु याने वृद्ध व उत्तम भूपतिको प्राप्तहुये सुनकर कौतुक संयुत होतेहुये ब्राह्मण गर्तातीर्थसे भलीभांति आये तदनन्तर हाथोंको जोड़ेहुये उस भूपतिने उन ब्राह्मणोंको अर्घ देकर व बैठिये यह आदर समेत कहकर स्वर्गके चरितको कहा इसके अनन्तर विस्मयको प्राप्तहोने हुये वे ब्राह्मण जो जैसा बड़ाथा वैसेही सुखपूर्वक नरेशकी चारों दिशाओंमे निकट बैठगये व उस भूपालसे ब्रह्माके घरमें उपजीहुई वार्ताको पूछतेभये॥६८।६९।७०।७१॥ जिसप्रकार पुरातनसमय वह भूप वहांगया व जिसभांति आयाथा व जिस भांति अनेकों वार्तालाप ब्रह्मासे हुयेथे उस समस्त चरित को उन ब्राह्मणोंने पूछा ॥ ७२ ॥

एवंतयोःप्रवदतोरन्योन्यम्भूमिपालयोः ॥ गर्तातीर्थात्समायाता ब्राह्मणाःकौतुकान्विताः ॥ ६८ ॥ श्रुत्वाभूमिपतिम्प्राप्तं चिरन्तनगुरुंशुभम् ॥ ततस्सपार्थिवस्तेषां दत्त्वार्घ्यम्प्राञ्जलिःस्थितः ॥ ६९॥ प्रोवाचस्वर्गवृत्तान्तमास्यतामितिसादरम् ॥ अथतेब्राह्मणास्सर्वेयथाज्येष्ठंयथासुखम् ॥ ७० ॥ उपविष्टानरेन्द्रस्य चतुर्दिक्षुसुविस्मिताः ॥ पप्रच्छुस्तञ्चभूपालं वार्ताब्रह्मगृहोद्भवाम् ॥ ७१ ॥ यथासतत्रनिर्यात आगतश्चयथापुरा ॥ आलापाःपद्मयोनेश्चयथायातास्तथानेकशः ॥ ७२ ॥ ततःकथान्तमासाद्य सत्यसन्धोमहीपतिः ॥ किञ्चिद्विश्रम्यतम्प्राह समीपस्थम्बृहद्बलम् ॥७३॥ मयायष्टम्मखैश्चित्रैरनेकैर्भूरिदक्षिणैः॥ दानानिचविचित्राणि येषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ ७४॥ एकदाहंगतःपुत्र चमत्कारपुरोत्तमे ॥ दृष्टम्मयापुरन्तच्च समन्ताद्ब्राह्मणैर्वृतम् ॥७५॥ तपःस्वाध्यायसम्पन्नैरग्निहोत्रपरायणैः ॥ गृहस्थधर्मसम्पन्नैर्लोकद्वयफलान्वितैः ॥ ७६ ॥ ततश्चचिन्तितञ्चित्ते सधन्योममपूर्वजः ॥ येनैषोपार्जिताकीर्तिः शाश्वतीक्षयव

तदनन्तर कथाके अन्त को प्राप्तहोकर व कुछ विश्राम करके सत्यसन्ध भूपति ने समीप में बैठेहुये उन बृहद्बलसे कहा ॥ ७३ ॥ कि मैंने बहुत दक्षिणा वाले अनेक विचित्र यज्ञों से पूजन किया व जिनकी गिनती नहीं है ऐसे विचित्र दानों को दिया ॥ ७४ ॥ हे पुत्र ! एकसमय मैं उत्तम चमत्कारपुर को गया व मैंने सबओर ब्राह्मणों से घिरेहुये उस नगरको देखा ॥ ७५ ॥ जो ब्राह्मण कि तपस्या व वेदपाठ से संयुत व अग्निहोत्र में लगेहुये व गृहस्थ धर्म से युक्त और दोनोंलोकों के फलोंसे संयुतथे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर मैंने चित्तमें चिन्तवन किया कि मुझसे पहले पैदाहुआ वह पुरुष धन्यहै कि जिसने नाशसे रहित व सदैववाली

इस कीर्त्तिको इकट्ठा कियाहै ॥ ७७ ॥ इसलिये मैंभी ऐसेही अत्यन्त ऊंचे नगरको थापकर याने निर्माणकर उस यशकी बढ़ती के लिये ब्राह्मणोंके निमित्तदूंगा ॥७८॥
हे भूपते ! इसप्रकार नित्यही चिन्तवन करतेहुये मेरा इसी अवसर में ब्रह्मलोकको प्रयाण होगया ॥ ७९ ॥ यही एक मेरे चित्तमें पश्चात्तापकारक स्थित है हे भू-
पाल ! सबओर कार्योंको कियेहुये मेरे चित्तमें और कुछ नहीं पछिताव है ॥ ८० ॥ इसलिये महात्मा व विद्वान् द्विजेन्द्रोंसे प्रार्थना करिये कि जिससे उत्तम स्थान को
बनाकर तुम्हारी आज्ञासे मैं उनके लियेदेऊं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर उस बृहद्बल ने द्विजोत्तमों से उसके लिये प्रार्थना किया कि हे द्विजोत्तमो ! मेरे ऊपर दयाकरके

जिता ॥ ७७ ॥ तस्मादहमपिस्थाप्य पुरमीदृक्समुच्छ्रितम् ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यामि तत्कीर्तिपरिवृद्धये ॥ ७८ ॥ ए
वञ्चिन्तयमानस्य ममनित्यंमहीपते ॥ अत्रान्तरेणसञ्जातम्ब्रह्मलोकप्रयाणकम् ॥ ७९ ॥ एतदेकंहिमच्चित्तेपश्चात्ता
पकरंस्थितम् ॥ नान्यंकिञ्चिन्महीपाल कृतकृत्यस्यसर्वतः ॥ ८० ॥ तस्मात्प्रार्थयविप्रेन्द्रान्कोविदांश्चमहात्मना
म् ॥ येनयच्छामिसुस्थानं कृत्वातेभ्यस्तवाज्ञया ॥ ८१ ॥ ततस्सप्रार्थयामास तदर्थम्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ममोपरिदया
ङ्कृत्वा क्रियतांमेप्रतिग्रहः ॥ ८२ ॥ अस्यभूपस्यसद्भक्त्या यच्छातःपुरमुत्तमम् ॥ अहंवःपालयिष्यामि सर्वेम
द्वंशजाश्चते ॥ ८३ ॥ ततःकांश्चित्सुकृच्छ्रेण समानीयबृहद्बलः ॥ राज्ञेनिवेदयामास एतेभ्योदीयतामिति ॥ ८४ ॥ त
तःप्रक्षाल्यसर्वेषां पादान्सपृथिवीपतिः ॥ सत्यसन्धोददौतेभ्यः पुरार्थम्भूमिमुत्तमाम् ॥ ८५ ॥ बृहद्बलस्यतंदेशंददौ
सम्प्रस्थितस्स्वयम् ॥ त्वयैतद्भोग्यतांनेदम्पुरंपरपुरञ्जय ॥ ८६ ॥ गत्वाचसतयासार्द्धन्तत्क्षेत्रंहाटकेश्वरम् ॥ तल्लिङ्ग

भलीभक्तिसे उत्तम पुरको देतेहुये इस नृपतिका प्रतिग्रह कीजिये याने दानलेवो मैं तुमलोगों का पालनकरूंगा व जे मेरे वंशमें उत्पन्नहोंगे वे पालन करैंगे ॥ ८२ ॥
८३ ॥ तदनन्तर बृहद्बलने बड़े क्लेशसे कितेक ब्राह्मणोंको भलीभांति लाकर राजाके लिये यह निवेदन किया कि इनके निमित्त दियाजावै ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस
सत्यसन्ध भूपतिने सबके चरणोंको धोकर उनके लिये उत्तम नगरके निमित्त अच्छी भूमिको दिया ॥ ८५ ॥ व प्रस्थान करतेहुये सत्यसन्ध ने आपही बृहद्बल को
वह देश दिया व कहा कि अहो शत्रुवों के पुरको जीतनेवाले ! तुमइसको भोगकरो और इस पुरको नहीं ॥ ८६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उस भूपति ने उस

कन्या समेत उस हाटकेश्वर क्षेत्रको जाकर व उस लिङ्गको प्राप्तहोकर विचित्र तपस्या किया ॥ ८७ ॥ व उस कर्णोत्पला नेभी किसी पुण्यदायक जलाशयको पाकर श्रद्धासंयुत होतीहुई पार्वती जीको थापकर तप किया ॥ ८८ ॥ इसी अवसरमें युद्धमें पुत्रों समेत माराहुआ आनर्ताधिपति बृहद्बल राजाकाल धर्म (मृत्यु) को प्राप्त होगया ॥ ८९ ॥ तदनन्तर गर्तातीर्थ में भलीभांति उपजेहुये व दुःखसंयुत उन समस्त ब्राह्मणोंने सत्यसन्ध के समीप जाकर कहा ॥ ९० ॥ कि हे भूपते ! हमलोगों ने केवल प्रतिग्रह कियाहै और हमलोगों को पुरसे उत्पन्न व जीविका से उपजाहुआ कोई फल न हुआ ॥ ९१ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! अपने धर्मकी बढ़तीके लिये उस

म्प्राप्यसंहृष्टश्चित्रन्तेपेतपस्ततः ॥ ८७ ॥ सापिकर्णोत्पलाप्राप्य कञ्चित्पुण्यञ्जलाशयम् ॥ तपस्तेपेप्रतिष्ठाप्य गौरींश्रद्धासमन्विता ॥ ८८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा कालधर्ममुपागतः ॥ आनर्ताधिपतिर्युद्धे हतःपुत्रैस्समन्वितः ॥८९॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे गर्तातीर्थसमुद्भवाः ॥ सत्यसन्धंसमभ्येत्यप्रोचुर्दुःखसमन्विताः ॥ ९० ॥ प्रतिग्रहःकृतोस्माभिः केवलम्पृथिवीपते ॥ नचकिञ्चित्फलंजातंवृत्तिजन्नःपुरोद्भवम् ॥ ९१ ॥ तस्मात्कुरुस्थितिन्ताञ्चस्वधर्मपरिवृद्धये ॥ येन नद्वर्तनोपायमस्माकन्नृपसत्तम ॥ ९२ ॥ राजाबृहद्बलोयुद्धेकालधर्ममुपागतः ॥ त्वयानदर्शितोऽस्माकंवृत्त्यर्थन्नृपसत्तम ॥ ९३ ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ संन्यस्तोहंद्विजश्रेष्ठावृत्तिङ्कर्तुंनचक्षमः ॥ यदिमेस्यात्पुमान्कश्चिदन्वयेपिनसंशयः ॥ ९४ ॥ तस्माद्व्रजथहर्म्यंस्वंप्रसादःक्रियतांमम ॥ अभाग्यैर्भवदीयैश्चहतोराजाबृहद्बलः ॥ ९५ ॥ एवमुक्ताश्च

जीविका को स्थित कीजिये कि जिससे हमलोगोंकी उस जीविका का यत्नहोवै ॥ ९२ ॥ हे नृपोत्तम ! बृहद्बल राजायुद्धमें मृत्युको प्राप्तहोगया उसको हमलोगोंकी जीविकाके लिये तुमने नहीं दिखलाया ॥ ९३ ॥ सत्यसन्ध बोला किहे द्विजोत्तमो ! संन्यस्त याने संन्यास धर्मको प्राप्त मैं जीविका करने के लिये समर्थ नहींहूं व यदि मेरे वंशमेंभी कोई पुरुष होगा तो निस्सन्देह तुम लोगोंकी जीविका करैगा ॥ ९४ ॥ इसलिये अपने घरको जाइये व मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजावै आपलोगोंकी अभाग्य

से बृहद्बल राजा मरगया ॥९५॥ इसप्रकार कहेहुये वे ब्राह्मण उस भूपके वचनको सत्यमानकर शीघ्रही अपने स्थानको चलेगये व उस नेभी बहुत समयतक तपस्या किया ॥९६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

दो० । शिवहिं समर्पण कीन्ह जिमि विप्रनकहं सतसन्ध । इकसौ तेइस महँ कहत सोई कथा प्रबन्ध ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस नरेशको इस प्रकार तपस्यामें टिकते हुए चमत्कार पुरसे उपजे हुए समस्त ब्राह्मण आये ॥ १ ॥ ब्राह्मण बोले कि समस्त सन्देहोंमें व विशेषकर झगड़ों में भूपके न होनेसे अना-

तेविप्रामत्वातथ्यञ्चतद्वचः ॥ स्वस्थानन्त्वरितंजग्मुस्सोपिचक्रेतपश्चिरम् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवन्तस्यनरेन्द्रस्यतपस्थस्यद्विजोत्तमाः ॥ आजग्मुर्ब्राह्मणास्सर्वे चमत्कारपुरोद्भवाः ॥ १ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ सन्देहेषुचसर्वेषु विवादेषुविशेषतः ॥ अभावात्पार्थिवेन्द्रस्यसञ्जातश्चपराभवः ॥ २ ॥ ततोद्विजवरान्सर्वान् संन्यस्तःपृथिवीपतिः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राहकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ अनर्होहंद्विजश्रेष्ठाः सन्देहंकर्त्तुमेववः ॥ रक्षाकर्तुंविशेषेणत्यक्तंशस्त्रंमयाऽधुना ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सर्वेवयंमहाराजभूपस्याप्यधिकायतः ॥ अहङ्कारेणदर्पेण निजंस्थानंसमाश्रिताः ॥ ५ ॥ नकस्यचिन्महराज कदापिचकथञ्चन ॥ वर्तनायाश्चसन्देहः स्थानकृत्येपिसंस्थितः ॥ ६ ॥ असङ्ख्याताकृतावृत्तिःपुरास्माकम्महात्मना ॥ ततस्सावृद्धिमानीतातत्परैर्पार्थिवोत्तमैः ॥ ७ ॥ तत्र

दूर होगया है ॥ २ ॥ तदनन्तर संन्यास में प्राप्त हाथों को जोड़े स्थितहुए भूपतिने अन्यदिनमें सब द्विजोत्तमों से कहा ॥ ३ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों से मैं सन्देह करने के लिये व विशेषकर पालनेके लिये अयोग्यहूं क्योंकि इस समय मैंने शस्त्र को छोडदिया है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे महाराज ! हम सब भूपके भी अहंकारसे अधिक हैं क्योंकि गर्वसे अपने स्थान में भलीभांति टिके हैं ॥ ५ ॥ हे महाराज ! कभी किसी को स्थान के कार्य में भी व किसीप्रकार जीविका का सन्देह नहीं स्थित है ॥ ६ ॥ क्योंकि पुरातन समय चमत्कार महात्माने हम लोगों की असंख्यक जीविकाको किया है तदनन्तर उसके पीछेवाले नृ-

वह वडे यत्न पोत्तमों से वह वृद्धिको प्राप्तकी गई ॥ ७ ॥ व जबतक बृहद्बल राजारहे तवतक विशेषकर तुमसे वृद्धिको प्राप्तहुई आनर्त देशमें जो जो राजा होता है वह वडे यत्न से यथा योग्य गृहस्थों की समस्त जीविका को देता है तुम्हारे आगे हमलोग क्याकहैं जिसलिये कि तुमसब जानते हो ॥ ८ । ९ ॥ पुरातन समय तुमने जिसभांति जीविका को दिया व जिसप्रकार रक्षाकिया है इसलिये हे नृपेन्द्र ! स्थान के बर्तावसे उपजे हुए उपायको चिन्तवन करिये कि जिससे सुख पूर्वक हमलोगों की मर्यादाका बर्ताव होवै तदनन्तर उसने देरतक ध्यानकर व गर्ता तीरमें उपजे व उत्तम वंश में उत्पन्न हुये वेदों के पारजानेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर इसके अनन्तर

सर्वांवृत्तिंगृहस्थानां यथायोग्यं याचैवविशेषेण यावद्राजाबृहद्बलः ॥ आनर्तविषयेराजायोयःस्यात्सप्रयच्छति ॥ ८ ॥ यथावृत्तिःपुरादत्ता यथासंरक्षितात्वया ॥ तस्माच्चिन्तयराजेन्द्र स्थानवर्तनसम्भवम् ॥ १० ॥ उपायंयेनमर्यादा वृत्तिःस्यान्नःसुखेनतु ॥ ततस्ससुचिरंध्यात्वागर्तातीरसमुद्भवान् ॥ ११ ॥ आहूयचसुवंशस्यसम्भवान्वेदपारगान् ॥ प्रणिपातम्प्रकृत्वाथततःप्रोवाचसादरम् ॥ १२ ॥ मदीयस्थानसंस्थानाम्ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ सर्वकृत्यानिकार्याणिभृत्यवद्विनयान्वितैः ॥ १३ ॥ नित्यंरक्षाविधातव्यायुष्मदीयंवचोखिलम् ॥ एतेषाम्पालयिष्यन्तिमर्य्यादाकरमुत्तमम् ॥ १४ ॥ सन्देहेषुचसर्वेषुविवादेषुविशेषतः ॥ राजकार्येषुवान्येषुएते दास्यन्तिनिर्णयम् ॥ १५ ॥ युष्मदीयंवचःश्रुत्वा शुभंवायदिवाशुभम् ॥ एतेपाल्याःप्रसादेन पुष्टिर्नेयाचशक्तितः ॥ ईर्ष्यांसर्वाम्परित्यज्य मदीयस्थानवृद्धये ॥ १६ ॥ बाढमित्येवतैःप्रोक्तस्सराजाब्राह्मणोत्तमान् ॥ चमत्कारपुरोद्भूतान् भूयःप्रोवाच

प्रणामकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ १० । ११ । १२ ॥ कि मेरे स्थान में भलीभांति टिकनेवाले व विशेषकर ब्राह्मणोंके समस्त कार्य्योंको दासके समान नम्रता संयुत होतेहुये तुमलोगों को करना चाहिये ॥ १३ ॥ व नित्यही रक्षाकरनी चाहिये व मर्यादाकारक व उत्तम तुमलोगों के समस्त वचन इनको पालन करैंगे ॥ १४ ॥ व समस्त सन्देहों में और विशेषकर झगड़ों व अन्य राज कार्य्योंमें तुम्हारे शुभ या अशुभ वचनको सुनकर ये निश्चयको देवैंगे याने निर्णय करैंगे व मेरे स्थानकी बढ़तीके लिये समस्त ईर्षा छोड़कर ये पालनके योग्य हैं व शक्तिसे पुष्टि प्राप्तकरने योग्य है ॥ १५ । १६ ॥ उन ब्राह्मणों से बहुत अच्छा ऐसेही कहेहुये उस राजाने

फिर चमत्कार पुरमें उपजेहुये ब्राह्मणोंसे आदर समेत कहा ॥ १७ ॥ कि सदैव समस्त कार्य्यों में तुमलोगों के वर्तावके लिये मैंने गर्तातीर्थ से उपजेहुये इन ब्राह्मणों को दिया ॥ १८ ॥ इनके वचनों से तुमलोगों का सबकार्य होगा व निश्चयकर समस्त ऐश्वर्योंसे संयुत प्रतिष्ठा होगी ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों के पुरसे उपजेहुये लक्षसंख्यक अन्य ब्राह्मणों से थोड़ा अथवा बहुत कहाहुआ वचन अन्यथा न होगा ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन ब्राह्मणों ने द्विजोत्तमों को लेकर स्थानों में गमन किया व उनके मतसे सदैव समस्त कार्योंको किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस पुरमें सब मनुष्यों के समस्त कार्यों में धर्मको ब-

सादरम् ॥ १७ ॥ युष्माकंवर्तनार्थाय सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ एतेविप्रामयादत्ता गर्तातीर्थसमुद्भवाः ॥ १८ ॥ एतेषांवचनैस्सर्वं युष्मदीयम्प्रजायताम् ॥ प्रतिष्ठाजायतेनूनं सर्वैश्वर्यसमन्विता ॥ १९ ॥ नान्यथाब्राह्मणश्रेष्ठास्स्वल्पंवायदिवाबहु ॥ प्रोक्तंलक्षमितैरन्यैर्युष्मदीयपुरोद्भवैः ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणाहृष्टाःस्थानान्यादायद्विजोत्तमान् ॥ तेषांमतेनचक्रुश्च सर्वकृत्यानिसर्वदा ॥ २१ ॥ ततस्तत्रपुरेजाता मर्यादाधर्मवर्द्धिनी ॥ सर्वकृत्येषुसर्वेषां तथावृद्धिःपुरस्यच ॥ २२ ॥ तेपितेषाम्प्रसादेन गर्तातीर्थभवाद्विजाः ॥ परांविभूतिमादाय मोदन्तेसुखसंयुताः ॥ २३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसराजातत्पुरोत्तमम् ॥ समभ्येत्यद्विजान्सर्वान्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २४ ॥ युष्मदीयप्रसादेनक्षेत्रेऽत्रसुमहत्तपः ॥ तस्याहंलिङ्गमेतद्वैदर्शयामिद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ पूजार्थञ्चापिवृत्त्यर्थं भोगार्थञ्चविशेषतः ॥ तस्माद्युष्माभिरेवास्य पूजाकार्याविशेषतः ॥ २६ ॥ रथयात्राविशेषेण दयांकृत्वागमोपरि ॥ २७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सप्तविंशतिलिङ्गा

ढ़ाने हारी मर्यादाहुई और वैसेही पुरकी वृद्धिहुई ॥ २२ ॥ व उनकी प्रसन्नता से गर्तातीर्थ से उपजेहुये वे ब्राह्मणभी उत्तम ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोकर सुखसंयुत होतेहुये आनन्द करते थे ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस राजाने उस उत्तम पुरको भलीभांति आकर तदनन्तर समस्त ब्राह्मणों से आदर समेत कहा ॥ २४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने तुमलोगों की प्रसन्नतासे इस क्षेत्र में बड़ीभारी तपस्या किया है उन शिवजीके इसलिङ्ग को मैं पूजन, जीविका और विशेषकर भोगके लिये दिखलाताहूं इसलिये तुम्हीं लोगों को विशेषकर इसलिंग का पूजन करनाचाहिये ॥ २५ । २६ ॥ व मेरे ऊपर दयाकरके विशेषकर रथयात्रा करना चाहिये ॥ २७ ॥

ब्राह्मणलोग बोले कि जैसे भूतल में चमत्कार के पुत्रों के सत्ताईस इष्ट (प्यारे) लिंग सदैव पूजेजाते हैं ॥ २८ ॥ वैसेही हे पार्थिव ! तुमसे उपजेहुये इस अट्ठाईसवें लिङ्गको हमलोग सदैव पूजैंगे तुम निश्चिन्त होवो ॥ २९ ॥ व सदैव कार्त्तिक महीने में इनकी यात्राकरैंगे व शक्तिसे भेंट, पूजन, उपहार, गान व बाजनको करैंगे॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वंशका विनाश स्थित होनेपर उस सत्यसन्ध भूपति ने वरदानसे उपजेहुये उस लिङ्गको इसभांति सब द्विजेन्द्रों को समर्पण करदिया ॥ ३१ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य समस्त कार्त्तिकभर उस लिङ्गको नहलाता है व पूजनभी करताहै वह निश्चयकर मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ३२ ॥ व उद्यापन को कियेहुये जो पुरुष वर्षभर सोमवार दिनके प्राप्त होनेपर उस लिंगको विधि से स्नानकराकर इसभांति पूजन करताहै ॥ ३३ ॥ वहभी मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है मैंने इस चरित को सुना है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसत्यसन्धेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

नि यथेष्टानिमहीतले ॥ चमत्कारसुतानाञ्च पूज्यन्तेसर्वदैवतु ॥ २८ ॥ अष्टाविंशतिमंतद्वदेतल्लिङ्गंतवोद्भवम् ॥ सर्वदा पूजयिष्यामो निश्चिन्तोभवपार्थिव ॥ २९ ॥ अस्ययात्रांकरिष्यामः कार्त्तिकेमासिसर्वदा ॥ बलिपूजोपहारांश्च गीत वाद्यानिशक्तितः ॥ ३० ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमर्पितंलिङ्गंतेनतद्वरसम्भवम् ॥ सर्वेषांब्राह्मणेन्द्राणां वंशोच्छेदे स्थितेद्विजाः ॥ ३१ ॥ सकलङ्कार्त्तिकम्मर्त्योयस्तच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ स्नापयेत्पूजयेच्चापिसंनूनम्मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ सोमस्यदिवसेप्राप्ते वर्षंयावत्कृतक्षणः ॥ तस्यपूजांकरोत्येवंस्नापयित्वाविधानतः ॥ ३३ ॥ सोपिमुक्तिंव्रजेन्मर्त्यएतद्वृत्तम्मयाश्रुतम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसत्यसन्धेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यासाकर्णोत्पलानामत्वयास्माकम्प्रकीर्तिता ॥ कञ्चित्कालान्तरंप्राप्यततस्तपसिसंस्थिता ॥ १ ॥

दो० । कर्णोत्पल तीरथ यथा भयो भूमिमहँ ख्यात । इकसौ चौबिस में सोई कहत सर्व विज्ञात ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने जिस कर्णोत्पला नामकै कन्याको

कहाहै वह कुछ समय के अन्तरको प्राप्तहोकर तदनन्तर तपस्या में भलीभांति स्थित हुई ॥ १ ॥ इसलिये समस्त चरितको भलीभांति कहिये कि जिस प्रकार तपस्यामें स्थितहुई है सूतजी बोले कि परमश्रद्धासे संयुत वह जबतक पार्वतीजीके स्थानमें स्नान करतीभई तबतक पर्वतसे उपजीहुई व शङ्कर जीकी प्यारी पार्वती देवी जी प्रसन्नताको प्राप्तहुई ॥२॥ तदनन्तर बोलीं कि हे पुत्रि ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं तुम मनोरथको कहो कि जिससे यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि मैं निस्सन्देह देऊं ॥ ३ ॥ कर्णोत्पला बोली कि हे देवि ! मेरे पतिके लिये मेरा पिता अतिदुःखित व राज्य तथा सुखसे भी पृथक् होकर परिवारसे रहित होगया ॥ ४ ॥ तदनन्तर परम वैराग्यको प्राप्त

तस्मात्सर्वंसमाचक्ष्व यथातपसिसंस्थिता ॥ सूतउवाच ॥ गौरीपदेकृतस्नानाश्रद्धयापरयायुता ॥ तावत्तुष्टिंगतादेवी गिरिजाशङ्करप्रिया ॥ २ ॥ ततःप्रोवाचतेपुत्रि तुष्टाहंवाञ्छितंवद ॥ येनयच्छाम्यसंदिग्धं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ कर्णोत्पलाउवाच ॥ ममपत्युःकृतेदेवि ममतातःसुदुःखितः ॥ राज्याद्भ्रष्टस्सुखाच्चापिकुटुम्बेनविवर्जितः ॥ ४ ॥ ततश्चैवतपस्तेपे वैराग्यम्परमङ्गतः ॥ अहंवार्द्धक्यमापन्नाकौमार्यत्वेपिसंस्थिता ॥ ५ ॥ तस्माद्भवतुमेभर्त्ता कश्चिद्रूपोत्करःस्मृतः ॥ सर्वेषांदेवमर्त्यानांत्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ ६ ॥ तथास्यात्परमंरूपं तारुण्यंत्वत्प्रसादतः ॥ यथास्य जायतेसौख्यन्तापसस्यापिमेपितुः ॥ ७ ॥ देव्युवाच ॥ माघमासतृतीयायांशनैश्चरदिनेशुभे ॥ नक्षत्रेवसुदैवत्ये रूपं ध्यात्वाथयौवनम् ॥ ८ ॥ त्वयास्नानंप्रकर्तव्यं सुपुण्येऽत्रजलाशये ॥ ततोदिव्यंवपुर्भूत्वा यौवनेनसमन्विता ॥ ९ ॥

होतेहुये उसने तप किया व कुमार अवस्थामेंभी भलीभांति प्राप्त मैं वृद्धताको प्राप्तहोगई ॥ ५ ॥ इसलिये हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे सब देवताओं व मनुष्योंके मध्यमें रूपकी राशि कहाहुआ याने अतिरूपवान् कोई पुरुष मेरा पतिहोवै ॥ ६ ॥ वैसेही तुम्हारी प्रसन्नतासे व उत्तम रूप व तरुणाई होवै कि जिस प्रकार इस तपस्वी भी मेरे पिताको आनन्द होवै ॥ ७ ॥ देवी बोलीं कि माघमहीने की तीज तिथि व शुभदायक शनैश्चर दिनमें वसु देवतावाले (धनिष्ठा) नक्षत्रमें यौवन वा रूपको ध्यानकरके इसके अनन्तर तुमको इस अतिपुण्यदायक जलाशयमें स्नान करना चाहिये तदनन्तर उत्तम शरीर होकर तुम निस्सन्देह यौवनसे संयुत होगी ॥ ८ । ९ ॥

यह मैंने सत्य कहा है हे महाभागे ! और भी जो नारी उस दिन स्नान करैगी वहभी ऐसीही रूपसंयुत होगी सूतजी बोले कि वह देवी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगई ॥ १० । ११ ॥ व समस्त कामनाओं को देनेवाली उस देवीको ध्यान करतीहुई उस कर्णोत्पला नेभी वसुदेववाले नक्षत्र व शनैश्चर समेत तीज तिथिको बड़े उपायसे खोज किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! कुछ दिनों के बाद योग समेत वह तीज वैसेहीहुई कि जिसको पहले पार्वती जीने जैसी कहाथा ॥ १३ ॥ तदनन्तर रूप, सौभाग्य, यौवन व जो कुछ मनोरथथा उसको ध्यान करतीहुई उस कर्णोत्पला ने आधीरातको उस जलमें प्रवेशकिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर

भविष्यतिनसंदेहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अन्यापियामहाभागे नारीस्नानंकरिष्यति ॥ १० ॥ तस्मिन्नहनिसा
प्येवंरूपयुक्ताभविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी जगामादर्शनंततः ॥ ११ ॥ सापिचान्वेषयामास
तृतीयांशनिनासह ॥ वसुदेवात्मकेनैव नक्षत्रेणप्रयत्नतः ॥ ध्यायमानाञ्चतांदेवीं सर्वकामप्रदायिनीम् ॥ १२ ॥ ततःक
तिपयाहस्यजातासायोगसंयुता ॥ तृतीयायायथोक्ताच तथादेव्यापुराद्विजाः ॥ १३ ॥ ततस्सारूप्यसौभाग्यं यौवनं
वाञ्छितंचयत् ॥ ध्यायमानाजलेतस्मिन्नर्द्धरात्रेविवेशच ॥ १४ ॥ ततोदिव्यंवपुर्भूत्वा यौवनेनसमन्विता ॥ निष्क्रान्ता
सलिलात्तस्माज्जनविस्मयकारिणी ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो गौरीवाक्यप्रबोधितः ॥ तदर्थंभगवान्कामः प
त्न्यर्थंप्रीतिसंयुतः ॥ १६ ॥ अब्रवीचमहाभागे कामोहंस्वयमागतः ॥ पार्वत्यादेशितोभार्यातस्मान्मेभवमाचिरम् ॥ १७ ॥
यस्मात्प्रीत्यासमायातस्तवान्तिकमहंशुभे ॥ तस्मात्प्रीतिरितिख्याता ममभार्याभविष्यति ॥ १८ ॥ कर्णोत्पलाउ

दिव्य शरीर होकर यौवन से संयुत व मनुष्यों को आश्चर्य्य करानेवाली वह उस जलसे निकली ॥ १५ ॥ इसी अवसर में उसके लिये पार्वती जीके वचनसे प्रबोध करायेहुये भगवान् कामदेव जी प्रीतिसंयुत होकर स्त्रीके निमित्त प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व बोले कि हे महाभागे ! पार्वती जीकी आज्ञासे आपही आयाहुआ मै कामदेवहूं इस लिये शीघ्रही मेरी स्त्री होवो ॥ १७ ॥ हे शुभे ! जिसकारण प्रीति से मैं तुम्हारे समीप आयाहूं इसलिये प्रीति ऐसी प्रसिद्ध मेरी स्त्री होगी ॥ १८ ॥ कर्णोत्पला बोली

कि हे कामदेव जी ! यदि ऐसाहै तो आपही जाकर मेरे पितासे प्रार्थना करिये क्योंकि कन्या किसीप्रकार स्वाधीन नहीं वर्तमान होवै है ॥ १९ ॥ अति दूरमें नहीं यानी कुछ दूरपै जो यह मनोहर मन्दिर देख पड़ता है इसके समीप तपस्या में भलीभांति टिकेहुये मेरे पिताजी विद्यमान हैं ॥ २० ॥ यहां पर मैं पहले जाकर उनके समीप स्थितहूंगी तदनन्तर पीछे आप आकर मुझको मांगियेगा ॥ २१ ॥ कामदेवजीके बहुत अच्छा यही कहनेपर वह उन पिताजी के समीपगई व प्रणामकरके तदनन्तर बोली कि हे पिताजी ! आनन्दहै कि मैं शिवजीकी प्यारी पार्वती जीको भलीभांति आराधकर फिर सुन्दर यौवन को पायाहै इसलिये मेरा विवाह कीजिये

वाच ॥ यद्येवंस्मरमत्तातंतद्गत्वाप्रार्थयस्वयम् ॥ स्वच्छन्दास्याद्यतःकन्यानकथञ्चित्प्रवर्तिता ॥ १९ ॥ यएषदृश्यतेरम्यः प्रासादोनातिदूरतः ॥ अस्यान्तेतिष्ठतेस्माकंतातस्तपसिसंस्थितः ॥ २० ॥ अत्राहम्पूर्वतोगत्वा तस्यतिष्ठामिचान्तिके ॥ भवानागत्यपश्चाच्च प्रार्थयिष्यतिमांततः ॥२१॥ बाढमित्येवकामोक्तेगतासातत्समीपतः ॥ प्रणिपत्यततःप्राह दिष्ट्यातातमयापुनः ॥ २२ ॥ सम्प्राप्तंयौवनंकान्तंसमाराध्यहरप्रियाम् ॥ तस्मात्कुरुविनाहंमेहृत्स्थंसुखमवाप्नुहि ॥ २३ ॥ मदर्थंप्रेषितोभर्तातयादेव्यातिसुन्दरः ॥ पुष्पचापस्स्वयम्प्राप्तःसोपितातत्तवान्तिकम् ॥ २४ ॥ अथतांससमालोक्यस्वांसुतांयौवनान्विताम् ॥ हर्षेणमहतायुक्तां कान्तियुक्तांविशेषतः ॥ २५ ॥ अब्रवीदद्यमेपुत्रिसञ्जातंतपसःफलम् ॥ जीवितस्यचकल्याणि यस्त्वंप्राप्तानवंवयः ॥ २६ ॥ भर्तारञ्चतयाभीष्टं देव्यादत्तंमनोद्भवम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेकामस्तस्यान्तिकमुपाद्रवत् ॥ २७॥ अब्रवीद्देहिमेभूपस्वांकन्यांचारुहासिनीम् ॥ अस्यार्थेहंसमादिष्टस्स्वयंगौर्य्यानृपोत्त

व हृदय में टिकेहुये सुखको प्राप्तहूजिये ॥ २२ । २३ ॥ हे पिताजी ! उन देवीजीने अतिसुन्दर पुष्प धनुषवाले (कामदेव) जीको मेरे लिये पति भेजाहै वह आपही तुम्हारे निकट प्राप्तहुआ है ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उन सत्यसन्ध जीने यौवन से संयुत व बड़े हर्ष समेत और विशेपतासे कान्ति (छवि) युक्त उस अपनी कन्या को देखकर कहा ॥ २५ ॥ कि हे कल्याणि, पुत्रि ! आज मेरी तपस्या व जीवनका फल भलीभांति हुआ जोकि तुम नवीन अवस्था को प्राप्तहुईहो ॥२६॥ व मनसे उपजेहुये प्यारे पतिको उस देवीने दियाहै इसी अवसर में कामदेव जी उसके समीप प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ व बोले कि हे नृपोत्तम, भूप ! मनोहर हास्यवाली अपनी कन्या

को मुझे दीजिये इसके लिये आपही पार्वती जीने मुझको भलीभांति आज्ञा दियाहै ॥ २८ ॥ जो मैं कि कामदेव ऐसा प्रसिद्धहूं व जिसने त्रिलोक को मोहित किया है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस भूपतिने ब्राह्मणों के वचनसे अग्निको साक्षीकरके उस कन्या को उन कामदेव जीको अर्पण करदिया जिसलिये कि रति के उपरान्त वह सुन्दर नयनोंवाली कर्णोत्पला इन कामदेव जीकी प्रीतिका स्थानहुई उसी कारण शुभदायिका प्रीति नामक हुई जिसकारण इसप्रकार उसने उस जलाशयमें तपस्या किया है उसीसे ॥ २६ । ३० । ३१ ॥ उस कर्णोत्पला के नामसे वह तीर्थ इस समस्त भूतल में प्रसिद्धिको प्राप्तहुआ जो स्त्रीसमस्त माघमहीनेभर उस जलाशय

म ॥ २८ ॥ कामदेवइतिख्यातस्त्रैलोक्यंयेनमोहितम् ॥ ततस्तमर्पयामास तांकन्यांसमहीपतिः ॥ २६ ॥ कृत्वाग्निंसाक्षिणंवाक्याद्ब्राह्मणानांद्विजोत्तमाः ॥ साचास्यचाभवत्प्रीतेःस्थानंयस्मात्सुलोचना ॥ ३० ॥ रतेरनन्तरातस्मात्प्रीतिनामाभवच्छुभा ॥ एवंतयातपस्तप्तं तस्मात्तत्रजलाशये ॥ ३१ ॥ तन्नाम्नाख्यातिमायातं समस्तेऽत्रमहीतले ॥ सकलंमाघमासञ्च यास्त्रीस्नानंसमाचरेत् ॥ ३२ ॥ पुमान्वाप्रातरुत्थायसप्रयागफलंलभेत ॥ रूपवाञ्जायतेदक्षः सदा जन्मनिजन्मनि ॥ ३३ ॥ नवियोगमवाप्नोति कदाचिद्बान्धवैस्सह ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकर्णोत्पलातीर्थमाहात्म्यंनामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सत्यसन्धोपिहृष्टात्मा सुतांदृष्ट्वासुखान्विताम् ॥ अभीष्टपतिनायुक्तां कृतकृत्योबभूवह ॥ १ ॥ ततस्त

में भलीभांति स्नान करती है ॥ ३२ ॥ अथवा जो पुरुष प्रभातकाल उठकर उसमें स्नान करता है वह प्रयाग जीके फलको प्राप्तहोता है व सदैव जन्म जन्ममें प्रवीण व रूपवान् होताहै ॥ ३३ ॥ और कभी भाइयोंके साथ वियोगको नहीं प्राप्त होताहै ॥३४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकर्णोत्पलातीर्थमाहात्म्यंनामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा बृहद्बल के भयो क्षेत्रजसुत अटभूप। इकसौ अरु पच्चीसमहँ सोई चरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि प्रसन्नमनवाले सत्यसन्ध भी कन्या को प्यारे पति

से संयुत व सुख समेत देखकर कृतार्थ होगये ॥ १ ॥ तदनन्तर वैसेही लिङ्गकी दाहिनीमूर्ति के आश्रित होते हुये व भलीभांति ध्यानमें परायण तथा सुस्थित व रोमावलीसे संयुत भूपतिने पुष्ट पद्मासनको कर तदनन्तर आत्मा (शरीर) से जीवात्माको ब्रह्मद्वार से निकाल दिया ॥ २ । ३ ॥ इस के अनन्तर चमत्कार से उपजेहुये वे ब्राह्मण उस भूप के देवता के दर्शन के लिये प्राप्तहुये व दाह के लिये जहां भूप प्रस्थान कराया गया था वहां लिङ्ग के कुछ दूर पै स्थित व न छूने की योग्यताको प्राप्त व तेज से रहित और अप्रिय तथा मरेहुये शरीर को देखकर ॥ ४ । ५ ॥ व जबतक बड़ीभारी चिता को बनाकर उसके खोजनेके लिये उद्यतहुये तबतक वहां

थैवलिङ्गस्य दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ दृढंपद्मासनंकृत्वा सम्यग्ध्यानपरायणः ॥ २ ॥ आत्मानमात्मनैवाथ ब्रह्मद्वारेणसुस्थितः ॥ ततोनिस्सारयामास पुलकेनसमन्वितः ॥३॥ अथतेब्राह्मणास्तस्यचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ देवतादर्शनार्थाय प्राप्ताद्दृष्ट्वाकलेवरम् ॥ ४ ॥ अप्रियंतेजसाहीनं मृतमस्पृश्यतांगतम् ॥ लिङ्गस्यनातिदूरस्थंदाहार्थंयत्रप्रास्थितः ॥ ५ ॥ यावद्गुर्वींचितांकृत्वा तमन्वेष्टुंसमुद्यताः ॥ तावन्नष्टंशवंतत्रज्ञायतेनैवकुत्रचित् ॥६॥ ततश्चविस्मयाविष्टास्तम्प्रशंसासमन्वितैः ॥ वचनैर्बहुशोभूपं विकथ्यचमुहुर्मुहुः ॥७॥ ततस्तस्योत्थलिङ्गस्य सर्वंपूजादिकञ्चयत् ॥ सर्वेनिरूपयामासुःसप्तविंशतिमध्यतः ॥ ८ ॥ लिङ्गानान्तद्भवेन्नित्यंसत्यसन्धस्यभूपतेः ॥ कामदम्भक्तजन्तूनांसर्वपातकनाशनम् ॥ ९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ चमत्कारनरेन्द्रस्यवंशेक्षीणेमहामते ॥ आनर्ताधिपतिःकोन्यस्तत्रराजाबभूवह ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ बृहद्बलेहतेभूपेसङ्ग्रामेद्विजसत्तमाः ॥ पुत्रबन्धुसमायुक्तेसर्वेलोकास्समाययुः ॥११॥ यत्रस्थस्समहीपालस्सत्यस

पर मुर्दा नष्ट होगया व कहींपर न जानागया ॥ ६ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत होतेहुये उन सबों ने प्रशंसासंयुत वचनों से उस भूप को बहुतभांति से बारबार विशेषता से कहकर उसके उपरान्त उस भूपति से उठे (उपजे) हुये उस लिङ्गका जो पूजनादिक था उस सब को निरूपण किया व सत्ताईस लिङ्गों के मध्य में वह सत्यसन्ध भूपका शिवलिङ्ग भक्त प्राणियों को नित्यही कामदायक व समस्त पातकों का विनाशक होवै है ॥ ७।८।९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! जब चमत्कार नरेशका वंश क्षीण होगया तब वहां और आनर्ताधिपति कौन राजा हुआ है ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! जब पुत्र व भाइयों समेत बृहद्बल भूपति

युद्ध में नष्टहोगया तब समस्त मनुष्य वहापर भलीभांति आये ॥ ११ ॥ जहां कि तपस्या संयुत वह सत्यसन्ध भूपति टिकाथा तदनन्तर शोचसे ऊबेहुये उन द्विजों ने एकान्त में प्राप्तहुये उस भूपसे कहा ॥ १२ ॥ कि तुम्हारा यह वंश क्षीण होगया क्योंकि कोई पुत्र या भाई भी न विद्यमान है इसलिये इससमय यह पृथ्वी कैसे होगी ॥ १३ ॥ हे नृपोत्तम ! जब राजा नहीं होताहै तब राज्य में व पुर तथा विशेषकर ग्रामों में मछलियों का न्याय वर्त्तमान होताहै याने बलवान् निर्बली को नाश करदेता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जे पराई स्त्रियों में आसक्त हैं व जे चोरोंकी जीविकावाले हैं वे सब निश्चयकर राजाके डरसे मर्यादा को पालते हैं ॥ १५ ॥

न्वस्तपोन्वितः॥शोकोद्विग्नास्ततःप्राहुस्तम्भूपंरहसिस्थितम् ॥ १२॥ क्षीणोयन्तावकोवंशोनकश्चिद्विद्यतेयतः ॥ दा यादोपिकथंपृथ्वी सम्प्रतीयम्भविष्यति ॥ १३ ॥ अराजकेनृपश्रेष्ठमात्स्योन्यायःप्रवर्तते ॥ राष्ट्रेचैवपुरेचैव ग्रामेचैवविशेषतः ॥ १४ ॥ परदाररतायेचयेचतस्करवृत्तयः ॥ सर्वेराजभयाद्राजन् मर्य्यादाम्पालयन्तिवै ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वंतप उत्सृज्यन्भूयःपूर्वक्रमागतम्॥ कुरुराज्यंतथादारान्पुत्रार्थम्प्राप्यमाचिरम् ॥ १६॥ राजोवाच ॥ सन्न्यस्तोहंद्विजश्रेष्ठानराज्यंकर्तुमुत्सहे ॥ नसन्तानंनदाराणां संग्रहञ्चकथञ्चन ॥ १७ ॥ तत्पुत्रार्थंप्रवक्ष्यामियुष्माकंस्वामिनःकृते ॥ उपायंयेनराजास्यादानर्तोलोकपालकः ॥१८॥ जामदग्न्येनरामेणयदाक्षत्रन्निपातितम्॥ गर्भस्थमपिकात्स्न्र्येनकोपोपहतचेतसा ॥ १९ ॥ ततःक्षत्रियभार्याः प्राक्ऋतुस्नातास्समाययुः ॥ ब्राह्मणान्पुत्रजन्मार्थं नकामार्थंकदाचन ॥२०॥

इसलिये तुम तपस्याको छोडकर व स्त्री पुत्र व द्रव्यको प्राप्तहोकर शीघ्रही पहलेके क्रमसे आईहुई राज्यको फिर कीजिये ॥ १६ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं संन्यासी होचुकाहूं इसलिये राज्य करनेके लिये व सन्तान और स्त्रियों के संग्रह करने को किसी प्रकार नहीं उत्साह करताहूं ॥ १७ ॥ और तुमलोगों के स्वामी के लिये उस बृहद्बल के पुत्र निमित्त यत्न को कहूंगा जिससे आनर्तदेशवाला राजा मनुष्यों का पालनेवाला होवैहै ॥ १८ ॥ कि जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम जीने क्रोधके कारण ताडित चित्तसे गर्भमें टिकेहुये भी क्षत्रियको सम्पूर्णतासे नष्ट करदियाहै ॥ १९ ॥ उसके उपरान्त ऋतु धर्ममें नहाईहुई वे क्षत्रियों की स्त्रियां पहले पुत्र

जन्म के लिये न कि कदापि कामके निमित्त ब्राह्मणों के समीप भलीभांति आई ॥ २० ॥ तदनन्तर तेज व पराक्रम से संयुत पुत्र उत्पन्न हुये जोकि ब्राह्मणों के द्वारा भूपालों के क्षेत्रज पुत्र भलीभांति भये ॥ २१ ॥ इस लिये इससमय जो ये वृहद्वल की स्त्रियां स्थित हैं ऋतु समयमें नहाईहुई वे यथायोग्य ब्राह्मणों के समीप जाकर ॥ २२ ॥ उन ब्राह्मणों से क्षत्रियों में श्रेष्ठ उन पुत्रोंको पावैंगी जे कि पृथ्वीको पालैंगे व प्रजाओंकी रक्षा करैंगे ॥ २३ ॥ वैसेही यहांपर पुत्रजन्मदायक वसिष्ठ जीका उत्तम कुण्डहै जिसमें ऋतु समयमें नहाईहुई स्त्री उसीक्षण गर्भवती होवैहै ॥ २४ ॥ व इस कुण्ड में स्नानसे सफल वीर्यवाला सुन्दर पुत्र उत्पन्न होताहै पहले क्षत्रियों

ततःपुत्रास्समुत्पन्नास्तेजोवीर्य्यसमन्विताः ॥ क्षेत्रजाभूमिपालानां संजाताश्चमहीसुरैः ॥ २१ ॥ तस्माद्वृहद्बलस्यैताभार्यास्तिष्ठन्तियाधुना॥ ब्राह्मणांस्ताउपागम्यऋतुस्नातायथोचितान् ॥२२॥ लभिष्यन्तिचपुत्रांस्तांस्तेभ्यःक्षत्रियपुङ्गवान्॥ येभूमिम्पालयिष्यन्ति पालयिष्यन्तिचप्रजाः ॥ २३ ॥ तथात्रास्तिशुभंकुण्डंवासिष्ठम्पुत्रजन्मदम् ॥ यत्रस्नाताऋतौनारीसद्योगर्भवतीभवेत् ॥ २४ ॥ अमोघरेताःकान्तश्च स्नानादत्रप्रजायते ॥ येपूर्वंक्षत्रियाजाता ब्राह्मणैःक्षत्रियासुच ॥ २५ ॥ तेसर्वेतत्प्रभावेण सञ्जातानात्रसंशयः ॥ययाययाद्विजोयश्चक्षत्रिण्याभूद्वृतःपुरा॥२६॥ तयासहसमागत्य स्नानम्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ सकृन्मैथुनसंसर्गात् तस्यतीर्थप्रभावतः ॥ २७ ॥ सर्वासांयत्सुताजाताद्दुहितानकथञ्चन ॥ येकेचित्पुत्रदामन्त्राः पुरश्चरणसम्भवाः ॥२८॥ तेसर्वेत्रवसिष्ठेन प्रयुक्ताःक्षत्रमिच्छता ॥ दम्पत्योःस्नानमात्रेण यतोत्रस्यात्सुपुत्रकः ॥ २९ ॥ तस्मात्सुपुत्रदंनामकुण्डमेतन्निगद्यते॥ तस्माद्भार्यासमस्तास्ता वृहद्बलसमु

की स्त्रियों में जो ब्राह्मणों से पुत्र पैदाहुये हैं ॥ २५ ॥ वे सब उस कुण्ड के प्रभावसे हुये हैं इसमें सन्देह नहीं है पुरातन समय जिस २ क्षत्रियाणी ने जिस ब्राह्मणको घेरलिया है ॥ २६ ॥ उसके साथ भलीभांति आकर व मंत्रसे पुरस्कृत स्नानको करके उस तीर्थ के प्रभाव से एकहीवार मैथुनके संसर्ग से जिसलिये सब स्त्रियों के पुत्र पैदाहुये व कन्या किसी प्रकार न हुई क्योंकि जो कोई पुरश्चरण से उपजेहुये पुत्रदायक मंत्र हैं ॥ २७ । २८ ॥ क्षत्रियों को चाहतेहुये वसिष्ठजीने उन सब मंत्रो के यहां प्रयोग कियाहै जिस कारण कि इस कुण्डमें स्त्री पुरुषोंके स्नान मात्रसे उत्तम पुत्र होवेहै ॥ २९ ॥ उसी लिये सुपुत्रद नामक यह कुण्ड कहाजाता है इसलिये

हे मनुष्यो ! बृहद्बल से उपजीहुई वे समस्त स्त्रियां यथोक्त विधिसे इस तीर्थ में स्नान करैं इसमें कुछ असत्य नहीं है और वैसेही रमण करनेमें निन्दा नहीं है ॥ ३० । ३१ ॥ क्योंकि पहलेवाले आचार्य्यों से कहेहुये श्लोक सुनेजाते हैं कि जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय व पत्थर से लोह उत्पन्नहुआ है ॥ ३२ ॥ उनका सब कहीं जानेवाला तेज अपनी योनियों में शान्त होताहै उन समस्त नरोंने उस वृत्तान्तको सुनकर और शीघ्रही जाकर सत्यसन्ध के उस समस्त वृत्तान्तको मंत्रियों से कहा तदनन्तर अतिहर्षित व ऋतु समय में नहाईहुई वे सम्पूर्ण नृपनारियां अति सुन्दर ब्राह्मणों के समीपगई जहां कि वसिष्ठ जीसे बनायाहुआ वह पुत्रदायक तीर्थ

द्भवाः ॥ ३० ॥ अत्रस्नानंप्रकुर्वन्तियथोक्तविधिनाजनाः ॥ नैवकिञ्चिदसत्यंस्यान्ननिन्दारमणेतथा ॥३१॥ श्रूयन्तेचय तःश्लोकाःपूर्वाचार्यैरुदाहृताः ॥ अद्भ्योग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ॥ ३२ ॥ तेषांसर्वत्रगंतेजस्स्वासुयोनिषु शाम्यति ॥ तच्छ्रुत्वातेजनास्सर्वे सचिवानाञ्चचाखिलम् ॥ ३३ ॥ तदाचख्युर्द्रुतंगत्वासत्यसन्धस्यभूपतेः ॥ ततस्तुसर्व शःदाराब्राह्मणानतिसुन्दरान् ॥ ३४ ॥ ऋतुस्नातास्तुताजग्मुर्नृपपत्न्यस्सुहर्षिताः ॥ यत्रतत्पुत्रदंतीर्थंवसिष्ठेनविनिर्मि तम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नात्वासकृत्सङ्गंसमासाद्यद्विजोद्भवम् ॥ सर्वास्ताःपुत्रवत्यश्च संजाताद्विजसत्तमाः ॥ ३६ ॥ अटेश्व रइतिख्यातं येनपुत्रेणनिर्मितम् ॥ सुभक्त्यायेनदृष्टेन वंशोच्छित्तिर्नजायते ॥ ३७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्तत्रकृतं नाम अटेश्वरइतिस्मृतः ॥ अन्वयेनपरित्यक्तं तस्मात्कीर्तयसूतज ॥ ३८ ॥ सचिवैर्ब्राह्मणैर्वापि तस्यैतन्नामनिर्मि तम् ॥ मात्रावातत्समाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ नमात्रातत्कृतंनाम नविप्रैःसचिवैर्नरैः ॥ तत्क्

था ॥३३।३४।३५॥ हे द्विजोत्तमो ! उस तीर्थमें नहाकर व ब्राह्मणसे उपजेहुये संगको एक ही बार प्राप्तहोकर वे सब पुत्रवती होगई ॥३६॥ व जिस पुत्रने अटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवलिंग को निर्मित कियाहै उत्तम भक्तिसे जिन देवको देखने से वंशका उच्छेद (नाश) नहीं होताहै ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वंश से त्यागाहुआ अटेश्वर ऐसा कथित नाम किस लिये कियागया उसी कारण कहिये ॥ ३८ ॥ कि मंत्रियों व ब्राह्मणों नेभी या माताने उसका यह नाम कियाहै उसको कहो क्योंकि हमलोगों को परम आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मातासे व ब्राह्मणों, मंत्रियों व पुरुषोंसे वह नाम नहीं कियागया है किन्तु उस नामको आकाश

में टिकेहुये दूतने कियाहै ॥ ४० ॥ मैं जिस २ भांति से कहूं उसको सावधान होते हुये तुमलोगों को सुनना चाहिये कि तदनन्तर उस जलमें नहाकर बहुत उत्तम धनुषधारी पुरुष निकला ॥ ४१ ॥ मार्ग में जाताहुआ भी वह कामदेव के धर्मको प्राप्तहुआ याने कामवश होगया इसके अनन्तर अत्यन्त उत्कंठित व अतिप्रसन्न होतेहुये उसने लज्जाको दूर छोडकर ॥ ४२ । ४३ ॥ मनुष्यों से निन्दित होतेहुये भी द्विजने नृपतिकी प्यारीको आलिङ्गन किया इसके अनन्तर वीर्य्य को निकलते हुये जबतक वह उठै ॥ ४४ ॥ तबतक अचानक देवताओंसे निर्माण कीहुई आकाशगामिनी वाणी हुई कि जिस कारण कि राजमार्ग से जातेहुये इस ब्रह्मके जाननेवाले

तंनामदूतेन व्योमस्थेनद्विजोत्तमाः ॥४०॥ यथायथाप्रवक्ष्यामि श्रोतव्यंसुसमाहितैः ॥ ततःस्नात्वाजलेतस्मिन्नुनिष्क्रान्तस्तुसुकार्मुकः ॥ ४१ ॥ व्रजमानोपिमार्गेच कामधर्ममुपागतः ॥ अत्युत्सुकःसुसंहृष्टोलज्जान्त्यक्त्वाथदूरतः ॥ ४२ ॥ निन्द्यमानोपिलोकैस्तुशिश्लेषन्नृपतिप्रियाम् ॥ वीर्योत्सर्गेथसंजाते यावदुत्तिष्ठतिद्विजः ॥ ४३ ॥ तावदाकाशगावाणी सहसादेवनिर्मिता ॥ अटताराजमार्गेण विप्रेणानेनवैयतः ॥ ४४ ॥ उत्पादितस्तुपुत्रोयमौत्सुक्याद्ब्राह्मणेनतु ॥ अटाख्योभूपतिस्तस्माल्लोकेख्यातोभविष्यति ॥ ४५ ॥ दीर्घायुर्बहुपुत्रश्चशत्रुपक्षक्षयावहः ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्रा अटाख्यःसबभूवह ॥ ४६ ॥ स्ववंशोद्धारचन्द्रोपि वाञ्छितार्थप्रदोर्थिनाम् ॥ तेनैतत्क्षेत्रमासाद्य स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४७॥ स्वनाम्नाब्राह्मणश्रेष्ठाः सर्वेषामिष्टदंनृणाम् ॥ यस्तंमाघचतुर्दश्यांपूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ४८ ॥ नतस्यजायतेकिञ्चिद्दुःखंसन्तानसम्भवम् ॥ अपिवर्षशतानारीस्नात्वाकुण्डेसुतप्रदे ॥ ४९ ॥ अटेश्वरंततःपश्येच्छिवभक्तिपरायणा ॥

द्विजने उत्कंठता से इस पुत्रको पैदा किया है इसलिये संसार में अटनामक भूपति प्रसिद्ध होगा ॥ ४५ ॥ व दीर्घ आयुर्बलवाला व बहुत पुत्रोंवाला और शत्रुपक्षों का क्षयकारक होगा हे ब्राह्मणो ! इसी कारण वह अटनामक हुआ ॥ ४६ ॥ व अपने वंशको उधारने में आनन्दकारक भी वह याचक जनोंको अभिलषित प्रयोजनका दायकहुआ हे द्विजोत्तमो ! जिसने इस क्षेत्र को भलीभांति प्राप्तहोकर समस्त मनुष्यों के मनोरथदायक लिङ्गको अपने नामसे थापन किया है जो पुरुष श्रद्धासंयुत होकर माघ महीनेकी चौदसि मे उन शिव जीको पूजता है ॥ ४७ । ४८ ॥ उसको सन्तानसे उपजाहुआ कुछ क्लेश नहीं होताहै व सौ वर्षवाली भी स्त्री सुतदायक

कुण्डमें नहाकर ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर होतीहुई अटेश्वर जी को देखैहै वह उनकी प्रसन्नतासे उसी क्षण जैसे कि स्वामिकार्त्तिकेय जीके वचन हैं वैसेही वंशके वृद्धिकारक उत्तम पुत्रको प्राप्तहोवै है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० । ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽटेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । सिधिदायक सब नरनकहँ याज्ञवल्क्य मुनि ठाम । इकसौ छब्बिस महँ चरित वर्णत हैं सुखधाम ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर मूर्खों को भी सिद्धिदा-

सद्यःपुत्रमवाप्नोति वंशवृद्धिकरम्परम् ॥ ५० ॥ तत्प्रसादान्नसन्देहः कार्त्तिकेयवचोयथा ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽटेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति याज्ञवल्क्यसमुद्भवः ॥ आश्रमोलोकविख्यातोमूर्खाणामपिसिद्धिदः ॥ १ ॥ तत्रतप्तंतपस्तीव्रंयाज्ञवल्क्येनधीमता ॥ सम्प्राप्तानिखिलावेदागुरुणापहृताश्चये ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कोसौगुरुरभूत्तस्य याज्ञवल्क्यस्यधीमतः ॥ पाठयित्वापुनर्येन हृतावेदामहात्मना ॥३॥ किमर्थञ्चसमाचक्ष्व सूतपुत्राथविस्तरात् ॥ कौतुकम्परमंजातं सर्वेषांनोद्विजन्मनाम् ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्ब्राह्मणशार्दूलःशाकल्यइतिविश्रुतः ॥ भार्गवान्वयसम्भूतोवेदवेदाङ्गपारगः ॥५॥ वृहत्कल्पेपुराविप्रावर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ बहुशिष्यसमायुक्तोवेदाध्ययनतत्परः ॥६॥

यक व संसार में प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यजी से उपजाहुआ आश्रम है ॥ १ ॥ वहांपर बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजी ने तीव्र तपस्याको किया है व जो गुरुसे भी हरलिये गये थे उन समस्त वेदों को भलीभांति पायाहै ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य जी का यह कौन गुरु हुआ है कि जिस महात्माने पढ़ाकर फिर किसलिये वेदों को हरलिया है हे सूतपुत्र ! इस को विस्तार से भलीभांति कहिये क्योंकि हम सब ब्राह्मणोंके बड़ा आश्चर्य्य उत्पन्न हुआहै ॥ ३।४ ॥ सूतजी बोले कि भार्गव के वंश में उपजे हुये व वेद, वेदांगों के जाननेवाले शाकल्य ऐसे प्रसिद्ध द्विज श्रेष्ठ हुये हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय बड़े कल्पमें वर्धमान नामक

उत्तम नगरमें वे शाकल्य जी बहुत शिष्योंसे संयुत होकर वेदाध्ययनमें तत्पर थे ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वे शाकल्य जी सदैव प्रातःकाल उठकर उत्तम रूपवाले शिष्यों के लिये प्रसन्नता से विद्यादान को देते थे ॥ ७ ॥ व सावधान होताहुआ शिष्य भी उन गुरुजी के समस्त कर्मको करके और आशीर्वाद देने के लिये भूपति के घरही को जाता था ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार पुरोहिती कर्म को करते हुये उन शाकल्य महात्माका किंचिन्मात्र समय व्यतीत हुआ ॥ ९ ॥ उससमय वेदी में प्राप्त हुये उन के विकार को देखकर विवाह के समय में जो आपही शिवजी से शाप दियेगये थे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उन शाकल्य जी ने वैसेही परिपाटी से आये हुये

ससदाप्रातरुत्थाय विद्यादानम्प्रयच्छति ॥ शिष्येभ्यश्चारुरूपेभ्यः प्रसादाद्द्विजसत्तमाः ॥ ७ ॥ शिष्योपिस कलंकृत्वा तत्कर्मसुसमाहितः ॥ आशीर्वादंप्रदातुंच भूपतेर्गृहमेवच ॥ ८ ॥ एवंप्रकुर्वतस्तस्य शाकल्यस्यमहात्मनः । पौरोहित्यंगतःकालः कियन्मात्रोद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ तदावैवाहिकेकाले शप्तोयःशम्भुनास्वयम् ॥ मुनिन्द्यांविकृतिंदृष्ट्वा तस्यवेद्यांगतस्यवा ॥ १० ॥ अथतंयोजयामास शान्त्यर्थंनृपमन्दिरे ॥ याज्ञवल्क्यंसशाकल्यः परिपाट्यागतं तथा ॥ ११ ॥ सोपितारुण्यगर्वेण वेश्याकरजविक्षतः ॥ सर्वाङ्गेषुचनिर्लज्जःप्रकटाङ्गोजगामसः ॥ १२ ॥ ततश्च शान्तिकंकृत्वा जपान्तेभूपतिंप्रतम् ॥ शान्तोदकप्रदानायहास्यमानोजनैर्ययौ ॥ १३ ॥ पार्थिवोपिचतंदृष्ट्वा तादृग्भूपंचिरंद्विजम् ॥ नादत्ताशीश्चतेनोक्तावाक्यमेतदुवाचह ॥ १४ ॥ उच्छिष्टोहंद्विजश्रेष्ठ शय्यारूढोऽव्यवस्थितः ॥ अत्रशालोद्भवेस्तम्भे तस्मादेतज्जलंक्षिप ॥ १५ ॥ सोप्यवज्ञांसमास्थायतम्भूपंकुपिताननः ॥ तच्चस्तम्भंसमुद्दि

उन याज्ञवल्क्य को नृपति के मन्दिर में शान्ति के लिये युक्त किया ॥ ११ ॥ व तरुणता के मदसे समस्त अंगों में वैश्याके नखों से कटेहुये वे निर्लज्ज व प्रकट अंगोंवाले याज्ञवल्क्यभी गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर जप के अन्त में शान्तिक कर्म को करके जनो से हँसे जाते हुये वे याज्ञवल्क्य जी शान्ति के जलको देने के लिये उस भूपतिके निकट गये ॥ १३ ॥ भूपतिने भी देरसे वैसे रूपवाले उस ब्राह्मणको देखकर उससे कहे हुये आशीर्वाद को न ग्रहण किया व यह वचन कहा ॥ १४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! शय्यापै चढ़ा व स्थितहुआ मै उच्छिष्टहूं इस लिये मन्दिरसे उपजे हुये इस खम्भे मे जलको फकदीजिये ॥ १५ ॥ अनादर को प्राप्त होकर उस भूपके

ऊपर क्रोधित मुखवाले उन याज्ञवल्क्यजी ने भी उस खम्भे को भलीभांति उद्देशकरके उस अविनाशी ब्रह्मको ध्यानकर ॥ १६ ॥ व वेदीमें लिखकर और त्र्यायुष ऐसेही मन्त्रको पढ़कर शान्तिवाले जलको शीघ्रही उस खम्भेके मस्तकपै फेंकदिया ॥१७॥ तदनन्तर जलके गिरनेपर वह स्तम्भ उसी क्षण पत्तों से शोभित व फल फूलों से विभूषित होगया ॥ १८ ॥ उस जलके प्रभावसे उस खम्भे को देखकर आश्चर्य से प्रफुल्लित लोचनोंवाले भूपने पश्चात्ताप को करके इसके अनन्तर यह वचन कहा ॥ १९ ॥ कि अहो द्विजोत्तम! मेरेभी पवित्रता भलीभांति स्थित है इसलिये इसी मन्त्रसे तुम मुझको भी अभिषेक देवो ॥२०॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे राजन्! मेरे अभिषेक

इयध्यात्वातद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ १६ ॥ वेद्यामालिख्यइत्येवंप्रोक्कामन्त्रञ्चत्र्यायुषम् ॥ अक्षिपच्छान्तिकन्तोयंतस्यमूर्द्धनिसत्वरम् ॥ १७ ॥ ततस्सपतितेतोयेस्तम्भःपल्लवशोभितः ॥ तत्क्षणादेवसंजज्ञेफलपुष्पैर्विराजितः ॥ १८ ॥ तन्दृष्ट्वापार्थिवस्तेनविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ पश्चात्तापंविधायाथवाक्यमेतदुवाचह ॥ १९ ॥ अभिषेकंद्विजश्रेष्ठममापित्वंप्रयच्छभोः ॥ अनेनैवतुमन्त्रेणशुचिर्मेपिचसंस्थितम् ॥ २० ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ ममाभिषेकदानस्यत्वमनर्होसिपार्थिव ॥ तस्माद्यास्याम्यहंसद्योयत्रस्थस्सगुरुर्मम ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ तवदास्यामिवस्त्राणिवाहनानिवसूनिच ॥ तस्माद्यच्छाभिषेकंमेमन्त्रेणानेनसाम्प्रतम् ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ नहोमान्तंविनामन्त्रःस्फुरतेपार्थिवोत्तम ॥ अभिषेकविधौप्रोक्तोयःपूर्वंपद्मयोनिना ॥ २३ ॥ तस्मान्नाहंकरिष्यामितवयद्दैहृदिस्थितम् ॥ जगामस्वगृहंतूर्णंनिःस्पृहत्वंसमाश्रितः ॥ २४ ॥ अपरेह्निसमायातंशाकल्यमथभूपतिः ॥ प्रोवाचप्राञ्जलिर्भूत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ २५ ॥ यस्त्वया

दानके तुम अयोग्यहो इसलिये मैं शीघ्रही वहां जाऊंगा जहां कि वे मेरे गुरुजी टिके हैं ॥ २१ ॥ राजा बोले कि मैं तुमको वसनों, वाहनों और धनोंको दूंगा इसलिये इस समय मुझको इस मन्त्र से अभिषेक दीजिये ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! जो कि पहले ब्रह्माजीने कहा है वह मन्त्र अभिषेक की विधि में होमान्त के विना नहीं स्फुरित होताहै ॥ २३ ॥ इसलिये जो निश्चयकर तुम्हारे चित्त में स्थित है उसको मैं न करूंगा यह कहकर निर्लोभ में भलीभांति स्थित होते हुये वे मुनि शीघ्रही अपने घरको चलेगये ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर और दिनमें भलीभांति आये हुये शाकल्यजी से हाथ जोड़कर नम्रतासे नीचे झुके खड़े हुये भूपतिने कहा ॥२५॥

कि हे द्विजसत्तम ! प्रातःकाल तुमने जिस शिष्य को पठाया था फिरभी इसी प्रकार वह मेरे घरमें शान्तिके निमित्त पठाने योग्य है ॥ २६ ॥ तदनन्तर हां यही कहकर अपने घरको जाकर शाकल्यजीने याज्ञवल्क्य को भलीभांति बुलाकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ २७ ॥ कि हे पुत्र ! आजभी तुम शान्ति के लिये नरेश के घरमें जावो क्योंकि नृपेन्द्र से विशेषकर भलीभांति बुलाये गयेहो ॥ २८ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे तात याने गुरुजी ! गर्वसे युक्त व पवित्रता से रहित उस राजाके मन्दिर में मैं शान्ति के लिये न जाऊंगा ॥ २९ ॥ क्योंकि मैंने उसके अभिषेक के लिये जिस जलको तैयार किया उस जलको उस दुष्टबुद्धिने काठमें आज्ञा दिया ॥३०॥

प्रेषितःकल्येशिष्योब्राह्मणसत्तम ॥ शान्त्यर्थंप्रेषणीयश्चभूयोप्येवंगृहेमम ॥ २६ ॥ बाढमित्येवसम्प्रोक्त्वाततोगत्वानिजालयम् ॥ याज्ञवल्क्यंसमाहूयततःप्रोवाचसादरम् ॥ २७ ॥ अद्यापित्वंनरेन्द्रस्यशान्त्यर्थंभवनंव्रज ॥ विशेषात्पार्थिवेन्द्रेणसमाहूतोसिपुत्रक ॥ २८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ नाहंतातगमिष्यामिशान्त्यर्थंतस्यमन्दिरे ॥ अवलेपनयुक्तस्यशुद्धाविरहितस्यच ॥ २९ ॥ मयातस्याभिषेकार्थंसलिलंचोद्यतंचयत् ॥ सलिलन्तेनतत्काष्ठेसमादिष्टंकुबुद्धिना ॥ ३० ॥ ततोमयापितत्रैवतत्क्षणात्सलिलञ्चतत् ॥ तस्मिन्काष्ठेपरिक्षिप्तंनीतंवृद्धिञ्चतत्क्षणात् ॥ ३१ ॥ शाकल्यउवाच ॥ अतएवविशेषेणसमाहूतोसिपुत्रक ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगच्छनावज्ञेयामहीभुजः ॥ ३२ ॥ अपमानाद्भवेन्मानंपार्थिवानामसंशयम् ॥ यःकरोतिपुनस्तत्रमानंनसभवेत्प्रियः ॥ ३३ ॥ कोपप्रसादवस्तूनिविचिन्वन्तिचरोचकः ॥ आरोहन्तिशनैर्भृत्याधुन्वन्तमपिपार्थिवम् ॥३४॥ समोमानेऽपमानेचचित्तज्ञःकालवित्सदा ॥ सर्वसहःक्षमीविज्ञःसभवेद्राजवल्लभः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर मैंने भी वहींपर उसी क्षण उस जलको उस काठ में फेंकदिया व उसीक्षण वृद्धि को प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ शाकल्यजी बोले कि हे पुत्र ! इसी कारण विशेषकर भलीभांति बुलाये गयेहो इसलिये वहां शीघ्रही जाओ क्योंकि भूपालों का अपमान न करना चाहिये ॥ ३२ ॥ भूपालों के यहां अपमान से निस्सन्देह मान होताहै फिर वहां जो मान करता है वह प्रिय नहीं होताहै ॥ ३३ ॥ रुचिकारक सेवक क्रोध व प्रसन्नतावाली वस्तुओं को ढूंढ़ते हैं व धीरे २ कँपाते हुये भी भूपति के समीप चढ़ जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो मान व अपमान में समान व चित्त का जाननेवाला व सदैव समय का जाननेहारा व सब सहनेवाला और क्षमावान् व विशेषकर ज्ञाता होताहै

वह राजाओंका प्यारा होता है ॥ ३५ ॥ इसलिये अपमान का अनादरकर नृपमन्दिर को जाइये जिसमें मेरी आज्ञाभी न उल्लंघन होवै यह सनातनधर्म है ॥ ३६ ॥
याज्ञवल्क्यजी बोले कि तुमने जिनको वहां योजित किया है यदि उन शिष्यों की परिपाटीका व्यतिक्रम करोगे तो अवश्यकर आज्ञाभंग होगी॥ ३७ ॥ इसलिये यदि
तुम उस राजाप्रति मुझको हठसे युक्त करोगे तो तुमको छोड़कर अन्यत्र चलाजाऊंगा क्योंकि महर्षियों ने कहा है ॥ ३८ ॥ कि गर्वित व कार्य को न जानते हुये और
कुपन्थ में वर्तमान गुरुका भी परित्याग किया जाता है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन याज्ञवल्क्यजी के उस वचन को सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित व बार २

अपमानमनादृत्यतस्माद्गच्छनृपालयम्॥ ममाज्ञापिनलङ्घेतएषधर्मःसनातनः ॥ ३६ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ आज्ञाभ
ङ्गोध्रुवंभावीपरिपाटीव्यतिक्रमम् ॥ करोषियदिशिष्याणांयेत्वयातत्रयोजिताः ॥ ३७ ॥ तस्माद्यदिबलान्मांत्वंयोज
यिष्यतितम्प्रति ॥ त्वांत्यक्त्वान्यत्रयास्यामियतःप्रोक्तंमहर्षिभिः ॥ ३८ ॥ गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमविन्दतः ॥
उत्पथेवर्तमानस्यपरित्यागोविधीयते ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाशाकल्यःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ततःप्रोवाचतं
भूयोभर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ एकमप्यक्षरंयत्रगुरुःशिष्येनिवेदितम् ॥ पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वानऋणीभवे
त् ॥ ४१ ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंगत्वामदध्ययनमालयम् ॥ त्यजविद्यांमयादत्तांनोचेच्छप्स्यामित्वामहम् ॥ ४२ ॥ एवमु
क्त्वाभिमन्त्र्याथनादबिन्दुसमुद्भवैः ॥ मन्त्रैराथर्वणैस्तोयंपानार्थंचार्पयेत्ततः ॥ ४३ ॥ सोपिवैतत्क्षणात्तोयंतत्पीत्वा
व्याकुलेन्द्रियः ॥ उद्गीर्णंवान्तधर्मेणतत्त्वंविद्याविमिश्रितम् ॥ ४४ ॥ ततःप्रोवाचतम्भूयःशाकल्यंकुपिताननम् ॥ ए

घुड़कते हुये शाकल्यजी ने उनसे फिर कहा ॥ ४० ॥ कि गुरु एक भी अक्षर को जिस शिष्य के लिये निवेदन करता है तौ पृथ्वी में वह द्रव्य नहीं है कि जिसको
देकर उऋण होवै ॥ ४१ ॥ इसलिये मेरे पढ़ानेवाले मन्दिर में जावो व जाकर मुझ से दीहुई विद्याको त्यागकरो नहीं तो मैं तुमको शापदूंगा॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर इस
के अनन्तर शाकल्य मुनिने ॐकारसे उपजे हुये आथर्वण मन्त्रों से जलको अभिमन्त्रितकरके तदनन्तर पीने के लिये जलको अर्पण करदिया ॥ ४३ ॥ उस जलको
उसी क्षण पीकर निकल इन्द्रियोंवाले उन याज्ञवल्क्यजीने भी वमन धर्म से विद्याओं से मिलेहुये तत्त्वको वमन करादिया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर फिर कोपित मुखवाले

उन शाकल्यजी से कहा कि मेरे पेटमें तुम्हारा एकभी अक्षर नहीं है ॥ ४५ ॥ इसलिये मैं तुम्हारा शिष्य नहीं हूं और न तुम मेरे गुरु स्थितहो इस समय अपनी इच्छा से मैं अन्यत्र जाऊंगा तुम क्या करोगे ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस बहुत समयवाले स्थान से निकलकर फिर मनुष्यों से बार२ सिद्धिक्षेत्रों को पूंछा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर विद्वानोंने समस्त प्राणियों को सिद्धिदायक इस क्षेत्र को भलीभांति आदेश किया कि किसी प्रकार वृथा न होवै है ॥ ४८ ॥ तब तक तपीहुई तपस्या व व्रत नियम निश्चयकर होवैं परन्तु हाटकेश्वरजक्षेत्र में भलीभांति निवास से भी सिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ मनुष्य जिस २ भाव से उस क्षेत्रमें बसता है शुभहो या अशुभहो

कमप्यक्षरंनास्तितावकीयंममोदरे ॥ ४५ ॥ तस्माच्छिष्योस्मितेनाहंनचमेत्वंगुरुःस्थितः ॥ साम्प्रतंस्वेच्छयान्यत्रप्रयास्यामिकरोषिकिम् ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाथनिर्गत्यतस्मात्स्थानाच्चिरन्तनात् ॥ पप्रच्छमानवान्भूयःसिद्धिक्षेत्राणिचासकृत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्यसमादिष्टंक्षेत्रमेतन्मनीषिभिः ॥ सिद्धिदंसर्वजन्तूनांनवृथास्यात्कथञ्चन ॥ ४८ ॥ आस्तान्तावत्तपस्तप्तंव्रतन्नियमएववा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसिद्धिस्संवासतोपिवा ॥ ४९ ॥ येनयेनचभावेनतत्रक्षेत्रेवसेज्जनः ॥ तस्यानुरूपिणीसिद्धिःशुभास्याद्यदिवाशुभा ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वाथद्रुतम्प्राप्यक्षेत्रमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ भानुमाराधयामासस्थापयित्वाततःपरम् ॥ ५१ ॥ नियतोनियताहारोब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ गायत्रीन्यासमासाद्यनिर्विकल्पेनचेतसा ॥ ५२ ॥ ततश्चभगवांस्तुष्टोवर्षान्तेतमुवाचह ॥ दर्शनेतस्यसंस्थित्वातेजस्संयम्यदारुणम् ॥ ५३ ॥ याज्ञवल्क्यवरम्ब्रूहि यत्तेमनसिरोचते ॥ सर्वमेवप्रदास्यामिनादेयंविद्यतेत्वयि ॥ ५४ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ यदितुष्टःसुरश्रेष्ठवेदाध्ययनस

उसके अनुरूपवाली सिद्धि होती है ॥ ५० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसको सुनकर इसके अनन्तर इस हाटकेश्वर क्षेत्रको प्राप्त होकर तदनन्तर सूर्य्यनारायण को थापकर नियम में प्राप्त व नियत आहार करनेवाले व ब्रह्मचर्य में तत्पर उन याज्ञवल्क्यजीने गायत्री के न्यास को पाकर विकल्परहित चित्तसे सूर्य्य को आराधन किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तदनन्तर वर्षके अन्तमें प्रसन्न होते हुये सूर्य्यनारायणजीने कठिन तेजको रोंककर व उनके दर्शन में भलीभांति प्राप्त होकर उन याज्ञवल्क्यजी से प्रकटही कहा ॥ ५३ ॥ कि हे याज्ञवल्क्य ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरदान को कहो मैं सबही कुछ दूंगा तुममें न देने योग्य नहीं है ॥ ५४ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि

हे सुरश्रेष्ठ ! यदि प्रसन्नहो तो वेद पढ़ने की उत्पत्ति में आजही मेरे गुरु होवो यही मेरे हृदय में मनोरथ है ॥ ५५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे द्विज ! तुम्हारे ऊपर कृपा संयुत होताहुआ मैं तेजको संहारकर तदनन्तर यहां आयाहूं उसी से नहीं जलतेहो ॥ ५६ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! इसी कुण्ड में शुभदायक सरस्वतीवाले वेदोक्त मन्त्रों को आपही सिखलाऊंगा ॥ ५७ ॥ उस कुण्ड में नहा करके पवित्र होकर वेदसे उपजा हुआ जो कुछ एक बार पढ़ोगे वह कण्ठस्थ होजावैगा ॥ ५८ ॥ व मेरी प्रसन्नता से सम्पूर्ण निश्चित अर्थ प्रकटहोकर तुमको विदित होजायगा इसमें सन्देह नहीं है मैंने यह सत्य कहा है ॥ ५९ ॥ अबभी जो मनुष्य प्रातःकाल उस कुण्डमें नहाकर व

म्भवे ॥ गुरुर्भवममाद्यैवममैतद्वाञ्छितंहृदि ॥ ५५ ॥ भास्करउवाच ॥ अहंतवकृपाविष्टस्तेजःसंहृत्यतत्परम् ॥ ततश्चा
त्रसमायातस्तेननोदह्यसेद्विज ॥ ५६ ॥ तस्मादत्रैवकुण्डेचमन्त्रान्सारश्वताञ्छुभान् ॥ वेदोक्ताञ्छिक्षयिष्यामिस्वय
मेवद्विजोत्तम ॥ ५७ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वायत्किञ्चिद्वेदसम्भवम् ॥ पठिष्यसिसकृत्तत्तेकण्ठस्थंसम्भविष्यति ॥ ५८ ॥
तत्त्वार्थंप्रकटंकृत्स्नंविदितंतेभविष्यति ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहोसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५९ ॥ अन्योपिमानवःप्रातःस्ना
त्वातत्रह्रदेचयः ॥ सावित्रेणचसूक्तेनमांदृष्ट्वाप्रपठिष्यति ॥ ६० ॥ तस्मैदास्याम्यसंदिग्धंयत्त्वोक्तंमयाद्विज ॥ ६१ ॥
याज्ञवल्क्यउवाच ॥ एवंभवतुदेवेशयत्त्वयोक्तंवचोमम ॥ परंममवचोन्यच्चतच्छृणुष्वब्रवीमिते ॥ ६२ ॥ नाहंमनुष्यध
र्माणामुपाध्यायंकथञ्चन ॥ करिष्यामिजगन्नाथकृपांकुरुममोपरि ॥ ६३ ॥ ततस्तस्यददौसूर्य्योलघिमांनामशोभना
म् ॥ विद्यांहितत्प्रभावायसुतुष्टेनान्तरात्मना ॥ ६४ ॥ ततस्तम्प्राहकर्णान्तेममाश्वानांप्रवेश्यवै ॥ अभ्यासंकुरुविद्यानांवे

मुझको देखकर सावित्रसूत्र से पाठ करैगा ॥ ६० ॥ उस के लिये हे द्विजो ! निस्सन्देह उसको दूंगा जो कि मैंने तुमसे कहा है ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे देवेश ! तुमने मुझसे जो वचन कहाहै वह ऐसाही होवै परन्तु मेरे और वचनको सुनिये मैं उसको तुमसे कहताहूं ॥ ६२ ॥ कि हे जगन्नाथ ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये मैं मनुष्य धर्मवाले को किसी प्रकार उपाध्याय याने पढ़ानेवाला न करूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजी ने अतिप्रसन्न अन्तःकरण से उस प्रभाव के लिये उन याज्ञवल्क्यजी को शुभदायिनी लघिमा नामक विद्या को दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उनसे कहा कि हे द्विजोत्तम ! यदि यह तुम्हारा मनोरथ है तो मेरे घोड़ों के कान के

मध्य में पैठकर मेरे मुख से विद्याओं का अभ्यास कीजिये व वेदपाठ को करिये कि जिससे मेरी किरणों से उपजा हुआ दोष तुमको न होवै ॥ ६५ । ६६ ॥ उन सूर्य्यनारायणजी से ऐसा कहे हुये याज्ञवल्क्यजी लघुरूप होकर व घोड़े के कानमें भलीभांति टिककर वैसेही सूर्य्यनारायण के मुख से वेदोंको पढ़ते भये ॥ ६७ ॥ इसभांति याज्ञवल्क्य द्विजोत्तम सिद्धिको भलीभांति प्राप्तहुये तदनन्तर समस्त वेदार्थोंसे संयुत उत्तम उपनिषद् को बनाकर जनक नरेन्द्र के लिये व्याख्यान करके वेदसूत्र के करनेवाले कात्यायनि पुत्रको प्राप्त होकर और वहां शरीरको त्यागकर व ब्रह्मद्वारसे निकलेहुये उस तेजको शक्तिसे ब्रह्मके अंगमें युक्त कर दिया ॥ ६८।६९।७० ॥ मनुष्य

दाध्ययनमाचर ॥ ६५ ॥ मन्मुखाद्ब्राह्मणश्रेष्ठयद्येतत्तववाञ्छितम् ॥ नतेस्याद्येनदोषोयंममरश्मिसमुद्भवः ॥ ६६ ॥ एवमुक्तस्सतेनाथवाजिकर्णसमाश्रितः ॥ लघुर्भूत्वापठन्वेदान्भास्करस्यमुखात्तथा ॥ ६७ ॥ एवंसिद्धिंसमापन्नोयाज्ञवल्क्योद्विजोत्तमः॥कृत्वोपनिषदांचारुवेदार्थैःसकलैर्युतम् ॥ ६८ ॥ जनकायनरेन्द्रायव्याख्यायचततःपरम् ॥ कात्यायनसुतम्प्राप्यवेदसूत्रस्यकारकम् ॥ ६९ ॥ त्यक्त्वाकलेवरंतत्रब्रह्मद्वारविनिर्गतम् ॥ तत्तेजोब्रह्मणोगात्रेयोजयामासशक्तितः ॥ ७० ॥ तस्यतीर्थेनरःस्नात्वादृष्ट्वातञ्चदिवाकरम् ॥ नादविन्दुंपठित्वाचतदग्रेमुक्तिमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्याश्रममाहात्म्यंनामषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ याज्ञवल्क्यसुतोसूतयस्त्वयापरिकीर्तितः ॥ कतमातस्यमाताभूत्सर्वंनोब्रूहिविस्तरात् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ तस्यभार्याद्वयंश्रेष्ठमासीत्सर्वगुणान्वितम् ॥ एकागुणवतीतस्यमैत्रेयीतिप्रकीर्तिता ॥ २ ॥ ज्येष्ठायान्याचक

उस तीर्थ में नहाकर व उन सूर्य्यनारायणजी को देखकर उनके अगाडी नादबिन्दु याने ॐकार ऐसे मंत्रको पढ़कर मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये याज्ञवल्क्याश्रममाहात्म्यंनामषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ❀ ॥

दो० । सौति मानि श्रीगंगकहँ गिरिजा जिमि तपकीन । इकसौ सत्ताईस महँ कह्यो सो चरित नवीन ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने जिस याज्ञवल्क्यजी के पुत्रको कहाहै उसकी कौन माता हुई है हमलोगों से समस्त वृत्तान्त को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि उन याज्ञवल्क्यजी के समस्त गुणों से संयुत दो स्त्रियां

हुई हैं उनकी एक बड़ी स्त्री गुणवती मैत्रेयी ऐसी कहीगई है व और छोटी कल्याणकारिणी कात्यायनी भी हुई है जिसके पुत्र कात्यायनजी वेदार्थों के कहनेवाले हुये ॥ २ । ३॥ उन दोनों से निर्माण किये हुये वहांपर अति उत्तम दो कुण्ड हैं जिनमें नहाये हुये पुरुष उन बड़े ऐश्वर्यवाले लोकोंको जातेहैं ॥ ४ ॥ वैसेही वहांपर शांडिल्ली का उत्तम तीर्थ व पातिव्रत्य से युक्त कात्यायनी का अन्य तीर्थभी भलीभांति स्थित है ॥ ५ ॥ शाण्डिली से बोधकराई हुई व सौतिके दुःखसे दुःखित कात्यायनीजी परम वैराग्य को प्राप्त होकर जहांपर प्राप्तहुई हैं ॥ ६ ॥ अगहन के शुक्लपक्ष में सावधान होतीहुई जो स्त्री उसमें स्नानकरती है वह सौभाग्यवती होती है ॥ ७ ॥ अथवा

ल्याणीख्याताकात्यायनीतिच ॥ यस्याःकात्यायनःपुत्रोवेदार्थानाम्प्रजल्पकः ॥ ३ ॥ ताभ्यांकुण्डद्वयंतत्रसन्तिष्ठति
सुशोभनम् ॥ यत्रस्नातानरायान्तिलोकांश्चतान्महोदयान् ॥ ४ ॥ कात्यायन्याश्चतीर्थोपिशाण्डिल्यास्तीर्थमुत्तमम् ॥
पतिव्रतात्वयुक्तायास्तथान्यत्तत्रसंस्थितम् ॥ ५ ॥ यत्रकात्यायनीप्राप्ताशाण्डिल्याप्रतिबोधिता ॥ वैराग्यंपरमम्प्राप्ता
सपत्नीदुःखदुःखिता ॥ ६ ॥ तत्रयाकुरुतेस्नानंतृतीयायांसमाहिता ॥ नारीमार्गसितेपक्षेसासौभाग्यवतीभवेत् ॥ ७ ॥
अथदौर्भाग्यसम्पन्नाकाणावृद्धाथवामना ॥ अभीष्टमयतेसाचतत्प्रभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कीदृक्स
पत्निजंदुःखंकात्यायन्याउपस्थितम् ॥ उपदेशःकथंलब्धःशाण्डिल्यासूतकीदृशः ॥ ९ ॥ कात्यायन्याःसमाचक्ष्वकौ
तुकंनोव्यवस्थितम् ॥ सामान्योभवितानैषउपदेशस्तयेरितः ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ मैत्रेय्यासहसंसक्तंयाज्ञवल्क्यंविलो
क्यसा ॥ कात्यायनीसुदुःखार्तासंयुताचेर्ष्ययाततः ॥ ११ ॥ सानस्नातिनभुंक्तेचनहास्यंकुरुतेकचित् ॥ केवलंबाष्पपूर्णा

हे द्विजोत्तमो ! जो दुर्भाग्यसे संयुत व एक नेत्रवाली व बूढ़ी और वामनी होती है वह उसके प्रभाव से प्रियत्व को प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! सौतिसे उपजा हुआ कैसा दुःख कात्यायनी के समीप प्राप्त हुआ व किस प्रकार शाण्डिली से कैसा उपदेश कात्यायनी को मिला है ॥ ९ ॥ उस चरित्र को भलीभांति कहिये हमलोगों को बड़ा आश्चर्य व्यवस्थित है क्योंकि उस शाण्डिली से कहा हुआ यह उपदेश साधारण न होगा ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि वह कात्यायनी मैत्रेयी के साथ आसक्त हुये याज्ञवल्क्यजी को देखकर तदनन्तर ईर्षा से संयुत होती हुई अतिदुःखित हुई ॥ ११ ॥ वह कात्यायनी न नहातीथी न भोजन करती

थी न कभी हास्य करतीथी केवल आंसुवों से पूर्ण नयनोंवाली होकर श्वसती हुई॥ १२ ॥ इसके अनन्तर वैसेही किसी समय फलों के लिये बाहर निकली व उसने पतिके समीप विशेषता से टिकी हुई शाण्डिली नामक नारी को देखा ॥ १३ ॥ जो कि हाथ जोड़े हुई व विनय से झुकी हुई व पतिव्रताथी और अनुराग समेत प्रसन्न मुखवाला वह पतिभी उस शाण्डिली के मुखप्रति आसक्त याने मुखकी ओर निहार रहाथा ॥ १४ ॥ व उसने प्रसन्न होकर गुण दोष से उपजी हुई वार्ताको कहा उस समय उस कात्यायनी ने आपस में प्रसन्न उन पति पत्नी को देखकर ॥ १५ ॥ अपने चित्तमें चिन्तन किया कि यह तपस्विनी धन्य है जिसका पति मुखमें लगा हुआ

न्तीनिःश्वसन्तीबभूवह ॥ १२ ॥ तथाकदाचिदेवाथफलार्थंनिर्गताबहिः ॥ अपश्यच्छाण्डिलींनामपतिपार्श्वेऽव्यवस्थिताम् ॥ १३ ॥ कृताञ्जलिपुटांसाध्वींविनयावनतास्थिताम् ॥ सोपितस्यामुखासक्तःसानुरागःप्रसन्नदृक् ॥ १४ ॥ गुणदोषोद्भवांवार्तांसंहृष्याकथयत्तदा ॥ साचतौदम्पतीदृष्ट्वासंहृष्टावितरेतरम् ॥ १५ ॥ चित्तेस्वेचिन्तयामासस्रुधन्येयंतपस्विनी ॥ यस्याःपतिर्मुखासक्तोगुणदोषप्रजल्पकः ॥ १६ ॥ सानुरागस्थसुस्निग्धोनान्यांनारीम्बिभर्तिच ॥ एवंसञ्चिन्त्यसासाध्वीभूयोभूयोद्विजोत्तमाः॥१७॥ जगामस्वाश्रमंपश्चान्निन्दमानास्वकंवपुः ॥ ततःकदाचिदेकान्तेस्थितांतांशाण्डिलींद्विजाः ॥ १८ ॥ बहिर्गतोयदाभर्त्ताकदाकार्य्येणकेनाचित् ॥ कात्यायनीसमागम्यततःपप्रच्छसादरम् ॥ १९ ॥ वदकल्याणिमेकंचिदुपदेशंमहोदयम् ॥ मुखप्रेक्षःसदाभर्त्तायेनस्त्रीणाम्प्रजायते ॥ २० ॥ नापमानंकरोत्येवदुरुक्तवचनैःक्वचित् ॥

व गुण दोषों को कहरहा है ॥ १६ ॥ और अतिस्नेहवान् व अनुराग समेत स्थित है और स्त्री को नहीं धारण करता है हे द्विजोत्तमो ! वह पतिव्रता कात्यायनी बार बार इस प्रकार संचिन्तन कर पश्चात् अपने अङ्गको निन्दती हुई निज आश्रम को चली गई तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय जब पति किसी कार्य से बाहर गया तब एकान्त में टिकी हुई उस शाण्डिली के समीप कात्यायनीने भलीभांति जाकर तदनन्तर आदर समेत पूंछा ॥ १७ । १८ । १९ ॥ कि हे कल्याणि ! बड़े ऐश्वर्यवाले किसी उपदेश को मुझसे कहो कि जिससे स्त्रियोंका पति सदैव मुखको देखनेवाला होताहै ॥ २० ॥ व कभी दुरुक्त वचनों से अपमान करताही नहींहै व किसी प्रकार

अन्य नारी को चित्तसे भी समागम नहीं करता है ॥ २१ ॥ जिस कारण पतिसे किये हुये दुःखोंसे व विशेषकर सौतिसे उपजे हुये क्लेशों मे मैं अत्यन्तही पीडितहूं इसलिये तुम मुझसे कहो ॥ २२ ॥ कि जिस प्रकार यह सदैव कामदायक पति तुम्हारे वशमें प्राप्त हुआ है और किसी प्रकार मनसे भी अन्य नारी को नहीं ध्यान करता है ॥ २३ ॥ शाण्डिली बोली कि हे पतिव्रते ! सुनिये मैं तुमसे उत्तम गुप्त चरित को कहतीहूं कि पहली अवस्था में भलीभांति टिके हुये मेरे पिता मुनिनायक शाण्डिल्यजी कुरुक्षेत्र में वानप्रस्थ आश्रम में स्थित भये वहींपर उन महात्मा के मैं एक कन्या पैदाहुई ॥ २४ । २५ ॥ इसके अनन्तर उसी तपोवन में क्रमसे वृद्धिको

नाभ्यांसङ्गच्छतेनारींचित्तेनापिकथञ्चन ॥ २१ ॥ अहम्भर्तुःकृतैर्दुःखैरतीवपरिपीडिता ॥ सपत्निजैर्विशेषेणतस्मान्मेत्वं प्रकीर्तय ॥ २२ ॥ यथातेवशगोभर्त्तासंयातःकामदस्सदा ॥ मनसापिनसंदध्यान्नारीमेपकथञ्चन ॥ २३ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ शृणुसाध्विप्रवक्ष्यामितवाहंगुह्यमुत्तमम् ॥ ममतातःकुरुक्षेत्रेशाण्डिल्योमुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमेऽतिष्ठत्पूर्वेवयसिसंस्थितः ॥ तत्रैकाहंसमुत्पन्नाकन्यातस्यमहात्मनः ॥ २५ ॥ वृद्धिङ्गताक्रमेणाथतस्मिन्नेवतपोवने ॥ करोमितस्यशुश्रूषांहोमकालेयथोचिताम् ॥ २६ ॥ नीवारादीनिधान्यानिनित्यञ्चैवानयाम्यहम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोमुनिरागतः ॥ २७ ॥ आश्रमेममतातस्यसुश्रान्तत्वमुपागतः ॥ पित्रादेशादुद्धृतंतत्रमयामविश्रमःकृतः ॥ २८ ॥ पादशौचादिकंकृत्वास्नानाद्यैश्चतथाविधैः ॥ ततोभुक्तावसानेथनिविष्टःसुखसंस्थितः ॥ २९ ॥ ममम्रात्राचसंपृष्टोविनयाद्वरवर्णिनि ॥ एकेयंकन्यकास्माकंयातेवयसिसंस्थिते ॥ ३० ॥ संजातामुनिशार्दूलप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ तदास्याःकी

प्राप्तहुई और मैं होम समय में उन पिताजी की यथायोग्य सेवा करतीथी ॥ २६ ॥ व नित्यही मैं नीवार (फसही) इत्यादि अन्नों को आनतीथी इसके अनन्तर किसी समय मेरे पिताजी के आश्रम में अति थकावट को प्राप्त नारद मुनि आये तदनन्तर वहांपर मैंने पिताकी आज्ञासे शीघ्रही चरण को प्रक्षालन कर व वैसेही स्नानादिकों से उन नारदजी को श्रमहीन कराया इसके अनन्तर भोजन के अन्त में सुखपूर्वक स्थित होते हुये बैठे ॥ २७ । २८ । २९ ॥ व नम्रता के द्वारा मेरी माता से पूंछे गये कि हे मुनिपुङ्गव ! अवस्था के भलीभांति स्थित होनेपर प्राणों से भी प्यारी यह एक कन्या हमारे पैदाहुई है इसलिये शीघ्रही उत्तम ऐश्वर्यवाले इसके पतिको

कहिये ॥ ३० । ३१ ॥ व व्रत या नियम या होम अथवा मन्त्रही को कहिये कि जिसके चीर्ण याने इकट्ठा करने से उत्तम गुणों से संयुत व अतिसौम्य स्वभाववाला, प्रियवक्ता, मुखको देखनेवाला व पराई स्त्री से विमुख पति होवै वे नारद मुनि उसके उस वचन को सुनकर तदनन्तर ॥ ३२ । ३३ ॥ प्रसन्न मुखवाले नारदजी देरतक ध्यानकर वचन बोले कि हाटकेश्वर रो उपजे हुये क्षेत्रमें पांच पिण्डा व्यवस्थितहैं ॥ ३४ ॥ वहांपर आपही पार्वतीजी ने गौरी परमेश्वरी को थापा है परम श्रद्धासे संयुत होती हुई यह कन्या उन भगवती को सदैव वर्षभर पूजन करै व तीज तिथिमें विशेपता से पूजै तदनन्तर वर्षान्त को प्राप्त होकर वैसे रूपवाले व जैसा कहा है

र्त्तयन्तिप्रंभर्तारंसुसुखोदयम् ॥ ३१ ॥ व्रतंवानियमंवात्वंहोमंवामन्त्रमेवच ॥ येनचीर्णेनभर्तास्यात्सुसौम्यस्सद्गु णान्वितः ॥ ३२ ॥ प्रियंवदोमुखप्रेक्षःपरनारीपराङ्मुखः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वासमुनिस्तदनन्तरम् ॥ ३३ ॥ चिरंध्या त्वावचःप्राहप्रसन्नवदनस्ततः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेपञ्चपिण्डाव्यवस्थिता ॥ ३४॥ गौरीगौर्यास्स्वयंतत्रस्थापितापरमेश्व री ॥ तामेषावत्सरंयावच्छ्रद्धयापरयायुता ॥ ३५ ॥ सदापूजयतुप्रीत्यातृतीयायांविशेषतः ॥ ततोवर्षान्तमासाद्यसम्प्रा प्स्यतियथोचितम् ॥ ३६ ॥ भर्त्तारंनात्रसन्देहोतादृग्रूपंयथोदितम् ॥ तत्रपूर्वंगतागौरीपरित्यज्यमहेश्वरम् ॥ ३७॥ गङ्गे र्ष्ययामहाभागेज्ञात्वाक्षेत्रंसुसिद्धिदम् ॥ ततस्साचिन्तयामासकान्देवींपूजयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ सौभाग्यार्थंयतोन्यामांपू जयन्तिसुरस्त्रियः ॥ तस्मादहंप्रभक्त्याद्यस्वयमात्मानमेवच ॥ ३९ ॥ आत्मनाचकृतोत्साहापूजयिष्यामिसिद्धये ॥ ततःप्राणाग्निहोत्रैश्चमन्त्रैराथर्वणैश्चसा ॥ ४० ॥ मृत्पिण्डान्पञ्चसंयोज्यस्थानैकस्मिन्समाहिता ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च

वैसेही यथायोग्य पतिको भलीभांति पावैगी इसमें सन्देह नहीं है हे महाभागे ! अतिसिद्धिदायक क्षेत्रको जानकर गंगाजी की ईर्षा से महादेवजी को छोड़कर वहां पहले पार्वतीजी गई हैं तदनन्तर उनने चिन्तन किया कि मैं किस देवीका पूजन करूं ॥ ३५ । ३६ । ३७ । ३८ ॥ जिसलिये कि सौभाग्य के लिये अपर देवताओं की स्त्रियां मुझको पूजती हैं इसलिये उत्साह को कियेहुई मैं सिद्धिके निमित्त बड़ी भक्तिसे अपनासे आत्माहीका पूजन करूंगी तदनन्तर सावधान होतीहुई उन पार्वती

जीने अथर्वण वेदवाले प्राणाग्नि मन्त्रों से पांच मिट्टी के पिंडों को एकही स्थान में भलीभांति योजितकर जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशहीथे ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥ उन पार्वतीजी ने मिट्टी के पिंडों को भलीभांति धरकर उनमें युक्त किया तदनन्तर व्रतको ग्रहण कियेहुई पार्वतीजीने इन पांच महाभूतों को पुष्प, धूप व अनुलेपनों से भलीभांति पूजन किया इसके अनन्तर उन पार्वतीजी के मन्त्रसे खींचे हुये चित्तवाले सदाशिवजी पार्वतीजी को तपस्या मे टिकीहुई जानकर शीघ्रही समीप आये व प्रसन्न मनवाले होकर बोले कि सदैव मुख देखने में तत्पर व दोषसे छुटे हुये मुझको छोड़कर तुम किसलिये यहां आगई इस कारण मेरे साथ बैल पै सवार होती हुई तुम

वायुराकाशमेवच ॥ ४१ ॥ तेषुसंयोजयामासमृत्पिण्डान्सुनिधायसा ॥ महद्भूतानिचैतानिपञ्चदेवीयतव्रता ॥ ४२ ॥ तत्तस्सम्पूजयामासपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ अथतान्तत्रविज्ञायतपःस्थांगिरिजाम्भवः ॥ ४३ ॥ तन्मन्त्राकृष्टचित्तश्चसत्वरं समुपागतः ॥ प्रोवाचचप्रहृष्टात्माकस्मात्त्वमिहचागता ॥ ४४ ॥ मामुक्त्वादोषनिर्मुक्तंमुखप्रेक्ष्येसदारतम् ॥ तस्मादागच्छकैलासंवृषारूढामयासह ॥ ४५ ॥ अथवाकारणम्ब्रूहियदिदोषोस्तिमेकचित् ॥ ४६ ॥ दे०युवाच ॥ त्वंमूर्द्धजाह्नवीं धत्सेमूर्त्तायत्सलिलात्मिकाम् ॥ तस्मान्नाहंगमिष्यामिमन्दिरन्तेकथञ्चन ॥४७॥ यावन्नत्यजसित्वंतांममसापत्न्यतां गताम् ॥ तथानित्यंप्रणामंत्वंकरोषिवृषभध्वज ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षमपिमेनित्यंसन्ध्यायाञ्चनलक्षसे ॥ तस्मादेतत्परित्यज्यकर्मलज्जाकरम्परम् ॥ ४९ ॥ आकारयसिमान्देवतत्स्यादभिमतंमम ॥ अन्यथाहंनयास्यामितवहर्म्यंकथञ्चन ॥ ५० ॥ एतज्ज्ञात्वायदिष्टन्तेकुरुष्ववृषभध्वज ॥ ५१ ॥ देवउवाच ॥ नाहंसौख्येनताङ्गङ्गांधारयामिसुरेश्वरि ॥ भगीरथे

कैलासको आवो ॥ ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ अथवा यदि मुझमें कहीं दोष हो तो कारण कहिये ॥ ४६ ॥ पार्वतीदेवी बोलीं कि जिसलिये जल आत्मावाली मूर्त्तिमती गंगाजीको तुम मस्तक से धारण कियेहो उसी कारण मैं तबतक तुम्हारे घरको किसी प्रकार न जाऊंगी ॥ ४७ ॥ कि जब तक मेरे सौति भाव में प्राप्त हुई उन गंगाजी को तुम न छोड़ोगे वैसेही हे वृषभध्वज ! मेरे सामने भी तुम नित्यही संध्या में प्रणामकरतेथे और देख नहीं पड़ते थे इसलिये हे देव ! इस परम लज्जाकारक कर्मको छोड़कर मुझको प्रणामादि कीजिये तो मेरा मनोरथ होवै अन्यथा मैं तुम्हारे मन्दिर में किसी प्रकार न जाऊंगी ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ हे वृषभध्वज ! इसको जानकर जो

तुमको प्रियहो वह कीजिये ॥ ५१ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरेश्वरि ! मैं सुखसे उन गंगा को नहीं धारण कियेहूं किन्तु कुटुम्ब के कारण देवताओं की हजार वर्षतक विकराल तपस्या को कर भगीरथ भूपने मेरी प्रार्थना किया है कि हे देव ! स्वर्ग से गिरी हुई गंगाजी जिससे पाताल को न जावैं उसी कारण मेरे वचन से गंगाजी को अपने मस्तक से धारण कीजिये मैंने उस भगीरथ से प्रतिज्ञा किया कि भूतल में गिरते हुये आकाशगंगाके वेगको मैं निस्सन्देह धारण करूंगा नहीं तो यदि मैं छोड़ देऊं तो पाताल को चलीजावै इस विषय मे जो वृत्तान्त स्थित है ॥ ५२ । ५३ । ५४ । ५५ ॥ उसको मैं तुमसे कहताहूं तुम एक मनवाली याने एकाग्र मन करके सुनो

दिव्यवर्षसहस्रन्तुतपस्तप्त्वासुदारुणम् ॥ येननोयातिपातालंगङ्गास्वर्गपरि
नभूपेनप्रार्थितोज्ञातिकारणात् ॥ ५२ ॥ मयातस्यप्रतिज्ञातंधारयिष्याम्यसंशयम् ॥ ५४ ॥ आका
च्युता ॥ ५३ ॥ तस्मात्त्वन्देवमेवाक्यात्स्वमूर्ध्नावहजाह्नवीम् ॥ मयातस्यप्रतिज्ञातंधारयिष्याम्यसंशयम् ॥ ५५ ॥ यत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामितादिहैक
शाज्जाह्नवीवेगम्पतन्तंधरणीतले ॥ नोचेत्त्यजामिपातालंयात्यत्रविषयेस्थितम् ॥ ५५ ॥ यत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामितादिहैक
मनाःशृणु ॥ एषागङ्गावरारोहेममूर्ध्नाविनिर्गता ॥ ५६ ॥ हिमवन्तंनगंभित्त्वाद्विधायाताततःपरम् ॥ ततस्सिन्धवभिधा
नासापश्चिमंसागरङ्गता ॥ ५७ ॥ शतानिनवसंगृह्यनदीनांपरमेश्वरी ॥ तथागङ्गाभिधायातुसैवप्राक्सागरङ्गता ॥ ५८ ॥
तावत्यश्चसमादायनद्यःपर्वतनन्दिनि ॥ एवमष्टादशैतानिनदीनाम्पर्वतात्मजे ॥ ५९ ॥ शतानिसागरेयान्तितेननि
त्यंसतिष्ठति ॥ सततंशोष्यमाणोपिवाडवेनदिवानिशि ॥ ६० ॥ समुद्रात्सलिलंमेघाःसमादायततःपरम् ॥ मर्त्यलोके
प्रवर्षन्तिततःसस्यंप्रजायते ॥ ६१ ॥ सस्येनजीवतेलोकःप्रभवन्तिमखास्तथा ॥ मखांशेनसुरास्सर्वेतृप्तिंयान्तिततःप

कि हे वरारोहे ! यह गंगा मेरे मस्तक से निकली है ॥ ५६ ॥ और हिमालय पर्वत को फोडकर तदनन्तर दो भाग होगई तदनन्तर सिन्धु नामवाली वे परमेश्वरी गंगा जी नौसै नदियोंको भलीभांति लेकर पश्चिमवाले समुद्र में मिलगई वैसेही हे पर्वतपुत्रि ! जो गंगा नामवाली हैं वही उतनीही याने नौसे नदियोंको लेकर पूर्ववाले समुद्र में चलीगई हे पर्वतसुते ! इसप्रकार ये अठारह सौ नदियां समुद्रमें जातीहैं उसीसे सदैव अहर्निश वड़वानल से शोषा जाताहुआ भी वह समुद्र नित्यही स्थित रहताहै ॥ ५७ । ५८ । ५९ । ६० ॥ व मेघ समुद्र से जललेकर तदनन्तर मृत्युलोकमें बरसते हैं उसीसे अन्न उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ व अन्नसे मनुष्य जीवताहै तथा

यज्ञहोते हैं तदनन्तर यज्ञके अंशसे समस्त देवता तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ६२ ॥ हे देवि ! इसी कारण से मैं गंगा जीको मस्तकपै धारण कियेहूं न स्नेह से, न कामसे केवल संसारकी रक्षाके कारण धारेहूं ॥ ६३ ॥ अथवा यदि किसी प्रकार इन गंगाजीको मस्तकसे छोड़देऊं तो वेगसे पृथ्वी को दूर भेदनकर रसातल को चलीजावै ॥ ६४ ॥ व उसी कारण बड़वानल से पियाजाताहुआ नदियोंका पति समुद्र यहां शीघ्रही शोषको प्राप्तहोजावै तदनन्तर वृष्टि न होवै ॥ ६५ ॥ और वृष्टि के न होने से समस्त संसार नाशहोजावै यह मैंने कहा हे सुरेश्वरि ! इसप्रकार गंगा के लिये मैंने इस चरित को तुमसे कहा ॥ ६६ ॥ और सन्ध्याके लिये अन्य चरित को सुनिये

रम् ॥ ६२ ॥ एतस्मात्कारणान्मूर्द्ध्निदेविगङ्गांदधाम्यहम् ॥ नस्नेहात्कामतोनैव जगद्रक्षणकेनवै ॥६३॥ अथवासन्त्यजाम्येतांयदिमूर्ध्नःकथञ्चन ॥ तद्दूरंवेगतोभित्त्वापृथ्वींयातिरसातलम् ॥ ६४ ॥ ततःशोषंव्रजेदाशुसमुद्रस्सरिताम्पतिः ॥ और्वेणपीयमानोत्र ततोवृष्टिर्नजायते ॥ ६५ ॥ वृष्ट्यभावाज्जगत्सर्वन्नाशमेतन्मयोदितम् ॥ एवङ्गङ्गाकृतेप्रोक्तं मयातवसुरेश्वरि ॥ ६६ ॥ शृणुसन्ध्याकृतेन्यच्चयेनतांप्रणमाम्यहम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

देवउवाच ॥ एषारात्रिःसमादिष्टादानवानांसुरेश्वरि ॥ पिशाचानाञ्चभूतानां राक्षसानांविशेषतः ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्रस्नानादिकञ्चयत ॥ तत्सर्वंजायतेतेषाम्पुरादत्तंस्वयम्भुवा ॥ २ ॥ मर्यादातैस्समंयेन देवानाञ्चयदाकृ

कि जिससे मैं उन गंगा जीको प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ७ ॥

दो॰ । पञ्चपिंडिका गौरि अरु थपे यथा ईशान । इकसौ अट्ठाईसमहँ सोई करत बखान ॥ महादेव जी बोले कि हे सुरेश्वरि ! दानव, पिशाच व विशेषकर प्रेतों के लिये यह रात्रि भलीभांति आज्ञा दीगई है ॥ १ ॥ उस रात्रिमें जो कुछ स्नानादिक कर्म कियाजाता है वह सब उन राक्षसादिकों का होताहै क्योंकि पुरातन समय

ब्रह्माजीने दियाहै ॥ २ ॥ हे पर्वतात्मजे ! जिन ब्रह्माजीने जब यज्ञभाग के योग्य कश्यप जीके पुत्रों देवताओंकी मर्यादा उन दैत्यों के साथ कियाहै ॥ ३ ॥ उसी के लिये युद्धमें दुष्टमदवाले व भाला, बरछी हाथोंवाले व उठायेहुये धनुषवाले दशहजार दानव सूर्य्यनारायण के सामने दौड़तेहैं ॥ ४ ॥ उन हज़ारों किरणोंवाले सूर्यनारायण को उद्देशकर गायत्रीके मंत्रसे जो जल फेंकाजाता है वह उन को फल होता है ॥ ५ ॥ हे सुरेश्वरि ! उस वज्रके समान जल से उसी क्षण मारेहुये वे दानव नित्यही सूर्य जीको छोड़ते हैं॥ ६ ॥ हे पार्वती जी ! इसी कारण सन्ध्यासमय में सन्ध्योपासनके मध्य सूर्यनारायण को उद्देशकर मैं अर्घ रूप जलको फेंकताहूं ॥ ७ ॥ क्योंकि

ता ॥ अर्हाणांयज्ञभागस्य काश्यपानांनगात्मजे ॥ ३ ॥ तदर्थंदशसाहस्रादानवायुद्धदुर्मदाः ॥ कुन्तप्रासकराभानुं धावन्त्युद्गतकार्मुकाः ॥ ४ ॥ तमुद्दिश्यसहस्रांशुं यज्जलम्परिक्षिप्यते ॥ सावित्रेणचमन्त्रेण तेषांतज्जायतेफलम् ॥ ५ ॥ तेहतास्तेनतोयेन वज्रतुल्येनतत्क्षणात्॥ प्रमुञ्चन्तिसहस्रांशुं नित्यमेवसुरेश्वरि ॥ ६ ॥ एतस्मात्कारणात्तोयमर्घरूपं क्षिपाम्यहम् ॥ सन्ध्याकालंसमुद्दिश्य भानुंसन्ध्यान्तुपार्वति ॥ ७ ॥ यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तन्नाद्दूरतःस्थितः ॥ उदयार्थं रविंयातं निरुन्धन्तिचदारुणाः ॥ ८ ॥ तेपिसन्ध्याजलैर्देविनिहताब्राह्मणोत्तमैः ॥ मयाचतंविमुञ्चन्ति मूर्च्छितानिपतन्तिच ॥ ९ ॥ एतस्मात्कारणाद्देवि सन्ध्ययोरुभयोरपि॥ अहञ्चान्येचविप्रायेतेनमन्तिदिवाकरम् ॥ १० ॥ तस्मात्त्वं गृहमागच्छ त्यक्त्वेर्ष्याम्पर्वतात्मजे ॥ प्रशंस्यांत्वाम्परित्यक्त्वानान्यास्तिहृदयेमम॥११॥देव्युवाच ॥ निष्कामोवासकामोवासन्ध्यांस्त्रीसंज्ञितामिमाम् ॥ यत्त्वंनमसिदेवेशतन्मेदुःखंप्रजायते॥१२॥तस्माद्गङ्गापरित्यागं सन्ध्यायाश्चविशेष

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करताहै उस उसको अगाड़ी स्थितहुआ पुरुष करैगा उदयके लिये जातेहुये दिनकर को जे विकराल दानव रोंकते हैं ॥ ८ ॥ हे देवि ! वे भी द्विजोत्तमों और मेरे सन्ध्योपासन के जल से उनको छोडते हैं व मूर्च्छित होकर गिरते हैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! इसी कारण से दोनों सन्ध्याओं मेंभी मैं और जे ब्राह्मण हैं वे दिवाकर जीको नमस्कार करतेहैं ॥ १० ॥ इसलिये हे पर्वतपुत्रि ! ईर्षा को छोड़कर तुम घरको आवो क्योंकि प्रशंसा के योग्य तुमको त्यागकर और स्त्री मेरे हृदय में नहीं है ॥ ११ ॥ पार्वती देवी बोलीं कि हे देवेश ! निष्काम या सकाम तुम जिसलिये सन्ध्या व इस स्त्रीसंज्ञक गंगाको प्रणाम करतेहो उसी कारण मेरे दुःख

होताहै इस लिये हे देव ! जबतक विशेषकर सन्ध्या व गंगाजी को न छोंड़ोगे तबतक मेरी प्रसन्नता न होगी ऐसा कहकर इसके अनन्तर आपही प्रार्थना करते हुये भी महादेवजी का निरादर कर वे पार्वती देवी विशेषकर व्रतमें स्थित हुई तदनन्तर उन महादेवजी ने चिन्तन किया कि यह क्या कारण स्थित है कि जिससे ये वियोगिनी भी पार्वती जी मेरी उत्कंठा नहीं करती हैं व किसी प्रकार भी प्रियवचन से न प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं ॥ १२ । १३ । १४ । १५ ॥ देवी (पार्वती) जी झूंठही ईर्षा को धारे हैं यह थोड़ा कारण नहीं है तदनन्तर मन्त्र को विचारकर इसके अनन्तर अतिसूक्ष्म ज्ञानसे ध्यान धरकर परमेश्वर (सदाशिव) जी ने उस

तः ॥ १२ ॥ यावन्नकुरुषेदेवतावत्तुष्टिर्नमेभवेत ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी विशेषव्रतमास्थिता ॥ १३ ॥ अत्रमन्यन्महादेवं प्रार्थयानमपिस्वयम् ॥ ततःसञ्चिन्तयामास किमेतत्कारणंस्थितम् ॥ १४ ॥ वियुक्तापिममोत्कण्ठंयेनैषाप्रकरोतिन ॥ नचसाम्नाव्रजेत्तुष्टिं कथञ्चिदपिपार्वती ॥ १५ ॥ मृषेर्ष्याधारिणीदेवी नैतत्स्वल्पंहिकारणम् ॥ ततोविचार्य्यतन्मन्त्रंवि ज्ञायपरमेश्वरः ॥ १६ ॥ ध्यानंकृत्वासुसूक्ष्मेण ज्ञानेनाथस्वयंततः ॥ तेनमन्त्रेणतांमूर्तिमीशानाख्यांविशेषतः ॥ १७ ॥ सम्यगाराधयामास संपूज्यात्मानमात्मना ॥ यथादेव्यात्मभूतानिपृथक्कृत्वाचपञ्चच ॥ १८ ॥ पूजितानित थादेवाः सर्वेषामपिसंस्थिताः ॥ तानेवपूजयामास पृथक्कृत्वासमाधितः ॥ १९ ॥ नियोज्यचपुनर्वाथततःपूजांस माचरेत् ॥ यस्मात्कश्चित्परंनास्ति पूज्यपूज्यःसदाचयः ॥ २० ॥ ऐश्वर्य्यात्सर्वदेवानामीशानस्तेननिर्म्मितः ॥ एवंया वत्सईशानंसमाराधयतिप्रभुः ॥ २१ ॥ तावद्देवीसमायातामन्त्राकृष्टाचयत्रसः ॥ ततःप्रोवाचतंदेवं प्रणिपत्यकृताञ्ज

वृत्तान्त को जानकर उसके उपरान्त आपही उस मंत्रसे विशेषकर ईशाननामक उस मूर्ति को आत्माही से आत्मा को भलीभांति पूजन कर उत्तम विधिसे आराधन किया जिसप्रकार पांच महाभूतों को अलग करके देवीजी ने पूजन किया था वैसेही जे पांच तत्त्व समस्त प्राणियों के भी स्थितहैं उन्हीं को समाधिसे अलग करके सदाशिवदेवजी ने पूजन किया ॥ १६ । १७ । १८ । १९ ॥ व फिर नियोगकर याने एकहीमें मिलाकर तदनन्तर पूजन किया जिनसे कोई श्रेष्ठ नहींहै व जे पूजनीयोंके पूजने योग्यहैं॥ २० ॥ उनने समस्त देवताओंके ऐश्वर्य्यसे ईशानजीको निर्मितकिया इसप्रकार जबतक वे समर्थवान् शिवजी ईशानदेवको भलीभांति आराधन करतेथे॥ २१ ॥

तबतक मन्त्रसे खींचीहुई पार्वतीदेवी वहां भलीभांति आई जहांपर कि वे सदाशिवजी थे तदनन्तर उन शिव देवको प्रणाम कर हाथोंको जोड़ेहुई उनने कहा ॥ २२ ॥ कि हे विभो ! मैंने समस्त वृत्तान्त को जाना कि मुझ को छोडकर तुमको कोई प्रिय नहीं है इसलिये हे प्रभो ! आइये जहां तुम चाहते हो वहां चलूं ॥ २३ ॥ हे देव ! मैंने जो तुम्हारे वचन को नहीं किया वह सब मेरा क्षमा कीजियेगा तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजीने उन पवित्र मुसक्यानवाली पार्वतीजी को आ-लिङ्गनकर ॥ २४ ॥ व उच्च प्रकार से बिहँसकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से वह कहा कि तुमने महाभूतोंसे उठे (उपजे) हुये जो इस उत्तम शरीरको निर्मित किया

लिः ॥२२॥ ज्ञातंमयाविभोस्सर्वं नमान्त्यक्त्वातवप्रियम्॥तस्मादागच्छगच्छामो यत्रत्वंवाञ्छसिप्रभो ॥ २३ ॥ क्षम्य तांदेवमेसर्वं नकृतंयद्वचस्तव ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तामालिङ्ग्यशुचिस्मिताम् ॥ २४ ॥ इदमूचेविहस्योच्चैर्मेघगम्भीर यागिरा ॥ यैषात्वयात्मभूतोत्था निर्मितापरमातनुः ॥ २५ ॥ एतांयाकामिनीकाचित्पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ अनेनचवि धानेन तस्याभर्ताभविष्यति ॥ २६ ॥ तृतीयायांविशेषेणयावत्संवत्सरंशुभे ॥ सालभिष्यतिसत्कान्तं पुत्रदंसर्वकाम दम् ॥ २७ ॥ तथैतांमामकींमूर्तिमीशानाख्यांचयेनराः ॥ तेषांदुष्टाचयाकान्तासौम्यासैवभविष्यति ॥२८॥ येपुनःकाम नाहेतोःपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥ यान्कामान्मनसिस्थाप्यताल्लँभिष्यन्तिसंशयम् ॥२९॥ निष्कामावाथयेमर्त्याःपूज यिष्यन्तिसर्वदा ॥ तेयास्यन्तिपरांसिद्धिंजरामरणवर्जिताम् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वामहादेवो वृषमारोप्यतांप्रियाम् ॥

है ॥ २५ ॥ इसको जो कोई स्त्री भक्ति से इसी विधि के द्वारा पूजैगी उसका पतिहोगा ॥ २६ ॥ व हे शुभे ! संवत्सर पर्य्यन्त जो स्त्री विशेषकर तीजतिथि में पूजन करैगी वह उत्तम मनोहर व पुत्रदायक और समस्त कामनाओं के देनेवाले पतिको पावैगी ॥ २७ ॥ वैसेही जो मनुष्य ईशान नामक इस मेरी मूर्तिको पूजैंगे उनकी जो दुष्टा स्त्री होतीहै वही सौम्यस्वभाववाली होजावैगी ॥ २८ ॥ व फिर जो मनुष्य जिन कामनाओंको मन में स्थापित कर कामना के कारण भक्तिसे पूजैंगे उन का-मनाओं को भलीभांति पावैंगे ॥ २९ ॥ अथवा जे अकाम मनुष्य सदैव पूजनकरैंगे वे वृद्धता व मृत्युसे रहितवाली उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर

महादेवजी उस प्यारीपार्वती को बैलपर आरोपितकर व पश्चात् आप सवार होकर कैलास पर्वतको चलेगये ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि इस लिये तुम्हारी जो यह कन्या है वह सालभर विशेपकर तीजतिथि में उन शुभदायिनी पञ्चपिण्डमयी गौरी को शीघ्रही आराधन करै उसी आराधन से मुख के देखनेवाले व अतिप्रीति वालें और स्वरूपादि गुणों से संयुत उत्तम पति को पावैगी ॥ ३२ । ३३ ॥ शाण्डिली बोली कि ऐसा कहकर तदनन्तर मेरी मातासे विदाकिये हुये मुनिनायक नारदजी प्रीति से तीर्थयात्रा को चलेगये ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! कुमारी भी भलीभाति टिकी हुई मैंने भी पति की कामनासे उन नारदजी की आज्ञासे अगहन महीने के

स्वयमारुह्यपश्चाच्चकैलासंपर्वतंगतः ॥३१॥ नारदउवाच ॥ तस्मात्तवसुतेयंयातामाराधयतुद्रुतम् ॥ पञ्चपिण्डमयांगौरींयावत्संवत्सरंशुभाम् ॥३२॥ तृतीयायांविशेषेण ततःप्राप्स्यतिसत्पतिम् ॥ मुखप्रेक्षमतिप्रीतं सुरूपादिगुणैर्युतम् ॥ ३३ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो नारदःप्रययौततः ॥ तीर्थयात्रांप्रतिप्रीत्याममामात्राविसर्जितः॥३४॥ मयापिचतदादेशात्कौमार्य्यापिचसंस्थया॥सद्भक्त्यावत्सरंयावत्पूजितापतिकाम्यया॥३५॥तृतीयांविशेषेणमार्गमासादितःशुभे ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्दानैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३६॥ तत्प्रभावादयंप्राप्तोजैमिनिर्नामसद्द्विजः ॥ कात्यायनियथादृष्टस्त्वयाकिंकीर्तितःपरैः ॥३७॥ तस्मात्त्वमपिकल्याणि पूजयैनांसमाहिता ॥ संप्राप्स्यसिसुसौभाग्यंमैत्रेय्यासदृशंशुभे ॥३८॥ त्वयानपूजिताचेयं कौमार्य्येवर्तमानया ॥ यावत्संवत्सरंगौरीतृतीयायांनचाधिकम् ॥३९॥ सापत्न्यंतेनसञ्जातं सौभाग्येपिनिरर्गले ॥ यथोक्तविधिनादेवि सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ४० ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वाकात्यायनी

प्रारम्भ से सालभर व विशेषकर तीज तिथिमें उत्तम भक्तिसे अनेकप्रकारके नैवेद्य दानों से व चन्दन माला अनुलेपनों से उन पंचपिण्डिका गौरी का पूजन किया है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे कात्यायनि ! उसी के प्रभाव से जैसे कि तुमने देखा है वैसेही जैमिनिनामक उत्तम ब्राह्मण मिले हैं अन्य वचनों के कहने से क्या है ॥ ३७ ॥ इस लिये हे कल्याणि, शुभदायिके ! सावधान होतीहुई तुमभी इन पंचपिण्डिका गौरी को पूजन करो तो मैत्रेयी के समान उत्तम सौभाग्यको भलीभांति पावोगी ॥ ३८ ॥ और कुमारपन में वर्तमान तुमने अधिक नहीं किन्तु वर्षपर्यन्त इन गौरीजी को यथोक्त विधि से नहीं पूजन किया उसीसे हे देवि ! बिन रोंक टोंक सौभाग्य

में भी सापत्न्य (सौतिभाव) उत्पन्न हुआ यह मैंने सत्य कहा है ॥ ३९ । ४० ॥ सूतजी बोले कि जो शांडिलीने कहा उस समस्त चरितको कात्यायनी जी सुनकर तदनन्तर उनको प्रणामकर प्रसन्न होती हुई अपनेही घरको चली गईं ॥४१॥ इसके अनन्तर अगहन महीनेको भलीभांति प्राप्त होनेपर वर्षपर्य्यन्त शुभदायक तृतीया तिथि में हर्ष कियेहुई कात्यायनी ने उन गौरी देवी का पूजन किया ॥ ४२ ॥ व मीठे या निर्मल अन्नवाले रसीले भोजनों से गौरी को भोजन कराया तदनन्तर इन कात्यायनी जीके पतिने आकर व यह वचन कहा कि अनुरागी व कामदायक मुझ पतिसे सदैव रमण करो ॥ ४३ ॥ इसलिये हे शुभे ! आइये अपनेही घरको चलैं ऐसा

सर्वं शाण्डिल्यायत्प्रकीर्तितम् ॥ ततःप्रणम्यतांहृष्टास्त्वमेवभवनंययौ ॥ ४१ ॥ मार्गशीर्षेथसम्प्राप्ते तृतीयादिवसेशुभे ॥ तांदेवींपूजयामास वर्षयावत्कृतक्षणा ॥ ४२ ॥ गौरींसम्भोजयामास मृष्टान्नैर्भोजनैरसैः ॥ ततोऽस्याःपतिरागत्य वच नंचेदमब्रवीत् ॥ मयाकान्तेनरक्तेन कामदेनसदैवतु ॥ ४३ ॥ तस्मादागच्छगच्छामस्स्वमेवभवनंशुभे ॥ एवमुक्त्वातुतां हृष्टांगृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ ४४ ॥ जगामभवनंपश्चात्पुलकाङ्कितगात्रिकाम् ॥ ततःपरंतयासार्द्धं वर्ततेहर्षितानन:॥४५॥ मैत्रेय्यासदृशोयद्वद्विशेषेणसर्वदा ॥ ततस्संजनयामासतस्यांपुत्रंगुणान्वितम् ॥ ४६ ॥ कात्यायनाभिधानञ्च यज्ञ विद्याविचक्षणम् ॥ पुत्रोवररुचिर्यस्यबभूवगुणमागरः ॥ ४७ ॥ सर्वज्ञस्सर्वकृत्येषु वेदवेदान्तपारगः॥स्थापितोत्रगणे शस्तु येनविद्यार्थिनांकृते ॥ ४८ ॥ तमाराध्यविशेषेण चतुर्थ्यांशुक्रवासरे ॥ वेदान्तकृत्सविप्रस्स्यात्सदाजन्मनिजन्म

कहकर व रोमांचित अंगोंवाली उस हर्षित कात्यायनी को दाहिने हाथमें पकड़कर पश्चात् घरको चलेगये तदनन्तर प्रसन्न आननवाले होतेहुये याज्ञवल्क्य जी उस कात्यायनी के साथ वैसेही मैत्रेयीके समान वर्तमान होते थे जैसे कि सदैव अविशेषसे थे तदनन्तर याज्ञवल्क्यजीने उन कात्यायनीमें कात्यायन नामक गुण संयुत पुत्रको पैदाकिया जोकि यज्ञविद्यामें चतुरथे व जिन कात्यायन जीके गुणोंके समुद्ररूप वररुचि उत्पन्नहुये हैं ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ जोकि समस्त कार्य्यों में सर्वज्ञ व वेदों और वेदान्तों के पारगामीहुये हैं व जिन वररुचिने विद्यार्थियों के लियेगणेश जीको स्थापन कियाहै ॥ ४८ ॥ शुक्रवार को चौथि तिथिमें विशेषकर उन

गणनायक को आराधकर वह सदैव जन्म २ में वेदान्तकर्ता ब्राह्मण होताहै ॥ ४९॥ व असमर्थ से जो उस आराधनको धनसे ग्रहण करताहै वह विशेषकर वेद वेदांगों
का पारगामी ब्राह्मण होताहै ॥ ५० ॥ व सदैव यज्ञोंके करनेवाले व विद्वानोंके घरमें जन्म पाताहै और कभी निन्दित व मूर्खोंके घरमें किसी प्रकार नहीं जन्मको
प्राप्तहोताहै ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यईशानोत्पत्तिपञ्चपिण्डिकागौरीमाहा
त्म्येवररुचिगणपतिस्थापनंनामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ● ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

नि ॥ ४९ ॥ अशक्त्यावाथतद्यस्ययोगृह्णातिधनेनच ॥ सविशेषाद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५० ॥ विदुषाञ्चगृहेज
न्म याज्ञिकानांसदालभेत् ॥ नकदाचित्तुमूर्खाणां निन्दितानांकथञ्चन ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे
नागरखण्डेश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यईशानोत्पत्तिपञ्चपिण्डिकागौरीमाहात्म्ये वररुचिगणपतिस्थापनंनामाष्टाविं
शत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

ऋषयऊचुः ॥ त्वयासूतजतत्रस्थं याज्ञवल्क्यस्यकीर्तितम् ॥ तीर्थंवररुचेश्चैव वैनायक्यंप्रपद्यते ॥ १ ॥ कात्यायनस्य
नप्रोक्तंकिञ्चित्तत्रमहामते ॥ किंवातेनकृतंनैव किंवातेविस्मृतंगतम् ॥ २ ॥ तस्मादाचक्ष्वनःशीघ्रं यदिकिञ्चिन्महा
त्मना ॥ क्षेत्रेत्रनिर्म्मितंतीर्थं सर्वतीर्थप्रदायकम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ तेनवास्तुपदंनाम तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ कात्याय
नेनमन्त्रेण सर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ ४ ॥ चत्वारिंशत्त्रिभिर्युक्तादेवतायत्रपञ्चच ॥ पूज्यन्तेपूजिताश्चापि सिद्धिंयच्छ

दो० । हाटकेश के क्षेत्रमहँ तीर्थ वास्तुपद नाम । इकसौ उन्तिसमें कहत सोइ चरित सुखधाम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! वहांपर स्थितहुये याज्ञवल्क्य
के तीर्थको कहा व वररुचि के तीर्थको तुमने कहा जोकि विनायकवाले स्थानको प्राप्तहै ॥ १ ॥ हे महामते ! उस क्षेत्रमें कात्यायन जीके किसी तीर्थको नहीं कहा
क्या उनने कियाही नहीं या क्या तुमको भूलगया ॥ २ ॥ इसलिये कात्यायन महात्माने इस क्षेत्रमें यदि समस्त तीर्थोंके देनेवाले किसी तीर्थको निर्माण कियाहै तो
शीघ्रही कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि उस क्षेत्र में उन कात्यायन ने मनुष्यों के समस्त कामदायक वास्तुपद नामक अतिउत्तम तीर्थ को निर्माण कियाहै ॥ ४ ॥

जहांपर कि तीन से संयुत चालीस और पांच याने अड़तालीस देवता पूजेजाते हैं और पूजेहुये भी उसीक्षण सिद्धिको देते हैं ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! वहांपर टिकेहुये देवता किस कारण पूजेजाते हैं व नामके विभागसे अलग २ कहिये ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय काले दांतोंवाला व भयानक व अति उग्र तथा रौद्रकोई बड़ाभारी अपूर्व प्राणी धरातल से निकला ॥ ७ ॥ जोकि दुबले मुखवाला व कीलोंके समान कर्णोंवाला और उठेहुये बालोंवालाथा जिसको दानवेन्द्र (बलि) ने शुक्रसे दिखलायेहुये मंत्रों के द्वारा देवताओं व विशेषकर मनुष्यों के नाशके लिये खींचाथा जोकि समस्त शस्त्रों व अस्त्रों के अवध्य (न मारने योग्य)

न्तितत्क्षणात् ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्तद्देवताःसूतपूज्यन्तेतत्रसंस्थिताः ॥ नामतश्चविभागेनकीर्तयस्वपृथक्
पृथक् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंकिञ्चिन्महद्भूतं निर्गतंधरणीतलात् ॥ अपूर्वंरौद्रमत्युग्रंकृष्णदन्तंभयानकम् ॥ ७ ॥
शङ्कुकर्णंकृशास्यञ्च ऊर्ध्वकेशंभयानकम् ॥ देवानांनाशनार्थायमानुषाणांविशेषतः ॥ ८ ॥ आकृष्टंदानवेन्द्रेण म
न्त्रैःशुक्रप्रदर्शितैः ॥ अवध्यंसर्वशस्त्राणामस्त्राणांचविशेषतः ॥ ९ ॥ अथदेवास्समालोक्य तादृग्रूपंभयावहम् ॥ जघ्नुः
शस्त्रैश्शितैश्चित्रैःकोपेनमहतान्विताः ॥ १० ॥ नैवशेकुस्तदङ्गेषु प्रहर्तुंयत्नमास्थिताः ॥ भक्ष्यन्तेकेवलंतेन शतशोथ
सहस्रशः ॥ ११ ॥ अथतेयत्नमास्थायसर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वातंभूतमभिदुद्रुवुः ॥ १२ ॥ ततस्संगृह्य य
त्नेन सर्वगात्रेषुसर्वतः ॥ तच्चपञ्चगणैर्देवैःपातितंधरणीतले ॥ १३ ॥ उपविष्टास्ततस्तस्यसर्वेभूत्वासमन्ततः ॥ प्रहारान्सं
प्रयच्छन्तिनलगन्तिचतस्यते ॥ १४ ॥ आथर्वणेनसूक्तेनजातंचामृतबिन्दुना ॥ तद्भूतंप्रेषितंदैत्यैर्मुण्डेनचतदन्तिके ॥ १५ ॥

था ॥ ८ । ९ ॥ इसके अनन्तर देवताओं ने वैसे रूपवाले भयदायक भूतको देखकर बडे क्रोधसंयुत होकर पैने व विचित्र शस्त्रोंसे हनन किया ॥ १० ॥ व यत्नमें टिके हुये देवता उसके अङ्गोंमें प्रहार करनेके लिये समर्थ न हुये किन्तु केवल उस से सैकड़ों व हजारों भक्षण किये जातेथे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त इन्द्र समेत वे समस्त देवता यत्न में स्थितहोकर व ब्रह्माको अगाडीकर उस प्राणी के सामने दौड़े ॥ १२ ॥ तदनन्तर देवताओं के पांच यूथोंने यत्नसे समस्त अङ्गोंमें सबओर भलीभांति पकड़ कर उसको भूतल में गिराया ॥ १३ ॥ तदनन्तर समीप बैठेहुये समस्त देवता उसके सबओर होकर प्रहारों को देतेथे परन्तु वे उसके नहीं लगतेथे ॥ १४ ॥ क्योंकि

अथर्वण वेदवाले सूक्त (स्तोत्र) के द्वारा अमृत बूंदसे उपजाहुआ वह भूत दैत्योंसे व मुण्ड से उस बलिके समीप पठायागयाथा॥१५॥इसप्रकार हजारवर्षके अन्त तक वह भूत वैसाही स्थितरहा क्योंकि वे देवता डरसे नतो छोड़तेथे और न मारनेके लिये समर्थहुये ॥ १६ ॥ ब्रह्मा उस महाभूत के उदरपै स्थितथे व जे इन्द्रादिक देवताथे वे कोधित होतेहुये चारों दिशाओं में टिकेथे ॥ १७ ॥ तदनन्तर भलीभांति टिकेहुये उन दैत्योंने आपस में सलाह किया कि शुक्रसे रचेहुये इस भयानक भूत के उसीक्षण इस सुरसंहार में एकही उपाय कहागया है तदनन्तर वे बड़े बलिष्ठ हज़ारों दानव पैने शस्त्रों को लेकर अनेक प्रकार के शब्दों को करतेहुये भलीभांति

एवंवर्षसहस्रान्तेतत्तथैवव्यवस्थितम् ॥ नमुञ्चन्तिभयात्तेतुनहन्तुंशक्नुवन्तिच ॥ १६ ॥ तस्योदरेस्थितोब्रह्माश क्राद्याश्चामराश्चये ॥ चतुर्दिक्षुस्थिताःक्रुद्धामहद्भूतस्यसंस्थिताः ॥ १७ ॥ ततस्तेदानवास्सर्वे मन्त्रंचक्रुःपरस्परम् ॥ अ स्यभूतस्यरौद्रस्य शुक्रसृष्टस्यतत्क्षणात् ॥ १८ ॥ एकएवात्रनिर्दिष्ट उपायोदेवसंक्षये ॥ ततःशस्त्राणितीक्ष्णानिदान वास्तेमहाबलाः ॥ १९ ॥ मुञ्चन्तोविविधान्नादान्समाजग्मुस्सहस्रशः ॥ एतस्मिन्नन्तरेविष्णुश्चागतस्तत्रतत्क्षणात् ॥ २० ॥ आहभूतंतदाविष्णुर्वचसाह्लादयन्निव ॥ योयस्मिन्संस्थितोगात्रेदेवःशुक्रसमुद्भव ॥ २१ ॥ तत्रपूजांसमादायतस्मात्त्वां तर्पयिष्यति ॥ नैवंविधातुलोकेस्मिन्पूजादेवस्यसंस्थिता ॥ २२ ॥ कस्यचिद्यादृशीतेथ मयासंप्रतिपादिता ॥ ततस्तेन प्रतिज्ञातमविकल्पेनचेतसा ॥ २३ ॥ एवंतेहंकरिष्यामिपरंमेवचनंशृणु ॥ यदिकश्चिन्नमेपूजां करिष्यतिकदाचन ॥ २४ ॥ कथंचिन्मानवःकश्चित्समेभुक्तोभविष्यति ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोक्ते ततोदेवेनचक्रिणा ॥ भूतंतुनिश्चलं

आये इसी अवसर में उसीक्षण वहां विष्णुजी आगये ॥ १८ । १९ । २० ॥ व उस समय वचन से आनन्द करतेहुये से विष्णु जी भूतसे बोले कि हे शुक्रसमुद्भव ! जो देवता जिस अङ्ग में भलीभांति टिकाहै ॥ २१ ॥ वह वहींपर पूजनको भलीभांति लेकर उससे तुमको तृप्तकरैगा और इस संसार में किसी देवताका इसप्रकार का पूजन नहीं संस्थितहै जैसी कि मैंने तुम्हारी संसिद्धि कियाहै तदनन्तर उस भूतने विकल्परहित चित्तसे प्रतिज्ञाकिया ॥ २२ । २३ ॥ कि मैं ऐसाही तुम्हारा आयसु करूंगा परन्तु मेरे वचनको सुनिये कि यदि कोई पुरुष कभी मेरा पूजन किसी प्रकारसे न करैगा तो वह कोई मनुष्य मेरा भोजन कियाहुआ होवैगा ॥ २४ । २५ ॥

सूतजी बोले कि उसके उपरान्त चक्रधारी देव (विष्णु) जीको हां यही कहनेपर भूत तो अचल होगया तदनन्तर बड़े हर्षसे संयुत तथा शस्त्रहाथोंवाले देवताओंने उस भूतको छोड़करके उठकर लज्जारहित व गयेहुये क्रोधवाले तथा दीन वचनोंको कहनेवाले व भागने में उत्कंठित दैत्यों को पैने शस्त्रोंसे मारा तदनन्तर दैत्यों के निपातित होने (मरने) से स्वस्थ होकर वे विष्णु जी ॥ २६ । २७ । २८ ॥ कमलसे उपजेहुये (ब्रह्मा) से बोले कि हे ब्रह्मन् ! इस भूतका नाम कीजिये ब्रह्मा बोले कि हे हरे ! इसने तुम्हारे वचन को वास्तु यह ऐसा कहा है इसलिये वास्तु नाम होगा इसप्रकार विष्णुजी से कहकर व बुलाकर विश्वकर्मा के लिये विस्तार

जातंहर्षेणमहतायुताः ॥ २६ ॥ ततोदेवाःसमुत्थाय तत्त्यक्त्वाशस्त्रपाणयः ॥ जघ्नुश्चनिशितैःशस्त्रैःपलायनसमुत्सु
कान् ॥ २७ ॥ लज्जाहीनान्गतामर्षान्दीनवाक्यप्रजल्पकान् ॥ ततःस्वस्थस्सभूत्वातु हरिर्दैत्यैर्निपातितैः ॥ २८ ॥
प्रोवाचपद्मजंनाम भूतस्यास्यकुरुष्वभोः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अनेनतववाक्यस्य प्रोक्तंवाक्यंहरेयतः ॥ २९ ॥ वास्त्वेतादितिय
स्माच्चतस्माद्वास्तुभविष्यति ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशमाहूयविश्वकर्म्मणे ॥ ३० ॥ विधानंकथयामास पूजार्थंविस्तरान्वि
तम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राहयाज्ञवल्क्यसुतःसुधीः ॥ ३१ ॥ विश्वकर्म्माणमाहूय प्रथमंद्विजसत्तमः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेम
माश्रमपदंकुरु ॥ ३२ ॥ अनेनैवविधानेन प्रोक्तेनतुमहामते ॥ ततोहंसकलंबुद्ध्वा तद्विनेष्यामिभूतले ॥ ३३ ॥ म
मावबोधनार्थाय तस्मादागच्छसत्वरम् ॥ ततस्संप्रेषयामास तंब्रह्मापितदन्तिकम् ॥ ३४ ॥ विश्वकर्म्माणमाहूयस्वसु
तस्यहितेस्थितः ॥ विश्वकर्म्मापितत्रैत्यवास्तुपूजांयथोदिताम् ॥ ३५ ॥ चकारब्रह्मणाप्रोक्तांयादृशींसकलांततः ॥

संयुक्त विधिको पूजन के निमित्त कहा इसी अवसर में उत्तम बुद्धिवाले द्विजोत्तम याज्ञवल्क्य के पुत्रने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि हे महामते ! हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें इसी कहेहुये विधान से पहले मेरे आश्रमस्थानको कीजिये तदनन्तर मैं सब जानकर उसको भूतल में लाऊंगा ॥२९।३०।३१।३२।३३ ॥ इसलिये मेरे ज्ञानके लिये शीघ्रही आइये तदनन्तर अपने पुत्रके हितमें टिकेहुये ब्रह्माने भी उन विश्वकर्माको बुलाकर उनके समीप भलीभांति पठाया विश्वकर्माने भी वहां आकर

[illegible] (मूल) [illegible] ॥ ३४ । ३५ । ३६ । ३७ ॥ [illegible] (मूल) [illegible] ॥ ३८ । ३९ ॥ [illegible]

कात्यायनोपिनामज्ञां दृष्ट्वानक्रोधसंकुलः ॥ ३६ ॥ तदानिश्चलिताथीय शालाकर्मादिपूर्तिकाम् ॥ एवंवास्तुपदंजातं
तस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥ अस्मिन्दृष्टेनरःपापाद्ग्रहान्मुच्येतकर्मणः ॥ तथानप्राप्नुयाद्दोषं गृहजातंकथंचन ॥
३८ ॥ शिलोत्थंकुणपोत्थंनकुनास्तुजमथापि न ॥ वैशाखस्यतृतीयायांशुक्लायांरोहिणीयदा ॥ ३९ ॥ तत्पदंनिर्मितंतत्र
वास्तोस्तेनमहात्मना ॥ तस्मिन्नपिचयःपूजां करोतिविधिनानरः ॥ ४० ॥ तस्ययःकुरुतेमर्त्यःसम्यक्तत्फलमाप्नुयात् ॥
गृहंदोषान्वितंप्राप्य शिल्पादिभिरुपद्रुतम् ॥ ४१ ॥ तस्यापिसकलंप्राप्य सपृह्यिातिनदिनात ॥४२॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रेवास्तुपदोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ आजापालो
सूतउवाच ॥ तथान्यापिचतत्रास्तिदेवताद्विजसत्तमाः ॥ आजापालेतिविख्याता सर्वरोगभयापहा ॥ १ ॥

[illegible] ॥ ४० । ४१ । ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे [illegible] ॥ १२९ ॥ [illegible] (मूल) [illegible] ॥ १ ॥ [illegible]

प्रसिद्ध और भी देवता है जोकि समस्त रोगों का क्षयदायक है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब समस्त मनुष्यों के हित में परायण अजापाल राजा हुआ है तब सब रोग अ-
जारूप होगये ॥ २ ॥ उससमय वह भूपति रात्रि में उनको लाकर उस स्थान में धारण करताथा उसी कारण उनका टिकाश्रय स्थान धरातल में समस्त मनुजों से
अजागृह ऐसा कहागया जोकि दर्शनसे पातकोंका विनाशक है हे द्विजोत्तमो ! वहां पर पुरातन समय जो आश्चर्य्य हुआ है उसको मैं तुमलोगों से कहूंगा सावधान
होकर सुनना चाहिये कि उस क्षेत्रमें तपस्वी का रूपधारी कोई ब्राह्मण आया ॥ ३ । ४ । ५ ॥ जोकि तीर्थयात्रा के प्रसङ्गसे रात्रि में प्राप्तहुआ व भलीभांति टिका वह

यदाराजा सर्वलोकहितेरतः ॥ अजारूपाःप्रयान्तिस्मव्याधयस्सकलाद्विजाः ॥ २ ॥ तदारात्रौसमानीय तस्मिन्स्था
नेदधातिसः ॥ ततस्तदाश्रयस्थानमजागृहमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ सर्वैर्जनैर्धरापृष्ठे दर्शनात्पापनाशनम् ॥ तत्राश्चर्य्यम
भूत्पूर्वं यत्तद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४ ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिश्रोतव्यंसुसमाहितैः ॥ तत्रायातोद्विजःकश्चित्क्षेत्रेतापसरूप
धृक् ॥ ५ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन रात्रौप्राप्तस्समाश्रितः ॥ अजावृन्दंसमालोक्य निविष्टंसुसुखान्वितम् ॥ ६ ॥ रोमन्थ
कर्म्मसंसक्तं विश्वस्तमकुतोभयम् ॥ सज्ञात्वामानुषेणात्रभवितव्यमसंशयम् ॥ ७ ॥ नशून्याःपशवोरात्रौ स्थास्य
न्तिविपिनेपिच ॥ आगन्तव्यंकुतोप्याशुतस्मात्तिष्ठामिनिर्भयः ॥ ८ ॥ एवंतस्यप्रसुप्तस्य गतासारजनीततः ॥ तस्य
सुप्तोत्थितस्यैव सुश्रान्तस्यद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ अथयावत्प्रभातेतु समपश्यन्निजान्तनुम् ॥ तावत्कुष्ठादिभीरोगैस्सम
न्तात्परिवारितम् ॥ १० ॥ अशक्तश्चलितुंस्थानादपिचैकपदंक्वचित ॥ तेजोहीनोपिरौद्रेण चिन्तयामासवैद्विजः ॥ ११ ॥

सुखसंयुत व पागुरि कर्म में लगे व विश्वासित और सबकहीं से निडर बैठेहुये अजावृन्द को भलीभांति अवलोकन करके यह जानकर कि यहांपर मनुष्य को निस्सन्देह
होना चाहिये ॥ ६ । ७ ॥ क्योंकि जङ्गल मेंभी रातको शून्य पशु न टिकैंगे कहीं सेभी शीघ्रही किसीको आनाचाहिये इसलिये निडर होकर मैं टिकताहूं ॥ ८ ॥ तद-
नन्तर इसभांति सोयेहुये उस ब्राह्मण की रात व्यतीत हुई हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर प्रातःकाल उस द्विजने जबतक अपने शरीर को देखा तबतक भलीभांति
सहताये व सोकर उठेहुये उस ब्राह्मणका शरीर सबओर कुष्ठादिक रोगों से घिर गया ॥ ९ । १० ॥ व ठिकाने से कहीं एक पग भी चलने के लिये असमर्थ व

भयङ्कर रोगसे तेजरहितभी द्विजने चिन्तन किया ॥ ११ ॥ कि यह क्या कारण है जिससे मेरा शरीर ऐसा संस्थित (प्राप्त) होगया व अचानकही यह रोग हुआ
और मैं चलने के लिये समर्थ नहींहूं ॥ १२ ॥ उस द्विजको इसप्रकार चिन्तन करतेहुये उसीक्षण बारह सूर्य्योंके समान प्रकाशवाला पुरुष भलीभांति आया ॥१३॥
व तदनन्तर उसने उस अजायूथ को नामोंसे अलग २ पुकारा व बायें हाथ में दण्डको लेकर गमन कराया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उस पुरुष ने कहींभी चलने
के लिये असमर्थ व रोगों से सबओर घिरेहुये उस ब्राह्मणको देखा तदनन्तर आदर समेत कहा ॥१५॥ कि हे द्विजोत्तम ! इसप्रकारके तुम इस स्थानमें प्राप्तहुये कौनहो

एवंचिन्तयमानस्य तस्यावि
किमिदंकारणंयेन ममैवंसंस्थितातनुः ॥ अकस्मादेवरोगोयंचलितुंनैवचक्षमः ॥ १२ ॥ एवंचिन्तयमानस्य तस्यावि
प्रस्यतत्क्षणात् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशः पुरुषस्समुपागतः ॥१३॥ तंपूगंकालयामासततःसंज्ञाभिराह्वयत् ॥ पृथक्त्वेनस
मादाय यष्टिंसव्येनपाणिना ॥ १४ ॥ अथाऽपश्यत्सतंविप्रं व्याधिभिःसर्वतोवृतम् ॥ अशक्तंचलितुंक्वापि ततःप्रोवा
चसादरः ॥ १५ ॥ कस्त्वमेवंविधःप्राप्तस्स्थानेचात्रद्विजोत्तम ॥ नास्तिराज्येममव्याधिः कस्यचित्कुत्रचित्स्फुटम् ॥
१६॥अजोनामनरेन्द्रोहं यदितेश्रोत्रमागतः ॥ व्याधयश्छागरूपेण रक्षामिजनकारणात् ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्रूहिशरीर
स्थो यस्तेव्याधिर्व्यवस्थितः ॥ येनाहंनिग्रहंतस्य करोमिद्विजसत्तम ॥ १८ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ तीर्थयात्रापरोहञ्चभ्र
मामिक्षितिमण्डलम् ॥ क्रमेणात्रसमायातः क्षेत्रेस्मिन्हाटकेश्वरे ॥१९॥निशिचक्रेनृपश्रेष्ठवासस्संचिन्तितोमया॥
दृष्ट्वामीपशवोभूप मानुषैर्भाव्यमेवहि ॥ २० ॥ ततश्चात्रप्रसुप्तोहंतत्पशूनांसमीपतः ॥ अथयावत्प्रभातेहंप्रपश्यामिनि

यह प्रकटहै कि मेरी राज्यमें कहींपर किसी पुरुषके रोग नहीं है ॥ १६ ॥यदि तुम्हारे कर्णमें आयाहो तो मैं अजनामक नरेशहूं मनुष्यों के कारण छागरूप से रोगोंकी
रक्षा करताहूं ॥ १७ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे शरीर में टिकाहुआ जो रोग व्यवस्थितहो उसको कहो कि जिससे मैं उसका दण्डकरूं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोला
कि तीर्थयात्रा में परायण मैं भूमण्डल का भ्रमण करताहूं क्रमसे इस हाटकेश्वर क्षेत्रमें भलीभांति आया ॥ १९ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ, भूप ! इन पशुओंको देखकर मैंने चि-
न्तन किया कि मनुष्यों को होनाही चाहिये और रात्रिमें निवास किया ॥ २० ॥ तदनन्तर उन पशुओं के समीप मैं यहां सोरहा इसके अनन्तर प्रातःकाल जबतक

मैं अपने शरीर को देखूं ॥ २१ ॥ तबतक कुष्ठादिक रोगों से सबओर घिरगया हे नृपश्रेष्ठ ! मैं और किसी कारण को तत्त्वसे नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ हे नृपोत्तम ! बार २ इस बहुत कहनेसे क्याहै इसलिये जिसप्रकार मेरा शरीर नीरोग होवै वैसेही करो ॥ २३ ॥ उसके उपरान्त अजापाल भूपालने उन रोगोंसे कहा कि किसने मेरी आज्ञाको भङ्गकिया है व इससमय कौन बाधने योग्यहै ॥ २४ ॥ रोग बोले कि हे भूपाल ! इस कार्यमें तुम किसी प्रकार क्रोध मत करो जिसकारण इससमय यह ब्राह्मण तीन रोगों से पैठाहुआहै ॥ २५ ॥ राजयक्ष्मा, कुष्ठ व विचर्च्चिका रोग द्विजोत्तम में है संसर्ग से उपजेहुये ये दोष आज मुझसे कहेगये ॥ २६ ॥ इनके मध्यमें

जांतनुम् ॥ २१ ॥ तावत्कुष्ठादिरोगैश्च समन्तात्परिवारितम् ॥ नान्यत्किञ्चिन्नृपश्रेष्ठ कारणंवेद्मितत्त्वतः ॥ २२ ॥ किमेतेननृपश्रेष्ठभूयोभूयःप्रजल्पता ॥ बहुनाकुरुतस्मान्मेयथास्यान्नीरुजातनुः ॥ २३ ॥ ततस्तेव्याधयःप्रोक्ता अजापालेनभूभुजा ॥ केनाज्ञाखण्डितामेद्य कोबाध्यस्सांप्रतंमम ॥ २४ ॥ व्याधयऊचुः ॥ माकोपंकुरुभूपालकृत्येस्मिंस्त्वं कथंचन ॥ यस्माद्देषद्विजोविष्टस्सांप्रतंव्याधिभिस्त्रिभिः ॥२५ ॥ राजयक्ष्माचकुष्ठंच पामाचद्विजसत्तमे ॥ एतेसंसर्गजादोषामयाद्यपरिकीर्तिताः ॥ २६ ॥ एतेषांप्रथमौयौद्वौनिवृत्तिरहितौस्मृतौ ॥ औषधैश्चैवमन्त्रैश्चशेषानाशंव्रजन्ति हि ॥ २७ ॥ आभ्यांचब्रह्मशापोस्तियेननास्तिनिवर्तनम् ॥ तस्मादत्रनृपश्रेष्ठ कुरुयत्तेक्षमंभवेत् ॥ २८ ॥ एतेनब्राह्मणेनैतेस्पृष्टाराजंस्त्रयोपिच ॥ तस्माद्यावत्तनुश्चास्यस्यातांतावदसंशयम् ॥ २९ ॥ अपरंशृणुभूपाल वचनन्तुमुखाच्च्युतम् ॥ हितायसर्वजन्तूनां तवश्रेयोविवृद्धये ॥ ३० ॥ यत्रस्थानंचिरंतत्र मेदिन्यांविहितंनृप ॥ पुरीषंचसमाविद्धं सानष्टा

पहलेवाले जो दो रोगहैं वे निवृत्ति (नाश) से रहित कहेगये हैं और शेष ओषधियों व मंत्रों से नाश होजाते हैं ॥ २७ ॥ इन दोनोंके लिये ब्रह्मशापहै जिससे निवृत्ति नहीं होती है इसलिये हे नृपोत्तम ! इस विषय में जो योग्य होवै उसको करो ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस ब्राह्मणने इन तीनों भी रोगोंको स्पर्श किया है इसलिये जब तक इसका शरीर होवैगा तबतक निरसन्देह दोनों रोग रहैंगे ॥ २९ ॥ हे भूप ! समस्त प्राणियों के हितके लिये व तुम्हारे कल्याण की विवृद्धिके निमित्त मुखसे

हुआ और वह भूमि शीघ्रही नष्टहोगई ॥३१॥
निकलेहुये उत्तम वचनको सुनिये ॥ ३० ॥ कि हे नृप ! पृथ्वी में जहांपर बहुत दिन ठिकाना कियागया वहां विष्ठा संवेधित हुआ और वह भूमि शीघ्रही नष्टहोगई ॥३१॥ हे महाराज ! हम शेष रोग व्यवस्थितहैं जोकि तुमसे छोड़ेहुये
दूसरे समय मेंभी इस भूमिमें आयेहुये जो मनुष्य भूमिका स्पर्श करैंगे वे इसी प्रकारके होवैंगे ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! हम शेष रोग व्यवस्थितहैं जोकि तुमसे छोड़ेहुये मंत्रों व औषधो के भलीभांति अनुगामी होवैंगे ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मशापसे उपजेहुये जौन दो पहलेवाले हैं वे नहीं पवित्र करते हैं उस वचनको सुनकर वह अजापाल नृपभी उसी स्थान में विशेषतासे टिका ॥ ३४ ॥ व उस ब्राह्मणसे फिर कहा कि हे द्विज ! तुमको डरना न चाहिये क्योंकि इस विकराल रोग से मैं तुम्हारी रक्षा

भूमेःस्पर्शंकरिष्यन्ति तेभविष्यन्तिचेदृशाः ॥
मेदिनीद्रुतम् ॥ ३१ ॥ कालान्तरेपियेमर्त्या भूम्यामस्यांसमागताः ॥ भूमेःस्पर्शंकरिष्यन्ति तेभविष्यन्तिचेदृशाः ॥
३२ ॥ वयंशेषामहाराजव्याधयोवैव्यवस्थिताः ॥ त्वयामुक्ताभविष्यामो मन्त्रौषधसमानुगाः ॥ ३३ ॥ नैवंपुनीतोयौचा
द्यौब्रह्मशापसमुद्भवौ ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवस्सोपितस्मिन्स्थानेव्यवस्थितः ॥३४॥ तंब्राह्मणंपुनःप्राह नभेतव्यंत्वयाद्विज ॥
अहंत्वांरक्षयिष्यामि व्याधेरस्मात्सुदारुणात ॥ ३५ ॥ अत्रतस्मात्प्रतीक्षस्व किञ्चित्कालंममाज्ञया ॥ एवमुक्त्वाततश्च
क्रेतदर्थंसुमहत्तपः ॥ ३६ ॥ आराधयन्प्रभक्त्यासम्यक्तांक्षेत्रदेवताम् ॥ मुण्डेनाथर्वशीर्षेण दिवारात्रमतन्द्रितः ॥३७॥
क्षेत्रपालोत्थसूक्तेन वास्तुसूक्तेनचद्विजाः ॥ सिद्धार्थैरक्तपुष्पैश्च गुग्गुलेनसुधूपितैः ॥ ३८ ॥ होमंकुर्वन्नृपः पश्चान्नीलरु
द्रान्विशेषतः ॥ अथनक्तावसानेन तस्माद्धोमात्समुत्थिता ॥ ३९ ॥ भित्त्वाधरातलंदेवी मन्त्राकृष्टाविनिर्गता ॥ देवतात
स्यक्षेत्रस्य ततःप्रोवाचतंनृपम् ॥ ४० ॥ तुष्टाहन्तवभूपालहोमस्यास्यप्रभावतः ॥ विनिर्गताधरापृष्ठात्क्षेत्रस्यास्याधि

करूंगा ॥ ३५ ॥ उसी कारण तुम मेरी आज्ञासे यहांपर कुछेक समय परखिये ऐसा कहकर तदनन्तर बडेभारी तपको किया ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह निरालसी अजापाल नृपति मुण्ड, अथर्वशीर्ष, क्षेत्रपाल से उठेहुये स्तोत्र व वास्तुसूक्तके द्वारा दिनरात उस क्षेत्रदेवता को बडी भक्ति से भलीभांति आराधन करताहुआ व सरसों लाल फूल व गुग्गुल और सुधूपित पदार्थों से होम करता हुआ पश्चात् विशेषता से नील रुद्र मन्त्रोंको जपकिया इसके अनन्तर रात्रि के बीतने से मंत्रके रा खींचीहुई उस क्षेत्रकी देवता देवी उस होम से भलीभांति उठी व भूतलको फोड़कर निकली तदनन्तर उस नृपति से बोली ॥ ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥

हे भूपाल ! इस क्षेत्रकी स्वामिनी कहीहुई मैं इस होमके प्रभावसे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होतीहुई भूतलसे निकली हूं ॥ ४१ ॥ इसलिये हे महाभाग ! कहिये जो तुम्हारा कार्य हो उसको मैं करूं क्योंकि परम प्रसन्नताको प्राप्तहूं उस कारण जो वाञ्छितहो उसको कहो ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि हे देवि ! इस स्थान में विशेषता से तुमको सदैव टिकना चाहिये रोगके संसर्ग से उपजाहुआ दोष जिसप्रकार इस भूमिसे चलाजावै ॥ ४३ ॥ हे सुरेशि ! आजसे लगाकर वैसाही न्याय कियाजावै नहीं तौ इस भूमिके प्रसंगसे मनुष्य विशेषकर रोगग्रस्त होवैंगे जैसे कि अगाड़ी यह देख पड़ताहै व जिसलिये कि बहुत दिनोंसे मुझसे यहांपर रोग टिकाये हुये हैं ॥ ४४ । ४५ ॥

पास्मृता ॥ ४१ ॥ तस्माद्वदमहाभाग यत्तेकृत्यंकरोम्यहम् ॥ परांतुष्टिमनुप्राप्ता तस्माद्ब्रूहियदीप्सितम् ॥ ४२ ॥ रा
जोवाच ॥ अत्रस्थानेसदास्थेयं त्वयादेविविशेषतः ॥ व्याधिसंसर्गजोदोषो भूमेरस्माद्यथाव्रजेत् ॥ ४३ ॥ अद्यप्रभृति
देवेशितथानीतिर्विधीयताम् ॥ नोचेदस्याःप्रसङ्गेन प्रभविष्यन्तिमानवाः ॥ ४४ ॥ व्याधिग्रस्ताविशेषेण यथायंदृश्य
तेपुरः ॥ मयात्रव्याधयःकालं चिरन्तुस्थापितायतः ॥४५॥ भविष्यतिचमेदोषो नोचेद्देविनसंशयः ॥ यथायंब्राह्मणोरो
गात्त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ ४६ ॥ मुक्तोभवतिमेदिन्यामत्रस्थेयंसदात्वया ॥ क्षेत्रदेवतोवाच ॥ एतत्स्थानंमयासर्वं
व्याधिदोषविवर्जितम् ॥ ४७ ॥ विहितंसर्वदैवात्रस्थास्येहमिहसर्वदा ॥ सांप्रतंयोत्रमेस्थानेव्याधिग्रस्तस्समेष्यति ॥
४८ ॥ पूजयिष्यतिमांभक्त्यानीरोगस्संभविष्यति ॥ तस्माद्यद्द्विजेन्द्रोयं मांपूजयतुसादरम् ॥ ४९ ॥ भक्त्यापरमया
युक्तश्शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ अत्रक्षेत्रेपरान्यास्ति विख्याताचन्द्रकूपिका ॥ ५० ॥ तस्यांस्नातुयथान्यायं नित्यमेव

हे देवि ! नहीं तो मुझको दोष होगा इसमें सन्देह नहीं है हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी प्रसन्नता से जिसप्रकार यह ब्राह्मण रोग से मुक्तहोवै वैसेही सदैव तुमको इस पृथ्वी में टिकना चाहिये क्षेत्रदेवता बोली कि इस समस्त स्थानको मैंने सदैवही रोगोंके दोष से रहित किया ॥ ४६ । ४७ ॥ व यहां इस स्थानमें मैं सदैव टिकूंगी इस समय रोगग्रस्त जो पुरुष मेरे इस स्थानमें भलीभांति आवैगा ॥ ४८ ॥ और मुझको भक्तिसे पूजैगा वह नीरोग होवैगा इसलिये परमभक्तिसे संयुक्त व सावधान होता हुआ यह द्विजेन्द्र पवित्र होकर आज मुझको आदर समेत पूजै और इस क्षेत्र में परम प्रसिद्ध अपर चन्द्रकूपिका है ॥ ४९ । ५० ॥ हे भूपते ! उसीमें यह नित्यही

न्यायपूर्वक स्नानकरै जिस चन्द्रकूपिका को पुरातन समय दक्षजीके शापसे संसक्त व क्षयरोग से ग्रस्त चन्द्र महात्माने अपने स्नानके लिये कियाथा वैसेही इस क्षेत्रमें खण्डशिलानामक देवता स्थित है ॥ ५१ । ५२ ॥ सौभाग्यकूपिका में नहाकर वहांपर उस खण्डशिलाको देखै जिस सौभाग्यकूपिका को पुरातन समय कुष्ठ रोग-से ग्रस्त कामदेवने कुष्ठके विनाशके लिये स्नानके निमित्त आदर समेत कियाथा वैसेही हे नृपोत्तम ! यहांपर अप्सराकुण्ड है ॥ ५३ । ५४ ॥ उस कुण्ड में रवि-वार को नहाकर उससे पामा (खुजली या दाद) नष्ट होताहै सूतजी बोले कि तदनन्तर उस ब्राह्मण ने अतिपुण्यदायक चन्द्रकूपिकाको प्राप्तहोकर ॥ ५५ ॥ व

स्वस्नानार्थंक्षयव्याधिग्रस्तेनचमहात्मना ॥ तथाखण्डशिला महीपते ॥ दक्षशापप्रसक्तेन याचन्द्रेणपुराकृता ॥५१॥ याकृताकामदेवेन कुष्ठग्रस्तेनवैपुरा ॥ नाम देवताचात्रतिष्ठति ॥ ५२ ॥ सौभाग्यकूपिकास्नानं कृत्वातांतत्रपश्यतु ॥ तत्रस्नात्वारवावह्नितः ५३ ॥ स्नपनार्थंचकुष्ठस्यविनाशायचसादरम् ॥ तथैवाप्सरसंकुण्डमत्रास्तिनृपसत्तम ॥५४॥ स्नानंकृत्वाचतांदेवींपूजयामा पामाविनश्यति ॥ सूतउवाच ॥ ततस्सब्राह्मणःप्राप्य सुपुण्यांचन्द्रकूपिकाम् ॥ ५५ ॥ तथास्नानं सभक्तितः ॥ यावन्मासंततोमुक्तस्सत्वरंराजयक्ष्मणा ॥५६॥ततस्सौभाग्यकूपींतां दृष्ट्वाकामविनिर्मिताम् ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेन कूपिका विधायाथ पश्यन्खण्डशिलांचताम् ॥ ५७ ॥ तद्वन्मासेननिर्मुक्तःकुष्ठेनद्विजसत्तमाः ॥ ततस्स याविशेषतः ॥ ५८ ॥ ततश्चाप्सरसांकुण्डेस्नात्वैवरविवासरे ॥ पामयासंपरित्यक्तो बुद्ध्यैवविषयात्मकः ॥५९॥ प्रययौवाञ्छितंदेशमनुज्ञातश्चभू ब्राह्मणोजातो द्वादशार्कसमप्रभः ॥ तोषेणमहताविष्टो दत्ताशीस्तस्यभूपतेः ॥ ६० ॥

नहाकर महीने भरतक उस देवीको भक्तिसे पूजन किया तदनन्तर वह शीघ्रही राजयक्ष्मा से छूटगया ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! कामदेवसे बनाई हुई उस सौभाग्यकूपिका को देखकरके स्नानकर व उस खंडशिलाको देखताहुआ उसीप्रकार एक महीने में उस देवी की व विशेषकर कूपिका की प्रसन्नता से कुष्ठसे छूटगया ॥ ५७।५८ ॥ उसके उपरान्त रविवारको अप्सराओंके कुण्डमें स्नानहीकर बुद्धिहीसे विषय आत्मावाला वह पामा (खुजली) से छूटगया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर बड़ी प्रसन्नता से संयुत व उस भूपको आशीर्वाद दियेहुये वह ब्राह्मण बारह सूर्य्योंके समान कान्तिमान् होगया ॥ ६० ॥ व भूपालसे आज्ञा दियाहुआ व उन रोगोंसे

छूटाहुआ वह द्विज बार बार देवीका पूजनकर चाहेहुये देशको चलागया ॥ ६१ ॥ और वह राजाभी उन दोषों को अजारूप देखकरके व उसी ब्राह्मण को देखकर अतिप्रसन्नहुआ ॥ ६२ ॥ व अपनी स्त्री समेत उसी शरीरसे वहां आपही चलागया जहां कि हाटकेश्वर जी टिके हैं ॥ ६३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस लिये कि वह क्षेत्र-देवता देवी अजागृह में स्थितहुई इसलिये सबकहीं अजागृहा प्रसिद्ध हुई ॥ ६४ ॥ यक्ष्मा रोग से ग्रसाहुआ जो पुरुष आजभी उसी विधिसे उस देवता को भलीभांति पूजता है वह शीघ्रही नीरोग होताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजागृहो

भुजा ॥ ताभिर्विमुक्तोदेव्यास्तु पूजांकृत्वापुनःपुनः ॥ ६१ ॥ सोपिराजातुदोषांस्तानजारूपान्विलोक्यच ॥ तमेवब्राह्मणं दृष्ट्वा तथाचसंप्रहर्षितः ॥ ६२ ॥ स्वयंचप्रययौतत्र यत्रस्थोहाटकेश्वरः ॥ तेनैवचशरीरेणनिजकान्तासमन्वितः ॥ ६३ ॥ अजागृहेस्थितायस्मात्सादेवीक्षेत्रदेवता ॥ अजागृहाततःख्यातासर्वत्रैवद्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥ अद्यापियक्ष्मणाग्रस्तो यस्तांपूजयतेनरः ॥ तेनैवविधिनासम्यक् सनीरोगोद्भुतंभवेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजागृहोत्पत्तिर्नामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदादक्षेणक्रुद्धेन पुराशप्तोहिमद्युतिः ॥ तत्सर्वंभवताप्रोक्तं सोमनाथकथानकम् ॥ १ ॥ सांप्रतंवदकामस्य यथाकुष्ठोभवत्पुरा ॥ येनदोषेणशापश्च केनतस्यनियोजितः ॥ २ ॥ शिलाखण्डाचयादेवी तथासौभाग्यकू

त्पत्तिर्नामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । भई सुभाग्यककूपिका अरु तीरथ शिलखड । इकसौ इकतिसमहँ सोई बरणत बुद्धिप्रचंड ॥ ऋषिलोग बोले कि पुरातन समय जब क्रोधित दक्ष जीने चन्द्रमा को शाप दियाहै उस समस्त सोमनाथ जीके कथानक को आपने कहा ॥ १ ॥ व पुरातन समय जिसप्रकार कामदेव के कुष्ठ हुआ और जिस दोष से किसने उनके शाप नियुक्त कियाहै इस समय उस चरितको कहिये ॥ २ ॥ व जो शिलाखण्डा देवीहै वह और सौभाग्यकूपिका वहांपर जिसप्रकार भलीभांति पैदाहुई है

वैसेही हमलोगों से कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय हारीत नामक ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मणहुआ है वानप्रस्थ आश्रम में बसतेहुये उसने उस हाटकेश्वर क्षेत्र में तपस्याको किया ॥ ४ ॥ उसकी पूर्णकला नामक प्रसिद्ध व पतिव्रता स्त्रीहुई जोकि रूप व उदारतादि गुणों से संयुत तथा समस्त गुणों से समुदित (प्रकाशित) व त्रिलोकमें सुन्दरी साक्षात् विष्णु जीकी स्त्री लक्ष्मी के समानथी जिसको देखकर पवित्र या इन्द्रियजितभी पुरुष शीघ्रही कामके वशमें प्राप्तहोवै है ॥ ५ । ६ ॥ किसी समय रति व प्रीति समेत कामदेव भी कामेश्वर के देखने की इच्छासे उसी क्षेत्रमें भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ इसी अवसर में वह पूर्णकला भी वहींपर स्नानके

पिका ॥ यथातत्रसमुत्पन्ना तथास्माकंप्रकीर्तय ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीद्ब्राह्मणोनामहारीतइतिविश्रुतः ॥ सतपस्त त्रसन्तेपेवानप्रस्थाश्रमेवसन् ॥ ४ ॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वीरूपौदार्य्यसमन्विता ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीसाक्षाल्लक्ष्मीरिवम धुद्विषः ॥ ५ ॥ ख्यातापूर्णकलानाम सर्वैस्समुदितागुणैः ॥ यांदृष्ट्वाप्रयतोप्याशुकामस्यवशगोभवेत् ॥ ६ ॥ कदाचि दपिसंप्राप्तस्तस्मिन्क्षेत्रेमनोभवः ॥ सहरत्यातथाप्रीत्याकामेश्वरदिदृक्षया ॥७॥ एतस्मिन्नन्तरेसापि स्नानार्थंतत्रचा गता ॥ कृत्वावस्त्रपरित्यागंप्रविवेशजलाशयम् ॥ ८ ॥ अथतांकामदेवोपि समालोक्यशुभाननाम् ॥ आत्मीयैरपिनि विद्धोहृदयेपुष्पशायकैः ॥ ९ ॥ ततोरतिंपरित्यज्यप्रीतिंचापिनिपीडितः ॥ विजनंकञ्चिदासाद्यप्रसुप्तःसतरोरधः ॥१०॥ गात्रैःपुलकितैस्सर्वैर्निःश्वसान्निःश्वसन्मुहुः ॥ अग्निवर्णान्सुदीर्घांश्च बाष्पपूर्णविलोचनः ॥ ११ ॥ तिष्ठन्सदर्शनेतस्या एकदृष्ट्यावलोकयन् ॥ योगीवसुसमाधिस्थोध्यायंस्तद्ब्रह्मसंस्थितम् ॥ १२ ॥ सापिकामंसमालोक्यसानुरागंपुरःस्थि

लिये आई व वसनोंको परित्यागकर जलाशय में पैठगई ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर कामदेव भी उस उत्तम मुखवाली पूर्णकला को भलीभाति देखकर अपनेभी पुष्पशरों से हृदय में वेधित हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर दुःखित होताहुआ वह कामदेव रति व प्रीति कोभी छोड़करके किसी एकान्त में प्राप्तहोकर वृक्षके नीचे सोरहा ॥ १० ॥ जोकि आंसुओंसे पूरित नयनोंवाला व रोमांचित समस्त अङ्गों से उपलक्षित व अग्निवर्णवाले बड़े दीर्घ श्वासोंको बारबार लेरहाथा ॥ ११ ॥ और वह कामदेव एक दृष्टि से अवलोकन करताहुआ भलीभांति टिकेहुये उस ब्रह्मको ध्यान करते व उत्तम समाधि में स्थितहुये योगी के समान उसके दर्शन में स्थितथा ॥ १२ ॥ वह पूर्णकला

सापितद्बाणनिर्भिन्ना साभिलाषावभूवह ॥ कामंप्रतिविशेषेण तस्यरूपेणमोहिता ॥ १४ ॥ आशुतस्माज्जलात्कुच्छ्राद्विनिष्क्रम्यशुचिस्मिता॥ तीरोपान्तंसमासाद्यस्थितातद्दृष्टिगोचरे ॥१५॥ ततःकामःसमुत्थाय शनैस्तस्यान्तिकंययौ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा ततःप्रोवाचसादरम् ॥ १६ ॥ कात्वमत्रविशालाक्षि प्राप्तास्नानंजलाशये ॥ ममनाशायचार्वङ्गितस्माच्छ्रृणुवचोमम ॥१७॥ अहंपुष्पशरोलोके प्रसिद्धश्चारुहासिनि ॥ विडम्बनांमयानीता देवाअपिनिजैःशरैः॥१८॥मद्बाणेनाहतोरुद्रःस्वशरीरेनितम्बिनीम् ॥ अर्द्धेनधारयामास लज्जांत्यक्त्वासुदूरतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मामच्छरनिर्भिन्नस्स्वसुतांचकमेततः ॥ जनयामासतान्विप्रान्बालखिल्यांस्तथाविधान् ॥ २० ॥ अहल्यांचकमेशक्रो गौतमस्यप्रियांसतीम् ॥ मद्बाणैःपीडितोतीवस्वर्गादेत्यधरातलम् ॥ २१ ॥ एवंदेवाश्चनिर्भिन्ना मच्छरैर्येमहत्तराः ॥ किंपुनर्मानवास्सुभ्रुकृमिप्रायास्सुचञ्चलाः ॥ २२ ॥ आक्रम्यैतज्जगत्सर्वं

...तम् ॥ जृम्भाभङ्गकृतायासवेपमानशरीरकम् ॥ १३ ॥

उस कामदेव को भलीभांति देखकर ॥ १३ ॥ उस कामदेव के रूपसे मोहित व उसके बाणसे विदीर्ण वह पूर्णकला भी विशेषकर कामदेव प्रति प्रकटही अभिलाष समेतहुई ॥ १४ ॥ व स्वच्छ हास्यवाली वह उस जलसे शीघ्रही क्लेश से निकलकरके किनारे के समीपमें प्राप्तहोकर उसके दृष्टिगोचर में स्थितहुई ॥ १५ ॥ तदनन्तर कामदेव जी उठकर धीरे से उसके निकटगये व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर उसके उपरान्त आदर समेत बोले ॥ १६ ॥ कि हे विशाललोचनि, सुन्दर अंगोंवाली ! मेरे नाशके लिये इस जलाशय में स्नानको प्राप्तहुई तुम कौनहौ इसलिये मेरे वचनको सुनो ॥ १७ ॥ कि हे रुचिर हास्यवाली ! संसार में मैं पुष्पशायक (कामदेव) प्रसिद्धहूं मैंने अपने बाणोंसे देवताओं कोभी विडम्बना में प्राप्तकियाहै ॥१८॥ मेरे बाणसे ताड़ित होतेहुये शिव जीने लज्जाको बहुतही दूर छोड़कर उत्तम नितंबवाली (पार्वती जीको) निज शरीर में आधेअंग से धारण किया ॥ १९ ॥ व मेरे बाणसे भेदित ब्रह्माजीने अपनी कन्याको चाहा तदनन्तर उस प्रकार के उन बालखिल्य द्विजों को पैदाकिया ॥ २० ॥ व मेरे बाणोंसे अत्यन्तही पीड़ित होतेहुये इन्द्रजी ने स्वर्ग से भूतल में आकर गौतममुनि की प्यारी व पतिव्रता अहल्या को इच्छा किया ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी भौंहोंवाली ! जे बड़ेभारी देवता हैं वे

मेरे बाणसे विदीर्णहुये फिर कीटों के समान व अतिचंचल मनुष्योंको क्या कहनाहै ॥ २२ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली ! कीटसे लगाकर वैसेही ब्रह्मा पर्य्यन्त यह समस्त संसार मेरे बाणोंसे परम विडम्बना (पराभव) को प्राप्तहुआहै ॥२३॥ हे भीरु ! हे शुभे ! फिर मैं तुमसे इस दशाको प्राप्त कियागया इसलिये हे महाभागे ! आज मुझको रतिरूपी दक्षिणा को तबतक दीजिये ॥ २४ ॥ कि जबतक मेरे प्राण शरीरको त्यागकर न जावैं सूतजी बोले कि उन कामदेव जीके वचनको सुनकर पतिव्रतधर्म में तत्पर वह पूर्णकला भी ॥ २५ ॥ उन कामदेव के बाणोंसे हृदय में विशेषकर अतिताड़ितहुई और वह पतिव्रता केवल कामदेव के धर्मको नहीं जानतीथी ॥ २६ ॥

माब्रह्मान्तंतथैवच ॥ विडम्बनांपरंप्राप्तं मच्छरैश्चारुहासिनि ॥ २३ ॥ अहंपुनस्त्वयाभीरु नीतोवस्थामिमांशुभे ॥ तस्माद्देहिमहाभागे ममाद्यरतिदक्षिणाम् ॥ २४ ॥ यावन्नयान्तिसंत्यज्य ममप्राणाःकलेवरम् ॥ सूतउवाच ॥ सापितद्वचनंश्रुत्वा पतिव्रतपरायणा ॥ २५ ॥ हन्यमानाविशेषेण तद्बाणैर्हृदयेभृशम् ॥ अनभिज्ञाचसासाध्वी कामधर्म्मस्यकेवलम् ॥ २६ ॥ तापसैस्सहसंवृद्धानसंजानातिकिञ्चन ॥ वक्तुंतद्विषयेयच्चप्रोच्यतेकामपीडितैः ॥ २७ ॥ अधोमुखालिखद्भूमिमङ्गुष्ठेनस्थिताचिरम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेभानुःप्राप्तश्चास्तागिरिंप्रति ॥ २८ ॥ विहारसमयेप्राप्त आहिताग्निनिवेशने ॥ हारीतोपिचिरंवीक्ष्य तन्मार्गंचाकृताशनः ॥ २९ ॥ ततस्सचिन्तयामास कस्मात्साचात्रनागता ॥ स्नात्वातीर्थवरेतस्मिन्दृष्ट्वातांचन्द्रकूपिकाम् ॥ कामेश्वरंचदेवेशं कामदंसुखदंनृणाम् ॥ ३० ॥ ततःशिष्यसमायुक्तो वीक्ष्यमाणाद्भुत

व तपस्वियोंके साथ भलीभांति बढ़ीहुई पूर्णकला उस विषय में कहनेके लिये कुछ नहीं जानतीथी जोकि कामदेवसे पीड़ित मनुष्यो से कहाजाताहै ॥ २७ ॥ बड़ी देरतक टिकीहुई नीचे मुखवाली उसने अंगूठे से भूमिको लिखा इसी अवसर में सूर्य्यनारायण अस्ताचलपै प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व भोजन को नहीं कियेहुये हारीतमुनि भी देरतक उसके मार्गको देखकर विहारके समय अग्न्याधानवाले घरमें प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस हारीतने चिन्तन किया कि उस उत्तम तीर्थ में नहाकरके उस चन्द्रकूपिका को व मनुष्यों को सुखदायक व कामनाओंके दायक सुरनायक कामेश्वर जीको देखकर वह पूर्णकला यहां किसकारण नहीं आई ॥ ३० ॥ तदनन्तर

शिष्यों से संयुत होकर इधर उधर देखतेहुये हारीत उस देशको भलीभांति प्राप्तहुये जहांपर कि वे दोनोंभी स्थितथे ॥ ३१ ॥ अपने बाणोंसे ताड़ित होतेहुये कामदेव जी अनेक भाति से प्रलाप करतेथे और वह पूर्णकलाभी लज्जासे नीचे मुखवाली होकर बैठीथी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भाड़ी से छिपेहुये वे हारीत कामदेव से कहेहुये उस समस्त वृत्तान्त को सुनकर व उसके हृदय में प्राप्तहुये भावको देखकर क्रोधसे यह बोले ॥ ३३ ॥ कि हे पाप ! जिसलिये तुमने अनजान व उत्तम स्वभाववाली तथा पतिव्रत धर्म में लगीहुई मेरी स्त्रीको इसप्रकार बाणसे व्यथित किया ॥ ३४ ॥ इसलिये हे पापात्मन् ! तुम कुष्ठरोग से संयुत व अप्रिय दर्शनवाले तथा निज स्त्रियों

स्ततः ॥ तंदेशंसमनुप्राप्तो यत्रतौद्वावपिस्थितौ ॥ ३१ ॥ आलपन्बहुधाकामोहन्यमानोनिजैःशरैः ॥ सापिचैवविशेषेण
व्रीडयाधोमुखीस्थिता ॥ ३२ ॥ सगुल्मान्तरितस्सर्वं तच्छ्रुत्वाकामजल्पितम् ॥ तस्याश्चहृद्गतंभावं तत्कोपादब्रवीदि
दम् ॥ ३३ ॥ यस्मात्पापत्वयापत्नी ममेवंशरपीडिता ॥ अनभिज्ञातथासाध्वी पतिधर्म्मपरायणा ॥ ३४ ॥ कुष्ठव्याधि
समायुक्तस्तस्माद्विप्रियदर्शनः ॥ त्वंभविष्यसिपापात्मन्मुक्तोदारैःस्वकैरपि ॥ ३५ ॥ सापिचैवविशेषेणव्रीडयाधोमुखी
स्थिता ॥ एषापिचशिलाप्राया भविष्यतिविचेतना ॥ ३६ ॥ त्वांदृष्ट्वाप्राप्तरागाभून्निजधर्म्मबहिष्कृता ॥ ३७ ॥ ततःप्र
सादयामासतंकामःप्रणिपत्यच ॥ नज्ञातेयंमयाविप्रतवभार्य्येतिसुन्दरी ॥ ३८ ॥ तत्प्रोक्तानिविरुद्धानि वचांसिविविधा
निच ॥ तस्मान्नार्हसिशापंत्वंदातुमस्याःकथञ्चन ॥ ३९ ॥ ममविप्रापराधोत्र तस्मान्मेनिग्रहंकुरु ॥ भूयोपिब्राह्मणश्रे
ष्ठअस्याःशापसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ अपिरुद्रादयोदेवा मद्बाणांस्तुकथञ्चन ॥ सोढुंशक्तानतेयस्मात्तत्कथंस्यादियंशि

सेभी छुटे होवोगे ॥ ३५ ॥ और लज्जासे विशेषकर नीचे मुखवाली टिकीहुई वह भी शिलाके समान अचेतन होगी क्योंकि निजधर्म से बाहर की हुई यहभी तुमको देखकर अनुराग (स्नेह)को प्राप्तहुई है ॥ ३६।३७ ॥ तदनन्तर कामदेवने प्रणामकर उन हारीतको प्रसन्न किया कि हे विप्र ! मैंने इसको नहीं जाना कि यह सुन्दरी तुम्हारी स्त्री है ॥३८॥ उसीसे अनेकप्रकारके विरुद्ध वचन कहेगये इसलिये तुम इसको शाप देनेके लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हो ॥३९॥ हे विप्र ! इस विषय में मेरा अपराधहै इसलिये मुझ को दण्डकीजिये फिरभी हे द्विजोत्तम ! इसके शापसे उपजेहुये निग्रहको करो ॥ ४० ॥ जो शिवादिक देवता हैं वे भी मेरे बाणोंको सहनेके लिये किसी

प्रकार समर्थ नहीं हैं उस कारण यह कैसे शिला होगी ॥ ४१ ॥ और वैसेही विद्वान् लोग तीनप्रकार का पातक कहते हैं मानस, वाचिक और तीसरा कर्म से उपजा हुआ (कायिक) है॥४२॥ हे मुनिनायक ! मुझको वह दो प्रकारका पातक हुआहै और तुम्हारी इस स्वरूपवतीस्त्री को एकही हुआहै इसलिये सम्पूर्ण अंगको करूंगा ॥ ४३ ॥ और तुमको परलोक से उपजाहुआ कुछ डर नहीं है क्योंकि मानस पाप मन के सन्तापसे जावै है और जो वाचिक है वह ॥ ४४ ॥ उसी के प्रसन्नही करने से कि जिसके ऊपर कहागया है व कर्म से उपजाहुआ (कायिक) पातक यथोक्त प्रायश्चित्तों से जावै है ॥ ४५ ॥ हे महामुने ! जिसलिये कि समस्त धर्मशास्त्रों से

ला ॥ ४१ ॥ तथाचत्रिविधंपापं प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ मानसंवाचिकंचैवकर्म्मजञ्चतृतीयकम् ॥ ४२ ॥ तदस्माकंद्विधा जातमेकंचास्यामुनीश्वर ॥ भार्य्यायास्तेसुरूपायास्तस्मात्संपूर्णविग्रहम् ॥४३॥ करिष्यामिनतेभीतिःकश्चिदस्तिपर त्रजा ॥ मनस्तापाद्व्रजेत्पापंमानसंवाचिकंचयत् ॥ ४४ ॥ तस्यप्रसादनेनैवयस्योपरिविजल्पितम्॥प्रायश्चित्तैर्यथोक्तै श्च कर्म्मजंपातकंव्रजेत् ॥ ४५ ॥ धर्म्मशास्त्रैःपरिप्रोक्तंयतस्सर्वैर्महामुने ॥ हारीतउवाच ॥ अन्यत्रविषयेतत्तु पातकं कामदेववै ॥ ४६ ॥ एतस्यतवधर्म्मस्य प्राधान्यंमनसास्मृतम् ॥ तस्मादेवंविधाचेयं सदास्थास्यतिवाधमा ॥ ४७ ॥ किंपुनर्यत्कृतंकृत्यंनाहंवक्ष्यामिकिञ्चन ॥ प्रथमंमनसासर्वं चिन्त्यतेतदनन्तरम् ॥ ४८ ॥ ततःप्रजल्पतेवाचा क्रियते कर्म्मणापुनः ॥ प्रथमंहिमनस्तस्मात्सर्वकृत्येषुसर्वदा॥४९॥एतस्मात्कारणात्पूर्णोमयास्यानिग्रहःकृतः ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो हारीतश्चाश्रमंययौ ॥ ५० ॥ सापिखण्डशिलाजाता शिलारूपाचतत्क्षणात् ॥ कामदेवोपिकु

कहागयाहै हारीत बोले हे कामदेव ! वह तो पातक अन्य विषय में है ॥ ४६ ॥ और तुम्हारे इस धर्म की प्रधानता मनसे कही गई है फिर जो कार्य कियागयाहै उसको क्या कहना है मैं कुछ न कहूंगा इसलिये यह अधमा सदैव इसीप्रकार की टिकैगी पहले मनसे समस्त पदार्थ चिन्तन कियाजाताहै उसके उपरान्त॥ ४७ । ४८ ॥ उसी कारण वाणीसे कहाजाता है फिर कर्मसे कियाजाताहै इसलिये सदैव समस्त कार्य्योंमें प्रथम मनही कारण है ॥ ४९ ॥ इसी कारण मैंने इसको पूर्ण दण्ड किया सूत जी बोले कि ऐसा कहकर मुनिनायक हारीत जी आश्रम को चलेगये ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! वह पूर्णकला भी उसीक्षण शिलारूप होतीहुई खण्डशिला होगई व

कामदेव भी विकराल कुष्ठरोग से ग्रस्तहुआ ॥ ५१ ॥ व टूटेफूटेहुये नासिका व चरण व हाथोंवाला और नेत्रों को अप्रिय होगया इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! कामदेव को रोगग्रस्त व उत्साहहीन होजानेपर इस संसार में सृष्टिका रुकावट होगया केवल जलसे उपजेहुये व स्थलज जन्तुवों समेत संसार क्षीण होतारहा ॥५२।५३॥ व कहींपर उपजीहुई कोई स्त्री व कोई पुरुष व कोई नपुंसक न देख पड़ता था व कहींपर गर्भवती स्त्री व कामदेवका क्षोभ नहीं देखाजाताथा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस कामदेव को रोगग्रस्त जानकर शीघ्रता में प्राप्तहुये उस क्षेत्र के टिकनेवाले समस्त पुरुष विकल अन्तःकरण से आये ॥ ५५ ॥ व कामेश्वर देवके अगाड़ी टिके

छेनग्रस्तोरौद्रेणचद्विजाः ॥ ५१ ॥ शीर्णनासांघ्रिपाणिश्चनेत्राणामप्रियोभवत् ॥ अथकामेनिरुत्साहेसंजातेद्विजसत्तमाः ॥ ५२ ॥ व्याधिग्रस्तेजगत्यस्मिन्सृष्टिरोधोऽयजायत ॥ केवलंक्षीयतेलोको जलजैस्स्थलजैस्सह ॥ ५३ ॥ नद्दश्यतेकचिज्जाता कापिकश्चिन्नकिञ्चन ॥ नचगर्भवतीनारी कचित्क्षोभंस्मरस्यतु ॥ ५४ ॥ ततस्तंव्याधिनाग्रस्तं ज्ञात्वातत्क्षेत्रसंशयः ॥ आजग्मुस्त्वरितास्सर्वे व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ५५ ॥ कामेश्वरपुरःस्थंच तंदृष्ट्वाकुसुमायुधम् ॥ अत्यन्तविकृताकारं चिन्तयानंमहेश्वरम् ॥ ५६ ॥ ततःप्रोचुस्सुदुःखार्ताःकिमिदंकुसुमायुध ॥ निरुत्साहःसमुत्पन्नः कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ ५७ ॥ ततश्चाधोमुखोजातोलज्जयापरयावृतः ॥ प्रोवाचशापजंसर्वं हारीतस्यविचेष्टितम् ॥ ५८ ॥ ततस्तेविबुधाःप्रोचुः पातकंयत्त्वयाकृतम् ॥ हरस्याराधनात्सर्वं संक्षयंतत्कृतंभवेत् ॥५९॥ नतेस्तिकायजंपापं यतोमुक्त्वाप्रवाचिकम् ॥ अत्रकुण्डेत्वदीयेन्योयःस्नातःश्रद्धयान्वितः ॥ ६० ॥ एनांपापविनिर्मुक्तांशिखांवैमानवस्स.

व महादेव को ध्यान करतेहुये अत्यन्त बिगड़े आकारवाले उस पुष्पायुध (कामदेव)को देखकर ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त बहुत दुःखसे विकल होतेहुये उन्होंने कहा कि हे कुसुम अस्त्रवाले, कामदेव ! यह क्या है जोकि निरुत्साह उत्पन्नहुआ व कुष्ठरोग से अतिआकुलहो ॥५७॥ तदनन्तर बड़ी लज्जासे घिरे व अधोमुख होतेहुये कामदेव, ने शापसे उपजेहुये हारीत के समस्त कर्मको कहा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर देवताओं ने कहा कि तुमने जिस पातकको कियाहै वह कियाहुआ समस्त पातक सदाशिव जी के आराधन से संहार होवै है ॥ ५९ ॥ क्योंकि वाचिक कर्मको छोड़कर तुम्हारे शरीरज पाप नहीं है व शरीर से उठेहुयेभी कर्मके द्वारा कुष्ठरोग से सयुत जो अन्य

पुरुष श्रद्धासंयुत होकर तुम्हारे इस कुण्ड में नहाया हुआ सदैव पापसे छूटीहुई इस शिला को देखैहै ॥ ६०।६१ ॥ वहभी पातक से छूटा हुआ गयेहुये ज्वरवाला होगा व यह सौभाग्यरूप जलाशय संसार में समस्त रोगोंका क्षयकारक प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है और दाद दुष्टरोग अन्य विचर्चिका (खुजली) इस जलाशय में नहाये हुये पुरुष के इस शिलाको देखकर उसी क्षणही चले जाते हैं ऐसा कहकर इस के अनन्तर वे देवता स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! वहां टिके हुये कामदेवने भी उन कामदेवेश्वर का पूजन किया उसके उपरान्त मासमात्र व्यतीत होनेपर ॥६५॥ कामदेव आपही वैसे रूपवाला होगया

दा ॥ कुष्ठव्याधिसमोपेतःकायोत्थेनापिकर्मणा ॥ ६१ ॥ सोपिपापविनिर्मुक्तोभविष्यतिगतज्वरः ॥ एतत्सौभाग्यरूपंच लोकेख्यातञ्जलाशयम् ॥ ६२ ॥ भविष्यतिनसन्देहःसर्वरोगक्षयावहम् ॥ दद्रूणिदुष्टरोगाश्चतथान्याचविचर्चिका ॥६३॥ अत्रस्नातस्ययास्यन्तिदृष्ट्वैनांसद्यएवहि ॥ एवमुक्त्वाथतेदेवाःप्रजग्मुस्त्रिदशालयम् ॥ ६४ ॥ कामदेवोपितत्रस्थस्तस्य पूजामथाभ्यधात् ॥ ततश्चसमतिक्रान्तेमासमात्रेद्विजोत्तमाः ॥ ६५ ॥ तादृग्रूपस्स्वयंजातोयादृगासीत्पुरास्मरः ॥ त तश्चायतनन्तस्यकृत्वाश्रद्धासमन्वितः ॥ ६६ ॥ जगामवाञ्छितन्देशंसृष्ट्यर्थंयत्नमास्थितः ॥ सापिनम्रमुखीतादृक्तेन शप्तातथैवच ॥ ६७ ॥ सञ्जाताखण्डकाकारातेनखण्डशिलास्मृता ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्यात्रयोदश्यान्तथैवच ॥ ६८ ॥ नापवादोभवेत्तस्यपरदारसमुद्भवः ॥ कामिन्याश्चविशेषेणप्राहचैतत्कदापिमाम् ॥ ६९ ॥ कार्त्तिकेयोद्विजश्रेष्ठाः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ तथाकामेश्वरन्देवंकामदेवप्रतिष्ठितम् ॥ ७० ॥ त्रयोदश्यांसमाराध्यसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३

जैसा कि पहलेथा तदनन्तर श्रद्धासंयुत होताहुआ उनके मन्दिर को बनाकर ॥ ६६ ॥ यत्नमें स्थित होताहुआ सृष्टि के लिये चाहेहुये देशको चलागया वैसेही उन हारीत से शापित व वैसी नम्रमुखवाली वह पूर्णकलाभी ॥ ६७ ॥ खण्डाकार होगई उस से खण्डशिला कहीगई वैसेही त्रयोदशी तिथि में जो पुरुष भक्तिसे उस खण्डशि- ला को पूजता है ॥ ६८ ॥ उसको पराई स्त्री से उपजा हुआ अपवाद नहीं होवै है व स्त्री को विशेषकर कलङ्क नही होता है यह मुझसे किसी समय स्वामिकार्त्तिकेय जी ने निश्चयकर कहा है हे द्विजोत्तमो ! यह मैंने सत्य कहा है वैसेही कामदेव से थापेहुये कामेश्वर देवको ॥ ६९ । ७० ॥ त्रयोदशी तिथिमें भलीभांति आराधकर मनुष्य

समस्त कामनाओं को पावै है हे द्विजोत्तमो ! रति व प्रीतिसे संयुत कामदेवजी उत्तम मन्दिर में आश्रित होते हुये उस मूर्त्तिमें टिके हैं त्रयोदशी तिथिमें सावधान होता हुआ जो कुरूप या दुष्ट ऐश्वर्य्यवाला पुरुष उन कामेश्वर देव को कुंकुप से उपजे हुये फूलों से भलीभांति पूजता है वह सौभाग्यसे संयुत व रूपवान् होता है ॥ ७१।७२। ७३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सौतियों से घिरी तथा पति से त्यागीहुई जो स्त्री पत्नी आदिकों समेत उन कामेश्वर देव को त्रयोदशी तिथि में केसर व कुंकुम से उपजे हुये पुष्पों से नित्यही उसी प्रकार पूजन करती है वह सौभाग्यवती व पुत्रवती होती है ॥ ७४ । ७५ ॥ व धन धान्यसे समृद्ध तथा दुःख शोकसे रहित व समस्त दोषों से

तिप्रीतिसमायुक्तस्स्थितस्तत्रस्मरस्तथा ॥ ७१ ॥ मूर्तौब्राह्मणशार्दूलाःश्रेष्ठंप्रासादमाश्रितः ॥ विरूपोदुर्भगोयोवात्रयोदश्यांसमाहितः ॥ ७२ ॥ तन्तुकुङ्कुमजैःपुष्पैस्सम्पूजयतिमानवः ॥ ससौभाग्यसमायुक्तोरूपवांश्चप्रजायते ॥ ७३ ॥ यानारीपतिनात्यक्तासपत्नीभिश्चसंवृता॥ तन्देवंसकलत्राद्यन्तथैवपरिपूजयेत् ॥ ७४ ॥ त्रयोदश्यांद्विजश्रेष्ठाःकेशरैःकुङ्कुमोद्भवैः ॥ सासौभाग्यवतीनित्यंजायतेचप्रजावती॥ ७५॥ धनधान्यसमृद्धाचदुःखशोकविवर्जिता ॥ दोषैःसर्वैर्विनिर्मुक्ताशंसिताधरणीतले ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रेशिलासौभाग्यकूपिकोत्पत्तिर्नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्तिदीर्घिकातीर्थनायिका ॥ आसीत्पूर्वंद्विजोनामवीरशान्तेतिविश्रुतः ॥ १ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातोवर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ तस्यकन्यासमुत्पन्नाकदाचिल्लक्षणान्विता ॥ २ ॥ अतिदीर्घाप्रमाणेनजनहास्यावि

छुटीहुई वह भूतल में प्रशंसित होती है ॥ ७६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रे शिलासौभाग्यकूपिकोत्पत्तिकथनंनामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा पतिव्रत नारि कहँ दियो सुरन वरदान । इकसौ बत्तिस महँ सोई बरणत बुद्धिनिधान ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उसी क्षेत्र में दीर्घिका याने बावली तीर्थनायिकाहै पुरातन समय वीरशान्त ऐसे नामवाला प्रसिद्ध ब्राह्मण वर्धमान नामक पुरोत्तममें हुआहै जो कि वेदविद्या व्रतमें प्रवीणथा उसके किसीसमय लक्षणोंसे संयुत

कन्या पैदाहुई है ॥ १२ ॥ जो कि प्रमाण से बड़ी लम्बी व मनुष्यों के हास्य को बढ़ानेवालीथी तदनन्तर वैसे रूपवालीभी वह कुमारिका युवावस्था को प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ परन्तु शास्त्र के वचन को स्मरण करता हुआ कोई पुरुष उसको स्वीकार न किया क्योंकि अतिसंक्षेप केशोंवाली व अति लम्बी तथा बहुतही छोटी कन्याओं को कामदेव से मोहित हुआ जो पुरुष ब्याह करताहै वह छह महीने के बीचमें निस्सन्देह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ । ५ ॥ इसी कारण समस्त मनुष्य सबओर देखकर व अतिदीर्घता को कहकर उस कुमारिकाको छोड़ देतेथे ॥ ६ ॥ उसी कारण वैराग्यको प्राप्त होतीहुई उस कन्याने बड़े विकराल तपको किया वैसेही अनेकों कृच्छ्रचान्द्रायणों को चीर्ण (इकट्ठा) किया ॥ ७ ॥ व यथोक्त पाराक, सान्तपन (पंचाग्नि) व जो कुछ व्रत व नियम तथा संयम वर्तमान है ॥ ८ ॥ व अन्यभी जो शुभकार्य्य है वह सब उस कन्याने किया इस प्रकार व्रतमें टिकीहुई उस कन्याके समीप राजसम्पदा प्राप्तहुई ॥ ९ ॥ तिसपर भी कियेहुये तपसे तेजकी वृद्धि बढ़तीथी और वह अतिकौतुक से देवर्षियों व विशेषता से देवताओं के सम्मत को सुनने के लिये महेन्द्रकी सभाको नित्यही जातीथी व जब अपने आसन को छोड़कर निज घरके सामने चलती थी ॥ १० । ११ ॥ उसी समय उस आसन में इन्द्रके सेवकों ने सिंचन किया हे द्विजोत्तमो ! और दिनमें वैसेही अपने आसन पै किये हुये उस प्रोक्षण को उसने देखा

नकश्चिद्वरयामासशास्त्रवाक्यमनुस्मरन् ॥ अतिसंक्षिप्तकेशी याअतिदीर्घातिवामनाः ॥ ४ ॥ उद्वाहयतियःकन्याःपुरुषःकाममोहितः ॥ षण्मासाभ्यन्तरेमृत्युंसप्राप्नोतिनसंशयः ॥ ५ ॥ एतस्मात्कारणात्सर्वेतान्त्यजन्तिकुमारिकाम् ॥ पुरुषाअतिदीर्घत्वमुक्त्वावीक्ष्यसमन्ततः ॥ ६ ॥ ततोवैराग्यमापन्नातपस्तेपेसुदारुणम् ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणितथाचीर्णान्यनेकशः ॥ ७ ॥ पाराकानियथोक्तानितथासान्तपनानिच ॥ व्रतंयद्विद्यतेकिञ्चिन्नियमःसंयमस्तथा ॥ ८ ॥ अन्यच्चापिशुभंकृत्यन्तत्सर्वञ्चतयाकृतम् ॥ एवंतस्याव्रतस्थायाराजसम्पदुपस्थिता ॥ ९ ॥ तथापितेजसोवृद्धिर्वर्द्धतेतपसःकृतात् ॥ साचनित्यंमहेन्द्रस्यसभांयात्यतिकौतुकात् ॥ १० ॥ देवर्षीणांमतंश्रोतुन्देवतानांविशेषतः ॥ यदासास्वासनन्त्यक्त्वाप्रयातिस्वगृहोन्मुखी ॥ ११ ॥ तदैवाभ्युक्षणञ्चकुस्तत्रशक्रस्यकिङ्कराः ॥ तथान्यदिवसेदृष्टंक्रियमाणन्तयाहितत् ॥ १२ ॥ अभ्युक्षणंस्वकीयेचआसनेद्विजसत्तमाः॥

वर्द्धिनी ॥ ततस्सायौवनंप्राप्तातद्रूपापिकुमारिका ॥ ३ ॥

तदनन्तर कोपसे घिरे हुये अङ्गोंवाली उस दीर्घिका कन्याने भौंह को तीन शिखावाली (टेढ़ी) करके तदनन्तर इन्द्र से कहा कि हे शक्र ! मेरे किस दोष को देखकर तुमने आसन को सींचा ॥ १२ । १३ । १४ ॥ क्या मैंने कहीं पराई स्त्री से किये हुये इस दोषको कियाहै याने नहीं इस लिये हे इन्द्र ! मेरे पातक नहीं है व मैं तुमको बड़े विकराल शापको निस्सन्देह दूंगी यह सत्य से अपनी शपथ करतीहूं इन्द्र बोले कि हे शुभदायिके, दीर्घे ! इस विषय में तुम्हारे एकके विना और दोष नही है ॥ १५ । १६ ॥ उसीसे इस आसन का प्रोक्षण किया जाता है जो कि कन्याभी तुम निन्दित ऋतुकाल (रजोधर्म) को प्राप्त हुईहो ॥१७॥ उसीसे तुम दोषता को प्राप्तहो इसमें और

ततःकोपपरीताङ्गीदीर्घिकासाकुमारिका ॥ १३ ॥ त्रिशाखांभृकुटिंकृत्वाततःप्राहपुरन्दरम् ॥ कंदोषंवीक्ष्यमेशक्रप्रोक्षितश्चासनन्त्वया ॥ १४ ॥ परदारकृतन्दोषंकिंमयैतत्कृतंक्वचित् ॥ तस्मान्मेपातकंशक्रनास्तिशापंसुदारुणम् ॥१५॥ तवदास्याम्यसन्दिग्धंसत्येनात्मानमालभे ॥ इन्द्रउवाच ॥नतेदीर्घेस्तिदोषोत्रकश्चिदेकंविनाशुभे ॥ १६ ॥ तेनाथक्रियतेचैतदासनस्यनिषेचनम् ॥ त्वंकुमार्य्यपिसंप्राप्ताऋतुकालंविगर्हितम् ॥ १७ ॥ तेनदोषत्वमापन्नानान्यदस्तीहकारणम् ॥ तस्मादद्यापित्वाङ्कश्चिदुद्वाहयतितापसः ॥ १८ ॥ तन्त्वंवरयभर्तारंयेनगच्छसिमेध्यताम् ॥ तच्छ्रुत्वालज्जयायुक्तासातदादीर्घकन्यका ॥ १९ ॥ गत्वाभूमितलेतूर्णंवर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ ततःपूर्वंसमारभ्यचत्वरेषुत्रिकेषुच ॥ २० ॥ उद्धृत्यदक्षिणम्पाणिंभ्रममाणाइतस्ततः ॥ यदिकश्चिद्द्विजोजात्यःकरोतुममसाम्प्रतम् ॥ २१ ॥ पाणिग्रहन्तपोर्द्धस्याच्छ्रेयोयच्छामितस्यच ॥ एवंताम्प्रविजल्पन्तींश्रुत्वालोकादिवानिशम् ॥ २२ ॥ उत्सृष्टेयमिदंमत्वाहास्यञ्चक्रुःपरस्परम् ॥ त

कारण नहीं है इसलिये यदि कोई तपस्वी आजभी तुमको विवाहै ॥१८॥ तो उस पतिको तुम स्वीकार करो जिससे पवित्रताको प्राप्तहोवो उस समय उस वचनको सुनकर लज्जासंयुत होतीहुई दीर्घकन्या ॥ १९ ॥ शीघ्रही भूतल में वर्धमान नामक पुरोत्तम में जाकर तदनन्तर दाहिने हाथको उठाकर पहले चत्वरों व त्रिकोंमें प्रारम्भ करके इधर उधर घूमती हुई बोली कि यदि इस समय कोई कुलीन ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण करै तो उसका श्राधातप होवै और कल्याण को दूंगी इसप्रकार अहर्निश बकती हुई उसको मनुष्य सुनकर ॥ २० । २१ । २२ ॥ यह छोडीहुई है यह मानकर उन्होंने आपस में हास्य किया तदनन्तर कुछ दिनों के बाद कुष्ठरोगसे ग्रहण किये

तःकतिपयाहस्यप्रजल्पन्तीचदीर्घिका ॥ २३ ॥ कुष्ठव्याधिगृहीतेनब्राह्मणेनपरिश्रुता ॥ ततःप्रोवाचतान्दीर्घांसमाहूय सुदुःखिताम् ॥ २४ ॥ अहन्त्वांसुद्वहिष्यामिकृत्वापाणिग्रहन्तव ॥ यदिमद्वचनंसर्वंसर्वदैवानुतिष्ठसि ॥ २५ ॥ कुमारिकोवाच ॥ करिष्यामिनसन्देहस्तववाक्यंद्विजाधिप ॥ कुरुपाणिग्रहंमेत्वंविधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तस्याःकुमार्य्याःसपाणिञ्जग्राहदक्षिणम् ॥ गृह्योक्तेनविधानेनदेवाग्निगुरुसन्निधौ ॥ २७ ॥ अथसाप्राहभूयोपिविवाहकृतमङ्गला ॥ आदेशन्देहिमेनाथयङ्करोमितवाधुना ॥ २८ ॥ पतिरुवाच ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुस्नातुमिच्छामिसुन्दरि ॥ सहायेनत्वदीयेनयदिशक्नोषितत्कुरु ॥ २९ ॥ बाढमित्येवसाप्रोक्तातततस्तूर्णंपतिव्रता ॥ तत्प्रमाणंदृढंकृत्वारम्यंवंशकुटीरकम् ॥ ३० ॥ मृदुतूलसमायुक्तंततःप्राहनिजम्पतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३१ ॥ एतत्तवकृते रम्यंकृतंवंशकुटीरकम् ॥ ममनाथारुहाशुत्वंयेनकृत्वाथमूर्द्धनि ॥ ३२ ॥ नयामिसर्वतीर्थेषुक्षेत्रेषुचशुभेषुच ॥ ततःकुष्ठीप्रहृ

हुये ब्राह्मणने बकती हुई कुमारिका को सुना उसके उपरान्त उस अतिदुःखित दीर्घिका कुमारिका को भलीभांति बुलाकर कहा ॥ २३ । २४ ॥ कि यदि सदैवही मेरे समस्त वचनका अनुष्ठान करो तो मैं तुम्हारे पाणिग्रहण को करके विवाहकरूं ॥ २५ ॥ कुमारिका बोली कि हे द्विजनायक ! मैं तुम्हारे वचन को निरसन्देह करूंगी तुम विधिपूर्वक देखेहुये कर्मसे मेरा व्याह करो ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस द्विजने देवता, द्विज व गुरुओं के समीप गृह्यसूक्तमें कहेहुये विधानसे उस कन्याके दाहिने हाथको ग्रहण किया याने व्याहा ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर विवाह में कियेहुये मङ्गलोंवाली उस दीर्घिकाने फिरभी कहा कि हे नाथ ! मुझको जिस आज्ञा को दीजिये तुम्हारे उस कार्यको इससमय करूं ॥ २८ ॥ पति बोला कि हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारी सहायतासे अरसठि तीर्थोंमें नहाने के लिये इच्छा करताहूं यदि समर्थ हो तो उसको करो ॥ २९ ॥ तदनन्तर हां यही कहकर उस पतिव्रताने शीघ्रही उस पतिके प्रमाणवाले व नम्र रुईसे संयुक्त मनोहर व पुष्ट बांसोंके कुटीरक (निवासस्थान) को बनाकरके जुड़ेहुये हाथोंवाली होकर प्रसन्न अन्तःकरणसे कहा ॥ ३० । ३१ ॥ कि हे ममनाथ ! तुम्हारे लिये यह मनोहर वंशकुटीर कियागया तुम चढ़ो कि जिससे इसके उपरान्त मस्तक पै धरकर ॥ ३२ ॥ शुभदायक तीर्थों व क्षेत्रोंको लेचलूं तदनन्तर प्रसन्न मन या चित्तवाला व उठेहुये शरीरवाला वह कुष्ठी भूतल से धीरेसे उठकर इसके उपरान्त वंश-

कुटीरक पै बैठगया तदनन्तर उसको माथे पै करके अपने पतिको समस्त तीर्थों में नहलाती हुई सुखपूर्वक सब तीर्थों में घूमतीभई इसके उपरान्त उस कुष्ठभागी ने ज्यों ज्यों तीर्थों में स्नान किया ॥ ३३।३४।३५॥ त्यों त्यों तेज इसके शरीर में बढ़ती को प्राप्तहुआ उसके उपरान्त भूतल में क्रमसे घूमतीहुई वह पतिव्रता सन्ध्यासमय हाटकेश्वर जी से उपजेहुये क्षेत्रमें प्राप्तहुई जो पतिव्रता कि बोझसे घिरी व कुम्हिलाई हुई व विकलतामें प्राप्त और नींदसे अन्धी व श्वास लेतीहुई और पग, पग पै लरखराती थी ॥ ३६।३७॥ इसके अनन्तर उसी स्थान में शूली में आरोपित शरीरवाले व आतिदुःखित माण्डव्य मुनिपुङ्गव टिके थे ॥ ३८॥ इसके उपरान्त रात्रि में भारवाले निज शरीरसे जाती हुई

ष्टात्माशनैरुत्थायभूतलात ॥ ३३ ॥ अथोचोद्धृतदेहस्ससस्थितोवंशकुटीरकम् ॥ ततस्तेमस्तकेकृत्वासर्वतीर्थेयथासुखम् ॥ ३४॥ सर्वक्षेत्रेषुबभ्रामस्नापयन्तीनिजम्पतिम् ॥ यथायथासचक्रेथस्नानन्तीर्थेषुकुष्ठभाक् ॥ ३५ ॥ तथातथास्यगात्रेषुतेजोवृद्धिम्प्रगच्छति ॥ ततःक्रमेणसासाध्वीभ्रममाणामहीतले ॥ ३६ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसम्प्राप्तारजनीमुखे ॥ क्लान्तावैक्लव्यमापन्नाभाराक्रान्तापतिव्रता ॥ निद्रान्धानिःश्वसन्तीचप्रस्खलन्तीपदेपदे॥ ३७॥ अथतत्रप्रदेशेतुमाण्डव्योमुनिपुङ्गवः ॥ शूलारोपितगात्रस्तुसन्तिष्ठेदतिदुःखितः ॥ ३८ ॥ अथसातंसमासाद्यशूलंरात्रौपतिव्रता ॥ निजगात्रेणभारेणगच्छमानामहासती ॥ ३९ ॥ तयासञ्चालितस्सोथमाण्डव्योमुनिपुङ्गवः ॥ ४० ॥ परांपीडांसमासाद्यततःप्राहसुदुःखितः ॥ केनेदम्पाप्मनाशल्यंममान्तःपरिचालितम् ॥ ४१ ॥ येनाहंदुःखयुक्तोपिभूयोदुःखात्ययीकृतः ॥ दीर्घिकोवाच ॥ नमयात्वंमहाभागनिद्रोपहतयादृशा ॥ ४२ ॥ दृष्टस्तेनपरिस्पृष्टोह्यस्पृश्यःपापकृत्तमः ॥ नत्वयासदृश

महासती व पतिव्रता वह उस शूलीको प्राप्तहोकर ॥३९॥ इसके अनन्तर उसने उन माण्डव्य मुनिनायकको चलादिया ॥४०॥ तदनन्तर परमपीडाको पाकर अतिदुःखित होतेहुये माण्डव्य ने कहा कि किस पापीने इस गांसीको मेरे भीतर सब ओर चला दिया ॥ ४१ ॥ कि जिस से दुःखसंयुत भी मैं फिर दुःख से क्लेशित कियागया दीर्घिका बोली कि हे महाभाग! नींदसे नष्ट दृष्टिके कारण मैंने तुमको न देखा उसी से अत्यन्त पापकारी व न छूने योग्य तुम मुझसे स्पर्श कियेगये हो भूतल में तुम्हारे

समान और पापात्मा नहीं है ॥ ४२ । ४३ ॥ क्योंकि मस्तक में वेधित शूलीवाले भी जो तुम मृत्युको नहीं प्राप्त होते हो हे मूढ़! पतिव्रता मैं मस्तक से धारेहुये विकल अङ्गवाले प्यारे पतिको तीर्थयात्रा के लिये वहती (लेचलती) हूं उसी मुझको मनुज से उत्पन्न व मूढ़बुद्धिवाले होतेहुये तुम विशेषतासे न जानकर निठुरतापूर्वक पराभव को किस कारण देतेहो माण्डव्य बोले कि हे निठुरे! यदि प्रातःकाल तुम्हारा यह पति जीवै तो मैं जैसा तुमसे कहागया वैसाही पापात्मा व मूढ़बुद्धिवाला व समस्त देह-धारियों के न छूने योग्य हूं ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ जिस से प्राणोंको अन्त करनेवाली कठोर पीड़ा मेरे उत्पन्न कीगई उसी से मुझसे शापित तुम्हारा प्रिय सूर्य्योंकी

श्चान्यःपापात्मास्तिधरातले ॥ ४३ ॥ शिरस्युद्धृतशूलोपियोमृत्युंनाधिगच्छसि॥ अहंपतिव्रतामूढवहामिशिरसाधृतम् ॥ ४४ ॥ तीर्थयात्राकृतेकान्तंविकलाङ्गंसुवल्लभम् ॥ कस्मात्तस्यास्तिरस्कारंममयच्छसिनिष्ठुरम् ॥ ४५ ॥ अज्ञात्वामूढबुद्धिस्सन्विशेषान्मानुषोद्भवः ॥ माण्डव्यउवाच ॥ अहंयादृक्त्वयाप्रोक्तस्तादृगेवनसंशयः ॥ ४६ ॥ पापात्मामूढबुद्धिश्चअस्पृश्यस्सर्वदेहिनाम् ॥ यदिप्रातस्तवायंचपतिर्जीवतिनिष्ठुरे ॥ ४७ ॥ येनमेजनितापीडाप्राणान्तकरणीदृढा ॥ तस्मादेवतवाभीष्टस्स्पृष्टस्सूर्य्यस्यरश्मिभिः ॥ ४८ ॥ मयाशप्तोपरित्यागंजीवितस्यकरिष्यति॥दीर्घिकोवाच ॥ यद्येवमरणंपत्युःप्रभातेसम्भविष्यति॥ मदीयस्यततःप्रातर्नोदिष्यतिचभास्करः ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वाततस्साथनिषसादधरातले ॥ भूमौतद्भर्तृसंयुक्तंमुक्त्वावंशकुटीरकम् ॥ ५० ॥ अथतांप्राहकुष्ठीसपिपासासंप्रवर्तते ॥ तस्मात्तोयंसमानीहिपानार्हमतिशीतलम् ॥५१॥ तदैवसासमाकर्ण्यभर्तुरादेशमुत्सुका ॥ इतस्ततश्चबभ्रामजलार्थंनप्रपश्यति ॥५२॥ नचानि

किरणों से छुवाहुआ जीवको त्याग न करैगा दीर्घिका बोली कि यदि प्रभातही में मेरे पतिका मरण होवैगा तो प्रातःकाल सूर्य्यनारायण जी न उदय होंगे ॥ ४८ । ४९ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर पतिसंयुत बांस के कुटीरको भूमि में धरकर इसके अनन्तर भूतल में बैठगई ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर उस कोढ़ी ने उस पतिव्रता से कहा कि प्यास लगी है इसलिये पीनेके योग्य अतिशीतल जलको लावो ॥ ५१ ॥ पतिकी आज्ञाको सुनकर उसी समय उस उत्कण्ठिता ने जलके लिये इधर उधर

भ्रमण किया परन्तु न देखा ॥ ५२ ॥ और हृदय में शापके दोषसे उठे हुये डरको विस्तारती हुई वह दीर्घिका जङ्गल में उस प्रकार के पतिको छोड़कर दूर नहीं निकली ॥ ५३ ॥ इसी समय में माण्डव्य मुनिके देखते हुये पादताड़नके बाद स्वादिष्ठ व निर्मल जल निकला ॥ ५४ ॥ तदनन्तर परिश्रम से पीड़ित उस पतिको उसी जलमें नहवाया ॥ ५५ ॥ फिर पीछेको जल पिलाकर आपभी नहाकर जल को पिया इसी अवसर में पतिव्रतके किये हुये भयसे सूर्य्यनारायणजी न उदय हुये उसी कारण बड़ा कालात्यय उत्पन्न हुआ याने बहुत समय वीतगया इसके अनन्तर रात्रिको बड़ीभारी देखकर जो कामीजन थे ॥ ५६ । ५७ ॥ वे सब प्रसन्नता को प्राप्त

य्यौतिदूरंसात्यक्त्वारण्येतथाविधम् ॥ भर्तारंशापदोषोत्थंभयंहृदिवितन्वती ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतोयंपादाघाताद नन्तरम् ॥ निष्क्रान्तंनिर्मलंस्वादुमाण्डव्यस्यचपश्यतः ॥ ५४ ॥ ततस्तंस्नापयामासतस्मिंस्तोयेश्रमातुरम् ॥ ५५ ॥ पा ययित्वापुनःपश्चात्स्वयंस्नात्वापपौजलम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेसूर्य्यःपतिव्रतकृताद्भयात् ॥ ५६ ॥ नाभ्युदेतिसमुत्पन्नस्त तःकालात्ययोमहान् ॥ अथरात्रिंसमालोक्यदीर्घांयेकामुकाजनाः ॥ ५७ ॥ तेसर्वेतुष्टिमापन्नास्तथाचकुलटास्त्रियः ॥ कौशिकाराक्षसाश्चापिचौराजाराश्चयेनराः ॥ ५८ ॥ तेसर्वेप्रोचुस्संहृष्टास्समालिङ्ग्यपरस्परम् ॥ अद्यास्माकंविधिस्तु ष्टोभगवान्मन्मथस्तथा ॥ ५९ ॥ येनदीर्घाकृतारात्रिर्नाशंनीतश्चभास्करः ॥ येपुनर्ब्राह्मणाश्शान्तायज्ञकर्मसमुद्य ताः ॥ ६० ॥ तेसर्वेदुःखमापन्नाविनासूर्य्योदयंकृताः ॥ नकश्चिद्यजनञ्चक्रेयाजनंनचसद्द्विजाः ॥ ६१ ॥ नश्राद्धंनचसङ्क ल्पंनस्वाध्यायंकथञ्चन ॥ नस्नानंनचदानञ्चलोकयात्रांविशेषतः ॥ ६२ ॥ व्यवहारोनकृत्यञ्चकिञ्चिद्धर्मसमुद्भवम् ॥

हुये और वैसेही कुलटा स्त्रियां व घुघुवा व राक्षस भी व चोर और जे जार (परस्त्रीरत) पुरुष थे ॥ ५८ ॥ वे सब आपस में लिपटकर प्रसन्न होतेहुये बोले कि आज हम लोगों के ऊपर भगवान् ब्रह्मा और कामदेवजी प्रसन्नहैं ॥ ५९ ॥ कि जिनने रात्रिको दीर्घ (बड़ी) किया व सूर्य्य को नाश में प्राप्त किया व फिर जो यज्ञकर्म में भली भांति उद्यत व शान्तचित्तवाले ब्राह्मण थे ॥ ६० ॥ वे सब सूर्य्योदय के विना दुःख को प्राप्त किये गये हे उत्तम ब्राह्मणो ! किसीने यजन (यज्ञकरना) व याजन (यज्ञकराना) नहीं किया ॥ ६१ ॥ वनश्राद्ध न संकल्प न किसीप्रकार वेदपाठ व न स्नान, न दान व विशेषतासे लोकयात्राको न किया ॥ ६२ ॥ और न व्यवहार, न

धर्म से उपजे हुये किसी कार्य्य को किया इसी अवसर में जिनमें इन्द्र अग्रगामी हैं वे सब देवता यज्ञभाग से रहित होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त हुये तदनन्तर सूर्य्य नारायण के निकट प्राप्त होकर दुःखसंयुत होते हुये उन्हों ने कहा ॥ ६३ । ६४ ॥ कि हे दिवाकर, देव ! तुम किस लिये उदय नहीं करते हो तुम्हारे विना यह समस्त संसार विकलता को प्राप्त है ॥ ६५ ॥ तुम सब मनुष्यों के हित के लिये पहले की नाईं उदय होवो कि जिससे भूमिमें अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्त्तमान होवैं ॥ ६६ ॥ सूर्य्यनारायण बोले कि पतिव्रताकी आज्ञा से मैंने उदय को त्याग कियाहै इस लिये सब देवता जाकर मेरे लिये उससे कहैं ॥ ६७ ॥ जिससे उसके वचनको प्राप्त होकर

एतस्मिन्नन्तरेदेवास्सर्वेशक्रपुरोगमाः ॥ ६३ ॥ परंदुःखंसमापन्नायज्ञभागविवर्जिताः ॥ ततोभास्वन्तमासाद्यऊचुर्दुःखसमन्विताः ॥ ६४ ॥ कस्मान्नोद्गमनन्देवप्रकरोषिदिवाकर ॥ एतत्त्वयाविनासर्वंजगद्व्याकुलताङ्गतम् ॥ ६५ ॥ सर्वलोकहितार्थायत्वमुद्गच्छयथापुरा ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञावर्तन्तेयेनभूतले ॥ ६६ ॥ सूर्य्यउवाच ॥ पतिव्रतासमादेशात्त्यक्तश्चाभ्युदयोमया ॥ तस्माद्गत्वासुरास्सर्वेतांवदन्तुकृतेमम ॥ ६७ ॥ येनतद्वाक्यमासाद्यप्रवर्तामियथासुखम् ॥ अन्यथामांशपेत्क्रुद्धानूनंसाहिपतिव्रता ॥ ६८ ॥ एवंसातपसायुक्ताप्रोत्कृष्टेनसुरोत्तमाः ॥ पतिव्रतात्वमाधत्तेतथान्यदपरंमहत् ॥ ६९ ॥ कस्तस्यावचनंशक्तःकर्तुञ्चैवमतोन्यथा ॥ एतस्मात्कारणाद्भीतोनोद्गच्छामिकथञ्चन ॥ ७० ॥ शतक्रतुसहस्रेणयजेत्तत्प्राप्नुयात्फलम् ॥ पतिव्रतात्वमापन्नायास्त्रीविन्दतिकेवलम् ॥ ७१ ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वेगत्वात्क्षेत्रमनुत्तमम् ॥ प्रोचुस्तांदीर्घिकांवाक्यैर्मृदुभिःपुरतःस्थिताः ॥ ७२ ॥ त्वयापतिव्रतेसूर्य्योयन्निषिद्धोनतत्कृतम् ॥ शुभंयन्नततो

मैं सुखपूर्वक वर्तमान होऊं अन्यथा क्रोधित होती हुई वह पतिव्रता मुझको निश्चय कर शाप देवैगी ॥ ६८ ॥ हे सुरोत्तमो ! बड़े उत्कृष्ट (भारी) तपसे संयुत वह पतिव्रता ऐसे पतिव्रत धर्म को व अन्य बड़े भारी तेजको धारण किये है ॥ ६९ ॥ उस पतिव्रता के मतके अन्यथा वचन करने के लिये कौन समर्थ है इसी कारण डरा हुआ मैं किसी प्रकार उदय नहीं होताहूं ॥ ७० ॥ हजार अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन करै व जो फल प्राप्त होवै है उसी फलको जो स्त्री केवल पतिव्रतधर्म को प्राप्त है वह पाती है ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उन सब देवताओंने अति उत्तम क्षेत्रको जाकर अगाड़ी खड़े होते हुये उस दीर्घिका से नम्रवचनों से कहा ॥ ७२ ॥ कि हे पतिव्रते ! तुमने

जो सूर्य्य को निषेध किया वह शुभ नहीं किया क्योंकि उसी कारण भूतल में शोभन क्रियायें नहीं होती हैं ॥ ७३ ॥ इसलिये हे प्राज्ञे, शुभदायिके ! तुम्हारे वचन से सूर्य्यनारायण जी उदय होवैं कि जिससे विशेषकर यज्ञकी क्रियायें वर्तमान होती हैं ॥ ७४ ॥ दीर्घिका बोली कि इस अतिपापी व दुष्ट माण्डव्य मुनिने विना कार्य्य के भी मेरे प्रिय (पति) को शाप दिया है व पतिके विना सूर्य्य के उदय से व यज्ञों से व अन्य श्राद्धदानादिक कार्य्यों के होने से मेरा कुछ कार्य्य नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर बहुत देरतक दुःखित होते हुये वे सब देवता आपस में देखकर विनयसंयुत होते हुये उस दीर्घिका से बोले ॥ ७७ ॥ हे कल्याण-

यज्ञक्रियाविशेषेणप्रवर्तन्तेयतश्शु
हेतोर्भूतलेशोभनाःक्रियाः ॥७३॥ तस्मादुद्गच्छतुप्राज्ञेत्वद्वाक्यात्तीक्ष्णदीधितिः ॥
भे ॥ ७४ ॥ दीर्घिकोवाच ॥ मुनिनानेनदुष्टेनमाण्डव्येनसुपाप्मना ॥ कार्य्यंविनापिमेशप्तःप्रियोवैभास्करस्यच ॥७५॥
उदयेननमेयज्ञैःकार्य्यंकिञ्चिन्नचापरैः ॥ श्राद्धदानादिकैःकृत्यैस्संजातैर्दयितंविना ॥ ७६ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेविबुधा
स्सर्वेसमालोक्यपरस्परम् ॥ चिरकालंसुदुःखार्तास्तामूचुर्विनयान्विताः ॥ ७७ ॥ उद्गच्छतुरविर्भद्रेतवायंदयितःपतिः ॥
प्रयातुनिधनंसत्योभूयादेषमुनीश्वरः ॥ ७८॥ तंपुनर्जीवयिष्यामःपतिंवयमपिद्रुतम् ॥ मृत्युमार्गमनुप्राप्तंत्वत्कृतेपतिव
त्सले ॥ ७९ ॥ पञ्चविंशतिवर्षीयंकामदेवमिवापरम् ॥त्वन्द्रक्ष्यसिसुदीप्ताङ्गंसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ८० ॥ भूत्वापञ्चदशा
ब्दीयापद्मपत्रायतेक्षणा ॥ मर्त्यलोकेसुखंसम्यक्स्वेच्छयासाधयिष्यसि ॥ ८१ ॥ एषोपिमुनिशार्दूलोविपाप्मासांप्रतं
शुभे ॥ शूलभेदेननिर्मुक्तस्सुखभागीभवत्वयम् ॥ ८२ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोक्तेतयासद्द्विजसत्तमाः ॥ उद्गतो

कारिणि ! सूर्य्यनारायण उदय होवैं व तुम्हारा यह प्रिय पाति मृत्युको प्राप्तहोवै और यह मुनिनायक माडण्व्यजी सत्य होवैं ॥ ७८ ॥ हे पतिप्रिये ! मृत्युमार्ग को प्राप्त हुये तुम्हारे उस पतिको तुम्हारे लिये फिर हमलोग भी शीघ्रही जियावैंगे ॥ ७९ ॥ व प्रकाशित अङ्गोंवाले, समस्त लक्षणों से चिह्नित व पचीस वर्षवाले तथा दूसरे कामदेवके समान पतिको तुम देखोगी ॥ ८० ॥ व कमलदल के समान चौंड़े नेत्रोंवाली व पन्द्रह वर्षवाली होकर तुम मृत्युलोकमें अपनी इच्छासे सुखको भलीभांति साधन करोगी ॥ ८१ ॥ हे शुभदायिके ! पापरहित यह मुनिपुङ्गव माण्डव्य भी शूली भेदन से छूटकर इस समय यह सुखभागी होवैगा ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले कि

हे द्विजोत्तमो ! उस दीर्घिका के हां यही कहनेपर उसी क्षणही भगवान् सूर्य्यनारायणजी वेग से उदय हुये ॥ ८३ ॥ तदनन्तर सूर्य्यकी किरणों से भलीभांति छुवाहुआ वह कुष्ठभागी मरगया व देवताओं के हाथोंसे छुवाहुआ फिर भलीभांति उठ पड़ा ॥ ८४ ॥ व पचीस वर्षवाले कामदेव के समान वह सब पूर्वजाति को स्मरण करता हुआ हर्षसंयुत होगया ॥ ८५ ॥ व शिवदेव से आपही सब ओर छुईहुई वह दीर्घिका भी युवावस्था से संयुत व उत्तम लक्षणों से चिह्नित होगई ॥ ८६ ॥ व कमलदल लोचनोंवाली, मनोहारिणी व चन्द्रमा के बिम्बके समान मुखवाली और मध्य (कटि) में पतली व अतिगौर अङ्गोंवाली तथा पुष्ट व ऊंचे स्तनोंवाली होगई ॥ ८७ ॥

भगवान्सूर्य्यस्तत्क्षणादेववेगतः ॥ ८३ ॥ ततस्सूर्यांशुसंस्पृष्टस्संमृतश्चसकुष्ठभाक् ॥ विबुधानांकरैस्स्पृष्टः पुनरेवसमुत्थितः ॥ ८४ ॥ पञ्चविंशतिवर्षीयकामदेवइवापरः ॥ संस्मरन्पूर्विकांजातिंसर्वांहर्षसमन्वितः ॥ ८५ ॥ दीर्घिकापिपरिस्पृष्टा स्वयंदेवेनशम्भुना ॥ संजातायौवनोपेतादिव्यलक्षणलक्षिता ॥ ८६ ॥ पद्मपत्रेक्षणारम्याचन्द्रबिम्बसमानना ॥ मध्ये क्षामासुगौराङ्गीपीनोन्नतपयोधरा ॥ ८७ ॥ ततस्तंमुनिशार्दूलंशूलाग्रादवतार्य्यच ॥ प्रोचुश्चविबुधश्रेष्ठास्सादरंहर्षसंयुताः ॥ ८८ ॥ एतत्सत्यंकृतंवाक्यंमुनेतवयथोदितम् ॥ मृतोपिब्राह्मणःकुष्ठीसंस्पृष्टोरविरश्मिभिः ॥ ८९ ॥ पुनरुत्थापितोस्माभिःकृतश्चतरुणःपुनः ॥ अनयाभार्य्ययासार्द्धंतस्मात्त्वंस्वाश्रमंव्रज ॥ ९० ॥ नास्माकंदर्शनंव्यर्थंकथञ्चिदपि जायते ॥ तस्मात्प्रार्थयचित्तेतवनित्यंसमाश्रितम् ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वर माहात्म्येपतिव्रतावरलाभोनामद्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर उन मुनिपुङ्गव (माण्डव्य) को शूली के अग्रभाग से उतारकर आनन्द संयुत होते हुये देवतोत्तमों ने आदर समेत कहा ॥ ८८ ॥ कि हे मुने ! तुम्हारा यह यथोदित वचन सत्य कियागया व सूर्य्यकी किरणों से भलीभांति छुवा व मरा हुआभी कुष्ठी ब्राह्मण हमलोगों से फिर उठाया गया व इस स्त्री समेत फिर युवा कियागया इसलिये तुम अपने आश्रम को जावो ॥ ८९।९० ॥ और हमलोगोंका दर्शन किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं होता है इसलिये तुम्हारे चित्तमें जो नित्यही भलीभांति टिकाहो उसको मांगो ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपतिव्रतावरलाभोनामद्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥

दो० । कौन पतिव्रत नारि जिमि तीर्थ दीर्घिका नाम । इकसौ तैंतीसवें महँ सोइ चरित अभिराम ॥ माण्डव्यजी बोले कि हे देवतोत्तमो ! तुम लोगों से उपजेहुये वर-
दान को मैं ग्रहण करूंगा परन्तु मेरे एक निर्णय को यमराज कहैं ॥ १ ॥ हे सुरोत्तमो ! संसार में समस्त प्राणियों से कियाहुआ शुभ अशुभ कर्म समीप में टिकता है न
कि और कर्म यह सत्यहै ॥ २ ॥ मैंने इस लोक व परलोकमें भी क्या पातक किया है कि जिससे ऐसी पीड़ा प्राप्तहुई और किसी प्रकार मृत्यु न हुई ॥ ३ ॥ यमराज बोले
कि हे विप्र ! अन्य शरीर में शिशुता के वर्तमान होनेपर तुमने पृथ्वी में अधिक जन्तुओं के शरीर में शूलाग्र से वेधन किया है ॥ ४ ॥ हे द्विज ! और कुछेकही थोड़े

माण्डव्यउवाच ॥ गृहीष्यामिसुरश्रेष्ठावरंयुष्मत्समुद्भवम् ॥ परंमेनिर्णयञ्चैकंधर्म्मराजःप्रवक्ष्यति ॥ १ ॥ सर्वेषांप्रा
णिनांलोकेकृतङ्कर्म्मशुभाशुभम् ॥ उपतिष्ठतिनान्यत्तुसत्यमेतत्सुरोत्तमाः ॥ २ ॥ मयामुत्रपरेचापिकिंकृतम्पातकञ्चय
त् ॥ ईदृशीवेदनाप्राप्तानचमृत्युःकथञ्चन ॥३॥ यमउवाच ॥ अन्यदेहेत्वयाविप्रबालभावेप्रवर्तिते ॥ शूलाग्रेणसुतीक्ष्णेन
कायेविद्धोधिकःक्षितौ ॥४॥ नान्यत्कृतमपिस्वल्पम्पातकङ्किञ्चिदेवहि ॥ एतस्मात्कारणादेषाव्यवस्थासेविताद्विज ॥५॥
सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभृशंक्रोधसमन्वितः ॥ ततस्तम्प्राहमाण्डव्योधर्म्मराजम्पुरःस्थितम् ॥ ६ ॥ अस्यस्व
ल्पापराधस्ययस्माद्भूयान्विनिग्रहः ॥ कृतस्त्वयासुदुर्बुद्धेतस्माच्छापंगृहाणमे ॥ ७ ॥ त्वम्प्राप्यमानुषन्देहंशूद्रयोनौ
व्यवस्थितः ॥ जातिक्षयकृतन्दुःखम्प्रभूतंसेवयिष्यसि ॥८॥ तथाकृतामयैषाचव्यवस्थासर्वदेहिनाम् ॥ अष्टमाद्वत्सराद्

भी पापको तुमने नहीं किया है इसी कारण यह दशा सेवित हुई ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन धर्मराज के उस वचन को सुनकर अतिक्रोधसंयुत होतेहुये
माण्डव्यजी ने अगाड़ी खड़े हुये उन धर्मराज से कहा ॥ ६ ॥ कि हे दुष्टबुद्धे ! जिस लिये तुमने थोड़े अपराधका बड़ा दण्ड किया उसी कारण मेरे शापको ग्रहण करो
७ ॥ कि मनुष्य के शरीरको पाकर शूद्रयोनि में टिकेहुये तुम जातिके संहारसे किये हुये बहुत दुःख को सेवन करोगे ॥ ८ ॥ वैसेही हे देवताओ ! मैंने समस्त शरीर-
धारियों की यह व्यवस्था किया कि आठ वर्ष के ऊपर प्राणी व अन्य पुरुषभी निन्दित कर्मसे ग्रहण किया जावैगा हे ब्राह्मणो ! धर्मराज से ऐसा कहकर तदनन्तर

रोगसे छूटेहुये उन माण्डव्यजी ने चाही हुई दिशाके सामने प्रस्थान किया ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर धर्मराज के लिये उस प्रकार के शापको सुनकर व प्रस्थान किये हुये उन माण्डव्य को देखकर आकुल होते हुये समस्त देवताओं ने कहा ॥ ११ ॥ देवता बोले कि हे भगवन् ! केवल न्याय में लगे हुये धर्मराज को तुम शाप से शूद्र करने के लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हो ॥ १२ ॥ इसलिये हे द्विज ! हमलोगोंके वचन से तुम इस धर्मराज के ऊपर प्रसन्नता करो व इसी क्षण वरदान को मांगो ॥ १३ ॥ माण्डव्यजी बोले कि हे सुरोत्तमो ! जो मुझसे कहीगई है वह वाणी झूंठ न होवैगी ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त भी यह धर्मराज शूद्रयोनि में जावैगा परन्तु

द्वैकर्म्मणागर्हितेनच ॥ ९ ॥ प्रग्रहीष्यतिवैजन्तुःपुरुषोन्योपिदेवताः ॥ एवमुक्त्वासमाण्डव्योधर्म्मराजंततःपरम् ॥ प्रस्थितोरोगनिर्मुक्तोवाञ्छिताशाम्प्रतिद्विजाः ॥ १० ॥ अथतंप्रस्थितन्दृष्ट्वाप्रोचुस्सर्वेदिवौकसः ॥ धर्म्मराजकृतेव्यग्राः श्रुत्वाशापन्तथाविधम् ॥ ११ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवन्न्यायशक्तस्यधर्म्मराजस्यकेवलम् ॥ नत्वमर्हसिशापेनशूद्रंकर्तुं कथञ्चन ॥ १२ ॥ प्रसादंकुरुतस्मात्त्वमस्यधर्म्मपतेर्द्विज ॥ अस्माकंवचनात्सद्यःप्रार्थयस्वतथावरम् ॥ १३ ॥ माण्डव्यउवाच ॥ नमृषाजायतेवाणीयामयोक्तासुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ अथापिधर्म्मराजोयंशूद्रयोनौप्रयास्यति ॥ परमेवास्य संज्ञानंतस्यांयोनौभविष्यति ॥ १५ ॥ सम्प्राप्स्यतिचभूयोपिधर्म्मराजमनुत्तमम् ॥ आराधयतुचाव्यग्रःक्षेत्रेत्रैवत्रिलोचनम् ॥ १६ ॥ प्रसादात्तस्यदेवस्यशीघ्रंमुक्तिमवाप्स्यति ॥ तथादेयोवरोमह्यंभवद्भिर्यदिस्वर्गदा ॥ तदेषाशूलिकामह्यं स्पर्शाद्भूयात्सुधर्म्मदा ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ एतांयःप्रातरुत्थायस्पर्शयिष्यतिशूलिकाम् ॥ पातकात्सविनिर्मुक्तइहलो

उस योनिमें इसको भलीभांति ज्ञान होवैगा ॥ १५ ॥ व फिर भी अत्युत्तम धर्मराज को भलीभांति प्राप्त होवैगा व सावधान होते हुये इसी क्षेत्रमें त्रिनयन (शिव) जी का आराधन करै ॥ १६ ॥ क्योंकि उन सदाशिवजी की प्रसन्नता से शीघ्रही मोक्ष को पावैगा व यदि मेरे लिये आप लोगोंसे वरदान देने योग्यहै तो यह मेरी शूलिका स्पर्श से स्वर्गदायक व उत्तम धर्मदायक होवै ॥ १७ ॥ देवता बोले कि प्रातःकाल उठकर जो पुरुष इस शूलीको स्पर्श करैगा वह इस संसार में पातकसे छुटाहुआ

होवैगा ॥ १८ ॥ इन्द्र अग्रगामीवाले उन देवताओं ने उन माण्डव्य मुनिसे ऐसा कहकर तदनन्तर पति समेत उस पतिव्रता से आदर सहित कहा ॥ १९ ॥ कि हे उत्तम वर्णवाली ! जो तुम्हारे चित्तमें सदैव टिकाहो उस प्रिय वरदान को तुमभी हमलोगों से मांगो इस विषय में हमलोगोंको अदेय (न देने योग्य) नहीं है ॥ २० ॥ पतिव्रता बोली कि हे सुरेश्वरो ! इस स्थान में मुझसे किया हुआ जो यह गढ़ा है वह मेरे नामसे त्रिलोक में दीर्घिका ऐसा प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ २१ ॥ देवता बोले कि आजसे लगाकर लोकमें यह गढ़ा तुम्हारे आयसु से त्रिलोकमें दीर्घिका ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २२ ॥ जे अपुत्र नर श्रद्धा से सहित होतेहुये इस दीर्घिका (बावली)

केभविष्यति ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वामुनिंतन्तेदेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ततस्तांसादरम्प्रोचुस्सहभर्त्रापतिव्रताम् ॥ १९ ॥ त्वम पिप्रार्थयाभीष्टमस्मत्तोवरवर्णिनि ॥ यत्तेचित्तेस्थितंनित्यंनादेयंविद्यतेत्रनः ॥ २० ॥ पतिव्रतोवाच ॥ योयंमयाकृतोगर्त स्स्थानेत्रत्रिदशेश्वराः ॥ नाम्नाख्यातिंममायातुदीर्घिकेतिजगत्त्रये ॥ २१ ॥ देवाऊचुः ॥ अद्यप्रभृतिलोकेचगर्तोयंतव शासनात् ॥ दीर्घिकेतिसुविख्यातोभविष्यतिजगत्त्रये ॥ २२ ॥ येस्यांस्नानंकरिष्यन्तिश्रद्धयासहितानराः ॥ अपुत्रा स्तेभविष्यन्तिसपुत्रावंशवर्द्धनाः ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वाचतांदेवाजग्मुस्स्वर्गंद्विजोत्तमाः ॥ पतिव्रतापितेनैवसहकान्तेनसुन्द री ॥ २४ ॥ सेवयामासकल्याणीस्मरसौख्यमनुत्तमम् ॥ पर्वतेषुचरम्येषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ २५ ॥ उद्यानेषुविचित्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ततोवयसिसम्प्राप्तेपश्चिमेकालपर्य्ययात् ॥ २६ ॥ तदेवात्मीयतीर्थन्तुसेवयामाससादरम् ॥ ततोदेहंप रित्यक्त्वास्वकान्तंवीक्ष्यतंमृतम् ॥ २७ ॥ सहतेनजगामाथब्रह्मलोकंपतिव्रता ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंदीर्घिकाख्यानमुत्त

में स्नान करैंगे वे सपुत्र व वंशके बढ़ानेहारे होवैंगे ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस पतिव्रता से ऐसा कहकर देवता स्वर्गको चलेगये और कल्याणी व सुन्दरी पतिव्रता ने भी उसी पति समेत पर्वतों व मनोहर नदियों के किनारोंमें व उद्यानों (बगीचों) तथा विचित्र वनों व उपवनों में अतिउत्तम कामदेव के सुखको सेवन किया तदनन्तर जब समय के व्यतीत होने से पिछली अवस्था भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २४ । २५ । २६ ॥ उसी समय आदर समेत अपने तीर्थ को सेवन किया तदनन्तर उस अपने पतिको मरेहुये देखकरके देहको छोड़कर अनन्तर पतिव्रता उसी के साथ ब्रह्मलोक को चली गई इस उत्तम समस्त दीर्घिका के आख्यान को तुम लोगों से

वर्णन किया ॥ २७।२८ ॥ कि जिसके भलीभाति सुननेही से मनुष्य पातक से छूट जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येदीर्घिकामाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३३ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि मुनीश माण्डव्यजी पायो शूलि कलेश । इकसौचौंतीसवें महँ कहत सोइ उपदेश ॥ ऋषिलोग बोले कि बड़े भारी तपस्वी इन माण्डव्य मुनिपुङ्गवको किस कारण और किसने शूली के अग्रभाग में स्थापित किया था यह हम लोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय परमश्रद्धासे संयुत व तीर्थयात्रा को

मम् ॥ २८ ॥ यस्यसंश्रवणादेवनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येदीर्घिकामाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ केनासौमुनिशार्दूलोमाण्डव्यस्सुमहातपाः ॥ शूलाग्रेस्थापितःकेनकारणेनचनोवद ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ समाण्डव्योमुनिःपूर्वंतीर्थयात्रांसमाचरन् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेसमायातःश्रद्धयापरयायुतः ॥२॥ विश्वामित्रीयमासाद्यतत्तीर्थंपावनंस्मृतम् ॥ पितॄणान्तर्प्पणञ्चक्रेभास्करम्प्रतिसव्रती ॥ ३ ॥ जपन्विभ्राडितिश्रेयःसूक्तंभास्करवल्लभम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेचौरोलोप्त्रमावापकस्यचित् ॥४॥ कोपितत्रसमायातःपृष्ठलग्नजनोद्विजाः ॥ ततश्चौरोपितंदृष्ट्वामौनस्थंमुनिसत्तमम् ॥ ५ ॥ लोप्त्रंमुक्त्वातदग्रेथप्रविवेशगुहान्तरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्तेजनालोप्त्रहेतवे ॥ ६॥ दृष्ट्वालोप्त्रंतदग्रस्थंतमूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥ मार्गेणानेनचायातोलोप्त्रहस्तोमलिम्लुचः ॥७॥ ब्रूहिशीघ्रंमहाभागकेनमार्गेणनिर्गतः ॥

करतेहुये वे माण्डव्यमुनि इस क्षेत्रमें भलीभांति आये ॥ २ ॥ व नियमवाले उन माण्डव्य ने पवित्रकारक कहेहुये उस भास्कर तीर्थ को प्राप्तहोकर पितरों का तर्पण किया ॥ ३ ॥ वे मुनि बिभ्राट् ऐसे सूर्यप्रिय श्रेयः सूक्त को जप कररहेथे इसी अवसर में चोर ने किसी के धनको पाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! पीछे लगाहुआ कोई मनुष्य भी वहां आया व चोर भी मौनमें टिकेहुये मुनिनाथ (माण्डव्य) को देखकर ॥ ५ ॥ उनके अगाड़ी चोरी के धनको छोड़कर इसके अनन्तर गुहाके मध्य में पैठगया इसी अवसरमें चुरायेहुये धनके निमित्त वे मनुष्य प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ व उनके अगाड़ी धरेहुये चोरित धनको देखकर उन मुनिश्रेष्ठ से बोले कि इस राहसे चुराये

धनको हाथमें लिये चोर आयाहै ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! कहिये कि वह किस मार्ग से निकलगया गुहामें टिकेहुये चोर को जानतेहुये भी मौनव्रत में परायण उन बुद्धिमान्ने कुछ भी न कहा जब बार२ कहे जातेहुये भी चिन्ता से रहित व चोरके जीव की रक्षा करतेहुये उन मुनिने कुछ न कहा तब उन सबोंने सलाह किया कि निश्चय कर यह चोरहै ॥ ८।९।१० ॥ जो कि हम सबों से पीछे लगा हुआ मुनिरूप होगया तदनन्तर नहीं विचारकर उन सब दुष्टचित्त या मनवाले अहीरों ने कुछेक वनके बीचमें लेजाकर उसीक्षण शूली में आरोपित किया इसप्रकार उन दोषरहित व बुद्धिमान् मुनिने उस समय पुरातन कर्मके फलसे विकराल शूली पायाहै ॥ ११।१२।१३ ॥

सचजानन्नपिप्राज्ञोगुहासंस्थंमलिम्लुचम् ॥ ८ ॥ नकिञ्चिदपिप्रोवाचमौनव्रतपरायणः ॥ असकृत्प्रोच्यमानोपिमुनिश्चिन्ताविवर्जितः ॥ ९ ॥ यदाप्रोवाचनोकिञ्चित्सरक्षंश्चौरजीवितम् ॥ ततस्तैर्मन्त्रितंसर्वैरेषनूनंमलिम्लुचः ॥ १० ॥ संलग्नः पृष्ठतोस्माभिर्मुनिरूपोबभूवह ॥ अविचार्य्यततस्सर्वैराभीरैस्तैर्दुरात्मभिः ॥ ११ ॥ शूलामारोपितस्सद्योनीत्वाकिञ्चिद्वनान्तरे ॥ एवंप्राप्तातदाशूलामुनिनातेनदारुणा ॥ १२ ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेनदोषहीनेनधीमता ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमाण्डव्यशूलावाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ सुकृतंधर्म्मराजेनतपोध्यानादिकञ्चयत् ॥ माण्डव्यशापनाशायतदस्माकंप्रकीर्तय ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ माण्डव्यशापमासाद्यधर्म्मराजस्सुदुःखितः ॥ ततस्तेपेद्विजश्रेष्ठास्तस्मिन्क्षेत्रेव्यवस्थितः ॥ २ ॥ प्रासादन्देवदेवस्य संविधायकपर्द्दिनः ॥ अत्युग्रंपूजयामासपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ ३ ॥ ततःकालेनमहतातुष्टोह्यस्यमहेश्वरः ॥ प्रोवाचवरदो

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये माण्डव्यशूलावाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३४ ॥

दो० । इकसौ पैंतिसमें कहत सोई उत्तम गाथ । यथा शिवहिं आराधि पुनि भे यमराज सनाथ ॥ ऋषिलोग बोले कि माण्डव्यके शापके नाशकेलिये धर्मराजने जिस तपस्या व ध्यानादिकको कियाहो उसको हम लोगोंसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! माण्डव्यके शापको पाकर अतिदुःखित यमराजने उस क्षेत्र में टिकतेहुये तपस्या को कियाहै ॥ २ ॥ व जटाधारी देवदेव (शिव) जीके मन्दिरको बनाकर पुष्प, धूप व अनुलेपनों से अति उग्रतापूर्वक पूजन किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर बहुत

समय से इस धर्मराज के ऊपर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी यह बोले कि मैं वरदायकहूं तुम मनसे चाहेहुये पदार्थ को मांगो ॥ ४ ॥ धर्मराज बोले कि हे देव ! सब दोषों से रहित व निज धर्म में वर्तमानभी मैं पुरातन समय माण्डव्य महात्मा से शापित हुआ ॥ ५ ॥ उन क्रोधित माण्डव्य ने कहा कि तुम शूद्रयोनि में होवोगे व उसमें भी जातिके नाशसे उपजेहुये बड़े भारी दुःख को पावोगे ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि उन उत्तम मुनि के वचन अन्यथा करने के लिये समर्थ नहीं है इसलिये तुम शूद्र भी होकर सन्तानको न पावोगे ॥ ७ ॥ व जातिके संहारको देखकर भी दुःखको न पावोगे जिस लिये मना किये हुये भी वे (कौरव) तुम्हारे वचनको न करेंगे ॥ ८ ॥

स्मीतिप्रार्थयस्वहृदीप्सितम् ॥४॥ धर्मराजउवाच ॥ अहंदेवपुराशप्तोमाण्डव्येनमहात्मना ॥ स्वधर्मेवर्तमानोपिसर्वदोषविवर्जितः ॥ ५ ॥ कुपितेनचतेनोक्तंशूद्रयोनौभविष्यसि ॥ तत्रापिचमहद्दुःखंजातिनाशसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ शिवउवाच ॥ नतस्यसन्मुनेर्वाक्यंशक्यतेकर्तुमन्यथा ॥ तस्माच्छूद्रोपिभूत्वात्वंनसन्तानमवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ जातिक्षयंप्रदृष्ट्वापिनैवदुःखमवाप्स्यसि ॥ यतोनिषिद्धमानापिनकरिष्यन्तितेवचः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणाच्चित्तेनतेदुःखंभविष्यति ॥ ज्ञातिजन्धर्म्मराजैतत्सत्यमेवमयोदितम् ॥ ९ ॥ स्थित्वावर्षशतञ्चाथत्वंशूद्रोधर्म्मवत्सलः ॥ उपदेशान्बहून्दत्त्वाज्ञातिभ्योहितकाम्यया ॥ १० ॥ अपिश्रद्धाविहीनेभ्यःपापात्मभ्यःसदैवहि ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे ब्रह्मद्वारेणकेवलम् ॥ ११ ॥ आत्मानंसम्यगुत्सृज्यमोक्षमेवप्रयास्यसि ॥ एवमुक्त्वासभगवान्गतश्चादर्शनंहरः ॥ १२ ॥ धर्म्मराजोपितंशापं भोक्तुं माण्डव्यसम्भवम् ॥ तदाविदुररूपेणअवतीर्य्यधरातले ॥ माण्डव्यस्यवचस्सत्यं सचकारमहामतिः ॥ १३ ॥ जातोभ

इसी कारण हे धर्मराज ! तुम्हारे चित्तमें कुटुम्बियों से उपजाहुआ दुःख न होगा यह मैंने सत्यही कहाहै ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर धर्मप्रिय शूद्र तुम सौ वर्ष टिककर श्रद्धारहित व पापात्माभी कुटुम्बियों के लिये हितकी कामना से सदैवही बहुतसे उपदेशोंको देकर तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर जीवात्माको केवल ब्रह्मद्वार से भलीभांति त्यागकर मोक्षही को पावोगे ऐसा कहकर वे सदाशिव भगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ १०।११।१२ ॥ व उससमय उन महामति धर्मराजने भी माण्डव्य से उपजेहुये उस शापको भोगने केलिये भूतल में विदुररूपसे अवतार लेकर माण्डव्यके वचनको सत्य किया ॥ १३ ॥ दासी के गर्भ से उपजेहुये जो विदुर अतुलित

तेजवाले पराशरके पुत्र साक्षात् भगवान् व्यासनामक ब्राह्मणसे उत्पन्नहुयेथे॥ १४ ॥ इस धर्मराजसे उपजेहुये व सब पापों के नाशक समस्त कथानकको तुम लोगोंसे वर्णन किया जोकि मुझसे पूंछागयाथा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधर्मराजेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यमराजेश्वर को रुचिर अति उत्तम माहात्म्य । इकसौ छत्तिस महँ कहत सूत सकल याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय धर्मराजेश्वर

गवतासाक्षाद्व्यासेनामिततेजसा ॥ पाराशर्य्येणविप्रेणदासीगर्भसमुद्भवः ॥ १४ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं धर्म्मराजसमुद्भवम् ॥ आख्यानंयदहंपृष्टस्सर्वपातकनाशनम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये धर्मराजेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३५ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ धर्म्मराजेश्वरोत्थंच माहात्म्यंद्विजसत्तमाः ॥ यन्मयाप्रश्रुतंपुण्यं सकाशात्स्वपितुःपुरा ॥ १ ॥ तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ त्रैलोक्येपिसुविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ तत्रक्षेत्रवरेविप्रःकाश्यपान्वयसम्भवः ॥ उपाध्यायइतिख्यातो वेदविद्यापरायणः ॥ ३ ॥ पश्चिमेवयसिप्राप्ते तस्यपुत्रोबभूवह ॥ स्वाध्यायनियमस्थस्य प्रभूतविनयस्यच ॥ ४ ॥ पञ्चवर्षप्रमाणस्तु यदाजज्ञेथतत्सुतः ॥ तदामृत्युवशंप्राप्तः पितृमातृसुदुःखकृत् ॥ ५ ॥ ततःसब्राह्मणःकोपं चक्रेवैवस्वतोपरि ॥ धर्म्मराजगृहंप्राप्तंदृष्ट्वानिजकुमारकम् ॥ ६ ॥ आदायसलिलंहस्ते शुचिर्भू

से उठाहुआ जो पुण्यदायक माहात्म्य मैंने अपने पिताके सकाश से सुना है ॥ १ ॥ त्रिलोक में भी प्रसिद्ध व समस्त पातकों के विनाशक को मैं कहूंगा तुम लोग सावधान होते हुये सुनो ॥ २ ॥ कि उस उत्तम क्षेत्रमें कश्यप के वंशमें उपजा हुआ उपाध्याय ऐसा प्रसिद्ध व वेदविद्या में तत्पर ब्राह्मण हुआ है ॥ ३ ॥ उस बहुत विनयवाले व वेदपाठ तथा नियम में टिके हुये द्विजकी जब पिछली अवस्था प्राप्त हुई तब पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर जब उसका पुत्र पांच वर्ष के प्रमाणका हुआ तब पिता माता को अति दुःखकारक वह मृत्युवश को प्राप्त होगया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस ब्राह्मण ने यमराज के घरको प्राप्तहुये निजपुत्र को देखकर धर्मराज

त्वासमाहितः ॥ प्रददौदारुणंशापं धर्म्मराजायदुःखितः ॥ ७ ॥ अपुत्रश्चकृतोयस्मादहंतेनदुरात्मना ॥ अतस्सोपिच दुष्टात्मा यमोऽपुत्रीभविष्यति ॥ ८ ॥ यथाचभूतलेलोको नैवपूजांविधास्यति ॥ कीर्तयिष्यतिनोनाम यथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ९ ॥ यःकश्चित्प्रातरुत्थाय नामचास्यग्रहीष्यति ॥ माङ्गल्यकरणेचाथ विघ्नंतस्यभविष्यति ॥ १० ॥ तंश्रुत्वातस्यविप्रस्य यमःशापंसुदारुणम् ॥ स्वधर्म्मेवर्तमानस्सततोदुःखान्वितोभवत् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेगत्वाब्रह्मणस्सदनंप्रति ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वायमःप्राहपितामहम् ॥ १२ ॥ पश्यदेवेशशप्तोहं निर्दोषोपिद्विजन्मना ॥ स्वधर्म्मेवर्तमानस्तु यथान्यःप्राकृतोजनः ॥ १३ ॥ तस्मादहंत्यजिष्यामि नियोगंतेपितामह ॥ ब्रह्मशापभयाद्भीतः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १४ ॥ पुरामाण्डव्यशापेन शूद्रयोनौप्रतारितः ॥ साम्प्रतंपुत्ररहितः कृतोपूज्यश्चसत्तम ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा दीनंवैवस्वतस्यच ॥ तत्कालोचितमाहेदं स्वयमेवशतक्रतुः ॥ १६ ॥ युक्तमुक्तमनेनैतद्

के ऊपर क्रोधकिया ॥ ६ ॥ व सावधान होते हुये उस दुःखित द्विजने पवित्र हो हाथमें जललेकर धर्मराज के लिये घोर शाप दिया ॥ ७ ॥ कि जिसलिये उस दुष्टात्मा से मैं पुत्रहीन कियागया इसी कारण वहभी दुष्ट चित्त या मानसवाला यमराज अपुत्र होवै ॥ ८ ॥ जिस प्रकार कि भूतल में मनुष्य उसका पूजन न करै व जैसे अन्य देवोंका नाम कहा जाता है वैसेही नामका कीर्तन न करै ॥ ९ ॥ व मङ्गल कार्य्य के करने में जो कोई प्रातःकाल उठकर इन यमराज का नाम लेवैगा इसके अनन्तर उसको विघ्नहोगा ॥ १० ॥ अपने धर्म में वर्तमान वे यमराज उस ब्राह्मण के उस विकराल शापको सुनकर तदनन्तर दुःख संयुक्त हुए ॥ ११ ॥ इसी समय में यमराजने ब्रह्माके मन्दिरको जाकर व जुडेहुए हाथोंवाले होकर पितामह जीसे कहा ॥ १२ ॥ कि हे देवेश ! देखिये निज धर्म में वर्त्तमान व निर्दोषभी मुझको ब्राह्मणने अन्य पामर नरकी नाईं शाप दिया ॥ १३ ॥ इसलिये हे पितामह ! ब्राह्मणके शापसे भय भीत मैं तुह्मारी आज्ञाको छोड़ दूंगा यह मैंने सत्य कहा है ॥ १४ ॥ हे अति उत्तम पितामहजी ! पुरातन समय माण्डव्य के शापसे मैं शूद्र योनिमें वञ्चित हुआ और इस समय पुत्रहीन व अपूज्य किया गया ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि उन यमराजके उसदीन वचनको सुनकर आपही इन्द्रजीने उस समय के योग्य इस वचन को कहा ॥ १६ ॥ कि हे कमलसे उपजे हुये सुरनायक ! तुम्हारे

आयसुमें वर्त्तमान इस यमराजने यह योग्य कहाहै ॥ १७ ॥ क्योंकि हे पितामह ! शिशुतामें या युवावस्थामें या वृद्धावस्थामें समय स्थित होनेपर अवश्यही मनुष्य मरैंगे॥१८॥समयमें ये संहार करतेहैं अकालमें किसीप्रकार नहीं इसीसे तुम्ह महात्माने सम शत्रु व सम मित्र वाले इनका नाम उत्तम धर्मराजाख्य कहाहै इसलिये यत्न से भली भांति देखकर कोई उपाय अवश्य कर चिन्तवन किया जावे कि जिससे दोषरहित धर्मराजजी तुम्हारी आज्ञाकरैं ब्रह्माजी बोले कि ब्राह्मणकी शापको अन्यथा करनेके लिये मैं किसी प्रकार नहीं समर्थहूं ॥१९।२०।२१॥ हे त्रिदशेश्वर ! इस समय उपायसे करूंगा तदनन्तर लोकोंके पितामह उन ब्रह्माजीने भलीभांति सावधान

मराजेनपद्मज ॥ नियोगेवर्तमानेन तावकीयेसुरेश्वर ॥१७॥अवश्यमेवमर्त्तव्या मनुष्याःसमयेस्थिते ॥ बाल्येवायौ वनेवाथ वार्द्धक्येवापितामह ॥ १८ ॥ संहर्तुकामेनानेन नाकालेचकथंचन ॥ एतेनैवकृतन्नाम धर्म्मराजाख्यमुत्तमम् ॥ १९ ॥ त्वयाचसममित्रस्य समशत्रोर्महात्मना ॥ तस्माद्यत्नात्समालोक्य कश्चिदेवविचिन्त्यताम् ॥ २० ॥ उपायो येननिर्दोषो नियोगंकुरुतेतव ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्रह्मशापंनशक्तोहमन्यथाकर्तुमेवच ॥ २१ ॥ उपायेनकरिष्यामि साम्प्रतंत्रिदशाधिप ॥ ततोध्यानंप्रचक्रेस ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ तदर्थंसर्वदेवानांपुरतस्सुसमाहितः ॥ तस्यैवंध्यानशक्तस्य प्रादुर्भूतास्समन्ततः ॥ २३ ॥ भूत्वारोगास्सुरौद्रास्तेवातगुल्मकफात्मकाः ॥ अष्टोत्तरशतंप्रायाः प्रोचुस्तंतुकृतादराः ॥२४॥ रोगाऊचुः ॥ किमर्थंदेवदेवेश त्वयासृष्टावयंविभो ॥ आदेशोदीयतांशीघ्रं प्रसादःक्रियतामिति ॥२५॥ ब्रह्मोवाच ॥ व्रजध्वंभूतलेशीघ्रं ममादेशादसंशयम् ॥ यमादेशान्मनुष्येषु गन्तव्यमविकल्पितम् ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वातु

होकर समस्त देवताओंके आगे उसके लिये ध्यान किया इस भाँति ध्यानमें लगे हुये ब्रह्माजीके चारोंओर ॥२२।२३॥ बड़े विकरालबात गुल्म व कफआत्मावाले रोगहोकर और कियेहुये आदरवाले मुख्य एकसौ आठ रोग उनसे बोले ॥२४॥ रोगबोले कि हे देवदेवेश, हे विभो ! तुमने हमलोगोंको किसलिये उत्पन्न कियाहै प्रसन्नताकी जावै व शीघ्रही आज्ञा दीजावै ॥२५॥ ब्रह्मा बोले कि तुम लोग मेरी आज्ञासे भूतलमें शीघ्रही जाओ और यमराजके आयसुसे मनुष्योंमें निर्विकल्प पूर्वक जाना चाहिये ॥२६॥

उन रोगोंसे ऐसा कह कर तदनन्तर पितामह जीने अत्यन्तही दीन व नीचे मुख वाले समीपमें टिके हुये यमराज से कहा ॥२७॥ कि ये समस्त रोग तुम्हारीसहायता में विशेषकर युक्तकिये गये जोकि सदैव समस्त कार्योंमें तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ २८ ॥ इससमय मृत्युलोक में बीते आयुर्बल वाला जो कोई प्राणी प्राप्तहो उसके मारने के लिये तुमको सदैव उन रोगोंको पठाना चाहिये ॥२९॥ उससे भूतलमें मनुष्योंके नाशसे उपजाहुआ कलङ्क इनरोगोंको होगा और तुमको नहीं होवेगा ॥३०॥ इसलिये मेरीआज्ञासे अपने स्थानको जाकर निस्सन्देह पूर्वक निज अधिकारमें परायणहोओ दोषको न पावोगे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रविनन्दन (यमराज) जी ने उन

एतेतेव्याधयस्सर्वे सहायेविनियोजिताः ॥ साहाय्यंतेकरिष्यन्ति सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ २८ ॥ यःकश्चिदधुनामर्त्यैं गतायुस्संप्रपद्यते ॥ वधायतस्ययत्नेनत्वया प्रेष्याश्चसर्वदा ॥२९॥ एतेषांजायतेतेन जननाशसमुद्भवः ॥ अपवादोधरापृष्ठे नचसंजायतेतव ॥ ३० ॥ तस्माद्गत्वानिजंस्थानं स्वाधिकारपरोभव ॥ ममादेशादसंदिग्धं नैवदोषमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥ ततस्तान्सकलान्व्याधीन्गृहीत्वारविनंदनः ॥ यमलोकंसमासाद्य ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३२ ॥ पृष्ट्वासर्वैःप्रगन्तव्यं चित्रगुप्तंधरातले ॥ गन्तव्यंजननाशाय समयेसमुपस्थिते ॥ ३३ ॥ परमस्तिमयातत्र स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वपातकनाशनम् ॥ ३४ ॥ यस्तंपश्यतिसद्भक्त्या प्रातरुत्थायमानवः ॥ युष्माभिस्ससदात्याज्यो दूरतोवचनान्मम ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासतान्व्याधीन्ततोवैवस्वतःस्वयम् ॥ तस्यविप्रस्यतंपुत्रं गृहीत्वासत्वरंययौ ॥ ३६ ॥ तस्यैवमन्दिरेरम्ये कृत्वारूपंद्विजन्मनः ॥

तानोगान्ततःप्राहपितामहः ॥ धर्म्मराजंसमीपस्थं भृशंदीनमधोमुखम् ॥ २७ ॥

समस्त रोगों को लेकर यमलोकको जाकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ ३२ ॥ कि तुम सबोंको चित्रगुप्तसे पूंछकर भूतलमें जानाचाहिये व समयको समीप प्राप्त होनेपर मनुष्योंके नाशके लिये जाने योग्यहै ॥३३॥ परन्तु उसभूतलमें हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें मैंने समस्त पातकोंके विनाशक उत्तम लिङ्गको थापन कियाहै॥३४॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे उन महादेवजीको देखताहै उसको मेरे वचनसे दूरही से तुमलोगोंको त्यागकरना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन रोगों से ऐसा कहकर तदनन्तर वे यमराज ब्राह्मणके रूपको करके आपहीं उस ब्राह्मण के उसमरेहुये पुत्रको लेकर उसीके मनोहर घरमें शीघ्रहीगये इसके अनन्तर वह ब्राह्मण

विप्र रूपवाले व बुद्धिमान धर्मराज समेत घर में आयेहुये अपने पुत्रको देखकर तदनन्तर प्रसन्न चित्तसे शीघ्रही सामनेगया ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ तदनन्तर बहुत आंसुओंसे सबओर आकुल लोचनोंवाला, निज स्त्री समेत वह ब्राह्मण हे पुत्र, पुत्र! ऐसा कहताहुआ लिपटकर तदनन्तर मस्तक सूंघकर हर्षसे यह वचन बोला ब्राह्मण बोला कि हे पुत्र! उस यमराज के मन्दिरसे तुम कैसे भलीभांति आयेहो ॥ ३६ । ४० ॥ कि जहां जाकर कोई बलवान् भी फिर नहीं आताहै अथवा मेरे समीप क्या यह इन्द्रजाल (माया) उत्पन्नहुई है ॥४१॥ अथवा क्या यह स्वप्नहै या क्या यह मेरी दृष्टिकी भ्रान्तिहै हे सुत! तुम्हारे समीप दिव्य तेजसे संयुत यह कौन

अथासौब्राह्मणोदृष्ट्वा स्वपुत्रंगृहमागतम् ॥ ३७ ॥ सहितंविप्ररूपेण धर्म्मराजेनधीमता ॥ ततःप्रहृष्टचित्तेन सत्वरं सम्मुखोययौ ॥ ३८ ॥ पुत्रपुत्रेतिजल्पन्स निजभार्य्यासमन्वितः ॥ परिष्वज्यततोभूयो बाष्पपर्य्याकुलेक्षणः ॥ ३९ ॥ आघ्रायचततोमूर्द्ध्निवाक्यमेतदुवाचह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कथंपुत्रसमायातस्तस्मात्तुयममन्दिरात् ॥ ४० ॥ नकश्चित्पुनरायाति यत्रगत्वापिवीर्य्यवान् ॥ किंवाचैतत्समुत्पन्नमिन्द्रजालंममान्तिकम् ॥ ४१ ॥ किंवास्वप्नमिमंकिंवाममायंदृष्टिविभ्रमः ॥ कश्चायंब्राह्मणःपार्श्वेतवसंतिष्ठतेसुत ॥ दिव्येनतेजसायुक्तस्तंनमाम्यहमात्मज ॥ ४२ ॥ पुत्रउवाच ॥ एषब्राह्मणरूपेणसमायातोयमस्स्वयम् ॥ समादायकृपाविष्टोज्ञात्वात्वांदुःखसंयुतम् ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वंकुरुचैतस्यशापानुग्रहमद्यवै ॥ गृहंप्राप्तस्यशप्तस्ययद्यहंतववल्लभः ॥ ४४ ॥ ततस्तथाप्रमाणंसकृत्वाब्राह्मणसत्तमः ॥ व्रीडयाधोमुखोभूत्वाततःप्रोवाचसादरम् ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् ॥ ४६ ॥ यत्पुत्रस्य

ब्राह्मण भलीभांति स्थितहै हे पुत्र! उसको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४२ ॥ पुत्रबोला कि तुमको दुःख संयुत जानकर दयायुत ये आपही यमराज ब्राह्मणके रूपसे मुझको लेकर भलीभांति आयेहैं ॥ ४३ ॥ इसलिये यदि मैं तुमको प्रियहूं तो आज निश्चय कर तुम घरमें प्राप्त व शाप दियेहुये इन यमराजके शापका अनुग्रहकरो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वह ब्राह्मणोत्तम वैसेही प्रमाणकर याने सत्यजानकरके लज्जासे नीचे मुखवाला होकर उसके उपरान्त आदर समेत बोला ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण बोला कि

आज मेरा जन्म सफलहुआ व जीवन सुजीवितहुआ ॥ ४६ ॥ क्योंकि यम मन्दिर में गयेहुये पुत्रकी मुझको प्राप्तिहुई यमराज बोले कि हे तात ! तुम
तुमबडे सन्तोषको प्राप्तहुयेहो ॥ ४७ ॥ इसलिये मैं जिसप्रकार पुत्रसे भलीभांति युक्तहोऊँ वैसाकरो ब्राह्मण बोला कि हेपुत्र ! स्वच्छन्दतासेभी जो मुझसे कहागया
है वह कभीभी मेरा वचन झूंठ नहीं होवैहै फिर दुःखित मुझसे जो कहागया उसको क्या कहनाहै इसलिये हे प्राज्ञ ! मेरे शापके वशसे निश्चयकर किसी प्रकार
भी तुम्हारे देवयोनिसे उपजाहुआ पुत्र न होवैगा ॥ ४८।४९ ॥ व योनिसे उपजाहुआ अन्य मनुष्य पुत्रहोगा जोकि राजसूय व अश्वमेध यज्ञोंसे इसको तारैगा ॥ ५० ॥

त्वंचपुत्रकृतेतातसंतोषंपरमंगतः ॥ ४७ ॥ तस्मात्पुत्रेणसंयुक्तोयथाहं
ममप्राप्तिर्गतस्ययमसादनम् ॥ यमउवाच ॥ नमेस्यादनृतंवाक्यंकदाचिदपिपुत्रक ॥४८॥ अपिस्वैरेणयत्प्रोक्तंकिंपुनर्दुःखितेनच ॥त
स्यांतथाकुरु॥ ब्राह्मणउवाच ॥ नमेस्यादनृतंवाक्यंकदाचिदपिपुत्रक ॥४८॥ अपिस्वैरेणयत्प्रोक्तंकिंपुनर्दुःखितेनच ॥त
स्मात्तवभवेत्पुत्रोदैवयोनिसमुद्भवः ॥ नकथञ्चिदपिप्राज्ञममशापवशाद्ध्रुवम्॥४९॥भविष्यतिसुतश्चान्योमानुषोयोनि
सम्भवः ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यांयश्चैनंतारयिष्यति॥५०॥कोर्थःपुत्रेणजातेनयोनसंतारणेत्तमः॥पितृपक्षेशुभंकर्म्मकृ
त्वासर्वोत्तमंभुवि ॥ ५१ ॥ तथापूजाकृतेयस्तेशापोदत्तश्चवैपुरा ॥ तत्रापिशृणुमेवाक्यंतस्यपुत्रकजल्पतः ॥५२॥ वेदो
क्तैर्विविधैर्मन्त्रैर्यापूजाचास्यसंस्थिता ॥ नभविष्यतिसालोके कथञ्चिदपिपुत्रक ॥ ५३ ॥ अस्यमानुषसम्भूतैर्मन्त्रैःपू
जाभविष्यति॥ विशिष्टासर्वदेवेभ्यःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥५४ ॥ पुत्रउवाच ॥ अहमेनंप्रतिष्ठाप्य द्विजश्रेष्ठमहीतले ॥

उस पुत्रके पैदाहोनेसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछभी नहीं जोकि भूतलमें पितर पक्षमें सबसे उत्तम शुभदायक कर्मको करके तारने में समर्थ नहीं है ॥ ५१ ॥ वै-
सेही हे पुत्रक ! पहले पूजाके लिये जो तुमको शापदियागया उस विषय मेंभी उसको कहतेहुये मुझसे वचनको सुनिये ॥५२॥ हे पुत्रक ! वेदमें कहेहुये अनेक प्रकार
के मंत्रोंसे इन धर्मराजकी जो पूजा भलीभांति स्थितथी वह संसार में किसीप्रकार भी न होवैगी ॥ ५३ ॥ किन्तु मनुष्यों से उपजेहुये मंत्रोंसे समस्त देवताओं से वि-
शिष्ट (उत्तम) पूजन इन यमराजकी होगी यहमैंने सत्यकहा है ॥ ५४ ॥ पुत्रबोला कि हे द्विजोत्तम ! भूतल में मैं इन यमराज को थापकर भलीभांति आराधन

करूंगा मुझको विविध मंत्रोंसे क्याहै ॥५५॥ इसलिये मनुष्यों से उपजेहुये मंत्रोंको मैं भलीभांति कहूंगा और वैसेही पहले प्रसन्नतासे पूजनकी विधिको कहूंगा ॥५६॥ तदनन्तर प्रसन्न मन या चित्तवाले उस द्विजपुत्रने धर्मराज के सुनतेहुये "सुगन्सुपन्था" ऐसे उनके मंत्रको वनाकर पूजन किया ॥ ५७ ॥ उसको सुनकर यमराज ने अति प्रसन्न चित्तसे आनन्दसमेत गद्गदवाणी के द्वारा उच्चप्रकार से उस ब्राह्मणसे यह बोले ॥ ५८ ॥ यमराज बोले कि हे द्विजेन्द्र ! अन्यभी देवताओं के दर्शन व्यर्थ नहीं होते तो मेरे ये दर्शन कैसे अफल होवैं इसलिये मनोरथको मांगिये ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण बोले कि इसलोकमें मुझको किसीप्रकार पुत्रका शोच न होवै ॥६०॥

सम्यगाराधयिष्यामि किंमन्त्रैर्विविधैर्मम ॥ ५५ ॥ तस्मात्संकीर्तयिष्यामिमन्त्रान्मानुपसम्भवान् ॥ तथापूजाविधानं यत्प्रसादेनतुपूर्वतः ॥५६॥ ततःसुगन्सुपन्थेतितस्यमन्त्रंविधायसः ॥ समाचरत्प्रहृष्टात्माधर्म्मराजस्यशृण्वतः ॥५७॥ तच्छ्रुत्वातुयमःप्रोच्चैस्सुप्रसन्नेनचेतसा ॥ तंब्राह्मणमुवाचेदंहर्षगद्गदयागिरा ॥ ५८ ॥ यमउवाच ॥ कथंविप्रेन्द्रसंजात मेतन्मेदर्शनंवृथा ॥ अन्येषामपिदेवानां तस्मात्प्रार्थयवाञ्छितम् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ नस्यान्मेपुत्रशोकोहि इहलोकेकथञ्चन ॥ ६० ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय संप्रहृष्टमनायमः ॥ यमलोकंजगामाथ स्वाधिकारपरोभवत् ॥ ६१ ॥ सोपिब्राह्मणदायादःकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ यममाराधयामासमध्येसंस्थाप्यभक्तितः ॥ ६२ ॥ पित्राप्रोक्तेनमन्त्रेण तेनैव विधिपूर्वकम्॥ ततश्चक्रमशःप्रापपुत्रपौत्राननेकशः ॥ ६३ ॥ कालधर्म्ममनुप्राप्तश्चिरंस्थित्वामहीतले ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं पुराणेयन्मयाश्रुतम् ॥ ६४ ॥ यश्चैतत्कीर्तयेद्भक्त्यासंप्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ नापमृत्युर्भवेत्तस्य नैवशोकस्सु

वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वे अतिप्रसन्न मनवाले यमराज जी यमलोकको चलेगये इसके अनन्तर अपने अधिकार में तत्परहुये ॥ ६१ ॥ और उस द्विजपुत्र नेभी उत्तम मान्दिरको बनाकरके बीच में भक्तिसे यमराज को भलीभांति थापकर पितासे कहेहुये उसी मंत्रसे विधिपूर्वक आराधन किया तदनन्तर क्रमसे अनेकों पुत्र व पौत्रोंको पाया ॥ ६२ । ६३ ॥ और भूतलमें बहुत दिनतक टिककर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ जो मैंने पुराण में सुनाथा इस समस्त चरितको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ६४ ॥ पञ्चमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोनेपर जो पुरुष भक्ति से इस चरितको कीर्तन करै है उसकी अपमृत्यु न होवै व पुत्रसे उपजाहुआ शोच

न होवैहैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येधर्मराजेश्वरमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशाधिकश
ततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मिष्टान्नद शिवको थप्यो सत्यसेन भूपाल । इकसौ सैंतिसमें सोई बरणत चरित रसाल ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जो आपने यह कहा कि इस
संसार में यमराजके मनुष्य शरीरवाला पुत्र होगा वह कौन हुआहै ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि भूतल में उन यमराजके पाण्डुकी स्त्रीमें युधिष्ठिर ऐसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न

तोद्भवः ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येधर्म्मराजेश्वरमाहात्म्यंनाम
षट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तः पुत्रोमानुषविग्रहः ॥ भविष्यतियमस्यात्रकस्संभूतश्चसूतज ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥
तस्यपुत्रस्समुत्पन्नःपाण्डुक्षेत्रेमहीतले॥ युधिष्ठिरइतिख्यातः सर्वक्षत्रियपुङ्गवः ॥ २ ॥ राजसूयोमखोयेन कृतस्सम्पू
र्णदक्षिणः ॥ सर्वान्भूमिपतीन्वीर्य्यात्संविधायकरप्रदान् ॥ ३ ॥ अश्वमेधःकृतोयज्ञस्तथासम्पूर्णदक्षिणः ॥ भ्रामयित्वा
हयंभूमौ पश्चात्प्रापससद्गतिम् ॥ ४ ॥ एष्टव्याबहवःपुत्रायद्येकोपिगयांव्रजेत् ॥ यजेतवाश्वमेधेन नीलंवावृषमुत्सृजे
त् ॥ ५ ॥ तत्तेनप्रकृतंमन्ये पुत्रत्वंसुमहात्मना ॥ हयमेधान्महायज्ञान्संविधाययथोचितान् ॥ ६ ॥ एतेनकृतकृत्यत्वं ये
नपुत्रेणधर्म्मपः ॥ तथापुत्रशतैर्जीवद्वंशोद्धारप्रकारकैः ॥७॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं धर्मराजसुतोद्भवम् ॥ आ

हुये हैं जोकि समस्त क्षत्रियोंमें श्रेष्ठथे ॥ २ ॥ जिन युधिष्ठिरने सबभूपोंको पराक्रमसे करदायक करके सम्पूर्णदक्षिणावाले राजसूय यज्ञको किया॥३॥वैसे ही उन युधिष्ठिर
ने घोडेको भूमिमें घुमाकर सम्पूर्ण दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञको किया व पश्चात् उत्तम गतिको पाया ॥ ४ ॥ बहुत पुत्र इच्छा करने योग्य हैं क्योंकि यदि
एकभी गयाको जावै व अश्वमेधसे पूजन करै व नीले बैल को छोड़ै ॥ ५ ॥ तो उस महात्मा पुत्रसे प्रकृत (भलीभांति की हुई) पुत्रता को मानते हैं क्योंकि वे युधि-
ष्ठिर जी यथायोग्य अश्वमेध नामक बड़ी भारी यज्ञों को करके स्थित हुये ॥ ६ ॥ व जीते हुये वंशके उद्धार करनेवाले सौ पुत्रोंके मध्यमे जिन युधिष्ठिर पुत्रसे इस

कर्मके द्वारा धर्मराज कृतकृत्यताको प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! बृहत्कल्प में धर्मराज के पुत्रसे उपजे हुये मिष्टान्नदके कथानकको तुमलोगों से कहा ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर वहांपर दूसरे मिष्टान्नद देव हैं उनको सुनिये कि इस के अनन्तर पुरातन समय आनर्त्त देशमें वसुषेण नामक राजा हुआहै ॥ ९ ॥ जोकि राज्यके ऐश्वर्य से संयुक्त व हाथी, घोड़ों व रथों से युक्त व शत्रुपक्ष को जीतनेवाला व तेजस्वी, दाता, भोगी व जितेन्द्रिय था ॥ १० ॥ वह वसुषेण संक्रान्ति, व्यतीपात व सूर्य्य चन्द्रमा के ग्रहण में व अनेकों प्रकारके अन्य पर्वकालों में विविध रत्नोंको व इन्द्रनील, महानील, विद्रुम, स्फटिक, मानिक

ख्यानंमिष्टान्नदस्यबृहत्कल्पेद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ अन्योमिष्टान्नदोदेवस्तत्रास्तिश्रूयतांद्विजाः ॥ वसुषेणोथनृपतिरानर्ते भूत्पुराततः॥९॥राज्यैश्वर्य्यसमायुक्तो गजवाजिरथान्वितः॥जितारिपक्षस्तेजस्वीदाताभोगीजितेन्द्रियः॥ १०॥ससंक्रान्तौव्यतीपाते ग्रहणेरविसोमयोः ॥ पर्वकालेषुचान्येषुविविधेषुसुभक्तितः ॥११॥प्रयच्छतिद्विजातिभ्योरत्नानिविविधानि च ॥ इन्द्रनीलमहानीलविद्रुमस्फाटिकानिच ॥ १२ ॥ माणिक्यमौक्तिकान्येव विद्रुमाणिविशेषतः॥हस्त्यश्वरथयानानि वस्त्राणिविविधानिच ॥ १३ ॥ नकस्यचित्प्रदद्यात्स चान्नंब्राह्मणसत्तमाः ॥ अतीवसुलभंमत्वा तथातोयंविशेषतः ॥ १४ ॥ ततोराज्यंचिरंकृत्वा दृष्ट्वापुत्रोद्भवान्सुतान् ॥ कालधर्म्ममनुप्राप्तःकस्मिंश्चित्कालपर्य्यये॥ १५ ॥ ततश्चमन्त्रिभिस्तस्यसत्यसेनइतिस्मृतः ॥ अभिषिक्तःसुतोराज्येवीर्यौदार्य्यसमन्वितः ॥ १६ ॥ वसुषेणोपिसंप्राप्तस्स्वर्गंदानप्रभावतः ॥ दिव्याम्बरधरोभूत्वा दिव्यरत्नैर्विभूषितः ॥ १७ ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्चविमानवरमाश्रितः ॥ तथापिस्वर्गलोके

व विशेषकर मूंगों को और हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन व विविध वसनोंको उत्तम भक्तिसे ब्राह्मणों के लिये देताथा॥ ११ । १२ । १३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! वह वसुषेण अन्नको व विशेषतासे जलको अत्यन्तही सुलभ मानकर किसी को नहीं देताथा ॥१४॥ तदनन्तर बहुत दिनतक राज्यकरके पुत्रसे उपजेहुये पुत्रोंको देखकर किसी समय के पलटनेपर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर मंत्रियोंने पराक्रम व उदारता से संयुत सत्यसेन ऐसे कहेहुये उसके पुत्रको अभिषेक किया ॥ १६ ॥ व दिव्य रत्नोंसे भूपित व अप्सराओं से सेवित तथा उत्तम विमानपै सवार वसुषेण भी दानके प्रभावसे उत्तम वस्त्रधारी होकर स्वर्गको भलीभाँति प्राप्तहुआ [illegible]

परभी स्वर्गलोकों में अपनी इच्छासे क्षुधासे घिरगया ॥ १७ । १८ ॥ व प्यास से आकुल चित्तवाले व सबओर सूखेहुये मुखसे उपलक्षित उस नृपतिने उस स्वर्गमें भोजन करतेहुये अन्य किसीको न देखा ॥ १९ ॥ व पीने में परायण पुरुष को व अन्न तथा जलको न देखा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! लज्जासे नीचे मुखवाले हो-कर स्थित होतेहुये उस नृपने हजार नेत्रवाले इन्द्रके निकट जाकर कहा कि क्षुधा, प्यास मुझको पीड़ित कररहीहै हे सुरश्रेष्ठ ! यहांपर मुझको छोड़कर कोई भूख, प्यास से पीड़ित नहीं है यह क्याहै उसको मुझसे कहो क्योंकि स्वर्गरूप से यह नरक मेरे समीप स्थितहै ॥ २० । २१ । २२ ॥ हे शचीपते ! क्षुधा से अतिपीडित

षुस्वेच्छयाक्षुत्समावृतः ॥ १८ ॥ पिपासाकुलचित्तस्तु मुखेनपरिशुष्यता ॥ नकञ्चिद्ददृशेतत्र भुञ्जानमपरंदिवि ॥ १९ ॥ नचपानसमासक्तंनचान्नंसलिलेनंतु ॥ ततोगत्वासहस्राक्षमुवाचद्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ क्षुत्तृषाबाधतेमांतु लज्जयाधोमुखःस्थितः॥नैवात्रदृश्यतेकश्चित्क्षुत्तृषापरिपीडितः॥२१ ॥ मांमुक्त्वाविबुधश्रेष्ठ तत्किमेतद्वदस्वमे॥ एषमेस्वर्गरूपेणनरकस्समुपस्थितः ॥२२॥ किमेतैर्भूषणैर्वस्त्रैर्विमानादिभिरेवच ॥ क्षुधासम्पीड्यमानस्य स्वर्गमेतच्छचीपते ॥ २३ ॥ अग्नितुल्यंसमुद्दिष्टंमचित्तेहिप्रवर्तते ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेयथाक्षुन्नप्रबाधते ॥ २४ ॥ नोचेत्क्षिपसुरश्रेष्ठ रौरवे नरकेद्रुतम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ अनर्होसिमहीपाल नरकस्यत्वमेवहि ॥ २५ ॥ त्वयादानानिदत्तानि सङ्ख्याहीनानिसर्वदा ॥ यत्किञ्चित्तुकचिन्नान्नंदत्तंयन्ननवोदकम् ॥ २६ ॥ नकिञ्चिदपिसंचिन्त्य ततःक्षुद्वान्भवानिह ॥ तोयमत्रसदादद्यादन्नंचैवसदाक्षिणम् ॥ २७ ॥ यइच्छेच्छाश्वतींतृप्तिमिहलोकेपरत्रच ॥ तस्मात्त्वन्तुक्षुधाविष्टस्स्वर्गेचैवमहीपते ॥ भूषितो

होतेहुये मनुष्यको इन भूषणों व वस्त्रों व विमानादिकोंहीसे क्याहै याने कुछ नहीं और भलीभांति उद्देश कियाहुआ यह स्वर्ग मेरे चित्तमें अग्निके समान वर्तमानहै इसलिये मेरे ऊपर वैसीही प्रसन्नता करिये कि जिसप्रकार क्षुधा न पीड़ितकरै ॥ २३ । २४ ॥ नहीं तो हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही रौरव नरक में फेंकिये इन्द्र बोले कि हे भूपाल ! निश्चयकर तुम नरक के अयोग्यहो ॥ २५ ॥ क्योंकि सदैव तुमने असंख्य दानोंको दियाहै और जिसलिये कि कहींपर जिस किसी अन्नको व नवीन जल को कुछभी न संचिन्तनकर नहीं दिया उसी कारण आप इस स्वर्ग में क्षुधावान्हो जो पुरुष इस लोक व परलोक में सदैववाली तृप्तिको चाहै वह इस संसार में दक्षिणा

समेत अन्न व जलको सदैव देवै उसी कारण हे भूपते ! उत्तम भूषणोंसे भूषित व श्रेष्ठ विमानपै चढ़ेहुये तुम स्वर्ग मेंभी क्षुधार्त्तसंयुतहो ॥ २६ । २७ । २८ ॥ राजा बोले कि इस क्षुधाके विषय में देवता व मनुष्यवालाभी कोई उपायहै कि जिससे मेरी अतितीव्र क्षुधा, प्यास नाश को प्राप्तहोवै ॥ २९ ॥ इन्द्र बोले कि उपायहै कोई पुत्र सदैव तुम्हारे निमित्त ब्राह्मणोंके लिये अन्न व जलको देवै उसीसे सदा तृप्ति होवैगी ॥ ३० ॥ हे नृपपुङ्गव ! अन्यथा एक दिन मेंभी अन्नसे तुम्हारी प्रीति न होगी यह मैंने सत्य कहाहै ॥३१॥ हे भूपते ! वह तुम्हारा पुत्रभी तुम्हारे लिये स्मरण करता हुआ ब्राह्मणोंके निमित्त अन्न व जलको नहीं देताहै ॥३२॥ इसी अवसर में वहांपर ब्रह्म-

भूषणैःश्रेष्ठैर्विमानवरमाश्रितः ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषोपिवा ॥ क्षुत्पिपासेतितीव्रेमे विनाशंयेनगच्छतः ॥ २९ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अस्तिकश्चित्सुतस्तुभ्यंविप्रेभ्यस्सततंजलम् ॥ ददातिचसदासस्यंततस्तृप्तिःप्रजायते ॥ ३० ॥ अन्यथापार्थिवश्रेष्ठ एकस्मिन्नपिवासरे ॥ अन्नतोनतवप्रीतिस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३१ ॥ सोपिभूमिपतेपुत्रस्तवयच्छतिनोदकम् ॥ नचसस्यंद्विजातिभ्यस्त्वदर्थमनुसंस्मरन् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नारदोमुनिसत्तमः ॥ ब्रह्मलोकात्स्थितौयत्र तौभूमिपसुरेश्वरौ ॥ ३३ ॥ ततःशक्रस्समुत्थाय तस्मैतुष्टिसमन्वितः ॥ अर्घं दत्त्वाविधानेन सादरंचेदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ कुतःप्राप्तोसिविप्रेन्द्र प्रस्थितःक्वचसांप्रतम् ॥ केनकार्य्येणचेद्गुह्यंनमेस्ति वदसांप्रतम् ॥ ३५ ॥ नारदउवाच ॥ ब्रह्मलोकादहंप्राप्तः प्रस्थितस्तुधरातले ॥ तीर्थयात्राकृतेशक्रनान्यदस्तीहकारणम् ॥ ३६ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासनृपोहृष्टस्तमुवाचमुनीश्वरम् ॥ ३७ ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं दीनायमुनिपुङ्गव ॥

लोकसे मुनिनायक नारदजी प्राप्तहुये जहांपर कि वे भूपति व सुरपति दोनों स्थितथे ॥३३॥ तदनन्तर प्रसन्नता संयुत इन्द्रजी उन नारद के लिये विधिसे अर्घ देकर व आदर समेत यह बोले ॥ ३४ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! इस समय तुम कहांसे प्राप्त हुयेहो और तुमने किस कार्य से कहांको प्रस्थान किया यदि गुप्त नहो तो इससमय मुझसे कहो ॥ ३५ ॥ नारद बोले कि हे इन्द्र ! तीर्थयात्रा के लिये भूतलको प्रस्थान कियेहुये मैं ब्रह्मलोकसे प्राप्तहुआहूं इसमें और कारण नहीं है ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर प्रसन्नहोतेहुये उस नृपति ने उन मुनिनायक से कहा ॥ ३७ ॥ कि हे मुनिनायक, प्रभो ! मुझ दीन के लिये प्रसन्नता कीजावै कि

भूतल में आनर्त देशका स्वामी सत्यसेन ऐसे नामवाले मेरे पुत्र भूपतिसे तुमको यह कहना चाहिये कि इन्द्रके मन्दिर में मैंने तुम्हारे पिताको देखाहै ॥ ३८ । ३९ ॥ जो कि क्षुधा, प्यास से घिरेहुये अङ्गोंवाला व दीनमन या चित्तवाला व देवताओं के बीच में प्राप्तथा इसलिये यदि तुम पुत्रहो व सत्यका परिपालन करतेहो तो मेरे लिये उच्चप्रकार से मिष्टान्नको व अन्नों तथा जलोंको दीजिये वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकरके वे नारद मुनिनायक ने ॥ ४० । ४१ ॥ इन्द्रसे आज्ञा लेकर पृथ्वीतल को प्रस्थान किया तदनन्तर क्रमसे तीर्थोंको भ्रमण करतेहुये वे नारद द्विज आनर्तदेशको प्राप्तहोकर सत्यसेन के समीपगये व शीघ्रही उस भूपति से भलीभांति संपूजित

त्वयाभूमितलेवाच्यो ममपुत्रोमहीपतिः ॥ ३८ ॥ आनर्ताधिपतिःश्रीमान्सत्यसेनइतिप्रभो ॥ तवतातोमयादृष्टश्श
क्रस्यसदनंप्रति ॥ ३९ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गो दीनात्मादेवमध्यगः ॥ तस्मात्पुत्रोसिचेन्मह्यं त्वंसत्यंपरिरक्षसि ॥ ४० ॥
तन्मिष्टान्नंप्रयच्छोच्चैः सस्यानिसलिलानिच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्यसहस्राक्षंप्र
स्थितोभूतलंप्रति ॥ ततःक्रमेणतीर्थानि भ्रममाणश्चसद्द्विजः ॥ ४२ ॥ आनर्तविषयंप्राप्य सत्यसेनमुपाद्रवत् ॥ आशु
सम्पूजितस्तेन सम्यग्भूपतिनामुनिः ॥ ४३ ॥ पितुस्सन्देशमाचख्यौ विजनेतस्यसादरम् ॥ तच्छ्रुत्वाशोकसंतप्तःस
त्यसेनोमहीपतिः ॥ ४४ ॥ तंविसृज्यमुनिश्रेष्ठं पूजयित्वाविधानतः ॥ ततोजनकमुद्दिश्य मिष्टान्नेनसुभक्तितः ॥ ४५ ॥
सहस्रंब्राह्मणेन्द्राणां भोजयामासनित्यशः ॥ प्रपादानंतथाचक्रे ग्रीष्मकालेविशेषतः ॥ त्यक्त्वान्याःसकलायाश्च क्रि
याधर्मसमुद्भवाः ॥ ४६ ॥ एवंतस्यमहीपस्य वर्तमानस्यचद्विजाः ॥ अनावृष्टिरभूद्रौद्रा सर्वसस्यक्षयावहा ॥ ४७ ॥ या

मुनिने ॥ ४२ । ४३ ॥ एकान्त में उसके पिताके सन्देशको आदर समेत कहा उसको सुनकर सत्यसेन भूपति शोचसे संतप्तहुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर विधिसे पूजकर के उन मुनिनायक नारदजी को बिदाकर उसने पिताको उद्देशकर भक्तिसे नित्यही हज़ार द्विजेन्द्रों को मिष्टान्नसे भोजन कराया वैसेही धर्मसे उपजेहुये अन्य समस्त कर्मोंको छोड़कर ग्रीष्म समय में विशेषता से प्रपादान (पौशाले) को किया ॥ ४५ । ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस भूपतिको इसप्रकार वर्तमान होतेहुये समस्त अन्नोंकी क्षय-

कारिणी, भयानक अनावृष्टि हुई ॥ ४७ ॥ इन्द्रने बारहवर्षतक भूपृष्ठ में जलको न छोंड़ा और समस्त संसार क्षुधासे विकलहुआ ॥ ४८ ॥ उसी कारण जैसे पहले ब्राह्मणों को अन्न देताथा वैसेही उस भूपति ने ब्राह्मणों के लिये भलीभाति उद्देशकर अन्न व जलको नहीं दिया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर क्षुधासे संयुत अङ्गोंवाला उस भूपति का वह पिता अत्यन्तही बलिष्ठ नरोंमें उत्तम उस पुत्रसे स्वप्न में बोला ॥ ५० ॥ कि जिसलिये स्वर्ग में टिकाहुआ भी मैं तुझ पुत्र के द्वारा क्षुधा, प्यास से अति आकुल होताहुआ टिकाहूं इसलिये अन्नको देवो व अन्नसे उपजाहुआ जलसंयुत मिष्टान्न देना चाहिये ॥ ५१ । ५२॥ तदनन्तर स्वप्न देखनेसे वह भूप शोचसंयुत हुआ

वद्द्वादशवर्षाणि नजलंत्रिदशाधिपः ॥ मुमोचधरणीपृष्ठेसर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ४८ ॥ अन्नमापस्ततोभूपो नसस्यं संप्रयच्छति ॥ ब्राह्मणेभ्यस्समुद्दिश्य ब्राह्मणानांयथापुरा ॥ ४९ ॥ ततस्सक्षुत्परीताङ्गःपितातस्यमहीपतेः ॥ स्वप्नेप्रोवाचतंपुत्रमतीवबलिनांवरम् ॥ ५० ॥ त्वयापुत्रेणयच्चाहं क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ ५१ ॥ स्वर्गस्थोपिहितिष्ठामि तस्मादन्नं प्रयच्छतु ॥ मिष्टान्नंतोययुक्तंच देयंसस्यसमुद्भवम् ॥ ५२ ॥ ततःशोकसमायुक्तस्सततस्स्वप्नदर्शनात् ॥ अन्नाभावात्ममंमन्त्रंमन्त्रिभिस्सतदाकरोत् ॥५३॥ अहमाराधयिष्यामिसस्यार्थंवृषभध्वजम् ॥ राज्येरक्षाविधातव्या भवद्भिस्सादरंसदा ॥ ५४ ॥ ततोत्रैवसमागत्यस्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ सम्यगाराधयामास यमैश्चनियमैस्तथा ॥ ५५ ॥ अथतस्यगतस्तुष्टिं वर्षान्तेभगवाञ्छिवः॥अब्रवीद्वरदोस्मीतिप्रार्थयस्वयथेप्सितम्॥५६॥राजोवाच॥ अन्नार्थेदेवदेवेश मयायंविहितोविधिः ॥ तस्मात्त्वंयच्छमेशीघ्रमसंख्यंवृषवाहनः ॥ ५७ ॥ तथासंजायतांवृष्टिस्समस्तेधरणीतले ॥ येन

उसके उपरान्त उस समय उस भूपति ने अन्न के न होनेसे मंत्रियों के साथ सम्मति किया ॥ ५३ ॥ कि मैं अन्नके लिये वृषभध्वज (शिव) को आराधन करूंगा व तुमलोगों को आदर समेत सदैव राज्य में रक्षा करना चाहिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस भूपतिने यहीं आकर व महादेव जीको भलीभांति थापकर यमों तथा नियमोंसे भलीभांति आराधन किया ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर वर्षके अन्तमें उस भूपतिके ऊपर प्रसन्नताको प्राप्तहोतेहुये शिवभगवान् ने यह कहा कि मैं वरदायकहूं तुम यथेप्सित मनोरथ को मागो ॥ ५६ ॥ राजा बोले कि हे वृषवाहन, देवदेवेश ! मैंने अन्नके लिये इस विधिको कियाहै इसलिये शीघ्रही तुम मुझको असंख्य अन्नको देवो ॥ ५७ ॥

वैसेही समस्त धरातलमें वृष्टि होवै जिससे इससमय अन्न व जल उत्पन्न होवैं ॥५८॥ व हे देवेश ! तुम्हारी प्रसन्नतासे स्वर्ग में टिकेहुये उस महात्मा मेरे पिताकी तृप्तिहोवै हे सुरसत्तम ! मेरी रक्षाकीजिये ॥५९॥ शिवभगवान् बोले कि थोड़ेही देरमें समस्त धरातलमें वृष्टिहोगी व भूतलमें जो कोई अन्नहैं वे होवैंगे ॥ ६० ॥ इसलिये हे नृपेन्द्र! इससमय तुम अपने घरको जावो मेरे वचन से निरसन्देह यही होगा ॥ ६१ ॥ हे नृप ! वहां तुमने जो मेरा लिङ्ग स्थापन किया है इसको प्रभात उठकर जो मनुष्य देखैगा वह अपने चाहेहुये फलको पावैगा ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ ६२ ॥ इसके उपरान्त बड़े हर्षसे संयुत वह राजाभी अपने स्थान

तृप्ततामममतातस्य स्वर्गस्थस्यमहात्मनः ॥ प्रसादात्तवदेवेशरक्ष मांसुरसत्तम ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवितानचिराद्वृष्टिः समस्तेधरणीतले ॥ भविष्यन्तितथान्नानि यानिकानि महीतले ॥ ६० ॥ तस्मात्त्वंगच्छराजेन्द्र स्वगृहंप्रतिसाम्प्रतम् ॥ ममवाक्यादसंदिग्धमेतदेवभविष्यति ॥ ६१ ॥ तत्रै तन्मामकंलिङ्गं यत्त्वयास्थापितंनृप ॥ प्रातरुत्थाययःपश्येत्स्वेप्सितंफलमाप्नुयात् ॥ एवंसभगवानुक्त्वा ततश्चादर्श नंगतः ॥ ६२ ॥ सोपिराजानिजंस्थानं हर्षेणमहतायुतः ॥ आजगामचकाराथ राज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ६३ ॥ सूतउ वाच ॥ अद्यापिकलिकालेच सम्प्राप्तेदारुणेयुगे ॥ यस्तंमिष्टान्नदंपश्येत्प्रातरुत्थायभक्तितः ॥ ६४ ॥ समिष्टान्नमवाप्नो तियदिकामयतेद्विजाः ॥ निष्कामोवासमभ्येति स्थानंदेवस्यशूलिनः ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छे देनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमिष्टान्नदेश्वरलिङ्गमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३७ ॥

सस्यानिजायन्ते सलिलानिचसाम्प्रतम् ॥ ५८ ॥

को आया व नाशकियेहुये कण्टकोंवाली राज्यको किया ॥ ६३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! भयङ्कर कलिकालयुगको भलीभांति प्राप्तहोनेपर आजभी जो पुरुष प्रातःकाल उठकर उस मिष्टान्नद लिङ्गको भक्तिसे देखताहै वह यदि मिष्टान्न को चाहता है तो प्राप्तहोताहै अथवा अकाम मनुष्य त्रिशूलवाले देवता के स्थानको भलीभांति आता है ॥ ६४ । ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमिष्टान्नदेश्वरलिङ्गमाहात्म्यंनामसप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । हाटकेश के क्षेत्र महँ थपे तीन गणनाथ । इकसौ अड़तिस में सोई वर्णित है शुभ गाथ ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर और भी पुण्यदायक तीन गणेश हैं जो कि स्वर्गदायक मृत्युलोकदायक, पुण्यदायक तथा अन्य नरक के अपहारकहैं ॥ १ ॥ व समस्त विघ्नों के नाशक व देवता दैत्यों से पूजित व निश्चय कर समस्त कामनाओं के देनेवाले व विद्या, कीर्ति (यश) के विशेषकर बढ़ानेवाले हैं ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस भूतल में तीन भांति के पुरुष पैदा होते हैं जो कि उत्तम अन्य मध्यम तथा अन्य अधम कहेगये हैं ॥ ३ ॥ उत्तम पुरुषों ने केवल मोक्षही की प्रार्थना किया है कि जिस मोक्ष में

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति पुण्यंगणपतित्रयम् ॥ स्वर्गदंमर्त्यदंपुण्यं तथान्यंनरकापहम् ॥ १ ॥ हन्तारंस र्वविघ्नानां पूजितंसुरदानवैः ॥ सर्वकामप्रदंचैव विद्याकीर्तिविवर्द्धनम् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रिविधाःपुरुषास्सूतजाय न्तेत्रमहीतले ॥ उत्तमामध्यमाश्चान्ये तथान्येप्यधमाःस्मृताः ॥ ३ ॥ उत्तमाःप्रार्थयन्तिस्म मोक्षमेवहिकेवलम् ॥ ग तायत्रनिवर्तन्ते नकथंचिद्धरातले ॥ ४ ॥ मध्यमाःस्वर्गमार्गेच दिव्यान्भोगान्मनोरमान् ॥ अप्सरोभिःसमंक्रीडां य ज्ञाद्यैःकर्म्मभिःकृताम् ॥ ५ ॥ अधमामर्त्यलोकेत्र रमन्तिविषयात्मकाः ॥ कृमिकीटकवत्तत्र रतिंकृत्वागरीयसीम् ॥ ६ ॥ स्वर्गमोक्षौपरित्यज्य त्यक्त्वान्यान्मर्त्यइष्यते ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनासौप्रार्थ्यतेमर्त्ये मर्त्यदोगणनायकः ॥ ७ ॥ के नसंस्थापितास्तेच तस्मिन्क्षेत्रेगजाननाः ॥ कस्मिन्कालेप्रद्रष्टव्यास्सर्वविस्तरतोवद ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंकृत्वात

प्राप्तहुये पुरुष किसी प्रकार भूतल में नहीं पलटते हैं ॥ ४ ॥ व मध्यम मनुष्य स्वर्गमार्ग को व स्वर्गवाले मनोहर भोगों को तथा यज्ञादिक कर्मों से कीहुई अप्सराओं के साथ क्रीड़ा को चाहते हैं ॥ ५ ॥ व विषय आत्मावाले अधम नर उस विषय में गरिष्ठ स्नेह को करके इस मृत्युलोक में रमण करते हैं ॥ ६ ॥ व स्वर्ग मोक्ष को छोड़कर व अन्यलोकों को त्यागकर मृत्युलोक इच्छा कियाजाता है व मृत्युलोकमें ये मृत्युलोकदायक गणनायक किस पुरुष से प्रार्थना किये जाते हैं ॥ ७ ॥ और उस क्षेत्र में वे गजानन किससे स्थापित हुये हैं व उन को किससमय में देखना चाहिये यह सब विस्तार से कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन

समय में मृत्युलोक में मनुष्य तीव्र तपस्या को करके तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये अपनी इच्छा से स्वर्ग को जाते थे ॥ ९ ॥ वैसेही ध्यानों से नष्टपातकोंवाले अन्य नर मोक्षमार्ग को प्राप्त होते थे तदनन्तर किसी समय उत्तम मनुष्यों से स्वर्ग व्याप्त होगया ॥ १० ॥ जब उसके प्रभाव से देवता सबओर क्षिप्त (तिरस्कृत) हुये तब समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी आपही जाकर पार्वती समेत एकही आसन पै बैठेहुये शिवजीसे बोले ॥ ११ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे परमेश्वर ! तपस्याके प्रभाव से भलीभांति सिद्धहुये मनुष्यों से हमलोगों की समस्त गृहादिक महिमा व्याप्तहोगई ॥ १२ ॥ इसलिये हम लोगों के ऊपर प्रसन्नता करके इस समय किसी

पस्तीव्रं मर्त्यलोकेद्विजोत्तमाः ॥ ततोगच्छन्तिसंहृष्टास्स्वेच्छयात्रिदिवंप्रति ॥ ९ ॥ मोक्षमार्गेतथैवान्ये ध्यानैर्विधुतकल्मषाः ॥ ततःस्वर्गसमाकीर्णं कदाचिन्मनुजोत्तमैः॥१०॥देवेषुक्षिप्यमाणेषु समन्तात्तत्प्रभावतः ॥ गत्वास्वयंसहस्राक्षस्सर्वैर्देवगणैस्सह ॥ प्रोवाचशङ्करंगौर्य्या सार्द्धमेकासनेस्थितम् ॥ ११ ॥ इन्द्रउवाच ॥ तपःप्रभावसंसिद्धैर्मानवैःपरमेश्वर ॥ अस्माकंव्याप्यतेसर्वं महिमानंगृहादिकम् ॥१२॥ तस्मात्कृत्वाप्रसादंनः किञ्चिच्चिन्तयसाम्प्रतम् ॥ उपायंयेनतिष्ठामस्सौख्येनात्रदिवालये ॥ १३ ॥ अथश्रुत्वाविरूपाक्षस्तेषांतद्वचनंद्विजाः ॥ पार्वत्याःपार्श्वसंस्थाया मुखचन्द्रंव्यलोकयत् ॥ १४ ॥ निजगात्रंततोदेवी सुसंमर्द्यमुहुर्मुहुः ॥ मलमाहृत्यतंकृत्स्नं चक्रेनागमुखंततः ॥ १५ ॥ चतुर्हस्तंमहाकायंलम्बोदरसमन्वितम् ॥ सकौतुककरंतेषां सर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ ततस्सविनयादाह देवींशिखरवासिनीम् ॥ १७ ॥ यदर्थमत्रसृष्टोहं तत्कार्यंवदमाचिरम् ॥ त्रैलोक्येत्वत्प्रसादेन नासाध्यंविद्यतेमम ॥ १८ ॥ देव्युवाच ॥

यत्न को चिन्तन करिये कि जिससे हमलोग इस स्वर्ग में सुखसे टिकैं ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! उन देवताओं के उस वचनको सुनकर विरूपाक्ष (शिव) जीने बगलमें भलीभांति बैठीहुई पार्वतीजी के मुखरूपी चन्द्रमा को देखा ॥ १४ ॥ तदनन्तर देवीने अपने अंग को बार २ मीड़कर व उस समस्त मल को लेकर उसके उपरान्त चारहाथोंवाले व हाथीके मुखवाले बड़ेभारी शरीरका निर्माण किया जो कि लम्बे पेट से संयुक्त व समस्त देवताओं को कौतुक सहित करनेवाला था ॥ १५ । १६ ॥ तदनन्तर उसने नम्रतासे शिखर पै बसनेवाली देवीसे कहा ॥ १७ ॥ कि यहांपर जिसलिये मैं रचागयाहूं उस कार्य्य को शीघ्रही कहिये

क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नतासे मुझको त्रिलोकमें कुछ असाध्य नहीं है ॥ १८ ॥ देवी बोलीं कि मृत्युलोक में जो मनुष्य सदैव स्वर्ग व मोक्षमें तत्पर हैं उनके शुभकार्यों में तुमको विघ्न करना चाहिये ॥ १६ ॥ व तीस सागर, सतहत्तरि शंख, साठि महापद्म, बीस निखर्व ॥ २० ॥ व दशहजार अर्बुद, पंचानबे करोड़, पचपन लाख, पचीस हजार ॥ २१ ॥ और उनहत्तरि सौ तथा अन्यगण यहां भलीभांति टिकेहैं कि जिन गणसमूहोंकी स्वामितामें तुम विशेषता से स्थितहुयेहो ॥ २२ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस सुरेश्वरी देवीने आपही ओषधियों से भरे व उत्तम तीर्थजलोंसे परिपूर्ण व महोदयवाले सुवर्णघटों को भलीभांति लाकर गाने, बजाने के विनोद

मर्त्यलोकेनरायेच स्वर्गमोक्षपरास्सदा ॥ तेषांविघ्नंत्वयाकार्य्यं शुभकृत्येषुचैवहि ॥ १९ ॥ सरितांपतयस्त्रिंशच्छङ्खा
नांसप्तसप्ततिः ॥ महासरोजषष्टिश्च निखर्वाणांचविंशतिः ॥ २० ॥ अर्बुदायुतसंयुक्ताः कोट्योनवतिपञ्चच ॥ लक्षाश्चप
ञ्चपञ्चाशत्सहस्राःपञ्चविंशतिः ॥ २१ ॥ शतानिनवषष्टिश्चगणाश्चान्येत्रसंस्थिताः ॥ येषांगणकवृन्दानामाधिपत्येऽव्य
वस्थितः ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी समानीयौषधीभृतान् ॥ हेमकुम्भान्सुतीर्थाम्भःपरिपूर्णान्महोदयान् ॥ २३ ॥
तस्याभिषेचनंचक्रे स्वयमेवसुरेश्वरी ॥ गीतवाद्यविनोदेननृत्यमङ्गलजैःस्वनैः ॥ २४ ॥ त्रयस्त्रिंशन्मिताःकोट्यो दे
वायेसंस्थितादिवि ॥ तेसर्वेंचतदागत्य तस्यचक्रुश्चमङ्गलम् ॥ २५ ॥ अथतस्यददौतुष्टो भगवान्वृषभध्वजः ॥ कुठा
रंनिशितंहस्ते तदावैश्रेष्ठमायुधम् ॥ २६ ॥ पात्रंमोदकसम्पूर्णमक्षयंचैवपार्वती ॥ भोजनार्थंमहाभागा मातृस्नेहपरा
यणा ॥ २७ ॥ मूषकंकार्त्तिकेयस्तु वाहनार्थंप्रहर्षितः ॥ भ्रातरंमन्यमानस्तु बन्धुस्नेहेनसंयुतः ॥ २८ ॥ ज्ञानंदिव्यंददौ

से व नृत्य, मङ्गलसे उपजेहुये शब्दों से उस गणनायक का अभिषेक किया ॥ २३। २४ ॥ उससमय तैंतीस कोटि प्रमाणवाले जे देवता आकाश या स्वर्ग में भलीभांति टिकेथे उन सबोंने आकर उन गणेश जीके मङ्गल को किया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्नहोतेहुये शिवभगवान् ने उससमय पैने व उत्तम परशुको उसके हाथ में दिया ॥ २६ ॥ व माताके स्नेह में तत्पर होतीहुई महाभाग्यवती पार्वती जीने भोजन के लिये लड्डुओंसे भरेहुये अविनाशी पात्रको दिया ॥२७॥ व बन्धुके स्नेहसे

संयुत व भाईको मानतेहुये प्रसन्न स्वामिकार्त्तिकेय जीने सवारीके लिये मूषक को दिया॥ २८ ॥ व भूत, भविष्य और जो वर्तमान होताहै उस दिव्य ज्ञानको ब्रह्माजीने प्रसन्नचित्तसे उस गणपति के लिये दिया ॥ २९ ॥ व विष्णुजी ने बुद्धिकों व इन्द्रने बड़ेभारी उत्तम सौभाग्यको व शिव जीमें वैर कियेहुये भी कामदेव ने स्वरूप को दिया ॥ ३० ॥ व सूर्य्यभगवान् ने प्रतापको व चन्द्रमाने उत्तम शोभा को दिया वैसेही अन्य समस्त देवताओं ने देवी व सामर्थ्यवान् देव (शिव) जीकी प्रसन्नता के लिये बहुत से अपने प्यारेपदार्थों को दिया हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर पायेहुये वरदानवाले उन गणेश जीने देवकार्यमें तत्पर होकर धर्मके लिये व पुण्य तथा

ब्रह्मातस्मैतुष्टेनचेतसा ॥ अतीतानागतंचैव वर्तमानंचयद्भवेत् ॥ २९ ॥ प्रज्ञांविष्णुस्सहस्राक्षस्सौभाग्यंचोत्तमंमहत् ॥ स्वरूपंकामदेवस्तु कृतवैरोभवेपिच ॥ ३० ॥ प्रतापंभगवान्सूर्य्यः कान्तिमग्र्यांनिशाकरः ॥ तथान्येविबुधास्सर्वे दद्दुरिष्टानिभूरिशः ॥ ३१ ॥ आत्मीयानिप्रतुष्ट्यर्थं देव्यादेवस्यचप्रभोः॥ एवंलब्धवरस्सोथ गणनाथोद्विजोत्तमाः॥३२॥ देवकृत्यपरोनित्यं चक्रेविघ्नानिभूतले ॥ धर्म्मार्थेयतमानानां मोक्षायसुकृतायच ॥ ३३ ॥ ततोभूमितलेभ्येत्य गणेशस्तत्रयःस्मृतः ॥ वैमानिकैस्समायातैः स्थापितस्तत्रसद्विजाः ॥ ३४॥ येनस्वर्गार्थिनोलोकाः पूजांतस्यप्रचक्रिरे ॥ प्रथमं सर्वकृत्येषु विघ्ननाशायतत्पराः ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु चमत्कारपुरोद्भवैः ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मविज्ञानतत्परैर्मोक्षहेतुभिः ॥ ३६ ॥ ईशानःस्थापितस्तत्र मोक्षदोयउदाहृतः ॥ स्वर्गवाञ्छद्भिरेवान्यैःस्वर्गद्वारप्रदस्तथा ॥ ३७॥ हेरम्बःस्थापितस्तत्र सत्यंनामयथोचितम् ॥ तथान्यैर्मर्त्यदोनाम गणेशस्तत्रयःस्थितः ॥ ३८ ॥ येनस्वर्गाच्च्युतायान्तिकदाचि

मोक्षके निमित्त यत्नकरनेवाले मनुष्योंका भूतल में नित्यही विघ्नकिया ॥ ३१ । ३२ । ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर जो गणेशजी कहेगयेहैं वे उस भूतलमें आकर आयेहुये विमानवाले (देवों) से स्थापितहुये ॥ ३४ ॥ जिससे समस्त कार्यों में विघ्न नाशके लिये तत्पर होतेहुये स्वर्ग के चाहनेवाले मनुष्यों ने पहले उन गणेशजी का पूजन किया ॥ ३५ ॥ इसी समय में चमत्कारपुरमें उपजेहुये व ब्रह्मके विज्ञान में परायण व मोक्ष हेतुवाले ब्राह्मणोंने वहांपर ईशान को स्थापित किया है जो कि मोक्षदायक कहेगये हैं वैसेही स्वर्गही को चाहनेवाले अन्य पुरुषोंसे वहांपर स्वर्गद्वारको देनेवाले हेरम्ब (गणेश) जी स्थापित हुये हैं तथा अन्य पुरुषों से वहां

थापेहुये जो मर्त्यद नामक टिकेहैं वे यथायोग्य सत्यनामवाले हैं ॥ ३६।३७।३८ ॥ जिससे कि स्वर्ग से गिरेहुये मनुष्य कभी नरकादिकको जातेहैं व पशुपक्षीकी योनि या कीट योनि अथवा स्थावरता (वृक्षादिभाव) कोभी प्राप्तहोते हैं ॥ ३९ ॥ इसी कारण हे द्विजोत्तमो ! उस पुण्यदायक क्षेत्रमें सदैव स्वर्गी नरोंको मृत्युलोकदायक हेरम्ब जी मर्त्यदहुये ॥ ४० ॥ हेरम्ब से उपजेहुये इस पुण्यदायक समस्त कथानक को तुमलोगोंसे वर्णन किया जोकि सुनाहुआ चरित मनुष्यों के समस्त विघ्नोंको नाशकरता है ॥ ४१ ॥ व माघमासकी शुक्लपक्षवाली चौथिमें जो नर इन हेरम्ब जीको पूजते हैं उनको वर्ष पर्य्यन्त कहीं विघ्न नहीं होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्क-

न्नरकादिकम् ॥ तिर्य्यक्त्वंवाक्रमित्वंवा स्थावरत्वमथापिवा ॥ ३९ ॥ एतस्मात्कारणात्तत्र क्षेत्रेपुण्येद्विजोत्तमाः ॥ हेरम्बोमर्त्यदोजातः स्वर्गिणांमर्त्यदःसदा ॥ ४० ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं पुण्यंहेरम्बसम्भवम् ॥ आख्यानंसर्वविघ्नानि यन्निहन्तिश्रुतंनृणाम् ॥ ४१ ॥ एतन्माघचतुर्थ्यान्तु शुक्लायांपूजयेन्नरः ॥ नतेषांवत्सरंयावद्विघ्नंसंजायतेक्वचित् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये गणपतित्रयमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति देवश्चित्रेश्वरोद्विजाः ॥ चित्रपीठस्यमध्यस्थश्चित्रसौख्यप्रदोनृणाम् ॥ १ ॥ यं दृष्ट्वापूजयित्वाथनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ मुच्यतेपरदारोत्थैःपातकैश्चोपपातकैः ॥ २ ॥ धर्षयित्वागुरोःपत्नीं कन्यांवानिजवंशजाम् ॥ वधूंवाव्रतयुक्तांवा कामासक्तेनचेतसा ॥ ३ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ सतत्पापंनिहत्याशु

न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगणपतित्रयमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

दो० । रंभाको पठयो सुरन मुनि जाबालिहि पास । इकसौ उन्तालीसमहँ कहत समेत विलास ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वैसेही उस क्षेत्र में चित्रपीठ के मध्यमें टिकेहुये अन्य चित्रेश्वरदेवभी मनुष्यों को विचित्र सुखदायक हैं ॥ १ ॥ जिनको देखकर व पूजकर मनुष्य पाप से छूटजाताहै व पराई स्त्री से उठेहुये पातकों व उपपातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ व काम में लगेहुये चित्तसे गुरुकी स्त्रीको व अपने वंशमें उपजीहुई कन्याको व पतोहू को तथा व्रतसंयुत स्त्रीकी धर्षणा

करके जो पुरुष चैत्रमहीने की शुक्लपक्षवाली चौदसि में उन चित्रेश्वर देव को पूजताहै वह उस पातकको शीघ्रही नाशकर तदनन्तर स्वर्गलोकको जाताहै ॥ ३।४ ॥ वैसेही उस क्षेत्रमें उन जाबालि मुनि से उपजीहुई नग्नकन्या सहित व जाबालि मुनि समेत चित्रांगद नृपति भलीभांति टिकाहै जोकि पुरातन समय जाबालि जीसे उस कन्याके अगाड़ी शाप दियागयाहै उस दिन जो उन तीनोंकोभी पूजताहै वह और भलीभांति देखकर स्त्री मनमें टिकीहुई सिद्धिको पातीहै ऋषिलोग बोले कि पुरातनसमय किस कारण जाबालिमुनिने चित्रांगद युवाको शापदिया है ॥ ५ । ६ । ७ ॥ और वसनहीन व विरुद्धरूप में टिकीहुई उन जाबालिकी वह कन्या किस

स्वर्गलोकंततोव्रजेत् ॥४॥ तथाचित्राङ्गदस्तत्र जाबालिसहितोन्नृपः ॥ कुमार्य्यासहितस्सार्द्धं नग्नयातत्समुत्थया ॥५॥ सन्तिष्ठतेतदग्रेतु शप्तोजाबालिनापुरा ॥ त्रयाणामपियस्तेषां तस्मिन्नहनिपूजयेत् ॥ ६ ॥ संदृष्ट्वालभतेनारी सिद्धिंच मनसिस्थिताम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्माज्जाबालिनाशप्तः पूर्वंचित्राङ्गदोयुवा ॥ ७ ॥ साचतत्तनयाकस्मात्कुमारीवस्त्रव र्जिता ॥ अद्यापितिष्ठतेतत्र विरुद्धंरूपमाश्रिता ॥ ८ ॥ निजहास्यकरंनित्यं तस्मात्सूतवदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ आसी त्पूर्वंमुनिर्नाम जाबालिरितिविश्रुतः ॥ ९ ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येण येनचीर्णंतपस्सदा ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं समासाद्यससद् द्विजाः ॥ बाल्येपिवयसिप्राप्ते समारेभेमहत्तपः ॥ १० ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि पाराकाणिशनैःशनैः ॥ कुर्वतानेन तेदेवास्संनीताभयगोचरम् ॥ ११ ॥ ततःशक्रादयोदेवाः संत्रस्तामेरुमूर्द्धनि ॥ मिलित्वाचक्रिरेमन्त्रं तस्यविघ्नकृतेमि

कारण उस क्षेत्रमें आजभी टिकी है ॥ ८ ॥ हे सूतजी ! जिसकारण कि नग्नरूप नित्यही निज हास्यकारक है इसलिये हमलोगों से इस चरितको कहिये सूतजी बोले कि पुरातनसमय जाबालि ऐसे नामवाले प्रसिद्ध मुनि हुये हैं ॥९॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! जिन मुनिने हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें प्राप्तहोकर सदैव कुमार ब्रह्मचर्य्य से तपस्या को इकट्ठा कियाहै उन जाबालिने बाल्यावस्था भी प्राप्तहोनेपर बड़ीभारी तपस्याका प्रारम्भ किया धीरे २ कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व पाराक व्रतोंको करतेहुये इन मुनिने उन देवताओंको भयगोचरमें प्राप्तकियायाने भयभीत किया ॥१०।११॥ तदनन्तर डरेहुये इन्द्रादिक देवताओंने सुमेरु गिरिके मस्तकपै मिलकर उन

जाबालि के विघ्नके लिये आपसमें सम्मति किया ॥ १२ ॥ कि यदि इन मुनिकी तपस्याकी वृद्धि नित्यही इस प्रकार होवैगी तो निश्चयकर स्वर्गकी राज्यसे इन्द्र को गिरावैगा ॥ १३ ॥ इसलिये शुद्ध मन या चित्तवाले उन ऋषि के ब्रह्मचर्य्य नाशने के लिये विगत वसनोंवाली (नग्न) रंभा उन के समीप जावै ॥ १४ ॥ क्योंकि ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य्यको तपस्याकी जड़ कहा है व्रतमें उस ब्रह्मचर्य्य के न होने से केवल क्लेश मिलता है फल नहीं ॥ १५ ॥ उस समय महेन्द्र आदिक उन समस्त देवताओं ने ऐसा निश्चयकरके तदनन्तर रम्भाको भलीभांति बुलाकर आदर समेत कहा ॥ १६ ॥ कि हे महाभागे ! जिस हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाबालि

थः ॥ १२ ॥ यद्यस्यतपसोवृद्धिरेवंयास्यतिनित्यशः ॥ च्यावयिष्यतितन्नूनं स्वर्गराज्याच्छतक्रतुम् ॥ १३ ॥ तस्माद्गच्छतुरम्भाच तत्पार्श्वेविगताम्बरा ॥ ब्रह्मचर्य्यविघातायतस्यर्षेर्भावितात्मनः ॥ १४ ॥ ब्रह्मचर्य्यंतपोमूलं यतस्संकीर्तितंद्विजैः ॥ तस्याभावात्परिक्लेशं केवलंनफलंव्रते १५ ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा समाहूयततःपरम् ॥ रम्भामूचुर्महेन्द्राद्यास्सर्वेदेवास्तदादरात् ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रंमहाभागेजाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तपोविघ्नायतस्य वै ॥ १७ ॥ कामभावाःप्रयोक्तव्याः कथास्तास्तामनोहराः ॥ वर्द्धयन्तियथाचित्ते तस्यकामंनिरर्गलम् ॥ १८ ॥ रम्भोवाच ॥ समुनिर्नविजानाति कामधर्म्मंसुरेश्वर ॥ १९ ॥ अरसज्ञंकथंदेव करिष्यामिस्मरान्वितम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ एषयास्यतिमद्वाक्याद्वसन्तस्तस्यसन्निधौ ॥ २० ॥ अस्यसन्दर्शनादेव भविष्यतिसस्मरः ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंतत्र सहानेनवरानने ॥ २१ ॥ संसिद्धिर्जायतेयेन देवकृत्यंभवेद्द्रुतम् ॥ अथसातंप्रणम्योच्चैः प्रस्थिताधरणीतलम् ॥ २२ ॥ व

जी टिके हैं वहां तुम शीघ्रही उनकी तपस्याके विघ्नके लिये जावो ॥ १७ ॥ व काम होने (उपजाने) वाली वे वे मनोहर कथायें उस प्रकार प्रयोग करनेके योग्य है कि जिस भांति उन जाबालि के चित्तमें निरर्गल (असह्य) कामदेव को बढ़ावैं ॥ १८ ॥ रंभा बोली कि हे सुरनायक ! वे मुनि कामदेव के धर्मको नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ हे देव ! रसके न जाननेवाले उन जाबालि को मैं कैसे कामसंयुत करूंगी इन्द्र बोले कि मेरे वचन से यह वसन्तऋतु उस जाबालि के समीप जावैगा ॥ २० ॥ हे उत्तम मुखवाली ! इस वसन्त के भलीभांति देखनेही से वे मुनि सकाम होवेंगे इसलिये इसके सहित वहां शीघ्रही जावो ॥ २१ ॥ कि जिससे संसिद्धि

होवै व शीघ्रही देवकार्य्य होवै इसके अनन्तर वसन्तसे संयुत उस रम्भाने उच्चप्रकार से उन इन्द्रजी को प्रणाम कर भूतल को प्रस्थान किया जहांपर कि जाबालिजी टिके थे इसके अनन्तर एकाएकी अशोक वृक्ष के पुष्प समूह पैदा होगया ॥ २२ । २३ ॥ व तिलक तथा आम्र वृक्षके भलीभांति मंजरी उपस्थित होगई व शिशिर ऋतुमें कमल विकास को प्राप्तही हुये ॥ २४ ॥ व सुकामदायक दक्षिण दिशावाली सुगन्धित वायु चलती भई इसी अवसर में उत्तम रम्भा अप्सरा वहां प्राप्त हुई ॥ २५ ॥ जहा कि पितरों का तर्पण करके श्रद्धासंयुत जाबालिजी रुद्राक्ष की मालाको हाथ में धारे व प्रियमंत्र को अनेकप्रकार से जपते हुये जलाशय के किनारे पै

सन्तेनसमायुक्ता जाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ अथाकस्मादशोकस्य सञ्जातःपुष्पसंचयः ॥ २३ ॥ तिलकस्यचचूतस्यमञ्जर्य्यस्समुपस्थिताः॥ शिशिरेचसरोजानि विकाशंप्रापुरेवहि ॥ २४ ॥ ववौचसुरभिर्वायुर्दाक्षिणात्यःसुकामदः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र रम्भाप्राप्तावराप्सरा ॥ २५ ॥ सलिलाशयतीरस्थो जाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ अक्षमालाधृतकरो जपन्मन्त्रमनेकधा ॥ २६॥ अभीष्टंश्रद्धयायुक्तो विधायपितृतर्प्पणम् ॥ अथसंपश्यतस्तस्य मुक्त्वावस्त्रपरिग्रहम् ॥ स्नानार्थं तज्जलंसा च प्रविवेशवराप्सरा ॥ २७ ॥ विवस्त्रांतांसमालोक्य सोपियौवनशालिनीम् ॥ याम्यानिलेनसंस्पृष्टः कामस्यवशगोभवत्॥ २८ ॥ ततस्तस्याऽभवत्कम्पस्तत्क्षणादेवसन्मुनेः ॥ अक्षमालाकराग्राच्च पपातधरणीतले ॥ २९ ॥ पुलकस्सर्वगात्रेषु तंजज्ञेऽतीवदारुणः ॥ ३० ॥ अश्रुपाताःपतन्तिस्मकोणाग्रात्तस्यनेत्रयोः॥अथतंक्षुभितंज्ञात्वाचित्तज्ञा सावराप्सरा ॥ ३१ ॥ निर्गत्यसलिलात्तस्माच्चक्रेवस्त्रपरिग्रहम् ॥ ततस्तस्यान्तिकंगत्वा प्रणिपत्यकृतादरम्॥ ३२॥ प्रो

स्थित व टिके थे इसके अनन्तर उन मुनिके भलीभांति देखतेहुये वह उत्तम अप्सरा वसन परिग्रह को छोरकर स्नान के लिये उस जलमें पैठगई ॥ २६ । २७ ॥ यौवन से शोभित व वसन से रहित उस अप्सरा को भलीभांति देखकर दक्षिण पवनसे संस्पर्श कियेहुये वे जाबालि भी कामदेव के वशमें प्राप्त हुये ॥ २८ ॥ तदनन्तर उसी क्षणही उन उत्तम मुनिके कम्पहुआ व रुद्राक्ष की माला हाथ के अग्रभाग से भूतल में गिरपड़ी ॥ २९ ॥ व सब अंगोंमें अत्यन्तही कठिन रोमाञ्च हुआ ॥ ३० ॥ व उन मुनि के नेत्रोंके कोणाग्र भाग से अश्रुपात गिरते भये इसके अनन्तर उन मुनि को क्षुभित जानकर चित्तको जाननेवाली वह उत्तम अप्सरा ॥ ३१ ॥

उस जल से निकलकर वसन परिग्रह किया तदनन्तर उन मुनिके निकट जाकर व प्रणामकरि उन जाबालि के कामदेव को बढ़ाती हुई वह अप्सरा कियेहुये आदर वाले उन जाबालि से मधुर वचन को बोली कि हे ब्रह्मन्, मुने ! क्या तुम्हारे आश्रममें स्वाध्याय (वेदपाठ) में, तपस्याकी प्राप्तिमें व शिष्यों और मृगों व पक्षियों में सब कुशल है मुनि बोले कि हे उत्तम नितम्बवाली ! इस समय मेरे सबकहीं कुशलही है ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ हे महाभागे ! समस्त लक्षणों से लक्षित व मेरे कामदेव को बढ़ानेहारी व यहांपर विशेषकर प्राप्तहुई तुम कौनहो इसको कहो ॥ ३५ ॥ क्या देवीहो या आसुरी (दैत्योंकी स्त्री) हो या क्या पन्नगीहो अथवा क्या

वाचमधुरंवाक्यं वर्द्धन्तीतस्यमन्मथम् ॥ आश्रमेसकलंब्रह्मन् कच्चित्तेकुशलंमुने ॥ ३३ ॥ स्वाध्यायेतपसःप्राप्तौ शिष्येषुमृगपक्षिषु ॥ मुनिरुवाच ॥ कुशलंमेवरारोहे सर्वत्रैवाधुनास्थितम् ॥ ३४ ॥ विशेषेणात्रसंप्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ कात्वंवदमहाभागे ममसन्मथवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥ किंदेवीचासुरीवाकिं पन्नगीकिन्नुमानुषी ॥ निवेदयशरीरेमे किंनपश्यसिवेपथुम् ॥ ३६ ॥ निरर्गलस्सरोमाञ्चो बाष्पपूरश्चनेत्रतः ॥ रम्भोवाच ॥ किन्तेगात्रस्वभावोयं किंचान्योऽव्याधिसम्भवः ॥ ३७ ॥ कश्चिज्जनयतेऽस्वास्थ्यं प्रपश्यामिशरीरजम् ॥ मुनिरुवाच ॥ नायंगात्रस्वभावेन व्याधिभिश्चसुलोचने ॥ ३८ ॥ शृणुष्वकारणंकृत्स्नं येनेदृक्संस्थितंवपुः ॥ यावतीवर्ततेवेला तवदर्शनसम्भवा ॥ ३९ ॥ तावत्कालमिदंरूपं ममगात्रसमुद्भवम् ॥ तदहंमन्मथाविष्टो दर्शनात्तेसुशोभने ॥ ४० ॥ ब्रह्मचर्य्यपरोपीत्थं महाव्रतधरोपिच ॥

मानुषीहो इसको निवेदनकरो क्या मेरे शरीर में कम्पको नहीं देखतीहो ॥ ३६ ॥ व बिनरोंक टोंकवाले रोमांच को व नेत्रोंसे आंसुओंके प्रवाहको नहीं देखतीहो रंभा बोली कि क्या यह तेरे शरीरका स्वभावहै व रोगसे उपजाहुआ कोई अन्य उपद्रव अस्वस्थताको उत्पन्नकररहा है जिसको मैं देखतीहूं मुनि बोले कि हे सुलोचनि ! यह अंगके स्वभावसे व रोगोंसे नहीं है ॥ ३७ । ३८ ॥ जिससे ऐसा शरीर स्थितहै उस समस्त कारणको सुनिये कि तुम्हारे दर्शनसे उपजीहुई जितनी वेला वर्तमान है ॥ ३९ ॥ उतनेही समय में मेरे देहसे उपजाहुआ यह रूपहै उसी कारण हे सुशोभने तुम्हारे दर्शनसे ब्रह्मचर्य में परायणभी व ऐसे महाव्रतका धारीभी मैं कामदेव ! से घिराहूं

रंभा बोली कि हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि ऐसा है तो मुझको सुखपूर्वक भजो ॥४०।४१॥ हे द्विज ! इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि मैं पण्यनारी याने वेश्याहूं व जिसलिये कि सबही मनुष्योंके विशेषकर ब्राह्मणोंके लिये साधारण हमसबब्रह्मासे रचीगई हैं ॥ ४२ ॥ हे मुने ! कामदेवके समान तुमको देखकर तीखे कामके बाणोंसे ताड़ित होतीहुई मैंभी जानेके लिये नहीं उत्साह करतीहूं ॥ ४३ ॥ मैंने समस्त देवता, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर व नाग और गुह्यकोंको देखा मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ४४ ॥ हे द्विजपुङ्गव ! जिसलिये कि उन सबों के बीचमें एकके भी ऐसे रूपको नहीं देखा इसलिये मुझ भक्ता को भजो ॥ ४५ ॥ क्योंकि जो पुरुष कामसे अत्यन्त तचाई व

रम्भोवाच ॥ यद्येवंब्राह्मणश्रेष्ठ मांभजस्वयथासुखम् ॥४१॥नात्रकश्चिद्भवेद्दोषः पण्यनारीयतोस्म्यहम् ॥ साधारणाव यंविप्रयतस्सृष्टाःस्वयम्भुवा ॥ सर्वेषामेवलोकानां विशेषेणद्विजन्मनाम् ॥ ४२ ॥ अहंचापिसमालोक्य त्वांमुनेमन्म थोपमम् ॥ हताकामशरैस्तीक्ष्णैर्नचगन्तुंसमुत्सहे ॥ ४३ ॥ मयादृष्टास्सुरास्सर्वे यक्षविद्याधरास्तथा ॥ सिद्धाश्चकिन्न रानागा गुह्यकाःकिन्नुमानुषाः ॥ ४४ ॥ नेदृग्रूपंचयत्तेषामेकस्यापिविलोकितम् ॥ मध्येब्राह्मणशार्दूल तस्माद्भक्तांभ जस्वमाम् ॥ ४५ ॥ योनारींकामसंतप्तां स्वयंप्राप्तांपरित्यजेत् ॥ ४६ ॥ समूर्खःपचतेघोरे नरकेशाश्वतीस्समाः ॥ एव मुक्त्वातयासोथ परिष्वक्तोमहामुनिः ॥ ४७ ॥ अनिच्छन्नपिवाक्येन हृदयेनचसस्पृहः ॥ ततोलतानिकुञ्जेतं समा नीयमुनीश्वरम् ॥ ४८ ॥ कामशास्त्रोदितैर्भावैरमयन्तीचतंमुनिम् ॥ एवंतयासमंतत्र स्थितोयावद्दिनत्रयम् ॥ ४९ ॥ कामधर्म्मसमासक्तस्तत्सकाशेचकामुकः ॥ ततोनिष्कामतांप्राप्तो लज्जयापरिवारितः ॥ ५० ॥ विससर्जचतांरम्भां

आपही प्राप्तहुई स्त्रीको त्याग करता है ॥ ४६ ॥ वह मूर्ख सैकड़ों वर्ष घोर नरक में पचता है ऐसा कहकर इसके अनन्तर वचन से नहीं चाहतेहुये भी व हृदय से मनोरथ सहित वे महामुनि उस रंभा से आलिंगितहुये तदनन्तर उन मुनिनायक को लतानिकुंज में भलीभांति लाकर ॥ ४७ । ४८ ॥ व कामशास्त्रमें कहेहुये भावों से उन मुनिको रमणकराया इसप्रकार उस रंभा समेत वे मुनि वहांपर दिनत्रय (सन्ध्या) पर्य्यन्त टिके ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस रंभा के सकाश में कामधर्म में

तत्पर वे जाबालि कामुक (कामी) अकामता को प्राप्तहुये व लज्जा से घिरगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर उन मुनिने उस रंभाको बिदाकिया व शौच किया और उनसे छूटी व कार्यको कियेहुये वह विलासिनी भी ॥ ५१ ॥ प्रसन्न होतीहुई वहांगई जहांपर कि इन्द्र समेत देवताथे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येजाबालिक्षोभणोनामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । निज कन्यहि चित्रांगदहि दिय जाबालि सराप । इकसौ चालिसवें महँ बरणत सोइ प्रलाप ॥ सूतजी बोले कि वह रंभा स्वर्गको जाकर पश्चात् देवताओं

शौचंचक्रेततःपरम् ॥ सापितेनविनिर्मुक्ता कृतकृत्याविलासिनी ॥ ५१ ॥ प्रतुष्टाप्रययौतत्रयत्रदेवास्सवासवाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये जाबालिक्षोभणोनामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सागत्वात्रिदिवंपश्चात्सहस्राक्षंसुरैर्युतम् ॥ प्रोवाचभगवन्दिष्ट्या क्षोभितोसौमहामुनिः ॥ १ ॥ तपस्तस्यहतंकृत्स्नं यत्कृच्छ्रेणसमाचितम् ॥ तथानिस्तेजसत्वंचनीतस्त्वंसुखभाग्भव ॥ २ ॥ एवमुक्त्वाथसारम्भा शंसितानिखिलैस्सुरैः ॥ अमोघरेतसस्तस्य दध्रेगर्भंनिजोदरे ॥ ३ ॥ जाबालिरपिकृत्वाच पश्चात्तापमनेकधा ॥ भूयस्तुतपसिस्थित्वास्थितस्तत्रैवचाश्रमे ॥ ४ ॥ ततस्तुदशमेमासे सम्प्राप्तेसुषुवेशुभाम् ॥ कन्यांसरोजपत्राक्षीं दिव्यलक्षणलक्षिताम् ॥ ५ ॥

से संयुत इन्द्रजी-से बोली कि हे भगवन् ! आनन्द है जोकि ये जाबालि महामुनि क्षोभितहुये ॥ १ ॥ व जो क्लेश से इकट्ठा कियागयाथा वह उसका समस्त तप नाश होगया वैसेही निस्तेजताको प्राप्तहुआ तुम सुखभागी होवो ॥ २ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर समस्त देवताओंसे प्रशंसित होतीहुई उस रंभाने सफल वीर्यवाले उन जाबालिमुनि केसकाशसे अपनेपेट मे गर्भको धारण किया ॥ ३ ॥ जाबालिमुनि भी अनेक प्रकारके पश्चात्ताप को करके फिर तपस्या में स्थितहोकर उसी आश्रम मे टिके ॥ ४ ॥ तदनन्तर जब दशम महीना भलीभांति प्राप्तहुआ तब उस रंभाने उत्तमलक्षणों से लक्षित व कमलदल लोचनोंवाली उत्तम कन्याको पैदा किया ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर उसको मनुजसे उपजीहुई मानकर व उसी जाबालि के आश्रमको जाकर उन्हीं ऋषिके सामने छोड़ दिया व यह कहा ॥ ६ ॥ कि हे मुनिपुङ्गव ! तु-
म्हारे वीर्यसे उपजी व मेरे गर्भमें आरोपितहुई यह कन्याहै इसलिये इससमय पालन करो ॥ ७ ॥ क्योंकि किसी प्रकार मनुष्यों का स्वर्ग में वास नहीं विद्यमान है इसी
कारण हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हारे लिये समर्पण किया ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर रंभा शीघ्रही स्वर्गको चलीगई व जाबालि नेभी उस कन्याको देखकर स्नेह में प्रवेशकिया ॥ ९ ॥
तदनन्तर उस सोतीहुई कन्याको लताके घरमें धरकर मीठेफलोंसे उपजेहुये रसोंसे अहर्निश पोषणकिया ॥ १० ॥ वह कन्याभी दिन दिन धीरे २ उत्तम वृद्धिको प्राप्त

अथतांमानुषोद्भूतां मत्वातस्यैवचाश्रमम् ॥ गत्वामुमोचप्रत्यक्षं तस्यर्षेश्चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ तववीर्य्यसमुद्भूता ममगर्भे
प्ररोपिता ॥ कन्यकामुनिशार्दूल तस्मात्पालयसाम्प्रतम् ॥ ७ ॥ नस्वर्गेविद्यतेवासो मानुषाणांकथञ्चन ॥ एतस्मात्का
रणात्तुभ्यं मयाब्रह्मन्समर्पिता ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाययौरम्भासत्वरंत्रिदशालयम् ॥ जाबालिरपितांदृष्ट्वा कन्यकांस्नेह
आविशत् ॥ ९ ॥ ततस्तांकन्यकांधृत्वा प्रसुप्तांचलतागृहे ॥ रसैर्मिष्टफलोद्भूतैः पुपुषेचदिवानिशम् ॥ १० ॥ सापिक
न्यापरांवृद्धिं शनैर्यातिदिनेदिने ॥ शुक्लपक्षंसमासाद्ययथाचन्द्रकलादिवि॥११॥ यथायथाथसायाति वृद्धिंकमललोच
ना ॥ तथातथास्यसुस्नेहो जाबालेरप्यवर्द्धत ॥ १२ ॥ साशिशुत्वेमृगैस्सार्द्धं पक्षिभिश्चशुभानना ॥ क्रीडांचक्रेसुवि
श्रब्धैर्वर्द्धयन्तीमुनेर्मुदम् ॥ १३ ॥ ततोबाल्यात्परित्यक्तावल्कलावृतगात्रिका ॥ तस्यर्षेःसर्वकृत्येषु साहाय्यंप्रक
रोतिच ॥ १४ ॥ समित्कुशादियत्किंचित्फलपुष्पसमन्वितम् ॥ वनात्तदानयामास तस्यप्रीतिंप्रवर्द्धयन् ॥ १५ ॥ ततः

होतीथी जैसे कि शुक्लपक्ष को पाकर आकाशमें चन्द्रमाकी कला बढ़ती हैं ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर वह कमललोचनोंवाली कन्या ज्यों २ वृद्धिको प्राप्तहोतीथी त्यों २
इन जाबालिमुनिका सुन्दर स्नेह भी बढ़ा ॥ १२ ॥ व मुनिके हर्षको बढ़ातीहुई शोभनमुखवाली उस कन्याने शिशुतामें अति विश्वस्त मृगों व पक्षियोंके साथक्रीड़ा
किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर शिशुता से परित्यक्त याने युवावस्थावाली व बकलों से आच्छादित अङ्गोंवाली वह कन्या उन ऋषिके समस्त कार्योंमें सहायता करती
थी ॥ १४ ॥ व उन मुनि के स्नेह को बढ़ातीहुई वह कन्या फल, फूल संयुत जो कुछ समिधा व कुशादिथे उनको वनसे लातीथी ॥ १५ ॥ तदनन्तर किसी दिन

ग्रीष्मकाल में वह मृगनयनी फलोंके लिये अपने आश्रमसे दूरचलीगई ॥ १६ ॥ इसीअवसरमें उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ चित्रांगद नामक देवताओंका गन्धर्व वहांपर प्राप्तहुआ ॥ १७ ॥ व भूमिमें गिरीहुई चन्द्रमाकी लेखा (प्रकाशपंक्ति) के समान व पूर्ण चन्द्रमाके सदृश आननवाली उस कन्याको निर्जन स्थानमें उस चित्रांगद ने देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर कामदेव से घिरे अंगवाले उस गन्धर्वने विमानसे भूतल में उतर हाथ जोड़कर मीठे वचनों से उसे कहा ॥ १९ ॥ कि हे बाले, सुलोचनि कमल गर्भके समान शोभावाली ! तुमकौन इसनिर्जन महावनमें अकेले वनके बीच घूमतीहो ॥ २० ॥ कन्या बोली कि जाबालिमुनिकी कन्या फलवती नामक मैं

कतिपयाहस्य फलार्थंसामृगेक्षणा ॥ निदाघसमयेदूरं स्वाश्रमात्प्रजगामह ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र विमानवरमाश्रितः ॥ प्राप्तश्चित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ १७ ॥ तेनसाविजनेबालापूर्णचन्द्रनिभानना ॥ दृष्टाचान्द्रमसीलेखा पतितेवधरातले ॥ १८ ॥ ततःकामपरीताङ्गस्सोऽवतीर्य्यधरातलम् ॥ विमानान्मधुरैर्वाक्यैस्तामुवाचकृताञ्जलिः ॥ १९ ॥ कात्वंकमलगर्भाभे विजनेत्रमहावने ॥ भ्रमस्यैकाकिनीबाले वनमध्येसुलोचने ॥ २० ॥ कन्योवाच ॥ अहंफलवतीनाम जाबालेर्दुहितामुनेः ॥ फलपुष्पार्थमायाता तदर्थमिहकानने ॥ २१ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ कुमारब्रह्मचारीस श्रूयतेमुनिसत्तमः ॥ तत्कथंतस्यवामोरु त्वंजाताभार्य्ययाविना ॥ २२ ॥ कन्योवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग नास्तिदारपरिग्रहः ॥ तस्याहंकिन्तुसञ्जाता यथातन्मेवधारय ॥ २३ ॥ रम्भानामाप्सरातेन पुरादृष्टासुराङ्गना ॥ तदाकामपरीतेन सेविताचयथासुखम् ॥ २४ ॥ ततस्तदुदराज्जाता देवलोकेमहत्तरे ॥ तयापिचाहंतस्यार्थंभूपृष्ठेविनियो

उन मुनिके निमित्त फलफूलों के लिये इस वनमें आईहूं ॥ २१ ॥ चित्रांगद बोला कि हे वामोरु ! वे मुनिनायक कुमार ब्रह्मचारी सुनेजाते हैं इसलिये उनके स्त्री के विना तुमकैसे उत्पन्नहुईहो ॥ २२ ॥ कन्या बोली कि हे महाभाग ! यह सत्यहै कि उन मुनि के स्त्रीका परिग्रह नहीं है परन्तु मैं जिस प्रकार उत्पन्नहुईहूं उसको मुझसे सुनों ॥ २३ ॥ कि पुरातनसमय उन मुनिने रंभा नामक देवांगनाको देखा व उसीसमय कामदेव से घिरेहुये जाबालि ने यथा सुखपूर्वक सेवनकिया ॥ २४ ॥

तदनन्तर आति प्रतिष्ठित सुरलोक में उसके पेट से मैं पैदाहुई व उसने भी मुझको भूपृष्ठपै उन मुनि के लिये विशेषकर नियुक्त किया ॥ २५ ॥ वे जाबालि मुनिनायक इस प्रकार मेरे पिता हुये तदनन्तर उन मुनिने अनेक प्रकार के फलोंसे उपजे हुये रसों से मुझको पालन किया ॥ २६ ॥ उसी कारण उन महात्माने मेरे अनुरूप फलवती नाम किया जो तुम मुझसे पूंछते हो वह यही है ॥ २७ ॥ चित्रांगद बोला कि तुम्हारे रूपको मैं भलीभांति देखकर कामके वश होगया इस लिये हे भीरु ! तुम मुझको भजो नहीं तो विनाश को प्राप्त हूंगा ॥ २८ ॥ देवताओं का गन्धर्व चित्रांगद नामक मैं श्रद्धा संयुत होकर तीर्थयात्रा के लिये इस

जिता ॥ २५ ॥ एवंसमेपिताजातो जाबालिर्मुनिसत्तमः ॥ पोषिताहंततस्तेन नानाफलसमुद्भवैः ॥ २६ ॥ ततःफलवती नाम कृतंतेनमहात्मना ॥ ममानुरूपमेतद्धि यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ २७ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ तवरूपंसमालोक्य कामस्याहंवशंगतः ॥ तस्माद्भजस्वमांभीरु नोचेद्यास्यामिसंक्षयम् ॥ २८ ॥ अहंचित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्राकृतेप्राप्तः क्षेत्रेस्मिन्श्रद्धयान्वितः ॥ २९ ॥ कन्योवाच ॥ कुमारधर्म्मिणीचाहमद्यापिवशगापितुः ॥ कामधर्म्मंनजानामि चित्राङ्गदकथञ्चन ॥ ३० ॥ तस्मात्प्रार्थयमेतातं समांतुभ्यंप्रदास्यति ॥ अनुरूपाययोग्याय तरुणायमनस्विनीम् ॥ ३१ ॥ ममापिरोचतेचित्ते तववाक्यमिदंशुभम् ॥ धन्याहंयदिते कण्ठमालिङ्गामि यथेच्छया ॥ ३२ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ नशक्नोमिमहाभागे तावत्कालंप्रतीक्षितुम् ॥ मांदहत्येवगात्रोत्थः सुमहत्कामपावकः ॥३३॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे वरदानेनशोभने ॥ कोजानातिहितश्चित्तं कीदृग्रूपंभविष्यति ॥ ३४ ॥ कन्योवाच ॥ यद्येवंवर्तमा

क्षेत्रमें प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ कन्या बोली कि हे चित्रांगद ! पिताके वशमें प्राप्त व कन्या धर्मवाली मैं आजभी किसी प्रकार कामदेव के धर्मको नहीं जानती हूं ॥ ३० ॥ इस लिये मेरे पितासे मांगिये वे मुझ मनस्विनी को योग्य व समान व युवावस्थावाले तुम्हारे लिये देवैंगे ॥ ३१ ॥ व सुखदायक यह तुम्हारा वचन मेरे भी चित्तमें रुचता है क्योंकि यदि यथेच्छा पूर्वक मैं तुम्हारे गलेको आलिंगन करूं तो धन्यहूं ॥ ३२ ॥ चित्रांगद बोला कि हे महाभागे ! उतना समय परखने के लिये मैं नहीं समर्थहूं क्योंकि शरीर से उठीहुई बड़ी भारी कामरूपी अग्नि मुझको जलाही रही है ॥ ३३ ॥ इस लिये हे शोभने ! वरदान से मेरे ऊपर प्रसन्नता करो

क्योंकि कौन जानता है कि उन मुनिका चित्त कैसे रूपवाला होवै ॥ ३४ ॥ कन्या बोली कि यदि तुम इस प्रकार वर्तमान हो तो मेरा पिता क्रोधसे अति भयङ्कर शाप देकर तुमको निस्सन्देह जलावैगा ॥ ३५ ॥ चित्रांगद बोला कि हे मानदायिनि ! तुम्हारा पिता तो समय में मुझको जलावैगा व फिर यह कामाग्नि शीघ्रही भस्म करैगा ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस काँपती हुई लज्जावती कन्या को दाहिने हाथमें पकड़कर देवालय को पैठगया ॥ ३७ ॥ व उस समय काम से अतिपीड़ित चित्रांगद ने उसी समय उपजे हुये स्नेह से अन्धी व निर्लज्जताको प्राप्त हुई उस कन्याको रमण कराया ॥ ३८ ॥ हे मुनिसत्तमो ! उस गन्धर्व के साथ

नस्त्वं ममतातःप्रकोपतः ॥ दहिष्यतिनसन्देहः शापंदत्त्वासुदारुणम् ॥ ३५ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ तवतातस्तुकालेमां दहिष्यतिहिमानदे ॥ कामानलःपुनःसद्य एषभस्मकरिष्यति ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वाथतांबालां वेपमानांत्रपावतीम् ॥ गृहीत्वादक्षिणेपाणौ प्रविवेशसुरालयम् ॥ ३७ ॥ तत्रतांरमयामास तदाकामप्रपीडितः ॥ तत्कालजातरागान्धां निर्लज्जत्वमुपागताम् ॥ ३८ ॥ एवंतस्याःसमन्तेन स्थितायादिवसोगतः ॥ निमेषवन्मुनिश्रेष्ठास्ततश्चास्तंगतोरविः ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रो जाबालिर्दुःखसंयुतः ॥ अनायातांसुतांज्ञात्वा परिबभ्रामसर्वतः ॥ ४० ॥ अहोसादुहितामह्यं किन्तु व्याघ्रैःप्रभक्षिता ॥ वृक्षंकञ्चित्समारूढा पतिताधरणीतले ॥ ४१ ॥ किंवाजलाशयंकञ्चित्प्राप्तागाधमजानती ॥ निमग्ना तत्रसाबाला सम्प्रविष्टाजलार्थिनी ॥ ४२ ॥ एवंसप्रलपन्विप्रो बभ्रामगहनेवने ॥ कुशकण्टकविद्धाङ्गः क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ ४३ ॥ यंयंशृणोतिशब्दंस मृगपक्षिसमुद्भवम् ॥ रजन्यांतत्रनिर्य्याति मत्वाफलवतींचताम् ॥ ४४ ॥ अथा

इस भांति टिकीहुई उस कन्याका दिन पलभर के नाईं व्यतीत होगया तदनन्तर सूर्य्य अस्त होगये ॥ ३९ ॥ इसी अवसर में दुःख संयुत जाबालि द्विज ने न आई हुई कन्याको जानकर सब ओर भ्रमण किया ॥ ४० ॥ अहो बड़ा खेदहै कि उस मेरी कन्याको क्या व्याघ्रोंने खाडाला वा किसी वृक्षपर चढ़कर भूतल में गिरपड़ी ॥ ४१ ॥ अथवा क्या गहरे को न जानती हुई जलार्थिनी वह बाला (कन्या) किसी जलाशयको प्राप्तहुई व उसमें पैठकर डूबगई ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निरर्थक वचन कहते हुये कुश व कांटोंसे बेधित अंगोंवाले व क्षुधा, प्यासले अतिआकुल उस द्विज ने सघनवन में भ्रमण किया ॥ ४३ ॥ व मृगों तथा पक्षियों से उपजेहुये जिस जिस २

शब्दको वे जाबालिजी सुनते थे वहां पै उस फलवती कन्याको मानकर रात्रि में जाते थे ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये वे उत्तम मुनि मनोहर मन्दिर को भली भांति आये जहां कि चित्रांगद संयुत वह कन्या भलीभांति टिकीथी ॥ ४५ ॥ जो कि निःशङ्क होकर विशेष कर ब्राह्मणों से उपजी हुई कन्याओं के अयोग्य अनेक अनुराग चरितों को कहरही थी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुक्त व दूर टिका हुआ वह बहुत देरतक सुनकर व कन्या के कर्मको देखकर कोधसे लाल लोचनों वाला होगया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर वार २ निन्दता हुआ वह दोनों ही के विनाश के लिये काष्ठसमुदायको लेकर शीघ्रता से दौड़ा ॥ ४८ ॥ हे पापआचरण

क्रमन्समायातो रम्यंहर्म्यंससन्मुनिः ॥ यत्रचित्राङ्गदोपेतासासंतिष्ठतिकन्यका ॥ ४५ ॥ निःशङ्काजल्पमानातु रागवृत्तान्यनेकशः ॥ अनर्हाणिकुमारीणां ब्रह्मजानांविशेषतः ॥ ४६ ॥ ततस्ससुचिरंश्रुत्वा दूरस्थोविस्मयान्वितः ॥ कुमार्य्याश्चेष्टितंदृष्ट्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ ४७ ॥ अथदुद्राववेगेन गृह्यकाष्ठसमुच्चयम् ॥ द्वाभ्यांचैवविनाशाय भर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ४८ ॥ धिक्धिक्पापसमाचारे कौमार्य्यंदूषितंत्वया ॥ लाञ्छनंचसमानीतं ममलोकेजनेपिच ॥ ४९ ॥ नितरांपतिमासाद्य कर्म्मणानेनचाधमे ॥ तस्मादनेनपापेन युक्तांत्वांनाशयाम्यहम् ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वाप्रहारंस यावत्क्षिपतिसन्मतिः ॥ तावच्चित्राङ्गदोनष्टो व्योममार्गेणसत्वरम् ॥ ५१ ॥ विवस्त्रासापितत्रैव खिन्नाङ्गीकामसेवया ॥ नशशाक क्वचिद्गन्तुंसमुत्थायततःक्षितेः ॥ ५२ ॥ ततःकाष्ठप्रहारौघैर्हत्वातांपतितांक्षितौ ॥ मृतामितिपरिज्ञाय सक्रोधपरिवारि

वाली ! तुमने कुमारपनको दूषितकर दिया इससे धिक्कारहै धिक्कार है हे अधमे ! विशेपकर पतिको प्राप्तहोकर जिस लिये कि संसार व मनुष्यों में भी मुझको कलंक प्राप्तकिया है उसी कारण इस पापसे युक्तहुई तुमको मैं नाश करताहूं ॥ ४९ । ५० ॥ ऐसा कहकर वे उत्तम बुद्धिवाले जाबालिजी जबतक प्रहार को फेंकैं तबतक चित्रांगद शीघ्रही आकाशमार्ग से अदृश्य होगया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वहीं पर कामदेवके सेवनसे दुःखित अंगोंवाली व वसनसे रहित वह कन्याभी भूमिसे उठकर कहींजानेके लिये न समर्थहुई ॥ ५२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये वे जाबालिजी पृथ्वी में पड़ीहुई उसको काठके प्रहारादिकों से मारकर मरीहुई है यह जानकर

खड़ेहोरहे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उन जाबालि जीने भयसे आतुर व आकाशमार्ग से जातेहुये देखकर उस चित्रांगद कोभी अति विकरालशाप दिया ॥ ५४ ॥ किजो यह मेरी कन्याको धर्षणाकरके ऊपरजाता है वह पापी कटेहुये पंखवाले पक्षी आदिके समान शीघ्रही गिरपड़ै ॥ ५५ ॥ व कुष्ठरोग से संयुत व चलनेके लिये न समर्थहोवै वह चित्रांगद इसी अवसर में आकाशतलसे भूमि में गिरपड़ा ॥ ५६ ॥ व वह युवा चित्रांगद कुष्ठरोगसे संयुत होगया तदनन्तर क्रोधसे काठ के अधपरचे हाथोंवाले उन जाबालि मुनिने क्रोधसे उससे कहा ॥ ५७ ॥ कि कुमारीको दूषित करनेवाले व पापआचरण वाले तुमकौनहो उसीकारण यह मैं आज तुमको यमराज के घरको प्राप्तकरूंगा ॥

तः ॥ ५३ ॥ ततश्चित्राङ्गदस्यापि ददौशापंसुदारुणम् ॥ सदृष्ट्वाकाशमार्गेण गच्छमानंभयातुरम् ॥ ५४ ॥ यएषकन्यकां मह्यं धर्षयित्वासमुत्पतेत् ॥ सपतत्वचिरात्पापः छिन्नपक्षइवाण्डजः ॥ ५५ ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तश्चलितुंनैवचक्षमः ॥ एतस्मिन्नन्तरेभूमौ सपपातनभस्तलात् ॥ ५६ ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तस्सचचित्राङ्गदोयुवा ॥ ततस्तंसमुनिःप्राह काष्ठोल्मुककरःक्रुधा ॥ ५७ ॥ कस्त्वंपापसमाचारः कुमारीपरिदूषकः ॥ तन्नयाम्येषत्वामद्य यमस्यसदनम्प्रति ॥ ५८ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ अहंचित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन क्षेत्रेस्मिन्समुपागतः ॥ ५९ ॥ ततस्तुकन्यकांदृष्ट्वाकामदेववशंगतः ॥ ततस्सेवितवानत्र लताहर्म्येवनस्थले ॥ ६० ॥ तस्मात्कुरुक्षमांमह्यं दीनस्यप्रणतस्यच ॥ यथाव्याधेर्भवेन्नाशो यथास्याद्गगनेगतिः ॥ ६१ ॥ भूयोपित्वत्प्रसादेन स्वल्पःकोपोहिसाधुषु ॥ जाबालिरुवाच ॥ ईदृग्रूपधरस्त्वंहि ममवाक्याद्भविष्यसि ॥ ६२ ॥ एषापिमत्सुतापापा वस्त्रहीनासदेदृशी ॥ भविष्यतिनसन्देहो जी

५८ ॥ चित्रांगद बोला कि चित्रांगद नामक देवताओं का गन्धर्व मैं तीर्थयात्रा के प्रसंगसे इस क्षेत्रमें भलीभांति आया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर कन्या को देखकर कामदेव के वशमें प्राप्तहुआ उसके उपरान्त इसी वन स्थल के बीच लता घरमें सेवन किया ॥ ६० ॥ इसलिये प्रणाम कियेहुये मुझदीनके ऊपर क्षमाकरिये कि जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नतासे रोगका नाशहोवै व फिर भी जिसभांति आकाश में गमनहोवै क्योंकि साधुओं में थोड़ाकोप चाहिये जाबालि जी बोले कि मेरे वचनसे तुम ऐसेहीरूपके

धारनेवाले होंगे ॥ ६१। ६२ ॥ और यदि कहीं जीवैगी तो यह पापिनी मेरी कन्याभी सदैव निरसन्देह ऐसीही वसनहीन होवैगी ॥६३॥ व कहींपर किसी अंगमें भी यदि यह कन्या वसनको धारैगी तो निरसन्देह शीघ्रही इसका मस्तक फूटजायगा॥६४॥ ऐसा कहकर बिन क्रोधवाले वे जाबालिजी अपने आश्रमको चलेगये और उस कन्या समेत चित्रांगद वहींपर वैसेही स्थितहुआ ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर किसी समय चैतकी शुक्लपक्षवाली चौदसि में सन्ध्याप्राप्त होनेपर चित्रेश्वरी पीठ पै रमणकरनेके लिये रौद्रगणोंसे घिरेहुये व उग्र योगिनियों समेत भगवान् चन्द्रभाल (शिव) जी उस क्षेत्रमें भलीभांति आये॥ ६६ । ६७ ॥ इसके अनन्तर आधीरात प्राप्त होनेपर सब

वयिष्यतिचेत्कचित् ॥ ६३ ॥ यद्येषाधास्यतिकापि वस्त्रंगात्रेनिजेकचित्॥सत्वरंचाशिरोप्यस्याः फलिष्यतिनसंशयः॥
६४ ॥ एवमुक्त्वाविकोपश्च सजगामनिजाश्रमम् ॥ चित्राङ्गदोपितत्रैव तयासार्द्धंतथास्थितः ॥ ६५ ॥ कस्यचित्त्वथका
लस्यतत्रक्षेत्रेसमाययौ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां भगवाञ्च्छशिशेखरः ॥ ६६ ॥ रन्तुंचित्रेश्वरीपीठे गणैरौद्रैःसमावृतः ॥
योगिनीभिःप्रचण्डाभिः सार्द्धंप्राप्तेनिशामुखे ॥ ६७ ॥ अथप्राप्तेनिशार्द्धेतु योगिन्यस्ताःसुदारुणाः ॥ महामांसंमहा
मांसमित्यूचुर्भक्षणायवै ॥ ६८ ॥ नृत्यमानाःपुरस्तस्य देवदेवस्यशूलिनः ॥ स्पर्द्धन्त्योगणमुख्यैस्तैर्नर्तमानैस्समन्त
तः ॥ ६९ ॥ यस्तेतत्समयेस्माकं महामांसंप्रयच्छति ॥ मन्त्रपूतंसुसंसिद्धिं ससंप्राप्नोतिवाञ्छिताम् ॥ ७० ॥ मद्यंमां
संतथाचान्नं नैवेद्यंवाफलादिकम् ॥ तस्यासिद्धिस्समादिष्टायथास्वेहृदयेस्थिता ॥ ७१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकन्या साजा
बालिसमुद्भवा॥सचचित्राङ्गदस्तत्र गत्वाप्रोवाचसादरम् ॥ ७२ ॥ अस्मदीयमिदंमांसं योगिन्योहर्षसंयुताः॥ भक्षय

और नाचतेहुये गणमुख्योंसे ईर्षाकरती व उन त्रिशूलधारी देवदेव (शिव) जीके अगाड़ी नाचतीहुई उन अतिभयंकर योगिनियों ने भक्षण के लिये महामांस २ ऐसा कहा ॥ ६८ । ६९ ॥ कि इससमय में जो मंत्र से पवित्र महामांस को हमसबोंको देवैगा वह चाहीहुई संसिद्धि को भलीभांति पावैगा ॥ ७० ॥ वैसेही जो मदिरा, मांस,अन्न व फलादिक को नैवेद्य देवैगा उसकी वैसेही सिद्धि कहीगईहै कि जिसप्रकार अपने हृदय में स्थित होवै ॥ ७१ ॥ इसी अवसर में जाबालि से उपजीहुई वह

कन्या और वह चित्रांगद वहां जाकर आदर समेत बोला ॥ ७२॥ कि हर्षसंयुत होतीहुई योगिनियां सुखपूर्वक आपहीसे कल्पित कियेहुये हमारे इस मांसको भक्षणकरैं ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर कुष्ठरोग से घिरेहुये उस पुरुष व वसनहीन उस कन्याको देखकर वे सब योगिनियां विस्मयसंयुत हुईं ॥ ७४ ॥ और वे समस्त रौद्रगण व तीन नयनवाले वे सामर्थ्यवान् शिवदेव जीने विस्मययुक्त होकर वहां चित्रांगद से पूंछा कि ॥ ७५ ॥ बड़े सत्त्व (जीवट) वाले व धैर्य से संयुत तुम कौनहो जोकि कीड़े कोभी अतिप्यारे अपने जीवको देतेहो ॥ ७६ ॥ और तुम्हारे साथ गईहुई पीड़ावाली व वस्त्रोंसे रहित यह कन्या अपने शरीरको देती है जोकि किसीको देने योग्य नहीं

न्तुतथासौख्यं स्वयमेवप्रकल्पितम् ॥ ७३ ॥ अथतंपुरुषंदृष्ट्वा कुष्ठव्याधिसमावृतम् ॥ विवस्त्रांकन्यकांतांच सर्वास्ता विस्मयान्विताः ॥७४॥ तेचसर्वेगणारौद्रास्सचदेवस्त्रिलोचनः ॥ पप्रच्छकौतुकाविष्टस्तत्रचित्राङ्गदंविभुः ॥७५॥ कस्त्वंधैर्यसमायुक्तो महत्सत्त्वोव्यवस्थितः ॥ यःप्रयच्छसिजीवंस्वं कीटस्यापिसुवल्लभम् ॥ ७६ ॥ एषाचवसनैर्हीना त्वया सार्द्धंगतव्यथा ॥ प्रयच्छतिनिजंदेहं यद्देयंनैवकस्यचित् ॥ ७७ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्सकथयामास सर्वमात्मविचेष्टितम् ॥ यथाचकन्ययासङ्गस्ततःशापश्चतन्मुनेः ॥ ७८ ॥ ततश्चित्राङ्गदंदृष्ट्वासगन्धर्वंदिवौकसाम् ॥ तथारूपंकृपाविष्टस्ततःप्रोवाचशङ्करः ॥ ७९ ॥ ममसन्दर्शनंप्राप्तो वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ यथाव्याधिक्षयोभावी देहनाशोनशङ्कर ॥ ८० ॥ तथाकुरुक्षयंव्याधेर्यदियच्छसिमेवरम् ॥ खेचरत्वंपुनर्देहि येनस्वर्गंव्रजाम्यहम् ॥ ८१ ॥ शङ्करउवाच ॥ त्वंस्थापयात्रमल्लिङ्गं पीठेगन्धर्वसत्तम ॥ ततश्चाराधयप्रीत्या यावद्वर्षमुपस्थितः ॥ ८२ ॥ यथायथाचपूजां

है ॥७७॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस गन्धर्वने अपने समस्त कर्मको कहा कि जिसप्रकार कन्याके साथ संग हुआ उसके उपरान्त जिसभांति उन मुनिका शापहुआ ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वैसे रूपवाले देवताओं के गन्धर्व चित्रांगद को देखकर उसके उपरान्त कृपायुत होतेहुये उन सदाशिव जीनेकहा ॥७९ ॥ मेरे दर्शनको भलीभांति प्राप्तहुये तुम यथेप्सित वरदानको मांगो चित्रांगद बोला कि हे शंकर जी ! यदि मुझको वरदेते हो तो जिसप्रकार रोगका नाशहोवै व शरीरका क्षय न होवै वैसेही व्याधि का विनाशकीजिये व फिर आकाशगामित्व को दीजिये कि जिससे मैं स्वर्ग को जाऊं ॥ ८० । ८१ ॥ शंकर जी बोले कि हे गन्धर्वसत्तम ! तुम इस पीठमें मेरे लिंग

को थापन करो तदनन्तर समीप स्थितहोकर वर्षपर्य्यन्त प्रीतिसे आराधनकरो ॥ ८२ ॥ तुम ज्यों२ मेरे लिंगका पूजन करोगे त्योंही दिनोदिन तुम्हारे रोगका नाशहोगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर मेरी प्रसन्नतासे आकाश में गमनको पाकर फिर निस्सन्देह स्वर्गको जावोगे यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ८४ ॥ व जिसकारण यह कन्याभी पीठके मध्य में प्रतिष्ठित है उसीसे फलवती नामक योगिनी होगी ॥ ८५ ॥ व इसीही नग्नत्वरूपसे विशेषकर टिकीहुई मुख्य पूजनको पावैगी व उससमय पूजक पुरुषोंके चित्तमें टिकेहुये मनोरथको सौगुना देवैगी जो मनुष्य इसको भलीभांति पूजनकरै तदनन्तर इस पीठ को पूजन करैगा उसकी ऐसी इष्टसिद्धि होगी इसभांति कही

त्वं मल्लिङ्गस्यकरिष्यसि ॥ दिनेदिनेतथाव्याधेस्तवनाशोभविष्यति ॥ ८३ ॥ ततस्तुखेगतिंप्राप्य पुनःस्वर्गंप्रयास्यसि ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८४ ॥ एषापिकन्यकायस्मात्प्रतिष्ठापीठमध्यतः ॥ तस्मात्फलवती नामयोगिनीसम्भविष्यति ॥ ८५ ॥ अनेनैवतुरूपेण नग्नत्वेनव्यवस्थिता ॥ मुख्यामवाप्स्यतेपूजां वाञ्छितंचप्रदास्यति ॥ ८६ ॥ पूजकानांस्थितंचित्तेशतसंख्यगुणंतदा ॥ एतांसम्पूजयेन्मर्त्यः पीठमेतत्ततःपरम् ॥ ८७॥ पूजयिष्यतितस्येष्टसिद्धिरेवंभविष्यति ॥ एवमुक्तातस्साथ हर्षेणमहतान्विता ॥ ८८ ॥ योगिनीवृन्दमध्यस्था नृत्यंचक्रेततःपरम् ॥ एवंबभूवसातत्र योगिनीचवराङ्गना ॥ ८९ ॥ तथाचक्रेपरंनृत्यं यथातुष्टोमहेश्वरः ॥ ततःप्रोवाचतांहृष्टस्सर्वयोगिनिसन्निधौ ॥ ९० ॥ अनेनतवनृत्येन गीतेनचविशेषतः ॥ परितुष्टोस्मितेवत्से तस्माच्छृणुवचोमम ॥ ९१ ॥ निशीथेद्यदिनेप्राप्ते यस्तेपूजांकरिष्यति ॥ पुण्यमांसादिसत्कारैर्मन्त्रैरागमसम्भवैः ॥ ९२ ॥ सभविष्यतितत्कालंशाप

हुई वह तदनन्तर बड़े हर्ष से संयुत हुई ॥ ८६ । ८७ । ८८ ॥ तदनन्तर योगिनीयूथके मध्य में टिकीहुई उसने नृत्य किया इसप्रकार उत्तम अङ्गोंवाली उस योगिनी ने वहां वैसेही उत्तम नृत्यको किया कि जिसप्रकार महादेवजी प्रसन्न होगये तदनन्तर समस्त योगियों के समीप प्रसन्न होते हुये शिवजीने उससे कहा ॥ ८९ । ९० ॥ कि हे वत्से ! तुम्हारे इस नाचने व विशेषकर गाने से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं इसलिये मेरे वचनको सुनो ॥ ९१ ॥ आजकी आधीरातको प्राप्त होनेपर जो पुरुष वेद से उपजेहुये मन्त्रों के द्वारा पवित्र मांसादिकोंके सत्कारों से तुम्हारा पूजन करैगा ॥ ९२ ॥ वह उसीसमय शापानुग्रहमें सामर्थ्यवान् होगा व वैसेही बन्धन, मोहन

को भी व शत्रुका उच्चाटन व निस्सन्देह वशीकरण भी करैगा और त्रिकोण कुण्डपै देशपालको धरकर पूजनकरै ॥ ९३ । ९४ ॥ व जो नर क्षेत्रपाल और आकाश से उपजेहुये उन समस्त देवताओं तथा ईश्वर (शिव) जी का विधिपूर्वक पूजन करके पश्चात् तुमको पूजकर पीछे शत्रु के बायें चरणसे उठी व छुई हुई धूरि से गुग्गुल समेत हज़ार आहुति हवनकरैगा वह स्तम्भन करैगा और जो नेत्र व वक्षःस्थल में स्थित व नखसे उपजेहुये मल को उठाकर आंवलों समेत होम करैगा वह मोहन करैगा व जो पुरुष शत्रु के स्नान से उपजे हुये जल व पङ्क को ग्रहणकर इसके अनन्तर शिवजी के निर्माल्य संयुत तुम्हारे आगे अग्नि में हवन

नुग्रहशक्तिमान् ॥ बन्धनंमोहनंचापि शत्रोरुच्चाटनंतथा ॥ ॥ ९३ ॥ करिष्यतिनसन्देहो वशीकरणमेवच ॥ त्रिकोणं कुण्डमाधाय देशपालंप्रपूजयेत् ॥ ९४ ॥ क्षेत्रपालंचसर्वास्ता देवतागगनोद्भवाः ॥ तथाचेश्वरपूजांच प्रकृत्वाविधिपू र्वकम् ॥ ९५ ॥ पश्चात्त्वांपूजयित्वाच होमंपश्चात्करिष्यति ॥ शत्रुवामपदोत्थेनस्पृष्टेनरजसातथा ॥ ९६ ॥ गुग्गुलुना सहस्रन्तुस्तम्भनंचकरिष्यति॥ यश्चनेत्रहृदिस्थंवा उद्धृतंनखसम्भवम् ॥ ९७ ॥ मलंधात्रीफलैस्सार्द्धं मोहनंसकरिष्य ति ॥ यःशत्रोःस्नानजंतोयं गृहीत्वाचाथकर्द्दमम् ॥ ९८ ॥ शिवनिर्माल्यसंयुक्तं जुहुयिष्यतिपावके॥ तवाग्रेसनरोनूनं शत्रुमुच्चाटयिष्यति ॥ ९९ ॥ एषोपितवसङ्गेन तथाचित्राङ्गदःप्रियः ॥ संप्राप्स्यतिचसम्पूजामानुषङ्गात्तवोद्भवात् ॥ १०० ॥ फलवत्युवाच ॥ यदिदेवप्रसन्नोमे तथान्यमपिसद्वरम् ॥ हृदिस्थंदेहिसौख्यंमे येनसञ्जायतेखिलम् ॥ १ ॥ पितामभैषजाबालिर्निर्मुक्तोवसनैस्सदा ॥ अहंयथातथाचैवसंतिष्ठतुदिवानिशम् ॥२॥ येनसञ्जायतेदुःखं पश्यन्नपिवि

करैगा वह निश्चय कर शत्रुको उच्चाटन करैगा ॥ ९५।९६ । ९७ । ९८।९९ ॥ वैसेही यह प्रिय चित्रांगद भी तुमसे उपजे हुये प्रसङ्ग के कारण तुम्हारे संग से पूजन को भलीभांति पावैगा ॥१००॥ फलवती बोली कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो वैसेही और भी हृदयमें टिके उत्तम वरको दीजिये कि जिससे मुझ को सम्पूर्ण सुख होवै ॥ १ ॥ कि जैसे मैं हूं वैसेही यह मेरा पिता जाबालि सदैव वसनों से रहित होकर दिनरात स्थित होवै ॥ २ ॥ कि जिससे माघमास से उपजी हुई ब्राह्मण वंश

के विरोधवाली क्रीड़ा को देखतेहुये भी दुःख होवै ॥ ३ ॥ जो मद्यगन्ध को भलीभांति सूंघता है व संस्कार कियेहुये मांस को देखताहै वह स्वच्छन्दता में तत्पर नित्यही दिनोदिन दुःख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ श्रीशिव भगवान् बोले कि हे शुभदायिके ! इससमय कहाहुआ ऐसाही होगा मैं कैलासको जाताहूं तुम्हारी यथोदित प्रतिष्ठा होगी ॥५॥ सूतजी बोले कि वे शिव भगवान्‌जी ऐसा कहकर अदृश्य होगये और वे समस्त योगिनियां अपने २ स्थानमें विशेषकर स्थितहुईं ॥ ६ ॥ व चित्रांगद ने भी वहींपर उत्तम मन्दिरको बनाकर त्रिशूलवाले देवदेव (शिव) जी के लिङ्गको स्थापन किया ॥७॥ तदनन्तर निरालसी होतेहुये दिन रात आराधन किया उसके

रोधिनीम् ॥ क्रीडांब्राह्मणवंशस्य मद्यमांससमुद्भवाम् ॥ ३ ॥ संजिघ्रतिमद्यगन्धं मांसंपश्यतिसंस्कृतम् ॥ सस्वच्छन्दरतोनित्यं दुःखंयातिदिनेदिने ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥एवंभविष्यतिप्रोक्तं सञ्जातमधुनाशुभे ॥ अहंयास्यामिकैलासं त्वत्प्रतिष्ठायथोदिता ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसभगवान्प्रोक्त्वा गतश्चादर्शनंहरः ॥ योगिन्यस्ताश्चवैसर्वाःस्वेस्वेस्थानेऽव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ चित्राङ्गदोपितत्रैवकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ ७ ॥ ततश्चाराधयामास दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेऽव्याधिमुक्तःस्वरूपधृक् ॥८॥ विमानवरमारूढो जगामत्रिदशालयम् ॥ सोपिजाबालिनामाथ विवस्त्रस्समपद्यत ॥ ९ ॥ जनहास्यकरोलोके स्थितस्तत्रैवसर्वदा ॥ पश्यमानोविकारांस्तान्दुःखितःस्वसुतोद्भवान् ॥ १० ॥ ततश्चगर्हयामासस्त्रीणां जन्ममहामुनिः ॥ तस्मिन्पीठेसमासाद्य दुःखेनमहतान्वितः ॥ ११ ॥ अहोपापात्मनांपुंसां सम्भविष्यन्तियोषितः ॥ यासामीदृक्समाचारो द्विजवंशोद्भवामपि ॥ १२ ॥

उपरान्त वर्षके अन्तमें स्वरूपका धारी व रोग से छूटा व उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ वह चित्राङ्गद स्वर्गको चलागया इसके अनन्तर वे जाबालिनामक मुनिभी वसनहीनत्व को प्राप्तहुये ॥ ८ । ९ ॥ व संसार में जनों के हास्यकारक होकर सदैव वहींपर टिकतेभये व अपनी कन्या से उपजेहुये उन विकारोंको देखतेहुये दुःखितहुये ॥१०॥ तदनन्तर उस पीठपै भलीभांति प्राप्तहोकर बड़े दुःखसे संयुत होतेहुये महामुनिने स्त्रियोंके जन्मकी निन्दा किया॥११॥कि बड़ाखेदहै जोकि पापात्मा पुरुषोंके स्त्रियां उत्पन्न

होती हैं क्योंकि ब्राह्मण वंशमें उपजीहुई भी जिन स्त्रियोंका ऐसा आचरणहै ॥१२॥मैंने एकहीबार स्त्रीके साथ संगकिया जिससे मुझको जन्म से लगाकर मरणपर्य्यन्त
ऐसा पाप प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ फिर जो नीच नर उन स्त्रियोंमें सदैव आसक्त रहते हैं उनकी संसार में कौन गति होती है उसको मैं चिन्तन करताहूं ॥ १४ ॥ उन
जाबालि जीको इसभांति कहतेहुये योगमें स्थितहोकर योगिनीने कहा कि जिसलिये यह चराचर संसार जिन स्त्रियोंसे भलीभांति धारण कियाजाताहै ॥ १५ ॥ व जिन
स्त्रियों ने शेषको पैदाकिया तदनन्तर कूर्मको उत्पन्नकिया कि जिनसे पृथ्वी भलीभांति धारित होतीहै व जिस पृथ्वीमे संसार प्रतिष्ठितहै ॥ १६ ॥ हे विप्रजी ! यह तुम्हारी

**सकृदेवमयासङ्गः कृतोनार्य्यासमंयतः ॥ आजन्ममरणंयावत्पापंप्राप्तंममेदृशम् ॥ १३ ॥ येपुनस्तासुसंसक्ताः सदैवपु
रुषाधमाः ॥ कातेषांजायतेलोके गतिस्तांसमचिन्तयम्॥१४॥एवंतस्यब्रुवाणस्य योगमाश्रित्ययोगिनी॥एतच्चराचरंवि
श्वं स्त्रीभिस्संधार्य्यतेयतः ॥ १५ ॥ याभिस्सञ्जनितःशेषःकूर्मश्चतदनन्तरम् ॥ याभ्यांसन्धार्य्यतेपृथ्वी यस्यांविश्वं
प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ धन्येयंतेसुताविप्र याप्राप्तायोगमुत्तमम् ॥ प्राप्ताचपरमंस्थानं स्तोकैरेवात्रवासरैः ॥ १७ ॥ त्वंपु
नर्मूर्खतांप्राप्तश्छन्दसांमार्गमाश्रितः ॥ अविद्ययासमायुक्तस्संसारेत्रभ्रमिष्यसि ॥ १८ ॥ मुनिरुवाच ॥ स्त्रियोनिन्द्यत
माःसर्वास्सर्वावस्थासुदुःखदाः ॥ इहलोकेपरेचैव ताभ्यस्सौख्यंनलभ्यते ॥ १९ ॥ यदर्थंनिहतःशुम्भो निशुम्भश्चमहा
सुरः ॥ रावणोदण्डभूपश्च तथान्येपिसहस्रशः ॥ २० ॥ प्राप्यतादृग्द्विजंकान्तं गौतमंस्त्रीस्वभावतः ॥ अहल्याशक्र
मासाद्य चकमेशीलवर्ज्जिता ॥ २१ ॥ कन्योवाच ॥ यत्त्वंनिन्दसिमूढात्मन्सन्तिनिन्द्याश्चयोषितः ॥तद्वदस्वमयासा**

कन्या धन्यहै कि जो उत्तम योगको प्राप्तहुई व यहांपर थोडेही दिनोंसे उत्तम स्थानको प्राप्तहुईहै ॥१७॥ और वेदोंके मार्ग प्रति आश्रितहुये तुम फिर मूर्खताको प्राप्तहुये
व मायासे संयुक्त होकर इस संसार में घूमोगे ॥१८॥ मुनि बोले कि सब स्त्रियां अतिनिन्दाके योग्यहैं क्योंकि समस्त अवस्थाओं में बहुत दुःखदायिनी है व उनसे इस
लोक और परलोक में सुख नहीं मिलताहै ॥ १९ ॥ व जिन स्त्रियोंके लिये शुम्भ, निशुम्भ मारागया व रावण और दंडभूपति तथा औरभी हजारों मनुष्य मारेगयेहैं ॥
२०॥ और वैसे मनोहर गौतम ब्राह्मणको पतिपाकर उत्तम चरितसे रहित अहल्याने स्त्रीस्वभावसे इन्द्रजीको प्राप्तहोकर इच्छा किया॥२१॥कन्या बोली कि हे मूढात्मन् !

जो तुम निन्दा करतेहो कि स्त्रियां निन्द्याके योग्यहैं तो मेरें साथ बतलाइये कि जिससे मैं तुमको बोधकरूं ॥ २२ ॥ हे मुने ! न तुम्हारे बुद्धिहै न हृदयमें लज्जाहै न इन्द्रियों
का दमनहै क्या चांडालभी उस कर्मको करताहै कि जो तुमने कियाहै ॥ २३ ॥ हे अधम ! तबतक तुमने मुझको प्रहारसे मारा और स्त्रीहत्या से उपजेहुये पातककी चिन्ताको
हृदयमें न धारण किया ॥ २४ ॥ व कोपसे संयुत चित्तकरके विशेषकर कन्याकी हत्यासे उपजेहुये पातकको हृदयमें न धारण किया व अनेकभांतिके प्रायश्चित्तोंसे जो पाप
जातेहैं और यदि फिर स्त्रीवधसे उठाहुआ पातक जाताहै तो तुम कहो ॥ २५ ॥ हे द्विजोंमें नीच ! जो मैं मारीगईहूं यह मेरे दुःख नहीं है ॥ २६ ॥ हे दुष्टबुद्धे ! जो सदैव

किमन्त्यजोपितत्कर्म कुरुतेयत्त्वयाकृतम् ॥ २३ ॥ नतेस्तिहृदयेबुद्धिर्नलज्जानदमोमुने ॥ २२ ॥ येनत्वांबोधयाम्यहम् ॥ २२ ॥ अहंतावत्प्रहारेण त्वयाव्यापादिताधम ॥ स्त्रीहत्योद्भवपापस्य नचिन्ताविधृताहृदि ॥ २४ ॥ विशेषेणसुतायाश्च कोपाविष्टेनचेतसा ॥ गच्छन्तिपातकायेच प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ॥ स्त्रीवधोत्थंपुनर्याति यदितत्त्वंप्रकीर्तय ॥ २५ ॥ एतन्मेनचदुःखंस्याद्यद्धतास्मिद्विजाधम ॥ २६ ॥ यत्सदानग्नसद्भावं नीतंतत्पातकंचते ॥ कल्पान्तेपिसुदुर्बुद्धे नतेयास्यतिकुत्रचित् ॥ २७ ॥ तस्माद्भुङ्क्ष्वसुदुःखार्तः स्थितोत्रैवमयासह ॥ नभूयोनिन्दसिप्रायो नचव्यापादयिष्यसि ॥ २८ ॥ अनिन्द्यायोषितस्सर्वा नैतादुष्यन्तिकर्हिचित् ॥ मासिमासिरजोह्यासां दुष्कृतंपरिकर्षति ॥ २९ ॥ मुनिरुवाच ॥ मास्त्रियःपापसमाचारा नैताःशुद्ध्यन्तिकर्हिचित् ॥ परकान्तरतिर्यासामन्त्यजत्वंप्रयच्छति ॥ ३० ॥ कन्योवाच ॥ मैवंवदमूढात्मन्नमेध्याःसन्तियोषितः ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो मनुनातंनिबोधमे ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणाःपादतोमेध्या गा

नग्न का भाव प्राप्त कियागया है वह तुम्हारा पातक कहीं पर कल्पान्त में भी न जावैगा ॥ २७ ॥ इसलिये मेरे साथ यहींपर टिकेहुये अतिदुःख से विकल तुम कर्म
फलको भोग करो फिर न निन्दा करोगे न बहुधा मारोगे ॥ २८ ॥ समस्त स्त्रियां निन्दा के योग्य नहीं होती हैं और कभी ये दूषित नहीं होती हैं क्योंकि महीने २ में
रजोधर्म इन स्त्रियों के पातकको खींचता है ॥ २९ ॥ मुनि बोले कि ये पाप आचरणवाली स्त्रियां कभी शुद्ध नहीं होतीहैं क्योंकि पराये पतिमें अनुराग जिन स्त्रियोंको
चांडालत्व देताहै ॥ ३० ॥ कन्या बोली कि हे मूढात्मन् ! ऐसा मत कहिये कि स्त्रियां अपवित्र होतीहैं इस विषयमें मनुजीने जो श्लोक गायाहै उसको मुझसे जानिये ॥ ३१ ॥

कि ब्राह्मण पांवसे पवित्र होते हैं व गाई पूंछसे पवित्र हैं छाग मुखसे पवित्र हैं व स्त्रियां सब ओर से पवित्र हैं ॥ ३२ ॥ मुनि बोले कि ब्राह्मण सबओर से पवित्र हैं व गाई सब ओर से शुचिहैं और छाग भी कहीं पर पवित्र होतेहैं और स्त्रियां किसी अंग में भी शुचि नहीं हैं ॥ ३३ ॥ कन्या बोली कि उसके हाथमें चिन्तामणि है व उसके घर में कल्पवृक्ष है व उसके कुबेर सेवक हैं कि जिसके घर में स्त्री होवे है ॥ ३४ ॥ मुनि बोले कि उसके समस्त आपत्तियां होती हैं व उसके घरमें अखिल दुःख हैं व उसको निश्चयकर यहीं नरकहै कि जिसके घरमें स्त्री है ॥ ३५ ॥ कन्या बोली कि इस लोकमें जो कोई सुख व धर्म, अर्थ व कामसे उपजेहुये जो भोग के स्थानहैं

वोमेध्याश्वपुच्छतः ॥ अजाश्वमुखतोमेध्याः स्त्रियोमेध्याश्चसर्वतः ॥ ३२ ॥ मुनिरुवाच ॥ ब्राह्मणास्सर्वतोमेध्या गावोमेध्याश्चसर्वतः ॥ अजाश्चापिकचिन्मेध्या नमेध्याश्चस्त्रियःकचित् ॥ ३३ ॥ कन्योवाच ॥ तस्यचिन्तामणिर्हस्ते तस्यकल्पद्रुमोगृहे ॥ कुबेरःकिङ्करस्तस्य यस्यस्यात्कामिनीगृहे ॥ ३४ ॥ मुनिरुवाच ॥ तस्यापदोखिलाश्चैव दुःखंतस्याखिलंगृहे ॥ नरकोस्त्यत्रवैतस्य यस्यस्यात्कामिनीगृहे ॥ ३५ ॥ कन्योवाच ॥ यानिकान्यत्रसौख्यानि भोगस्थानानियानिच ॥ धर्मार्थकामजातानि तानिस्त्रीभ्योभवन्तिहि ॥ ३६ ॥ मुनिरुवाच ॥ यानिकानिसुदुःखानि यानिपापानिदेहिनाम् ॥ यानिकष्टानितिष्ठन्ति स्त्रीभ्यस्तानिभवन्तिच ॥ ३७ ॥ कन्योवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च चतुरोपिचतस्रभिः ॥ वह्निप्रदक्षिणाभिश्च विवाहोपिप्रदर्शयेत् ॥ ३८ ॥ मुनिरुवाच ॥ संसारभ्रमणंनारी प्रथमेपिसमागमे ॥ वह्निप्रदक्षिणान्यायव्याजेनैवप्रदर्शयेत् ॥ ३९ ॥ कन्योवाच ॥ केनाममैवरज्यन्ते ज्ञानयुक्तापिमानवाः ॥ कर्णान्तलग्ननेत्रान्तां

वे स्त्रियोंसे होते हैं ॥ ३६ ॥ मुनि बोले कि जो कोई दुःख है व शरीरधारियों के जो पाप होते हैं व जो कष्ट होते हैं वे स्त्रियोंसे होते हैं ॥ ३७ ॥ कन्या बोली कि विवाह भी चार अग्नि की प्रदक्षिणाओं से चारों भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्षों को दिखलाताहै ॥ ३८ ॥ मुनि बोले कि प्रथम समागम में भी स्त्री अग्नि की प्रदक्षिणाके न्याय रूपी व्याजही से संसार के भ्रमण को दिखलाती है ॥३९॥ कन्या बोली कि कानों के अन्त तक लगेहुये नेत्रान्तोंवाली व स्थूल स्तनोंवाली स्त्री को देखकर ज्ञान से युक्त

कर सर्प होते हैं कदापि स्तन नहीं हैं ॥ ४३ ॥ कन्या बोली कि इन स्त्रियों का केवल रचनामात्र मनोहर नहीं है किन्तु शरीरधारियों से स्त्रियोंका आलिङ्गन भी सौख्य विशेषकर चैत्र महीने में धन्य पुरुषों से सेवित होते हैं ॥ ४२ ॥ मुनि बोले कि मण्डलाकारवाले व फणसे रहित व उसी क्षण छोड़ीहुई केंचुलिवाले व छुयेहुये निश्चय बुद्धि से नितम्बिनी (स्त्री) के समीप जाते हैं ॥ ४१ ॥ कन्या बोली कि मुखरहित व ऊपर को गयेहुये व मनोहर स्त्री के स्तनरूपी कुटीर (निवासगृह) भी कौन पुरुष प्रसिद्ध में अनुराग नहीं करते हैं ॥ ४० ॥ मुनि बोले कि कृतज्ञ पुरुष नहीं नष्ट होते हैं किन्तु अग्नि प्रति पांखी के समान मन्दज्ञानवाले नर रमण की

दृष्ट्वापीनपयोधराम् ॥ ४० ॥ मुनिरुवाच ॥ कृतज्ञानविनश्यन्ति मूढज्ञानानितम्बिनीम् ॥ रम्यबुद्ध्याप्रसर्पन्तिज्वलनं शलभाइव ॥ ४१ ॥ कन्योवाच ॥ निर्मुखौचकुटीरौच प्रोद्गतौचमनोरमौ ॥ स्त्रीस्तनौसेवितौधन्यैर्मधुमासेविशेषतः ॥ ४२ ॥ मुनिरुवाच ॥ अभोगिनौमण्डलिनौ तत्क्षणान्मुक्तकञ्चुकौ ॥ नूनमाशीविषौस्पृष्टौ नतुजातुपयोधरौ ॥ ४३ ॥ कन्योवाच ॥ नचासां रचनामात्रं केवलंरम्यमङ्गिभिः ॥ परिष्वङ्गोपिरामाणां सौख्यायपुलकायच ॥ ४४ ॥ मुनिरुवाच ॥ नचासां रचनामात्रं रम्यंसाप्तपदंदृशः ॥ वपुस्स्पृष्टंविनाशाय स्त्रीणांचनरकायच ॥ ४५ ॥ कन्योवाच ॥ कोनामनसुखीलोके कोनामसुकृतीनच ॥ स्पृहणीयतमःकोन स्त्रीजनोयेनरज्यते ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ कोनमुक्तिंव्रजेदत्र कोनशस्ततरो भवेत् ॥ कोनस्यात्क्षेत्रसंयुक्तः स्त्रीजनेयोनरज्यते ॥ ४७ ॥ कन्योवाच ॥ संसारान्तःप्रसूतस्य कीटस्यापिसुरोचते ॥ तथासंसार स्त्रीशरीरंमनुष्यस्य किम्पुनर्नुविवेकिनः ॥ ४८ ॥ मुनिरुवाच ॥ अमेध्यजातस्ययथात्यन्तंतद्रोचतेकृमेः ॥ तथासंसार

व रोमांच के लिये होताहै ॥ ४४ ॥ मुनि बोले कि इन स्त्रियों की दृष्टिकी मनोहरमैत्री रचनामात्र नहीं है किन्तु स्त्रियों का छुवाहुआ शरीर विनाश व नरक के लिये होताहै ॥ ४५ ॥ कन्या बोली कि प्रसिद्ध में संसार के मध्य कौन सुखी नहीं है व प्रसिद्धमें कौन पुण्यवान् नहीं है और कौन अत्यन्त चाहने के योग्य नहीं है जो कि स्त्रीजनका अनुराग करता है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले कि जो स्त्रीजनमें अनुराग नहीं करता है वह कौन इस संसार में मुक्ति को नहीं प्राप्त होताहै व कौन अतिउत्तम नहीं है व कौन क्षेत्रसे संयुत नहीं होताहै ॥ ४७ ॥ कन्या बोली कि संसार के मध्यमें पैदाहुये कीड़े को भी स्त्री का शरीर भलीभांति रुचता है फिर विवेकवाले पुरुषको

क्या कहना है ॥ ४८ ॥ मुनि बोले कि जैसे अपवित्र वस्तु से पैदाहुये कीट को अत्यन्तही वह शरीर रुचता है वैसेही संसार में उपजे हुये कामी नरको स्त्री का शरीर रुचता है ॥ ४९ ॥ कन्या बोली कि मनुष्यों के जिस किसी सौख्य स्थानको ब्रह्माने देखा उसीको इस किसी अपूर्व भी स्त्रीमयी फँसरीको स्त्रीरूपसे कैसे कियाहै ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि वे मुनिपुङ्गव जाबालिजी जब संयोग में उस कन्या से बिन उत्तर कियेगये तब उसके उपरान्त अपनी कन्यासे बोले ॥ ५१ ॥ मुनि बोले कि इस समय तुम्हारे साथ मुझको कुछ संवाद न करना चाहिये क्योंकि जो तुम बाला भी मुझको सबओर से इसभांति मना करती हो ॥ ५२ ॥ इसलिये आज मैं अपनाको

भूतस्य स्त्रीशरीरंचकामिनः ॥ ४९ ॥ कन्योवाच ॥ सौख्यस्थानंनृणांकिञ्चिद्वेधसायदपश्यत् ॥ स्त्रीरूपेणकृतःकोपि पाशोयंस्त्रीमयःकथम् ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमुनिशार्दूलस्तयातीवसमागमे ॥ निरुत्तरीकृतोयावत्ततःप्राहनिजांसुताम् ॥ ५१ ॥ मुनिरुवाच ॥ त्वयासहनसंवादो मयाकार्य्योधुनाकचित् ॥ यात्वंबालापिमामेवं निषेधयसिसर्वतः ॥ ५२ ॥ तस्माद्धन्यतरंमन्ये त्वहमात्मानमद्यवै ॥ यस्यमेत्वंसुताजाता ईदृक्शास्त्रविचक्षणा ॥ ५३ ॥ तस्मान्नमेमहाभागे कोपःस्वल्पोपिविद्यते ॥ तस्माद्यथेच्छयाक्रीडां कुरुयोगिनिमध्यगा ॥ ५४ ॥ ततस्सालज्जितंदृष्ट्वा पितरंस्नेहवल्लभम् ॥ प्रणिपत्यपुनःप्राह योगिनीमध्यसंस्थिता ॥ ५५ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाद्यन्निषिद्धोमयाप्रभो ॥ क्षन्तव्यंसकलंमे च बालिकायाविशेषतः ॥ ५६ ॥ अथपीठेसमागत्य प्रथमंतेद्विजोत्तम ॥ पूजांसर्वेकरिष्यन्ति मानवाभक्तितत्पराः ॥ ५७ ॥

निश्चयकर अत्यन्त धन्य मानताहूं कि जिस मेरे तुम ऐसी शास्त्र में चतुर कन्या पैदाहुई हो ॥ ५३ ॥ इसलिये हे महाभागे ! मेरे थोड़ा भी क्रोध नहीं विद्यमान है उसी कारण योगिनियों के बीचमें प्राप्त होतीहुई तुम यथेच्छासे क्रीड़ा करो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर योगिनियों के मध्य में भलीभांति टिकीहुई उस कन्या ने स्नेह से प्यारे व लज्जितहुये पिता को देखकरके प्रणामकर फिर कहा ॥ ५५ ॥ कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान व ज्ञान से जो तुमको मना कियाहै मुझ बालिका का वह सब विशेषकर क्षमा करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तम ! भक्ति में लगेहुये सब मनुष्य भलीभांति आकर पीठ पै पहले तुम्हारा पूजन करैंगे ॥ ५७ ॥

व पश्चात् समस्त पीठका पूजन करेंगे व उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे इसभांति वहांपर जाबालि मुनि से उपजीहुई वह कन्या व मुनिसत्तम जाबालिजी तथा चित्रांगदेश्वर स्थित होतेभये जो मनुष्य उन तीनों देवताओं का पूजन भलीभांति करै है॥ ५८।५९ ॥ वह वहांपर दिन २ में संसिद्धि को प्राप्त होवेहै व इस धरातल में कुछ असाध्य नहीं होवै है ॥ ६० ॥ व भूमिपालादिकों से वे पूजे जाते हैं और वे दिव्यभोगोंको प्राप्त होते हैं इसलिये समस्त उपाय से वे जाबालि मुनि और वह कन्या विशेष कर पूजने योग्य है इसके अनन्तर वे महेश्वरदेवजी का पूजन करना चाहिये इस समस्त कथानक को मैंने तुमलोगों से वर्णन किया जो कि पढ़ने व सुननेवाले नरों

पश्चात्सर्वस्यपीठस्य यास्यन्तिचपरांगतिम् ॥ एवंसातत्रसंजाता जाबालिमुनिसम्भवा ॥ ५८ ॥ जाबालिश्चमुनिश्रे
ष्ठस्तथाचित्राङ्गदेश्वरः ॥ त्रयाणामपियस्तेषां पूजांमर्त्यःसमाचरेत् ॥ ५९ ॥ दिवसेदिवसेतत्रसंसिद्धिंसमवाप्नुयात् ॥
नासाध्यंविद्यतेकिञ्चिद्भवेदत्रधरातले ॥ ६० ॥ पूज्यन्तेभूमिपालाद्यैर्भोगान्दिव्याँल्लभन्तिते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन समु
निःसाचकन्यका ॥ ६१ ॥ पूजनीयौविशेषेण सदेवोथमहेश्वरः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातमाख्यानंसर्वकामदम् ॥ ६२ ॥
पठतांशृण्वतांचैव इहलोकेपरत्रच ॥ १६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहा
त्म्ये चित्राङ्गदेश्वरफलवतीजाबाल्याख्यानन्नाम चत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४० ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यत्त्वयाकथितंसूत नमृतासाकुमारिका ॥ हतारौद्रप्रहारैश्च कौतुकंतन्महत्तरम् ॥ १ ॥ यतोभूयः
प्रसंजाता योगिनीहरतुष्टिदा ॥ तत्त्वार्थंसर्वमाचक्ष्व कारणंचतदद्भुतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ साप्रविश्यसमंतेन सुपुण्य

को इसलोक व परलोक में समस्त कामनाओं का दायक है ॥ १६१।१६२।१६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येचित्राङ्गदेश्वरफलवतीजाबाल्याख्यानं नामचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा । इकसौ इकतालीस महँ अमरेश्वर परभाव । शौनकादिकन ऋषिनसन बरणत सूत सचाव ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहाहै कि बडे विकराल प्रहारों से मारीहुई वह कन्या न मरी वह बड़ाभारी आश्चर्य है ॥ १ ॥ जिसलिये कि वह शिवजी को तुष्टिदायिनी योगिनी हुई है उसी कारण समस्त निश्चित अर्थ व

उस अद्भुत कारण को कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! माघमास की कृष्णपक्षवाली चौदसि में वह कन्या उस पिता समेत अतिपुण्यदायक अमरेश्वर स्थान में पैठकर स्थित हुई है जहांपर मृत्यु नहीं होती है और आयुर्बल के शेष में भी अकाल से उपजीहुई मौतको क्या कहनाहै उसी कारण उस समय अत्यन्तही कठोरतासे मारीहुई भी वह कन्या मृत्युको न प्राप्तहुई ॥ ३ । ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि अमरके दायक जो अमरेश्वर ऐसे देव कहेगयेहैं वे यहां किससे स्थापितहुयेहैं व किस प्रभाववाले हैं उसको कहिये ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि अदिति और दिति दोनों दक्षप्रजापतिकी कन्याहुई हैं उनको पुरातनसमय कश्यप महात्माने विवाहके द्वारा व्याह

ममरेश्वरम् ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां यत्रमृत्युर्नविद्यते ॥ ३ ॥ अपिचैवायुषःशेषे किमुताकालजोद्विजाः ॥ तेननोनिधनं प्राप्ता हतापिसुदृढंतदा ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अमरेश्वरइत्युक्तो योदेवोवामरप्रदः ॥ केनसंस्थापितोह्यत्र किंप्रभावश्चकीर्तय ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ अदितिश्चदितिश्चैव प्रजापतिसुतेउभे ॥ ऊढेपुराविवाहेन कश्यपेनमहात्मना ॥ ६ ॥ अदित्यां विबुधाजाता दित्यांचैवतुदैत्यपाः ॥ तेषांसापत्न्यभावेन महद्वैरमुपस्थितम् ॥ ७ ॥ अथदैत्यैःसुराध्वस्ताःकृताःसर्वेपराङ्मुखाः ॥ अन्येतुभयसंत्रस्ता दिशोजग्मुःक्षताङ्गकाः ॥ ८ ॥ ततोदुःखसमायुक्ता देवमातात्रसंस्थिता ॥ तपश्चक्रेदिवानक्तं शिवध्यानपरायणा ॥ ९ ॥ एवंतस्याव्रतस्थाया गतेयुगचतुष्टये ॥ निर्भिद्यधरणीपृष्ठं शिवलिङ्गंसमुत्थितम् ॥ १० ॥ ततस्तस्मैकृतानन्दास्तुत्वास्तोत्रैःपृथग्विधैः ॥ अष्टाङ्गप्रणिपातेन नमश्चक्रेसमाहिता ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवाणी सं

कियाहै ॥ ६ ॥ व अदिति में देवता और दिति में निश्चयकर दैत्यनायक पैदा हुयेहैं उनका शत्रुभावसे बड़ाभारी वैर उपस्थितहुआ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर दैत्यों से विध्वंस कियेहुये सब देवता विमुख करदियेगये व कटेहुये अंगोंवाले अन्य देवता भयभीत होकर दिशाओं को चलेगये ॥ ८ ॥ तदनन्तर शिवजीके ध्यान में परायण होतीहुई दुःखसे संयुत देवोंकी माता दितिजीने यहां भलीभांति टिककर दिनरात तपस्या किया ॥ ९ ॥ इसभांति उन दितिजीको व्रतमें टिकेहुये जब चारयुग बीतगये तब भूपृष्ठको फोड़कर शिवलिङ्ग भलीभांति उठा ॥ १० ॥ तदनन्तर आनन्द किये व सावधान होतीहुई दिति ने अनेकप्रकारके स्तोत्रों से स्तुतिकरके आठोअङ्गों के

प्रणिपातसे उस लिंगके लिये नमस्कार किया ॥ ११ ॥ इसी अवसर में उससमय मेघके समान गम्भीर शब्दवाली व अशरीरिणी दिव्यवाणी आकाशरूपी आंगनमें होतीभई ॥ १२ ॥ कि हे कल्याणि ! जो तुम्हारे चित्तमें विशेषता से टिकाहो उस वरदान को मांगो आज प्रसन्न होताहुआ चन्द्रभाल नामक मैं तुमको अवश्यकर दूंगा ॥ १३ ॥ अदिति बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मेरे पुत्र युद्ध में दैत्यों से मारेजाते हैं उन सबोंको युद्धमें दैत्योंसे अवध्य व अमर कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे शुभे ! जो हमारे इस लिंगको छूकर युद्धमें जावैंगे वे वर्षपर्यन्त अवध्य होवेंगे ॥ १५ ॥ व और भी सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहांपर माघमहीने की कृष्णपक्षवाली

प्र जाता गगनाङ्गणे ॥ अशरीरातदादिव्या मेघगम्भीरनिःस्वना ॥ १२ ॥ वरंप्रार्थयकल्याणि यत्तेहृदिव्यवस्थितम् ॥ प्रसन्नोहंप्रदास्यामि तवाद्यशशिशेखरः ॥ १३ ॥ अदितिरुवाच ॥ ममपुत्रासुरश्रेष्ठ हन्यन्तेयुधिदानवैः ॥ तान्कुरुष्वामरान्सर्वानवध्यान्युधिदानवैः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतल्लिङ्गंमदीयंये स्पृष्ट्वायास्यन्तिसंयुगे ॥ अवध्यास्तेभविष्यन्ति यावत्संवत्सरंशुभे ॥ १५ ॥ अन्येपिमानवायेत्रचतुर्दश्यांसमाहिताः ॥ माघमासस्यकृष्णायां प्रकरिष्यन्तिजागरम् ॥ १६ ॥ तेपिसंवत्सरंयावद्भविष्यन्तिनिरामयाः ॥ अपिमृत्युदिनेप्राप्ते योस्मिन्नायतनेशुभे ॥ १७ ॥ आगमिष्यतितं मृत्युर्दूरात्परिहरिष्यति ॥ एवमुक्त्वाथसावाणी विरराततःपरम् ॥ १८ ॥ अदितिश्चापिसंतुष्टा हतशेषान्सुतांस्ततः ॥ समानीयाथतल्लिङ्गं तेषामेवन्यदर्शयत् ॥ १९ ॥ कथयामासतत्सर्वं माहात्म्यंयद्भवोदितम् ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वे तल्लिङ्गंप्रणिपत्यच ॥ २० ॥ प्रजग्मुस्तुष्टिसंयुक्ताःशस्त्राण्यादायतान्प्रति ॥ यत्रतेदानवाहृष्टाः स्थिताःशक्रपदेशु

चौदसि में जागरण करेंगे ॥ १६ ॥ वेभी सालभरतक नीरोग होवैंगे व मृत्युदिनके भी प्राप्तहोनेपर जो मनुष्य इस शुभदायक मन्दिरमें आवैगा उसको मृत्यु दूरसे परिहार करैगी यानी छोड़देवेगी ऐसा कहकर उसकेउपरान्त वह वाणी चुपहोगई ॥ १७।१८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई अदितिजीने भी मारनेसे बचेहुये पुत्रोंको भलीभांति लाकर इसके अनन्तर उन्हींको उस लिंगको दिखलाया ॥ १९ ॥ और जो शिवजीसे कहागया था उस समस्त माहात्म्य को कहा तदनन्तर प्रसन्नतासंयुत वे समस्त

देवता उस लिंगको प्रणाम कर व शस्त्रोंको लेकर उन दैत्यों के प्रति गये जहां कि प्रसन्न होतेहुये वे दैत्य उत्तम इन्द्रके स्थान पै टिकेथे ॥ २० । २१ ॥ व स्वर्ग के सुखोंसे संयुत होकर नन्दन (इन्द्रके वन) में विशेषता से स्थितथे इसके अनन्तर युद्धके लिये नानाप्रकार के शस्त्रोंको धारेहुये बहुतेरे देवताओं को अचानक भलीभांति देखकर व शस्त्र, अस्त्र और बख्तरों को धारेहुये देवोत्तमों को भलीभांति बुलाकर घनके समान गर्जते हुये वे दैत्य युद्धके लिये सामनेगये तदनन्तर उस समय मृत्युको लौटाकर याने न गिनकर दानवों के साथ क्रोधसे घिरेहुये देवताओंका बड़ाभारी युद्ध हुआ तदनन्तर महादेव से वरदान को पायेहुये उन समस्त देव-

भे ॥ २१ ॥ स्वर्गभोगसमायुक्ता नन्दनेचव्यवस्थिताः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वा संप्राप्तांस्त्रिदिवौकसः ॥ २२ ॥ सहसासङ्गरार्थाय नानाशस्त्रधरान्बहून् ॥ सुरवर्य्यान्समाहूय धृतशस्त्रास्त्रवर्मिणः ॥ २३ ॥ युद्धार्थंसम्मुखंजग्मुर्गर्जमानाघनाइव ॥ ततस्समभवद्युद्धं देवानांदानवैस्सह ॥ २४ ॥ तदारोषपरीतानां मृत्युंकृत्वानिवर्त्तनम् ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वे हरलब्धवरास्तदा ॥ २५ ॥ जघ्नुर्दैत्यानसंख्याताञ्छितैःशस्त्रैरनेकधा ॥ हतशेषाश्चयेतेषां तेत्यक्त्वात्रिदशालयम् ॥ २६ ॥ पलायनकृतोत्साहाः प्रविष्टामकरालयम् ॥ ततःशक्रस्समापेदे स्वंराज्यंदानवैर्हृतम् ॥ २७ ॥ यदासीत्पूर्वकालेतु समग्रंहतकण्टकम् ॥ ततस्तेदानवाःशेषा ज्ञात्वातल्लिङ्गसम्भवम् ॥ २८ ॥ माहात्म्यंवृषनाथस्य क्षेत्रस्यास्योद्भवस्यच ॥ शुक्रेणकथितंसर्वं माघकृष्णेनिशागमे ॥ २९ ॥ चतुर्दश्यांशुचिर्भूत्वा यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ कालेप्राप्तेपिनप्राणैस्सपुमांस्त्यज्यतेक्वचित् ॥ ३० ॥ तस्माद्यूयंसमासाद्यतल्लिङ्गंतद्दिनेनिशि ॥ पूजयध्वंमहाभागा येनस्युर्मृत्युवर्जि

ताओंने उस समय ॥ २२ । २३ । २४ । २५ ॥ पैने शस्त्रोंसे अनेक भांतिसे असंख्य दैत्योंको मारा व उन दैत्योंके बीचमें जे मारनेसे बचे वे स्वर्ग को छोड़कर ॥ २६ ॥ भागने में उत्साह को कियेहुये समुद्र में पैठगये तदनन्तर दानवों से हरीहुई उस अपनी राज्यको इन्द्रजी भलीभांति प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ जो सब कि पूर्वसमय में मरेहुये शत्रुओं या नष्ट कण्टकोंवाली थी तदनन्तर बचेहुये दानवोंने लिंगसे उपजे उस माहात्म्य को जानकर शुक्रजी से पूछा व शुक्रजी ने इस क्षेत्रके उपजेहुये वृषभनायक (शिव) जीके समस्त माहात्म्य को कहा कि माघ महीने में कृष्णपक्षवाली चतुर्दशी के दिन रात्रिके आनेपर जो पुरुष पवित्रहोकर

उस लिंगका पूजन करताहै वह कालके प्राप्त होने परभी कहीं प्राणोंको नहीं छोड़ताहै ॥ २८ । २६ । ३० ॥ इस लिये हे महाभाग्यवाले दानवो ! तुम लोग भलीभांति
प्राप्त होकर उस दिन रात में उस लिंगको पूजो जिससे सालके अन्ततक मृत्युरहित होवो यह मैंने सत्य कहाहै जिस प्रकार कि उसके प्रभावसे निस्सन्देह वे दे-
वताओं के समूह मृत्युरहित होगये हैं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रजी ब्रह्माके पुत्र नारदजी से उस दैत्येन्द्रोंकी सलाह को जानकर फिर डरेहुये मनवाले हो
गये तदनन्तर ॥ ३३ ॥ समस्त देवताओं के साथ वैसीही सम्मति किया कि जिस प्रकार उस दिन उन शिवदेवजी की रक्षामें सबओर भलीभांति उद्यम होवै ॥३४॥

तथातेदेवसङ्घाश्च तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ३२ ॥ अथतंदान
ताः ॥ ३१ ॥ यावत्संवत्सरस्यान्तं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ तथातेदेवसङ्घाश्च तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ३२ ॥ अथतंदान
वेन्द्राणां मन्त्रंज्ञात्वासुरेश्वरः ॥ नारदाद्ब्रह्मणःपुत्राद्भूयस्त्रस्तमनास्ततः ॥ ३३ ॥ मन्त्रंचक्रेसमंदेवैस्तस्यदेवस्यरक्षणे ॥
यथास्यादुद्यमस्सम्यक्तस्मिन्नहनिसर्वतः ॥ ३४ ॥ कोटयस्तुत्रयस्त्रिंशद्देवानांसायुधास्ततः ॥ रक्षार्थंतस्यलिङ्गस्य
तस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिताः ॥ ३५ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां सुसन्नद्धाःप्रहारिणः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वा तान्देवांस्तत्रसंस्थि
तान् ॥ ३६ ॥ भयसंत्रस्तमनसो दुद्रुवुस्सर्वतोदिशम् ॥ अथप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ३७ ॥ भूयएवसुरास्सर्वे
मन्त्रंचक्रुःपरस्परम् ॥ यद्येतत्क्षेत्रमुत्सृज्य गमिष्यामस्सुरालयम् ॥ ३८ ॥ लिङ्गमेतत्समभ्येत्य पूजयिष्यन्तिदान
वाः ॥ ततोऽवध्याभविष्यन्ति तेपिसर्वेयथावयम् ॥ ३९ ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठामस्त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणकाः ॥ कोटीनामेवसर्वे

तदनन्तर उन शिवदेवकी रक्षाके लिये अस्त्रोंसमेत व प्रहार करनेवाले तथा तैयारहुये तेंतीस करोड़ देवता उस क्षेत्रमें माघमहीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि में वि-
शेषता से टिकते भये इसके अनन्तर वहांपर भलीभांति टिकेहुये उन देवताओंको देखकर भयसे भीतमनवाले वे दैत्य सब दिशाओं में भगगये इसके अनन्तर नि-
र्मल प्रभातकाल में जब सूर्य्यमण्डल उदयहुआ तब ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ फिर भी समस्त देवताओं ने आपस में सम्मति किया कि यदि हमलोग इस क्षेत्रको
छोड़कर स्वर्गको चलेजावैंगे ॥ ३८ ॥ तो दैत्य भलीभांति आकर इस लिंगको पूजैंगे तदनन्तर जैसे हमलोग हैं वैसेही वे सब भी अवध्य होजावैंगे ॥३९॥ इस लिये

तैंतीस कोटिही देवता यहींपर टिकैं और स्वर्गकी सबओर रक्षा करनेवाले शेष देवता इन्द्रसे संयुत होकर वहां जावैं तदनन्तर वहांपर आठ वसु और वैसेही बारह सूर्य्य ॥ ४० । ४१ ॥ और वैसेही गेरहरुद्र व सुन्दरे दोनों अश्विनीकुमार ये उस लिंगकी रक्षाके लिये उस क्षेत्रमें विशेषता से टिकें ॥ ४२ ॥ व शेष इन्द्रसे संयुत होकर स्वर्गको चलेगये सूतजी बोले कि जो आपलोगोंने पूछाहै वह ऐसे प्रभाववाला त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी का लिंग पुरातन समय अदिति से थापित हुआहै जिस लिये कि उस लिंगके देखने से शरीरधारियोंकी मृत्यु नहीं होती है ॥ ४३ । ४४ ॥ उसी कारण तीनों भुवन में अमरनामक लिंग प्रसिद्धहुआ

षां शेषागच्छन्तुतत्रच ॥ ४० ॥ सहस्राक्षेणसंयुक्तास्स्वर्गस्यपरिरक्षकाः ॥ ततोष्टौवसवस्तत्र द्वादशार्कास्तथैवच ॥ ४१॥ एकादशतथारुद्रा नासत्यौद्वौचसुन्दरौ॥ एतेतल्लिङ्गरक्षार्थं तस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥ शेषाःशक्रसमायुक्ताः प्रजग्मुस्त्रिदशालयम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रभावंलिङ्गंतु देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४३ ॥ भवद्भिःपरिपृष्टंयददित्यास्थापितम्पुरा ॥ यस्मान्नविद्यतेमृत्युस्तेनदृष्टेनदेहिनः ॥ ४४ ॥ अमराख्यंततोलिङ्गं विख्यातंभुवनत्रये ॥ यस्मिन्देशेपिसाकन्या हतानेनद्विजन्मना ॥ ४५ ॥ जाबालिनासुक्रुद्धेन तस्यदेवस्यमन्दिरे ॥ आसीत्तत्रदिनेकृष्णा माघमासचतुर्दशी ॥ ४६ ॥ तेननोनिधनंप्राप्ता सुहतापितपस्विना ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं तस्यलिङ्गस्यसम्भवम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम्॥ यश्चैतत्पठतेभक्त्यातस्यलिङ्गस्यसन्निधौ ॥ ४८ ॥ नापमृत्युभयंतस्य कथञ्चिदपिजायते ॥ तस्याग्रेस्तिशुभंकुण्डं पूरितंस्वच्छवारिणा ॥ ४९ ॥ अदित्यानिर्मितंदेव्या स्नानार्थंचात्मनःकृते ॥ स्ना

व जिस स्थान पैभी उन देवके मन्दिरमें इस क्रोधित जाबालि ब्राह्मण ने कन्याको माराहै उस दिन माघ महीनेकी कृष्णपक्षवाली चौदसि थी ॥ ४५ । ४६ ॥ उसी कारण तपस्वी से बहुतही मारीहुई भी वह कन्या मृत्युको न प्राप्तहुई हे द्विजोत्तमो ! उस लिंगसे उपजे हुये व समस्त पातकों के विनाशक इस सब माहात्म्यको तुम लोगों से कहा जो पुरुष भक्तिसे उस लिंगके समीप इस चरित को पढ़ता है ॥ ४७ । ४८ ॥ उसको किसी प्रकारभी अपमृत्यु से डर नहीं होताहै व उस लिंगके अगाड़ी निर्मलजल से पूरित उत्तमकुण्ड है ॥ ४९ ॥ जोकि अपने स्नान के लिये अदिति देवीसे निर्माण कियागया था उसमें नहाकर जो नर उस

लिंगको देखता है ॥ ५० ॥ व उसी शुभदायक दिनमें रात्रिजागरण करता है वह भी वर्ष पर्यन्त अपमृत्यु को नहीं प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४१ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसौ बैयालीस महँ कहत चरित सुखधाम । जिमि वसुरुद्रादिकन के कहे भिन्न करि नाम ॥ ऋषि लोग बोले कि हे महामुने! वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार व समस्त आदित्यों को प्रत्येक से कहिये हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि मृगव्याध, शर्व व तीसरे मृगव्याध, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य और

नंकृत्वानरस्तस्मिन्यस्तल्लिङ्गंप्रपश्यति ॥ ५० ॥ करोतिजागरंरात्रौ तस्मिन्नेवदिनेशुभे ॥ सोपिसंवत्सरंयावन्नापमृत्यु मवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरमाहात्म्यं नामैकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ आदित्यानांचसर्वेषां वसूनरुद्रांस्तथाश्विनौ ॥ प्रत्येकशस्समाचक्ष्व नमामत्वांमहामुने ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ मृगव्याधश्चशर्वश्च मृगव्याधस्तृतीयकः ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकीषष्ठएवच ॥ २ ॥ दहनश्चकपालीच रै वतोनवमस्तथा ॥ वृषाकपिस्तुदशमो रुद्रास्त्र्यम्बकएवच ॥ ३ ॥ धरोध्रुवश्चसोमश्चमखश्चैवानिलोनलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभा सश्च वसवोष्टौप्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥ वरुणश्चतथासूर्य्यो भानुःपूषाचतापनः ॥ इन्द्रश्चैवार्यमाचैव धाताचैवभगस्तथा ॥ ५ ॥ गभस्तिर्धर्मराजश्च द्वादशैतेचभास्कराः ॥ नासत्यश्चैवदस्रश्च ख्यातावेतौतथाश्विनौ ॥ ६ ॥ देववैद्यौमहाभागौ

छठयें पिनाकी ॥ २ ॥ व दहन, कपाली और नवयें रैवत दशवें वृषाकपि व निश्चयकर त्र्यम्बक ये रुद्रहैं ॥ ३ ॥ व धर, ध्रुव और सोम, मख और अनिल, नल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसु कहे गयेहैं ॥ ४ ॥ व वरुण तथा सूर्य, भानु, पूषा, तापन, इन्द्र और अर्यमा, धाता, विधाता तथा भगदेव ॥ ५ ॥ गभस्ति, धर्मराज ये बारह भास्कर हैं व नासत्य, दस्र ये दोनों अश्विनीकुमार कहेगये हैं ॥ ६ ॥ जोकि सूर्यके सकाशसे त्वष्टाकी कन्या अश्विनीरूपवाली संज्ञा स्त्री में उपजेहुये बड़े भाग्यवाले

व देवताओंके वैद्यहैं व येही तेंतीस सुरनायक कहे गयेहैं ॥ ७ ॥ जोकि दैत्योंके मारनेके लिये नित्यही क्षेत्रही में स्थित हैं इन्द्रियों को रोंकेहुये जो पुरुष पूर्वोक्त दिवस के प्राप्तहोने पर भक्तिसे उन देवताओं को भलीभांति पूजता है उसकी अपमृत्यु नहीं होती है अष्टमी व चौदसि तिथि में विद्वानों को रुद्रोंका पूजन करना चाहिये ॥ ८ । ९ ॥ व परमपद चाहनेवाले पुरुषोंको उस क्षेत्रमें दशमी व विशेषकर प्रतिपदा तिथिमें वसुओंका पूजन विशेषता से करना चाहिये ॥ १० ॥ व सदैव लीलादिक के विधान मे स्वर्गके चाहनेवाले पुरुषोको सप्तमी व छठि तिथिमें देवताओंका पूजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ व जो पुरुष शत्रुओंसे रहितवाले पराक्रमको चाहतेहैं तथा

त्वाष्ट्रीगर्भसमुद्भवौ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समाख्याता एतेचसुरनायकाः ॥ ७ ॥ क्षेत्रेचैवस्थितानित्यं दानवानांवधायच ॥ यस्तान्सम्पूजयेद्भक्त्या पुरुषस्संयतेन्द्रियः ॥ ८ ॥ पूर्वोक्तदिवसेप्राप्ते नापमृत्युःप्रजायते ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां रुद्राःपूज्याविचक्षणैः ॥ ९ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेविशेषेण वाञ्छद्भिःपरमंपदम् ॥ दशम्यांवसवःपूज्यास्तत्राद्यायांविशेषतः ॥ १० ॥ स्वर्गसमीहमानैश्च विलासादिविधौसदा ॥ सप्तम्यामथषष्ठ्यांचपूजनीयादिवौकसः ॥ ११ ॥ येवाञ्छन्तिनराःसत्त्वं परिपन्थिविवर्जितम् ॥ देववैद्यौतथापूज्यौ द्वादश्यांव्याधिसंक्षयम् ॥ १२ ॥ येवाञ्छन्तिसदामर्त्या नीरुजास्सम्भवन्तिच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरामरकुण्डमाहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति देवःपुत्रप्रदोनृणाम् ॥ चटकेश्वरनामाच सर्वपापहरोहरः ॥ १ ॥ यस्मिंश्चेटि

जो रोगके नाशको चाहते हैं उनको द्वादशी तिथि में देवताओं के वैद्यों अश्विनीकुमारोंको पूजना चाहिये और वे मनुष्य नीरोग होतेहैं ॥ १२ । १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरामरकुण्डमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

दो॰ । यथा व्यास सों व्रतकही कीन्हों बहु शुकदेव । इकसौ तेंतालीस महँ सोई कहत सुभेव ॥ सूतजी बोले कि वैसेही समस्त पातको के हारक चटकेश्वर

श्रौरभी हरदेवजी वहांपर हैं जोकि मनुष्यों को पुत्रोंके दायक हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस स्थान पै पुरातन समय चेटिका नें तपस्या किया है व शुकदेव
नामक श्रौरभी हरदेवजी वहांपर हैं जोकि मनुष्यों को पुत्रोंके दायक हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस स्थान पै पुरातन समय चेटिका नें तपस्या किया है व शुकदेव
जीके वनमें चलेजाने पर व्यास से कपिंजल पुत्रको पायाहै ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह चेटिका किसकी कन्याहै श्रौर वहां कैसे तपस्या करती भई श्रौर शु-
कदेवभी किस लिये घरको छोड़कर वनमें श्राश्रित हुये ॥ ३ ॥ श्रौर पवित्र मुसक्यानवाली चेटिका ने व्यास से किसभांति कपिञ्जल पुत्रको पाया है ॥ ४ ॥ सूतजी
बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! किसी समय श्रकाम व शान्तचित्तवाले व सर्वज्ञ व्यास महात्माके स्त्रीके लिये बुद्धिहुई ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विचित्रवीर्य भूपको

कयापूर्वं तपस्तप्तंद्विजोत्तमाः ॥ प्राप्तापुत्रंशुकेयाते वनंव्यासात्कपिञ्जलम् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्यासौचेटिकातत्र
कथंतप्तवतीतपः ॥ कस्माद्गृहंपरित्यक्त्वा शुकोपिवनमाश्रितः ॥ ३ ॥ कथंकपिञ्जलंपुत्रंव्यासाल्लेभेशुचिस्मिता ॥४॥
सूतउवाच ॥ आसीद्व्यासस्यविप्रेन्द्राः कलत्रार्थंमतिंकचित् ॥ निष्कामस्यप्रशान्तस्य सर्वज्ञस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥ ततः
क्षयमनुप्राप्ते वंशेकुरुसमुद्भवे ॥ विचित्रवीर्य्यमासाद्य पार्थिवंद्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ सत्यवत्यास्समादेशात्तस्यक्षेत्रेततः
परम् ॥ सपुत्राञ्जनयामासत्रीञ्छूरान्पाण्डुपूर्वकान् ॥७॥ वानप्रस्थव्रतेतिष्ठन्सकृन्मैथुनतत्परः ॥ क्षेत्रजैस्तनयैर्वंशे
कुरोस्तस्मादुपस्थिते ॥ ८ ॥ ततस्सचिन्तयामास भार्य्यामद्यकरोम्यहम् ॥ गार्हस्थ्येनाथधर्म्मेण साधयामिशुभाङ्गति
म् ॥ ततस्तंप्रार्थयामास जाबालिंतुसुतांशुभाम् ॥ ९ ॥ चेटिकाख्यांशुभांकन्यां सददौतस्यसत्वरम् ॥ ततस्तयासमे

प्राप्तहोकर कुरु से उपजेहुये कुलको नाश होनेपर ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त वानप्रस्थ आश्रममें टिकेहुये उन व्यासजीने सत्यवती की आज्ञासे एकबार मैथुन में परायण
होकर उन विचित्रवीर्यकी स्त्रियों में पाण्डुपूर्वक तीन शूरमा पुत्रोंको पैदा किया व उन व्यासजी से क्षेत्रज पुत्रोंके द्वारा कुरुवंश को उपस्थित होनेपर ॥ ७ । ८ ॥ त-
दनन्तर उन व्यासजी ने चिन्तन किया कि आज मैं स्त्रीको करूं इसके अनन्तर गृहस्थीवाले धर्मसे उत्तमगति को साधन करूं तदनन्तर उन जाबालिजी से शुभ-
दायक कन्याकी प्रार्थना किया ॥ ९ ॥ उन जाबालिजी ने शीघ्रही उन व्यासजीको चेटिका नामक कन्या दिया तदनन्तर वानप्रस्थाश्रम में टिके व मैथुन करने मे

भी परायण होतेहुये व्यासजी उस स्त्रीसमेत वनवासके भलीभांति आश्रितहुये तदनन्तर सत्यवती के पुत्र व्यासजी से ऋतुसमय में मैथुन को प्राप्तहोकर पिंजला उनके पार्श्व (सकाश) से गर्भवतीहुई इसके अनन्तर जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है वैसेही व्यासजीकी स्त्रीके पेटमें भलीभांति टिकाहुआ वह गर्भ परमवृद्धि को प्राप्तहोता था इस प्रकार उस गर्भको नित्यप्रति बढ़तीको प्राप्त होतेहुये ॥ १० ।११ । १२ । १३ ॥ बारह वर्ष व्यतीत होगये और जन्मको न प्राप्तहुआ गर्भ में टि- काहुआभी उस पेटमें कहीं जो कुछ सुनता था ॥ १४ ॥ उस समस्त वस्तु को बुद्धिसंयुत उसने हृदय स्थित किया और गर्भवास में भी उसने अंगों समेत वेदोंको

तंतु वनवासंसमाश्रितः ॥ १० ॥ वानप्रस्थाश्रमेतिष्ठन्कृतमैथुनतत्परः ॥ ततोगर्भवतीजज्ञे पिङ्गलातस्यपार्श्वतः ॥
११ ॥ ऋतौमैथुनमासाद्य व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ अथयातिपरांवृद्धिं सगर्भस्तत्रसंस्थितः ॥ १२ ॥ उदरेव्यासभार्य्या
याः शुक्लपक्षेयथाशशी ॥ एवंसंगच्छतस्तस्य वृद्धिंगर्भस्यनित्यशः ॥ १३ ॥ द्वादशाब्दाअतिक्रान्ता नचजन्मस
माप्नुयात् ॥ यत्किञ्चिच्छृणुतेतत्र गर्भस्थोपिवचःक्वचित् ॥ १४ ॥ तत्सर्वंहृदयेसंस्थं चक्रेप्रज्ञासमन्वितः ॥ वेदास्सा
ङ्गास्समाधीता गर्भवासेपितेनच ॥ १५ ॥ स्मृतयश्चपुराणानिमोक्षशास्त्राणिकृत्स्नशः ॥ तत्रस्थोपिदिवानक्तं स्वा
ध्यायंप्रकरोतिसः ॥ १६ ॥ नचजन्मोत्थजांबुद्धिं कथञ्चिदपिचिन्तयेत् ॥ सामाताथपराम्पीडां नित्यंयातितथाकुला ॥
१७ ॥ यथायथासुतोयाति वृद्धिंजठरमाश्रितः ॥ ततश्चविस्मयाविष्टो व्यासोवचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥ कस्त्वंमद्गृहि
णीकुक्षौ प्रविष्टोगर्भरूपधृक् ॥ ननिष्कामसिकस्मात्त्वं किमेतांसूदयिष्यसि ॥ १९ ॥ गर्भउवाच ॥ राक्षसोहंपिशाचोहं

भलीभांति पढ़ा ॥ १५ ॥ व उस उदर में टिकाहुआ भी वह स्मृति, पुराण व मोक्षवाले शास्त्रों को दिन रात सम्पूर्णता से स्वाध्याय (पाठ) करताथा ॥ १६ ॥ और किसी प्रकारभी जन्म से उपजीहुई बुद्धिको नहीं चिन्तन करता था इसके अनन्तर पेटमें टिकाहुआ पुत्र ज्यों २ वृद्धिको प्राप्तहोता था त्योंही नित्यही विकलहोती हुई वह माता बड़ी व्यथा को प्राप्तहोतीथी तदनन्तर विस्मय से संयुत होतेहुये व्यासजी ने वचन को कहा ॥ १७ । १८ ॥ कि गर्भरूप के धारनेवाले तुम कौन मेरी स्त्रीकी कुक्षि (कोखि) में पैठेहो और तुम किसलिये नहीं निकलते हो क्या इसको मारडालोगे ॥ १९ ॥ गर्भ बोला कि मैं राक्षसहूं मैं पिशाचहूं मैं देवताहूं वैसे

ही मनुष्यहूं मैं हाथीहूं व मैं अश्वभी और मुरगा व छाग निश्चयकर हूं ॥ २० ॥ जिसलिये कि संख्या से चौरासीही लाख योनिहैं उन सबोंमें मैंने भ्रमण किया है
उसीकारण क्या कहूं कि मैं कौनहूं ॥ २१ ॥ जिस लिये कि इस भयङ्कर संसार में घूमताहुआ निर्वेदको प्राप्त मैं इस समय मनुष्य होकर पेटमें भली
भांति टिकाहूं उसी कारण इस मनुष्यलोक में मैं किसी प्रकार निष्क्रम न करूंगा याने न निकलूंगा किन्तु संसार से छूटा व सदैव योगाभ्यास में परायण होकर
यहां टिकाहुआ मैं॥ २२ । २३ ॥ मोक्षमार्गको प्राप्तहूंगा तदनन्तर निस्सन्देह मुक्तिको पाऊंगा व्यासजी बोले कि यदि तुम्हारा ऐसा मनोरथ है तो तुमको पाप न

॥ योनीनांचतुराशीतिर्लक्षाण्येवचसंख्यया ॥ भ्रान्तो देवोहंमानुषस्तथा ॥ गजोहंतुरगश्चापि कुक्कुटश्छागएवच ॥२०॥ सम्प्रतंमानुषोभूत्वा जठरंसमुपाश्रितः ॥ तत्कोहंप्रब्रवीमिकिम् ॥ २१ ॥ अत्रस्थोभवनिर्मुक्तो योगाभ्यासरतस्सदा ॥ निर्विण्णोभ्रममाणोत्र संसारेदारुणेततः ॥ २२ ॥ मानुष्येत्रकरिष्यामि निष्क्रमं नकथञ्चन ॥ २२ ॥ ततोमोक्षमसंशयम् ॥ २३ ॥ मोक्ष मार्गंप्रयास्यामि ततोमोक्षमसंशयम् ॥ व्यासउवाच ॥ भविष्यतिनतेपापं यद्येवंतेस्तिवाञ्छितम् ॥ २४ ॥ सुघोरान्नर कादस्मान्निष्क्रामस्वविगर्हितात् ॥ गर्भवासात्ततोयोगं समाश्रित्यशिवंव्रज ॥ २५ ॥ गर्भउवाच ॥ तावज्ज्ञानंचवैराग्यं पूर्वजातिस्मृतिस्तथा ॥ यावद्गर्भस्थितोजन्तुस्सर्वोपिद्विजसत्तम ॥ २६ ॥ यदागर्भाद्विनिष्क्रान्तःस्पृश्यतेविष्णुमाय या ॥ तदानाशंव्रजत्याशु सत्यमेतदसंशयम् ॥ २७ ॥ तस्मान्नाहंद्विजश्रेष्ठ निष्क्रमिष्येकथञ्चन ॥ गर्भादस्मात्प्रया स्यामि स्थानंमोक्षमसंशयम् ॥२८॥ व्यासउवाच ॥ नभविष्यतितेमाया वैष्णवीसाकथञ्चन ॥ तस्माद्दर्शयमेवक्त्रं स्व

होगा ॥ २४ ॥ और इस अतिनिन्दित व अत्यन्त विकराल गर्भवासरूपी नरक से निकलिये तदनन्तर योगके भलीभांति आश्रित होकर कल्याणको प्राप्तहोवो॥२५॥
गर्भ बोला कि हे द्विजोत्तम ! तबतक ज्ञान, वैराग्य तथा पहली जातिका स्मरण होताहै जबतक कि सब प्राणी भी गर्भमें स्थितरहता है ॥ २६ ॥ व जब गर्भसे नि-
कलाहुआ जन्तु विष्णु जीकी मायासे स्पर्श किया जाताहै तब शीघ्रही पूर्वोक्त सब नाश होजाताहै यह निस्सन्देह सत्यहै ॥ २७ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! मैं इस गर्भ
से किसी प्रकार न निकलूंगा किन्तु निस्सन्देह मोक्ष स्थानको प्राप्तहूंगा ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले कि वह वैष्णवी माया तुमको किसी प्रकार न होगी इसलिये मुझ

को अपना मुख दिखलाइये कि जिसकरके तुम्हारे मुखके दर्शन से पितृलोक की उऋणता भलीभांति होवै गर्भ बोला कि हे द्विज ! यदि तुम मुझे विष्णुजी को प्रतिभू (जामिन) दीजिये तो इससमय आपही मेरा जन्म होवै अन्यथा न होगा सूतजी बोले कि तदनन्तर द्वारकाको शीघ्रही जाकर दुःखित होतेहुये व्यास जीने ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ चक्रपाणि (विष्णु) जीसे विस्तारपूर्वक वृत्तान्तको कहा पश्चात् उन विष्णु समेत फिर घरकोआये ॥ ३२ ॥ व व्यास जीने उस गर्भके लिये जामिन देनेके निमित्त निरंजन विष्णु जीसे कहा विष्णु बोले कि हे गर्भ ! मैं जामिनहूं कि आज मेरी मायाका निर्गम (रुकावट) होगा ॥ ३३ ॥ मेरी वाक्य से निकल

कीयंयेनसम्भवेत् ॥ २९ ॥ आनृण्यंपितृलोकस्य तववक्त्रस्यदर्शनात् ॥ गर्भउवाच ॥ वासुदेवंप्रतिभुवं यदिमेत्वंप्रयच्छसि ॥ ३० ॥ इदानींतुस्वयंतन्मे जन्मस्यान्नान्यथाद्विज ॥ सूतउवाच ॥ ततोव्यासोद्रुतंगत्वा द्वारकांप्रतिदुःखितः ॥ ३१ ॥ कथयामासवृत्तान्तं विस्तराच्चक्रपाणिने ॥ तेनैवसहितःपश्चात्स्वगृहंपुनरागतः ॥ ३२ ॥ व्यासःप्रतिभुवंतस्मै दातुंविष्णुं निरञ्जनम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रतिभूरस्मिगर्भाद्यमायायाममनिर्गमम् ॥ ३३ ॥ मद्वाक्यान्निष्क्रमंकृत्वागच्छमोक्षमनुत्तमम् ॥ ततोद्रुतंविनिष्क्रान्तोविष्णुवाक्येनसद्विजाः ॥ ३४ ॥ द्वादशाब्दप्रमाणस्तुयौवनस्यसमीपगः ॥ ततःप्रणम्यदैत्यारिंव्यासंचजननींतथा ॥ ३५ ॥ प्रस्थितोवनवासाय तत्क्षणादेवसद्विजाः ॥ अथतंसमुनिःप्राह तिष्ठपुत्रात्ममन्दिरे ॥ ३६ ॥ संस्काराञ्जातकाद्यांश्च येनतेप्रकरोम्यहम् ॥ शुकउवाच ॥ संस्काराःशतशोजाता ममजन्मनिजन्मनि ॥ ३७ ॥ भवार्णवेपरिक्षिप्तो यैरहंबन्धनात्मकैः ॥ भगवानुवाच ॥ शुकवज्जल्पतेयस्मात्तवायंपुत्रकोमुने ॥ ३८ ॥ तस्माच्छुकोयंनाम्ना

कर तुम अतिउत्तम मोक्ष को जावो तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! बारहवर्षके प्रमाणवाले व यौवन के समीपमें प्राप्त वे शुकदेव जी विष्णुके वचनसे निकलतेभये तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो ! दैत्यारि (विष्णु) व व्यास तथा माताको प्रणामकर उसी क्षण वनवास के लिये चले इसके अनन्तर उन व्यासमुनि ने उन शुकदेव जीसे कहा कि हे पुत्र ! अपने घरमें टिको ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ कि जिससे मैं तुम्हारे जातकादिक संस्कारोंको करूं शुकदेव जी बोले कि मेरे जन्म २ में सैकड़ों संस्कार हुये हैं ॥ ३७ ॥ कि जिन बन्धनात्मक संस्कारों से मैं भवसागर में फेंका गयाहूं भगवान् बोले कि हे मुने ! जिसलिये कि तुम्हारा यह पुत्र सुवाके समान बोलता है ॥ ३८ ॥ इसलिये

योगविद्यामें चतुर यह शुक नामक होगा और मोह, मायासे रहित यह घरमें नहीं टिकैगा ॥ ३९ ॥ इसलिये यह जावै व तुम इससे उपजेहुये स्नेहको मतकरो मैं घरको जाऊंगा और तुम पुत्रके दर्शनही से पितरोंके ऋणसे छूटगयेहो यह मैंने सत्य कहा ऐसा कह इन्द्रियों के नायक (विष्णु) जी व्यास से पूंछकर शीघ्रही ॥ ४० । ४१ ॥ गरुड़पै चढ़कर द्वारकाको चलेगये तदनन्तर जब व्यास जीसे पूंछकर शीघ्रही विष्णुजी चलेगये तब व्यास जीने पुत्रसे कहा ॥ ४२ ॥ कि हे पुत्र ! पिताको छोड़कर जो योगको करताहै वह नरकको जाताहै इसलिये मतजावो ॥ ४३ ॥ शुकदेव जी बोले कि जैसे मैं पैदाहुआहूं वैसेही और जन्म में मुझसे तुम उत्पन्न हुयेहो हे मुनि-

तु योगविद्याविचक्षणः ॥ नचस्थास्यत्यसौगेहे मोहमायाविवर्जितः ॥ ३९ ॥ तस्माद्गच्छतुमास्नेहं त्वंकुरुष्वास्यसम्भवम् ॥ अहंगृहंप्रयास्यामि त्वंमुक्तःपैतृकादृणात् ॥ ४० ॥ दर्शनादेवपुत्रस्य सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशो व्यासमामन्त्र्यसत्वरम् ॥ ४१ ॥ विहगाधिपमारूढःप्रययौद्वारकाम्प्रति ॥ ततोगतेहृषीकेशे व्यासमामन्त्र्यसत्वरम् ॥ ४२ ॥ पितरन्तुपरित्यज्य योगंयस्तुसमाचरेत् ॥ सयातिनरकंतस्मान्मद्वाक्यात्पुत्रमाव्रज ॥ ४३ ॥ शुकउवाच ॥ यथात्वहंतथाजातो मयात्वंचान्यजन्मनि ॥ सञ्जातोसिमुनिश्रेष्ठ तथाहमपितेपिता ॥ ४४ ॥ तस्माद्वाक्यंत्वयाकार्य्यं यद्येषाधर्मसंस्थितिः॥नाहंनिषेधनीयस्तु व्रजमानस्तपोवनम् ॥ ४५ ॥ व्यासउवाच ॥ ब्राह्मणस्यगृहेजन्म पुण्यैःसम्प्राप्यसञ्चितैः ॥ संस्कारान्यत्रसम्प्राप्य वेदोक्तान्सविशिष्यते ॥ ४६ ॥ शुकउवाच ॥ संस्कारात्प्राप्यतेमुक्तिर्यदिकर्म्मशुभंविना ॥ पाखण्डिनोपियास्यन्ति तन्मुक्तिंब्रह्मचारिणः ॥ ४७ ॥ व्यासउवाच ॥ ब्रह्मचारीभवेत्पूर्वं गृहस्थश्च

श्रेष्ठ ! उसीप्रकार मैंभी तुम्हारा पिताहूं ॥ ४४ ॥ इसलिये यदि यह धर्मकी संस्थितिहै तो तुमको वचन करना चाहिये और तपोवन को जाताहुआ मैं मनाकरने के योग्य नहींहूं ॥ ४५ ॥ व्यास जी बोले कि इकट्ठा कियेहुये पुण्योंसे ब्राह्मणके घरमें जन्म होताहै और इस ब्राह्मणशरीर में वेदोक्त संस्कारों को भलीभांति पाकर वह विशेष याने श्रेष्ठ होताहै ॥ ४६ ॥ शुकदेव जी बोले कि यदि शुभकर्म के विना संस्कार से मोक्ष मिलताहै तो पाखंडी भी ब्रह्मचारी मुक्तिको जावैंगे ॥ ४७ ॥ व्यास

जी बोले कि पहले ब्रह्मचारी होवै तदनन्तर गृहस्थ उसके उपरान्त वानप्रस्थ व संन्यासी होवै तदनन्तर मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ४८ ॥ शुकदेव जी बोले कि यदि ब्रह्मचर्यसे मोक्ष होताहै तो वह नपुंसकोंको सदैव होवै है और गृहस्थाश्रम जो बनियाहैं वे सब संसार से छूटजाते हैं॥ ४९ ॥ अथवा वनमें अनुरागवाले जन्तुओंको मोक्ष होता है तो मृगोंका होवै अथवा यदि यतिधर्मवाले मनुष्यों का मोक्ष होवै है ॥ ५० ॥ तो सब निर्धनी पुरुषोंका पहले मोक्ष होवै व्यास जी बोले कि गृहस्थधर्ममें अनुरागी व उत्तम मार्ग में चलनेवाले पुरुषों को मनुजीने इस लोक व परलोक को भलीभांति कहाहै ॥ ५१ । ५२ ॥ शुकदेव जी बोले कि भाइयों के बन्धनसे बँधेहुये व

ततःपरम् ॥ वानप्रस्थोयतिश्चैव ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४८ ॥ शुकउवाच ॥ ब्रह्मचर्य्येणचेन्मोक्षस्तत्षण्ढानांसदाभवेत् ॥ गृहस्थाश्रमिणोवैश्यास्तैस्सर्वैर्मुच्यतेजगत् ॥ ४९ ॥ अथवावनरक्तानांतन्मृगाणांप्रजायते ॥ अथवायतिधर्माणां यदिमोक्षोभवेन्नृणाम् ॥ ५० ॥ दरिद्राणांचसर्वेषांतन्मुक्तिःप्रथमाभवेत् ॥ ५१ ॥ व्यासउवाच ॥ गृहस्थधर्म्मरक्तानां नृणांसन्मार्गगामिनाम् ॥ इहलोकःपरश्चैव मनुनासंप्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥ शुकउवाच ॥ गृहस्थोद्यमरक्तानां बद्धानांबन्धुबन्धनैः ॥ मोहरागसमावेशात्सन्मार्गगमनंकुतः ॥ ५३ ॥ व्यासउवाच ॥ कष्टंवनेनिवसतोत्रसदानरस्य नो केवलंनरतनुप्रभवेभवेच ॥ दैवंचपित्र्यमखिलंनविभातिकृत्यं तस्माद्गृहेनिवसतांसकलंविचिन्त्य ॥ ५४ ॥ शुकउवाच ॥ भावेनभावितमहातपसाम्मुनीनां तिष्ठन्तितावदखिलानितपःफलानि ॥ यत्तेनिकामशरणाःपुरुषानजातु पश्यन्तिसज्जनमुखानिसुखंतदेव ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ गृहेपरिग्रहःपुंसांगृहस्थाश्रमधर्मिणाम् ॥ इहलोकेपरेचैव सुखंय

गृहस्थीके उद्यम में अनुरागी पुरुषों को अज्ञान व स्नेह के समावेश याने भलीभांति पैठने से उत्तम मार्ग में गमन कहां से होताहै ॥५३॥ व्यासजी बोले कि मनुष्य शरीर की उत्पत्तिवाले इस संसारके बीच केवल वनमें कष्ट नहीं है किन्तु सम्पूर्ण देव व पितर कार्य्य नहीं शोभित होताहै इस लिये घरमें बसनेवाले जनोंकी सम्पूर्ण वस्तुको चिन्तनकर रहिये ॥ ५४ ॥ शुकदेव जी बोले कि भक्ति से भावना कीहुई बड़ी तपस्यावाले मुनियों के तबतक समस्त तपस्या के फल स्थित रहते हैं कि जब तक अकामशरणवाले वे पुरुष सज्जनोंके मुखोंको नहीं देखते हैं और वही सुखहै ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले कि गृहस्थाश्रम धर्मवाले पुरुषोंको घरमें परिग्रह (स्त्री

आदिका स्वीकार) इसलोक व परलोक में निश्चयकर अविनाशी सुखको देता है ॥ ५६ ॥ शुकदेव जी बोले कि दैवयोग से अग्नि सेभी ठंढक होतीहै व चन्द्रमा सेभी ताप होतीहै परन्तु इस मृत्युलोक में स्त्री आदिसे सौख्यकी उत्पत्ति न हुई है न होती है न होगी ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि बड़े पुण्योंके द्वारा क्लेशसे भूमिमें दुर्लभ मनुज शरीर मिलताहै यदि गृहस्थीके धर्मको जानताहो तो उस मनुष्य देहके मिलने पर क्या नहीं मिलाहै याने सबकुछ मिलगया ॥ ५८ ॥ शुकदेवजी बोले कि इस संसार में जन्मके समय यदि मनुष्य ज्ञानसंयुत होताहै तो अपनी अवस्था को देखकर वह ज्ञान नष्ट होजाताहै ॥ ५९ ॥ व्यासजी बोले कि इस संसार में भस्म व

च्छतिशाश्वतम् ॥ ५६ ॥ शुकउवाच ॥ शीतंहुताशादपिदैवयोगात्संजायतेचन्द्रमसोपितापम् ॥ परिग्रहात्सौख्यस मुद्भवोत्र भूतोद्भवाद्भाविनमर्त्यलोके ॥ ५७ ॥ व्यासउवाच ॥ सुपुण्यैर्लभ्यतेकृच्छ्रान्मानुष्यंभुविदुर्लभम् ॥ तस्मिंल्ल ब्धेनकिंलब्धं यदिस्याद्गृहधर्म्मवित् ॥ ५८ ॥ शुकउवाच ॥ यदिस्याज्ज्ञानसंयुक्तो जन्मकालेत्रमानवः ॥ निजाव स्थांसमालोक्य तज्ज्ञानंहिविलीयते ॥ ५९ ॥ व्यासउवाच ॥ मनुजस्यापिपुत्रस्य गर्दभस्यार्भकस्यच ॥ भस्मधूलिस्थलो केस्मिञ्छब्दोपिरटतोमुदे ॥ ६० ॥ शुकउवाच ॥ रसतासर्प्पताधूलौ लोकेतुशुचिवर्जिते ॥ मुनेत्राशिशुनालोकस्तु ष्टिंयातिसुबालिशः ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ पुन्नामास्तिमहारौद्रो नरकोयममन्दिरे ॥ पुत्रहीनोव्रजेत्तत्र तेनपुत्रःप्रश स्यते ॥ ६२ ॥ शुकउवाच ॥ यदिस्यात्पुत्रतःस्वर्गस्सर्वेषांस्यान्महामुने ॥ शूकराणांशुनांचैव शलभानांविशेषतः ॥ ६३ ॥ व्यासउवाच ॥ पितॄणामनृणोमर्त्यो जायतेपुत्रदर्शनात् ॥ पौत्रस्यापिचदेवानां प्रपौत्रस्यदिवाश्रयः ॥ ६४ ॥

धूरि में टिकते तथा शब्द करतेहुये पुत्रका शब्दभी मनुज व गर्दभ के अर्भकको भी आनन्द के लिये होताहै ॥ ६० ॥ शुकदेवजी बोले कि हे मुने ! पवित्रतारहित इस संसार में धूलि के बीच लोटते व शब्द करतेहुये बालक से अतिमूर्ख मनुष्य प्रसन्नताको प्राप्तहोता है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले कि यमराजके मन्दिर में बड़ाभयंकर पुन्नामक नरकहै पुत्रसे हीन पुरुष उसमें जावैहै उसीसे पुत्र प्रशंसित होताहै ॥ ६२ ॥ शुकदेवजी बोले कि हे महामुने ! यदि सबको पुत्रसे स्वर्ग होवैहै तो शूकरों कुत्तों व विशेषकर पांखियोंको स्वर्गहोगा ॥ ६३ ॥ व्यासजी बोले कि पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितरोंसे उऋण होताहै व पौत्र केभी देखने से देवताओं से उऋण

होताहै और प्रपौत्रके देखने से स्वर्ग में आश्रित होताहै ॥ ६४ ॥ शुकदेवजी बोले कि विराम (अन्तसमय) के प्रकटहोनेपर तृष्णावान् नर अपनी सन्तानको देखता है इस क्रमसे वंश होताहै तो वह किसकारण मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर व अनेक प्रकारसे विलाप करतीहुई व दुःखित माता व पिताको छोड़कर वे शुकदेवजी वनको चलेगये ॥ ६६ ॥ उनको देखकर दुःखित व पुत्रके दर्शनमें निराश व्यासजी स्त्री समेत पुत्र शोचसे अत्यन्तही तप्तहोगये ॥६७॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येव्यासशुकसंवादोनामत्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३ ॥

शुकउवाच ॥ विरामेजनितेगृध्नुः संततिंपश्यतेनिजाम् ॥ क्रमेणसन्ततिःकेन समोक्षंप्रतिपद्यते ॥ ६५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वापरित्यज्य पितरंसवनङ्गतः ॥ मातरंचसुदुःखार्तांप्रलपन्तीमनेकधा ॥ ६६ ॥ तंदृष्ट्वादुःखितोव्यासो निराशःपुत्रदर्शने ॥ पुत्रशोकाभिसंतप्तो भार्य्ययासहितोभवत् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येव्यासशुकसंवादोनाम त्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतंनिःस्पृहंज्ञात्वा गृहम्प्रतिनिजात्मजम् ॥ चेटिकादुःखसंयुक्ता व्यासमेतदुवाचह ॥ १ ॥ अहंतपश्चरिष्यामि पुत्रार्थंद्विजसत्तम ॥ अनुज्ञांदेहिमेयेन तोषयामिमहेश्वरम् ॥ २ ॥ पुत्रोयेनभवेन्मह्यं वंशवृद्धिकरःपरः ॥ एवंसानिश्चयंकृत्वा लब्ध्वानुज्ञांमुनेस्ततः ॥ ३ ॥ क्षेत्रमेतत्समासाद्य तपस्तेपेपतिव्रता ॥ संस्थाप्यशङ्करन्देवं तदग्रेनिर्म्मलोदकाम् ॥ ४ ॥ कृत्वावापींसुविस्तीर्णां स्नानात्पातकनाशिनीम् ॥ ततस्तस्यागतस्तुष्टिं समवस्त्रिपुरान्तकः ॥

दो० । चेटिकेश शिव को थप्यो यथा चेटिका नारि । इकसौ चौवालीसमहँ कहत सोइ परचारि ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उस अपने पुत्रको घरप्रति निर्लोभ जानकर दुःखसंयुत चेटिकाने यह वचन कहा ॥ १ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं पुत्रके लिये तपस्या करूंगी मुझको आज्ञादीजिये जिससे महादेव जीको प्रसन्नकरूं ॥ २ ॥ व जिससे वंशको वृद्धिकारक मेरे उत्तम पुत्रहोवै उस पतिव्रताने इसभांति निश्चयकरके तदनन्तर मुनिकी आज्ञापाकर इसक्षेत्रको प्राप्तहोकर शंकर देवजीको भली

भांति थापकर व उन शिवजीके आगे निर्मल जलवाली व स्नानसे पापोंको विनाशनेवाली बडी चौड़ी बावली को बनाकर तपस्या किया तदनन्तर त्रिपुर के नाशने वाले वे सदाशिव जी उसके ऊपर प्रसन्नहोगये व प्रसन्न अन्तःकरणसे उससे यह बोले कि मैं वरदायकहूं ॥ ३ । ४ । ५ ॥ महादेव जी बोले कि हे सुव्रते, भद्रे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं जो नित्यही हृदयमें स्थितहो उस वरदानको मांगियें मुझको कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ चेटिका बोली कि हे सुरश्रेष्ठ ! विनयसे संयुत व सुशील व नित्यही मित्रों को आनन्दकारक व वंशके बढ़ानेवाले पुत्रको मुझे दीजिये ॥ ७ ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि हे सुशोभने, महाभागे ! तुमने जैसे पुत्रकी

वरदोस्मीतिताम्प्राह प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५ ॥ देवउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेभद्रे वरंवरयसुव्रते ॥ यःस्थितोहृदये नित्यंनादेयंविद्यतेमम ॥ ६ ॥ चेटिकोवाच ॥ सुतन्देहिसुरश्रेष्ठ ममवंशविवर्द्धनम् ॥ मित्राह्लादकरन्नित्यं सुशीलंविनयान्वितम् ॥ ७ ॥ श्रीदेवउवाच ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तवपुत्रःसुशोभने ॥ यादृक्त्वयामहाभागे प्रार्थितस्तद्विशेषतः ॥ ८ ॥ अत्रापिमानुषीयात्रा वाप्यांस्नात्वासमाहिता ॥ ९ ॥ पञ्चम्यांवत्सरंयावच्छुक्लपक्षेह्युपस्थिते ॥ पूजयिष्यतिमल्लिङ्गं यच्चाद्यस्थापितंत्वया ॥ १० ॥ साथलप्स्यतिसत्पुत्रं यथाकुलमनुत्तमम् ॥ याचदौर्भाग्यसंयुक्ता तृतीयादिवसेत्रवै ॥ ११ ॥ स्नात्वात्रसलिलेपश्चान्मल्लिङ्गंपूजयिष्यति ॥ सासौभाग्यसमोपेता वर्षान्तेचभविष्यति ॥ १२ ॥ यःपुनःपुरुषश्चात्रस्नात्वामांपूजयिष्यति ॥ सकामोलप्स्यतेकामानकामोमोक्षमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्ततश्चाद

प्रार्थना कियाहै उससे विशेष निस्सन्देह तुम्हारे होगा ॥ ८ ॥ और यहांपर भी शुक्लपक्षको समीप प्राप्तहोनेपर पञ्चमीतिथिमें वर्षपर्य्यन्त सावधान होतीहुई जो मानुषी स्त्री इस बावली में नहाकर और तुमने आज जिस लिंगको थापाहै उस लिंगको पूजैगी ॥ ९ । १० ॥ वह इसके अनन्तर कुलके अनुकूल अतिउत्तम सत्पुत्रको पावैगी व दुर्भाग्यसे संयुत जो स्त्री तीजके दिन इस जल में नहाकर पश्चात् मेरेलिंगको पूजैगी वह वर्ष के अन्तमें सौभाग्यसे संयुत होवैगी ॥ ११ । १२ ॥ व फिर जो पुरुष इसमें नहाकर मुझको पूजैगा वह सकाम होवै तो कामनाओं को पावैगा और अकाम होवै तो मोक्षको पावैहै ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर महादेव जी अन्तर्द्धान होगये

और उस नेमी व्यासजीके सकाश से कपिंजल ऐसे सुनेहुये वैसे पुत्रको पाया ॥ १४ ॥ जैसा कि उन त्रिशूलधारी देवदेव शिवजीने पुरातनसमय कहाथा और जिसी कपिंजलने यहांपर पहले केलीश्वरी देवीको थापाहै ॥ १५ ॥ पुरातनसमय संसार में वहां आराधन कीहुई जो देवी समस्त सिद्धियोंकी दायिनी हुईहै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येचेटिकेश्वरमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४४॥

दो० । यथा अंधकासुर कियो योगिनीन सन युद्ध । इकसौ पैंतालीसमहँ कहत सोइ मतिशुद्ध ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जो केलीश्वरी देवी सुनीजाती

र्शनङ्गतः ॥ सापिलेभेसुतंव्यासात्कपिञ्जलमितिश्रुतम् ॥ १४ ॥ यादृक्तेनपुराप्रोक्तो देवदेवेनशूलिना ॥ येनैवस्था पिताचात्र देवीकेलीश्वरीपुरा ॥ १५ ॥ सर्वसिद्धिप्रदालोकेतत्रयाराधितापुरा ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चेटिकेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४४॥

ऋषयऊचुः ॥ केलीश्वरीचयादेवी श्रूयतेसूतनन्दन ॥ माहात्म्यंवदतस्यास्त्वमुत्पत्तिंचसुविस्तरात् ॥ १ ॥ कस्मिन्कालेसमुत्पन्ना किमर्थंचसुरेश्वरी ॥ किमस्याजायतेश्रेयःपूजयानमनेनच ॥ २ ॥ त्वयाकात्यायनीप्रोक्ता चामुण्डाच सुरेश्वरी ॥ श्रीमाताचतथातारा देवशत्रुविनाशिनी ॥ ३ ॥ केलीश्वरीनसंप्रोक्ता तस्मात्तांवदसाम्प्रतम् ॥ कौतुकंचसमुत्पन्नमत्रार्थेसूतनन्दन ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ अथैकादेवतालोके बहुरूपाव्यवस्थिता ॥ देवतानांहितार्थाय दैत्यपक्षक्षयायच ॥ ५ ॥ यदायदात्रदेवानां व्यसनंजायतेक्वचित् ॥ तदातदापराशक्तिर्यासाव्याप्यव्यवस्थिता ॥ ६ ॥ सर्वमेतज्ज

है उसकी उत्पत्ति व माहात्म्यको तुम विस्तार से कहो ॥ १ ॥ कि किससमय और किसलिये वह सुरेश्वरी उत्पन्न हुईहै व इसके पूजन व प्रणाम करनेसे क्या कल्याण होताहै ॥ २ ॥ तुमने कात्यायनी व सुरेश्वरी चामुण्डा, श्रीमाता व देवताओं के शत्रुओंको विनाशनेवाली ताराको कहाहै ॥ ३ ॥ व केलीश्वरी को नहीं कहा इस लिये इससमय उसको कहिये हे सूतपुत्र ! इस विषयमें आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर संसारमें देवताओं के हितके लिये व दैत्यों के पक्षके संहारके लिये बहुरूपवाला एक देवता विशेषतासे टिकाहै ॥ ५ ॥ जब जब यहां कहींपर देवताओंको विपत्ति होती है तब तब जो उत्तम शक्ति इससमस्त संसार

को व्यापकर स्थित है उस जगद्धात्री ने भूतलमें जन्म कियाहै और इस त्रिभुवन को दुःखित होनेपर महिषासुर के नाशने के लिये उस उत्तम कात्यायनी मूर्त्तिने अवतार लिया है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ व जब बलसे गर्वित शुंभ, निशुंभ दो दैत्य हुये हैं तब चामुण्डा रूपमें टिकतीहुई उसीने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ और जब समस्त देवों को भयदायक कालयवन उन्नतिको प्राप्तहुआ है तब वही श्रीमाता रूपवाली देवी उत्पन्नहुई है ॥ १० ॥ और जिससे यह संसार व्याप्तहै उस केलीश्वरी देवीको अन्धकासुरको मारने के लिये शंभुजीने दुःखित चित्तसे रचाहै ॥ ११ ॥ तदनन्तर उसी केलीश्वरी के प्रभावसे अनेकों दैत्यों को मारकर पश्चात् त्रिलोकको दुःखदा-

गद्धात्री जन्मचक्रेधरातले ॥ महिषासुरनाशाय साचकात्यायनीभुवि ॥ ७ ॥ अवतीर्णापरामूर्तिरेतस्मिन्भुवनत्र
ये ॥ ८ ॥ यदाशुम्भनिशुम्भौद्वौ दानवौबलदर्पितौ ॥ अवतीर्णातदासैव चामुण्डारूपमाश्रिता ॥ ९ ॥ प्रोद्धतेकालय
वने सर्वदेवभयावहे ॥ श्रीमातारूपिणीदेवी सैवजाताधरातले ॥ १० ॥ अन्धासुरवधार्थाय शम्भुनाक्रान्तचेतसा ॥ सृ
ष्टाकेलीश्वरीदेवी ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ ११ ॥ ततस्तस्याःप्रभावेण हत्वादैत्याननेकशः ॥ अन्धकोनिहतःपश्चा
त्रैलोक्यव्यसनप्रदः ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अन्धकःकस्यपुत्रोयं किंप्रभावःकथंहतः ॥ कस्माद्धतस्तुसंग्रामे सर्वविस्त
रतोवद ॥ सूतउवाच ॥ दक्षस्यदुहितानाम दितिःसर्वगुणास्पदा ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम तस्याःपुत्रोबभूवह ॥ ये
नशक्रादयोदेवा जितास्सर्वेरणाजिरे ॥ १४ ॥ स्वर्गराज्यंहृतंभूरि स्वयमेवमहात्मना ॥ यद्भयात्सकलैर्देवैर्नानाशस्त्रा
ण्यनेकशः ॥ १५ ॥ निर्मित्यपविमुख्यानि धनुर्वर्मशतानिच ॥ स्वयंविदारितोयश्च विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १६ ॥

यक अन्धकासुर को मारा है ॥ १२ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह किस प्रभाववाला अन्धकासुर किसका पुत्रथा व कैसे मारागया है व संग्राम में किस पुरुषसे मारागया है इससमस्त चरितको विस्तारसे कहिये सूतजी बोले कि समस्त गुणोंकी स्थानभूत दिति नामक दक्षकी कन्याहुई है ॥ १३ ॥ उसके हिरण्यकशिपु नामक पुत्रहुआ जिसने रणरूपी आंगन में इन्द्रादिक समस्त देवताओं को जीतलिया है ॥ १४ ॥ व बड़ीभारी स्वर्गकी राज्यको आपही महात्माने हरलिया है जिसकी भयसे समस्त देवता वज्रहै मुख्य जिनमें ऐसे सैकड़ों धनुष व बख्तरोंको निर्माणकर स्वस्थहुयेहैं और सामर्थ्यवान् विष्णु जीने आपही क्रोधसे जिसको भूपृष्ठमें धरकर नखोंसे विदारण

कियाहै उसके पराक्रम व उदारतादि गुणोंसे संयुत दो पुत्र पैदाहुये हैं ॥ १५। १६। १७ ॥ जिन में बड़ा प्रह्लाद ऐसा कहागया है और दूसरा अन्धक हुआ है जब हि-
रण्यकशिपु मृत्युके लोकको प्राप्तहुआ उसके उपरान्त विनयसंयुत मित्रगणों व मंत्रियों ने प्रह्लादसे कहा कि इस समय पिता, पितामहवाले इस राज्यको करिये ॥
१८। १९ ॥ व राज्यसे उठेहुये भारको धरिये और राज्यसे देवताओं को गिराइये प्रह्लाद बोले कि जिसलिये मैं किसी प्रकार भूतलमें राज्य न करूंगा उसीकारण
इससमय मेरे वचनको सुनिये कि इन्द्र अग्रगामीवाले देवता दैत्योंकी राज्य को नहीं चाहते हैं ॥ २०। २१ ॥ उन देवताओंकी नित्यही रक्षाकरनेवाले आपही

करजैर्हिधरापृष्ठे विनिधायप्रकोपतः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञे वीर्य्यौदार्य्यगुणान्वितम् ॥ १७ ॥ ज्येष्ठःप्रह्लादइत्युक्तो द्विती
यश्चान्धकस्तथा ॥ हिरण्यकशिपौप्राप्ते मृत्युलोकंसुहृद्गणैः ॥ १८ ॥ अमात्यैश्चततःप्रोक्तः प्रह्लादोविनयान्वितैः ॥
पितृपैतामहंराज्यमेतदाचरसाम्प्रतम् ॥ १९ ॥ धुरन्धरस्वराज्योत्थान्देवान्राज्यान्निपातय ॥ प्रह्लादउवाच ॥ नाहंरा
ज्यंकरिष्यामि कथंचिदपिभूतले ॥ २० ॥ यतस्ततोनिबोधध्वं वचनंममसाम्प्रतम् ॥ दैत्यराज्यंनवाञ्छन्ति देवाःश
क्रपुरोगमाः ॥ २१ ॥ तेषांरक्षाकरोनित्यं विष्णुस्सभगवान्स्वयम् ॥ अथाहंसन्त्यजेप्राणान्सर्वस्वंवानसंशयः ॥ २२ ॥
हरिणासहसंग्रामं नैवकर्तुमहंक्षमः ॥ योमयाभ्यर्चितोनित्यं प्रणतश्चसुरेश्वरः ॥ २३ ॥ नतेनसहसंग्रामं कर्तुमिच्छेकथ
ञ्चन ॥ सूतउवाच ॥ प्रह्लादेनचसंत्यक्ते राज्येपितृसमुद्भवे ॥ २४ ॥ अन्धकःस्थापितस्तत्र संमन्त्र्यसचिवैर्मिथः ॥ सोपि
राज्यंसमालेभे निधायतदनन्तरम् ॥ २५ ॥ तपश्चक्रेचिरंकालं ध्यायमानःपितामहम् ॥ त्यक्त्वाकामंतथाक्रोधं

भगवान् विष्णु जीहैं इसके अनन्तर मैं प्राणों व सर्वस्व को निस्सन्देह भलीभांति त्याग करूंगा ॥ २२ ॥ परन्तु मैं विष्णु जीके साथ युद्धकरने के लिये समर्थ नहींहूं
जो सुरनायक विष्णु जी मुझसे नित्यही पूजित व प्रणाम कियेजाते हैं ॥ २३ ॥ उनके साथ युद्ध करनेके लिये मैं किसी प्रकार नहीं चाहताहूं सूतजी बोले कि
पितासे उपजेहुये राज्यको प्रह्लादके त्याग करनेपर ॥ २४ ॥ मंत्रियों ने आपस में सलाहकर उस राज्यपै अन्धकको थापित किया उस अन्धकने भी राज्यको भली
भांति पाया तदनन्तर मंत्रियों के ऊपर राज्यके भारको धरकर ॥ २५ ॥ व काम क्रोध पाखण्ड व ईर्षाको निश्चय कर छोड़कर पितामह को ध्यानकरतेहुये उसने बहुत

वृ
दम्भंमत्सरएवच ॥ २६॥ जितेन्द्रियःप्रशान्तात्मा समःसर्वेषुजन्तुषु ॥ यावद्वर्षसहस्रान्ते चतुर्थेसमुपस्थिते ॥ २७ ॥ वृ
क्षमूलाश्रयःशान्तःसन्तुष्टेनान्तरात्मना॥यावद्वर्षसहस्रन्तु फलाहारोबभूवह॥२८॥शीर्णपर्णाशनोनित्यं यावद्वर्षसहस्र
कम् ॥ ध्यायमानोदिवानक्तं देवदेवंपितामहम् ॥ २९ ॥ वायुभक्ष्यस्ततोजज्ञे तावत्कालंद्विजोत्तमाः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते
चतुर्थेसमुपस्थिते ॥ ३० ॥ तमुवाचस्वयंब्रह्मा स्वयमभ्येत्यहर्षितः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥
३१ ॥ तुष्टोहंतेप्रवक्ष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ यदिच्छसिमेब्रह्मन्वरंमनसिवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥
जरामरणनाशाय दीयतांसुरसत्तम ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नकश्चिचजराहीनो विद्यतेत्रधरातले ॥ ३३ ॥ मरणेनविनानैवं य
स्यजन्मभवेत्त्विती ॥ तथापितवदास्यामि वधधर्म्मरतस्यच ॥ ३४ ॥ तस्मात्कुरुमहाभाग राज्यंगत्वानिजंगृहम् ॥
भवेद्बहुफलंराज्यं श्मशानभवनंयथा ॥ ३५ ॥ बहुकण्टकसंकीर्णं क्रूरकर्मभिरावृतम् ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाचतु

दम्भ व मत्सर से रहित व जितेन्द्रिय व अतिशान्तचित्त या मनवाला व समस्त प्राणियों में सम हुआहै ॥२७॥ समयतक तपस्या किया ॥ २६ ॥ व चारहज़ारवर्षके अन्तको उपस्थित होनेपर वह जितेन्द्रिय व अतिशान्तचित्त या मनवाला व समस्त प्राणियों में सम हुआहै ॥२७॥ व दिनरात ब्रह्माजीका ध्यान करताहुआ वह हज़ारवर्ष तक वृक्ष मूलके आश्रित व शान्तमनवाला अन्धक प्रसन्न अन्तःकरण से हज़ारवर्ष तक फलाहारी हुआ ॥ २८ ॥ व दिनरात ब्रह्माजीका ध्यान करताहुआ वह हज़ारवर्ष तक नित्य गिरेहुये पत्तोंका आहारी हुआ ॥२९॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उतनाही समय याने हज़ारवर्ष पवन भोजन करनेवाला हुआ तदनन्तर चौथे हज़ारवर्ष के अन्तको उपस्थित होनेपर ॥ ३० ॥ प्रसन्न ब्रह्माजीने आपही आकर उस अन्धक से स्वयं कहा ब्रह्मा बोले कि हे उत्तम व्रतवाले, वत्स ! तुम्हारे ऊपर मैं अतिप्रसन्न हूं वरदानको मांगो ॥ ३१ ॥ यद्यपि दुर्लभ होगा तथापि प्रसन्न होताहुआ मैं उसको तुमसे कहूंगा अन्धक बोला कि हे ब्रह्मन् ! मनमें इच्छा कियेहुये वरदानको यदि मुझे देतेहो ॥ ३२ ॥ तो हे सुरश्रेष्ठ ! वृद्धता व मृत्युके नाशके लिये दीजिये ब्रह्मा बोले कि इस धरातलमें कोई भी वृद्धताहीन नहीं विद्यमान है ॥ ३३ ॥ कि जिसका जन्म पृथ्वी में मृत्युके विना होवै ऐसा नर नहीं है तिस पर भी मारने के धर्म में लगे हुये तुमको दूंगा ॥ ३४ ॥ इसलिये हे महाभाग ! अपने घरको जाकर राज्य करो और बहुतेरे कण्टकों से व्याप्त व क्रूर कर्म करनेवाले जनों से घिरीहुई व श्मशान भवनके समान राज्य बहुत फलोंवाली होवै सूतजी बोले कि चतुरानन जी

ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्धान होगये ॥३५।३६॥ इसके अनन्तर किसी समय मृत्युके धर्मसे प्रेरित व पिताके वैरको स्मरण करताहुआ वह समस्त मंत्रियोंसे बोला ॥ ३७ ॥ अन्धक बोला कि हमारे पिता व चचाको कपटके द्वारा न कि शूरता से देवों ने माराहै इसलिये मैं उनको मारूंगा ॥ ३८ ॥ उस पुत्रके पैदा होनेसे क्या अर्थहै जोकि प्रशंसित होताहुआ सबकहीं वैसेही प्रकटताकोनप्राप्तहोवै जैसे कि बांसके अग्रभाग में ध्वजा प्रकट होतीहै ॥ ३९ ॥ मंत्री बोले कि हे महाभाग! जो वचन तुमने कहाहै यह योग्यहै कि जो देवता हमारे शत्रुहैं वे सब मारने योग्यहैं ॥ ४० ॥ और ये लोक हमलोगोंके हैं देवता कौनहैं व ब्राह्मण कौनहैं हमलोग इन्द्र आदिक

र्वक्स्ततश्चादर्शनंगतः ॥ ३६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य प्रेरितःकालधर्मतः ॥ प्रोवाचसचिवान्सर्वान् पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ ३७ ॥ अन्धकउवाच ॥ पितास्माकंहतोदेवैः पितृव्यश्चमहाबलः॥ कपटेननशौर्य्येण तस्मात्तान्सूदयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ कोर्थःपुत्रेणजातेन योनकृत्येषुशंसितः ॥ प्राकट्यंयातिसर्वत्र वंशस्याग्रेध्वजोयथा ॥ ३९ ॥ मन्त्रिणऊचुः ॥ युक्तमेतन्महाभाग यत्त्वयोदाहृतंवचः ॥ वध्याःस्युर्विबुधास्सर्वेयेस्माकंपरिपन्थिनः ॥४०॥ अस्माकंचइमेलोकाः केदेवाःके द्विजातयः ॥ यज्ञभागान्हरिष्यामो हत्वाशक्रमुखान्सुरान् ॥ ४१ ॥ एवंतेसमयंकृत्वा सैन्येनमहतान्विताः ॥ प्रजग्मुस्त्वरितास्तत्र यत्रशक्रोव्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ शक्रोपिदानवानीकं दृष्ट्वातान्सहसागतान् ॥ आरुह्यैरावतंनागं युद्धार्थं निर्ययौतदा ॥ ४३ ॥ सहदेवगणैस्सर्वैर्वसुरुद्रार्कसंयुतैः ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रो वज्रंरौद्रतमंचयत् ॥ ४४ ॥ समुद्दिश्यान्धकंतस्मै मुमोचपरवीरहा ॥ सहतस्तेनवज्रेण विहस्यदनुजोत्तमः ॥ ४५ ॥ शक्रंप्रोवाचसंहृष्टस्तारनादेनसंयुगे ॥

देवताओं को मारकर यज्ञभागों को हरलेवैंगे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार प्रतिज्ञाकर बड़ी सेनासे संयुत व शीघ्रतामें प्राप्त वे दैत्य वहांगये जहां कि इन्द्रजी विशेषता से टिके थे ॥ ४२ ॥ उस समय दैत्योंकी सेना व अचानक आयेहुये उन दैत्यों को देखकर इन्द्रभी ऐरावत हाथीपै चढ़कर वसु, रुद्र व सूर्य्य संयुत समस्त सुरसमूहों समेत युद्ध करनेके लिये निकले इसी अवसरमें शत्रुशूरमाको मारनेवाले इन्द्रजीने अन्धकको भलीभांति उद्देशकर जो अत्यन्त भयंकर वज्र था उसको उस अन्धकके लिये छोड़ा उस वज्रसे माराहुआ वह दैत्यसत्तम बिहँसकर ॥ ४३ । ४४ । ४५ ॥ अतिप्रसन्न होताहुआ युद्धमें ॐकार शब्दसे इन्द्र प्रति बोला कि हे इन्द्र ! आज मैने

बहुत दिनसे तुम्हारे भुजबलको देखाहै ॥४६॥ व हे बलसूदन ! इससमय हमारे बलको तुम्हीं देखो सूतजी बोले कि ऐसा कहकर इसके अनन्तर गदाको घुमाकर प-
राक्रम से छोड़दिया ॥ ४७ ॥ जो गदा कि सौ घण्टाओंवाली व बड़े शब्दवाली व विश्वकर्मा से बनाईहुई व सब लोहमयी और गरुई व दूसरी यमराजकी जिह्वाके
समान ॥ ४८ ॥ व प्रमाणसे सौ हाथवाली तथा प्राणियों को डर बढ़ानेहारीथी उस से मारेहुये इन्द्रजी मूर्च्छासे विकल इन्द्रियोंवाले होगये ॥ ४९ ॥ व ध्वजाके दण्ड
का सहाराभरकर गजके मस्तकपै बैठगये इसके अनन्तर स्वामिकार्त्तिकेय जीने मूर्च्छितहुये इन्द्रको देखकर बड़े क्रोध से वज्रके समान व सफला अपनी सांगिको

दृष्टंबाहुबलंशक्र मयाद्यसुचिरात्तव ॥ ४६ ॥ अधुनापश्यचास्माकं त्वमेवबलसूदन ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथचा
विध्यगदांवर्य्यान्मुमोचह ॥ ४७ ॥ शतघण्टांमहारावांनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ सर्वायसमयींगुर्वीं यमजिह्वामिवा
पराम् ॥ ४८ ॥ शतहस्तांप्रमाणेन प्राणिनांभयवर्द्धिनीम् ॥ तयाविनिहतःशक्रो मूर्च्छयाव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥
ध्वजयष्टिंसमाश्रित्य निविष्टोगजमूर्द्धनि ॥ अथसंमूर्च्छितंदृष्ट्वा शक्रंस्कन्दःप्रकोपतः ॥ ५० ॥ मुमोचाथनि
जांशक्तिममोघांवज्रसन्निभाम् ॥ तामायान्तींसमालोक्यदानवोनिशितैःशरैः ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमांततश्चक्रे लीलयैव
महाबलः ॥ ततःस्कन्दोपिसंगृह्य चापात्तंप्रतिसायकान् ॥ ५२ ॥ मुमोचाशीविषाकाराँल्लघ्वस्त्रंतस्यदर्शयन् ॥ एतस्मि
न्नन्तरेदेवास्सर्वेशस्त्रप्रवृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ समन्ताच्छादयामासुर्दानवानामनीकिनीम् ॥ ततस्तुदानवाःसर्वे देवताना
मनीकिनीम् ॥ ५४ ॥ प्रहारैःपीडयामासुर्दुद्रुवुस्तेदिवौकसः ॥ ततोभग्नान्सुरान्दृष्ट्वा सगणोवृषवाहनः ॥ ५५ ॥ दर्श

छोड़ा तदनन्तर दैत्यने आतीहुई उस शक्तिको देखकर पैने बाणोंसे विलोम किया याने लौटार दिया तदनन्तर बड़ेबली स्वामिकार्त्तिकेय जीने भी लीलाहीसे उस
को पकड़कर व उस दैत्यको अस्त्र चलानेकी शीघ्रता को दिखलातेहुये उसके ऊपर सर्पके समान आकारवाले बाणोंको धनुषसे छोड़ा इसी अवसरमें समस्त देवताओं
ने शस्त्रोंकी वृष्टियों से ॥ ५० । ५१ । ५२ । ५३ ॥ दैत्योंकी सेनाको सबओर से आच्छादन किया तदनन्तर समस्त दानवोंने देवताओंकी सेनाको प्रहारों से पीडित

किया और वे देवता भगे उसके उपरान्त देवताओंको दुःखित देखकर गणों समेत बैल वाहनवाले शिवजी ने देवताओं को समझातेहुये से अपने को दिखलाया कि हे समस्त देवताओ ! मतडरो हमारे कर्मको देखिये ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ उस समय ऐसा कहकर शंभु भगवान् ने अति उत्तम विश्वेश्वरी नामक परमशक्तिको अथर्वण वेदवाले मंत्रोंसे आह्वान किया ॥ ५७ ॥ व बुलाईहुई उत्तम शक्ति महादेव जीके समीप प्राप्तहुई व प्राप्तहुई उस विश्वेश्वरीको देखकर समस्त सुरों से संयुत शिवजीने प्रणाम किया ॥५८॥ व अत्यन्तही नम्रहोकर भक्तिसे इस स्तोत्रके द्वारा स्तुति किया शिवभगवान् बोले कि हे देवदेवेश्वरि ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै हे भक्तवत्सले ! तुम्हारे

यामासचात्मानं देवानाश्वासयन्निव ॥ माभैष्टदेवताःसर्वाःपश्यध्वंमद्विचेष्टितम् ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छम्भुर्मन्त्रै राथर्वणैस्तदा ॥ आह्वयामासविश्वेशीं परांशक्तिमनुत्तमाम् ॥ ५७ ॥ आहूतापरमाशक्तिर्जगामहरसन्निधिम् ॥ दृष्ट्वा ननामतांप्राप्तां सर्वैर्देवैस्समन्वितः ॥ ५८ ॥ अस्तुवत्प्रणतोभूत्वा स्तोत्रेणानेनभक्तितः ॥ भगवानुवाच ॥ नमस्तेदेव देवेशि नमस्तेभक्तवत्सले ॥ ५९ ॥ सर्वगेसर्वदेदेवि नमस्तेविश्वधारिणि ॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधादेवि त्वंसृष्टिस्त्वंशुचिर्धृ तिः ॥ ६० ॥ अरुन्धतीतथेन्द्राणी त्वंलक्ष्मीस्त्वंचपार्वती ॥ यत्किञ्चित्स्त्रीस्वरूपंच समस्तंभुवनत्रये ॥ ६१ ॥ तत्सर्वंत्व त्स्वरूपंस्यादितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थंचसमाहूता त्वयाहंवृषवाहन ॥ ६२ ॥ मन्त्रैराथर्वणैरौद्रैस्तत्स र्वंमेप्रकीर्तय ॥ येनतत्कृत्स्नशःकृत्यं प्रकरोमियथोदितम् ॥ ६३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतेशक्रादयोदेवाःसर्वेस्वर्गाद्दिवा

लिये नमस्कारहै ॥५९॥ व हे सर्वगामिनि, सर्वदायिनि, विश्वधारिणि, देवि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवि ! तुम्हीं स्वाहाहो तुम्हीं स्वधाहो व तुम्हीं सृष्टि,शुचि और धैर्यहो ॥६०॥ व अरुन्धती, इन्द्राणी और लक्ष्मी तुम्हीं हो व पार्वती तुम्हीं हो और त्रिभुवनमें जो कुछ सब स्त्रीस्वरूप है ॥ ६१ ॥ वह सब तुम्हारा स्वरूप होवै है यह शास्त्रोंमें निश्चयहै देवी बोलीं कि हे वृषभवाहन ! तुमने विकराल अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से मुझको किसलिये भली भांति बुलाया है वह सब मुझ से कहिये कि जिस से मैं यथोदित कार्य को सम्पूर्णता से करूं ॥ ६२ । ६३ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे महाभागे ! दैत्यों के अधिपति अन्धक ने इन समस्त इन्द्रादिक देव-

ताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है ॥ ६४ ॥ इसलिये उसके मारने के लिये जातेहुये मेरे वचनको सुनो व शीघ्रही मेरी सहायता करो मैं रणरूपी आंगनमें मारूं ॥ ६५ ॥ ये क्षुधा से दुबले समस्त मातृगण अगाड़ी खड़े हैं इन को इस समयमैंने तुमको दिया कि जो दैत्यों को मारैंगे ॥ ६६ ॥ जिससे केलिमयी रूप को कर के युद्धके बीच में हजारों भांति से अनेकों विकारवाले रूपों के द्वारा भलीभांति बुलाई गई हो ॥ ६७ ॥ इसलिये त्रिलोक में तुम केलीश्वरी नामक होगी व इसी रूप से तुमको जो पुरुष अष्टमी व चौदसिमें भक्तिसे पूजैगा उसका मनोरथ होवैगा इसके अनन्तर युद्धसमयको प्राप्त होनेपर जो भूपति इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुतिकरैगा

सिताः ॥ अन्धकेनमहाभागे दैत्यानामधिपेनच ॥ ६४ ॥ तस्मात्तस्यवधायाथ गच्छमानस्यमेशृणु ॥ साहाय्यंकुरुमे चाशु सूदयामिरणाजिरे ॥ ६५ ॥ एतेमातृगणास्सर्वेमयादत्तास्तवाधुना ॥ क्षुत्क्षामास्सूदयिष्यन्ति दानवान्येपुरः स्थिताः ॥ ६६ ॥ यस्मात्केलिमयंरूपं विधायत्वंसहस्रधा ॥ अनेकैर्विकृतैःरूपैस्समाहूताजिमध्यतः ॥ ६७ ॥ तस्मात्केलीश्वरीनाम त्रैलोक्येत्वंभविष्यसि ॥ अनेनैवतुरूपेणयस्त्वांभक्त्यार्चयिष्यति ॥ ६८ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां तस्याभीष्टंभविष्यति॥युद्धकालेथसम्प्राप्तेस्तोत्रेणानेनतेस्तुतिः॥६९॥ यःकरिष्यतिभूपालो जयस्तस्यभविष्यति ॥ अपि स्वल्पस्यसैन्यस्य स्वल्पाश्वस्यचसङ्गरे ॥ ७० ॥ भविष्यतिजयोनूनं त्वत्प्रसादान्नसंशयः॥ एवंसादेवदेवेन प्राप्ताकेलीश्वरीतदा ॥ ७१ ॥ प्रस्थिताचपुरस्तस्य भवसैन्यस्यहर्षिता ॥ सर्वैर्मातृगणैस्सार्द्धं रौद्रारावैस्सुभीषणैः ॥ ७२ ॥ युद्धोत्साहपरैरौद्रैर्नानाशस्त्रप्रहारिभिः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वाश्शीसैन्यंतत्समागतम् ॥ ७३ ॥ विकृतंविकृताकारं विकृता

उसकी जीतहोगी व थोड़ी सेनावाले और थोड़े घोड़ेवालेभी भूपतिके युद्धमें तुम्हारी प्रसन्नतासे निरसन्देह निश्चयकर जय होगी उससमय देवदेव (शिव) जीसे इस भांति वह केलीश्वरी प्राप्तहुई है ॥ ६८।६९।७०।७१ ॥ और उन महादेवजीकी सेनाके अगाड़ी नानाप्रकार के शस्त्रों से प्रहार करनेवाले व विकराल तथा युद्धके बीच उत्साहमें परायण व अतिभयंकर और विकराल शब्दोंवाले समस्त मातृगणों समेत प्रसन्न होतीहुई विकराल केलीश्वरीने प्रस्थान किया इसके अनन्तर वे समस्त दैत्य

आईहुई उस विकृत सेनाको जोकि बिगड़ेहुये आकारवाली व बिगड़े आकारके शब्दोंवाली व शस्त्रोंसे उवाये हाथोंवाली तथा युद्धकी इच्छामें तत्पर थी उसको देखकर ॥
७२।७३।७४॥ कोई उत्तम शब्दसे हँसतेभये व कोई घुड़क रहेथे और अन्य दैत्य स्त्रीहै यह जानकर प्रहार नहीं करतेथे ॥७५॥ व अपने पराक्रममें विशेषतासे टिकेहुये दैत्य
मारे जातेथे व लज्जाको प्राप्तहोतेथे इसी अवसरमें मुनिनायकनारदजी प्राप्तहुये॥७६॥व अन्धकसे समस्त वृत्तान्तको कहा कि हे असुरोत्तम ! युद्धके लिये समीप प्राप्तहुई
ये स्त्रियां नहींहै ॥ ७७ ॥ किन्तु चक्रसे चिह्नित हाथवाली जो यह सिंहपै चढ़ीहुई स्थितहै इसको तुम्हारे मारने के लिये शिवजीने निर्माण कियाहै ॥ ७८ ॥ व मंत्रके

कारराविणम् ॥ शस्त्रोद्यतकरंसर्वं युद्धवाञ्छापरायणम् ॥ ७४ ॥ जहसुस्सुस्वनंकेचित्केचिन्निर्भर्त्सयन्तिवा ॥ अन्ये
स्त्रीतिपरिज्ञाय प्रहरन्तिनदानवाः ॥७५॥ वध्यमानाविलज्जन्तः पौरुषेस्वेऽव्यवस्थिताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते नारदोमु
निसत्तमः ॥ ७६ ॥ अन्धकायसुवृत्तान्तं कथयामासकृत्स्नशः ॥ नैताःस्त्रियोदनुश्रेष्ठ युद्धार्थंसमुपस्थिताः ॥ ७७ ॥ ए
षाकृतावधार्थाय तवरुद्रेणनिर्मिता ॥ यैषासिंहसमारूढाचक्राङ्कितकरास्थिता ॥ ७८ ॥ एषाकेलीश्वरीनाम वह्निकु
ण्डाद्विनिर्गता ॥ एताभिस्सहरौद्राभिस्स्त्रीभिर्मन्त्रबलाश्रयात् ॥ ७९ ॥ स्वरक्तेनकृतंहोमं देवदेवेनशम्भुना ॥ सएषभ
गवान्क्रुद्धःस्वयमभ्येतितेन्तिकम् ॥ ८० ॥ युद्धायनिजहर्म्येतान्स्थापयित्वासुरोत्तमान् ॥ प्रतिज्ञायवधंतुभ्यं पुरतः
परमेष्ठिनः ॥ ८१ ॥ एतज्ज्ञात्वामहाभाग यदुक्तंतत्समाचर ॥ अन्धकउवाच ॥ नाहंबिभेमिरुद्रस्य तथान्यस्यापिकस्य
चित् ॥ ८२ ॥ नस्त्रीणांप्रहरिष्यामि पालयन्पुरुषव्रतम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रवदतस्तस्य दानवस्यमहात्मनः ॥ ८३ ॥

पराक्रमके आश्रयसे इन भयंकर स्त्रियों समेत यह केलीश्वरी नामक अग्नि कुण्डसे निकली है ॥ ७९ ॥ व हे देवदेव शंभुजीने अपने रक्तसे होम किया है क्रोधित
हुये वे ये शिवभगवान् अपने मन्दिरमें उन सुरोत्तमों को थापकर व ब्रह्माके अगाड़ी तुम्हारे वधकी प्रतिज्ञाकर युद्धके लिये तुम्हारे समीप आपही आते हैं ॥ ८०।८१ ॥
हे महाभाग ! इसको जानकर जो योग्यहो उसको करिये अन्धक बोला कि मैं महादेव व अन्य किसीको नहीं डरताहूं ॥ ८२ ॥ व पुरुषके नियम को पालनकरता

हुआ मैं स्त्रियोंके ऊपर प्रहार न करूंगा सूतजी बोले कि उस महात्मा दैत्य को इसप्रकार कहतेहुये ॥ ८३ ॥ उस स्थानपै सबओर से बड़ाभारी शब्दहुआ कोई दैत्य खाये जातेथे व अपर दैत्य बांधेजातेथे ॥ ८४ ॥ व अन्य वे भी दानव वैसेही शक्तिसे युद्ध करतेथे जोकि वहांपर मातृगणों से अस्त्रों समेत व सवारियों सहित खायेजाते थे ॥ ८५ ॥ उस बडेभारी शब्दको सुनकर यह क्या है यह क्याहै ऐसा कहताहुआ व क्रोधसे मूर्च्छित अन्धकासुर तलवारको लेकर उठा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर बल से गर्वित दैत्योंको विध्वंसित व वैसेही खायेजाते हुये अन्य दानवोंको भागने में तत्पर देखताथा ॥ ८७ ॥ और वैसेही वह अन्धकासुर मरेहुये अन्य दैत्योंकी सैकड़ों

आक्रन्दःसुमहाञ्जज्ञे तस्मिन्देशेसमन्ततः ॥ भक्ष्यन्तेदानवाःकेचिद्बध्यन्तेत्वथवापरे ॥ ८४ ॥ युध्यमानास्तथैवा न्ये शक्त्यावैतेपिदानवाः ॥ भक्ष्यन्तेमातृभिस्तत्र सायुधाश्चसवाहनाः ॥ ८५ ॥ तच्छ्रुत्वासुमहाक्रन्दमन्धकःक्रोधमू र्च्छितः ॥ आदायखड्गमुत्तस्थौ किमिदंकिमिदंब्रुवन् ॥८६॥ अथपश्यतिविध्वस्तान्दानवान्बलदर्पितान् ॥ भक्ष्यमाणां स्तथैवान्यान्पलायनपरायणान् ॥ ८७ ॥ अन्येषांनिहतानांच रुदन्त्यःकोटयस्तथा ॥ सपश्यतिप्रियाभार्य्याः प्रल पन्त्योतिदुःखिताः ॥ ८८ ॥ अथतत्कदनंदृष्ट्वा अन्धकःक्रोधमूर्च्छितः ॥ भर्त्सयामासताःसर्वा योगिन्यस्समरोद्य ताः ॥ ८९ ॥ नचतास्तस्यदैत्यस्य भयंचक्रुःकथञ्चन ॥ केवलंसूदयन्तिस्म भक्षयन्तिचदानवान् ॥ ९० ॥ ततस्सदान वस्तासां दृष्ट्वातच्चेष्टितंरुषा॥ स्वस्यगात्रस्यरक्षांस चकारभयसंकुलः॥९१॥तमोस्त्रंमुमुचेरौद्रं कृत्वाएवंसतत्क्षणात्॥ एत स्मिन्नन्तरेकृत्स्नं त्रैलोक्यंतमसावृतम् ॥ ९२ ॥ नकिञ्चिज्ज्ञायतेतत्र समंविषममेवच ॥ केवलंदानवेन्द्राश्च सर्वेपश्य

प्यारी नारियों को अतिदुःखित व प्रलाप करतीहुई देखताथा ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर उस मारपीट को देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होतेहुये अन्धकासुर ने संग्राम में तैयारहुई उन समस्त योगिनियों का भर्त्सन किया याने अपकारवाले वचन कहा ॥ ८९ ॥ और उन्होंने किसीप्रकार उस दैत्यका भय न किया केवल दैत्यों को नाश व भक्षण किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर उस दैत्यने उन योगिनियों के कर्मको देखकर उस भयसंकुल दैत्यने क्रोधसे अपने अंगकी रक्षाकिया ॥ ९१ ॥ इसभांति करके उसी क्षण उसने अन्धकारवाले भयंकर अस्त्रको छोड़ा इसी अवसर में समस्त त्रिलोक अन्धकारसे घिरगया ॥ ९२ ॥ वहांपर कुछ सम व विषमही नहीं जानपड़ताथा केवल

समस्त दैत्येन्द्र देखतेथे और नहीं देखताथा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर उसने जैसेही उन योगिनियों को पैने बाणोंसे मारा वैसेही उसी रूपवाली और स्त्रियां होगईं ॥ ९४ ॥ इसके अनन्तर भयसंयुत उस दानवने योगिनियोंकी बड़ी बढ़ती देखकर उस अस्त्रका संहार करलिया याने घुमालिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर शुक्रके समीप जाकर दीन व हाथ जोड़ेहुये अन्धकासुरने कहा कि हे भृगूत्तम ! स्त्रियों ने मेरा जो विनाश कियाहै उसको देखिये ॥ ९६ ॥ कि असुरवैरी (शिव) जीके मंत्रकी शक्तिसे पैदाहुई व मेरे अस्त्रोंके अवध्य बहुतसी स्त्रियोंसे सबओर सेना मारी जातीहै ॥ ९७ ॥ इसलिये हे महामते ! यदि मेरा कल्याण चाहतेहो तो तुमभी उस विद्याको साधनकरो अन्यथा

न्तिनेतरः ॥ ९३ ॥ ततस्ससूदयामास योगिन्यस्ताःशितैःशरैः ॥ यथातथापरानार्य्यस्तादृग्रूपाभवन्तिच ॥ ९४ ॥ अथदृष्ट्वापरांवृद्धिं योगिनीनांसदानवः ॥ संहारंतस्यचास्त्रस्यचकारभयसंकुलः ॥ ९५ ॥ ततःशुक्रंसमासाद्य दीनःप्राह कृताञ्जलिः ॥ पश्यमेभार्गवश्रेष्ठ स्त्रीभिर्यत्कदनंकृतम् ॥ ९६ ॥ अवध्याभिर्ममास्त्राणां मन्त्रशक्त्यासुरद्विषः ॥ उत्पन्नाभिःप्रभूताभिर्हन्यतेसर्वतोबलम् ॥ ९७ ॥ तस्मात्त्वमपितांविद्यां प्रसाधयमहामते ॥ यदिमेवाञ्छसिश्रेयो नान्यथास्तिजयोरणे ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽन्धकासुरसंग्रामवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ शुक्रस्तस्यवचःश्रुत्वा चित्तेकृत्वादयांततः ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं गत्वासिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥ चकार विविधंहोमं स्वमांसेनहुताशने ॥ मन्त्रैराथर्वणैरौद्रैः कुण्डंकृत्वात्रिकोणकम् ॥ २ ॥ एवंसंजुह्वतस्तस्य तेनैवविधिना

युद्ध में जीत न होगी ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽन्धकासुरसंग्रामवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । होम किये पर प्रकटभइ जिमि केलीश्वरि देवि । इकसौ छियलिसवें सोई कहत कथा सुखसेवि ॥ सूतजी बोले कि उस दैत्यके वचन सुनकर तदनन्तर चित्त में दयाकरके शुक्र जीने सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरजक्षेत्र में जाकर ॥ १ ॥ व त्रिकोणकुण्डको बनाकर बड़े विकराल अथर्वण वेदवाले मंत्रोंकरके अपने मांस से

अग्नि में अनेक प्रकारका होम किया ॥ २ ॥ उस समय इसभांति उसी विधि से उन शुक्रजीके हवन करतेहुये जैसे महादेव जीसे केलीश्वरीदेवी संतुष्टहुईथी वैसेही प्रसन्नहुई ॥ ३ ॥ व शीघ्रही भलीभांति आकर दैत्यों के पुरोहित शुक्रजीसे बोलीं कि हे भृगुपुङ्गव ! तुम मांसको परिक्षीण मतकरो ॥ ४ ॥ मैं तीन नेत्रवाले शिवजीसे भावित (आराधित) हुईहूं इसलिये कहिये कि मैं तुम्हारा क्या कार्यकरूं शुक्रजी बोले कि हे शुभे ! जैसे तुमने यहांपर शिवजीकी सहायता कियाहै ॥ ५ ॥ वैसेही अन्धक की भी सहायताकरो यह मेरा वरदानहै व हे देवि ! युद्धमें इसकी सेनाके जो कोई दानव भक्षित व विनाशित हुयेहैं वे सब शीघ्रही जीवैं देवी बोलीं कि युद्ध

तदा ॥ यथारुद्रेणसन्तुष्टा देवीकेलीश्वरीतदा ॥ ३ ॥ तंप्रोवाचसमेत्याशु शुक्रंदैत्यपुरोहितम् ॥ मात्वंभार्गवशार्दूल कुरुमांसपरिक्षयम् ॥ ४ ॥ ॥ भाविताहंत्रिनेत्रेण तत्किंब्रूहिकरोमिते ॥ शुक्रउवाच ॥ यथारुद्रस्यसाहाय्यं त्वयात्रविहितंशुभे ॥ ५ ॥ अन्धकस्यापिसाहाय्यं तथैवैषवरोमम ॥ येकेचिद्दानवायुद्धे भक्षिताश्चविनाशिताः ॥ ६ ॥ अस्यसैन्यस्यतेसर्वे देविजीवन्तिसत्वरम् ॥ देव्युवाच ॥ जीवयिष्यामितान्सर्वान्दानवान्निहितान्रणे ॥ ७ ॥ नचसम्भक्षितान्विप्रप्रविष्टान्योगिनीमुखे॥एवमुक्त्वाददौतस्मै सादेवीहर्षितानना ॥ ८ ॥ नाम्नामृतवतींविद्यां ययाजीवन्तितेमृताः ॥ ततः शुक्रःप्रहृष्टात्मा गत्वान्धकमुवाचह ॥ ९ ॥ सिद्धाकेलीश्वरीदेवी यथाशम्भोस्तथामम ॥ तयादत्ताशुभाविद्याममदैत्यामृताश्चये ॥ १० ॥ तान्सर्वांस्तत्प्रभावेण योजयिष्यामिजीविते ॥ त्वयास्यास्सततंभक्तिः कार्य्यादानवसत्तम ॥ ११ ॥ अष्टम्यांचविशेषेण चतुर्दश्यांचसर्वदा ॥ एषासापरमाशक्तिर्ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ १२ ॥ केवलंभक्तिसाध्यासा न

में मारेहुये उन समस्त दैत्यों को मैं जिलाऊंगी ॥ ६ । ७ ॥ व हे विप्रजी ! योगिनियोंके मुखमें पैठे व भक्षण कियेहुये दानवोंको नहीं ऐसा कहकर प्रसन्न मुखवाली उस देवीने उन शुक्रजीके लिये अमृतवती नामक विद्या को दिया कि जिससे वे मरेहुये दैत्य जीते हैं तदनन्तर प्रसन्नमनवाले शुक्रजीने अन्धकके समीप जाकर कहा ॥८।९॥ कि जैसे शिवजीके सिद्धथी वैसेही केलीश्वरी देवी मेरे सिद्धहोगई उसने मुझको शुभदायिनी विद्या दियाहै जो दैत्य मरगये हैं ॥१०॥ उन सबोंको उस विद्याके प्रभाव से जीव में युक्तकरूंगा व हे दैत्यसत्तम ! तुमको निरन्तर इस देवीकी भक्ति करना चाहिये ॥ ११ ॥ व अष्टमी तथा चौदसि में विशेषकर सदैव भक्ति करना चाहिये

क्योंकि यह वही उत्तम शक्तिहै कि जिससे यह संसार व्याप्तहै ॥ १२ ॥ वह केवल भक्तिसे साधन करने योग्यहै दण्डसे किसीप्रकार नहीं उससमय शुक्रजीसे ऐसा कहेहुये उस अन्धक दैत्यने भक्तिभावसे संयुत होकर उस देवी और वैसेही जो जैसी जेठीथी वैसेही क्रमपूर्वक अन्य समस्त माताओं को पूजन किया तदनन्तर अनेक प्रकारके स्तोत्रों से स्तुतिकरके आदर समेत कहा कि हे देवि ! अज्ञान से मैंने जो तुम्हारे ऊपर क्रोध किया है॥ १३ । १४ । १५ ॥ प्रणाम कियेहुये व मुझ दीन का वह अपराध आज तुमको क्षमा करना चाहिये देवी बोलीं कि हे वत्स ! भार्गव (शुक्र) जी के प्रभाव से मैं तुम्हारे ऊपर अतिप्रसन्नहूं ॥ १६ ॥ व मेरा दर्शन वृथा

दण्डेनकथञ्चन ॥ एवमुक्तस्तुशुक्रेण सतदादानवोन्धकः ॥ १३ ॥ तांदेवींपूजयामास भावभक्तिसमन्वितः ॥ स्तुत्वा
चविविधैःस्तोत्रैस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ १४ ॥ तथान्यामातरस्सर्वा यथाज्येष्ठंयथाक्रमम् ॥ अज्ञानाद्यन्मयादेवि कृ
तःकोपस्तवोपरि ॥ १५ ॥ सहनीयस्त्वयासोद्य दीनस्यप्रणतस्यच ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेवत्स प्रभावाद्भार्गवस्य
च ॥ १६ ॥ वरंवरयतस्मात्त्वंनवृथादर्शनंमम ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेण येत्वांध्यायन्तिदेहिनः ॥ १७ ॥
पूजयन्तिचसद्भक्त्या संस्थाप्यप्रतिमांतव ॥ तेषांसिद्धिःप्रदातव्या त्वयाहृदयवाञ्छिता ॥ १८ ॥ देव्युवाच ॥ योमाम
नेनरूपेण स्थापयिष्यतिमानवः ॥ तस्यमोक्षंप्रदास्यामिपापस्यापिनसंशयः ॥ १९ ॥ योष्टम्यांवाचतुर्दश्यां ममपू
जांकरिष्यति ॥ तस्मैस्वर्गंप्रदास्यामि पापायापिदनूत्तम॥२०॥केवलंदर्शनंयश्चध्यानंमेवाकरिष्यति॥तस्यराज्यंप्रदा
स्यामि भोगान्मानुषसम्भवान् ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वाचसादेवी ततश्चादर्शनंगता ॥ तैश्चमातृगणैस्सार्द्धं पश्यतस्त

नहीं होता है इसलिये वरदान को मांगो अन्धक बोला कि जे देहधारी पुरुष तुमको इसी रूपसे ध्यान करते हैं ॥ १७ ॥ व तुम्हारी प्रतिमाको भलीभांति थाप कर उत्तम भक्तिसे पूजते हैं उनके लिये हृदयसे चाहीहुई सिद्धि तुमको देना चाहिये ॥ १८ ॥ देवी बोलीं कि जो पुरुष इस रूपसे मुझको थापन करैगा उस पापी को भी मैं निस्सन्देह मोक्षदूंगी ॥ १९ ॥ व हे दैत्योत्तम ! जो पुरुष अष्टमी व चौदसिमें मेरा पूजन करैगा उस पापी के लियेभी मैं स्वर्गदूंगी ॥२०॥ व जो पुरुष केवल मेरे दर्शन या ध्यानको करैगा उसको राज्य और मनुष्योंसे उपजेहुये सुखोंको दूंगी ॥२१॥ ऐसा कहकर तदनन्तर उस दैत्यके देखतेहुये उन मातृगणों समेत उसीक्षण वह

देवी अन्तर्द्धान होगई ॥ २२ ॥ तदनन्तर शुक्रजीने भी उस भलीभांति सिद्धहुई विद्यासे समस्त मरेहुये दैत्योंको भलीभांति जिला दिया और खायेहुये उन दैत्योंको नहीं ॥ २३ ॥ उस अन्धक दैत्येश्वरने उन दैत्यों समेत होकर प्रसन्न अन्तःकरणसे उस पुरीको प्राप्तहोकर दिनरात इन्द्रकी राज्य किया ॥ २४ ॥ वह बड़ा बलवान् दैत्य दिनरात उस देवीको ध्यान व पूजन करताहुआ व विशेषकर अष्टमी व चौदसिमें पूजता भया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस देवीसे उपजेहुये उस प्रभावको जानकर भलीभांति सिद्धिको प्राप्तहुये उस अन्धकासुरने इस स्थानमें थापन किया ॥ २६ ॥ सूतजीबोले कि इसप्रकार परमेश्वरी केलीश्वरी देवी उत्पन्नहुई है इसलिये विशेषतासे थापन, पूजन व ध्यान करने योग्यहै ॥ २७ ॥ बड़े गुरु (कठिन) दुःखसे बाधितहोता हुआ जो मनुष्य देवी के इस चरितको पढ़ता या सुनताहै वह व्यसनसे छूटजाता है ॥ २८ ॥ अथवा छूटीहुई राज्यवाला जो राजा अष्टमीके दिन सुनताहै वह नष्टहुये कण्टकोंवाली राज्यको फिर पाताहै ॥ २९ ॥ व युद्ध समयके भलीभांति प्राप्तहोने पर जो इस चरितको सुनताभी है वह एकाएकी शत्रुसंक्षय व जीत को भलीभांति प्राप्तहोताहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकेलीश्वरीमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्यतत्क्षणात् ॥ २२ ॥ शुक्रोपिदानवान्सर्वांस्तयासंसिद्धयाततः ॥ मृतान्संजीवयामास नतुतान्संप्रभक्षितान् ॥ २३ ॥ तेस्समेत्यसदैत्येन्द्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मनः ॥ ताम्पुरींप्राप्यशक्रस्य राज्यंचक्रेदिवानिशम् ॥ २४ ॥ तांदेवींध्यायमानस्तु पूजयानोदिवानिशि ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां विशेषेणमहाबलः ॥ २५ ॥ अथतस्याःप्रभावन्तं ज्ञात्वादेव्याःसमुद्भवम् ॥ स्थानेत्रस्थापयामास संसिद्धिंचपरांगतः ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ एवंकेलीश्वरीदेवी सञ्जातापरमेश्वरी ॥ तस्मात्स्थाप्याचपूज्याच ध्येयाचैवविशेषतः ॥ २७ ॥ इदंदेव्यानरोयोवा पठतेवाश्रृणोतिवा ॥ बाध्यमानस्समुच्येत व्यसनेनगरीयसा ॥ २८ ॥ भ्रष्टराज्योथवाराजा यःश्रृणोत्यष्टमीदिने ॥ सराज्यंलभतेभूयो निखिलंहतकण्टकम् ॥ २९ ॥ युद्धकालेचसम्प्राप्ते यश्चैतच्छृणुयादपि ॥ सहसाशत्रुसंघातं विजयंचसमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकेलीश्वरीमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

दो० । इकसौ सैंतालीस महँ बरणत बुद्धिअगार । भैरव शिव माहात्म्यकी कथा सहित विस्तार ॥ सूत जी बोले कि उससमय शुक्र से इकट्ठा हुई विद्या व बलको वृद्धिदायक व शक्तिदायक केलीश्वरी के प्रसाद को जानकर ॥१॥ व अपनाको ब्रह्माके वरदान से उपजी हुई न मारने की योग्यता को जानकर तदनन्तर महादेवको भलीभांति उद्देशकर क्रोध किया ॥ २ ॥ व कैलास पर्वत पै दूत को पठाया कि हे दूत ! इससमय महादेव के समीप जावो व मेरे वचनसे कहो ॥ ३॥ कि इन इन्द्र जी को छोड़कर इस पर्वत पै सुख से टिको नहीं तो मैं शीघ्रही आकर कैलास समेत व स्त्री सहित और गणों समेत युद्ध में मारकर तुमको नाशकरूंगा व सुखी

सूतउवाच ॥ अन्धकोपिपरांविद्यां ज्ञात्वाशुक्रार्जितांतदा ॥ केलीश्वर्य्याःप्रसादंच शक्तिदंबलवृद्धिदम् ॥१॥ अवध्यं चात्मनश्चैव पितामहवरोद्भवम् ॥ महेश्वरंसमुद्दिश्य कोपंचक्रेततःपरम् ॥ २ ॥ दूतंचप्रेषयामास कैलासंपर्वतम्प्रति ॥ गच्छदूतहरंब्रूहि ममवाक्येनसाम्प्रतम् ॥ ३ ॥ शक्रमेनंपरित्यक्त्वा सुखंतिष्ठात्रपर्वते ॥ नोचेद्द्रुतंसमागत्यसकैलासं सभार्य्यकम्॥४॥सगणंचरणेहत्वा सुखीस्थास्यामिनन्दने ॥ त्वामहंनाशयिष्यामि सत्येनात्मानमालभे ॥५॥ एवमुक्तः सदैत्येन्द्र दूतोगत्वाद्रुतंततः ॥ प्रोवाचशङ्करंवाक्यैः परुषैःसविशेषतः ॥ ६ ॥ ततःकोपपरीतात्मा भगवान्वृषभध्वजः ॥ गणान्संप्रेषयामास वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ७ ॥ वीरभद्रंमहाकालं नन्दिहस्तिमुखंतथा ॥ अघोरंघोरनादंच घोरघण्टंमहाबलम् ॥ ८ ॥ एतेषामनुगाश्चान्ये कोटिरेकापृथक्पृथक् ॥ गणानांप्रेषयामास वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ९ ॥ अथसंप्रेषितास्तेन गणास्तेविकृताननाः ॥ हर्षेणमहताविष्टागर्ज्जमानायथाघनाः ॥ १० ॥ धृतायुधागतास्सर्वे युद्धार्थं

होकर नन्दन (इन्द्र के वन) में टिकूंगा यह सत्य से अपनी सौगन्द करता हूं ॥ ४ । ५ ॥ तदनन्तर इस भांति कहेहुये दैत्यनायक के उस दूत ने शीघ्रही जाकर उसने विशेषतापूर्वक कठोर वचनों से शङ्कर जी से कहा ॥ ६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मन वा चित्तवाले वृषभध्वज भगवान् (शिव) जी ने उस दुष्ट बुद्धिवाले दैत्य को मारने के लिये वीरभद्र, महाकाल, नन्दी, हस्तिमुख, अघोर, घोरनाद व बड़े बलिष्ठ घोरघण्ट गणों को पठाया ॥ ७ । ८ ॥ व उस दुष्टबुद्धिवाले दैत्य को मारने के लिये इन गणों के अलग २ एक कोटि अनुगामियों को पठाया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर बड़े हर्ष से संयुत व मेघों के समान गर्जते हुये व अस्त्रों को धार व

विगड़े मुखवाले जोकि उन शिव जीसे पठायेगयेथे वे सब युद्धके लिये वहांगये जहां कि इन्द्रजीकी वह पुरी बलिष्ठ दैत्य से आक्रान्तथी ॥ १०। ११ ॥ इसके अ-
नन्तर प्राप्तहुये गणोंको देखकर अस्त्रोंको धारे व अतिगर्वित वे दैत्य युद्धके लिये अचानक निकले ॥ १२ ॥ तदनन्तर मृत्युको लौटाकर दैत्योंके साथ गणोंका आपस
में बड़ाभयंकर युद्धहुआ ॥ १३ ॥ व महादेव जी भी उन समस्त गणोंको देखकर क्रोधसे निकले तदनन्तर अन्धकासुर का महादेवके साथ वैसाही युद्ध हुआ ॥ १४॥
जैसा कि पुरातनसमय वृत्रासुरका इन्द्रसे बड़ाभारी युद्धहुआहै चक्र व सफल बाण तोमर, तलवार, मुद्गर व अनेक प्रकारके अस्त्रों से इसभांति उस दैत्यको मारने के

निश्चक्रमुर्वै यत्रसापुरी ॥ शक्रस्यासादितातेन दानवेनबलीयसा ॥ ११ ॥ अथप्राप्तान्गणान्दृष्ट्वा दानवास्तेधृतायुधाः ॥
सहसायुद्धार्थमतिगर्विताः ॥ १२ ॥ ततस्समभवद्युद्धं गणानांदानवैस्सह ॥ परस्परंमहारौद्रं मृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ १३ ॥
हरोपितान्गणान्सर्वान्दृष्ट्वाकोपाद्विनिर्ययौ ॥ ततोयुद्धंसमभवदन्धकस्यहरेणतु ॥ १४ ॥ वृत्रवासवयोःपूर्वं यथायुद्धमभू
त्पुरा ॥ चक्रेणालीकनाराचैस्तोमरैःखड्गमुद्गरैः ॥ १५ ॥ एवंनशक्यतेहन्तुं दानवोविविधायुधैः ॥ अस्त्रयुद्धंपरित्यज्य
बाहुयुद्धमुपागतौ ॥ १६ ॥ करंकरेणसंगृह्यमुष्टिप्रहरणैस्तदा ॥ दानवेनाथदेवेशो बन्धेनाक्रम्यपीडितः ॥ १७ ॥ नि
स्पन्दंभावमापन्नस्ततो मूर्च्छामुपागतः ॥ मूर्च्छागतन्तुतंज्ञात्वा अन्धकोनिर्ययौरणात् ॥ १८ ॥ तावत्स्थाणुःक्षणा
ल्लब्ध्वाचेतनामात्तकार्मुकः ॥ आयसंलकुटंगृह्य महद्भारसहस्रकम् ॥ १९ ॥ दानवेन्द्रंततःप्राप्यताडयामासमूर्द्ध
नि ॥ सोपिखड्गेनदेवेशं ताडयामासवैततः ॥ २० ॥ अथदेवोपिसस्मारकौबेरास्त्रंमहाहवे ॥ अस्त्रेणतेनहृदये ताडया

इसके अनन्तर उससमय हाथको हाथसे पकड़कर मुष्टिको के प्रहारसे युद्ध
लिये न समर्थितहुये और अस्त्र युद्धको छोड़कर भुजायुद्ध प्रति प्राप्तभये ॥ १५। १६ ॥ इसके अनन्तर उससमय हाथको हाथसे पकड़कर मुष्टिको के प्रहारसे युद्ध
हुआ व दानवने बन्धनसे देवेश (शिव) जीको घेरकर पीड़ित किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर शिवजी निश्चलताको प्राप्तहोतेहुये मूर्च्छाको प्राप्तहुये व अन्धकासुर मूर्च्छामें
प्राप्तहुये उन शिवजीको जानकर युद्धसे निकलगया ॥ १८ ॥ तबतक क्षणभर में चैतन्यता को पाकर धनुषको लियेहुये शिवजीने हजारभार (ढाईहजार मन) वाले
लोहे के बड़ेभारी दण्डको लेकर ॥ १९ ॥ तदनन्तर दैत्येन्द्र को प्राप्तहोकर मस्तकपै मारा तदनन्तर उस नेभी सुरेश शिवजीको तलवारसे मारा ॥ २० ॥ इसके अ-

नन्तर शिव देवनेभी महायुद्ध में कौबेरास्त्रको स्मरण किया व उस अस्त्रसे दैत्यके हृदय में ताड़न किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस कौबेरास्त्र से ताड़ित होकर रक्तोद्गार को उगिलताहुआ नीचे मुखकरके गिरपड़ा तदनन्तर त्रिशूलसे भेदन कियागया ॥ २२ ॥ उससमय शूलके अग्रभागमें भलीभांति टिकाहुआ पापी चाकके नाईं भ्रमता भया व उससमय अन्धकासुर नेभी अपनाको वैसी दशा में प्राप्त देखकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर सपुष्ट वचनोंसे महेश्वर देवकी स्तुति किया अन्धकासुर बोला कि जगत् के धारनेवाले व त्रिगुण आत्मावाले जो तुम शिवजी हो उनके लिये नमस्कारहै ॥२४॥ हे चन्द्रमासे कियेहुये भूषणवाले शिवजी ! बैल आसनपै भलीभांति बैठेहुये तुम्हारे

मासदानवम् ॥ २१ ॥ ततस्सताडितस्तेन रुधिरोद्गारमुद्वमन् ॥ पतितोधोमुखोभूत्वा ततःशूलेनभेदितः ॥ २२ ॥ शूलाग्रेसंस्थितःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ अन्धकोपितदात्मानं तथावस्थामुपागतम् ॥ २३ ॥ ततोवाग्भिस्सपुष्टाभिरस्तौद्देवंमहेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ नमस्तेजगतांधात्रे शर्वायत्रिगुणात्मने ॥ २४ ॥ वृषभासनसंस्थाय शशाङ्ककृतभूषण ॥ नमःखट्वाङ्गहस्ताय नमःशूलधरायच ॥ २५ ॥ नमोडमरुकोदण्डकपालानलधारिणे ॥ स्मरदेहविनाशाय मूर्त्यष्टकधृतात्मने ॥ २६ ॥ नमस्सुरूपदेहाय अरूपबहुरूपिणे ॥ उत्तमाङ्गविनाशाय विरञ्चेःसृष्टिकारिणः ॥ २७ ॥ श्मशानवासिनेतुभ्यं नमोभैरवरूपिणे ॥ सर्वगस्सर्वकर्ताच त्वंहन्तानान्यएवहि ॥ २८ ॥ त्वंभूमिस्त्वंरविश्चैव त्वंज्योतिस्त्वंतमस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जीवभूतोमहेश्वर ॥ २९ ॥ अस्तौद्देवंदानवेन्द्रो देवशूलाग्रसंस्थितः ॥ सूतउवा

लिये नमस्कार है व खट्वाङ्ग हाथवाले और त्रिशूलधारनेहारे के लिये नमस्कार है व डमरु, धनुष, कपाल व अग्निके धारनेवाले के लिये और कामदेवकी देह के विनाशनेवाले व आठमूर्तियोंसे शरीरको धारनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥२५।२६॥ व स्वरूपवाली देहवाले व बिन रूप तथा बहुत रूपवाले के लिये व सृष्टि के करनेहारे ब्रह्माजीके मस्तकके विनाश करनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ २७ ॥ व भयंकररूपवाले तथा श्मशानके बसनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और सर्वगामी व सर्वकर्ता, हर्ता तुम्हींहो और निश्चयकर नहीं है ॥ २८ ॥ हे महेश्वर! तुम भूमिहो और तुम सूर्यहो, तुम ज्योतिहो, तुम अन्धकारहो व सम्पूर्ण प्राणियों के जीवभूत पवन

तुम्हींहो ॥ २९ ॥ शिवदेव के त्रिशूलके अग्रभाग में भलीभांति टिकेहुये दैत्येन्द्रने सदाशिव जीकी स्तुति किया सूतजी बोले कि इसप्रकार उसकी स्तुतिकरके महेश्वर देवजी प्रसन्नहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शूलके अग्रभागमें टिकेहुये उस दैत्योत्तमसे प्रसन्नतासे श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! यह शूरोंका नियम नहीं है जो कि शत्रु के हाथके दुःखसे प्रिय वचन कहेजाते हैं व दैत्यके जन्ममें विशेषकर नहींहै अन्धक बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! त्रिशूलके अग्रभाग प्रति टिकाहुआ मैं निर्वेद को प्राप्तहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसलिये मुझको शीघ्रही मारिये कि जिससे मेरी पीड़ाका नाशहोवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! मैंने चिन्तन किया कितुम्हारा किसी

च ॥ एवंतस्यस्तुतिंश्रुत्वा परितुष्टोमहेश्वरः ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतंहर्षाच्छूलाग्रस्थंदनूत्तमम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैदंवीरव्रतंदैत्य यच्छत्रुकरपीडनात् ॥ ३१ ॥ प्रोच्यंतेसामवाक्यानि विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ अन्धकउवाच ॥ निर्विण्णोस्मिसुरश्रेष्ठ त्रिशूलाग्रंसमाश्रितः ॥ ३२ ॥ तस्मात्सूदयमांयेन द्रुतंस्यान्मेऽव्यथात्त्ययः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नतेस्तिमरणंदैत्य कथंचिच्चिन्तितम्मया ॥ ३३ ॥ तेनेत्थंविधृतोव्योम्नि भित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ तस्मात्त्वंगणतांगच्छ साम्प्रतंपापवर्जितः ॥ ३४ ॥ त्यक्त्वातुदानवंभावं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अन्धकउवाच ॥ गतोमेदानवोभावः साम्प्रतंतवकिङ्करः ॥ ३५ ॥ भविष्यामिनसन्देहस्सत्येनात्मानमालभे ॥ शङ्करउवाच॥ परितुष्टोस्मितेवत्स ब्रूहियत्तेभिवाञ्छितम् ॥ ३६ ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेणत्रिशूलाग्रेमयिस्थिते ॥३७॥ योमर्त्यस्त्वांप्रकुर्वीत स्थापयिष्यतिभूतले ॥ तस्यमोक्षस्त्वयादेयो मद्वाक्यात्सुरसत्तम ॥ ३८ ॥ तथेत्युक्त्वाथदेवे

प्रकार मरण नहीं है ॥३३॥ उसी कारण शूलसे हृदयमें विदारणकर आकाशमें ऐसे धरेगयेहो इसलिये दैत्यभावको छोड़कर इससमय पापरहित होतेहुये व परम श्रद्धासे संयुत तुम गणभावको प्राप्तहोवो अन्धकासुर बोला कि मेरा दानव भाव जातारहा इस समय निस्सन्देह तुम्हारा सेवकहूंगा यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं शङ्करजी बोले कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारा मनोरथहो उसको कहिये ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ तुम प्रार्थना करो यद्यपि दुर्लभहोगा तथापि मैं दूंगा अन्धकासुर बोला कि हे सुरसत्तम ! मुझको त्रिशूल के अग्रभाग पै स्थित होते हुये इसी रूप से तुमको जो पुरुष बनाकर भूतल में स्थापन करैगा मेरे वचन से तुमको उसे मोक्ष देना

नन्तर शिव देवनेभी महायुद्ध में कौबेरास्त्रको स्मरण किया व उस अस्त्रसे दैत्यके हृदय में ताड़न किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस कौवेरास्त्र से ताड़ित होकर रक्तोद्गार को उगिलताहुआ नीचे मुखकरके गिरपड़ा तदनन्तर त्रिशूलसे भेदन कियागया ॥ २२ ॥ उससमय शूलके अग्रभागमें भलीभांति टिकाहुआ पापी चाकके नाईं भ्रमता भया व उससमय अन्धकासुर नेभी अपनाको वैसी दशा में प्राप्त देखकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर सपुष्ट वचनोंसे महेश्वर देवकी स्तुति किया अन्धकासुर बोला कि जगत् के धारनेवाले व त्रिगुण आत्मावाले जो तुम शिवजी हो उनके लिये नमस्कारहै ॥२४॥ हे चन्द्रमासे कियेहुये भूषणवाले शिवजी ! बैल आसनपै भलीभांति बैठेहुये तुम्हारे

मासदानवम् ॥ २१ ॥ ततस्सताडितस्तेन रुधिरोद्गारमुद्वमन् ॥ पतितोधोमुखोभूत्वा ततःशूलेनभेदितः ॥ २२ ॥ शूलाग्रेसंस्थितःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ अन्धकोपितदात्मानं तथावस्थामुपागतम् ॥ २३ ॥ ततोवाग्भिस्सपुष्टाभिरस्तौद्देवंमहेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ नमस्तेजगतांधात्रे शर्वायत्रिगुणात्मने ॥ २४ ॥ वृषभासनसंस्थाय शशाङ्ककृतभूषण ॥ नमःखट्वाङ्गहस्ताय नमःशूलधरायच ॥ २५ ॥ नमोडमरुकोदण्डकपालानलधारिणे ॥ स्मरदेहविनाशाय मूर्त्यष्टकधृतात्मने ॥ २६ ॥ नमस्सुरूपदेहाय अरूपबहुरूपिणे ॥ उत्तमाङ्गविनाशाय विरञ्चेःसृष्टिकारिणः ॥ २७ ॥ श्मशानवासिनेतुभ्यं नमोभैरवरूपिणे ॥ सर्वगस्सर्वकर्ताच त्वंहन्तानान्यएवहि ॥ २८ ॥ त्वंभूमिस्त्वंरविश्चैव त्वंज्योतिस्त्वंतमस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जीवभूतोमहेश्वर ॥ २९ ॥ अस्तौद्देवंदानवेन्द्रो देवशूलाग्रसंस्थितः ॥ सूतउवा

लिये नमस्कार है व खट्वाङ्ग हाथवाले और त्रिशूलधारनेहारे के लिये नमस्कार है व डमरु, धनुष, कपाल व अग्निके धारनेवाले के लिये और कामदेवकी देह के विनाशनेवाले व आठमूर्तियोंसे शरीरको धारनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥२५।२६॥ व स्वरूपवाली देहवाले व बिन रूप तथा बहुत रूपवाले के लिये व सृष्टि के करनेहारे ब्रह्माजीके मस्तकके विनाश करनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ २७ ॥ व भयंकररूपवाले तथा श्मशानके बसनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और सर्वगामी व सर्वकर्ता, हर्ता तुम्हींहो और निश्चयकर नहीं है ॥ २८ ॥ हे महेश्वर! तुम भूमिहो और तुम सूर्यहो, तुम ज्योतिहो, तुम अन्धकारहो व सम्पूर्ण प्राणियों के जीवभूत पवन

तुम्हींहो ॥ २९ ॥ शिवदेव के त्रिशूलके अग्रभाग में भलीभांति टिकेहुये दैत्येन्द्रने सदाशिव जीकी स्तुति किया सूतजी बोले कि इसप्रकार उसकी स्तुतिकरके महेश्वर देवजी प्रसन्नहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शूलके अग्रभागमें टिकेहुये उस दैत्योत्तमसे प्रसन्नतासे श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! यह शूरोंका नियम नहीं है जो कि शत्रु के हाथके दुःखसे प्रिय वचन कहेजाते हैं व दैत्यके जन्ममें विशेषकर नहींहै अन्धक बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! त्रिशूलके अग्रभाग प्रति टिकाहुआ मैं निर्वेद को प्राप्तहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसलिये मुझको शीघ्रही मारिये कि जिससे मेरी पीड़ाका नाशहोवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! मैंने चिन्तन किया कितुम्हारा किसी

च ॥ एवंतस्यस्तुतिंश्रुत्वा परितुष्टोमहेश्वरः ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतंहर्षाच्छूलाग्रस्थंदनूत्तमम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नेदंवीरव्रतंदैत्य यच्छत्रुकरपीडनात् ॥ ३१ ॥ प्रोच्यंतेसामवाक्यानि विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ अन्धकउवाच ॥ निर्विण्णोस्मिसुरश्रेष्ठ त्रिशूलाग्रंसमाश्रितः ॥ ३२ ॥ तस्मात्सूदयमांयेन हुतंस्यान्मेऽव्यथात्त्ययः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नतेस्तिमरणंदैत्य कथंचिच्चिन्तितम्मया ॥ ३३ ॥ तेनेत्थंविधृतोऽव्योम्नि भित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ तस्मात्त्वंगणतांगच्छ साम्प्रतंपापवर्जितः ॥ ३४ ॥ त्यक्त्वातुदानवंभावं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अन्धकउवाच ॥ गतोमेदानवोभावः साम्प्रतंतवकिङ्करः ॥ ३५ ॥ भविष्यामिनसन्देहस्सत्येनात्मानमालभे ॥ शङ्करउवाच॥ परितुष्टोस्मितेवत्स ब्रूहियत्तेभिवाञ्छितम् ॥ ३६ ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेणत्रिशूलाग्रेमयिस्थिते ॥३७॥ योमर्त्यस्त्वांप्रकृत्वावै स्थापयिष्यतिभूतले ॥ तस्यमोक्षस्त्वयादेयो मद्वाक्यात्सुरसत्तम ॥ ३८ ॥ तथेत्युक्त्वाथदेवे

प्रकार मरण नहीं है ॥३३॥ उसी कारण शूलसे हृदयमें विदारणकर आकाशमें ऐसे धरेगयेहो इसलिये दैत्यभावको छोड़कर इससमय पापरहित होतेहुये व परम श्रद्धासे संयुत तुम गणभावको प्राप्तहोवो अन्धकासुर बोला कि मेरा दानव भाव जातारहा इस समय निरसन्देह तुम्हारा सेवकहूंगा यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं शङ्करजी बोले कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारा मनोरथहो उसको कहिये ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ तुम प्रार्थना करो यद्यपि दुर्लभहोगा तथापि मैं दूंगा अन्धकासुर बोला कि हे सुरसत्तम ! मुझको त्रिशूल के अग्रभाग पै स्थित होते हुये इसी रूप से तुमको जो पुरुष बनाकर भूतल में स्थापन करैगा मेरे वचन से तुमको उसे मोक्ष देना

चाहिये ॥३७।३८॥ वैसाही होगा यह कहकर इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! देवेश शिवजीने त्रिशूल के अग्रभाग से अस्थिशेषवाले व दुबले अंगोंवाले तथा चामुण्डा के समान उस अन्धकासुरको छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर गणभाव को प्राप्तहुये उस अन्धकासुर ने देवदेव (शिव) जी के व विशेषकर पार्वतीजीके अगाड़ी मनोहर गान को किया ॥ ४० ॥ जिसलिये कि उसका शब्द भ्रमरके समान कर्णोंको सुखदायक था उसीसे त्रिपुरारि शिवजीने उसको भृङ्गरीट ऐसा कहा ॥ ४१ ॥ वह अन्धकासुर देवदेव त्रिशूलधारी शिवजी की मुख्यगणता को प्राप्तहुआ व समस्त कार्यों में विश्वास करने योग्य वह उन शिवजी में परायण हुआ ॥ ४२ ॥ तब से

शस्त्रिशूलाग्रान्मुमोचह ॥ अस्थिशेषंकृशाङ्गंच चामुण्डासदृशंद्विजाः ॥३९॥ ततःसगणतांप्राप्तो गीतंचक्रेमनोहरम् ॥ पुरतोदेवदेवस्य पार्वत्याश्चविशेषतः ॥ ४० ॥ भृङ्गवद्रटनंयस्मात्तस्य श्रोत्रसुखावहम् ॥ भृङ्गरीटइतिप्रोक्तस्ततस्स त्रिपुरारिणा ॥४१॥ समुख्यगणताम्प्राप्तो देवदेवस्यशूलिनः ॥ विश्वास्यस्सर्वकृत्येषु तत्परंसमपद्यत ॥ ४२ ॥ ततः प्रभृतिलोकेत्र देवदेवोमहेश्वरः ॥ तादृशेनैवरूपेण स्थाप्यतेभूतलेजनैः ॥ ४३ ॥ प्राप्यतेचपरासिद्धिस्तत्प्रसादादलौकिकी ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य राज्याद्भ्रष्टोमहीपतिः ॥ ४४ ॥ सुरथाख्यःप्रसिद्धोत्र सूर्य्यवंशसमुद्भवः ॥ ततोवसिष्ठमासाद्य सचात्मीयंपुरोहितम् ॥ ४५ ॥ प्रोवाचप्रणतोभूत्वा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ त्वयिनाथेममब्रह्मन्संस्थितेचापिशत्रुभिः ॥ बलादपहृतंराज्यं मन्दभाग्यस्यसाम्प्रतम् ॥ ४६ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे येनराज्यस्यसंस्थितिः ॥ भूयो

लगाकर इस संसार के बीच भूतल में मनुष्यों से देवदेव महेश्वर जी वैसेही रूप से स्थापित होते हैं ॥ ४३ ॥ व उनकी प्रसन्नता से अलौकिक उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है इसके अनन्तर किसी समय सूर्यवंश में उपजे हुये इस संसार में सुरथनामक प्रसिद्ध भूपति राज्य से भ्रष्टहुये तदनन्तर आंसुओं से विकल लोचनोंवाले उसने अपने पुरोहित वसिष्ठ जी के समीप जाकर व प्रणामकर कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुमको मेरे स्वामी संस्थित होने पर भी इससमय मुझ मन्दभाग्यवाले की राज्य को शत्रुओंने बलसे हरलिया ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिससे फिरभी तुम्हारी प्रसन्नता से राज्य की भलीभांति स्थितिहोवै मेरी और

गति नहीं है ॥ ४७ ॥ वसिष्ठ जी बोले कि हे महाराज ! यदि ऐसा है तो समस्त सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्र में शीघ्रही मेरे वचन से जावो वहांपर उठीहुई भुजाके त्रिशूलवाले अग्रभाग पै स्थित हुये अन्धकासुर के शरीरवाले महादेवजी को भैरवरूप से थाप कर तदनन्तर हे नृप ! नृसिंहजी के मंत्र के द्वारा लाल फूलों से व धूपों तथा अरुण अनुलेपनों से उनको पूजो ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ तदनन्तर उस पराक्रमको प्राप्तहोकर तेज, बलसे संयुत होतेहुये तुम उनकी प्रसन्नतासे निस्सन्देह समस्त शत्रुओंको मारोगे ॥ ५१ ॥ परन्तु पवित्रता समेत तुमको शिवभगवान्‌का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ अन्यथा विघ्नको पावोगे

पित्वत्प्रसादेन नान्यामेविद्यतेगतिः ॥ ४७ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यद्येवंतन्महाराज मद्वाक्यात्सत्वरंव्रज ॥ ४८ ॥ हाटके श्वरजेक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदायके ॥ तत्रभैरवरूपेण स्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ ४९ ॥ भुजोद्यतत्रिशूलाग्रस्थितान्धककले वरम् ॥ नारसिंहेनमन्त्रेण ततःपूजयतंनृप ॥ रक्तपुष्पैस्तथाधूपै रक्तैश्चैवानुलेपनैः ॥ ५० ॥ ततस्तद्वीर्य्यमासाद्य तेजो वीर्य्यसमन्वितः ॥ हनिष्यस्यखिलाञ्छत्रूंस्तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ५१ ॥ परशौचसमेतेन सम्पूज्योभगवांस्त्वया ॥ ५२ ॥ अन्यथाप्राप्स्यसेविघ्नं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वा सराजासत्वरंययौ ॥ ५३ ॥ तत्रक्षे त्रे ततो देवं स्थापयामास भैरवम् ॥ ततःसम्पूजयामास नारसिंहेनभक्तितः ॥ ५४ ॥ मन्त्रेणप्रयतोभूत्वा ब्रह्म चर्य्यपरायणः ॥ ततोदशसहस्रान्ते तस्यमन्त्रस्यसंख्यया ॥ ५५ ॥ भैरवस्तुष्टिमापन्नः प्रोवाचतदनन्तरम् ॥ भैरव उवाच ॥ परितुष्टोस्मितेराजन्मन्त्रेणानेनपूजितः ॥ ५६ ॥ तस्मात्प्रार्थययच्चेष्टं तत्तेसर्वंददाम्यहम् ॥ सुरथउवाच ॥ श

यह मैंने सत्य कहाहै इसके अनन्तर उन वसिष्ठ जीके वचनको सुनकर उस राजाने शीघ्रही उस क्षेत्रमें गमन किया तदनन्तर भैरव देवको थापन किया उसके उपरान्त पवित्र होकर ब्रह्मचर्य्य में तत्पर होतेहुये भक्तिसे नृसिंह मंत्रके द्वारा भलीभांति पूजन किया उसके उपरान्त संख्या से उस मंत्रके दशहज़ारके अन्त में ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ भैरवजी प्रसन्नताको प्राप्तहुये तदनन्तर बोले भैरवजी बोले कि हे राजन् ! इस मंत्र से पूजन कियाहुआ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ५६ ॥ इसलिये जो प्रियहो

उसको मांगो मैं तुमको सब दूंगा सुरथ बोला कि हे सुरेश्वर ! मेरी राज्यको शत्रुओंने हरलियाहै तुम्हारी प्रसन्नतासे वह फिरभी वैरियोंसे सबओर रहित होवै व अन्यभी जो पुरुष यहां आकर इसीभांति व इसीही मंत्रसे तुमको पूजै हे विभो, सुरेश्वर, देव ! तुमको उसे सिद्धि देना चाहिये जैसे कि हजार मंत्रोंके अन्तमें मुझको सिद्धि दिया है ॥ ५७ । ५८ । ५९ ॥ वैसाही होगा यह उस राजासे प्रतिज्ञाकर महादेवजी अन्तर्धान होगये व सुरथ नेभी समरमें शत्रुओंको मारकर अपने राज्यको पाया ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभैरवमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥१४७॥

त्रुभिर्मेहृतंराज्यं त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ ५७ ॥ तन्मेभवतिभूयोपि शत्रुभिःपरिवर्जितम् ॥ अन्योपियःपुमान्नित्यं त्वा मिहागत्यपूजयेत् ॥ ५८ ॥ अनेनैवतुमन्त्रेण तस्यसिद्धिस्त्वयाविभो ॥ देयादेवसहस्रान्तेयथाममसुरेश्वर ॥ ५९ ॥ तथेतितंप्रतिज्ञाय गतश्चादर्शनंहरः ॥ सुरथोपिनिजंराज्यंप्रापहत्वारणेरिपून् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये भैरवमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ असंख्यातानितीर्थानि त्वयाप्रोक्तानिसूतज ॥ देवमानुषजातानि देवतायतनानिच ॥ १ ॥ तथाविस्तरतस्तानि राक्षसैःस्थापितानिच ॥ सूतपुत्रवदास्माकं यैर्दृष्टैःस्पर्शितैरपि ॥२॥ सर्वेषांलभ्यतेपूर्णं फलंचेत्सन्तितत्रच ॥ सूतउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागास्तत्रसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ तीर्थानांचैवलिङ्गानामाश्रमाणांतथैवच ॥ तत्रयःकुरुते स्नानं शङ्खतीर्थेसमाहितः ॥ ४ ॥ एकादश्यांविशेषेण सर्वेषांलभ्यतेफलम् ॥ यःपश्यतिनरोभक्त्या तत्रैकादशरुद्रि

दो० । चक्रपाणि नामक हरिहि थाप्यो अर्जुनवीर । इकसौ अरतालीसमहँ कहत सोई मतिधीर ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! देवताओं व मनुष्योंसे उपजेहुये देवमंदिरों व असंख्यक तीर्थों को तुमने कहा ॥ १ ॥ वैसेही राक्षसों से थापेहुये लिङ्गोंको विस्तारसे कहा व हे सूतपुत्र ! वहांपर यदि ऐसे तीर्थ होवैं कि जिनके देखने व छूने सेभी समस्त जनोंको पूर्णफल होवै तो उनको हमलोगों से कहो सूतजी बोले कि हे बडेभाग्यवाले मुनियो ! यह सत्यहै कि वहांपर तीर्थों व लिंगों तथा आश्रमों की संख्या नहीं विद्यमान है वहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य शखतीर्थ में स्नान करता है ॥ २ । ३ । ४ ॥ व जो विशेषकर एकादशी तिथि में स्नान

करताहै वह समस्त तीर्थोंके फलको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष वहां भक्ति से सिद्धेश्वर समेत एकादश रुद्रको देखताहै उसने समस्त महादेवों को देखा वैसेही श्रद्धासंयुत जो पुरुष ग्रहसे उपजीहुई देवीको देखताहै ॥ ५ । ६ ॥ उसने उन समस्त दुर्गाओंको देखाहै इसमें सन्देह नहीं है व जो पुरुष मनुष्यों को स्वर्ग देनेवाले गणेश जीको देखताहै ॥ ७ ॥ उसने समस्त गणनायकोंको भलीभांति देखा इसमें सन्देह नहींहै व जो पुरुष वहां बरगद के समीप शर्मिष्ठा से थापीहुई गौरी जीको देखताहै ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसने समस्त गौरियों को देखाहै व प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य वहांपर चक्रहाथवाले (विष्णुजी) को देखताहै उसने समस्त वासुदेवों को देखाहै

यः ॥ ५ ॥ सिद्धेश्वरसमंतेन दृष्टास्सर्वेमहेश्वराः ॥ ग्रहोत्थांपश्यतितथा योदेवींश्रद्धयान्वितः ॥ ६ ॥ तेनदुर्गास्समस्तास्ता वीक्षितानात्रसंशयः ॥ यःपश्यतिगणेशंच स्वर्गद्वारप्रदंनृणाम् ॥ ७ ॥ सर्वेविनायकास्तेन संदृष्टानात्रसंशयः ॥ शर्मिष्ठास्थापितांगौरीं न्यग्रोधेतत्रपश्यति ॥ ८ ॥ तेनगौरीसमस्तापि वीक्षिताद्विजसत्तमाः ॥ चक्रपाणिंचयःपश्येत्प्रातरुत्थायमानवः ॥ ९ ॥ वासुदेवास्समस्ताश्च तेनतत्रनिरीक्षिताः ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्वयासूततथास्माकं नाख्यातश्चस्मृतःकथम् ॥ १० ॥ कस्मिन्कालेविशेषेण सद्रष्टव्योमनीषिभिः ॥ सूतउवाच ॥ अर्जुनेनैवविप्रेन्द्राः क्षेत्रेत्रैवप्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥ शयनेबोधनेचैव प्रातरुत्थायमानवः ॥ स्नानंकृत्वासुभक्त्याच यःपश्येच्चक्रपाणिनम् ॥ १२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि तस्यनश्यन्तितत्क्षणात् ॥ भूभारोत्तारणार्थाय धर्म्मसंस्थापनायच ॥ १३ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितौविप्रा नरनारायणावुभौ ॥ कृष्णार्जुनौतदामर्त्ये द्वापरान्तेद्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ अवतीर्णौधरापृष्ठे मिथःस्नेहानुगौसदा ॥ नर

॥ ९ । १० ॥ कि विशेषकर किस समयमें वे वासुदेवजी बुद्धिमानों ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! तुमने हमलोगों से उसप्रकार नहीं कहा और स्मरण कैसे कियागया से देखने योग्य हैं सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! इसी क्षेत्रमें अर्जुनहीने प्रतिष्ठा किया है ॥ ११ ॥ जो पुरुष शयन, बोधन समय में प्रातःकाल उठकर व नहाकर उत्तम भक्तिसे चक्रपाणि जीको देखताहै ॥ १२ ॥ उसी क्षण उसके ब्रह्महत्यादिक पाप नाश होजाते हैं हे ब्राह्मणो ! भूमिभारके उतारने व धर्म के भलीभांति थापने के लिये ब्रह्माने नरनारायण दोनोंकी प्रार्थना कियाहै हे द्विजोत्तमो ! उस समय द्वापर के अन्त में मृत्युलोक के बीच सदैव स्नेह के अनुगामी कृष्ण व अर्जुनने

धरापृष्ठ में अवतार लिया व ये नरनारायण आपही भारको हरैंगे ॥ १३।१४।१५ ॥ जैसे कि राक्षसोंके विनाश करनेके लिये दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी धरणीतलमें अवतरे हैं वैसेही द्वापर में कृष्णने भी अवतार लिया है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब अर्जुनजी युधिष्ठिर की आज्ञासे दिल्ली नामक उत्तम नगरसे तीर्थयात्रा प्रति भली भांति आये हैं तब ॥ १७ ॥ एकान्तमें अपने भाई युधिष्ठिरको-द्रौपदी समेत देखकर प्रणाम किये होकर नम्रतासे झुकेहुये अर्जुनजी बोले॥१८॥अर्जुन बोले कि हे नृपोत्तम ! इससमय मैं अस्त्रके लिये प्राप्तहूं हे भूपते ! ब्राह्मणकी गौओंको छुड़ाने के लिये मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे अर्जुन ! वहांपर शीघ्रही जावो

नारायणावेतौ स्वयमेवहरिष्यथः ॥ १५ ॥ यथारक्षोविनाशाय रामोदशरथात्मजः ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे तथाकृष्णोपिद्वापरे ॥ १६ ॥ यदापार्थस्समायातस्तीर्थयात्रांप्रतिद्विजाः ॥ युधिष्ठिरसमादेशाच्छक्रप्रस्थात्पुरोत्तमात् ॥ १७॥ द्रौपद्यासहितंदृष्ट्वारहसिभ्रातरंनिजम् ॥ प्रोवाचप्रणतोभूत्वा विनयावनतोर्जुनः ॥ १८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ आयुधार्थमहंप्राप्तस्साम्प्रतंपार्थिवोत्तम ॥ द्विजधेनुविमोक्षाय ममाज्ञांदेहिपार्थिव ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरउवाच॥गच्छार्जुनद्रुतंतत्र नीयतेयत्रतस्करैः ॥ धेनवोद्विजवर्य्यस्य विमोक्षयधनंजय ॥ २० ॥ तीर्थयात्रांततोगच्छ यावद्द्वादशवत्सरान् ॥ ततःपापविनिर्मुक्तस्समेष्यसिममान्तिकम् ॥ २१ ॥ यस्सदारंनरंपश्येदेकान्तस्थन्तुबुद्धिमान् ॥ अपिचात्यन्तपापःस्यात्किम्पुनर्निजबान्धवम् ॥२२॥ तस्मान्नवीक्षयेत्कश्चिदेकान्तस्थंसभार्य्यकम् ॥ बान्धवंचविशेषेण परश्रेच्छुभमात्मनः ॥ २३ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय रथमारुह्यसत्वरम् ॥ धनुरादायबाणांश्च जगामतदनन्तरम् ॥ २४ ॥ नगाग्रेणगतागावो नीयन्तेतस्करै

जहांपर कि द्विजोत्तम की गौवें चोर लिये जातेहैं हे धनंजय ! उनको छुड़ाइये ॥ २० ॥ तदनन्तर बारहवर्षतक तीर्थयात्रा को जावो उसके उपरान्त पापसे छूटेहुये तुम मेरे समीप आवो ॥ २१ ॥ जो बुद्धिमान् भी एकान्त में टिकेहुये स्त्री समेत पुरुष को देखताहै वह अत्यन्त पापी होवै फिर अपने भाईको देखकर क्या कहना है ॥ २२ ॥ इसलिये यदि अपने शुभमें परायण होवै तो एकान्त में टिकेहुये स्त्री समेत किसी पुरुष को व विशेषकर भाईको न देखै ॥ २३ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व शीघ्रही रथपै सवार होकर तथा धनुष व बाणों को लेकर तदनन्तर वहांगये ॥ २४ ॥ जहां पर्वतके अग्रभागपै प्राप्त गौओं को चोर लिये जातेथे हे ब्राह्मणो ! मैंने

शस्त्रोंको धारेहुये समस्त चोरोंको क्षणभर में मारकर इसके अनन्तर समस्त गौओं को अपहरणकर आपही आदर कीहुई अपनी २ गौओंको महात्मा ब्राह्मणोंके लिये निवेदन किया ॥ २५ । २६ ॥ तदनन्तर अनेकों तीर्थों व नगरोंको भलीभांति देख कर पाण्डु जीके पुत्र अर्जुन जी स्नानके लिये इसी क्षेत्रमें भलीभांति आये ॥ २७॥ उन अर्जुन ने पहले भी प्राप्तहोकर उस क्षेत्रको देखाथा जब कि दुर्योधन संयुक्त वहां आयेथे ॥ २८ ॥ तदनन्तर पुरातनसमय जिस अर्जुनेश्वर नामक लिङ्ग को थापन कियाथा उसको व विशेषकर अन्य कौरवेन्द्रों व पाण्डवों के लिंगों को पुष्प, धूप व अनुलेपनों से भलीभांति पूजन किया इसके अनन्तर पाण्डुजी के पुत्र अर्जुन

बलात् ॥ अपहृत्यस्थितान्सर्वाञ्छितशस्त्रधरान्द्विजाः ॥ २५ ॥ अथहत्वात्तणाच्चौरान्गास्सर्वाःस्वयमादृताः॥ स्वाःस्वा निवेदयामास ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ २६ ॥ ततस्तीर्थान्यनेकानि संदृष्ट्वापत्तनानिच ॥ क्षेत्रेत्रैवसमायातःस्नानार्थं पाण्डुनन्दनः ॥ २७ ॥ तेनपूर्वमपिप्राप्य तत्क्षेत्रमवलोकितम् ॥ दुर्य्योधनसमायुक्तो यदातत्रसमागतः ॥ २८ ॥ तत स्संपूजयामास यल्लिङ्गंस्थापितम्पुरा ॥ अर्जुनेश्वरसंज्ञन्तुपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ २९ ॥ अन्येषांकौरवेन्द्राणां पाण्डवा नांविशेषतः ॥ अथसंचिन्तयामास मनसापाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥ अहंनरःस्वयंसाक्षात्कृष्णोनारायणःस्वयम् ॥ तस्मा दत्रकरिष्यामि चक्रपाणिंसुरेश्वरम् ॥ ३१ ॥ प्रासादोमानवैश्चैव यादृग्नास्तिधरातले ॥ कल्पान्तेपिननाशःस्यादस्य क्षेत्रस्यकर्हिचित् ॥ ३२ ॥ प्रासादोपितथाचायमत्रक्षेत्रेभविष्यति ॥ प्रतिष्ठांकारयामास ततस्तस्यसमाश्रितः ॥ ३३ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि शासनानिबहूनिच ॥ अन्यच्चप्रददौपश्चात्सतेषांपुष्टिदानकम् ॥ ३४ ॥ ततःप्रोवाचतान्सर्वान्क्रु

ने मनसे चिन्तन किया ॥ २९ । ३० ॥ कि मैं आपही साक्षात् नरहूं व कृष्णजी आपही नारायण हैं इसलिये यहांपर सुरनायक चक्रपाणि जीको करूंगा ॥ ३१ ॥ और जैसा कि भूतल में नहीं है वैसेही मन्दिर को मनुष्यों के द्वारा करूंगा व जिस प्रकार कभी इस क्षेत्रका कल्पान्त मेंभी नाश न होवै है ॥ ३२ ॥ वैसेही इस क्षेत्रमें यह मन्दिरभी होगा तदनन्तर भलीभांति टिकेहुये अर्जुनने उन चक्रपाणि जीकी प्रतिष्ठाकिया ॥ ३३ ॥ व अनेकों दानों और बहुतेरी शिक्षाओं को

देकर पश्चात् उन अर्जुनजीने उन ब्राह्मणोंकेलिये अन्य पुष्टिदानको दिया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर हाथोंको जोड़े खड़ेहुये अर्जुन ने उन सबोंसे कहा कि हे ब्राह्मणो ! उस उत्तम बदरिकाश्रम को छोड़कर मैं पाण्डु भूपतिके मन्दिर में मनुष्यही रूपसे पैदाहुआहूं व इस क्षेत्रमें मैंने प्रसिद्धिके लिये मन्दिरका निर्माण कियाहै॥३५।३६॥व श्रद्धासे पवित्र चित्त करके मेरे नामसे नरसंज्ञक निर्मित हुयेहैं इसलिये हे ब्राह्मणो ! आपलोगोंसे ये चक्रपाणि ऐसे सदैव कहने योग्यहैं कि जिससे जबतक चन्द्रमा सूर्य रहैं तबतक तीनों लोकमें मेरे नामसे प्रकाशताको प्राप्तहोवैं॥३७।३८॥वैसेही विष्णुके शयन,बोधन समयमें व विशेषकर चैत्रमहीने के बीच विष्णुवासर (द्वादशी) प्राप्त होनेपर बड़ा

ताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ नरोहंब्राह्मणाजातः पाण्डोर्भूमिपमन्दिरे ॥ ३५ ॥ मानुषेणैवरूपेण त्यक्त्वातांबदरींशुभाम् ॥ प्रसिद्ध्यर्थंमयाचात्र प्रासादोत्रविनिर्मितः ॥ ३६ ॥ मन्नाम्नानरसंज्ञश्च श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तस्मादेषभवद्भिश्च चक्रपाणिरितिद्विजाः ॥ ३७ ॥ कीर्तनीयस्सदायेन मन्नाम्नातुप्रकाश्यताम् ॥ त्रिषुलोकेषुनिर्य्याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३८॥ तथामहोत्सवःकार्य्यः शयनेबोधनेहरेः ॥ चैत्रमासेविशेषेण सम्प्राप्तेविष्णुवासरे ॥ ३९ ॥ त्रिषुलोकेषुत्यक्त्वान्यच्छुभांचबदरीमपि ॥ पूजनंचकरिष्यामि स्वयंविष्णोर्द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥ यस्तत्रदिवसेमर्त्यः पूजामस्यविधास्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंप्रयास्यति ॥ ४१ ॥ तथायेवासुदेवात्र क्षेत्रेकेचिद्व्यवस्थिताः ॥ तेषांचदर्शनाच्छ्रेयो नित्यं दृष्ट्वाचलप्स्यति ॥ ४२ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतैरुक्तोदाशार्हःपाण्डुनन्दनः ॥ तेषांतद्भारमावेश्य प्रतस्थेनान्तरात्मना ॥ ४३ ॥ ययौतीर्थानिचान्यानि कृतकृत्यस्ततःपरम् ॥ एवंतत्रस्थितोदेवश्चक्रपाणिरितिस्मृतः ॥ ४४ ॥ स्त्र

उछाह करना चाहिये ॥ ३९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! मैं तीनों लोकोंमें अन्यस्थान व शुभदायक बदरिकाश्रम को भी छोड़कर आपही विष्णुजीका पूजन करूंगा ॥ ४० ॥ उस दिन जो पुरुष इन चक्रपाणि जीका पूजन करैगा वह सबपापोंसे मुक्तहो विष्णुलोकको जावैगा ॥ ४१ ॥ वैसेही इस क्षेत्रमें जे कोई वासुदेव विशेषतासे स्थितहैं नित्य ही उनके दर्शनसे देखकर कल्याणको पावैगा ॥ ४२ ॥ उन ब्राह्मणोंसे बहुत अच्छा ऐसाही कहेहुये दाशार्हवंश या देशमें उत्पन्न पाण्डुके पुत्र (अर्जुन) जीने उन ब्राह्मणों के ऊपर उस भारको धर कर प्रस्थान किया अन्तःकरणसें नहीं किया ॥ ४३ ॥ व अन्य तीर्थोंको गमन किया तदनन्तर कृतकृत्य होगये इसभांति चक्रपाणि ऐसे

कहेहुये आपही हृषीकेश (विष्णु) जी वहांपर स्थित हुये जोकि प्राणियों के पापविनाशक हैं आजभी विष्णुजीकीकला प्राप्तहै इसलिये तीन एकादशियों के प्राप्तहोने पर याने शयन, बोधन व चैत्रमासकी एकादशीमें पहले कहे हुये विधानसे श्रद्धासंयुत पुरुषोंको विशेषकर वे चक्रपाणि देव पूजन व प्रणाम करने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ ४५ । ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येचक्रपाणिमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टचत्वारिंशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

यमेवहृषीकेशो जन्तूनांपापनाशनः ॥ अद्यापिचकलाविष्णोः प्राप्ताचैकादशीत्रये ॥ ४५ ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनतस्मा
च्छ्रद्धासमन्वितैः ॥ सदेवःपूजनीयश्च वन्दनीयोविशेषतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहा
टकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चक्रपाणिमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४८ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति रूपतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्विरूपोरूपवान्भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वंभ
गवतातेन ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ सृष्टिंकृत्वातिविस्तीर्णां यथोक्तांचचतुर्विधाम् ॥ २ ॥ ततस्सञ्चिन्तयामास रूपसंचय
संयुताम् ॥ एकामप्सरसंदिव्यां देवमायांसृजाम्यहम् ॥३॥ ततश्चसर्वदेवानां समादायतिलंतिलम् ॥ रूपंचनिर्म्ममेप
श्चादत्याश्चर्य्यमयींचताम् ॥४॥ यांदृष्ट्वाक्षोभमापन्नःस्वयमेवपितामहः ॥ ततस्तांप्रेषयामास कैलासम्प्रतिपद्मजः ॥५॥

दो० । एक अप्सराकुंड अरु दूजो तीरथरूप । इकसौ उंचासवें महँ वर्णित अतिहि अनूप ॥ सूतजी बोले किवैसेही वहां औरभी अति उत्तम रूपतीर्थ है जिसमें नहाया हुआ कुरूप पुरुष भलीभांति रूपवान् होवेहै ॥ १ ॥ पुरातन समय लोकों के कर्ता उन ब्रह्मा भगवान् जीने अतिविस्तारवाली यथोक्त चारप्रकार की सृष्टिको करके तदनन्तर चिन्तन किया कि रूपराशिसे संयुत एक दिव्य देवमाया अप्सराको मैं रचूं ॥ २ । ३ ॥ तदनन्तर समस्त देवताओंके तिल २ रूपको भलीभांति लेकर पश्चात् अतिआश्चर्य्यमयी उस अप्सरा को बनाया ॥ ४ ॥ कि जिसको देखकर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी आपही क्षोभको प्राप्तहुये तदनन्तर उसको कैलासपै पठाया ॥ ५ ॥

कि हे शुचिस्मिते ! महेश्वर देवके समीप जावो व प्रणामकरो तदनन्तर उसने शीघ्र ही कैलास पर्वतोत्तम को जाकर ॥ ६ ॥ वहां बैठेहुये पार्वती जीके मित्र शङ्करजी को देखा व शंकरजी भी उसको देखकर अत्यन्त आश्चर्य्य को प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ व उन्होंने समीप टिकी हुई पार्वती जीको देखकर पापिनी दृष्टिको न किया तदनन्तर हाथों को जोड़ खड़ी व परम श्रद्धासे सयुत उसने महादेवको प्रणामकर प्रदक्षिणा किया जबतक वह दाहिने बगलमें स्थित हुई तबतक उसके रूपसे खींचेहुये नेत्रोंवाले उन महादेवजीने मुखको दक्षिणमुख किया व जब वह शुभदायिनी अप्सरा प्रदक्षिणा के वशसे पश्चिम दिशामें हुई॥८।९।१०॥तब उसके लिये उन महादेवजीने पश्चिम ओर मुख किया

गच्छदेवंमहादेवं प्रणमस्वशुचिस्मिते ॥ ततःसासत्वरंगत्वा कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ६ ॥ अपश्यच्छङ्करंतत्र नि विष्टंपार्वतीसखम् ॥ शङ्करोपिचतांदृष्ट्वा विस्मयंपरमंगतः ॥ ७ ॥ सदृष्टिनाकरोत्पापां पार्श्वस्थांवीक्ष्यपार्वतीम् ॥ त तःप्रदक्षिणांचक्रे साप्रणम्यमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ श्रद्धयापरयायुक्ता कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ यावद्दक्षिणपार्श्वस्था तावद्द क्षंसदक्षिणम् ॥ ९ ॥ सचकारमहादेवस्तद्रूपाकृष्टलोचनः॥पश्चिमायांयदासाभूत्प्रदक्षिणवशाच्छुभा ॥ १० ॥ पश्चिमंव दनंतेन तदर्थंचकृतन्ततः ॥ एवमुत्तरसंस्थायां तस्यांदेवेनशम्भुना ॥ ११ ॥ उत्तरंवदनंकृत्य गौरीभीतेनचेतसा ॥ न ग्रीवांचालयामास कथंचिदपिसद्द्विजाः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ अब्रवीत्पार्वतींपश्चात्प्रणिप त्यमहेश्वरम् ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ पश्यपार्वतित्वंपत्युश्चेष्टितंगर्हितंयतः ॥ दृष्ट्वारूपवतींनारीं कृतंमुखचतुष्टयम् ॥ १४ ॥ अहमेतद्विजानामि नत्वयासदृशीक्वचित् ॥ अस्तिनारीतथान्यांच विजानामिसुरेश्वरीम् ॥ १५ ॥ हास्यस्य

ऐसेही हे उत्तम ब्राह्मणो ! उसको उत्तर दिशामें स्थित होनेपर शंभु देवजीने पार्वतीजीसे डरेहुये चित्तकरके उत्तर ओर मुखकर किसी प्रकार ग्रीवाको न चलाया॥११।१२॥ इसी अवसरमें वहां मुनिनायक नारद आये व पार्वती और पश्चात् महादेव जीको प्रणामकर बोले॥ १३ ॥ नारद बोले कि हे पार्वती जी ! तुम पतिके निन्दित कर्मको देखो क्योकि रूपवती स्त्रीको देखकर चार मुखोंको किया ॥ १४ ॥ मैं यह जानताथा कि कहींपर तुम्हारे समान स्त्री नहीं है परन्तु वैसेही अन्य भी सुरेश्वरी को

जानतांहूं ॥ १५ ॥ हे पार्वतीजी ! अन्य स्त्रियां महादेव जीके कामको जानकर आज तुम समस्त सुरस्त्रियों के हास्यके स्थानको प्राप्तहोंगी ॥ १६ ॥ हे विचक्षणे, देवि ! जैसा कि शिव जीसे उपजाहुआ चित्त इस निन्दित वेश्याके ऊपर हरगयाहै उसको जानतीहो ॥ १७ ॥ हे शुभे ! इसको भलीभांति लेकर अपने अंगमें भलीभांति थापन करैंगे परन्तु लज्जासंयुतहो वचनको नहीं कहते हैं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि नारदजी के वचन सुनकर व चारमुखवाले उन महादेवजीको विकृत देखकर बडे क्रोध से संयुतहुई ॥ १९ ॥ तदनन्तर स्त्री धर्ममें टिकीहुई पर्वतकी कन्या पार्वतीजीने शीघ्रही शिव देवजीके समस्त नयनोंको रोकलिया ॥ २० ॥ इसी अवसर में

सर्वासांदेवपत्नीनां ज्ञात्वान्याःकाममीशितुः ॥ १६ ॥ हतन्देविविजानासि यादृक्पदवीमद्य त्वंगमिष्यसिपार्वति ॥ समादायनिजेचाङ्के एतांसंस्थापयिष्यति ॥ अस्याउपरिवेश्याया निन्दितायाविचक्षणे ॥ १७ ॥ चित्तंशिवोद्भवम् ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा दृष्ट्वाकान्तंचतुर्मुखम् ॥ क्रोधेनमहपरंलज्जासमोपेतो नब्रवीतिवचःशुभे ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ सर्वनेत्राणिदेवस्यमहिषीधर्ममाश्रिता ॥ २० ॥ ताविष्टाविकृतंवीक्ष्यतंहरम् ॥ १९ ॥ ततोनिरोधयामाससत्वरंपर्वतात्मजा ॥ प्रलयस्यसमुत्थानं एतस्मिन्नन्तरेशैला विशीर्य्यन्तिसमन्ततः ॥ मर्य्यादांसन्त्यजन्तिस्म सर्वेचमकरालयाः ॥ २१ ॥ नियोगमुततत्तेन प्रलयस्यप्रजायते ॥ ब्रह्मसञ्जातंद्विजसत्तमाः ॥ तावद्ब्रह्मदिनंप्राप्तमन्ततवंसृष्टिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तेपिदेवींनमस्कृत्य तामुवाणस्सानिशाप्रोक्ता सर्वन्तोयमयंभवेत् ॥ २३ ॥ अथतत्रगणास्सर्वे भृङ्गिनन्दिपुरस्सराः ॥ नोचेत्कालःसमस्तस्य लोकस्यास्यभविष्यति ॥ २५ ॥ एचसुरेश्वरीम् ॥ २४ ॥ मुञ्चमुञ्चसुरश्रेष्ठ देवनेत्राणिपश्यतु ॥

पर्वत सबओर से फूटनेलगे व समस्त समुद्रोंने अपनी मर्यादाको छोड़दिया ॥ २१ व हे द्विजोत्तमो ! प्रलयकी भलीभांति उत्पत्तिहोगई तबतक सृष्टिके लक्षणोंवाला ब्रह्माका दिन अन्तताको प्राप्तहुआ ॥ २२ ॥ वितर्कणा में उसीसे प्रलयका नियोग होताहै वह ब्रह्माकी रात्रि कहीगई है कि जिसमें सब जलमय होवै है ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर जो सब भृंगि नन्दिपूर्वक गणथे उन्होंनेभी उस देवेश्वरी देवीको प्रणामकर कहा ॥ २४ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! देव (शिवजी) के नेत्रोंको छोड़ो २ नहीं

तो देखो कि इस समस्त संसारका अन्तहोजावैगा॥२५॥इसप्रकार कहीहुई भी उस देवीने जबतक न छोड़ा तबतक शिवदेवजीने मस्तकवाले अन्य उत्तम नेत्रको रचा ॥ २६ ॥ कृपासे संयुत जिन शिवजी से मनुष्योंकी रक्षा होती है वे शिवजी प्राणोंसेभी प्रियदेवीको मनाकरनेके लिये न समर्थहुये ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये कि तीन नयनहुये उसीसे देवोंने त्र्यम्बक कहाहै व संसारमें सुरेश्वर (शिव) जी त्र्यम्बक कहेजाते हैं ॥ २८ ॥ तदनन्तर पर्वतकी पुत्री (पार्वती) देवीने उन शिव जीको छोड़कर क्रोधसे लाललोचनोंवाली होतीहुई अगाड़ीखड़ीहुई उस तिलोत्तमासे कहा ॥ २९ ॥ कि हे पापिनि ! जिस लिये कि चारमुख के निमित्त मेरे पतिको

वंप्रोक्तापिसादेवी यावच्चनमुमोचसा ॥ तावद्देवेनलालाटंविसृष्टंलोचनम्परम् ॥ २६ ॥ कृपाविष्टेनलोकानां येनरक्षाप्रजायते ॥ नशक्तोवारितुन्देवीं प्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥२७॥ त्र्यम्बकंविबुधाःप्राहुस्त्र्यम्बकानियतोद्विजाः॥तस्मात्संकीर्त्यतेलोके त्र्यम्बकश्चसुरेश्वरः ॥ २८ ॥ ततस्सन्त्यज्यतन्देवं देवीपर्वतपुत्रिका ॥ प्रोवाचकोपरक्ताक्षी पुरस्थांतान्तिलोत्तमाम् ॥ २९ ॥ यस्मान्मेदयितःपापे त्वयारूपाद्विडम्बितः ॥ चतुर्वक्त्रकृतेतस्मात्त्वं विरूपाभवद्रुतम् ॥ ३० ॥ ततस्सासहसाभूता तत्क्षणाद्भग्ननासिका ॥ शीर्णकेशाबृहद्दन्ती चिपिटाक्षीमहोदरी ॥ ३१ ॥ अथवीक्ष्यनिजन्देहं तथाभूतावराप्सरा ॥ प्रोवाचवेपमानासा कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ ३२ ॥ अहंसम्प्रेषितादेवि प्रणामार्थंत्रिशूलिनः ॥ ब्रह्मणातेनचायाता युष्माकंचविशेषतः ॥ ३३ ॥ निर्दोषायाविरागायास्तस्माद्युक्तंनमेभवेत् ॥ शापंदातुंप्रसादम्मे तस्मात्त्वंकर्तुमर्हसि॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा दीनंसत्यंचपार्वती ॥ पश्चात्तापसमोपेता ततःप्रोवाचसुप्रियम् ॥ ३५ ॥

तुमने रूपसे विडम्बित किया उसी कारण तुम शीघ्रही विरूपिणी होवो ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसी क्षण वह अचानकही टूटीहुई नासिकावाली व गिरेहुये बालोंवाली व बड़े दाँतों वाली तथा भारी पेटवाली व चिपटे नयनोंवाली होगई॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर वैसीहुई उत्तम अप्सराने अपने शरीरको देखकर हाथजोडे खड़ी व काँपती हुई उस तिलोत्तमाने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे देवि ! त्रिशूलधारी (शिव) जीके प्रणामके लिये ब्रह्माने मुझको पठायाथा उसीसे तुमलोगोंके समीप विशेषकर आईहूं ॥ ३३ ॥ इसलिये स्नेहसे रहित व निर्दोषिणी मुझको शाप देनेके लिये योग्य नहीं होवैहै उसी कारण तुम मेरे ऊपर प्रसन्नता करने के योग्यहो ॥ ३४ ॥ तदनन्तर

उस तिलोत्तमाके उस दीन व सत्य वचनको सुनकर पश्चात्ताप से संयुत पार्वतीजी अति प्यारे वचनको बोलीं ॥ ३५ ॥ कि जिस लिये स्त्री के स्वभावसे तुम्हारे ऊ-
पर शीघ्रही क्रोधआगया उसी कारण आइये मेरे साथ भूतलमें चलो ॥ ३६ ॥ वहां मुझसे आपही उत्पन्न कियाहुआ रूपदायक तीर्थहै स्नान के लिये माघमहीने की
शुक्लपक्षवाली तीजमें जो स्त्री प्रभातकाल उठकर उस निर्मल जलवाले तीर्थ में स्नान करैहै वह निश्चयकर रूपवती होवैहै सूर्य्यमण्डल के नहीं दीखनेपर ॥ ३७ ।
३८ ॥ मैं सदैव माघमहीनेकी तीजमें उसमें स्नान करतीहूं आज वही तीजहै इस लिये स्नान के निमित्त निश्चय कियेहुई मैं वहां जाऊंगी ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले

स्त्रीस्वभावात्समायातः कोपोयत्त्वांप्रतिद्रुतम् ॥ तस्मादागच्छगच्छत्वं मयासार्द्धंतरातले ॥ ३६ ॥ तत्रास्तिरूपदंतीर्थंमयाचोत्पादितंस्वयम् ॥ माघशुक्लतृतीयायांस्नानार्थंविमलोदके ॥ ३७ ॥ यानारीप्रातरुत्थायतत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ सास्याद्रूपवतीनूनमदृष्टेरविमण्डले ॥ ३८ ॥ सदामाघतृतीयायांतत्रस्नानंकरोम्यहम् ॥ अद्यसातत्रयास्यामि स्नानायकृतनिश्चया ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासमादाय सादेवीतांतिलोत्तमाम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे रूपतीर्थंसमाययौ ॥ ४० ॥ तत्रस्नानंस्वयंचक्रे विधिपूर्वंसुरेश्वरी ॥ तस्याअनन्तरंसापि भक्तियुक्तातिलोत्तमा ॥ ४१ ॥ ततःकान्तिमती जाता तत्क्षणादेवभामिनी ॥ पूर्वमासीद्यथारूपा तथारूपाविशेषतः ॥ ४२ ॥ अथतुष्टिसमायुक्ता तांप्रणम्यसुरेश्वरीम् ॥ प्रोवाचविस्मयाविष्टो हर्षगद्गदयागिरा ॥ ४३ ॥ प्राप्तंरूपंमहादेवि त्वत्प्रसादाच्चिरंतनम् ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यामि

कि ऐसा कहकर व उस तिलोत्तमा को लेकर वे पार्वती देवीजी हाटकेश्वरज क्षेत्रमें रूप तीर्थपै भलीभांति आईं ॥ ४० ॥ व सुरेश्वरी (पार्वती) जीने आपही उस
में विधिपूर्वक स्नान किया उसके बाद भक्तिसंयुत उस तिलोत्तमा नेभी नहाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उसी क्षणही भामिनी (तिलोत्तमा) कान्तिमती होगई व
पहले जैसे रूपवालीथी विशेषकर वैसेही रूपवतीहुई ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उन सुरेश्वरी (पार्वती) जीको प्रणामकर प्रसन्नता संयुत व विस्मय से घिरीहुई तिलो-
त्तमाने हर्षके कारण गद्गदी वाणीसे कहा ॥ ४३ ॥ कि हे महादेवि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे चिरन्तन (पहले वाला) रूपप्राप्तहुआ मैं ब्रह्मलोक को जाऊंगी इससे

तुम मुझको आज्ञा देनेके लिये योग्यहो ॥ ४४ ॥ गौरी बोलीं कि हे पुत्रि ! जो कुछ तुम्हारे हृदयमें भलीभांति टिकाहो मैं उस वरदानको दूंगी इसलिये विश्वास किये हुये वरको मांगो क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ तिलोत्तमा बोली कि हे देवि ! मैं इस क्षेत्रमें अपने उत्तम तीर्थको करूंगी वह तुम्हारी प्रसन्नता से भूतल में प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ४६ ॥ तुमको समस्त स्त्रियोंके हितके लिये वर्षके अन्तमें उस तीर्थमें भी रूप व सौभाग्य को देनेवाले स्नानही को करना चाहिये ॥ ४७ ॥ गौरी बोलीं कि हेशुभे ! सदैव चैत्र महीनेकी शुक्लपक्षवाली तीजमें मध्याह्नके प्राप्तहोनेपर तुम्हारे वचनसे समस्तस्त्रियोंके हितके लिये मैं निस्सन्देह तुम्हारेनि-

मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४४ ॥ गौर्य्युवाच ॥ वरंयच्छामितेपुत्रियत्किञ्चिद्धृदिसंस्थितम् ॥ तस्मात्प्रार्थयविश्रब्धंनवृथाममद र्शनम् ॥ ४५ ॥ तिलोत्तमोवाच ॥ अहमत्रकरिष्यामि क्षेत्रेतीर्थंनिजंशुभम् ॥ त्वत्प्रसादेनतद्देवि यातुख्यातिन्धरात ले ॥ ४६ ॥ त्वयात्रापिकर्तव्यं वर्षान्तेस्नानमेवहि ॥ हितार्थंसर्वनारीणां रूपसौभाग्यदायकम् ॥ ४७ ॥ गौर्य्युवाच ॥ चैत्रेशुक्लतृतीयायां सदाहंत्वत्कृतेशुभे ॥ स्नानंतत्रकरिष्यामि मध्याह्नेसमुपस्थिते ॥ ४८ ॥ हितार्थंसर्वनारीणां त ववाक्यादसंशयम् ॥ यातत्रादिवसेनारी तस्मिन्स्तीर्थेकरिष्यति ॥ ४९ ॥ स्नानंसारूपसंयुक्ता भविष्यतिसुखान्विता ॥ स्पृहणीयाचनारीणां सर्वासांधरणीतले ॥ ५० ॥ पुरुषोपिस्वभक्त्यायस्तत्रस्नानंकरिष्यति ॥ सप्तजन्मानिरूपाढ्यस्स सौभाग्योभविष्यति ॥ ५१ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तातदादेव्यासाप्सराद्विजसत्तमाः ॥ ततःप्रभृतिसञ्जातंकुण्डमप्स रसाकृतम् ॥ ५२ ॥ स्नातमात्रोनरोयत्र सौभाग्यंलभतेद्विजाः ॥ नारीभिश्चविशेषेण पुत्रप्राप्तिरनुत्तमा ॥ ५३ ॥ तथा

मित्त उसमें स्नानकरूंगी उस दिनजो स्त्री उस तीर्थ में स्नानकरैगी वह रूपसे संयुत व सुखसंयुक्त और भूतलमें समस्त स्त्रियों के बीच चाहना के योग्यहोगी ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ व जो पुरुषभी निज भक्तिसे उसमें स्नान करैगा वह सात जन्मोंमें रूपसे संयुत व सौभाग्यवान् होगा ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस समय वह अप्सरा देवी से इसभांति कहीगई तबसे लगाकर अप्सरा से कियाहुआ वह कुण्ड उत्पन्नभया है ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसमें केवल नहाया हुआ पुरुष

सौभाग्य को प्राप्तहोता है व स्त्रियोंको विशेषकर अतिउत्तम पुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५३ ॥ व वैसेही और भी जो कुछ मनोरथ हृदयमें स्थितहोता है वह प्राप्तहोता है ॥ ५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअप्सरसःकुण्डोत्पत्तिर्नामऊनपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । यथा तामसी सात्त्विकी सिद्धिहोहिं सुखदाइ । इकसौ पच्यासवें महँ सोई कहत बनाइ ॥ सूतजी बोले कि उस उत्तम कुंडमें जो स्त्री नहाईहुई है वह

न्यदपियत्किंचिद्वाञ्छितंहृदयस्थितम् ॥ ५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽप्सरसःकुण्डोत्पत्तिर्नामऊनपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १४९ ॥ * ॥ *

सूतउवाच ॥ यानारीतत्रसत्कुण्डे स्नातासापार्वतीम्पुनः ॥ दृष्ट्वास्नातिततस्तीर्थे तस्मिन्रूपमयेशुभे ॥ १ ॥ पुनश्चपार्वतींपश्येच्छ्रद्धयापरयायुता ॥ सद्यस्सामुच्यतेकृत्स्नैराजन्ममरणान्तिकैः ॥ २ ॥ तत्रैवास्तिजयानाम पार्वत्याःकिङ्करीद्विजाः ॥ तयातत्रकृतंकुण्डं गौरीकुण्डसमीपतः ॥ ३ ॥ यातस्मिन्कुरुतेस्नानं तृतीयादिवसेबला ॥ सुतसौभाग्यसम्पन्ना साभवेत्पतिवल्लभा ॥ ४ ॥ तथान्यदपितत्रास्तिविजयाकुण्डमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाचवन्ध्यास्त्री जायतेपुत्रसंयुता ॥५॥ नचपश्यतिपुत्राणां कदाचिन्नाशनंद्विजाः ॥ नवियोगंचदुःखंच स्वप्नान्तेपिकदाचन ॥ ६ ॥ काकवन्ध्या

पार्वती को देखकर तदनन्तर फिर शुभदायक उस रूपमय तीर्थमें स्नान करै ॥ १ ॥ व परमश्रद्धासे संयुत होतीहुई जो फिर पार्वती जीको देखैहै वह जन्म से लगाकर मरण पर्य्यन्तके सब पातकोंसे छूटजातीहै ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहींपर पार्वती जीकी दासी जयानामक है उसने गौरीकुण्ड के समीप वहां कुण्ड कियाहै ॥ ३ ॥ तीज के दिन जो स्त्री उसमें स्नान करतीहै वह पुत्र, सौभाग्यसे संयुत व पतिको प्यारीहोतीहै ॥ ४ ॥ वैसेही वहांपर और भी उत्तम विजयाकुण्डहै उसमें नहाकर बन्ध्या स्त्री पुत्रसे संयुत होतीहै ॥ ५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कभी पुत्रोंका नाश नहीं देखती है और न कभी स्वप्नान्त मेंभी वियोग व दुःखको देखतीहै ॥ ६ ॥ व काकबन्ध्याभी

जो स्त्री उसमें स्नानको करै वह अनेक प्रकार के पुत्रोंको प्राप्तहोकर स्वर्गलोक में पूजित होतीहै ॥ ७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इन तीर्थोंके मध्यमें कहीं कोई ऐसा तीर्थहै कि जिसमें ब्राह्मण स्नानकरै व सिद्धिहोवै ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जो सत्ताईस लिङ्गहैं उनकेमध्य एक लिङ्गमें सब सिद्धि होवै है ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! कुवारकी अंधेरी चौदसि में उन लिङ्गोंके बीच पराक्रम से संयुत व सत्त्व युक्तवाले एक लिङ्गको जो पुरुष विधिसे आधीरात में पूजन करताहै व जो साधकोत्तम भक्त क्रमसे पहले कहेहुये पूजनको करताहै ॥ १० । ११ ॥ अङ्ग न्यासकोकर उच्चप्रकारसे छुरिका सूक्तको उच्चारण करताहै व उनके अगाड़ी

पियानारी तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ सापुत्रान्विविधाँल्लब्ध्वा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ एतेषांसूतती र्थानां तीर्थमस्तिसुसिद्धिदम् ॥ कच्चित्किञ्चिद्भवेत्सिद्धिर्यत्रस्नानंचरेद्द्विजः ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानि यानिसन्तिद्विजोत्तमाः ॥ तेषाम्मध्येभवेत्सिद्धिरेकस्मिन्निखिलाद्विजाः ॥ ९ ॥ एकस्यसत्त्वयुक्तस्य तथावीर्य्ययुत स्यच ॥ आश्विनस्यचतुर्दश्यां कृष्णायांद्विजसत्तमाः ॥ १० ॥ अर्द्धरात्रौविधानेन तेषांपूजाङ्करोतियः ॥ प्रागुक्तंयज नंभक्तो यःक्रमात्साधकोत्तमः ॥ ११ ॥ अङ्गन्यासंविधायोच्चैः क्षुरिकासूक्तमुच्चरेत् ॥ तेषामग्रेस्थितःसम्यक् पूजयित्वा चराचरम् ॥ १२ ॥ पृथगेकैकशोभक्त्या पश्चाद्दिक्षुपतीनथ ॥ अथागत्यगणेशोवै विकरालोभयानकः ॥ १३ ॥ लम्बो दरोवैनग्नश्च कृष्णदेहसमुद्भवः ॥ खड्गहस्तोऽब्रवीद्युद्धं प्रकुरुष्वमयासमम् ॥ १४ ॥ मुक्त्वैतत्कर्पटंभूमौ स्थविरोसिस सात्त्विकम् ॥ ततस्तत्कर्षणाच्चापि यस्तेनाशुप्रताडयेत् ॥१५॥ सतेनैवशरीरेण नीयतेतेनतत्पदे ॥ यत्रस्थानेजरामृत्युर्न

स्थितहो भलीभाति चराचर को पूजकर ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पश्चात् दिशाओं के स्वामियों को भक्ति से अलग एक २ पूजनकरै इसके उपरान्त कृष्ण शरीर से उपजेहुये नग्न व लंबे पेटवाले व विकराल तथा भयानक व तलवारको हाथ में लिये गणेशजी आकर बोले कि इस चिथड़े या अगौछे को भूमिमें छोड़कर मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि तुम वृद्ध व सात्त्विक समेत हो तदनन्तर उन गणेशजीके खीचने से भी जो पुरुष शीघ्रही उससे ताड़न करै है ॥ १३ । १४ । १५ ॥ वह उसी

शरीरसमेत उससे उस स्थानपै प्राप्त कियाजाता है कि जिस स्थानपै कभी वृद्धता व मृत्यु और शोक नहीं होताहै ॥ १६ ॥ वैसेही चित्रेश्वरीपीठमें एक सिद्धि कहीगई है कि वहांपर माघ महीनेमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको भलीभांति श्रद्धासंयुत जो पुरुष वेदमें कहीहुई विधि से पीठको पूजन करता है व पश्चात् महामांससे पूरित कपालको लेकर ॥ १७ । १८ ॥ यह कहता है कि आज मैं इस महामांसकी विक्री करूंगा यदि कोई सात्त्विक है तो वह इस सिद्धिको ग्रहणकरै ॥ १९ ॥ तदनन्दर हे उत्तम ब्राह्मणो ! जो मोललेवै व ग्रहणकरै वह उसको लेकर वहां जावै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ २० ॥ व उस स्थान के मध्यमें टिकाहुआ

शोकश्चकदाचन ॥ १६ ॥ तथाचित्रेश्वरीपीठे सिद्धिरेकाप्रकीर्तिता ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यांयःपीठंतत्रपूजयेत् ॥ १७॥ आगमोक्तविधानेन सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ॥ पश्चात्कपालमादाय महामांसप्रपूरितम् ॥ १८ ॥ अहमद्यकरोम्यस्य महामांसस्यविक्रयम् ॥ सिद्धिमेनांसगृह्णातु कश्चिचेदस्तिसात्त्विकः ॥ १९ ॥ ततश्चक्रयतेयश्च प्रगृह्णातिचसद्विजाः॥ सतमादायनिर्याति यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ हाटकेश्वरजंलिङ्गं चित्रशर्म्मप्रतिष्ठितम् ॥ तस्यस्थानस्यमध्यस्थोय स्तम्पूजयतेनरः ॥ २१ ॥ शिवरात्रौनिशीथेचपुष्पलक्षेणभक्तितः ॥ ससिद्धिमाप्नुयात्तूर्णंसशरीरेणतत्क्षणात् ॥ २२ ॥ सिद्धिस्थानानिसर्वाणितस्मिन्क्षेत्रेस्थितानिवै ॥ वीरव्रतप्रयुक्तानांमानवानांद्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ तामसीयात्वयाप्रोक्तासिद्धिरेतामहामते ॥ अनर्हाब्राह्मणेन्द्राणांश्रोत्रियाणांविशेषतः ॥ २४ ॥ शुद्धान्तःकरणैःसूतभूतहिंसा विवर्जितैः ॥ यथासम्प्राप्यतेमोक्षोब्राह्मणैःसुचिरादपि ॥ २५ ॥ तांस्त्वंब्रूहिमहाभागमोक्षोपायान्द्विजन्मनाम् ॥ सूत

जो पुरुष चित्रशर्म से प्रतिष्ठा कियाहुआ जो हाटकेश्वरज लिङ्गहै उन शिवजी को भक्तिसे शिवरात्रि को आधीरातमें लाखफूलों से पूजता है वह शरीरसमेत उसीक्षण शीघ्रही सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ २१ । २२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वीरोंके व्रतसे युक्त पुरुषों के समस्तसिद्धिस्थान उस क्षेत्रमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! तुमने जिस तामसीसिद्धिको कहाहै वह द्विजेन्द्रों व विशेषकर वेदपाठियों के अयोग्य है ॥ २४ ॥ हे सूतजी ! जिस प्रकार शुद्धचित्तवाले व प्राणियों की हिंसासे रहित ब्राह्मणों को बहुत देरसे भी मोक्ष भलीभांति मिलती है ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! ब्राह्मणोंके लिये तुम उन मोक्षके यत्नोंको कहो सूतजी बोले कि जैसे

ही दशरुद्रोंसे संयुत जो आनन्देश्वरजी हैं ॥ २६ ॥ जो उनके अगाड़ी कुण्ड में शास्त्रके मध्य देखेहुये कर्मसे नहाकर उनको पूजताहै वह पुरुष देवताओंसे भी दुर्लभ सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ और जो पुरुष माघ महीनेमें विश्वामित्रजीके कुण्डमें स्नान करता है व प्रातःकाल तिलसे पूरित पात्रको ब्राह्मण के लिये निवेदन करता है ॥ २८ ॥ वह समस्तपापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै यद्यपि दुष्टआचरणवाला व सर्व्व भक्षी व समस्तवस्तुको बेचनेवाला भी होवै ॥ २९ ॥ व श्रद्धासंयुत उपास में तत्पर जो पुरुष सुपर्णनामक देवजी के अगाड़ी अन्न जलको छोड़ मरनेपै उतारू होकर प्राणोंको त्यागताहै वह मनुष्य फिर नहीं

उवाच ॥ रुद्रैर्दशभिस्संयुक्तमानन्देश्वरकन्तथा ॥ २६ ॥ स्नात्वातदग्रतःकुण्डेशास्त्रदृष्टेनकर्मणा॥ ससिद्धिमाप्नुया न्मर्त्योदुर्लभान्त्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ माघमासेनरस्स्नातिविश्वामित्रहृदेचयः ॥ प्रत्यूषेतिलपात्रञ्चब्राह्मणायनिवेदयेत्॥ २८ ॥ ससर्वपापनिर्मुक्तोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ यद्यपिस्याद्दुराचारस्सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ २९ ॥ सुपर्णाख्यस्यदेवस्यपु रतःश्रद्धयान्वितः ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वाउपवासपरोनरः ॥ ३० ॥ यस्त्यजेन्मानवःप्राणान्नसभूयोभिजायते ॥ एवंसि द्धित्रयंप्रोक्तम्ब्राह्मणानांहितावहम् ॥ ३१ ॥ सात्त्विकंब्राह्मणश्रेष्ठास्संशितन्त्रिदशैरपि ॥ अन्यानितत्रतीर्थानिदेवतायत नानिच ॥ ३२ ॥ तानिस्वर्गप्रदान्याहुर्मुनयस्संशितव्रताः ॥एतद्वस्सर्वमाख्यातंक्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्॥३३॥हाटकेश्वर देवस्यसर्वपातकनाशनम् ॥ योत्रसर्वेषुतीर्थेषुस्नात्वापश्यतिभक्तितः ॥ ३४ ॥ सर्वाण्यायतनान्येवसपापोपिविमुच्य ते ॥ एतत्खण्डंपुराणस्यप्रथमम्परिकीर्तितम् ॥ ३५ ॥ कार्त्तिकेयप्रणीतस्यसर्वपापहरम्परम् ॥ यश्चैतत्कीर्तयेद्भक्त्या

उत्पन्न होताहै हे द्विजोत्तमो ! इसभांति ब्राह्मणों को हितदायक व देवताओं से भी प्रसंशित सात्त्विक सिद्धित्रय को याने तीन सिद्धियोंको कहा और जो वहां अन्य तीर्थ व देवमन्दिर हैं ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ उनको प्रसंशितव्रतवाले मुनियोंने स्वर्गदायक कहा है इस समस्तपातकों के विनाशक हाटकेश्वर देवजी के उत्तम सब माहात्म्य को मैंने तुमलोगों से कहा जो पुरुष यहां समस्ततीर्थोंमें नहाकर भक्तिसे समस्तक्षेत्रों या देवमन्दिरोंही को देखताहै वह पापीभी विशेषकर मुक्त होजाताहै स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहीहुई पुराणका यह उत्तम पहलाखण्ड कहागया जोकि समस्तपातकोंको हरताहै सावधान होताहुआ जो पुरुष इसको भक्ति से कीर्तनकरै

गा व सुनैगा ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ वह इससंसारमें बहुतेरे भोगोंको भोगकर स्वर्गको जावैगा समस्ततीर्थोंमें जोफल होताहै व सबदानोंसे जो फलहोताहै ॥३७॥ उसी फलको श्रद्धासंयुत सुनताहुआ पुरुष भलीभांति प्राप्तहोता है हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में इस पुराण को सुनकर करोड़जन्मों में उपजेहुये पातकसे निश्चयकर छूटजाता है व कुलको उधारताहै तदनन्तर वसन दानादि व भूषणों व गऊ, भूमि, सुवर्णके दानों और अनेकप्रकारके भी दानोंमे व्यास (वाचक) को पूजनाचाहिये जिसन व्यास (वाचक) को भलीभांति पूजाहै उसने समर्थवान् साक्षात् सत्यवतीजी के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यासको पूजन किया जो गुरु शिष्यके

शृणुयाद्वासमाहितः ॥ ३६ ॥ इहभुक्त्वामविपुलान्भोगान्याति त्रिविष्टपम् ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वदानैश्चयत्फलम् ॥ ३७ ॥ तत्फलंसमवाप्नोतिशृण्वञ्श्रद्धासमन्वितः ॥ श्रुत्वापुराणमेतद्धिजन्मकोटिमुद्भवात् ॥ ३८ ॥ पृथिव्याम्पातकाद्विप्रामुच्यतेकुलमुद्धरेत् ॥ ततोव्यासःपूजनीयोवस्त्रदानादिभूषणैः ॥ ३९ ॥ गोभूहिरण्यनिर्वापैर्दानैश्चविविधैरपि ॥ तेनसम्पूजितोव्यासःकृष्णद्वैपायनःप्रभुः ॥ ४० ॥ साक्षात्सत्यवतीपुत्रोयेनव्यासःसुपूजितः ॥ एकमप्यक्षरंयस्तुगुरुःशिष्येनिवेदयेत् ॥ ४१ ॥ पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वाचानृणीभवेत् ॥ एतत्पवित्रमायुष्यंधन्यंस्वस्त्ययनम्महत् ॥ ४२ ॥ यच्छ्रुत्वासर्वदुःखेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ४३ ॥ इतिश्री स्कान्देनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरसंवादेचतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायःप्रथमखण्डःसमाप्तः ॥ १५० ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसंबोधितस्तैस्तुलोकैःपुष्पस्तदाद्विजाः ॥ तानब्रवीत्ससंक्रुद्धोकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥ १ ॥ तद्वद

लिये एक अक्षर को भी निवेदन करता है ॥ ३८ । ३९ । ४० । ४१ ॥ तो पृथ्वीमें वह द्रव्य नहीं है कि जिसको देकर उऋण होवै यह कथा पवित्र, आयुर्बलदायक, धन्य व बड़ा मंगलकारक है ॥ ४२ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य समस्तदुःखोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायःप्रथमखण्डःसमाप्तः ॥ १५० ॥ ॥

दो० । पुष्परविहिं आराधिजिमि पायो गुटिकादोइ । इकसौ इक्यावने महँ चरितमनोहर सोइ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उससमय उनमनुष्योंसे इसभांति बोध

करायेहुये वे पुष्पजी अतिक्रोधितहो उनसे बोले कि मैं प्रतीकार करूंगा याने बदलेको लूंगा ॥ १ ॥ हे महाभागवाले जनो ! मुझसे उसको कहो कि जो देवता या देव या उसी क्षण विश्वासकरानेवाले सिद्धमन्त्र होवैं ॥ २ ॥ व आराधनकियाहुआ जो देव उसीक्षण मनुष्योंको वरदायक होवै जन बोले कि यहां उसीक्षण विश्वास-कारक एक देवजी स्थित हैं ॥ ३ ॥ और वैसेही इस धरातलमें एकदेवता सुनीजाती है पुष्प बोला कि यह कौन देवता कितनी दूर पै किस स्थानमें विशेष कर टिकाहै ॥ ४ ॥ वैसेही मेरे ऊपर दयाकर देवताको कहिये जन बोले कि हे विप्र जी ! हमलोगोंने सुना है कि उसीक्षण विश्वासके करानेवाले, याज्ञवल्क्यजी से

ध्वंमहाभागादेवोवादेवताथवा ॥ तथामेसिद्धमन्त्रावासद्यःप्रत्ययकारकाः ॥ २ ॥ आराधितोयथासद्योमानुषाणांवरप्रदः ॥ जनाऊचुः ॥ एकोदेवस्थितश्चात्रसद्यःप्रत्ययकारकः ॥ ३ ॥ तथैकादेवताचात्रश्रूयतेजगतीतले ॥ पुष्पउवाच ॥ कोसौदेवःकियद्दूरेकस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ४ ॥ तथाचदेवताम्ब्रूतदयांकृत्वाममोपरि ॥ जनाऊचुः ॥ चमत्कारपुरेसूर्य्योयाज्ञवल्क्यप्रतिष्ठितः ॥ ५ ॥ अस्तिविप्रश्रुतोस्माभिःसद्यःप्रत्ययकारकः ॥ आराधितोयथासद्योददेन्मनसिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यांफलहस्तःप्रदक्षिणाम् ॥ यःकरोतिनरस्तस्यह्यष्टोत्तरशतंद्विज ॥ ७ ॥ तस्यासिद्धिप्रदःस्यग्मनसावाञ्छितानिच ॥ तथान्याशारदानामदेवीकाश्मीरसंस्थिता ॥ ८ ॥ उपवासैःकृतैरेवसापिसिद्धिप्रदायिनी ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तेषाञ्जनानांसद्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ समुद्दिश्यचमत्कारंतस्मात्स्थानात्ततःपरम् ॥ चमत्कारपुरंप्राप्यसप्त

प्रतिष्ठा कियेहुये चमत्कारपुरमें सूर्य्यनारायण हैं जिसभांति आराधन कियेहुये वे उसीक्षण मनोभिलाषको देवै हैं उसको सुनो ॥ ५ । ६ ॥ कि हे ब्राह्मण ! रविवार सप्तमी तिथिमें फलको हाथमें लिये जो पुरुष उन सूर्य्यजी की एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको करता है ॥ ७ ॥ उस पुरुषको भलीभांति मनोरथ व सिद्धिदायक होते हैं वैसेही काश्मीरमें भलीभांति टिकीहुई अन्य शारदानामक देवी हैं ॥ ८ ॥ उपासों के करनेहीसे वे भी सिद्धिदायिनी होती हैं वह पुष्प द्विजोत्तम ! उन मनुष्यों के उस वचन को सुनकर ॥ ९ ॥ तदनन्तर उस स्थान से चमत्कार नगर को उद्देशकर व चमत्कारपुरको पाकर रविवार सप्तमीमें वहां आकर तदनन्तर स्नानकरके

पवित्र होकर सावधान होताहुआ वहां टिका जहांपर कि याज्ञवल्क्यजीसे कियेहुये सूर्यजी हैं ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर वैसेही परमश्रद्धासे संयुत वह नारियरफलोंको लेकरके एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको कर ॥ १२ ॥ तदनन्तर क्षुधासे सूखे या दुबले कण्ठवाला व थकाहुआ वह पुष्प ब्राह्मण सूर्य्याष्टकस्तोत्रोंसे जप करताहुआ उन सूर्यजीके आगे समीप बैठगया ॥ १३ ॥ तदनन्तर मण्डल ब्राह्मणादिकोंसे ॐकारस्वरमें प्राप्तहुआ व पद्मपञ्जरवाद्यों से ॐकारस्वरपै आश्रितभया ॥ १४ ॥ व पद्मपंजर वाद्यों और आदित्यव्रतसंज्ञादिक सामवेदवाले मन्त्रोंसे दृढ़भक्तिका भागी वह बड़ीभक्ति से अग्निहीको सेवताभया ॥ १५ ॥ वैसेही अथर्वणवेदसे

म्यांसूर्य्यवासरे ॥ १० ॥ तत्रागत्यततःस्नात्वाशुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ स्थितस्सन्तिष्ठतेतत्रयाज्ञवल्क्यकृतोरविः ॥११॥
ततःप्रदक्षिणांकृत्वाअष्टोत्तरशतन्तथा ॥ नारिकेराणिचादायश्रद्धयापरयायुतः ॥१२॥ ततःक्षुत्क्षामकण्ठस्सपरिश्रा
न्तस्तदग्रतः ॥ उपविष्टोजपंकुर्वन्सूर्याष्टैस्स्तवनैस्तथा ॥ १३ ॥ मण्डलब्राह्मणाद्यैश्चतारस्वरमुपस्थितः ॥ पद्मपञ्जरवा
द्यैश्चतारस्वरमुपाश्रितः ॥१४॥ पद्मपञ्जरवाद्यैश्चवह्निमेवप्रभक्तितः ॥ आदित्यव्रतसंज्ञाद्यैःसामभिर्दृढभक्तिभाक् ॥ १५ ॥
क्षुरिकामण्डपूर्वैश्चतथैवाथर्वणोद्भवैः ॥ यावदाग्रयोर्कवारस्तुनैवतुष्टोदिवाकरः ॥ १६ ॥ पौर्णमासीदिनेप्राप्तेवैराग्यंपर
मङ्गतः ॥ ततःपुष्पोविधायाथस्नानन्धौताम्वरःशुचिः ॥ १७ ॥ भूसाम्नासाध्यभूमिञ्चस्थण्डिलार्थन्द्विजोत्तमाः ॥ स्थ
ण्डिलंहस्तमात्रञ्चस्थण्डिलेप्रत्यकल्पयत् ॥ १८ ॥ अग्निमीलेतिमन्त्रेणततोग्निंसविधायच ॥ तृणैःपरिस्तृणानीति
कृत्वोपस्तरणन्तथा ॥१९॥ आब्रह्मन्नितिमन्त्रेणदत्त्वाब्रह्मासनन्ततः॥ सत्रामणिरितिप्रोच्यसमिधस्स्थापनञ्चयत् ॥२०॥

उपजेहुये क्षुरिकामुण्डपूर्वादिक मन्त्रोंसे श्रेष्ठ सूर्य्यवार तक स्तुतिकिया परन्तु दिनकरजी न प्रसन्नहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! पौर्णमासी दिन प्राप्तहोने पर परमवैराग्यको प्राप्त पुष्पने स्नानकर इसके अनन्तर धोये वसन पहिन व पवित्र होकर (भूसाम्ना) इस मन्त्रसे चौतरेके लिये साध्यभूमि अनुष्ठानके योग्य पृथ्वी को बनाकर स्थंडिल (सस्कारितभूमि) मे हाथभर प्रमाणवाले यज्ञचौतरेको कल्पित किया ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर उस पुष्प द्विजने (अग्निमीले) इस मन्त्रसे अग्निको धरकर वैसेही (तृणैः परिस्तृणाणि) इस मन्त्रसे कुशोंको बिछाकर ॥ १९ ॥ तदनन्तर (आब्रह्मन्) इस मन्त्रसे ब्रह्माको आसन देकर (सत्रामणि) ऐसे मन्त्रको

कहकर जो समिधा स्थापनहै उसको किया ॥ २० ॥ तदनन्तर (प्रोक्षणीरासादय) इसमन्त्रसे प्रोक्षण किया इसके अनन्तर क्रमपूर्वक ऋकादिक समस्तमन्त्रोंको पढ़ा ॥
२१ ॥ तदनन्तर उसने आचार्यकी विधिसे (आयन्तुदेवतास्थानं) ऐसे मन्त्रसे हव्यके स्थानमें अपने शरीरको कल्पनाकिया ॥ २२ ॥ व (सूर्यायत्वा) इस मन्त्रका
उच्चारण करतेहुये उसने ग्रहोंका प्रोक्षणकिया तदनन्तर (समिधासमिद्ध से) इस मन्त्रसे समिधाओंको धरकर ॥ २३ ॥ व (येतेशते) इस मन्त्रको उच्चारणकर भयंकर
अग्निदेवको बुलाया तदनन्तर (क्षोभयदेवय) ऐसे मन्त्रको उच्चारणकर उन अग्निदेवजीको जलाकर उसके उपरान्त जोकाली करालिकादिक सातजिह्वायें कही हैं ॥

मन्त्राणामथसर्वेषामृगादीनांयथाक्रमम् ॥ २१ ॥ ततःप्रकल्पयामास प्रोक्षणीरासादयेतिप्रोक्षणंकृतवांस्ततः ॥ हविस्थानेनिजन्तनुम् ॥ आयन्तुदेवतास्थानंसआचार्यविधानतः ॥ २२ ॥ ग्रहाणाम्प्रोक्षणञ्चैवसूर्य्यायत्वेतिचोच्चरन् ॥ समिधासमिद्धसइतिसन्धायसमिधन्ततः ॥ २३ ॥ येतेशतेतिमन्त्रेणकृत्वाचैवसुदारुणम् ॥ आह्वयामासवह्निञ्च ततःक्षोभयदेवय ॥२४॥ एवंमन्त्रेणकृत्वातंसमिध्यज्वलनन्ततः ॥ कालीकरालिकाद्याश्चसप्तजिह्वाश्चयाःस्मृताः ॥ २५ ॥ तासामावाहनंकृत्वाततोदीप्तेहविर्भुजि ॥ जुहुयामासमांसानिस्वानिचोत्कृत्यशस्त्रतः ॥ २६ ॥ लोमभ्यःस्वाहेति विदिशोदिग्भ्योदत्त्वाततःपरम् ॥ अग्नयेस्विष्टकृतेतियावदात्मानमाक्षिपत् ॥ २७ ॥ तावद्धृतस्तुसूर्य्येणस्वहस्तेनस मन्ततः ॥ पुष्पस्ससादरंतेनमाविप्रकुरुसाहसम् ॥ २८ ॥ नेदृग्घोमःकृतःक्वापिकदाचित्केनचिद्द्विज ॥ तुष्टोहञ्चमहाभा गब्रूहिकिङ्करवाणिते ॥ २९ ॥ अदेयमपिदास्यामियत्तेमनसिवर्तते ॥ पुष्पउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेशयदिदेयोवरोम

२४ । २५ ॥ उनका आवाहनकर तदनन्तर शस्त्रसे अपने मांसोंको काटकर जलतीहुई अग्निमें होम किया ॥२६॥ तदनन्तर (लोमभ्यःस्वाहा) इस मन्त्रसे विदिशाओं व
दिशाओंके लिये देकर (अग्नयेस्विष्टकृते) इस मन्त्रसे जबतक अपनाको प्रक्षेपकिया ॥ २७ ॥ तबतक उन सूर्य्यजीने अपने हाथसे उसपुष्पको सबओर से पकड़लिया
व आदरसमेत कहा कि हे विप्र ! साहसको मतकरो ॥ २८ ॥ हे द्विज ! कभी कहींपरभी किसीने ऐसा होम नहीं कियाहै हे महाभाग ! मैं प्रसन्नहूं कहिये तुम्हारे
लिये क्या करूं ॥ २९ ॥ जो तुम्हारेमनमें वर्त्तमानहै उस न देनेयोग्य को भी मैं दूंगा पुष्प बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदेनेयोग्य

है ॥३०॥ तो हे विभो ! मेरे लिये दो गोलियोंको देना चाहिये क्योंकि मणिभद्रनामक बड़ा धनवान् वैदिशनगरमें है ॥३१॥ जोकि कुबेरअंगोंवाला वह क्षत्रियदेव वृद्धता व सिमटोंसे संयुत व ब्राह्मणों को न माननेवाला व बड़ानीच और कृपण व मनुष्योंका दूषकहै ॥ ३२ ॥ हे सुरनायक ! सदैव जब उन गोलियों में से एकको मैं मुखमें करूं तब जैसा नगर में मणिभद्र है वैसाही मेरारूप विकल्पता (तर्कणा) रहित होवै ॥ ३३ ॥ व हे सुरेश्वर ! जब फिर उसको लेकर मैं दूसरी गोलीको फेंकूं तब मेरा सहजरूप होवै ॥ ३४ ॥ व उसके घरमें और जो कुछ धन धान्यादिक है वह सब मुझको ज्ञातहोवे तथा प्रजाओं में देनेयोग्य होवै ॥ ३५ ॥ अथवा तुमसे बहुत

म ॥ ३० ॥ तद्देयंगुटिकायुग्मंमदर्थंयाम्यहंविभो ॥ वैदिशेनगरेचास्तिमणिभद्रोमहाधनी ॥ ३१ ॥ कुब्जाङ्गःक्षत्रदेवस्सजरावलिसमन्वितः ॥ अब्रह्मण्योमहान्नीचःकीनाशोजनदूषकः ॥ ३२ ॥ तयोरेकांयदावक्त्रेसदाचैवकरोम्यहम् ॥ यादृशोनगरेचास्तिमणिभद्रःसुरेश्वर ॥ तदामेतादृशंरूपमविकल्पम्भवत्विति ॥ ३३ ॥ यदापुनर्गृहीत्वातांद्वितीयांप्रक्षिपाम्यहम् ॥ ततश्चसहजंरूपंममभूयात्सुरेश्वर ॥३४॥ अपरन्तस्ययत्किञ्चिद्धनधान्यादिकंगृहे॥तत्सर्वंविदितंमेस्यात्तथादेयंप्रजास्वपि ॥ ३५ ॥ किंवातेवहुनोक्तेनतस्यमित्राणिवान्धवाः ॥ व्यवहारास्तथासर्वेप्रकटास्स्युःसदैवहि ॥ ३६ ॥ नकश्चिज्जायतेतत्रविकल्पःकस्यचित्क्वचित् ॥ ममतस्यापियत्किञ्चित्सर्वंकृत्येषुसर्वदा ॥३७॥ भास्करउवाच ॥ गृहाणत्वंमहाभागगुटिकाद्वितयंशुभम् ॥ शुक्लंकृष्णञ्चवक्त्रस्थंविभेदजननम्महत् ॥ ३८ ॥ शुक्लयातस्यरूपञ्चतवनूनंभविष्यति ॥ कृष्णयापिपुनःपुष्पस्वंरूपञ्चभजिष्यसि ॥ ३९ ॥ पुष्पउवाच ॥ अपरंवदमेदेवसन्देहंहृदयेस्थितम् ॥ तत्त्वां

कहने से क्या है उसके मित्र,भाई, व समस्त व्यवहार सदैवही प्रकटहोवैं ॥ ३६ ॥ व सदैव समस्तकार्य्यों में मेरा जो कुछकार्य होवै उसमें किसीको व उस मणिभद्र कोभी कोई भ्रम न उत्पन्नहोवै ॥ ३७ ॥ भास्करजी बोले कि हे महाभाग ! मुखमें धरनेपर बड़े भेदको पैदाकरनेवाली व श्वेत तथा काली उत्तम दो गोलियों को तुम ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ हे पुष्प ! सफेदगोलीसे निश्चयकर तुम्हारा उसीका रूप होगा व फिर कालीसे भी अपने रूपको भजोगे ॥ ३९ ॥ पुष्प बोला कि हे देवदेवेश !

सुनसे पूछताहूं मुझसे कहिये ॥ ४० ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने सुनाहै कि रविवार सप्तमी
मेरे हृदय में और सन्देह टिकीहै आपके यशको बढ़ानेवाली उस सन्देहको तुमसे पूछताहूं मुझसे कहिये ॥ ४० ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने सुनाहै कि रविवार सप्तमी
में जो पुरुष तुम्हारी एकसौआठ प्रदक्षिणाओं को करता है ॥ ४१ ॥ फलहाथवाले उस मूर्खकेभी व पापी तथा समस्तदोषोंसे संयुत पुरुषको उसी क्षणही तद्विद् ('उसे
जाननेवाले) होतेहैं ॥ ४२ ॥ तीर्थयात्रामें तत्पर मुझ चतुर्वेदीको ऐसे होमकरने व सातरातोंके बीतने पर किसकारण प्रसन्न हुयेहो ॥ ४३ ॥ सूर्य्यजी बोले कि तुम
ने तामसभाव से यह सब किया उसीकारण तुमसे जो सब कियागया वह सम्पूर्ण वृथा होगया ॥४४॥ हे विप्रजी ! तामसभावपै टिकेहुये पुरुषोंसे जो कुछ कियाजाता

पृच्छामिदेवेशभवत्कीर्तिविवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ मयाश्रुतंसुरश्रेष्ठसप्तम्यांसूर्य्यवासरे ॥ यस्तेप्रदक्षिणानाञ्चकुर्य्यादष्टो
त्तरंशतम् ॥ ४१ ॥ तस्यत्वन्तत्क्षणादेवफलहस्तस्यतद्विदः ॥ मूर्खस्यापिचपापस्यसर्वदोषान्वितस्यच ॥ ४२ ॥ चतु
र्वेदस्यमेकस्मात्तीर्थयात्रापरस्यच ॥ सप्तरात्रेगतेतुष्टोहोमएवंविधेकृते ॥ ४३ ॥ सूर्य्यउवाच ॥ तामसेनतुभावेनत्वया
सर्वमिदंकृतम् ॥ तेनसर्ववृथाजातन्त्वयासर्वञ्चयत्कृतम् ॥ ४४ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेविप्रतामसम्भावमाश्रितैः ॥ तत्सर्वं
जायतेऽव्यर्थंनकिंवेत्तिभवानिदम् ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वाततस्सूर्य्यस्तस्यगात्राण्युपस्पृशत् ॥ खण्डितानिस्वहस्तेन निरु
जानिकृतानिच ॥ ४६ ॥ अब्रवीच्चपुनःपुष्पं प्रसन्नवदनंस्थितम् ॥ अनेनैवविधानेन यःकृत्वाकुशकण्डिकाम् ॥ ४७॥
सौम्यभावंसमाश्रित्य समिद्भिश्चार्कसम्भवैः ॥ तिलाक्षतैर्विशेषेण होमंयस्तुसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ छन्दःऋषिसमोपेतंए
वंयावत्सहस्रकम् ॥ तस्यदास्याम्यहंहृत्स्थमधिकेभ्योधिकंफलम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥

है वह सब व्यर्थ होजाता है क्या आप इसको नहीं जानतेहो ॥४५॥ ऐसा कहकर तदनन्तर सूर्यनारायणजी उसके कटेहुये अंगोंको अपनेहाथ से स्पर्शकिया व नीरोग
किया ॥ ४६ ॥ व प्रसन्नमुखवाले और खडेहुये पुष्पसे फिर कहा कि जो पुरुष इसी विधिसे कुशकंडिकाको करके व सौम्यभावमें भलीभांति टिककर मदार से उपजीहुई
समिधाओं से व विशेषकर तिलअक्षतों से जो पुरुष छन्द, ऋषिसंयुक्त इसभांति हजारआहुतियों तक हवन करै मैं उसको हृदय में टिकेहुये अभिलाप को दूंगा व
अधिकआहुतियोंसे अधिकफलहै ॥ ४७ । ४८ । ४९ ॥ ऐसा कहकर हज़ारकिरणोंवाले सूर्यजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये व दीपके समान नहीं देखेगये कि किसमार्ग

से निकलगये ॥५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुष्पवरलाभोनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥
दो० । माणिभद्रकी नारि जिमि लह्यो पुष्प द्विजनाह । इकसौबावन में सोई बरणत सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि जलको चुरानेवाले सूर्यजी से गोलीको पाकर व बहुतदिनों से भोजन को प्राप्तहोकर पुष्पभी वैदिशनगर को चला ॥ १ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वैदिशपुरमें जाकर प्रसन्नमनवाले उसपुष्पने उस सफेद गोलीको मुखमें किया ॥ २ ॥ व उसी क्षण वह उत्तमब्राह्मण मणिभद्र के समान हुआ इसके अनन्तर बाजार के मार्गको गया उसके उपरान्त उस घरमें

दीपवल्लक्षितोनैव केनमार्गेणनिर्गतः ॥५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पुष्पवरलाभोनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५१॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुष्पोपिगुटिकांलब्ध्वा भास्कराद्वारितस्करात् ॥ चिराद्भोजनमासाद्य प्रस्थितोवैदिशंप्रति ॥ १ ॥ ततो वैदिशमासाद्य सपुष्पोहृष्टमानसः ॥ शुक्लांतांगुटिकांवक्त्रे चकारद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ मणिभद्रसमोजातस्तत्क्षणादेवस द्विजः ॥ हट्टमार्गंगतस्सोथ तस्मिन्गत्वाथमन्दिरे ॥ ३ ॥ प्रविष्टस्सहसामध्ये प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ततश्चवारयामास तंषण्डोद्वारमाश्रितः ॥ ४ ॥ तस्यदत्त्वाथवस्त्राणि पश्चात्षण्डमुवाचसः ॥ षण्डकश्चित्पुमानत्र सम्यग्वेषकरोहिसः ॥ ५ ॥ ममवेषंममासाद्य भ्रमतेसकलेपुरे ॥ साम्प्रतंममगेहंच लोभेनाथागमिष्यति ॥ ६ ॥ सतुकृत्रिमवेषेण निषेध्यस्त्वयाहिसः ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय द्वारदेशंसमाश्रितः ॥ ७ ॥ पुष्पोवाथाऽब्रवीद्भार्य्यां माहिकाख्यांततःपरम् ॥ मा

जाकर प्रसन्न अन्तःकरण से अचानक बीचमें पैठगया तदनन्तर द्वारपै बैठेहुये नपुंसकने उसको मनाकिया ॥३।४॥ इसके अनन्तर उसकेलिये वसनोंको देकर पश्चात् उस पुष्पने नपुंसकसे कहा कि हे षण्ड ! कोई पुरुष यहां सब वेषोंको करता है ॥ ५ ॥ वह मेरे वेषको प्राप्त होकर समस्तनगरमें घूमता है इस समय लोभसे मेरे घरको आवैगा ॥ ६ ॥ बनावट के वेषसे वह तुम से रोंकनेयोग्य है वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वह द्वारस्थानपै भलीभांति बैठा ॥ ७ ॥ तदनन्तर पुष्पने माहिका

नामक स्त्रीसे कहा कि हे माहिके ! अपने नगरमें टिकेहुये वीरभद्रनामक तुम्हारे पिताको मैंने देखाहै जोकि दुःखसे विकल व मलिनवसनों से घिरे थे तदनन्तर क्रोधके कारण मुझसे ऐसे कठोरअाखरवाले वचन बोले ॥८।९॥ कि हे पापी ! धिक्कार है धिक्कारहै कि उस समय मुझ पिताको भी छलकर अत्यन्त रूपवती व उत्तम कटिवाली उस कन्याको तूने ब्याहाहै ॥ १० ॥ न तो कुछ उसके पिताको दिया और न कुछ उसीको दिया व हे पापात्मन् ! जैसी विधवानारी सदैव श्वेतवसन धारनेवाली होतीहैं वैसेही तुम धारण करातेहो व नष्टभोजन को देतेहो इसलिये तुम उस पिताको दशकरोड़ अशर्फियों को देवो और जो उसको रुचिपूर्वक होवै उस

हिकेऽद्यमयादृष्टस्त्वत्तातस्स्वपुरंस्थितः ॥ ८ ॥ वीरभद्रस्तुदुःखार्तो मलिनाम्बरसंवृतः ॥ अब्रवीच्चततःकोपान्मामेवंप्रुषाक्षरम् ॥ ९ ॥ धिग्धिक्पापत्वयातीव कन्यारूपवतीतदा ॥ वञ्चयित्वापिपितरं मामूढासासुमध्यमा ॥ १० ॥ नदत्तंतत्पितुःकिञ्चिन्नचतस्याश्चकिञ्चन ॥ विधवायादृशीलोकेश्वेताम्बरधरासदा॥११॥ त्वंधारयसिपापात्मन्नष्टंभोज्यंप्रयच्छसि ॥ तस्मात्तस्यपितुर्देहि त्वन्तुस्वर्णायुतायुतम् ॥१२॥ भूषणंवाञ्छितंतस्या यत्तद्देरुचिपूर्वकम् ॥ येनसंधार्य्यमाणेन सानन्दापरमाङ्गना ॥ १३ ॥ निरानन्दायतोनारी नगर्भंधारयेत्स्फुटम् ॥ निस्सन्तानोयतोवंशस्स्वर्गादपिक्षितिंव्रजेत् ॥ १४ ॥ सपतिष्यत्यसन्दिग्धं कुलाङ्गारेणचत्वया ॥ सात्वमानयवस्त्राणि गृहमध्याच्छुभानिच ॥ १५ ॥ यानिदत्तानिभूपेन व्यवहारैस्तदामम ॥ यच्चदत्तंप्रसादेन मयाप्राप्तंत्वयासह ॥ १६ ॥ त्वंसंधारयगात्रेस्वे शीघ्रंरसवतींकुरु॥ भोजनार्थैवशीघ्रंच त्वयासार्द्धंकरोम्यहम्॥ १७॥ एकस्मिन्नपिपात्रेच तदादेशादसंशयम् ॥ सापिसर्वंतथाचक्रे यदुक्तं

चाहेहुये भूषणको देवो कि जिसके भलीभाति धारण करनेसे उत्तम स्त्री आनन्दसमेत होतीहै ॥ ११ । १२ । १३ ॥ क्योंकि यह प्रकटहैं कि आनन्दहीन स्त्री गर्भको नहीं धारती है व जिसलिये कि सन्तानहीन वंश स्वर्गसे भी पृथ्वीतलको प्राप्तहोवै है ॥ १४ ॥ व कुलमें अंगाररूपी तुमसे वह वंश निरसन्देह गिरैगा इसलिये तुम घरके बीचसे उत्तमवसनों को लावो ॥ १५ ॥ जिनको कि उससमय भूपति ने मुझको व्यवहारों से दियाहै व प्रसन्नतासे जो दियाहै तुम समेत उसको मैंने पाया है ॥ १६ ॥ उन भूषणादिकों को तुम अपने शरीर में धारण करो व भोजनहीके लिये शीघ्रही रसोईकरो मैं एकही पात्रमें भी तुम्हारे साथ भोजन करूंगा उसकी

आज्ञासे प्रसन्न होतीहुई उसने भी वैसाही सब निस्सन्देह किया जोकि उस पुष्पने कहाथा॥ १७ । १८ ॥ व भेदरहित चित्तसे भोजन आच्छादनहीको किया तदनन्तर कामदेव से विकल पुष्पने मैथुनके लिये प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥ इसी अवसर में भलीभांतिउत्कण्ठित माणिभद्र प्राप्तहुआ व तबतक बार २ घुडककर उस नपुंसुकसे रोंकागया ॥ २० ॥ जबतक कि क्षुधासे दुबला व प्याससे विकल तथा भलीभांति उत्कण्ठित वह ब्यौहार से उठेहुये लालचके हेतु घरके बीचमें प्रवेशकरै ॥ २१ ॥ व जबतक उसने हठसे अपने घरमें प्रवेशकिया तबतक उस नपुंसक ने दण्डकाठसे मस्तक में मारा ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर मूर्च्छा से अतिडूबाहुआ वह भूमि

तेनहर्षिता ॥ १८ ॥ भोजनाच्छादनंचैव निर्विकल्पेनचेतसा ॥ ततःकामातुरःपुष्पो मैथुनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥ एत स्मिन्नन्तरेप्राप्तो माणिभद्रस्समुत्सुकः ॥ निषिद्धस्तेनपण्डेन भर्त्स्यंयित्वामुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ क्षुत्क्षामस्सपिपासार्तो व्य वहारोत्थलिप्सया ॥ प्रवेशंकुरुतेयावद् गृहमध्येसमुत्सुकः ॥ २१ ॥ हठाद्यावत्प्रवेशंस चकारनिजमन्दिरे ॥ तावच्चदण्ड काष्ठेन मस्तकेतेनताडितः ॥ २२ ॥ अथसपतितोभूमौ मूर्च्छयासम्परिप्लुतः ॥ कर्तव्यंनैवजानाति तत्प्रहारप्रपीडि तः ॥ २३ ॥ ततःकोलाहलोजातस्तस्यद्वारेगृहस्यच ॥ जनस्यसम्प्रयातस्य हाहाकारपरस्यच ॥ २४ ॥ तच्छ्रुतन्तुज नैःकैश्चिद्धिक्षण्डकिमिदंकृतम् ॥ वृत्तिभङ्गकृतेचैवं अथत्वंव्यन्तरार्दितः ॥ २५ ॥ इमामवस्थांयन्नीतस्सम्प्राप्तोपिन्न पाद्वधम् ॥ षण्डउवाच ॥ नवृत्तिर्गर्हितातेन नाहंव्यन्तरपीडितः ॥ २६ ॥ माणिभद्रोनचैषस्यादेषवेषकरःपुमान् ॥

में गिरपड़ा व उसकोप्रहार से व्यथितहो करने के योग्य वस्तुको न जानताथा ॥ २३ ॥ तदनन्तर उस घरके द्वारपै भलीभांति गयेहुये व हाहाकारमें तत्पर पुरुषका कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उसको कुछ मनुष्योंने सुना व कहा कि हे षण्ड ! धिक्कार है तुमने यह क्या किया जो तुम कि जीविका भंगके लिये बाहरीपुरुषसे ऐसे दुःखित हुयेहो ॥ २५ ॥ व जिसलिये इस दशाको प्राप्तकिया है उसी कारण राजासे मृत्युको भलीभांति पावोगे षण्डबोला कि उसने जीविका को नहीं निन्दा कियाहै और मैं बाहरीजनसे नहीं पीडितहुआहूं ॥ २६ ॥ व यह माणिभद्र नहीं है किन्तु यह वेषकारीपुरुष माणिभद्र के रूपको कर धन मांगने के

लिये भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ व हठसे पैठतेहुये इसको मैंने मस्तकमें ताडन किया और माणिभद्र घरके भीतर भोजन करके शय्यापै आश्रितहो ॥ २८ ॥ भलीभांति स्थित है और आम्रेड याने दुबाराकहनेवाले स्थितवृत्तान्त को नहीं जानताहै तदनन्तर बाहर उस कोलाहल को सुनकर पुष्पभी ॥ २९ ॥ माणिभद्र के रूप से द्वारदेश पै भलीभांति आया व बोला कि वेषधारी यह कोई नीच धनही मांगने के लिये नित्यही मेरेरूप से आताहै और इस नपुंसक ने भी कल्याण को नहीं अनुष्ठान किया ॥ ३० । ३१ ॥ क्योंकि मांगने के लिये भलीभांति प्राप्तहुये इस पुरुष को किस कारण मस्तक में मारा इसी अवसर में वह भी सम्पूर्णता से चैतन्यताको

माणिभद्रवपुःकृत्वा सम्प्राप्तोयाचितुन्धनम् ॥२७॥ हठात्प्रविशमानस्तु समयामूर्द्धिताडितः ॥ माणिभद्रोगृहस्यान्तर्भुक्त्वाशयनमाश्रितः ॥ २८ ॥ सन्तिष्ठतेनजानाति वृत्तंचाम्रेडमास्थितम् ॥ ततःपुष्पोपितच्छ्रुत्वा तंचकोलाहलंबहिः ॥ २९ ॥ मणिभद्रस्यरूपेण द्वारदेशंसमागतः ॥ अब्रवीन्नित्यमभ्येतिममरूपेणचाधमः ॥ ३० ॥ एषवेषधरःकश्चिद्याचितुंधनमेवहि ॥ एतेनापिचषण्डेन नचभद्रमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ यत्कुतोयंहतोमूर्द्धि याचितुंसमुपस्थितः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसोपि चेतनांप्राप्यकृत्स्नशः ॥ ३२ ॥ वीक्ष्यतेपुरतोयावत्तावदात्मसमन्नरम् ॥ संवर्तमानमालोक्य ततोवचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ कश्चौरस्संप्रविष्टोमे ममरूपेणमन्दिरे ॥ भेदयित्वाचषण्डाख्यमेवंदत्त्वाचवाससी ॥ ३४ ॥ यावद्भूपगृहंगत्वा त्वांषण्डेनसमन्वितम् ॥ वधाययोजयाम्येवतावद्द्रुततरंव्रज ॥ ३५ ॥ पुष्पउवाच ॥ ममरूपंसमाधायत्वमायातोगृहेमम ॥ शून्यंमत्वाततोज्ञातं त्वयामेगृहसंस्थितम् ॥ ३६ ॥ ततोन्टपायदास्यामि वधार्थंचनसंशयः ॥

पाकर ॥ ३२ ॥ जबतक अगाडी देखै तबतक अपने समान पुरुषको आगे भलीभांति वर्त्तमान देखकर तदनन्तर वचन बोला ॥ ३३ ॥ कि षण्डनामक (नपुंसक) को इस प्रकार वसन देकर व भेदकरके मेरेघरमें मेरेरूपसे कौन चोर पैठाहै ॥ ३४ ॥ जबतक राजा के घर जाकर षण्डसमेत तुमको वधके लिये युक्तही करूं तबतक अति शीघ्रही जाओ ॥३५॥ पुष्प बोला कि शून्यमानकर मेरेरूपको धरकर तुम मेरे घरमें आयेहो उसीसे तुमने मेरेघरमें स्थितहुई वस्तुको जानलिया ॥ ३६ ॥

उसी कारण हे पापी ! मारने के लिये निस्सन्देह नृपको दूंगा नहीं तो शीघ्रही चलेजावो यदि जीनेकी इच्छा करते हो ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कह कर तदनन्तर आपस में भुजाओं के युद्धसे लड़तेहुये वे दोनों अन्यपुरुषोंसे बड़े क्लेशसे मनाकिये गये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर माणिभद्र के जे निजजन आये वे उन दोनोके मध्यमें उत्तम माणिभद्र के भेदको नहीं जानते थे ॥ ३९ ॥ जोकि तारा के लिये बालि सुग्रीवके नाईं युद्ध करतेथे इस प्रकार क्रोधसे ताम्रके तुल्य लाल लोचनोंवाले व विवाद करतेहुये ॥ ४० ॥ राजद्वारपै प्राप्त होकर अपनेजनों से घिरेहुये वे दोनों खड़ेहुये व द्वारपै टिकेहुये दोनों राजा के लिये सूचित कियेगये व

नोचेद्गच्छद्रुतंपाप यदिजीवितुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाततस्तौतु बाहुयुद्धेनवैमिथः ॥ युध्यमानौनरै रन्यैः कृच्छ्रेणतुनिवारितौ ॥ ३८ ॥ ततस्तेस्वजनायेतु मणिभद्रस्यचागताः ॥ परंजानन्तिनतयोर्विशेषंमाणिभद्रक म् ॥ ३९ ॥ बालिसुग्रीवयोर्युद्धं तारार्थेयुध्यमानयोः ॥ एवंविवदमानौतु क्रोधताम्रायतेक्षणौ ॥ ४० ॥ राजद्वारंसमा साद्य स्थितौस्वजनसंवृतौ ॥ द्वारस्थौसूचितौराज्ञे सभातलमुपस्थितौ ॥ ४१ ॥ चौरश्चौरेतिजल्पन्तौ परस्परवधैषिणौ ॥ भूभुजावीक्षितौतौच द्विजौतुद्विजसत्तमाः ॥ ४२ ॥ नविशेषोस्तिनिश्चेतुं तथानैकोपिकायतः ॥ ततश्चव्यवहारेषु सम तीतेषुवैतदा ॥ ४३ ॥ पृष्टौगुह्येषुसर्वेषु प्रत्यक्षेषुविशेषतः ॥ वदतस्तौयथावृत्तं पृथक्पृथग्विस्थितम् ॥ ४४ ॥ ततस्तु स्वजनैस्सर्वै रेकंनीत्वाथवान्यतः ॥ पृष्टोगोत्रान्वयंसर्वं द्वितीयस्तुततःपरम् ॥ ४५ ॥ तेषामपितथासर्वं यथासम्यग्नि वेदितम् ॥ अथराजाबृहत्सेनस्सर्वांस्तानिदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ पत्नीचानीयतामस्य माणिभद्रस्यवागृहात् ॥ निजका

सभातलमें समीप प्राप्तहुये ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! परस्परवधकीइच्छावाले व चोर २ ऐसा कहतेहुये उन दोनों द्विजोंको भूपाल ने देखा ॥ ४२ ॥ वैसेही शरीर से निश्चय करनेकेलिये एकभी भेद न था तदनन्तर उससमय बीतेहुये समस्तगुप्तव्यवहारों व विशेषकर प्रत्यक्षव्यवहारों में पूंछेगये व वे दोनो अलग २ स्थित हो जैसा वृत्तान्त था उसको कहते थे ॥ ४३ । ४४ ॥ तदनन्तर समस्तस्वजनों ने एकको अन्यत्र लेजाकर सब गोत्र व वंशको पूंछा तदनन्तर दूसरे से पूंछा ॥ ४५ ॥ उन सबोंसे भी जैसाथा वैसाही सब भलीभांति निवेदनकिया इसके अनन्तर बृहत्सेनराजाने उन सबोंसे यह कहा ॥ ४६ ॥ कि इस माणिभद्रकी स्त्री घरसे

जाकर उससे कहा कि आवो पतिको जानो तुम प्रमाण होगी ॥४८॥
लाईजावै वह अपने पतिके जाननेमें प्रमाण होगी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर नृपसे उपजेहुये पुरुषों ने
तदनन्तर लज्जासे युक्त व छिपेहुये मुखवाली वह गई व आगे खड़ीहुई उससे राजाने कहा कि अपने पतिको भलीभांति जानो ॥ ४९ ॥ क्योंकि ये तुम्हारे स्वजन
व हमलोग निश्चयको नहीं जानते हैं तदनन्तर उस उत्तमअंगोंवाली स्त्रीने अपने चित्तमें चिन्तवन किया ॥ ५० ॥ कि ईर्ष्यारूपीअग्निमें प्राप्त मैं सदैव माणिभद्रसे
जलाईगई तदनन्तर पिताको छलकर ग्रहण कीगईहूं ॥५१॥ क्योंकि बहुतधनको कहकर पापीने कुछ नहीं दिया और मेरे दूसरेपुरुपने मृत्युलोकमें सुख किया ॥५२॥

न्तस्यविज्ञाने साप्रमाणंभविष्यति ॥ ४७ ॥ ततोगत्वाचसाप्रोक्ता पुरुषैर्नृपसम्भवैः ॥ आगच्छकान्तंजानीहि त्वंप्रमा
णंभविष्यसि ॥ ४८ ॥ ततस्साव्रीडयायुक्ताप्राच्छादितमुखागता ॥ नृपोग्रेसंस्थितांप्रोचे विद्धिसम्यग्निजंप्रियम् ॥४९॥
नवयंनिश्चयंविद्मो नचैतेस्वजनास्तव ॥ ततस्साचिन्तयामास निजचित्तेवराङ्गना ॥ ५० ॥ माणिभद्रेणदग्धाहं ई
र्ष्यावह्निगतानिशम् ॥ वञ्चयित्वातुपितरं गृहीतास्मिततः परम् ॥ ५१ ॥ नकिञ्चित्पाप्मनादत्तं जल्पयित्वाधनंबहु ॥
द्वितीयेनतुमेपुंसा मर्त्यलोकेकृतंसुखम् ॥ ५२ ॥ ददौवस्त्राणिरम्याणि तथैवाभरणानिच ॥ प्रदास्यतिचमेनूनं सुवर्णं
कथितंचयत् ॥ ५३ ॥ तद्गृह्णामिस्वहस्तेन माणिभद्रंद्वितीयकम् ॥ एवंनिश्चित्यमनसा दृष्ट्वावक्त्रंपरिप्लुतम् ॥
५४ ॥ प्रथमंमाणिभद्रंमा जहौचाथद्वितीयकम् ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं सर्वलोकस्यशृण्वतः ॥ ५५ ॥ अहंतातेनद
त्तास्य विवाहेचाग्निसन्निधौ ॥ द्वितीयोयंदुराचारो वेषकर्तासमागतः ॥ ५६ ॥ मांचप्रार्थयतेगुप्तं नानारत्नैःपृथग्विधैः ॥

व मनोहरवस्त्रों और वैसेही आभूषणोंको दिया व जो सुवर्ण कहाहै उसको मुझे निश्चयकर देवैगा ॥५३॥ इसलिये अपने हाथसे दूसरे माणिभद्रको ग्रहणकरूंगी ऐसा
मनसे निश्चयकर व चञ्चलमुखको देखकर उसने पहले माणिभद्रको त्यागकिया व इसकेअनन्तर दूसरे को ग्रहण किया और समस्तमनुष्योंके सुनते हुये कहा ॥
५४ । ५५ ॥ कि विवाहमें अग्निके समीप पिताजी ने मुझे इसको दियाहै व दुष्टआचरणवाला, यह दूसरा वेषकारी आयाहै ॥ ५६ ॥ और अनेकभांतिवाले नाना

प्रकार के श्लोंके द्वारा चुपके से मेरी प्रार्थना करता है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! क्रोधितहो राजाने उस दुष्टबुद्धिवाले माणिभद्रको शाखामें लटकाने की आज्ञा दिया इसके अनन्तर इसी अवसरमें वह बधिक (हिंसक) जनोंको समर्पण कियागया ॥ ५७ । ५८ ॥ उस समय हिंसकजनों से लियेजातेहुये उसने इन श्लोकों को पढ़ा कि निर्दयत्व, द्रोह तथा विशेषकर कुटिलता ॥ ५९ ॥ व अपवित्रता और निर्घृणता ये स्वभाव से पैदाहुये स्त्रियोंके दोष हैं ये स्त्रियां भीतर विषमयी और बाहरीभाग मे मनोहर होतीहैं ॥ ६० ॥ व सदैवही स्त्रियां गुञ्जाफल (घुंघुची) के समान आकारवाली होतीहैं और जिसशास्त्रको शुक्रजी जानते हैं व जिसको

ततस्तुपार्थिवःक्रुद्धस्तस्यशाखावलम्बनम् ॥ ५७ ॥ आदिदेशद्विजश्रेष्ठा माणिभद्रस्यदुर्मतेः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसोथ वधकानांसमर्पितः ॥ ५८ ॥ वधकैर्नीयमानस्तु श्लोकानेतांस्तदापठत् ॥ निर्दयत्वंतदाद्रोहंकुटिलत्वंविशेषतः ॥ ५९ ॥ अशौचंनिर्घृणत्वंच स्त्रीणांदोषास्स्वभावजाः ॥ अन्तर्विषमयाह्येता वहिर्भागेमनोरमाः ॥ ६० ॥ गुञ्जाफलसमाकारायोषितस्सर्वदैवहि ॥ उशनावेदयच्छास्त्रं यच्चवेदबृहस्पतिः ॥ ६१ ॥ मन्वादयस्तथान्येपि स्त्रीबुद्धेस्तन्नकिञ्चन ॥ पीयूषमधरेयासां देहेहालाहलंविषम् ॥ ६२ ॥ आस्वाद्यतेधरस्तेन हृदयंचप्रपीड्यते ॥ अरक्तकोयथारक्तो नरःकामीतथैवच ॥ ६३ ॥ हृतसारस्ततस्सोपि पादमूलेनिपात्यते ॥ संसारविषवृक्षस्य कुकर्मकुसुमस्यच ॥ ६४ ॥ नरकार्तिफलस्योक्ता मूलमेषानितम्बिनी ॥ कस्यनोजायतेत्रासो दृष्ट्वादूरादपिस्त्रियम् ॥ ६५ ॥ संसारभ्रमणंनारी प्रथमेपिसमाग

बृहस्पतिजी जानते हैं ॥ ६१ ॥ व मनुआदिक तथा अन्यभी जिस शास्त्रको जानते हैं वह स्त्रीकी बुद्धिके सामने कुछ नहीं है कि जिन स्त्रियोंके ओंठमें अमृत व शरीर में हालाहल विषहै ॥ ६२ ॥ उसी कारण ओंठ आस्वादन कियेजातेहैं व हृदय अति पीडितकियाजाता है व जैसे अनुरागहीन कामीपुरुष हरेहुये बल या सारांशवालाहोकर चरणों के समीप गिरायाजाता वैसेही जो अनुरागी कामीपुरुष चरणमूलमें निपातित होता है व नरक के दुःखरूपीफलवाले व कुकर्मरूपफूलवाले संसाररूपी विषवृक्ष की यह नितम्बिनी (उत्तमनितम्बवाली स्त्री) जड़ कहीगई है व दूरसे भी देखकर किसको डर नहीं होताहै अर्थात् सबही को होताहै ॥ ६३।६४।६५ ॥

स्त्री प्रथमसंयोगमें भी अग्नि की प्रदक्षिणारूपन्यायके बहानेहीसे संसार के भ्रमणको अतिशयकरके दिखलातीहै ॥ ६६ ॥ व ये स्त्रियां नित्यप्रति निर्घृणता व निर्दयता से विशेषकर जडता के भावसे तीनोंकुलों को दूषित करती हैं ॥ ६७ ॥ तीनों कुलोंको व घर, यश व श्वेतकियेहुये विजयको दीपककी शिखा (लौ) के समान स्त्री अकार्य से काला करती है ॥ ६८ ॥ व धर्मरूपीवृक्ष को वाताली (आंधी) व चित्तरूपीकमलको चन्द्रमा की दीप्ति और कामरूपसमुद्र में ग्राहरूप व मोक्षमें पुष्टअर्गला बेडकनरूप नारी को किसने रचाहै ॥ ६९ ॥ सन्तानरूपी राशि या मायाका कारागृह व संसाररूपी भँवरकी बौर व स्वर्गमार्गके

मे ॥ वह्निप्रदक्षिणान्यायव्याजेनैवप्रदर्शयेत् ॥ ६६ ॥ एतास्तुनिर्दयत्वेन निर्घृणत्वेननित्यशः ॥ विशेषाज्जाड्यभावे नदूषयन्तिकुलत्रयम् ॥ ६७ ॥ कुलत्रयंगृहंकीर्तिं विजयंधवलीकृतम् ॥ कृष्णंकरोत्यकृत्येन नारीदीपशिखेवतु ॥ ६८ ॥ धर्म्मवृक्षस्यवाताली चित्तपद्मशशिप्रभा ॥ सृष्टाकामार्णवग्राहा केनमोक्षदृढार्गला ॥ ६९ ॥ कारासन्तानकूटस्यसं सारावर्तवागुरा ॥ स्वर्गमार्गदृढागर्ता पुंसांस्त्रीवेधसाकृता ॥ ७० ॥ वेधसाबन्धनंकिञ्चिन्नृणान्दातुमदृश्यत ॥ स्त्रीरूपेण ततःकोपि पाशोयंतुदृढीकृतः ॥ ७१ ॥ इत्येवंबहुधासोपिविललापसुदुःखितः ॥ स्त्रीचिन्तांबहुधाकृत्वाआत्मानंचाप्यग र्हयत् ॥ ७२ ॥ अहोमयापिज्ञातंचलब्धंसंसारजंफलम् ॥ नकदाचिन्मयादत्तं तृष्णाव्याकुलचेतसा ॥ ७३ ॥ ऐश्वर्य्येपि स्थितेभूरि नमयासुकृतंकृतम् ॥ कदाचिन्नैवदत्तंच नहुतंचहुताशने ॥ ७४ ॥ अथवासत्यमेवोक्तंकेनापिचमहात्मना ॥ कृपणेनसमोदाता नभूतोनभविष्यति ॥ ७५ ॥ अस्पृष्ट्वापिचवित्तंस्वं यःपरेभ्यःप्रयच्छति ॥ शरणंकिंप्रपन्नानि विषव

लिये बड़ापुष्ट गढ़ारूपस्त्रीको ब्रह्माने पुरुषों के लिये कियाहै ॥ ७० ॥ ब्रह्माने मनुष्योंको कुछ बन्धन देने के लिये देखा तदनन्तर स्त्रीरूपसे कोई भी अपूर्वफन्दी को पुष्टकिया ॥ ७१ ॥ इसीप्रकार अति दुःखितहो उसने भी बहुत प्रकार से विलाप किया व बहुतभांतिसे स्त्रीकी चिन्ताकर अपनीभी निन्दा किया ॥ ७२ ॥ कि यह आश्चर्य है कि मैंनेभी जाना व संसारसे उपजेहुये फलको पाया परन्तु तृष्णाके कारण विकलचित्तसे मैंने कभी कुछ नहीं दिया ॥ ७३ ॥ व ऐश्वर्यके भी स्थित होनेपर मैंने बहुत से पुण्यको न किया व कभी न दिया और न अग्निमें हवन किया ॥ ७४ ॥ अथवा किसी महात्मानेभी सत्यही कहाहै कि कृपणके समान दानी न हुआहै न होगा ॥ ७५ ॥

जोकि नहीं छूकर भी अपने धनको अन्यजनों के लिये देताहै क्या शरण में प्राप्तहुये हैं व क्या विषके समान मारते हैं॥ ७६ ॥ जिस लिये कि कृपण धनों को न देताहै न भोग करता है व दान, भोग, नाश, द्रव्यकी तीन गतियां हैं जो पुरुष न देताहै न भोग करताहै उसकी तीसरी गति (नाश) होतीहै ॥ ७७ ॥ इस के अनन्तर विन दानके ऐश्वर्य्यवाले धनीजन कृपणोंके अगाड़ी गिनेजाते हैं क्यों कि जो प्यासको नहीं नाश करता है वह समुद्रभी मरु (निर्जलदेश) ही माना गयाहै ॥ ७८ ॥ कृपणजनके समीप मानों इस प्रार्थना से धन प्राप्तहुये हैं कि हे कृपणनरो ! आयेहुये पुरुषोंके लिये तुमलोग मुझको प्राणोंकी नाई मतदीजिये-

न्मारयन्तिकिम् ॥ ७६ ॥ नदीयन्तेनभुज्यन्ते कृपणेनधनानियत् ॥ दानंभोगोनाशस्तिस्रोगतयोभवन्तिवित्तस्य ॥ योनददातिनभुङ्क्तेतस्यतृतीयागतिर्भवति ॥ ७७॥ धनिनोथदानविभवागण्यन्तेधुरिदरिद्राणाम् ॥ योनहन्तिपिपासा मतःसमुद्रोपिमरुरेव ॥ ७८ ॥ असूनिवमामुञ्चतयूयंप्रागतेभ्योनृपेभ्योभोकृपणाः ॥ कृपणजनसंनिकाशं प्रार्थनयेती वप्राप्तानि ॥ ७९ ॥ नलभन्तेभोगान्भोक्तुं स्वकर्मणाकृपणाः ॥ मुखपाकःकिलभवतिद्राक्षापाकेबलिभुजाम् ॥ ८० ॥ नादातव्यंसतिविभवे सतिविभवेनभर्तव्याः ॥ यदिहमधुकराणांसञ्चितमर्थंहरन्त्यन्ये ॥ ८१ ॥ सञ्चितंद्विजवरेन दीयतेसंचितंनचक्रतौप्रयुज्यते ॥ तत्कदर्य्यपरिरक्षितंधनंचौरपार्थिवगृहेषुभुज्यते ॥ त्यागोगुणोवित्तवतांवित्तंत्यागव तांगुणः ॥ ८२ ॥ परस्परंवियुक्तौतु कुरुतश्चविडम्बनाम् ॥ किन्तयाक्रियतेलक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ॥ ८३ ॥ याचवे

गा ॥ ७९ ॥ कृपण अपने कर्मसे भोगोंको भोगने के लिये नहीं पातेहैं क्योंकि प्रसिद्धहै कि दाख (मुनक्का) के पाकमें कौवोंका मुख पकजाता ॥ ८० ॥ विभवहोने पर न देना चाहिये किन्तु देना चाहिये व ऐश्वर्य के होनेपर नहीं पालने के योग्य हैं किन्तु पालनेयोग्य हैं क्योंकि इस संसारमें मधुमक्खियों की इकट्ठा कीहुई वस्तुको औरनर हरलेते हैं ॥ ८१ ॥ जो इकट्ठा कीहुई द्रव्य द्विजोत्तमके लिये नहीं दीजाती है जो सञ्चितवस्तु यज्ञमें नहीं प्रयोग कीजातीहै कृपणसे सबओर रक्षा कियाहुआ वह धन चोरों व राजाओंके घरोंमें भोगाजाताहै धनवान् पुरुषों का दान गुणहै व दानियों का धन गुणहै ॥ ८२ ॥ वे दोनों याने दानी व धनी आपस में वियोग को

प्राप्तहोकर विडम्बना करते हैं उस लक्ष्मीसे क्या कियाजाता है जोकि केवल वधू (वहू) की नाई है ॥ ८३ ॥ क्योंकि जो सामान्यावेश्याके समान राहियों से भी भोग कीजाती है वह रक्षकों से द्रव्यकी गरमी से सौतेली माके समान ग्रहण होवैहै ॥ ८४ ॥ इस प्रकार कृपणकी गरमीसे वह भूमि भलीभांति ध्यानकी जाती है व कृपणकी प्रसन्नता से शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ८५ ॥ क्योंकि उस कृपणकी गरमी से उस धनको मनुष्य इकट्ठा करता है इसभांति बहुतभांति के वचनों को बकते हुये माणिभद्रको राजासे आज्ञादियेहुये उन पुरुषों ने लेजाकर कठोरआखरवाले वचनों से निन्दाकिया व बहुत बकतेहुयेही उसको शाखावलम्बन किया

श्येवसामान्या पान्थिकैरपिभुज्यते ॥ अर्थोष्मणाभवेद्रक्षैर्विमातृग्रहिणायतः ॥८४॥ एवंसन्ध्यायतेभूमिःकृपणस्योष्मणाहिसा ॥ कृपणानांप्रसादेन शेषोधारयतेमहीम् ॥ ८५ ॥ यतस्तंसञ्चितंवित्तं कुर्वतेतस्यचोष्मणा ॥ एवंबहुविधावाचःप्रलपन्माणिभद्रकः ॥ ८६ ॥ नीत्वातैःपार्थिवोद्दिष्टैर्निन्दितंपरुषाक्षरम् ॥ बहुधाप्रलपञ्चैवकृतःशाखावलम्बनः ॥८७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमणिभद्रोपाख्यानन्नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुष्पोपितांसमादाय माहिकाख्यांवराङ्गनाम् ॥ सतदाप्रययौहृष्टो माणिभद्रस्यसत्वरम् ॥ १ ॥ शङ्खतूर्यनिनादेन सर्वैस्तैःस्वजनैर्वृतः ॥ नकश्चित्तत्रसंभूतोतद्विकल्पसमुद्भवः ॥ २ ॥ मार्तण्डस्यप्रसादेन तथैवान्यस्य

याने डालमें लटका दिया ॥ ८६।८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमाणिभद्रोपाख्यानंनामद्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । द्विजन आदिकन दीन जिमि पुण्यअनेकन दान । इकसौतिरपनमें सोई करत चरित्र बखान ॥ सूतजीबोले कि पुष्पभी माणिभद्रकी उसमाहिकानामक उत्तम स्त्रीको भलीभांति लेकर प्रसन्नहो उस समय शीघ्रही चलागया ॥ १ ॥ जोकि शङ्ख तुरुही के शब्दसमेत उन समस्तनिजजनों से विराथा वहां उसमाणिभद्रके भ्रमसे

उपजा कोई पुरुष न हुआ याने किसीने सन्देह न किया ॥ २ ॥ वैसेही सूर्य्यनारायण व अन्य किसीकी प्रसन्नतासे उसने भी जैसे अपने पितासे उत्पन्न हुआ होवै वैसेही घरमें प्राप्तहोकर ॥ ३ ॥ तदनन्तर बीचमें बैठकर समस्तभाइयोंको भलीभांति बुलाया व कहा कि निश्चयकर आजके दिनतक फिर मेरा सुख मेरेआश्रितहुआ ॥ ४ ॥ व चलतेहुये भी प्राण निजनारी के वचन से फिर स्थितहुये और इतनेही समयतक मेरे कृपणता भलीभांति स्थितथी ॥ ५ ॥ आजं चञ्चललक्ष्मी को जानने के लिये उसीसे दूरमें त्यागकियाहै इसलिये बन्धुजनोंसमेत देवताओं व ब्राह्मणों के लिये सम्पूर्णता से भलीभांति बांटदूंगा यह सत्य से अपनी शपथ करताहूं ऐसा

कस्यचित् ॥ सोपिमन्दिरमासाद्य यथात्मपितृसम्भवम्॥ ३ ॥ उपविश्यततोमध्ये बन्धून्सर्वान्समाह्वयत् ॥ अद्य यावद्दिनेमह्यं पुनर्मेसुखमाश्रितम् ॥ ४ ॥ चलितापिपुनःप्राणाः स्वपत्न्यावाक्यतास्थिताः ॥ इयंतंचैवकालंमे कार्पण्यं चैवसंस्थितम् ॥ ५ ॥ ज्ञातुमद्यचलालक्ष्मीः तेनत्यक्तसुदूरतः ॥ तस्माद्बन्धुजनैस्सार्द्धं देवैर्विप्रैश्चकृत्स्नशः ॥ ६ ॥ संवि भक्तांकरिष्यामि सत्येनात्मानमालभे ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वान्समाहूयपृथक्पृथक् ॥ ७ ॥ स्वनामभिर्ददौवस्त्रभूषणा नियथार्हतः ॥ ततोवेदविदोविप्रांस्तान्समाहूयनामभिः ॥ ८ ॥ एकैकस्यददौवित्तंसवस्त्रंश्रद्धयान्वितः ॥ नटीसुन र्तकेभ्यश्च दीनान्धेभ्योविशेषतः ॥ ९ ॥ ददौभोज्यंसमिष्टान्नंसवस्त्रंचद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तुस्वयमेवान्नं बुभुजेभार्य्यया सह ॥ १० ॥ विसृज्यतान्समायातान्स्वजनान्ब्राह्मणैस्सह ॥ एवंतेनतदाप्राप्तं वित्तंचपरसम्भवम् ॥ ११ ॥ बुभुजेस्वेच्छ यानित्यं तदाभार्य्यासमन्वितः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेत्रिपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः॥१५३॥

कहकर तदनन्तर अलग २ सबोंको भलीभांति बुलाकर ॥ ६।७ ॥ व अपने नामों से यथायोग्य वसनों भूषणों को दिया तदनन्तर जो वेदके जाननेवाले ब्राह्मण थे उनको नामोंसे बुलाकर ॥ ८ ॥ श्रद्धासंयुत होतेहुये उसने एक २ को वसनसमेत द्रव्यको दिया व हे द्विजोत्तमो नटी व नाचनेवाले व विशेषकर दीन अन्धपुरुषों के लिये मिष्टान्नसमेत व वसनसमेत भोजनदिया तदनन्तर आयेहुये उन स्वजनोंको ब्राह्मणोंसमेत बिदाकर स्त्रीसमेत आपही अन्नको भोजन किया उससमय इसप्रकार पराये से उपजेहुये धनको उसने पायाहै ॥ ९।१०।११ ॥ व उससमय स्त्रीसमेत नित्यही निजइच्छासे भोग किया ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेत्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५३॥

दो०। निज पतिके ममरूप लखि पूंछयो है जिमि नारि । इकसौचौवन में कहत सोइ कथा सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि अन्यदिन प्राप्तहोने पर एकान्त में
रात्रिको बगल में सोतेहुये उससे स्त्रीने उसीक्षण चरणों को छूकर कहा ॥ १ ॥ किहे विभो ! जबतक जीव है तबतक निस्सन्देह तुम मेरे पतिहो इसलिये मुझसे क-
हिये क्योंकि तुम्हारे लिये मैंने उसको छोड़दिया ॥ २ ॥ यह क्या इन्द्रजाल (माया) है अथवा क्या तुम्हारेमन्त्रका साधनहै या यह देवताओंकी प्रसन्नता है जिस
से तुम वैसेही रूपपै स्थितहो ॥ ३ ॥ उससमय प्रथम भी दिन स्थित होनेपर मैंने तुमको जानाथा जब कि वसनों व वस्तु विभूषणों से भलीभांति भूषित हुईथी ॥४॥

सूतउवाच ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते रहस्युक्तस्सभार्य्यया ॥ रात्रौप्रसुप्तःपार्श्वेच पादौसंस्पृश्यतत्क्षणात् ॥ १ ॥ त्वं
तावन्ममभर्तासि यावज्जीवमसंशयम् ॥ तद्वदस्वविभोस्माकं त्वदर्थंसमयोज्झितः ॥ २ ॥ इन्द्रजालमिदंकिन्ते किंवाम
न्त्रप्रसाधनम् ॥ देवानांवाप्रसादोयं येनत्वंतादृशंस्थितः ॥ ३ ॥ मयात्वंहितदाज्ञातः प्रथमेपिदिनेस्थिते ॥ यदासम्भू
षितावस्त्रैस्तथावस्तुविभूषणैः ॥ ४ ॥ यद्यहंतववार्तांच सर्वांकपटसम्भवाम् ॥ कथयामिद्वितीयस्य तत्तेपादौशपाम्य
हम् ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोविहस्योच्चैस्सतदाब्राह्मणोत्तमः ॥ तामालिङ्ग्यततःप्राह वचनंमधुराक्षरम् ॥ ६ ॥ सा
धुसाधुप्रियेज्ञातं सर्वंममविचेष्टितम् ॥ अहंचविप्रस्सुभगे माणिभद्रेणयःपुरा ॥ ७ ॥ विडम्बितोमुखंपश्यन्त्वदीयंचन्द्रस
न्निभम् ॥ चमत्कारपुरङ्गत्वा मयाचाराधितोरविः ॥ ८ ॥ तेनतुष्टेनमेदत्तं तद्रूपंज्ञानमेवच ॥ माहिकोवाच ॥ त्वदीय
दर्शनेनाहं कामदेववशङ्गता ॥ ९ ॥ तस्मादाराधयिष्यामितंगत्वादिननायकम् ॥ येनतेतादृशंभूयः प्रतुष्टोविदधातु

यदि कपटसे उपजीहुई तुम्हारी समस्तवार्ता को मैं दूसरेसे कहूं तो मैं तुम्हारे पावों की सौगन्ध करतीहूं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उससमय इसभांति
कहेहुये उसने उच्चप्रकार से विहँसकर उसको लिपटाकर तदनन्तर मीठेअक्षरोंवाले वचनको कहा ॥ ६ ॥ कि हे प्रिये ! बहुतअच्छा२ तूने मेरे समस्तकर्मको जाना
हे शुभगे ! मैं वही विप्रहूं जोकि पुरातनसमय चन्द्रमा के समान तुम्हारे मुखको देखताहुआ माणिभद्रसे विडम्बित हुआथा मैंने चमत्कारपुर को जाकर सूर्य्यका आ-
राधन कियाहै ॥ ७ । ८ ॥ प्रसन्न हुये उन सूर्य्यजीने मुझको उस रूप व ज्ञानही को दियाहै माहिका बोली कि तुम्हारेदर्शन से मैं कामदेवके वशमें प्राप्तहुईथी ॥ ९ ॥

इसलिये मैं जाकर उन सूर्य्यजी का आराधन करूँगी किं जिससे प्रसन्न हुये वे दिननायकजी फिर तुम्हारे वैसे रूपको करैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! इसही रूपसे व तरुणतासेभी क्या है क्योंकि मैं अहर्निश तुम्हारे उस प्रकारके रूपको भजतीहूं ॥११॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर पुष्पने मुखसे गोलीको भलीभांति लेकर उसके उपरांत अन्य गोलीको धरलिया उससमय वैसाही रूपहोगया जैसा कि पुरातनसमय उस ने देखाथा ॥ १२ ॥ तदनन्तर आश्चर्य के कारण रोमाञ्चसे संयुत व हर्षित होतीहुई उसने उसको लिपटकर सेवनकिया व इस गुप्तवचन को कहा ॥ १३ ॥ कि आज मेरा जन्म, यौवन व रूप निश्चयकर सफलहुआ क्योंकि हृदयमें टिकेहुये कामदेव

सः ॥ १० ॥ किमेवैतेनरूपेण तारुण्येनापिचप्रभो ॥ यत्तेतथाविधंरूपं सम्भजामिदिवानिशम् ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तुगुटिकांपुष्पस्समादायमुखात्ततः ॥ दधौचान्यांतदाजातं यादृग्दृष्टंपुरातया ॥ १२ ॥ ततस्साहर्षिताचाहो पुलकेनसमन्विता ॥ तमालिङ्ग्याभजद्गूढं वाक्यमेतदुवाचह ॥ १३ ॥ अद्यमेसफलंजन्म यौवनंरूपमेवच ॥ यत्त्वंहृदिस्थितःकान्तो प्रलब्धोमदनोपमः ॥ १४ ॥ अद्यापिकालेयस्सम्यग्दृष्टोभक्त्यासुरेश्वरः ॥ नाशयेद्दिनजंपापं नराणां नात्रसंशयः ॥ १५ ॥ तथाचसप्तमीप्राप्ते सूर्य्यवारेद्विजोत्तमाः ॥ अष्टोत्तरशतंतस्य फलहस्तःकरोतियः ॥ १६ ॥ प्रदक्षिणांचसद्भक्त्या सलभेद्वाञ्छितंफलम् ॥ ऐहिकामुष्मिकमपि नित्यमेवप्रपश्यति ॥ १७ ॥ नपश्यतिचकष्टानि तस्मिन्नहनिकर्हिचित् ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ तस्यसंवत्सरंयावत्पीडानोजायतेक्वचित् ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेपुष्पादित्यमाहात्म्यन्नामचतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

के समान तुमको पति पाया ॥ १४ ॥ आजभी समयमें भक्तिसे भलीभांति देखेहुये जे सुरनायक (सूर्यजी) मनुष्यों के दिनमें उपजे हुये पापको नाश करतेहैं इसमें सन्देह नहींहै ॥ १५ ॥ वैसेही हे द्विजोत्तमो ! रविवारमें सप्तमी प्राप्तहोनेपर फलहाथोंवाला जोपुरुष उत्तमभक्ति से एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको करताहै वह इसलोक व परलोकवाले भी चाहेहुये फलको प्राप्तहोता है व जो सदैवही उसदिन उन सूर्य्यजी को देखता है वह कभी कष्टोंको नहीं देखताहै व चैत्रकी शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो पुरुष उन सूर्यजीको पूजता है उसके सालभर तक कहीं पीडा नहीं होती है ॥ १६ । १७ । १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४ ॥

दो० । जौन मास में सूर्य की जेहि विधि पूजाहोत । इकसौपचपन मध्यमहँ सोई चरित उदोत ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार शुद्धके लिये पुष्पने ब्राह्मणों के आगे उन किरणमाली सूर्यजीके कर्मको कहा ॥ १ ॥ व जिस भांति माणिभद्रका वधकिया व कपटसे उसकी स्त्रीको अपनी स्त्री बनायाथा उस अपने निन्दितकर्म को उनसे सम्पूर्णता से कहा ॥ २ ॥ तदनन्तर उस वृत्तान्त को सुनकर क्रोधसंयुत होतेहुये उन ब्राह्मणों ने बहुतेरे सीत्कारों को करके उससे कहा कि हे पापी! धिक्कारहै २ तू चलाजा ॥ ३ ॥ आत्मा (शरीर) के प्रमाणभर सुवर्ण लेकर तुम्हारी शुद्धि न होगी क्योंकि स्मृतिशास्त्रों के विशेषकर पढ़नेवाले जनोंने ब्राह्मण, क्षत्री,

सूतउवाच ॥ एवंशुद्धिकृतेतस्य भास्करस्यांशुमालिनः ॥ द्विजानांपुरतःपुष्पः कथयामासचेष्टितम् ॥ १ ॥ आत्मीयं कुत्सितंतेषां माणिभद्रवधोयथा ॥ विहितोविहितापत्नी तस्यव्याजेनकृत्स्नशः ॥ २ ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुस्तंश्रुत्वा कोपसंयुताः ॥ सीत्कारान्प्रचुरान्कृत्वा धिग्धिक्पापप्रगम्यताम् ॥ ३ ॥ आत्मीयंहेमचादाय नतेशुद्धिर्भविष्यति ॥ ब्रह्मघ्नोसियतःप्रोक्तास्त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः स्मृतिशास्त्रप्रपाठकैः ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तु दुःखितःपुष्पो बाष्पसम्पूरितेक्षणः ॥ ५ ॥ ब्रह्मस्थानाद्विनिर्गत्य प्ररुरोदसुदुःखितः ॥ रोरूयमाणमालोक्य तन्ततस्तेद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ दयांचमहतींकृत्वा ततःप्रोचुःपरस्परम् ॥ नानाविधानिशास्त्राणिस्मृतयश्चपृथग्विधाः ॥ ७ ॥ पुराणानिसमस्तानि वीक्षयध्वंसमाहिताः ॥ कुत्रचित्कांचिदेवास्यकथञ्चिच्छुद्धिरस्तिचेत् ॥ ८ ॥ नतच्चविद्यतेशास्त्रं ब्रह्मस्थानेनवास्तियत् ॥ नस्मृतिर्नपुराणंच वेदान्तंवाद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ नचास्तिब्राह्मणःसोत्रसर्वज्ञप्रतिमश्चयः ॥ तस्माच्चिन्त

वैश्य इन तीनोंवर्णों को द्विजाति कहाहै इसलिये तुम ब्रह्मघाती हो सूतजी बोले कि तदनन्तर आंसुओं से परिपूरितलोचनोंवाले व दुःखित पुष्पने ॥ ४ । ५ ॥ ब्राह्मणोंके स्थानसे निकलकर अतिदुःखितहो रोदनकिया तदनन्तर अतिरोतेहुये उसपुष्पको देखकर उन द्विजोत्तमोंने ॥ ६ ॥ बड़ीदयाकर तदनन्तर आपस मे कहा कि सावधान होतेहुये तुमलोग अनेकप्रकारके शास्त्रों व नानाभांति की स्मृतियों और समस्तपुराणोंको देखो कहींपर किसीप्रकार यदि इसकी कोई शुद्धिहोवै तो कहिये ॥ ७ । ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहशास्त्र या स्मृति या पुराण अथवा वेदान्त नहीं है जो कि ब्राह्मणों के स्थानमें नहीं विद्यमान है ॥ ९ ॥ और यहां वह ब्राह्मण नहींहै जोकि

सर्वज्ञ के सदृशहै इसलिये उसको शीघ्रही चिन्तवन करो जोकि इसको शुद्धिदायक होवै ॥ १० ॥ व उसीको प्रमाणता में प्राप्तकर इसको शुद्धि दीजावै इसके अनन्तर एक चण्डशर्मा ऐसेप्रसिद्धब्राह्मण ने कहा ॥ ११ ॥ कि मैंने इस स्कन्दपुराणमें पुरश्चरणसंहिता पढ़ी है जोकि सातवींपुरश्चरणसंज्ञक है ॥ १२ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! उस पुरश्चरणसप्तमी को जो करता है उसका वह कियाहुआ पाप तिसपर भी जिसलिये जातारहता है उसी कारण वह निस्सन्देह जावै ॥ १३ ॥ इसलिये यह पुरुष उस पुरश्चरणसप्तमीको करै व उसका वह भयङ्करपातक राजाही को होगा ॥१४॥ व दूसरे माणिभद्र को राजाके आदेशसे वधकों (जल्लादों) ने माराहै उसका

यतत्त्विप्रमस्यशुद्धिप्रदंहियत् ॥ १० ॥ तच्चप्रमाणतान्नीत्वा शुद्धिरस्यप्रदीयताम् ॥ अथैकोब्राह्मणःप्राह चण्डशर्मेतिविश्रुतः ॥ ११ ॥ मयास्कन्दपुराणेस्मिन्पुरश्चरणसंहिता ॥ पठितासप्तमीयातु पुरश्चरणसंज्ञिता ॥ १२ ॥ तांयःकरोतितत्पापं विहितन्तुयतोव्रजेत् ॥ सतथापिचविप्रेन्द्रास्ततोयातिनसंशयः ॥ १३ ॥ तस्मात्करोतुतामेष पुरश्चरणसप्तमीम् ॥ तस्यतत्पातकंघोरं राज्ञश्चैवप्रजायते ॥ १४ ॥ अपरोभूभुजादेशान्माणिभद्रोनिपातितः ॥ वधकैस्तस्ययत्पापं तद्धिराज्ञःप्रजायते ॥ १५ ॥ राजाभूत्वानयःसम्यग्विचारयतिवादिनम् ॥ तस्यतत्पातकंघोरं राज्ञश्चैवप्रजायते ॥ १६ ॥ तथास्ययत्नात्तत्पापं जातन्नयदिपापकृत् ॥ सत्यक्तोब्राह्मणैर्व्यर्थं यःपुरावक्तिसन्निधौ ॥ १७ ॥ तस्माज्जनेनचानेन कृतेप्रतिकृतंकृतम् ॥ तस्मान्नचास्यदोषःस्याद्यतःप्रोक्तंमुनीश्वरैः ॥ १८ ॥ कृतेप्रतिकृतंकुर्य्याद्धिंसतेप्रतिहिंसनम् ॥ नतत्रजायतेदोषो दुष्टोदुष्टमिवाचरेत् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यद्येवंवदविप्रास्य पुरश्चरणसंहिताम् ॥ सप्तमी

जो पापहै वह राजाको होगा ॥१५॥ जो राजा होकर भलीभांति वादी (मुद्दई) को नहीं विचारताहै उस राजाही को वह विकरालपाप होता है ॥ १६ ॥ वैसेही यत्नसे वह पाप इसका नहींहुआ व यदि पापकारी नहीं है तो वह ब्राह्मणों से व्यर्थही त्याग कियागया जोकि पहले समीपमें कहताथा इसलिये इस मनुष्यने किये पै बदला कियाहै उसीकारण इसको दोष नहींहै क्योंकि मुनीश्वरोंने कहाहै ॥१७।१८॥ कि कियेहुये पुरुषके लिये बदलाकरै व हिंसकजनके लिये प्रतिहिंसाकरै व दुष्टप्रति दुष्टके नाईं आचरण करै उसमें दोष नहीं होताहै ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे द्विजेन्द्र विप्रजी ! यदि ऐसाहै तो आज इस बिचारेकी शुद्धिकेलिये सातवींपुरश्चरण

संहिताको कहिये ॥ २० ॥ सूतजी बोले हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर चण्डशर्मानामक ने उसके ऊपर दयाकरके इससे उस पुरश्चरणसप्तमीको कहा ॥ २१ ॥ व उस पुष्पने भी जैसे उसके मुखसे सुना वैसेही भलीभांति किया तदनन्तर एक वर्षके अन्तमें पापहीन होगया ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! पुरश्चरणसंज्ञा को कहिये कि किससमय के उपस्थित होनेपर किसविधि से करना चाहिये ॥२३॥ सूतजी बोले कि मैं कहूंगा जोकि पुरातनसमय भक्तिसे पूंछहुये मार्कण्डेयमुनिने रोहिताश्व भूपति से कहाहै ॥ २४ ॥ जो मार्कण्डेयजी द्विज महामुनि सातकल्पकेस्मरणवाले थे उनसे हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने पूछाहै ॥ २५ ॥ रोहिताश्व

मद्यविप्रेन्द्र वराकस्यविशुद्धये ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ अथास्यकथयामास सप्तमींतांद्विजोत्तमाः ॥ चण्डशर्म्माभिधानस्तुकृत्वातस्योपरिकृपाम् ॥ २१ ॥ तेनापिविहितासम्यग्यथावत्तन्मुखाच्छ्रुता ॥ ततःसंवत्सरस्यान्ते विपाप्मासमपद्यत ॥ २२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ पुरश्चरणसंज्ञान्तु सप्तमींवदसूतज ॥ विधिनाकेनकर्तव्या कस्मिन्कालउपस्थिते ॥२३॥ सूतउवाच ॥ अहंचकीर्तयिष्यामिरोहिताश्वस्यभूपतेः ॥ मार्कण्डेनपुराप्रोक्ता पृच्छ्यमानेनभक्तितः ॥ २४ ॥ सप्तकल्पस्मरोविप्रो मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ रोहिताश्वेनपृष्टःसहरिश्चन्द्रात्मजेनच ॥ २५ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यत्पापंकुरुतेनरः ॥ उपायंतस्यनाशाय कञ्चिन्मेवदसन्मुने ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मानसंवाचिकंचैव कायजंचतृतीयकम् ॥ त्रिविधंपातकंलोके नराणामिहजायते ॥ २७ ॥ तानहंतेप्रवक्ष्यामि शृणुष्वनृपसत्तम ॥ मानसंचैवयत्पापं नराणामिहजायते ॥ २८ ॥ पश्चात्तापंकृतेतस्य तत्क्षणादेवनश्यति ॥ वाचिकंकायजंपापं नाभुक्त्वातत्प्रणश्यति ॥ २९ ॥ पुरश्चरणबाह्यन्तु सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ निवेद्यब्राह्मणेन्द्राणां तदुक्तंचसमाचरेत् ॥ ३० ॥

बोले कि हे उत्तममुने ! मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे भी जिस पापको करताहै उसके नाशके लिये मुझसे किसी उपाय को कहिये ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इस संसारमें मानस, वाचिक व तीसरा कायिक तीन प्रकारका पापहोता है ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम ! उनको मैं तुमसे कहूंगा सुनिये कि यहां जो मानसही पाप मनुष्यों को होताहै ॥ २८ ॥ उसका वह पाप पश्चात्ताप करने से उसीक्षणही नष्ट होजाताहै और वाचिक व कायिक जो पापहै वह बिन भोगकरे नहीं नष्टहोताहै ॥ २९ ॥

व पुरश्चरण से बाह्य (नाश) होनेयोग्य है मैंने यह सत्य कहाहै कि ब्राह्मणेन्द्रों के लिये निवेदनकर और उनसे कहेहुये प्रायश्चित्त को यथोक्त करै तदनन्दर शुद्धि को पावैहै अथवा राजा जानकर उसका दण्ड करताहै ॥ ३० । ३१ ॥ तो उससे शुद्धिको प्राप्तहोता है यद्यपि वह पातकी होवै और जो लज्जाके कारण किसीप्रकार द्विजेन्द्रों से नहीं कहता है ॥ ३२ ॥ और न राजा जानता है जोकि शरीर में टिकेहुये पातकको नाशकरै उसके दण्डकर्ता आपही वैवस्वत यमराज होतेहैं ॥ ३३ ॥ इसलिये पापके उपाय को विशेषकर जानतेहुये पुरुष को ब्राह्मणों से कहेहुये यथोक्तप्रायश्चित्त को सबउपाय से करना चाहिये ॥ ३४ ॥ रोहिताश्व बोला कि

प्रायश्चित्तंयथोक्तंतु ततःशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अथवापार्थिवोज्ञात्वा कुरुतेतस्यनिग्रहम् ॥ ३१ ॥ तेनशुद्धिमवाप्नोति यद्यपिस्यात्सकिल्बिषी ॥ लज्जयाब्राह्मणेन्द्राणां योनब्रूतेकथञ्चन ॥३२॥ नचराजाविजानाति शरीरस्थंचयोनयेत्॥ तस्यनिग्रहकर्ताच स्वयंवैवस्वतोयमः ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापोपायंविजानता ॥ प्रायश्चित्तंतुकर्तव्यं यथोक्तं ब्राह्मणोदितम् ॥ ३४ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ सर्वेषामेवपापानां विहितानांमुनीश्वर ॥ किंचिद्व्रतंसमाचक्ष्व दानंवाहोममेवच ॥ ३५ ॥ विपाप्माजायतेतेन पुरश्चरणवर्जितम् ॥ नित्यंपापानिकुरुते नरःसूक्ष्माणिसर्वतः ॥ ३६ ॥ प्रायश्चित्तानिसर्वेषां कर्तुंशक्तिःकथम्भवेत् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अस्तिराजन्व्रतंपुण्यं पुरश्चरणसंज्ञितम् ॥ ३७ ॥ पुरश्चरणसंज्ञातुसप्तमीसूर्य्यवल्लभा ॥ ययासंकृतयाराजन्कायस्थोयमसम्भवः ॥ ३८ ॥ विचित्रोमार्जयेत्पापं कृतंजन्मनिसञ्चितम् ॥ तस्मात्कुरुमहाराज तथासुवचनंमम ॥ ३९ ॥ येनवामुच्यसेपापात्सर्वस्मात्कायसम्भवात् ॥ रोहिताश्वउवाच ॥

हे मुनिनाथ ! कियेहुये समस्तहीपापोंके लिये किसी व्रत या दान या होमही को भलीभांति कहिये ॥ ३५ ॥ कि उससे पुरश्चरणके विना अपापी होजावै मनुष्य सब ओर नित्यही सूक्ष्मपापों को करता है ॥ ३६ ॥ और सबोंके प्रायश्चित्तों को करने के लिये कैसे शक्तिहोवैहै मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पुरश्चरणनामक पुण्य दायकव्रत है ॥ ३७ ॥ सूर्यकी प्यारी सातवींपुरश्चरणसंज्ञा है हे राजन् ! जिसको भलीभांति करनेसे यमराज को उत्पन्नकरनेवाले व शरीरमें टिकेहुये विचित्र सूर्यजी जन्ममे इकट्ठा कियेहुये पातकको नाश करतेहैं इस लिये हे महाराज ! वैसेही मेरे उत्तमवचन को करो ॥ ३८ । ३९ ॥ कि जिससे शरीर से उपजेहुये समस्तपातकसे

छूटजावोगे रोहिताश्व बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ! सातवींपुरश्चरणसंज्ञाको किससमय व किस विधिसे करनाचाहिये उसको मुझसे कहिये मार्कण्डेयजी बोले कि माघमास के शुक्लपक्षमें सूर्यको मकरराशि पै स्थितहोनेपर ॥ ४०।४१ ॥ रविवारसमेत सप्तमीतिथिमें इस व्रतको करै उस दिन पाषण्डियों व चाण्डालोंके साथ न संभाषण करै ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम, नृप! प्रातःकाल दतून को भक्षणकर पश्चात् इसमन्त्रसे नियम करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कि हे दिननायक! पुरश्चरण करने के योग्य सप्तमी में मैं उपास करूंगा आज तुम मेरे रक्षकहो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे महावीर तीसरेपहर नहाकर धोयेवसन पहन, पवित्रहो भक्तिकेद्वारा दिननायकसे उपजी हुई मूर्त्तिको लाले-

पुरश्चरणसंज्ञातु सप्तमीमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ विधिनाकेनकर्तव्या कस्मिन्कालेवदस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ माघमाससितेपक्षे मकरस्थेदिवाकरे ॥ ४१ ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यांव्रतमेतत्समाचरेत् ॥ पाषण्डैःपतितैस्सार्द्धं तस्मिन्नहनिनालपेत् ॥ ४२ ॥ भक्षयित्वान्नृपश्रेष्ठ प्रभातेदन्तधावनम् ॥ मन्त्रेणानेनपश्चाच्च कर्तव्योनियमोनृप ॥ ४३ ॥ पुरश्चरणकृत्यायां सप्तम्यांदिवसाधिप ॥ उपवासंकरिष्यामि अद्यत्वंशरणंमम ॥ ४४ ॥ ततोपराह्णसमये स्नात्वाधौताम्बरश्शुचिः ॥ प्रतिमांपूजयेद्भक्त्या दिनाधिपसमुद्भवाम् ॥ ४५ ॥ रक्तैःपुष्पैर्महावीर पादार्घंपूजयेत्ततः ॥ पतङ्गायनमःपादौ मार्तण्डायेतिजानुनी ॥ ४६ ॥ गुह्यंदिवसनाथायनाभ्यांद्वादशमूर्तये ॥ बाहूचपद्महस्ताय हृदयंतीक्ष्णदीधितेः ॥ ४७ ॥ कण्ठंपद्मदलाभाय शिरस्तेजोमयायच ॥ एवंसम्पूज्यविधिवद्धूपंकर्पूरमाददेत् ॥ ४८ ॥ गुडौदनंचनैवेद्यं रक्तवस्त्राभिवेष्टितम् ॥ रक्तसूत्रेणदीपंच तथैवारार्तिकंनृप ॥ ४९ ॥ शङ्खेतोयंसमादाय रक्तचन्दनमिश्रितम् ॥ सफलंचैवतत्कृत्वा

फूलों से पूजै उसके उपरान्त पादार्घपूजन करै (पतङ्गायनमः) इसमन्त्रसे चरणोंको व (मार्तण्डायनमः) इसमन्त्रसे घुटुरोंको ॥ ४५।४६ ॥ व (दिवसनाथायनमः) इस मन्त्रसे गुह्यइन्द्रिय को व (द्वादशमूर्त्तयेनमः) इस मन्त्रसे नाभिमें पूजै (पद्महस्तायनमः) इसमन्त्रसे बाहुओं को व (तीक्ष्णदीधितयेनमः) इसमंत्रसे हृदयको पूजै ॥ ४७ ॥ (पद्मदलाभायनमः) इसमन्त्रसे कण्ठको पूजनकरै (तेजोमयायनमः) इसमंत्रसे मस्तक को पूजै इसप्रकार भलीभांति विधिपूर्वक पूजनकर कपूरकी धूपदेवै ॥ ४८ ॥ लालवस्त्र से सबओर लपेटकर गुडभात की नैवेद्य देवै व हे नृप! लालसूतसेदीप और वैसेही आरती करै ॥ ४९ ॥ व शङ्खमें लालचन्दन से मिलेहुये जलको लेकर

व सफल करके तदनन्तर अर्घदेवै ॥ ५० ॥ कि हे देव ! मैंने अज्ञान या ज्ञानसेभी जो कुछ कियाहै उसके प्रायश्चित्त के लिये मेरे अर्घको अवश्यकर ग्रहण कीजिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से ब्राह्मण को भलीभांति पूजन करै और उसके लिये भोजन व अपनी शक्तिसे दक्षिणाको देकर ॥ ५२ ॥ शरीरशुचिके लिये पञ्चगव्यको भोजनकरै व जुड़ेहाथोंवाला होकर सूर्यजीको भलीभांति देखै ॥ ५३ ॥ व दिनकरको प्रणाम करताहुआ इसमन्त्रको भलीभांति उच्चारणकरै कि हे देव ! इसव्रतको मैंने तुम्हारे अगाड़ी ग्रहण कियाहै ॥ ५४ ॥ हे भास्करजी ! तुम्हारीप्रसन्नतासे वह व्रत निर्विघ्नतासे सिद्धिको प्राप्तहोवै तदनन्तर हे नृपोत्तम ! फागुन

अर्घंदद्यात्ततःपरम् ॥ ५० ॥ यत्कृतन्तुमयाकिञ्चिज् ज्ञानादज्ञानतोपिवा ॥ प्रायश्चित्तकृतेदेव ममार्घश्चप्रगृह्यताम् ॥ ५१ ॥ ततस्सम्पूजयेद्विप्रं गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ दत्त्वातुभोजनंतस्मै दक्षिणांचस्वशक्तितः ॥ ५२ ॥ प्राशनंकायशुद्ध्यर्थंपञ्चगव्यंसमाचरेत् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा समुद्वीक्षेद्दिवाकरम् ॥ ५३ ॥ दिवाकरंनतश्चैव मन्त्रमेतंसमुच्चरेत् ॥ इदं व्रतंमयादेव गृहीतंपुरतस्तव ॥ ५४ ॥ अविघ्नंसिद्धिमायातुप्रसादात्तवभास्कर ॥ ततश्चफाल्गुनेमासि सम्प्राप्तेनृपसत्तम ॥ ५५ ॥ कुन्देनपूजयेद्देवं तेनैवविधिनाततः ॥ धूपञ्चगुग्गुलंदद्यान्नैवेद्यंभक्तमेवच ॥ ५६ ॥ प्राशनंगोमयंप्रोक्तं सर्वपापविशुद्धये ॥ चैत्रेमासितुसम्प्राप्ते सुरभ्यापूजयेद्धरिम् ॥ ५७ ॥ नैवेद्येगुडकंप्रोक्तं धूपंसर्ज्जरसोद्भवम् ॥ कुशोदकंच संप्राश्य कायशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ वैशाखेकिंशुकैःपूजांयथावच्चघृताशनः ॥ नैवेद्येस्मरसालान्तु धूपंचविनिवेदयेत ॥ ५९ ॥ दधिप्राशनमेवात्र कर्तव्यंकायशुद्धये ॥ ज्येष्ठेपाटलयापूजा विधातव्यारवेर्नृप ॥ ६० ॥ नैवेद्येसक्तवःप्रो

महीनेको भलीभांति प्राप्तहोने पर ॥ ५५ ॥ उसी विधिसे सूर्य देवको कुन्दके फूलोंसे पूजै तदनन्तर गुग्गुलकी धूपदेवै व भातही की नैवेद्यदेवै ॥५६॥ व समस्तपापोंकी विशुद्धिके लिये गोमयका प्राशन (भोजन) कहाहै और चैत्रमहीनेको भलीभांति प्राप्तहोनेपर सुरभी (धेनु) समेत सूर्य्यजी को पूजै ॥ ५७ ॥ व नैवेद्यमें गुडकहा है ॥ व सर्जरस से उपजीहुई (राल) धूप देनाचाहिये व कुशके जलको भलीभांतिभोजनकर शरीरकी शुद्धिको पावै ॥ ५८ ॥ व वैशाखमें घृतका भोजनकरताहुआ टेशू के फूलोंसे यथायोग्य पूजनकरै व नैवेद्यमें सिखरनिदेवै व धूपको निवेदनकरै ॥५९॥ व इस महीने में शरीर शुद्धिके लिये दही भोजन करना चाहिये व हे नृप ! जेठमें

पांड्रसे सूर्यका पूजन करना चाहिये ॥ ६० ॥ और नैवेद्यमें सतुवा कहे हैं व समस्तपातकों से विशुद्धिके लिये भोजन कपिलाधेनुका घृत कहागया है ॥ ६१ ॥ हे नृप ! आषाढमें अगस्त्यके फूलोंसे सूर्य्यका पूजनकरै नैवेद्य में खीर कहीहै व भोजन में घीसमेत शहद देवै ॥ ६२ ॥ व परमश्रद्धासे संयुतहो अगुरुहीको धूपदेवै व सावन में तीखीकिरणोंवाले सूर्यका कदम्बके फूलसे पूजनकरै ॥ ६३ ॥ व नैवेद्यमें लड्डुओं को देवै और नहीं व धूपदेवै और गऊके सींगका जल लेकर उसीक्षण पापसे छूट जाताहै ॥ ६४ ॥ व भादों में चमेली से पूजना चाहिये नैवेद्य में क्षीर (दूध) देवै और सर्जसे उपजीहुई (राल) धूपदेवै, भोजन दूधही चाहिये ॥ ६५ ॥ कुंवारमें

क्ताःप्राशनंचघृतंस्मृतम् ॥ कपिलायामहावीर सर्वपापविशुद्धये ॥ ६१ ॥ आषाढेमुनिपुष्पैश्च पूजयेद्भास्करंनृप ॥ नैवेद्ये क्षीरिकाप्रोक्ता प्राशनेमधुसर्पिषा ॥ ६२ ॥ धूपंचैवागुरुंदद्याच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ श्रावणेतुकदम्बेन पूजनंतीक्ष्णदीधितेः ॥ ६३ ॥ नैवेद्येमोदकांश्चैव नापरंधूपमाददेत् ॥ गोशृङ्गोदकमादायसद्यःपापात्प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥ जात्याभाद्रपदेपूज्यं क्षीरंनैवेद्यमाददेत् ॥ धूपंसर्जसमुद्भूतं प्राशनंक्षीरमेवच ॥ ६५ ॥ आश्विनेकमलैःपूज्यं नैवेद्येघृतपूरिकाः ॥ धूपंकुङ्कुमजंप्रोक्तं कर्पूरंप्राशनंस्मृतम् ॥ ६६ ॥ तुलस्याकार्त्तिकेपूजा भास्करस्यप्रकीर्तिता ॥ नैवेद्येचैवखण्डाख्यं धूपं कौसुम्भिकंनृप ॥ ६७ ॥ प्राशनंचलवङ्गाख्यं सर्वपापविशोधनम् ॥ भृङ्गराजेनपूजाच सौम्येमासिसमाचरेत ॥ ६८ ॥ नैवेद्येपूपकादेया धूपंगुडसमुद्भवम् ॥ कङ्कोलप्राशनंचैव भास्करस्यप्रतुष्टये ॥ ६९ ॥ शतपत्रिकयापूजा पौषेमासिरवेः स्मृता ॥ सघृतंधूपमादिष्टं नैवेद्येशष्कुलीयकाः ॥ ७० ॥ प्राशनंपूर्वमुक्तानि सर्वाण्येवसमाचरेत् ॥ समाप्तौचततोदद्यात्

कमलोंसे पूजना चाहिये व नैवेद्य में घृतकी पूरियां और केसरि से उत्पन्नहुई धूप कही है भोजन कपूर कहाहै ॥ ६६ ॥ व हे नृप ! कार्त्तिकमें तुलसी से सूर्य्यनारायण की पूजा कही है व नैवेद्य में खांडनामक व धूपमें कुसुमके पुष्पादि कहे हैं ॥ ६७ ॥ व समस्तपापोंकोनाशनेवाला लवंगका भोजन कहागया है व अगहन महीने में भगरा से पूजनकरै ॥ ६८ ॥ व नैवेद्यमें पुवा देना चाहिये व गुडसे उपजीहुई धूप देना चाहिये और सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये शीतलचीनी भोजनके योग्यहै ॥ ६९ ॥ व पौषमें सेवती या गुलाबसे सूर्यका पूजन कहाहै, घृतसमेत धूप कहीहै व नैवेद्य में पूरियां कहीहैं ॥ ७० ॥ व पहले कहीहुई सबही वस्तुओंको भोजनकरै तदनन्तर हे नृपोत्तम

समाप्ति में समस्तपापोंकी विशुद्धिके लिये घरसे उत्पन्नहुये छठेभागको ब्राह्मणके लिये देवै तदनन्तर हे नृपोत्तम ! अपनी शक्तिमे इष्टमित्रादिकों को भोजन कराना चाहिये॥७१।७२॥जो सूर्यसे उपजीहुई सप्तमीको यहां करताहै वह समस्तपातकों से विशेषकर छूटकरके निर्मलताको प्राप्तहोताहै॥७३॥ब्राह्मणबोले कि हे महाभाग ! पुरातन समय इसप्रकार मार्कण्डेय महात्माने उस सप्तमीको रोहिताश्वके लिये कहाहै इसलिये तुम भी उसको करो ॥ ७४ ॥ कि जिससे तुम्हारा भलीभांति पुरश्चरणही होजावै सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर द्विजोत्तम पुष्पने भी ॥ ७५ ॥ प्रसन्न होकर वैसेही उस सप्तमी को किया कि जैसे उसने निवेदन कियाथा और गृहमें

षड्भागंगृहसम्भवम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणायनृपश्रेष्ठ सर्वपापविशुद्धये ॥ इष्टभोज्यंततःकार्य्यं स्वशक्त्यापार्थिवोत्तम ॥ ७२ ॥ एवन्तुकुरुतेयोत्र सप्तमींभास्करोद्भवाम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो निर्मलत्वंसगच्छति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोवाच ॥ एवं पुरावैकथिता रोहिताश्वायधीमते ॥ मार्कण्डेनमहाभाग तस्मात्त्वमपिताङ्कुरु ॥ ७४ ॥ येनसंजायतेसम्यक् पुरश्चरणमेवते ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुष्पोपिद्विजसत्तमः ॥ ७५ ॥ ताञ्चक्रेसप्तमींहृष्टो यथातेननिवेदिता ॥ षड्भागं प्रददौतस्मै ब्राह्मणायमहात्मने ॥ ७६ ॥ स्ववित्तस्यगृहस्थस्यजातरूप्यस्यकृत्स्नशः ॥ सोपिजग्राहतद्वित्तं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७७ ॥ सुवर्णमपिरत्नानि संख्ययापरिवर्ज्जितम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुरश्चरणकथनसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथतेनागरास्सर्वेदृष्ट्वातंवित्तभाजनम् ॥ एकेनापिगृहीतव्यंसर्वानस्मान्निरस्यच ॥ १ ॥ ततस्तेशपथं

स्थितहुए सब सुवर्णवाले अपने धनके छठेभागको उस महात्मा ब्राह्मणकेलिये दिया और उसने भी प्रसन्नअन्तःकरण से उस धन व सुवर्णको भी व रत्नोंको ग्रहणकिया जोकि संख्यासे रहित याने असंख्यथा ॥ ७६ । ७७।७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पुरश्चरणकथनसमाप्तिर्नामपञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । भयो भिन्न नागरनसन चण्डशर्म द्विजनाथ । इकसौछप्पनमध्यमहँ बरणत सोई गाथ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन समस्तनागरब्राह्मणोंने

उसको द्रव्यका पात्र देखकर चिन्तवनकिया कि हम सबोंको निकालकर एकही से ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥ तदनन्तर उन्होंने शपथ या प्रतिज्ञाकरके मध्यवर्तीको प्राप्तकर उसके उपरान्त ब्रह्मस्थान में व्यवस्थित होकर उसके मुखके द्वारा कहा ॥ २ ॥ कि इस लालचयुक्त ब्राह्मणने द्विजोत्तमोंका अनादरकर पुष्पके धनको लेकर प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ३ ॥ व वैसेही ऐश्वर्यका छठवांभाग ग्रहणकियाहै इसलिये समस्तनागरद्विजोत्तमों में यह पृथग्भूतहोवै जैसे कि और सामान्यहैं वैसाही होवै व आजसे लगाकर जो इससे सम्बन्ध करैगा ॥ ४ । ५ ॥ वह भी समस्तनागरब्राह्मणोंके बाहर होगा अथवा जो कभी इसके घरमें भोजन या जलपान करैगा वह भी

कृत्वा समानीयचमध्यगम् ॥ तस्यास्येनततःप्रोचुर्ब्रह्मस्थानेऽव्यवस्थिताः ॥ २ ॥ अनेनलोभयुक्तेन तिरस्कृत्यद्विजो त्तमान् ॥ पुष्पवित्तंसमादाय प्रायश्चित्तंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ तथाचैवतुषड्भागोगृहीतोविभवस्यच ॥ तस्मादेषसमस्ता नांबाह्यभूतोभविष्यति ॥ ४ ॥ नागराणांद्विजेन्द्राणांयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ अद्यप्रभृतिचानेनयस्सम्बन्धंकरिष्यति ॥ ५ ॥ सोपिबाह्यस्तुसर्वेषांनागराणांभविष्यति ॥ भोजनंचाथपानीयंयोस्यसद्मनिकर्हिचित् ॥ ६ ॥ करिष्यतिचसोप्येवंप तितस्तुभविष्यति ॥ एवमुक्त्वाततस्तेनदत्तंतालत्रयंद्विजाः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणेनद्विजश्रेष्ठाःकृत्वापुष्पस्यलाञ्छनम् ॥ अथते ब्राह्मणास्सर्वेजग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ ८ ॥ चण्डशर्म्मापिसोद्विग्नःपुष्पपार्श्वंतदागतः ॥ एतेषामेवसर्वेषांसम्मतेनम यातवे ॥ ९ ॥ प्रायश्चित्तंतदादत्तंतथापिद्विजसत्तम ॥ तस्मादहंपतिष्यामि सुसमिद्धेहुताशने ॥ १० ॥ नैवजीवितुमि च्छामि स्वजनैःपरिवर्ज्जितः ॥ पुष्पउवाच ॥ नविषादस्त्वयाकार्य्यःकार्य्येऽस्मिन्द्विजसत्तम ॥ ११ ॥ वित्तार्थेदूषित

ऐसाही पतित होगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे द्विजोत्तमो, द्विजो! पुष्पको कलंक लगाकर उस ब्राह्मणने तीनतालियोंको दिया इसके अनन्तर समस्तब्राह्मण अपने अपने घरको गये ॥ ६ । ७ । ८ ॥ उस समय ऊबाहुआ वह चण्डशर्मा भी पुष्पके समीपगया व बोला कि इन्हीं सबके सम्मतसे मैने उससमय तुमको प्रायश्चित्तदिया तिसपर भी हे द्विजोत्तम! मै उसी कारण जलतीहुई अग्नि में गिरूंगा ॥ ९ । १० ॥ क्योंकि निजजनों से रहित होताहुआ मैं जीनेके लिये नहीं चाहताहूं पुष्प बोला

कि हे द्विजोत्तम ! इस कार्यमें तुमको शोच न करना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि हे द्विजोत्तम ! तुम द्रव्यके लिये दूषितहुएहो मैं उन नागर ब्राह्मणोंको अनेकप्रकारके धनों से प्रसन्न करूंगा ॥ १२ ॥ वे जितनी प्रमाणभर याचना करैंगे उतनाही तुम्हारे कारण दूंगा ऐसा कहकर वह शीघ्रता संयुतहो ब्रह्मस्थानमें भलीभांति आकर ॥ १३ ॥ व चण्डशर्माको लेकर उसने मध्यवर्तीके मुखके द्वारा कहा कि जो चण्डशर्मा ब्राह्मण मेरे लिये तुम लोगोंसे धन लोभके कारण पतित कियागयाहै उसी कारण मैं तुम लोगोंको वह सब धन दूंगा जोकि मेरे घरमें है ब्राह्मणों से वचन कियाजावै याने कहाजावै ॥ १४ । १५ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित उन सबही द्विजोत्तमोंने क्रोधसे

स्त्वंहि यतोब्राह्मणसत्तम ॥ नागरांस्तोषयिष्यामि तानहंविविधैर्द्धनैः ॥ १२ ॥ याचयिष्यन्तियन्मात्रं दास्यामितव कारणात् ॥ एवमुक्त्वासमागत्य ब्रह्मस्थानंत्वरान्वितः ॥ १३ ॥ चण्डशर्माणमानीय मध्यगास्येनसोब्रवीत् ॥ चण्ड शर्म्माद्विजोयस्तु मदर्थेपतितःकृतः ॥ १४ ॥ युष्माभिर्वित्तलोभेन तद्वित्तंवोददाम्यहम् ॥ समस्तंमद्गृहेयच्च क्रिय तांवचनंद्विजैः ॥ १५ ॥ अथतेकुपिताःप्रोचुस्सर्वएवद्विजोत्तमाः ॥ सीत्कारान्विविधान्कृत्वा क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ १६ ॥ धिग्धिक्पापसमाचारजिह्वातेशतधापतेत् ॥ किंतयापियदेवंत्वं प्रजल्पसिविगर्हितम् ॥ १७ ॥ पतितोयंकृतोस्माभि र्नैववित्तस्यकारणात् ॥ प्रायश्चित्तंयतोदत्तं एकेनापिदुरात्मना ॥ १८ ॥ स्मृतयोदूषितास्तेन पुराणानिविशेषतः ॥ स्था नंचैवास्मदीयंच कृत्यंचैतत्प्रकुर्वता ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तंप्रदातव्यं चतुर्भिरपरैस्सह ॥ संमन्त्र्यमनुनाप्रोक्तं एतदेवद्विजो त्तम ॥ २० ॥ त्वदीयंपातकंचास्य शरीरेसंव्यवस्थितम् ॥ एकाकिनायतोदत्तं तेनायंपतितःस्थितः ॥ २१ ॥ सूतउवा

अतिलाललोचनोंवाले होतेहुए अनेकविधिके सीत्कारोंको कर कहा ॥ १६ ॥ कि हे पापआचरणवाले ! तुझको धिक्कारहै २ तुम्हारी जीभ सौखण्ड होकर गिरैगी उस जिह्वा से क्याहै कि जो तुम ऐसे निन्दितवचन कहतेहो ॥ १७ ॥ हमलोगोंने धनके कारणइसको नहीं पतित कियाहै जिसलिये कि एकही दुष्टात्मा से प्रायश्चित्त दियागया ॥ १८ ॥ उसीसे इस कार्यको करतेहुये उसने स्मृतियों व विशेषकर पुराणों और हमलोगोंके स्थानको निश्चयकर दूषितकरदिया ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तम ! मनुने यही कहाहै कि अन्यचारविद्वानोंसे भलीभांति सलाहकरके प्रायश्चित्त देनाचाहिये ॥ २० ॥ व तुम्हारापाप इसकी देहमें विशेषकर टिकाहै जिसलिये कि अकेले प्रायश्चित्त दियाहै उसी

कारण यह पतित स्थितहै॥ २१॥ सूतजीबोले कि ऐसा कहकर सब ब्राह्मण अपने २ घरको चलेगये और अत्यन्त ऊबाहुआ पुष्पभी परमविलक्षणताको प्राप्तहुआ ॥२२॥ इसके अनन्तर जैसे सर्प श्वासलेता है वैसेही श्वसताहुआ अपने निवासस्थान को चलागया तदनन्तर उसने भलीभांति चिन्तवन किया कि जबतक साहस नहीं कियाजाता है॥ २३॥ तबतक मनुष्यों की सिद्धि किसीप्रकार नहीं होती है ब्रह्मघाती व मद्यप, चोर व व्रतभङ्गकारी व छलीमें परिडतोंने प्रायश्चित्त कहाहै परन्तु कृतघ्नमें निष्कृति नहींहै ॥ २४ ॥ ऐसा मनसे निश्चयकर उससमय हे द्विजोत्तमो ! रविवारसमेत सप्तमी तिथिमें उस पुष्पनामक बुद्धिमान् ने पुष्पादित्य की एकसौ

च ॥ एवमुक्त्वाद्विजास्सर्वे जग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ पुष्पोपिचसमुद्विग्नो वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ २२ ॥ जगामाथनिजावासं निश्श्वसन्नुरगोयथा ॥ ततस्संचिन्तयामास यावन्नोसाहसंकृतम् ॥ २३ ॥ तावत्सिद्धिर्मनुष्याणां नकथञ्चित्प्रजायते ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापेच चौरेभग्नव्रतेशठे ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ २४ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा सूर्य्यवारेणसप्तमी ॥ पुष्पनाम्नाद्विजश्रेष्ठास्तदाचाष्टोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणाकृतातेन पुष्पादित्यस्यधीमता॥ तीक्ष्णशस्त्रंसमादाय पूर्वोक्तविधिनाततः ॥२६॥ तेनच्छित्वानिजाङ्गानिजुहुयाज्जातवेदसि ॥ ततःपूर्णाहुतिंयावत्कायशेषेणयच्छति ॥ २७ ॥ तावत्प्रत्यक्षतांगत्वा सप्रोक्तोभास्करेणच ॥ पुष्पमासाहसङ्कार्षीः परितुष्टोस्मितेनघ ॥ २८ ॥ ब्रूहिकिन्तेददाम्यहम् ॥ पुष्पउवाच ॥ चण्डशर्म्माद्विजेन्द्रोयं मदर्थेपतितःकृतः ॥ २९ ॥ नागरैर्ब्राह्मणैःयएवमहाभाग

आठ प्रदक्षिणाओं को किया- तदनन्तर पैनेशस्त्र को लेकर उससे पूर्वोक्तविधिके द्वारा अपने अंगोंको काटकर अग्निमें हवन किया तदनन्तर बचेहुये शरीर से जब तक पूर्णाहुति देवै ॥ २५ । २६ । २७ ॥ तबतक प्रत्यक्षता में प्राप्तहोकर सूर्यजीने उससे कहा कि हे निष्पाप पुष्प ! साहस मतकरो मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ २८ ॥ हे महाभाग ! फिरभी कहिये मैं तुमको क्या देऊं पुष्प बोला कि यह चण्डशर्मा द्विजोत्तम न सहनेवाले समस्त क्षुद्रनागर ब्राह्मणोंसे मेरे लिये पतित (धर्मभ्रष्ट) किया गया। श्रीसूर्य भगवान् बोले किहे द्विजोत्तम ! एकभी नागर ब्राह्मणका वचन अन्यथा करने के लिये नहीं समर्थितहोता फिर सबोंका क्या कहनाहै परन्तु यह चण्डशर्मा

ब्राह्मण पवित्रहोगा ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ व समस्तभूतलमें यह बाहरवाला नागर प्रसिद्धहोगा और इनके जो पुत्र भूतलमें होवैंगे ॥ ३२॥ वे भी भूपालोंके माननीय व पूजनीय होकर प्रसिद्ध होवैंगे और भलीभांति आयेहुयेजो मित्र व भाईभी इसकी समताकरैंगे वेभी अतिउत्तम होवैंगे और यह दोषरहित चण्डशर्मा जिननागरब्राह्मणों से दूषित कियागयाहै ॥ ३३ । ३४ ॥ सन्ध्यासमयमें उनके नित्यही पराक्रम या प्रभावहरण को मैं करूंगा और तुमभी मेरी प्रसन्नतासे सम्पूर्ण अंगवाले होगे ॥ ३५॥ सूर्यनारायणजी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये व उसीक्षण पुष्पभी बिन घाववाले शरीरत्व को भलीभांति प्राप्तहोगया ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीये

क्षुद्रैस्समस्तैरसहिष्णुभिः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एकस्यापिवचोनैव शक्यतेकर्तुमन्यथा ॥ ३० ॥ नागरस्यद्विजश्रेष्ठ समस्तानांचकिम्पुनः ॥ परमेषद्विजःपूतश्चण्डशर्म्माभविष्यति ॥ ३१ ॥ बाह्योयंनागरःख्यातस्समस्तेधरणीतले ॥ एतेषांयेसुताश्चैव भविष्यन्तिधरातले ॥ ३२ ॥ विख्यातिंतेपियास्यन्ति मान्याःपूज्यामहीभृताम् ॥ येचापिबान्धवा श्चास्य सुहृदश्चसमागताः ॥ ३३ ॥ करिष्यन्तिसमन्तेपि भविष्यन्तिसुशोभनाः ॥ निर्दोषश्चण्डशर्म्मायं दूषितोनागरै र्द्विजैः ॥ ३४ ॥ सन्ध्यायांवीर्य्यहरणं नित्यन्तेषांकरोम्यहम् ॥ त्वंचापिमत्प्रसादेन सम्पूर्णाङ्गोभविष्यसि ॥ ३५ ॥ ए वमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ पुष्पोपिचाक्षताङ्गत्वं तत्क्षणात्समपद्यत ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येबाह्यनागरोत्पत्तिर्नामषट्पञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १५६ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेपुष्पः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ चण्डशर्म्मगृहंगत्वा दिष्ट्यादिष्ट्येतिचाब्रवीत् ॥ १ ॥ विवर्णवदनंदृष्ट्वा बाष्पपूरोक्षितंतदा ॥ बान्धवैस्सहितंसर्वैर्दारैर्भृत्यैस्तथासुतैः ॥ २ ॥ पुष्पउवाच ॥ तवार्थेचमयासू

परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबाह्यनागरोत्पत्तिर्नामषट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । चण्डशर्म शिवलिंग कहँ पूजिगयो कैलास । इकसौ सत्तावनें महँ सोइ कीन्हो कथा प्रकास ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसरमें पुष्पने प्रसन्नचित्तसे चण्डशर्मा के घर जाकर उससमय भाइयों सहित व समस्तस्त्रियों, दासों व पुत्रोंसमेत रंगहीनमुखवाले व आंसुओंके प्रवाहसे भीगे हुये चण्डशर्माको देखकर आनन्दहै आनन्द

है यह कहा ॥ १। २॥ पुष्प बोला कि तुम्हारे लिये मैंने शरीर त्याग से सूर्यजीको प्रसन्न कियाहै उनकी प्रसन्नतासे तुम्हारी देहमें पाप न होगा॥ ३॥ और वंशमें उत्पन्नहुये जो तुम्हारे पुत्र पौत्र होवेंगे वे सब नागरोंसे गुणमें अधिक होवेंगे ॥ ४ ॥ इस लिये हे द्विज! उठिये पुण्यदायक सरस्वतीनदी के समीप चलैं उसके किनारे बसने के लिये आश्रमको बनाकर॥ ५॥ मैंही तुम्हारे साथ निस्सन्देह बसूंगा मेरे बहुतधन है जो अन्य तुम्हारे पीछे जीविकावाले हैं उनसबोंको मैं पालन करूंगा तुम्हारा मानसिकज्वर जावै तदनन्तर उस वचनको सुनकर पुत्रों व भाइयोंसे संयुत चण्डशर्मा ॥६।७॥ सरस्वतीको भलीभांति उद्देशकर तदनन्तर स्थानकी प्रदक्षिणा

र्य्यः कायत्यागेनतोषितः ॥ पातकन्तुनतेकाये तत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ३ ॥ तवपुत्राश्चपौत्राश्च येभविष्यन्तिवंशजाः ॥ नागराणांचतेसर्वे भविष्यन्तिगुणाधिकाः॥ ४॥ तस्मादुत्तिष्ठगच्छामो नदींपुण्यांसरस्वतीम् ॥ तस्यास्तटेनिवासाय कृत्वाचैवाश्रमंद्विज ॥ ५ ॥ त्वयाचसहवत्स्यामि अहमेवनसंशयः ॥ अस्तिमेविपुलंवित्तं येचान्येतेनुजीविनः ॥ ६ ॥ तान्सर्वान्पोषयिष्यामि व्येतुतेमानसोज्वरः ॥ ततःश्रुत्वाचण्डशर्म्मा पुत्रैर्बन्धुभिरन्वितः ॥ ७ ॥ सरस्वतींसमुद्दिश्य निष्क्रान्तोनगरात्ततः ॥ स्थानंप्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्यसुदुःखितः ॥ ८ ॥ बाष्पपूर्णेक्षणोदीन उत्तराभिमुखो ययौ ॥ पुष्पेणसहितश्चैव मुहुर्मुहुःप्रबोधितः ॥ ९ ॥ ततस्सरस्वतींप्राप्य पुण्यांशीतजलांनदीम् ॥ सेवितांमुनिसङ्घैस्तां हंसकल्लोलमालिनीम् ॥ १० ॥ तस्यादक्षिणकूलेतु निवासमकरोत्तदा ॥ पुष्पस्यमतिमास्थाय बन्धुभिस्सकलैर्वृतः॥ ११ ॥ तस्यासीन्नगरस्थस्य प्रतिज्ञाचण्डशर्म्मणः ॥ सप्तविंशतिभिर्लिङ्गैर्दृष्टैर्भोक्ष्याम्यहंसदा ॥ १२ ॥ तांचसंस्मरत

कर व नमस्कार कर अतिदुःखित होताहुआ नगरसे निकला ॥ ८ ॥ व पुष्पसमेत और बार बार समझाया हुआ व आंसुवोंसे पूर्णनेत्रोंवाला व दीन चण्डशर्मा उत्तर दिशाके सामने गया॥ ९ ॥ तदनन्तर पुण्यदायिनी व ठण्ढेजलवाली व मुनिसमूहोंसे सेवित और हंसोंकी कल्लोलोंसमेत मालावाली उस सरस्वतीनदी को पाकर॥ १०॥ उस समय पुष्पकी बुद्धि पै स्थित होकर सकलभाइयोंसे घिरेहुये चण्डशर्माने उस सरस्वतीके दक्षिणकिनारे पै निवास किया ॥ ११ ॥ नगरमें टिकेहुये उस चण्डशर्माकी यह प्रतिज्ञाहुईथी कि सदैव सत्ताईस लिंगोंको देखकर मैं भोजन करूंगा ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो! पूर्वसंज्ञक उस प्रतिज्ञाको भलीभांति स्मरण करते

हुये उस चण्डशर्माका हृदय दिनरात अत्यन्तही जलताथा ॥ १३ ॥ और वह सरस्वती में नहाकर पवित्र होकर सावधान होता हुआ वह षडक्षर मन्त्रको जपताथा और अलग अलग लिंगके उस उस नामको कहकर नमस्कारान्त तक किया हे द्विजोत्तमो ! पांचअंगुलके प्रमाणभर पङ्कसे लिंगको भलीभांति थापकर भक्तिके द्वारा पुष्प, धूप व अनुलेपनोंसे पूजताथा व परमश्रद्धासे संयुत वह पश्चात् प्राणरुद्र ऐसे मन्त्रोंका जपकरताथा ॥ १४ । १५ । १६ ॥ व दुःस्थित और सुस्थित भी शिवलिंगको न चलावै ऐसा मानकर यह द्विजेन्द्र उन लिंगोंको नहीं विसर्जन करताथा ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन लिंगोंके ऊपर २ नित्यही सत्ताईसकी गिनती

स्तस्य प्रतिज्ञांपूर्वसंज्ञिताम् ॥ हृदयंदह्यतेत्यन्तं दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ सचस्नात्वासरस्वत्यां शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ षडक्षरस्यमन्त्रस्य जपंसचपृथक्पृथक् ॥ १४ ॥ तन्तमुच्चार्य्यलिङ्गस्य नमस्कारान्तमादधे ॥ कर्द्दमेनद्विजश्रेष्ठाः पञ्चाङ्गुलमयेनच ॥ १५ ॥ संस्थाप्यपूजयेद्भक्त्या पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ प्राणरुद्राञ्जपन्पश्चाच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ १६ ॥ दुःस्थितंसुस्थितंवापि शिवलिङ्गंनचालयेत् ॥ इतिमत्वाद्विजेन्द्रोसौ नैवतानिविसर्ज्जयेत् ॥ १७ ॥ उपर्य्युपरितेषांचकर्द्दमेनद्विजोत्तमाः ॥ चक्रेलिङ्गानिनित्यंच सप्तविंशतिसङ्ख्यया ॥ १८ ॥ ततःकालेनमहता जातःकर्द्दमपर्वतः ॥ अथतुष्टोमहादेवस्तस्यभक्त्यतिरेकतः ॥ १९ ॥ निर्भिद्यधरणीपृष्ठं तस्यलिङ्गमदर्शयत् ॥ अब्रवीत्सादरंतञ्च मेघगम्भीरयागिरा ॥ २० ॥ चण्डशर्म्मन्प्रतुष्टोस्मि यश्चैवम्पूजयिष्यति ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानांसोपिश्रेयोभिलप्स्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चण्डशर्म्मापितंदृष्ट्वा पूजयामासतत्त्वतः ॥ २२ ॥ प्रासादंकारयामास तस्य

से लिंगोंको किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर बड़ेभारी समयसे चहलाका पर्वत होगया इस के अनन्तर उस चण्डशर्माकी भक्तिके अधिकत्वसे महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १९ ॥ व भूतलको भेदनकर उस चण्डशर्माको लिंग दिखलाया व मेघके समान गम्भीरवाणीसे आदरसमेत उससे कहा ॥ २० ॥ कि हे चण्डशर्मन् ! मैं प्रसन्नहूं और जो इस भांति सत्ताईस लिंगोंको पूजैगा वहभी कल्याण या पुण्यको पावैगा ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये व चण्डशर्माने भी देखेहुये

उस लिंगको यथार्थ पूजन किया ॥ २२ ॥ व उस लिंगके उत्तममन्दिरको निर्मित कराया उसीसे नगरेश्वरनामक होगा ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि उस समय चण्ड-शर्मा द्विजोत्तमने इसभांति उसलिंगको भलीभांति थापकर पुष्प व धूप व अनुलेपनों से आराधन किया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वैसेही सत्ताईस लिंगोंके पूजनेवाले फल को प्राप्तहोताथा तदनन्तर नगरमें जो लिंगथे उनकाभी पूजन किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर बहुत समयसे नगरेश्वरकी प्रसन्नताके कारण क्षणहीके मध्यमें साक्षात् शिव-लोकसेवित हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त उसपुष्पने पुण्यदायक सरस्वती के किनारे पै अन्य पुष्पादित्यको थापा तदनन्तर पूजनमें तत्पर हुआ ॥ २७ ॥ उसकेभी दर्शन

लिङ्गस्यशोभनम् ॥ नगरेश्वरसंज्ञंतु तस्मादेवभविष्यति ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसंस्थाप्यतल्लिङ्गं चण्डशर्म्माद्विजोत्तमः ॥ आराधयामासतदा पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ २४ ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानां प्राप्नोतिचतथाफलम् ॥ पूजितानिद्विजश्रेष्ठा नगरेयानितानिच ॥ २५ ॥ ततःकालेनमहतानगरेश्वरतुष्टितः ॥ शिवलोकंततःसाक्षात्क्षणमध्येनिषेवितम् ॥ २६ ॥ सपुष्पःस्थापयामास पुष्पादित्यमथापरम् ॥ पुण्येसरस्वतीतीरे ततःपूजापरोभवत् ॥ २७ ॥ तस्यापिदर्शनङ्गत्वा प्रीतोवचनमब्रवीत् ॥ पुष्पतुष्टोस्मिभद्रन्ते वरम्प्रार्थयसुव्रत ॥ २८ ॥ अदेयमपिदास्यामि तस्मात्प्रार्थयमाचिरम् ॥ पुष्पउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ २९ ॥ तद्देहियाचमानस्य यथावद्धृदिसंस्थितम् ॥ चमत्कारपुरेदेव यस्सूर्य्यःस्थापितोमया ॥ ३० ॥ नगरादित्यइत्येष ख्यातोभवतुभूतले ॥ योयंसरस्वतीतीरे प्रासादःस्थापितोमया ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतश्चादर्शनंरविः ॥ दीपवद्ब्राह्मणश्रेष्ठास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥

में प्राप्तहोकर प्रसन्नहोते हुये सूर्यनारायणजी बोले कि हे उत्तमव्रतकरनेवाले पुष्प ! तुम्हारा कल्याण होवै मैं प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये ॥ २८ ॥ न देनेके योग्य वरको भी मैं दूंगा इसलिये शीघ्रही मांगिये पुष्प बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो और यदि मुझको वर देनेयोग्यहै ॥ २९ ॥ तो हे देव ! मांगते हुये मुझको हृदयमें भली भांति टिकेहुये वरको यथायोग्य दीजिये कि चमत्कारनगर में मैंने जिन सूर्यजीका थापन कियाहै ॥ ३० ॥ ये नगरादित्य ऐसे भूतल में प्रसिद्ध होवैं और जो यह सरस्वतीजीके किनारे मैंने मन्दिरका थापन कियाहै वहभी प्रसिद्ध होवै ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर सूर्यनारायणजी दीपकके

समान अदृश्य होगये वह आश्चर्यसा होगया ॥३२॥ तदनन्तर बहुत समयसे द्विजोत्तम पुष्पभी उत्तमतेजवाले विमानके द्वारा स्वर्गलोकको प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ और शाकम्भरी ऐसी प्रसिद्ध जो चण्डशर्माकी स्त्रीथी उसने सरस्वती नदीके शुभदायककिनारे पै दुर्गाजीको भलीभांति थापन किया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उत्तमभक्तिसे अहर्निश आराधन किया तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! प्रसन्न होतीहुई उन दुर्गाजीने उस शाकम्भरीको वरदान दिया ॥ ३५ ॥ कि हे पुत्रि, शाकम्भरि ! तुम्हारा कल्याणहो मैं प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये व ग्रहण करिये मेरीप्रसन्नतासे निरसन्देह तुम्हारामनोरथ होगा ॥ ३६ ॥ शाकम्भरी बोली कि हे देवि ! चमत्कारपुरमे

ततःकालेनमहता पुष्पोपिद्विजसत्तमः ॥ स्वर्गलोकमनुप्राप्तो विमानेनसुवर्चसा ॥ ३३ ॥ शाकम्भरीतिविख्याता भार्यायाचण्डशर्म्मणः ॥ तयासंस्थापितादुर्गा सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ ३४ ॥ आराधिताथसद्भक्त्या दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तुष्टावरन्तस्याः सादादौद्विजसत्तमाः ॥ ३५ ॥ पुत्रितुष्टास्मिभद्रन्ते शाकम्भरिप्रगृह्यताम् ॥ वरंवरयतेभीष्टं मत्प्रसादादसंशयम् ॥ ३६ ॥ शाकम्भर्य्युवाच ॥ चतुःषष्टिगणादेवि मातॄणान्तेऽव्यवस्थिताः ॥ चमत्कारपुरेख्याता हास्याचुष्टिंव्रजन्तुवा ॥ ३७ ॥ यारात्रौबलिदानेन या तेवृद्धौततःपरम् ॥ तत्सर्वंजायतेपुण्यं या तेमूर्तिम्प्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ अत्रागत्यनदीतीरेयस्मात्संस्थापितामया ॥ देव्युवाच ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे महानवमिसञ्ज्ञिते ॥ ३९ ॥ यो ममाग्रेसमागत्य पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ तस्यकृत्स्नंफलन्तस्य भविष्यतिनसंशयः ॥ ४० ॥ नागरस्यविशेषेण सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वातुसादेवी ततश्चादर्शनङ्गता ॥४१॥ तस्यनाम्नाचसादेवी प्रोक्ताशाकम्भरीभुवि॥ वृद्धेरनन्त

जो प्रसिद्ध चौंसठि माताओं के गण विशेषकर स्थितहैं वे हास्यसे प्रसन्नहोवैं ॥ ३७ ॥ व जो रात्रिमें बलिदानसे पूजनकरै व जो बढ़ती में पूजनकरै उसके उपरान्त वही सबपुण्य उसको होवै जोकि तुम्हारी मूर्त्तिका पूजनकरै ॥ ३८ ॥ क्योंकि यहां आकर नदीके किनारे मैंने भलीभांति थापन किया है देवी बोलीं कि कुँवारके शुक्लपक्षमें महानवमीनामक तिथिमें ॥ ३९ ॥ जो मेरे अगाडी भलीभांति आकर भक्तिसे पूजैगा उसको उस पूजनका सम्पूर्ण फल निरसन्देह होगा ॥ ४० ॥ व नागर ब्राह्मणको विशेषकर होगा यह मैंने सत्यकहाहै ऐसा कहकर तदनन्तर वह देवी अन्तर्द्धान होगई ॥ ४१ ॥ व उसीके नामसे वह देवी भूमिमें शाकम्भरी कहीगई

हे द्विजोत्तमो ! वृद्धिके उपरान्त जो पुरुष उन शाकम्भरीजीका पूजन करताहै उस की बढ़तीका कभी विघ्न नहीं होताहै ॥ ४२ । ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरि
च्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुष्पादित्यशाकम्भरीस्थापनंनामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५७ ॥ ❀ ॥
दो० । इकसौ अट्ठावने महँ सोई चरित नवीन । श्यामकर्णअश्वन निमित मुनि ऋचीक तप कीन ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तबसे लगाकर सरस्वतीजी
के पुण्यदायक व उत्तमकिनारे पै बाहरवाले नागरों का बड़ाभारीस्थान हुआ व पुत्र, पौत्रोंसे बढ़ेहुये व नातियोंकी विद्या व महाधनों मे चमत्कारपुरके आगे याने

रन्तस्या यःपूजांकुरुतेनरः ॥ ४२ ॥ तस्यवृद्धेर्नविघ्नःस्यात्कदाचिद्द्विजसत्तमाः ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे
तृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्पादित्यशाकम्भरीस्थापनंनामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५७॥
सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिपुण्येच सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ बाह्यानांनागराणांच स्थानंजातंमहत्तरम् ॥ १ ॥ पुत्रपौत्रप्र
वृद्धानां दौहित्राणांद्विजोत्तमाः ॥ चमत्कारपुरस्याग्रे ख्यातंविद्यामहाधनैः ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विश्वामित्रेण
धीमता ॥ शप्तासरस्वतीकोपात् कृता रुधिरवाहिनी ॥ ३ ॥ ततःसंसेव्यतेहृष्टै राक्षसैस्सादिवानिशम् ॥ गीतनृत्यपरै
श्चान्यैर्भूतैःप्रेतैःपिशाचकैः ॥ ४ ॥ ततस्तेनागराबाह्याःतांत्यक्त्वादूरतःस्थिताः ॥ कांदिशीकास्तथायाता भक्ष्यमा
णास्तुराक्षसैः ॥ ५ ॥ नर्मदायास्तटेपुण्ये मार्कण्डाश्रमसन्निधौ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्सरस्वतीशप्ता विश्वामित्रेण
धीमता ॥ ६ ॥ महानद्याकोपराधस्तयातस्यविनिर्मितः ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पुरामहद्वैरंविश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ ७ ॥

अधिकप्रसिद्ध हुआ ॥ १ । २ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय बुद्धिमान् विश्वामित्रने क्रोधसे सरस्वतीको शापदिया व रक्तबहनेवाली किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न
राक्षसों व नाचने गानेमें तत्पर अन्यभूतों, प्रेतों व पिशाचोंसे अहर्निश वे सरस्वतीजी भलीभांतिसेवित होतीथीं ॥ ४ ॥ तदनन्तर वे बाहरीनागर उस सरस्वती नदी
को छोड़कर दूरमें टिके वैसेही राक्षसोंसे भक्षित होतेहुये भयभीत होकर नर्मदानदीके पुण्यदायक किनारे पै मार्कण्डजीके आश्रमके समीप चलेगये ऋषिलोग बोले कि
बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने किसकारण सरस्वतीजीको शाप दियाहै ॥ ५।६ ॥ व उस महानदीने उन विश्वामित्रजीका क्या अपराध किया था सूतजी बोले कि हे ब्राह्मण !

पुरातनसमय ब्राह्मणताके लिये विश्वामित्र व वसिष्ठजीका अत्यन्त प्राणोंका अन्तकारक बडाभारी वैर हुआ क्योंकि देवदेव पितामह (ब्रह्मा) को अगाड़ीकर याने पहिले उनके कहनेपर समस्तब्राह्मणोंने क्षत्रियभी महामुनि विश्वामित्रजीको ब्राह्मण कहा परन्तु वसिष्ठजीने न कहा उसीसे वह वैर हुआहै ॥ ७ । ८ । ९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! जिन क्षत्रियभी विश्वामित्रजीको आपही ब्रह्माने कैसे विप्र कहा व उनको वसिष्ठने क्यों नहीं कहा ॥ १० ॥ इस समस्तचरितको हमलोगों से कहिये क्योंकि परमआश्चर्य्य प्राप्तहै सूतजी बोले कि पुरातनसमय भृगुजी के पुत्रऋचीकनामक महामुनि हुये हैं ॥ ११ ॥ जोकि व्रतों व वेदपाठसे संयुक्त व बड़े

॥ ८ ॥ क्षत्रियोपिपुरब्राह्मण्यस्यकृतेविप्राः प्राणान्तकरणम्महत् ॥ ससर्वैर्ब्राह्मणःप्रोक्तोविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ ९ ॥ ऋषयउचुः ॥ क्षत्रियोपिकथं विप्रोविश्वामित्रोमहामते ॥ वसिष्ठेनकथंनोक्तो यःप्रोक्तोब्रह्मणा स्वयम् ॥ १० ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व परंकौतूहलंस्थितम् ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पुराऋचीकाख्यो भृगुपुत्रोमहामुनिः ॥ ११ ॥ व्रताध्ययनसम्पन्नोऽभूत्तपस्वीमहायशाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सकदाचिन्मुनीश्वरः ॥ १२ ॥ स्थानंभोजकटंनाम प्राप्तोगाधिर्महीपतिः ॥ यत्रसाकौशिकीनाम नदीत्रैलोक्यविश्रुता ॥ १३ ॥ तस्यांस्नात्वाद्विजश्रेष्ठो यावत्तिष्ठतितीरगः॥ समाधिस्थोजपंकुर्वन् सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ १४ ॥ तावत्तत्रसमायाता राजकन्यासुशोभना ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वैरेवगुणैर्युता ॥ १५ ॥ सतांसंवीक्षतेयावत्सर्वावयवशोभनाम् ॥ तावत्कामशरैर्व्याप्तः कर्तव्यंनाभ्यविन्दत ॥ १६ ॥ ततःपप्रच्छलोकान्स लब्ध्वाकृच्छ्रेणचेतनाम् ॥ कस्येयंकन्य

यशस्वी तपस्वी हुये हैं वे मुनिनायक ऋचीकजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे किसी समय भोजकटनामक स्थानको प्राप्तहुये जहांपर कि गाधिनामक भूपतिथा व त्रैलोक्य में प्रसिद्ध कौशिकीनामक नदीथी ॥ १२ । १३ ॥ किनारे पै प्राप्तद्विजोत्तम ऋचीकजी उसकौशिकीनदी में नहाकर व पितरों तथा देवोंको भलीभांति तर्पणकर जबतक जप करते हुये समाधिमें स्थित होकर बैठे ॥ १४ ॥ तबतक सबही गुणोंसे संयुत व समस्तलक्षणोंसे सम्पूर्ण अतिउत्तम राजकन्या वहां भलीभांति आई ॥ १५ ॥ वे ऋचीकजी समस्तअंगोंसे सुन्दरी उसकन्याको जबतक भलीभांति देखैं तबतक कामदेवके बाणोंसे व्याप्तहोते हुये कर्तव्यताको न प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर क्लेश

से चैतन्यताको पाकर उन ऋचीकजीने मनुष्योंसे पूछा कि उत्तमआचरणवाली यह किसकी कन्याहै और यहां किस लिये आई है ॥ १७ ॥ व हे मनुष्यो ! उत्तम कटिवाली यह कहांको जावेगी इस समस्तवृत्तान्तको मुझसे कहिये मनुष्य बोले कि प्रसिद्धमें त्रैलोक्यसुन्दरी ऐसी प्रसिद्ध यह गाधिकी कन्याहै ॥ १८ ॥ व समस्त गुणोंसे भलीभांतिप्रकाशित उत्तमपतिको मांगतीहुई व पार्वतीजीके पूजनेकी अतिअभिलाषवाली यह रनिवाससे भलीभांति आईहै ॥ १९ ॥ यहां नदीके किनारे जो यह बड़ाभारी मन्दिर स्थितहै इसमें समस्तदेवताओंसे भलीभांति पूजीहुई पार्वतीजी टिकी हैं ॥ २० ॥ यह राजकन्या क्रमपूर्वक पूजकर व अनेकभांतिकी नैवेद्यदेकर

कासाध्वी किमर्थमिहचागता ॥ १७ ॥ कथ्यस्यतिवरारोहासर्वंमेकथ्यतांजनाः ॥ जनाऊचुः ॥ एषागाधिसुतानाम ख्याता त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ १८ ॥ अन्तःपुरात्समायाता गौरीपूजनलालसा ॥ प्रार्थयमानासुभर्तारं सर्वैःसमुदितंगुणैः ॥ १९ ॥ प्रासादोयंस्थितोयोत्र नदीतीरेबृहत्तमः ॥ उमासन्तिष्ठतेचात्र सर्वैःसम्पूजितासुरैः ॥ २० ॥ एषाब्रह्मजपित्वाचपूजयित्वा यथाक्रमम् ॥ नैवेद्यंविविधंदत्त्वा करिष्यतिततःपरम् ॥ २१ ॥ वीणाविनोदगानंच श्रुतिमार्गसुखावहम् ॥ ततोयास्यति हर्म्यं स्वं मन्दीभूतेचभास्करे ॥ २२ ॥ ऋचीकस्तुतदाकर्ण्य लोकानांवचनंचयत् ॥ ययौगाधिगृहंशीघ्रं कामबाणप्रपीडितः ॥ २३ ॥ तंदृष्ट्वासहसाप्राप्तं ऋचीकंभृगुसत्तमम् ॥ सम्मुखःप्रययौतूर्णं गाधिःपार्थिवसत्तमः ॥ २४ ॥ गृह्योक्तेन विधानेन कृत्वाचैवार्हणंततः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यमेतदुवाचह ॥ २५ ॥ निस्पृहस्यापितेविप्र किमागमनकारणम् ॥ तत्सर्वंमेसमाचक्ष्व येनयच्छामितेऽखिलम् ॥ २६ ॥ ऋचीकउवाच ॥ तवकन्यास्तिराजेन्द्र वरार्हावरवर्णिनी ॥

और ब्रह्म (वेद) को जपकर या ब्रह्मका ध्यानकर तदनन्तर कर्णपथको सुखदायक वीणाके विनोदसे गानकरैगी उसके उपरान्त सूर्यनारायणको मन्दहोनेपर याने सायङ्काल में अपने घरको जावैगी ॥ २१ । २२ ॥ मनुष्योंका जो वचनथा उसको सुनकर कामदेवके बाणसे अतिव्यथित होतेहुये ऋचीक मुनि शीघ्रही गाधिके घर को गये ॥ २३ ॥ अचानक प्राप्तहुये उन भृगूत्तम ऋचीकजीको देखकर नृपोत्तम गाधिजी शीघ्रही सामनेगये ॥ २४ ॥ तदनन्तर गृह्यसूत्रमें कहीहुई विधिसे पूजन कर जुड़ेहुयेहाथोंवाले होकर यह वचन बोले ॥ २५ ॥ कि हे विप्रजी ! निर्लोभीभी तुम्हारे आनेका कारण क्याहै वह सब मुझसे कहो कि जिससे मैं तुमको सम्पूर्ण

देऊं ॥ २६ ॥ ऋचीकजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तमरंगवाली व वरके योग्य तुम्हारी कन्याहै हे भूपते ! ब्राह्मण विवाहसे मुझको उसे दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इसी के लिये वरकी योग्यतासे मैं तुम्हारे घरमें प्राप्तहुआहूं व पार्वतीजीके पूजनके निमित्त आईहुई उसको मैंने देखाहै ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर उन ऋचीकजीको असवर्ण याने कन्याके समान नहीं रंगवाले या अपनी जातिसे रहित व निर्धनी तथा वृद्धहीको मानकर नृपोत्तम गाधिजी भयभीत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर न देनेमें शापसे डरेहुये गाधिने वचन कहा कि हे द्विजोत्तम ! हमलोगोंके कन्या दानमें शुल्क (वरसे धनादि) लियाजाता है ॥ ३० ॥ यदि उसको देवोगे तो

ब्राह्मणेनविवाहेन तांमेदेहिमहीपते ॥ २७ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तो गृहेतववराहर्तः ॥ सामयावीक्षिताराजन् गौरीपूजार्थमागता ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तो गाधिःपार्थिवसत्तमः ॥ असवर्णंचतंमत्वा दरिद्रंवृद्धमेवच ॥ २९ ॥ अदानेशापभीतस्तु ततोवाक्यमुवाचह ॥ अस्माकंकन्यकादाने शुल्कमस्तिद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ तच्चेद्यच्छसिकन्यांतां तुभ्यंदास्याम्यसंशयम् ॥ ऋचीकउवाच ॥ ब्रूहिपार्थिवशार्दूल कन्यकाशुल्ककंमम ॥ ३१ ॥ द्धतंयच्छामितेसर्वं यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥ गाधिरुवाच ॥ एकतःश्यामकर्णानामश्वानांवातरंहसाम् ॥ ३२ ॥ शतानिसप्तविप्रेन्द्र श्वेतानां चैवसर्वतः ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ ३३ ॥ कान्यकुब्जंसमासाद्य गङ्गातीरेविवेशह ॥ अपोवोह्लेति यत्सूक्तंचतुष्षष्टिसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥ छन्दऋषिदेवतायुक्तं जपंचक्रेततःपरम् ॥ विनियोगंवाजिकृतेगाधिनायत्प्रकीर्तितम् ॥ ३५ ॥ ततस्तेवाजिनस्तस्मान्निष्क्रान्तास्सलिलाद्द्विजाः ॥ सर्वेश्वेतास्सुवेगाश्च श्यामैकश्रवणास्तथा ॥ ३६ ॥

निस्सन्देह तुम्हारे लिये उस कन्याको दूंगा ऋचीक बोले कि हे नृपपुंगव ! कन्याके शुल्कको मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥ यद्यपि अतिदुर्लभभी होगा तथापि तुमको सब दूंगा गाधि बोले कि हे द्विजेन्द्र ! पवनवेगवाले सातसौ घोड़ोंका शुल्कहै जोकि सबओर सफेद होवैं और जिनके केवल कान कालेहोवैं वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर मुनिसत्तम ऋचीकजी ॥ ३२ । ३३ ॥ कान्यकुब्जदेशको भलीभांति प्राप्तहोकर गंगाके किनारे बैठगये तदनन्तर जो गाधिने कहाथा घोड़ेके लिये उस विनियोगको करके चौंसठिऋचाओं से उपजाहुआ व छन्द ऋषि देवतासंयुत जो अपोवोह्ल ऐसा मन्त्रहै उसका जप किया ॥ ३४।३५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! उस जलसे वे समस्त

व सातसौसंख्यक तथा उतनेहीसंख्यक मनुष्योंसे संयुतथे तबसे लगा
घोड़े निकले जो सम्पूर्णश्वेतरंगवाले व अत्यन्तवेगवाले तथा श्यामकानोंवाले थे ॥ ३६ ॥
कर पुण्यदायक गंगाजीके उत्तमकिनारे पै कान्यकुब्जदेशके समीप प्राप्त भूतलमें वह अश्वतीर्थ प्रसिद्ध हुआ जिसमें स्नानकरनेपर मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको
प्राप्तहोताहै ॥ ३७ । ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअश्वतीर्थोत्पत्तिनामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ❀ ॥
दो० । मुनिनायक जमदग्निके भये पुत्र जिमिराम । इकसौउंसठिमें सोई कह्यो चरित अभिराम ॥ सूतजीबोले कि इस के अनन्तर ऋचीकमुनिभी विश्वासकारी पुरुषों

शतानिसप्तसंख्यानि तावत्संख्यैर्नरैर्युताः ॥ ततःप्रभृतिविख्यातमश्वतीर्थंधरातले ॥ ३७ ॥ गङ्गातीरेशुभेपुण्ये का
न्यकुब्जसमीपगम् ॥ यस्मिन्स्नानेकृतेमर्त्यो वाजिमेधफलंलभेत ॥ ३८ ॥ इतिश्री स्कान्देनागरखण्डेतृतीयपरिच्छे
देहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअश्वतीर्थोत्पत्तिर्नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १५८ ॥ * ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ ऋचीकोपिसमादाय पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ तानश्वान्प्रजगामाथ यत्रगाधिर्व्यवस्थितः ॥ १ ॥ तस्मै
निवेदयामास कन्यार्थेतान्हयोत्तमान् ॥ गाधिस्तुतान्प्रगृह्याथ अश्वान्वाजिमखस्यच ॥ २ ॥ एकैकंपरमंयेषां सज
गामाथपार्थिवः ॥ ततस्तांप्रददौतस्मै कन्यांत्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ ३ ॥ विप्राग्निसाक्षिसम्भूतां गृह्योक्तविधिनान्वितः॥
ततोविवाहनिर्वृत्ते ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ ४ ॥ तस्याःसंवेशनेचैव निष्कामःसमपद्यत ॥ अथाब्रवीन्निजांभार्यां नि
ष्कामंसंस्थितोमुनिः ॥ ५ ॥ अहंयास्यामिसुश्रोणिकाननेतपसःकृते ॥ त्वंप्रार्थयवरंकञ्चिद् येनाभीष्टंददामिते ॥ ६ ॥

से उनघोड़ोंको भलीभांति लेकर वहां गये जहांपर कि गाधि विशेषतासे टिकाहुआ था व उन ऋचीकजीने कन्याके लिये उन उत्तमघोड़ोंको उस गाधिके लिये निवेदनकिया
इसके अनन्तर गाधिजीने अश्वमेधयज्ञके उन घोड़ोंको लेकर कि जिनके मध्य में एकसेएक उत्तमथा इसके अनन्तर वे गाधिनृपति चलेगये उसके उपरान्त गृह्यसूक्त
में कहीहुई विधिसे संयुत होतेहुये गाधिने ब्राह्मण व अग्निकी साखीसे उपजीहुई उस त्रैलोक्यसुन्दरी कन्याको उन ऋचीकके लिये दिया तदनन्तर विवाहके निवृत्त
होनेपर मुनिसत्तम ऋचीकजी ॥ २ । ३ । ४ ॥ उसके रतिकरने में अकामहुये इसके अनन्तर अकामप्रति भलीभांति टिकेहुये मुनिने अपनीस्त्रीसे कहा ॥ ५ ॥

कि हे! सुश्रोणि (उत्तम कटिवाली)! मैं तपस्याके लिये वनको जाऊंगा तुम किसी वरदानको मांगो कि-जिससे मैं तुम्हारे अभिलाषको देऊं ॥६॥ उन अकाम ऋचीकजी के उस वचनको सुनकर आंसुवोंसे पूर्णनेत्रोंवाली वह दुखिया माताके समीपगई ॥७॥ उस समय हे द्विजोत्तमो! उन अकाम मुनिके वचनको व जैसा उनमुनिने वरदान कहाथा उसको कहा ॥८॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उससे उसप्रकार भलीभांति कहेहुये वचनको सुनहीकर तदनन्तर उस माताने पुत्रके लिये वचन को कहा ॥९॥ कि हे पुत्रि! यदि यह पति तुमको चाहेहुये वरको देताहै तो उसी कारण ब्राह्मणता से संयुत पुत्रको मांगो ॥१०॥ व हे शुभे! मेरे लिये सम्पूर्ण

साश्रुत्वातस्यतद्वाक्यं निष्कामस्यप्रजल्पितम् ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीना जगामजननींप्रति ॥ ७ ॥ प्रोवाचवचनंतस्य निष्कामस्यमुनेस्तदा ॥ वरदानंतथातेन यथोक्तंद्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ अथश्रुत्वैवसामाता तथासंजल्पितंतया ॥ सुतार्थं ब्राह्मणश्रेष्ठास्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ यद्ययंपुत्रितेभर्ता वरंयच्छतिवाञ्छितम् ॥ तत्प्रार्थयसुतंतस्माद्ब्राह्मण्येनसमन्वितम् ॥ १० ॥ मदर्थंचैकपुत्रन्तु निश्शेषक्षात्रतेजसा ॥ संयुक्तंयाचयशुभे विप्रंतन्तुतपःस्थितम् ॥ ११ ॥ साश्रुत्वा जननीवाक्यमृचीकंप्राप्यसुव्रता ॥ अब्रवीज्जननीवाक्यंसर्वंविस्तरतोद्विजाः ॥ १२ ॥ सतस्याश्चवचःश्रुत्वा चकाराथचरुद्वयम् ॥ पुत्रेष्टिंविधिवत्कृत्वा चरुंकृत्यस्वयंभुवम् ॥ १३ ॥ एकस्मिन्योजयामास ब्राह्म्यतेजोखिलंयशः ॥ क्षात्रंतेजस्तथान्यस्मिन् सकलंद्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ भार्यायैप्रददौपूर्वं ब्राह्म्यंचचरुमुत्तमम् ॥ अब्रवीत्प्राशयत्वेनमश्वस्थालिङ्गनंकुरु ॥ १५ ॥ ततःप्राप्स्यसिसत्पुत्रं ब्रह्मतेजःसमन्वितम् ॥ द्वितीयोयंचरुर्यश्च तंत्वंमात्रेनिवेदय ॥ १६ ॥

क्षत्रिय तेजसे संयुतवाले एक पुत्रको तपस्यामें टिकेहुये उन द्विजसे मांगिये ॥११॥ हे ब्राह्मणो! माताके वचनको सुनकर उत्तमव्रतवाली उस कन्याने ऋचीकजीको प्राप्तहोकर माताके समस्त वचनको विस्तारसे कहा ॥१२॥ उन ऋचीकजीने उसके वचनको सुनकर विधिपूर्वक पुत्रवाले यज्ञकोकर व अपनेहीसे उपजीहुई यज्ञखीर को बनाकर इसके अनन्तर दो यज्ञखीरोंको किया ॥१३॥ व हे द्विजोत्तमो! एकमें समस्तब्राह्मणवाले तेज व यशको युक्त किया वैसेही दूसरे में क्षत्रियवाले समस्त तेजको युक्त किया ॥१४॥ व पहिले स्त्रीके लिये ब्राह्मणवाले उत्तमतेजको दिया व कहा कि इसको खाकर पीपलका आलिंगन करो ॥१५॥ तदनन्तर ब्राह्मणके

तेजसे संयुत उत्तमपुत्रको पावोगी व दूसरा जो यह चरुहै उसको तुम माताके लिये निवेदनकरो ॥ १६ ॥ तदनन्तर मुनिसत्तम ऋचीकजीने उससे कहा कि तुम मातासे
यह कहना कि तुम इस यज्ञवाली खीरको खाकर बरगदका आलिंगन करो ॥ १७ ॥ उसके उपरान्त क्षत्रियतेज से संयुक्त उत्तम पुत्रको विशेषकर पावोगी हे महा-
भागे! मेरा वचन वृथा नहीं होताहै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो! अपने तेजसे उत्तम नियमोंवाली व अतिप्रसन्न उस स्त्रीसे ऐसा कहकर ऋचीकजी आपही प्रसन्न
हुये ॥ १९ ॥ व वे दोनों सुता माताओंने प्रसन्न चित्तसे घरमें जाकर आपसमें कहा कि उन ऋचीकजीसे कहाहुआ यह सत्य होगा ॥ २० ॥ तदनन्तर माताने कन्या

अब्रवीच्चततस्तान्तु ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ त्वमेनंचरुकंप्राश्यन्यग्रोधालिङ्गनंकुरु ॥ १७ ॥ ततःप्राप्स्यसिसत्पुत्रं संयुक्तंक्ष
त्रतेजसा ॥ विशेषेणमहाभागे न मेस्याद्वचनंवृथा ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वाऋचीकस्तु सुव्रतांस्वेनतेजसा ॥ सुहृष्टांब्राह्मणश्रे
ष्ठाः स्वयंचमुदितोभवत् ॥ १९ ॥ तेचैवतुगृहेगत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ऊचतुश्चमिथस्तेन सत्यमेतद्भविष्यति ॥ २० ॥
ततोमातासुतांप्राह आत्मार्थंसकलोजनः ॥ त्वदीयोद्विजमात्रोपि तवतुष्टिंकरिष्यति ॥ २१ ॥ अथसाविजनेप्रोक्ता तया
मात्रायशस्विनी ॥ अकरोद्व्यत्ययंवृक्षे चरौचद्विजसत्तमाः ॥ २२ ॥ ततःपुंसवनेस्नाने तेशुभेचारुलोचने ॥ दधातेगर्भ
मेकातु भर्तुःसंयोगतःक्षणात् ॥ २३ ॥ ततस्तुगर्भमासाद्यसाचत्रैलोक्यसुन्दरी ॥ क्षात्रेणतेजसातेन तत्क्षणात्समप
द्यत ॥ २४ ॥ मनोराज्यंततश्चक्रे हस्त्यश्वारोहणोद्भवम् ॥ युद्धवार्तास्तथाचक्रे देवासुरगणोद्भवाः ॥ २५ ॥ शृणोतिच

से कहा कि अपने लिये समस्तमनुष्य कल्याण चाहता है तुम्हारा द्विजमात्रभी तुम्हारी प्रसन्नता करैगी ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उस मातासे एकान्त
में कहीहुई उस कन्याने वृक्ष व यज्ञकीखीरमें वदलाकरलिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर पुंसवनस्नान में सुन्दरेनयनोंवाली व उन दोनों स्त्रियोंने गर्भधारण किया एक तो
क्षणभर में पतिके संयोगसे गर्भको धारण किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर वह त्रैलोक्य सुन्दरी गर्भको प्राप्तहोकर उसीक्षण क्षत्रियवालेतेजसे भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २४ ॥
तदनन्तर हाथी, घोड़ों के चढ़नेसे उपजीहुई राज्य पै मन किया वैसेही सुरासुरसमूहोंसे उपजीहुई समरकी वार्ताओंको किया ॥ २५ ॥ व वैसेही सुना और नित्यही

लीलाओंमें मनको धारण किया तदनन्तर पिताके घरसे कुलीनघोड़ों व हाथियों व लालवसनों और केशर आदिक विलेपनको भलीभांति लाकर राज्यसे उपजे हुये
अनुष्ठानको किया ॥ २६ । २७ ॥ बहुतेरे भोगोंके धारनेवाले ऋचीकजीने ब्राह्मणोंके योग्य सम्पूर्ण आचरणोंसे त्यागेहुये व राजाओंके योग्य उसके उस कर्मको देख-
कर ॥ २८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतहुये कहा कि हे पापिनि ! धिक्कारहै तूने यह क्या किया हे पापिनि ! तूने निश्चयकर यज्ञकीखीर व वृक्षका बदला कियाहै कि
जिससे क्षत्रियके लिये समस्त ब्राह्मणोंके आचरणोंसे रहित तुम्हारे इस कर्म व चीर बकलोंसे त्यागेहुये व जप रहित स्नान व कस्तूरी पूर्वक अनेक प्रकारकी सुगन्धों

तथानित्यं विलासेषुमनोदधे ॥ अनुष्ठानंतथाचक्रे ततोराज्यसमुद्भवम् ॥ २६ ॥ पितुर्गृहात्समानीय जात्यानश्वांस्त थागजान् ॥ रक्तानिचैववस्त्राणि काश्मीराद्यंविलेपनम् ॥ २७ ॥ तन्दृष्ट्वाचेष्टितंतस्या राजार्हंबहुभोगधृक् ॥ ब्राह्मणा र्हैःपरित्यक्तं समाचारैश्चकृत्स्नशः ॥ २८ ॥ अब्रवीत्ततःक्रुद्धो धिक्पापेकिमिदंकृतम् ॥ व्यत्ययोविहितोनूनं चरुकस्य नगस्यच ॥ २९ ॥ त्वयापापेप्रपश्यामि येनैतत्तवचेष्टितम् ॥ क्षत्रियार्थंद्विजाचारैस्सकलैःपरिवर्जितम् ॥ ३० ॥ चीर वल्कलसंत्यक्तं स्नानंजाप्यविवर्जितम् ॥ संयुक्तंविविधैर्गन्धैर्मृगनाभिपुरस्सरैः ॥ ३१ ॥ तवमाताशमस्थासा जपहो मपरायणा ॥ तीर्थयात्रापराचैव वेदश्रवणलालसा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तेक्षत्रियःपुत्रो भविष्यतिनसंशयः ॥ भ्राताचब्राह्म णश्रेष्ठोब्रह्माचैवयथापरः ॥ ३३ ॥ भविष्यतितथाचिह्नैर्गर्भलक्षणसम्भवैः ॥ यस्मादुदीरितःपूर्वं श्लोकोऽयंशास्त्रचिन्त कैः ॥ ३४ ॥ यादृशादौर्हृदास्सन्ति सगर्भाणांचयोषिताम् ॥ तादृशानांभवेत्स्थानं तस्याःपुत्रोत्रजायते ॥ ३५ ॥ सैवमु

से संयुत तुम्हारे चेष्टितको मैं देखताहूं ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ और शान्तिमें टिकीहुई तुम्हारी वह माता जप, होममें तत्पर व तीर्थयात्रा में परायण और निश्चयकर
वेदके सुनने में अत्यन्त अभिलाषवाली है ॥ ३२ ॥ इसलिये निस्सन्देह तुम्हारे क्षत्रिय पुत्रहोगा और गर्भवाले लक्षणोंसे उपजेहुये चिह्नोंके कारण द्विजोंमें उत्तमभाई
जैसा दूसरे ब्रह्माहोवैं वैसाही होगा क्योंकि पुरातन समय शास्त्रके चिन्तकोंने यह श्लोक कहाहै ॥ ३३ । ३४ ॥ कि गर्भ संयुत स्त्रियों के जैसे अभिलाषहोवैं यहां उस

का जो पुत्र पैदाहोवै वह वैसेही वस्तुओंका स्थानहोगा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कही व भयभीत और आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंवाली व दीन तथा कांपतीहुई उसने हाथजोड़ कर यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ कि हे प्रभो! जो तुमने वाक्य कहा यह सत्यहै क्योंकि इस संसारमें विना चिह्नोंसे भूत, भविष्यको आप जानतेहो ॥ ३७ ॥ इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण पुत्रहोवै और किसी प्रकार क्षत्रियके पुत्रकी उत्पत्तिसे रक्षा कीजिये ॥ ३८ ॥ इसकारण मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिसभांति ब्राह्मण पुत्रहोवै ऋचीकजी बोले कि जो कुछ ब्रह्मतेजथा उसको मैंने तुम्हारी यज्ञखीरमें धराथा ॥ ३९॥ और क्षत्रियवाले तेजको तुम्हारी माताके चरुमें

क्ताभयत्रस्ता वेपमानाकृताञ्जलिः ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीनावाक्यमेतदुवाचह ॥ ३६ ॥ सत्यमेतत्प्रभोवाक्यं यत्त्वयास मुदाहृतम् ॥ अतीतानागतंवेत्ति विनालिङ्गैर्भवानिह ॥ ३७ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादम्मे यथास्याद्ब्राह्मणस्सुतः ॥ क्षत्रिय स्यतुपुत्रस्य भवात्राहिकथञ्चन ॥ ३८ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादम्मे यथास्याद्ब्राह्मणस्सुतः ॥ ऋचीकउवाच ॥ यत्किञ्चि द्ब्रह्मतेजस्तु तन्न्यस्तंतेचरौमया ॥ ३९॥ क्षात्रंतेजश्चतेमातुर्व्यत्ययंचकथन्ततः ॥ करोमिचाधमेलुब्धेशास्त्रस्यचव्यति क्रमम् ॥ ४० ॥ पौत्रस्तुदुर्द्धरःसङ्ख्ये संयुक्तःक्षात्रतेजसा ॥ ततःसत्यंवरंलब्ध्वा प्रसन्नवदनासती ॥ ४१ ॥ मातुर्निवेदया मास तत्सर्वंकान्तजल्पितम् ॥ ततस्सादशमेमासि सम्प्राप्तेगुरुदैवते ॥ ४२ ॥ नक्षत्रेजनयामास पुत्रंबालार्कसन्निभ म् ॥ ब्राह्मयालक्ष्म्यासमोपेतं निधानंतपसश्शुचिम् ॥ ४३ ॥ जमदग्निरितिख्यातो योसौत्रैलोक्यविश्रुतः ॥ तस्यपुत्रोभ वेत्ख्यातो रामोनाममहायशाः ॥ ४४ ॥ एकविंशतिधायेन धरानिःक्षत्रियाकृता ॥ क्षात्रतेजःप्रभावेण पितामहप्र

धराथा उसीकारण हे अधमेलुब्धे! मैं उलटा कैसे करूं व किसभांति शास्त्रका व्यतिक्रम करूं ॥ ४० ॥ तदनन्तर कहाकि क्षत्रियवाले तेजसे संयुत पौत्रतो युद्धमें दुर्धर्ष होगा सत्य वरदानको पाकर प्रसन्नमुखवाली होतीहुई उसने पतिसे कहेहुये उस समस्त वृत्तान्तको मातासे निवेदन किया उसके उपरान्त उसने दशम महीनेको भली भांति प्राप्तहोनेपर बृहस्पति देवतावाले (पुष्य) नक्षत्रमें बालसूर्य्यकेसमान व ब्राह्मणवाली सम्पत्तिसे संयुत और तपस्याके निधान व पवित्र पुत्रको पैदाकिया ॥ ४१ ॥ ४२ । ४३ ॥ जो यह जमदग्नि ऐसे कहेहुये त्रिलोकमें प्रसिद्धहुये उन जमदग्निजीके बड़े यशस्वी व प्रसिद्ध रामनामक पुत्रहुये ॥ ४४ ॥ जिन परशुरामजीने बाबाकी

प्रसन्नता व क्षत्रियवाले तेजके प्रभावसे इक्कीसबार पृथ्वीको बिन क्षत्रियोंकी करदियाहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरशुरामोत्पत्तिनामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गाधिसुवन जिमिराज्यतजि गये वनहिं तपहेत । सोइ इकसौसाठि महँ वरणत सूत सचेत ॥ सूतजी बोले कि यज्ञखीरके खानेसे गाधिकी उस राजभार्याने भी मन्त्रके कारण उसी वर्षमें गर्भको धारण किया ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब वह गर्भसे संयुतहुई तब व्रतोंमें तत्पर व उत्तम आचरणोंवाली तथा तीर्थयात्रामें परायण

सादतः ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरशुरामोत्पत्तिर्नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ गाधेस्तुराजपत्नीच प्राशनाच्चरुकस्यच ॥ सापिगर्भंदधेतत्र वत्सरेमन्त्रतश्शुभा ॥ १ ॥ साचगर्भसमोपेतायदाजाताद्विजोत्तमाः ॥ तीर्थयात्रापरासाध्वी जाताव्रतपरायणा ॥ २ ॥ वेदध्वनिर्भवेद्यत्र तत्रहर्षसमन्विता ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी साशुश्रावचसर्वदा ॥ ३ ॥ त्यक्त्वाराज्ञोचितान्सर्वानलङ्कारान्सुखानिच ॥ अथसापिद्विजश्रेष्ठा दशमेमासिसंस्थिते ॥ ४ ॥ सुषुवेसुप्रभंपुत्रं ब्राह्मयालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ विश्वामित्रस्सचाख्यातस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ५ ॥ ववृधेममहाभागो नित्यमेवाधिकंनृणाम् ॥ शुक्लपक्षेसमासाद्य तारापतिरिवाम्बरे ॥ ६ ॥ यदासौयौवनोपेतस्सञ्जातो मुनिसत्तमाः ॥ राज्यक्षमस्तदाराज्येगाधिनासन्नियोजितः ॥ ७ ॥ अनिच्छमानस्स्वंराज्यं पितृपैतामहंमहत् ॥ वेदा

हुई ॥ २ ॥ व सदैव राजाओंके योग्य समस्त अलङ्कारों व सुखोंको छोड़कर जहां वेदकी ध्वनि होतीथी वहां रोमांचित समस्त अंगोंवाली व हर्षसंयुत उसने सुना इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! दशम महीनेको भलीभांति प्राप्तहोने पर उसनेभी ॥ ३।४ ॥ ब्राह्मणवाली लक्ष्मीसे चारों ओर घिरेहुये व उत्तम कान्तिवाले पुत्रको पैदाकिया और वह स्थावर जंगम समेत त्रिलोकमें विश्वामित्र ऐसा कहागया ॥ ५ ॥ बड़े भाग्यवाले वे विश्वामित्रजी नित्यही मनुष्योंके बीचमें बढ़े जैसे कि शुक्लपक्षमें प्राप्तहो कर आकाशके मध्य चन्द्रमा बढ़ताहै ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वरो ! जब यौवनसे संयुक्त ये विश्वामित्रजी राज्यके योग्यहुये तब गाधिने राज्यपै भलीभांति नियोगकिया ॥ ७ ॥

और पिता व पितामहोंवाली अपनी बड़ीभारी राज्यको न चाहतेहुये वे विश्वामित्रजी वेदाध्ययनमें संयुतहोकर नित्यही पढ़तेथे ॥८॥ इसके अनन्तर महाभाग गाधिजी अहर्निश ब्राह्मणोंके योग्य मार्गसे चलतेहुये पुत्रको राज्यपै भलीभांति बिठाकर वानप्रस्थ आश्रममें तत्परहो स्त्री समेत वनचारी हुये याने वनको चलेगये और ब्राह्मणों में भलीभांति पूजन में परायण व राज्यपै स्थित विश्वामित्रभी ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर स्नान, जपमें तत्परहोकर समस्त ब्राह्मणोंके साथ चले याने वैसाही आ- चरण किया इसके उपरान्त किसी समय पापकी बढ़तीमें प्राप्तहुये विश्वामित्रने अनेक प्रकारके मृगोंसे संकुल वनमें प्रवेश किया और उस वनमें सूकरों, चौगड़ों

ध्ययनसम्पन्नो नित्यंचपठतेहिसः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोचितमार्गेणगच्छमानंदिवानिशम् ॥ संस्थाप्याथसुतंराज्ये बभूववन
गोचरः ॥ ९ ॥ सकलत्रोमहाभागो वानप्रस्थाश्रमेरतः ॥ विश्वामित्रोपिराज्यस्थो द्विजसम्पूजनेरतः ॥ १० ॥ द्विजै
स्सर्वैश्चचाराथ स्नानजाप्यपरायणः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पापर्द्धिसमुपागतः ॥ ११ ॥ प्रविवेशवनंरौद्रं नानामृग
समाकुलम् ॥ जघानविपिनेतत्र वराहाञ्छशकान्गजान् ॥ १२ ॥ तरक्षूंश्चमरान्न्यङ्कून्नरण्यमहिषांस्तथा ॥ सिंहान्व्या
घ्रान्महासर्पाञ्छरभांश्चविशेषतः ॥ १३ ॥ मृगयासक्तचित्तःसभ्रममाणोदिवानिशम् ॥ मध्याह्नसमयेप्राप्तेवृषस्थे
चदिवाकरे ॥ १४ ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रान्तो विश्वामित्रोद्विजोत्तमाः ॥ आससादाश्रमेपुण्ये वसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ १५ ॥
वसिष्ठोपिसमालोक्य विश्वामित्रंनृपोत्तमम् ॥ निजाश्रमेतुसम्प्राप्तं सानन्दंसम्मुखोययौ ॥ १६ ॥ दत्त्वातस्मैतदार्घञ्च
मधुपर्कञ्चभूभुजे ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं स्वागतन्तेमहीपते ॥ १७ ॥ वदकृत्यङ्करोम्येव गृहायातस्ययच्चते ॥ विश्वामित्र

व हाथियों, चीतों, चमरों, न्यंकुओं (मृगभेदों) तथा जंगली भैंसों व सिंहों, व्याघ्रों व बड़ेभारी सांपों और विशेषकर शरभों (मृगजाति भेदों) को मारा ॥ ११ ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब कि सूर्य्यजी वृषराशि पै टिकेथे तब मध्याह्न समयके प्राप्तहोने पर दिनरात घूमतेहुये व शिकारमें लगे चित्तवाले वे विश्वामित्रजी क्षुधा प्याससे अति थकगये व महात्मा वसिष्ठजीके पुण्यदायक आश्रममें प्राप्तहुये ॥ १४ । १५ ॥ व अपने आश्रममें भलीभांति प्राप्तहुये नृपोत्तम विश्वामित्रजी को देखकर आनन्द समेत वसिष्ठभी सामने गये ॥ १६ ॥ और उस समय उन विश्वामित्र भूपतिके लिये अर्घ व मधुपर्कको देकर तदनन्तर वचन बोले कि हे भूपते !

तुम्हारा आना अच्छा हुआ ॥ १७ ॥ व जो कार्यहो कहिये घरमें आयेहुये तुम्हारे उस कार्यको मैं निश्चयकर करूंगा। विश्वामित्रजी बोले कि हे मुनिनाथ! शिकार में थकाहुआ व प्याससे विकल इन्द्रियोंवाला मैं पानी पीनेके लिये तुम्हारे इस आश्रममें प्राप्तहुआ व उस ठण्ढेजलको पिया और प्यासहीन स्थित भया ॥ १८।१९ ॥ हे ब्रह्मन्! मुझको आज्ञा दीजिये जिससे घरको जाऊं वसिष्ठजी बोले कि मध्याह्नसमयमें विकराल सूर्य्यनारायण अत्यन्तही तापदायकहैं ॥ २० ॥ इसलिये हे राजन्! मेरे आश्रममें भोजनके योग्य अन्नको भोजन करके पराह्णके व्यवस्थित होनेपर याने उसपहर अपने निवासस्थानको जाइयेगा ॥ २१ ॥ राजाबोले कि मैं चतुरंगिणी

उवाच ॥ मृगयायांपरिश्रान्तः पिपासाव्याकुलेन्द्रियः ॥ १८ ॥ पानार्थमिहसम्प्राप्त आश्रमेतेमुनीश्वर ॥ तत्पीतंशीतलन्तोयं वितृष्णोहंव्यवस्थितः ॥ १९ ॥ अनुज्ञान्देहिमेब्रह्मन् येनगच्छामिमन्दिरम् ॥ वसिष्ठउवाच ॥ मध्याह्नसमयेरौद्रः सूर्योतीवसुतापदः ॥ २० ॥ तत्कृत्वाभोजनंराजन् पराह्णेतुव्यवस्थिते ॥ गन्तासिनिजमावासं भोज्यान्नंममचाश्रमे ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ चतुरङ्गेणसैन्येन मृगयामहमागतः ॥ तवाश्रमस्यद्वारस्थंममसैन्यंव्यवस्थितम् ॥२२॥ बुभुक्षितेषुभृत्येषु यःस्वामीकुरुतेशनम् ॥ सयातिनरकंघोरं त्यज्यतेचगुणैर्हतः ॥ २३ ॥ तस्मादाज्ञापयक्षिप्रं मांमुने स्वगृहायभोः ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यदितेसेवकाःसन्तिद्वारदेशेबुभुक्षिताः ॥ २४ ॥ सर्वानिहानयक्षिप्रं तृप्तिंनेष्याम्यहम्पराम् ॥ अस्तिमेनन्दिनीनाम कामधेनुःसुशोभना ॥ २५ ॥ वाञ्छितंयच्छतिसर्वं तपसापार्थिवोत्तम ॥ तृप्तिंनेष्यतितेसर्वं सैन्यम्पार्थिवसत्तम ॥ २६ ॥ तस्मादानीयतांक्षिप्रं पश्यमेधेनुजम्बलम् ॥तच्छ्रुत्वाचानयामाससर्वंसैन्यंमहीपतिः॥२७॥

सेना समेत शिकारको आयाथा मेरी सेना तुम्हारे द्वारपै स्थित होकर विशेषता से टिकीहै ॥ २२ ॥ और सेवकोंके क्षुधित होनेपर जोस्वामी भोजन करताहै वह भयङ्कर नरकको जाताहै व गणोंसे त्याग किया जाताहै तथा माराजाताहै ॥ २३ ॥ इसलिये अहोमुने! घरके लिये मुझको शीघ्रही आज्ञादीजिये वसिष्ठजी बोले कि यदि तुम्हारे भूंखे सेवक द्वारदेशपै हैं ॥ २४ ॥ तो शीघ्रही सबोंको यहां लाइये मैं परम तृप्तिको प्राप्तकरूंगा मेरे अति उत्तम नन्दिनी नामक कामधेनुहै ॥ २५ ॥ हे नृपोत्तम! तपस्यासे वह समस्त अभिलाषको देतीहै हे भूपसत्तम! तुम्हारी सब सेनाको तृप्ति प्राप्तकरैगी ॥ २६ ॥ इसलिये शीघ्रही लाइये व मेरी गऊसे उत्पन्नहुये बलको

देखिये उस वचनको सुनकर भूपतिने समस्त सेनाको लाया ॥ २७ ॥ व नहाये और जप कियेहुये वे विश्वामित्रजी पितरों व देवताओंको भलीभांति तृप्तिकर और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन बँचाकर सिंहासनपर बैठगया ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें सायाह्न समय वसिष्ठजीसे भलीभांति बुलाईहुई वह नन्दिनी विश्वामित्रजीके अगाड़ी खड़ीहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठजीने वचनको कहा कि जबतक विश्वामित्र राजर्षिको भोजन संस्थिति होवै ॥ ३० ॥ तबतक अनेक भांतिके समस्त खानेवाले, चाटनेवाले, चूंसनेवाले व पीनेवाले पदार्थोंसे सेना समेत भूपतिको तृप्ति पर्य्यन्त कीजिये ॥ ३१ ॥ व घोड़ों हाथियोंके लिये क्रम पूर्वक घासआदिकको रचिये सूतजी

स्नातश्चकृतजप्यश्च सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ ब्राह्मणान्वाचयित्वाच सिंहासनमुपाश्रितः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे धेनुः सायाह्नेसाचनन्दिनी ॥ वसिष्ठेनसमाहूता विश्वामित्रंपुरःस्थिता ॥ २९ ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं कुरुष्ववचनान्म म ॥ विश्वामित्रस्यराजर्षेर्यावद्भोजनसंस्थितिः ॥ ३० ॥ खाद्यैस्सर्वैस्तथालेह्यैश्चोष्यैःपेयैःपृथग्विधैः ॥ कुरुष्वतृप्तिपर्य न्तं ससैन्यस्यमहीपतेः ॥ ३१ ॥ अश्वानांचगजादीनां यवसादियथाक्रमम् ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवसाप्युक्त्वा तत स्ततस्सृजेत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ यत्प्रोक्तन्तेनमुनिना भृत्यानांचायुतंतथा ॥ ततस्तेसर्वमादायभृत्याभोज्यंददुस्तथा॥३३॥ एकैकस्यपृथक्त्वेन प्रतिपत्तिपुरस्सरम् ॥ एवंतयाक्षणेनैव तृप्तिंनीतोमहीपतिः ॥ ३४॥ ससैन्यःसपरीवारो गजोष्ट्राश्वैर्वृ षस्सह ॥ ततस्तुकौतुकंदृष्ट्वा विश्वामित्रोमहीपतिः ॥३५॥ सामात्योविस्मयाविष्टो मेनेमायामयंद्विजाः ॥ अहोचित्र महोचित्रं ययासामेवरूथिनी ॥ ३६ ॥ तृप्तिंनीताह्यकस्माच्च क्षुत्पिपासासमाकुला ॥ तस्मात्सन्नीयतामेषा स्वगृहंधेनु

बोले कि उस धेनुनेभी हां यहा कहकर तदनन्तर उनमुनिने जो कहाथा उस सबको व दशहज़ार सेवकोंको उत्पन्न किया तदनन्तर उन सेवकोंने समस्त भोजनको लेकर वैसेही सिद्धि पूर्वक भिन्नतासे एक एकको दिया इस प्रकार उसधेनुने सेना-समेत व परिवारसहित और हाथी, ऊंट, घोड़े व बैलों समेत विश्वामित्र भूपतिको क्षणहीभरमें छकावटपै प्राप्तकिया तदनन्तर विश्वामित्र भूपतिने कौतुक (तमाशे या आश्चर्य) को देखकर ॥ ३२ । ३३ । ३४ । ३५ ॥ हे ब्राह्मणो ! मन्त्रियों समेत आश्चर्यमे प्राप्तहोकर मायामय मानाकि आश्चर्य है २ जिस धेनुने क्षुधा, प्यासमे अति विकल मेरी सेनाको अचानकही तृप्ति प्राप्तकर दिया इसलिये यह उत्तम गऊ

अपने घरको भलीभांति लेचलीजावै ॥ ३६ । ३७ ॥ नौकरोंसे रहित व अग्नि परिवारवाला यह ब्राह्मण क्याकरैगा अथवा हे मुनिसत्तम ! मूल्यके लिये मैं तुमको उत्तम रथों, हाथियों व घोड़ों व और इच्छाके अनुकूल अन्यभी पदार्थोंको दूंगा ॥ ३८ । ३९ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे राजन् ! कामनाओंको प्रपूरणकरनेवाली यह हमारी होम धेनुहै हे महाराज ! सामान्यभी गऊ ब्राह्मणोंको देना न चाहिये ॥४०॥ फिर समस्त मनोरथोंको देनेवाली इस नन्दिनीको क्या कहनाहै हे नृपेन्द्र ! अन्य अतिउत्तम शान्ति वचनको सुनिये ॥ ४१ ॥ जोकि गौवोंके बेंचनेके लिये आपही मनुजीने कहाहै कि गौवोंको वेंचकर उस धनको जो ब्राह्मणोत्तम ग्रहण करता है ॥ ४२ ॥

वरान्ररुत्तमा ॥ ३७ ॥ किङ्करिष्यातिविप्रोयं निर्भृत्योग्निपरिग्रहः ॥ अथवातवदास्यामि क्रयार्थेमुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ अदेयागौथांश्चहस्त्यश्वानन्यांश्चापियथेप्सितान् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ होमधेनुरियंराजन्नस्माकंकामदोहिनी ॥ अदेयागौर्महाराज सामान्यापिद्विजन्मनाम् ॥ ४० ॥ किम्पुनर्नन्दिनीह्येषासर्वकामप्रदायिनी ॥ अपरंश्रृणुराजेन्द्रशान्तिवाक्यमनुत्तमम् ॥४१॥ गवांहिविक्रयार्थेचयदुक्तंमनुनास्वयम् ॥ गवांविक्रीयतद्वित्तं योगृह्णातिद्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ अन्त्यजस्सपरिज्ञेयो मातृविक्रयकारकः ॥ तस्मान्नाहंप्रदास्यामिनन्दिनींतांमहामते ॥ ४३ ॥ नसाम्नानैवभेदेन नदानेनकथञ्चन ॥ नदण्डेनमहाराज तस्माद्गच्छनिजालयम् ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यत्किञ्चिद्विद्यतेरत्नं पार्थिवस्यक्षितौद्विज ॥ तत्सर्वंराजकीयंस्यादितिनीतिविदोविदुः ॥ ४५ ॥ रत्नभूताततोधेनुर्नन्दिनीयंप्रगृह्यताम् ॥ अथसाभृत्यवर्गेणनीयमानाचनन्दिनी ॥ ४६ ॥ हन्यमानाप्रहारैश्च पाषाणैर्लकुटैरपि ॥ अश्रुपूर्णेक्षणादीना प्रहारैर्जर्जरीकृता ॥ ४७ ॥ कृ

न प्रियवचनसे न भेदकरनेसे न किसी प्रकार दानसे न वह माताका विक्रयकर्ता चाण्डाल जानने योग्य है इसलिये हे महामते ! मैं उसनन्दिनीको न दूंगा ॥ ४३ ॥ न प्रियवचनसे न भेदकरनेसे न किसी प्रकार दानसे न दण्डसे दूंगा इसलिये हे महाराज ! अपने स्थानको जावो ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे द्विज ! राजाकी भूमिमें जो कुछ रत्न (श्रेष्ठपदार्थ) विद्यमान होताहै वह सब राजाका है यह नीतिके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है ॥ ४५ ॥ व यह नन्दिनीधेनु रत्नभूतहै उसीकारण ग्रहणकीजावै इसके अनन्तर सेवक समूहसे लीजाती हुई वह नन्दिनी ॥ ४६ ॥ पत्थलों व दण्डोंकेभी प्रहारोंसे मारीगई और आंसुओंसे पूर्ण नयनोंवाली व दुखिया और प्रहारोंसे जर्जरकी हुई उसधेनुने क्लेशसे मुनिश्रेष्ठ

उन वसिष्ठजीके समीप जाकर कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! क्या तुमने इस भूपको मुझे देदियाहै ॥ ४७।४८ ॥ कि जिससे जैसे स्वामीके पुरुष होतेहैं वैसेही मुझको चलाते हैं वसिष्ठजी बोले कि हे धेनो! प्राणत्यागके भी उपस्थित होनेपर मैं तुमको न दूंगा ॥ ४९ ॥ इसलिये हे धेनो! मेरे प्रभावसे आपही अपनी रक्षाकीजिये उस समय महात्मा वसिष्ठजीसे इसप्रकार कहीहुई धेनु कोप संयुतहुई तदनन्तर उस समय भयङ्कर हुङ्कारोंको किया उसी कारण हुङ्कारके शब्दोंसे संख्या रहित यानें असंख्य शबर पुलिन्द और म्लेच्छ नर अस्त्रोंसमेत निकले और उन्होंने विश्वामित्र भूपतिके समस्त सेवकोंको मारा ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे रहित तिरस्कृत व

च्छ्रादुपेत्यतंप्राह वसिष्ठंमुनिसत्तमम् ॥ किंदत्तास्मिमुनिश्रेष्ठ त्वयाहंचास्यभूपतेः ॥ ४८ ॥ येनमांकालयन्तिस्म पुरुषाःस्वामिनोयथा ॥ वसिष्ठउवाच ॥ नत्वांयच्छाम्यहंधेनोप्राणत्यागेपिसंस्थिते ॥ ४९ ॥ तद्रक्षस्वस्वयंधेनो आत्मानं मत्प्रभावतः ॥ एवमुक्तातदाधेनुर्वसिष्ठेनमहात्मना ॥ ५० ॥ कोपाविष्टाततश्चक्रेहुङ्कारान्दारुणांस्तदा ॥ तस्माद्धुङ्कारशब्देश्च निष्क्रान्तास्सायुधानराः ॥ ५१ ॥ शबराश्चपुलिन्दाश्च म्लेच्छास्संख्याविवर्जिताः॥ तैश्चभृत्याहतास्सर्वे विश्वामित्रस्यभूपतेः ॥ ५२ ॥ ततःकोपाभिभूतोसौ विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सज्जंकृत्वास्वसैन्यन्तु सत्वरन्तुप्रकोपतः ॥ ५३ ॥ युद्धंचक्रेचतैस्सार्द्धं मरणेकृतनिश्चयः ॥ अथतेसैनिकास्तस्य तेगजास्तेचवाजिनः ॥ ५४॥ पश्यतोनिहतास्सर्वे पुरुषैर्धेनुसम्भवैः ॥ विश्वामित्रंपरित्यज्य शेषंसर्वंनिपातितम् ॥ ५५ ॥ तन्दृष्ट्वावेष्टितंम्लेच्छैर्युध्यमानंमहीपतिम् ॥ कृपांकृत्वावसिष्ठस्तु नन्दिनीमिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ रक्षनन्दिनिभूपालं म्लेच्छैरेतैस्समावृतम् ॥ राजाहियत्नतोरक्ष्यो

मरणमें निश्चय कियेहुये ये विश्वामित्रभूपतिने शीघ्रही बड़ेकोपसे अपनी सेनाको तैयारकर उनके साथ समर किया इसके अनन्तर उन विश्वामित्रके देखते हुये वे सेनाके नर वे हाथी व वे घोड़े सब धेनुसे उपजेहुये पुरुषोंसे मारेगये विश्वामित्रको छोड़कर शेष सब गिरा दिया गया ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ व युद्ध करतेहुये उन विश्वामित्रभूपतिको म्लेच्छोंसे घिरे देखकर वसिष्ठजीने दयाकरके नन्दिनीसे यह कहा ॥ ५६ ॥ कि हे नन्दिनि! इन म्लेच्छोंसे घिरेहुयेभूपतिकी रक्षाकरो क्योंकि उपायसे राजाकी रक्षा करना चाहिये कि जिसकी प्रसन्नतासे यह समस्त संसार उत्तम मार्गमें विद्यमान है और समस्त प्राणी कुमार्ग में नहीं वर्तमान होता है तदनन्तर

जबतक नन्दिनी मना करनेके लिये आई ॥ ५७ । ५८ ॥ तबतक विश्वामित्रने भलीभांति उठाकर प्रहार करनेके लिये प्रारम्भ किया उससमय वशिष्ठजीने भी मारी जातीहुई उस नन्दिनीको भलीभांति देखकर ॥ ५९ ॥ उस विश्वामित्रभूपतिकी तलवार समेत उस भुजाको रोंकदिया इसके अनन्तर विलक्षणता में प्राप्त व लज्जासे युक्त विश्वामित्र भूपतिने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! अति भयङ्कर म्लेच्छोंसे मारेजाते हुये मुझे तुम रक्षाकरो व मेरी भुजाको स्तम्भसे रहितकरो मेरे अपराधसे समस्त अनन्त सेना नष्टहोगई ॥ ६० । ६१ । ६२ ॥ इसलिये मैं घरको जाऊंगा युद्धसे प्रयोजन नहींहै दुर्विनीत (नम्रता रहित) नर लक्ष्मी, विद्या व

यत्प्रसादादिदंजगत् ॥ ५७ ॥ सन्मार्गेविद्यतेसर्वो नचामार्गेप्रवर्तते ॥ ततस्तुनन्दिनीयावन्निषेधयितुमागता ॥ ५८ ॥ विश्वामित्रसमुद्यम्य प्रहर्तुमुपचक्रमे ॥ वसिष्ठोपिसमालोक्य वध्यमानाञ्चतान्तदा ॥ ५९ ॥ तंबाहुंस्तम्भयामास स खड्गंतस्यभूपतेः ॥ अथवैलक्ष्यमापन्नो विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ ६० ॥ प्रोवाचव्रीडयायुक्तो वसिष्ठंमुनिसत्तमम् ॥ रक्ष मांत्वंमुनिश्रेष्ठ वध्यमानंसुदारुणैः ॥ ६१ ॥ म्लेच्छैःकुरुष्वमेबाहुं स्तम्भेनतुविवर्जितम् ॥ ममापराधात्सन्नष्टं सर्वसैन्य मनन्तकम् ॥ ६२ ॥ तस्माद्यास्याम्यहंहर्म्यं नयुद्धेनप्रयोजनम् ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्य्यमेवच ॥ ६३ ॥ नतिष्ठतिचिरंयुद्धे यथाहंमदगर्वितः ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोवसिष्ठस्तु विश्वामित्रेणभूभुजा ॥ ६४ ॥ चकारतंभुजंत स्यस्तम्भदोषविवर्जितम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं विधायसुसुखङ्करम् ॥ ६५ ॥ गच्छराजन्विमुक्तोसिस्तम्भदोषेणवैम या ॥ माकार्षीर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं विरोधंभूयएवच ॥ ६६ ॥ अनुज्ञातस्सतेनाथ विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सव्रीडःप्रययौहर्म्यं

ऐश्वर्य्यको पाकर बहुत समयतक नहीं स्थित रहताहै जैसे कि मदसे गर्वित मैं युद्धमें बहुत समयतक न ठहरसका सूतजी बोले कि विश्वामित्र भूपालसे इसभांतिकहे हुये वसिष्ठजीने ॥ ६३ । ६४ ॥ उनकी उस बाहुको स्तम्भ (रुकावट) के दोषसे रहितकिया व हाथको सुखपूर्वक विधानकर हँसतेहुये वसिष्ठजीने वचनकहा ॥ ६५ ॥ कि हे राजन्! जाइये मैंने स्तम्भ दोषसे तुमको विमुक्त कियाहै और फिर ब्राह्मणों के साथ निश्चयकर वैर न करियेगा ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उन

वसिष्ठजीसे आज्ञादिये हुये लज्जासमेत विश्वामित्रभूपति चरणोंहीसे (पैदल) घरको गये ॥ ६७ ॥ व निशामुख (सन्ध्या) में अपने पुरद्वारपै पहुँचकर अति गुप्त व आंसुवोंसे सब ओर विकल नेत्रोंवाले विश्वामित्रने वहां प्रलाप किया याने निरर्थक वचनोंको कहा ॥ ६८ ॥ कि क्षत्रियोंके बलको धिक्कारहै व प्रभावको धिक्कारहै व जीवनको धिक्कारहै और एक ब्राह्मणका पराक्रम प्रशंसनीयहै व केवल ब्राह्मणवाला तेज प्रशंसाकरने योग्यहै ॥ ६९ ॥ मुझको वह कर्म करना चाहिये कि जिसभांति ब्राह्मणवाला बल होवै मैं अपनी राज्यको निश्चयकर छोड़कर बड़ाभारी तपकरूंगा ॥ ७० ॥ इसभांति निश्चयकर वे विश्वामित्रजी विश्वसह नामक प्रसिद्ध पुत्रको

पद्भ्यामेवद्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ स्वपुरद्वारमासाद्य सुगुप्तोरजनीमुखे ॥ प्रलापमकरोत्तत्र बाष्पपर्य्याकुलेक्षणः ॥ ६८ ॥ धिग्बलंक्षत्रियाणांच धिग्वीर्य्यंधिक्प्रजीवितम् ॥ श्लाघ्यंब्रह्मबलंचैकं ब्राह्मंयंतेजश्चकेवलम् ॥ ६९ ॥ तत्कर्म्मंचमया कार्य्यं यथास्याद्ब्राह्मणंबलम् ॥ त्यक्त्वाचैवनिजंराज्यंचरिष्यामिमहातपः ॥ ७० ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वा राज्येसंस्थाप्यवैसुतम् ॥ नाम्नाविश्वसहंख्यातं प्रजगामतपोवनम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये विश्वामित्रराज्यपरित्यागोनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंराज्यंपरित्यज्य विश्वामित्रोद्विजोत्तमाः ॥ हिमवन्तंनगंप्राप्य तपश्चक्रेसुदारुणम् ॥ १ ॥ वर्षास्वाकाशशायीच हेमन्तेसलिलाशये ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे स्थितोवर्षशतत्रयम् ॥ २ ॥ फलमूलकृताहारस्ततो

राज्यपै भलीभांति बिठाकर तपोवनको चलेगये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येविश्वामित्रराज्यपरित्यागोनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि वसिष्ठ बधहित रच्यो गाधिसुवन मुनिशक्ति । इकसौ इकसठिमें सोई बरणत सूतसभक्ति ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार राज्यको छोड़कर विश्वामित्रजीने हिमवान् पर्वतको प्राप्तहोकर अति विकराल तपस्या किया ॥१॥ व वर्षामें आकाश (मैदान) शायी, हेमन्त ऋतुमें जलाशयशायी और ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि साधक होकर तीनसौ वर्ष स्थित हुये तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! परब्रह्मको ध्यान करतेहुये फलों,मूलोंसे कियेहुये आहारवाले तीनसौ वर्षतक स्थितहुये ॥ २॥

३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पश्चात् उतनेही समयतक गिरे पत्तोंका भोजनकर्ता होकर स्थित हुआ व हजार वर्षोंतक जलाहारी हुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर उतनेही समयतक जलाहारी होकर स्थित हुआ तदनन्तर वह विश्वामित्र नृपतिसौवर्ष पवनभोजनकर्ताहुआ ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन विश्वामित्रजीके उसतपोबल को देखकर इन्द्रने मनमें चिन्तवन किया यह स्थिति कर्ता नृपोत्तम निश्चयकर मुझको सन्तापित करैगा ॥६॥ तदनन्तर भलीभांति आकर परममनोहर प्रियवचनसे बोले इन्द्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआहूं इच्छाके अनुकूल वरदानको मांगो ॥ ७ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे इन्द्रजी ! प्रसन्नहुये तुम इस

वर्षशतत्रयम् ॥ ध्यायमानःपरंब्रह्म स्थितोब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३ ॥ शीर्णपर्णाशनःपश्चात्तावत्कालंव्यवस्थितः ॥ जला हारश्चविप्रेन्द्रास्सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ ४ ॥ ततश्चैवजलाहारस्तावन्मात्रंव्यवस्थितः ॥ कालंसवायुभक्षश्च ततश्चैवशतं समाः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ अथदृष्ट्वातपःशक्तिं तस्यतांत्रिदशाधिपः ॥ तापयिष्यतिमांनूनं एपस्थातानृपोत्तमः ॥ ६ ॥ ततःप्रोवाचसङ्गम्य साम्नापरमवल्गुना ॥ शक्रउवाच ॥ तुष्टोस्मितवराजेन्द्र वरंब्रूहियथेप्सितम् ॥ ७ ॥ विश्वामि त्रउवाच ॥ ब्राह्मण्यंदेहिमेशक्र परितुष्टोसिसाम्प्रतम् ॥ तदर्थंतपसश्चर्य्यां जानीहित्वंपुरन्दर ॥ ८ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अनेनैवशरीरेण क्षत्रियस्यकथंद्विजः ॥ चतुर्विंशतिसंस्कारैर्द्विगुणैर्यःप्रजायते ॥ ९ ॥ तदन्यत्प्रार्थयक्षिप्रं यत्तेभीष्टत रंस्थितम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ नब्राह्मणात्परंकिंचित्प्रार्थयामिसुरेश्वर ॥ अपित्रैलोक्यराज्यन्ते वस्तुष्वन्येपुकाक था ॥ १० ॥ तस्माद्गच्छसुरश्रेष्ठ स्वंराज्यंपरिपालय ॥ परित्यक्ष्याम्यहंदेहं प्राप्स्येवापिद्विजन्मताम् ॥ ११ ॥ तच्छ्रु

समय मुझको ब्राह्मणता दीजिये हे पुरन्दर ! तुम उसीके लिये तपश्चर्य्याको जानो ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि दुगुने चौबीस याने अरतालीस संस्कारोंसे जो ब्राह्मण होताहै वह ब्राह्मणता क्षत्रियको इसी शरीरसे कैसे होवै ॥ ९ ॥ इसलिये शीघ्रही अन्य वरको मांगिये जोकि तुम्हारे अत्यन्त प्रिय स्थितहो विश्वामित्रजी बोले कि हे सुरेशजी ! ब्राह्मणसे पर (अन्य) किसी वस्तुको व त्रिलोककी राज्यकोभी तुमसे नहीं मांगताहूं अन्य वस्तुओंको क्या कहनाहै ॥ १० ॥ इसलिये हे सुरश्रेष्ठ ! जाइये

अपनी राज्यको पालन करिये मैं शरीरको त्यागकरूंगा या ब्राह्मणताको पाऊंगा ॥ ११ ॥ उन विश्वामित्रजीके उस वचनको सुनकर व उनके उस निश्चयको जानकर समस्त देवोंसे घिरेहुये सुरराज स्वर्गको चलेगये ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! विश्वामित्रने भी वैसेही दुष्कर तपको किया व हजार वर्षभी बीतगये ॥ १३ ॥ अन्य दिनमें पवनभोजी नृपति विश्वामित्रजीके समीप पुण्यदायक देवर्षियों समेत आपही ब्रह्माजी आये ॥ १४ ॥ व तपस्यासे जलेहुये पातकोंवाले उनभूपतिसे बोले ब्रह्मा बोले कि हे उत्तम, विश्वामित्र ! इस तपस्यासे मैं प्रसन्नहूं ॥ १५ ॥ तुम्हारा कल्याणहो वरदानको मांगिये मैं दुर्लभभी वरको दूंगा विश्वामित्र बोले कि हे देव ! यदि मेरे

त्वावचनंतस्य देवराजोदिवङ्गतः ॥ तस्यतन्निश्चयंज्ञात्वा सर्वदेवसमाहृतः ॥ १२ ॥ विश्वामित्रोपितद्रूपं चकारदुश्चरंतपः ॥ अपिवर्षसहस्रन्तु व्यतिक्रान्तंद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ अन्यस्मिन्वायुभक्षस्य विश्वामित्रस्यभूपतेः ॥ आजगामस्वयंब्रह्मापुण्यैर्देवर्षिभिस्सह ॥ १४ ॥ अब्रवीत्तंमहीपालं तपसादग्धकिल्बिषम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वामित्रप्रतुष्टोस्मि तपसानेनसत्तम ॥ १५ ॥ वरंवरयभद्रन्ते प्रदास्याम्यपिदुर्लभम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ १६ ॥ ब्राह्मण्यन्देहिमेदेव नान्यदिष्टतमम्महत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्षत्रियेणप्रजातस्य द्विजत्वंजायतेकथम्॥१७॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धंहि किम्मेवरयसीप्सितम् ॥ यन्नजातन्धरापृष्ठे नभविष्यतिकर्हिचित् ॥ १८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ गच्छत्वन्देवदेवेश ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ देहंत्यक्ष्यामिविप्राणां सम्प्राप्स्येवाद्विजन्मताम् ॥ १९ ॥ अथदेवर्षिमध्यस्थ ऋचीकोवाक्यमब्रवीत् ॥ अस्यजन्मकृतेदेव ब्राह्मयैर्मन्त्रैर्मयाचरु॥ २० ॥ अमितंब्रह्मवर्चस्वं तत्रसंयोजितंचरौ ॥

ऊपर प्रसन्नहोव यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ १६ ॥ तो हे देव ! मुझको ब्राह्मणता दीजिये और बड़ाभारी प्रिय नहीं है ब्रह्मा बोले कि क्षत्रियसे पैदाहुये पुरुषकी ब्राह्मणता कैसे होवै ॥ १७ ॥ मुझसे तुम श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध अभिलापको क्यों मांगतेहो जोकि धरणी पृष्ठमें कभी न हुआहै न होगा ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे देवदेवेश ! तुम अति उत्तम ब्रह्मलोकको जाइये मैं देहको छोड़ दूंगा या ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणताको भलीभांति पाऊंगा ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर देवर्षियोंके बीचमें टिकेहुये ऋचीकजीने वचनको कहा कि हे देव ! मैंने इसके जन्मके लिये ब्राह्मण वाले मन्त्रोंसे अतुलित ब्रह्मतेजको उस चरु यज्ञकीखीरमें भलीभांति युक्त कियाथा

उसी कारण हे चतुर्मुख! क्षत्रियसे पैदाहुआभी यह ब्राह्मणहै ॥ २०। २१ ॥ इसलिये हे प्रपितामहजी! तुम इनको ब्रह्मर्षि कहो जिस कारण कि राज्यपै बैठाहुआभी यह ब्राह्मणवाले मन्त्रोंके प्रभावसे ब्राह्मणोंके योग्य कर्मोंको करताहै उसी लिये ब्रह्मर्षिको पुकारिये कि जिससे हम सब विश्वामित्रको द्विजोत्तम कहैं ॥ २२। २३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माने बहुतदेरतक ध्यानकर निरसन्देह ब्रह्मर्षित्वको कहा तदनन्तर वैसेही ऋचीकादिक समस्त देवर्षियोंने कहा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उनके मध्यमें प्राप्त जो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीथे ॥ २५ ॥ क्रोधसे संयुक्त होतेहुये उनने कहा कि हे पितामहजी! क्षत्रियसे पैदाहुये विश्वामित्रको जानताहुआ भी मैं कभी ब्राह्मण

तेनैवक्षत्रजन्मापि ब्राह्मणश्चतुरानन ॥ २१ ॥ ब्रह्मर्षिंकीर्तयस्वैनं तस्मात्त्वंप्रपितामह ॥ राज्यस्थोपिद्विजार्हाणि प्रकृत्यानिकरोत्यसौ ॥ २२ ॥ ब्राह्मयमन्त्रप्रभावेण तस्माद्ब्रह्मर्षिमाह्वय ॥ येनकीर्तामहेसर्वे विश्वामित्रंद्विजोत्तमम् ॥ २३ ॥ अथब्रह्माचिरंध्यात्वा ब्रह्मर्षिस्त्वमसंशयम् ॥ ऋचीकाद्यैस्ततःसर्वैः प्रोक्तोदेवर्षिभिस्तथा ॥ २४ ॥ अथतेषांमध्यगतो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ २५ ॥ सोऽब्रवीत्कोपसंयुक्तोनाहंवक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ब्राह्मणंक्षत्रियाज्जातं जानन्नपि पितामह ॥ २६ ॥ ऋचीकस्यचदाक्षिण्यात्तथात्वंवदसिप्रभो ॥ प्रोच्यमानोपिवहुधा वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ २७ ॥ पितामहेनमुनिभिर्नारदाद्यैरनेकधा ॥ जगामाथपरित्यज्यतान्सर्वान्द्विजसत्तमान् ॥ २८ ॥ सचागत्यमुनिश्रेष्ठो देशंचानर्तसंज्ञितम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे शङ्खतीर्थसमीपतः ॥ २९ ॥ यत्रब्रह्मशिलापुण्या श्वेतद्वीपसमन्विता ॥ सरस्वतीस्थिता यत्र नदीपापहराशुभा ॥ ३० ॥ तत्राश्रमपदंकृत्वा चकारविपुलंतपः ॥ विश्वामित्रोपितत्स्थानं तद्वधार्थंसमागतः ॥ ३१ ॥

न कहूंगा ॥ २६ ॥ हे प्रभो! वैसेही, ऋचीकजीकी चतुरतासे तुम कहतेहो इसके अनन्तर ब्रह्मा व नारदादिक मुनियोंसे अनेकभांति व बहुत प्रकारसे कहेहुये भी मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी उन समस्त द्विजोत्तमोंको छोड़कर चलेगये ॥ २७। २८ ॥ व उनमुनिनायक वसिष्ठजीने हाटकेश्वरज क्षेत्रमें शङ्खतीर्थके समीप आनर्त नामक देशमें आकर ॥ २९ ॥ जहां कि श्वेतद्वीपसे संयुत पुण्यदायिका ब्रह्मशिलाहै व जहांपर पाप हारिणी उत्तम सरस्वतीजी स्थितहैं ॥ ३० ॥ वहां आश्रम स्थानको बनाकर

बड़ीभारी तपस्या किया और विश्वामित्रभी उनके मारनेके लिये उस स्थानपै भलीभांति आये ॥ ३१ ॥ व उन वसिष्ठजीके दूरस्थ स्थानपै दक्षिण दिशामें भलीभांति टिककर और वहां आश्रम स्थानको बनाकर उन वसिष्ठजीके छिद्रों (दोषों) को चिन्ततेहुये बहुत समयतक भलीभांति टिके परन्तु किसी छिद्रको न देखा इसके अनन्तर उन विश्वामित्रजीने उन वसिष्ठके ऊपर अभिचारवाले कर्म (मारणादि प्रयोग) को प्रारम्भ किया ॥ ३२ । ३३ ॥ सामवेदमें मन्त्रकी विधिसे जो बधात्मक अभिचार कहाहै उन दारुण मन्त्रोंसे उन विश्वामित्रजीको अग्निमें हवनकरते हुये वानरके कन्धे पै चढ़ी व किल किल शब्दको करती हुई व छुटे बालोंवाली भयङ्करी शक्ति

संस्थितस्सुचिरंकालं नचपश्यतिकश्चन ॥ तस्याश्रमस्यदूरस्थं याम्यांदिशिसमाश्रितः ॥ कृत्वाश्रमपदंतत्र तस्यच्छिद्राणिचिन्तयन् ॥ ३२ ॥ अथाभिचारिकन्तेन प्रारब्धंतस्यचोपरि ॥ ३३ ॥ यदुक्तमन्त्रविधिना सामवेदेवधात्मकम् ॥ तस्यतैर्दारुणैर्मन्त्रैर्जुह्वतोजातवेदसम् ॥ ३४ ॥ निष्क्रान्तादारुणाशक्तिर्मुक्तकेशाभयानका ॥ वानरस्कन्धमारूढा कुर्वाणाकिलकिलध्वनिम् ॥ ३५ ॥ नानायुधसमोपेता यमजिह्वायथापरा ॥ साब्रवीद्द्विजविप्रेन्द्र किन्तेकृत्यंकरोम्यहम् ॥ ३६ ॥ त्रैलोक्यमपिकृत्स्नञ्च संहरामितवाज्ञया ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ममशत्रुर्महान्योत्र वसिष्ठःकुमुनिःस्थितः ॥ ३७ ॥ तत्त्वंजहिद्रुतंगत्वा तदर्थंचमयाकृता ॥ एवमुक्तातुसातेन विश्वामित्रेणधीमता ॥ ३८ ॥ वसिष्ठाश्रममुद्दिश्य प्रस्थिताचोत्तरामुखी ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वसिष्ठस्याश्रमेद्विजाः ॥ ३९ ॥ दुर्निमित्तानिजातानि प्रभूतानिमहान्तिच ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ ४० ॥ तथारुधिरवृष्टिश्च अस्थिमिश्राव्यजायत ॥ दीप्तांदिशंसमा

निकली ॥ ३४ । ३५ ॥ जोकि अनेक प्रकारके अस्त्रों से संयुत जैसे दूसरी यमजिह्वाहोवै वैसीथी उसने कहा कि हे द्विजेन्द्र ! कहिये मैं तुम्हारे किस कार्यकोकरूं ॥ ३६ ॥ तुम्हारी आज्ञासे मैं समस्त त्रिलोककोभी संहारकरूं विश्वामित्रजी बोले कि मेरे बड़ाभारी बैरी जो यहां निन्दित मुनि वसिष्ठ टिकेहैं ॥ ३७ ॥ शीघ्रही जाकर उनको मारिये उसीके लिये मैंने कियाहै उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीसे इस प्रकार कहीहुई उस शक्तिने उत्तर मुखवाली होकर वसिष्ठजीके आश्रमको उद्देशकर प्रस्थान किया इसी अवसरमें हे ब्राह्मणों ! वसिष्ठजीके आश्रममें ॥ ३८ । ३९ ॥ बड़ेभारी बहुतसे अशकुन हुये कि सूर्यमण्डलको ताड़नकर बड़ीभारी उल्का गिरी ॥ ४० ॥ वैसेही

अरिथयोंसे मिलीहुई रक्तकी वर्षाहुई व प्रकाशित दिशाको प्राप्तहोकर सियारीने रोदन किया ॥ ४१ ॥ उन बड़ेभारी उत्पातोंको देखकर मुनिपुंगव वसिष्ठजी जबतक ज्वालाकी मालाओंसे भलीभांति उज्ज्वल रूपको सब ओरसे देखैं ॥ ४२ ॥ तबतक दिव्यदृष्टिसे भलीभांति सब जानकर कि मेरे मारनेके लिये सामवेदसे उपजेहुये उत्तम मन्त्रोंके द्वारा यह कृत्या रूपिणी शक्ति विश्वामित्रसे प्रयुक्तकीगई है तदनन्तर उन वसिष्ठजीसे ठहरो २ ऐसा कहीहुई वह शक्ति अचल होगई ॥ ४३ । ४४ ॥ उन वसिष्ठजीने अथर्वणवेदसे उपजे हुये अपने मन्त्रोंके द्वारा उसको रोंकदिया तदनन्तर स्त्रीरूपको धरकर मुनिसत्तम वसिष्ठजीसे बोली ॥ ४५ ॥ कि वेदोंके मध्यमें सामवेद

साद्य रुरोदचतथाशिवा ॥ ४१ ॥ तान्दृष्ट्वासुमहोत्पातान्वसिष्ठोमुनिपुङ्गवः ॥ यावदालोकतेरूपं ज्वालामालासमुज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥ ततःसम्यक्परिज्ञाय सर्वंदिव्येनचक्षुषा ॥ विश्वामित्रप्रयुक्तेयं शक्तिर्ममवधायच ॥ ४३ ॥ कृत्यारूपासुमन्त्रैश्चसामवेदसमुद्भवैः ॥ तिष्ठतिष्ठेतितेनोक्ताततस्सानिश्चलाभवत् ॥ ४४ ॥ निजमन्त्रैश्चसातेन स्तम्भिताथर्वणोद्भवैः ॥ ततःस्त्रीरूपमाधाय प्रोवाचमुनिपुङ्गवम् ॥ ४५ ॥ सामवेदस्तुवेदानां प्राधान्येनव्यवस्थितः ॥ विधिनातस्यसंसृष्टा विश्वामित्रेणधीमता ॥ ४६ ॥ माकुरुष्वाप्रमाणन्तु प्रहारंसहमेमुने ॥ रक्षयिष्यामितेप्राणान्स्वल्पस्पर्शेनतेमुने ॥ ४७ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यद्येवंकुरुमेस्पर्शं मर्ममास्पर्शशोभने ॥ मयाचाथर्वणामन्त्रास्संहृताःकृपयातव ॥ ४८ ॥ ततस्तदारुणाशक्तिर्विश्वामित्रप्रयोजिता ॥ तस्याङ्गदेशंस्पृष्ट्वाच निपपातधरातले ॥ ४९ ॥ ततस्तुष्टोवसिष्ठस्तुतामाहमधुरंवचः ॥ अद्यप्रभृतितेपूजां करिष्यन्तिसमाहिताः ॥ ५० ॥ जनास्सर्वेमहाभागे भक्त्यापरमयायुताः ॥ चैत्रमासेसितपक्षे

मुख्यतासे व्यवस्थित (टिका) है उस सामवेदकी विधिसे बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने मुझको सिरजाहै ॥ ४६ ॥ हे मुने ! अप्रमाण मतकीजिये मेरे प्रहारको सहिये हे मुने ! तुम्हारे थोड़े स्पर्शसे तेरे प्राणोंकी रक्षाकरूंगी ॥ ४७ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे शोभने ! यदि ऐसाहै तो मेरे स्पर्शकरो परन्तु मर्म (नाजुक अंग) को मतस्पर्श कीजियेगा और तुम्हारे ऊपर दयासे मैंने अथर्वणवेदवाले मन्त्रोंका संहार कियाहै ॥ ४८ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रसे प्रयोगकीहुई वह भयङ्करी शक्ति उन वसिष्ठजीके अंग स्थानको छूकर भूतलमें गिरपड़ी ॥ ४९ ॥ तदनन्तर अप्रसन्न वसिष्ठजीने उस शक्तिसे मधुर वचनको कहा कि हे महाभागे ! आजसे लगाकर सावधान होतेहुये समस्त

नर परम श्रद्धासे युक्तहोकर तुम्हारी पूजाकरैंगे और चैतमहीने के मध्यशुक्लपक्षमें अष्टमी दिनके स्थित होनेपर॥ ५०।५१॥ परम श्रद्धासे संयुत होतेहुये जोमनुष्य तुम्हारा पूजनकरैंगे वे सब वर्षभरतक निरोग होवैंगे ॥ ५२ ॥ इसलिये मेरे वचनसे तुमको सदैव यहीं टिकना चाहिये सूतजी बोले कि उन महात्मा वसिष्ठजी से इस प्रकार कहीहुई वह शक्ति ॥ ५३ ॥ उन वसिष्ठजीके वचनसे उसीक्षण वह देवीवहींपर स्थितहुई व नागर द्विजोंसे विशेषकर कीहुई उत्तम पूजनको प्राप्तहोतीहै ॥ ५४ ॥ व भक्तजनों को सुखदायिनी धारा ऐसे नामसे प्रसिद्धहुई ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरमाहात्म्ये

अष्टम्यांदिवसेस्थिते ॥ ५१ ॥ येतेपूजांकरिष्यन्ति श्रद्धयापरयायुताः ॥ तेसर्वेवत्सरंयावद्भविष्यन्तिनिरामयाः ॥५२॥ तस्मादत्रैवस्थातव्यं सदैवममवाक्यतः॥ सूतउवाच॥ एवमुक्ताचसातेन वसिष्ठेनमहात्मना ॥ ५३ ॥ स्थितातत्रैवसादेवी तस्यवाक्येनतत्क्षणात् ॥ प्राप्नोतिपरमांपूजां विशेषान्नागरैःकृताम् ॥ ५४ ॥ धारानामेतिविख्याता भक्तलोकसुखप्रदा ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे नागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्सातुष्टिदाप्रोक्ता नागराणांविशेषतः ॥ धारानामेतिविख्याता कस्मात्साधरणीतले ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ चमत्कारपुरेपूर्वं धारानामेतिविश्रुता ॥ आसीत्तपस्विनीपूर्वं नागरीब्राह्मणोत्तमाः ॥ २ ॥ तस्यास्सख्यमरुन्धत्याश्चासीत्पूर्वंसुमेधसः ॥ अरुन्धतीयदाप्राप्ताचमत्कारपुरेशुभे ॥ ३ ॥ स्नानार्थंशङ्खतीर्थेतु वसिष्ठेनसमागता ॥

धारोत्पत्तिर्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भई शक्ति मुनिकी रची धारानामक देवि । इकसौ बासठिमें सोई कहत कथासुखसेवि ॥ ऋषिलोग बोले कि वह विशेषकर नागर द्विजों को सन्तोषदायिनी किस कारणहुई और धाराऐसे नामसे वह किस कारण प्रसिद्धहुई ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! पुरातन समय चमत्कारपुरमें धाराऐसे नामसे प्रसिद्ध पहिले नागरी (नागर द्विज कन्या) तपस्विनीहुई है ॥ २ ॥ पुरातन समय उस उत्तम बुद्धिवाली तपस्विनीकी अरुन्धतीके साथ मित्रता हुईहै जब अरुन्धतीजी उत्तम चम-

अरुन्धती बोलीं कि देखनेसे तुम्हारे ऊपर बड़ाभारी स्नेह प्राप्तहुआ ॥ ६।७ ॥ इसलिये आइये समस्त पातकोंके नाशनेवाले सरस्वतीजीके उज्ज्वल किनारे पै मेरा उत्तम
समीप वैधव्यता व्यवस्थित (प्राप्त) हुई तदनन्तर शङ्खतीर्थ व शङ्खेश्वरजीका माहात्म्य सुनकर यहां भलीभांति स्थितहुई व उन्ही शङ्खेश्वरजीके आराधनमें स्थितहूं
कन्या व कौनहो ॥ ४ ॥ हे शुभे ! और किस लिये श्रेष्ठ तपस्यामें टिकीहो धाराबोली कि देवशर्मा नामक नागर ब्राह्मणकी मैं कन्याहूं ॥ ५ ॥ बाल्यावस्थामें वर्तमानमेरे
त्कारपुर में प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ व शङ्खतीर्थ में नहानेके लिये वसिष्ठजीके साथ भलीभांति आई तब उन अरुन्धतीजीने उस पतिव्रताधारासे पूंछा कि हे शुभे ! तुम किसकी

तयापृष्टाचसासाध्वी कात्वङ्कस्यसुताशुभे ॥ ४ ॥ किमर्थन्तुस्थिताचाग्रे तपसिब्रूहिमेशुभे ॥ धारोवाच ॥ देवशर्म्माख्य
विप्रस्य सुताहंनागरस्यच ॥ ५ ॥ बाल्यत्वेवर्तमानाया वैधव्यंमेव्यवस्थितम् ॥ शङ्खतीर्थस्यमाहात्म्यं श्रुत्वाशङ्खेश्व
रस्यच ॥ ६ ॥ ततोहंसंस्थिताचात्र तस्यैवाराधनेस्थिता ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ तवोपरिमहास्नेहो दर्शनाद्व्यवस्थितः ॥
७ ॥ तस्मादागच्छगच्छावो ममाश्रमपदंशुभम् ॥ सरस्वत्यास्तटेशुभ्रे सर्वपातकनाशने ॥ ८ ॥ शास्त्रगोष्ठीरतानि
त्यं तत्रतिष्ठमयासह ॥ ततस्सम्प्रस्थितासातु तयासार्द्धन्तपस्विनी ॥ ९ ॥ अनुज्ञातास्वपित्रातुजनन्याबान्धवैस्तथा ॥
तस्याःसख्यंचिरङ्कालं तयासहबभूवह ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य साशक्तिस्तत्रचागता ॥ विश्वामित्रेणसंसृष्टा व
सिष्ठस्यवधायच ॥ ११ ॥ सास्तम्भितावसिष्ठेन कृतादेवीस्वरूपिणी ॥ सम्पूज्यादेवमर्त्यानांसर्वरक्षाप्रदाशुभा॥१२॥
ततस्तुधारयातस्याःकैलासशिखरोपमः ॥ प्रासादोनिर्म्मितोविप्रा नानारत्नविचित्रितः ॥ १३ ॥ चकाराथततस्तोत्रं

आश्रम स्थानहै वहां चलैं ॥ ८ ॥ वहा शास्त्रोंकी सभामें परायणहोतीहुई तुम मेरे साथ टिको तदनन्तर अपने पिता,माता व भाइयोंसे आज्ञादीहुई उस धारा तपस्विनीने
उन अरुन्धतीजीके साथ भलीभांति प्रस्थान किया उस धाराकी उन अरुन्धतीके साथ बहुत समयतक मित्रताहुई ॥ ९।१० ॥ इसके अनन्तर किसी समय वसिष्ठजीके
वधके लिये विश्वामित्रजीसे सिरजीहुई वह शक्ति वहां आई ॥ ११ ॥ व स्तम्भन कीहुई वह वसिष्ठजीसे देवीरूपिणी कीगई व सबोंको रक्षा देनेवाली व उत्तमा वह
देवों व मनुष्योंके भलीभांति पूजने योग्य कीगई ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! धाराने अनेक प्रकारके रत्नोंसे विचित्रित व कैलास पर्वतके समान उस देवीके मन्दिर

का निर्माण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस तपस्विनीने उसके लिये स्तुति किया कि हे परमे, ब्राह्मि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे ध्यानयोग्ये ! नमस्कार है नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे आधीमात्रा से परे, हे शून्ये, हे उसके आधेकी आधी ! तुम्हारे लिये नमस्कार होवे हे जगदाधारे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे भूतधारिणि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे कमलदललोचानि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कनकच्छवि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सिंहवाहनाढ्ये ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महाभुजे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे देवप्रिये ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे दैत्यदालनि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महिषक्रान्तशरीरे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे छिन्नमस्तके ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे उत्तमध्यानतत्परे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे मद्यमांसबलिप्रिये ! तुम्हारे लिये नमस्कार है

तस्यार्थेसातपस्विनी ॥ नमस्तेपरमेब्राह्मि ध्यानयोग्येनमोनमः ॥ १४ ॥ अर्द्धमात्रापरेशून्ये तस्यार्द्धार्द्धेनमोस्तुते ॥ नमस्तेजगदाधारे नमस्तेभूतधारिणि ॥ १५ ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि नमस्तेकाञ्चनद्युते ॥ नमस्तेसिंहयानाढ्येनमस्तेस्तु महाभुजे ॥ १६ ॥ नमस्तेदेवताभीष्टे नमस्तेदैत्यसूदिनि ॥ नमस्तेमहिषक्रान्तशरीरेछिन्नमस्तके ॥ १७ ॥ नमस्तेसु ध्यानरते सुरामांसबलिप्रिये ॥ त्वंलक्ष्मीस्त्वंशचीगौरी त्वंसिद्धिस्त्वंविभावरी ॥ १८ ॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधातुष्टिस्त्वंपुष्टि स्त्वंसुरेश्वरी ॥ शक्तिरूपासिदेवित्वं सृष्टिसंहारकारिणि ॥ १९ ॥ त्वयिदृष्टमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यथातिले तिलेतैलं दधिसंस्थंयथाघृतम् ॥ २० ॥ हविर्भुजश्चकाष्ठस्थः सगुप्तोलभ्यतेनहि ॥ तथात्वमपिदेवेशि सर्वगापिनलक्ष्य से ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ एतेनस्तोत्रमुख्येनस्तुतासापरमेश्वरी ॥ बहूनिवर्षपूगानिपूजयन्त्यादिनेदिने ॥ २२ ॥ कस्य

तुम्हीं लक्ष्मीहो व इन्द्राणी, मृडानी (पार्वती) तुम्हींहो व सिद्धि तुम्हींहो रात्रि तुम्हींहो ॥ १८ ॥ तुम्हीं स्वाहाहो तुम्हीं स्वधाहो तुम्हीं तुष्टिहो तुम्हीं पुष्टिहो तुम्हीं देवेश्वरीहो हे सृष्टिसंहारकारिणि, देवि ! तुम्हीं शक्तिरूपिणीहो ॥ १९ ॥ व स्थावर जंगम समेत यह समस्त त्रिलोक तुम में देखा गयाहै जैसे तिल तिल में तेल है व जैसे घृत दही में भलीभांति टिकाहै ॥ २० ॥ व काठ में टिके हुये अग्नि हैं जैसे अति छिपे हुये वे अग्नि नहीं मिलते हैं वैसेही हे सुरेशि ! सर्वव्यापिनी तुम भी नहीं देखपड़तीहो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि दिन दिन में पूजती हुई उसने बहुत वर्ष समूहोंतक इस मुख्य स्तोत्रसे उन परमेश्वरीजी की स्तुति किया ॥ २२ ॥ इसके

अनन्तर किसी समय चैतमहीने की शुक्लपक्षवाली अष्टमी स्थितहुई उस दिन उस धाराने उन देवीको भलीभांति नहवाकर पूजन किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर पूर्णबलि को देकर इस स्तोत्रसे स्तुति किया उसके उपरान्त प्रत्यक्षतामें प्राप्तहोकर उस तपस्विनी से शक्तिजी बोलीं ॥ २४ ॥ कि हे निष्पापे, पुत्रि! तुम्हारा कल्याणहोवै इस स्तोत्रसे मैं प्रसन्नहुईहूं तुम्हारा कल्याणहो वरदानको मांगिये मैं तुमको मनोरथ दूंगी ॥ २५ ॥ धारा बोली कि हे देवि! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदेने योग्यहै तो इसमन्दिरमें केवल मेरा नाम तुम्हाराभी होवै ॥ २६ ॥ व उस दिनके संस्थित होनेपर याने चैत्रशुक्लाष्टमी में अन्य जो नागर द्विज तीनप्रदक्षिणा-

चित्त्वथकालस्य चैत्रशुक्लाष्टमीस्थिता ॥ तस्मिन्नहनिदेवीसानयासंस्नाप्यपूजिता ॥ २३ ॥ बलिम्पूर्णान्ततोदत्त्वास्तो
त्रेणानेनचस्तुता ॥ ततःप्रत्यक्षताङ्गत्वा तामुवाचतपस्विनीम् ॥ २४ ॥ पुत्रितुष्टास्मिभद्रन्ते स्तोत्रेणानेनचानघे ॥ वरं
वरयभद्रन्ते तवदास्यामिवाञ्छितम् ॥ २५ ॥ धारोवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ ममनामतवाप्यस्तु
प्रासादेत्रहिकेवलम् ॥ २६ ॥ अपरोनागरोयोत्र तस्मिन्नहनिसंस्थिते ॥ प्रदक्षिणत्रयंकृत्वातवदत्त्वाफलत्रयम्॥ २७॥
स्तोत्रेणानेनभवतींस्तुत्वाचकुरुतेनतिम् ॥ तस्यसंवत्सरंयावद्रोगोरक्ष्यस्त्वयाखिलः ॥ २८ ॥ याचबन्ध्याभवेन्नारी सा
भूयात्पुत्रसंयुता ॥ दुर्भगाचसुसौभाग्या कुरूपारूपसंयुता ॥ २९ ॥ रोगिणीरोगनिर्मुक्ता सर्वसौख्यसमन्विता ॥ देव्यु
वाच ॥ अहन्धारेतिविख्याता प्रासादेत्रत्वयाकृते ॥ ३० ॥ भविष्यामिनसन्देहस्तवकीर्तिकृतेसदा ॥ अत्रयोनागरोभ
क्त्या समागत्यतपस्विनि ॥३१॥ प्रदक्षिणत्रयंकृत्वा दत्त्वाममफलत्रयम् ॥ सोपिसंवत्सरंयावद्भवितारोगवर्जितः ॥३२॥

ओंको करके तुमको तीन फलोंको देकर व इस स्तोत्रसे आपकी स्तुतिकर प्रणामकरै उसकी रोगोंसे रक्षा तुमको सालभरतक करना चाहिये ॥ २७। २८ ॥ व जो बांझ स्त्री होवै वह पुत्र संयुत होजावै व दुष्टभाग्यवाली सौभाग्यवती होवै और कुरूपिणी स्वरूपसे संयुत होवै ॥ २९ ॥ व रोगिणी रोगसे छूटजावै व समस्त सौख्यों से संयुत होवै देवी बोलीं कि तुमसे कियेहुये इसमन्दिर में तुम्हारे यशाके लिये मैं निस्सन्देह सदैव धारा ऐसी प्रसिद्ध हूंगी हे तपस्विनि! यहां भक्ति से भलीभांति आकर जो नागर ब्राह्मण ॥ ३० । ३१ ॥ तीन प्रदक्षिणाओंको करके व मुझे तीनफलों को देकर पूजैगा वहभी वर्ष भरतक रोगरहित होगा ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर तदनन्तर वह देवी अन्तर्द्धान होगई व अरुन्धती संयुक्त धाराभी वहां भलीभांति टिकतीभई ॥ ३३ ॥ जोकि उन अरुन्धतीजीके समीपवर्तिनी आजभी आकाशमें देखपडती है जो पुरुष धारासे उपजेहुये इस वृत्तान्तको यहां कीर्तन करैगा ॥ ३४ ॥ या हे द्विजोत्तमो ! सुनैगा वह दिनमे उपजेहुये पापको त्याग करैगा इसलिये समस्त बड़े उपायसे विशेषकर पढ़ना चाहिये ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

एवमुक्त्वातुसादेवी ततश्चादर्शनङ्गता ॥ धारापिसंस्थितातत्र अरुन्धत्यासमन्विता ॥ ३३ ॥ अद्यापिदृश्यतेऽद्यो म्नितस्याश्चापिसमीपगा ॥ एतद्धारोद्भवंयोत्र वृत्तान्तङ्कीर्तयिष्यति ॥३४॥ शृणुयाद्वाद्विजश्रेष्ठामुञ्चेत्पापंदिनोद्भवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठनीयंविशेषतः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपिसञ्जातमाश्चर्य्यंयदभूद्द्विजाः ॥ विश्वामित्रेणसाशक्तिर्वसिष्ठायमहात्मने ॥ १ ॥ वधार्थ न्तस्यविप्रर्षेर्वसिष्ठेनचधीमता ॥ स्तम्भिताथर्वणैर्मन्त्रैः स्वेदस्तुसमजायत ॥ २ ॥ स्वेदात्समभवत्तोयं शीतलंसमजायत ॥ पादाभ्यांनिर्गतन्तोयमत्रकुण्डमजायत ॥ ३ ॥ तिर्य्यग्भूमेस्तुसञ्जाताजलधारासुशीतला ॥ निर्मलंपावनं

दो० । यथाशक्ति के स्वेदसन निकसीहैं श्रीगंग । इकसौ तिरसठिमें सोई वरणत रुचिर प्रसंग ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वैसेही और भी भलीभांति उपजा हुआ जो आश्चर्य भयाहै उसको सुनिये कि उन विप्रर्षिके वधके लिये बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने उस शक्तिको महात्मा वसिष्ठजीके निमित्त छोड़ाहै और मतिमान् वसिष्ठजीने अथर्वण वेदवाले मन्त्रोंसे रोंकदिया व पसीना उत्पन्न हुआहै ॥ १ । २ ॥ व पसीनासे जो जल उत्पन्न हुआ वह ठण्ढा होगया व दोनों चरणोंसे वह जल निकला और यहा कुण्ड होगया ॥ ३ ॥ और भूमिसे अतिठण्ढी व तिरछी जलधारा उत्पन्नहुई जो जल कि पवित्रकारक व श्वेत और निर्मलथा वे कल्याणकारिणी

गंगा निकलीं ॥ ४ ॥ समस्त तीर्थोंसे संयुत गंगाजी प्रत्यक्षतामें प्राप्तहुई व जलसे अमल शीतल व कल्याणकारक कुण्ड पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जो बन्ध्या स्त्री उन गंगाजीमें स्नानकरतीहै वह भयङ्कर कलियुगमें पुत्रवती होतीहै ॥ ६ ॥ व और भी जो स्नान करताहै वह सर्वथा अर्थ (प्रयोजन या धन) रूप फलको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष उस कुण्डमें विधिसे नहाकर और देवीको देखताहै ॥ ७ ॥ उसके धन, धान्य व पुत्र तथा राज्यसे उत्पन्नहुआ समस्त सुख होताहै व जो स्त्री दुर्भाग्यवती तथा बांझ होतीहै वहभी पुत्रवती होतीहै चैत महीनेकी शुक्लपक्षवाली अष्टमीमें महारात्रिके बीच भक्तियोगसे संयुत जो आपही स्त्री या प्रसन्न कन्या

स्वच्छं गङ्गाभद्राविनिस्सृता ॥ ४ ॥ गङ्गाप्रत्यक्षतांजाता तीर्थैस्सर्वैस्समन्विता ॥ पूरितंवारिणाकुण्डं निर्म्मलंशीतलंशिवम् ॥ ५ ॥ तस्यांयाकुरुतेस्नानं नारीबन्ध्याद्विजोत्तमाः ॥ सद्यःपुत्रवतीसास्याद्रौद्रेकलियुगेद्विजाः ॥ ६ ॥ अन्योपिकुरुतेस्नानं सर्वथार्थफलंलभेत् ॥ स्नात्वातत्रतुयोदेवीम्पश्येच्चविधिनानरः ॥ ७ ॥ धनंधान्यन्तथापुत्रान् राज्योत्थंसकलंसुखम् ॥ यानारीदुर्भगाबन्ध्या सापिपुत्रवतीभवेत् ॥ ८ ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां भक्तियोगसमन्विता ॥ महानिशायांतत्रैव नैवेद्यबलिपिण्डकाम् ॥ ९ ॥ प्रसन्नयाकुमार्य्यातु स्वयंवाथकरोतिया ॥ गृह्णातियाचवैनारी पिण्डकांबलिसंयुताम् ॥ १० ॥ शतवर्षातुयानारी पिण्डकांभक्षयेद्द्विजाः ॥ सापिपुत्रवतीचस्याद्यदिवृद्धतमाभवेत् ॥ ११ ॥ किम्पुनर्यौवनोपेता सौभाग्येनसमन्विता ॥ पुत्रसौख्यवतीनारी देव्यावैदर्शनेनच ॥ १२ ॥ सर्वेषांनागराणाञ्च भावजादेवतास्मृता ॥ सासार्द्धाष्टद्विपञ्चाशद्गोत्राणांकुलदेवता ॥ १३ ॥ एतस्मात्कारणाद्यात्रा नागरैस्सुकृताभवेत् ॥

के द्वारा वहींपर नैवेद्यमें बलि पिण्डको करती है और जो स्त्री बलि संयुक्त पिण्डको ग्रहण करतीहै ॥ ८ । ९ । १० ॥ हे ब्राह्मणो ! सौवर्षवाली जो स्त्री पिण्डको भक्षणकरै यदि अतिवृद्ध होवै तो वहभी पुत्रवती होवै ॥ ११ ॥ फिर यौवनसे संयुक्त स्त्री को क्या कहनाहै निश्चयकर देवीजीके दर्शनसे स्त्री सौभाग्यसे सयुत व पुत्रवती तथा सौख्यवती होतीहै ॥ १२ ॥ जोकि समस्त नागरोंके भावसे उपजीहुई देवता कहीगईहै वह साढ़े साठि गोत्रोंकी कुलदेवताहै ॥ १३ ॥ इसी कारण नागरोंसे भलीभांति

कहीहुई यात्रा होवै है बिन नागरोंकी यात्राके वह देवेश्वरी प्रसन्नताको नहीं प्राप्तहोतीहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधारोत्पत्तिकथनंनामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा सरस्वति नदीको भयो सकल जलरक्त । इकसौ चौंसठिमें सोई कह्यो सूत मुनि भक्त ॥ सूतजी बोले कि जब मतिमान् विश्वामित्रजीने सरस्वतीजी को शाप दिया तब उसका जल रक्तहोगया व भूत, प्रेत और राक्षस रक्तको पीकर गाने व हँसनेलगे वहां उस सरस्वतीके किनारे जो कोई तपस्वी विशेषतासे टिकेथे ॥१।२॥

नविनानागरैर्यात्रातुष्टिंयातिसुरेश्वरी ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये धारोत्पत्तिर्नामत्रिषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सरस्वतीयदाशप्ता विश्वामित्रेणधीमता ॥ तज्जलंरक्तमापन्नं भूताःप्रेतानिशाचराः ॥ १ ॥ पीत्वार क्तंप्रनृत्यन्ति गायन्तिचहसन्तिच ॥ येतत्रतापसाःकेचित्तटेतस्याव्यवस्थिताः ॥ २ ॥ चण्डशर्म्मप्रभृतयस्तेपिजा तास्सुदूरतः ॥ वसिष्ठोपिमुनिश्रेष्ठो जगामार्बुदपर्वतम् ॥ ३ ॥ विश्वामित्रस्तुविप्रर्षिश्चमत्कारपुरङ्गतः ॥ हाटकेश्वरजेक्षे त्रे यत्स्थितंविप्रसंकुलम् ॥ ४ ॥ तत्राश्रमपदंकृत्वा तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ येनसृष्टिक्षमोजातःस्पर्द्धतेब्रह्मणासह ॥५॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यथासारस्वतञ्जलम् ॥ रुधिरंसमनुप्राप्तंविश्वामित्रस्यसन्मुनेः ॥ ६ ॥ मन्त्रप्रभावतोयेन तत्तो यंरुधिरीकृतम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ ततःप्रभृतिसम्प्राप्तंकथन्तोयम्प्रकीर्तय ॥ सरस्वत्यामहाभाग सर्वंविस्तरतोवद ॥ ७ ॥

चण्डशर्म इत्यादिक वे भी बहुतदूर चलेगये व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठभी अर्बुद पर्वतको चलेगये व विश्वामित्र ब्रह्मर्षि चमत्कार पुर को गये व हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें जो द्विजोंसे व्याप्त स्थान स्थितथा ॥ ३।४ ॥ वहां आश्रम स्थान करके अतिभयङ्कर तपस्याकी जिससे सृष्टिके समर्थ हुये व ब्रह्माके साथ ईर्षा करनेलगे ॥ ५ ॥ ऋषि तुम लोगोंसे इस समस्त वृत्तान्तको कहा कि जिस प्रकार उत्तममुनि विश्वामित्रजीके उत्तम प्रभावसे जिस कारण वह सरस्वतीजीका जल रक्त कियागया है

लोग बोले कि हे महाभाग! तबसे लगाकर सरस्वतीजी का जल किसभांति हुआहै इस समस्त चरितको विस्तारसे कहिये ॥ ६ । ७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! सरस्वतीजीका वह प्रवाह भूत राक्षसोंसे सेवित महारक्तमय बहुत समयतकरहा ॥८॥ इसके अनन्तर किसीसमय दुःख संयुत उस दीन सरस्वतीने अर्बुद पर्वतपै टिकेहुये मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा ॥ ९ ॥ कि हे मुने! तुम्हारे लिये विश्वामित्रजीने मुझको क्रोधसे शापदिया व तपस्वियोंसे रहित और रक्तप्रवाह वाहिनी होगईहूं ॥ १० ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिस प्रकार मेरे प्रवाहमें फिर जल होवे व रक्तका क्षयहोवे ॥ ११ ॥ हे मुनिनायक, विप्र! त्रिलोकके रचने,

सूतउवाच ॥ बहुकालंसप्रवाहः सरस्वत्याद्विजोत्तमाः ॥ महारक्तमयोजातो भूतराक्षससेवितः ॥ ८ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ अर्बुदस्थस्तयाप्रोक्तो दीनयादुःखयुक्तया ॥ ९ ॥ तवार्थायमुनेशप्ता विश्वामित्रेणकोपतः ॥ रुधिरौघवहाजाता तपस्विजनवर्जिता ॥ १० ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे यथास्यात्सलिलम्पुनः ॥ प्रवाहेममविप्रेन्द्रप्रयातिरुधिरक्षयम् ॥ ११ ॥ त्रैलोक्यकरणेविप्र संक्षयेवास्थितौहिवा ॥ नाशक्तिर्विद्यतेकाचित्तवसर्वंमुनीश्वर ॥ १२ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ तथाभद्रेकरिष्यामियथास्यात्सलिलम्पुनः ॥ प्रवाहेतवनिर्य्याति सर्वरक्तपरिक्षयम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिरवतीर्य्यधरातले ॥ गतःप्लक्षतरुंयस्मादवतीर्णासरस्वती ॥ १४ ॥ समाधिंतत्रसन्धाय निर्विष्टोधरणीतले ॥ सम्भ्रमंपरमंगत्वा विश्वामित्रस्यचोपरि ॥ १५ ॥ ब्राह्मणेनतुमन्त्रेण वीक्ष्यतंवसुधातलम् ॥ ततोनिर्भिद्यवसुधांभूरितोयंविनिर्गतम् ॥ १६ ॥ रन्ध्रद्वयेनविप्रेन्द्रा लोचनाभ्यांनिरीक्षणात् ॥ एकस्यसलिलंक्षिप्रंयत्रजातासरस्वती ॥ १७ ॥

संहारने व पालनेमें तुमको कोई असामर्थ्य नहीं है सब विद्यमानहै ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे भद्रे! मैं वैसाही करूंगा कि जिसप्रकार तुम्हारे प्रवाहमें फिर जल होगा व समस्त रक्तका संहार होजायगा ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर वे ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीभूतलमें उतरकर पकरिया वृक्षके समीपगये जहांसे कि सरस्वतीजी उतरीथीं ॥ १४ ॥ वहां विश्वामित्रजीके ऊपर बडे क्रोधको प्राप्तहो करके समाधिको भलीभांति धारणकर धरातलमें बैठगये ॥ १५ ॥ व ब्राह्मण मन्त्रसे उस भूतलको देखकर स्थितहुये तदनन्तर हे द्विजेन्द्रो! नयनोंके देखने से पृथ्वीको फोड़कर दो छिद्रोंसे बहुत जल निकला तदनन्तर शीघ्रही एक छिद्रका जल जहां सरस्वतीजी उत्पन्नहुई थीं वहां

पकरियाकी जड़में उस बलके द्वारा उसके वेगसे डुबाकर उस प्रवाहसे वह रक्त पूर्णहोगया उसके उपरान्त उसी प्रवाहसे महानदी होगई ॥ १६ । १७ । १८ ॥ व उनके क्रोधसे जो दूसरा प्रवाह निकला वह भ्रमती नामक नदी धरातलमें उत्पन्नहुई ॥ १९ ॥ इसलिये हे महाभागो, द्विजो! फिर भी सरस्वतीजी प्रकृतिमें प्राप्तहुई सरस्वतीजी के लिये जो मैं पूंछागया उसको कहा ॥२०॥ जो पुरुष अति बुद्धिदायक इस सारस्वत नामक कथानकको पढ़ता या सुनताभी है उसकी बुद्धि सरस्वतीजीकी प्रसन्नतासे बढ़तीहै यह मैंने सत्य कहाहै ॥ २१ । २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहा

पुच्छमूलेततस्तस्य वेगेनाप्लाव्यतद्बलात् ॥ तद्रक्तंतेनसम्पूर्णं ततस्तेनमहानदी ॥ १८ ॥ द्वितीयस्तुप्रवाहोयः सम्भ्रमात्तस्यनिर्गतः ॥ साख्याताभ्रमतीनाम नदीजाताधरातले ॥ १९ ॥ एवंप्रकृतिमापन्ना भूयएवसरस्वती ॥ यत्पृष्टोस्मिमहाभागास्सरस्वत्याकृतेद्विजाः ॥ २० ॥ एतत्सारस्वतंनाम व्याख्यानमतिबुद्धिदम् ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वा पि मतिस्तस्यविवर्द्धते ॥ २१ ॥ सरस्वत्याःप्रसादेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभ्रमतीमाहात्म्यंसरस्वत्युपाख्याननामचतुःषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥१६४॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपिवोवच्मिलिङ्गंयत्तत्रसंस्थितम् ॥ स्थापितंपिप्पलादेन कंसारीश्वरमित्युत ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कएषपिप्पलादस्तु कस्यपुत्रोवदस्वनः ॥ किमर्थंस्थापितंलिङ्गं क्षेत्रेतत्रमहात्मना ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ प्रश्न भारोमहानेष भवद्भिस्समुदाहृतः ॥ तथापिकथयिष्यामिनमस्कृत्वास्वयम्भुवे ॥३॥ याज्ञवल्क्यस्यभगिनी कंसारीति

त्म्येभ्रमतीमाहात्म्यंसरस्वत्युपाख्याननामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । याज्ञवल्क्यके वीर्यसन भयोभगिनिमें बाल । इकसौ पैंसठि में सोई वरणत बुद्धि विशाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही पिप्पलादसे थापति कंसारीश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो लिंग वहां भलीभांति स्थितहै उसको तुम लोगोंसे कहताहूं ॥ १ ॥ ऋषि लोग बोले कि किसका पुत्र यह कौन पिप्पलाद है व उसक्षेत्र मे उस महात्माने किस कारण लिंगको थापाहै उसको हमलोगोंसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि आप लोगोंने इसबड़ेभारी प्रश्नभारको कहाहै तिसपरभी ब्रह्माके लिये प्रणाम

कर कहूंगा॥ ३ ॥ कंसारी ऐसी प्रसिद्ध व भाईसे संयुत याज्ञवल्क्यजीकी बहनने पुण्यदायक याज्ञवल्क्यजीके आश्रममें कुमार ब्रह्मचर्य से अति दारुण तपस्या किया इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय किसी उत्तम अप्सराको देखकर तपस्यासे युक्त व तरुणतामें भलीभांति प्राप्त याज्ञवल्क्यजीका वीर्य शीघ्रही वसन मध्यमें स्खलित होगया ॥ ४ । ५ । ६ ॥ उन याज्ञवल्क्यके बहुत वीर्यसे पहननेवाला वसन सब ओर डूबगया प्रभातकाल समुपस्थितहोनेपर उन याज्ञवल्क्यजीने उस वसनको त्याग किया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उसीदिन कंसारिकाने स्नानके लिये उस वसनको लिया और सफल वीर्यसे भीगेहुये वसनको न जानती व स्नानकरती

तुविश्रुता ॥ कुमारब्रह्मचर्य्येण तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ याज्ञवल्क्याश्रमेपुण्ये बान्धवेनसमन्विता ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य याज्ञवल्क्यस्यभोद्विजाः ॥ ५ ॥ चस्कन्दरेतोवस्त्रान्ते दृष्ट्वाकांचिद्वराप्सराम् ॥ तारुण्यभावसंस्थस्य तपोयुक्तस्यसत्वरम् ॥ ६ ॥ रेतसातस्यमहतापरिधानंपरिप्लुतम् ॥ तच्चतेनपरित्यक्तं प्रभातेसमुपस्थिते ॥ ७ ॥ कंसारिकाथ तत्राह्निस्नानार्थंवसनंचतत् ॥ अमोघरेतसाक्लिन्नमजानन्त्याद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ कुर्वन्त्यामज्जनंतस्या जलंवीर्य्यसमन्वितम् ॥ प्रविष्टंभगमध्येतु ऋतुकालउपस्थिते ॥ ९ ॥ ततोगर्भस्समभवत्तस्याउदरमध्यगः ॥ वृद्धिंचाप्यगमन्नित्यं शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ १० ॥ सापितंगर्भमासाद्य स्वोदरस्थंतपस्विनी ॥ दुःखेनमहतायुक्ता लज्जयाचतदावृता ॥ ११ ॥ चिन्तयामाससुचिरं विस्मयेनसमन्विता ॥ गोपायतितदात्मानं दर्शनंयातिनोनृणाम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्य्यमिषं कृत्वा सदारहसिसंस्थिता ॥ संप्राप्तेदशमेमासि निशीथेसमुपस्थिते ॥ १३ ॥ तस्याःकुमारकोजातो वालार्कसदृशद्यु

हुई उसके ऋतु-समय प्राप्तहोनेपर योनिके मध्यमें वीर्य संयुत जल पैठगया ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर उसके पेटमें प्राप्तहोकर वह गर्भ भलीभांति होगया व जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ताहै वैसेही नित्य वृद्धिको प्राप्तहुआ ॥ १० ॥ उस समय वह तपस्विनी यह भी अपने पेटमें प्राप्तहुये गर्भको पाकर बड़े दुःखसे संयुतहुई व लज्जासे घिरगई ॥ ११ ॥ व विस्मयसे संयुतहोती हुई उसने बहुत देरतक चिन्तवन किया उस समय अपने शरीरको छिपातीथी व मनुष्योंके दर्शनमें नहीं प्राप्तहोतीथी ॥ १२ ॥ वब्रह्मचर्य्यका बहाना करके सदैव एकान्तमें स्थिर रहतीथी और दशम महीनेको प्राप्तहोनेपर जब आधीरात भलीभांति प्राप्तहुई तब ॥ १३ ॥ वाल सूर्य्य नारायणके

समान शोभावाला पुत्र उसके पैदाहुआ इसके अनन्तर उस पुत्रको भलीभांति लेकर व सूक्ष्म वसनसे वेष्टितकर वह मनुष्योंसे रहित वनको चलीगई जोकि आंसुवोंसे
पूर्णनेत्रोंवाली व दीन तथा गुप्तही रोरहीथी ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर उसने निर्जनवनमें बड़ेभारी पिप्पलके समीप जाकर व उसके नीचे पुत्रको छोड़कर इसके अन-
न्तर इस वचनको कहा ॥ १६ ॥ कि हे पिप्पल ! देवताओंमें प्रतिष्ठित तुम विष्णु रूपहो इसलिये हे वनस्पते ! तुम सब ओरसे मेरे पुत्रकी रक्षाकरो ॥ १७ ॥ हे वृक्ष !
मुझ निर्दयी व पापिनीका यह छोटापुत्र तुम्हारी शरणमें प्राप्तहै इसलिये रक्षाकीजिये ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर व बहुत देरतक रोकर पश्चात् आंसुवोंसे विकल लोचनों

तिः ॥ अथसातंसमादाय सूक्ष्मवस्त्रेणवेष्टितम् ॥ १४ ॥ कृत्वाजगामचारण्यं मनुष्यैःपरिवर्जितम् ॥ अश्रुपूर्णेक्षणादी
ना रुदन्तीगुप्तमेवच ॥ १५ ॥ ततोगत्वाचसाश्वत्थं विजनेसुमहत्तरम् ॥ तस्याधस्ताद्विमुच्याथ वाक्यमेतदुवाचह ॥
१६ ॥ अश्वत्थविष्णुरूपोसि त्वन्देवेषुप्रतिष्ठितः ॥ तस्माद्रक्षस्वमेपुत्रं सर्वतस्त्वंवनस्पते ॥ १७ ॥ एषतेशरणंप्राप्तो
ममपुत्रस्तुबालकः ॥ पापायानिर्दयायाश्च तस्माद्वृक्षसमाचर ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वारुदित्वाच सुचिरंसातपस्विनी ॥ ज
गामस्वाश्रमंपश्चाद्बाष्पव्याकुललोचना ॥ १९ ॥ यावद्रोदितिसामाता तस्याधस्ताद्वनस्पतेः ॥ तावदाकाशजावाणी सं
जातामेघनिःस्वना ॥ २० ॥ मात्वंशोकंकुरुष्वास्य बालकस्यकृतेशुभे ॥ एषशापादुतथ्यस्य ज्येष्ठभ्रातुर्बृहस्पतेः ॥
२१ ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे योगंसम्यग्विधास्यति ॥ एषचाथर्वणंवेदं शतकल्पंसविस्तरम् ॥ २२ ॥ सप्तभेदंचनवधाप
ञ्चकल्पंकरिष्यसि॥ पिप्पलस्यतरोरेषरसंसम्भक्षयिष्यति ॥ २३ ॥ पिप्पलादइतिख्यातं ततोलोकेभविष्यति ॥ यात्वं

वाली वह तपस्विनी अपने आश्रमको चलीगई ॥ १९ ॥ जबतक उस वनस्पति (पीपल) के नीचे वह रोतीथी तबतक मेघके समान शब्दवाली आकाशसे उपजी
हुई वाणी उत्पन्नभई ॥ २० ॥ कि हे शुभे ! इस बालकके लिये तुम शोच मतकरो बड़ेभाई उतथ्यकी शापसे यह बृहस्पति धरणीतलमें अवतार लेकर भलीभांति
योगको विधान करैगा व सौकल्पवाले अथर्वण वेदको यह विस्तार समेत सात, भेद व नवखण्ड और पांचकल्प करैगा और यह पिप्पल वृक्षके रसको भलीभांति
भक्षण करैगा ॥ २१ । २२ । २३ ॥ उसी कारण संसारमें पिप्पलाद ऐसा प्रसिद्धहोगा और जो तुम विस्मयको प्राप्तहुईहो कि पुरुषके विना यह उन्नत पुत्र मेरे उत्पन्न

हुआहै तुम उसका कारण सुनो कि तुम्हारे भाईके वीर्यसे डूबाहुआ जो स्नानवाला वसनथा ॥ २४।२५ ॥ हे शुभे ! ऋतुसमयको प्राप्तहुई तुमने उसीको परिधान किया थाने पहनलिया इसके अनन्तर स्नान समयमें जलके साथ वीर्यने योनिको स्पर्श किया ॥ २६ ॥ कि जिस सफल वीर्यसे तुम्हारा यह पुत्र भलीभांति स्थितहै हे महा-भागे ! ऐसा जानकर जो योग्यहो उसको करो ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि देवलोकके उस वज्रपातके समान वचनको सुनकर वह हाहाकार में तत्पर होकर भूतल में गिर पड़ी ॥ २८ ॥ जैसे वृक्षसे लता गिरतीहै वैसेही वह तपस्विनी गिरपड़ी और उसके गिरनेपर याज्ञवल्क्य महामुनि ने ॥ २९ ॥ अपने आश्रमको शून्य देखकर

विस्मयमापन्ना पुरुषेणविनाशिशुः ॥ २४ ॥ संजातोयंममप्रांशुस्तस्यत्वंकारणंशृणु ॥ स्नानवस्त्रंचतेभ्रातूरेतसायत्प रिप्लुतम् ॥ २५ ॥ गतयाऋतुकालंतु परिधानीकृतंशुभे ॥ स्नानकालेतुतोयेन रेतोयोनिमथास्पृशत् ॥ २६ ॥ अमो घरेतसायेन पुत्रोयंतवसंस्थितः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागे यदुक्तंतत्समाचर ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वादेवलोकस्य व ज्रपातोपमंवचः ॥हाहाकारपराभूत्वा निपपातधरातले ॥ २८ ॥ यथावृक्षाल्लतातद्वत्पतितासातपस्विनी ॥ निपतन्त्यां तुतस्यान्तु याज्ञवल्क्योमहामुनिः ॥ २९ ॥ शून्यन्तुस्वाश्रमंदृष्ट्वा पप्रच्छान्यान्मुनीश्वरान् ॥ क्वचमेभगिनीजाताकं सारीसुतपस्विनी ॥ ३० ॥ तयाविनाद्यमेसर्वं शून्यमाश्रममण्डलम् ॥ आचख्यौतापसःकश्चिद्भगिनीतेयवीयसी ॥ ३१ ॥ निश्चेष्टापतिताभूमावश्वत्थस्यसमीपतः ॥ मयादृष्टामुनिश्रेष्ठ तांत्वमानयमाचिरम् ॥ ३२ ॥ अथासौत्वरया युक्तस्संभ्रान्तस्तुप्रधावितः ॥ यत्रसाकथितातेन तापसेनतपस्विनी ॥ ३३ ॥ वीक्ष्यतांसतुतत्रस्थांश्वसमानांव्यवस्थि

अन्य मुनिनायकोंसे पूंछा कि उत्तम तपस्विनी मेरी बहन कंसारी कहांगई ॥३०॥ उसके विना आज मुझको समस्त आश्रम मण्डल शून्य देख पड़ता है किसी तप-स्विनीने कहा कि तुम्हारी छोटी बहन ॥ ३१ ॥ चेष्टासे रहित होकर पीपलके समीपभूमिमें पड़ीहै मैंने उसको देखाहै हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम उसको शीघ्रही लेआवो ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर सम्भ्रममें प्राप्त व शीघ्रतासे संयुत वे मुनि दौड़े जहां उस तपस्वीने उस तपस्विनीको कहाथा वहां पर टिकी व श्वास लेतीहुई उस बहनको व्यवस्थित

देखकर इसके अनन्तर उन याज्ञवल्क्यजीने ठण्ढे जलसे बार २ सींचकर ॥ ३३ । ३४ ॥ व फिरभी पवन देकर जबतक चैतन्यता समेत किया तबतक कात्यायनी मैत्रेयीजी सम्भ्रम (शीघ्रता) समेत प्राप्तहुई ॥ ३५ ॥ व बोलीं कि हे ननन्दे! यह क्या हुआ यह क्या हुआ शीघ्रही कहो क्या सर्पसे डसीगईहो या सन्निपातसे दूषितहो ॥३६ ॥ अथवा महेन्द्रवाले ज्वरसे या भूतसे ग्रहण कीगई हो इसके अनन्तर चैतन्यताको पाकर उसने स्त्री समेत याज्ञवल्क्यजीको अगाड़ी खड़ेहुये देखकर लज्जासे प्राणोंको छोड़दिया इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो! उसको मरी देखकर बहुतदेरतक रोकर स्त्री समेत शोचधारी वे याज्ञवल्क्यजी अग्नि देकर पश्चात् जलांजलीको दे

ताम् ॥ अथतोयेनशीतेन सेचयित्वामुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥ दत्त्वाभूयोपिवातंच यावच्चक्रेसचेतनाम् ॥ तावत्कात्यायनीप्राप्ता मैत्रेयीचससंभ्रमा ॥ ३५ ॥ किमिदंकिमिदंजातं ननन्देवदमाचिरम् ॥ किंवासर्प्पेणदष्टासि सन्निपातेनदूषिता ॥ ३६ ॥ किंवाभूतगृहीतासिमाहेन्द्रेणज्वरेणवा ॥ अथसाचेतनांलब्ध्वा याज्ञवल्क्यंपुरःस्थितम् ॥ ३७॥ भार्य्ययासहितंदृष्ट्वा व्रीडयासून्मुमोचह ॥ अथताञ्चमृतांदृष्ट्वा रुदित्वाचचिरंद्विजाः॥३८॥याज्ञवल्क्यस्सभार्य्यस्तु दत्त्वावह्निंसशोकधृक् ॥ जगामस्वाश्रमंपश्चाद्दत्त्वाचसलिलाञ्जलिम् ॥ ३९ ॥ सोपिबालोविववृधे पिप्पलादेतिसंज्ञितः॥अश्वत्थस्यतलेतस्य वृद्धियातिशनैःशनैः ॥ ४० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तेनमार्गेणचागतः ॥४१॥ सदृष्ट्वाबालकंतन्तु द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ एकाकिनंवनेशून्ये पिप्पलास्वादतत्परम् ॥ ४२ ॥ पप्रच्छविस्मयाविष्ट एकाकीकोभवानिह ॥ वनेशून्येमहारौद्रे सिंहव्याघ्रसमाकुले ॥ ४३ ॥ क्वतेमातापिताचैव किमर्थंचेहतिष्ठसि ॥ निव

कर अपने आश्रमको चलेगये ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ और पिप्पलाद ऐसा नामक वह बालकभी विशेषकर बढ़ताभया उसी पीपलके नीचे धीरे धीरे वृद्धिको प्राप्तहोता था ॥४०॥ इसके अनन्तर किसी समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी तीर्थयात्राके प्रसंगमे उसी मार्गकेद्वारा आये ॥ ४१ ॥ उनने बारह सूर्य्योंके समान प्रकाशवाले व पीपलके आस्वादन (भोजन) में तत्पर उस अकेले बालकको शून्य वनमें देखकर विस्मयसे संयुत होकर पूंछा कि सिंह, बाघोंसे संयुक्त इस बड़े भयङ्कर शून्य वनमें अकेले आप

कौनहो ॥ ४२ । ४३ ॥ और तुम्हारे माता, पिता कहांहैं व तुमे किस लिये यहां टिकेहो और कैसे बसोगे मुझसे सब विस्तारसे कहो ॥ ४४॥ पिप्पलाद बोले कि मैं माता,
पिता व भाईको नहीं जानताहूं व जो इस समय मेरे समीप यहां आयेहो सो आप कौनहो ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले कि उस बालकके उस वचनको सुनकर व देरतक
ध्यानकर तदनन्तर हँसते हुये मुनिनायक नारदजीने दिव्यदृष्टिसे जानकर उससे कहा ॥४६॥ नारदजी बोले कि हे वत्स ! मुझसे तुम जानेगयेहो कि याज्ञवल्क्यजीके
वीर्यसे बहनके पेटमें तुम उतथ्यजीके शाप दोषसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये देवाचार्य्य बृहस्पति दैवयोगसे पृथ्वीमें भलीभाति पैदाहुये हो इसलिये उस कारणको

स्यासिकथञ्चैव सर्वमेविस्तराद्वद ॥ ४४ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ नाहंजानामिपितरं मातरंनचबान्धवम् ॥ सभवान्कोत्र
चायातो ममपार्श्वेतुसाम्प्रतम् ॥ ४५ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वामुनीश्वरः ॥ ततस्तंप्रहसन्प्राह ज्ञा
त्वादिव्येनचक्षुषा ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ मयाज्ञातोसिवत्सत्वं याज्ञवल्क्यस्यरेतसा ॥ दैवयोगात्समुत्पन्नो भगिन्या
उदरेस्थितौ ॥ ४७ ॥ उतथ्यशापदोषेण देवाचार्य्योबृहस्पतिः ॥ देवकार्य्यस्यसिद्ध्यर्थं तस्मात्तच्छृणुकारणम् ॥ ४८ ॥
अथर्ववेदोयश्चैष शतशाखोविनिर्मितः ॥ शतकल्पश्चगूढार्थो भूपानांकार्य्यसिद्धये ॥ ४९ ॥ नवशाखःपञ्चकल्पः प्र
सन्नार्थसुखावहः ॥ तवमात्रामहाभाग रेतसाचपरिप्लुतम् ॥ ५० ॥ यद्वस्त्रंयाज्ञवल्क्यस्य परिधानीकृतंचतत् ॥ भगि
न्यासुतपस्विन्या स्नानार्थंनचकाम्यया ॥ ५१ ॥ तदेतज्जलमिश्रन्तु भगमध्येविनिर्गतम् ॥ अमोघंतेनसम्भूतस्त्वम
त्रजगतीतले ॥ ५२ ॥ माताचमृत्युमापन्ना ज्ञात्वैवंलज्जयातथा ॥ चमत्कारपुरेतुभ्यं मातुलोजनकस्तथा ॥ ५३ ॥ सं

सुनो ॥ ४७ । ४८ ॥ और भूपोंकी कार्य सिद्धिके लिये गूढ़ अर्थवाला व सौ शाखाओं वाला जो यह अथर्वण वेद निर्माण किया गयाहै ॥ ४९ ॥ वह नवशाखाओंवाला
व पञ्चकल्पवाला व प्रसन्न अर्थसे सुखदायक होगा हे महाभाग ! याज्ञवल्क्यके वीर्यसे सब ओर जो डूबाहुआथा उसी वसनको स्नानके लिये न कि कामनासे उत्तम तप-
स्विनी बहेन तुम्हारी माताने पहन लिया ॥ ५० । ५१ ॥ वही यह जलसे मिलाहुआ सफल वीर्य योनिके बीचमें चलागया उससे इस धरातल में तुम भलीभांति उत्पन्न
हुयेहो ॥ ५२ ॥ और ऐसा जानकर लज्जासे माता मृत्युको प्राप्तहोगई हे महाभाग! चमत्कार पुरमें तुम्हारे मामा तथा पिता भलीभांति टिके हैं उनके समीप तुम यहां से

जावो इस समय तुम्हारे व्रत (यज्ञोपवीत) का समयहै क्योंकि आठवांवर्ष निश्चयकर स्थितहै ॥ ५३ ।।५४॥ उन नारदजीके उस वचनको सुनकर लज्जासे नीचे मु-
खकरके खड़ा होगया तदनन्तर उसने उन नारदजी से देरमें इस दीनवचन को कहा ॥ ५५ ॥ कि पहले दूसरी देहमें मैंने क्या पाप कियाहै उसको कहिये कि जिस
से निन्दित जन्महुआ व मातासे उपजाहुआ वियोग भया ॥ ५६ ॥ हे सन्मुने ! इस दुःखसे मैं अपने जीवको छोड़दूंगा नारदजी बोले कि तुमने पहले दूसरी देहमें कुछ
पाप नहीं कियाहै ॥५७॥ परन्तु जिससे तुमको यह दुःख हुआहै उसको सुनो कि शनि नामक भगवान् निस्संदेह जन्मराशिमें स्थितहुये हैं ॥ ५८ ॥ उसीसे इस दशाको

तिष्ठतेमहाभाग तत्पार्श्वेत्वमितोव्रज ॥ साम्प्रतंव्रतकालस्तेवर्षेचैवाष्टमंस्थितम् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य लज्जया-
धोमुखःस्थितः ॥ ततश्चिरेणदीनंस वाक्यमेतदुवाचतम् ॥ ५५ ॥ किंमयापापमाख्याहि पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ येनेदंग
र्हितंजन्म वियोगोमातृसम्भवः ॥ ५६ ॥ परित्यक्ष्यामिजीवंस्वं दुःखेनानेनसन्मुने ॥ नारदउवाच ॥ नत्वयादुष्कृतंकि
ञ्चित्पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ ५७ ॥ परंयेनतुसञ्जातं तवेदंव्यसनंशृणु ॥ जन्मस्थोभगवाञ्जातः शनिनामानसंशयः ॥
५८ ॥ तेनावस्थामिमांप्राप्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य कोपसंरक्तलोचनः ॥ ५९ ॥ ऊर्द्ध्वमालोकया
मास समुद्दिश्यशनैश्चरम् ॥ तस्यदृष्टिनिपातेन न्यपतत्सतुतत्क्षणात् ॥ ६० ॥ विमानात्खाद्रवेःपुत्रोययातिरिवना
हुषः ॥ तंदृष्ट्वापतमानन्तु शनैश्चरमधोमुखम् ॥ ६१ ॥ नारदउवाच ॥ बाल्यभावादनेनत्वं पातितोसिशनैश्चर ॥ तस्मा
न्मावीक्षयस्वैनं भविष्यतिप्रकोपभाक् ॥ ६२ ॥ मापतस्वतथाभूमौ बलान्मद्वाक्यसम्भवात् ॥ स्तम्भयित्वातथाप्येवं

प्राप्तहो और कारण इसमें नहीं है उन नारदजीके उस वचनको सुनकर क्रोधसे अतिअरुण नयनोंवाले पिप्पलादने ॥ ५९ ॥ शनैश्चरको भलीभांति उद्देशकर ऊपर देखा
उसके दृष्टिनिपातसे वे सूर्यके पुत्र शनैश्चरजी आकाशस्थ विमानसे उसी क्षण नहुषके पुत्र ययातिके समान गिरपड़े नीचे मुखवाले उन शनैश्चरको गिरतेहुये
देखकर ॥ ६० । ६१ ॥ नारदजी बोले कि हे शनैश्चर ! शिशुताकेस्वभावसे इसने तुमको गिरायाहै इसलिये इसको मत देखिये यह कोपभागी होगा ॥ ६२ ॥ वैसेही

मेरे वचनसे उपजेहुये पराक्रमसे भूमिमें मतगिरो तिसपर भी आकाशमें टिके हुये शनैश्चरको इसप्रकार रोंककर ॥ ६३ ॥ तदनन्तर उस बालक मुनिनायक पिप्पलाद से कहा कि तुम बालक क्रोध मतकरो ये सूर्यके पुत्र (शनैश्चर) ग्रह ॥ ६४ ॥ आठवीं राशिमें प्राप्तहोकर देवताओंके भी व्यथाकरते हैं और जन्मस्थ तथा अपर द्वितीय राशिमें होकर विशेषकर पीड़ाकरते हैं ॥ ६५ ॥ यदि कदाचित् क्रोधित होते हुये ये शनैश्चर तुमको देखेंगे तो निस्सन्देह मेरे अगाड़ी भस्म राशिकरेंगे ॥ ६६ ॥ जातमात्र याने पैदाहुये इन शनैश्चरने अपने पांवोंको देखा और प्रसन्नहुये उन शनैश्चरकी माता पुत्र देखनेकी इच्छासे अन्तर्धानकृतवसन (परदे) में उसको वि-

गगनस्थंशनैश्चरम् ॥ ६३ ॥ ततःप्रोवाचतंबालं पिप्पलादंमुनीश्वरम् ॥ माकोपंकुरुबालस्त्वमेषसूर्य्यसुतोग्रहः ॥ ६४ ॥ देवानामपिपीडांच कुरुतेष्टमराशिगः ॥ जन्मस्थस्तुविशेषेण द्वितीयस्तुतथापरः ॥ ६५ ॥ यद्येषकुपितस्त्वान्तु वीक्षयिष्यतिकर्हिचित् ॥ करिष्यतिनसन्देहो भस्मराशिंममाग्रतः ॥ ६६ ॥ अनेनवीक्षितौपादौ जातमात्रेणस्वीयकौ॥ अम्बातस्यतुतुष्टस्य पुत्रदर्शनवाञ्छया ॥ ६७ ॥ अन्तर्द्धानकृतेवस्त्रे ज्ञात्वातंरौद्रचक्षुषम् ॥ ततोदग्धावुभौचापि तिष्ठ तश्चर्म्मवेष्टितौ ॥ ६८ ॥ दृश्येतेद्यापिमूर्तौयौ घटितौचधरातले॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यनारदस्यसबालकः॥ ६९ ॥ भयेनमहतायुक्तस्ततःपप्रच्छतंमुनिम् ॥ कथंयास्यतिमेतुष्टिं वदैषममसन्मुने ॥ ७० ॥ अज्ञानात्पातितोव्योम्नः शक्तिंचास्यविजानता ॥ नारदउवाच ॥ ग्रहागावोनरेन्द्राश्चब्राह्मणाश्चविशेषतः ॥७१॥ पूजिताःप्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्य वमानिताः ॥ तस्मात्कुरुस्तुतिंचास्य स्वशक्त्याभास्करेःप्रभोः ॥ ७२ ॥ प्रसादंगच्छतेयेन कोपंत्यजतितावकम् ॥ त

कराल दृष्टिवाला जानकर विस्मयमें प्राप्तहुई तदनन्तर दोनोंभी जलगये व चमड़े से लपेटेहुये स्थितभये ॥ ६७ । ६८ ॥ जोकि भूतलमें मूर्त्तिके मध्य बनायेहुये आज भी देख पड़ते हैं सूतजी बोले कि उन नारदजीके उस वचनको सुनकर वह बालक ॥ ६९ ॥ बड़े डरसे युक्तहोकर तदनन्तर उन मुनिसे पूंछा कि हे सन्मुने ! ये मेरे ऊपर कैसे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैंगे ॥ ७० ॥ इनकी शक्तिको न जाननेवाले मैंने अज्ञानके कारण आकाशसे गिरादिया नारदजी बोले कि ग्रह, गाइयां, नरेश व विशे-षकर ब्राह्मण ॥ ७१ ॥ पूजेहुये प्रति पूजन करतेहैं याने पूजकपै प्रसन्नहोते हैं और अनादर कियेहुये ये पूर्वोक्त सब जलाते हैं इसलिये तुम इन समर्थवान् सूर्य्यपुत्र

(शनैश्चर) की अपनी शक्तिसे स्तुतिकरो ॥ ७२ ॥ जिससे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैं व तुम्हारेवाले क्रोधको छोड़देवैं तदनन्तर उन नारदमुनि से पूंछा उसके उपरान्त हे
द्विजोत्तमो ! बड़ेडरसे संयुक्त उस पिप्पलाद बालकने हाथोंको जोड़कर व बार २ प्रणामकर स्तुति किया ॥ ७३ । ७४ ॥ कि क्रोधमें भलीभांति टिकेहुये तुम्हारे लिये
नमस्कारहै व पिंगल वर्णवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै बहुत रूपवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै व कृष्णवर्णवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ७५ ॥ विकराल शरीरवाले
तुम्हारे लिये नमस्कारहै व अन्तकारक तुम्हारे लिये नमस्कारहै यमनामक तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे विभो ! सूर्यपुत्र तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥७६॥ व मन्द नामक

भयेनमहतायुक्तस्ततःपप्रच्छतंमुनिम् ॥ पिप्पलादोद्विजश्रेष्ठाः प्रणि
तःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुतिंचक्रेमबालकः ॥ ७३ ॥ नमस्तेक्रोधसंस्थाय पिङ्गलायनमोस्तुते ॥ नमस्तेबहुरूपाय कृष्णायचनमोस्तुते ॥ ७५ ॥ न
पत्यमुहुर्मुहुः ॥ ७४ ॥ नमस्तेरौद्रदेहाय नमस्तेचान्तकायच ॥ नमस्तेयमसंज्ञायनमस्तेसौरयेविभो ॥ ७६ ॥ नमस्तेमन्दसंज्ञाय शनैश्चरन
मस्तेरौद्रदेहाय नमस्तेचान्तकायच ॥ नमस्तेयमसंज्ञायनमस्तेसौरयेविभो ॥ ७६ ॥ नमस्तेमन्दसंज्ञाय शनैश्चरन
मोस्तुते ॥ प्रसादंकुरुदेवेश दीनस्यप्रणतस्यच ॥ ७७ ॥ शनैश्चरउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्सस्तोत्रेणानेनसाम्प्रतम् ॥
वरंवरयभद्रन्ते येनयच्छामिसाम्प्रतम् ॥ ७८ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अद्यप्रभृतिनोपीडा बालानांरविनन्दन ॥ त्वया
कार्य्यामहाभाग स्वकीयाचकथंचन ॥ ७९ ॥ यावदष्टतमंवर्षं ममवाक्येनसूर्य्यज ॥ स्तोत्रेणानेनयोत्रत्वांस्तूयात्प्रा
तस्समुत्थितः ॥ ८० ॥ तस्यपीडानकर्तव्या त्वयाभास्करनन्दन ॥ तववारेचसंजाते तैलाभ्यङ्गंकरोतियः ॥ ८१ ॥ दि

तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे शनैश्चर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवेश ! दीन व प्रणाम किये हुये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ७७ ॥ शनैश्चरजी बोले कि हे व-
त्स ! इस स्तोत्र से इस समय मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआहूं तुम्हारा कल्याण हो तुम वरदानको मांगो कि जिससे इस समय मैं उसको देऊं ॥ ७८ ॥ पिप्पलाद
बोले कि हे महाभाग, रविनन्दन, सूर्यपुत्र ! आज से लगाकर मुझ बालकों के ऊपर आठवर्षतक मेरे वचन से तुमको अपनी पीड़ा न करना चाहिये व यहां पर
प्रातःकाल भलीभांति उठाहुआ जो पुरुष इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करै ॥ ७९ । ८० ॥ हे सूर्यनन्दन ! तुमको उसके पीड़ा न करना चाहिये व तुम्हारे दिनको

भलीभांति प्राप्त होनेपर जो पुरुष तैलाभ्यंग करता है ॥ ८१ ॥ तुमको आठदिन तक किसी प्रकार उसके पीड़ा न करना चाहिये और जो पुरुष नीचे मुखवाले तुमको लोहमय बनाकर तैल के बीचमें धरै तदनन्तर उस तैल से स्नान करै उसके तुमको पीडा न करना चाहिये व भूपालके लिये लाभ देना चाहिये ॥ ८२ । ८३ ॥ हे विभो ! तुम्हारे अध्यर्द्धाष्टमिका योग होनेपर याने साढ़साती होनेपर जब तुम्हारा दिन भलीभांति प्राप्तहोवै तब जो पुरुष लोह संयुत तिलोंको शक्ति से देता है उसके तुमको पीड़ा न करना चाहिये व तुम्हारे उद्देश से जो पुरुष कालीगऊ को ब्राह्मण के लिये देता है उसके साढ़साती से उपजी हुई पीड़ा तुमको न क-

नाष्टकन्नकर्तव्या त्वयापीडाकथञ्चन ॥ यस्त्वांलोहमयंकृत्वा तैलमध्येह्यधोमुखम् ॥ ८२ ॥ धारयेत्तेनतैलेन ततःस्नानंसमाचरेत् ॥ तस्यपीडानकर्तव्या देयोलाभोमहीभुजे ॥ ८३ ॥ अध्यर्द्धाष्टमिकायोगे तावकेसंस्थितेनरः ॥ तववारेतु सम्प्राप्ते यस्तिलाल्लोहसंयुतान् ॥ ८४ ॥ शक्त्याददातिनोतस्य पीडाकार्य्यात्वयाविभो ॥ कृष्णांगांयस्तुविप्राय तवोद्देशेनयच्छति ॥ ८५ ॥ अध्यर्द्धाष्टमजापीडा तस्यकार्य्यात्वयानच ॥ शमीसमिद्भिर्योहोमं तवोद्देशेनयच्छति ॥ ८६ ॥ तथाकृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेपनैः ॥ पूजाङ्करोतियस्तुभ्यं धूपंवैगुग्गुलुंदहेत् ॥ ८७ ॥ कृष्णवस्त्रेणसंवेष्ट्य त्याज्यापीडातदात्वया ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तःशनिस्तेनबाढमित्येवजल्प्यच ॥ ८८ ॥ नारदंसमनुप्राप्य जगामनिजसंश्रयम् ॥ नारदोपितमादाय बालकंकृपयान्वितः ॥ ८९ ॥ चमत्कारपुरङ्गत्वा याज्ञवल्क्यायचार्पयत् ॥ कथयामासवृत्तान्तं तस्यसम्भूतिसम्भवम् ॥ ९० ॥ यद्दृष्टंज्ञानदीपेनतस्मैसर्वंन्यवेदयत् ॥ एषतेवीर्य्यसम्भूतो बालकोभगिनीसु

रना चाहिये व जो पुरुष तुम्हारे उद्देश से शमीकी समिधोंके द्वारा होम करता है वैसेही जो पुरुष काले वसन से लपेटकर काले तिलों से व काले फूलों तथा अनुलेपनोंसे तुम्हारा पूजन करता है व गुग्गुलकी धूप जलाता है उस समय तुमको उसके पीड़ा त्याग करना चाहिये सूतजी बोले कि उन पिप्पलादसे इसभांति कहेहुये शनैश्चरजी हां यह बहुत अच्छा यही कहकर ॥ ८४ । ८५ । ८६ । ८७ ॥ ८८ ॥ व नारदमुनिको भलीभांति प्राप्तहोकर अपने स्थानको चलेगये व दयासंयुत नारदजीने भी उस बालकको लेकर व चमत्कारपुरको जाकर याज्ञवल्क्यजीके लिये अर्पण किया व उसकी उत्पत्तिसे उपजेहुये वृत्तान्तको कहा ॥ ८९ । ९० ॥ जो ज्ञान

पी दीपकसे देखाथा उस समस्त चरितको उन याज्ञवल्क्यजीके लिये निवेदन किया कि तुम्हारे वीर्यसे पैदाहुये इस बहनके पुत्र बालकको मैंने पीपलके तले वन
पिप्पलके समीप पायाहै यह आठवर्षका है तुम इसका यज्ञोपवीत करो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे द्विजेन्द्र ! इस विषयमें तुम्हारा व तुम्हारी बहनका दोष नहीं है इसलिये
पने भानजे पुत्रको विशेषकर ग्रहण कीजिये ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर वे देवर्षि नारदजी अन्तर्द्धानहोगये व याज्ञवल्क्य भी उसको सुनकर बड़े
श्चर्य्यको प्राप्तहुये ॥ ९४ ॥ व उस पापको चिन्तन करतेहुये शान्तिको नहीं प्राप्तहोते थे व नित्यही दिनरात अपनेको निन्दतेहुये शोचतेथे ॥ ९५ ॥ व टिकेहुये

तः ॥ ९१ ॥ मयाश्वत्थतलेलब्धः काननेश्वत्थसन्निधौ ॥ व्रतबन्धंकुरुष्वास्य साम्प्रतंचाष्टवार्षिकः ॥ ९२ ॥ नात्रदो
षोस्तिविप्रेन्द्र नभगिन्यास्तथातव ॥ तस्माद्गृहाणपुत्रंस्वंभागिनेयंविशेषतः ॥ ९३ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासदेव
र्षिस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ याज्ञवल्क्योपितच्छ्रुत्वा विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ९४ ॥ पापंतच्चिन्तयन्सोपि नशान्तिमधिगच्छ
ति ॥ आत्मानंगर्हयन्नित्यं दिवानक्तंचशोचति ॥ ९५ ॥ तञ्चपुत्रंपरिज्ञाय तैस्तैश्चिह्नैर्निजैःस्थितैः ॥ सूतउवाच ॥ एवं
संशोचतेयावदात्मानंपरिगर्हयन् ॥ ९६ ॥ ततस्तुब्रह्मणाप्रोक्तं स्वयमभ्येत्यचद्विजाः ॥ त्वयाशङ्कानकर्तव्यापुत्रस्या
स्यकृतेद्विज ॥ ९७ ॥ अज्ञानादेवतेजातो दैवयोगेनबालकः ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ तथापिदेवमेशुद्धिर्वदयस्मात्प्रजाय
ते ॥ ९८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तत्स्थापयमहाभाग लिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यत्पापंकुरुतेनरः ॥ ९९ ॥
ब्रह्महत्यादिकंपापं स्त्रीवधाद्यपियद्भवेत् ॥ पञ्चेष्टिकमयंवापियःकुर्य्याद्धरमन्दिरम् ॥ १०० ॥ तस्यतन्नाशमायाति तम

उन उन अपने चिह्नोंसे उस पुत्रको सब तरहसे जानकर विस्मितहुये सूतजी बोले कि अपनी निन्दा करतेहुये याज्ञवल्क्यजी जबतक शोचते थे ॥ ९६ ॥ तबतक हे
ब्राह्मणो ! आपही आकर ब्रह्माजीने कहा कि हे द्विज ! इस पुत्रके लिये तुमको शङ्का न करनी चाहिये ॥ ९७ ॥ तुम्हारे अजानही से दैवयोगके द्वारा यह बालक पैदाहुआ
है याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे देव ! तिसपरभी जिससे शुद्धि होवै उसको मुझसे कहिये ॥ ९८ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महाभाग ! त्रिशूलधारी देव (शिवजी) के उस
लिंगको थापिये मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे भी जिस पातकको करता है ॥ ९९ ॥ व ब्रह्महत्यादि पाप व स्त्रीहत्यादिक भी जो पाप व पञ्चयज्ञमयभी पाप होवै हैं जो

पुरुष शिवजीके मन्दिरको निर्माण करता है ॥ १०० ॥ उसका वह पाप वैसेही नष्ट होताहै जैसे कि सूर्य्योदयमें अँधियाला नाश होजाता है हे महाभाग ! और हाटके-श्वरजीसे उपजेहुये उस अतिपवित्र व समस्त पातकोंके विनाशक क्षेत्रमें शिवमन्दिर निर्माणसे विशेषकर पातक नाश होजाताहै जहांपर कि कलिकालकेभी भलीभांति प्राप्तहोनेपर पाप नहीं विद्यमान होताहै ॥ १।२ ॥ हे द्विजोत्तम ! यहां यज्ञ करनेके लिये मैंभी इच्छा करताहूं व अपने प्रिय उस पुष्कर तीर्थको मैं कलिकालके भयसे लाऊंगा कि जिसप्रकार व्यर्थताको न प्राप्तहोवै और हे विप्र ! कलिकालके भलीभांति प्राप्तहोनेपर इस उत्तम तीर्थको छोड़कर समस्त तीर्थ व्यर्थताको प्राप्तहोजावैंगे

क्षेत्रेतत्रसुमेध्येतु सर्वपातकनाशने ॥ कलिकालेपि स्सूर्य्योदयेयथा ॥ विशेषेणमहाभाग हाटकेश्वरसम्भवे ॥ १ ॥ सम्प्राप्ते यत्रपापंनविद्यते ॥ २ ॥ अहमप्यत्रवाञ्छामियज्ञंकर्तुंद्विजोत्तम ॥ आनयिष्यामितत्तीर्थं पुष्करंचात्मनःप्रिय म् ॥ ३ ॥ कलिकालभयाच्चैव यथानोव्यर्थतांव्रजेत् ॥ कलिकालेतुसम्प्राप्ते तीर्थानिसकलानिच ॥ ४ ॥ यास्यन्तिव्यर्थ तांविप्र मुक्त्वेदंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्योपितच्छ्रुत्वा पितामहवचोखिलम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं मेघगम्भीरयागिरा ॥ अ ष्टम्याञ्चचतुर्दश्यांयोलिङ्गंमामकंत्विदम् ॥ ७ ॥ स्नापयिष्यतिसद्भक्त्या तस्यपापंप्रयास्यति ॥ परदारकृतंयच्च मा त्रापिचसमंकृतम् ॥ ८ ॥ क्षालयिष्यतितत्पापं स्नापितंपूजितंपरैः ॥ अस्मिन्नहनिसम्प्राप्ते तस्यपक्षसमुद्भवम् ॥ ९ ॥ प्रयास्यतिक्षयंपापं यदज्ञानाद्विनिर्मितम् ॥ ततःप्रभृतिविख्यातोयाज्ञवल्क्येनधीमता ॥ १० ॥ स्वमातुःशुद्धिदःश्रेष्ठो

सूतजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर चतुराननजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ३।४।५ ॥ याज्ञवल्क्यजी ने सम्पूर्ण ब्रह्माजी के वचन को सुनकर व अति उत्तम क्षेत्र को जानकर लिंग को भलीभांति थापन किया ॥ ६ ॥ व तदनन्तर मेघके समान गम्भीरवाणीसे वचनको कहा कि अष्टमी व चतुर्दशीमें (मामक) मेरे थापेहुये इस लिंगको जो पुरुष उत्तम भक्तिसे नहवावैगा उसका पाप अवश्यकर नाश होजावैगा व पराई स्त्रीसे किया तथा माताके साथभी कियाहुआ जो पातक होताहै ॥ ७।८ ॥ परपुरुषोंसे नहवाया व पूजाहुआ वह लिंग उस पातकको नाश करता है व और दिनके भलीभांति प्राप्तहोने परजो अज्ञानसे किया गयाहै वह उस नर का पल में

उपजाहुआ पाप नाश होवैगा तबसे लगाकर हाटकेश्वर नामक क्षेत्रमें बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजी से थापित व निज माताके शुद्धिदायक पिप्पलादसे स्थापित श्रेष्ठ शिवजी प्रसिद्धहुये ॥ १०९।११०।१११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्येश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। कंसारीश्वर शिवहिं जिमि थाप्यो ताको पूत। इकसौ छाछठिमें कहत चरित सोइ मुनिसूत ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीसे थापेहुये लिंग

हाटकेश्वरसंज्ञिके॥ १११॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्येश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ दृष्ट्वाप्रतिष्ठितंलिङ्गं याज्ञवल्क्येनधीमता ॥ स्वमातुःशुद्धिहेतोश्च तन्नाम्नालिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥ स्थापयामासविप्रेन्द्राः श्रद्धयापरयायुतः ॥ ततश्चानीयविप्रेन्द्रं मध्यगंनगरोद्भवम् ॥ २ ॥ गर्ततीर्थसमुद्भूतमाहिताग्निम्प्रयाजिनम् ॥ मयास्मिन्नागरेस्थाने तथात्वमपिदीक्षितः ॥ ३ ॥ अष्टषष्टिस्तुगोत्राणां नायकत्वेऽव्यवस्थितः ॥ तववाक्येनसर्वाणि गोत्राणिद्विजसत्तम ॥ ४ ॥ वर्तयिष्यन्तिकृत्येषु यावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥ गोवर्द्धनत्वयाचिन्ताकार्य्याचास्य समुद्भवा ॥५॥ लिङ्गस्यपूजनार्थाय प्रेरणीयाश्चनागराः ॥ पूजयातस्यलिङ्गस्य वृद्धिंयास्यतितेन्वयः ॥ ६ ॥ अपूजया

को देखकर परमश्रद्धासे संयुत होतेहुये पिप्पलादने अपनी माताकी पवित्रताके कारण उसके नामसे अति उत्तम लिंगको थापन किया तदनन्तर नगरमें उपजे हुये मध्यवर्ती द्विजेन्द्रको जोकि गर्त तीर्थमें भलीभांति उत्पन्न व अग्नि रखनेवाला व यज्ञकर्ताथा उसको लाकर कहा कि मैंने इस नागर स्थानमें वैसेही तुमकोभी दीक्षित किया ॥ १ । २ । ३ ॥ कि जिसप्रकार अरसठि गोत्रोंकी स्वामितामें विशेषकर स्थितहोवो हे द्विजोत्तम ! जबतक चन्द्रमा, सूर्य्य व नक्षत्र रहैंगे तबतक समस्त गोत्र तुम्हारे वचनसे कार्योंमें वर्तमान होवेंगे हे गोवर्द्धन ! इस कार्य्यसे उपजीहुई चिन्ता तुमको करना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥ और लिंगके पूजनके लिये नागर द्विजोंकी प्रेरणा

एतल्लिङ्गंकरिष्यन्ति कृत्यानिविविधा
विनाशञ्च यास्यत्यत्रनसंशयः ॥ तववंशोद्भवायेच पूजयित्वाप्रभक्तितः ॥७॥ अहंसर्वंकरिष्यामि लिङ्गस्यास्यसदा
निच ॥ तानिसिद्धिम्प्रयास्यन्ति प्रसादादस्यदीक्षित ॥ ८ ॥ गोवर्द्धनउवाच ॥ तेषांमतेनदेवस्य नाममात्रङ्करोम्यहम् ॥ तत
द्विज ॥ पिप्पलादउवाच ॥ गोवर्द्धनद्रुतंविप्रांस्तत्रचानयनागरान् ॥ ९ ॥ तानब्रवीत्प्रणम्योच्चैः पि
स्तांश्चानयामास विप्रांश्चैवविचक्षणान् ॥ १० ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नान्यज्ञकर्म्मपरायणान्॥ तस्याउद्देशतोलिङ्गं मयैतत्सम्प्रतिष्ठितम्॥१२॥
प्पलादोमहामुनिः ॥ ११ ॥ ममभातामृतापूर्वं कंसारीतिचनामतः ॥ यश्चैतत्स्नापयिष्यति ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्येश्वरोत्थ
युष्मद्वाक्यात्प्रसिद्धिञ्च प्रयातद्विजसत्तमाः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां ॥ १४ ॥ कंसारीश्वरइत्येवं गौरवात्त
ञ्च सहिश्रेयोह्यवाप्स्यति ॥ सूतउवाच ॥ अथतैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्तस्यनामप्रतिष्ठितम् ॥ स्थापि
स्यसन्मुनेः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ कंसारीश्वरसञ्ज्ञस्तुयथाजातस्तुपापहा ॥

करना चाहिये उस लिंगकी पूजासे तुम्हारा वंश बढ़तीको प्राप्तहोगा ॥ ६ ॥ व न पूजनेसे विनाशको प्राप्तहोवैगा इसमें सन्देह नहीं है और हे दीक्षित! तुम्हारे वंशमें उपजेहुये जो पुरुष बडी भक्तिसे इसलिंगको पूजकर जो नर अनेक प्रकारके कार्य्योंकोकरैंगे वे इनकी प्रसन्नतासे सिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ७।८ ॥ गोवर्द्धन बोले कि हे द्विज! मैं सदैव इस लिंगका समस्त कार्यकरूंगा पिप्पलाद बोले कि हे गोवर्द्धन! नागर ब्राह्मणोंको तुम वहां शीघ्रही लावो ॥ ९ ॥ उनके मतसे मैं देव (शिवजी) का नाममात्र करूंगा तदनन्तर गोवर्द्धनजी उन चतुर ब्राह्मणोंको लाये ॥ १० ॥ जोकि शास्त्र पढ़नेमें सम्पन्न व यज्ञकर्म में तत्परथे उनको उच्चप्रकारसे प्रणामकर पिप्पलाद महामुनिने कहा ॥११ ॥ कि हे द्विजोत्तमो! कंसारी ऐसी नामक मेरी माता पहले मरगईहै मैंने उसके उद्देशसे इस लिंगको भलीभांति थापाहै वह तुम लोगोंके वचनसे प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै अष्टमी व चौदसि तिथि में जो पुरुष इस लिंगको नहवावैगा ॥ १२।१३ ॥ व याज्ञवल्क्यजीसे उत्थ (थापेहुये) लिंगको स्नान करावैगा वह निश्चयकर कल्याण या पुण्यको पावैगा सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन उत्तम मुनिके गौरवसे उन समस्त ब्राह्मणोंने उस लिंगका कंसारीश्वर ऐसाही नाम थापन किया हे द्विजोत्तमो! जिस चरितको तुम लोगोंने पूंछाथा उस समस्त चरितको वर्णन किया ॥ १४ । १५ ॥ जिसप्रकार कि महात्मा पिप्पलादसे आपही थापेहुये पाप-

हारी कंसारीश्वर नामक हुयेहैं ॥ १६ ॥ उन देवके समीप इस पुण्यदायक कथानक को जो पढ़ताहै व जो सुनताभी है वह भलीभांति सिद्धिसे संयुत होताहै ॥ १७ ॥ व मनसे चिन्तित पातक व पराई स्त्री आदिकोंसे जो पाप किया गयाहै उसका वह पाप वैसाही प्रशान्तिको प्राप्तहोता है जैसा कि पिप्पलादका वचन है ॥ १८ ॥ व जो नर उन शिवजीके आगे भक्तिसे सदैव नीलरुद्रोंको व विशेषकर भवरुद्रसे संयुत प्राणरुद्रोंको जपताहै ॥ १९ ॥ उसका ब्रह्मघातसे उपजाहुआभी पातक अवश्यकर नाश होजाता है व पराई सेना से भयके उत्पन्न होने व अवर्षण होने पर ॥ २० ॥ जो पुरुष अथर्व वेद के आदि अन्तवाले मन्त्रों को पढ़ता है उस का वैरी विनाश

तःपिप्पलादेन स्वयञ्चैवमहात्मना ॥ १६ ॥ यश्चैतत्पुण्यमाख्यानं तस्यदेवस्यसन्निधौ ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापि सम्य क्सिद्धिसमन्वितः ॥ १७ ॥ मनसाचिन्तितंपापं परदारकृतञ्चयत् ॥ तस्यतत्प्रशमंयाति पिप्पलादवचोयथा ॥ १८ ॥ यस्तस्यपुरतोभक्त्या नीलरुद्रान्सदाजपेत् ॥ प्राणरुद्रान्विशेषेण भवरुद्रसमन्वितान् ॥ १९ ॥ ब्रह्महत्योद्भवञ्चैव अपि तस्यप्रणश्यति ॥ परचक्रभयेजाते अनावृष्टिभयेतथा ॥ २० ॥ अथर्ववेदस्याद्यन्ते पठितेतस्यचाग्रतः ॥ शत्रुर्विलयम भ्येति वृष्टिस्सञ्जायतेद्रुतम् ॥ २१ ॥ राजदौःस्थ्येसमुत्पन्ने राजाभवतिधार्म्मिकः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तः प्रजापालनतत्प रः ॥ २२ ॥ उपसर्गभयेजाते तस्यचौघःप्रशाम्यति ॥ शनैश्शनैरसन्दिग्धं पिप्पलादवचोयथा ॥ २३ ॥ किंवातेबहुनो क्तेन यत्किञ्चिद्व्यसनंमहत् ॥ अस्यदेवस्यपुरतोयातिनाशञ्चतद्द्रुतम् ॥ २४ ॥ नतस्यव्यसनंकिञ्चिदथर्वणप्रकीर्तना त् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेकंसारीश्वरोत्पत्तिर्नामषट्षष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६६ ॥

को प्राप्त होता है व शीघ्रही वृष्टि होती है ॥ २१ ॥ व राजा की दुःस्थिति उत्पन्नहोने पर धर्मवान् व समस्त रोगों से छूटाहुआ व प्रजाओं के पालने में परायण नृपति होता है ॥ २२ ॥ व उत्पात का डर उत्पन्न होने पर धीरे २ निस्सन्देह उस उपद्रव का समूह शान्त होजाता है जैसा कि पिप्पलादजी का वचन है ॥ २३ ॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है जो कुछ बड़ी भारी विपत्ति होती है वह इन देव के अगाड़ी शीघ्रही नाश होजातीहै ॥ २४ ॥ व अथर्वण वेदके कहनेसे उसको कुछ क्लेश नहीं होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकंसारीश्वरोत्पत्तिर्नामषट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

दो० । निज सौतिनसों कह्यो जिमि अमा आपनो हाल । इकसौ सरसठि मध्य महँ सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर वहां मनुजतामें विशेष कर स्थित हुईं लक्ष्मी जी से भलीभांति थापित अन्यभी पञ्चपिण्डिका गौरी जी हैं ॥ १ ॥ जिनके दर्शनमात्र से स्त्री सौभाग्य को प्राप्त होती है जेठ महीने के शुक्लपक्ष में जब सूर्यनारायण वृषराशि पै स्थितहोवैं तब अहर्निश नहवाती हुई जो नारी उन गौरी जी के ऊपर जलयंत्र (घट) को धरती है वह उत्तम सौभाग्य को प्राप्त होती है ॥ २ । ३ ॥ समस्त उत्तम कर्म करने से व उन के प्रियसे उत्पन्न हुये तथा गौरी से उपजे हुये दानों के देने से स्त्री जिस फलको पाती है ॥ ४ ॥ उस समस्त

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्ति गौरीवैपञ्चपिण्डिका ॥ लक्ष्म्यासंस्थापिताचैव मानुषत्वव्यवस्थया ॥ १ ॥ यस्यादर्शनमात्रेणनारीसौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षे वृषभस्थेदिवाकरे ॥ २ ॥ तस्याउपरिनारीया जलयन्त्रंदधातिवै ॥ स्नाप्यमानादिवानक्तं सौभाग्यंपरमंलभेत् ॥ ३ ॥ यत्फलंलभतेनारी समस्तैर्विहितैश्शुभैः ॥ गौरीसमुद्भवैश्चैव दानैर्दत्तैस्तदिष्टजैः ॥ ४ ॥ तत्फलंलभतेसर्वंजलयन्त्रस्यकारणात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्त्रीभिःसौभाग्यकारणात् ॥ ५ ॥ जलयन्त्रंविधातव्यं ज्येष्ठेगौर्य्याःप्रयत्नतः ॥ किंव्रतैर्नियमैर्वापि स्त्रीणांब्राह्मणसत्तमाः ॥ ६ ॥ जपैर्होमैः कृतैरन्यैर्बहुक्लेशकरैश्चतैः ॥ स्त्रीणांब्राह्मणशार्दूलाजलयन्त्रेधृतेसति ॥ ७ ॥ गौर्य्याउपरिसद्भक्त्या वृषस्थेतीक्ष्णदीधितौ ॥ नैवसञ्जायतेबन्ध्या काकबन्ध्यानजायते ॥ ८ ॥ नदौर्भाग्यसमोपेतासप्तजन्मान्तराणिच ॥ ऋषयऊचुः ॥ गौरीचतुर्भुजाप्रोक्ता दृश्यतेपरमेश्वरी ॥ ९ ॥ पञ्चपिण्डाकथंजाता एतंनःसंशयंवद ॥ सूतउवाच ॥ यदाचप्रलयोभावीत

फलको जलयन्त्र के हेतु से पाती है इसलिये जेठ महीने में सौभाग्य के कारण सब उपाय से गौरीजी के ऊपर स्त्रियोंको बडे यत्न के द्वारा जलयन्त्रको करना चाहिये हे द्विजोत्तमो ! स्त्रियों के व्रतों व नियमों से भी क्या है ॥ ५ । ६ ॥ व हे द्विजपुङ्गवो ! स्त्रियोंको उन बहुत क्लेशकारक अन्य जपों व होमों के करने से क्या है याने कुछ नहीं सूर्यनारायणको वृषराशि में टिकने पर उत्तम भक्तिसे गौरी जी के ऊपर जलयन्त्र (घट) के धरने पर बन्ध्या व काकबन्ध्या नहीं होती है ॥ ७।८॥ व सात जन्मों के मध्य में दुर्भाग्य से संयुक्त नहीं होती है ऋषिलोग बोले कि परमेश्वरी गौरी चौभुजी कही गई हैं व देख पड़ती हैं ॥ ९ ॥ वे पञ्चपिंडिका कैसे हुईं

इस सन्देह को हमलोगों से कहिये सूतजी बोले कि जब प्रलय होनेवाला होता है तब यह आत्मा (अपने शरीर) को उत्पन्न करती है ॥ १० ॥ वही यह सुरेश्वरी उत्तम शक्ति विद्या समस्त संसार में व्याप्त होकर पंचपिंडमय उत्तम रूपको करती है ॥ ११ ॥ उससे स्थावर जंगम समेत यह समस्त त्रिलोक व्याप्त है और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश पांचों तत्त्वोंसे यह निश्चयकर रचती है उसी कारण पंचपिंडिका कही जाती है इसके प्रत्यक्ष पूजित होने पर जो फल होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जेठमहीने में जहां पञ्चपिंडिकाजी हैं वहां जलयन्त्रके पूजन से विशेषकर उसके हज़ार गुना फल होताहै ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! काशिराज की स्त्रीका जो

दात्मानङ्करोत्यसौ ॥ १० ॥ पञ्चपिण्डमयंविद्या कुरुतेरूपमुत्तमम् ॥ एषासापरमाशक्तिः सर्वंव्याप्यसुरेश्वरी ॥ ११ ॥ तयासर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च वायुराकाशमेवच ॥ १२ ॥ पञ्चभीरचयेदेषा ततःसापञ्च पिण्डिका ॥ यदस्याम्पूजितायाञ्च प्रत्यक्षायाम्प्रजायते ॥ १३ ॥ सहस्रगुणितन्तस्य यत्रस्यात्पञ्चपिण्डिका ॥ ज्येष्ठे मासिविशेषेण जलयन्त्रार्चनेनच ॥ १४ ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ यद्वृत्तंकाशिराजस्य भार्य्या याद्विजसत्तमाः ॥ १५ ॥ काशिराजःपुराचासीज्जयसेनइतिश्रुतः ॥ तस्यभार्य्यासहस्रन्तु आसीद्रूपसमन्वितम् ॥ १६ ॥ अथचामाप्रियातेन लब्धाभार्य्यासुशोभना ॥ सुतामद्राधिराजस्य विष्वक्सेनस्यधीमतः ॥ १७ ॥ सागत्वाप्रातरुत्था यशुभेगङ्गातटेतदा ॥ पञ्चपिण्डात्मिकाङ्गौरीं कृत्वाकर्दमसम्भवाम् ॥ १८ ॥ ततःसम्पूजयामासमन्त्रैःपञ्चभिरेवच ॥ ततोगन्धैःपरैर्माल्यैर्धूपैर्वस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ १९ ॥ नैवेद्यैःपरमान्नैश्च गीतैर्नृत्यैःप्रणोदितैः ॥ ततोविसृज्यतान्देवीं तद्वद्दे

चरित है उस पुरातन इतिहासको इस विषय में तुमलोगों से कहूंगा ॥ १५ ॥ पुरातन समय जयसेन ऐसा सुनाहुआ काशीका नृपति भया है उसके रूपसे संयुत हज़ार स्त्रियांथीं ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर मद्र देशके अधिपति बुद्धिमान् विष्वक्सेन की कन्याको उस नृपतिने अन्य अति उत्तम अमा नामक प्यारी नारीको पायाहै ॥ १७ ॥ उससमय प्रातःकाल उठकर उत्तम गंगाजी के किनारे पै जाकर उस स्त्रीने कीचड़ से उपजी हुई पञ्चपिण्डात्मिका गौरीजी को बनाकर तदनन्तर पांचही मन्त्रों से भलीभांति पूजन किया व उसके उपरान्त उत्तम गन्धों व मालाओं तथा धूपों और अति उत्तम वसनों से व परमान्न (खीर पूरी) की नैवेद्यों व प्रणोदित

(कियेहुये) गाने व नाचने से आराधन किया तदनन्तर उन देवीको विसर्जन करके उसके उपरान्त उन देवीके उद्देश मे गौरी कन्याओं व ब्राह्मणों को बहुतसे दानों को देकर तदनन्तर बहुत बाजाओं के शब्दों से घर को आती थी ॥ १८ । १६ । २० । २१ । वह रानी ज्यों २ उन गौरीजी की उस पूजा को करती थी त्यों २ उसका सौभाग्य अधिक होता है ॥ २२ ॥ व समस्त सौतियों के मध्य में उसका सौभाग्य अधिकहुआ इसके अनन्तर दिनदिनमें उसीके सौभाग्यकी बढ़ती देखकर जो उसकी सौतियां थीं वे सब दुःखसंयुत हुईं व कितेक स्त्रियां बोलीं कि यह जो इस कर्म को सदैव करती है ॥ २३ । २४ ॥ कि मिट्टीमय पांच पिण्डों को भलीभांति लेकर पू-

शेनवैततः ॥ २० ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिगौरीणाञ्चद्विजन्मनाम् ॥ ततश्चगृहमभ्येति भूरिवादित्रनिःस्वनैः ॥ २१ ॥ यथायथाचताम्पूजां तस्यागौर्याःकरोतिसा ॥ तथातथातुसौभाग्यं तस्याश्चाप्यधिकंभवेत् ॥ २२ ॥ सर्वासाञ्चसपत्नीनां सौभाग्यञ्चाधिकंभवेत् ॥ अथतस्याःसपत्न्योयाःसर्वादुःखसमन्विताः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वासौभाग्यवृद्धिन्तां तस्याएवदिने दिने ॥ एकाःप्रोचुःकर्म्मचैतद्यदेषाकुरुतेसदा ॥ २४ ॥ मृन्मयांश्चसमादाय पूजयेत्पञ्चपिण्डकान् ॥ अमान्तांमन्त्र सिद्धाञ्च प्रवदन्तिमहर्षयः ॥ २५ ॥ अन्यावदन्तिपुण्यानि अस्याःपूर्वकृतानिच ॥ एवंतासांसदुःखानां महान्कालोग तस्ततः ॥ २६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सर्वाःसम्मन्त्रयतामिथः ॥ तस्यास्सन्निधिमाजग्मुस्तस्मिन्नेवजलाशये ॥ २७ ॥ यत्रसापूजयेद्गौरीं कृत्वातांपञ्चपिण्डिकाम् ॥ ताःसासमागतालोक्य त्यक्त्वागौरीप्रपूजनम् ॥ २८ ॥ सम्मुखाप्रययौतूर्णं कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ स्वागतंवोमहाभागा भूयस्तुस्वागतंवचः ॥ २९ ॥ कृत्यंनिवेद्यतांशीघ्रं येनाशुप्रकरोम्यहम् ॥

जती है उसको महर्षिजन मन्त्र से सिद्धअमा कहते हैं ॥ २५ ॥ और स्त्रियां कहती थीं इसके पुरातन समय में किये हुए पुण्य हैं तदनन्तर इसप्रकार दुःख समेत उन स्त्रियों का बहुतसा समय व्यतीत होगया ॥ २६ ॥ इस के अनन्तर किसी समय वे समस्त स्त्रियां आपस में सलाह कर उसी जलाशय के निकट उसके समीप गई ॥ २७ ॥ जहां कि वह अमा पंचपिंडिका गौरी को बनाकर पूजती थी भलीभांति आई हुई उन सौतियों को देखकर वह गौरी पूजन को त्यागकर ॥ २८ ॥ जुड़े हुए हाथोंवाली अमा शीघ्रही सामने गई फिर स्वागत वचन को बोली कि हे बड़ी भाग्यवाली स्त्रियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ ॥ २९ ॥ शीघ्रही कार्य को

निवेदन करिये जिस से मैं जल्दी करूं सौतिया बोलीं कि तुम्हारे सौभाग्य से उपजीहुई दुर्भाग्यरूपी अग्निसे जलीं हुईं हम सब कुतूहल से तुम्हारे समीप आई हैं इसलिये हे महाभागे ! कहिये कि तुम मृत्तिकामय पंचपिण्डको नित्यही पूजती हो क्या वही सौभाग्य विवर्द्धक है तुम्हारे यह क्या कारण है अथवा हे महाभागे ! क्या मन्त्रसे उपजाहुआ यह प्रभाव है इस विषय में हमलोगों से गुप्त चरित को कहिये अमाबोलीं कि हे उत्तम मुखवाली सौतियो ! जो मैं पूंछी गईहों याने मुझ से जिस वृत्तान्त को तुम सबोंने पूंछा है यह परम गुप्त छिपी हुई वस्तु है ॥ ३० । ३१ । ३२ । ३३ ॥ व नहीं कहने योग्य है तिसपर भी जिसलिये कि गौरीजी के

सपत्न्यऊचुः ॥ वयंसर्वाःसमायाताः कौतुकेनतवान्तिकम् ॥३०॥ दौर्भाग्यवह्निनादग्धास्तवसौभाग्यजेनच ॥ तस्माद्व दमहाभागे मृन्मयम्पञ्चपिण्डकम् ॥ ३१ ॥ नित्यमर्चयसित्वंकिं तत्सौभाग्यविवर्द्धनम् ॥ किन्तेकारणमेतद्धि किंवा मन्त्रसमुद्भवः ॥ ३२ ॥ प्रभावोयंमहाभागे गुह्यञ्चात्रवदस्वनः ॥ अमोवाच ॥ रहस्यंपरमंगुह्यं यत्पृष्टास्मिशुभाननाः ॥ ३३ ॥ अवक्तव्यंवदिष्यामि भवतीनांतथापिच ॥ गौरीपूजनकालेतु यस्माच्चैवसमागताः ॥ ३४ ॥ सर्वाममभगिन्यःस्थ ईर्ष्याधर्म्मोनमेस्तिच ॥ अहमासम्पुराकन्या पुरेकुसुमसञ्ज्ञिते ॥ ३५ ॥ वीरसेनस्यशूद्रस्य वणिक्पुत्रस्यधीमतः ॥ तेनदत्तास्मिधर्म्मेण विवाहार्थंमहात्मना ॥ ३६ ॥ ततोविवाहसमयेममप्रीत्यातिवृद्धया ॥ येचाक्षराणिश्रेष्ठानि योषितान्दीक्षयासह ॥ ३७ ॥ गौरीपूजाकृतेचैवं प्रोक्ताचाहन्ततःपरम् ॥ यावत्पुत्रित्वमात्मानमेतैःपूजयसेऽक्षरैः ॥ ३८ ॥ जलपानंनकर्तव्यं तावच्चैवकथञ्चन ॥ येनसम्प्राप्स्यसेऽभीष्टं तत्प्रभावाद्यदीप्सितम् ॥ ३९ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तं तस्माच्चै

पूजन समय में भलीभांति आई हो उसी कारण आप सबोंसे कहूंगी ॥ ३४ ॥ तुम सब मेरी बहनैं हो मेरे ईर्षा धर्म नहीं है पुरातन समय कुसुम नामक नगर में बुद्धिमान् बनिये के पुत्र वीरसेन शूद्रकी मैं कन्या हुई उस महात्मा ने धर्म से बिवाह के लिये मुझको दिया ॥ ३५ । ३६ ॥ तदनन्तर बिवाह समय में अत्यन्त बढ़ी हुई प्रीतिसे मैंने स्त्रियों की दीक्षाके साथ जिन श्रेष्ठ अक्षरों को सुना ॥ ३७ ॥ तदनन्तर इसी भांति मैं गौरी पूजन के लिये कहीगई कि हे पुत्रि ! जबतक इन अक्षरों से तुम आत्मा (परमात्मा) को पूजन करना ॥ ३८ ॥ तबतक किसी प्रकार जल पान न करना चाहिये जिससे उसके प्रभावके द्वारा जो मनोरथ होगा उस प्रिय प-

मैने उससे तथा यहीकहा याने वैसाही होगा तदनन्तर गौरीजी की भक्ति में लगीहुई मैं विवाह को भली
दार्थको भलीभांति पावोगी ॥ ३९ ॥ हे सुन्दर मुखियो ! मैंने उससे तथा यहीकहा याने वैसाही होगा तदनन्तर किसी समय मेरे उत्तम पतिने वैश्यवृत्ति (जी-
भांति प्राप्तहुई ॥ ४० ॥ तदनन्तर मूर्त्तिको पूजकर जल में फेंकती थी उसके उपरान्त घरको जाती थी इस के अनन्तर किसी समय मेरे उत्तम पतिने वैश्यवृत्ति (जी-
विका) के कारण अन्य देशको प्रस्थान किया वह भी मार्ग में भलीभांति आश्रित हुआ व स्नेह से मुझको भलीभांति लेकर मरुमार्ग से गमन करता हुआ वह पति
जब वृषराशि में सूर्य स्थित थे तब अति विकराल समय में अतिभयङ्कर मरुमण्डल निर्जल देशको भलीभांति प्राप्तभया ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ तदनन्तर गम्भीरमेघ

**प्रक्षिपामिततस्तोये ततोगच्छामिमन्दिरम् ॥ कस्यचि
द्वरानना: ॥ ततोविवाहंसम्प्राप्ता गौरीभक्तिपरायणा ॥ ४० ॥ प्रक्षिपामिततस्तोये ततोगच्छामिमन्दिरम् ॥ कस्यचि
त्त्वथकालस्य भर्तामेप्रस्थितःशुभः ॥ ४१ ॥ देशान्तरंवणिग्वृत्त्या सोपिमार्गेसमाश्रितः ॥सगच्छन्मरुमार्गेणमांसमा
दायस्नेहतः ॥ ४२ ॥ सम्प्राप्तोनिर्ज्जलंदेशं सुरौद्रंमरुमण्डलम् ॥ तथारौद्रतमेकाले वृषस्थेदिवसाधिपे ॥४३ ॥ ततः
सार्थःसमस्तश्च विश्रान्तःस्थलमध्यगः ॥ वृक्षमेकंसमाश्रित्यगम्भीरजलदोपमम् ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु मयाद्द
ष्टंसमीपगम् ॥ तोयाकारंमरुदेशं ततश्चित्तेविचिन्तितम् ॥ ४५ ॥ एतच्चदृश्यतेतोयं समीपस्थन्तथाबहु ॥ अत्रस्नात्वा
शुचिर्भूत्वागौरीमभ्यर्च्यभक्तितः ॥ ४६ ॥ पिबामिसलिलंपश्चात्सुस्वादुसरसोद्भवम् ॥ ततःसम्प्रस्थितायावत्प्रगच्छा
मिपदात्पदम् ॥ ४७ ॥ यावद्दूरतरंयामि तावत्सामृगतृष्णिका ॥ तृष्णार्ताहंततस्तस्मिन्मरुमार्गेसमाकुला ॥४८॥
ततश्चपतिताभूमौ विस्फोटकसमावृता ॥ ततोमयास्मृताचित्ते कथाभारतसम्भवा ॥ ४९ ॥ त्रितेनतुयथायज्ञोपूजया**

इसी समयमें मैंने जल के आकारवाले
के समान एक वृक्ष प्रति भलीभांति आश्रित होकर चट्टान के बीच में प्राप्त उस समस्त वैश्यसमूहने विश्राम किया ॥ ४४ ॥ इसी समयमें मैंने जल के आकारवाले
मरु देशको समीपवर्ती देखा तदनन्तर चित्त में चिन्तवन किया ॥ ४५ ॥ कि समीपमे स्थित व बहुत यह जल देख पड़ता है इस में नहाकर व पवित्र होकर भक्तिसे
गौरीजी को पूजकर ॥ ४६ ॥ पश्चात् तडाग से उपजे हुए सुस्वादिष्ठ जलको पीऊं तदनन्तर भलीभांति प्रस्थान किये हुई मैं जबतक पैगसे पैग पै चलूं ॥ ४७ ॥ व
जबतक अतिदूरजाऊं तब तक वह मृग जल (जलाभास) दूर होंताथा तदनन्तर प्याससे विकल मैं उस मरु मार्ग में अतिआकुल हुई ॥ ४८ ॥ उस के उपरान्त

फोड़ों से घिरी हुई मैं भूमि में गिरपड़ी तदनन्तर मैंने भारत में उत्पन्नहुई कथाको चित्तमें स्मरण किया ॥ ४६ ॥ कि जैसे त्रितने यज्ञ किया है वैसे ही मैं शिवप्रिया का पूजन करूंगी जिससे प्रसन्न होतीहुई वह देवी आज दूसरे शरीर में भलीभांतिटिकने पर मनको प्यारी व अनन्त राज्य मुझको देवै तदनन्तर बालूमे उठी (उपजी) हुई पांच मूठियों से निर्माणकी हुई देवीको इसभांति स्मरण आये हुए पांच मन्त्रों से पूजन किया उसके उपरान्त हे उत्तम आननवाली स्त्रियो! उस समय मैं मृत्युको प्राप्त होगई ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ व उसी देवी की प्रसन्नता से जातिस्मरण संयुक्त मैं संसार में प्रसिद्ध दशार्णदेश के स्वामी के घर में उत्पन्नहुई ॥ ५३ ॥

मिहरप्रियाम् ॥ येनतुष्टातुसादेवी ममराज्यम्प्रयच्छति ॥ ५० ॥ अद्यदेहान्तरेसंस्थे मनोभीष्टमनन्तकम् ॥ ततस्तुपञ्चभिर्मन्त्रैरेवंस्मृतिसमागतैः ॥ ५१ ॥ पञ्चभिर्मुष्टिभिर्देवी बालुकोत्थैःप्रपूजिता ॥ ततःपञ्चत्वमापन्ना तत्कालऽहंवराननाः ॥ ५२ ॥ दशार्णाधिपतेर्जाता सदनेलोकविश्रुते ॥ जातिस्मरणसंयुक्ता तस्यादेव्याःप्रसादतः ॥ ५३ ॥ भवतीयांकनिष्ठास्मि ज्येष्ठासौभाग्यतःस्थिता ॥ एतस्मात्कारणाद्गौरीं कृत्वैतान्पञ्चपिण्डकान् ॥ ५४ ॥ कर्द्दमेनविधायाथपूजयामिदिनेदिने ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतीनामसंशयम् ॥ ५५ ॥ सत्येनानेनमेगौरी ममाभीष्टंप्रयच्छतु ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ ततःसर्वास्सपत्न्यस्ताः कृताञ्जलिपुटाःस्थिताः ॥ ५६ ॥ मामूचुर्विनयाद्वाचा प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ प्रसादंकुरुचास्माकंदीयतांमन्त्रपञ्चकम् ॥ ५७ ॥ तदेवयेनतेदेवी तुष्टासापरमेश्वरी ॥ त्वयाप्रोक्तावयंसर्वाः प्रार्थयामोयथेच्छया ॥ ५८ ॥ अहंसर्वंप्रयच्छामि तत्सत्यंवचनंकुरु ॥ ततोदेवमयाप्रोक्तं तासान्तन्मन्त्रपञ्चकम् ॥ ५९ ॥ शिष्यत्वङ्ग

जो आप सबों के मध्य में छोटी हूं व सौभाग्य से जेठी हूं इसी कारण इन पांचपिण्डों को करके कीचड़ से गौरी को बनाकर इसके अनन्तर दिन दिन में पूजती हूं आप सबों से इस गुप्त चरित को मैंने निस्सन्देह कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ इस सत्यसे पार्वती जी मेरे मनोरथ को देवैं लक्ष्मी जी बोलीं कि तदनन्तर हाथों को जोड़े खड़ी हुई उन समस्त सौतियों ने नम्रता से बार २ प्रणामकर मुझ से वचन के द्वारा कहा कि हम सबोंके ऊपर प्रसन्नता कीजिए व उन्हीं पांच मन्त्रो को दीजिये कि जिनसे वह परमेश्वरी देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुई है तुम से कहीहुई हम सबइच्छा के अनुकूल प्रार्थना करैंगी ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ मैं सब देती हूं उस सत्य

वचन को करो तदनन्तर हे देव ! वाणी,मन, शरीर व कर्म से शिष्यताको प्राप्तहुई उन सौतियों से मैंने उस मन्त्रपंचक को कहा विष्णुजी बोले कि हे देवेशि ! वह
मन्त्र पचक कैसाहै मुझसे भी कहो ॥ ५६।६०॥ कि जिस गौरीजीके मन्त्रको पुरातनसमय तुमने प्रसन्नताके द्वारा उन सौतियों से कहाहै लक्ष्मी जी बोलीं कि हे खगेश्व
रि ! पृथ्वीके लिये नमस्कारहै हे जलमये,हे उत्तमे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥६१॥ हे तेजस्विनि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे पवनस्वरूपे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे
आकाशरूप सम्पन्ने, हे पंचरूपे ! नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ६२ ॥ पुरातन समय मैंने इन मन्त्रोंसे परमेश्वरी को पूजा है उसीकारण समस्त स्त्रियों को अति दुर्लभ राज्य

यत्त्वयातुष्टितःपू
मितानाञ्च वाङ्मनःकायकर्म्मभिः ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममापिवददेवेशि कीदृक्तन्मन्त्रपञ्चकम् ॥ ६० ॥
वं तासाङ्गौर्य्यानिवेदितम् ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ नमःपृथिव्यैक्षान्तीशिनमश्रापोमयेशुभे ॥ ६१ ॥ तेजस्विनिनमस्तुभ्यं
नमस्तेवायुरूपिणि ॥ आकाशरूपसम्पन्ने पञ्चरूपेनमोनमः ॥ ६२ ॥ एभिर्मन्त्रैर्मयापूर्वं पूजितापरमेश्वरी ॥ तेनरा
ज्यम्परिप्राप्तं सर्वस्त्रीणांसुदुर्लभम् ॥ ६३ ॥ ततःप्रस्थापितादेवी कृतारत्नमयीशुभा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयातत्रसुरेश्व
र ॥ ६४ ॥ तांयापूजयतेनारी सद्योपिपतिवल्लभा ॥ जायतेनात्रसन्देहः सर्वपापविवर्ज्जिता ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चपिण्डिकोत्पत्तिर्नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६७ ॥ * ॥
लक्ष्मीरुवाच ॥ एवंराज्यंमयाप्राप्तं गौरीपूजाकृतेप्रभो ॥ सौभाग्यंपरमंचैव दुर्लभंसर्वयोषिताम् ॥ १ ॥ नचापत्यं

प्राप्त हुई है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर हे सुरेश्वर ! उत्तम व रत्नमयी की हुई उस देवीको मैंने उस हाटकेश्वरज क्षेत्रमें प्रस्थान कराया ॥ ६४ ॥ जो स्त्री उस देवीको पूजतीहै
वह समस्त पातकोंसे रहित होकर उसीक्षण भी पतिप्रिया होतीहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिता
यां भाषाटीकायांपञ्चपिण्डिकोत्पत्तिकथनन्नामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
पंच पिण्डिकागौरि को थप्यो लक्ष्मिमहरानि । इकसौ अरसठि में सोई कहत चरित सुखदानि ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे प्रभो ! इसप्रकार गौरी पूजन करने पर

मैंने समस्त स्त्रियों को दुर्लभ उत्तम सौभाग्य व राज्य को पाया ॥ १ ॥ तिसपरभी हे परमेश्वर ! वैसे भी सौभाग्य व उस प्रकार की तरुणता के स्थित होने पर मैंने सन्तान को न पाया ॥ २ ॥ उस दुःख से मैं दिनरात जलती थी और मुझको सुख न था इसके अनन्तर किसी समय वे मुनिनायक दुर्वासाजी चातुर्मास्य के लिये व मृत्तिका लेनेके निमित्त गौरव के अर्थ आनर्ताधिपके घरमें भलीभांति प्राप्तहुए ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर आनर्त देशके राजा ने क्रमपूर्वक पूजन किया व अर्घ तथा मधुपर्क को देकर उसके उपरान्त प्रणामकर कहा ॥ ५ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हाराआना बहुत अच्छा हुआ व फिर भी तुम्हारा आना बहुत उत्तम भया संसारमें मेरे समान

मयालब्धं तथापिपरमेश्वर ॥ तादृशेऽपिचसौभाग्ये तारुण्येतादृशेस्थिते ॥ २ ॥ दह्यामितेनदुःखेन दिवानक्तंसुखन्नमे ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यदुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ आनर्ताधिपतेर्हर्म्यं सम्प्राप्तोगौरवायसः ॥ चातुर्मास्यकृतेचैव मृत्तिकाग्रहणायच ॥ ४ ॥ ततःसम्पूजितोराज्ञा आनर्त्तेनयथाक्रमम् ॥ दत्त्वाऽर्घमधुपर्कंच ततःप्रोक्तःप्रणम्यच ॥ ५ ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ भूयःसुस्वागतंचते ॥ नान्योधन्यतमोलोके भूपोस्तिसदृशोमया ॥ ६ ॥ यत्तेपादौरजोध्वस्तौ केशैर्मेनिर्म्मलीकृतौ ॥ तद्ब्रूहिकिङ्करोम्यद्य गृहायातस्यतेमुने ॥ ७ ॥ अपिराज्यंप्रयच्छामि कावार्ताऽन्येषुवस्तुषु ॥ दुर्वासाउवाच ॥ चातुर्मास्यविधानन्ते करिष्येनृपमन्दिरे ॥ ८ ॥ मृत्तिकाग्रहणंतावच्छुश्रूषाक्रियतांमम ॥ बाढमित्येवमुक्त्वाथ मयासर्वमनुष्ठितम् ॥ ९ ॥ शुश्रूषार्हंचयत्कर्म दुहितेवपितुर्यथा ॥ चातुर्मास्यांव्यतीतायांयदासंप्रस्थितोमुनिः ॥ १० ॥ तदाप्रोवाचमान्तुष्टः पुत्रिकिंकरवाणिते ॥ ततःसभगवान्प्रोक्तः प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥ अपत्यंनास्तिब्रह्मन्मे

अन्य भूपति अति धन्य नहींहै ॥ ६ ॥ जिसलिये कि धूलिसे ध्वस्त (भरेहुये) तुम्हारे दोनोंचरण मेरे बालों से निर्मल किये गये उसकारण हे मुने ! कहिये कि घर आये हुये तुम्हारा मैं आज क्या कार्य्य करूं ॥ ७ ॥ मै राज्य को भी देऊं अन्य वस्तुओं की क्या कथा है दुर्वासा जी बोले कि हे नृप ! तुम्हारे घर में मैं चातुर्मास्य विधि को करूंगा व मृत्तिका ग्रहण करूंगा तब तक मेरी सेवा की जावै बहुत अच्छा ऐसाही कहकर इस के अनन्तर मैंने सब कार्य किया ॥ ८ ॥ व सेवा के योग्य जो कर्मथा उसको वैसेही किया जैसे कि पिताके कार्य को कन्या करती है चौमासा व्यतीत होनेपर जब मुनिने भलीभांति प्रस्थान किया ॥ १० ॥ तब प्रसन्न होते हुए

मुझसे कहा कि हे पुत्रि ! हम तुम्हारा क्या कार्य करें तदनन्तर बार २ प्रणामकर उन दुर्वासा भगवान् से मैंने कहा ॥ ११ ॥ कि हे ब्रह्मन्! मेरे सन्तान नहीं है उसी से ऐसी राज्य के भी व बड़ेभारी यौवन के होने पर मैं अहर्निश जलती हूं ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम उसको कहो कि जिस व्रत नियम या दान व हवन से मेरे सन्तान होवै ॥ १३ ॥ तदनन्तर बहुत देरतक ध्यानकर मुसक्याते या विस्मय करतेहुये से मुझ से बोले कि हे पुत्रि ! मृत्युकाल के समीप स्थितहोनेपर तुमने दूसरे शरीर के मध्यमें ताती बालुओं से उन पार्वती जी को पूजा है उस कारण भक्तिसे राज्य पाई हुई भी तुम दाह (जलन) से संयुक्त हो ॥ १४ । १५ ॥ जिसलिये कि

तेनदह्याम्यहर्निशम् ॥ ईदृशेसतिराज्येऽपि यौवनेचमहत्तरे ॥ १२ ॥ तत्त्वंवदमुनिश्रेष्ठ येनस्यान्ममसन्ततिः ॥ व्रतेननियमेनाथ दानेनचहुतेनच ॥ १३ ॥ ततस्तुसुचिरंध्यात्वा मामुवाचस्मयन्निव ॥ अन्यदेहान्तरेपुत्रि त्वयागौरीप्रपूजिता ॥ १४ ॥ तप्ताभिर्बालुकाभिःसा मृत्युकालउपस्थिते ॥ तद्भक्त्यालब्धराज्यापि दाहेनपरियुज्यसे ॥ १५ ॥ गौरीयत्तापसंयुक्तबालुकाभिःकृतात्वया ॥ नदेवोविद्यतेकाष्ठे पाषाणेमृत्तिकासुच ॥ १६ ॥ भावेषुविद्यतेदेवो मन्त्रसंयोगसंयुतः ॥ तवभक्तिसमायुक्तं मन्त्रसंयोजनेनच ॥ १७ ॥ देवीमन्त्रसमायाता त्वयाबालुकयार्चिता ॥ कृतायत्तापसंयुक्तातत्तापःसर्वदास्मृतः ॥ १८ ॥ ब्रह्मरुद्रमयींगौरीं कृत्वात्वंपञ्चपिण्डिकाम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे संस्थापयशुभानने ॥ १९ ॥ वृषस्थेभास्करेपश्चात्तस्याउपरिसान्वयम् ॥ जलयन्त्रंदिवानक्तंधारयस्वप्रयत्नतः ॥ २० ॥ ततोयथायथातस्या

तापसंयुक्त बालुओं से तुमने पार्वती जी का निर्माण किया है काठ, पत्थर व मिट्टियोंमें देवता नहीं विद्यमानहै ॥ १६ ॥ किन्तु मन्त्रसंयोग से संयुत देवता भावोंमें विद्यमान है भक्तिसंयुक्तपूर्वक तुम्हारे मन्त्रसयोग ॥ १७ ॥ व मन्त्र के द्वारा भलीभांति आई हुई देवीको तुमने पूजन किया व जिसलिये बालुका से तापसंयुत की गई उसी से सदैव ताप कहागया है ॥ १८ ॥ हे शोभन मुखवाली ! तुम ब्रह्मरुद्रमयी गौरी को पंचपिण्डिकामय बनाकर हाटकेश्वरजक्षेत्रमें भलीभांति थापनकरो ॥ १९ ॥ पश्चात् जब सूर्य्यनारायण वृषराशि में स्थित होवैं तब वंश समेत उसके ऊपर बड़े यत्न से दिन रात जलयन्त्र (घट) को धरो ॥ २० ॥ तदनन्तर ज्यों ज्यों

उसके शीतभाव होगा त्यों त्यों दिनरात तुम्हारा ताप शान्तिको प्राप्तहोगा ॥२१॥ तदनन्तर तापके अन्त में गर्भ होगा उस गर्भ से तीनों लोकों में प्रसिद्ध राज्यभार के योग्य तथा शूरवीर पुत्रको पावोगी ॥ २२ ॥ और भी जो स्त्री जेठ महीने में यहां उस देवीको इस भांति पूजैगी वह भी वैसीही होगी जैसी कि तुम होवोगी ॥ २३ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि तदनन्तर मैंने फिर उन मुनिनायक दुर्वासा भगवान् से कहा कि हे उत्तम द्विज ! भलीभांति जिसके चीर्ण(इकट्ठा)करने से मनुजता न होवै उसको कहिये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उनने बहुत देरतक ध्यानकर मुझ से कहा कि हे पुत्रि ! गौरीजी को सन्तोपकारक एक उत्तम व्रत है ॥ २५ ॥ कि जिसके करने

श्शीतभावोभविष्यति ॥ तथातथाचतेदाहः शान्तियास्यत्यहर्निशम् ॥ २१ ॥ दाहान्तेभवितागर्भस्ततःपुत्रमवाप्स्यसि ॥ राज्यभारक्षमंशूरं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २२ ॥ अन्यापिकामिनीयात्र एवंताम्पूजयिष्यति ॥ ज्येष्ठेमासेतथासापि यथात्वम्प्रभविष्यसि ॥ २३ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ ततोमयापुनःप्रोक्तो भगवान्समुनीश्वरः ॥ मानुषत्वंनयेनस्यात्सम्यक्चीर्णेनसद्द्विज ॥२४॥ ततःसमुचिरन्ध्यात्वामामाहपरमेश्वरः ॥ अस्तिपुत्रिव्रतम्पुण्यंगौरीतुष्टिकरम्परम् ॥२५॥ येनचीर्णेनवैसम्यग्योषिद्देवत्वमाप्नुयात् ॥ गोमयाख्यामहादेवी कृतावैगोमयेनसा ॥ २६ ॥ ततोगोलोकमापन्नासवस्त्रावरवर्णिनि ॥ तांत्वंकुरुष्वकल्याणियेनदेवत्वमाप्स्यसि ॥ २७ ॥ ततोमयापुनःप्रोक्तःसमुनिःसुरसत्तम ॥ कस्मिन्कालेप्रकर्तव्याविधिनाकेनसन्मुने ॥२८॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहियेनताम्प्रकरोम्यहम् ॥ दुर्वासाउवाच ॥ नभस्येचासितेपक्षे तृतीयादिवसेस्थिते ॥२९॥ प्रातरुत्थाययश्चैव भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ततश्चनियमंकृत्वाउपवाससमुद्भवम् ॥३०॥ गौरीनाम

से स्त्री भलीभांति देवत्व को प्राप्तहोती है हे उत्तमवर्णवाली ! गोमय से की हुई महादेवी तदनन्तर वसन समेत गोलोक को प्राप्त होगई हे कल्याणि ! उसको तुम करो जिससे देवताके भाव को प्राप्त होवो ॥ २६ । २७ ॥ तदनन्तर मैंने फिर उन मुनि से कहा कि हे सन्मुने ! किस विधिसे व किससमय में करना चाहिये ॥२८॥ इस सबको विस्तार से कहो जिससे मैं उन देवीको करूं दुर्वासाजी बोले कि भाद्रपद के कृष्णपक्ष में जब तीजदिन स्थित होवै तब ॥ २९ ॥ जो प्रातःकाल उठकर दन्तधावन को भक्षणकरै उसके उपरान्त श्रद्धा से पवित्रचित्त करके उपास से उपजे हुये नियमको करके व गौरीजी के नाम को भलीभांति उच्चारण कर उसके उप-

रान्त रात्रिके आगमको भलीभांति प्राप्त होनेपर जैसी मृत्तिकामयी चार गौरियोंको बनाकर पूजै उसको एकमनवाली याने सावधान होकर सुनो कि जैसी कही है वै-
सीही पंचपिण्डमयी एक गौरी करना चाहिये ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ व पहर २ के प्राप्त होनेपर जिन मन्त्रों से उन गौरियों में एक २ को पूजनकरै उनको तुम जानो ॥
३३ ॥ कि हे शङ्करप्रिये देवि ! मेना के गर्भ से उपजीहुई तुम हिमाचल के घर में पैदाहुई हो पूजाको ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ तदनन्तर
श्रद्धासमेत कपूर की धूप देवै व लालसूत से बत्ती बनाकर घृताक्त करके दीप देवै ॥ ३५ ॥ व लालेवसन से भलीभांति थापकर व अर्घदेकर तदनन्तर चमेलीके फूलों

मृन्मयंयादृशञ्चैवतदिहैकमनाः ॥ ३१ ॥ ततोनिशागमेप्राप्ते कृत्वागौरीचतुष्टयम् समुच्चार्य्य श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ३२ ॥ प्रहरेप्रहरेप्राप्ते तासुपूजांसमाचरेत् ॥ येर्मन्त्रैस्तान्निबोधत्व एकागौरीप्रकर्तव्या पञ्चपिण्डायथोदिता ॥ ३३ ॥ हिमाचलगृहेजाता देवित्वंशङ्करप्रिये ॥ मेनागर्भसमुद्भूता पूजांगृह्णनमोस्तुते ॥ ३४ ॥ मेकैकस्याःपृथक्पृथक् श्रृणु ॥ धूपंदद्यात्ततश्चैव कर्पूरंश्रद्धयासह ॥ रक्तसूत्रेणदीपञ्च घृतेनपरिकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ जातीपुष्पैस्समभ्यर्च्य नैवेद्यंमोद रक्तवस्त्रेणसंस्थाप्य अर्घन्दत्त्वाततःपरम् ॥ ३६ ॥ यस्यवृक्षस्यपुष्पंयत्तस्यतद्दन्तधावनम् ॥ मातुलुङ्गेनत कान्ददेत् ॥ ३७ ॥ शङ्करस्यप्रियेदेवि हिमाचलसुतेशुभे ॥ अर्घमेनंमयादत्तंप्रतिगृह्णनमोस्तुते॥३८॥ स्याशुमन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ तदेवप्राशनंकृत्वाततःकायविशुद्धये ॥ द्वितीयेप्रहरान्तेच अर्द्धनारीश्वरीन्ततः ॥ ३९ ॥ सुरम्याम्पूजयेद्भक्त्या मन्त्रे वामाङ्गार्द्धेशरीरस्य याहरस्यव्यवस्थिता ॥ ४० ॥ सामेपूजाम्प्रगृह्णातु तस्यैदेव्यैनमोस्तुते ॥ अगु णानेनपार्वतीम् ॥

से भलीभांति पूजकर लड्डुओं की नैवेद्य देवै ॥ ३६ ॥ जिस वृक्षका जो फूल है उसकी वही दतवन है उस देवी के लिये भक्तिके द्वारा शीघ्रही इस मन्त्र से बिजौरा
नींबू से अर्घ देवै ॥ ३७ ॥ हे शङ्करजी की प्यारी, हे देवि,हे हिमालयसुते, हे शुभे! मेरे दिये हुये इस अर्घको ग्रहणकरो तुम्हारे लिये प्रणाम होवै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर
शरीर की शुद्धिके लिये वही भोजन करके उसके उपरान्त दूसरे पहर के अन्त में भक्ति से अतिमनोहर पार्वती जी को इस मन्त्रके द्वारा पूजै कि शिवजी के बांये

अर्द्धाङ्ग में जो विशेषकर टिकी है ॥ ३९ । ४० ॥ वह मेरे पूजनको ग्रहणकरै तुम्हीं उन देवी के लिये नमस्कारहै हे शुभे ! तदनन्तर अगुरुको देवै व धूप देवै ॥४१॥ व गुड़ की नैवेद्य देवै व इस मन्त्र के द्वारा नारियर से अर्घ देना चाहिये वही भोजन कहागया है ॥ ४२ ॥ और आधे अंगमें स्त्री व आधे में ईश्वर ऐसे जो परमेश्वर भलीभांति टिके हैं उन उमामहेश्वर देवजी को इस मन्त्रसे पूजनकरै ॥ ४३ ॥ कि हे देवताओ ! मेरे अर्घको ग्रहण कीजिये व समस्त सुखों के दायक हूजिये तीसरे पहरमें शतावरि से पूजन करै ॥ ४४ ॥ कि जौन वे उमामहेश्वर देव सृष्टिकेसंहारसे संयुक्तहैं वे मुझसे बड़ी भक्तिके द्वारा दियेहुये इस पूजनको ग्रहण करैं ॥४५॥

रुचततोदद्याद्धूपंदद्यात्तथाशुभे ॥ ४१ ॥ नैवेद्यंगुडकञ्चैव नारिकेरेणचार्घकम् ॥ मन्त्रेणानेनदातव्यंतदेवप्राशनंस्मृतम् ॥ ४२ ॥ अर्द्धनारीश्वरौयौच संस्थितौपरमेश्वरौ ॥ उमामहेश्वरौदेवौ मन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ ४३ ॥ अर्घोमेगृह्यतान्देवौ स्यातांसर्वसुखप्रदौ ॥ तृतीयेप्रहरेप्राप्ते शतपत्र्याप्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥ उमामहेश्वरौदेवौ यौतौसृष्टिलयान्वितौ ॥ तौगृह्णीतामिमाम्पूजां मयादत्ताम्प्रभक्तितः ॥ ४५ ॥ गुग्गुलोत्थंततोधूपं नैवेद्यंधारयेत्ततः ॥ सजातीसलिलार्घञ्च तदेवप्राशनंस्मृतम् ॥ ४६ ॥ ततश्चार्घःप्रदातव्यो मन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ ग्रन्थिचूर्णेनधूपञ्च अर्घम्मदनजंफलम् ॥ ४७ ॥ तदेवप्राशनङ्कार्य्यं ततःकायविशुद्धये ॥ उमामहेश्वरौदेवौ सर्वकामसुखप्रदौ ॥ ४८ ॥ गृह्णीतामर्घदानंमे दयांकृत्वामहत्तमाम् ॥ चतुर्थेप्रहरेप्राप्ते तांगौरीम्पञ्चपिण्डिकाम् ॥ ४९ ॥ भृङ्गराजेनसम्पूज्यमन्त्रेणानेनभक्तितः॥पृथिव्यादीनिभूतानि

तदनन्तर गुग्गुल से उठी हुई धूपदेवै उस के उपरान्त नैवेद्य धरै व चमेली के फूलों समेत जलार्घ देवै व वही भोजन कहागया है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भक्ति के द्वारा इस मन्त्र से अर्घ देना चाहिये व नागरमोथा के चूर्ण से धूप व मदनजफल (मैनफल) अर्घ देना चाहिये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर शरीर शुद्धि के निमित्त वही भोजन करना चाहिये समस्त कामनाओं व सुखों के दायक उमामहेश्वरदेव जी मेरे ऊपर बड़ीभारी दयाको करके अर्घदान ग्रहणकरैं व चौथे पहर के प्राप्तहोनेपर इस मन्त्र के द्वारा भक्तिसे उन पंचपिण्डका गौरीजी को भँगरा से भलीभांति पूजकर वही भोजनकरै कि हे देवेशि ! पृथ्वी आदिक जो पांच महाभूत कहे गये

हैं ॥४८ । ४९ । ५० ॥ वे जिसके रूपहैं वेही तुम पूजनको ग्रहणकरो तुम्हारे लिये नमस्कारहोवै पांच महाभूतमयी देवी जो पांच विभागसे विशेषकर स्थितहै वह सुरस्वामिनी मुझ से दियेहुये इस अर्घ को ग्रहणकरै और गीतों, बाजाओं आदिके शब्दों से वह समस्त रात व्यतीत करना चाहिये ॥ ५१ । ५२ ॥ व उन पंचपिण्डिकाओं के आगे गाने से निद्राको न प्राप्त करै याने सोवै नहीं तदनन्तर जब प्रातःकाल निर्मल होवै तब सूर्य्यमण्डल के उदय होनेपर ॥ ५३ ॥ हे राजपुत्रि ! स्नान करके बड़ी भक्तिके द्वारा स्त्री समेत ब्राह्मणको अपनी शक्ति के अनुसार वसनों व आभूषणों से, भलीभांति पूजनकरै ॥ ५४ ॥ व हे पवित्र या श्वेत मुसक्यानवाली !

यानिप्रोक्तानिपञ्चच ॥ ५० ॥ यस्यारूपाणिदेवेशि पूजांगृह्णनमोस्तुते ॥ पञ्चभूतमयादेवी पञ्चधाचव्यवस्थिता॥५१॥
अर्घमेनंमयादत्तं सागृह्णातुसुरेश्वरी ॥ नेयासर्वानिशासाच गीतवाद्यादिभिःस्वनैः ॥ ५२ ॥ तासाञ्चैवाग्रतोगानैर्निद्रांनै
वसमाचरेत् ॥ ततःप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ५३ ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्विप्रंसहपत्न्याप्रभक्तितः॥वस्त्रैराभरणैश्चै
वस्वशक्त्यानृपनन्दिनि ॥ ५४ ॥ गौरीभक्तश्चभोक्तव्यो मिष्टान्नेनशुचिस्मिते ॥ ततःकरेणुमानीय वडवाञ्चसुमध्य
मे ॥ ५५ ॥ गौरीचतुष्टयन्तच्च समारोप्यतथोपरि ॥ गीतवादित्रशब्देन वेदध्वनियुतेनच ॥ ५६ ॥ नद्यांवाथतडागेवा
वाप्यांवाऽथपरिक्षिपेत् ॥ मन्त्रेणानेनसद्भक्त्या तवेदंवच्मिसुन्दरि ॥ ५७ ॥ आहूतासिमयादेवि पूजितासिमयाशुभे ॥
ममसौभाग्यदानाय यथेष्टङ्गम्यतामिति ॥ ५८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एवंमयाकृतादेव सातृतीयायथोदिता ॥ नमस्येमा

गौरीजी के भक्तकों मिष्टान्नसे भोजन कराना चाहिये तदनन्तर हे सुन्दरकटिवाली ! हथिनी या अश्विनी को लाकर ॥ ५५ ॥ व उस गौरीचतुष्टयको वैसे ही उस के ऊपर समारोपण (चढ़ा) कर वेदध्वनिसंयुक्त गानों, बाजनों के शब्दों से ॥ ५६ ॥ नदी या तड़ाग या बावली में उत्तम भक्तिके द्वारा इस मन्त्रसे विसर्जन करै हे सुन्दरि ! तुम से इस मन्त्रको कहती हूं ॥ ५७ ॥ कि हे शुभे देवि ! मैंने तुमको आह्वान किया व तुम्हारा पूजन किया मेरे सौभाग्य दान के लिये इच्छा के अनुकूल जाइये ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे देव ! जैसी कही है इसप्रकार मैंने उस तीज को किया है कि भाद्रपद महीने के भलीभांति प्राप्त होने पर परमभक्तिसे

संयुत मैं ॥ ५९ ॥ दूसरे व विशेषकर वैसे ही तीसरे पहर व प्रभातसमयमें जब तक गौरीचतुष्टयको देखूं तब तक ॥ ६० ॥ प्रकाश से परिपूर्ण वह रत्नमय होगया और नदीतीर को उद्देशकर मैंने प्रस्थान किया कि विसर्जन करूं या न करूं तब तक प्रकट हुई उस सुरेश्वरी ने कहा कि इस जल के बीच में मुझको पूजो व मेरे वचन को सुनकर कीजिये कि तुम हाटकेश्वर से उपजे हुये क्षेत्र में मुझको थापनकरो मत फेंको ॥ ६१ । ६२ । ६३ ॥ कि जिससे समस्त स्त्रियों के हित के लिये अविनाशी होवै व तुम समस्त वरदान को मांगो यहां पूजी हुई मैं दूंगी ॥ ६४ ॥ पूजन कीहुई पर्वतपुत्री (गौरी) सुरेश्वरी से मैंने कहा कि हे देवि ! प्रसन्न होती

सिसम्प्राप्ते भक्त्यापरमयान्विता ॥ ५९ ॥ द्वितीयेचतथाप्राप्ते तृतीयेचविशेषतः ॥ यावत्पश्यामिप्रत्यूषे तावद्गौरीचतुष्टयम् ॥ ६० ॥ जातंरत्नमयंतच्च प्रभयापरिपूरितम् ॥ प्रस्थिताहंनदीतीरमुद्दिश्यचविसर्जनम् ॥ ६१ ॥ करिष्यामिनसाप्राहव्यक्तीभूतासुरेश्वरी ॥ माम्पुत्रिजलमध्येऽत्रममूर्तिचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥ परिभावयमद्वाक्यं श्रुत्वाचैवविधीयताम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेस्थापयत्वञ्चमाक्षिप ॥ ६३ ॥ अक्षयंजायतेयेन सर्वस्त्रीणांहितायच ॥ त्वम्प्रार्थयवरंसर्वंददाम्यहमिहार्चिता ॥ ६४ ॥ अभ्यर्चितागिरिसुता मयाप्रोक्तासुरेश्वरी ॥ यदियच्छसिमेदेवि वरंतुष्टासुरेश्वरी ॥ ६५ ॥ तदहंमानुषेगर्भे माभूयासंकथञ्चन ॥ भर्ताभवतुमेविष्णुःशाश्वतोभीष्टदःसदा ॥ ६६ ॥ नान्यत्किञ्चिदभीष्टंमेराज्यन्त्रिदिवशोभनम् ॥ अन्यापिकुरुतेयाच व्रतमेतत्समाहिता ॥ ६७ ॥ सर्वैर्व्रतैर्यथातुष्टिस्तवदेविप्रजायते ॥ तथातस्याः प्रकर्तव्याएकेनानेनपार्वति ॥६८॥ तथेतिगौरीमामुक्त्वाततश्चादर्शनङ्गता ॥ सादेवीचमयातत्र तच्चगौरीचतुष्टयम् ॥६९॥

सुरेश्वरी तुम यदि मुझको वरदान देती हो ॥ ६५ ॥ तो मैं किसी प्रकार मनुष्यके गर्भमें मतहोऊं और सदैव मनोरथदायक अविनाशी विष्णुजी मेरे पति होवैं ॥६६॥ और कुछ स्वर्ग की उत्तम राज्यका भी मेरा मनोरथ नहीं है व सावधान होती हुई और भी जो स्त्री इस व्रतको करै ॥ ६७ ॥ हे देवि, पार्वती जी ! समस्तव्रतों से तुम्हारी जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही इस एक व्रत से उसके ऊपर प्रसन्नता कीजावै ॥ ६८ ॥ वैसाही होगा यह मुझ से पार्वती जी कहकर तदनन्तर वह देवी

ब्रह्मलोक में बसतेहुए देवर्षि नारद मुनि त्रिलोक में घूमकर प्राप्तहुए॥ ९ ॥ वे शिरसे चरणोंको प्रणाम कर उन ब्रह्माके अगाड़ी बैठगये ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! बहुत दिनों से किस कारण देखपड़े व इस समय आप कहांसे प्राप्तहुएहो ॥ १० हे वत्स ! कहां भ्रमण किया है इस विषय में समस्त कारणको कहिये नारद जी बोले कि हे विभो ! इस समय शीघ्रता संयुत मैं तुम्हारे चरण पूजने के लिये मृत्युलोक से प्राप्तहुआहूं सत्यसे अपनी शपथ करताहूं ब्रह्माबोले कि मृत्युलोक में उपजे हुए मनुष्य क्या कहते हैं उसको मुझसे कहिये ॥ ११ । १२ ॥ व उस मृत्युलोकमें किसप्रकार के राजाहैं व द्विजोत्तम कैसे हैं और इस समय वहां कैसे ब्यौहार वर्त्तमान है ॥ १३ ॥ नारदजी बोले कि हे सुर श्रेष्ठ ! इस समय मृत्युलोक में कलियुग वर्त्तमानहै वैसेही राजालोग लालच में तत्पर होकर उत्तम मार्गको छोड़कर ॥ १४॥ अति निर्दयी व वीरतासे छुटे और पराई नारियों को मर्दन करनेवाले वे द्रव्यके कारण मनुष्यों को पीड़ित करते हैं ॥ १५ ॥ और वे राजालोग ब्राह्मणों व गुरुवों को भी व पितरों को भी नहीं पूजते हैं वेदके विक्रय कर्ता (बेंचनेवाले) व शुद्धि रहित ब्राह्मण हैं ॥ १६ ॥ वैसेही दानमें परायण व सन्ध्योपासन कर्म से हीन व अति निर्दयी व वैश्य वर्णकी नाईं नित्यही कृषी में तत्पर व पशुत्रों के पालक हैं ॥ १७ ॥ व भूतल में समस्त वैश्य विनाशको प्राप्तहोगये व शूद्र नित्यही धर्मकी

रदःप्राप्तो भ्रान्त्वालोकत्रयंमुनिः ॥ ९ ॥ सप्रणम्यशिरःपादानुपविष्टस्तदग्रतः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कस्माद्वत्सचिराद् दृष्टः कुतःप्राप्तोधुनाभवान् ॥ १० ॥ क्वभ्रान्तःसर्वमाचक्ष्व ब्रूहिवत्सात्रकारणम् ॥ नारदउवाच ॥ मर्त्यलोकाद्विभोप्राप्तःसांप्रतंसत्वरान्वितः ॥ ११ ॥ तवपादप्रपूजार्थं सत्येनात्मानमालभे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किंवदन्तिममाचक्ष्व मर्त्यलोकसमुद्भवाः ॥ १२ ॥ कीदृशाःपार्थिवास्तत्र कीदृशाद्विजसत्तमाः ॥ कीदृशाव्यवहाराश्च वर्तन्तेतत्रसाम्प्रतम् ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ मर्त्यलोकेकलिर्जातः साम्प्रतंसुरसत्तम ॥ राजानस्सत्पथंत्यक्त्वा तथालोभपरायणाः ॥ १४ ॥ पीडयन्तिचलोकांश्च अर्थहेतोःसुनिर्घृणाः ॥ शौर्य्यभावपरित्यक्ताः परदारावमर्द्दकाः ॥ १५ ॥ पूजयन्तिनतेविप्रान्नगुरून्नपितृनपि ॥ वेदविक्रयकर्तारो ब्राह्मणाःशौचवर्जिताः ॥ १६ ॥ तथाप्रतिग्रहासक्ताः सन्ध्याहीनास्सुनिर्घृणाः ॥ कृषिकर्म्मरतानित्यंवैश्यवत्पशुपालकाः ॥ १७ ॥ वैश्यास्सर्वेसमुच्छेदं प्रयाताधरणीतले ॥ शूद्रानित्यंधर्म्मकामाः शूद्राश्चैवतपस्विनः ॥ १८ ॥

दो॰। लाये तीर्थ त्रिपुष्करहिं यथा पितामह देव। कहत एकसौ उन्हत्तरिं महँसो उत्तम भेव॥ सूतजी बोले कि वैसेही उस हाटकेश्वरज क्षेत्र में और भी शुभदायक व समस्त पातकों के नाशक तीन पुष्कर हैं॥ १॥ हे द्विजोत्तमो! जिस पुष्करत्रय के देखने, पूंछने व कहने पर वैसेही पाप नाश होजाता है कि जैसे सूर्य्यनारायण से अन्धकार नष्ट होताहै॥ २॥ समस्त तीर्थ स्नान व दान से निस्सन्देह पवित्र करते हैं और पुष्कर के देखनेही से सब पापोंसे छूटजाता है॥ ३॥ ऋषि लोग बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध पुष्कर नामक तीर्थ सुनाजाता है जो कि योजनप्रमाण भर ब्रह्मासे वहां निर्मितहुआ है॥ ४॥ चन्द्रभागा नदी के उत्तर ओर सर-

सूतउवाच॥ तथान्यदपितत्रास्ति पुष्करत्रितयंशुभम्॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वपातकनाशनम्॥ १॥ यस्मिन्दृष्टेथवापृष्टे कीर्तितेवाद्विजोत्तमाः॥ पातकंनाशमायाति भास्करेणतमोयथा॥ २॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादसंशयम्॥ पुष्करालोकनादेवसर्वपापैःप्रमुच्यते॥ ३॥ ऋषयऊचुः॥ श्रूयतेपुष्करंनाम तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ब्रह्मणानिर्मितंतत्र यच्चयोजनमात्रकम्॥ ४॥ उत्तरेचन्द्रभागाया नद्यायावत्सरस्वती॥दक्षिणेकरतोयायाःसीमेयंपुष्करत्रयम्॥ ५॥ अस्माकन्तुपुरासूत यत्त्वयोक्तंवियत्स्थितम्॥ एतन्नःकौतुकंसूततत्कथंहाटकेश्वरे॥ ६॥ तत्क्षेत्रंसमायातंतस्मात्त्वंवक्तुमर्हसि॥सूतउवाच॥ सत्यमेतन्महाभागा यद्भवद्भिरुदाहृतम्॥ ७॥ तस्मिन्क्षेत्रेद्विजश्रेष्ठास्तच्छृणुध्वंसमाहिताः॥ सर्वंविस्तरतोवच्मि नमस्कृत्वास्वयम्भुवे॥ ८॥ वसतोब्रह्मलोकेवैब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ देवर्षिनां

स्वती पर्य्यन्त व करतोया (गौरी विवाह में कन्यादान के जलसे उत्पन्न) नदी के दक्षिण किनारे तक यही तीनों पुष्करों की हदहै॥ ५॥ हे सूतजी! पुरातन समय जो तुमने हमलोगों से आकाश में स्थितहुए तीर्थको कहाहै यह हम लोगोंको आश्चर्य है हे सूतजी! वह तीर्थ कैसे उस हाटकेश्वर क्षेत्रमें भलीभांति आयाहै इस लिये तुम कहने के योग्यहो, सूतजी बोले कि हे बड़े भाग्यवाले मुनियो! जो आप लोगोंने कहाहै यह सत्यहै॥ ६। ७॥ हे द्विजोत्तमो! उस क्षेत्रमें जिसभांति वह तीर्थ आयाहै उस समस्त चारितको ब्रह्माके लिये प्रणाम कर विस्तार से कहताहूं उसको सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो॥ ८॥ अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजीको

अन्तर्द्धान होगई व हे विभो ! उस हाटकेश्वरजक्षेत्र में मैंने उस गौरी चतुष्टय (चारों मूर्तियों) को भलीभाति स्थापित किया उसी के प्रभाव से हे परमेश्वर ! मुझ
को तुम पति मिले हो ॥ ६९ । ७० ॥ जोकि शाश्वत (सदारहनेवाले) व अविनाशी व सदैव मुखको देखने हारे हो हे सुरेश्वर ! मुझसे जो वृत्तान्त पूंछागया यह
सब तुमसे वर्णन किया ॥ ७१ ॥ हे देवेशजी ! इस सत्य से मैं तुम्हारे चरणों को स्पर्श करती हूं सूतजी बोले कि उन लक्ष्मीजी के उस वचनको सुनकर शङ्ख,चक्र,
गदा के धारनेवाले (विष्णुजी) ॥ ७२ ॥ विहँसकर इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुए बार २ भलीभांति लिपटाकर व वक्षस्थल के ऊपर टिकी हुई उन महालक्ष्मीजीसे

हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयासंस्थापितंविभो ॥ तत्प्रभावान्मयालब्धो भर्तात्वम्परमेश्वर ॥ ७० ॥ शाश्वतश्चाक्षयश्चै
वमुखप्रेक्षश्चसर्वदा ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिसुरेश्वर ॥ ७१ ॥ सत्येनानेनदेवेश तवपादौस्पृशाम्यहम् ॥ सूतउ
वाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥ विहस्याथमहालक्ष्मीं तामुवाचप्रहर्षितः ॥ मुहुर्मुहुःसमालि
ङ्ग्यवक्षसश्चोपरिस्थिताम् ॥ ७३ ॥ साधुसाधुमहाभागे सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ जानतापिमयापृष्टाभवतीवरवर्णिनी ॥ ७४ ॥
सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ चतुर्भुजायथागौरी सञ्जातापञ्चपिण्डिका ॥ ७५ ॥ यश्चैत
त्पठतेभक्त्या प्रातरुत्थायमानवः ॥ नसलक्ष्म्याविमुच्येतनचदौर्भाग्यमाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठनीय
मिदंशुभम् ॥ आख्यानंगौरिकंविप्रा यन्मयापरिकीर्तितम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे
पञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ * ॥ * ॥

कहा ॥७३॥ कि हे महाभागे ! बहुतअच्छा२ तुमसे कहाहुआ यह सत्यहै जानतेहुये भी मैंने उत्तम अंगोंवाली आपसे पूंछा ॥७४॥ सूतजीबोले कि हे द्विजोत्तमो ! जो
चरित मुझसे पूंछागया इस सबको तुम लोगोंसे कहा कि जिस प्रकारपंच पिण्डिका पार्वतीजी चतुर्भुजीहुई हैं॥७५॥प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इस चरितको भक्तिसे
पढ़ताहै वह लक्ष्मीसे बियोगी नहीं होताहै व दुर्भाग्यको नहीं पाताहै॥७६॥इसलिये हे ब्राह्मणो ! जो मैंनेकहाहै इसगौरीवाले उत्तम कथानकको समस्त उपायसे पढ़ना
चाहिये ॥७७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥

कामनावाले हैं व शूद्रही तपस्वी हैं ॥ १८ ॥ व बिन लज्जावाले समस्त नर लोक की यात्राओं व कार्य्यों को हँसते हैं जिसके घरमें धन व युवती स्त्रियां हैं ॥ १९ ॥ उसीके साथ मनुष्य मित्रता करते हैं व कलियुगसे सेवित बडरे हुये समस्त आश्रम व तीर्थ दशो दिशाओं में दौड़ते हैं ॥ २० ॥ हे ब्रह्माजी ! कलि समय में मैं यत्नसे वहां स्थितहुआ जहां कि कामदेव के अंगमें परायण होती हुई स्त्रियां पतियों के साथ विवाद करती हैं ॥ २१ ॥ व वे स्त्रियां अपने पतियों के कार्य्यों को छोड़कर व्रतोंको करती हैं तुम्हारे वरदान से कलियुग अत्यन्तही बलवान किया गया है ॥ २२ ॥ जब मृत्युलोक में युद्ध होताहै तब मेरे हृदय में खजुहावट होती है

लोकयात्राक्रियास्सर्वे प्रहसन्तिव्यपत्रपाः ॥ यस्यचास्तिगृहेवित्तं तरुण्यश्चतथास्त्रियः ॥ १९ ॥ समंसख्यंप्रकुर्व न्ति नरास्तेनाश्रितानिच ॥ कलेर्भीतानिसर्वाणि विद्रवन्तिदिशोदश ॥ २० ॥ अहंतत्रस्थितोयत्नात्कलिकालेपिताम ह ॥ भर्त्राविवदमानाश्च स्त्रियःकामाङ्गतत्पराः ॥ २१ ॥ तथाव्रतानिकुर्वन्ति त्यक्त्वाताःस्वपतेःक्रियाः ॥ कलिर्बलिष्ठः सुतरां वरदानेनतेकृतः ॥ २२ ॥ यदामर्त्येभवेद्युद्धं कण्डूतिर्जायतेहृदि ॥ स्वर्गेवामस्तकेचैव पातालेवाथपादयोः॥२३॥ साम्प्रतंमर्त्यलोकेच मयादृष्टमनेकशः ॥ श्वश्रूणांचवधूनांच तथाजनकपुत्रयोः ॥ २४ ॥ बान्धवानांविशेषेण तथाच स्वामिभृत्ययोः॥चौराणांपार्थिवाणांच दम्पत्योश्चविशेषतः ॥ २५ ॥ स्वल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पसस्याचमेदिनी ॥ स्वल्पक्षीरास्तथागावः क्षीरेसर्पिर्नविद्यते ॥ २६ ॥ एवंयुद्धानितेषांच वीक्ष्यमाणोदिवानिशम् ॥ अहंमर्त्येपरिभ्रान्तश्चि त्तेतेनसमागतः ॥ २७ ॥ भूयोयास्यामितत्रैव कण्डूतिर्हृदिचोत्थिता ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य नारदस्यपितामहः ॥२८॥

व स्वर्ग में युद्ध होताहै तब मस्तक में और जब पाताल में समर होताहै तब चरणों में होतीहै ॥ २३ ॥ इस समय मृत्युलोक में मैंने सासु पतोहुओं व पिता पुत्रोंकी अनेकों लडाईयोंको देखाहै ॥ २४ ॥ व विशेषकर भाइयों व स्वामी सेवकोंतथा चोरों राजाओं और विशेषता से स्त्री पुरुषों के युद्धोंको देखाहै ॥ २५ ॥ वैसेही मेघ थोड़े जलवाले और भूमि थोड़े अन्नवाली व गाइयां थोड़े दूधवाली और दूधमें घी नहीं विद्यमान है ॥ २६ ॥ इस प्रकार उनके युद्धोंको अहर्निश देखताहुआ

मैं मृत्युलोक में भ्रमता भया व हृदय में खजुहावट उठी है उसी से चित्त में भलीभांति आया कि फिर वहीं जाऊंगा ॥ २७ । २८ ॥ उन नारद जी के उस वचन को सुनकर ब्रह्माजी पुष्कर के लिये चिन्तासे विकल इन्द्रियोंवाले होगये कि मृत्युलोक में पुष्कर नामक प्रसिद्ध मेरातीर्थहै ॥ २९ ॥ कलिकाल से व्याप्त वह निश्चय कर नाशको प्राप्तहोगा इस लिये अन्यस्थान में लेजाऊंगा जहां कि कलियुग विद्यमान नहीं है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणों ! उन पितामहजी नें इस भांति निश्चय कर व हाथमें कमलको लेकर जब तक आपही फेंकैं ॥ ३१ ॥ कि हे कमल ! जहां कलियुग न होवै वहां भूतल में जावो कि जिससे पुष्कर नामक अपने तीर्थको

पुष्करस्यकृतेजातश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ मर्त्येचमामकंतीर्थं पुष्करन्नामविश्रुतम् ॥ २९ ॥ नाशंयास्यतितन्नूनं कलिकालपरिप्लुतम् ॥ तस्मादन्यत्रनेष्यामि कलिर्यत्रनविद्यते ॥ ३० ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वा गृहीत्वापङ्कजंकरे ॥ या वत्तिपतिसद्विप्राः स्वयमेवपितामहः ॥ ३१ ॥ व्रजत्वंभूतलेपद्मकलिर्यत्रनविद्यते ॥ येनतत्रविमुञ्चामि निजतीर्थंचपुष्करम् ॥ ३२ ॥ कलिकालेचसंप्राप्ते सर्वप्राणिभयङ्करे ॥ तत्रप्रयान्तुतीर्थानिसर्वाण्येवावशेषतः ॥ ३३ ॥ प्रयास्यन्ति निजंस्थानं ममवाक्यादसंशयम् ॥ इतिनिश्चित्यमनसा हस्तस्थंकमलन्ततः ॥ ३४ ॥ प्रोवाचसादरंतच्च स्वयन्ध्यात्वा पितामहः ॥ पतत्वंपद्मभूपृष्ठे कलिर्यत्रनवर्तते ॥ ३५ ॥ येनानयामितत्रैव पुष्करंतीर्थमात्मनः ॥ ततस्तत्प्रेषितंतेन पद्मं भ्रान्त्वामहीतलम् ॥ ३६ ॥ समस्तंपतितंक्षेत्रे हाटकेश्वरसम्भवे ॥ दृष्ट्वावेदविदोविप्रान्स्वाध्यायनिरतान्मुनीन् ॥ ३७ ॥ तेषांयज्ञक्रियाभिश्च यज्ञजातैस्समन्ततः ॥ यूपाद्यैस्सर्वतोव्याप्तं सदिशंगगनाङ्गणे ॥ ३८ ॥ ऋग्यजुःसामघोषेणतथा

वहां छोड़ूं ॥ ३२ ॥ समस्त प्राणियोंके भयङ्कर उस कलिकाल के भलीभांति प्राप्त होनेपर वहां सब तीर्थ निश्शेषता से जावैं ॥ ३३ ॥ मेरे वचन से निस्सन्देह अपने स्थानको जावैंगे यह मनसे निश्चयकर तदनन्तर आपही ब्रह्माजी ध्यानकर हाथ में टिकेहुए उस कमलसे कहा कि हे कमल ! जहां कलियुग नहीं वर्त्तमान है वहां धरणी पृष्ठमें तुम गिरो ॥ ३४ । ३५ ॥ जिससे अपने पुष्कर तीर्थको वहीं आनूं तदनन्तर उन ब्रह्माजीसे पठायाहुआ वह कमल समस्त भूतलको भ्रमकर हाटकेश्वर जीसे उपजेहुए क्षेत्रमें वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों व वेद पाठमें परायण मुनियोंकोदेखकर गिरपड़ा ॥ ३६ । ३७ ॥ जहां कि दिशाओं समेत आकाश रूपी आंगन

चारोंओर उन मुनियों की यज्ञ क्रियाओं और यज्ञमें उपजेहुए यूप (स्तम्भ) इत्यादिकों से सब ओर व्याप्तथा ॥ ३८ ॥ व ऋग्यजुः सामके शब्दसे व अथर्वण वेद की ध्वनिसे दिशाओं के मण्डल को उस भांति व्याप्त होनेपर और शब्द भलीभांति नहीं सुनपड़ताथा ॥ ३९ ॥ वैसेही कार्तान्तिकों याने ज्योतिषियों के बड़े भारी विवादों व बहुधा सुनेहुए समस्त वेदान्तों के व्याख्यान में मुनिलोग तत्पर थे ॥ ४० ॥ व नियमों में भलीभांति टिकेहुए मुनि जन जहां देखपड़ते हैं जो कि एकबार भोजनकरनेवाले व निराहारी तथा एक दिन के अन्तर से भोजन कर्तेथे ॥ ४१ ॥ व तीन रातों के उपासवाले व अन्य कृच्छ्र चान्द्रायण में तत्पर तथा

चाथर्वणेनच ॥ दिङ्मण्डलेतथाव्याप्तेनान्यःसंश्रूयतेध्वनिः ॥ ३९ ॥ तथाचकार्त्तिकाणांच विवादेषुमहत्सुच ॥ वेदान्तानांसमस्तानां व्याख्यानेबहुधाश्रुते ॥ ४० ॥ दृश्यन्तेमुनयोयत्र संस्थितानियमेषुच ॥ एकाहारानिराहारा एकान्तरकृताशनाः ॥ ४१ ॥ त्रिरात्रोपोषिताश्चान्ये कृच्छ्रचान्द्रायणेरताः ॥ महापाराकिनश्चान्ये तथामासोपवासिनः॥४२॥ अश्मकुट्टाशिनश्चान्येदन्तोलूखलिकास्तथा॥शीर्णपर्णाशिनश्चैके फलाहारामहर्षयः॥४३॥तंदृष्ट्वातादृशंक्षेत्रं संयुक्तंविविधैर्गुणैः ॥ ततस्तत्पतितंतत्र पुण्यंज्ञात्वामहीतले ॥ ४४ ॥ यत्रस्थानेपतत्पूर्वं तस्मादुत्पतितंपुनः ॥ अन्यस्मिंश्चततःस्थाने द्वितीयेद्विजसत्तमाः ॥ ४५ ॥ तस्मादपितृतीयेतु पतितंपङ्कजंहितत् ॥ ततोगर्तात्रयंजातं तेषुस्थानेषुचत्रिषु ॥ ४६ ॥ गर्तासुचजलंजातं स्वच्छंस्फटिकसन्निभम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः स्वयमेवपितामहः ॥ ४७ ॥ तत्रस्थानेद्वि

अन्य मुनि महापाराक व्रतवाले व महीने के उपासी थे ॥ ४२ ॥ और पत्थल में कूटकर खानेवाले व अन्यमुनि दन्त रूपी ओखली में कूटकर खानेवाले व कि गिरे पत्तोंके भोजनकारी व फलाहारवाले महर्षिथे॥४३॥अनेकों प्रकारके गुणोंसे संयुत वैसे उस क्षेत्रको देखकर तदनन्तर भूतलमें पुण्यरूप जानकर वह कमल वहां गिरपड़ा ॥ ४४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस स्थानमें पहले गिरा उससे उछला हुआ फिर तदनन्तर दूसरे स्थान में गिरपड़ा ॥ ४५ ॥ और वह कमल उस स्थानसे भी तीसरे स्थान में गिरा उसीकारण उन तीनों स्थानोंमें तीनगढ़े होगये ॥ ४६ ॥ और गढ़ोंके मध्यमें स्फटिक के समान निर्मलजल होगया इसी अवसर में हे द्विजो

त्तमो ! यज्ञकार्यकी सिद्धिके लिये उस स्थानमें आपही ब्रह्माजी प्राप्तहुये व हाटकेश्वरनामक क्षेत्रको सबओर देखकर ॥ ४७ । ४८ ॥ जोकि वेदवेदाङ्गोंके जाननेवाले अनेक प्रकार के ब्राह्मणों व व्रतचर्य्या में लगेहुये अनेकों तपस्वियों से व्याप्तथा ॥ ४९ ॥ अहो (आश्चर्य) है कि यह क्षेत्र जोकि पुण्यदायक व परम मनोहर और ब्राह्मणों को प्रियहै यह आश्चर्य है इस लिये उत्तम द्विजोंसे आश्रित इस क्षेत्रमें यज्ञ करूंगा ॥ ५० ॥ व उस उत्तम पुष्करत्रय को भी श्रेष्ठ, मध्यम, लघुके क्रमसे इन गढ़ोंमें लाऊंगा ॥ ५१ ॥ कि जिससे कलिकाल के भी भलीभांति प्राप्त होनेपर लोपको न प्राप्तहोवै भूतलमें बैठकर व आपही मनसे निश्चयकर ॥ ५२ ॥ और

जश्रेष्ठा यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ दृष्ट्वासमन्ततःक्षेत्रं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥ नानाविप्रैस्समाकीर्णं वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ तपस्विभिस्तथानेकैर्व्रतचर्य्यापरायणैः ॥ ४९ ॥ अहोक्षेत्रमहोपुण्यं परंरम्यंद्विजप्रियम् ॥ तस्माद्यज्ञंकरिष्यामिक्षेत्रे स्मिन्सद्विजाश्रये ॥ ५० ॥ आनयिष्यामितच्चापि पुष्करत्रितयंशुभम् ॥ गर्तास्वेतासुपुण्यासु श्रेष्ठंमध्यङ्कनीनकम् ॥ ५१ ॥ कलिकालेचसम्प्राप्ते येनलोपंनगच्छति ॥ स्वयंनिश्चित्यमनसा उपविश्यधरातले ॥ ५२ ॥ ध्यात्वाचसुचिरं कालमानयामासतत्रच ॥ पुष्करत्रितयंश्रेष्ठं ज्येष्ठंमध्यंकनीनकम् ॥ ५३ ॥ ततोब्रवीत्प्रहृष्टात्मा एतद्वैपुष्करत्रयम् ॥ मयासम्यक्समानीतं कलिकालभयेनच ॥ ५४ ॥ अत्रस्नानंकरिष्यन्ति श्रद्धयापरयायुताः ॥ तेयास्यन्तिपरांसिद्धिम क्षयांमत्प्रसादतः ॥ ५५ ॥ येचश्राद्धंकरिष्यन्ति कार्त्तिक्यांसुसमाहिताः ॥ करिष्यन्तिगयाशीर्षे तेषांपुण्यंमहत्तमम् ॥ ५६ ॥ तत्राद्यात्पुष्करात्पुण्यं लभिष्यन्तिशताधिकम् ॥ मयायज्ञःकृतस्तत्र कार्त्तिक्यांपूर्वपुष्करे ॥ ५७ ॥ वैशाख्यांच

बहुत समयतक ध्यानकर ज्येष्ठ, मध्य व छोटे तीनों उत्तम पुष्करोंको वहांलाये ॥ ५३ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन या चित्तवाले ब्रह्मा बोले कि कलिकाल के डरसे मैं इन तीनों पुष्करोंको भलीभांति लाया ॥ ५४ ॥ परमश्रद्धासे संयुत जो पुरुष यहां स्नान करैंगे वे मेरी प्रसन्नतासे अविनाशिनी व उत्तम सिद्धिको प्राप्त होवैंगे ॥ ५५ ॥ व सावधान होतेहुये कार्त्तिकी पौर्णमासीको जो पुरुष गयाशीर्ष में श्राद्धकरैंगे उन को बड़ीभारी पुण्यहोगी ॥ ५६ ॥ और वहां आदिपुष्कर से सौगुनी अधिक पुण्य

होगी मैंने वहां पूर्वपुष्कर में कार्त्तिकी को यज्ञ कियाहै ॥ ५७ ॥ और वैशाखी को यहां दूसरे पुष्कर में करूंगा ऐसा कहकर तदनन्तर ब्रह्माजी ने पवन को आज्ञा दिया ॥ ५८ ॥ कि हे पवनजी ! मेरी आज्ञासे आदित्य, वसु, रुद्र, पवनगण, गंधर्वों, लोकपालों व सिद्धों तथा विद्याधरों समेत इन्द्रजी को शीघ्रही भलीभांति लावो जिससे समस्त यज्ञकर्म में तुम मेरी सहाय में होवो ॥ ५९ । ६० ॥ उस समस्त वचनको सुनकर पवनने इन्द्रजी के घर जाकर वह सब कहा जोकि परमेष्ठी (ब्रह्मा) ने कहाथा ॥ ६१ ॥ व समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी शीघ्रही वहांगये व उन ब्रह्माजी को प्रणामकर तदनन्तर वचन बोले ॥ ६२ ॥ कि हे देव ! आज्ञा

करिष्यामि अत्राहंचद्वितीयके ॥ एवमुक्त्वाततोब्रह्मा आदिदेशसदागतिम् ॥५८॥ ममादेशाद्द्रुतंवायो समानयपुरन्दरम् ॥ आदित्यैर्वसुभिस्सार्द्धं रुद्रैश्चैवमरुद्गणैः ॥५९॥ गन्धर्वैर्लोकपालैश्च सिद्धैर्विद्याधरैस्तथा ॥ येनमेस्यात्सहायेत्वं समस्तेयज्ञकर्म्मणि ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वासकलंवायुर्गत्वाशक्रनिवेशनम् ॥ कथयामासतत्सर्वं यदुक्तंपरमेष्ठिना ॥ ६१ ॥ सत्वरंप्रययौतत्र सर्वैर्देवगणैस्सह ॥ प्रणिपत्यततस्तञ्च ब्रह्माणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६२॥ आदेशोदीयतान्देव अहमानायितस्त्वया ॥ यदर्थंतत्करिष्यामि तस्माच्छीघ्रंनिवेदय ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मयाशक्रात्रयन्नीतं सुपुण्यंपुष्करत्रयम् ॥ कलिकालभयाच्चैव करिष्येतदहंस्थिरम् ॥ ६४ ॥ अग्निष्टोमंक्रतुंकृत्वा वैशाख्याञ्चयथार्चितम् ॥ सम्भारमाहरस्वाशु तदर्थंसर्वमेवहि ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणाश्चतदर्हाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तच्छ्रुत्वाविनयाच्छक्रस्तथेत्युक्त्वात्वरान्वितः ॥६६॥ सम्भारानानयामास तदर्हांश्चद्विजोत्तमान् ॥ ततश्चकारविधिवद्यज्ञंसप्रपितामहः ॥ ६७ ॥ यथोक्तविधिनासर्वं तथास

दीजावै जिस लिये मैं तुमसे आनागयाहूं उसको करूंगा इस कारण शीघ्रही निवेदन करिये ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! मैं जिन अतिपुण्यदायक तीनों पुष्करों को यहां लायाहूं वैशाखी में यथापूजित अग्निष्टोम यज्ञको करके उनको कलिकालके डरसे निश्चयकर अचल करूंगा उसके लिये सबही सामग्री को शीघ्रही लाइये ॥ ६४ । ६५ ॥ व उस यज्ञके योग्य और वेद वेदाङ्गों के जाननेवाले ब्राह्मणों को लाइये उस वचनको सुनकर इन्द्रजी नम्रता से तथा याने वैसाहीं होगा यह कहकर शीघ्रता संयुत हुये ॥ ६६ ॥ व सामग्रियों तथा उसके योग्य द्विजोत्तमों को लाये तदनन्तर उन ब्रह्माजीने कही हुई विधिके अनुकूल व विधिपूर्वक सम्पूर्ण

दक्षिणावाले समस्त यज्ञको किया ॥ ६७ । ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्करत्रयोत्पत्तिर्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कौन यज्ञ प्रारम्भ जिमि ब्रह्मा मुनिन बुलाय । इकसौ सत्तरि महँ सोई कहत चरित सुखदाय ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहा है यह अत्यन्त अद्भुत है जोकि उस क्षेत्र में महात्मा ब्रह्माजी ने यज्ञकिया है ॥ १ ॥ भूतल में जो अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्त्तमान होते हैं उन यज्ञोंमें वेही सुरनायक

म्पूर्णंदक्षिणम्॥६८॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्करत्रयोत्पत्तिर्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ अत्यद्भुतमिदंसूत यत्त्वयासमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणायत्कृतोयज्ञस्तत्रक्षेत्रेमहात्मना ॥ १ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञा येवर्तन्तेधरातले ॥ यष्टव्यस्तेषुयज्ञेषु सएवहिसुरेश्वरः ॥ २ ॥ तेनैवयजतातत्र कोहीष्टःप्रब्रवीहिनः ॥ ऋत्विजःकेस्थितास्तत्र यैस्तत्कर्म्ममखोद्भवम् ॥ ३ ॥ तत्प्रत्यक्षंकृतंसर्वमेतन्नःकौतुकंपरम् ॥ काचैवदक्षिणादत्ता तेनतेषांद्विजन्मनाम् ॥ ४ ॥ कोध्वर्य्युर्विहितस्तत्र येनतद्यजनंकृतम् ॥ कोहोताकश्चवाग्नीध्रः कोब्रह्मातत्रसंस्थितः ॥ ५ ॥ उद्गाताकःस्थितस्तत्र आचार्य्योयज्ञकर्म्मणि ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामि सर्वंयज्ञस्यसम्भवम् ॥ ६ ॥ वृ

(ब्रह्माजी) पूजने योग्य होते हैं ॥ २ ॥ व उन्हीं ब्रह्माके यज्ञकरने पर उस यज्ञमें कौन पूजितहुआ उसको हमलोगों से कहिये उस यज्ञमें कौन ऋत्विज् (यज्ञकारक) हुये हैं कि जिन्होंने यज्ञसे उपजे हुये उस कर्मको उनके सामने किया है यह सब हमलोगों को परम आश्चर्य है व उन ब्रह्माने उन ब्राह्मणों को क्या दक्षिणा दी है ॥ ३ । ४ ॥ व उसमें कौन ऋग्वेदी कियागया है जिसने उस यज्ञको किया है और कौन होता व कौन आग्नीध्र तथा उस यज्ञमें कौन ब्रह्मा भलीभांति स्थित हुआ है ॥ ५ ॥ व उस यज्ञकर्म में कौन सामवेदी कौन आचार्य स्थितथा सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! यज्ञसे उपजेहुये समस्त वृत्तान्त को मैं तुमलोगोंसे कहूंगा व

हे द्विजश्रेष्ठो ! उस यज्ञमें टिकाहुआ जो आचार्य था व जो सामाजिक स्थित थे व उसमें जो ऋत्विज् थे व यज्ञ करते हुये अतुलित तेजवाले देवदेव उन महात्मा ब्रह्माने उन ब्राह्मणों के लिये जो दक्षिणा दीहै उसको मैं कहूंगा॥६।७।८॥यज्ञ करने की इच्छावाले चतुराननको जानकर सहायके लिये समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी समीप में आये ॥ ९ ॥ और वैसेही समस्त देवगणों समेत भगवान् शिव जी आये व मनुष्य धर्म में भलीभांति टिकेहुये ऐश्वर्य्यवान् ब्रह्माजीने उन देवताओं को देखकर ॥ १० ॥ हाथ जोड़े हुये खड़े व नम्रतासंयुत हो कहा कि हे सुरोत्तमो ! तुमलोगोंका आना बहुत अच्छा हुआ मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजाने ॥११॥

तान्तंयच्चतत्रस्थमाचार्य्यंद्विजपुङ्गवाः ॥ येसदस्याःस्थितास्तत्र ऋत्विजश्चद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ दक्षिणायाप्रदत्ताच तेभ्यस्तेनमहात्मना ॥ यजतादेवदेवेन ब्रह्मणामिततेजसा ॥ ८ ॥ यज्ञकामंचतुर्वक्त्रं ज्ञात्वादेवःशतक्रतुः ॥ सर्वैस्सुरगणैस्सार्द्धं सहायार्थमुपागतः ॥ ९ ॥ तथाचभगवाञ्छम्भुःसर्वैर्देवगणैस्सह ॥ तान्दृष्ट्वाभगवान्ब्रह्मा मर्त्यधर्म्मंसमाश्रितः ॥ १० ॥ प्रोवाचविनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ स्वागतंवःसुरश्रेष्ठाः प्रसादःक्रियतांमम ॥ ११ ॥ निविंश्य तांयथान्यायंस्थानेषुसुचिरेषुच ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियद्यूयंस्वयमागताः ॥ १२ ॥ मन्त्राहूतायतःकृच्छ्रात्सर्वसत्रेषुगच्छथ ॥ देवाऊचुः॥येनयच्चात्रकर्तव्यं तच्छीघ्रंवदपद्मज ॥ १३ ॥ यज्ञेतवमहाभाग तस्यतत्त्वंसमादिश ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वकर्म्मन्द्रुतंगच्छयज्ञमण्डपसिद्धये ॥ १४ ॥ पत्नीशालास्सदश्चैव यज्ञवेदीस्तथैवच ॥ कुण्डानिचैवसर्वाणि यथास्थानेषुकारय ॥ १५ ॥ यज्ञपात्राणिसर्वाणि गृहाश्चचमसास्तथा ॥ यूपश्चयत्प्रमाणेनकर्तव्यःसचषालकः ॥ १६॥

व बहुत समयवाले स्थानों में न्यायपूर्वक बैठिये मैं धन्य व अनुगृहीत (दया कियागया) हूं क्योंकि तुमलोग आपही आयेहो ॥ १२ ॥ जिस लिये कि मन्त्रों से बुलायेहुये तुमलोग समस्त यज्ञोंमें जातेहो देवता बोले कि हे कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ! जिससे यहां जो करने योग्यहो उसको शीघ्रही कहिये॥ १३ ॥ हे महाभाग! तुम्हारे यज्ञमें जिससे जो करने योग्यहो उस देवतासे तुम उस कार्य्यकी आज्ञा देवो ब्रह्माजी बोले कि हे विश्वकर्मन् ! यज्ञमण्डप की सिद्धिके लिये तुम शीघ्रही जावो ॥ १४ ॥ व पत्नीशालाओं, यज्ञवेदियों व वैसेही समस्त कुण्डों को जैसे स्थान में चाहिये वैसेही कराइये ॥ १५ ॥ व समस्त यज्ञपात्रों, गृहों व चमसों (यज्ञ-

पात्र भेदों) की व चषालक समेत जिस प्रमाण से स्तम्भ करना चाहिये उसको कराइये ॥ १६ ॥ वैसेही शयनके लिये जिस प्रमाण से गढ़ोंको करना चाहिये उन को व दश हज़ार आठसा ईंटोंको तुम्हें शीघ्र करना चाहिये व शीघ्रही चौतरों को व सुवर्णमय पुरुष को भी करनाही चाहिये ॥ १७ । १८ ॥ वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर विश्वकर्मा शीघ्रसे शीघ्र गये उसके उपरान्त ब्रह्माने देवताओं के आचार्य बृहस्पतिजी से कहा ॥ १९ ॥ कि हे बृहस्पते ! वेदों व वेदाङ्गों के पार जानेवाले सोलह संख्यातक यज्ञके योग्य समस्त ब्राह्मणों को तुम लावो ॥ २० ॥ व हे इन्द्रजी ! तुमको ब्राह्मणों की सेवा व शान्त द्विजों के हाथ पांव अंगका मर्दन व चरण

कर्तव्यानित्वयाशीघ्रं स्थ शयनार्थंतथागर्ताः कर्तव्यायत्प्रमाणतः ॥ इष्टकानिसहस्राणिदशचाष्टशतानिच ॥ १७ ॥ ण्डिलानिचसत्वरम् ॥ तथाहिरण्मयश्चापि पुरुषःकार्य्यएवहि ॥ १८ ॥ तथेत्युक्त्वाततस्त्वष्टा शीघ्राच्छीघ्रतरंययौ ॥ ततस्तुपद्मजःप्राह देवाचार्य्यंबृहस्पतिम् ॥ १९ ॥ बृहस्पतेत्वमानीहि यज्ञार्हान्त्विजोखिलान् ॥ यावत्षोडशसंख्या च वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ २० ॥ त्वयाशक्रसदाकार्य्या शुश्रूषाचद्विजन्मनाम् ॥ हस्तपादाङ्गमर्दश्च शान्तानांपदमर्दन म् ॥ २१ ॥ धनाध्यक्षत्वयादेया दक्षिणाकालसम्भवा ॥ सुवस्त्राणिहिरण्यञ्च तथान्यद्वापिवाञ्छितम् ॥ २२ ॥ त्वया विधेसदाकार्य्यं कृत्याकृत्यपरीक्षणम् ॥ युक्तंकृतमथोनैवसावधानेनसर्वदा ॥ २३ ॥ लोकपालाश्चयेसर्वे रक्षन्त्वेन्द्र्यादि कादिशः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां प्रवेशंराक्षसोद्भवम् ॥ २४ ॥ योयंकामयतेकामं किंचिद्वस्त्रंधनंचवा ॥ विचार्य्यतस्यत द्देयं सर्वयज्ञाधिपेनतु ॥ २५ ॥ आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ भवन्तुपरिवेष्टारो भोक्तुकामजनस्यच॥२६॥

मर्दन करना चाहिये ॥ २१ ॥ व हे धनाधिप ! समय से उपजीहुई दक्षिणा व उत्तम वसन, सुवर्ण व और भी जो कुछ वाञ्छित हो वह तुमको देना चाहिये ॥ २२ ॥ हे विधे ! करने व न करने योग्यके परीक्षावाले कार्यको तुमको सदैव करना चाहिये कि सदैव सावधानता से योग्य कार्य्य किया गया या नहीं ॥ २३ ॥ व जो लोकपाल हैं वे सब राक्षसों से उपजेहुये प्रवेश भूत, प्रेत, पिशाचोंके प्रवेशको पूर्वादिक दिशाओं में रक्षाकरैं ॥ २४ ॥ व जो जिस कामना या किसी वसन अथवा धनादिकी इच्छाकरै उसको विचारकर समस्त यज्ञके स्वामीको देनाचाहिये ॥ २५ ॥ व आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव व पवनगण भोजन की इच्छावाले जनको परो-

सनेहारे होवैं ॥ २६ ॥ इसी अवसर में शीघ्रतासंयुत विश्वकर्मा प्राप्तहुये व ब्रह्मासे बोले कि यज्ञका मण्डप भलीभांति सिद्ध होगया ॥२७॥ हे चतुराननजी ! तुमने अन्य जो आज्ञा दिया व कहाथा वह सब सिद्धहै तदनन्तर बृहस्पति जी भलीभांति आकर ब्रह्मा से बोले ॥ २८ ॥ कि हे देव ! मैं यज्ञकर्मके लिये सोलह ब्राह्मणों को लाया उनको ऋत्विजों के कर्म में युक्त करिये ॥ २९ ॥ हे देवेश ! यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये आपही परीक्षा लेकर यज्ञमें युक्तकरो तदनन्तर ब्रह्माजीने बड़े उपाय से आपही परीक्षा लेकर उन ब्राह्मणों को ऋत्विक्कर्म में नियोग करके वैसेही उनका पूजन किया ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! समस्त ऋत्विजों के नामोंको क-

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो विश्वकर्म्मात्वरान्वितः ॥ अब्रवीत्पङ्कजभवंसंसिद्धोयज्ञमण्डपः ॥ २७ ॥ सर्वमन्यत्समादिष्टं यत्त्व योक्तंचतुर्मुख ॥ ततोबृहस्पतिःप्राह समभ्येत्यपितामहम् ॥ २८ ॥ समानीतामयादेव ब्राह्मणायज्ञकर्म्मणे ॥ विप्राः षोडशसंख्याश्च ऋत्विक्कर्म्मणियोजय ॥ २९ ॥ स्वयंपरीक्ष्यदेवेश यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ ततोब्रह्मास्वयंविप्रांस्तान्प रीक्ष्यप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ ऋत्विक्त्वेचनियोज्याशु तथाचक्रेतदर्हणम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ ऋत्विजाश्चैवसर्वेषां सूतनामानि कीर्तय ॥ ३१ ॥ तेनयोविहितस्तत्र यदर्थेसूतनन्दन ॥ सूतउवाच ॥ यज्ञार्हास्तेततस्तेन वृताब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३२ ॥ मैत्रावरुणसंज्ञस्तु तथैवच्यवनोमुनिः ॥ अथर्वाकोमरीचिश्च मार्कवोगालवोमुनिः ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यश्चतथाध्वर्य्युः प्रस्थातायत्रसंस्थितः ॥ तत्ररैभ्योमुनिश्रेष्ठस्तत्रोन्नेतासनातनः ॥ ३४ ॥ ब्रह्माचनारदोगर्गो ब्राह्मणःसत्रवीक्षकः ॥ अ ग्नीध्रश्चभरद्वाजो होतापाराशरस्तथा ॥ ३५ ॥ बृहस्पतिस्तथाचार्य्य उद्गातागोभिलोमुनिः ॥ शाण्डिल्यःप्रतिहर्ता

हिये ॥ ३० । ३१ ॥ हे सूतपुत्र ! उन ब्रह्मासे उस यज्ञमें जिसके लिये जो किया गयाहो सूतजी बोले कि तदनन्तर उन ब्रह्माजीसे वे यज्ञके योग्य द्विजोत्तम वरण कियेगये ॥ ३२ ॥ मैत्रावरुणनामक व च्यवन मुनि और अथर्वाक, मरीचि, मार्कव व गालवमुनि थे ॥ ३३ ॥ जिस यज्ञमें प्रस्थानकर्ता अध्वर्यु पुलस्त्य जी भली-भांति स्थित थे उसमें मुनिश्रेष्ठ रैभ्य उस यज्ञमें सनातन उन्नेता थे ॥ ३४ ॥ व नारदजी ब्रह्माथे व गर्गब्राह्मण यज्ञके देखनेवाले थे भरद्वाज अग्नीध्र व पराशर होता

यह मेरी कन्या किसी समय जिस राजा को दीजावै ॥ २१ ॥ उसका पुरोहित जो ब्राह्मण होवै उसके लिये तुमको अपनी कन्या देना चाहिये कि जिससे हे द्विजो-त्तम श्रेष्ठ ! तुम्हारी अतिउत्तम प्रसन्नता से एक स्थान में टिकी हुई उन दोनों का आपस में अन्तर न होवै छन्दोग्य बोला कि जो नागर ब्राह्मण नागरको छोड़कर और के लिये कन्याको देता है ॥ २२ । २३ ॥ व जो किसीप्रकार विवाहके लिये कन्या को ग्रहण करता है वह पंक्तिका दूषक नागर यहां न होवै है ॥ २४ ॥ उसी कारण मैं किसी प्रकार नागर को छोड़कर अन्य के लिये अपनी कन्या न दूंगा मैंने यह निश्चय किया है ॥ २५ ॥ ब्राह्मणी बोली कि हे पिताजी ! ब्रह्मचारिणी व कन्या

पतेरियम् ॥ २१ ॥ पुरोधास्तस्ययोविप्रस्तस्मैदेयानिजासुता ॥ येननस्यान्मिथोभेदस्ताभ्यांद्विजवरोत्तम ॥ २२ ॥ एकस्थानेस्थिताभ्याञ्च प्रसादात्तवसत्तमात् ॥ छन्दोग्यउवाच ॥ नागरोनागरंमुक्त्वा योन्यस्मैसंप्रयच्छति ॥ २३ ॥ कन्यकांयःप्रगृह्णाति विवाहार्थंकथञ्चन ॥ सपङ्क्तिदूषकःपापान्नागरोनभवेदिह ॥ २४ ॥ तस्मान्नाहंप्रदास्यामि कथञ्चिन्निजकन्यकाम् ॥ अन्यस्मैनागरंमुक्त्वा निश्चयोयंमयाकृतः ॥ २५ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ नाहंतातप्रयास्यामि कुमारीब्रह्मचारिणी ॥ देयाप्रियासखीयत्र तावद्यास्यामितत्रच ॥ २६ ॥ यदितातबलान्मह्यं विवाहंत्वंकरिष्यसि ॥ विषंवाभक्षयिष्यामि साधयिष्यामिपावकम् ॥ २७ ॥ शस्त्रेणवाहनिष्यामिस्वदेहंतातनिश्चयम् ॥ एवंज्ञात्वातुतातत्वं यत्क्षमंतत्समाचर ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तंनिश्चयंज्ञात्वा सविप्रोदुःखसंयुतः ॥ स्त्रीहत्यापापभीतस्तुतांत्यक्त्वास्वगृहंययौ ॥ २९ ॥ सापिरेमेतयासार्द्धं रत्नवत्याद्विजोत्तमाः ॥ संहृष्टहृदयानित्यं संत्यक्तपितृसौहृदा ॥ ३० ॥ यौवनंसमनुप्राप्ता

मैं तबतक न जाऊंगी जहां प्यारी सखी देने योग्य होवै मैं वहीं जाऊंगी ॥ २६ ॥ हे पिताजी ! यदि हठ से तुम मेरा व्याह करोगे तो विष खाऊंगी या अग्निको साधन करूंगी याने जलजाऊंगी ॥ २७ ॥ अथवा हे पिताजी ! अपने शरीर को शस्त्र से हनूंगी ऐसा निश्चय जानकर हे पिताजी ! जो योग्य हो उसको कीजिये ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि उस कन्या के उस निश्चय को जानकर स्त्रीहत्या के पातक से डरा हुआ व दुःखसंयुत वह ब्राह्मण उसको छोड़कर अपने घर चलागया ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! छोड़े हुये पिताके स्नेहवाली व अतिप्रसन्न चित्तवाली उसे कन्याने भी नित्यही उस रत्नवती के साथ क्रीड़ा किया ॥ ३० ॥ जोकि भूमिमें रूपसे

कर्म को जानकर उससमय दुःख संयुत व सखी के विरहसे डरी व दीन तथा आंसुओं से पूर्ण नयनोंवाली उसने आंसुओं के कारण गद्गदी वाणी के द्वारा रत्नवती से कहा कि हे सखि ! इससमय पिताजी मेरा ब्याह करैंगे ॥ ११ । १२ ॥ और ब्याह कीहुई मेरी कभी मित्रता न होगी वज्रपात के समान उसके वचन को सुनकर स्नेह से विकल इन्द्रियोंवाली उस सखी ने गले में लिपटाकर रोदन किया इसके अनन्तर उसके रोदनको सुनकर उसकी माता मृगावती ने ॥ १३ । १४ ॥ शीघ्रता समेत भलीभांति आकर इस वचन को कहा कि हे पुत्रि ! किसलिये रोती हो किसने तुम्हारा अप्रिय किया है ॥ १५ ॥ आजही उस दुष्टात्माका मैं जिससे दण्डकरूं

वर्तीतदा॥ ११ अश्रुपूर्णेक्षणादीना बाष्पगद्गदयागिरा ॥ सखितातोविवाहंमेप्रकरिष्यतिसांप्रतम् ॥१२॥ विवाहितायाइचसख्यंनभविष्यतिकर्हिचित्॥ वज्रपातोपमंवाक्यं तस्याःश्रुत्वासखीचसा ॥१३॥ रुरोदकण्ठमालिङ्गय स्नेहव्याकुलितेन्द्रिया॥ अथतद्रुदितंश्रुत्वा मातातस्यामृगावती॥ १४॥ ससंभ्रमासमागत्य वाक्यमेतदुवाचह॥ किमर्थंरुद्यसेपुत्रिकेनतेविप्रियंकृतम् ॥१५॥ करोमिनिग्रहंयेन तस्याद्यैवदुरात्मनः ॥ रत्नवत्युवाच ॥ गुह्यंमेसुप्रियातीव ब्राह्मणीप्राणसम्मिता ॥ १६ ॥ विवाहंप्राप्यकल्याणी प्रयास्यतिपतेर्गृहम् ॥ अनयारहिताहञ्च नजीवामिकथञ्चन ॥१७॥ एतस्मात्कारणाद्देवि प्ररोदिमिसुदुःखिता ॥ मृगावत्युवाच ॥ तेनपुत्रिप्रदास्यामि सखीमेनांतवप्रियाम् ॥ १८ ॥ तत्रापियेनसंयोगोभविष्यत्यनयासह ॥ एवमुक्त्वाततोराज्ञी छन्दोग्यंद्विजसत्तमम् ॥ १९ ॥ समानीयाब्रवीदेनं विनयावनतास्थिता ॥ इयंतवसुताब्रह्मन्सुतायाममसुप्रिया ॥ २० ॥ तस्मात्कुरुवचोमह्यं यच्चवक्ष्यामिसुव्रत ॥ यस्यमेदीयतेकन्या कदाचिन्न

रत्नवती बोली कि प्राणों के समान अत्यन्तही मेरी गुप्तप्यारी ब्राह्मणी है ॥ १६ ॥ वह कल्याणी विवाह को प्राप्त होकर पति के घर जायगी और इससे रहित मैं किसी प्रकार न जीऊंगी॥१७॥ इसी कारण हे देवि ! अतिदुःखित होतीहुई मैं बहुत रोतीहूं मृगावती बोली कि हे पुत्रि ! उसी कारण इस तुम्हारी प्यारी सखीको मैं दूंगी ॥ १८ ॥ कि जिससे वहां भी इस के साथ समागम होवै ऐसा कहकर तदनन्तर द्विजोत्तम छन्दोग्य को भलीभांति आनकर नम्रतासे नीचेनई खड़ी हुई रानीने इनसे कहा कि हे ब्रह्मन् ! यह तुम्हारी कन्या मेरी कुमारी को अतिप्यारी है ॥ १९।२० ॥ इसलिये हे उत्तम नियमवाले द्विज ! जो मैं कहूं मेरे उस वचनको कीजिये कि

हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्र में जो अतिउत्तम दो तीर्थों को कहा है ॥ १ ॥ वे कैसे वहां हुये हैं और किसने उनको बनाया है हे महामते ! इस समस्त वृत्तान्त
को विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ हमलोगों ने पुरातन समय तुमसे पादुकाओं की उत्पत्ति सुनी है सूतजी बोले कि छन्दोग्य ऐसा प्रसिद्ध द्विजेन्द्र जाना भी गया है ॥
३ ॥ सामवेद के जाननेवाले व गृहस्थाश्रमवाले उस सन्तानरहित ब्राह्मण के पिछली अवस्था प्राप्तहोनेपर ॥ ४ ॥ मनुजों को मोहनेवाली व चौड़ेनेत्रोंवाली कन्या
पैदा हुई सूक्ष्मअङ्गोंवाली व मनुष्यों के नयनों को हर्ष देनेवाली वह कन्या वैसेही बढ़ती भई जैसे कि शुक्लपक्ष के भलीभांति प्राप्त होनेपर चन्द्रमा की रेखा बढ़ती

तत्रसञ्जातं केनतद्विविनिर्मितम् ॥ एतच्चसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामते ॥ २ ॥ पादुकाभ्यांसमुत्पत्तिः श्रुतास्माभिः
पुरातन ॥ सूतउवाच ॥ विदितश्चापिविप्रेन्द्रश्छन्दोग्यइतिविश्रुतः ॥ ३ ॥ सामवेदविदस्तस्यगृहस्थाश्रमधर्म्मिणः॥
पश्चिमेवयसिप्राप्ते अपत्यरहितस्यच ॥ ४ ॥ कन्याजाताविशालाक्षी सुन्दरीजनमोहनी ॥ ववृधेसाचतन्वङ्गी चन्द्रले
खायथातथा ॥ शुक्लपक्षेतुसंप्राप्ते जनलोचनतुष्टिदा ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनिसञ्जाता छन्दोग्यस्यमहात्मनः ॥ आनर्ताधि
पतेस्तस्मिंस्तादृग्रूपासुताभवत् ॥ ६ ॥ यस्याःकायप्रभावेणसर्वंतत्सूतिकागृहम् ॥ निशागमेपिसञ्जातंरत्नौघैरिवसुप्रभ
म् ॥ ७ ॥ ततस्तस्याःपितानाम चक्रेरत्नवतीतिच ॥ अथसख्यंसमापन्ना ब्राह्मण्यासहसाशुभा ॥ ८ ॥ नैरन्तर्येणताभ्याञ्चवि
योगोनैवजायते ॥ एकासनंतथाशय्या एकान्नेनचभोजनम् ॥ ९ ॥ अथाष्टमेचसञ्जाते पितातस्याद्विजोत्तमाः ॥ वि
वाहंचिन्तयामास प्रदानायवरंतथा ॥ १० ॥ साज्ञात्वाचेष्टितंतस्य पितुर्दुःखसमन्विता ॥ सख्यावियोगभीताच प्रोचेरत्न

है ॥ ५ ॥ जिसदिन छन्दोग्य महात्मा के कन्या पैदा हुई उसी दिन वैसे ही रूपवाली आनर्तदेशनायक के कन्या हुई ॥ ६ ॥ जिसके शरीर के प्रभाव से वह सब
सौवरिका घर रात्रि के आगमन में भी रत्नसमूहों की नाईं उत्तम प्रकाशवान् सा होगया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिताने उसका रत्नवती ऐसा नाम किया इस के अनन्तर
वह उत्तम कन्या ब्राह्मणी के साथ मित्रता को प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ उन दोनों का निरन्तर से वियोग न होता था वैसेही एकही आसन पै शय्या व एकहीं अन्न से भो-
जन होता था ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस के अनन्तर आठवां वर्ष प्राप्त होने पर उस के पिताने वरको देने के लिये विवाह चिन्तन किया ॥ १० ॥ उस पिता के

भलीभांति स्थितहुआ ॥ ५३॥ व हे ब्राह्मणो ! इस विषयमें प्रमाण संस्थित है कि जो वर्तमान व भविष्यत् होता है उसको मैं उनकी प्रसन्नता से निस्सन्देह जानता हूं ॥ ५४ ॥ एक वेदपाठको छोड़कर क्योंकि मुझ में सूतत्व है याने क्षत्रिय पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री में पैदा हुआ हूं परन्तु उस वेद के भी सब अर्थ को जानताहूं जैसे कि भर्तृयज्ञ मुनि जानते हैं ॥ ५५ ॥ इसलिये यदि मुक्ति में प्रयोजन है तो तुमलोग वहीं जावो और फिर आवृत्ति करानेवाली याने संसार को लौटानेवाली इन स्वर्गदायक यज्ञों से क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥ ५६ ॥ तुमलोग जाकर मनुष्योंको सिद्धि देनेवाली उन पादुकाओं का आराधनकरो जिस से वर्ष के अन्त में ब्रह्म

जाः ॥ तत्प्रसादादसंदिग्धं प्रमाणंचात्रसंस्थितम् ॥ ५४ ॥ मुक्त्वैकंवेदपठनंसूतत्वञ्चयतोमयि ॥ तस्यापिवेद्मिसर्वार्थं भर्तृयज्ञोयथामुनिः ॥ ५५ ॥ तस्मात्तत्रैवगच्छध्वं यदिमुक्तौप्रयोजनम् ॥ किमेतैःस्वर्गदैस्सत्रैः पुनरावृत्तिकारकैः ॥ ५६ ॥ आराधयध्वंतेगत्वा पादुकेसिद्धिदेनृणाम् ॥ येनसंवत्सरस्यान्ते ब्रह्मज्ञानम्प्रजायते ॥ ५७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुसाधुमहाभाग उपदेशःकृतोमहान् ॥ येनसन्तारितास्सर्वे वयंसंसारसागरात् ॥ ५८ ॥ यास्यामोपिवयंतत्र सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ समाप्तेस्मिन्नसन्देहः सर्वेचकृतनिश्चयाः ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मज्ञानसूचनंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ शूद्रीचब्राह्मणीचापि यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ १ ॥ तत्कथं

ज्ञान उत्पन्न होवै ॥ ५७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! बहुत अच्छा २ आपने बड़ा भारी उपदेश किया जिससे हमलोग संसाररूपी समुद्र से भलीभांति उतार दियेगये ॥ ५८ ॥ और बारह वर्षवाली इस यज्ञके समाप्त होनेपर निश्चय किये हुये हमलोग सब भी वहां जावैंगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मज्ञानसूचनंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । द्विज अरु नृपकी सुतासन भयो अनूपम सङ्ग ॥ इकसौ पचासिवें महँ वर्णत सोइ प्रसङ्ग ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने शूद्री व ब्राह्मणीको भी कहा व

धीरे से बहुत जन्मों के द्वारा मुक्तिको पाता है एक जन्म में उस ज्ञानका सूक्ष्मलव प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ और दूसरे जन्म में उसका दुगुना व तीसरे में तिगुना ऐसे ही सदैव जन्म जन्म में एक गुना अधिक होवै है ॥ ४५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन! मनुष्यों को ब्रह्मज्ञान की कैसे प्राप्ति होती है यदि तुम जानते हो तो इस समस्त वृत्तान्त को कहिये ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि मनुष्यों से उपजे हुये ज्ञान के कहने में मेरी क्या शक्ति है परन्तु हाटकेश्वर जी से उपजे हुये क्षेत्र में उत्तम दो तीर्थ हैं ॥ ४७ ॥ जो कि कन्याओं से किये हुये व मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानदायक हैं वे शूद्रा व ब्राह्मणी की कन्याओं से बनाये गयेहैं ॥ ४८ ॥ अष्टमी व चौदसि में जो

नस्यतस्यच ॥ ४४ ॥ द्वितीयेद्विगुणस्तस्य तृतीयेत्रिगुणोभवेत् ॥ एकोत्तरंभवेदेवं सदाजन्मनिजन्मनि ॥ ४५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्मज्ञानस्यसंप्राप्तिर्मर्त्यानांजायतेकथम् ॥ एतत्तुसर्वमाचक्ष्व यदित्वंवेत्सिसूतज ॥ ४६ ॥ सूतउवाच ॥ काशक्तिर्ममवक्तव्ये ज्ञानेमर्त्यसमुद्भवे ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे अस्तितीर्थद्वयंशुभम् ॥ ४७ ॥ कुमारिकाभ्यांविहितं ब्रह्मज्ञानप्रदंनृणाम् ॥ शूद्रीचब्राह्मणीचैव कुमारीभ्यांविनिर्म्मितम् ॥ ४८ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां यस्ताभ्यांस्नानमाचरेत् ॥ पश्चात्पूजयतेभक्त्या प्रसिद्धेपादुकेशुभे ॥४९॥ सुपुण्येगर्तमध्यस्थे कुमार्य्यापरिपूजिते ॥ तस्यसंवत्सरस्यान्ते ब्रह्मज्ञानंप्रजायते ॥ ५० ॥ शक्त्याविनिहितेतेचस्वदर्शनविवृद्धये ॥ लोकानांमुक्तिकामानां ब्रह्मज्ञानसुखावहे ॥५१॥ ममतातोगतस्तत्र ततश्चज्ञानवान्स्थितः ॥ तस्यादेशादहंतत्रगतःसंवत्सरंस्थितः ॥ ५२ ॥ पादुकेपूजयामास ततोज्ञानञ्चसंस्थितम् ॥ यत्किञ्चिद्वाङ्मयंलोके पुराणानांव्यवस्थितम् ॥ ५३ ॥ वर्तमानम्भविष्यञ्च तदहंवेद्मिभोद्वि

पुरुष उन दोनों तीर्थों में स्नान करता है पश्चात् भक्तिसे प्रसिद्ध व उत्तम पादुकाओं को पूजता है ॥ ४९ ॥ जो पादुकायें कि गढ़ा के बीच में स्थित व कन्या से पूजी हुई व अतिपुण्यदायक हैं उस पुरुष को वर्षके अन्त में ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ५० ॥ वे पादुकायें अपने अपने दर्शन की विवृद्धिके लिये शक्ति से स्थापित कीगई हैं जोकि मुक्ति कामनावाले पुरुषों को ब्रह्मज्ञानवाले सुखके देनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ मेरे पिताजी वहां गये थे उसी कारण ज्ञानवान् होकर स्थित हैं व उन की आज्ञा से मैं वहांगया व वर्षभर टिका ॥ ५२ ॥ व पादुकाओं का पूजन करता भया उसी कारण संसार में पुराणों के बीच जो कुछ वचनमय स्थित है वह ज्ञान

सूतजी बोले कि संख्यासे रहित समय बिन जन्म व बिन नाशवालाहै और असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महादेव अपने प्रमाणसे अपने सौवर्षके पूर्ण होनेपर नाश होगयेहैं जैसे कि बालूकी रेणुका नाश होजातीहैं और उन मनुष्योंके यदि जो ब्रह्मज्ञानसे उपजी हुई श्रद्धा है वह होवै तो निस्सन्देह मुक्ति होजावै जैसे मनुष्योंके मध्यमें ये डांस, मशा व कीड़े ॥ ३५।३६। ३७ ॥ पैदा होते हैं व मरते हैं परन्तु भूतल में गिने नहीं जाते हैं वैसेही ब्रह्मा भी विष्णु के कीटस्थान में विशेषकर स्थित हैं ॥ ३८ ॥ जैसे विष्णु के कीटस्थान में ब्रह्मा जी स्थित हैं वैसे ही हे द्विजोत्तमो ! शिवशक्तियों से वे विष्णुजी जाननें योग्य हैं ॥ ३९ ॥ व सदाशिव जी के वे दोनों याने ब्रह्मा

सूतउवाच ॥ अनादिनिधनःकालः सङ्ख्ययापरिवर्जितः ॥ असङ्ख्यातागतानाशं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३५ ॥ निजेवर्षशतेपूर्णे बालुकारेणवोयथा ॥ निजमानेनयाश्रद्धा ब्रह्मज्ञानसमुद्भवा ॥ ३६ ॥ तेषांचेन्मानुषाणाञ्च तन्मुक्तिःस्यादसंशयम् ॥ यथैतेदंशमशकामानुषाणाञ्चकीटकाः ॥ ३७ ॥ जायन्तेचम्रियन्तेच गण्यन्तेनैवभूतले ॥ तथाब्रह्मापिविष्णोश्च कीटस्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ३८ ॥ पितामहोयथाविष्णोःकीटस्थानेऽव्यवस्थितः ॥ तथासशिवशक्तिभ्यः परिज्ञेयोद्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ सदाशिवस्यविज्ञेयौ तथातौक्रमिरूपकौ ॥ एवंचविविधैर्यज्ञैः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ४० ॥ ब्रह्मज्ञानात्परंयान्ति सदाशिवसमुद्भवम् ॥ अग्निष्टोमादिकैर्यज्ञैर्जातैस्सम्पूर्णदक्षिणैः ॥ ४१ ॥ तदर्थंतेदिवंयान्ति भुक्त्वा भोगान्पृथग्विधान् ॥ तत्क्षयेपुनरायान्ति मुक्तस्यमहीतले ॥ ४२ ॥ ब्रह्मज्ञानात्परंप्राप्य पुनर्जन्मनविद्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्राभ्यासंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥ जन्मभिर्बहुभिःपश्चाच्छनैर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ एकजन्मनिचप्राप्तो लेशोज्ञा

विष्णु कीटरूप जानने योग्यहैं इस प्रकार श्रद्धा से पवित्र चित्त करके अनेकप्रकारकी यज्ञों के द्वारा ॥ ४० ॥ ब्रह्मज्ञान से सदाशिवजी से उपजे हुये परमस्थान को प्राप्तहोते हैं व संपूर्ण दक्षिणाओंवाली अग्निष्टोमादिक यज्ञों करके ॥ ४१ ॥ उसी के लिये स्वर्ग को जाते हैं व भिन्नभांति के भोगों को भोगकर उस कारण पुण्य के नाश में फिर भूतल में आते हैं ॥ ४२ ॥ व ब्रह्मज्ञान से परमपद को पाकर फिर जन्म नहीं होता है इसलिये सब उपाय से उस में अभ्यास करै ॥ ४३ ॥ पश्चात्

विष्णुको पैदा हुए पचपन वर्ष बीते हैं ॥ २४ ॥ व सोमवार समेत आधा महीना व पांच तिथियां व्यतीत हुई हैं व विष्णुजी के वर्ष से महादेव का दिन होवै है ॥ २५ ॥ वैसेही रूप से शिवजी सौ वर्ष तक स्थितरहते हैं जब तक सदाशिव से उपजाहुआ मुख ऊपरको श्वास लेता है व पश्चात् जब तक शक्तिको भलीभांति प्राप्त होता है तब तक निश्वसित होता है और सबही शरीरधारियों व ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गन्धर्व, नाग व राक्षसों के इक्कीसहजार सात सौ निश्वास व उच्छ्वासों के प्रमाण में दिन रात कहागया है हे द्विजोत्तमो ! छः उच्छ्वास निश्वासों से एककला वर्तमान होती है ॥ २६ । २७ । २८ । २९ ॥ व साठिकलाओं की नाड़ी कहीगई

अमासार्द्धसोमवारेणसङ्गतम् ॥ वैष्णवेनतुवर्षेण दिनंमाहेश्वरंभवेत् ॥ २५ ॥ शिवोवर्षशतंयावत्तेनरूपेणचस्थितः ॥ यावदुच्छ्वासितंवक्त्रंसदाशिवसमुद्भवम् ॥ २६ ॥ पश्चाच्छक्तिसमभ्येति यावन्निःश्वसितंभवेत् ॥ निःश्वासोच्छ्वासितानाञ्च सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्चगन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ एकविंशत्सहस्राणि शतैःषड्भिःशतानि च ॥ २८ ॥ अहोरात्रेणप्रोक्तानि प्रमाणेद्विजसत्तमाः ॥ षड्भिरुच्छ्वासनिःश्वासैःकलामेकाप्रवर्तिता ॥ २९ ॥ नाडीषष्टिकलाप्रोक्ता तासांषष्ट्यादिनंनिशा ॥ निःश्वासोच्छ्वासितानाञ्च परिसङ्ख्यानविद्यते ॥ ३० ॥ सदाशिवसमुत्थानामेतस्मात्सोक्षयःस्मृतः ॥ अन्येपियेप्रगच्छन्ति ब्रह्मज्ञानसमन्विताः ॥ ३१ ॥ अक्षयास्तेपिजायन्ते सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ यद्येवंसूतपुत्रात्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३२ ॥ आत्मवर्षशतेपूर्णे यान्तिनाशमसंशयम् ॥ तत्कथंमानुषाणाञ्च मर्त्यलोकेत्रजीविनाम् ॥ ३३ ॥ कथयन्तिचयेमुक्तिमानवाअपिसूतज ॥ नूनंतेषांमृषावादोमोक्षमार्गसमुद्भवः ॥ ३४ ॥

है उन साठि नाड़ियों का दिनरात कहा गया है और सदाशिवजीसेउठे हुये निश्वास, उच्छ्वासों की गिनती नहीं विद्यमान है इसी कारण वे अविनाशी कहे गये हैं और भी जे ब्रह्मज्ञान से संयुत पुरुष श्वासोंकी असंख्यताको प्राप्त होवैंगे ॥ ३० । ३१ ॥ वे भी अविनाशी होवैंगे यह मैंने सत्य कहा है ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! यदि इस विषय में ऐसा है कि ब्रह्मा, विष्णु, व महादेव जी ॥ ३२ ॥ अपनी सौ वर्षोंके पूर्ण होनेपर निस्सन्देह नाश होजाते हैं तो किसप्रकार इस मृत्युलोक में जीते हुये मनुष्यों का जे मनुष्य भी मोक्ष कहते हैं हे सूतनन्दन ! मुक्तिमार्ग से उपजा हुआ उनका विवाद निश्चय कर झूंठा है ॥ ३३ । ३४ ॥

कहा है ॥ १३ ॥ व तीस दिनरातोंका महीना, दो महीनों की ऋतु संज्ञा, तीन ऋतुओंका अयन व वर्ष में दो अयन होते हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस वर्ष में देवों वाली दिनरात होती है याने उसवर्ष मे उत्तर अयन दिन है वैसेही अपर अर्थात् दक्षिणायन रात है ॥ १५ ॥ मनुष्यों के सत्रह लाख व अन्य अट्ठाईस हजार वर्षों से ॥ १६ ॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! वह पहले वाला कलियुग होगा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बारह लाख छानवे हजार वर्षों से दूसरा त्रेतायुग भली भांति कहागया है व तीसरा द्वापर युग आठ लाख चौंसठिहजार वर्षों की गिनती से यथा योग्य कहा गया है और अन्तवाले कलियुग का प्रमाण चारहीलाख बत्तीस

यनञ्च अयनेद्वेतुवत्सरे ॥ १४ ॥ दैविकन्तुभवेत्तत्र अहोरात्रंद्विजोत्तमाः ॥ उत्तरंचायनंतत्र दिनंरात्रिस्तथापरम् ॥ १५ ॥
लक्षैस्सप्तदशाख्यैस्तु मानुषाणाञ्चवत्सरैः ॥ अष्टाविंशतिभिश्चैव साहस्रैस्तुतथापरैः ॥ १६ ॥ आद्यंकृतयुगंचैव तद्भवि
ष्यतिसद्द्विजाः ॥ ततोद्वादशभिर्लक्षैःषण्णवत्यासहस्रकैः ॥ १७ ॥ त्रेतायुगंसमादिष्टं द्वितीयंद्विजसत्तमाः ॥ द्वापरंचाष्ट
भिर्लक्षैस्तृतीयंपरिकीर्तितम् ॥ १८ ॥ चतुःषष्टिसहस्रैस्तु यथावत्परिसङ्ख्यया ॥ कलेःप्रमाणंनिर्दिष्टं लक्षाश्चत्वारएव
च ॥ १९ ॥ द्वात्रिंशच्चसहस्राणियुगस्यैवान्तिमस्यतु ॥ चतुर्युगसहस्रेण दिनंपैतामहंभवेत् ॥ २० ॥ तेषांत्रिंशद्दिनैर्मासो
रविभिर्वत्सरोभवेत ॥ ब्राह्मस्तेषांशतंयावत्सञ्जीवतिपितामहः ॥ २१ ॥ सांप्रतंचाष्टवर्षीयः षण्मासश्चैवसंस्थितः ॥
प्रतिपद्दिवसश्चास्यप्रथमस्यतथागतम् ॥ २२ ॥ यामद्वयंशुक्रवारे वर्तमानेमहात्मनः ॥ ब्रह्मणोवर्षमात्रेण दिनंवैष्णव
मुच्यते ॥ २३ ॥ सोपिवर्षशतंयावदात्ममानेनजीवति ॥ पञ्चपञ्चाशदादिष्टास्तस्यजातस्यवत्सराः ॥ २४ ॥ तिथयःप

हजार वर्ष बतलाया गया है और हजार चतुर्युग से ब्रह्मावाला दिन होता है ॥ १७ । १८ । १९ । २० ॥ उन तीस दिनों से महीना व बारह महीनों से ब्रह्माका वर्ष होवै है उन वर्षों की सौवर्ष तक ब्रह्माजीते हैं ॥ २१ ॥ इस समय आठवर्षोंवाला छठा महीना भलीभांति स्थित है और इनके पहले परेवा दिनके वर्तमान शुक्र वार में दोपहर बीते हैं व महात्मा ब्रह्मा के वर्ष भरके प्रमाण से विष्णुका दिन कहाजाता है ॥ २२ । २३ ॥ वे विष्णुभी अपने ही प्रमाण से सौ वर्ष तक जीते हैं उन

जो मनुष्य ब्राह्मण को पूजकर पश्चात् इन सुरेश्वरी को पूजैंगे वे उत्तम गति को प्राप्त होवैंगे ॥ ४ ॥ व यहां सावधान होती हुई जो कन्या पति के संयोग को भलीभांति पाकर तदनन्तर गायत्रीजी के चरण को प्रणाम करैगी ॥ ५ ॥ वह प्रजापति को पति पाकर निस्सन्देह सब कामनाओं व सुखों से संयुत व धन धान्य से संयुक्त होगी ॥ ६ ॥ व जो स्त्री दुर्भाग्यवती व वन्ध्या होगी वह अतिउत्तम होवैगी ऋषिलोग बोले कि आपने जो यह कहाहै कि एकसौ पांच ब्रह्मा के बीतने पर प्रसन्न होते हुए महादेव जीने ब्राह्मणों के लिये इस अनुत्तम पदार्थको दियाहै यह कैसे हुआ अथवा क्या अन्य महादेवजी हैं ॥ ७ । ८ ॥ वह हमलोगों के

स्तेतुयान्तिपरांगतिम् ॥ ४ ॥ याकन्यापतिसंयोगं संप्राप्यात्रसमाहिता ॥ ततःपादप्रमाणञ्च गायत्र्याश्चकरिष्यति ॥ ५ ॥ पतिंप्रजापतिंप्राप्य साभविष्यत्यसंशयम् ॥ सर्वकामसुखोपेता धनधान्यसमन्विता ॥ ६ ॥ यानारीदुर्भगावन्ध्या भविष्यतिसुशोभना ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं गतेपञ्चोत्तरेशतम् ॥ ७ ॥ पद्मजानांहरःप्रादादेतत्कथमनुत्तमम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ससन्तुष्टः किंचान्योस्तिमहेश्वरः ॥ ८ ॥ तन्नःसंशयोभूयान् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ आयुष्यंशङ्करस्यापि यत्प्रमाणंतथाहरेः ॥ ९ ॥ ब्रह्मणोपिसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ अहंचकीर्तयिष्यामि विस्तरेणद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ त्रयाणामपिचायुष्यं यत्प्रमाणंव्यवस्थितम् ॥ निमेषस्यचतुर्भागं त्रुटिःस्यात्तद्वयंलवः ॥ ११ ॥ लवद्वयंयवःप्रोक्तः काष्ठातुदशपञ्चभिः ॥ त्रिंशत्काष्ठाःकलामाहुःक्षणस्त्रिंशत्कलोमतः ॥ १२ ॥ मुहूर्तमानंमौहूर्ता वदन्तिद्वादशक्षणम् ॥ त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रंमनीषिभिः ॥ १३ ॥ मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्विमासौऋतुसञ्ज्ञितः ॥ ऋतुत्रयञ्च

बड़ी सन्देह है तुम यथायोग्य कहने के योग्यहो व महादेव का भी व विष्णुका जिसप्रमाण वाला आयुर्बल होवै उसको ॥ ९ ॥ व ब्रह्मा के भी आयुर्बल को भलीभांति कहिये क्योंकि हम लोगों को परम आश्चर्यहै सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तीनों का भी जिस प्रमाण का आयुर्बल व्यवस्थित है उसको मैं विस्तार से कहूंगा कि निमेष का चौथाई अंश त्रुटि होती है और वे दो त्रुटि लव हैं ॥ १० । ११ ॥ व दो लव का यव कहा गया है और पन्द्रह यवों से काष्ठाकही होती है व तीस काष्ठा कला कहेगये हैं व तीस कलाका क्षण माना गया है ॥ १२ ॥ व ज्योतिषी लोग बारह क्षण को मुहूर्त का प्रमाण कहते हैं और विद्वानोंने तीस मुहूर्त का दिनरात

मुक्तकरैंगे तदनन्तर युद्ध में पैठे हुए तुम हारको न पावोगे ॥ १७ ॥ हे अग्निदेव जी ! क्रोधितहोती हुई उसने जो तुमको सर्वभक्षी कहा है इसलिये बहुधा तुम्हा
री ज्वालाओं से अगाड़ी छुई हुई अशुचिभी वस्तु ॥ १८ ॥ शीघ्रही पवित्रता को प्राप्त होगी तदनन्तर पूजन को पावोगे व स्वाहा स्त्री के द्वारा देवों को भलीभांति
तृप्त करावोगे ॥ १९ ॥ व मेरे वचनसे स्वधास्त्री के द्वारा निस्सन्देह समस्त पितरों को तृप्त करावोगे हे रुद्रजी ! जो उन सावित्री ने प्रिया (पत्नी) के साथ वियोग
को कहा है ॥ २० ॥ इसलिये गौरी ऐसे नामसे प्रसिद्ध हिमालय की उत्तम कन्या उससे अत्यन्त श्रेष्ठ तुम्हारी स्त्री होगी ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे

त्वंवह्नेसर्वभक्षश्च यत्प्रोक्तोरुष्टयातया ॥ तदमेध्यमपिप्रायःस्पृष्टंतेर्चिभिरग्रतः ॥ १८ ॥ मेध्यतांयास्यतिक्षिप्रं
ततःपूजामवाप्स्यसि ॥ स्वाहयाभार्य्ययाचैव देवान्सन्तर्पयिष्यसि ॥ १९ ॥ स्वधयापिपितॄन्सर्वान्ममवाक्यादसंश
यम् ॥ यद्रुद्रप्रिययासार्द्धं वियोगःकथितस्तया ॥ २० ॥ तस्याःश्रेष्ठतराचान्या तवभार्य्याभविष्यति ॥ गौरीनामेतिवि
ख्याता हिमाचलसुताशुभा ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगाय
त्रीवरप्रदानंनामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतेषांवरान्दत्त्वा सर्वेषांशापगामिनाम् ॥ मौनव्रतधराभूत्वा निविष्टाथधरातले ॥ १ ॥ ततोदेवगणा
स्सर्वे तेचसर्वेमहर्षयः ॥ साधुसाध्वितितांप्रोक्त्वा ततःप्रोचुरिदंवचः ॥ २ ॥ एतांदेवप्रसादेन ब्राह्मणानांविशेषतः ॥
पूजयिष्यन्तिमर्त्यैत्र सर्वेलोकास्समाहिताः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणंपूजयित्वातु पश्चादेनांसुरेश्वरीम् ॥ पूजयिष्यन्तियेमर्त्या

नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये गायत्रीवरप्रदानन्नामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । कालादिक परमान अरु ब्रह्मज्ञान को यत्न । इकसौ चौरासिवेंमहँ कह्योसूत मुनिरत्न ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उन समस्त शापगामियों को वरदेकर
इसके अनन्तर मौनव्रत धारिणी होकर गायत्री भूतल पै बैठगई ॥ १ ॥ तदनन्तर वे समस्त सुर समूह और वे सम्पूर्ण महर्षि बहुत अच्छा २ ऐसा कहकर तदनन्तर
उन गायत्रीसे यह वचन बोले ॥२॥ कि विशेषकर ब्राह्मणों व देवताओंकी प्रसन्नतासे इस मृत्युलोकमें सावधान होते हुए सब मनुष्य इन गायत्रीजीको पूजैंगे ॥ ३ ॥

सबही जातियों व ब्राह्मणों के न पूजने योग्य कहा है ॥ ७ ॥ परन्तु समस्त भूतल में सब ब्रह्मस्थानों में ब्रह्माके विना कुछ कार्य सिद्धिको न प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ व कृष्णके पूजने में जो पुण्यहै व शिवजी के लिङ्ग पूजनेमें जो पुण्य होती है उसके कोटि गुना फल सदैव ब्रह्मा के दर्शनसे होगा व सब त्योहारों में निस्सन्देह विशेषतासे होवैंगे व हे विष्णुजी ! तुमसे उसने कहा है कि जब मनुष्य का जन्म पावोगे ॥ ९ । १० ॥ उसमें भी तुमको पराई सेवकाई होगी इसलिये वहां दो रूपकरके जन्म पावोगे ॥ ११ ॥ व उसने जो मेरे इस गोपसंज्ञकवंश को कहा है उसमें तुम पवित्र करने के लिये बहुतसमय तक वृद्धिको पावोगे ॥ १२ ॥ एक कृष्णनामक

ववर्णानांविप्रादीनांसुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ ब्रह्मस्थानेषुसर्वेषुसमग्रेधरणीतले ॥ नब्रह्मणाविनाकिञ्चित्कृत्यंसिद्धिमुपेष्यति ॥ ८ ॥ कृष्णार्चनेचयत्पुण्यं यत्पुण्यंलिङ्गपूजने ॥ तत्फलंकोटिगुणितं सदास्याद्ब्रह्मदर्शनात् ॥ ९ ॥ भविष्यतिनसन्देहो विशेषात्सर्वपर्वसु ॥ त्वञ्चविष्णोतयाप्रोक्तो मर्त्यजन्मयदाप्स्यसि ॥ १० ॥ तत्रापिपरभृत्यत्वं परेषांतेभविष्यति ॥ तत्कृत्वारूपद्वितयंतत्रजन्मत्वमाप्स्यसि ॥ ११ ॥ यत्तयाकथितोवंशो ममायंगोपसंज्ञितः ॥ तत्रत्वंपावनार्थाय चिरंवृद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२ ॥ एकःकृष्णाभिधानस्तु द्वितीयोर्जुनसंज्ञितः॥तदात्मनोर्जुनाख्यस्य सारथ्यंत्वंकरिष्यसि ॥१३॥ मयाकृतेपिशप्तास्तेगोपायास्यन्तिपूज्यताम् ॥ सर्वेषामेवलोकानां देवानाञ्चविशेषतः ॥१४॥ यत्रयत्रवसिष्यन्तितद्वंशप्रभवानराः ॥ तत्रतत्राश्रयोवासोवनेपिप्रभविष्यति॥१५॥ भोभोःशक्रभवानुक्तस्तयाकोपप्रमुक्तया॥ पराजयंरिपोःप्राप्य कारागारंपतिष्यति॥१६॥तन्मुक्तिंवैस्वयंब्रह्मामद्वाक्येनकरिष्यति॥ ततःप्रविष्टासंग्रामे नपराजयमाप्स्यसि॥१७॥

व दूसरे अर्जुन नामक होंगे उन दोनों आत्मा (शरीरों) के मध्य में तुम अर्जुन नामक के सारथी का भावकरोगे ॥ १३ ॥ व मेरे लिये शाप दिये हुए वे गोप भी सबही मनुष्यों व विशेषकर देवताओं की पूज्यता को प्राप्त होवैंगे ॥ १४ ॥ व उन के वंश में उपजे हुए मनुष्य जहां २ बसैंगे वहां २ वन में भी आश्रय व निवास होगा ॥ १५ ॥ हे इन्द्र जी ! कोप से संयुत उसने आपसे कहा है कि शत्रु से पराजय पाकर कारागृह में पड़ोगे ॥ १६ ॥ मेरे बचन से आपही ब्रह्माजी उसे

है हे द्विजोत्तमो ! मुझ से जो पूंछागया इस समस्त सावित्रीजी के माहात्म्य को तुम लोगोंसे कहा फिर तुम सबोंसे क्या कहूं ॥१०५।१०६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सावित्रीमाहात्म्यन्नामद्व्यशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १८२ ॥ ❀ ॥

दो०। दियो देव द्विज आदिकन गायत्री वरदान। इकसौ और तिरासि महँ सोई करत बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जब क्रोध समेत सावित्री जी इसप्रकार चलीगई तब वहां गायत्री ने क्या किया व ब्रह्मादिक देवताओंने भी क्या किया है ॥ १ ॥ इस समस्त वृत्तान्तको हम लोगों से कहिये क्योंकि हम सबों

द्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोहंद्विजोत्तमाः ॥५॥ सावित्र्याःकृत्स्नमाहात्म्यं किंभूयःप्रवदामिवः ॥१०६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसावित्रीमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

ऋषयऊचुः ॥ एवंगतायांसावित्र्यांसकोपायांचसूतज ॥ किंकृतंतत्रगायत्र्या ब्रह्माद्यैश्चापिकिंसुरैः ॥१॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥कथंशापान्वितादेवास्संस्थितायज्ञमण्डपे ॥२॥ सूतउवाच ॥ गतायामथसावित्र्यांशापंदत्त्वाद्विजोत्तमाः ॥ गायत्रीसहसोत्थाय वाक्यमेतदुदैरयत् ॥ ३ ॥ पूज्याचसर्वदेवानां ज्येष्ठाश्रेष्ठाचसद्गुणैः ॥ परंस्त्रीणांस्वभावोयं सर्वासांसुरसत्तमाः ॥ ४ ॥ अपिसह्योवज्रपातः सपत्न्यानपुनःकथम् ॥ ५ ॥ मत्कृतेयेचशपितास्सावित्र्याब्राह्मणास्सुराः ॥ तेषामहंकरिष्यामि शक्त्यासूद्धरणंस्वयम् ॥ ६॥ अपूज्योयंविधिःप्रोक्तस्तयामन्त्रपुरस्सरः ॥ सर्वेषामे

को बड़ा आश्चर्य है कि शापसे संयुत देवता यज्ञ मण्डप में कैसे भलीभांति स्थितहुए हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर जब शापदेकर सावित्री जी चलीगईं तब अचानक गायत्री उठकर यह वचन बोलीं ॥ ३ ॥ कि हे सुरोत्तमो ! सावित्री सब देवों के पूजनीय व जेठी व उत्तम गुणों से श्रेष्ठ थीं परन्तु समस्त स्त्रियों का यह स्वभाव होता है ॥ ४ ॥ वज्रपात भी सहने के योग्य है फिर सौति के वचन को क्या कहना है ॥ ५ ॥ मेरे लिये सावित्री ने जिन ब्राह्मणों व देवताओं को शाप दिया है मैं अपनी शक्तिसे आपही उनका उत्तम उद्धार करूंगी ॥ ६ ॥ हे देवोत्तमो ! उन सावित्री ने मन्त्रपूर्वक इन ब्रह्माको

वर्षतक स्वर्ग में बसती है व जो स्त्री सावित्री का उद्देशकर फलदान करती है ॥ ९५ ॥ वह फल संख्या के प्रमाण भर युगोंतक स्वर्ग में आनन्द करती है व उन सावित्री की दाहिनी मूर्ति के समीप पतिसमेत जो स्त्री विशेषकर स्त्रियों के लिये मिष्टान्न देती है वह हे द्विजोत्तमो ! अन्नसंख्या की प्रमाण भर युगोंतक स्वर्ग में हर्षित होती है ॥ ९६ । ९७ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहां एक रससे व एकही अन्नसे भलीभांति श्राद्ध करता है ॥ ९८ ॥ उसको भी वही पुण्य होती है जो कि गयाजीके श्राद्धसे होवै है हे द्विजोत्तमो ! सन्ध्या समय के भली भांति प्राप्त होनेपर उन सावित्रीजीकी दक्षिण दिशामें बैठाहुआ जो ब्राह्मण कुशोंसे छिरके

यासमुद्दिश्य फलदानंकरोतिच ॥ ९५ ॥ फलसङ्ख्याप्रमाणानि युगानिदिविमोदते॥ मिष्टान्नंयच्छतेयाच नारीणाञ्च विशेषतः ॥ ९६ ॥ तस्यादक्षिणमूर्तौच भर्त्रासार्कंद्विजोत्तमाः ॥ सस्यसङ्ख्याप्रमाणानि युगानिदिविमोदते ॥ ९७ ॥ यःश्राद्धंकुरुतेतत्र सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ रसेनैकेनसस्येनतथैकेनद्विजोत्तमाः ॥ ९८ ॥ तस्यापिजायतेपुण्यं गयाश्राद्धेनयद्भवेत् ॥ यःकरोतिद्विजस्तस्या दक्षिणांदिशमाश्रितः ॥ ९९ ॥ सन्ध्योपासनमेकन्तु कुशैस्संप्रोक्षितैर्जलैः ॥ सायन्तनेचसंप्राप्ते कालेब्राह्मणसत्तमाः ॥ १०० ॥ येनसन्ध्योदितासन्ध्या सम्यग्द्वादशवार्षिकी ॥ योजपेद्ब्राह्मणस्तस्या सावित्रींपुरतःस्थितः ॥ १ ॥ तस्ययद्यत्फलंविप्राः श्रूयतांतद्वदामिवः ॥ दशभिर्जन्मजनितं शतेनचपुराकृतम् ॥ २ ॥ त्रियुगन्तुसहस्रेण तस्यनश्यतिपातकम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चमत्कारपुरंप्रति ॥ ३ ॥ गत्वातांपूजयेद्देवीं श्रोतव्याचविशेषतः ॥ सावित्र्यमिदमाख्यानंयःपठेच्छृणुयाच्चवा ॥ ४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सुखभागत्रजायते ॥ एत

हुये जलों के द्वारा केवल सन्ध्योपासन करता है ॥ ९९ । १०० ॥ जिससे कि बारह वर्षवाली सन्ध्या भलीभांति ध्यान में कही गई है सावित्री जी के अगाड़ी बैठाहुआ जो ब्राह्मण गायत्री को जपताहै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसका जो जो फलहै उसको मैं कहताहूं सुनिये कि दश गायत्री के जपने से जन्म में उपजा हुआ व सौसे पुरातन समय किया हुआ ॥ २ ॥ व हजार से तीन युगों में किया हुआ पातक उसका नष्ट होजाताहै इसलिये सब उपायसे चमत्कार नगरको ॥३॥ जाकर उस देवी को पूजै व विशेषकर सुनना चाहिये जो मनुष्य इस सावित्रीवाले कथानक को पढ़ता या सुनताहै ॥ ४ ॥ वह समस्त पातकों से छूटाहुआ यहां सुखभागी होता

उस यज्ञ के ऊपर चढ़ीं वहां उन सावित्री जी का वह वामचरण आजभी देख पड़ता है ॥ ८५ ॥ जो कि पर्वत के किनारे पै स्थित व समस्त पापों का विनाशक व पुण्यदायक है पाप आचरणवाला भी जो पुरुष उसको पूजता है ॥ ८६ ॥ समस्त पातकों से छूटाहुआ वह परम पद को प्राप्त होता है जो पुरुष जिस कामना को चिन्तनकर उस चरण को पूजता है ॥ ८७ ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि उसको वह मनुष्य अवश्य प्राप्त होता है सूतजी बोले कि इसप्रकार उससमय अपने पतिके सकाश से बड़े निरादर को पाकर पर्वत पै टिकाश्रय किये हुये वे सावित्री देवी वहां स्थित हुई विशेषकर पौर्णमासीमें जो उन सावित्री जी को भलीभांति

अद्यापितत्पदंवामं तस्यास्तत्रप्रदृश्यते॥८५॥ सर्वपापहरंपुण्यं स्थितंपर्वतरोधसि॥ अपिपापसमाचारो यस्तंपूजयतेनरः ॥ ८६ ॥ सर्वपातकनिर्मुक्तः सयातिपरमंपदम्॥ योयंकाममभिध्याय तमर्चयतिमानवः ॥ ८७ ॥ अवश्यंतदवाप्नोति यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रस्थितादेवी सावित्रीपर्वताश्रया ॥ ८८ ॥ अपमानंमहत्प्राप्य सकाशात्स्वपतेस्तदा ॥ यस्तामर्चयतेसम्यक्पूर्णमास्यांविशेषतः ॥ ८९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वयंयेवाञ्छितांस्ततः॥ यानारीकुरुतेभक्त्या दीपदानंतदग्रतः ॥ ९० ॥ रक्ततन्तुभिराज्येन श्रूयतांतस्ययत्फलम्॥ यावन्तस्तन्तवस्तस्या दह्यन्तेदीपसम्भवाः ॥ ९१ ॥ मुहूर्त्तानिचयावन्ति घृतदीपश्चतिष्ठति॥ तावज्जन्मसहस्राणि सास्यात्सौभाग्यभागिनी ॥ ९२ ॥ पुत्रपौत्रसमोपेता धनिनीशीलमण्डना ॥ नदुर्भगानवन्ध्याच नचकाणाविरूपिका ॥ ९३ ॥ यानृत्यंकुरुतेनारी विधवापितदग्रतः ॥ गीतंवाकुरुतेतत्र तस्यायावन्तितत्रच ॥९४॥ तावन्तिदिविवर्षाणि सहस्राणिवसेचसा॥ सावित्रीं

पूजन करता है ॥ ८८ । ८९ ॥ तदनन्तर आपही से चाहे हुये समस्त मनोरथों को पाता है और जो स्त्री भक्तिसे उन सावित्रीजी के आगे घृतसमेत लालडोरों से दीप दान करती है उस का फल सुनिये कि दीपसे उपजे हुये जितने डोरे उसके जलते हैं ॥ ९० । ९१ ॥ व घृतका दीपक जितने मुहूर्ततक ठहरता है उतने हजार जन्म तक वह सौभाग्यभागिनी होवै है ॥ ९२ ॥ व पुत्र, पौत्रों से संयुत, धनवती व शीलसे शोभित होती है और न दुष्टभाग्यवाली न बांझ न एकाक्षिणी न कुरूपिणी होती है ॥ ९३ ॥ व जो विधवा भी स्त्री वहां उन सावित्री जी के आगे नृत्य करती है या वहां जितने मुहूर्त उनके आगे गान करती है ॥ ९४ ॥ वह उतनेही हज़ार

जो सम्पूर्ण धन है वह न भोगने योग्य होगा ॥ ७५ ॥ वैसेही पांच पतियोंवाली व दोष से संयुत यह जहां पैठीहै और भलीभांति टिके हुये जे समस्त सुरसमूह यहां सहायता करते हैं ॥ ७६ ॥ वे निस्सन्देह सन्तान से रहित होवैंगे व दानवों से तिरस्कृत होते हुये केवल क्लेश को पावैंगे ॥ ७७ ॥ व इसके बगल में जो और चार गोपियां बैठी हैं उन सौतियों से आभीरी ऐसी कहीगई व अन्न से प्रसन्न वे समस्त दूतीपूर्वक नित्यही मेरे वैर में परायणहैं उनका कभी आपस में संग न होगा ॥ ७८ । ७९ ॥ व यहां अन्य दूसरे से भी दृष्टिमात्र न अपेक्षा कीजावैंगी व शरीरधारियों के न जाने योग्य व दुर्गम पर्वत के अग्रभागों में समस्त सुखों से रहित

खविप्लवे ॥ तस्माद्यत्तेऽखिलंवित्तमभोग्यंसम्भविष्यति ॥ ७५ ॥ तथादेवगणास्सर्वे साहाय्यंयेसमाश्रिताः ॥ अत्रकुर्वन्तिदोषाढ्यायज्ञेवैपञ्चभर्तृका॥७६॥सन्तानेनपरित्यक्तास्संभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ दानवैश्चपराभूता दुःखंप्राप्स्यन्तिकेवलम् ॥ ७७॥ एतस्याःपार्श्वतश्चान्याश्चतस्रोयाव्यवस्थिताः ॥ आभीरीतिसपत्नीभिः प्रोक्ताधान्यप्रहर्षिताः ॥ ७८ ॥ ममद्वेषपरानित्यं सर्वादूतीपुरस्सराः ॥ तासांपरस्परंसङ्गःकदाचिन्नभविष्यति ॥ ७९ ॥ नान्येनात्रपरेणापि दृष्टिमात्रमपेक्षिताः ॥ पर्वताग्रेषुदुर्गेषु अगम्येषुचदेहिनाम् ॥ ८० ॥ वासःसंपत्स्यतेनित्यंसर्वभोगैर्विवर्जितः ॥ एवमुक्त्वाथसावित्री कोपोपहतचेतसा ॥ ८१ ॥ विसृज्यदेवपत्न्यस्ताः सर्वायाःपार्श्वतःस्थिताः ॥ उदङ्मुखीप्रतस्थेचवार्य्यमाणापिसर्वतः॥ ८२ ॥ सर्वाभिर्देवपत्नीभिर्लक्ष्मीपूर्वाभिरेवच ॥ नात्रस्थास्यामिहेदेव्यो नामापिकिलनोयतः ॥ ८३ ॥ श्रूयतेकामुकस्यास्य तत्रयास्याम्यहंद्रुतम् ॥ एकश्चरणयोन्यस्तो वामःपर्वतरोधसि ॥ ८४ ॥ द्वितीयेनसमारूढा तद्यागस्यतथोपरि॥

निवास प्राप्त होगा ऐसा कहकर इसके अनन्तर सावित्री ने क्रोधके द्वारा ताड़िताचित्तसे ॥ ८० । ८१ ॥ उन सुरस्त्रियों को बिदाकर जो सब कि बगल में बैठी थीं और लक्ष्मीपूर्वकही समस्त सुरस्त्रियों से सब ओर मना कीहुई भी उत्तराभिमुखी होकर प्रस्थान किया व कहा कि हे देवियो ! मैं यहां न टिकूंगी किन्तु इस कामी का प्रसिद्ध में नाम भी न सुन पड़े वहां मैं शीघ्रही जाऊंगी पांवों के मध्य एक बांये चरण को पर्वत के किनारे धरा ॥ ८२ । ८३ । ८४ ॥ व वैसेही दूसरे चरण से

व निस्सन्देह कारागृहमें तुम बहुत समय तक प्राप्तहोगे व हे वासुदेव ! ब्रह्मासे पहले तुमने इस पांच पतिवाली गोपीका अनुमोदन किया उसीकारण निस्सन्देह शाप दूंगी कि हे दुर्मते ! तुमभी पराई सेवकाईको भलीभांति पावोगे ॥६५।६६॥ हे मूढ,रुद्रजी ! जिसकारण समीप टिकेहुये भी तुम इस कर्मकी उपेक्षा(त्याग)करतेहो व मना नहीं करते हो इस लिये मेरे वचन को सुनो ॥ ६७ ॥ कि मैंने पतिके जीतेहुये उसके विरह से उपजे हुये दुःखको सेवन किया है और तुमको स्त्री के मरनेपर क्लेश होगा ॥ ६८ ॥ और जो यह पांच पतियोंवाली व निन्दित गोपी यज्ञ में पैठी है व भलीभांति शङ्कारहित तुम जैसे अन्य उत्तम यज्ञों में हव्य भोजन करते थे वैसेही

कारागारेचिरंकालं सङ्गमिष्यत्यसंशयम् ॥ वासुदेवत्वयायस्मादेषावैपञ्चभर्तृका ॥ ६५ ॥ अनुमोदिताविधेःपूर्वंतस्मा च्छप्स्याम्यसंशयम् ॥ त्वंचापिपरभृत्यत्वं संप्राप्स्यसिसुदुर्मते ॥ ६६ ॥ समीपस्थोपिरुद्रत्वं कर्म्मैतद्यदुपेक्ष्यसे ॥ नि षेधयसिनोमूढ तस्माच्छृणुवचोमम ॥ ६७ ॥ जीवमानस्यकान्तस्यमयातद्विरहोद्भवम् ॥ संसेवितंमृतायान्ते परितापो भविष्यति ॥ ६८ ॥ यच्चयज्ञेप्रविष्टेयं गर्हितापञ्चभर्तृका ॥ तथैवचहविर्वह्नेर्यत्त्वंगृह्णासिलोल्यतः ॥ ६९ ॥ यथान्येषुसु यज्ञेषु सम्यक्छङ्काविवर्जितः ॥ तस्माद्दुष्टसमाचारः सर्वभक्षोभविष्यसि ॥ ७० ॥ स्वधयास्वाहयासार्द्धं सदादुःखमवा प्स्यसि ॥ नैवाप्स्यसिपरंसौख्यं सर्वकालंयथापुरा ॥ ७१ ॥एतेचब्राह्मणास्सर्वे लोभोपहतचेतसः॥होमंप्रकुर्वतेचैव मखे चापिविगर्हिते ॥ ७२ ॥ वित्तलोभेनयत्रैषाप्रविष्टापञ्चभर्तृका ॥ तथाच्चवचनंप्रोक्तं ब्राह्मणीयंभविष्यति ॥ ७३ ॥ दरि द्रोपहतास्तस्माद्वृषलीपतयस्तथा ॥ वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्तिनसंशयम् ॥ ७४ ॥ भोभोवित्तपतेवित्तं ददासिम

जिसलिये चंचलता या सतृष्णता से तुम अग्निके द्वारा हव्यको ग्रहण करते हो उसी कारण दुष्ट आचरणवाले होते हुये तुम सर्वभक्षी होवोगे ॥ ६९।७० ॥ व स्वधा स्वाहा समेन तुम सदैव दुःख पावोगे और जैसे पुरातन समय सब काल में सुख पाते थे वैसेही न पावोगे ॥ ७१ ॥ व लोभ से नष्टचित्तवाले ये समस्त ब्राह्मण धन के लोभसे निन्दित भी यज्ञ में होम करते हैं जहां कि यह पांच पतियोंवाली पैठ आई थी व वैसेही यह वचन बोले कि यह ब्राह्मणी होगी ॥ ७२ । ७३ ॥ उसी कारण शूद्रास्त्रियों के पति व निर्धनता से नष्ट व निस्सन्देह वेदों के बेचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ हे धनाधीश ! तुम यज्ञ के नाशमें धन देते हो उसीकारण तुम्हारा

इसलिये जैसे भूतल में अन्य देवताओं का पूजन होताहै वैसेही आजसे लगाकर इस समय कोई तुम्हारा पूजन न करैगा जो मनुष्य मन्त्रसे पवित्र तुम्हारा पूजन करैगा वह ब्राह्मण, क्षत्रिय भी व वैश्य या शूद्र भी होवै उस के वंश में मृत्यु पर्यन्त दरिद्र व दुःखसंयुत होगा व जिसलिये यह निन्दित अहीरकी कन्या मेरे स्थान में हुई है ॥ ५५ । ५६ । ५७ ॥ उसी कारण मेरे ही वचन से सन्तान न होगी व सुरस्त्रियों के समान संसार में पूजन न पावैगी ॥ ५८ ॥ और जो स्त्री कहीं इसका भी पूजन करैगी वह दुःखसंयुत व बांझ और दौर्भाग्य से संयुक्त होगी ॥ ५९ ॥ व जैसे यह पांच पतियोंवाली है वैसेही नष्ट चरित्रोंवाली व पापिनी होगी

श्चित्सांप्रतंप्रकरिष्यति ॥ अद्यप्रभृतियःपूजां मन्त्रपूतांकरिष्यति ॥ ५५ ॥ तवमर्त्योधरापृष्ठेयथान्येषांदिवौकसाम्॥ भविष्यतिचतद्वंशे दरिद्रोदुःखसंयुतः ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि वैश्यःशूद्रोपिचान्त्यम् ॥ एषाभीरसुतायस्मा न्ममस्थानेविगर्हिता ॥ ५७ ॥ भविष्यतिनसंतानं तस्माद्वाक्यान्ममैवहि॥ नपूजांलप्स्यतेलोकेयथावद्देवयोषितः ॥ ५८ ॥ करिष्यतिचयानारी पूजामस्याअपिकचित् ॥ साभविष्यतिदुःखाढ्या बन्ध्यादौर्भाग्यसंयुता ॥ ५९ ॥ पापिष्ठानष्टचारित्रा यथैषापञ्चभर्तृका॥नच्वान्तियास्यतेलोकेयथाचासौतथैवसा ॥ ६० ॥ एतस्याआत्मजाःपापाभविष्यन्तिनिशाचराः ॥ सत्यशौचपरित्यक्ताशिष्टसङ्गविवर्जिताः ॥ ६१ ॥ अनिकेताभविष्यन्ति वंशेस्याअल्पजीविनः॥ एवंशप्त्वाविधिंसाध्वी गायत्रींचततःपरम्॥ ६२ ॥ ततोदेवगणान्सर्वाञ्छशापचतदासती॥ भोभोःशक्रसमानीता यद्देषापञ्चभर्तृका ॥ ६३ ॥ तदाप्नुहिफलंसम्यक्छुभंकृत्वाशचीपते॥ त्वंशत्रुभिर्जितोयुद्धे बन्धनंसमवाप्स्यसि॥६४॥

व जैसे यह संसार में क्षमाको नहीं प्राप्त होती है वैसेही वह होगी ॥ ६० ॥ और इस के पुत्र पापी व निशाचर और सत्य, शौच से छुटे हुये व उत्तम जनों के संग से रहित होवैंगे ॥ ६१ ॥ व इसके वंश में अल्पजीवी व बिनस्थानवाले होवैंगे इसप्रकार पतिव्रता सावित्री ने ब्रह्मा को शाप देकर तदनन्तर गायत्री को शापदिया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर उससमय पतिव्रता सावित्री ने समस्त सुरसमूहों को शापदिया कि हे इन्द्रजी ! जिसलिये यह पांच पतियोंवाली तुमसे भलीभांति लाई गई ॥ ६३ ॥ उसी कारण हे इन्द्रजी ! भलीभांति शुभ करके फल को पावोगे कि युद्ध में शत्रुओं से जीते हुये तुम बन्धनको पावोगे ॥ ६४ ॥

पौत्रों व अन्य देवताओं तथा ब्राह्मणों के अयोग्य है ॥ ४५ ॥ अथवा यह तुम्हारा दोष नहीं है क्योंकि कामदेव के वश में प्राप्तहुये मनुष्य न लजाते हैं और न कार्य, अकार्य्य व शुभ अशुभ को विशेषकर जानते हैं ॥ ४६ ॥ कामदेव के वश में प्राप्त पुरुष कार्य्यको अकार्य्य मानता है व मित्रको शत्रु मानता है और शत्रुको मित्र मानता है ॥ ४७ ॥ जैसे जुवां खेलनेवाले में सत्य व चोर में मित्रता और जैसे राजाके मित्र नहीं होता है वैसेही कामियों के लज्जा नहीं होती है ॥ ४८ ॥ चाहै अग्नि ठण्ढी भी होवै व चन्द्रमा अग्नि के समान होवै व यदि क्षारसमुद्र मीठा होवै परन्तु कामी निश्चयकर नहीं लजाता है ॥ ४९ ॥ मेरे यह निश्चयकर

दिवौकसाम् ॥ अयोग्यंचैवविप्राणां यदेतत्कृतवानसि ॥ ४५ ॥ अथवानैषदोषस्ते नकामवशगानराः ॥ लज्जन्ति चविजानन्ति कृत्याकृत्यंशुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ अकृत्यंमन्यतेकृत्यं मित्रंशत्रुञ्चमन्यते ॥ शत्रुञ्चमन्यतेमित्रं जनः कामवशङ्गतः ॥ ४७ ॥ द्यूतकारेयथासत्यं यथाचौरेचसौहृदम् ॥ यथान्टपस्यनोमित्रं तथालज्जानकामिनाम् ॥ ४८ ॥ अपिस्याच्छीतलोवह्निश्चन्द्रमादहनात्मकः ॥ क्षारोऽब्धिर्यदिमिष्टस्स्यान्नकामीलज्जतेध्रुवम् ॥ ४९ ॥ नमेस्याद्दुःख मेतद्धियत्सापत्न्यमुपस्थितम् ॥ सहस्रमपिनारीणां पुरुषाणांयथाभवेत् ॥ ५० ॥ कुलीनानाञ्चशुद्धानां स्वजात्यानां विशेषतः ॥ त्वंकुरुष्वापराणांच यदिकामवशङ्गतः ॥ ५१ ॥ एतत्पुनर्महादुःखं यदाभीराविगर्हिता ॥ वेश्येवनष्टचारित्रात्वयोढाबहुभर्तृका ॥ ५२ ॥ तस्मादहंप्रयास्यामि यत्रमामन्यतेविधे ॥ श्रूयतेकामलुब्धस्य मयापरिहृतस्यच ॥ ५३ ॥ अहंविडम्बितायस्मादत्रातीवत्वयाविधे ॥ पुरतोदेवपत्नीनां देवानांचद्विजन्मनाम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्पूजांनतेक

दुःख नहीं है जोकि सौति समीप प्राप्तहुई क्योंकि जैसे कुलीन व शुद्ध व विशेष कर निजजातिवाले पुरुषों के हजारों भी स्त्रियां होती हैं वैसेही यदि तुम कामदेव के वश में प्राप्त हो तो अन्य स्त्रियों को कीजिये ॥ ५० । ५१ ॥ व फिर यह महादुःख है जोकि वेश्या के समान नष्ट आचारवाली व बहुत पतियोंवाली निन्दित अहीरिनि को तुमने ब्याहा है ॥ ५२ ॥ उसी कारण हे विधे ! मुझको जहां मानिये याने आज्ञा दीजिये वहां मैं जाऊंगी क्योंकि मुझ से त्यागे हुये व कामदेव के लालचवाले तुम्हारा चरित सुनपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विधे ! जिसकारण यहां तुमने सुरस्त्रियों, देवताओं व ब्राह्मणोंके अगाड़ी मुझको अत्यन्तही विडम्बितकिया ॥५४॥

का समस्त वंश केवल मठा खाताहै ॥ ३५ ॥ व जन्मके सुखसे रहित वह कुल मूत्र,विष्ठाको करके और आदरके आश्रयसे करने योग्य धर्मको नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ चाण्डाल भी जिस निन्दित कर्मको नहीं करतेहैं उसको अहीर करतेहैं इसलिये तुमने यह क्या किया ॥ ३७ ॥ हे विधे ! यदि यज्ञमें अन्य स्त्री से तुम्हारा अवश्य कार्य था तो त्रिलोक में पैदा हुई किसी भी ब्राह्मणी का न ब्याह किया हे वृथामूढ ! तुम निश्चय कर धूर्त-हो जिसलिये कि तुमनें पवित्रता से रहित कन्याको रतिसे दूषित किया है ॥ ३८ । ३९ ॥ जो यह गोपकन्या पहले बहुत नरोंसे भोगीहुई प्रायः अतिपापिनी व वेश्याजनों से सौगुना अधिक है ॥ ४० ॥ व वैसेही चाण्डाल से उपजी

नजानन्तिचकर्तव्यं धर्म्ममादरसंश्रयात् ॥ ३६ ॥ अन्त्यजाअपिनोकर्म्मयत्कुर्वन्तिविगर्हितम् ॥ आभीरास्तच्चकुर्वन्ति तत्किमेतत्त्वयाकृतम् ॥ ३७ ॥ अवश्यंयदितेकार्य्यं भार्य्ययापरयामखे ॥ तत्त्वयाब्राह्मणीकापि प्रसूताभुवनत्रये ॥ ३८ ॥ नोढाविधेवृथामूढ नूनंधूर्तोसिमेमतिः ॥ यत्त्वयाशौचसंत्यक्ताकन्यारतिप्रदूषिता ॥ ३९ ॥ प्रभुक्तावहुभिःपूर्वं तथागोपकुमारिका ॥ एषाप्रायःसुपापाच वेश्याजनशताधिका ॥ ४० ॥ अन्त्यजातातथाचैषा क्षतयोनिःप्रजायते ॥ नान्यागोपकुमारीणां काचित्तादृक्प्रजायते ॥ ४१ ॥ मातृकंपैतृकंवंशंश्वशुरञ्चप्रपातयेत् ॥ तस्मादेतेनकृत्येनगर्हितेनधरातले ॥ ४२ ॥ नत्वंप्राप्स्यसितांपूजां यथान्येविबुधोत्तमाः ॥ अनेनकर्म्मणाचैव यदिमेसुकृतंकचित् ॥ ४३ ॥ पूजांयेचकरिष्यन्ति भविष्यन्तिचनिर्द्धनाः ॥ कथंनलज्जितोसित्वमेतत्कुर्वन्विगर्हितम् ॥ ४४ ॥ पुत्राणामथपौत्राणामन्येषाञ्च

हुई यह क्षत (भ्रष्ट) योनि वाली है और अहीरकी कन्याओंके बीच में वैसी और कोई नहीं है ॥ ४१ ॥ और यह माता, पितावाले वंश को व श्वशुर को अधःपात करावैगी इस लिये इस निन्दित कर्म से तुम भूतल में पूजा न पावोगे जैसे कि और सुरोत्तम पाते हैं और इस कर्म से यदि कहीं मेरा पुण्य होगा ॥ ४२ । ४३ ॥ तो जो तुम्हारा पूजनकरैंगे वे निर्धनी होवैंगे तुम ऐसा निन्दित कर्म करतेहुये कैसे नहीं लज्जित होते हो ॥ ४४ ॥ तुमने जो इस निन्दित कर्म को किया है वह पुत्रों

में स्थित हुये शृंगार को बोझ मानती थीं आंसुओंसे पूर्ण नयनोंवाली व दीन होती हुई गमन करती भई ॥ २५ ॥ तदनन्तर क्लेशसे जैसे कारागृह दृष्टिमार्गको दुःख से देखने योग्य होताहै वैसेही उस यज्ञमण्डपको वे सावित्री जी इस भांति क्लेशसे प्राप्त होकर खड़ीहुईं॥२६॥इसके अनन्तर यज्ञमण्डपमें भलीभांति प्राप्तहुई सावित्री को देखकर उसीक्षण चतुरानन जी लज्जा से नीचे मुख करके स्थित हुये ॥ २७ ॥ व शिव, इन्द्र तथा विष्णु व और जे देवता उस यज्ञ में बैठे थे वे वैसेही याने नीचे मुखवाले होगये ॥ २८ ॥ व भयभीत मनवाले वे समस्त द्विजोत्तम वेदध्वनि को छोड़कर तदनन्तर मूकता को प्राप्त होगये याने चुपहोरहे ॥ २९ ॥ इसके अ-

क्षणादीना प्रजगाममहासती ॥ २५ ॥ ततःकृच्छ्रात्समासाद्य सैवंतंयज्ञमण्डपम् ॥ कृच्छ्रात्कारागृहंयद्वद्दुष्प्रेक्ष्यंदृक्पथस्यतु ॥ २६ ॥ अथदृष्ट्वातुसम्प्राप्तां सावित्रींयज्ञमण्डपे ॥ तत्क्षणाच्चचतुर्वक्त्रः संस्थितोधोमुखोह्रिया ॥ २७ ॥ तथाशम्भुश्चशक्रश्च वासुदेवस्तथैवच ॥ येचान्येविबुधास्तत्रसंस्थितायज्ञमण्डपे ॥ २८ ॥ तेचब्राह्मणशार्दूलास्त्यक्त्वा वेदध्वनिन्ततः ॥ मूकीभावंगतास्सर्वे भयसंत्रस्तमानसाः ॥ २९ ॥ अथसंवीक्ष्यसावित्री सपत्न्यासहितंपतिम् ॥ कोपसंरक्तनयना परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥ सावित्र्युवाच ॥ किमेतद्युज्यतेकर्तुं तववृद्धतमाकृतेः ॥ कृतवानसियत्पत्नीमेतांगोपसमुद्भवाम् ॥ ३१ ॥ उभयोःपक्षयोर्यस्याः स्त्रीणांकान्तायथेप्सिताः ॥ शौचाचारपरित्यक्ता धर्म्मकृत्यपराङ्मुखाः ॥ ३२ ॥ यस्यान्वयेजनास्सर्वे पशुधर्मरतोत्सवाः ॥ सोदर्य्यांभगिनींत्यक्त्वा जननींचतथापराम् ॥ ३३ ॥ तथाकुलेप्रसेवन्ते सर्वेनारींजनाःपराम् ॥ यथाहिपशवोदन्तितृणानिचजलानिच ॥ ३४ ॥ विण्मूत्रंकेवलंचक्रुर्भारोद्वहनमे

नन्तर सौति के समेत पति को देखकर क्रोधसे अति लाल लोचनोंवाली सावित्रीने कठोर वचन कहा ॥ ३० ॥ सावित्री जी बोलीं कि अतिवृद्ध आकारवाले तुमको क्या यह करने को योग्यथा जो कि गोप से उपजीहुई इसको तुमने स्त्री कियाहै ॥ ३१ ॥ कि जिसके दोनों पक्षों में स्त्रियों के पति इच्छानुकूल पवित्रता व आचारसे छूटे व धर्मकार्योंमें विमुख होते हैं ॥ ३२ ॥ जिसके वंशमें सब मनुष्य पशुधर्म के उछाहों में तत्पर होते हैं व सगी बहन व अन्य माताको छोड़कर ॥ ३३ ॥ व वंश में अन्यस्त्री को सब मनुष्य सेवन करते हैं जैसे कि पशु तृण व जल को खातेहैं ॥ ३४ ॥ और केवल विष्ठा, मूत्र व बोझ लेचलनाही कार्य करते हैं वैसेहीं इस गोपी

नस्य (उदासी) में प्राप्त होकर स्थिरताको प्राप्त हुई उससमय उन सावित्री को देखकर उन सुरस्त्रियों ने नारद से कहा ॥ १६ ॥ कि तुमको धिक्कार है २ तुमतो स्नेह में वैराग्य को करानेवाले कलिप्रियहो उन ब्रह्माजीके इस समस्त भेदको तुमने किया है ॥ १७ ॥ गौरी बोलीं कि देवि ! ये झगड़े के प्रियवाले मुनि झूठे सांचे वचन को बोलते हैं और इसी कर्म से ये मुनि सदैव प्राणों को धारते हैं ॥ १८ ॥ हे सावित्री जी ! पुरातन समय त्रिलोचन (शिव) जी ने मुझसे बार२ कहा है कि हे प्रिये ! यदि मुझसे पैदा हुये सुखों को नित्यही चाहती हो तो तुमको नारद के वचन का विश्वास न करना चाहिये तब से लगाकर मैं कहीं वचन को विश्वास

नस्यंपरंगत्वानिश्चलत्वमुपस्थिता ॥ तान्दृष्ट्वादेवपत्न्यस्ता जगदुर्नारदन्तदा ॥ १६ ॥ धिक्धिक्कलिप्रियस्त्वन्तु रागवैराग्यकारकः ॥ त्वयाकृतंसर्वमेतद्विधेस्तस्यतथान्तरम् ॥ १७ ॥ गौर्युवाच ॥ अयंकलिप्रियोदेवि ब्रूतेसत्यानृतंवचः ॥ अनेनकर्म्मणाप्राणान् बिभर्त्येषसदामुनिः ॥ १८ ॥ अहंत्र्यक्षेणसावित्रि पुराप्रोक्तामुहुर्मुहुः ॥ नारदस्यमुनेर्वाक्यं नश्रद्धेयंत्वयाप्रिये ॥ १९ ॥ यदिवाञ्छसिसौख्यानि मयाजातानिनित्यशः ॥ ततःप्रभृतिनैवाहं श्रद्दधेनवचःक्वचित् ॥ २० ॥ तस्माद्गच्छामहेतत्र यत्रतिष्ठतिनत्वसौ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः सावित्रीहर्षवर्जिता ॥ मखमण्डपमुद्दिश्य प्रस्खलन्तीपदेपदे ॥ २१ ॥ प्रजगामद्विजश्रेष्ठाः शून्येनमनसातदा ॥ प्रतिभात्यंतदागीतं तस्यामधुरमप्यहो ॥ २२ ॥ कर्णमूलंसमायातमसकृद्द्विजसत्तमाः ॥ वन्ध्यंवाद्यंयथावाद्यं मृदङ्गानकपूर्वकम् ॥ २३ ॥ प्रेतसन्दर्शनंयद्वन्नृत्यं तत्सा महासती ॥ वीक्षितुंनचशक्नोति गच्छमानामहामखे ॥ २४ ॥ शृङ्गारञ्चतथाभारं मन्यतेसातनुस्थितम् ॥ वाष्पपूर्ण

नहीं करती हूं ॥ १९ । २० ॥ इसलिये हम सब वहां चलैं कि जहां यह न स्थित होवै उन पार्वती जी के उस वचन को सुनकर सावित्री आनन्दरहित हुई व हे द्विजोत्तमो ! यज्ञमण्डप को उद्देशकर पग २ पै लरखराती हुई सावित्री जी उस समय शून्यमन के द्वारा गईं हे द्विजोत्तमो ! कर्णमूल में बार २ आता हुआ मीठा भी गान उससमय उन सावित्री को उलटा मालूम होताथा याने नहीं रुचता था व मृदङ्ग, ढोलपूर्वक बाजाभी निष्फल बाजनके समान जान पड़ताथा ॥ २१ । २२ । २३ ॥ व महायज्ञ में जाती हुई वे महासती सावित्री जी प्रेतदर्शन के समान उस नाचको देखनेके लिये न समर्थ होतीथीं ॥ २४ ॥ व वे महासती सावित्रीजी शरीर

भलीभांति लाये तदनन्तर विष्णु ने विवाहके लिये अनुमोदन (सम्मति स्वीकार)किया ॥ ५ । ६ । ७ ॥ व ईश्वर ने तुम्हारी छोटी बहन (सौति) का गायत्री नाम किया व समस्त ब्राह्मणों ने यह कहा कि यह ब्राह्मणी होवै ॥ ८ ॥ हे विभो,ब्रह्मन् !हम लोगों के वचन से पाणिग्रहण कीजिये तदनन्तर समस्त देवताओं से कहेहुये उन चतुर्मुख ने ॥ ९ ॥ उस गायत्री को धर्म्मसे पत्नी पाकर शीघ्रही यज्ञ कराया तुम से बहुत कहने से क्या है पत्नीशाला (यज्ञघर) को भलीभांति आई ॥ १० ॥ व हे सुरेश्वरि ! उस गोपी की कटि में रशना (ग्रन्थिबन्धन) युक्त कियागया उस निन्दित कर्म को देखकर मैं यज्ञमण्डप से निकला ॥ ११ ॥ धर्म से रहित

भागे समानीताथतत्क्षणात् ॥ साविष्णुनाविवाहार्थं ततश्चैवानुमोदिता ॥ ७ ॥ ईश्वरेणकृतंनाम गायत्रीचतवानुजा ॥ ब्राह्मणैस्सकलैःप्रोक्तं ब्राह्मणीतिभवत्वियम् ॥ ८ ॥ अस्माकंवचनाद्ब्रह्मन्कुरुहस्तग्रहंविभो ॥ देवैस्सर्वैस्ससम्प्रोक्तस्ततस्तुचतुराननः ॥ ९ ॥ तांपत्नींप्राप्यधर्म्मेण याजयामाससत्वरम् ॥ किंवातेबहुनोक्तेन पत्नीशालांसमागता ॥ १० ॥ रशनांयोजितातस्या गोप्याःकट्यांसुरेश्वरि ॥ तन्दृष्ट्वागर्हितंकर्म्म निष्क्रान्तोयज्ञमण्डपात् ॥ ११ ॥ गच्छवातिष्ठवातत्र मण्डपेधर्म्मवर्ज्जिते ॥ तच्छ्रुत्वासातदादेवी सावित्रीद्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ प्रम्लानचन्द्रभाजाता पद्मिनीवहिमागमे ॥ लतेवच्छिन्नमूलासा चक्रीवप्रियविच्युता ॥ १३ ॥ शुचिशुक्रगतेकाले सरसीवगतोदका ॥ प्रक्षीणचन्द्रलेखेव मृगीमृगविवर्जिता ॥ १४ ॥ सेनेवहतभूपाला सतीवगतभर्तृका ॥ संशुष्कापुष्पमालेव मृतवत्सेवसौरभी ॥१५॥ वैम

उस मण्डप में तुम जावो या ठहरो हे द्विजोत्तमो ! उस समय उस वचन को सुनकर वे सावित्री देवी ॥ १२ ॥ पाला या जाड़के आने पर कमलिनी की नाई व मलिन चन्द्रमा की शोभा के समान होगई व कटी हुई जड़वाली लता के समान और प्रिय (पति) से छुटी हुई चकई के नाई वे होगई ॥ १३ ॥ व ज्येष्ठ,आषाढ़ का समय प्राप्त होने पर गत याने सूखे जलवाले तड़ागके सदृश व अतिक्षीण चन्द्रमा की लकीर के समान और मृग से रहित मृगी की नाई ॥ १४ ॥ व मारेहुये राजावाली सेना के समान व मरेहुये पतिवाली पतिव्रता के नाई व अति सूखीहुई फूलों की माला के सदृश व मरेहुये बछरावाली गऊके समान ॥ १५ ॥ बड़ी वैम-

से संयुत व एक में मिली हुई वे सब जाती थीं ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सावित्रीयज्ञागमनंनामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । यज्ञमाहिं सावित्रि जिमि दीन्ह्यो सबकहँ शाप । इकसौ बैयासिवेंमहँ कहत सूतमुनि आप ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर समीप में प्राप्त हुये बाजाओं के बड़ेभारी शब्दको सुनकर व अपनी माताको जानकर नारदजीने सामने प्रयाण किया ॥ १ ॥ आंसुओं से सबओर डूबेहुये व दीनमनवाले होकर व प्रणाम कर

न्विताः ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसावित्रीयज्ञागमनन्नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथश्रुत्वामहानादं वाद्यानांसमुपस्थितम् ॥ नारदःसंमुखःप्रायाज्ज्ञात्वाचजननींनिजाम् ॥ १ ॥ प्रणिपत्यसुदीनात्मा भूत्वाचाश्रुपरिप्लुतः ॥ प्राहगद्गदयावाचा कण्ठेबाष्पसमावृते ॥ २ ॥ आत्मनःशापरक्षार्थं तस्याः कोपविवृद्धये ॥ कलिप्रियस्तदाविप्रो देवस्त्रीणांपुरःस्थितः ॥ ३ ॥ मेघगम्भीरयावाचा प्रस्खलंस्तुपदेपदे ॥ मयात्वन्देविचाहूता पुलस्त्येनततःपरम् ॥ ४ ॥ स्त्रीस्वभावंसमाश्रित्य दीक्षाकालेपिनागता ॥ ततोविधेस्समादेशाच्छक्रेणान्यासमाहृता ॥ ५ ॥ काचिद्गोपसमुद्भूता कुमारीदेवरूपिणी ॥ गोवक्त्रेणप्रवेश्याथ गुह्यमार्गेणतत्क्षणात् ॥ ६ ॥ आकर्षितामहा

कण्ठको आंसुओं से घिरने पर गद्गदी वाणी से कहा ॥ २ ॥ उससमय सुरस्त्रियोंके आगे खड़ेहुये व झगड़े प्रियवाले विप्र (नारद) ने अपने शापके रक्षाके लिये व उन सावित्री के क्रोध की विवृद्धि के निमित्त पद पद पै लरखराते हुये मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा कि हे देवि ! मैंने तुमको बुलाया तदनन्तर पुलस्त्य ने बुलाया ॥ ३ । ४ ॥ और तुम स्त्रियोंके स्वभाव में भलीभांति टिककर दीक्षा के समय में भी न आई उसके उपरान्त ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने गोप से उपजी हुई किसी देवरूपिणी अन्य कन्या को लाये इसके अनन्तर हे महाभागे ! गऊ के मुख में पैठाकर उसीक्षण गुदा के द्वारा खींच लिया इसके अनन्तर उसीसमय

आई ॥ ३।४॥ उसीकारण स्थिर होकर समस्त सुरनारियोंको भलीभांति आनयन किया गौरी, लक्ष्मी, इन्द्राणी, मेधा और वैसेही अरुन्धतीजी ॥ ५ ॥ व स्वधा, स्वाहा तथा मेधा, बुद्धि, पुष्टि, क्षमा, धृति व अप्सराओं से संयुत और बहुत सुरस्त्रियां आई ॥ ६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा और समस्त अप्सराओं के गण भलीभांति आये ॥ ७ ॥ उन पूर्णहाथोंवाली व अतिप्रसन्नमनवाली सुरस्त्रियों के समेत उन सावित्री देवी ने मण्डप को प्रस्थान किया॥ ८॥ व मुख्य गन्धर्वों व विशेषकर किन्नरों के गान की ध्वनि से संयुत बाजाओं के बाजने पर ॥ ९ ॥ जबतक बड़े भाग्यवाली उन सावित्री ने यज्ञ के मण्डप को

ज्ञात्वाविश्वासमागता ॥ ४॥ स्थिराभूत्वाततस्सर्वा देवपत्नीस्समानयत् ॥ गौरीलक्ष्मीः शचीमेधा तथाचैवअरुन्धती ॥ ५ ॥ स्वधास्वाहातथामेधाबुद्धिःपुष्टिःक्षमाधृतिः ॥ तथाचान्याश्चबह्वोह्यप्सरोभिस्समन्विताः ॥ ६ ॥ घृताचीमेनकार म्भा उर्वशीचतिलोत्तमा ॥ अप्सरसांगणास्सर्वे समाजग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७॥साताभिस्सहितादेवी पूर्णहस्ताभिरेवच॥ सं प्रहृष्टमनोभिश्चप्रस्थितामण्डपम्प्रति ॥ ८ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु गीतध्वनियुतेषुच ॥ गन्धर्वाणांप्रमुख्यानां किन्नराणां विशेषतः ॥९॥ प्रस्थितासामहाभागा यावत्तद्यज्ञमण्डपम्॥तावत्तस्यास्तदाचक्षुः प्रस्फुरद्दक्षिणंनिजम्॥ १० ॥ दक्षि णानितथाङ्गानिस्फुरमाणानिवैमुहुः॥तस्यामनसिसंक्षोभं जनयन्तिनिरर्गलम्॥ ११॥ताश्चदेवस्त्रियस्सर्वानृत्यन्तिचहस न्तिच ॥ गायन्तिचतथोत्साहं तस्याःपार्श्वेव्यवस्थिताः ॥ १२॥ नजानन्तिचसंक्षोभं तस्याव्यसनजंद्रुतम् ॥ अन्योन्य स्पर्द्धयासर्वा गीतनृत्यपरायणाः ॥ १३ ॥ अहंपूर्वंप्रविश्यामिपितामहमहामखे ॥ इत्यौत्सुक्यसमोपेतास्तागच्छन्तिसम

प्रस्थान किया तबतक उस समय उन सावित्री का अपना दाहिना नेत्र फरकने लगा ॥ १० ॥ वैसेही बारबार फरकते हुये दाहिने अंग उसके मन में बिन रोंक टोंक संक्षोभ को पैदा करते थे ॥ ११ ॥ व उन सावित्री के बगल में बैठी हुई वे समस्त सुरस्त्रियां नाचती हँसतीं व उत्साह से गाती थीं ॥ १२ ॥ व आपसमें ईर्षा से गाने, नाचने में लगी हुई वे शीघ्रही उन सरस्वती जी के व्यसन से उपजेहुये क्षोभको नहीं जानती थीं॥ १३ ॥ ब्रह्माकी बड़ीभारी यज्ञ में मैं पहले पैठूंगी इस उत्कण्ठा

तदनन्तर उन से पृथ्वी को पाकर इसके अनन्तर अपने आश्रमको किया वहांपर रविवारसमेत परेवा दिन के स्थित होने पर जो स्नान करता है वह यक्ष्मा से सेवित
भी छूट जाता है यहां आज भी उससे उत्पन्न हुआ विश्वास देखपड़ता है ॥ ७९ । ८० ॥ कि कलिकालके भी प्राप्त होनेपर समस्त साग्निक व विशेषकर नागर द्विजों
के यक्ष्मा नहीं होता है ॥ ८१ ॥ वैसेही उनके घर में बसनेवाले चौपायोंको नहीं होता है उस यक्ष्माकी न ओषधियां हैं न मन्त्रहैं न वैद्यहैं ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दे
पुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयक्ष्मतीर्थोत्पत्तिर्नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ❀ ॥

तेभ्यःप्राप्यततोभूमिं चकाराथाश्रमंनिजम् ॥ तत्रयःकुरुतेस्नानं प्रतिपद्दिवसेस्थिते ॥ ७९ ॥ सूर्य्यवारेणमु
च्येत यक्ष्मणासेवितोपिच ॥ अद्यापिदृश्यतेचात्र प्रत्ययस्तस्यसम्भवः ॥ ८० ॥ सर्वेषामाहिताग्नीनां नागराणांवि
शेषतः ॥ कलिकालेपिसम्प्राप्ते नयक्ष्मासंप्रजायते ॥ ८१ ॥ तथाचतुष्पदानांच तेषांगृहनिवासिनाम् ॥ नतस्यभेषजा
निस्युर्नमन्त्रानचिकित्सकाः ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयक्ष्मती
र्थोत्पत्तिर्नामाशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ सूतपुत्रत्वयाप्रोक्तं सावित्रीनागतात्रयत ॥ कौटिल्येनसमायुक्तैराहूतावचनैस्तथा ॥ १ ॥ पुलस्त्येन
पुनश्चैव प्रसक्तागृहकर्म्मणि ॥ ततस्तुब्रह्मणाकोपाद्गायत्रीचविवाहिता ॥ २ ॥ देवैर्विप्रैश्चसातीवशंसिताभार्य्यतांगता ॥ सा
वित्रीचकथंजाता तांज्ञात्वायज्ञमण्डपे ॥ ३ ॥ पत्नीशालांप्रविष्टांच सर्वंनोविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ सावित्रीवशगंकान्तं

दो० । गइ सावित्री यज्ञमहँ जिमि सुरनारिन संग । इकसौ इक्यासिवें महँ सोइ कह्यो परसंग ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जो कहा है कि वैसेही
कुटिलतायुक्त वचनों से बुलाई हुई सावित्री जी न आई ॥ १ ॥ व फिर पुलस्त्यजीसे बुलाईहुई गृहकार्य में तत्पर सावित्री न आई तदनन्तर ब्रह्मा ने क्रोध से गायत्री
का विवाह किया ॥ २ ॥ व स्त्रीत्व को प्राप्तहुई वे गायत्री जी देवों व द्विजों से अत्यन्तही प्रशंसित हुई और यज्ञमण्डप में पत्नीशाला में पैठी हुई उन गायत्री
को जानकर सावित्री जी कैसी हुई हैं इस समस्त चरित्र को हम लोगों से विस्तारपूर्वक कहो सूतजी बोले कि सावित्री ने पतिको वश में प्राप्त जानकर त्रिस्थासमें

गयाहूं और श्रद्धासंयुक्त यदि कोटिगुनाभी दियागयाहो तो इसका यज्ञसे उपजाहुआ फल वृथा होवै है ॥ ६९ ॥ हे देव ! यहां वेदमें मैंने यज्ञका प्रमाण सुनाहै इसलिये यज्ञके भलीभांति स्थित होने पर निश्चयकर ब्राह्मण को तृप्त करै ॥ ७० ॥ हे देवोत्तम ! जिस प्रकार आजही तुम्हारी प्रसन्नता से प्रत्यक्ष मेरी तृप्ति होवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा ने उस यक्ष्मा के सत्य व पथ्य सम्पूर्ण वचन को सुनकर व वेदके प्रमाण से प्राप्तकर तदनन्तर वचन कहा ॥ ७२ ॥ कि आजसे लगाकर भूतल में जो साग्निक ब्राह्मण हैं उन सबों को वैश्वदेव के अन्त में तुम्हें भी बलि देना चाहिये ॥ ७३ ॥ उन देवों के लिये देकर इस

जंफलम् ॥ यदिकोटिगुणंदत्तमपिश्रद्धासमन्वितम् ॥ ६९ ॥ एतच्छ्रुतंमयादेव यज्ञमानंश्रुताविह ॥ तस्मात्सम्यक्स्थितेयज्ञे ब्राह्मणंतर्पयेत्तुवै ॥ ७० ॥ प्रत्यक्षंमेयथातृप्तिरद्यएवप्रजायते ॥ त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ तथानीतिर्विधीयते ॥ ७१ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजस्तस्य तथ्यंपथ्यंवचोखिलम् ॥ श्रुतिप्रमाणतोनीत्वा ततोवचनमब्रवीत् ॥ ७२ ॥ अद्यप्रभृतियेविप्राः साग्नयःस्युर्धरातले ॥ तैस्सर्वैर्वैश्वदेवान्ते बलिर्देयस्तवापिच ॥ ७३ ॥ दत्त्वातेभ्योथदेवेभ्यस्तवतृप्तिर्भविष्यति ॥ तवपक्षेद्वितीयेतु सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७४ ॥ येविप्रास्तेबलिंदद्युर्वैश्वदेवान्तआगते ॥ नतेषामन्वयेवापि त्वयासेव्योत्रकश्चन ॥ ७५ ॥ यक्ष्मोवाच ॥ तीर्थेस्मिंस्तावकेदेव सदाहंतपसिस्थितः ॥ तिष्ठामियदिवादेशस्तावकोजायतेध्रुवम् ॥ ७६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यद्येवंकुरुचाप्यत्र त्वमाश्रमपदंनिजम् ॥ सम्प्राप्यभूमिदेशंच कञ्चिद्यदभिरोचते ॥ ७७ ॥ अर्चयित्वाद्विजानेतान्यथायज्ञंकृतम्मया ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाप्रार्थयामास चमत्कारपुरोद्भवान् ॥७८॥

के अनन्तर तुम्हारे दूसरे पक्ष में तुम्हारी तृप्ति होगी यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ७४ ॥ वैश्वदेव के अन्तसमय को आनेपर जो ब्राह्मण तुमको बलि देवैं यहां उनके वंश में भी कोई पुरुष तुम से सेवनीय नहीं है ॥ ७५ ॥ यक्ष्मा बोला कि हे देव ! यदि तुम्हारी निश्चय कर आज्ञा होवै तो तुम्हारे इस तीर्थ में सदैव तपस्या में स्थित होताहुआ मैं टिकूं ॥ ७६ ॥ ब्रह्मा बोले कि यदि ऐसाहै तो जो रुचताहो उस किसी भूमिस्थानको भलीभांति प्राप्तहोकर व इन ब्राह्मणोंको पूजकर जैसे मैंने यज्ञ कियाहै वैसेही तुम यहांपर भी अपने आश्रम स्थानको करो सूत जी बोले कि उस वचनको सुनकर चमत्कारपुर में उपजे हुये ब्राह्मणों की प्रार्थना किया ॥ ७७ । ७८ ॥

वैसेही जब कार्त्तिकी व्यतीत होजावै तब दूसरा दिन प्राप्तहोने पर उससमय याने कुतुप कालको पाकर जो मनुष्य उस दिन इसी कुण्ड में स्नान करैंगे वे सालभर तक निस्सन्देह पाप से रहित व मानसी व्यथा व रोगोंसे निर्मुक्त होवैंगे ॥५९।६०॥ इसी अवसर में देवों व धन्वन्तरिके भी चिकित्सा करनेयोग्य यक्ष्मानामक भयंकर रोग प्राप्तहुआ ॥६१॥ जो कि नीलवसनको धारे व दुबला, दीन तथा दण्डके आश्रित व श्लेष्मासे छींक करता हुआ तबतक कष्टसे पांव को धरताथा ॥६२॥ तदनन्तर कियेहुये प्रणामवाला होकर यह वचन बोला यक्ष्मा बोला कि हे पितामह जी ! क्षुधासे दुबले कण्ठवाला मैं तुम्हारे यज्ञको सुनकर आज दूरहीसे बड़े क्लेशसे आकर

स्थिते ॥ तथातत्कालमासाद्य येकरिष्यन्तिमानवाः ॥ ५९ ॥ स्नानंतत्रदिनेत्रैव वर्षपापविवर्जिताः ॥ आधिव्याधिवि निर्मुक्तास्तेभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ ६० ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो यक्ष्माख्योदारुणोगदः ॥ विचिकित्स्योपिदेवानां तथा धन्वन्तरेरपि ॥६१॥ नीलाम्बरधरःक्षामो दीनोदण्डसमाश्रितः॥क्षुत्कुर्वञ्श्लेष्मणातावत्कृच्छ्रात्सन्धारयन्पदम् ॥६२॥ ततश्चप्रणतोभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ यक्ष्मोवाच ॥ तवयज्ञमहंश्रुत्वा दूरादेवपितामह ॥ ६३ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठआयात स्समागत्याद्यकृच्छ्रतः ॥ दक्षेणाहंपुरासृष्टश्चन्द्रार्थंकुपितेनच ॥ ६४ ॥ रोहिणींसेवमानश्चसंत्यक्त्वान्याःसुतास्तथा॥ स्तुतोमहेश्वरोदेवस्तेनतुष्टेनतस्यच ॥ ६५ ॥ पक्षमेकंकृतंमह्यं तस्यासादनकर्म्मणि ॥ अन्यपक्षेनकिञ्चिच्चयेनवृद्धिः प्रजायते ॥६६॥ यज्ञस्यैवतुसर्वस्य तर्पयित्वाद्विजोत्तमम् ॥ ततस्तद्वचनंग्राह्यं तर्प्पितोहमसंशयम्॥६७॥पौर्णमास्यां त तोदेव यस्ययज्ञस्यकृत्स्नशः॥पश्यन्तोब्राह्मणायेन यज्ञस्यान्तेनतर्प्पिताः ॥६८॥ तर्प्पितोस्मीतितेनास्य वृथास्याद्यज्ञ

प्राप्त हुआ हूं जोकि मैं पुरातन समय चन्द्रमा के लिये क्रोधित दक्ष जीसे रचागयाथा ॥ ६३ । ६४ ॥ जो चन्द्रमा कि दक्षकी अन्य कन्यकाओं को छोड़कर रोहिणी को सेवता था उसने महेश्वर देवकी स्तुति किया व उसके ऊपर प्रसन्न हुये उन शिवजीने ॥ ६५ ॥ उसके क्लेशकर्म में एक पक्षको मेरे लिये किया अन्यपक्ष में कुछ नहीं किया कि जिससे वृद्धि होती है ॥ ६६ ॥ समस्त यज्ञ के अन्त में द्विजोत्तम को तृप्त कराकर तदनन्तर उसके वचन ग्रहण करना चाहिये कि मैं निस्सन्देह तृप्तहूं॥६७॥ तदनन्तर हे देव ! पौर्णमासीमें सम्पूर्ण यज्ञको देखतेहुये ब्राह्मणोंको जिसने जिस यज्ञ के अन्त में तृप्त नहीं कराया ॥६८॥ उससे मैं तृप्त कराया

ब्रह्माने देवताओं समेत स्नान किये व नम्रतासे नीचे खड़ेहुये इन्द्रसे आदर समेत कहा कि ॥४९॥ हे सहस्रलोचन ! मेरी यज्ञमें तुमने बड़ा कष्ट किया इसलिये मनोरथ को मांगिये इससमय मैं उसको तुम्हें दूंगा इन्द्र बोले कि हे सुरनायक ! यदि तुम प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदान देने योग्य है ॥ ५० ॥ हे विभो ! यदि मैं तुम से आज प्रार्थना करूं तो वह वैसाही होवै कि हे पितामहजी ! प्रतिवर्षमें इस उत्तम दिन के प्राप्त होने पर जो भूपति बांस के अग्रभाग में मृगचर्म को भलीभांति धर कर व आपही उत्तम हाथी पै सवार होकर वैसाही करै ॥ ५१।५२ ॥ व यथायोग्य जलमें फेंक देवै वह पापसे रहित व समस्त शत्रुओंके न जीतने योग्य और सब वि-

हस्राक्षत्त्वयाकष्टं मन्मखेविपुलंकृतम् ॥ तस्मात्प्रार्थयचाभीष्टं तत्तेयच्छामिसाम्प्रतम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश यदिदेयोवरोमम ॥५०॥ यदित्वांप्रार्थयाम्यद्य भूयात्तत्तादृशंविभो ॥ वर्षेवर्षेतथाकुर्य्यात्सम्प्राप्तेस्मिन्दिनेशुभे ॥ ५१ ॥ मृगचर्म्मसमाधाय वंशाग्रेयोमहीपतिः ॥ नागप्रवरमारुह्य स्वयमेवपितामह ॥ ५२ ॥ यथार्हंप्रक्षिपेत्तोये सस्यात्पापविवर्जितः ॥ अजेयस्सर्वशत्रूणां सर्वव्यसनवर्जितः ॥ ५३ ॥ येकरिष्यन्तिचब्रह्मंस्नानेनेनमृगचर्म्मणा ॥ सार्द्धमन्येपियेलोका अपिपापसमन्विताः ॥ ५४ ॥ तेषांवर्षकृतंपापं त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्सर्वंसहस्राक्ष तववाक्यमसंशयम् ॥ ५५ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ योराजाश्रद्धयायुक्तो वैदिशस्यसमुद्भवः ॥ ५६ ॥ आनर्तस्यगजारूढो मृगचर्म्मंक्षिपिष्यति ॥ अत्रकुण्डेमदीयेतु मांसंपूज्यतटास्थितम् ॥ ५७ ॥ सर्वलोकहितार्थाय सम्प्राप्तेप्रतिपद्दिने ॥ सम्प्राप्तेकुतुपेकाले विजयीसभविष्यति ॥ ५८ ॥ कार्त्तिक्यांचव्यतीतायां द्वितीयेह्निव्यव

पत्तियोंसे वर्जितहोवे ॥५३॥ व हे ब्रह्मन् ! इस मृगचर्म समेत जो पुरुष स्नानकरैं वे और अन्य भी जो मनुष्य पापसंयुक्त भी होवैं ॥५४॥ उनका वर्षभरमें कियाहुआ पाप तुम्हारी प्रसन्नता से नाश होजावे ब्रह्मा बोले कि हे सहस्रलोचन ! यह सब तुम्हारा वचन निरसन्देह होगा इस में संशय नहीं है मैंने यह सत्य कहा है कि वैदिश व आनर्त देशका उत्पन्न श्रद्धासंयुत जो राजा सब नरों के हितके लिये हाथी पै चढ़कर मृगचर्म को इस मेरे कुण्ड में फेंकैगा व परेवा दिनके भलीभांति प्राप्त होने पर जब कुतुप (मध्याह्नका दूसरा मुहूर्त्त) प्राप्तहोवै तब किनारे पै टिकेहुये मुझ को भलीभांति पूजकर वह विजयवान् होगा ॥ ५५ । ५६ । ५७ । ५८ ॥

व्याप्त होने पर वहां न ब्रह्मा और न वरुणवाला वह कर्म देख पड़ताथा ॥ ३९ ॥ इस के अनन्तर उस कर्म के अन्त में समस्त मनुष्यों के हित के लिये ब्रह्माने नम्रता से नीचे नये खड़े हुये इन्द्र से कहा ॥ ४० ॥ कि स्नान के लिये आयेहुये दूरमें टिके मनुष्य जल में उपजे इस संमर्द में पुण्यदायक जल में नहातेहुये मुझको न जानैंगे ॥ ४१ ॥ इस लिये हे वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र जी ! अपने हाथी पै चढ़कर और कृष्णसार मृग के चर्म को बांसके आगे धरकर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर स्नान के समय में तुमको वह जलमें फेंकना चाहिये कि जिससे ये समस्त मनुष्य स्नानसे उपजे हुये समय को जानैं ॥ ४३ ॥ व स्नान करैं और यथोदित कल्याण

थान्तेकर्म्मणस्तस्यब्रह्माप्राहशतक्रतुम् ॥ हितार्थंसर्वलोकस्य विनयावनतस्थितम् ॥ ४० ॥ नमांज्ञास्यन्तिदूरस्था जनाःस्नानार्थमागताः ॥ मज्जमानंजलेपुण्ये संमर्द्देस्मिञ्जलोद्भवे ॥ ४१ ॥ तस्मान्नागंसमारुह्य निजंवृत्रनिषूदन ॥ एणस्यकृष्णसारस्य वंशाग्रेचर्म्मन्यस्यच ॥ ४२ ॥ ततस्तत्स्नानवेलायां क्षेप्तव्यंसलिलेत्वया ॥ येनलोकस्समस्तोयं वेत्तिकालन्तुस्नानजम् ॥ ४३ ॥ स्नानञ्चकुरुतेश्रेयःसम्प्राप्नोतियथोदितम् ॥ दूरस्थोपिसुवृद्धोपि बालोपिचसमागतः ॥ ४४ ॥ स्नानजंलभतेश्रेयस्तस्मात्त्वंकुरुमेवचः ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवसप्रोच्य सत्वरंप्रययौहरिः ॥ ४५ ॥ ततोनागंसमारुह्य कृत्वावंशंकरेनिजे ॥ मृगचर्म्मसमायुक्तंतोयमध्येव्यवस्थितः ॥ ४६ ॥ एतत्कर्म्मावसानेस स्नातुकामेपितामहे ॥ तच्चर्म्मप्राक्षिपत्तोये स्वयमेवशतक्रतुः ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवास्सर्वेगन्धर्वगुह्यकाः ॥ मानुषाश्चविशेषेण स्नातास्तत्रसमाहिताः ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा शक्रंप्रोवाचसादरम् ॥ कृतस्नानंसुरैस्सार्द्धं विनयावनतंस्थितम् ॥ ४९ ॥ स

या पुण्य को भलीभांति पावैं भलीभांति आया व दूर टिकाहुआ भी व अतिवृद्ध भी और बालक भी ॥ ४४ ॥ स्नान से उपजे हुये पुण्य या कल्याण को पाता है उसी कारण तुम मेरे वचन को करो सूतजी बोले कि वे इन्द्र जी हां यही कहकर शीघ्रता से गये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर मृगचर्म से संयुत बांसको अपने हाथमें कर के हाथी पै भलीभांति चढ़कर जल के बीचमें विशेषता से खड़ेहुये ॥ ४६ ॥ व इस कर्म के अन्तमें ब्रह्मा को नहाने की इच्छा करने पर इन्द्रजी ने आपही उस चर्म को जल में फेंक दिया ॥ ४७ ॥ इसी अवसर में सावधान होते हुये समस्त देवता, गन्धर्व, गुह्यक व विशेषकर मनुष्योंने वहां स्नान किया ॥ ४८ ॥ इसी अवसर में

होम कीजाती है वैसेही समस्त अशुभों की शान्ति के निमित्त ऋत्विजों समेतही स्नान करना चाहिये ॥ २९ । ३० ॥ उस समय में तुम्हारे साथ जो अन्यभी कोई ब्राह्मण स्नान करैगा वह पापहीन होगा ॥ ३१ ॥ स्थावर जङ्गम समेत इस त्रिलोक में जो तीर्थ हैं वे वरुणवाली यज्ञ को प्राप्तहोकर जहां समीप में प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये अवभृथ के उछाह में समस्त उपाय से दीक्षित (यज्ञकर्ता) समेत ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों व समस्त साथियों को वहां जल के बीच में स्नान करना चाहिये इस लिये इन ब्राह्मणों को तभीतक बिदा कीजिये ॥ ३३ । ३४ ॥ क्योंकि ये भी तुम्हारे साथ वहां स्नान करैंगे सूत जी बोले कि उसको सुनकर उससमय

तम् ॥ २९ ॥ वरुणस्यप्रतुष्ट्यर्थं स्नानंकार्य्यंतथैवच ॥ ऋत्विग्भिस्सहितेनैव सर्वानिष्टप्रशान्तये ॥ ३० ॥ यस्तत्रसम
येस्नानं करिष्यतित्वयासह ॥ अन्योपिमानवःकश्चिद्विपाप्मासभविष्यति ॥ ३१ ॥ यत्रेहसन्तितीर्थानि त्रैलोक्येसच
राचरे ॥ वारुणीमिष्टिमासाद्य तानियान्तिचसन्निधौ ॥३२॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीक्षितेनसमन्वितैः॥तत्रस्नानंप्रकर्तव्यं
जलमध्येतुसार्थिभिः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैस्सर्वैरवभृथोत्सवे ॥ तस्माद्विसर्जयेचैतान्ब्राह्मणांस्तावदेवहि ॥ ३४ ॥
एतेपिचकरिष्यन्ति स्नानंतत्रत्वयासह ॥ सूतउवाच॥तच्छ्रुत्वाप्रस्थितोब्रह्माज्येष्ठंकुण्डंतदाशुभम् ॥ ३५ ॥ गायत्र्यास
हितोहृष्टः कृतकृत्यत्वमागतः॥ अथतद्वचनंश्रुत्वासुरास्सर्वेतथाद्विजाः॥ ३६ ॥पुलस्त्यश्चशुभार्थाय स्नानार्थंप्रस्थितस्त
था॥ब्रह्मणासहिताहृष्टाः पुत्रदारसमन्विताः ॥ ३७॥अथसंकीर्णतांजातास्समाजेज्येष्ठपुष्करे ॥ स्नानार्थमाश्रितैर्लो
कैरूर्ध्वबाहुभिरेवच ॥ ३८ ॥ नतत्रलक्ष्यतेब्रह्मानतत्कर्म्मचवारुणम् ॥ सर्वैरेवद्विजैस्तत्रव्याप्तेभूमितलेखिले॥ ३९॥ अ

कृतकृत्यताको प्राप्त व प्रसन्न होते हुये गायत्री समेत ब्रह्मा ने उत्तम जेठे कुण्डको प्रस्थान किया इसके अनन्तर उस वचनको सुनकर समस्त देवताओं व द्विजोंने ॥ ३५ । ३६ ॥ व पुलस्त्यजी ने शुभके निमित्त व स्नान के लिये प्रस्थान किया इसके अनन्तर पुत्र, स्त्रियों समेत प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा समेत सब ज्येष्ठपुष्करवाली सभा में एकत्र होगये याने एक में मिल गये व स्नान के लिये ऊर्ध्वबाहुवालेही मनुष्यों के आश्रित होने से ॥ ३७ । ३८ ॥ उस समस्त भूतलको सबही ब्राह्मणों से

ब्रह्मा बोले कि मन्त्र से बुलाया हुआ उत्तम पुष्करतीर्थ उस आकाशमार्ग से हाटकेश्वरजी के क्षेत्र में आवैगा ॥ २० ॥ और हे ब्राह्मणो ! तीर्थगामी जो पुरुष अघमर्षण (ऋतंचरात्यंचेति) इस मन्त्र का जपकरैगा व स्नानकर जो ब्राह्मण चारों समयों में मेरी मूर्त्ति के आगे बैठकर पैल, मैत्रेयपूर्वक मन्त्र को जपैगा उस को मैं ब्रह्मलोक से भलीभांति आकर सुनूंगा ॥ २१ । २२ ॥ सूत बोले कि इस के अनन्तर प्रसन्नहो उन समस्त नागरब्राह्मणों ने यज्ञके फलकी सिद्धिके लिये पुण्य दान के पूर्ण करनेवाली आज्ञा को दिया ॥ २३ ॥ इसी अवसर में यजुर्वेदियों में उत्तम पुलस्त्य जी वहां प्राप्त हुये कि जिस स्थान में नागरों से घिरेहुये ब्रह्मा जी

मन्त्राहूतंततःश्रेष्ठं नभोमार्गाद्द्विजोत्तमाः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पुष्करंचागमिष्यति ॥ २० ॥ अघमर्षणजपंचैव यःकरिष्यतितीर्थगः ॥ ममभूर्तेःपुरःस्थित्वा पैलमैत्रेयपूर्वकम् ॥ २१ ॥ जपिष्यतिद्विजःस्नात्वा सवनानाञ्चतुष्टयम् ॥ ब्रह्मलोकात्समागत्य प्रश्रोष्यामिचतद्द्विजाः ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ अथतेनागरास्सर्वे पुण्यदानप्रपूरकाम् ॥ अनुज्ञांप्रददुस्तुष्टा यज्ञस्यफलसिद्धये ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः पुलस्त्योध्वर्य्युसत्तमः ॥ यत्रस्थानेस्थितोब्रह्मा नागरैःपरिवारितः ॥ २४ ॥ अब्रवीचसमभ्येत्य यज्ञस्सम्पूर्णदक्षिणः ॥ प्रायश्चित्तैर्विरहितो यथानान्यस्यकस्यचित् ॥ २५ ॥ अतःपरंकर्म्मशेषं किञ्चिदस्तिपितामह वरुणेष्टिञ्जपञ्चैतंकरिष्यामिचसांप्रतम् ॥ २६ ॥ तथाचावभृथस्नानं प्रकर्तव्यंत्वयासह ॥ तस्मादुत्तिष्ठगच्छामोयत्रतोयंव्यवस्थितम् ॥२७॥ येनेष्टिंवारुणींतत्र कुर्म्मोविप्रैर्यथोचितैः ॥ ऋत्विग्भिर्ब्रह्मपूर्वैश्चसाचार्य्याग्नीध्रहोतृभिः ॥ २८ ॥ यथावह्नौतथातोयेसर्वैस्तत्रहविःशुभम् ॥ हूयतेसंविधानेन यज्ञपात्रैस्समन्वि

स्थित थे ॥ २४ ॥ व भलीभांति आकर बोले कि प्रायश्चित्तों से रहित व सम्पूर्ण दक्षिणाओंवाला यज्ञ हुआ जैसा कि और किसी का नहीं हुआ है ॥ २५ ॥ हे पितामहजी ! इस के उपरान्त कुछ कर्म शेष है इस समय में वरुणेष्टि व इस जपको करूंगा ॥ २६ ॥ वैसेही तुम्हारे साथ अवभृथ स्नान करना चाहिये इसलिये उठो चलै जहां कि जल धरा है ॥ २७ ॥ कि जिससे वहांपर हम लोग यथायोग्य ब्राह्मणों व ब्रह्मापूर्वक ऋत्विजों और आचार्य, आग्नीध्र व होताओं समेत ले पूजन को करै ॥ २८ ॥ वहां जैसे अग्नि में वैसेही जल में यज्ञपात्रों समेत सब होताओं से भलीविधि के द्वारा वरुणजी की प्रसन्नता के लिये उत्तम हव्य

हे सुरश्रेष्ठ पितामहजी ! उसके माहात्म्यको हम लोगों से कहिये कि जिस से हम लोग स्नानादिक समस्त कर्मों को करैं ॥ १०।११ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! सदैव आकाश में स्थित होनेवाले इस तीर्थ को मैंने रचा है क्या पुराणों में आप लोगों ने नहीं सुना है ॥ १२ ॥ कि पृथ्वी में नैमिष तीर्थ व आकाशमें पुष्कर और विशेष कर त्रिलोक में भी कुरुक्षेत्र व्यवस्थित है ॥ १३ ॥ मेरे वचनसे प्रेरणा कियाहुआ वह तीर्थ तुम लोगों के हित के लिये भूतलमें निस्सन्देह पांच रातें आवेगा ॥ १४ ॥ कातिक के शुक्लपक्ष में एकादशी दिन के स्थित होने पर जबतक पापों के नाशनेवाली पौर्णमासी तिथि होवै तबतक ॥ १५ ॥ पांच रातों के बीच में

यदेतद्भवताचात्र पुष्करंतीर्थमुत्तमम् ॥ १० ॥ स्थापितंतस्यनोब्रूहि माहात्म्यंसुरसत्तम ॥ येनस्नानादिकास्सर्वाःक्रियाःकुर्म्मःपितामह ॥११॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्तीर्थंमयासृष्टमन्तरिक्षस्थितंसदा ॥ किन्नश्रुतंपुराणेषु भवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रैलोक्येपिकुरुक्षेत्रं विशेषेणव्यवस्थितम् ॥ १३ ॥ तद्युष्माकंहितार्थाय पञ्चरात्रंधरातले ॥ आगमिष्यत्यसन्दिग्धं ममवाक्यप्रणोदितम् ॥ १४ ॥ कार्त्तिक्यांशुक्लपक्षेतु एकादश्यादिनेस्थिते ॥ यावत्पञ्चदशीतावत्तिथिःपापप्रणाशिनी ॥ १५ ॥ पञ्चरात्रस्यमध्येतुयःस्नानञ्चकरिष्यति ॥ श्राद्धंवाश्रद्धयायुक्तस्तस्यस्यादक्षयंहितत् ॥ १६ ॥ अहंवैपञ्चरात्रञ्चब्रह्मलोकादुपेत्यच ॥ संश्रयञ्चकरिष्यामि तीर्थेत्रैवद्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥तवमूर्तिंकरिष्यामः स्थानेत्रप्रपितामह ॥ तस्मात्संक्रमणंनित्यं सदाकार्य्यंत्वयाविभो ॥ १८ ॥ तीर्थंचैवसदाप्यत्र समागच्छतुचाम्बरात् ॥ लोकानांपापनाशाय तस्मादानयनिर्म्मितम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥

जो स्नान करैगा व श्रद्धासे युक्तहो श्राद्ध करैगा उसका वह अविनाशी होगा ॥ १६ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मलोक से आकर मैं पांचरातों तक अवश्य कर इसी तीर्थ में टिकाश्रय करूंगा ॥ १७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे विभो ब्रह्माजी ! हमलोग इस स्थान में तुम्हारी मूर्ति को करैंगे इस लिये सदैव नित्यही तुमको भलीभांति आगमन करना चाहिये ॥ १८ ॥ व तीर्थ भी सदैवही आकाशसे भलीभांति आवै इस लिये मनुष्यों के पाप नाशनेके लिये निर्माण किये हुये तीर्थको आनिये ॥१९॥

दो० । जिमि अवभृथ असनानमें आये नर अरु देव । कहत एकसौ असीमें सोई उत्तम भेव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें इस क्रमसे समस्त कामोंकी समृद्धिमती पांचरातैं व्यतीत हुईं ॥ १ ॥ तदनन्तर उस यज्ञकी समाप्तिमें ब्राह्मणों,कुमारों व विशेषकर दीनों व अन्धों तथा समस्त जनोंको भली भांति तृप्तकर ॥२॥ तदनन्तर उन यथोक्त ऋत्विज् द्विजोत्तमोंको दक्षिणाओंसे तृप्तकरके चिन्तन किया व चतुरतासे सम्पन्न तथा श्रुति, स्मृतिसे संयुक्त उन नां-गर द्विजोत्तमों से हाथजोड़कर आदर समेत कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! कलिकालके डरसे मैंने भूमि में जिस दूसरे पुष्कर को भलीभांति निवेशित किया

सूतउवाच ॥ एवंक्रमेणसञ्जातं पञ्चरात्रंद्विजोत्तमाः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वकामसमृद्धिमत् ॥ १ ॥ विप्राणांचकुमाराणां दीनान्धानांविशेषतः ॥ समाप्तौतस्ययज्ञस्य संतर्प्यसकलांस्ततः ॥ २ ॥ ऋत्विजोदक्षिणाभिस्तान्यथोक्तान्द्विजसत्तमान् ॥ ततस्सञ्चिन्तयामास नागरान्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ३ ॥ चातुर्य्येणचसम्पन्नाञ्छ्रुतिस्मृतिसमन्वितान् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा ततस्तान्प्राहसादरात् ॥ ४ ॥ यद्भूमौतुमयातीर्थं पुष्करंसन्निवेशितम् ॥ कलिकालस्यभीतेन द्वितीयंब्राह्मणोत्तमाः ॥ ५ ॥ येनैनोनाशमभ्येतिम्लेच्छैरपिसमाश्रितैः ॥ हाटकेश्वरदेवस्य प्रभावेणमहात्मनः ॥ ६ ॥ कलिकालेचसम्प्राप्ते तीर्थान्यायतनानिच ॥ म्लेच्छैस्स्पृष्टान्यसन्दिग्धं प्रयागादीनिकृत्स्नशः ॥ ७ ॥ यज्ञस्तु विहितस्तेन मयायंतत्कृतेनच ॥ तस्माद्वदथकिन्देयं युष्मद्भूमेरपिक्रये ॥ ८ ॥ प्रयच्छामिचयज्ञस्य येनमेस्यात्फलंद्विजाः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदियच्छसिचास्माकं दक्षिणांयज्ञसम्भवाम् ॥ ९ ॥ तदस्माकंस्ववामेन स्थानंनयपवित्रकम् ॥

है ॥५॥ कि जिससे महात्मा हाटकेश्वर देवके प्रभावसे म्लेच्छोंके भी भलीभांति टिकनेसे पातक नाशको प्राप्त होताहै॥६॥ व कलिकालके भलीभांति प्राप्तहोनेपर म्लेच्छों से छुयेहुये प्रयागादिक समस्त तीर्थ व मन्दिर निरसन्देह नाशहोजाते हैं ॥ ७ ॥ उससे मैंने यह यज्ञ किया इस लिये उसके करने से तुम लोग कहो कि तुम्हारी भूमि के भी मूल्य में क्या देना चाहिये ॥ ८ ॥ उसको मैं देऊं कि जिस से हे ब्राह्मणो ! मुझ को यज्ञ का फल होवै ब्राह्मण लोग बोले कि यदि यज्ञ से उपजी हुई दक्षिणा हम लोगोंको देते हो ॥ ९ ॥ तो अपने बाईं ओर से हम लोगोंके लिये पवित्रस्थान को प्राप्त कीजिये व आपने यहां जो इस उत्तम पुष्कर तीर्थ को स्थापित किया है

इसी अवसर में देवशर्मा द्विजोत्तम प्राप्तहुआ जोकि उस समय स्त्री समेत पर्वत नामक गन्धर्व पैदाहुआ है ॥ २० ॥ जब क्रोधित होतेहुये नारददेवर्षिने औदुम्बरी को शापदिया कि मानुषी होवो तब उसने भलीभांति प्रार्थना किया ॥ २१ ॥ कि हे पिताजी ! मातासमेत तुम मेरे लिये मनुष्य होकर मुझको भजिये कि जिससे हे विभो ! विष्ठा, मूत्रसे संयुक्त व समस्त दोषोंसे संयुत मनुष्यवाले गर्भमें मैं न जाऊं तदनन्तर उसके ऊपर दयासे स्त्रीसमेत उस पर्वत नामक गन्धर्वने ॥ २२ । २३ ॥ भूपृष्ठमें अवतार लिया तदनन्तर वानप्रस्थ आश्रम में हुआ इस प्रकार उदुम्बरीके व्यतिक्रमके कारण मनोहर उत्साहसे उस यज्ञकी वह पांचवीं रात्रि व्यतीतहुई तद-

सहितस्तदा ॥ २० ॥ यदाचौदुम्बरीशप्ता नारदेनसुरर्षिणा ॥ मानुषीभवक्रुद्धेन तदासम्प्रार्थितस्तया ॥ २१ ॥ मदर्थंमानुषोभूत्वा तातत्वंचाम्बयासह ॥ भजमांमानुषेचैव येनगच्छामिनोविभो ॥ २२ ॥ विण्मूत्रसंयुतेगर्भे सर्वदोषसमन्विते ॥ ततस्सकृपयातस्यास्सहपत्न्याचपर्वतः ॥ २३ ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे वानप्रस्थाश्रमेततः ॥ एवंसापञ्चमीरात्रिस्तस्ययज्ञस्यसागता ॥ २४॥ उत्सवेनमनोज्ञेन उदुम्बर्य्याव्यतिक्रमात् ॥ प्रत्यूषेचततोजाते यदातेनविसर्जिता ॥ २५ ॥ औदुम्बरीतदाप्राह पर्वतंजनकंनिजम् ॥ कल्पेत्रावभृथोभावी विधियज्ञसमुद्भवः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयस्तस्मिन्स्नानंकृत्वाततःपरम् ॥ यास्यामःस्वगृहंभूयस्सर्वैर्देवैस्समन्विताः ॥ २७ ॥ अनेनैवविमानेन त्रयश्चापियथासुखम् ॥ ममापिचवरोजातो यःशापोनारदोद्भवः ॥ २८ ॥ यज्ञभागोमयाप्राप्तो देवानामपिदुर्लभः ॥ पौर्णमासीदिनेप्राप्ते विशेषात्स्त्रीजनैःकृतः ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेउदुम्बर्य्युत्पत्तिर्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७९ ॥

नन्तर प्रातःकाल होनेपर जब उसने बिदा किया ॥ २४ । २५ ॥ तब औदुम्बरी ने पर्वत नामक अपने पितासे कहा कि प्रातःकाल यहां ब्रह्माकी यज्ञसे उपजाहुआ समस्त देवमय अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) होगा उसमें स्नान करके तदनन्तर सब देवोंसे संयुत होतीहुई फिर अपने घरको इसी विमानके द्वारा तीनोंभी सुखपूर्वक जावैंगे नारदसे उपजाहुआ जो शापथा वह मुझकोभी वरदानहोगया ॥ २६ । २७ । २८ ॥ क्योंकि मैंने देवताओंसेभी दुर्लभ यज्ञभागको व पौर्णमासी दिनके प्राप्तहोनेपर विशेषकर स्त्रीजनोंसे कियेहुये पूजनको पाया ॥२९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे उदुम्बर्युत्पत्तिर्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ॥

शापदिया तबतक नष्ट मनोरथोंवाली होगई ॥ १० ॥ इसलिये हे कल्याणि ! जिसप्रकार हम सबोंकी गतिहोवै वैसाही कीजिये क्योंकि तुम्हारा माहात्म्य स्थावर जङ्गम समेत त्रिलोकमें भी व्याप्तहै ॥ ११ ॥ उदुम्बरी बोली कि सावित्रीसे उपजेहुये वचनको अन्यथा करनेके लिये हमारे कौन सामर्थ्य विद्यमान है व ऐसेही समस्त देवों, दैत्योंसे अन्यथा करनेके लिये सामर्थ्य नहीं है ॥ १२ ॥ तिसपर भी तुम सबोंके हितके लिये मैं शक्तिसे सब यत्न करूंगा आप सबको प्रसन्नहोतेहुये ब्रह्माने अरसठि गोत्रोंमें भलीभांति युक्त किया है वहांपर तुम सब रातमें हास्यपूर्वकही संज्ञाओंसे पूजनको पावोगी ॥ १३ । १४ ॥ आजसे लगाकर जिस नागर के घरमें विशेषकर

था: ॥ १० ॥ तस्मात्कुरुष्वकल्याणि यथास्माकंगतिर्भवेत् ॥ माहात्म्यंतवयद्व्याप्तं त्रैलोक्येपिचराचरे ॥ ११ ॥ उदुम्ब
र्युवाच ॥ काशक्तिर्विद्यतेस्माकं कर्तुंसावित्रिसम्भवम् ॥ अन्यथाकर्तुमेवंच सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ १२ ॥ तथापिशक्तित
स्सर्वं यतिष्यामिहितायवः ॥ अष्टिषष्टिषुगोत्रेषु भवत्यःसन्नियोजिताः ॥ १३ ॥ पितामहेनतुष्टेन तत्रपूजामवाप्स्यथ ॥
यूयंरात्रौचसंज्ञाभिर्हास्यपूर्वाभिरेवच ॥ १४ ॥ अद्यप्रभृतियस्यात्र नागरस्यतुमन्दिरे ॥ वृद्धिःसम्पत्स्यतेकाचिद्विशेषा
न्मण्डपोद्भवा ॥ १५ ॥ तथायायोषितःकाश्चित्पुरद्वारंसमेत्यच ॥ अदृष्टंहास्यमाधाय प्रयच्छन्तिबलिन्ततः ॥ १६ ॥
तेनवोभवितातृप्तिर्देवानाञ्चतथामखैः ॥ याःपुनर्नकरिष्यन्तिपूजामेतांमयोदिताम् ॥ १७ ॥ युष्माकंपुनरेतासां सुपु
त्रोनाशमाप्स्यति ॥ युष्माकमपमानेन सदारोगीभविष्यति ॥ १८ ॥ तस्मात्तिष्ठध्वमत्रैव रक्षार्थंनगरस्यच ॥ शाप
व्याजेनयुष्माकं वरोयंसमुपस्थितः ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो देवशर्म्माद्विजोत्तमः ॥ गन्धर्वःपर्वतोजातस्सपत्न्या

मण्डपसे उपजीहुई या कोई वृद्धि भलीभांति प्राप्तहोगी ॥ १५ ॥ व वैसेही जो कोई स्त्रियां नगरके द्वारपै भलीभांति आकर न देखे हुये हास्यको करके तदनन्तर बलि देवैंगी ॥ १६ ॥ उससे व देवोंकी यज्ञोंसे तुम सबोंकी तृप्तिहोगी व फिर जो तुम सबोंकी मुझसे कहीहुई इस पूजाको न करैंगी इनका उत्तमपुत्र फिर नाशको प्राप्तहोगा व तुम सबोंके अपमानसे सदैव रोगी होगा ॥ १७ । १८ ॥ इसलिये नगरकी रक्षाके लिये यहीं टिकिये शापके बहानेसे तुम सबोंको यह वरदान उपस्थितहुआ ॥ १९ ॥

दो० । अरसठि मातन दीन जिमि उदुम्बरी वरदान । इकसौ उन्नासिवेंमहँ सोई करत बखान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! इसके अनन्तर जबतक सावित्रीने उन माताओंको शापदिया तबतक वे वहां प्राप्तहुई जहांकि गन्धर्विणी टिकीथी ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रणामकरके उन सबोंने औदुम्बरीसे वचन कहा कि हे देवि! जिस लिये हम सब तुम्हारे यज्ञमें भलीभांति आई ॥ २ ॥ कि औदुम्बरीकी प्रसन्नतासे यज्ञांशको पावैंगी व हमने सावित्रीको नहीं जाना कि यहां टिकी है ॥ ३ ॥ जोकि दुर्भाग्यके दोषसे संयुत व नागरी स्त्रियोंसे घिरीहुईथी व नृत्य गीतसे उपजा हुआ यह हम सबोंका सुखमार्ग है ॥ ४ ॥ हे गन्धर्वसत्तमे! रातमें उस नृत्यगीतको करती

सूतउवाच ॥ अथयावच्चताःशप्ता मातरोद्विजसत्तमाः ॥ सावित्र्यातास्तुगन्धर्वी सम्प्राप्तायत्रातिष्ठति ॥ १ ॥ ततः प्रणम्यताऊचुः सर्वाऔदुम्बरींवचः ॥ वयंसमागतादेवि सर्वास्तवमखेयतः ॥ २ ॥ यज्ञभागंलभिष्याम औदुम्बर्य्याः प्रसादतः ॥ नचास्माभिःपरिज्ञाता सावित्रीचात्रतिष्ठति ॥ ३ ॥ दौर्भाग्यदोषसम्पन्ना नागरीभिस्समावृता ॥ अस्मा कंसुखमार्गोयं नृत्यगीतसमुद्भवः ॥ ४ ॥ तंकुर्वाणास्ततोरात्रौ शप्तागन्धर्वसत्तमे ॥ स्त्रीणांदुःखेनदुःखार्ता जायन्तेसर्व योषितः ॥ ५ ॥ यूयमानन्दितास्सर्वाः सपत्न्याममचोत्सवे ॥ तांप्रणम्यप्रपूज्याथ नाहंसम्भावितापिच ॥ ६ ॥ विशेषा न्नृत्यगीतंच प्रारब्धंममचाग्रतः ॥ तस्माद्व्योमगतिर्नैव भवतीनांभविष्यति ॥ ७ ॥ अस्मिन्स्थानेसदादीनास्तथाश्रम विवर्जिताः ॥ संतिष्ठध्वंनवःपूजांकरिष्यन्तिचमानवाः ॥ ८ ॥ दीनानामसमर्थानां यात्राकृत्येषुसर्वदा ॥ तस्यास्तद्वच नन्देवि नान्यथासम्भविष्यति ॥ ९ ॥ औदुम्बर्य्याःपूजनाय ध्रुवंसाहिप्रकामदा ॥ तयात्रसहसाशप्ता यावन्नष्टमनोर

हुई हम सब शापितहुई कि स्त्रियोंके दुःखसे समस्त स्त्रियां दुःखसे विकल होती हैं ॥ ५ ॥ और तुम सब मेरी सौतिके उत्साहमें हर्षित होतीहुई उसको प्रणाम व पूजकर मेरी मर्यादाभी न किया ॥ ६ ॥ और मेरे अगाड़ी विशेपतासे नृत्यगीतका प्रारम्भ किया इसलिये आप सबोंकी आकाशमें गति न होगी ॥ ७ ॥ व सदैव दीन तथा आश्रमसे रहित होतीहुई तुम सब इस स्थानमें भलीभांति टिको व मनुष्य सदैव यात्राके कार्यों में दीन व समर्थसे रहित तुम सबोंका पूजन न करैंगे हे देवि! उन सावित्रीजीका वह वचन अन्यथा न होगा ॥ ८ । ९ ॥ औदुम्बरी के पूजनके लिये निश्चयकर वह अभिलाषको देनेवाली है उसने अचानक जबतक हम सबोंको

उत्तम स्त्रीको व्याहाहै ॥ ७८ ॥ उसके उस वचनको सुनकर सावित्रीजी भ्रमित चित्तवाली व दुःख शोचसे संयुत और आंसुओंसे विकल लोचनोंवाली होगई ॥ ७९ ॥ व परम सन्तोषको प्राप्तहुई उन ऊर्ध्व (ऊपर उठेहुये) दांतोंवाली माताओंको भूपृष्ठमें नाचती व वैसेही गातीहुई देखकर ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर सावित्रीने आंसुओं से गद्गदीवाणी के द्वारा शापदिया कि जिसलिये मेरी सौतिको पूजकर तुम सब भलीभांति आईहो ॥ ८१ ॥ व हमको प्रणाम नहीं किया और मेरे दुःख में दुःखित न हुईहो उसी कारण किसी प्रकार अन्य स्थानको न जावोगी ॥ ८२ ॥ व कभी नागरब्राह्मणोंकी पूजा न होगी और तुम लोगोंके कभी घर न होगा ॥ ८३ ॥ व तुम

तच्छ्रुत्वावचनन्तेषां सावित्रीभ्रान्तचेतना ॥ दुःखशोकसमोपेता बाष्पव्याकुललोचना ॥ ७९ ॥ दृष्ट्वातान्नृत्यमानाश्च गायमानास्तथैवच ॥ ऊर्द्ध्वदन्त्योधरापृष्ठे सन्तोषंपरमङ्गताः ॥ ८० ॥ शशापाथचसावित्री बाष्पगद्गदयागिरा ॥ सपत्न्याममयत्पूजां कृत्वावःसुसमागताः ॥ ८१ ॥ नप्रणामःकृतोस्माकंममदुःखेनदुःखिताः ॥ तस्मान्नैवापरंस्थानं गमिष्यथकथञ्चन ॥ ८२ ॥ नागराणांचनोपूजा कदाचित्प्रभविष्यति ॥ नप्रासादोथयुष्माकं कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ८३ ॥ शीतेनशीतकालेतु उष्णकालेचरश्मिभिः ॥ वर्षाकालेतुतोयेन क्लेशंयास्यथभूरिशः ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वातदादेवी सातत्रैवव्यवस्थिता ॥ नागराणांवरस्त्रीभिस्सर्वाभिःपरिवारिता ॥ ८५ ॥ संबोध्यमानासततंसुस्त्रीणांचेष्टितेनच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ ८६ ॥ अस्तंगतोमहाञ्छब्दः प्रोत्थितोयज्ञमण्डपे ॥ याज्ञिकानांचविप्राणां सुमहाञ्छास्त्रसम्भवः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मातृगणानयनंनामाष्टसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७८ ॥

लोग ठण्ढक समयमें जाड़से व गरम समयमें किरणों से तथा वर्षाकालमें जलसे बड़े क्लेशको पावोगी ॥ ८४ ॥ उस समय ऐसा कहकर वे सावित्री देवी वहीं विशेषता से टिकगई और नागरोंकी समस्त उत्तम स्त्रियोंसे घिरीहुई वे सावित्रीजी सदैव उत्तम स्त्रियों के व्यवहारोंसे भलीभांति समझाई गईं इसी अवसरमें तीक्ष्ण किरणोंवाले भगवान् सूर्यनारायणजी ॥ ८५ । ८६ ॥ अस्त होगये व यज्ञमण्डपमें यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंका शास्त्रसे उपजा हुआ बड़ाभारी शब्द उठताभया ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमातृगणानयनन्नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥ ❀ ॥

प्रमाणसे स्थान देवैं हे नागरब्राह्मणो ! आप लोगोंको मेरी यह सहायता करना चाहिये ॥ ६८ । ६६ ॥ कि जिससे उत्तम घरकी बनाकर वे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैं तदनन्तर उसने शीघ्रही जाकर उन नागर द्विजोंको भलीभांति बुलाकर ॥ ७० ॥ उसके उपरान्त प्रणामकर नम्रतासंयुतहो उस वृत्तान्तको कहा उसको सुनकर परम प्रसन्नताको प्राप्तहोतेहुये उन समस्त नागरोंने ॥ ७१ ॥ उस समय एकहीएक गणको अपने स्थानको दिया तदनन्तर वे समस्त मातायें ब्रह्माको प्रणामकर ॥ ७२ ॥ व उसके उपरान्तही भक्तिपूर्वक गायत्रीको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे भलीभांति वतलायेहुये स्थानमें विशेषतासे टिकगईं ॥ ७३ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकारकी भेटोंमे पूजित

स्वेस्वेभूमिविभागेच स्थानंयच्छन्तुसाम्प्रतम् ॥ एतत्साहायकङ्कार्य्यं भवद्भिर्ममनागराः ॥ ६९ ॥ प्रासादंप्रवरं कृत्वा येनतुष्टिंप्रयान्तिच ॥ ततस्ससत्वरंगत्वा तान्समाहूयनागरान् ॥ ७० ॥ प्रोवाचविनयोपेतः प्रणिपत्यततःपरम् ॥ तच्छ्रुत्वानागरास्सर्वे सन्तोषंपरमंगताः ॥ ७१ ॥ एकैकस्यगणस्यैवाददत्स्थानंनिजंतदा ॥ ततस्तामातरस्सर्वाः प्रणिपत्यपितामहम् ॥ ७२ ॥ तदनन्तरमेवाथ गायत्रींभक्तिपूर्वकम् ॥ विप्रसंसूचितेस्थाने सर्वाश्चैवव्यवस्थिताः ॥ ७३ ॥ पूजितास्तर्पिताश्चैव बलिभिर्विविधैरपि ॥ ततोगायन्तिताहृष्टा नृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ ७४ ॥ तर्पिताब्राह्मणेन्द्रैश्च प्रोचुश्चतदनन्तरम् ॥ नयास्यामःपरंस्थानं स्थास्यामोत्रैवसर्वदा ॥ ७५ ॥ ईदृशायत्रविप्रेन्द्रास्सर्वैभक्तिसमन्विताः ॥ ईदृशंचमहत्क्षेत्रं हाटकेश्वरसम्भवम् ॥ ७६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सावित्रीतत्रसंस्थिता ॥ प्रणिपत्यद्विजैस्सर्वैर्गच्छमानानिवारिता ॥७७॥ मादेवयजनंगच्छ सावित्रिपतिवल्लभे ॥ ब्रह्मणापरिणीतास्ति गायत्रीतिवराङ्गना ॥७८॥

व तृप्त कराई हुई वे प्रसन्न मातायें गातीं, नाचती व हँसतीथीं ॥ ७४ ॥ व तदनन्तर द्विजेन्द्रोंसे तृप्त कराई हुई वे मातायें बोलीं कि हमसब उत्तम स्थानको न जावैंगी किन्तु सदैव यहीं टिकैंगी ॥ ७५ ॥ जहांपर कि समस्त द्विजेन्द्र ऐसे भक्तिसे संयुत हैं व हाटकेश्वरसे उपजा हुआ ऐसा बड़ाभारी क्षेत्रहै ॥ ७६ ॥ इसी समयमें प्रणाम करके जातीहुई सावित्रीजी समस्त ब्राह्मणोंसे मनाकीगईं व वहांपर भलीभांति टिकीं ॥ ७७ ॥ हे पतिप्रिये, सावित्रीजी ! देवयज्ञको मतजाओ क्योंकि ब्रह्माने गायत्री ऐसी

पर कि ब्रह्माजी थे ॥ ५८ ॥ तदनन्तर मस्तकसे प्रणामकर प्रसन्न होते हुये आदर समेत बोले कि हमलोग इसभांति तुम्हारे उत्तम यज्ञको सुनकर भलीभांति आये हैं ॥ ५६ ॥ व हे देवेश ! संसारके आयुर्बलरूपी पवनसे हमलोग निमन्त्रित हुये हैं यज्ञकर्म में हमलोगोंका यज्ञांश नहीं विद्यमान है ॥ ६० ॥ उसीसे हे ब्रह्मन् ! यहां इतने दिनोंतक न आये व हमलोग अपूर्व उदुम्बरीको सुनकर उसीकारण भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ६१ ॥ और हमलोगोंने उसको देखा व प्रणामपूर्वक पूजन किया जिस लिये कि पर्वत नामक महात्मा गन्धर्वकी कन्याहै ॥ ६२ ॥ उसीकारण स्त्रियोंके सब मनोरथों को देनेवाली वह समस्त देवताओंसे थापीगई है हे देव, प्रपितामहजी !

प्रणम्यशिरसाहृष्टास्ततःप्रोचुश्चसादरम् ॥ वयमेवंसमायाताः श्रुत्वातेयज्ञमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ आमन्त्रिताश्चदेवेश वायुनाजगदायुना ॥ यज्ञभागोनचास्माकं विद्यतेयज्ञकर्म्मणि ॥ ६० ॥ एतान्येवदिनानीह नायातास्तेनपद्मज ॥ उदुम्बरीं वयंश्रुत्वा अपूर्वान्तेनसङ्गताः ॥ ६१ ॥ सादृष्टापूजितास्माभिःप्रणिपातपुरस्सरम् ॥ पर्वतस्यसुतायस्माद्गन्धर्वस्यमहात्मनः ॥ ६२ ॥ सर्वकामप्रदास्त्रीणां सर्वदेवैःप्रतिष्ठिता ॥ स्थानन्दर्शयचास्माकं त्वन्देवप्रपितामह ॥ ६३ ॥ अष्टषष्टिप्रमाणश्च गणोस्माकंव्यवस्थितः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजोगत्वा संकीर्णयज्ञमण्डपम् ॥ ६४ ॥ व्याप्तंदेवगणैस्सर्वैस्त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणकैः ॥ ततोमध्यगमाहूय सतदानागरोद्भवम् ॥ ६५ ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नं बृहस्पतिमिवापरम् ॥ अब्रवीच्छ्लक्ष्णयावाचा त्यक्त्वामौनंपितामहः ॥ ६६ ॥ त्वंगत्वाममवाक्येन विप्रान्नगरसम्भवान् ॥ प्रब्रूहिगोत्रमुख्यांश्च अष्टषष्टिप्रमाणतः ॥ ६७ ॥ एतेमातृगणाःप्राप्ता अष्टषष्टिप्रमाणकाः ॥ एकैकशोगोत्रमुख्या एकैकस्यप्रमाणतः ॥ ६८ ॥

तुम हमलोगोंको स्थान दिखलावो ॥ ६३ ॥ क्योंकि हमलोगों का अरसठिसंख्यक गण व्यवस्थितहै उस वचनको सुनकर ब्रह्माने भरेहुये यज्ञमण्डपको जाकर ॥ ६४ ॥ जोकि तेंतीस संख्यक समस्त सुरसमूहों से व्याप्तथा तदनन्तर उस समय उन ब्रह्माजीने मौनको छोड़कर नागर वंशमें उपजेहुये मध्यवर्तीको जोकि शास्त्रके पढ़ने से सम्पन्न व दूसरे बृहस्पतिके समानथा उसे बुलाकर नम्रवाणीसे कहा ॥ ६५ । ६६ ॥ कि तुम जाकर मेरे वचनसे नगरमें उपजेहुये मुख्य गोत्रोंवाले अरसठि संख्यक ब्राह्मणोंसे कहो ॥ ६७ ॥ कि अरसठि प्रमाणवाले ये मातृगण प्राप्तहुये हैं ये मुख्य गोत्रोंवाले इस समय एक एक ब्राह्मण अपने २ भूमिके विभाग में एक एक गणके

वहां हम लोग उसके साथ सोमपान करते हैं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माने उन सामवेदीको आनकर पूछा कि यह कन्या कौनहै और तुमने किसलिये सभाके बीचमें धराहै ॥ ५० ॥ वे सामवेदीजी बोले कि शापसे भ्रष्टहुई यह गन्धर्विणी ब्राह्मणके घरमें उपजीहै व ब्रह्माकी यज्ञमें इसकी मुक्ति कहीगई है ॥ ५१ ॥ हे देव ! पहले उस समय नारदने क्रोधसे उसको शापदिया है हे देव ! इस समय प्रसन्नहुये मैंने उसको वरदान दियाहै ॥ ५२ ॥ कि तुम्हारा शंकुका प्रचालन कहीं बाहर न प्राप्त

इवर ॥ ४८ ॥ देवत्वंजल्पितंतस्या नागर्य्यास्सुरसन्निधौ ॥ सोमपानंतथाकुर्म्मो वयंतत्रतयासह ॥ ४९ ॥ ततोविधिस्तमा
नीय पप्रच्छद्विजसत्तमाः ॥ कासौकन्याकिमर्थंच सदोमध्येधृतात्वया ॥ ५० ॥ सोब्रवीच्छापभ्रष्टेयं गन्धर्वाब्राह्मणा
लये ॥ अवतीर्णाविधेर्यज्ञे मुक्तिरस्याःप्रकीर्तिता ॥ ५१ ॥ नारदेनपुरादेव कोपाच्छप्तातुसातदा ॥ तस्यादेववरोदत्तोम
यातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ शङ्कुप्रचारोनोबाह्यं तवसंपत्स्यतेक्वचित् ॥ देवैस्सर्वैस्समानीता प्रतिष्ठाद्विजसत्तमैः ॥ ५३ ॥
अनेनसहितास्सर्वाः कामिनीलालसेनच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः कैलासाच्चद्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥ हृष्टामातृगणायेच
अष्टषष्टिप्रमाणतः ॥ पूज्यन्तेयेचगन्धर्वैस्सिद्धैस्साध्यैर्मरुद्गणैः ॥ ५५ ॥ पृथक्पृथग्विधैरूपैर्लोकविस्मयकारकैः ॥ नृत्यन्त्य
श्चहसन्त्यश्चगायन्त्यश्चतथापराः ॥ ५६ ॥ तासांकोलाहलंश्रुत्वाब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ विस्मयंपरमम्प्राप्तास्सर्वेदेवास्स
वासवाः ॥ ५७ ॥ किमेतदितिजल्पन्तः प्रोत्थितायज्ञमण्डपात् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्सर्वास्तायत्रपद्मजः ॥ ५८ ॥

होगा व द्विजोत्तमों समेत समस्त देवों ने प्रतिष्ठाको भलीभांति प्राप्तकिया ॥ ५३ ॥ व इन समेत समस्त स्त्रियोंने कामिनीकी लालसासे पूजन कियाहै इसी अवसर में कैलाससे द्विजोत्तम प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ व अरसठि प्रमाणवाले जे मातृगण हैं प्रसन्न होतेहुये वे और जिनको गन्धर्व, सिद्ध, साध्य व पवनगण पूजते हैं वे ॥ ५५ ॥ मनुष्योंको विस्मय करानेवाले भिन्न २ प्रकारके रूपों से संयुत होकर आये व वैसेही अपर शक्तियां नाचतीं, हँसतीं व गातीथीं ॥ ५६ ॥ उनके कोलाहलको सुनकर ब्रह्मा, विष्णुपूर्वक इन्द्र समेत समस्त देवता बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ५७ ॥ व यह क्याहै ऐसा कहतेहुये यज्ञके मण्डपसे उठे इसी अवसरमें वे सब वहां प्राप्तहुये जहां

लसावाली समस्त स्त्रियां आश्चर्यसे भलीभांति आई ॥ ३७।३८॥ हे द्विजोत्तमो ! किसीने फलोंको लेकरव किसीने भक्तिसे वसनोंको लेकर उन सबोंने यथायोग्य पूजन किया ॥ ३९ ॥ अपनी कन्याको सुनकर आश्चर्यसे फूलेलोचनोंवाला व प्रसन्नमनवाला वह देवशर्माभी स्त्री समेत आया ॥ ४० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उस समये स्त्री समेत उसनेभी जबतक उसका प्रणाम किया तबतक उसने मनाकिया व कहा ॥ ४१ ॥ कि हे पिताजी ! हे पिताजी !! तुम माता समेत मेरा प्रणाम मत कीजिये क्योंकि हे पिताजी ! प्राप्तहुई मेरी स्वर्गकी गति नाशको प्राप्तहोगी ॥ ४२ ॥ हे विभो ! आज जबतक स्त्रीसमेत तुम यहीं टिको मैं देवोत्तमोंसे मांगकर शीघ्रही स्त्रीसमेत तुमको

त् ॥ ३७ ॥ देवीनगरमध्यस्था सर्वानार्य्योद्विजोत्तमाः ॥ कुतूहलात्समायान्ति तस्यादर्शनलालसाः ॥ ३८ ॥ काचि त्फलानिचादाय काचिद्वस्त्राणिभक्तितः ॥ यथार्हंपूजितातामिस्सर्वाभिश्चद्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ श्रुत्वास्वदुहितुस्सोपि दे वशर्म्मासमाययौ ॥ सपत्नीकःप्रहृष्टात्मा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ४० ॥ सोपियावत्प्रणामंच तस्याश्चक्रेद्विजोत्तमाः ॥ सपत्नीकस्तदाप्रोक्तो निषिद्धस्तुतयातथा ॥ ४१ ॥ तततातनमस्कारं मामेकुरुसहाम्बया ॥ प्राप्तास्वर्गगतिस्तात मम नाशंप्रयास्यति ॥ ४२ ॥ तिष्ठात्रैवसपत्नीको यावदद्यद्रुतंविभो ॥ त्वामादायसपत्नीकं यास्यामित्रिदिवालयम् ॥ ४३ ॥ अनेनैवशरीरेण याचयित्वासुरोत्तमान् ॥ ततस्तौहर्षितौतत्र मातापित्रौस्वयंस्थितौ ॥ ४४ ॥ प्रेक्षमाणौसुतायास्तां पू जांजनविनिर्म्मिताम् ॥ मन्यमानौतदात्मानमधिकंसर्वदेहिनाम् ॥ ४५ ॥ तस्ययेस्वजनाःकेचित्सर्वेतेपिद्विजोत्तमाः॥ शंसमानास्सुतांतान्तु तत्समीपेव्यवस्थिताः ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो भृगुर्यत्रपितामहः ॥ निष्क्रम्यसदसस्त स्मात्कृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ ४७ ॥ उद्भ्रान्तादेवचात्मीयोमार्गःश्रुतिविवर्जितः ॥ विहितःकन्यकान्धृत्वासदोमध्येसुरे

इसी शरीरसे लेकर स्वर्गको जाऊंगी तदनन्तर प्रसन्नहोतेहुये माता, पिता आपही वहां टिके ॥ ४३ । ४४ ॥ उस समय नरोंसे निर्माण कीहुई कन्याकी पूजाको देखते हुये वे दोनों समस्त शरीरधारियों के मध्यमें अपनाको अधिक मानरहे थे ॥ ४५ ॥ उसके जो कोई स्वजन थे वेभी समस्त द्विजोत्तम उस कन्याकी प्रशंसा करते हुये उसके समीप विशेषतासे खड़ेहुये ॥ ४६ ॥ इसी अवसर में उस समाजसे निकल कर हाथ जोड़हुये भृगुजी वहां प्राप्तहुये जहां कि ब्रह्माजीथे और उनसे बोले ॥४७॥

बोले कि उसके उस वचनको सुनकर इसके अनन्तर सामवेदीने उससे कहा ॥ २७ ॥ कि आजसे लगाकर जो यहां यज्ञकरैगा वह समाजके बीचमें तुमको भलीभांति थापकर व विलेपनों तथा वसनों व आभूषणों और चन्दन, पुष्प, अनुलेपनोंसे पूजकर तदनन्तर उस प्रतिमाके आगे शंकुप्रचारको करैंगे ॥ २८ । २९ ॥ मैंने समस्त देवताओंके समागम में यह वचन कहा अन्यथा न होगा तुम्हारा कल्याणहोवै तुम परम सन्तोषको प्राप्तहोवो ॥ ३० ॥ हे भद्रे ! जो तुमसे रहित सभाका कार्य करैगा वह सब वैसेही वृथा होजावैगा जैसे कि भस्ममें हवन व्यर्थ होजाता है ॥ ३१ ॥ व जो स्त्री सभाके बीचमें तुमको फलोंसे पूजैगी उसका कोटिगुना फल फलैगा व

अद्यप्रभृतियःकश्चिद्यज्ञमत्रकरिष्यति ॥ सदोमध्येतुसंस्थाप्य पूजयित्वाविलेपनैः ॥ २८ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ ततश्शङ्कुप्रचारन्तु करिष्यन्तितदग्रतः ॥ २९ ॥ एतद्वाक्यंमयाप्रोक्तं सर्वदेवसमागमे ॥ नान्यथा भाविभद्रन्ते त्वंसन्तोषंपरंव्रज ॥ ३० ॥ त्वयाविरहितंभद्रेसदःकर्म्मकरिष्यति ॥ वृथाभाविचतत्सर्वं तथाभस्महुतंयथा ॥ ३१ ॥ यानारीसदसोमध्ये फलैस्त्वांपूजयिष्यति ॥ फलंफलेत्कोटिगुणं तस्याःश्रेयोभविष्यति ॥ ३२ ॥ सफलाश्चदिशस्सर्वा भविष्यन्तिनसंशयः ॥ वस्त्रमाभरणंयाथ पुष्पधूपादिकंतथा ॥ ३३ ॥ तुभ्यंदास्यतितत्सर्वं तस्याःकोटिगुणंफलम् ॥ परंतावत्प्रतीक्षस्व माविमानंसमारुह ॥ ३४ ॥ देवःकेनापिकार्य्येण तवपूजांसमाचरेत् ॥ देवाऊचुः ॥ युक्तंत्वयाद्विजश्रेष्ठ वचनंसमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥ अस्माकमपिवाक्येन सत्यमेतद्भविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ उद्गात्रासैव मुक्ताच तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ देवीवरविमानेन गृहीताचाम्बरस्थिता ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु देवशर्म्मसुताभव

कल्याणहोगा ॥ ३२ ॥ और निस्सन्देह समस्त दिशायें सफलहोवैंगी अथवा जो स्त्री वसन, भूषण व पुष्प, धूपादिक ॥ ३३ ॥ तुम्हारे लिये देवैगी वह सब उसको कोटिगुना फलहोगा परन्तु तबतक परखो विमानपै मत चढ़ो ॥ ३४ ॥ क्योंकि देवता किसीभी कार्यसे तुम्हारा पूजनकरैंगे देवता बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुमने योग्य वचन को भलीभांति कहाहै ॥ ३५ ॥ हम सबोंकेभी वचनसे यह सत्यहोगा सूतजी बोले कि सामवेदीसे वह इसभांति कहीगई व खड़ीहो खड़ीहो यह कहा ॥ ३६ ॥ उत्तम विमानके द्वारा जाती व आकाशमें खड़ीहुई देवीको पकड़ लिया इसी समयमें देवशर्माकी कन्या नगरके मध्यमें टिकीहुई देवीहुई व हे द्विजोत्तमो ! उसके दर्शनकी ला-

स्थानमें ब्राह्मणके घर अन्तकालहोवै तदनन्तर उनने मुझसे कहा कि उत्तम चमत्कारपुरमें ॥ १८ ॥ देवशर्मा नामक द्विजेन्द्र कुलीन व समस्त शास्त्रोंका ज्ञाताहै उसकी उत्तम ब्राह्मणी सत्यभामा ऐसे नामसे प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ उसके गर्भमें प्राप्तहोकर मनुजताको कीजिये जब उसक्षेत्रमें ब्रह्माकी यज्ञहोगी ॥ २० ॥ उससमय उसके शंकुके उलटनेपर तब सब देवोंकी सभाके बीचमें तुमको अपने स्थान में धरेहुये उस शंकुको कहना चाहिये तब मोक्षहोगी व हे द्विजोत्तम ! तुम मेरी इस दैवी शोभा को देखो ॥ २१ । २२ ॥ व मेरे पितासे पठाये हुये आते विमानको देखिये उद्गाता याने सामवेदी बोला कि हे विशाललोचनि ! यज्ञको निर्विघ्न करनेवाली तुम्हारे ऊपर

स्यनिवेशने ॥ ततस्तेनतुसम्प्रोक्ताचमत्कारपुरेशुभे ॥ १८ ॥ देवशर्म्मातुविप्रेन्द्रःकुलीनःसर्वशास्त्रवित् ॥ तस्यसुब्रा ह्मणीनाम सत्यभामेतिविश्रुता ॥ १९ ॥ तस्यागर्भेसमासाद्यमानुषत्वंसमाचर ॥ यदापैतामहोयज्ञस्तस्मिन्क्षेत्रेभवि ष्यति ॥ २० ॥ तदाचसमयेतस्य शङ्कोश्चैवविपर्य्यये ॥ तदाचसत्वयावाच्यो स्वथानेशङ्कुराहितः ॥ २१ ॥ सर्वदेवस भामध्ये तदामोक्षोभविष्यति ॥ इमांमेदैविकींकान्तिं त्वन्तुपश्यद्विजोत्तम ॥ २२ ॥ विमानंपश्यचायान्तं पित्रासम्प्रे षितंमम ॥ उद्गातोवाच ॥ तुष्टोहंतेविशालाक्षि यज्ञस्याविघ्नकारके ॥ २३ ॥ नवृथादर्शनम्मेस्याद्विशेषाद्देवसङ्गमे॥ उदुम्बर्य्युवाच ॥ यदिमेयच्छसिवरं सन्तुष्टोब्राह्मणोत्तम ॥ २४ ॥ सर्वेषामेवदेवानां पुरतस्त्वंददस्वमे ॥ अद्यप्रभृतियः कश्चिद्यज्ञंभूमौसमाचरेत् ॥ २५ ॥ तस्मिन्सदसिमध्यस्थाभुक्तिःकार्य्यायथामम ॥ ततोमत्पुरतश्चैव कार्य्यंशङ्कुप्रचा रणम् ॥ २६ ॥ स्वर्गस्थायाभवेत्तुष्टिर्ममतेजःकृतेनच ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा उद्गातातामथाब्रवीत् ॥२७॥

मैं प्रसन्नहूं ॥ २३ ॥ मेरा दर्शन वृथा नहीं होता व देव संयोगमें विशेषकर व्यर्थ नहीं होताहै उदुम्बरी बोली कि हे द्विजोत्तम ! यदि भलीभांति प्रसन्नहोते हुये तुम मुझको वरदान देतेहो ॥ २४ ॥ तो मुझको सबही देवताओंके आगे दीजिये कि आजसे लगाकर जो कोई भूमिमें यज्ञकरै ॥ २५ ॥ उस समाजमें जिसभांति मुझको मध्यस्थ भोजन करना चाहिये तदनन्तर मेरे अगाड़ी शंकुचालन करना चाहिये ॥ २६ ॥ व मेरे तेजसे कियेहुये कर्मके द्वारा स्वर्गमें टिकीहुई मेरी प्रसन्नताहोवै सूतजी

आई जोकि शंकु वर्णको अपने चित्तमें चाहतीथी ॥ ७ ॥ वह देवशर्मा नामक छन्दोगकी श्रेष्ठ कन्या उदुम्बरी नामक सामवेदके सुननेकी अति इच्छावाली थी ॥ ८ ॥ उसने समाजमें सामवेदी से वैसेही वचन कहा जैसे कि सामवेदसे सूचित शंकु वर्तमानहोते हैं ॥ ९ ॥ कि शीघ्रही जाकर दक्षिणाग्निमें यथोदित हवन कीजिये जिससे तुम पापसे छूटोगे व व्यर्थ न होगा ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो! उसने जितना वचन कहाथा उसके उसवचनको अभिप्राय समेत सुनकर तदनन्तर उसने चिन्तवन किया ॥ ११ ॥ उसके उपरान्त बड़े आश्चर्य से संयुत होतेहुये उसने उस कन्यासे पूंछाकि तुम कहांसे आतीहो व किसकी कन्याहो उसको मुझसे कहो ॥ १२ ॥ उ-

भिधस्यच ॥ उदुम्बरीतिनाम्नासा सामश्रवणलालसा ॥ ८ ॥ उद्गातारञ्चसदसि वचनंव्याजहारसा ॥ यथातथाप्रवर्तन्ते शङ्कवस्सामसूचिताः ॥ ९ ॥ दक्षिणाग्नौद्रुतंगत्वा कुरुहोमंयथोदितम् ॥ येनत्वंमुच्यसेपापान्नवैव्यर्थोभविष्यति ॥१०॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा साभिप्रायंद्विजोत्तमाः ॥ ततस्सचिन्तयामास यावत्तद्व्याहृतंवचः ॥ ११ ॥ ततःपप्रच्छतांकन्यां महताविस्मयान्विताः ॥ कुतस्त्वमसिचायाता सुताकस्यवदस्वमे ॥ १२ ॥ उदुम्बर्य्युवाच ॥ पर्वतस्यसुतास्मीति विख्याता देवशर्म्मणः ॥ जातिस्मरामहाभाग प्राप्तागन्धर्वलोकतः ॥ १३ ॥ नारदःपर्वतश्चैव गन्धर्वौविदितौजनैः ॥ पर्वतस्य सुताचास्मि स्वरभङ्गतयागता ॥ १४ ॥ ततस्सकुपितोमह्यंददौशापंद्विजोत्तमः ॥ मिथ्योपहसितोयस्मादहंशापमतो हसि ॥ १५ ॥ मानुषाणामयंधर्म्मस्तस्मात्त्वंमानुषीभव ॥ मयाप्रसादितस्सोथ पित्रासार्द्धंमुनीश्वरः ॥ १६ ॥ शापान्तंकुरुमेनाथ बालिशायाविशेषतः ॥ मानुषत्वंचमेभूयात्सुस्थानेसुकुलेविभो ॥ १७ ॥ सुस्थानेचान्तकालश्च ब्राह्मण

दुम्बरी बोली कि हे महाभाग! जातिके स्मरणवाली मैं देवशर्मा व पर्वतकी कन्या प्रसिद्ध हूं और गन्धर्वलोकसे प्राप्तहुई हूं ॥ १३ ॥ जनोंसे जानेहुये नारद व पर्वत गन्धर्व हैं मैं पर्वतकी कन्या हूं जोकि स्वरभङ्गतासे नारदके समीप गईथी ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो! क्रोधितहो उन नारदने मुझको शापदिया कि जिसलिये तू मुझको झूंठही हँसीहै इसलिये शापके योग्यहै ॥ १५ ॥ यह मनुष्योंका धर्म्महै इसलिये तुम मानुषीहोवो इसके अनन्तर पिता समेत मैंने उन मुनिनायक को प्रसन्न कराया ॥ १६ ॥ कि हे स्वामिन्! विशेषतासे मुझ मूर्खिणीके शापका अन्त कीजिये हे विभो! मेरी मनुजता उत्तम ठिकाने व अच्छे वंशमेंहोवै ॥ १७ ॥ व अच्छे

पितामह ब्रह्माजी चुपहोगये ॥ ४४ । ४५ ॥ और उस राक्षसनेभी वहींपर राक्षसवाले स्थानको पाया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येराक्षसश्राद्धकथनंनामसप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः१७७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मातृगणन को दीन जिमि देविसवित्री शाप। इकसौ अठतरि में सोई करत कथा आलाप ॥ सूतजी बोलेकि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर पांचवें दिनको भलीभांति प्रातहोने पर श्वेत धोतियोंको पहने व नहायेहुये व पवित्र समस्त ऋत्विज् लोग स्थितहुये ॥ १ ॥ व पुलस्त्यजीसे प्रबोधकराये और समाज के बीचमें गयेहुये

सोपितत्रैव लेभेस्थानन्तुराक्षसम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये राक्षसश्राद्धकथनन्नामसप्तसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ ततस्तुपञ्चमेचाह्निसंजातेद्विजसत्तमाः ॥ श्वेतधौताम्बरास्सर्वे सुस्नाताःशुचयःस्थिताः ॥ १ ॥ चक्रुस्सर्वाणिकर्म्माणि पुलस्त्येनप्रबोधिताः ॥ सदोमध्येगताश्चैव ऋत्विग्वरणपूर्वकम् ॥ २ ॥ अध्वर्य्युणासमादिष्टाने तान्प्रोचुर्यथाक्रमम् ॥ होमार्थंदीप्तवह्नौच ऋत्विग्भिस्सुसमाहितैः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु उद्गात्राकर्म्मयोजितम् ॥ शङ्कुभिःक्रियतेयच्च सामगीतिप्रसूचितम् ॥ ४ ॥ तत्रावर्तेद्विजश्रेष्ठास्सदोमध्येगतेनच ॥ यत्रागच्छन्तितेसर्वे देवायज्ञांशलालसाः ॥ ५ ॥ सोमपानंकृतञ्चैव विशेषेणमुदान्वितैः ॥ प्रारब्धेसोमभक्ष्येथ गीतेचोद्गातृनिर्म्मिते ॥ ६ ॥ आगताकन्यकाचैव सामगीतिसमुत्सुका ॥ शङ्कुवर्णन्निजंचित्तेवाञ्छमानाविचक्षणा ॥७॥ छन्दोगस्यसुताश्रेष्ठा देवशर्म्मा

उन्होंने ऋत्विजोंके वरण पूर्वक समस्त कर्मोंको किया ॥ २ ॥ व सावधान होतेहुये ऋत्विजों समेत अध्वर्यु (यजुर्वेदी) से आज्ञादियेहुये इन होताओंसे जलती अग्नि में होमके लिये कहा ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें साम वेदके गानसे सूचन किया हुआ जो कर्म शंकुवोंसे युक्त कियाजाताहै उसको सामवेदीने किया ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सभाके बीच उस आवर्त (मण्डल) में गमनसे जहां यज्ञभागकी लालसावाले वे समस्त देवता आते हैं ॥ ५ ॥ व विशेषकर आनन्द संयुत देवोंने सोमपान किया इसके अनन्तर सोमभक्षणके प्रारम्भ करनेपर व सामवेदीसे निर्माण कियेहुये गानके प्रारम्भ होनेपर ॥ ६ ॥ सामवेदके गानकी भलीभांति उत्कण्ठावाली एक चतुरकन्या

रहित तथा बीताभरसे अधिक कुशोंसे जो श्राद्धहोगी वह सब तुम्हारीहोगी अथवा जिसमें भैंसा या चीता बाघ या कुनखवाला नरभी ॥ ३६।३७ ॥ अथवा कुष्ठीब्राह्मण भोजनकरै वह श्राद्ध तुम्हारीहोगी और विन नहाये व बिनधोयेहुये वसनको पहननेवालेनरोंसे जो श्राद्धकीगई है ॥ ३८ ॥ और तैलाभ्यंग संयुत जनोंसे जो श्राद्धकीजावै वह तुम्हारीहोगी व श्याव याने बन्दरके वर्णवाले दांतोंवाला व शूद्राकापति जिसश्राद्धमेंभोजनकरै ॥३९॥ व जिसके माता व पिता दोनों पक्षोंमें तीन पुश्तियोंतक वेद तथा अग्निका नाशहो वह विप्र जिसको भोजनकरै वह श्राद्ध तुम्हारीहोगी व जो यज्ञ दक्षिणासे हीन व जो अशुद्धि संयुत जनोंसे व ब्रह्मचर्य रहित नरोंसे कीगई है उस

वितस्तेरधिकैर्वापि तत्सर्वंतेभविष्यति ॥ यद्वामाहिषिकोभुङ्क्ते चित्रीवाकुनखोपिवा ॥ ३७॥ कुष्ठीवाथद्विजोभुङ्क्ते तत्ते श्राद्धंभविष्यति ॥ अस्नातैर्यत्कृतंश्राद्धं यच्चाधौताम्बरैःकृतम् ॥ ३८ ॥ तैलाभ्यङ्गयुतैश्चैव तत्तेश्राद्धंभविष्यति ॥ श्याव दन्तस्तुयद्भुङ्क्ते वृषलीपतिरेवच ॥ ३९ ॥ द्विर्नग्नोवाथयद्भुङ्क्तेतत्तेश्राद्धंभविष्यति॥ योयज्ञोदक्षिणाहीनोयश्चाशौचयुतैःकृतः ॥ ब्रह्मचर्य्यविहीनैस्तु तत्फलंतेभविष्यति ॥ ४० ॥ यस्मिन्नैवातिथेःपूजा श्राद्धेवायज्ञकर्म्मणि ॥ सम्प्राप्ते वैश्वदेवान्ते तत्तेसर्वंभविष्यति ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षंलवणंयच्चतक्रंवाविकृतम्भवेत् ॥ जातीपुष्पप्रदानंच तत्तेसर्वम्भविष्यति ॥ ४२ ॥ यजमानोद्विजोवाथ ब्रह्मचर्य्यविवर्जितः ॥ तच्छ्राद्धन्तेमयादत्तं पावित्र्येणविवर्जितम् ॥ ४३ ॥ आयसेनतुपात्रेण यत्रान्नञ्चप्रदीयते ॥ तच्छ्राद्धन्तेमयादत्तं तथान्यदपिहीनतः ॥ ४४ ॥ मन्त्रक्रियाभ्यांयत्किञ्चिद्रात्रौदत्तंहुतंतथा ॥ संक्रान्तिसोमपर्वाभ्यां व्यतिरिक्तंतुकुत्सितम् ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४५ ॥ राक्षसः

का फल तुमकोहोगा ॥ ४० ॥ और जिस श्राद्ध या यज्ञकर्म में वैश्वदेव कर्मका अन्त प्राप्तहोनेपर अतिथिका पूजन न होवै वह सब तुम्हाराहोगा ॥ ४१ ॥ व जो प्रत्यक्ष लोन या बिगड़ाहुआ तक्र (मठा) होवै व चमेली के फूलोंका प्रदान जहांहोवै वह सब तुम्हाराहोगा ॥ ४२ ॥ व जहां यजमान या ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से हीनहोवै मैंने पवित्रतासे रहित उस श्राद्धको तुम्हैं दिया ॥ ४३ ॥ व जहां लोहेके पात्रसे भोजन दियाजाता है वह श्राद्ध व मन्त्र तथा कर्मसे हीन अन्यभी मैंने तुमको दिया व संक्रान्ति या चन्द्र ग्रहणसे भिन्न जो कुछ निन्दित पदार्थ रातमें दियाजाता है व होम कियाजाता है वह मैंने तुमको दिया ऐसा कहकर इसके अनन्तर लोकोंके

तुम इस रूपसे टिको व मेरे वचनको करो कि जिससे मैं तुमको अति उत्तम स्थान दूंगा ॥ २७ ॥ कि इस चमत्कार नगरके पश्चिम ओर स्थानमें टिकेहुये बहुत से राक्षस, कूष्माण्ड व पिशाचहैं ॥ २८ ॥ वहां जे सब आते हैं उनको उसीक्षण भूत, प्रेत, पिशाच व विशेषकर कूष्माण्ड ग्रहण करते हैं॥ २९ ॥ और नागर ब्राह्मण तो अगाड़ी देखकर उनके डरसे दूरचलेजाते हैं इसलिये हे पुत्र ! तुम वहां जावो व सबोंके स्वामी होओ ॥ ३० ॥ इस समय मैंने तुमको राक्षसोंकी राज्य दिया राक्षस बोला कि हे ब्रह्माजी ! राक्षसोंकी स्वामितामें इस प्रकार टिकेहुये मुझको वहां क्या भोजन करना चाहिये व क्या उनकोदेना चाहिये उसको कहिये हे विभो ! जिसलिये

चोमम ॥ कुरुष्वतेप्रयच्छामि येनस्थानमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ चमत्कारपुरस्यास्य पश्चिमस्थानमाश्रिताः ॥ राक्षसाबहवस्सन्ति कूष्माण्डाश्चपिशाचकाः ॥ २८ ॥ तत्रागच्छन्तियेसर्वे तान्निगृह्णन्तितत्क्षणात् ॥ भूताःप्रेताःपिशाचाश्च कूष्माण्डाश्चविशेषतः ॥ २९ ॥ नागरास्तुपुरोदृष्ट्वा तद्भयाद्यान्तिदूरतः ॥ तद्गच्छपुत्रतत्रत्वं सर्वेषामधिपोभव ॥ ३० ॥ राक्षसानांमयादत्तं तवराज्यंचसाम्प्रतम् ॥ राक्षसउवाच ॥ आधिपत्येस्थितेनैवं राक्षसानांपितामह ॥ ३१ ॥ किम्मयातत्रभोक्तव्यं तेभ्योदेयंचकिंवद ॥ राज्ञाचैवयतोदेयं भृत्यानांभोजनंविभो ॥ ३२ ॥ तन्ममाचक्ष्वदेवेश दयांकृत्वागरीयसीम् ॥ नकरोतिचयोराजा भृत्यवर्गस्यपोषणम् ॥ ३३ ॥ तेनैवनरकंयाति सएवहिश्रुतंमया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यच्छ्राद्धंदक्षिणाहीनं तिलैर्दर्भैर्विवर्जितम् ॥ ३४ ॥ तत्सर्वन्तेमयादत्तं यद्यपिस्यात्सुतीर्थकम् ॥ यच्छ्राद्धंशूकरःपश्येन्नारीवाथरजस्वला ॥ ३५ ॥ कौलेयकोथबालेयस्तत्सर्वंतेभविष्यति ॥ विधिहीनन्तुयच्छ्राद्धं दर्भैर्वामूलवर्जितैः ॥ ३६ ॥

कि सेवकों के लिये राजाहीको भोजन देनाचाहिये॥३१।३२॥ इसलिये हे देवनायक ! मेरे ऊपर बड़ीभारी दयाकरके कहिये क्योंकि जो राजा सेवक समूहका पालन नहीं करताहै ॥ ३३ ॥ वही उसीसे नरकको जाताहै यह मैंनेसुनाहै ब्रह्माबोले कि तिलों व कुशोंसे रहित तथा दक्षिणासे विहीन जो श्राद्धहोवै ॥ ३४ ॥ वह सब मैंने तुम को दिया यद्यपि उत्तम तीर्थभी होवै व जिस श्राद्धको शूकर या रजस्वला नारी देखै ॥ ३५ ॥ अथवा कुत्ता या गधा देखै वह सब तुम्हारीहोगी औरविधिसे रहित व जड़से

लिये कल्पितकीगई थी उसको न जानतेहुये मैंने खालिया ॥ १७ ॥ इसलिये हे देव ! दया कीजिये व मुझको मनुजतादीजिये जिसप्रकार राक्षसता जावै वैसाही न्यायकिया जावै ॥ १८ ॥ उसके कहेहुये उस वचनको सुनकर पितामह (ब्रह्मा) जी दयाकर प्रस्थातासे यह वचन बोले ॥ १९ ॥ किं हे द्विजोत्तम ! यह मेरा पुत्र बालकहै व कार्य, अकार्य्यको नहीं जानता है इसलिये तुम इसकी राक्षसताको हरो ॥ २० ॥ उस वचनको सुनकर उन मुनिने कहा कि हे विभो, देव ! तुम्हारे यज्ञमें गुदाको दूषतेहुये इसने प्रायश्चित्तको पैदा कियाहै ॥ २१ ॥ इसलिये मेरे यज्ञके विघ्नकारक इसको मैंने शापदियाहै मैं किसी प्रकार इसकी राक्षसताको न हरूंगा ॥ २२ ॥ क्योंकि मैंने

भक्षितंतन्मयादेव होमार्थंयत्प्रकल्पितम् ॥ १७ ॥ तस्मान्मानुषतान्देव ममदेहिदयांकुरु ॥ राक्षसत्वंयथायातित थानीतिर्विधीयताम् ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वाजल्पितंतस्य दयांकृत्वापितामहः ॥ प्रतिप्रस्थातरमिमं वाक्यमेतदुवाचह ॥ १९ ॥ बालोयंममपौत्रस्तु कृत्याकृत्यंनवेत्तिच ॥ तस्मात्त्वंराक्षसम्भावं हरस्वास्यद्विजोत्तम ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वासमुनिः प्राह प्रायश्चित्तंमखेतव ॥ अनेनजनितंदेव गुदंदूषयताविभो ॥ २१ ॥ तस्मादेषमयाशप्तो यज्ञविघ्नकरोमम ॥ नाह मस्यहरिष्यामि राक्षसत्वंकथञ्चन ॥ २२ ॥ नर्मणापिमयाप्रोक्तं कदाचिन्नानृतंवचः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रायश्चित्तंकरि ष्येहं यज्ञस्यास्यविशुद्धये ॥ २३ ॥ दक्षिणांगांप्रदत्त्वाचकृत्वाहोमंविधानतः ॥ त्वमस्यराक्षसंभावं हरस्वममवाक्य तः ॥ २४ ॥ सोऽब्रवीच्छीतलोवह्निर्यदिस्यादुष्णगुश्शशी ॥ तन्मेस्यादन्यथावाक्यं व्याहृतंप्रपितामह ॥ २५ ॥ तस्य तद्वचनंश्रुत्वा ज्ञात्वाचैवतुनिश्चयम् ॥ विश्वावसुंविधिःप्राहततोराक्षसरूपिणम् ॥ २६ ॥ त्वंवत्सानेनरूपेण तिष्ठतावद्

कभी हँसीसे भी झूंठेवचनको नहीं कहाहै ब्रह्माजी बोले कि विधिसे होमकरके व गऊ दक्षिणा देकर मैं इस यज्ञकी विशेषकर शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करूंगा तुममेरे वचनसे इसकी राक्षसताको हरो ॥ २३ । २४ ॥ उसने कहा कि हे पितामहजी ! यदि अग्नि ठण्ढीहोवै व चन्द्रमा गरम किरणवान्होवै तो मेराकहाहुआ वचन अन्यथा होगा ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस प्रस्थाताके उस वचनको सुनकर व निश्चय जानकर ब्रह्माने राक्षस रूपवाले विश्वावसुसे कहा ॥ २६ ॥ कि हे वत्स ! तबतक

राक्षसोंका कर्महै कि जिसको तूने कियाहै ॥ ७ ॥ इस लिये मेरे वचनसे तुम शीघ्रही राक्षस होवो इसी अवसरमें वह ऊपर उठेबालोंवाला व लाललोचनोंवाला व कील के समान कानोंवाला काले दांतोंवाला व अतिभयानक तथा लम्बे ओठोंवाला, भयङ्कर मुखवाला व मांस मेदासे रहित तथा त्वचा, हड्डी व नसमात्र शेषवाला और चामुण्डा के आकारही वाला होगया वह पुलस्त्य का पुत्र विश्वावसुनामक मुनि था ॥ ८ । ९ । १० ॥ जोकि ब्रह्माका पौत्र व वेदों तथा वेदाङ्गों के तत्त्वका जानने हाराथा वह मन्त्रसे पवित्र मांसके खानेके लिये भलीभांति आयाथा ॥ ११ ॥ राक्षस के आकारवाले उसको देखकर सबओर से ब्राह्मण डरगये वैसेही अन्य द्विजोंने

एतस्मिन्नेवकालेतु ऊर्ध्वकेशाभवद्द्विसः ॥ ८ ॥ रक्ताक्षःशङ्कुकर्णश्च कृष्णदन्तोतिभैरवः ॥ लम्बोष्ठोविकरालास्यो मांसमेदोविवर्जितः ॥ ९ ॥ त्वगस्थिस्नायुशेषश्च चामुण्डाकृतिरेवच ॥ सवैविश्वावसुर्नाम पुलस्त्यस्यसुतोमुनिः ॥ १० ॥ मन्त्रपूतस्यमांसस्य भक्षणार्थंसमागतः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञःपौत्रस्तुपरमेष्ठिनः ॥ ११ ॥ तन्दृष्ट्वाराक्षसाकारं वित्रेसुस्सर्वतोद्विजाः ॥ रक्षोघ्नानिचसूक्तानि जजपुश्चापरेतथा ॥ १२ ॥ केचिच्छरणमापन्ना विष्णोरुद्रस्यचापरे ॥ पितामहस्यचान्येतु गायत्र्याश्शरणङ्गताः ॥ १३ ॥ रक्षरक्षेतिजल्पन्तो भयसंत्रस्तमानसाः ॥ सोपिदृष्ट्वातदात्मानं गतंराक्षसतांद्विजाः ॥ १४ ॥ बाष्पपूर्णेक्षणोदीनः पितामहमुपाद्रवत् ॥ सप्रणम्यततोवाक्यं कृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ १५ ॥ पौत्रोहंतवदेवेश पुलस्त्यस्यसुतोद्विजः ॥ नीतोराक्षसतामद्य प्रस्थात्राकोपतोविभो ॥ १६ ॥ जिह्वालौल्येनदेवेश पशोर्गुदमजानता ॥

राक्षसोंके नाशनेवाले सूक्तोंका जप किया ॥ १२ ॥ व कोई विष्णुजीकी शरण व अन्यद्विज महादेवकी शरणमें प्राप्तहुये तथा अपर ब्रह्मा व गायत्रीजीकी शरणमेंगये ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! भयभीत मनवाले वे ब्राह्मण रक्षा कीजिये २ ऐसा कहरहे थे वह राक्षसभाव में प्राप्तहुये उस शरीर को देखकर आंसुवों से पूर्णनयनोंवाला व दीन वह भी ब्रह्माके समीप शीघ्रगया तदनन्तर हाथ जोड़हुये उसने उन ब्रह्माजी को प्रणामकर वचन को कहा ॥ १४ । १५ ॥ कि हे विभो, देवेश ! पुलस्त्यका पुत्र मैं तुम्हारा पौत्रहूं जो कि आज प्रस्थाताके कोपसे राक्षसत्वको प्राप्त किया गया ॥ १६ ॥ हे देवनायक, देव ! जिह्वाकी सतृष्णता या चञ्चलता के कारण जो पशुकी गुदा होमके

ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथिमाहा त्म्यंनाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यथा श्राद्ध यज्ञादि सब होत राक्षसन भोग्य । इकसौ सतहत्तर महँ कहत चरित सो योग्य ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर यज्ञसे उपजाहुआ चौथा दिन प्राप्त होनेपर उसके उपरान्त ऋत्विजों ने यज्ञवाले कर्मको प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ वैसेही समस्त सोमपानादि व पशुका हिंसादिककर्म किया और हे द्विजोत्तमो ! होमके लिये

भोज्योन्यो ब्राह्मणोगृहमेधिना ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽ तिथिमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ चतुर्थेदिवसेप्राप्ते ततोयज्ञसमुद्भवे ॥ ऋत्विग्भिर्याज्ञिकङ्कर्म्म प्रारब्धन्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ सोमपानादि कंसर्वं पशोर्हिंसादिकंतथा ॥ पशोर्गुदंसमादाय प्रस्थाताचव्यधारयत् ॥ २ ॥ एकान्तेसदसोमध्येहोमार्थंद्विजसत्तमाः ॥ तस्मिन्व्याकुलतांयाते ब्राह्मणःकश्चिदागतः ॥ ३ ॥ युवातत्रप्रविष्टस्तु मांसभक्षणलालसः ॥ ततोगुदंधृतंदृष्ट्वा भक्ष यामाससोत्सुकः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः प्रस्थातातस्यसन्निधौ ॥ भक्ष्यमाणंसमालोक्य तंशशापततःपरम् ॥ ५ ॥ धिक्धिक्पापसमाचार होमार्थन्तद्गुदंधृतम् ॥ तत्त्वयादूषितंलौल्याद्यज्ञविघ्नकरंकृतम् ॥ ६ ॥ उच्छिष्टेनमयाहोमः कर्तव्योनैवसाम्प्रतम् ॥ राक्षसानामिदंकर्म्म यत्त्वयासमनुष्ठितम् ॥ ७ ॥ तस्मात्त्वंममवाक्येन राक्षसोभवमाचिरम् ॥

प्रस्थाताने पशुकी पायु इन्द्रियको भलीभांति लेकर सभाके बीच एकान्तमें धर दिया उसको विकलता के प्राप्तहोनेपर कोई ब्राह्मण आया ॥ २ । ३ ॥ जोकि युवा व मांसभक्षणकी अति इच्छावाला वह उस यज्ञमें पैठगया तदनन्तर उत्कण्ठा समेत उसने धरीहुई गुदाको देखकर भक्षण किया ॥ ४ ॥ इसी अवसर में प्रस्थाता उसके समीप प्राप्तहुआ तदनन्तर खातेहुये उसको देखकर उसने शाप दिया ॥ ५ ॥ कि हे पाप आचरणवाले ! तुझको धिक्कार है धिक्कार है क्योंकि होमके लिये वह गुदा धरीथी उसको सतृष्णता या चञ्चलता से तूने दूषित किया व यज्ञके विघ्नकारक कर्मको दिया ॥ ६ ॥ इस समय जूंठे मांससे मुझको होम न करना चाहिये यह

जो प्रिय या शत्रु अथवा मूर्ख या पण्डित॥ १२ । १३ ॥ १४ ॥ वैश्वदेव समयमें भलीभांति प्राप्तहुआहो वह अतिथि स्वर्गको पहुँचानेवाला होताहै गोत्र, वर्ण,स्थान व वेदको भी न पूंछै ॥ १५ ॥ किन्तु जनेऊ को देखकर उसको बड़ीभक्तिसे भोजन करावै व श्राद्ध या वैश्वदेव में यदि अतिथि न आवै ॥ १६ ॥ तो घृत चूतीहुई यज्ञ की खीरको अतिथि के नामसे अग्निमें देवै तदनन्तर भोजन देनेके असमर्थ पुरुष को शक्तिसे देना चाहिये ॥ १७ ॥ कि जिससे उसके अन्न से थोड़ी भी प्रसन्नताको प्राप्तहोवै जिस प्रकार अन्य तीसरा सूर्य्योढ अतिथि कहाजाता है उसको सुनिये ॥ १८ ॥ कि भोजन करने पर या रातमें जो आवै उसके लिये गृहस्थ को अपनी

यदिवाद्वेष्यो मूर्खोवापण्डितोथवा ॥ १४ ॥ वैश्वदेवेतुसम्प्राप्तः सोतिथिःस्वर्गसंक्रमः ॥ नपृच्छेद्गोत्रचरणं न स्थानंवेदमेववा ॥ १५ ॥ दृष्ट्वायज्ञोपवीतञ्च भोजयेत्तम्प्रभक्तितः ॥ श्राद्धेवावैश्वदेवेवा यद्यागच्छतिनोतिथिः ॥ १६ ॥ घृताप्लुतन्ततोदद्याच्चरुनाम्नाहविर्भुजे ॥ अशक्तोभोज्यदानस्य देयंशक्त्याततःपरम् ॥ १७ ॥ तस्यान्नेनापिसुस्तोकां येनतुष्टिम्प्रगच्छति ॥ यथान्यस्तुतृतीयस्तु सूर्य्योढोतिथिरुच्यते ॥ १८ ॥ कृतेतुभोजनेयस्तुरात्रौवाचाधिगच्छति ॥ तस्यशक्त्याप्रदातव्यमन्नञ्चगृहमेधिना ॥ १९ ॥ सूर्य्योढोयस्यसम्प्राप्तो गृहात्पूजांविनाव्रजेत् ॥ निराशःपातकंतस्यनिजंदत्त्वाप्रयातिसः ॥ २० ॥ तृणानिभूमिरुदकंवाक्चतुर्थीचसूनृता ॥ एतान्यपिसताङ्गेहे नोच्छिद्यन्तेकदाचन ॥ २१ ॥ स्वागतेनसदातृप्तिर्गृहस्थस्यप्रयातिच ॥ आसनेनव्रजेत्तुष्टिंस्वयम्भूःप्रपितामहः ॥ २२ ॥ अर्घेणशम्भुःपाद्येन सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ भोज्यदानेनविष्णुश्च सर्वदेवमयोतिथिः ॥ २३ ॥ तस्मात्पूज्यःसदाविप्रा भोजनीयोविशेषतः ॥ नामप्रोच्चार्य्य

शक्तिसे अन्न देना चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्य्योढ अतिथि जिसके यहां प्राप्तहुआ हो और पूजन के विना निराश होकर घरसे चलाजावै वह उसको अपना पाप देकर जाता है ॥ २० ॥ तिनुका, भूमि, जल व चौथी सत्यवती प्रियवाणी ये भी सज्जनों के घरमें कभी नाश नहीं होती हैं ॥ २१ ॥ स्वागत (कुशलप्रश्न) से सदैव तृप्ति गृहस्थको प्राप्त होतीहै व आसनसे स्वयम्भू (ब्रह्मा)जी प्रसन्नता को प्राप्तहोतेहैं ॥ २२ ॥ व अर्घदानसे शिव पाद्यसे इन्द्रसमेत समस्त देवता और भोजनदेनेसे विष्णुजी तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं इस लिये हे ब्राह्मणो! समस्तदेवमय अतिथि सदैव पूजनेयोग्य व विशेषकर भोजन करानेयोग्य है और अतिथि का नाम कहकर गृहस्थ को अन्य

से अन्य उत्तम धर्म नहीं है ॥ ३ ॥ और उस अतिथि के उल्लंघन से देवता नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि भंगहुई आशावाला अतिथि जिसके घरसे लौटजाता है ॥४॥
तो उसके लिये पापको देकर व पुण्य लेकर जाताहै व जो अतिथि को नहीं पूजताहै उसका सौ वर्षतक जो सत्य, तपस्या व पठित व दान और यज्ञ कियाहुआ
होताहै यह सब नष्टहोजाता है व आनन्दित होतेहुये अतिथि जिसके घर आतेहैं ॥ ५ । ६ ॥ वह गृहस्थ ऐसा कहागया है शेष गृहके रक्षकहैं इस भूतल में पुरातन
समय बहुत कियेहुये पुण्यवाले पुरुषों के श्राद्ध व दान और उत्तमवाणी ये तीन वस्तुयें प्राप्तहोती हैं गृहस्थके ऊपर अतिथिके प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न

अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥४॥ तद्दत्त्वादुष्कृतन्तस्मै पुण्यमादायगच्छति ॥ सत्यन्तथातपोधीतं दत्त
मिष्टंशतंसमाः ॥ ५ ॥ तस्यसर्वमिदंनष्टमतिथिंयोनपूजयेत् ॥ दूरादतिथयोयस्य गृहमायान्तिनिर्वृताः ॥ ६ ॥ सगृह
स्थइतिप्रोक्तःशेषाश्चगृहरक्षिणः ॥ पुराप्रकृतपुण्यानां नराणामिहभूतले ॥७॥त्रीण्येतानिप्रपद्यन्ते श्राद्धंदानंशुभागि
रः ॥ तुष्टेतिथौगृहस्थस्य सन्तुष्टाःसर्वदेवताः ॥ ८ ॥ विमुखेविमुखास्सर्वा भवन्तिचनसंशयः ॥ तस्मात्तोषयितव्यश्च
गृहस्थेनसदातिथिः ॥ ९ ॥ अथात्मनःप्रदानेन यदीच्छेत्पुण्यमात्मनः ॥ त्रिविधस्त्वतिथिःप्रोक्तो गृहस्थानांद्विजोत्त
माः ॥ १० ॥ तस्याहंवच्मितत्कालं शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ श्राद्धीयोवैश्वदेवीयः सूर्योढश्चतृतीयकः ॥ ११ ॥ येचापि
भोजनार्थाय तेषांमात्राःप्रकीर्तिताः ॥ सङ्कल्पेविहितेश्राद्धे पितॄणाम्भोजनोद्भवे ॥ १२ ॥ समागच्छतियःकाले तच्छ्राद्धी
यमुदाहृतम् ॥ दूराध्वानाच्चविश्रान्तं वैश्वदेवीयमागतम् ॥ १३ ॥ अतिथिंतंविजानीयान्नातिथिःपूर्वमागतः ॥ प्रियोवा

होतेहैं ॥ ७ । ८ ॥ व विमुख होनेपर निस्सन्देह सब विमुख होजातेहैं इस लिये यदि अपनाको पुण्य चाहै तो जीवात्माके भी दानसे सदैव गृहस्थके अतिथि प्रसन्न
करानेयोग्य है हे द्विजोत्तमो ! गृहस्थोंको तीन प्रकारका अतिथि कहागयाहै ॥ ९ । १० ॥ उस अतिथि के उस समयको मैं कहताहूं सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो
कि श्राद्धीय, वैश्वदेवीय व तीसरा सूर्योढ है ॥ ११ ॥ व जे भोजन के लिये भी हैं उनकी मात्रा कहीगई हैं पितरों की श्राद्धमें संकल्प करनेपर भोजन से उपजे हुये
समय में जो भलीभाति आताहै वह श्राद्धीय कहागया है और दूरवाले मार्गसे आये व विश्राम कियेहुये उस अतिथिको वैश्वदेवीय जानै पहले आयाहुआ अतिथि नहीं है

दिन वहां समस्त देवताओं को समीपता करना चाहिये ॥ २० ॥ व जो पुरुष उस दिनके भलीभांति स्थित होनेपर उसी तीर्थमें स्नान करै उसको तुम सबोंकी प्रसन्नतासे समस्त तीर्थोंका फलहोवै ॥२१॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे देव! कौतुकसे संयुक्त जे सब ऋत्विज् लोग भलीभांति बैठेहैं वे यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये शीघ्रही उठैं ॥ २२ ॥ इसी अवसर में उन पुलस्त्यजी के वचन से प्रेरित जे ऋत्विज् थे वे सब उठकर अपने स्थानों पै प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! फिर वह यज्ञ वर्त्तमान हुआ व जो हवनपूर्वक यज्ञवाले कर्मथे उनको करनेलगे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटके

निसंस्थिते ॥ सर्वतीर्थफलन्तस्य जायतेवःप्रसादतः ॥ २१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ऋत्विजःसकलादेव संस्थिताःकौतुकान्विताः ॥ उत्तिष्ठन्तुचतेशीघ्रं यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वे तस्यवाक्यप्रणोदिताः ॥ उत्थिताऋत्विजोयेचस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥२३॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञः सपुनर्द्विजसत्तमाः ॥ कुर्वन्तियज्ञकर्म्माणि होमपूर्वाणियानिच ॥ २४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथेरुत्पत्तिस्तत्तीर्थमाहात्म्यतृतीयदिनयज्ञकर्मचरितकथनंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७५ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ भूयएवमहाभाग वदमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अथितेःकृत्स्नमस्माकं विस्तरेणचसूतज ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ शृण्वन्तुमुनयस्सर्वे माहात्म्यमिदमुत्तमम् ॥ येनसंश्रुतमात्रेण नश्येत्पापंदिनोद्भवम् ॥ २ ॥ यन्मयाचश्रुतम्पूर्वं सकाशात्स्वपितुःशुभम् ॥ गृहस्थानाम्परोधर्म्मो नान्योस्त्यातिथिपूजनात् ॥ ३ ॥ अतिथेर्नचदेवोस्ति तस्यातिक्रमणेनच ॥

श्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथेरुत्पत्तिस्तत्तीर्थमाहात्म्यतृतीयदिनयज्ञकर्मचरितंकथनंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ® ॥ ® ॥

दो० । अहैं समयके भेदसों अतिथि तीनि परकार । इकसौ छिहत्तरिवें महँ कह्यो सो चरित उदार ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन महाभाग ! अतिथि के समस्त उत्तम माहात्म्य को फिरभी हम लोगोंसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि इस उत्तम माहात्म्य को समस्त मुनिलोग सुनैं कि जिसके भलीभांति सुनने मात्रसे दिनमें उपजाहुआ पाप नष्ट होताहै ॥ २ ॥ व पुरातन समय अपने पिताके सकाश से मैंने जिस उत्तम माहात्म्य को सुनाहै कि गृहस्थों को अतिथि के पूजन

भाग से अधिक तृप्ति होगी ॥ ९।१०।११॥ व इसको न देकर जो कुछ कीहुई श्राद्ध होवैगी वह सब इसकी वैसेही व्यर्थ होजावेगी जैसे कि भस्म में हवन व्यर्थ जाता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष वैश्वदेव कर्म के अन्तको प्राप्त होकर विष्णु जी के नाम समेत इसको पूजैगा तो श्रद्धासे पवित्र चित्त करके प्रीतिसे थोड़ाभी दियाहुआ वह अविनाशी होगा व श्राद्ध या वैश्वदेव में जो इसको न पूजैगा ॥ १३ । १४ ॥ उसका वह सब व्यर्थ होजायगा व इसको प्रसन्नता में प्राप्तहोने पर समस्त देवता भलीभांति आनन्द को प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥ और वैसेही विमुखहुये पितर सम्मुख होजाते हैं महेश्वरजी के उस वैसे वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये ब्रह्मा, विष्णु-

तेनास्यभवितातृप्तिर्यज्ञांशाभ्यधिकासदा ॥ ११ ॥ अदत्त्वास्यकृतंश्राद्धं यत्किञ्चित्प्रभविष्यति ॥ तत्तथास्याखिलंव्यर्थं यातिभस्महुतंयथा ॥ १२ ॥ वैश्वदेवान्तमासाद्य यश्चैनंपूजयिष्यति ॥ विष्णुनामसमोपेतं भविष्यतितदक्षयम् ॥ १३ ॥ दत्तंस्वल्पमपिप्रीत्या श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ श्राद्धेवावैश्वदेवेवा यश्चैनंनार्चयिष्यति ॥ १४ ॥ अखिलंव्यर्थतान्तस्य तच्चसर्वंभविष्यति ॥ अस्मिंस्तुष्टिङ्गतेसर्वे सुरायास्यन्तिसंमुदम् ॥ १५ ॥ पितरश्चतथायान्ति विमुखास्संमुखन्तथा ॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे महेश्वरवचस्तथा ॥ १६ ॥ तथेतिमुदिताःप्रोचुर्ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ ततःप्रभृतिसञ्जाता पूजाचातिथिसम्भवा ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजाकार्य्यातिथेःसदा ॥ यज्ञपूरुषयज्ञस्य नचैकस्यकथञ्चन ॥१८॥ अतिथिरुवाच ॥ अत्रास्तिमामकंतीर्थं मयातत्रस्वयंकृतम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं पुराकालेद्विजोत्तमाः ॥ १९ ॥ अङ्गारकेणसंयुक्ता चतुर्थीस्याद्यदातिथिः ॥ सान्निध्यन्तत्रकार्यञ्च सर्वैर्देवैश्चतद्दिने ॥ २० ॥ कुर्य्यात्तत्रैवयःस्नानंतस्मिन्नह

पूर्वक समस्त देवताओं ने तथा (वैसाही होगा) यह कहा तबसे लगाकर अतिथि (पाहुन) से उपजी हुई पूजा भलीभांति उत्पन्न हुई ॥ १६ । १७ ॥ इस लिये सदैव सब उपाय से पाहुन का पूजन करना चाहिये और अकेले यज्ञपुरुषवाले यज्ञका पूजन किसी प्रकार न करना चाहिये ॥ १८ ॥ अतिथि बोला कि हे द्विजोत्तमो ! यहां मेरा तीर्थहै वहांपर पुरातन समय मैंने आपही हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्रको कियाहै ॥ १९ ॥ जिस समय चौथि तिथि भौमवार से संयुतहोवै उस

कि अहो विप्रजी ! यज्ञभाग से रहित तुम निश्चयकर देवता होकर इसी शरीरसे देवलोक में बसोगे व तुम्ह मनुष्य को हम लोग यदि यज्ञभाग देवैं ॥१००।१२॥ तो तुमको उस दियेहुये वर से वेदकी अप्रमाणता होगी अतिथि बोला कि यज्ञभाग से वर्जित देवभाव से मेरा कार्य्य नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये मैं उसप्रकार साधना करूंगा कि जिसभांति मोक्ष होगा उस वचनको सुनकर हाथ जोड़े हुये ब्रह्मा जी समस्त देवताओं से बोले ॥ ४ ॥ कि मैं जो हितवाले वचन को कहता हूं उस को सब देवता सुनैं कि यह ब्राह्मण दूरही से मेरे यज्ञ में आया है ॥ ५ ॥ जो कि ज्ञान की उत्पत्ति में पात्र व विशेष कर नागर है व वैसेही जिसलिये कि समस्त

चुः ॥ नूनंत्वंविबुधोभूत्वा देवलोकेनिवत्स्यसि ॥ १ ॥ अनेनैवशरीरेण यज्ञभागविवर्जितः ॥ यच्छामोयदितेविप्र यज्ञां
शंमानुषस्यभोः ॥ २ ॥ अप्रामाण्यंश्रुतेर्भावि तवदत्तेनतेनच ॥ अतिथिरुवाच ॥ देवत्वेननमेकार्य्यं यज्ञांशरहितेन
च ॥ ३ ॥ तदहंसाधयिष्यामि यथामुक्तिर्भविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राहसर्वान्देवान्कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ शृण्वन्तुदेव
तास्सर्वायद्ब्रवीमिहितंवचः ॥ ममायंब्राह्मणोयज्ञे दूरादेवसमागतः ॥ ५ ॥ नागरस्तुविशेषेण पात्रंज्ञानसमुद्भवे ॥ प्रति
ज्ञातस्तथासर्वैर्वरोस्यविबुधैर्यतः ॥ ६ ॥ तस्मात्तद्दीयतामस्मै यदभीष्टंसुरोत्तमाः ॥ महेश्वरउवाच ॥ यथास्यजायतेतृ
प्तिर्यज्ञभागाधिकासदा ॥ ७ ॥ तथाहङ्कथयिष्यामि शृण्वन्तुविबुधोत्तमाः ॥ यएषःक्रियतेयज्ञस्तस्यनाथोहरिःस्मृ
तः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणात्प्रोक्तस्सदेवोयज्ञपूरुषः ॥ अद्यप्रभृतियत्किञ्चिच्छ्राद्धंमर्त्येभविष्यति ॥ ९ ॥ दैवंवापैतृकंवा
पि तस्यचान्तेऽव्यवस्थिते ॥ एतस्यनामसङ्कीर्त्य पश्चाच्चयज्ञपूरुषम् ॥ १० ॥ सङ्कीर्त्यभोजनंदेयं ब्राह्मणस्यद्विजोत्तमाः ॥

देवताओं ने इससे वर की प्रतिज्ञा किया है ॥ ६ ॥ इस लिये हे देवोत्तमो ! जो मनोरथ हो वह इसके लिये देना चाहिये महेश्वर जी बोले कि जिसप्रकार यज्ञभाग से अधिक इसको सदैव तृप्ति होगी ॥ ७ ॥ मैं वैसेही कहूंगा सब देवोत्तम उसको सुनैं कि जो यह यज्ञ कीजाती है उसके स्वामी विष्णुजी कहेगये हैं ॥ ८ ॥ इसी कारण वे देव यज्ञपुरुष कहेगये हैं आजसे लगाकर मृत्युलोक में जो कुछ देवता या पितरोंवाली श्राद्ध होगी उसकी समाप्ति के व्यवस्थित (प्राप्त) होनेपर इस ब्राह्मण का नाम भलीभांति कहकर पश्चात् यज्ञपुरुष (विष्णु) जी को सङ्कीर्तन करके हे द्विजोत्तमो ! ब्राह्मण को भोजन देना चाहिये उसी से सदैव इसकी यज्ञ

बोला कि हे द्विजोत्तमो ! जहापर सूर्यास्त होता था वहीं शयन करता हुआ मैंने संख्या से रहितही अनेकों सैकड़ों वर्षतक अनेक हजारों व सैकड़ों ग्रामों में भ्रमण किया व मुख्य तीर्थों और वैसेही देवमन्दिरों को देखा ॥ ९१ । ९२ ॥ व उत्तम पर्वतों तथा निर्मल जलवाली नदियों को देखा और काशी जी में टिकेहुये मैंने आपही जाना ॥ ९३ ॥ कि जिसलिये हे द्विजोत्तमो ! इस मेरे स्थान में ब्रह्मा की यज्ञ होनेवाली है उसी कारण कौतुक से मैं शीघ्रतापूर्वक प्राप्तहुआ ॥ ९४ ॥ कि वह कैसी यज्ञहोगी जहांपर पूजनेवाले ब्रह्मा जी हैं इसी अवसर में दूसरे कर्म को प्राप्त होकर याने एक कार्य की समाप्ति में पुलस्ति आदिक ऋत्विज् व विष्णुजी

शायीसन्ननेकानिद्विजोत्तमाः ॥ ९१ ॥ संख्ययारहितान्येव वर्षाणाञ्चशतानिच ॥ दृष्टानिमुख्यतीर्थानि तथैवायतनानिच ॥९२॥ दृष्टाश्चपर्वताःश्रेष्ठा नद्यश्चविमलोदकाः ॥ स्वयमेवमयाज्ञातो वाराणस्यांस्थितेनच ॥ ९३ ॥ यज्ञःपैतामहोभावी स्थानेस्मिन्मामकेयतः ॥ ततोहंसत्वरम्प्राप्तः कौतुकेनद्विजोत्तमाः ॥ ९४ ॥ कीदृशःसमखोभावी यत्रयाजीपितामहः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ९५ ॥ वासुदेवम्पुरस्कृत्वा तथाचैवमहेश्वरम् ॥ कर्म्मान्तरंसमासाद्य पुलस्त्याद्यास्तथर्त्विजः ॥ ९६ ॥ ब्रह्मापिस्वयमायातो मृगचर्म्मधरस्तथा ॥ ततस्तेतुष्टिमापन्नास्तस्यज्ञानेनतेनच ॥ ९७ ॥ प्रोचुश्चवरदास्तुभ्यं सर्वएवदिवौकसः ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते प्रार्थयस्वयथेप्सितम् ॥ ९८ ॥ अवश्यंतवदास्यामो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ अतिथिरुवाच ॥ यदितुष्टास्सुरामह्यं प्रयच्छन्तिवरंमम ॥ ९९ ॥ अनेनैवशरीरेणदेवत्वम्प्रार्थयाम्यहम् ॥ यज्ञभागसमोपेतं तथान्येषांदिवौकसाम् ॥ १०० ॥ विशेषेणसुरश्रेष्ठास्स्थानञ्चोपरिसंस्थितम् ॥ देवाऊ

तथा महादेवजी को अगाड़ी कर इन्द्र समेत समस्त देवता प्राप्त हुये ॥ ९५।९६ ॥ वैसेही मृगचर्मधारी ब्रह्मा भी आपही प्राप्तहुये तदनन्तर उसके उस ज्ञानसे वे देवता प्रसन्नताको प्राप्तभये ॥ ९७ ॥ व बोले कि सबही देवता तुम्हारे लिये वरदायक हैं इसलिये स्वीकार करो तुम्हारा कल्याण होवै इच्छाके अनुकूल मांगिये ॥ ९८ ॥ यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि तुमको अवश्य कर हम लोग देवैंगे अतिथि बोला कि यदि मेरे ऊपर देवता प्रसन्न हैं व मुझको वरदान देते हैं ॥ ९९ ॥ तो हे देवोत्तमो ! यज्ञभाग से संयुत देवभाव को मैं इसी शरीर से मांगता हूं वैसेही विशेषकर अन्य देवताओं के ऊपर भलीभांति टिकेहुये स्थान की प्रार्थना करता हूं देवता बोले

न्त्यमयासोपि आश्रमःपरिवर्जितः ॥ चिन्तितञ्चमयाचित्ते कृत्वाचैवसुनिश्चयम् ॥ ८२ ॥ बहुभिःकलहोनित्यं द्वाभ्यां संघर्षणन्तथा ॥ एकाकीविचरिष्यामि कुमारीवलयंयथा ॥ ८३ ॥ ततःसुप्तांपरित्यज्य ताम्भार्य्यांशिशुसंयुताम् ॥ गतोहंदूरमध्वानं यत्रनोवेत्तिसाचमाम् ॥ ८४ ॥ यत्रास्तमितशायीच यल्लब्धंकृतभोजनः ॥ भ्रमामिमेदिनीपृष्ठे त्यक्त्वासंसारबन्धनम् ॥ ८५ ॥ ततोमेज्ञानमुत्पन्नमेवंविप्राश्शनैःशनैः ॥ अतीतानागतञ्चैव वर्तमानंविशेषतः ॥ ८६ ॥ एवंमेकन्यकाजाता गुरुत्वेद्विजसत्तमाः ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिगुरोःकृते ॥ ८७ ॥ नयुष्माकंपुरोज्ञानंकीर्तयामिकथञ्चन ॥ एवंमेज्ञानमुत्पन्नं प्रकारैःषड्भिरेवच ॥ ८८ ॥ एभिर्लोकान्तरज्ञानं युष्मत्प्रत्ययकारकम् ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे पप्रच्छुस्तंद्विजोत्तमाः ॥ ८९ ॥ वानप्रस्थाश्रमंत्यक्त्वा भार्य्यांशिशुसमन्विताम् ॥ क्वगतस्त्वंतदाचक्ष्व कियत्कालञ्चसंस्थितः ॥ ९० ॥ अतिथिरुवाच ॥ अहंभ्रान्तःसहस्राणि ग्रामाणाञ्चशतानिच ॥ यत्रास्तमित

में स्थित हुई उस एक चूड़ी का न शब्दहुआ और न संघर्ष (घिसन) हुई ॥८१॥ उसको विशेषकर चिन्तनकर मैंने उस आश्रम को भी छोड़ दिया व मैंने उत्तम निश्चय करके चित्त में चिन्तन किया ॥ ८२ ॥ कि बहुत जनोंसे नित्यही झगड़ा होता है वैसेही दो से संघर्षण होता है इसलिये कन्या की चूडीके समान मैं अकेले विचरूंगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर पुत्रसंयुत व सोती हुई उस स्त्री को छोड़कर मैं दूर वाले मार्ग को चलागया कि जहां वह मुझको नहीं जानती थी ॥ ८४ ॥ संसार के बन्धन को छोड़कर जहां सूर्यास्त हुआ वहीं शयन करनेवाला व जो मिला उसको भोजन करनेवाला मैं भूपृष्ठमें घूमता हूं ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीकारण धीरे २ विशेषकर भूत, भविष्य, वर्तमान वाला ऐसा ज्ञान मेरे उत्पन्न हुआ ॥८६॥ हे द्विजोत्तमो ! इसभांति मेरी गुरुतामें कन्या हुई है गुरु के लिये जिस चरित्रको तुम सबों ने पूंछा इससमस्त वृत्तान्तको तुम लोगों से वर्णन किया ॥ ८७ ॥ मैं तुम लोगों के आगे किसी प्रकार ज्ञानको नहीं कहता हूं इसभांति छहप्रकारोंसे मेरेज्ञान उत्पन्नहुआ है ॥ ८८ ॥ इनसे तुम लोगों के विश्वासको करानेवाला लोकों के मध्य का ज्ञान है सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर उन समस्त ब्राह्मणों ने उस से पूंछा ॥ ८९ ॥ कि वानप्रस्थ आश्रम व बालक समेत स्त्री को छोड़कर तुम कहांगये व कितने समय तक भलीभांति टिकेरहेहो उसको कहो ॥ ९० ॥ अतिथि

तो मैं मरजाऊंगी यह निस्सन्देह सत्य है व मेरे मरनेपर यह तुम्हारा बालक भी मरजायगा ॥ ७१ ॥ व कुमारी और कुमार मरजावैगा इसलिये हे स्वामिन्! दया कीजिये आपही जानतेहुये भी तुम अन्य तीर्थ को मत जावो ॥ ७२ ॥ हे विभो ! मैंने सुना है कि सबही तीर्थों के मध्य में हाटकेश्वरसे उपजाहुआ यह क्षेत्र अतिपुण्यदायक कहागया है ॥ ७३ ॥ हे नाथ ! हे विभो ! अन्य तपस्वियों व द्विजेन्द्रों के कहते हुये व बहुधा सत्यवादी उत्तममुनि विश्वामित्र जीके मुखसे कहते हुये इस श्लोक को मैंने सुना है कि समस्त तीर्थ निस्सन्देह स्नान व दान से पवित्र करते हैं ॥ ७४ । ७५ ॥ व हाटकेश्वरज क्षेत्र स्मरणसे भी तारताहै तदनन्तर

मारीचकुमारश्च तस्मान्नाथदयांकुरु ॥ मात्रजस्वपरंतीर्थं परिजानन्नपिस्वयम् ॥ ७२ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रमेतत्पुण्यतरंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां श्रुतमेतन्मयाविभो ॥ ७३ ॥ वदतांब्राह्मणेन्द्राणां तथान्येषान्तपस्विनाम् ॥ श्लोकोयं बहुधानाथ कीर्त्यमानोमयाविभो ॥ ७४ ॥ विश्वामित्रस्यवक्त्रेण सन्मुनेःसत्यवादिनः ॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादसंशयम् ॥ ७५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं स्मरणादपितारयेत् ॥ ततःकृच्छ्रात्परिज्ञातं मयाश्रमनिषेवणम् ॥ ७६ ॥ वानप्रस्थोद्भवंस्थित्वा ततोहंतत्रसंस्थितः ॥ तत्रस्थस्यहिमेकन्याक्रीडतेपुरतःस्थिता ॥ ७७ ॥ वलयापूरिताभ्याञ्च भ्रममाणाइतस्ततः ॥ यथायथासाकुरुते कन्दमूलफलाशनम् ॥ ७८ ॥ तनुत्वंयातिकायेन तथाचैवदिनेदिने ॥ ततोमेजायतेदुःखंतेषांपतनसम्भवम् ॥ ७९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसञ्जातंवलयद्वयम् ॥ तस्याहस्तेततस्ताभ्यांशब्दःसञ्जायतेमिथः ॥ ८० ॥ ततःकालेनमहता ताभ्यामेकंव्यवस्थितम् ॥ नसंघर्षोनशब्दश्चतत्रस्थस्यचजायते ॥ ८१ ॥ तद्विचि

मैंने कष्ट से आश्रम का सेवन जाना ॥ ७६ ॥ उसके उपरान्त वानप्रस्थ से उपजे हुये आश्रम में टिककर मैं वहां भलीभांति टिकताभया वहां टिकेहुये मेरे अगाड़ी स्थित होती हुई कन्या खेलती है ॥ ७७ ॥ चूड़ियों से पूरित हाथोंसे संयुत व इधर उधर घूमती हुई वह ज्यों २ कन्द, मूल, फल भोजन करती है ॥ ७८ ॥ त्यों २ दिन २ में शरीर से लघुता को प्राप्त होती थी उसी कारण मुझको उन चूड़ियों के गिरने से उपजाहुआ दुःख होता था ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस के हाथ में दो चूड़ियां रहगईं तदनन्तर उन दोनों से आपस में शब्द होता था ॥ ८० ॥ तदनन्तर बड़े समय से उन दोनों में से एक व्यवस्थित हुई (रहगई) हाथ

में चिन्तन किया ॥ ६१ ॥ कि ब्रह्मज्ञानसे उपजाहुआ योग एकाग्र चित्तसे होगा अन्यथा यह योग मेरे न होगा इसलिये ब्रह्मसंसिद्धिके लिये मैं चित्तका निरोध करूं उसीसे मेरे यह योग होगा उसके उपरान्त तबसे लगाकर सदैव अपने चित्तमें हृदयके कमल में बसनेवाले समस्त विश्वरूप (परमात्मा) को धारण करता हूं उसीकारण दिशाओं व दिगन्तों और आकाश व भूतल में ॥ ६२।६३।६४ ॥ उस एकही पुरुष को देखता हूं हे द्विजोत्तमो ! और कुछ नहीं देखताहूं व उसके अभाव से मैं तेज संयुत टिका हूं ॥ ६५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह बाणकारक इसप्रकार मेरा गुरु हुआ है व पुरातन समय जिसप्रकार मेरी गुरुता में कन्या हुई है उस को सु-

या ॥ ६१ ॥ एकचित्ततयायोगो ब्रह्मज्ञानसमुद्भवः ॥ नान्यथाभवितामेसौ ततश्चित्तनिरोधनम् ॥ ६२ ॥ करोमिब्रह्मसंसिद्ध्यै ततोमेसौभविष्यति ॥ ततःप्रभृतिचित्तेस्वे धारयामिसदैवतु ॥ ६३ ॥ विश्वरूपंततःसर्वं हृत्पङ्कजनिवासिनम् ॥ ततोदिक्षुदिगन्तेषु गगनेधरणीतले ॥ ६४ ॥ तमेकञ्चैवपश्यामि नान्यत्किञ्चिद्द्विजोत्तमाः ॥ अहञ्चतेजसायुक्तस्तत्प्रभावेणसंस्थितः ॥ ६५ ॥ एवंमेसगुरुर्जातःशरकारोद्विजोत्तमाः ॥ शृणुध्वंकन्यकाजाता गुरुत्वेमेयथापुरा ॥ ६६ ॥ सर्वसङ्गपरित्यागी यदाहंनिर्गतोगृहात् ॥ ममानुपृष्ठतश्चैव ततोभार्याविनिर्गता ॥ ६७ ॥ शिशुंपुत्रंसमादाय कन्यामेकाञ्चशोभनाम् ॥ ततोहंभार्य्ययाप्रोक्तो वानप्रस्थाश्रमेस्थितः ॥ ६८ ॥ कुरुयोगंततोमुक्तिरत्रैवहिभविष्यति ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोथवायतिः ॥ ६९ ॥ यदिस्यात्संयतात्मास नूनंमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ अथवामांपरित्यज्य यदियास्यथवान्यतः ॥ ७० ॥ तदहञ्चमरिष्यामि सत्यमेतदसंशयम् ॥ मृतायामपितेबालश्चासावपिमरिष्यति ॥ ७१ ॥ कु

निये ॥ ६६ ॥ कि समस्त संगों का छोड़नेवाला मैं जब घर से निकला तदनन्तर छोटे पुत्रको व एक उत्तम कन्याको भली भांति लेकर मेरे पछिसे स्त्री निकली उसके उपरान्त वानप्रस्थ आश्रममें टिकेहुये मुझसे स्त्रीने कहा ॥ ६७।६८ ॥ कि योगको कीजिये तदनन्तर यहीं मोक्ष होगा ब्रह्मचारी,गृहस्थ या वानप्रस्थ अथवा संन्यासी होवे ॥ ६९ ॥ यदि संयतात्मा याने चित्त या मनको रोंकनेवाला होगा वह निश्चय कर मुक्ति को पावैगा अथवा यदि मुझको छोड़कर तुम अन्यत्र जावोगे ॥ ७० ॥

कर ॥ ५० ॥ मृत्युलोकमें ब्राह्मणों के लिये उनके अनुहारवाले ग्रन्थोंको किया है हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार भ्रमर मेरी गुरुता में प्राप्तहुआ है ॥ ५१ ॥ व बाणकारक जिसभांति गुरु हुआहै वैसेही तुमलोगों से कहताहूं कि मैंने परमात्मा के देखने के लिये हज़ारों ज्ञानसे संयुत योगियों से पूंछा व उन्होंने अपनी शक्तिसे कहा कि उत्तम शिष्यके लिये समाधि से उपजाहुआ आत्माका निरीक्षण होवैगा ॥५२।५३॥ व उसके प्रमाणवाले आसनों व आसनों को पूर्ण करनेवाले असंख्य कारणों से व अध्यात्म के पढ़ने से ब्रह्मका अवलोकन होता है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मैंने किसीप्रकार परमात्माको न देखा उसके उपरान्त वैराग्यको प्राप्त होताहुआ मैं गुरुके लिये

एवंमेगुरुताम्प्राप्तो मधुपोद्विजसत्तमाः ॥ ५१ ॥ इषुकारोयथाजातस्तथाचैवब्रवीमिवः ॥ आत्मावलोकनार्थाय मया पृष्टास्सहस्रशः ॥ ५२ ॥ योगिनोज्ञानसम्पन्नास्तैःप्रोक्तञ्चस्वशक्तितः ॥ आत्मावलोकनम्भावि सुशिष्यायसमाधिजम् ॥ ५३ ॥ आसनैस्तत्प्रमाणैश्च तथासनप्रपूरकैः ॥ असंख्यैःकारणैश्चैव अध्यात्मपठनैस्तथा ॥ ५४ ॥ ततोवलब्धितोनैव मयात्माचकथञ्चन ॥ ततोवैराग्यमापन्नःप्रभ्रमामिधरातले ॥ ५५ ॥ गुर्वर्थञ्चैवनोपश्यं गुरुमात्मावलोकने ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते राजमार्गेणगच्छता ॥ ५६ ॥ मयादृष्टोमहीपालस्सैन्येनमहतावृतः ॥ कश्चिदागत्यपप्रच्छ त्वरयासंयुतोनरः ॥ ५७ ॥ शरकर्मणिसंयुक्तमृजुत्वेतंनरन्तदा ॥ इषुकारममब्रूहि श्रेयस्तवभविष्यति ॥ ५८ ॥ कियतीवर्ततेवेला गतस्यपृथिवीपतेः ॥ ५९ ॥ इषुकारउवाच ॥ नमयावीक्षितःकश्चिद्राजमार्गेणभूपतिः ॥ तदन्यम्पृच्छचेत्कार्यं तवान्योपिब्रवीतुवा ॥ ६० ॥ शरकर्मणिसंसक्तस्त्वहमत्रव्यवस्थितः ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तस्य स्वचित्तेचिन्तितंम

भूतल में घूमताथा परन्तु आत्मा के देखने में मैंने गुरुको न देखा अन्य दिनके प्राप्तहोने पर बड़ी सेनासे घिरे व राजमार्ग से जातेहुये भूपालको देखा॥५५।५६।५७॥ उस समय शीघ्रतासंयुत कोई मनुष्यने आकर सीधेकरनेवाले बाणकर्म में लगे हुये उस पुरुषसे पूंछा ॥ ५८ ॥ कि हे शरकारक ! तुम्हारा कल्याणहोगा मुझसे कहिये कि गयेहुये भूपतिको कितना समय वर्त्तमानहै ॥ ५९ ॥ बाणकारक बोला कि मैंने राजमार्गमें जातेहुये किसी भूपतिको नहीं देखाहै यदि कार्यहो तो अन्यपुरुष से पूंछिये और अन्य नर तुमसे कहैगा ॥ ६० ॥ मैं तो बाणके कार्यमें लगाहुआ यहां विशेषता से टिकाथा उस शरकारकके उस वचनको सुनकर मैंने अपने चित्त

वैसाही तुमलोगों से कहताहूं ॥ ४० ॥ कि मैने किसी वृत्तमें किसी भी प्राप्तहुये भ्रमरको देखा जोकि शाखाके अग्रभागमें भलीभांति टिककर पहले कियेहुये निवन्धन (स्थान) वालाथा ॥ ४१ ॥ वसन्त समयके प्राप्त होने पर जो वृक्ष सुगन्ध, फल, पत्तोंवाले व उत्तम सुगन्धसे संयुत व फूलोंवाले थे ॥ ४२ ॥ उनके बीचसे उत्तमसे अतिउत्तम रसको भलीभांति लेकर सदैवही इस वृत्तकी शाखाके अग्रभागमें नियोग करता था ॥ ४३ ॥ उस समय निर्वेदन प्राप्तहुये भावसे देखा व मैंने भलीभांति निरीक्षण किया तदनन्तर बहुत समय से बहुत भारी मधु (शहद) समूह होगया ॥ ४४ ॥ कि जिस शहद से सैकड़ों हज़ारों अन्य भ्रमर तृप्तिको प्राप्तहुये मैंने

शाखाग्रन्तुसमाश्रित्य कृतपूर्वनिबन्धनः ॥ ४१ ॥ वसन्तसमयेप्राप्ते पुष्पवन्तश्चयेद्रुमाः ॥ सुगन्धफलपत्राश्च सुसुगन्धेनसंयुताः ॥ ४२ ॥ तेषांमध्यात्समादाय श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरंरसम् ॥ नियोजयतिशाखाग्रे तरोरस्यसदैवहि ॥ ४३ ॥ आनिर्विण्णतयादृष्टस्तदासम्यङ्निरीक्षितः ॥ मधुजालन्ततोजातं कालेनमहतामहत् ॥ ४४ ॥ येनान्येमधुनातृप्तिं प्राप्ताश्शतसहस्रशः ॥ तच्चेष्टितंमयादृष्टं शास्त्राण्यन्यानिभूरिशः ॥ ४५ ॥ ततस्तेषांसमादाय सारभूतंपृथक्पृथक् ॥ कृतानिभूरिशास्त्राणि वेदान्तानिचकृत्स्नशः ॥ ४६ ॥ उपजीवन्तियेनान्ये यथाभृङ्गास्तथाद्विजाः ॥ एवंमेमधुपोजातो गुरुत्वेचद्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ तेनाहंतेजसायुक्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ वेदान्तवादिनोयेत्र प्रभवन्तिव्रतान्विताः ॥ ४८ ॥ निर्लोभागततृष्णाश्चतेभवन्तिसुतेजसः ॥ एकेत्रापिविहीनाये प्रभवन्तिकुबुद्धयः ॥ ४९ ॥ लोभमोहान्वितावाये जायन्तेतेवितेजसः ॥ वेदान्तानिसुभूरीणि मयादृष्ट्वाविचार्य्यच ॥ ५० ॥ अनुरूपाःकृताग्रन्था मर्त्यलोकेद्विजार्थतः ॥

उसके कर्मको देखा व अन्य बहुतसे शास्त्रोंका अवलोकन किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन शास्त्रोंसे अलग २ सारांशभूत वस्तुको लेकर मैंने अनेक शास्त्रों व सम्पूर्ण वेदान्तों का निर्माण किया ॥ ४६ ॥ कि जिससे जैसे भ्रमर जीते थे वैसेही अन्य ब्राह्मण जीविका करतेहैं हे द्विजोत्तमो ! इसभांति भ्रमर मेरी गुरुतामें हुआहै ॥४७॥ उसीसे मैं तेजसंयुत हूं इसमें और कारण नहीं है यहां व्रतों से संयुत जे वेदान्तवादी निर्लोभ व तृष्णारहित होते हैं वे उत्तम तेजस्वी होते हैं व कितेक कुबुद्धी जो पुरुष यहां भी व्रतादिकों से विहीन होते हैं ॥ ४८ । ४९ ॥ या जो लोभ, मोह से संयुत होते हैं वे बिन तेजवाले होतेहैं मैंने बहुतसे वेदान्तों को देखकर व विचार

मैंने सांपके कर्मको देखकर त्यागकिया जो संन्यासी एकरात ग्राममें बसै व तीन रातैं शहर में निवासकरै ॥ ३० । ३१ ॥ वही यति (संन्यासी) कहागया है व जो अन्यहै वह योगकी विडम्बना करताहै और जो मुख्य ब्राह्मणों के घरमें धुँवा रहित व शान्त अग्निमें मधुकरी (भौंरियां) पकाताहै वह यतिहै अन्य नहीं कहा गयाहै अथवा दण्डी भिक्षाको करै व जो पुरुष दुःख के विना उसी भिक्षा करने पै स्थित होता है व वैराग्यको प्राप्तही होताहै वह निश्चयकर यतिहै दिनमें सोना व पराया अन्न, स्त्रियोंकी कथा व सम्भाषण ही ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ व श्वेत वसन, सुवर्ण ये छह संन्यासियों के पातहैं याने इन्हींसे संन्यासी पतित होता है और जो

विधूमे सर्पविचेष्टितम् ॥ ... ॥ ३१ ॥ योयतिःसयतिःप्रोक्तोयोन्योयोगविडम्बकः ॥ विधूमे
सर्पविचेष्टितम् ॥ एकरात्रंवसेद्ग्रामे त्रिरात्रंपत्तनेवसेत् ॥ ३१ ॥ योयतिःसयतिःप्रोक्तोयोन्योयोगविडम्बकः ॥ विधूमे
चप्रशान्ताग्नौ यस्तुमाधुकरीञ्चरेत् ॥ ३२ ॥ गृहेचविप्रमुख्यानां सयतिर्नेतरःस्मृतः॥ दण्डीभिक्षाञ्चवाकुर्य्यात्तदेवा
व्यसनंविना ॥ ३३ ॥ यस्तिष्ठतिचवैराग्यं यातिचैवयतिर्हिसः ॥ दिवास्वापम्परान्नञ्चस्त्रीकथालापमेवच ॥ ३४ ॥ श्वेत
वस्त्रंहिरण्यञ्च यतीनांपत्तनानिषट् ॥ समःशत्रौचमित्रेच समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ३५ ॥ सयतिर्नेतरोयश्चसमोमाना
पमानयोः ॥ स्वदेशेपरदेशेवा स्वकीयेपरकेपिवा ॥ ३६ ॥ योनहृष्यतिनद्वेष्टिसयतिर्नेतरःस्मृतः ॥ यस्मिन्गृहेविशेषे
णलभेद्भिक्षाञ्चवाशनम् ॥ ३७ ॥ तत्रनोयातियोभूयः सयतिर्नेतरःस्मृतः ॥ एवंज्ञात्वामयाविप्रा दृष्ट्वासर्पविचेष्टित
म् ॥ ३८ ॥ सर्वसङ्गपरित्यागं मोक्षार्थंपरिकल्पितम् ॥ एवंममाहिःसञ्जातो गुरुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३९ ॥ तत्प्रभावान्म
हत्तेजः सञ्जातंविग्रहेमम ॥ यथामेभ्रमरोजातो गुरुस्तद्वदामिवः ॥४०॥ कस्मिन्वृक्षेमयादृष्टोभ्रमरःकोपिसङ्गतः ॥

शत्रु व मित्रमें समभाव तथा ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समदृष्टि है ॥ ३५ ॥ वह यति है अन्य नहीं है व मान, अपमान में सम और अपने देश या विदेश में व अपने तथा पराये में ॥ ३६ ॥ जो न प्रसन्न होता है न वैर करताहै वह यतिहै अन्य नहीं कहागया है व जिस घर में विशेषकर भिक्षा या भोजनको पावै ॥ ३७ ॥ वहां जो फिर न जावै वह यतिहै अन्य नहीं कहागया है हे ब्राह्मणो ! सांपके कर्मको देखकर मैंने ऐसा जानकर ॥ ३८ ॥ मोक्षके लिये समस्त सङ्गोंके त्यागकी कल्पना किया हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार सर्प मेरा गुरुहुआ है ॥ ३९ ॥ उसके प्रभावसे मेरे शरीरमें बड़ाभारी तेज भलीभांति उत्पन्न हुआहै व जिसप्रकार भ्रमर मेरा गुरुहुआ है

प्राप्त होनेपर परस्पर वैरहोजाता है हे तपस्यारूप धनवाले मुनियो ! इसी कारण मैंने धनको त्याग कियाहै ॥ २१ ॥ उसी कारण कुररकी प्रसन्नतासे मैं आनन्द से टिकाहूं हे महाभाग्यवाले ऋषियो ! जिसभांति सांप मेरा गुरु स्थित भया है उसको सुनिये ॥ २२ ॥ कि जिसप्रकार मैंने सांपके कर्मको देखकर घरको त्याग किया है क्योंकि घरका प्रारम्भ दुःखके लिये है कदापि सुखके लिये नहीं होताहै ॥ २३ ॥ सांप पराये कियेहुये घरमें पैठकर सुखको पाताहै और वहां सुखसे बसकर फिर छोड़कर दिशाको चलाजाता है ॥ २४ ॥ व ममता नहीं करता कि मेरा यह घर उत्तम है उसके घर नहीं होता क्योंकि अपनाऱो नहीं बनायागया है ॥ २५ ॥ फिर

तेजाते वैरंसञ्जायतेमिथः ॥ एतस्मात्कारणाद्वित्तं मयात्यक्तंतपोधनाः ॥ २१ ॥ तेनसौख्येनतिष्ठामि कुररस्यप्रसादतः ॥ शृणुध्वञ्चमहाभागा यथामेहिर्गुरुःस्थितः ॥ २२ ॥ यथामयागृहंत्यक्तं दृष्ट्वासर्पविचेष्टितम् ॥ गृहारम्भस्तु दुःखाय सुखायनकदाचन ॥ २३ ॥ सर्पःपरकृतंवेश्म प्रविश्यसुखमेधते ॥ उषित्वातत्रसौख्येन भूयस्त्यक्त्वादिशंव्रजेत् ॥ २४ ॥ ममत्वंकुरुतेनैव ममेदंगृहमुत्तमम् ॥ नगृहंजायतेतस्य नस्वयंहिकृतंयतः ॥ २५ ॥ यःपुनःकुरुतेहर्म्यं तथाक्लेशैःपृथग्विधैः ॥ तस्ययातिममत्वाय मृत्युकालेपिसंस्थिते ॥ २६ ॥ गृहात्संजायतेभार्य्याततःपुत्राश्चकन्यकाः॥ तेषामर्थेकरोतिस्म कृत्याकृत्यंततःपरम् ॥ २७ ॥ कोशकारमिवात्मानं चेष्टयन्नैवबुध्यते ॥ पुत्रदारगृहक्षेत्रसक्तास्सीदन्तिजन्तवः ॥ २८ ॥ स्नेहपङ्कार्णवेमग्ना नष्टावनगजाइव ॥ एकःपापानिकुरुते फलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ २९ ॥ भोक्तारोपिप्रमुच्यन्ते कर्तादोषेणलिप्यते ॥ एतस्मात्कारणाद्धर्म्यंमयात्यक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥ मोक्षमार्गार्गलाभूतं दृष्ट्वा

जो पुरुष अनेक भांतिके क्लेशोंसे मन्दिर को करता है उसके मृत्युसमय को भी संस्थित (प्राप्त) होनेपर ममताके लिये होताहै ॥ २६ ॥ घरसे स्त्री होती है व उस स्त्रीसे पुत्र, कन्या होतीहैं तदनन्तर उनके लिये कार्य्याकार्य्य को करताहै ॥ २७ ॥ व कोशाकार (खुशियालीके कीट) की नाईं चेष्टा करता हुआ अपनाको नहीं जानताहै व पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्रमें आसक्त प्राणी दुःखितहोतेहैं ॥ २८ ॥ व वनके हाथियों के समान स्नेहरूपी कीचड़में फँसकर नष्टहोजाते हैं एक महापुरुष पापोंको करता है व फल भोगता है ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भोगकरनेवाले भी छूटजाते हैं व करनेवाला नर दोषसे लिप्तहोता है इसी कारण मोक्षमार्ग के बेंड़कनरूप घरको

व इस कारण तीनबार सौगन्द करके कि मेरे यह धनहै और मेरे घरमें नहीं है और न्यायपूर्वक व विधिके अनुकूल धनको बांटकर ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! तबसे लगाकर उनसे छूटाहुआ मैं सुखसे टिकताहूं इसी कारण यह कुरर मेरा गुरुहुआ है ॥ १३ ॥ और लक्ष्मी अज्ञान के लिये है व अज्ञान नरक के निमित्त होता है इसलिये मोक्षका चाहनेवाला पुरुष अनर्थरूपी धनको दूरसे त्यागकरै ॥ १४ ॥ जैसे मांस जलमें मछलियोंसे व भूमिमें सिंहादिक हिंसक पशुवोंसे और आकाशमें पक्षियों से निश्चयकर खायाजाता है वैसेही सबकहीं धनवान् नर पुरुषोंसे व्यथित होता है ॥ १५ ॥ दोषरहित भी धनवान् को भूपाल संतप्त करते हैं और दोषको

न्यदस्तीतिमेगृहे ॥ विभज्यार्थंयथान्यायं ममैतच्चयथाविधि ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतितैर्मुक्तः सुखंतिष्ठाम्यहंद्विजाः ॥ एत
स्मात्कारणाज्जातो ममासौकुररोगुरुः ॥ १३ ॥ अथसम्पद्विमोहाय विमोहोनरकायच ॥ तस्मादर्थमनर्थन्तु मोक्षा
र्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ १४ ॥ यथामिषंजलेमत्स्यैर्भक्ष्यतेश्वापदैर्भुवि ॥ आकाशेपक्षिभिश्चैव तथासर्वत्रवित्तवान् ॥ १५ ॥
दोषहीनोपिधनवान्भूपालैःपरितप्यते ॥ दरिद्रःकृतदोषोपिसर्वत्रनिरुपद्रवः ॥१६॥ आलम्बिताःपरैर्यान्ति प्रस्खलन्तिप
देपदे ॥ गद्गदानिचजल्पन्ति धनिनोमद्यपाइव ॥ १७ ॥ भक्तेद्वेषोबहिःप्रीती रुचिरंगुरुलघ्वपि ॥ मुखेचकटुकंनित्यं ध
निनांज्वरिणामिव ॥ १८ ॥ अर्थार्थंजीवलोकोयं श्मशानमपिसेवते ॥ जनितारमपित्यक्त्वा निःस्वंयान्तिसुताअपि ॥
१९ ॥ सुतस्यवल्लभस्तावत्पितापुत्रोपिवैपितुः ॥ यावन्नार्थस्यसम्बन्धस्ताभ्यांभावीपरस्परम् ॥ २० ॥ सम्बन्धेधिग

कियेहुये भी निर्धनी सबकहीं उपद्रवरहित होता है ॥ १६ ॥ मदिरा पीनेवाले नरोंकी नाईं धनी पुरुष और जनोंसे अवलम्बित होकर चलते हैं व पग २ पै लरखराते हैं और गद्गद वचनों को बोलते हैं ॥ १७ ॥ भक्त या भात में वैर व बाहरमें स्नेह और गरिष्ठ व हलके भोजन या बड़ा व छोटा भी पुरुष सुन्दर तथा मुखमें नित्यही कटुता ज्वरवान् नरोंकी नाईं धनियों के होतीहै ॥ १८ ॥ यह जीव लोक धनके लिये श्मशानको भी सेवताहै व पुत्रभी निर्धनी जनकको छोड़कर चलेजाते हैं ॥ १९ ॥ तब तक पुत्रको पिता प्यारा है व पुत्रभी तब तक पिताको प्रियहै कि जब तक उन दोनों से आपस में धनका सम्बन्ध नहीं होगा ॥ २० ॥ और सम्बन्ध

कि जिस प्रकार पिंगला मेरी गुरुहुई है व जिसप्रकार कुरर हुआ है उसको सुनिये मैं तुमसे यथायोग्य कहताहूं ॥ १ ॥ किं पिता, पितामहवाला बहुतसा धन मेरे था
और जो पुत्र व पौत्र, सुत व भाई भी थे ॥ २ ॥ वे सब सदैव द्रव्यके लिये मुझको पीड़ित करते थे मैं जिसको न देऊं वही मुझको दुःखित करता था व प्राण संहार
को दिखलाते हुये मैं दुःख के द्वारा याचित होताथा कोई प्रिय वचन से द्रव्य को मांगते थे अन्य भेदसे मांगते थे ॥ ३ । ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! अन्य जयके प्रदान से
व कोई दण्डकेद्वारा मांगते थे इस भांति मैं उनके समीप से कहीं सुखको न प्राप्त होताथा ॥ ५ ॥ दिन रात दुःख के विनाश को चिन्तन करता हुआ मैं उपायको न

द्द्रविणंभूरि पितृपैतामहंमहत् ॥ तथापुत्राश्चपौत्राश्च दायादाबान्धवाअपि ॥ २ ॥ तेमांसर्वेप्रबाधन्ते द्रविणस्यकृते
सदा ॥ यस्याहन्नप्रयच्छामि समांचैवप्रबाधते ॥ ३ ॥ याच्यमानस्तुदुःखेन दर्शयन्प्राणसंक्षयम् ॥ एकेसाम्नाप्रयाचन्ते
वित्तंभेदेनचापरे ॥ ४ ॥ जयप्रदानैश्चान्येपि केचिद्दण्डेनचद्विजाः ॥ एवंनाहंकचित्सौख्यं तेषांपार्श्वाल्लभामिभोः ॥ ५ ॥
चिन्तयानोदिवानक्तं क्लेशस्यपरिसंक्षयम् ॥ उपायन्नचपश्यामि येनशान्तिःप्रजायते ॥ ६ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेदृष्टो
हृतमांसपरिग्रहः ॥ कुररश्चञ्चुनाव्योम्नि गच्छमानस्त्वरान्वितः ॥ ७ ॥ हन्यमानस्समन्ताच मांसार्थेविविधैःखगैः ॥
अथतेनपरिक्षिप्तं तन्मांसंपक्षिजाद्भयात् ॥ ८ ॥ यावत्तावत्सुखीजातस्तैश्चसर्वैःसमुज्झितः ॥ मयापिक्लिश्यमानेन
तद्वच्चनिजबान्धवैः ॥ ९ ॥ सामिषंकुररंदृष्ट्वा वध्यमानंनिरामिषैः ॥ आमिषस्यपरित्यागात्कुररस्सुखमेधते ॥ १० ॥
एवंनिश्चित्यमनसा सर्वानानीयबान्धवान् ॥ पुत्रान्पौत्रांस्तथासर्वं पुरस्तेषांनिवेदितम् ॥ ११ ॥ त्रिवारंशपथंकृत्वा ना

देखता था कि जिससे शान्ति होवै ॥ ६ ॥ मैंने अन्य दिनमें शीघ्रतासंयुक्त व चोंच से मांस को लिये और आकाश में शीघ्रता से जातेहुये कुरर पक्षीको देखा ॥ ७ ॥
जोकि मांसके लिये सबओर अनेक प्रकारके पक्षियों से मारा जाताथा इसके अनन्तर जब तक वह पक्षियों से उत्पन्नहुये डरके कारण उस मांसको फेंकै तब तक
उन सबोंसे त्यागाहुआ सुखी होगया वैसेही अपने भाइयोंसे क्लेशित मैंने भी ॥ ८ । ९ ॥ मांसरहित पक्षियों से मारेजाते हुये मांसरहित कुररको देखकर कि मांसके
छोड़ने से कुरर सुखको प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥ इस भांति मनसे निश्चयकर समस्त भाइयों, पुत्रों व पौत्रों को आनकर सब धन उनके अगाड़ी निवेदन करदिया ॥ ११ ॥

उसीकारण परम पुष्टिकारक भोजन को ग्रहण करती है उसीलिये मेरे तेज की बढ़तीके निमित्त यह कारण हुआ है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसीसे वह पिंगला मेरी गुरुतामें हुईहै आशारूपी फँसरीसे घिरेहुये अंगोंवाले जो पुरुष उससे दुःखित होते हैं ॥ ३६ ॥ वे उस वस्तुके न मिलनेकी चिन्तासे रात्रिमें नहीं सोते हैं उनका जागरण होताहै और अग्नि नहीं जलती है तदनन्तर ॥ ३७ ॥ आहारको नहीं चाहतीहै उसी कारण तेजकी वृद्धि नहीं होती है व समस्त पुरुषकी इच्छाका अन्त किसीप्रकार नहीं विद्यमानहै ॥ ३८ ॥ इस संसारमें मनुष्योंके अभिलाषका ज्यों २ लाभ होताहै त्यों २ हव्यसे अग्निके समान बढ़तीको प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥ जैसे

जोभिवृद्धये ॥ ३५ ॥ गुरुत्वेपिङ्गलाजाता तेनसामेद्विजोत्तमाः ॥ आशापाशैःपरीताङ्गा येभवन्तितयार्दिताः ॥ ३६ ॥ तेरात्रौशेरतेनैव तदप्राप्तिविचिन्तया ॥ नैवाग्निर्दीप्यतेतेषां जागरश्चततःपरम् ॥ ३७ ॥ आहारंवाञ्छतेनैव ततस्ते जोभिवर्द्धनम् ॥ सर्वस्यविद्यतेचान्तं नवाञ्छायाःकथञ्चन ॥ ३८ ॥ यथायथाभवेल्लाभो वाञ्छितस्यनृणामिह ॥ हवि षाकृष्णवर्त्मेव वृद्धिंयातितथातथा ॥ ३९ ॥ यथाशृङ्गंरुरोःकाये वर्द्धमानस्यवर्द्धते ॥ एवंतृष्णापिवित्तेन वर्द्धमानेनव र्द्धते ॥ ४० ॥ एवंज्ञात्वामहाभागाः पुरुषेणविजानता ॥ दिवातत्कर्म्मकर्तव्यं येनरात्रौसुखंस्वपेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्क न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येब्रह्मयज्ञेतृतीयदिवसे पिङ्गलोपाख्यानन्नामचतुस्सप्तत्य धिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अतिथिरुवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यथामेपिङ्गलागुरुः ॥ श्रूयतांकुररोजातो यथावत्तेवदाम्यहम् ॥ १ ॥ ममासी

बढ़तेहुये मृगके शरीरमें सींग बढ़ता है ऐसेही धनके बढ़तेहुये तृष्णाभी बढ़ती है ॥ ४० ॥ हे महाभाग्यवाले द्विजोत्तमो ! ऐसा जानकर विज्ञानी पुरुषको दिनमें वह काम करना चाहिये कि जिससे रातको सुखसे सोवै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येब्रह्मयज्ञेतृतीयदिवसेपिङ्गलोपाख्यानन्नामचतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि ब्रह्माकी यज्ञ महँ आयो पाहुन एक । इकसौ पचहत्तरिहि महँ कहत चरित सो नेक ॥ अतिथि बोला कि तुमलोगोंसे इस समस्त चरितको कहा

विकलता को प्राप्त होतीथीं अपर स्त्रियां वसन, धूपों व फूलों को लाती थीं ॥ २५ ॥ वैसेही अपर स्त्रियां सुगन्धित लेपों को
स्थित थीं ॥ २४ ॥ वे सब रातके बीच में विकलता को प्राप्त होतीथीं अपर स्त्रियां वसन, धूपों व फूलों को लाती थीं ॥ २५ ॥ वैसेही अपर स्त्रियां सुगन्धित लेपों को
व अन्य विचित्र फूलों और सूक्ष्म वसनों को आनती थीं ॥ २६ ॥ जबतक सोने से उपजा हुआ समय स्थित होता था तबतक वे स्त्रियां कामदेव के उत्साह से सं-
युक्त व रोमांच युत होती थीं ॥ २७ ॥ व परस्परमें अवमासे एक जानतीथी कि मुझको शय्यापर निश्चय कर बुलावैंगे व एक जानती थी कि मुझही को बुलावैंगे ॥
२८ ॥ व ईर्षा करती तथा अपने रूपों को देखती व कहती थीं तदनन्तर उन सबों के मध्य से एक नृपति के समीप जाती थी ॥ २९ ॥ शेष स्त्रियां विलक्षगाता

तावद्यावत्स्थित

पनानिमुख्यानि सुरभीणितथापराः ॥ पुष्पाणिचविचित्राणि अन्यास्सूक्ष्माम्बराणिच ॥ २६ ॥ तावद्यावत्स्थितः
कालश्शयनीयसमुद्भवः ॥ मन्मथोत्साहसंयुक्ताः पुलकेनसमन्विताः ॥ २७ ॥ एकाजानातिमांशय्यां नूनमेवाह्व
यिष्यति ॥ एकाजानातिमांचैव परस्परममर्षतः ॥ २८ ॥ स्पर्द्धयन्तिप्रपश्यन्ति स्वरूपाणिवदन्तिच ॥ तासांमध्या
त्ततश्चैका प्रयातिनृपसन्निधौ ॥ २९ ॥ शेषावैलक्ष्यमासाद्यनिःश्वस्यप्रस्वपन्तिच ॥ दुःखार्तानलभन्तिस्मताश्चनिद्रांप
राभवात् ॥ ३० ॥ कामेनपीडिताङ्ग्यश्च बाष्पपूर्णेक्षणाःस्थिताः ॥ आशाहिपरमंदुःखं नैराश्यंपरमंसुखम् ॥ ३१ ॥ आ
शांनिराशांकृत्वाच सुखंस्वपितिपिङ्गला ॥ नकरोतिचशृङ्गारं नस्पर्द्धांचकथञ्चन ॥ ३२ ॥ नव्याकुलत्वमापेदे सुखं
स्वपितिपिङ्गला ॥ ततोमयापितद्दृष्टं तस्याश्चेष्टितमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ आशास्सर्वाःपरित्यक्त्वा प्रसुप्तोहंयतस्सुखी ॥
येस्वपन्तिस्वयंरात्रौ तेषांकायाग्निरिध्यते ॥ ३४ ॥ आहारंप्रतिगृह्णाति ततःपुष्टिकरंपरम् ॥ तदेतत्कारणंजातं ममने

व कामदेव से पीड़ित अंगों वाली व आंसुओं से
को प्राप्त होकर श्वास लेकर सोरहती थीं वे दुःख से विकल होती हुई अनादर के कारण नींद को नहीं पाती थीं ॥ ३० ॥ व कामदेव से पीड़ित अंगों वाली व आंसुओं से
पूर्ण नयनों वाली स्थित होती थीं आशा अत्यन्त दुःख है व निराशता परम आनन्द है ॥ ३१ ॥ क्योंकि आशाको निराश करके पिंगला सुख से सोती थी और
शृंगार व ईर्षा को किसी प्रकार नहीं करती थी ॥ ३२ ॥ व न विकलता को प्राप्तहोतीथी किन्तु पिंगला सुख से शयन करती थी तदनन्तर मैंने भी उसके उस उ-
त्तम चेष्टितको देखा ॥ ३३ ॥ जिसलिये कि समस्त आशाओंको छोड़कर मैं सुखी होताहुआ सोताहूं जो आपही रातमें सोते हैं उनके शरीरकी अग्नि बढ़ती है ॥ ३४ ॥

बनानेवाला और कन्या ये छः मेरेगुरू हैं इन्हीं सबकी चेष्टा सेही मैं विचेष्टा करता हूं ॥ १६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि तुम किस देश में व किस स्थान में उत्पन्न हुये हो हम लोगों से यह कहो व क्या नामहै कौन गोत्रहै सबको विस्तारसे कहिये ॥ १७ ॥ अतिथि बोला कि हे ब्राह्मणो ! इस पुर में मैं हुआ हूं व शाकद्वीप में निकाल दिया गया जो शुभ, शेष व शाक्रेय और चौथे बौद्ध हुये हैं ॥ १८ ॥ उनके मध्य में जो बौद्ध संज्ञक अनन्त ऐसे कहेगये हैं वे छन्दोग्य गोत्र में प्रसिद्ध और वेदों व वेदांगोंके पारगामी थे ॥ १९ ॥ उनसे उपजाहुआ नागर द्विज भया है उसकी पिछली अवस्था स्थित होने पर प्राणों से भी अधिक प्रिय मैं पहला पुत्र हुआ ॥ २० ॥

च षडेतेगुरवोमम ॥ एतेषांचैवसर्वेषां चेष्टयैवविचेष्टितम् ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कस्मिन्देशेत्वमुत्पन्नः कस्मिन्स्थाने वदस्वनः ॥ किन्नामाकिन्तुगोत्रंच सर्वंविस्तरतोवद ॥ १७॥ अतिथिरुवाच ॥ आसमत्रपुरेविप्राश्शाकद्वीपेविवासितः ॥ शुभःशेषोथशाक्रेयो बौद्धसंज्ञश्चतुर्थकः ॥ १८ ॥ तेषांमध्येतुयोबौद्धसंज्ञोनन्तइतिस्मृतः ॥ छन्दोग्यगोत्रविख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १९ ॥ नागरस्तत्समुत्पन्नः पश्चिमेवयसिस्थिते ॥ तस्याहंप्रथमःपुत्रः प्राणेभ्योपिसुहृत्तमः ॥२०॥ ततो हंयौवनंप्राप्तो यदाद्विजवरोत्तमाः ॥ तदामेदयितस्तातः पञ्चत्वंसमुपागतः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजाआनर्ताधिपतिर्द्विजाः ॥ सुतपास्तेननिर्दिष्टस्त्वहंचगृहकर्म्मणि ॥ २२ ॥ शान्तंदान्तंसमालोक्य विश्वस्तेनमहात्मना ॥ तस्यचान्तःपुरेप्यासीत्पिङ्गलानामनायिका ॥ २३ ॥ दौर्भाग्येनसमोपेता रूपेणापिसमन्विता ॥ अथान्याश्शतशस्तस्यभार्य्याश्चैवतथास्थिताः ॥ २४ ॥ तास्सर्वारजनीमध्ये व्याकुलत्वंप्रयान्तिच ॥ आहरन्त्यःपरावस्त्रं धूपांश्चकुसुमानिच ॥ २५ ॥ विले

तदनन्तर हे द्विजवरोत्तमो ! जब मैं युवा अवस्था को प्राप्तभया तब मेरा प्रियपिता मृत्युको प्राप्तहोगया ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसर में आनर्ताधिपति नृपाति बड़ातपस्वी हुआ है उसने मुझको गृह कार्य में निर्देश किया ॥ २२ ॥ विश्वास को प्राप्त उस महात्माने मुझ को शान्त व दान्त (इन्द्रियजीत) देखकर गृहकार्य में लगाया उसके रनिवास में पिंगला नामक नायका भी थी ॥ २३ ॥ जो कि रूप से भी संयुत दुर्भाग्यता से समन्वित थी व वैसेही उसके अन्य सैकड़ों स्त्रियां

पकान्नके कियेहुये उत्तम पर्वत देख पड़ते थे व घी दूध बहनेवाली नदियां और दान के लिये धनके ढेर देख पड़तेथे ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें हे द्विजोत्तमो ! कोई ज्ञानी प्राप्तहुआ जो कि सदैव भूत, भविष्य, वर्तमान को जानता था ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह ब्रह्माको प्रणाम कर उनके अगाड़ी समीप बैठगया व कर्म की समाप्तियों में उसने समस्त ब्राह्मणों से जो अपना चरित था वह सबकहा तदनन्तर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनों वाले व कौतुक से संयुत चित्तवाले और भूले हुये अपनेकार्यों को स्मरण करते हुये उन समस्त ऋत्विजों ने उस ज्ञानी से पूंछा उसके उपरान्त ॥ ८ । ९ । १० ॥ उस ज्ञानी ने अनिन्दित असंख्य कार्यों को सम्पूर्णता से कहा

स्यकृतास्तत्र दृश्यन्तेपर्वताश्शुभाः ॥ घृतक्षीरवहानद्योदानार्थंवित्तराशयः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः कश्चिज्ज्ञानी द्विजोत्तमाः ॥ अतीतानागतंवेत्ति वर्तमानंचयःसदा ॥७॥ ब्रह्माणञ्चनमस्कृत्य उपविष्टस्तदग्रतः ॥ कर्म्मोत्तरेषुविप्राणां ससर्वेषांद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ कथयामासयद्वृत्तं चात्मानंप्रतिकृत्स्नशः ॥ ततस्तुऋत्विजस्सर्वे कौतुकाविष्टचेतसः ॥ ९ ॥ पप्रच्छुर्ज्ञानिनंतंच विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ विस्मृतानिस्मरन्तस्ते निजकृत्यानिवैततः ॥१०॥ प्रोक्तान्यगर्हणीयानि असंख्यातानिसर्वशः॥ ततस्तेपुनरेवात्र पप्रच्छुर्ज्ञानिनञ्चतम् ॥ ११ ॥ लोकोत्तरमिदंज्ञानं कथंतेसंस्थितंद्विज ॥ कोगुरुस्तेसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ १२ ॥ अहोज्ञानमहोज्ञानन्नैतद्दृष्टंश्रुतन्नच ॥ यादृशंतेद्विजश्रेष्ठ दृश्यतेपार्श्वसंस्थितम् ॥ १३ ॥ किंब्रह्मणास्वयंविप्र त्वमेवंप्रतिबोधितः ॥ किंवाहरेणतुष्टेन किंवादेवेनचक्रिणा ॥ १४ ॥ नान्यत्प्रबोधितस्यैवं ज्ञानंसंजायतेस्फुटम् ॥ अतिथिरुवाच ॥ पिङ्गलाकुररस्सर्पो भ्रमरश्चतथापरः ॥ १५ ॥ इषुकारःकुमारी

तदनन्तर उन्हों ने फिर भी इस विषय में उस ज्ञानी से पूंछा ॥ ११ ॥ कि हे द्विज! यह लोकोत्तर (अपूर्व) ज्ञान तुम्हारे कैसे भलीभांति टिका है व तुम्हारा कौन गुरू है इसको भलीभांति कहिये हम लोगों को परम आश्चर्य है ॥ १२ ॥ कि विस्मय है यह ज्ञान न देखागया न सुनागया जैसा कि हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम्हारे समीप स्थित है ॥ १३ ॥ हे विप्रजी ! क्या तुम आपही ब्रह्मा से इसभांति प्रतिबोध करायेगये हो अथवा प्रसन्न हुये शिवजीसे या चक्रधारी देव (विष्णुजी) से बोधित हुये हो ॥ १४ ॥ क्योंकि और से प्रबोधित पुरुषका ऐसा प्रकट ज्ञान नहीं होता है अतिथि बोला कि पिंगला कुरर पक्षी व सांप तथा अन्य भ्रमर ॥ १५ ॥ व बाण

माहात्म्य अत्यन्तही पढ़ाजाता है काल से देखाहुआ भी वह जीता है व नागतीर्थ से उपजे हुये माहात्म्य वाली यह लिखी हुई पोथी जहां स्थित होती है वहां सर्प
नहीं टिकताहै ॥ ४५।४६।४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येनागतीर्थोत्पत्तिर्नामत्रिसप्तत्य
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । आयो यक सर्वज्ञ द्विज ब्रह्मा यज्ञ मँझार । इकसौ चौहत्तरेमहं वरणतचरित उदार ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! त्रयोदशी तिथि में तीसरा दिन प्राप्त

स्ययस्यैतत्पुरतःपठ्यतेभृशम् ॥ ४५ ॥ नागतीर्थस्यमाहात्म्यं कालदष्टोपिजीवति ॥ पुस्तकंलिखितञ्चैतन्नागतीर्थस
मुद्भवम् ॥ ४६ ॥ माहात्म्यंतिष्ठतेयत्र नसर्पस्तत्रतिष्ठति ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाट
केश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागतीर्थोत्पत्तिर्नामत्रिसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७३ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तृतीयेचदिनेप्राप्ते त्रयोदश्यांद्विजोत्तमाः ॥ प्रातस्सवनमासाद्य ऋत्विजःसर्वएवते ॥ १ ॥ स्वेस्वेकर्म्म
णिसंलग्ना यज्ञकृत्यसमुद्भवे ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञस्तदापैतामहोमहान् ॥ २ ॥ सर्वकामसमृद्धस्तु सर्वैस्समुदितोगुणैः ॥
दीयतांदीयतांतत्र भुज्यतांभुज्यतामिति ॥ ३ ॥ एकःसंश्रूयतेशब्दो द्वितीयोद्विजसम्भवः ॥ नान्यत्तत्रतृतीयस्तु यज्ञे
पैतामहेशुभे ॥ ४ ॥ योयंकामयतेकामं हेमरत्नसमुद्भवम् ॥ सतंप्राप्नोत्यसंदिग्धं वाञ्छिताच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥ पकान्न

होनेपर प्रातःकाल सवन (यज्ञौषधी कूटनेवाले) कर्म को प्राप्तहोकर वे सबहीऋत्विज् ॥ १ ॥ यज्ञकार्य से उपजे हुये कर्म के मध्य अपने २ कार्य में भली भांति
लगगये तदनन्तर उससमय पितामहवाली बड़ीभारी यज्ञ वर्तमान हुई ॥ २ ॥ जो कि समस्त गुणों से भली भांति उदय को प्राप्त व सब कामनाओंसे बढ़तीको प्राप्त
थी वहां दीजिये २ व भोजन कीजिये २ यह एक शब्द सुन पड़ताथा व दूसरा द्विजों से उत्पन्न हुआ सुनाजाता था और तीसरा शब्द उस पितामहकी उत्तम यज्ञ में
नहीं सुन पड़ता था ॥ ३।४ ॥ जो पुरुष सुवर्ण व रत्नसे उपजे हुये जिस काम को चाहताथा वह अभिलाष से चौगुन निस्सन्देह प्राप्त होता था ॥ ५ ॥ उस यज्ञ में

ब्रह्माजी बोले कि उसी कारण सावधान होते हुये तुम सबोंको नाग तीर्थ में स्थित होना चाहिये मेरे इस यज्ञ में जो कोई दुष्टभाव में आश्रित होकर विघ्न के लिये भलीभांति आवै उसकी शीघ्रही रक्षा कीजिये राक्षसहो या पिशाच या भूत या मनुष्य भी होवे ॥ ३६ । ३७ ॥ हे नागो ! मेरे यज्ञ की रक्षा यही अत्यन्त करनेयोग्य कार्य है व तुम लोग भी भादों के महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर ॥ ३८ ॥ कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि में जहां पूजन को पावोगे सूतजी बोले कि हां यही कहकर व ब्रह्माको प्रणामकर ॥ ३६ ॥ सनातन सुत से संयुत होते हुये नाग तीर्थमें भली भांति टिके जो तीर्थके स्नान करनेवाले भक्त जनों को कामदायकहै ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नागतीर्थेततःस्थेयं सर्वैस्तत्रसमाहितैः ॥ यःकश्चिन्ममयज्ञेत्र दुष्टभावंसमाश्रितः ॥ ३६ ॥ समागच्छतिविघ्नाय रक्षणीयःसत्वरम् ॥ राक्षसोवापिशाचोवा भूतोवामानुषोपिवा ॥ ३७ ॥ एतत्कृत्यतमन्नागा मम यज्ञस्यरक्षणम् ॥ तेयूयमपिसम्प्राप्ते मासिभाद्रपदेतथा ॥ ३८ ॥ पञ्चम्यांकृष्णपक्षस्य यत्रपूजामवाप्स्यथ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोच्य प्रणिपत्यपितामहम् ॥ ३६ ॥ सनातनसुतोपेता नागतीर्थंसमाश्रिताः ॥ कामप्रदश्चभक्तानांनराणांस्नानकारिणाम् ॥ ४० ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं सकृद्भक्त्यासमन्वितः ॥ नान्वयेपिभयंतस्य जायतेसर्पसम्भवम् ॥ ४१ ॥ तत्रयच्छतिमिष्टान्नं द्विजेभ्यःसज्जनैस्सह ॥ पूजयित्वातुनागेन्द्रान्सनातनपुरस्सरान् ॥ ४२ ॥ सप्तजन्मान्तरंयावन्नसदौःस्थ्यमवाप्नुयात् ॥ भूतप्रेतपिशाचानांशाकिनीनांविशेषतः ॥ ४३ ॥ नाच्छिद्रंनचरोगांश्च नाधिर्नच रिपोर्भयम् ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानंद्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥ सोपिसंवत्सरंयावत्पन्नगैर्नचपीड्यते ॥ सर्पदष्ट

भक्ति से संयुत जो पुरुष एकबार उस तीर्थ में स्नान करता है उसके वंश में भी सांप से उपजाहुआ डर नहीं होता है ॥ ४१ ॥ जो पुरुष वहां सनातन अग्रगामी (श्रेष्ठ) वाले नागेन्द्रों को पूजन कर सज्जनों समेत ब्राह्मणों के लिये मिष्टान्न देता है ॥ ४२ ॥ वह सात जन्मकी अवधि तक दुरिस्थति को नहीं प्राप्त होता है व विशेषकर भूत, प्रेत, पिशाच व डाकिनियों के छिद्र याने उपद्रव को व रोग तथा मानसी व्यथा व शत्रुके भय को नहीं प्राप्तहोता है हे द्विजोत्तमो ! बांचे जातेहुये इस चरित्र को जो पुरुष भक्ति से सुनता है ॥ ४३ । ४४ ॥ वह भी वर्षभरतक सांपों से पीड़ित नहीं होता है व सांप से डसे हुये जिस पुरुष के आगे यह नागतीर्थ का

चाहिये वहां टिके व तपस्या में स्थितहुये तुमको उत्तम कर्मवाला कर्कोटक नाग अपनी कन्याको देवैगा उसीसे मर्यादा समेत इस नवम कुलकी भूमि में सृष्टि होगी ॥ २५ । २६ ॥ सावनके कृष्णपक्षमें पंचमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोने पर पृथ्वीके मध्य तुम नवयें वंशमें परम पूजनको भलीभांति पावोगे ॥ २७ ॥ व आज से लगाकर समस्त पातकोंका विनाशक नागतीर्थ ऐसा कहाहुआ वह तीर्थ धरातल में प्रसिद्ध को प्राप्तहोगा ॥ २८ ॥ पंचमी दिनके भलीभांति प्राप्तहोने पर जो पुरुष इस नागतीर्थ में स्नानकरैंगे उनको वर्ष पर्यन्त सांपसे उपजाहुआ डर न होगा ॥ २९ ॥ विषसे विकल जो पुरुष उसमें स्नानकरैगा वह उसी क्षण विषरहि

स्यतिसत्कर्म्मा ततःसृष्टिर्भविष्यति ॥ नवमस्यकुलस्यास्य समर्य्यादस्यभूतले ॥ २६ ॥ श्रावणेकृष्णपक्षेतु सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजां पृथिव्यांनवमेकुले ॥ २७ ॥ अद्यप्रभृतितत्तीर्थं नागतीर्थमितिस्मृतम् ॥ ख्यातिंयास्यतिभूपृष्ठे सर्वपातकनाशनम् ॥ २८ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ नतेषांवत्सरंयावद्भविष्यत्यहिजंभयम् ॥ २९ ॥ विषार्दितस्तुयोमर्त्यस्तत्रस्नानंकरिष्यति ॥ तत्क्षणान्निर्विषीभूत्वा सप्राप्स्यतिपरंसुखम् ॥ ३० ॥ पुत्रकामातुयानारी पञ्चम्यांभास्करोदये ॥ करिष्यतियादिस्नानं फलहस्ताप्रभक्तितः ॥ ३१ ॥ भविष्यतिचशीघ्रंसा बन्ध्यापिचसुपुत्रिणी ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रवदतस्तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ३२ ॥ अन्येनागास्समायातास्तत्रयज्ञेनिमन्त्रिताः ॥ वासुकिस्तक्षकश्चैव पुण्डरीकःकृषीहरः ॥३३॥ कम्बलाश्वतरौनागौ शेषःकालपरोबलः॥तेप्रणम्यवचः प्रोचुः प्रोच्चैर्देवंपितामहम् ॥३४॥ तवादेशाद्वयंप्राप्ता यज्ञेत्रप्रपितामह ॥येनकुर्म्मोवयंशीघ्रं नागंराज्येप्रतिष्ठितम् ॥३५॥

त होकर परम सुखको भलीभांति पावैगा ॥ ३० ॥ व पुत्रकी कामनावाली व फल हाथोंवाली जो स्त्री यदि पंचमी तिथिमें सूर्य्योदयके समय बड़ी भक्तिसे स्नानकरैगी ॥ ३१ ॥ वह वन्ध्या भी शीघ्रही उत्तम पुत्रवती होगी सूतजी बोले कि अव्यक्त जन्मवाले उन ब्रह्माको इसप्रकार कहतेहुये ॥ ३२ ॥ उस यज्ञमें जो अन्यनाग निमन्त्रितहोकर आयेथे याने वासुकि, तक्षक व पुण्डरीक, कृषीहर ॥ ३३ ॥ कम्बलाश्वतरनाग व शेष, कालपर और बल उन सबोंने पितामहदेवको उच्चप्रकारसे प्रणामकर वचन को कहा ॥ ३४ ॥ कि हे प्रपितामहजी ! तुम्हारी आज्ञासे हम सब इसयज्ञमें प्राप्तहुयेहैं जिससे हम नागको राज्यपै प्रतिष्ठितकरैं उसकोकहिये ॥३५॥

च्यवनजी से निर्दोष में शाप दियागयाहूं इस लिये हे द्विजोत्तम ! मुझको शापसे रक्षाकीजिये उस वचन को सुनकर दयासंयुत भृगुजीने च्यवनसे कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि हे तात ! तुमने जो इस ब्रह्मचारी को शापदिया यह अयोग्य किया क्योंकि विष संयुत भी सांप तुमको धर्षणा करने के लिये नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥ फिर रसरी के समान व निर्विष इस सांपको क्या कहनाहै और इस ब्राह्मण ने तुमको उद्देशकर सांपको नहीं छोड़ाथा ॥ १८ ॥ इसलिये शीघ्रही इस ब्राह्मण के शापको मोक्ष कीजिये च्यवनजी बोले कि यदि सूर्य्यनारायण मर्य्यादा को त्यागकरैं कि उनकी किरण शीतलता को प्राप्तहोवै ॥ १९ ॥ व निशानायक (चन्द्रमा) उष्णता को

पातुरक्षमाम् ॥ तच्छ्रुत्वाच्यवनंप्राह कृपाविष्टोभृगुःस्वयम् ॥ १६ ॥ अयुक्तंविहितंतात यच्छप्तोयंवटुस्त्वया ॥ नत्वांध र्षयितुंशक्तो विषाढ्योपिभुजङ्गमः ॥ १७ ॥ किम्पुनर्जलसर्पोयं निर्विषोरज्जुसन्निभः ॥ नत्वामुद्दिश्यनिर्मुक्तः सर्पोनेन द्विजन्मना ॥ १८ ॥ शापमोक्षंकुरुष्वास्य तस्माच्छीघ्रंद्विजन्मनः ॥ च्यवनउवाच ॥ यदित्यजतिमर्य्यादामर्चिः शै त्यंव्रजेद्रविः ॥ १९ ॥ उष्णत्वंचक्षपानाथस्तन्मेस्यादनृतंवचः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यस्वयमेवपितामहः ॥ २० ॥ त त्रायातःस्थितोयत्र सर्पोत्रःसर्परूपधृक् ॥ प्रोवाचनविषादस्ते पुत्रकार्य्यःकथञ्चन ॥ २१ ॥ सर्पत्वंसमनुप्राप्तःशृणुष्वा त्रवचोमम ॥ पुरासंसृष्टुकामोहं नागानांनवमंकुलम् ॥ २२ ॥ तद्भविष्यतिवैत्वत्तः समर्य्यादन्धरातले ॥ मन्त्रौषधियु तांपुंसो नपीडांसंचरिष्यसि ॥ २३ ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजांसमस्तेजगतीतले ॥ अत्रास्तिसुशुभंतीर्थं हाटकेश्वरसंज्ञि तम् ॥ २४ ॥ क्षेत्रेतत्रसमावासः पुत्रकार्य्यस्त्वयासदा ॥ तत्रस्थस्यतपःस्थस्य नागःकर्कोटकोनिजाम् ॥ २५ ॥ तवदा

प्तहोवै तो मेरा वचन झूंठहोगा उन च्यवनजीके उस वचनको सुनकर आपही ब्रह्माजी ॥ २० ॥ वहां आये जहां सांपके रूपको धारनेवाला वह पौत्रथा और बोले हे पुत्र ! तुमको किसी प्रकार विषाद न करना चाहिये ॥ २१ ॥ व सर्पताको प्राप्तहुये तुम इस विषय में मेरे वचनको सुनो कि पुरातन समय में नागोंके नवें का सृष्टिकामक हुआथा ॥ २२ ॥ वह नवां कुल भूतल में तुमसे मर्य्यादा सहितहोगा और तुम पुरुषकी मन्त्र व ओषधी से संयुत पीड़ाको न प्राप्तहोगे ॥ २३ ॥ व समस्त धरातल में उत्तम पूजन को भलीभांति पाओगे यहां हाटकेश्वर नामक अति उत्तम तीर्थ है ॥ २४ ॥ हे पुत्र ! उस क्षेत्र में तुमको सदैव निवास करना

में बैठेहुये ब्राह्मणों के मध्यमें होता (ऋग्वेदी) के समीप स्थितहुआ ॥ ५ ॥ उस सर्पने सब ओर से उस होताके शरीर को लपेटलिया परन्तु प्रायश्चित्त के डरसे
अपने स्थानसे न चला ॥ ६ ॥ व भयभीत लोचनोंवाले उस ऋग्वेदी ने यहां वचन नहीं कहा सर्पसे लिपटेहुये उसको देखकर बड़ाभारी हाहाकार हुआ ॥७॥ उन ब्रह्मा
के यज्ञमें नम्रचित्त या मनवाले मुनि मैत्रावरुण कर्ममें भलीभांति स्थितथे उन्होंने सर्पसे सब ओर लिपटेहुये पिताजीको देखा ॥ ८ ॥ तदनन्तर सांपमें उपजेहुये डर
को व उनके चेष्टित को देखकर क्रोधसंयुत उन मुनिने उस ब्रह्मचारीको शाप दिया ॥ ९ ॥ कि हे दुष्टबुद्धिवाले पापी ! जिसलिये तुमने समाज में सांपको फेंकदिया

पोवेष्टयामास तस्यगात्रंसमन्ततः ॥ नचचालनिजस्थानात्प्रायश्चित्तविभीषया ॥ ६ ॥ नोवाचवचनंसोत्र भयसंत्रस्त
लोचनः ॥ हाहाकारोमहानासीत्तंदृष्ट्वासर्पवेष्टितम् ॥ ७ ॥ तस्यसत्रेविनीतात्मा मैत्रावरुणकर्म्मणि ॥ संस्थितस्तेनसंदृ
ष्टः पितासर्पाभिवेष्टितः ॥ ८ ॥ ज्ञात्वातुचेष्टितंतस्य भयंसर्पसमुद्भवम् ॥ शशापक्रोधसंयुक्तस्ततस्तंसवटुंमुनिः ॥ ९ ॥
यस्मात्पापत्वयासर्पः क्षिप्तःसदसिदुर्मते ॥ तस्माद्भवद्भुतंसर्पो ममवाक्यादसंशयम् ॥ १० ॥ वटुरुवाच ॥ हास्येनजल
सर्पोयं मयामुक्तोत्रलीलया ॥ नतेजातंसमुद्दिश्यतत्किंमांशपसिद्विज ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेमुक्त्वा तस्यगात्रंसपन्न
गः ॥ जगामतत्रतस्यापि सर्पत्वंसमपद्यत ॥ १२ ॥ सोपिसर्पत्वमापन्नः सनातनसुतोवटुः ॥ दुःखशोकसमायुक्तो ब्राह्म
णैःपरिवेष्टितः ॥ १३ ॥ अथगत्वाभृगुंसोपि बाष्पव्याकुललोचनः ॥ प्रोवाचगद्गदंसोपि प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ १४ ॥ स
नातनसुतश्चास्मि पौत्रस्तुपरमेष्ठिनः ॥ शप्तस्तवसुतेनास्मिच्यवनेनमहात्मना ॥ १५ ॥ निर्दोषोब्राह्मणश्रेष्ठ तस्माच्छा

उसी कारण मेरे वचन से निस्सन्देह शीघ्रही सांप होवो ॥१०॥ ब्रह्मचारी बोला कि हे द्विज ! मैंने हास्यसे यहां लीलाके द्वारा इस जलसांपको छोड़ाथा न कि तुम से
उपजेहुये (होता) को उद्देश करके तो मुझको क्यों शापदेते हो ॥ ११ ॥ इसी अवसर में वह सांप उसके शरीरको छोड़कर वहांगया व उसको भी सर्पता प्राप्त
हुई ॥१२॥ वही सनातन का पुत्र ब्रह्मचारी दुःखशोचसे संयुत व ब्राह्मणोंसे घिराहुआ सर्पताको प्राप्त होगया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर आंसुवों से विकल लोचनोंवाले
उसने भृगुजीके समीप जाकर व प्रणामपूर्वक उस ब्रह्मचारी ने गद्गद वचन को कहा ॥ १४ ॥ कि ब्रह्माजीका पौत्र मैं सनातनका पुत्रहूं जो कि तुम्हारे पुत्र महात्मा

वहांपर वाणी में चतुर व क्रोधसे लाल लोचनोंवाले मीमांसा शास्त्रके ज्ञाता अन्य पुरुषोंने उनके सत्य व झूंठे विवादको हनन किया ॥६६॥ अन्य जो द्विजोत्तम विशेष जानते थे उन मध्यस्थों ने विवादको छोड़कर अभिप्राय समेत जैसा कहागया है वैसाही कहा ॥ ६७ ॥ वैसेही शंख व च्यवन मुनि इत्यादिक महाविवादमें लगेहुये थे व अपने २ पक्षमें भलीभांति आश्रित होतेहुये अन्य विद्वानोंने विवाद किया॥६८॥ इसप्रकार उन ब्राह्मणों की वह रात व्यतीत होगई ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरूपतीर्थोत्पत्तिर्नामद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

अन्येमीमांसकास्तत्र कोपसंरक्तलोचनाः ॥ हन्युस्तेषामृतंवादमनृतंवाग्विचक्षणाः ॥ ६६ ॥ परिशिष्टविदश्चान्ये मध्यस्थाद्विजसत्तमाः ॥ प्रोचुर्वादंपरित्यज्य साभिप्रायंयथोदितम् ॥ ६७ ॥ महावादपराश्शङ्खच्यवनप्रमुखास्तथा ॥ विवादंचक्रिरेचान्ये स्वंस्वंपक्षंसमाश्रिताः ॥ ६८ ॥ एवंसारजनीतेषामतिक्रान्ताद्विजन्मनाम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरूपतीर्थोत्पत्तिर्नामद्विसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७२ ॥

सूतउवाच ॥ द्वितीयेदिवसेप्राप्ते यज्ञकर्म्मसमुद्भवे ॥ द्वादश्यामभवत्तत्र शृणुध्वंतद्द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ वृत्तान्तंसर्वदेवानां महाविस्मयकारकम् ॥ मखकर्म्मणिप्रारब्धे ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥ २ ॥ जलसर्पसमादाय वटुःकश्चित्सुनर्म्मकृत् ॥ प्रविश्याथसदस्तत्र तंसर्पंब्रह्मणोन्तिके ॥ ३ ॥ चिक्षेपप्रहसंश्चैव सर्वतस्सुभयङ्करम् ॥ ततस्तुडुण्डुभस्तूर्णं भ्रममाणइतस्ततः ॥ ४ ॥ विप्राणांसदसिस्थानां सक्तानांयज्ञकर्म्मणि ॥ अथहोतुःस्थितःपार्श्वे दीर्घसत्रसमुद्भवे ॥ ५ ॥ सस

दो० । सर्प फेंकिकरि शाप लहि भयो विप्र जिमि नाग । कह्यो तिहचरि एकसौ माहिं सूत बड़भाग ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! दूसरा दिन प्राप्तहोने पर यज्ञकर्मसे उपजेहुये कार्यमें द्वादशी तिथिको वहां जो हुआ है उसको सुनिये ॥ १ ॥ जोकि वेदके पारगामी ऋत्विजोंसे यज्ञकर्मको आरम्भकरने पर समस्त देवताओं को बड़ा विस्मयकारक वृत्तान्त हुआहै ॥ २ ॥ कि हँसी करनेवाले किसी ब्रह्मचारी ने जलसर्पको लेकर व सभामें पैठकर वहां हँसते हुये उसने सब ओरसे भयङ्कर उस सांपको ब्रह्माके समीप फेंकदिया तदनन्तर शीघ्रही इधर उधर घूमताहुआ वहजलसांप ॥ ३ । ४ ॥ इसके अनन्तर बड़े समयसे उपजेहुये यज्ञकार्य में लगे व समाज

हमलोग यहीं टिकैंगे यद्यपि अति उत्तमभी होवै तथापि हमलोग तीर्थको न जावैंगे ॥ ५६ ॥ ऐसा कहकर उन मुनियोंने उस समस्त तीर्थका विभाग किया इसके अनन्तर यज्ञोपवीत के प्रमाणभर अपने तीर्थोंको किया ॥ ५७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! आजभी उस तीर्थ में जगत्के गुरु (ब्रह्मा) जी जलको स्पर्शकरते हैं उसी कारण नित्यही शुभ होवै भी है ॥ ५८ ॥ और फिर जो अकाम पुरुष श्रद्धासे उस तीर्थ में स्नान करताहै वह सिद्धि लक्षणवाले परम कल्याण को प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ इस भांति वे समस्त मुनि उस बड़े भारी तड़ागको बांटकर यहीं पर सायङ्कालवाली विधिको विस्तार समेत करके तदनन्तर सन्ध्यासमय में वहां प्राप्त

मत्रैव साम्प्रतंकृतसंश्रयाः ॥ नयास्यामोवयंतीर्थंयद्यपिस्यात्सुशोभनम् ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वाथऽयभजंस्तत्सर्वंमुनयश्च ते ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि स्वानितीर्थानिचक्रिरे ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ अद्यापिचद्विजश्रेष्ठास्तत्रतीर्थेजगद्गुरुः ॥ प्रथमंस्पर्शतेतोयं नित्यंस्यादपितच्छुभम् ॥ ५८ ॥ निष्कामस्तुपुनर्मर्त्यो यःस्नानंतत्रश्रद्धया ॥ कुरुतेसपरंश्रेयः प्राप्नुयात्सिद्धिलक्षणम् ॥ ५९ ॥ एवन्तेमुनयस्सर्वे तद्विभज्यमहत्सरः ॥ सायन्तनञ्चतत्रैव कृत्वाकर्म्मसुविस्तरम् ॥ ६० ॥ ततोनिशामुखेप्राप्ता यत्रदेवःपितामहः ॥ दीक्षितस्तुयतोसौच यज्ञमण्डपसंश्रितः ॥ ६१ ॥ तेप्रणम्यततस्सर्वे गता यत्रर्त्विजःस्थिताः ॥ उपविष्टाःपरिश्रान्ता दिवायज्ञियकर्म्मणा ॥ ६२ ॥ इन्द्रादिकैस्सुरैर्भक्त्यापूज्यमानायतःस्थिताः ॥ अभिवाद्याथतान्सर्वानुपविष्टास्तदग्रतः ॥ ६३ ॥ चक्रुश्चैवकथाश्चित्रा यज्ञकर्म्मसमुद्भवाः ॥ सोमपानस्यसम्बन्धे विधायचसमुद्भवम् ॥ ६४ ॥ उद्गातुःप्रभवस्यैव तथाध्वर्य्योःपरस्परम् ॥ प्रोचुस्तेतत्त्वमाश्रित्य तथान्येदूषयन्तितत् ॥ ६५ ॥

भये जहां कि ब्रह्माजी देवताथे जिसलिये कि यज्ञमण्डप में भलीभांति टिकेहुये ये ब्रह्माजी दीक्षामें प्राप्तथे ॥ ६० । ६१ ॥ उसी कारण वे सब प्रणामकर वहांगये जहां कि ऋत्विज् स्थितथे जोकि दिनमें यज्ञवाले कर्म से थकेहुये बैठेथे ॥ ६२ ॥ जिस लिये कि इन्द्रादिक देवताओं से भक्तिके द्वारा पूजेहुये स्थितथे उसी कारण उन सबोंको प्रणामकर उनके आगे समीप बैठगये ॥ ६३ ॥ व सोमपान के सम्बन्धमें उपजेहुये कर्मको विधानकर यज्ञकर्म में उपजीहुई अद्भुत कथाओं को किया ॥ ६४ ॥ व उद्गाता से उपजे हुये पुरुषका व अध्वर्य्यु का परस्पर में सम्भाषण हुआ व वे तत्त्व वस्तु का आश्रयकरके बोले वैसेही अन्यपुरुष उसको दूषते थे ॥ ६५ ॥

दक्षिण दिशा के बसनेवाले व कौतुक से संयुत कोटि ऋषि ब्रह्माजीकी यज्ञको सुनकर आये कि जहांपर ब्रह्माजी दीक्षित हैं वहां कैसी यज्ञहोगी ॥ ४५ । ४६ ॥ वे हाटकेश्वर नामक वह पुण्यदायक कैसा क्षेत्र है व उस यज्ञमें जो ऋत्विज् स्थित हैं वे द्विजेन्द्र कैसे हैं ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर सूर्यको मध्य दिन में प्राप्तहोने पर व रविवारके भलीभांति प्राप्तहोतेहुये अश्विनी नक्षत्रके संस्थितहोनेपर व सप्तमी तिथिके प्राप्तहोने पर घामसे दुःखित वे बहुत ही थकगये और किसी जलाशय को पाकर उत्तम जलमें पैठे ॥ ४८ । ४९ ॥ जो ऋषिलोग कीलके तुल्य कानोंवाले व बड़े भारी कानोंवाले व अपर टेढ़ी नाकवाले व काले अंगोंवाले व फटेहुये चरणों तथा

शोभवितायज्ञो दीक्षितोयत्रपद्मजः ॥ ४६ ॥ कीदृक्क्षेत्रंचतत्पुण्यंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ कीदृशास्तेचविप्रेन्द्रा ऋत्विजस्तत्रयेस्थिताः ॥ ४७ ॥ अथतेसुपरिश्रान्ता मध्यंदिनगतेरवौ ॥ रविवारेणसम्प्राप्ते नक्षत्रेचाश्विसंस्थिते ॥ ४८ ॥ वैवस्वत्यांतिथौचैव सम्प्राप्तेघर्मपीडिताः ॥ किञ्चिज्जलाशयंप्राप्य प्रविष्टास्सलिलंशुभम् ॥ ४९ ॥ शङ्कुकर्णामहाकर्णा वक्रनासास्तथापरे ॥ कृष्णाङ्गाःस्फुटितैःपादैर्नखैर्दीर्घैस्समुत्थितैः ॥ ५० ॥ ततोयावद्विनिष्क्रान्ताः प्रपश्यन्तिपरस्परम् ॥ तावद्वैरूप्यनिर्मुक्ताः सञ्जाताःकामसन्निभाः ॥ ५१ ॥ ततोविस्मयमापन्ना मिथःप्रोचुःप्रहर्षिताः ॥ रूपवन्तस्समालोक्य ज्ञात्वातीर्थंतदुत्तमम् ॥ ५२ ॥ अत्रस्नानादिदंरूपमस्माभिःप्राप्तमुत्तमम् ॥ यस्मात्तस्मादिदंतीर्थं रूपतीर्थंभविष्यति ॥ ५३ ॥ पितरस्तर्प्पयिष्यन्ति येऽत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ जलेनापिगयाश्राद्धात्तेलप्स्यन्तेऽधिकंफलम् ॥ ५४ ॥ येऽत्ररत्नप्रदानञ्च प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ पितरस्तर्प्पयिष्यन्ति राजानस्तेभवन्तिच ॥ ५५ ॥ स्थास्यामोवय

उठेहुये लम्बे नखों से उपलक्षित थे ॥ ५० ॥ तदनन्तर जबतक निकलेहुये आपसमें देखैं तबतक विरूपता से छूटेहुये व कामदेव के समान होगये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त व प्रसन्नहोते हुये उन रूपवान् ऋषियों ने भलीभांति देखकर व उस क्षेत्रको उत्तम जानकर आपसमें कहा ॥ ५२ ॥ कि जिसलिये इस जलाशय में स्नानसे हमलोगों ने इस उत्तमरूपको पायाहै उसी कारण यह तीर्थ रूपतीर्थ होगा ॥ ५३ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष इस जलाशय में जलसे भी पितरोंका तर्पण करैंगे वे गया श्राद्धसे अधिक फलको पावैंगे ॥ ५४ ॥ व जो मनुष्य यहां रत्नदान करैंगे व पितरोंका तर्पणकरैंगे वे राजाहोवैंगे ॥ ५५ ॥ इस समय कियेहुये टिकाश्रयवाले

हिये ॥ ३६ ॥ व समस्त चाहिये ॥ ३५ ॥ हे देवेश जी ! आजसे लगाकर यज्ञोंमें ब्राह्मणों को तुम्हारे उद्देशसे शतरुद्रिय मन्त्रके द्वारा पुरोडाशात्मिक हवन करना चाहिये ॥ ३६ ॥ व समस्त यज्ञोंमें विशेषकर जपकरना चाहिये और हे सुरसत्तम ! तुमने विशेषकर कपालों के द्वारा अपने रूपको प्रकटकिया इसलिये हे रुद्रजी ! इस क्षेत्रमें तुम अन्य बारहवें कपालेश्वर नामक होगे ॥ ३७ । ३८ ॥ यहां यज्ञको भलीभांति प्रारम्भ करके जो पुरुष पहले तुमको पूजैगा उसकी यज्ञ निर्विघ्न से समाप्ति को प्राप्तहोगी ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन ब्रह्माजी के इस भांति कहने पर तदनन्तर वे सब कपाल संख्या से रहित व नष्टहोगये ॥ ४० ॥ ऐसा कहकर चतुराननजी ने वहां पर उसी क्षण

शेनदेवेश होतव्यंशतरुद्रियम् ॥ ३६ ॥ विशेषात्सर्वयज्ञेषुजप्यंचैवविशेषतः ॥ कपालानान्तुद्वारेण त्वयारूपंनिजंकृतम् ॥ ३७ ॥ प्रकटञ्चसुरश्रेष्ठ कपालेश्वरसंज्ञितम् ॥ तस्मात्त्वंभवितारुद्र क्षेत्रेऽस्मिन्द्वादशोपरः ॥ ३८ ॥ अत्रयज्ञंसमारभ्य यस्त्वांप्राक्पूजयिष्यति ॥ अविघ्नेनक्रतुस्तस्य समाप्तिंप्रव्राजिष्यति ॥ ३९ ॥ एवमुक्तेततस्तेन कपालानिद्विजोत्तमाः ॥ तानिसर्वाणिनष्टानि संख्ययारहितानिच ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रः स्थापयामासतत्क्षणात् ॥ लिङ्गंमाहेश्वरंतत्र कपालेश्वरसंज्ञितम् ॥ ४१ ॥ अब्रवीचततोवाक्यंयश्चैतत्पूजयिष्यति ॥ ममकुण्डत्रयेस्नात्वा सयास्यतिपराङ्गतिम् ॥ ४२ ॥ एवमुक्तेतुविधिना प्रहृष्टस्त्रिपुरान्तकः ॥ यज्ञमण्डपमासाद्य प्रस्थितोवेदिसन्निधौ ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणैश्चततःकर्म्म प्रारब्धंयज्ञसम्भवम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनैर्नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंचयजतस्तस्य चतुर्वक्त्रस्यतत्रच ॥ ऋषीणांकोटिरायाता दक्षिणापथवासिनाम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वापैतामहंयज्ञं कौतुकेनसमन्विताः ॥ कीदृ

कपालेश्वर नामक महादेवजीके लिङ्गको थापन किया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वचन को कहा कि जो पुरुष मेरे तीनों कुण्डों में नहाकर इस लिंगको पूजैगा वह उत्तम गतिको प्राप्तहोगा ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी को इसप्रकार कहने पर प्रसन्न शिवजीने यज्ञमण्डप को प्राप्तहोकर वेदी के समीप प्रस्थान किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर महादेवको प्रणामकर विस्मय से फूलेहुये लोचनोंवाले ब्राह्मणोंने यज्ञसे उपजेहुये कर्मका प्रारम्भकिया ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले कि वहां इसप्रकार उन ब्रह्माजी को यज्ञ करते हुये

में कर्मकी हानि है इस लिये हे सुरनायक ! समस्त कपालोंका संहारकीजिये ॥ २६ ॥ तुम्हारे आनेपर यह यज्ञकर्म का विलोप मतहोवै तदनन्तर अति क्रोधितहोते हुये भगवान् चन्द्रभाल जी बोले ॥ २७ ॥ कि हे पितामहजी ! इसप्रकार का यह पात्रसदैव भोजनके लिये अति पवित्र स्थितहै ये किसलिये बैर करते हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अन्य देवताओं का उद्देशकर हवनकिया गयाहै वैसेही मुझको भलीभांति उद्देशकर मन्त्रसे पवित्र हव्यको अग्नि में नहीं हवनकिया ॥ २९ ॥ इसलिये हे विधे ! यदि यज्ञकर्म में समाप्ति करने योग्यहो तो हे ब्रह्मन् ! समस्त हव्यको कपाल में स्थित करनाचाहिये ॥ ३० ॥ वैसेही इसयज्ञमें मुझको भलीभांति उद्देशकर

तस्मात्संहरसर्वाणि कपालानिसुरेश्वर ॥ २६ ॥ यज्ञकर्म्मविलोपोयं माभूत्त्वयिसमागते ॥ ततःप्रोवाचसंक्रुद्धो भगवा
न्वृषशिशेखरः ॥ २७ ॥ एतन्मेध्यतमंपात्रं भोजनायसदास्थितम् । एतद्विधममीकस्माद्विद्विषन्तिपितामह ॥ २८ ॥
तथानमांसमुद्दिश्य जुहवुर्जातवेदसि । यथान्यादेवतास्तद्वन्मन्त्रपूतंहविर्विधे ॥ २९ ॥ तस्माद्यदिविधेकार्य्या समाप्ति
र्यज्ञकर्म्मणि ॥ तत्कपालाश्रितंहव्यं कर्तव्यंसकलंविधे ॥ ३० ॥ तथाचमांसमुद्दिश्य विशेषाज्जातवेदसि ॥ होतव्यं
हविरेवात्र समाप्तिंयास्यतिक्रतुः ॥ ३१ ॥ नान्यथासत्यमेवोक्तं तवाग्रेचतुरानन ॥ पितामहउवाच ॥ रूपाणितवदेवेश
पृथग्भूतान्यनेकशः ॥ ३२ ॥ संख्ययापरिहीनानि ध्येयानिसकलानिच ॥ एतन्महाव्रतंरूपमाख्यातंतेत्रिलोचन ॥
३३ ॥ नैवंचमसकर्म्मस्यात्तत्रैवंनचयुज्यते ॥ अद्यैतत्कर्म्मकर्तुञ्च श्रुतिवाक्यंकथञ्चन ॥ ३४ ॥ तववाक्यमपित्र्यक्षना
न्यथाकर्तुमुत्सहे ॥ मृन्मयेषुकपालेषु हविःपाच्यंसुरेश्वर ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृतियज्ञेषु पुरोडाशात्मिकंद्विजैः ॥ तवोद्दे

विशेषकर हव्यही को अग्नि में होमकरना चाहिये इसप्रकार यज्ञ समाप्ति को प्राप्तहोगी ॥ ३१ ॥ अन्यथा न होगी हे चतुर्मुख ! तुम्हारे आगे सत्यही कहागयाहै पितामहजी बोले कि हे देवेश ! भिन्नभूत तुम्हारे अनेकों रूपहैं ॥ ३२ ॥ जोकि संख्यासे हीन याने असंख्यहैं और वे सब ध्यानकरने योग्यहैं हे त्रिलोचन ! तुम्हारा यह महाव्रत रूपकहा गयाहै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार चमस (यज्ञपात्र) का कर्म न होगा व उस यज्ञमें ऐसा नहीं योग्यहै व आज यह कर्म करने के लिये किसी प्रकार वेद वचन नहीं है ॥ ३४ ॥ हे त्रिलोचन जी ! मैं तुम्हारे वचनको भी अन्यथा करनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं हे सुरेश्वरजी ! मृत्तिकामय कपालों मे हव्य पकाना

हो ॥ १६ ॥ सूतजीबोले कि हे द्विजोत्तमो ! इस भांति कहाहुआ वह कपाल को भूतलमें फेंककर उसी क्षण दीपक के समान अदृश्य होगया ॥ २० ॥ ऋत्विज् हे दुष्ट बुद्धिवाले, मूर्ख ! ब्रह्मासे भलीभांति उद्यतकीहुई यह यज्ञ निन्दाके योग्य नहींहै व याचकों के लिये देने से सब ओर पुण्य है इस लिये क्यों निन्दा करते हैं ॥ १६ । १७ ॥ अथवा तुम धनकी कामनावाले या यदि वसनकी इच्छावालेहो तो वहां जावो जहां कि धनेश (कुवेरजी) दान मन्दिर में भलीभांति टिकेहैं॥१८॥ तुम भोजनकी कामनावाले आयेहो तो शीघ्रही इस अन्नशाला में जावो जहां कि तपस्वी लोग व दीन, अन्ध, कृपण तथा क्षुधासे दुबले ब्राह्मण भोजन करते

जाः ॥ १७ ॥ अथवाधनकामस्त्वं वस्त्रकामोथवायदि ॥ व्रजवित्तपतिर्यत्र दानशालांसमाश्रितः ॥ १८ ॥ अनिन्द्योयं मूर्खयज्ञः पितामहसमुद्यतः ॥ अर्थिभ्यःसर्वतः पुण्यन्तत्किन्निन्दसिदुर्मते ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तःकपालंस परि क्षिप्यधरातले ॥ जगामादर्शनंसद्यो दीपवद्द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ ऋत्विजऊचुः ॥ कथंयज्ञक्रियाकार्य्या कपालेसद सिस्थिते ॥ परिक्षिपततत्तस्मादेवमूचुर्द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥ दण्डकाष्ठंसमुद्यम्य चिक्षिपुस्तद्बहिस्तदा ॥ अथान्यत्तत्र संजातं कपालंतादृशम्पुनः ॥ २२ ॥ तस्मिन्नपिपरिक्षिप्ते ततोन्यत्समपद्यत ॥ एवंशतसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानिच ॥ २३ ॥ तत्रजातानितैर्व्याप्तो यज्ञवाटःसमन्ततः ॥ हाहाकारस्ततोजज्ञे समस्तेयज्ञमण्डपे ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाकपालसङ्घाता न्यज्ञकर्म्मप्रदूषकान् ॥ अथसञ्चिन्तयामास यज्ञवाटसमाश्रितः ॥ २५ ॥ किमिदंयुज्यतेदेवयज्ञेस्मिन्कर्म्मणःक्षतिः॥

बोले कि कपालको सभामें स्थितहोनेपर कैसे यज्ञकर्म करने योग्यहै उसीलिये उसको फेंको इसप्रकार उन द्विजोत्तमोंने कहा ॥२१॥ उस समय दण्डमय काठको भली भांति उठाकर उस कपालको बाहर फेंकदिया इसके अनन्तर वहां फिर वैसाही अन्यकपाल प्राप्तहोगया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उस के भी फेंकनेपर अन्य प्राप्तहुआ इस भांति सैकड़ों, हजारों, दशहजार व अर्बुदों कपाल ॥ २३ ॥ वहां हो गये उनसे सब ओर यज्ञ वाट व्याप्त होगया तदनन्तर समस्त यज्ञ मण्डपमें हाहाकारहुआ॥२४॥ इसके अनन्तर यज्ञकर्मकेदूषक कपाल समूहों को देखकर यज्ञवाटमें भलीभांति आश्रित ब्रह्माजी ने चिन्तवन किया॥ २५ ॥ कि क्या यह युक्तहै हे देव ! इस यज्ञ

में प्राप्तकरके कटिमें अन्य उत्तम मुंजमयी मेखलाको धारणकिया ॥७॥ तदनन्तर यज्ञमण्डपमें जो उत्तम कार्य कहागया उसको वेद वचनपै भलीभांति आदरकियेहुये व ऋत्विजों समेत ब्रह्माने किया ॥ ८॥ कर्मकाण्डके होतेहुये वहां बड़ाभारी आश्चर्य हुआ कि बिगड़ेहुये मुखवाला व दिशारूप वसनोंवाला (नग्न) तथा जाल्म (मेहरेके), रूपका धारनेहारा व खोपडी हाथ में लिये कोई पुरुषआया व भोजनदीजिये यह बोला व उन तपस्वियोंसे घुड़काहुआ भी व मनाकियाहुआ भी वह नटके समान मायाकरके यज्ञमण्डप में पैठआया सामाजिक बोले कि पापसमेत तुम किसलिये यज्ञमण्डपमें पैठेहो ॥ ६ । १० । ११ ॥ जोकि नग्नरूप व यज्ञ कर्म

ऋत्विग्भिःसहितोब्रह्मा वेदवाक्यंसमादृतः ॥ ८ ॥ प्रवर्गेजायमानेच तत्राश्चर्य्यमभून्महत् ॥ जाल्मरूपधरःकश्चि
द्दिग्वासाविकृताननः ॥ ९ ॥ कपालपाणिरायातो भोजनन्दीयतामिति ॥ निषेध्यमानोपिचतैःप्रविष्टोयज्ञमण्डपम् ॥
१० ॥ सकृत्वानटवन्मायांभर्त्स्यमानोपितापसैः ॥ सदस्याऊचुः ॥ कस्मात्पापसमेतस्त्वं प्रविष्टोयज्ञमण्डपे ॥ ११ ॥
कपालीनग्नरूपोयो यज्ञकर्म्मविवर्ज्जितः ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंमूढ यावद्ब्रह्मानकुप्यति ॥ १२ ॥ तथान्येब्राह्मणश्रेष्ठा
स्तथादेवास्सवासवाः ॥ जाल्मउवाच ॥ ब्रह्मयज्ञमिमंश्रुत्वाकुहरादहमागतः ॥ १३ ॥ बुभुक्षितोद्विजश्रेष्ठास्तत्किमर्थंवि
गर्हितः ॥ दीनान्धैःकृपणैस्सर्वैस्तर्पितैरिष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥ अन्यथासौविनाशाय यदुक्तंब्राह्मणैर्वचः ॥ अन्नहीनोदहे
द्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तुऋत्विजः ॥ १५ ॥ याज्ञिकंदक्षिणाहीनोनास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदित्वंभोक्तुकामस्तु
समायातोव्रजद्रुतम् ॥ १६ ॥ एतस्यामन्नशालायां भुज्यन्तेयत्रतापसाः ॥ दीनान्धाःकृपणाश्चैव तथाक्षुत्क्षामकाद्वि

से रहित और कपालको धारेहो इस लिये हे मूढ़ ! जब तक ब्रह्माजी तथा अन्य द्विजोत्तम व इन्द्र समेत देवता क्रोध न करैं तब तक शीघ्रही जाओ जाल्मबोला कि इस ब्रह्म यज्ञको सुनकर मैं बिलसे आयाहूं ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जोकि क्षुधितहूं तो किसलिये निन्दितहुआ क्योंकि दीन अन्ध व समस्त कृपणोंके तृप्त करने से यज्ञकहीजाती है ॥ १४ ॥ अन्यथा यह यज्ञ विनाशके लिये होतीहै जिस लिये कि ब्राह्मणों ने वचनकहा है कि अन्नसे हीन राज्यको जलातीहै व मन्त्र से हीन यज्ञ ऋत्विजोंको विनाशती है॥ १५ ॥ और दक्षिणासे हीन यज्ञ यज्ञकर्ता को नाशकरती है इसी कारण यज्ञके समान शत्रु नहीं है ब्राह्मण लोगबोले कि यदि

एडदान करताहै ॥ ७४ ॥ उसके पितर अत्यन्तही प्रसन्न व पितर तीर्थके समान तृप्तहोते हैं ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र
विरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगायत्रीविवाहोनामैकसप्तत्यधिक शततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो०। कोटि मुनिन जहँ न्हायकरि पायो उत्तमरूप । इकसौ बहतरिवें महँ सोई चरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि चारमुखवाले ब्रह्माजी ने इस भांति गा-
यत्रीको स्त्री पाकर व अति प्रसन्न मनवाले होकर यज्ञमण्डप को प्रयाणकियां ॥१॥ व जब बाजन बजनेलगे तब ब्रह्मशब्दको आकाश जानेपर व सब ओर से समय

पितरस्तस्यसन्तुष्टास्तर्पिताःपितृतीर्थवत् ॥ ७५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमा
हात्म्ये गायत्रीविवाहोनामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ * ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ एवंपत्नींसमासाद्य गायत्रींचतुराननः ॥ सम्प्रहृष्टमनाभूत्वा प्रस्थितोयज्ञमण्डपम् ॥ १ ॥ गायत्र्यपि
समादाय मूर्ध्नितामरणींमुदा ॥ प्रतस्थेसम्परित्यज्य गोपभावंविनिर्गतम् ॥ २ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु ब्रह्मघोषेदिवंगते॥
कालंप्रगायमानेषु गन्धर्वेषुसमन्ततः ॥ ३ ॥ सर्वदेवद्विजोपेतः सम्प्राप्तोयज्ञमण्डपम् ॥ गायत्र्यासहितोब्रह्मा मानुषं
भावमाश्रितः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेचक्रे केशनिर्वपणंविधिः ॥ विश्वकर्म्मानखानांच गायत्र्यास्तदनन्तरम् ॥ ५ ॥
औदुम्बरंततोदण्डं पुलस्त्योस्मैसमाददे ॥ एणश्रृङ्गान्वितंचर्म्म मन्त्रवद्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ पत्नींशालांगृहीत्वाथ
गायत्रींमौनधारिणीम् ॥ मेखलान्निदधेचान्यांकृत्वांमौञ्जीमयींशुभाम् ॥ ७ ॥ ततश्चक्रेपरंकर्म्म यदुक्तंयज्ञमण्डपे ॥

के अनुकूल गन्धर्वों के गानेपर गायत्रीने भी निकलेहुये गोपभावको छोड़कर हर्षसे उस अरणी (अग्नि मथनेवाली लकड़ी) को मस्तकपै लेकर प्रस्थानकिया ॥
२ । ३ ॥ मनुजतामें टिके व समस्त देवताओं तथा द्विजोंसे संयुत व गायत्री समेत ब्रह्मा जी यज्ञमण्डप को भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ इसी अवसर में ब्रह्माने केश
निर्वपण (क्षौर कर्म) किया तदनन्तर विश्वकर्मा ने गायत्री के नखों का छेदन किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! पुलस्त्यने इन ब्रह्माजी के लिये
गूलर के दण्डको व मन्त्र पूर्वक मृगके सींग संयुत चर्मको भलीभांति दिया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर मौनको धारेहुई गायत्री स्त्रीको लेकर शाला (सभा या मण्डप)

स्वरूपवान् अंगोंवाली इस शुभदायक कामवती को मैं तुम्हारे लिये लायाहूं ॥६४॥ हे चतुरानन जी ! पवित्रकरने के लिये मैंने इस गोपकन्याको पकड़कर व गऊके
मुखमें प्रवेशकर के गुदाके द्वारा खींचलिया है ॥ ६५ ॥ गौओं व ब्राह्मणों का एकही कुल दो प्रकारका कियागया है एक ठिकाने मन्त्र स्थितहैं व एकतौर पै हव्य
टिकी है ॥ ६६ ॥ हे देव ! गऊके पेटसे निकली है इस लिये यह ब्राह्मणताको प्राप्तहुई है तुम विधिके अनुकूल इसका विवाहकरो ॥ ६७ ॥ जब तक कि यज्ञ में
पीनेसे उपजाहुआ समय न चलाजावै रुद्रजी बोले कि जिसलिये गऊके मुख में पैठी व गुदाके द्वारा निकली है ॥ ६८ ॥ उसी कारण हे देव ! गायत्री नामक

गोपकन्यांप्रगृह्येमां गोवक्त्रेणप्रवेश्यच ॥ आकर्षिताचगुह्येन पावनार्थंचतुर्मुख ॥ ६५ ॥ गवांचब्राह्मणानांच कुलमेकं
द्विधाकृतम् ॥ एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्रतिष्ठति ॥ ६६ ॥ गोरुदराद्विनिष्क्रान्ता तज्जातेयंद्विजन्मताम् ॥ अ
स्याःपाणिग्रहन्देव त्वंकुरुष्वयथाविधि ॥ ६७ ॥ यावन्नचलतेकालो यज्ञपानसमुद्भवः ॥ रुद्रउवाच ॥ प्रविष्टागोमुखे
यस्मादपानेनविनिर्गता ॥ ६८ ॥ गायत्रीनामतत्पत्नी तस्माद्देवभविष्यति ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वदन्तुब्राह्मणास्सर्वे गोप
कन्याप्यसौयदि ॥ ६९ ॥ साभूयब्राह्मणीश्रेष्ठा यथापत्नीभवेन्मम ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एषास्याद्ब्राह्मणीश्रेष्ठा गोपजा
तिविवर्जिता ॥ ७० ॥ अस्मद्वाक्याच्चतुर्वक्त्र कुरुपाणिग्रहंद्रुतम् ॥ सूतउवाच ॥ ततःपाणिग्रहंचक्रे तस्यादेवःपितामहः ॥
७१ ॥ यस्तत्रकुरुतेमर्त्यो कन्यादानंसमाहितः ॥ ७२ ॥ ससमंफलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ कन्याहस्तग्रहंतत्र
प्राप्नोतिपतिनासह ॥७३॥ सास्यात्पुत्रवतीसाध्वी सुखसौभाग्यसंयुता॥पिण्डदानंनरस्तस्यांयःकरोतिद्विजोत्तमाः॥७४॥

तुम्हारी स्त्री होगी ब्रह्माजीबोले कि यदि समस्त ब्राह्मणलोगकहैं कि यह गोपकन्या भी ॥ ६९ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणी होकर वह जिसप्रकार मेरी स्त्री होवै ब्राह्मणलोगबोले
कि गोपजाति से रहित यह उत्तम ब्राह्मणी होवै है ॥ ७० ॥ हे चतुरानन जी ! हमलोगों के वचनसे शीघ्रही पाणिग्रह (विवाह) कीजिये सूतजीबोले कि तदनन्तर
ब्रह्मादेवजी ने उसका विवाह किया ॥ ७१ ॥ वहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य कन्यादान करता है ॥ ७२ ॥ वह राजसूय अश्वमेधके बराबर फलको प्राप्तहोता है
व जो कन्या वहां पतिके साथ पाणिग्रहको प्राप्तहोती है ॥ ७३ ॥ वह पुत्रवती व पतिव्रता तथा सौभाग्य से संयुत होतीहै व हे द्विजोत्तमो ! उस भूमिमें जो नर पि-

यज्ञ अन्य स्त्री के द्वारा अवश्यकर करना चाहिये हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माजी के वचनको सुनकर इन्द्रने समीप भ्रमतीहुई कन्याको उसके लिये शीघ्रही प्राप्तकिया इस के अनन्तर उन इन्द्रने वहां घड़े से आकुल मस्तकवाली कन्याको देखा ॥ ५५ । ५६ ॥ जो कि कमल लोचनोंवाली व चन्द्रमा के समान मुखवाली व सूक्ष्मअ-ङ्गोंवाली और समस्त लक्षणों से सम्पूर्ण व यौवन के प्रारम्भ में प्राप्त गोपसे उपजी हुई कन्याथी ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने उससे भलीभांति पूछा कि हे कमल लोचनि ! तुम कुमारी या सनाथा (ब्याही) व किसकी कन्या और कौनहो इसको हमसे कहौ ॥ ५८ ॥ कन्याबोली कि तुम्हारा कल्याणहो दही बेचने के

भार्य्ययायज्ञो मयाकार्य्योयमेवतु ॥ पितामहवचःश्रुत्वा तदर्थंकन्यकाद्विजाः ॥ ५५ ॥ शक्रेणासादिताशीघ्रं भ्रममाणासमीपतः ॥ अथतत्रघटव्यग्रमस्तकातेनवीक्षिता ॥ ५६ ॥ कन्यकागोपजातन्वी चन्द्रास्यापद्मलोचना ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णा यौवनारम्भमाश्रिता ॥ ५७ ॥ साशक्रेणाथसम्पृष्टा कात्वंकमललोचने ॥ कुमारीवासनाथावा सुताकस्य ब्रवीहिनः ॥ ५८ ॥ कन्योवाच ॥ गोपकन्यास्मिभद्रन्ते तक्रंविक्रेतुमागता ॥ परिगृह्णासिमेमूल्यं तच्छीघ्रंदेहिमाचिरम् ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वात्रिदिवेन्द्रोपि मत्वातांगोपकन्यकाम् ॥ जगृहेत्वरयायुक्तस्तक्रंचोत्सृज्यभूतले ॥ ६० ॥ अथतां रुदतींशक्रः समादायत्वरान्वितः ॥ गोवक्त्रेणप्रवेश्याथ गुदेनाकर्षयत्ततः ॥ ६१ ॥ एवंमेध्यतमांकृत्वा संस्नाप्यसलिलैश्शुभैः ॥ ज्येष्ठकुण्डस्यविप्रेन्द्राः परिधायसुवाससी ॥ ६२ ॥ ततश्चहर्षसंयुक्तः प्रोवाचचतुराननम् ॥ द्रुतङ्गत्वापुरोधृत्वा सर्वदेवसमागमे ॥ ६३ ॥ कामुकेयंसुरश्रेष्ठ समानीतामयाशुभा ॥ तवार्थायसुरूपाङ्गी सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ६४ ॥

लिये आई हुई मैं, गोपकी कन्याहूं उसको मुझसे लीजिये व शीघ्रही मूल्यको दीजिये ॥ ५९ ॥ उस वचनको सुनकर शीघ्रतासंयुत इन्द्रनेभी दहीको भूमिमें उतारकर पकड़लिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर शीघ्रता संयुत इन्द्रजीने रोतीहुई उस गोपकन्या को भलीभांति लेकर व गऊके मुखमें बैठाकर तदनन्तर गुदाके द्वारा खींच लिया ॥ ६१ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार अति पवित्रकरके बड़े कुण्डके उत्तम जलसे भलीभांति नहवाकर व उत्तम दो वसनों को पहनाकर ॥ ६२ ॥ तदनन्तर हर्ष संयुक्त होतेहुये इन्द्रजी ने समस्त देवताओं की सभामें शीघ्रही जाकर व अगाड़ी धरकर चतुरानन से कहा ॥ ६३ ॥ कि सुरोत्तम जी समस्त लक्षणों से लक्षित व

टिंकीर्थी तदनन्तर बोले कि हे देवि ! आलसीले मन या चित्तवाली तुम क्यों स्थितहो ॥ ४५ ॥ सावित्रीजी बोलीं कि हे तात ! तुम्हारे तात (ब्रह्माजी) समस्त देवताओं
से घिरेहुये स्थित हैं ॥ ४६ ॥ वहां बिन स्वामी के समान मैं अकेली कैसे जाऊं इस लिये जाकर पितासे कहिये कि मुहूर्त भर परिपालनकरो याने परखो ॥ ४७ ॥
जब तक इन्द्राणी, भवानी व लक्ष्मी तथा और देवकन्यायें आतीहैं उनसबों के साथ मैं शीघ्रही इस सुरसमाज में आऊंगी ॥ ४८ ॥ मैंने सबोंके निमन्त्रण के लिये
पवनको भेजाहै वे शीघ्रही आवैंगी इस प्रकार तुमको पितासे कहना चाहिये ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले कि उन पुलस्त्यने भी शीघ्रही जाकर सोमके भारसे विकल ब्रह्माजी

तन्नृत्यसमाकुला ॥ ततःप्रोवाचकिन्देवि त्वंतिष्ठस्यलसात्मिका ॥ ४५ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सर्वदेववृतस्तात त्वत्तातोऽत्र
वस्थितः ॥ ४६ ॥ एकाकिनीकथंतत्र गच्छाम्यहमनाथवत् ॥ तद्ब्रूहिपितरंगत्वा मुहूर्तंपरिपाल्यताम् ॥ ४७ ॥ याव
दभ्येतिशक्राणी गौरीलक्ष्मीस्तथापराः ॥ देवकन्यास्समाजेऽत्र ताभिरेष्याम्यहंद्रुतम् ॥ ४८ ॥ सर्वासाम्प्रेषितोवायुर्नि
मन्त्रणकृतेमया ॥ आगमिष्यन्तिताश्शीघ्रमेवंवाच्यःपितात्वया ॥ ४९ ॥ सूतउवाच ॥ सोपिगत्वाद्रुतंप्राह सोमभा
रार्दितंविधिम् ॥ नैषास्येतिजगन्नाथ प्रसक्तागृहकर्म्मणि ॥ ५० ॥ सामांप्राहचदेवानां पत्नीभिःसहितामखे ॥ अहंया
स्यामितासांच नैकाद्यापिप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥ एवंज्ञात्वासुरश्रेष्ठ कुरुयत्तेसुरोचते ॥ अतिक्रामतिकालोयं यज्ञपानसमु
द्भवः ॥ ५२ ॥ तिष्ठन्तीचगृहव्यग्रा सापिस्त्रीशिथिलात्मिका ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य पुलस्त्यस्यपितामहः ॥ ५३ ॥ समी
पस्थंतदाशक्रं प्रोवाचवचनंद्विजाः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शक्रनायातिसावित्री सापिस्त्रीशिथिलात्मिका ॥ ५४ ॥ अन्यया

से कहा कि हे जगदीश ! गृह कार्य्य में लगीहुई यह ब्रह्माणी नहीं आती है ॥ ५० ॥ व उसने मुझसे कहाहै कि सुर स्त्रियों समेत मैं यज्ञमें जाऊंगी और उनके मध्य
में एक अभीतक नहीं देखपड़ती है ॥ ५१ ॥ हे सुरोत्तमजी ! ऐसा जानकर जो तुम को रुचताहो उसको कीजिये व यज्ञमें पानसे उपजाहुआ यह समय व्यतीत
होताहै ॥ ५२ ॥ व शिथिल मनवाली तथा गृह कर्ममें आकुल वे सरस्वती भी बैठीहैं हे द्विजोत्तमो ! उन पुलस्त्य जी के उस वचनको सुनकर ब्रह्माजीने उस समय
समीप बैठेहुये इन्द्रसे वचनको कहा ब्रह्माजी बोले कि हे इन्द्रजी ! शिथिल मन या चित्तवाली वे स्त्री सावित्री भी नहीं आती हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ और मुझको यह

में स्त्री लाईजावै इस कारण ब्रह्माजीने मुनिनायक नारदजी को संज्ञासे पठाया ॥ ३५ ॥ उन नारदने भी धीरेसे आकर सावित्री के समान व समर प्रियके उत्तरवाले वचनको फिर सावित्रीजी से लीलापूर्वक कहा ॥ ३६ ॥ कि हे सुरेश्वरि ! पिताने मुझको तुम्हारे समीप पठायाहै आइये क्योंकि नहायेहुये उनने इस समय यज्ञ मण्डपको प्रस्थान कियाहै ॥ ३७ ॥ परन्तु वहां अकेले जातीहुई तुम सुरेश्वरीअनाथ के समान सभामें कैसे रूपवाली देखपडोगी ॥ ३८ ॥ इस लिये हे देवि ! जो कोई सुरस्त्रियां हैं उन सबोंको आनिये कि जिनसे घिरीहुई तुम महायज्ञ में जावोगी ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी पिताके पास जाकरबोले कि हे

सत्तम ॥ संज्ञयाप्रेषयामास पत्नीचानीयतामिति ॥ ३५ ॥ सोपिमन्दंसमागत्य सावित्रींप्राहलीलया ॥ युद्धप्रियोत्तरं वाक्यं सावित्र्यासदृशंपुनः ॥ ३६ ॥ अहंसंप्रेषितःपित्रा तवपार्श्वेसुरेश्वरि ॥ आगच्छप्रस्थितःस्नातः साम्प्रतंयज्ञमण्डपम् ॥३७॥ परमेकाकिनीतत्र गच्छमानासुरेश्वरी ॥ कीदृग्रूपासदसिवै दृश्यसेत्वमनाथवत् ॥३८॥ तस्मादानीयतां सर्वा याःकाश्चिद्देवयोषितः ॥ याभिःपरिवृतादेवि यास्यसित्वंमहामखे ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो नारदोमुनिसत्तमः ॥ अब्रवीत्पितरंगत्वा तातम्बाप्रोदितामया ॥ ४० ॥ परंतस्याःस्थिरोभावः किञ्चित्संलक्षितोमया ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा ततोमन्युसमन्वितः ॥ ४१ ॥ पुनस्तुप्रेषयामाससावित्र्याःसन्निधौततः ॥ गच्छवत्ससमानीहि स्थानंसाशिथिलात्मिका ॥ ४२ ॥ सोमभारपरिश्रान्तं पश्यमामूर्द्ध्वसंस्थितम् ॥ एषकर्मात्ययस्तापी यज्ञकर्म्मणिसाम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ यज्ञपानमुहूर्तन्तु सावशेषोव्यवस्थितः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुलस्त्यःसत्वरंययौ ॥ ४४ ॥ सावित्रीतिष्ठतेयत्रगी

पिताजी ! मैं माता से कह आया ॥ ४० ॥ परन्तु मैंने उनकी कुछ स्थिरताको देखा है तदनन्तर उन नारदजी के उस वचनको सुनकर ब्रह्माजी क्रोध संयुतहुये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सावित्रीके समीप फिर पठाया कि हे वत्स ! स्थान पै भलीभांति लावो वह शिथिल मन या चित्रवाली है ॥ ४२ ॥ ऊपर भलीभांति टिकेहुये व सोम (वल्ली विशेष) के भारसे थकेहुये मुझको देखो इस समय यज्ञकर्म में यह कर्मका उल्लंघन या दोष तापकारक है ॥ ४३ ॥ और यज्ञमें सोमपीने का मुहूर्त्त सावशेष (कुछ बाकी) व्यवस्थित है उन ब्रह्माजी के उस वचनको सुनकर पुलस्त्यजी शीघ्रही वहांगये ॥ ४४ ॥ जहां कि गाने व नाचने से संयुक्त सावित्री जी

शीघ्रही शूलधारी शिवजी के समीप जावैंगे ब्रह्माबोले कि आजसे लगाकर यहां जो कोई यज्ञ करैगा ॥ २४ । २५ । २६ ॥ व नागरों से बाह्यजो श्राद्धकरैगा वह वृथा होवैगा और जो कोई नागरभी ब्राह्मण इस क्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र यज्ञ करैगा वह वृथाहोगी हे ब्राह्मणो! मैंने इस समय नागरोंकी यह मर्यादा की ॥ २७।२८॥ हमारे ऊपर प्रसन्नता करके यज्ञके लिये आज्ञादेने के योग्यहो शीघ्रही आज्ञादीजिये कि जिससे मैं यज्ञकरूं ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्नहुये उन ब्राह्मणों से आज्ञादिये हुये ब्रह्माजी ने उन ब्राह्मणों के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञको किया कि जिनका वरण कियाथा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! नागरों के मत में

या ॥ यद्येवमपिदेवेश यज्ञकर्मकरिष्यसि ॥ २५ ॥ अवमन्यद्विजान्सर्वान् क्षिप्रंगच्छामशूलिनम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अद्यप्रभृतियःकश्चिद्यज्ञमत्रकरिष्यति ॥ २६ ॥ श्राद्धंचनागरैर्बाह्यं वृथातत्सम्भविष्यति ॥ नागरोपिचयोन्यत्रकश्चिद्यज्ञं करिष्यति ॥ २७ ॥ एतत्क्षेत्रंपरित्यज्य वृथातत्सम्भविष्यति ॥ मर्यादेयंकृताविप्रा नागराणांमयाधुना ॥ २८ ॥ कृत्वा प्रसादमस्माकं यज्ञार्थंदातुमर्हथ ॥ अनुज्ञांदीयतांक्षिप्रं येनयज्ञंकरोम्यहम् ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तैर्ब्राह्मणैस्तुष्टैरनुज्ञातःपितामहः ॥ चकारविधिवद्यज्ञं येवृताब्राह्मणाश्चतैः ॥ ३० ॥ विश्वकर्म्मासमागत्य ततोमध्यगमण्डपम् ॥ चकारब्राह्मणश्रेष्ठा नागराणांमतेस्थितः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मापिपरमंतोषं गत्वानारदमब्रवीत् ॥ सावित्रीमानयक्षिप्रंयेनगच्छामिमण्डपम् ॥ ३२ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु सिद्धकिन्नरगुह्यकैः ॥ गन्धर्वैर्वाद्यसंयुक्तैरुच्चारणपरैर्द्विजैः ॥ ३३ ॥ अरणिंसमुपादाय पुलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ पत्नीपत्नीतिविप्रेन्द्राः प्रोच्चैस्तत्रव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा नारदंमुनि

स्थित विश्वकर्मा ने मध्यवर्ती मण्डप को भलीभांति आकर कर्मकिया ॥ ३१ ॥ व ब्रह्माने भी परम प्रसन्नता को प्राप्तहोकर नारद से कहा कि शीघ्रही सावित्री को लाइये जिससे मैं यज्ञमण्डप को जाऊं ॥ ३२ ॥ बाजाओं से संयुत सिद्ध, किन्नर, गुह्यक व गन्धर्वोंके बाजनबजाने पर व द्विजोंको उच्चारणमें तत्पर होनेपर ॥३३॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां विशेषतासे स्थितहुये पुलस्त्यजी ने अरणी (अग्नि मथनेवालीलकड़ी) को लेकर उच्चस्वर से पत्नी २ ऐसी वाक्यको कहा ॥ ३४ ॥ इसी अवसर

इस संसार में सब ब्राह्मणों के मध्यमें नागर उत्तमहैं ॥ १५ ॥ इस लिये यदि तुमयज्ञसे उपजीहुई इस प्राप्तिको चाहतेहो तो हे पितामहजी ! भक्तिसे समस्त नागरों की प्रसन्नताकीजिये ॥ १६ ॥ सूतजीबोले कि उस वचनको सुनकर डरे व ऋत्विजों से घिरेहुये ब्रह्माजी वहांगये जहां कि क्रोधित नागर ब्राह्मण टिकेथे ॥ १७ ॥ तदनन्तर सबोंको प्रणामकर हाथजोड़े खड़े व नम्रता से संयुत ब्रह्माजी भक्तिसे वचनबोले ॥ १८ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! मैं जानताहूं कि इस हाटकेश्वर क्षेत्रमें तुम लोगोंसे बाहरवाला यज्ञकर्म व वैसेही श्राद्धवृथाहोताहै ॥ १९ ॥ कलियुगके डरसे मैं इस स्थानमें अपने पुष्करको लाया व तुम्हारे तीर्थको यह निक्षेप (धरोहर) सम-

तस्माच्चेद्वाञ्छसिप्राप्तिं त्वमेनांयज्ञसम्भवाम् ॥ तद्भक्त्यानागरान्सर्वान्प्रसादयपितामह ॥ १६ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजोभीत ऋत्विग्भिःपरिवारितः ॥ जगामतत्रयत्रस्था नागराःकुपिताद्विजाः ॥ १७ ॥ प्रणिपत्यततःसर्वान्विनयेनसमन्वितः ॥ प्रोवाचवचनंभक्त्या कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ १८ ॥ जानाम्यहंद्विजश्रेष्ठाः क्षेत्रेऽस्मिन्हाटकेश्वरे ॥ युष्मद्बाह्यंवृथाश्राद्धं यज्ञकर्मतथैवच ॥ १९ ॥ कलिभीत्यामयानीतं स्थानेस्मिन्पुष्करंनिजम् ॥ तीर्थंचयुष्मदीयंचनिक्षेपोयंसमर्पितः ॥ २० ॥ ऋत्विजोमीसमानीतागुरुणायज्ञसिद्धये ॥ अजानताद्विजश्रेष्ठा आधिक्यंनागरात्मकम् ॥ २१ ॥ तस्माच्चक्षम्यतांमह्यं यतश्चवरणंकृतम् ॥ एतेषामेवविप्राणामग्निष्टोमकृतेमया ॥ २२ ॥ एतच्च मामकंतीर्थं युष्माकंपापनाशनम् ॥ भविष्यतिनसन्देहः कलिकालेपिसंस्थिते ॥ २३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदित्वंनागरैर्बाह्यं यज्ञंचात्रकरिष्यसि ॥ तदन्येपिसुरास्सर्वे तवमार्गानुयायिनः ॥ २४ ॥ भविष्यन्तितदाभूयस्तत्कार्योनमखस्त्व

र्पणकीगई ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! नागरात्मक अधिकताको न जानतेहुये बृहस्पति जी यज्ञ सिद्धिके लिये इन ऋत्विजों को लायेहैं ॥ २१ ॥ जिस लिये कि मैंने अग्निष्टोमके लिये इन्हीं ब्राह्मणों का वरणकिया इस कारण मेरे अपराधको क्षमाकीजिये ॥ २२ ॥ व कलिकालके भी भलीभांति टिकने पर यह मेरा तीर्थ निस्सन्देह तुमलोगों का पाप विनाशक होगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मण लोगबोले कि यदि तुम नागरों से बाहरवाले यज्ञको यहां करोगे तो और भी समस्त देवता तुम्हारे मार्ग के अनुगामी होवैंगे उसी कारण उस समय तुमको फिर यज्ञ न करना चाहिये हे सुरनायक ! यदि समस्त ब्राह्मणोंका अपमानकर ऐसाभी यज्ञकर्म करोगे तो हम लोग

ने भी हमलोगों का पराभव नहीं किया तुमने कियाहै ॥ ५ ॥ नागर ब्राह्मणों से बाहर जो यहां यज्ञ या श्राद्धको करता है वह समस्त द्विजोत्तमों के मारने योग्य होता है ॥ ६ ॥ उसी कारण उस यज्ञसे उठाहुआ कल्याण किसी प्रकार नहीं होताहै उसी समय इन शिवजीने यह कहाथा जब कि हमलोगोंको स्थान दियाथा॥७॥ इस लिये यदि यज्ञ करतेहो तो नागर ब्राह्मणों के द्वाराकरो अन्यथा जीतेहुये नागर ब्राह्मणों से न करने पावोगे ॥ ८ ॥ तदनन्तर इस भांति कहा व ब्राह्मणों से घिरा हुआ वह मध्यवर्ती ब्राह्मण जहां ब्रह्माजी थे वहां जाकर यज्ञमण्डप के दूर में स्थितहुआ ॥ ९ ॥ व समस्त नागर ब्राह्मणों ने जो कहाथा उसने विशेषता समेत

गरैर्ब्राह्मणैर्बाह्यो योत्रयज्ञंसमाचरेत् ॥ श्राद्धंवासहिवध्यःस्यात्सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ नतस्माज्जायतेश्रेयस्ततसमुत्थंकथञ्चन ॥ एतत्प्रोक्तंतदातेन यदास्थानंददौहिनः ॥ ७ ॥ तस्माद्यत्कुरुषेयज्ञं ब्राह्मणैर्नागरैःकुरु ॥ नान्यथालप्स्यसेकर्तुं जीवद्भिर्नागरैर्द्विजैः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्ततोगत्वामध्यगोयत्रपद्मजः ॥ यज्ञमण्डपदूरस्थो ब्राह्मणैःपरिवारितः ॥ ९ ॥ यत्प्रोक्तंनागरैस्सर्वैः सविशेषंतदाहसः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राह सान्त्वपूर्वमिदंवचः ॥ १० ॥ मानुषंभावमापन्न ऋत्विग्भिःपरिवारितः ॥ त्वयासत्यमिदंप्रोक्तं सर्वमध्यगसत्तम ॥ ११ ॥ किङ्करोमिवृतास्सर्वे मयातेयज्ञकर्म्मणि ॥ ऋत्विजोध्वर्य्युपूर्वाये प्रसादेननकाम्यया ॥ १२ ॥ तस्मादानयतान्सर्वांस्तत्रस्थानेद्विजोत्तमान् ॥ अनुज्ञातस्तुतैर्येन गच्छामिमखमण्डपम् ॥ १३ ॥ मध्यगउवाच ॥ त्वन्देवत्वंपरित्यज्य मानुषंभावमाश्रितः ॥ तत्कथन्तेद्विजश्रेष्ठास्समागच्छन्तितेऽन्तिकम् ॥ १४ ॥ श्रेष्ठागावःपशूनांच यथापद्मसमुद्भव ॥ विप्राणामिहसर्वेषां तथाश्रेष्ठाहिनागराः ॥ १५ ॥

उसको कहा उस वचनको सुनकर ब्रह्माजीने प्रिय वचन पूर्वक यह वचन कहा॥१०॥कि हे मध्यगश्रेष्ठ ! तुमने यह सब सत्यकहा है परन्तु मनुजभाव में प्राप्त ऋत्विजों से घिराहुआ मैं ॥ ११ ॥ क्याकरूं क्योंकि अध्वर्यु पूर्वक जे ऋत्विज् हैं उन सबोंको कामना से नहीं किन्तु प्रसन्नता से मैंने यज्ञकर्म में वरणकिया है ॥ १२ ॥ इस लिये उस स्थानमें उन समस्त द्विजोत्तमों को लाइये कि जिससे उन ब्राह्मणों से आज्ञादियाहुआ मैं यज्ञमण्डप को जाऊं ॥ १३ ॥ मध्यग बोला कि तुम देवभाव को छोड़कर मनुजतापै टिकेहो इस लिये वे द्विजोत्तम कैसे तुम्हारे समीप आवैंगे ॥ १४ ॥ हे कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ! जैसे पशुवोंमें गाइयां श्रेष्ठहैं वैसेही

था ॥ ३५ ॥ वैसेही बृहस्पति जी आचार्य व गोभिल मुनि उद्गाता (सामवेदी) थे शांडिल्यजी प्रतिहर्ता व अंगिरा उत्तम ब्रह्मण्य थे ॥ ३६ ॥ उन ब्रह्मा की यज्ञ
की सिद्धि के लिये ये सोलह ब्राह्मण ऋत्विज् थे जोकि धनाधिपसे वसन भूषणों से शोभासंयुत कियेगये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी आपही गृह्योक्त विधिसे सम-
स्त ब्राह्मणों के पूजन कर्मको करके उसके उपरान्त आदर समेत बोले ॥३८॥ कि हे द्विजोत्तमो ! यहमैं तुमलोगों की शरण में प्राप्तहूं वे सब यज्ञ कर्मकी दीक्षाकेलिये
मुझको ग्रहण कीजिये ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मयज्ञसमारम्भो नामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

च सुब्रह्मण्यस्तथाङ्गिराः ॥ ३६ ॥ तस्ययज्ञस्यसिद्ध्यर्थमेतेषोडशचर्त्विजः ॥ वस्त्राभरणशोभाढ्या वित्तपेनकृताश्च
ये ॥ ३७ ॥ ततःकृत्वास्वयंब्रह्मा सर्वेषामर्हणक्रियाम् ॥ गृह्योक्तेनविधानेन ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३८ ॥ एषोहंशरणं
प्राप्तो युष्माकंद्विजसत्तमाः ॥ तेतुगृहीतमांसर्वे दीक्षायैयज्ञकर्म्मणः ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृती
यपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मयज्ञसमारम्भोनामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वैर्नागरैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ प्रेषितोमध्यगस्तत्र गतस्तीर्थसमुद्भवम् ॥ १ ॥ रेरेमध्यगग
त्वात्वं ब्रूहितंकुपितामहम् ॥ तन्तुहेविप्रहोतारं नीतिमार्गविवर्जितम् ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रंप्रदत्तंनः पूर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥
महेश्वरेणतुष्टेन पूरितंसर्वतोखिलम् ॥ ३ ॥ तस्यदत्तस्यचाद्यैव पितामहशतङ्गतम् ॥ पञ्चोत्तरमसंदिग्धं यावत्त्वंकुपि
तामह ॥ ४ ॥ नकेनापिकृतोस्माकं तिरस्कारस्त्वयाकृतः ॥ त्वांमुक्त्वापापकर्म्माणं न्यायमार्गविवर्जितम् ॥ ५ ॥ ना

दो० । यथा पितामह देवजी किय गायत्रि विवाह । इकसौ इखतरि में सोई वरणत सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में समस्त नागर द्विजोत्तमों
से मध्यवर्ती ब्राह्मण पठायागया व तीर्थसे उपजेहुये उसक्षेत्र को गया ॥१॥ किरेरे मध्यग, व हे विप्रजी ! नीतिमार्गसे रहित उन होता के समीप जाकर तुम उन निन्दित
पितामहजी से कहो ॥ २ ॥ कि सब ओर से पूर्ण इस समस्त क्षेत्रको प्रसन्न महादेवजी ने हमारे पूर्ववाले ब्राह्मणों को दियाथा ॥ ३ ॥ हे कुपितामहजी ! उनको दिये
हुये आजही पांच अधिक सौ ब्रह्मा व्यतीतहोगये हैं इसमें सन्देह नहीं जब तक कि तुमहुयेहो ॥ ४ ॥ व न्याय मार्गसे रहित व पापकर्मवाले तुमको छोड़कर किसी

अनूप व यौवनको भलीभांति प्राप्तथी ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चाशीत्य
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। देखि चित्रमहँ रुचिरति कियो पतिहिं स्वीकार ॥ कह्यो एकसौ छियासिवें महँ सो चरित उदार ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उत्तम वर्ण (रंग) वाली व अनूप रूपसे संयुत व यौवनयुक्त उस अपनी कन्याको देखकर आनर्त देशवाले राजाने चिन्तन किया कि मैं कन्याको देऊं परन्तु जो पुरुष कार्य्य कारणके

रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चाशीत्य
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथतांयौवनोपेतांस्वसुतांप्रेक्ष्यपार्थिवः ॥ अनौपम्येनरूपेण संयुक्तांवरवर्णिनीम् ॥ १ ॥ आनर्तश्चि
न्तयामास कन्यकांप्रददाम्यहम् ॥ अनर्हायचयोदद्याद्वरायनिजकन्यकाम् ॥ २ ॥ कार्य्यकारणलोभेन नरकंसप्रग
च्छति ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य महान्कालोऽव्यवस्थितः ॥३॥ नपश्यतिचतद्योग्यं कञ्चिद्वरमनुत्तमम् ॥ अथसंप्रेषयामास
सर्वभूताश्रयेषुये ॥ ४ ॥ चित्रकर्म्मणिविख्याता यूयंचित्रकरास्ततः ॥ गच्छध्वंममवाक्येन सर्वान्भूमितलेनृपान् ॥
५ ॥ लिखित्वापट्टमध्येतु दर्शयध्वंततःपरम् ॥ सुतायाममयेनासौ दृष्ट्वाभीष्टंनराधिपम् ॥ ६ ॥ पत्यर्थंवरयेत्साध्वी म
मदोषोभवेन्नहि ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेचित्रकरास्तदा ॥ ७ ॥ प्रस्थिताधरणीपृष्ठे पार्थिवानांगृहेषुच ॥ तांल्लिखित्वा

लोभसे अयोग्यवर के लिये कपनी कन्या देता है वह नरक को जाताहै इसप्रकार चिन्तवन करते हुये उसका बहुत समय व्यवस्थित (व्यतीत) हुआ ॥ १ । २ । ३ ॥ और उसके योग्य किसी अति उत्तम वरको न देखता था इस के अनन्तर समस्तप्राणियों के आश्रय स्थानों में जे चित्रकर्म (तसवीर खींचने) में प्रसिद्ध थे उनको भलीभांति पठाया कि तुमलोग चित्रकार हो उसी कारण जावो व मेरे वचन से भूतल में समस्त राजाओं को ॥ ४ । ५ ॥ पीठ के मध्य में लिखकर तदनन्तर मेरी कन्याको दिखलाओ जिस से प्रिय नरनायक को देखकर यह उत्तम आचरणवाली कन्या पतिके लिये स्वीकार करै मेरा दोष न होवै उस के उस वचन को सुन-

कर उससमय समस्त चित्रकारों ने ॥ ६ । ७ ॥ भूपृष्ठ में नृपों के मन्दिरों में प्रयाणकिया व अवस्था से संयुत और यौवन में टिके हुए उन भूपालों को लिखकर ॥ ८ ॥ जोकि रूप व उदारतादि गुणों से संयुत थे उनको क्रम ही से उन भूपतिकी आज्ञासे रत्नवती के आगे दिखलाया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर उन सबों के बीच में होनहार व दशार्ण देशके स्वामी बृहद्बल राजा को उसने पति के लिये स्वीकार किया ॥ १० ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुए आनर्त देश के स्वामी ने विवाह के लिये उन बृहद्बल के समीप दूतों को पठाया व भलीभांति जानकर यह वचन कहा ॥ ११ ॥ कि मेरे वचन से तुमलोग दशार्णाधिपति (बृहद्बल) के समीप जाओ

महीपालान्यौवनस्थान्वयोन्वितान् ॥ ८ ॥ रूपौदार्य्यगुणोपेतान्दर्शयामासुरग्रतः ॥ रत्नवत्याःक्रमेणैव तस्यभूपस्य शासनात् ॥ ९ ॥ अथतेषान्तुसर्वेषां मध्येराजाबृहद्बलः ॥ दशार्णाधिपतिर्भाव्यः पत्यर्थंचवृतस्तया ॥ १० ॥ ततोनर्ताधिपोहृष्टः प्रेषयामासतंप्रति ॥ विवाहार्थंसुविज्ञाय वाक्यमेतदुवाचह ॥ ११ ॥ गच्छध्वंममवाक्येन दशार्णाधिपतिंप्रति ॥ वाच्यःसविनयाद्गत्वा विवाहार्थेममान्तिकम् ॥ १२ ॥समागच्छनिजांकन्यां येनयच्छामिसांप्रतम् ॥ नाम्नारत्नवतीख्याता त्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ॥ १३ ॥ गत्वाशुसत्वरंतत्र यत्रराजाबृहद्बलः ॥ प्रोचुस्तत्सकलंवाक्यमानर्ताधिपतेःस्फुटम् ॥ १४ ॥ सोपितत्सहसाश्रुत्वा तेषांवाक्यमनुत्तमम् ॥ परमांतुष्टिमासाद्य प्रस्थितस्तत्पुरम्प्रति ॥ १५ ॥ सैन्येनमहतायुक्तश्चतुरङ्गेणपार्थिवः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

और जाकर नम्रता से उससे यह कहना चाहिये कि विवाह के लिये मेरे समीप ॥ १२ ॥ भलीभांति आवो जिससे इस समय अपनी कन्याको देऊं जोकि नाम से रत्नवती ऐसी प्रसिद्ध व त्रिलोक के बीच में भी सुन्दरी है ॥ १३ ॥ उन दूतोंने जहां बृहद्बल राजा था वहां शीघ्रही जाकर आनर्ताधीश के समस्त वचन को प्रकटही कहा ॥ १४ ॥ उनदूतोंके अति उत्तम उसवचनको अचानकही सुनकर उसबृहद्बल राजानेभी परमप्रसन्नताको पाकर बड़ीभारी चतुरङ्गिणी सेनासंयुतहो उसके पुरको प्रयाणकिया॥१५।१६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येषडशीत्यधिकशततमोध्यायः॥१८६॥

दो० । मद्यपानकरि परावसु कीन्हो प्रायश्चित्त । इकसौ सत्तासिवें महँ कह्यो सूत शुभचित्त ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसी अवसर में वेदों व वेदाङ्गों का
जाननेवाला विश्वावसु ऐसा प्रसिद्ध नागर ब्राह्मण था ॥ १ ॥ उस के पिछली अवस्था के प्राप्तहोनेपर परावसु ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ जो कि उसको सदैव प्राणों के
समान प्रिय था ॥ २ ॥ युवा अवस्थाके प्राप्त होनेपर सदैव सेवा में लगे व भलीभांति माने हुए एक अवस्था वाले बालकों के साथ उसने वेदाध्ययन किया याने
वेदको पढ़ा ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय माघ महीने के प्राप्तहोने पर रातमें पाठक के घरको गये हुए उसने पठन किया ॥ ४ ॥ व आधीरात में समस्त मित्रों

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु नागरोद्विजसत्तमाः ॥ विश्वावसुरितिख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १ ॥ पश्चिमेवय
सिप्राप्ते तस्यपुत्रोबभूवह ॥ परावसुरितिख्यातस्तस्यप्राणसमःसदा ॥२॥ सवेदाध्ययनंचक्रे यौवनेसमुपस्थिते ॥ वय
स्यैस्सम्मतैस्सार्द्धंसदादास्यपरायणैः ॥३॥ कस्यचित्त्वथकालस्य माघमासउपस्थिते॥रात्रौसोध्ययनंचक्र उपाध्या
यगृहंगतः॥ ४॥ निशीथेससमुत्थाय सर्वैर्मित्रैरलक्षितः॥ वेश्यागृहंसमासाद्य प्रसुप्तोवेश्ययासह ॥ ५ ॥ जलपूर्णंसमा
धाय जलपात्रंसमीपगम् ॥ निजाचमनयोग्यन्तु जलापानार्थमेवच ॥ ६ ॥ निशाशेषेतुसम्प्राप्ते सपिपासासमाकु
लः ॥ निद्रालस्यसमोपेतः शय्यांत्यक्त्वासमुत्थितः ॥७॥ वेश्यायामद्यपात्रन्तु अधस्तात्संव्यवस्थितम् ॥ तदादायप
पौमद्यं जलभ्रान्त्यायदैवसः ॥ ८ ॥ तदामद्यंपरिज्ञात्वा पात्रंत्यक्त्वासुदुःखितः ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा प्रलापानकरोद्बहू
न् ॥ ९ ॥ अहोनिद्रान्वितेनाद्य किंमयाविकृतंकृतम् ॥ यदद्यमद्यमापीतं जलभ्रान्त्याविगर्हितम् ॥ १० ॥ किंकरोमि

से न देखाहुआ वह उठकर व वेश्या के घर जाकर अपने आचमन के योग्य जलसे भरे हुए व समीप में प्राप्त पानी के पात्रको जल पीनेही के लिये भलीभांति धर
कर वेश्याके साथ सो गया ॥ ५ । ६ ॥ व निशा शेषके प्राप्तहोने पर याने जब कुछरात बाकी रही तब प्यास से विकल व नींदके आलस्य से संयुत वह शय्या को
छोड़कर उठा ॥ ७ ॥ और नीचे जो वेश्या का मदिरा वाला पात्र भलीभांति धरा था उसको लेकर जबहीं उसने पानी के धोखे से मदिरा को पिया ॥ ८ ॥ उस स-
मय मदिरा जानकर व पात्रको छोड़कर अति दुखित होते हुये उसने बड़े वैराग्य को प्राप्तहोकर बहुत से प्रलापोंको किया ॥ ९ ॥ कि आश्चर्य है आज नींदसे संयुत

मैंने क्या विकार किया हैं जो कि आज पानी के भ्रमसे मैंने निन्दित मदिरा को पिया ॥ १० ॥ क्याकरूं कहां जाऊं किसप्रकार मेरी शुद्धिहोगी यद्यपि अति कठिन भी होवै तथापि मैं प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ११ ॥ ऐसा मन से निश्चयकर प्रातःकाल प्राप्तहोने पर शङ्ख तीर्थको जाकर उस के उपरान्त शिखासमेत क्षौर कराकर व स्नानकर पश्चात् शीघ्रता संयुतहो वहां गया जहां कि ब्रह्मस्थान में भलीभांति बैठे हुए व वेदके घोषने में तत्पर शिष्यों समेत पाठकजी टिके थे वह द्विजजाकर व दूर स्थित होकर यथायोग्य बैठगया ॥ १२ । १३ । १४ ॥ जब मित्रों ने दाढ़ी व बालों से रहित देखा तब हँसी से बार २ हाथों के अग्रभाग से शिरमें मारा ॥ १५ ॥

क्वगच्छामि कथंशुद्धिर्भवेन्मम ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ ११ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा प्रभातेस मुपस्थिते ॥ शङ्खतीर्थंसमासाद्य कृत्वास्नानंततःपरम् ॥ १२ ॥ सशिखंवपनंपश्चात्कारयित्वात्वरान्वितः ॥ गतश्च तिष्ठतेयत्रब्रह्मघोषपरायणः ॥ १३ ॥ उपाध्यायस्सशिष्यश्चब्रह्मस्थानंसमाश्रितः ॥ सगत्वादूरतःस्थित्वा संनिविष्टोय थाद्विजः ॥ १४ ॥ श्मश्रुमूर्द्धजहीनस्तु यदामित्रैर्विलोकितः ॥ तदाहास्याद्धतोमूर्द्ध्नि हस्ताग्रैश्चमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ उपा ध्यायस्तुतंदृष्ट्वा दीनंबाष्पपरिप्लुतम् ॥ श्मश्रुमूर्द्धजसंत्यक्तंततःप्रोवाचसादरम् ॥ १६ ॥ किमद्यवत्सतादृक्त्वं हरौत्व ष्टातुदैन्यधृक् ॥ एहिमेसन्निधौब्रूहिपराभूतोसिकेनवा ॥ १७ ॥ परावसुरुवाच ॥ अयोग्योहंगुरोजातस्सेवायास्तवसांप्रतम् ॥ वेश्यायामन्दिरस्थेन ज्ञात्वानिजकमण्डलुम् ॥ १८ ॥ वेश्यायामद्यपात्रन्तु मद्यपूर्णंप्रगृह्यच ॥ तस्माद्देहिविभोमद्य प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ १९ ॥ धर्म्मग्रन्थेषुयत्प्रोक्तं तत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ अथतंवटवःप्रोचुर्वयस्यास्तस्ययेस्थि

और उपाध्याय (पढ़ानेवाले) ने आंसुओं से डूबे व दीन तथा दाढ़ी व बालों से रहित उसको देखकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ १६ ॥ कि हे वत्स ! जैसे कि इन्द्र में दीनता को धारे त्वष्टा थे वैसेही आज तुम क्योंहो मेरे समीप आवो व कहो कि किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है ॥ १७ ॥ परावसु बोले कि हे गुरूजी ! इस समय मैं तुम्हारी सेवा के अयोग्य होगया क्योंकि वेश्याके मन्दिर में टिके हुए मैंने अपने कमण्डलु को जानकर ॥ १८ ॥ मदिरा से भरे हुए वेश्याके मद्यपात्र को लेकर पीलिया इसलिये हे विभो ! विशेषकर शुद्धिके लिये मद्यके प्रायश्चित्तको दीजिये ॥ १९ ॥ जो कि धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में कहाहो उसको मैं

निरसन्देह करूंगा इस के अनन्तर गुरूके समीप जें उसके एक अवस्थावाले ब्रह्मचारी बैठे थे उन्हों ने कामदेव से वेश्याके समीप गमन के कारण हँसी करके उस परावसु से कहा कि जो यह राजाकी कन्या जनों में रत्नवती ऐसी कही गई है ॥ २० । २१ ॥ इस के कुचों को पकड़कर तुम शीघ्रही ओष्ठ पियो उससे तुम्हारी विशेषकर पवित्रताहोगी अन्यथा न होवैगी ॥ २२ ॥ परावसु बोले कि हे मित्रो ! मेरे विषम याने विपत्ति के स्थित होनेपर यह हास्य का समय है यदि शिशुताकी मित्रता से उपजाहुआ स्नेह मेरे ऊपर होवै ॥ २३ ॥ तो अन्य ब्राह्मणों को आनकर मेरे प्रायश्चित्त को कहिये इस के अनन्तर हँसी को छोड़कर उसके दुःखसे दुखित

ताः॥२०॥हास्यंकृत्वाप्रकामाच वेश्यायागुरुसन्निधौ ॥ एषायान्नृपतेःकन्या ख्यातारत्नवतीजने ॥ २१ ॥ अस्याःस्तनौ गृहीत्वात्वमधरंपिबसिद्रुतम् ॥ ततस्तेस्याद्विशुद्धिश्च नान्यथाप्रभविष्यति ॥ २२ ॥ परावसुरुवाच॥ वयस्यानर्म्म कालोयं विषमेममसंस्थिते ॥ ममोपरियदिस्नेहो बालमित्रत्वसम्भवः ॥ २३ ॥ तदानीयद्विजानन्यान्वदध्वंनिष्कृतिं मम ॥ अथतेनर्म्मचोत्सृज्य तद्दुःखेनचदुःखिताः ॥ २४ ॥ विश्वावसुंसमासाद्य तद्वृत्तान्तंपुरास्थितम् ॥ सोपितेषांस माकर्ण्य विषवत्कटुकंवचः ॥ २५ ॥ सभार्य्यःप्रययौतत्र यत्रपुत्रोव्यवस्थितः ॥ दुःखेनमहतायुक्तःस्खलमानःपदेपदे ॥ २६ ॥ वृद्धभावात्तथाशोकात्पुत्रकृत्यसमुद्भवात् ॥ ततस्तौप्रोचतुःपुत्रं बाष्पगद्गदयागिरा ॥ २७ ॥ दम्पतीचैवशोकार्तौ हापुत्रकिमिदंकृतम् ॥ सोपिसर्वंसमाचख्यौ ताभ्यांवृत्तान्तमात्मनः ॥ २८ ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि तस्मादात्मविशुद्धये॥ततोविश्वावसुर्विप्रान्स्मार्ताञ्छ्रुतिसमन्वितान् ॥ २९ ॥ तदर्थमानयामास वेदविद्याविचक्षणान् ॥ ततःपराव

होते हुये उन्हों ने ॥ २४ ॥ विश्वावसु के समीप जाकर पुरातन समय स्थित हुये वृत्तान्त को कहा वे विश्वावसु भी उनके विष समान कडुये वचन को सुनकर ॥ २५ ॥ स्त्री समेत वहां गये जहां कि पुत्र टिकाथा जो विश्वावसु कि पुत्र के कार्य से उपजे हुये शोचके कारण व वृद्धतासे बड़े दुःख संयुत व पग २ पै लरखराते थे तदनन्तर शोचसे विकल उन स्त्री पुरुषोंने आंसुवोंसे गद्गदी वाणी के द्वारापुत्र से कहा कि बड़े खेदकी बातहै हे पुत्र ! तूने यह क्या किया उसने भी उन दोनों पिता माताओं से अपने उस समस्त चरितको कहा ॥ २६।२७।२८ ॥ इसलिये अपनी पवित्रताकेलिये प्रायश्चित्त करूंगा तदनन्तर विश्वावसुने उसके लिये वेद विद्यामें चतुर

व वेद संयुत स्मृतियोंके जाननेवाले जनोंकोआना तदनन्तर हाथ जोड़ेहुये परावसु ने उनके आगे खड़े होकर ॥ २९ । ३० ॥ कहा कि रातमें न जानते हुये मैंने अपने कमण्डलुको जानकर वेश्याके पात्रको भलीभांति लेकर मदिरा पीलिया ॥ ३१ ॥ ऐसा जानकर यथायोग्य प्रायश्चित्तको दीजिये कि जिससे हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों की प्रसन्नतासे मेरी पवित्रता होवै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! उससे इस भांतिकहेहुये उन स्मृतिवादी द्विजोंने धर्मशास्त्रको भलीभांति देखकर तदनन्तर उससेकहा ॥ ३३ ॥ कि अतिआदर या अत्यन्त क्रोध या स्नेह अथवा डरसे जो अयोग्य प्रायश्चित्तको देता है तो उससमय उस पापको वह भोग करता है ॥ ३४ ॥ उसलिये हमलो-

सुस्तेषां पुरःस्थित्वाकृताञ्जलिः ॥ ३० ॥ प्रोवाचास्वादितंमद्यं मयारात्रावजानता ॥ वेश्याभाण्डंसमादाय ज्ञात्वानिजकमण्डलुम् ॥ ३१ ॥ एवंज्ञात्वायथार्हञ्च प्रायश्चित्तंप्रदीयताम् ॥ येनमेजायतेशुद्धिः प्रसादाद्वोद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥ एवमुक्तास्ततस्तेन विप्रास्तेस्मृतिवादिनः ॥ धर्म्मशास्त्रंसमालोक्य ततःप्रोचुश्चतंद्विजाः ॥ ३३ ॥ अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वायदिवाभयात् ॥ प्रायश्चित्तमनर्हन्तु तदातत्पापमश्नुते ॥ ३४ ॥ प्रायश्चित्तंप्रदास्यामस्तस्माद्युक्तंवयंतव ॥ यदिशक्तोषितत्कर्तुंत्वंकुरुष्वसमाहितः ॥ ३५ ॥ परावसुरुवाच ॥ करोमियोनचेद्वाक्यं तत्पृच्छामिकुतोद्विजाः ॥ नाहंकेनापिसंदृष्टो मद्यपानंसमाचरन् ॥ ३६ ॥ तस्माद्ब्रूतयथार्हंमेप्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ अपिप्राणहरंरौद्रं नोचेत्पापमवाप्स्यथ ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ बुद्धयमानोद्विजोयस्तुमद्यपानंसमाचरेत् ॥ तावन्मात्रंहिरण्यञ्च तप्तंपीत्वाविशुद्धयति ॥ ३८ ॥ अज्ञानतोयदापीतं मद्यंविप्रेणकर्हिचित् ॥ अग्नितुल्यंघृतंपीत्वा तावन्मात्रंविशुद्धयति ॥ ३९ ॥

ग तुमको योग्य प्रायश्चित्तको देवैंगे यदि उसको करने के लिये तुम समर्थ हो तो सावधान होते हुये करिये ॥ ३५ ॥ परावसु बोला कि हे ब्राह्मणो ! यदि तुम लोगों का वचन न करूं तो किसलिये पूंछता हूं क्योंकि मदिरा पान करते हुये मुझको किसीने भी न देखा था ॥ ३६ ॥ उसी कारण यदि प्राणोंको हरनेवाला व भयङ्कर भी होवै तथापि विशुद्धि के लिये मुझसे यथायोग्य प्रायश्चित्त को कहिये नहीं तो तुमलोग पाप पावोगे ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि जानता हुआ जो ब्राह्मण मदिरा पान करता है उतने ही प्रमाण भर तपाहुआ सुवर्ण पीकर विशेषकर पवित्र होता है ॥ ३८ ॥ व जबकभी ब्राह्मण ने अनजानसे मदिरा पीलिया हो तो उतने

ही प्रमाणभर अग्नि के समान घी पीकर विशेषता से शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तम ! विशुद्धिके लिये इसभांति तुमसे समस्त प्रायश्चित्त कहा यदि तुम करने के लिये समर्थ हो तो करिये ॥ ४० ॥ परावसु बोला कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने एक कुल्लाभर मदिरा पिया है तुमलोगों की आज्ञा से अपने शरीर की विशुद्धि के लिये आजही मैं उतने ही प्रमाण भर अग्नि के समान किये हुये घृतको निश्चयकर पीऊंगा ब्राह्मणों व पुत्र के वज्र गिरने के समान उस वचनको सुनकर विश्वावसु ने बहुत आंसुवों को छोड़कर दुःखितहो आंसुवों से गद्गदी वाणी के द्वारा उन ब्राह्मणों से कहा ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ कि इस पुत्रकी विशेषकर शुद्धिके लिये मैं

एवन्तेसर्वमाख्यातं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ यदिशक्तोषिचेत्कर्तुंत्वंकुरुष्वद्विजोत्तम ॥ ४० ॥ परावसुरुवाच ॥ गण्डूषमेकं मद्यस्य मयापीतंद्विजोत्तमाः ॥ तावन्मात्रंपिबाम्येव घृतंवह्निसमंकृतम् ॥ ४१ ॥ युष्मदादेशतोद्यैव स्वशरीरविशुद्धये ॥ विश्वावसुश्चतच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमंवचः ॥ ४२ ॥ विप्राणांचाथपुत्रस्य तान्प्रोवाचसुदुःखितः ॥ कृत्वाश्रुमोक्षणंभूरि बाष्पगद्गदयागिरा ॥ ४३ ॥ सर्वस्वमपिदास्यामि पुत्रस्यास्यविशुद्धये ॥ प्रायश्चित्तंसमाकर्तुं नदास्यामिकथञ्चन ॥ ४४ ॥ अश्राद्धीयोविपाङ्क्तेयःसपुत्रोवाभवाम्यहम् ॥ स्थानंवासंत्यजाम्येतत्पुत्रनैवंसमाचर ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य पितुर्विघ्नकरंपरम् ॥ प्रायश्चित्तस्यसस्नेहं पुत्रोवचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ त्यजतातममस्नेहं माविघ्नंमेसमाचर ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि निश्चयोयंमयाकृतः ॥ ४७ ॥ मातोवाच ॥ यदिपुत्रत्वयाकार्य्यं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ तदहंपतिनासार्द्धं प्रवेक्ष्यामिपुरोनलम् ॥ ४८ ॥ त्वांद्रष्टुंनैवशक्नोमि पिबन्तमग्निवद् घृतम् ॥ पश्चात्प्राणपरित्यक्तं सत्येनात्मानमालभे ॥ ४९ ॥

सर्वस्व भी दूंगा परन्तु प्रायश्चित्त करने को किसी प्रकार न दूंगा ॥ ४४ ॥ चाहे पुत्र समेत मैं श्राद्धके अयोग्य व पंक्ति से अलग होजाऊं या हे पुत्र ! इस स्थान को भलीभांति छोड़दूं परन्तु ऐसा न करो ॥ ४५ ॥ उस पिता के प्रायश्चित्तके अतिविघ्नकारक व स्नेह समेत उस वचनको सुनकर पुत्र वचन बोला ॥ ४६ ॥ कि हे पिता जी ! मेरे स्नेह को छोड़दो व मेरा विघ्न मत करो मैंने यह निश्चय किया है कि प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ४७ ॥ माता बोली कि हे पुत्र ! यदि विशुद्धिके लिये तुमसे प्रायश्चित्त करने योग्य है तो पति समेत मैं पहले अग्निमें पैठूंगी ॥ ४८ ॥ क्योंकि अग्नि के समान घी को पीते हुये व पीछे प्राणों से रहित तुमको देखने के लिये मैं

महीं समर्थ हूं यह सत्य से अपनी सौगन्द करती हूं॥ ४९ ॥ पिता बोला कि हे पुत्र ! तुम्हारी इस माताने योग्य व हित कहा है मेरी भी यही सलाह है निस्सन्देह
इस को करूंगा ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में उसके जे शुद्धिदायक स्थित थे उस वृत्तान्त को सुनकर दुःखसंयुत होते हुये वे सब भलीभांति आये ॥
५१ ॥ व मरण में निश्चय किये और पुत्रके शोचसे अति तचेहुये स्त्री समेत विभावसु से अनेक प्रकार के वचनों से बोले ॥ ५२ ॥ और प्रायश्चित्त से निवृत्तिके
लिये पुत्रको समझाया व जब साक्षात् प्राण के त्यागमें आदर किये हुये उन पिता पुत्रोंको निवृत्त करने के लिये न समर्थ हुये तदनन्तर वास्तुपदको गये जहां कि

पितोवाच ॥ युक्तंपुत्रानयाप्रोक्तं मात्रातवहितंतथा ॥ ममापिसम्मतंह्येतत्करिष्यामिनसंशयम् ॥ ५० ॥ सूत
उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वे शुद्धिदास्तस्ययेस्थिताः ॥ तच्छ्रुत्वातेसमायाता वृत्तान्तंदुःखसंयुताः ॥ ५१ ॥ प्रोचुश्च
विविधैर्वाक्यैस्सपत्नीकंविभावसुम् ॥ पुत्रशोकेनसंतप्तं मरणेकृतनिश्चयम् ॥५२॥ पुत्रंप्रबोधयामासुः प्रायश्चित्तनिवृ
त्तये ॥ यदानशक्नुवन्तिस्म निवर्तयितुमञ्जसा ॥ ५३ ॥ तावुभौचपितापुत्रौ प्राणत्यागेकृतादरौ ॥ ततोवास्तुपदंजग्मुः
सर्वज्ञोयत्रतिष्ठति ॥ ५४ ॥ भर्तृयज्ञोमहाभागस्सर्वसन्देहहारकः ॥ तस्यसर्वंसमाचख्युः परावसुसमुद्भवम् ॥ ५५ ॥
वृत्तान्तंमद्यपानोत्थं यन्मित्रैस्तस्यकीर्तितम् ॥ प्रायश्चित्तंतुहास्येन यच्चस्मार्तैःप्रकीर्तितम् ॥ ५६ ॥ विश्वावसोश्चस
ङ्कल्पं वह्निसाधनसम्भवम् ॥ सपत्नीकस्यविप्राणां यच्चदुःखमुपस्थितम् ॥ ५७ ॥ निवेद्यतंतथाप्रोचुर्भूयोपिविनयान्वि
ताः ॥ अतीतंवर्तमानञ्च भविष्यंवापियद्भवेत् ॥ ५८ ॥ नतस्त्यविदितंकिञ्चित्सर्वंजानीमहेवयम् ॥ एतच्चनगरंसर्वं वि

समस्त सन्देह के हरनेवाले व बड़े भाग्यवाले सर्वज्ञ भर्तृयज्ञ टिके थे उनसे परावसुसे उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको भलीभांति कहा ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ जो वृत्तान्त
कि मदिरा के पीने से उठाथा और उनके मित्रों ने हास्य से जो प्रायश्चित्त कहा था व स्मृति शास्त्रों के जाननेवाले जनोंने जो कहा था उसको कहा ॥ ५६ ॥ और
अग्निसाधन से उपजे हुये स्त्री समेत विश्वावसु के सङ्कल्पको और ब्राह्मणोंको जो क्लेश उपस्थित हुआ उसको ॥५७॥ उन भर्तृयज्ञ से निवेदन करके फिरभी नम्रता
संयुत होतेहुये बोले कि भूत वर्तमान व भविष्यत्भी जो होजावै है ॥५८॥ वह कुछ तुमको अप्रकट नहीं हैं यह सब हमलोग जानते हैं और इससमय विश्वावसु के

लिये यह समस्त पुर ॥ ५६ ॥ परम सन्देहको प्राप्त है उसी कारण हमलोग तुम्हारे समीप प्राप्तहुये हैं इस लिये हे महाभाग ! यदि और ही प्रायश्चित्त होवै तो इस ब्राह्मणके मदिरा पीने से विशुद्धि के लिये उसको कहिये क्योंकि वेद में उपजा हुआ कुछ तुमको अप्रकट नहीं है ॥ ६० । ६१ ॥ भर्तृयज्ञ उच्चप्रकार से बिहँसकर तदनन्तर वचन बोले कि इस ब्राह्मण की विशुद्धिके लिये महात्माओंसे यह कहना चाहिये ॥ ६२ ॥ कि कैसे है व किसप्रकार नहीं है और किसलिये तुमलोग उनसे कहने योग्य हो यह बड़ाभारी विस्मय समस्त ब्राह्मणोंको हुआहै ॥६३॥ भर्तृयज्ञ बोले कि व्रत का छिद्र व तपस्याका छिद्र व यज्ञकार्य में जो छिद्र(दोष) हुआहो जिसको

इवावसुकृतेऽधुना ॥ ५९ ॥ संशयंपरमंप्राप्तं तेनप्राप्तास्तवान्तिकम् ॥ तस्माद्ब्रूहिमहाभागा यद्यस्त्यपरमेवहि ॥६०॥ प्रायश्चित्तंद्विजस्यास्य मद्यपानविशुद्धये ॥ नतुह्यविदितंकिञ्चित्तववेदसमुद्भवम् ॥ ६१ ॥ भर्तृयज्ञोविहस्योच्चैस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणस्यास्यशुद्ध्यर्थं वाच्यमेतन्महात्मभिः ॥ ६२ ॥ कथमस्तिकथंनास्ति कस्मात्तंवक्तुमर्हथ ॥ विस्मयोयंमहाञ्जातस्सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ६३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ व्रतच्छिद्रंतपश्छिद्रं यच्छिद्रंयज्ञकर्म्मणि ॥ सर्वंभवतिनिश्छिद्रं यस्यचेच्छन्तिब्राह्मणाः ॥६४॥अच्छिद्रमपियद्वाक्यं वदन्तिक्षितिदेवताः ॥ विशेषान्नागरोद्भूतास्तत्तथैवनचान्यथा ॥ ६५ ॥ तथाचब्रह्मशालायां संस्थितैर्यदुदाहृतम् ॥ नान्यथातत्परिज्ञेयं केनापिस्मृतिवादिना ॥६६॥ सएषहास्यभावेन प्रोक्तोमित्रैःपरावसुः ॥ रत्नवत्याःस्तनौगृह्य यद्यास्वादयसेधरम् ॥ ६७ ॥ तद्भविष्यतितेशुद्धिर्मद्यपानसमुद्भवा ॥ तदुपायोमयाप्रोक्तो विप्रस्यास्यसुखावहः ॥ ६८ ॥ पराशरमतेनैवकरोतियदिशुद्ध्यति ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥

ब्राह्मण चाहैं उसका वह सब छिद्ररहित होताहै॥६४॥ पृथ्वीके देवता याने ब्राह्मणलोग व विशेष नागरों से उत्पन्न द्विज बिन छिद्रवाले भी जिस वचनको कहते हैं वह वैसाही होताहै अन्यथा नहीं होता ॥ ६५ ॥ वैसेही ब्राह्मणोंकी सभा में भलीभांति टिकेहुये नागर द्विजों ने जो कहा है वह किसी स्मृतिवादी से अन्यथा न जाननेके योग्य है ॥ ६६ ॥ सो इस परावसु से हँसी के स्वभाव से मित्रों ने कहा कि यदि रत्नवती के कुचों को पकड़कर ओंठ का आस्वादन करो याने पियो ॥ ६७ ॥ तो मदिरा पीने से उपजीहुई तुम्हारी शुद्धि होगी यदि पराशर महर्षि के मतसे शुद्धि करै तो मैंने इस ब्राह्मण को सुखदायक वही उपाय कहा ब्राह्मण बोले कि यदि राजा यह वचन

सुनैगा तो ईर्ष्या में परायण होकर ॥ ६८ । ६९ ॥ समस्त ब्राह्मणों का वध करैगा व अन्यथा होवैगा इस लिये माता, पिता समेत यह परावसु ब्राह्मण अभिलाष को करैं हम लोग घर जावैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि वह राजा नीतिमान् व विशेषकर ज्ञाता और समस्त धर्मों में तत्पर है ॥ ७० । ७१ ॥ और देवों व द्विजों का भक्त तथा समस्त शास्त्रों में चतुर है इसलिये मुझ समेत सब नागर ब्राह्मण उसके घर को चलैं ॥ ७२ ॥ और मध्यवर्ती नागर को अगाड़ीकर तदनन्तर उसके मुखद्वारा परावसु के मदिरा पीने से उपजे हुये वृत्तान्त को कहैं व हास्य में आश्रित मित्रों ने जो कहा उसको व पराशर से उठी हुई स्मृति की श्रेष्ठ वाक्य व उसके वचन को

यद्येतच्छृणुतेराजा वाक्यमीर्ष्यापरायणः ॥ ६९ ॥ तत्सर्वेषांवधंकुर्य्याद्विप्राणामन्यथाभवेत् ॥ तस्मात्करोतुचाभीष्ट
मेषविप्रःपरावसुः ॥ ७० ॥ मातापितृसमोपेतो वयंयास्यामहेगृहम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सराजानीतिमान्विज्ञः सर्वध
र्म्मपरायणः ॥ ७१ ॥ भक्तोदेवद्विजानांच सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥ तस्मान्मयासमंसर्वे नागरायान्तुतद्गृहम् ॥ ७२ ॥
मध्यगंपुरतःकृत्वा तद्वक्रेणततःपरम् ॥ कथयन्तुचवृत्तान्तं मद्यपानसमुद्भवम् ॥ ७३ ॥ परावसोश्चयत्प्रोक्तं वयस्यै
र्हास्यमाश्रितैः ॥ पराशरसमुत्थञ्च तद्वाक्यंतत्स्मृतेःपरम् ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वायदिभूपाल ईर्ष्यालोभसमन्वितः ॥ भवि
ष्यतिततोहन्तं साधयिष्यामिसत्पथम् ॥ ७५ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेनागरास्सर्वे सन्तोषंपरमङ्गताः ॥ साधुवादैस्स
मभ्यर्च्य भर्तृयज्ञंपृथग्विधैः ॥ ७६ ॥ तेनैवसहितास्तूर्णंमध्येकृत्वाचमध्यगम्॥ गर्ततीर्थसमुद्भूतंवेदवेदाङ्गपारगम्॥
७७ ॥ स्मृतिज्ञंलक्षणज्ञन्तमाहिताग्निंयशस्विनम् ॥ यष्टारंबहुयज्ञानां भर्तृयज्ञमतोस्थितम् ॥ ७८ ॥ आनर्तेनापिभूपे

कहैं ॥ ७३ । ७४ ॥ उसको सुनकर यदि राजा ईर्ष्या, लोभ से संयुत होवै तो मैं उसको उत्तम मार्ग पै साधन कराऊंगा ॥ ७५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हुये वे समस्त नागर द्विज अनेक भांति के प्रशंसितवादों से भर्तृयज्ञ को भलीभांति पूजकर ॥ ७६ ॥ व उसी समेत वे शीघ्रही मध्यवर्ती को मध्य में करके जो कि गर्ततीर्थ में उपजा हुआ वेदों व वेदाङ्गों के पारगामी था ॥७७॥ व स्मृति के जाननेवाले व लक्षणों के ज्ञाता व अग्निसञ्चयकारी और यशस्वी व बहुत यज्ञों के यजन करनेवाले व भर्तृयज्ञ के मत में टिकेहुये उसको ॥ ७८ ॥ जो कि पुरातन समय स्वर्ग से भ्रष्ट (गिरे) हुये व कर्णोत्पला के पैदाकरनेवाले आनर्त

भूप से भी ब्राह्मणों के गौरव के कारण चमत्कार नगरवाले इस स्थान में बहुत समय पहले उसी कारण न्यास किया गया था जिससे समस्त ब्राह्मणों के कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७९ । ८० ॥ व वैसेही चमत्कार नगर के अन्य कार्य सिद्ध होते हैं उन हरिभद्र नामक को भर्तृयज्ञ से संयुत करके व माता पिता समेत उन परावसु को भलीभांति लेकर सब नागर राजद्वार के समीप आये ॥ ८१ । ८२ ॥ इस के अनन्तर द्वार पै बैठे हुये पुरुषने शीघ्रही जाकर भर्तृयज्ञ व हरिभद्र से संयुत उन ब्राह्मणों को भूपति से निवेदन किया ॥ ८३ ॥ उस समय राजद्वार में भलीभांति आयेहुये उन ब्राह्मणों को सुनकर पुरोहित से संयुत आनर्त नृपने भी सामने प्रयाण

न स्वर्गभ्रष्टेनवैपुरा ॥ कर्णोत्पलाजनित्रेण यश्चपूर्वंचिरन्ततः ॥ ७९ ॥ चमत्कारपुरेन्यस्तःस्थानेस्मिन्विप्रगौरवात् ॥ येनसिद्ध्यन्तिकार्य्याणि सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ८० ॥ तथाचैवतुचान्यानिचमत्कारपुरस्यच ॥ हरिभद्राभिधानन्तं भर्तृयज्ञसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ कृत्वातन्नागरास्सर्वे राजद्वारमुपागताः ॥ परावसुंसमादाय मातापितृसमन्वितम् ॥ ८२ ॥ अथद्वाःस्थोद्रुतंगत्वा भूपतेस्तान्न्यवेदयत् ॥ ब्राह्मणान्भर्तृयज्ञेन हरिभद्रेणसंयुतान् ॥ ८३ ॥ आनर्तोपिचताञ्छ्रुत्वा राजद्वारसमागतान् ॥ पुरोधसासमायुक्तस्संमुखंप्रययौतदा ॥ ८४ ॥ दत्त्वार्घंमधुपर्कञ्च विष्टरञ्चान्तथानृपः ॥ प्रथमं भर्तृयज्ञाय हरिभद्रायवैततः ॥ ८५ ॥ चतुर्णान्तुसहस्राणांतथान्येषांद्विजन्मनाम् ॥ अथर्वऋग्यजुःसाम्नां प्रगृह्याशीर्वचःपुरम् ॥ ८६ ॥ सभामण्डपमासाद्य सर्वान्समुपवेशयत् ॥ आसनेषुचहैमेषु यथावदनुपूर्वशः ॥ ८७ ॥ तथातेषूपविष्टेषुसर्वेषुपृथिवीपतिः ॥ उपविश्यधरापृष्ठे कृताञ्जलिरभाषत ॥ ८८ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यन्मेगृहमुपागतः ॥

किया ॥ ८४ ॥ व नृपतिने पहले भर्तृयज्ञ के लिये तदनन्तर हरिभद्र के निमित्त अर्घ, मधुपर्क व विष्टर (आसन) और वाणी को देकर ॥ ८५ ॥ व वैसेही अन्य चार हज़ार ब्राह्मणों को देकर अथर्व, ऋक्, यजुर्वेद व सामवेदों के उत्तम आशीर्वादवाले वचन को पहिले ग्रहणकर॥ ८६ ॥ सभा के मण्डप में प्राप्त होकर सुवर्णमय आसनों के ऊपर सबों को पहले व पश्चात् यथायोग्य बिठलाया ॥ ८७ ॥ वैसेही जब उन आसनों में वे सब बैठगये तब हाथों को जोड़ के भूपतिने भूपृष्ठमें समीप

बैठकर कहा ॥ ८८ ॥ कि मैं धन्य व अनुग्रह कियागयाहूं क्योंकि भर्तृयज्ञ संयुक्त समस्त यह नागर जन मेरे घर आया ॥ ८९ ॥ इसलिये मनुष्य मुझको वह आज्ञा देवैं कि तुम लोगों के जिस कार्य को मैं करूं इस समय घर आये हुये सब को मैं न देनेके योग्य भी पदार्थको देऊं ॥ ९० ॥ व न जाने के योग्य भी स्थान को जाऊंगा व कार्यही को करूंगा उस को सुनकर भलीभांति उठकर शीघ्रतासंयुत हरिभद्रने ॥ ९१ ॥ उसके लिये आद्य जनों से व तदनन्तर बह्वृचों व अध्वर्यु और छन्दोग्यों से पूंछा व उस समय उनसे आज्ञा को पाया ॥ ९२ ॥ व कहा कि आद्य पुरुष प्राणरुद्रों को व बह्वृच जीवसूक्तको कहैं ऐसेही जो पुरात्मक पृथिव्यादि सवनहै ॥ ९३ ॥

सर्वोयन्नागरोलोको भर्तृयज्ञसमन्वितः ॥ ८९ ॥ तदादिशतुमांलोको यत्कृत्यंप्रकरोमिवः ॥ अदेयमपियच्छामि गृहायातस्यसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ अगम्यमपियास्यामि करिष्येकृत्यमेवच ॥ तच्छ्रुत्वाहरिभद्रस्तुसमुत्थायत्वरान्वितः॥ ९१ ॥ पप्रच्छाद्यांस्तदर्थंच बह्वृचांस्तदनन्तरम्॥ अध्वर्य्युंचैवछन्दोग्याननुज्ञातश्चतैस्तदा॥ ९२॥ प्राणरुद्रान्वदन्त्वाद्या जीवसूक्तंचबह्वृचः॥ एवंचैवपृथिव्यादिसवनंयत्पुरात्मकम्॥ ९३ ॥ वदन्त्वध्वर्यवस्सर्वे छान्दोग्याश्चपृथक्पृथक्॥ मधुच्युतेनसंयुक्तं प्रपठन्तुचशुद्धये॥ ९४ ॥ भर्तृयज्ञमतेनैवं तेनप्रोक्तंद्विजोत्तमाः ॥ पपठुश्चैवतत्सर्वं यत्प्रोक्तन्तेनधीमता॥ ९५ ॥ ततःपाठावसानेतु मध्यगःप्राहसादरम् ॥ परावसुसमुद्भूतं वृत्तान्तंतस्यभूपतेः ॥ ९६ ॥ यथातेनासवःपीतो यथामित्रैःप्रजल्पितम् ॥ प्रायश्चित्तंसमादिष्टं यथास्मार्तैर्घृतोद्भवम्॥ ९७ ॥ भर्तृयज्ञेनचानीता यथासर्वेद्विजातयः ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोहृष्टः कृताञ्जलिपुटोब्रवीत्॥ ९८ ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं यस्यमेनागरैर्द्विजैः ॥ विप्रत्रयस्य

उसको सब अध्वर्यु (यजुर्वेदी) कहैं और छान्दोग्य अलग २ शुद्धि के लिये मधुच्युत से संयुक्त मन्त्रको पढ़ैं ॥ ९४ ॥ इस भांति भर्तृयज्ञ के मतसे उस हरिभद्र ने कहा और द्विजोत्तमों ने वह सब पढ़ा जो कि उस बुद्धिमान्ने कहा था ॥ ९५ ॥ तदनन्तर पढ़ने के अन्तमें मध्यवर्ती द्विजने परावसु से उपजे हुये वृत्तान्तको उस भूपति से आदर समेत कहा ॥ ९६ ॥ जिस प्रकार कि उसने मदिरा पिया व जैसा मित्रोंने कहा था व जिसभांति स्मृतियों के जाननेवाले विद्वानों ने घी से उपजे हुये प्रायश्चित्त की आज्ञा दिया था ॥ ९७ ॥ व जिस प्रकार भर्तृयज्ञ से समस्त ब्राह्मण लायेगये उसको सुनकर हाथ जोड़े व प्रसन्न होतेहुये राजाने कहा ॥ ९८ ॥ कि मैं

धन्यहूं व मैं कृतकृत्यहूं कि जिस मेरे ऊपर नागर ब्राह्मणों ने तीन द्विजों की रक्षा के लिये यह बड़ी भारी प्रसन्नता किया ॥ ९९ ॥ व मेरी यह कन्या धन्य है जो कि मरणमें निश्चय किये हुये इन तीनों ब्राह्मणोंकी आपही रक्षा करैगी ॥ १०० ॥ वैसेही हे ब्राह्मणो ! सभाके बीचमें बैठेहुये इस राजाने उसी क्षण उस कन्याको मँगवाया व ब्राह्मणों के लिये निवेदन किया ॥ १ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों के वचन से मैंने इस कन्या को आनाहै और भर्तृयज्ञ ने जो कहा है उसको वह ब्राह्मण करै ॥ २ ॥ तदनन्तर भर्तृयज्ञ ने उस परावसु ब्राह्मण को वहां भलीभांति आनकर उस के उपरान्त कन्या के अगाड़ी वचन कहा ॥ ३ ॥ कि ओंठ का आस्वादन करते हुये

रक्षार्थं प्रसादोयंमहान्कृतः ॥ ९९ ॥ धन्यामेकन्यकाचेयं रक्षयिष्यतिचस्वयम् ॥ ब्राह्मणात्रितयन्त्वेतन्मरणेकृतनिश्चयम् ॥ १०० ॥ तथासौचानयामास तांकन्यांतत्क्षणाद्द्विजाः ॥ उपविष्टःसभामध्ये ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १ ॥ एषाकन्यामयानीता युष्मद्वाक्याद्द्विजोत्तमाः ॥ भर्तृयज्ञेनयत्प्रोक्तं तत्करोतुचसद्द्विजः ॥ २ ॥ ततस्तत्रसमानीय ब्राह्मणन्तंपरावसुम् ॥ भर्तृयज्ञस्ततोवाक्यं कन्यायाःपुरतोब्रवीत् ॥ ३ ॥ इमांत्वंकन्यकांचित्ते जननीयदिमन्यसे ॥ अधरास्वादनंकुर्वंस्ततश्शुद्धिमवाप्स्यसि ॥ ४ ॥ अनुरागपरोभूत्वा यद्यास्वादनतत्परः ॥ भविष्यतिततोरक्तं तववक्त्रेपरावसो ॥ ५ ॥ शुद्धस्यत्वथदुग्धंच भविष्यतिनसंशयः ॥ त्वत्पीताभ्यांस्तनाभ्यांचस्पर्शात्क्षीरंभवेद्यदि॥६॥ तत्तेशुद्धिःपरिज्ञेयारक्तंवानभविष्यति ॥एवमुक्त्वाथतांकन्यां ततःप्रोवाचसद्द्विजः ॥७ ॥ एनंत्वंपुत्रवत्पश्य पुत्रिब्राह्मणसत्तमम् ॥ येन शुद्धिमवाप्नोति त्वदोष्ठास्वादनेनच ॥ ८ ॥ स्पर्शिताभ्यांस्तनाभ्याञ्च प्रायश्चित्तंयतःस्मृतम् ॥ एतदस्यद्विजेन्द्रस्य वै

तुम यदि इस कन्या को चित्तमें माता मानोगे तो उससे शुद्धि को पावोगे ॥ ४ ॥ व यदि स्नेह में परायण होकर आस्वादन में तत्पर होगे तो हे परावसो ! उसी से तुम्हारे मुख में रुधिर होगा ॥ ५ ॥ अथवा शुद्धहुये तुम्हारे मुखमें दूध होगा इस में सन्देह नहीं है और यदि तुम से पियेहुये स्तनों से स्पर्श के कारण दूध होवै ॥ ६ ॥ तो तुम्हारी शुद्धि जानने योग्यहै अथवा रक्तहोवै तो शुद्धि न होगी ऐसा कहकर व तदनन्तर उस ब्राह्मण ने उस कन्या से कहा ॥ ७ ॥ कि हे पुत्रि ! इस द्विजोत्तम को तुम पुत्रके समान देखो कि जिससे तुम्हारे ओंठ के आस्वादन से पवित्रता को पावै ॥ ८ ॥ क्योंकि हास्य में भलीभांति प्राप्त इस द्विजेन्द्रके मित्रों ने छुयेहुये

स्तनों के द्वारा इस प्रायश्चित्त को कहा है ॥९॥ जिससे कि पवित्रता को प्राप्त होवै नहीं तो मृत्युको पावैगा सूतजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वह कन्या उन लज्जा समेत परावसु से बोली ॥ १० ॥ कि हे वत्स ! आइये व माता के भाव को भलीभांति आधान करके विशेषकर शुद्धि के लिये तुम प्रायश्चित्त करो मैंने तुमको पुत्र कल्पना कियाहै ॥ ११ ॥ उसने भी माताके तुल्य मानकर उसके समीप आगमन किया व समस्त मनुष्यों के देखते हुये उसके स्तनों का स्पर्श किया ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! छुयेहुये उन कुचों से उसी क्षण कुन्द, चन्द्रमा व पाला के समान दूधकी धारैं निकलीं ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर जबतक परावसु ब्राह्मण उस

यस्यैहास्यसङ्गतैः ॥ ९ ॥ येनशुद्धिमवाप्नोति नोचेन्मृत्युमवाप्स्यति ॥ सूतउवाच ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय सव्रीडन्तमुवा
चह ॥ १० ॥ एहिवत्सकुरुष्वत्वं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ मातृभावंसमाधाय मयात्वंकल्पितःसुतः ॥ ११ ॥ सोपितांमा
तृवन्मत्वा तस्यास्सान्निध्यमागतः ॥ स्पृष्टवांश्चस्तनौतस्याः सर्वलोकस्यपश्यतः ॥ १२ ॥ स्पृष्टाभ्यांचस्तनाभ्यां
चतत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ क्षीरधारेविनिष्क्रान्ते कुन्देन्दुहिमसन्निभे ॥ १३ ॥ अथोष्ठास्वादनंयावत्तस्यास्संकुरुतेद्वि
जः ॥ तावत्क्षीरंविनिष्क्रान्तं तादृग्रूपंतदाननात् ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वैस्तालंदत्तंद्विजातिभिः ॥ जातोयंब्राह्मणः
शुद्धो वदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ सोपिप्रदक्षिणीकृत्य त्वंमातःपुत्रवत्सला ॥ तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्य्यमानर्तोविस्मयान्वि
तः ॥ १६ ॥ शशंसभर्तृयज्ञंतं प्रायश्चित्तप्रदायकम् ॥ अहोतीवसुभाग्योहं यस्यमेगृहमागताः ॥ १७ ॥ ईदृशाब्राह्मणा
स्सर्वेचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ तथाचैवेदृशीकन्या ममाज्ञावशवर्तिनी ॥ १८ ॥ महासतीमहाभागा सत्यशौचसमन्वि

के ओंठ का आस्वादन भलीभांति करै तबतक उसके मुख से वैसेही रूपवाला याने कुन्देन्दुहिम समान दूध निकला ॥ १४ ॥ इसी अवसर में बारबार कहते हुये उन समस्त ब्राह्मणों ने ताल दिया याने ताली बजाया कि यह ब्राह्मण शुद्ध होगया ॥ १५ ॥ व उसने भी प्रदक्षिणा करके कहा कि हे माता ! तुम पुत्रवत्सला हो अर्थात् तुमको पुत्र प्रियहै उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर विस्मयसंयुत आनर्त नृपति ने ॥ १६ ॥ प्रायश्चित्त के देनेवाले उस भर्तृयज्ञकी प्रशंसा किया कि यह आश्चर्य है व मैं अत्यन्तही भाग्यवान् हूं कि जिस मेरे घर को चमत्कार नगर में उपजे हुये ऐसे समस्त ब्राह्मण आये ॥ १७ ॥ और वैसेही मेरे आज्ञावशमें वर्त्तमान होनेवाली

ऐसी कन्या है ॥ १८ ॥ जो कि महासती व बड़ी भाग्यवती और सत्य व पवित्रतासे संयुतहै वैसेही अन्य परावसु ब्राह्मण सामान्य नहीं है ॥ १९ ॥ जो कि ऐसी कन्या
को प्राप्त होकर विकार में न स्थित हुआ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों को बिदाकर नृपोत्तम ॥ २० ॥ उस कन्या को भलीभांति लेकर तदनन्तर रनिवास
को चलागया और तदनन्तर उन समस्त नागर ब्राह्मणों ने मर्यादा किया ॥ २१ ॥ कि आज से लगाकर जो वेश्या इस स्थान में निवास को पावैगी उसको किसी प्र-
कार घर में मदिरा, मांस को न धरना चाहिये ॥ २२ ॥ क्योंकि यहां वे दुष्टा वेश्यायें नागर द्विजों को दूषित करती हैं अथवा व्यवस्था (मर्यादा) को नाँघकर जो

ता ॥ तथान्योनैवसामान्यो ब्राह्मणश्चपरावसुः ॥ १९ ॥ यश्चेदृशींसमासाद्य कन्यांनोविकृतिंस्थितः ॥ एवमुक्त्वाविसृ
ज्याथ तान्विप्रान्पार्थिवोत्तमः ॥ २० ॥ तांकन्याञ्चसमादाय ततश्चान्तःपुरंययौ ॥ अथतेनागरास्सर्वे मर्य्यादांचक्रिरे
ततः ॥ २१ ॥ अद्यप्रभृतियावेश्या स्थानेस्मिन्वासमेष्यति ॥ तथानैवगृहेधार्य्यं सुरामांसंकथञ्चन ॥ २२ ॥ दूषयन्ति
सदादुष्टा नागराणांसुतानिह ॥ अथव्यवस्थामुत्क्रम्य याहितद्धारयिष्यति ॥ २३ ॥ स्थानादस्माच्चनिर्वास्या साभवे
त्पापभागिनी ॥ ऊर्ध्ववेगंमध्यगेन दत्तंतालत्रयन्तदा ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटके
श्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरावसुप्रायश्चित्तन्नामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ * ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुदशार्णाधिपतिस्तदा ॥ रत्नवत्याविवाहार्थं तत्रस्थानेसमागतः ॥ १ ॥ सश्रुत्वातस्य
वृत्तान्तं रत्नवत्याःसमुद्भवम् ॥ विरक्तिंपरमांकृत्वा प्रस्थितःस्वपुरम्प्रति ॥ २ ॥ तंश्रुत्वाप्रस्थितंभूपमानर्तस्स्वपुरम्प्रति ॥ दृ

वेश्या उस मदिरा, मांस को धारण करैगी ॥ २३ ॥ वह पापभागिनी इस स्थानसे निकालने योग्य होगी उस समय मध्यवर्ती ब्राह्मण ने ऊपर के वेगसे तीन तालों
को दिया ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपरावसुप्रायश्चित्तंनामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥
दो० । रत्नवती अरु ब्राह्मणी जैसी विधि तप कीन । इकसौ अट्ठासिवें महँ सोई चरित नवीन ॥ सूतजी बोले कि इसी समय में तब रत्नवती के ब्याह के लिये
दशार्णदेशका स्वामी उस स्थान में भलीभांति आया ॥ १ ॥ उसने रत्नवती से उपजे हुये उसके वृत्तान्त को सुनकर बड़े वैराग्य को करके अपने नगर को प्रस्थान

किया ॥ २ ॥ उस समय आनर्त नृपति ने अपने नगरके सामने प्रस्थान कियेहुये उस भूपति को सुनकर उसके लौटाने के लिये पीछे से प्रयाण किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उसको पाकर कहा कि हे नृप ! मेरी कन्या से उपजे हुये व्याह को न करके तुमने किस लिये प्रस्थान किया ॥ ४ ॥ दशार्ण बोला कि तुम्हारे जीतेहुये यह तुम्हारी कन्या दूषित हुई कि जिसके ओंठ को अन्य पुरुष ने पिया व उत्तम कुचों का मर्दन किया ॥ ५ ॥ इस कारण तुम्हारी यह कन्या उढ़री संज्ञक होगई यह उढ़री किसी प्रकार जिस किसी पुत्र को पैदा करै है ॥ ६ ॥ वह दश पहले व दश पीछेवाले पुरुषों और इक्कीसवें अपना को भी गिरावै याने नरक को पठावैगा ॥ ७ ॥

छतःप्रययौतस्य व्यावर्तनकृतेतदा ॥ ३ ॥ अथाब्रवीच्चतंप्राप्यकस्मात्त्वंप्रस्थितोन्नृप ॥ पाणिग्रहमकृत्वातु ममकन्यासमुद्भवम् ॥ ४ ॥ दशार्णउवाच ॥ दूषितेयंतवसुताकन्यकात्वयिजीवति ॥ पीतोयस्याधरोन्येन मर्द्दितौचस्तनौशुभौ ॥ ५ ॥ पुनर्भूरितिसंज्ञासा सञ्जाताद्दुहितातव ॥ पुनर्भूर्जनयेत्पुत्रमियंकञ्चित्कथञ्चन ॥ ६ ॥ सपातयत्वसंदिग्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ एकविंशत्तमंचैव तथैवात्मानमेवच ॥ ७ ॥ नवरिष्याम्यहंतत्ते सुतामेतान्नराधिप ॥ सदाक्षिण्यमिदंप्रोच्य दशार्णाधिपतिस्तदा ॥ ८ ॥ छन्द्यमानोपिविविधैर्हस्त्यश्वरथपूर्वकैः ॥ अवज्ञायमहीपालं प्रस्थितःस्वपुरम्प्रति ॥ ९ ॥ आनर्तोपिगृहंप्राप्य मृगावत्याःसमाकुलः ॥ तद्वृत्तंकथयामास यदुक्तंतेनभूभुजा ॥ १० ॥ स्वभार्य्यायाःसुतायाश्च मन्त्रिणोदुःखसंयुताः ॥ तेप्रोचुस्सन्तिभूपालास्संख्याहीनामहीतले ॥ ११ ॥ रूपाढ्यायौवनोपेता हस्त्यश्वरथसंयुताः ॥ तेषामेकतमस्यत्वं देहिकन्यांनिजांविभो ॥ १२ ॥ माविषादेमनःकृत्वा दुःखस्यवशगोभव ॥ आनर्तोपि

हे नरनायक ! उसी कारण मैं तुम्हारी इस कन्या को स्वीकार न करूंगा उस समय इस चतुरतावाले वचन को कहकर वह दशार्णाधिपति राजा ॥ ८ ॥ अनेक प्रकार के हाथी, घोड़े व रथ आदिक वस्तुवों से इच्छा कराया हुआ भी भूपालका अनादर कर अपने नगर को चला ॥ ९ ॥ और अत्यन्त विकल आनर्त नृपति ने भी घरको प्राप्त होकर उस भूपालने जो कहा था उस वृत्तान्त को मृगावती अपनी स्त्री से व कन्या से कहा तब दुःखसंयुत होतेहुये उन मन्त्रियों ने कहा कि भूतल में संख्याहीन याने असंख्य भूपाल हैं ॥ १० । ११ ॥ जो कि रूपसंयुक्त व यौवन से युत तथा हाथी, घोड़ों व रथों से संयुक्त हैं हे विभो ! उनके बीचमें एकको अपनी

कन्या देवो ॥१२॥ और विषाद में मन करके दुःख के वश में मत प्राप्त होवो उनके उस वचन को सुनकर अतिदुःखित आनर्त नृपति ने भी॥१३॥ तदनन्तर प्रसन्नमन होकर उन मन्त्री आदिक जनों से व वहां बैठीहुई उस कन्या से परम सुन्दर प्रिय वचन के द्वारा कहा ॥ १४ ॥ कि हे उत्तमे, कन्ये ! तुमने यहां आये हुये सब भूपों को देखा है उनके मध्य में से किसी और नृपति को स्वीकार करो ॥ १५ ॥ जो कि दृष्टिमार्ग में प्राप्त होता हुआ तुम्हारे चित्तको सन्तोष करताहो रत्नवती बोली कि दशार्ण देशके स्वामी को छोड़कर अन्य पतिको मैं किसी प्रकार न स्वीकार करूंगी क्योंकि इस विषय में कारण सुनो कि राजा एकही बार कहते हैं व ब्राह्मण एकही

चतच्छ्रुत्वा तेषांवाक्यंप्रदुःखितः ॥ १३ ॥ ततःप्राहप्रहृष्टात्मा तान्सर्वान्मन्त्रिपूर्वकान् ॥ तांश्चकन्यांस्थितांतत्र साम्ना परमवल्गुना ॥ १४ ॥ पुत्रिदृष्टामहीपालास्सर्वेचात्रागतास्त्वया ॥ तेषांमध्यान्नृपंचान्यंकञ्चिद्वरयशोभने ॥ १५ ॥ यस्तेचित्तस्यसन्तोषं कुरुतेदृक्पथङ्गतः ॥ रत्नवत्युवाच ॥ नचाहंवरयिष्यामि पतिमन्यंकथञ्चन ॥ १६ ॥ दशार्णाधिपतिंमुक्त्वा श्रूयतामत्रकारणम् ॥ सकृज्जल्पन्तिराजानस्सकृज्जल्पन्तिचद्विजाः ॥ १७॥ सकृत्कन्याप्रदीयेत त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ एवंज्ञात्वानमांतात त्वमन्यस्यमहीपतेः ॥ १८ ॥ दातुमर्हसिधर्म्मोयं नभवेच्छास्त्रतोयतः ॥ आनर्तउवाच ॥ वाङ्मात्रेणप्रदत्तात्वं दशार्णाधिपतेर्मया॥१९॥नतेहस्तग्रहंप्राप्तं विप्राग्निगुरुसन्निधौ ॥ तत्कथंसपतिर्जातस्तवपुत्रिवदस्वमे ॥ २० ॥ रत्नवत्युवाच ॥ मनसाचिन्त्यतेकार्य्यं सकृत्तातपुरायतः ॥ वाचातुप्रोच्यतेपश्चात्कर्म्मणाक्रियतेततः ॥ २१ ॥ तन्मयामनसादत्तस्तस्यचात्मापुराकिल ॥ त्वयाचवचसाचास्मै प्रदत्तास्मितथाविभो ॥ २२ ॥ तत्कथं

बार बोलते हैं ॥ १६ । १७ ॥ और कन्या एकही बार दीजाती है ये तीनों एकही एक बार होते हैं ऐसा जानकर हे पिताजी ! तुम अन्य भूपको मुझे नहीं ॥ १८ ॥ देने के लिये योग्यहो क्योंकि शास्त्रसे यह धर्म नहीं है आनर्त बोला कि मैंने तुम को वचनमात्रसे दशार्ण देशके स्वामी के लिये दियाहै ॥ १९ ॥ और ब्राह्मण, अग्नि व गुरूके समीप करग्रहण (विवाह) नहीं प्राप्त हुआ है तो हे पुत्रि ! कैसे वह तुम्हारा पति होगया यह मुझ से कहिये ॥ २० ॥ रत्नवती बोली कि हे पिताजी ! पहले जिस लिये कि एकबार कार्य मन से चिन्तन किया जाताहै पीछे वचन से कहाजाताहै तदनन्तर कर्म के द्वारा किया जाताहै ॥ २१॥ इस लिये प्रसिद्ध में मैंने

पहले मन से उसको आत्मा (शरीर) देचुकीहूं और हे विभो ! वैसेही इसके लिये तुम से वचन के द्वारा दीगईहूं ॥ २२ ॥ तो कैसे मेरा पति नहीं है यदि तुम जानते हो तो कहो सो कुमारपन रूप व्रतको धारे हुई मैं तप करूंगी ॥ २३ ॥ किन्तु अन्य पतिको न करूंगी मैंने यह निश्चय किया है उस भयङ्कर वचनको सुन कर आंसुओं से पूर्ण नयनोंवाली व दीन (दुखिया) उसकी मृगावती मातानें यह वचन कहा कि हे पुत्रि ! तपस्या के लिये तुमको किसी प्रकार साहस न करना चाहिये ॥ २४ । २५ ॥ हे प्रशंसिते ! सदैव सुखभागिनी व सुकुमार अङ्गोंवाली तुम बालाहो और कन्दमूल, फलों को आहार करती व चीर बकलों को धारतीहुई तुम

नपतिर्मेस्याद्ब्रूहित्वंयदिमन्यसे ॥ साहंतपश्चरिष्यामि कौमारव्रतधारिणी ॥ २३ ॥ नान्यंपतिंकरिष्यामि निश्चयोयं मयाकृतः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंरौद्रं मातातस्यामृगावती ॥२४॥ अश्रुपूर्णेक्षणादीना वाक्यमेतदुवाचह ॥ मापुत्रिसाहसंकार्षं तपोर्थंतेकथञ्चन ॥ २५ ॥ बालात्वंसुकुमाराङ्गी सदैवसुखभागिनी ॥ कथंतपस्समर्थासि विधातुंत्वमनिन्दिते॥२६॥ कन्दमूलफलाहारा चीरवल्कलधारिणी ॥ तस्मान्मुख्यस्यभूपस्य कस्यचित्त्वांददाम्यहम् ॥ २७ ॥ एषातेब्राह्मणी नाम सखीपरमसम्मता ॥ प्रतीक्ष्यतेविवाहंते कौमारम्भावमाश्रिता ॥ २८ ॥ यस्यभूपस्यत्वंहर्म्ये प्रयास्यतिविवाहिता ॥ पुरोधास्तस्ययोजज्ञे भार्येयंसुखभागिनी ॥ २९ ॥ रत्नवत्युवाच ॥ नचभूयस्त्वयावाच्यं वाक्यमेवंविधंक्वचित् ॥ मदर्थंयदिमेप्राणांस्त्वंवाञ्छसिसुतैषिणी ॥ ३० ॥ अथवात्वंहठार्थंच तपोविघ्नंकरिष्यसि ॥ ततस्त्यक्ष्याम्यहंदेहं भक्षयित्वामहाविषम् ॥ ३१ ॥ खण्डयिष्याम्यहंजिह्वां प्रवेक्ष्यामिचवानलम् ॥ एवंसानिश्चयंकृत्वा प्रोच्यतांजननीं

कैसे तप करने के लिये समर्थहो इस लिये किसी प्रसिद्ध भूपको मैं तुम्हें दूंगी ॥ २६ । २७ ॥ और कन्यापनमें टिकी व अत्यन्तही मानीहुई यह तुम्हारी ब्राह्मणी सखी प्रसिद्ध में तुम्हारे विवाह को परखती है ॥ २८ ॥ विवाही हुई तुम जिस भूप के घरमें जावोगी उसका जो पुरोहित होगा उसकी यह सुखभागिनी स्त्री होगी ॥ २९ ॥ रत्नवती बोली कि कन्या को चाहनेवाली तुम यदि मेरे प्राणों को चाहती हो तो मेरे लिये फिर कहीं तुमको इस प्रकार का वचन न कहना चाहिये ॥ ३० ॥ अथवा हठके लिये तुम तपका विघ्न करोगी तो उसी कारण महाविष को खाकर मैं शरीरको त्यागूंगी ॥ ३१ ॥ या मैं जीभ को काटडालूंगी अथवा अग्निमें पैठूंगी उस

समय उसने ऐसा निश्चय करके उस माता से कहकर ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जुड़ेहुये हाथोंवाली होकर भलीभांति मानीहुई उस ब्राह्मणी को आदर समेत लिपटकर कहा ॥
३३ ॥ कि हे शुभदायिके ! मुझ से पठाई हुई तुम अपने पिता के घर जावो कि जिस से पिता तुमको महात्मा नागर द्विज के लिये देवै ॥ ३४ ॥ व मैंने कभी जो
झूठ वचन कहा हो उसको क्षमा कीजिये और तुमने भी जो मुझसे कहा है इस को मैंने अवश्य कर क्षमा किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणी बोली, कि आठ वर्षकी गौरी व
नव वर्ष की रोहिणी होती है और दशवर्ष की कन्या होती है इस के ऊपर रजस्वला होती है ॥ ३६ ॥ हे उत्तममुखवाली ! तुम्हारे मेलसे मेरा कुमारपन नष्ट होगया

तदा ॥३२॥ ततःप्रोवाचतांकन्यां ब्राह्मणींसम्मतांसखीम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वा समालिङ्ग्यचसादरम् ॥३३॥ गच्छत्वं
स्वपितुर्हर्म्ये प्रेषितासिमयाशुभे ॥ येनत्वांयच्छति पिता नागरायमहात्मने ॥ ३४ ॥ क्षमस्वयन्मयाप्रोक्तं कदाचिच्चा
नृतंवचः ॥ त्वयापियन्ममप्रोक्तं क्षान्तञ्चैतन्मयाध्रुवम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षाचरोहिणी ॥
दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ ३६ ॥ कौमार्य्यंचप्रणष्टंमे त्वत्सम्पर्काद्वरानने ॥ अतीतेषोडशेवर्षे स्त्रीध
र्म्मेणसमन्विता ॥ ३७ ॥ नमेपाणिग्रहंकश्चिन्नागरोत्रकरिष्यति ॥ स्मृत्यर्थंबुध्यमानस्तुवक्ष्यमाणंवरानने ॥ ३८ ॥
रजस्वलाञ्चयःकन्यामुद्वाहयतिनिर्घृणः ॥ तस्यास्सन्तानमासाद्य पातयत्यपरान्दश ॥ ३९ ॥ रजस्वलाञ्चयःकन्यां
पितायच्छतिनिर्घृणः ॥ सपातयेदसन्दिग्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ४० ॥ तस्मादहंकरिष्यामि त्वयासार्द्धन्तपःशुभे ॥
पित्रानैवहिमेकार्य्यं नचमात्राकथञ्चन ॥४१॥ सूतउवाच ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा कन्यकेद्वेद्विजोत्तमाः ॥ गतेयत्रस्थितः

और सोलह वर्ष बीतने पर स्त्री के धर्म याने रजोधर्म से युक्त होगई ॥ ३७ ॥ हे वरानने ! कहेजाते हुये स्मृति के अर्थ को जानता हुआ कोई नागर ब्राह्मण यहां
मेरा विवाह न करैगा ॥ ३८ ॥ क्योंकि जो निर्घृणी पुरुष रजस्वला कन्याको विवाह करता है वह उसके सन्तान को प्राप्त होकर और दश पुरुषों को गिराता है ॥ ३९ ॥
व जो निर्दयी पिता रजस्वला कन्या को देताहै वह निरसन्देह दश पहले व दश पीछेवाली पुश्तियों को गिराता याने नरक को पठाताहै ॥ ४० ॥ उसी कारण हे
उत्तमे ! तुम्हारे साथ मैं तप करूंगी और किसी प्रकार माता व पितासे मेरा कार्य नहीं है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वे दोनों कन्यायें इस प्रकार निश्चय

कर वहांगईं जहां कि साक्षात् महामुनि भर्तृयज्ञ ॥ ४२ ॥ समस्त तीर्थमय व उत्तम तथा मनोहर वास्तुपदमें टिके थे उनकी तपस्या के प्रभाव से पशु पक्षी की योनि में प्राप्त व किसी मनुष्यका भी उत्पन्न हुआ क्रोध न देख पड़ता था क्योंकि सर्पोंके साथ नेउले व मूसों के साथ बिलार खेलते थे ॥ ४३ । ४४ ॥ व सिंहों के साथ हाथी व घुघुवों के साथ कौवा खेलते थे वहां वे दोनों उत्तम कन्यायें जाकर सुखसे बैठे हुये भर्तृयज्ञ से ॥ ४५ ॥ नम्रतासंयुत व जुड़ेहुये हाथोंवाली वे बोलीं ब्राह्मणी बोली कि इस राजकन्या से संयुत मैं ॥ ४६ ॥ तपस्या के लिये आई हूं इसलिये तपस्या की विधि कहिये हे महामते ! कहो कि जिससे उस कृच्छ्र (कठिन तप)

साक्षाद्भर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ ४२ ॥ स्थितोवास्तुपदेरम्ये सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ तस्यतपःप्रभावेण जातःकोपोनदृश्यते॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वपिमर्त्यस्य तिर्य्यग्योनिगतस्यच ॥ क्रीडन्तिनकुलास्सर्पैर्मार्जारास्सहमूषकैः ॥ ४४ ॥ सारङ्गाद्वीपिभिस्सार्द्धं काकाश्चसहकौशिकैः ॥ भर्तृयज्ञंसुखासीनं तत्रगत्वातुतेशुभे ॥ ४५ ॥ प्रोचतुर्विनयोपेते कृताञ्जलिपुटे स्थिते ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अहंसख्यासमोपेता अनयाराजकन्यया ॥ ४६ ॥ तपोर्थेचतथायाता तद्ब्रूहितपसोविधिम् ॥ वदस्वयेनतत्कृच्छ्रं प्रकरोमिमहामते ॥ ४७ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ अहंतेकथयिष्यामि तपश्चर्य्याविधिंपृथक् ॥ येनसम्प्राप्यतेमोक्षः किंपुनस्त्रिदशालयः ॥ ४८ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि तथासान्तपनानिच ॥ षष्ठेकालेतथाभोज्यंदिनान्तरितमेवच ॥ ४९ ॥ व्रतंकुर्वंस्त्रिरात्रञ्च एकभक्ततयान्वितम् ॥ तपोद्वाराणिसर्वाणि रागद्वेषविवर्जितैः ॥ ५० ॥ वाञ्छितैर्वाञ्छितफलं सर्वेषामेवपुत्रिके ॥ ५१ ॥ ततःसिद्धिमवाप्नोति यासदामनसिस्थिता ॥ समत्वंशत्रुमित्राभ्यां तथा

को करूं ॥ ४७ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि मैं तुमसे अलग तपश्चर्या याने तप करने की विधि को कहूंगा जिससे भलीभांति मुक्ति मिलती है फिर स्वर्गको क्या कहना है ॥ ४८ ॥ व कृच्छ्र चान्द्रायणों व कृच्छ्रसान्तपनों व छठे समय में भोजन व दिनके अन्तर में भोजन ॥ ४९ ॥ व एक बार भोजन करने से संयुत तीन रातोंवाले व्रतको करता हुआ ये सब हे पुत्रिके ! अनुराग व वैरसे रहित और चाहे हुये मनोरथ फलके अभिलाषों से सबही के तपस्या के द्वार हैं ॥ ५० । ५१ ॥ तदनन्तर जो सदैव

१ गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रसान्तपनंस्मृतम् ॥

मनमें स्थित होती है उस सिद्धिको प्राप्त होताहै व शत्रु, मित्रों के लिये समता व सदैव पत्थर व रत्न के मध्य समभाव चित्तमें होवै तब मुक्ति को पाता है और जो चिह्न का ग्रहण करके तदनन्तर क्रोधमें तत्पर होवैहै ॥ ५२।५३ ॥ उसका वह सब वैसेही वृथाहै जैसे कि भस्म में हवन व्यर्थ होजाताहै सूतजी बोले कि वह ब्राह्मणी वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके उस रत्नवती समेत किसी जलाशय को गई जो कि निर्मल जलसे भलीभांति पूर्ण व कमलिनी के समूह से शोभित था ॥ ५४ । ५५ ॥ तदनन्तर उसने तपस्याके पहले चान्द्रायण व्रतको किया तदनन्तर कृच्छ्रव्रतको व उसके उपरान्त सान्तपन व्रतको किया ॥ ५६ ॥ और तीनवर्ष तक वह दिन के छठे

पाषाणरत्नयोः ॥ ५२ ॥ सदासञ्जायतेचित्ते तदामोक्षमवाप्नुयात् ॥ योलिङ्गग्रहणंकृत्वा ततःकोपपरोभवेत् ॥ ५३ ॥ तस्यवृथाहितत्सर्वं यथाभस्महुतंतथा ॥ सूतउवाच ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय ब्राह्मणीसहितातया ॥ ५४ ॥ रत्नवत्याजगाम कञ्चिच्चैवजलाशयम् ॥ स्वच्छोदकेनसम्पूर्णं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ ५५ ॥ ततश्चान्द्रायणंचक्रे तपसःप्रथमं व्रतम् ॥ ततःकृच्छ्रव्रतंचक्रे ततःसान्तपनंचसा ॥ ५६ ॥ षष्ठाह्नकालभोज्यंच साबभूवशरत्रयम् ॥ हेमन्तेजलमध्यस्था साबभूवतपस्विनी ॥ ५७ ॥ पञ्चाग्निसाधकाग्रीष्मेसाबभूव यशस्विनी ॥ निराश्रयाचसासाध्वी वर्षाकालउपस्थिते ॥ ५८ ॥ ध्यायमानादिवानक्तं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ यद्यद्व्रतंपुराचक्रे ब्राह्मणीसाचतद्व्रतम् ॥ ५९ ॥ अन्यज्जलाशयंप्राप्य साचक्रेतुनृपात्मजा ॥ प्रीत्यापरमयायुक्ता तदातुद्विजसत्तमाः ॥ ६० ॥ ततोवर्षशतंसार्द्धं फलाहाराबभूवसा ॥ शीर्णपर्णाशिनीपश्चात्तावन्मात्रंव्यवस्थिता ॥ ६१ ॥ ततश्चैवजलाहारा यावद्वर्षशतानिषट् ॥ वायु

भाग में भोजन करती भई व हेमन्त ऋतु में वह तपस्विनी जलके बीचमें टिकनेवाली हुई ॥ ५७ ॥ और वह कीर्त्तिमती ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि साधन करनेवाली हुई व वर्षाकालके उपस्थित होनेपर उत्तम आचरणोंवाली वह बिन आश्रय के रहती भई ॥ ५८ ॥ और देवताओं के देवता महादेव को दिन रात ध्यान करती हुई उस ब्राह्मणी ने पहले जिस २ व्रतको किया उसी व्रतको ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समय परमप्रीति से संयुत उस नृपकन्या ने अन्य जलाशय को पाकर किया ॥ ६० ॥ तदनन्तर डेढ़सौ वर्षतक वह फलाहारिणी हुई पश्चात् उतनेही प्रमाणभर याने डेढ़सौ वर्षतक गिरे पत्तोंको खातीहुई टिकी ॥ ६१ ॥ तदनन्तर छहसौ वर्षतक जला-

हारिणी हुई इसके अनन्तर हज़ार वर्षोंतक पवन को भोजन करती भई ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस कन्याने ज्यों ज्यों तपस्या किया त्यों त्यों उसके अति उत्तम तेजकी वृद्धिहुई ॥ ६३ ॥ इसी अवसर में प्रसन्नमनवाले भगवान् चन्द्रभाल जी पार्वती समेत उसकी दृष्टि में आये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर मेघके समान गम्भीर वाणीसे वचन बोले कि हे वत्से ! तुम मेरे वचन से तपस्या की निवृत्ति करो ॥ ६५ ॥ व मुझसे मनोरथ को मांगो जिससे मैं तुमको सब देऊं ब्राह्मणी बोली कि हे देवनायक, शङ्करजी ! यही मनोरथ है जोकि तुम देखेगयेहो ॥ ६६ ॥ क्योंकि हे देव ! स्वप्नमें भी मनुष्यों को तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है भगवान् शिवजी बोले कि हे सुत-

भक्षावभूवाथ सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ ६२ ॥ यथायथातपश्चक्रे साकुमारीद्विजोत्तमाः ॥ तथातथाभवत्तस्यास्तेजोवृद्धिर नुत्तमा ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवाञ्छशिशेखरः ॥ गौर्य्यासहप्रसन्नात्मा तस्यागोचरमागतः ॥ ६४ ॥ मेघग म्भीरयावाचा ततोवचनमब्रवीत् ॥ वत्सेतपोनिवृत्तिंत्वं कुरुष्ववचनान्मम ॥ ६५ ॥ प्रार्थयस्वममाभीष्टं येनसर्वंददा मिते ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अभीष्टमेतद्देवेश यत्त्वंदृष्टोसिशङ्कर ॥ ६६ ॥ स्वप्नेपिदर्शनन्देव दुर्लभंतेनृणांयतः ॥ भगवा नुवाच ॥ नमेस्याद्दर्शनंव्यर्थं कथञ्चित्सुतपस्विनि ॥ ६७ ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयेनददाम्यहम् ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ए षामेसुसखीसाध्वी राजपुत्रीयशस्विनी ॥ ६८ ॥ ख्यातारत्नवतीनाम प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ममतुल्यंतपश्चक्रे शूद्रयो नावपिस्थिता ॥ ६९ ॥ निवर्ततेतुयद्येषा तपसस्तुनिवर्तनम् ॥ करोम्यद्यजगन्नाथ तदहंसंशयंविना ॥ ७० ॥ अस्या स्स्नेहेनसन्त्यक्तो मयाभर्तासुरेश्वर ॥ तस्माद्देववरन्देहि त्वमस्यामनसिस्थितम् ॥ ७१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वच

परिवनि ! किसी प्रकार मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होवै है ॥ ६७ ॥ इस लिये तुम्हारा कल्याण होवै वरदान को मांगो जिससे मैं देऊं ब्राह्मणी बोली कि उत्तम आचरणों वाली व कीर्त्तिमती यह राजकन्या मेरी उत्तम सखीहै ॥ ६८ ॥ जोकि रत्नवती ऐसे नामसे प्रसिद्ध व प्राणोंसे भी गरुई (प्यारी) है शूद्रयोनि में भी स्थित इस ने मेरेही समान तपस्या कियाहै ॥ ६९ ॥ हे जगदीश्वर ! यदि यह निवृत्त होवै तौ मैं आजही निस्सन्देह तपस्याकी निवृत्ति करूं ॥ ७० ॥ हे देवनायक ! इसके स्नेह से मैंने पतिको भलीभांति त्यागदिया उसी कारण हे देव ! तुम इसके मनमें टिकेहुये वरदानको दीजिये ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले कि उस ब्राह्मणीके उस वचन को सुनकर

भगवान् चन्द्रभालजीने मेघके तुल्य गम्भीर वाणीके द्वारा उस राजकन्यासे कहा ॥ ७२ ॥ कि हे वामे (सुन्दरि)! तुम यहां आज मेरेवचन से तपको त्यागनेयोग्य हो हे कल्याणि! नित्य मनमें भलीभांति टिकेहुये वरको स्वीकार करिये ॥ ७३ ॥ हे भामिनि! इससमय तुमको न देनेयोग्य भी पदार्थको दूंगा रत्नवती बोली कि जो यह कमलिनीसमूहों से शोभित पुण्यदायक जलाशय है ॥ ७४ ॥ यहां उत्तम आचरणोंवाली यह ब्राह्मणी नित्य तपस्या में भलीभांति टिकी है इसके नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्तहोवै ॥ ७५ ॥ हे देवदेव! परमश्रद्धा से संयुत जो इस तीर्थमें स्नान करै उसका स्वर्गमें सदैव वासहोवै ॥ ७६ ॥ व उसका तीर्थ मेरे नामसे शूद्री-

नंश्रुत्वा भगवाञ्छशिशेखरः ॥ अब्रवीद्राजपुत्रींतां मेघगम्भीरयागिरा ॥ ७२ ॥ वामेमद्वचनादद्य तपस्त्यक्तुमिहा
र्हसि ॥ वरंवरयकल्याणि नित्यंमनसिसंस्थितम् ॥ ७३ ॥ अदेयमपिदास्यामि साम्प्रतंतवभामिनि॥ रत्नवत्युवाच ॥
एतज्जलाशयंपुण्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ ७४ ॥ अत्रैषाब्राह्मणीसाध्वी नित्यंतपसिसंस्थिता ॥ अस्यानाम्नाच
विख्यातिंतीर्थमेतत्प्रपद्यताम् ॥ ७५ ॥ अत्रयःकुरुतेस्नानंश्रद्धयापरयायुतः ॥ तस्यभूयात्सदावासो देवदेवत्रिविष्टपे ॥
७६ ॥ तदीयंममनाम्नातु शूद्रीसंज्ञन्तुजायताम् ॥ अस्यास्तुल्यप्रभावस्य तीर्थस्यप्रतिपद्यताम् ॥ ७७ ॥ आवाभ्यां
नित्यशःकार्यंकुमारत्वेमहत्तपः ॥ आराध्यस्त्वंसुरश्रेष्ठो वाङ्मनःकर्म्मभिस्तथा ॥ ७८ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु निर्भिद्य
धरणीतलम् ॥ लिङ्गंमाहेश्वरंविप्रा निष्क्रान्तंसूर्य्यसन्निभम् ॥ ७९ ॥ ततःप्रोवाचतान्देवः स्वयमेवमहेश्वरः ॥ ता
भ्यांसुतपसातुष्टस्सादरंभक्तवत्सलः ॥ ८० ॥ एतत्तीर्थद्वयंख्यातं त्रैलोक्येपिभविष्यति ॥ शूद्रीनामतदीयन्तुब्राह्मणी

संज्ञकहोवै व इसके तुल्य प्रभाववाले तीर्थको प्राप्तहोवै ॥ ७७ ॥ और हम दोनों से कन्यापन में नित्यही बड़ा तप करना चाहिये व वैसेही देवोंमें उत्तम तुम वाणी, मन व कर्म से आराधने के योग्यहोवो ॥ ७८ ॥ इसी अवसर में हे ब्राह्मणो! भूतल को फोड़कर सूर्यनारायण के समान महादेवजी का लिङ्ग निकला ॥ ७९ ॥ तदनन्तर भक्तप्रिय व उत्तम तपस्या से प्रसन्न महेश्वर देवजी आपही आदर समेत उस राजकन्या से बोले ॥ ८० ॥ कि वे दोनों तीर्थ त्रिलोकमें भी प्रसिद्ध होवेंगे और जो

तुम्हारी ब्राह्मणी है उसका शूद्रीनामहोगा ॥ ८१ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष इन दोनों तीर्थोंमें भी नहाकर तदनन्तर कमलों व इसके निर्मल जलको लेकर ॥ ८२ ॥ चैत महीने के भलीभांति प्राप्तहोने पर शुक्लपक्षवाली चौदसि सोमवार में इस मेरे लिङ्गको नहवाकर पश्चात् कमलों से पूजन करैगा वह यद्यपि अतिपापकारी होवै तथापि समस्त पापों से निर्मुक्तहोगा ॥ ८३ । ८४ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होगये व वृद्धता और मृत्यु से रहित वे दोनों भी सखियां जबतक सौ कल्प बीते तबतक नित्यही वहांपर टिकीं और नक्षत्ररूपिणी वे आजभी आकाश में देखपड़ती हैं ॥ ८५ । ८६ ॥ तब से लगाकर वे दोनों तीर्थ भूतल में

चसखीतव॥ ८१ ॥ तीर्थद्वयेपियःस्नात्वा एतस्मिञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ ततःपद्मानिसंगृह्य अस्यास्तोयंचनिर्म्मलम् ॥ ८२॥ चैत्रेमासिचसम्प्राप्ते शुक्लायांसोमवासरे ॥ ८३ ॥ पश्चात्पद्मैश्चतुर्दश्यां एतच्चमामकंलिङ्गं स्नापयित्वार्चयिष्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो यद्यपिस्यात्सुपापकृत् ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चिरायुस्सम्भविष्यति ॥ यावत्कल्पशतंतावज्जरामरणवर्जिते ॥ अद्यापिगगनेतेच दृश्येते तत्रनित्यंचतपसिस्थितेसख्यावुभावपि ॥ ८५ ॥ आगत्याथनरोदूरात्ताभ्यांकृत्वानिमज्जनम् ॥ ८७ ॥ तारकात्मके ॥ ८६ ॥ ततःप्रभृतिविख्यातं तीर्थयुग्मंधरातले ॥ एतस्मिन्नन्तरेमर्त्ये नष्टा पूजयित्वातुलिङ्गंतु ततोयातिदिवालयम् ॥ महापातकयुक्तोपि तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ८८ ॥ व्याप्तस्तथाखिलःस्वर्गो मानवैस्स्पर्द्धयान्वितैः ॥ सा धर्म्मस्यचक्रियाः ॥ यज्ञदानकृतायावद्देवार्चनसमुद्भवाः ॥ ८९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु धर्म्मराजःसमाययौ ॥ यत्रवेदध्वनिर्ब्रह्मा ब्रह्मलोकं वृन्दैर्देवैर्विमानस्थैरप्सरोगणसेवितैः ॥ ९० ॥

प्रसिद्धहुये व मनुष्य दूरसे आकर इसके अनन्तर उन दोनोंमें स्नानकरके ॥ ८७ ॥ और लिङ्गको पूजकर उसके उपरान्त महापाप से युक्त भी उस तीर्थ के प्रभाव से निरसन्देह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ इसी अवसरमें मृत्युलोकके बीच यज्ञ व दानसे कीहुई व देवपूजनसे उपजी धर्मकी क्रियायें नाश होगईं ॥ ८९ ॥ व वैसेही अप्सराओंके समूह से सेवित व देवोंके साथ विमान पै बैठेहुये ईर्षासंयुत मनुष्योंसे समस्त स्वर्ग व्याप्त होगया ॥ ९० ॥ इसी अवसर में जहां ब्रह्मलोकमें भलीभांति

आश्रित वेदध्वनिवाले ब्रह्माजीथे वहां यमराजजी भलीभांति आये ॥ ९१ ॥ व आगे दो पत्रोंको फेंककर दुःखित व दीनहो बोले जिनमें एक पापसे उपजा व दूसरा धर्म से उत्पन्न हुआथा और जोकि एक चित्रसे लिखा व दूसरा विचित्र से लिखाथा कि हे देव! हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें दो तीर्थ स्थितहैं॥ ९२।९३ ॥ एक शूद्राख्य व दूसरा कमलिनी से शोभित ब्राह्मणी नामक है वैसेही वहांपर बड़ा पुण्यदायक महादेवजीका लिङ्गहै ॥ ९४ ॥ और उन तीनोंके प्रभावसे पातकयुक्त भी सब पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोते हैं ॥ ९५ ॥ और वे रौरवादिक सब मेरे नरक शून्य होगये न किसीने पूजन किया और देवों, पितरों व विशेषकर मनुष्यों को दान व तर्पण नहीं

समाश्रितः ॥ ९१ ॥ अब्रवीद्दुःखितोदीनः क्षिप्त्वाग्रेपत्रकद्वयम् ॥ एकंपापसमुद्भूतमन्यंधर्म्मसमुद्भवम् ॥ ९२ ॥ चित्रेणलिखितंयच्च विचित्रेणतथापरम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेदेवतीर्थद्वयंस्थितम् ॥ ९३ ॥ शूद्राख्यंब्राह्मणीनामतथान्यत्पद्ममण्डितम् ॥ तथातत्रास्तिलिङ्गंच पुण्यंमाहेश्वरंमहत् ॥ ९४ ॥ त्रयाणामथतेषांच प्रभावात्सर्वमानवाः ॥ अपि पापसमायुक्ताः प्रयान्तित्रिदशालयम् ॥ ९५ ॥ शून्यामेनरकाजातास्सर्वेतेरौरवादयः॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे नदानंनच तर्प्पणम् ॥ ९६ ॥ देवतानांपितॄणांच मनुष्याणांविशेषतः॥तस्मान्मुक्तोमयासर्वो योधिकारस्तवोद्भवः ॥ ९७ ॥ नियोजयस्वतत्रान्यं कञ्चिच्छक्ततमंततः ॥ अप्रमाणंस्थितंसर्वमेतत्पत्रद्वयंमम ॥ ९८ ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राह समानीय शतक्रतुम् ॥ गत्वाशीघ्रतमंमर्त्ये त्वंशक्रवचनान्मम ॥ ९९ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ शूद्राख्यंब्राह्मणीत्येव यत्रलिङ्गमनुत्तमम् ॥ १०० ॥ तत्रस्थंनाशयक्षिप्रं कृत्वापांशुप्रवर्षणम् ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंशक्रो

किया उसी कारण जो तुमसे उपजाहुआ अधिकार है वह सब मैंने छोड़ दिया ॥ ९६ । ९७ ॥ उसी कारण उस अधिकार में अन्य किसी शक्तिमान् को युक्त करो क्योंकि ये मेरे दोनों पत्र सब अप्रमाण स्थित हैं ॥ ९८ ॥ उसको सुनकर व इन्द्रको भलीभांति आनकर ब्रह्माने कहा कि हे इन्द्रजी! तुम मेरे वचन से अत्यन्त शीघ्रही मृत्युलोक में जाकर ॥ ९९ ॥ जहां कि हाटकेश्वरजक्षेत्र में शूद्राख्य व ब्राह्मणी नामक ऐसेही अतिउत्तम दोतीर्थ और अतिमनोहर लिंग हैं ॥ १०० ॥ वहां टिके

हुये उन तीनों तीर्थों को धूलिकी वर्षाकरके शीघ्रही नाशकरो सूतजी बोले कि तदनन्तर उस वचन को सुनकर शीघ्रही इन्द्रजी ने भूतल में जाकर ॥ १ ॥ उस तीर्थ व लिंगको निश्चयकर धूलियों से पूर्ण करदिया आजभी इस कलिकाल में दोनों तीर्थोंसे उत्तम मिट्टीको लेकर ॥ २ ॥ व समस्त पातकों की विशुद्धिके लिये नहाकर तिलक करना चाहिये और सोमवार को भलीभांति प्राप्तहोने पर जब चौदसि दिन प्राप्तहोवै तब ॥ ३ ॥ परमश्रद्धासे संयुत होताहुआ जो पुरुष दोनोंके समीप श्राद्ध करता है उसको गयाकी श्राद्धसे क्या है याने कुछ नहीं यह स्वायंभुव मनुने कहाहै ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो चरित मुझसे पूँछागया इस समस्त कथा-

गत्वाभूमितलंततः ॥ १ ॥ पांशुभिःपूरयामास तत्तीर्थलिङ्गमेवच ॥ अद्यापिकलिकालेस्मिन्द्वाभ्यांगृह्यसुमृत्तिकाम् ॥ २ ॥ स्नात्वाचतिलकंकार्य्यंसर्वपापविशुद्धये ॥ चतुर्दशीदिनेप्राप्ते सोमवारेचसंस्थिते ॥ ३ ॥ द्वाभ्यांयःकुरुतेश्राद्धं श्रद्धयापरयायुतः ॥ गयाश्राद्धेनाकिन्तस्य मनुःस्वायम्भुवोब्रवीत् ॥ ४ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ यथासाब्राह्मणीजाता शूद्रीचापितथापरा ॥ ५ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या पाठकाद्विजसत्तमाः ॥ सोपितद्दिनजात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ६ ॥ एवंसरोमकःसिद्धस्तस्यलिङ्गस्यपूजनात् ॥ चिरायुश्चतथाजातो यथान्योनात्रविद्यते ॥ १०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये शूद्रीब्राह्मणीमाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च तीर्थानामिहभूतले ॥ श्रूयतेसूतकृत्स्नेन कीर्त्यमानामुनीश्वरैः ॥ १ ॥ कथं

नकको कहा जिस प्रकार वह ब्राह्मणी व दूसरी शूद्रीभी हुईहै ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो! पाठक याने वाचक से जो पुरुष भक्तिसे इस चरितको सुनताहै वह भी उस दिन उपजेहुये पापसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ६ ॥ व ऐसेही उस लिङ्गके पूजनसे सरोमक सिद्ध हुआहै व वैसेही दीर्घजीवी हुआ जैसा कि यहां और नहीं विद्यमान है ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशूद्रीब्राह्मणीमाहात्म्यंनामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८ ॥

दो० । द्विज सुभद्र निज सुता कहँ किय अन्त्यज सँग व्याह । इकसौ नव्वासिवें महँ कहत सो सहित उछाह ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस भूतलमें मुनि-

नायकों से कहेहुये सब साढ़ेतीन करोड़तीर्थ सुनेजाते हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! कलिकालके उपस्थित होनेपर थोड़े आयुर्बलवाले मनुष्यों को समस्त तीर्थोंके स्नान से उपजाहुआ फल कैसे मिलताहै ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि यहां तीन क्षेत्र वैसेही बड़ेभारी तीन जंगल व तीन पुरी व तीनही वन और तीन ग्राम प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ और अन्य तीन तीर्थ व तीन पर्वत तथा समस्त पातकोंके नाश करनेवाली तीन नदियां ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाली स्थितहैं इन सबोंमें जो नहाता है वह समस्त तीर्थोंका जो फल है उसको पाताहै ॥ ५ ॥ जो एक त्रिकमें स्नान करता है वह चौबीस संख्यक सब त्रिकोंके फलको पाता है यह ब्रह्माने कहाहै ॥६॥

समन्तेसर्वेषां तीर्थानांस्नानजंफलम् ॥ अल्पायुर्भिर्महाभाग कलिकालउपस्थिते ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ क्षेत्रत्रयमिहाख्यातं तथारण्यत्रयंमहत् ॥ पुरीत्रयंवनान्येव त्रीणिग्रामास्तथात्रयः ॥ ३ ॥ तथातीर्थत्रयंचान्यत् पर्वतत्रितयंतथा ॥ महानदीत्रयंचैव सर्वपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ मर्त्यलोकेस्थितंविप्रास्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ सर्वेष्वेतेषुयःस्नाति सर्वेषांयत्फलंलभेत् ॥ ५ ॥ यएकस्मिंस्त्रिकेस्नाति सर्वत्रिकफलंलभेत् ॥ चतुर्विंशतिसंख्यानामिदमाहप्रजापतिः ॥६॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रीणिक्षेत्राणिकानीह तथारण्यानिकानिच ॥ पुर्य्यस्तिस्रोमहाभाग केख्यातावावनानिच ॥ ७ ॥ केग्रामाःकानितीर्थानि केनगास्सरितश्चकाः ॥ नामभिर्वदनःसूतसर्वाण्येतानिविस्तरात् ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ कुरुक्षेत्रमितिख्यातं प्रथमंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं द्वितीयंपरिकीर्तितम् ॥ ९ ॥ प्राभासिकंतृतीयन्तु क्षेत्रंहिद्विजसत्तमाः ॥ एतत्क्षेत्रत्रयंपुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १० ॥ यथोक्तविधिनादृष्ट्वा नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ योयंकाममभिध्याय क्षेत्रे

ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! इस भूमिमें कौन तीन क्षेत्र व कौन तीन अरण्य और कौन तीन पुरियां कहीहैं या कौन तीन वनहैं ॥ ७ ॥ व कौन ग्राम, कौन तीर्थ, कौन पर्वत व कौन नदियां हैं हे सूतजी ! इन सबोंको नामोंसे विस्तारपूर्वक हमलोगों से कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि पहला कुरुक्षेत्र ऐसा उत्तमतीर्थ कहा है व दूसरा हाटकेश्वरजक्षेत्र कहागया है ॥ ९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! तीसरा प्रभास क्षेत्रहै ये तीनों क्षेत्र पुण्यरूप व समस्त पातकों के नाशक हैं ॥ १० ॥ मनुष्य

यथोक्त विधिसे उसको देखकर पापसे छूटजाताहै और जो पुरुष जिस कामना को चिन्तन करके इन क्षेत्रों में बड़ी भक्तिसे ॥ ११ ॥ स्नान करता है उसके मन का प्रिय फल होताहै है व हे उत्तम ब्राह्मणो ! चौबीस भागोंमें नहायाहुआ होता है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! एक पुष्करारण्य व दूसरा नैमिषारण्यही व तीसरा धर्मारण्य उन तीर्थोंके मध्यमें कहागया है ॥ १३ ॥ इन तीनोंमें जो नहाता है वह चौवीस तीर्थोंके फलका भागी होताहै व एक वाराणसी (काशी) पुरी दूसरी द्वारकापुरी ॥ १४ ॥ व तीसरी अवन्ती (उज्जैनी) नामकपुरी त्रिभुवन में प्रसिद्ध है जो मनुष्य इनमें नहाता है वह चौवीस तीर्थोंका भागी होताहै ॥ १५ ॥ वैसेही एक

ष्वेतेषुभक्तितः ॥११॥ स्नानंकरोतितस्येष्टं मनसोजायतेफलम् ॥ चतुर्विंशतिभागेषु स्नातोभवतिसद्द्विजाः ॥ १२ ॥ एकन्तुपुष्करारण्यं नैमिषारण्यमेवच ॥ धर्मारण्यंतृतीयन्तु तेषांसंकीर्तितंद्विजाः ॥ १३ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ वाराणसीपुरीत्येकाद्वितीयाद्वारकापुरी ॥ १४ ॥ अवन्त्याख्यातृतीयाच विश्रुताभुवनत्रये ॥ एतासुयोनरःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ १५ ॥ वृन्दावनंतथाचैकं द्वितीयंखाण्डवंतथा ॥ ख्यातंद्वैतवनंचान्यत्तृतीयंधरणीतले ॥ १६ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ कालग्रामःस्मृतश्चैकश्शालग्रामोद्वितीयकः ॥ १७ ॥ नन्दिग्रामस्तृतीयस्तु विश्रुतोद्विजसत्तमाः ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत ॥ १८ ॥ अग्नितीर्थंस्मृतंचैकं शुक्लतीर्थमथापरम् ॥ तृतीयंपितृतीर्थंतु पितृणामतिवल्लभम् ॥ १९ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ श्रीपर्वतःस्मृतश्चैको द्वितीयश्चार्बुदस्तथा ॥ २० ॥ तृतीयोरैवताख्यस्तु विख्यातःपर्वतोत्तमः ॥ त्रिष्वेतेषुच

वृन्दावन दूसरा खाण्डव व अन्य तीसरा द्वैतवन भूतलमें प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥ इन तीनोंमें जो स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होता है व एक कालग्राम कहाहै दूसरा शालग्राम ॥ १७ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! तीसरा नन्दिग्राम प्रसिद्धहै इन तीर्थोंमें जो नहाता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होताहै ॥ १८ ॥ एक अग्नितीर्थ कहाहै दूसरा शुक्लतीर्थ और तीसरा पितरोंको अतिप्यारा पितृतीर्थ है ॥ १९ ॥ इन तीनोंमें जो स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होताहै व एक

श्रीपर्वत कहाहै वैसेही दूसरा अर्बुद ॥२०॥ व तीसरा पर्वतों में उत्तम रैवत नामक है इन तीर्थोंमें जो नहाता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होता है ॥ २१ ॥ और पहली गङ्गानदी कहीहै और दूसरी नर्मदानामक और तीसरी पकरिया से उपजी हुई सरस्वती नदीहै ॥२२॥ इन सबोंमें जो नहाताहै वह चौबीसतीर्थोंका भागी होताहै व इन्हीं समस्त तीर्थोंमें जो नर स्नान करताहै ॥२३॥ वह यहां साढ़ेतीन करोड़तीर्थों के समस्त फलको पाताहै और जो मनुष्य एकतीर्थमें नहाताहै वह त्रिक (तीनों) के फलको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो मुझ से पूँछागया इस समस्त चरित को संक्षेप से तुमलोगों से कहा जोकि भूमिमें मनुष्योंको तीर्थसे उपजाहुआ

यःस्नाति चतुर्विंशतिभागभवेत् ॥ २१ ॥ गङ्गानदीस्मृतापूर्वा नर्म्मदाख्यातथापरा ॥ सरस्वतीतृतीयातु नदीप्लक्षसमुद्भवा ॥ २२ ॥ आसुसर्वासुयःस्नाति चतुर्विंशतिभागभवेत् ॥ एतेष्वेवहिसर्वेषु यःस्नानंकुरुतेनरः ॥ २३ ॥ सार्द्धकोटित्रयस्यात्र सकृत्स्नंफलमाप्नुयात् ॥ यश्चैकस्मिन्नरःस्नातिसत्रिकस्यफलंलभेत् ॥ २४ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमः ॥ संक्षेपात्तीर्थजंपुण्यं लभ्यतेयन्नरैर्भुवि ॥ २५ ॥ साम्प्रतंकिन्तुवोवच्मि यत्तद्वदतमाचिरम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे यानितीर्थानिसूतज ॥ २६ ॥ तानिप्रोक्तानिसर्वाणि त्वयास्माकंसुविस्तरात् ॥ तानिचायतनान्येव संख्ययारहितानिच ॥ २७ ॥ अपिवर्षशतेनात्रस्नातुन्तेषुनशक्यते ॥ अल्पायुषःसदामर्त्याः कृतेपिपरिकीर्तिताः ॥ २८ ॥ त्रेतायांद्वापरेवापि किमुप्राप्तेकलौयुगे ॥ एवमल्पायुषोज्ञात्वा मानवान्सूतनन्दन ॥ २९ ॥ कथंप्राप्नुस्समस्तानां तीर्थानांस्नानजंफलम् ॥ देवदर्शनजंवापि विशेषान्निर्द्धनाश्चये ॥ ३० ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषो

पुण्य मिलता है ॥ २५ ॥ और इस समय तुम लोगोंसे क्या कहूं जो होवै उसको शीघ्रही कहिये ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्र में जो तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ उन सबोंको तुमने हमलोगों से बड़े विस्तारपूर्वक कहा व संख्या से रहित उन मन्दिरों ही को वर्णन किया है ॥ २७ ॥ यहां सौ वर्ष से भी उन में स्नान के लिये नहीं समर्थ होसक्ता क्योंकि सतयुग में भी सदैव थोड़े आयुर्बलवाले नर कहे हैं ॥ २८ ॥ व त्रेता, द्वापर में भी और कलियुग के प्राप्त होने पर क्या कहना है हे सूतनन्दन ! ऐसेही थोड़े आयुर्बलवाले मनुष्यों को जानकर कहो ॥ २९ ॥ कि जे निर्धनी हैं वे समस्त तीर्थों के स्नान से उपजे हुये व देवों के

दर्शन से उत्पन्न भी फलको कैसे पावैंगे ॥ ३० ॥ इस विषय में देवता व मनुष्यवाला कोई यत्न है कि जिससे उन सबही का पुण्य लीला से होवै ॥ ३१ ॥ सूत जी बोले कि पुरातन समय आनर्त भूपति ने उन विश्वामित्र जी के आश्रम को भलीभांति जाकर इसी प्रयोजन को विश्वामित्र से पूंछा है ॥ ३२ ॥ राजा बोले कि हे भगवन् ! इस पृथ्वी में संख्यासे रहित (असंख्य) तीर्थ हैं उन सबही में अलग २ स्नान का विधान कहा है ॥ ३३ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! कहीं महीने, दिन व तिथि में कहा है व विचित्र दानों व स्नान की विधि कही है ॥ ३४ ॥ और देवोंका दर्शन भी भिन्नता से कहा गयाहै हे मुने ! सौवर्ष से भी सबों का फल कोई पाने

पिवा ॥ येनतेषांभवेत्पुण्यं सर्वेषामेवहेलया ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ अस्मिन्नर्थेपुरापृष्टो विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ समुपेत्याश्रमंतस्य आनर्तेनमहीभुजा ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्नत्रतीर्थानि संख्ययारहितानिच ॥ तेषुस्नानविधिःप्रोक्तः सर्वेष्वेवपृथक्पृथक् ॥ ३३ ॥ मासेवारेदिनेचैव कुत्रचिन्मुनिसत्तम ॥ दानानिचविचित्राणि तथास्नानविधिस्तथा ॥ ३४ ॥ देवानांदर्शनंचापि पृथक्त्वेनप्रकीर्तितम् ॥ नशक्यतेफलंप्राप्तुं सर्वेषांकेनचिन्मुने॥३५॥अपिवर्षशतेनापि किम्पुनस्तोकवासरैः ॥ तस्माद्वदमहाभाग सुखोपायंचदेहिनाम् ॥३६॥ एकस्मिन्नपिचस्नातस्तीर्थेप्राप्नोतिमानवः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां स्नानजंसकलंफलम् ॥ ३७ ॥ सोब्रवीच्छृणुराजेन्द्र सरहस्यंवदामिते ॥ चत्वार्यत्रप्रकृष्टानि मुख्यतीर्थानि पार्थिव ॥ ३८ ॥ येषुस्नानेकृतेराजञ्छ्राद्धंचतदनन्तरम्॥ सर्वेषामेवतीर्थानां स्नानजंलभ्यतेफलम् ॥ ३९ ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानि तथात्रैवस्थितानिच ॥ सिद्धेश्वरप्रपूर्वाणि सर्वपापहराणिच ॥ ४० ॥ तेषुसर्वेषुदृष्टेषु श्रद्धापूतेनचेतसा ॥

के लिये समर्थ नहीं होसक्ता फिर थोड़े दिनों से क्या कहना है उसी कारण हे महाभाग ! शरीरधारियों के सुखपूर्वक यत्न को कहिये ॥ ३५ । ३६ ॥ कि जिससे एक भी तीर्थ में नहाया हुआ पुरुष सबोंही तीर्थों के स्नान से उपजे हुये समस्त फलको पाता है ॥ ३७ ॥ उन विश्वामित्र ने कहा कि हे राजेन्द्र, राजन् ! सुनिये गुप्त चरित समेत तुमसे कहताहूं कि इस भूमिमें चार बड़े भारी मुख्य तीर्थहैं ॥३८॥ कि जिनमें स्नान करनेपर तदनन्तर श्राद्ध करै तो हे राजन् ! सबही तीर्थों के स्नान से उपजाहुआ फल मिलता है ॥ ३९ ॥ वैसे ही सिद्धेश्वरपूर्वक समस्त पातकों के हरनेवाले सत्ताईस शिवलिङ्ग यहीं स्थित हैं ॥ ४० ॥ श्रद्धा से पवित्रचित्त करके

उन सबों के देखने पर सबोंही देवों के दर्शन से उपजा हुआ फल होवै है ॥ ४१ ॥ हे नृपोत्तम ! एक भी लिङ्गके भलीभांति देखने व पूजने पर उससे सत्ताईस लिङ्गों की पूजा की हुई होती है ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि हे सन्मुने ! वहां कौन चार प्रसिद्ध तीर्थ हैं कि जिनमें भलीभांति नहाया हुआ नर सबों के फलको पाता है ॥ ४३ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे महाराज ! यहां पुण्यदायिनी कूपिका है जब दिनकर (सूर्यनारायण) जी कन्याराशि में स्थित होते हैं तब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी व विशेषकर उत्तम अमावास्या दिन में भूमिके मनुष्यों से कीहुई अनेक प्रकारकी श्राद्धोंसे निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्तहुई गयाजी जिसमें भलीभांति टिकती

सर्वेषामेवदेवानां भवेद्दर्शनजंफलम् ॥ ४१ ॥ एकस्मिन्नपिसंदृष्टेपूजितेवानृपोत्तम ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानां पूजातेनकृताभवेत् ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ कानिचत्वारितीर्थानि तत्रमुख्यानिसन्मुने ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वेषांलभतेफलम् ॥ ४३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रास्तिकूपिकापुण्या यस्यांसंश्रयतेगया ॥ कृष्णपक्षचतुर्दश्यां त्वमावास्यादिने शुभे ॥ ४४ ॥ विशेषेणमहाराज कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ निर्विण्णाभूमिलोकानां कृतैःश्राद्धैरनेकधा ॥ ४५ ॥ यस्तस्यां कुरुतेश्राद्धं सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तस्मिन्नहनिराजेन्द्रशतंतारयतेपितॄन् ॥ ४६ ॥ तथातीर्थंद्वितीयन्तु शङ्खतीर्थमितिस्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वानरोयस्तु पश्येच्छङ्खेश्वरन्ततः ॥ ४७ ॥ सर्वेषांफलमाप्नोति माघस्यप्रथमेहनि ॥ तथातन्मामकंतीर्थं तृतीयम्मुख्यताङ्गतम् ॥ ४८ ॥ अत्रस्नात्वातुयःपश्येन्मयासंस्थापितंहरम् ॥ विश्वामित्रेश्वरन्नाम सर्वेषांचफलंलभेत् ॥४९॥ नभस्यस्यासिताष्टम्यां सर्वेषांलभतेफलम् ॥ शक्रतीर्थमितिख्यातं चतुर्थबालमण्डने ॥५०॥

है ॥ ४४।४५ ॥ उस दिन श्रद्धासंयुत जो पुरुष भलीभांति उस कूपिकाके समीप श्राद्ध करता है वह सौ पितरों को तारता है ॥ ४६ ॥ वैसेही शङ्खतीर्थ ऐसा कहाहुआ दूसरा तीर्थहै जो मनुष्य माघ के पहले दिन में उसमें नहाकर तदनन्तर शङ्खेश्वर को देखता है वह सबके फलको प्राप्तहोता है वैसेही मुख्यता को प्राप्त वह तीसरा मेरा तीर्थहै ॥ ४७ । ४८ ॥ इसमें नहाकर जो मनुष्य मुझसे भलीभांति थापेहुये विश्वामित्रेश्वर नामक शिवजी को देखता है वह सब तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ ४९ ॥

व भाद्रपद की अँधेरी अष्टमी में नहाकर सब तीर्थोंके फलको पाताहै व चौथा बालमण्डन में शक्रतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ कुँवार की जो उजेरी अष्टमीमें उस में नहाकर शक्रेश्वरको पूजकर व देखकर सब तीर्थोंके फलको प्राप्तहोता है ॥ ५१ ॥ राजा बोले कि हे महाभाग विप्रजी ! गयाकूपिका से उपजेहुये विधान को मुझ से विस्तार से कहिये क्योंकि-मेरे बड़ी श्रद्धा संस्थित (भलीभांति टिकी) है ॥ ५२ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि जब सूर्य कन्याराशि में प्राप्तहोवैं तब अमावस दिनके प्राप्त होनेपर वहां जो मनुष्य स्थान में उपजे द्विजोंके द्वारा भर्तृयज्ञ की विधि से भक्ति समेत श्राद्ध करता है वह अपने पितरों को तारता है व जो मन्दमनवाला मनुष्य

तत्रस्नात्वार्चयित्वाच शक्रेश्वरमवेक्ष्यच ॥ आश्विनस्यसिताष्टम्यां सर्वेषांलभतेफलम् ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ विधानंवदमेविप्र गयाकूप्याःसमुद्भवम् ॥ विस्तरेणमहाभाग श्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ ५२ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अमावास्यादिनेप्राप्ते तत्रकन्यागतेरवौ ॥ यःश्राद्धंकुरुतेभक्त्यासपितॄंस्तारयेन्निजान् ॥ ५३ ॥ भर्तृयज्ञविधानेन शुद्धैःस्थानोद्भवैर्द्विजैः ॥ भर्तृयज्ञविधिंत्यक्त्वा योन्येनविधिनानरः ॥ ५४ ॥ श्राद्धंकरोतिमूढात्मा विहीनंस्थानजैर्द्विजैः ॥ अन्यस्थानोद्भवैरशुद्धैस्तस्यतद्व्यर्थतांव्रजेत् ॥ ५५॥ वृष्टिःस्यादूषरेयद्वत्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अन्धस्याग्रेयथानृत्यंप्रगीतंबधिरस्यच ॥ ५६॥ तथाचव्यर्थतांयाति अन्यस्थानोद्भवैर्द्विजैः ॥ ब्राह्मणैःकारयेच्छ्राद्धं मूर्खैरपिद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ चतुर्वेदाअपित्याज्या अन्यस्थानसमुद्भवाः ॥ दैवेकर्म्मणिपित्र्येवा सोमपानेविशेषतः ॥ ५८ ॥ देशान्तरगतोयस्तु श्राद्धंचकुरुतेनरः ॥ वैश्वानरपुरःस्थेन कार्य्यंनान्यद्विजस्यच ॥ ५९ ॥ दक्षिणाभोजनंदेयं स्थानिकानांद्विजादपि ॥ प

भर्तृयज्ञ की विधिको छोड़कर स्थान में उत्पन्न द्विजों से रहित श्राद्धको अन्य स्थान में उपजेहुये शुद्ध ब्राह्मणों के द्वारा करता है उसकी वह श्राद्ध वैसेही व्यर्थता को प्राप्तहोती है ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ जैसे कि ऊषर में वर्षा व्यर्थ होतीहै यह मैंने सत्य कहाहै अन्धके आगे जैसे नाचना व बधिरके अगाड़ी गाना व्यर्थ होताहै॥५६॥वैसेही अन्यस्थानमें उपजे हुये ब्राह्मणोंसे श्राद्ध व्यर्थ होतीहै हे द्विजोत्तमो ! वहां के मूर्खभी ब्राह्मणोंसे श्राद्ध करावै॥५७॥व चारों वेदोंके जाननेवाले भी अन्यस्थान में उपजेहुये ब्राह्मण देवतावाले व पितरोंवाले कर्म व विशेषकर सोमपानमें त्यागने योग्यहैं॥५८॥और जो पुरुष दूसरे देशको गयाहो उसको वैश्वानरपुरमें टिकेहुये ब्राह्मणसे श्राद्ध कराना

चाहिये और स्थानवाले ब्राह्मणों के मध्यमें ब्राह्मण से भी अन्य ब्राह्मणको दक्षिणा व भोजन न देना चाहिये हे नृपोत्तम ! जैसे मदिरा का एक बूंद गिरने से पञ्च-गव्यका सम्पूर्ण घट दूषित होजाता है वैसेही बहुतोंके बीचमें एकभी बाहरी ब्राह्मण से विनाश करदेताहै ॥ ५६ । ६० । ६१ ॥ इस लिये गुणियों के भी न मिलने में स्थानवाले कुलीन को पाकर सब उपाय से शुद्ध ब्राह्मण को लावै ॥ ६२ ॥ और हीनअङ्गोंवाला व दूसरा अधिक अङ्गोंवाला पुरुष दूषित है जो अपनी शुद्धि चाहै उसको बड़ेउपाय से कन्यादान व श्राद्धमें सदैव कुलीन ब्राह्मण को लाना चाहिये यदि हे नृपोत्तम ! वह भी शुद्धिसंयुत होवै ॥ ६३ । ६४ ॥ जैसे वृक्षोंमें पीपल व

अगव्यस्यसम्पूर्णो यथाकुम्भःप्रदुष्यति ॥ ६० ॥ बिन्दुनैकेनमद्यस्य पतितेनन्नृपोत्तम ॥ एकेनापिचबाह्येन बहुमध्ये विनाशयेत् ॥ ६१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धंब्राह्मणमानयेत् ॥ स्थानिकंकुलिकंप्राप्य अलाभेगुणिनामपि ॥ ६२ ॥ हीनाङ्गमधिकाङ्गंच दूषितंचतथापरम् ॥ कन्यादानेतथाश्राद्धे कुलीनोब्राह्मणस्सदा ॥६३॥ आहर्तव्यःप्रयत्नेनय इच्छे च्छुद्धिमात्मनः ॥ सोपिशुद्धिसमायुक्तो यदिस्यान्नृपसत्तम ॥ ६४ ॥ वृक्षाणांचयथाश्वत्थो देवतानांयथाहरिः ॥ श्रेष्ठःस्थानजविप्राणां तथाचाष्टकुलोद्भवः ॥ ६५ ॥ आयुधानांयथावज्रं सरसांसागरोयथा ॥ श्रेष्ठःस्थानजविप्राणां तथाष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६६ ॥ उच्चैःश्रवायथाश्वानां गजानांशक्रवाहनः ॥ यथास्थानजविप्राणां तथाष्टकुलसम्भवः ॥ ६७ ॥ नदीनांचयथागङ्गा सतीनांचाप्यरुन्धती ॥ तद्वत्स्थानजविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६८ ॥ ग्रहाणांभास्करोयद्वन्नक्षत्राणांनिशाकरः ॥ तद्वत्स्थानजविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६९ ॥ पर्वतानांयथामेरुर्द्विपदानांद्विजोत्त

जैसे देवोंमें विष्णुजी उत्तम हैं वैसेही स्थान में उपजेहुये ब्राह्मणों के बीच अष्टकुल में उत्पन्न द्विजश्रेष्ठ है ॥ ६५ ॥ जैसे अस्त्रोंमें वज्र व जैसे तड़ागों में समुद्र श्रेष्ठहै वैसेही स्थानमें उपजे हुये ब्राह्मणों में अष्टकुलवाला कहागया है ॥ ६६ ॥ जैसे घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा व हाथियों में इन्द्रका वाहन (ऐरावत) है वैसेही स्थानजद्विजों के बीच अष्टकुलमें उपजाहुआ द्विजहै ॥ ६७ ॥ जैसे नदियों में गङ्गा व पतिव्रताओं में अरुन्धती (वसिष्ठ की स्त्री) हैं वैसेही स्थानज ब्राह्मणों के बीचमें आठ कुलमें उपजा ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा है ॥ ६८ ॥ जैसे ग्रहों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा है वैसेही स्थान में उपजेहुये ब्राह्मणों के मध्यमें आठकुलवाला कहाहै ॥ ६९ ॥

पर्वतों में जैसे सुमेरु व दो पैरवालों में द्विजोत्तम श्रेष्ठहै वैसेही स्थान में उत्पन्न ब्राह्मणोंके बीच अष्टकुलमें उपजाहुआ श्रेष्ठहै ॥ ७० ॥ जैसे पक्षियों में गरुड़ व वनवासियों में सिंह है वैसेही स्थानज ब्राह्मणों के बीच अष्टकुलवाला श्रेष्ठहै ॥ ७१ ॥ ऐसा जानकर हे राजन् ! श्राद्ध व यज्ञ और विशेषकर कन्यादान में बड़े उपाय से अष्टकुल में उपजाहुआ युक्त करनेयोग्यहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! वेदीकी जड़पै प्राप्त हुये अष्टकुलवाले द्विजको भलीभांति देखकर उसके पिता नाचते हैं व पितामह तृप्तहोते हैं ॥ ७३ ॥ व प्रसन्न होतेहुये फिर कहते हैं कि दौहित्र (कन्याका पुत्र) हम लोगोंको अपसव्य के द्वारा जल कुश व तिलोंसे संयुत क्या देवैगा ॥ ७४ ॥

मः ॥ स्थानजानान्तुविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलसम्भवः ॥ ७० ॥ पक्षिणांगरुडोयद्वत्सिंहोरण्यनिवासिनाम् ॥ स्थानजानान्तुविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ७१ ॥ एवंज्ञात्वाप्रयत्नेन श्राद्धेयज्ञेचपार्थिव ॥ कन्यादानेविशेषेण योज्यश्चाष्टकुलोद्भवः ॥ ७२ ॥ नृत्यन्तिपितरस्तस्य तृप्यन्तिचपितामहाः ॥ वेदीमूलंसमालोक्य प्राप्तमष्टकुलंनृप ॥ ७३ ॥ पुनर्वदन्तिसंहृष्टाः किमस्माकंप्रदास्यति ॥ दौहित्रश्चापसव्येनजलदर्भतिलान्वितम् ॥ ७४ ॥ राजोवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं श्रेष्ठश्चाष्टकुलोद्भवः ॥ सर्वेषांनागराणांच तत्किंवदमहामते ॥ ७५ ॥ नह्यत्रकारणंस्वल्पं भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यत्त्वयोदाहृतंवचः ॥ ७६ ॥ अन्येपिनागरास्सन्ति वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ श्राद्धार्हायज्ञयोग्याश्च कन्यायोग्याविशेषतः ॥ ७७ ॥ परन्तेस्थापिताराजन् पुर्य्यामिन्द्रेणतत्रच ॥ प्रधानत्वेनसर्वेषां नागरैश्चापिकृत्स्नशः ॥ ७८ ॥ तेनतेगौरवंप्राप्ताः स्थानेत्रैवविशेषतः ॥ तस्माच्छ्राद्धंप्रकर्तव्यं विप्रैश्चाष्टकुलोद्भवैः ॥७९॥

राजा बोले कि हे महामते ! जो आपने यह कहा कि सब नागरों के मध्य में अष्ट कुलमें उपजाहुआ श्रेष्ठ है वह क्या है उसको कहिये ॥ ७५ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसमें थोड़ा हेतु न होगा विश्वामित्रजी बोले कि हे महाराज ! तुमने जो वचन कहा है यह सत्य है ॥ ७६ ॥ कि वेदों व वेदाङ्गों के पार जानेवाले और भी नागर श्राद्धके योग्य व यज्ञयोग्य और विशेषकर कन्या के योग्य हैं ॥ ७७ ॥ परन्तु इन्द्र व समस्त नागरों ने भी सबकी प्रधानता से उस पुरीमें उनको थापा है ॥ ७८ ॥ व उसी कारण विशेषता से इसी स्थान में वे गौरवताको प्राप्त हुये हैं इस लिये अष्टकुल में उपजे हुये ब्राह्मणों के द्वारा श्राद्ध करना चाहिये ॥ ७९ ॥

और उनके अलाभमें नागरसे उपजेहुये ब्राह्मणोंकेद्वारा करनाचाहिये अन्य स्थानमें उपजेहुये चतुर्वेदी भी द्विजोंसे नहीं॥८०॥क्योंकि भर्तृयज्ञ महात्माने यह मर्यादा कियाहै कि नागर द्विजको छोड़कर यहां जो अन्यके द्वारा श्राद्ध या यज्ञकरैगा उसका व्यर्थ होजायगा राजा बोले कि मध्यदेशमें उत्पन्न व अन्य तीर्थोंमें उपजेहुये अन्य अनेक प्रकार के विप्र वेदवेदांगके पारगामी व शान्तहैं वे विशेषकर श्राद्ध व यज्ञमें भर्तृयज्ञ से त्याग कियेगये ॥ ८१।८२।८३ ॥ और हीन अंगोंवाले व अधिकाङ्गी, दुर्निग्न (जिसके माता व पिता दोनों पक्षोंमें तीन पुश्तियोंतक वेद व अग्निका नाशहो) व बन्दर सरीखे दांतोंवाले व निन्दित नखोंवाले व कोढ़से युक्त व मूर्ख भी और जो

अप्राप्तौचैवतेषान्तु कार्य्यंनागरसम्भवैः ॥ नान्यस्थानसमुद्भूतैश्चातुर्वेदैरपिद्विजैः ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञेनमर्य्यादाकृताह्येषा महात्मना ॥ मुक्त्वातुनागरंविप्रं योन्येनात्रकरिष्यति ॥ ८१ ॥ श्राद्धंवायदिवायज्ञं व्यर्थंतस्यभविष्यति ॥ राजोवाच ॥ सन्त्यन्येविविधाविप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ८२ ॥ मध्यदेशोद्भवाश्शान्तास्तथान्यत्तीर्थसम्भवाः ॥ भर्तृयज्ञेनतेत्यक्ताःश्राद्धेयज्ञेविशेषतः ॥ ८३ ॥ हीनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्च दुर्निग्नाःश्यावदन्तकाः ॥ कुनखाःकुष्ठसंयुक्ता मूर्खाश्चापिविगर्हिताः ॥ ८४ ॥ श्राद्धार्हास्सूचितास्तेन सर्वंमेसंशयंवद ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ कीर्तयिष्येनरव्याघ्र कारणानिबहूनिच ॥ ८५ ॥ चमत्कारस्यपत्न्याश्च दानेनपतितायतः ॥ स्त्रीणांप्रतिग्रहेणैव विप्रेषुप्रोषितेषुच ॥ ८६ ॥ पृथक्त्वंचततोजातं बाह्याभ्यन्तरसंज्ञकम् ॥ दुर्वाससाततःशप्ता रुष्टेनैवाहिनायथा ॥ ८७ ॥ विद्याधनाभिमानेन शापेनपतितास्सदा ॥ कुशेराज्यंगतेराजन् राक्षसानांमहाभयम् ॥ ८८ ॥ प्रजाभिर्विदितंसर्वं तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥ विभीषणस्यलङ्कायां दूतश्चप्रे

निन्दित हैं ॥ ८४ ॥ वे उन भर्तृयज्ञ से श्राद्धके योग्य सूचित कियेगये इस सब मेरी सन्देह को कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नरनायक ! बहुतेरे कारणोंको कहूँगा ॥ ८५ ॥ जिस लिये कि ब्राह्मणों के विदेश जानेपर चमत्कार की स्त्री के दानके कारण स्त्रियोंके प्रतिग्रह (दानलेने) हीसे पतित (धर्मभ्रष्ट) होगये ॥८६॥ उसी कारण बाहरी व भीतरी संज्ञावाली भिन्नताहुईहै तदनन्तर जैसे सांप वैसेही क्रोधित दुर्वासाजी से शापित हुये ॥ ८७ ॥ और विद्या व धनके गर्वके कारण शाप से सदैव पतित हुये हे राजन् ! कुशको राज्य पै प्राप्त होने पर उन महात्मा कुश राजाको प्रजाओं के द्वारा राक्षसों का सब महाडर विदित (प्रकट) हुआ व उस

समय लङ्कामें विभीषणके निकट पठायागया ॥ ८८ । ८९ ॥ रामके चरितको याद करते हुये उसने प्रणामकर प्रजाओं के डरसे उपजी हुई सब कुशजी की आज्ञाको निवेदन किया ॥९०॥ व उन विभीषण की आज्ञासे उसने लङ्कापुरीको देखा व सब उपद्रवके करनेवाले राक्षस दशों दिशाओं को चलेगये ॥ ९१ ॥ व बड़े डरसे गन्धर्वों के लोकोंको चलेगये व विभीषण के डरसे वे वहां टिकने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९२ ॥ व कुशही की आज्ञा से बड़े डर से वे उस पृथ्वीमें बहुत से स्थानोंको भी भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ९३ ॥ व ब्राह्मणों के रूपोंको बनाकर वहां भलीभांति आये परन्तु द्विजोंकी महिमा से बीचमें टिकने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९४ ॥ तदनन्तर

षितस्तदा ॥ ८९ ॥ सर्वंनिवेदयामास प्रजानांभयसम्भवम् ॥ अभिवन्द्यकुशादेशं रामस्यचरितंस्मरन् ॥ ९० ॥ पुरीं विलोकयामास सलङ्कांतस्यशासनात् ॥ उपप्लवस्यकर्तारोगतास्सर्वेदिशोदश ॥ ९१ ॥ गन्धर्वाणांचलोकंहि भयेनम हतागताः ॥ स्थातुंतत्रनशक्तास्ते विभीषणभयेनच ॥ ९२ ॥ पृथिव्यांसमनुप्राप्ताः स्थानान्यपिबहूनिच ॥ भयेनमह तातत्र कुशस्यैवतुशासनात् ॥ ९३ ॥ ब्राह्मणानांचरूपाणिकृत्वातत्रसमागताः ॥ ब्राडवानांमहिम्नाच मध्येस्थातुन्न शक्नुते ॥ ९४ ॥ पतितानांचसंस्थानां चमत्कारपुरङ्गताः ॥ मायाविशारदैस्तैश्च धनेनविद्ययाततः ॥ ९५ ॥ अर्द्धदग्धं ततस्तैस्तु तेषांमध्येस्थितैश्चतैः ॥ ततःप्रभृतितेसर्वे राक्षसत्वंप्रपेदिरे ॥ ९६ ॥ क्रूराण्यपिचकर्म्माणि कुर्वन्तिचपदेप दे ॥ ततस्तेसर्वथाराजन्वर्ज्जनीयाःप्रयत्नतः ॥ ९७ ॥ श्राद्धेयज्ञेनरव्याघ्र नरकेपातयन्तिच ॥ अन्यच्चदूषणंतेषां कीर्त यिष्येतवानघ ॥ ९८ ॥ त्रिजातःस्थापितोराजन्सर्पाणांनागराशनात् ॥ नागरत्वंततोजातं चमत्कारपुरस्यतु ॥ ९९ ॥

भलीभांति टिकेहुये पतितों के मध्य चमत्कारपुरको गये तदनन्तर धन व विद्याके कारण माया में प्रवीण उन सबोंसे व उनके बीचमें बैठेहुये उन राक्षसों के सबब से आधा ज्ञान भस्महोगया तबसे लगाकर वे सब राक्षसता को प्राप्तहुये ॥ ९५।९६॥ और पग २ पै क्रूरभी कर्मोंको करते हैं उस कारण हे राजन् ! वे सर्वदा श्राद्ध व यज्ञमें बड़े उपाय से वर्जित करने योग्य हैं ॥ ९७ ॥ क्योंकि हे नरनायक ! वे नरक में गिराते हैं हे अपाप ! और भी उनके दूषणको तुमसे कहूंगा ॥ ९८ ॥ हे राजन् !

सर्पोंको नगरके खाजानेसे त्रिजात स्थापित हुआहै और उसी कारण चमत्कारपुरकी नगरताहुई ॥९९॥ वहां विशेषतासे सबके त्रिजातत्व (तीनसे पैदाहोना) हुआ है
इन कारणों से वे भर्तृयज्ञ से वर्जित कियेगये ॥ १०० ॥ व फिर कारण है कि उन के छूनेसे भी पवित्रताका भागी नहीं होताहै क्योंकि चाण्डाल से उपजीहुई बड़ी
भारी कुम्भकता प्राप्तहुईहै ॥ १ ॥ राजा बोले किहे विप्रजी ! इस कारणको प्रसन्नतासे कहिये तुमको स्थावर जंगमवाले संसार का निश्चयकर ज्ञान है ॥ २ ॥ विश्वा-
मित्रजी बोले कि इस विषय में कथा के मध्य पहले वृत्तान्त को तुमसे कहूंगा जो कि द्विजोत्तमों से पूंछे हुये भर्तृयज्ञ ने कहा है ॥ ३ ॥ पुरातनसमय वर्धमान

त्रिजातत्वंचसर्वेषां जातंतत्रविशेषतः ॥ एतेभ्यःकारणेभ्यश्च भर्तृयज्ञेनवर्जिताः ॥ १०० ॥ पुनश्चकारणंतेषांस्पर्शाद
पिनशुद्धिभाक् ॥ कुम्भकत्वंचसम्प्राप्तं महच्चण्डालसम्भवम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ एतच्चकारणंविप्र कथयस्वप्रसादतः ॥
स्थावरस्यचरस्यैव जगतोज्ञानमस्तिते ॥ २ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तंकथान्तरम् ॥ भर्तृय
ज्ञेनयत्प्रोक्तं पृष्टेनब्राह्मणोत्तमैः ॥ ३ ॥ वर्द्धमानपुरेपूर्वमासीदन्त्यजजातिजः ॥ चण्डालःकुम्भकोनाम निर्दयःपाप
कर्म्मकृत् ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्यपुत्रोबभूवह ॥ कुरूपस्यापिरूपाढ्यः पूर्वकर्म्मप्रभावतः ॥ ५ ॥ पिङ्गाक्षस्य
सुकृष्णस्य यवमध्यस्यपार्थिव ॥ दक्षस्सर्वेषुकृत्येषु सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६ ॥ सवृद्धिंद्रुतमभ्येति शुक्लपक्षेयथोडुरा
ट् ॥ तथासौशंसमानस्तु सर्वलोकैस्सुरूपभाक् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाकुटुम्बकंनित्यं वैराग्यंपरमंगतः ॥ गतोदेशान्तरंदुःखादृभ्र
ममाणइतस्ततः ॥ ८ ॥ चमत्कारपुरंप्राप्तो द्विजरूपंसमाश्रितः ॥ सस्नातिसर्वतीर्थेषु भिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ९ ॥ एत

पुरमें चाण्डाल जाति में उपजाहुआ अतिनिर्दयी व पापकर्मकारी कुम्भकनामक चाण्डाल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! किसी समय पिंगलनेत्रवाले
व अतिकाले और यव के समान मध्य (कटि) वाले उस कुरूप के भी पूर्वकर्मके प्रभाव से रूपसंयुत पुत्र पैदाहुआ जो कि समस्त कार्यों में दक्ष (चतुर) व सब
लक्षणों से लक्षित था ॥ ५।६ ॥ जैसे कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा वैसेहीं वह शीघ्रही बढ़ती को प्राप्त होता था व वैसेही सब मनुष्योंसे वह स्वरूपभागी प्रशंसित होता
था ॥ ७ ॥ नित्यही अपने परिवार को देखकर परम वैराग्य को प्राप्त इधर उधर घूमताहुआ वह दुःख से अन्य देश को चलागया ॥ ८ ॥ व ब्राह्मण के रूप में भली

समस्त तीर्थों में स्नान करता था ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें हे राजन्! वहां
भांति टिका हुआ वह चमत्कारपुरको प्राप्तहुआ और भिक्षान्न से कियेहुये भोजनवाला वह पारगामी था उसके वंश में दुगुने
द्विजजातिवाला नागर ब्राह्मण सुभद्र नामक था जो कि प्रशंसित व्रतोंवाला व छन्दोग्य गोत्र में प्रसिद्ध तथा वेदों व वेदांगों का भी व कुल-
दांतों से संयुत एक कन्या थी ॥ १०। ११ ॥ जो कि भयङ्कर तीन स्तनों से उपलक्षित व बड़ी नाभि से संयुत थी हे राजन्! निर्धनी भी व अतिदुष्ट
हीन भी कोई पुरुष दीजाती हुई भी उस कन्या को नहीं ग्रहण करता था क्योंकि वह छह महीने के बीच में पति को खाजाती है ॥ १२। १३ ॥ कि जिसके दुगुने

॥ १० ॥ नागरोविप्रजातीयो वे
स्मिन्नेवकालेतु ब्राह्मणस्संशितव्रतः ॥ छन्दोग्यगोत्रविख्यातस्सुभद्रोनामपार्थिव ॥ दरिद्रो
दवेदाङ्गपारगः ॥ तत्रास्तितस्यसन्ताने कन्यैकाद्विगुणैरदैः ॥ ११ ॥ तथात्रिभिस्स्तनैरौद्रैः पृथ्वावर्तकसंयुता
पिसुदुष्टोपि कुलहीनोपिपार्थिव ॥ १२ ॥ दीयमानामपिचतां नप्रगृह्णातिकश्चन ॥ यद्भक्षयतिभर्तारं षण्मासाभ्यन्तरे
हिसा ॥ १३ ॥ यस्यास्स्युर्द्विगुणादन्ता एतत्सामुद्रिकाजगुः ॥ त्रिस्तनीकन्यकायातु श्वशुरस्यकुलंस्वयम् ॥ १४ ॥ सा
धूर्तानास्तिसन्देहस्तस्मात्तांपरिवर्जयेत् ॥ अथतांवृद्धिमापन्नां दृष्ट्वाविप्रस्सुभद्रकः ॥ १५ ॥ चिन्ताचक्रेसमारूढोन
शान्तिमधिगच्छति ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामि कथमस्याःपतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ नकश्चित्प्रतिगृह्णाति प्रार्थितोपिमुहुर्मुहुः॥
दरिद्रोव्याधितोवापि वृद्धोपिब्राह्मणोहिसः ॥ १७ ॥ स्मृतौयस्मादिदंप्रोक्तं कन्यार्थेप्राग्महर्षिभिः ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी
नववर्षाचरोहिणी ॥ १८ ॥ दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ माताचैवपिताचैव ज्येष्ठोभ्रातातथैवच ॥ १९ ॥

दांत होते हैं यह सामुद्रिक जाननेवालों ने कहा है और तीन कुचोंवाली जो कन्या होतीहै वह धूर्ता आपही श्वशुर के कुल को खा जाती है इसमें सन्देह नहीं
है उसी कारण उसको वर्जित करै इसके अनन्तर बढ़ती को प्राप्त हुई उस कन्या को देखकर वह सुभद्रक द्विज ॥ १४।१५ ॥ चिन्तारूपी चक्र पै चढ़ाहुआ शांतिको
न प्राप्त होताथा कि मैं क्या करूं कहां जाऊं कैसे इसका पति होवै ॥१६॥ दरिद्री व रोगी भी व बूढ़ा भी वह कोई ब्राह्मण बार २ प्रार्थना कियाहुआ भी नहीं ग्रहण करता
है ॥ १७ ॥ जिसलिये कि पहले महर्षियों ने कन्या के लिये स्मृति (धर्मशास्त्र) में यह कहाहै कि आठ वर्षवाली गौरी व नव वर्षवाली रोहिणीसंज्ञक होती है ॥ १८ ॥

और दश वर्षवाली कन्या होवै है इसके उपरान्त रजस्वला होती है व माता, पिता व बड़ा भाई ॥ १६ ॥ रजस्वला कन्या को देखकर वे तीनों नरक को जाते हैं इसभांति उसके चिन्तन करते हुये द्विजरूपधारी वह चाण्डाल ॥ २० ॥ भिक्षा के लिये उसके घर प्राप्त हुआ उन महात्मा ने देखा व उस प्रकारके रूप को देखकर आश्चर्यही से पूछा ॥ २१ ॥ कि हे भिक्षुक ! तुम यहां कहासे प्राप्त हुये हो और कहां जावोगे व ऐसे अतिकल्याणरूप होकर किस कारण माधुकरी वृत्ति याने भिक्षुकों जीविका पै प्राप्तहो ॥ २२ ॥ तुम्हारा क्या गोत्र है व कितना प्रवर है यह मुझ से कहो वह बोला कि गौड़देशवाला भोजकट नाम से प्रसिद्ध

त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य सोन्त्यजोद्विजरूपधृक् ॥ २० ॥ भिक्षार्थंतद्गृहं प्राप्तो दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ पृष्टश्चविस्मयेनैव दृष्ट्वारूपंतथाविधम् ॥ २१ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः क्वयास्यसिचभिक्षुक ॥ ईदृग्भव्यतरोभूत्वा कस्मान्माधुकरीङ्गतः ॥ २२ ॥ किंगोत्रंतवमेब्रूहि कतमःप्रवरश्चते ॥ सोब्रवीद्गौडदेशीयं स्थानंमेसुमहत्तरम् ॥ २३ ॥ नाम्नाभोजकटंख्यातं नानाद्विजसमाश्रितम् ॥ तत्रासीन्माधवोनामब्राह्मणोवेदपारगः ॥ २४ ॥ वसिष्ठगोत्रेविख्यात एकप्रवरसूचितः ॥ तस्याहंतनयोनाम्ना चन्द्रप्रभइतिस्मृतः ॥ २५ ॥ ततोहमष्टमेवर्षे यदाव्रतधरःस्थितः ॥ तदापञ्चत्वमापन्नः पितामेवेदपारगः ॥ २६ ॥ मातामेसहतेनैव प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ ततोवैराग्यमापन्नो निष्क्रान्तोहंनिजालयात् ॥ २७ ॥ तीर्थानिभ्रममाणोत्र सम्प्राप्तस्सुपुरेतव ॥ अधुनासम्प्रयास्यामि प्रभासंक्षे

मेरा स्थान है जो कि बड़ाभारी व अनेक भांति के ब्राह्मणों से समाश्रित है वहां वेदों का पारगामी माधव नामक ब्राह्मण हुआ है ॥ २३ । २४ ॥ जो कि एक प्रवर से सूचित व वसिष्ठ गोत्रमें प्रसिद्ध था नाम से चन्द्रप्रभ ऐसा कहा हुआ मैं उसका पुत्र हूं ॥ २५ ॥ तदनन्तर जब मैं आठवें वर्ष व्रतधारी स्थित हुआ याने जब मेरा जनेऊ होचुका तब वेद के पारगामी मेरे पिता जी मृत्यु को प्राप्त होगये ॥ २६ ॥ व मेरी माता उन्हीं के साथ अग्नि में पैठगई तदनन्तर वैराग्य को प्राप्त मैं अपने घर से निकला ॥ २७ ॥ और तीर्थों में घुमताहुआ मैं इस तुम्हारे अति उत्तम पुर में भलीभांति प्राप्त हुआ व इस समय उत्तम प्रभास क्षेत्र को जाऊंगा जहां कि

सोमेश्वर देवजी कैलास को छोड़कर आये हैं हे द्विजोत्तम ! मैंने वेद व शास्त्रको नहीं पढ़ा है ॥ २८ । २९ ॥ उसी कारण तीर्थयात्रा के प्रसंग से मैं भिक्षाटन करता हूं विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर चित्त में चिन्तन किया ॥ ३० ॥ कि उत्तम देशवाला व अतिकल्याणरूप आकारवाला यह ब्राह्मण यदि मेरी कन्या को ग्रहण करै तो मैं तबतक देऊं ॥ ३१ ॥ कि जबतक वह दुष्टा विरूपवती रजस्वला न होवै और मेरे समस्त वंश को न नाश करै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर स्त्री के साथ सलाह करके उस म्लेच्छ (चाण्डाल) से कहा हे द्विज ! यदि मेरी कन्या को लेवो तो मैं तुमको देऊं ॥ ३३ ॥ और सदैव दोनों का भरण

त्रमुत्तमम् ॥ २८ ॥ यत्रसोमेश्वरोदेवस्त्यक्त्वाकैलासमागतः ॥ नमयापठितोवेदो नचशास्त्रंद्विजोत्तम ॥ २९ ॥ ती
र्थयात्राप्रसङ्गेन तेनभिक्षांचराम्यहम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिन्तयामासचेतसि ॥ ३० ॥ ब्राह्मणो
यंसुदेशीयस्तथाभव्यतमाकृतिः ॥ यदिगृह्णातिमेकन्यां तदास्मैप्रददाम्यहम् ॥ ३१ ॥ यावद्रजस्वलानैव जायतेसावि
रूपिता ॥ कृत्स्नंक्षपयतिक्षिप्रं नैववंशंममाधमा ॥ ३२ ॥ ततःप्रोवाचतंम्लेच्छं संमन्त्र्यसहभार्यया ॥ यदिगृह्णासिमे
कन्यां तवयच्छाम्यहंद्विज ॥ ३३ ॥ भरणंपोषणंद्वाभ्यां करिष्यामिसदैवहि ॥ तच्छ्रुत्वाहर्षितःप्राह सोन्त्यजस्तंद्विजो
त्तमम् ॥ ३४ ॥ तवादेशंकरिष्यामि यच्छमेकन्यकांद्विज ॥ तथेत्युक्त्वाततस्तेन तस्मैदत्तानिजासुता ॥ ३५ ॥ गृह्यो
क्तेनविधानेन विवाहोविहितस्ततः ॥ ततोददौधनंधान्यं गृहंक्षेत्रंचगोधनम् ॥ ३६ ॥ तस्मैतुष्टिसमायुक्तो मन्यमानः
कृतार्थताम् ॥ अथसोपिचतांप्राप्य विलासानकरोद्बहून् ॥ ३७ ॥ खाद्यैःपानैस्सुवस्त्रैश्च गन्धमाल्यैर्विभूषितैः ॥ परंस

पोषण करूंगा उसको सुनकर प्रसन्न होता हुआ वह चाण्डाल उस द्विजोत्तम से बोला ॥ ३४ ॥ कि हे द्विज ! तुम्हारी आज्ञा करूंगा मुझ को कन्या दीजिये ऐसा ही होगा यह कहकर तदनन्तर उस ब्राह्मणने अपनी कन्याको उसके लिये दिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर गृह्यसूक्त में कहीहुई विधि से विवाह किया गया उसके उपरान्त कृतार्थता को मानते हुये प्रसन्नतासंयुक्त उस ब्राह्मण ने उसके लिये धन, अन्न, घर, खेत व पशुवर्ग को दिया इसके अनन्तर उस कन्या को पाकर उसने भी

भोजनों, पानों व वसनों और गन्ध, पुष्प व अलङ्कारों से बहुत भोग विलासोंको किया परन्तु प्रायः वह जिस किसी मार्ग से जाता था ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ वहां शब्द समेत कूकुर पीछे चलते थे व विशेषकर अन्य चाण्डालोंकी पद्धति (मार्ग) के पीछे चलते थे ॥ ३९ ॥ और यदि कहीं वेदाभ्यास में तत्पर होता था तो उसी तथा उस दुर्बुद्धि के मुखसे रुधिर गिरता था ॥ ४० ॥ इसी अवसरमें सबही मनुष्यों ने बड़ी शङ्का किया व आपस में आकर कहा कि यह निस्सन्देह चाण्डाल है ॥ ४१ ॥ क्योंकि शब्द करते हुये कूकुर उसके पीछे जाते हैं उनके उस वचन को सुनकर उसे सत्य मानताहुआ बड़े दुःख से संयुत सुभद्र भी चिन्ता में तत्पर

व्रजतिप्रायो येनमार्गेणकेनचित् ॥ ३८ ॥ सारमेयास्सशब्दाश्च पृष्ठतोनुव्रजन्तिवै ॥ अन्येषामन्त्यजात्यानां पद्ध तिश्चविशेषतः ॥ ३९ ॥ वेदाभ्यासपरश्चैव यदिसंजायतेकचित् ॥ रक्तंपततिवक्रेण तत्क्षणात्तस्यदुर्मतेः ॥ ४० ॥ एत स्मिन्नन्तरेलोकः सर्वएवप्रशङ्कितः ॥ अब्रवीच्चमिथोभ्येत्यचण्डालोयमसंशयम् ॥ ४१ ॥ यतस्तत्पृष्ठतोयान्ति सार मेयास्सुनिःस्वनाः ॥ सुभद्रोपिचतत्तेषां श्रुत्वाचिन्तापरोभवत् ॥ ४२ ॥ मन्यमानश्चतत्सत्यं दुःखेनमहतान्वितः ॥ नू नमन्त्यजजातीयो भविष्यतिसुतापतिः ॥ ४३ ॥ ज्ञायतेचेष्टितैस्सर्वैर्यथायंजल्पतेजनः ॥ एवंरात्रिदिनंतस्य चिन्तया नस्यभूपते ॥ ४४ ॥ लोकापवादयुक्तस्य कियान्कालोभ्यवर्तत ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते आयाताद्विजसत्तमाः ॥ ४५ ॥ मध्यगेनसमायुक्ता ब्रह्मस्थानंसमागताः ॥ तस्यशुद्धिकृतेप्रोचुर्येन शङ्काप्रणश्यति ॥ ४६ ॥ अथोचुस्तंद्विजश्रेष्ठा ब्र ह्मस्थानस्यमध्यगम् ॥ मध्यगस्यतुवक्रेण विवर्णवदनंस्थितम् ॥ ४७ ॥ कुलंगोत्रंचत्वंब्रूहि प्रवरांश्चविशेषतः ॥ स्था

हुआ कि निश्चयकर कन्याका पति चाण्डाल जातिवाला होगा ॥ ४२ । ४३ ॥ क्योंकि जिसप्रकार ये मनुष्य कहते हैं वैसाही समस्त व्यवहारों से जान पड़ता है हे भूपते ! मनुष्य के अपवाद (निन्दा) से युक्त उस ब्राह्मण को इसप्रकार चिन्तन करते हुये कुछ काल व्यतीत हुआ अन्य दिन प्राप्त होने पर द्विजोत्तम आये ॥ ४४ । ४५ ॥ व मध्यवर्ती से संयुक्त ब्रह्मस्थान को भलीभांति आये हुये वे उसकी शुद्धि के लिये बोले कि जिस से शङ्का नाश होजावे ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्म-स्थान के बीच में प्राप्त व विवर्ण (रंगहीन) मुखवाले स्थित उस से द्विजोत्तमों ने मध्यवर्ती के मुखद्वारा कहा ॥ ४७ ॥ कि तुम द्विजों के कुल, गोत्र व विशेषता

से प्रवरों व स्थान, व देश को कहो कि जिससे शुद्धि दीजाती है ॥ ४८ ॥ इस के अनन्तर पसीना संयुक्त मुखवाले व नीचे नयनवाले और अञ्जलियों को किये कांपते हुये इस ने गद्गदी वाणी से यह कहा ॥ ४९ ॥ कि गर्भ से लगाकर मेरे आठवें वर्ष में मेरे पिता जी मृत्युको प्राप्त हुये उसी कारण तदनन्तर मेरी वह पतिव्रता माता उसको भलीभांति लेकर ॥ ५० ॥ व दुःखित और दीन मुझ को छोड़कर अग्नि में पैठ गई और वैराग्य को प्राप्त होताहुआ मैं तीर्थयात्रा में भलीभांति आश्रित हुआ ॥ ५१ ॥ पिता के दुःख से और एकअवस्थावाले बालकों के साथ मैंने लड़कपन में वेद नहीं पढ़ा व शास्त्र नहीं निरूपण किया ॥ ५२ ॥ व

नंदेशंचविप्राणां येनशुद्धिःप्रदीयते ॥ ४८ ॥ अथासौवेपमानस्तु प्रस्विन्नवदनस्तथा ॥ अधोदृष्टिरुवाचेदं गद्गदंविहिताञ्जलिः ॥ ४९ ॥ गर्भाष्टमेपितामेवै वर्षेमृत्युंगतस्ततः ॥ ततस्सातंसमादाय जननीमेपतिव्रता ॥ ५० ॥ मान्त्यक्त्वा दुःखितंदीनं प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ अहंवैराग्यमापन्नस्तीर्थयात्रांसमाश्रितः ॥ ५१ ॥ बालभावेपितुर्दुःखाद्वयस्यैरपरैस्सह ॥ नमयापठितोवेदो नचशास्त्रंनिरूपितम् ॥ ५२ ॥ तीर्थयात्रापरोहञ्च समायातोभवत्पुरम् ॥ अभद्रेणसुभद्रेण श्वशुरेणदुरात्मना ॥ ५३ ॥ एतज्जानाम्यहंविप्रा गोत्रंवासिष्ठमेवमे ॥ अथैकःप्रवरोदेशो गौडोमधुपुरंपुरम् ॥ ५४ ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुर्यस्यनोज्ञायतेकुलम् ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या घटद्वारेणकेवला ॥ ५५ ॥ सत्वंघटंसमारुह्य ब्राह्मणार्थंचकेवलम् ॥ शुद्धिंप्राप्यततोभोगान् भुङ्क्ष्वात्रस्थोपिकेवलान् ॥ ५६ ॥ सोब्रवीत्साहसंकृत्वा सर्वानेवद्विजोत्तमान् ॥ प्रतिगृह्णाम्यहंकालं तप्तमायसमेववा ॥ ५७ ॥ प्रविशामिहुताशंवा भक्षयिष्याम्यहंविषम् ॥ किंपुनर्घटादिव्यंच क्रियमा

तीर्थयात्रा में परायण मैं आप लोगों के नगरको आया व दुष्टमनवाले, अकल्याणरूप सुभद्रनामक श्वशुर से मेरा समागम हुआ ॥ ५३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह मैं जानता हूं कि मेरा वसिष्ठही गोत्रहै व एकप्रवर, गौड़ देश और मधुपुरनामक पुर है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर वे ब्राह्मण बोले कि जिसका कुल नहीं जानाजाता है उस को घट के द्वारा केवल शुद्धि देना चाहिये ॥ ५५ ॥ सो तुम ब्राह्मण के लिये केवल कुम्भ पै भलीभांति चढ़कर तदनन्तर यहां टिके हुये भी तुम केवल भोगों (सुखों) को भोगकरो ॥ ५६ ॥ उसने साहसकरके सबही द्विजोत्तमोंसे कहा कि मैं काल (मृत्यु) व तचे हुये लोहको पकड़ लेऊं ॥ ५७ ॥ या अग्निमें पैठूं अथवा मैं विषको खालेऊं

है ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों के चित्त में ब्राह्मण के लिये मेरी घृणा है इसके अनन्तर वे
फिर सुखदायक की जाती हुई घटरूप दिव्य पवित्रताको क्या कहना है ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों के चित्त में ब्राह्मण के लिये मेरी घृणा है इसके अनन्तर वे फिर सुखदायक की जाती हुई घटरूप दिव्य पवित्रताको क्या कहना ... सब द्विज अपने २ घर चलेगये और उस चाण्डाल द्विज
ब्राह्मण उसको घट पै चढ़ने से उपजीहुई शुद्धि व सूर्यनारायण के दिनको निर्देश (बतला) कर तदनन्तर सब द्विज अपने २ घर चलेगये और उस चाण्डाल द्विज ने भी ॥ ५९ । ६० ॥ हे नृपोत्तम ! तदनन्तर एकान्त में अपनी स्त्री से कहा कि सब ब्राह्मणों ने चाण्डालसे उपजे हुये मुझ को जान लिया ॥ ६१ ॥ इस लिये मैं अन्यदेश को जाऊंगा तुम मेरे साथ आवो स्त्री बोली कि मैं अग्नि में पैठूंगी तुम्हारेसाथ न जाऊंगी ॥ ६२ ॥ हे पापबुद्धे ! मैं नरक रूपी अग्नियों में न गिरूंगी और

अथतेब्राह्मणास्तस्य घटारोहणसम्भवाम् ॥ ५९ ॥
ण्ंसुखावहम् ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणस्यकृतेविप्राश्चित्तेवोमामकीघृणा ॥ अथतेब्राह्मणास्तस्य घटारोहणसम्भवाम् ॥ ५९ ॥ शुद्धिंनिर्दिश्यवारञ्च सूर्य्यस्यचततःपरम् ॥ जग्मुःस्वंस्वंगृहंसर्वे सोपिविप्रोन्त्यजोद्विजाः ॥ ६० ॥ ततःप्राहनिजांभार्य्यां रहस्येनृपसत्तम ॥ ज्ञातोहंब्राह्मणैस्सर्वैरन्त्यजातिसमुद्भवः ॥ ६१ ॥ देशान्तरङ्गमिष्यामि त्वमागच्छमयासह ॥ बुद्ध्यमा भार्य्योवाच ॥ अहमग्निंप्रवेश्यामि नायास्यामित्वयासह ॥ ६२ ॥ पापबुद्धेपतिष्यामि नचाहंनरकाग्निषु ॥ नानसंविश्ये त्वामन्त्यजसमुद्भवम् ॥ ६३ ॥ पापसन्दूषितंसर्वं त्वयैतत्स्थानमुत्तमम् ॥ तथाममपितुर्हर्म्यं संवत्सरप्रवासिना ॥ ६४ ॥ तस्माद्द्रुततरंगच्छ यावन्नोवेत्तिकश्चन ॥ नोचेत्पापसमाचार संप्राप्स्यसिमहापदम् ॥ ६५ ॥ ततोनिशामुखेप्राप्ते कौपीनावरणान्वितः ॥ गतोभीष्टांदिशंप्राप्य तदाजीवितजाद्भयात् ॥ १६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ * ॥ * ॥

चाण्डालसे उपजे हुये तुमको जानती हुई मैं तुम्हारा संयोग न करूंगी ॥ ६३ ॥ हे धूर्त ! तूने इस उत्तम समस्त स्थान को दूषित किया वैसेही वर्षभर निवास से मेरे पिताका घर दूषित किया ॥ ६४ ॥ इस लिये हे पाप आचरणवाले ! जबतक कोई न जाने तबतक अतिशीघ्रही चलेजावो नहीं तो बड़ी विपत्ति को प्राप्तहोगे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर उस समय सन्ध्याके प्राप्त होने पर कौपीन (लँगोटी) रूप आच्छादनसे संयुत वह चाण्डाल जीवसे उपजेहुये डरके कारण चाही हुई दिशाको प्राप्त होकर चलागया ॥ १६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येएकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

दो०। भर्तृयज्ञ द्विज आदिकनं कहं प्रायश्चित जौन। एकसौ अरु नब्बे महँ कह्यौ चरित सब तौन॥ विश्वामित्र जी बोले कि तदनन्तर जब प्रभातहुआ तब सूर्य्य मण्डल के उदय होने पर उन महात्मा दीक्षित की वह कन्या भी ॥ १ ॥ अत्यन्तही रोती हुई पिता, माता के समीप गई व आंसुओं से विकल लोचनवाली वह गद्गद वचनको बोली ॥ २ ॥ कि हे पिता माता जी ! तुम दोनों ने यह क्या पाप किया कि जो दुष्टात्मा, पापी चाण्डाल को मुझे दिया ॥ ३ ॥ वह निशामुख (सन्ध्या) में अपने कुल को भली भांति बतलाकर नष्ट (अदृश्य) होगया उस कारण मैं जलती अग्नि में पैठ जाऊंगी ॥ ४ ॥ उस के उस वचन को सुनकर चै-

विश्वामित्रउवाच ॥ ततःप्रभातेसञ्जाते प्रोद्गतेरविमण्डले॥साचापिदुहितातस्यदीक्षितस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ रोरूयमाणाभ्यगमत्पितरंमातरंचसा ॥ प्रोवाचगद्गदंवाक्यं बाष्पव्याकुललोचना ॥ २ ॥ तातास्बकिमिदंपापं युवाभ्यांसमनुष्ठितम् ॥ अन्त्यजस्यप्रदत्ताहं यत्पापस्यदुरात्मनः ॥ ३ ॥ सनष्टोरजनीवक्त्रे समावेद्यनिजंकुलम् ॥ तस्मादहंप्रवेक्ष्यामि प्रदीप्तेहव्यवाहने ॥ ४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा दीक्षितस्ससुभद्रकः॥निश्चेष्टःपतितोभूमौ वातभग्नइवद्रुमः॥ ५ ॥ ततःसुशीततोयेन संसिक्तःसपुनःपुनः ॥ लब्ध्वासचेतनांकृच्छ्रात्स्वजनैःपरिवारितः ॥ ६ ॥ प्रलापान्विविधांश्चक्रे ताडयन्स्वशिरोमुहुः ॥ अथतेब्राह्मणास्सर्वे तस्यसंपर्कदूषिताः ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञंसमासाद्य तेनैवसहितास्ततः ॥ प्रोचुर्विनयसंयुक्ताः प्रोचैस्तत्सुतयासह ॥ ८ ॥ सुभद्रेणनिजेहर्म्येसुतादत्तानिवेशितः ॥ चण्डालोद्विजरूपोत्र चन्द्रप्रभइतिस्मृतः॥ ९ ॥ यावत्संवत्सरस्यार्द्धं दैवेपित्र्येचयोजितः॥पापकर्म्मानविज्ञातस्सोधुनाप्रकटोभवत् ॥ १० ॥ सुभद्रस्यानुषङ्गेण

तन्यता रहित हो वह दीक्षित सुभद्रक पवन से टूटे वृक्ष के समान पृथ्वी में गिर पड़ा ॥ ५ ॥ तदनन्तर उत्तम ठण्ढजल से बार २ भली भांति छिरका व निजजनों से घिराहुआ वह क्लेशसे चैतन्यता को पाकर बार २ अपने शिर को पीटते हुये उसने अनेकप्रकार के प्रलापों को किया इसके उपरान्त उस के मेल से दूषित वे सब ब्राह्मण ॥ ६ । ७ ॥ उसी सुभद्र समेत व उसकी कन्या सहित भर्तृयज्ञ के समीप जाकर तदनन्तर नम्रता संयुत होते हुये बोले ॥ ८ ॥ कि यहां सुभद्र ने अपनी कन्या दिया व चन्द्रप्रभ ऐसे कहेहुये ब्राह्मण रूपवाले चाण्डाल को वर्षार्द्ध याने छःमहीने तक अपने घरमें पैठाया और देव व पितर वाले कार्यमें नियुक्त किया

व पापकर्मोंवाला वह न जानागया किन्तु इस समय विदित हुआ ॥९।१० ॥ हे महाभाग ! सुभद्रके प्रसंगसे चाण्डालसे समस्त स्थान दूषित होगया इसलिये प्रायश्चित्त रूप दण्डको कीजिये ॥ ११ ॥ कितनेही द्विजों ने उसके घर में भोजन किया व अन्यों ने पानी पिया और वैसेही अपर ब्राह्मणों ने घर लाकर भोजन दिया ॥१२॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है वह कौन द्विजोत्तम है जो कि उस पाप के सम्भव (होने) से सङ्कर नहीं हुआ याने एकही में नहीं मिला ॥ १३ ॥ हे महा-मते ! तुमने पहले इस स्थान को पुण्य (पवित्र) किया है और तुम सबोंके गुरूहो उसीकारण हम लोगों से शुद्धिको कहिये ॥ १४ ॥ तदनन्तर अनेकों स्मृति

केश्चित्तस्यगृहेभुक्तं जलंपीतंतथापरैः ॥ अ
न्यैश्चगृहमानीय प्रदत्तंभोजनंतथा ॥ १२ ॥ किंवातेबहुनोक्तेन नसकोस्तिद्विजोत्तमः ॥ सङ्करोयश्चनोजातस्तस्यपाप
स्यसम्भवात् ॥ १३ ॥ त्वयास्थानमिदंपुण्यं कृतंपूर्वमहामते ॥ सर्वेषांचगुरुस्त्वंहि तस्माच्छुद्धिंवदस्वनः ॥ १४ ॥ ततः
सञ्चिन्त्यसुचिरं स्मृतिशास्त्राण्यनेकशः ॥ प्रायश्चित्तंददौतेषां सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥ चान्द्रायणशतंप्रादात्सु
भद्रायाहिताग्नये ॥ सर्वभाण्डपरित्यागं पुनराधानमेवच ॥ १६ ॥ लक्षहोमविधानंच गृहमध्यविशुद्धये ॥ वह्निप्रवेश
नंतस्यास्तत्सुतायाः प्रकीर्तितम् ॥ १७ ॥ येनयावन्तिभोज्यानि तस्यभुक्तानिमन्दिरे ॥ तस्यतावन्तिकृच्छ्राणि ते
नोक्तानिमहात्मना ॥ १८ ॥ यैर्जलानिप्रपीतानि यावन्मात्राणितद्गृहे ॥ प्राजापत्यानिदत्तानि तेभ्यस्तावन्तिपार्थि

मते ! तुमने पहले इस स्थान को पुण्य (पवित्र) किया है ... ॥ अन्त्यजेनमहाभाग तत्कुरुष्वविनिग्रहम् ॥ ११ ॥ स्थानंसर्वंप्रदूषितम् ॥

शास्त्रों को बहुत देरतक भलीभांति चिन्तवन कर उन सब ब्राह्मणों को प्रायश्चित्त दिया ॥ १५ ॥ आहिताग्नि याने यज्ञ के निमित्त अग्नि रखनेवाले सुभद्र के लिये सौ चान्द्रायण व्रतों को दिया व समस्त पात्रों का त्याग और फिर नवीन पात्रों का धरना कहा ॥ १६ ॥ व घर भीतर की पवित्रताके लिये लक्ष मन्त्र से होम की विधि कहा और उसकी उस कन्याको अग्नि में पैठना कहा ॥ १७ ॥ व जिसने उस के घर में जितने भोजन किया था उस के लिये उस महात्मा ने उतनेही

१ पकैकंह्रासयेत्पिण्डं कृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् ॥

कृच्छ्रों को कहा ॥ १८ ॥ व जिन्हों ने उस के घरमें जितने मात्र जल पिया था उनके लिये हे राजन्! उतनेही प्राजापत्य दियेगये ॥ १९ ॥ वैसेही उसके छूने से दूषित उस स्थानके बसने वाले ब्राह्मणों व अन्य नरों को अलग २ प्राजापत्यव्रत दिया ॥ २० ॥ व उसका आधा प्रायश्चित्त स्त्रियों व शूद्रों को और उसका आधा बाल, वृद्ध को व मिट्टी के विकारवाले पात्रों का त्याग निवेदन किया॥ २१ ॥ और सबही मनुष्यों को रसका त्याग व वैसेही ब्रह्म स्थान में यथोदित कोटि संख्यक होम को कहा ॥ २२ ॥ व समस्त स्थान की शुद्धिके लिये केवल स्थान की द्रव्यसे कीर्तन किया इसके अनन्तर फिर बाहुको उठाकर नागरसे उपजे हुये उन समस्त

व ॥१९॥ ब्राह्मणानांतथान्येषां तत्रस्थाननिवासिनाम् ॥ तत्स्पर्शदूषितानाञ्च प्राजापत्यंपृथक्पृथक् ॥२०॥ स्त्रीशूद्राणां तदर्द्धंच तदर्द्धंबालवृद्धयोः ॥ मृन्मयानांचभाण्डानां परित्यागोनिवेदितः ॥ २१ ॥ सर्वेषामेवलोकानां रसत्यागस्तथैवच ॥ कोटिहोमस्तुनिर्दिष्टो ब्रह्मस्थानेयथोदितः ॥ २२ ॥ सर्वस्थानविशुद्ध्यर्थं स्थानवित्तेनकेवलम् ॥ अथोवाचपुनर्विप्रान्सकृत्वाप्रोद्धृतंभुजम् ॥ २३ ॥ तारनादेनमहता सर्वांस्तान्नागरोद्भवान् ॥ सुभद्रेणचसर्वस्वं देयंविप्रेभ्यएवच ॥ २४ ॥ चतुर्थांशश्चयैर्भुक्तं तद्गृहेस्वधनस्यच ॥ अष्टांशंयैर्जलंपीतं गोदानंस्पर्शसम्भवम् ॥ २५ ॥ शेषाणामपिलोकानां यथाशक्त्यातुदक्षिणा ॥ दीक्षितेनजपःकार्य्यो लक्षंगायत्रिसम्भवम् ॥ २६ ॥ शेषैर्विप्रैर्यथावित्तं तथाकार्य्योजपोऽखिलः ॥ अहञ्चैवकरिष्यामि प्राणायामंशतत्रयम् ॥ २७ ॥ नित्यमेवद्विजश्रेष्ठाः षष्ठकालकृताशनः ॥ यावत्संवत्सर

ब्राह्मणोंसे बड़े भारी ॐकार शब्दके द्वारा कहाकि सुभद्रको ब्राह्मणोंहीके लिये सर्वस देना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ और अपने धन का चौथाई भाग उनको देना चाहिये कि जिन्होंने उसके घरमें भोजन किया हो व जिन्होंने पानी पिया हो उनको आठवां भाग देना चाहिये व स्पर्शसे उपजे हुये नर को गोदान देनाचाहिये ॥२५॥ व शेष भी मनुष्यों को शक्ति के अनुकूल दक्षिणा देनाचाहिये और दीक्षित(सुभद्र) को गायत्री से उत्पन्न लक्ष जप करना चाहिये ॥ २६ ॥ और शेष ब्राह्मणों के जैसा धन हो वैसाही सब जप करना चाहिये और हे द्विजोत्तमो! छठे समयमें भोजन करता हुआ मैं भी वर्ष के अन्त तक नित्यही तीनसौ प्राणायाम करूंगा तदनन्तर

१ गोमूत्रंगोमयक्षीरं दधिसर्पि कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रंसान्तपनंस्मृतम् ॥ २ त्र्यहप्रातस्त्र्यहसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहंपरञ्चनाश्नीयात्प्राजापत्यञ्चरन्द्विज ॥

शुद्धि होगी ॥ २७।२८ ॥ उस दुष्टात्माके जन मेलनसे वह शुद्धि इसप्रकार हुई है ऐसा कहकर तदनन्तर फिर उसने ब्रह्मस्थान में भली भांति बैठेहुये आदि २ वाले
द्विजोत्तमों से मध्यवर्ती के मुख द्वारा कहा कि आज से लगाकर जो नागर द्विजनागरको न जानकर कभी कन्या देवैगा वह धर्मसे भ्रष्ट होगा और वह ब्राह्मणश्राद्ध
के अयोग्य व पंक्ति से भिन्न होगा ॥ २९।३०।३१ ॥ और जो नागर को छोड़ अन्य के लिये श्राद्ध वाली वस्तु देगा उसके पितर देवताओं समेत विमुख होजावैंगे ॥
३२ ॥ व नागरके विना जो सोमपान करैगा वह नागर निस्सन्देह मद्यपान करैगा ॥ ३३ ॥ और जो उसके सम्मत विना श्राद्ध कर्म करैगा तदनन्तर निस्सन्देह

स्यान्तं ततःशुद्धिर्भविष्यति ॥ २८ ॥ जनसंपर्कतोजाता सैवंतस्यदुरात्मनः ॥ एवमुक्त्वाततोभूयः सप्रोवाचद्विजोत्तमा
न् ॥ २९ ॥ आद्याद्यान्मध्यगास्येन ब्रह्मस्थानंसमाश्रितान् ॥ अद्यप्रभृतियःकन्यामविदित्वातुनागरम् ॥ ३० ॥ नाग
रोदास्यतिकापि पतितःसभविष्यति ॥ अश्राद्धेयोह्यपाङ्क्तेयोनागरस्सभविष्यति ॥ ३१ ॥ यःश्राद्धंनागरंमुक्त्वा अन्य
स्मैसम्प्रदास्यति ॥ विमुखास्तस्ययास्यन्ति पितरोविबुधैस्सह ॥ ३२ ॥ नागरेणविनायस्तु सोमपानंकरिष्यति ॥ स
करिष्यत्यसंदिग्धं मद्यपानन्तुनागरः ॥ ३३ ॥ तन्मतेनविनायस्तु श्राद्धकर्म्मकरिष्यति ॥ ततःसर्ववृथातस्य भविष्य
तिनसंशयः ॥ ३४ ॥ विशुद्धिरहितंयस्तु नागरंभोजयिष्यति ॥ श्राद्धंतस्यापितत्सर्वं व्यर्थतांसम्प्रयास्यति ॥ ३५ ॥ स
र्वेषांनागराणांच मर्यादेयंकृतामया ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धिःकार्य्याद्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ वर्षेवर्षेचसंप्राप्ते स्वस्थान
स्यविशुद्धये ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिन्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ श्राद्धार्हानागरायेन नागराणां

उसका सब वृथा होजावैगा ॥ ३४ ॥ और जो विशेषकर पवित्रता से रहित नागर को भोजन करावैगा उसकी भी वह सब श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होगी ॥ ३५ ॥
मैंने सब नागरों की इस मर्यादा को किया इसलिये वर्ष २ के भली भांति प्राप्त होने पर अपने स्थान की पवित्रता के लिये द्विजोत्तमों को सब उपाय से श्राद्धक-
रना चाहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मुझ से जो पूंछागया इससमस्त वृत्तान्तको तुम से कहा ॥ ३६।३७ ॥ कि जिससे नागरोंके मध्य में श्राद्ध के योग्य

नागर व्यवस्थित हुये वैसेही पहले भर्तृयज्ञ ने उन नागरों की मर्यादा किया है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांभर्तृयज्ञमर्यादावर्णनंनामनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । ब्रह्मसभा में आयकरि शुद्ध विप्र जिमि होत । इकसौ इक्यानबे महँ सोई चरित उदोत ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इसके अनन्तर समस्त ब्राह्मणों ने हाथों को जोड़ बार २ स्तुति कर उन बड़ी बुद्धिवाले भर्तृयज्ञ से कहा ॥ १ ॥ कि जो आपने यह कहा है कि जो शुद्ध कियाहुआ ब्राह्मण हुआहो वह श्राद्ध, कन्या

व्यवस्थिताः ॥ भर्तृयज्ञेनमर्य्यादा तथातेषांपुराकृता ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये भर्तृयज्ञमर्य्यादावर्णनन्नामनवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६० ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ अथतंब्राह्मणास्सर्वे भर्तृयज्ञंमहामतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वा स्तुतिंकृत्वामुहुर्मुहुः ॥ १ ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं शोधितोयोभवद्द्विजः ॥ श्राद्धस्यकन्यकायाश्च सोमपानस्यसोर्हति ॥ २ ॥ कथंशुद्धिःप्रकर्तव्या तस्य सर्वंब्रवीहिनः ॥ नागरस्यसमस्तस्य देशान्तरगतस्यच ॥ ३ ॥ देशान्तरेप्रजातस्य तत्रजातस्यवापुनः ॥ अज्ञातपितृवर्गस्य सामान्यंपदमिच्छतः ॥ ४ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामते ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाब्राह्मणानांनृपोत्तम ॥ ५ ॥ अब्रवीद्भर्तृयज्ञस्तु स्वाभिप्रायंसुसंमतम् ॥ प्रश्नभारोमहानेष भवद्भिस्समुदाहृतः ॥ ६ ॥ तथापिकथयिष्यामिनमस्कृत्यस्वयम्भुवे ॥ अज्ञातपितृवंशोयो दूरादपिसमागतः ॥ ७ ॥ सामान्यंवाञ्छतिपदं नागरो

और सोमपान के योग्य है ॥ २ ॥ दूसरे देश में गयेहुये उस समस्त नागर को कैसे शुद्धि करना चाहिये यह सब हम लोगों से कहिये ॥ ३ ॥ व दूसरे देश में पैदा हुये या वहां उपजे हुये फिर न जानेहुये पितादि वर्ग वाले व साधारण स्थान को चाहते हुये जनकी किंसप्रकार शुद्धि करना चाहिये ॥ ४ ॥ हे महामते ! इस समस्त चरित्रको हम लोगों से विस्तार से कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन ब्राह्मणों के उस वचन को सुनकर ॥ ५ ॥ भर्तृयज्ञजी ने सुसंमत अपने अभिप्राय को कहा कि यह बड़ाभारी प्रश्नका भार है जो कि आप लोगों ने कहा है ॥ ६ ॥ तिसपरभी ब्रह्मा के लिये प्रणामकर कहूंगा कि न जाने हुये पिताके वंश

वाला दूरसे भी जो आयाहो ॥ ७ ॥ और मैं नागरहूं यह कहताहुआ वह सामान्य स्थानको चाहता होवै उसकी शुद्धि गर्त्ता तीर्थसे उपजेहुये ब्राह्मणको अग्रगामी करके मुख्य, शान्त व उत्तम ब्राह्मणों को देना चाहिये और विशेषकर पवित्रता की प्रार्थना करते हुये जन को यदि ब्राह्मण काम से अथवा क्रोधसे या वैर से व वाच्यता (अपवाद) के भयसे शुद्धि नहीं देते हैं तो वहां ब्रह्मघातसे उपजाहुआ पातकसबों को होता है ॥ ८ । ९ । १० ॥ उसी कारण विशेपकर जो दूरसे आया हो उस को बड़े उपायसे उत्तम ब्राह्मणों को शुद्धि देना चाहिये ॥ ११ ॥ और मेरे वचनसे उपजीहुई अनेक भांति की शुद्धिको पाकर अन्य देशोंमें भी पैदाहुआ वह नागर शुद्धि

स्मीतिकीर्तयन् ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या मुख्यैश्शान्तैश्शुभैर्द्विजैः ॥ ८ ॥ गर्ततीर्थभवंविप्रं कृत्वाचैवपुरस्सरम् ॥ विशुद्धिंप्रार्थयानस्य यदियच्छन्तिनद्विजाः ॥ ९ ॥ कामाद्वायदिवाक्रोधात्प्रद्वेषाद्वाच्यताभयात् ॥ ब्रह्महत्योद्भवंपापं सर्वेषांतत्रजायते ॥ १० ॥ तस्मादभ्यागतोयस्तु दूरादपिविशेषतः ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या प्रयत्नेनद्विजोत्तमैः ॥ ११ ॥ शुद्धिन्तुविविधांप्राप्य ममवाक्यसमुद्भवाम् ॥ सशुद्धोनागरोज्ञेयो जातोदेशान्तरेष्वपि ॥ १२ ॥ पूर्वंविशोधयेद्देशं ततोमातृकुलंस्मृतम् ॥ ततश्शीलंत्रिभिःशुद्धस्सामान्यंपदमर्हति ॥ १३ ॥ सर्वेषामपिविप्राणां वर्षान्तेसमुपस्थिते ॥ शुद्धिःकार्य्याप्रयत्नेन स्वस्थानस्यविशुद्धये ॥ १४ ॥ तदर्थंशरदश्चान्ते शुद्ध्यर्थेब्राह्मणोत्तमाः ॥ चातुश्चरणसम्पन्नास्संस्थाप्याःषोडशैवतु ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाःपुरतस्सर्वे शान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ गर्ततीर्थोद्भवंविप्रं तेषांमध्येनिवेशयेत् ॥ १६ ॥ तदग्रेपोटिकादेयाश्चतस्रोलक्षणान्विताः ॥ यावत्कार्त्तिकपर्य्यन्तं चातुश्चरणकल्पिताः ॥ १७ ॥ प्रथमाबहृचस्या

जानने योग्य है ॥ १२ ॥ पहले देशको विशोधन करै तदनन्तर माताकाकुल कहा गया है उसके बाद शील (स्वभाव) को शुद्ध करै तीनों से शुद्ध हुआ पुरुष सामान्य पद के योग्य होता है ॥ १३ ॥ व वर्ष का अन्त भली भांति उपस्थित होने पर निजस्थान की विशुद्धिके लिये सब भी ब्राह्मणों को बड़े उपाय से शुद्धि करना चाहिये ॥ १४ ॥ व उसके लिये शरद् के अन्तमें शुद्धि के निमित्त द्विजों में उत्तम सोलहही ब्राह्मण अगाड़ी भलीभांति थापने योग्य हैं जो सब कि चातुश्चरण से संयुत व शान्त, दान्त और जितेन्द्री होवैं उनके मध्य में गर्त तीर्थ में उपजेहुये ब्राह्मण को विठावै ॥ १५ । १६ ॥ व उनके आगे लक्षणों से संयुत व चातुश्चरणोंसे

कल्पनाकीहुई चार पुटिका कार्तिकपर्यन्त भर देना चाहिये ॥ १७ ॥ पहली बह्वृचके लिये, दूसरी यजुर्वेदीको वैसेही तीसरी सामवेदीको व चौथी आदिवालेको देना चाहिये ॥ १८ ॥ और वैसेही अन्य पांचवीं मुद्रिकाके लिये कही है पावमान श्रीसूक्त व विष्णु देववाला शाकुन सूक्त ॥ १९ ॥ वैसेही जीवसूक्तसे संयुत रुद्रसूक्त व अन्य शान्तिकको बह्वृच कीर्तनकरै ॥ २० ॥ व शिव सङ्कल्पवाले शांतिक व चारभांतिके ऋषि कल्पको और माङ्गल्य ब्राह्मण वैसेही गायत्री ब्राह्मण ॥ २१ ॥ तथा पुरुष सूक्त व मधुब्राह्मण मन्त्रको निश्चयकर कीर्तनकरै इसके अनन्तर पंचाङ्गसे संयुत उन रुद्रदेवोंको कहै ॥ २२ ॥ व देवव्रत और गायत्रीवाले व्रतको, वैसेही चन्द्रमा, सूर्यके व्रतोंको

र्थे यजुषस्यतथापरा ॥ सामगस्यतथैवान्यातथाद्यस्यचतुर्थिका ॥ १८ ॥ मुद्रिकार्थंतथैवान्या पञ्चमीपरिकीर्तिता ॥ श्रीसूक्तंपावमानञ्च शाकुनंविष्णुदैवतम् ॥ १९ ॥ तथैवरुद्रसूक्तंच जीवसूक्तेनसंयुतम् ॥ बह्वृचंकीर्तयेत्तत्र शान्तिकञ्चतथापरम् ॥ २० ॥ शान्तिकंशिवसङ्कल्पं ऋषिकल्पंचतुर्विधम् ॥ माङ्गल्यंब्राह्मणंचैव गायत्रीब्राह्मणंतथा ॥ २१ ॥ तथा पुरुषसूक्तंचमधुब्राह्मणमेवच ॥ अथतान्कीर्तयेत्तत्र रुद्रान्यञ्चाङ्गसंयुतान् ॥ २२ ॥ देवव्रतंचगायत्र्यं सोमसूर्य्यव्रतेतथा ॥ एकविंशतिपर्य्यन्तं तथान्यच्चरथन्तरम् ॥२३॥ माव्रतंसहितंविष्णुं ज्येष्ठसामतथैवच ॥ सामवेदोक्तरुद्रांश्च भारुण्डैस्सामभिर्युतान् ॥२४॥ छान्दोग्यःकीर्तयेत्तत्र यच्चान्यच्छान्तिकम्भवेत् ॥ गर्भोपनिषदञ्चैव स्कन्दसूक्तंतथापरम् ॥२५॥ नीलरुद्रैस्समोपेतान्प्राणरुद्रांस्तथापरान् ॥ नाभिचारिकरुद्रांश्च क्षुरिकाद्यान्प्रकीर्तयेत् ॥ २६ ॥ ततःपुण्याहघोषेणगीतवादित्रनिस्स्वनैः ॥ शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लचन्दनचर्चितः ॥ २७ ॥ शुद्धिकामोव्रजेत्तत्र यत्रतेब्राह्मणाःस्थिताः ॥

और इक्कीसतक अन्यरथन्तर मन्त्रोंको कहै ॥ २३ ॥ और लक्ष्मी व्रत सहित विष्णुको व वैसेही ज्येष्ठ साम व भारुण्ड सामोंसे संयुत सामवेदमें कहेहुये रुद्रोंको ॥२४॥ वहां छान्दोग्य कीर्तनकरै और जो अन्य शान्तिकहोवै उसे व गर्भोपनिषद् और अन्य स्कन्दसूक्तोंको कहै ॥२५॥ और नील रुद्रोंसे संयुत अन्य प्राणरुद्रोंको व अभिचारिक रुद्रोंको नहीं व क्षुरिकादिकसूक्तोंको कीर्तनकरै ॥२६॥ तदनन्तर पुण्याहघोष(शब्द)से व गाने बजानेके शब्दोंद्वारा श्वेत मालाओं व वसनोंको धारे और श्वेत चन्दनसे

प्रणम्यशिरसातेषां ततोवाच्यस्तुमध्यगः ॥ २८ ॥ मदर्थंप्रार्थयत्वंहि सर्वानेतान्द्विजोत्तमान् ॥ यतःशुद्धिंप्रयच्छन्तिप्र सादंकर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ ततस्तुप्रार्थयेद्विप्रांस्तदर्थंचविशुद्धये ॥ गर्ततीर्थोद्भवोविप्रो विनयावनतःस्थितः ॥ ३० ॥ गो चर्मणिसमालग्नं शुद्धिकामश्चनागरम् ॥ प्रष्टव्यास्तुततस्तेन सर्वएवद्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥ एषशुद्धिकृतेप्राप्तस्सुदूरान्ना गरोद्विजः ॥ अस्यशुद्धिःप्रदातव्या युष्माकंरोचतेयदि ॥ ३२ ॥ अथतैर्वेदसूक्तेन निषेधोनप्रवर्तनम् ॥ वक्तव्यंवचसा नैव ममवाक्यमिदंस्थितम् ॥ ३३ ॥ तत्रैवबह्वृचान्दृष्ट्वा सचाध्वर्युंततःपरम् ॥ छान्दोग्यांश्चतथाद्यांश्चक्रमेणतुनृपोत्त म ॥ ३४ ॥ यदितेषांमनस्तुष्टिर्जायतेद्विजसत्तमाः ॥ तदासूक्तानिवाक्यानि सौम्यानिसुशुभानिच ॥ ३५ ॥ वारुण्या नितथेन्द्राणि माङ्गल्यप्रभवानिच ॥ श्रेष्ठानिमन्त्रलिङ्गानि तथावृद्धिकराणिच ॥ ३६ ॥ यदिनोमानसीतुष्टिस्तेषांचैव प्र जायते ॥ तदारौद्राणियाम्यानि नैर्ऋत्यानिविशेषतः ॥ ३७ ॥ आग्नेयानिचनेष्टानि तथानाशकराणिच ॥ अथयेतत्र

चर्चित ॥ २७ ॥ शुद्धिकी कामनावाला मनुष्य वहां जावै जहां वे ब्राह्मण स्थितहोवैं तदनन्तर शिर से उनका प्रणाम कर मध्यवर्ती से कहना चाहिये ॥ २८ ॥ कि तुम प्रसन्नता करने के योग्यहो और मेरे लिये इन समस्त द्विजोत्तमों से प्रार्थना करिये कि जिससे शुद्धि देवैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर गऊके चर्म में भलीभांति लगा हुआ गर्त तीर्थ में उत्पन्न ब्राह्मण नम्रता से नीचे झुँकके खड़ाहो शुद्धिकामनावाले नागर को उसके लिये विशुद्धिके निमित्त ब्राह्मणों से प्रार्थना करै तदनन्तर उस सें सबही द्विजोत्तम पूछने योग्य हैं ॥ ३० । ३१ ॥ कि यह नागर द्विज बहुतदूर से शुद्धिके लिये प्राप्त हुआ है यदि तुम लोगों को रुचताहो तो इसको शुद्धिदेना चाहिये ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों को वेद सूक्त के कारण वचन से न निषेध कहना चाहिये न विधि कहना चाहिये कि मेरी वाक्य यह स्थित है ॥३३॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! वहींपर वह बह्वृचों अध्वर्यु(यजुर्वेदी)को व छान्दोग्य तथा आद्योंकोक्रमसे देखकर॥३४॥यदि उनके मनकी प्रसन्नता होतीहै तो उस समय द्विजो-त्तम सौम्य व अतिउत्तम सूक्त वाक्यों को ॥ ३५ ॥ जो कि वरुणवाली व इन्द्रवाली व मांगल्यसे उपजी व श्रेष्ठ और मन्त्र चिह्नों वाली व वृद्धिकारी होती हैं उन को कहते हैं ॥ ३६ ॥ और यदि उनके मन वाली प्रसन्नता नहीं होती है तो उस समय, रुद्र, यम व विशेषकर निर्ऋति देववाले मन्त्रों को ॥ ३७ ॥ व आग्नेय तथा

अशुभ व नाशकारक मन्त्रोंको पढ़तेहैं इसके अनन्तर वहां जो मूर्ख वेदपाठमें तत्पर नहींहोतेहैं ॥ ३८ ॥ उन प्रसन्न द्विजोत्तमोंको पुष्टिदान कहनाचाहिये व प्रसन्नता से रहित तथा क्रोधित द्विजोंको सीत्कार (सी ऐसाशब्द) करनाचाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार समस्त कार्योंमें विशेषकर निर्णय न करनाचाहिये व जैसे मनुष्य प्राकृत वचनोंसे निर्णय करते हैं ॥ ४० ॥ वैसेही निर्णयके अन्तमें मध्यगामी ब्राह्मणको सबके निर्णयसे उपजेहुये तालत्रय (तीन तालों) को भलीभांति देनाचाहिये ॥४१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागरनिर्णयोनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

मूर्खाःस्युर्नवेदपठनेरताः ॥ ३८ ॥ पुष्टिदानन्तुवक्तव्यं तैस्सन्तुष्टैर्द्विजोत्तमैः ॥ सीत्कारःकुपितैःकार्य्यस्सन्तोषेण विवर्जितैः ॥ ३९ ॥ एवंसर्वेषुकृत्येषु नचकार्य्योविनिर्णयः ॥ प्राकृतैर्वचनैश्चैव यथाकुर्वन्तिमानवाः ॥ ४० ॥ तथैवनिर्णयस्यान्तेमध्यगेनविपश्चिता ॥ देयंतालत्रयंसम्यक्सर्वेषांनिर्णयोद्भवम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये नागरनिर्णयोनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच॥तच्छ्रुत्वाब्राह्मणास्सर्वे विनयावनताःस्थिताः॥तेपप्रच्छुर्द्विजश्रेष्ठं कौतुकाविष्टचेतसः॥ १ ॥ कस्यचिन्निर्णयोदेयो मध्यस्थस्यद्विजोत्तमैः॥वेदवाक्येनसन्त्यज्य वाक्यैर्मनुजसम्भवैः ॥ २ ॥ कस्मात्तालत्रयंदेयंमध्यगेनमहात्मना ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वाभर्तृयज्ञस्तुतानुवाचद्विजोत्तमान् ॥ श्रूयतामभिधास्यामियदेतत्कारणंस्थितम् ॥ ४ ॥ नासत्यंजायतेवाक्यंनागराणांकथञ्चन ॥ ब्रह्मशालास्थितानाञ्च शुभंवायदि

दो० । जिमि मध्यग द्विज सबन सों निर्णय करत अपार । इकसौ अरु बानवे महँ सो कह चरित उदार ॥ विश्वामित्रजी बोले कि उसको सुनकर कौतूहल से संयुत चित्तवाले व नम्रतासे नीचे झुकेखड़े हुये उन समस्त ब्राह्मणों ने द्विजोत्तम (भर्तृयज्ञ) से पूंछा ॥ १ ॥ कि किसी मध्यस्थ को भलीभांति त्यागकर द्विजोत्तमों को वेद वाक्यके द्वारा मनुष्यसे उपजीहुई वाक्योंसे निर्णयदेना चाहिये ॥ २ ॥ और मध्यगामी महात्माको किस कारण तीनतालों को देनाचाहिये यह सब हम लोगोंसे कहो क्योंकि हम सबोंको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३ ॥ उसको सुनकर भर्तृयज्ञ उन द्विजोत्तमों से बोले कि सुनिये मैं कहूंगा जोकि यह कारण स्थित है ॥ ४ ॥

ब्रह्म सभामें बैठेहुये नागरोंका वचन झूंठ नहीं होताहै चाहै शुभहो या अशुभहो ॥ ५ ॥ उसी कारण प्रिय या अप्रिय प्रार्थना करतेहुये अर्थी (याचक)को वेदोक्त सवनों के द्वारा द्विजोत्तमों को दिखलाते हैं ॥ ६ ॥ तदनन्तर वह मध्यस्थ उस पावन (पवित्र कारक) के निमित्त निर्णयवाले प्रश्नको बार २ द्विजोत्तमों से करै ॥ ७ ॥ क्योंकि ब्रह्मसभा में बैठेहुये ब्राह्मणों का वचन यदि वृथा होजावै तो उनका माहात्म्य नाशहोता है उसी कारण क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ व क्रोधसे वैरहोता है व वैरसे पापका संयोग होताहै इसीकारण मध्यस्थ बार २ द्विजोंसे पूंछता है ॥ ९ ॥ और जब सबका समूह होताहै तब जो मध्यस्थ है वह तीनतालों को देताहै ॥ १० ॥

वाशुभम् ॥ ५ ॥ वेदोक्तैस्सवनैस्तस्माद्दर्शयन्तिद्विजोत्तमान् ॥ इष्टंवायदिवानिष्टं प्रार्थ्यमानस्यचार्थिनः ॥ ६ ॥ भूयो भूयस्ततःकुर्य्यान्मध्यस्थःसद्विजन्मनाम् ॥ प्रश्नंयस्यनिमित्तञ्च पावनस्यविनिर्णयम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मशालोपविष्टानां यदि वाक्यंवृथाभवेत् ॥ माहात्म्यंनश्यतेतेषां ततःक्रोधःप्रजायते ॥ ८ ॥ क्रोधात्सञ्जायतेद्रोहो द्रोहात्पापस्यसङ्गमः ॥ एत स्मात्कारणाद्विप्रान् मध्यस्थःपृच्छतेमुहुः ॥ ९ ॥ समुदायःसमस्तानां यदाचैवप्रजायते ॥ तदातालत्रयंयच्च मध्यस्थः सम्प्रयच्छति ॥ १० ॥ तासान्तुपूर्वायाकामं हन्तिदत्ताप्रदायिनी ॥ द्वितीयायातथाक्रोधं हन्तिलोभंतृतीयका ॥ ११ ॥ एतस्मात्कारणाद्देयं तेनतालत्रयंद्विजाः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ आथर्वस्तुचतुर्थस्तु ब्राह्मणःपरिकीर्तितः ॥ १२ ॥ सकस्मात्प्र थमःपश्चान्नागराणांप्रकीर्तितः ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ आथर्वःप्रथमःपश्चाद्यस्मात्प्रोक्तोमयाद्विजः ॥ १३ ॥ तदहंसंप्रवक्ष्या मि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ ऋग्यजुस्सामसञ्ज्ञाख्या अग्निष्टोमादिकामखाः ॥ १४ ॥ पारत्रिकाःप्रवर्तन्ते नैहिका

उन तालियों के मध्यमें जो पहली तालीहै दी हुई वह कामको नाशकरती है और जो दूसरी प्रदायिनी है वह क्रोधको व तीसरी लोभको नाशकरती है ॥ ११ ॥ इसी कारण हे ब्राह्मणो ! उसे तीनतालोंको देनाचाहिये ब्राह्मणबोले कि आथर्व तो चौथा ब्राह्मण कहागयाहै ॥ १२ ॥ वह पहला किस लिये नागरोंके पीछे कहागया भर्तृयज्ञ बोले कि जिस लिये मैंने प्रथम आथर्व द्विजको पश्चात् कहाहै ॥ १३ ॥ उसको मैं कहूंगा सावधान होतेहुये सुनिये कि ऋग्, यजुः, साम संज्ञक नामक अग्निष्टो

मादिक यज्ञ ॥ १४ ॥ अभिचार वाले व परलोक वाले हैं और अथर्वण वेदमें जो कहा है वह सब इस लोकवाला ॥ १५ ॥ समस्त मनुष्यों के हितके लिये लोकों के करनेवाले ब्रह्मा ने कहाहै पहले अथर्व वेदको कार्यकी सिद्धिके लिये पूंछना चाहिये ॥ १६ ॥ इसी कारण वह पहलाभी चौथा भलीभांति संस्थित हुआ है द्विजोत्तमो ! मुझसे जो पूंछा गया इस समस्त वृत्तान्तको मैंने कहा ॥ १७ ॥ इसी प्रकार सदैवही प्रश्न सम्बन्धी सब करना चाहिये ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ● ॥ ● ॥

आभिचारिकाः ॥ अथर्ववेदेयत्प्रोक्तं सर्वंचैवैहिलौकिकम् ॥ १५ ॥ हितायसर्वलोकानां ब्रह्मणालोककारिणा ॥ अथर्ववेदःप्रथमं प्रष्टव्यःकार्य्यसिद्धये ॥ १६ ॥ एतस्मात्कारणादाद्यस्सचतुर्थोपिसंस्थितः ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मि द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ प्रश्नसंबन्धिनंसर्वमेवंकार्य्यंसदैवहि ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ एवंशुद्ध्यर्थमायातो नागराणांपुरःस्थितः ॥ नागरःशुद्धिमाप्नोति यथातन्मेवदद्विज ॥ १ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एवंमध्यस्थवचनात्समुदायेस्थिरेसति ॥ संप्रष्टव्यःपितामाता कतमातेवदस्वनः ॥ २ ॥ किंगोत्रंकतमस्तस्याः पिताकिंप्रवरःस्मृतः ॥ एवंतस्यान्वयंज्ञात्वा गोत्रप्रवरसंयुतम् ॥ ३ ॥ प्रष्टव्याचततोमाता तस्याअपिचयाभवेत् ॥ जनित्रीचापिप्रष्टव्यातस्याश्चापिचयाभवेत् ॥ ४ ॥ ज्ञातव्यासाप्रयत्नेन ब्राह्मणैश्शुद्धिकर्म्मणि ॥ पितापिता

दो० । मात पिता कुल पूंछिकै करत शुद्धि ततकाल । इकसौ अरु तिरनवें महँ सोई वर्णत हाल ॥ आनर्त्त बोला कि हे द्विज ! इस भांति शुद्धिके लिये आया व नागरों के आगे बैठाहुआ नागर द्विज जिसभांति शुद्धिको प्राप्तहोता है उसको मुझ से कहो ॥ १ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इस प्रकार समूह के स्थिर होनेपर मध्यस्थ के वचन से वह पूंछने योग्यहै कि तुम्हारा पिता, माता कौन है यह हमलोगोंसे कहो ॥ २ ॥ व कौन गोत्रहै और पिता कौन प्रवरवाला है व उस माताका कौन प्रवरहै इस प्रकार गोत्र, प्रवर से संयुत उसके वंशको जानकर ॥ ३ ॥ तदनन्तर उसकी माताभी जो होवै वह पूंछने योग्यहै व उसकी भी जो माता होवै वह भी

पूंछने योग्य है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों को शुद्धिके कर्म में बड़े यत्नसे उसे पूंछना चाहिये वैसेही पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीनों को भी बड़े यत्नसे शोधन कर-
ना चाहिये वैसेही हे द्विजोत्तमो ! पितामही (आजी, दादी) के पक्षमें ये तीनों पूंछने योग्य है ॥ ५ । ६ ॥ तदनन्तर उसका मातामह (नाना) व पिता और उस
काभी जो पिताहो वह और वैसेही मातामही (नानी) व अन्य पूर्ववाली ॥ ७ ॥ और पितामही की जो माताहो वह पति समेत शोधन करने योग्यहै इस प्रकार
क्रमपूर्वक उसके सब शाखागमको जानकर ॥ ८ ॥ कि सब ओरसे बरगदके समान जड वंशसे नीचे स्थितहै तदनन्तर सिन्दूरके तिलकसे शुद्धि देना चाहिये ॥ ९ ॥

शोधनीयाःप्रयत्नेन त्रयोप्येतेतुतस्यच ॥ तथापितामहीपक्षे त्रयएतेद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥
महश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥५॥ शोधनीयाःप्रयत्नेन त्रयोप्येतेतुतस्यच ॥ तथापितामहीपक्षे त्रयएतेद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥

मातामहस्ततस्तस्य पितातस्यापियःपिता ॥ मातामहीचैवतथातथैवान्याःप्रपूर्विका ॥ ७ ॥ पितामह्याश्चयामाता सा
पिशोध्यासभर्तृका ॥ एवंशाखागमंज्ञात्वा तस्यसर्वंयथाक्रमम् ॥ ८ ॥ मूलवंशादवाधिष्ठं न्यग्रोधस्येवसर्वतः ॥ ततःशु
द्धिःप्रदातव्यासिन्दूरतिलकेनतु ॥ ९ ॥ चातुश्चरणमन्त्रैश्चदत्त्वाशीर्वचनंक्रमात् ॥ ततोवाच्यंनृपश्रेष्ठ मध्यस्थेनतद
ग्रतः ॥ १० ॥ दत्त्वातालत्रयंराजञ्छुद्धोयंनागरोद्विजः ॥ सामान्यपदयोग्यश्च सञ्जातःसाम्प्रतंद्विजाः ॥ ११ ॥ ततोग्नि
शरणंगत्वा सन्तर्प्यचहुताशनम् ॥ पञ्चवक्त्रेणमन्त्रेण दत्त्वापूर्णाहुतिंततः ॥ १२ ॥ विप्रेभ्योदक्षिणांदद्यात्स्वशक्त्या
भोजनान्विताम् ॥ सिन्दूरतिलकेजाते ब्राह्मार्थेद्विजवाक्यतः ॥ १३ ॥ पितॄणांजायतेतुष्टिर्वंशोयेनप्रतिष्ठितः ॥ यस्य
नोजायतेशुद्धिः शाखाभिर्मूलवंशगाः ॥ १४ ॥ निग्रहस्तस्यकर्तव्योद्विजार्हैर्द्विजसत्तमैः ॥ यथानान्योहिजायेतशुद्धि

और क्रम से चातुश्चरण के मन्त्रों से आशीर्वादके वचनको देकर तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ राजन् ! उसके आगे तीन तालोंको देकर मध्यस्थको कहना चाहिये कि हे ब्रा-
ह्मणो ! शुद्ध हुआ यह नागर द्विज इससमय सामान्य पदके योग्य होगया ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर अग्निके शरणमें जाकर अग्निको भलीभांति तृप्तकरके तदनन्तर
पंचमुख मन्त्रसे पूर्णाहुति देकर ॥ १२ ॥ अपनी शक्तिसे भोजन संयुत दक्षिणा को द्विजोंके लिये देवै ब्राह्मणोंके वचनसे ब्राह्मणताके लिये सिन्दूरका तिलक होनेपर ॥
१३ ॥ पितरों की प्रसन्नता होती है कि जिससे वंश प्रतिष्ठाको प्राप्तहै और वंशकी जड़में प्राप्त जिसकी शुद्धि शाखाओं से नहीं होतीहै ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोत्तमोंको द्विज

योग्य उसके निग्रहं (दण्ड, प्रायश्चित्त) को करना चाहिये कि जिसप्रकार अन्य न उत्पन्न होवै वैसेही उसकी शुद्धि कल्पना कीगई है ॥ १५ ॥ तदनन्तर इसप्रकार शुद्ध कियाहुआ अष्टकुलमें पैदाभी वह ब्राह्मण श्राद्धके योग्य होताहै फिर उस सामान्यको क्या कहनाहै ॥ १६ ॥ जो अशुद्ध ब्राह्मणके द्वारा श्राद्धादिक करताहै उसका वह सब वैसेही वृथा होजाताहै जैसे भस्म(खाक)में हवन वृथा होताहै ॥१७॥ इसलिये अपने स्थानकी शुद्धिकेलिये व वैसेही अष्टकुलकी विशुद्धिके निमित्त यह नागर ब्राह्मण सब उपायसे शुद्ध करनेयोग्यहै ॥१८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

स्तस्यप्रकल्पिता ॥ १५ ॥ एवंसशोधितोविप्रः श्राद्धार्होजायतेततः ॥ अपिचाष्टकुलोत्पन्नस्सामान्यःकिंपुनर्हिसः॥१६॥ अशुद्धेनतुविप्रेण श्राद्धाद्यंप्रकरोतियः ॥ तस्यभस्महुतंयद्वत्सर्वंतज्जायतेवृथा ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शोध्यो यंनागरोद्विजः ॥ स्वस्थानस्यविशुद्ध्यर्थंतथैवाष्टकुलस्यच ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरं खण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ प्रोक्तास्माकन्त्वयाविप्र शुद्धिर्नागरसम्भवा ॥ वंशजाविस्तरेणैव यथापृष्टोसिसुव्रत ॥ १ ॥ साम्प्रतंशीलजांब्रूहिनष्टवंशश्चयोभवेत् ॥ पितामहंनजानातिनचमातामहंनिजम् ॥२॥ तस्यशुद्धिःकथंकार्यानागरोस्मीति योवदेत् ॥ विश्वामित्रउवाच॥ एतदर्थंपुरापृष्टो भर्तृयज्ञश्चनागरैः ॥ ३ ॥ नष्टवंशकृतेराजन् यथापृष्टोस्मिवैत्वया ॥

दो० । समर मरे गति सुरनकी पूंछयो हरिसों इन्द्र । इकसौ चौरानबेमें सोई चरित सुभद्र ॥ आनर्त बोला कि हे सुव्रत, विप्रजी ! जिस भांति तुमसे पूंछा वैसेही तुमने नागरसे उपजीहुई वंशमें उत्पन्न शुद्धिको विस्तारही से हमलोगोंसे कहा ॥ १ ॥ इस समय शील (स्वभाव या चालचलन) से उत्पन्न हुई शुद्धिको कहिये कि जो नष्टवंशवाला नागर होवै और न पितामहको जानता है न अपने मातामह (नाना) को जानता है ॥ २ ॥ और मैं नागर हूं यह जो कहता है उसकी शुद्धि कैसे करना चाहिये विश्वामित्र जी बोले कि पुरातन समय इसी के लिये नागरों ने भर्तृयज्ञ से पूंछा है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार कि हे राजन् ! नष्टवंशके लिये

तुमने मुझसे पूंछा भर्तृयज्ञ बोले कि जो नष्टवंशवाला सभामें मैं नागर हूं यह कहै ॥ ४ ॥ उसका शील अवश्य जानना चाहिये तदनन्तर शुद्धिकी आज्ञादेवै
नागरोंके जो केवल धर्म व व्यवहार हैं ॥ ५ ॥ वे जिसमें नित्यही वर्तमान हैं वह नागरकी सम्भावना करने योग्यहै हे द्विजोत्तमो ! उस की शुद्धिके लिये घड़ादेना
चाहिये ॥ ६ ॥ तदनन्तर घटमें शुद्धिके प्राप्तहोने पर यह शुद्धताको प्राप्त होता है और श्राद्धके योग्य व कन्या के योग्य तथा विशेषकर सोमपान के योग्य होता
है ॥ ७ ॥ और समस्त स्थान कर्म में सामान्य स्थानके योग्य होताहै हे नृपोत्तम ! मुझसे जो पूंछागया इस सब वृत्तान्त को तुमसे मैंने कहा ॥ ८ ॥ कि जिस प्रकार

भर्तृयज्ञउवाच ॥ नष्टवंशस्तुयोब्रूयान्नागरोस्मीतिसंसदि ॥ ४ ॥ तस्यशीलंप्रविज्ञेयं ततःशुद्धिंसमादिशेत् ॥ नागराणा
न्तुयेधर्म्मा व्यवहाराश्चकेवलाः ॥ ५ ॥ तेतुयस्मिन्प्रवर्त्तन्तेसम्भाव्योनागरोहिसः ॥ तस्यशुद्धिकृतेदेयं घटंब्राह्मण
सत्तमाः ॥ ६ ॥ घटेतुशुद्धिमापन्ने ततोसौशुद्धतांव्रजेत् ॥ श्राद्धार्हःकन्यकार्हश्च सोमार्हश्चविशेषतः ॥ ७ ॥ सामान्य
पदयोग्यश्च समस्तेस्थानकर्म्मणि ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिन्नृपोत्तम ॥ ८ ॥ द्वितीयाजायतेशुद्धिर्यथानष्टान्व
येद्विजे ॥ तस्मादृदमहाराज यद्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ९ ॥ आनर्तउवाच ॥ कस्मात्तेनागराभूत्वा विप्राश्चाष्टकुलोद्भ
वाः ॥ सर्वेषामुत्तमाजाताः प्राधान्येनव्यवस्थिताः ॥ १० ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तपसस्तुप्रभावोयमेतेषांचद्विजन्मना
म् ॥ विशेषश्चापरस्तेषां तेशक्रेणप्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ तेनतेगौरवंप्राप्तास्सर्वेषाञ्चद्विजन्मनाम् ॥ आनर्तउवाच ॥ क
स्मिन्कालेतुतेविप्राश्शक्रेणात्रप्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥ किमर्थञ्चवदास्माकं विस्तरेणमहामते ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ हिर

नष्टवंशवाले द्विजमें दूसरी शुद्धि होती है इसलिये हे महाराज ! फिर जो सुनना चाहतेहो उसको कहो ॥ ९ ॥ आनर्त बोला कि अष्टकुल में उपजेहुये वे ब्राह्मण
नागर होकर किसलिये सबोंके मध्यमें उत्तम हुये व मुख्यता से टिके ॥ १० ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इन ब्राह्मणों की तपस्या का यह प्रभाव है व उनमें अन्य
विशेष है कि वे इन्द्रसे स्थापित हुये हैं ॥ ११ ॥ उसी कारण समस्त ब्राह्मणोंके बीचमें वे गौरव को प्राप्तहैं आनर्त बोला कि किस समय इन्द्रजीने यहां उन ब्राह्मणों

को थापा है ॥ १२ ॥ और किसलिये हे महामते ! यह हमसे विस्तार समेत कहिये विश्वामित्रजी बोले कि पहले हिरण्याक्ष नामक ऐसा प्रसिद्ध दानवों में उत्तम हुआहै ॥ १३ ॥ उसका इन्द्रके साथ भयङ्कर युद्धहुआ है हे महाराज ! उस सुरासुरसंग्राम में आपसमें जीतकी इच्छावाले बहुत से देवता व दैत्य मरगये इस के अनन्तर इन्द्रने संग्राममें जिन दैत्योंको मारा ॥ १४ । १५ ॥ उनको शुक्रजीने विद्या के बलसे फिर सजीव किया और मृत्यु को प्राप्तहुये देवता किसी प्रकार न जिये ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्रने विष्णुसे कहा कि हे प्रभो ! प्रहारों से सामने धारारूपी तीर्थ में मरेहुये जनोंकी ॥ १७ ॥

एयाक्षयइतिख्यातः पुरासीद्दानवोत्तमः ॥ १३ ॥ अभवत्तस्यसङ्ग्रामः शक्रेणसहदारुणः ॥ तत्रदेवासुरेयुद्धे मृताभूरि दिवौकसः ॥ १४ ॥ दानवाश्चमहाराजपरस्परजिगीषवः ॥ अथयेदानवाःसङ्ख्ये शक्रेणविनिपातिताः ॥१५॥ विद्याबले नताञ्छुक्रः सजीवान्कुरुतेपुनः ॥ देवाश्चनिधनंप्राप्तानजीवन्तिकथञ्चन ॥ १६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विष्णुंप्रोवाचवृत्रहा ॥ धारातीर्थमृतानाञ्च प्रहारैस्संमुखेप्रभो ॥ १७ ॥ यागतिश्चसमादिष्टातांमेवदजनार्द्दन ॥ पराङ्मुखामृतायेच पलायनपरायणाः ॥ १८ ॥ तेषामपिगतिंब्रूहिपादकञ्जममाच्युत ॥ विष्णुरुवाच ॥ धारातीर्थमृतानाञ्च सम्मुखानांमहाहवे ॥ १९ ॥ यथाचोच्छिन्नबीजानां पुनर्जन्मनविद्यते ॥ येपुनःपृष्ठदेशेतु हन्यन्तेभयविह्वलाः ॥ २० ॥ भज्यमानाः परैस्तेच प्रेतास्स्युस्त्रिदशाधिप ॥ इन्द्रउवाच ॥ केचिद्देवामृतायुद्धे युध्यमानाश्चसम्मुखाः ॥ २१ ॥ तथैवान्येमयादृष्टाहन्यमानाःपराङ्मुखाः ॥ प्रेतत्वंदानवानाञ्च सर्वेषांस्यान्नवाविभो ॥ २२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ असंशयंसहस्राक्ष हतायु

जो गति कहीहो हे जनोंके क्लेश नाशनेवाले (विष्णुजी) ! उसको मुझसे कहिये और भागने में तत्पर व विमुख होतेहुये जे मरे हैं ॥ १८ ॥ हे कमल सरीखे चरणोंवाले, हे अच्युत ! उनकी भी गतिको मुझसे कहिये विष्णुजी बोले कि महायुद्धमें धारारूपी तीर्थमें मरेहुये सम्मुखवाले जनोंकी वही गतिहै ॥ १९ ॥ कि जैसे कटे बीजोंका फिर जन्म नहीं होताहै वैसेही उनका जन्म नहीं होता व हे सुरनायक ! फिर भयसे विकल व भागते हुये जिनको पृष्ठस्थान याने पीठमें शत्रु मारते हैं वे प्रेत होवै हैं इन्द्र बोले कि सामने होतेहुये युद्ध करते कोई देवता युद्धमें मरे हैं ॥ २० । २१ ॥ वैसेही विमुख होकर मारेहुये अन्य देवों को मैंने देखाहै हे विभो !

विष्णुजी बोले कि हे हज़ार लोचनोंवाले इन्द्रजी ! युद्धमें जे विमुख होतेहुये मारेगये हैं वे निस्सन्देह प्रेतत्वको
और समस्त दैत्योंकी प्रेतता होगी या नहीं ॥ २२ ॥ विषसे व अग्नि से कुलको नाशनेवाले व आत्मघाती याने स्वयंप्राणोंको नाशनेवाले व दाढ़ व
प्राप्तहोते हैं चाहे देवताहों या मनुष्य होवैं ॥ २३ ॥ हे सुरनायक ! विषसे व अग्नि से कुलको नाशनेवाले व आत्मघाती याने स्वयंप्राणोंको नाशनेवाले व दाढ़ व
सींगोंवाले प्राणियों से नष्टदेहवालों को ॥ २४ ॥ निश्चयकर प्रेतता होती है यह निस्सन्देह सत्यहै इन्द्र बोले कि हे विभो ! उनके भयङ्कर प्रेतत्व से कब मुक्तिहोवै-
गी ॥ २५ ॥ यह सब मुझसे कहो कि जिससे मैं यत्न करूं भगवान् बोले कि हे सुरनायक ! जब कन्याराशि में सूर्यनारायण भलीभांति स्थितहोवैं तब भाद्रपद के

द्धेपराङ्मुखाः ॥ प्रेतत्वंयान्तितेसर्वे देवावामानुषायदि ॥२३॥ विषादग्नेःकुलघ्नानां तथाचैवात्मघातिनाम् ॥ दंष्ट्रिभिर्हत
देहानां शृङ्गिभिश्चसुरेश्वर ॥ २४ ॥ प्रेतत्वंजायतेनूनं सत्यमेतदसंशयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कदातेषांभवेन्मुक्तिःप्रेतत्वा
द्दारुणाद्विभो ॥ २५ ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्व येनयत्नंकरोम्यहम् ॥ भगवानुवाच ॥ तेषांसंयुज्यतेश्राद्धं कन्यासंस्थेदिवा
करे ॥ २६ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नभस्यस्यसुरेश्वर ॥ गयायांभक्तिपूर्वन्तु पितामहवचोयथा ॥ २७ ॥ ततःप्रयान्तिते
मोक्षं सत्यमेतदसंशयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कस्मात्तत्रदिनेश्राद्धं क्रियतेमधुसूदन ॥ २८ ॥ शस्त्रैर्विनिहतानाञ्च सर्वमे
विस्तराद्वद ॥ भगवानुवाच ॥ भूतैःप्रेतैःपिशाचैश्च कूष्माण्डैराक्षसैरपि ॥ २९ ॥ यदासम्प्रार्थितःशम्भुर्दिनेतत्रसमागमे॥
अथैकंदिवसंदेवकन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ ३० ॥ अस्माकंदेहियेनस्यात्तृप्तिर्वंशसमुद्भवा ॥ प्रदत्तेवंशजेश्राद्धे दीनानांत्वं

कृष्णपक्षमें चौदसि तिथि में गयाक्षेत्रके मध्य भक्तिपूर्वक उनकी श्राद्ध भलीभांति योग्य है जैसे कि ब्रह्माजीके वचन हैं ॥ २६ । २७ ॥ तदनन्तर वे मुक्तिको प्राप्त
होतेहैं यह निस्सन्देह सत्यहै इन्द्रजी बोले कि हे मधु दैत्यके मारनेवाले विष्णुजी ! शस्त्रसे मरेहुये प्राणियों की श्राद्ध किस कारण उस दिन कीजातीहै यह सब
मुझसे विस्तारपूर्वक कहो भगवान् बोले कि भूत, प्रेत, पिशाचों, कूष्माण्डों व राक्षसों ने भी ॥ २८ । २९ ॥ समागम (समाज) में जब शिवजी से उस दिन भली
भांति प्रार्थना किया कि हे देव ! कन्याराशि में सूर्य्यनारायणको टिकनेपर एक दिन ॥ ३० ॥ हमलोगों को दीजिये कि जिससे वंशमें उपजेहुये पुरुष के श्राद्ध देने

पर वर्षसे उपजीहुई तृप्तिहोवै तुम हमदीनों के ऊपर दयाकरो ॥ ३१ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि इस दिन के भलीभांति प्राप्त होने पर भादोंकी कृष्णपक्षवाली चौदसि में वंशमें उत्पन्न जो श्राद्ध करैगा ॥ ३२ ॥ उससे जब तक वर्ष स्थित रहैगा तब तक परमप्रीति होगी फिर जो गयामें जाकर तुमलोगों के वंशमें उपजा हुआ पुरुष ॥ ३३ ॥ वैसेही श्राद्ध करैगा उससे मोक्ष पावोगे और शस्त्रसे मरे व निश्चयकर स्वर्ग में टिकेहुये भी पितरों की श्राद्ध जो पुरुष उस दिन के संस्थित (प्राप्त) होनेपर नहीं करैगा उसके पितर दुःखित व क्षुधा, प्यास से विकल देहवाले होकर ॥ ३४ । ३५ ॥ वर्षभर टिकैंगे यह ब्रह्माजीने कहाहै इसलिये सब उपाय-

दयांकुरु ॥ ३१ ॥ भगवानुवाच ॥ यःकरिष्यतिवैश्राद्धमस्मिन्नहनिसंस्थिते ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नभस्यस्यचवंश जः ॥ ३२ ॥ भविष्यतिपराप्रीतिर्यावत्संवत्सरंस्थितम् ॥ यःपुनस्तुगयांगत्वा युष्मद्वंशसमुद्भवः ॥ ३३ ॥ करिष्यति तथाश्राद्धं तेनमुक्तिमवाप्स्यथ ॥ शस्त्रेणनिहतानाञ्च स्वर्गस्थानामपिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ नकरिष्यतियःश्राद्धं तस्मिन्नह निसंस्थिते ॥ क्षुत्पिपासार्तदेहाश्च पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ ३५ ॥ स्थास्यन्तिवत्सरंयावदेतदाहपितामहः ॥ तस्मात्स र्वप्रयत्नेन तस्मिन्नहनिकारयेत् ॥ ३६ ॥ अन्यमुद्दिश्यतत्सर्वं प्रेतानामिहजायते ॥ ततोभगवतादत्ता तेषांचैवतुसाति थिः ॥ ३७ ॥ श्राद्धेकर्म्मणिसञ्जाते विनाशस्त्रहतंजनम् ॥ सम्मुखस्यापिसङ्ग्रामे युध्यमानस्यदेहिनः ॥ ३८ ॥ कदाचि च्चलतेचित्तं तीक्ष्णशस्त्रहतस्यच ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येप्रे तश्राद्धकथनंनामचतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से उस दिन अन्यको उद्देश करावै वह सब यहां प्रेतोंको होताहै उसी कारण भगवान् ने उनको वह तिथि दियाहै ॥ ३६ । ३७ ॥ शस्त्रसे मरे हुये पुरुषके विना संग्राम में सामनेभी युद्ध करतेहुये शरीरधारीका श्राद्ध कर्म भलीभांति होनेपर कभी तीक्ष्ण शस्त्रसे मरे हुये पुरुषका चित्त चलताहै ॥ ३८ । ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां प्रेतश्राद्धकथनंनामचतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ॥

दो• । गये हिमाचल पै यथा द्विजन काज सुरराज । इकसौ पंचानवे महँ सोई वरणत साज ॥ विष्णुजी बोले कि हे सहस्रलोचन ! ऐसा जानकर मेरा वचन
कीजिये कि तुम्हारे आगे युद्धकरतेहुये जे समरशिरमें मरेहैं यदि वे तुमको प्रिय होवैं तो उन सबोंको गया श्राद्धसे तृप्त कराइये जिससे प्रेततासे वे मोक्षको भजैं ॥
१ । २ ॥ और जे भागने में तत्पर व जे पृष्ठदेश (पीठ) में मारेगये हैं उनकीभी श्राद्ध कीजिये इन्द्र बोले कि उस समय वर्ष २ में ब्रह्माजी गयाको जाकर उस दिन
दिव्यरूपवाले पितरोंकी श्राद्ध करते हैं इसलिये हे देव ! वहां श्राद्धकी सिद्धिके लिये मैं कैसे जाऊं ॥ ३ । ४ ॥ उस कारण हे जनार्दनजी ! श्राद्धके लिये पृथ्वी

विष्णुरुवाच ॥ एवंज्ञात्वासहस्राक्ष ममवाक्यंसमाचर ॥ यदितेवल्लभास्तेच येहतारणमूर्द्धनि ॥ १ ॥ युध्यमानास्त
वाग्रेच गयाश्राद्धेनतर्पय ॥ सर्वांस्तान्प्रेतभावाच्च येनमुक्तिंभजन्तिते ॥ २ ॥ पलायनपरायेच पृष्ठदेशेहताश्चये ॥
इन्द्रउवाच ॥ वर्षेवर्षेतदाश्राद्धं प्रकरोतिपितामहः ॥ ३ ॥ गयांगत्वादिनेतस्मिन्पितॄणांदिव्यरूपिणाम् ॥ तत्कथंदेवग
च्छामि तत्रश्राद्धस्यसिद्धये ॥ ४ ॥ तस्मात्कथयमेतीर्थं कञ्चिच्छ्राद्धायभूतले ॥ मुक्तिदंयेनगच्छामि तववाक्याज्ज
नार्द्दन ॥ ५ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ततस्ससुचिरंध्यात्वा प्रत्युवाचजनार्द्दनः ॥ अस्तितीर्थंमहत्पुण्यं तस्मादभ्यधिकं
चयत ॥ ६ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे कूपिकामध्यसंस्थितम् ॥ अमावस्यादिनेतत्र चतुर्दश्याश्चदेवप ॥ ७ ॥ गयासंक्रमतेस
म्यक्सर्वतीर्थसमन्विता ॥ कन्यासंस्थेरवौतत्र यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ ८ ॥ अष्टवंशोद्भवैर्विप्रैस्सपितॄंस्तारयेन्निजान् ॥
अपिप्रेतत्वमप्राप्तान्किंपुनःस्वर्गसंस्थितान् ॥ ९ ॥ तत्क्षेत्रप्रभवाविप्रा अष्टवंशसमुद्भवाः ॥ तपउग्रंसमास्थाय वर्तन्ते

में किसी मुक्तिदायक तीर्थको मुझसे कहो जिससे तुम्हारे वचनसे मैं जाऊं ॥ ५ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि तदनन्तर विष्णुजीने बहुत देरतक ध्यानकर प्रत्युत्तरदिया
जो उससे भी अधिक बडाभारी पुण्यदायक तीर्थ है ॥ ६ ॥ वह हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें कूपिका के बीचमें संस्थितहै हे सुरपालक ! अमावस व चौदसि
न वहां ॥ ७ ॥ समस्त तीर्थों से संयुत गयातीर्थ भलीभांति गमन करताहै जब कन्याराशिमें सूर्य संस्थित होवैं तब वहां जो पुरुष अष्टकुल में उपजेहुये द्विजोंके
श्राद्धकरताहै वह प्रेततामें प्राप्त अपने पितरोंको तारताहै फिर स्वर्ग में टिकनेवालों को क्याकहना है ॥ ८ । ९ ॥ उस क्षेत्रमें उत्पन्न व अष्टकुल में उपजेहुये

द्विज उग्र तपस्या में भलीभांति टिककर हिमाचल पै वर्तमानहोते हैं ॥ १० ॥ आनर्ताधिपति के दानसे डरेहुये वहां भलीभांति प्राप्तहैं प्रिय वचन पूर्वक उपायों से भलीभांति समझाकर तुम उनको लाकर वहां गौरव से आइये और उनके आगे न्याय पूर्वक श्राद्ध करिये तदनन्तर मनोरथ को पावोगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ व श्राद्धके कारण तुम समेत हम सबोंसे पूजने योग्य वे भी सब सुखी होवैंगे ॥ १३ ॥ उस को सुनकर अचानक हीं इन्द्रजी बड़े सन्तोषको प्राप्तहुये व हिमाचल पै भलीभांति आश्रित होकर इन्द्रने भी विष्णुसे कहे हुये अष्टवंश में उत्पन्न ब्राह्मणोंको देखा ॥ १४।१५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांइन्द्रस्यहिमाचलगमनंनामपंचनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

हिमपर्वते ॥ १० ॥ आनर्ताधिपतेर्दानाद्भीतास्तत्रसमागताः ॥ तान्गृहीत्वात्वमागच्छ तत्रसम्बोध्यगौरवात् ॥ ११ ॥ सामपूर्वैरुपायैश्च तेषामग्रेसमाचर ॥ श्राद्धंचैवयथान्यायंततःप्राप्स्यसिवाञ्छितम् ॥ १२ ॥ तेचापिसुखिनस्सर्वे भविष्यन्तिसमागताः ॥ त्वयासहप्रपूज्याश्च अस्माभिःश्राद्धकारणात् ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वासहसाशक्रस्सन्तोषंपरमंगतः ॥ हिमवन्तंसमाश्रित्य शक्रोपिददृशेद्विजान् ॥ १४ ॥ अष्टवंशसमुद्भूतान्विष्णुनासमुदाहृतान् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ इन्द्रोपिविष्णुवाक्येनहिमवन्तंसमागतः ॥ ऐरावतंसमारुह्य नागेन्द्रंपर्वतोपमम् ॥ १ ॥ तत्रापश्यद्दर्षींस्तांश्च चमत्कारसमुद्भवान् ॥ नियमैस्संयमैर्युक्तान्सदाचारपरायणान् ॥ २ ॥ वानप्रस्थाश्रमोपेतान्कामक्रोधविवर्जितान् ॥ एकचित्ताःस्थिताः केचिदेकान्तरितभोजनाः ॥ ३ ॥ षष्ठकालाशिनश्चान्ये चान्द्रायणपरायणाः ॥ अ

दो० । यथा सुरनकी श्राद्धको कीन्ह्यो है सुरपाल । इकसौ अरु छानबे महँ सोई चरित रसाल ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि विष्णुके वचनसे पर्वतके समान व हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावतपै भलीभांति चढ़कर इन्द्रभी हिमाचल पै आये ॥ १ ॥ वहां नियमों संयमोंसे संयुत व उत्तम आचारमें तत्पर उन चमत्कार पुरमें उपजेहुये ऋषियोंको देखा ॥ २ ॥ जोकि वानप्रस्थ आश्रमसे संयुत व काम, क्रोध से रहितथे कोई एकाग्र चित्तवाले व एक दिनके अन्तर से खानेवाले थे ॥ ३ ॥ व अन्य छठे समय में

के हारा पूजित इन्द्रको वहां आतेहुये भलीभांति देखकर द्विजोत्तमों ने आपस में कहा ॥ ६ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! आपलोगों के आश्रम में ये इन्द्र भलीभांति आये हैं इनके लिये जो शास्त्र चिन्तकों ने कहाहो वह पूजन कियाजावै ॥ ७ ॥ तदनन्तर विस्मय से हर्षित लोचनोंवाले व हाथोंको जोड़ेहुये स्थित सब ब्राह्मण शीघ्रही सामने

भोजन करनेवाले व चान्द्रायण व्रतोंमें तत्पर थे कोई पत्थलसे कूटकर खानेवाले व अन्य दन्त रूप ओखलीमें कूटकर भोजनकरनेवालेथे ॥ ४ ॥ व कोई गिरे पत्तोंके खानेवाले व अपर जलहीके भोजनवाले थे व पवन भोजनवाले अन्य ऋषियों ने भयङ्कर तपस्या कियाहैं ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर चारणों, सिद्धों व साध्योंसे उत्तम वचनों

इमकुट्टाशिनःकेचिद्दन्तोलूखलिनःपरे ॥ ४ ॥ शीर्णपर्णाशिनःकेचिज्जलाहारास्तथापरे ॥ वायुभक्षास्तथैवान्ये तप

स्तेपुःसुदारुणम् ॥ ५ ॥ अथशक्रंसमालोक्य तत्रायान्तंद्विजोत्तमाः ॥ पूजितंचारणैस्सिद्धैस्तथासाध्यैःसदुक्तिभिः ॥६॥

अयंशक्रःसमायातो भवतामाश्रमेद्विजाः ॥ क्रियतामर्हणंचास्मैयच्चोक्तंशास्त्रचिन्तकैः ॥ ७ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे वि

स्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ सम्मुखाःप्रययुस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटाःस्थिताः ॥८॥ गृह्योक्तविधिनातस्मै संप्रहृष्टतनूरुहाः॥ प्रो

चुश्चविनयात्सर्वे किमागमनकारणम् ॥ ९ ॥ निरीहस्यापिदेवेन्द्र कौतुकंनोऽव्यवस्थितम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कुशलंवो

द्विजश्रेष्ठा अग्निहोत्रेषुकृत्स्नशः ॥ १० ॥ तपश्चर्य्यासुसर्वासुवेदाभ्यासेतथाश्रुतौ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं बहुतीर्थमयं

शुभम् ॥ ११ ॥ कस्मादत्रसमायाता हिमाद्रिजनकेगिरौ ॥ तस्मात्सर्वेमयासार्द्धंसमागच्छन्तुभोद्विजाः ॥१२॥ चमत्का

रपुरेपुण्ये बहुविप्रसमाकुले ॥ वासुदेवसमादेशात्तत्रगत्वाथसाम्प्रतम् ॥ १३ ॥ गयाकूप्यांकरिष्यामि श्राद्धंभक्त्या

गये ॥ ८ ॥ व प्रसन्न रोमोंवाले सब गृह्योक्त विधानसे उन इन्द्रके लिये पूजन कर नम्रतासे बोले कि हे सुरेशजी ! निरीह (निर्लोभ) भी तुम्हारे आनेका क्याकारण है यह हमलोगों को आश्चर्य प्राप्तहै इन्द्रबोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों के समस्त अग्निहोत्रों में कुशल है ॥ ९ । १० ॥ व वैसेही समस्त तप व वेदाभ्यास और वेदमें कुशलहै हाटकेश्वरज क्षेत्र बहुत तीर्थों से प्रधान व उत्तम है ॥ ११ ॥ और इस हिम (पाला) आदिक पैदा करनेवाले पर्वत पै तुम लोग किस कारण आये हो इसलिये अहो ब्राह्मणो ! बहुत द्विजोंसे भलीभांति व्याप्त व पुण्यदायक चमत्कार नगरमें मुझ समेत आपलोग चलिये विष्णुजीकी आज्ञासे वहां जाकर इसके

अनन्तर इस समय ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! प्रेत पक्षके प्राप्त होनेपर चौदसि तिथिमें मैं गयाकूपिका के समीप तुमलोगोंके आगे भक्तिसे श्राद्ध करूंगा ॥ १४ ॥ आप सबोंके प्रगटही आकाश गामित्व भलीभांति प्राप्तहै इसलिये बाल, वृद्ध, स्त्रियों समेत व अग्निहोत्र सहित तुमलोग मेरेसाथ उसस्थान पै चलिये तुमलोगों का कल्याणहोगा ब्राह्मण बोले कि हमलोग फिर वहां चमत्कार पुरको न जावैंगे ॥ १५ । १६ ॥ वहां और भी वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले व यज्ञ कराने वाले, स्मृत्तियों के जाननेहारे व वेदोंमें तत्पर नागर ब्राह्मणहैं ॥ १७ ॥ यदि तुम्हारे श्राद्धसेउपजीहुई श्रद्धाहै तो उनके आगे श्राद्ध करिये इन्द्रबोले कि वहां जिन किसी ब्राह्मणोंको आप

द्विजोत्तमाः ॥ युष्मदग्रेचतुर्दश्यां प्रेतपक्षउपस्थिते ॥ १४ ॥ खेचरत्वंसमायातं सर्वेषांभवतांस्फुटम् ॥ सबालवृद्धपत्नी काःसाग्निहोत्रामयासह॥१५॥ तस्माद्गच्छथभद्रंवस्तत्रस्थानेभविष्यति ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नवयंतत्रयास्यामश्चमत्कार पुरंपुनः ॥ १६ ॥ अन्येपिब्राह्मणास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ नागरायाज्ञिकाःसन्तिस्मार्ताःश्रुतिपरायणाः ॥ १७ ॥ तेषाम ग्रेकुरुश्राद्धं श्रद्धाचेच्छ्राद्धजातव ॥ इन्द्रउवाच ॥ तत्रयेब्राह्मणाःकेचिद्भवद्भिःसम्प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ तथाविधाश्चते सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्ना याज्ञिकाश्चविशेषतः ॥ १९ ॥ परंद्वेषपरास्सर्वे तथापरुषवादिनः ॥ अहङ्का रेणसंयुक्ताः परस्परजिगीषया ॥ २० ॥ तपसाविप्रयुक्ताश्चभोगसक्तादिवानिशम् ॥ यूयंसर्वैर्गुणोपेता विष्णुनामेप्रकी र्तिताः ॥ २१ ॥ तस्मादागमनंकार्य्यं मयासहसमस्तकैः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ अस्माभिस्तेनदोषेण त्यक्तंस्थानंनिजंहित त् ॥ २२ ॥ बहुतीर्थसमोपेतं स्वर्गमार्गप्रदर्शकम् ॥ यदियास्यामहेतत्र त्वयासार्द्धंपुरन्दर ॥ २३ ॥ अस्माकंस्वजनास्स

लोगोंने भलीभांति कहाहै ॥१८॥ वे सब उसीभांतिके व वेद वेदाङ्गके पारगामी, शास्त्र पठनमें सम्पन्न व विशेषतासे यज्ञ कराने वालेहैं ॥१९॥ परन्तु वे सब वैरमें तत्पर व कठोर कहनेवाले और आपसमें जीतकी इच्छासे गर्वयुक्तहैं ॥२०॥ और तपस्यासे भिन्न व दिनरात सुखमें आसक्त (लगेहुये) हैं और विष्णुजीने तुम सबोंको गुणोंसे संयुक्त मुझसे कहाहै ॥ २१ ॥ उसी कारण मेरेसाथ सबों को आगमन करना चाहिये ब्राह्मणबोले कि हमलोगों ने अपने उस स्थानको उस दोषसे त्यागकियाहै ॥ २२ ॥ जो स्थान कि बहुत तीर्थों से संयुत व स्वर्गमार्ग को भलीभांति दिखलानेवाला है हे पुरन्दर ! यदि हम लोग तुम्हारे साथ वहां जावैंगे ॥ २३ ॥ तो अनुराग व वैरमें

लगेहुये हमलोगोंके निजजन नित्यही पग २ पै अपराधोंको करैंगे ॥२४॥ क्योंकि वे ईर्ष्या धर्मसे संयुत व कठोर आखरों के कहनेवाले हैं उससे क्रोध उत्पन्नहोगा और क्रोधसे तपस्याका नाशहोगा ॥ २५ ॥ और उस तपस्याके नाशसे मुक्ति नहीं मिलतीहै इसलिये हे विभो ! हमलोग कैसेजावैं और उस देशमें सदैव दानमें त त्पर भूपति है ॥ २६ ॥ वह प्रसिद्ध आनर्त देशका स्वामी सदैव त्यौहारके समयमें हाथी, घोड़ा व सुवर्णादिक अनेक भांतिके दान देताहै ॥ २७ ॥ यदि हमलोग वहां नहीं ग्रहण करतेहैं तो, वह क्रोधको प्राप्तहोताहै राजाको क्रोधमें प्राप्तहोने परव निज जनोंके वैरीहोने पर ॥ २८ ॥ हमलोगों की तपस्याकी सिद्धि नहीं होती उसीसे अ-

ईर्ष्याधर्म्मसमोपेताः परुषाक्षरजल्पकाः ॥ ततः वै रागद्वेषपरायणाः ॥ अपराधान्करिष्यन्ति नित्यमेवपदेपदे ॥ २४॥ सम्पत्स्यतेक्रोधः क्रोधाच्चतपसःक्षयः ॥ २५ ॥ ततोनप्राप्यतेमुक्तिस्तद्गच्छामःकथंविभो ॥ अपरंतत्रभूपोस्ति देशे दानपरःसदा ॥ २६ ॥ आनर्ताधिपतिःख्यातःपर्वकालेसदैवसः ॥ ददातिविविधंदानं हस्त्यश्वकनकादिकम् ॥ २७ ॥ य दितत्रनगृह्णीमस्तदाकोपंसगच्छति ॥ भूपालेकोपमापन्नेस्वजनेषुविरोधिषु॥२८॥ सिद्धिर्नतपसोस्माकंतेनत्यक्तंनिजंपुर म् ॥ यदिगृह्णीमहेदानं तस्यभूपस्यदेवप ॥ २९॥ तपसस्संप्रणाशःस्याद्यत्तुप्रोक्तंस्वयंभुवा ॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्री समोध्वजी ॥ ३० ॥ दशध्वजीसमोवेश्या दशवेश्यासमोनृपः ॥ तत्कथंतस्यगृह्णीमोदानंपापरतस्यच ॥ ३१ ॥ यथा न्येनागरास्सर्वे लोभेनमहतान्विताः ॥ इन्द्रउवाच ॥ प्रभावोयंद्विजश्रेष्ठास्तस्यक्षेत्रस्यसंस्थितः ॥ ३२ ॥ हाटकेश्वरसं ज्ञस्य सर्वदैवव्यवस्थितः ॥ पितॄणाञ्चसुतानाञ्च बन्धूनाञ्चविशेषतः ॥ ३३ ॥ श्वश्रूणाञ्चस्नुषाणाञ्च भगिनीभ्रातृजाय

पना नगर छोड़ागया हे सुरपालक ! यदि उस भूपका दान ग्रहणकैरं ॥ २९ ॥ तो तपस्या का विनाश होताहै जोकि स्वयम्भूने कहा है कि दशसूना (खन्धानी) के बराबर चक्री (कुँभार) होताहै व दश कुलालोंके समान ध्वजी (तेली) होता है ॥ ३० ॥ व दश ध्वजियों के समान वेश्या होती है और दश वेश्याओं के बराबर राजाहोताहै इसलिये पापमें परायण उस राजाके दानको हमलोग कैसेलेवैं ॥ ३१ ॥ जैसे कि बड़े लालचसे युक्त और नागर ग्रहण करते हैं इन्द्रबोले कि हे द्विजोत्त मो ! उस हाटकेश्वर संज्ञक क्षेत्रका यह प्रभाव सदैवही भलीभांति स्थित व व्यवस्थितहै कि विशेषकर पिताओं व पुत्रों और भाइयों ॥ ३२ । ३३ ॥ व सासु, पतोहुवोंका

बहिन व भाई की स्त्री का वैर वर्त्तमान है क्योंकि हाटकेश्वर संज्ञक देव विद्यमान हैं व उस पुरके प्रभाव से समस्त जन भलीभांति मुक्तहोजाते हैं उसीसे आपस में बहुत वैर करतेहैं ॥ ३४ । ३५ ॥ क्या आपलोगों ने नहीं जाना कि जिसप्रकार लक्ष्मण समेत रामजी उसी क्रोधके कारण सीताजी के साथ बड़े वैरको प्राप्तहुये हैं ॥ ३६ ॥ और लक्ष्मणही सीताके साथ क्रोधसे संयुत हुये हैं और हे ब्राह्मणो ! उस समय उसीसे उन राम जानकी जी से न कहने योग्य वचन कहाहै ॥ ३७ ॥ यदि क्रोध रहितहो मनुष्य वहां महीने भरभी निवासकरै तो मुक्तिको प्राप्तहोवै और यज्ञ से स्वर्ग होताहै ॥ ३८ ॥ इसलिये वहां मेरेसाथ तुमलोगों को अवश्यजाना चाहिये

योः ॥ विरोधंवर्ततेदेवो हाटकेश्वरसञ्ज्ञितः ॥ ३४ ॥ पुरस्यविद्यतेतस्य प्रतापेनाखिलाजनाः ॥ संमुच्यन्तेततोद्वेषं प्रकुर्वन्तिपरस्परम् ॥ ३५ ॥ किंनज्ञातंभवद्भिस्तुयथारामःसलक्ष्मणः ॥ सीतयासहसंप्राप्तो विरोधंपरमंततः ॥ ३६ ॥ सीतयालक्ष्मणश्चैव सार्द्धंकोपेनसंयुतः ॥ अवाच्यंप्रोक्तवान्विप्रास्तौचतेनस्वयंतदा ॥ ३७ ॥ अपिमासंवसेत्तत्र यदिकोपविवर्जितः ॥ तदामुक्तिमवाप्नोति स्वर्गंभवतिसत्रतः ॥ ३८ ॥ तस्मात्तत्रप्रगन्तव्यं युष्माभिस्तुमयासह ॥ ईर्ष्याधर्म्मंन युष्माभिस्तेकरिष्यन्तिनागराः ॥ ३९ ॥ नचैवभवतांकोपस्तत्रस्थानेभविष्यति ॥ प्रसादान्ममविप्रेन्द्रास्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ४० ॥ आनर्तःपार्थिवोदाने योजयेन्नैवकर्हिचित् ॥ युष्माकंपुत्रपौत्रेभ्यः प्रदास्यन्तिचकन्यकाः ॥ ४१ ॥ सहस्रगुणितंतेषां तत्फलंसंभविष्यति ॥ अमावस्यादिनेश्राद्धं कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ ४२ ॥ युष्मदग्रेद्विजश्रेष्ठा गयाकूप्यांकरिष्यति ॥ यस्तस्यतत्फलंभावि सहस्रशतसम्मितम् ॥ ४३ ॥ गयाश्राद्धान्नसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥

और वे नागर तुमलोगों के साथ ईर्षा धर्म को न करैंगे ॥ ३९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! मेरी प्रसन्नता से उस स्थानमें आपलोगों को क्रोध न होगा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ४० ॥ और आनर्त राजा कभी दानमें न युक्त करैगा व तुम्हारे पुत्र, पौत्रोंको जे कन्या देवैंगे ॥ ४१ ॥ उनको वह फल हजार गुनाहोगा व कन्याराशि में सूर्यको टिकनेपर अमावसके दिन ॥ ४२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! गया कूपिकाके समीप जो तुम लोगों के आगे श्राद्धकरैगा उसको यह फल निरसन्देह गया श्राद्धसे सहस्र शत

याने लाखगुना के बराबर होगा यह मैंने सत्य कहाहै हे द्विजोत्तमो ! यदि श्राद्धके लिये वहां न जाओगे ॥ ४३। ४४ ॥ तो तुमलोगों की तपस्याके विघ्नकारक वचन को मैं आपही कहूंगा ऐसा जानकर वहां मेरेसाथ आदरसमेत जाकर प्राप्तहोवो ॥ ४५ ॥ उन इन्द्रजी से इस प्रकार कहेहुये वे सब उसी क्षण इन्द्रके साथ कश्यप व कौण्डिन्य व विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ, भरद्वाज व अत्रि हे राजन् ! इन्द्रके साथ यह कुलाष्टक प्राप्तहुआ और भलीभांति ॥ ४६। ४७ ॥ श्रद्धासंयुत इन्द्रने अग्निष्वात्तादिक समस्त पितरों व विश्वेदेवों को बुलाकर चमत्कार पुरको प्रस्थान किया इसीअवसरमें लोकोंके पितामह जो ब्रह्माजी हैं ॥ ४८। ४९ ॥ उन्होंने भी उस दिन श्राद्ध

यदिश्राद्धकृतेतत्रनयास्यथद्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥ ततःस्वयंप्रवक्ष्यामि तपोविघ्नकरंहिवः ॥ एवंज्ञात्वामयासार्द्धं तत्रगत्वाच सादरम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्तास्तेनतेसर्वे शक्रेणसहतत्क्षणात् ॥ कश्यपश्चैवकौण्डिन्यो विश्वामित्रोथगौतमः ॥ ४६ ॥ जमदग्निर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोत्रिरेवच ॥ एतत्कुलाष्टकंप्राप्तमिन्द्रेणसहपार्थिव ॥ ४७ ॥ अग्निष्वात्तादिकान्सर्वान्पितॄनाहूयकृत्स्नशः ॥ विश्वेदेवांस्तथाचैव प्रस्थितःपाकशासनः ॥ ४८ ॥ सम्यक्श्रद्धासमाविष्टश्चमत्कारपुरंप्रति ॥ एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४९ ॥ गयायांप्रस्थितःसोपिश्राद्धार्थंतत्रवासरे ॥ विश्वेदेवाःप्रतिज्ञाय गयायांप्रस्थितं विधिम् ॥ ५० ॥ शक्रश्राद्धंपरित्यज्य गतायत्रपितामहः ॥ शक्रोपितत्पुरंप्राप्य गयाकूप्यामुपागतः ॥ ५१ ॥ ततःस्नात्वाह्वयामास श्राद्धेश्रद्धासमन्वितः ॥ विश्वेदेवांस्ततश्चैवकालेकुतुपसञ्ज्ञिते ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्समाहूता श्रुतेनये ॥ पितरोदेवरूपाये प्रेतरूपास्तथैवच ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षरूपिणस्सर्वे द्विजोपान्तेसमाश्रिताः ॥ विश्वेदेवानसंप्रा

के लिये गयामें प्रस्थान किया व गयामें प्रस्थान कियेहुये ब्रह्माको जानकर विश्वे देवताओं ने ॥ ५० ॥ इन्द्रकी श्राद्ध छोड़कर वहांगये जहां कि ब्रह्माजी थे व इन्द्र भी उस पुरको पाकर गयाकूपिका के समीप आये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर नहाकर उस के उपरान्त विश्वेदेवों को बुलाकर कुतुप संज्ञक (आठवें मुहूर्त) वाले समय में श्राद्धके निमित्त श्रद्धा संयुत हुये ॥ ५२ ॥ इसी अवसर में उन इन्द्रसे जे देवरूप पितर व जे प्रेत रूपवाले पितर बुलायेगये वे प्राप्तहुये ॥ ५३ ॥ व प्रत्यक्ष रूपवाले

सब द्विजोंके समीप भलीभांति आश्रित हुये उससमय जो गयामें गयेथे वे विश्वे देवता न प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ उसी कारण इन्द्रने उस श्राद्धके लिये देरकिया क्योंकि श्राद्धमें विश्वेदेवा पहलेही पूजने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ इसी अवसर में मुनिश्रेष्ठ नारद जी प्राप्तहुये व भलीभांति आकर विश्वेदेवों की इच्छावाले इन्द्र से बोले ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले कि हे इन्द्रजी! विश्वेदेवता संयुतहोकर ब्रह्माकी श्राद्धमें गयाको गयेहैं प्रसन्नजातेहुये उनको मैंने देखाहै ॥ ५७ ॥ उसको सुनकर उसीक्षण ब्राह्मणों के आगे बैठेहुये इन्द्र उन विश्वेदेवोंके ऊपर क्रोधितहोकर कठोर वचनबोले ॥ ५८ ॥ कि अहो ब्राह्मणो ! मैं आज विश्वेदेवों के विना श्राद्धकरूंगा वैसेही और समस्त मनुष्य भूतलमें करैंगे ॥ ५९ ॥ व जो विश्वेदेवों को आगे थापकर पितर श्राद्ध करैगा उसका यह वैसेही व्यर्थताको प्राप्तहोगा जैसे कि ऊसरमें बरसना व्यर्थहोता है॥ ६० ॥ ऐसा कहकर हजार लोचनोंवाले इन्द्रने उन समस्त देवताओं के एकोद्दिष्टों को सम्पूर्णता से किया जोकि संग्राम शिरमें मारेगये थे ॥ ६१ ॥ इसी अवसरमें हे नृपोत्तम ! जिनको उद्देशाकर वह श्राद्धकीगई उनकी बिन शरीरवाली (आकाश) वाणीहुई ॥ ६२ ॥ कि अहोइन्द्र अहोइन्द्र हे महाबाहो ! तुमने प्रेततामें भली भांति टिकेहुये जिनदेवों की श्राद्धकिया वे प्रेतत्वसे रहित ॥ ६३ ॥ व दिव्यरूपवाले शरीरोंको धारेहुये तुम्हारी प्रसन्नतासे स्वर्गमें गये व फिर महासमरमें युद्ध करतेहुये

प्ता येगयायांगतास्तदा ॥ ५४ ॥ ततोविलम्बमकरोत्तदर्थेपाकशासनः ॥ विश्वेदेवायतःश्राद्धे पूज्याःप्रथममेवच ॥ ५५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नारदोमुनिसत्तमः ॥ शक्रंप्राहसमागत्य विश्वेदेवाभिकाङ्क्षिणम् ॥ ५६ ॥ नारदउवाच ॥ विश्वेदेवागताश्शक्र श्राद्धेपैतामहेयुताः ॥ गयायांतेमयादृष्टा गच्छमानाःप्रहर्षिताः ॥ ५७ ॥ तच्छ्रुत्वातत्रकुपितस्ते षामुपरितत्क्षणात् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं विप्राणांपुरतःस्थितः ॥ ५८ ॥ विश्वेदेवान्विनाश्राद्धं करिष्याम्यहमद्यभोः ॥ तथान्येमानवास्सर्वे करिष्यन्तिधरातले ॥ ५९ ॥ विश्वेदेवान्पुरःस्थाप्य पितृश्राद्धंकरिष्यति ॥ व्यर्थतांयास्यतेतस्य ऊषरेवर्षितंयथा ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्ष एकोद्दिष्टानिकृत्स्नशः ॥ चकारसर्वदेवानां येहतारणमूर्द्धनि ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ येषामुद्दिश्यतच्छ्राद्धं कृतंतेषांनृपोत्तम ॥ ६२ ॥ शक्रशक्रमहाबाहोयेषांश्राद्धं कृतंत्वया ॥ प्रेतत्वंसंस्थितानाञ्च प्रेतत्वेनविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ गतास्स्वर्गेप्रसादात्ते दिव्यरूपवपुर्द्धराः ॥ येपुनःस्वर्गताःपू

जे पहले स्वर्गगयेथे ॥६४॥ हे इन्द्रजी ! वे समस्त तुम्हारी प्रसन्नतासे मोक्षको प्राप्तहुये उस वचनको सुनकर इन्द्रजी बड़ी प्रसन्नतासे संयुतहुये ॥ ६५ ॥ व अहोतीर्थ अहोतीर्थ ऐसीबार २ प्रशंसा करतेहुये स्थितथे इसी अवसरमें हे राजन् ! गयामें ब्रह्माकी श्राद्धको सिद्धकर भलीभांति उत्कंठित होतेहुये विश्वेदेवता वहां प्राप्तहुये व वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्रसे बोले कि हे शतक्रतो (इन्द्रजी) ! फिर भी श्राद्धकरिये ॥ ६६ । ६७ ॥ क्योंकि हमलोगोंके विना श्राद्धसे उपजाहुआ फलनहीं मिलता और तुम्हारी श्राद्धके कारण ब्रह्माकी श्राद्धको सिद्धकरके हमलोग दूरसेआये हैं जिससे कि पहले न्योतेगये थे उनके उस वचनको सुनकर क्रोधहो इन्द्रने ॥ ६८ । ६९ ॥ मेघके स

वं युध्यमानामहाहवे ॥६४॥ तेचमोक्षंगतास्सर्वे प्रसादात्तववासव ॥ तच्छ्रुत्वावासवोवाक्यं तोषेणमहतान्वितः ॥६५॥ अहोतीर्थमहोतीर्थं शंसमानःपुनःपुनः॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताविश्वेदेवास्समुत्सुकाः ॥ ६६ ॥ निर्वृत्यब्रह्मणःश्राद्धंगयायां तत्रपार्थिव ॥ प्रोचुश्चवृत्रहन्तारं कुरुश्राद्धंशतक्रतो ॥ ६७॥भूयोपिनविनास्माभिर्लभ्यतेश्राद्धजंफलम् ॥ वयंदूरात्समायातास्तवश्राद्धस्यकारणात् ॥ ६८ ॥ निर्वर्त्यब्रह्मणःश्राद्धंयेनपूर्वंनिमन्त्रिताः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां कुपितःपाकशासनः ॥ ६९ ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं मेघगम्भीरयागिरा ॥ अद्यप्रभृतियःश्राद्धं मर्त्यलोकेकरिष्यति ॥ ७० ॥ अन्योपि योभवत्पूर्वं वृथातस्यभविष्यति ॥ एकोद्दिष्टानिश्राद्धानि करिष्यन्त्यखिलाजनाः ॥ ७१ ॥ साम्प्रतंमर्त्यलोकेत्र मर्य्यादेयंकृतामया ॥ भूताःप्रेताःपिशाचाश्च येचान्येश्राद्धहारकाः ॥ ७२ ॥ विश्वेदेवैःप्ररक्ष्यन्ते रक्षयिष्यामितानहम् ॥ यजमानस्यकार्यंश्च श्राद्धंसंयोज्ययत्नतः ॥ ७३ ॥ मयाहताःप्रयास्यन्ति सर्वेतेदूरतोद्रुतम् ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षो वि

मान गम्भीरवाणी से कठोर वचन कहा कि आजसे लगाकर जो मृत्युलोकमें श्राद्ध करैगा ॥ ७० ॥ व अन्यने भी जो पहले कियाहो उसका वह वृथाहोगा व समस्त मनुष्य एकोद्दिष्ट श्राद्धोंको करैंगे ॥ ७१ ॥ इस समय इसमृत्युलोकमें मैंने यह मर्यादा किया और भूत, प्रेत, पिशाच व और जे श्राद्ध हरनेवाले ॥ ७२ ॥ विश्वेदेवोंसे रक्षाकिये जातेहैं उनकी मैं रक्षाकरूंगा व यजमान को श्राद्ध कार्यमें उपायसे भलीभांति युक्तकरके ॥ ७३ ॥ मुझसे मारेहुये वे सब शीघ्रही दूरप्राप्त होवैंगे विश्वेदेवोंसे

ऐसा कहकर सहस्र लोचनोंवाले इन्द्रजीने उसके उपरान्त ॥ ७४ ॥ समस्त ब्राह्मणोंसे कहा कि विश्वेदेवोंसे विना किया हुआ श्राद्धकर्म आपलोगों व अन्य मनुष्योंको करना चाहिये ॥ ७५ ॥ वैसाही होगा यह ब्राह्मणों के कहनेपर अति दुःखित विश्वेदेवोंने आंसुवों के प्रवाहसे पृथ्वीको पूर्ण करतेहुये रोदन किया ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! जिसलिये उनके छोड़ेहुये उन आंसुवों से पृथ्वी डूबगई उस से संख्या रहित (असंख्य) व अनेक प्रकार के आंसूहोगये ॥ ७७ ॥ तदनन्तर उन आंसुवों से भयङ्कर रूपवाले प्राणी निकले जोकि कालेदांतोंवाले व शंकु (कीलों) के समान कानोंवाले व ऊपर उठेहुये केशोंवाले व भयदायक व काललोचनोंवाले थे हे राजन्! उन्हों

श्वेदेवांस्ततःपरम् ॥ ७४ ॥ प्रोवाचब्राह्मणान्सर्वान्विश्वेदेवैर्विनाकृतम् ॥ श्राद्धकर्म्मभवद्भिस्तु कार्य्यमन्यैश्चमानवैः ॥ ७५ ॥ तथेत्युक्तेद्विजेन्द्रैश्च विश्वेदेवास्सुदुःखिताः ॥ रुरुदुर्बाष्पपूरेण पूरयन्तोवसुन्धराम् ॥ ७६ ॥ तेषांमुक्ताश्रुणातेनय त्पृथ्वीप्लाविताऩृप ॥ तेनभूतान्यनेकानि सङ्ख्ययारहितानिच ॥ ७७ ॥ ततस्तेभ्योविनिष्क्रान्ताः प्राणिनोरौद्ररूपिणः॥ कृष्णदन्ताश्शङ्कुकर्णाऊर्ध्वकेशाभयावहाः ॥ ७८ ॥ रक्ताक्षाश्चततःप्रोचुर्विश्वेदेवांश्चतेनृप ॥ वयंबुभुक्षितास्सर्वे भोज नंदीयतांध्रुवम् ॥ ७९ ॥ भवद्भिर्विहितायस्माद्याचमानान्नचापरम् ॥ विश्वेदेवाऊचुः ॥ अस्माभीरहितंश्राद्धं किञ्चित्स ञ्जायतेक्षितौ ॥ ८० ॥ श्रद्धयापरयायच्च युष्माकंभोजनंहितत् ॥ एवमुक्त्वातुतेश्राद्धं विश्वेदेवानृपोत्तम ॥ ८१ ॥ ब्रह्म लोकंगतास्सर्वे दुःखेनमहतान्विताः ॥ प्रोचुश्चदीनयावाचाप्रणिपत्यपितामहम् ॥ ८२ ॥ वयंबाह्याःकृतादेवश्राद्धानां बलविद्विषा ॥ तवश्राद्धेगतायस्माद्गयायांप्राङ्निमन्त्रिताः ॥ ८३ ॥ तेनरुष्टस्सहस्राक्षस्तवचान्तेसमागताः ॥ तस्मात्कु

ने विश्वेदेवों से कहा कि हम सब क्षुधितहैं हमलोगों को अवश्यकर भोजन दीजिये ॥ ७८ । ७९ ॥ जिसलिये कि आपलोगों से रचेगये हैं उसी कारण अन्यसे नहीं मांगते हैं विश्वेदेवा बोले पृथ्वीमें हमलोगोंसे रहित जो कुछ बड़ी श्रद्धा से श्राद्धहोगी वह श्राद्ध तुमलोगों का भोजनहोगी श्राद्धको ऐसा कहकर हे नृपोत्तम ! वे वि- श्वेदेवा ॥ ८० । ८१ ॥ बड़े दुःखसे संयुत सब ब्रह्मलोकको गये व ब्रह्माको प्रणाम कर दीनवाणीसे बोले ॥ ८२ ॥ कि हे देव ! बल दैत्यके वैरी (इन्द्र) से हमलोग श्राद्धोंके बाहर कियेगये व पहले न्योतेहुये हम सब जिसलिये गयामें तुम्हारी श्राद्धको गये ॥ ८३ ॥ और तुम्हारी श्राद्धके अन्तमें भलीभांति आये उसी कारण सहस्र

लोचनोंवाले इन्द्रजी क्रोधित होगये इसलिये हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिसप्रकार हम सब श्राद्धके योग्यहोवैं ॥ ८४ ॥ उस वचनको सुनकर बड़ीदया से संयुत ब्रह्माजी शीघ्रही उन कूष्माण्डों समेत विश्वेदेवों को लेकर गमन करतेभये ॥ ८५ ॥ और इन्द्रभी उन देवोंके श्राद्ध कर्मोंको करके वैसेही तीर्थयात्रामें तत्पर होकर व्यवस्थितहुये (बैठे) ॥ ८६ ॥ इसी अवसर में हंसकी सवारी पै भलीभांति चढ़े व विश्वेदेवों से संयुक्त ब्रह्माजी वहांआये ॥ ८७ ॥ इन्द्रभी अचानक प्राप्तहुये कमल आसनवाले ब्रह्माको देखकर अर्घ्य व पाद्यको लेकर शीघ्रही सामने गये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर शिरसे साष्टांग प्रणामकर नम्रता संयुत इन्द्रजी हाथोंको जोड़कर

र्प्रसादंनः श्राद्धार्हाःस्युर्यथावयम् ॥ ८४ ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंब्रह्माकृपयापरयान्वितः ॥ विश्वेदेवान्समादाय कूष्माण्डै स्तैस्समन्वितान् ॥ ८५ ॥ शक्रोपिश्राद्धकर्म्माणि कृत्वातेषांदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वा तथैव च व्यवस्थितः ॥ ८६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु ब्रह्मातत्रसमागतः ॥ विश्वेदेवसमायुक्तो हंसयानंसमाश्रितः ॥ ८७ ॥ शक्रोपिसहसादृष्ट्वा संप्राप्तंकमलासनम् ॥ अर्घ्यमादायपाद्यं च सत्वरंसम्मुखोययौ ॥ ८८ ॥ ततःप्रणम्यशिरसासाष्टाङ्गंविनयान्वितः ॥ प्रोवाचप्राञ्जलिर्भूत्वास्वागतंतेपितामह ॥ ८९ ॥ तवसंदर्शनादेव ज्ञातंजन्मत्रयंमया ॥ कृतंपूर्वंशुभंकर्म्म करोमिचयथाधुना ॥ ९० ॥ करिष्यामिपरेलोकेव्यक्तमेतदसंशयम् ॥ निःस्पृहस्यापितेदेव यदागमनकारणम् ॥ ९१ ॥ तन्मेद्रुततरं ब्रूहि येनसर्वंकरोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यैर्विनानभवेच्छ्राद्धंममापिसुरसत्तम ॥ ९२ ॥ विश्वेदेवास्त्वयातेद्य श्राद्धबाह्याविनिर्मिताः ॥ तत्त्वयानकृतंभद्रंतेनकर्म्मवितन्वता ॥ ९३ ॥ अप्रमाणंकृतावेदा यतश्चस्मृतयस्तथा ॥ एतेपूर्वंमयाशक्र

बोले कि हे पितामहजी ! तुम्हाराआना अच्छाहुआ ॥ ८९ ॥ तुम्हारे भलीभांति दर्शनहीं से मैंने तीन जन्मोंको जाना कि पहले शुभकर्म कियाहै व जैसे इस समय करताहूं ॥ ९० ॥ व परलोकमें करूंगा यह निरसन्देह प्रगटहोगया हे देव ! निर्लोभ भी तुम्हारे आनेका कारण जोहोवे ॥ ९१ ॥ उसको मुझसे अतिशीघ्र कहिये कि जिससे मैं सबकरूं ब्रह्माबोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! जिनके विना मेरीभी श्राद्धनहीं होवै है ॥ ९२ ॥ उन विश्वेदेवों को आज तुमने श्राद्धसे बाहर बनाया उस कर्मको विस्तार करतेहुये तुमने उस कारण वह अच्छा नहीं किया ॥ ९३ ॥ जिस लिये कि वेद व स्मृतियां बिन प्रमाण की गई हे इन्द्र ! इनको पहले मैंने श्राद्धके लिये निमन्त्रण

कियाथा ॥ ९४ ॥ व पीछे तुमने निमन्त्रण किया इससे उनका दोष नहीं है व जिस कारण उन महात्माओं का दोषनहीं है उसी कारण हे सुरनायक ! शाप छूटनेके लिये उपाय करिये ॥ ९५ ॥ कि जिससे अत्यन्तही दुःखित सबभी श्राद्धके योग्य होवैं पुरातन समय मैंने समस्त ब्राह्मणोंसे यह कहाहै ॥ ९६ ॥ इन विश्वेदेवों पूर्वक जो श्राद्धहोगी वह सफल होवैगी तो तुमकैसे मेरेवचन को झूंठ करतेहो ॥ ९७ ॥ इन्द्रबोले कि हे पितामह जी ! क्रोध संयुत मैंने भी इनको शापदिया है इस लिये जिस भांति मैं सत्य वचन वालाहोऊं वैसाकरो ॥ ९८ ॥ ब्रह्माबोले कि हे इन्द्रजी ! तुम्हारा वचन जिसप्रकार सत्यहोगामैं विश्वेदेवोंहीके लिये वैसाही भलीभांति

श्राद्धार्थंविनिमन्त्रिताः ॥९४॥ पश्चात्त्वयानतद्दोषो यस्माच्चैवमहात्मनाम् ॥ तस्माच्छापविमोक्षार्थं यत्नंकुरुसुरेश्वर ॥
९५॥ येनस्युःश्राद्धयोग्याश्च सर्वेपिदुःखिताभृशम्॥पुराह्येतन्मयाप्रोक्तं सर्वेषाञ्चद्विजन्मनाम्॥९६॥एतत्पूर्वंचयच्छ्राद्धं
सफलंतद्भविष्यति॥ तत्कथंममवाक्यंत्वमसत्यंप्रकरोषिच॥९७॥ इन्द्रउवाच ॥ मयापिकोपयुक्तेन शप्ताएतेपितामह॥
तद्यथासत्यवाक्योहं प्रभवामितथाकुरु ॥ ९८ ॥ ब्रह्मोवाच॥तववाक्यंयथासत्यं प्रभविष्यतिवासव ॥ तथाहंसंविधास्या
मि विश्वेदेवार्थमेवहि ॥ ९९ ॥ विश्वेदेवैर्विनाश्राद्धं यत्त्वयासमुदाहृतम्॥एकोद्दिष्टंतदासर्वेकरिष्यन्तिधरातले॥१००॥
तस्मिन्नहनिदेवेन्द्रत्वयायच्चविनिर्मितम्॥प्रेतपक्षेचतुर्दश्यांशस्त्रेणनिहतस्यच ॥ १ ॥ क्षयाहेचापिसञ्जाते विश्वेदेवैर्वि
नाकृतम्॥नागरस्यशुभंश्राद्धं वचनान्मेभविष्यति ॥ २ ॥ शेषकालेतुयःश्राद्धं प्रकरिष्यतितैर्विना॥व्यर्थंसम्पत्स्यतेत
स्य ममवाक्यादसंशयम् ॥३॥ मुक्त्वाशस्त्रहतंचैकंतस्मिन्नहनियोनरः॥करिष्यतितथाश्राद्धं भूतभोज्यंभविष्यति॥४॥

करूंगा ॥९९॥ तुमने जो विश्वेदेवोंके विना श्राद्धकहाहै उस समय भूतल में सब एकोद्दिष्ट करैंगे ॥१००॥ हे देवेन्द्रजी ! उसदिन जो तुमने निर्माण कियाहै कि प्रेतपक्ष में चौदसिको शस्त्रसे मारेहुये प्राणी के ॥ १ ॥ क्षयाहके भी भलीभांति प्राप्तहोनेपर वैश्वदेवोंके विना नागरकी की हुई श्राद्धमेरे वचन से उत्तमहोगी ॥ २ ॥ और शेष समयमें उन विश्वेदेवों के विना जो श्राद्धकरैगा मेरे वचनसे उसकी वह श्राद्ध निस्सन्देह व्यर्थको भलीभांति प्राप्तहोगी ॥३॥ केवल शस्त्रसे मारेहुये पुरुषकी श्राद्धको

छोड़कर उसदिन जो पुरुष श्राद्धकरैगा वह भूतोंका भोजन होगी ॥ ४ ॥ विश्वामित्रजीबोले कि हां ऐसा इन्द्रके कहनेपर तदनन्तर नम्रतासे नीचे झुंके खड़ेहुये विश्वे-
देवोंने लोकोंके पितामह ब्रह्माजी से कहा ॥ ५ ॥ कि हे विभो ! हमारे शरीरहीसे ये पुत्र भलीभांति पैदाहुये हैं क्षुधासे विकल उन पुत्रोंको इन्द्रके ऊपर क्रोधित हमसबों
से रहित यह श्राद्ध भोजनको दीगईहै हमसे कहाहुआ वचन जिस प्रकार सत्यहोवै ॥ ६ । ७ ॥ हे पितामहजी ! हमारा व इन्द्रका भी वचन जिस प्रकार सत्यहोवै वै-
साही कीजिये हे कमल से उपजेहुये (ब्रह्माजी) ! उत्तम भोजनको निरूपण करिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से इन्हीं सबोंकी उत्तम तृप्तिहोवै ब्रह्माबोले कि

विश्वामित्रउवाच ॥ तथेत्युक्तेतुशक्रेण ब्रह्मालोकपितामहः ॥ विश्वेदेवैस्ततःप्रोक्तो विनयावनतास्थितैः ॥ ५ ॥ एते
पुत्राःसमुत्पन्ना अस्मद्देहेभ्यएवच ॥ तेषान्तुभोजनंदत्तं क्षुधार्तानामिदंविभो ॥ ६ ॥ अस्मद्विवर्जितंश्राद्धं कुपितेर्वासवोप
रि ॥ तद्यथाजायतेसत्यं वाक्यमस्मदुदीरितम् ॥ ७ ॥ अस्माकंवासवस्यापि तथाकुरुपितामह ॥ निरूपयशुभाहारं
येनस्यात्तृप्तिरुत्तमा ॥ ८ ॥ एतेषामेवसर्वेषां प्रसादात्तवपद्मज ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्राद्धकालेतुविप्राणां भोज्यपात्रेषुकृत्स्न
शः ॥ ९ ॥ कुशब्देनस्मृताभूमिःसंसिक्ताचाश्रुणायतः ॥ ततोजातानिअण्डानि तेभ्योजाताअमीयतः ॥ १० ॥ कूष्मा
ण्डाइतिविख्याता भविष्यन्तिजगत्त्रये ॥ ततस्तांश्चत्रिधाकृत्वा क्रमेणैवार्पयत्तदा ॥ ११ ॥ अग्नेर्वायोस्तथार्कस्य वा
क्यमेतदुवाचह ॥ यजुर्वेदेप्रविख्याता यद्देवेतितुऋक्स्वयम् ॥ १२ ॥ तेनभागःप्रदातव्य एतेषांभक्तिहोमतः ॥ कोटिहोमो
द्भवेचैव निजभागस्यमध्यतः ॥ १३ ॥ तेनतृप्तिंप्रयास्यन्तिममवाक्यादसंशयम् ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रस्ततश्चादर्शनंग

श्राद्ध समय में ब्राह्मणों के सम्पूर्ण भोजन पात्रोंमें तृप्तिहोगी ॥ ८ । ९ ॥ कु शब्द से पृथ्वी कहीगई है जिसलिये वह आंसुवों से भलीभांति सींचीगई उससे अण्डापैदा
हुये व जिसलिये उन अण्डों से ये पैदाहुये ॥ १० ॥ उसी कारण तीनों जगत्में कूष्माण्ड ऐसे प्रसिद्ध होवैंगे तदनन्तर उस समय तीन विभाग करके उनको क्रम से
अग्नि, पवन व सूर्यको अर्पण किया व यह वचन कहा कि यजुर्वेद में यद्देव ऐसी ऋचा आपही प्रसिद्ध है ॥ ११ । १२ ॥ उसीके द्वारा कोटि होमकी उत्पत्तिमें भक्ति
पूर्वक होमसे अपने भागके बीचसे इनको भाग अवश्यदेना चाहिये ॥ १३ ॥ उसी भागके द्वारामेरे वचन से निस्सन्देह तृप्तिको प्राप्तहोवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर

चतुराननजी अन्तर्द्धान होगये ॥१४॥ वैसेही विश्वेदेवा व विशेषकर कूष्माण्ड प्रसन्नहुये इसीकारण श्राद्धमें द्विजोंके भोजनपात्रोंमें कूष्माण्डोंसे उपजेहुये डरके कारण भस्म से उपजीहुई रक्षाकीजाती है व उसी से नागरों की श्राद्धमें छिद्रको नहीं चाहते हैं उसको सुनिये ॥ १५ । १६ ॥ जिसलिये कि उनके स्थानमें चतुरतासे संयुत हुयेहैं उसी कारण भर्तृयज्ञसे तेजके द्वारा भस्मसे उपजीहुई रक्षा निषेधहुई ॥ १७ ॥ उसी लिये समस्त नागर कभी रक्षानहीं करते हैं और जब वे चतुराननजी अपने स्थानको चलेगये तब इन्द्रभी ॥ १८ ॥ चमत्कार पुरमें उपजेहुये समस्त ब्राह्मणोंसे बोले कि हे ब्राह्मणो ! मेरेवचन सुनिये व तदनन्तर कीजिये ॥ १९ ॥ कि देव देव

तः॥१४॥विश्वेदेवास्तथाहृष्टाःकूष्माण्डाश्चविशेषतः॥एतस्मात्कारणाद्रक्षा क्रियतेभस्मसम्भवा ॥ १५ ॥ विप्राणां भोज्यपात्रेषु श्राद्धेकूष्माण्डजाद्भयात्॥ नागराणांनवाञ्छन्ति श्राद्धेछिद्रंततःशृणु ॥ १६ ॥ तेषांस्थानेयतोजाता दाक्षिण्येनसमन्विताः ॥ निषिद्धाभस्मजारक्षाभर्तृयज्ञेनतेजसा ॥ १७ ॥ तदर्थंनागरास्सर्वे नकुर्वन्तिहिकर्हिचित् ॥ इन्द्रोपिचगतेतस्मिंश्चतुर्वक्त्रेनिजालयम् १८ अब्रवीद्ब्राह्मणान्सर्वांश्चमत्कारपुरोद्भवान् ॥ श्रूयतांमद्वचोविप्राः करिष्यथततःपरम् ॥ १९ ॥ स्थापयिष्याम्यहंलिङ्गंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ ततस्तैर्ब्राह्मणैस्तस्य दर्शितंस्थानमुत्तमम् ॥ २० ॥ सोपि लिङ्गंचसंस्थाप्यप्रहृष्टस्त्रिदिवंययौ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ २१ ॥ गयाकूप्याश्चमाहात्म्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ आनर्तउवाच ॥ गयाकूप्याश्चमाहात्म्यंभवतामेप्रकीर्तितम् ॥ २२ ॥ बालमण्डनजंवापिसाम्प्रतंवक्तुमर्हसि ॥ कस्मिन्स्थानेचशक्रेणतच्चलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ २३ ॥ तदस्माकंमहाभागतस्मिन्दृष्टेतुकिंफलम् ॥ विश्वामित्र उ

त्रिशूलधारीके लिङ्गको मैं थापूंगा तदनन्तर उन ब्राह्मणोंने उन इन्द्रको उत्तम स्थान दिखलाया ॥ २० ॥ व वे इन्द्रभी लिङ्गको थापकर प्रसन्नहो स्वर्गको चलेगये हे नर नायक ! मुझसे जो पूंछागया यह सब वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा ॥ २१ ॥ व समस्त कामनाओं के देनेवाले गया कूपिका के माहात्म्य को कहा आनर्त बोला कि आपने मुझसे गया कूपिका का माहात्म्य कहा ॥ २२ ॥ इस समय बाल मण्डनसे उपजेहुये चरितको तुमं कहनेके लिये योग्यहो और किस स्थानमें इन्द्रने उस लिङ्ग

को थापन कियाहै ॥ २३ ॥ हे महाभाग ! उसके देखने पर क्या फलहोताहै उसको कहिये विश्वामित्रजी बोले कि जब सहस्र लोचनोंवाले इन्द्रने उन विप्रों से लिंग थापन के लिये याचना किया ॥ २४ ॥ तब उन्होंने समस्त क्षेत्रके बीचमें प्राप्त व उत्तम तथा पवित्र स्थानको दिखलाया जो स्थान कि अति पुण्यदायक बाल मण्डन नामक है ॥ २५ ॥ जहां कि पुरातन समय मरुत् नामक बालक दितिके पुत्रपैदाहुयेहैं व पुरातन समय उन्हीं इन्द्रसे विध्वंस कियेहुये वे मृत्युको न प्राप्तभये ॥ २६ ॥ उसी कारण उस को अति पवित्र जानकर जिस स्थानको कि पहले देखाथा व जहां उत्तम पुत्रको चाहतीहुई दितिने तपस्या कियाथा ॥ २७ ॥ उस उत्तम स्थानको

वाच ॥ सहस्राक्षेणतेविप्रालिङ्गार्थंयाचितायदा ॥ २४ ॥ स्थानंशुभंपवित्रंचसर्वक्षेत्रस्यमध्यगम् ॥ ततस्तैर्दर्शितंस्था
नंसुपुण्यंबालमण्डनम् ॥ २५ ॥ यत्रबालाःपुराजातामरुदाख्यादितेःसुताः ॥ तेनैवचपुराध्वस्तानचमृत्युमुपागताः ॥
२६ ॥ तच्चमेध्यतमंज्ञात्वास्थानंदृष्टंपुराचयत् ॥ यत्रदित्यातपस्तप्तंसत्सुतंकाङ्क्षमाणया ॥ २७ ॥ तंदृष्ट्वापरमंस्थानंजी
वंप्रोवाचदेवपः ॥ गुरोब्रूहिममश्रुत्यंसुमुहूर्तंचसाम्प्रतम् ॥ २८ ॥ दिवसन्तत्रसल्लिङ्गंस्थापयामिहरोद्भवम् ॥ प्रलयेपिस
मुत्पन्नेननाशोयत्रजायते ॥ २९ ॥ ततःसोपिचिरंध्यात्वातंप्रोवाचशचीपतिम् ॥ माघमासेसितेपक्षेपुष्यर्क्षेरविवासरे ॥
३० ॥ त्रयोदश्यामभीष्टेतुसंजातउदयेशुभे ॥ संस्थापयविभोलिङ्गंममवाक्येनसाम्प्रतम् ॥ ३१ ॥ आकल्पान्तमसंदि
ग्धंस्थिरन्तेतद्भविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजस्तुहर्षेणमहतान्वितः ॥ ३२ ॥ बालमण्डनसान्निध्येस्थापयामासतन्तदा ॥

देखकर सुरपति ने बृहस्पति से कहा कि हे गुरो ! इस समय श्रुतिवाले उत्तम मुहूर्त व दिनको कहिये ॥ २८ ॥ कि वहां मैं शिवजी से उपजेहुये उत्तम लिङ्गको थापन करूं कि जहां पर प्रलयभी होनेपर नाश न होवै ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे बृहस्पति भी देरतक विचारकर इन्द्राणी के पति उन इन्द्रसे बोले कि हे विभो ! माघ महीने के शुक्लपक्ष में त्रयोदशी रविदिन पुष्य नक्षत्र में उत्तम व प्रिय उदयहोने पर इस समय मेरे वचनसे लिङ्गको भलीभांति थापन करिये ॥ ३० । ३१ ॥ तुम्हारा वह थापाहुआ लिङ्ग कल्प पर्यंत निस्सन्देह स्थिरहोगा उस वचनको सुनकर सुरराज बड़े हर्ष से संयुतहुये ॥ ३२ ॥ व उस समय ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन वाले

शब्दसे व गाने, बजानेके शब्दों द्वारा बाल मण्डन तीर्थके समीप उन शिवजीको थापन किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर होमके अन्तमें द्विजोत्तमों को तृप्तकराकर दक्षिणा में उनको उत्तम माघाट स्थानको दिया ॥ ३४ ॥ जोकि उत्तम शहर दिवाली से भूषित मा नदीके किनारे पै भलीभांति स्थितहै उसको हे नृपोत्तम ! सबही ब्राह्मणोंको सामान्य से दिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर आठकुलवाले ब्राह्मणोंको भलीभांति बुलाकर यह कहा कि तुमलोगों को सदैव लिङ्गसे उपजी हुई चिन्ताकरना चाहिये ॥ ३६ ॥ व पश्चात् चन्द्रमा सूर्य पर्यन्त समयवाली वृत्ति मैंने इसको दिया बारह ग्रामसे उपजीहुई वह जीविका उसके लिये ग्रहण करने योग्यहै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणबोले कि हे

विप्रपुण्याहघोषेणगीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३३ ॥ ततोहोमावसानेतुतर्पयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ दक्षिणायांददौतेषां माघाटंस्थानमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ माकूलेसंस्थितंयच्चदिव्यप्राकारभूषितम् ॥ सर्वेषामेवविप्राणांसामान्येननृपोत्तम ॥ ३५ ॥ ततोष्टकुलिकान्विप्रान्समाहूयाब्रवीदिदम् ॥ युष्माभिस्तुसदाकार्य्याचिन्तालिङ्गसमुद्भवा ॥ ३६ ॥ अस्यपश्चान्मयादत्तावृत्तिश्चन्द्रार्ककालिका ॥ साचग्राह्यातदर्थञ्चद्वादशग्रामसम्भवा ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नवयंविबुधश्रेष्ठ करिष्यामोवचस्तव ॥ लिङ्गचिन्तासमुद्भूतं श्रूयतामत्रकारणम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मस्वंविबुधस्वञ्च तथागोत्थंविशेषतः ॥ भक्षितंस्वल्पमप्यत्र नाशयेत्सप्तपूर्वजान् ॥ ३९ ॥ यदिकश्चित्कुलेस्माकंजातस्तद्भक्षयिष्यति ॥ पातयिष्यतितान्सर्वांस्तदस्माकंमहद्भयम् ॥ ४० ॥ अथतंमध्यगःप्राह कृताञ्जलिर्द्विजोत्तमः ॥ दृष्ट्वाविमनसंशक्रं कृतपूर्वोपकारिणम् ॥ ४१ ॥ देवशर्म्माभिधानस्तु विख्यातःप्रवरैस्त्रिभिः ॥ अहंचिन्तांकरिष्यामि तवलिङ्गसमुद्भवाम् ॥ ४२ ॥ अपुत्रस्यतुमेपुत्रं

सुर श्रेष्ठजी ! लिङ्ग चिन्तासे उपजेहुये तुम्हारे वचनको हमलोग न करैंगे इस विषय में कारण सुनिये ॥ ३८ ॥ कि ब्राह्मणका धन व देवताकी द्रव्य व विशेषकर गऊ से उठा (उपजा) हुआ थोड़ाभी भक्षित धन यहां सात पहले उपजेहुये नरोंको नाशकरता है ॥ ३९ ॥ यदि हमलोगों के वंशमें पैदाहुआ कोई उसको खावैगा तो उन सातोंको गिरावैगा वह हमको बड़ाभारी डरहै ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर पहले किये उपकारवाले इन्द्रको विमनस (उदास) देखकर तीन प्रवरोंसे प्रसिद्ध व मध्य वर्ती देवशर्मा नामक द्विजोत्तम हाथोंको जोड़कर उन इन्द्रसे बोला कि मैं तुम्हारे लिंगसे उपजी हुई चिन्ताकरूंगा ॥ ४१ । ४२ ॥ कि हे इन्द्रजी ! यदि मुझ अपुत्र

को पुत्र दीजिये कि जिस पुत्रसे प्रलय पर्यन्त वंश भलीभांति उत्पन्नहोवै ॥ ४३ ॥ जो वंश कि धर्मज्ञ, कृतज्ञ व देवद्रव्य को वर्जित करनेवालाहोवै उस वचनको सुन
कर प्रसन्नहोते हुये इन्द्रजी उस ब्राह्मणसे बोले ॥ ४४ ॥ इन्द्रबोले कि वंशधारी व शुभ, धर्मात्मा सत्यवक्ता व देवद्रव्य को वर्जित करनेवाला और समर्थवान् पुत्र तु-
म्हारे होगा ॥ ४५ ॥ उससे तुम्हारे वंशमें जो पुत्रहोवैंगे वे सब यहां महात्मा व तुम्हारे सदृश रूपवाले व वेदके पारजानेवाले होवैंगे ॥ ४६ ॥ व हे उत्तम द्विज ! जो
तुमसे कहताहूं उस मेरे अन्य वचनको तुम सुनो व जे द्विजेन्द्र यहां भलीभांति आये हैं वे सुनैं ॥ ४७ ॥ कि मैंने चतुरानन की आज्ञासे बाल मण्डन तीर्थ में चार

यदियच्छसिवासव ॥ यस्मात्सञ्जायतेवंशो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मज्ञस्तुकृतज्ञस्तु देवस्वपरिवर्ज्जकः ॥ त
च्छ्रुत्वावासवोहृष्टस्तमुवाचद्विजोत्तमम् ॥४४॥ इन्द्रउवाच ॥ भविष्यतिप्रभुस्तुभ्यं पुत्रोवंशधरःशुभः ॥ धर्म्मात्मासत्य
वादीच देवस्वपरिवर्ज्जकः ॥४५॥ तस्मात्त्वदन्वयेपुत्रा भविष्यन्तिमहात्मनः ॥ तेसर्वेत्रभविष्यन्ति त्वद्रूपावेदपारगाः ॥
४६ ॥ अपरंश्रृणुमेवाक्यं यत्तेवक्ष्यामिसद्द्विज ॥ तथाश्रृण्वन्तुविप्रेन्द्रास्सर्वेयेत्रसमागताः ॥ ४७ ॥ बालमण्डन
केतीर्थे मयैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ चतुर्वक्त्रसमादेशाच्चतुर्वक्त्रंप्रतिष्ठितम् ॥४८॥ योत्रस्नानविधिंकृत्वा तीर्थेत्रपितृतर्प्पणम् ॥
आजन्मपितरस्तेन प्रभविष्यन्तितर्पिताः ॥ ४९ ॥ ग्रामाद्वादशयेदत्ता मयादेवस्यमाघटाः ॥ वसिष्यन्त्यत्रयेवि
प्रा वृद्धिश्राद्धउपस्थिते ॥ ५० ॥ तेश्राद्धंप्रथमंचास्य कृत्वाश्राद्धंततःपरम् ॥ तत्कृत्यानिकरिष्यन्ति ततोविघ्नैस्तुवर्जि
ताः ॥ ५१ ॥ वृद्धिःसम्पत्स्यतेतेषां नोचेद्विघ्नंभविष्यति ॥ माघमासेसितेपक्षे त्रयोदश्यादिनेस्थिते ॥ ५२ ॥ तद्ग्राम

मुखवाले इस उत्तम लिङ्गको थापाहै ॥ ४८ ॥ जो इसतीर्थमें स्नान विधिको करके यहां पितरों का तर्पण करैगा उससे जन्म पर्य्यन्त पितर तृप्तहोवैंगे ॥ ४९ ॥ और
मैंने देवकों जो बारह माघाट ग्रामदिया है व यहां जो ब्राह्मण बसैंगे वे वृद्धिश्राद्धके उपस्थित होनेपर पहले इनकी श्राद्धकरके तदनन्तर उसके कार्योंको करैंगे उसके
उपरान्त विघ्नोंसे रहित होवैंगे ॥ ५० । ५१ ॥ व उनके बढ़ती भलीभांतिहोगी नहीं तो विघ्नहोगा माघ महीनेमें शुक्लपक्ष में त्रयोदशी दिनके भलीभांति स्थितहोने

पर॥ ५२ ॥ जो लोग उस ग्राममें भलीभांति टिकेहैं सावधान होतेहुये जे यहां आकर उत्तम भक्ति पूर्वक पूजैंगे वे विनाशको न प्राप्तहोवैंगे॥ ५३ ॥ समुद्र व तड़ाग पर्यंत पृथ्वी में जो तीर्थ हैं वे उस दिन बालमण्डन तीर्थ में आवैंगे ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि सहस्र लोचनों वाले इन्द्रजी ऐसा कहकर तदनन्तर क्रोध संयुतहो आगेखड़े हुये अष्टकुलवाले ब्राह्मणों से उसी कारण वचनबोले ॥ ५५ ॥ कि जिसलिये इन सप्त कुलवाले कृतघ्न ब्राह्मणों से मेरा वचन नहीं कियागया उसी कारण कृतघ्नतासे निस्सन्देह उनको शापदूंगा ॥ ५६ ॥ पुरातन समय जिसलिये सत्यवादी स्वयम्भू मनुने समस्त कृतघ्न जनको उद्देशकर यह कहाहै ॥ ५७ ॥ कि ब्रह्मघाती,

संस्थितालोका येत्रागत्यसमाहिताः ॥ पूजयिष्यन्तिसद्भक्त्या तेयास्यन्तिनसंक्षयम् ॥ ५३ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रसरांसिच ॥ बालमण्डनकेतीर्थं आगमिष्यन्तितद्दिने ॥ ५४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतदुक्त्वासहस्राक्षस्ततश्चाष्टकुलान्द्विजान् ॥ अग्रतःकोपसंयुक्तस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ एतैस्सप्तकुलैर्विप्रैर्यत्कृतंवचनंनमे ॥ कृतघ्नैस्ताञ्छपिष्यामि कृतघ्नत्वादसंशयम् ॥ ५६ ॥ यस्मादिदंपुराप्रोक्तं मनुनासत्यवादिना ॥ स्वायम्भुवेनप्रोद्दिश्य कृतघ्नंसकलंजनम् ॥ ५७ ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापेच चौरेभग्नव्रतेशठे ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिः कृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ५८ ॥ अवध्याब्राह्मणागावः स्त्रियोबालास्तपस्विनः ॥ तेनाहंनवधाम्येतांश्छिद्रेपिमहतिस्थिते ॥ ५९ ॥ ममवाक्यादपिप्राप्य एतेलक्ष्मींद्विजोत्तमाः ॥ निर्धनास्सम्भविष्यन्ति नीचद्वाररताखिलाः ॥ ६० ॥ भक्तानाञ्चपरित्यागमेतेषांवंशजा द्विजाः ॥ करिष्यन्तिनसन्देहो यथाममसुनिष्ठुराः ॥ ६१ ॥ दाक्षिण्यरहितास्सर्वे तथाबह्वाशिनस्सदा ॥ एवमुक्त्वाथ

मदिरा पीनेवाले, चोर व व्रतभंग करनेवाले व शठमें उत्तम जनों ने प्रायश्चित्त कहाहै परन्तु कृतघ्नमें प्रायश्चित्त नहींहै ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण, गऊ, स्त्री, बालक व तपस्वी अवध्य होतेहैं उसीसे बड़े छिद्रके भी स्थितहोने पर मैं इनको नहीं मारताहूं ॥ ५९ ॥ ये सब द्विजोत्तम लक्ष्मीको पाकर भी मेरे वचन से निर्धनी व नीचके द्वार में तत्पर होवैंगे ॥ ६० ॥ और इनके वंशमें उपजेहुये अति निठुर ब्राह्मण निस्सन्देह भक्तोंका परित्यागकरैंगे जैसे कि मुझको छोड़ाहै ॥ ६१ ॥ व सब सदैव उदारतासे

रहित व बहुत भोजन करनेवाले होवैंगे सप्तवंशमें उपजेहुयेउन ब्राह्मणोंसे ऐसाकहकर इसके उपरान्त ॥६२॥ नागर वंशमें उपजेहुये उन शेप ब्राह्मणोंसे फिर कहा कि
हे द्विजोत्तमो ! वैसेही यहां मुझको स्थानदीजिये ॥ ६३ ॥ कि जिससे मृत्युलोकके सुखके निमित्त व इनदेवके पूजनके लिये व यहां आप सब ब्राह्मणोंके पूजनके लिये
मैं वर्ष के अन्तमें पांचरातैं निवासकरूं विश्वामित्रजी बोले कि तदनन्तर उन समस्त ब्राह्मणोंने उन इन्द्रके लिये उत्तम स्थानको दिखलाया ॥६४।६५॥ व तदनन्तर
अति प्रसन्नहो कहा कि हे इन्द्रजी ! ब्रह्मस्थान में प्राप्तहोकर तुमको पांचरातैं मृत्युलोकमें टिकना चाहिये व हे प्रभो ! सुखसे सेवन करनाचाहिये इसस्थानमें हमलोग

तान्विप्रान्सप्तवंशसमुद्भवान् ॥ ६२ ॥ पुनःप्रोवाचतान्विप्राञ्छेषान्नागरसम्भवान् ॥ ममात्रदीयतांस्थानं तथैवचद्विजोत्तमाः ॥ ६३ ॥ येनसंवत्सरस्यान्ते पञ्चरात्रंवसाम्यहम् ॥ देवस्यास्यप्रपूजार्थं मर्त्यलोकसुखायच ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणानां प्रपूजार्थं सर्वेषांभवतामिह ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे तदर्थेस्थानमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ संहृष्टादर्शयामासुरूचुश्चतदनन्तरम् ॥ ब्रह्मस्थानेत्वयाशक्र पञ्चरात्रमुपेत्यच ॥ ६६ ॥ स्थातव्यंमर्त्यलोकेच सुखमासेव्यतांप्रभो ॥ अत्रस्थानेतवाग्रेतु करिष्यामोमहोत्सवम् ॥ ६७ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ द्विजानांतर्पणंचैव सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ६८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां प्रहृष्टःपाकशासनः ॥ पूजयित्वाद्विजान्सर्वान् गतोथत्रिदिवालयम् ॥६९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेबालमण्डनमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १९६ ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ बालमण्डनमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥

गाने, बजानेके शब्दोंसे व गन्ध (चन्दन) माला व अनुलेपनों के द्वारा तुम्हारे आगे बड़ा उछाह करैंगे व समस्त कामनाओंका समृद्धिदायक द्विजोंका तर्पण करैंगे ॥ ६६।६७।६८ ॥ उनके उस वचन को सुनकर प्रसन्नहोते हुये इन्द्रजी समस्त ब्राह्मणोंको पूजकर इसके अनन्तर स्वर्गको चलेगये ॥ १६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबालमण्डनमाहात्म्यन्नामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । निज नारी अरु इन्द्रको दीन्हो गौतम शाप । इकसौ सत्तानवें महँ सोई करत अलाप ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे नर नायक ! मुझसे जो पूंछागया इस

समस्त बोले मरख्डनके माहात्म्यको तुमसे वर्णन किया जोकि समस्त पातकों का नाशक है ॥ १ ॥ हे नृपोत्तम ! माघ महीने की शुक्लपक्ष वाली तेरसि के प्राप्तहोने पर जिस एकभी तीर्थ में स्नान करने से सब तीर्थों के स्नानसे उपजाहुआ पुण्य मिलता है आनर्त बोला कि किसलिये धरातलमें इन्द्रकी संस्थिति पांचरातैं होती हैं ॥ २ । ३ ॥ व अधिक नहींहोती जैसे कि अन्यदेवोंका टिकाश्रय रहताहै व वर्षके अन्तमें कौन दिनहैं कि जिनमें इन्द्रजी भूतल पै भलीभांति आतेहैं व कौन महीनाहै यह सब मुझसे कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नरनाथ ! इस कथाको मैं कहूंगा सुनिये ॥ ४ । ५ ॥ कि जिस भांति पांचरातोंसे परे (अधिक) इन्द्र भूतल

यत्रैकस्मिन्नपिस्नाने कृतेपार्थिवसत्तम ॥ सर्वेषांलभ्यतेपुण्यं तीर्थानांस्नानसम्भवम् ॥ २ ॥ माघमासेत्रयोदश्यां शुक्लपक्षउपस्थिते ॥ आनर्तउवाच ॥ कस्माच्छक्रस्यसंस्थानं पञ्चरात्रंधरातले ॥ ३ ॥ नाधिकंजायतेतेषां यथान्येषां दिवौकसाम् ॥ वर्षान्तेकानिचाहानि येषुशक्रोधरातले ॥ ४ ॥ समागच्छतिकोमास एतत्सर्वंब्रवीहिमे ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि कथामेनांनराधिप ॥ ५ ॥ पञ्चरात्रात्परंशक्रो यथानस्याद्धरातले ॥ आसीत्पूर्वंबृहत्कल्पे जयसेनस्सुरेश्वरः ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यस्यसमस्तस्य स्वामीदानवदर्पहा ॥ त्रैलोक्येसकलेपूजां भजमानस्सदैवहि ॥ ७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य गौतमस्यमुनेःप्रिया ॥ अहल्यानामभार्य्याभूद्रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ८ ॥ तान्दृष्ट्वाचकमेशक्रः कामदेववशङ्गतः ॥ नित्यमेवसमागत्य स्वर्गलोकात्सकामभाक् ॥ ९ ॥ गौतमेनिर्गतेराजन् समित्सिद्ध्यर्थमेवहि ॥ दर्भार्थंफलमूलार्थं स्वयमेवमहात्मनि ॥ १० ॥ अथतस्यसमाचख्यौ नारदोमुनिसत्तमः ॥ शक्रस्यचेष्टितंस

में नहीं रहते हैं पुरातन समय बृहत्कल्प में जयसेन नामक सुरेश (इन्द्र) हुयेहैं ॥ ६ ॥ जोकि समस्त त्रिलोक के स्वामी व दानवों के दर्प (गर्व) को नाशनेवाले थे व सब त्रिलोक में सदैवही पूजनको भजते (पाते) थे ॥ ६ । ७ ॥ इसके अनन्तर किसी समय गौतम मुनिकी प्यारी नारी अहल्या नामकहुई है जोकि भूमि में रूपसे असमान यानै एकही थी ॥ ८ ॥ उसको देखकर कामदेवके वशमें प्राप्त इन्द्रजीने नित्यही भलीभांति आकर सकामभागी होकर हे राजन् ! जब समिधाओं की सिद्धिके लिये व कुशोंके निमित्त व फल, मूलके लिये आपही गौतम महात्माचलेगये तब उस अहल्या की इच्छाकिया ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ

नारदजीने इन्द्रके व अहल्या से उपजेहुये समस्त कर्मको उन गौतमजी से भली भांति कहा ॥ ११ ॥ उसको अचानक ही सुनकर गौतम जी शीघ्रही घरकोआये व जब तक स्त्री के साथ समागम को प्राप्त इन्द्रको देखा ॥ १२ ॥ तब तक गौतमको देखकर भयसे विकल व बिन वसनभी भागने में तत्परहो इन्द्रभी उस आश्रमसे निकलगये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस समय पतिको आयेहुये देखकर भयभीत व नीचे मुखकिये खड़ी अहल्या भी विकल इन्द्रियोंवालीहुई ॥ १४ ॥ और गौतमने भी भलीभांति स्त्रीके कर्मको देखकर उन इन्द्रसे कहा कि तुमने मेरी पतिव्रता स्त्रीको दूषित किया इस कारण अण्डकोश हीनहोवो ॥ १५ ॥ व उसी कारण

यावत्पश्यतिदेवेशं सहपत्न्यासमागत
वं तथाहल्यासमुद्भवम् ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वासहसातूर्णं गौतमोगृहमभ्यगात् ॥
म् ॥१२॥ शक्रोपिगौतमंदृष्ट्वा पलायनपरायणः ॥ निर्जगामाश्रमात्तस्माद्विवस्त्रोपिभयाकुलः ॥ १३ ॥ अहल्यापिभयत्र
स्ता दृष्ट्वाभर्तारमागतम् ॥ अधोमुखीस्थिताराजंस्तदाव्याकुलितेन्द्रिया ॥ १४ ॥ गौतमोपिचतंदृष्ट्वा सम्यग्भा
र्यांविचेष्टितम् ॥ भार्य्यामेदूषितासाध्वी तस्मादवृषणोभव ॥ १५ ॥ पूजाकृतेततोमूर्द्धा शतधातेभविष्यति ॥ एवं
शप्त्वाचतंशक्रं ततोहल्यामुवाचसः ॥ १६ ॥ कोपसंरक्तनेत्रस्तु भर्त्सयित्वामुहुर्मुहुः ॥ यस्मात्पापेत्वयाकर्म्म कृतमे
तद्विगर्हितम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छिलामयीभूत्वा त्वंतिष्ठवसुधातले ॥ ततःसातत्क्षणाज्जाता तस्यभार्य्याशिलात्मि
का ॥ १८ ॥ इन्द्रोपिचपरित्यक्तो वृषणाभ्यांतदाभवत् ॥ अथापरंसमासाद्य कन्दरंविजनंहरिः ॥ १९ ॥ सव्रीडस्सेव
तेनित्यं नजगामनिजंपुरम् ॥ ततोदेवगणास्सर्वे सोद्वेगास्तेनवर्जिताः ॥ २० ॥ नजानन्तिचतत्रस्थं कन्दरालेषणेरत

तदनन्तर क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाले उन गौतमने बार २ पूजन के लिये तुम्हारा मस्तक सौखण्डहोगा याने पूजा न होगी इस प्रकार उन इन्द्रको शापदेकर तदनन्तर घुड़क कर अहल्यासे कहा कि हे पापिनि ! जिस कारण तुमने इस निन्दित कर्म को किया ॥ १६ । १७ ॥ उसी लिये पत्थलमयी होकर तुम भूतलमें टिको तदनन्तर उसीक्षण उनगौतम की वह स्त्री शिलामयी होगई ॥ १८ ॥ व उस समय इन्द्रभी अण्डकोशों से हीनहोगये इसके अनन्तर अन्य एकान्त कन्दराको भलीभांति प्राप्त होकर इन्द्रने ॥ १९ ॥ लज्जा समेत होकर नित्यही कन्दरा सेवनकिया अपने नगरको नहींगये तदनन्तर उनसे रहित समस्त सुरसमूह उद्वेग (ऊब) समेतहुये ॥२०॥

और वहां टिके व कन्दरा के लेपण (निवास) में तत्पर इन्द्रको न जानते थे व स्वर्गको राजा रहितहोने पर भयंकर दानवों से पीड़ित किये जातेथे ॥ २१ ॥ इसी अवसर में ऊब समेत व भयभीत इन्द्राणीने बृहस्पतिसे पूंछा कि आज इन्द्रजी कहांगये हैं ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर बृहस्पति जी देरतक ध्यानकर उन इन्द्रको ज्ञानरूपी दृष्टिसे देखकर देवों समेतगये व निठुरता समेत बोले ॥ २३ ॥ कि राज्य के सुखोंको छोड़कर तुम क्यों एकान्त में स्थितहो क्या तुमने ध्यान किया है या विकराल तपस्या का भलीभांति आश्रय कियाहै ॥ २४ ॥ बृहस्पतिके वचन सुनकर योनि मुखवाले इन्द्रजी बोले जो इन्द्र कि लज्जासे युक्त व दीन व आंसुओंसे डूबे

म् ॥ पीड्यन्तेदानवैरौद्रैस्स्वर्गेजातेविराजके ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजीवश्शक्राण्याभयभीतया ॥ सोद्वेगयापरिपृष्टः क्वगतोद्यपुरन्दरः ॥ २२ ॥ अथजीवश्चिरन्ध्यात्वा दृष्ट्वातंज्ञानचक्षुषा ॥ जगामसहितोदेवैः प्रोवाचाथसनिष्ठुरम् ॥ २३ ॥ किमिदंराज्यभोगांस्त्वं त्यक्त्वाविजनमाश्रितः ॥ किन्त्वयाविहितंध्यानं किंरौद्रंसंश्रितंतपः ॥ २४ ॥ बृहस्पतेर्वचःश्रुत्वा भगवक्त्रःपुरन्दरः ॥ प्रोवाचलज्जयायुक्तो दीनोबाष्पपरिप्लुतः ॥ २५ ॥ नाहंराज्यंकरिष्यामि त्रैलोक्येपिकथञ्चन ॥ पश्यमेयादृशीजाता अवस्थागौतमान्मुनेः ॥ २६ ॥ अनेनभगचिह्नेन कथंवक्त्रेणतानहम् ॥ देवान्सम्भाषयिष्यामि पौलोमीञ्चतथाप्रियाम् ॥ २७ ॥ मर्त्यलोकोद्भवापूजा ममनष्टाबृहस्पते ॥ गौतमस्यमुनेःशापात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजस्य बृहस्पतिरुदारधीः ॥ दुःखेनमहतायुक्तः सर्वैर्देवैस्समावृतः ॥ २९ ॥ ततोबृहस्पतिर्गत्वा गौतमंमुनिमब्रवीत् ॥ एकच्छत्रपरित्यक्तंत्रैलोक्यमपिचाखिलम् ॥ ३० ॥ पीड्यन्तेदानवैर्विप्रा नष्ट

हुये थे ॥ २५ ॥ मैं त्रिलोकमें भी किसी प्रकार राज्य न करूंगा देखिये कि गौतम मुनिसे मेरी जैसी दशाहुई है ॥ २६ ॥ इस योनिचिह्नवाले मुख से उन देवों तथा प्यारी इन्द्राणीसे कैसे सम्भाषण करूंगा ॥ २७ ॥ व हे बृहस्पते ! किसी दूसरे कारण में गौतम मुनिकी शापसे मेरी मृत्युलोकमें उपजीहुई पूजा नष्ट होगई ॥२८॥ सुरराज के उस वचनको सुनकर समस्त देवताओं से घिरे व उदार बुद्धिवाले बृहस्पति जी बड़े दुःख से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर बृहस्पति जी जाकर गौतम

मुनिसे बोले कि समस्त त्रिलोकभी एक छत्रसे हीन होगया॥ ३०॥ व नष्टहुये यज्ञके उत्साह कर्मोंवाले ब्राह्मण दानवोंसे पीड़ित होतेहैं और परम लज्जासे घिरे ये इन्द्र जी अपनी राज्यकी इच्छानहीं करते हैं ॥ ३१ ॥ उसी कारण हे द्विजोत्तम ! मेरे वचनसे इन इन्द्रकी शापके अनुग्रह के द्वारा यथा योग्य प्रसन्नताको कहने योग्य हो ॥ ३२ ॥ उस वचनको सुनकर गौतम ने कहा कि मेरा वचन झूंठ नहोगा व जिसको आपही कहाहै उस वचनको लोप न करूंगा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर आपही विष्णुजी व महादेव भी व नम्रतासे नीचे झुकेहुये समस्त सुरसमूह उन गौतम से बोले ॥ ३४ ॥ कि ब्रह्माके वचन तुमको अन्यथा करनेके लिये नहीं योग्य हैं इस

यज्ञोत्सवक्रियाः ॥ नैषवाञ्छतिराज्यंस्वं लज्जयापरयावृतः ॥ ३१ ॥ तस्मादस्यप्रसादंत्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ अनुग्रहेणशापस्य ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वागौतमःप्राह नमेवाक्यंमृषाभवेत् ॥ नवाक्यंलोपयिष्यामि यदुक्तंस्वयमेवहि ॥ ३३ ॥ ततःप्रोवाचतंविष्णुः स्वयंचापिमहेश्वरः ॥ तथादेवगणास्सर्वे विनयावनताःस्थिताः ॥ ३४ ॥ अन्यथाब्रह्मणोवाक्यं नतेकर्तुंप्रयुज्यते ॥ तस्मात्कुरुष्वविप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहंद्विज ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणोन्तिकमभ्येत्यतस्मै सर्वंन्यवेदयत् ॥ शापंशक्रस्यसंजातं यथातस्मान्महामुने ॥ ३६ ॥ यथाविडम्बनाजाता देवराजस्यगर्हिता ॥ यथाचदानवैस्सर्वं त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम् ॥ ३७ ॥ यथानकुरुतेराज्यं व्रीडितस्सशचीपतिः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजस्तूर्णंहरिशम्भुसमाश्रितः ॥ ३८ ॥ जगामतत्रयत्रास्ते दुःखितःपाकशासनः ॥ गौतमंचसमानीय तत्रैवचपितामहः ॥ ३९ ॥ ततःप्रोवाचप्रत्यक्षं देवानांवासवस्यच ॥ अयुक्तन्देवराजेन विहितोमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ यत्तेप्रदूषिताभार्य्या कामोपहतचेतसा ॥ तत्ते

लिये हे द्विजेन्द्र, द्विज! शापकी अनुग्रह कीजिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके समीप आकर उनके लिये सब निवेदन किया कि जिस प्रकार उन गौतम महामुनि से शापहुई थी ॥ ३६ ॥ व जिस भांति सुरराजकी निन्दित विडम्बनाहुई व जिसभांति दानवोंने समस्त त्रिलोकको विकलकिया ॥ ३७ ॥ व जिसप्रकार लज्जित वे इन्द्राणीके पति (इन्द्र) राज्यनहीं करते थे उसको सुनकर विष्णु व शिवसे भलीभांति आश्रित होतेहुये ब्रह्माजी शीघ्रही ॥ ३८ ॥ वहांगये जहां कि दुःखित इन्द्रजी थे व वहीं गौतमको भलीभांति लाकर ब्रह्माजीने ॥ ३९ ॥ तदनन्तर देवों व इन्द्रके सामने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! सुरराजने अयोग्य कियाहै ॥ ४० ॥ जिसलिये कि कामदेव

से ताड़ित चित्तके कारण तुम्हारी नारीको दूषित किया उसीकारण तुम्हारा थोड़ाभी दोष नहीं है किन्तु इन इन्द्रमें छिद्र (दोष) है ॥ ४१ ॥ परन्तु मुनियोंकी उत्तम क्षमा नित्यही प्रशंसा कीजातीहै जिसप्रकार इन्द्र अपनी त्रिलोककी राज्यकोकरैं ॥ ४२ ॥ व तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस प्रकारहोवै वैसाही न्याय कियाजावै व इनको फिर अण्डकोश देकर व इन योनियोंको नाशकरके ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार मृत्युलोक में इनकी गतिहोवै वह करिये और वहां नित्यही वृषण समेत इन्द्रजीजावैं ॥ ४४ ॥ उनके उस वचनको सुनकर देवोंके गौरवसे उन गौतमजीने उस समय मेष (भेंड़ा) से उपजेहुये उन अण्डकोशों को युक्तकिया ॥ ४५ ॥ व उन योनियोंको हाथ

दोषोस्तिनस्वल्पश्छिद्रश्चास्मिन्पुरन्दरे ॥ ४१ ॥ परंप्रशस्यतेनित्यं मुनीनांपरमाक्षमा ॥ यथात्रैलोक्यराज्यंस्वं प्रकरोतिशतक्रतुः ॥ ४२ ॥ यथास्यात्त्वत्प्रसादेन तथानीतिर्विधीयताम् ॥ दत्त्वास्यवृषणौभूयो नाशयित्वाभगानि मान् ॥ ४३ ॥ मर्त्यलोकेगतिश्चास्य यथास्यात्तत्समाचर ॥ तत्रयातुसवृषणो नित्यमेवपुरन्दरः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तेषां समुनिर्देवगौरवात् ॥ वृषणौमेषसम्भूतौ योजयामासतौतदा ॥ ४५ ॥ तान्भगान्पाणिनास्पृष्ट्वा चक्रेनेत्राणि सन्मुनिः ॥ ततःप्रोवाचतान्देवान्गौतमश्चमहातपाः ॥ ४६ ॥ सहस्राक्षोमयास्वामी निर्मितोयंसुरोत्तमाः ॥ समेषवृषणश्चापि स्वंराज्यंप्रकरिष्यति ॥ ४७ ॥ शोभास्यनेत्रजावक्त्रेसुरम्यासम्भविष्यति ॥ पुंस्त्वञ्चमेषजोत्थाभ्यांवृषणाभ्यां भविष्यति ॥ ४८ ॥ नचमर्त्येगतिश्चास्य पूजार्थंसम्भविष्यति ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातः सहस्राक्षःपुरन्दरः ॥ ४९ ॥ शोभयापरयायुक्तो मुनेस्तस्यप्रभावतः ॥ ततःसंगृह्यपादौच गौतमस्यमहात्मनः ॥ ५० ॥ प्रोवाचवचनंशक्रः सर्वदेवसमा

से छूकर नेत्र करदिया तदनन्तर बड़े तपस्वी व उत्तममुनि गौतमजी उन देवताओंसे बोले ॥ ४६ ॥ कि हे देवोत्तमो ! भेंड़ाके अण्डकोशों समेत भी हज़ारनेत्रवाले इन्द्रको स्वामी बनाया ये अपनी राज्यकरैंगे ॥४७॥ व इनके मुखमें नेत्रोंसे उपजीहुई अति मनोहारिणी शोभाहोगी व मेढ़ासे उपजेहुये अण्डकोशोंसे पुरुषत्वहोगा ॥४८॥ और पूजनकें लिये इनकी मृत्युलोक में गतिनहोगी इसी अवसर में उन मुनिके तेज से इन्द्र बड़ी शोभासे युक्त व हज़ार नेत्रोंवाले होगये तदनन्तर गौतम महात्मा

के चरणोंको भलीभांति पकड़कर ॥ ४९।५० ॥ समस्त देवोंकी समाजमें इन्द्र वचन बोले कि हे द्विजसत्तम ! मृत्युलोकमें उपजीहुई पूजा दुर्लभहै ॥ ५१ ॥ वह मेरी
पूजा जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नतासे होवै वह करिये हे द्विज ! त्रिलोकमें उपजी हुई मेरी पूजा मत नाशको प्राप्तहोवै ॥ ५२ ॥ तुम्हारी प्रसन्नतासे वह जिसप्रकार नित्य
ही होवै उसको कीजिये उस वचनको सुनकर लज्जा व दयासे संयुत उत्तम मुनि गौतम जी ॥ ५३ ॥ समस्त देवताओं के सामने उन इन्द्रसे बोले कि मृत्युलोकमें
तुम्हारा पूजन पांच रातैं होगा ॥ ५४ ॥ कि जिस प्रकार वर्षभर अनन्य (उत्तम) तृप्तिको प्राप्तहोगे जिस देश,नगर व ग्राममें पांचरातोंके मध्य महाउछाह होगा ॥५५॥

गमे ॥ दुर्लभामर्त्यलोकोत्था पूजाब्राह्मणसत्तम ॥ ५१ ॥ सामेतवप्रसादेन यथास्यात्तत्समाचर ॥ त्रैलोक्यसम्भवापू
जा मानाशंयातुमेद्विज ॥ ५२ ॥ प्रसादात्तवसानित्यं यथास्यात्तद्विधीयताम् ॥ तच्छ्रुत्वालज्जयाविष्टः कृपयावाथस
न्मुनिः ॥ ५३ ॥ तमूचेसर्वदेवानां प्रत्यक्षंपाकशासनम् ॥ पञ्चरात्रंचतेपूजा मर्त्यलोकेभविष्यति ॥ ५४ ॥ अनन्यांतृ
प्तिमभ्येषि यथाचैवतुवत्सरम् ॥ यत्रदेशेपुरेग्रामे पञ्चरात्रेमहोत्सवः ॥ ५५ ॥ तत्रसंवत्सरंयावन्नीरोगोभविताजनः ॥
आधयोव्याधयोनैव नदुर्भिक्षंकथञ्चन ॥ ५६ ॥ नचराज्यविनाशःस्यान्नैवलोकेसुखंकचित ॥ यत्रस्थानेमहोभावी
तावकस्तुपुरन्दर ॥ ५७ ॥ प्रभूतपयसोगावः प्रभविष्यन्तितत्रच ॥ सुभिक्षंसुखिनोलोकाः सर्वोपद्रववर्जिताः ॥ ५८ ॥
इन्द्रउवाच ॥ यद्येवंशरदिप्राप्ते सर्वसत्त्वमनोहरे ॥ सप्तच्छदसमाकीर्णे बन्धूकसुविराजिते ॥ ५९ ॥ मालतीगन्धसङ्कीर्णे
र्णे बहुसस्यसमाकुले ॥ चन्द्रज्योत्स्नाकृतोद्योते मयूरकुलसंकुले ॥ ६० ॥ कुमुदोत्पलसंयुक्ते तत्रस्यात्सुमहोत्सवः ॥

वहां वर्षभर तक मनुष्य नीरोग होवैंगे व किसी प्रकार मानसी पीड़ा व रोग और दुर्भिक्ष न होगा ॥ ५६ ॥ और न राज्यका नाशहोगा व संसारमें कहीं क्लेश न
होगा हे पुरन्दर ! जिस स्थानमें तुम्हारा उछाह होगा ॥ ५७ ॥ वहां बहुत दूधवाली गाइयां होंगी व सुभिक्ष होगा और मनुष्य समस्त उपद्रवोंसे रहित व सुखी होवैंगे ॥
५८ ॥ इन्द्र बोले कि यदि ऐसाहै तो समस्त प्राणियोंको मनोहर शरदृऋतु प्राप्तहोने पर जो शरद् कि छतौंड़ से व्याप्त व दुपहरी के पुष्पों से सुशोभित ॥ ५९ ॥ व
चमेली की सुगन्ध से भरीहुई व बहुत अन्नोंसे घिरी और चन्द्रमा की चांदनी से किये हुये प्रकाशवाली व मयूरसमूहों से व्याप्त ॥ ६० ॥ व कुमुद, (को-

कावेली) कमल से संयुक्त होती है उसमें उत्तम महाउछाह होवै कि जिससे बालकभी व वृद्धभी देखकर उसको करै ॥ ६१ ॥ गौतमजी बोले कि आज विष्णु वाले श्रवण नक्षत्र में तुमको महाउछाह दिया जो नक्षत्र कि पुण्यदायक व समस्त पापोंसे रहितहै ॥ ६२ ॥ तुमने पहले पौष्ण (रेवती) सञ्ज्ञक नक्षत्रमें स्त्रीकी धर्षणा कियाहै उस दिन हे पुरन्दरजी ! तुम्हारा पातक प्रकटहोगा ॥ ६३ ॥ कि जिससे यह मेरी कीर्ति व तुम्हारा वह बहुकर्म इस संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होवै और कोई पातक न करै ॥ ६४ ॥ जो श्रवणादिक अलग २ पांच नक्षत्र हैं वे तुम्हारे पूजन के लिये पांचयज्ञों के बराबर ॥ ६५ ॥ व निस्सन्देह समस्त तीर्थमय होवैंगे जो जिस

येनबालोपिवृद्धोपि दृष्ट्वातत्तुसमाचरेत् ॥ ६१ ॥ गौतमउवाच ॥ अद्यश्रवणनक्षत्रे तवदत्तोमहोत्सवः ॥ वैष्णवेपुण्य नक्षत्रे सर्वपापविवर्जिते ॥ ६२ ॥ त्वयाग्रेधर्षिताभार्य्या पौष्णेनक्षत्रसंज्ञिते ॥ तस्मिन्भविष्यतिव्यक्तं तवपापंपुरन्दर ॥ ६३ ॥ येनैषामासकीकीर्तिस्तावकंबहुकर्म्मतत् ॥ विख्यातिंयातिलोकेत्र नकश्चित्पापमाचरेत् ॥ ६४ ॥ श्रवणादीनि पञ्चैव नक्षत्राणिपृथक्पृथक्॥ तवपूजाकृतेपञ्चक्रतुतुल्यानितानिच ॥ ६५ ॥ भविष्यन्तिनसन्देहः सर्वतीर्थमयानि च ॥ योयंकाममभिध्याय पूजांतवकरिष्यति ॥ ६६ ॥ विशेषात्फलपुष्पैश्च सतंकृत्स्नमवाप्नुयात् ॥ परंमूर्तिर्नतेपूज्या कुत्रापिचभविष्यति ॥ ६७ ॥ त्वयामेदूषिताभार्य्याब्राह्मणीप्राणसम्मता ॥ तस्माद्वृक्षोद्भवांयष्टिं ब्राह्मणावेद पारगाः ॥ ६८ ॥ तावकैस्सकलैर्मन्त्रैः स्थापयिष्यन्तिशक्तितः ॥ पञ्चरात्रविधानेन यथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ६९ ॥ ततःसंक्रमणंकृत्वा पूजामर्त्यसमुद्भवा ॥ त्वयाग्राह्यासहस्राक्ष तृप्तिश्चैवभविष्यति ॥ ७० ॥ योयथाचैवतेयष्टिं सुप्तामु

कामनाको चिन्तनकर विशेषकर फल फूलों से तुम्हारा पूजन करैगा वह उस सम्पूर्ण फलको पावैगा परन्तु तुम्हारी मूर्ति कहीं भी पूजने योग्य न होगी ॥ ६६।६७॥ तुमने प्राणों के समान मेरी स्त्री ब्राह्मणीको दूषित किया है उसीकारण वेदके पारगामी ब्राह्मण वृक्षसे उपजीहुई यष्टि (छड़ी) को शक्ति से पंचरात्र विधान के द्वारा तुम्हारे समस्त मन्त्रों से स्थापन करैंगे जैसे कि अन्य देवताओं का स्थापन करते हैं ॥ ६८।६९ ॥ तदनन्तर हे सहस्रलोचन ! भलीभांति गमनकरके मनुष्योंसे उपजीहुई

पूजा तुमको ग्रहण करनाचाहिये क्योंकि तृप्ति होवैगी ॥७०॥ जो जिसप्रकार सोती (पड़ी) हुई तुम्हारी छड़ीको उठावैगा हे वासव ! उस उसकी अधिक सिद्धि होगी ॥ ७१ ॥ व ब्रह्मचर्य में तत्पर और पंचरात्रिव्रतमें टिकाहुआ जो पुरुष यथोदित फल फूलों से तुम्हारा पूजन करैगा ॥ ७२ ॥ वह पराई स्त्रीमें कियेहुये समस्त पातक से मोक्षको पावैगा हे सुनाशीर ! हे परायण ! शक्रदेवके लिये नमस्कारहै ॥ ७३ ॥ व वज्र हाथोंवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व वज्रपाणि जो तुमहो उनके लिये नमस्कार है हे इन्द्रजी ! जो पुरुष इस मन्त्रसे तुमको अर्घ देवैगा ॥ ७४ ॥ उसका पराई स्त्री में कियाहुआ समस्त पातक नाश होजावैगा हे पुरन्दर ! जो पुरुष मेरे

स्थापयिष्यति ॥ तस्यतस्याधिकासिद्धिःसम्भविष्यतिवासव ॥ ७१ ॥ पञ्चरात्रव्रतस्थोयो ब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ प्रकरिष्यतितेपूजां फलपुष्पैर्यथोदितैः ॥ ७२ ॥ परदारकृतात्पापात्ससर्वान्मुक्तिमेष्यति ॥ नमःशक्रायदेवाय सुनाशीरपरायण ॥ ७३ ॥ नमस्तेवज्रहस्ताय नमस्तेवज्रपाणये ॥ मन्त्रेणानेनयश्चार्घं तवशक्रप्रदास्यति ॥ ७४ ॥ परदारकृतंपापंतस्यसर्वंप्रणश्यति ॥ यश्चेमंतवसंवादं मयासार्द्धंपुरन्दर ॥ ७५ ॥ कीर्तयिष्यतिसद्भक्त्या तथैवकथयिष्यति ॥ तस्यसंवत्सरंयावन्नैवरोगोभविष्यति ॥७६॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे तथेत्युक्त्वाप्रहर्षिताः॥जग्मुःशक्रंसमादाय पुनरेवामरावतीम्॥ गौतमोपिनिजावासं गतकोपःसमाश्रितः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे इन्द्रमहोत्सवोनामसप्तनवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ एवंशक्रेदिवंप्राप्ते देवेषुसकलेषुच ॥ गौतमःस्वाश्रमंप्राप्तः कोपेनमहताज्वलन् ॥ १ ॥ ततस्स

साथ इस तुम्हारे संवादको उत्तम भक्तिसे कहैगा व कीर्तन करावैगा उसके वर्षभर तक रोग न होगा ॥७५।७६॥ उस वचनको सुनकर वैसाही होगा यह कहकर प्रसन्नहोते हुये समस्त देवता इन्द्र को भलीभांति लेकर फिरभी अमरावती को चलेगये और गये क्रोधवाले गौतमभी अपने निवासस्थानमें भलीभांति आश्रित हुये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रमहोत्सवोनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । गौतम सुत अरु नारि सह थाप्यो लिंगन तीन। इकसौ अट्ठानबे महँ सोई बर्णन कीन ॥ विश्वामित्रजी बोले कि इसप्रकार जब इन्द्र व समस्त देवता स्वर्गको

प्राप्तहुये तब बड़े कोपसे जलतेहुये गौतमभी अपने स्थान पै प्राप्तहुये ॥ १ ॥ तदनन्तर उन गौतमजी ने शतानन्दके आगे समस्त देवोंके कर्म व इन्द्रके लिये वरदान को कहा ॥ २ ॥ उस वचनको सुनकर नम्रता से नीचे झुके खड़ेहुये शतानन्द ने पितासे कहा कि हे पिताजी ! मेरी माताके उठानेमें किसलिये नहीं प्रसन्नता करतेहो हे विभो ! तुमको कुछ असाध्य नहीं है इसलिये मेरेऊपर प्रसन्नता करिये कि जिसप्रकार हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझ दीन व उत्कंठित का माताके साथ संयोग होवै इस लिये उसको शीघ्रही उठाकर तदनन्तर प्रायश्चित्त विधिको ॥ ३ । ४ । ५ ॥ उसीकारण शीघ्रही मुझसे कहिये कि जिससे पवित्रता होवै गौतमजी बोले कि मदिरा लगेहुये

कथयामास सर्वदेवविचेष्टितम् ॥ वरदानंचशक्राय शतानन्दस्यचाग्रतः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वापितरंप्राह विनयावनतःस्थि
तः ॥ तातामम्बायानकस्मात्त्वं प्रसादंप्रकरोषिमे ॥ ३ ॥ उत्थापनेनतेकिञ्चिदसाध्यंविद्यतेविभो ॥ तस्मात्कुरुप्रसादं
मे यथास्यान्ममचाम्बया ॥ ४ ॥ समागमोमुनिश्रेष्ठ दीनस्योत्कण्ठितस्यच ॥ तस्मादुत्थाप्यतांतूर्णं प्रायश्चित्तविधि
न्ततः ॥ ५ ॥ तस्मादादिशमेक्षिप्रं येनशुद्धिःप्रजायते ॥ गौतमउवाच ॥ मद्यावलिप्तभाण्डानां यदिशुद्धिःप्रजायते ॥
६ ॥ तत्स्त्रीणांजायतेशुद्धिर्योनौशुक्राभिषेचनात् ॥ ब्राह्मणस्तुसुरांपीत्वा मौञ्जीहोमेनशुद्ध्यति ॥ ७ ॥ अथाग्निंसाधयि
त्वाच नतुनारीविधर्म्मिता ॥ मद्यभाण्डमपिप्रायो यथावद्वह्निशोधितम् ॥ ८ ॥ विशुद्ध्यतितथानारी वह्निदग्धाविशुद्ध्य
ति ॥ यस्यारेतोथसंक्रान्तमुदरेह्यन्यसम्भवम् ॥ ९ ॥ एतस्मात्कारणान्माता मयातेपुत्रसाशिला ॥ विहितानहित
स्यास्ति विशुद्धिस्तुकथञ्चन ॥ १० ॥ शतानन्दउवाच ॥ यद्येवंसाधयिष्यामि तत्कृतेहंहुताशनम् ॥ विषंवाभक्षयिष्या

पात्रोंकी यदि शुद्धि होतीहै ॥ ६ ॥ तो योनिमें वीर्यके सींचनेसे स्त्रियोंकी शुद्धि होती है ब्राह्मण तो मदिरा पीकर मौंजी होमसे शुद्ध होताहै ॥ ७ ॥ और विधर्ममें प्राप्तहुई स्त्री अग्निको साधनकर भी नहीं शुद्ध होती है व बहुधा मदिराका पात्रभी यथायोग्य अग्निमें शोधाहुआ विशेष कर शुद्ध होता है वैसेही अग्निमें जली हुई वह स्त्री विशुद्धहोती है कि जिसके पेटमें अन्यसे उपजाहुआ वीर्य भलीभांति गयाहै ॥ ८ । ९ ॥ हे पुत्र ! इसी कारण मैंने तुम्हारी माताको शिला किया है उसकी शुद्धि तो

किसी प्रकार नहीं है ॥ १० ॥ शतानन्द बोले कि यदि ऐसाहै तो उसके लिये मैं अग्नि साधन करूंगा या विषखाऊंगा अथवा जलाशयमें गिरूंगा ॥ ११ ॥ हे पिता जी ! माताके वियोग से मैंने यह सत्य कहाहै व वैसेही धर्मके पूर्ण करनेवाले अन्य मनु आदिके मुनि स्थितहुयेहैं ॥ १२ ॥ हे पिताजी ! इतिहासों, पुराणों व बहुतेरे समस्त वेदान्तोंको भलीभांति चिन्तन करके मेरी माता व मुझकोभी शुद्धि दीजिये नहीं तो प्राणोंका नाशकरूंगा विश्वामित्रजी बोले कि उस वचनको सुनकर व बहुत देरतक ध्यानकर गौतम ने अपनी भुजाओं से उस पुत्रको लिपटाकर व मस्तकमें सूँघकर तदनन्तर कहा कि हे वत्स ! यदि ऐसाहै तो अपने शरीरके मारने

मि पतिष्यामिजलाशयम् ॥ ११ ॥ मातुर्वियोगतस्तात सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ धर्म्मदोहाःस्थिताश्चान्ये मन्वाद्यामु
नयस्तथा ॥ १२ ॥ इतिहासपुराणानि वेदान्तानिबहूनिच ॥ सञ्चिन्त्यतातसर्वाणि देहिशुद्धिममापिताम् ॥ १३ ॥ मम
मातुःकरिष्यामि नोचेत्प्राणपरिक्षयम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासुचिरंध्यात्वा गौतमःप्राहतंसुतम् ॥ १४ ॥ प
रिष्वज्यस्वबाहुभ्यां मूर्द्धन्याघ्रायततःपरम् ॥ यद्येवंवत्समाकार्षीः साहसंपापसम्भवम् ॥ १५ ॥ आत्मदेहविघातेन श्रू
यतांवचनंमम ॥ मेध्यत्वेतवमातुश्च शुद्धिर्ज्ञातामयातथा ॥ १६ ॥ यथासाममहर्म्याहा भविष्यतिनसंशयः ॥ उत्प
त्स्यतेरविवंशे रामरूपीजनार्द्दनः ॥ १७ ॥ रावणस्यवधार्थाय मानुषंरूपमास्थितः ॥ तस्यपादस्यसंस्पर्शाद्भूयःशुद्धाभ
विष्यति ॥ १८ ॥ तस्मात्प्रतीक्षतावत्त्वमौत्सुक्यंव्रजपुत्रक ॥ एतत्सम्यङ्मयाज्ञातं वत्सदिव्येनचक्षुषा ॥ १९ ॥ एत
च्छ्रुत्वातथेत्युक्त्वा शतानन्दःप्रहर्षितः ॥ स्थितःप्रतीक्षमाणस्तु तंकालंमातृवत्सलः ॥ २० ॥ ततःकालेनमहता राम

द्वारा पापसे उपजाहुआ साहस मतकरो किन्तु मेरे वचन सुनो कि तुम्हारी माताकी शुद्धता के निमित्त मैंने वैसेही शुद्धिजाना है ॥ १३ । १४ । १५ । १६ ॥ कि जिस प्रकार वह निस्सन्देह मेरेघरके योग्य होगी सूर्यवंशमें रामरूपवाले जनार्दन (विष्णु) उत्पन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ वे रावणके मारने के लिये मनुज रूपपै टिकैंगे उनके चरण के भलीभांति छूनेसे फिर शुद्धहोगी ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम तबतक परखो व उत्कण्ठताको प्राप्तहोवो हे वत्स ! मैंने यह सब दिव्यदृष्टिसे देखा है ॥१९॥ इस वचनको सुनकर वैसाही होगा यह कहकर प्रसन्न होतेहुये मातृप्रिय शतानन्दजी उस समयको परखतेहुये टिके ॥ २० ॥ तदनन्तर बहुत समयसे रामरूपवाले जना-

र्दनजी रावणके मारने के लिये दशरथजी के घरमें पैदाहुये ॥ २१ ॥ शिशुतामेंभी भलीभांति टिकेहुये उन विष्णुभगवान्‌को मैं अपने यज्ञकी रक्षाके लिये व यज्ञ-कर्म के विनाश करनेवाले राक्षसों के नाशके निमित्त अपने आश्रम को भलीभांति लाया व मेरे यज्ञके वर्तमान होनेपर वे भयङ्कर राक्षस मारेगये ॥ २२ । २३ ॥ व मैं उन सीताका स्वयंवर व राजाओं का समागम सुनकर लक्ष्मण समेत उन रघुनन्दनको जानकी जी के विवाह के लिये अयोध्या से भलीभांति लाया तदनन्तर गौतमजी के उत्तम आश्रम में मैंने प्रमाणसे बड़ीभारी उन शिलारूपिणी अहल्या को देखा तदनन्तर मैंने रामजी से कहा कि हे वत्स ! हाथसे इनको स्पर्श

रूपीजनार्द्दनः ॥ रावणस्यवधार्थाय जातोदशरथालये ॥ २१ ॥ समयाभगवान्विष्णुर्बालभावेपिसंस्थितः ॥ निजयज्ञस्यरक्षार्थं समानीतस्स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥ राक्षसानांविनाशाय यज्ञकर्म्मविनाशिनाम् ॥ हतास्तेराक्षसारौद्रा ममयज्ञेनिवर्तिते ॥ २३ ॥ अयोध्यायास्समानीतस्समयारघुनन्दनः ॥ सीतायाश्चविवाहार्थं लक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ २४ ॥ श्रुत्वास्वयंवरंतस्याः पार्थिवानांसमागमम् ॥ ततोमार्गेमयादृष्टा गौतमस्याश्रमेशुभे ॥ २५ ॥ अहल्यासाशिलारूपा प्रमाणेनमहत्तमा ॥ ततःप्रोक्तोमयारामः स्पृशेमांवत्सपाणिना ॥ २६ ॥ मानुषत्वंलभेद्येन गौतमस्यप्रियामुनेः ॥ शापदोषेणसञ्जाता शिलेयंतस्यसन्मुनेः ॥ २७ ॥ अविशङ्कंततोरामो ममवाक्येनतांशिलाम् ॥ पस्पर्शपार्थिवश्रेष्ठ कौतूहलसमन्वितः ॥ २८ ॥ अथरामेणसंस्पृष्टा सहसैववपुर्द्धरा ॥ शुशुभेमानुषीजाता दिव्यरूपवपुर्द्धरा ॥ २९ ॥ ततस्सालज्जयाविष्टा प्रणिपत्यचगौतमम् ॥ स्मरमाणात्मनःकृत्यं यच्चक्रेणसमन्वितम् ॥ ३० ॥ प्रायश्चित्तं

करिये ॥ २४।२५।२६ ॥ कि जिससे गौतम मुनिकी प्यारी मनुजताको प्राप्तहोवै क्योंकि उन उत्तम मुनिके शापदोषसे यह शिला होगई है ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! कौतुक से संयुत रामचन्द्रजीने मेरे वचनसे निस्सन्देह उस शिलाको स्पर्श किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर अचानकही रामजीसे भलीभांतिछुई व शरीरधारिणी व दिव्यरूपवाली देहधारिणी मानुषी होतीहुई शोभित भई ॥ २९ ॥ तदनन्तर लज्जा से संयुत व जो इन्द्रके साथ अपना कर्मथा उसको यादकरतीहुई वह गौतमजीको

उपपति) के संयोग से होता है ॥ ३१ ॥ मैं इस
प्रणामकर बोली ॥ ३० ॥ कि हे स्वामिन् ! मुझको समस्त प्रायश्चित्त सम्पूर्णतासे दीजिये जो वह कि अन्य जार (उपपति) के संयोग से होता है ॥ ३१ ॥ मैं इस
दुष्कर (कठिन) भी प्रायश्चित्त को निरसन्देह करूगी कि जिससे पुरश्चरण के सेवन से मेरी शुद्धिहोवै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बहुत देरतक भलीभांति चिन्तवन कर
उस समय गौतमजी बोले कि सौ चान्द्रायण व्रत व हज़ार कृच्छ्र व्रतकरो ॥ ३३ ॥ व तीर्थयात्रा में तत्पर होतीहुई दशहजार प्राजापत्य व्रतकरो और भूतलमें अरसठि
तीर्थोंके मध्य जो तीर्थहैं॥३४॥उनके भलीभांति दर्शनसे उस पापसे शुद्धिको पावोगी वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर नित्यही व्रतमें तत्पर होतीहुई वह अहल्या ॥ ३५ ॥

॥ ३१ ॥ अहंदुष्करमप्येतत्करिष्यामिन
ममस्वामिन्देहिसर्वमशेषतः ॥ यज्जारस्यसमायोगे परस्यतत्प्रजायते ॥ ३१ ॥ अहंदुष्करमप्येतत्करिष्यामिन
संशयम् ॥ येनशुद्धिर्भवेन्मह्यं पुरश्चरणसेवनात् ॥ ३२ ॥ ततःसञ्चिन्त्यसुचिरं तदाप्रोवाचगौतमः ॥ कुरुचान्द्रायण
शतं कृच्छ्राणांचसहस्रकम् ॥ ३३ ॥ प्राजापत्यायुतंचापितीर्थयात्रापरायणा ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषु यानितीर्थानिभूतले ॥
३४ ॥ तेषांसन्दर्शनात्सम्यक् ततःशुद्धिमवाप्स्यसि ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय नित्यंव्रतपरायणा ॥ ३५ ॥ अष्टषष्टिषु
तीर्थेषु वाराणस्यादिषुक्रमात् ॥ बभ्रामतानिलिङ्गानि पूजयन्तीप्रभक्तितः ॥ ३६ ॥ क्रमेणैवतुसाप्राप्ता हाटकेश्वरदैव
तम् ॥ तस्मिंस्तपःप्रकुर्वन्ती स्थित्वाचैवसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ दर्शनार्थंहिदेवस्य पातालनिलयस्यच ॥ पञ्चाग्निसाधका
ग्रीष्मे हेमन्तेसलिलाश्रया ॥ ३८ ॥ वर्षास्वाकाशशयनासाबभूवतपस्विनी ॥ हरलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नाचान्तिकेत
दा ॥ ३९ ॥ त्रिकालंपूजयामास गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ एवंतपसिसंस्थायास्तस्याःकालोमहान्गतः ॥ ४० ॥ नचसन्द

और वह क्रमहीसे हाटकेश्वरदेवता वाले तीर्थको प्राप्तहुई
काशी इत्यादिक अरसठि तीर्थोंमें क्रमसे उन लिंगोंको बड़ी भक्तिसे पूजती हुई घूमती भई ॥ ३६ ॥ और वह क्रमहीसे हाटकेश्वरदेवता वाले तीर्थको प्राप्तहुई
व उस तीर्थ में टिककर दुष्कर तपको करतीहुई टिकी ॥ ३७ ॥ व पातालमें स्थान वाले (शिव) देवके देखने के लिये ग्रीष्ममें पंचाग्नि साधन करनेवाली व हेमन्त
में जलाश्रय वालीहुई ॥ ३८ ॥ व वर्षामें वह तपस्विनी आकाश (मैदान) में सोने वालीहुई और उस समय समीपमें अपने नामसे शिवलिंगको थापकर ॥३९॥ चन्द-
न, फूल व अनुलेपनों से त्रिकालमे पूजतीभई इस भांति तपस्यामें भली विधि से टिकीहुई उस अहल्या का बहुतसा समय व्यतीत हुआ ॥ ४० ॥ और हाटकेश्वरसे

उपजाहुआ दर्शन न भया इसके अनन्तर किसी समय उनके पुत्र जो शतानन्दजी थे ॥ ४१ ॥ उसको ढूंढ़तेहुये वे उस क्षेत्रमें भलीभांति आये जोकि माताके स्नेहसे घिरेहुये मन या चित्तवाले व तीर्थोंके मध्य ढूंढ़ने में तत्पर थे ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर वहां भयंकर तपस्या में टिकीहुई उन अहल्या को देखकर प्रणाम करके स्थित होतेहुये दीन व दुःख समेत शतानन्दजी वचनबोले ॥ ४३ ॥ कि हे माता ! विकराल तपस्याको करके क्यों शरीर क्लेशित किया जाता है उन सरसठि तीर्थोंमें जो लिंगहैं ॥ ४४ ॥ उन महादेवजी के लिंगोंको तुमने देखाहै और पाताल में भलीभांति टिकेहुये इस हाटकेश्वर नामक लिंगको ॥ ४५ ॥ कोई मनुष्य नहीं देखता है

र्शनंजातं हाटकेश्वरसम्भवम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य शतानन्दश्चतत्सुतः ॥ ४१ ॥ सतामन्वेषमाणस्तु तस्मिन्क्षे त्रेसमागतः ॥ मातृस्नेहपरीतात्मा तीर्थान्वेषणतत्परः ॥ ४२ ॥ अथतांतत्रसंवीक्ष्य दारुणेतपसिसंस्थिताम्॥ प्रणिप त्यस्थितोदीनः सदुःखोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ किंमातःक्लिश्यसेकायस्तपःकृत्वासुदारुणम् ॥ सप्तषष्टिषुतीर्थेषु या निलिङ्गानितेषुच ॥ ४४ ॥ माहेश्वराणिलिङ्गानि तानिदृष्टानिचत्वया ॥ एतत्पातालसंस्थंच हाटकेश्वरसंज्ञितम्॥४५॥ नपश्यतिनरःकश्चिद्दृष्टंक्षेत्रंनकेनचित् ॥ तेनशुद्धिश्चसंजाता स्वभर्त्राभिहितातुया ॥ ४६ ॥ तस्मादागच्छग च्छामस्तताश्रमपदेशुभे ॥ अहल्योवाच ॥ तावद्गच्छामिनोगेहं यावत्पश्यामिनोहरम् ॥ ४७ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तु निश्चयोयंमयाकृतः ॥ तच्छ्रुत्वासोपितांप्राह एषचेन्निश्चयस्तव ॥ ४८ ॥ मयापितातपार्श्वेतु नगन्तव्यंत्वयासह ॥ ए वमुक्त्वाततःसोपि स्थापयामासशाम्भवम् ॥ ४९ ॥ षष्ठाहकालभोज्यस्य व्रतचर्य्यारतस्यच ॥ एवंतस्यापिसंस्थस्य

और न किसीने क्षेत्र देखाहै उसी कारण निजपति से जो कहीगई थी वह शुद्धि भलीभांति होगई ॥ ४६ ॥ इस लिये आइये व शुभदायक पिताजी के आश्रममें चलैं अहल्या बोली कि जब तक हाटकेश्वर नामक महादेवजी को न देखूंगी तब तक घर न जाऊंगी मैंने यह निश्चय किया है उसको सुनकर उन शतानन्दने भी उस से यह कहा कि यदि तुम्हारा यह निश्चय है ॥ ४७ । ४८ ॥ तो तुम समेत मुझ को भी पिताके समीप न जाना चाहिये ऐसा कहकर तदनन्तर उन शतानन्दने भी

शिवलिंग थापन किया ॥४६॥ छठे दिनके समय भोजन करनेवाले व व्रतचर्या में परायण इस भांति टिकेहुये उन शतानन्द मुनिका भी बहुत समय व्यतीत हुआ ॥५०॥ और उन दोनों से किसी प्रकार शिवदेवजी प्रसन्न न हुये तदनन्तर बहुत समय से गौतम महामुनिभी ॥ ५१ ॥ आपही वहां आये व पुत्र दर्शन की लालसा वाले वे गौतम जी स्त्री समेत पुत्रको तपस्यामें भलीभांति टिकेहुये देखकर तबतक पहले प्रसन्न हुये व पश्चात् दुःख संयुत हुये कि अहो खेदहै व बड़ा कष्ट है कि मेरा पुत्र कृशत्वको प्राप्तहोगया यानें दुबला होगया ॥ ५२।५३ ॥ मैं तपस्यासे निवृत्त करके अपने घरको लेजाऊं शतानन्दजी बोले कि हे पिताजी ! बहुत प्रकार

गतःकालोमहान्मुनेः ॥ ५० ॥ नचतुष्टिङ्गतोदेवस्ताभ्यांद्वाभ्यांकथञ्चन ॥ ततःकालेनमहता गौतमोपिमहामुनिः ॥ ५१ ॥ आजगामस्वयंतत्र पुत्रदर्शनलालसः ॥ सदृष्ट्वाभार्य्ययासार्द्धं पुत्रंतपसिसंस्थितम् ॥ ५२ ॥ तुतोषप्रथमं तावत्पश्चाद्दुःखसमन्वितः ॥ अहोबतमहत्कष्टं पुत्रोमेकृशताङ्गतः ॥ ५३ ॥ नयामिस्वगृहंकृत्वा तपसःसन्निवर्तनम् ॥ शतानन्दउवाच ॥ ताताम्बाबहुधाप्रोक्ता तपसःसन्निवर्तनम् ॥ ५४ ॥ नागच्छातितथाहम्र्यमदृष्टेहाटकेश्वरे ॥ अहंतया विहीनस्तु नैवयास्यामिनिश्चितम् ॥ ५५ ॥ एवंज्ञात्वामहाभाग यद्युक्तंतत्समाचर ॥ गौतमउवाच ॥ अद्यैवनिश्चयोवत्स तवमातुश्चसंस्थितः ॥ ५६ ॥ अहंतंदर्शयिष्यामि तपसाहाटकेश्वरम् । एवमुक्त्वाततस्सोपि तपश्चक्रेमहामुनिः ॥ ५७ ॥ एकान्तरोपवासस्तु स्थितोवर्षशतम्मुनिः ॥ षष्ठाहकालभोजीच तावत्कालंततोभवत ॥ ५८ ॥ त्रिरात्रभो

से कहीहुई माता तपस्या से निवृत्तिको नहीं प्राप्तहोती है वैसेही जब तक हाटकेश्वर जी न देख पड़ैंगे तब तक उस से विहीन मैं घरको न जाऊंगा यह निश्चय किया गयाहै ॥ ५४ । ५५ ॥ हे महाभाग ! ऐसा जानकर जो योग्यहो वह करिये गौतमजी बोले कि हे वत्स ! आजही तुम्हारा व तुम्हारी माताका निश्चय भली-भांति स्थितहै ॥ ५६ ॥ मैं तपस्या से उन हाटकेश्वर जी को दिखाऊंगा ऐसा कहकर तदनन्तर उन महामुनि गौतम ने भी तपस्या किया ॥ ५७ ॥ मुनि (गौतम) जी सौ वर्ष तक एक दिनके अन्तर से उपासी होतेहुये टिके तदनन्तर उतनेही समय तक दिनके छठेभाग में भोजन करनेवाले हुये ॥ ५८ ॥ पश्चात् उतनेही समय

तक मुनि नायक भी न रातोंके बाद भोजन करने वाले हुये व उतनेही समय नित्यही फलोंसे भोजन करने वाले व उतनेही समय जलभोजी होकर ॥ ५६ ॥ तदनन्तर मुनिजी उतनेही समय तक पवन भोजीहुये उसके उपरान्त उत्तम हज़ार वर्षके अन्तको व्यवस्थित होनेपर ॥ ६० ॥ भूपृष्ठको फोड़कर बारह सूर्य्योंके समान व समस्त लक्षणों से लक्षित उत्तम लिंग निकला ॥ ६१ ॥ इसी समय में जिनके मस्तक में चन्द्रमा है वे भगवान् शिवजी ॥ ६२ ॥ उन गौतम के नेत्रमार्ग में प्राप्त होकर यह वचन बोले कि हे सुव्रत गौतमजी ! तुम्हारी इस तपस्यासे हम प्रसन्न हुये हैं ॥ ६३ ॥ हे महामुने ! तुम्हारी भक्तिसे यह हाटकेश्वर नामक मेरा लिंग पा-

जीपश्चाच्च तावत्कालंमुनीश्वरः ॥ तावत्कालंफलैर्नित्यं तावत्कालंजलाशनः ॥ ५६ ॥ वायुभक्षस्ततोभूत्वा ताव त्कालमभून्मुनिः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते परमेसंव्यवस्थिते ॥ ६० ॥ प्रभिद्यमेदिनीपृष्ठं निष्क्रान्तंलिङ्गमुत्तमम् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवाञ्छशिशेखरः ॥ ६२ ॥ तस्यदृष्टि पथंगत्वावाक्यमेतदुवाचह ॥ गौतमाहंप्रतुष्टस्ते तपसानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ एतच्चमामकंलिङ्गं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ पा तालाच्चविनिष्क्रान्तं तवभक्त्यामहामुने ॥ ६४ ॥ एतदर्थंतपस्तप्तं सभार्य्येणत्वयाहितत् ॥ सपुत्रेणाखिलंजातं फलंत स्ययथेप्सितम् ॥ ६५ ॥ एतत्पश्यतुतेभार्य्या अहल्यादेवरूपिणी ॥ अष्टषष्ट्युद्भवंयेन यात्राफलमवाप्नुयात् ॥६६॥ त्वंचापिप्रार्थयवरं येनसर्वंददामिते ॥ गौतमउवाच ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तु सकृद्दृष्टेथयत्फलम् ॥ ६७ ॥ पातालस्थंच यत्पुण्यं नराणांजायतेफलम् ॥ दृष्टेनानेनतत्पुण्यं पूजितेनविशेषतः ॥ ६८ ॥ अन्येपियेजनास्तच्च पूजयन्तिप्रभ

तालसे निकला है ॥ ६४ ॥ इसीके लिये स्त्री समेत व पुत्र सहित तुमने तपकिया है उसका वह इच्छाके अनुकूल समस्त फल हुआ ॥ ६५ ॥ व देवरूपिणी तुम्हारी अहल्या स्त्री इसको देखै कि जिससे अरसठि क्षेत्रोंसे उपजाहुआ यात्राका फल प्राप्तहोवै ॥ ६६ ॥ और तुमभी वरदानकी प्रार्थना करो कि जिससे तुमको सब देऊं गौतम बोले कि हाटकेश्वर संज्ञक महादेवको एकही बार देखने पर जो पुण्यहोनी है ॥ ६७ ॥ व पातालमे टिकीहुई जो पुण्यहोती है वह पुण्य इनको देखने व विशे-

वे स्वर्गको जावैं ॥ ६९ ॥ शुद्धिके अभिलाषी पकर पूजनेसे मनुष्यों का होवै ॥ ६८ ॥ व और भी जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे उस लिंगको चैत शुक्ल चौदसि में पूजनकरैं
पुरुष इस लिंगको नहीं जानते हैं उसी कारण हाटकेश्वर की इच्छामे बिलमें पैठते हैं ॥ ७० ॥ पाप संयुत भी पुरुष इस लिंगके प्रभाव से व अहल्येश्वर के दर्शन
से पराई स्त्री से उपजेहुये पातक से शुद्धहोते हैं ॥ ७१ ॥ व उनके मध्यमें शतानन्देश्वर के दर्शन से भी व उस दिन किये हुये उस पूजन से मनुष्य शुद्धहोते हैं ॥७२॥
व्रत व नियम दानको भी व कथाको मनुष्य नहीं करतेथे उसी कारण उस लिंगको देखकर व भक्तिसे छूकर छूटजाता था ॥ ७३ ॥ तदनन्तर स्वर्ग मे मनुष्यों

एतल्लिङ्गंनजानन्ति नराःशुद्ध्यभिकाङ्क्षिणः ॥ विशन्तिविवरं
क्षितः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तेप्रयान्तुत्रिविष्टपम् ॥ ६९ ॥
तेन हाटकेश्वरकाङ्क्षया ॥ ७० ॥ अपिपापसमोपेता लिङ्गस्यास्यप्रभावतः ॥ परदारोद्भवात्पापादहल्येश्वरदर्शना
त् ॥ ७१ ॥ शुद्ध्यन्तिमानवास्तेषां शतानन्देश्वरादपि ॥ तस्मिन्दिनेविहितया तयाचैवप्रपूजया ॥ ७२ ॥ नव्रतंनिय
मंचैव दानस्यापिकथामपि ॥ तल्लिङ्गंचततोदृष्ट्वा स्पृष्ट्वामुच्येतभक्तितः ॥ ७३ ॥ ततोभीतास्सुरास्सर्वे स्वर्गेवैमानुषैर्वृताः॥
प्रोचुःपुरन्दरङ्गत्वा व्यथयापरयायुताः ॥ ७४ ॥ मर्त्यलोकेसहस्राक्ष सर्वेधर्म्माःक्षयङ्गताः ॥ अपिपापसमाचारा अभ्ये
त्यपुरुषाइह ॥७५॥ अस्माभिस्सहगर्वाढ्याः स्पर्द्धांकुर्वन्तिसर्वदा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे लिङ्गत्रयमनुत्तमम् ॥ ७६ ॥ तल्लि
ङ्गस्थापितंतत्र गौतमेनमहात्मना ॥ सपुत्रेणसदारेण पापात्तस्यप्रभावतः ॥ ७७ ॥ अपिपापसमाचारा इहागच्छन्ति
तेखिलाः ॥ यमस्यनरकास्सर्वे साम्प्रतंशून्यताङ्गताः ॥ ७८ ॥ गौतमेनसमानीतः पातालाद्धाटकेश्वरः ॥ तपसातोष

से घिरेहुये समस्त देवता डरकर बड़ी व्यथामे संयुत होतेहुये इन्द्रके समीप जाकर बोले ॥ ७४ ॥ कि हे सहस्र लोचन ! मृत्युलोक में समस्त धर्मनाश होगये
व पाप आचरणवाले भी पुरुष यहां आकर ॥ ७५ ॥ सदैव अहंकारसे संयुत वे हम सबोंके साथ ईर्षा करते हैं व हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें अति उत्तम तीन लिं-
गहैं ॥ ७६ ॥ वहां उन तीनों लिंगोंको स्त्री समेत व पुत्र सहित पाप के कारण महात्मा गौतमजीने थापाहै उस के प्रभावसे ॥ ७७ ॥ पाप आचरणवाले भी वे समस्त
पुरुष यहां आतेहैं इस समय यमराज के समस्त नरक शून्यता को प्राप्तहोगये ॥ ७८ ॥ हे सुरनायक ! गौतमजीने तपस्या से प्रसन्न करके उस स्थान में पाताल

से हाटकेश्वरजी को भलीभांति प्राप्त कियाहै ॥ ७९ ॥ उनके प्रभावसे भूतलमें यह व्यौहार हुआहै ऐसा जानकर जिसप्रकार यज्ञैं वर्तमान होवैं वैसाही कीजिये ॥८०॥ क्योंकि उन यज्ञोंके बिना किसी प्रकार हमलोगों की तृप्ति न होगी उसको सुनकर इन्द्रजीने वहां कामदेवको भलीभांति बुलाकर ॥८१ ॥ व क्रोध, काम, लोभ व वैर संयुत ईर्षाको बुलाकर कहा कि अहो क्रोधादिको मेरी आज्ञा से सब भूतल को शीघ्रही जाकर तदनन्तर गौतमेश्वर के पूजकों को व अहल्येश्वर देव और शतानन्देश्वर के पूजन करने वालोंको मनाकरो ॥ ८२ । ८३ ॥ इन्द्रकी आज्ञाको पाकर वे कामादिक भूतल को जाकर गौतमेश्वरके पूजक नरोंको भजते भये ॥ ८४ ॥

थित्वातु तत्रस्थानेसुरेश्वर ॥ ७९ ॥ तत्प्रभावादयंजातोव्यवहारोधरातले ॥ एवंज्ञात्वाप्रवर्तन्ते यथायज्ञास्तथाकुरु ॥ ८० ॥ तैर्विनानैवतृप्तिःस्यादस्माकन्तुकथञ्चन ॥ तच्छ्रुत्वावासवस्तत्र समाहूयचमन्मथम् ॥ ८१ ॥ क्रोधंकामंचलोभंच मत्सरंद्वेषसंयुतम् ॥ गत्वाधरातलंसर्वे ममादेशाद्द्रुतंततः ॥ ८२ ॥ स्वशक्त्यावारयध्वंभो गौतमेश्वरपूजकान् ॥ अहल्येश्वरदेवस्य शतानन्देश्वरस्यच ॥ ८३ ॥ शक्रादेशन्तुसम्प्राप्य तेगत्वाधरणीतले ॥ कामादिकानरान्भेजुर्गौतमेश्वरपूजकान् ॥ ८४ ॥ तथाहल्येश्वरस्यापि शतानन्देश्वरस्यच ॥ सम्पूर्णदक्षिणास्सर्वे व्रतानिनियमास्तथा ॥ ८५ ॥ तीर्थयात्राजपोहोमं याश्चान्यास्तुक्रतोःक्रियाः ॥ एतत्सर्वंमयाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ ८६ ॥ गयाकूप्यानुषङ्गेण शक्रगौतमचेष्टितम् ॥ ८७ ॥ बालमण्डनमाहात्म्यं शक्रेश्वरसमन्वितम् ॥ इन्द्रस्यास्थापनंमर्त्ये अहल्याख्यानमेवच ॥ ८८ ॥ गौतमेश्वरमाहात्म्यं तथाहल्येश्वरस्यच ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं श्रद्धयापरयायुतः ॥ ८९ ॥

वैसेही शतानन्देश्वर व अहल्येश्वरके भी पूजनेवालों को भजते भये और सब व्रत, नियम सम्पूर्ण दक्षिणा वाले होगये ॥ ८५ ॥ और तीर्थयात्रा, जप, होम व और जो यज्ञके कर्म थे वे होनेलगे हे नरनायक ! जो मुझसे पूंछागया इस समस्त चरित को मैंने कहा ॥ ८६ ॥ व गया कूपिका के प्रसंगसे इन्द्र व गौतमजी का व्यौहार ॥८७॥ और इन्द्रेश्वर संयुत बालमण्डनका माहात्म्य व मृत्युलोकमे इन्द्र का आस्थापन व अहल्या ख्यानको भी ॥ ८८ ॥ और गौतमेश्वर का माहात्म्य व अह-

ल्येश्वर का माहात्म्य वर्णन किया परम श्रद्धासे संयुत जो पुरुष इस चरित्रको नित्य सुनैगा ॥ ८९ ॥ वह पराई स्त्रीमें कियेहुये पातकसे उसी क्षण छूट जावैगा ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि शंखादिक त्यहिं थप्यो शंख नाम द्विजनाथ । इकसौ निन्नानबे में सोई वर्णत गाथ ॥ आनर्त बोला कि हे मुनिपुंगव ! इस समय शंखतीर्थसे उपजे हुये समस्त माहात्म्य को मुझसे कहिये क्योंकि मेरे बड़ी श्रद्धा स्थितहै ॥ १ ॥ आश्चर्य है कि यह तीर्थ विस्मयदायक तीर्थ है और जो भूपृष्ठ में हाटकेश्वरसंज्ञक

समुच्येत्पातकात्सद्यः परदारसमुद्भवात् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेगौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ साम्प्रतंमुनिशार्दूल शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंवदमेकृत्स्नं श्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ १ ॥ अहोतीर्थंमहोतीर्थं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ क्षेत्रंयच्चधरापृष्ठे सर्वाश्चर्यमयंशुभम् ॥ २ ॥ नाहंतृप्तिंद्विजश्रेष्ठप्रगच्छामि कथञ्चन ॥ शृण्वानस्तुसुमाहात्म्यं क्षेत्रस्यास्यसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तंकथान्तरम् ॥ शङ्खतीर्थस्यमाहात्म्यं यथाजातन्धरातले ॥ ४ ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीद्दम्भोमहीपतिः ॥ यथात्वं साम्प्रतंभूमौ सर्वलोकप्रपालकः ॥ ५ ॥ सोकस्मात्कुष्ठभाग्जातो विकलाङ्गोबभूवह ॥ अपुत्रःशत्रुभिर्ग्रस्तस्ततश्चनृपसत्तमः ॥ ६ ॥ ससर्वैर्भूमिपालैश्च सर्वतःपरिपीडितः ॥ राज्यभ्रंशसमोपेतः प्राप्तोरैवतकंगिरिम् ॥ ७ ॥ तत्रापिपीड्य

तीर्थ है वह समस्त आश्चर्यमय व उत्तम है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस क्षेत्र के उपजे हुये उत्तम माहात्म्यको सुनता हुआ मैं किसी प्रकार तृप्तिको नहीं प्राप्त होताहूं ॥ ३ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इस विषयमें कथाके मध्यवर्ती पुरातनवाले चरितको तुमसे कहूंगा कि जिस प्रकार भूतलमें शंखतीर्थका माहात्म्य हुआहै ॥ ४ ॥ पुरातन समय आनर्त देशका स्वामी दम्भ भूपति हुआ है जैसे इस समय तुमहो वैसेही यह समस्त मनुष्यों को पालन करनेवाला था ॥ ५ ॥ पुत्रहीन वह नृपोत्तम अचानक कुष्ठका भागी हुआ व विकल अंगोंवाला हुआ तदनन्तर शत्रुओंसे गांसा गया ॥ ६ ॥ व समस्त भूपालों से सब ओर पीड़ित व राज्यभ्रष्टको पाया हुआ वह रैवतक

पर्वतपै प्राप्त हुआ॥ ७ ॥ वहां भी नित्य चोरोंसे सब ओर पीड़ित होताथा जब वह हाथी, घोड़ों व रथोंसे हीन व खज़ाने से वर्जित होगया ॥ ८ ॥ तब उसने चिन्तन किया मैं इस समय क्याकरूं क्योंकि चोर बल से समस्त स्त्रियोंको हरते हैं ॥ ९ ॥ हे नृपपुंगव ! इसभांति चिन्तन करताहुआ वह विष्णुजी का दिन (एकादशी) स्थित होनेपर समर्थवान् नारदजीको देखने के लिये गया ॥ १० ॥ उसने विष्णुको देखनेकी इच्छासे तीर्थयात्राके प्रसंग द्वारा वहां भलीभांति प्राप्तहुये मुनिश्रेष्ठ नारदजी को देखा ॥ ११ ॥ हाथोंको जोड़े खड़े हुये उसने मस्तक से प्रणाम करके व पूजकर उनके आगे समीप बैठकर दीनवचन कहा ॥ १२ ॥ राजा बोले

तेनित्यं सर्वतस्तुमलिम्लुचैः ॥ हस्त्यश्वरथहीनस्तु कोशहीनोयदाभवत् ॥ ८ ॥ सतदाचिन्तयामास किङ्करोमिचसाम्प्रतम् ॥ कलत्राणिचसर्वाणि ह्रियन्तेतस्करैर्बलात् ॥ ९ ॥ सएवंचिन्तयानस्तु गतोवैनारदंविभुम् ॥ द्रष्टुंपार्थिवशार्दूल वैष्णवेदिवसेस्थिते ॥ १० ॥ तत्रापश्यतसंप्राप्तं नारदंमुनिसत्तमम् ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दामोदरदिदृक्षया ॥ ११ ॥ प्रणम्याभ्यर्च्यशिरसाकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ प्रोवाचवचनंदीनमुपविश्यतदग्रतः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ शत्रुभिःपरिभूतोहं समन्तान्मुनिसत्तम ॥ ततोराज्यपरिभ्रंशं सम्प्राप्तोरैवतंगिरिम् ॥ १३ ॥ विपिनेतस्करैःपापैः पीडितोहंसमन्ततः ॥ यत्किञ्चिदश्वनागाद्यं मयासहसमागतम् ॥ १४ ॥ तत्सर्वंतस्करैर्नीतं कोशादारास्तथावसु ॥ तस्माद्वदमुनिश्रेष्ठ वैराग्यंमेमहत्स्थितम् ॥ १५ ॥ अन्यजन्मोद्भवंकिञ्चिन्ममपापंसुदारुणम् ॥ येनेमांचदशांप्राप्तस्सहसामुनिसत्तम ॥ १६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वामुनीश्वरः ॥ प्रोवाचाथनृपंदीनं ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ १७ ॥ नारदउवाच ॥ न

कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं वैरियों से सब ओर तिरस्कृत हुआ व उसी कारण राज्य छूट गई और मैं रैवतक पर्वतपै भलीभांति प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और वनमें मैं सब ओर पापी चोरोंसे पीडितहुआ और जो कुछ हाथी, घोड़ाआदिक मेरेसाथ आयाथा ॥ १४ ॥ वह सब और ख़ज़ाने, स्त्रियां व धनको चोर लेगये मेरे बड़ा वैराग्य टिकाहुआहै इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! कहिये ॥ १५ ॥ कि अन्य जन्म में उपजाहुआ कुछ अतिभयंकर मेरे पापहै कि जिससे हे मुनिश्रेष्ठ ! इस दशामें अचानकही प्राप्त होगया ॥ १६ ॥ उनके उस वचनको सुनकर व देरतक ध्यानकर मुनिनायकने दिव्यदृष्टिसे देखकर इसके अनन्तर दीन राजासे कहा ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि हे महाराज ! तुमने

॥ १८ ॥ पुरातन समय सिद्धापन्नग नामक नगर में तुम समस्त शत्रुओंके मारनेहारे,
पहले दूसरी देहमें कुछ निन्दित कर्म नहीं कियाहै मैंने दिव्यदृष्टिसे सब जाना है ॥ १८ ॥ पुरातन समय सिद्धापन्नग नामक नगर में तुम समस्त शत्रुओंके मारनेहारे, उसी कर्म
चन्द्रवंशवाले राजा हुयेहो ॥ १९ ॥ तुमने सदैव समस्त दक्षिणाओंवाली महायज्ञोंसे पूजन किया व दानोंको दिया व ब्राह्मणों की पूजा कियाहै ॥ २० ॥ उसी कर्म
के फलसे फिर नृपत्वको प्राप्तहुये हो आनर्त बोला कि हे विभो! इस जन्ममें किये हुये पापको मैं नहीं याद करताहूं ॥ २१ ॥ तो किसलिये अचानक राज्यका छूटना
मेरे समीप भलीभांति उठा याने उत्पन्न हुआ हे मुनिपुगव ! इस समय मैंने जाना है कि इस लोकमें लक्ष्मीसे हीन मनुष्य का जीवन व्यर्थताको प्राप्तहोताहै गई

त्वयाकुत्सितंकिञ्चित्पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ मयाज्ञातंमहाराज सर्वंदिव्येनचक्षुषा ॥ १८ ॥ त्वमासीःपार्थिवःपूर्वं सिद्धाप
न्नगसंज्ञिते ॥ पत्तनेसोमवंशीयः सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ १९ ॥ त्वयाचेष्टंमहायज्ञैस्सदासम्पूर्णदक्षिणैः ॥ महादानानिद
त्तानि पूजिताब्राह्मणोत्तमाः ॥ २० ॥ तेनकर्म्मविपाकेनभूयःपार्थिवताङ्गतः ॥ आनर्तउवाच ॥ इहजन्मनिनोकृत्यं
संस्मरामिविभोकृतम् ॥ २१ ॥ तत्किंराज्यपरिभ्रंशस्सहसामेसमुत्थितः ॥ लक्ष्म्याहीनस्यमर्त्यस्य लोकेस्मिन्व्यर्थ
जीवितंमुनिशार्दूल विज्ञातंहिमयाधुना ॥ मृतोनरोगतश्रीको मृतंराज्यमराजकम् ॥ २३ ॥ मृतम
तांव्रजेत् ॥ २२ ॥ श्रोत्रियंदानं मृतोयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥ लक्ष्म्याहीनस्यमर्त्यस्य बान्धवोपिपरायते ॥ २४ ॥ प्रार्थयिष्यतिद्रव्यंमे दृष्ट्वा
तंचान्यतोव्रजेत ॥ यथामांसाम्प्रतंदृष्ट्वायेमयाविप्रतर्पिताः ॥ २५ ॥ तेपिदूरतरंयान्ति एषमांप्रार्थयिष्यति ॥ धनहीनं
नरंदृष्ट्वा कुलीनमपिचोत्तमम् ॥ २६ ॥ स्वजनान्यत्रगच्छन्ति शुष्कवृक्षमिवाण्डजाः ॥ तत्कार्यहरणार्थाय दरिद्रो

हुई लक्ष्मीवाला मनुष्य मराहै व बिन राजावाली राज्य मरी है ॥ २२ । २३ ॥ व बिन वेदपाठीको दियाहुआ दान मराहै और बिन दक्षिणावाली यज्ञ मरी है लक्ष्मी
से रहित पुरुष के भाई भी शत्रुके नाईं आचरण करते हैं ॥ २४ ॥ मुझसे धन मांगैगा इस कारण उस निर्धनी को देखकर अन्यत्र चला जाताहै जिस प्रकार कि मैंने
जिनको भलीभांति तृप्त कियाहै मुझको देखकर वे भी अतिदूर चलेजातेहैं कि यह मुझसे मांगैगा कुलीन व उत्तम नरको भी धनहीन देखकर ॥ २५ । २६ ॥ निज

जन वैसेही अन्यत्र चलेजातेहैं कि जैसे सूखे वृक्षको छोड़ पक्षी चले जातेहैं व उस के कार्य के प्राप्त करने के लिये यदि निर्धनी घर आताहै ॥ २७ ॥ तो धनी घुड़कते हैं और समीप नहीं आते व यदि दूसरा भी धनाढ्य मांगने के लिये आता है ॥ २८ ॥ तो मनुष्योंके चित्तमें यह होताहै कि यह मुझको कुछ देवैगा व इस संसार में धनियों के आगे बैठे हुये पुरुष यह वार्ता करते हैं कि तुम मेरे पूर्ववंशवाले हो और तुम्हारे पिता सदैव मेरे पिता के स्नेह में तत्पर थे परन्तु तुम स्नेहरहितहो ॥ २९ । ३० ॥ कुलीन भी धन लेनेकी इच्छासे पापियों के मध्य देखेजातेहैं व पृथ्वी में राज्य करते हुये निर्धनीके समीप नहीं देखपड़ते हैं ॥ ३१ ॥ हे महामुने! यह

भ्येतिचेद्गृहम् ॥ २७ ॥ धनिनोभर्त्सयन्त्येनं समागच्छन्तिनोन्तिकम् ॥ अपरोपिधनाढ्यश्चेदागच्छतिहियाचितु म् ॥ २८ ॥ एषदास्यतिमेकिञ्चिदितिचित्तेनृणाम्भवेत् ॥ ममत्वंपूर्ववंशीयः पितातेचपितुर्मम ॥ २९ ॥ सदास्नेहपरश्चासीत्त्वंचस्नेहविवर्जितः ॥ इतिकुर्वन्तिलोकेत्र धनिनांपुरतःस्थिताः ॥ ३० ॥ कुलीनाअपिपापानां दृश्यन्तेधनलिप्सया ॥ दरिद्रस्यमनुष्यस्य क्षितौराज्यंप्रकुर्वतः ॥ ३१ ॥ नत्वेषकेवलंगर्वो हृदयस्यमहामुने ॥ द्वाविमौकटुकौतीक्ष्णौ शरीरपरिपन्थिनौ ॥३२॥ यश्चाधनःकामयते यश्चकुप्यत्यनीश्वरः ॥ श्मशानमपिसेवन्ते धनलुब्धानिशागमे ॥ ३३ ॥ जनितारमपित्यक्त्वा नित्यंयान्तिसुदूरतः ॥ समूर्खोपिभवेद्विद्वानकुलीनोपिसत्कुलः ॥ ३४ ॥ यस्यवित्तंभवेद्धर्म्ये विपरीतमतोन्यथा ॥ निर्विण्णोहंमुनिश्रेष्ठ जीवितस्यचसाम्प्रतम् ॥ ३५ ॥ तस्माद्ब्रूहितदर्थंमे दारिद्र्यंसमुपस्थितम् ॥ कुष्ठश्चापिसमोपेतः शत्रुभिश्चपराभवम् ॥ ३६ ॥ अन्यजन्मान्तरंदृष्टं त्वयादिव्येनचक्षुषा ॥ कुकर्म्मणानसंस्पृष्टं स्वल्पे

केवल हृदयका मद नहीं है किन्तु ये दोनों तीखे व कडुये और शरीरके शत्रु होतेहैं ॥३२॥ एक जो निर्धन इच्छा करताहै व दूसरा जो स्वामी नहीं है वह क्रोध करताहै धनके लोभी रातके आनेपर श्मशान को भी सेवतेहैं ॥ ३३ ॥ और पिताको भी छोड़ कर नित्यही दूरजाते हैं वह मूर्ख भी विद्वान् है और अकुलीन भी उत्तम कुलवान् होता है ॥ ३४ ॥ कि जिसके घरमें धनहै और इससे अन्यथा उलटा है याने निर्धनी कुलीन भी अकुलीन है और निर्धनी विद्वान् भी मूर्ख है हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय मैं जीवनसे निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्तहूं ॥ ३५ ॥ इस लिये उसके निमित्त मुझसे कहिये मेरे दरिद्रता प्राप्तहै और कुष्ठभी संयुक्त है व शत्रुओंसे अनादर

प्राप्त हुआ है ॥ ३६ ॥ तुमने दिव्यदृष्टिसे अन्य दूसरा जन्म देखाहै व थोड़े भी कुकर्म से छुयेहुये मुझको नहीं कहते हो ॥ ३७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस जन्मके बीच में देखेहुये कर्मको मैं स्मरण करताहूं कि कभी मैंने कुछ कुकर्म नहीं कियाहै ॥ ३८॥ हे सन्मुने ! तो यह मेरी राज्यका छूटना क्योंहुआ इस विषय में मुझको आश्चर्य हुआहै उस कारण विशेषकर निर्णय दीजिये ॥ ३९ ॥ कि कियाहुआ शुभ या अशुभ कर्म होवै है या नहीं होवैहै विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर और देर तक ध्यान करके नारदजी ॥ ४० ॥ परम कृपासे संयुत होतेहुये तदनन्तर आदर समेत बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं कहूंगा कि जिस प्रकार शुद्धि होती है ॥ ४१ ॥

नापिब्रवीषिमाम् ॥ ३७ ॥ एतज्जन्मान्तरंदृष्टं स्मरामिमुनिसत्तम ॥ नमयाकुकृतंकिञ्चित्कदाचित्समनुष्ठितम् ॥ ३८ ॥ तत्किंराज्यपरिभ्रंशो जातोयंममसन्मुने ॥ अत्रमेकौतुकंजातं तस्माद्देहिविनिर्णयम् ॥ ३९ ॥ भवेन्नवाभवेत्कर्म्म कृतंयच्चशुभाशुभम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरन्ध्यात्वातुनारदः ॥४०॥ कृपयापरयाविष्टस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि यथाशुद्धिःप्रजायते ॥ ४१ ॥ तवराज्यस्यसम्प्राप्तिर्यथाभूयोपिजायते ॥ तवभूमौमहापुण्यमस्तिक्षेत्रंजगत्त्रये ॥ ४२ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तुतीर्थंतत्रास्तिशोभनम् ॥ शङ्खतीर्थमितिख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ ४३ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अष्टम्यांशुक्लपक्षस्य सम्प्राप्तेमासिमाधवे ॥ ४४ ॥ सूर्य्यवारेतुसम्प्राप्ते भास्करस्योदयंप्रति ॥ सर्वकुष्ठविनिर्मुक्तो जायतेसूर्य्यसन्निभः ॥ ४५ ॥ योयंकाममभिध्याय तन्तंसर्वेसुदुर्लभम् ॥ सतदाप्नोत्यसंदिग्धं दृष्ट्वाशङ्खेश्वरंशुभम् ॥ ४६ ॥ किन्त्वयानश्रुतंतत्र स्वदेशंवसतान्नृप ॥ त

और जिस प्रकार फिरभी तुम्हारी राज्य भलीभांति प्राप्तहोगी तुम्हारी भूमिमें त्रिलोक के बीच महापुण्यवान् क्षेत्रहै ॥४२॥ उस क्षेत्रमें हाटकेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है व समस्त पातकों का नाशक शंखतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ४३ ॥ परम श्रद्धासे संयुत जो पुरुष वैशाख महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भलीभांति प्राप्तहोनेपर जब रविवार प्राप्तहोवै तब सूर्य्योदयमें उस तीर्थमें स्नान करताहै वह समस्त कुष्ठों से छूटा हुआ सूर्यके समान होजाता है ॥ ४४ । ४५ ॥ जो जिस २ कामनाको चिन्तन कर स्नान करताहै वह उस समय शुभदायक शंखेश्वर को देखकर उस उस सब अतिदुर्लभ कामनाको निस्सन्देह प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! अपने देशमें बसते हुये

तुमने क्या वहां उस तीर्थ का माहात्म्य नहीं सुनाथा कि जो तुम यहां भलीभांति आयेहो ॥ ४७ ॥ सिद्धसेन बोला कि हे सन्मुने ! शंखेश्वर देव किस प्रकार हुये हैं यह कहिये नारदजी बोले कि मैं तुमसे पुरानी कथा कहूंगा ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! कि जिस प्रकार शंखेश्वर व शंखतीर्थ हुआ है पुरातन समय लिखित शंखही ब्राह्मण हुये हैं ॥ ४९ ॥ वेदके जाननेवाले वे दोनों भाई उग्र (विकराल) तपस्यामें विशेषकर टिके इसके अनन्तर किसी समय जेठ भाई लिखितके आश्रमको नमस्कारके लिये शंख भलीभांति प्राप्तहुआ हे राजन् ! उसने लिखितसे रहित, शून्य आश्रमको देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर उस शंखने उस वनमें सब ओर पकेफलों को

स्यतीर्थस्यमाहात्म्यं यत्त्वमत्रसमागतः ॥ ४७ ॥ सिद्धसेनउवाच ॥ कथंशङ्खेश्वरोदेवः सञ्जातोवदसन्मुने ॥ नारदउवाच ॥ अहन्तेकथयिष्यामि कथामेतांपुरातनीम् ॥ ४८ ॥ यथाशङ्खेश्वरोजातः शङ्खतीर्थन्तुपार्थिव ॥ आसतुर्ब्राह्मणौपूर्वं लिखितःशङ्खएवच ॥ ४९ ॥ भ्रातरौवेदविदुषौ तपस्युग्रेऽव्यवस्थितौ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य लिखितस्याश्रमम्प्रति ॥ ५० ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्यसम्प्राप्तो नमस्कारकृतेनृप ॥ सोपश्यदाश्रमंशून्यं लिखितेनविवर्जितम् ॥ ५१ ॥ अथापश्यद्वनेतस्मिन्परिपक्वफलानिसः ॥ प्रणयात्प्रतिजग्राहमत्वाभ्रातुर्नृपाश्रमम् ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो लिखितस्तत्रचाश्रमे ॥ यावत्पश्यतिशङ्खंस प्रगृहीतबृहत्फलम् ॥ ५३ ॥ किमिदंविहितंपापं साधुभिर्गर्हितंचयत् ॥ शङ्खउवाच ॥ एकोदरसमुत्पन्नो ज्येष्ठोभ्रातायथापिता ॥ ५४ ॥ भूयादितिश्रुतिर्लोके प्रसिद्धासर्वतःस्थिता ॥ तत्किंपुत्रस्यविप्रेन्द्र नाधिकारःपितुर्धनम् ॥ ५५ ॥ यदेवंनिष्ठुरंवाक्यैर्निर्भर्त्सयसिमांविभो ॥ लिखितउवाच ॥ नदोषोजायतेहर्तुः

देखा व हे राजन् ! भाई का आश्रम मानकर नम्रतासे उनको ग्रहण किया ॥ ५२ ॥ इस अवसर में उस आश्रम में लिखित प्राप्त भया व जब तक उसने बड़े फलोंको लियेहुये शंखको देखा तब तक कहा ॥ ५३ ॥ कि जो साधुवों से निन्दित है यह पाप क्यों कियागया शंख बोला कि एकही पेटमें पैदाहुआ बड़ा भाई वैसही है जैसा कि पिताहोताहै सबओर टिकीहुई यह श्रुति (वेदकी ऋचा) संसारमें प्रसिद्धहै इस लिये हे द्विजेन्द्र ! क्या पिताके धनको पुत्रका अधिकार नहीं है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जोकि हे विभो ! निठुरतासे इस प्रकार वचनों के द्वारा मुझको घुड़कतेहो लिखित बोला कि इस संसार में एकतीर टिकेहुये पिताके धनको हरनेवाले पुत्रको

यहां निरसन्देह किसी प्रकार दोष नहीं होताहै और जब विभाग कियाहुआ पुत्र या भाई धन लेताहै ॥५६।५७॥ तब चोरीसे उठेहुये दोषको निरसन्देह प्राप्त होताहै फिर पिता पुत्रके धनको सदैव लेताहै ॥ ५८॥ उसमें विभाजित भी पिताका किसी प्रकार दोष नहीं है इस विषयमें स्मृतिकर्ता मनुजीने पुरातन समय श्लोक गाया है ५९॥ धर्मशास्त्र से उपजेहुये उस वचनको मैं तुमसे भलीभांति कहूंगा कि स्त्री, सेवक और पुत्र तीनही निर्धनी कहेगये हैं ॥ ६० ॥ वे सेवकादिक जिसके समीप भलीभांति जातेहैं वे उसके हैं व उनका धन उसका है शंख बोला कि हे भाई ! यदि ऐसाहै तो मुझको बड़ाभारी चोरी का दोषहै ॥ ६१ ॥ शीघ्रही मुझको दण्ड

विभक्तस्तुयदापुत्रोभ्रातावाथहरेद्धनम् ॥५७॥
पुत्रस्यात्रकथञ्चन ॥ ५६ ॥ एकत्रसंस्थितस्यात्र पितुर्वित्तमसंशयम् ॥ नतत्रविद्यतेदोषो विभक्त
तदादोषमवाप्नोति चौर्य्योत्थन्नचसंशयम् ॥ पुत्रस्यतुपुनर्वित्तं पिताहरतिसर्वदा ॥ ५८ ॥ त्र
स्यापिकर्हिचित् ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो मनुनास्मृतिकारिणा ॥ ५९ ॥ तत्तेहंसंप्रवक्ष्यामि धर्म्मशास्त्रोद्भवंवचः ॥ यद्येवं
यएवाधनाःप्रोक्ता भार्य्यादासस्तथासुतः ॥ ६० ॥ यन्तेसमभिगच्छन्ति तस्यतेतस्यतद्धनम् ॥ शङ्खउवाच ॥ तस्यतन्निश्चयं
चौर्य्यदोषोस्ति ममतातमहत्तरम्॥६१॥निग्रहंकुरुमेशीघ्रंयेनयास्यतिसंक्षयम् ॥ विश्वामित्रउवाच॥ कञ्चित्प्राप्य
ज्ञात्वा शस्त्रमादायनिर्मलम् ॥ ६२ ॥ चकर्ताथभुजौतस्यभ्राताभ्रातुश्चनिर्घृणम् ॥ सोपिच्छिन्नकरोविप्रः ॥६४॥सं
जलाशयम् ॥६३॥ वर्षास्वाकाशशायीचहेमन्तेसलिलाश्रयः ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे षष्ठकालकृताशनः
स्थाप्यभास्करंस्थाणुं तत्पुरस्सुसमाहितः॥शतरुद्रियंजपन्सामोक्तरुद्रांस्तथाजपन् ॥६५॥ प्राणरुद्रांस्तथानीलान्रुस्क

कीजिये कि जिसमे दोष-नाशहोजावै विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस निश्चय को जानकर व निर्मल शस्त्रको लेकर ॥६२॥ इसके अनन्तर भ्राता लिखितने उस शंख बन्धुकी दोनों भुजाओं को निर्दयत्व से काटडाला व कटेहुये हाथोंवाला वह ब्राह्मण भी किसी जलाशय को पाकर ॥ ६३ ॥ वर्षा में आकाशशायी (मैदान में सोनेवाला) व हेमन्त में जलाश्रयी और ग्रीष्म में छठें समय भोजन करता हुआ पंचाग्नि को साधनेवाला हुआ ॥ ६४ ॥ और सूर्यनारायण व शिवजी को भलीभांति

थापकर उनके आगे सावधान होताहुआ वह शतरुद्रियको जपता व वैसेही सामोक्त रुद्रोंको जपता हुआ ॥ ६५ ॥ और प्राणरुद्रों व स्कन्दसूक्तो समेत नीलरुद्रों का जप करता भया तदनन्तर हजार वर्षके अन्तमें महादेवजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ६६ ॥ व सूर्य्यनारायण व गणनायकों समेत दर्शनको प्राप्तकर बोले महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, वत्स, शंख ! तुम्हारी इस तपस्या से मैं प्रसन्न हुआहूं ॥ ६७ ॥ इसलिये मुझसे शीघ्रही कहिये तुमको इस समय वर अवश्य दूंगा शंख बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदान देने योग्यहै ॥ ६८ ॥ तो मेरे वैसेही हाथहोवैं कि जैसे पहले स्थितथे व हे सुरश्रेष्ठ नायक, हे देव ! मेरे

न्दसूक्तसमन्वितान्॥ततोवर्षसहस्रान्तेतुष्टस्तस्यमहेश्वरः॥६६॥प्रोवाचदर्शनंगत्वासहसूर्य्यगणेश्वरैः॥महेश्वरउवाच॥ शङ्खतुष्टोस्मितेवत्स तपसानेनसुव्रत ॥ ६७ ॥ तस्मात्कथयमेक्षिप्रं प्रददामितवाधुना ॥ शङ्खउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ६८ ॥ जायेतांतादृशौहस्तौ यादृशौमेपुरास्थितौ ॥ त्वयात्रैवसदावासः कार्य्यःसुरवरेश्वर॥ ६९ ॥ लिङ्गेकृत्वादयान्देव ममोपरिमहत्तराम् ॥ एतज्जलाशयन्नाथ ममनाम्नाधरातले ॥ प्रसिद्धिंयातुलोकस्य यावदाचन्द्रतारकम् ॥७०॥ अत्रयःकुरुतेस्नानं धृत्वामनसिदुर्लभम् ॥ किञ्चिद्वस्तुसमग्रन्तु तस्यसम्पत्स्यतेविभो ॥७१॥ भगवानुवाच ॥ अद्याहंदर्शनंप्राप्तस्तवचैवाष्टमीदिने ॥ ७२ ॥ माधवस्यसितेपक्षे यस्माद्ब्राह्मणसत्तम ॥ तस्मात्संक्रमणेलिङ्गे तावकेस्मिन्द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥ करिष्यामिनसन्देहो दिनमेकमसंशयम् ॥ यश्चात्रदिवसेप्राप्ते करिष्यतिचपूजनम् ॥ ७४ ॥ स्नानंकृत्वारवेर्वारे उदयेममसंस्थिते ॥ पूजयिष्यतिमेमूर्तिं त्वयासंस्थापितांद्विज ॥ ७५ ॥ कुष्ठव्या

ऊपर बड़ीभारी दया करके तुमको सदैव इसी लिंगमें निवास करना चाहिये व हे स्वामिन् ! संसारके मध्यमें जब तक चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं तब तक यह जलाशय मेरे नामसे भूतलमें प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ६९ । ७० ॥ हे विभो ! मनमें किसी दुर्लभ वस्तुको धरकर जो इसमें स्नान करै उसको सम्पूर्ण भलीभांति प्राप्तहोवै ॥ ७१ ॥ भगवान् सूर्यजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! जिस लिये वैशाख के शुक्लपक्ष में अष्टमी के दिन आजमैं तुम्हारे दर्शनको प्राप्तहुआ उसी कारण हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे इस लिंगमें निस्सन्देह एक दिन भलीभांति आगमन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है व इस दिनके प्राप्तहोने पर रविवारके दिन जब मेरा उदय प्राप्तहोवै तब जो इसमें

वह कुष्ठरोग से विशेषकर छूटकर मेरे लोक को जावैगा व हे द्विजेन्द्र द्विजोत्तम ! शेष समय में भी निरसन्देह मेरे वचन से अज्ञानसे कियेहुये पातकसे छुटकारामुक्ति पावैगा वैसेही ये दोनों भी तुम्हारे भी जो कटेहुये हाथहैं ॥ ७६ । ७७ ॥ वे उस लिंगमें अभिषेक से फिरभी वैसेही होजावैंगे हे विप्र जी ! इस समय यह मेरा विश्वास तुमको होगा ॥ ७८ ॥ और फिर स्नान करके तदनन्तर तुम मेरी मूर्तिको पूजो व वैसेही संयोग के स्थित होनेपर जो और भी बिगडे हुये शरीरत्वको प्राप्तहैं वे इसमें नहाकर मुझको पूजैंगे तो हे द्विज ! वे स्नान करके पूजन करैगा व हे द्विज ! तुमसे भलीभांति थापन की गई मेरी मूर्ति को पूजैगा ॥ ७२ । ७३ । ७४ । ७५ ॥

मुक्तिप्राप्स्यन्त्यसंदिग्धं मम
धिविनिर्मुक्तो ममलोकंप्रयास्यति ॥ शेषकालेपिविप्रेन्द्र अज्ञानविहितादघात् ॥ ७६ ॥
वाक्याद्द्विजोत्तम ॥ तथातवापियौहस्तौ छिन्नावेताबुभावपि ॥ ७७ ॥ तस्मिँल्लिङ्गेऽभिषेकात्तु स्यातांभूयोपितादृशौ ॥
एषमेप्रत्ययोविप्र भविष्यतितवाधुना ॥ ७८ ॥ भूयःस्नानंविधायत्वं ततोमूर्तिममार्चय ॥ अन्येपिव्यङ्गतांप्राप्ताः सं
योगेत्रतथास्थिते ॥ ७९ ॥ स्नात्वामांपूजयिष्यन्ति मुक्तियास्यन्तितेद्विज ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥
८० ॥ शङ्खोपितत्क्षणंस्नात्वा पूजयित्वादिवाकरम् ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं तावद्धस्तसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ आ
त्मानंपश्यमानस्तु विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ततःप्रभृतितत्रैवकृत्वाश्रमपदंनृप ॥ ८२ ॥ तपस्तेपेद्विजश्रेष्ठो गतश्चपरमां
गतिम् ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र संयोगेप्राप्यतत्त्वतः ॥८३॥ तेनैवविधिनास्नात्वा त्वंपूजयदिवाकरम् ॥ यश्चैतच्छृणुया
न्नित्यं पठेद्वापुरतोरवेः ॥ ८४ ॥ तस्यान्वयेपिनोकुष्ठी कदाचित्सम्प्रजायते ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरि

मुक्तिको प्राप्त होवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर हज़ार किरणों वाले सूर्यनारायणजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ७९ । ८० ॥ व शंखभी उसी क्षण नहाकर व सूर्यजी को पूजकर जब तक अपने शरीरको देखै तब तक हाथों से संयुत ॥ ८१ ॥ अपना को देखताहुआ वह बडे विस्मयको प्राप्तहुआ हे राजन् ! तबसे लगाकर वहीं आश्रम स्थान बनाकर ॥ ८२ ॥ द्विजोत्तम तपस्या करता भया व उत्तम गतिको प्राप्तहुआ उसी कारण हे नृपेन्द्र ! तुमभी संयोगमें तत्त्वसे प्राप्तहोकर ॥ ८३ ॥ उसी विधि से नहाकर तुम सूर्यनारायण का पूजन करो जो मनुष्य नित्य इस चरित्र को सूर्यनारायण के आगे पढ़ता या सुनताहै ॥ ८४ ॥ उसके वंशमें भी कभी कुष्ठी (कोढ़ी) नहीं

होताहै ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशंखादित्योत्पत्तिर्नामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

दो० । नागवल्लि जिमि स्वर्ग से आई भूमि मंझार । दोसोके अध्याय में सोई चरित उदार ॥ विश्वामित्र जी बोले कि उन देवर्षि नारदजी के उस वचनको सुन कर सिद्धसेन भूपाल उत्तम संयोगको पाकर ॥ १ ॥ इसके अनन्तर वैशाख महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर रविवार अष्टमी में जब सूर्य्योदय भलीभांति प्राप्त हुआ तब नहाकर जब तक सूर्यको पूजै ॥ २ ॥ तब तक अचानकही कुष्ठमे छूटा हुआ भलीभांति प्राप्त होगया तदनन्तर दिव्य देहवाला होकर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त

च्छेदेनागरखण्डे शङ्खादित्योत्पत्तिर्नामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य देवर्षेर्नारदस्यच ॥ सिद्धसेनोमहीपालः प्राप्यसंयोगमुत्तमम् ॥ १ ॥ माधवेमासिसम्प्राप्ते अष्टम्यांसूर्य्यवासरे ॥ सूर्य्योदयेथसम्प्राप्ते यावत्स्नात्वार्चयेद्रविम् ॥ २ ॥ तावत्कुष्ठविनिर्मुक्तः सहसासमपद्यत ॥ ततोदिव्यवपुर्भूत्वा सन्तोषंपरमङ्गतः ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तंततश्चक्रे ताम्बूलस्यचभक्षणम् ॥ अज्ञानेनकृतंयच्चचूर्णपत्रसमन्वितम् ॥ ४ ॥ ततश्चपरमांलक्ष्मीं सम्प्राप्तस्समहीपतिः ॥ पितृपैतामहंराज्यं सप्रचक्रेयथापुरा ॥ ५ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंपार्थिवश्रेष्ठ किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ६ ॥ आनर्तउवाच ॥ आश्चर्य्यमिदंब्रह्मन् यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ यल्लक्ष्मीस्तस्यसंनष्टा चूर्णपत्रस्यभक्षणात् ॥ ७ ॥ कीदृक्तेनकृतंतस्य प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ कीदृक्तेनकृतंतच्च निजराज्यंयथापुरा ॥ ८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यथापुण्यतमामेध्या नागवल्लीन

हुआ ॥ ३ ॥ उसके उपरान्त प्रायश्चित्त किया क्योंकि अज्ञानसे चूना व पत्ता समेत ताम्बूल का भक्षण कियाथा ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह भूपति उत्तम लक्ष्मी को भली भांति प्राप्त हुआ और उसने पहले के नाईं पिता पितामह वाली राज्यकिया ॥५॥ हे नृपोत्तम ! मैंने शंखतीर्थ से उपजेहुये इस समस्त माहात्म्य को तुमसे कहा फिर क्या सुनने के लिये चाहतेहो ॥ ६ ॥ आनर्त बोला कि हे ब्रह्मन् ! जो तुमने कहा है यह बड़ा आश्चर्य है जोकि चूना समेत पत्ताके खाने से उसकी लक्ष्मी नष्ट होगई थी ॥ ७ ॥ उसने उसकी पवित्रताके लिये कैसा प्रायश्चित्त कियाहै व पहलेकी नाईं उसने कैसे उरा अपनी राज्यको कियाहै ॥ ८ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि

जैसे कि राक्षसी होवै ॥१७॥ और वह अंगुलीमें लगेहुये बालक समेत व गर्भके श्रमसे संयुतथी तदनन्तर समस्त सुर गण व विशेषकर दानव ॥ १८ ॥ उस मथानीको छोडकर उनको पकडनेके लिये दौड़े इसके अनन्तर विकार आकार वाले उनको देखकर सब सन्देह संयुतहुये ॥१९॥ व हे नृपेन्द्र ! उन्होंने ग्रहण न किया और परस्पर हास्य किया इसके अनन्तर हाथजोड़े खड़ेहुये बलि दैत्यबोले ॥ २० ॥ कि जो पहले उत्पन्नहोवै वह सब ब्राह्मण के लिये होवै है उसी कारण इन तीनों रत्नोंको ब्रह्माजी ग्रहणकरैं ॥२१॥ जिससे ब्रह्माकी तृप्तिसे आज मथनेमें सिद्धिहोवै उस बलिके वचनकी विष्णु वा शिवजीने प्रशंसा किया ॥२२॥ व इन्द्रादिक सब देवताओं व विशेषकर

यथा ॥ १७॥ शिशुनाङ्गुलिलग्नेन गर्भश्रमपरायणा ॥ ततोदेवगणास्सर्वे दानवाश्चविशेषतः ॥ १८ ॥ मन्थानंतत्परि
त्यज्य तान्ग्रहीतुंप्रधाविताः ॥ अथतान्विकृतान्दृष्ट्वासर्वेशङ्कासमन्विताः ॥ १९ ॥ जगृहुर्नैवराजेन्द्र जहसुश्चपरस्पर
म् ॥ अथोवाचबलिर्दैत्यः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ २० ॥ ब्राह्मणायभवेत्सर्वं यत्पुरस्तात्प्रजायते ॥ रत्नत्रितयमेतद्धि
तस्माद्गृह्णातुपद्मजः ॥ २१ ॥ येनसिद्धिर्भवेदद्य मन्थनेकस्यतर्पणात् ॥ तद्वाक्यंविष्णुनातस्य शंसितंशङ्करेण
तु ॥२२॥ इन्द्राद्यैश्चसुरैस्सर्वैर्दानवैश्चविशेषतः ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा जग्राहत्रितयंचतत् ॥ २३॥ दाक्षिण्यात्सर्वदेवानां
अनिच्छन्नपिपार्थिव ॥ ममन्थुस्सागरंराजन् पुनस्तेयत्नमाश्रिताः ॥ २४ ॥ ततश्चवारुणीजाता दिव्यगन्धसमन्विता ॥
बलिनासंगृहीतासा प्रत्यक्षंबलविद्विषः ॥ २५ ॥ आनर्तचापरोजातो निष्क्रान्तःकौस्तुभोमणिः ॥ सगृहीतोमहाराज
विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ २६ ॥ अथापरेस्थितेतत्र महावर्तेनिशापतिः ॥ सञ्जातःसद्यपाङ्केण संगृहीतश्चतत्क्षणात् ॥२७॥

दानवों ने प्रशंसा किया इसी अवसर में हे राजन् ! नहीं इच्छा करतेहुये भी ब्रह्माने समस्त देवताओंकी चतुरता या उदारतासे उन तीनोंको ग्रहण किया हे राजन्! यत्न में टिकेहुये उन सुरासुरों ने फिर समुद्रको मथा ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर उत्तम गन्धसे संयुत वारुणी (मदिरा) उत्पन्न हुई उसको बलदैत्य के वैरी (इन्द्र) सामने बलिने भलीभांति ग्रहण किया ॥ २५ ॥ हे आनर्त्त महाराज ! और कौस्तुभ मणि निकलती भई उसको समर्थवान् विष्णुजी ने ग्रहण किया ॥ २६ ॥ इस अनन्तर उस समुद्र में जय और महावर्त (बड़ा घुमाव) स्थित हुआ तब निशानायक चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसको उसी क्षण शिवजी ने भलीभांति ग्रहण

हे नर नायक ! जैसे नागवल्ली (पान) अत्यन्त पुण्यदायक व पवित्रहै वैसे ही अयथा योग्य मुखमें कियाहुआ पान बहुत दोषोंको देताहै ॥ ९ ॥ इस लिये
अपनी शक्तिसे उपायके द्वारा देकर भलीभांति भक्षण करने योग्यहै आनर्त बोला कि नागवल्ली कैसे हुई है व किस लिये अयथायोग्य भक्षणसे बड़ाभारी दोष कहा
गयाहै उसको तुम मुझसे कहने के लिये योग्यहो विश्वामित्र जी बोले कि तुमने मुझसे यह बड़ाभारी प्रश्नका भारकहा है ॥ १० । ११ ॥ हे राजन्! तिसपर भी मैं
तुमसे कहूंगा यदि तुमको आश्चर्य है कि चूना समेत पत्ताके भक्षणसे जिस कारण दोष होताहै ॥ १२ ॥ पुरातन समय देवताओंने मन्दराचलको मन्थान (मथानी)

राधिप ॥ अयथावत्कृतावक्त्रे बहून्दोषान्प्रयच्छति ॥ ९ ॥ तस्माद्यत्नेनसम्भक्ष्या दत्त्वाचैवस्वशक्तितः ॥ आनर्तउवा
च ॥ नागवल्लीकथंजाता कस्माद्दोषोमहान्स्मृतः ॥ १० ॥ अयथावद्भक्षणाच्चतन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ विश्वामित्रउवाच ॥
प्रश्नभारोमहानेष त्वयामेपरिकीर्तितः ॥ ११ ॥ तथापिचवदिष्यामि यदितेकौतुकंनृप ॥ यस्मात्सञ्जायतेदोषश्चू
र्णपत्रस्यभक्षणात् ॥ १२ ॥ अमृतार्थंपुरादेवैर्मथितःक्षीरसागरः ॥ मन्थानंमन्दरंकृत्वा नेत्रंकृत्वाथवासुकिम् ॥१३॥
मुखदेशेबलिर्लग्नः पुच्छदेशेऽखिलास्सुराः ॥ वासुदेवमतेनैवतन्दधाराथकच्छपः ॥ १४ ॥ मन्दरेभ्रममाणेतु प्रागेव
नृपसत्तम ॥ आनर्तसहसाजातं रत्नत्रितयमेवच ॥ १५ ॥ नीलाम्बरधरःकृष्णःपुरुषोवक्रनासिकः ॥ कृष्णदन्तःस्थूल
शिरा दीर्घग्रीवोमहोदरः ॥ १६ ॥ शूर्पकर्णस्तथैवासो चिपिटाक्षोभयावहः ॥ तथातद्रूपिणीतस्य कुभार्य्याराक्षसी

बनाकर व वासुकी नागको नेत्र (नेती याने दही मथने की रस्सी) बनाकर अमृत के लिये दुग्ध समुद्र को मथाहै ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी के सम्मत से
वासुकी के मुख स्थानमें बलिलगे और पुच्छ स्थान में समस्त देवतालगे और उस मन्दराचल को कच्छप (कछुये) ने धारण किया ॥ १४ ॥ हे आनर्त, नृपोत्तम !
मन्दराचलके घूमने पर अचानक पहलेही तीनरत्न उत्पन्नहुये ॥ १५ ॥ नील वसन को धारे व टेढ़ी नासिका वाला, काले दन्तोंवाला, मोटे शिरवाला व लम्बी घींच
वाला और बड़े पेटवाला काला पुरुष था ॥ १६ ॥ वैसेही यह सूपसे कानोंवाला व चिपटे चक्षुओं वाला व भयदायक था वैसेही उसीके रूपवाली उसकी कुनारी थी

किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर उत्तम सुगन्धसे संयुत पारिजात वृक्ष निकला उसको सब देवताओं ने लेकर नन्दन वनमें स्थापित किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर ही बछड़ा समेत सुरभी निकली वह आकाशमार्गसे गोलोक को भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ उसके उपरान्त हाथमें अमृतही से भरेहुये कमण्डलु को धारेहुये धन्वन्तरि उत्पन्न हुये हे राजन् ! आपस में जीतकी इच्छा से क्रोधित देव दैत्योंने एकही साथ उन को पकड़ लिया वैद्य (धन्वन्तरि) देवोंके हाथमें प्राप्तहुये और कमण्डलु दैत्यों के हाथ में प्राप्तहुआ ॥ ३० । ३१ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! लालचसे संयुक्त सबोंने समुद्रको मथा उसके उपरान्त इस समुद्र में श्वेतवसनवाली व कमल हाथवाली

तस्यानन्तरमेवाथ पारिजातस्ततोजातो दिव्यगन्धसमन्वितः ॥ सगृहीत्वासुरैस्सर्वैस्स्थापितोनन्दनेवने ॥ २८ ॥ ततोधन्वन्तरिर्जातो बिभ्रद्धस्तेकमण्डलुम् ॥ सम्पूर्णममृतेनैव सदेवैर्दानवैर्नृप ॥ ३० ॥ गृहीतोयुगपत्क्रुद्धैः परस्परजिगीषया ॥ देवानांहस्तगोवैद्यो दैत्यानाञ्चकमण्डलुः ॥ ३१ ॥ ततस्तंलोभसंयुक्तामममन्थुस्सागरन्नृप ॥ पद्महस्तात्रसञ्जाता ततोलक्ष्मीःसिताम्बरा ॥ ३२ ॥ स्वयमेववृतोविष्णुस्तयापार्थिवसत्तम ॥ मथ्यमानेततोतीव समुद्रेदेवदानवैः ॥ ३३ ॥ कालकूटंसमुत्पन्नं येनसर्वेसुरासुराः ॥ सम्प्राप्ताःपरमंकष्टं प्रभग्नाश्चदिशोदश ॥ ३४ ॥ तद्दृष्ट्वाभगवाञ्छम्भुस्तमतीवपराक्रमः ॥ भक्षयामासराजेन्द्रनीलकण्ठस्ततोभवत् ॥ ३५ ॥ अथसन्त्यज्यमन्थानंमन्दरंवासुकिंतथा ॥ अमृतार्थेभवद्युद्धं दैत्यानांविबुधैस्सह ॥ ३६ ॥ अथस्त्रीरूपमाधाय विष्णुर्देवानुरागवान् ॥ ततोहृष्टोबलिस्तस्यैदत्त्वापीयूषमेवतत् ॥ ३७ ॥ विश्वासंपरमं

मवनावानुरागवान् ...

सुरभीवत्ससंयुता ॥ निष्क्रान्ताव्योममार्गेण गोलोकंसासमाश्रिता ॥ २९ ॥

लक्ष्मी जी भलीभाति उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ हे नृपोत्तम ! उन लक्ष्मीने आपही विष्णुजीको स्वीकार किया तदनन्तर जब देवों व दानवोंने बहुतही समुद्र मथा ॥ ३३ ॥ तब कालकूट (विष) उत्पन्नहुआ जिससे समस्त देवता, दैत्य बड़े कष्टको प्राप्तहुये व दशों दिशाओं को भगे ॥ ३४ ॥ हे नृपेन्द्र ! उसको देखकर अत्यन्त बलवाले भगवान् सदाशिव जीने उस विषको खालिया उसी कारण नीले कण्ठवाले होगये ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर मन्दराचल रूप मथानी व वासुकी को भली भांति छोड़कर अमृतके लिये देवोंके साथ दैत्योंको समर हुआ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर देवोंके स्नेहवाले विष्णुजी स्त्री का रूप धर कर वहां प्राप्तहुये तदनन्तर प्रसन्न

होते हुये बलिने उस अमृतही को उस स्त्री के लिये देकर ॥ ३७ ॥ व बड़े विश्वास को प्राप्त होकर देवताओं के साथ युद्ध किया उस के उपरान्त स्त्रीरूपको छोड़ पुरुष रूपवाले विष्णुजी ॥ ३८ ॥ वैसेही अमृत लेकर वहांगये जहां कि देवताथे व अतिप्रसन्न मनवाले विष्णुजी उनसे बोले कि हे देवताओ ! अमृतको पियो ॥ ३९ ॥ जिससे अमरताको प्राप्तहोकर दानवों को नाशकरो वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके उन देवताओं ने उत्तम अमृतको पिया ॥ ४० ॥ हे भूपते ! उसी कारण अमर हो समर में महादानवों को मारा है जब उन देवोंके पीनेका विधान वर्तमान हुआ तब ॥ ४१ ॥ देवोंके रूपसे राहुने उत्तम अमृतको पिया व उस महादैत्य को उसी

गत्वा युद्धंचक्रेसुरैस्सह ॥ ततोविष्णुःपरित्यज्य स्त्रीरूपंपुरुषाकृतिः ॥३८॥ तथैवामृतमादाय ययौयत्रदिवौकसः ॥ अब्रवीत्तान्सुहृष्टात्मापिबध्वममृतंसुराः ॥ ३९ ॥ येनामरत्वमासाद्य व्यापादयथदानवान् ॥ तेतथेतिप्रतिज्ञाय पपुःपीयूषमुत्तमम् ॥ ४० ॥ अमराश्चततोजाता जघ्नुस्संख्येमहासुरान् ॥ तेषांपानविधौतत्र वर्तमानेमहीपते ॥ ४१ ॥ राहुर्विबुधरूपेण पपौपीयूषमुत्तमम् ॥ सलक्षितोमहादैत्यश्चन्द्रार्काभ्यांचतत्क्षणात्॥४२॥ निवेदितोहरौराजन्नायन्देवोमहासुरः॥ तच्छ्रुत्वावासुदेवेन तस्यचक्रंसुदर्शनम् ॥४३॥ वधायपार्थिवश्रेष्ठ मुक्तंचार्कसमप्रभम् ॥ यावन्मात्रंशरीरस्य तावत्पीतंमहीपते ॥ ४४ ॥ अमृतेननतत्कृत्तं मोघेनापिकथञ्चन ॥ ततोमरत्वमापन्नः सप्रायात्सिंहिकासुतः ॥ ४५ ॥ तावत्प्रोक्तोच्युतेनाथ साम्नापरमवल्गुना ॥ त्यजदैत्यान्महाभाग देवानांसम्मतोभव ॥ ४६ ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजां सदात्वं

क्षण चन्द्रमा, सूर्यने देखलिया ॥ ४२ ॥ और हे राजन्! विष्णुसे उसको बतलादिया कि यह देवता नहीं है किन्तु महादानव है हे नृपोत्तम ! उसको सुनकर उस राहु के शरीर को मारने के लिये जब तक वासुदेव विष्णुने सूर्यके समान प्रभावाले सुदर्शन चक्रको छोड़ा तब तक हे भूपते ! उसने अमृत पीलिया ॥ ४३।४४ ॥ और अमृतके निरर्थ होनेके कारण किसी प्रकार भी वह शरीर न कटा तदनन्तर अमरताको प्राप्त होता हुआ सिंहिका का पुत्र वह राहु जब तक जावै ॥ ४५ ॥ तब तक विष्णुजीने अत्यन्त मनोहर प्रिय वचन से कहा कि हे महाभाग ! दैत्योंको छोड़ो व देवोंके भलीभांति मतमें होवो ॥ ४६ ॥ व सदैव ग्रहोंके मण्डल में तुम उत्तम

पूजन पावोगे इसी अवसर में सुरोत्तमों ने दैत्यों को जीतलिया ॥ ४७ ॥ व डरेहुये कोई दैत्य दिशाओं को चलेगये व कोई मृत्युको प्राप्तहुये और पीने से बचाहुआ अमृत नन्दनवनमें स्थापित कियागया ॥ ४८ ॥ जहांही कि नागराज ऐरावत का आलान (हाथी बांधनेवाला खूंटा) स्थित था वह नागेन्द्र भी दिन रात सूंघकर भलीभांति स्थित रहता था ॥ ४९ ॥ उस के प्रभावसे वह अमृत का कमण्डलु फूटगया तदनन्तर उसी कमण्डलुसे वल्ली (बेलि) पैदाहुई ॥ ५० ॥ व वह बेलि वहां भलीभांति चढ़ी व बड़ी बढ़तीको प्राप्त हुई है उससे उपजेहुये पत्तों को लेकर वे सुरोत्तम ॥ ५१ ॥ अपूर्व व सुगन्धित मानकर हे राजन् ! विशेषकर प्रसन्न

ग्रहमण्डले ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्या निर्जिताःसुरसत्तमैः ॥ ४७ ॥ दिशोजग्मुःपरित्रस्ताःकेचिन्मृत्युमुपागताः ॥ पीत
शेषंचपीयूषं स्थापितंनन्दनेवने ॥ ४८ ॥ नागराजस्ययत्रैवस्थितआलानएवच ॥ अहर्निशमवघ्राय करीन्द्रस्सोपिसं
स्थितः ॥ ४९ ॥ तत्प्रभावैःप्रभिन्नंतत्पीयूषस्यकमण्डलुम् ॥ ततोवल्लीसमुत्पन्ना तस्माच्चैवकमण्डलोः ॥ ५० ॥ तत्र
साचसमारूढा वृद्धिञ्चपरमाङ्गता ॥ तदुद्भवानिपत्राणि गृहीत्वासुरसत्तमाः ॥ ५१ ॥ अपूर्वाणिसुगन्धीनि मत्वातेभ
क्षयन्तिच ॥ वक्त्रशुद्धिकृतेराजन्विशेषेणप्रहर्षिताः ॥ ५२ ॥ अथधन्वन्तरिर्वैद्यः स्वबुद्ध्यापृथिवीपते ॥ नागालानेयतो
जातानागवल्लीभविष्यति ॥ ५३ ॥ सदास्मरस्यसंस्थानं ममवाक्याद्भविष्यति ॥ नागवल्लीतिवैनाम तस्याश्चक्रेततःप
रम् ॥ ५४ ॥ संयोगञ्च चकाराथ ताम्बूलंजायतेयथा ॥ पूगीफलेनचूर्णेन खदिरेणापिपार्थिव ॥ ५५ ॥ अतोपयत्तदाश
क्रं तपसानिर्मलेनच ॥ इन्द्रउवाच ॥ भोभोःपार्थिवतुष्टोस्मितपसानेनसाम्प्रतम् ॥ ५६ ॥ ब्रूहियत्त्वंवरंदद्मिमनसावाञ्छि

होते हुये मुखशुद्धिके लिये खाते थे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर हे भूपते ! धन्वन्तरि वैद्य ने अपनी बुद्धिसे चिन्तन किया कि जिस कारण हाथी के बांधनेवाले खूंटे के समीप पैदाहुई है उसी लिये नागवल्ली होवैगी ॥ ५३ ॥ व मेरे वचन से सदैव कामदेव का स्थान होगी तदनन्तर उसका नागवल्ली ऐसा नाम किया ॥५४॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! जिस प्रकार ताम्बूल होवै वैसेही सुपारी, चून व खैरसे भी संयोग किया ॥ ५५ ॥ उस समय निर्मल तपस्या से राजाने इन्द्रको प्रसन्न

किया इन्द्र बोले कि हे राजन् ! इस समय मैं इस तपस्यासे प्रसन्न हूं ॥ ५६ ॥ जो कहिये उस सदैव मनसे चाहे हुये वरको देऊं उसने कहा कि यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो मेरे लिये मन व पवन के समान वेग धारनेवाले विमान को दीजिये उस विमानपै चढ़कर बडी भक्तिसे संयुत वह नित्यही इन्द्रको प्रणाम करने के लिये स्वर्गको जाताथा और इन्द्र उसको अपने हाथसे ताम्बूल देतेथे ॥ ५८।५९ ॥ व उसने प्रसन्न चित्तसे उसको खाया व वृद्धताके भी भलीभांति प्राप्त होनेपर ताम्बूलके प्रभावसे उसके बहुतही कामदेव बढ़ताभया इसके अनन्तर हे राजन् ! नम्रतासंयुत वह राजा इन्द्रसे यह बोला ॥ ६० । ६१ ॥

तंसदा ॥ सोब्रवीद्यदिमेतुष्टो यदिदेयोवरोमम ॥ ५७ ॥ विमानन्देहितन्मह्यं मनोमारुतवेगधृक् ॥ सतत्रनित्यमारुह्य प्रयातित्रिदशालयम् ॥ ५८ ॥ भक्त्यापरमयायुक्तः सहस्राक्षंप्रवन्दितुम् ॥ तस्यशक्रःस्वहस्तेन ताम्बूलंचप्रयच्छति॥ ५९ ॥ सचतद्भक्षयामास प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ वृद्धभावेपिसम्प्राप्ते तस्यकामोप्यवर्द्धत ॥ ६० ॥ ताम्बूलस्यप्रभावेण सुमहान्पृथिवीपते ॥ अथशक्रमुवाचेदं सराजाविनयान्वितः ॥ ६१ ॥ नागवल्लीप्रदानेन प्रसादोमेविधीयताम् ॥ मर्त्यलोकेसमायातु प्रचारंयेनगच्छति ॥ ६२ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय तस्मैतांप्रददौतदा ॥ गत्वानिजंपुरंसोपि स्वोद्यानेस्थापयत्तदा ॥ ६३ ॥ ततःकालेनमहता प्रचारंक्षिप्रमागता ॥ यस्यास्वादनतोलोकः कामात्मासमपद्यत ॥ ६४ ॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे याजनञ्चविशेषतः ॥ अन्यधर्म्मक्रियास्सर्वाः प्रणष्टाधर्म्मसम्भवाः ॥ ६५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे यज्ञभागविवर्जिताः ॥ पीड्यमानाः क्षुधाविष्टा गत्वाप्रोचुःपितामहम् ॥ ६६ ॥ मर्त्यलोकेसुरश्रेष्ठ नष्टाधर्म्मक्रियाभृश

कि नागवल्ली के देनेसे मेरी प्रसन्नता करिये कि जिससे वह मृत्युलोक में जावै व प्रचार को प्राप्तहोवै ॥ ६२ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उस समय उन इन्द्र ने उस नागवल्ली को उसके लिये दिया उसी समय उसने भी अपने नगर को जाकर अपनी फुलवारी में स्थापन किया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर बडे समयसे शीघ्रही प्रचार को प्राप्तहुई कि जिसके खानेसे मनुष्य कामात्मा होगया ॥ ६४ ॥ किसीने यज्ञ नहीं किया व विशेषता से यज्ञ नहीं कराया और धर्म से उपजीहुई अन्य समस्त धर्म की क्रियायें नष्ट होगई ॥ ६५ ॥ तदनन्तर समस्त सुरसमूह यज्ञभागोंसे रहित होगये और क्षुधासे संयुत व पीडित होनेहुये ब्रह्माके समीप जाकर बोले ॥ ६६ ॥

कि हे सुरोत्तम ! मृत्युलोक में धर्मके कर्म नष्ट होगये क्योंकि ताम्बूल के खानेसे मनुष्य अत्यन्त कामदेव से आसक्त होगये ॥ ६७ ॥ इस लिये हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता करिये कि जिससे हमलोगों के कार्य होवैं इसी अवसर में हे राजन् ! दरिद्रने आकर तदनन्तर नम्रतासे नीचे झुकके खड़े हुये उसने पूजन के लिये भली भांति आते व कमलपै बैठेहुये ब्रह्मासे कहा ॥ ६८।६९ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ब्राह्मणों के घरमें टिकाहुआ मैं निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त हुआहूं इस लिये धनवानों का जो श्रेष्ठ स्थान होवै उसको मुझसे कहिये ॥ ७० ॥ हे विभो ! वहां सदैववाली बड़ी तृप्ति होगी उसके उस वचनको सुनकर व देरतक ध्यान करके ब्रह्माने ॥७१ ॥ यहां

म् ॥ कामासक्तोयतोलोकस्ताम्बूलस्यचभक्षणात् ॥ ६७ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंनो येनास्माकंक्रियाभवेत् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु पुष्करस्थंपितामहम् ॥ ६८ ॥ यजनार्थेसमायान्तंदरिद्रोभ्येत्यपार्थिव ॥ प्रणिपत्यततःप्राह विनयावनतःस्थितः ॥ ६९ ॥ निर्विण्णोहंसुरश्रेष्ठ ब्राह्मणानांगृहेस्थितः ॥ तस्मात्कीर्तयमेस्थानं श्रेष्ठंवित्तवतांहियत् ॥ ७० ॥ तत्रसंजायतेतृप्तिः शाश्वतीप्रचुराविभो ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वापितामहः ॥ ७१ ॥ अब्रवीच्चदरिद्रन्तं छिद्रार्थंधनिनामिह ॥ चूर्णपत्रेत्वयावासस्सदाकार्योदरिद्रभोः ॥ ७२ ॥ ताम्बूलस्यतुपर्णाग्रे भार्य्ययाममवाक्यतः ॥ पर्णानांचैववृन्तेषु वासस्तवसुतेनच ॥ ७३ ॥ रात्रौखदिरसारेच त्रिभिःकार्य्यःसदैवहि ॥ धनिनांछिद्रकृत्योक्तमेतत्स्थानञ्चतुष्टयम् ॥ ७४ ॥ पार्थिवानांविशेषेण ममवाक्याद्व्रजद्रुतम् ॥ नारदउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥७५॥ ताम्बूलोत्थानिछिद्राणियथास्युर्धनिनामिह ॥ तानिचीर्णानिसर्वाणि त्वयाराजन्नजानता ॥ ७६ ॥ तेनवैविभवो

धनियों के छिद्रके लिये उस दरिद्रसे कहा कि हे दरिद्र ! तुमको चूर्ण समेत पत्ता (ताम्बूल) में सदैव निवास करना चाहिये ॥ ७२ ॥ मेरे वचन से ताम्बूलके पत्ते के आगे स्त्री समेत निवास करो व पत्तोंके टेंभुवोंमें पुत्र समेत तुम्हारा वासहोगा ॥ ७३ ॥ और रातमें खैरके मध्य तीनोंको याने स्त्री, पुत्र समेत तुमको सदैवही वास करना चाहिये धनियों के छिद्रकार्यसे ये चार स्थान कहेगये ॥ ७४ ॥ व विशेष कर राजाओं के समीप तुम मेरे वचन से शीघ्रही जावो नारदबोले कि हे नरनायक ! जो मुझसे पूंछागया यह सब मैंने तुमसे कहा ॥ ७५ ॥ कि जिस प्रकार यहां ताम्बूलों से उपजेहुये छिद्र (दोष) धनियों को होतेहैं हे राजन् ! न जानते हुये

तुमने उन समस्त दोषोंको इकट्ठा कियाहै ॥ ७६ ॥ उसीसे हे राजन् ! अचानक ऐश्वर्यका नाश होगया राजा बोले कि हे मुनिनाथ ! उसके लिये भी मुझसे प्रायश्चित्त कहो ॥ ७७ ॥ कि वैसी विधिवाला ताम्बूल का भक्षण मुझको कभी होगा कि जिससे निन्दित ताम्बूल से उपजीहुई मेरे शुद्धि होवै ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे राजन् ! मैं कहूंगा सुनिये कि ताम्बूल के भक्षण से विशुद्धि के लिये आस्वादन में जो प्रायश्चित्त करै ॥ ७६ ॥ परन्तु समयको भलीभांति उद्देशकर व श्रद्धासंयुत पुरुष ॥ ८० ॥ हे राजन् ! वेद, वेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण को लावै व उसके चरणोंको धोकर वसन पहनावै ॥ ८१ ॥ व चन्दन, पुष्पादिको से भलीभांति

च्छित्तिः सञ्जातासहसान्नृप ॥ राजोवाच ॥ तदर्थमपिमेब्रूहि प्रायश्चित्तंमुनीश्वर ॥ ७७ ॥ कदाचिद्भक्षणंमेस्यात्ताम्बूलस्यतथाविधि ॥ येनमेजायतेशुद्धिः कुताम्बूलसमुद्भवा ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तंतुयच्चरेत् ॥ आसादनेविशुद्ध्यर्थं कुताम्बूलस्यभक्षणात् ॥ ७९ ॥ परंकालंसमुद्दिश्य सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ८० ॥ आनयेद्ब्राह्मणंराजन्वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ प्रक्षाल्यचरणौतस्य वाससीपरिधापयेत् ॥ ८१ ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पाद्यैस्ततःपत्रंहिरण्मयम् ॥ स्वशक्त्याकारयित्वाथ चूर्णेमुक्ताफलंन्यसेत् ॥ ८२ ॥ पूगीफलंचवैदूर्य्यं खदिरेरूप्यमेवच ॥ मन्त्रेणानेनविप्राय तथैवचसमर्पयेत् ॥ ८३ ॥ यन्मयाभक्षितंपूर्वं वृन्तंपत्रसमुद्भवम् ॥ चूर्णपत्रंतथैवान्यद्रात्रौखदिरमेवच ॥ ८४ ॥ तस्यपापस्यशुद्ध्यर्थं ताम्बूलंमेप्रगृह्यताम् ॥ ततस्तुब्राह्मणोमन्त्रमेवंराजन्नुदाहरेत् ॥ ८५ ॥ यजमानहितार्थाय सर्वपापविशुद्धये ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि कुताम्बूलंप्रभक्षितम् ॥ ८६ ॥ भक्षयिष्यसियच्चान्यत्कदाचिन्मे

पूजकर तदनन्तर अपनी शक्तिके द्वारा सुवर्णमय पत्तेको बनवाकर चूनेके स्थानमें मुक्ताफल (मोती) धरै ॥ ८२ ॥ व वैदूर्यरत्नमय सुपारी व खैरके स्थान में चांदी ही धरै व वैसेही इस मन्त्रसे ब्राह्मण के लिये समर्पण करै ॥ ८३ ॥ कि जो मैंने पहले पत्तासे उपजेहुये टेंभुवाको व चूना समेत पत्ता व रातमें वैसेही खैरहीको खाया हो ॥ ८४ ॥ उस पापकी पवित्रताके लिये मेरा ताम्बूल ग्रहण करिये तदनन्तर हे राजन् ! ब्राह्मण इस भांति मन्त्र कहै ॥ ८५ ॥ कि यजमानके हितके लिये व समस्त

पातकों से शुद्धिके लिये अज्ञान या ज्ञानसे भी जो तुमने निन्दित ताम्बूल खायाहो ॥ ८६ ॥ व जो और कभी खावोगे मेरी प्रसन्नता व वचन से निस्सन्देह तुम
को उसका दोष न होगा ॥ ८७ ॥ इस विधिसे ताम्बूल को देकर शुद्धिको प्राप्तहोता है व हे राजन्! मनुष्य कुताम्बूल के दोषसे नहीं ग्रहण किया जाताहै ॥ ८८ ॥
इस लिये हे महाराज! तुम इस व्रतको करो क्योंकि यह बहुतही पुण्यदायक व बड़ी भाग्यको बढ़ाने वालाहै ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य भक्तिके द्वारा इस विधान से द्वि
जेन्द्रको ताम्बूल देताहै वह जन्म जन्मोंके मध्यमें निन्दित ताम्बूल से छूटजाता है ॥ ९० ॥ व ताम्बूलको खाकर जो इस दानको नहीं देता है वह यहां जन्म

प्रसादतः ॥ तस्यदोषोनतेभावी ममवाक्यादसंशयम् ॥ ८७ ॥ अनेनविधिनादत्त्वा ताम्बूलंशुद्धिमाप्नुयात् ॥ कुता
म्बूलस्यदोषेण गृह्यतेननरोनृप ॥ ८८ ॥ तस्मात्त्वंहिमहाराज व्रतमेतत्समाचर ॥ बहुपुण्यतमंह्येतन्महाभाग्यविव
र्द्धनम् ॥ ८९ ॥ यःप्रयच्छतिविप्रेन्द्रं विधिनानेनभक्तितः ॥ जन्मजन्मान्तरेवापि कुताम्बूलेनमुच्यते ॥ ९० ॥ ताम्बू
लंभक्षयित्वायो नैतद्दानंप्रयच्छति ॥ ताम्बूलवर्जितःसोत्रभवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ९१ ॥ ताम्बूलवर्जितंतस्य मुखं
स्यात्पृथिवीपते ॥ कृपणस्यदरिद्रस्य तद्बिलंनहितन्मुखम् ॥ ९२ ॥ ताम्बूलंब्राह्मणेन्द्राय योदत्त्वाप्राक्प्रभक्ष
येत॥ सुरूपोभाग्यवान्दक्षो भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ९३ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कुताम्बूलस्यभक्षणात् ॥ यत्फ
लंजायतेपुंसांयद्दानेनमहीपते ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेताम्बूलमाहात्म्यन्नामद्विश
ततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जन्ममें ताम्बूल से रहितहोगा ॥ ९१ ॥ व हे भूपते! उसका मुख ताम्बूल से रहित होगा व उस कृपण व दरिद्री का वह मुख नहीं है किन्तु वह बिलहै ॥ ९२ ॥ और
जो पहले द्विजेन्द्रके लिये ताम्बूल देकर खाताहै वह जन्म २ में सुरूपवान् व भाग्यवान् और चतुर होताहै ॥ ९३ ॥ हे भूपते! निन्दित ताम्बूल के भक्षणसे जो फ
लहोता है व दानसे पुरुषों को जो फलहोता है इस समस्त चरितको तुमसे कहा ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभा
षाटीकायांताम्बूलमाहात्म्यंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा द्विजन अस्थान दै लह्यो राज्य निज भूप । दोसौ इक अध्यायमें वरणत चरित अनूप ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे राजन्! शंखादित्यके प्रसंगसे ताम्बूल का भक्षण व ताम्बूल के भक्षण व दानमें जो दोष व गुणहैं वे कहेगये ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन्! दिव्य दृष्टिसे दरिद्र का आगम भलीभांति जानकर यह सब कुष्ठका कारण तुमसे कहा गया ॥ २ ॥ इस समय वह भलीभांति कहूंगा कि जिस प्रकार यहां ब्राह्मणों के अपमान से शत्रुओं से तुम्हारा तिरस्कार हुआहै ॥३॥ इस राज्यमें जिस किसी आनर्ताधिपति का अभिषेक होताहै वह पहले बड़ी भक्ति से नागरों को ग्राम देताहै ॥ ४ ॥ हे राजन्! तुमने असावधानता से उन ब्राह्मणोंके

विश्वामित्रउवाच ॥ शङ्खादित्यानुषङ्गेण ताम्बूलस्यचभक्षणम् ॥ येदोषायेगुणाराजन्दानेचैवप्रभक्षणे ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं राजन्कुष्ठस्यकारणम् ॥ दरिद्रस्यागमंसम्यग्ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ २ ॥ अधुनासंप्रवक्ष्यामि यथातवपराभवः ॥ शत्रुभ्यस्सम्प्रजातोत्र द्विजानामपमानतः ॥ ३ ॥ आनर्ताधिपतिर्योत्र कश्चिद्राज्येऽभिषिच्यते ॥ सपूर्वंयच्छतिग्रामं नागराणांप्रभक्तितः ॥ ४ ॥ त्वयातत्कल्पितंराजन्नैवतेषांप्रमादतः ॥ पराभूताद्विजास्तेच याचमानामुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ तथाकोपवशाद्यानि शासनानिद्विजन्मनाम् ॥ लोपितानित्वयान्यानि पितृपैतामहानिच ॥ ६ ॥ तेनतेत्रपराभूतिस्सञ्जाताशत्रुसम्भवा ॥ एवंज्ञात्वाद्विजेन्द्राणां सुस्थानानिप्रयच्छभोः ॥ ७ ॥ गृहीतानिचयान्येव तेषांमोक्षंसमाचर ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवस्सोथ शङ्खतीर्थेप्रभक्तितः ॥ ८ ॥ स्नात्वाविप्रान्समाहूय मध्यगेनसमन्वितान् ॥ शङ्खादित्यस्यपुरतः प्रक्षाल्यचरणौनृपः ॥ ९ ॥ ददौचस्थानशतकंप्रक्षाल्यचरणांस्ततः ॥ षड्विंशत्यधिकंराजा

लिये वह नहीं कल्पना किया याने ग्राम न दिया व बार २ मांगते हुये वे ब्राह्मण अनादर कियेगये ॥ ५ ॥ वैसेही ब्राह्मणों की जो आज्ञायें थीं तुमने क्रोधके वशसे उनको व पिता, पितामहों वाले अन्य कर्मोंको लोप किया ॥ ६ ॥ उसी कारण शत्रु से उपजाहुआ तिरस्कार तुमको यहां प्राप्तहुआ ऐसा जानकर हे राजन्! द्विजेन्द्रों को उन स्थानों को दीजिये ॥ ७ ॥ कि जिनको ग्रहण किया है व उनकी मुक्ति करिये उस वचनको सुनकर इसके अनन्तर उस राजाने बडी भक्तिसे शंख तीर्थ में नहाकर व मध्यवर्ती समेत ब्राह्मणों को बुलाकर शंखादित्य के आगे नृपतिने चरणों को धोकर ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर राजाने चरणोंको धोकर महात्मा नागर द्विजों

को छब्बिस अधिक सौ स्थानों को दिया ॥ १० ॥ इसी अवसरमें वहां जो शत्रु भलीभांति स्थित थे वे ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मृत्युको प्राप्तहोगये ॥ ११ ॥ विश्वामि
त्र जी बोले कि हे नृपोत्तम ! शंखतीर्थ से उपजेहुये इस समस्त प्रभाव को मैंने तुमसे कहा फिर क्या सुना चाहते हो ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे
नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांशंखतीर्थमाहात्म्यंनामैकाधिक द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥
दो० । यथा जलाशय न्हाय करि भयो सुभग पशुपाल । दोसौदूजेमें सोई रत्नादित्य हवाल ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत नन्दन ! हाटकेश्वर नामक इस क्षेत्रमें तुम

नागराणांमहात्मनाम् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र शत्रवोयेचसंस्थिताः ॥ तेवैमृत्युंसमापन्ना ब्राह्मणानांप्रसादतः ॥
११ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ प्रभावंपार्थिवश्रेष्ठ किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
१२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेशङ्खतीर्थमाहात्म्यन्नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥
ऋषयऊचुः ॥ श्रुतंतीर्थत्रयंपुण्यं हाटकेश्वरसंज्ञिते ॥ क्षेत्रेत्रयत्त्वयाप्रोक्तमस्माकंसूतनन्दन ॥ १ ॥ विश्वामित्र
स्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ साम्प्रतंतत्समाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ समुद्रस्यापिपारोत्र
लक्ष्यतेचक्षितेरपि ॥ तारकाणांमुनेस्तस्य नगुणानांद्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ लक्ष्यतेकेनचित्प्रान्तो गाधिपुत्रस्यधीमतः ॥
क्षत्रियोपिद्विजत्वंयः सम्प्राप्तोद्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥ अन्त्यजत्वंगतस्यापि त्रिशङ्कोःपृथिवीपतेः ॥ यज्ञभागभुजोदेवाः
प्रत्यक्षेणविनिर्मिताः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःस्पर्द्धयायेन पुरासृष्टिर्द्विजोत्तमाः ॥ प्रारब्धातत्रसादेवैः प्रणिपत्यनिवारिता ॥ ६ ॥

ने जो हमलोगों से तीन पुण्यदायक तीर्थोंको कहा वे सुनेगये ॥ १ ॥ इस समय हमलोग विश्वामित्र जी का माहात्म्य सुनने के लिये इच्छा करते हैं उसको कहिये
क्योंकि हमलोगों को परम आश्चर्य है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इस संसारमें समुद्रका भी पार व पृथ्वीका भी प्रमाण व नक्षत्रों की भी संख्या देखीजा
ती है परन्तु उन बुद्धिमान् गाधिसुत (विश्वामित्र) मुनिके गुणोंका अन्त किसी से नहीं देखाजाता है हे द्विजोत्तमो ! क्षत्रिय भी जो मुनि ब्राह्मणत्व को भलीभांति
प्राप्तहुये ॥ ३ । ४ ॥ व जिनसे चाण्डालताको प्राप्तभी त्रिशंकु भूपतिके यज्ञभाग भोजी देवता प्रत्यक्षसे निर्माण कियेगये ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय जिन

विश्वामित्र ने ब्रह्माकी ईर्षा से सृष्टिका प्रारम्भ किया व वहां उस सृष्टिको देवों ने प्रणामकर मनाकिया ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस समय समस्त पातकोंके नाशक उस तीर्थ के माहात्म्य को कहते हुये मुझसे सुनिये ॥ ७ ॥ उन विश्वामित्र महात्माने वहां पर शस्त्रके विना भी अपने हाथसे भूपृष्ठमें सब ओर खोदकर कुण्ड कियाहै ॥ ८ ॥ वहां ध्यान करके पाताल से गंगानदी भलीभांति लाईगई है कि जिनगंगा जीका निर्मल जल मृत्युलोकको भली विधिसे आया है ॥ ९ ॥ जो जल कि सुस्वादिष्ठ व स्नान से समस्त पातकों का नाशक है व उन्हीं विश्वामित्र ने भी वहां जलको चुराने वाले सूर्यजीको थापा है ॥ १० ॥ माघ महीने के शुक्ल पक्षमें रविवार

तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यं साम्प्रतंवदतोमम ॥ श्रूयतांब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम् ॥७॥ तेनतत्रकृतंकुण्डं स्वहस्तेनमहात्मना ॥ शस्त्रंविनापिभूपृष्ठे प्रविदार्य्यसमन्ततः॥८॥तत्रध्यात्वासमानीता पातालाज्जाह्नवीनदी ॥ मर्त्यलोकंसमायातं यस्यास्तोयंसुनिर्म्मलम् ॥ ९ ॥ सुस्वादुचतथास्नानात्सर्वपातकनाशनम् ॥ तेनापिस्थापितस्तत्र भास्करोवारितस्करः ॥ १० ॥ यस्सप्तम्यांसूर्य्यवारे स्नात्वातस्यह्रदेशुभे ॥ माघमासेसितेपक्ष उद्गच्छतिदिवाकरे ॥ ११ ॥ सकुष्ठैर्मुच्यतेसर्वैस्तथापापैर्द्विजोत्तमाः ॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागे तस्यास्तिजलसञ्चयम् ॥ १२ ॥ धन्वन्तरिकृतावापी सर्वरोगविनाशिनी ॥ तत्रपूर्वंतपस्तेपे धन्वन्तरिरुदारधीः ॥ १३ ॥ वर्चस्वन्तंसमायुक्तो ध्यायमानस्समाहितः ॥ ततःकालेनमहता तुष्टस्तस्यचभास्करः ॥ १४ ॥ उवाचवरदोस्मीति प्रार्थयस्वमहामते ॥ धन्वन्तरिरुवाच ॥ अत्रकुण्डेनरोभक्त्या यःस्नानंकुरुतेविभो ॥ १५ ॥ तस्यस्यात्सर्वरोगाणां संक्षयःसुरसत्तम ॥ भगवानुवाच ॥ अद्यशस्तदिनेयोत्रसप्तम्यां

सप्तमी में सूर्यके उदय होनेपर जो पुरुष उन विश्वामित्र जी के उत्तम कुण्डमें नहाकर स्थित होताहै ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह समस्त कुष्ठों व पातकों से छूटजाता है और उस कुण्डके पश्चिम व उत्तर दिशाके विभागमें जलराशि है ॥ १२ ॥ और समस्त रोगोंको विनाश करनेवाली धन्वन्तरि से की हुई बावली है वहां पहले उदार बुद्धिवाले धन्वन्तरि ने तपस्या कियाहै ॥ १३ ॥ व सावधान होतेहुये तेजवान् (सूर्यजी) को ध्यातेहुये भलीभांति तपस्या में युक्तहुये तदनन्तर बहुत समयसे उन धन्वन्तरिके ऊपर सूर्यनारायण प्रसन्नहोगये ॥ १४ ॥ व यह बोले कि मैं वरदायकहूं हे महामते ! वरको मांगिये धन्वन्तरि बोले कि हे विभो ! जो मनुष्य इस

कुण्ड में भक्तिसे स्नान करै ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! उसके सबरोगों का विनाश होवै भगवान् सूर्य जी बोले आजवाले शुभ रविवार, सप्तमी दिनमें सावधान होता हुआ जो पुरुष सूर्योदयमें यहां स्नान करैगा उसके सबरोग नाश होजावैंगे ऐसा कहकर सुरोत्तम सूर्य्यनारायणजी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ । १७ ॥ प्रसन्न मन या चित्तवाले धन्वन्तरि सदैव अपने स्थान में तत्पर हुये जो कि शूर वीर व बड़े तेजस्वी व समस्त शत्रुओं के नाशक थे ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पूर्व जन्मवाले कर्मके फलसे उन धन्वन्तरि भूपके भयंकर कुष्ठरोग हुआ जोकि त्रिलोक में दुःखसे औषधी करने योग्य था ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मणो ! संसार में वह दवाई नहीं है कि जिसको कुष्ठसे

रविवासरे ॥ १६ ॥ सूर्य्योदयेनरःस्नानं करिष्यतिसमाहितः ॥ एवमुक्त्वासुरश्रेष्ठो ह्यन्तर्धानंगतोरविः ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिःप्रहृष्टात्मा स्वस्थानेनिरतस्सदा ॥ शूरःपरमतेजस्वी सर्वशत्रुनिषूदनः ॥ १८ ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेन तस्यभूमिपतेर्द्विजाः ॥ कुष्ठव्याधिरभूद्रौद्रा दुश्चिकित्स्याजगत्त्रये ॥ १९ ॥ तदस्तिनौषधंलोके यत्तेननकृतंद्विजाः ॥ कुष्ठग्रस्तेनवादानंयन्नदत्तंमहात्मना ॥ २० ॥ यथायथौषधान्येव सकरोतिददातिच ॥ तथातथाततःकायो व्याधिनाक्षामितो भृशम् ॥ २१ ॥ ततोवैराग्यमापन्नः सनृपोद्विजसत्तमाः ॥ पुत्रंराज्येथसंस्थाप्य वाञ्छयामासपावकम् ॥ २२ ॥ प्रविष्टस्सहितैस्सर्वैः कलत्रैराज्यसेवकैः ॥ दत्त्वादानानिविप्रेभ्यःपूजयित्वासुरोत्तमान् ॥ २३ ॥ सम्भाष्यचसुहृद्वर्गं शासयित्वानिजंसुतम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भ्रममाणोयदृच्छया ॥ २४ ॥ कश्चित्कार्पटिकःप्राप्तो दिव्यरूपवपुर्द्धरः ॥ अथा

ग्रसे हुये उन धन्वन्तरि महात्माने नहीं किया और वह दान नहीं है कि जिसको नहीं दिया याने सब दवाइयों को किया व समस्त दानदिया॥ २० ॥ और वे धन्वन्तरि ज्यों २ दवाइयां करते थे व दान देतेथे त्यों त्यों उसी कारण रोगसे अत्यन्त दुबले होते थे ॥ २१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वह राजा वैराग्य को प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उसने पुत्रको राज्यपै भलीभांति बिठाकर अग्निकी इच्छा किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों के लिये दान देकर व देवोत्तमों को पूजकर व मित्रगणों से सम्भाषण करके और अपने पुत्रको सिखलाकर समस्त स्त्रियों व राज्य सेवकों समेत वह अग्नि में पैठगया इसी समय में अपनी इच्छासे घूमता हुआ ॥ २३ । २४ ॥ कोई

दिव्य रूपवाले शरीरका धारनेवाला कार्पटिक (गुदड़ी वाला फ़क़ीर) प्राप्त हुआ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! राजाके उस समस्त नगरको विकल देखकर विस्मय सं युत होते हुये इसने किसी मनुष्यको देखकर पूंछा कार्पटिक बोला कि हे कल्याण रूप ! यह सब महापुरी क्यों व्याकुल हुई है ॥ २५ । २६ ॥ जोकि बाल वृद्धोंसे सेवित व आंसुवोंके गिरनेसे आनन्द रहित है यह बोला कि कुष्ठरोग से संयुत यह राजा ॥ २७ ॥ स्त्रियों समेत बहुत जलते हुये अग्निको साधन करैगा उसी कारण यह समस्त नगरी बड़ेदुःखको प्राप्तहै ॥२८॥ गुणों से भलीभांति संयुत यह निश्चय कर मृत्युको प्राप्तहोगा उस वचनको सुनकर शीघ्रही जाकर नरेश के समस्त मरेहुये

सोऽव्याकुलंदृष्ट्वा तत्सर्वंनृपतेःपुरम् ॥ २५ ॥ अपृच्छद्विस्मयाविष्टो दृष्ट्वाकञ्चिन्नरंद्विजाः ॥ कार्पटिकउवाच ॥ किमेषा व्याकुलाभद्र सर्वाजातामहापुरी ॥ २६ ॥ निरानन्दाश्रुप्लवेन वालवृद्धैर्निषेविता ॥ सोब्रवीन्नृपतिश्चायं कुष्ठव्याधिस मन्वितः ॥ २७ ॥ सधक्ष्यतिसन्दीप्तं सकलत्रोहुताशनम् ॥ तेनेयंनगरीकृत्स्ना परंदुःखमुपागता ॥ २८ ॥ गुणैरयं समाविष्टो नूनंमृत्युंप्रयास्यति ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंगत्वा नृपंकार्पटिकोब्रवीत् ॥ २९ ॥ सर्वंजनंनरेन्द्रस्य मृतंसञ्जीवय न्निव ॥ मानृपानेनदुःखेन व्याधिजेनहुताशने ॥ ३० ॥ प्रविशत्वंस्थितेतीर्थे सर्वव्याधिक्षयावहे ॥ मदीयोभूपतेदेह ईदृगासीद्यथातव ॥ ३१ ॥ अत्रस्नातस्यसद्योथ जातईदृक्पुनर्विभो ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण भास्करस्योदयंप्रति ॥३२॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं व्याधिग्रस्तोनरोभुवि ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तस्तत्क्षणात्कल्पतांव्रजेत् ॥ ३३ ॥ तथापापविनि र्मुक्तो यथाहंनृपसत्तम ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्देशेमहातीर्थंतादृशंवदमेद्रुतम् ॥ ३४ ॥ कार्पटिकउवाच ॥ अस्ति

मनुष्यको जिलाता हुआ सो कार्पटिक राजासे बोला कि हे राजन् ! जब सबरोगों का क्षयदायक तीर्थस्थितहै तब रोगसे उपजेहुये इस दुःखसे तुम अग्निमें मत पैठो हे राजन् ! ऐसाही मेरा शरीर था जैसा कि तुम्हारा है ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ इसके अनन्तर हे विभो ! वहां नहाये हुये मेरा शरीर फिर उसी क्षण ऐसा होगया रविवार सप्तमी में जब सूर्यनारायण उदय होवैं तब ॥ ३२ ॥ भूमिमें रोगसे ग्रसाहुआ जो पुरुष उसमें स्नान करता है वह उसी क्षण समस्त रोगोंसे छूटकर निरोगता को प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ व हे नृपोत्तम ! जैसा मैं हूं वैसाही पापसे छूटाहुआ हो जाता है राजाबोले कि किस देश में वैसा महातीर्थ है मुझसे शीघ्रही कहिये ॥ ३४ ॥

कार्पटिक बोला कि हे भूपते ! नगर ऐसा उत्तम क्षेत्र भूतल में प्रसिद्ध है कुष्ठरोगसे ग्रसित व तीर्थयात्रा में तत्पर मैं उसके भलीभांति दर्शन के लिये वहां गया अति-दुःखित व रोगसे गँसेहुये मुझ दीनको देखकर वहां पर ॥ ३५ । ३६ ॥ कोई वहांके टिकाश्रयवाला तपस्वी दयासंयुत हो बोला कि जलशायी देवके पश्चिम व उत्तर दिशाके विभागमें ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रजी का जलाशय महापुण्यवान् तीर्थ है वहां जाकर माघ महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर शुक्लपक्षमें रविवार सप्तमी तिथिको सूर्योदय होनेपर विशेषकर स्नान करो जिससे तुम्हारा कोढ़ जातारहै ॥ ३८ । ३९ ॥ उस वचनको सुनकर सूर्यसंयोगवाली सप्तमी में मैं उस तीर्थ में

भूमितलेख्यातं क्षेत्रंनगरमुत्तमम् ॥ कुष्ठव्याधिसमाक्रान्तो गतोहंतत्रभूपते ॥ ३५ ॥ तस्यसन्दर्शनार्थाय तीर्थयात्रापरायणः ॥ तत्रमान्दीनमालोक्य व्याधिग्रस्तंसुदुःखितम् ॥ ३६ ॥ कश्चित्तत्राश्रयःप्राह तपस्वीकृपयान्वितः ॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागे देवस्यजलशायिनः ॥ ३७ ॥ तीर्थमस्तिमहापुण्यं विश्वामित्रजलावहम् ॥ तत्रगत्वाकुरुस्नानं सप्तम्यांरविवासरे ॥ ३८ ॥ माघमासेतुसम्प्राप्ते शुक्लपक्षेविशेषतः ॥ येननिर्य्यातितेकुष्ठो भास्करस्योदयंप्रति ॥ ३९ ॥ तच्छ्रुत्वाहञ्चतत्प्राप्तस्सप्तम्यांसूर्य्यसंयुजि ॥ ततश्चकृतवान्स्नानं विदूरेतत्रशाम्भवम् ॥ ४० ॥ ततस्तस्माद्विनिष्क्रान्तो यावत्पश्याम्यहंततः ॥ तावन्नृपेदृशोजातस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ४१ ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र तत्रस्नानंसमाचर ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण भास्करस्योदयंप्रति ॥ ४२ ॥ येनतेनश्यतिव्याधिर्विशेषमपिपातकम् ॥ तच्छ्रुत्वामन्नृपस्तूर्णं तेनैवसहितोययौ ॥ ४३ ॥ चकारसतथास्नानं सप्तम्यांसूर्य्यवासरे ॥ माघमासेतुसम्प्राप्ते विश्वामित्रजलेशुभे ॥४४॥

प्राप्तहुआ तदनन्तर उसमें स्नान किया जहांसे कि दूरमें शिवजीका लिङ्ग है ॥४०॥ तदनन्तर मैं उससे निकला व जब तक देखूं तब तक हे राजन्! उसी कारण ऐसा होगया यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ४१ ॥ उसी कारण हे नृपेन्द्र ! तुम भी रविवार सप्तमी में सूर्य्योदय होनेपर उसमें स्नान करो ॥ ४२ ॥ जिससे तुम्हारा रोग व विशेष पातक भी नाशहोवै उस वचनको सुनकर वह राजा उसी कार्पटिक समेत शीघ्रही गया ॥ ४३ ॥ और माघ महीने के भलीभांति प्राप्त होनेपर रविवार सप्तमी में

उत्तम विश्वामित्र जी के जलमें उसने स्नान किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उसी क्षण कुष्ठरोग से छूटा व दिव्यरूपवाले शरीर का धारी दूसरे कामदेव के समान प्राप्त होगया ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये नरेश ने उस कार्पटिकके लिये तीन करोड़ अशर्फियां दिया तदनन्तर वचन कहा ॥ ४६ ॥ कि तुम्हारी प्रसन्नताके कारण इस भयंकर रोगसे मैं छूटगया इस लिये तुम अपने घर जावो मैं इसी निर्भर (झरना) के समीप टिकूंगा ॥ ४७ ॥ व अपनी स्त्रियों समेत मैं नित्यही तपस्या करूंगा क्योंकि राज्यके कर्ममें समर्थ पुत्रको भलीभांति स्थापित कियाहै ॥ ४८ ॥ उससे यह कहकर तदनन्तर वैसेही अन्य सावधान सेवकोंको अपने घरके लिये

ततःकुष्ठविनिर्मुक्तस्तत्क्षणात्समपद्यत ॥ दिव्यरूपवपुर्धारी कामदेवइवापरः ॥ ४५ ॥ अथतुष्टोनरेन्द्रस्तु तस्मैकार्पटिकायच ॥ ददौकोटित्रयंहेम्नः प्रोवाचचततोवचः ॥४६॥ त्वत्प्रसादाद्विनिर्मुक्तो रोगादस्मात्सुदारुणात् ॥ तस्मात्त्वंगच्छगेहंस्वं स्थास्येहंचात्रनिर्झरे ॥ ४७ ॥ करिष्यामितपोनित्यं स्वकलत्रसमन्वितः ॥ राज्येसंस्थापितःपुत्रः समर्थोराज्यकर्म्मणि ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाप्रेरयामास तन्तथान्यान्समाहितान् ॥ सेवकान्स्वगृहायैवं स्वयंतत्रैनचस्थितः ॥ ४९ ॥ कृत्वाश्रमपदंरम्यं स्वकलत्रसमन्वितः ॥ सम्प्राप्तश्चपरांसिद्धिं कालेनद्विजसत्तमाः ॥ ५० ॥ तस्यनाम्नाततःख्यातं तीर्थमेतत्त्रिविष्टपे ॥ सर्वव्याधिहरंरम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ५१ ॥ तेनसंस्थापितस्तत्र देवदेवोदिवाकरः ॥ रत्नादित्यमितिख्यातं निजनाम्नामहात्मना ॥ ५२ ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण तत्रस्नात्वाप्रपश्यति ॥ यस्तुपापविनिर्मुक्तस्सूर्य्यलोकंसगच्छति ॥५३॥ यदन्यत्तत्रसंवृत्तं क्षेत्रजातंद्विजोत्तमाः ॥ तदहंकीर्तयिष्यामिशृणुध्वंसुसमाहिताः॥५४॥

इस प्रकार प्रेरणा किया व हे द्विजोत्तमो ! सुन्दर आश्रम स्थान बनाकर अपनी स्त्रियों समेत वह आपही वहीं स्थित हुआ और समय से उत्तम सिद्धिको भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ४९ । ५० ॥ तदनन्तर समस्त पातकोंका नाशक व सब व्याधियोंका विनाशक यह मनोहर तीर्थ उसके नामसे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ५१ ॥ और वहां उस महात्मा ने अपने नामसे देवताओं के देवता दिनकर (सूर्यनारायण) को भलीभांति थापाहै वे रत्नादित्य ऐसे प्रसिद्धहैं ॥ ५२ जो पुरुष रविवार समेत सप्तमी तिथिमें उस कुण्डमें नहाकर रत्नादित्य को देखताहै पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक को जाताहै ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां क्षेत्रमें उपजा हुआ जो और वृत्तान्त

हुआ है मैं उसको कहूंगा सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो ॥ ५४ ॥ कि वहां ग्रामीण स्थानवाला कोई पुरुष हुआहै जोकि जरात्मक (बूढ़ा) व कोढ़ीथा तिसपर भी वह नित्यही पशुओं की रक्षा करताथा ॥ ५५ ॥ एक समय उस पहाड़के नीचे पशुओं की रक्षा करतेहुये उसका एक पशु तिनुका के लोभसे उत्तम मार्गसे निकल गया ॥ ५६ ॥ व रविवार सप्तमी में उसके झरने में गिरपड़ा और उसने जातेहुये पशुको किसी प्रकार भलीभांति न देखा ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर वह जब तक भोजन के लिये घरको प्राप्तहुआ तबतक घुड़कता हुआ उस पशुका स्वामी भलीभांति समीप आया ॥ ५८ ॥ व बोला कि मेरा वह पशु किस लिये मेरे घर नहीं

आसीत्तत्रपुमान्कश्चिद्देशग्राम्योजरात्मकः ॥ कुष्ठीतथापिनित्यंस करोतिपशुरक्षणम् ॥ ५५ ॥ एकदारक्षतस्तस्य पशूंस्तस्यगिरेरधः ॥ एकःपशुर्विनिष्क्रान्तस्सत्पथात्तृणलोभतः ॥ ५६ ॥ सप्तम्यांरविवारेण पतितस्तस्यनिर्झरे ॥ नचसंलक्षितस्तेन गच्छमानःकथञ्चन ॥ ५७ ॥ अथयावद्गृहंसोथ भोजनार्थमपद्यत ॥ तावत्तस्यपशोःस्वामी भर्त्सयन्समुपागतः ॥ ५८ ॥ नायातःसपशुःकस्मान्मदीयोमामकेगृहे ॥ तस्मादानयतंशीघ्रं नोचेत्प्राणान्हरामिते ॥ ५९ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तस्सकुष्ठीसत्वरंययौ ॥ तेनमार्गेणयेनैव दिवाभ्रान्तोमहीतले ॥ ६० ॥ अथदूरात्सशुश्राव तस्यरावंपशोस्तदा ॥ पतितस्यमहागर्तेनिशान्तेतमसिस्थिते ॥ ६१ ॥ ततोगत्वाथतद्गर्तें प्रविश्यजलमध्यतः ॥ चकर्षतंपशुंकृच्छ्रात्पङ्कमध्यात्सुदारुणात् ॥ ६२ ॥ तमादायाथतद्धर्म्यं प्रजगामशनैश्शनैः ॥ अर्पयित्वाथतंतस्य स्वकीयंचाश्रमंगतः ॥ ६३ ॥ ततःसुप्तोमहाभागः सम्प्रबुद्धःपुनर्यदा ॥ प्रभातेवीक्ष्यतेगात्रं यावत्कुष्ठविवर्जितम् ॥ ६४ ॥

आया उसी कारण शीघ्रही उसको आनिये नहीं तो तेरे प्राणोंको हरूंगा ॥५९॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर भयभीत वह कुष्ठी शीघ्रही उस मार्गसे गया कि जिसी मार्ग से दिनको भूमिमें चलाथा ॥६०॥ इसके अनन्तर जब कि रातके मध्य अन्धकार स्थितथा तब उसने बड़े गढ़ेमें पड़ेहुये उस पशुका शब्द दूरसे सुना॥६१॥ तदनन्तर जाकर व उस गढ़ेमें जलके बीच पैठकर बड़े कठिन कीचड़के बीचसे उस पशुको क्लेशसे खींचा ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर उस पशुको लेकर धीरे२ उसके घरको गया व उसके स्वामीको उसे देकर अपने आश्रमको गया ॥६३॥ उसके उपरान्त वह बड़ा भाग्यवान् सोरहा जब फिर प्रातःकाल जगा व जब तक अपने शरीरको

देखै तब तक परम शोभा से संयुत व कुष्ठरहित होगया तब आश्चर्य से फूले लोचनोंवाले उसने चिन्तन किया कि यह क्या है व किससे रोगका विनाश होगया ॥६४।६५॥ निश्चयकर उसी तीर्थका यह प्रभावहै जोकि मैंने पशुके लिये रात्रिके आगमनमें उत्तम कीचड़को अवगाहन कियाहै ॥६६॥ तदनन्तर समस्त कोढ़से रहित व तेजसे घिराहुआ वह उसीकारण कुतूहलसे जाकर देखताभया ॥ ६७ ॥ वहां स्थानको आपही जाकर व अति उत्तम तीर्थ जानकर वहीं वनवासी सूर्यनारायणको दिन रात भलीभांति ध्यान करतेहुये उस निरालसी ने तपस्या किया व देवोंसे भी दुर्लभ उत्तम सिद्धिको पाया ॥ ६८ । ६९ ॥ इसलिये सब उपायसे उसमें स्नान करै व

शोभयापरयायुक्तं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ चिन्तयामासकिंह्येतत्कस्माद्रोगस्यसंक्षयः ॥ ६५ ॥ नूनंतस्यप्रभावोयं तीर्थस्याद्यनिशागमे ॥ मयावगाहितंयच्च पशोरर्थेसुकर्दमम् ॥ ६६ ॥ ततश्चवीक्षयामास तेनगत्वासुकौतुकात् ॥ यावत्कुष्ठविनिर्मुक्तस्तेजसापरिवारितः ॥ ६७ ॥ तत्रस्थानंस्वयंगत्वा ज्ञात्वातीर्थमनुत्तमम् ॥ तपस्तेपेथतत्रैव ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ ६८ ॥ अरण्यवासिनंसम्यग्दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥ गतश्चपरमांसिद्धिं दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ ६९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ प्रपूजयेच्चतन्देवंभास्करंवारितस्करम् ॥ ७० ॥ अद्यापिकलिकालेच तत्रस्नातोनरःशुचिः ॥ तत्रपुण्यजलेकुण्डे सप्तम्यांसूर्यवासरे ॥ ७१ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या सोपिपापैःप्रमुच्यते ॥ गायत्र्यष्टसहस्रंयो जपेत्तत्पुरतःस्थितः ॥ ७२ ॥ सोपिरोगविनिर्मुक्तो मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तस्योद्देशेनयोदद्याद्धेनुंश्रद्धासमन्वितः ॥ ७३ ॥ नतस्यान्वयजातोपि व्याधितःपरिगृह्यते ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं मयादित्यस्यसम्भवम् ॥ ७४ ॥ साहा

जल चुरानेवाले सूर्य देवको अवश्य पूजै ॥ ७० ॥ आज भी कलिकाल में वहां रविवार सप्तमी में उस पवित्र जलवाले कुण्डमें नहाया हुआ पवित्र पुरुष ॥ ७१ ॥ जो भक्तिसे उन सूर्यनारायण को पूजताहै वह भी पातकों से छूटजाता है व उन सूर्यजीके अगाड़ी खड़ाहुआ जो पुरुष आठ हज़ार गायत्री जप करता है ॥ ७२ ॥ वह भी रोगसे छूटकर समस्त पापोंसे छूटजाता है व श्रद्धासंयुत जो पुरुष उन सूर्यनारायणके उद्देशसे गऊको देताहै ॥७३॥ उसके वंशमें उपजाहुआ भी पुरुष रोगसे

नहीं ग्रहण कियाजाता है मैंने सूर्यनारायणसे उपजे हुये इस समस्त माहात्म्यको तुमलोगों से कहा कि जिसके सुनने से मनुष्य पापसे छूटजाता है ॥ ७४ । ७५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरत्नादित्यमाहात्म्यंनामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा कृष्णसुत साम्बजी साम्बादित्यक नाम । थाप्यो दोसौ तीसरे महँ सो चरित ललाम ॥ सूतजी बोले कि यह रत्नादित्य का माहात्म्य तुम लोगों से कहागया जोकि समस्त पातकों का नाशक व सब कुष्ठोंका हारक कहाहै ॥१॥ वैसेही फिर सूर्य्यनारायण के उत्तम माहात्म्यको सुनिये पुरातन समय कुष्ठरोगसे बहुत

त्म्यंश्रवणाद्यस्य नरःपापाद्विमुच्यते ॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेरत्नादित्यमाहात्म्यंनाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ रत्नादित्यस्यमाहात्म्यमेतद्वःपरिकीर्तितम् ॥ सर्वकुष्ठहरंप्रोक्तं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ भूयस्तथैव माहात्म्यं श्रूयतांपरमंरवेः ॥ पुरासीद्ब्राह्मणःकश्चित्कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ २ ॥ तेनचाराधितस्सूर्य्यस्तत्रस्थेनद्विजोत्तमाः ॥ पूर्वदक्षिणदिग्भागे समासाद्यततःपरम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनजांकृत्वा प्रतिमाम्भावितात्मना ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुष्टस्तस्यदिवाकरः ॥ ४ ॥ वरदोस्मीतितम्प्राह दृष्टिगोचरमागतः ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव कुष्ठव्याधिहरप्रभो ॥ ५ ॥ नान्येनकारणंमेस्ति राज्येनापित्रिविष्टपे ॥ भगवानुवाच ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण कुरुत्वंप्रप्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्स्नात्वापुण्यह्रदेशुभे ॥ फलहस्तःपृथक्त्वेन ततःकुष्ठेनमुच्यसे ॥७॥ अन्योत्रगाङ्गतोयोहि

ही विकल कोई ब्राह्मण हुआ है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां टिकेहुये शुद्धचित्तवाले उसने पूर्व व दक्षिण दिशाके विभागमें प्राप्तहोकर तदनन्तर लाल चन्दन से उपजी हुई मूर्त्तिको बनाकर सूर्यनारायण का आराधन किया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्तमें सूर्यजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ३ । ४ ॥ व दृष्टिगोचर में आयेहुये सूर्य ने उससे यह कहा कि मैं वरदायकहूं ब्राह्मण बोला कि हे प्रभो, देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो कुष्ठरोग को हरिये ॥ ५ ॥ व अन्य त्रिलोक में राज्यसे भी मेरा कारण नहीं है भगवान् सूर्यनारायण जी बोले कि हे विप्रजी ! रविवार सप्तमी में उत्तम पुण्यदायक कुण्ड में नहाकर फल हाथोंवाले तुम भिन्नतासे एकसौ आठ

संख्यक प्रदक्षिणाओं को करिये तदनन्तर कुष्ठसे छूटोगे॥ ६ । ७ ॥ व पृथ्वी में प्राप्त हुआ जो अन्य पुरुष यहां इस व्रतको करैगा सबरोगों से छूटा हुआ वह मेरेलोक को जावैगा ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर श्रद्धासंयुत उस ब्राह्मण ने वैसाही किया और वह उस समय कुष्ठसे छूटगया व दिव्य देहको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर फिर भी भगवान् सूर्यनारायण ने उस नीरोग से कहा कि हे द्विजोत्तम ! मैं आज तुम्हारा क्या प्रियकरूं उसको कहिये ॥ १० ॥ उसने कहा कि हे विभो ! आपको सदैवही यहां टिकना चाहिये भगवान् सूर्यनारायण-जी बोले कि इसके उपरान्त इस स्थानमें मेरा निवास होगा ॥ ११ ॥ व नामसे कुहरवास

व्रतमेतत्करिष्यति ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो ममलोकंसगच्छति ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासतथाचक्रे ब्राह्मणःश्रद्धयान्वितः ॥ विमुक्तश्चतदाकुष्ठाद्दिव्यदेहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥ अथभूयोपितम्प्राह नीरोगंभगवान्रविः ॥ किन्तेप्रियङ्करोम्यद्य वदब्राह्मणसत्तम ॥ १० ॥ सोब्रवीत्सर्वदैवात्रस्थातव्यंभवताविभो ॥ भगवानुवाच ॥ अतःपरंमयावासः स्थानेत्रचभविष्यति ॥ ११ ॥ नाम्नाकुहरवासाख्यं संज्ञाममभविष्यति ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विष्णुपुत्रोबभूवह ॥ १२ ॥ साम्बोनामसुरूपाढ्यो जाम्बवत्याद्विजोत्तमाः ॥ क्षोभसञ्जनकःस्त्रीणां मातॄणामपिसद्विजाः॥ १३ ॥ अथतंराजमार्गेण गच्छन्तंद्विजसत्तमाः ॥ पुरनार्य्योपिसन्तुष्टा वीक्षांचक्रुःसकौतुकाः ॥ १४ ॥ गृहकार्य्याणिसन्त्यज्य समारूढागवाक्षकान् ॥ तस्यकामात्मदेहस्य दर्शनार्थंसमुत्सुकाः ॥ १५ ॥ काश्चिदर्द्धानुलिप्ताङ्ग्यः काश्चिदेकाञ्जितेक्षणाः ॥ अर्द्धसंयमितैःकेशैस्तथान्यास्त्यक्तबालकाः ॥ १६ ॥ एकस्मिंश्चरणेकाचिद्दियोज्योपानहंद्रुतम् ॥ पादुकान्तुद्वितीयेतु

नामक मेरी संज्ञा होगी इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! किसी समय जाम्बवती के सकाश से विष्णुके पुत्र स्वरूपसंयुत साम्ब नामक हुये जोकि हे उत्तम द्विजो ! स्त्रियों व माताओं के भी क्षोभ पैदा करनेवाले थे ॥ १२ । १३ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! राजमार्ग से जातेहुये उन साम्बजीको आश्चर्य समेत व प्रसन्न होतीहुई पुरनारियों ने भी देखा ॥ १४ ॥ व उन कामात्मशरीरवाले साम्ब को देखने के लिये भलीभांति उत्कंठित होती हुई स्त्रिया घरके कामोंको छोड़कर झरोखों में चढ़ गई ॥ १५ ॥ जिनमें से कोई आधे अङ्गमें लेपन किये व कोई एक आंख आंजे हुई व कोई आधे बालोंको बांधे व अन्य पुत्रोंको छोड़ेहुई थीं॥ १६ ॥ व कोई नितम्बिनी

स्त्री शीघ्रही एक पांव में पनहीं व दूसरे में खडाऊं पहन कर दौडी ॥ १७॥ वैसेही जब अन्य स्त्रियां झरोखों में गईं तब भूख से संयुत बालक व गुरू (श्वसुर, जेठादिक) चिल्ला रहेथे ॥ १८ ॥ व नारेके बन्धन के अलग होनेसे व्याकुल-चित्तवाली अन्य उत्तम अंगवती स्त्रियां उन झरोखों में जाती ही भईं ॥ १९ ॥ उस समय कामदेव के समान उन युवावस्था वाले साम्बने भूतलमें गिरीहुई नेत्रोंकी किरणों द्वारा इन स्त्रियोंके हृदयोंको खींच लिया ॥ २० ॥ उन साम्ब-भूपति के उस रूपको देखही कर अचला व कामदेव से तचे हुये अङ्गोंवाली कोई कामिनी स्त्री लिखीहुई सी जान पड़ती थी यानें ज्योंकी त्यों रहगई ॥ २१ ॥ व कोई स्त्रियां उनको देखकर

पर्यधावन्नितम्बिनी ॥ १७॥ व्रजन्तीषुतथान्यासुवनितासुगवाक्षकान् ॥ व्याक्रोशन्तिक्षुधाविष्टाश्शिशवोगुरवस्तथा ॥ १८ ॥ नीवीबन्धनविश्लेषसमाकुलितचेतसः ॥ ययुरेवापरास्तेषु गवाक्षेषुवराङ्गनाः ॥ १९ ॥ सचकर्षतदासाम्ब पतितैर्नेत्ररश्मिभिः ॥ हृदयानिधरापृष्ठे कामदेवसमोयुवा ॥ २० ॥ काचिद्दृष्ट्वैवतद्रूपं तस्यभूपस्यकामिनी ॥ निश्चलाकामतप्ताङ्गी लिखितेवविभाव्यते ॥ २१ ॥ काश्चिदेवसमालोक्य बभूवुःकामपीडिताः ॥ एकास्तंचसमालोक्य रूपयौवनसंयुतम् ॥ २२ ॥ गवाक्षेभ्यःपतन्तिस्म निश्चेष्टाधरणीतले ॥ अन्याःपरस्परालापंप्रकुर्वन्तिवरस्त्रियः ॥ २३ ॥ एषासा कामिनीधन्या यास्यचक्रेवगूहनम् ॥ निश्शेषांरजनींप्राप्यमाघमाससमुद्भवाम् ॥ २४ ॥ आस्तांतावत्स्त्रियोयाश्च नराअपिनिरर्गलम् ॥ जल्पन्तिचेदृशंसर्वं तस्यरूपेणविस्मिताः ॥ २५ ॥ अन्यैर्वदन्तितंकामं राजमार्गेणपूरुषाः ॥ वीक्ष्यमाणाश्चतंयेन नित्यमेवेन्दुसन्निभम् ॥ २६ ॥ कर्णाभ्यांवारितावृद्धिर्नेत्रयोरप्यसंशयम् ॥ नोचेज्जानीमहेनैव कि

कामदेव से पीडित हुईं व एक स्त्रियों ने रूपसे संयुत उन साम्बजी को देखकर ॥ २२ ॥ संज्ञा रहित होती हुई झरोखों से गिरपडीं व अन्य उत्तम स्त्रिया परस्पर में बार्तालाप करती भईं ॥ २३ ॥ यह वह कामिनी धन्यहै कि जिसने माघ महीनेमे उपजीहुई समस्त रातको पाकर इसका आलिंगन किया ॥ २४ ॥ तबतक जो स्त्रियां हैं वे होवैं मनुष्य भी उसके रूपसे विस्मित होते हुये बिनरोंक टोंक ऐसा सब कहते थे ॥ २५ ॥ जिससे कि नित्यही चन्द्रमा के समान उनको देखतेथे उसी से राजमार्ग के द्वारा जातेहुये उन साम्बको मनुष्य कामदेव कहते थे ॥ २६ ॥ व कानों ने नेत्रोंकी वृद्धिको निस्सन्देह मना किया नहीं तो नहीं जानते हैं कि वह वृद्धि

कितनी होती ॥ २७ ॥ इस प्रकार स्त्रियों व पुरुषों से देखेहुये वे पिता के दर्शनकी लालसा वाले साम्बजी राजमार्ग से निकलगये ॥ २८ ॥ बहिनी व जो मातायें व जो भाई की स्त्रिया स्थितथीं वे और ब्राह्मणों की स्त्रियां ऐसी दशाको प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ और जो उनकी माता भी व विशेष कर बहनैं थीं वे ऐसी दशाको प्राप्त भई अन्यदिन प्राप्तहोने पर वर्षा समय में जब रात आई तब ॥ ३० ॥ कृष्ण पक्ष में अन्धकार होनेपर जब कि आगे प्राप्त भीवस्तु नहीं देख पड़ती थी तब नन्दिनी नामक उनकी माता कामदेव के वशमें प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ व उसकी स्त्री का वेषधरकर उन साम्बकी शय्यापै प्राप्तहुई उनने भी अपनी स्त्री जानकर उससे श्रद्धाही

यतीसाभविष्यति ॥ २७ ॥ एवंसवीक्ष्यमाणस्तु कामिनीभिर्नरैस्तथा ॥ निर्ययौराजमार्गेण पितृदर्शनलालसः ॥ २८ ॥ भगिन्योमातरोयाश्च भ्रातृपत्न्यश्चयाःस्थिताः ॥ अवस्थामीदृशींप्राप्ता ब्राह्मणानांतथास्त्रियः ॥ २९ ॥ मातरोपिचया स्तस्य भगिन्यश्चविशेषतः ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते प्रावृट्कालेनिशागमे ॥ ३० ॥ कृष्णपक्षेतमोभूते अलक्ष्येपिगते पुरः ॥ तन्मातानन्दिनीनाम कामदेववशंगता ॥ ३१ ॥ तत्पत्न्यावेषमाधाय तस्यशय्यामुपस्थिता ॥ सोपितांचस्व कांज्ञात्वा सेवयामासकामिनीम् ॥ ३२ ॥ रतोपचारविविधैःश्रद्धयैवविनिर्मितैः ॥ तयातत्रयदुश्रेष्ठो निकाममकरोत्तदा ॥ ३३ ॥ अङ्गराजसुतायामे प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ नैवंविधंरतंवेद अनयायद्विनिर्म्मितम् ॥ ३४ ॥ वेश्याअपिनजानन्ति रतमीदृक्कथञ्चन ॥ ततोगाढंकरेधृत्वा दीपमानीयतत्क्षणात् ॥ ३५ ॥ यावत्पश्यतिसामाता नन्दिनीतिचया स्मृता ॥ ततश्चगर्हयामास धिक्पापेकिमिदंकृतम् ॥ ३६ ॥ गर्हितंसर्वलोकानां नरकार्तिप्रदंतथा ॥ सापिलज्जासमोपे

से कियेहुये अनेक प्रकार के रतिके उपचारोंसे उसे सेवन किया व उस समय यदूत्तम साम्बने इच्छाके अनुकूल रति किया ॥ ३२ । ३३ ॥ व विचार किया कि अंग राजकी कन्या जोकि मुझको प्राणोंसे भी प्यारी है वह इस प्रकार के रतिको नहीं जानती है जैसा कि इसने किया है ॥ ३४ ॥ व वेश्यायें भी किसी प्रकार ऐसे रति को नहीं जानती हैं तदनन्तर हाथमें पुष्ट पकड कर व उसी क्षण दीपक को आनकर ॥ ३५ ॥ जब तक देखैं तब तक वह माता थी जोकि नन्दिनी ऐसी कही जाती थी तदनन्तर निन्दा किया कि हे पापिनि ! तूने यह क्या किया ॥ ३६ ॥ जोकि समस्त मनुष्यों को निन्दित व नरकके क्लेश का दायकहै लज्जासे संयुत व बड़े भय

से विकल वह भी ॥ ३७ ॥ बड़े डरसे युक्तहोती हुई उसी क्षणही भगगई हे ब्राह्मणो ! व वैसेही साम्ब ने भी विकल होकर नींदको न पाया ॥ ३८ ॥ उस समय उन साम्बजीको बचीहुई रात सौ वर्षके समान होगई इसके अनन्तर जब रातबीत गई तब सूर्य मण्डल के उदय होनेपर ॥ ३९ ॥ बड़े दुःखसे संयुत वे विष्णुजी के पुत्र साम्बजी उठे व आवश्यक भी कार्यको छोड़कर धर्म शास्त्र विधिके जाननेवाले किसी उत्तम ब्राह्मणको भलीभांति आनकर इसके उपरान्त हाथजोड़े खड़े हुये व नम्रतासे संयुत होकर एकान्त में बोले ॥ ४० । ४१ ॥ कि माता, बहन व कन्याके साथ यदि मोहन होवै तो उसकी परमार्थ से कैसे शुद्धिहोवै क्रम पूर्वक समस्त धर्म

ता महाभयसमाकुला ॥ ३७ ॥ प्रणष्टातत्क्षणादेव भयेनमहतान्विता ॥ साम्बोपिचतथैवार्तो निद्रांलेभेनवैद्विजाः॥३८॥ रात्रिशेषमभूत्तस्य तदावर्षशतोपमम् ॥ अथरात्र्यांव्यतीतायां प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ३९ ॥ दुःखेनमहतायुक्तः प्रोत्थितस्सहरेस्सुतः ॥ आवश्यकमपित्यक्त्वा कञ्चिद्ब्राह्मणमुत्तमम् ॥ ४० ॥ धर्म्मशास्त्रविधानज्ञं समानीयाथचाब्रवीत् ॥ रहस्येविनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ४१ ॥ मात्रास्वस्राद्दुहित्रावा स्वयंस्याद्यदिमोहनम् ॥ कथंशुद्धिर्भवेत्तस्यपरमार्थेनतद्वद ॥ ४२ ॥ धर्म्मशास्त्राणिसंवीक्ष्य सर्वाणिचयथाक्रमम् ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ परनार्य्याःकृतेवत्स प्रायश्चित्तंविनिर्म्मितम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मद्रोणेषुसर्वेषु वर्णानाञ्चपृथग्विधम् ॥ आसाञ्चतिसृणाञ्चैव स्त्रीणांतुपरिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥ एकमेवविनिर्दिष्टं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ ४५ ॥ मात्रामोहनमासाद्य भगिन्याचाथयद्भवेत् ॥ दुहित्राचप्रमादाच्चयदिसंगम्यतेसुधीः ॥ ४६ ॥ शुद्ध्यर्थंतिङ्गिनीमेकां नान्यजानाम्यहंद्विजाः ॥ ४७ ॥ धर्म्मद्रोणेषुसर्वेषु निर्णयोयमुदाहृ

शास्त्रोंको भलीभांति देखकर उसको कहिये ब्राह्मण बोला कि हे वत्स ! पराई स्त्री के लिये समस्त धर्मशास्त्रों में वर्णोंको भिन्न प्रकार का प्रायश्चित्त निर्माण किया गया है व इन तीनों स्त्रियोंकी विशुद्धिके लिये एकही प्रायश्चित्त निर्देश किया हुआकहाहै ॥ ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! यदि माता व बहनसे जो मोहनको प्राप्त होवै व असावधानता से कन्याके साथ संगको प्राप्त होवै तो शुद्धिके लिये एक तिंगिनी को जानता हूं मैं और नहीं जानताहूं ॥ ४६ । ४७ ॥ हे यदु पुङ्गव !

समस्त धर्म के ग्रन्थों में यह निर्णय कहा गया है जोकि मैंने तुमसे कहा और नहीं है ॥ ४८ ॥ व पूंछा हुआ जो पुरुष अपनी इच्छा से अन्यथा प्रायश्चित्त करता है वह वैसेही उसके पापका भागी होताहै जैसे कर्ता होताहै ॥ ४९ ॥ साम्ब बोलेकि हे द्विजोत्तम ! तिंगिनी का क्या स्वरूप व क्या प्रमाण है सब विस्तारसे कहिये मेरा इसमें प्रयोजनहै ॥ ५० ॥ ब्राह्मण बोला कि हे यादव ! गऊकेमार्गवाली धूलि लेकर मुख पर्यन्त अपने प्रमाणसे उपजेहुये गढ़ेको भरकर उसमें शयन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ व उसमें ऊपरसे गऊके मार्गसे उपजीहुई धूलिको धरना चाहिये व मुख प्रमाणतक सब ओरसे गर्तमान कराकर ॥ ५२ ॥ तदनन्तर चरणके स्थान

तः ॥ योमयातेचकथितो नान्योऽस्तियदुपुङ्गव ॥ ४८ ॥ अन्यथायोवदेत्पृष्टः प्रायश्चित्तंस्वछन्दतः ॥ तस्यपापस्यभागीस्याद्यथाकर्तातथैवसः ॥ ४९ ॥ साम्बउवाच ॥ तिङ्गिन्याःकिंस्वरूपंच किंप्रमाणंद्विजोत्तम ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि ममास्त्यत्रप्रयोजनम् ॥ ५० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गोवाटचूर्णमादाय गर्तंभृत्वास्वमानजम् ॥ शयनंतत्रकर्तव्यं यावद्वक्त्रेण यादव ॥ ५१ ॥ उपरिष्टात्तत्रचूर्णं धार्य्यंगोवाटसम्भवम् ॥ यावद्वक्त्रप्रमाणञ्च वर्तयित्वाचसर्वतः ॥ ५२ ॥ ततःपादप्रदेशेतु ज्वालयेद्धव्यवाहनम् ॥ यथायथाशनैर्दाहः शरीरस्यप्रजायते ॥ ५३ ॥ नचैवचालयेदङ्गं कथञ्चित्तत्रसंस्थितः ॥ नैवाक्रन्दंतथाकुर्य्याद्ध्यायेदेकंजनार्द्दनम् ॥ ५४ ॥ ततोजीवितनाशेन मातृशुद्धिःप्रजायते ॥ तिङ्गिन्यायत्स्वरूपञ्च तन्मयापरिकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ प्रायश्चित्तमिदंसम्यङ्महापातकनाशनम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ ५६ ॥ हृदयेनिश्चयंकृत्वा तिङ्गिनीसाधनोद्भवम् ॥ ततःप्रोवाचविजनं वासुदेवंघृणान्वितः ॥ ५७ ॥ ताताहंविप्रलब्ध

में अग्निको जलावै ज्यों २ धीरे २ शरीरका दाह होता जावै ॥ ५३ ॥ उसमें भलीभांति टिकाहुआ वह किसी प्रकार अंग न चलावै व रोदन न करै और एक विष्णुजी को ध्यान करै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर जीवके नाशसे माता के पातकसे शुद्धिहोती है तिंगिनी का जो स्वरूप है मैंने उसको कहा ॥ ५५ ॥ यह प्रायश्चित्त भलीभांति महा पातकों का नाशक है उनके उस वचनको सुनकर जाम्बवती के पुत्र साम्ब जीने ॥ ५६ ॥ तिंगिनी साधन से उपजेहुये निश्चयको करके तदनन्तर घृणा

संयुत हो एकान्तमें विष्णुजीसे कहा ॥ ५७ ॥ कि हे पिताजी ! अन्धकार स्थित होने पर स्त्रीका रूपधरकर नन्दिनी नामक तुम्हारी पापिनी स्त्रीने मुझको छललिया ॥ ५८ ॥ मैंने अपनी स्त्रीकी बुद्धिकरके उसका निश्चय किया तदनन्तर कर्मको जानकर उसे निन्दकर बिदाकिया ॥ ५९ ॥ तबसे लगाकर मेरे यह कुष्टरोग स्थितहै इसके अनन्तर मैंने किसी धर्मशास्त्र के जानने वाले द्विजसे पूंछा ॥ ६० ॥ कि माताके सेवन से यथोक्त प्रायश्चित्त मुझसे कहो उसने मेरी शुद्धिके लिये भलीभाति तिगिनी साधन कहा ॥ ६१ ॥ सो मैं उस पापकी शुद्धिके लिये उस तिंगिनी को साधन करूंगा मुझको शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि जिससे मैं कार्य्य करूं ॥ ६२ ॥ व शिशु

स्तु नन्दिन्यातवभार्य्यया ॥ भार्य्यायारूपमाधाय पापयातमसिस्थिते ॥ ५८ ॥ सामयानिजभार्य्याया मतिंकृत्वावि निश्चिता ॥ ततस्तुचेष्टितंज्ञात्वा गर्हयित्वाविसर्ज्जिता ॥ ५९ ॥ ततःप्रभृतिमात्रम्मे कुष्ठव्याधिरयंस्थितः ॥ मयाथध र्म्मशास्त्रज्ञः कश्चित्पृष्टोद्विजोत्तमः ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्तंयथोक्तंमे वदमातृनिषेवणात् ॥ तेनोक्तंसाधनंसम्यक्तिङ्गिन्या ममशुद्धये ॥ ६१ ॥ सोहन्तांसाधयिष्यामि तस्यपापस्यशुद्धये ॥ अनुज्ञान्देहिमेशीघ्रं कार्य्यंयेनकरोम्यहम् ॥ ६२ ॥ क्षन्तव्यञ्चमयाबाल्ये यत्किञ्चित्कुकृतंकृतम् ॥ मममातायथादुःखं नकुर्य्यात्त्वंतथाकुरु ॥ ६३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य वज्रपातोपमंहरिः ॥ वाष्पपूर्णेक्षणोदीनस्ततःप्रोवाचगद्गदम् ॥ ६४ ॥ नत्वयाकामतःपुत्र कृत्यमेतदनुष्ठितम् ॥ नज्ञा नेनकृतंयस्मात्तस्मात्स्वल्पंहिपातकम् ॥ ६५ ॥ ज्ञानतोयत्कृतंपापं तन्नैवाक्षयतांव्रजेत् ॥ नकरोतिमहीपालो यदित स्यविनिग्रहम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्तेकीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ दानञ्चैवमहाभाग येनकुष्ठंप्रणश्यति ॥ ६७ ॥

तामें मैंने जो कुछ दुःकृत (अपराध) कियाहो वह क्षमा करना चाहिये और मेरी माता जिस प्रकार दुःख न करै तुम वैसाही करो ॥ ६३ ॥ उन साम्बजी के उस वचन को वज्रपात के समान सुनकर तदनन्तर दीन व आंसुवों से पूर्ण नेत्रों वाले विष्णुजी गद्गद वचनबोले ॥ ६४ ॥ कि हे पुत्र ! जिसलिये तुमने इच्छासे यह कार्य नहीं किया न ज्ञानसे किया उसी कारण थोड़ा पापहै ॥ ६५ ॥ क्योंकि ज्ञानसे जो पाप किया जाताहै वह अक्षयता को नहीं प्राप्तहोता है यदि भूपाल उसका

दण्ड न करै ॥ ६६ ॥ इस लिये हे महाभाग ! विशुद्धिके लिये तुमसे प्रायश्चित्त व दान कहूंगा। जिससे कुष्ठ नाश होजावै ॥ ६७ ॥ कहे व मना किये व फिर सम्भाव ना किये हुये व अपेक्षा समेत व अपेक्षा रहित सम्पूर्ण मुनियों के वचन हैं ॥ ६८ ॥ हे पुत्र ! वह यहां विद्यमान है मेरा वचन करिये तो बड़ा कल्याण होगा। व पातक की हानि होगी ॥ ६९ ॥ हाटकेश्वर जी से उपजेहुये क्षेत्रमें विश्वामित्र जी से थापे हुये समस्त कुष्ठोंके विनाशक व अति प्रसिद्ध सूर्य्यनारायण जी हैं ॥ ७० ॥ जब बैशाख महीना भलीभांति प्राप्तहोवै तब शुक्ल पक्षके भलीभांति आनेपर रविवार को पितृ देवता वाले (मघा) नक्षत्रमें ॥ ७१ ॥ सूर्य्यनारायण का उदय प्राप्त होने

उक्तानिप्रतिपिद्धानि पुनःसम्भावितानिच ॥ सापेक्षनिरपेक्षाणिमुनिवाक्यान्यशेपतः ॥ ६८ ॥ तदत्रविद्यतेपुत्र मम व.क्यंसमाचर ॥ भविष्यतिमहच्छ्रेयः पापहानिस्तथैवच ॥ ६९ ॥ हाटकेश्वरजक्षेत्रे विश्वामित्रप्रतिष्ठितः ॥ मार्तण्डोस्तिसुविख्यातः सर्वकुष्ठविनाशकः ॥ ७० ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यां सम्प्राप्तेमासिमाधवे ॥ नक्षत्रेपितृदैवत्ये शुक्लपक्षेसमागते ॥ ७१ ॥ भास्करस्योदयेप्राप्ते श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्कुरुतेचप्रदक्षिणम् ॥ ७२ ॥ तावत्संख्यांपुमानेव सूर्य्यलोकेमहीयते ॥ सूर्य्यवारेणयोमर्त्यस्तस्यकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ७३ ॥ नमस्करोतिसद्भक्त्या सोपिरोगैःप्रमुच्यते ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग तमाराधयभास्करम् ॥ ७४ ॥ देवंचविधिनानेन योमयोक्तोखिलस्तव ॥ अविकल्पेनमनसा समाराधयसत्वरम् ॥ ७५ ॥ मुक्तरोगोविपाप्माथदिव्यदेहमवाप्स्यसि ॥ माकुरुष्वविषादन्तं कुष्ठव्याधिसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेस्थितेदेवे कुहराश्रयसंज्ञिते ॥ अथतद्वचनंश्रुत्वाप्रस्थितोविष्णुनन्दनः ॥७७॥ सूतउवाच ॥

पर श्रद्धासे पवित्र चित्त करके जो पुरुष एक सौ आठ प्रदक्षिणायें करता है ॥ ७२ ॥ वह मनुष्य उतनीही संख्यक वर्षों तक सूर्यलोक में पूजित होताहै रविवार सप्तमी में जो पुरुष उन सूर्यनारायण की प्रदक्षिणा करताहै ॥ ७३ ॥ व उत्तम भक्तिसे प्रणाम करताहै वह भी रोगोंसे छूटजाता है इस लिये हे महाभाग ! तुम उन सूर्यनारायण का आराधन करो ॥ ७४ ॥ मैंने जो सब तुमसे कहा है इसी विधिसे निर्भेद मनके द्वारा शीघ्रही सूर्यदेवका आराधन करो ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर बिन पाप व रोगसे छुटेहुये तुम दिव्य शरीरको पावोगे जबकि उस क्षेत्रमें कुहराश्रय संज्ञक देव स्थित हैं तब तुम कुष्ठरोग से उपजेहुये विषाद को मत कीजियो इसके अनन्तर

एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य देवदेवस्यचक्रिणः ॥ चकारगमनेबुद्धिं साम्बोसावर्बुदम्प्रति ॥ ७८ ॥ ततःशुभेऽहनिप्राप्ते हस्त्यश्वरथसंयुतः ॥ प्रतस्थेससुतोविष्णोस्सेनयापरिवारितः ॥ ७९ ॥ अनुयातःसदूरंच कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ बाष्पपूर्णेक्षणेनैव सर्वेणानुजनेनच ॥ ८० ॥ बलभद्रेणवीरेणवसुदेवेनधीमता ॥ ततोजाम्बवतीपुत्रं दृष्ट्वातीर्थोन्मुखंतदा ॥ ८१ ॥ गच्छमानंप्रचक्रेथ प्रलापान्कुररीयथा ॥ हाहतास्मिविनष्टास्मि मन्दभाग्याह्यभागिनी ॥ ८२ ॥ एकोपितनयो यस्या ममायंनदृशङ्कतः ॥ अथतांरुदतींदृष्ट्वा प्रोवाचमधुसूदनः ॥ ८३ ॥ किममङ्गलमेतस्य प्रस्थितस्यकरिष्यसि ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीना मुक्तकेशीविशेषतः ॥ ८४ ॥ एषव्याधिविनिर्मुक्तस्तीर्थयात्राफलान्वितः ॥ कुष्ठव्याधिविनिर्मुक्तःपुनरेष्यतितेऽन्तिकम् ॥ ८५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयानादवतीर्य्यत्वरान्वितः ॥ साम्बोसौप्रस्थितस्तत्र यत्रजाम्बवतीस्थिता॥ ८६॥सप्रणम्यप्रहृष्टात्मा कृताञ्जलिपुटःस्थितः॥प्रणिपत्यविहस्योच्चैर्वाक्यमेतदुवाचह ॥ ८७ ॥ मात्वंमातर्वृथादुःखम

उस वचनको सुनकर विष्णुजी के पुत्र साम्बजी ने प्रस्थान किया ॥ ७६ । ७७ ॥ सूतजी बोले कि उन देव देव चक्रधारी विष्णुजीके यह वचन सुनकर इन साम्बने अर्बुद पहाड़पै जानेकी बुद्धि किया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर शुभदिन प्राप्त होनेपर हाथी, घोड़ों व रथों से संयुत व सेना से घिरेहुये उन विष्णुजी के साम्बपुत्र ने प्रस्थान किया ॥ ७९ ॥ आंसुवोंसे पूर्ण नयनहीं वाले समस्त अनुगामी जन समेत सहज कर्मोंवाले कृष्ण व बलभद्र वीर व बुद्धिमान् वसुदेव जी दूर तक उन साम्ब के पीछे चलेगये तदनन्तर उस समय तीर्थ के सामने जातेहुये पुत्रको देखकर जाम्बवतीने जैसे कि कुररी होवै वैसेही विलाप किया कि अभागिनी व मन्द भागिनी मैं हाय मरगई व नष्ट होगई ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ क्योंकि जिसका एक भी पुत्र दृष्टिमें न प्राप्तहुआ इसके अनन्तर रोतीहुई उस जाम्बवतीको देखकर मधु दैत्यके मारने वाले विष्णुजीबोले ॥ ८३ ॥ कि आंसुवोंसे पूर्ण नेत्रोंवाली व दीन और विशेषकर छुटे हुये बालोंवाली तुम इन प्रस्थान कियेहुये साम्बका क्यों अशकुन करती हो ॥ ८४ ॥ रोगसे छुटे व तीर्थयात्रा के फलसे संयुत और कुष्टरोग से छोड़ेहुये ये साम्बजी फिर तुम्हारे समीप आवैंगे ॥ ८५ ॥ इसी अवसर में सवारी से उतर कर शीघ्रता संयुत ये साम्बजी वहां गये जहां कि जाम्बवती बैठीथी ॥ ८६ ॥ प्रसन्न मनवाले व हाथोंको जोड़े खड़ेहुये वे साम्बगिरकर प्रणाम करके व उच्च प्रकारसे वि-

हँसकर यह वचन बोले ॥ ८७ ॥ कि हे मातः ! हमारे लिये तुम वृथा दुःख मतकरो क्योंकि मैं तीर्थ यात्रा करकेशीघ्रही आऊंगा ॥ ८८ ॥ जाम्बवती बोलीं कि हे वत्स, पुत्र ! वनमें वे समस्त वनके देवता हिंसक जंगली जीवों व दुष्ट पिशाचों से सब ओर तुम्हारी रक्षाकरैं ॥ ८९ ॥ गोविन्द जी तुम्हारे मस्तक की रक्षाकरैं व मधुसूदन जी कण्ठ (गले) की रक्षाकरैं व हृषीकेश भुजाओं की तथा दैत्यों के नाश ने वाले हृदय की रक्षाकरैं ॥ ९० ॥ पुण्डरीकाक्ष पेटकी व गदाधर कटिकी रक्षाकरैं और कृष्णजी दोनों फीलियों की तथा भूधरजी चरणों की रक्षाकरैं ॥ ९१ ॥ उन जाम्बवती ने अपने हाथसे उन साम्बके अंगोंको भलीभांति छूकर व लिपटाकर व

स्मदर्थेकरिष्यसि ॥ आगमिष्याम्यहंशीघ्रं तीर्थयात्रांविधायवै ॥ ८८ ॥ जाम्बवत्युवाच ॥ रक्षन्तुत्वांवनेवत्स सर्वास्तावनदेवताः ॥ श्वापदेभ्यःपिशाचेभ्यो दुष्टेभ्यःपुत्रसर्वतः ॥८९॥ शिरस्तेपातुगोविन्दः कण्ठञ्चमधुसूदनः ॥ बाहुदेशंहृषीकेशो हृदयंदैत्यनाशनः ॥ ९० ॥ जठरंपुण्डरीकाक्षः कटिंपातुगदाधरः ॥ जानुनोर्युगलंकृष्णः पादौचधरणीधरः ॥ ९१ ॥ एवंसंस्पृश्यहस्तेननिजेनाङ्गानितस्यसा ॥ समालिङ्ग्यसमाघ्रायपूर्वदेशेमुहुर्मुहुः ॥ ९२ ॥ प्रेषयामास तम्पुत्रं कृतरक्षंयशस्विनी ॥ सासर्वतःपुरीयुक्ता निवृत्तातदनन्तरम् ॥ ९३ ॥ अश्रुपूर्णेक्षणादीना निःश्वसन्तीयथोरगी ॥ तथाचभगवान्विष्णुर्यादवैस्सकलैस्सह ॥ ९४ ॥ प्रविष्टोद्वारकापुर्य्यां साम्बंप्रेष्यततःपरम् ॥ अश्रुपूर्णेक्षणोदीनो बलभद्रपुरस्सरः ॥ ९५ ॥ पुत्रैःपौत्रैस्तथामित्रैर्बान्धवैरपरैरपि ॥ द्वारकायाविनिष्क्रम्य साम्बोपिद्विजसत्तमाः ॥ ९६॥ सम्प्राप्तश्चक्रमेणाथ सिन्धुसागरसङ्गमे ॥ यत्रयोगीश्वरस्साक्षादम्बरीषप्रतिष्ठितः ॥ ९७ ॥ अद्यापितिष्ठतेविष्णुर्ज

पूर्वदेश (मस्तक) में बार २ सूंघकर ॥ ९२ ॥ उन कीर्तिमती ने की हुई रक्षावाले उसपुत्रको पठाया तदनन्तर जैसे कि नागिनि होवै वैसेही श्वासलेती हुई व दीन तथा आंसुवों से पूर्ण नयनों वाली व सब ओर सखियों से संयुत वे नगरी को लौटीं वैसेही समस्त यादवों समेत भगवान् विष्णुजी ॥ ९३ । ९४ ॥ साम्बको पठाकर तदनन्तर द्वारकापुरी में पैठे व बलभद्रहैं अग्रगामी जिनके वे कृष्ण जी पुत्रों व पौत्रों और मित्रों तथा अन्यभी भाइयों समेत आंसुवों से पूर्णनेत्रों वाले व दुखिया हुये हे द्विजोत्तमो ! द्वारका से निकल कर साम्बभी ॥ ९५ । ९६ ॥ इसके अनन्तर सिन्धु नदी व समुद्र के सङ्गम में भलीभांति प्राप्तहुये जहां कि अम्बरीष से थाप

हुये साक्षात् योगीश्वर थे ॥ ९७ ॥ आजभी नरोंके पाप नाशक विष्णुजी जहां पै टिके हैं वहा नहाकर तदनन्तर योगीश्वर देवको भलीभांति पूजकर ॥ ९८ ॥साम्ब ने शक्तिसे ब्राह्मणों के लिये व दीन, अन्ध व कृपणों और अन्यों ही के लिये अनेक प्रकार के दानोंको दिया ॥ ९९ ॥ व सवारियों तथा वसनों व रत्नोंको दिया कि जिससे जो यथा योग्य था और सावधान होतेहुये वे विष्णुके पुत्र वहां तीन रातें टिके ॥ १०० ॥ तदनन्तर पुण्यदायक च्यवन जीके आश्रम को गये जहां कि सिंधु नदी के पुण्यरूप किनारे पै च्यवनसे थापेहुये समस्त पातकोंके नाशक विष्णुजी भलीभांति टिकेहैं वहां भी मुख्य ब्राह्मणों के लिये विधिपूर्वक दान देकर॥ १। २ ॥

तत्रस्नात्वासमभ्यर्च्य देवंयोगीश्वरंततः ॥ ९८ ॥ ददौदानानिविप्रेभ्यो नानारूपाणिशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च तथैवान्येभ्यएवच ॥ ९९ ॥ यानानिवस्त्ररत्नानि यच्चयेनयथोचितम् ॥ सत्रिरात्रंहरेःपुत्रः स्थितस्तत्रसमाहितः ॥ १०० ॥ च्यवनस्याश्रमंपुण्यं जगामाथततःपरम् ॥ यत्रसन्तिष्ठतेविष्णुश्च्यवनेनप्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ सिन्धोस्तटेचपुण्येच सर्वपातकनाशनः ॥ तत्रापिविप्रमुख्येभ्यो दत्त्वादानंयथाविधि ॥ २ ॥ त्रिरात्रंप्रजगामाथ स्नात्वासिन्धूदकेशुभे ॥ ततस्तुपुष्करादीनि समुद्दिश्यशनैश्शनैः ॥ ३ ॥ पुष्करावासिनन्देवं ध्यायमानस्त्वहर्निशम् ॥ ततस्तुपुष्करंप्राप्य क्रमेणयदुसत्तमः ॥ ४ ॥ पुण्येकुण्डजलेस्नात्वा सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण गृहीत्वासुफलानिच ॥ ५ ॥ गतःसन्तिष्ठतेयत्र देवोवैविष्णुसूचितः ॥ पूजयित्वाततोभक्त्या देवंकुहरवासिनम् ॥ ६ ॥ वस्त्रानुलेपनैर्धूपैर्नैवेद्यैश्चपृथग्विधैः ॥ ततःप्रदक्षिणीचक्रे फलहस्तःशनैश्शनैः ॥ ७ ॥ प्रपठन्सूर्य्यगायत्रीं श्रद्धयापर

को भलीभांति उद्देशकर धीरे २ चलेगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर दिन रात पुष्करमें बसने वाले देव को ध्यातेहुये यदुश्रेष्ठ साम्बजी क्रमसे पुष्कर को प्राप्तहोकर ॥ ४ ॥ व पुण्यदायक कुण्डके जलमें नहाकर व पितरों और देवोंको भलीभांति तर्पण कर व रविवार-सप्तमी में उत्तम फलोंको लेकर ॥ ५ ॥ वहांगये जहा कि विष्णुजी से बतलाये हुये देव भलीभांति टिकेथे ॥६॥ तदनन्तर कुहरवासी देव को भक्तिके द्वारा वसनों व अनुलेपनों व धूपों और अनेक प्रकारकी नैवेद्योंसे पूजकर उमके उपरान्त फल-हाथोंवाले व परम श्रद्धासे संयुत साम्बजी ने सूर्यगायत्री

तीन रातें बसे इसके अनन्तर शुभ दायक सिन्धुके जल में नहाकर तदनन्तरपुष्करादिकों

को पढ़तेहुये धीरे २ प्रदक्षिणा किया ये साम्बजी ज्यों२ उन सूर्यकी प्रदक्षिणा करतेथे ॥ ७ । ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! त्यों २ उनका कुष्ठ शान्तिको प्राप्त होताथा उसी क्षण उन बुद्धिमान् साम्बजी का चित्त प्रसन्न हुआ ॥ ९ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! भेद रहित मैं कुष्ठरोग से छूट गया तदनन्तर उनके साथ जो कुछ वहां आयाथा ॥१०॥ वह सब हाथी, घोड़ा, रथ व रत्नादिक नागर द्विजों के भक्ति पूर्वकदिया व और सब पांच गांवोंको दिया ॥ ११ ॥ व साम्बादित्यको थापकर तदनन्तर घरको प्रस्थान किया और जो कुछ धनथा वह सब भक्ति संयुत साम्बने ॥ १२ ॥ सूर्यजी के ब्राह्मणों के लिये दिया और सूर्यनारायण को पूजकर आठ हज़ार घोड़े व तीन सौ

यायुतः ॥ यथायथाकरोत्येष रवेस्तस्यप्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥ तथातथाशमंयाति तस्यकुष्ठंद्विजोत्तमाः ॥ तत्रक्षणेभवत्त
स्य चित्तंहृष्टंसुधीमतः ॥ ९ ॥ मुक्तोहंकुष्ठरोगेण निर्विकल्पंद्विजोत्तमाः ॥ ततश्चसहितन्तेन यत्किञ्चित्तत्रचागतम् ॥
१० ॥ हस्त्यश्वरथरत्नाद्यं तत्सर्वंभक्तिपूर्वकम् ॥ नागराणांददौसर्वं तथान्यद्ग्रामपञ्चकम् ॥ ११ ॥ साम्बादित्यंप्रतिष्ठा
प्यततःसंप्रस्थितोगृहम् ॥ किञ्चित्तुद्रविणंयच्च तत्सर्वंभक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥ प्रददौसूर्य्यविप्रेभ्यः पूजयित्वादिवाकरम् ॥
अष्टौवाजिसहस्राणि नागानाचशतत्रयम् ॥ १३ ॥ रथानांषट्शतान्येव अन्यैर्युक्तानिवाजिभिः ॥ अनन्तानिचर
त्नानि दत्त्वासाम्बोगृहङ्गतः ॥ १४ ॥ यएतत्पठतेभक्त्या साम्बाख्यानमनुत्तमम् ॥ शृणोतिचान्वयेतस्य नकुष्ठंसम्प्र
जायते ॥ १५ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं विश्वामित्रीयमुत्तमम् ॥ चतुर्थंपुण्यतीर्थंच स्त्रीणांचैवशुभावह
म् ॥११६॥ इति श्रीविश्वामित्रीयमाहात्म्येकुहरादित्यसाम्बादित्यप्रभावोनामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०३ ॥

हाथी ॥ १३ ॥ व अन्य घोड़ोंसे युक्त छःसौ रथों व अनन्त रत्नोंको देकर साम्बजी घरगये ॥ १४ ॥ जो मनुष्य इस अतिउत्तम साम्बजी के आख्यान को भक्तिसे पढ़ता या सुनताहै उसके वंशमें कुष्ठ नहीं होताहै ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि इस विश्वामित्रवाले चौथे उत्तम समस्त पुण्यतीर्थको तुमलोगों से वर्णन किया जो कि स्त्रियों को शुभदायक है ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविश्वामित्रीयमाहात्म्येकुहरादित्यसाम्बादित्यप्रभावो नामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । विश्वामित्र द्विजत्व हित पूज्यो गणपति देव । इकसौ चौथे में सोई कहत चरित सुखदेव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसेही वहांपर मनुष्योंको समस्त सिद्धिदायक अन्यभी विश्वामित्र से थापेहुये गणनायकजी हैं ॥ १ ॥ माघ महीनेमें शुक्लपक्षवाली चौथिमें जो मनुष्य उनको पूजता है वह वर्षभर तक समस्त विघ्नों से छूटजाता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस समय गणनायक की उत्पत्ति को कहिये कि ये कैसे उत्पन्न हुये व क्या माहात्म्य कहाहै ॥३॥ सूतजी बोले कि पार्वतीजी ने अपने अंगके मलसे इनको क्रीडाके लिये उत्पन्न किया है जोकि मनुष्य वाले अंगों व हाथीके मुखसे शोभितहैं ॥ ४॥ व चारों हाथों

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति विश्वामित्रप्रतिष्ठितः ॥ गणनाथोद्विजश्रेष्ठास्सर्वसिद्धिप्रदोनृणाम् ॥ १ ॥ माघमासेचतुर्थ्यांच शुक्लायांपूजयेत्तुयः ॥ सचसंवत्सरंयावत्सर्वविघ्नैर्विमुच्यते ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ गणनाथस्यचोत्पत्तिं साम्प्रतंसूतनोवद ॥ कथमेषसमुत्पन्नः किंमाहात्म्यंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एषचोत्पादितोंगौर्य्या निजाङ्गमलतःस्वयम् ॥ क्रीडार्थेमानुषैरङ्गैर्मातङ्गाननशोभितः ॥ ४ ॥ चतुर्हस्तसमोपेत आखुवाहनगस्तथा ॥ कुठारहस्तश्च तथा मोदकाशनतोषकृत ॥ ५ ॥ सर्वसिद्धिप्रदोलोके भक्तानांचविशेषतः ॥ एषपूर्वंप्रभोःकार्य्येसंग्रामेतारकामये ॥६॥ संग्राममकरोद्रौद्रं नकृतंतच्चकेनचित् ॥ निहतादानवास्सर्वेसंख्ययापरिवर्ज्जिताः ॥ ७ ॥ ततःशक्रेणतुष्टेन प्रोक्तःसंग्रामभूमिपः ॥ क्षतविक्षतसर्वाङ्गो रुधिरेणपरिप्लुतः ॥ ८ ॥ अस्मदर्थेत्वयायुद्धं यत्कृतन्तुगजानन ॥ निहतादानवास्सर्वे संख्ययापरिवर्जिताः ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वंसर्वदेवानामपिपूज्योभविष्यसि ॥ किंपुनर्मानुपाणांच येनित्यंविघ्नसंप्लु

से संयुत तथा मूसकी सवारी पै प्राप्त व फरसा हाथ वाले व लड्डुवोंके भोजन से प्रसन्नता कारकहैं ॥ ५ ॥ व संसार में विशेषकर भक्तोंको समस्त सिद्धि दायक हैं इन गणेशजी ने पहले प्रभुके तारका मय युद्धके कार्यमें ॥ ६ ॥ भयंकर समर किया कि उसको किसी ने नहीं कियाथा संख्यासे रहित (असंख्य) सब दानव मारे गये ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न इन्द्रने समर भूमिके स्वामी (गणेश) जी से कहा जोकि कटेपिटे समस्त अंगोंवाले व रक्तसे डूबेहुये थे ॥ ८ ॥ हे गजानन ! जिस लिये तुमने हमारे लिये युद्धकिया व असंख्य समस्त दानवोंको मारा है ॥ ९ ॥ उसी कारण तुम समस्त देवताओं के भी पूजने योग्य होगे फिर मनुष्यों को क्या क-

हना है जोकि नित्यही विघ्नसे संयुतहोते हैं॥ १० ॥ हे हिरण्मय! कार्यके प्रारम्भोंमें जो मनुष्य तुमको सब ओरसे भलीभांति पूजेंगे फिर उनके कार्य सिद्धिका सन्देह न होगा ॥ ११ ॥ उस समय ऐसा कहकर हज़ार लोचनों वाले इन्द्रने बहुत आदरसे सन्मान करके उन गणेशको शिवा शिवके समीप बिदा किया ॥ १२ ॥ पुरातन समय समस्त विघ्नोंके विनाशके लिये बुद्धिमान् रोहिताश्व ने यही प्रयोजन महामुनि मार्कण्डेय जी से पूंछाहै ॥ १३ ॥ हे महा भाग्यवानो ! उसी प्रयोजन को मैं यथार्थ से कहूंगा उस पुरातन वाले सब चरित्र को सावधान होतेहुये सब सुनो ॥ १४ ॥ रोहिताश्व बोले कि हे भगवन् ! इस संसार में जो सब मनुष्यहैं वे भी उन-

ताः ॥ १० ॥ येत्वांसम्पूजयिष्यन्ति कार्य्यारम्भेषुसर्वतः ॥ कार्य्यसिद्धिन्नसन्देहस्तेषांभूयोहिरण्मय ॥ ११ ॥ एवमु क्त्वासहस्राक्षो विससर्ज्जाथतंतदा ॥ सम्मान्यबहुमानेनगौरीशङ्करपार्श्वतः ॥ १२ ॥ अयमर्थःपुरापृष्टो रोहिताश्वेन धीमता ॥ सर्वविघ्नविनाशार्थं मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ १३ ॥ तमेवार्थंमहाभागाः कथयिष्येयथार्थतः ॥ तंशृणुध्वंपुरा वृत्तं सर्वंसर्वेसमाहिताः ॥ १४ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ भगवन्नत्रयेमर्त्यास्सर्वेविघ्नसमन्विताः ॥ शुभकृत्येषुसर्वेषु जायन्ते तेषुतेपिच ॥ १५ ॥ प्रारब्धेषुचकार्य्येषु धर्म्मजेषुविशेषतः ॥ तानिविघ्नानिजायन्ते यैस्तत्कार्य्यंनसिद्ध्यति ॥ १६ ॥ तस्मा द्विघ्नविनाशाय किञ्चिन्मेव्रतमादिश ॥ व्रतंवानियमंवाथतपोवादानमेववा ॥ १७ ॥ सकृच्चीर्णेनयेनात्र यावज्जीवति मानवः ॥ तावन्नजायतेविघ्नमाजन्ममरणान्तिकम् ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि सर्वविघ्नविना शनम् ॥ विश्वामित्रेणसंचीर्णं यत्पुराभावितात्मना ॥ १९ ॥ विश्वामित्रइतिख्यातो गाधिपुत्रःप्रतापवान् ॥ वशिष्ठेन

समस्त शुभकार्यों में विघ्न संयुत होते हैं ॥ १५ ॥ व विशेषकर धर्म से उपजे हुये कार्योंमें वे विघ्न होते हैं जिनसे उनका कार्य नहीं सिद्ध होताहै ॥ १६ ॥ उसी कारण विघ्न विनाशनेके लिये मुझसे किसी नियमको कहिये व्रत या नियम या तप अथवादानही को कहिये ॥ १७ ॥ कि जिसके एकही बार करने से मनुष्य जब तक यहां जियै तब तक व जन्मसे लगाकर मृत्युके समीप तक विघ्न न होवै ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इस विषयमें समस्त विघ्नोंके विनाश ने वाले उपायको कहूंगा जिसको पहले शुद्ध चित्तवाले विश्वामित्र ने संचय किया है ॥ १९ ॥ गाधिजीके पुत्र प्रतापवान् विश्वामित्र ऐसे प्रसिद्ध हुये हैं उन महात्माकी वशिष्ठके साथ शत्रु-

ताहुई है ॥ २० ॥ वसिष्ठने ब्राह्मणता के लिये उन बड़े तपस्वी विश्वामित्र के ब्राह्मणत्व को किसी प्रकार न कहा उसी कारण वैरहुआ ॥ २१ ॥ रोहिताश्व बोले कि
वसिष्ठ ब्राह्मण ने किसी प्रकार क्यों नहीं कहा ब्रह्मादिकों ने भी आपही उत्तमता से उनको ब्राह्मण कहाहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि पहले विश्वामित्र भूपति
क्षत्रिय स्थित थे शिकारमें थकेहुये वे विश्वामित्र उस समय वसिष्ठ के आश्रम में पैठगये ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उन वसिष्ठजी ने क्षुधा, प्याससे विकल उन विश्वा
मित्र का पूजन किया वे विश्वामित्र भी गऊसे उपजे हुये उस समस्त प्रभावको देखकर विस्मय युक्त हुये ॥ २४ ॥ तदनन्तर यह राजाहै यह जानकर उन वसिष्ठने

ब्राह्मणत्वंवशिष्ठेन ततोवैरमजाय
समंतस्य वैरभावंमहात्मनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणार्थंनसम्प्रोक्तःकथञ्चित्समहातपाः ॥ ब्राह्मणःसपरंप्रोक्तो ब्रह्मादिभिरपिस्वयम् ॥
त ॥ २१ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ कस्मान्नप्रोक्तवान्विप्रो वशिष्ठस्तुकथञ्चन ॥ मृगयासुपरिश्रान्तो वशिष्ठस्याश्रमन्तदा ॥
२२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ क्षत्रियश्चस्थितःपूर्वं विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सोपिदृष्ट्वाप्रभावन्तं सर्वंधेनोश्चसम्भवम् ॥ २४ ॥ तत्प्रभावात्सभूपा
२३ ॥ प्रविष्टःक्षुत्पिपासार्तः सतेनाथप्रपूजितः ॥ पार्थिवोयमितिज्ञात्वा अर्घाद्यैर्भोजनैस्सह ॥
लः सभृत्यबलवाहनः ॥ तेनतृप्तिंपरान्नीतो मिष्टान्नैर्विविधैस्ततः ॥ २५ ॥ नददौसमहाविप्रस्सामदानेन
अथसानन्दिनीनाम धेनुःकामदुघातदा ॥२६॥ प्रार्थयामासतांमूल्यैर्गजवाजिसमुद्भवैः ॥ ततःकोपात्सपार्थिवः ॥ २८ ॥ साब्रवी
वापुनः ॥ २७ ॥ भेदेनचततोदण्डं योजयामासवैन्नृपः ॥ चालयामासतान्धेनुं वशिष्ठेनैवमुक्तातु नैवदत्ताकदा
नीयमानाथ वशिष्ठंकिन्त्वयाप्रभो ॥ दत्ताहमस्यनृपतेर्यन्मान्नयतियत्नतः ॥ २९ ॥

उस धेनुके प्रभाव से विविध भांतिके मिष्टान्नों से सेवक सेना सवारियों समेत उस विश्वामित्र भूपति को अर्घादिकों व भोजनों से तृप्त किया इसके अनन्तर उस
समय जो वह नन्दिनी नामक गऊ कामोंको पूर्णकियाथा ॥ २५ । २६ ॥ उसको हाथी घोड़ों से उपजेहुये मूल्यों के द्वारा मांगा परन्तु उन महाविप्र वसिष्ठ जी ने न
दिया फिर साम (प्रिय वचन) से व दानसे ॥ २७ ॥ व भेदसे न दिया तदनन्तर विश्वामित्र नृपति ने दण्डको युक्तकिया उसके उपरान्त उस राजाने क्रोधसे उस
गऊको चलाया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर लिये जातीहुई वह वसिष्ठ से बोली कि हे प्रभो ! क्या तुमने इस राजाको मुझे दियाहै जोकि यह मुझको यत्न से लिये

जाता ॥ २६ ॥ वसिष्ठनें उससे ऐसा कहा कि कभी नहीं दीगईहो तदनन्तर उसके मुखसे बाती होकर उत्पन्न हुई उसके उपरान्त ॥ ३० ॥ उस बातीसे बड़ी भयङ्कर ज्वालायें निकलीं उसके उपरान्त हजारों योधा निकले वे अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारेहुये जैसे यमदूत होवैं वैसेही थे ॥ ३१ ॥ जोकि पुलिन्द, वर्वर, आभीर, किरात यवन व शवथे वे उससे बोले कि हे शुभे ! हमलोग किस लिये रचेगये हैं यह हम से कहिये ॥ ३२ ॥ नन्दिनी बोली कि इनके मध्यमें जो बड़े पापी राज सेवक मारते हैं मेरी आज्ञासे उनको मारिये और कुछ नहीं चाहती हूं ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! उन सबोंने दशरातोंके मध्य समरमें युद्ध करती हुई विश्वामित्र की सेनाको

चन ॥ भूत्वावर्तिस्ततोजाता तस्यावक्त्रात्ततःपरम् ॥ ३० ॥ ततोज्वालामहारौद्रास्ततोयोधास्सहस्रशः ॥ नाना शस्त्रधरारौद्रायमदूतायथाचते ॥ ३१ ॥ पुलिन्दावर्व्वराभीराः किरातायवनाःशकाः ॥ तेप्रोचुस्तांवदास्माकं कस्मात्सृष्टावयं शुभे ॥ ३२ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ एतेषांयेमहापापा बध्नन्तिनृपसेवकाः ॥ तान्निघ्नन्तुममादे शान्नान्यद्वाञ्छामिकिञ्चन ॥ ३३ ॥ तस्यतैस्सकलैस्सैन्यं विश्वामित्रस्यसूदितम् ॥ युध्यमानंमहाराज दशरात्रे णसंयुगे ॥ ३४ ॥ विश्वामित्रोपितंदृष्ट्वा ब्राह्मंबलमनुत्तमम् ॥ प्रतिज्ञामकरोत्तत्र तारेणसुस्वरेणच ॥ ३५ ॥ अथाहंसम्भविष्यामि ब्राह्मणोनात्रसंशयः ॥ ममापिजायतेयेन प्रभावस्त्वीदृशोद्भवः ॥ ३६ ॥ तस्मात्तपःकरिष्या मि यदसाध्यंसुरैरपि ॥ स्वपुत्रंस्वेपदेधृत्वा ततश्चक्रेतपोमहत् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण्यार्थंमहारौद्रं सुमहद्दुष्करन्तपः ॥ ब्राह्मण्यन्तेननैवाप्तं वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ ३८ ॥ ततःकैलासमासाद्य देवदेवंमहेश्वरम् ॥ सम्यगाराधयामास गौरीयुक्तं

मारा ॥३४॥ विश्वामित्रने भी अति उत्तम उस ब्राह्मणवाले बलको देखकर वहां ॐकार स्वरसे प्रतिज्ञाकिया ॥३५॥ कि इसके अनन्तर मैं ब्राह्मणहूंगा इसमें सन्देह नहीं है कि जिससे ऐसा उपजाहुआ प्रभाव मेरे भी होवै ॥ ३६ ॥ इस लिये उस तपको करूंगा जोकि देवोंसे भी असाध्य है तदनन्तर अपने पुत्रको अपने स्थानपै धरकर बड़ी तपस्या किया ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र ने ब्राह्मणताके लिये बड़ी भारी तपस्या किया परन्तु उससे ब्राह्मणता न मिली [illegible]

कि हे प्रभो ! ब्राह्मणता के लिये तदनन्तर कैलास पर्वत पै देवदेव महादेवजीके समीप प्राप्तहुये व पार्वती समेत महादेवजी को भलीभांति आराधन किया ॥ ३९ ॥ शरणमें प्राप्तहुआ मैं तुम्हारे इस कैलास पर्वतोत्तम में तप करूंगा ॥ ४० ॥ उसी कारण देवदेव जी मेरे विघ्नकी रक्षादेवैं कि जिस प्रकार बड़ी भारी की हुई समस्त तपस्या नाशको न प्राप्तहोवै ॥४१॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! इसकार्यमें जो शुद्धिके लिये कार्य होवै तो तुम गणेश से उपजीहुई पूजाकरो ॥ ४२ ॥ जिससे ब्राह्मण से उपजी हुई तुम्हारी सिद्धि भलीभांति होवै विश्वामित्र जी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! उसको कहिये मैं पहले समस्त विघ्नोंकी शान्ति के लिये उन गणेश

महेश्वरम् ॥ ३९ ॥ अहंतपःकरिष्यामि ब्राह्मण्यस्यकृतेप्रभो ॥ तवास्मिन्पर्वतश्रेष्ठे कैलासेशरणंगतः ॥ ४० ॥ तस्मा
द्विघ्नस्यमेरक्षां देवदेवःप्रयच्छतु ॥ यथानोनाशमायातितपःसर्वंकृतंमहत् ॥ ४१ ॥ भगवानुवाच ॥ शुद्ध्यर्थंचैवयत्का
र्य्यं कार्य्येस्मिन्नृपसत्तम ॥ विनायकसमुद्भूतां तत्त्वंपूजांसमाचर ॥ ४२ ॥ येनतेजायतेसिद्धिः सम्यग्ब्राह्मणसम्भ
वा ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तद्वदस्वसुरश्रेष्ठ तथातस्यकरोम्यहम् ॥ ४३ ॥ पूर्वंपूजांगणेशस्य सर्वविघ्नप्रशान्तये ॥ भ
गवानुवाच ॥ एषगौर्य्यापुराकृत्वा निजाङ्गोद्वर्तनात्ततः ॥ ४४ ॥ तन्मलेनकृतःपश्चान्नराकारश्चतुर्भुजः ॥ क्रीडार्थममपु
त्रोयं बालभावेप्रकल्पितः ॥ ४५ ॥ गजवक्त्रोमयाकार्यो लम्बोदरलघूरुकः ॥ ततोहमनयाप्रोक्तःसजीवःक्रियतांविभो॥
४६॥पुत्रकोमेयथाभावी लोकेपूज्यतमःप्रभो॥ ततोमयापिसंस्पृष्टः सृष्टिसूक्तेनपार्थिव ॥ ४७ ॥ जीवसूक्तेनसम्यक्सप्रा

पश्चात् उस मलसे जी का वैसाही पूजनकरूं शिव भगवान् बोले कि पुरातन समय पार्वती जी ने अपने अङ्गके उबटनेसे इनको बनाकर तदनन्तर ॥ ४३ । ४४ ॥ चार भुजा वाला व मनुष्यकासा आकार बनाया कि शिशुता में कल्पना कियाहुआ यह क्रीडा के लिये मेरा पुत्रहै ॥ ४५ ॥ मुझको गजमुख व लम्बे पेटवाला व छोटी जांघवाला इसको करना चाहिये तदनन्तर इसने मुझसे कहा कि हे विभो ! इसको सजीव करिये ॥ ४६ ॥ कि जिस प्रकार हे प्रभो ! मेरा पुत्र संसार में अत्यन्त पूजनीय होवै तदनन्तर हे राजन् ! मैंने भी सृष्टि सूक्त से उसको भलीभांति स्पर्श किया ॥ ४७ ॥ और जीव सूक्तके द्वारा वह भलीभांति प्राणवान् होगया तदनन्तर

प्रसन्न होतेहुये मैंने हिमाचल की कन्या पार्वती देवी से कहा ॥ ४८ ॥ कि हे महाभागे ! आज चौथि दिनके प्राप्तहोने पर मैंने जीव सूक्तके प्रभाव से तुम्हारे इस पुत्र का निर्माण किया है ॥ ४९ ॥ हे सुरेश्वरि ! मेरे समस्त गणोंका यह निस्सन्देह स्वामी होगा उसी कारण गणनायक ऐसा प्रसिद्धहोगा ॥५०॥ हे सुन्दरि ! जो पुरुष बांचे जाते हुये जीव सूक्तके द्वारा उत्तम भक्तिसे उत्तम चौथि दिनमें इनको पूजैगा ॥ ५१ ॥ हे देवि ! उसके समस्त कार्योंमें सब विघ्न सम्पूर्णतासे नाशको प्राप्त होवैंगे जैसे कि सूर्य्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ५२ ॥ लम्बोदर के लिये नमस्कार है व हे गणनायक ! फरसा धारने वाले के लिये नित्यही नमस्कार है व

णवान्समजायत ॥ ततोमयाप्रहृष्टेन प्रोक्तादेवीहिमाद्रिजा ॥ ४८ ॥ चतुर्थींदिवसेप्राप्ते मयाद्यायंविनिर्म्मितः ॥ पुत्रस्तवमहाभागे जीवसूक्तप्रभावतः ॥ ४९ ॥ एषसर्वगणानांच मदीयानांसुरेश्वरि ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तस्माच्चगणनायकः ॥ ५० ॥ वाच्यमानेनयश्चैनं जीवसूक्तेनसुन्दरि ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या चतुर्थींदिवसेशुभे ॥ ५१ ॥ तस्यसर्वेषुकृत्येषु सर्वविघ्नानिकृत्स्नशः ॥ प्रयास्यन्तिक्षयन्देवि तमःसूर्य्योदयेयथा ॥ ५२ ॥ नमोलम्बोदरायेति नमोगणविभोतथा ॥ कुठारधारिणेनित्यंतथावृकगतायच ॥ ५३ ॥ नमोमोदकभक्षाय नमोदन्तैकधारिणे ॥ एभिर्मन्त्रैस्समभ्यर्च्य पश्चान्मोदकजंशुभम् ॥ ५४ ॥ नैवेद्यंचप्रदातव्यं ततश्चार्घंनिवेदयेत् ॥ अहंकर्म्मकरिष्यामि यत्किञ्चिच्छम्भुसम्भवम् ॥ ५५ ॥ अविघ्नंतत्रकर्तव्यं सर्वदैवत्वयाविभो ॥ ततस्तुब्राह्मणानान्तु भोजनेमोदकोद्भवम् ॥ ५६ ॥ यथाशक्त्याप्रदातव्यं वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ एवमुक्तेमयापूर्वं स्वयमेवनृपोत्तम ॥ ५७ ॥ गणनाथंसमुद्दिश्यगौर्य्याःपुरतएवच ॥

मूसपै प्राप्त होनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ लड्डुवों को भोजन करनेवाले के लिये नमस्कार है व एक दांतके धारनेवाले के लिये नमस्कारहै इन मन्त्रोंसे भलीभांति पूजकर पश्चात् लड्डुवों से उपजी हुई नैवेद्य देना चाहिये तदनन्तर अर्घ निवेदन करै कि मैं शिवजी से उपजा हुआ जो कर्म करूंगा ॥ ५४ । ५५ ॥ हे विभो ! उसमें सदैवही तुमको विघ्न न करना चाहिये तदनन्तर ब्राह्मणों के भोजनमें लड्डुवोंसे उपजा हुआ भोजन ॥ ५६ ॥ यथा शक्तिसे देना चाहिये व वित्त शाठ्य याने शठताका धन वर्जित करै हे नृपोत्तम ! पहले मुझको आपही गणनायक को भलीभांति उद्देशकर पार्वती जी के आगेही ऐसा कहने पर तदनन्तर प्रसन्न

होती हुई वह देवी यह वचन बोली ॥ ५७ । ५८ ॥ कि आजसे लगाकर जो पुरुष चौथि तिथि में मेरे गणेश पुत्रको इसी विधिसे भलीभांति पूजैगा ॥ ५९ ॥ तदनन्तर निस्सन्देह उसकी लक्ष्मी अचलाहोगी भगवान् शिवजी बोले कि हे महाभाग ! इस लिये तुम चौथि में गणेशसे उपजा हुआ पूजन भलीभांतिकरो कि जिससे मनोरथ से युक्त होगे मार्कण्डेय जी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर विश्वामित्रभूपतिने ॥ ६० । ६१ ॥ जैसा कहा है वैसाही गणनायक से उपजा हुआ पूजन कर के तदनन्तर समस्त विघ्नों से रहित बड़ी तपस्या किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर सबोंसे भी दुर्लभ ब्राह्मणता को पाया इस लिये हे महाभाग ! जब चौथि प्राप्तहोवै तब

ततःप्रहृष्टासादेवी वाक्यमेतदुवाचह ॥ ५८ ॥ अद्यप्रभृतियःपुत्रं मदीयंगणनायकम् ॥ अनेनविधिनासम्यक् चतुर्थ्यांपूजयिष्यति ॥ ५९ ॥ नसन्देहस्ततस्तस्य ह्यचलाश्रीर्भविष्यति ॥ भगवानुवाच ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग चतुर्थ्यां सम्यगाचर ॥ ६० ॥ विनायकोद्भवांपूजां येनाभीष्टेनयुज्यसे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ ६१ ॥ गणनाथसमुद्भूतां कृत्वापूजांयथोदिताम् ॥ ततश्चचारविपुलं सर्वविघ्नविवर्जितम् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण्यञ्च ततःप्राप्तं सर्वेषामपिदुर्लभम् ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग विनायकसमुद्भवाम् ॥ ६३ ॥ पूजांकुरुचतुर्थ्यांच प्राप्तायाञ्च विशेषतः ॥ सम्प्राप्नोषिमहाभोगान् हृदिस्थान्नात्रसंशयः ॥ ६४ ॥ योयंकाममभिध्याय गणनाथंप्रपूजयेत् ॥ सतंसर्वमवाप्नोतिमहेश्वरवचोयथा ॥ ६५ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं धनहीनोमहद्धनम् ॥ शत्रूञ्जयतिसंग्रामे स्मृत्वातंगणनायकम् ॥ ६६ ॥ यानारीपतिनात्यक्ता दुर्भगाचविरूपिता ॥ सासौभाग्यमवाप्नोति गणनाथस्यपूजनात् ॥ ६७ ॥ यइदंपठ

तुम विशेषकर गणेश से उपजा हुआ पूजन करो व हृदय में टिकेहुये महासुखों को भलीभांति प्राप्तहोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ । ६४ ॥ जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तवन करके गणेशजी को पूजता है वह उस सबको प्राप्तहोता है जैसे कि महादेव जी के वचन हैं ॥ ६५ ॥ पुत्रहीन पुत्रको पाताहै व धन हीन बड़ी द्रव्य पाता है और उन गणेशजीको स्मरण करके समरमें शत्रुओंको जीतताहै ॥६६॥ जो दुर्भगा व कुरूपिणी स्त्री पतिसे छोड़ी गई है वह गणेशजीके पूजनसे सौभाग्यको

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृ-
पाती है ॥ ६७ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष नित्यहीं इस चरितको पढ़ता या सुनताहै उसके सदैव समस्त कार्यों में विघ्न न होगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृ-
तीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणपतिपूजामाहात्म्यंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । यथा ऋषिन सब सूत सन पूंछ्यो श्राद्ध विधान । सोई एकसौ पांच महँ कीन्ह्यो चरित बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग, सूतजी ! श्राद्ध कल्प
की जो विधिहै व जिस प्रकार वह श्राद्ध अक्षय होती है उसको इस समय हम लोगों से विस्तार पूर्वक कहो ॥ १ ॥ हे महामते ! पितृ परायण पुरुषों को किस समय

तेनित्यं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ अविघ्नंजायतेतस्य सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेना
गरखण्डेगणपतिपूजामाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ * ॥ * ॥
ऋषयऊचुः ॥ साम्प्रतंवदनःसूत श्राद्धकल्पस्ययोविधिः ॥ विस्तरेणमहाभाग यथातच्चाक्षयंभवेत् ॥ १ ॥ कस्मि
न्कालेप्रकर्तव्यं श्राद्धंपितृपरायणैः ॥ कीदृशैर्ब्राह्मणैस्तच्च तथाद्रव्यैर्महामते ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ एतदर्थंपुरापृष्टो मा
र्कण्डेयोमहामुनिः ॥ रोहिताश्वेनविप्रेन्द्रा हरिश्चन्द्रसुतेनच ॥३॥ हरिश्चन्द्रेगतेस्वर्गे रोहिताश्वेनृपेस्थिते ॥ तीर्थयात्रा
प्रसङ्गेन मार्कण्डोमुनिसत्तमः ॥४॥ सरय्वाःसङ्गमेपुण्येस्नानार्थंसमुपस्थितः ॥ तत्रस्नात्वापितॄन्देवान्संतर्प्यविधिपूर्वक
म् ॥ ५ ॥ प्रविष्टस्तांपुरींरम्यामयोध्यांसप्तनामिकाम् ॥ रोहिताश्वोपितंश्रुत्वा समायातंमुनीश्वरम् ॥ ६ ॥ पदातिः

में श्राद्ध करना चाहिये व वह कैसे ब्राह्मणों से व कैसी वस्तुवों से की जाती है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! पुरातन समय हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने
इसी प्रयोजन को मार्कण्डेय महामुनि से पूंछा है ॥ ३ ॥ जब हरिश्चन्द्र जी स्वर्ग को गये तब रोहिताश्व को राजा स्थित होने पर तीर्थ यात्रा के प्रसंग से
मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय जी ॥ ४ ॥ पुण्यदायक सरयूजी के संगम में नहाने के लिये भलीभांति प्राप्तहुये उसमें नहाकर व पितरों तथा देवों को भलीभांति
तर्पण कर ॥ ५ ॥ सात पुरियों के मध्य ये नामवाली उस मनोहर अयोध्या पुरी में पैठे रोहिताश्व ने भी भलीभांति आयेहुये उन मुनिनायक को सुनकर ॥ ६ ॥

शीघ्रही पैदल दूर देश के सामने गये तदनन्तर उनको मस्तक से प्रणाम कर हाथों को जोड़े खड़े हुये रोहिताश्व ॥ ७ ॥ नम्रतासंयुत मीठे वचन बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ व फिर उत्तम आगमन होवै ॥ ८ ॥ मैं धन्यहूं व मैं किये हुये पुण्यवाला हूं व उत्तम गतिको भलीभांति प्राप्तहुआ जोकि तुम्हारे चरणोंकी धूलियों से मेरे बाल निर्मल किये गये ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर उससमय वे रोहिताश्व हस्तावलम्बन करके पकड़कर वहां गये जहां कि बड़ेभारी सिंहासन के आश्रयवाला स्थान था ॥ १० ॥ इस के अनन्तर उन मार्कण्डेय मुनिको सिंहासनपै बिठाकर हाथ जोड़े हुये स्थित नृपोत्तम

प्रययौतूर्णंदूरदेशन्तुसम्मुखम् ॥ ततःप्रणम्यतंमूर्द्ध्ना कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ७ ॥ प्रोवाचमधुरंवाक्यं विनयेनसमन्वि
तम् ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ भूयःसुस्वागतन्तुते ॥ ८ ॥ धन्योहंकृतपुण्योहं सम्प्राप्तःपरमाङ्गतिम् ॥ यत्तेपादरजोभि
र्मे मूर्द्धजाविमलीकृताः ॥ ९ ॥ एवमुक्त्वागृहीत्वातुसहस्तालम्बनंतदा ॥ ययौतत्रसभास्थानं बृहत्सिंहासनाश्रयम् ॥
१० ॥ सिंहासनेनिवेश्याथ तम्मुनिंपार्थिवोत्तमः ॥ उपविष्टोधरापृष्ठेकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ११ ॥ ततःप्रोवाचमधु
रंविनयावनतःस्थितः ॥ निःस्पृहस्यापिविप्रेन्द्र किमागमनकारणम् ॥ १२ ॥ तद्ब्रवीहियथाहञ्च करोमितवसाम्प्रत
म् ॥ अदेयमपिदास्यामिगृहायातस्यतेविभो ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन वयमत्रसमागताः ॥ स
रय्वास्सङ्गमेपुण्येकाश्यांयास्यामहेपुनः ॥ १४ ॥ निःस्पृहैरपिद्रष्टव्याधर्म्मवन्तोनृपोत्तमाः ॥ ततःप्रोक्तंपुराणज्ञैर्ब्राह्मणै
श्शास्त्रदृष्टिभिः ॥ १५ ॥ धर्म्मवन्तंनृपंदृष्ट्वा लिङ्गंस्वायंभुवंतथा ॥ नदीसागरगांचैव मुच्येत्पापंदिनोद्भवम् ॥ १६ ॥ ए

रोहिताश्व जी भूपृष्ठमें समीप बैठगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर नम्रतासे नीचे खड़े हुये रोहिताश्व जी मीठे वचन बोले कि हे द्विजेन्द्र ! निर्लोभ भी तुम्हारे आनेका क्या कारण है ॥ १२ ॥ उसको कहिये कि जिस प्रकार इस समय मैं करूं हे विभो ! घर में आये हुये तुमको मैं न देने के योग्य भी पदार्थ को दूंगा ॥ १३ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि तीर्थयात्राके प्रसग से हम यहां सरयूके पुण्यदायक संगममें भलीभांति आये हैं फिर काशीमें जावैंगे ॥ १४ ॥ निर्लोभियों को भी धर्मवान् नृपोत्तमोंको देखना चाहिये उसी कारण शास्त्रोको देखेहुये व पुराणोंको जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहाहै ॥ १५ ॥ कि धर्मवान् राजा और महादेवजीके लिंगको व समुद्र

में प्राप्त नदी को देखकर दिनमें उपजाहुआ पाप नष्टहोजाता है ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर मुनिनायकने भूपतिको प्रणाम किया व उनको देखकर नम्रतासंयुत व आगे खड़ेहुये नृपपुंगव बोले ॥ १७ ॥ रोहिताश्व बोले कि वेद किस प्रकार सफल होवै हैं व धन किस प्रकार सफल होवै है मार्कण्डेयजी बोले कि अग्निहोत्र (यज्ञ) फल वाले वेदहैं व स्वभाव तथा उत्तम आचरण फल वाला शास्त्रहै ॥ १८ ॥ और मैथुन व पुत्र फलवाली स्त्रियां हैं तथा देने व भोगने फलवाला धनहै ऐसा जानकर हे महाराज ! अन्यथा करनेके लिये नहीं योग्यहो ॥ १९ ॥ मैंने जिन इन चार कार्यों को तुमसे कहा है उनको दोनोंलोकों के चाहनेवाले पुरुषों को वैसेही करना

वमुक्त्वानमश्चक्रे पृथ्वीशंमुनिसत्तमः ॥ तंदृष्ट्वानृपशार्दूलःपुरःस्थोविनयान्वितः ॥ १७ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ कथंस्युः सफलावेदाः कथंस्यात्सफलंधनम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अग्निहोत्रफलावेदाः शीलवृत्तफलंश्रुतम् ॥ १८ ॥ रतिपुत्र फलादारा दत्तभुक्तफलंधनम् ॥ एवंज्ञात्वामहाराज नान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ चत्वार्य्येतानिकृत्यानिमयोक्तानिचया निते ॥ तथातानिप्रकृत्यानि लोकद्वयमभीप्सता ॥ २० ॥ एवमुक्त्वाततश्चक्रे कथाश्चित्राश्चतत्पुरः ॥ राजर्षीणांपुरा णानां देवर्षीणांविशेषतः ॥ २१ ॥ ततःकथावसानेच कस्मिंश्चिद्द्विजसत्तमम् ॥ पप्रच्छतंमुनिश्रेष्ठं रोहिताश्वोमहीप तिः ॥ २२ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि श्राद्धकल्पंयथार्थतः ॥ दृश्यतेबहवोभेदाद्विजानांश्राद्धकर्म्मणि ॥ २३ ॥ मार्कण्डे यउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग यत्पृष्टोस्मित्वयानृप ॥श्राद्धस्यबहवोभेदाश्शाखाभेदैर्व्यवस्थिताः ॥ २४॥ तस्मा त्तेनिर्णयंवच्मि भर्तृयज्ञेनयत्पुरा ॥ आनर्ताधिपतेःप्रोक्तं सम्यक्श्राद्धस्यलक्षणम् ॥ २५ ॥ भर्तृयज्ञंसुखासीनं निजा

चाहिये॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर मार्कण्डेयजीने पुराने राजर्षियों व विशेष कर देवर्षियों की अद्भुत कथाओंको उनके आगे वर्णन किया ॥२१॥ तदनन्तर किसी कथाके अन्तमें रोहिताश्व भूपतिने उन द्विजोत्तम व मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय जी से पूंछा ॥ २२ ॥ कि हे भगवन् ! मैं श्राद्धकल्पको यथार्थता से सुनने के लिये इच्छा करताहूं क्योंकि ब्राह्मणों के श्राद्धकर्म में बहुत भेद देख पड़तेहैं ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! यह सत्यहै जोकि तुमने मुझसे पूंछा है शाखाओं के भेदोंसे श्राद्धके बहुत भेद विशेषकर स्थितहैं ॥ २४ ॥ उसी कारण तुम से निर्णय कहताहूं पुरातन समय जिस श्राद्धके लक्षण को भर्तृयज्ञ ने आनर्त देश

के स्वामी से भलीभांति कहा है ॥ २५ ॥ आनर्तनायक नृपति ने जाकर व अपने आश्रम स्थान में सुखपूर्वक बैठेहुये भर्तृयज्ञ को प्रणामकर तदनन्तर कहा ॥ २६ ॥
आनर्त बोला कि हे ब्रह्मन्! इस समय श्राद्धकल्पके वाञ्छितको मुझसे कहिये कि जिससे श्राद्धमें तृप्त किये हुये मेरे पितर प्रसन्नताको प्राप्तहोवैं ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम!
श्राद्धमें कौन समय विधान किया गयाहै व कौन वस्तुवें कही हैं व श्राद्धके योग्य अन्य पवित्र वस्तुवोंको मुझसे कहिये ॥ २८ ॥ जोकि पितरों की उत्तम तृप्ति चाह-
नेवाले पुरुषों को युक्त करना चाहिये व कैसे ब्राह्मण श्राद्धके योग्य भलीभांति कहे गये हैं ॥ २९ ॥ और कैसे वर्जित करने योग्य हैं सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये

आनर्ताधिपतिर्गत्वा प्रणिपत्यततोब्रवीत् ॥ २६ ॥ आनर्तउवाच ॥ सांप्रतंवदमेब्रह्मञ्छ्राद्धकल्पपरीप्सि
श्रमपदेन्नृपः ॥ आनर्ताधिपतिर्गत्वा प्रणिपत्यततोब्रवीत् ... ॥ श्राद्धार्हाणितथा
तम् ॥ येनमेतुष्टिमायान्ति पितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ २७ ॥ कःकालोविहितःश्राद्धेकानिद्रव्याणिमेवद ॥ श्राद्धार्हा
न्यानिमेध्यानिद्विजसत्तम ॥ २८ ॥ यानियोज्यानिवाञ्छद्भिः पितॄणांतृप्तिमुत्तमाम् ॥ कीदृशाब्राह्मणाश्चैव श्राद्धार्हा
स्संप्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥ कीदृशावर्जनीयाश्च सर्वमेविस्तराद्वद ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ अहन्तेकीर्तयिष्यामिश्राद्धकल्प
मनुत्तमम् ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वापिमहाराज लभेच्छ्राद्धफलंनरः ॥ श्राद्धमिन्दुक्षयेऽवश्यं सदाकार्यंविपाश्चिता ॥ ३१ ॥
यदिज्येष्ठतमःसर्गे सञ्ज्ञानेचतथान्नृप ॥ शीतार्तायद्वदिच्छन्ति वह्निमावरणानिच ॥ ३२ ॥ पितरस्तद्वदिच्छन्तिक्षुत्क्षामा
श्चन्द्रसंक्षयम् ॥ यथावृष्टिंप्रवाञ्छन्ति कर्षुकास्सस्यवृद्धये ॥ ३३ ॥ तथात्मप्रीतयेप्रीताः प्रवाञ्छन्तीन्दुसंक्षयम् ॥ य
थोषश्चक्रवाकाश्चवाञ्छन्तिरविदर्शनम् ॥ ३४ ॥ पितरस्तद्वदिच्छन्ति श्राद्धंदर्शसमुद्भवम् ॥ जलेनापिचयःश्राद्धं शा

भर्तृयज्ञ बोले कि मैं अति उत्तम श्राद्धकल्प को तुमसे कहूंगा ॥ ३० ॥ हे महाराज! उसको सुनकर भी मनुष्य श्राद्धका फल पाता है विद्वान्को चन्द्रमाके क्षय (अ-
मावस) में अवश्य श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३१ ॥ यदि हे राजन्! उत्पत्ति व भलीभांति ज्ञान में अत्यन्त बड़ाहो जैसे जाड़से विकल पुरुष अग्नि व ओढ़नों
को चाहते हैं ॥ ३२ ॥ वैसेही क्षुधासे दुबले पितर अमावस्या को इच्छा करते हैं जैसे किसान अनाज की बढ़ती के लिये वर्षाकी इच्छा करतेहैं ॥ ३३ ॥ वैसेही प्रसन्न
पितर अपनी प्रीतिके लिये चन्द्रमा का क्षय (अमावस) चाहते हैं जैसे चकवा प्रभात व सूर्यदर्शन को चाहते हैं ॥ ३४ ॥ वैसेही पितर दर्श (अमावस) में उपजे

हुये श्राद्धको चाहते हैं जो अमावसमें जलसे भी व जो सागसे भी श्राद्ध करताहै ॥ ३५ ॥ इसके पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं व पातक नाश होजाता है अमावस दिन के प्राप्तहोने पर घरके द्वारपै पवन होते हुये भलीभांति टिके मनुष्यों के पितरगण जब तक सूर्यनारायण अस्त होतेहैं तब तक क्षुधा प्याससे विकलहोकर श्राद्धको चाहतेहैं ॥ ३६ । ३७ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायण के अस्तहोने पर बिन आसरेव दुःखसंयुत पितर बहुत देरतक श्वास लेकर अपने वंशमें उपजेहुये पुरुषको शापदेतेहैं ॥ ३८ ॥ आनर्त बोला कि हे द्विज ! विशेषकर अमावस के दिन किस लिये श्राद्ध कीजाती है यह विस्तारसे यथायोग्य कहिये ॥ ३९ ॥ हे विप्रजी ! मरे पुरुष अपने

केनापिकरोतियः ॥ ३५ ॥ दर्शेऽस्यपितरस्तृप्तिंयान्तिपापंप्रणश्यति ॥ अमावास्यादिनेप्राप्ते गृहद्वारंसमाश्रिताः ॥३६॥ वायुभूताःप्रवाञ्छन्ति श्राद्धंपितृगणान्नृणाम् ॥ यावदस्तमयंभानोः क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ ३७ ॥ ततश्चास्तंगतेभानौ निराशादुःखसंयुताः ॥ निःश्वस्यसुचिरंकालं शपन्तिचस्ववंशजम् ॥३८॥ आनर्तउवाच ॥ किमर्थंक्रियतेश्राद्धममावास्यादिनेद्विज ॥ विशेषेणसमाचक्ष्व विस्तरेणयथातथम् ॥ ३९ ॥ मृताश्चपुरुषाविप्रस्वकर्मजनितांगतिम् ॥ प्राप्नुवन्तिकथंतस्य स्वसुतस्याश्रमंययुः ॥ ४० ॥ एषनःसंशयोविप्रसुमहान्हृदिसंस्थितः ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग यत्त्वयाव्याहृतंवचः ॥४१॥ स्वकर्म्मणोगतिंयान्ति मृतास्सर्वैचमानवाः ॥ परंयथासमायान्ति वंशजस्याश्रयंप्रति ॥ ४२ ॥ यथातेऽहंप्रवक्ष्यामिनतथासंशयोभवेत् ॥ मृतायान्तितथाराजन्येत्रकेचिन्महीपते ॥ ४३ ॥ तेजायन्तेचमर्त्येऽत्र यावद्वंशस्यसंस्थितिः ॥ परेशुभात्मकायेचतेतिष्ठन्तिसुरालये ॥ ४४ ॥ पापात्मानोनरायेचवैवस्वतनि

कर्मसे उत्पन्न गतिको प्राप्तहोते हैं वे कैसे अपने पुत्रके आश्रमपै प्राप्तहोते हैं ॥४०॥ हे विप्रजी ! हमारे हृदय में यह बड़ी भारी सन्देह भलीभांति टिकी है भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! जो वचन तुमने कहाहै यह सत्यहै ॥ ४१ ॥ कि मरेहुये समस्त मनुष्य अपने कर्म की गतिको प्राप्तहोतेहैं परन्तु जिस प्रकार वंशमें उपजे हुये पुरुषके आश्रम पै भलीभांति आते हैं ॥४२॥ उसको मैं वैसेही तुमसे कहूंगा कि जिसप्रकार सन्देह न होगी हे राजन्, भूपते ! यहां जो कोई मरकर प्राप्तहोते हैं ॥ ४३ ॥ वे इस लोकमें जब तक वंशकी भलीभांति स्थिति रहतीहै तब तक उत्पन्न होते हैं उसके उपरान्त वे उत्तम स्वर्गलोक में अपने शुभ शरीर पै टिकते हैं ॥ ४४ ॥ व जो

पापात्मा मनुष्य हैं वे वैवस्वत (यमराज) के यहां बसते हैं व अन्य शरीर में भलीभांति टिककर कर्मका फल भोगते हैं ॥ ४५ ॥ शुभ हो अथवा पापहो जोकि आप ही अपने से कियाहुआ होताहै यमलोकमें टिके व स्वर्गमें स्थित पुरुषोंके भी क्षुधा ॥४६॥ व वैसेही हे राजन् ! तब तक प्यास अधिक होतीहै हे राजन्! जब तक कि माता व पितासे तीन पुरुष होते हैं ॥ ४७ ॥ व उनके आगे याने तीन पुश्तियोंके बाद जो पितरहैं वे अपने कर्मके शुभाशुभको भोगते हैं और उनके कभी भूंख, प्यास नहीं होती है ॥ ४८ ॥ हे भूपते ! वैसेही उस स्थानसे गिराहुआ होता है वंश विनाश के पहलेही सब भूतल में गिरते हैं जैसे कि पिटारी से रहित पात्र निराश्रय

शुभंवायदिवापापं स्वयंविहितमात्मनः ॥ यमलोकवासिनः॥ अन्येदेहंसमाश्रित्य भुञ्जानाःकर्म्मणःफलम् ॥४५॥ यावन्नरत्रयंराजन्मातृतःपितृतस्तथा ॥ ४७ ॥ तेषाञ्चपुरतोयेचस्वकर्म्मचशुभाशुभम् ॥ भुञ्जतेक्षुत्पिपासाच नतेषांजायतेक्वचित् ॥ ४८ ॥ तस्थितानांहि स्वर्गस्थानामपिक्षुधा ॥ ४६ ॥ पिपासाचतथाराजंस्तेषांसञ्जायतेऽधिका ॥ यथापेटिकयाभाण्डावर्जिताश्चनिराश्रयाः॥ एतस्मात्कारणाद्यत्नःसन्तानायविचक्षणैः ॥ ५० ॥ प्रकर्त्तव्योमनुष्येन्द्रस्ववंशस्थितयेसदा॥ अपि थानिपतितस्तस्मात्स्थानाद्भवतिभूमिप ॥ वंशोच्छेदात्पुरःसर्वे निपतन्तेमहीतले ॥ ४९ ॥ द्वादशधाराजन्नुरसादिसमुद्भवः ॥ ५१ ॥ तेषामेकतमोनात्रचेद्दैवाज्जायतेसुतः ॥ पितृणांगुप्तयेतेनस्थाप्योऽश्वत्थःसमे धितः ॥ ५२ ॥ पुत्रवत्परिपाल्यश्चनिर्विशेषंनराधिप॥ यावत्सन्धारयेद्भूमिस्तमश्वत्थंनराधिप ॥ ५३ ॥ कृतोद्वाहसमं तस्यांतावद्वंशोपितिष्ठति ॥ अश्वत्थजनकामर्त्या निपत्यजगतीतले ॥ ५४ ॥ पापात्मानस्समायान्ति योनिश्रेष्ठांशु

होते हुये गिर पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ इसी कारणसे हे नरेन्द्र ! सदैव अपने वंशकी स्थिति के लिये चतुर पुरुषों को सन्तान के निमित्त उपाय अवश्य करना चाहिये हे राजन् ! निश्चयकर उर आदिसे उपजेहुये बारह प्रकारके सन्तानहैं ॥ ५०।५१ ॥ यदि उन बारहोंमेंसे यहां एक पुत्र भाग्यसे न होवै तो पितरोंकी रक्षाके लिये उस को भलीभांति बढ़ाहुआ पीपल लगाना चाहिये ॥ ५२ ॥ और हे नरनायक ! भेदरहित से पुत्रके समान परिपालन करना चाहिये हे नरनाथ! जब तक भूमि उस पीपल को भलीभांति धारण करती है ॥ ५३ ॥ तब तक किये हुये विवाह समेत उस भूमिमें वंशभी स्थित रहताहै पीपल पुत्रवाले पापात्मा पुरुष पृथ्वीतलमें गिरकर

शुभसंयुत होतेहुये उत्तम योनि में भलीभांति आते हैं इसी कारण हे राजन्! पितरों को उद्देश करके नित्यही अन्न वैसेही जल देना चाहिये क्योंकि वे पितर तन्मय याने उसी दिये हुये अन्न व जलको पानेवाले कहेगये हैं पितरों को जल व अन्न न देकर जो नीच नर ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ आपही भोजन करताहै या जल पीता है वह पितरों का वैरी होताहै और वे स्वर्गमें भी जलको व अन्नको भी नहीं पातेहैं ॥ ५७ ॥ जिनके वंशमें उपजे हुये मनुष्यों से अन्न जलादिक नहीं दियागया है वे क्षुधा प्याससे उपजी हुई भयंकर पीड़ाको प्राप्तहोते हैं इस लिये हे राजन्! शक्तिसे नित्यही जल व अनेक प्रकारके अन्नों व वसनों और नैवेद्यों तथा फूल, चंदन

भान्विताः ॥ एतस्मात्कारणादन्नं नित्यंदेयंतथोदकम् ॥ ५५ ॥ समुद्दिश्यपितॄन्राजन्यतस्तेतन्मयाःस्मृताः ॥ अदत्त्वा सलिलंसस्यं पितॄणांयोनराधमः ॥ ५६ ॥ स्वयमश्नातिवातोयं पिबेत्सस्यापितृद्रुहः ॥ स्वर्गेपिचनतेतोयं लभन्तेनान्नमेवच ॥ ५७ ॥ दत्तंनवंशजैर्मर्त्यैस्तेऽव्यथांयान्तिदारुणाम् ॥ क्षुत्पिपासासमुद्भूतांतस्मात्सन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ ५८ ॥ नित्यंशक्त्याथवाराजन्पयोन्नैश्चपृथग्विधैः ॥ तथावस्त्रैश्चनैवेद्यैःपुष्पगन्धानुलेपनैः ॥ ५९ ॥ पितृमेधादिभिःपुण्यैः श्राद्धैरुच्चावचैरपि ॥ तर्पितास्तेप्रयच्छन्ति कामानिष्टान्हृदिस्थितान् ॥ ६० ॥ त्रिवर्गञ्चमहाराज पितरःश्राद्धतर्पिताः॥ तर्पयन्तिनयेपापास्स्वपितॄन्नित्यशोनृप ॥ ६१ ॥ पशवस्तेसदाज्ञेया द्विपदाश्शृङ्गवर्ज्जिताः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेश्राद्धकल्पेपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

व अनुलेपनों से पितरों को भलीभांति तृप्तकरै ॥ ५८ । ५९ ॥ पुण्यदायक श्राद्धों व उच्च नीच यज्ञोंसे भी तृप्त कियेहुये वे पितर हृदयमें टिकेहुये प्रिय मनोरथों को देते हैं ॥ ६० ॥ व हे महाराज! श्राद्ध में तृप्त किये हुये पितर त्रिवर्ग याने धर्म, अर्थ व कामको देते हैं हे राजन्! जो पापी नित्य अपने पितरोंको तृप्त नहीं करते हैं ॥ ६१ ॥ वे सदैव सींगरहित दो पावोंवाले पशु जानने योग्य हैं ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां श्राद्धकल्पेपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा क्षुधित पितरन सबन ब्रह्मा कीन प्रबोध । सोई दोसौ छठेमें बरणत सूत सुबोध ॥ आनर्त बोला कि हे द्विज ! और भी अनेक प्रकार के अतिपुण्यदायक समयहैं तो किसलिये विशेषकर चन्द्रक्षय (अमावस) में विशेषकर श्राद्ध कहीगई है ॥ १ ॥ हे महामुने ! यह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! यह सत्यहै कि श्राद्धके योग्य बहुत समय पितृगणों को तृप्तिदायक व आपही प्रसन्नतादायक हैं कि मन्वादिक व युगादिक समय व अन्य संक्रान्तिया ॥ २ । ३ ॥ और व्यतीपात व गजछाया और चन्द्रमा, सूर्यके ग्रहण इन समयों में पितरों की तृप्ति के लिये करनेवाले को श्राद्ध योग्य है ॥ ४ ॥ वैसेही पुण्य-

आनर्तउवाच ॥ अन्येपिविविधाःकालास्सन्तिपुण्यतमाद्विज ॥ कस्माच्चन्द्रक्षयेश्राद्धंविशेषात्समुदाहृतम् ॥ १ ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामुने ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज श्राद्धार्हास्सन्तिभूरिशः ॥ २ ॥ कालाः पितृगणानाञ्च तृप्तिदास्तुष्टिदाःस्वयम् ॥ मन्वाद्यावायुगाद्यावातथासंक्रान्तयोपराः ॥ ३ ॥ व्यतीपातोगजच्छाया ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ एतेषुयुज्यतेश्राद्धं प्रकर्तुंपितृतृप्तये ॥ ४ ॥ तथातीर्थेविशेषेण पुण्येचायतनेशुभे ॥ श्राद्धार्हैर्ब्राह्मणैःप्राप्तैर्द्रव्यैर्वापितृवल्लभैः ॥ ५ ॥ अपर्वण्यपिकर्तव्यं सदाश्राद्धंविचक्षणैः ॥ सोमक्षयेविशेषेण शृणुष्वैकमनान्नृप ॥ ६ ॥ अमागत्यरवेरश्मिसहस्रप्रमुखःस्थितः ॥ यस्यस्वतेजसासूर्य्यः प्रोक्तस्त्रैलोक्यदीपकः ॥ ७ ॥ तस्मिन्वसतियेनेन्दुरमावास्याततःस्मृता ॥ अक्षयाधर्म्मकृत्येसा पितृकल्पेविशेषतः ॥ ८ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदश्चाज्यपाःसोमपा

दायक तीर्थ व उत्तम स्थान में श्राद्ध करना योग्यहै व श्राद्धके योग्य प्राप्त हुये ब्राह्मणों से व पितरों को प्रिय वस्तुवों के भी प्राप्त होने से ॥ ५ ॥ बिन पर्वमें भी सदैव चतुरों को श्राद्ध करना चाहिये व विशेषकर चन्द्रमा के क्षय (अमावस) में करना चाहिये हे राजन् ! एक मनवाले (सावधान) होकर सुनिये ॥ ६ ॥ सूर्यके साथही आकर हज़ारों किरणों से प्रधान चन्द्रमा स्थित होताहै व जिसके निज तेजसे सूर्यनारायण त्रिलोकके दीपक कहेगये हैं ॥ ७ ॥ जिससे चन्द्रमा उस दिन सूर्यके साथ बसताहै उसी कारण अमावस्या कहीगई है वह धर्मकार्योंमें अविनाशिनी व विशेषकर पितृकल्पमें अक्षयाहै याने अविनाशिनी तृप्ति देनेवालीहै ॥ ८ ॥ क्योंकि

किरणोंके स्वामी अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप व सोमप और तदनन्तर अन्य पितर गण बुलाये जातेहैं ॥ ९ ॥ वैसेही हे राजन्! अन्य नान्दीमुख पितर श्राद्ध में भोजन करनेवाले कहेगये हैं देवोंसे उपजेहुये ये पितरोंके गण तुमसे कहेगये ॥ १० ॥ आदित्य, वसु, रुद्र व अश्विनीकुमारभी नान्दीमुख पितरों को छोड़कर उन्हीं इन पितरों को भलीभांति तृप्त करते हैं ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माने उन पितरोंको भलीभांति आज्ञा दियाहै उसी कारण कमल से उपजे हुये ब्रह्माजी उनको भलीभांति तृप्तकरके सृष्टि करते हैं ॥ १२ ॥ और भी पितर मनुष्य होतेहुये त्रिलोक में बसते हैं वे दो प्रकार के देख पड़ते हैं एक दुःखी और दूसरे सुखी होतेहैं ॥१३॥

स्तथा ॥ रश्मिपाउपहूताश्च तथैवान्येततःपरम् ॥ ९ ॥ तथाश्राद्धभुजश्चान्येस्मृतानान्दीमुखान्नृप ॥ एतेपितृगणाः ख्यातास्तवदेवसमुद्भवाः ॥ १० ॥ आदित्यावसवोरुद्रा नासत्यावश्विनावपि॥ सन्तर्पयन्तितांश्चैतान्मुक्त्वानान्दीमुखा न्पितॄन् ॥ ११ ॥ब्रह्मणातेसमादिष्टाः पितरोनृपसत्तम ॥ तान्सन्तर्प्यततःसृष्टिं कुरुतेपद्मसम्भवः ॥ १२ ॥ अन्येपिपित रोमर्त्या निवसन्तित्रिविष्टपे ॥ द्विविधास्तेप्रदृश्यन्ते दुःखिनस्सुखिनःपरे ॥ १३ ॥ येभ्यःश्राद्धानियच्छन्ति मर्त्यलो केस्ववंशजाः ॥ तेसर्वेतत्रसंहृष्टा देववन्मुदिताःस्थिताः ॥ १४ ॥ येषांप्रयच्छतेनैव किञ्चित्कश्चित्स्ववंशजः॥ भक्त्या हृष्टामहाराज सहस्राक्षप्रपूजिताः ॥ १५ ॥ तथान्यैर्विबुधैस्सर्वैः प्रस्थितास्स्वंनिकेतनम् ॥ पितृलोकंमहाराज दु र्लभंत्रिदशैरपि ॥ १६ ॥ तान्दृष्ट्वाप्रस्थितान्राजन्पितरोमर्त्यसम्भवाः ॥ क्षुत्पिपासार्दितायेच रुरुदुर्दैन्यमाश्रिताः ॥१७॥ स्तुत्वाथसुस्तवैर्दिव्यैः पितृसूक्तैश्चपार्थिव ॥ वेदोक्तैरपरैश्चैवपितृतुष्टिकरैःपरैः ॥ १८ ॥ ततःप्रोचुश्चसंहृष्टाः पितरस्तान्सु

अपने वंशमें उपजेहुये पुरुष मृत्युलोक में जिनके लिये श्राद्धैं देते हैं वहां प्रसन्न होतेहुये वे सब देवोंके नाईं आनन्दितहो स्थित होते हैं ॥ १४ ॥ और निजवंश में उपजा हुआ कोई पुरुष जिनको कुछ नहीं देता है हे महाराज! वे हज़ार लोचनों वाले इन्द्र व अन्य समस्त देवोंसे भक्ति समेत पूजेहुये प्रसन्न होकर हे महाराज! देवोंसे भी दुर्लभ पितृलोक नामक अपने स्थानको प्रस्थान करते हैं ॥ १५। १६ ॥ हे राजन्! प्रस्थान किये हुये उन पितरों को देखकर मनुष्यों से उपजे हुये पितर जोकि क्षुधा, प्यासले विकल हैं वे दीनता में आश्रित होकर रोनेलगे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त हे राजन्! पितरों को तुष्टिकारक उत्तम स्तोत्रों व अन्य वेदोक्त

तथा पितृसूक्तवाले दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करके प्रसन्न करतेभये ॥ १८॥ तदनन्तर अतिप्रसन्न होतेहुये देवताओं से उत्पन्न पितर उनसे बोले कि प्रशंसित व्रतवाले हम सब तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हैं ॥ १९ ॥ इसलिये कहिये कि जिससे हमलोग तुमलोगों के मनमें टिकेहुये मनोरथ को देवैं पितर बोले कि यहां आये हुये हम लोग मनुष्यों के पितर कहेगये हैं ॥ २० ॥ हमलोग अपने कर्मसे हंस, मयूरों से प्रसिद्ध व मधु (वसन्त ऋतु) ध्वजा, पताका वाले चाहे हुये लोकों में सब दिशाओं के बीच पवित्र विमानोंपै नित्यही देवताओंके साथ बसते हैं तथा अप्सरा समूहों से भलीभांति सेवित होकर ॥ २१ । २२ ॥ गन्धर्वों से गाये और गुह्यकों से स्तुति

रोद्भवान् ॥ प्रसन्नाःस्मोवयंसर्वे युष्माकंसंशितव्रताः॥१९॥तस्माद्ब्रूतवयंयेन यच्छामोवोहृदिस्थितम् ॥ पितरऊचुः॥ वयंहिपितरःख्याता मनुष्याणामिहागताः ॥ २० ॥ स्वर्गेस्वकर्मणानित्यं निवसामस्सुरैस्सह ॥ विमानेषुपवित्रेषु संस्थिताःसर्वतोदिशम् ॥ २१ ॥ वाञ्छितेषुचलोकेषुमधुध्वजपताकिषु ॥ हंसबर्हिणमुख्येषु संसेव्याप्सरसांगणैः ॥ २२ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानाश्चस्तूयमानाश्चगुह्यकैः ॥ परंसंतिष्ठमानानामस्माकंत्रिदशैस्सह ॥ २३ ॥ अत्यर्थंजायते तीव्रा क्षुत्पिपासासुदारुणा ॥ यस्यांमन्यामहेचित्ते वह्निमध्यगतावयम् ॥ २४ ॥ भक्षयामःकिमेतान्हि पक्षिणोविविधानपि ॥ हंसादीन्मधुरालापान्कश्चिदादायपक्षिणम् ॥ २५ ॥ गृध्रोगृह्णातिभक्षार्थंहन्तुंशक्नोतिसोपिन॥ अजराश्चामराश्चैव स्वर्गेयेस्वर्गगाःखगाः ॥ २६ ॥ तथामनोरमावृक्षानन्दनादिवनेषुच ॥ फलितायेप्रदृश्यन्ते प्राप्याश्चापिमनोरमाः ॥ २७ ॥ तत्फलानिवयंसर्वे गृह्णीमःपितरोयदि ॥ नत्रुटन्तिचयत्नेन समाकृष्टानितान्यपि ॥ २८ ॥ एतच्चाकाश

किये जाते हैं परन्तु देवताओं के साथ भलीभाति बैठेहुये हमलोगों के ॥ २३ ॥ अत्यन्तही तीव्र व भयङ्कर क्षुधा, प्यास उत्पन्न होती है कि जिसमें हमलोग चित्त में यह मानते हैं कि अग्निके बीचमें प्राप्तहैं ॥ २४ ॥ क्या हमलोग इनमीठे वचन वाले हंसादिक अनेक प्रकार के पक्षियों को भी भक्षणकरैं किसी पक्षीको लेकर ॥ २५ ॥ गीध खानेके लिये ग्रहण करता है परन्तु मारने के लिये वहभी नहीं समर्थ होता है क्योंकि स्वर्ग में जो स्वर्गगामी पक्षी हैं वे अजर व अमरही हैं ॥ २६ ॥ वैसेही नन्दनादिक वनोंमें फलेहुये जो मनोहर वृक्ष देखपड़ते हैं वे सुन्दर व पानेके योग्य भी हैं ॥ २७ ॥ हे पितरो ! यदि सब हमलोग उनके फलोंको ग्रहण करतेहैं

तो यत्न से भलीभांति खींचे हुये भी वे नहीं टूटते हैं ॥ २८ ॥ और प्यासने विकल हमलोग यदि इस आकाशगामिनी नदीके जलको पीते हैं तो वह हाथोंमें नहीं आता व न फिर स्पर्शकरता है ॥ २९ ॥ इस स्वर्ग में भोजन करता व पीता हुआ कोई भी नहीं देख पड़ता है उसी कारण हमलोगों का स्वर्ग में निवास कठिन व भयङ्कर है ॥ ३० ॥ ये समस्त सुरगण व और जो गुह्यकादिक इस स्वर्गमें विमानों में वैठे हैं वे सब प्रसन्न मनवाले ॥ ३१ ॥ व क्षुधा, प्यास से वर्जित व अनेकों प्रकार के सुखोंमें भलीभांति टिके हैं और क्षुधा, प्यास से रहित व उत्तम तृप्ति को प्राप्त हम सब कभी नहीं देवोंके समान घूमते हैं तो यह क्या कारणहै कि भूंख

गातोयं तृषार्तायदियत्नतः॥ प्रपिबामोनहस्तेषु घटतेनपुनःस्पृशेत् ॥२९॥ भुञ्जानश्चनकोप्यत्रदृश्यतेऽत्रपिबन्नपि ॥ तस्मात्त्रिविष्टपेवासश्चास्माकंघोरदारुणः ॥ ३० ॥ एतेसुरगणास्सर्वे येचान्येगुह्यकादयः ॥ दृश्यन्तेऽत्रविमानस्थास्सर्वेसंहृष्टमानसाः ॥ ३१ ॥ क्षुत्पिपासापरित्यक्ता नानाभोगसमाश्रयाः ॥ कदाचिन्नवयंसर्वे बभ्रमुस्त्रिदशाइव ॥ ३२ ॥ क्षुत्पिपासापरित्यक्तास्संतृप्तिंपरमाङ्गताः ॥ तत्किंकारणमेतद्धिक्षुत्पिपासाप्रजायते ॥ ३३ ॥ यथैवाकस्मिकीबाधा कदाचिन्नप्रणश्यति ॥ तथाकुरुतभद्रंवोयथातुष्टिःप्रजायते ॥ ३४ ॥ शाश्वतीनोयथान्येषां तेनवःशरणङ्गताः ॥ पितरऊचुः ॥ अस्माकमपिचैवैषा कष्टावस्थाप्रजायते ॥ ३५ ॥ शक्राद्याविबुधाव्यग्राःश्राद्धंयच्छन्तिनोयदा ॥ ततश्चागत्यतान्सर्वान्देवान्सम्प्रार्थयामहे ॥ ३६ ॥ ततस्तृप्तिंप्रगच्छामस्तैर्देवैस्तर्पितावयम् ॥ वंशजायेचयच्छन्ति प्रयच्छन्तिसमाहताः ॥ ३७ ॥ कथंनतृप्तिमायातास्तैस्सर्वैस्तेप्रतर्पिताः ॥ येऽत्रप्रमादिभिर्वश्यैर्नतृप्यन्तेकथञ्चन ॥ ३८ ॥ क्षुत्पिपासाकु

प्यास उत्पन्न होतीहै ॥ ३२ । ३३ ॥ और जैसेही अचानकवाली बाधा कभी नहीं नाशहोती है वैसेही यह है तुमलोगों का कल्याण होवै जिस प्रकार अन्य सबोंकी है वैसेही हम सबोंकी सदैव वाली तृप्ति जिसभांति होवै वैसाही कीजिये उसी से तुम लोगों की शरण में प्राप्त हैं पितर बोले कि हम लोगोंकी भी यही कष्टीली दशा है ॥ ३४।३५ ॥ जब असावधान होतेहुये इन्द्रादिक देवता हमलोगों को श्राद्ध नहीं देते हैं तदनन्तर आकर हम उन समस्त देवोंसे भलीभांति प्रार्थना करते हैं ॥३६॥ उसके उपरान्त उन देवोंसे तृप्त कियेहुये हमलोग तृप्तिको प्राप्तहोते हैं वंशमें उपजेहुये जो पुरुष देते हैं व सावधान होते अन्य नरजो देतेहैं ॥ ३७ ॥ तो उन सबों

से तृप्त किये हुये वे क्यों नहीं तृप्तिको प्राप्त होते हैं व यहां वंश में उपजे हुये असावधान नरोंसे जो किसी प्रकार नहीं तृप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ वे सब उस समय निःसन्देह भूंख, प्याससे विकलहोते हैं फिर जो धर्मराजके घरमें नरकोंमें टिके हैं उनको क्या कहना है ॥ ३९ ॥ किसी प्रकार इस कारणको मैंने तुमलोगों से कहा जो कि तुम सबोंने क्षुधा, प्यास से उपजे हुये वृत्तान्त को कहाथा ॥ ४० ॥ हे श्रेष्ठ पितरो ! यदि तुमलोग सब दीहुई कन्यका विभाग हमलोगों को भलीभांति देवो तो हम ब्रह्मासे प्रार्थना करके व आपही उनके समीप जाकर उत्तम हितकरैं तदनन्तर हां यही उनसे कहेहुये वे उनको भी लेकर ॥ ४१ । ४२ ॥ देवताओं वाले पितरगण

खास्सर्वेतेतदास्युर्नसंशयः ॥ किंपुनर्नरकस्थायेधर्म्मराजनिवेशने ॥ ३९ ॥ एतद्धिकारणंप्रोक्तं युष्माकंचकथञ्चन ॥ क्षुत्पिपासोद्भवंरौद्रं युष्माभिर्य्यदुदीरितम् ॥ ४० ॥ तदस्माकंविभागञ्चेत्संप्रयच्छतसत्तमाः ॥ सर्वेकन्यस्यदत्तस्यतत्कुर्मोवैहितंशुभम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणंप्रार्थयित्वाच स्वयंगत्वातदन्तिकम् ॥ बाढमित्येवतैरुक्तास्ततआदायतानपि ॥ ४२ ॥ दिव्याःपितृगणाःप्राप्ता विधेस्सदनमुत्तमम् ॥ नान्दीमुखान्पुरस्कृत्य पितॄन्यांस्तर्पयेद्विधिः ॥ ४३ ॥ सृष्टिकालेतुसम्प्राप्ते वृद्धिकामस्सुरेश्वरः ॥ अथतैस्सहतेसर्वैस्स्तुत्वातंकमलासनम् ॥ ४४ ॥ प्रणिपत्यस्थितास्सर्वे पितरोविनयान्विताः ॥ पितॄंस्तान्विनयोपेतान्प्रणिपातपुरस्सरान् ॥ ४५ ॥ विधिःप्रोवाचराजेन्द्र सान्त्वयञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ किमर्थंपितरस्सर्वे समायातामामान्तिकम् ॥ ४६ ॥ देवतानांमयासार्द्धं सम्पूज्यास्सर्वदास्थिताः ॥ पितरऊचुः ॥ पितरोमानवाह्येते स्वर्गं प्राप्तास्स्वकर्म्मभिः ॥ ४७ ॥ देवतामध्यसंस्थाश्च विद्यन्तेक्षुत्पिपासया ॥ यदागच्छन्तिनोतृप्तिं यथास्माकंसदासुरैः ॥ ४८ ॥

उन नान्दीमुख पितरों को आगेकर कि सृष्टि समय प्राप्त होनेपर वृद्धिकी कामना वाले सुरनायक ब्रह्माजी जिनको तृप्त करते हैं ब्रह्माके उत्तम मन्दिर में प्राप्तहुये इसके अनन्तर उन समेत वे सब उन कमल आसन वाले ब्रह्माकी स्तुति करके ॥ ४३ । ४४ ॥ व नम्रता संयुत सब पितर प्रणाम करके खड़े हो रहे हे नृपेन्द्र ! प्रणामपूर्वक नम्रता संयुत उन पितरों को नम्रवाणीसे समझाते हुये ब्रह्माजी बोले कि सब पितर मेरे समीप क्यों आयेहो ॥ ४५ । ४६ ॥ जो सब कि मुझ समेत देवताओं से सदैव भलीभांति पूजने योग्य स्थितहो पितर बोले कि अपने कर्मोंसे स्वर्ग में प्राप्तहुये ये मनुष्य पितर हैं ॥ ४७ ॥ जैसे कि देवोंसे हमारी तृप्ति होती है

वैसेही जब तृप्तिको नहीं पाते हैं तब देवोंके मध्यमें भलीभांति टिकेहुये भूंख, प्याससे विद्यमान होतेहैं ॥४८॥ उसी कारण निरन्तर वाली तृप्तिकेलिये इन्होंने हमलोगोंसे प्रार्थना किया और हम देनेके लिये समर्थ नहीं हैं इसी कारण तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ ४९ ॥ हे प्रभो, सुरनायक ! जब देवता असावधान होतेहैं तब कव्य (पितरोंके निमित्त खीरआदिभाग) के विना हमलोगोंको भी यह भूंख कष्टदायक होती है ॥ ५० ॥ इस लिये हे सुरनायक ! उन समेत हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता करिये कि जिससे अपने स्थान में टिकेहुये भी पितरों की तृप्तिहोवै ॥ ५१ ॥ ये पितर निज वंशमें उपजेहुये नरोंसे दीहुई कव्य हमलोगों को देवैंगे उसी कारण हे देव !

तदैतैःप्रार्थनास्माकंकृताशाश्वतितृप्तये ॥ नचशक्तावयंदातुमतस्त्वांसमुपस्थिताः ॥ ४९ ॥ यदातुदेवताऽव्यग्रा तदास्माकमपिप्रभो ॥ कव्यंविनाभवेदेषाक्षुधाकष्टासुरेश्वर ॥ ५० ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंनः समंतेषांसुरेश्वर ॥ यस्मात्स्याच्छाश्वतीतृप्तिः स्वस्थानस्थायिनामपि ॥ ५१ ॥ एतेस्माकंप्रदास्यन्तिकव्यंयन्निजवंशजैः ॥ प्रदत्तंतेनसम्प्राप्ता तृप्तिंदेवत्वदन्तिके ॥ ५२ ॥ देवानाञ्चैवयत्कव्यं तन्नास्माकंप्रतृप्तये ॥ यतःक्रियाविहीनन्तन्नतेषांविद्यतेक्रिया॥५३॥ पितृनुद्दिश्ययत्कव्यं ब्राह्मणेभ्यःप्रदीयते ॥ स्नातैर्धौताम्बरैर्मर्त्यैस्तद्भवेत्तृप्तिदंमहत् ॥ ५४ ॥ पितृणांसर्वदेवेश यदेषावैदिकीश्रुतिः ॥ नस्नानस्याधिकारोस्ति देवानाञ्चद्विजातिवत् ॥ ५५ ॥ पीयूषमपितैर्दत्तं तेनतस्यान्नतृप्तये ॥ तस्मान्मानुषदत्तैर्नोयथाकव्यैःप्रजायते ॥ ५६ ॥ स्वर्गस्थानांपरातृप्तिस्समस्तैस्तथाकुरु ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वा सुचिरंध्यात्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ५७ ॥ तानुवाचततःसर्वान्पितृन्पार्थिवसत्तम ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अस्मिंस्त्रेतायुगेसञ्ज्ञा

तुम्हारे समीप भलीभाति प्राप्तहुये हैं ॥ ५२ ॥ और देवताओं की जो कव्य है वह हमको तृप्तिके लिये नहीं होती है क्योंकि वह कव्य क्रिया से हीन होती है और उन देवोंके कर्म नहीं विद्यमान होते हैं ॥ ५३ ॥ धोये हुये वसनों वाले व नहायेहुये पुरुषों से जो कव्य पितरों को उद्देश कर ब्राह्मणों के लिये दीजाती है वह पितरों को बड़ी भारी तृप्तिदायक होती है हे समस्तसुरस्वामिन् ! जिस लिये कि यह वैदिकी (वेदवाली) श्रुतिहै कि द्विजाति याने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्योंकी नाई देवों को नहाने का अधिकार नहीं है ॥ ५४ । ५५ ॥ उसी कारण उन देवोंसे दियाहुआ वह अमृत भी तृप्तिके लिये नहीं होताहै इस लिये जिस प्रकार इन समेत स्वर्गमें

टिकेहुये हमलोगोंको मनुष्यों से दीहुई कव्योंसे उत्तम तृप्तिहोवै वैसाही कीजिये भर्तृयज्ञ बोले कि उस वचनको सुनकर बहुत देरतक ध्यान करके लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ॥ ५६।५७॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम!उन समस्त पितरोंसे कहा ब्रह्मा बोले कि इस त्रेतायुग में हव्य कव्य से उपजी हुई संज्ञा होगी ॥ ५८ ॥ व युग्म (द्वापर) युगमें भलीभांति जावैगी और कलियुग में न होगी ज्यों २ पुरुषों की यह न्यूनता होगी ॥ ५९ ॥ त्यों २ मनुष्य दुष्ट व बिन भक्तिवाले होवैंगे और किसी प्रकार पितरों को हव्य, कव्य न देवैंगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर पितरों की अत्यन्त कष्टवाली दशा होगी इस लिये मैं शरीरधारियों के सुखके उपायको करूंगा ॥ ६१ ॥ जिससे

हव्यकव्यसमुद्भवा ॥५८॥ सम्प्रयातायुगेयुग्मेकलौनप्रभविष्यति ॥ यथायथाचपुंसांवैह्रासएषभविष्यति ॥ ५९ ॥ तथा तथाजनादुष्टाःप्रभविष्यन्त्यभक्तिकाः ॥ हव्यंकव्यंपितॄणाञ्चनदास्यन्तिकथञ्चन ॥ ६० ॥ ततःकष्टतरावस्थापितॄणां सम्भविष्यति ॥ तस्मादहंकरिष्यामि सुखोपायंशरीरिणाम् ॥ ६१ ॥ येनसन्तर्पितायूयं परांतृप्तिमवाप्स्यथ ॥ पितुः पितामहस्यैवतत्पितुश्चततःपरम् ॥ ६२ ॥ समुद्देशेनदत्तेनब्राह्मणेभ्यःप्रशक्तितः ॥ सर्वेषांसादरातृप्तिर्यावन्तःपितरोधुना ॥ ६३ ॥ तथामातामहानाञ्च पक्षेतत्रनसंशयः ॥ त्रिभिस्सन्तर्पितैस्तेऽपि तर्पितास्स्युर्ममावधि ॥ ६४ ॥ युष्माकंतृप्तयेयश्च सुखोपायोभविष्यति ॥ तच्छ्रूयतांमहाभागा वदतोममसाम्प्रतम् ॥ ६५ ॥ पितॄन्येनैवयत्नेन समुद्दिश्यद्विजोत्तमान् ॥ तर्पयिष्यन्तितेनैव पिण्डान्दास्यन्तिभक्तितः ॥ ६६ ॥ तेनैवकर्म्मणातृप्तिश्शाश्वतीसम्भविष्यति ॥

भलीभांति तृप्तहोते हुये तुमलोग उत्तम तृप्तिको पावोगे कि पिता, पितामह तदनन्तर प्रपितामह (परबाबा) के भलीभांति उद्देशसे ब्राह्मणोंके लिये शक्तिसे दीहुई वस्तुके द्वारा सब की आदर समेत तृप्तिहोगी जितने कि इस समय पितर हैं ॥ ६२ । ६३ ॥ वैसेही वहां मातामहों (नानाआदिकों) के पक्षमें तीनों को भलीभांति तृप्त करने से निरसन्देह वे भी पितर मेरी अवधि तक तृप्तहोवैंगे ॥ ६४ ॥ व तुम लोगों की तृप्ति के लिये जो सुखपूर्वक उपाय होगा हे महाभाग्यवाले, पितरो! उसको कहते हुये मुझसे इस समय सुनिये ॥ ६५ ॥ कि जिस उपाय से ही भली भांति पितरों को उद्देशकर द्विजोत्तमों को तृप्त करेंगे उसी यत्नसे भक्तिसे पिण्डों

को देवैंगे ॥६६॥ उसी कर्मसे निरन्तरवाली तृप्ति भलीभांति होगी इसलिये पहले उपजे हुये तुमलोग प्रसन्न होकर अपने स्थानोंको जावो ॥ ६७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! उन पितरों से मिलेहुये वे दिव्य पितर स्तुति करके व सूर्यनारायण के समान विमानों के द्वारा जाकर अपने स्थानोंको भजते भये (प्राप्तहुये) ॥ ६८ ॥ और तदनन्तर हे राजन् ! बहुत समय व्यतीत होनेसे यहां बहुत मनुष्य नित्यही पितरों को भलीभांति उद्देशकर जो तीन पुरुषों में श्राद्ध है उसको भी न दिया हे नराधिपते, नृपते ! जैसे पहले थी वैसेही फिर उन पितरों के ॥ ६९ । ७० ॥ क्षुधा, प्यास से उपजी हुई बड़ी व्यथा हुई व हे नृपोत्तम ! उन देववाले पितरों को वही पीड़ा

तस्माद्गच्छतसन्तुष्टास्स्वानिस्थानानिपूर्वजाः ॥ ६७ ॥ ततस्तेसंहतास्तैस्तु स्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ विमानैस्सूर्य्य सङ्काशैर्गत्वापार्थिवसत्तम ॥ ६८ ॥ अथसङ्गच्छताराजन्कालेनमहताततः ॥ तच्चापिनदद्दुःश्राद्धं मर्त्यास्त्रिपुरुषेचयत् ॥ ६९ ॥ नित्यंपितॄन्समुद्दिश्य बहवोत्रनराधिप ॥ कव्याभावात्पुनस्तेषां यथापूर्वंतथान्नृप ॥ ७० ॥ क्षुत्पिपासोद्भवापीडा महतीसम्प्रजायते ॥ तेषाञ्चदैविकानाञ्च पितॄणांन्नृपसत्तम ॥ ७१ ॥ समेत्याथपुनस्सर्वे ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ प्रोचुश्चप्रणिपत्योच्चैस्सुदीनाःप्रपितामहम् ॥ ७२ ॥ भगवन्नप्रयच्छन्ति नित्यंनोवंशसम्भवाः ॥ श्राद्धानिदौःस्थ्यमापन्नास्तेनसीदामहेविभो ॥ ७३ ॥ यथापूर्वंतथादेव तदुपायंविचिन्तय ॥ किञ्चिद्येनदरिद्रोवै प्रीत्याचैवार्चयेत्पितॄन् ॥ ७४ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा तानाहप्रपितामहः ॥ कृपाविष्टोमहाराज सर्वान्पितृगणांस्तथा ॥ ७५ ॥ सत्यमेतन्महाभागा दौःस्थ्यंयान्तिदिनेजनाः ॥ यथात्रकलिकालेचयुगश्रेष्ठेचपृष्ठतः ॥ ७६ ॥ तथापिचकरिष्यामि युष्मदर्थम

हुई ॥७१॥ इसके अनन्तर फिर सब मिलकर ब्रह्मा की शरण गये व उच्च प्रकारसे प्रणाम कर अतिदीन होतेहुये प्रपितामह (ब्रह्मा) जी से बोले ॥ ७२ ॥ हे विभो, भगवन् ! हमलोगों के वंशमें उपजे हुये पुरुष नित्य श्राद्धोंको नहीं देते हैं उसीसे दुष्टदशामें प्राप्त हमलोग क्लेशित होते हैं ॥ ७३ ॥ व हे देव ! जैसे पहले थे वैसे ही होगये उसका कुछ उपाय चिन्तन करिये कि जिस से निर्धनी निश्चय कर प्रीति से पितरों को पूजै ॥ ७४ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! उन पितरों के उस वचन को सुनकर दयासंयुत होते हुये ब्रह्माजी उन समस्त पितृगणों से बोले ॥ ७५ ॥ हे महाभाग्यवाले पितरो ! यह सत्यहै कि जैसे पीछे कलिकालवाले

दिन में मनुष्य दुःस्थिति को प्राप्तहोते हैं वैसेही इस युगोत्तम में होगये ॥ ७६ ॥ तिसपर भी तुमलोगों के लिये निरसन्देह छोटा उपाय करूंगा जिससे यही भली भांति तृप्ति होगी ॥ ७७ ॥ साथही चन्द्रमा सूर्यकी हज़ारों आदिक किरणोंमें स्थित होताहै उसमें चन्द्रमा जिससे बसता है उसी कारण अमावास्या कहीगई है ॥७८॥ उस दिन जो मनुष्य अपने पितरों को उद्देशकर भक्तिसे श्राद्ध करैंगे वे भलीभांति स्थित होवैंगे ॥ ७९ ॥ व मेरे वचन से निरसन्देह धन, धान्यसे संयुत और समस्त शत्रुओं से रहित तथा अपमृत्यु से छुटेहुये होवैंगे ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उन ब्रह्माजी के उस वचनको सुनकर पितर फिर प्रसन्नमनवाले होगये व कमल से

संशयम् ॥ उपायंलघुसंतृप्तिर्येनचात्रभविष्यति ॥ ७७ ॥ अमासोमरवेरश्मिसहस्रप्रमुखस्थितः ॥ तस्मिन्वसतियेनेन्दुरमावास्याततःस्मृता ॥ ७८ ॥ तस्मिन्नहनियेश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यचात्मनः ॥ करिष्यन्तिनराभक्त्या तेभविष्यन्तिसुस्थिताः ॥७९॥ धनधान्यसमोपेतास्सर्वशत्रुविवर्जिताः ॥अपमृत्युपरित्यक्ता ममवाक्यादसंशयम् ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञ उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा बभूवुर्हृष्टमानसाः ॥ पितरःपुनरासाद्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८१॥ ययुःस्वानिनिकेतानि प्रेषिताःपद्मयोनिना ॥ अमावास्यादिनेप्राप्य श्राद्धंदत्तंस्ववंशजैः ॥८२॥ सन्तुष्टामासमात्रन्तु तस्थुस्सन्तुष्टमानसाः ॥ गच्छताकलिकालेन दौःस्थ्यंप्राप्यनराभुवि ॥ ८३ ॥ दर्शेसत्यपिनोश्राद्धं प्रायःकुर्वन्तिकेचन ॥ ततःपितृगणास्सर्वे येदिव्यायेचमानुषाः ॥ ८४ ॥ क्षुत्पिपासाकुलाभूयो ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ प्रोचुश्चप्रणिपत्योच्चैस्तेसमेताःपितामहम् ॥ ८५ ॥ परमंदैन्यमास्थाय बाष्पगद्गदयागिरा ॥ भगवन्निन्दुक्षयेश्राद्धं प्रोक्तंमासंत्वयाविभो ॥ ८६ ॥ अस्माकंप्री

उपजेहुये ब्रह्मासे पठायेहुये वे प्रसन्न अन्तःकरणसे जाकर अपने घरोंमें प्राप्तहुये व अमावास्याके दिन अपने वंशमें उपजेहुये पुरुषोंसे दीहुई श्राद्धको पाकर ॥८१।८२॥ प्रसन्न होतेहुये सन्तुष्टमनवाले होकर महीना भर टिकते भये व कलिकालके गमन करने से मनुष्य भूमिमें दुःस्थिति को पाकर ॥ ८३ ॥ अमावास्या के होने पर भी बहुधा कोई नहीं श्राद्ध करते थे उसी कारण जो दिव्य और जो मनुष्यवाले हैं वे समस्त पितर समूह ॥ ८४ ॥ भूंख, प्यास से विकल होतेहुये फिर ब्रह्माकी शरणगये व साथही वे उच्च प्रकार से प्रणाम कर व बड़ी दीनतामें प्राप्तहोकर आंसुवों से गद्गदी वाणी के द्वारा ब्रह्मासे बोले कि हे विभो, भगवन्! तुमने जो

कहा था कि हम लोगों की महीने भर तृप्ति के लिये अमावसमें मनुष्य श्राद्ध करैंगे हे पितामह! बहुधा दुःस्थितिसे उसको भी नहीं करते हैं ॥ ८५ । ८६ । ८७ ॥ उसी से हे सुरनायक! जैसे पहलेथी वैसेही हम लोगों को भूंख, प्यास से उपजी हुई बड़ी व्यथा है इस लिये हम लोगों के ऊपर प्रसन्नता करिये ॥ ८८ ॥ क्योंकि तिस पर भी सूर्यनारायण में चन्द्रमा को स्थित होने पर इससमय नहीं तृप्त करैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि इसके अनन्तर भलीभांति ध्यान करके दयासंयुतहो ब्रह्माने भी उन से कहा ॥ ८९ ॥ कि हे पितरो! मैं ने तुम लोगों के लिये छोटा यत्न चिन्तन किया है कि जिससे इसके अनन्तर सब उत्तम तृप्ति को प्राप्त होगे ॥ ९० ॥ अमा-

तेनास्माकंपरापीडा क्षुत्तिपा
णनार्थाय यत्करिष्यन्तिमानवाः ॥ दौःस्थ्यात्तदपिनोकुर्य्युःप्रायशस्तुपितामह ॥ ८७॥ तेनास्माकंपरापीडा क्षुत्तिपा
सासमुद्भवा ॥ तस्मात्कुरुप्रसादन्नो यथापूर्वंसुरेश्वर ॥ ८८॥ तथापीन्दुस्थितेभानौ तर्पयिष्यन्तिनोधुना ॥ भर्तृयज्ञउवा
च ॥ अथब्रह्मापिसञ्चिन्त्य तानुवाचकृपान्वितः ॥ ८९ ॥ युष्मदर्थंमयोपायश्चिन्तितःपितरोलघुः ॥ येनतृप्तिंपरांसर्वेग
मिष्यथइतःपरम् ॥ ९० ॥ अमावास्योद्भवंश्राद्धमलब्ध्वाप्रतिवत्सरम् ॥ यथाममप्रसादेन तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥
९१ ॥ आषाढ्याःपञ्चमेपक्षे कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ मृताहनिपुनर्योवै श्राद्धंदास्यतिमानवः ॥ ९२ ॥ तस्यसंवत्सरंया
वत्संतृप्ताःपितरोध्रुवम् ॥ एवंज्ञात्वाकरिष्यन्ति प्रेतपक्षेनराभुवि॥९३॥श्राद्धंयूयंनसन्देहो भविष्यथसुतर्पिताः ॥यावत्संव
त्सरन्तेन एकेनापितुसत्तमाः ॥ ९४ ॥ तस्मिन्नपितुयःश्राद्धंयुष्माकंनप्रदास्यति ॥ शाकेनापिदरिद्रोसावन्त्यजत्वमुपे
ष्यति ॥ ९५ ॥ आसनंशयनंभोज्यं स्पर्शंसम्भाषणंतथा ॥ येकरिष्यन्तितैस्सार्द्धं तेपिपापतमानराः ॥ ९६ ॥ नतेषांस

वास्या में उपजेहुये श्राद्धको न पाकर प्रतिवर्ष जिसप्रकार मेरी प्रसन्नता से तृप्तहोवोगे उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ ९१ ॥ कि असाढ़ी से पांचवें पक्षमे सूर्यनारायणको कन्याराशि में भलीभांति टिकने पर फिर मरेहुयेके दिन में जो श्राद्ध देवैगा ॥ ९२ ॥ उसके पितर वर्ष भरतक अवश्यकर भलीभांति तृप्त होवेंगे ऐसा जानकर प्रेतपक्षमें भूतलके मध्य मनुष्य श्राद्ध करैंगे ॥९३॥ व हे पितृश्रेष्ठो! तुमलोग निस्सन्देह उस एकभी श्राद्ध से वर्षभर तक भलीभांति तृप्तहोगे ॥ ९४ ॥ ॥ और उस दिनभी जो शाकसे भी तुम लोगों को श्राद्ध न देवैगा यह निर्धनी चाण्डालताको प्राप्त होगा ॥ ९५ ॥ और जो मनुष्य उन चाण्डालों के साथ आसन (बैठना)

सोना, खाना, छूना व सम्भाषण करैंगे वे भी मनुष्य अतिपापी होवेंगे ॥ ९६ ॥ और कभी उनके सन्तानकी वृद्धि न होगी व किसी प्रकार उनके सुख, धन व धान्य न होगी ॥ ९७ ॥ उसी कारण हे पितरो! अवश्यकर सावधान होतेहुये तुम लोग अपने स्थान को जाओ निर्धनी मनुष्योंवाले व भयंकर कलिकालके भी भली भांति प्राप्त होनेपर ॥९८॥ एक श्राद्ध विद्यमानहै उसको मनुष्य करैंगे जिससे समस्त वर्ष में तुम लोगोंकी उत्तम तृप्ति होगी ॥ ९९ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि प्रसन्नहोतेहुये वे पितर निश्चयकर अपने २ घर चलेगये और वर्षान्तमें श्राद्धको न पाकर क्षुधितहुये ॥ १०० ॥ इसके अनन्तर इस संसार में जो दुष्टात्मा व निःशंक तथा कृपण चित्त

न्ततेर्वृद्धिस्सम्प्रयास्यतिकर्हिचित॥नसुखंधनधान्यञ्च तेषांभाविकथञ्चन ॥ ९७॥ तस्माद्गच्छतचाव्यग्रास्स्वस्थानंपितरोध्रुवम्॥ कलिकालेपिसम्प्राप्ते दारुणेनिर्द्धनेजने ॥ ९८॥ विद्यतेश्राद्धमेकंहि प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ येनाखिलेभवेद्वर्षे युष्माकंतृप्तिरुत्तमा ॥ ९९ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तेध्रुवंपितरोहृष्टा जग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम्॥ वर्षान्तेऽपिसमासाद्य श्राद्धंनस्युर्बुभुक्षिताः ॥ १०० ॥ अथयेत्रदुरात्मानो निश्शङ्काःकृपणात्मकाः ॥ कलिनामोहिताःश्राद्धं वत्सरान्तेपिनोददुः ॥ १ ॥ तेषाञ्चपितरोभूयो दिव्यैःपितृभिरन्विताः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुः प्रोचुश्चदीनमानसाः ॥ २॥ भगवन्वत्सरान्तेपि कन्यासंस्थेदिवाकरे॥ नास्माकंवंशजाःश्राद्धं प्रयच्छन्तिदुरात्मकाः ॥ ३ ॥ तेनसम्पीडितादेव क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ वयंशरणमापन्नास्तत्प्रतीकारमाचर ॥ ४ ॥ यथापूर्वंमहाभाग वदोपायंलघूत्तमम् ॥ एकाहिकेनश्राद्धेन येनास्माकञ्चशाश्वती ॥ ५ ॥ तृप्तिस्सञ्जायतेदेव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ वंशक्षयेऽपिजातेपि अस्माकन्तुयतोभवेत् ॥६॥

वाले व कलियुग से मोहित थे उन्होंने वर्षान्त में भी श्राद्ध न दिया ॥ १ ॥ दीन मनवाले उनके पितर दिव्य (देवताओंवाले) पितरोंसे युक्त होतेहुये ब्रह्माकी शरण गये व बोले ॥ २ ॥ कि हे भगवन्! जब कन्याराशि में सूर्यनारायण टिकते हैं तब वर्ष के अन्त में भी वंश में उपजेहुये दुष्टात्मा पुरुष हम लोगों को श्राद्ध नहीं देते हैं ॥ ३ ॥ हे देव! उसी कारण क्षुधा, प्यास से विकल हम लोग शरण में प्राप्त हैं उसका प्रतीकार (यत्न) करिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग! जैसे कि पहले कहा था वैसेही उत्तम छोटे उपाय को कहिये कि जिससे हे सुरनायक देव! तुम्हारी प्रसन्नता से एकदिनवाले श्राद्धसे हम लोगों को निरन्तरवाली तृप्ति (छकावट)

होवे और वंश विनाश होने पर भी जिससे हम लोगों की तृप्ति होवै ॥ ५ । ६ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उनके उस वचनको सुनकर देरतक ध्यानकरके तदनन्तर बड़ी दयासंयुत होतेहुये ब्रह्माजीने आदरसमेत कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि मैंने तुम लोगोंकी तृप्तिके लिये और उपाय विचार कियाहै वह छोटाहै कि जिमसे तुम लोगोंकी सदैववाली अत्यन्त तृप्तिहोगी ॥ ८ ॥ कि गयाशिर तीर्थमें भलीभांति प्राप्तहोकर जो मनुष्य एकभी श्राद्ध देवैंगे उसके प्रभाव से उत्तम तृप्ति को पावोगे ॥ ९ ॥ पापात्माभी पुरुष व ब्रह्मघाती भी प्राणी तथा रौरवनरक में टिकेहुये भी व कुम्भीपाक नरक में गयेहुये नरको ॥ १० ॥ व प्रेतयोनि में प्राप्तभी जिसपुरुष

भर्तृयज्ञ उवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा चिरन्ध्यात्वापितामहः ॥ कृपयापरयाविष्टस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ७ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ अन्योयुष्मत्प्रतृप्त्यर्थमुपायश्चिन्तितोमया ॥ सलघुर्येनवोत्यर्थं तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ८ ॥ गया
शिरस्समासाद्यश्राद्धंदास्यन्तियेनराः ॥ अप्येकन्तत्प्रभावेण दिव्यांतृप्तिमवाप्स्यथ ॥ ९ ॥ अपिपापात्मनःपुंसो ब्र
ह्महस्यापिदेहिनः ॥ अपिरौरवसंस्थस्य कुम्भीपाकगतस्यच ॥ १० ॥ प्रेतभावगतस्यापि यस्यश्राद्धंप्रदास्यति ॥ गया
शिरसिवंशस्यतस्यमुक्तिर्भविष्यति ॥ ११ ॥ एतन्ममवचःश्रुत्वा सांप्रतंभुविमानवाः ॥ निर्द्धनापिकरिष्यन्ति श्राद्धमे
कदिनेत्रच ॥ १२ ॥ गयाशिरसिसुव्यक्तं युष्माकंमुक्तिदायकम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापितरस्तस्य वचनंपरमे
ष्ठिनः ॥ १३ ॥ अनुज्ञातास्ततस्तेनस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ ततःप्रभृतिश्राद्धानिप्रवृत्तानिधरातले ॥ १४ ॥ पिण्डदान
समेतानि यावदापुरुषत्रयम् ॥ पूर्वंब्रह्मादितःकृत्वायेकेचित्पुरुषागताः ॥ १५ ॥ परलोकंसमुद्दिश्यतावन्तःशक्तितो

को जो गयाशिर में श्राद्ध देवैगा उसके वंशकी मुक्ति होगी ॥ ११ ॥ मेरे इस प्रकट वचन को सुनकर इससमय भूमि में धनहीन भी पुरुष तुम लोगों की मुक्तिदायक श्राद्धको एकदिन इस गयाशिरतीर्थ में करैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि उन ब्रह्माके उस वचनको सुनकर पितर ॥ १२ । १३ ॥ तदनन्तर उन ब्रह्मासे आज्ञा दियेहुये व अपने स्थानों को भजते भये (प्राप्तहुये) तब से लगाकर तीनपुरुषोंतक पिण्डदान सहित श्राद्ध भूतल में वर्तमान हुये पहले ब्रह्मा से लगाकर जो पुरुष पर-

लोक गये हैं हे राजन्! उतनेही गिनतीके द्विजेन्द्रों को शक्ति से मनोरथदेते हुये भी उतनेही पुरुषों को भलीभांति उद्देशकर श्राद्ध करते हैं ॥ १४ । १५ । १६ ॥
यह बिन देवोंवाली श्राद्ध निर्धनियों को सुखदायक व पितरों, देवताओं तथा मनुष्यों को अतितृप्तिदायक है ॥ १७ ॥ उसी कारण पितरोंकी तृप्तिको चाहनेवाले
व विशेषकर जाननेवाले पुरुषको इन समयोंमें उपायसे श्राद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥ व दोनों लोकोंको चाहनेवालेनरको गयामें विशेषकर श्राद्धकरना चाहिये जो पुरुष
चन्द्रसंक्षय (अमावस) में पितरों को श्राद्ध नहीं देता है ॥ १६ ॥ उसके पितर क्षुधा, प्यासंसे घिरेहुये अङ्गोंवाले व दुःखित होते हैं और गुप्त मनोरथ से संयुतहोते

नृप ॥ तत्सङ्ख्यानांद्विजेन्द्राणां दत्तवन्तोपिवाञ्छितम् ॥१६॥ अदैवतमिदंश्राद्धं दरिद्राणांसुखावहम् ॥ पितॄणांदेवताना
ञ्च मनुष्याणांसुतृप्तिदम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छ्राद्धंप्रकर्तव्यंपुरुषेणविजानता ॥ पितॄणांवाञ्छतातृप्तिं कालेष्वेतेषुयत्नतः ॥
१८ ॥ गयायाञ्चविशेषेण लोकद्वयमभीप्सता ॥ नददातिनरःश्राद्धं पितॄणांचन्द्रसंक्षये ॥ १६ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः
पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ प्रेतपक्षंप्रतीक्षन्ते गूढवाञ्छासमन्विताः ॥ २० ॥ कर्षुकाजलदंयद्वद्दिवानक्तमतन्द्रिताः ॥ प्रे
तपक्षेऽयतिक्रान्ते यावत्कन्यागतोरविः ॥ २१ ॥ तावच्छ्राद्धंप्रवाञ्छन्ति दत्तंस्वैःपितरस्सुतैः ॥ ततस्तुलागतेप्येके सू
र्य्येवाञ्छन्तिपार्थिव ॥ २२ ॥ श्राद्धंस्ववंशजैर्दत्तं क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ तस्मिन्नपिऽयतिक्रान्ते कालेचालिगतेरवौ ॥
२३ ॥ निराशाःपितरोदीनास्ततोयान्तिनिजालयम् ॥ मासद्वयंप्रतीक्षन्ते गृहद्वारंसमाश्रिताः ॥ २४ ॥ वायुभूताःपिपा
सार्ताः क्षुत्क्षामाःपितरोनृणाम् ॥ यावत्कन्यागतस्सूर्य्यस्तुलास्थश्चमहीपते ॥ २५ ॥ तथादर्शदिनेतद्वद्ब्रह्मणोवचनान्नृ

हुये प्रेत पक्षको वैसेही परखते हैं ॥ २० ॥ जैसे कि निरालसीहोते हुये किसान दिनरात मेघको देखते हैं व प्रेत पक्षके बीतने पर जबतक सूर्यनारायण कन्याराशि
में प्राप्त रहते हैं ॥ २१ ॥ तबतक अपने पुत्रोंसे दीहुई श्राद्धको पितर इच्छा करते हैं तदनन्तर हे राजन्! तुला में सूर्य को प्राप्त होने पर भी कितेक क्षुधा, प्याससे
विकल पितर अपने वंश में उपजेहुये पुरुषों से दीहुई श्राद्धको चाहते हैं उससमयके भी बीतजाने पर जब सूर्यनारायण वृश्चिक राशि में प्राप्त होते हैं तब ॥
२२।२३ ॥ उसके उपरान्त बिनआसरे व दीन होतेहुये पितर अपने स्थानको चले जाते हैं और प्यास से विकल व भूंख से दुबले मनुष्यों के पितर पवन होतेहुये घर

के द्वार पै भली भांति टिककर दो महीने तक परखते हैं हे भूपते! जबतक सूर्य कन्याराशि में होवैं व तुलाराशि में स्थित होवैं तबतक ॥ २४ । २५ ॥ व वैसेही दर्श (अमावस) दिन में हे राजन्! पितरोंकी तृप्तिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदैव उसीकारण ब्रह्माके उस वचनसे श्राद्ध करना चाहिये ॥ २६ ॥ व हे राजन्! जैसे कि ब्रह्मा के वचन हैं वैसेही विशेषकर तिलों से मिलाहुआ जल देना चाहिये और उसके अभाव में भी विद्वान्को अमावसवाली श्राद्ध देना चाहिये ॥ २७ ॥ व उसके अभाव में जब दिन नायक (सूर्य) कन्याराशि में भलीभांति टिके हों तब व उसके अभाव में गया तीर्थ में एकबार श्राद्ध देवै ॥ २८ ॥ कि जिससे नित्य ही दीहुई श्राद्ध का फल भोग करताहै हे नरनायक! मुझ से जो पूंछा गया यह सब तुमसे मैंने वर्णन किया ॥ २९ ॥ हे राजन्! पितरों में परायण पुरुष अमावस व

प ॥ तस्माच्छ्राद्धंसदाकार्य्यं पितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ २६ ॥ तिलोदकंविशेषेण यथाब्रह्मवचोन्नृप ॥ तदभावेपिदर्शीयं श्राद्धंदेयंविपश्चिता ॥ २७ ॥ तदभावेचकन्यायां संस्थितेदिवसाधिपे ॥ तदभावेगयायाञ्च सकृच्छ्राद्धंविनिर्वपेत ॥२८॥ येननित्यप्रदत्तस्य श्राद्धस्यफलमश्नुते ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ २९ ॥ यत्नेनक्रियतेश्राद्धं जनैःपितृपरायणैः॥ अमावास्यांविशेषेण प्रेतपक्षेचपार्थिव॥३०॥ यश्चैतांच्छृणुयात्पुण्यां श्राद्धोत्पत्तिपरश्चयः॥ ससर्वदोषनिर्मुक्तः श्राद्धदानफलंलभेत् ॥ ३१ ॥ श्राद्धकालेपठेद्यस्तुश्राद्धोत्पत्तिमिमांनृप ॥ अक्षयंभवतेश्राद्धं सर्वंछिद्रविवर्जितम् ॥ ३२ ॥ असद्द्रव्येणवाचीर्णमनर्हैर्ब्राह्मणैरपि ॥ अनुक्तंकर्महीनंवा मन्त्रहीनमथापिवा ॥ ३३ ॥ सर्वसम्पूर्णतां याति कीर्तनात्पार्थिवोत्तम॥ अस्याःश्राद्धसमुत्पन्ने कीर्तनाच्छ्रवणादपि ॥३४॥ इति षडधिकद्विशततमोध्यायः॥२०६॥

विशेषकर प्रेतपक्षमें यत्नसे श्राद्ध करते हैं ॥ ३० ॥ जो पुण्यदायक इस श्राद्धकी उत्पत्ति को सुनताहै व जो तत्पर होताहै समस्त दोषोंसे छूटा हुआ वह श्राद्ध दान के फल को पाताहै ॥ ३१ ॥ हे राजन्! जो श्राद्ध समय में इस श्राद्ध की उत्पत्ति को पढ़ताहै उसकी समस्त श्राद्ध दोषों से रहित अविनाशिनी होतीहै ॥ ३२ ॥ व अशुभ वस्तुओं से कीहुई व अयोग्य ब्राह्मणों से भी न कहा व कर्म से हीन अथवा मन्त्रहीन भी जो होवै ॥ ३३ ॥ वह सब हे नृपोत्तम! इसके कहने से सम्पूर्णताको प्राप्त होताहै व श्राद्ध के भलीभांति उत्पन्न होनेपर इसके कहने व सुनने से भी सब सम्पूर्णताको प्राप्त होतीहै ॥ ३४ ॥ इति श्राद्धोत्पत्तिर्नामषडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०६॥

दो॰। जिमि मन्वादिक समय सब कहे श्राद्ध के हेत। दोसौ सतमर्मे सोइ सब वरणत हर्ष समेत॥ आनर्त्त बोला कि हे मुनिनायक! सब नरों को जिस विधि से श्राद्ध करना चाहिये उसको सम्पूर्णतासे कहिये मेरे बड़ी भारी श्रद्धा स्थित है॥१॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन्! सुनिये मैं मनुष्यों को समस्त कामनादायक व पितरों को नित्यही प्रसन्नतादायक श्राद्धकी उत्तम विधि कहूंगा॥२॥ कि उत्तम कर्म से इकट्ठा किये हुये धनों से श्राद्ध कर्मोंको करै व मायादिकों और चोरी, छलादिक व ठगपनों से इकट्ठा कियेहुये धन से न करै॥३॥ व अपनी जीविका से इकट्ठा कियेहुये धनों से श्राद्ध की वस्तुको लावै व उत्तम दान से उत्पन्न द्रव्यों व विशेष कर

आनर्तउवाच॥ विधिनायेनकर्त्तव्यं श्राद्धंसर्वैर्मुनीश्वर॥तमाचक्ष्वाथकात्स्न्र्येन श्रद्धामेमहतीस्थिता॥१॥ भर्तृयज्ञ उवाच॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि श्राद्धस्यविधिमुत्तमम्॥ पितॄणांतुष्टिदंनित्यं सर्वकामप्रदंनृणाम्॥ २॥ सुकर्म्मोपार्जितैर्वित्तैः श्राद्धकार्य्याणिचाहरेत्॥ मायादिभिर्नचौर्येण नच्छलाद्यैर्नवञ्चनैः॥ ३॥ स्ववृत्त्योपार्जितैर्वित्तैः श्राद्धद्रव्यंसमाहरेत्॥ सुप्रतिग्रहजैर्द्रव्यैर्ब्राह्मणानांविशेषतः॥ ४॥ रक्ष्यमाणैःक्षत्रियस्य वैश्यस्यक्षेत्रसम्भवैः॥ शूद्रस्यपुण्यलब्धैश्च श्राद्धंकर्तुंप्रयुज्यते॥५॥ एवंशुद्धिसमोपेते द्रव्येप्राप्तेगृहान्तिकम्॥ पूर्वसायाह्नमासाद्य श्राद्धार्हाणां द्विजन्मनाम्॥ ६॥ गृहंगत्वाशुचिर्भूत्वा कामक्रोधविवर्जितः॥ आमन्त्रयेद्द्विजान्पश्चात्स्नातकान्बाह्यकर्म्मिणः॥ ७॥ तदभावेगृहस्थांश्च ब्रह्मज्ञानपरायणान्॥ अग्निहोतृपरान्विप्रान्वेदविद्याविचक्षणान्॥ ८॥ श्रोत्रियांश्चतपोवृद्धा

ब्राह्मणों के दान से उपजे हुये धनों से श्राद्धकी वस्तु लावै॥ ४॥ रक्षाकिये हुये क्षत्रिय के व क्षेत्रमें उपजे हुये वैश्य के व पुण्य (पवित्रता) से मिले हुये शूद्र के धनों से श्राद्ध करने के लिये प्रयोग किया जाताहै॥ ५॥ इस प्रकार जब शुद्धि संयुत द्रव्य (वस्तु) घर के समीप प्राप्त होवै तब पहले सन्ध्याको प्राप्त होकर श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों के घर जाकर पवित्र होकर काम, क्रोध से रहित होतेहुये ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करै पश्चात् बाहर कर्मवाले ब्रह्मचारियों का न्योता करै॥६।७॥ व उनके अभाव में ब्रह्मज्ञान में लगेहुये व अग्निहोत्र में परायण व वेद विद्या में चतुर गृहस्थ ब्राह्मणों का न्योता करै॥ ८॥ व सदैव अपने धर्म में लगे

तथा तपस्या से वृद्ध वेद पाठियों व बहुत सेवकों तथा परिवार वाले व गुणों से संयुत निर्धनी नरोंका निमन्त्रण करै ॥ ९ ॥ और सावधान व रोग से छूटेहुये व भोजनों को जीते व पवित्र ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै हे राजन् ! ये ब्राह्मण श्राद्ध के योग्य कहेगये हैं ॥ १० ॥ और जो अयोग्य कहे गये हैं उनको भी सुनिये मैं तुमसे कहता हूं कि हीन अंगोंवाले, अधिक अंगवाले व सब खानेवाले और निकालेहुये ॥ ११ ॥ व बन्दरके से दांतोंवारे व बिन दांतोंवारे तथा वेद बेंचनेहारे व वेदियोंको नष्टकरनेहारे और वेद शास्त्रोंसे रहित ॥१२॥ व निन्दित नखोंवारे, रोगसे संयुक्त, निर्धनी व जीवकी हिंसाकरने वाले व मनुष्यों की निन्दा से संयुक्त, नास्तिक पराये (वेदादि

न्स्वधर्म्मनिरतान्सदा ॥ बहुभृत्यकुटुम्बांश्च दरिद्रान्संयुतान्गुणैः ॥ ९ ॥ अव्यङ्गान्रोगनिर्मुक्ताञ्जिताहारांस्तथाशुचीन् ॥ एतेस्युर्ब्राह्मणाराजञ्छ्राद्धार्हाःपरिकीर्तिताः ॥ १० ॥ अनर्हायेचनिर्दिष्टास्तानपिशृणुवच्मिते ॥ हीनाङ्गानधिकाङ्गांश्च सर्वभक्षान्निराकृतान् ॥ ११ ॥ श्यावदन्तानथादन्तान्वेदविक्रयकारकान् ॥ वेदिविप्लवकांश्चापिवेदशास्त्रविवर्ज्जितान् ॥ १२ ॥ कुनखान्रोगसंयुक्तान्निर्द्धनान्परहिंसकान् ॥ जनापवादसंयुक्तान्नास्तिकान्नर्तकानपि ॥ १३ ॥ वार्द्धुषिकान्विकर्मस्थाञ्छौचाचारविवर्जितान् ॥ अतिदीर्घान्कृशान्वापि स्थूलानपिचलोमशान् ॥ १४ ॥ निर्लोमान्वर्जयेच्छ्राद्धे यइच्छेत्पितृगौरवम् ॥ परदाररतांश्चैव तथायोवृषलीपतिः ॥ १५ ॥ षण्डान्मलिम्लुचश्चौरान्राजवैश्यस्य वृत्तयः ॥ सगोत्रायाश्चसम्भूतस्तथैकप्रवरस्तुयः ॥ १६ ॥ कनिष्ठःप्राक्कृतधनः कृतोद्वाहश्चप्राक्शटः ॥ तथाप्राग्दीक्षितोयश्च तथायोगृहसंयुतः ॥ १७ ॥ मातृपितृपरित्यागी तथाचगुरुतल्पगः ॥ निर्दोषांयस्त्यजेत्पत्नीं कृतघ्नोय

निन्दक) व नाचनेवाले भी ॥ १३ ॥ व ब्याजकी जीविकावाले, पराये कर्ममें टिके व पवित्र आचरणोंसे रहित, अति लम्बे व दुबले भी व मोटे भी बहुत रोमोंवाले ॥ १४ ॥ व बिन रोमोंवाले ब्राह्मणों को श्राद्ध में वह वर्जित करै जो कि पितरोंकी गुरुताको इच्छा करै व पराई स्त्रियों में तत्पर व जो शूद्रा का पति होवै उसको ॥ १५ ॥ व नपुंसकों, मलिम्लुचों चोरोंको और जो राजा व वश्य की जीविकावाले हैं उनको व एकही गोत्रवाली स्त्री में उत्पन्न व जो एकप्रवर वालाहै ॥ १६ ॥ व पहले किये धनवाला, पहले किये ब्याह वाला व पहलेही किये जटाओंवाला और जिसने पहले दीक्षा लियाहो ऐसा छोटा द्विज ॥ १७ ॥ व माता, पिताको छोड़नेवाला व गुरुकी

शय्या पै जानेवाला और जो दोष रहित स्त्री को छोड़ताहै व जो कृतघ्न व किसान है ॥ १८ ॥ व थवई की जीविकावाला, भालासे जीविकावाला व चमड़े के द्वारा जीविकासे संयुत व जिसका वंश नहीं जाना जाताहै इनको श्राद्ध में वर्जित करै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त श्राद्ध कर्म में शुभ ब्राह्मणों को कहूंगा कि जो ब्राह्मण पुरातन समय पापियों की पांति के पवित्र कारक कहे गये हैं ॥ २० ॥ अध्वर्यु के वेदभाग का पाठी व पांचों अग्नियोंवाला और बहृचों के वेदभाग का पाठी व शिक्षादिक वेद के छः अंगोंका जाननेवाला जो विद्या, व्रत में चतुर व धर्म के ग्रन्थों का पढ़ानेवालाहो ॥ २१ ॥ व पुराण का जाननेवाला, ज्ञानी जानने योग्य, ज्येष्ठ सामका जानने

अकर्षुकः ॥ १८ ॥ शिल्पजीवीप्रासजीवी चर्मणाजीविकायुतः ॥ एतानिवर्जयेच्छ्राद्धे येषांनोज्ञायतेकुलम् ॥१९॥
अतऊर्द्ध्वंप्रवक्ष्यामि प्रशस्ताञ्छ्राद्धकर्म्मणि ॥ येब्राह्मणाःपुराख्याताः पापानांपङ्क्तिपावनाः ॥ २० ॥ त्रिणाचिके
तःपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ॥ यश्चविद्याव्रतस्नातो धर्म्मद्रोणस्यपाठकः ॥२१॥ पुराणज्ञस्तथाज्ञानी विज्ञेयोज्ये
ष्ठसामवित् ॥ अथर्वशिरसोवेत्ता ऋतुगामीसुकर्म्मवित् ॥ २२ ॥ सद्यःप्रक्षालकःशुक्लस्तथादौहित्रएवच ॥ जामाता
भागिनेयश्च परोपकरणेरतः ॥ २३ ॥ मिष्टान्नदोमिष्टवाग्यः सदाजपपरायणः ॥ एतेचब्राह्मणाज्ञेया विशेषात्पङ्क्तिपाव
नाः ॥ २४ ॥ एतैर्विमिश्रितास्सर्वे गर्हिताअपियेद्विजाः ॥ पितॄणान्तेपिकुर्वन्ति तृप्तिमेवकुलोद्भवाः ॥ २५ ॥ तस्मात्स
र्वप्रयत्नेन कुलंज्ञेयंद्विजन्मनाम् ॥ शीलंपश्चाद्वयोनाम कन्यादानंततःपरम् ॥ २६ ॥ श्रुतिशीलविहीनाय सर्वज्ञाया

वाला, अथर्व शिर का वेत्ता व ऋतु समय में स्त्री के निकट जानेवाला व उत्तम कर्म का जाननेहारा ॥ २२ ॥ व एकही दिन के योग्य भोजन सञ्चय करनेवाला, गोरे गातवाला व नाती, दामाद, भानजा व पराये उपकार में परायण ॥ २३ ॥ व मिष्टान्न देनेवाला व जो मीठी वाणीवाला हो व सदैव जपमें परायण हो ये ब्राह्मण विशेषकर पांतियों के पवित्र कारक कहे हैं ॥ २४ ॥ इन से मिले हुये जो सब निन्दित भी द्विज हैं कुलमें उपजे हुये वे भी पितरों की तृप्तिही करते हैं ॥ २५ ॥ इस लिये समस्त उपाय से ब्राह्मणों का कुल जानना चाहिये पश्चात् शील (उत्तम आचरण) अवस्था व नाम जानना चाहिये तदनन्तर कन्याको देना योग्य है ॥२६॥

ौर जो पुरुष वेद व उत्तम आचरण से हीन सर्वज्ञ के लिये भी श्राद्ध व कन्या को देता है उसने बिन अग्नि में हवन किया ॥ २७ ॥ व ऊसर में बीज बोया ौर भूसी का कूटना किया इसलिये कुल, आचार से संयुत ब्राह्मणको श्राद्ध में युक्त करै ॥ २८ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! जो थोड़ी विद्या को धारनेवाले भी विप्र होवें उनद्विजों ो इस भांति जानकर तदनन्तर पांव पकडकर ॥ २९ ॥ बड़े उपाय से बायें, दाहिने व दोनों हाथों से शक्ति के अनुकूल वार बार प्रणामकर ॥ ३० ॥ वैसेही दाहिने ाथ से स्पर्श करके इस मन्त्र को कहै कि हे बड़े भाग्यवाले, महाबली, विश्वेदेवताओ ! आइये ॥ ३१ ॥ व मुझ से भक्तिके द्वारा लाये हुये तुम भी व्रत के भागी

पिमानवः ॥ श्राद्धंददातिकन्यांच यस्तेनाग्निंविनाहुतिम् ॥ २७ ॥ ऊषरेवापितंबीजं तुषाणांकण्डनंकृतम् ॥ कुला चारसमोपेतं तस्माच्छ्राद्धेनियोजयेत् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणान्नृपशार्दूल मन्दविद्याधरानपि ॥ एवंविज्ञायतान्विप्रान्गृही त्वाचरणौततः॥२९॥प्रयत्नेनतुसव्येन पाणिनादक्षिणेनतु ॥ युग्मेनाथयथाशक्त्या नमस्कृत्यपुनःपुनः ॥ ३० ॥ दक्षिणे नतथालभ्यमन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥ आगच्छन्तुमहाभागाविश्वेदेवामहाबलाः ॥ ३१ ॥ भक्त्याहृतोमयादेव त्वंचापिव्र तभाग्भव ॥ एवंयुग्मान्समामन्त्र्य विश्वेदेवाकृतेद्विजान् ॥ ३२ ॥ अपसव्यंततःकृत्वा पित्रर्थंचाभिमन्त्रयेत् ॥ ब्राह्म णान्मातृपक्षेच एषएवविधिःस्मृतः ॥ ३३ ॥ ततःपादौपरिस्पृष्ट्वा द्विजस्येदमुदीरयेत् ॥ श्रद्धायुतेनमनसा पितृभक्तिप रायणः ॥ ३४ ॥ पितामेऽत्रकार्येऽस्मिंस्तथाचैवपितामहः ॥ स्वपित्रासहितोह्येतु त्वञ्चव्रतपरोभव ॥ ३५ ॥ एवंपितॄन्स माहूय तथामातामहानपि ॥ संमन्त्रिताश्चतेविप्रास्संयतात्मानएवये ॥ ३६ ॥ यजमानःशान्तमना ब्रह्मचर्यसमन्वि

होवो इस प्रकार विश्वेदेवों के लिये दो द्विजों का भलीभांति आमन्त्रण कर ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपसव्य करके पितरों के लिये ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै व मातृपक्ष यही विधि कही गई है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर श्रद्धा संयुत मनकर पितरों की भक्ति मे तत्पर हो ब्राह्मणके पांवोंको पकड़कर यह मन्त्रकहै ॥ ३४ ॥ कि मेरा पिता व अपने पिता समेत पितामह (बाबा) तुम्हारे इस कार्य में आवै व तुम नियममें तत्पर होवो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पितरों व नानादिकों को भी बुलाकर व रोंके हुये मनवाले

जो ब्राह्मण होवैं निमन्त्रण कियेहुये वे आवैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्मचर्य से संयुत व शान्तमनवाला यजमान मनुष्य उस रात्रि को उल्लंघन कर प्रातःकाल उठकर ॥
३७ ॥ उस दिन क्रोध को जीतै व वेदपाठ, निन्दित कर्म, तैल लगाना, मिहनत, यात्रा व सवारी इनको दूर से त्याग करै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर जब सूर्यनारायण मध्य
में प्राप्त होवैं तब कुतुपसंज्ञक (आठवें मुहूर्त) के समय में नहाये व श्वेत वसन धारेहुये वह पितरों व देवताओं का भलीभांति तर्पणकर ॥ ३९ ॥ घर के मध्य
में प्राप्त मनोहर, पवित्र व एकान्त तथा दक्षिण दिशा में झुके हुये स्थान में भली भांति बुलाये हुये संतुष्ट ब्राह्मणों को आनकर श्राद्धकरै ॥ ४० ॥ व जो दक्षिणारहित

तः ॥ तांरात्रिंसमतिक्रम्य प्रातरुत्थायमानवः ॥ ३७ ॥ तदह्निचजयेत्कोपं स्वाध्यायंकर्म्मकुत्सितम् ॥ तैलाभ्यङ्गंश्रमं
यानं वाहनंचाथदूरतः ॥ ३८ ॥ ततोमध्यङ्गतेभानौ कालेकुतुपसंज्ञिते ॥ स्नातःशुक्लाम्बरधरः सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥
३९ ॥ सन्तुष्टांश्चसमाहूतांस्तान्विप्राञ्छ्राद्धमाचरेत् ॥ विविक्तेगृहमध्यस्थे मनोज्ञेदक्षिणाप्लवे ॥ ४० ॥ दक्षिणारहितं
यचतच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ घटोत्थोलूखलोत्थौच यत्रशब्दौव्यवस्थितौ ॥ ४१ ॥ सूर्प्यस्यचविशेषेण तच्छ्राद्धंव्यर्थ
तांव्रजेत् ॥ यत्रसंस्क्रियमाणेच कलहंसम्प्रजायते ॥ ४२ ॥ पङ्क्तिभेदोविशेषेण तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ ब्राह्मणोयज
मानोवा ब्रह्मचर्य्यंविनायदि ॥ ४३ ॥ भुङ्क्तेदद्याच्चयःश्राद्धंतच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ तुषधान्यमनिष्पूतं यच्चोच्छिष्टंचदी
यते ॥ ४४ ॥ अर्द्धभुक्तधृतंक्षारं तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ येषुकालेषुयद्दत्तं श्राद्धमक्षयतांव्रजेत् ॥ ४५ ॥ तानहंसंप्रव

होवै वह श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होता है व घड़ा और ओखली से उपजे हुये शब्द जहां पै स्थित होवैं ॥ ४१ ॥ व जहां विशेषकर सूपका शब्द प्राप्त होवै वह श्राद्ध
व्यर्थता को प्राप्त होता है व जहां संस्कार करनेपर लड़ाई होवै ॥ ४२ ॥ व विशेषकर पंक्तिभेद होवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व जो ब्राह्मण और यजमान यदि
विना ब्रह्मचर्य्यके श्राद्ध को भोजन करै व देवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व बिन बसाई हुई भूसीवाली धान्य और जो जूठा अन्न दिया जाताहै ॥ ४३ । ४४ ॥
व आधा भोजनकरके धराहुआ व क्षारहोवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व जिन समयोंमें जो दिया हुआ श्राद्ध अक्षय (नाशरहित) को प्राप्त होताहै ॥ ४५॥

उनको मैं भलीभांति कहूंगा हे राजन्! एक मन वालेहो सुनिये हे नरनायक ! मन्वादिकों को भी तुमसे कहताहूं उनको सुनिये ॥ ४६ ॥ जो कि समस्त पापों के क्षयकारक व नित्यही पितरोंको प्यारे हैं और जो नहाकर श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके तिलोंसे मिलाहुआ जल भी पितरों के लिये देताहै वह अक्षयताको प्राप्तहोता है कुँवार की शुक्लपक्षवाली नवमी व कातिक की द्वादशी ॥ ४७ । ४८॥ औरमाघ तथा भादोंकी तीज, फागुनकी अमावस तथा कातिक की एकादशी ॥ ४९ ॥ वैसे ही आषाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी, श्रावण की कृष्ण पक्षवाली सप्तमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ५० ॥ व हे राजन्! वैसेही कातिक महीने की व अन्य फागुन,

क्ष्यामिश्रृणुचैकमनान्नृप ॥ मन्वादीनपितेवच्मितान्छृणुष्वनराधिप ॥४६॥ पितॄणांवल्लभानित्यंसर्वपापक्षयावहाः॥ यस्तुतोयमपिस्नात्वा ददातितिलमिश्रितम् ॥ ४७ ॥ पितृभ्योक्षयतांयाति श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ आश्विनयुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्तिकस्यच ॥ ४८ ॥ तृतीयापिचमाघस्य तथाभाद्रपदस्यच ॥ अमावास्यातपस्यस्य ऊर्जस्यैकादशीतथा ॥ ४९ ॥ तथाषाढस्यदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ५० ॥ तथाकार्त्तिकमास स्य याचान्याफाल्गुनस्यच ॥ चैत्रस्यज्येष्ठमासस्य पञ्चैताःपूर्णिमान्नृप ॥ ५१ ॥ मनूनामादयःप्रोक्ता आसांपूर्वाश्चया नृप ॥ आसुतोयमपिस्नात्वा तिलदर्भविमिश्रितम् ॥ ५२ ॥ पितॄनुद्दिश्ययोदद्यात्सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ इहलोकेपरेचैव पितॄणाञ्चप्रसादतः ॥ ५३ ॥ किमन्नैर्विविधैरत्नैरन्यैर्वस्त्रैःप्रदक्षिणैः ॥ अधुनाश्रृणुराजेन्द्र युगाद्याःपितृवल्लभाः ॥ ५४ ॥ यासांसंकीर्तनेनापि क्षीयतेपापसञ्चयः ॥ नवमीकार्त्तिकेशुक्ला तृतीयामाधवेसिता ॥ ५५ ॥ अमावास्याचतपसो नभ

चैत व जेठ महीने की ये पांच पौर्णमासी ॥ ५१ ॥ व हे राजन् ! जो इनके पहले हैं वे मनुवों की आदि याने मन्वादि कहीगई हैं इनमें स्नानकर जो पुरुष पितरों को उद्देश करके तिल, कुशोंमे मिलाहुआ जल भी देताहै वह पितरों की प्रसन्नतासे इस लोक व परलोक में उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ५२ । ५३ ॥ व अनेक प्रकारके अन्नों, रत्नों व और वसनों और दक्षिणाओं के देनेसे क्या कहना है हे नृपेन्द्र ! इस समय पितरों को प्यारे युगादि समयों को सुनिये ॥ ५४ ॥ जिनके भलीभांति कहने से भी पातकों का समूह क्षीणहोजाताहै कातिकमें उजेरी नवमी व वैशाख में शुक्लपक्षवाली तीज ॥ ५५ ॥ और माघकी अमावस, सावन की त्रयोदशी, ये क्रम

से सतयुग, त्रेता, कलियुग व द्वापर की आदितिथियां हैं ॥ ५६ ॥ व जब विषुव (दिनरात बराबरवाला) समय होताहै तब वह समय अक्षयकारक कहाहै व हे राजन् ! जब मकर व कर्कराशिमें सूर्यनारायण जाते हैं ॥ ५७ ॥ तब अयन नामक समय विषुवसे विशेष होता है व अन्य राशियों में भलीभांति सूर्यका गमन समय संक्रांति ऐसी कहीजाती है ॥ ५८ ॥ जो संक्रांति स्नान, दान, जप, श्राद्ध व होमोंमें बड़े फलको देनेवाली है क्रमसे संक्रांतिपूर्वक सतयुगादिकोंके आदि समय कहेगये ॥ ५९ ॥ हे विप्रजी ! इन समयों में दीहुई वस्तुकी क्षय (नाश) संज्ञा नहीं होती है ॥ ६० ॥ व इन समयों में मनुष्य अश्रद्धासे भी जो कुपात्रों के लिये बिन समय में

सश्चत्रयोदशी ॥ कृतत्रेताकलीनान्तु द्वापरस्यादयःक्रमात् ॥ ५६ ॥ तदास्याद्विषुवाख्यस्तु कालश्चाक्षयकारकः ॥ मकरेकर्कटेचैव यदाभानुर्व्रजेन्नृप ॥ ५७ ॥ तदायनाभिधानस्तु विषुवाच्चविशिष्यते ॥ अन्यसंक्रमणंराशौ संक्रांतिरितिकथ्यते ॥ ५८ ॥ स्नानदानजपश्राद्धहोमेषुचमहाफला ॥ कृताद्याःक्रमशःप्रोक्ताः कालास्संक्रान्तिपूर्विकाः ॥ ५९ ॥ नैतेषुविद्यतेविप्र दत्तस्यक्षयसंज्ञिता ॥ ६० ॥ अश्रद्धयापियद्दत्तं कुपात्रेभ्योपिमानवैः ॥ अकालेपिचतत्सर्वं सद्योह्यक्षयतांव्रजेत् ॥ ६१ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ एतत्सामान्यतःप्रोक्तं मयाश्राद्धंयथानरैः ॥ कर्तव्यंविप्रपूर्वैर्यद्वर्णैःपार्थिवसत्तम ॥ १ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि स्वशाखायाःस्मृतंनृप ॥ स्वदेशंवर्णजातीयं यथास्याद्त्रनिर्वृतिः ॥ २ ॥ श्राद्धेश्रद्धायतोमूलं तेनश्राद्धंप्रकी

भी दियाजाता है वह सब अक्षयताको प्राप्तहोताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

श्राद्धभोजि द्विजके तथा यजमानहु के धर्म । दोसौ अठवें में कह्यो चरित सुहावन पर्म ॥ भर्तृयज्ञ जी बोले कि हे नृपोत्तम ! मैंने यह साधारण से कहा कि जिस प्रकार द्विजपूर्वक जातिवाले मनुष्यों को जो श्राद्ध करना चाहिये ॥ १ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त अपनी शाखासे कहा हुआ निजदेश, वर्ण व जातिवाला विधान कहूंगा कि जिस प्रकार यहां आनन्दहोवै ॥ २ ॥ जिस कारण श्राद्धमें श्रद्धा जड़है उसीसे श्राद्ध कहीगई है इस लिये उस श्रद्धाके करने पर कुछ अनिष्ट भी

व्यर्थताको नहीं प्राप्तहोता है हे नृपेन्द्र ! इस लिये श्रद्धाकरै हे राजन् ! ब्राह्मण के चरणका जल जो भूमिमें गिरता है ॥ ३ । ४ ॥ जो कोई गोत्रमें उपजेहुये बिनपुत्र मरणको प्राप्तहुये हैं वे उस से बड़ी तृप्तिको प्राप्तहोते हैं जैसे कि अमृतसे देवता तृप्तहोते हैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण के चरणजलसे भीगी हुई भूमि जब तक रहती है तब तक पुष्कररूपी पात्रों में पितर पानी पीते हैं ॥ ६ ॥ हे नरेश ! जब श्राद्ध कीजाती है तब फूल, चन्दनादिक जल, अन्न व जलभी जो कुछ भूमिमें गिरता है ॥ ७ ॥ उससे वे पितर उत्तम तृप्तिको प्राप्तहोते हैं कि जो कीटताको प्राप्तहुये हैं हे नरनायक ! कीटता भी व तिर्यक्ता (पशुपक्षी की योनिमें) व जो सर्पताको

तितम् ॥ तत्तस्मिन्क्रियमाणेतु नकिञ्चिद्व्यर्थतांव्रजेत् ॥ ३ ॥ अनिष्टमपिराजेन्द्र तस्माच्छ्रद्धांसमाचरेत् ॥ विप्रपादोदकंयच्च भूमौपततिपार्थिव ॥ ४ ॥ जनायेगोत्रजाःकेचिदपुत्रामरणङ्गताः ॥ तेयान्तिपरमांतृप्तिममृतेनयथासुराः ॥ ५ ॥ विप्रपादोदकक्लिन्नायावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ तावत्पुष्करपात्रेषुपिबन्तिपितरोजलम् ॥ ६ ॥ श्राद्धेचक्रियमाणेतु यत्किञ्चित्पततिक्षितौ ॥ पुष्पंगन्धोदकंचान्नमपितोयंनरेश्वर ॥ ७ ॥ तेनतृप्तिंपरांयान्ति येकृमित्वमुपागताः ॥ कीटत्वंचापितिर्य्यक्त्वं व्यालत्वंयन्नराधिप ॥ ८ ॥ यदुच्छिष्टंक्षितौयाति पात्रप्रक्षालनोद्भवम् ॥ तेनतृप्तिंपरांयान्ति येप्रेतत्वमुपागताः ॥ ९ ॥ येचापमृत्युनाकेचिन्मृत्युंप्राप्तास्स्ववंशजाः ॥ असंस्कृतप्रणीतानां त्यागिनांकुलयोषिताम् ॥ १० ॥ उच्छिष्टभागधेयानां दर्भेषुविकरश्चयः ॥ विकरेणप्रदत्तेन तृप्तिंयान्तितथाखिलाः ॥ ११ ॥ यत्किञ्चिन्मन्त्रहीनंवा कालहीनमथापिवा ॥ विधिहीनञ्चसम्पूर्णं दक्षिणयातुतद्भवेत् ॥ १२ ॥ तस्मान्नदक्षिणाहीनं श्राद्धंकार्य्यंविपश्चिता ॥ यइच्छेच्छाश्व

प्राप्तहोतेहैं वेभी उसीसे तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ८ ॥ पात्रोंके धोनेसे उत्पन्नहुई जूंठनि जो भूमिमें प्राप्तहोतीहै उससे वे उत्तम तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं कि जो प्रेतताको प्राप्त हुये हैं ॥ ९ ॥ व जो कोई अपने वंशमें उपजे हुये अपमृत्यु से मौतको प्राप्तहुयेहैं वे भी उस से तृप्ति को पातेहैं और बिन संस्कार के मरेहुये व कुलमें उपजी हुई स्त्रीको त्यागनेवाले ॥ १० ॥ उच्छिष्ट भागवाले पितरों का जो कुशों में विकर (फेंकाहुआ) है उसी विकर के देने से पूर्वोक्त वे सब तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ११ ॥ और जो कुछ मन्त्रहीन या समयहीन भी अथवा विधिसे हीन होताहै वह दक्षिणा से सम्पूर्ण होताहै ॥ १२ ॥ उसी कारण जो पितरों की सदैववाली तृप्तिको चाहै

व अपनी तृप्ति चाहै उस विद्वान्को दक्षिणासे हीन श्राद्ध न करना चाहिये ॥ १३ ॥ जैसे ऊषर में वर्षा, जैसे अँधियाले में नाच व बधिर के आगे गान निष्फल होता है वैसेही दक्षिणारहित श्राद्ध होती है ॥ १४ ॥ श्राद्धको देकर व भोजनकर वेदपाठ न करना चाहिये व दूसरे ग्रामको न जावै क्योंकि श्राद्ध निष्कामताको प्राप्तहोती है ॥ १५ ॥ श्राद्धमें भोजन करनेवाला व कर्ता जो स्त्रीकी शय्यापै जाता है तो महीने भर उसके पितर वीर्यभोजी होतेहैं ॥ १६ ॥ व श्राद्धभोजी और श्राद्धका दाता जो मैथुन सेवन करताहै उसके पितर निरसन्देह वर्षभर तक वीर्य के भोजन करनेवाले होते हैं यह ऐसी वेदकी ऋचाहै और श्राद्धभोजन करके अथवा श्राद्ध को

तींतृप्तिं पितॄणामात्मनश्चयः ॥ १३ ॥ दक्षिणारहितंश्राद्धंयथैवोषरवर्षितम् ॥ यथातमसिनृत्यञ्च गीतञ्चबधिरस्य च ॥ १४ ॥ श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाच श्राद्धंनिष्कामतांव्रजेत्॥नस्वाध्यायंप्रकर्तव्यं नग्रामान्तरकंव्रजेत् ॥ १५ ॥ श्राद्धभुग्रमणीतल्पं यश्चकर्ताधिगच्छति ॥ तन्मासम्पितरस्तस्यजायन्तेवीर्य्यभोजिनः ॥ १६ ॥ श्राद्धभुक्श्राद्धदाताच यः सेवयतिमैथुनम् ॥ तस्यसंवत्सरंयावत्पितरःशुक्रभोजिनः ॥ १७ ॥ प्रभवन्तिनसन्देह इत्येषावैदिकीश्रुतिः ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा यःश्राद्धंकुरुतेल्पधीः ॥ १८ ॥ स्वाध्यायंपितरस्तस्य यावत्संवत्सरंनृप ॥ व्यर्थश्राद्धफलास्सन्तः पीड्यन्तेक्षुत्पिपासया ॥ १९ ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा यःश्राद्धंमानवाधमः ॥ ग्रामान्तरंप्रयात्यत्र तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ २० ॥ ब्राह्मणेननभोक्तव्यं समायातेनिमन्त्रणे ॥ श्राद्धेभुक्त्वातथान्यत्र सम्प्रयातिह्यधोगतिम् ॥ २१ ॥ यजमानेन चतथा नकार्य्यंभोजनंपरम् ॥ कुर्वन्तियेनरास्सर्वे तेयान्तिनरकंध्रुवम् ॥ २२ ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा श्राद्धंयोयुद्धमा

देकर जो थोड़ी बुद्धिवाला पुरुष वेदपाठ करताहै हे राजन्! उसके पितर सालभर तक श्राद्धके व्यर्थ फलवाले होकर भूंख, प्याससे पीड़ित होतेहैं ॥ १७ । १८ । १९ ॥ और श्राद्धको भोजनकर व श्राद्धको देकर जो नीचनर यहां दूसरे ग्रामको जाताहै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होती है ॥ २० ॥ निमन्त्रणके आनेपर ब्राह्मण को भोजन न करना चाहिये क्योंकि जो भोजन कर अन्यत्र श्राद्ध में जाताहै वह अधोगति (नरक) को जाताहै ॥ २१ ॥ और वैसेही यजमान को दुबारा भोजन न करना चाहिये व जो मनुष्य भोजन करलेतेहैं वे सब निश्चय कर नरकको जातेहैं ॥२२॥ श्राद्धको भोजन कर या श्राद्ध देकर जो युद्ध करता है वह निरसन्देह उस समस्त

श्राद्धको व्यर्थताको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥ उसी कारण हे भूपते ! श्राद्धमें भोजन करनेवाला व यजमान विशेषकर उन समस्त दोषोंको परित्याग करै ॥ २४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ॥ ॥
दो० । कह्यो मनोरथ भेदहित श्राद्ध सबै बिलगाइ। दोसौ नवयँ में सोई चरित अहै सुखदाइ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे भूपते ! उनके मध्यमें तुमसे कामनावाली श्राद्धों को कहताहूं कि जिनके करने से मनुष्य मनमें टिकेहुये प्रयोजन को भलीभांति प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य इस लोक व परलोकमें भी शीलभूषणवाली

चरेत् ॥ असंदिग्धंहितच्छ्राद्धं समस्तंव्यर्थतांनयेत् ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दोषांस्तान्वैपरित्यजेत् ॥ श्राद्धभुग्यजमानश्च विशेषेणमहीपते ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेऽष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ काम्यानितेषुतेवच्मि श्राद्धानिपृथिवीपते ॥ येःकृतैस्समवाप्नोति मर्त्योहृदयसंस्थितम् ॥ १ ॥ यो नरोवाञ्छतेनारीं रूपाढ्यांशीलमण्डनाम् ॥ इहलोकेपरेचैव तस्याहँप्रथमंदिनम् ॥ २ ॥ श्राद्धायप्रेतपक्षस्य मुख्यभूतश्चयन्नृप ॥ यइच्छेत्कन्यकांश्रेष्ठां सुशीलांरूपसंयुताम् ॥ ३ ॥ द्वितीयादिवसेतेन श्राद्धंकार्य्यंमहीपते ॥ योवाञ्छति नरोश्वांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ॥ ४ ॥ तृतीयादिवसेश्राद्धं तेनकार्य्यंविपश्चिता ॥ योवाञ्छतिपशून्मुख्यांस्तथाकुप्यधनानिच ॥ ५ ॥ चतुर्थ्यांतेनकर्तव्यं श्राद्धंपितृप्रतुष्टये ॥ पुत्रान्वाञ्छतियोभीष्टान्सुशीलान्वंशमण्डनान् ॥ ६ ॥ पञ्चम्यांतेनकर्तव्यं सदाश्राद्धंनराधिप ॥ यःश्राद्धंवंशजैर्दत्तं परलोकगतिंनृप ॥ ७ ॥ वाञ्छतेतेनकर्तव्यं षष्ठ्यांश्राद्धंविप

व रूप से संयुत स्त्रीकी इच्छा करता है उसको प्रेतपक्षका पहलादिन श्राद्धके लिये योग्य है जोकि हे राजन् ! मुख्यभूत है व जो सुन्दर शीलवाली तथा रूपसे संयुत व श्रेष्ठ कन्याको चाहता है ॥ २ । ३ ॥ हे भूपते ! उसको द्वितीया के दिन श्राद्ध करना चाहिये और जो मनुष्य वेग में पवनके समान वेगवाले घोड़ोंको इच्छाकरताहै ॥ ४ ॥ उस विद्वान् को तीजके दिन श्राद्ध करना चाहिये और जो पुरुष मुख्य पशुवों तथा ताम्रादि धनोंको चाहता है ॥ ५ ॥ उसको पितरोंकी प्रसन्नता के लिये चौथिमे श्राद्ध करना चाहिये और जो वंशको भूषित करनेवाले व सुशील तथा प्रिय पुत्रोंको चाहताहै ॥ ६ ॥ हे नरनायक ! उसको सदैव पंचमी तिथिमें श्राद्ध करना

चाहिये व हे राजन् ! जो पुरुष वंशमें उपजे हुये जनोंसे दीहुई श्राद्ध व परलोककी गतिको चाहता है उस विद्वान्को छठिमें श्राद्ध करना चाहिये व हे शत्रुनाशक ! जो ग्रीष्म ऋतुवाली ऋषियों की सिद्धिको चाहता है ॥ ७ । ८ ॥ उसको सप्तमी में श्राद्ध करना योग्यहै इसमें सन्देह नहींहै और जो व्यवहार से उपजीहुई द्रव्यकी भलीभांति सिद्धिको चाहता है ॥ ९ ॥ हे नरनाथ ! उसको अष्टमी में श्राद्ध करनेके लिये योग्यहै और नवमी में श्राद्धके कार्य से बहुत गुणोंवाले बहुत पुत्रोंको ॥१०॥ व सौभाग्य और रोगनाश व प्रिय संयोग को प्राप्तहोता है और सावधान होताहुआ जो पुरुष दशमी के दिन श्राद्ध करता है ॥ ११ ॥ उसकी समस्त कार्यों में सदैव

श्रिता ॥ ऋषिसिद्धिंयइच्छेत ग्रीष्मिकांयोद्यरिन्दम ॥ ८ ॥ सप्तम्यांयुज्यतेतस्य श्राद्धंकर्तुंनसंशयः ॥ यइच्छेत्पण्यसंसिद्धिं व्यवहारसमुद्भवाम् ॥ ९ ॥ अष्टम्यांयुज्यतेश्राद्धं तस्यकर्तुंनराधिप ॥ नवम्यांश्राद्धकृत्येन पुत्रान्बहुगुणान्बहून् ॥ १० ॥ सौभाग्यंरोगनाशञ्च तथावल्लभसङ्गमम् ॥ दशमीदिवसेश्राद्धं यःकरोतिसमाहितः ॥ ११ ॥ तस्यस्याद्वाञ्छितासिद्धिस्सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ एकादश्यांधनंधान्यं श्राद्धकर्तालभेन्नरः ॥ १२ ॥ तथारूपप्रसादञ्च यच्चान्यन्मनसिस्थितम् ॥ यःकरोतिचद्वादश्यां श्राद्धंश्रद्धासमन्वितः ॥ १३ ॥ लभेच्चपुत्रान्प्रवरान्सपशून्वाञ्छितानपि ॥ योवाञ्छति नरोमुक्तिं पितृभिस्सहचात्मनः ॥ १४ ॥ असन्तानश्चयस्तस्य श्राद्धेप्रोक्तात्रयोदशी ॥ सन्तानयुक्तोयःकुर्य्यात्तस्यवंशक्षयोभवेत् ॥ १५ ॥ नसन्तानविवृद्धिश्च तस्मान्नेष्टात्रयोदशी ॥ श्राद्धकर्म्मणिराजेन्द्र श्रुतिरेषापुरातनी ॥ १६ ॥ अपिनःसकुलेभूयाद्योदद्याच्चत्रयोदशीम् ॥ पायसंमधुसर्पिभ्यां वर्षासुचमघासुच ॥ १७ ॥ मघात्रयोदशीयोगे पायसे

सिद्धि होतीहै व एकादशीमें जो पुरुष श्राद्ध करताहै वह धन, धान्यको प्राप्तहोता है॥ १२ ॥ व रूप तथा प्रसन्नता व और जो मनमें स्थित होताहै उसको प्राप्त होता है और श्रद्धासंयुत जो पुरुष द्वादशी में श्राद्ध करता है ॥ १३ ॥ वह श्रेष्ठ पुत्रों व चाहे हुये पशुवों को भी प्राप्त होताहै व जो नर पितरों समेत अपनी मुक्ति चाहता है ॥ १४ ॥ और जो बिन सन्तान होताहै उसके श्राद्धमें त्रयोदशी कहीगई है व सन्तानयुक्त जो पुरुष तेरसि में श्राद्ध करता है उसका वंश क्षय होजाता है ॥ १५ ॥ और सन्तान की बढ़ती नहीं होती है उसी कारण त्रयोदशी श्राद्ध कर्म में अशुभहै हे नृपेन्द्र ! यह पुरानी श्रुतिहै ॥ १६ ॥ पितर कहते हैं कि हमलोगों के वंशमें वह

होवै कि जो तेरसि तिथिमें शहद घी समेत खीरको मघा व वर्षा ऋतुमें देवै ॥ १७ ॥ मघातेरसिके योगमें जो खीरसे पितरोंको पूजताहै उसके पितर उसवर्षभर श्राद्धकी उत्तम क्रियाको नहीं चाहते हैं ॥ १८ ॥ पुण्यकी अधिकता से डरेहुये इन्द्रने उस दिन पिण्डदानका निराकरण किया व पुत्रके मरणमें भय दिखलाया ॥ १९ ॥ जिन की शस्त्रसे मौतहुई है अथवा अपमृत्यु भी हुईहै व उत्पातसे मरेहुये व विषसे मृत्यु को प्राप्त ॥ २० ॥ तथा अग्निसे जलेहुये व जलसे मृत्युको प्राप्त तथा सांप व्याघ्रादिको से नष्ट कियेहुये व सींगों तथा बन्धनोंसे भी जो मरेहैं ॥ २१ ॥ हे नरनायक ! चौदसि में उनका एकोद्दिष्ट करना चाहिये उस दिन श्राद्ध करने पर उनकी उस

नयजेत्पितॄन् ॥ पितरस्तस्यनेच्छन्ति तद्वर्षश्राद्धसत्क्रियाम् ॥ १८ ॥ पुण्यातिशयभीतेन पिण्डदानंनिराकृतम् ॥ शक्रेणतद्दिनेपुत्रमरणेदर्शितंभयम् ॥ १९ ॥ येषांशस्त्रेणमृत्युःस्यादपमृत्युरथापिवा ॥ उपसर्गमृतानाञ्च विषमृत्युमुपेयुषाम् ॥ २० ॥ वह्निनातुप्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम् ॥ सर्पव्याघ्रहतानाञ्च शृङ्गैरुद्बन्धनैरपि ॥ २१ ॥ एकोद्दिष्टंप्रकर्तव्यं चतुर्दश्यांनराधिप ॥ तेषांतस्मिन्कृतेश्राद्धे तृप्तिस्तत्पक्षजाभवेत् ॥ २२ ॥ सर्वान्कामान्पुराप्रोक्तान्युष्माकंयेमयान्नृप ॥ अमावास्यांददच्छ्राद्धं तानाप्नोतिनसंशयः ॥ २३ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं काम्यश्राद्धफलंनृप ॥ यच्छ्रुत्वावाञ्छितान्कामान्सर्वानाप्नोतिमानवः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाम्यश्राद्धवर्णनंनामनवाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २०९ ॥

आनर्तउवाच ॥ त्रयोदश्यांकृतेश्राद्धे कस्माद्वंशक्षयोभवेत् ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्वविस्तरात्त्वंमहामुने ॥ १ ॥ भर्तृय

पक्षमें उपजीहुई तृप्ति होती है ॥ २२ ॥ हे पुरुषपते ! मैंने जो तुमसे पहले कहा है अमावस में श्राद्ध देताहुआ पुरुष उन समस्त मनोरथों को निरसन्देह प्राप्तहोता है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस समस्त कामनावाली श्राद्धोंके फलको मैंने तुमसे कहा कि जिसको सुनकर मनुष्य चाहे हुये समस्त अभिलाषो को प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां काम्यश्राद्धवर्णनंनामनवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ❁ ॥

दो० । गजछायादिक योग सब कहे श्राद्धके काल । दोसौ अरु दश में सोई वर्णत उत्तम हाल ॥ आनर्त बोला कि हे महामुने ! त्रयोदशी में श्राद्ध करनेसे किस

कारण वंशका विनाश होताहै यह सब तुम मुझसे विस्तारसे कहो॥ १॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन्! कलियुग से उपजी हुई यह युगादि तिथि अत्यन्त पवित्र और स्नान, दान, जप, हवन व श्राद्धमें अक्षया जानने योग्यहै याने इसमें जो किया जाताहै वह अविनाशी होताहै॥ २॥ हे राजन्! यदि इसी तिथिमें गजच्छाया होवै तो उस महायोग में निश्चयकर श्राद्ध अक्षय तृप्तिवाली होती है॥ ३॥ उस दिन जो पितरों को उद्देश कर शहद समेत दूधको देताहै और वार्द्धीणस के मांस को देता है॥ ४॥ तो वार्द्धीणसके मांस से बारह वर्षकी तृप्ति होती है वार्द्धीणसको कहते हैं कि त्रिपिब याने नदी आदिकों में जल पीतेहुये जिसके तीन अंग जलको

ज्ञउवाच॥ एषामेध्यतमाराजन्युगादिकलिसम्भवा॥ स्नानेदानेजपेहोमे श्राद्धेज्ञेयातथाक्षया॥ २॥ अस्यांचेत्तुगजच्छाया यदिराजन्प्रजायते॥ तदक्षयंमहायोगे श्राद्धंसञ्जायतेध्रुवम्॥ ३॥ यःक्षीरंमधुनायुक्तं तस्मिन्नहनियच्छति॥ पितॄनुद्दिश्ययोमांसं दद्याद्वार्द्धीणसस्यच॥ ४॥ वार्द्धीणसस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ त्रिपिबन्त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतंवृद्धमजापतिम्॥ ५॥ तन्तुवार्द्धीणसंविद्यात्सर्वयूथाधिपन्तथा॥ खड्गमांसञ्चवादद्यात्तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ ६॥ सञ्जायतेनसन्देहस्तेषांवाक्यंनमेमृषा॥ ७॥ आसीद्रथन्तरेकल्पे पूर्वंपार्थिवसत्तम॥ सिताश्वोनामपाञ्चालदेशीयः पितृभक्तिमान्॥ मधुनाकालशाकेन खड्गमांसेनकेवलम्॥ ८॥ सहिश्राद्धंत्रयोदश्यां कुरुतेपायसेनच॥ सोमवंशंसमुद्दिश्य श्राद्धंयच्छतिभक्तितः॥ ९॥ क्षीरदानेनमधुना खड्गमांसेनकेवलम्॥ अथतैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्सभूपःकौतुका

छूते हैं दो कान व जीभ तीनों से पीताहै वह त्रिपिब है और इन्द्रियोंमे क्षीण, श्वेत व वृद्ध अजापति (छाग) जोकि समस्त समूहों का स्वामी हो उसको वार्द्धीणस जानै अथवा जो गैंड़ाका मांस देताहै तो उन पितरों की बारह वर्षवाली तृप्ति निस्सन्देह होती है यह मेरा वचन झूंठ नहीं है॥ ५। ६। ७॥ हे, नृपश्रेष्ठ! पहले रथन्तरकल्प में पांचाल देशका निवासी भलीभांति उद्देशकर सिताश्व नामक पितरों का भक्तिमान् हुआहै वह चन्द्रवंशको त्रयोदशी तिथिमें केवल कालशाक नामक शाक व गैंड़ेके मांस तथा खीरसे भक्ति समेत श्राद्ध करता था॥ ८। ९॥ व केवल दूधके दानसे व शहद समेत गैंडेके मांससे श्राद्ध करता था इसके अनन्तर किसी

समय हे राजन्! श्राद्धके उपरान्त उस राजाको श्रद्धासंयुत देखकर उन समस्त ब्राह्मणों ने इच्छाके अनुकूल भोजन कर आश्चर्यसंयुक्त हो उससे पूंछा ॥ १०।११॥ जो राजा कि प्रणामपूर्वक चरण मर्दने में तत्पर था ब्राह्मण बोले कि हे महाराज! श्राद्ध करके अनन्तर ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा देना चाहिये तदनन्तर श्राद्ध पितरों के समीप प्राप्त होती है हे राजन्! वह समर्थित दक्षिणा हमलोगों को अभीतक नहीं दीगई ॥ १२। १३॥ उसी कारण क्रोध छोड़कर उसको शीघ्रही दीजिये देर मत कीजिये भर्तृयज्ञ बोले कि उसको सुनकर उस नृपतिने अतिप्रसन्नचित्त करके कहा ॥ १४॥ कि आज मैं धन्यहूं व ब्राह्मणों से दया कियागया हूं इसमें सन्देह नहीं

न्वितैः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पृष्टोभुक्त्वायथेच्छया ॥ श्राद्धादनन्तरंराजन् दृष्ट्वातंश्रद्धयान्वितम् ॥ ११ ॥ पादावमर्द्दनपरंप्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कृत्वाश्राद्धंमहाराज प्रदातव्याथदक्षिणा ॥ १२ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ततःश्राद्धं पितॄणामुपतिष्ठति ॥ सात्वयाकल्पितास्माकं वितीर्णाद्यापिनोनृप ॥ १३ ॥ ततःकोपंपरित्यज्य तांद्रुतंदेहिमाचिरम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासनृपःप्राहसम्प्रहृष्टेनचेतसा ॥ १४ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि विप्रैरद्यनसंशयः ॥ येवाञ्छन्तिममाभीष्टं श्राद्धेभुक्त्वाथपैतृके ॥ १५ ॥ तस्माद्ब्रूतमहाभागा युष्मभ्यंकिन्ददाम्यहम् ॥ नरान्नागान्मदोन्मत्तान्भद्रजातिसमुद्भवान् ॥ १६ ॥ किंवासप्तिप्रधानांश्च मनोमारुतरंहसः ॥ किंवास्थानानिचित्राणि ग्रामांश्चनगराणिच ॥ १७ ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चिन्नादेयंविद्यतेयतः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नास्माकंवाजिभिःकार्य्यं नरत्नैर्नचहस्तिभिः ॥ १८ ॥ नदेशैर्ग्राममुख्यैर्वा नान्येनार्थेनकेनचित् ॥ तदर्थंनमहाराज पृष्टोस्माभिर्यतोभवान् ॥ १९ ॥ तस्मा

जोकि पितरों के श्राद्धमें भोजन करके मेरे प्रियको चाहते हैं ॥ १५॥ इस लिये हे महाभाग्यवाले द्विजो! आप लोग कहैं मैं क्या तुमलोगों के लिये देऊं मनुष्यों व मदसे मस्त हाथियों या भद्रजाति से उपजेहुये व मन, पवनके समान मुख्य घोड़ों या विचित्र स्थानों व ग्रामों तथा नगरों को देऊं ॥ १६। १७॥ क्योंकि जो कुछ है वह सब पितरोंको उद्देशकर न देनेके योग्य नहीं है ब्राह्मण लोग बोले कि घोड़ों, रत्नों व हाथियों से हमलोगों का कुछ कार्य नहींहै ॥ १८॥ और न देशोंसे व मुख्य ग्रामोंसे कार्य है तथा अन्य किसी वस्तुमे कार्य नहीं है क्योंकि हे महाराज! उस प्रयोजनके लिये हमलोगोंने आपसे नहीं पूंछाहै ॥ १९॥ इस कारण हे नृपोत्तम!

कौतुकसे संयुत हम सब लोग जो पूंछते हैं उस दक्षिणाको निस्सन्देह हम सबोंको दीजिये ॥२०॥ राजा बोले कि महात्मा ब्राह्मणोंको उपदेश का अधिकारहै क्योंकि वेद शाली क्रियाको देने व ग्रहण करनेके लिये वे उत्पन्न हुये हैं ॥२१॥ हे द्विजोत्तमो ! सो मैं सर्वज्ञ राजा उन तुम सबोंको उपदेश न दूगा जोकि सर्वज्ञ व चतुरहो ॥२२॥ ब्राह्मण बोले कि हे भूपते ! गुरू व शिष्य से उपजा हुआ यह उपदेश होताहै हे राजन् ! हमलोग कुछ प्रार्थना करते हैं उसको तुम भलीभांति कहो ॥ २३ ॥ हे भूपते ! आश्चर्यसंयुत समस्त ब्राह्मणोंके प्रश्न में हमलोग यदि एक प्रश्न पूंछते हैं ॥ २४ ॥ तो इस लिये हे महाभाग ! यदि तत्त्वसे जानते हो व यदि अत्यन्त गुप्त

यांपृच्छामोवयंसर्वेकौतूहलसमन्विताः ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ उपदेशाधिकारोस्ति ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ दातुंचैवग्रहीतुञ्च जातास्तेवैदिकींक्रियाम् ॥ २१ ॥ सोहंराजानसर्वज्ञो प्रयच्छामोद्विजोत्तमाः ॥ उपदेशंहियुष्मभ्यं सर्वज्ञायेविचक्षणाः ॥ २२॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ गुरुशिष्यसमुत्थोयमुपदेशोमहीपते ॥ प्रार्थयामोवयंकिञ्चिन्नृपतन्त्वंसमादिश ॥ २३ ॥ वयञ्चप्रश्नमेकंहि पृच्छामोयदिभूपते ॥ प्रश्नेकौतुकयुक्तानां सर्वेषाञ्च द्विजन्मनाम् ॥ २४ ॥ तस्मादृदमहाभाग यदिजानासितत्त्वतः ॥ नचेद्गुह्यतमंकिञ्चित्पृच्छामस्त्वांकुतूहलात् ॥२५॥ राजोवाच ॥ यदिवःसंशयोविप्रा युष्मत्प्रश्नमसंशयम् ॥ कथयिष्यामिचेद्गुह्यं तद्वदध्वङ्गतज्वराः ॥ २६ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ अन्नेषुचविचित्रेषु लेह्येषुविविधेषुच ॥ अमृतेषुचसर्वेषु तथान्येषुचपार्थिव ॥ २७ ॥ कस्मादद्यदिनेब्रूहि मधुयच्छसिगर्हितम् ॥ वर्ततेचयतोभक्ष्यं ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ २८ ॥ तथाविचित्रमांसेषु संस्थितेषुनराधिप ॥ खड्गमांसं

न हो तो कहिये क्योंकि आश्चर्यसे कुछ तुम से पूंछता हूं ॥ २५ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! यदि तुमलोगों को सन्देहहै तो निस्सन्देह तुमलोगों का प्रश्न कहूंगा यदि गुप्तहो तो गये ज्वर (दुःख) वाले तुमलोग कहो ॥ २६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे राजन् ! विचित्र अन्नों व विविध भांति के भोजनों तथा समस्त अमृतों और अन्य वस्तुवोंके होनेपर ॥ २७ ॥ और जिसलिये कि विशेषकर ब्राह्मणोंका भोजन वर्तमानहै तो किस कारण आजके दिन निन्दित शहदको देतेहो ॥ २८ ॥

वैसेही हे नरनायक ! विचित्र मांसों के भलीभांति स्थित होनेपर केवल बिन स्वादवाला गैंडेका मांस किस लिये देतेहो ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र भूपते ! यहां सम्पूर्णता से भले स्वादुकारक पर्वतोंवाले शाक व्यञ्जनों के लिये हैं ॥ ३० ॥ तो परमभक्तिसे संयुत तुम हमलोगोंको नहीं बड़े स्वादुको पैदाकरनेवाले व कटुता समेत कालशाकको किसलिये देतेहो ॥ ३१ ॥ किसी प्रकार श्राद्धमें मना न करना चाहिये व जिस लिये बतलाया हुआ त्यागना न चाहिये उसीसे हमलोग भोजन करते हैं ॥ ३२ ॥ व जिससे बहुधा तुम देतेहो उसी कारण (मर्यादा) से इस विषयमें गरुवा कारण होहींगा जिससे कि श्राद्धमें स्थिति होती है ॥ ३३ ॥ उसी कारण हमलोगो से सब कहिये क्योंकि हमको परम आश्चर्य है कि आज श्राद्धमें जिस प्रकार जैसा बिन स्वादुवाला व निन्दित भोजन ॥ ३४ ॥ हे नृपपुंगव ! तुम जिस भांति श्रद्धा से भलीभांति देतेहो उन महात्मा ब्राह्मणों के उस वचनको सुनकर ॥ ३५ ॥ विलक्षणता व मुसक्यान समेत व लज्जासहित भूपति बोले कि हे महाभाग्यवाले ब्राह्मणो ! हमलोगों के भी यह गुप्त टिका है ॥ ३६ ॥ मैं न कहने के योग्य भी चरित को कहूंगा सावधान होतेहुये सुनिये पुरातन समय अन्य जन्म में मैं पापी बहेलिया हुआहूं ॥ ३७ ॥ जोकि समस्त जन्तुवो को मारनेवाला व फिर खानेवाला था धनुषसे शिकार में लगाहुआ मैं सदैव जंगल मे घूमता था ॥ ३८ ॥ हे द्विजो-

निरास्वादं कस्माद्यच्छसिकेवलम् ॥ २९ ॥ सन्तिशाकानिराजेन्द्र पार्वतीयानिसर्वशः ॥ सुष्ठुस्वादुकराण्यत्र व्यञ्जनार्थंमहीपते ॥ ३० ॥ कालशाकंसकटुकंनस्वादुजनकंमहत् ॥ कस्माद्यच्छसिचास्माकं भक्त्यापरमयायुतः ॥ ३१ ॥ नश्राद्धेप्रतिषेधश्च प्रकर्तव्यःकथञ्चन ॥ नत्याज्यञ्चसमुद्दिष्टं तेनभुञ्जामहेयतः ॥ ३२ ॥ तदत्रकारणेनैव गुरुणाभाव्यमेवहि ॥ येनत्वंयच्छसिप्रायो यस्माच्छ्राद्धेभवेत्स्थितिः ॥ ३३ ॥ तस्मात्कथयनःसर्वं परंकौतूहलंहिनः ॥ निःस्वादितं यथाचाद्य यादृक्श्राद्धेविगर्हितम् ॥ ३४ ॥ यथात्वंनृपशार्दूल श्रद्धयासम्प्रयच्छसि ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ ३५ ॥ सविलक्ष्यस्मितंप्राह सलज्जंपृथिवीपतिः ॥ गुह्यमेतन्महाभागा अस्माकमपिसंस्थितम् ॥ ३६ ॥ अवाच्यमपिवक्ष्यामि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ अहमासंपुरापापो लुब्धकश्चान्यजन्मनि ॥ ३७ ॥ निहन्तासर्वजन्तूनां तथाभक्षयितापुनः ॥ पर्य्यटाम्यहंसदारण्ये धनुषामृगयारतः ॥ ३८ ॥ सिंहोव्याघ्रोगजेन्द्रोवा सारमेयोद्विजोत्तमाः ॥

त्तमो ! सिंह, व्याघ्र, गजेन्द्र या कुत्ता मेरे बाण के सामने प्राप्तहोकर कभी जीताभी न था ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे महाभाग्यवानो ! किसी समय भूतलमें घूमता हुआ उत्तम मुनि अग्निवेशके आश्रम में जब तक भूंखा व प्यासा मैं आधीरात प्राप्त होनेपर भलीभांति प्राप्त हुआ तब तक वहां शिष्यों से श्राद्धकर्मकी विधिको कहते हुये वे अग्निवेश ॥ ४० । ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सब ओर शिष्यों से घिरेहुये भलीभांति बैठेथे कि जब चन्द्रमा मघानक्षत्र में टिकाहो व सूर्यभी हस्त में स्थित होवैं ॥ ४२ ॥ तब वह त्रयोदशी गजसे उपजी हुई छाया जानने योग्य है व जब मघा में चन्द्रमा स्थित होवै व सूर्यभी हस्तनक्षत्र में स्थित होवैं ॥ ४३ ॥ तब वह

नजीवत्यपिकर्हिचित् ॥ ३९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य भ्रममाणोमहीतले ॥ सम्प्राप्तोहंमहाभागा महाणगोचरंप्राप्तो नजीवत्यपिकर्हिचित् ॥ ४० ॥ आश्रमेसमनुप्राप्ते निशीथेक्षुत्पिपासितः ॥ तावत्तत्रसशिष्याणां श्राद्धकर्मविधिंव अग्निवेशस्यसन्मुनेः ॥ ४१ ॥ संस्थितोवेष्टितःशिष्यैस्समन्ताद्द्विजसत्तमाः ॥ ऋक्षेपित्र्येयदाचन्द्रो भानुश्चापिकरेव्रजेत् ॥ ४२ ॥ त्रयोद दन् ॥ ४१ ॥ संस्थितोवेष्टितःशिष्यैस्समन्ताद्द्विजसत्तमाः ॥ ऋक्षेपित्र्येयदाचन्द्रो भानुश्चापिकरेस्थितः ॥ ४३ ॥ तिथिर्वैश्रवणाज्ञेया साछाया शीतुसाछाया विज्ञेयाकुञ्जरोद्भवा ॥ पित्र्येयदास्थितश्चेन्दुर्भानुश्चापिकरेस्थितः ॥ ४४ ॥ हस्तिच्छायातुसाज्ञेया तस्यांश्राद्धंसमाचरेत् ॥ तस्यांयः कुञ्जरस्यच ॥ सैंहिकेयोयदाचन्द्रं ग्रसतेपर्वसन्धिषु ॥ ४४ ॥ हस्तिच्छायातुसाज्ञेया तस्यांश्राद्धंसमाचरेत् ॥ वनस्पतिपतौसोमे याछायासूर्य्यदि कुरुतेश्राद्धं जलैरपिप्रभक्तितः ॥ ४५ ॥ यावद्द्वादशवर्षाणिपितरस्तस्यतर्पिताः ॥ चनस्पतिपतौसोमे याछायासूर्य्यदि कुरुतेश्राद्धं जलैरपिप्रभक्तितः ॥ ४६ ॥ गजच्छायातुसाज्ञेया पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ साभवेचनसन्देहः पुण्यदापैतृकीतिथिः ॥ ४७ ॥ तस्यांश्रा द्धंप्रकर्तव्यं सम्भारास्सम्भ्रियन्तुये ॥ प्रभातेतुनसन्देहःपितॄणांपितृतृप्तये ॥ ४८ ॥ शाकैस्तथागुडैर्बिल्वैर्बदरैश्चिर्भ

जो सूर्यकी दिशाके सम्मुखवाली तिथि उसमें जो वह गजच्छाया जानने योग्य है उसमें श्राद्धकरै त्रयोदशी गजकी छाया जानने योग्यहै और जब पर्वकी सन्धियों में राहु चन्द्रमा को ग्रसता है ॥ ४४ ॥ वह गजच्छाया जानने योग्य है उसमें श्राद्धकरै उसमें जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे जलसे भी श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसके पितर बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं व वनस्पतियों के स्वामी चन्द्रमामें जो सूर्यकी दिशाके सम्मुखवाली छाया होतीहै यानें अमावस तिथि वह गजच्छाया जानने योग्य है उस में पितरों को दियाहुआ अक्षय होता है क्योंकि वह निस्सन्देह पितरों की पुण्यदायक तिथि होवैहै ॥४६।४७॥ उसमें जो सामग्रियोंको इकट्ठाकरैं पितरोंकी तृप्तिके लिये उनको प्रभातमें पितरोंकी निस्सन्देह श्राद्ध अवश्य करना चाहिये ॥४८॥ शाक, गुड, बिल्व,

बेर व चिर्भटोंसेभी श्राद्धकरै क्योंकि मनुष्य जिस अन्नको खाताहै उसके देवता उसी अन्नके खानेवाले होते हैं ॥ ४९ ॥ उन शिष्योंने बहुत अच्छा ऐसाही कहा व हे महाराज ! नारायण हैं अग्रगामी जिनके वे समस्त शिष्य अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५० ॥ व अन्य ब्राह्मणों समेत अग्निवेश भी सोरहे रातमें उनसे कहेहुये वृत्तान्त को मैंने सुनाहै ॥ ५१ ॥ मैं भी गैंड़ेको मारकर उसका बहुतसा मांस लेकर प्रातःकाल निरसन्देह श्राद्ध करूंगा ॥ ५२ ॥ वैसेही शहद लेकर व विशेषकर कालशाक को भलीभांति लेकर निज जातिवालों के लिये देकर उन पितरों को तृप्त करूंगा ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैं मनसे ऐसा निश्चयकर सो गया

टैरपि ॥ यदन्नंपुरुषोश्नाति तदन्नास्तस्यदेवताः ॥४९॥ बाढमित्येवचैवोक्तं गतास्स्वंस्वंनिकेतनम्॥सर्वेशिष्यामहाराज नारायणपुरोगमाः ॥ ५० ॥ अग्निवेशोपिसुष्वाप सममन्यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तेनसङ्कथ्यमानञ्च रात्रौतत्रश्रुतंमया ॥ ५१ ॥ अहंचापिकरिष्यामि प्रातःश्राद्धमसंशयम् ॥ निहत्यखड्गमादाय तस्यमांससुपुष्कलम् ॥ ५२ ॥ तथामधुसमादाय कालशाकंविशेषतः ॥ स्वजातीयेभ्यआदाय तर्पयिष्यामितान्पितॄन् ॥ ५३ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा प्रसुप्तोहंद्विजोत्तमाः ॥ ततःप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ५४ ॥ मधुजालानिभूरीणि गृहीतानिमयाततः ॥ कालशाकस्तथालक्ष्य स्वेच्छयाद्विजसत्तमाः ॥ ५५ ॥ ततस्सर्वंसमादाय अर्पितंतत्क्षणान्मया ॥ स्नात्वाचनिजवर्गाणां पितॄनुद्दिश्यचात्मनः ॥ ५६ ॥ प्रदत्तंलुब्धकानाञ्च भक्तिपूर्वंद्विजोत्तमाः॥एवंमयापुरादत्तं पितॄनुद्दिश्यतान्निजान् ॥ ५७ ॥ नान्यत्किञ्चित्कचिद्दत्तं कदाचित्कस्यचिन्मया ॥ ततःकालेनमहतामृत्युंप्राप्तोस्म्यहंद्विजाः ॥ ५८ ॥ तद्दानस्यप्रभावेण पार्थिवीं

तदनन्तर प्रातःकाल जब निर्मल रविमण्डल उदय हुआ तब ॥ ५४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैं ने बहुत शहद समूहों तथा अपनी इच्छा से काल शाक को देख कर ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उसी क्षण मैं ने उस सब वस्तु को लेकर नहाकर और अपने पितरों को उद्देश कर हे द्विजोत्तमो ! अपने वर्ग वाले बहेलियों को भक्तिपूर्वक दिया इस प्रकार पुरातन समय मैं ने उन अपने पितरों को उद्देश कर दिया है ॥ ५६ । ५७ ॥ व मैंने कभी कहीं किसी को और कुछ नहीं दिया तदनन्तर हे ब्राह्मणों ! बहुत समयके बाद मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस दानके प्रभाव से राजा की योनि में प्राप्त हुआ व इस प्रकार

मुझ को जाति की स्मरणता भलीभांति प्राप्त हुई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर मेरे वे पितर शहद समेत उस गैंड़े के मांस से बारह वर्षवाली उत्तम तृप्ति को भली भांति प्राप्त हुये ॥ ६० ॥ इसी कारण श्राद्ध में उसका यह फल प्राप्त हुआ इस समय हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धासंयुत मैं वेद के पारगामी व समीप बैठेहुये ब्राह्मणों के द्वारा कुशों व तिलोंसे संयुत मन्त्रपूर्वक जिस श्राद्धको भली भांति विधि से करता ही हूं ॥ ६१ । ६२ ॥ और नहीं जानता हूं कि इस समय क्या फल होगा हे द्विजोत्तमो ! उसीसे तुम लोग भी जानकर ॥ ६३ ॥ जब गजच्छाया उत्पन्न होवै तब अपने २ अवास याने मृत्युवाले दिनके स्थित होने पर पितरोंको भली भांति तृप्त करो ॥६४॥

तेचमत्पितरस्तेन खड्गमांसेनमाक्षिकैः ॥ सम्प्राप्ताः परमांतृप्तिं ततोद्वादशवार्षिकीम् ॥ ६० ॥ एतस्मात्कारणाच्छ्राद्धे तस्यैतत्फलमागतम् ॥ साम्प्रतंविधिनासम्यग्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ६१ ॥ उपविष्टैःकरोम्येव यच्छ्राद्धंश्रद्धयान्वितः ॥ दर्भैस्तिलैस्समोपेतं मन्त्रवच्चद्विजोत्तमाः ॥ ६२ ॥ नोजानामिफलंकिंवा साम्प्रतञ्चभविष्यति ॥ तस्मादेवपरिज्ञाय यूयंचैवद्विजोत्तमाः ॥ ६३ ॥ सन्तर्प्पयध्वंपितरो निजावासदिनेस्थिते ॥ छायायांचैवजातायां कुञ्जरस्यद्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥ येनसञ्जायतेतृप्तिः पितृणांद्वादशाब्दिका ॥ युष्माकञ्चगतिःश्रेष्ठा यथाजातामयाधुना ॥६५॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेतेब्राह्मणोत्तमाः ॥ तैस्सर्वैस्तर्पितैस्तेन दत्ताचाशीर्महीपतेः ॥ ६६ ॥ ततःप्रभृतिचक्रुस्तेश्राद्धानिद्विजसत्तमाः ॥ त्रयोदश्यांनभस्यस्य कृष्णायांभक्तितत्पराः ॥ ६७ ॥ मधुनाकालशाकेन खड्गमांसेनतर्प्पिताः ॥ प्राप्नुवन्तिपरांसिद्धिं विमानवरमास्थिताः ॥ ६८ ॥

जिस से पितरों की बारह वर्षवाली तृप्ति होवै व तुम लोगों की उत्तम गति होवै जैसे कि इस समय मेरी हुई है ॥ ६५ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उसके उस वचन को सुन कर वे समस्त द्विजोत्तम उससे तृप्त किये गये व उन सबों ने भूपति को आशीर्वाद दिया ॥ ६६ ॥ तब से लगा कर भक्तिमें तत्पर उन द्विजोत्तमोंने श्रावणकी कृष्ण पक्षवाली त्रयोदशी में श्राद्धोंको किया ॥ ६७ ॥ व शहद, कालशाक समेत गैंड़ के मांस से तृप्त किये हुये व उत्तम विमानोंपै बैठेहुये वे पितर उत्तम सिद्धिको प्राप्त

होते थे ॥ ६८ ॥ व विशेष कर पितर देवों के साथ ईर्षा करते थे वंश में उपजे हुये पुरुष से दी हुई श्राद्ध का प्रभाव देख कर देवतोत्तमों ने ॥ ६९ ॥ उस श्राद्ध के अर्थ को जान कर तदनन्तर हे राजन् ! आदित्य, वसु, रुद्र व अश्विनीकुमार भी इन सबों ने सलाह किया ॥ ७० ॥ कि वैसे ही सूर्यनारायण को कन्याराशि में स्थित होने पर जो पुरुष तेरसि में श्राद्ध करैगा उस का वंश विनाश होगा ॥ ७१ ॥ जिससे डरे हुये नर गजच्छाया व विशेष कर तेरसि में श्राद्ध नहीं करतेहैं क्योंकि उस का वंश नाश होजाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेगजच्छायामाहात्म्येदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

स्पर्द्धन्तेसहितादेवैः पितरश्चविशेषतः ॥ वंशजेनप्रदत्तस्यप्रभावंसुरसत्तमाः ॥ ६९ ॥ श्राद्धार्थंतत्परिज्ञाय मन्त्रंचक्रुस्ततःपरम् ॥ आदित्यावसवोरुद्रा नासत्यावपिपार्थिव ॥ ७० ॥ तथायोमानवःश्राद्धं त्रयोदश्यांकरिष्यति ॥ कन्यासंस्थेसहस्रांशौ तस्यस्याद्वंशसंक्षयः ॥ ७१ ॥ येनभीतानकुर्वन्तिछायायांकुञ्जरस्यच ॥ विशेषेणत्रयोदश्यां तस्यवंशोयतोहतः ॥ ७२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेगजच्छायामाहात्म्येदशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१० ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ एतस्मात्कारणात्कश्चित्तस्मिन्नहनिपार्थिव ॥ ददातिनैवचश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यकर्हिचित् ॥ १ ॥ वंशच्छेदभयाद्राजन्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ श्राद्धंविनापिदातव्यं तद्दिनेमधुनासह ॥ २ ॥ पायसंब्राह्मणेभ्यश्च सघृतंतृप्तिकारणात् ॥ खड्गमांसंकालशाकं मांसंवार्द्धीणसोद्भवम् ॥ ३ ॥ प्रदेयंब्राह्मणेभ्यश्च तत्समंतदुदाहृतम् ॥ अपिबाह्येन्द्रिय

दो० । जिमि मांसादिक समय सब कह्यो श्राद्ध के हेत। दोसौ गेरह में सोई बरणत बुद्धिनिकेत ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन् ! इसी कारण वंशनाशके डर से उस दिन कभी कोई पितरों को उद्देश कर श्राद्ध नहीं देता है हे राजन् ! मैं ने यह सत्य कहा है उस दिन श्राद्ध के विना भी तृप्ति के कारण ब्राह्मणों के लिये शहद समेत व घृत सहित खीर देना चाहिये व गैंड़े का मास, कालशाक व वार्द्धीणस से उपजा हुआ मांस ॥ १ । २ । ३ ॥ ब्राह्मणों के लिये अवश्य कर देना चाहिये क्योंकि

उसी के बराबर वह कहा गया है बाहरी इन्द्रियों से क्षीण व समस्त यूथों का अनुगामी ॥ ४ ॥ यह छाग पितरों को सदैव तृप्तिदायक वार्द्धीणस कहा गया है उस के अभाव में भी तिलों से मिला हुआ जल देना चाहिये ॥५॥ जो कि कुश समेत व सोने सहित तथा सुवर्ण के खण्ड से संयुत होवै हे राजन् । पुरुष को पक्ष भर श्राद्ध करने से जो फल होता है हे भूप! वह सब उस दिन में होता है हे राजन्! श्राद्ध के विना भी पितरों को उद्देश कर घृत, शहद व खीर से या कालशाक, शहद समेत गैंड़े के मांस से जो श्राद्ध देता है उस के पितर तृप्त होते हैं यह पुरानी श्रुति वेद की ऋचा है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ इस लिये सब उपाय से पितृपक्ष के उप-

तस्याभावेपिदातव्यं जलंतिलविमिश्रित

क्षीणः सर्वयूथानुगस्तथा ॥ ४ ॥ एषवार्द्धीणसःप्रोक्तः पितॄणांतृप्तिदःसदा ॥ तस्याभावेपिदातव्यं जलंतिलविमिश्रितम् ॥ ५ ॥ सदर्भंसहिरण्यञ्च हिरण्यशकलान्वितम् ॥ यच्छ्रेयोजायतेपुंसः पक्षश्राद्धेनपार्थिव ॥ ६ ॥ कृतेनतत्फलंकृत्स्नंतस्मिन्नहनिपार्थिव ॥ पितॄनुद्दिश्यचाज्येन मधुनापायसेनच ॥ ७ ॥ कालशाकेनमधुना खड्गमांसेनवानृप ॥ श्राद्धंविनापिदत्तेयःश्रुतिरेखापुरातनी ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृपक्षउपस्थिते ॥ त्रयोदश्यांनभस्यस्य हस्तगेदिननायके ॥ ९ ॥ दारिद्र्येणापिदातव्यं हिरण्यशकलान्वितम् ॥ तोयंतिलैर्युतञ्चापि पितॄणांतुष्टिमिच्छता ॥ १० ॥ आनर्तउवाच ॥ मांसंविगर्हितंविप्र यतःशास्त्रेनिगद्यते ॥ तस्मात्तत्क्रियतेकेन श्राद्धंकीर्तयमेखिलम् ॥ ११ ॥ स्वमांसंपरमांसेन योवर्द्धयतिनिर्दयः ॥ सनूनंनरकंयाति प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः ॥ १२ ॥ त्वञ्चतस्यप्रभावंमे प्रजल्पसिद्विजोत्तम ॥ विशेषाच्छ्राद्धकृत्येवायमेवममसंशयः ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग मांसंसद्भिर्विगर्हितम् ॥ श्रा

स्थित होने पर जब दिननाथ सूर्यजी हस्त नक्षत्र में होवैं तब श्रावण की त्रयोदशी में ॥ ९ ॥ पितरों की तृप्ति चाहनेवाले निर्धनी नर को भी सुवर्णखण्ड से संयुत व तिलों से मिला हुआ भी जल देना चाहिये ॥ १० ॥ आनर्त बोला कि हे विप्र जी ! जिस लिये कि शास्त्र में मांस निन्दित है उसी कारण वह श्राद्ध किस कारण मास से कीजाती है ॥ ११ ॥ यह सब मुझ से कहो यह महर्षियों ने कहा है कि जो निर्दयी पराये मांस से अपना मांस बढ़ाता है वह निश्चय कर नरक को जाता है ॥ १२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! तुम विशेषता से श्राद्धके कार्यमें उस मांसका प्रभाव मुझसे कहते हो यही मुझको सन्देह है ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे महा-

भाग ! यह सत्यहै कि मांस सज्जनों से निन्दित है और जिस कारण श्राद्ध में विशेष कर युक्त किया जाताहै मैं उस कारण को तुमसे कहताहूं ॥१४॥ जब लोकोंके करनेवाले ब्रह्माने नान्दीमुख अग्रगामी वाले पितरों व देवताओं को भलीभांति पूजकर सृष्टि रचाहै ॥ १५ ॥ तब पहले गैंड़ा व जो वार्द्धीणस है वह पैदाहुआ तदनन्तर जो दिव्य व जो मनुष्यों से उपजे हुये पितर थे ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन सबोंने अपनी बलिभूत की नाईं उनको ग्रहण किया उस के उपरान्त ब्रह्माने उनसे कहा कि हे पितरो ! मैंने इनको ॥ १७ ॥ तुमलोगों के लिये कल्पना किया भलीभांति बलिभूत इनको ग्रहण कीजिये इन दोनोंसे तुमलोगोंके लिये मेरे वचन

द्धेवियुज्यतेतस्मात्तत्तेहंवच्मिकारणम् ॥ १४ ॥ यदाचरचितासृष्टिर्ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ सम्पूज्यचपितॄन्देवान्नान्दीमुखपुरस्सरान् ॥ १५ ॥ तदाखड्गःसमुत्पन्नः पूर्ववार्द्धीणसश्चयः॥ततोयेपितरोदिव्यायेचमानुषसम्भवाः ॥ १६ ॥ जगृहुस्तेततस्सर्वेबलिभूतमिवात्मनः ॥ तानुवाचततोब्रह्माएतौतुपितरोमया ॥ १७ ॥ युष्मभ्यंकल्पितौसम्यग्बलिभूतौप्रगृह्यताम् ॥ एताभ्यांपरमाप्रीतिर्युष्मभ्यंसम्भविष्यति ॥ १८ ॥ ममवाक्यादसंदिग्धंपरमेतौनरोभुवि ॥ नैवसंप्राप्स्यतेपापंयुष्मदर्थंहनन्नपि ॥ १९ ॥ कृतकृत्यःपुमान्सोत्र शुभंसर्वंभविष्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्यंभूतिमिच्छता ॥ २० ॥ तौचापिपरमौदिव्यौ स्वर्गलोकंगमिष्यतः ॥ घातकस्यपरंश्रेयो भविष्यतिचदुर्लभम् ॥ २१ ॥ पितॄणांवाञ्छितातृप्तिर्भवेद्द्वादशवार्षिकी ॥ एतस्मात्कारणाच्छस्तं मांसमाभ्यांनराधिप ॥ २२ ॥ तस्मिन्नहनिनान्यत्र नियोगस्तस्यकीर्तितः ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ अप्राप्तखड्गमांसस्य तथावार्द्धीणसस्यच ॥ २३ ॥ कथंश्राद्धंभवेद्विप्र पितॄणांतृप्तिकारकम् ॥

से निस्सन्देह बड़ी प्रसन्नता होगी परन्तु भूमि में तुमलोगों के लिये इनको मारता हुआ भी मनुष्य पातक को न पावैगा ॥ १८ । १९ ॥ और वह पुरुष यहां कृतकृत्य होगा व सब शुभ होगा उसी कारण ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुष को समस्त उपाय से देना चाहिये ॥ २० ॥ और वे भी दोनों परम दिव्य होकर स्वर्गलोक को जावैंगे व मारनेवाले का दुर्लभ व उत्तम कल्याण होगा ॥ २१ ॥ और पितरों की बारह वर्षवाली वाञ्छित तृप्ति होवै है इसी कारण हे नरनायक ! इन दोनों का मांस शुभ है ॥ २२ ॥ उस दिनके सिवाय और दिनमे उस मांसका नियोग नहीं कहाहै रोहिताश्व बोले कि हे विप्रजी ! वार्द्धीणस व गैंडके मांसको न पायेहुये पुरुष की श्राद्ध

किस प्रकार पितरों को तृप्ति कारक होती है मार्कण्डेय जी बोले कि सहत समेत गैंड़ेके मांस व खीरसे श्राद्ध देना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ उस से भी पितरों की वर्ष वाली तृप्तिहोतीहै हे राजन् ! सूसिसे उपजा हुआ अन्य मांस ॥ २५ ॥ महीना वर्जित बर्षभर याने गेरह महीने तक पितरोंकी तुष्टिके लिये कहागयाहै हे महाराज ! उसके अभावमें बँड़ैलका मांस दश महीने तक पितरोंको प्रसन्नता दायक कहाहै इसमें सन्देह नहींहै और जंगली भैंसेसे उपजे हुये मासके द्वारा नौ महीनेवाली तृप्ति होती है ॥ २६ । २७ ॥ और शम्बर (मृगभेद) के मांससे व चौगड़े के मांस से पांच महीने तक तृप्तिहोती है और साहीके मांससे चार व तित्तिर के मांससे तीन

मार्कण्डेयउवाच ॥ मधुनाखड्गमांसेनदातव्यंपायसेनच ॥ २४ ॥ तेनापिवार्षिकीतृप्तिः पितृणांचोपजायते ॥ अन्यंच पिशितंराजञ्छिशुमारसमुद्भवम् ॥ २५ ॥ पितृप्रतुष्टयेप्रोक्तंवत्सरंमांसवर्जितम् ॥ तदभावेवराहस्य दशमासप्रतुष्टिद म् ॥ २६ ॥ मांसंप्रोक्तंमहाराज पितृणांनात्रसंशयः ॥ आरण्यमहिषोत्थेनतृप्तिःस्यान्नवमासिका ॥ २७ ॥ शम्बरोस्य तुमांसेन शशकस्यतुपञ्चच ॥ चत्वारश्शल्लकस्योक्तास्त्रयोवातैत्तिरस्यच ॥ २८ ॥ मासद्वयञ्चमत्स्यस्य मासमेकंक पिञ्जलम् ॥ नान्येषांयोजयेन्मांसं पितृकार्य्येकथञ्चन ॥२९॥ एतेषामेवमांसानि पावनानिनृपोत्तम ॥ आनर्तउवा च ॥ कस्मादेतेपवित्रास्स्युर्येषांमांसंप्रयुज्यते ॥ ३० ॥ श्राद्धेचतन्ममाचक्ष्व यथाचद्विजसत्तम ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सृष्टिंप्रकुर्वताजेन पशूनांलोककारिणा ॥ ३१ ॥ खड्गवार्ध्रीणसादीनां पश्चात्सृष्टास्स्वयम्भुवा॥एकादशप्रमाणेन तत श्चान्येनृपोत्तम ॥ ३२ ॥ अजश्चप्रथमस्सृष्टस्सतथामेध्यताङ्गतः ॥ तथैतेप्रथमाःसृष्टाः पशवोत्रनराधिप ॥ ३३ ॥ स

महीने तृप्ति के कहेगये हैं ॥२८॥ व मछरी का मांस दो महीने तथा कपिंजल का मांस एक महीने तक तृप्ति देताहै अन्यजीवों का मांस किसी प्रकार पितरोंकेकार्य में न युक्त करना चाहिये ॥ २९ ॥ हे नृपोत्तम ! इन्हीं के मास पवित्र कारक हैं आनर्त्त बोला कि किस कारण ये पवित्र हैं कि जिनका मांस श्राद्ध में युक्त किया जाता है हे द्विजोत्तम ! जैसाहो वैसा वह मुझसे कहिये भर्तृयज्ञ बोले कि हे नृपोत्तम ! लोकोंके करनेवाले, पशुवों की सृष्टि करतेहुये ब्रह्माने गेरहकी प्रमाणसे गैंड़ा आदि पशुवों को पहले रचा तदनन्तर पीछे अन्य पशुवों को रचाहै ॥३०।३१।३२॥पहले छाग बनाया गया है वह वैसेही पवित्रता को प्राप्त है हे नरनायक ! वैसेही

यहां ये पहले वाले रचेहुये पशुहैं ॥ ३३ ॥ अन्नोंको रचतेहुये उन ब्रह्माने पहले तिल बनाया और श्राद्धके साठीधान रचेगये व अन्नोंमें पहले काकुनि ॥ ३४ ॥ गेहूं, यव, उड़द व मूंग और हे राजन्! फसही भी व सावां रचागयाहै हे राजन्! इनको मैंने क्रम पूर्वक कहा ॥३५॥ पितर मांससे तृप्तिकी इच्छा करते हैं और अन्न समेत मांस वर्जित नहींहै जब फूलोंकी जातियां रचीगईं तब पहले छतावरि बनाई गई ॥ ३६ ॥ उसी से वह सदैव श्राद्ध कर्म में मुख्य है और धातुवों को सिरजते हुये उन ब्रह्माने पहले चांदी रचाहै ॥ ३७ ॥ उससे दक्षिणा में बड़ी तृप्तिके लिये श्राद्ध में वह चांदी कही है और चांदी के पात्रों में जो उन पितरों के लिये निश्चयकर

स्यांनिसृजतातेन तिलाःपूर्वंविनिर्मिताः ॥ श्रद्धार्थंव्रीहयस्सृष्टा अन्नेषुचप्रियङ्गवः ॥ ३४ ॥ गोधूमाश्चयवाश्चैव माषामुद्गा श्चवैनृप ॥ नीवाराश्चापिश्यामाकाः वक्षिताश्चयथाक्रमम् ॥३५ ॥ तृप्तिंमांसेनवाञ्छन्ति मांसंसान्नंनवर्जितम् ॥ पुष्पजा त्योयदासृष्टास्तदाप्राक्शतपत्रिका ॥ ३६ ॥ सृष्टातेनचमुख्यासा श्राद्धकर्म्मणिसर्वदा ॥ धातूनिसृजतातेन रूप्यंसृ ष्टंस्वयम्भुवा ॥ ३७ ॥ तेनतद्विहितंश्राद्धे दक्षिणायांप्रतृप्तये ॥ राजतेषुचपात्रेषु यद्धितेभ्यःप्रदीयते ॥ ३८ ॥ पितृभ्य स्तस्यनैवान्तो युगान्तेपिप्रजायते ॥ अभावेरूप्यपात्राणांनामापिपरिकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ तृप्यन्तिपितरोराजन्कीर्त नादपिवैयतः ॥ रसांश्चसृजतातेन मधुसृष्टंस्वयम्भुवा ॥ ४० ॥ तेनतच्छस्यतेश्राद्धे पितॄणांतुष्टिदायकम् ॥ यच्छ्राद्धं मधुनाहीनं तद्रसैस्सकलैरपि ॥ ४१ ॥ मिष्टान्नैरपिसंयुक्तैस्तत्पितॄणांनतृप्तये ॥ असामान्यमपिश्राद्धे यदिनस्याद्विमा त्तिकम् ॥ ४२ ॥ नामापिकीर्तयेत्तस्य पितॄणान्तुष्टयेयतः ॥ शाकानिसृजतातेन ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ ४३ ॥ कालशा

दियाजाता है उसका अन्त युगान्त में भी नहीं होताहै व चांदीके पात्र न होने में नाम भी कहागयाहै ॥३८ । ३९ ॥ क्योंकि हे राजन्! कीर्तनसे भी पितर तृप्तहोते हैं और रसोंको रचते हुये उन ब्रह्माने सहत बनायाहै ॥ ४० ॥ उससे श्राद्धमें वह सहत पितरोंको तुष्टि दायक कहाहै और मीठे अन्नोंसेभी संयुक्त व सहतसे हीन उस श्राद्धको जो सब भी रसोंसे करता है वह विशेषभी श्राद्ध पितरों की तृप्तिके लिये नहीं होती है यदि श्राद्ध में सहत न होवै ॥ ४१ । ४२ ॥ तो पितरों की प्रसन्नता के

लिये उसका नाम भी कहै व जिस लिये कि शाकोंको रचते हुये उन ब्रह्मा ने ॥ ४३ ॥ पहले काल शाक सिरजाहै उससे वह तृप्ति दायक है और समय को सिरजतेहुये उन ब्रह्माने पहले कुतुप बनाया है ॥ ४४ ॥ इस लिये यदि पितरोंकी निरन्तर वाली तृप्ति व अपना को सुखचाहै तो विशेषकर जानतेहुये पुरुषको कुतुप समय में श्राद्धकरना चाहिये ॥ ४५ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! विस्तार वाली लताओंको बनाते हुये उन ब्रह्माने पहले कुशोंको बनाया है उस कारण वे श्राद्धके योग्य कहेगये हैं ॥४६॥ व श्राद्धके योग्य ब्राह्मणोंको रचतेहुये उन ब्रह्माने पहले नातियोंको बनाया उससे वे श्राद्धके योग्य कहेगये हैं ॥४७॥ पवित्रतासे रहित हीन, अधिक अंगवालेभी

कंपुरासृष्टं तेनतत्तृप्तिदायकम् ॥ कालंहिसृजतातेन कुतुपःप्राग्विनिर्म्मितः ॥ ४४ ॥ तस्मात्कुतुपकालेच श्राद्धंकार्य्यंविजानता ॥ यदीच्छेच्छाश्वतींतृप्तिं पितॄणामात्मनःसुखम् ॥ ४५ ॥ वीरुधःसृजतातेन विधिनान्नृपसत्तम ॥ दर्भास्तुप्रथमंसृष्टाः श्राद्धार्हास्तेनतेस्मृताः ॥ ४६ ॥ श्राद्धार्हान्ब्राह्मणांस्तेनसृजतापद्मयोनिना ॥ दौहित्राःप्रथमंसृष्टाःश्राद्धार्हास्तेनतेस्मृताः ॥ ४७ ॥ अपिशौचपरित्यक्तं हीनाङ्गाधिकमेवच ॥ दौहित्रंयोजयेच्छ्राद्धे पितॄणांपरितुष्टये ॥ ४८ ॥ पशून्विसृजतातेनपूर्वंगावोविनिर्म्मिताः ॥ तेनतासांपयःशस्तं श्राद्धेसर्पिर्विशेषतः ॥ ४९ ॥ तस्माच्छ्राद्धेघृतंशस्तंप्रदत्तंपितृतुष्टये ॥ प्रजाश्चसृजतातेन पूर्वंसृष्टाद्विजोत्तमाः ॥५०॥ तस्मात्प्रशस्तास्तेश्राद्धे पितृतृप्तिकरास्तदा ॥ देवांश्चसृजतातेन विश्वेदेवाःसुराःकृताः ॥ ५१ ॥ तेनतेप्रथमंपूज्याःप्रवृत्तेश्राद्धकर्म्मणि ॥ तेरक्षन्तिततःश्राद्धंयथावत्परितर्पिताः ॥ ५२ ॥ छिद्राणिनाशयन्तिस्म श्राद्धेपूर्वंप्रपूजिताः ॥ एतेमुख्यतमास्सृष्टाः पुराश्राद्धंविनिर्म्मितम् ॥ ५३ ॥ स्वयं

नातीको पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धमें युक्तकरै ॥४८॥ पशुओंको बनातेहुये उन ब्रह्माने पहले गाइयोंको रचाहै उसकारण श्राद्धमें उन गाइयोंका दूध व विशेषकर घी शुभ है ॥४९॥ उस कारण श्राद्धमें पितरोंकी प्रसन्नताके लिये दियाहुआ घी शुभहै व प्रजाओं को सिरजते हुये उन ब्रह्माने पहले द्विजोत्तमों को बनाया ॥ ५० ॥ इस लिये वे उत्तम ब्राह्मण श्राद्ध में सदैव पितरों को तृप्ति दायक हैं व देवताओं को रचते हुये उन ब्रह्माने पहले विश्वेदेवों को बनाया है ॥ ५१ ॥ उस से श्राद्धका कर्म वर्तमान होने पर वे पहले पूजने योग्यहैं उसी कारण यथा योग्य तृप्त किये हुये वे श्राद्ध की रक्षा करते हैं ॥ ५२ ॥ व श्राद्धमें पहले पूजेहुये वे विश्वेदेवा दोषोंको नाशकरते

हैं ये पहले अति प्रसिद्ध रचेगये हैं व आपही ब्रह्मसेही श्राद्ध बनाईगई तदनन्तर देवता रचेगये उस से हे राजन्! वे देवता समस्त लोकोंमें उत्तम प्रसिद्धिको प्राप्त हुये ॥ ५३ । ५४ ॥ हे राजन्! जो पुरुष इन सब वस्तुवों से श्राद्धकी विधि करता है तो वह श्राद्ध घरमें गया श्राद्धके बराबर होतीहै ॥ ५५ ॥ हे राजन्! मैंने पितरों की समस्त श्राद्धके इसपरम गुप्त चरितको तुमसे कहा व सब अन्न कहा ॥ ५६ ॥ उसी कारण प्रिय अन्नको देकर व पात्रको छूकर जपै व ब्राह्मणों के अंगूठेको भली भाति लेकर व पकायेहुये भोजन के मध्यमें धरकर ॥ ५७ ॥ और पृथिवी ते पात्रं इस वैष्णवी ऋचासे भोजन करावै व हे राजन्! जो अपने हाथ से केवल लोन

पितामहेनैव ततोदेवाविनिर्मिताः ॥ तेनतेसर्वलोकेषुगताःख्यातिंपरांनृप ॥ ५४ ॥ एतैर्यःसकलैःश्राद्धंविधिंप्रकुरुतेनरः ॥ गयाश्राद्धेनतत्तुल्यं गृहेस्यात्तत्समंनृप ॥ ५५ ॥ एतच्छ्राद्धस्यसर्वस्य मयातेपरिकीर्तितम् ॥ पितॄणांपरमंगुह्यं प्रोतमन्नमशेषकम् ॥ ५६ ॥ इष्टमन्नंततोदत्त्वापात्रमालभ्यसञ्जपेत् ॥ विप्राङ्गुष्ठंसमादाय पाकमध्येनिधायच ॥ ५७ ॥ पृथिवीतेपात्रमादाय वैष्णव्याऋचयातथा ॥ स्वहस्तेनचयद्दत्तंप्रत्यक्तलवणंनृप ॥५८॥ तच्छ्राद्धंव्यर्थतांयातिघृतेदत्तेर्द्धभुक्तके ॥ सकृज्जलंप्रदत्त्वातुगायत्रीत्रितयञ्जपेत्॥५९॥मधुवातेतिसङ्कीर्त्यततःपृच्छेद्द्विजोत्तमान् ॥ तृप्ताःस्थइतिराजेन्द्र अनुज्ञांप्रार्थयेत्ततः ॥ ६० ॥ बन्धूनांभोजनार्थाय शेषस्यान्नस्यभक्तिमान् ॥ उच्छिष्टसन्निधौपश्चात्पितृवेदींसमाचरेत् ॥ ६१ ॥ पितृविप्राशनस्थानात्त्रिभिर्हस्तैर्यदन्तरम् ॥ ततोवेदींसमाधाय पैतृकींदक्षिणांप्लवाम् ॥६२॥ तस्यां दर्भान्समाधाय कुर्य्याच्चैवावनेजनम् ॥ विभक्त्यापूर्वयापश्चात्पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ६३ ॥ भूयोप्यत्रजलंदद्या

दिया जाताहै ॥ ५८ ॥ तो वह श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होती है घृत देनेपर व आधे भोजन करने में एक बार जल देकर तीन गायत्री जपै ॥ ५९ ॥ व मधुवाता ऐसी ऋचा भलीभाति कहकर तदनन्तर हे नृपेन्द्र! द्विजोत्तमों से पूंछै कि तुमलोग तृप्तहो तदनन्तर बन्धुवोंको जिवाने के लिये भक्तिमान नर शेष अन्नकी आज्ञाको मांगै पश्चात् जूंठे स्थानके समीप पितृ वेदीको बनावै ॥ ६० । ६१ ॥ कि जिसका बीच पितृ ब्राह्मणों के भोजन स्थान से तीन हाथहो तदनन्तर दक्षिण दिशाको झुकी हुई पितरोंवाली वेदीको भलीभांति बनाकर ॥ ६२ ॥ उसमें कुशोंको भलीभांति धर कर पहले के विभाग से अवनेजनकरै पश्चात् क्रम पूर्वक पिण्डदेवै ॥ ६३ ॥ हे

जो पहलेवाले पिण्डोंमें विस्तारित सूत्रको राजन्! फिरभी पितृ तीर्थ याने अंगूठा व अंगुलीके मूलसे यहीं जलदेवै और अलग२ उनमें प्रत्येक पिण्डपै सूतदेवै ॥ ६४ ॥ युक्त करता है वह परस्परमें तोड़ने से उनका वैरकरताहै ॥६५॥ तदनन्तर जैसे द्विजोत्तम ब्राह्मणों को भलीभांति पूजै वैसेही पिण्डों का पूजनकरै हे राजन्! आचमन कर हाथों व चरणों को धोकर ॥ ६६ ॥ व पितरों को प्रणाम करके उसके उपरान्त भलीभांति छिड़ककर हे नृपेन्द्र! सव्यसे उत्तम आशीर्वादों को मांगकर ॥६७॥ व उनसे अस्तु स्वधा ऐसा कहने उसके उपरान्त पश्चात् अक्षय्य (न नाशहोने योग्य) जलदेना चाहिये व पैंतियोंको लेकर ऊर्ध्व स्वधा ऐसा कहै ॥ ६८ ॥

तिपितृतीर्थेनपार्थिव ॥ सूत्रञ्चप्रतिपिण्डंवैदद्यात्तेषुपृथक्पृथक् ॥ ६४ ॥ यःसूत्रंपूर्वपिण्डेषु सततंविनियोजयेत् ॥ सवि रोधञ्चरेत्तेषांत्रोटनाच्चपरस्परम् ॥६५॥ ततःसम्पूजयेद्विप्रान्पिण्डान्यद्वद्द्विजोत्तमान् ॥ आचम्यप्रक्षाल्यतथाहस्तौपा दौचपार्थिव ॥ ६६ ॥ पश्चात्पितृन्नमस्कृत्यप्रोक्षितंतदनन्तरम् ॥ कृत्वाम०्येनराजेन्द्र याचयित्वापराशिषः ॥ ६७ ॥ अक्षय्यंसलिलंदेयं पश्चाच्चैवततःपरम् ॥ पवित्राणिसमादाय ऊर्ध्वस्वधेतिकीर्तयेत् ॥ ६८ ॥ अस्तुस्वधेतितैरुक्तेपिण्डो परिपरिक्षिपेत् ॥ ततोमधुसमादाय पायसञ्चतिलोदकम् ॥ ६९ ॥ ऊर्जंस्वेतिचमन्त्रेण पितृणामुपरिक्षिपेत् ॥ उत्तान मर्घपात्रन्तुकृत्वादद्याच्चदक्षिणाम् ॥ ७० ॥ हिरण्यंदेवतानाञ्च पितृणांरजतंतथा ॥ ततःस्वस्त्युदकंदद्यात्पितृपूर्वन्तु स०्यतः ॥ ७१ ॥ नस्त्रीभिर्नचबाल्येन नैवान्येनचकेनचित् ॥ श्राद्धीयंपितृपात्रञ्चस्वयमेवप्रचालयेत् ॥ ७२ ॥ ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेत्पार्थिवोत्तमः ॥ अघोराःपितरःसन्तुअस्मद्गोत्रोविवर्द्धताम् ॥७३॥ दातारोनोभिवर्द्धन्तांवेदास्स

पर पिण्डों के ऊपर सब ओर फेंकदेवै तदनन्तर सहत, खीर व तिल मिलाहुआ जल लेकर ॥ ६९ ॥ ऊर्जस्व ऐसे मन्त्रसे पितरोंके ऊपर फेंकदेवै और अर्घ पात्रको उलटकर देवोंको सुवर्ण व पितरोंको चांदी दक्षिणा देवै तदनन्तर पितृ पूर्वोंको सव्यसे स्वस्तिवाला जलदेवै ॥ ७० । ७१ ॥ न स्त्रिया, न बालक व न और कोईसे श्राद्ध वाले पितृ पात्रको आपही चलावै ॥ ७२ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! जुड़ेहुये हाथोंवाला होकर प्रार्थना करै कि पितर अघोर याने नम्रहोवैं व हमारा गोत्र विशेष

कर बढ़ै ॥ ७३ ॥ व हमारे कुलमें दाता पुरुष बढ़ैं व वेद और सन्तान ही बढ़ै और हमारी श्रद्धा मतजावै व हमलोगोंको बहुत देनेयोग्य होवै ॥ ७४ ॥ व हमारे बहुत अन्नहोवै तथा हमलोग अतिथियों को पावैं और हमलोगों से मागने वाले होवैं तथा हमलोग किसी से मतमांगै ॥ ७५ ॥ इतनेही आशीर्वाद होवैं तदनन्तर विश्वेदेवा प्रीयतां इस मन्त्रसे सव्यके द्वारा पितृ पूर्वकों को जलदेकर ॥ ७६ ॥ व वाजे २ मन्त्रसे करके हद पर्यन्त तक जावै व वलिधरै और पश्चात हे नरनायक ! जब तक सूर्य देख पड़ैं तब तक मौन से भोजनकरै और जो श्राद्ध कर्ता पुरुष सूर्यास्त होने पर भोजन करता है ॥ ७७ । ७८ ॥ उसकी श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्तहोतीहै इसलिये

न्ततिरेवच ॥ श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयञ्चनोऽस्त्विति ॥७४॥ अन्नञ्चनोबहुभवेदतिथींश्चलभेमहि ॥ याचितारश्चनःसन्तु मास्मयाचिष्मकञ्चन ॥ ७५ ॥ एताएवाशिषस्सन्तुविश्वेदेवाप्रीयतांततः ॥ स्वस्त्यर्थमुदकंदत्त्वा पितृपूर्वञ्चस व्यतः ॥ ७६ ॥ वाजेवाजेतिचकृत्वा आसीमान्तमनुव्रजेत् ॥ बलिञ्चनिक्षिपेत्पश्चाद्भोजनंचसमाचरेत् ॥ ७७ ॥ मौनेनद्द श्यतेसूर्य्योयावत्तावन्नराधिप ॥ यश्चैवास्तमितेसूर्य्ये भुज्यतेश्राद्धकृन्नरः ॥ ७८ ॥ व्यर्थतांयातितच्छ्राद्धं तस्माद्भुञ्जी तनोनिशि ॥ ७९ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेएकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः २११ ॥

आनर्तउवाच ॥ एकोद्दिष्टविधिंब्रूहिममत्वंवदतांवर ॥ पार्वणन्तुयथाप्रोक्तं विस्तरेणमहामते ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञउवा च ॥ त्रीणिसञ्चयनादर्वाक्तानित्वंशृणुसाम्प्रतम् ॥ यस्मिन्स्थानेभवेन्मृत्युस्तत्रश्राद्धन्तुकारयेत् ॥ २ ॥ एकोद्दिष्टं तोमार्गे विश्रामोयत्रकारितः ॥ ततस्सञ्चयनस्थाने तृतीयंश्राद्धमिष्यते ॥ ३ ॥ प्रथमेह्नितृतीयेह्नि पञ्चमेसप्तमेतथा ॥

रातमें न भोजनकरै ॥ ७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाश्राद्धकल्पेएकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

दो० । एकोद्दिष्ट विधान अरु यथा सपिण्डी कर्म । होतसो दोसौ बारहें माहिं कहत सब मर्म ॥ आनर्त बोला कि हे कहने वालोंमें उत्तम, महामते एकोद्दिष्ट विधि व जैसे पार्वण कही है उसको मुझसे विस्तार पूर्वक कहो ॥ १ ॥ भर्त्तयज्ञ बोले कि अस्थि सचयन से पहले तीन श्राद्धैहोती है इस समय तुम उनको सुनो कि जिस स्थानमें मृत्युहोती है वहां श्राद्धकरै तदनन्तर राहमें जहां विश्राम करायागया हो वहां एकोद्दिष्ट करै उसके उपरान्त अस्थि संचय के स्थान मे तीसरी श्राद्ध इच्छा

की जाती है ॥ २ । ३ ॥ व पहले दिन, तीसरे दिन, पांचवें, सातवें तथा नवयें व गैरहवें दिन वे नव श्राद्धैं होती हैं ॥ ४ ॥ और वैतरणी की प्राप्ति में प्रेत तृप्तिको प्राप्तहोताहै हे नृपसत्तम ! विश्वेदवोंसे हीन व बिन अग्नौकरण तथा आवाहनसे रहित एकोदिष्ट करना चाहिये तदनन्तर स्वदितं याने बहुत अच्छी भांति भोजन किया इसप्रकार एकबार तृप्तिकी प्रश्नकरै ॥ ५ । ६ ॥ अभिरम्यता इस मन्त्र से ब्राह्मणको विदाकरै बिन कटे अग्रभागवाले व बिन टूटे अग्रभाग वाले कुश दो तिनुकाकरै ॥ ७ ॥ उसको पवित्र जानै व एकोदिष्ट में विधानकरै व सबकहीं पितः और तर्पण कर्म में पिता कहाहै ॥ ८ ॥ व संकल्प समय में पित्र्ये और अक्षय्य दान

नवमैकादशेचैव नवश्राद्धानितानिच ॥ ४ ॥ वैतरण्याश्चसंप्राप्तौ प्रेतस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥ एकोद्दिष्टंदैवहीनमनग्नौकरणंतथा ॥ ५ ॥ आवाहनेनसंत्यक्तं कार्य्यंपार्थिवसत्तम ॥ तृप्तिप्रश्नस्तथाकार्य्यःस्वदितञ्चसकृत्ततः ॥ ६ ॥ अभिरम्यतेतिमन्त्रेण ब्राह्मणस्यविसर्जनम् ॥ अच्छिन्नाग्रमभिन्नाग्रंकुर्य्याद्दर्भतृणद्वयम् ॥ ७ ॥ पवित्रंतद्विजानीयादेकोद्दिष्टेविधीयते ॥ सर्वत्रचपितःप्रोक्तं पितातर्पणकर्म्मणि ॥ ८ ॥ पित्र्येसङ्कल्पकालेचपितुरक्षय्यदापने ॥ गोत्रस्वरान्तंसर्वत्र गोत्रस्तर्पणकर्म्मणि ॥ ९ ॥ गोत्रायकल्पनविधौगोत्रस्याक्षय्यदापने ॥ शर्म्मन्नेवादिकर्तव्ये शर्म्मातर्पणकर्म्मणि ॥ १० ॥ शर्म्मणेतस्यदानेच शर्म्मणोक्षय्यकेविधौ ॥ मातर्मात्रेतथामातुरासनेकल्पनेऽक्षये ॥ ११ ॥ गोत्रेगोत्रायैगोत्रायाःप्रथमाद्याविभक्तयः ॥ देविदेव्यैतथादेव्या एवंमातुश्चकीर्तयेत् ॥ १२ ॥ प्रथमाचचतुर्थीच षष्ठीस्यात्तद्धिसिद्धये ॥ विभक्तिरहितंश्राद्धं क्रियतेवाविपर्य्ययात् ॥ १३ ॥ तत्क्षतञ्चविजानीयात्पितॄणामुपतिष्ठति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन

में पितुः व सबकहीं स्वरान्त गोत्र और तर्पण कर्ममें गोत्रः ॥ ९ ॥ सङ्कल्प विधिमें गोत्राय, अक्षय्य दानमें गोत्रस्य व आदि कर्तव्यमें शर्मही तथा तर्पण कर्म में शर्मा ॥ १० ॥ व उसके दानमें, शर्मणे, अक्षय्य विधिमें शर्मणः व आसन में मातः, संकल्पमें मात्रे, अक्षय में मातुःकहै ॥ ११ ॥ व गोत्रे, गोत्रायै, गोत्रायाः प्रथमादि विभक्तियोंको कहै व देवि, देव्यै और देव्याः ऐसा माताको कीर्त्तन करै ॥ १२ ॥ और प्रथमा, चतुर्थी व षष्ठी उसकी श्राद्धके लिये होतीहै और विभक्तियों से रहित व विभक्तियों के उलटने से जो श्राद्ध कीजातीहै ॥ १३ ॥ उसको क्षतजानै और पितरों के समीप क्षतही प्राप्त होती है उसी कारण सदैव विशेषकर जानते हुये

पुरुषको सब उपायसे यथोक्त विभक्तियोंके द्वारा श्राद्धमें विधि करना चाहिये तदनन्तर वर्षके ऊपर सपिण्डी करण स्थित होताहै ॥ १४ । १५ ॥ यदि वृद्धि आनेवाली होवै याने मुण्डनादि कार्य करना हो तो पहले भी करै हे राजन्! बिन देववाले प्रेतको उद्देश करके पार्वण में कहीहुई विधि से तीन देववाले एकोद्दिष्ट को एकही पिण्ड से करना चाहिये मेरा यह मत स्मरण कियागयाहै ॥ १६ । १७ ॥ जो प्रेतके लिये कल्पना कियागया है उस अर्घ पात्रको लेकर तीनोंही पितृ पात्रोंमें विधि से फेंकै ॥ १८ ॥ उस के उपरान्त पिण्डके तीन खण्डकरके ये समान ऐसे मन्त्रोंसे उनतीनों पितृ पिण्डोंमें मिलाना चाहिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर अवनेजन करके क्रमके

ब्राह्मणेनविजानता ॥ १४ ॥ विभक्तिभिर्यथोक्ताभिः श्राद्धेकार्य्योविधिःसदा ॥ ततःसपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतःस्थि तम् ॥ १५ ॥ वृद्धिर्वागामिनीचेत्स्यात्तदर्वागपिकारयेत् ॥ पार्वणोक्तविधानेन त्रिदैवत्यमदैवकम् ॥ १६ ॥ प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टश्चपार्थिव ॥ एकेनैवतुपिण्डेन ममचैतन्मतंस्मृतम् ॥ १७ ॥ अर्घपात्रंसमादाय यत्प्रेतार्थंप्रकल्पित म् ॥ पितृपात्रेषुत्रिष्वेव विधानेनपरिक्षिपेत् ॥ १८ ॥ एवंपिण्डंत्रिधाकृत्वा पितृपिण्डेषुचत्रिषु ॥ येसमानेतिमन्त्राभ्यां तेषुमेल्यस्ततःपरम् ॥ १९ ॥ अवनेजनंततःकृत्वा पितृपूर्वंयथाक्रमम् ॥ गन्धधूपादिकंसर्वं पुनरेवप्रदापयेत् ॥ २० ॥ पितृपूर्वंसमुच्चार्य्यं वर्जयेच्चचतुर्थकम् ॥ केचिच्चतुर्थंकुर्वन्तिपितरंस्वपितुस्ततः ॥ २१ ॥ पितृपूर्वंभवेच्छ्राद्धं परंनैतन्मतं मम ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टेनकारयेत् ॥ २२ ॥ क्षयाहेचपरित्यज्य शस्त्राहतचतुर्दशीम् ॥ यःसपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डंनियोजयेत् ॥ २३ ॥ अकृतंचोपजानीयात्पितृहाचोपजायते ॥ पितायस्यतुनिर्वृत्तो जीवितेचपिता

अनुकूल पितृपूर्वकों को फिर चन्दन, धूपादिक सब पितृपूर्वक भलीभांति उच्चारण करके देवै और चौथे को वर्जित करै व कोई उस अपने पिता के सकाश से चौथे पितरको करते हैं ॥ २० । २१ ॥ परन्तु पितृपूर्वक यह चौथे पितरवाली श्राद्ध मेरे मतकी नहीं होती है सपिण्डी करण के उपरान्त शस्त्रसे मरेहुये जनोंकी चौदसि को छोड़कर एकोद्दिष्ट व क्षयाह में चौथे पितर को न करना चाहिये जो सपिण्डी कियेहुये प्रेतको अलग पिण्डमें युक्त करताहै ॥ २२ । २३ ॥ उसको बिन

कियाहुआ जानै और वह पिताका नाशक होताहै व बाबाके जीतेहुये जिसका पिता मरगयाहो ॥ २४ ॥ तो पितामह साक्षात् भोजनकर पिण्डको ग्रहणकरै और पितामह के क्षयाह में पार्वणश्राद्ध इच्छा कीजाती है ॥ २५ ॥ अपने पिताको परित्यागकर उसबाबाको किसीप्रकार श्राद्धदीजाती है उस पिताको श्राद्ध न करनेसे पिता से थोड़ा डर नहीं होताहै ॥२६॥ और पिताके मरने पर समस्त अमावसोंमें पार्वण करना चाहिये यह श्रावण के दूसरे पक्षके मध्यमें कहागया है ॥ २७ ॥ जबतक सपिण्डता न होय तबतक श्राद्ध न करै पिताको मृत्युमें प्राप्तहोनेपर जब श्राद्धवाला पक्षआवै तब ॥ २८ ॥ पितामह आदिकों की श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि एक

महे ॥ २४ ॥ पितामहस्तुप्रत्यक्षंभुक्त्वागृह्णातिपिण्डकम् ॥ पितामहक्षयाहेच पार्वणंश्राद्धमिष्यते ॥ २५ ॥ जनकंस्वंपरित्यज्यकथंचित्तस्यदीयते ॥ तस्याकृतेनश्राद्धेन नस्वल्पंपितृतोभयम् ॥ २६ ॥ अमावास्यासुसर्वासु मृतेपितरिपार्वणम् ॥ नभस्यापरपक्षस्यमध्येचैतदुदाहृतम् ॥ २७ ॥ यावत्सपिण्डतानैवनतावच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ जनकेमृत्युमापन्ने श्राद्धेपक्षेसमागते ॥ २८ ॥ पितामहादिकर्तव्यंश्राद्धंयन्नैकपिण्डता ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेसपिण्डीकरणविधिवर्णनंनामद्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥ * ॥ * ॥

भर्तृयज्ञ उवाच ॥ यतःसपिण्डःक्रियते पितृपिण्डैस्समन्ततः ॥ यावत्सपिण्डतानैव तावत्प्रेतत्वनिर्वृतिः ॥ १ ॥ नापिधर्म्मसमोपेतस्तपसापिसमन्वितः ॥ एतस्मात्कारणात्प्रोक्ता मुनिभिस्तुसपिण्डता ॥ २ ॥ यस्ययस्यजनोन्यत्र योनिंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्रस्थस्तृप्तिमाप्नोति यद्दत्तंतस्यवंशजैः ॥३॥ येषांसानतुसञ्जाता प्रेतत्वञ्चव्यवस्थितम् ॥ दर्श

पिण्डता नहीं है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसपिण्डीकरणविधिवर्णनंनामद्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

दो० । अहै जौनसे नर्कमें जौन वस्तु दुखदाइ । दोसौ तेरहमें सोई कह्यो सूत समुझाइ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि जिस कारण पितृ पिण्डोंके साथ सपिण्ड कियाजाता है उसी लिये जबतक सपिण्डता नहीं होती तबतक प्रेतताकी निवृत्ति नहीं होती है चाहै धर्म संयुत भी तपसे युक्तभी होवै इसीकारण मुनियों से सपिण्डता कही गई है ॥ १ । २ ॥ मनुष्य अन्यत्र जिस २ की योनिमें प्राप्तहोता है उस योनि में टिकाहुआ नर उस के वंशमें उपजे हुये मनुज से जो दियागया है उससे तृप्तिको

प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ और जिनकी वह सपिण्डता नहींहुई है वे सब आपही अपने वंशवालों को अपनेही को दिखलातेहैं अन्यत्र नहीं यह मैंने सत्यकहाहै कि जिस प्रकार उनसे कियाहुआ शुभ कार्यलोप होजाता है ॥ ४ । ५ ॥ आनर्त्त बोला कि जिसके पुत्र नहीं विद्यमान है उसका सपिण्डी करण कार्य यहां कैसे होता है तुम मुझसे उसको कहने के योग्यहो ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे भूपते ! जिसके औरस पुत्र नहीं वर्त्तमान है वह चारों पितरों के मध्य में कैसे चौथाहोवै ॥ ७ ॥ जिस लिये कि बडी खींचको प्राप्तहोता है उसीकारण प्रेत कहागया है उसकी सपिण्डता पुत्र, भाई व स्त्रीके साथ करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे नृपेन्द्र ! यदि चौथा किसी

यन्तिचतेसर्वे स्वयमात्मानमेवहि ॥ ४ ॥ स्ववंश्यानांनचान्यत्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ यथालोपञ्चसञ्जातं तैश्चकृत्यंकृतंशुभम् ॥ ५ ॥ आनर्तउवाच ॥ यस्यनोविद्यतेपुत्रःसपिण्डीकरणंकथम् ॥ तस्यकार्य्यंभवेदत्र तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ यस्यनोविद्यतेपुत्र औरसश्चमहीपते ॥ सचतुर्णांपितॄणान्तु कथंस्याच्चचतुर्थकः ॥ ७ ॥ प्रकर्षणंव्रजेद्यस्मात्तस्मात्प्रेतःप्रकीर्तितः॥ पुत्रेणभ्रातापत्न्यावा तस्यकार्य्यासपिण्डता ॥ ८ ॥ चतुर्थोयदिराजेन्द्र जायतेचकथञ्चन ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान् ॥ ९ ॥ पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ कालेयदिनराजेन्द्र जायतेस्योत्तरक्रिया ॥ १० ॥ नारायणबलिःकार्य्या सप्रेतत्वविनाशकः ॥ यथान्येषांमनुष्याणामपमृत्युमुपेयुषाम् ॥ ११ ॥ कार्य्यश्चैवात्मनोनृणां ब्राह्मणान्मृत्युमीयुषाम् ॥ आनर्तउवाच ॥ कथंमृत्युमवाप्नोति पुरुषोत्रमहामते ॥ १२ ॥ स्वर्गंवानरकंवापि कर्म्मणाकेनगच्छति ॥ मोक्षंवाथमहाभाग सर्वंमेविस्तराद्वद ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञउ

प्रकार होवै तो यथोदित इन गेरह क्षेत्रजादिक पुत्रोंको बुद्धिमानोंने क्रियाके लोपसेपुत्रकी प्रतिनिधि (बदले) में कहा है हे राजेन्द्र ! यदि समय में इसका मरणके बाद वाला कार्य न होवै ॥ ९।१० ॥ तो नारायणबलि करना चाहिये वह प्रेतताको विनाश करती है जैसे कि अपमृत्यु में प्राप्त अन्य मनुष्यों की होती है ॥११॥ वैसेही मृत्युको प्राप्त मनुष्यों के मध्यमें अपनी नारायणबलि ब्राह्मण से कराना चाहिये आनर्त्त बोला कि हे महामते ! यहां पुरुष कैसे मृत्युको प्राप्तहोता है ॥१२॥ हे महा-

भाग ! स्वर्ग या नरक व मोक्षको भी किस कर्म से जाता है मुझसे सब विस्तार से कहिये ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि धर्मवाली, पापवाली व मोक्षवाली तीन गतियां कहीगई हैं धर्म से स्वर्ग व पापसे नरकही भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ १४ ॥ व ज्ञानसे मोक्ष भलीभाति मिलता है यह मैने सत्य कहाहै हे राजेन्द्र, राजन् ! कृष्ण समेत धर्मराज के पुत्र नृपोत्तम युधिष्ठिर महाराज ने इसी होनेवाले अर्थको शन्तनु के पुत्र भीष्म पितामहजीसे पूंछाहै ॥ १५ । १६ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! यमलोक में कितने नरक प्रसिद्ध हैं व समस्त प्राणी किसकर्मसे उन नरकों में जाते हैं ॥ १७ ॥ भीष्मजी बोले कि यमराज के मन्दिर में इक्कीस प्रमाणवाले

वाच ॥ धर्म्मीपापीतथाज्ञानी तिस्रश्चगतयःस्मृताः ॥धर्म्मात्सम्प्राप्यतेस्वर्गं पापान्नरकएवच ॥ १४ ॥ ज्ञानात्सम्प्राप्यतेमोक्षस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एतदर्थंभविष्यन्तु भीष्मंशान्तनवंनृप ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरोमहाराजा धर्म्मपुत्रोनृपोत्तमः ॥ कृष्णेनसहराजेन्द्र पितामहमपृच्छत ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कियन्तोनरकाःख्याता यमलोकेपितामह ॥ केनपापेनगच्छन्ति तेषुसर्वेचजन्तवः ॥ १७ ॥ भीष्मउवाच ॥ एकविंशत्प्रमाणास्स्युर्नरकायममन्दिरे ॥ चित्रोथलिखतेधर्म्मं सर्वप्राणिसमुद्भवम् ॥ १८ ॥ विचित्रःपातकंसर्वंपरमंयत्नमास्थितः ॥ यमदूतास्सदैवाष्टौधर्म्मराजसमुद्भवाः ॥ १९ ॥ येनयन्तिनरान्मर्त्यलोकाच्चवशगान्सदा ॥ करालोविकरालश्च वक्रनासोमहोदरः ॥ २० ॥ सौम्यश्शान्तिस्तथानन्दस्सुवाक्यश्चाष्टमःस्मृतः ॥ एतेषांयेपुराप्रोक्ताश्चत्वारोरौद्ररूपिणः ॥ २१ ॥ पापंजनंचतेसर्वे नयन्तियमसादनम् ॥ चत्वारोयेपराःप्रोक्तास्सौम्यरूपवपुर्द्धराः ॥ २२ ॥ धर्म्मिणंतेनरंसर्वे नयन्तियमसादनम् ॥ विमानेनशतंतेषां व्याधी

नरकहैं और समस्त प्राणियों से उपजेहुये धर्मको चित्र लिखते हैं ॥ १८ ॥ व बड़ी यत्नमें टिकेहुये विचित्र समस्त पातकको लिखते हैं व धर्मराज से उपजे हुये आठ यमदूत सदैव हैं ॥ १९ ॥ जोकि सदैव मृत्युलोक से वशमें प्राप्त मनुष्यों को लाते हैं कराल,विकराल, वक्रनास,महोदर ॥ २० ॥ सौम्य, शान्ति, नन्द व आठवां सुवाक्य कहागया है इनके मध्यमें भयंकर रूपवाले चार जो पहले कहेगये हैं ॥ २१ ॥ वे सब पापी पुरुषको यममन्दिर में लाते हैं और सौम्य रूपवाले शरीरको धारनेहारे जो चार पीछे कहेगये हैं ॥ २२ ॥ वे सब विमानके द्वारा धर्मवान् नरको यममन्दिर में प्राप्त करते हैं यहां यमराज ने ज्वर व यक्ष्माके मध्यमें प्राप्त सौरोगों को उनकी

सहायता के लिये बनाया है वे रोग जाकर पहले मनुष्यों को वशमें प्राप्त करतेहैं ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर समस्त मनुष्यों से न देखेहुये वे यमदूत जाकर नाभिमूल में टिकेहुये पवनरूप जीवको भलीभांति खींचकर॥ २५ ॥ व शरीरको भूतलमें थापकर यमराज के मार्ग से लाते हैं छियासीहज़ार यममार्ग कहेगये हैं ॥ २६ ॥ वहां पहले चारोंओर बहती हुई वैतरणी नामक नदीहै वह महाभाग्यवती सदैवही दो सोतों से वहां भलीभांति टिकीहै ॥ २७ ॥ वहां उसके एक सोतमें बहुतही रक्त बहताहै व हे भरतर्षभ ! उसके बीचमें अतिपैने शस्त्रहैं ॥ २८ ॥ हे राजन्! मृत्युके समय में जो ब्राह्मण के लिये गऊदेते हैं वे निश्चयकर उसकी पूंछके आश्रित होकर उस

नांपरिकल्पितम् ॥ २३ ॥ सहायार्थंयमेनात्र ज्वरयक्ष्मान्तरस्थितम् ॥ तेगत्वाव्याधयःपूर्वं वशेकुर्वन्तिमानवान् ॥ २४ ॥ यमदूतास्ततोगत्वा नाभिमूलव्यवस्थितम् ॥ वायुरूपंसमाकृष्य जनैस्सर्वैरलक्षिताः ॥ २५ ॥ नयन्तेयममार्गेण देहंसंस्थाप्यभूतले ॥ षडशीतिसहस्राणि यममार्गःप्रकीर्तितः ॥ २६ ॥ तत्रवैतरणीनाम नदीपूर्वंपरिस्रुता ॥ स्रोतोभ्यांसामहाभागा तत्रसंस्थासदैवहि ॥ २७ ॥ तत्रशोणितमेकस्मिंस्तस्यस्रोतेवहत्यलम् ॥ शस्त्राणिचसुतीक्ष्णानि तन्मध्येभरतर्षभ॥२८॥मृत्युकालेप्रयच्छन्तिये धेनुंब्राह्मणायवै ॥ तस्याःपुच्छंसमाश्रित्य तेतरन्तिचतांनृप॥२९॥स्वबाहुभिस्तथैवान्ये शतयोजनविस्तृताम् ॥ द्वितीयञ्चैवयत्स्रोतो वैतरण्यांव्यवस्थितम्॥ ३० ॥ तस्यतत्सलिलंस्रांतिगम्यंधर्म्मवतांसदा ॥ येनरागोप्रदातारो मृत्युकालेव्यवस्थिते ॥ ३१ ॥ तेगोपुच्छंसमाश्रित्यतांतरन्तिपृथूदकाम् ॥ अन्येस्वबाहुभिस्तीर्त्वा गोप्रदानविवर्जिताः ॥ ३२ ॥ गोदानञ्चप्रकर्तव्यं तस्माच्चैवविशेषतः ॥ मृत्युलोकेत्रसम्प्राप्तेय

को उतरते हैं ॥ २९ ॥ वैसेही सौयोजन चौड़ी वैतरणी को अन्य नर अपनी भुजाओं से उतरते हैं और वैतरणी का जो दूसरा सोत स्थितहै ॥ ३० ॥ उसका वह बहाऊ जल सदैव धर्मवानों के जाने योग्यहै जो मनुष्य मृत्यु समय प्राप्तहोने पर गऊदेते हैं ॥ ३१ ॥ वे गऊकी पूंछका सहारा भरके बहुत जलवाली उस वैतरणीको उतरते हैं व गऊदान से रहित अन्य मनुष्य अपनी भुजाओं से उतरकर जाते हैं ॥ ३२ ॥ उसीकारण इस मृत्युलोक के भलीभांति प्राप्तहोने पर जो अपनी गति

चाहै उसको विशेषकर गोदान करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस के उपरान्त पापी पुरुष पापमार्ग से जाते हैं व धर्मवान् उत्तम विमान पै चढ़कर धर्ममार्गसे जाते हैं ॥३४॥ व वैतरणीके उस पार में बीस कोस का चौड़ा असिपत्र नामक वन पापी पुरुषको दुःखदायक है ॥ ३५ ॥ उस में लोहमय ही सैकड़ों पत्ते हैं जोकि सब ओरसे मनुष्यों के शरीरों को काटते हैं ॥ ३६ ॥ जिन दुष्टात्माओं ने पराई द्रव्य व स्त्री को हरलिया है उनकी नव श्राद्धोंसे उससे मुक्ति होती है ॥ ३७ ॥ उसके उपरान्त कूटशाल्मलि नामक प्रसिद्ध नरक जानने योग्य है कांटों से व्याप्त उस कूटशाल्मलिमें नीचे मुख किये वे पुरुष लटकाये जाते हैं ॥ ३८ ॥ व नीचे दिन रात अग्नि से

इच्छेद्गतिमात्मनः ॥ ३३ ॥ तस्याअनन्तरंयान्ति पापमार्गेणपापिनः ॥ धर्मिष्ठाधर्म्ममार्गेण विमानवरमाश्रिताः ॥ ३४ ॥ वैतरण्याःपरेपारे पञ्चयोजनमायतम् ॥ असिपत्रवनंनाम पापलोकस्यदुःखदम् ॥ ३५ ॥ तत्रलोहमयान्येव सुपत्राणांशतानिच ॥ यानिकृन्तन्तिमर्त्यानां शरीराणिसमन्ततः ॥ ३६ ॥ यैर्हृतंपरवित्तञ्च कलत्रञ्चदुरात्मभिः ॥ नवश्राद्धेनतेषान्तु तस्मान्मुक्तिः प्रजायते ॥ ३७ ॥ तस्मात्परतरोज्ञेयो विख्यातःकूटशाल्मलिः ॥ अधोमुखाः प्रलम्बन्तेतस्मिन्कण्टकसङ्कुले ॥ ३८ ॥ अधस्ताद्वह्निनाचैव दह्यमानादिवानिशम् ॥ विश्वासघातकायेच सदैवसु निर्दयाः ॥ ३९ ॥ तस्मान्मुक्तिंप्रयान्तिस्मश्राद्धेह्येकादशेकृते ॥ यन्त्रात्मकस्ततःप्रोक्तो नरकोदारुणाकृतिः ॥ ४० ॥ ब्राह्मणास्तत्रपीड्यन्ते येचान्येपापकर्म्मिणः ॥ श्राद्धेनद्वादशोत्थेन तेभ्योदत्तेनपार्थिव ॥ ४१ ॥ तस्मान्मुक्तिंप्रयच्छन्ति दीयतेवंशजैःस्फुटम् ॥ ततोलोहमयाःस्तम्भास्तप्यमानाव्यवस्थिताः ॥४२॥ आलिङ्गन्तिचतान्सर्वान्परदार

जलाये जाते हैं जोकि विश्वासघाती व सदैव ही बड़े निर्दयी होते हैं ॥ ३९ ॥ वे एकादश श्राद्ध करनेपर उससे मुक्तिको प्राप्त होते हैं तदनन्तर भयङ्कर आकारवाला यन्त्रात्मक नरक है ॥ ४० ॥ उस में ब्राह्मण व और जो पापकर्मी हैं वे पीड़ित किये जाते हैं हे राजन् ! उनके लिये द्वादशोत्थ श्राद्धके देनेसे ॥ ४१ ॥ उससे मुक्ति देते हैं यदि प्रकटही वंशमें उपजे हुये पुरुषों से श्राद्ध दीजाती है तदनन्तर तचेहुये लोहमय खम्भा व्यवस्थित हैं ॥ ४२ ॥ उनमें उन सबोंको लिपटाते हैं जोकि

पराई स्त्रियोंमें तत्पर होते हैं मासिकोत्थ श्राद्ध करने पर उनसे मुक्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर लोहके समान दाढ़ोंवाले भयङ्कर कुत्ते व्यवस्थितहैं वे पृष्ठ मांस के खानेवाले पापी नरोंको खाते हैं ॥ ४४ ॥ वे त्रिपक्षिक श्राद्ध करने पर उनसे मुक्ति पाते हैं उसके उपरान्त लोहमय चोंचवाले कौवा टिके हैं ॥ ४५ ॥ जिन्हों ने नेह समेत नयनोंसे पराई स्त्रियोंको देखाहै फिर उपजेहुये उनके अंगोंको वे बहुतही नाश करते हैं ॥ ४६ ॥ दो महीने में जो श्राद्ध होतीहै उससे उनकी मुक्ति होती है तदनन्तर शाल्मलिकूट व अन्य लोहकण्टक हैं ॥ ४७ ॥ उनके बीचमें चुगुली में लगेहुये नर लाये जातेहैं जो त्रिमासिक श्राद्ध होती है उससे वे छूटपाते हैं ॥ ४८ ॥

रताश्चये ॥ मासिकोत्थेकृतेश्राद्धे तेभ्योमुक्तिमवाप्नुयुः ॥ ४३ ॥ लोहदंष्ट्रास्ततोरौद्रास्सारमेयाव्यवस्थिताः ॥ भक्षय न्तिचतेपापान् पृष्ठमांसाशिनोनरान् ॥ ४४ ॥ त्रिपक्षिकेकृतेश्राद्धे तेभ्योमुक्तिमवाप्नुयुः ॥ लोहचञ्चुमयाःकाकास्सं स्थितास्तदनन्तरम् ॥ ४५ ॥ सरागैर्लोचनैर्यैश्च वीक्षिताःपरयोषितः ॥ तेषांगात्राणितेघ्नन्ति भूयोजातानिभूरिशः ॥ ४६ ॥ द्विमासिकेचयच्छ्राद्धं तेनमुक्तिःप्रजायते ॥ ततःशाल्मलिकूटस्तु तथान्येलोहकण्टकाः ॥ ४७ ॥ तेषांमध्ये नर्नीयन्ते पैशुन्यनिरतानराः ॥ त्रैमासिकन्तुयच्छ्राद्धं तेनमुक्तिःप्रजायते ॥ ४८ ॥ रौरवोथसुविख्यातो दारुणोनरको महान् ॥ ब्रह्मघ्नानांसमादिष्टःसचैवबहुवेदनः ॥ ४९ ॥ अधोमुखाश्चोर्ध्वपादाधार्य्यन्तेतत्रलम्बिताः ॥ कृतघ्नानांसमादि ष्टः सदैवात्रावलम्बिनाम् ॥ चतुर्मासिकदानेन मुक्तिस्तेभ्यःप्रजायते ॥ ५० ॥ कुम्भीपाकस्ततोज्ञेयो नरकोदारुणाकृ तिः ॥ तैलेतेक्षिप्यमाणास्तु येत्रदम्भाभिसन्धिताः ॥ ५१ ॥ दृश्यन्तेजनहन्तार ऊनषाण्मासिकेनच ॥ पतन्तिनरकेरौ

इसके अनन्तर बड़ाभारी दारुण रौरव नामक नरक अतिप्रसिद्ध है वह ब्रह्मघातियों को बहुकष्टदायक कहागयाहै ॥ ४९ ॥ वहां नीचे मुखवाले व ऊंचे चरणवाले लटकाये हुये धारण किये जाते हैं यहां सदैव लटकाये हुये व कृतघ्न पुरुषों को चतुर्मासिक श्राद्धके देनेसे उनसे मुक्ति होती है ॥ ५० ॥ तदनन्तर भयङ्कर आकार वाला कुम्भीपाक नरक जानने योग्यहै जो यहां पाखण्डसे मिलेहुये पुरुषहैं व जो मनुष्योंके नाश करनेवाले देखेजाते हैं वे तैलमें फेंकेजाते हैं और पांचवें महीनेवाली

श्राद्धसे वे मुक्तहोते हैं व विश्वासघाती नर भयानक नरक में गिरते हैं॥ ५१।५२॥ छठे महीने की श्राद्धसे वहां वे संकटसे छूटते हैं वैसेही अन्य नरक सांप व बीछियों से संयुक्त सुनागयाहै ॥ ५३ ॥ वहां वे नीच नर जाते हैं जोकि संसार में पाखण्डी हैं ॥ ५४ ॥ सप्तमासिक श्राद्धके दानसे उनकी मुक्ति होती है वैसेही अन्य संवर्तक नामक नरक कहागया है ॥ ५५ ॥ जो निन्दनीय पुरुष वेदके विनाशक व साधुवों के निन्दक तथा दुष्टात्मा हैं उसी कारण उनकी जीभको अग्निसे उपजी हुई संगसियोंसे उखाड़कर वे दुःखित किये जाते हैं ॥५६॥ व जो अपने कार्यमें झूंठ कहते हैं तथा दूसरे के लिये भी जो कहते उनके अंगोंको सम्पूर्णता से कुत्तेखातेहैं ॥ ५७ ॥

द्रे नराविश्वासघातकाः॥५२॥षण्मासिकप्रदानेन मुच्यन्तेतत्रसङ्कटात् ॥ सर्प्पवृश्चिकसंयुक्तस्तथान्योनरकःश्रुतः ॥
५३ ॥ तत्रयेदाम्भिकालोके तेगच्छन्तिनराधमाः ॥ ५४ ॥ सप्तमासिकदानेन तेषांमुक्तिःप्रजायते ॥ तथासंवर्तकोनाम
नरकोन्यःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ वेदविप्लवकानिन्द्याःसाधूनाञ्चदुरात्मकाः ॥ उत्पाट्यचततोजिह्वां संदंशैर्वह्निसम्भवैः ॥
५६॥स्वकार्य्येयेनृतंब्रूयुस्तद्गात्रंखाद्यतेश्वभिः॥परार्थमपियेब्रूयुस्तेषां गात्राणिकृत्स्नशः॥५७॥ अष्टमासिकदानेन तेषां
मुक्तिःप्रजायते ॥ अग्निकूपोमहातप्तो दारुणोनरकोमहान्॥५८॥ तत्रतेयान्तियेमूढाःकूटसाक्ष्यप्रदानराः ॥ तत्रस्थाया
तनांरौद्रां सहन्तेतीव्रदुःखिताः ॥ ५९ ॥ नवमासिकदानञ्चतेषामाह्लादनंपरम् ॥ ततोलोहमयैःकीलैस्सञ्चितोन्यस्स
मन्ततः ॥ ६० ॥ तत्रचाग्निप्रदातारस्स्त्रीणांहन्तारएवच ॥ तथाधावन्तिदुःखार्तास्ताड्यमानाश्चकिङ्करैः ॥ ६१ ॥ दश
मासिकजंदानं तत्रतेषांप्रमुक्तये ॥ ततोङ्गारमयैःपुञ्जैर्व्याप्तभूतस्समन्ततः ॥ ६२ ॥ स्वामिद्रोहरतास्तत्रभ्रमन्तेसर्वतो

अष्टमासिक श्राद्धके देनेसे उनकी मुक्ति होतीहै व अत्यन्त तचा व बड़ाभारी अग्निकूप नामक भयंकर नरकहै ॥ ५८ ॥ वहां वे मूर्ख जाते हैं जोकि झूंठी गवाही देने वाले मनुष्य हैं वहां टिकेहुये व अत्यन्त दुःखित वे विकराल क्लेशको सहते हैं ॥ ५९ ॥ नवयें महीने का श्राद्धदान उनको अतिआनन्ददायक है तदनन्तर लोहमय कीलोंसे सब ओर व्याप्त अन्य नरक है ॥ ६० ॥ वहां अग्निदाता वैसेही स्त्रियों के हन्ता पुरुष यमदूतों से ताडित व दुःखित होतेहुये दौडतेहैं ॥ ६१॥ दश महीने से उपजा हुआ दान वहां उनकी मुक्तिके लिये होताहै तदनन्तर सब ओर अंगारमय पुञ्जोंसे व्याप्तभूतहै ॥ ६२ ॥ वहां स्वामीके द्रोह में परायण पुरुष सब दिशाओं

में घूमते हैं वहां गेरहवें महीनेसे उपजा हुआ दान उनको होताहै ॥ ६३ ॥ और तचीहुई बालुओं से पूर्ण व दारुण आकारवाला नरकहै जो स्वामीके कार्यको देखकर भागनेमें तत्पर होतेहैं दुःखित होते हुये वे मनुष्य वहां पचतेहैं व बारह महीनेवाली श्राद्ध उनको प्राप्त होती है ॥ ६४। ६५ ॥ वर्षके बीचमें जो कुछ अन्न वा जल दिया जाता है अपने भाइयोंसे दियेहुये उसको मार्गमें भोजन करतेहैं ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वर्षके ऊपर धर्मराज के समीप गयेहुये वे अपने कर्मसे उपजेहुये शुभाशुभ कर्म को समझते हैं ॥ ६७ ॥ इस प्रकार इन पन्द्रह नरकोंको भलीभांति सेवन करके तदनन्तर फिर वे मनुष्य मृत्युलोक में जन्मपाते हैं ॥ ६८ ॥ जो हेतुवादी पुरुष होते हैं वे

दिशम् ॥ एकादशोद्भवंदानं तत्रतेषांप्रजायते ॥ ६३ ॥ सन्तप्तसिकतापूर्णो नरकोदारुणाकृतिः ॥ स्वामिनश्चेष्टितंदृष्ट्वा पलायनपरायणाः ॥ ६४ ॥ येभवन्तिनरास्तत्र पच्यन्तेतत्रदुःखिताः ॥ तेषांद्वादशमासीयं श्राद्धंचैवोपतिष्ठति ॥ ६५ ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेतोयमन्नंवावत्सरान्तरे ॥ प्रभुञ्जन्तेचतन्मार्गे प्रदत्तंनिजबान्धवैः ॥ ६६ ॥ ततस्संवत्सरादूर्ध्वं निजकर्म्मसमुद्भवम् ॥ शुभाशुभंप्रबोधयन्ते धर्म्मराजसमीपगाः ॥ ६७ ॥ एवंपञ्चदशैतानि संसेव्यनरकाणिते ॥ प्राप्नुवन्तिततोजन्म मर्त्यलोकेपुनर्नराः ॥ ६८ ॥ प्राप्नुवन्तिविदेशेचजन्मयेहेतुवादकाः ॥ नित्यंतर्प्पणदानेन तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ ६९ ॥ स्वामिद्रोहरतायेच कुराज्येजन्मचाप्नुयुः ॥ एकोद्दिष्टप्रदानेन तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ ७० ॥ अदत्त्वायेनरोश्नन्ति पितृदेवद्विजातिषु ॥ दुर्भिक्षेजन्मतेषान्तु तेनपापेनजायते ॥ ७१ ॥ क्षयाहश्राद्धेसम्प्राप्य ततस्तृप्तिःप्रजायते ॥ येप्रकुर्वन्तिदम्पत्योर्भेदंवैसानुरागयोः ॥ ७२ ॥ परस्परमसत्येन तेषांभार्य्यापराङ्मुखी ॥ एकस्मिन्वचनेप्रोक्तेदश

विदेश में जन्म पाते हैं नित्य तर्पणके दानसे उनकी तृप्ति होती है ॥ ६९ ॥ व जो स्वामीके द्रोहमें तत्पर होतेहैं वे कुराज्य में जन्म पाते हैं व एकोद्दिष्टके देनेसे उनकी तृप्ति होती है ॥ ७० ॥ पितरों, देवों व द्विजातियों के लिये नहीं देकर जो मनुष्य भोजन करते हैं उस पापसे उनका दुर्भिक्षमें जन्म होताहै ॥ ७१ ॥ क्षयाह श्राद्धको भलीभांति पाकर तदनन्तर तृप्ति होती है व जो स्नेहसहित स्त्री पुरुषों में भेद करतेहैं ॥ ७२ ॥ आपस में झूंठसे उनकी स्त्री विमुखी होती है व एक वचन कहने पर

क्रोधसंयुत होतीहुई दश कहती है ॥ ७३ ॥ और समस्त मनुष्यों से निन्दित व कुरूपिणी तथा घूमती हुई देख पड़ती है वहां कन्यादान के फलों से उनको सुख होताहै ॥ ७४ ॥ जो कन्याके दानमें विघ्न व विक्रय (बेंचना) करताहै वह केवल कन्याओंको पैदा करता है कभी केवल पुत्रको नहीं ॥ ७५ ॥ और वे पुंश्चली, विधवा व दुर्भाग्यवती होती हैं कन्यादान के फलसे उनको सुख होताहै ॥७६॥ जिन्होंने रत्नों व अन्य शास्त्रोंको चुराया है वे निर्धनी, गूंगे, लँगड़े व नेत्रहीन होते है ॥ ७७ ॥ शास्त्र देनेसे उनको यहां सुख होताहै मृत्युलोकमें उपजेहुये ये नरक तुमसे कहेगये ॥ ७८ ॥ इनसे कियाहुआ समस्त शुभाशुभ कर्म जाना जाताहै तदनन्तर

द्यूतेकुधान्विता ॥ ७३ ॥ विरूपाभ्रममाणाच सर्वलोकविगर्हिता ॥ कन्यादानफलैस्तेषां तत्रचैवसुखंभवेत् ॥ ७४ ॥ कन्यकादानविघ्नंहि विक्रयंवाकरोतियः ॥ सकन्याःकेवलंसूते नपुत्रंकेवलंकचित् ॥ ७५ ॥ जायन्तेताश्चबन्धक्यो विधवादुर्भगास्तथा ॥ कन्यादानफलप्राप्त्या तेषांसौख्यंप्रजायते ॥ ७६ ॥ यैर्हृतानिचरत्नानि तथाशास्त्रान्तराणिच ॥ तेदरिद्राःप्रजायन्ते मूकाःखञ्जाविचक्षुषः ॥ ७७ ॥ तेषांशास्त्रप्रदानेनइहसौख्यंप्रजायते ॥ एतेतेनरकाःप्रोक्ता मर्त्यलोकसमुद्भवाः ॥ ७८ ॥ एतैर्विज्ञायतेसर्वं कृतंकर्म्मशुभाशुभम् ॥ तीर्थयात्राफलैस्तस्य ततःशुद्धिःप्रजायते ॥ ७९ ॥ भीष्मउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ एकविंशत्प्रमाणञ्च नरकाणांयथास्थितम् ॥ ८० ॥ भूयश्चपृच्छराजेन्द्र सन्देहोयोहृदिस्थितः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेत्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तीर्थयात्राके फलोंसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ७९ ॥ भीष्मजी बोले कि हे नरनायक ! मुझसे जो पूंछागया यह समस्त चरित तुमसे कहा कि जिस प्रकार इक्कीस संख्यक नरक स्थितहैं ॥ ८० ॥ हे नृपेन्द्र ! जो हृदयमें सन्देह स्थितहो उसको फिर पूंछिये ॥८१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेत्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जौन कर्म कीन्हे यहां मनुज नरक नहिं जाय॥ दोसौ चौदह में सोई चरित कह्यो सुखदाय। युधिष्ठिरजी बोले कि हे राजन्! नरकोंका स्वरूप सुनकर मेरे डर आगया उन पापोंकी भी व्रतों, नियमों अथवा होमोंसे भी व तीर्थके आश्रयों से किस प्रकार मुक्ति पावै है॥१॥ भीष्मजी वोले कि गंगामें हड्डियों के फेंकनेसे उन मनुष्योंका पाप छूटजाताहै और नरकके मध्यमें वर्तमान उन पुरुषोंको अग्नि दुःख देनेके लिये समर्थ नहीं होतीहै॥२॥व अपने पुत्रोंसे गंगाके समीप जिनके नामसे श्राद्ध कीजाती है वे विमानपै भलीभांति चढ़कर नरकके ऊपर जातेहैं॥ ३॥ हे राजन्! जो प्रसिद्धमें पाप करतेहैं व यथोदित व प्रायश्चित्त करते व सुवर्ण देतेहैं उन को नरक

युधिष्ठिर उवाच॥ नरकाणांस्वरूपञ्च श्रुत्वामेभयमागतम्॥ कथंमुक्तिर्भवेत्तेषां पापानामपिपार्थिव॥ व्रतैर्वानियमैर्वापि होमैर्वातीर्थसंश्रयैः॥१॥ भीष्मउवाच॥ गङ्गायामस्थिपातेनतेषांसञ्जायतेन्नृणाम्॥ नतेषांनरकेवह्निः प्रभवेन्मध्यवर्तिनाम्॥२॥ गङ्गायांक्रियतेश्राद्धं येषांनाम्नास्वकैःसुतैः॥ तेविमानंसमाश्रित्य प्रयान्तिनरकोपरि॥३॥ पापंकिलप्रकुर्वन्ति प्रायश्चित्तंयथोदितम्॥ हेमयच्छन्तियेभूपनतेषांनरकोभवेत्॥४॥ शेषाःस्वकर्मणः पाकंसेवन्तेचयथोचितम्॥ स्वर्गवानरकंवापि सेवन्तेतेनराधिप॥५॥धारातीर्थेम्रियन्तेये स्वामिनःपुरतःस्थिताः॥ तेगच्छन्तिपरंस्थानं नरकाणांसुदूरतः॥६॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रेनैमिषेनगरेपरे॥ प्रयागेचप्रभासेवा यस्त्यजेत्तनुमात्मनः॥७॥ महापातकयुक्तोपि नरकंसनपश्यति॥ नीलोवावृषभोयस्यमृताहेसंनियुज्यते॥८॥ स्वपुत्रेणनसंपश्येन्नरकंब्रह्महापि च॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा हृदयस्थेजनार्दने॥ ९॥ तीर्थयात्रापराणाञ्च योयच्छतिसदाशनम्॥ कालेवायदिवाकाले

नहीं होताहै॥४॥ हे नराधिप! शेष मनुष्य अपने कर्मका फल यथोचित सेवतेहैं और वे स्वर्ग या नरकको भी रोवते हैं॥५॥ व स्वामीके आगे खड़ेहुये जो पुरुष धारारूपी तीर्थमें मरतेहैं वे नरकों से अतिदूर उत्तम स्थानको जाते हैं॥६॥ जो काशी, कुरुक्षेत्र व उत्तम नैमिषनगरमें या प्रयाग अथवा प्रभास क्षेत्रमें अपना शरीर छोड़ता है॥७॥ बड़े पातकों से युक्त भी वह नरकको नहीं देखता है व जिसके मरनेवाले दिनमें अपने पुत्रसे नील बैल भलीभांति नियोग कियाजाता है ब्रह्मघाती भी वह नरकको नहीं देखता है व विष्णुजी के हृदय में टिकने पर जो अन्न जल छोड़ मरने पै उतारू होकर सदैव तीर्थयात्रा मे तत्पर होकर पुरुषोंको समय या

असमय में भोजन देताहै वह नरकको नहीं देखता है ॥ ९॥१०॥ व जब सूर्यनारायण वृषराशि में टिकेहों तब जो जलकी गऊ देताहै व मकर में सूर्यहोने पर जो तिलकी गऊ देताहै वह नरकको नहीं देखता है ॥ ११ ॥ व सोमवार को चन्द्रमा के ग्रहणमें सोमनाथजीके दर्शनसे व समुद्र तथा सरस्वतीमें नहाकर नरकको नहीं जाता है ॥ १२ ॥ व रविवार को जब राहु रविको गासै तब जो कुरुक्षेत्रमें भलीभांति मज्जनकर स्नान करताहै वह नरकको नहीं देखताहै ॥ १३ ॥ व कार्तिकी पौर्णमासीमें कृत्तिका नक्षत्र का योग होनेपर जो मौन से त्रिपुष्कर की प्रदक्षिणा करताहै वह नरकको नहीं देखताहै ॥ १४ ॥ और रविवार को मकरकी संक्रान्ति स्थितहोने

नरकंसनपश्यति ॥ १० ॥ जलधेनुञ्चयोदद्याद्वृषसंस्थेदिवाकरे ॥ तिलधेनुंमृगस्थेच नरकंसनपश्यति ॥ ११ ॥ सोमे सोमग्रहेचैव सोमनाथस्यदर्शनात ॥समुद्रेचसरस्वत्यांस्नात्वाननरकंव्रजेत् ॥ १२ ॥ सन्निमज्ज्यकुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ सूर्य्यवारेणयःस्नाति नरकंसनपश्यति ॥ १३ ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यःकरोतिप्रदक्षिणम् ॥ त्रिपुष्करस्य मौनेननरकंसनपश्यति ॥ १४ ॥ मृगसंक्रमणेयेतु सूर्य्यवारेणसंस्थिते ॥ चण्डीशंवीक्षयन्तिस्मनतेनरकगामिनः ॥ १५ ॥ गांपङ्कात्ब्राह्मणंदास्याद्वृत्तिलोपाद्द्विजंवधात् ॥ मोचयन्मुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १६ ॥ गांवधाद्ब्राह्मणंसाधुंस्तेनाद्विप्रंवधात्तथा ॥ मोचयन्मुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ यथाननरकंयातिपुरुषस्तुस्वकर्मणा ॥१८॥ यथाचनरकंयाति स्वल्पपापोपिमानवः ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेनरकाध्यायोनामचतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ * ॥

पर जिन्होंने चण्डीशको देखाहै वे नरकगामी नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ व कीचड़से गऊको और जीविका लोपके कारण सेवकाई से ब्राह्मण को व मारने से विप्रको छुड़ाता हुआ पुरुष जन्मसे लगाकर मरणके अन्ततक के पातकसे छूटजाताहै ॥ १६ ॥ व वध से गऊको व ब्राह्मण साधुको चोरसे तथा वधसे विप्रको छुड़ाताहुआ नर जन्मसे लगाकर मरणान्त तकके पातकसे छूटजाताहै ॥ १७ ॥ हे नरनायक ! मुझसे जो पूंछागया इस समस्त चरितको मैंने तुमसे कहा कि जिस प्रकार पुरुष अपने कर्मसे नरकको नहीं जाताहै ॥१८॥ और जिसप्रकार थोड़े पापवाला भी पुरुष नरकको जाताहै वह तुमसे कहागया ॥१९॥ इति चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः २१४ ॥

दो०। जिमि अन्धकपै दूतको पठयो है शिवदेव। दोसौ पन्द्रह में सोई चरित अहै सुखसेव ॥ सूतजी बोले कि वैसेही अपने गढ़ेके द्वारपै सोनेके लिये विशेषकर टिकेहुवे जलशायी विष्णुजी को देखकर नर शीघ्रही पापसे छूटजाता है ॥ १ ॥ व संसार के आश्रय रूप पवित्र उस बिलके द्वारपै नहाकर जो पुरुषशेषशय्यापै शयन करनेवाले उन विष्णुजी को भक्तिसे पूजता है ॥ २ ॥ वह जन्मसे लगाकर मरण तकके पापसे मुक्तिको प्राप्तहोता है व वर्षावाले चार महीने तक भलीभांति सोतेहुये सुरनाथ (विष्णु) जी को ॥ ३ ॥ जो भक्तिसे भलीभांति पूजता है वह फिर यहां नहीं पैदाहोता है वहां उन विष्णुजी के उत्तम स्थान में मिट्टीको लेकर पहलेवाले

सूतउवाच ॥ तथाचस्वबिलद्वारि शयनार्थेऽव्यवस्थितम् ॥ दृष्ट्वाप्रमुच्यतेपापाद्द्रुतञ्चजलशायिनम् ॥ १ ॥ स्नात्वातस्मिन्बिलद्वारिपवित्रेलोकसंश्रये॥यस्तंपूजयतेभक्त्याशेषपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ २ ॥ आजन्ममरणात्पापात्सचमुक्तिमवाप्नुयात्॥चतुरोवार्षिकान्मासान्संप्रसुप्तंसुरेश्वरम् ॥ ३ ॥ सम्पूजयतियोभक्त्या नसभूयोत्रजायते ॥ तत्रपूर्वेमहाभागाः सेवन्तेमुनयःप्रभुम् ॥ ४ ॥ मृत्तिकाग्रहणंकृत्वा तस्यचायतनेशुभे ॥ सम्प्राप्ताःपरमंस्थानं तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ५ ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंतस्यपूजायां चतुर्मासेप्रजायते ॥ ६ ॥ यत्फलंगोगृहेमृत्युं सम्प्राप्तायान्तिमानवाः ॥ तत्फलंचतुरोमासान्पूजयाजलशायिनः ॥ ७ ॥ अपिपापसमाचारः परदाररतोपिच ॥ ब्रह्महापिसुरापोवा स्त्रीसन्तानविगर्हितः ॥ ८ ॥ पूजयाचतुरोमासांस्तस्यदेवस्यमुच्यते ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं तत्रस्थजलशायिनः ॥ ९ ॥ बिलद्वारंकथंसूत तत्रनःसंशयोमहान् ॥ सकथंश्रूयतेदेवः क्षीराब्धौमधुसूदनः ॥ १० ॥ स

महाभाग्यवान् मुनिलोग प्रभु (विष्णु) जी को सेवन करतेथे वे विष्णुजी के उस उत्तमपदवाले स्थानको भलीभांति प्राप्तहुये हैं ॥ ४ । ५ ॥ जो फल समस्त तीर्थों में व जो फल सबयज्ञों में है वही फल चौमास में उन विष्णुजी के पूजनमें होता है ॥ ६ ॥ गऊके घरमें मृत्युको प्राप्तहुये पुरुष जिस फलको पातेहैं वही फल चार महीने जलशायी विष्णुके पूजन से मिलता है ॥ ७ ॥ पाप आचरण वाला भी व पराई स्त्रियोंमें परायणभी और ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला और स्त्री व सन्तानसे निन्दित नर ॥ ८ ॥ चार महीने तक उन देवके पूजनसे छूटजाताहै ऋषिलोग बोले कि जो आपने यह कहा कि वहां टिकेहुये जलशायी पुरुषका ॥ ९ ॥ वहां

बिलद्वार है हे सूतजी ! वह कैसे है हमलोगोंको यह बडी सन्देहहै कि वे मधुसूदन विष्णुजी क्षीरसागर में कैसे सुनेजाते हैं ॥ १० ॥ बिलके द्वारपै विशेषकर टिकेहुये भगवान् विष्णुजी योगनिद्राके आश्रित होकर सदैव सोते हैं जो बिलके द्वारपै विशेषकर विष्णुजी टिकेहैं ॥ ११ ॥ यह सम्पूर्णतासे कहिये क्योंकि हमलोगोंको परम आश्चर्य है सूतजी बोले कि हे महाभाग्यवानो ! यह सत्यहै कि क्षीरसागर में मधुसूदन विष्णुजी ॥ १२ ॥ योगनिद्रा में भलीभांति आश्रित होकर शेषशय्या पै सोते हैं वे आपही भगवान् जलशायी स्वरूपसे जिस प्रकार उस क्षेत्रमें भलीभांति टिके हैं उसको सावधान होतेहुये सुनिये व जिसप्रकार चार महीने पूजेहुये विष्णुजी

एतत्कीर्तयकात्स्न्येन परं कौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागाः क्षीराब्धौमधुसूदनः ॥ १२ ॥ योगनिद्रांसमाश्रित्य शेषपर्य्यङ्क शायितः ॥ सयथातत्रक्षेत्रेतु संश्रितोभगवान्स्वयम् ॥१३॥जलशायिस्वरूपेण तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ यथाचचतुरो मासान्पूजितस्तत्रसंस्थितः ॥ १४ ॥ मुक्तिंददातिपुंसांस तथासङ्कीर्तयाम्यहम् ॥ चत्वारोपियथामासागर्हणीयाधरात ले ॥ १५ ॥ सर्वकर्म्मसुमुख्येषु यज्ञोद्वाहादिषुद्विजाः ॥ तदोहंकीर्तयिष्यामि नमस्कृत्यद्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥ तस्मैदेवा धिदेवाय निर्गुणायगुणात्मने ॥ अव्यक्तायाप्रमेयाय सर्वदेवमयायच ॥ १७ ॥ सर्वेशायैकवासाय सर्वभूतात्मनेनमः ॥ पुरासीद्दानवोरौद्रो हिरण्यकशिपुर्महान् ॥ १८॥ नारसिंहंवपुः कृत्वा विष्णुनायोनिपातितः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञे सर्वलक्ष

देवभगवाञ्छेते बिलद्वारेव्यवस्थितः ॥ योगनिद्रांसमाश्रित्य बिलद्वारेव्यवस्थितः ॥ ११ ॥

वहां भलीभांति टिके हैं ॥ १३ । १४ ॥ वे विष्णुजी पुरुषोंको मुक्तिदेते हैं मैं वैसेही कहताहूं हे ब्राह्मणो ! जिसप्रकार वे चारों महीने भी यज्ञ व विवाहादिक मुख्य समस्त कर्मोंमें भूतल के मध्य निन्दित हैं हे द्विजोत्तमो ! विष्णुजी को प्रणामकर मैं उसको तुमलोगों से कहूंगा ॥ १५ । १६ ॥ उन देवताओं के अधिदेव, निर्गुण व गुणात्मक, अप्रकट, अप्रमाण व समस्त सुरमयके लिये ॥ १७ ॥ व समस्तके स्वामी और एक रूपसे बसनेवाले व समस्त प्राणियों के आत्मा (जीव) रूपके लिये नमस्कार है पुरातन समय हिरण्यकशिपु बड़ाभारी भयानक दानव हुआहै ॥ १८ ॥ जिसको विष्णुजी ने नृसिंह शरीर धरकर नाशकिया है उसके समस्त लक्षणों से

लक्षित दो पुत्र पैदाहुये ॥ १९ ॥ प्रह्लाद व अन्धक दोनों युद्धमें पराक्रमसे असमानथे याने उनके बराबर और पराक्रमी न था जब हिरण्यकशिपु महात्मा परलोक को प्राप्तहुआ तब ॥ २० ॥ मन्त्रियों ने अभिषेक केलिये प्रह्लादको भलीभांति नियुक्त किया उन विद्वान् ने जिस कारण भलीभांति आईहुई भी पिता, पितामहों वाली राज्यकी उस समय इच्छा न किया मैं उसको तुमलोगों से कहताहूं कि चक्रधारी देवके साथ दानवों का सदैव वैरथा ॥ २१ । २२ ॥ और सदैव उन विष्णुजी को उद्देश कर फिर वे वैर करतेथे इसी कारण से उन प्रह्लादने समस्त दितिके पुत्रोंको त्यागदिया ॥ २३ ॥ और अपनी राज्यको भी भलीभांति छोड़कर उन प्रह्लाद ने

णलक्षितम् ॥ १९ ॥ प्रह्लादश्चान्धकश्चैव वीर्य्येणाप्रतिमौयुधि ॥ हिरण्यकशिपौप्राप्ते परलोकंमहात्मनि ॥ २० ॥ अमात्यैरभिषेकाय प्रह्लादस्संनियोजितः ॥ सनैच्छततदाराज्यंपितृपैतामहंमहत् ॥ २१ ॥ समागतमपिप्राज्ञो यस्मात्तद्वोवदाम्यहम् ॥ दानवानांसदाद्वेषो देवेनसहचाक्रिणा ॥२२॥ कुर्वन्तितेपुनर्द्वेषं तंसमुद्दिश्यसर्वदा ॥ एतस्मात्कारणात्सर्वे तेनत्यक्तादितेस्सुताः ॥ २३ ॥ स्वराज्यमपिसन्त्यज्यविष्णुस्तेनसमाश्रितः ॥ ततस्तैर्दानवैःक्षुद्रैर्विष्णुद्वेषपरायणैः ॥ २४ ॥ अन्धकस्स्थापितोराज्ये पितृपैतामहेसदा ॥ अन्धकोपिसमाराध्य देवदेवंचतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ अमरत्वंततोलेभे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ वरपुष्टस्ततस्सोपि चक्रेशक्रेणविग्रहम् ॥ २६ ॥ जित्वाशक्रंमहासङ्ख्ये यज्ञांशाञ्जगृहेस्वयम् ॥ गत्वामरावतींदैत्यो निस्सार्य्यचशतक्रतुम् ॥ २७ ॥ स्वर्गेणचसमोपेतः स्वर्गंसमहरत्तदा ॥ शक्रोपिचसमाराध्य शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ २८ ॥ सर्वदेवसमोपेतो भृत्यवत्परिवर्तते ॥ ततःकालेनमहतातस्यतुष्टःपिनाकधृक् ॥ २९ ॥ तं

विष्णुका आश्रय किया तदनन्तर विष्णु के वैरमें तत्पर उन नीच दानवोंने ॥२४॥ सदैव पित, पितामहवाले राज्यपै अन्धक को स्थापित किया व अन्धकने भी देवोंके देवता चतुरानन जी को भलीभांति आराधनकर ॥ २५ ॥ तदनन्तर चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र जबतक रहैं तबतक अमरता पाया उसके उपरान्त वरदान से पुष्ट उसने भी इन्द्रसे वैरकिया ॥ २६ ॥ और महासमरमें सुरेशको जीतकर आपही यज्ञभागोंको ग्रहण किया व दैत्यने अमरावती पुरीको जाकरके इन्द्रजीको निकालकर ॥२७॥ उस-समय स्वर्ग को हरलिया व स्वर्ग से संयुत हुआ और मनुष्यों के कल्याणकारण सदाशिवजी को भलीभांति आराधन कर इन्द्रभी ॥ २८ ॥ समस्त देवताओं

से संयुत सेवक की नाईं वर्तमान होतेथे तदनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये पिनाकधारी सदाशिवजी ॥ २९ ॥ उस से यहबोले कि मैं वरदायकहूं हे इन्द्रजी ! कहिये मैं क्याकरूं इन्द्रबोले कि हे सुरनायक ! पराक्रम से अन्धकासुर ने मेरी राज्य हरलिया ॥ ३० ॥ यज्ञभागों समेत हरीहुई उस राज्यको तुम मुझे देवो उन दीन इन्द्रजी के उस वचन को सुनकर भगवान् चन्द्रमाल जी ॥ ३१ ॥ बोले कि त्रिलोक से उपजीहुई राज्य मैं तुमको दूंगा तदनन्तर वीरभद्र नामक गण नायक चतुरदूत को उस अन्धक के समीप पठाया कि जाकर उस अन्धक से कहिये कि मेरी आज्ञासे स्वर्ग छोड़कर भूतलको जावो ॥ ३२ । ३३ ॥ व इन्द्रवाले

प्राहवरदोस्मीतिवदशक्रकरोमिकिम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ अन्धकेनहृतंराज्यं ममवीर्य्यात्सुरेश्वर ॥ ३० ॥ यज्ञभागैस्समोपेतं हृतंतत्त्वंप्रयच्छमे ॥ तच्छ्रुत्वातस्यदीनस्य भगवाञ्छशिशेखरः ॥ ३१ ॥ प्रोवाचतवदास्यामि राज्यंत्रैलोक्यसम्भवम् ॥ ततस्संप्रेषयामास दूतंतस्यविचक्षणम् ॥ ३२ ॥ गणेशंवीरभद्राख्यं गत्वातंब्रूहिचान्धकम् ॥ ममादेशात्परित्यज्य स्वर्गंगच्छधरातलम् ॥ ३३ ॥ पितृपैतामहंस्थानंराज्यंतत्रसमाचर ॥ परित्यज्यपदंचैन्द्रं नोचेद्धर्तास्मिसत्वरम् ॥ ३४ ॥ सगत्वाचान्धकंप्राहयथोक्तंशम्भुनास्फुटम् ॥ सविशेषंमहाबुद्धिस्स्वामिकार्य्यप्रसिद्धये ॥ ३५ ॥ अथप्राहसदूतञ्च शङ्करस्यमहाबलः ॥ अवध्योहिसदादूतस्तेनत्वांननिहन्म्यहम् ॥ ३६ ॥ कस्माद्वैशङ्करोनाम योमामेवंप्रभाषते ॥ नमांवेत्तिसकिंमूढःकिंवामृत्युमभीप्स्यते ॥ ३७ ॥ अथवासत्यमेवैतन्निर्विण्णोजीविताच्चसः ॥ इतिदोषहतोपीत्थं सर्वभोगविवर्जितः ॥३८॥ श्मशानेक्रीडनंयस्य भस्मगात्रविलेपनम् ॥ भूषणंवाहयोवस्त्रं दिशोमुण्डोजटालकः॥३९॥

स्थानको छोड़कर वहां पितृ पितामहवाले राज्यस्थान को भलीभांति कीजिये नहीं तो शीघ्रही मैं हरलूंगा ॥ ३४ ॥ उन महाबुद्धिमान् ने जाकर व अन्धक को पाकर जैसा शिवजी ने कहाथा विशेषता समेत वैसाही स्वामीके कार्यकी सिद्धिके लिये कहा ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर उस महाबली अन्धक ने शंकरजी के दूतसे कहा कि दूत सदैव अवध्य है उससे मैं तुमको नहीं मारताहूं ॥ ३६ ॥ जो शंकर नामक है वह किसलिये मुझसे ऐसा कहता है वह मूर्ख क्या मुझको नहीं जानता है अथवा मृत्युकी इच्छा करता है ॥ ३७ ॥ अथवा यह सत्यही है कि जीने से वह निर्वेदको प्राप्त है इसी कारण दोषोंसे नष्टभी व ऐसा समस्त सुखों से रहित है ॥ ३८ ॥ कि

जिसका श्मशान में खेल व खाक शरीर में लेपन और सर्प भूषण व दिशा वसन और मुण्ड जटावान् है ॥ ३९ ॥ उसके जीने से क्या है कि जो मुझसे यह ऐसा कहता है इसलिये शीघ्रही जाकर मेरा वचन उससे प्रकटता समेत कहो ॥४०॥ कि इस कैलासको छोड़कर तुम काशीमें मनकरो मैंने ऐश्वर्य समेत यह कैलास स्थान अपने पुत्र वृकको निस्सन्देह दिया है नहीं तो हे शंकर ! मैं इन्द्र समेत तुम्हारे प्राणोंको हरूंगा ॥ ४१ । ४२ ॥ उस वचनको सुनकर बड़े क्रोधसे संयुत वीर-भद्र बार२घुड़ककर कैलासको भलीभांति गये॥ ४३ ॥ व उन वीरभद्रने उस सब अतिक्रूर उसके वचनको विशेषकर पिनाकी शिवजी से कहा तदनन्तर पिनाकधारी

कस्तस्यजीवितेनेदंयोमामेवंब्रवीतिच ॥ तस्माद्गत्वाद्रुतंब्रूहि मद्वाक्यंतस्यसस्फुटम् ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाकैलासं मेतत्त्वंवाराणस्यांमनःकुरु ॥ मयास्थानमिदंदत्तंकैलासंस्वसुतस्यच ॥ ४१ ॥ वृकस्यापिनसन्देहोविभवेनसमन्वितम् ॥ नोचेत्प्राणान्हरिष्यामिसेन्द्रस्यतवशङ्कर ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वावीरभद्रस्तुनिर्भर्त्स्यचमुहुर्मुहुः ॥ क्रोधेनमहताविष्टः कैलासंसमुपाद्रवत् ॥ ४३ ॥ तत्सर्वंकथयामासतद्वाक्यंचपिनाकिने ॥ अतिक्रूरंविशेषेणततःक्रुद्धःपिनाकधृक् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे जलशायिमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेशम्भुर्गणैस्सर्वैस्समावृतः॥इन्द्राद्यैश्चसुरैस्सर्वैःक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १ ॥ जगामवृषमारुह्यपुरींचैवामरावतीम् ॥ अन्धकोपिसमालोक्यसम्प्राप्तांदेववाहिनीम् ॥ २ ॥ सगणंचमहादेवंपरितोषंपरङ्गतः ॥ निश्चक्रामाथयुद्धायबलेनचतुरङ्गिणा ॥३॥ वरंस्यन्दनमारुह्यसुश्वेताश्ववहंशुभम् ॥ ततस्समभवद्युद्धंदेवानांदानवैस्सह ॥४॥

शिवजी क्रोधितहुये॥४४॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजलशायीमाहात्म्येपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः२१५॥

दो० । अन्धक दानव कर भयो भृङ्गिरीटि असनाम । दोसौ सोलहवें महँ सोइचरित अभिराम ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में समस्त गणों व इन्द्रादिक सब देवताओं से घिरेहुये शिवजी क्रोध से अति लाल लोचनोंवाले होगये ॥ १ ॥ व बैल पै चढ़कर अमरावती पुरी को गये भलीभांति प्राप्त हुई सुरसेना व गणों समेत महादेवजी को देखकर अन्धक भी परम प्रसन्नता को प्राप्त हुआ इसके बाद सफ़ेद घोड़ों से लेजानेवाले उत्तम व श्रेष्ठ रथपै चढ़कर युद्धके लिये चतुरङ्गिणी सेना से

निकला तदनन्तर देवों का दानवों के साथ भलीभांति युद्ध हुआ ॥ २ । ३ । ४ ॥ व मृत्युको लौटाकर भयानक आकारवाले गणों से इस प्रकार हज़ार वर्ष के अन्त तक युद्ध वर्तमान होतारहा ॥ ५ ॥ व प्रतिदिन उस समर में देवता जयको प्राप्त होते थे दानव नहीं तदनन्तर हजार वर्ष के अन्तमे अतिक्रोधित चन्द्रभाल जीने ॥ ६ ॥ अपने हाथसे भलीभांति उठाकर त्रिशूल से विदारण किया उस त्रिशूल से बेधित भी वह आपही महादानव अन्धकासुर ॥ ७ ॥ ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से प्राणों से वियुक्त न हुआ तदनन्तर फिर भी उठकर महात्मा शिवजी से युद्ध किया ॥ ८ ॥ व विशेषकर क्रोधितहो बहुतेरे गणों को मारा व बार २ गदा के पातों से

गणैश्चविकृताकारैर्मृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ एवंवर्षसहस्रान्तंयावद्युद्धंप्रवर्तते ॥ ५ ॥ दिनेदिनेजयंयान्तितत्रदेवानदानवाः ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेसंक्रुद्धःशशिशेखरः ॥ ६ ॥ त्रिशूलेनस्वहस्तेनसमुद्धृत्यव्यभेदयत् ॥ सविद्धोपिस्वयन्तेनत्रिशूलेनमहासुरः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणोवरमाहात्म्यान्नचप्राणैर्वियुज्यते ॥ ततोभूयोपिचोत्थायचक्रेयुद्धंमहात्मना ॥ ८ ॥ जघानचसमाक्रुद्धोविशेषेणबहून्गणान् ॥ शङ्करंताडयामासगदापातैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ एवंवर्षसहस्रान्तमभूत्सार्द्धंपिनाकिना ॥ रौद्रंयुद्धमभूत्तस्यमहादेवेनशम्भुना ॥ १० ॥ त्रिशूलभिन्नोदैत्यःसयदामृत्युंनगच्छति ॥ उत्थायोत्थायक्रुद्धस्तुप्रहारेणार्द्दयद्बली ॥ ११ ॥ तदातंशङ्करोज्ञात्वामृत्युनापरिवर्जितम् ॥ ब्रह्मणोवरदानेनसर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ १२ ॥ ततोनिर्भिद्यशूलाग्रेप्रोत्क्षिप्यगगनाङ्गणे ॥ छत्रवद्धारयामासलम्बमानमधोमुखम् ॥ १३ ॥ क्षरन्तंरुधिरंभूमौगात्रेभ्योवर्ष्मसम्भवम् ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं चर्मास्थिस्नायुरेवच ॥ १४ ॥ धातुत्रयंस्थितंतस्य नष्टमाशुचतुष्टयम् ॥ सज्ञात्वात्मबलं

शङ्करजी को ताडन किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार हज़ार वर्ष के अन्त तक उस अन्धकासुर का पिनाक नामक धनुषधारी महादेव शिवजी के साथ भयानक समर हुआ ॥ १० ॥ जब त्रिशूल से भेदित वह दैत्य मृत्यु को न प्राप्त होताथा किन्तु उठ २ कर क्रोधित हो बलवान् अन्धक ने प्रहार से विकल किया ॥ ११ ॥ तब शिवजी ने समस्त देवताओं व ब्रह्माके वरदान से उसको मृत्यु से रहित जानकर ॥ १२ ॥ तदनन्तर शूल के आगे भेदन करके आकाशरूपी आंगन में फेंककर नीचे मुखवाले उस लटके हुये दैत्यको छाता के समान हज़ारवर्ष तक धारण किया जो कि शरीर से उपजे हुये रक्तको अङ्गों से भूमि में बहाता था और चमड़ा, हड्डी व नसही ॥ १३।१४॥

उसके तीन धातुवें स्थित रहीं और चार शीघ्रही नष्ट होगईं उसने धातुवों के विनाश से अपने बलको हीन व मलिन जानकर तदनन्तर स्तुतिकर पिनाकी शिवजी के साथ साम (प्रियवचनरूप) उपाय किया अन्धक बोला कि दुष्टात्मा व वाणी से दुष्ट मैंने ऐसे पराक्रमसे संयुत तुम देवताको नहीं जाना इसलिये विचाररहित व मद से अन्ध मेरे अनुरूप योग्य आपने किया है ॥ १५ । १६ । १७ ॥ जो नम्र नहीं होताहै वह लक्ष्मी, विद्या व ऐश्वर्यही को पाकर बहुत समय तक नहीं स्थित होताहै जैसे कि मद से गर्वित मैं हुआहूं ॥ १८ ॥ मैं पापीहूं व मैं पापकर्मोंवालाहूं तथा पाप मन या चित्तवाला हूं व मुझ से पातक पैदा होताहै हे ईशान, देव !

हीनं मलिनंधातुसंक्षयात् ॥ १५ ॥ सामोपायंततश्चक्रेस्तुत्वासार्द्धंपिनाकिना ॥ अन्धकउवाच ॥ नत्वंदेवोमयाज्ञातो वाग्दुष्टेनदुरात्मना ॥ १६ ॥ ईदृग्वीर्य्यसमोपेतस्तस्माद्युक्तंभवत्कृतम् ॥ अनुरूपंमदान्धस्य विवेकरहितस्यच ॥ १७॥ दुर्विनीतःश्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्य्यमेवच ॥ नतिष्ठतिचिरंकालं यथाहंमदगर्वितः ॥ १८ ॥ पापोहंपापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः ॥ त्राहिमान्देवईशान सर्वपापहरोभव ॥ १९ ॥ दुःखितोहंवराकोहं दीनोहंशक्तिवर्ज्जितः ॥ त्रातुमर्हसिमा न्देव प्रपन्नंशरणंप्रभो ॥ २० ॥ दुष्टोहंपापयुक्तोहं साम्प्रतंपरमेश्वर ॥ तेनबुद्धिरियंजाता तवोपरिममानघ ॥ २१ ॥ स र्वपापक्षयेजाते शिवेभवतिभावना ॥ नाममात्रमपिव्यक्षयस्तेकीर्तयतिप्रभो ॥ २२ ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोति किम्पुनः पूजनेरतः ॥ तवपूजाविहीनानां दिनान्यायान्तियान्तिच ॥ २३ ॥ यानिदेवमृतानाञ्च तानियान्तिनजीवताम् ॥ कुष्ठी चरोगयुक्तोवा पङ्गुर्वाबधिरोपिवा ॥ २४ ॥ माभूत्तत्रकुलेजन्म शम्भुर्यत्रनदेवता ॥ तस्मान्मोचयमान्देव स्वगणंकुरु

मेरी रक्षा करो व समस्त पातकों के हारी होवो ॥ १९ ॥ हे प्रभो, देव ! मैं दुःखितहूं मैं बिचाराहूं मैं दीन व शक्तिरहितहूं तुम शरण में प्राप्तहुये मुझको पालने के योग्य हो ॥ २० ॥ हे परमेश्वर ! इस समय मैं दुष्टहूं व मैं पातकयुक्त हूं उसी से हे बिन पापवाले ! तुम्हारे ऊपर मेरी यह बुद्धि हुई ॥ २१ ॥ हे त्रिलोचन, प्रभो ! समस्त पातकों के क्षय होनेपर शिव में भक्ति होती है जो तुम्हारा नाममात्र भी कीर्तन करता है ॥ २२ ॥ वह भी मोक्ष को प्राप्त होताहै फिर जो पूजन में परायणहै उसको क्या कहनाहै हे देव ! तुम्हारी पूजा से विहीन पुरुषों के जो दिन आते, जाते हैं वे मरेहुये नरों के न कि जीतेहुये पुरुषों के जाते हैं कुष्ठी या रोगयुक्त अथवा पंगुला

या बधिर भी होवै ॥ २३।२४ ॥ परन्तु उस वंशमें मत जन्म होवै कि जिस में शिव देवता नहींहैं इसलिये हे देव ! मुझको छुड़ाइये व इस समय अपना गण कीजिये ॥ २५ ॥ हे विभो ! मेरा दानववाला स्वभाव गया व मैंने राज्य छोड़दिया और पुत्रों व पौत्रों को तथा ऐश्वर्यों समेत सेना को त्याग किया ॥ २६ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तीन शपथों से मैं तुम्हारे चरणों की सौगन्द करताहूं उसके उस वचनको सुनकर व नष्ट पातकोंवाले उस दैत्य को जानकर ॥ २७ ॥ समर्थ शिवजी ने धीरे से त्रिशूल परसे उतारकर तदनन्तर नम्रता से नीचे खड़ेहुये उसका आपही भृंगिरीटि ऐसा नाम किया ॥ २८ ॥ व कहा कि हे पुत्र ! तुम मुझको सदैव प्यारे होगे व नन्दीके

साम्प्रतम् ॥२५॥ गतोमेदानवोभावस्त्यक्तंराज्यंतथाविभो ॥ त्यक्ताःपुत्राश्चपौत्राश्च बलश्चविभवैस्सह॥ २६॥त्रिश्शपे नसुरश्रेष्ठतवपादौशपाम्यहम्॥ तस्यतद्वचनंज्ञात्वातन्दैत्यंगतकल्मषम्॥ २७॥ उत्तार्य्यशनकैश्शूलाद्विनयावनतंस्थितम् ॥ ततोनामस्वयंचक्रे भृङ्गिरीटिरितिप्रभुः ॥ २८ ॥ अब्रवीच्चसदामेत्वं वल्लभस्सम्भविष्यसि ॥ नन्दिनोपिमतस्तस्य महाकालस्यपुत्रक ॥ २९ ॥ तिष्ठसौम्यतयासौख्यं नस्मरिष्यसिबान्धवान् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय प्रणम्यशशिशेखरम् ॥ ३० ॥ तस्थौसर्वगुणैर्युक्तः प्रभुसंश्रयसंयुतः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेभृङ्गिरीट्युत्पत्तिर्नामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंगणत्वमापन्ने ह्यन्धकेदानवोत्तमे ॥ तस्यपुत्रोवृकोनाम निरुत्साहोद्विषज्जये ॥ १ ॥ भयेनमहता

भी व उन महाकाल जी के सम्मत होगे ॥ २९ ॥ व सौम्यता से सुखपूर्वक टिको और भाइयों को न याद कीजियेगा वह अन्धक वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके व चन्द्रभाल जी को प्रणामकर ॥ ३० ॥ समस्त गुणोंसे संयुत व स्वामी के आश्रययुक्त होकर टिकता भया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभृङ्गिरीट्युत्पत्तिर्नामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । इन्द्र सिंहासन पै यथा बैठ्यो वृक दनुपाल । दोसौ सत्रहवें महँ सोई कथा रसाल ॥ सूतजी बोले कि दानवोत्तम अन्धक जब इस प्रकार गणताको प्राप्त

होगया तब वृक नामक उसका पुत्र शत्रुओंके जीतने में उत्साह (हौसला) हीन होगया ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मारने से बचेहुये दानवों समेत बड़े डरसे संयुत वह अतिकठिन समुद्र के बीचमें पैठगया ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले इन्द्रजी शिवजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञाको पाकर अमरावती पुरीको पैठगये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! त्रिलोकमें भी सुखी इन्द्रने राज्य किया व भूतलमें जो यज्ञ हुये उन में फिर यज्ञभागों को पाया ॥ ४ ॥ इसी समय में अन्धक का पुत्र वृक नामक शीघ्रही समुद्रसे निकलकर जम्बूद्वीप में भलीभांति आश्रित हुआ ॥५॥ व पुण्यदायक तथा भलीभांति सिद्धिदायक हाटकेश्वर जी से उपजे हुये क्षेत्रको जाकर जहां कि

युक्तो हतशेषैश्चदानवैः ॥ प्रविवेशसमुद्रान्तं सुदुर्गंब्राह्मणोत्तमाः ॥ २ ॥ ततःशक्रःप्रहृष्टात्मा प्रणम्यवृषभध्वजम् ॥ तस्यादेशंसमासाद्य प्रविवेशामरावतीम् ॥ ३ ॥ चकारचसुखीराज्यं त्रैलोक्येपिद्विजोत्तमाः ॥ यज्ञभागान्पुनर्लेभे यज्ञायेचधरातले ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु अन्धकस्यसुतोवृकः ॥ निष्क्रम्यसागरात्तूर्णं जम्बूद्वीपंसमाश्रितः ॥ ५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं,गत्वापुण्यंसुसिद्धिदम् ॥ पित्रायत्रतपस्तप्तमन्धकेनदुरात्मना ॥ ६ ॥ सुगुप्तस्तुतपस्तेपे यथावेत्तिन कश्चन ॥ ध्यायमानस्सुरश्रेष्ठं भक्त्याकमलसम्भवम् ॥ ७ ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं जलाहारोद्वितीयकम् ॥ तपस्तेपेसुदैत्येन्द्रो ध्यायमानःपितामहम् ॥ ८ ॥ वायुभक्षस्ततोजातस्तावत्कालंद्विजोत्तमाः ॥ अङ्गुष्ठाग्रेणभूपृष्ठे स्पर्शमानोजितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ एवंचतुर्थेसम्प्राप्ते सहस्रेद्विजसत्तमाः ॥ ब्रह्मातस्यगतस्तुष्टिं दृष्ट्वातस्यतपोमहत् ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीत्समागत्य स्वयम्भूर्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ भोभोवृकनिवर्तस्व तपसोस्मात्सुदारुणात् ॥ ११ ॥ वरंवरयभद्रन्ते यन्नित्यंमन

दुष्टात्मा अन्धक पिताने तपस्या कियाथा ॥ ६ ॥ वहां कमल से उपजेहुये सुरश्रेष्ठ (ब्रह्मा) को हजारवर्ष तक ध्यान करताहुआ व अति छिपाहुआ वह उस भांति तप करताभया कि जिस प्रकार कोई न जानै व दूसरे हज़ारवर्ष तक पितामहको ध्यानकरते व जलाहारी होतेहुये दैत्येन्द्र ने तपस्या किया ॥ ७ । ८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उतनेही समय याने हज़ारवर्ष तक अंगूठाके अग्रभागसे भूपृष्ठको छूताहुआ वह जितेन्द्रिय वृकासुर पवनभोजी हुआ ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार जब चौथा हजारवर्ष भलीभांति प्राप्तहुआ तब उसकी बड़ीभारी तपस्या देखकर ब्रह्माजी उस के ऊपर प्रसन्न होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माने आकर

उस से कहा कि हे वृकासुर ! इस अतिभयानक तपस्या से निवृत्त होवो ॥ ११ ॥ तुम्हारा कल्याण होवै जो नित्यही मनमें टिकाहो उस वरदान को मांगिये वृक बोला कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देनेयोग्य है ॥ १२ ॥ तो हे पितामहजी ! तुम मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहित कीजिये ब्रह्मा बोले कि हे वत्स ! मेरी प्रसन्नतासे तुम निस्सन्देह जरा मरण से हीन होवोगे यह मैंने सत्य कहा है ऐसा कहकर तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १३ । १४ ॥ वहां जाकर व शीघ्रही मन्त्रियों से सलाहकर व कृतार्थ होताहुआ वृकभी समस्त ऋतुवोंके फूलोंसे उज्ज्वल रैवतक नामक पर्वत पै अपने पिताके घरको गया ॥ १५ ॥

सिस्थितम् ॥ वृकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ १२ ॥ जरामरणहीनंमां त्वंकुरुष्वपितामह ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममप्रसादतोवत्स जरामरणवर्जितः ॥ १३ ॥ भविष्यसिनसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वाततोब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १४ ॥ वृकोपिकृतकृत्यश्च जगामस्वगृहंपितुः ॥ गिरिंरैवतकंनाम सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलम् ॥ १५ ॥ तत्रगत्वानिजामात्यैःसम्मन्त्र्यचससत्वरम् ॥ इन्द्रोपरितश्चक्रे यानंयुद्धपरीप्सया ॥ १६ ॥ इन्द्रोपिचपरिज्ञाय दानवन्तंमहाबलम् ॥ जरामृत्युपरित्यक्तं प्रभावात्परमेष्ठिनः ॥ १७ ॥ परित्यज्यभयाच्चैव पुरींचैवामरावतीम् ॥ ब्रह्मलोकंगतस्तूर्णं देवैस्सर्वैस्समन्वितः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो वृकश्चत्रिदशालयम् ॥ ससैन्यपरिवारेण शुक्रेणचसमन्वितः ॥ १९ ॥ ततश्चेन्द्रपदेतस्मिन्स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ शुक्रात्प्राप्याभिषेकञ्च पुण्यस्नानसमुद्भवम् ॥ २० ॥ सोभिषिक्तस्तुशुक्रेण देवराज्यपदेवृकः ॥ यज्ञभागकृतेविप्राः शुक्रशासनमाश्रितः ॥ २१ ॥ इतिसप्तदशाधिकद्विशततमोध्यायः २१७ ॥

तदनन्तर युद्धकी इच्छासे इन्द्रके ऊपर यात्रा किया ॥ १६ ॥ इन्द्रभी उस बड़े बली दानव को ब्रह्माके प्रभाव से वृद्धता व मृत्युसे रहित जानकर ॥ १७ ॥ समस्त देवताओं से संयुक्त होतेहुये डरसे अमरावती पुरीको छोड़कर शीघ्रही ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ १८ ॥ इसी अवसर में शुक्रसे संयुत व सेना, परिवार समेत वृकासुर स्वर्गको प्राप्तहुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर पुण्यस्नानसे उपजेहुये अभिषेकको शुक्रजी से पाकर उस इन्द्रस्थानपै आपही टिका ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! शुक्रजीसे देवताओं के राज्यस्थानपै अभिषेक कियाहुआ वह वृकासुर यज्ञभागों के लिये शुक्रकी आज्ञापै आश्रितहुआ ॥ २१ ॥ इति वृकस्येन्द्रपदप्राप्तिर्नामसप्तदशाधिकद्विशततमोध्यायः २१७ ॥

दो० । इन्द्र फेरि वृकसों यथा पायो है निज थान । दोसौ अट्ठारहेमहँ कह्यो सूत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि त्रिलोकसे उपजीहुई उस राज्यको भलीभांति प्राप्त होकर वृकासुर ने भी स्वच्छन्दता से उस समय समस्त संसार की राज्य किया ॥१॥ वह वृक दानव बल,प्रभाव, धैर्य व क्रोधमें अन्धकासुर के हज़ार गुनाथा व बड़ा विकराल तथा भयंकर था ॥२॥ इसी अवसर में देवताओं के स्थानपै दैत्योंको जानकर भूतलमें कोई मन्त्र न जपताथा व न होम और न यज्ञ करताथा ॥ ३ ॥ इस के अनन्तर जो पुरुष धर्म, होम या जपही करताथा वह छिपे स्थानमें जाकर देवों की प्रसन्नता के लिये करताथा ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर स्वर्गमें टिके व यज्ञभागों से

सूतउवाच ॥ वृकोपितत्समासाद्यराज्यंत्रैलोक्यसम्भवम् ॥ यदृच्छयाजगत्सर्वं ससमाज्ञापयत्तदा ॥ १ ॥ सोन्धकस्यबलेवीर्य्ये धैर्य्येकोपेचदानवः॥ सहस्रगुणितश्चासीद्रौद्रःपरमदारुणः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकश्चिन्नमन्त्रंजपतिक्षितौ ॥ नहोमन्नैवयज्ञञ्च दैत्याञ्ज्ञात्वासुरास्पदे ॥ ३ ॥ अथयःकुरुतेधर्म्मं होमंवाजपमेववा ॥ सगुप्तस्थानमासाद्य करोत्यमरतुष्टये ॥ ४ ॥ अथस्वर्गस्थितादैत्या यज्ञभागविवर्जिताः ॥ तथामर्त्योद्भवैर्भागैस्सन्देहंपरमङ्गताः ॥ ५ ॥ ततः कोपपरीतात्मा प्रेषयामासदानवः ॥ मर्त्यलोकेचरान्गुप्तान्निपुणांश्चाब्रवीत्ततः ॥६॥ यःकश्चिद्देवतानाञ्च प्रगृह्णातिकरोति च ॥ तदर्थंयजनंहोमं दानंवापृथिवीपतिः ॥ सचवध्यश्चयुष्माभिर्ममवाक्यादसंशयम् ॥ ७ ॥ अथतेतद्वचःश्रुत्वा दानवाबलवत्तराः ॥ गत्वाचमेदिनीपृष्ठं गुप्तास्संयान्तिसर्वतः ॥ ८ ॥ यंकञ्चिद्वीक्षयन्तिस्म जपहोमपरायणम् ॥ स्वाध्यायेवाप्रकुर्वाणं तन्निघ्नन्तिशितासिभिः॥९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सांकृतिर्द्विजसत्तमः ॥ गुप्तश्चक्रेतपस्तस्यां गर्तायांव्र

रहित तथा मनुष्यसे उपजे हुये भागोंसे हीन होकर देवता बड़ी सन्देहको प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले दानव ने मृत्युलोक में चतुर व गुप्त दूतोंको पठाया तदनन्तर कहा ॥ ६ ॥ कि जो कोई भूप देवताओं को ग्रहण करता है व उनके लिये पूजन, हवन या दान करताहो वह मेरे वचनसे निस्सन्देह तुम लोगों से मारने योग्यहै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उसका वचन सुनकर वे बडे बलिष्ठ दानव भूपृष्ठको जाकर सब ओर छिपेहुये घूमते थे ॥ ८ ॥ व जिस किसीको जप होममें तत्पर व वेदपाठ करतेहुये देखते थे उसको पैनी तलवारों से मारते थे ॥ ९ ॥ इसी अवसर में छिपे शरीरवाले सांकृति द्विजोत्तम ने गुप्त होकर उस गढ़े में

तप किया ॥ १० ॥ जहां कि हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय वृकने प्रथम तपस्या किया था इसके उपरान्त उस गुहामें विशेषकर टिकेहुये उस ब्राह्मणको देखकर उस समय वे दूत ॥ ११ ॥ उस तपको निन्दते हुये कठोर अक्षरों से बोले व हे द्विजोत्तमो ! उसके आश्रममें भलीभांति थापित व चन्दन तथा फूलोंसे पूजित चार हाथवाली विष्णु जी की मूर्तिको देखकर तदनन्तर क्रोधसंयुत होते हुये उन्होंने शस्त्रको उठाकर मारा ॥ १२ । १३ ॥ विष्णुजीके तेजसे घिरेहुये उनको जब मारनेके लिये न समर्थ हुये तब निर्मल भी समस्त शस्त्र गोंठिल होगये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर विलक्षणता में प्राप्त वे सबही वैराग्यको प्राप्तहुये व उस समय उन्होंने उस वार्ताको दान-

न्नवर्ष्मकः ॥ १० ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं वृकेणचपुराद्विजाः ॥ अथतेतंतदादृष्ट्वा तद्गुहायांव्यवस्थितम् ॥ ११ ॥ भर्त्स्यमानास्त पस्तच्च प्रोचुश्चपरुषाक्षरैः ॥ दृष्ट्वातस्याश्रमेसंस्थां गन्धपुष्पैःप्रपूजिताम् ॥ १२ ॥ वासुदेवात्मिकांमूर्तिं चतुर्हस्तांद्विजो त्तमाः ॥ ततस्तुशस्त्रमुद्यम्य निजघ्नुस्तेक्रुधान्विताः ॥ १३ ॥ नशेकुस्तंयदाहन्तुं संवृतंविष्णुतेजसा ॥ कुण्ठतांसर्वश स्त्राणि गतानिविमलान्यपि ॥ १४ ॥ अथवैलक्ष्यमापन्ना निर्विण्णास्सर्वएवते ॥ तांवार्तान्दानवेन्द्राय वृकायोचुश्चतेत दा ॥ १५ ॥ कश्चिद्विप्रस्समाधाय वैष्णवींप्रतिमाम्पुरः ॥ तपस्तेपेमहाभागः क्षेत्रेवैहाटकेश्वरे ॥ १६ ॥ यत्रत्वयातप स्तप्तं भीत्यासर्वदिवौकसाम् ॥ अपिचौर्य्येणचास्माकं तपस्तपतितादृशम् ॥ १७ ॥ येनसर्वाणिशस्त्राणि कुण्ठतांप्र गतानिनः ॥ तस्यगात्रप्रहारैश्च ततःकुरुयथोचितम् ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा वृकःकोपसमन्वितः ॥ जगामसत्वरं तत्र यत्रास्तेसांकृतिस्स्थितः ॥ १९ ॥ सगत्वावैष्णवींमूर्तिं तामुत्क्षिप्यसुदूरतः ॥ श्वभ्राद्बहिःप्रचिक्षेप भर्त्स्यमानःपुनः

वेन्द्र वृकासुर से कहा ॥ १५ ॥ कि कोई महाभाग्यवान् ब्राह्मण हाटकेश्वरक्षेत्र में विष्णुजी की मूर्तिको अगाडी धरकर तपस्या करताभया है ॥ १६ ॥ जहां कि समस्त देवताओं के डरसे तुमने तपस्या कियाथा वैसीही तपस्या हमलोगोंकी चोरीसे भी वह करताहै ॥ १७ ॥ कि जिससे हमलोगों के समस्त शस्त्र उसके अंगोंमें प्रहारों से गोंठिलताको प्राप्त होगये इसलिये यथायोग्य कीजिये ॥१८॥ उनके उस वचनको सुनकर क्रोधसंयुत होताहुआ वृक शीघ्रही वहांगया जहां कि सांकृति टिकेथे ॥१९॥

बार २ घुड़कते हुये उसने जाकर उस विष्णुजी की मूर्तिको उखाड़ कर गढ़ेके बाहर बहुत दूर फेंकदिया ॥ २० ॥ व दाहिने तथा बांये चरणकी चोट से उस विप्रको मारा व कहा कि तुम मेरे मारने योग्यहो जिस लिये तुम मेरे शत्रु विष्णुको चोरीसे भलीभांति पूजतेहो उससे मैं प्राणोंको हरूंगा ॥ २१ । २२ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस दैत्यपति ने उसको तलवारसे मारा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उसकी पैनी भी वह तलवार ॥ २३ ॥ उसके शरीरमें नष्ट होगई व सौखण्ड प्राप्त हुई तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले उन सांकृतिजीने उस वृकको शाप दिया ॥ २४ ॥ कि हे पापी ! जिस लिये तुमने मुझको चरण की चोटोंसे चोटैल किया

पुनः ॥ २० ॥ जघानपादघातेन दक्षिणेनेतरेणतम् ॥ अब्रवीन्ममवध्यस्त्वं यन्मेशत्रुंजनार्दनम् ॥ २१ ॥ सम्पूजयसिचौर्य्येण तेनप्राणान्हराम्यहम् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वाथखड्गेन तंजघानसदैत्यपः॥ततस्तस्यसखड्गस्तु तीक्ष्णोपिद्विजसत्तमाः ॥ २३ ॥ तस्यकायेप्रणष्टस्तु शतधासमपद्यत ॥ ततःकोपपरीतात्मा तंशशापससांकृतिः ॥ २४ ॥ यस्मात्पापत्वयाहञ्च पादघातैःप्रताडितः ॥ तस्मात्तेपततांपादौ सद्यएवधरातले ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ गुल्फमात्रंततश्चैव पादौ तस्यद्विजोत्तमाः ॥ पतितौमेदिनीपृष्ठे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु आक्रन्दस्सुमहानभूत् ॥ वृकस्यसैनिकानांच नारीणाञ्चविशेषतः ॥ २७ ॥ अथदेवाःपरिज्ञाय तन्तदापङ्गुताङ्गतम् ॥ आगत्यमेरुपृष्ठञ्च निजघ्नुस्तेपरस्परम् ॥ २८ ॥ हतशेषास्ततोदैत्याः पातालञ्चसमागताः ॥ वृकोपिपङ्गुताम्प्राप्तस्तस्थौतपसिसुस्थिरे ॥ २९ ॥ सर्वैरन्तःपुरैस्सार्द्धं दुःखशोकसमन्वितः ॥ इन्द्रोपिप्राप्तवान्राज्यं तदानिहतकण्टकम् ॥ ३० ॥ धर्म्मक्रियाःप्रवृत्ता

उसी कारण शीघ्रही तुम्हारे पांव पृथ्वीमें गिरपड़ें ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर उसके घुट्ठनू मात्र चरण पांच मस्तकवाले सर्पोंके समान पृथ्वीतलमें गिरपड़े ॥ २६ ॥ इसी अवसरमें वृककी सेनावालों का व विशेषकर स्त्रियोंका बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर पंगुतामें प्राप्त उस वृकको जानकर देवताओं ने मेरुपृष्ठपै आकर परस्पर में सम्मति करके मारा ॥ २८ ॥ तदनन्तर मारने से बचेहुये दैत्य पाताल को भलीभांति आये व पंगुता में प्राप्त वृकभी बड़ी स्थिर तपस्या में टिका ॥ २९ ॥ और समस्त रनिवास समेत दुःख शोचसे संयुत इन्द्र ने भी उस समय नष्टकण्टकोंवाली राज्यको पाया ॥ ३० ॥ तदनन्तर फिर

भूतल में धर्मके कार्य वर्तमान हुये इसके अनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माने ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहीं गढ़ेके मध्यमें आकर वरदान दिया कि हे सुव्रत, वत्स, वृक ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं वरदान मांगो ॥ ३२ ॥ यद्यपि दुर्लभ होगा तथापि मैं तुमको निश्चय कर दूंगा वृक बोला कि हेदेव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३३ ॥ तो हे ब्रह्मन् ! मुझको चरणदान कीजिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से शीघ्रही मेरी यह पंगुलता जावै ॥ ३४ ॥ उस वचनको सुनकर ब्रह्माजी वहां सांकृति ब्राह्मणको भलीभाति आनकर प्रियवचनपूर्वक बोले हे द्विजोत्तम, साकृते ! इस वृकके तुमसे उपजीहुई पंगुलता मेरे

श्च ततोभूयोधरातले ॥ अथदीर्घेणकालेन तस्यतुष्टःपितामहः ॥ ३१ ॥ ददौतत्रैवचागत्य गर्तमध्येद्विजोत्तमाः ॥ तुष्टोस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥ ३२ ॥ अहंदास्यामितेनूनं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ वृकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ ३३ ॥ पाददानंतदादेव ममब्रह्मन्समाचर ॥ पङ्गुतायातिशीघ्रम्मे येनेयन्तेप्रसादतः ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वातंसमानीय सांकृतिंतत्रपद्मजः ॥ प्रोवाचसान्त्वपूर्वंच वृकस्यास्यद्विजोत्तम ॥ ३५ ॥ मद्वाक्यात्पङ्गुतायातु सांकृतेतवसम्भवा ॥ सांकृतिरुवाच ॥ असत्यन्नोक्तपूर्वम्मे स्वैरेष्वपिपितामह ॥ ३६ ॥ ज्ञायतेदेवदेवेश तत्कथंप्रकरोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममभक्तिपरोनित्यं वृकोयंदैत्यसत्तमः ॥ ३७ ॥ पौत्रश्चदयितोनित्यं तेनत्वांप्रार्थयाम्यहम् ॥ तववाक्यंचनोमिथ्या कर्तुंशक्नोमिसन्मुने ॥ ३८ ॥ सांकृतिरुवाच ॥ एषदैत्यःसुदुष्टात्मा देवानामहितेस्थितः ॥ विशेषाद्वासुदेवस्य गुरोर्ममहात्मनः ॥ ३९ ॥ हनिष्यतिचतत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ तस्मात्तिष्ठतुतद्रूपोनचैनंदातुमर्हसि ॥ ४० ॥

वचन से जातीरहै सांकृति बोले कि हे पितामह जी ! मैंने स्वच्छन्दता मे भी पहले झूंठ नही कहाहै यह जानाजाता है हे देवदेवेश ! मै उसको कैसे करूं ब्रह्मा बोले कि नित्यही मेरी भक्ति में परायण यह दैत्यों में उत्तम वृक ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ पौत्र नित्यही प्रिय है उससे मैं तुमसे प्रार्थना करताहूं व हे सन्मुने ! तुम्हारा वचन झूंठ करनेके लिये नहीं समर्थ हूं ॥ ३८ ॥ सांकृति बोले कि अतिदुष्टमनवाला यह दैत्य देवताओं तथा विशेष कर मेरे गुरु विष्णु महात्मा के अप्रियमें स्थितहै ॥ ३९ ॥

उसी कारण सुरासुर नर समेत सबको नाश करैगा इसलिये तद्रूप याने पंगुला होकर टिकै तुम देने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ४० ॥ क्योंकि हे प्रभो ! तुमको भी त्रिलोक की चिन्ता करना चाहिये ब्रह्मा बोले कि वर्षा समय होनेपर यात्रा करने के लिये नहीं योग्यहै ॥ ४१ ॥ व जीतने की इच्छावाले को विशेष कर जाड़ा व गरमी का आगमन छोडकर नहीं योग्यहै उसलिये वर्षावाले चार महीने चरणसंयुत होवै ॥ ४२ ॥ क्योंकि वे चार महीने समस्त मनुष्योंके जो धर्मवाले कर्म हैं उनके अगम्य याने न होने योग्यहैं इस लिये दानवों में उत्तम वह वृक वैरी रूपवाला व पांवसंयुत होवै ॥ ४३ ॥ कि जिससे हे विप्रजी ! देवताओं व द्विजोंका कल्याण होवै

तस्यापिचिन्ताकर्तव्या त्रैलोक्यस्ययतःप्रभो ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रावृट्कालेतुसञ्जाते यानंकर्तुंनयुज्यते ॥ ४१ ॥ विजिगीषोर्विशेषेण मुक्त्वाशीतातपागमम् ॥ तस्माच्चचतुरोमासान्वार्षिकान्पादसंयुतः ॥ ४२ ॥ अगम्यान्सर्वलोकानां यानिकर्म्माणिधर्म्मतः ॥ तद्रूपःपादसंयुक्तः सवृकोदानवोत्तमः ॥ ४३ ॥ येनक्षेमञ्चदेवानां द्विजानांजायतेद्विज ॥ एवंकृतेन मिथ्याते वाक्यंविप्रभविष्यति ॥ ४४ ॥ फलंचतपसस्तस्यनवृथासम्भविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतेनोक्ते समन्तेनमहात्मना ॥ ४५ ॥ उत्थितौसहसापादौ तस्यगात्रात्पुनर्नवौ ॥ पुनश्चदानवोरौद्रः पङ्गुत्वंसमपद्यत ॥ ४६ ॥ तस्यामेवतुगर्तायां सन्तिष्ठतिद्विजोत्तमाः ॥ मासानष्टौसदुःखेन सहितःसम्प्रबोधितः ॥ ४७ ॥ स्मरमाणोमहद्वैरं देवैस्सार्द्धंदिवानिशम् ॥ अन्यांश्चचतुरोमासान्निष्क्रम्यसरुषान्वितः ॥ ४८ ॥ सदापीडयतेदेवान्माहेन्द्रान्मानुषानपि ॥ विध्वंसयतिदेवानां स्त्रियोमासचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥ उद्यानानिचसर्वाणि गोपुराणिगृहाणिच ॥ ततोदेवास्समभ्येत्य

और हे द्विज ! ऐसा करने पर तुम्हारा वचन झूंठ न होगा ॥ ४४ ॥ व उसकी तपस्या का फल वृथा न होगा सूतजी बोले कि उन महात्मा समेत उस से हां यही कहने पर ॥४५॥ अचानकही उसके शरीरसे फिर नयेचरण उठते भये और फिर विकराल दानव पंगुलताको प्राप्तहुआ ॥४६॥ हे द्विजोत्तमो ! दुःख समेत व समझाया हुआ वह वृक आठ महीने उसी गढ़ेमें भलीभांति टिकता था ॥ ४७ ॥ व अहर्निश देवताओं के साथ बड़े वैरको याद करताथा और अन्य चार महीनो में निकलकर क्रोधसंयुत वह वृकासुर ॥ ४८ ॥ सदैव देवताओं महेन्द्रों व मनुष्यों को भी पीड़ित करताथा तथा चार महीने देवताओं की स्त्रियोंको विध्वंस करता था ॥ ४९ ॥ व

समस्त बगीचों तथा नगरके द्वारों तथा गृहोंको विनाश किया तदनन्तर देवता नित्य ही शेषशय्यापै शयन करनेवाले व क्षीरसागर में भलीभांति टिकेहुये देवदेव विष्णुजी के समीप भलीभांति आकर व वर्षावाले चार महीने तक वहां उनके समीप टिककर ॥ ५० । ५१ ॥ व अतिभयानक उस दैत्यको पंगुतामें प्राप्तहोनेपर आठ महीने फिर निडर होकर स्वर्गको जातेथे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर किसी समय दुःखसे अति तचेहुये इन्द्रजी बृहस्पति से बोले कि जहां सुरश्रेष्ठ जाते हैं ॥ ५३ ॥ वहां चिह्नों का जाननेवाला यह वृकासुर आवैगा उस कारण हमलोगों को क्षीरसागरवाले विष्णुजी के स्थानमें जाना चाहिये ॥ ५४ ॥ वैसेही पराये स्थानमें बसनेवाले

देवदेवंजनार्द्दनम् ॥ ५० ॥ क्षीराब्धौसंस्थितंनित्यं शेषपर्य्यङ्कशायिनम्॥ चतुरोवार्षिकान्मासांस्तत्रस्थित्वातदन्तिके ॥ ५१ ॥ मासानष्टौपुनर्जग्मुस्त्रिदिवंप्रतिनिर्भयाः ॥ तस्मिन्पङ्गुत्वमापन्ने दैत्येपरमदारुणे ॥ ५२ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य देवराजोबृहस्पतिम् ॥ प्रोवाचदुःखसन्तप्तः यत्रयान्तिसुरोत्तमाः ॥ ५३ ॥ आगमिष्यतितत्रासौ लक्षणज्ञो वृकासुरः ॥ गन्तव्यंचततोस्माभिः क्षीरोदेकेशवालये ॥ ५४ ॥ मौनैर्दीनैस्तथाभाव्यं पराश्रयनिवासिभिः ॥ स्वगृहाणिपरित्यज्य शयनान्यासनानिच ॥ ५५ ॥ वाहनानिविचित्राणि यदन्यदपिवैगृहे ॥ तस्मात्कथयचास्माकमुपायंकिञ्चिदेवहि ॥ ५६ ॥ व्रतंवानियमोवाथ होमंवाद्विजसत्तम ॥ अशून्यंशयनंयेन स्वकलत्रेणजायते ॥ ५७ ॥ तथानगृहसंत्यागस्स्वकीयस्यप्रजायते ॥ निर्विण्णोहंनिजस्थानभङ्गाद्विजवरोत्तम ॥ ५८ ॥ वर्षेवर्षेचसम्प्राप्ते स्थानकस्य च्युतिर्भवेत् ॥ पुनर्भूमौशयिष्यामि यावन्मासचतुष्टयम् ॥ ५९ ॥ निष्कलत्रोभयोद्विग्नो ब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ तस्य

हमलोगो को मौन व दीन होना चाहिये अपने घरों व शय्याओं व आसनों तथा विचित्र वाहनों व जो और भी घरमेंहै उसको छोडकर जाना चाहिये इसलिये कुछ ही उपायको हमलोगों से कहिये ॥ ५५।५६॥ हे द्विजोत्तम ! व्रत या नियम अथवा होम होवै जिससे कि शय्या अपनी स्त्री से शून्य न होवै ॥५७॥ वैसेही अपने घरका भलीभांति त्याग न होवै हे द्विजवरोत्तम ! अपने स्थानके भंग होनेसे मैं निर्वेदको प्राप्तहूं ॥ ५८ ॥ क्योंकि प्रतिवर्ष भलीभांति प्राप्त होने पर स्थानकी छूट होती है व स्त्रियों से रहित तथा भयसे ऊबाहुआ व ब्रह्मचर्य में तत्पर मैं फिर चार महीने तक भूमि में सोऊंगा उन सुरपति के उस वचन को सुनकर बृहस्पति जी बहुत देरतक

सोपिसांकृतिशापेन वृकःपङ्गुत्वमाप्नुयात् ॥ एवंचचतुरोमासान्नत्यजेच्छयनंहरिः ॥ ८० ॥ तथातस्यासुरेन्द्रस्य दानवस्यदुरात्मनः ॥ तत्रमर्त्येक्रियास्सर्वाः क्रियन्तेनमखोद्भवाः ॥ ८१ ॥ यस्मात्सयज्ञपुरुषो नसुप्तोभोगमश्नुते ॥ तस्माद्यज्ञात्मिकाःसर्वाः कन्यादानादिकाःशुभाः ॥ ८२ ॥ तैस्सर्वैर्नक्रियन्तेच चूडाकरणपूर्विकाः ॥ मुक्त्वान्नप्राशनन्नाम सीमन्तोन्नयनंतथा ॥ ८३ ॥ तस्मात्सुप्तेजगन्नाथे तास्सर्वाःस्युर्वृथाद्विजाः ॥ व्रतंवानियमंवाथ तस्मिन्यःकुरुते नरः ॥ ८४ ॥ प्रसुप्तेदेवदेवेशे तत्सर्वंनिष्फलंभवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्प्रसुप्तेजनार्दने ॥ ८५ ॥ तत्रस्थैर्मानुषैःकार्यं तस्यदेवस्यतुष्टये ॥ एकादश्यांदिनेप्राप्ते शयनेबोधनेहरेः ॥ ८६ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म्म श्रेष्ठंचैवाक्षयंभवेत् ॥ किञ्चात्रबहुनोक्तेन क्रियतेयद्व्रतंनरैः ॥ ८७ ॥ तेनतुष्टिंपरांयाति तस्योपरिस्थितोहरिः ॥ तस्मिन्नहनिपापात्मा योन्नमश्नातिमानवः ॥ ८८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ अन्यस्मिन्नपिभोक्तव्यं ननरेणविजानता ॥ ८९ ॥

और सांकृतिके शाप से वह वृकासुर भी पंगुताको प्राप्त होताहै इस प्रकार चार महीने तक उस दुष्टात्मा दानवेन्द्र दानवकी शय्या को विष्णुजी नहीं छोड़ते हैं और उन चार महीनों में यज्ञ से उपजेहुये समस्त कर्म मृत्युलोकमें नहीं कियेजातेहैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जिस लिये सोतेहुये वे यज्ञपुरुष विष्णुजी भोग को नहीं भोगते हैं उसी कारण अन्नप्राशन व सीमन्तोन्नयन (सतवांसा) को छोड़कर मुण्डनपूर्वक कन्यादानादिक समस्त शुभ कार्योंको वे समस्त मनुष्य नहीं करते हैं ॥ ८२ । ८३ ॥ उसी कारण हे ब्राह्मणो ! जब जगदीशजी सोते हैं तब वे समस्त कार्य वृथा होजाते हैं और जो नर उन देवदेवेश (विष्णु) जीके सोनेपर व्रत अथवा नियम को करताहै वह सब अफल होजाता है इस लिये विष्णु के सोनेपर वहां टिकेहुये मनुष्यों को उन विष्णुदेवकी प्रसन्नता के लिये सब उपाय से यही करना चाहिये और विष्णुजी के सोने व जागने में एकादशी दिनके प्राप्त होनेपर ॥ ८४ । ८५ । ८६ ॥ जो कुछ उत्तम कर्म किया जाता है वह अविनाशी होताहै इस विषय में बहुत कहने से क्याहै मनुष्य जिस व्रतको करते हैं ॥ ८७ ॥ उससे उस वृकके ऊपर टिकेहुये विष्णुजी परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं उस दिन जो पुरुष अन्न खाताहै वह पापात्मा है ॥ ८८ ॥ उस कारण अन्य भी विष्णुवासर (एकादशी) भलीभांति प्राप्त होनेपर विज्ञानी पुरुष को समस्त उपाय से भोजन न करना चाहिये ॥ ८९ ॥

किम्पुनःशयनंयत्र कुरुतेयत्रबोधनम् ॥ सूतउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ ९० ॥ हाटकेश्व रजेक्षेत्रे यस्माच्छेतेजनार्दनः ॥ क्षीराब्धिसम्परित्यज्यसदामासचतुष्टयम् ॥ ९१ ॥ श्रूयतांचफलंतस्य तस्मिन्नाराधि तेविभौ ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्यस्तंपूजयतेविभुम् ॥ ९२ ॥ व्रतस्थस्सनरोयाति यत्रदेवःससंस्थितः ॥ किन्दानैर्बहु भिर्दत्तैः किंयज्ञैर्नियमैर्व्रतैः ॥ ९३ ॥ यस्तुवैपुण्डरीकाक्षंसुप्तंपूजयतिध्रुवम् ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे जलशाय्युत्पत्तिर्नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ प्रसुप्तेदेवदेवेशे शङ्खचक्रगदाधरे ॥ यच्चान्यदपिकर्तव्यं नियमोव्रतमेववा ॥ १ ॥ होमोवाथजपोवा थ दानंत्वंतद्वदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ यःकश्चिन्नियमोविप्राःप्रसुप्तेगरुडध्वजे ॥ २ ॥ अनन्तफलदःसस्यादित्युवाचपिता

फिर उस एकादशी को क्या कहनाहै कि जिसमें शयन तथा जिसमें जागरण करते हैं सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मुझसे जो पूंछागया यह समस्त चरित तुमसे कहा ॥ ९० ॥ कि जिस प्रकार सदैव क्षीरसागर को छोड़कर चार महीने हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें जनार्दनजी सोते हैं ॥९१॥ और उन व्यापक विष्णुजी का आराधन करनेपर फल सुनिये कि वर्षावाले चार महीने जो पुरुष उन व्यापक विष्णु जी को पूजताहै ॥ ९२ ॥ व्रत में टिका हुआ वह मनुष्य वहां जाता है जहां कि वे विष्णुदेवजी भलीभांति टिके हैं और जो मनुज निश्चयकर सोते हुये कमलदललोचनवाले विष्णुजीको पूजताहै उसके बहुत दानदेने से क्याहै व यज्ञों, नियमों तथा व्रतों से क्याहै ॥ ९३ । ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां जलशाय्युत्पत्तिर्नामाष्टादशाधिक द्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । चौमासेमें जेहि नियम मिलत अहैं फल जोइ । दोसौ उन्नीसवें महँ कह्यो चरित सब सोइ ॥ ऋषि लोग बोले कि शंख, चक्र, गदा को धारनेवाले देवदेवेश (विष्णु) के सोनेपर जो और भी नियम या व्रतही करने योग्यहो ॥ १ ॥ व होम अथवा जप या दान होवै तुम उसको हमलोगों से कहो सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो !

महः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कश्चिद्ग्राह्योविजानता ॥ ३ ॥ नियमोवाजपोहोमः स्वाध्यायोव्रतमेववा ॥ कर्तव्यंब्राह्मण श्रेष्ठास्तुष्ट्यर्थंचक्रपाणिनः ॥ ४ ॥ चतुरोवार्षिकान्मासाञ्छाकभक्तेनयोनयेत् ॥ वासुदेवंसमुद्दिश्य सधनीजायते नरः ॥ ५ ॥ नक्षत्रैर्भोजनंकुर्य्यात्संप्रसुप्तेजनार्दने ॥ सधनीरूपसम्पन्नः सम्मतश्चप्रजायते ॥ ६ ॥ एकान्तरोपवासैश्चयो नयेद्द्विजसत्तमाः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सवैकुण्ठंसदावसेत् ॥ ७ ॥ षष्ठाह्नकालभोजीस्याद्यःप्रसुप्तेजनार्दने ॥ राजसू याश्वमेधाभ्यां सकृत्स्नंलभतेफलम् ॥ ८ ॥ त्रिरात्रोपोषितोयस्तु चातुर्मास्यंसदानयेत् ॥ नसभूयोत्रजायेत संसारे पिकथञ्चन ॥ ९ ॥ स्वापेव्रतपरोभूत्वा चतुर्मासांश्चयोनयेत् ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य सफलंलभतेनरः ॥ १० ॥ अया चितंचरेद्यस्तु प्रसुप्तेमधुसूदने ॥ नविच्छेदोभवेत्तस्य कदाचित्सहबन्धुभिः ॥ ११ ॥ तैलाभ्यङ्गंचयोजह्याद्घृताभ्यङ्गंवि शेषतः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सस्वर्गेभोगभाग्भवेत् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्य्येणयोमासांश्चतुरोहिनयेन्नरः ॥ विमानवरमा

गरुड़ध्वज विष्णु के सोनेपर जो कोई नियम होता है ॥ २ ॥ वह अमितफलदायक होवै है यह ब्रह्मा ने कहाहै इस लिये विशेषकर जाननेवाले पुरुषको सब उपाय से कोई नियम ग्रहण करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! चक्र हाथवाले विष्णु जीकी प्रसन्नताके लिये नियम या जप या होम व वेदपाठ अथवा व्रतहीको करना चाहिये ॥ ४ ॥ वर्षावाले चार महीने जो विष्णुजी को भलीभांति उद्देश कर शाक के भोजन से व्यतीत करताहै वह पुरुष धनी होताहै ॥ ५ ॥ और जो विष्णुजी के सोनेपर नक्षत्रों के उदय होने से भोजन करताहै वह धनी व रूप से संयुत व भलीभांति मानाहुआ होताहै ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष वर्षावाले चार महीने एक दिन अन्तरके उपासों से व्यतीत करताहै वह सदैव वैकुण्ठमें बसताहै ॥ ७ ॥ जब विष्णुजी सोतेहैं तब जो दिनके छठें भागमें भोजन करताहै वह राजसूय व अश्व-मेध के समस्त फलको पाताहै ॥ ८ ॥ व सदैव जो तीन रातों में उपास करताहुआ चौमासा व्यतीत करताहै वह इस संसार में भी फिर कभी नहीं पैदा होता है ॥ ९ ॥ व सोने में नियमतत्पर होकर जो चार महीने व्यतीत करता है वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है ॥ १० ॥ व मधु दैत्य के मारनेवाले विष्णु के सोनेपर जो बिन मांगे भोजन करताहै उसका भाइयोंके साथ कभी वियोग नहीं होता है ॥ ११ ॥ और जो वर्षावाले चार महीने भर तैलाभ्यंग व विशेषकर घृतका लगाना

त्याग करताहै वह स्वर्ग में भोगभागी होता है ॥ १२ ॥ और जो पुरुष ब्रह्मचर्य से चार महीने व्यतीत करताहै वह उत्तम विमान पै चढ़ाहुआ अपनी इच्छा से स्वर्ग को जाताहै ॥ १३ ॥ व चार महीने मदिरा मांस को छोडे हुये जो पुरुष तैल से रहित स्नान करताहै वह सदैव मुक्ति का भागी होताहै ॥ १४ ॥ जो श्रावण में शाक, भादों में दही तथा कुँवार में दूध व कातिक महीने में सदैव मांस वर्जितकरै ॥ १५ ॥ वह वर्षभर में किये हुये पातक से लिप्त नहीं होताहै हे द्विजोत्तमो ! इस विषय में स्वायम्भुवमनुने कहाहै ॥ १६ ॥ कि जब श्रावण महीना भलीभांति स्थित होताहै तब शाक में ब्रह्मा गमन करते हैं व भादों में विष्णु दही में व कुँवार में

रूढः सस्वर्गंस्वेच्छयाव्रजेत् ॥ १३ ॥ यःस्नानंचतुरोमासान्कुरुतेतैलवर्जितम् ॥ मधुमांसपरित्यागी सभवेन्मुक्तिभाक्सदा ॥ १४ ॥ वर्जयेच्छ्रावणेशाकंदधिभाद्रपदेतथा ॥ क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्त्तिकेचसदामिषम् ॥ १५ ॥ नसपापेन लिप्येत संवत्सरकृतेनतु ॥ एतस्मिन्हिद्विजश्रेष्ठाः मनुःस्वायम्भुवोब्रवीत् ॥ १६ ॥ शाकेसंक्रमतेब्रह्मा श्रावणेमासिसंस्थिते ॥ दधिनभाद्रपदेविष्णुः क्षीरेचाश्वयुजेहरः ॥ १७ ॥ प्राप्तेपिकार्त्तिकेमासि संक्रामतितथामिषम् ॥ तस्मादेतान्सदैतेषु सर्वथापरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥ यःकांस्यंवर्ज्जयेन्मर्त्यः प्रसुप्तेगरुडध्वजे ॥ सफलंप्राप्नुयात्कृत्स्नं वाजपेयत्रिरात्रयोः ॥ १९ ॥ अक्षारलवणाभ्यांच योनयेद्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ तस्यापिसफलाःपूर्ताः प्रभवन्तिसदाततः ॥ २० ॥ योहोमंचतुरोमासान्प्रकरोतितिलाक्षतैः ॥ स्वाहान्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैर्नसरोगेणयुज्यते ॥ २१ ॥ योजपेत्पौरुषंसूक्तं स्नात्वाविष्णोःस्थितोग्रतः ॥ मतिस्तस्यविवर्द्धेत शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ २२ ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्फलहस्तःप्रदक्षिणाम् ॥ करोति

महादेव दूध में ॥ १७ ॥ व कातिक महीने के प्राप्त होनेपर भी तीनों देव मांस में भलीभांति गमन करते हैं इसलिये सदैव इनमें इन वस्तुओंको सब प्रकारसे वर्जित करै ॥ १८ ॥ व विष्णुजी के सोनेपर जो मनुष्य कांसे के पात्र को वर्जित करताहै वह वाजपेय, त्रिरात्र के समस्त फलको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! खारवस्तु व लोन के विना जो चौमासा व्यतीत करताहै उस कारण उसके भी सदैव पूर्तकर्म सफल होते हैं ॥ २० ॥ व चार महीनों तक जो स्वाहा अन्तवाले वैष्णव मन्त्रों से तिल अक्षतों के द्वारा होम करताहै वह रोग से नहीं युक्त होता है ॥ २१ ॥ और स्नान करके विष्णु के आगे बैठा हुआ जो पुरुष पौरुष सूक्त को जपताहै उसकी

बुद्धि वैसीही बढ़ती है जैसे कि शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है ॥ २२ ॥ व फल हाथ में लेकर जो मौने व्रतसे विष्णुकी एकसौ आठ प्रदक्षिणायें करताहै वह पापसे नहीं
युक्त होता है ॥ २३ ॥ व जो पुरुष विशेष कर कातिक महीने में अपनी शक्तिसे द्विजेन्द्रों को मिष्टान्न देताहै वह अग्निष्टोम का फल पाताहै ॥ २४ ॥ जो पुरुष सदैव
वेदके पाठसे वर्षावाले चार महीने विष्णुका आराधन करता है वह सदैव विद्वान् होताहै ॥ २५ ॥ और जो सदैव विष्णुके मन्दिरमें नृत्य, गीतादिक करताहै स्वर्गमें
गयेहुये उस पुरुषके अगाड़ी वेश्यायें नाचती हैं ॥२६॥ हे ब्राह्मणो ! वर्षावाले चार महीने जो रात दिन नृत्यगीतादिक करताहै वह गन्धर्वताको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

विष्णोर्मौनेन नसपापेनलिप्यते ॥ २३ ॥ मिष्टान्नंब्राह्मणेन्द्राणां योददातिस्वशक्तितः ॥ विशेषात्कार्त्तिकेमासि सोग्नि
ष्टोमफलंलभेत् ॥ २४ ॥ यःस्वाध्यायेनवेदस्य विष्णोराराधनंसदा ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सविद्वान्सर्वदाभवेत् ॥
२५ ॥ नृत्यगीतादिकंयश्चकुर्य्याद्विष्णोस्सदागृहे ॥ अप्सरमस्तस्यनृत्यन्ति पुरतःस्वर्गतस्यच ॥ २६ ॥ यस्तुरात्रि
दिनंविप्रा नृत्यगीतादिकंचरेत् ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सगन्धर्वत्वमाप्नुयात् ॥ २७ ॥ एतेषुचनसर्वेषु शक्यन्तेयदि
भोद्विजाः ॥ कर्तुंचचतुरोमासानेकस्मिन्नपिकार्त्तिके ॥ २८ ॥ तथापिचप्रकर्तव्यालोकद्वयमभीप्सता ॥ कार्त्तिक्यांब्राह्म
णश्रेष्ठा वैष्णवैःपुरुषैरिह ॥ २९ ॥ कांस्यंमांसंक्षुरंक्षौद्रंपुनर्भोजनमैथुनम् ॥ कार्त्तिकेवर्ज्जयेद्यस्तु सम्पूर्णेब्राह्मणस्स
दा ॥ ३० ॥ पूर्वोक्तानाञ्चसर्वेषां नियमानांफलंलभेत् ॥ पूर्वोक्तनियमानाञ्च सयस्मात्फलभाग्भवेत् ॥ ३१ ॥ यद्यदि
ष्टतमंकिञ्चित्सुप्राप्यंचैवयद्भवेत् ॥ नियमस्तस्यकर्तव्यश्चातुर्मास्यफलार्थिभिः ॥ ३२ ॥ नियमेचकृतेदद्याद्ब्राह्म

हे द्विजो ! इन सबों के मध्य में चार महीनेतक यदि नियम करने के लिये न समर्थ होवै तौ भी एक कातिक में भी दोनों लोकों के चाहनेवाले पुरुष करके करना
चाहिये व हे द्विजश्रेष्ठो ! यहां वैष्णव पुरुषों को कार्त्तिकी में करना चाहिये ॥ २८। २९ ॥ और सदैव समस्त कातिक में जो ब्राह्मण कांस, मांस, क्षौर, शहद व फिर
भोजन तथा स्त्रीका संग वर्जित करै॥३०॥वह पहले कहे हुये समस्त नियमोंका फलपाताहै जिसकारण पहले कहेहुये नियमों का फलभागी होताहै ॥ ३१ ॥ उस लिये
जो जो अत्यन्त प्रिय व जो कुछ भलीभांति मिलने योग्य होवै चौमासेके फलको चाहनेवाले नरोंको उसका नियम करना चाहिये ॥ ३२ ॥ व नियम करने पर

जिसने नियम किया हो उसको अपनी शक्ति से ब्राह्मण के लिये वही देना चाहिये क्योंकि उसीसे फल होताहै ॥ ३३ ॥ व जो मनुष्य नियम व्रत या जपही के बिना चौमासे को व्यतीत करता है जीता हुआ भी वह मूर्ख मराही है ॥ ३४ ॥ जैसे काकयव और जैसे वन में उपजनेवाले तिल नाममात्रही से प्रसिद्ध कहे गये हैं वैसेही भूमि में वे मनुष्य हैं ॥ ३५ ॥ उसी कारण हे द्विजोत्तमो! कातिक में एक भी कोई अति छोटाभी नियम सब उपायसे करना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो! चौमासे में उपजे हुये इस व्रतों व नियमों के समस्त माहात्म्य को मैंने तुम लोगों से विस्तार से कहा ॥ ३७ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य नित्यही इसको

णायतद्देवहि ॥ नियमस्तुकृतोयेन स्वशक्त्यायत्फलंततः ॥ ३३ ॥ योविनानियमंमर्त्यो व्रतंवाजाप्यमेववा ॥ चातुर्मास्यंनयेन्मूर्खो जीवन्नपिमृतोहिसः ॥ ३४ ॥ यथाकाकयवाःप्रोक्ता यथारण्योद्भवास्तिलाः ॥ नाममात्रप्रसिद्धाश्च तथातेमानवाभुवि ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्योयत्नेनकार्त्तिके ॥ एकोपिनियमःकश्चित्सुसूक्ष्मोपिद्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंचातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ व्रतानांनियमानाञ्च माहात्म्यंविस्तराद्द्विजाः ॥ ३७॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापिसमाहितः ॥ चातुर्मास्यकृतात्पापात्सोपिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे चातुर्मास्यव्रतनियमकीर्त्तनंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१९ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ प्रभूतानित्वयोक्तानि व्रतानिनियमास्तथा ॥ प्रसुप्तेपुण्डरीकाक्षे येषांसंख्यानविद्यते ॥ १ ॥ अशक्त्याचशरीरस्य नियमानांविशेषतः ॥ ईश्वरैस्सुकुमाराङ्गैर्दानंचापिवदस्वनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अशक्तानि

सुनता या पढ़ताभी है वह भी चार महीनेमें कियेहुये पापसे मोक्षको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांचातुर्मास्यव्रतनियमकीर्तनंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भीष्मपंचकादिकनकर अहै जौन सुविधान । दोसौ अरु बीसवें महँ कह सो सूत सुजान ॥ ऋषि लोग बोले कि कमलदललोचनवाले विष्णुजी के सोनेपर तुमने बहुतसे व्रतों व नियमों को कहा कि जिनकी गिनती नहीं है ॥ १ ॥ सुकुमार अङ्गोंवाले समर्थ जनों को विशेष कर नियमों के करने के लिये शरीर की अशक्ति

के कारण दान को भी हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि जो सुकुमार नर नियम करने के लिये असमर्थ होवै उसको वह प्रसिद्ध भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सावधान होताहुआ पुरुष कातिक के शुक्लपक्ष में एकादशी को प्रातःकाल उठकर दतवन भक्षणकरै ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विष्णुमें परायण होताहुआ पुरुष पहले कहेहुये समस्त नियमों के मध्यमें उत्तम नियम करै ॥ ५ ॥ और उसदिन भक्तिसे उपास करना चाहिये व शरीरकी अशक्तिसे निज शक्तिके अनुकूल सुवर्णदेवै ॥ ६ ॥ और विष्णुके भक्त पुरुषोंको ब्राह्मणके लिये खीर पूरी देनाचाहिये इस प्रकार पांच दिनतक उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ७ ॥

यमंकर्तुं सुकुमारोभवेत्तुयः ॥ तेनतच्चप्रकर्तव्यं विख्यातंभीष्मपञ्चकम् ॥ ३ ॥ कार्त्तिकस्यसितेपक्ष एकादश्यांस माहितः ॥ प्रातरुत्थायविप्रेन्द्रा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ४ ॥ ततस्तुनियमंकुर्य्याद्वासुदेवपरायणः ॥ पूर्वोक्तानाञ्चसर्वे षान्नियमानांद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ उपवासःप्रकर्तव्यस्तस्मिन्नहनिभक्तितः ॥ अशक्त्याचशरीरस्य हेमदद्यात्स्व शक्तितः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणायहविष्यान्नं दातव्यंवैष्णवैर्नरैः ॥ एवंपञ्चदिनंयावत्कर्तव्यंव्रतमुत्तमम् ॥ ७ ॥ पूजनीयोवि शेषेण जलशायिस्वरूपधृक् ॥ गन्धैर्धूपैश्चनैवेद्यैरात्रिजागरणैरपि ॥ ८ ॥ षष्ठेह्निचततोजाते पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमा न् ॥ तांश्चवस्त्रैर्हिरण्येन मिष्टान्नेनप्रभक्तितः ॥ ९ ॥ ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ सर्वेमेनियमाःप्रा प्तायुष्माकंचप्रसादतः ॥ १० ॥ ततस्तैरपिवक्तव्यं चातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ व्रतानांनियमानाञ्च फलंभूयात्तवाखिल म् ॥ ११ ॥ ततोविसर्ज्यतान्विप्रान्भोजनंस्वयमाचरेत् ॥ सर्वाहारेणराजेन्द्र पञ्चगव्यप्रपूर्वकम् ॥ १२ ॥ यःकरोतिव्र

व विशेषकर जलशायी स्वरूप धारनेवाले विष्णुको चन्दन, धूप, नैवेद्य व रात्रिजागरणों से भी पूजना चाहिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर छठवां दिन प्राप्तहोने पर उन द्विजोत्तमों को वस्त्र सुवर्ण व मिष्टान्नसे बडी भक्तिके द्वारा पूजना चाहिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर जुडेहुये हाथोंवाला होकर द्विजोत्तमों से प्रार्थना करै कि तुमलोगोंकी प्रसन्नतासे मेरे समस्त नियम प्राप्त हैं ॥ १० ॥ तदनन्तर उनकोभी यह कहना चाहिये कि चौमासेसे उपजाहुआ व्रतों व नियमों का सम्पूर्ण फल तुमको होवै ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! उन ब्राह्मणों को बिदाकर पञ्चगव्यपूर्वक समस्त आहार से आप भोजन करै ॥ १२ ॥ जो व्रत करता है उसको बहुपूर्वकफल याने बहुतफल

होताहै व उपासमें तत्पर जो फिर इस भीष्मपंचक व्रतको करताहै उसको सौगुनाफल होताहै एकादशी मे चमेली के फूलोंसे विष्णुका पूजन करै ॥ १३ । १४ ॥ व
द्वादशी में बिल्वपत्र से तदनन्तर तेरसिमें शतावरि से व चौदसिमें भक्तिपूर्वक तुलसी से पूजनकरै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पौर्णमासीमें भंगरा के फूलसे व परेवाके
दिन समस्त पुष्पोंसे विष्णुको पूजना चाहिये ॥ १६ ॥ समस्त सिद्धियों के लिये परेवाके दिन गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत व कुशका जल यह सबकरै ॥ १७ ॥
और अगुरु, गुग्गुल, कपूर, तगर व तज एक २ धूप एकादशी आदि तिथियों में छोड़े व परेवाके दिन सबको छोड़ै ॥ १८ ॥ व इस मन्त्रसे अर्घदेवै कि शेषजी की

तंतस्य फलंस्याद्बहुपूर्वकम् ॥ यःपुनर्व्रतमेतद्धिकुरुतेभीष्मपञ्चकम् ॥ १३ ॥ उपवासपरस्तस्य फलंशतगुणंभवेत् ॥
एकादश्यांहरेःपूजांजातीपुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ १४ ॥ द्वादश्यांबिल्वपत्रेण शतपत्र्याततःपरम् ॥ त्रयोदश्यांचतुर्दश्यां तु
लस्याभक्तिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ भृङ्गराजेनपुष्पेण पूर्णमास्यांद्विजोत्तमाः ॥ प्रतिपद्दिवसेसर्वैः पूजनीयोजनार्दनः ॥ १६ ॥
गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ प्रतिपद्दिवसेसर्वमकरोत्सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥ अगुरुंगुग्गुलुंचैव कर्पूरंतगरं
त्वचा ॥ एकैकंनिर्वपेद्धूपं प्रतिपद्दिवसेखिलम् ॥ १८ ॥ जलशायीजगद्योनिः शेषपर्य्यङ्कमाश्रितः ॥ अर्घंगृह्णातुमेदेवो
भीष्मपञ्चकसिद्धये ॥ १९ ॥ मन्त्रेणानेनदातव्यो ह्यर्घोदेवस्यभक्तितः ॥ शङ्खतोयंसमादाय सपुष्पजलचन्दनैः ॥
२० ॥ नैवेद्यंपरमान्नञ्च स्वशक्त्यानिवेदयेद्द्विजाः ॥ एतद्वैसर्वमाख्यातं व्रतंवैभीष्मपञ्चकम् ॥ २१ ॥ ऋषयऊचुः ॥
यदेतद्भवताप्रोक्तमशून्यशयनव्रतम् ॥ इन्द्रेणयत्कृतंपूर्वं तुष्ट्यर्थंचक्रपाणिनः ॥ २२ ॥ प्रसुप्तस्यमहाभाग फलंचैवप्र

शय्यापै आश्रित व जगत् के उपजानेवाले जलशायी देव भीष्मपंचकव्रत की सिद्धिके लिये मेरा अर्घ ग्रहणकरैं ॥ १९ ॥ फूल, जल, चन्दन समेत शंखका जल ले
कर इस मन्त्रसे भक्तिके द्वारा देवको अर्घ देनाचाहिये ॥ २० ॥ व हे ब्राह्मणो ! अपनी शक्तिसे खीर पूरीकी नैवेद्य देवै यही सब भीष्मपंचकव्रत कहागयाहै ॥ २१ ॥
ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! आपने जो यह अशून्यशयननामक व्रत कहा व फल कहा कि जिसको पुरातन समय सोतेहुये चक्र हाथवाले विष्णुकी प्रसन्नताके

लिये इन्द्रने कियाहै वह किस समय तथा किस विधिसे करना चाहिये ॥ २२।२३॥ इस लिये हे महाभाग ! सूतजी ! विस्तार से विधानको कहिये सूतजी बोले कि सावनमें द्वितीया दिनके स्थितहोने पर दुइजके दिन ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णुदेवतावाले (श्रवण) नक्षत्रमें प्रातःकाल उठकर पापी व धर्म से छूटे हुये व म्लेच्छ से सम्भाषण न करै ॥ २५ ॥ तदनन्तर मध्याह्न समय में नहाकर पवित्रहो धोये वसन पहन जलशायी देवके समीप प्राप्तहोकर इस मन्त्रसे पूजन करै ॥ २६ ॥ कि हे श्रीवत्सके धारनेवाले, लक्ष्मीपते, लक्ष्मीगृह, लक्ष्मीकान्त, अविनाशिन् ! धर्म अर्थ कामनाओं की देनेवाली मेरी गृहस्थी मत नाशको प्राप्तहोवै ॥२७॥ व माता पिता

कीर्तितम् ॥ कस्मिन्कालेप्रकर्तव्यं केनैवविधिनातथा ॥ २३ ॥ तस्मात्सूतमहाभाग विधानंविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच॥ श्रावणेतुद्वितीयायां द्वितीयादिवसेस्थिते ॥ २४ ॥ प्रातरुत्थायविप्रेन्द्रानक्षत्रेविष्णुदैवते ॥ पापिष्ठपतितम्लेच्छैसम्भाषां नैवकारयेत् ॥ २५ ॥ ततोमध्याह्नसमये स्नात्वाधौताम्बरःशुचिः ॥ जलशायिनमासाद्य मन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ २६ ॥ श्रीवत्सधारिन्श्रीकान्त श्रीधामश्रीपतेऽव्यय ॥ गार्हस्थ्यंमाप्रणाशम्मे यातुधर्मार्थकामदम् ॥ २७ ॥ पितरौमाप्रणश्यतां माप्रणश्यन्तुचाग्नयः ॥ तथाकलत्रसम्बन्धो देवमामेप्रणश्यतु ॥ २८ ॥ लक्ष्म्यात्वशून्यशयनं यथातेदेवसर्वदा ॥ शय्याममाप्यशून्यातु तथाजन्मनिजन्मनि ॥ २९ ॥ एवमर्घंनिवेद्याथ ततोविप्रंप्रपूजयेत् ॥ यथाशक्त्याद्विजश्रेष्ठा वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ३० ॥ एवंभाद्रपदेमासि आश्विनेकार्त्तिकेतथा ॥ पूजयेच्चजगन्नाथं जलशायिनमच्युतम् ॥ ३१ ॥ अक्षारम्भोजनंकार्य्यं विशेषाल्लवणवर्जितम् ॥ समाप्तौचततोदद्याद्ब्राह्मणेन्द्रायभक्तितः ॥ ३२ ॥ य

मतनष्टहोवैं और अग्नियां न नाश होवैं वैसेही हे देव ! मेरा स्त्रियोंका सम्बन्ध मत नाशहोवै ॥ २८ ॥ हे देव ! जैसे सदैव तुम्हारी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं होतीहै वैसेही जन्म २ में मेरी भी शय्या शून्य न होवै ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार अर्घको निवेदन कर तदनन्तर ब्राह्मण को यथाशक्तिसे पूजनकरै व वित्तशाठ्य को वर्जितकरै ॥ ३० ॥ इस प्रकार भादौं, कुँवार तथा कातिक में जलशायी, अच्युत व जगदीश को पूजनकरै ॥ ३१ ॥ व बिन खारी तथा विशेषकर लोनरहित

भोजन करना चाहिये तदनन्तर समाप्तिमें भक्तिसे द्विजेन्द्रके लिये यव व शालीसे संयुत तथा वसन समेत शय्या व दक्षिणामें सोना देना चाहिये और वैसेही फलको प्राप्तहोता है ॥ ३२ । ३३ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष इस प्रकार भलीभांति इस व्रतको करताहै जलमें शयन करनेवाले व जगत्के गुरू विष्णुजी उसके ऊपर परमप्रसन्नता को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तमा ! जैसे इन्द्रके ऊपर प्रसन्न हुये हैं ऐसेही उस के ऊपर प्रसन्न होतेहैं व जन्म २ में उसकी शय्या शून्य नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ अज्ञान या ज्ञानसे भी आठ महीने में कियेहुये समस्त पातक को वह अशून्यशयननामक व्रत क्षणभर में नष्ट करता है ॥ ३६ ॥ पुत्रहीन जो स्त्री

वव्रीहिसमोपेतां शय्यांवस्त्रसमन्विताम् ॥ सुवर्णंदक्षिणायाञ्च तथैवचफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ एवंयःकुरुतेसम्यग्व्रतमेतत्समाहितः ॥ तस्यतुष्टिंपरांयाति जलशायीजगद्गुरुः ॥ ३४ ॥ यथाशक्रस्यसन्तुष्ट एवमेवद्विजोत्तमाः ॥ अशून्यं शयनंतस्य भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ३५ ॥ अष्टमासकृतंपापमज्ञानाज्ज्ञानतोपिवा ॥ अशून्यशयनंसर्वं व्रतंतन्नाशयेत्क्षणात् ॥ ३६ ॥ पुत्रहीनाचयानारी काकबन्ध्याचयाभवेत् ॥ विधवायाकरोत्येतद्व्रतमेवंसमाहिता ॥ ३७ ॥ तस्यास्तुष्टोजगन्नाथःसदाशुद्धिंप्रयच्छति ॥ नतस्याजायतेबुद्धिःकदाचित्पापसम्भवा ॥ ३८ ॥ कामेनोपहताबुद्धिः कथंचिन्नप्रजायते ॥ कुमारिकापियासम्यग्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सापतिंलभतेविप्राः कुलीनंरूपसंयुतम् ॥ निष्क्रयंकुरुतेयस्तु व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४० ॥ चातुर्मास्योद्भवानाञ्च नियमानांफलंलभेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेऽशून्यशयनव्रतवर्णनन्नामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ * ॥ * ॥

व काकबन्ध्या जो स्त्री होवै वह और जो विधवा स्त्री सावधान होती हुई इसभांति इस व्रतको करती है ॥ ३७ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये जगदीश जी सदैव शुद्धि को देते हैं और पापसे उपजीहुई उसकी बुद्धि कभी नहीं होती है ॥ ३८ ॥ और कामसे भी नाशित बुद्धि किसी प्रकार नहीं होतीहै और जो कन्याभी इस व्रतको भली भांति करतीहै ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह रूपसम्पन्न व कुलीन पतिको पाती है व सावधान होताहुआ जो पुरुष इस व्रतको निष्क्रय करताहै याने मोललेताहै ॥ ४० ॥ वह चौमासेसे उपजेहुये नियमों का फलपाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेऽशून्यशयनव्रतवर्णनंनामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

दो० । शिवरात्रि व्रतकी महा महिमा अमित अपार । दोसौ इकइसमें कह्यो सूत सुबुद्धिश्रगार ॥ ऋषि लोग बोले कि पहले उस क्षेत्र से उपजे हुये तीर्थ सुनेगये कि जिन में नहाया हुआ नर भलीभांति समस्त तीर्थों का फल पाताहै ॥ १ ॥ हे महाभाग ! उस क्षेत्रमें जो पुण्यदायक लिङ्ग हैं जिनके देखने से समस्त लिङ्गों के देखने का फल मिलताहै उनको हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि वहा अति उत्तम मङ्कणकनामक लिङ्ग है और वहां गौतमेश्वरसंयुत शुद्धेश्वर नामक हैं ॥ ३ ॥ व अन्य चौथा कपालेश्वर लिङ्ग कहा गयाहै एक २ लिङ्ग समस्त लिङ्गों का फल निस्सन्देह देता है ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो कि यथोक्त विधिसे यथोक्त

ऋषयऊचुः ॥ श्रुतानिमुख्यतीर्थानि तत्क्षेत्रात्प्रागभवानिच ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वतीर्थफलंलभेत् ॥ १ ॥ लिङ्गानिचमहाभाग तत्रपुण्यानियानिच ॥ यैर्दृष्टैर्लभ्यतेश्रेयस्सर्वेषांतानिनोवद ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रमङ्कणकाख्यन्तु लिङ्गमस्तिसुशोभनम् ॥ तत्रशुद्धेश्वरन्नाम गौतमेश्वरसंयुतम् ॥ ३ ॥ कपालेश्वरमन्यच्च चतुर्थंपरिकीर्तितम् ॥ एकैकंसर्वलिङ्गानां फलंयच्छत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ यथोक्तविधिनासम्यग्यथोक्तंद्विजसत्तमाः ॥ तत्रतावत्प्रवक्ष्यामि मङ्कणेश्वरजंफलम् ॥ ५ ॥ मकाराक्षरयुक्तस्य लिङ्गस्यात्रद्विजोत्तमाः ॥ शिवरात्रिंसमासाद्ययस्तस्यपुरतोद्विजाः ॥ ६ ॥ कुर्य्याज्जागरणंरात्रौ निराहारःस्थितश्शुचिः ॥ सर्वलिङ्गोद्भवंचैव फलंदर्शनसम्भवम् ॥ ७ ॥ जायतेनात्रसन्देहइत्युवाचहरस्स्वयम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ शिवरात्रिर्महाभागकस्मिन्कालेतुसाभवेत् ॥ ८ ॥ विधानंचैवमाहात्म्यं सर्वंनोवदविस्तरात् ॥ सूतउवाच ॥ माघस्यकृष्णपक्षेयातिथिश्चैवचतुर्दशी ॥९॥ तस्यरात्रिस्समाख्याताशिवरात्रिसमुद्भवा॥

होताहै उन लिङ्गों में तब तक मङ्कणकेश्वर से उपजा हुआ फल कहूंगा ॥ ५ ॥ जो कि हे द्विजोत्तमो ! यहां मकार अक्षर से युक्त लिंग है हे ब्राह्मणो ! शिवरात्रि को भलीभांति प्राप्तहोकर उस लिंग के आगे जो ॥ ६ ॥ पवित्र, निराहारी नर स्थित होकर रात में जागरण करताहै उसको समस्त लिंगों से उपजा हुआ फल होताहै इसमें सन्देह नहीं यह आपही शिवजीने कहा है ऋषि लोग बोले कि हे महाभाग ! वह शिवरात्रि किस समय होती है ॥ ७ । ८ ॥ विधि व समस्त माहात्म्य को हम लोगों से कहिये सूतजी बोले कि माघ के कृष्णपक्ष में जो चौदसि तिथिहै ॥ ९ ॥ उसकी रात्रि शिवरात्रि से उपजी हुई भलीभांति कही गई है उस रात में उससमय

समस्तलिंगोंमें शिवजी भलीभांति गमन करते हैं ॥ १० ॥ व समस्तपुण्यदायक लिंगों में जो मङ्कणेश्वरनामक लिंग है उसमें विशेषकर शिवजी जाते हैं ऋषि लोग बोले कि शिवरात्रि कैसे पैदाहुई व किसने इसको बनाया है ॥ ११ ॥ व किसकारण बहुतफलवाली हुई है यह सब हमलोगों से विस्तारपूर्वक कहिये सूतजी बोले कि इस विषयमें तुमलोगों से पहले वृत्तान्तवाली कथा को कहूंगा ॥ १२ ॥ जो कि अश्वसेन भूपति का भर्तृयज्ञसे संवाद हुआ है पुरातनसमय अश्वसेन ऐसा कहा हुआ आनर्तदेश का स्वामी हुआहै ॥ १३ ॥ जो कि नित्यही धर्म में तत्पर व वेद वेदांगों का पारगामी था पुरातनसमय उसने दिन दिन बढ़तेहुये

तस्यांसर्वेषुलिङ्गेषुतदासंक्रमतेहरः ॥ १० ॥ विशेषात्सर्वपुण्येषुख्यातोयोमङ्कणेश्वरः ॥ ऋषयऊचुः ॥ शिवरात्रिःकथंजाताकेनैषाचविनिर्मिता ॥ ११ ॥ कस्माद्बहुफलाजातासर्वंनोविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामिपूर्ववृत्तंकथानकम् ॥ १२ ॥ भर्तृयज्ञस्यसंवादमश्वसेनस्यभूपतेः ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमश्वसेनइतिस्मृतः ॥ १३ ॥ आसीद्धर्म्मपरोनित्यंवेदवेदाङ्गपारगः ॥ भर्तृयज्ञःपुरातेनइदंपृष्टःकुतूहलात् ॥ १४ ॥ कलिकालंसमुद्वीक्ष्यवर्द्धमानंदिनेदिने ॥ अश्वसेनउवाच ॥ कलिकालेव्रतंकिञ्चिद्वर्ततेवदसन्मुने ॥ १५ ॥ स्वल्पायासंमहत्पुण्यंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ स्वल्पायुषस्सदामर्त्याब्रह्मन्कृतयुगेपुरा ॥ १६ ॥ त्रेतायांद्वापरेचैवकिमुप्राप्तेकलौयुगे ॥ तस्माद्वर्षव्रतंत्यक्त्वाकिञ्चिदेकाह्निकंवद ॥ १७ ॥ श्वःकार्य्यमद्यकुर्वीतपूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ॥ नहिप्रतीक्ष्यतेमृत्युःकृतंवास्यनवाकृतम् ॥ १८ ॥ तस्य

कलिकाल को देखकर कौतुकके द्वारा भर्तृयज्ञ से पूंछा अश्वसेन बोले कि हे सन्मुने ! कलिकाल में कुछ व्रत वर्तमान हो उसको कहो ॥ १४ । १५ ॥ जो व्रत थोड़े परिश्रमवाला व बड़ीपुण्यवाला व समस्तपातकों का नाशक होवै हे ब्रह्मन् ! पुरातनसमय सतयुग में सदैव थोड़ी आयुर्बलवाले होते हैं ॥ १६ ॥ और त्रेता,द्वापर में भी थोड़ी आयुवाले मनुष्य होते हैं फिर कलियुग प्राप्त होनेपर क्या कहना है उसी कारण वर्षभरका व्रत छोड़कर किसी दिनभरवाले व्रत को कहिये ॥ १७ ॥ आगामी दूसरे दिनवाला कार्य आज करै व उस पहरवाला कार्य पहले पहर करै क्योंकि इसके किये व न कियेहुये कार्य को मृत्यु नहीं देखती है ॥ १८ ॥ उनके

उस वचन को सुनकर उदारबुद्धिवाले भर्तृयज्ञ बड़ी देरतक ध्यानकर व दिव्यदृष्टि से जानकर बोले ॥ १६ ॥ कि हे राजन् ! शिवरात्रि ऐसा कहा हुआ पुण्यदायक व्रतहै उससे पुत्रहीन पुरुष पुत्रको पाताहै निर्धनी धनको पाताहै ॥ २० ॥ व थोड़ीआयुवाला बड़ी आयुर्बल पाताहै व शत्रुवों का संहार होताहै जिस जिस कामनाको ध्यान करता हुआ मनुष्य इस व्रत को करता है ॥ २१ ॥ उस उस मनोरथ को भलीभांति प्राप्त होताहै व बिनकामनावाला पुरुष मोक्ष को पाताहै तथा वर्षभर में कियेहुये पाप से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ यदि कृपणचित्त से भी जागरण करताहै तो पूर्वोक्त सब फल होताहै यहां जो जो चल, अचल लिंग

तद्वचनंश्रुत्वाभर्तृयज्ञउदारधीः ॥ अब्रवीत्सुचिरंध्यात्वाज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ १९ ॥ अस्तिराजन्व्रतंपुण्यंशिवरात्री तिकीर्तितम् ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान्निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ २० ॥ स्वल्पायुःदीर्घमायुष्यंशत्रूणाञ्चैवसंक्षयम् ॥ यंयंकामम भिध्यायन्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ २१ ॥ तंतंसमाप्नुयान्मर्त्योनिष्कामोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ तथावर्षकृतात्पापान्मुच्य तेनात्रसंशयः ॥ २२ ॥ कृपणेनापिचित्तेनयदिकुर्य्यात्प्रजागरम् ॥ यानियान्यत्रलिङ्गानिस्थावराणिचराणिच ॥ २३ ॥ तेषुसंक्रमतेदेवस्तस्यांरात्रौयतोहरः ॥ शिवरात्रिस्ततःप्रोक्तातेनसाहरवल्लभा ॥ २४ ॥ प्रार्थितस्ससुरैस्सर्वैर्लोकानुग्रहका म्यया ॥ भगवन्कलिकालेस्मिन्सर्वपापसमन्विते ॥ २५ ॥ वर्षपापविशुद्ध्यर्थंदिनमेकंक्षितौवद ॥ येनत्वत्पूजयापूज्य मर्त्याःशुद्धिमवाप्नुयुः ॥ २६ ॥ ततोदत्तंहुतन्तेषामस्माकमुपतिष्ठतु ॥ यदुच्छिष्टैर्नरैर्दत्तन्तद्वृथाजायतेखिलम् ॥ २७ ॥ कलिकालेनचास्माकङ्किञ्चिदेवोपतिष्ठति ॥ अशुद्धैर्मानवैर्दत्तम्प्रभूतमपिशङ्कर ॥ २८ ॥ भगवानुवाच ॥ माघमासस्य

हैं ॥ २३ ॥ उन में जिसलिये उस रात्रि को शिवदेव भलीभांति गमन करते हैं उसीकारण शिवरात्रि कहीगई है उससे वह शिवप्रिया है ॥ २४ ॥ मनुष्यों के ऊपर दयाकी कामनासे समस्तदेवताओं ने उन शिवजी से प्रार्थना किया कि हे भगवन् ! समस्तपातकोंसे संयुत इस कलिकाल में ॥ २५ ॥ वर्षभरके पापकी शुद्धि के लिये पृथ्वीमें एक दिनको कहिये कि जिस से हे पूजनीय ! तुम्हारे पूजन से मनुष्य पवित्रताको प्राप्त होवैं ॥ २६ ॥ उसीकारण उनका हवन व दान हमलोगों के समीप प्राप्त होवै क्योंकि उच्छिष्ट नरोंसे जो दियाजाता है वह सम्पूर्ण वृथा होजाताहै ॥ २७ ॥ हे शङ्करजी ! कलिकाल में अपवित्र पुरुषों से बहुत भी दिया हुआ

कुछहीं नहीं हमलोगों के समीप प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ शिव भगवान् बोले कि हेसुरनायको ! कलियुग में माघमहीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि में मैं दिनमें नहीं किन्तु रात में भूतल को जाऊंगा ॥ २९ ॥ व सालभर की विशेषकर पवित्रताके लिये निरसन्देह समस्त चल, अचल लिंगों में मैं भलीभांति गमन करूंगा ॥ ३० ॥ हे सुरोत्तमो ! उसरात में जो मनुष्य इन मन्त्रों से मेरा पूजन करैगा वह बिनपापवाला भलीभांति होगा ॥ ३१ ॥ ॐ सद्योजाताय नमः, ॐ वामदेवाय नमः ॐ मघोराय नमः, ॐ मीशानाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमःइन मन्त्रोंसे चन्दन, फूल व अनुलेपनों, धूपों, दीपों व नैवेद्यों से मुखों को भली-

कृष्णायांचतुर्दश्यांसुरेश्वराः ॥ अहंयास्यामिभूपृष्ठेरात्रौनैवदिवाकलौ ॥ २९ ॥ लिङ्गेषुचसमस्तेषुचलेषुस्थावरेषुच ॥ संक्रमिष्याम्यसंदिग्धंवर्षपापविशुद्धये ॥ ३० ॥ तस्यांरात्रौहिमेपूजांयःकरिष्यतिमानवः ॥ मन्त्रैरेतैस्सुरश्रेष्ठाविपाप्मा संभविष्यति ॥ ३१ ॥ ॐसद्योजातायनमः ॐवामदेवायनमः ॐमघोरायनमः ॐमीशानायनमः ॐतत्पुरुषायनमः एवंवक्राणिसम्पूज्यगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैस्ततोर्घःसम्प्रदीयते ॥ ३२ ॥ मन्त्रेणानेनसम्पूज्यमान्ध्या त्वामनसिस्थितम् ॥ गौरीवल्लभदेवेशसर्पाढ्यशशिशेखर ॥ ३३ ॥ वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घोमेगृह्यतान्ततः ॥ सम्पूजयेत्त थाविप्रंभोजनाच्छादनादिभिः ॥ ३४ ॥ दद्याच्चदक्षिणान्तस्मैवित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ धर्माख्यानकथाभिश्चशाला स्थैश्शाम्भवैस्तथा ॥ ३५ ॥ एवंकरिष्यतेयोत्रव्रतमेतत्सुरेश्वराः ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थंप्रायश्चित्तम्भविष्यति ॥ ३६ ॥ त च्छ्रुत्वात्रिदशास्सर्वेप्रणम्यशशिशेखरम् ॥ संप्रहृष्टानरश्रेष्ठस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ ३७ ॥ प्रेषयामासुरुर्व्यांश्चनार

भांति पूजकर तदनन्तर अर्घ दियाजाता है ॥ ३२ ॥ मन में टिकेहुये मुझको ध्यान कर व इस मन्त्रसे भलीभांति पूजकर कि हे पार्वतीप्रिय, सुरेश, सर्पसंयुत, शशिशेखर ! ॥ ३३ ॥ सालभर के पापकी विशुद्धि के लिये मेरा अर्घ ग्रहण कीजिये तदनन्तर भोजन, वसनादिकों से ब्राह्मणका भलीभानि पूजन करै ॥ ३४ ॥ व उस के लिये दक्षिणाको देवै और शठताका धन वर्जितकरै व धर्माख्यान की कथाओं व मन्दिर में थापेहुये शिवजी के दर्शनोंसे रात्रिको जागरणकरै ॥ ३५ ॥ हे सुरेश्वरो ! यहां इसप्रकार जो इस व्रतको करता है उसका सब पापों की विशेषकर पवित्रता के लिये प्रायश्चित्त होगा ॥ ३६ ॥ हे नरोत्तमजी उसवचन को सुनकर

प्रसन्नहोते हुये समस्तदेवता चन्द्रभालजी को प्रणाम कर अपने स्थानों को चलेगये ॥ ३७ ॥ व सदैव शिवरात्रि के लिये मनुष्यों को समझाने के लिये पृथ्वी में मुनिश्रेष्ठ नारदजी को पठाया ॥ ३८ ॥ उनने भी भूतल में जाकर शिवरात्रि के उस माहात्म्य को सब ओरसे सुनाया जोकि त्रिशूलहाथवाले शिवजीने कहाथा ॥ ३९ ॥ तबसे लगाकर भूतल में शिवरात्रि भलीभांति हुई है जोकि सबकुछदेनेवाली व समस्तपुण्यमयी व सबपातकोंकी विनाशनेवाली है ॥ ४० ॥ इसी विषय में पुरातन समय के चरितवाले कथानक को कहूंगा जोकि यहां नैमिषारण्य में किसी बहेलिया का हुआहै ॥ ४१ ॥ वहां अत्यन्त कुकर्म के व्यसन (शौक) से तिरस्कृत

दंमुनिसत्तमम् ॥ प्रबोधनायलोकानांशिवरात्रिकृतेसदा ॥ ३८ ॥ सोपिगत्वाधरापृष्ठंश्रावयामाससर्वतः ॥ शिवरात्रेस्तु माहात्म्यंयदुक्तंशूलपाणिना ॥ ३९ ॥ ततःप्रभृतिसंजाताशिवरात्रिर्धरातले॥सर्वप्रदासर्वपुण्यासर्वपातकनाशिनी॥४०॥ अत्रैवकीर्तयिष्यामिपुरावृत्तंकथानकम्॥ यद्वृत्तंनैमिषारण्येलुब्धकस्यात्रकस्यचित् ॥ ४१ ॥ तत्रासील्लुब्धकःकश्चिदतिमात्रादकर्म्मतः॥व्यसनेनाभिभूतात्मापरवित्तापहारकः॥ ४२ ॥ नकदाचिद्व्रतन्तेननदत्तंनजपंकृतम् ॥ केवलञ्चहृतं वित्तंलोकानांछलसंश्रयात् ॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यशिवरात्रिस्समागता ॥ माघमास्यसितेपक्षेसर्वपातकनाशिनी ॥ ४४ ॥ तत्रास्त्यायतनंपुण्यंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ तत्रजागरणंरात्रौप्रारब्धंबहुभिर्जनैः ॥ ४५ ॥ नारीभिर्नरशार्दूलभूषिताभिस्सुभूषणैः ॥ अथासौचिन्तयामासचौरोदृष्ट्वाथजागरम् ॥ ४६ ॥ गच्छामियदिकाचित्स्त्रीभूषणैःपरिभूषि

मन या चित्तवाला व परायेधनका हरनेवाला कोईबहेलिया हुआहै ॥ ४२ ॥ कभी उसने न व्रतकिया न दानदिया और न जपकिया केवल कपटकेआश्रयसे मनुष्यों की द्रव्यहरा था ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय माघमहीने के कृष्णपक्ष में समस्तपातकों के नाशनेवाली शिवरात्रि भलीभांति आई ॥ ४४ ॥ वहां देवदेव त्रिशूलधारी का पुण्यदायक मन्दिर है वहां रात्रिमें बहुत जनोंने जागरण प्रारम्भ किया ॥ ४५ ॥ व हे नरपुंगव ! उत्तम भूषणोंसे भूषित स्त्रियोंने रात्रिजागरण प्रारम्भ किया इसके अनन्तर इस चोरने जागरण देखकर चिन्तवन किया ॥४६॥ किमैं जाऊं यदि भूषणों से भुषित कोई स्त्री बाहरसे इस मन्दिर को आवै तो मैं पाऊं

गा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर मारकर व भूषणों को भलीभांति लेकर मैं जाऊंगा ऐसा मन से निश्चय कर उनके समीप गया ॥ ४८ ॥ और कर्णिकारके वृक्षपै चढ़कर छिपा व नारियों के निकलने से उत्पन्न हुई समस्तदिशाओंको देखताहुआ वह यहा स्थित हुआ ॥ ४९ ॥ चोरीकर्ममें वर्तमान व जाड़ेसे विकल तथा निद्राकी हानिसे बैठे हुये उस बहेलियाकीरात बीत गई परन्तु कोई स्त्री नहीं निकली ॥ ५० ॥ तदनन्तर उसके नीचे शिवजीसे उपजा हुआ लिंग भया और उसने जाकर पत्तोंको लेकर उससमय उसलिंगके ऊपर फेंकदिया ॥ ५१ ॥ इसी अवसर में स्त्रियों, चोरों व कामियों को दुःखदायक सूर्य्यनारायणजी उदय हुये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर स्तुतियों में

ता ॥ बाह्यतश्चास्यचायातिप्रासादस्याप्नुयाम्यहम् ॥ ४७ ॥ ततोहत्वासमादायभूषणानिव्रजाम्यहम् ॥ एवंनिश्चित्यमनसागतस्तस्यसमीपतः ॥ ४८ ॥ कर्णिकारंसमारुह्यस्थितोगुप्तोहिसोत्रच ॥ वीक्षमाणोदिशस्सर्वानारीनिष्क्रमणोद्भवाः ॥ ४९ ॥ चौरकर्मप्रवृत्तस्यशीतार्तस्यनिवेशतः ॥ रजनीनिद्रयाहान्यानचनारीविनिर्गता ॥ ५० ॥ तस्याधस्तात्ततोलिङ्गमभवत्तुभवोद्भवम् ॥ गत्वाचपत्राण्यादायप्रचिक्षेपतदोपरि ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुप्रोद्गतस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ नितम्बिनीनांचौराणांकामिनामसुखावहः ॥ ५२ ॥ ततोनराश्चनार्य्यश्चजग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ उपचारपराभूत्वाप्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ ५३ ॥ सोपिचौरोनिराशश्चक्षुत्क्षामःशीतविह्वलः ॥ अवतीर्य्यद्रुमात्तस्मादपथंकञ्चिदाश्रितः ॥ ५४ ॥ ततःकालेनमहतापञ्चत्वंसमपद्यत ॥ जातोजातिस्मरस्सोथदशार्णाधिपतेर्गृहम् ॥ ५५ ॥ उपवासप्रभावेणजलादपिप्रजागरात् ॥ शिवरात्रौतथातस्यलिङ्गस्यापिप्रपूजया ॥ ५६ ॥ ततोराज्यंसमासाद्यपितृपैतामहंमहत् ॥

परायणहोकर व महादेव को प्रणामकर नर नारियां निजनिवासस्थान को गईं ॥ ५३ ॥ व क्षुधासे दुबला तथा जाड़ेसे विकल वह चोरभी निराशहो उस वृक्षसे उतरकर किसी कुमार्ग को चलागया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बहुतसमय से मृत्युको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जलसे भी उपास के प्रभावसे व शिवरात्रि में जागरणसे तथा उसलिंगके पूजन से जातिका स्मरणकरनेवाला वह दशार्णदेशके स्वामी के घर में पैदाहुआ ॥ ५५ । ५६ ॥ तदनन्तर पिता, पितामहवाली बड़ीभारी राज्यको पाकर

वहां शिवजी के लिंगका उत्तम मन्दिर निर्माणकराया ॥ ५७ ॥ व प्रतिवर्षमें भलीभांति आकर शिवरात्रि में जागरणसे उपास में तत्पर होकर गाने, बजाने की ध्वनियों से ॥ ५८ ॥ व धर्माख्यानकी कथाओं व गानके शब्दों ही से पहलेकहेहुये मन्त्रों के द्वारा भलीभांति पूजनकर व विधिसे अर्घको देकर ॥ ५९ ॥ और कामनाओंसे ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर अपने स्थानको जाताथा इसके अनन्तर किसी समय शिवरात्र में शिवजीके मन्दिर में संकल्पपूर्वक सातमुनि प्राप्तहुये शांकृति, भरद्वाज, यवक्रीत, गालव ॥ ६० । ६१ ॥ पुलस्त्य, पुलह, गार्ग्य तथा और बहुत नृपति आये और दशार्णनामक का पुत्र वह राजा बृहत्सेन भी ॥ ६२ ॥ उस

कारयामासलिङ्गस्यप्रासादंतत्रशोभनम् ॥ ५७ ॥ वर्षंवर्षंसमाश्रित्य शिवरात्रिप्रजागरात् ॥ उपवासपरोभूत्वागीतवादित्रनिस्वनैः ॥५८॥ धर्माख्यानकथामिश्रगीतध्वनिभिरेवच ॥ पूर्वोक्तमन्त्रैस्सम्पूज्यअर्घंदत्त्वाविधानतः ॥५९॥ सन्तर्प्यब्राह्मणान्कामैर्जगामनिलयंनिजम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यशिवरात्रौसमागताः ॥ ६० ॥ प्रासादेसप्तमुनयः प्राप्तास्सङ्कल्पपूर्वकाः ॥ शांकृत्योथभरद्वाजोयवक्रीतोथगालवः ॥ ६१ ॥ पुलस्त्यःपुलहोगार्ग्यस्तथान्येबहवोनृपाः ॥ सोपि राजाबृहत्सेनोदशार्णाधिपतेःसुतः ॥ ६२ ॥ संप्राप्तोजागरंकर्तुंतस्यलिङ्गस्यचाग्रतः ॥ पूजयित्वाततोदेवंप्रणिपत्यमुनीश्वरान् ॥ ६३ ॥ उपविष्टस्तस्यचाग्रेह्यनुज्ञातोद्विजोत्तमैः ॥ ततस्तस्याग्रतश्चक्रुःकथास्तेबहुधानृपाः ॥६४॥ राजर्षीणामतीतानांब्रह्मर्षीणांविशेषतः ॥ अथकस्मिन्कथान्तेसतैःपृष्टोब्रह्मवादिभिः ॥ ६५ ॥ कौतुकाविष्टचित्तैश्चविस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ राजन्पृच्छामहेसर्वेवयंकौतूहलान्विताः ॥ ६६ ॥ यदिब्रवीषिनःसत्यंदेवतायतनेस्थितः ॥ राजोवाच ॥ य

लिंगके आगे जागरण करने के लिये प्राप्त हुआ तदनन्तर शिवदेव को पूजकर मुनिनायकों को प्रणामकर ॥ ६३ ॥ द्विजोत्तमोंसे आज्ञा पायाहुआ वह उस लिंगके आगे समीप बैठगया तदनन्तर उन राजाओं ने बीतेहुये राजर्षियों व विशेषकर ब्रह्मर्षियों की कथाओं को उसके आगे कथनकिया इसके अनन्तर किसी कथाके अन्त में आश्चर्यसंयुतचित्तवाले व विस्मयसे फूलेलोचनोंवाले उन ब्रह्मवादी महर्षियों ने उस राजासे पूंछा कि हे राजन्! देवमन्दिर में बैठेहुये तुम यदि हमलोगों

से सत्यकहो तो कौतुक से संयुत हमलोग सब पूंछें राजा बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! यदि मैं जानूंगा तो निस्सन्देह कहूंगा ॥ ६४ । ६५ । ६६ ६७ ॥ देवताके आगे भलीभांति बैठाहुआ मैं सत्यसे अपनी सौगन्द करता हूं ऋषिलोग बोले कि अनेकों बड़े दानोंको छोड़कर किसलिये ॥६८॥ जागरण करनेकी इच्छाकरनेवाले तुम सदैव प्रतिवर्षमें अपने देशसे यहां आतेहो इस लिये हे राजन् ! तुम निश्चयकर कारण को जानते हो ॥६९॥ हे नरनायक ! यदि तुमसे छिपा न हो तो कहिये सूतजी बोले कि उदासीन मनवाले उसने देखकरके मुसकरा कर तदनन्तर कहा ॥ ७० ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! यह परमगुप्त व न कहने योग्य है तिसपर भी कहूंगा क्योंकि देव-

दिज्ञास्यामिविप्रेन्द्राःकथयिष्याम्यसंशयम् ॥ ६७ ॥ देवस्याग्रेचसंविष्टःसत्येनात्मानमालभे ॥ ऋषयऊचुः ॥ पुष्कलानिपरित्यज्यकस्माद्दानान्यनेकशः ॥ ६८ ॥ जागरङ्कर्तुकामोत्रस्वदेशादुपतिष्ठसि ॥ वर्षेवर्षेसदाराजन्नूनंत्वंवेत्सिकारणम् ॥ ६९ ॥ रहस्यंयदितेनस्यात्तद्ब्रूहिनराधिप ॥ सूतउवाच ॥ सविलक्ष्यस्मितंकृत्वाततःप्राहसुदुर्मनाः॥७०॥रहस्यंपरमंह्येतदवाच्यंहिद्विजोत्तमाः ॥ तथापिचवदिष्यामिपृष्टोदेवाग्रतोयतः ॥ ७१ ॥ ततःसकथयामासपूर्वदेहसमुद्भवम् ॥ वृत्तंमलिम्लुचोनूनंशिवरात्रिसमुद्भवम् ॥ ७२ ॥ चौर्य्यभावेनदेवस्यपूजनंजागरस्तथा ॥ उपवासंविनातेनशिवरात्रौपुराकृतम् ॥ ७३॥ जातिस्मरणसंयुक्तंजन्मजातंयथातथम् ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वेसाधुवादान्पृथग्विधान् ॥ ७४ ॥ नृपोत्तमस्यराजर्षेर्दत्त्वाशीर्भिःसमन्वितान् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वाप्रजग्मुस्तेनिजालयम् ॥ ७५ ॥ ससमभ्यर्च्यतन्देवंतान्प्रणम्यद्विजोत्तमान् ॥ जगामस्वपुरंपश्चात्कृत्वारात्रौप्रजागरम् ॥ ७६ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ शिवरात्रिस्समुत्पन्नाइयंभू

ताके आगे पूंछागया हूं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उस चोरने पहले देह में उत्पन्न व शिवरात्रि से उपजे हुये चरितको निश्चय कर कहा ॥ ७२ ॥ कि पुरातन समय चोरीके स्वभाव से शिवरात में उपास विना शिवदेवका पूजन व जागरण कियागया उस से ॥ ७३ ॥ यथायोग्य जातिके स्मरण से युक्त जन्म हुआ है तदनन्तर वे सब मुनि लोग उस नृपोत्तम राजर्षि को आशीर्वादों से संयुत अनेक प्रकार के प्रशंसित वादोंको देकर व रात्रिमें जागरण कर अपने स्थानको चलेगये ॥ ७४ । ७५ ॥ व उस नृपति ने उन शिवदेव को भलीभांति पूजकर तथा उन द्विजोत्तमों को प्रणामकर पश्चात् रात्रिमें जागरण कर पश्चात् निज नगरको गमन किया ॥ ७६ ॥ भर्तृयज्ञ

बोले कि हे राजन् ! भूतल में यह शिवरात्रि भलीभांति उत्पन्नहुई और इस प्रकार का माहात्म्य तुम्हारे आगे कहागया ॥ ७७ ॥ इस लिये हे नृपश्रेष्ठ ! जो अपना ऐश्वर्य चाहै उसको सब उपायसे कलिकाल में विशेष कर वह शिवरात्रि करना चाहिये ॥ ७८ ॥ क्योंकि शिबि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, युयुत्सु तथा श्रद्धामे संयुत अन्य मनुष्यों ने विशेषकर भलीभांति शिवरात्रि किया है और हृदयमें प्राप्त जो देवताओंवाले व मनुष्योंवाले मनोरथ हैं उनको पाया है ॥ ७९ । ८० ॥ वैसेही सावित्री, लक्ष्मी व सीतादेवी, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती तथा मेनका ने ॥८१॥ व हे नृपोत्तम ! इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य

भितलेनृप ॥ एवंविधञ्चमाहात्म्यंतवाग्रेपरिकीर्तितम् ॥ ७७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्य्यासानृपसत्तम ॥ कलिकालेविशे
षेणयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ७८ ॥ एषाकृताचशिबिनानलेननहुषेणच ॥ मान्धात्राधुन्धुमारेणसगरेणयुयुत्सुना॥७९॥
तथान्यैश्चविशेषेणसम्यक्श्रद्धासमन्वितैः॥प्राप्ताश्चहृद्गताःकामायेदिव्यायेचमानवाः॥८०॥ तथाचैवतुसावित्र्याश्रिया
देव्यातुसीतया॥अरुन्धत्यासरस्वत्यापार्वत्यामेनयातथा ॥८१॥इन्द्राण्याचदृषद्वत्यास्वधयास्वाहयातथा॥रत्याप्रीत्या
चगायत्र्यातथान्याभिर्नृपोत्तम ॥ ८२ ॥ सर्वाःप्राप्ताःप्रियान्कामानतिसौभाग्यसंयुताः ॥ यश्चैतांशृणुतेभक्त्या भा
वेनशिवसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दिनजातपातकात्सोत्रमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ नास्तिगङ्गासमन्तीर्थंनास्तिदेवोहरोपमः॥८४॥
शिवरात्रेःपरंनास्तितपःसत्यंमयोदितम्॥ सर्वरत्नमयोमेरुस्सर्वाश्चर्य्यमयंनभः ॥८५॥ सर्वधर्ममयीराजञ्छिवरात्रिःप्र
कीर्तिता॥गरुडःपक्षिणांयद्वन्नदीनांसागरोयथा॥८६॥प्रधानासर्वधर्म्माणांशिवरात्रिस्तथोत्तमा ॥८७॥ इत्यध्यायः२२१

सुरस्त्रियों ने शिवरात्रि का व्रत कियाहै ॥ ८२ ॥ व अतिसौभाग्य से संयुत सबोंने प्यारे मनोरथों को पायाहै जो पुरुष शिवजी के समीप भक्तिभाव से इस शिवरात्रि को सुनता है ॥ ८३ ॥ वह यहां दिनमें उपजेहुये पातक से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै गंगाके समान तीर्थ नहीं है व महादेव के बराबर देवता नहींहै ॥ ८४ ॥ व शिवरात्रिसे श्रेष्ठ तप नहीहै यह मैंने सत्य कहाहै समस्त रत्नमयी सुमेरुगिरिहै व सब आश्चर्यमय आकाशहै॥८५॥हे राजन् ! समस्त धर्ममयी शिवरात्रि कहीगईहै जैसे पक्षियोंमें गरुड़ व जैसे नदियोंमें समुद्रहै॥८६॥वैसेही उत्तम शिवरात्रि समस्त धर्मोंमें मुख्यहै ॥८७॥ इति शिवरात्रिमाहात्म्यंनामैकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२१॥

दो० । जेहि प्रकारसों होतहै तुलापुरुष का दान । दोसौबाइस मे सोई कह्यो सूत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि हे महाराज ! इस लिये इस संसार में दोनों लोकों को चाहनेवाले पुरुषको विशेषकर प्राप्तहुई इस शिवरात्रिको करना चाहिये ॥ १ ॥ आनर्त बोला कि तुमने जो कहा मैंने शिवरात्रि संयुत उस मङ्कणकेश्वर का माहात्म्य विस्तार से सुना ॥ २ ॥ हे महाभाग ! इस समय सिद्धेश्वरसे उपजेहुये समस्त माहात्म्यको मुझसे विस्तार से कहिये क्योंकि मुझको बड़ा कौतुकहै ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि-हे भूपते ! सिद्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध महादेवजीहैं तुमने पहले कहतेहुये मुझसे उनकी उत्पत्तिको सुना है ॥ ४ ॥ इस समय उनके देखनेपर चक्रवर्त्तित्व से उपजा

सूतउवाच ॥ तस्मादेषामहाराज शिवरात्रिर्व्यवस्थिता ॥ कर्तव्यापुरुषेणात्रलोकद्वयमभीप्सुना ॥ १ ॥ आनर्त उवाच ॥ मङ्कणेश्वरमाहात्म्यंमयाविस्तरतःश्रुतम् ॥ शिवरात्रिसमोपेतंयत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ २ ॥ साम्प्रतंवदमे कृत्स्नंसिद्धेश्वरसमुद्भवम् ॥ विस्तरेणमहाभागपरंकौतूहलंहिमे ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सिद्धेश्वरइतिख्यातोमहादेवोमहीपते ॥ तस्योत्पत्तिस्त्वयापूर्वंश्रुतातुवदतोमम ॥ ४ ॥ साम्प्रतंतत्फलंवच्मितस्मिन्दृष्टेतुदानजम् ॥ यत्फलंजायते नृणाञ्चक्रवर्तित्वसम्भवम् ॥ ५ ॥ तुलापुरुषदानञ्चतत्रराजन्प्रशस्यते ॥ यइच्छेच्चक्रवर्तित्वंसमस्तेधरणीतले ॥ ६ ॥ आनर्तउवाच ॥ तुलापुरुषदानस्ययोविधिःपरिकीर्तितः ॥ तच्चसर्वंसमाचक्ष्वविस्तरेणमहामुने ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ चन्द्रसूर्योपरागेचअयनेविषुवेतथा ॥ तीर्थेवापुरुषश्रेष्ठतुलापुरुषसम्भवम् ॥ ८ ॥ प्रशस्तंविविधंसम्यक्प्राप्तेवैसुखसंत्तये ॥ ब्राह्मणानांसुदान्तानामनुष्ठानवतांसताम् ॥ ९ ॥ वेदाध्ययनयुक्तानान्निर्दोषाणाञ्चपार्थिव ॥ विभज्यसमवेद्दे

हुआ जो दानसे उत्पन्न मनुष्यों को फल होताहै उस फलको मैं कहताहूं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जो समस्त भूतल में चक्रवर्तीवाली राज्यकी इच्छाकरै उसको तुलापुरुषका दान उत्तम है ॥ ६ ॥ आनर्त बोला कि हे महामुने ! तुलापुरुष दानकी जो विधि कहीगई है उस सबको विस्तारसे भलीभांति कहिये ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! चन्द्रमा, सूर्यके ग्रहणमें व विषुव अयन (दिनरात बराबर के समय) में व तीर्थमें तुलापुरुषसे उपजाहुआ विविध दान सुखका नाश प्राप्तहोने पर भली भांति प्रशंसित है हे राजन् ! इन्द्रियों को दमन किये हुये व अनुष्ठानवान् तथा सज्जन व वेदपाठ से संयुत और दोषरहित ब्राह्मणों को वह तुलापुरुष बांटकर

देनाचाहिये एकको किसी प्रकार न देनाचाहिये ॥ ८ । ९ । १० ॥ पवित्र व समान व पुण्यदायक तथा पूर्व उत्तरको झुँकेहुये उत्तम स्थान में विद्वान् सोलह हाथका मण्डप निर्माण करावै ॥ ११ ॥ उसके बीचमें यजमान के हाथकी प्रमाणसे चारहाथके प्रमाणकी ऊंची वेदी बनवावै ॥ १२ ॥ व चारों दिशाओं में चार हाथके कुण्डोंको कल्पना करावै व एक हाथ की प्रमाणवाली व मनोहर तथा एक हाथ ऊंची वेदी बनवावै उसमें ग्रहोंको बनावै व चारों दिशाओं में क्रमपूर्वक दोदो ऋत्विज् करना चाहिये ॥ १३ । १४ ॥ व बहृच्, अध्वर्यु, छन्दोग तथा अथर्वण वेदी भी करना चाहिये व सावधान होतेहुये उनको अग्निमें प्रधानदेवता का होम करना

योनैकस्यचकथञ्चन ॥ १० ॥ शुचौदेशेसमेपुण्ये पूर्वोत्तरप्लवेशुभे ॥ मण्डपंकारयेद्विद्वान्दशषोडशहस्तकम् ॥ ११ ॥
तन्मध्येकारयेद्वेदींश्चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ यजमानस्यहस्तेनप्रमाणेनसमुच्छ्रिताम् ॥ १२ ॥ चतुर्हस्तानिकुण्डानिचतु
र्दिक्षुप्रकल्पयेत् ॥ एकहस्तप्रमाणान्तुवेदींरम्याम्प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥ हस्तमात्रोच्छ्रिताञ्चैवग्रहांस्तत्रप्रकल्पयेत् ॥
युग्माश्चऋत्विजःकार्य्याश्चतुर्दिक्षुयथाक्रमम् ॥ १४ ॥ बह्वृचोध्वर्य्यवश्चैवछन्दोगाथर्वणाअपि ॥ अग्नौतुदेवताहोम
स्तैस्तुकार्य्यःसमाहितैः ॥ १५ ॥ तल्लिङ्गैर्नृपतेमन्त्रैःस्वशक्त्याजपएवच ॥ एकहस्तमितंपुष्टञ्चतुर्हस्तोत्थितंतथा ॥
१६ ॥ स्तम्भद्वयंतुकर्तव्यंवेद्यां याम्योत्तरस्थितम् ॥ तन्मध्येतुशुभंकाष्ठस्तम्भोपरिदृढंशुभम् ॥ १७ ॥ चन्दनंखदि
रोवाथबिल्वोवाश्वत्थएवच ॥ निम्बकोदेवदारुर्वाश्रीपर्णीवापरोथवा ॥ १८ ॥ अष्टौवृक्षाःशुभाःशस्तास्तम्भार्थंनृपस
त्तम ॥ शिक्यद्वयसमोपेतान्तन्मध्येविन्यसेत्तुलाम् ॥ १९ ॥ स्नात्वाशुक्लाम्बरधरःशुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ पूजयित्वासम

चाहिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उन्हीं चिह्नोंवाले मन्त्रोंमे अपनी शक्तिके अनुकूल जपही करना चाहिये व एक हाथकी प्रमाणवाले व पुष्ट तथा चारहाथ ऊंचे ॥ १६ ॥ वेदी के दक्षिण व उत्तर ओर में स्थित दो खम्भा करना चाहिये व उसके बीचमें खम्भाके ऊपर पुष्ट व शुभकाठ उत्तम है ॥ १७ ॥ चन्दन, खैर या बिल्व व पिप्पल, नींब, देवदारु या श्रीपर्णी व अन्य वृक्ष ॥ १८ ॥ हे नृपोत्तम ! ये उत्तम आठ वृक्ष खम्भोंके लिये शुभ हैं उनके मध्यमें दो सिकहरोंमे संयुत तुला (तराजू) धरै ॥ १९ ॥

व स्नानकर श्वेत वसनोंको धारे श्वेत मालाओं व अनुलेपनोंवाला पुरुष सबओर क्रमपूर्वक लोकपालों को पूजकर ॥ २० ॥ पश्चात् चन्दन, माला व अनुलेपनों से खम्भोंको पूजै व हे नृपश्रेष्ठ ! तुलाको पूजनकरै और पुण्याहकीर्त्तन करै ॥ २१ ॥ तथा कार्यमे भलीभांति टिकीहुई अपनी समस्त इन्द्रियों के द्वारा याने इन्द्रियों को रोंककर पश्चिम दिशा में बैठकर श्रद्धासंयुत यजमान पूर्वमुख होताहुआ जुडेहुयेहाथोंवाला होकर इस मन्त्रका उच्चारण करै कि उत्तम सत्यपै टिकीहुई तुम ब्रह्मा की कन्याहो ॥ २२ । २३ ॥ व गोत्रसे कश्यपगोत्रवाली और नामसे तुला प्रसिद्ध हो हे तुले ! तुम अपने स्वामी व अपने प्रियको सत्य आभासित होतीहो ॥ २४ ॥

न्ताचलोकपालान्यथाक्रमम् ॥ २० ॥ स्तम्भान्सम्पूजयेत्पश्चाद्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ तुलाञ्चपार्थिवश्रेष्ठपुण्याहञ्च प्रकीर्तयेत् ॥ २१ ॥ यजमानोनिजैःसर्वैरिन्द्रियैःकार्य्यसंस्थितैः ॥ पश्चिमान्दिशमास्थायप्राङ्मुखःश्रद्धयान्वितः ॥ २२ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वाइमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ब्रह्मणोदुहिताहित्वंसत्यंपरममाश्रिता ॥ २३ ॥ काश्यपीगोत्रतश्चैव नामतोविश्रुतातुला ॥ त्वंतुलेसत्यमाभासिस्वामीष्टञ्चात्मनःप्रभुम् ॥ २४ ॥ करिष्यसिप्रसादंमेसान्निध्यंकुरुसाम्प्रतम् ॥ ततस्तस्यांसमारुह्यस्वशक्त्यायत्समाहृतम् ॥ २५ ॥ दानार्थंपूर्वमादायधृत्वाशिक्येनरोत्तम॥सुवर्णंरजतंवाथरत्नं वायदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ यावत्साम्यंभवेद्राजन्नात्मनोभ्यधिकञ्चवा ॥ ततोभीष्टंसमासाद्यदैवतंशिक्यमाश्रितम् ॥ २७ ॥ उदकंजलमध्येतुतदर्थंप्रक्षिपेद्द्रुतम् ॥ सतिलंसहिरण्यञ्चसाक्षतंविधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ अवतीर्य्यततःसर्वं ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ यत्फलंप्राप्यतेपश्चात्तदिहैकमनाःशृणु ॥ २९ ॥ अजानताजानतावायत्पापंतुभवेत्कृतम् ॥

मेरेऊपर प्रसन्नता कीजियेगा इस समय समीपता करिये तदनन्तर उस तराजूपै भलीभांति चढ़कर हे नरोत्तम ! दानके लिये जो अपनी शक्तिसे पहले लाया गयाहो उसको लेकर व तराजूपै धरकर सुवर्ण, चांदी या रत्न व जो प्रियहोवै ॥ २५।२६ ॥ हे राजन् ! उसको तबतक धरै कि जबतक अपने बराबर या अधिक होवै तदनन्तर तराजू पै टिकेहुये प्रिय देवताको भलीभांति प्राप्तहोकर ॥ २७ ॥ उसके लिये शीघ्रही जलके बीच में विधिपूर्वक तिल समेत सोना सहित व अक्षत समेत जल फेंकै ॥ २८ ॥ तदनन्तर उतर कर सबको ब्राह्मणों के लिये निवेदनकरै औरपश्चात् जो फल मिलताहै उसको यहां एक मनवाले होकर सुनिये ॥ २९ ॥ कि जानते व

न जानते हुये पुरुषसे किया हुआ जो पातक होवैहै इस दानके प्रभावसे मनुष्य उस सबको नष्टकरैहै ॥ ३० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जितनी प्रमाणवाला किया पातक व्यतीत हुआहै उतनाभर तुलापुरुष के दानसे नाशको प्राप्तहोता है ॥ ३१ ॥ शरीरके क्लेश से डरयुत मनवाले समर्थ पुरुषोंको तौलने से उपजाहुआ यही दान पुरश्चरण कहागयाहै ॥३२॥ हे भूपते ! दिलीप, कार्तवीर्य,पृथु, पुरु, कुत्स तथा अन्यभी राजाओंने इसको दियाहै ॥३३॥ यह तुलापुरुषका दान पुण्यदायक व शुभ और मनुष्यों को सब कामनाओं का दायक तथा समस्त उपद्रवों का नाशक है ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आधियां व्याधियां नहीं होती हैं व रोगसे उपजीहुई विकलता नहीं होतीहै

तत्सर्वंनाशयेन्मर्त्योदानस्यास्यप्रभावतः ॥ ३० ॥ यावन्मात्रंकृतंपापमतीतंनृपसत्तम ॥ तावन्मात्रंक्षयंयातितुलापुरुषदानतः ॥ ३१ ॥ ईश्वराणांसमादिष्टंकायक्लेशभयात्मनाम् ॥ पुरश्चरणमेतद्धिदानंतोल्यसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥ एतद्दत्तंदिलीपेनकार्त्तवीर्य्येणभूपते ॥ पृथुनापुरुकुत्सेनतथान्यैरपिपार्थिवैः ॥ ३३ ॥ एतत्पुण्यंप्रशस्तञ्चसर्वकामप्रदंनृणाम्॥ तुलापुरुषदानञ्चसर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ३४ ॥ आधयोव्याधयोनस्युर्नवैक्लव्यंगदोद्भवम् ॥ संजायतेनृपश्रेष्ठनवियोगश्चबन्धुभिः ॥ ३५ ॥ तुलापुरुषदानस्यप्रदत्तस्यनृपोत्तम ॥नशक्यतेकथयितुंफलंयत्स्यात्कलौयुगे ॥ ३६ ॥ तुलापुरुषदानस्यफलमेतदुदाहृतम् ॥ दक्षिणांमूर्त्तिमासाद्यसिद्धेश्वरविभोःपुरः ॥ ३७ ॥ योयच्छतिसभूपालसहस्रगुणितंफलम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्राप्यसिद्धेश्वरंविभुम् ॥ ३८ ॥ तुलापुरुषदानञ्चकर्त्तव्यंसुविवेकिना ॥ एकत्रसर्वतीर्थानिसर्वाण्यायतनानिच ॥३९॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेकथितानिस्वयम्भुवा ॥ सिद्धेश्वरःसुरश्रेष्ठएकत्रसमुदाहृतः॥ ४० ॥ तस्मि

न भाइयों से उपजाहुआ वियोग होताहै ॥ ३५॥ हे नृपोत्तम ! कलियुग में दियेहुये तुलापुरुषका जो फल होता है वह नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३६ ॥ तुलापुरुष दान का यह फल कहागयाहै कि दाहिनी मूर्तिको प्राप्तहोकर सिद्धेश्वर स्वामीके आगाड़ी ॥ ३७ ॥ हे भूपाल ! जो पुरुष तुलादानको देता है वह हजारगुने फल को प्राप्त होताहै उस कारण समस्त उपायसे सिद्धेश्वर स्वामीको प्राप्तहोकर ॥ ३८ ॥ उत्तम विवेकवान् पुरुषको तुलापुरुष का दान करना चाहिये ब्रह्माने हाटकेश्वरसे उपजे हुये क्षेत्रमें एकओर समस्त तीर्थों व सब देवमन्दिरों को कहाहै व एक ओर सुरश्रेष्ठ सिद्धेश्वरजीको कहाहै ॥ ३९।४० ॥ हे नृपोत्तम ! उन सिद्धेश्वरजी के छूने देखने

व पूजने पर रामस्तलिंगों वा जो फल कहागया है उसको मनुष्य पाताहै॥ ४१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतुलापुरुषदानमाहात्म्यंनामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । स्वर्णमयी रचि भूमिको होत जौन विधि दान । दोसौ तेईसवें महँ कीन कथा सोइ गान ॥ आनर्त बोला कि इस मृत्युलोक में किस कर्म से सब शत्रुओं को नाशनेवाला समस्तचक्रवर्त्तित्व मनुष्यों को होताहै यह कहिये ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे नराधिप ! समस्तउपायों से नृपालता दुर्लभ है उसी कारण अतिनियमों,

न्स्पृष्टेतथादृष्टेपूजितेनृपसत्तम ॥ सर्वेषांलभतेमर्त्यःफलंयत्परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेतुलापुरुषदानमाहात्म्यन्नामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ कर्म्मणाकेनमर्त्येऽत्रनराणांजायतेवद ॥ चक्रवर्तित्वमखिलंसर्वशत्रुविमर्दनम् ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ दुर्लभम्भूमिपालत्वंसर्वोपायैर्नराधिप ॥ ततोतिनियमैर्दानैस्तथान्यैश्चव्रतैःकृतैः ॥ २ ॥ यःपुनर्भूपतिर्भूत्वापृथ्वीं दद्याद्धिरण्मयीम् ॥ गौतमेश्वरदेवस्यपुरतःश्रद्धयान्वितः ॥ ३ ॥ चक्रवर्तीभवेन्नूनमेवमाहपितामहः ॥ मान्धाताधुन्धुमारश्चहरिश्चन्द्रःपुरूरवाः ॥ ४ ॥ भरतःकार्तवीर्य्यश्चषडेतेचक्रवर्तिनः ॥ पृथ्वीदानंपुराकृत्वागौतमेश्वरसन्निधौ ॥ ५ ॥ दत्त्वाहिरण्मयींपृथ्वींसार्वभौमास्ततःस्थिताः ॥ आनर्तउवाच ॥ भगवन्केनविधिनादातव्यासावसुन्धरा ॥ ६ ॥ अहंदास्यामितांनूनंश्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ कार्य्यापलशतेनोर्वीतदाकारान्नृपोत्तम ॥ ७ ॥ तदर्द्धेनाथवाश

दानों व कियेहुये अन्य व्रतोंसे ॥ २ ॥ जो भूपति होकर फिर श्रद्धासंयुत हो गौतमेश्वर देवके अगाड़ी सुवर्णमयी पृथ्वीको देता है ॥ ३ ॥ वह निश्चयकर चक्रवर्त्ती होता है ऐसा ब्रह्माने कहाहै मांधाता, धुन्धुमार, हरिश्चन्द्र व पुरूरवा ॥ ४ ॥ और भरत, कार्तवीर्य ये छह पुरातनसमय गौतमेश्वरके समीप पृथ्वीका दानकर चक्रवर्त्ती हुयेहैं ॥ ५ ॥ उसी कारण सुवर्णमयी पृथ्वीको देकर समस्तपृथ्वीके राजा स्थित हुयेहैं आनर्त बोला कि हे भगवन् ! किस विधिसे वह पृथ्वी देनाचाहिये ॥६॥ मैं निश्चयकर उसको दूंगा मेरे बड़ी श्रद्धा स्थितहै भर्तृयज्ञ बोले कि हे नृपोत्तम ! उसी आकारवाली सौपलकी पृथ्वी करनाचाहिये ॥ ७ ॥ अथवा उसकी आधी याने

पचास पलकी व शक्तिसे पचीस पलकी पृथ्वी निर्माण करावै हे महाराज ! पृथ्वी के दानमें वित्तशाठ्य वर्जितकरै ॥ ८ ॥ और पांच पल के नीचे किसी प्रकार न देनाचाहिये व लोन, ऊंखका रस, मदिरा, घृत, दही, दूध व जलमय ॥ ९ ॥ ये सब समुद्र द्विगुणता से याने सुवर्णमयी पृथ्वीके दूने चारों ओर से बनावै व महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमवान्, गन्धमादन ॥ १० ॥ विन्ध्याचल, शृंगवान् सातही कुलपर्वतों को कल्पित करै और बीचमें सुमेरु व दिशाओं में उमके रोंकनेवाले पर्वतों को बनावै ॥ ११ ॥ और उसमें वैसे ही जामुन, बरगद, कदम्ब, पकरियाके वृक्ष व मुख्यतासे गंगादिक नदियोंको कल्पितकरै ॥१२॥ हे राजन् ! इसप्रकार समस्त स्वर्णमयी

क्त्यापञ्चविंशपलात्मिका ॥ धरादानेमहाराजवित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ८ ॥ नैवपञ्चपलादर्वाक्प्रदातव्याकथञ्चन ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलामयान् ॥ समुद्रान्परितस्सर्वान्द्वैगुण्येनप्रकल्पयेत् ॥९॥ महेन्द्रोमलयःसह्योहिमवान्ग
न्धमादनः ॥ १० ॥ विन्ध्यःशृङ्गीचसप्तैवकल्पयेत्कुलपर्वतान् ॥ मध्येप्रकल्पयेन्मेरुंदिक्षुविष्कम्भपर्वतान् ॥ ११ ॥
जम्बून्यग्रोधनीपाश्चप्लक्षश्चैवतथाद्रुमान् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्रप्राधान्येनप्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ एवंनिर्मायवसुधांसर्वां
हेममयींनृप ॥ मण्डपंकारयेत्पश्चाद्यथापूर्वंप्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥ कुण्डानितोरणान्येवब्राह्मणानांप्रपूजनम् ॥ पूर्ववत्स
कलंकृत्वामध्येवेदींप्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥ तत्रसंस्थापयेत्पृथ्वींपञ्चगव्येनपार्थिव ॥ यथोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैस्ततःशुद्धोदके
नतु ॥ १५ ॥ इमंमेगङ्गेयमुनेतिपञ्चनद्यश्चत्र्यक्षरम् ॥ श्रीसूक्तंपावमानञ्चहैमींचतदनन्तरम् ॥ १६ ॥ स्नानकर्म्मणि
योग्यौचतान्तुस्थाप्ययथाक्रमम् ॥ एवंसंस्थाप्यविधिवद्वासांसिपरिधापयेत् ॥ १७ ॥ युवासुवासेतिमन्त्रेणसूक्ष्माणि

पृथ्वीको बनाकर पश्चात् मण्डप बनवावै व पहलेकी नाई कुण्ड व बन्दनवार बनवावै और ब्राह्मणोंका पूजनकरै और पहलेकी नाई सब बनाकर बीचमें वेदी बनवावै ॥ १३ । १४ ॥ हे राजन् ! उसमें पृथ्वी को भलीभांति थापै व उन्हीं चिह्नोंवाले यथोक्त मन्त्रोंके द्वारा पञ्चगव्यसे स्नानकरावै तदनन्तर (इमं मे गङ्गे यमुने) व (पञ्चनद्य॰) तथा त्र्यक्षर मन्त्रके द्वारा शुद्ध जलसे स्नान करावै और उसके उपरान्त सुवर्णमयी उस पृथ्वीको क्रमपूर्वक थापकर (श्रीसूक्त) व (पावमान) ये दो मन्त्र स्नान के कर्ममें योग्यहैं इस प्रकार विधिपूर्वक उसको भलीभांति थापकर (युवा सुवास) ऐसे मन्त्रसे विधिपूर्वक विविधप्रकारके महीन वसन पहनावै तदनन्तर (एषां वै भूत-

योमी) इस मन्त्रसे उच्च प्रकार करके पूजनकरै ॥ १५।१६।१७।१८ ॥ तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य (धूरसि) इसमन्त्रसे धूपदेवै व (अग्निर्ज्योतिः) ऐसे मन्त्रसे आरती करै ॥ १९ ॥ व (अन्नमस्मि) इस मन्त्रसे सप्तधान्य कल्पितकरै इस प्रकार उसका सब पूजनकर श्वेतवसन पहनेहुये यजमान ॥ २० ॥ अगाड़ी बैठकर हाथ जोड़कर इन मन्त्रोंको कहै कि हे देवि ! यह चराचर संसार तुमसे धारण कियाजाताहै ॥ २१ ॥ हे मेदिनि ! समीपता करिये मैं तुम्हारा दान करूंगा हे देवि ! प्राणियों के शरीरों में भी तुम प्रथम स्थित हो ॥ २२ ॥ उसके बाद हे वसुन्धरे ! अन्यजलादिक महाभूतहैं व जो तुमको चाहतेहैं वे फिर निस्सन्देह तुमको

विविधानिच ॥ एषांवैभूतयोमीतिततःप्रोच्चैःप्रपूजयेत ॥१८॥ धूरसीतिचमन्त्रेणधूपंदद्यात्समाहितः ॥ अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेणकुर्य्यादारार्तिकन्ततः॥ १९ ॥ अन्नमस्मीतिमन्त्रेणसप्तधान्यंप्रकल्पयेत्॥एवंकृत्वाखिलन्तस्यायजमानःसिताम्बरः ॥ २० ॥ पुरःस्थितोञ्जलिंबद्ध्वामन्त्रानेतानुदाहरेत् ॥ त्वयासन्धार्य्यतेदेविजगदेतच्चराचरम् ॥ २१ ॥ तवदानंकरिष्यामिसांनिध्यंकुरुमेदिनि ॥ शरीरेष्वपिभूतानांत्वंदेविप्रथमंस्थिता ॥ २२ ॥ ततश्चान्यानिभूतानिजलादीनिवसुन्धरे ॥ येत्वांवाञ्छन्तितेभूयस्त्वांलभन्तेनसंशयः ॥ २३ ॥ इहलोकेपरेचैवपार्थिवंरूपमास्थिता ॥ एवंस्तुत्वासमादाय धरांहेमकृतान्तदा ॥ २४ ॥ वासुदेवंहृदिस्थाप्यमन्त्रेणानेनकल्पयेत् ॥ पातालादुद्धृतायेनपृथ्वीसालोककारिणा ॥ २५ ॥ अस्यादानेनचसदाप्रीयतांमेजनार्दनः ॥ एवमुच्चार्य्यतत्तोयंमेध्यम्परिक्षिपेत्तदा ॥ २६ ॥ भूमौनैवसहस्तेचब्राह्मणस्यनृपोत्तम ॥ ततोविसर्जयेद्देवंमन्त्रेणानेनभागशः ॥ २७ ॥ आगतात्रयथान्यायंपूजिताचयथाविधि ॥ अस्माकंत्वं

पाते हैं ॥ २३ ॥ और इस लोकमें व परलोक में पृथ्वीवाले रूप पै टिकीहो इस प्रकार स्तुतिकर उस समय सुवर्णकी कीहुई पृथ्वी को लेकर ॥ २४ ॥ व विष्णुको हृदय मे थापकर इस मन्त्रसे कल्पितकरै कि लोकों के करनेवाले जिनसे वह पृथ्वी पातालसे ऊपर लाईगई है ॥ २५ ॥ वे जनार्दन विष्णुजी इसके दानसे सदैव मेरेऊपर प्रसन्न होवैं ऐसा उच्चारणकर उस समय हे नृपोत्तम! उस पवित्र जलको फेंकदेवै भूमिमें न डालै किन्तु ब्राह्मणके हाथमें धरै तदनन्तर विभागसे इस

मन्त्रके द्वारा देवताको बिदाकरै ॥ २६।२७॥ किं यहां यथायोग्य आई व विधिपूर्वक पूजीहुई तुम हमलोगोंके हितके लिये जहां प्रियहो वहां जावो ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! तदनन्तर (उष्णावेद) ऐसे मन्त्रसे उस प्रतिमा को उतारकर भलीभांति विभाग कर ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये ॥ २९ ॥ यह उत्तम समस्तपृथ्वीदान तुम से कहागया जो इसको सुनैगा वह राजा और दाता जन्म २ में होगा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो राजा इस विधिसे पृथ्वीको देताहै उस के वंशमें भी कभी राज्य भ्रष्ट नहीं होती है ॥ ३१ ॥ राज्य छूटनेसे संयुत जो भूपाल देख पड़तेहैं उन्होंने वश कियेहुयेमनवाले ब्राह्मणोंको पृथ्वी नहीं दियाहै ॥ ३२ ॥ उसी कारण सब उपाय से

हितार्थाययत्रेष्टन्तत्रगम्यताम्॥ २८॥ उष्णावेदेतिमन्त्रेणतामुत्तार्य्यततःपरम् ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदातव्यासंविभज्यनराधिप ॥ २९ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंपृथिवीदानमुत्तमम् ॥ शृणुयात्पार्थिवोभावीदाताजन्मनिजन्मनि ॥ ३० ॥ योराजापृथिवींदद्याद्विधिनानेनपार्थिव ॥ राज्यभ्रंशोनवंशेपितस्यसञ्जायतेक्वचित् ॥ ३१ ॥ राज्यभ्रंशसमोपेतायेदृश्यन्तेमहीभुजः ॥ नतैर्वसुन्धरादत्ताब्राह्मणानांधृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपृथ्वीदानंसमाचरेत् ॥ नहरेदन्यदत्ताञ्चकथञ्चिदपिमेदिनीम् ॥ ३३ ॥ एतत्पुण्यंप्रशस्यञ्चपृथिवीदानमुत्तमम् ॥ शृण्वतामपिराजेन्द्रसर्वजाड्यविनाशनम् ॥ ३४ ॥ आस्तान्तावत्प्रदानञ्चपृथिव्याःपृथिवीपते ॥ दातुंसंप्रेरयेद्यस्तुतस्यपातकनाशनम् ॥ ३५ ॥ रूपवान्सुभगश्चैवतथाचप्रियदर्शनः ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तःपुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३६ ॥ मेधावीजायतेमर्त्योदानस्यास्यप्रभावतः॥ इत्थंभूतामहाराजक्रत्वाराज्यमकण्टकम् ॥ ३७ ॥ प्रीताविष्णोःपदंयान्तिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥ अन्यत्रापिधरादा

पृथ्वी दानकरै और अन्यसे दीहुई पृथ्वीको किसी प्रकार से भी न हरै ॥ ३३ ॥ हे नृपेन्द्र ! यह उत्तम पृथ्वीदान पुण्यदायक व प्रशंसनीय है व सुननेवालों की भी समस्तजडता का विनाशक है ॥ ३४ ॥ हे पृथ्वीपते ! तबतक पृथ्वीका दान होवै जो देने के लिये भलीभांति प्रेरणा करताहै उसका पाप नष्ट होजाताहै ॥ ३५ ॥ इस दानके प्रभावसे मनुष्य रूपवान्, उत्तम भाग्यवान् व प्यारदर्शनवाला व आधि, व्याधियों से छूटा तथा पुत्रोंसे संयुत व बुद्धिमान् होताहै हे महाराज ! ऐसेही मनुष्य निष्कंटक राज्यकर ॥ ३६ । ३७ ॥ प्रसन्न होकर अविनाशी व सदैववाले विष्णुजी के स्थान को प्राप्तहोते हैं हे नृपोत्तम ! अन्यत्र भी भलीभांति दियाहुआ पृथ्वी

का दान एक जन्मभी अवधितक चक्रवर्त्ती करताहै और जो गौतमेश्वर देवके आगे पहले कियागया है ॥ ३८ । ३९ ॥ यह सप्तजन्मोंकी अवधितक निस्सन्देह चक्रवर्त्ती करताहै इसलिये हे भूपते ! सब उपायसे वहां पृथ्वी देनाचाहिये ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपृथ्वीदानमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । वृत्रासुरको वध्यो जिमि वज्रसुरेश बनाय। दोसौ चौबीसवें महँ सोइ कथा सुखदाय ॥ सूतजी बोले कि हे महाभाग्यवानो ब्राह्मणो ! उस क्षेत्रमें टिकेहुये चौथे

नंप्रकुर्य्याच्चक्रवर्तिनम् ॥ ३८ ॥ एकजन्मान्तरंयावत्सऽप्यग्रदत्तंनृपोत्तम ॥ गौतमेश्वरदेवस्ययत्पुरापुरतःकृतम् ॥ ३९ ॥ सप्तजन्मान्तरंयावत्प्रकरोतिनसंशयः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतत्रदेयामहीपते ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेपृथ्वीदानमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ कपालेश्वरमाहात्म्यंश्रूयतामधुनाद्विजाः ॥ चतुर्थस्यमहाभागास्तत्रक्षेत्रेस्थितस्यच ॥ १ ॥ श्रुतमात्रेणयेनात्रनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रयाणाञ्चैवलिङ्गानांपूर्वोक्तानांमहामते ॥ २ ॥ श्रुतास्माभिस्समुत्पत्तिः कपालेश्वरवर्जिता ॥ केनात्रस्थापितोदेवःकपालेश्वरसंज्ञितः ॥ ३ ॥ तस्मिन्दृष्टेफलंकिंस्यात्पूजितेचवदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ इन्द्रेणस्थापितःपूर्वमेषदेवोद्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥ कपालेश्वरसंज्ञस्तुब्रह्महत्याविमुक्तये ॥ तत्प्रभावात्सुरश्रेष्ठस्तयामुक्तोद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ पापपूरुषदानेनइत्येषावैदिकीश्रुतिः ॥ अन्योपियोनरस्तञ्चपूजयित्वाप्रभक्तितः ॥ ६ ॥

कपालेश्वर का माहात्म्य इस समय सुनिये ॥ १ ॥ जिसके केवल सुनने से यहां मनुष्य पापसे छूटजाता है ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! कपालेश्वरसे रहित पहले कहेहुये तीनों लिंगोंकी उत्पत्तिको हमलोगों ने सुनाहै इस क्षेत्रमें कपालेश्वरनामक देव किससे थापित हुये हैं ॥ २ । ३ ॥ और उनके देखने व पूजनेपर क्या फल होताहै उसको हमलोगों से कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय इन्द्रने ब्रह्महत्यासे छूटने के लिये इन कपालेश्वरनामक देवको स्थापन कियाहै हे द्विजोत्तमो ! उसके प्रभावसे सुरोत्तम इन्द्रजी पापपुरुषके दानसे उस ब्रह्महत्यासे छूटेहैं यह वेदकी श्रुतिहै और भी जो मनुष्य बडी भक्तिसे उनको पूजकर ॥४।५।६॥

व दाहिनी मूर्ति को प्राप्तहोकर द्विजेन्द्र के लिये पापपुरुषका दानदेता है वह पापसे छूटजाता है यह बृहस्पतिने कहाहै ॥ ७ ॥ हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्र में जाकर उन शिवजीको देखकर जो सुवर्णमय शरीर बनाकर देताहै तदनन्तर ॥ ८ ॥ पहले इकट्ठा कियेहुये पातकोंसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीहै ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! किस प्रकार सुरेन्द्रके ब्रह्महत्या हुई है ॥ ९ ॥ यह सब हमलोगों से कहिये हमसबों को बड़ा आश्चर्य है कपालेश्वरनामक देव किसप्रकार यहां भलीभांति टिके हैं ॥ १० ॥ व हे महामते ! उनके प्रभावसे कैसे ब्रह्महत्या नाश हुई है हे सूतनन्दन ! वह पापपुरुष किस विधि से देनेयोग्य है ॥ ११ ॥ और कौन

यच्छतेब्राह्मणेन्द्रायप्रदानंपापपूरुषम् ॥ दक्षिणांमूर्तिमासाद्यप्रोवाचेदंबृहस्पतिः ॥ ७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेगत्वातंवीक्ष्य शङ्करम् ॥ योददातिशरीरञ्चकृत्वाहेममयंततः ॥ ८ ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहःपातकैःपूर्वसञ्चितैः ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्महत्याकथञ्जातासुरेन्द्रस्यहिसूतज ॥ ९ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ कपालेश्वरसंज्ञस्तुकथन्देवोत्रसंस्थितः ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याकथंनष्टातत्प्रभावामहामते ॥ सपापपुरुषोदेयोविधिनाकेनसूतज ॥ ११ ॥ कैर्मन्त्रैःसहिदेयस्स्यात्कैरप्येवमुपस्करैः ॥ दर्शनात्पूजनाच्चापिकिंफलंजायतेनृणाम् ॥ १२ ॥ अदत्त्वास्वशरीरंवापूजयाकेवलंवद ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिकथान्ताञ्चपुरातनीम् ॥ १३ ॥ यांश्रुत्वापिमहाभागनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिविहितैरन्यजन्मजैः ॥ १४ ॥ दृष्टमात्रेणयेनात्रपातकात्तद्दिनोद्भवात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १५ ॥ पुरात्वष्टुःसुतोजज्ञेदानवोद्विजसत्तमाः ॥ पुलोमदुहितुःपार्श्वाद्विभावर्य्याःसुवीर्य्यवान् ॥ १६ ॥ सजातएवधर्म्मा

मंत्रों के द्वारा व कौन उपस्करों (सामग्रियों) से उसको देना चाहिये और देखने व पूजनेसे भी मनुष्योंको क्या फल होताहै ॥ १२ ॥ और अपने शरीरको न देकर पूजनसे क्या फल होताहै वह कहिये सूतजी बोले कि मैं तुमलोगोंसे उस पुरानी कथाको कहूंगा ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर भी मनुष्य अज्ञान या ज्ञान से भी किये व अन्यजन्मसे उत्पन्नहुये पापोंसे छूटजाता है ॥ १४ ॥ और यहां जिन शिवजीके देखनेहीसे उस दिन उपजेहुये पापसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं यह मैंने सत्य कहाहै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय पुलोमा की कन्या विभावरीके सकाशसे त्वष्टाके अतिबलिष्ठ, दानव पुत्र पैदा हुआ है ॥ १६ ॥ पैदाहुआ

ही वह धर्मात्मा व समस्त संसार को प्याराथा व दानववाले स्वभावको छोड़कर ब्राह्मणों की भक्तिमें परायणहुआ ॥ १७ ॥ उसने पुष्करारण्यको जाकर उत्तम समाधिसे अपनी तपस्यामें टिककर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माको प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माजी आपही दृष्टिगोचरता में प्राप्तहुये व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ १९ ॥ वृत्रासुर बोला कि देवेश! यदि प्रसन्न हो तो मुझको ब्राह्मणता दीजिये क्योंकि द्विजत्वको प्राप्तहोकर मैं परमपद का साधन करूंगा ॥ २० ॥ उस ब्राह्मणतासे मुझको कुछ असाध्य न होगा और मुझको ब्राह्मणता के बराबर अन्य कुछ नहीं जान पड़ताहै ॥ २१ ॥ व निश्चयकर ब्राह्मण

त्माआसीत्सर्वजगत्प्रियः ॥ दानवंभावमुत्सृज्यद्विजभक्तिपरायणः ॥ १७ ॥ सगत्वापुष्करारण्यंपरमेणसमाधिना ॥ तोषयामासदेवेशंपद्मजंस्वतपस्स्थितः ॥ १८ ॥ तस्यतुष्टस्स्वयंब्रह्मादृष्टिगोचरताङ्गतः ॥ प्रोवाचवरदोस्मीतिकिन्तेकृत्यङ्करोम्यहम् ॥ १९ ॥ वृत्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेशब्राह्मणत्वंप्रयच्छमे ॥ ब्राह्मणत्वंसमासाद्यसाधयामिपरम्पदम् ॥ २० ॥ तेनकिञ्चिदसाध्यंनब्राह्मण्येनभवेन्मम ॥ ब्राह्मण्येनसमञ्चान्यन्नकिञ्चित्प्रतिभातिमे ॥ २१ ॥ परमंदैवतंकिञ्चिन्नविप्राद्विद्यतेध्रुवम् ॥ तस्मान्मेहृत्स्थितंनान्यदपिराज्यंत्रिविष्टपे ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहृष्टस्तस्यपितामहः ॥ ब्राह्मणत्वंस्वयंदत्त्वाततःप्रोवाचसादरम् ॥ २३ ॥ मयात्वंविहितोविप्रःपुत्रप्रकुरुवाञ्छितम् ॥ प्रसादयस्वसततंब्राह्मणान्ब्रह्मवित्तमान् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणैस्सुप्रसन्नैश्चप्रीयन्तेसर्वदेवताः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूजनीयाद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनवृत्रोभूद्ब्राह्मणस्ततः ॥ ब्राह्मयालक्ष्म्यासमोपेतोब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ २६ ॥ तस्मिं

से उत्तम कोई देवता नहीं विद्यमान है उसी कारण स्वर्गमें अन्य राज्य भी मेरे हृदयमें नहीं स्थित है ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचन को सुनकर प्रसन्न हो ब्रह्माने आपही उसको ब्राह्मणता देकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र! मैंने तुमको ब्राह्मण किया अभिलाष कीजिये व निरन्तर ब्रह्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न कराइये ॥ २४ ॥ क्योंकि अतिप्रसन्न ब्राह्मणोंके द्वारा समस्त देवता प्रसन्न होतेहैं इसलिये सब उपायसे द्विजोत्तमोंको पूजना चाहिये ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन ब्रह्मासे ऐसा कहाहुआ वृत्रासुर ब्राह्मण हुआ उसके उपरान्त ब्राह्मणवाली शोभा से संयुत व ब्रह्मचर्य में परायण हुआ ॥ २६ ॥

जब वह तपस्या में भलीभांति स्थितहुआ तब इन्द्रने दानवों को मारा व महात्मा दानवोंका वंश विनाशको प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ तदनन्तर देवताओं से हारेहुये वे सब दानव अपने स्थानको छोड़कर दुःख, शोचसे संयुत हुये ॥ २८ ॥ व उस की माताको अगाड़ी कर उसके समीपगये और उन दानवों से सब ओर घिरीहुई उस माताको देखकर उस वृत्रासुरने ॥ २९ ॥ अनादर को प्राप्तहुये दानवों समेत वैसी हुई मातासे कहा कि दुःखित तुमलोगों का मेरे समीप आनेका क्या कार्यहै ॥ ३० ॥ दानव बोले कि देवताओं से अनादर को प्राप्त हमलोग आपकी शरणमें प्राप्त हैं अन्यत्र कहांजावैं तुम्हारे विना हमलोगों का संश्रय (आश्रयभूत) नहीं

स्तपसिसंस्थेतुहताइन्द्रेणदानवाः॥वंशोच्छेदंसमापन्नंदानवानांमहात्मनाम् ॥ २७ ॥ ततस्तेदानवास्सर्वेपराभूतास्सुरै
स्ततः ॥ स्वस्थानंसम्परित्यज्यदुःखशोकसमन्विताः ॥ २८ ॥ तन्मातरंपुरस्कृत्वातत्सकाशमुपागताः ॥ सचतांमा
तरंदृष्ट्वावृतान्तैश्चसमन्ततः॥२९॥दानवैश्चपराभूतैस्तथाभूताञ्चमातरम् ॥ किमागमनकृत्यञ्चदुःखितानांममान्ति
कम् ॥ ३० ॥ दानवाऊचुः ॥ वयंदेवैःपराभूताभवन्तंशरणङ्गताः ॥ क्वयामोन्यत्रचास्माकंत्वांविनानास्तिसंश्रयः ॥
३१ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वावृत्रःप्रोवाचसादरम् ॥ देवानहंहनिष्यामिगम्यतान्तत्रमाचिरम् ॥ ३२ ॥ निजागमनकृत्यञ्च
मातःकथयसाम्प्रतम् ॥ मातोवाच ॥ तथाकुरुमहाभागशीघ्रंदारपरिग्रहः ॥ ३३ ॥ वंशवृद्धौप्रमाणञ्चेद्वाक्यंतवमनूद्भ
वम् ॥ एषएवपरोधर्म्मएतदेवपरंतपः ॥ ३४ ॥ पुत्रस्तुजननीवाक्यंयत्करोतिसमाहितः ॥ यथास्त्रीणांपतिंमुक्त्वानान्या
स्तिभुविदेवता ॥ ३५ ॥ जनन्याञ्जीवमानायान्तथैवचसुतस्यच ॥ अतिक्रम्यचयानारीपतिंधर्म्मंपराभवेत् ॥ ३६ ॥

है ॥ ३१ ॥ उनके उस वचनको सुनकर आदर समेत वृत्रासुर बोला कि मैं देवोंको मारूंगा वहां शीघ्रही जाइये ॥ ३२ ॥ व हे मातः ! इस समय अपने आनेका कार्य कहो माता बोली कि-हे महाभाग ! वैसेही शीघ्रही स्त्रीका ग्रहण कीजिये ॥ ३३ ॥ यदि मनुसे उपजाहुआ वचन वंशकी वृद्धिमें तुमको प्रमाण होवै यही परमधर्म है व यही उत्तम तप है ॥ ३४ ॥ जोकि सावधान होताहुआ पुत्र माताका वचनकरै जैसे पतिको छोड़कर स्त्रियोंका भूमिमें और देवता नहीं है ॥ ३५ ॥ वैसेही माताके

जीते हुये पुत्रका देवता नहीं है व पतिको उल्लंघन कर जो स्त्री धर्म में तत्पर होतीहै ॥ ३६ ॥ वह सब निष्फल होजाताहै इसमें सन्देह नहीं है और जो पुत्र माताका वचन उल्लंघनकर रुचिके अनुकूल ॥ ३७॥ धर्मके कार्यको करताहै उसके वे सब निश्चयकर वृथा होजाते हैं जैसे कि भस्ममें हवन व्यर्थ होताहै ॥ ३८ ॥ जैसे वनमें रोना व ऊषर में बरसना और जैसे बधिरके आगे गाना व अन्धके आगे नाचना वृथा होता है ॥ ३९ ॥ वैसेही माताके सम्मत से अन्य कियाहुआ पुत्रका धर्मसे उपजाहुआ समस्त कर्म निष्फल होताहै उसीसे मैं तुम्हारे समीप आईहूं ॥ ४० ॥ हे पुत्र ! विशेषकर दुःखित भाइयों का वचन मानना चाहिये अथवा हे पुत्र ! तुमसे

तत्सर्वंविफलंतस्याजायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रस्तुजननीवाक्यंयोतिक्रम्ययथारुचि ॥ ३७ ॥ करोतिधर्म्मकृत्यानिता निसर्वाणितस्यच ॥ भवन्तिचवृथानूनंयथाभस्महुतन्तथा॥३८ ॥ अरण्यरुदितञ्चैवऊषरेवर्षितंयथा ॥ यथैवबधिरस्या ग्रेगीतंनृत्यमचक्षुषः ॥ ३९ ॥ तद्वन्मातृमतादन्यत्कृतंपुत्रस्यधर्मजम् ॥ सर्वंकर्म्मनसन्देहस्तेनाहन्त्वामुपागता ॥ ४० ॥ बन्धूनांवचनंपुत्रदुःखार्तानांविशेषतः ॥ किंवातेबहुनोक्तेनभूयोभूयश्चपुत्रक ॥ ४१ ॥ आनृण्यंजायतेयद्वत्पितॄणां स्यात्तथाशृणु ॥ परमंचेतिसम्यक्त्वंसर्वंज्ञातिसमुद्भवम् ॥ ४२ ॥ यदिवत्सप्रमाणञ्चेत्कुरुष्वचवचोमम ॥ तस्यास्तुव चनंश्रुत्वावृत्रस्संचिन्त्यचेतसि ॥ ४३ ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गेणनमातुर्विद्यतेपरम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायआनिनायपरिग्र हम् ॥ ४४ ॥ त्वष्टातस्मैददौप्रीतस्ततोरत्नान्यनेकशः ॥ संख्याहीनानितस्यैवकुप्यंधनमनन्तकम् ॥ ४५ ॥ हस्त्यश्व यानकोशाढ्यंसोभिषिक्तःपदेनिजे ॥ दानवानांमहावीर्य्योब्राह्मण्येनसमन्वितः ॥ ४६ ॥ अभिषिक्तस्तदावृत्रस्स्वराज्ये

बार २ बहुत कहने से क्याहै ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार पितरों से उऋणता होतीहै उसको तुम वैसेही सुनो हे वत्स ! कुटुम्बियों से उपजाहुआ समस्त उत्तम वचन यदि भलीभांति प्रमाण हो तो मेरा वचन करिये उसके उस वचनको सुनकर वृत्रासुर चित्तमें भलीभांति चिन्तनकर ॥ ४२।४३ ॥ कि श्रुति, स्मृति में कहे हुये मार्गके द्वारा मातासे परे देवता नहींहै वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उसने स्त्रीको आना ॥४४॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये त्वष्टाने उसके लिये असंख्य रत्नोंको दिया व उसीको हाथी, घोड़ा, खज़ाना से संयुत अनन्त ताम्रादि द्रव्यको दिया व ब्राह्मणतासे संयुत तथा दानवोंके मध्यमें महाबली उस वृत्रासुरको अपने स्थानपै अभिषेक किया ॥४५।४६॥

जिस समय अपने राज्यपै वृत्रासुर का अभिषेक हुआ तब अभिषेक सुनकर अतिप्रसन्न होते हुये वृत्रासुर के वे असुरादिक भाई ॥ ४७ ॥ उसके समीप आये जो कि पाताल व पर्वत में क्लेशसे ग्रहण करने योग्य स्थलरूपी क़िलोंसे वहां आये थे॥ ४८ ॥ व देवताओं के साथ वैरकिये तथा बड़े क्रोधसे संयुत थे तदनन्तर सबोंसे उत्साह करायाहुआ वह बड़ाबली दानव ॥ ४९ ॥ इन्द्रके मन्दिरके सामने शत्रुओं के नाश करने के लिये चला इन्द्रने भी युद्ध करनेकी इच्छासे भलीभांति आयेहुये वृत्रासुरको सुनकर ॥ ५० ॥ समस्त देवताओं से संयुत व प्रसन्नहो प्रमाण किया तदनन्तर दानवोंके साथ दैत्योंका युद्धहुआ ॥ ५१ ॥ वहां बृहस्पति जी इन्द्रसे बोले

तेऽसुरादयः ॥ श्रुत्वाभिषेकंसंहृष्टास्तस्यवृत्रस्यबान्धवाः ॥४७॥ दानवास्तंसमाजग्मुर्येतत्रासन्समागताः॥पातालाद्गिरिदुर्ग्राह्यस्थलदुर्गेभ्यएवच ॥ ४८ ॥ कृतवैराश्चसमन्देवैःकोपेनमहतावृताः ॥ ततःप्रोत्साहितःसर्वैर्दानवस्समहाबलः ॥ ४९ ॥ प्रस्थितःशत्रुनाशायमहेन्द्रसदनम्प्रति ॥ शक्रोपिवृत्रमाकर्ण्यसमायातंयुयुत्सया ॥ ५० ॥ सम्मुखःप्रययौहृष्टःसर्वदेवसमन्वितः ॥ ततस्समभवद्युद्धन्देवानांदानवैस्सह ॥ ५१ ॥ तत्रोवाचगुरुःशक्रंमायुद्धंकुरुदेवप ॥ वृत्रोयंदारुणोयुद्धेबलद्वयसमन्वितः ॥ ५२ ॥ चत्वारश्चाग्रतोवेदाःपृष्ठतस्सशरन्धनुः ॥ तेनाजेयतमोदैत्यस्तवैवचमहाहवे ॥ ५३ ॥ तस्मात्सन्धानमेतेनत्वंकुरुष्वमहामते ॥ ततोविश्वासमायातंजहिवज्रेणदानवम् ॥ ५४ ॥ बहूपायैरिपुर्वध्यइतिशास्त्रनिदर्शनम् ॥ भुञ्जानश्चशयानश्चदत्त्वाकन्यामपिस्वकाम् ॥ ५५ ॥ वित्तदानेनसंयोज्यकृत्वापिशपथंगुरु ॥ मायामयन्तमासाद्यतस्मादेवंसमाचर ॥ ५६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ यद्येवंचस्वयङ्गत्वातंविश्वासेनियोजय ॥ तद्वाक्येनविश्वासं

कि हे सुरपालक ! समर मत कीजिये यह भयंकर वृत्रासुर युद्धमें दो बलोंसे संयुतहै ॥ ५२ ॥ क्योंकि आगे चारवेद व पीछे बाण समेत धनुषहै उसी कारण महासंग्राम में दैत्य तुम्हारेही अवश्य न जीतने योग्य है ॥ ५३ ॥ इसलिये हे महामते ! तुम इससे मेलकरो तदनन्तर विश्वासमें आयेहुये दानवको वज्रसे मारियेगा॥५४॥ क्योंकि भोजनकरते व सोतेहुये शत्रुको बहुत उपायों से मारना चाहिये यह शास्त्रसे दिखलाया गयाहै अपनी कन्याको भी देकर ॥ ५५ ॥ व द्रव्यके दानसे संयोग कर व गरुई सौगन्दकर उस मायामय शत्रुको प्राप्तहोकर मारना चाहिये उसी कारण ऐसाही कीजिये ॥ ५६ ॥ इन्द्र बोले कि यदि ऐसा है तो आपही जाकर उसको

विश्वास में युक्त करिये क्योंकि तुम्हारे वचन से वह दानव निश्चयकर विश्वास को प्राप्तहोगा ॥५७॥ सूतजी बोले कि इन्द्रका मत जानकर बृहस्पति जी वहां चले कि जहांपर युद्धके लिये निश्चय कियेहुये दैत्य टिकाथा ॥ ५८ ॥ आपही प्राप्तहुये उन बृहस्पति को देखकर प्रसन्नमनवाला वह वृत्रासुर भी भलीभांति प्राप्तहुआ क्यों कि यह सदैव ब्राह्मणका भक्त था ॥ ५९ ॥ व विशेषता से उच्च प्रकारसे प्रणामकर यह वचन बोला वृत्रासुर बोला कि हे द्विजोत्तमजी ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ मैं क्याकरूं मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ६० ॥ जिसलिये मुझको ब्राह्मण प्रियहैं उसी कारण इससमय कहिये बृहस्पतिजी बोले कि हे दानवोत्तम ! जिसलिये समर

नूनंयास्यतिदानवः ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ शक्रस्यमतमाज्ञायप्रतस्थेचबृहस्पतिः ॥ यत्रवृत्रःस्थितोदैत्योयुद्धार्थंकृत
निश्चयः ॥ ५८ ॥ वृत्रोपितंसमालोक्यस्वयंप्राप्तंबृहस्पतिम् ॥ सदैषद्विजभक्तस्सहृष्टात्मासमपद्यत ॥५९॥ विशेषात्प्रणि
पत्योचैर्वाक्यमेतदभाषत ॥ वृत्रउवाच ॥ स्वागतन्तेद्विजश्रेष्ठकिङ्करोमिप्रशाधिमाम् ॥ ६० ॥ प्रियामेब्राह्मणायस्मात्त
स्मात्कीर्तयसाम्प्रतम् ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ संदिग्धोविजयोयुद्धेयस्माद्दानवसत्तम ॥ ६१ ॥ तस्मात्कुरुसुरेन्द्रेणव्यव
स्थांवचनान्मम ॥ त्वंभुङ्क्ष्वभूतलंकृत्स्नंशक्रश्चापित्रिविष्टपम् ॥६२॥ व्यवस्थयाततोनित्यंवर्तितव्यंपरस्परम् ॥ वृत्रउ
वाच ॥ अहंतववचोब्रह्मन्करिष्यामिसदैवहि ॥ ६३ ॥ सङ्गमंकुरुचेन्द्रेणसाम्प्रतंममसद्द्विज ॥ सूतउवाच ॥ अथशक्रंस
मानीयबृहस्पतिरुदारधीः ॥ ६४ ॥ वृत्रेणसहसन्धानंचक्रेचैवपरस्परम् ॥ परमांमित्रताम्प्राप्तौतावुभौदैत्यदेवपौ ॥६५॥
प्रहृष्टौगतवन्तौचततश्चैवनिजंगृहम् ॥अथशक्रश्छलान्वेषीसदावृत्रस्यवर्तते ॥६६॥ नच्छिद्रंलभतेकापिवीक्षमाणोपिय

में जीतकी सन्देह होतीहै ॥ ६१ ॥ उसी लिये मेरे वचन से सुरेन्द्र (इन्द्र) के साथ मेल कीजिये और तुम सब भूमिको भोगो व इन्द्रभी स्वर्गको भोगकरैं ॥६२॥ तदनन्तर नित्यही आपस में मेलसे वर्तमान होना चाहिये वृत्रासुर बोला कि हे ब्रह्मन्! मैं सदैवही तुम्हारा वचन करूंगा ॥६३॥ हे उत्तम द्विज ! इस समय इन्द्रके साथ मेरा संयोग कीजिये सूतजी बोले कि इसके अनन्तर इन्द्रको भलीभांति आनकर उदारबुद्धिवाले बृहस्पति ने ॥ ६४ ॥ वृत्रासुर के साथ आपसमें मेलकिया तदनन्तर दैत्यों व देवताओं के पालक वे दोनों उत्तम मित्रताको प्राप्तभये व प्रसन्न होतेहुये अपने घरको चलेगये इसके अनन्तर इन्द्रजी सदैव वृत्रासुर के छलके ढूंढ़नेवाले

वर्त्तमान रहते थे ॥ ६५ । ६६ ॥ परन्तु यत्नसे देखते हुये भी कहींपर भी छिद्रको न पातेथे और यदि किसी छिद्रको पाकर वे इन्द्रजी किसी प्रकार से उस के समीप आतेथे तो उसके प्रतापसे जलते थे इन्द्रजी बोले कि उसदुष्टात्मा वृत्रासुर का तेज सहनेके लिये मैं नहीं समर्थहूं ॥ ६७ । ६८ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचन को सुन देरतक ध्यानकर तदनन्तर बृहस्पति जी नम्रतासे नीचेनये खड़ेहुये उन इन्द्रसे बोले ॥ ६९ ॥ बृहस्पति बोले कि हे सुराधिप,इन्द्रजी! उसके शरीरमें ब्राह्मणवाला तीव्रतेज है उससे तुम देखने के लिये नहीं समर्थ हो ॥ ७० ॥ मैं वैसेही उसके मारनेसे उपजा हुआ उपाय तुमसे कहूंगा कि जिससे यहां तुम उस दानवो-

त्ततः ॥ कथञ्चिद्यदिसोभ्येतितत्सकाशंपुरन्दरः ॥ ६७ ॥ किञ्चिच्छिद्रंसमासाद्यतत्प्रतापेनदह्यते ॥ इन्द्रउवाच ॥ न चशक्नोमितत्सोढुन्तेजस्तस्यदुरात्मनः ॥ ६८ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाचिरन्ध्यात्वाबृहस्पतिः ॥ ततःप्रोवाच तंशक्रंविनयावनतंस्थितम् ॥ ६९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तस्यब्राह्मयंस्थितंतेजस्तीव्रङ्गात्रेपुरन्दर ॥ वीक्षितुंनैवशक्नोषितेनत्वंत्रिदशाधिप ॥ ७० ॥ तथातेकीर्तयिष्यामितस्योपायंवधोद्भवम् ॥ वधयिष्यसियेनात्रतन्त्वंदानवसत्तमम् ॥ ७१ ॥ प्राचीसरस्वतीतीरेपुष्करारण्यमाश्रितः ॥ दधीचिर्नामविप्रर्षिःशतयोजनमुच्छ्रितः ॥ ७२ ॥ तत्रनित्यंतपःकुर्वंस्तोषयानःपितामहम् ॥ सनिर्विण्णोमुनिश्रेष्ठःप्राणानांधारणेहरे ॥ ७३ ॥ चिरन्तनोमुनिस्तस्याज्जरयातिसमावृतः ॥ तंप्रार्थयद्रुतङ्गत्वातस्यास्थीनिगुरूणिच ॥ ७४ ॥ सतेदास्यत्यसन्दिग्धन्त्यक्त्वाप्राणानतिप्रियान् ॥ तस्यास्थिभिःप्रहरणंवज्राख्यन्तेभविष्यति ॥ ७५ ॥ अमोघंतत्ततोनूनन्त्वंवृत्रंसूदयिष्यसि ॥ तस्यवज्रस्यतत्तेजोब्रह्मतेजोविबृंहि

त्तम को मारोगे ॥ ७१ ॥ प्राची सरस्वतीके किनारे सौ योजन,ऊंचे दधीचि नामक विप्रर्षि पुष्करारण्य में टिकेहैं ॥ ७२ ॥ हे इन्द्रजी ! वहां नित्यही तप करते व ब्रह्मा को प्रसन्न करतेहुये वे मुनिश्रेष्ठ दधीचिजी प्राणों के धारण करनेमें निर्वेदको प्राप्त हैं ॥ ७३ ॥ वे पुराने मुनि वृद्धतासे अत्यन्तही घिरे हैं शीघ्रही जाकर उनके गरुये अस्थियों को मांगिये ॥ ७४ ॥ वे अति प्यारे प्राणोंको छोड़कर तुमको निस्सन्देह देवैंगे व उनकी हड्डियों से वज्र नामक तुम्हारा अस्त्रहोगा ॥ ७५ ॥ और वह सफल

होगा उससे निश्चयकर तुम वृत्रासुरको मारोगे उस वज्रका वह तेज ब्राह्मणके तेजसे विशेषकर बढ़ाहुआहोगा ॥ ७६ ॥ उससे वृत्रासुरसे उपजाहुआ वह तेज शांति को प्राप्तहोगा सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर शीघ्रही समस्तसुरसमूहोंसमेत इन्द्रजी ॥ ७७ ॥ पुष्कराररयको गये जहां कि तेंतीसकोटितीर्थोंसे घिरीहुई प्राची सरस्वतीजी हैं ॥ ७८ ॥ वे इन्द्रजी वहां आश्चर्यसंयुत दधीचिजीके आश्रममें बैठगये जहां कि आपसमें प्रसन्नताको प्राप्त सर्प नेउलोंके साथ खेलतेथे ॥ ७९ ॥ और उन उत्तममहात्मा दधीचिकी तपस्याके प्रभावसे सिंहोंके साथ हिरन और कुत्तोंके साथ बिलार तथा आपसमें वैरसे वर्जित होतेहुये कौवा घुघुवोंसमेत खेलते

तम्॥७६॥तेनवृत्रोद्भवन्तेजःप्रशमंसंप्रयास्यति॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंशक्रःसर्वैर्देवगणैस्सह ॥ ७७ ॥ जगामपुष्करारण्यंयत्रप्राचीसरस्वती ॥ त्रयस्त्रिंशत्समोपेतातीर्थानांकोटिभिर्वृता ॥ ७८ ॥ दधीचेराश्रमेतत्रसोविशच्चित्रसंयुते ॥ क्रीडन्तेनकुलैःसर्पायत्रतुष्टिङ्गतामिथः ॥ ७९ ॥ मृगाःपञ्चाननैःसार्द्धंवृकदंशास्तथाश्वभिः ॥ उलूकसहिताःकाकाःमिथोद्वेषविवर्जिताः ॥ ८० ॥ प्रभावात्तस्यतपसोदधीचेस्सुमहात्मनः ॥ दधीचिरपिचालोक्यदेवाञ्छक्रपुरोगमान् ॥ ८१ ॥ समायातान्प्रहृष्टात्मासत्वरंसंमुखोभ्यगात् ॥ ततश्चार्घ्यंसमादायप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ८२ ॥ शक्रमभ्यागतःकिन्तेवदकृत्यंकरोम्यहम्॥गृहायातस्यदेवेशतच्छीघ्रंसन्निवेदय॥ ८३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ आतिथ्यंकुरुविप्रेन्द्रगृहायातस्यसन्मुने॥तदस्थीनिनिजान्याशुममदेह्यविकल्पितम् ॥ ८४ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्सकाशंमुनीश्वर ॥ अस्थिभिस्तेपरंकार्य्यन्देवानांसिद्धिमेष्यति ॥ ८५ ॥ सूतउवाच॥इन्द्रस्यतद्वचःश्रुत्वादधीचिस्तोषसंयुतः ॥ ततःप्राहसहस्रा

थे दधीचि भी इन्द्रअग्रगामीवाले देवताओंको भलीभांति आयेहुये देखकर प्रसन्नमनवाले हो शीघ्रही सामनेगये तदनन्तर अर्घ्यको लेकर व बार २ प्रणामकर ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ इन्द्रके सामने आये व बोले कि हे सुरेश ! कहिये मैं घरमें आयेहुये तुम्हारा क्या कार्य करूं उसको शीघ्रही भलीभांति निवेदन करिये ॥ ८३ ॥ इन्द्रबोले कि हे सन्मुने, द्विजेन्द्र ! यदि घरमें आयेहुये मेरी पहुनाई कीजिये तो भेदरहित अपनी हड्डियोंको शीघ्रही दीजिये ॥८४॥ हे मुनिनाथ ! मैं इसीलिये तुम्हारे समीप प्राप्तहुआहूं तुम्हारी हड्डियोंसे देवताओं का उत्तमकार्य सिद्धिको प्राप्तहोगा ॥ ८५ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्रके उस वचनको सुनकर तदनन्तर प्रसन्नतासंयुत

दधीचिजी समस्तदेवताओंसे संयुत हजारलोचनोंवाले इन्द्रसे बोले ॥ ८६ ॥ कि अहो (विस्मय) है कि भूमिमें इससमय मेरे समान कोई पुण्यवान् पुरुष नहीं है और न हुआहै कि जिसके घर आपही सुरेश याचक होगयेहोवैं ॥ ८७ ॥ और मेरे अस्थि धन्यहैं जोकि हे सुरेश ! देवताओंकी रक्षाके लिये सदैव तुम्हारा हितकार्यकरेंगे ॥ ८८ ॥ यह मैं प्रियप्राणोंको तुम्हारे लिये दूंगा हे इन्द्रजी ! अपने कार्यके लिये निजइच्छासे हड्डियोंको ग्रहणकीजिये ॥ ८९ ॥ ऐसा कहकर शीघ्रही उन महर्षिने ध्यानमें बैठकर ब्रह्मछिद्रके द्वारा प्राण निकालकर जीवको त्यागदिया ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! जीवात्मासे छूटाहुआ उन महर्षिका बिनजीववाला वह

त्वंसर्वैर्देवैस्समन्वितम् ॥ ८६ ॥ अहोनास्तिमयापुण्यस्साम्प्रतम्भुविकश्चन ॥ नातीतोयस्यदेवेशास्स्वयमर्थीगृहङ्गतः ॥ ८७ ॥ धन्यानिचममास्थीनियानिदेवेशतेहितम् ॥ करिष्यन्तिसदाकार्य्यंरक्षार्थंत्रिदिवौकसाम् ॥ ८८ ॥ एषोहंसम्प्रदास्यामिप्रियान्प्राणान्कृतेतव ॥ गृहाणस्वेच्छयास्थीनिस्वकार्य्यार्थंपुरन्दर ॥ ८९ ॥ एवमुक्त्वामहर्षिःसध्यानमाश्रित्यसत्वरम् ॥ ब्रह्मरन्ध्रेणनिःसार्य्यप्राणमात्मानमत्यजत् ॥ ९० ॥ तदात्मनापरित्यक्तन्तस्यगात्रञ्चतत्क्षणात् ॥ पतितंमेदिनीपृष्ठेऽथसुतद्विजसत्तमाः ॥ ९१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुतस्यास्थीनिशतक्रतुः ॥ प्रगृह्यविश्वकर्माणन्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ९२ ॥ एतैरस्थिभिःशीघ्रंमेकुरुत्वंवज्रमायुधम् ॥ येनव्यापादयाम्याशुवृत्रन्दानवसत्तमम् ॥ ९३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वकर्मात्वरान्वितः ॥ यथायुक्तंतथाचक्रेवज्राख्यंदारुणाकृति ॥ ९४ ॥ षट्त्रिंशच्छतपर्वाख्यंमध्यक्षामंविभीषणम् ॥ प्रददौचततस्तस्मैसहस्राक्षायधीमते ॥ ९५ ॥ अथशक्रस्समादायद्वादशार्कसमप्रभम् ॥ समाधिस्थञ्चतं

शरीर उसीक्षण धरातलमें गिरपड़ा ॥ ९१ ॥ इसी समयमें उनकी हड्डियोंको लेकर तदनन्तर इन्द्रने आदरसमेत विश्वकर्मासे कहा ॥ ९२ ॥ कि इन हड्डियोंसे तुम शीघ्रही मेरे लिये वज्रअस्त्रको बनावो कि जिससे मैं दानवोंमें श्रेष्ठ वृत्रासुरको शीघ्रही नाशकरूं ॥ ९३ ॥ उसके उस वचनको सुनकर शीघ्रतासंयुत विश्वकर्मा ने जैसा योग्य था वैसाही भयंकरआकारवाला वज्रनामक अस्त्र बनाया ॥ ९४ ॥ जोकि छत्तीससौ गांठियोंसे प्रसिद्ध व बीचमें पतला व भयंकर था तदनन्तर उन बुद्धिमान् सहस्रलोचनोंवाले इन्द्रकेलिये दिया ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने बारह सूर्योंके समानप्रकाशवाले वज्रकोलेकर व समाधिमें टिके तथा सन्ध्यापूजनमें परायण

उस वृत्रासुर को जानकर ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त पिछलेभाग में भलीभांति खड़े होकर उसके मारने के लिये उत्कण्ठित त्रिलोक के राजा उन इन्द्रजीने उद्देशकर वज्रको फेंका ॥ ९७ ॥ उस वज्रसे माराहुआ वह दानव सब भस्मकर दियागया इन्द्रभी उसको मरा न जानकर उसके डरसे भगे ॥ ९८ ॥ व उससमय इन्द्रजी लताओंसे घिरे व मनुष्योंसे रहित विषमदेशमें छिपरहे और समस्त संसारको वृत्रासुरमय माना ॥ ९९ ॥ इसीअवसरमें सब दिशाओंको देखतेहुये देवता, सिद्ध, चारण व गन्धर्व इन्द्रके समीप आये ॥ १०० ॥ तदनन्तर गुल्मोंके बीचमें बैठे व छिपे तथा भयभीत इन इन्द्रको उत्तम वनमें बड़े क्लेशसे भलीभांति देखा ॥ १ ॥

ज्ञात्वावृत्रंसन्ध्यार्चनेरतम्॥९६॥ततश्चपृष्ठभागंससमाश्रित्यत्रिलोकराट्॥ चिक्षेपवज्रमुद्दिश्यतद्वधार्थंसमुत्सुकः॥९७॥
सहतस्तेनवज्रेणदानवोभस्मसात्कृतः॥ शक्रोपिहतमज्ञायभयात्तस्याथदुद्रुवे॥ ९८ ॥ मनुष्यरहितेदेशेविषमेगुल्मसं
वृते॥ लिल्येशक्रस्तदासर्वंमेनेवृत्रमयंजगत्॥ ९९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवाःपश्यन्तस्सर्वतोदिशम्॥ सिद्धचारणगन्ध
र्वाश्चाजग्मुश्चशतक्रतुम्॥ १०० ॥ ततःकृच्छ्रेणसंदृष्टश्शक्रोसौगहनेशुभे॥ विलीनोभयसंत्रस्तोगुल्ममध्येऽव्यवस्थि
तः॥ १ ॥ देवाऊचुः॥ किन्तेभीतिस्सहस्राक्षवृत्रोयंघातितस्त्वया॥ परिवारेणसर्वेणवीक्षितोस्माभिरेवच॥ २ ॥ तस्मा
दागच्छगच्छामोगृहम्प्रतिपुरन्दर॥ कुरुत्रैलोक्यराज्यन्त्वंसाम्प्रतंहतकण्टकम्॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वाथविनिष्क्रान्तोगुल्म
मध्याच्छतक्रतुः॥ हृष्टरोमाहतंश्रुत्वावृत्रंदानवसत्तमम्॥ ४ ॥ अथपश्यतियावत्तन्देवास्सर्वेशतक्रतुम्॥ तावत्तेजो
विहीनन्तज्ञात्वदुर्गन्धिसंयुतम्॥५॥दृष्ट्वालोकगुरुर्ब्रह्मादेवान्सर्वानुवाचह॥शक्रोयंसाम्प्रतंव्याप्तःपापयाब्रह्महत्यया॥६॥

देवता बोले कि हे सहस्रलोचन ! तुमको क्यों डरहै तुमने इसवृत्रासुरको मारडाला हमसबोंहीने परिवारसमेत देखाहै ॥ २ ॥ इसलिये हे इन्द्रजी ! आइये घरको चलैं इससमय तुम नष्टकण्टकोंवाली त्रिलोककी राज्य कीजिये ॥ ३ ॥ उसवचनको सुनकर इसके अनन्तर गुल्म (लता) के बीचसे इन्द्रजी निकले व दानवोत्तम वृत्रासुरको माराहुआ सुनकर प्रसन्नलोमोंवालेहुये ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर समस्तदेवता जबतक उन इन्द्रको देखैं तबतक दुर्गन्धसे संयुत व तेजहीन उस शरीर

को ॥ ५ ॥ देखकर लोकोंके गुरु ब्रह्मांजी समस्तदेवताओंसे बोले कि इससमय पापिनी ब्रह्महत्यासे ये इन्द्रजी व्याप्तहैं ॥ ६ ॥ जिसलिये कि इन इन्द्रने छलसे उस ब्राह्मण हुये वृत्रासुरको माराहै उसीकारण बहुतदूरसे त्यागनेयोग्यहैं नहीं तो पाप पावोगे ॥ ७ ॥ क्योंकि ब्रह्मघाती के साथ छूना व सम्भाषणकरना विशेषकर निन्दित है सूतजी बोले कि ब्रह्माके उसवचनको सुनकर इन्द्रजीने तेजसे त्यागे व दुर्गन्धमे घिरेहुये अपने शरीरको देखकर तदनन्तर दीन व नयेकन्धेवाले होकर ब्रह्मासे कहा ॥ ८ । ९ ॥ कि हे देव ! मैं तुम्हारा सेवकहूं और तुमने इन्द्रतापै नियोग किया है उसीकारण ब्रह्महत्याको विनाशनेवाली प्रसन्नता कीजिये ॥ १० ॥ हे विभो !

यदनेनहतोवृत्रोब्रह्मभूतश्छलेनसः ॥ तस्मात्त्याज्यस्सदूरेणनोचेत्पापमवाप्स्यथ ॥ ७ ॥ ब्रह्मघ्नेनसमंस्पर्शस्संभाषोऽथविनिन्दितः ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यंशक्रोदृष्ट्वात्मनस्तनुम् ॥ ८ ॥ तेजसासंपरित्यक्तंदुर्गन्धेनसमावृतम् ॥ ततःप्रोवाचलोकेशंदीनःप्रणतकन्धरः ॥ ९ ॥ तवाहंकिङ्करोदेवत्वयेन्द्रत्वेनियोजितः ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तंविभोब्रूहियेनशुद्धिःप्रजायते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुत्वंस्नात्वाबलसूदन ॥ ११ ॥ आत्मानंहैमनन्देहिपापपूरुषसंज्ञितम् ॥ मन्त्रवक्त्रैर्यथोक्तञ्चब्राह्मणायमहात्मने ॥ १२ ॥ स्नात्वापुण्यजलेतीर्थेब्रह्मघ्नोहमितिब्रुवन् ॥ स्नातमात्रस्यतेहस्तात्प्रत्यक्षंपततिक्षितौ ॥ १३ ॥ तेजस्संजायतेचैवदुर्गन्धश्चप्रणश्यति ॥ तस्मिंस्तीर्थेत्वयातचस्थाप्यंशक्रकपालकम् ॥ १४ ॥ महेश्वरस्यनाम्नाचपूजनीयन्ततःपरम् ॥ अर्चाभिर्वक्त्रमन्त्रैश्चततोदेयात्मनस्तनुः ॥ १५ ॥ हेमोद्भवाद्विजेन्द्रायततःशुद्धिमवाप्स्यसि ॥ शक्रस्तुतद्वचःश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्म

प्रायश्चित्त कहिये कि जिससे शुद्धि होवै ब्रह्माबोले कि हे बलसूदन ! तुम अरसठि तीर्थोंमें नहाकर ॥ ११ ॥ पापपुरुषनामक यथोक्तसुवर्णवाले शरीर को मन्त्रमुखों के द्वारा महात्मा ब्राह्मणके लिये दीजिये ॥ १२ ॥ पुण्यदायकजलवाले तीर्थोंमें नहाकर मैं ब्रह्मघाती हूं ऐसा कहतेहुये तुम यह करो केवल नहायेहुये तुम्हारे हाथ से सामने ही भूमिमें कपाल गिर पडैगा ॥ १३ ॥ व तेज होगा और दुर्गन्ध नाश होजायगी और हे इन्द्रजी ! तुमको उस तीर्थमें महादेवके नामसे वह कपाल स्थापन करनाचाहिये तदनन्तर मुखमन्त्रोंके द्वारा अर्चनों से पूजना चाहिये उस के उपरान्त सुवर्ण से उपजा हुआ अपना शरीर द्विजेन्द्रके लिये देनाचाहिये उसी

से पवित्रताको पावोगे अप्रकटजन्मवाले ब्रह्माके उस वचनको सुनकर इन्द्रजी ॥ १४ । १५ । १६ ॥ वृत्रासुरसे उपजेहुये कपालको लेकर तदनन्तर तीर्थयात्राको गये अरसठि तीर्थोंमें जातेहुवे सुरनायक इन्द्रजी ॥ १७ ॥ क्रमसे हाटकेश्वरसे उपजेहुये क्षेत्रमें भलीभांति आये व विश्वामित्रके कुण्डमें नहाकर जवतक उससे निकले ॥ १८ ॥ तबतक उसीक्षणही उन इन्द्रके हाथसे कपाल गिरपड़ा तदनन्तर पहले जैसा ब्रह्माने कहाथा वैसेही समस्तपातकोंके हरनेवाले मुखसे उपजेहुये पवित्र मन्त्रोंसे उसका पूजनकिया इसी समयमें दुर्गन्ध नाशको प्राप्तहुई ॥ १९।२० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उसके शरीरमें बड़ातेज उत्पन्नहुआ इसी अवसरमें देवताओं

न: ॥ १६ ॥ कपालंवृत्रजंगृह्यतीर्थयात्रान्ततोगतः ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुगच्छमानःसुरेश्वरः ॥ १७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे समायातःक्रमेणच ॥ विश्वामित्रह्रदेस्नात्वायावत्तस्माद्विनिर्गतः ॥ १८ ॥ कपालंपतितन्तस्यसद्यएवशचीपतेः ॥ तत स्तम्पूजयामासमन्त्रैर्वक्त्रसमुद्भवैः ॥१९॥ सर्वपापहरैःपुण्यैर्यथोक्तंब्रह्मणापुरा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुदुर्गन्धोनाशमाप्नु यात् ॥ २० ॥ तच्छरीराद्द्विजश्रेष्ठामहत्तेजोऽप्यजायत ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मासहदेवैस्समागतः ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्याविमु क्तन्तंज्ञात्वासर्वसुराधिपम् ॥ब्रह्महत्याकृतोदोषोगतस्तेसुरसत्तम ॥ २२ ॥ शेषपापविशुद्ध्यर्थंस्वर्णदानंप्रयच्छभो ॥ कपा लमेतद्देशेत्रयत्त्वयापरिपूजितम् ॥ २३ ॥ वृत्रस्यपञ्चभिर्मन्त्रैर्हरवक्त्रसमुद्भवैः ॥ प्रदास्यसिततोभक्त्याहेमजामात्मन स्तनुम् ॥ २४ ॥ विधिनामन्त्रयुक्तेनतवपापंप्रयास्यति ॥ यद्यत्पूर्वंकृतंकृत्स्नम्प्रदायब्राह्मणायभो ॥ २५ ॥ एवमुक्तस्त तःशक्रोब्रह्मणासुरसन्निधौ ॥ तथेत्युक्त्वाचतत्कालंपापदेहन्ददौनिजम् ॥ २६ ॥ कृत्वाहेममयंविप्राब्राह्मणाययतात्म

समेत ब्रह्माजी उन समस्तदेवताओंके स्वामी इन्द्रको ब्रह्महत्यासे छुटे जानकर भलीभांति आये व बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारा ब्रह्महत्यासे कियाहुआ दोष जातारहा ॥ २१ । २२ ॥ हे इन्द्रजी ! शेष पातक की पवित्रता के लिये सुवर्णदान दीजिये यहां इसदेशमें महादेव के मुखसे उपजेहुये पांच मन्त्रोंके द्वारा जो तुमने वृत्रासुर का कपाल पूजाहै तदनन्तर सुवर्णसे उपजेहुये अपने शरीरको भक्तिसे मन्त्रसंयुत विधि के द्वारा देवोगे तो हे इन्द्रजी ! तुम्हारा पाप नाश होजायगा जो पहले कियाहै वह सब ब्राह्मणके लिये देकर नाशहोगा ॥ २३ । २४ । २५ ॥ ब्रह्मासे ऐसा कहेहुये इन्द्रजी ने देवताओंके समीप वैसाही होगा यह कहकर तदन-

न्तर हे ब्राह्मणो ! सुवर्णमयी अपनी पापदेहको बनाकर उसी समय गर्ततीर्थमें उपजे व अग्निहोत्री तथा वशकियेहुयेचित्तवाले वातनामक ब्राह्मणके लिये दिया ॥ २६ । २७ ॥ इसी अवसरमें यहां नागर द्विजोंने उस ब्राह्मणकी निन्दाकिया कि हे पापी ! तुमको धिक्कारहै धिक्कारहै पहले तुमने जिन वेदोंको पढ़ा वे वृथाहोगये॥ २८ ॥ व कभी तुम हमलोगोंके साथ मेल न करोगे क्योंकि तुमने पापपिण्डसे उपजेहुये दानको ग्रहण कियाहै ॥ २९ ॥ तदनन्तर रंगहीनमुखवाला होकर उपमन्युकुलमें उपजाहुआ वह ब्राह्मणबोला जोकि नामसे वातक ऐसा प्रसिद्धथा ॥ ३० ॥ जिसलिये कि अपने पापपिण्डको तुमने संकल्प करदिया उसी उदारतासे

ने ॥ गर्ततीर्थसमुत्थायवाताख्यायाहिताग्नये ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रोगर्हितस्सोत्रनागरैः ॥ धिग्धिक्पापत्वथावेदायेत्वयापठिताःपुरा ॥ २८ ॥ नास्माभिस्सहसम्पर्ककदाचित्त्वंकरिष्यसि॥ गृहीतंयत्त्वयादानंपापपिण्डसमुद्भवम्॥ २९ ॥ ततःप्रोवाचविप्रःसउपमन्युकुलोद्भवः ॥ विवर्णवदनोभूत्वानाम्नाख्यातस्तुवातकः ॥ ३० ॥ त्वयासङ्कल्प्यदत्तोयः पापपिण्डःस्वकोयतः ॥ मयाप्रतिग्रहस्तेनदाक्षिण्येनकृतस्तव ॥ ३१ ॥ नरैरेभिस्सुरश्रेष्ठपश्यतस्तेविगर्हितः ॥ अहञ्चब्राह्मणैस्सर्वैरेतैर्नगरवासिभिः ॥ ३२ ॥ तस्मान्नाहंगृहीष्यामिह्येनन्तवप्रतिग्रहम् ॥ भूयोपितवदास्यामिनत्वंगृह्णासिचेत्पुनः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मशापम्प्रदास्यामिदारुणञ्चक्षयात्मकम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ वेदाङ्गपारगोविप्रोयदिकुर्य्यात्प्रतिग्रहम् ॥ ३४ ॥ नसपापेनलिप्येतपद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ तस्मात्तेपातकंनास्तिश्रृणुपात्रवचोमम ॥ ३५ ॥ एतैस्त्वंगर्हि

मैंने तुम्हारा प्रतिग्रह किया ॥ ३१ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारे देखतेहुये इन मनुष्यों तथा इन समस्तनगरनिवासी द्विजोंने मेरी निन्दा किया ॥ ३२ ॥ उसी कारण मैं तुम्हारे इस दानको न लूंगा किन्तु फिरभी तुमको दूंगा और यदि फिर न लेवोगे ॥ ३३ ॥ तो संहारात्मक विकराल ब्रह्मशापको दूंगा इन्द्रबोले कि वेदाङ्गोंके पारजानेवाला ब्राह्मण यदि प्रतिग्रह करै ॥ ३४ ॥ तो जलसे कमलके पत्तेके समान वह पापसे नहीं लिप्तहोताहै इसलिये हे पात्र ! तुम्हारे पातक नहींहै मेरेवचन सुनिये ॥३५॥

१ न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥

जिसलिये नागरों से उपजेहुये ब्राह्मणों से तुम निन्दित हुयेहो उसी कारण इन के मध्यमें तुम समस्तकार्यों में मुख्य होगे ॥ ३६ ॥ व इनके जो पुत्र पौत्र होवैंगे वे सब उनकी आज्ञासे निरसन्देह तुम्हारे मतमें वर्तमान होवैंगे ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो! तुम्हारे वचनसे विहीन जो थोड़ाभी कियाहुआ होगा उनका वह अफलता को प्राप्तहोगा जैसे कि भस्म में होम विफल होजाता है ॥ ३८ ॥ व कपालमोचननामक यह तीर्थ प्रसिद्ध होगा और हे उत्तम द्विज ! जे मनुष्य मेरेकपाल को भलीभांति स्मरणकर ॥ ३९ ॥ वहां श्राद्धकरैंगे वे मनुष्य मुक्तिसंयुत होवैंगे व श्राद्धपक्षमें विशेषकर उत्तम गतिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ४० ॥ और तुम्हारे कुलमें उपजेहुये ब्राह्मण स्थान

तोयस्माद्ब्राह्मणैर्नागरोद्भवैः ॥ एतेषांसर्वकृत्येषुप्रधानस्त्वंभविष्यसि ॥ ३६ ॥ एतेषांपुत्रपौत्रायेभविष्यन्तितथातव ॥
तेसर्वेचाज्ञयातेषांवर्तयिष्यन्त्यसंशयम् ॥ ३७ ॥ युष्मद्वाक्यविहीनंयत्कृतंस्वल्पमपिद्विजाः ॥ तेषांसम्पत्स्यतेवन्ध्यं
यथाभस्महुतन्तथा ॥ ३८ ॥ कपालमोचनंनामख्यातमेतद्भविष्यति ॥ येतुसंस्मृत्यमनुजाःकपालंममसद्द्विज ॥३९॥
तत्रश्राद्धङ्करिष्यन्तितेनरामुक्तिसंयुताः ॥ श्राद्धपक्षेविशेषेणप्रयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ४० ॥ स्थानबाह्येद्विजातीनांकुले
दारपरिग्रहम् ॥ कृत्वात्वद्गोत्रसम्भूताब्राह्मणामत्प्रसादतः ॥ ४१ ॥ व्यवहार्याभविष्यन्ति नगरेसर्वकर्मसु ॥ एवमु
क्त्वासहस्राक्षस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ ४२ ॥ वातोपितेनवित्तेन प्रतिग्रहकृतेनच ॥ चकारतत्रप्रासादं देवदेवस्यशूलि
नः ॥ ४३ ॥ ततःप्रोवाचशक्रस्तान्ब्राह्मणान्नगरोद्भवान् ॥ कपालमोचनेस्नात्वायोदेवंह्यर्चयिष्यति ॥ ४४ ॥ ब्रह्महत्यो
द्भवंपापं तस्यनश्यत्यसंशयम् ॥ महापातकयुक्तोवा विपाप्मासभविष्यति ॥ ४५ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ब्राह्मणान्नगरो

से बाहरवाले ब्राह्मणों के वंशमें स्त्रीको ग्रहणकर मेरी प्रसन्नता से ॥ ४१ ॥ नगरमें समस्त कर्मोंमें व्यवहार के योग्य होवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर हजारलोचनोंवाले इन्द्रजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४२ ॥ व वातने भी दान लियेहुये उस धनसे त्रिशूलधारी देवदेवका वहां मन्दिर निर्माण किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर इन्द्रने नगर में उपजेहुये उन ब्राह्मणों से कहा कि कपालमोचनतीर्थ में नहाकर जो शिवदेवको पूजैगा ॥ ४४ ॥ उसका ब्रह्महत्या से उपजाहुआ पाप निरसन्देह नाशहोगा व महापातकों से

युक्भी वह बिनपाप होगा ॥ ४५ ॥ उसने नगरमें उपजेहुये ब्राह्मणों से तथा याने वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकरके वहीं आश्रम बनाकर शिवजीका पूजनकिया ॥४६॥ तबसे लगाकर जो कुछ उनका कार्य होताहै वे उसके वचन से उसको करतेहैं जो कि नागर ब्राह्मण वहां टिके हैं ॥ ४७ ॥ इसी कारणसे यहां दूसरे शिवजी मध्यवर्ती हुये हैं इस कपालेश्वरदेव के समस्तकथानक को मैंने तुमलोगों से कहा जोकि सुननेवाले उत्तमजनों के पापका विनाशक है हे द्विजोत्तमो ! यहां जैसे महात्मा सुरेश की ब्रह्महत्या नष्टहुई है वैसेही उस तीर्थ में पाप नाशहोजाता है ॥४८।४९।५०॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका

द्भवान् ॥ तत्रैवस्वाश्रमंकृत्वापूजयामासशङ्करम् ॥ ४६ ॥ ततःप्रभृतियत्किञ्चित्तेषांकृत्यंप्रजायते ॥ तद्वाक्येनप्रकुर्वन्तितत्रयेनागराःस्थिताः ॥ ४७ ॥ एतस्मात्कारणाज्जातोमध्यगोद्वितयस्त्विह ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातमाख्यानंपापनाशनम् ॥ ४८ ॥ कपालेश्वरदेवस्यशृण्वताञ्चनृणांसताम् ॥ तथादेवेश्वरस्यात्रपापंनश्येन्महात्मनः ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यायथानष्टातस्मिंस्तीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेवातकेश्वरकपालमोचनेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ मूर्खत्वाद्वाप्रमादाद्वाकामाद्वालस्यतोपिवा ॥ योनरःकुरुतेपापंप्रायश्चित्तंकरोतिन ॥ १ ॥ तस्य पापक्षयकरंपुण्यंब्रूहिद्विजोत्तम ॥ येनमुक्तिर्भवेत्सद्योयदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ २ ॥ लोभमोहपरोयोसौपापपिण्डंमहामुने ॥ प्रददातिविधिंब्रूहियेनयच्छाम्यहंद्रुतम् ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ दद्यात्स्वपिण्डंसौवर्णंपञ्चविंशपलंनरः ॥ यथाप्र

यांवातकेश्वरकपालमोचनेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पाप पुरुष निर्माणकरि देय द्विजहिं जिमि दान । दोसौपच्चीसवें महँ सोई करत बखान ॥ आनर्त बोला कि मूर्खता या असावधानता व कामना या आलस्यसे भी जो मनुष्य पातक करताहै और प्रायश्चित्त नहीं करता है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम, प्रभो ! यदि प्रसन्नहो तो उसके पापका क्षयकारक व पुण्यदायक यत्न कहिये कि जिससे शीघ्रही मोक्षहोवैहै ॥ २ ॥ हे महामुने ! लोभ व मोहमें परायणजो यह पापपिण्डको देताहै उसकी विधि कहिये कि जिससे मैं शीघ्रही देऊं ॥३॥

भूषित कर तदनन्तर मूर्तिको भलीभांति आनै व हे नृपेन्द्र ! इस मन्त्रसे ब्राह्मण के लिये निवेदन करै कि हे विप्रजी ! मैंने इस सुवर्णमयी आत्माको तुमको दिया ॥ वेदों व वेदांगों के पारगामी ब्राह्मण को आनकर व उस के चरणों को धोकर वसन पहनावै ॥ ९ ॥ और बहूंटा, कंकण, मुन्दरी इत्यादि भूषणों से उसका शरीर
१० । ११ ॥ व पहले जोकुछ पातक मैंने कियाहो वह सम्पूर्ण तुमको होवै यहदानका मन्त्रहै तदनन्तर हे राजन् ! ब्राह्मण इस मन्त्रको उच्चारणकरै ॥ १२ ॥ कि
पहले जोकुछ तुमने पातक किया है मैंने मूर्तिरूपके द्वारा उसको ग्रहण किया उसीसे तुम पापरहितहो ॥ १३ ॥ यह दानलेने का मन्त्र इस प्रकार विधि से देकर

क्षाल्यचरणौतस्यवासांसिपरिधापयेत् ॥ ९ ॥ केयूरैःकङ्कणैश्चैवअंगुलीयकभूषणैः ॥ भूषयित्वातनुन्तस्यततोमूर्त्तिस
मानयेत् ॥ १० ॥ मन्त्रेणानेनराजेन्द्रब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ एषआत्मामयादत्तस्तवहेममयोद्विज ॥ ११ ॥ यत्किञ्चि
द्विहितंपापंपूर्वंभूयात्तवाखिलम् ॥ इतिदानमन्त्रः ॥ ततस्तुब्राह्मणोराजन्मन्त्रमेनंसमुच्चरेत ॥ १२ ॥ यत्किञ्चिद्विहितं
पापंत्वयापूर्वमयाहितत् ॥ गृहीतंमूर्तिरूपेणततस्त्वंपापवर्जितः ॥ १३ ॥ इतिप्रतिग्रहमन्त्रः ॥ एवंदत्त्वाविधानेनततो
विप्रंविसर्जयेत् ॥ एवंकृतेततोराजंस्तस्मैदत्त्वाचदक्षिणाम् ॥ १४ ॥ यथातुष्टिंसमभ्येतितत:पापंप्रणश्यति ॥ श्रवणाद
पिराजेन्द्रयस्यपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ अदत्त्वापिमहादानंपापपिण्डंहरेन्नृप ॥ एतज्जन्मकृतंपापंनिजकायेननिर्मि
तम् ॥ १६ ॥ कपालेश्वरदेवस्यसहस्रगुणितंहरेत् ॥ पूर्ववच्चैवकर्तव्योवेदीमण्डपयोर्विधिः ॥ १७ ॥ परंहोमःप्रकर्तव्योगा
यत्र्याकेवलंन्नृप ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेपापपिण्डप्रदानंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २२५ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणको बिदाकरै हे राजन् ! ऐसा करनेपर और उसके लिये दक्षिणा देकर ॥ १४ ॥ प्रसन्नता के अनुकूल पदार्थको प्राप्तहोता है व उसीसे पातक नष्टहो-
ताहैं हे नृपेन्द्र ! जिसके सुनने से भी पातकों से छूटजाताहै ॥ १५ ॥ हे राजन् ! महादान को न देकर भी अपने शरीर से निर्माण कियेहुये इसजन्ममें किये पातक
को पापपिण्ड हरलेता है ॥ १६ ॥ व कपालेश्वर के आगे दियाहुआ पापपिण्ड हजारगुने पातकको हरताहै और वेदी व मण्डप की विधि पहलेही की नाईं करना
चाहिये ॥ १७ ॥ परन्तु हे राजन् ! होम केवल गायत्री से करना चाहिये ॥१८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेपापपिण्डप्रदानंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

भर्तृयज्ञ बोले कि मनुष्य पचीसपलका सुवर्णवाला अपनापिण्ड देवै और दशपलका पिण्ड देवै व जिस प्रकार पातकसे छूटजाताहै वैसाही मैं कहूंगा ॥४॥ कि महीने के दूसरेपक्षमें प्रातःकाल नहाकर व धोयेहुये वसन पहिन पवित्रहो प्रातःकाल भलीभांति रूपसे संयुत सुवर्णपिण्ड को बनाकर व विधि से नहवाकर ॥ ५ ॥ पापकारी पुरुष उस समय पृथ्वी का स्वरूप पूजनकरै कि जिस प्रकार उस कियेहुये पाप से वह निरसन्देह छूटजाताहै ॥ ६ ॥ और हे मनुजाधिप ! जो पृथ्वी आदिक चौबीस तत्त्व हैं उन नामों से उस पिण्डको पूजना चाहिये ॥ ७ ॥ पृथ्वी के लिये नमस्कार है जलोंके लिये नमस्कार है अग्निके लिये नमस्कार है वायुके लिये नमस्कार है आकाश के लिये नमस्कार है नेत्रके लिये नमस्कार है, जिह्वाके लिये प्रणाम है, नासिका के लिये नमस्कार है, कर्णके लिये प्रणाम है, शब्दके लिये नमस्कार है, स्पर्शके लिये प्रणाम है, रसके लिये नमस्कार है, रूपके लिये प्रणाम है, गन्ध के लिये प्रणामहै, वाणी के लिये प्रणामहै, हाथोंके लिये प्रणाम है, चरणों के लिये प्रणामहै,वायुके लिये प्रणामहै, उपस्थके लिये नमस्कार है, मनके लिये नमस्कार है, बुद्धिके लिये नमस्कार है, अहंकार के लिये नमस्कार है, क्षेत्रात्मा के लिये नमस्कार है, व (धूर्वसि) इस मन्त्र से धूप और (अग्निर्ज्योतिः) इस मन्त्र से दीप देवै व (युवावासा) ऐसे मन्त्रसे वसन पहनावै ॥ ८ ॥ तदनन्तर

मुच्यतेपापात्तथादशपलात्मकम् ॥४॥ मासस्यापरपक्षेतुस्नापयित्वाविधानतः ॥ संरूपाढ्यंप्रगेकृत्वास्नात्वाधौताम्बरः शुचिः ॥ ५ ॥ तदास्वरूपंपृथ्व्याश्चपूजयेत्पापकृन्नरः ॥ यथासमुच्यतेपापात्तत्कृताद्विनसंशयः ॥ ६ ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानिपृथिव्यादीनियानिच ॥ तैर्नामभिश्चतत्पिण्डम्पूजनीयंनराधिप ॥ ७ ॥ ॐपृथिव्यैनमः ॐअद्भ्योनमः ॐतेजसे नमः ॐवायवेनमः ॐआकाशायनमः ॐचक्षुषेनमः ॐजिह्वायैनमः ॐघ्राणायनमः ॐश्रोत्रेनमः ॐशब्दायनमः ॐस्पर्शायनमः ॐरसायनमः ॐरूपायनमः ॐगन्धायनमः ॐवाचेनमः ॐपाणिभ्यांनमः ॐपादाभ्यांनमः ॐपायवेनमः ॐउपस्थायनमः ॐमनसेनमः ॐबुद्ध्यैनमः ॐअहङ्कारायनमः ॐक्षेत्रात्मनेनमः ॥ धूपंधूर्वसीतिमन्त्रेण अग्निर्ज्योतीतिदीपकम् ॥ युवावासेतिमन्त्रेणवासांसिपरिधापयेत् ॥ ८ ॥ ततोब्राह्मणमानीयवेदवेदाङ्गपारगम् ॥ प्र

दो० यथा कमठ वक आदिकन थाप्यो लिंगन सात । दोसौ छब्बीसवें में सोइ चरित अवदात ॥ सूतजीबोले कि इसके अनन्तर वहां और भी भलीभांति पुण्यदायक सात लिंगहैं कि जिनके अर्चने, देखने व विशेषकर पूजने से ॥ १ ॥ मनुष्य समस्तरोगोंसे रहितहो दीर्घायुष्मान् होताहै वहां मार्कण्डेश्वर ऐसे कहेहुये महेश्वरदेवजी हैं ॥ २ ॥ व समस्तपातकों के हारक अन्य इन्द्रद्युम्नेश्वर हरहैं वैसेही समस्तव्याधियों के विनाशक पालेश्वर देवहैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर घण्टेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो कि घण्टनामक नर से थापेगये हैं व वानरेश्वरसंयुत कलशेश्वरनामक हैं ॥ ४ ॥ और उस क्षेत्रमें ईशानशिव ऐसे कहेहुये महेश्वरजी हैं जोकि मनुष्योंसे भक्तिके

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्तिसुपुण्यंलिङ्गसप्तकम् ॥ येनार्चितेनदृष्टेनपूजितेनविशेषतः ॥ १ ॥ दीर्घायुर्जायतेमर्त्यःसर्वरोगविवर्जितः ॥ मार्कण्डेश्वरइत्युक्तस्तत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरोन्यस्तुसर्वपापहरोहरः ॥ पालेश्वरस्तथाचैवसर्वव्याधिविनाशनः ॥ ३ ॥ ततोघण्टेश्वरःख्यातोयोघण्टेनप्रतिष्ठितः ॥ कलशेश्वरसंज्ञस्तुवानरेश्वरसंयुतः ॥ ४ ॥ ईशानशिवइत्युक्तस्तत्रक्षेत्रेमहेश्वरः ॥ पूजितोमानवैर्भक्त्याकामान्यच्छत्यमानुषान् ॥ ५ ॥ वाञ्छितान्मनसासर्वान्कलिकालेपिसंस्थिते ॥ ऋषयऊचुः ॥ कोयंमार्कण्डसंज्ञस्तुयेनलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालःकतमोवदसूतज ॥ तथापालकनामाचयेनायंस्थापितोहरः ॥ ७ ॥ तथायोघण्टसंज्ञस्तुकस्मिञ्जातस्सचान्वये ॥ कलशाख्यश्चयस्माच्चवानरेश्वरसंयुतः ॥ ८ ॥ ईशानोप्यखिलंब्रूहिपरंनःकौतुकंस्थितम् ॥ यतोत्रजायतेश्रेयःपुनःपुंसांप्रकीर्तय ॥ ९ ॥ यैरेतेस्थापितादेवाःक्षेत्रेस्मिन्मानवोत्तमैः ॥ तथातेषांसमाचारंप्रभावञ्चैवसूतज ॥ १० ॥ दा

द्वारा पूजेहुये अमानुष याने देवोंवाले मनोरथों को देतेहैं ॥ ५ ॥ और कलिकाल के भी भलीभांति स्थितहोने पर मनसे चाहेहुये समस्तकामनाओंको देते हैं ऋषिलोग बोले कि मार्कण्डनामक कौन हैं कि जिसने लिंग थापन कियाहै ॥ ६ ॥ हे सूतनन्दन ! इन्द्रद्युम्न भूपाल कौन है यह कहिये और पालकनाम कौन है जिसने इन शिवजी को थापाहै ॥ ७ ॥ वैसेही जो घण्टनामक है वह किसवंश में पैदाहुआ था और वानरेश्वरसंयुत कलशनामक जिससे थापेगये हों उसको कहो ॥ ८ ॥ और ईशानभी कौनहै यह सब कहिये क्योंकि हमलोगों के परमआश्चर्य टिका है और फिर जिससे यहां पुरुषों का कल्याण होताहै उसको कहिये ॥ ९ ॥ व हे सूत-

नन्दन ! इस क्षेत्रमें जिन मनुजोत्तमों ने इनदेवोंको थापाहै उन के आचरण व प्रभाव को कहिये ॥ १० ॥ व समय के अनुकूल दानभी व मन्त्रोंको विस्तार से कहिये सूतजी बोले कि मैं इस पुरानी कथाको तुमलोगोंसे कहूंगा ॥ ११ ॥ जो कि आपही भर्तृयज्ञ ने आनर्तदेश के स्वामी से कहा है और जिस कथा को सुनकर भी मृत्युलोक में मनुष्य बड़ी आयुर्बलवाला होता है ॥ १२ ॥ और उसके प्रभाव से किसी प्रकार अपमृत्यु को नहीं प्राप्त होताहै जो मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध पहले कहेगये हैं ॥ १३ ॥ पापों को विनाशनेवाली उनकी उत्पत्ति तुमलोगों से भलीभांति कहीगई है इस समय हे मुनिनायको ! इन्द्रद्युम्न को कहूंगा ॥ १४ ॥

नंवापियथाकालंमन्त्रांश्चविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिकथामेतांपुरातनीम् ॥ ११ ॥ कथितांभर्तृयज्ञे नआनर्ताधिपतेःस्वयम् ॥ श्रुत्वापियांकथांमर्त्येदीर्घायुर्जायतेनरः ॥ १२ ॥ नापमृत्युमवाप्नोतिकथंचित्तत्प्रभावतः ॥ योमा र्कण्डेयइतिख्यातःप्रथमंपरिकीर्तितः ॥ १३ ॥ सम्भूतिस्तस्यसंप्रोक्तायुष्माकंपापनाशिनी ॥ इन्द्रद्युम्नंप्रवक्ष्यामिस म्प्रतंमुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥ यद्दत्तेयत्प्रभावश्चसर्वंभूपालसत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालआसीत्पूर्वंद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्चसाधुलोकप्रपालकः ॥ यज्वादानपतिर्दक्षःसर्वभूतहितेरतः ॥ १६ ॥ नदुर्भिक्षंनचव्याधिर्नचचौरकृत म्भयम् ॥ तस्मिञ्छासतिधर्मज्ञे ह्यासील्लोकस्यकस्यचित् ॥ १७ ॥ यथैववर्षतोधारा यथावादिवितारकाः ॥ गङ्गा यांसिकतायद्वत्संख्ययापरिवर्ज्जिताः ॥ १८ ॥ तद्वत्तेनकृतायज्ञास्सर्वेसम्पूर्णदक्षिणाः ॥ अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च उ क्थःषोडशिकस्तथा ॥ १९ ॥ सौत्रामण्योथपशवश्चातुर्मास्यंद्विजोत्तमाः ॥ वाजपेयाश्वमेधाश्च राजसूयाविशेष

वह नृपश्रेष्ठ जो देता था व जिस प्रभाववाला था वह सब कहूंगा हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय इन्द्रद्युम्न भूपाल हुआ है ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मणों को माननेवाला व शरणागत की रक्षाकरनेवाला तथा सज्जनों का पालक व यज्ञकरनेहारा, दानपति प्रवीण व समस्तप्राणियों के हितमें तत्पर था ॥ १६ ॥ जब वह धर्मज्ञ पालन करता था तब न दुर्भिक्ष न रोग ओर न किसी मनुष्यको चोरसे कियाहुआ डरथा ॥ १७ ॥ जैसे बरसते हुये मेघकी धारा व जैसे आकाश में नक्षत्र और जैसे गंगामें बालूके किनका संख्यासे रहित याने असंख्य हैं ॥ १८ ॥ वैसेही उसने सम्पूर्ण दक्षिणाओंवाले समस्तयज्ञोंको किया अग्निष्टोम, अतिरात्र, उक्थ व षोडशिक ॥ १९ ॥

और हे द्विजोत्तमो ! सौत्रामणि व पशुयज्ञों व चातुर्मास्ययज्ञ व विशेषकर वाजपेय, अश्वमेध व राजसूय यज्ञोंको किया ॥ २० ॥ वैसेही श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके पुण्डरीक यज्ञोंको किया उसने तीर्थों व बिलों याने गुहादिक तीर्थस्थानों में दान दिया ॥ २१ ॥ व ब्राह्मणों को दक्षिणासमेत मिष्टान्न दिया भूतल में वह नगर व शहर तीर्थ न था कि जहां उसका देवालय न विद्यमानहो उसने हजार दशहजार व अर्बुद कन्याओं को ब्राह्मणों के लिये दिया और धनके चाहनेवाले ब्राह्मणों को धनादिया और दशमी के दिन उस की राज्यमें हाथीकी पीठपै सवार ॥ २२ । २३ । २४ ॥ व नगारे बजाता व यह कहताहुआ कोई दूत समस्तनगर में घूमता था

तः ॥ २० ॥ पुण्डरीकास्तथैवान्ये श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तेनदानानिदत्तानि तीर्थेषुविवरेषुवा ॥ २१ ॥ मिष्टान्नानिद्विजेन्द्राणां दक्षिणासहितानिच ॥ नतदस्तिधरापृष्ठे नगरंपत्तनंतथा ॥ २२ ॥ तीर्थंवायत्रनोतस्य विद्यतेत्रिदशालयम् ॥ तेनकन्यासहस्राणि अयुतान्यर्बुदानिच ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदत्तानि ब्राह्मणानांधनार्थिनाम् ॥ दशमीदिवसेतस्य राज्येचगजपृष्ठगः ॥ २४ ॥ दुन्दुभिस्ताड्यमानस्तु बभ्रामसकलम्पुरम् ॥ प्रत्यूषेवैष्णवोभावी पापहाहरिवासरः ॥ २५ ॥ तेनैवस्वशरीरेण ब्रह्मलोकंस्वयङ्गतः ॥ ततःकल्पसहस्रान्ते सप्रोक्तोब्रह्मणास्वयम् ॥ २६ ॥ इन्द्रद्युम्नधराङ्गच्छ नस्थातव्यंत्वयाधुना ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ कस्माच्च्यावयसेब्रह्मन्निजलोकाद्द्रुतंहिमाम् ॥ २७ ॥ अपापमपिदेवेश तथामेवदकारणम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तवकीर्तिसमुच्छेदः संजातोद्यधरातले ॥ २८ ॥ यावत्कीर्तिर्धरापृष्ठे तावत्स्वर्गेवसेन्नरः ॥ एतस्मात्कारणाल्लोके स्वनामाङ्कानिचक्रिरे ॥ २९ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानिच ॥ तस्माद्गच्छधराप्

कि प्रातःकाल पापहारी वैष्णव हरिवासर (एकादशी) होगी ॥ २५ ॥ उसीकारण अपने शरीरसमेत आपही ब्रह्मलोक को चलागया तदनन्तर हजार कल्पके अन्त में ब्रह्माने आपही उससे कहा ॥ २६ ॥ कि हे इन्द्रद्युम्न ! भूतलको जावो तुम को इस समय यहां न टिकनाचाहिये इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! अपने लोकसे मुझ बिनपापीको भी शीघ्रही क्यों गिरातेहो हे देवेश ! मुझसे वैसाही कारण कहिये ब्रह्मा बोले कि भूतल में आज तुम्हारे यशका विनाश होगया ॥ २७ । २८ ॥ जबतक भूतलमें यश रहताहै तबतक मनुष्य स्वर्गमें बसताहै इसी कारण से लोकमें बावली, कूप, तडाग व देवमन्दिर अपने नामोंसे चिह्नित कियेगये हैं उसीलि-

ये तुम भूतलको जावो व अपने यशको नवीनकरो ॥ २९।३० ॥ यदि मेरे इसलोक में बहुत दिनतक निवास चाहतेहो इसके अनन्तर वह नृपेन्द्र जबतक अपनाको देखै तबतक उसीक्षण कांपिल्यनगरमें प्राप्तहोगया इसके अनन्तर उसने मनुष्यों से पूंछा कि यह कौन नगर कहलाता है ॥ ३१ । ३२ ॥ व यहां कौन देश और यहां कौन राजा व कौन पुर और कौन नगरहै उन्होंने उससे कहा कि कांपिल्य ऐसा प्रसिद्ध पुरहै ॥ ३३ ॥ और यह आनर्तनामक देशहै व यहा पृथ्वीतप राजा है आप कौनहैं व यहां क्यों आयेहो मुझसे किसी कार्यको कहिये ॥ ३४ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि पुरातनसमय वेजहकदेशमें पहले रोचकपुरमें इन्द्रद्युम्न भूपाल हुआहै वह देश

ष्ठे स्वांकीर्तिन्नूतनीकुरु ॥ ३० ॥ यदिवाञ्छसिलोकेस्मिन्मामकेवसतिञ्चिरम् ॥ अथात्मानंसराजेन्द्रोयावत्पश्यति तत्क्षणात् ॥३१॥ तावत्प्राप्तन्धराप्रष्ठे काम्पिल्यनगरम्प्रति ॥ अथपप्रच्छलोकान्सकिमेतन्नगरंस्मृतम् ॥ ३२ ॥ कोत्र देशःकोत्रराजा किम्पुरन्नगरंचकिम् ॥ तेतमूचुःपुरंचैवकाम्पिल्यमितिविश्रुतम् ॥ ३३ ॥ आनर्तनामादेशोयं राजात्रपृथिवीतपः ॥ कोभवान्किमिहायातःकिञ्चित्कार्य्यंवदस्वमे ॥ ३४ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालः पुरासीद्रोचकेपुरे ॥ देशेवेजहकेपूर्वं सदेशःक्वचतत्पुरम् ॥ ३५ ॥ जनाऊचुः ॥ नवयंतत्पुरंविद्मोनदेशंनचभूपतिम् ॥ इन्द्रद्युम्नाभिधानञ्च यत्त्वंपृच्छसिभद्रक ॥ ३६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चिरायुरस्तिकोप्यत्र यस्तंवेत्तिमहीपतिम् ॥ देशंवातत्पुरं वापि तन्मेवदथमाचिरम् ॥ ३७ ॥ जनाऊचुः ॥ सप्तकल्पचरोनाम्ना मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ श्रूयतेनैमिषारण्ये तङ्गत्वापृच्छवेत्स्यति ॥ ३८ ॥ अथासौसत्वरङ्गत्वा व्योममार्गेणतम्मुनिम् ॥ पप्रच्छप्रणिपत्योच्चैर्नैमिषारण्यमाश्रि

और वह पुर कहां है ॥ ३५ ॥ मनुष्य बोले कि हे कल्याणरूप ! जो तुम पूंछते हो हमलोग उसपुर व देश और इन्द्रद्युम्ननामक भूपाल को नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि यहां कोई भी दीर्घआयुवाला है जोकि देश और उस नगरभी या उस भूपति को जानता है मुझसे उसको शीघ्रही कहिये ॥ ३७ ॥ मनुष्य बोले कि सातकल्पवाले मार्कण्डेयनामक महामुनि नैमिपारण्यमें सुन पड़ते हैं वे जानैंगे उन के समीप जाकर पूंछिये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर इसने आकाशमार्गसे शीघ्रही

जाकर व उक्तप्रकार से प्रणामकर नैमिषारण्य में टिकेहुये उन मुनिसे पूंछा ॥३९॥ कि हे सन्मुने ! तुमने यहां इन्द्रद्युम्न ऐसे भूपको देखा या सुना है हमने तुम को
दीर्घायुष्मान् माना है उसीसे पूंछते हैं ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि यहां मैंने इन्द्रद्युम्ननामक भूपाल को सात कल्पोंके बीचमें न देखा है न सुना है इसलिये
उस विषयमें तुमसे क्या कहूं ॥ ४१ ॥ उसके उस वचनको सुनकर मरणमें निश्चय कियेहुए वह भूपति परम वैराग्यको प्राप्त होकर निराश हुआ ॥ ४२ ॥ उसीकारण
लकड़ियों को लाकर व अग्नि जलाकर पैठनेकी इच्छावाले इन्द्रद्युम्न भूपतिसे मार्कण्डेयने कहा ॥ ४३ ॥ कि तुमको यहां यह न करनाचाहिये मैं तुम्हारी मित्रता

तम् ॥३९॥ इन्द्रद्युम्नेतिभूपोत्र त्वयादृष्टःश्रुतोथवा ॥ चिरायुस्त्वंमतोस्माभिः पृच्छामस्तेनसन्मुने ॥ ४० ॥ मार्कण्डे
यउवाच ॥ सप्तकल्पान्तरेभूपोनदृष्टोनश्रुतोमया ॥ इन्द्रद्युम्नाभिधानोत्र तत्रकिन्नुवदामिते ॥ ४१ ॥ तस्यतद्वचनं
श्रुत्वा निराशस्समहीपतिः ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा मरणेकृतनिश्चयः ॥ ४२ ॥ तेनचानीयदारूणि प्रज्वाल्यचहुताशन
म् ॥ प्रवेष्टुकामस्संप्रोक्तइन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ ४३ ॥ त्वयाचात्रनकर्तव्यमहन्तेमित्रताङ्गतः ॥ नाशयिष्यामितेमृ
त्युं यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ ४४ ॥ नीरोगोसिसुभव्योसिकस्मादग्निंप्रवेक्ष्यसि ॥ वदमेकारणंमृत्योः प्रतीकारंकरो
मिते ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चिरायुर्मेभवान्प्रोक्तः काम्पिल्यपुरवासिभिः ॥ तेनाहंतवपार्श्वेत्र समायातोमहा
मुने ॥ ४६ ॥ इन्द्रद्युम्नोद्भवांवार्तां त्वंवदिष्यसिसन्मुनिः ॥ तत्कीर्तिर्नपरिज्ञाता ततोमृत्युंव्रजाम्यहम् ॥ ४७ ॥
सूतउवाच ॥ तस्यतं निश्चयंज्ञात्वा दयावान्ससमुनीश्वरः ॥ वृथाश्रमंचतंज्ञात्वा दाक्षिण्यादिदमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

को प्राप्तहूं यद्यपि कठिनभी होवै है तथापि तुम्हारी मृत्युको नाश करूंगा ॥ ४४ ॥ तुम नीरोगहो व भलीभांति कल्याणरूपहो किसलिये अग्नि में पैठतेहो मुझसे का-
रण कहो मैं तुम्हारी मृत्युका उपाय करूंगा ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि कांपिल्यनगरके निवासियों ने मुझसे आपको दीर्घायुष्मान् कहा था हे महामुने ! उसीसे मैं
यहां तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं ॥ ४६ ॥ कि उत्तम मुनि तुम इन्द्रद्युम्न से उपजीहुई वार्ताको कहोगे उसका यश न जानागया उसी कारण मैं मृत्युको प्राप्त
होताहूं ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले उसके उस निश्चयको जानकर दयावान् उन मुनिनायकने उसको व्यर्थपरिश्रमवाले जानकर उदारतासे यह कहा ॥ ४८ ॥ कि यदि

ऐसाहै तो तुम अग्निमें मत पैठो मैं उस राजाको जानूंगा इसलिये आइये हिमाचल पर्वतपै उसके समीप चलैं ॥ ४९ ॥ क्योंकि साधुओं का दर्शन कहींपर कभी वृथा नहीं होताहै ऐसा कहकर तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन मुनि व राजाने आकाशमार्ग से हिमालय पर्वत पै वक के निकट प्रयाण किया और वकनेभी भलीभांति आयेहुये उन मार्कण्डेयजीको देखकर ॥ ५० । ५१ ॥ प्रसन्नहो सामने प्रयाणकिया व स्वागत याने भलीभांति आनाहुआ इत्यादि प्रश्नोंसे पूजन किया कि मैं धन्यहूं और मैं कृतकृत्य हूं क्योंकि तुम मेरे यहां भलीभांति आयेहो ॥ ५२ ॥ अहो ब्रह्मजाननेवालों में उत्तम ! मैं तुम्हारी क्या पहुनाई करूं मार्कण्डेयजी बोले कि

यद्येवंमाविशाग्निंत्वं अहंज्ञास्यामितंनृपम् ॥ तस्मादागच्छगच्छावस्तस्यपार्श्वेहिमाचले ॥ ४९ ॥ साधूनांदर्शनं जातु नवृथाजायतेकचित् ॥ एवमुक्त्वाततस्तौतु प्रस्थितौमुनिपार्थिवौ ॥ ५० ॥ व्योममार्गेणसंहृष्टौ वकंप्रतिहिमाचले ॥ वकोपितंसमालोक्य मार्कण्डेयंसमागतम् ॥ ५१ ॥ सम्मुखःप्रययौहृष्टः स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं यतोमेत्वंसमागतः ॥ ५२ ॥ भोभोब्रह्मविदांश्रेष्ठआतिथ्यन्तेकरोमिकिम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ममापिच चिरायुस्त्वं यतोमित्रव्यवस्थितः ॥ ५३ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालस्त्वयादृष्टःश्रुतोथवा ॥ एतस्यममर्मित्रस्य तेनदृष्टेन कारणम् ॥ ५४ ॥ अन्यथाजायतेमृत्युस्तेनाहंत्वांसमागतः ॥ वकउवाच ॥ सप्तद्विगुणितात्कल्पात्स्मराम्यहमसंशयम् ॥ ५५ ॥ नस्मरामिकथामेतामिन्द्रद्युम्नसमुद्भवाम् ॥ आस्तांहिदर्शनंतावत्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तपसःकिम्प्रभावोयं दानस्यनियमस्यच ॥ यदायुरीदृशंजातं वकत्वेपिवदस्वनः ॥ ५७ ॥ वकउवाच ॥

हे मित्र ! जिसलिये कि तुम मुझसेभी दीर्घायुर्बलवाले विशेषकर टिकेहो ॥ ५३ ॥ इससेतुमने इन्द्रद्युम्न भूपालको देखा या सुनाहै क्योंकि देखेहुये उससे इस मेरे मित्रका कारणहै ॥ ५४ ॥ अन्यथा मृत्यु होगी उसीसे मैं तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं वक बोला कि सातसे दूने याने चौदह कल्पोंसे मैं निरसन्देह यादकरताहूं ॥ ५५ ॥ परन्तु इन्द्रद्युम्नसे उपजीहुई इस कथाको नहीं स्मरण करताहूं तबतक देखना होवै याने यादही नहीं है देखना कैसा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ५६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तपस्या या दान या नियमका क्या यह फलहै कि जिससे बगुलाकी योनिमेंभी ऐसी आयु हुई यह हमसे कहिये ॥ ५७ ॥ वक बोला कि त्रिशूलवाले देवदेव शिवजीके

घृतकम्बलके माहात्म्यसे मेरी ऐसी आयु हुई और मुनिके शापसे बगुला होनाहुआ ॥ ५८ ॥ पुरातनसमय में मनोहर चमत्कारनगरमें बुद्धिमान् पाराशर्य ब्राह्मण के घरमें बालक हुआ और विश्वरूपनामक मैं नामसे बहुश्रुत ऐसा प्रसिद्ध व अत्यन्तही चंचलतासे युक्त व पिताको प्यारा था ॥ ५९ । ६० ॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर किसीसमय मकरकी संक्रान्तिको भलीभांति प्राप्त होनेपर मैंने अत्यन्तही चञ्चलतासे यागेश्वर लिंगको घीके घड़ेमें फेंक दिया कि जिसको पिताने पूजाथा और जब आधीरात बीतगई तब पिताने मुझसे पूंछा ॥ ६१ । ६२ ॥ कि हे पुत्र ! तुमने निश्चयकर कहीं यागेश्वर को फेंक दिया है इसलिये कहिये मैं उसीसे तुमको

घृतकम्बलमाहात्म्याद्देवदेवस्यशूलिनः ॥ ममायुरीदृशंजातं वकत्वंमुनिशापतः ॥ ५८ ॥ अहमासंपुराबालोब्राह्मणस्यनिवेशने ॥ चमत्कारपुरेरम्ये पाराशर्य्यस्यधीमतः ॥ ५९ ॥ नाम्नाचविश्वरूपाख्योनाम्नाबहुरितिश्रुतः ॥ अतीवचपलत्वेन संयुक्तःपितृवत्सलः ॥ ६० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य संक्रान्तौमकरस्यभो ॥ सम्प्राप्तेतीवचापल्याल्लिंङ्गंयागेश्वरम्मया ॥६१॥ घृतकुम्भेपरिक्षिप्तं पूजितंजनकेनयत् ॥ अर्द्धरात्र्यांव्यतीतायां पृष्टोहंजनकेनच ॥६२॥ त्वयापुत्रपरिक्षिप्तं नूनंयागेश्वरंक्वचित् ॥ तस्माद्ददप्रयच्छामि तेनतेभक्ष्यमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ ततोमयाज्यकुम्भाच तस्मादादायसत्वरम् ॥ भक्ष्यलौल्यात्पितुर्हस्ते विन्यस्तंघृतसम्प्लुतम् ॥ ६४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पञ्चत्वंसमुपागतः ॥ जातिस्मरस्ततोजातस्तत्प्रभावान्नृपालये ॥ ६५ ॥ चमत्कारपुरेदेवोहरःसंस्थापितोमया ॥ तत्प्रभावेणविप्रेन्द्र प्राप्तःपैतामहंपदम् ॥ ६६ ॥ ततोयानिधरापृष्ठे सुलिङ्गानिस्थितानिच ॥ घृतेनच्छादयाम्येवं मकरस्थेदिवाकरे ॥६७॥ मयाच

उत्तम भोजन दूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मैंने भोजनके लालचसे शीघ्रही उस घीके घड़ेसे लेकर घृतसे डूबीहुई उस मूर्तिको पिताके हाथमें धरदिया ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय मैं मृत्युको प्राप्तहुआ तदनन्तर उसके प्रभावसे जातिका स्मरणवाला मैं राजाके मन्दिर में पैदा भया ॥ ६५ ॥ और मैंने चमत्कारपुर में शिवदेवजी का थापन किया उसी से हे द्विजेन्द्र ! ब्रह्मावाले स्थानको मैं प्राप्तहुआ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर भूतल में जो लिंग स्थित हैं उनको जब सूर्य मकरराशि

में टिकते थे तब मैं ऐसेही घी से घेरताथा ॥ ६७ ॥ व पुत्र को राज्य पै भलीभांति बैठाकर और अस्त्रशस्त्रों से संयुत सेवकों को सब ओर नियोगकरके मैंने चमत्कारपुर में थापेहुये उत्तम लिंगको दिनरात आराधन किया उस के उपरान्त बहुतसमय से मेरे ऊपर प्रसन्नहोतेहुये भगवान् शिवजी ॥ ६८ । ६९ ॥ मेरे समीप भलीभांति आकर यह वचन बोले कि हे राजेन्द्र, नृपोत्तम ! संख्यासे रहित घृत कम्बल के दानसे मैं तुमसे अतिप्रसन्न हूं इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै जो मनमें चाहाहुआ वर होवै उसको मांगिये ॥ ७० । ७१ ॥ यद्यपि अतिदुर्लभ होगा तथापि न देनेयोग्यको भी दूंगा तदनन्तर मैंने शिवजी से कहा कि हे प्रभो !

स्थापितंलिङ्गं चमत्कारपुरेशुभम् ॥ आराधितंदिवानक्तं राज्येसंस्थाप्यपुत्रकम् ॥ ६८ ॥ नियोज्यसर्वतोभृत्यानस्त्र शस्त्रसमन्वितान् ॥ ततःकालेनमहता तुष्टोमेभगवाञ्छिवः ॥ ६९ ॥ मत्समीपेसमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ परितुष्टोऽस्मिराजेन्द्र तवपार्थिवसत्तम ॥ ७० ॥ घृतकम्बलदानेनसंख्ययारहितेनच ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयन्मनसीप्सितम् ॥ ७१ ॥ अदेयमपिदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ततोमयाहरःप्रोक्तोयदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ७२ ॥ कुरुष्वमागणंदेवनान्यत्किञ्चिद्वृणोम्यहम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यैवत्वंमहाभाग कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ७३ ॥ मयासार्द्धमनेनैव शरीरेणगणोभव ॥ अन्योपिमर्त्यलोकेत्र यःकरिष्यतिमानवः ॥ ७४ ॥ मकरस्थेरवौमह्यं संक्रान्तौरजनीमुखे ॥ सनूनंमद्गणोभावी दत्त्वाद्यघृतकम्बलम् ॥ ७५ ॥ त्वंपुनर्म्मामकंलिङ्गंसंस्कुर्वन्नर्चयिष्यसि ॥ धर्म्मशर्मेतिविख्यातोविकृत्यापरिवर्जितः ॥ ७६ ॥ एवमुक्त्वासभगवान्मामादायततःपरम् ॥ कैलासंपर्वतंगत्वागणकोटिशतान्य

यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो ॥ ७२ ॥ तो हे देव ! मुझको अपना गण कीजिये मैं कुछ नहीं मांगता हूं श्री भगवान् शिवजी बोले कि हे महाभाग ! आजही तुम मेरेसाथ पर्वतों में उत्तम कैलासको इसी शरीर से चलो और गण होवो और जब सूर्यनारायणजी मकरराशिमें स्थितहोवैं तब संक्रान्तिमें निशामुख (सन्ध्या) समय जो अन्यभी मनुष्य इस मृत्युलोक में मेरेलिये घृत कम्बल करैगा वह घृत कम्बल देकर आजही निश्चयकर मेरा गण होगा ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ व फिर तुम भलीभांति घृत कम्बल करतेहुये मेरे लिंगको पूजोगे और विकारसे रहित धर्म शर्म ऐसे प्रसिद्धहोगे ॥ ७६ ॥ ऐसा कहकर उन भगवान् शिवजीने मुझको लेकर तदनन्तर कैलास

इसके अनन्तर किसी समय स्वच्छन्दता से घूमताहुआ मैं हिमवान् ऐसे कहेहुये पर्वतोत्तमपै गया ॥ ७८ ॥
पर्वतपै जाकर सौ करोड़गणों को दिया ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर किसी समय स्वच्छन्दता से घूमताहुआ मैं हिमवान् ऐसे कहेहुये पर्वतोत्तमपै गया ॥ ७८ ॥ जहांपर कि सदैव तपस्या में टिकेहुये गालवनामक मुनि थे व समस्तलक्षणों से चिह्नित और चौड़ेनयनोंवाली उसकी स्त्री थी ॥ ७९ ॥ जोकि सात ठिकाने अरुण वर्णवाली व तीन इन्द्रियोंमें गंभीरतासंयुत और छिपेहुये घुट्ठुओंवाली व दुबले पेटवाली थी हे मुनिनायक ! उसको देखकर मैं कामदेव से संयुत होगया ॥ ८० ॥ और मैंने चित्तमें चिन्तन किया कि मैं किस प्रकार इसको हरलेऊं या सेवा में तत्पर होकर वर्तमान होऊं कि जिससे स्त्रीको पाऊं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर मैंने द्विजपुत्र

दात् ॥ ७७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यभ्रममाणोयदृच्छया ॥ गतोहंपर्वतश्रेष्ठंहिमवन्तमितिस्मृतम् ॥ ७८ ॥ यत्रास्तेगा
लवोनामसदैवतपसिस्थितः ॥ तस्यभार्य्याविशालाक्षीसर्वलक्षणलक्षिता ॥ ७९ ॥ सप्तरक्तात्रिगम्भीरागूढगुल्फाकृशो
दरी ॥ तांदृष्ट्वामन्मथाविष्टस्संजातोहंमुनीश्वर ॥ ८० ॥ चिन्तितंचमयाचित्तेकथमेनांहराम्यहम् ॥ शुश्रूषानिरतोभू
त्वायेनप्राप्नोमिभामिनीम् ॥ ८१ ॥ ततोवटुकरूपेणसंप्राप्तोगालवोमया ॥ संसारस्यविरक्तोहंकरिष्यामिमहत्तपः ॥
८२ ॥ दीक्षांयच्छविभोमह्यंयेनशिष्योभवामिते ॥ आहरिष्याम्यहंदर्भांस्तवचानुचरस्सदा ॥ ८३ ॥ समिधश्चसदैवाहं
फलानिजलमेवच ॥ समांविनयसम्पन्नंज्ञात्वाब्राह्मणरूपिणम् ॥ ८४ ॥ ददौदीक्षान्ततोमह्यंयथोक्तपरिचर्य्यया ॥ अशु
द्धेनापिचित्तेनच्छिद्रान्वेषणतत्परः ॥ ८५ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राप्तेसास्त्रीधर्म्मसमन्विता ॥ उटजंदूरतस्त्यक्त्वारात्रौसु
प्तामनस्विनी ॥ ८६ ॥ सोहंरूपंमहत्कृत्वातामादायतपस्विनीम् ॥ शुप्रसुप्तांसुविश्रब्धांप्रस्थितोदक्षिणोन्मुखः ॥ ८७ ॥

के रूपसे भलीभांति गालवजी को पाया व कहा कि संसार से विरागी मैं बड़ीभारी तपस्या करूंगा ॥ ८२ ॥ हे विभो ! मेरेलिये दीक्षा (मन्त्र) को दीजिये जिससे तुम्हारा शिष्य होऊं व सदैव तुम्हारा अनुचर होकर मैं कुशोंको लाऊंगा ॥ ८३ ॥ व सदैव मैं समिधों, फलों व जलही को लाऊंगा उन गालवजी ने नम्रता से संयुत व ब्राह्मण रूपवाले मुझको जानकर ॥ ८४ ॥ मेरेलिये दीक्षादिया तदनन्तर जैसी कही है वैसीही सेवासे मैं अशुद्धभी चित्तके द्वारा छिद्र यानें उस स्त्रीके लेजाने का समय ढूंढ़ने में परायण हुआ ॥ ८५ ॥ अन्यदिन प्रातहोने पर धर्म से संयुत व उच्चमनवाली वह स्त्री कुटीको दूरसे त्यागकर रातमें सोगई ॥ ८६ ॥ सो मैंने बड़ा

भारी रूपकरके अतिविश्वास में प्राप्त व भलीभांति सोई हुई उस तपस्विनी को लेकर दक्षिणमुखहो प्रयाण किया ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर मेरे छूनेसे यह स्त्री अपनी नींदसे भलीभांति छूटगई और मुझ शिष्यको चोररूपवाला जानकर खेदसे रोतीभई ॥ ८८ ॥ और वह अपने पति मुनिश्रेष्ठ गालवजी से बोली कि हे प्रभो ! यह दुष्ट आचरणवाला शिष्य मुझको यहांसे हरेलिये जाताहै ॥ ८९ ॥ उसीकारण हे महाभाग ! जबतक दूर न जावै तबतक रक्षाकीजिये उस वचनको सुनकर गालवजीने खड़ेहो२ यह बार २ कहा ॥ ९० ॥ हे पाप आचरणवाले, अतिदुष्ट चित्तवाले ! मैंने तुम्हारी चालको रोंकदिया तदनन्तर उन गालवजीके वचन से मेरी

अथासौसम्परित्यक्तामत्स्पर्शाच्चात्मनिद्रया ॥ चौररूपंपरिज्ञायमांशिष्यंप्ररुरोदह ॥ ८८ ॥ साब्रवीच्चस्वभर्तारङ्गालवं मुनिसत्तमम् ॥ एषशिष्योदुराचारोहरतेमामितःप्रभो ॥ ८९ ॥ तस्माद्रक्षमहाभागयावद्दूरंनगच्छति ॥ तच्छ्रुत्वा गालवःप्राहतिष्ठतिष्ठेतिचासकृत् ॥ ९० ॥ पापाचारसुदुष्टात्मन्गतिस्तेस्तम्भितामया ॥ तस्यवाक्यात्ततोमह्यङ्गतिस्त म्भोऽभ्यजायत ॥ ९१ ॥ यद्वल्लिखितएवाहंप्रतिष्ठामिसुनिश्चलः ॥ ततस्तेनचशप्तोहंगालवेनमहात्मना ॥ ९२ ॥ वञ्चि तोहन्त्वयायस्माद्बकोभवसुदुर्म्मते ॥ ततःपश्यामिचात्मानंसहसाबकरूपिणम् ॥ ९३ ॥ बकत्वेपिनमेनष्टायास्मृतिःपू र्वसम्भवा ॥ ततस्सापिचतत्पत्नीसचैलंस्नानमाश्रिता ॥ ९४ ॥ मत्स्पर्शरुषितामांञ्चशापायसमुपस्थिता ॥ यस्मात्पापत्व यास्पृष्टाप्रसुप्ताहंरजस्वला ॥ ९५ ॥ बकधर्म्मसमाश्रित्यभर्तामेवञ्चितस्त्वया ॥ अन्यद्रूपंसमास्थायतस्माच्छप्तोबको

चालकी रुकावट होगई ॥ ९१ ॥ जैसे लिखाहुआ चित्रहोताहै वैसेही मैं अचल हो खड़ा होगया तदनन्तर उन गालव महात्माने मुझको शापदिया ॥ ९२ ॥ कि जिस कारण तुमने मुझको छला है उसीलिये हे दुर्बुद्धे ! बगुलाहोवो तदनन्तर अचानकही बगुला रूपवाले अपने शरीरको मैंने देखा ॥ ९३ ॥ व पहले से उपजा हुआ जो मेरा स्मरण था वह बगुलापन में भी न नाश हुआ तदनन्तर उसकी वह स्त्री भी वसन समेत स्नानको प्राप्तहुई ॥ ९४ ॥ व मेरे छूनेसे क्रोधितहोती हुई वह शाप के लिये मेरे समीप भलीभांति प्राप्तहुई कि हे पापिन् ! जिसलिये सोतीहुई मुझ रजस्वला को तुमने स्पर्शकिया ॥ ९५ ॥ और अन्यरूप को भलीभांति प्राप्तहोकर व

बगुला के समान धर्ममें टिककर तुमने मेरे पतिको छलाहै उसी कारण शापदिये हुये तुम बगुलाहोवो ॥ ९६ ॥ तदनन्तर उन दोनों से शाप दिया हुआ मैं दुःखसंयुत होकर महात्मा गालवजी के चरणों में लगगया (गिरपडा) ॥ ९७ ॥ कि तीन नयनवाले महात्मा देवदेव शिवजी का पालक ऐसा प्रसिद्धगण मैं कोटिगणों का स्वामी स्थितहूं ॥ ९८ ॥ हे प्रभो ! सो मैं यहां किसी कार्यसे आयाथा और तुम्हारी स्त्रीको भलीभांति देखकर कामदेवके वशमें प्राप्तहुआ ॥ ९९ ॥ हे मुनिनाथ ! ऐसा जानकर तुम मेरा अपराध क्षमाकरो दुःशील मनुज लक्ष्मी, विद्या या ऐश्वर्य ही को पाकर ॥ १०० ॥ स्थानपै बहुत दिनोंतक नहीं टिकता है जैसे कि मदसे गर्वित मैं

॥ ९७ ॥ गणोहंदेव भव ॥ ९६ ॥ एवंशप्तस्ततोद्वाभ्यांताभ्यांवैदुःखसंयुतः ॥ चरणाभ्यांप्रलग्नस्तुगालवस्यमहात्मनः ॥ देवस्यत्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ पालकेतिचविख्यातोगणकोटिप्रभुःस्थितः ॥ ९८ ॥ सोहमत्रसमायातःप्रभोकार्य्येणके नचित् ॥ तवभार्य्यांसमालोक्यकामदेववशङ्गतः ॥ ९९ ॥ क्षमापराधंत्वंमह्यमेवंज्ञात्वामुनीश्वर ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्रा प्यविद्यामैश्वर्य्यमेववा ॥ १०० ॥ नतिष्ठतिचिरंस्थानेयथाहंमदगर्वितः ॥ शिष्यरूपंसमास्थायततःप्राप्तस्तवान्तिक म् ॥ १ ॥ अस्याहरणहेतोश्चमयासत्यंमुनीश्वर ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेदीनस्यप्रणतस्यच ॥ २ ॥ अनुग्रहप्रदानेनक्षमा यस्मात्तपस्विनाम् ॥ कोकिलानांस्वरंरूपंनारीरूपंपतिव्रता ॥ ३ ॥ विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनाम् ॥ सूत उवाच ॥ तस्यतत्कृपणंश्रुत्वासोपिमाहेश्वरोमुनिः ॥ ४ ॥ ज्ञात्वातंबान्धवस्थानेदयांकृत्वाब्रवीद्वचः ॥ यदासंजायतेवि प्रश्चमत्कारपुरेशुभे ॥ ५ ॥ भर्तृयज्ञइतिख्यातस्तदातस्योपदेशतः ॥ बकत्वंयास्यतेनूनंममवाक्यादसंशयम् ॥ ६ ॥

नहीं टिका उसीकारण शिष्यरूप में भलीभांति टिककर इसके हरने के कारण मैं तुम्हारे समीप प्राप्तहुआ हे मुनिनायक ! यह मैंने सत्यकहाहै इसलिये दयाके दान से दीन व प्रणाम किये हुये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये जिसलिये कि तपस्वियों को क्षमाकरना चाहिये क्योंकि कोलिया याने कोयल का रूप स्वरहै व पतिव्रताहोना स्त्रियोंका रूपहै ॥ १ । २ । ३ ॥ व विद्या कुरूपवान् नरोंका रूपहै और क्षमा तपस्वियोंका रूपहै सूतजी बोले कि उसके उस दीन वचनको सुनकर उन शैव मुनिने भी ॥ ४ ॥ उसको भाई के स्थान में जानकर कृपा करके वचन कहा कि जब भर्तृयज्ञ ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण उत्तम चमत्कारपुर में भलीभांति पैदा होगा तब उसके

उपदेश के द्वारा निश्चयकर मेरे वचनसे निस्सन्देह बगुलापन जावैगा ॥ ५ । ६ ॥ उसीकारण बगुलापन के भी भलीभांति स्थित होनेपर आत्मा को देखताहूं इस प्रकार शिवजी की भक्तिके द्वारा घृतकम्बल के माहात्म्य से मेरे दीर्घ आयुर्बल हुआ और मुनि के शाप से बकत्व हुआ है इन्द्रद्युम्न बोले कि हे पक्षिन् ! इसी के लिये इन्द्रद्युम्न की वार्ता के निमित्त मरणमें निश्चय किये हुये मैं तुम्हारे समीप लाया गया हे पक्षिन् ! तुमने उस इन्द्रद्युम्न को नहीं जाना है ॥ ७ । ८ । ९ ॥ इस लिये मैं जलती हुई अग्निको साधूंगा याने अग्नि में जल जाऊंगा क्योंकि इसको चित्त में निश्चय कर मैंने पहले प्रतिज्ञा कियाहै ॥ १० ॥ कि इन्द्रद्युम्न के न

ततःपश्यामिचात्मानंबकत्वेचापिसंश्रिते ॥ एवंमेदीर्घमायुष्यंसंजातंशिवभक्तितः ॥ ७ ॥ घृतकम्बलमाहात्म्याद्बकत्वं मुनिशापतः ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ एतदर्थंसमानीतस्त्वत्सकाशंविहङ्गम ॥ ८ ॥ इन्द्रद्युम्नस्यवार्तार्थंमरणेकृतनिश्चयः ॥ सत्वयानैवविज्ञातइन्द्रद्युम्नोविहङ्गम ॥ ९ ॥ साधयिष्याम्यहन्तस्मात्सन्दीप्तंहव्यवाहनम् ॥ प्रतिज्ञातंमयापूर्वमेत न्निश्चित्यचेतसि ॥ १० ॥ इन्द्रद्युम्नेह्यविज्ञातेसंसेव्यःपावकोमया ॥ तस्माद्देहिममादेशंमार्कण्डेयसमन्वितः ॥ ११ ॥ प्रविशामियथावह्निंभ्रष्टकीर्तिरहंबक ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वेत्सिचान्यंनरंकञ्चिद्वयसाचात्मनोधिकम् ॥ पृच्छा मियेनतङ्गत्वाकृतेस्वस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तःप्राप्तोयंचमयासह ॥ तत्कथन्त्यजतिप्राणान्सहायेमयि संस्थिते ॥ १४ ॥ अपरञ्चत्त्वमंवाक्यंयत्त्वांवच्मिविहङ्गम ॥ अयंदुःखेनसंयुक्तःसाधयिष्यतिपावकम् ॥ १५ ॥ अहमेन मनुद्धृत्यकस्माद्गच्छामिचाश्रमम् ॥ सूतउवाच ॥ तयोस्तंनिश्चयंज्ञात्वाबकःपरमदुर्मनाः ॥ १६ ॥ सुचिरञ्चिन्तयामा

ज्ञान होनेपर मुझको अग्नि भलीभांति सेवने योग्य है इस लिये मार्कण्डेय संयुत तुम मुझको आज्ञा देवो ॥ ११ ॥ कि जिसप्रकार हे बक ! नष्ट यशवाला मैं अग्नि में पैठूं ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि अवस्था करके अपनासे अधिक किसी अन्य मनुष्य को तुम जानते हो कि जिससे अपने महात्मा के लिये जाकर उससे पूंछूं ॥ १३ ॥ क्योंकि बड़ी श्रद्धा से संयुत यह मेरे साथ प्राप्तहुआहै तो मुझ सहाय के भलीभांति स्थित होनेपर कैसे प्राणोंको त्याग करैगा ॥ १४ ॥ और हे पक्षिन् ! अन्य भी जो वचन तुमसे कहताहूं वह योग्यहै कि दुःख से संयुक्त यह अग्निसाधन करैगा ॥ १५ ॥ और मैं इसको न उद्धार कर कैसे आश्रम को जाऊं सूतजी

बोले कि उन दोनोंके उस निश्चय को जानकर बगुला अति उदासीन मनवाला हुआ ॥ १६ ॥ और उसने बहुत देरतक चिन्तन किया कि किस प्रकार इन दोनों को सुख होगा तदनन्तर उस राजा ने निश्चय करके लकड़ियों को लाकर अग्नि लगाया ॥ १७ ॥ और अग्नि में पैठतेहुये मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी के मित्र से बगुला बोला कि हे प्राज्ञ ! यदि जीने को चाहते हो तो मेरा वचन कीजिये ॥ १८ ॥ हे समस्त शास्त्रों मे चतुर, मुनिश्रेष्ठ ! आज मैंने उसको प्रकटही जाना कि जो इन्द्रद्युम्न राजाको जानैगा ॥ १९ ॥ सो तुम आंसुवों से विकल लोचनोंवाले व सर्प के समान श्वास लेते व मरने में निश्चय कियेहुये इसको भलीभांति लेकर ॥ २० ॥

सकथंस्यादेतयोःसुखम्॥ ततोराजासनिश्चित्यदारूण्याहृत्यपावकम् ॥ १७ ॥ प्रविशन्तंमुनिश्रेष्ठसुहृदमब्रवीद्बकः ॥ ममवाक्यंकुरुप्राज्ञयदिजीवितुमिच्छसि ॥ १८ ॥ ज्ञातःसोद्यमयाव्यक्तमिन्द्रद्युम्नंनराधिपम् ॥ योज्ञास्यतिमुनिश्रेष्ठसर्वशास्त्रविचक्षण ॥ १९ ॥ सत्वमेनंसमादायमरणेकृतनिश्चयम् ॥ निःश्वसन्तंयथानागंबाष्पव्याकुललोचनम् ॥ २० ॥ समागच्छमयासार्द्धंकैलासंपर्वतम्प्रति ॥ यत्रास्तिदयितोमह्यमुलूकश्चिरजीवभाक् ॥ २१ ॥ सनूनंज्ञास्यतेतंहिमाद्यथामरणंकृथाः ॥ ततस्तुहृष्टोसौतेनबकेनचमहात्मना ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयेनसंप्राप्तःकैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ सोपिदृष्ट्वाबकंप्राप्तंमित्रंपरमसम्मतम् ॥ २३ ॥ समागच्छदसौहृष्टस्स्वागतेनाभ्यनन्दयत ॥ नवेद्मियच्चतेकार्य्यंवदागमनकारणम् ॥ २४ ॥ कावेतौपुरुषौप्राप्तौत्वयासार्द्धंममान्तिकम् ॥ दिव्यरूपौमहाभागौतेजसापरिवारितौ ॥ २५ ॥ वक

मेरे साथ कैलास पर्वत पै चलो जहांपर बहुत दिनों से जीवको धारनेवाला घुघुवा मेरा मित्रहै ॥ २१ ॥ वह निश्चय कर उसको जानैगा वृथा मरण मत कीजिये तदनन्तर प्रसन्न होता हुआ यह उस बगुला व महात्मा मार्कण्डेयजी के साथ कैलासपर्वतोत्तम पै भलीभांति प्राप्त हुआ वह घुघुवा भी अत्यन्तही मानेहुये बगुला मित्र को प्राप्त हुये देखकर ॥ २२ । २३ ॥ भलीभांति आया व प्रसन्न होतेहुये इसने भलीभांति आने के पूंछने से आनन्द किया व कहा कि जो तुम्हारा कार्य है मैं उसको नहीं जानता हूं इस से आनेका कारण कहिये ॥ २४ ॥ और तुम्हारे साथ मेरे समीप प्राप्तहुये ये दिव्यरूपवाले व बड़े भाग्यवान् तथा तेज से घिरेहुये दो पुरुष

कौन हैं ॥ २५ ॥ बगुला बोला कि महादेवकी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धि को प्राप्त व तीनों भुवनों में प्रसिद्ध ये मार्कण्डेय नामक मुनि हैं ॥ २६ ॥ और दूसरा यह इनका कोई मित्रहै मैं यथार्थ से नहीं जानताहूं व इन्द्रद्युम्न के पूंछने की कामनावाला यह मार्कण्डेय मित्र के साथ मेरे समीप भलीभांति आया था हे मित्र ! मैंने उसको नहीं जाना तदनन्तर वैराग्य को प्राप्त होकर अग्नि को चाहता हुआ यह मुझ से यहीं तुम्हारे समीप भलीभांति लाया गया हे महामते, पक्षिन् ! यदि उन इन्द्रद्युम्न नृपति को तुम जानते हो ॥ २७ । २८ । २९ ॥ तो तुम कहो कि जिससे यह मृत्यु से निवृत्त होवै मैंने तुमको दीर्घजीवी जाना इसी कारण मैं

उवाच ॥ अयंमार्कण्डसंज्ञश्चप्रसिद्धोभुवनत्रये ॥ महेश्वरप्रसादेनसंसिद्धिंपरमाङ्गतः ॥ २६ ॥ द्वितीयोसौसुहृच्चास्यकश्चिन्नोवेद्मितत्त्वतः ॥ मार्कण्डेनसमायातस्सुहृदेनममान्तिकम् ॥ २७ ॥ इन्द्रद्युम्नंप्रष्टुकामोनविज्ञातोमयासखे ॥ ततोवैराग्यमापन्नोवाञ्छमानोहुताशनम् ॥ २८ ॥ तवान्तिकंसमानीतोमयात्रैवविहङ्गम ॥ यदिजानासितम्भूपमिन्द्रद्युम्नंमहामते ॥ २९ ॥ तत्त्वंकीर्तययेनासौमरणाद्विनिवर्तते ॥ चिरायुस्त्वंमयाज्ञातोह्यतःप्राप्तोस्मितेन्तिकम् ॥ ३० ॥ उलूकउवाच ॥ अष्टाविंशप्रमाणेनकल्पाजातस्यमेस्थिताः ॥ नदृष्टोनश्रुतःकश्चिदिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ ३१ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तवकस्मादुलूकत्वंशीघ्रंतन्मेप्रकीर्तय ॥ एतन्मेकौतुकञ्चापियत्तेह्यायुरनन्तकम् ॥ ३२ ॥ उलूकत्वंचसंजातंरौद्रंलोकविगर्हितम् ॥ उलूकउवाच ॥ शृणुतेहंप्रवक्ष्यामिदीर्घायुर्मेयथास्थितम् ॥ ३३ ॥ महेश्वरप्रसादेनबिल्वपत्रार्चनान्मया ॥ उलूकत्वंमयाप्राप्तंभृगोःशापान्महात्मनः ॥ ३४ ॥ अहमासंपुराविप्रःसर्वविद्यासुपारगः ॥ चम

तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ उलूक बोला कि मुझको पैदाहुये अट्ठाईस संख्यक कल्प स्थितहुये हैं परन्तु कोई इन्द्रद्युम्न भूपति न देखागया और न सुनागया ॥ ३१ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तुमको घुघुवापन किस कारण हुआ उसको मुझ से शीघ्रही कहिये यह मुझको आश्चर्य भी है जो कि तुम्हारा आयुर्बल अनन्तहै ॥ ३२ ॥ और लोक में निन्दित व भयङ्कर घुघुवा होना भया उलूक बोला कि सुनिये मैं तुमसे कहताहूं कि जिस प्रकार मेरे दीर्घायु स्थित है ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्रके द्वारा पूजन से मुझको महादेव की प्रसन्नता से बड़ी आयुर्बल मिली और महात्मा भृगुजी के शाप से मैंने उलूकता पायाहै ॥ ३४ ॥ पुरातन समय समस्त विद्याओं के पारजाने

वाला व नाम से घण्टक ऐसा प्रसिद्ध मैं उत्तम चमत्कारपुर में ब्राह्मण हुआहूं ॥ ३५ ॥ जो मैं कि ब्रह्मचारी व इन्द्रियों को दमन करनेवाला और शिवजी के पूजन में तत्पर था मैंने अगाड़ी भागमें तीन पत्तोंकी उत्पत्तिवाले लाख संख्यक बिल्वपत्रोंसे सदैव त्रिकाल में शिवजी का पूजनकिया तदनन्तर हज़ार वर्षके अन्तमें भगवान् शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्नहुये ॥ ३६ । ३७ ॥ और दर्शन में प्राप्तहोकर मेघके समान गम्भीरवाणी से बोले कि हे सुव्रत, वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान को मांगिये ॥ ३८ ॥ तब देवदेवेश शिवजी से मैंने यह प्रार्थना किया कि हे जगदीश ! तुम मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहित करो वे देवोंके स्वामी महेश्वर महादेव जी

त्कारपुरेश्रेष्ठेनाम्नाख्यातस्तुघण्टकः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मचारीदमोपेतोहरपूजार्चनेरतः ॥ अखण्डितैर्बिल्वपत्रैरग्रजातत्रिपत्रकैः ॥ ३६ ॥ त्रिकालंपूजितःशम्भुर्लक्षमात्रैस्सदामया॥ततोवर्षसहस्रान्तेतुष्टोमेभगवान्हरः ॥ ३७॥ प्रोवाचदर्शनङ्गत्वामेघगम्भीरयागिरा ॥ अहंतुष्टोस्मितेवत्सवरंवरयसुव्रत ॥ ३८ ॥ तदातुदेवदेवेशमिदंप्रार्थितवानहम् ॥ त्वंमांकुरुजगन्नाथजरामरणवर्जितम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायमहादेवोमहेश्वरः ॥ ३९ ॥ कैलासंप्रतिदेवेशःक्षणाच्चादर्शनङ्गतः ॥ ततोहंपरितुष्टोथवरंप्राप्यमहेश्वरात् ॥ ४० ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंचिन्तयामिप्रहर्षितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुभार्गवोमुनिसत्तमः ॥ ४१ ॥ कुशलःसर्वशास्त्रेषुवेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वीनाम्नाख्यातासुदर्शना ॥ ४२॥ प्राणेभ्योपिप्रियातस्यगालवस्यमुनेस्सुता ॥ तस्यकन्यासमभवद्रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ४३ ॥ सामयासहसादृष्टाक्रीडमानायथे

वैसाही होगा यह कहकर और क्षणभर में अन्तर्द्धान होकर कैलासको चलेगये तदनन्तर महादेवजी से वरदान पाकर मैं प्रसन्नहुआ ॥ ३९ । ४० ॥ व प्रसन्नहो मैं अपनाको कृतकृत्य ऐसा चिन्तन करताथा इसी अवसर में जो मुनिश्रेष्ठ भार्गवजी ॥ ४१ ॥ समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण व वेदों तथा वेदांगों के पारगामी थे उनके प्राणोंसे भी अधिक प्यारी नाम से सुदर्शना ऐसी प्रसिद्ध गालव मुनिकी कन्या उनकी नारीथी भूमिमें रूपसे असमान उनके कन्या हुई याने उस कन्याके समान पृथ्वीमें किसी का रूप न था ॥ ४२ । ४३ ॥ मैंने इच्छाके अनुकूल खेलती हुई उसको अचानक देखा जोकि मध्यमें दुबली अर्थात् पतली कटिवाली व सुन्दर बालोंवाली और

बिम्बाफल (कुन्दुरू) के तुल्य ओठोंवाली व चौंड़े नेत्रोंवाली थी ॥ ४४ ॥ उसको मैं देखकर कामदेवके वशहोगया तदनन्तर मैंने पूंछा कि मनोहर हास्यवाली यह किसकी कन्या हैं ॥ ४५ ॥ जोकि विभाग कियेहुये समस्त अंगोंवाली देवांगनाके सदृश शोभितहै सखियों ने मुझसे कहा कि भार्गवमुनि की कन्याहै ॥ ४६ ॥ और यह सुन्दर हँसनेवाली आजभी कन्यापन में वर्त्तमान है तदनन्तर नम्रतासे संयुत मैंने भार्गव के समीप जाकर ॥४७॥ हाथोंको जोड़ खड़ाहो उस कन्याको मांगा व मुझ को श्रेष्ठ जानकर उन भृगुपुत्रने भी ॥ ४८ ॥ हे महाभाग ! मुझ कुरूपके लिये भी उस कन्याको देदिया इसके अनन्तर उस कन्याने यह जानकर कि पिताने धर्म से

च्छया ॥ मध्येक्षामासुकेशीचबिम्बोष्ठीदीर्घलोचना ॥ ४४ ॥ तामहंवीक्षयित्वातुकामदेववशंगतः ॥ ततःपृष्टामयाक स्यकन्येयञ्चारुहासिनी ॥ ४५ ॥ विभक्तसर्वावयवादेवकन्येवराजते ॥ सखीभिःकीर्तितामह्यंभार्गवस्यमुनेस्सुता ॥४६॥ एषाचाद्यापिकन्यात्वेवर्ततेचारुहासिनी ॥ ततोहंभार्गवङ्गत्वाविनयेनसमन्वितः ॥ ४७ ॥ ययाचेकन्यकान्ताञ्चकृताञ्ज लिपुटःस्थितः ॥ प्रवर्य्यमांपरिज्ञायसोपिभार्गवनन्दनः ॥ ४८ ॥ दत्तवांस्तांमहाभागविरूपायापिकन्यकाम् ॥ अथसा कन्यकाज्ञात्वापित्रादत्तास्मिधर्म्मतः ॥ ४९ ॥ विरूपायततोगत्वामातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ सलज्जासातिदुःखार्तापश्या म्बजनकेनच ॥ ५० ॥ विरूपायप्रदत्तास्मिनाहंजीवितुमुत्सहे ॥ विषंवाभक्षयिष्यामिप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ ५१ ॥ त स्यास्तद्वचनंश्रुत्वानिषिद्धस्समुनिस्तया ॥ कस्मान्नाथप्रदत्तासौविरूपायत्वयाविभो ॥ ५२ ॥ कन्यकेयंसुरूपाढ्यासर्व लक्षणसंयुता ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंभार्गवोमुनिसत्तमः ॥ ५३ ॥ ततस्ताङ्गर्हयित्वासौधिङ्नारींपुरुषायतीम् ॥ अनेन

मुझको कुरूपके लिये दियाहै तदनन्तर लज्जा समेत व अतिदुःखसे विकल उसने मातासे जाकर वचन कहा कि हे माता ! देखिये पिताने ॥४९।५०॥ मुझको कुरूपके लिये दियाहै इससे मैं जीने के लिये नहीं उत्साह करती हूं किन्तु विष खाऊंगी या अग्निमें पैठूंगी ॥ ५१ ॥ उसके उस वचनको सुनकर उस माताने उन मुनिको मना किया कि हे विभो, स्वामिन् ! तुमने कुरूप के लिये इस कन्याको किसलिये दिया ॥ ५२ ॥ क्योंकि यह कन्या उत्तम रूपसे संयुत व समस्त लक्षणों से युक्तहै इस वचनको सुनकर तदनन्तर इन मुनिश्रेष्ठ भार्गवने उसको निन्दकर कहा कि पुरुषके तुल्य आचरण करनेवाली स्त्री को धिक्कारहै इसने कन्याको मांगाथा इसी कारण मैं

इसके लिये देता हूं ॥ ५३।५४॥ तो इस कन्याको देतेहुये मुझे क्यों रोंकती है ऐसाकहकर वह और उसकी स्त्री तथा वह कन्या ये सब सोगये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर आधी रात में आकर और सोतीहुई उस भृगुसुताको मैंने हरलिया व मनुष्योंके सोतेहुये उस समय रातको अपने घरमें लाया ॥ ५६॥ और मैंने बलसे न इच्छा करतीहुई उसको कामदेव के धर्मसे नियुक्त किया याने उससे रतिकिया तदनन्तर प्रातःकाल उसके पिता भृगु विप्रजी जागतेभये ॥ ५७ ॥ व बोले कि यह कन्या कहांहै और उस को कौन लेगया यहां नहीं देखपड़ती है इसके अनन्तर बहुत मुनियोंसे घिरे व देखतेहुये इन भृगुजीने चरण से चिह्नित मार्गके द्वारा उत्तम वनके समीप भ्रमण किया

प्रार्थिताकन्यामयाचास्मैप्रदीयते ॥ ५४ ॥ तत्किंनिषेधयसिमान्दीयमानांसुतामिमाम् ॥ इत्युक्त्वासप्रसुष्वापतद्भार्य्या साचकन्यका ॥ ५५ ॥ ततोर्द्धरात्रेचागत्यमयासुप्ताचभार्गवी ॥ हृतास्वभवनंनीतानिशिसुप्तेजनेतदा ॥ ५६ ॥ नियुक्ता कामधर्म्मेणअनिच्छन्तीबलान्मया ॥ विप्रःप्रातर्जजागारपितातस्याःततःपरम् ॥ ५७ ॥ कासौसादुहिताकेनहृतानात्रप्रदृश्यते ॥ अथासौवीक्ष्यमाणस्तुबभ्रामसुवनान्तिकम् ॥ ५८ ॥ पदसंहतिमार्गेणमुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ तेनदृष्टाथ साकन्याकृतकौतुकमङ्गला ॥ ५९ ॥ रुदतीसस्वनन्तत्रलज्जमानाह्यधोमुखी ॥ ततःकोपपरीतात्मामांप्रोवाचसभार्गवः ॥ ६० ॥ निशाचरस्यधर्म्मेणयस्माद्धृतासुतामम ॥ निशाचरोभवानस्तुऊलूकश्चैवसाम्प्रतम् ॥ ६१ ॥ घण्टउवाच ॥ निर्दोषंमान्द्विजश्रेष्ठकस्मात्त्वंशपसिद्रुतम् ॥ त्वयैषामेयतोदत्तातेनरात्रौहृतामया ॥ ६२ ॥ योदत्त्वाकन्यकांपूर्वंपश्चाद्यच्छेन्नदुर्मतिः ॥ सयातिनरकेघोरेयावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६३ ॥ अथासौचिन्तयामाससत्यमेतेनजल्पितम् ॥ प

जोकि नीचे मुख किये व लज्जित होतीहुई वहां बड़े शब्दसे रोतीथी इसके अनन्तर उनने कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलोंवाली उस कन्याको देखा ॥ ५८ । ५९ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले वे भार्गव जी मुझसे बोले ॥ ६० ॥ कि जिसलिये निशाचर के धर्मसे मेरी कन्या हरीगई उसी कारण इस समय आप निशाचर व घुघुवा होवो ॥ ६१ ॥ घण्ट बोला कि हे द्विजोत्तम ! बिन दोषवाले मुझको तुम किसलिये शीघ्रही शाप देते हो जिसलिये कि तुमने इसको मुझे दियाथा उसीसे मैंने रात्रि में उसको हरलिया ॥ ६२॥ जो दुर्बुद्धि पहले कन्याको देकर पीछे नहीं देता है वह कल्पपर्यन्त भयङ्कर नरक में प्राप्तहोता है ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर इसने

चिन्तन किया कि इसने सत्य कहाहै व पश्चात्तापसे संयुतहो यह वचन बोला ॥ ६४ ॥ कि तुमने यह सत्य कहा परन्तु मेरा वचन अन्यथा न होगा तुम निस्सन्देह घुघुवा के रूपसे संयुत होगे ॥ ६५ ॥ और जब यहां भर्तृयज्ञ महामुनि पैदाहोवैंगे तब उनका उपदेश पाकर फिर अपना शरीर पावोगे ॥ ६६ ॥ तदनन्तर मैं घुघुवा रूपवाले अपने शरीरही को देखताहुआ शापितभी था परन्तु पहले पैदाहुआ जो स्मरणथा वह नहीं नष्टहुआ ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर मैंने जो उसकी कन्याको उस पर्वतपै ब्याहाथा वहभी उस रूपवाले मुझको भलीभांति देखकर इसके अनन्तर दुःखसंयुत हुई ॥ ६८ ॥ और विधवापन को न चाहती हुई वह अग्निमें पैठगई इस

आत्तापसमोपेतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ ६४ ॥ सत्यमेतत्त्वयाप्रोक्तंनमेवचनमन्यथा ॥ उलूकरूपसंयुक्तोभविष्यसिनसंशयः ॥ ६५ ॥ उत्पत्स्यतेयदाचात्रभर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ तस्योपदेशमासाद्यभूयःप्राप्स्यसिस्वान्तनुम् ॥ ६६ ॥ ततः कौशिकरूपंतुपश्यन्नात्मानमेवच ॥ शप्तोपिनस्मृतिर्नष्टाममयापूर्वसम्भवा ॥ ६७ ॥ अथयातत्सुतावोढामयातस्मिन्गिरौतदा ॥ सापिमांसंनिरीक्ष्याथतद्रूपंदुःखसंयुता ॥ ६८ ॥ प्रविष्टाहव्यवाहंसाविधवात्वमनिच्छती ॥ एवंमेकौशिकत्वंहिसंजातंहिमहाद्युतेः ॥ ६९ ॥ भार्गवस्यतुशापेनकन्याघेनतवोदितम् ॥ अखण्डबिल्वपत्रेणपूजितोयन्महेश्वरः ॥ ७० ॥ चिरायुस्तेनसंजातंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ सत्यंकथययत्कृत्यंगृहायातस्यतत्तव ॥ ७१ ॥ प्रकरोमिमहाभागयद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नस्यज्ञानायआनीतोहंतवान्तिकम् ॥ ७२ ॥ नाडीजङ्घेनवानीतोमरणेकृतनिश्चयः ॥ यदिनाज्ञास्यतिभवांस्तंकीर्त्यावाकुलेनच ॥ ७३ ॥ प्रविशामिततोनूनंप्रदीप्तंहव्यवाहनम् ॥ नोचे

प्रकार कन्याके अपराधसे महातेजस्वी भार्गवजी के शापसे मेरे घुघुवापन होगया उसको तुमसे कहा और बिनकटेपिटे बिल्वपत्रोंसे जो महादेवजी का पूजन किया ॥ ६९ । ७० ॥ उससे बड़ी आयुर्बल हुई मैंने यह सत्यकहा है व हे महाभाग ! घरमें आयेहुये तुम्हारा जो कार्यहो उसको सत्य कहिये यद्यपि अतिदुर्लभ होगा तथापि मैं करूंगा इन्द्रद्युम्न बोले कि इन्द्रद्युम्न के जानने के लिये मैं तुम्हारे समीप आनागया ॥ ७१ । ७२ ॥ व मरणमें निश्चय कियेहुये मैं नाडीजंघ नामक बगुला से

लायागया हूं यदि आप उस इन्द्रद्युम्न को यश या वंशसे न जानेंगे ॥ ७३ ॥ तो निश्चयकर मैं जलती हुई अग्निमें पैठूंगा नहीं तो तुम किसी अन्य बहुत दिनों से प्राणधारी को कहो ॥ ७४ ॥ उस मनुष्य से जाकर पूंछूं जो नृपको जानता हो उसको कहिये बगुला बोला कि हे उलूक ! इसने सत्य कहाहै यदि तुम अपनासे दीर्घजीवी किसीको जानते हो तो आजही तुम कहो व करो नहीं तो इस समय तुम्हारे देखते हुये मार्कण्डेय समेत मैं भी शीघ्रही अग्निमें पैठूंगा ऐसा जानकर हे महाभाग ! भूतल में अन्यत्र किसी बहुत दिनोंवाले प्राणीको चिन्तन कीजिये जिसलिये तुम बहुत दिनोंसे प्राणधारी हो उसीसे मैं बड़ी आशा करके तुम्हारे घर प्राप्तहुआ

त्वंकीर्तयत्वंकञ्चिदन्यन्तुचिरजीविनम् ॥ ७४ ॥ पृच्छामितंजनंगत्वायोनृपंवेत्तितंवद ॥ बकउवाच ॥ युक्तमुक्तमनेनाद्य त्वंकुरुष्ववदस्वभोः ॥ ७५ ॥ यदिजानासिकञ्चित्त्वमात्मनश्चिरजीविनम् ॥ नोचेदहमपित्विप्रंप्रविशामिहुताशनम् ॥ ७६ ॥ मार्कण्डेनापिसार्द्धन्तुसाम्प्रतंतवपश्यतः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागचिन्तयस्वचिरन्तनम् ॥ ७७ ॥ कञ्चिद्भूमितलेन्यत्रयतस्त्वंचिरजीवधृक् ॥ आशयापरयाप्राप्तस्तेनाहंतवमन्दिरम् ॥ ७८ ॥ पुमानेषविशेषेणमार्कण्डोपिप्रियोमम ॥ सन्त्यत्रपर्वतश्रेष्ठाःशतशोथसहस्रशः ॥ ७९ ॥ येषुसन्तिमहाभागास्तापसाश्चिरजीविनः ॥ नान्यथाजीवितञ्चास्य कथञ्चित्संभविष्यति ॥ ८० ॥ इन्द्रद्युम्नस्यराजर्षेर्हितंपरमकंभवेत् ॥ तथावयोर्द्वयोश्चापितस्माच्चिन्तयसत्वरम् ॥ ८१ ॥ तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वामरणार्थंमहीपतेः ॥ पुरुहूतःकृपांकृत्वाततोवचनमब्रवीत् ॥ ८२ ॥ यद्येवन्तुमहाभागमर्तुकामोसि साम्प्रतम् ॥ तदागच्छमयासार्द्धंगन्धमादनपर्वतम् ॥ ८३ ॥ तत्रसन्तिष्ठतेगृध्रस्सचमेपरमःसुहृत् ॥ चिरन्तनस्तथासो

हूं ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥ व विशेषकर यह पुरुष व मेरे प्यारे मार्कण्ड भी प्राप्त हुये हैं यहां सैकड़ों व हज़ारों उत्तम पर्वतहैं ॥ ७९ ॥ जिनमें बड़े भाग्यवाले व बहुत दिनों से जीनेवाले तपस्वी हैं अन्यथा इसका किसी प्रकार जीवन न होगा ॥ ८० ॥ जिस कारण राजर्षि इन्द्रद्युम्न व हमदोनों का भी परमहित होवै उसीलिये शीघ्रही चिन्तन कीजिये ॥ ८१ ॥ मरने के लिये उस भूपके उस निश्चय को जानकर घुघुवा दयाकर तदनन्तर वचन बोला ॥ ८२ ॥ कि हे महाभाग ! यदि ऐसा है कि इस समय तुम मरने के लिये इच्छा करतेहो तो मेरे साथ गन्धमादन पर्वतपै आइये ॥ ८३ ॥ वहांपर गीध भलीभांति टिकाहै और

वह मेरा परममित्र व पुराना है वह भी यदि उस राजाको जानैगा ॥ ८४ ॥ तो मेरे वचन से निरसन्देह अवश्यकर कहैगा उसके उस वचन को सुनकर मार्कण्डादिक सब तीनों जनोंने उस बड़े भाग्यवान् इन्द्रद्युम्न सेकहा कि तुम अग्नि में मत पैठो हम सब तुम्हारे साथ वहीं चलैंगे ॥ ८५ । ८६ ॥ कदाचित् वह भी इन्द्रद्युम्न भूपको जानता होवै उनके उस वचन को सुनकर बड़ी आशा से संयुत ॥ ८७ ॥ सवों समेत वह राजा गन्धमादन पर्वतपै गया उन सबोंको देखकर हाथ जोड़हुये गृध्रराज भी ॥ ८८ ॥ आगे घुघुवा को देखकर प्रसन्नहो सामने प्राप्त हुआ तदनन्तर प्रसन्नमनवाला वह बोला कि हे पक्षियों में उत्तम ! तुम्हारा आना

पियदिज्ञास्यतितंनृपम् ॥ ८४ ॥ कथयिष्यत्यसन्दिग्धंममवाक्यादसंशयम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासमार्कण्डादिभिस्त्रिभिः ॥ ८५ ॥ प्रोक्तःसर्वैर्महाभागोमात्वंप्रविशपावकम् ॥ वयंयास्यामहेसर्वेत्वयासार्द्धञ्चतत्रहि ॥ ८६ ॥ कदाचित्सोपि जानातिइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाआशयापरयायुतः ॥ ८७ ॥ सराजासहितस्सर्वैःप्रययौगन्धमादनम् ॥ गृध्रराजोपितान्दृष्ट्वासर्वानेवकृताञ्जलिः ॥ ८८ ॥ उलूकंपुरतोदृष्ट्वाप्रहृष्टस्सम्मुखंययौ ॥ ततोब्रवीत्प्रहृष्टात्मास्वागतन्तेद्विजोत्तम ॥ ८९ ॥ चिरकालात्प्रहृष्टोसिकएतेऽन्येत्रयःस्थिताः ॥ उलूकउवाच ॥ एषमेपरमंमित्रंनाडीजङ्घोबकःस्मृतः ॥ ९० ॥ एतस्यापिचमार्कण्डःसंस्थितःपरमःसुहृत् ॥ असौत्रैलोक्यविख्यातःसप्तकल्पस्मरोभुवि ॥ ९१ ॥ एतस्यसुहृदंकञ्चिदेनंजानामिसत्वरम् ॥ म्रियमाणोमयाह्येषःसमानीतस्तवान्तिकम् ॥९२॥ अयंजीवतिविज्ञातेइन्द्रद्युम्नेनरेश्वरे ॥ नोचेत्प्रविशतिक्षिप्रंप्रदीप्तंहव्यवाहनम् ॥९३॥ सत्वंजानासिचेत्तंहिइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ चिरंतनोमया

अच्छा हुआ ॥ ८९ ॥ तुम बहुत दिनों से देखेगये और प्राप्तहुये ये तीनों कौन हैं उलूक बोला कि नाडीजंघ ऐसा कहा हुआ यह बगुला मेरा परममित्र है ॥ ९० ॥ और इसके भी मार्कण्डजी परममित्र भलीभांति स्थित हैं भूतल में सात कल्पों के स्मरणवाले ये त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ ९१ ॥ व इनके किसी मित्रको इसे जानता हूं मैंने मरतेहुये इसको तुम्हारे समीप शीघ्रही भलीभांति प्राप्त कियाहै ॥ ९२ ॥ इन्द्रद्युम्न राजाके जानने पर यह जियैगा नहीं तो जलती हुई अग्नि मे शीघ्रही प्रवेश

करैगा ॥ ९३ ॥ सो तुम यदि उस इन्द्रद्युम्न भूपति को जानते हो तो कहो क्योंकि तुम मुझसे भी पुरानेहो उसी से पूछने के लिये भलीभांति आयाहूं ॥ ९४ ॥ गृध्र बोला कि इन्द्रद्युम्न ऐसे प्रसिद्ध राजाको मैं नहीं स्मरण करताहू क्योंकि इन्द्रद्युम्न भूपति न देखागया और सुनाभी नहीं गयाहै ॥ ९५ ॥ उसके उस वचनको सुनकर मरण में निश्चय किये व उदासीन मनवाले उस राजाने भी मनसे चिन्तनकिया ॥ ९६ ॥ तदनन्तर आश्चर्यसंयुत होकर पक्षियों में उत्तम उस गीधसे पूंछा कि किस कर्म से ऐसी आयुर्बल भलीभांति प्राप्तहुई है यह कहिये ॥ ९७ ॥ मैं तुमसे उसको सुनकर तदनन्तर अग्निको भलीभांति साधन करूंगा याने अग्निमें पैठूंगा

पित्नंतेनप्रष्टुंसमागतः ॥ ९४ ॥ गृध्रउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नेतिविख्यातंराजानंनस्मराम्यहम् ॥ नदृष्टोनश्रुतश्चापिइन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ ९५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासोपिराजासुदुर्मनाः ॥ मनसाचिन्तयामासमरणेकृतनिश्चयः ॥ ९६ ॥ ततस्तुकौतुकाविष्टस्तंपप्रच्छद्विजोत्तमम् ॥ कर्मणाकेनसंप्राप्तमायुष्यञ्चेदृशंवद ॥ ९७ ॥ ततस्संसाधयिष्यामिश्रुत्वातेहंविभावसुम् ॥ गृध्रउवाच ॥ अहमासंचमत्कारपुरेमर्कटकःकिल ॥ ९८ ॥ उत्पत्यकायान्तत्रैवरक्तशृङ्गस्यभूभृतः ॥ तत्रैवास्तिमहातुङ्गेबोधिद्रुर्मन्दिरोपमः ॥ ९९ ॥ चैत्येश्वराभिधानञ्चसर्वपातकनाशनम् ॥ वसन्तेतत्रसंप्राप्तेपौरजानपदैस्तथा ॥ २०० ॥ आगत्यचैवतुमहातुङ्गेयोविहितोभवत् ॥ लिङ्गस्यतद्विधौरम्येसर्वतःफलितद्रुमे ॥ १ ॥ काननेकामिनीलोककान्तेजनमनोहरे ॥ लिङ्गमारोपितंशैवंतरोरान्दोलकेमुदा ॥ २ ॥ कृत्वादमनकेनार्चांस्थाप्यदोलांसुयन्त्रि

गीध बोला कि प्रसिद्धि में चमत्कारपुरमें मैं बन्दर हुआहूं ॥ ९८ ॥ और वहीं रक्तशृंग पर्वत के समीपवाली भूमिमें था वहींपर मन्दिरके समान व बड़ा ऊंचा पीपरका वृक्षहै ॥ ९९ ॥ और समस्त पातकोंका विनाशक चैत्येश्वर नामक लिंगहै वहां वसन्त ऋतु भलीभांति प्राप्तहोनेपर पुरवासी व देशविशेषों के निवासियों ने ॥ २०० ॥ आकर बड़े ऊंचे वृक्षमें लिंगकी उस सुन्दरी विधिमें जो कियाहै उसको सुनिये कि मनुष्योंको मनोहर व कामिनी जनोंके सुन्दर वनमें सबओर वृक्षोंके फलनेपर वृक्षके नीचे सुन्दर हिंडोरे पै हर्षमे शिवजी का लिंग आरोपण किया ॥ १ । २ ॥ और उसको देउना से पूजकर व उत्तम यन्त्रवाले हिंडोरे पै बिठाकर व तीन नयनोंवाले

शिवजी को पूजकर पश्चात् अपने घरको चलेआये ॥ ३ ॥ तदनन्तर सन्ध्यासमयमें खेलसे संयुत चित्तवाला मैं उस अतिसुन्दर झूलनेको वार २ झुलाताथा ॥ ४ ॥ इस प्रकार झुलाते हुये मेरे समीप मनुष्य प्राप्तहुये उन किसी मनुष्यों ने लुकेठों से सब दिशाओं में मुझको मारा ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसी मन्दिर में मैं शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहुआ उसके उपरान्त जातिका स्मरणवाला होकर मैं राजाके घरमें भलीभांति पैदाहुआ ॥ ६ ॥ व कोटीश्वर का पुत्र कुशध्वज नामक प्रसिद्ध हुआ तदनन्तर जब कोटीश अपने कर्मसे परलोक को भलीभांति प्राप्तहुये तब क्रमसे पिता, पितामहोंवाली राज्यको मैंने पाया व गुरुजीसे भलीभांति दिखलाये व शिवसिद्धा-

याम् ॥ तंचेयुःस्वगृहंपश्चादर्चयित्वात्रिलोचनम् ॥ ३ ॥ ततोहंरजनीवक्त्रेतान्दोलांसुमनोहराम् ॥ कौतुकाविष्टहृदयोदोलयामिमुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥ एवंसन्दोलमानस्यममप्राप्तानरास्तथा ॥ कैश्चित्तैस्त्रासितोहन्तुउल्मुकैःसर्वतोदिशम् ॥ ५ ॥ ततःपञ्चत्वमापन्नस्तत्रैवायतनेद्रुतम् ॥ ततोजातिस्मरोभूत्वासंजातोनृपमन्दिरे ॥ ६ ॥ कोटीश्वरस्यचाविख्यातोनाम्नाचैवकुशध्वजः ॥ पितृपैतामहंराज्यंमयाप्राप्तंततःक्रमात् ॥ ७ ॥ कोटीशेसमनुप्राप्तेपरलोकंस्वकर्म्मणा ॥ योगेश्वरंमहाभागन्दोलयामियथातथा ॥ ८ ॥ शिवसिद्धान्तजैर्मन्त्रैर्गुरुणासंनिदर्शितैः ॥ ततःकालेनमहतातुष्टोदेवोहरोमम ॥ ९ ॥ भवतेवरदश्चास्मिवाक्यमेतदुवाचह ॥ कुशध्वजप्रतुष्टोस्मिश्रद्धयापरयातव ॥ १० ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्तेयस्तेमनसिसंस्थितम् ॥ ततोमयाप्रणम्योच्चैःसंप्रोक्तोभगवान्हरः ॥ ११ ॥ यदितुष्टोसिमेदेवतन्मांकुरुनिजंगणम् ॥ त्रैलोक्यराज्यमपिवैनान्यच्चप्रतिभातिमे ॥ १२ ॥ एवमुक्तोमयादेवोविमानेमांनिनायसः ॥ शिवलोकंमहापुण्यंसहसामां

न्त में उपजेहुये मन्त्रोंके द्वारा मैं महाभाग योगेश्वरजीको यथायोग्य झुलाता था उसके उपरान्त बड़े समय से सदाशिव देवजी मेरे ऊपर प्रसन्नहुये ॥ ७ । ८ । ९ ॥ व यह वचन बोले कि हे कुशध्वज ! तुम्हारी उत्तम श्रद्धासे मैं प्रसन्नहूं और आपके लिये वरदायक हूं ॥ १० ॥ तुम्हारा कल्याणहोवै और तुम्हारे मनमें जो भलीभांति टिकाहोवे उस वरदान को मांगो तदनन्तर मैंने उच्च प्रकार से प्रणाम कर भगवान् शिवजी से कहा ॥ ११ ॥ हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो मुझे अपनागण कीजिये व अन्य त्रिलोककी राज्यभी मुझको नहीं अच्छी लगती है ॥ १२ ॥ मुझसे ऐसा कहेहुये उन शिवदेवजी ने मुझको विमानपै चढाया व अचानक ही

मुझको बड़े पुण्यदायक शिवलोकको भलीभांति प्राप्तकिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर पार्वती व शिवजी की प्रसन्नता से वहां गणोंके बीचमें विशेषकर टिकाहुआ मैं अपनी इच्छासे क्रीडा करताथा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उत्तम विमानपै चढ़ा व अपनी इच्छासे घूमताहुआ मैं महापर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ व वसन्त समय प्राप्तहोने पर जब दक्षिण दिशावाला पवन वर्त्तमान हुआ तब जलके बीचमें प्राप्त व बसनहीन (नंगी) अग्निवेश्य की कन्या देखीगई ॥ १६ ॥ जोकि बहुत सखियों से युक्त व इच्छाके अनुकूल खेलती थी और वह बीचमें मूठीसे ग्रहणकरने योग्य याने पतली कटिवाली व बिम्बाफलके समान ओठोंवाली व कमल सरीखे

समानयत् ॥ १३ ॥ ततःप्रसादतश्चाहंभवान्याश्चहरस्यच ॥ क्रीडामिस्वेच्छयातत्रगणमध्येऽयवस्थितः ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यविमानवरमास्थितः ॥ स्वेच्छयाभ्रममाणस्तुप्राप्तश्चैवमहागिरौ ॥ १५ ॥ वसन्तसमयेप्राप्तेप्रवृत्तेदक्षिणानले ॥ अग्निवेश्यसुतादृष्टाविवस्त्राजलमध्यगा ॥ १६ ॥ आलिभिर्बहुभिर्युक्ताक्रीडमानायथेच्छया ॥ मुष्टिग्राह्यातुमध्येसाबिम्बोष्ठीवारिजेक्षणा ॥ १७ ॥ बिल्वस्तनीशशाङ्कास्यासर्वलक्षणलक्षिता ॥ ततोहंमन्मथाविष्टस्तत्क्षणात्समजायत ॥ १८ ॥ अवतीर्य्यविमानाग्राद्गृहीताथकरेमया ॥ प्ररुदन्तीचकरुणंपक्षिणीकुररीयथा ॥ १९ ॥ ततः कन्यामुनीन्द्राणांयाःस्थितास्तत्रवारिणि ॥ रुदन्त्यस्संप्रयातास्ताअग्निवेश्यस्यसन्निधौ ॥ २० ॥ नीयतेत्वत्सुताब्रह्मन्विमानवरमास्थिता ॥ वैमानिकेनकेनापिक्रन्दमानानिर्गलम् ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वाकुपितस्सोपिव्योममार्गावलोककः ॥ स्वाश्रमात्सम्प्रयातःसन्मामालोक्यमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥ तिष्ठतिष्ठेतितेनोक्तेसंरुद्धस्सतुसर्वतः ॥ तपसोग्रेणावि

नयनोंवाली ॥ १७ ॥ और बिल्वके तुल्य स्तनोंवाली व चन्द्रमाके समान मुखवाली व समस्त लक्षणोंसे चिह्नितथी तदनन्तर उसी क्षण मैं कामदेवसे व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर विमानके अग्रभागसे उतरकर मैंने कुररी पक्षिणी की नाईं बहुत रोतीहुई उसको हाथमें ग्रहणकिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर मुनीन्द्रोंकी जो कन्यायें उस जलमें स्थितथीं रोतीहुई वे अग्निवेश्य के समीप भलीभांति गईं और बोलीं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! अत्यन्तही रोतीभी व उत्तम विमानपै चढ़ीहुई तुम्हारी कन्या को कोई विमानवाला पुरुष लिये जाताहै ॥ २१ ॥ उस वचनको सुनकर क्रोधित व आकाशमार्गको देखनेवाला वह भी अपने आश्रमसे भलीभांति प्रयाण करता

हुआ मुझको देखकर खड़ेहो २ ऐसा उसके बार २ कहनेपर सो मैं सब ओर से रुँकगया व विप्रजी की बड़ी तपस्यासे मेरा विमान भलीभांति खड़ाहोगया॥२२।२३॥ तदनन्तर बड़े क्रोधसे संयुत उसने मुझसे कहा कि हे पापिन् ! जिसलिये इस समय खेलती हुई कन्याको तू ने हरलिया ॥ २४ ॥ हे दुर्बुद्धे ! जैसे कि अचानक गिरताहुआ गाध मांस को हरताहै इसलिये मेरे वचनसे निस्सन्देह शीघ्रही गीधहोवो ॥ २५ ॥ तदनन्तर उससे ऐसा कहाहुआ मैं लज्जासे संयुत हुआ व उनके लिये कन्याको देकर बार २ प्रणामकर ॥ २६ ॥ तदनन्तर मैंने बड़े तपस्वी अग्निवेश्य विप्रसे कहा कि वैसीही तुम्हारी कन्या नहीं सहीगई याने तेजस्विनीहै इसलिये क्रोध

प्रस्यविमांनंममसंस्थितम् ॥ २३ ॥ अब्रवीच्चततोमांसकोपेनमहतान्वितः ॥ यस्मात्पापत्वयाकन्याक्रीडतीचहृताऽधुना ॥२४॥ अकस्मात्पततामांसंयथागृध्रेणदुर्मते ॥ तस्माद्गृध्रोभवत्वाशुममवाक्यादसंशयम् ॥२५॥ एवमुक्तस्ततस्तेनलज्जयाहंपरिप्लुतः ॥ निवेद्यकन्यकांतस्मैप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततःप्रोक्तोमयाविप्रस्त्वग्निवेश्योमहातपाः ॥ नतथातेसुताच्चान्तानकोपयितुमर्हसि ॥ २७ ॥ गृध्रत्वंमेयथानस्यात्तथाकुरुमुनीश्वर ॥ ततोहंतेनचप्रोक्तोनमिथ्यावचनंमम ॥ २८ ॥ कथञ्चिज्जायतेतस्माद्गृध्रत्वंसम्भविष्यति ॥ आनर्तस्योपदेशेनयदाप्राप्स्यसिभोऽधम ॥ २९ ॥ भर्तृयज्ञंमहाभागमुपदेशकृतेतदा ॥ तस्माच्चनिष्कृतिंप्राप्यगृध्रत्वंतेप्रयास्यति ॥ ३० ॥ समयंप्रेक्षमाणेननदृष्टोनंचविश्रुतः ॥ निर्विण्णोगृध्रभावेनशापान्तोनचमेऽभवत् ॥ ३१ ॥ गृध्रउवाच ॥ एतद्वैसर्वमाख्यातंगृध्रत्वस्यचकारणम् ॥ आयुष्यञ्चयथाजातंममसंख्याविवर्जितम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अनुज्ञान्देहिमेशीघ्रंप्रविशामिहुताशनम् ॥ येनवै

करने को नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥ हे मुनिनायक ! मुझको जैसे गृध्रता न होवै वैसाही कीजिये तदनन्तर उन मुनिने मुझसे कहा कि मेरा वचन किसी प्रकार झूंठ नहीं होताहै उसी कारण गृध्रता होगी हे नीच ! जब आनर्त के उपदेशसे तुम महाभाग्यवाले भर्तृयज्ञ को उपदेश के लिये पावोगे तब उनसे प्रायश्चित्त को पाकर तुम्हारा गीधपन जावैगा ॥ २८ । २९ । ३० ॥ व समयको देखतेहुये मैंने न देखा है और न सुनाहै व गीधके होनेसे मैं निर्वेदको प्राप्तहूं और मेरे शापका अन्त नहीं हुआहै ॥३१॥ गीधबोला कि जिस प्रकार मेरी संख्यासे रहित आयुर्बलहुई वह और यह सब गृध्रताका कारण कहागया ॥ ३२ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि मुझको शीघ्रही

आज्ञादीजिये कि जिससे मैं अग्निमें प्रवेशकरूं क्योंकि वैराग्यको प्राप्त मैं जीनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उससे ऐसा कहेहुये उस गीध ने चित्तमें चिन्तन किया कि मित्रसे संयुतहो यह इस प्रकार मेरेसमीप भलीभांति आयाहै ॥ ३४ ॥ इसलिये शक्तिके अनुकूल अतिदुर्लभ उत्तम उपकारकरूं तदनन्तर परम उदारतामें प्राप्त उस गीधने स्नेहसे उस इन्द्रद्युम्नसे कहा ॥३५॥ कि तुम अग्निको मत साधनकरो किन्तु तबतक मेरे वचन सुनो मैं तुमसे उसको कहूंगा किं जो मुझसे भी प्राचीनहै ॥ ३६ ॥ वह इन्द्रद्युम्न भूपति को जानैगा इस में सन्देह नहीं है इसलिये मेरे साथ आइये व वैसेही सब सहायों समेत मेरे साथ उस

रागयमापन्नोनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ३३ ॥ एवमुक्तस्सतेनाथचिन्तयामासचेतसि ॥ ममान्तिकंसमायातएवंमित्रसमन्वितः ॥३४॥ तत्करोमियथाशक्त्यासूपकारंसुदुर्लभम् ॥ ततःप्रोवाचतंप्रीत्यादाक्षिण्यंपरमंगतः ॥ ३५ ॥ मात्वंसाधयर्वैवह्निंशृणुतावद्वचोमम ॥ अहंतेकीर्तयिष्यामिमयोपिचिरन्तनः ॥३६॥सज्ञास्यतिनसन्देहइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ तदागच्छमयासार्द्धंतत्समीपंमहात्मनः ॥३७॥सहायैस्सहितस्सर्वैर्मयासार्द्धंतथैवच ॥ अस्तिमान्थरकोनामकमठश्चिरजीविनः ॥ ३८ ॥ मानसेसरसिख्यातइन्द्रद्युम्नंसवेत्स्यति ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वामार्कण्डेयादयस्त्रयः ॥ ३९ ॥ तमूचुःपार्थिवश्रेष्ठंमरणेकृतनिश्चयम् ॥ सत्यमुक्तंमहाराजगृध्रराजेनधीमता ॥४०॥ तत्रयास्यामहेसर्वेयत्रासौकमठःस्थितः ॥ अनिर्वेदःश्रियोमूलंयतःशंसन्तिपण्डिताः ॥४१॥ नीतिशास्त्रविदःसर्वेतस्मादागच्छगम्यताम् ॥तेषांतद्वचनंश्रुत्वाकृच्छ्रान्निवर्त्यपार्थिवः ॥ ४२ ॥ मरणाद्भ्रमणंश्रेष्ठंवैराग्यंपरमंगतः ॥ अथतेप्रस्थितास्सर्वेगन्धमादनपर्वतात् ॥ ४३ ॥ पश्चापिच

महात्मा के समीप चलिये मानसरोवर में बहुत दिनों से जीनेवाला मान्थरक 'नामक प्रसिद्ध कछुवा है वह इन्द्रद्युम्न को जानैगा उस के उस वचनको सुनकर मार्कण्डेयादिक तीनों जनोंने ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ मरणमें निश्चय कियेहुये उस नृपोत्तमसे कहा कि महाराज ! बुद्धिमान् गृध्रराजने सत्य कहा है ॥ ४० ॥ वहां हम सबलोग जावैंगे जहां कि यह कमठ (कछुवा) टिकाहै जिसलिये नीतिशास्त्र के जाननेवाले समस्त पण्डित अवैराग्यको लक्ष्मीकी जड़ कहते हैं इसलिये आइये चलैं उनके उस वचनको सुनकर राजा क्लेशसे निवृत्त होकर उत्तम वैराग्यको प्राप्तहुआ क्योंकि मरनेसे घूमना श्रेष्ठ है इसके अनन्तर उन सब पांचोंने भी उत्तम

मानसरोवर को भलीभांति उद्देशकर गन्धमादन पर्वत से प्रयाण किया इसके उपरान्त क्रमही से आकाशमार्ग के द्वारा जातेहुये वे सब उस मनोहर मानसरोवरमें प्राप्तहुये और जलसे निकला घामको सेवताहुआ कछुवा स्वतन्त्रतासे भलीभांति बैठाथा ॥ ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ उसने उन चारों को देख व भलीभांति अवलोकनकर तदनन्तर सबोंके न देखपड़ने के लिये जलमें अदृश्य होगया ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जातेहुये उस विमुख कछुवे से घुघुवा ने कहा कि अहोमित्र ! आज मुझको देखकर तुम विमुख हुयेहो ॥ ४७ ॥ घरमें प्राप्तहुआ अतिनीच भी सज्जनोंके अत्यन्त पूजनीय होताहै इसके अनन्तर जलके बीचमें टिके व मस्तकमात्र

समादिश्यमानसंसरउत्तमम् ॥ अथप्राप्ताःक्रमेणैवगच्छमानाविहायसा ॥ ४४ ॥ मानसंतत्सरोरम्यंकूर्म्मस्तोयाद्विनिर्गतः ॥ निदाघंसेवमानस्तुसन्तिष्ठतियदृच्छया ॥ ४५ ॥ सचतांश्चतुरोदृष्ट्वासम्यक्कृत्वानिरीक्षणम् ॥ परोक्षायततस्सर्वान्प्रणष्टःसलिलम्प्रति ॥ ४६ ॥ अथतंकौशिकःप्राहगच्छमानंपराङ्मुखम् ॥ भोभोमित्राद्यमान्दृष्ट्वासंजातोसिपराङ्मुखः ॥४७॥ सुनीचोपिगृहंप्राप्तोभवेत्पूज्यतमस्सताम् ॥अथासौतोयमध्यस्थःशिरोमात्रबहिर्मुखः ॥ ४८ ॥ प्रत्युवाचाथतंगृध्रंविनयाद्द्विजसत्तमाः ॥ नाहंपराङ्मुखोजातस्त्वांदृष्ट्वानान्तराङ्मुभौ ॥४९॥ पञ्चमोयंसमभ्येतियोयुष्माकंमहापुमान् ॥ भयात्तस्यप्रणष्टोहमिन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः ॥५०॥ अनेनतत्रदग्धामेपुरापृष्ठिर्मखाग्निना ॥ सततंयजमानेनरोचकेसत्पुरोत्तमे ॥ ५१ ॥ एतदीयंपुनस्स्मृत्वाभयंमेसुमहत्स्थितम् ॥ इन्द्रद्युम्नस्यराजर्षेःकीर्तिसंश्रवणंमहत् ॥ ५२ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेकमठेनतदादिवः ॥ देवदूतःसमागच्छच्चासनात्परमेष्ठिनः ॥ ५३ ॥ देवदूत उवाच ॥ आगच्छागच्छ

बाहर मुखवाले इस कछुवे ने ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस गीधको नम्रतासे प्रत्युत्तर दिया कि तुमको व भेदरहित उन दोनोंको देखकर मैं विमुख नहीं हुआहूं ॥४९॥ किन्तु तुमलोगों के बीचमें जो यह पांचवां महापुरुष भलीभांति आताहै उस इन्द्रद्युम्न राजाके डरसे मैं अदृश्य हुआहूं ॥ ५० ॥ क्योंकि पुरातन समय रोचक नामक अच्छे पुरोत्तम में सदैव यज्ञ करते हुये इनने वहां यज्ञकी अग्निसे मेरी पीठको जलाया है ॥ ५१ ॥ यही फिर स्मरणकर मेरे बड़ा भारी डर उपस्थित हुआहै क्योंकि इन्द्रद्युम्न राजर्षि के यशका श्रवण बड़ाभारी है ॥ ५२ ॥ कछुवा के यही कहनेपर उस समय ब्रह्माकी आज्ञासे देवदूत आकाश से भलीभांति आया ॥५३॥ देवदूत

बोला कि हे राजर्षे ! इससमय ब्रह्माके समीप आइये२ हे राजन् ! ब्रह्माने तुझसे कहाहै कि इसका अनेक प्रकारका यश ॥ ५४ ॥ जब थोड़ा भी भूतलमें प्रकाशताको प्राप्तहोवै तो मेरे समीप लाना उसी कारण अप्रकट जन्मवाले उन ब्रह्माजीके समीप लिये चलताहूं ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि जो ये बगुला, घुघुआ व कछुवा मेरे मित्रहैं यदि मार्कण्डेय समेत वे मेरे साथ आतेहैं ॥ ५६ ॥ तो मैं तुम्हारे साथ ब्रह्माके समीप आताहूं अन्यथा न आऊंगा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ५७ ॥ देवदूत बोला कि शापसे भ्रष्टहोकर पृथ्वी में प्राप्त ये सब शिवजीके गणहैं इससे शापके अन्त में फिर निरसन्देह सदाशिवजीके समीप जावैंगे ॥ ५८ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! इनको

राजर्षेसाम्प्रतंब्रह्मणोन्तिकम् ॥ उक्तोहंब्रह्मणाराजन्कीर्तिश्चास्यपृथग्विधा ॥ ५४ ॥ यदाप्रकाशतांयातिस्वल्पापिपृथिवीतले ॥ नयामितेनतत्पार्श्वंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यदेतेसुहृदोमह्यंबककौशिककच्छपाः ॥ मार्कण्डेयेनसहिताआगच्छन्तिमयासह ॥ ५६ ॥ आगच्छामित्वयासार्द्धन्तदहंब्रह्मणोन्तिकम् ॥ अन्यथानागमिष्यामिसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५७ ॥ देवदूतउवाच ॥ एतेहरगणास्सर्वेशापभ्रष्टाःक्षितिङ्गताः ॥ शापान्तेहरपार्श्वेतुभूयोयास्यन्त्यसंशयम् ॥ ५८ ॥ तस्मादागच्छ गच्छामो मुक्त्वाह्येतान्नृपोत्तम ॥ नचैषांरोचतेस्वर्गंमुक्त्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यद्येवङ्गच्छभोभद्रनाहंगन्तात्रिविष्टपम् ॥ तत्तथाहंयतिष्यामिभविष्यामियथागणः ॥ ६० ॥ तत्रस्थस्यकुतोभाविनित्यञ्चपतनाद्भयम् ॥ एवमुक्तस्सतेनाथसमादायविमानकम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मलोकंगतोदूतोविलक्ष्यंपरमंगतः ॥ इन्द्रद्युम्नोपिपप्रच्छतंकूर्मंविनयान्वितः ॥ ६२ ॥ आख्याहिकूर्म्मंस्वंकर्म्मयदीदृक्

छोड़कर आइये चलें व महेश्वर देवको छोड़कर इनको स्वर्ग नहीं रुचताहै ॥५९॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि अहो कल्याणमय ! यदि ऐसाहै तो मैं स्वर्गको न जाऊंगा किन्तु वैसीही यत्न करूंगा जिसप्रकार गण होऊंगा ॥ ६०॥ क्योंकि उस स्वर्गमें टिकेहुये पुरुषको किरीकारण नित्यही गिरनेसे डरहोगा इसकेअनन्तर उनइन्द्रद्युम्नसे ऐसा कहाहुआ वह दूत उत्तम विलक्षणताको प्राप्तहो विमानको भलीभांति लेकर ब्रह्मलोकको चलागया व नम्रतासे संयुत इन्द्रद्युम्नने भी उस कछुवेसे पूंछा ॥६१॥६२॥ हे

कच्छप ! जो तुम ऐसे बहुत दिनवालेहो तो अपना कर्म कहिये कि किसकर्म से कच्छपता प्राप्तहुई है यह मुझसे शीघ्रहीं कहिये ॥ ६३ ॥ कच्छप बोला कि पुरातन समय मनोहर चमत्कारनगर में शिशुतामें विशेषकर प्राप्त मैं शांडिल्य नामसे प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहूं ॥ ६४ ॥ और समस्त बालकोंके खेलोंमें मैं स्वतन्त्रता से खेलता था व खेलते हुये मैंने पांचईटोंवाला शिवजीका मन्दिर बनाया ॥ ६५ ॥ व उसमें यागेश्वर लिंगको धरकर स्थापन कराया तदनन्तर बालकों से घिरा व भक्तिसंयुत खेलताहुआ मैं प्रतिदिन बिनमन्त्रों से पूजताथा इसके अनन्तर किसी समय जब मृत्यु होगई तब ॥ ६६ । ६७ ॥ जातिका स्मरणवाला ब्राह्मण मैं वैदिशपुर मे पैदा

त्वञ्चिरन्तनः ॥ कर्म्मणाकेनतुप्राप्तंकूर्म्मत्वंशंसमेद्रुतम् ॥६३॥ कूर्म्मउवाच ॥ अहमासम्पुराविप्रोबालभावेऽव्यवस्थितः ॥ चमत्कारपुरेरम्येशाण्डिल्योनामविश्रुतः ॥ बालक्रीडासुसर्वासुक्रीडमानोयदृच्छया ॥ ६४ ॥ पञ्चेष्टिकमयंशम्भोःक्री डतानिर्म्मितंगृहम् ॥ ६५ ॥ तत्रयागेश्वरंलिङ्गंधृत्वाचविनिवेशितम् ॥ ततोहंभक्तिसंयुक्तःपूजयामिदिनेदिने ॥ ६६ ॥ क्रीडमानोविनामन्त्रैःशिशुभिःपरिवारितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यमरणेसमुपस्थिते ॥ ६७ ॥ जातिस्मरोह्यहंविप्रो जातोवैदिशकेपुरे ॥ ततोमेभ्यधिकाजाताभक्तिर्देवंहरम्प्रति ॥ ६८ ॥ कृत्वाभिक्षाटनंनित्यंयाचयित्वाधनंबहु ॥ कृ त्वाप्रासादमात्रन्तुलिङ्गंसंस्थापितंमया ॥ ६९ ॥ पूजयामिततोभक्त्यादेवंपशुपतिंहरम् ॥ ब्रह्मविद्यासमोपेतोभिक्षान्न कृतभोजनः ॥७० ॥ ब्रह्मचर्य्यसमोपेतस्त्रिकालम्पूजयञ्छिवम् ॥ ततस्तेनप्रभावेणसंजातोहंभवान्तरे ॥ ७१ ॥ सार्वभौमो महीपालोजातिस्मरणसंयुतः ॥ ततःसंख्याविहीनाश्चप्रासादाःकारितामया ॥ ७२ ॥ त्रिनेत्रस्यमहाराजकैलासशिख

हुआ तदनन्तर सदाशिव देवमें मेरी अधिक भक्तिहुई ॥ ६८ ॥ और नित्य भिक्षाटन करके बहुत धन मांगकर मैंने मन्दिरमात्रबनाकर लिंगको भलीभांति थापनकिया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर भिक्षान्न से भोजन किये व ब्रह्मविद्या से संयुत मैं भक्तिसे पशुपति सदाशिव देवको पूजता था ॥ ७० ॥ व त्रिकाल में चन्द्रभाल जीको पूजताहुआ मैं ब्रह्मचर्यसे संयुतथा तदनन्तर उसीके प्रभावसे दूसरे जन्ममें मैं जातिके स्मरणसे संयुत चक्रवर्ती भूपालहुआ तदनन्तर हे महाराज ! मैंने कैलास शिखरके समान

त्रिलोचनजी के असंख्य मन्दिर निर्माण कराया और वैसेही ब्राह्मणों के द्वारा पुण्यसे उपजाहुआ पूजन निर्माण किया ॥ ७१ ॥ ७२ । ७३ ॥ हे राजन् ! यहां दानादिक अन्य किसी धर्मको मैं नहीं करताथा तदनन्तर बहुत कालसे चन्द्रभाल जी मेरे ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ उसके उपरान्त हे राजर्षे ! हँसतेहुये शिवजी नम्र वाणीसे बोले कि हे नृपोत्तम, जयदत्त ! तुम्हारी उस भक्तिसे मैं प्रसन्नहूं शीघ्रहीकहो मैं तुमको क्या मनोरथ देऊं तदनन्तर आठोंअंगोंसे प्रणामकरके अनेक भांतिसे स्तुतिकर ॥ ७५ । ७६ ॥ हे राजन् ! मैंने शिवजी से कहा कि मुझको अजर अमर कीजिये वे संसार के स्वामी वे अप्रमाण गतिवाले महादेव देवताजी वैसाही होगा

रोपमाः ॥ तथानिरूपितापूजाविप्रैःपुण्यसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ नान्यत्किञ्चित्करोम्यत्रधर्म्मंदानादिकंनृप ॥ ततःकालेन महतातुष्टोमेशशिशेखरः ॥ ७४ ॥ ततःप्रोवाचराजर्षेप्रहसञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ जयदत्तप्रतुष्टोस्मितवपार्थिवसत्तम ॥ ७५ ॥ भक्त्यातवाद्भुतंब्रूहिकिन्तेयच्छामिवाञ्छितम् ॥ प्रणिपत्यततोष्टाङ्गंस्तुत्वाचैवपृथग्विधम् ॥ ७६ ॥ मयाप्रोक्तोहरो राजन्कुरुमामजरामरम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतोन्तर्द्धानमेवहि ॥ ७७ ॥ अप्रमेयगतिर्देवो महादेवोजगत्पतिः ॥ ततोहंतुष्टिसंयुक्तो जरामरणवर्जितः ॥ ७८ ॥ ततःकालेनमहता गतेनन्नृपसत्तम ॥ बहुकामाग्निसंतप्तः शिवभक्तिविवर्जितः ॥ ७९ ॥ यांयांपश्यामिरूपाढ्यां परनारींमनोरमाम् ॥ तांतांनिरीक्ष्यसुचिरं धर्षयामिततःपरम् ॥ ८० ॥ धर्मराजभयंत्यक्त्वा पार्थिवत्वंसमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्ममपापेनकर्मणा ॥ ८१ ॥ हाहाकारस्ततोजातस्स मग्रेधरणीतले ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो धर्मराजःशिवान्तिकम् ॥ ८२ ॥ अब्रवीत्प्रणिपत्योच्चैर्दुःखितस्तदनन्तरम् ॥

यह कहकर अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर वृद्धता व मृत्युसे रहित मैं प्रसन्नतासंयुत हुआ ॥ ७७ । ७८ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! बहुत समय व्यतीत होनेसे शिवजीकी भक्तिसे रहित मैं कामदेव की अग्नि से अत्यन्ततप्त हुआ ॥ ७९ ॥ उसके उपरान्त रूपसे संयुत जिस २ मनोहारिणी पराई स्त्रीको मैं देखताथा उस २ कोबहुत देरतक देखकर धर्षण करताथा ॥ ८० ॥ हे राजन् ! धर्मराज का डर छोड़कर नृपताको भलीभांति प्राप्तहुआ तदनन्तर इसी अवसरमें मेरे पापके कर्म से समस्त भूतल में हाहाकारहुआ इसी समय में यमराज शिवजी के समीप प्राप्तहुये ॥ ८१ । ८२ ॥ तदनन्तर उच्चप्रकार से प्रणामकर दुःखितहो बोले कि हे देव ! प्रसन्न होतेहुये तुम

ने भूतल में जिस जयदत्त भूपति को वृद्धता व मरणसे रहित निर्माण कियाहै हे सुरश्रेष्ठ ! स्वभाव से किसी प्रकार नहीं किन्तु उस भूपके भयसे समस्त संसार सब धर्मोंसे बाहर करदियागया व उसके एकभी डर नहीं है जिससे कि मैं तुमसे भलीभांति कहताहूं ॥ ८३ ।८४ । ८५ ॥ इसलिये जबतक पतिव्रताओं की धर्षणा करने से समस्त धर्म मृत्युलोक से न नाशहोजावै तबतक शीघ्रही उसको मना करिये ॥८६ ॥ तदनन्तर ऐसा कहेहुये बड़े क्रोधसे संयुत महादेवजी ने हाथजोड़े व कांपते हुये मुझको भलीभांति आनकर शापदिया ॥ ८७ ॥ कि हे दुष्ट आचरणवाले ! जिस कारण तू ने विशेषकर निन्दित कर्म कियाहै उसीलिये अग्निसे पीठमें जलेहुये तुम

त्वयादेवमहीपालो जयदत्तोमहीतले ॥ ८३ ॥ योनिर्मितःप्रतुष्टेन जरामरणवर्जितः ॥ सर्वोभूपभयाल्लोकः सर्वध र्म्मबहिष्कृतः ॥८४ ॥ संजातोविबुधश्रेष्ठ नस्वभावात्कथंचन ॥ तस्यैकमपियेनास्ति भयंसम्प्रब्रवीमिते ॥८५॥ तस्माद्वा रयतंशीघ्रं यावद्धर्मोननश्यति ॥ मृत्युलोकादशेषेण सतीनांधर्षणेनच ॥ ८६ ॥ एवमुक्तस्ततोदेवः कोपेनमहतान्वि तः ॥ शशापमांसमानीय वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ८७ ॥ यस्माद्दुष्टसमाचारकृतंकर्मविगर्हितम् ॥ तस्मात्पृष्ठेग्नि तोदग्धः कमठोवैभविष्यसि ॥ ८८ ॥ ततोमयासुदीनेनप्रार्थितःपरमेश्वरः ॥ शापान्तंमेकुरुष्वाशु कुरुष्वचदयांम म ॥ ८९ ॥ ततस्तेनपुनःप्रोक्तं कल्पान्तेशतसंख्यके ॥ स्वशरीरंपुनःप्राप्य मद्गणस्त्वंभविष्यसि ॥ ९० ॥ एत स्मिन्नन्तरेकूर्म्मस्सञ्जातोहंमहीपते ॥ समुद्रसलिलेप्राप्य संस्थितोदुःखितोनिशम् ॥ ९१ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य राजंस्त्वंभूतलेस्थितः ॥ यजनार्थेसमानीतस्समुद्रसलिलात्त्वया ॥ ९२ ॥ स्थापितोभूमिपृष्ठेतु मन्त्रैस्संस्तम्भितस्त

निश्चयकर कछुवा होवोगे ॥ ८८ ॥ तदनन्तर अतिदीन मैंने परमेश्वर (शिव) जीसे प्रार्थना किया कि मेरे ऊपर दयाकीजिये व शीघ्रही मेरेशापका अन्तकीजिये॥ ८९ ॥ तदनन्तर उनने फिर कहा कि सौ संख्यक कल्पों के अन्तमें अपने शरीर को पाकर तुम फिर मेरे गण होगे ॥ ९० ॥ इसी अवसरमें हे भूपते ! मैं कछुवाहो-गया व सागरके पानीमें प्राप्तहोकर निरन्तर दुःखित होताहुआ भलीभांति टिकता भया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! किसी समय तुम भूतलमें टिकेथे और

तुमने यज्ञ करनेके लिये मुझको समुद्रके जलसे भलीभांति आना ॥ ६२ ॥ व भूपृष्ठमें थापन किया तथा मन्त्रोंसे भलीभांति स्तम्भन किया तदनन्तर मेरे ऊपर सैकड़ों, हज़ारों यज्ञैं कीगईं ॥ ६३ ॥ और तुमसे कीहुई यज्ञोंसे मेरी पीठ सब ओर जलगई हे महाराज ! जलाती हुईभी उस यज्ञाग्निसे उससमय ॥ ६४ ॥ महेश्वरजी की प्रसन्नतासे मेरे प्राणोंका पयान न हुआ केवल ताप होताथा जिसप्रकार कि पहले पातक कियागयाथा ॥ ६५ ॥ वैसेही महादेव जी के क्रोध से वह सब निस्सन्देह भोग कियागया इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! जब तुम स्वर्गको प्राप्तहुये तब ॥ ६६ ॥ तदनन्तर जलसे पूरित भूतलमें एकार्णव (एकही समुद्र) होनेपर तैरताहुआ मैं

था ॥ ममोपरिततोयज्ञाः कृताश्शतसहस्रशः ॥ ९३ ॥ क्रियमाणैस्त्वयादग्धा ममपृष्ठिस्समन्ततः ॥ दहतापिमहाराज तेनयज्ञाग्निनातदा ॥ ९४ ॥ प्रसादनान्महेशस्यनमेप्राणात्ययोभवत् ॥ केवलंजायतेदाहो यथापापंपुराकृतम् ॥ ९५ ॥ अनुभूतंचतत्सर्वं हरकोपादसंशयम् ॥ अथप्राप्तेदिवेचैव त्वयिपार्थिवसत्तम ॥ ९६ ॥ एकार्णवेतुसञ्जाते जलपूर्णेधरातले ॥ सम्प्राप्तःप्लवमानस्तु ततोहंमानसंसरः ॥ ९७ ॥ षण्णवतिप्रमाणेन कल्पाममचसंस्थितिः ॥ चतुर्भिरपरैर्मोक्षः कूर्म्मत्वात्सम्भविष्यति ॥ ९८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं दीर्घायुष्यस्यकारणम् ॥ हरप्रासादकरणाद्बहुकालार्चनाद्विभोः ॥ ९९ ॥ कूर्म्मत्वञ्चयथाजातं वामदेवस्यकोपतः ॥ सत्यंवदमहाभाग गृहायातस्यकिन्तव ॥ ३०० ॥ करोमिसाम्प्रतंकृत्यं शत्रोरपिहृदिस्थितम् ॥ त्वयामेसुचिरंकालं दग्धापृष्ठिर्मखाग्निना ॥ १ ॥ अद्यापिचप्रपश्यामि तांज्वलन्तीमिवस्थिताम् ॥ एतस्मात्कारणान्नष्टस्त्वांदृष्ट्वाहंमहीपते ॥ २ ॥ कस्मात्त्वंनगतस्स्वर्गेविमानेपिस

मानसरोवर में भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ६७ ॥ और छानबे के प्रमाण से कल्प मेरी स्थिति को हुये हैं व और चार कल्पोंके बाद कच्छपपनसे छूटना होवैगा ॥ ६८ ॥ यह दीर्घ आयुर्बल का समस्त कारण तुमसे कहागया जोकि शिवजी के मन्दिर करने से व व्यापक (सदाशिव) जीको बहुत समय पूजने से हुआहै ॥ ६९ ॥ व सदाशिवजी के क्रोधसे जिस प्रकार कच्छपपन हुआ वह कहागया हे महाभाग ! घरमें आयेहुये तुम्ह शत्रुके भी हृदयमें टिकेहुये किस कार्यको मैं इससमय करूं यह सत्य कहिये तुमने यज्ञोंकी अग्निसे मेरी पीठ बहुत समयतक जलायाहै ॥ ३०० ।३०१ ॥ हे भूपते ! आजभी जलतीहुई सी स्थित उस पीठको देखताहूं इसी कारणसे

तुमको देखकर मैं अदृश्य हुआथा ॥ २ ॥ व विमान के भी भलीभांति प्राप्त होनेपर तुम स्वर्ग को किस लिये नहीं गये क्योंकि इसी कारण राजा लोग धर्म करते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि स्वर्ग में टिकेहुये मनुष्यों को नित्यही गिरने से डर रहता है इस लिये मैं वहां न जाऊंगा किन्तु विशेषकर मोक्षके लिये यत्न करूंगा ॥ ४ ॥ हे मित्र ! सो तुम यदि घर में आयेहुये मेरा कार्य करो व यदि तुम्हारे मित्रता है तो मुझ से बहुत दिनवाले प्राणीको कहिये ॥ ५ ॥ कच्छप बोला कि लोमशनामक विप्रर्षि मुझ से पुराने हैं मैंने देखा नहीं है किन्तु नदी के किनारे भलीभांति टिकेहुये वे सुनेजाते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तो आइये यत्न करतेहुये सब मुनि के

मागते ॥ एतस्मात्कारणाद्धर्मं प्रकुर्वन्तिनराधिपाः ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ स्वर्गस्थानाञ्चलोकानां नित्यञ्चपतनाद्भयम् ॥ तन्नयास्याम्यहंतत्र यतिष्यामिविमुक्तये ॥ ४ ॥ सत्वंकरोषिचेत्कृत्यं गृहायातस्यमेसखे ॥ चिरन्तनंकथयमेयद्यस्तितवसौहृदम् ॥ ५ ॥ कूर्मउवाच ॥ लोमशोनामविप्रर्षिः समत्तोस्तिचिरन्तनः ॥ श्रूयतेनमयादृष्टो नदीतीरंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तदागच्छतगच्छामो यत्तास्सर्वेमुनिंस्वयम् ॥ पृच्छामोबहुकालस्य जीवितस्यचकारणम् ॥ ७ ॥ अथतेसहितास्तत्र व्योममार्गेणप्रस्थिताः ॥ अथतेददृशुस्तत्र लोमशञ्चनिराश्रयम् ॥ ८ ॥ तेतन्दृष्ट्वामहात्मानं कृत्वातस्यप्रदक्षिणाम् ॥ उपविष्टास्ततस्सर्वे स्वागतेनाभिनन्दिताः ॥ ९ ॥ पृष्टास्तेपि पुनश्चैव केयूयंकिमिहागताः ॥ विश्रब्धंकथ्यतांमह्यं येनसर्वंकरोम्यहम् ॥ १० ॥ कूर्मउवाच ॥ मार्कण्डोनामविप्रर्षिस्सप्तकल्पस्मरोह्ययम् ॥ इन्द्रद्युम्नेनचानीतो भूभुजानेनसन्मुने ॥ ११ ॥ बकस्यास्यसमीपेतु नाडीजङ्घस्यधीम

समीप चलैं व बहुत समयतक जीनेका कारण आपही पूंछैं ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने साथही वहां आकाशमार्गसे प्रयाण किया इसके उपरान्त उन्होंने वहां बिन आश्रयवाले लोमश मुनि को देखा ॥ ८ ॥ तदनन्तर उन महात्माको देखकरके उनकी प्रदक्षिणाकर अच्छी तरह आने के प्रश्नसे प्रसन्न होतेहुये वे सब समीप बैठ गये ॥ ९ ॥ व फिर उनसे भी पूंछा कि तुम लोग कौन हो और यहां किसलिये आये हो विश्वास कियेहुये वचन को मुझसे कहो कि जिस से मैं सब करूं ॥ १० ॥ कच्छप बोला कि हे सन्मुने ! इन इन्द्रद्युम्न भूपतिने सात कल्पों के स्मरणवाले इन मार्कण्डनामक ब्रह्मर्षिको इस बुद्धिमान् नाडीजंघ बगुलाके समीप आनाथा अमनासे पुराने

व आने से दूने आयुर्बलवाले इस बगुला को दीर्घआयुर्बलवाला ऐसा जानकरइन्द्रद्युम्न की वार्त्ता के लिये मार्कण्डेयजी इसको लाये थे अब उन इन्द्रद्युम्नजी ने इसकी वार्ताको नहीं जाना ॥ ११ । १२ । १३ ॥ तब दोनों भी इस घुघुवाके समीप आये व हे सद्द्विज ! उस बगुला के प्रमाण से दूने कल्प इस महात्मा घुघुवा के वर्त्तमान हैं परन्तु इसने राजाको नहीं जाना तदनन्तर तीनों भी गृध्रराज के समीप लाये गये ॥ १४ । १५ ॥ हे सद्द्विज ! इस महात्मा के छप्पन प्रमाणसे कल्प वर्त्तमान हैं परन्तु इसने इन्द्रद्युम्न नृपति को नहीं जानाहै ॥ १६ ॥ हे द्विज! उन्होंनेमुझको दीर्घआयुर्बलवाला जानकर मित्रभावसे उनचारोंको भी मेरेसमीप भलीभांति

तः ॥ चिरायुरितिविज्ञाय आत्मनश्चचिरन्तनम् ॥ १२ ॥ इन्द्रद्युम्नस्यवार्तार्थं द्विगुणायुषमात्मनः ॥ अस्यवार्तामवि ज्ञातो यदासपृथिवीपतिः ॥ १३ ॥ तदाद्वावपिचायातावुलूकस्यास्यसन्निधौ ॥ द्विगुणास्तत्प्रमाणेन कल्पाश्चास्य महात्मनः ॥ १४ ॥ वर्तन्तेनैवविज्ञातो नृपश्चानेनसद्द्विज ॥ ततस्त्रयोपिचानीता गृध्रराजस्यचान्तिकम् ॥ १५ ॥ षट् पञ्चाशत्प्रमाणेन कल्पाश्चास्यमहात्मनः ॥ वर्तन्तेनैवविज्ञातो नृपोह्येतेनसद्द्विज ॥ १६ ॥ चत्वारोपिसमानीतास्ते नैवचममान्तिकम् ॥ चिरायुषंचमांज्ञात्वा मित्रभावेनतेद्विज ॥ १७ ॥ मयाप्यसौपरिज्ञातो दूरादेवसमागतः ॥ इन्द्र द्युम्नोध्रुवंह्येष दग्धापृष्ठिःपुरामम ॥ १८ ॥ येनयज्ञाग्निनामन्त्रैः स्तम्भयित्वाक्षितौपुरा ॥ ततोहंतद्भयान्नष्टो गृध्रा द्यैश्चनिवारितः ॥ १९ ॥ उपालम्भैस्सुबहुभिस्तद्भयाज्जलमाविशम् ॥ मयाश्रुतश्चभूपेन नहन्तव्यःपराङ्मुखः ॥ २० ॥ इन्द्रद्युम्नेनमेपृष्ठिर्येनदग्धामखाग्निना ॥ एतस्मिन्नन्तरेस्वर्गाद्देवदूतोमहामनाः ॥ २१ ॥ विमानवरमारु

आनाहै ॥ १७ ॥ मैंने भी दूरही से भलीभांति आयेहुये इन को जानलिया कि यह निश्चयकर इन्द्रद्युम्न है जिसने पुरातनसमय मन्त्रों के द्वारा पृथ्वी में रोंककर यज्ञकी अग्नि से पहले मेरी पीठ को जलाया है तदनन्तर उसके डर से मैं अदृश्यहोगया व गृध्रादिकों ने बहुत समझाने के वचनों से मनाकिया परन्तु मैं उसके डरसे जल में पैठगया क्योंकि जिसने यज्ञकी अग्नि से मेरी पीठ जलाई है उसी राजा से मैंने सुनाथा कि विमुख को न मारनाचाहिये इसी अवसर में स्वर्गसे उदार

मनवाला देवदूत ॥ १८ । १९ । २० । २१ ॥ उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ उस महात्मा के समीप आया यह भूपति यश लोप होने के कारण स्वर्ग से गिरा था ॥ २२ ॥ तदनन्तर मेरे कहनेमात्रपर याने कहतेही स्वर्ग से विमान आया इसके अनन्तर हे द्विजोत्तम ! हमलोगों के विना यह स्वर्ग को नहीं गया ॥ २३ ॥ तदनन्तर मार्कण्डेयजी को छोड़कर तिर्यग्योनि में प्राप्त त्र पूंछतेहुये तीनों से मैंने अपना आयुर्बल कहा ॥ २४ ॥ कि जीतेहुये मेरे छानवे के प्रमाण से कल्प हुये हैं और जो तुम्हारे समीप भलीभाति बैठाहै इसने पहिलेही मुझ से पूंछा ॥ २५ ॥ कि अत्यन्तही बहुतदिनवाले को कहिये तब मैंने तुमको बतलाया इसी कारण से हम सब

ढःप्रायात्तस्यमहात्मनः ॥ कीर्तिलोपाच्च्युतःस्वर्गादयमासीन्महीपतिः ॥ २२ ॥ ततोविमानमायातम्नुक्तमात्रेमया दिवः ॥ अथासौनगतस्स्वर्गं विनास्माभिर्द्विजोत्तम ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयंपरित्यज्य तिर्य्यग्योनिगतैस्त्रिभिः ॥ पृच्छ द्भिस्तुमयाप्रोक्तमायुष्यंचात्मनस्ततः ॥ २४ ॥ षण्णवतिप्रमाणेन कल्पामेजीवतोगताः ॥ पृष्टोहंपूर्वमेतेन संस्थि तस्तवपार्श्वतः ॥ २५ ॥ चिरन्तनतमंब्रूहि मयात्वंविनिवेदितः ॥ एतस्मात्कारणात्प्राप्ता वयंसर्वेतवान्तिकम् ॥ २६ ॥ तस्माद्यत्पृच्छतेभूयस्तस्मैत्वंतत्प्रकीर्तय ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ लोमशोप्यथतंप्राह विश्रब्धंपृच्छपार्थिव ॥ २७ ॥ अ वश्यंकथयिष्यामि यन्मात्वंपरिपृच्छसि ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ कस्मात्त्वंग्रीष्मकालेपि मध्यंप्राप्तेदिवाकरे ॥ २८ ॥ निवासार्थंगृहंरम्यं किमर्थंनकरोषिवै ॥ लोमशउवाच ॥ कस्यार्थंक्रियतेगेहमनित्यंजीवितंयतः ॥ २९ ॥ यदिस्याच्छ्वत तोगेहं तदर्थंक्रियतेचतत् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ सर्वेषामेवलोकानां चिरायुःश्रूयतेभवान् ॥ ३० ॥तेनाहमपिसम्प्राप्तोभव

तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ २६ ॥ इसलिये जो राजा पूंछे उससे तुम उसको कहो भर्तृयज्ञ बोले कि इसके अनन्तर लोमशने भी उससे कहा कि हे राजन् ! विश्वासपूर्वक पूंछिये ॥ २७ ॥ तुम मुझ से जो पूंछोगे उसको अवश्य कहूंगा इन्द्रद्युम्न बोले कि ग्रीष्मसमय में भी सूर्यनारायण को मध्य में प्राप्त होनेपर तुम किसलिये मनोहर घर निवासके निमित्त नहीं करतेहो लोमश बोले कि जिस कारण जीवन अनित्यहै याने सदैव नहीं रहता इसलिये घर किसके लिये किया जावै ॥२८।२९॥ यदि जीवन नित्य होवै तो उसके लिये वह घर कियाजावै इन्द्रद्युम्न बोले कि सबही मनुष्यों के बीच में आप दीर्घआयुर्बलवाले सुने जातेहो ॥ ३० ॥ उसी

कारण मैं भी आपके दर्शन की कामना से भलीभांति प्राप्त हुआ लोमश बोले कि प्रतिकल्प के भलीभांति प्राप्त होनेपर मेरा एक रोम नाश होताहै ॥ ३१ ॥ जब सब रोमों का अभाव होगा उसके उपरान्त मेरा नाश होगा तुम मेरे इस शरीर में देखो जो कि रोमों से रहित होगया है ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उसी कारण से मैं घरको नहीं बनाताहूं इन्द्रद्युम्न बोले कि तुमने कौन कर्म कियाहै कि जिससे ऐसा पुष्ट जीवन पायाहै ॥ ३३ ॥ क्या यह दानका प्रभावहै अथवा तपस्या या नियम का प्रभाव है लोमश बोले कि पुरातनसमय दरिद्रता से संयुत मैं शूद्र हुआहूं ॥ ३४ ॥ तब सदैव सेवकाई के लिये भूतलमें घूमताथा क्षुधा से दुबला व प्यासस दुःखित मैं बडे

दर्शनकाम्यया। लोमशउवाच॥ कल्पेकल्पेचसम्प्राप्ते रोमैकंममनश्यति ॥ ३१ ॥ अभावेसर्वरोम्णांच ततोनाशोभविष्यति ॥ पश्यत्वंमच्छरीरेस्मिन्सञ्जातरोमवर्जितम् ॥ ३२ ॥ नकरोमिगृहन्तेन कारणेनमहीपते ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ किन्त्वयाविहितंकर्म येनेदृग्जीवितंस्थिरम् ॥ ३३ ॥ किन्दानस्यप्रभावोयं तपसोनियमस्यच ॥ लोमशउवाच ॥ अहमासंपुराशूद्रो दारिद्र्येणपरिप्लुतः ॥ ३४ ॥ भ्रमामिमेदिनीपृष्ठे तदादास्यकृतेसदा ॥ कर्मयोगेनमहता सम्प्राप्तो हाटकेश्वरे ॥ ३५ ॥ क्षुत्क्षामस्तुपिपासार्तो यत्रैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ अवधूतंततोलिङ्गं यावद्दृष्ट्वास्वयम्भुवम् ॥ ३६ ॥ स्नापितंतोयमादाय स्थितमेतत्सुनिर्म्मलम् ॥ ततस्तुकमलैरेतैर्मयापूजाविनिर्मिता ॥ ३७ ॥ अथपूजांविनिर्वर्त्य यावन्मार्गसमाश्रितः ॥ क्षुत्क्षामकण्ठस्यततः प्राणानष्टास्तदामम ॥ ३८ ॥ अथाहंब्राह्मणगृहेजातोजातिस्मरस्तदा ॥ सर्वंस्मरामिभूपालदेवदेवस्यपूजनात् ॥ ३९ ॥ ततोमूकत्वमापन्नोनैवजल्पामिकिञ्चन ॥ ईशानइतिमेनाम पिताचक्रेप्रहर्षितः ॥ ४० ॥

भारी कर्म के योग से हाटकेश्वरक्षेत्र में भलीभांति प्राप्तहुआ जहां यह उत्तम लिङ्गथा तदनन्तर जबतक आपहीमे उपजेहुये मलिन लिङ्ग को देखकर ॥ ३५ । ३६ ॥ जल लेकर नहवाया तबतक यह अतिनिर्मल स्थित होगया तदनन्तर मैंने इन कमलों से पूजन किया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर पूजन समाप्त करके जबतक मार्ग पै भलीभांति आश्रित हुआ तब तक उस समय क्षुधा से दुबले कण्ठवाले मेरे प्राण नाश होगये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर उस समय जाति के स्मरणवाला मैं ब्राह्मण के घरमें पैदाहुआ हे राजन्! देवदेव शिवजीके पूजनसे मैं सब स्मरण करताहूं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर गूंगेपन को प्राप्त मैं नहीं बोलताथा और जिसलिये पहले

आराधन कियेहुये ईशानदेव से मैं दियागया था इसलिये प्रसन्नहोतेहुये पिताजीने मेरा ईशान ऐसा नाम किया और संसार में भलीभांति टिकेहुये चरितको देखकर मैं उत्तम वैराग्यको प्राप्तहुआ ॥ ४० । ४१ ॥ और मेरे पिताने बहुत प्यारसे औषधों का प्रयोग किया व वैसेही बाधा के लिये मन्त्रवादको सिद्धकिया ॥ ४२ ॥ हे नरनायक ! तदनन्तर संसारमें उपजेहुये पिता व माताके बहुतसे कर्मको देखकर मेरे हास्य पैदाहोताथा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! क्रमसे युवावस्थाको प्राप्तहुआ जब २ उन दोनों मातापिताओं को छोड़कर रातमें मैं यहां भलीभांति आताथा ॥ ४४ ॥ तब २ हे नृपश्रेष्ठ ! सावधान व प्रसन्नमनवाला होकर नित्यही उत्तम भ-

ईशानेनयतोदत्तः पूर्वमाराधितेनच ॥ वैराग्यंपरमंप्राप्तो दृष्ट्वासंसारसंस्थितम् ॥ ४१ ॥ पितामेबहुवात्सल्याद्भेषजा नित्वयोजयत् ॥ बाधार्थमन्त्रवादञ्च तथाचैवोपपादितम् ॥ ४२ ॥ ततोमेजायतेहास्यं निजचित्तेनराधिप ॥ दृष्ट्वासं सारजंकर्म पितुर्मातुश्चभूरिशः ॥ ४३ ॥ ततश्चयौवनंप्राप्तःक्रमेणनृपसत्तम ॥ यदायदानिशित्यक्त्वा तावुभौचात्रस ङ्गतः ॥ ४४ ॥ भूत्वाहृष्टमनानित्यं पूजयामिसमाहितः ॥ ईशानंपरयाभक्त्या संस्नाप्यसलिलेनच ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणी तीर्थजातेन त्रिकालंनृपसत्तम ॥ शिलोञ्छवृत्तिमासाद्य प्राणयात्रांसमाचरन् ॥ ४६ ॥ नारङ्गैर्बदरैश्शाकैश्चिर्भटैःफल पत्रकैः ॥ ततोमेभगवान्रुद्रस्सर्वदेवेश्वरोहरः ॥ ४७ ॥ अब्रवीद्दर्शनङ्कत्वा मेघगम्भीरयागिरा ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥ ४८ ॥ अदेयमपिदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ततस्तंप्रणिपत्योच्चैः स्तुत्वाचैवपृथग्विधैः ॥४९॥

क्तिसे ब्राह्मणी तीर्थ में उपजेहुये जलसे तीनों समयों में भलीभांति नहवाकर नित्य शिवजी को पूजताथा व शिलोञ्छ यानेखेत में चिड़ियादिकों के चुनजानेके बाद बचे अन्नके द्वारा व बाजार का अन्न बीनने से जीविका को प्राप्तहोकर नारंगी, बेर, शाक व चिर्भटों तथा फलों व पत्तोंसे प्राणयात्रा को भलीभांति करताहुआ मैं स्थितरहता था तदनन्तर समस्तदेवोंके स्वामी भगवान् शिवदेवजी मेरेदर्शन में प्राप्तहोकर मेघके समान गम्भीरवाणी से बोले कि हे उत्तमनियमोंवाले, वत्स ! मैं तुमसे प्रसन्नहूं वरदानको मांगो ॥ ४५ । ४६ । ४७ । ४८ ॥ यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि न देने के योग्य पदार्थ को भी दूंगा तदनन्तर उनको उच्चप्रकार से प्र-

णामकर व अनेक प्रकारों से स्तुतिकर ॥ ४६ ॥ मैंने कहा कि हे विभो ! मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहितं कीजिये श्रीभगवान् शिवजी बोले कि जिसलिये इस मृत्यु-लोकमें कभी अमरता नहीं है ॥ ५० ॥ इसलिये तुम अपने जीने की मर्यादा करो याने किसी समयतक हद्दबांधलेवो तदनन्तर मैंने शिव भगवान्से कहा कि जब कल्प का अन्त प्राप्तहोवै तब ॥ ५१ ॥ हे सुरेश्वर ! मेरेरोमोंके मध्यमेंसे एक रोमका नाशहोवै और जब सबरोमोंका विनाशहोजावै ॥५२॥ तब हे शिवजी ! सदैव मेरी अमर गणताहोवै ऐसाही होगा यह कहकर शिवजीने कहा कि हे द्विजोत्तम ! सदैव ब्राह्मणीपूर्वक तीर्थमें नहाकर उस ब्राह्मणीतीर्थ में उपजेहुये जलसे तीनों कालमें मेरे

मयाप्रोक्तंकुरुविभो जरामरणवर्जितम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अमरत्वंयतोनास्ति मर्त्यलोकेत्रकर्हिचित् ॥५०॥ मर्य्या दांकुरुतस्मात्त्वं जीवितस्यस्वकस्यवै ॥ ततोमेभगवानुक्तःकल्पान्तेसमुपस्थिते ॥ ५१ ॥ रोम्णामेकस्यमेनाशो जाय तांत्रिदशेश्वर ॥ यदाचसर्वरोम्णाञ्च विनाशस्सम्प्रजायते ॥ ५२ ॥ तदामरगणत्वञ्च जायताम्मेसदाशिव ॥ एवंभ विष्यतीत्युक्त्वा परंलिङ्गंसदामम ॥ ५३ ॥ स्नात्वाजलेनचैतेन ब्राह्मणीसम्भवेनच ॥ ब्राह्मणीपूर्वतीर्थेच त्रिकालंद्वि जसत्तम ॥ ५४ ॥ अन्योपियोनरोभक्त्या पूजयिष्यतिमामिह ॥ स्नापयिष्यतिसद्भक्त्या विपाप्मासभविष्यति ॥ ५५ ॥ नापमृत्युर्भवेत्तस्य कदाचिद्द्विजसत्तम ॥ सकृत्सम्पूजयित्वाच ब्रह्माब्जैर्मत्कलेवरम् ॥ ५६ ॥ सकृत्पिबतिय स्तोयं ब्राह्मयतीर्थसमुद्भवम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा तत्क्षणाज्जायतेद्विसः ॥ ५७ ॥ एवमुक्त्वाथदेवेशस्ततश्चादर्शन ङ्गतः ॥ अहन्तुसंस्थितश्चात्र ततःप्रभृतिपार्थिव ॥ ५८ ॥ पूजयानश्चसद्भक्त्या लिङ्गमेतत्सदैवहि ॥ एतस्मात्कारणा

उत्तम लिंगको पूजो व औरभी जो मनुष्य भक्तिसे पूजैगा व यहांउत्तम भक्तिसे मुझको नहवावैगा वह पापरहित होगा ॥ ५३।५४।५५॥ व हे द्विजोत्तम ! उसकी कभी अप-मृत्यु न होगी ब्रह्माके तीर्थ से उपजेहुये कमलोंसे मेरे शरीरको एकबार भलीभांति पूजकर ॥ ५६ ॥ जो पुरुष ब्राह्मयतीर्थमें उपजेहुये जलको एकबार पीताहै वह उसी क्षण समस्तपातकों से विशेषकर शुद्धमनवाला होताहै ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर देवों के स्वामी शिवजी अन्तर्द्धानहोगये हे राजन् ! तबसे लगाकर उत्तम

भक्तिसे सदैवही इसलिंगको पूजताहुआ मैं यहां भलीभांति टिकाहूं इसीकारण शंकरजी की प्रसन्नता से मेरा आयुर्बल ऐसा विस्तारवाला है इसमें और कारण नहीं है इन्द्रद्युम्न बोले कि तुम्हारे साथ मैं भी इसलिंगको पूजूंगा ॥ ५८ । ५९ । ६० ॥ व अन्य कर्म न करूंगा मेरेहृदयमें यह निश्चय है लोमश बोले कि हे महाभाग ! ऐसाहीकरो तुम मनोरथ को पावोगे ॥ ६१ ॥ क्योंकि महादेवजी के भक्त मनुष्य का मनोरथ दुर्लभ नहीं होता है कच्छप से संयुक्त मार्कण्ड, गीध, घुघुवा व नाडी जंघ घरको जावै और तुम मेरे आश्रममेंटिको तदनन्तर उन सबोंनेकहा कि हे नरनायक!तुम्हारे विना हमसब फिरभी अपनेघरको न जावैंगे किन्तु आपसे जो यहलिंग पूजागया

ऽजातं ममायुरितिविस्तृतम् ॥ ५९ ॥ शङ्करस्यप्रसादेननान्यदस्तीहकारणम् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अहमप्यर्चयिष्यामि लिङ्गमेतत्त्वयासह ॥ ६० ॥ नान्यच्चैवकरिष्यामि ममैषहृदिनिश्चयः ॥ लोमशउवाच ॥ एवंकुरुमहाभाग त्वमवाप्स्यसिवाञ्छितम् ॥ ६१ ॥ हरभक्तस्यलोकस्य वाञ्छितन्नास्तिदुर्लभम् ॥ नाडीजङ्घोगृहंयातु मार्कण्डगृध्रकौशिकाः ॥ ६२ ॥ कच्छपेनसमायुक्तास्त्वंहितिष्ठममाश्रमे ॥ ततःप्रोचुश्चतेसर्वे नवयन्तुनरेश्वर ॥ ६३ ॥ त्वांविनाचैवयास्यामो भूयएवनिजालयम् ॥ लिङ्गमाराधयिष्यामो यदेतद्भवतार्चितम् ॥ ६४ ॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे लोमशस्यवराश्रमे ॥ तस्थुस्सम्पूजयामासुस्त्रिकालंलिङ्गमेवतत् ॥ ६५ ॥ संस्नाप्यब्राह्मणीतोयैर्ब्रह्माब्जैःपूजयन्तिच ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥ ६६ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सम्प्राप्तस्तत्रसद्द्विजाः ॥ अथतेनारदंदृष्ट्वा कृत्वाचैवार्हणक्रियाम् ॥ ६७ ॥ विश्रान्तञ्चततोज्ञात्वा पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ शापभ्रष्टावयंसर्वे यतस्संवर्तदर्शनात् ॥ ६८ ॥ वकाद्याश्चैव

है उसीको आराधन करैंगे ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ ऐसा कहकर वे सब लोमशजी के उत्तम आश्रम में टिके व त्रिकाल उसलिंगही को भलीभांति पूजनेलगे ॥ ६५ ॥ वे सब ब्राह्मणीतीर्थ में उपजेहुये जलसे भलीभांति नहवाकर व ब्रह्मतीर्थ में उपजेहुये कमलों से पूजते थे इसके अनन्तर किसी समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥ ६६ ॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! वहां तीर्थयात्रा के प्रसंगसे भलीभांति प्राप्तहुये इसके अनन्तर उन्हों ने नारदजी को देखकर व पूजनकर्म करके तदनन्तर विश्राम कियेहुये जानकर विनयसंयुत होतेहुये पूंछा कि हे महामुने ! जिसलिये हम सब शापसे भ्रष्टहुये हैं उसीकारण संवर्तमुनिके दर्शनके निमित्त चारों बकुलादि जन्तु व कछुवा घूमताहै

परन्तु वे मुनि कहीं भी नहीं जानेजाते हैं कि किस स्थानमें टिके हैं ॥ ६७ । ६८ । ६९ ॥ वे किस रूपवाले व किस आचरणवाले तथा कहां प्रमाण स्थितहै सो तुम यदि जानतेहो कि जहांपै वे मुनि भलीभांति टिके हैं ॥ ७० ॥ तो हे महाभाग ! कहिये क्योंकि तुमको कुछ अगोचर नहीं है याने तुम सब जानतेहो नारदजी बोले कि गुप्त आकारसे टिकेहुये उन मुनिश्रेष्ठ संवर्त्तको मैं भलीभांति जानताहूं अन्यनर किसीप्रकार नहीं जानताहै वे अवधूत (मैले कुचैले) महामुनि नित्यही काशीजी में टिकेरहते हैं ॥ ७१।७२ ॥ जोकि वसनहीन व मलसे लिपटेहुये अंगवाले तथा सदैव वनमें भलीभांति टिके रहते हैं वे भिक्षा मांगने के लिये कुतुप (आठवें मुहूर्त्त)

चत्वारः कमठश्चमहामुने॥नसविज्ञायतेकापिकस्मिन्स्थानेऽयवस्थितः ॥ ६९ ॥ किंरूपःकिंसमाचारः प्रमाणःकुत्र संस्थितः ॥ सत्वंयदिविजानासि यत्रससंस्थितोमुनिः ॥ ७० ॥ तद्वदस्वमहाभाग नकिञ्चित्तेस्त्यगोचरम् ॥ नारद उवाच ॥ अहंजानामितंसम्यक् संवर्तम्मुनिसत्तमम् ॥७१॥ गुप्ताकारेणतिष्ठन्तं नान्योवेत्तिकथञ्चन॥ वाराणस्यांस्थितोनित्यं सोवधूतोमहामुनिः ॥ ७२ ॥ विवस्त्रोमलदिग्धाङ्गोसदारण्यंसमाश्रितः॥ भिक्षार्थंकुतुपेकालेसमागच्छतितामपुरीम् ॥ ७३ ॥ पाणिपात्रकृताहारो गृहैःकैश्चित्सदैवहि ॥ भूयोपियातिसायाह्ने कञ्चिदेववनान्तरम् ॥ ७४ ॥ तस्यांपुर्यान्तथारूपाः शतशोथसहस्रशः ॥ तिष्ठन्तितापसश्रेष्ठास्तस्यवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ ७५ ॥ भवद्भिस्सहिविज्ञेयो मम वाक्यादसंशयम् ॥ वाराणस्यांप्रतोल्याञ्च स्थापनीयंसुयत्नतः ॥ ७६ ॥ कुणपञ्चसुगुप्तञ्च यथानोवेत्तिकश्चन॥ यास्यन्तितापसास्सर्वे तमप्याक्रम्यभूरिशः ॥ ७७ ॥ संवर्तोदिव्यदृष्टिस्तु शवंनातिक्रमिष्यति ॥ निवर्तनन्तुयश्चके भू

में उस पुरीको भलीभांति आते हैं ॥ ७३ ॥ व किसी घरोंमें सदैव हाथरूपी पात्र में भोजन कियेहुये फिरभी सन्ध्यासमय में किसी दूसरे वनको जाते हैं ॥ ७४ ॥ और उसपुरी में वैसेही रूपवाले सैकड़ों व हज़ारों उत्तम तपस्वी देखपड़ते हैं मैं उसका लक्षण कहूंगा ॥७५॥ आपलोगों से निरसन्देह वहमेरे वचन से जानने योग्य होगा जिस प्रकार कोई न जानै उसी प्रकार काशीपुरी में अति छिपाहुआ मुरदा बीचगांवकी गलीमें उत्तम यत्नसे धरना चाहिये उसको भी नांघकर बहुत से सब तपस्वी जावैंगे ॥ ७६ । ७७ ॥ और दिव्यदृष्टिवाला संवर्त्त मुरदाको न नांघैगा इस लिये भूमिमें प्राप्त मुरदाके समीप से जो निवर्त्तन करै याने लौटपड़ै ॥ ७८ ॥ वह

संवर्त्त जानने योग्यहै और तदनन्तर उससे पूंछना चाहिये यदि वह पूंछै कि आपलोगों को किसने मुझे भलीभांति बतलाया है ॥ । ७९ ॥ तो यह कहना चाहिये कि नारदने बतलाया है वे तुमको सदैव जानतेहैं और यदि वह फिर पूंछै कि वे नारद जी कहां टिकेहैं ॥ ८० ॥ तो यह कहना चाहिये कि तुमको बतलाकर वे अग्नि में पैठगये नारदजी के उस वचनको सुनकर उसके दर्शनकी लालसावाले वे समस्त लोमशादिक काशीपुरी को प्राप्तहुये व गांवके भीतरीमार्ग में जानेयोग्य मनुष्यों से अदृश्य मुरदेको थापकर ॥ ८१।८२ ॥ और बड़े उपायसे देखतेहुये वे सब दूर बैठे तदनन्तर कुतुप समय में वह संवर्त्त भलीभांति आया ॥८३॥ पहले नारद महात्मा

गतात्कुणपाश्रयात् ॥ ७८ ॥ ससंवर्तःपरिज्ञेयः प्रष्टव्यश्चततःपरम् ॥ यदिपृच्छतिकेनाहं भवतांसन्निवेदितः ॥ ७९ ॥
नारदेनततोवाच्यं सत्वांजानातिवैसदा ॥ यदिपृच्छतिभूयस्सनारदःक्वसतिष्ठति ॥ ८० ॥ ततोवाच्योनिवेद्यत्वां प्रवि
ष्टोहव्यवाहनम् ॥ तच्छ्रुत्वानारदवचस्सर्वेतेलोमशादयः ॥८१ ॥ वाराणसींपुरींप्राप्तास्तस्यदर्शनलालसाः ॥ प्रतोल्यां
कुणपंस्थाप्य गम्यलोकैरलक्षितम् ॥ ८२ ॥ सर्वेचैवस्थितादूरं प्रेक्षमाणाःप्रयत्नतः ॥ ततस्सकुतुपेकाले संवर्तस्तुसमा
गतः ॥ ८३ ॥ यादृग्रूपःपुराप्रोक्तो नारदेनमहात्मना ॥ सदृष्ट्वाकुणपन्तत्र दिव्यदृष्ट्यामहामुनिः ॥ ८४ ॥ निवृत्तःक्षु
त्पिपासार्तो नैवशावमलङ्घयत् ॥ अथतेतंसमुद्दिश्य पृष्ठतोनुययुस्तदा ॥ ८५ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पन्तः प्रसादःक्रियता
मिति ॥ सोपिनिर्भर्त्स्यमानस्तु निवर्तध्वमितिब्रुवन् ॥८६॥ मागच्छध्वंमत्समीपमितिप्रोच्यापलायत ॥ अथदूरतरङ्ग
त्वा सप्रोवाचक्षुधान्वितः ॥ ८७ ॥ केनादिष्टोस्मियुष्माकंसशीघ्रम्मेनिवेद्यताम् ॥ शापाग्नौयेनतम्पापं भस्मसात्प्र

ने जैसे रूपवाले संवर्त्त को कहाथा वैसाही वह महामुनि वहां दिव्यदृष्टि से मुरदे को देखकर ॥ ८४ ॥ लौटा व क्षुधा प्याससे विकल मुनिने मुरदाको न नांघा इसके अनन्तर उस समय उसको उद्देशकर खड़ेहो व प्रसन्नता कीजिये यह कहते हुये उन्होंने पीछे पयान किया और घुड़का हुआ वह मुनिभी तुमलोग लौटजावो ऐसा कहताहुआ ॥ ८५।८६ ॥ व मेरे समीप मतआवो यह कहकर भगा इसके अनन्तर बहुत दूरजाकर भूंखसे संयुत उसने कहा ॥ ८७ ॥ कि मुझे किसने तुमलोगों को

बतलाया है उसको शीघ्रही मुझसे बतलावो जिससे मैं शापरूपी अग्निमें उस पापीको सब भस्मकरूं ॥ ८८ ॥ वे बोले कि यहां टिकेहुये आपको हमलोगों से नारद ने भलीभांति कहा तदनन्तर कहकर वे नारदजी उसीक्षण अग्निमें पैठगये ॥ ८९ ॥ संवर्त्त बोले कि मैं सदैव उस दुष्टका शासन करनेवाला (दण्डदायक) हूं कि जिसने छिपेहुये आचरणों में भलीभांति टिकेहुये मुझको तुमलोगों से बतलायाहै ॥ ९० ॥ वे बोले कि हे भगवन्, महामुने ! नारदजीने बहुत दिनोंसे ढूंढ़ते हुये हमलोगों से तुमको कहाथा और कोई तुमको नहीं जानताहै ॥ ९१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वे नारदजी हमलोगोंसे तुमको बतलाकर उसीक्षणही अग्निमें पैठगये उस विषयमें हमलोग

करोम्यहम् ॥ ८८ ॥ तेऊचुः ॥ नारदेनसमाख्यातो भवानत्रस्थितोहिनः ॥ कथयित्वाततोवह्नौ सम्प्रविष्टस्सतत्क्षणा त् ॥ ८९ ॥ संवर्तउवाच ॥ अहंसदैवकर्ताच तस्यदुष्टस्यशासनम् ॥ निर्दिष्टोयेनयुष्माकं गुप्ताचारंसमाश्रितः ॥ ९० ॥ तेऊचुः ॥ भगवन्नारदेनोक्तस्त्वमस्माकंमहामुने ॥ चिरादन्वेषमाणानां नत्वांवेत्तिचकश्चन ॥ ९१ ॥ त्वांनिवेद्यसचा स्माकं प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ तत्क्षणादेवविप्रेन्द्र नविद्मस्तत्रकारणम् ॥ ९२ ॥ संवर्तउवाच ॥ अहमप्यतिसंक्रुद्धः शापात्कर्तुंसमुद्यतः ॥ एतदेवहियस्माच्च स्वयमेवकृतञ्चतत् ॥ ९३ ॥ तस्माद्वदथमेशीघ्रं कस्माद्यूयंसमागताः ॥ वि रक्तस्यापितत्राहं भूयोयामिपुरीम्प्रति ॥ ९४ ॥ प्राणयात्राकृतेभिक्षांकरिष्यामिस्वयंयतः ॥ विशल्यःक्रियतांमार्गः कुणपंभूगतञ्चयत् ॥ ९५ ॥ नोचेच्छापंप्रदास्यामि यद्येवन्नकरिष्यथ ॥ तथाहंनैववक्तव्यः कस्यचिच्चात्रसंस्थितः ॥ ९६ ॥ अन्वेषयतिमान्नित्यं मरुत्तःपृथिवीपतिः ॥ यज्ञार्थंनैवतंयज्ञं याजयिष्येकथञ्चन ॥ ९७ ॥ धिषणेनपरित्यक्तो

कारण नहीं जानते हैं ॥ ९२ ॥ संवर्त्तबोले कि अतिक्रोधित होताहुआ मैं भी शापसे यही करनेके लिये भलीभांति तैयारथा जिसलिये आपही वह कियागयाहै ॥ ९३ ॥ इसलिये शीघ्रही मुझसे कहो कि तुमलोग किस कारण मुझ विरागी के भी यहां आयेहो फिर मैं वहां पुरीको जाऊं ॥ ९४ ॥ क्योंकि प्राणयात्राके लिये आपही भिक्षाकरूंगा और जो मुरदा भूमिमें प्राप्त है उससे मार्गको विशल्य कीजिये याने गांसीकेसमान मुरदेको मार्गसे उठावो ॥ ९५ ॥ नहीं तो शापदूंगा यदि ऐसा न करोगे और वैसेहीं यहां भलीभांति टिकाहुआ मैं किसी से कहनेयोग्य नहीं हूं ॥ ९६ ॥ क्योंकि मरुत्तनामक भूपति यज्ञके लिये मुझको नित्यही ढूंढ़ताहै उस यज्ञको मैं किसी प्र-

कार न पूजन कराऊंगा ॥ ६७ ॥ गुरु बृहस्पतिजीसे वह त्यागागया है उसी कारणमुझको गुरुका पुत्र जानकर ढूंढताहै ॥ ६८ ॥ वे बोले कि हे सन्मुने ! हमसब बगुलादिक चारोंभी शापसे भ्रष्टहुये हैं और ब्राह्मणों के शापसे पक्षीपन को भलीभांति प्राप्तहैं ॥ ६६ ॥ त्रिलोकसे प्रणामकियेहुये हमलोग महादेवजी के गणहैं और तिर्य्यग्योनि में भलीभांति प्राप्त बड़े वैराग्यमें स्थितहैं ॥ ४०० ॥ उन ब्राह्मणों ने स्त्रियों से उपजा हुआ शापान्त तुम्हारे उपदेशसे भलीभांति कहाहै उसीसे बगुलादिक हमलोग शरण में प्राप्तहैं ॥ १ ॥ हे विभो, महाभाग ! उसी कारण बहुत दिन पक्षीपन के सेवनसे इस समय हम सब पक्षीकी योनिसे वैराग्यको प्राप्तहैं ॥ २ ॥ तुम्हारे

गुरुणासमहीपतिः ॥ गुरुपुत्रञ्चमांज्ञात्वा ततोन्वेषयतेहिमाम् ॥ ९८ ॥ तेऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंसर्वे चत्वारोपिबकादयः ॥ पक्षित्वञ्चैवसम्प्राप्ता ब्रह्मशापेनसन्मुने ॥ ९९ ॥ महेश्वरगणाश्चैव वयंत्रैलोक्यवन्दिताः ॥ तिर्य्यग्योनिंसमानीता वैराग्यंपरमङ्गताः ॥ ४०० ॥ शापान्तस्तुसमादिष्टस्तैर्विप्रैःस्त्रीसमुद्भवः ॥ तवोपदेशतस्तेन बकाद्याःशरणङ्गताः॥ १ ॥ तस्माद्वयंमहाभाग पक्षित्वात्साम्प्रतंविभो ॥ निर्विण्णाश्चिरकालंच पक्षित्वस्यनिषेवणात् ॥ २ ॥ एतच्चकारणन्नान्यत्तवसङ्गसमुद्भवम् ॥ संवर्तउवाच ॥ सद्यःप्रगम्यतांशीघ्रंचमत्कारपुरम्प्रति ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञःस्थितस्तत्र सर्वसन्देहहारकः ॥ सवैदास्यतिसर्वेषामुपदेशंसुशोभनम् ॥ ४ ॥ तेनप्राप्स्यथस्वन्देहं पूर्वमेवयथास्थितम् ॥ सपूर्वंयाज्ञवल्क्योभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ५ ॥ ततोभवान्तरेन्यस्मिन्वैश्यापुत्रोबभूवह ॥ आराधिताब्रह्मसुता देवीवाग्रूपिणीसदा ॥ ६ ॥ नचतुष्टास्वयन्देवी कारणंवीक्ष्यकञ्चन ॥ ब्राह्मणेनप्रजातस्तु देहान्तंप्राप्यकिञ्चन ॥ ७ ॥ तस्यवक्त्रंसमापन्ना स्वय

संगसे उपजाहुआ यही कारण है और नहीं, संवर्त्तबोले कि इसीक्षण शीघ्रही चमत्कारपुर को जाइये ॥ ३ ॥ वहां समस्त सन्देहों के हरनेवाले भर्तृयज्ञ जी टिकेहैं वे निश्चयकर सबोंको अति उत्तम उपदेश देवैंगे ॥ ४ ॥ उससे अपने शरीरको पावोगे जैसा कि पहले स्थितथा पुरातन समय वे समस्त शास्त्रोंके अर्थोंमें पारगामी याज्ञवल्क्य हुये हैं ॥ ५ ॥ तदनन्तर अन्य जन्मके बीचमें वैश्या (वैश्यवर्णवाली स्त्री) के पुत्रहुये हैं उनने सदैव ब्रह्माकी कन्या वाणीरूपवाली देवी (सरस्वती) का आराधनकियाहै ॥६॥ और देवीजी किसी कारणको देखकर आपही न प्रसन्नहुईं और देहान्तको पाकर किसीसमय ब्राह्मणसे पैदाहुये ॥७॥ उसके मुखमें आपही सरस्वती

जी भलीभांति प्राप्तहुई पहले नित्यही आराधन कीगई हैं इससे वे कभी नहीं छोड़ती हैं ॥ ८ ॥ उस वैश्यापुत्रके यज्ञमें और आश्चर्य हुआ है कि यज्ञोपवीत भली भांति प्राप्तहोता था व कन्धासे चला जाताथा ॥ ६ ॥ पहलेवाले मनुष्यों के भी यज्ञकर्मों में भलीभांति प्राप्तहुये सन्देहोंको वह हरताही है कि जैसा यहां अन्यकोई नहींहै ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर बार २ प्रणाम करके संवर्त्तमुनि से प्रेरणा कियेहुये वे सब वहां जो मुरदा वर्त्तमान था उसको खींचकर तदनन्तर चमत्कारनगरको गये वहां वास्तु स्थानपद तीर्थमें उनको भलीभांति टिके हुये देखकर बोले ॥ ११ । १२ ॥ कि हमचारों निश्चयकर ब्राह्मणों के शापसे

मेवसरस्वती ॥ पूर्वमाराधितानित्यं नसात्यजतिकर्हिचित् ॥८॥ तस्याश्चर्यमभूदन्यद्यज्ञेवैश्यासुतस्यहि ॥ ब्रह्मसूत्रंस मभ्येति स्कन्धतश्चातिगच्छति ॥ ६ ॥ पूर्वेषामपिलोकानांयज्ञकर्मसुसंस्थितान् ॥ ससन्देहान्हरत्येव यथानान्योत्र कश्चन ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ कुणपंतत्रसंवृत्तं संवर्तेनप्रणोदिताः ॥ ११ ॥ त च्चाकृष्यततस्सर्वे चमत्कारपुरङ्गताः ॥ वास्तुस्थानपदेतीर्थेतंदृष्ट्वातत्रसंस्थितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मशापेननिर्दग्धा वयंचत्वार एवहि ॥ पक्षित्वंसमनुप्राप्तास्त्रयःकूर्म्मस्तथापरः ॥ १३ ॥ यएतेचत्रयोस्माकं स्थिताःपार्श्वेमहत्तराः ॥ मार्कण्डःप्र स्थितोह्येष इन्द्रद्युम्नस्तथापरः ॥ १४ ॥ तृतीयोलोमशोनाम विख्यातस्सुमहातपाः ॥ जीवितस्यचनिर्विण्णास्त्रयए वचसाम्प्रतम् ॥ १५ ॥ उपदेशप्रदानेन प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा भर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ १६ ॥ अत्रैवसुचिरन्ध्यात्वा ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ यूयमत्रैवलिङ्गानि स्थापयध्वंसमाहिताः ॥ १७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे ना

जलेहुये हैं तीन पक्षीकी योनिमें प्राप्तहैं वैसेही अन्य कच्छपहै ॥ १३ ॥ और जो ये तीन बड़ेभारी महात्मा हमारे समीप बैठेहैं उनमें से ये मार्कण्ड जी बैठे हैं वैसेही अन्य इन्द्रद्युम्न जी हैं ॥ १४ ॥ व तीसरे लोमशनामक बड़ेभारी तपस्वी प्रसिद्धहैं और इससमय तीनों भी जीनेसे वैराग्यको प्राप्तहैं ॥ १५ ॥ तुम उपदेश के दानसे प्रसन्नता करने के लिये योग्यहो सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर महामुनि भर्तृयज्ञ जी ॥ १६ ॥ यहींपर बहुत देरतक ध्यानकरके दिव्यदृष्टि से जान

कर बोले कि तुमलोग हाटकेश्वर से उपजेहुये इसीक्षेत्र में नामसे प्रसिद्ध उन लिंगोंको थापन कीजिये तदनन्तर उनके आगे समस्त पातकों के हरनेवाले कुलपर्वत नामक दानोंको बड़े यत्नसे देकर तदनन्तर निश्चयकर मनोहर दिव्यशरीर मनोरथको पावोगे ॥ १७ । १८।१९ ॥ व तीन नयनोंवाले देवदेव महात्मा (शिवजी) की गणता को पावोगे वे बोले कि हे विभो, महामुने ! प्रमाण से उनका दान कहिये व विस्तार से विधिकहो कि जिस प्रकार हमलोग दानदेवें ॥ २० ॥ भर्तृयज्ञबोले कि सुवर्णमय सुमेरु व चांदीसे उपजाहुआ कैलास देनाचाहिये और कपाससे हिमाचल व गुड़से उत्पन्न (बनायाहुआ) गन्धमादन पर्वत देनाचाहिये ॥ २१ ॥ और

म्नाख्यातानितानिच ॥ ततोदानानिदत्त्वैव तेषामग्रेप्रयत्नतः ॥१८॥ कुलपर्वतसंज्ञानि सर्वपापहराणिच ॥ ततःप्राप्स्यथ चाभीष्टं वपुर्दिव्यंमनोरमम् ॥ १९ ॥ गणत्वन्देवदेवस्य त्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ तेऊचुः ॥ प्रकीर्तयविभोदानं तेषांय च्छामहेयथा ॥ प्रमाणेनविधानञ्चविस्तरेणमहामुने ॥२०॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ देयोहेममयोमेरुः कैलासोरजतोद्भवः ॥ कार्प्पासेनहिमाद्रिस्तु गुडजोगन्धमादनः ॥ २१ ॥ सुवेलस्तुतिलैर्देयो विन्ध्यश्शर्करयातथा ॥ लवणेनतथाशृङ्गी य थोक्तविधिनाततः ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासंस्थाप्यविधिपूर्वकम् ॥ सप्तलिङ्गानितैःपश्चात्प्रदत्ताःकुलप र्वताः ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरस्याग्रइन्द्रद्युम्नःप्रतापवान् ॥ मेरुंहेममयंकृत्वा भर्तृयज्ञमतेस्थितः ॥ २४ ॥ मार्कण्डेश्वर देवस्य कैलासोद्विजसत्तमाः ॥ कच्छपेनतुसन्दत्तः सुवेलःपर्वतोत्तमः ॥२५॥ कच्छपेश्वरदेवस्यं पुरस्तिलमयस्तथा ॥ शार्करस्तुतदाशैलः प्रदत्तोभक्तिपूर्वकम् ॥ २६ ॥ शिवईशानसंज्ञस्तु तस्यदेवस्यचाग्रतः ॥ वानरेश्वरदेवस्य पुरतो

तिलोंसे बनायाहुआ सुवेल वैसेही शक्करसे बनायाहुआ विन्ध्याचल देनाचाहिये तदनन्तर वैसेही यथोक्त विधिके द्वारा लोनसे बनाकर शृंगवान् पर्वत देनाचाहिये ॥ २२ ॥ सूतजीबोले कि उन भर्तृयज्ञ के उस वचनको सुनकर उन्होंने विधिपूर्वक सात लिंगोंको भलीभांति थापकर पश्चात् कुलपर्वतों को दिया ॥ २३ ॥ प्रतापवान् इन्द्रद्युम्न ने भर्तृयज्ञ के मतमें स्थित होकर इन्द्रद्युम्नेश्वर देवके आगे सुवर्णमय सुमेरु को बनाकर दानदिया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मार्कण्डेश्वर देवके आगे मार्कण्डजी ने कैलास पर्वतको दिया वैसेही कच्छपेश्वर देवके आगे कछुवा ने तिलों से बनाकर सुवेल पर्वतोत्तमको दिया और उस समय ईशान संज्ञक जो शिव हैं

उन देवके आगे भक्तिपूर्वक शर्कराका पर्वत दियागया इसके अनन्तर हे बड़ेभाग्यवानो, द्विजोत्तमो ! वानरेश्वर देवके आगे गृध्रने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके लवणाख्य
यानें लोन से बनाये हुये शृङ्गवान् पर्वत को दिया ॥ २५ । २६ । २७ । २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पर्वतोत्तमों के देनेही मात्रसे वहां आश्चर्य हुआ कि उन तीनोंका पक्षी-
पन जातारहा व अन्य कछुवे का कच्छपपना चलागया ॥ २९ ॥ इसी अवसर में हे द्विजोत्तमो ! उसके प्रभावसे वे सब दिव्य मालाओं व वसनों के धारनेहारे व
दिव्य गन्धोंसे अनुलेपोंवाले होगये जोकि उन भर्तृयज्ञजी के सामने स्थित थे और उसीक्षण सबोंके लिये विमान भलीभांति आये ॥ ३० । ३१ ॥ भर्तृयज्ञ से आज्ञा

द्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ गृध्रेणाथप्रदत्तस्तु लवणाख्योमहागिरिः ॥ शृङ्गीनाममहाभागाः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २८ ॥
तत्राश्चर्य्यमभूद्विप्रा दत्तमात्रैर्नगोत्तमैः ॥ पक्षित्वंनिर्गतन्तेषां कूर्मत्वमितरस्यच ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सर्वेतत
त्प्रभावतः ॥ दिव्यमालाम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ ३० ॥ सञ्जाताब्राह्मणश्रेष्ठा येचतस्यमुखेस्थिताः ॥ विमा
नानिचसर्वेषां समायातानितत्क्षणात ॥ ३१ ॥ भर्तृयज्ञमनुज्ञाप्य प्रणिपत्यचतान्सुरान् ॥ कैलासंपर्वतंप्राप्ता विमान
वरमास्थिताः ॥ ३२ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यस्मात्तल्लिङ्गसप्तकम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सञ्जातंपापनाशनम् ॥ ३३ ॥
अन्योपियःपुरस्तेषां लिङ्गानांभक्तिसंयुतः ॥ कुलपर्वतदानञ्च कुर्य्यात्सोपिशिवंव्रजेत ॥ ३४ ॥ तानिलिङ्गानियो
नित्यं प्रातरुत्थायवीक्ष्यते ॥ अज्ञानविहितात्पापात्सोपिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ यश्चैतान्पर्वतान्सप्त क्रमेणात्रप्र
यच्छति ॥ द्विजातिभ्यस्सलिङ्गानां पुरतस्त्रिदिवंव्रजेत् ॥ ३६ ॥ स्थित्वाकल्पान्तरेतत्र संसेवन्तेवराप्सराः ॥ दिव्या

पाकर व उन देवताओंको प्रणामकर उत्तम विमान पै चढ़ेहुये वे सब कैलासपर्वत पै प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥ यह सब तुमलोगों से कहागया कि जिस कारण हाटकेश्वरज
क्षेत्रमें पापों के विनाशनेवाले वे सात लिङ्ग भलीभांति हुयेहैं ॥ ३३ ॥ भक्तिसंयुत अन्य भी जो मनुष्य उन लिंगोंके आगे कुलपर्वतोंका दान करैहै वह भी शिवके
समीप प्राप्त होवैहै ॥ ३४ ॥ व नित्य प्रातःकाल उठकर जो उन लिंगोंको देखता है वह भी अनजान में कियेहुये पापसे मुक्ति (छूट) पाताहै ॥ ३५ ॥ और यहां जो पुरुष
लिंगोंके आगे क्रमसे इन सात पर्वतोंको ब्राह्मणोंके लिये देताहै वह स्वर्गको जाताहै ॥ ३६ ॥ वहां उत्तम अप्सरायें भलीभांति सेवा करतीहैं और कल्प के अन्ततक टिके

कर देवताओंवाले सुखोंको भलीभांति सेवकर जब भूमिमें पैदा होताहै ॥ ३७ ॥ तब चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होकर सार्वभौम महाराजाधिराज होताहै एक पर्वतके देनेसे पापोंका विनाश होताहै ॥ ३८ ॥ दोसे पुत्र व चाहेहुये फल होतेहैं तीन पर्वतों के देनेसे राजा व चारमे मण्डलका स्वामी (छोटाराजा) होताहै ॥ ३९ ॥ और पांच पर्वतों के देनेसे भरतखण्ड का स्वामी होताहै व छह से जम्बूद्वीप का स्वामी और सात पर्वतों के देनेसे चक्रवर्त्ती होताहै ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक पर्वतोंके देनेसे यह ब्रह्मा ने कहाहै कि सदैव जन्म २ में मनुष्य द्विजोत्तम होताहै ॥ ४१ ॥ और दुःखी या दरिद्री व रोगी नहीं होताहै किन्तु वह सौभाग्य व सुखसे संयुत तथा बड़ीभारी यज्ञ

न्भोगांश्चसंसेव्य यदाभूमौप्रजायते॥३७॥चक्रवर्तित्वमासाद्य सार्वभौमःप्रजायते॥ एकेनतुप्रदत्तेन जायतेपापसंक्षयः॥ ३८॥ द्वाभ्यांपुत्रावाञ्छितानिफलानिहिभवन्तिच ॥ त्रिभिस्सञ्जायतेराजा चतुर्भिर्मण्डलेश्वरः ॥ ३९ ॥ भारतस्यतुखण्डस्य स्वामीभवतिपञ्चभिः ॥ जम्बूद्वीपाधिपःषड्भिश्चक्रवर्तीचसप्तभिः ॥ ४० ॥ विधिवत्पर्वतैर्दत्तैरेतदाह पितामहः ॥ नरस्स्याद्ब्राह्मणश्रेष्ठस्सदाजन्मनिजन्मनि ॥ ४१ ॥ नदुःखितोदरिद्रोवा व्याधितोवाप्रजायते ॥ सौभाग्यसुखसंयुक्तस्समहासत्रभाग्भवेत् ॥ ४२ ॥ सर्वशत्रुविनिर्मुक्तःप्रतापीविजितेन्द्रियः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूमिपालैर्विशेषतः ॥४३॥ एतेचपर्वतादेया उद्दिश्यनिजदेवताः ॥४४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेसप्तलिङ्गोत्पत्तिकथनंनामषड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तमीशानस्यमहीपतेः ॥ ईश्वरेणपुरादत्तमायुर्यावच्चवासरम् ॥ १ ॥ किंप्रमाणंभवे

का भागी होता है ॥ ४२ ॥ व समस्त शत्रुवों से छूटाहुआ, प्रतापवान् व विशेषकर जितेन्द्रिय होताहै इस लिये विशेषकर राजाओं को अपने देवोंका उद्देशकर सब उपायसे इन पर्वतोंको देना चाहिये ॥ ४४३ । ४४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तलिङ्गोत्पत्तिकथनंनाम षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सतयुगादि के चरित अरु अहै जौन परमान । दोसौ सत्ताईसमहँ कहत सूत बुधिमान ॥ ऋषि लोग बोले कि आपने जो यह कहा कि पुरातन समय

ईश्वर ने ईशान भूपति को तबतक आयुर्बल दियाहै कि जबतक दिन रहै ॥ १ ॥ उनके दिनका क्या प्रमाणहै यह हम लोगोंसे कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो! इस विषयमें मैं तुम लोगोंसे महादेवजी के दिनका प्रमाण कहूँगा उसको कहते हुये मुझ से प्रकटही सुनिये निमेष (पलक मारने के समय) का चौथाभाग त्रुटिहै और उन दो त्रुटियों का लव होताहै ॥ २।३ ॥ दो लवोंका यव कहागयाहै और उन पन्द्रह यवोंकी काष्ठा होती है तीस काष्ठाओं की कला कहीगई है व तीसकलाओं का क्षण मानागया है ॥ ४ ॥ व साठि क्षणोंका पल कहागयाहै और उन साठिपलों की नाड़ी होतीहै व दोही नाड़ियों से मुहूर्त कहागया है ॥ ५ ॥ बुद्धिमानोंने तीस

त्तस्य दिवसस्यब्रवीहिनः ॥ सूत उवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामिप्रमाणंदिवसस्यतु ॥ २ ॥ माहेश्वरस्यविप्रेन्द्राः श्रूयताञ्चदतःस्फुटम् ॥ निमेषस्यचतुर्भागस्त्रुटिःस्यात्तद्वयंलवाः ॥ ३ ॥ लवद्वयंयवःप्रोक्तः काष्ठातद्दशपञ्चभिः ॥ त्रिंशत्काष्ठाःकलामाहुः क्षणस्त्रिंशत्कलोमतः ॥ ४ ॥ क्षणैःषष्ट्यापलंप्रोक्तं षष्ट्यातेषाञ्चनाडिका ॥ नाडिकाद्वितयेनैव मुहूर्तं परिकीर्तितम् ॥ ५ ॥ त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रंमनीषिभिः ॥ मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्द्वौमासौतुऋतुंविदुः ॥ ६ ॥ तेतुत्रयंचाप्ययनमयनेद्वेतुवत्सरम् ॥ मानुषाणांहिसर्वेषां सएवपरिकीर्तितः ॥ ७ ॥ तंदेवानामहोरात्रं पुराणज्ञाःप्रचक्षते ॥ अयनंचोत्तरंशुक्लं यद्देवानांदिनंहितत् ॥ ८ ॥ यद्दक्षिणन्तुसारात्रिः शुभकर्मविगर्हितम् ॥ यथासुप्तोनगृह्णाति किञ्चिद्भोगादिकन्नरः ॥ ९ ॥ तथादेवाश्चयज्ञांशान्नगृह्णन्तिकथञ्चन ॥ अनेनैवतुमानेन मानवेनद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ लक्षैस्सप्तदशाख्यैश्चवत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ अष्टाविंशतिसाहस्रैर्वत्सराणांकृतंयुगम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्कृतेऽभवद्विष्णुर्भगवान्योजगद्

मुहूर्तोंका दिन-रात कहाहै व तीस दिन रातोंसे महीना और दो महीनों का ऋतु कहाहै ॥ ६ ॥ उन तीन ऋतुवों का अयन व दोअयनोंका वही वर्ष समस्त मनुष्यों का कहागया है ॥ ७ ॥ और पुराण के जाननेवाले उस वर्षको देवताओं का दिन रात कहते हैं और जो श्वेत उत्तरायण है वह देवोंका दिनहै ॥ ८ ॥ व जो उत्तम कर्मोंमें निन्दित दक्षिण अयनहै वह रातहै जैसे सोताहुआ मनुष्य कुछ भोगादिक पदार्थ को नहीं ग्रहण करता है ॥ ९ ॥ वैसेही देवता भी किसी प्रकार दक्षिणायनमें यज्ञभागों को नहीं ग्रहण करतेहैं हे द्विजोत्तमो ! इसी मनुष्योंके प्रमाणसे ॥ १० ॥ सत्रहलाख वर्षों व अट्ठाईस हज़ार सालोंका सतयुग कहागयाहै ॥ ११ ॥ उस सत-

युगमें जो जगत्‌के गुरु भगवान् विष्णुजी हैं वे श्वेतवर्णवाले हुयेहैं और मनुष्य पापोंसे छुटेहुये व क्षमावान् तथा इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व जितेन्द्रिय हुयेहैं॥१२॥ तथा दीर्घ आयुर्बलवाले समस्त मनुष्य सदैव तपस्या में स्थित रहते थे जो जिस प्रकार जन्मको पाताथा वह वैसाही नहीं मरताथा ॥ १३ ॥ और कहीं पुत्रोंसे उपजी हुई मृत्युको पिता नहीं देखते थे व हे द्विजोत्तमो ! उस सतयुगमें काम,क्रोध, लोभ,पाखण्ड तथा मत्सर (ईर्ष्या)ये निश्चयकर मनुष्योंके नहीं होतेहैं तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठो ! दूसरा त्रेतायुग होनेवाला है ॥ १४ । १५ ॥ उस समय विकराल धर्म पाप के एक चरण से प्रवेश करता है तदनन्तर मधुदैत्य के मारनेवाले भगवान् विष्णु

गुरुः ॥ लोकाःपापविनिर्मुक्ताः क्षान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥ दीर्घायुषस्तथासर्वे सदैवतपसिस्थिताः ॥ योयथाजन्मप्राप्नोति तथानम्रियतेनरः॥ १३ ॥ नपुत्रसम्भवोमृत्युर्वीक्ष्यतेजनकैःक्वचित ॥ कामःक्रोधस्तथालोभोदम्भो मत्सरएवच॥ १४ ॥नजायतेनृणांतत्र युगेतुद्विजसत्तमाः ॥ ततस्त्रेतायुगंभावि द्वितीयंमुनिसत्तमाः ॥ १५ ॥ पापेनैकेनपादेन रौद्रधर्म्मंतदाविशत् ॥ ततोरक्तत्वमभ्येति भगवान्मधुसूदनः ॥ १६ ॥ पापांशेपिचसम्प्राप्ते संस्पर्द्धीजायतेजनः ॥ स्वर्गमार्गकृतेसर्वे कुर्वन्त्यज्ञास्ततःपरम् ॥ १७ ॥ अग्निष्टोमादिकांस्तत्र बहुहेमादिकांस्तथा ॥ दैवतोक्तांस्ततोयान्ति क्रमाद्यावच्चतुर्दश ॥ १८ ॥ ब्रह्मलोकस्यपर्य्यन्तं स्वकीयैर्यज्ञकर्म्मभिः॥केचित्स्वल्पायुषस्तत्र जायन्तेस्पर्द्धयाहिते॥ १९ ॥ तदातत्रापिनोयान्ति मृत्युंपुत्राःकथञ्चन ॥ जनकेविद्यमानेच स्वच्छन्देनप्रकीर्तिताः ॥ २० ॥ कामक्रोधादयो येच भवन्तिनभवन्तिच ॥ एकयाहेलयातत्र वापितंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २१ ॥ सप्तवारान्प्रगृह्णन्ति वैश्याःकृषिपरायणाः॥

जी अरुणवर्णको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ व पापके भागके भी भलीभांति प्राप्त होने पर मनुष्य ईर्ष्यावान् होताहै तदनन्तर स्वर्गमार्गके लिये उस त्रेतायुग में सब मूर्ख मनुष्य देवताओंसे कहीहुई व बहुत सुवर्णादिकोंवाली-अग्निष्टोमादिक यज्ञोंको करतेहैं तदनन्तर चौदह भुवनतक अपने यज्ञ कर्मोंसे ब्रह्मलोक पर्यन्त जातेहैं उस त्रेतायुगमें वे कोई मनुष्य ईर्ष्याके कारण थोड़ी आयुवाले होतेहैं ॥१७।१८।१९॥ उससमय उस त्रेतायुग में भी पिताके विद्यमान होनेपर पुत्र किसी प्रकार मृत्युको नहीं प्राप्तहोते हैं व अपने वश कहेगये हैं ॥ २० ॥ और जो काम, क्रोधादिक हैं वे होतेहैं और-नहीं होतेहैं उस त्रेतायुगमें उत्तम क्षेत्र एकवार बोवाया जाता है ॥ २१ ॥ और खेती

में लगेहुये वैश्यवर्णवाले पुरुष सातवार ग्रहण करतेहैं व सब गाइयां घड़ाभर दूध देनेवाली और भैंसियां चौगुना याने चार घड़ा दूध देनेवाली होतीहैं ॥ २२ ॥ वैसे
ही ऊंटिनियां उनके चौगुना अर्थात् सोलह घड़ा दूध देनेवाली होतीहैं और छगड़ियां व भेंड़ियां और वैसेही समस्त स्त्रियां उसके चौथाई दूधवाली होतीहैं ॥२३॥
और ब्राह्मण लोग वेदपाठसे संयुत व दानलेनेसे रहित तथा शाप व दयाके कार्यों में समर्थ होतेहैं ॥२४॥ और जो क्षत्रियों के धर्ममें तत्पर होतेहैं वे पृथ्वीका पालन
करते हैं व उस त्रेतायुगमें चोर व जार (व्यभिचारी) पुरुष किसी प्रकार नहीं देख पड़तेहैं ॥ २५ ॥ और सबही वर्ण अपने धर्ममें विशेषकर स्थित होतेहैं व

सर्वाघटस्रवागावो महिष्यश्चचतुर्गुणाः ॥ २२ ॥ प्रयच्छन्तितथाक्षीरमुष्ट्र्यस्तासाञ्चतुर्गुणम् ॥ अजाविकास्तथापादं
नार्य्यःसर्वास्तथैवच ॥ २३ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नाः प्रतिग्रहविवर्जिताः ॥ शापानुग्रहकृत्येषु समर्थास्सम्भवन्तिच ॥
२४ ॥ क्षात्रधर्म्मपरायेच पालयन्तिवसुन्धराम् ॥ नतत्रदृश्यतेचौरानजाराश्चकथञ्चन ॥ २५ ॥ स्वधर्मनिरतास्सर्वे
वर्णाश्चैवव्यवस्थिताः ॥ तच्चद्वादशभिर्लक्षैर्वत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥ षण्णवत्यासहस्रैस्तु द्वितीयंयुगमुत्तमम् ॥ ततः
श्रद्धापरंभावि तृतीयंद्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ द्वौपादौतत्रपापस्य द्वौचधर्म्मस्यसंस्थितौ ॥ भगवान्वासुदेवश्चकपिलस्तत्र
जायते ॥ २८ ॥ तच्चाष्टलक्षमानेन वत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ चतुःषष्टिभिरन्यैश्च सहस्रैश्चद्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥ कामः
क्रोधोमदोलोभो दम्भोमत्सरएवच ॥ षडेतेतत्रजायन्ते ईर्ष्याचैवतुसप्तमी ॥ ३० ॥ अथसंसेवितास्तैस्तु मानवास्तुप
रस्परम् ॥ विरुद्धांश्चप्रकुर्वन्ति नोत्पतन्तियतोदिवम् ॥ ३१ ॥ केपितत्रापिजायन्ते शान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ नसर्वे

उत्तम वह दूसरा युग बारह लाख छानबे हज़ार वर्षोंका कहागयाहै तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धामें परायण तीसरा द्वापरयुग होनेवाला है ॥ २६ । २७ ॥ उसमें
दो चरण पापके और दो धर्मके भलीभांति स्थितहोतेहैं व उस द्वापरयुग में भगवान् वासुदेवजी पीतवर्ण के होतेहैं ॥ २८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह द्वापरयुग आठलाख
वर्षोंकी प्रमाणसे व अन्य चासाठे हज़ार वर्षोंसे कहागयाहै ॥ २९ ॥ उस द्वापरयुग में काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड, मत्सर (पराये ऐश्वर्यको न सहना) ये छह
व सातवीं ईर्ष्या उत्पन्न होतीहै ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उन कामादिकोंसे भलीभांति सेवित मनुष्य आपसमें विरोध करतेहैं कि जिससे स्वर्गको नहीं ऊर्ध्वगमन करते

हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस द्वापर युग में भी कोई भी शान्त व नेत्रादिक बाहरी इन्द्रियोंको रोंकनेवाले और जितेन्द्रिय होते हैं सब भी क्रूर व दुर्द्धर्षता से युक्त नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर चौथा अतिविकराल कलियुग कहागयाहै जिसमें एक चरणवाला धर्म व तीन पांवोंसे पाप स्थित रहता है ॥ ३३ ॥ और उसी कलियुग में चार भुजाओंवाले (विष्णु) देव भी कृष्णताको प्राप्त होते हैं व धर्मका एक चरणभी जहां तहां वर्तमान होता है ॥ ३४ ॥ व पश्चात् जहां तहां धीरे २ नाशको प्राप्तहोताहै उस पिछलेही युगका प्रमाण चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कहा गया है और उसमें कलियुग से भलीभांति छुये हुये समस्त मनुष्य आपस

पिद्विजश्रेष्ठाः क्रूरादुर्द्धर्षतायुताः ॥ ३२ ॥ ततःकलियुगंप्रोक्तंचतुर्थंचसुदारुणम् ॥ एकपादोवृषोयत्र पापंपादैस्त्रिभिःस्थितम् ॥ ३३ ॥ कृष्णत्वंयातिदेवोपि तत्रैवचतुर्भुजः ॥ एकपादोपिधर्मस्य यावत्तावत्प्रवर्तते ॥ ३४ ॥ पश्चान्नाशंसमभ्येति यावत्तावच्छनैःशनैः ॥ प्रमाणंतस्यनिर्दिष्टं लक्षाश्चत्वारएवच ॥ ३५ ॥ द्वात्रिंशच्चसहस्राणियुगस्यैवान्तिमस्यच॥ कलिनातत्रसंस्पृष्टा मर्त्याःसर्वेपरस्परम् ॥ ३६ ॥ विधुरैस्सम्प्रवर्तन्ते रागद्वेषपरायणाः ॥ यस्यचास्तिगृहेवित्तं तथानार्योमनोरमाः ॥ ३७ ॥ तैर्नरैस्तुसमम्मैत्रीं कलौकुर्वन्तिमानवाः ॥ विधवानांयतीनाञ्च सर्वेषाञ्चतपस्विनाम् ॥ ३८ ॥ लोकद्वयविनाशस्स्याद्यतश्चैवनशुद्ध्यति ॥ प्रावृट्कालेपिसम्प्राप्ते दुर्भिक्षेणप्रपीडिताः ॥ ३९ ॥ भ्रमन्तिचकलौलोकानधर्म्मासक्तदृष्टयः ॥ जात्यानिचापितनयः पिताचेन्निधनंव्रजेत् ॥ ४० ॥ ततोहंग्रहणेभूषां बान्धवोपिचबान्धवम् ॥

में ॥ ३५ । ३६ ॥ राग द्वेष (प्रीति, वैर) में तत्पर होकर बड़े वियोगों से भलीभांति वर्तमान होते हैं जिसके घरमें धन और सुन्दरी स्त्रियां होती हैं ॥ ३७ ॥ उन मनुष्यों के साथ कलियुग में मनुष्य मित्रता करते हैं और विधवाओं व संन्यासियों तथा समस्त तपस्वियों के दोनों लोकों का विनाश होताहै, और जिससे शुद्ध नहीं होते हैं व वर्षा समय के भी भलीभांति प्राप्तहोनेपर दुर्भिक्ष (अकाल) से अत्यन्त पीड़ित होते हुये मनुष्य कलियुग मे घूमते हैं और धर्म में दृष्टिको नहीं लगाते हैं जातिवाले व पुत्र भी चाहता है कि यदि पिता मृत्यु को प्राप्तहोवै ॥ ३८ । ३९ । ४० ॥ तो मैं भूषणों के ग्रहण में होऊं और भाई लोग भी भाई को

इसीप्रकार चाहते हैं व धनके कारण पतोहू चाहती है कि यदि सासु नाशको प्राप्त होवै ॥ ४१ ॥ तो वह समस्त घर का ऐश्वर्य मेरा होगा अन्यथा न होवैहै काव्यों से वेद नष्ट होगये व दामादों से पुत्र ताड़ित हुये ॥ ४२ ॥ व सारोंसे भाईभी व पुंश्चलियोंसे कुलस्त्रियां नष्टहुईं और शूद्र तपस्वी हुये तथा धर्मके बतलानेवाले शूद्र हुये ॥ ४३ ॥ व वैसेही शूद्र ब्राह्मणोंके लिये उपदेश कहते हैं तथा मेघ थोडेजलवाले व पृथ्वी थोड़े अन्नोंवाली होतीहै ॥ ४४ ॥ वैसेही गाइयां थोड़े दूधवाली होती हैं और दूधमें घी नहीं होताहै तथा ब्राह्मण सर्वभक्षी होतेहैं तदनन्तर राजा दयारहित होते हैं ॥ ४५ ॥ और वैश्य खेतीसे लजाते हैं व शूद्र ब्राह्मणों के पालन करने

स्नुषावेत्तिचवित्तेन यदिश्वश्रूःक्षयंव्रजेत ॥ ४१ ॥ ममस्याद्गृहऐश्वर्य्यं तत्सर्वंनान्यथाभवेत् ॥ काव्यैरुपहतावेदाःपुत्रा-जामातृकैस्तथा ॥ ४२ ॥ श्यालकैर्बान्धवाश्चापि असतीभिःकुलस्त्रियः ॥ शूद्रास्तपस्विनश्चैव शूद्राधर्मस्यसूचकाः॥ ४३ ॥ ब्राह्मणानांतथाशूद्रा उपदेशंवदन्तिच ॥ अल्पोदकास्तथा मेघाअल्पसस्याचमेदिनी ॥ ४४ ॥ अल्पक्षीरास्तथा गावःक्षीरेसर्पिर्नविद्यते ॥ सर्वभक्षास्तथाविप्रा नृपानिष्करुणास्ततः ॥ ४५ ॥ कृष्यालज्जन्तिवैश्याश्च शूद्राब्राह्मणपो-षकाः ॥ हेतुवादरतायेच भण्डविद्यापराश्रये ॥ ४६ ॥ तेतेस्युर्भूमिपालानां सदाभीष्टाःकलौयुगे ॥ चौर्य्यकार्य्यपराभू-पाः पृथिवींगतयौवना ॥ ४७ ॥ अतिक्रान्तशुभाकाला पर्य्युपस्थितदारुणा ॥ यथायथायुगंभावि वृद्धयोनिस्त्रियोनराः॥ ४८ ॥ तथातथाप्रयान्तिस्म संयुताजन्तुभिस्सह ॥ वर्षेद्वादशमेचैव कन्यास्याद्गर्भसंयुता ॥ ४९ ॥ ततःषोडशमेवर्षेन-राःपलितयौवनाः ॥ शौचाचारपरित्यक्ता निजकार्य्यपरास्तथा ॥ ५० ॥ भविष्यन्तियुगस्यान्तेनराअङ्गुष्ठमात्रकाः॥

वाले होतेहैं और जो मतलब की बातमें तत्पर व जो भांडोंकी विद्यामें परायण होवैंगे ॥ ४६ ॥ वे सदैव कलियुग में भूपोंको प्रिय होवैहैं राजा चोरीके कार्योंमें तत्पर होतेहैं व पृथ्वी गयेहुये यौवनवाली होतीहै याने कोई युवा नहीं होताहै ॥ ४७ ॥ व व्यतीत हुये उत्तम समयोंवाली व समीप में प्राप्त भयङ्कर कालवाली पृथ्वी होगी व ज्यों ज्यों युग होगा त्यों त्यों मनुष्य प्राणियोंके साथ संयोगको प्राप्तहुई वृद्धयोनिवाली स्त्रियोंके समीप प्रयाण करते हैं व बारहवें वर्षमें कन्या गर्भसे संयुक्त होगी ॥ ४८ । ४९ ॥ तदनन्तर सोलहवें वर्षमें मनुष्य युवावस्था में श्वेतबालोंमे उपलक्षित व पवित्रता के आचार से छूटेहुये तथा अपने कार्यमें परायण होवैंगे ॥ ५० ॥ और

युगके अन्त में मनुष्य अंगूठा के प्रमाणभर होवैंगे और इसके अनन्तर मूसोंसे उपजेहुये बिलोंसे घर करते हैं ॥ ५१ ॥ वैसेही कीड़ोंका चर्मरूप वसन उनका ओढ़न होगा तदनन्तर समस्त वर्ण एकही जातिवाले होवैंगे ॥ ५२ ॥ व म्लेच्छभूत तथा दुष्ट आचरणवाले व धर्मकार्यों में दूषण देनेवाले होवैंगे ऐसा होनेपर तदनन्तर संसार में कल्की के शरीर से उत्पन्न हरिपिंगल ब्राह्मण उन समस्त मनुष्योंको नाश करैंगे पश्चात् हे द्विजोत्तमो ! फिर भी सतयुग होगा ॥ ५३।५४॥ तदनन्तर इसी प्रकार हजारयुगों से ब्रह्माका दिन होगा उसके उपरान्त रात होगी ॥ ५५॥ तदनन्तर इसी प्रमाण से साठियुक्त तीनसौ ब्रह्माके दिनोंसे वह विष्णुका दिन होगा ॥ ५६ ॥

गृहंचतेथकुर्वन्ति बिलैराखुसमुद्भवैः ॥५१॥ तथाप्रावरणन्तेषां कृमिवस्त्रम्भविष्यति ॥ एकवर्णाभविष्यन्ति वर्णास्सर्वे ततःपरम् ॥ ५२ ॥ म्लेच्छीभूतादुराचारा धर्म्मकृत्यविदूषकाः ॥ एवंजातेततोलोके ब्राह्मणोहरिपिङ्गलः ॥ ५३ ॥ कल्कीगात्रसमुत्पन्नस्तान्सर्वान्सूदयेज्जनान् ॥ पश्चात्कृतयुगम्भावि भूयोपिद्विजसत्तमाः ॥ ५४ ॥ एवंयुगसहस्रेणसम्प्राप्तेनततःपरम् ॥ ब्रह्मणोदिवसोभावी रात्रिश्चैवततःपरम् ॥ ५५ ॥ ततश्चानेनमानेन षष्ट्यायुक्तैस्त्रिभिश्शतैः ॥ ब्रह्मणोदिवसैर्भावि केशवस्यचतद्दिनम् ॥ ५६ ॥ आत्मीयेनैवसब्रह्मा यावद्वर्षशतंस्थितः ॥ केशवोपिस्वमानेन वर्षाणांजीवितंशतम् ॥५७॥ वर्षेणवासुदेवस्य दिनंमाहेश्वरम्भवेत् ॥ निजमानेनसोप्यत्र यावद्वर्षशतंस्थितः ॥५८॥ ततश्शक्तिस्वरूपःस्यात्सोच्चयःकीर्त्यतेयतः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं शिवशक्तिसमुद्भवम् ॥ ५९॥ यावदायुःप्रमाणञ्च मानुषाद्यंचयद्भवेत् ॥ भवद्भिश्शाङ्करःपृष्टो द्विजायोवासरःपुरा ॥ मयापुनस्तुसर्वेषां ब्रह्मादीनाम्प्रकीर्तितम् ॥६०॥ इत्यध्यायः २२७॥

अपनेही दिनादिकोंकी प्रमाणसे वे ब्रह्माजी सौवर्षतक स्थित रहते हैं और विष्णुभी अपने प्रमाणसे सौ वर्षतक जीतेहैं ॥ ५७ ॥ विष्णुजी के वर्षभर से महादेवजी का दिन होताहै वे भी यहां अपने प्रमाणसे सौवर्षतक स्थित रहतेहैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शक्तिका स्वरूप रहताहै क्योंकि वह अविनाशी कहाजाताहै शिव व शक्तिसे उपजाहुआ यह समस्त चरित्र तुम लोगोंसे कहागया ॥ ५९ ॥ जोकि मनुष्यादिकों की आयुका प्रमाण होताहै हे ब्राह्मणो ! पहले आपलोगों ने जो शिवजीका दिन पूँछा था फिर मैंने समस्त ब्रह्मादिकों का दिन कहा ॥६०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेयुगस्वरूपवर्णनंनामसप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥ ॥

सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! इन युगोंके हजारवार वीतने से ब्रह्मा
दो० । सौरादिक जिमि होतहैं चारिभांति के साल । दोसै अट्ठाईस महँ सोई सुभग हवाल ॥ का कल्प होता है व वैसेही ब्रह्माके
का दिन होताहै उस दिनमें चौदह इन्द्र होतेहैं ॥ १ ॥ और इससमय यहां जो इन्द्र वर्त्तमान हैं वे सातवें हैं व इकहत्तरि चतुर्युगी ॥ २।३ ॥ इस समय जो इन्द्र वर्तमानहैं ये जयन्तनामक
दिनमें अन्य चौदह मनु राज्य करते हैं व जैसे इन्द्र स्थित होते हैं वैसेही स्वायंभुव इत्यादिक मनु टिकतेहैं ॥ इकहत्तरि चतुर्युगी में से इस बचेहुये चतुर्युगके व्यतीत होजानेपर विष्णुकी प्रसन्नतासे बलि इन्द्रहो-
हैं व वैवस्वत मनुहैं और अट्ठाईसवें प्रमाणवाला युगहै ॥ ४ ॥

सूतउवाच ॥ एतेषान्तुसहस्रेण विधेरस्तिदिनंद्विजाः ॥ चतुर्दशसहस्राद्या जायन्तेतत्रवासरे ॥ १ ॥ सप्तमस्तुसह
स्राद्यः साम्प्रतंवर्ततेत्रयः ॥ एकसप्ततिसंवर्तश्चतुर्दशादिनेविधेः ॥ २ ॥ युगानांकुर्वतेराज्यं मनवश्चतथापराः ॥ स्वायम्भुवप्र
भृतयो यथाशक्रास्तथास्थिताः ॥ ३ ॥ जयन्तोनामशक्रोयं साम्प्रतंवर्ततेतुयः ॥ वैवस्वतोमनुश्चैव अष्टाविंशप्रमाण
कः ॥ ४ ॥ चतुर्युगस्यसञ्जाते गतेस्मिञ्छेषमात्रके ॥ भविष्यतिबलिश्शक्रो वासुदेवप्रसादतः ॥ ५ ॥ तेनतस्यप्रति
ज्ञातं राज्यञ्चैवाष्टमेमनौ ॥ एवंसर्वेसुराश्चान्ये त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणतः ॥ ६ ॥ कोटयःप्रभविष्यन्ति यथाचैवतथापुरा ॥
योयंब्रह्मास्थितोविप्रास्साम्प्रतंसृष्टिकारकः ॥ ७ ॥ तस्यानेनप्रमाणेन जातंसंवत्सराष्टकम् ॥ षण्मासाश्चदिनार्द्धंचप्र
थमंशुक्लपूर्वकम् ॥ ८ ॥ सौरसावनचान्द्रर्क्षमानैरेभिश्चतुर्विधैः ॥ कालोनियातिसर्वेषां भूतानांक्षितिमण्डले ॥ ९ ॥ प
ञ्चषष्ट्यधिकैश्चैव दिनानांचशतैस्त्रिभिः ॥ भवेत्संवत्सरस्सौरः पञ्चोनैस्तैश्चसावनः ॥ १० ॥ चान्द्रएकादशोनस्तुत्रिं

इसीप्रकार जैसे पहले थे वैसेही तेंतीसकोटि प्रमाणवाले अन्य देवता होवैंगे हे
वैंगे ॥ ५ ॥ क्योंकि उन विष्णुने आठवें मनुमें उन बलिके राज्यकी प्रतिज्ञा किया है ॥ ६ । ७ ॥ उनके इस प्रमाणसे आठवर्ष, छह महीना व शुक्लपक्षपूर्वक पहले दिनका आधाभाग व्य-
ब्राह्मणो! इससमय सृष्टिके करनेवाले जो ये ब्रह्माजी स्थितहैं ॥ ९ ॥ पैंसठि अधिक तीनसौ
तीतहुआ है ॥ ८ ॥ पृथ्वीमण्डल में सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र इन चार प्रकारके प्रमाणों से समस्त प्राणियों का समय व्यतीत होताहै ॥ १० ॥ और गेरह दिन कम चान्द्रवर्ष व तीस दिन कम नक्षत्रों
दिनोंसे सौर संवत्सर होताहै और उनमें से पांचकम याने तीनसौ साठ दिनोंका सावनवर्ष होताहै

से उपजाहुआ साल होताहै और जाड़ा, घाम व वर्षा सौर वर्षके प्रमाण से होती है ॥ ११ ॥ व पृथ्वीतल में जो अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्तमान होतेहैं वे और उत्साह व विवाह सावनवर्ष के प्रमाण से होतेहैं ॥ १२ ॥ व ब्याज आदिक देश में उपजेहुये जो कोई व्यवहार हैं वे मलमाससंयुत चान्द्रवर्ष से निर्माण कियेगये हैं ॥ १३ ॥ और नक्षत्रों के प्रमाण से नक्षत्र भेदको प्राप्त होते हैं इन चार मानों (प्रमाणों) से अन्य कुछ भूतलमें नहींहै ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इसीप्रमाण से देवता, दैत्य, मनुष्य वर्तमान होतेहैं यह पुरानी ऋचाहै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भक्तिसे संयुत होताहुआ जो मनुष्य इन्हीं सात लिंगोंके आगे इस युग के प्रमाणको पढ़ैहै॥ १६॥

शब्दीनउद्भवः ॥ शीतातपौतथावृष्टिस्सौरमानेनजायते ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञा वर्तन्तेपृथिवीतले ॥ उत्साहाश्चविवाहाश्च सावनेनभवन्तिच ॥ १२ ॥ कुसीदाद्याश्चयेकेचिद्व्यवहाराश्चदेशजाः ॥ अधिमासप्रयुक्तेन तेस्युश्चान्द्रेणनिर्मिताः ॥१३॥ नक्षत्रेणतुमानेन भिद्यन्तेचाभितारकाः ॥ नान्यत्किञ्चिद्धरापृष्ठे एतन्मानचतुष्टयात ॥१४॥ अनेनतुप्रमाणेन देवदैत्याश्चमानवाः ॥ वर्तन्तेब्राह्मणश्रेष्ठाः श्रुतिरेषापुरातनी ॥ १५ ॥ एतद्युगप्रमाणन्तुयःपठेद्भक्तिसंयुतः ॥ एतेषामेवलिङ्गानां सप्तानांब्राह्मणोत्तमाः ॥ १६ ॥ नापमृत्युभयंतस्य कथंचित्सम्भविष्यति ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेयुगप्रमाणवर्णनंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २२८ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति दुर्वासःस्थापितम्पुरा ॥ तल्लिङ्गंदेवदेवस्य त्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ चैत्रेमासिनरोयस्तुतमाराधयतेद्विजाः ॥ नृत्यगीतप्रवाद्यैश्च त्रिकालंवालवत्क्षणम् ॥ २ ॥ सनूनंतत्प्रसादेन गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्॥

उसको किसी प्रकार अपमृत्यु का डर न होवैगा ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुगप्रमाणवर्णनंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। दुःशीलेश्वर शिवहिं जिमि थाप्यो है दुःशील। दोसौ उन्तीसवें महँ सोइ चरित बहुलील ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय वहां वैसेही दुर्वासाजी से थ्याया हुआ तीन लोचनोंवाले महात्मा देवदेव (शिव) जीका यह लिंगहै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! चैत महीने में जो मनुष्य नाचने, गाने व बजाने से त्रिकालमें या पल तथा

क्षणभर उन शिवजी का आराधन करता है ॥ २ ॥ वह निश्चय कर उन शिवजी की प्रसन्नतासे गन्धर्वों का स्वामी होता है ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! दुर्वासा नामक ये कौनहैं व किस समयमें किसने इन सदाशिवजी को थापाहै हमलोगोंसे सब विस्तारपूर्वक कहिये सूतजी बोले कि वैदिशनामक उत्तमनगर में पुरातनसमय पवित्र निम्ब तपस्वी हुआहै ॥ ३ । ४ ॥ वह लिंगको पूजताथा और वह द्रव्य इकट्ठा करनेमें तत्पर था और शैवमनुष्य से वह जो कुछवस्त्रादि या अन्य पदार्थको पाता था तदनन्तर वह बेंचडालताथा व उसके उपरान्त वह नित्यही उसके मूल्य से सुवर्ण लेताथा ॥ ५ । ६ ॥ और उसका खर्च नहीं करताथा केवल बटोरनेमें तत्पर

ऋषयऊचुः ॥ दुर्वासानामकश्चायं केनायंस्थापितोहरः ॥ ३ ॥ कस्मिन्कालेमहाभाग सर्वन्नोविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पुराशुचिर्निम्बो वैदिशेचपुरोत्तमे ॥ ४ ॥ सचपूजयतेलिङ्गं किञ्चससंचयेरतः ॥ सचकिञ्चिदवाप्नोति वस्त्राद्यंच तथापरम् ॥ ५ ॥ माहेश्वरस्यलोकस्य विक्रीणीतेततस्तुसः ॥ ततोगृह्णातिनित्यंस हेममूल्येनतस्यच ॥ ६ ॥ नकरोति व्ययंतस्य केवलंसञ्चयेरतः ॥ ततःकालेनमहतामात्रातस्यनिरर्गला ॥ ७ ॥ जाताहेममयीविप्राः कार्पण्यनिरतस्यच ॥ अथैकांघटिकांमध्यकक्षात्तान्नैवमुञ्चति ॥ ८ ॥ कदाचिद्देवपूजायां सोपिब्राह्मणसत्तमः ॥ विश्वासन्नैवनियाति कस्य चित्सकथञ्चन ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य परवित्तापहारकः ॥ अलक्षद्ब्राह्मणस्तञ्चदुश्शीलाख्यस्सुदुर्मतिः ॥ १० ॥ ततःशिष्योभविष्यामि विश्वासार्थन्दुरात्मनः ॥ सुदीनैःकृपणैर्वाक्यैश्चाटुकारैःपृथग्विधैः ॥ ११ ॥ अस्यदास्यंदिवा नक्तं साधयिष्याम्यसंशयम् ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते दृष्ट्वातंसचमध्यगम् ॥ १२ ॥ ततस्समीपमगमद्दण्डाकारम्प्रण

था तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! बडेसमय से उस कृपणता में तत्पर तपस्वी की सुवर्णमयी मात्रा अधिक होगई इसके अनन्तर वह द्विजोत्तम कभी देवपूजन में भी एक घड़ीभर उस सुवर्ण की पुटिकाको बगलसे नहीं छोड़ताथा और वह किसीप्रकार किसीके विश्वास में न प्राप्तहोताथा ॥ ७ । ८ । ९ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय अति-दुष्टबुद्धिवाले दुःशीलनामक पराये धनके हरनेहारे ने उस ब्राह्मणको देखा ॥ १० ॥ तदनन्तर मन में विचार किया कि दुष्टात्मा के विश्वास के लिये शिष्य हूंगा और अतिदीन व कृपण तथा अनेक प्रकार के मीठे वचनों से दिन रात निरसन्देह इस की सेवकाई का साधन करूंगा अन्य दिन के भलीभांति प्राप्त होनेपर उसको बीच

में प्राप्त देखकर ॥ ११ । १२ ॥ तदनन्तर समीप गया व दण्डा के समान प्रणाम कर नम्रतासे नीचे झुका हुआ खड़ा वह जुड़ेहुये हाथोंवाला होकर बोला ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! तुम्हारी तपस्या के इस प्रभाव को मैंने सुनाहै जिस लिये कि भूतल में तुम्हारे समान ऐसा अन्य नर नहीं है ॥ १४ ॥ उसी से वैराग्यसंयुत मैं जन्म मृत्यु व वृद्धता को नांघनेवाली संसार की असारता को जानकर दूर से प्राप्त हुआ हूं ॥ १५ ॥ और इस संसार में मनुष्यों का यौवन वैसेही विजुलीकी चमकके समान है जैसे पर्वत से उपजी हुई नदी क्षणभर में भङ्गशीलतावाली होती है ॥ १६ ॥ वैसेही पुत्र व स्त्रियों का समूह और जो अन्य भाई आदिक हैं उन सबों को वैसेही

स्यच ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयावनतःस्थितः ॥ १३ ॥ भगवंस्तेप्रभावोयं तपसश्चमयाश्रुतः ॥ यदन्यस्त्वादृशो नास्ति ईदृशोन्योधरातले ॥ १४ ॥ तेनाहंदूरतःप्राप्तो वैराग्येणसमन्वितः ॥ संसारसारतांज्ञात्वा जन्ममृत्युजरातिगाम् ॥ १५ ॥ मेघार्चिप्रतिकाशश्च यौवनञ्चनृणामिह ॥ यद्वत्पर्वतसञ्जाता नदीचक्षणभङ्गुरा ॥ १६ ॥ पुत्राःकलत्रनिचयो येचान्येबान्धवादयः ॥ तान्सर्वांश्चपरिज्ञाय यथापापसमागमः ॥ १७ ॥ तत्संसारसमुद्रस्य तारणार्थंब्रवीहिमे ॥ उपायंकञ्चिदद्यैव उपदेशंप्लवस्थितम् ॥ १८ ॥ तरामियेनसंसारं प्रसादात्तवसुव्रत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वामाहेश्वरःकोयं विदेशात्समुपस्थितः ॥ अथाब्रवीत्त्वंधन्योसि यस्यतेमतिरीदृशी ॥ २० ॥ तारुण्येवर्तमानस्य सुकुमारस्यचैवहि ॥ तारुण्येवर्तमानोयःशान्तस्सोत्रनिगद्यते ॥ २१ ॥ आद्येवयसियश्शान्तस्सशान्तइतिमेमतिः ॥ धातुषुक्षीयमाणेषु शमःकस्यनजायते ॥ २२ ॥ यद्येवंसुविरक्तिस्ते संसारोपरिसंस्थिता ॥ समाराध

जानकर जैसे कि पापियों का संयोग होताहै ॥ १७ ॥ इस लिये संसाररूपी समुद्र के उतरने के लिये नावकी नाई स्थित किसी उपदेश को आजही मुझ से कहिये ॥ १८ ॥ कि जिससे हे सुव्रत ! तुम्हारी प्रसन्नता से संसारको उतर जाऊं उसके उस वचनको सुनकर रोमांचित रोमोंवाले निम्बने यह जानकर कि विदेशसे भलीभांति प्राप्त हुआ यह कौन शिवभक्त है इसके अनन्तर कहा कि तुम धन्यहो क्योंकि सुकुमार व पहली अवस्थामें वर्तमान जो तुमहो उनकी ऐसी बुद्धिहै युवा अवस्था में वर्तमान जो शान्त है वह यहां शान्त कहाजाताहै ॥ १९ । २० । २१ ॥ पहली अवस्थामें जो शान्त है वह शान्तहै यह मेरी बुद्धि है क्योंकि धातुओं के क्षीण होनेपर

किसके शान्ति नहीं होती है ॥ २२ ॥ यदि संसार के ऊपर तुम्हारा ऐसा उत्तम विराग भलीभांति स्थितहै तो मस्तक में चन्द्रमावाले शङ्कर सुरेश को भली
भांति आराधन करो ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर तुम अघोरमन्त्र के जपसे भवसागर उतरोगे शास्त्र के संयोगसे मैंने इसको भलीभांति जानाहै ॥ २४ ॥ यदि शिवमन्त्र
से संयुत अत्यन्तपापकारी जो शूद्र या ब्राह्मण या म्लेच्छ भक्तिसे षडक्षरमन्त्र के द्वारा एक फूल शिवजी के ऊपर धरताहै हे सद्विज ! वह जिस २ गति को चाहता
है उसको प्राप्त होती है ॥ २५ । २६ ॥ और दयासंयुत जो पुरुष बड़ीभक्ति से शिवमन्त्र व वसन, जूता तथा पात्रों को देताहै वह यज्ञों से क्या करैगा ॥ २७ ॥ उस

यदेवेशं शङ्करंशशिशेखरम् ॥ २३॥ त्वयाथाघोरजाप्येनतीर्य्यतेभवसागरम् ॥ मयासम्यक्परिज्ञातमेतच्छास्त्रसमाग
मात् ॥ २४ ॥ शूद्रोवायदिवाविप्रोम्लेच्छोवापापकृत्तरः ॥ शिवदीक्षासमोपेतः पुष्पमेकन्तुयोन्यमेत् ॥ २५ ॥ षडक्ष
रेणमन्त्रेण शिवस्योपरिभक्तितः ॥ सताङ्गतिमवाप्नोति यांयांवाञ्छतिसद्विज ॥ २६ ॥ योददातिप्रभक्त्याचशिवदी
क्षांदयान्वितः ॥ वस्त्रोपानत्पात्राणिसयज्ञैःकिङ्करिष्यति ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वाचरणौतस्यदुःशीलोसौतदादरात् ॥ निः
क्षिप्यस्वाशिरस्तस्यततोवाक्यमुवाचह ॥ २८॥ शिवदीक्षाप्रदानेनप्रसादंकुरुमेविभो ॥ शुश्रूषांयेनतेनित्यंप्रकरोमिस
माहितः ॥ २९ ॥ ततोसौतापसोविप्रश्चिन्तयामासचेतसि ॥ दक्षोयंदृश्यतेकोपिपुमांश्चैवसमागतः ॥ ३० ॥ आयातिना
परःशिष्यस्तस्मादेनंकरोम्यहम् ॥ ततोऽब्रवीत्करंगृह्ययद्येवंवत्समेसमम् ॥ ३१ ॥ समयंकुरुयेनत्वांदीक्षयाम्यद्यचैव
हि ॥ त्वयाकुटीरकङ्कार्य्यंमठस्यास्यविदूरतः ॥ ३२ ॥ प्रवेशोनैवकार्य्यस्तुममात्रास्तगतेरवौ ॥ दुःशीलउवाच ॥ तवा

समय उन मुनि के उस वचन को सुनकर इस दुःशीलने अपने शिर को उनके चरणों पै धरकर तदनन्तर आदरसमेत वचन कहा ॥ २८ ॥ कि हे विभो ! शिव-
मन्त्रकेप्रदान से मेरे ऊपर प्रसन्नताकीजियें जिससे सावधान होताहुआ मैं नित्यही तुम्हारी सेवा करूं ॥ २९ ॥ तदनन्तर इस तपस्वी ब्राह्मणने चित्त में चिन्तवन
किया कि यह कोई भी भलीभांति आयाहुआ पुरुष चतुर देखपडता है ॥ ३० ॥ और शिष्य नहीं आवैगा इसलिये मैं इसको शिष्य करताहूं तदनन्तर हाथ पकड़
कर कहा कि यदि ऐसाहै तो हे वत्स ! मेरे सांथ ॥ ३१ ॥ सौगन्ध करो जिससे आजही तुमको दीक्षा देऊं तुमको इस मठ के दूरमें कुटी करनाचाहिये ॥ ३२ ॥ और सूर्य

नारायण के अस्तहोजाने पर मेरे यहाँ प्रवेश न करनाचाहिये दुःशील बोला कि हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! मुझको केवल तुम्हारी आज्ञा का प्रमाण है ॥ ३३ ॥ व विशेष कर रात्रि के संयोगमें मैं मठ से क्या करूंगा जो शिष्य गुरु के यथोदित वचनको नहीं करता है ॥ ३४ ॥ उसका वह व्रत व्यर्थ होगा और तदनन्तर नरक होगा उस वचन को सुनकर तदनन्तर प्रसन्नता में प्राप्त तपस्वीने उस समय नम्रतायुक्त उस दुःशील के लिये पांचअक्षरोंवाले मन्त्र को शिवदीक्षा में दिया तब से लगाकर वह उसकी सेवा में अत्यन्तहीपरायण हुआ ॥ ३५ । ३६ ॥ और दिन २ उस सुवर्णकी मात्राके लिये मन से चिन्तवन करतेहुये व सेवामें तत्पर उस दुःशीलने उस

देशःप्रमाणंमेकेवलंतापसोत्तम ॥ ३३ ॥ किंमठेनकरिष्यामिविशेषाद्रात्रिसङ्गमे ॥ यःशिष्यश्चगुरोर्वाक्यंनकरोतिय थोदितम् ॥ ३४ ॥ तस्यव्रतंचतद्व्यर्थंनरकश्चततःपरम् ॥ तच्छ्रुत्वातुष्टिमापन्नःशिवदीक्षान्ततोददौ ॥ ३५ ॥ तस्मैविन ययुक्तायतदापञ्चाक्षरंमनुम् ॥ ततःप्रभृतिसोतीवतस्यसुश्रूषणेरतः ॥ ३६ ॥ रञ्जयामासतच्चित्तंपरिचर्यापरायणः ॥ म नसाचिन्तयानस्तुतन्मात्रार्थंदिनेदिने ॥ ३७ ॥ नच्छिद्रंवीक्ष्यतेकिञ्चिद्वीक्ष्यमाणोपिसुव्रतः ॥ निम्बोनचस्वकक्षान्ता न्ताम्मात्रांहेमसम्भवाम् ॥ ३८ ॥ कथञ्चिन्मोक्षतेभूमौभोज्येदेवार्चनेपिच ॥ ततोसौचिन्तयामासदुःशीलोनिजचेतसि ॥ ३९ ॥ ममतावत्प्रवेशःस्यादुपायैर्विविधैरपि ॥ तत्किंविषंप्रयच्छामिशस्त्रैर्व्यापादयामिकिम् ॥ ४० ॥ दिवापिपशुमारे णपञ्चत्वंवानयामिकिम् ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यप्रावृट्कालउपस्थितः ॥ ४१ ॥ श्रावणस्यासितेपक्षेकर्कटस्थेदिवाकरे ॥

के चित्तको स्नेहवान् किया ॥ ३७ ॥ व देखाजाताहुआ भी कुछ छिद्र (स्वर्ण लेने का समय) न देखपड़ता था और उत्तमनियमोंवाला निम्ब तपस्वी सुवर्ण से उ- पजीहुई उस मात्राको भोजन व देवपूजन में भी किसीप्रकार कांखके बीचसे भूमि में नहीं छोड़ताथा तदनन्तर इस दुःशीलने अपने चित्तमें चिन्तवन किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कि अनेक प्रकार के भी यत्नोंसे तबतक मेरा प्रवेशहोगा तो क्या विष देऊं या क्या शस्त्रोंसे मारडालूं ॥ ४० ॥ अथवा क्या दिनमें भी पशुमार (गला दबाके मारने) से मृत्युको प्राप्तकरूं इस प्रकार उसको चिन्तवन करतेहुये वर्षासमय समीप प्राप्तहुआ ॥ ४१ ॥ श्रावण के शुक्लपक्ष में कर्कराशि में सूर्यनारायण के टिकनेपर

शीघ्रही वहां आयाहुआ कोई शैव प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥ उसने उच्चप्रकार से प्रणामकर कहा कि हे स्वामिन् ! मैं चौदसि में तुम्हारा पूजन करूंगा इससे तुम्हारी आज्ञाहोवै ॥ ४३ ॥ कि जिस प्रकार प्रसन्नतासंयुत मेरे ग्रामको आइये सूतजी बोले कि उस वचन को सुनकर निम्ब महामुनि उस समय प्रसन्नता को प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ व वैसाही होगा यह कहकर उसीक्षण उसको पठाया व कहा कि अपनेशिष्य समेत मैं समय में आऊंगा ॥ ४५ ॥ हे वत्स ! तुम्हारा निस्सन्देह कल्याण करूंगा इसके अनन्तर समय के भलीभांति प्राप्तहोनेपर जब प्रातःकाल प्राप्तहुआ तब उससमय अतिप्रसन्नलोमोंवाले व शोभासंयुक्त तथा दुःशील से संयुत उस शैवने

प्राप्तोमाहेश्वरस्तस्यकोपितत्रागतोद्रुतम् ॥ ४२ ॥ तेनोक्तंप्रणिपत्योच्चैःकरिष्यामितवार्चनम् ॥ चतुर्दश्यामहंस्वामिंस्त्वदादेशोभवेदतः ॥ ४३ ॥ यथागच्छस्वमेग्रामंप्रसादेनसमन्वितः ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वातुष्टिमापन्नस्तदानिम्बो महामुनिः ॥ ४४ ॥ तथेतिचैवमुक्त्वातंप्रेषयामासतत्क्षणात् ॥ आगमिष्याम्यहङ्कालेस्वशिष्येणसमन्वितः ॥ ४५ ॥ करिष्यामिपरंश्रेयस्तववत्सनसंशयः ॥ अथकालेतुसंप्राप्तेचिन्तयित्वाप्रभान्वितः ॥ ४६ ॥ प्रभातसमयेप्राप्ते सशैवःप्रस्थितस्तदा ॥ दुश्शीलेनसमायुक्तः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ४७ ॥ ततोवैगच्छमानस्य तस्यमार्गेव्यवस्थिता ॥ पुण्यानदीसुविख्याता सुरम्यासागरङ्गमा ॥ ४८ ॥ सतान्दृष्ट्वाऽब्रवीद्वाक्यं वत्सशिष्यकरोम्यहम् ॥ भवतासहदेवार्चां सुरम्यायां स्थिरोभव ॥ ४९ ॥ बाढमित्येवसंप्रोक्त्वा संस्थितोस्यास्तटेशुभे ॥ सोपिनिम्बस्तुशिष्यस्य रञ्जितस्सर्वदागुणैः ॥ ५० ॥ सुशिष्यन्तंपरिज्ञाय विश्वासंपरमङ्गतः ॥ स्थगितांतांसमादाय हेममात्रासमुद्भवाम् ॥ ५१ ॥ यागेश्वरसमो

प्रयाण किया ॥ ४६।४७ ॥ तदनन्तर जातेहुये उनके मार्गमें अतिप्रसिद्ध व पवित्र तथा अत्यन्तसुन्दरी व समुद्रमें गमनकरनेवाली नदी विशेषतासे स्थितहुई ॥ ४८ ॥ उन निम्ब महामुनिने उस नदीको देखकर वचन कहा कि हे वत्स, शिष्य ! आपके समेत मैं बहुतही सुन्दरीनदी के समीप देवपूजन करूंगा इससे स्थिर होवो ॥ ४९ ॥ हां यही कहकर वह इसनदीके उत्तम किनारेपै भलीभांति टिका और शिष्यके गुणोंसे सदैव अनुरागवान् वह निम्बभी ॥ ५० ॥ उसको उत्तम शिष्य जानकर बड़े विश्वा-

धृतराष्ट्र नृपति ने उपद्रव के डरसे अपनी सेना को मनाकर पांचों पाण्डवों व सौ संख्यक पुत्रों समेत ॥१७॥ व भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक व वीर द्रोणाचार्य्य तथा उस के पुत्र कृपाचार्य्य से संयुत होकर ॥ १८ ॥ व सौबल, कर्ण तथा परिवार को त्यागे हुये अन्य भूपतियों समेत उन धृतराष्ट्रने उस क्षेत्रमें भ्रमण किया ॥ १९ ॥ वहांपर टिकेहुये उन समस्त महात्मा क्षत्रियों ने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उन समस्त धर्म्मकार्य्यों को किया ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्य मनुष्यों ने माहात्म्य को सुन सुनकर व अतिपुण्यदायक तीर्थों में घूम घूम कर विधिसे स्नान किया व ब्राह्मणोंको उत्तम दानों को दिया तथा अपर नरोंने दीनों व कृपणों तथा विशेषकर तपस्वियों

पञ्चभिःपाण्डवैःसार्द्धं शतसंख्यैस्तथासुतैः ॥ १७ ॥ भीष्मेणसोमदत्तेन बाह्लीकेनसमन्वितः ॥ द्रोणाचार्येणवीरेण तत्पुत्रेणकृपेणच ॥ १८ ॥ सौबलेनचकर्णेन तथान्यैरपिपार्थिवैः ॥ परिवारपरित्यक्तैस्तस्मिन्क्षेत्रेचचारसः ॥ १९ ॥ तेपिसर्वेमहात्मानः क्षत्रियास्तत्रसंस्थिताः ॥ चक्रुर्द्धर्मक्रियाःसर्वाः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २० ॥ स्नानंचक्रुर्विधानेन तीर्थेषुद्विजसत्तमाः॥भ्रान्त्वाभ्रान्त्वासुपुण्येषु श्रुत्वाश्रुत्वाद्विजन्मनाम् ॥२१॥ दानानिचविशिष्टानि ददुरिष्टानिचापराः॥ दीनेभ्यःकृपणेभ्यश्च तपस्विभ्योविशेषतः ॥ २२ ॥ चक्रुःश्राद्धक्रियाश्चान्ये पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ पितॄणांतर्पणं चान्ये तिलमिश्रजलेनच ॥ २३ ॥ अन्येहोमक्रियाभूपाजपमन्येनिरर्गलम् ॥ स्वाध्यायमपरेशान्ताः सम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ २४ ॥ देवतायतनान्यन्ये माहात्म्यसहितानिच ॥ श्रुत्वापूर्वनृपाणांचपूजयन्तिविशेषतः ॥ २५ ॥ बलिदा

के लिये प्रिय पदार्थों को दानदिया ॥ २१ । २२ ॥ व अन्य मनुजों ने पितरोंको उद्देशकर भक्ति से श्राद्ध कर्मों को किया तथा अपर नरोंने तिल से मिलेहुये जलसे पितरों का तर्पण किया ॥ २३ ॥ व अन्य भूपों ने हवनकर्मको किया व अपर नरोंने अप्रतिबन्धक जपको किया तथा और शान्तचित्तवाले मनुष्यों ने भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर वेदपाठ किया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्य भूपोंने माहात्म्य सहित पहलेवाले नृपों की कथाओं को सुनकर बलिदानों से, वस्त्रों से व चन्दन, पुष्प, उपलेपनों से व बढ़ोरने तथा ध्वजदानों से व उत्तम आइनों व सबओर से फूलोंकी मालाओं से व भूषणों से विशेषकर देवमन्दिरों का पूजन किया और उन नृपोंने वहांपर

भक्तिसे गौ, वस्त्र, सुवर्ण, हाथी, घोड़े व रथोंके दानोंसे समस्त ब्राह्मणोंको कृतार्थ करदिया इस प्रकार नृपोत्तम लोग नहाकर व देवताओं तथा द्विजों को पूजकर ॥ २५ । २६ । २७ । २८ ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्र से संयुत होकर विस्मय से घिरेहुये वे सब उस क्षेत्रमें तीर्थों व देवमन्दिरों व ब्राह्मणों तथा प्रशंसित व्रत या कर्मोंवाले तपस्वियों को प्रशंसते हुये अपने सेनानिवास स्थान को चलेगये ॥ २९ । ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नैःसुवस्त्रैश्च गन्धपुष्पोपलेपनैः॥मार्जनैर्ध्वजदानैश्च तथाप्रेक्षणकैःशुभैः ॥ २६ ॥ मण्डनैःपुष्पमालाभिः समन्ताद्विजसत्तमाः॥ हस्त्यश्वरथदानैश्चगोभिर्वस्त्रैश्चकाञ्चनैः॥२७॥कृतार्थाब्राह्मणाःसर्वे कृतास्तैस्तत्रभक्तितः ॥ एवंस्नात्वाथाभ्यर्च्य देवान्विप्रान्नृपोत्तमाः ॥ २८ ॥ धृतराष्ट्रसमायुक्ता जग्मुःस्वशिबिरंततः ॥ शंसन्तोविस्मयाविष्टास्तीर्थान्यायतनानिच ॥ २९ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेद्विजांश्चैव तापसान्संशितव्रतान्॥३०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतेकौरवाःसर्वे पाण्डोःपुत्राश्चशालिनः ॥ तस्मात्स्थानात्ततोजग्मुर्यत्रद्वारवतीपुरी ॥ १ ॥ तत्रगत्वाविवाहन्तु चक्रुःसंहृष्टमानसाः ॥ दुर्योधनस्यभूपस्यभानुमत्यासमंतदा ॥ २ ॥ नानावादित्रघोषेण वेदध्वनियुतेन च ॥ गीतैर्मनोहरैःपाठैर्वन्दिनाञ्चसहस्रशः ॥ ३ ॥ एवंमहोत्सवोजज्ञे तत्रयावद्दिनाष्टकम्॥यादवानांकुरूणांचमिलिता

दो० । दुर्य्योधन को ब्याह भो भानुमती के साथ । तिहतरिवेंअध्यायमहँ वर्णत सोई गाथ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर इस प्रकार वे समस्त सुशोभित कौरव और पाण्डु के पुत्र उस स्थानसे वहांगये जहांपर कि द्वारकापुरी है ॥ १ ॥ वहां जाकर उस समय प्रसन्नमनवाले कुरु पाण्डवों ने दुर्योधन भूपतिका भानुमती के साथ विवाह किया ॥ २ ॥ व उस द्वारकापुरी में इस प्रकार वेदध्वनि से संयुत अनेक भांति के बाजाओं के शब्द व मनोहर गीतों से व हज़ारों वन्दी जनोंके पाठोंसे

कौरवों यादवों के परस्पर मिलने का आठ दिनतक बड़ाभारी उत्सव हुआ ॥ ३ । ४ ॥ उस उत्सव में सूत, मागध, वन्दीलोग, चारण, द्विजेन्द्र व अन्य तार्किक भी कृतार्थ होगये ॥ ५ ॥ तदनन्तर नवम दिनप्राप्त होनेपर भीष्मादिक कौरव, पाण्डवोंने स्नेह समेत श्रीकृष्णजीसे यह कहा ॥ ६ ॥ कि हे पुण्डरीकाक्ष ! स्नेहरूप फँसरी में बँधेहुये हमलोग तुम्हारे व बलराम जीके आश्रय को किसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहते हैं ॥ ७ ॥ तिसपर भी हे माधव ! अपने नगरको अवश्य जाना चाहिये इस लिये बलभद्र समेत तुम हमलोगों को बिदाकरिये ॥ ८ ॥ विष्णुजी बोले कि यहांपर टिकेहुये तुमलोगों को तबतक न वर्ष व्यतीत हुआ न महीना, न पक्षही भया है तो

नांपरस्परम् ॥ ४ ॥ कृतार्थास्तत्रसंजाताः सूतमागधवन्दिनः ॥ चारणाब्राह्मणेन्द्राश्च तथाऽन्येपिचतार्किकाः ॥ ५ ॥ ततस्तुनवमेप्राप्ते दिवसेकुरुपाण्डवाः ॥ भीष्माद्याःपुण्डरीकाक्षमिदमूचुःससौहृदम् ॥ ६ ॥ नवयंपुण्डरीकाक्ष तव रामस्यचाश्रयम् ॥ कथंचित्त्यक्तुमिच्छामःस्नेहपाशनियन्त्रिताः ॥ ७ ॥ तथापिचप्रगन्तव्यं स्वपुरंप्रतिमाधव ॥ बलभद्रसमायुक्तस्तस्मान्नःकुरुमोक्षणम् ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नतावद्वत्सरोजातो नमासःपक्षएवच ॥ स्थितानामत्रयुष्माकंतत्किमौत्सुक्यमागतम् ॥ ९ ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठामःसहिताःकुरुपाण्डवाः ॥ यूयंवयंविनोदेनमृगयाक्षोद्भवेनच ॥ १० ॥ शस्त्रशिक्षाक्रियाभिश्च दमनोनचदन्तिनाम् ॥ तथाभिवाञ्छितैरन्यैःस्नेहोस्तियदिवोमयि ॥ ११ ॥ भीष्मउवाच ॥ उपपन्नमिदंविष्णो यत्त्वयाव्याहृतंवचः ॥ परंशृणुष्वमेवाक्यं यदर्थंह्युत्सुकावयम् ॥ १२ ॥ आनर्त्तविषयेस्माभिरागच्छद्भिस्तवान्तिकम् ॥ दृष्टमत्यद्भुतंक्षेत्रं हाटकेश्वरजंमहत् ॥ १३ ॥ तत्रलिङ्गानिदृष्टानि भूपतीनांमहात्मनाम् ॥

कैसे उत्कण्ठा आगई ॥ ९ ॥ इस लिये यदि तुमलोगों का मुझमें स्नेह है तो कौरवपाण्डव समेत हमलोग व तुम सब शिकार, पांसाके उपजे हुये खेलों से व शस्त्र सीखने के कार्य्यों से व हाथियों को दमन (शान्त) करने से तथा और अभिलाषोंसे समय व्यतीत करते हुये यहीं पर टिकें ॥ १० । ११ ॥ भीष्मजी बोले कि हे विष्णो ! तुमने जो वचन कहा है यह योग्य है परन्तु उस वाक्य को सुनिये जिस लिये हमलोग उत्कण्ठित हैं ॥ १२ ॥ कि तुम्हारे निकट आते हुये हमलोगों ने आनर्तदेश में बड़ेभारी व अतिअद्भुत हाटकेश्वरजी के क्षेत्र को देखा है ॥ १३ ॥ उस क्षेत्र में सूर्य्यवंश, व चन्द्रवंश में उपजे हुये महात्मा भूपतियों के व अन्य

है जो कि अनेकों प्रकार के मन्दिरोंवाले व सत्कारवाले व बडे तेजवाले
महात्माओं के तथा विशेषकर देवताओं, दानवों व मुनियों के थापे हुये लिङ्गों को देखा है जो कि अनेकों प्रकार के मन्दिरोंवाले व सत्कारवाले व बडे तेजवाले
हैं ॥ १४ । १५ ॥ इस लिये हे माधव ! मुख्य कौरवों को व पाण्डवों को वहां पर लिङ्ग थापने के लिये दृढबुद्धि उपजी है ॥ १६ ॥ वे हमलोग वहां शीघ्रही जा-
कर यथाशक्ति से व यथेच्छासे अपने २ लिङ्गों को पृथक् २ थापन करैंगे ॥ १७ ॥ हे अच्युत ! इसी कारण हमलोग शीघ्रही चले अन्यथा मोक्षके सैकडो सेभी तुम्हारे
सङ्ग से न जाते ॥ १८ ॥ इसलिये हे विभो ! चित्तको दृढ़कर आज आज्ञा दीजिये फिर भी तुम्हारे दर्शनकी लालसावाले हमलोग यहां आवैंगे ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णभ-

सूर्यचन्द्रान्वयोत्थानामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ देवानांदानवानाञ्च मुनीनाञ्चविशेषतः ॥ सत्काराणिसुते
जांसि नानाप्रासादवन्तिच ॥ १५ ॥ ततश्चकुरुमुख्यानांपाण्डवानाञ्चमाधव ॥ लिङ्गसंस्थापनार्थाय तत्रजातामतिर्दृ
ढा ॥ १६ ॥ तेवयंतत्रगत्वाशु यथाशक्त्यायथेच्छया ॥ लिङ्गानि स्थापयिष्यामःस्वानिस्वानिपृथक्पृथक् ॥ १७ ॥
एतस्मात्कारणात्तूर्णं चलितावयमच्युत ॥ नवयंतवसङ्गस्यान्यथामोक्षशतैरपि ॥ १८ ॥ तस्मादाज्ञापयस्वाद्य कृत्वाचि
त्तंदृढंविभो ॥ भूयोप्यत्रागमिष्यामस्तवदर्शनलालसाः ॥१९॥ भगवानुवाच ॥ अहंजानामितत्क्षेत्रं सुपुण्यंपापनाश
नम् ॥ तापसैःकीर्तितंनित्यं ममान्यैस्तीर्थयात्रिकैः ॥ २० ॥तस्मात्तत्रसमेष्यामो युष्माभिस्सहितावयम् ॥ लिङ्गसंस्थाप
नार्थाय क्षेत्रदर्शनवाञ्छया ॥२१॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाकौरवास्सर्वे परंहर्षमुपागताः ॥ तथापाण्डुसुताश्चैव येचा
न्येतत्रपार्थिवाः ॥ २२ ॥ तेतुसंप्रस्थिताःसर्वेमिलिताःकुरुपाण्डवाः॥गजवाजिविमर्दैन कम्पयन्तोवसुन्धराम्॥२३॥

गवान् बोले कि अतिपुण्यदायक व पापनाशक उस क्षेत्र को मैं जानताहूं क्योंकि तपस्वियों व अन्य तीर्थयात्रियों ने मुझसे नित्यही कहा है ॥ २० ॥ इसलिये
तुम सबों के समेत हमलोग क्षेत्रदर्शन की इच्छा से व लिङ्ग थापन के लिये वहांपर भलीभांति चलैंगे ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर
समस्त कौरव व पाण्डु के पुत्र और वहांपर अन्य जे भूप थे वे भी परमआनन्दको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ व मिलेहुये उन समस्त कौरव पाण्डवों ने हाथी घोड़ों के मर्दने

से पृथ्वी को कँपातेहुये भलीभांति प्रस्थान किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उस क्षेत्र में पहुँचकर व दूरमें टिककर कौरव तथा मुख्य यादव चमत्कारपुरको गये ॥ २४ ॥ उस क्षेत्र में विनयसंयुत उन्होंने समस्त द्विजों को बुलाकर व विचित्र भूषण, वसनों को देकर कहा ॥ २५ ॥ कि इस क्षेत्र में हम सबलोग भिन्नता से व अपनी शक्ति से मुख्य मन्दिरों के निर्माण करने व लिङ्गस्थापन कर्मको चाहते हैं ॥ २६ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता व दयाकर शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि जिससे कार्य्य वर्तमान होवै ॥ २७ ॥ व तुम्हीं लोग सब कार्य्यों में हवनसम्पादक होगे बाहरका दूसरा द्विज यद्यपि बृहस्पति भी होवै तथापि न होगा ॥ २८ ॥ क्योंकि उस

अथतत्क्षेत्रमासाद्य दूरेकृत्वानिवेशनम् ॥ कौरवायादवामुख्याश्चमत्कारपुरंगताः ॥ २४ ॥ तत्रसर्वान्समाहूय ब्राह्मणान्विनयान्विताः ॥ प्रोचुर्दत्त्वाविचित्राणि भूषणाच्छादनानिच ॥२५॥ वयंसर्वेत्रवाञ्छामो लिङ्गसंस्थापनक्रियाम्॥ कर्तुंप्रासादमुख्यानां पृथक्त्वेनस्वशक्तितः ॥ २६ ॥ तस्मात्कृत्वाप्रसादंनोदयांचद्विजसत्तमाः ॥ आज्ञापयतशीघ्रं हियेनकर्मप्रवर्त्तते ॥ २७ ॥ भविष्यथतथायूयं होतारःसर्वकर्मसु ॥ नचान्योब्राह्मणोबाह्यो यद्यपिस्याद्बृहस्पतिः ॥ २८ ॥ यतोस्माभिःश्रुतावार्ता कीर्त्यमानापुरातनी ॥ विष्णुनातस्यराजर्षेः प्रेतश्राद्धसमुद्भवा ॥ २९ ॥ यथातेनकृतं श्राद्धं पितुःप्रेतस्ययत्नतः ॥ ब्राह्मणानांपुरोन्येषां यथोक्तानामपिद्विजाः ॥ ३० ॥ यथोक्तविधिनातीर्थे नागानांपञ्चमीदिने ॥ श्रावणेमासिनोमुक्तः पितातस्यतथापिसः ॥ ३१ ॥ प्रेतत्वात्सर्पदोषेण संजातोद्विजसत्तमाः ॥ देवशर्मपुरोयावत्तत्कृतंश्राद्धमादरात्॥३२॥तावत्पिताविनिर्मुक्तः प्रेतत्वाद्दारुणाद्द्विजाः॥यदत्रक्रियतेकिञ्चित्कर्मधर्मंद्विजोत्तमाः॥३३॥

राजर्षिके प्रेतभाव से उपजी व विष्णुजी से कहीहुई पुरानी वार्ता को हमलोगोंने सुनाहै ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसप्रकार श्रावण महीने में नागपञ्चमीके दिन उसने यथोक्त विधिसे उस तीर्थ में यथोक्त भी अन्य ब्राह्मणोंके अगाड़ी प्रेत हुये पिता के श्राद्धको यत्नसे किया है तथापि सर्पदोषसे उपजा हुवा उसका वह पिता प्रेतभावसे न छूटा हे द्विजोत्तमो ! जब तक देवशर्माके अगाडी आदर से उस श्राद्धको किया ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ तबतक हे ब्राह्मणो ! दारुण प्रेतभावसे पिता छूटगया

हे द्विजोत्तमो ! इस क्षेत्रमें जो कुछ धर्मकर्म कियाजाता है वह बाह्य याने बाहर के ब्राह्मण से करायाहुआ व्यर्थ होजाता है इसको हमलोग प्रकट जानते हैं उसी से दीनतामें प्राप्तहुये हम विशेषकर प्रार्थना करते हैं ॥ ३३ । ३४ ॥ इससे प्रसन्नता करिये आज्ञादीजिये विलम्ब मत करिये ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर उन ब्राह्मणों ने उसके लिये आपसमें सम्मति किया कि क्याकरने पर पुण्य होगा ॥ ३६ ॥ कितेक बोले कि इनके मध्यमें एकको भी मन्दिर के लिये भूमि को न देवैंगे इसलिये शीघ्रही चलेजावैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि पांच कोसके प्रमाण से यह क्षेत्र व्यवस्थित है वह पूर्व देवतोंके भी मन्दिरों से भलीभांति घिरा है ॥ ३८ ॥

तद्बाह्यं च भवेद्व्यर्थं एतद्विद्मःस्फुटंवयम् ॥ प्रार्थयामोविशेषेणतेनदैन्यंसमागताः ॥ ३४ ॥ प्रसादःक्रियतांतेन चाज्ञांयच्छतमाचिरम् ॥ ३५ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाब्राह्मणास्तेपरस्परम् ॥ मन्त्रंचक्रुस्तदर्थंहिकिंकृतेसुकृतंभवेत् ॥ ३६ ॥ एकेप्रोचुर्नदास्यामः प्रासादार्थंवसुन्धराम् ॥ एतेषामपिचैकस्य तस्माद्गच्छन्तुसत्वरम् ॥ ३७ ॥ पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्षेत्रमेतद्व्यवस्थितम् ॥ पूर्वेषामपिदेवानांप्रासादैस्तत्समावृतम् ॥ ३८ ॥ अन्येप्रोचुर्धनोन्मत्तायूयं च सुखमाश्रिताः ॥ दारिद्र्यार्त्तिं न जानीथ ब्रूततेनभृशंवचः ॥ ३९ ॥ तस्माद्वयंप्रदास्यामएतेषां हि वसुन्धराम् ॥ अर्थसिद्धिर्भवेद्येन भूषास्थानस्यजायते ॥ ४० ॥ तथान्येमध्यमाप्रोचुर्यत्रसाक्षाज्जनार्दनः ॥ स्वयंप्रार्थयतेभूमिंतत्कस्मान्नदीयते ॥ ४१ ॥ तस्माद्येत्रसमायाताःकुरुपाण्डवयादवाः ॥ प्राधान्येनप्रकुर्वन्तु प्रासादांस्तेनचापरे ॥ ४२ ॥ याचतेयत्रगाङ्गेयस्स्वयमेवतथापरः ॥ धृतराष्ट्रःसपुत्रश्च पाण्डवाश्चमहाबलाः ॥ ४३ ॥ लिङ्गसंस्थापनार्थाय निषेधस्त

व धनसे उन्मत्त अन्य नर बोले कि तुमलोग सुखके आश्रितहो और दरिद्रताके दुःखको नहीं जानते हो उसी से बहुवचनको कहतेहो ॥ ३९ ॥ इसलिये हमलोग इनको अवश्य भूमिको देवैंगे जिससे द्रव्यकी सिद्धि होगी व स्थानकी शोभा होगी ॥ ४० ॥ वैसेही अन्य मध्यम मनुष्य बोले कि जहांपर साक्षात् जनार्दनजी आपही भूमिको मांगते हैं तो किसलिये न दीजाय ॥ ४१ ॥ इसलिये यहांपर जो कौरव, पाण्डव व यादव आये हैं वे मुख्यतासे मन्दिरों का निर्माण करैं और अपर नर नहीं ॥ ४२ ॥ जहांपर गङ्गाजीके पुत्र भीष्मजी आपही याचते हैं और अपर पुत्रों समेत धृतराष्ट्र व बड़े बलवान् पाण्डव लिङ्ग थापने के लिये याचना करतेहैं

वहांपर मनाकरना योग्य नहीं है उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर सम्पन्न द्विजोत्तमों से व निर्धनी तथा द्रव्यवानों से भी व अभिलाषी तथा अनभिलाषियोंसे भी उन सब ब्राह्मणों ने सम्मति का निश्चयकर व मिलकर कुरूत्तमों व यादवों तथा पाण्डवों से कहा ॥ ४३ । ४४ । ४५ । ४६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि संमस्त भी भूपों के मन्दिरों से सब ओर यह अतिछोटा क्षेत्र व्याप्त है इसलिये इस समय हमलोग क्याकहैं ॥ ४७ ॥ इसलिये यथा श्रेष्ठ व यथा ज्येष्ठ प्रधानता से टिकेहुये आपलोग अपनी इच्छासे इसी क्षेत्रही के सामने भिन्नतासे अतिमनोहर मन्दिरों का निर्माण करिये इसके अनन्तर हर्ष से संयुक्त होतेहुये धृतराष्ट्र इत्या-

त्रनार्हति ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा प्रतिपन्नद्विजोत्तमैः ॥ ४४ ॥ निर्धनैस्सधनैश्चापिसस्पृहैर्निःस्पृहैरपि ॥ ततःसमेत्यतेस
वै ब्राह्मणाःकुरुसत्तमान् ॥ ४५ ॥ यादवान्पाण्डवान्प्रोचुःकृत्वावैमन्त्रनिश्चयम् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एतत्स्वल्प
तरंक्षेत्रं सर्वेषामपिभूभुजाम् ॥ प्रासादैःसर्वतोव्याप्तंतत्किंब्रूमोधुनावयम् ॥ ४७ ॥ तद्भवन्तःप्रकुर्वन्तुप्राधान्येनयदृच्छ
या ॥ क्षेत्रेत्रैवाभिमुख्येन प्रासादात्सुमनोहरान् ॥४८॥ यथाज्येष्ठंयथाश्रेष्ठं पृथक्त्वेनव्यवस्थिताः ॥ अथहर्षसमायुक्ता
धृतराष्ट्रमुखाःक्रमात् ॥ ४९ ॥ प्राधान्येनयथाश्रेष्ठं चक्रुःप्रासादपद्धतिम् ॥५० ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेना
गरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ धृतराष्ट्रेणभूपेन शतपुत्रान्वितेनच ॥ लिङ्गानांस्थापितंतत्र शतमेकोत्तरंद्विजाः ॥ १ ॥ तथाचपाण्ड
वैःसर्वैः स्थापितंलिङ्गपञ्चकम् ॥ द्रौपद्याचाथकुन्त्याचगान्धार्याचयदृच्छया ॥ २ ॥ भानुमत्याचगौरीणांस्थापितं

दिकोंने मुख्यतासे व श्रेष्ठके क्रमसे प्रासादपद्धतिको किया ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येत्रिसप्ततितमोध्यायः ॥ ७३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । चौहत्तरि अध्याय में वर्णत सोइ चरित्र । जिमिबहु लिङ्गन को थप्यो कुरु पाण्डवन समित्र ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! सौ पुत्रों समेत धृतराष्ट्र भूपति ने उस क्षेत्र में एकसौएक लिङ्गोंका स्थापन किया ॥ १ ॥ वैसेही समस्त पाण्डवों ने पांचलिंगोंको स्थापित किया इसके अनन्तर द्रौपदी, कुन्ती व गान्धारी व

भानुमती इन सबोंने अपनी इच्छासे चारपार्वतीकी मूर्तियों का स्थापन किया इसके अनन्तर विदुर, शल्य, युयुत्सु, कलिङ्ग बाह्लीक, सोमदत्त व पुत्र समेत कर्ण, शकुनी, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य व अश्वत्थामा इन सबोंने परमभक्तिसे वहांपर रुचिरमन्दिर में आश्रित हुयेएक २ उत्तम लिंगको पृथक् २ स्थापन किया ॥ २ । ३ । ४ । ५ ॥ वैसेही उसक्षेत्र में सर्वशक्तिमान् विष्णुजीने बडेऊंचे शिखरवाले मान्दिर को निर्माणकर लिंगको स्थापित कियाहै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर सात्वत साम्ब व बुद्धिमान् बलभद्रजी व अनिरुद्ध, तथा अन्यमुख्य यादवों ने लिंगों की स्थापना की ॥ ७ ॥ व श्रद्धासे संयुत उन चारुदेष्णआदिक रुक्मिणीजीके दश

चचतुष्टयम् ॥ विदुरेणाथशल्येन कलिङ्गेनयुयुत्सुना ॥ ३ ॥ बाह्लीकसोमदत्ताभ्यां कर्णेनाथससूनुना ॥ तथाशकुनिना तत्रद्रोणेनचकृपेणच ॥ ४ ॥ अश्वत्थाम्नापृथक्त्वेन लिङ्गमेकैकमुत्तमम् ॥ स्थापितंपरयाभक्त्यावरप्रासादमाश्रितम् ॥ ५ ॥ तथासंस्थापितंतत्रविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ लिङ्गंप्रासादमाधाय प्रोत्तुङ्गशिखरान्वितम् ॥ ६ ॥ सात्वतेनाथसाम्बेन बलभद्रेणधीमता ॥ प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन तथान्यैर्मुख्ययादवैः ॥ ७ ॥ चारुदेष्णादिभिःपुत्रै रुक्मिण्यादशभिश्चतैः ॥ लिङ्गानांदशकंमुख्यं स्थापितंश्रद्धयान्वितैः ॥ ८ ॥ एवंसंस्थाप्यलिङ्गानि तेसर्वेकुरुपाण्डवाः ॥ यादवाश्चतदाहृष्टाःकृतकृत्यास्तदाभवन् ॥ ९ ॥ तत्रस्थित्वाचिरंकालं दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ धनाढ्यान्ब्राह्मणान्कृत्वा चमत्कारपुरोद्भवान् ॥ १० ॥ दत्त्वातेभ्योवरान्नागान्हयाञ्जात्याननेकशः ॥ सद्ग्रामाणिविचित्राणि क्षेत्राणिसुरभीःशुभाः ॥ ११ ॥ महोक्षांश्चसुवस्त्राणि भूस्थानान्याश्रयांस्तथा ॥ दासींदासांस्तथाभृत्यान्दानानिविविधानिच ॥ १२ ॥ ततआ

पुत्रों ने मुख्य दशलिङ्गों को स्थापित किया है ॥ ८ ॥ इस प्रकार प्रसन्न होतेहुये वे समस्त कुरु,पाण्डव व यादव उन लिंगों की भलीभांति स्थापना कर कृतार्थ होगये ॥ ९ ॥ और वहा बहुतसमय तक टिककर चमत्कारपुरमें उपजेहुये ब्राह्मणों को अनेकप्रकार के दान देकर धनाढ्यकर ॥ १० ॥ व उनके लिये अनेकप्रकारकी जातिवाले उत्तम गज, वाजियों को देकर व उत्तमग्रामों, विचित्रक्षेत्रों व शुभदायक धेनुओं को व बड़े बैलों तथा उत्तमवसनों को व भूमिस्थानों व आश्रयों को व दास,

दासियों नौकरों तथा विविधप्रकार के दानों को दिया ॥ ११ । १२ ॥ तदनन्तर उनसब ब्राह्मणों को बार २ प्रणामकर व पूंछकर अति प्रसन्न होतेहुये वे सभी लोग अपने २ स्थानको चलेगये ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि जिस प्रकार उन धृतराष्ट्र भूपतिने पातकों के विनाशक उस लिंगको स्थापित किया है यह सब तुमलोगों से कहागया ॥ १४ ॥ वैसेही विशेषता से टिकेहुये पाण्डवों व यादवों ने तथा प्रधानतासे टिकेहुये अन्यभूपालों नेभी अलग २ लिंगों को थापन किया ॥ १५ ॥ उन लिङ्गों को जो पुरुष भक्तिभावसे भलीभांति पूजनकरैहै वह अपने चित्तसे चाहेहुये समस्त अभिलाषों को पावैहै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे

मन्त्र्य तान्सर्वान्प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ स्वस्वस्थानंप्रतिसंहृष्टाःप्रजग्मुस्सर्वएवते ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं स्थापितंतेनभूभुजा ॥ यथातद्धृतराष्ट्रेण लिङ्गंपातकनाशनम् ॥ १४ ॥ तथान्यैरपिभूपालैःप्राधान्येनव्यवस्थितैः ॥ पाण्डवैर्यादवैश्चैव पृथक्त्वेनव्यवस्थितैः ॥ १५ ॥ यस्तानिपुरुषःसम्यक्पूजयेद्भक्तिभावतः ॥ सलभेच्चाखिलान्कामान्वाञ्छितान्स्वेनचेतसा ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वमाहात्म्येयादवादिलिङ्गप्रतिष्ठानामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुराकल्पेभगवताचैतत्क्षेत्रमनुत्तमम् ॥ रुद्रेणब्रह्मणेदत्तं तुष्टेनद्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ यदा तु स्थापितंलिङ्गं हाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ देवैःप्रीतेनरुद्रेण प्रदत्तंब्रह्मणे पुनः ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रंतदादत्तं शम्भुनाषण्मुखस्पृहा ॥ रक्षणार्थंहिविप्राणां कलिकालादिदोषतः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितेनेदं स्वीयमादावनुत्तमम् ॥ पित्रादिष्टस्तुगाङ्गेयस्तत्रवा

देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेयादवादिलिङ्गप्रतिष्ठानाम चतुःसप्ततितमोध्यायः ॥ ७४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पछतरिवें अध्यायमें कहत सूत वेदज्ञ । यथा षडानन सदन ढिग देवन कीन्हों यज्ञ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुराने कल्पमें प्रसन्नहोते हुये भगवान् सदाशिवजीने इस अतिउत्तम क्षेत्रको ब्रह्माकेलिये दियाहै ॥ १ ॥ व जब देवताओंने हाटकेश्वर नामक लिंगको स्थापन किया है तब फिर प्रसन्नहुये शिवजी ने ब्रह्मा के लिये दिया है ॥ २ ॥ उसी समय छःमुखवाले महासेन को चाहनेवाले शिवजी ने कलिकालादिक दोषों से रक्षा के लिये इस क्षेत्रको ब्राह्मणों को दियाहै ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर पुरातनसमय ब्रह्मा से प्रार्थना कियेहुये पिताजी से इस अपने अत्युत्तमक्षेत्र प्रति आज्ञापित स्वामिकार्त्तिकेयजीने उस क्षेत्रमें निवास किया ॥ ४ ॥ कृत्तिकानक्षत्र का योग होनेपर कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य स्वामिकार्त्तिकेयजीका दर्शन करै है वह सात जन्मतक धनाढ्य ब्राह्मण होकर वेदों के पार जाने वाला होवैहै ॥ ५ ॥ व आकाश गमनके लिये मनवाला सा महासेनजी का अति मनोहर मन्दिर समस्त संसारभर में अति ऊँचाई से स्थित है ॥ ६ ॥ उस मन्दिर को सुनकर समस्तदेवताओं ने कौतुक से शीघ्रही आकर व अतिपवित्रपुरको जाकर व प्रसन्न होकर अवलोकन किया ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! उन देवताओं ने मन्दिर के उत्तर

समथाकरोत् ॥ ४ ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यःकुर्य्यात्स्वामिदर्शनम् ॥ सप्तजन्मभवेद्विप्रो धनाढ्योवेदपारगः ॥ ५ ॥ महासेनस्यदेवस्य प्रासादंसुमनोहरम् ॥ उच्चैःस्थितंसर्वलोकेयातुकाममिवाम्बरम् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे कौतुकादेत्यसत्वरम् ॥ वीक्षांचक्रुस्ततोगत्वाहृष्टामेध्यतमंपुरम् ॥ ७ ॥ प्रासादस्योत्तरेदेशे प्राच्येदेशेतथाद्विजाः ॥ यज्ञक्रियासमारम्भांश्चक्रुर्विप्रैर्यथोदितान् ॥ ८ ॥ इष्ट्वाचविबुधाःसर्वे दत्त्वातेभ्यश्चदक्षिणाम् ॥ जग्मुस्त्रिविष्टपंहुत्वालब्ध्वातत्स्थानजंफलम् ॥ ९ ॥ ततस्तुदेवयजनंनामतस्यबभूवह ॥ यदन्यत्रशतंकृत्वाक्रतूनांफलमाप्नुयात् ॥ १० ॥ तदत्रैकेनलभते क्रतुनादक्षिणावता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवयज्ञभूमिमाहात्म्यंनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देश में व पूर्वदेशमें ब्राह्मणोंने जैसा कहा वैसेही यज्ञके कर्मोंको भलीभांति प्रारम्भ किया ॥ ८ ॥ व सब देवताओं ने यज्ञकर व हवनकर व उन द्विजों के लिये दक्षिणा को देकर तथा उस स्थानसे उपजेहुये फलको पाकर स्वर्गको गमन किया ॥ ९ ॥ तबसे उस स्थान का नाम देवयजन हुआ अन्यस्थान में सौ यज्ञों को कर जिस फलको प्राप्तहोता है ॥ १० ॥ उसी फलको इस स्थान में दक्षिणावाले एकही यज्ञसे प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदेवयज्ञभूमिमाहात्म्यंनाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। छिहतरिवें अध्याय में दिनकर त्रय परभाव। कहत सूत जहँ कुष्ठ सों छूट्यो है द्विजराव॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर और भी दिनकर का त्रितय है तीनों लोकों में जिनको प्रसन्न होनेपर मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहोताहै॥ १॥ उन तीनों में प्रथम मुण्डीरव दूसरे कालप्रिय व तीसरे मूलस्थान नामक हैं जो कि समस्त रोगोंके विनाशक हैं॥ २॥ वहां प्रत्येक निशाके अन्तमें याने प्रातःकाल सूर्य्यनारायण मुण्डीरमें जाते हैं व मध्याह्न समय कालप्रियमें तथा रात्रिके आनेपर मूल स्थान में जाते हैं॥ ३॥ उस समय जो मनुष्य भक्तिसे एकही दिनकरको देखता है वह दर्शनकर मोक्ष को भलीभांति प्राप्तहोता है इसमें सन्देह नहीं

सूतउवाच॥ तथान्यदपितत्रास्तिभास्करत्रितयंशुभम्॥ यत्तुष्टेत्रिषुलोकेषु मानवोमुक्तिमाप्नुयात्॥ १॥ मुण्डीरंप्रथमंतत्र तथाकालप्रियंपरम्॥ मूलस्थानंतृतीयं च सर्वव्याधिविनाशनम्॥ २॥ तत्रसङ्क्रमतेसूर्य्यो मुण्डीरेरजनीक्षये॥ कालप्रियेचमध्याह्ने मूलस्थानेनिशागमे॥ ३॥ तस्मिन्कालेनरोभक्त्यापश्येदप्येकमेवच॥ कृतेक्षणोनरो मोक्षं समंयातिनसंशयः॥ ४॥ ऋषयऊचुः॥ मुण्डीरःपूर्वदिग्भागे धरित्र्याःश्रूयतेकिल॥ मध्येकालप्रियोदेवो मूलस्थानंतदन्तरे॥ ५॥ तत्कथंतेत्रयस्तत्रसञ्जाताःसूतभास्कराः॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वंनोब्रूहिविस्तरात्॥ ६॥ सूतउवाच॥ अस्तिसागरपर्य्यन्ते विटङ्कपुरमुत्तमम्॥ समुद्रवीचिभिर्नित्यं प्रोच्चप्राकारमण्डितम्॥ ७॥ तत्राभूद्ब्राह्मणःकश्चित्कुष्ठव्याधिसमन्वितः॥ पूर्वकर्म्मविपाकेन यौवनेसमुपस्थिते॥ ८॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वी कुलीनाशी

है॥ ४॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! प्रसिद्धमें धरणी के पूर्व दिशाके भागमें मुण्डीर व मध्य में कालप्रिय देव तथा उन दोनों के बीचमें मूलस्थान सुनेजाते हैं तो उस हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें वे तीनोंदिवाकर किस प्रकार प्राप्तहुये हैं इस समस्त वृत्तान्त को हमलोगों से विस्तार समेत कहिये॥ ५। ६॥ सूतजी बोले कि समुद्र के समीप उत्तम विटङ्कपुर है जोकि नित्यही समुद्र की लहरियों से बड़ी ऊंची छहरदिवाली से शोभित है॥ ७॥ उस नगर में कोई ब्राह्मण भलीभांति युवावस्था के प्राप्त होनेपर पूर्वजन्म के कर्मसे कुष्ठरोग से संयुत होगया॥ ८॥ उस द्विज की स्त्री कुलीन व शीलसे शोभित तथा पतिव्रता थी जोकि वैसे (कुष्ठी) हुये

पति को बहुधा कामदेव के समान देखतीथी ॥ ६ ॥ व विचित्र तथा बड़े मूल्यवाली भी औषधियों व उसके लिये उपलेपनों व अनेक प्रकार के पथ्य पदार्थोंको लाती थी ॥ १० ॥ व उस पतिके लिये निरन्तर आदरसमेत उत्तम वैद्यों को लाती थी तथापि उसके शरीर से उपजाहुआ गुण न हुआ ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह ज्यों ज्यों औषधियों को ग्रहण करताथा त्यों त्यों समस्त अंगों में कुष्ठसे व्यापित होताथा ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार वर्तमान होतेहुये उस उत्तमद्विजके घरमें कोई पथिक पाहुन आया जोकि श्रमसे सयुतथा ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर अनजानेभी द्विजको घरमें प्राप्त देखकर उस कुष्ठीकी पतिव्रता प्यारीने उत्तमभक्तिसे भले

लमण्डना॥तथाभूतंपतिंप्रायःसापश्यतियथास्मरम्॥६॥औषधानि विचित्राणि महार्घ्याण्यपि चाददे।तदर्थमुपलेपां
श्च पथ्यानिविविधानि च ॥ १० ॥ तथाभिषग्वरान्नित्यमानिनीय च सादरम् ॥ तदर्थेनगुणस्तस्य तथापिस्याच्छरीर
जः ॥ ११ ॥ यथायथासगृह्णाति भेषजानि द्विजोत्तमाः ॥ कुष्ठेनसर्वगात्रेषु व्याप्यते च तथातथा ॥ १२ ॥ अथैवंवर्त्तमा
नस्य तस्यविप्रवरस्य च ॥ गृहेतिथिःसमायातः कश्चित्पान्थःश्रमान्वितः ॥ १३ ॥ अथविप्रंगृहप्राप्तं दृष्ट्वा तस्यसती
प्रिया ॥ अज्ञातमपिसद्भक्त्या सूपचारैरतोषयत ॥ १४ ॥ अथतंस्नानमाचान्तं कृताहारंद्विजोत्तमम् ॥ विश्रान्तं शय
नेविप्रः प्रोवाच स गृहाधिपः ॥ १५ ॥ तेजोन्वितं यथाभानुं रूपौदार्य्यगुणान्वितम् ॥ यौवनेवर्त्तमानं च मूर्त्तकाममिवाप
रम् ॥ १६ ॥ कुष्ठ्युवाच ॥ कुतआगम्यते विप्र कुत्रयासिवदाधुना ॥ एवंलावण्ययुक्तोपि किमेकाकी यथार्तिभाक् ॥
१७ ॥ पथिकउवाच ॥ अस्तिकान्तीपुरीनामपुरन्दरपुरीयथा ॥ सुस्थितैःसेवितानित्यं जनैर्धर्म्मव्रतान्वितैः ॥ १८ ॥

उपचारों से सन्तुष्ट किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर वह गृहाधिपति ब्राह्मण स्नान,आचमन,भोजन किये व शय्यापै सरतायेहुये उस द्विजोत्तमसे बोला ॥ १५ ॥ जोकि सूर्य्य के समान तेजसे संयुत व रूप तथा उदारतासे समन्वित व दूसरे कामके नाईं मूर्त्तिमान् तथा युवावस्थामें वर्तमानथा ॥ १६ ॥ कुष्ठी बोला कि हे द्विज ! इससमय कहांसे आतेहो व कहां जाते हो इसको कहिये व इस प्रकार की सुन्दरतासे संयुत भी क्यों अकेले होकर पन्थके क्लेश को भोगतेहो ॥ १७ ॥ पथिक बोला कि

इन्द्रपुरीके सदृश कान्तीनामक पुरी है जोकि धर्म व व्रतोंसे संयुत तथा भलीभांति टिकेहुये मनुष्यों से निरन्तर सेवित है ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! उसी पुरीमें निवास किये गृहस्थाश्रमवालाभी मैं वैसेही करालकुष्ठरोग से ग्रसित होगया जैसे कि तुमहो ॥ १९ ॥ तदनन्तर तबतक मैंने स्कन्दनामकपुराणमें सुना कि समस्त रोगों का विनाशक भूमि में भास्करत्रितय है ॥ २० ॥ तदनन्तर खारी, खट्टी, कसैली, कडुई व तीखी दवाइयोंसे बहुत समय तक दुःखित होकर मैं निर्वेदको प्राप्तहुआ ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त चित्तमें निश्चयकर व बहुतसा धन लेकर मैं मुण्डीरस्वामीके यहां जाकर व उन्हीं के निकट टिकता भया ॥ २२ ॥ तदनन्तर मैं नित्यही प्रातःकाल

तस्यामहंकृतावासो गृहस्थाश्रमवानपि ॥ ग्रस्तःकुष्ठेनरौद्रेण यथात्वंद्विजसत्तम ॥ १९॥ ततःश्रुतंमयातावत्पुराणेस्कान्दसञ्ज्ञिते ॥ भास्करत्रितयं भूमौ सर्वव्याधिविनाशनम् ॥२० ॥ ततोनिर्वेदमापन्नो भेषजैःक्लेशितश्चिरम् ॥ क्षारैश्चाम्लैःकषायैश्च कटुकैरथतिक्तकैः ॥ २१ ॥ ततोविनिश्चयं चित्ते कृत्वादायधनंमहत् ॥ मुण्डीरस्वामिनंगत्वा स्थितस्तस्यैवसन्निधौ ॥ २२ ॥ ततःप्रातःसमुत्थाय नित्यंपश्यामितंविभुम्॥पूजयामिस्वशक्त्या च प्रणमामि ततःपरम् ॥२३॥ सूर्य्यवारेविशेषेण निराहारोजितेन्द्रियः ॥ करोमिजागरंरात्रौगीतवादित्रनिस्वनैः ॥ २४ ॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेतंप्रणम्यदिनाधिपम् ॥कालप्रियंततःपश्चाच्छ्रद्धयापरयायुतः॥ २५॥ तेनैवविधिनाविप्रतस्यापिदिवसस्पतेः ॥ पूजांकरोमिमध्याह्ने श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २६ ॥ ततोपिवत्सरस्यान्ते तंप्रणम्याथ शक्तितः ॥ मूलस्थानं गतोदेवमपरस्यांदिशिस्थितम् ॥ २७॥ तेनैवविधिनापूजा तस्यापिविहितामया ॥ सन्ध्याकालेद्विजश्रेष्ठ यावत्संवत्सरंस्थितः ॥ २८ ॥ ततःसं

उठकर उन व्यापक मुण्डीरस्वामीको देखता व अपनी शक्तिसे पूजता था उसके उपरान्त प्रणाम करताथा ॥ २३ ॥ व रविवारको इन्द्रियोंको जीतेहुये व निराहार होकर मैं रात्रि में गाने बजाने के शब्दोंसे जागरण करताथा ॥ २४ ॥ तदनन्तर हे द्विज ! वर्षके अन्ततक उन मुण्डीर दिननायक को प्रणामकर उसके पीछे परम श्रद्धा से संयुत मैं कालप्रिय को प्रणामकर व श्रद्धा से पवित्र चित्तकरके उसी विधिसे मध्याह्न में उन्ही दिननायक का पूजन करता था ॥ २५ । २६ ॥ इसके अनन्तर वर्षके अन्त में शक्तिसे उन कालप्रियजीको प्रणामकर उसस्थान सेभी अन्यदिशामें टिकेहुये मूलस्थानदेवजीके निकटगया ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम! वर्षपर्य्यन्त टिके

हुये मैंने सन्ध्यासमय में उसी विधि से उन मूलस्थान काभी पूजन किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे द्विज ! वर्षके अन्तमें हँसतेहुये भास्करजी भलीभांति आकर स्वप्न में
मुझसे अतिप्रसन्नचित्तसे बोले ॥ २९ ॥ कि हे द्विज ! भक्तिसे भलीभांति आराधनही से उपजेहुये इस कर्मसे मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्नहूं इसलिये तुम्हारा कुष्ठ
नष्ट होजावै ॥ ३० ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम थकेहुये हो इसलिये शीघ्रही अपने घरको जावो व तुम्हारे लिये उत्कंठा समेत टिकेहुये जे समस्त बन्धुजनहैं उनको देखो ॥ ३१ ॥
पुरातनसमय तुमने महात्माब्राह्मण के सुवर्णको हरलिया है उसी कर्म के फलसे कुष्ठरोग समीप स्थित हुआ ॥ ३२ ॥ हे द्विज ! इससमय तुम्हारे लिये प्रसन्न होतें

वत्सरस्यान्ते स्वप्नेमांभास्करोऽब्रवीत् ॥ समेत्यप्रहसन्विप्र सम्प्रहृष्टेनचेतसा ॥ २९ ॥ परितुष्टोस्मितेविप्र कर्म्मणाने
नभक्तितः ॥ समाराधनजेनैव तस्मात्कुष्ठंप्रयातु ते ॥ ३० ॥ गच्छशीघ्रंद्विजश्रेष्ठ श्रान्तोसिनिजमन्दिरम् ॥ पश्य बन्धु
जनंसर्वं सोत्कण्ठंत्वत्कृतेस्थितम् ॥ ३१ ॥ त्वयाहृतंपुरारुक्मंब्राह्मणस्यमहात्मनः ॥ तेनकर्म्मविपाकेन कुष्ठव्याधिरुप
स्थितः ॥ ३२ ॥ समयानाशितस्तुभ्यं प्रहृष्टेनाधुना द्विज ॥ एतज्ज्ञात्वा न कर्त्तव्यं सुवर्णाहरणं पुनः ॥ ३३ ॥ दृश्यन्तेये
नरा लोके कुष्ठव्याधिसमाकुलाः ॥ सुवर्णाहरणंसर्वैस्तैः कृतंपापकर्म्मभिः ॥ ३४ ॥ तस्माद्देयंयथाशक्त्या न स्तेयं कन
कम्बुधैः ॥ इच्छद्भिःपरमंसौख्यं स्वशरीरस्यशाश्वतम् ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ अहंचवि
स्मयाविष्टः प्रोत्थितःशयनाद्द्रुतम् ॥ ३६ ॥ यावत्पश्यामिदेहंस्वंकुष्ठव्याधिपरिच्युतम् ॥ द्वादशार्कप्रभंदिव्यंयथात्वं
पश्यसिद्विज ॥ ३७ ॥ तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्रभक्त्यातद्भास्करत्रयम् ॥ अनेनविधिनापश्य येनकुष्ठंप्रणश्यति ॥ ३८ ॥

हुये मैंने उस रोगको नाशकिया इसको जानकर फिर सुवर्णका आहरण न करना ॥ ३३ ॥ क्योंकि संसार में जो मनुष्य कुष्ठरोग से संकुल देख पड़ते हैं उन सब पाप-
कर्मियोंने सुवर्णका आहरण कियाहै ॥ ३४ ॥ इसलिये निरन्तर अपने शरीरको परमसुख चाहनेवाले पण्डितोंको यथाशक्तिसे सुवर्ण देनाचाहिये चुराना न चाहिये ॥
३५ ॥ हजारकिरणोंवाले दिवाकरजी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये और विस्मय से व्याप्त मैं भी शीघ्रही शय्या से उठपड़ा ॥ ३६ ॥ हे द्विज ! जबतक अ
पने शरीर को देखूं तबतक जैसा तुम देखते हो वैसाही कुष्ठरोग से परिमुक्त व बारहसूर्योंके समान प्रभावान् व दिव्य होगया ॥ ३७ ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! तुम

भी भक्ति से व इसी विधि से उस भास्करत्रयके दर्शन करो जिससे कुष्ठ नाशहोवै ॥ ३८ ॥ जब समस्तरोगों के नाशने के स्वामी ये तीनदिनकर टिके हैं तब औषधियों से क्या है व कटु वस्तुओं से मिलाये हुये भोजनों से भी क्या है याने कुछनहीं ॥ ३९ ॥ हे द्विज ! तुम्हारा कल्याण होवै निज गृहकी नाईं आज तुम्हारे गृह में विश्राम कियाहुआ मैं इस समय अपनी पुरी प्रति जाऊंगा ॥ ४० ॥ वह कुष्ठभागी द्विज उस पथिकसे इसप्रकार कहागया तदनन्तर दुःखसंयुत होकर उसने अपनीस्त्रीके मुखको देखा ॥ ४१ ॥ वह बोली कि हे प्यारे ! इस पथिकने तुमसे योग्य कहाहै इसलिये वहां शीघ्रही चलिये जहांपर कि तीनों भास्करहैं ॥४२॥ हे विभो !

किमौषधैःकिमाहारैः कटुकैरपियोजितैः ॥ सर्वव्याधिप्रणाशेशेस्थितेस्मिन्भास्करत्रये ॥ ३९ ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्या मिसाम्प्रतंस्वांपुरींप्रति ॥ गृहेद्यतवविश्रान्ते यथाविप्रनिजेगृहे ॥ ४० ॥ एवमुक्तःसपान्थेन तेनविप्रःसकुष्ठभाक् ॥ वीक्षां चक्रेततोवक्रं स्वपत्न्यादुःखसंयुतः ॥४१॥ साब्रवीद्युक्तमुक्तंते पान्थेनानेनवल्लभ ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगच्छ यत्रतद्भास्कर त्रयम् ॥ ४२ ॥ अहंत्वयासमंतत्र शुश्रूषानिरतासती ॥ गमिष्यामिनसन्देहस्तस्माद्गच्छद्रुतंविभो ॥ ४३ ॥ एवमुक्त स्तयासोथ वित्तमादायभूरिशः ॥ प्रस्थितःकान्तयासार्द्धंमुण्डीरस्वामिनंप्रति ॥ ४४ ॥ प्रतिज्ञयागमिष्यामि दृष्ट्वात द्देवतात्रयम् ॥ मुण्डीरंकालनाथंच मूलस्थानंचभास्करम् ॥४५॥ ततःकृच्छ्रेणमहताकुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ हाटकेश्व रजेक्षेत्रे सम्प्राप्तःसद्विजोत्तमः ॥ ४६ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्क्षेत्रंतापसौघेनसेवितम् ॥ निर्विण्णःकुष्ठरोगेण पथिश्रान्तोब्रवी त्प्रियाम् ॥ ४७ ॥ अहंनिर्वेदमापन्नो रोगेणाथबुभुक्षया ॥ मुण्डीरस्वामिनंयावन्नशक्नोमिप्रसर्प्पितुम् ॥ ४८ ॥ तस्मा

सेवामें लगीहुई मैं तुम्हारे साथ निस्सन्देह वहांको चलूंगी इसलिये शीघ्रही चलिये ॥४३॥ इसके अनन्तर उस स्त्रीसे इस प्रकार कहेहुये उस द्विजने बहुतसे धनको लेकर स्त्री समेत मुण्डीरस्वामीप्रति इस प्रतिज्ञासे प्रस्थानकिया कि उस देवत्रय याने मुण्डीर व कालनाथ तथा मूलस्थान भास्कर को देखकर आऊंगा ॥ ४४ । ४५ ॥ तदनन्तर कुष्ठरोग से बहुतही आकुल वह द्विजोत्तम बड़ेक्लेशसे हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ व उस बड़ेभारी क्षेत्रको तपस्वियों के समूह से सेवित देखकर कुष्ठरोग से वैराग्य में प्राप्त व थकाहुआ वह विप्र पन्थ में प्यारी से बोला ॥ ४७ ॥ कि रोगसे व क्षुधासे निर्वेद को प्राप्त मैं मुण्डीरस्वामी तक चलने के लिये समर्थ

नहीं हूं ॥ ४८ ॥ इसलिये हे कान्ते ! यहींपर मैं अपने शरीरको निस्सन्देह त्यागूंगा तुम अच्छे साथको पाकर अपने घरको चलीजावो ॥ ४९ ॥ स्त्री बोली कि हे महा भाग, कान्त ! तुम्हारे बिन भोजन किये मैंने कभी भोजन नहीं कियाहै व एकान्त मेंभी तुम्हारे जागतेहुये मैं नहीं सोयी हूं ॥ ५० ॥ इसलिये इस महाक्षेत्र को भलीभांति प्राप्तहोकर व परलोक के लिये व्यवस्थित हुये तुमको त्यागकर मैं कैसे घरको जाऊं ॥ ५१ ॥ व तुमसे विहीन मैं उन भाइयों व गुरुओं तथा अन्य मित्रों कोभी किस प्रकार मुखको दिखाऊंगी ॥५२॥ इसलिये हे नाथ ! स्नेहरूपी पाशसे पुष्टबँधी हुई मैं तुम्हारे साथ अग्निमें पैठूंगी यह सत्यसे अपनी शपथ करतीहूं ॥५३॥ हे महामते !

दत्रैवदेहंस्त्वं विहास्यामिनसंशयः ॥ त्वंगच्छस्वगृहंकान्तेसार्थमासाद्यशोभनम् ॥ ४९ ॥ पत्न्युवाच ॥ अभुक्तेत्वयिनो भुक्तंकदाचित्कान्तवैमया ॥ एकान्तेपिमहाभाग नसुप्तंजाग्रतित्वयि ॥ ५० ॥ तस्मादेतन्महाक्षेत्रं सम्प्राप्यत्वांव्यव स्थितम् ॥ परलोकायसन्त्यज्य कथंगच्छाम्यहंगृहम् ॥ ५१ ॥ दर्शयिष्येमुखंतेषां त्वयाहीनात्वहंकथम् ॥ बान्धवानांगु रूणां च अन्येषांसुहृदामपि ॥ ५२ ॥ तस्मात्त्वयासमन्नाथप्रवेश्यामिहुताशनम् ॥ स्नेहपाशविनिर्बद्धा सत्येनात्मान मालभे ॥ ५३ ॥ यावन्तस्तवसञ्जाता उपवासामहामते ॥ तावन्तश्चतथास्माकं कथंगच्छामितद्गृहम् ॥ ५४ ॥ एवं तस्याविदित्वास निश्चयंब्राह्मणस्तदा ॥ चितिंकृत्वातुदाहार्थंतयासार्द्धंततोविशत् ॥ ५५ ॥ भास्करंमनसिध्यात्वाया वदग्निंसमाददे ॥ तावत्पश्यतिचाग्रस्थंसुदीप्तंपुरुषत्रयम् ॥ ५६ ॥ तत्क्षणादभवद्विप्रो भास्करत्रयदर्शनात् ॥ कुष्ठव्या धिविनिर्मुक्तो युवाकान्तिसमन्वितः ॥ ५७ ॥ एवमेवसुविख्यातं भास्करत्रयमत्रच ॥ दर्शनादपिसर्वेषां जनानामि

जितने उपवास तुमकोहुये हैं उतनेही हमकोहुये हैं तो किस प्रकार घरको जाऊं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण उस स्त्री के निश्चयको जानकर व उससमय चिता को बनाकर तदनन्तर जलने के लिये उसस्त्रीसमेत बैठगया ॥ ५५ ॥ व जबतक उसने मनमें दिनकर का ध्यानकर अग्नि को लिया तभीतक आगे टिकेहुये बहुतही प्रकाशवाले तीनपुरुषोंको देखा ॥ ५६ ॥ व तीनोंपुरुषों के देखने से उसीक्षण वह ब्राह्मण कुष्ठरोग से छूटकर युवा व शोभासे संयुत होगया ॥ ५७ ॥

ऐसाही इस क्षेत्रमें दिनकरत्रय अति प्रसिद्धहै जोकि दर्शन सेभी समस्तमनुष्योंके लिये प्रिय पदार्थों का दायकहै ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभास्करत्रयमाहात्म्यं नामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। सतहत्तरि अध्याय महं बरणत सूत सचाव। कुनरनारि पावनकरन शिवशिर तीर्थप्रभाव ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उरा क्षेत्रमें स्त्री समेत वे वृषभध्वज भगवान् वेदी के बीच में टिकेहुये विद्यमान है जोकि मनुष्यों के पातकोंके विनाशक हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय ब्रह्माने तपस्या की है व उन

ष्टदायकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रे भास्करत्रयमाहात्म्यंषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसभगवांस्तत्र सभार्य्योवृषभध्वजः ॥ विद्यतेवेदिमध्यस्थो लोकानांपापनाशनः ॥ १ ॥ ब्रह्मणा तुतपस्तप्तं पुराचैवद्विजोत्तमाः ॥ तस्यप्रसन्नोभगवान् वरदोवृषनायकः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्मणाकतमेस्थाने तत्रसूतकृतंतपः ॥ बालखिल्यैश्चसर्वैस्तै र्मुनिभिःशंसितव्रतैः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यावायव्यदिग्भागे हरवेद्याद्विजोत्तमाः ॥ सम्यक्छ्रद्धाप्रयत्नेन ब्रह्मणाविहितंतपः ॥ ४ ॥ पश्चिमेबालखिल्यैश्च जपस्नानपरायणैः ॥ तत्राश्चर्य्यमभूद्यद्वै पूर्वंब्राह्मणसत्तमाः ॥ ५ ॥ आश्रमेचतुरास्यस्य तद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ तत्रदुश्चारिणीकाचिद्रात्रौब्राह्मणवंश

के ऊपर भगवान् वरदायक वृषभध्वज प्रसन्न हुये हैं ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत जी ! उस क्षेत्रमें ब्रह्माने किसस्थानपै तप किया है व प्रशंसित व्रत या कर्मों वाले उन समस्तबालखिल्यामुनियोंने किस स्थानमें तपस्या की है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस सदाशिवजी की वेदीसे वायव्यदिशा के भाग में ब्रह्माने भलीभांति श्रद्धाके उपाय से तपस्या किया है ॥ ४ ॥ व जप तथा स्नान में लगेहुये बालखिल्यामुनियों ने उस वेदी के पश्चिम में तपकिया है हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय में उस क्षेत्रमें चारमुखवाले ब्रह्माके आश्रम में जो आश्चर्य्य हुआ है उसको मैं इस समय निश्चयकर तुम लोगोंसे कहूंगा कि वहांपर

ब्राह्मण वंश में उपजी हुई कोई दुष्ट आचरणों वाली स्त्रीथी जोकि प्रसन्नमन वाली व पति व माता तथा अन्य भाइयों सेभी न जानीहुई कृष्णपक्ष को प्राप्तहोकर निर्जनस्थानमें देवदत्तनामक प्रिय को पाकर सदैव रमण करतीथी हे ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर किसी समय उस स्थानमें टिकी व जार याने उपपति से संयुत उस स्त्रीको किसीने देखा व निज पति रो बतला दिया इसके अनन्तर क्रोधसे संयुत व अति निठुर उसके इस पतिने ॥ ५ । ६ । ७ । ८ । ९ ॥ उस स्त्रीकी वचनोंसे निन्दा किया और प्रहारों सेभी ताडन किया इसके अनन्तर धृष्टता को प्राप्तहोकर आंसुवों से पूर्णनेत्रोंवाली व दीन तथा स्त्री स्वभाव में समाश्रित व अञ्जलिपुटों

जा ॥ ६ ॥ देवदत्तंसमासाद्य वल्लभंरमतेसदा ॥ अज्ञातापतिनामात्रा तथान्यैरपिबान्धवैः ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षंसमासाद्य विजनेहृष्टमानसा ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य दृष्टासाकेनचिद्द्विजाः ॥ ८ ॥ तत्रस्थाजारसंयुक्ता स्वभर्त्तुश्चनिवेदिता ॥ अथासौकोपसंयुक्तस्तस्यभर्त्तासुनिष्ठुरः ॥ ९ ॥ वाक्यैस्तांगर्हयामास प्रहारैश्चाप्यताडयत् ॥ अथसाधार्ष्ट्यमासाद्य स्त्रीस्वभावंसमाश्रिता ॥ १० ॥ प्रोवाचवाष्पपूर्णाक्षी दीनाञ्जलिपुटास्थिता ॥ किंमांदुर्जनवाक्येन संताडयसिनिष्ठुर ॥ ११ ॥ प्रहारैर्दोषनिर्मुक्तां त्वत्पादप्रणतांविभो ॥ अहंत्वांशपथंकृत्वा भक्षयित्वाथवाविषम् ॥ १२ ॥ प्रविश्यहव्यवाहंवा करिष्येप्रत्ययान्वितम् ॥ अथतांब्राह्मणःप्राहयदित्वंपापवर्जिता ॥ १३ ॥ पुरतोदेवविप्राणां कुरुदिव्यगृहंस्वयम् ॥ सातथेतप्रतिज्ञाय साहसेनसमन्विता ॥ १४ ॥ दिव्यगृहंततश्चक्रे यथोक्तविधिनासती ॥ शुद्धिंप्राप्ताचसर्वेषां बन्धूनांचद्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥ पुरतश्चगुरूणांच देवानामपिपापकृत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्याःसाधुवादोमहानभूत् ॥ १६ ॥

को जोड़े खड़ीहुई उस स्त्रीने कहा कि हे निष्ठुर विभो ! दोषोंसे छूटी व तुम्हारे पावों में प्रणाम करतीहुई मुझको तुम दुर्जन के वाक्यों से व प्रहारों से क्यों अति ताडन करते हो मैं सौगन्द कर या विषखाकर या अग्नि में पैठकर तुमको विश्वाससे संयुत करूंगी इसके अनन्तर ब्राह्मण ने उस से कहा कि यदि तू पाप रहित है ॥ १० । ११ । १२ । १३ ॥ तो देवताओं व द्विजों के अगाडी आपही अग्नि आदिक देव सम्बन्धी सौगन्द कर वैसाही करूंगी यह प्रतिज्ञाकर तदनन्तर साहस से संयुत उस पापकारिणी व कुलटा स्त्रीने यथोक्त विधिसे दिव्यगृह याने अग्निदेवमें शपथ किया और समस्त भाइयों व ब्राह्मणों तथा गुरुओं व देवताओं केभी आगे पवित्रता

को प्राप्तहुई इसी अवसर में उस का बहुत प्रशंसित वाद हुआ ॥ १४ । १५ । १६ ॥ सब मनुष्यों ने वैसेही अति निन्दित धिक्कारशब्द को पतिको दिया कि बड़े विस्मय की बात है यह द्विजों में नीच व दुष्ट व पाप आचरण वाला है ॥ १७ ॥ जो पापहीन धर्मपत्नीको झूंठेदोपसे युक्त करता है हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर सब मनुष्यों से इस प्रकार निन्दित व बहुतही दुःखित हो उसने अग्निको उद्देशकर क्रोध किया तदनन्तर बार २ उस निन्दित द्विजने अग्निको शापदेने के लिये बुद्धिकिया व कठोरवचनको कहा कि उपपति के साथ सङ्गकी हुई इस स्त्रीको मैंने आपही देखा है ॥ १८ । १९ । २० ॥ हे अग्ने ! इस अत्यन्तपापिनी को तुमने क्योंनहीं सब

धिक्छब्दश्चतथापत्युः सर्वैर्दत्तःसुगर्हितः ॥ अहोपापसमाचारो दुष्टोयंब्राह्मणाधमः ॥ १७ ॥ अपापांधर्म्मपत्नीं यो मिथ्यादोषेणयोजयेत् ॥ एवंसनिन्द्यमानस्तु सर्वलोकैर्द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ कोपंचक्रेततोवह्निं समुद्दिश्यसुदुःखितः ॥ शापंदातुंमतिंचक्रे ततोवह्नेश्चसद्विजः ॥ १९ ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं निन्द्यमानःपुनःपुनः ॥ मयास्वयंप्रदृष्टेयं जारेणसहसङ्गता ॥ २० ॥ त्वयावह्नेसुपापेयंनकस्माद्भस्मसात्कृता ॥ तस्मात्त्वांपापकर्म्माणमसत्यंपक्षपातिनम् ॥ २१ ॥ असन्दिग्धंशपिष्यामि रौद्रशापेनसाम्प्रतम् ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासक्रोधस्यद्विजन्मनः ॥ सप्तार्चिर्भयसन्त्रस्तःकृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ २३ ॥ अग्निरुवाच ॥ नैषदोषोममब्रह्मन्यन्नदग्धातवप्रिया ॥ कृतागसापिमेवाक्यं शृणुष्वात्रस्फुटेरितम् ॥ २४ ॥ अनयापरकान्तेन कृतःसहसमागमः ॥ चिरंकालंद्विजश्रेष्ठत्वयाज्ञाताद्यवासरे ॥ २५ ॥ परंयस्माद्विशुद्धैषामयादग्धानसाद्विज ॥ कारणंतेचतद्वच्मिश्रृणुष्वैकमनाःस्थितः ॥ २६ ॥ यत्रान

भस्मकिया इसलिये झूंठे व पक्षपाती पापकर्मवाले तुमको मैं इस समय निस्सन्देह घोरशापसे शापदूंगा ॥ २१ । २२ ॥ सूतजी बोले कि क्रोध समेत उस द्विज के उस वचन को सुनकर अग्निदेवजी भयभीत हो हाथजोड़ उससे बोले ॥ २३ ॥ अग्नि बोले कि हे ब्रह्मन् ! अपराध की हुईभी तुम्हारी प्यारी नहीं जली यह मेरा दोष नहीं है इस विषयमें प्रकट कहीहुई मेरी वाक्यको सुनिये ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसने बहुत समयतक पराये पति के साथ सङ्गम कियाहै परन्तु तुमने आजही जाना ॥ २५ ॥ हे विप्रजी ! जिसलिये कि यह विशेषकर शुद्धथी उसी से मैंने उसको न जलाया उस कारण को तुमसे कहताहूं एक मनवाले स्थित होकर याने

एकही ठिकाने चित्तकर सुनिये ॥ २६ ॥ हे द्विज! पराये कान्त के साथ जहांपर इसने रमण किया है उसी मन्दिर में रुद्रशीर्ष ब्रह्माजी विशेषता से टिके हैं ॥ २७ ॥ उस मन्दिर में उस समय पराये पति के साथ विचित्रप्रकारसे रमणकर तदनन्तर ब्रह्माके मस्तक पै भलीभाति टिकेहुये सदाशिवजी को देखा ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त आगे प्राप्तहुये उस कुण्ड में अंग को प्रक्षालन करती है उसीसे स्वच्छ मुसक्यानवाली पापको किये हुईभी यह पवित्र हो जाती है ॥ २९ ॥ पुरातनसमय वहांपर पापकारी व काम से विकलभी लोकों के पितामह (बाबा) वह ब्रह्माजी सतीका मुख देखकर पापहीन होगये ॥ ३० ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! इसविषय में मेरा कुछ भी

याकृतःसङ्गःपरकान्तेनवैद्विज ॥ तस्मिन्नायतनेब्रह्मारुद्रशीर्षोऽव्यवस्थितः॥ २७॥ तत्रकृत्वारतंचित्रंपरकान्तसमंतदा ॥ पश्यतेस्मततोरुद्रंब्रह्ममस्तकसंस्थितम् ॥ २८ ॥ ततःप्रक्षालयत्यङ्गं कुण्डेतत्राग्रतःस्थिते॥कृतपापापितेनैषा शुद्धिंया तिशुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तत्रपूर्वंविपाप्माभूद् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ सतीवक्त्रंसमालोक्यकामार्तोपिसपापकृत् ॥३०॥ तस्मान्नास्त्यत्रमेदोषःस्वल्पोपिद्विजसत्तम ॥ रुद्रशीर्षप्रभावोयंतस्यकुण्डोदकस्यच ॥ ३१ ॥ तस्मादेनांसमादाय शु द्धांपापविवर्जिताम् ॥ गृहंगच्छद्विजश्रेष्ठ सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यामयासहसादृष्टास्वयमेवहु ताशन ॥ परकान्तेनतांनाद्य शुद्धामपिगृहंनये ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वाचद्विजश्रेष्ठस्तांत्यक्त्वाचशुभव्रतः ॥ जगामस्वगृहं पश्चाज्जग्मुश्चैवनरागृहान् ॥ ३४ ॥ सापितेनपरित्यक्ता पतिनाहृष्टमानसा ॥ ज्ञात्वातत्तीर्थमाहात्म्यं वैश्वानरमुखेरि तम् ॥ ३५ ॥ तेनैवपरकान्तेन विशेषेणरतिक्रियाम् ॥ तस्मिन्नायतनेचक्रे कुण्डेतोयावगाहनम् ॥ ३६ ॥ अथान्ये

दोष नहीं है किन्तु रुद्रशीर्षका व उसकुण्ड के जलका यह प्रभाव है ॥ ३१ ॥ इस लिये हे द्विजोत्तम ! पापसे रहित व पवित्र इस स्त्रीको भलीभांति लेकर घरको जाओ मैंने यह सत्य कहा है ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे अग्निदेव ! मैंने आपही जिस स्त्रीको अचानक परपतिके साथ देखा है उस पवित्र कोभी आज घर न लेजाऊंगा ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर शुभदायक व्रतों या कर्मोंवाला वह द्विजोत्तम उस स्त्रीको त्यागकर पीछे घरको चलागया व और नरभी घरोंको चलेगये ॥ ३४ ॥ व उस पति से त्यागी हुई व प्रसन्नमनवाली उस स्त्रीने भी अग्नि के मुखसे कहेहुये उसतीर्थके माहात्म्य को जानकर उस मन्दिर में उसी परपति के साथ विशेषकर रतिकर्म

को किया व उसी कुण्डमें जलसे स्नानादिक किया ॥ ३५ । ३६ ॥ इसके अनन्तर जो और मनुष्य परलोक के डरसे पराई स्त्रियों में विमुखथे व जो पतिव्रतायें स्त्रियां थीं ॥ ३७ ॥ वे सब दूरसे ही उस रुद्रशीर्षनामक मन्दिर में भलीभांति आकर रति के उछाहको करतेथे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उस पापनाशककुण्ड में स्नान करतेथे व रुद्रशीर्ष के अवलोकन से पापसे मुक्त होतेथे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर इसी समय में पुरुषोंका स्त्रीसे उपजाहुआ व स्त्रियोंका निजपतिसे उपजाहुआ धर्म नाश होगया ॥४०॥ हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष कुल में उपजीहुई भी रूपसे संयुत जिस स्त्रीको देखताथा वह उस स्थानपै लाकर व अतिप्रसन्न होकर भजता याने रति करताथा ॥ ४१ ॥

परलोकस्य भीत्यातीवव्यवस्थिताः ॥ विमुखाःपरदारेषु नार्य्यश्चापिपतिव्रताः ॥ ३७ ॥ दूरतोपिसमभ्येत्यतेसर्वेतत्र मन्दिरे ॥ रुद्रशीर्षाभिधानेचप्रचक्रुःसुरतोत्सवम् ॥ ३८ ॥ निमज्जन्तिततःकुण्डे तस्मिन्पातकनाशने ॥ भवन्तिपापनिर्मुक्ता रुद्रशीर्षविलोकनात् ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनष्टोधर्म्मःपत्नीसमुद्भवः ॥ पुरुषाणांततःस्त्रीणां निजकान्तसमुद्भवः ॥ ४० ॥ योयांपश्यतिरूपाढ्यां नारीमपिकुलोद्भवाम् ॥ सतत्रानीयसंहृष्टो भजतेद्विजसत्तमाः ॥ ४१ ॥ तथानारीसुरूपाढ्यं यंपश्यतिनरंक्वचित् ॥ सापितत्रसमानीय कुरुतेसुरतोत्सवम् ॥ ४२ ॥ लिप्यतेनचपापेन कथञ्चित्तत्कृतेनच ॥ नरोवायदिवानारी तत्तीर्थस्यप्रभावतः ॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तत्रराजाविदूरथः ॥ आनर्त्तविषयेजज्ञेवार्द्धक्यंचक्रमाद्ययौ ॥ ४४ ॥ तस्यभार्य्याभवत्तन्वीतरुणीवररूपधृक् ॥ पश्चिमेवयसिप्राप्तेप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ४५ ॥ नतस्याःसजराग्रस्तश्चित्तेवसतिपार्थिवः ॥ तस्मिंस्तीर्थेसमागत्यवाञ्छितंरमतेनरम् ॥ ४६ ॥ पार्थिवोपिपरिज्ञाय

वैसेही जो स्त्री कहींपर स्वरूपसे संयुत जिस पुरुषको देखती थी वह भी उसको वहांपर लाकर सुरत के उछाहको करतीथी ॥ ४२ ॥ व उस तीर्थ के प्रभाव से नर या नारी उस कियेहुये पातकसे किसी प्रकार लिप्त न होतेथे ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस आनर्तदेश में विदूरथ राजा उत्पन्न हुआ व क्रमसे वृद्धता को प्राप्तभया ॥४४॥ उस विदूरथ की पिछली अवस्था प्राप्तहोनेपर उसकी स्त्री उत्तमरूप धारिणी व सूक्ष्मअङ्गोंवाली व युवती तथा प्राणों सेभी प्रियपत्नी हुई है ॥ ४५ ॥ उस स्त्रीके चित्त में वह वृद्धता से ग्रसाहुआ भूपति नहीं बसताथा इससे उस तीर्थ में भलीभांति जाकर चाहेहुये पुरुषसे रमतीथी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरे

हुये उस भूपतिने भी उस स्त्रीके उस रमण के कर्मको जानकर व उस अत्युत्तम क्षेत्र में जाकर उस भूमिके कुण्ड को धूरिकी राशियों से पूर्णकर दिया व उस मन्दिर को तोड़ फोडडाला तदनन्तर बड़े विकराल वचन कहे ॥ ४७ । ४८ ॥ किजो पुरुष धूरिसे पूरित इसकुण्ड को फिर खोदैगा व इस मन्दिरको फिर नवीन करैगा ॥ ४९ ॥ उसको पराई स्त्रियों से कियाहुआ वह समस्त पाप प्राप्तहोगा जोकि यहांपर काम से मोहित मनुज करैंगे ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि वहभूपति इसप्रकार कहकर तदनन्तर उस प्यारी को लेकर पीछेको प्रसन्न अन्तःकरण से अपने घरको चलागया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर वह नृपति अन्यपुरुष में चित्तवाली उसप्यारीको विशेषकर

तस्यास्तस्यविचेष्टितम् ॥ कोपाविष्टस्ततोगत्वातस्मिन्क्षेत्रेसुशोभने ॥ ४७ ॥ तत्कुण्डंपूरयामासभुवःपांशूत्करैर्द्रुतम् ॥ बभञ्जतंचप्रासादं ततःप्रोवाचदारुणम् ॥ ४८ ॥ यश्चैतत्पूरितंकुण्डंपांशुनानिखनिष्यति ॥ प्रासादंचपुनश्चैनंकरिष्यतिपुनर्नवम् ॥ ४९ ॥ परदारकृतंपापं तस्यसम्पत्स्यतेखिलम् ॥ यदत्रप्रकरिष्यन्तिमानवाःकाममोहिताः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ एवंसपार्थिवःप्रोच्यतामादाय ततःप्रियाम् ॥ जगामस्वगृहंपश्चात्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५१ ॥ अथतांविरतांज्ञात्वासोन्यचित्तांप्रियांनृपः ॥ यत्नेनरक्षयामास विश्वासंनैव गच्छति ॥ ५२ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशस्त्रंसूक्ष्मंवेण्यांनिधायसा ॥ जगामशयनेतस्यवधार्थंवरवर्णिनी ॥ ५३ ॥ ततस्तेनसमंहास्यंकृत्वाक्षत्रियभावजम् ॥ सुरतंरुचिरैर्भावैर्हावैर्भूरिभिरेवच ॥ ५४ ॥ ततोनिद्रावशंप्राप्तंतंनृपंसानृपप्रिया केशात्साशस्त्रमादायनिजघानसुनिर्दया ॥ ५५ ॥ एवंतस्यफलंजातंसद्यस्तीर्थस्यभङ्गजम् ॥ आनर्ताधिपतेराज्ञःसर्वलोकविगर्हितम् ॥ ५६ ॥ अद्यापितत्रदेवेशो रुद्रशीर्षः सतिष्ठ

रमणकी हुई जानकर यत्नसे रक्षा करताथा और विश्वासको नहीं प्राप्त होताथा ॥ ५२ ॥ वह उत्तम वर्णवाली स्त्री और दिनमें उस भूपतिके मारने के लिये छोटे शस्त्रको वेणीमें धरकर शय्यापैगई ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उस पतिके साथ क्षत्रियसे उपजेहुये हास्यको कर व बहुतेरे सुन्दरे चोंचलोंसे रतिकरके उसके उपरान्त उस अतिनिर्दयी नृपतिकी प्यारीने बालोंसे शस्त्रको लेकर निद्रावश में प्राप्तहुए उस नृपति को मार डाला ॥ ५४ । ५५ ॥ इस प्रकार उस आनर्तदेशके अधिपति नृपतिको तीर्थभङ्ग से उपजाहुआ व समस्त मनुष्यों से निन्दित फल उसीक्षण प्राप्तहुआ ॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस स्थानमें वे रुद्रशीर्षदेवजी आज भी बैठेहैं जिनको उस नृपने

लिङ्गभेदनके भयसे भलीभांति भग्न नहीं कियाथा ॥ ५७ ॥ उस तीर्थमें माघशुक्ल चौदसि में जो पवित्रपुरुष मालादिकोंसे पूजकर व अगाड़ी बैठकर रुद्र शीर्षको जपताहै वह उस लिङ्ग के प्रसाद से शीघ्रही वाञ्छित फलको पाता है व अगाड़ी टिकाहुआ जो मनुष्य रुद्रशीर्ग को एक सौ आठबार तक जपताहै वह निस्सन्देह उत्त- मगतिको जाताहै अथवा हे ब्राह्मणो! जो मनुष्य उन सदाशिवजी के आगे निरन्तर उस रुद्रशीर्ष को एकबार जपता अथवा पढ़ता है वह दिनमें कियेहुये पातक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है इस रुद्रशीर्ष से उपजेहुये समस्त माहात्म्यको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ५८ । ५९ । ६० । ६१ ॥ यह रुद्रशीर्ष का माहात्म्य परम

ति ॥ लिङ्गभेदभयात्तेननसंभग्नोद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ यस्तत्रपुरतःस्थित्वा जपेद्रुद्रशिरःशुचिः ॥ माघशुक्लचतुर्दश्यां पूजयित्वास्रगादिभिः ॥ ५८ ॥ वाञ्छितंलभतेचाशु तस्येशस्यप्रसादतः ॥ अष्टोत्तरशतंयावद्योजपेत्पुरतःस्थितः ॥ ५९ ॥ रुद्रशीर्षंनसन्देहःसयातिपरमांगतिम् ॥ एकवारंनरोयोवातत्पुरःपठतिद्विजाः ॥ ६० ॥ नित्यंदिनकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंरुद्रशीर्षसमुद्भवम् ॥ ६१ ॥ माहात्म्यंसर्वपापानां सद्योनाशनकारकम् ॥ मङ्गलंपरमंह्येतदायुष्यंकीर्तिवर्धनम् ॥ ६२ ॥ रुद्रशीर्षस्यमाहात्म्यंतस्माच्छ्रोतव्यमादरात् ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रशीर्षयागेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

सूतउवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेभागेबालखिल्यैःप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गमस्तिसुविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यमाराध्यचतैःपूर्वंशक्रामर्षसमन्वितैः ॥ गरुडोजनितःपक्षीख्यातोविष्णुरथोत्रयः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंतेषांसमु

मङ्गल व आयुर्बलवर्द्धक व यशका वृद्धिकारक तथा उसीक्षण समस्त पापोंका नाशकारक है इस लिये आदर से सुनना चाहिये ॥ ६२ । ६३ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रशीर्षयागेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तसप्ततितमोध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥

दो० । बालखिल्य मुनिनायकन कीन इन्द्रपे कोप । अठहत्तरि अध्याय में कह्योसोसूत सचोप ॥ सूतजी बोले कि उसी रुद्रशीर्ष के दक्षिणदिशा के भाग में बालखिल्या मुनियोंसे स्थापित प्रसिद्ध लिङ्गहै जोकि समस्त पातकों का विनाशकहै ॥ १ ॥ पुरातन समय इन्द्र के ऊपर क्रोधसयुत उन बालखिल्या मुनियोंने जिस

लिङ्गका आराधन कर गरुड़पक्षी को पैदाकिया है जोकि इस समय श्रीविष्णु का वाहन है॥ २॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन! उन वालखिल्य मुनियोंका इन्द्र के ऊपर कैसे क्रोध उत्पन्न हुआहै व गरुड़ किस प्रकार पैदाहुये हैं॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय उस सुशोभनक्षेत्र में दक्षप्रजापतिजी ने विधिपूर्वक समस्त श्रेष्ठ दक्षिणावाले यज्ञको कियाहै॥ ४ ॥ तदनन्तर दक्षजी ने सहायता के लिये इन्द्रादिक देवताओंको व निर्मल चित्तवाले मुनियों व राजर्षियों का निमन्त्रण किया॥ ५॥ वैसेही यज्ञकर्म में चतुर व वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों को व जो गृहस्थाश्रम वाले और जो जङ्गल में निवास करने वालेथे उनकाभी निमन्त्रण किया॥ ६॥

त्पन्नःशक्रस्योपरिसूतज॥प्रकोपोबालखिल्यानांसञ्जज्ञेगरुडःकथम् ॥ ३॥ सूतउवाच ॥ पुराप्रजापतिर्दक्षस्तस्मि न्क्षेत्रेसुशोभने ॥ चकारविधिवद्यज्ञंसम्पूर्णवरदक्षिणम्॥ ४॥ ततःशक्रादयोदेवाःसहायार्थंनिमन्त्रिताः ॥ दक्षेणमु नयश्चैवतथाराजर्षयोमलाः॥ ५॥ तथावेदविदोविप्रायज्ञकर्म्मविचक्षणाः॥ गृहस्थाश्रमिणोयेचयेचारण्यनिवासिनः॥ ६॥ अथतेबालखिल्याख्यामुनयःशंसितव्रताः॥ एकांसमिधमादायसहायार्थंप्रजापतेः ॥ ७॥ प्रस्थितायज्ञवाटंतंभा रार्ताःक्लेशसंयुताः ॥ अथतेषांसमस्तानांमार्गेगोपदमागतम्॥ ८॥ जलपूर्णंसमायातमकालजलदागमे ॥ ततस्तरी तुकामास्तेक्लिश्यमानाइतस्ततः॥ ९॥ समिद्भारश्रमोपेतादेवराजेनवीक्षिताः ॥ गच्छतातेनमार्गेणमखेदक्षप्रजाप तेः॥ १०॥ ततश्चिरंसमालोक्यस्मितंकृत्वासकौतुकात्॥ जगामाथसमुल्लङ्घ्य ऐश्वर्य्यमदगर्वितः॥ ११ ॥ ततस्तेको

इसके अनन्तर एक समिधा को लेकर बोझसे विकल व दुःख से संयुत होतेहुये प्रशंसित व्रतों या कर्मोंवाले उन वालखिल्य नामक मुनियों ने दक्ष प्रजापतिजी के उसवाट को प्रस्थान किया इसके अनंतर बिन समय मेघके आगमन में जल से पूर्णहुआ गोपद उन सबों के मार्गमें प्राप्तभया तदनन्तर दक्ष प्रजापति के यज्ञ में उसी मार्ग से जातेहुये सुरराजने उन मुनियों को देखा जोकि तरने की इच्छावाले व समिधा के भारसे संयुत तथा इधर उधर क्लेशको प्राप्तहो रहेथे॥ ७। ८। ९। १०॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्य के मदसे गर्वित वे इन्द्रजी बहुत कालतक देखकर व मुसकराकर इसके अनन्तर कौतुक से भलीभांति नांघकर चलेगये॥ ११ ॥ उसके

उपरान्त इन्द्रसे तिरस्कार को देखकर क्रोध संयुत होतेहुये उन मुनियोंने लौटकर व अपने आश्रमको जाकर सम्मति का निश्चय किया ॥ १२ ॥ जिसलिये कि इन्द्रके पदको पाकर इसपापी ने हमसबों को उल्लंघन किया है उसी से वह उत्तमस्थान से गिराने योग्य है ॥ १३ ॥ व अभिचार याने उच्चाटनादि कर्मों से उपजेहुये अथर्वण वेदवाले महासूक्तों से मन्त्रोंके पराक्रमसे उपजेहुये दूसरे इन्द्रको करना चाहिये ॥ १४ ॥ उस इन्द्रसे इसका स्थान नाश होजायगा व यज्ञके माहात्म्य से सम्पन्न व बहुतकम बुद्धि व पराक्रम वाला यह मदसे गर्वित इन्द्र नाशकियाजायगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर मण्डप के मध्यमें जलसे भरेहुये कलश को धरकर उद्यम समेत

पसंयुक्ताद्दृष्ट्वाशक्रपराभवम् ॥ निवर्त्यस्वाश्रमंगत्वाचक्रुर्मन्त्रस्यनिश्चयम् ॥ १२ ॥ शाक्रंपदंसमासाद्ययस्मादेते नपाप्मना ॥ अतिक्रान्तावयंसर्वे तस्मात्पात्यःससत्पदात् ॥ १३ ॥ अन्यःशक्रःप्रकर्तव्यो मन्त्रवीर्य्यसमुद्भवः ॥ आथर्वणैर्महासूक्तैरभिचारकसम्भवैः ॥ १४ ॥ पदंव्यापाद्यतेतेनशक्रोयंमदगर्वितः ॥ मखमाहात्म्यसम्पन्नःस्वल्पबुद्धिपराक्रमः ॥ १५ ॥ ततस्तेसूत्रप्रोक्तेनस्कन्दसूक्तेनपावकम् ॥ जुहुवुश्चदिवारात्रौक्षुरिकोक्तेनसोद्यमाः ॥ १६ ॥ गर्भोपनिषदेनैवनीलरुद्रैर्द्विजोत्तमाः ॥ रुद्रशीर्षेणकाम्येन विष्णुसूक्तयुतेनच ॥ १७ ॥ निधायकलशंमध्येमण्डपस्योदकाहृतम् ॥ होमान्तेतस्यसंस्पर्शं चक्रुस्तत्रजलैःशुभैः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रःप्रपश्यतिसुदारुणान् ॥ उत्पातानात्मनाशायजायमानान्समन्ततः ॥ १९ ॥ वामोबाहुश्चनेत्रंचमुहुःस्फुरतिचास्यवै ॥ नचपश्यतिनासाग्रं जिह्वाग्रंचतथाहनुम् ॥ २० ॥ शिरोहीनांतथाछायांगगनेभास्करद्वयम् ॥ अरुन्धतींध्रुवंचैवपश्यन्विष्णुपदानिखे ॥ २१ ॥ नचपादंनचाकाशे

उन द्विजोत्तमोंने सूत्र में कहेहुये स्कन्दसूक्तसे व क्षुरिकोक्त, गर्भोपनिषद् व नीलरुद्रों से तथा विष्णुसूक्त संयुत कामदायक रुद्रशीर्ष से अहर्निश अग्नि में हवन किया व उस होमके अन्त में शुभदायक जलोंसे उस कलश का भलीभांति स्पर्शकिया ॥ १६ । १७ । १८ ॥ इसी अवसर मे इन्द्रने अपने नाश के लिये उत्पन्न होतेहुये सब ओर अतिउग्र उत्पातों को देखा ॥ १९ ॥ इन इन्द्रजीका वामबाहु व वामनयन बार २ फरकने लगा व नासाके अग्रभाग व जिह्वाके अग्रभाग तथा दाढ़ी को इन्द्र ने न देखा ॥ २० ॥ व शिरसे हीन परछाहीं को तथा आकाशमें दो दिनकरोंको देखा व आकाश में अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु पदोंको न देखा ॥ २१ ॥ व पांय को अर्थात्

भूमिमें पांय के चिह्नको व एकान्त में आकाश में भलीभांति टिकीहुई श्रीगङ्गा जीको न देखा और सोतेहुये नित्यही कालेअंग वाली व छूटे बालों वाली तथा अस्त्र को धारनेहारी नारी को देखा ॥ २२ ॥ उन दुष्ट शकुनोंवाले बड़े उत्पातों को देखकर इन्द्रजी बृहस्पति से बोले कि हे विद्वन्! क्या मेरा विनाश होगा या त्रिलोक के राज्यका अथवा धनादि का नाश होगा बृहस्पति जी बोले कि हे शचीपते! मदसे मत्त तुमने मार्ग में टिकेहुये व गोपद के तरने की इच्छावाले जिन बालखिल्य महर्षियों को उल्लंघन किया है उन्हीं मुनियों ने अथर्वण वेद वाले मन्त्रों से तुम्हारे लिये होम किया है ॥ २३ । २४ । २५ ॥ व भलीभांति कलश का अभि-

संस्थितांस्वर्धुनींरहः ॥ स्वपन्पश्यतिकृष्णाङ्गींनित्यंनारींधृतायुधाम् ॥ २२ ॥ मुक्तकेशींमहोत्पातान्दुर्निमित्तानिता निच ॥ किंमेभविष्यतिप्राज्ञविनाशःसाम्प्रतंवद ॥ २३ ॥ किंवात्रैलोक्यराजस्यकिंवावित्तादिकस्यच ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ येत्वयामदमत्तेनबालखिल्यामहर्षयः ॥ २४ ॥ उल्लङ्घिताःस्थितामार्गेगोष्पदंतर्तुमिच्छवः ॥ तैरेवाथर्वणैर्मन्त्रैस्त्वत्कृतेस्तिशचीपते ॥ २५ ॥ कृतोहोमःसुसम्पूर्णःकलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ युष्माकंसुविनाशायसर्वस्याधिपनायकः ॥ २६ ॥ भविष्यतिनसन्देहो मन्त्रैराथर्वणैर्हरिः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासहस्राक्षोभयान्वितः ॥ २७ ॥ दक्षंगत्वाचदीनास्यः प्रोवाचतदनन्तरम् ॥ अस्मन्नाशायमुनिभिर्बालखिल्यैःप्रजापते॥२८॥प्रोद्यमोविहितस्सम्यक्शक्रस्यान्यस्यवैकृते॥ तान्वारयस्वयंगत्वायावन्नोजायतेपरः ॥ २९ ॥ शक्रोस्मद्भ्रंशनार्थायनास्तितेषामसाध्यता॥ अथदक्षोद्रुतंगत्वाशक्राद्यैरमरैर्वृतः ॥ ३० ॥ प्रहमंस्तानुवाचेदं विनयेनसमन्वितः ॥ किमेतत्क्रियतेविप्राःकर्मरौद्रतमंमहत् ॥ ३१ ॥ त्रैलो

मन्त्रण किया है इस से तुम लोगों के विनाश के लिये अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से समस्त सुरोंके स्वामी व नायक इन्द्र निस्सन्देह होंगे उन बृहस्पति जी के उस वचन को सुनकर दीनमुखवाले व भय संयुत हजार नयनों वाले इन्द्र जी ॥ २६ । २७ ॥ दक्ष के समीप जाकर तदनन्तर बोले कि हे प्रजापते! हमारे नाश के लिये बालखिल्य मुनियों ने दूसरे इन्द्र के निमित्त भलीभांति उद्यम किया है जबतक दूसरे इन्द्र हमारे अधःपात के लिये न उत्पन्न होवें तबतक आपही जाकर उनको मनाकरो क्योंकि उन मुनियों के असाध्यतानहीं है इसके अनन्तर इन्द्रादि देवों से घिरे व विनय से संयुत दक्षजी शीघ्रही जाकर उन मुनियों से

हँसतेहुये यह बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस बडे भारी विकराल कर्म को क्यों करते हो ॥ २८।२९।३०।३१ ॥ कि जिससे यह समस्त त्रिलोक व्याकुलता को प्राप्तहै इस के अनन्तर अपने आश्रम में भलीभांति आयेहुये दक्षजी को देखकर अर्घ को हाथ में लियेहुये उन मुनियों ने शीघ्रही सामने गमन किया व अर्घ को देकर तथा भक्तिसे यथायोग्य पूजनकर व प्रणतहोकर याने प्रणामकर कहा कि हे प्रजापते ! तुम्हाराआना अच्छाहुआ व शीघ्रही वह आज्ञा दीजाय कि जिसलिये तुम यहांआ-ये हो ॥ ३२।३३।३४ ॥ मैं प्राण के दानसे भी तुम्हारे प्रिय को करूंगा दक्षजी बोले कि आकुली हीन तुमलोगोंको इस अतिकराल व सब देवों के भयदायक कर्मको

कयंव्याकुलंयेन सर्वमेतद्व्यवस्थितम् ॥ अथतेदक्षमालोक्यसमायातंस्वमाश्रमम् ॥ ३२ ॥ संमुखाश्चाभ्ययुस्तूर्णं प्रगृहीतार्घपाणयः ॥ अर्घंदत्त्वायथान्यायंपूजांकृत्वाचभक्तितः ॥ ३३ ॥ प्रोचुश्चप्रणताभूत्वास्वागतन्तेप्रजापते ॥ आदे शोदीयतांशीघ्रंयदर्थंत्वमिहागतः ॥ ३४ ॥ अपिप्राणप्रदानेन करिष्यामप्रियंतव ॥ दक्षउवाच ॥ एतद्रौद्रतमंकर्म्म सर्वदेवभयावहम् ॥ ३५ ॥ त्याज्यंयुष्माभिरव्यग्रैस्तदर्थंचाहमागतः ॥ मुनयऊचुः ॥ वयंशक्रेणतेयज्ञेसमायातास्सुभक्ति तः ॥ ३६ ॥ उल्लङ्घितामदोद्रेकात्कृत्वाहास्यंमुहुर्मुहुः ॥ शक्रोच्छेदायचास्माभिःशक्रोन्योवीर्य्यमन्त्रतः ॥ ३७ ॥ प्रारब्धः कर्तुमत्युग्रैर्होमान्तश्चव्यवस्थितः ॥ तत्कथंमन्त्रवीर्य्यंचक्रियतेमोघमित्यहो ॥ ३८ ॥ वेदोक्तंचविशेषेण तस्मादत्रवद प्रभो ॥ त्वमेवयदिशक्तःस्यास्त्वन्यथाकर्तुमेवहि ॥ ३९ ॥ कुरुष्ववास्वयंनाथनास्माकंशक्तिरीदृशी ॥ दक्षउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागायद्युष्माभिःप्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ नान्यथाशक्यतेकर्तुंवेदमन्त्रोद्भवंबलम् ॥ एषयत्तुकृतोहोमोयु

त्यागना चाहिये उसी के लिये मैं आया हूं मुनिलोगबोले कि तुम्हारे यज्ञमें बड़ी भक्ति से आतेहुये हमलोगों को इन्द्र ने मद के आधिक्य से बार २ हँसकर उल्लं-घन किया व अतिउग्र हम लोगों ने इन्द्र के नाश करने के लिये वीर्य्य मन्त्र से दूसरे इन्द्रको करनेके लिये प्रारम्भ किया व होमका अन्त प्राप्त हुआ है तो किस प्रकार विशेषकर वेदोक्त मन्त्रका वीर्य्य व्यर्थ कियाजाय यह विस्मय है ॥ ३५।३६। ३७।३८ ॥ इसलिये हे विभो,नाथ ! इस विषयमें कहिये यदि तुम अन्यथा करनेही के लिये समर्थ हो तो आपही करिये हम लोगों की ऐसी शक्तिनहीं है दक्ष बोले कि हे महाभाग मुनियो ! जो तुम लोगों ने कहा है यह सत्य है ॥ ३९।४० ॥ कि

वेद मन्त्र से उपजाहुआ पराक्रम अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होताहै परन्तु बिन व्याकुल चित्तवाले तुम लोगों ने सुरराजके लिये जो यह होम किया व कलशको अभिमन्त्रित किया है सो यह मेरेवचनसे पक्षियों का राजा होवै ॥ ४१ । ४२ ॥ जो वह पक्षिराज तेज व बलसे संयुत तथा इन्द्रसे भी बलिष्ठ होगा और अज्ञानता से इसने जिस कर्मको कियाहै इस देवराजके उस कर्मको मेरेवचनसे क्षमा करना चाहिये ऐसा कहकर इसके अनन्तर दक्षजीने भयसे विकल व नम्रता से नीचेझुके खड़ेहुये उन हज़ार नेत्रवाले इन्द्रको उन मुनियोंको दिखलाया उन्होंनेभी कांपतेहुये व अञ्जलियोंको किये (हाथजोडे) हुये इन्द्रको देखकर कहा ॥ ४३ । ४४ । ४५ ॥

ष्माभिर्वेदमन्त्रतः ॥ ४१ ॥ देवराजार्थमव्यग्रैःकलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ सोयंमद्वचनाद्राजाभविष्यतिपतत्रिणाम् ॥ ४२ ॥ तेजोवीर्य्यसमोपेतःशक्रादपिसवीर्य्यवान् ॥ एतस्यदेवराजस्यक्षन्तव्यंममवाक्यतः ॥ ४३ ॥ तत्कृतंमूढभावेन यदनेनविचेष्टितम् ॥ एवमुक्त्वाथतेषांतंसहस्राक्षंभयातुरम् ॥ ४४ ॥ दर्शयामासदक्षस्तु विनयावनतंस्थितम् ॥ ते पिदृष्ट्वासहस्राक्षं वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ४५ ॥ प्रोचुर्मातिक्रमंशक्रब्राह्मणानांकरिष्यसि ॥ भूयोयदिदिवेशानामाधिपत्यंप्रवाञ्छसि ॥ ४६ ॥ अपिमन्दोपिमूर्खोपिक्रियाहीनोपिवाद्विजः ॥ नावज्ञेयोबुधैःक्वापिलोकद्वयमभीप्सुभिः ॥ ४७ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाद्यन्मयादुष्कृतंकृतम् ॥ तत्क्षन्तव्यंभवद्भिश्चविशेषाद्दक्षवाक्यतः ॥ ४८ ॥ प्रगृह्यतांवरोस्मत्तोयःसदावर्ततेहृदि ॥ प्रदास्यामिनसन्देहोनादेयंविद्यतेमम ॥ ४९ ॥ मुनयऊचुः ॥ अस्मिन्कुण्डेनरो होमंयःकुर्य्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्यतस्यास्तुहृदिवाञ्छितम् ॥ ५० ॥ इन्द्रउवाच ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्य

कि हे इन्द्र ! यदि स्वर्गेशों की स्वामिता को चाहते हो तो फिर ब्राह्मणों को उल्लंघन न करियेगा ॥ ४६ ॥ क्योंकि दोनों लोकोंके चाहनेवाले पण्डितों को निश्चयकर मूढ़भी व मूर्खभी व कर्मसे हीनभी द्विजका अपमान कहींपर भी न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ इन्द्रबोले कि मैंने अज्ञान से या ज्ञानसे जिस अपराध को किया है उसे आपलोगों को दक्षजी के वचन से विशेषकर क्षमा करना चाहिये ॥ ४८ ॥ व जो सदैव हृदय में वर्तमान है उस वरदान को हमसे ग्रहण करिये मैं निस्सन्देह दूंगा क्योंकि मुझको कुछ न देनेकेयोग्य नहींहै अर्थात् सब देसक्ताहूं ॥ ४९ ॥ मुनि लोग बोले कि श्रद्धासे संयुत जो मनुष्य इस लिंगको भलीभांति पूजकर इस कुण्ड

में होमकरैगा वह शीघ्रही समस्त वाञ्छितफलको पावैगा ॥५०॥ इन्द्रबोले कि जो मनुष्य इस लिंगको भलीभांति पूजकर यहांपर इस कुण्डमें होम करैगा वह निश्चयकर उसीक्षण सम्पूर्ण मनोरथ को पावैगा ॥ ५१ ॥ अथवा अकाम याने कोई कामना न रखनेवाला मनुष्य इस शुभदायक लिंगको भलीभांति पूजकर देवोंसे भी दुर्लभ परमसिद्धि को प्राप्तहोगा ॥ ५२ ॥ इन्द्रजी बालखिल्य मुनीश्वरोंसे इस प्रकार कहकर तदनन्तर ऐरावत हाथी पै भलीभांति सवारहोकर दक्षजी के यज्ञको चलेगये ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! दक्षजीने भी समीप बैठेहुये उन प्रसन्न बालखिल्य मुनियोंसे विधिपूर्वक यज्ञको किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे

च्र्ययोत्रहोमंकरिष्यति ॥ कुण्डेत्रवाञ्छितंसद्यःसकलंसहिलप्स्यते ॥ ५१ ॥ निष्कामोवायसंपूज्यलिङ्गमेतच्छुभावह म् ॥ प्रयास्यतिपरांसिद्धिंत्रिदशैरपिदुर्ल्लभाम् ॥ ५२ ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षोबालखिल्यान्मुनीश्वरान् ॥ ऐरावतंसमारुह्यदक्षयज्ञंततोगतः ॥ ५३ ॥ दक्षोपिविधिवद्यज्ञंचकारद्विजसत्तमाः ॥ संहृष्टैर्बालखिल्यैस्तैरुपविष्टैःसमीपतः ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेबालखिल्याश्रमकथनंनामअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥ * ॥

अथसुपर्णाख्यमाहात्म्यंभविष्यति ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं तेजोवीर्य्यसमन्वितः ॥ गरुडस्तेनसंजज्ञे मुनीनांहोमकर्म्मणा ॥१॥ सकथंतत्रसम्भूत एतन्नोविस्तराद्वद ॥ विनतायास्समुद्भूत इत्येषाश्रूयतेश्रुतिः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ योसावाथर्वणैर्मन्त्रैः कलशश्चाभिमन्त्रितः ॥ तैर्मन्त्रैर्बालखिल्यैश्च महाहर्षसमन्वितैः ॥ ३ ॥ निवारितैश्चदक्षेण

देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांबालखिल्याश्रमवर्णनंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । उन्नासी अध्याय में वरणत सो मुनिनाथ । गये विष्णुपहँ गरुड़ जिमि मित्र विप्र लै साथ ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि आपने जो यह कहा है कि मुनियों के उस होमकर्म से तेज व पराक्रम संयुत गरुड जी उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ उस हवन कर्म में वे गरुड़ किसप्रकार पैदाहुये हैं इस चरित्र को हम लोगों से विस्तार समेत कहिये क्योंकि विनता से उपजे हैं यही श्रुति सुनीजाती है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि दक्षजीको गरुड़ की सूचना करने पर बड़े हर्ष से संयुत व उन मन्त्रों से

मना कियेहुये बालखिल्य महर्षियों ने अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से जो यह कलश अभिमन्त्रित कियाथा उस कलश को कश्यप जी भलीभांति लेकर घरको चलेगये ॥ ३।४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहोते हुये कश्यपजी अपनी प्यारी विनतासे बोले कि हे कल्याण कारिणि ! मन्त्र से पवित्र व अतिउत्तम इस जलको पिओ ॥ ५ ॥ कि जिससे पराक्रम में इन्द्र से अधिक व तेजवान् यशवान् तथा समस्त दैत्यों से न जीतने योग्य पुत्र तुम्हारे उत्पन्न होगा ॥ ६ ॥ उन कश्यपजीके उस वचन को सुनकर उत्तम नितम्बवाली विनता ने उसीक्षण जल को पी लिया ॥ तदनन्तर उस जल से शीघ्रही गर्भ को धारण किया ॥ ७ ॥ इसप्रकार उस जल

सूचितेविहगाधिपे ॥ कश्यपस्तंसमादाय कलशंप्रययौगृहम् ॥४॥ ततःप्रोवाचसंहृष्टो विनतांदयितान्निजाम् ॥ एतत्पि
बजलंभद्रे मन्त्रपूतंमहत्तरम् ॥ ५ ॥ येनतेजायतेपुत्रस्सहस्राक्षाधिकोबले ॥ तेजस्वीचयशस्वीच अजेयःसर्वदानवैः॥६॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तत्क्षणादेवसंपपौ ॥ तत्तोयेनवरारोहासद्योगर्भंततोदधे ॥ ७ ॥ एवंतज्जलपानेन तेजोवीर्य्यसम
न्वितः॥कश्यपाद्गरुडोजज्ञे सरीसृपभयावहः॥८॥येनामृतंहृतंवीर्य्यात्परिभूयपुरन्दरम् ॥ मातृभक्तिपरीतेन तत्सर्पाणां
निवेदितम् ॥ ९ ॥ योजातोदयितोविष्णोर्वाहनत्वमुपागतः ॥ ध्वजाग्रेतुरथस्यापि सदैवचव्यवस्थितः ॥१०॥ येनपूर्वंतप
स्तप्त्वा क्षेत्रेऽस्मिन्सुमहात्मना॥ त्रिनेत्रस्तुष्टिमानीतोगतपक्षेणवेपता ॥ ११ ॥ पक्षसीयेनसंजाते यस्यभूयोपितादृशौ ॥
देवदेवप्रसादेन विशिष्टेचाथनिर्मिते ॥ १२ ॥ मुनयऊचुः ॥ कथंतस्यगतौपक्षौ गरुडस्यमहात्मनः ॥ पुनर्लब्धौकथंते

के पीने से कश्यपजी के सकाश से तेज व बल से संयुत तथा सांप बिच्छुओं को भयदायक गरुड़जी पैदाहुये हैं ॥ ८ ॥ माता की भक्ति में तत्पर जिन गरुडजी ने बल से इन्द्र का तिरस्कार कर अमृत को हरलिया व उसको सांपों को निवेदन करदिया ॥ ९ ॥ जो गरुडजी विष्णु की सवारी में प्राप्त होकर प्रिय हुये हैं व सदैव रथके भी ध्वजा के अगाड़ी टिके हैं ॥ १० ॥ प्राचीन समय गिरेहुये पङ्खवाले व कांपतेहुये जिन गरुड़ महात्मा ने इस क्षेत्र में तपस्या को तपकर तीननयनवाले शिवजी को प्रसन्नता में प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर देवताओं के देवता याने महादेवजी की जिस प्रसन्नता से सुन्दर रचेहुये व वैसेही जिन गरुड़जी

के पखने फिरभी होगये ॥ १२ ॥ मुनिलोग बोले कि उन गरुड़ महात्माके किसप्रकार पङ्ख गिरे थे व कैसे फिर मिले और उनने किसप्रकार महादेवजीको प्रसन्न किया है ॥ १३ ॥ हे सूतनन्दन ! इस चरित्र को यथायोग्य विस्तारसे कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय भृगुवंशके समूह का नायक द्विज शिशुता से भी गरुड़का मित्रहुआ प्राचीनसमय उस शक्तिमान् ब्राह्मण के भलीभांति मानीहुई माधवी नामक कन्या हुई है ॥ १४।१५ ॥ हे बड़ेभाग्यवाले ऋषियो ! रूप व उदारता से संयुत तथा समस्त लक्षणों से चिह्नित व शोभन कटिवाली जिसप्रकार की वह थी वैसे रूपवाली न देवी न गन्धर्विणी न दैत्यों की स्त्री न

न कथंतुष्टोमहेश्वरः ॥ १३ ॥ एतन्नोविस्तराद्ब्रूहि सूतपुत्रयथातथम् ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीद्ब्राह्मणोमित्रं भृगुवंश
कुलोद्वहः ॥ १४ ॥ गरुडस्यद्विजश्रेष्ठा बालभावादपिप्रभोः ॥ तस्यकन्यापुराजाता माधवीनामसंमता ॥ १५ ॥ रूपौदा
र्य्यसमोपेता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचपन्नगी ॥ १६ ॥ तादृग्रूपामहाभागा यादृशीसासुम
ध्यमा ॥ अथतस्यावरार्थाय गरुडंविहगाधिपम् ॥ १७ ॥ सप्रोवाचपरंमित्रो विनयावनतःस्थितः ॥ एतस्याममकन्या
यां वरंत्वंविहगाधिप ॥ १८ ॥ सदृशंवरमन्वीक्ष्व येनतस्मैददाम्यहम् ॥ गरुडउवाच ॥ ममपृष्ठंसमारुह्य समस्तंक्षि
तिमण्डलम् ॥ १९ ॥ त्वंभ्रमस्वद्विजश्रेष्ठ गृहीत्वेमांचकन्यकाम् ॥ ततस्तस्याःकुमार्य्यावै अनुरूपंगुणान्वितम् ॥ २० ॥
स्वयंचाहरभर्तारमेषमैत्रीममोद्भवा ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोथविप्रःसतत्क्षणात्कन्ययासह ॥ २१ ॥ आरूढोगारुडं

नागों की स्त्री थीं इस के अनन्तर विनय से झुकाहुआ स्थित-वह परममित्र उस कन्या के वर के लिये पक्षियों के अधिपति गरुड़जी से बोला कि हे पक्षियों के प-ति ! तुम इस मेरी कन्या के समान वर को ढूंढ़ो जिससे मैं उसके लिये देऊं गरुड़ जी बोले कि हे द्विजोत्तम ! इस कन्या को लेकर व मेरी पीठपर चढ़कर समस्त भूमिमण्डल में भ्रमणकरो तदनन्तर उस कन्याके सदृशरूपवाले व गुणों से संयुत पतिको आपही लेआओ मुझ से उपजीहुई यही मित्रता है सूतजी बोले कि इस प्रकार कहाहुआ वह ब्राह्मण इसके अनन्तर उसी क्षण वरके लिये कन्या समेत गरुड़की पीठपै चढ़कर ॥ १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ ॥ उस द्विजोत्तम ने

वरके लिये उस समय जिस २ कुमार ब्राह्मणको देखा वह उसके चित्तमें किसी प्रकार न वर्तमानहुआ क्योंकि किसीके अति उग्ररूपथा परन्तु निर्मल कुल व धन नहीं था ॥ २२ । २३ ॥ व जिसके कुल व रूपथा उसके गुण सञ्चय न था व जिसके गुणसञ्चय था उसके उत्तमरूप व पक्षपात व द्रव्य तथा और वरके लक्षण न थे इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार वरके लिये उस ब्राह्मण व पत्निनायक को भूतल में भ्रमते हुये हजार वर्ष होगये व किसी समय इधर उधर घूमते हुये वे दोनों थकगये ॥ २४ । २५ । २६ ॥ वे विष्णुजीको देखनेकी इच्छा से इसी क्षेत्रमें भलीभांति आयेहुये वे स्वेतद्वीप को भलीभांति देखकर व शुभदायक अन्य

पृष्टं वरार्थायद्विजोत्तमः ॥ यंयंपश्यतिविप्रंस कुमारंवरणायच ॥ २२ ॥ तदानतस्याश्चित्तेस वर्ततेस्मकथंचन ॥ कस्य चिद्रूपमत्युग्रं नकुलंवसुनिर्मलम् ॥ २३ ॥ कुलंरूपंचयस्यस्यात्तस्यनोगुणसंचयः ॥ यस्यस्याद्गुणसंदोहस्तस्यनो रूपमुत्तमम् ॥ २४ ॥ पक्षपातंचवित्तंच तथान्यद्वरलक्षणम् ॥ एवंवर्षसहस्रान्तं भ्रमतस्तस्यभूतले ॥ २५ ॥ विप्रस्यप त्निनाथस्य वरार्थायद्विजोत्तमाः ॥ कदाचिदथतौश्रान्तौ भ्रममाणावितस्ततः ॥ २६ ॥ क्षेत्रेऽत्रैवसमायातौ वासुदेवदि दृक्षया ॥ श्वेतद्वीपंसमालोक्य तथान्यांबदरींशुभाम् ॥२७॥ क्षीरोदंचसवैकुण्ठं तथान्यंतस्यसंश्रयम् ॥ अथताभ्यांमु निर्दृष्टोनारदोब्रह्मसम्भवः ॥ २८ ॥ सान्त्वपूर्वंतदापृष्टो विष्णुंब्रह्मसनातनम् ॥ कदेवःपुण्डरीकाक्षस्साम्प्रतंवर्ततेमुने ॥ २९ ॥ विष्णोःस्थानानिसर्वाणि वीक्षितानिसमन्ततः ॥ आवाभ्यांसंप्रहृष्टाभ्यां नसंदृष्टःसकेशवः ॥ ३० ॥ नारदउवा च ॥ जलशायीतिरूपेण यावन्मासचतुष्टयम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे ससंतिष्ठतिसर्वदा ॥ ३१ ॥ तस्मात्तद्दर्शनार्थाय ग

वदरिकाश्रमको तथा वैकुण्ठ समेत क्षीरसागर को और उनके अन्य स्थानको देखकर इसके अनन्तर उन दोनोंने ब्रह्मासे उपजे हुये नारदमुनि को देखा ॥२७।२८॥ उस समय उन्होंने प्रियवचन पूर्वक सनातन ब्रह्म विष्णु जीको पूंछा कि हे मुने ! इस समय पुण्डरीकाक्ष देवजी किस स्थानपै वर्तमान हैं ॥ २९ ॥ श्रीविष्णु जीके समस्त स्थान सबओर से देखेगये परन्तु अति प्रसन्न हमदोनों ने उन केशवजीको भलीभांति न देखा ॥ ३० ॥ नारद बोले कि वे विष्णुजी चारमास पर्य्यन्त जलशायी

इसरूपसे निरन्तर हाटकेश्वर जीसे उपजेहुये क्षेत्रमें भलीभांति टिकेरहते हैं॥ ३१ ॥इसलिये उनके दर्शनके लिये उस क्षेत्रमें शीघ्रही जाइये जिससे वे चक्रधारी विष्णुजी दोनोंके दर्शनमें प्राप्तहोगे ॥ ३२ ॥ मैंनेभी उन विष्णुजीके दर्शनमें वहांको प्रस्थान किया है व किसी देवकार्य्यसे प्रस्थान कियेहुये मैं तुमसे संयुत भया ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर वे पक्षी व द्विजेन्द्र तथा वे ब्रह्माके पुत्र (नारद) मुनि ये सबलोग वहांपर प्राप्तहुये जहांपर जलशायी भगवान् टिकेहुयेथे ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर दूरसे भी उस बड़ेभारी विष्णुजीके तेजको देखकर गरुड व मुनि-नाथ नारदजी ब्राह्मणसे बोले ॥३५॥ कि हे द्विजोत्तम ! कन्या समेत तुम कल्पान्ताग्निके समान वैष्णव तेज

म्यतांतत्रमाचिरम् ॥ येनसंदर्शनंयाति द्वाभ्यामपिसचक्रधृक् ॥ ३२ ॥ अहमप्येवतत्रैव प्रस्थितस्तस्यदर्शने ॥ प्रस्थितश्चत्वयायुक्तो देवकार्येणकेनचित् ॥ ३३ ॥ अथतौपक्षिविप्रेन्द्रौ सचब्रह्मसुतोमुनिः ॥ प्राप्तास्सर्वेस्थितोयत्र जलशायीजनार्द्दनः ॥ ३४ ॥ अथदृष्ट्वामहत्तेजो वैष्णवंदूरतोपितम् ॥ ब्राह्मणंगरुडःप्राह नारदश्चमुनीश्वरः ॥ ३५ ॥ अत्रैवत्वंद्विजश्रेष्ठ तिष्ठदूरेतितेजसः ॥ वैष्णवस्यसुतायुक्तः कल्पान्ताग्निसमस्यच ॥ ३६ ॥ नोचेत्संपत्स्यसेभस्म पतङ्ग इवपावके ॥ समासाद्यनिशायोगं गूढभावंसमाश्रितः ॥३७॥ आवाभ्यांतत्प्रसादेन सोढुमेतत्सुदुःसहम् ॥ नकरोतिशरीरार्तिं तथान्यदपिकुत्सितम् ॥ ३८ ॥ एवंतंब्राह्मणंतत्र उक्त्वादूरेसुतान्वितम् ॥गतौतौतत्रसंसुप्तस्तोयेयत्रजनार्दनः॥ ३९ ॥ दिव्यस्तुतिपरौमूर्ध्नि धृतहस्ताञ्जलीउभौ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौचानन्दाश्रुप्लुताननौ ॥ ४० ॥ त्रिःपरिक्रम्यतंदे

के अति दूरमें यहींपर टिको ॥३६॥ नहीं तो वैसेही भस्म होजाओगा जैसे कि रात्रिके योगको पाकर गुप्तभाव में समाश्रित पांखी पावक में जलजाती है ॥ ३७ ॥ उन विष्णुजीकी प्रसन्नता से वह दुःसह तेज हमदोनों के सहने के लिये योग्य है क्योंकि शरीर को क्लेश व औरभी निन्दित कर्मको नहीं करता है ॥ ३८ ॥ उन दोनोंने उस दूरस्थान में कन्यासे संयुत उस ब्राह्मण से इसप्रकार कहकर वहां चलेगये जहांपर कि जनार्दनजी जलमें सोतेथे ॥३९॥ उन भक्त दुःखहारींदेव की तीन परिक्रमाकर प्रणाम करतेहुये व दिव्य स्तुति में परायण व हाथों की अञ्जलियों को मस्तकपै धारे व रोमावली से चिह्नित समस्त अङ्गोंवाले व आनन्द के आंसुओं से संकुल मुखवाले

उन दोनोंने पांयके समीप भलीभांति बैठी व समुद्र से उपजीहुई लक्ष्मी जीको देखा ॥ ४० । ४१ ॥ जो लक्ष्मीजी कि पांवमीडने में परायण व विष्णु जीके मुख की ओर नेत्रों को किये थीं इसके अनन्तर उन लक्ष्मी जीके समीप बैठीहुई अवस्थासे वृद्ध अन्यस्त्रीको देखा जोकि दुबले अङ्गोंवाली व बारह सूर्य्यों की छवि से संयुत व रोमावली से युक्त व स्वेत वसनसे लपेटीहुई तथा भलीभांति ध्यान में परायणथी ॥ ४२ । ४३ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न चित्तवाले उनदोनों सेभी विष्णु जीने हर्ष से सम्भाषण किया व जिसलिये आयेथे उसको पूंछा ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि हे केशव ! जो मुझसे पूछतेहो उसको सुनो कि मैं यहांपर तुम्हारे समीप देवताओंके

वमष्टाङ्गंप्रणतौहरिम् ॥ दृष्टवन्तौचपादान्ते सन्निविष्टांसमुद्रजाम् ॥ ४१ ॥ पादसंवाहनासक्तां विष्णुवक्राहितेक्षणा म् ॥ अथापरांवयोवृद्धां श्वेतवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥ ४२ ॥ सन्निविष्टांतदभ्याशे सम्यग्ध्यानपरायणाम् ॥ द्वादशार्कप्र भायुक्तां कृशाङ्गींपुलकान्विताम् ॥ ४३ ॥ अथतौविष्णुनाहर्षादुभावपिप्रहर्षितौ ॥ सम्भाषितौचसंपृष्टौयदर्थञ्चसमा गतौ ॥ ४४ ॥ नारदउवाच ॥ अहंहिसुरकार्येण सम्प्राप्तोत्रतवान्तिके ॥ गरुडोवैब्राह्मणार्थेयन्मांपृच्छसिकेशव ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कच्चित्क्षेमंमुनिश्रेष्ठ सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ कच्चिदिन्द्रस्यसञ्जातं भयंदानवसम्भवम् ॥ ४६ ॥ य ज्ञभागंलभन्तेस्मकच्चिद्देवाःसवासवाः॥ कच्चिन्नदानवःकश्चिदुत्कटोभूद्धरातले ॥ ४७॥ नारदउवाच॥ साम्प्रतंधरणीप्रा प्ता चतुर्वक्रस्यसन्निधौ ॥ रोरूयमाणाभारार्तादानवैःपीडिताभृशम् ॥ ४८ ॥ प्रोवाचपद्मजंतत्र दुःखेनमहतान्विता॥ धरण्युवाच ॥ कालनेमिर्हतोयोसौ विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ४९ ॥ उग्रसेनसुतःकंसः सम्भूतःसमहासुरः ॥ अरिष्टोधेनु

कार्य्य से भलीभांति प्राप्तहुआहूं और गरुड़ जी निश्चयकर ब्राह्मण केलिये आये हैं॥ ४५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुनिनाथ ! क्या समस्त देवताओं का कुशल है क्या दैत्योंसे उपजा हुआ डर इन्द्रके उत्पन्न हुआहै ॥ ४६ ॥ क्याइन्द्र समेत देवता यज्ञभाग को पातेहैं क्याकोई दैत्य धरातल में विकरालतो नहीं हुआहै ॥ ४७ ॥ नारद जी बोले कि इस समय दैत्यों से अति दुःखित व भारसे विकल तथा बहुत रोतीहुई पृथ्वी चारमुख वाले ब्रह्माके समीप प्राप्तहुई ॥४८॥ और वहांपर बड़े दुःखसे संयुत होतीहुई कमलसे उपजेहुये चतुराननसे बोली कि सर्वशक्तिमान् विष्णु जीसे जो यह कालनेमि मारागया है ॥ ४९ ॥ वह महादैत्य उग्रसेन का पुत्र कंसहुआ

है व अरिष्ट, धेनुक, केशी व अपर बकादि नामक हुआहै उसकी छोटी बहिन बड़ी विकराल पूतना नामक राक्षसी हुई है इधरउधर धावने वाले इन्हीं दानवों से व और भी भयङ्कर दैत्यों से मेरा योग व्यर्थ होजाता है इस समय मृत्युलोक में ऊर्ध्वबाहुनर नहीं उत्पन्न हुआहै ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ व दैत्यों की बहुताई से मेरे ऊपरभार की वृद्धि कैसे नहींहुई याने बड़ाभार हुआहै हे देव ! यदि पत्थरके नाईं भारावतरणको न करोगे याने भारको न उतारोगे ॥ ५३ ॥ तोमैं रसातलको चली जाऊंगी इस में सन्देह नहीं है उस पृथ्वीके वचनको सुनकर लोकों के कर्ता ब्रह्माजीने देवों के साथ सम्मतिकर मुझको तुम्हारे समीप पठायाहै कि तुम जनार्दन देव भगवान् से

कःकेशी प्रलम्बोनामचापरः ॥५०॥ तस्यानुजामहारौद्रा पूतनानामराक्षसी ॥ इतश्चेतश्चधावद्भिर्दानवैरेभिरेवच ॥५१॥ वृथामेजायतेयोगस्तथान्यैरपिदारुणैः ॥ ऊर्ध्वबाहुस्तथाजातो मर्त्यलोकेनचाधुना ॥ ५२ ॥ बहुत्वान्नप्रयातिस्मकथंवृद्धिर्ममोपरि ॥ भारावतरणंदेव नकरिष्यसिचाश्मवत् ॥ ५३ ॥ रसातलंप्रयास्यामि तदहंनात्रसंशयः ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥५४॥ संमन्त्र्यविबुधैःसार्द्धं प्रेषितोहन्तवान्तिकम् ॥ प्रोक्तव्योभगवान्वाक्यंत्वयादेवोजनार्दनः॥५५॥यथावतीर्यभूपृष्ठे भारमस्याःप्रणाशयेत् ॥ तस्माद्भूमितलेदेव कृत्वाजन्मस्वयंविभो ॥ ५६ ॥ भारंनाशयमेदिन्या एतदर्थमिहागतः॥भगवानुवाच॥ एवंसर्वंकरिष्यामि संमन्त्र्यब्रह्मणासह ॥५७॥ भारावतरणंभूमेः साकंदेवैःसवासवैः॥एवमुक्त्वासतंविष्णुर्नारदंमुनिपुङ्गवम्॥५८॥ततस्तुगरुडंप्राह त्वंकिमर्थमिहागतः॥५९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्येविष्णुदर्शनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

उस भांतिवचनको कहना कि जिस प्रकार धरापृष्ठपै अवतारलेकर इस भूमिके भारको नाशकरैं हे व्यापक, देव ! इसलिये भूमितल में आपही जन्मकर ॥ ५४।५५।५६ ॥ पृथ्वीके भारको नाशकरो इसी के लिये मैं यहांआयाहूं भगवान् बोले कि इन्द्र समेत समस्त देवताओंके साथ व ब्रह्माके साथ सम्मतिकर पृथ्वीके समस्त भारावतरणको ऐसाही करूंगा याने भूमिका भार उतारूंगा वे विष्णुजी उन मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे ऐसाकहकर ॥५७।५८॥ तदनन्तर गरुड़से बोले कि तुम यहां किसलिये आयेहो ॥५९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्येएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❁ ॥

दो० । शाण्डिल्या के शापसों गरुड भये विनपच्छ । अस्सी के अध्याय में बरणत सोइ समच्छ ॥ श्रीगरुड जी बोले कि भृगुवंश में उपजाहुआ ब्राह्मण मेरा प्रिय मित्रहै उसके कमलदल लोचनो वाली माधवी नामक कन्या है ॥ १ ॥ जिसलिये उस महात्मा द्विजने उस कन्याके समान कान्त (पति) को न पाया उसीसे मुझ को आज्ञादिया कि यदि मैं आपको प्रिय हूं तो इसी के समान रूपवाले द्विजोत्तम पतिको तुम लेआवो तदनन्तर मैंने कन्याके वरके लिये सम्पूर्ण पृथ्वी को विलोकन किया ॥ २ । ३ ॥ परन्तु समस्त गुणों से संयुत वरको उसके लिये न पाया तदनन्तर सबही गुणों से संयुत व उसके सदृश रूपवाले पति पुण्डरीकाक्ष जी मेरे

श्रीगरुडउवाच ॥ ममास्तिदयितंमित्रं ब्राह्मणोभृगुवंशजः ॥ तस्यास्तिमाधवीनाम कन्याकमललोचना ॥ १ ॥ अनुरूपंद्विजश्रेष्ठं यद्य नतस्याःसदृशःकान्तःप्राप्तस्तेनमहात्मना ॥ यतस्ततोहमादिष्टः कान्तमस्यास्त्वमानय ॥ २ ॥ ततस्तुपुण्डरी हंभवतःप्रियः ॥ ततोमयाखिलाभूमिस्तद्वरार्थंविलोकिता ॥ ३ ॥ नतदर्थंवरोलब्धस्सर्वैःसमुचितोगुणैः ॥ तस्मात्पाणिग्रहंतस्याःस्वीकुरुष्वसुरेश्वर ॥ काक्षोममचित्तेऽव्यवस्थितः ॥ ४ ॥ अनुरूपःपतिस्तस्याःसर्वैरेवगुणैर्युतः ॥ अत्रानयद्विजश्रेष्ठ तांकन्यांकमलेक्षणाम् ॥ ६ ॥ ५ ॥ अत्यन्तरूपयुक्ताया ममवाक्यप्रणोदितः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तवतेजोभयादेव साकन्याजनकान्विता ॥ ७ ॥ मयादूरेवि यांचदृष्ट्वास्वयंपश्चात्प्रकरोमियथोचितम् ॥ गरुडउवाच ॥ अत्रतांप्रमदांतेजो जनकेनसमन्विताम् ॥ ८ ॥ नदहिष्यतितस्मात्त्वं निर्मुक्ता तत्कथंतामिहानये ॥ भगवानुवाच ॥ तांकन्यामानयामासतंचविप्रंभृगूद्वहम् ॥ अथासौ शीघ्रंद्विजवरानय ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ९ ॥

चित्तमें व्यवस्थित हुये इसलिये हे सुरेश्वर ! मेरे वचनसे प्रेरित होतेहुये तुम अत्यन्त रूपसे युक्त उसके पाणिग्रहण को स्वीकारकरो श्रीभगवान् बोले कि हे पक्षियों में श्रेष्ठ ! उस कमल नयनवाली कन्याको यहांलावो ॥ ४ । ५ । ६ ॥ कि जिसको देखकर पश्चात् जैसा योग्यहो वैसा करूं गरुड़जी बोले कि तुम्हारे तेजके भयसे पिता समेत उसकन्या को मैंने दूरमें छोडदिया है तो उसको किसप्रकार यहांलाऊं श्रीभगवान् बोले कि द्विजोत्तम ! पिता से संयुत उस कन्या को यहांपर तेज न जलावैगा इसलिये तुम शीघ्रही आनो सर्व शक्तिमान् विष्णु जीसे इस प्रकार कहेहुये गरुड़जी ॥ ७ । ८ । ९ ॥ उस कन्याको व उस भृगुनायक ब्राह्मण को लेआये इसके

अनन्तर यह द्विज उच्चप्रकार से मधुसूदन को प्रणामकर गरुड़ के समीप लक्ष्मी की नाईं बगल में बैठगया व उन दोनोंके वचन से प्रशंसित तथा उत्तम नितम्ब
वाली वह कन्या भी मुरशत्रु (विष्णुजी) की शय्या पै दाहिने ओर भलीभांति बैठगई इसके अनन्तर क्रोधसे घिरेहुये अङ्गोंवाली व धर्म में टिकीहुई पटरानी ॥ १० ।
११ । १२ ॥ लक्ष्मी जीने यह चिन्तवन किया कि यह सौति है इससे उस कन्या को शाप दिया कि हे पापिनि ! जिसलिये प्रसन्न होतीहुई तुम दूरही से लज्जाको
त्यागकर मेरे पतिकी शय्यापै मेरे अगाड़ी भलीभांति बैठगई इससे निश्चयकर बिगड़ीहुई व घोड़े के मुखवाली होगी ॥ १३ । १४ ॥ जब इसप्रकार लक्ष्मीने शाप

प्रणिपत्योच्चैर्ब्राह्मणोमधुसूदनम् ॥ १० ॥ लक्ष्मीवन्न्यविशत्पार्श्वे गरुडस्यसमीपतः ॥ सापिकन्यावरारोहा ताभ्यां
वाक्यादनिन्दिता ॥ ११ ॥ शय्यैकान्तेसमाविष्टा दक्षिणेमुरविद्विषः ॥ अथकोपपरीताङ्गी महिषीधर्म्ममाश्रिता ॥ १२ ॥
लक्ष्मीःशशापतांकन्यां सपत्नीतिव्यचिन्तयत् ॥ यस्मान्मेपुरतःपापे कान्तस्यममहर्षिता ॥ १३ ॥ शय्यायांत्वंसमा
विष्टा लज्जांत्यक्त्वासुदूरतः ॥ तस्मादश्वमुखीनूनं विकृतात्वंभविष्यसि ॥ १४ ॥ एवंशापेश्रियादत्ते हाहाकारोमहा
नभूत् ॥ सर्वेषांतत्रसंस्थानां कोपश्चापिद्विजन्मनः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सहस्रमिष्यतेकन्या करोत्येकःकरग्रहम् ॥
वाङ्मात्रेणनतस्यासीत्पत्नीभावःकथञ्चन ॥ १६ ॥ यावन्नापिद्विजातीनां प्रत्यक्षंगुरुसन्निधौ ॥ सुसंकल्प्यस्वयंदत्ता गृह्यो
क्तविधिनाजनैः ॥ १७ ॥ तस्मात्तुदोषनिर्मुक्ता शप्तासैषासुतात्वया ॥ कृतावाजिमुखीपापे त्वंगजास्याभविष्यसि ॥
१८ ॥ एवमुक्त्वासविप्रेन्द्रस्ततःप्रोवाचकेशवम् ॥ आतिथ्यंविहितंत्वेतत्तवपत्न्यायथोचितम् ॥ १९ ॥ तस्मात्तत्रप्र

दिया तबवहांपै टिकेहुये समस्त मनुष्योंका बड़ाभारी हाहाकार हुआ व द्विजकेभी क्रोधहुआ ॥ १५ ॥ ब्राह्मण बोला कि कन्याके लिये हजारों वर इच्छाकिये जाते हैं
परन्तु एकही पाणिग्रहण करताहै वचन मात्रसे उन विष्णु जीका किसीप्रकार स्त्री भावनहीं हुआ है ॥ १६ ॥ क्योंकि जबतक ब्राह्मणों के सामने व गुरुओं के समीप
गृह्यसूक्त की कहीहुई विधिसे मनुष्योंसे भलीभांति सङ्कल्पकर आपही नहीं दीजातीहै तबतक पत्नीभाव नहीं होताहै ॥ १७ ॥ जिसलिये हे पापिनि ! तुमने दोषसे रहित
उसीइस कन्याको शापदिया व अश्वमुखी किया इससे तुम गजमुखी होगी ॥ १८ ॥ उस द्विजेन्द्रने ऐसा कहकर तदनन्तर केशवजीसे कहा कि तुम्हारी स्त्रीने इसयथा-

योग्य पहुनई को किया ॥ १९ ॥ इसलिये वहां जाऊंगा जहांपर वैसीही कन्याहोगी भगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुमको इस कार्य्यमें खेद न करना चाहिये ॥ २० ॥ क्योंकि मेरे समीप प्राप्तहुये पुरुषोंको कहीं अशुभ नहीं होता है इसलिये यहकन्या इस जन्म में अश्वमुखी न होगी ॥ २१ ॥ तुम इसकन्या को लेकर घरजावो व अन्य मनुष्य के लिये देदो शय्यापै वामदिशाका भाग स्त्रियोंको कहागयाहै ॥ २२ ॥ व उस समय में योग्य शयन करनेवाले बन्धुजनों को दाहिनाभाग कहागया है हे द्विज ! सो यह तुम्हारी कन्या भाइयों के स्थानपै भलीभांति बैठगई इसलिये दूसरे जन्ममें किसी देवकार्य्य से भूमिपृष्ठ में अवतरेहुये मेरी छोटी बहिन होगी ॥ २३।२४ ॥

यास्यामि यत्रस्यात्तादृशीसुता ॥ भगवानुवाच ॥ नसन्तापस्त्वयाकार्य्यः कृत्योस्मिन्द्विजसत्तम ॥ २० ॥ ममान्तिकंप्रयातानांनाशुभञ्जायतेक्वचित् ॥ तस्मान्नाश्वमुखीत्वेषाजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥ २१ ॥ गृहीत्वेमांगृहंगच्छप्रयच्छस्वेतरायच ॥ शयनेवामदिग्भागः कलत्राणामुदाहृतः ॥ २२ ॥ दक्षिणोबन्धुलोकानां तत्कालोचितशायिनाम् ॥ सेयंतवसुताविप्र बन्धुस्थानंसमाश्रिता ॥ २३ ॥ भविष्यतिततोजामिः कनिष्ठामेन्यजन्मनि ॥ अवतीर्णस्यभूपृष्ठे देवकार्य्येणकेनचित् ॥ २४ ॥ वाजिवक्त्रधराप्रोक्तायदेषाममकान्तया ॥ ततोहंसुमहत्कृत्वा तपश्चैवानयासह ॥ २५ ॥ करिष्यामिशुभास्यांच ततोलक्ष्मीमपिद्विज ॥ एवंसभगवान्विप्रं तंसन्तोष्यतदागिरा ॥ २६ ॥ गरुडेनसमंचक्रेकथाश्चित्रामनोरमाः ॥ अथकस्मिन्कथान्तेस गरुडःपुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥ प्रोवाचतांस्त्रियंदृष्ट्वा वृद्धांतेजःसमन्विताम् ॥ अपूर्वेयंसुरश्रेष्ठ स्त्रीवृद्धातवपार्श्वगा ॥ २८ ॥ किमर्थंकेयमाख्याहि कुतःप्राप्ताजनार्दन ॥ श्रीभगवानुवा

कि हे द्विज ! जिसलिये मेरी स्त्रीने इसको अश्वमुख को धारनेवाली कहा है इसीसे मैं इसके साथ बडे भारी तपकोकर शोभन मुखवाली करूंगा व लक्ष्मीको भी शुभदायक मुखारविन्द वाली करूंगा उन विष्णु भगवान् ने उस समय उस ब्राह्मण को इसप्रकार वाणीसे सन्तोषकर गरुडके साथ मनोहर व विचित्र कथाओं को किया इसके अनन्तर किसी कथाके अन्त में गरुड़ जीने तेजसे संयुत व बूढ़ी उस स्त्रीको देखकर कहा कि हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारे समीपमें प्राप्तयह अपूर्व वृद्धास्त्री है ॥

२५ । २६ । २७ । २८ ॥ हे जनार्दन ! यह स्त्री किसलिये व कौन और कहांसे प्राप्त हुई है श्रीभगवान् बोले कि हे पक्षियों में उत्तम ! यह वृद्धकन्या शाण्डिली नामक इस लोकमें प्रसिद्ध है जोकि ब्रह्मचर्य्यमें लगी व तपस्या रूप बलसे संयुत व समस्त देवताओं से प्रणामकीहुई तथा समस्त वस्तुओंको जानने वाली है ॥ २९।३० ॥ हे गरुड ! इस त्रिलोक में ऐसी व इसके समान स्त्री निश्चयकर नहीं है सूतजी बोले कि तदनन्तर उन विष्णु जीके वचनको सुनकर व विहंसकर गरुड़ जीने प्रत्युत्तर को कहा ॥ ३१ ॥ कि हे पुरुषोत्तम ! जैसे जिस स्थान में दानदिया जाता है वह आश्चर्य्य नहीं है वैसेही संग्राम में युद्ध करने में निपुण पुरुषों से जो युद्ध किया

च ॥ एषाख्याताखगश्रेष्ठ लोकेस्मिन्वृद्धकन्यका ॥ २९ ॥ शाण्डिलीनामसर्व्वज्ञा ब्रह्मचर्य्यपरायणा ॥ तपोवीर्य्यसमोपेता सर्वदेवाभिवन्दिता ॥ ३० ॥ नास्तिचैवेदृशीतार्क्ष्यसमानात्रजगत्त्रये ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वाविहस्योवाचचोत्तरम् ॥ ३१ ॥ यथाचदीयतेदानं यत्रतन्नास्तिचाद्भुतम् ॥ तथाचक्रियतेयुद्धं सङ्ग्रामेयुद्धशालिभिः ॥ ३२ ॥ नाश्चर्य्यंचित्रमेतत्तु ब्रह्मचर्य्यंतदद्भुतम् ॥ विशेषाद्यौवनावस्थां संप्राप्यपुरुषोत्तम ॥ ३३ ॥ विशेषेणचनारीभिस्तन्नैवश्रद्दधाम्यहम् ॥ अवश्यंयौवनस्थेन तिर्यग्योनिगतेनच ॥ ३४ ॥ विकारःखलुकर्तव्यो नाविकाराययौवनम् ॥ यदिनप्राप्नुवन्त्येताः पुरुषंयोषितःक्वचित् ॥ ३५ ॥ अन्योन्यंमैथुनंचक्रुः कामबाणप्रपीडिताः ॥ कुष्ठिनंव्याधिनंवापि स्थविरंव्यङ्गमेवच ॥ ३६ ॥ प्राप्यैताःपुरुषाभावे मन्यन्तेपञ्चशायकम् ॥ नाग्निस्तृप्यतिकाष्ठानां नापगानांमहोदधिः॥३७॥

जाता है वह भी अद्भुत नहीं है परन्तु विशेषतासे युवावस्थाको भलीभांति पाकर यह ब्रह्मचर्य्य आश्चर्य्य है ॥ ३२ । ३३ ॥ व स्त्रियों को विशेषकर ब्रह्मचर्य्य करना आश्चर्य्य है मैं उसको नहीं विश्वास करताहूं क्योंकि पशुपक्षी की योनि में प्राप्त व युवावस्था में टिकाहुआ पुरुष अवश्यकर विकारकरने के योग्य होताहै यदि कामदेव के बाणसे पीड़ित होतीहुई ये स्त्रियां कहीं पुरुषको नहीं पातीहैं तो आपस में मैथुन करती हैं ये स्त्रियां पुरुषके न होनेपर कुष्ठी व रोगी भी अथवा वृद्ध या बिगडेहुये अङ्गों वालेही नर को पाकर पांचबाणवाले अर्थात् कामदेवहीको मानतीहैं काष्ठोंसे अग्नि व नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता है ॥ ३४ । ३५ । ३६ । ३७ ॥

और समस्त प्राणियों से यमराज व पुरुषों से स्त्रियां नहीं तृप्तहोती हैं येस्त्रियां एक तो भूपोंके भयको या गुरुजनों (माता पितादिकों) से उपजेहुये भयको छोड़कर परलोक के भयसे मर्य्यादा को नहीं धारती हैं सूतजी बोले कि उन गरुड़ जीके ऐसे वचनको सुनकर मौनव्रत धारिणी भी उस शाण्डिली नामक ब्रह्मचारिणी ने चित्तमें क्रोधको धारणकिया इसी अवसर मे उन पक्षियों के नायक गरुड जीके दोनों पंख उसीक्षण नाश होगये इसके अनन्तर वे गरुडजी समस्त लोमों से रहित व मांस के पिण्डमय व विकराल तथा रुण्ड के आकारवाले होगये ॥ ३८ । ३९ । ४० । ४१ ॥ और वैसेही कहींपर पगभर भी जाने के लिये असमर्थ होगये ॥ ४२ ॥

नान्तकःसर्व्वभूतानां नपुंसांवामलोचना ॥ नपरत्रभयादेता मर्य्यादांविदधुःस्त्रियः ॥ ३८ ॥ मुक्त्वाभूपभयंचैकमथ वागुरुजंभयम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वा शाण्डिलीब्रह्मचारिणी ॥ ३९ ॥ मौनव्रतधराप्येवं हृदिकोपंदधार सा ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्य पक्षिनाथस्यतत्क्षणात् ॥ ४० ॥ उभौपक्षौगतौनाशं रुण्डाकारोथसोभवत् ॥ मांसपिण्ड मयोरौद्रःसर्वरोमविवर्जितः ॥ ४१ ॥ अशक्तश्चतथागन्तुंपदमात्रमपिकचित् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयप रिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णपक्षपातवर्णनंनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तद्दृष्ट्वापुण्डरीकाक्षोगरुडस्यविचेष्टितम् ॥ विस्मितश्चिन्तयामास किमिदंसाम्प्रतंस्थितम् ॥ १ ॥ अ पिवज्रप्रहारेण यस्यरोमापिनच्युतम् ॥ तौपक्षौसहसाचास्यकथंनिपतितौभुवि ॥ २ ॥ नूनमेतेनयास्त्रीणां कृतानिन्दाम

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगरुड़पक्षपातवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ❀ ॥

दो० । इक्यासी अध्याय में कहत रुचिर सो गाथ । पूजि शङ्करहिं गरुड़ जिमिभये सपक्ष सनाथ ॥ सूतजी बोले कि गरुड़ जीके उसकर्म को देखकर विस्मय में प्राप्त होतेहुये पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) ने चिन्तवन किया कि इस समय यह क्या स्थित होगया ॥ १ ॥ कि वज्रके प्रहारसे भी जिन गरुड़ जीका लोम भी न गिरा इन्हीं गरुड़ जीके वे दोनों पक्ष अचानक भूमिमें कैसे गिर पड़े ॥ २ ॥ इस महात्माने शाण्डिली को भलीभांति देखकर निश्चयकर स्त्रियों की निन्दाकिया व

ब्रह्मचर्य्य को दूषित किया इसलिये इस स्त्रीने तपस्याकी शक्ति के प्रभावसे पक्षोंको गिराया है क्योंकि त्रिभुवन में अन्य पुरुषके ऐसी शक्ति नहीं है ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! करुणता व विनय से संयुत गरुड़ध्वज (विष्णु) ने मुसकराकर शाण्डिलीको प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे महाभागे ! समस्त स्त्रियों के मनको नहीं कहा किन्तु सामान्य वचन को इनगरुड़ने कहा है तो किस लिये तुमनेही ऐसाकर दिया ॥ ६ ॥ शाण्डिली बोली कि हे मुसक्यान युक्तमुख वाले, जगद्गुरो, जनार्दनजी ! बहुतही अकोसतेहुये भी उस गरुड़ने मेरे मुखको भलीभांति देखकर नारियों की निन्दा किया ॥ ७ ॥ हे केशव ! इसी कारणसे मैंने

हात्मना ॥ दूषितंब्रह्मचर्य्यंतच्छाण्डिलींसमवेक्ष्यच ॥ ३ ॥ अनयापातितौपक्षौ ततःशक्तिप्रभावतः ॥ नान्यस्यविद्यते शक्तिरीदृशीभुवनत्रये ॥ ४ ॥ ततःप्रसादयामास शाण्डिलींगरुडध्वजः ॥ कारुण्यविनयोपेतः स्मितंकृत्वाद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सामान्यवचनंप्रोक्तंसर्वस्त्रीणांमनोनहि ॥ तत्किमर्थंमहाभागे त्वयाचैवेदृशःकृतः ॥ ६ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ ममवक्त्रंसमालोक्य स्मितवक्त्रजनार्दन ॥ स्त्रीनिन्दाविहितातेन सुशप्त्वापिजगद्गुरो ॥ ७ ॥ एतस्मात्कारणादस्य निग्रहोयंमयाकृतः ॥ मनसानचवाक्येन नचकेशवकर्म्मणा ॥ ८ ॥ भगवानुवाच ॥ तथापिकुरुचास्यत्वं प्रसादंगतकल्मषे ॥ ममवाक्यानुरोधेन यदिमांमन्यसेशुभे ॥ ९ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ मनसापिमयाध्यातं शुभंवायदिवाशुभम् ॥ नान्यथाजायतेदेव विशेषात्कोपयुक्तया ॥ १० ॥ तस्मादेषममादेशादाराधयतुशङ्करम् ॥ पक्षलाभायनान्यस्य शक्तिर्दातुंव्यवस्थिता ॥ ११ ॥ अथवापुण्डरीकाक्षरूपमीदृग्व्यवस्थितः ॥ एषसंस्थास्यतेलोके

इसके इस दण्डको किया व मन, वचन, कर्म से नहीं किया है ॥ ८ ॥ भगवान् बोले कि हे पापों से रहिते, शुभे ! यदि मुझको मानती होतो तिसपर भी मेरे वचनके रोक से तुम इस गरुड़ के ऊपर प्रसन्नताकरो ॥ ९ ॥ शाण्डिली बोली कि हे देव ! मैंने यदि मन सेभी शुभ या अशुभ का ध्यान कियातो अन्यथा नहीं होता है और कोपयुक्त वाली मुझसे चिन्तित कार्य्य विशेषकर अन्यथा नहीं होता ॥ १० ॥ इसलिये पक्षलाभ के निमित्त यह गरुड़ हमारी आज्ञासे शङ्करजीका आराधन करै अन्यदेवकी शक्ति देनेके लिये विशेषकर स्थित नहीं है ॥ ११ ॥ अथवा हे पुण्डरीकाक्ष ! यह ऐसेही रूपमें विशेषता से प्राप्तहोकर संसार में भलीभांति टिकै

मैं इसको सत्य कहतीहूं ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि उस शाण्डिलीके उस वचनको सुनकर जनार्दन जीने मांसपिण्ड के समान टिकेहुये व पङ्खोंसे रहित उन गरुड़
जीसे कहा ॥ १३ ॥ कि ये चन्द्रभाल देवजी संसार में भलीभांति टिके हैं तुम सावधान चित्त में टिककर व निरालस्य होकर अहर्निश इनका आराधन करो ॥ १४ ॥
जिस से कि हे कश्यपके पुत्र, गरुड़ ! उन देवके माहात्म्य से व उनके प्रभाव से थोड़ेही काल मेंभी तुम्हारा फिर वैसाही शरीर होजावै ॥ १५ ॥ उस वचन को सुन
कर शीघ्रही सदाशिवके व्रतको धारेहुये गरुड़जीने ईशान (शिव) देवको भलीभांति थापकर तदनन्तर उनको प्रसन्नता में प्राप्त किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उन गरुड़

सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा तंप्रोवाचजनार्दनः ॥ गरुडंपक्षसंत्यक्तं मांसपिण्डो
पमंस्थितम् ॥ १३ ॥ एषसंस्थास्यतेलोके देवस्तुशशिशेखरः ॥ अव्यग्रंचित्तमास्थाय दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ १४ ॥
येनतेतत्प्रभावेण भूयस्स्यात्तादृशंवपुः ॥ तस्यदेवस्यमाहात्म्यादचिरादपिकाश्यप ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वागरुडस्तूर्णं धृतपा
शुपतव्रतः ॥ संस्थाप्यदेवमीशानं ततस्तंतोषमानयत् ॥ १६ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि तथासान्तपनानिच ॥ प्रा
जापत्यानिचक्रेथ पाराकाणितदग्रतः ॥ १७ ॥ स्नात्वात्रिषवणंपश्चाद्भस्मस्नानपरायणः ॥ जपन्रुद्रशिरोवेदं शतरुद्रि
यमथापराम् ॥ १८ ॥ चक्रेपूजांस्वयंतस्य स्नापयित्वायथाविधि ॥ बलिपूजोपहारांश्च विधानेनप्रयच्छति ॥ १९ ॥
एवंतस्यव्रतस्थस्य जपपूजापरस्यच ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेगतस्तुष्टिंमहेश्वरः ॥ २० ॥ अब्रवीद्वरदोस्मीति वृणुष्वेष्टं
द्विजोत्तम ॥ गरुडउवाच ॥ पश्यावस्थांममेशान शाण्डिल्यायाविनिर्मिता ॥ २१ ॥ पक्षपातःकृतोस्माकं तमहंप्रा

जीने कृच्छ्र चान्द्रायणों व कृच्छ्र सान्तपनों व प्राजापत्यों व्रतों को किया उसके अगाड़ी कृच्छ्र पाराक व्रतोंको किया ॥ १७ ॥ व प्रातःकाल, मध्याह्न, सायाह्न में न-
हाकर पश्चात् विभूति के स्नान में तत्पर होकर इसके अनन्तर आपही वेदमय रुद्रशिरको व अन्य शतरुद्रिय को जपते हुये विधिपूर्वक स्नान कराकर उन शिव
जीका विधिपूर्वक पूजन किया व विधान से भेंट, पूजन, उपहारों को दिया ॥ १८ । १९ ॥ इस प्रकार जप, पूजन में परायण व व्रतमें टिकेहुये उन गरुड़ जीके ऊपर
हज़ार वर्षके बाद महादेव जी प्रसन्नहुये ॥ २० ॥ व यह बोले कि हे पक्षियों में उत्तम, गरुड़ ! मैं वरदायकहूं तुम मनोरथ को मागो गरुड़ जी बोले कि हे ईशान !

शाण्डिली नामक ब्राह्मणी से बनाईहुई मेरी दशाको देखिये ॥ २१ ॥ हे हरजी ! हमारा पक्षपात किया है याने मेरे पङ्ख गिरादिये गये हैं उन्हींको मैं निश्चयकर मां-
गताहूं व यदि इससमय तुम मनोरथ को देते हो तो मेरे वचन से निस्सन्देह मेरे इसी लिङ्गमें तुमको सदैव टिकना चाहिये श्रीभगवान् शिवजी बोले कि आजसे ल-
गाकर इस लिङ्गमें मेरा निवास होगा ॥ २२ । २३ ॥ हे विहङ्गम ! मेरी प्रसन्नतासे तुम उसी रूपसे संयुत व विशेषतासे बल, वेग के भागी होगे इसमें सन्देह नहीं है
२४ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर शङ्कर देव जीने आपही उन गरुड़ को हाथसे स्पर्श किया तदनन्तर इन गरुड़ के उसी क्षणही सुन्दर पङ्ख होगये ॥ २५ ॥ और

र्थयामिवै ॥ त्वयात्रैवसदालिङ्गेस्थेयंहरममाधुना ॥ २२ ॥ ममवाक्यादसंदिग्धं यदिचेष्टंप्रयच्छसि ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
अद्यप्रभृतिचैवात्र लिङ्गेवासोभविष्यति ॥ २३ ॥ त्वंचतद्रूपसम्पन्नो विशेषाद्बलवेगभाक् ॥ भविष्यतिनसन्देहो मत्प्रसा
दाद्विहङ्गम ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाथतंदेवःस्वयंपस्पर्शपाणिना ॥ ततोस्यपक्षौसंजातौ तत्क्षणादेवसुन्दरौ ॥ २५ ॥ तथा
रोमाणिदिव्यानि जातरूपमयानिच ॥ अपिपापसमाचारो कल्मषीनिर्घृणोपिवा ॥ २६ ॥ ब्रह्मघ्नोवासुरापोवा चौरो
वाभ्रूणहापिवा ॥ त्रिकालंपूजयेद्यस्तु श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २७ ॥ योवत्सरंवसेत्सोपि शिवलोकेमहीयते ॥ अथवासो
मवारेण यस्तंपश्यतिमानवः ॥ २८ ॥ कृत्वाक्षणंसुभक्त्यायो यावत्संवत्सरंद्विजाः ॥ सोपियातिनसन्देहः पुरुषःशिव
मन्दिरम् ॥ २९ ॥ विमानवरमारूढो सेव्यमानोप्सरोगणैः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलिकालेविशेषतः ॥ ३० ॥ द्रष्टव्योवैसु
पर्णाख्योदेवःश्रद्धासमन्वितैः ॥ सन्त्याज्याश्चतथाप्राणास्तदानियममाश्रितैः ॥ ३१ ॥ वाञ्छद्भिःशिवसान्निध्यं सत्य

वैसेही स्वर्णमय उत्तम रोयें होगये पाप आचरणवालाभी व पातकी तथा निर्दयी भी या मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा गर्भसङ्घाती भी जो पुरुष श्रद्धासे पवित्र
चित्तकरके उन सदाशिव जीका त्रिकाल पूजन करै ॥ २६ । २७ ॥ और जो वर्षभर निवासकरै वहभी शिवलोक में पूजित होताहै अथवा हे ब्राह्मणो ! वर्षभरतक सोम-
वारको जो पुरुष उत्तम भक्ति से उछाहकर उन सदाशिव जीको देखता है वहभी मनुष्य उत्तम विमानपै चढ़ा व अप्सराओं के समूहोंसे सेवित होताहुआ निस्सन्देह
शिव जीके मन्दिर को जाता है इसलिये कलिकाल में विशेषकर श्रद्धासंयुत जनोंको सब उपायसे सुपर्ण नामक शिव देवको देखना चाहिये व उसी समय नियमों

में टिकेहुये तथा शिव जीकी समीपताके चाहनेवाले पुरुषोंको प्राणोंको भलीभांति त्यागना चाहिये यह मैंने सत्य कहाहै ॥ २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्यंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ❀ ॥

दो० । बयासिवें अध्याय में कह गरुडेश हवाल । पूजि जिनहिं नीरुज भयो वेणु नाम नरपाल ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय वहांपर जो आश्चर्य्य
हुआ है उसको मैं कहूंगा जोकि पुराण में कहा है ॥ १ ॥ प्राचीन समय सूर्य्य वंशमें उत्पन्न वेणुनामक भूपाल हुआ है जोकि सदैव पापसे संयुत व दुष्ट बुद्धिवाला तथा

मेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सुपर्णाख्यमाहा
त्म्यन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तत्राश्चर्य्यमभूत्पूर्वं यत्तद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ अहंचकीर्तयिष्यामि पुराणेयदुदाहृतम् ॥ १ ॥ वेणुर्नाम
महीपालः पुरासीत्सूर्य्यवंशजः ॥ सदैवपापसंयुक्तो दुर्मेधाःकामपीडितः ॥ २ ॥ शासनानिप्रदत्तानि ब्राह्मणानांमहा
त्मनाम् ॥ अन्यैःपार्थिवशार्दूलैस्तेनतानिहतान्यलम् ॥ ३ ॥ वध्वोनीताःस्त्रियोनेका विधवाश्चविशेषतः ॥ कुमार्य्योरू
पवत्यश्च तथानिजकुलोद्भवाः ॥ ४ ॥ देवताराधनंपूजांकर्तुंनैवददातिसः ॥ नचयज्ञञ्चहोमञ्च स्वाध्यायंनचपापकृ
त् ॥ ५ ॥ प्रोवाचचजनान्सर्वान्मांपूजयथसर्वदा ॥ नमत्तोभ्यधिकोन्योस्ति देवोवाब्राह्मणोपिवा ॥ ६ ॥ मयातुष्टेनसर्वे
षांसंपत्स्यतिहृदीप्सितम् ॥ दैवतेष्वपिसंदिग्धंशुभंवायदिवाशुभम् ॥ ७ ॥ तेनशस्त्रविहीनानांविश्वस्तानांवधःकृतः ॥

कामदेव से दुःखितथा ॥ २ ॥ उसने महात्मा ब्राह्मणोंको उन आज्ञाओं को दिया कि जो अन्य नृपपुङ्गवों ने बहुतही नष्ट करदियाथा ॥ ३ ॥ उसने अनेकों बहू स्त्रियों
व विशेषकर विधवा, कुमारी तथा स्ववंश मे उपजी हुई रूपवती स्त्रियों को लाया ॥ ४ ॥ वह पापकारी नृप यज्ञ, होम, वेदपाठ व देवाराधन तथा पूजनको नहीं
करने देताथा ॥ ५ ॥ व समस्त मनुष्यों से उसने कहा कि तुमलोग सदैव मुझको पूजो क्योंकि मुझसे अधिक दूसरा देवता या ब्राह्मणभी नहीं है ॥ ६ ॥ क्योंकि
प्रसन्नहुये मुझसे समस्त नरों के हृदय का मनोरथ भलीभांति प्राप्तहोगा जोकि देवताओं मेंभी शुभ या अशुभ का सन्देहभूत है ॥ ७ ॥ उस नृपति ने विश्वास में

प्राप्तहुये व शस्त्र से रहित पुरुषों को वध किया व भयसे विकल तथा शरण में प्राप्त हुये पुरुषों को त्यागकिया है ॥ ८ ॥ और वह महायुद्ध में समीप प्राप्तहुये शत्रु समूहोंको देखकर प्राणों की रक्षाके लिये क्षत्रियके धर्मको छोड़कर भग जाताथा ॥ ९ ॥ व उसने चोरी न करनेवाले जनोंको भलीभांति ग्रहण किया याने पकड़ा है व नित्य उनके द्रव्यको हरतेहुये चोरोंकी भलीभांति रक्षाकिया व सदैव साधु जनों को क्लेशित किया है ॥ १० ॥ व उसने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके कभी व्रतको नहीं किया व पूजन के योग्य पदार्थको ब्राह्मणों के लिये कभी नहीं दियाहै ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार नित्यही पापमें परायण उस नरेश के उसी कारण बहुतही क-

संत्यक्ताःशरणम्प्राप्ताःपुरुषाभयविह्वलाः ॥ ८ ॥ नष्टोमहाहवेदृष्ट्वाशत्रुसङ्घानुपस्थितान् ॥ क्षात्रधर्म्मम्परित्यज्य प्राणरक्षार्थमेवहि ॥ ९ ॥ अचौराःसंगृहीताश्चचौरास्संरक्षिताःसदा ॥ साधवःक्लेशितानित्यंतेषाञ्चहरताधनम् ॥ १० ॥ नकदाचिद्व्रतन्तेनश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ नदत्तंब्राह्मणेभ्यश्चनयष्टव्यंकदाचन ॥ ११ ॥ एवंतस्यनरेन्द्रस्यपापासक्तस्यनित्यशः ॥ कुष्ठव्याधिरभूत्तीव्रावंशोच्छेदश्चतद्द्विजाः ॥१२॥दायादास्सहसातस्यराज्यञ्जहुस्ततःपरम् ॥ ततस्तुव्याधिनाग्रस्तंपुत्रैःपौत्रैर्विवर्जितम् ॥ १३ ॥ तञ्चनिर्वासयामासुस्तस्माद्देशात्पदातिनम् ॥ एकाकिनम्परित्यक्तंसर्वैरपिसुहृद्गणैः ॥ १४ ॥ सोपिसर्वैःपरित्यक्तस्तेनपापेनकर्म्मणा ॥ कलत्रैरपिचात्मीयैः स्मृत्वापूर्वविचेष्टितम् ॥ १५ ॥ एकाकी भ्रममाणोथ सोपिकुष्ठवशङ्गतः ॥ क्षुत्तृष्णाभ्याम्परिश्रान्तःक्षेत्रमेतत्समागतः ॥ १६ ॥ ततःप्रासादमासाद्यसुपर्णाख्यसमुद्भवम् ॥ यावत्प्राज्ञःपरित्यक्तस्तावत्प्राणैरुपोषितः ॥ १७ ॥ ततोदिव्यवपुर्भूत्वा विमानवरमाश्रितः ॥ जगामशि

ठिन कुष्ठरोग व वंशका उच्छेद हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर उसके बन्धुओंने एकाएकी राज्यको हरलिया उसके उपरान्त रोगसे ग्रसे व पुत्र, पौत्रोंसे रहित व समस्त भी मित्रगणोंसे त्यागेहुये व पैदरि तथा अकेले उस नृपतिको उस देशसे निकालदिया॥१३।१४ ॥ उस पापकर्म से अपनी समस्त स्त्रियों सेभी त्यागाहुआ वह भूपति पहलेके कर्मको स्मरणकर ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर कुष्ठके वशमें प्राप्त व अकेले घूमताहुआ वह नृपतिभी भूख प्याससे बहुत थककर इस क्षेत्रको भलीभांति आया ॥ १६ ॥ तदनन्तर गरुड़ नामसे उपजेहुये मन्दिर में आकर उसबुद्धिमान् ने जबतक उपास किया तबतक उसके प्राण छूटगये ॥ १७ ॥ तदनन्तर उत्तम विमानपै टिकाहुआ

वह दिव्य शरीरवाला होकर धार्मिक जनोंसेभी दुर्लभ शिवलोक को चलागया ॥ १८ ॥ व अप्सराओं से सेवित तथा किन्नरों से स्तुति कियाहुआ व गन्धर्वों से गाया हुआ वह शिवजीके समीपमें टिका ॥१९॥ इसके अनन्तर पार्वतीने उसको समीपमें देखकर आदर समेत पूंछा कि हे देव ! तुम्हारे मन्दिरमें यह कौन पुण्यवान् भलीभांति आयाहै ॥ २० ॥ इसने कौन कर्म कियाहै कि जिससे विभूतिधारी होकर यहां प्राप्त हुआहै श्रीभगवान् बोले कि यह भूमिपृष्ठ में वेणु नामक भूपति होकर सदैव पाप का आचरण करनेवाला यह कुष्ठरोगसे संकुलहुआ वह शत्रुवर्गसे पराभवको प्राप्त होकर अपनी स्त्रियों से त्याग कियागया ॥ २१ । २२ ॥ और उपास में तत्पर तथा

शिवपार्श्वेऽप्यव ॥ गीयमानश्चगन्धर्वैः ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्चस्तूयमानश्चकिन्नरैः ॥ वल्लोकंस दुर्लभंधार्मिकैरपि ॥ १८ ॥ स्थितः ॥ १९ ॥ अथतंसन्निधौदृष्ट्वा गौरीपप्रच्छसादरम् ॥ कोयन्देवसमायातस्सुकृतीतवमन्दिरे ॥ २० ॥ अनेनकिं कृतंकर्म्मयत्प्राप्तोत्रविभूतिधृक् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एषपापसमाचारस्सदासौपृथिवीपतिः ॥ २१ ॥ वेणुःसन्वैधरा पृष्ठे कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ ससन्त्यक्तोनिजैर्दारैः शत्रुवर्गेणधर्षितः ॥ २२ ॥ भ्रममाणःसमायातस्सुपर्णाख्यस्यम न्दिरे ॥ उपवासपरःश्रान्तः सान्निध्यंममयत्रच ॥ २३ ॥ सर्वप्राणैःपरित्यक्तः तस्मिन्नायतनेशुभे ॥ तत्प्रभावादिहप्रा प्तस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २४ ॥ अन्योप्यनशनंकृत्वाप्राणान्यस्तत्रसन्त्यजेत् ॥ सचास्याभ्यधिकांभूतिमाप्नु याद्वरवर्णिनि ॥ २५ ॥ यानेतान्पश्यसेदेवि गणान्मेपार्श्वसंस्थितान् ॥ एतैस्तत्रकृतंसर्वैस्तत्रप्रायोपवेशनम् ॥ २६ ॥ अपिकीटपतङ्गायेपशवःपक्षिणोमृगाः॥प्रासादेतत्रनिर्मुक्ताःप्राणैर्यान्तिममान्तिकम् ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापा

घूमताहुआ व थककर वह नृपति सुपर्णाख्य मन्दिर में भलीभांति आया जहांपर कि मेरी समीपता है ॥ २३ ॥ उसी शुभदायक मन्दिर में समस्त प्राणों से त्यागाहुआ वह उसीके प्रभावसे यहां प्राप्तहुआ है यह मैंने सत्य कहा है ॥ २४ ॥ हे उत्तम वर्णवाली, पार्वती जी ! और भी जो मनुष्य भोजनको न कर उस मन्दिर में प्राणोंको त्यागताहै वह इस सेभी अधिक ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ हे देवि ! इन मेरे बगल में भलीभांति टिकेहुये जिन गणोंको तुम देखती हो इन सबोंने वहांपर अन्न, पानको त्यागन किया है ॥ २६ ॥ जे पशु, पक्षी, पांखी, कीड़ा व मृग भी हैं वे उस मन्दिर में प्राणों को त्यागकर मेरे समीप प्राप्तहोते हैं ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि शिव

जी से कहेहुये उस वचनको सुनकर विस्मयसे व्याप्त हृदयवाली वे पार्वतीजी बहुत अच्छा बहुत अच्छा यह बोलीं ॥ २८ ॥ तबसे लगाकर इस लोक में मोक्षको चाहने वाले परमश्रद्धासे संयुत पुरुष वहांपर दूरसे भी भलीभांति आकर व अन्न, पानको त्यागकर मरनेपै उतारू होकर अपने प्राणोंको त्यागते भये जिस सुपर्ण नामक शिव जीके माहात्म्यको मैंने अपने पितासे सुनाथा उसको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ २९ । ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सुपर्णाख्यमाहात्म्यंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

र्वतीवाक्यं प्रोक्तंदेवेनशम्भुना ॥ विस्मयाविष्टहृदयासाधुसाध्वितिसाब्रवीत् ॥ २८ ॥ ततःप्रभृतिलोकेत्र पुरुषामुक्तिमिच्छवः ॥ दूरतोपिसमभ्येत्य स्वान्प्राणांस्तत्रतत्यजुः ॥ २९ ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा श्रद्धयापरयायुताः ॥ सुपर्णाख्यस्यमाहात्म्यं यन्मयास्वपितुःश्रुतम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसुपर्णाख्यमाहात्म्यन्नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तन्देवदेवेनविष्णुना ॥ माधवींभगिनीम्प्राप्य जन्मान्तरमुपस्थिताम् ॥ १ ॥ अश्ववक्त्रांकरिष्यामि तपसासुशुभाननाम् ॥ साकथंविहितातेनतपस्तप्तंतथाकथम् ॥ २ ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ नारदस्यसमाकर्ण्य तंसन्देशंसुरोद्भवम् ॥ ३ ॥ गत्वाविष्णुस्सुरैस्सार्द्धम्प्रचक्रेमन्त्रनिश्चयम् ॥ भारावतारणार्थाय दानवानांवधायच ॥ ४ ॥ वसुदेवगृहेश्रीमान्द्वापरान्तेततोहरिः ॥ देवकीजठरेदेवस्सञ्जातोदैत्यद

दो० । तिरासिवें अध्याय में वरणत चरित अनूप । अश्वमुखी माधवीको जिमि हरि कियो सुरूप ॥ ऋषि लोग बोले कि जो आपने यह कहाथा कि देवताओं के देवता विष्णु जीने दूसरे जन्म में समीप टिकीहुई माधवी बहिनको पाकर यह कहा था कि अश्वके मुखवाली तुमको मैं तपस्या से शोभन मुखवाली करूंगा उन विष्णु जीने उसको किसप्रकार बनायाहै व कैसे तप कियाहै ॥ १।२ ॥ इसको विस्तारसे कहिये क्योंकि हमलोगोंको परम आश्चर्य्यहै सूतजी बोले कि देवताओंसे उपजे हुये नारदके सकाशसे उस संदेशको सुनकर॥३॥उन विष्णुजीने जाकर दानवोंके मारनेकेलिये व भार उतारनेके निमित्त देवताओंके साथ सम्मतिका निश्चय किया॥४॥तदन-

न्तर श्रीमान् भक्तदुःखहारी दैत्योंके दर्पप्रहारी विष्णु देवजी द्वापरयुगके अन्तमें वसुदेव के घर देवकीके पेटमें पैदाहुये ॥ ५ ॥ वैसेही उन वसुदेव जीकी जो दूसरी रोहिणी नामक स्त्रीहुई है उसमें हलधारी व प्रताप वाले बलभद्र नामक उत्पन्न हुये हैं ॥ ६ ॥ तीसरी वसुदेव की प्यारी जो सुप्रभा नामकथी घोड़ेके मुखवाली व स्वरूपको धारनेवाली वह माधवी उत्पन्नहुई है ॥ ७ ॥ वसुदेव समेत सुप्रभा उस कन्याको बिगड़ेहुये आकारवाली उपजी जानकर बड़े शोचको प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर शान्तिक, पौष्टिक कर्मोंको कियेहुये व मन्त्रके जाननेवाले उन यादवोंने यह कहा कि हमारे इस कुलमें कल्याणहो कल्याणहो ॥९॥ इसप्रकार वह दुःखसे संयुत व युवावस्था

प्पेहा ॥ ५ ॥ तथान्यारोहिणीनाम भार्य्यातस्यचयाभवत्॥तस्याञ्जज्ञेहलीनाम बलभद्रःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ तृतीयासुप्रभानाम वसुदेवप्रियाचया ॥ तस्यांसामाधवीजज्ञे अश्ववक्त्रास्वरूपधृक् ॥ ७ ॥ तांदृष्ट्वाविकृताकारां सुतांजातांचसुप्रभा ॥ वसुदेवसमायुक्ताविषादंपरमङ्गता ॥ ८ ॥ अथतेयादवाःसर्वे कृतशान्तिकपौष्टिकाः॥स्वस्तिस्वस्तीतिमन्त्रज्ञाः प्रोचुर्भूयात्कुलेत्रनः ॥ ९ ॥ एवंसायौवनोपेता तथादुःखसमन्विता॥नकश्चिद्वरयामास वाजिवक्त्रांविलोक्यताम्॥१०॥ ततश्चभगवान्विष्णुर्ज्ञात्वातांभगिनींतथा॥ मातरम्पितरञ्चैवतथादुःखसमन्वितम् ॥ ११ ॥ तामादायगतस्तूर्णम्बलदेवसमन्वितः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेतपस्तप्तन्ततःशुभम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणन्तोषयामाससम्यग्यज्ञपरायणः ॥ व्रतैश्चविविधैर्दानैर्ब्राह्मणानाञ्चतर्पणैः ॥ १३ ॥ ततस्तुष्टिङ्गतोब्रह्मावरार्थंविष्णुमव्ययम् ॥ उवाचवरदोस्मीतिप्रार्थयस्वाभिवाञ्छितम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषाशुभाननासाध्वी मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ सुभद्रानामविख्याता वीरसूःपतिवल्लभा॥१५॥

से युक्तहुई, उस कन्याको अश्वमुखी देखकर किसीने स्वीकार न किया ॥ १० ॥ तदनन्तर भगवान् विष्णु जी उस बहिन को उसप्रकारकी जानकर व माता, पिताको दुःखसे संयुत जानकर उस माधवी को लेकर बलदेव समेत हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें गये उसके उपरान्त उनने शुभदायक तपस्याको किया ॥ ११ । १२ ॥ व भलीभांति यज्ञ में तत्पर होतेहुये विष्णु ने व्रतोंसे व अनेक प्रकारके दानों से व ब्राह्मणोंकी तृप्ति करने से ब्रह्मा जीको प्रसन्न किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर प्रसन्नता को प्राप्तहुये ब्रह्मा जी वरदानके लिये अविनाशी विष्णु जीसे यह बोले कि मैं वरदायकहूं तुम मनोरथ को मांगो ॥ १४ ॥ ब्रह्मा बोले कि मेरी प्रसन्नता से यह शोभन मुखवा.ली

व पतिव्रता व पतिकी प्यारी व वीरको पैदाकरनेहारी व सुभद्रा नामक प्रसिद्ध होगी ॥ १५ ॥ हे विष्णो ! माघ महीने की द्वादशी में यहांपर तुम्हारे व इन बलभद्र जी के समेत इसत्रय कोजो पुरुष भक्तिसे चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजन करैगा वहभी जो चित्तमें वर्तमान होवै उसको प्राप्त होवैगा ॥ १६ । १७ ॥ हे केशव ! पति से त्यागीहुई व पतिसे संयुत जो स्त्री तीज के दिन भक्तिसे इस माधवी कन्या को पूजैगी ॥ १८ ॥ वह समस्त गुणों से संयुत व नित्यही ऐश्वर्य्य से युक्त व सुन्दरमुखसे समन्वित तथा सौभाग्यवती तथा शोभन पुत्रसे युक्त होवैगी ॥ १९ ॥ चारमुख वाले ब्रह्माजी ऐसा कहकर तदनन्तर चुपहो रहे व प्रसन्न मन या चित्तवाले वासुदेव (विष्णु) भी

एनांविष्णोत्वयासार्द्धंतथानेनबलेनच ॥ १६ ॥ द्वादश्यांमाघमासस्य एतत्त्रयंपुमान्योत्र पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ सोप्यवाप्स्यतियच्चित्तेवर्ततेनात्रसंशयः ॥ १७ ॥ यानारीपतिनात्यक्ताभक्तयावाभर्तृसंयुता ॥ तृतीयादिवसेचैनाम्पूजयिष्यतिकेशव ॥ १८ ॥ ऐश्वर्य्यसहितानित्यंसर्वैस्समुचितागुणैः ॥ १९ ॥ भविष्यतिसुपुत्राढ्यासुभगासुमुखान्विता ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रोविरराममततःपरम् ॥ वासुदेवोपिहृष्टात्मायायौद्वारावतींपुरीम् ॥ २० ॥ तामादायविशालाक्षींचन्द्रबिम्बसमाननाम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंसामाधवीविप्राःसुभगारूपमास्थिता ॥ २१ ॥ अवतीर्णाधराप्रष्ठे लक्ष्मीशापप्रपीडिता ॥ उपयेमेसुतःपाण्डोर्यांपार्थश्चारुहासिनीम् ॥ २२ ॥ जज्ञेतस्याःसुतोवीरोयोऽभिमन्युरितिस्मृतः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातंमाधवीजन्मसम्भवम् ॥ २३ ॥ सुपर्णाख्यस्यदेवस्यकथासर्वाद्विजोत्तमाः ॥ यश्चैतत्पठतेमर्त्यो भक्त्यायुक्तःशृणोतिवा ॥ २४ ॥ मुच्यतेसनरःपापात्तद्दिनैकसमुद्भवात् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥ * ॥

द्वारकापुरी को चलेगये सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! रूपमें स्थित व लक्ष्मीजीके शापसे दुःखित व सौभाग्यवती उसमाधवी स्त्रीने इस प्रकार धरातल में अवतारलियाहै सुन्दर हास्यवाली जिस माधवी का पाण्डुके पुत्र पार्थ (अर्जुन) ने विवाह किया है ॥ २० । २१ । २२ ॥ उसी माधवी के जो अभिमन्यु ऐसेवीर कहेगये हैं वे उत्पन्न हुयेहैं हे द्विजोत्तमो ! इस माधवी के जन्म से उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको मैंने तुम चन्द्रमण्डल के समान मुखवाली व विशाल लोचनोंवाली उस कन्या को लेकर

लोगोंसे वर्णन किया व सुपर्णानामक देवताकी समस्त कथाको कहा भक्ति संयुत जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ताहै या सुनताहै॥२३।२४॥वह पुरुष एक दिनमें उपजेहुये पातकसे छूटजाताहै ॥२५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

दो० । दक्षसुता सत्ताइसौ देविहिं पूजन कीन । चौरसिवें अध्याय में कही सो कथा नवीन ॥ ऋषिलोग बोले कि माधवीके लिये जो शापदीगई है उसके परिपाकसे उपजा जो फल हुआहै उस समस्त चरित्र को हम लोगोंने आज सुना ॥ १ ॥ व उस महात्मा ब्राह्मण ने जो लक्ष्मी जी को शापदिया था वे गजमुखवाली फिर कैसे शोभन मुखवाली हुई हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस ब्राह्मणके शापसे उसी क्षणही वे लक्ष्मी जी महा विस्मयको करानेवाली व गजमुखवाली

ऋषयऊचुः ॥ माधव्यैरमयादत्तो यःशापस्तस्ययत्फलम् ॥ परिणामोद्भवंसर्वं श्रुतमस्माभिरद्यतत् ॥ १ ॥ तेन यत्कमलाशप्ता ब्राह्मणेनमहात्मना ॥ साकथंगजवक्त्राचपुनर्जाताशुभानना ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ शापेनतस्यविप्रस्य तत्क्षणादेवसाद्विजाः ॥ गजवक्त्रासमुत्पन्ना महाविस्मयकारिणी ॥ ३ ॥ साप्रोक्ताहरिणातिष्ठ कञ्चित्कालान्तरंशुभे ॥ अनेनैवतुरूपेण यावत्स्याद्द्वापरक्षयः ॥४॥ ततोहंमेदिनीपृष्ठमवतीर्य्यसमुद्रजे ॥ तपःशक्त्याकरिष्यामि भूयस्त्वां तुशुभाननाम् ॥ ५ ॥ अवज्ञायाथसातस्य तद्वाक्यंशार्ङ्गधन्वनः ॥ शुभास्यातत्कृतेतेपे तपस्तीव्रंतुहर्षिता ॥ ६ ॥ एतत्क्षेत्रंसमासाद्य त्रिकालंस्नानमाचरत् ॥ ब्रह्माणंतोषयामास दिवारात्रमतन्द्रिता ॥ ७ ॥ तामुवाचततोब्रह्मा वर्षान्तेतु

उत्पन्न हुई हैं ॥ ३ ॥ भक्त दुःखहारी विष्णुजीने उन लक्ष्मी जी से कहा हे शुभे ! तुम कुछ समय तक इसी रूपसे टिको जबतक कि द्वापरका नाश होवे ॥ ४ ॥ उसके उपरान्त हे समुद्र से उपजी हुई लक्ष्मी ! मैं धरापृष्ठ में अवतार लेकर तपस्याकी शक्तिसे फिर तुमको शोभन मुखवाली करूंगा ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर उन शार्ङ्ग धनुषवाले विष्णुजी के उस वचन को अनादरकर उन शुभानना लक्ष्मी जी ने प्रसन्न होतीहुई उस रुचिर आनन के लिये बड़ी तीव्र तपस्या को किया ॥ ६ ॥ उन लक्ष्मी जी ने इस क्षेत्र में प्राप्तहोकर त्रिकाल स्नान को किया व निरालस्य होकर अहर्निश ब्रह्माजी को प्रसन्न कराया ॥ ७ ॥ तदनन्तर वर्ष भरके बाद प्रसन्न-

ता को प्राप्तहुये ब्रह्माने उन लक्ष्मी जी से कहा कि हे केशववल्लभे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुम वरदान को मांगो ॥ ८ ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे देव ! किसी दूसरे कारण में बड़े क्रोधित ब्राह्मण ने बड़े विकराल शापको देकर मुझको गजमुखी किया है ॥ ९ ॥ इस लिये हे पितामहजी ! यदि मुझसे प्रसन्नता को प्राप्तहुये हो तो फिर मुझको उसी रूपवाली करिये और कुछ नहीं मांगतीहूं ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि मेरी प्रसन्नतासे निस्सन्देह तुम्हारा उत्तम मुखहोगा व विशेषकर कल्याण होगा इस लिये तुम अपने घरको चली जाओ ॥ ११ ॥ हे शोभने ! आजसे लगाकर मैंने तुमको महत्त्व (बड़ाई) को दिया इस लिये तुम्हारा महालक्ष्मी यह नाम

ष्टिमागतः ॥ वरंप्रार्थयतुष्टोहं तवकेशववल्लभे ॥८॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ गजास्याहंकृतादेवशापंदत्त्वासुदारुणम् ॥ ब्राह्मणे नसुक्रुद्धेन कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥९॥तस्मात्तद्रूपिणींभूयोमांकुरुष्वपितामह ॥ यदिमेतुष्टिमापन्नो नान्यत्किंचिद्वृणोम्यहम् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच॥ भविष्यतिशुभंवक्त्रं मत्प्रसादादसंशयम् ॥ तवभद्रंविशेषेणतस्मात्त्वंस्वगृहंव्रज ॥११॥ महत्त्वंतेमयादत्तमद्यप्रभृतिशोभने ॥ महालक्ष्मीतितेनामतस्मात्त्विप्रंभविष्यति ॥ १२॥ गजवक्त्रांनरोयस्त्वां पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ सगजाधिपतिर्भूपोभविष्यतिचभूतले॥१३॥गजवक्त्रांनरोयस्त्वां पूजयिष्यतिभक्तितः॥ द्वितीयादिवसे सोपि महालक्ष्मीरितिब्रुवन् ॥ १४ ॥ श्रीसूक्तेनसुभक्त्याचयस्त्वांसंपूजयिष्यति ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नभविष्यति सोऽधनः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रो विररामततःपरम् ॥ सापिहृष्टागतादेवी यत्रातिष्ठतिकेशवः ॥ १६ ॥ नक्षत्रैःस्थापितादेवी वाञ्छितस्यप्रदायिनी ॥ दक्षस्यतनयाःख्याताःसप्तविंशतिसंख्यया ॥ १७ ॥ उद्वाहिताहिसोमेन पूर्वंब्राह्म

शीघ्रही होगा ॥ १२ ॥ और गजमुखवाली तुमको जो पुरुष भक्ति से पूजैगा वह भूतल में हाथियोंका अधिपति होकर भूपति होगा ॥ १३ ॥ और दुइजके दिन गजमुखवाली तुमको महालक्ष्मी ऐसा कहता हुवा जो पुरुष भक्तिसे पूजैगा वह भी भूपति होगा ॥ १४ ॥ और जो मनुष्य श्रीसूक्तके द्वारा सुन्दरी भक्तिसे तुमको भली भांति पूजैगा वह सात जन्मों के बीचमें निश्चयकर निर्धनी न होगा ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर चतुराननजी चुपहोरहे और वे प्रसन्न लक्ष्मी देवी भी वहांपरगई जहां कि केशवजी टिके थे ॥ १६ ॥ और मनोरथको देनेवाली देवीको नक्षत्रोंने स्थापन कियाहै हे ब्राह्मणोत्तमो ! पुरातन समय सत्ताईस संख्यासे प्रसिद्ध दक्षकी

कन्याओं का चन्द्रमा ने विवाह किया है उनके बीचमें एक रोहिणी उस चन्द्रमा को प्यारी थी ॥ १७ । १८ ॥ व प्राणोंसे भी परायणहोतेहुये वे चन्द्रमा उसी के साथ
टिकते थे तदनन्तर दुर्भाग्यता से अति दुःखितहोतीहुई वे समस्त दक्षकी कन्यायें बड़े वैराग्यको प्राप्तहोकर तपस्या में टिकतीभई व परमश्रद्धा से संयुत उन दक्षकी
कन्याओं ने सुरेश्वरी दुर्गा देवताको भलीभांति थापकर भेंट, पूजन व उपहारोंसे पूजन किया तदनन्तर वे गजमुखी लक्ष्मी जी बहुत समय से उन सबों के ऊपर
प्रसन्नता को प्राप्तहुई ॥ १९ । २० । २१ ॥ इसके अनन्तर बोली कि हे पुत्रियो ! प्रसन्नहोतीहुई मैं वरको दूंगी इस लिये तुम सबों के चित्तमें जो स्थित हो उसको

एसत्तमाः ॥ तासांमध्येऽभवच्चैका रोहिणीतस्यवल्लभा ॥ १८ ॥ प्राणेभ्योपिसदासक्तस्तयासार्द्धंसतिष्ठति ॥ ततोदौ
र्भाग्यसंतप्तास्सर्वास्तादक्षकन्यकाः ॥ १९ ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा क्षेत्रेऽस्मिंस्तपसिस्थिताः ॥ संस्थाप्यदेवतांदुर्गां श्रद्धया
परयायुताः ॥ २० ॥ बलिपूजोपहारैस्ताः पूजयन्त्यःसुरेश्वरीम् ॥ ततःकालेनमहता तासांसातुष्टिमागमत् ॥ २१ ॥ अ
ब्रवीचाथतुष्टाहं वरंदास्यामिपुत्रिकाः ॥ तस्मात्तत्प्रार्थ्यतांचित्ते यद्युष्माकंव्यवस्थितम् ॥ २२ ॥ सर्वदास्यास्यसंदि
ग्धं यद्युष्माकंहृदिस्थितम् ॥ ततःप्रोचुश्चतास्सर्वाः प्रसादात्तववाञ्छितम् ॥ २३ ॥ अस्माकंविद्यतेदेवि यत्त्रैलोक्येत्रसं
स्थितम् ॥ एकंपत्युर्मुखंमुक्त्वा यत्सौभाग्यसमुद्भवम्॥२४॥तस्मात्तद्देहिचास्माकंयदितुष्टासिचण्डिके ॥ वयंदौर्भाग्य
दोषेण सर्वाःक्लेशंपरङ्गताः ॥ २५ ॥ नशक्नुमःप्रियान्प्राणान्देहेभर्तुंकथञ्चन ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अद्यप्रभृतियुष्माकं सौ
भाग्यंपतिसम्भवम् ॥ २६ ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धंभविष्यतिसुखोदयम् ॥ अन्यापियापतित्यक्ता स्त्रीचात्रसंस्थितास

मांगिये ॥ २२ ॥ जो तुम सबोंके चित्तमें स्थित है उस समस्त को मैं निस्सन्देह दूंगी तदनन्तर उन सबोंने कहा कि हे देवि ! जिस लिये कि सौभाग्यसे उपजेहुये
केवल पतिके मुखको छोड़कर इस त्रिलोक में जो पदार्थ है वह हम सबोंके विद्यमान है ॥ २३ । २४ ॥ इस लिये हे चण्डिके ! यदि तुम प्रसन्नहो तो हमको उस
पतिकी सम्मुखता को दीजिये क्योंकि दुर्भाग्यताके दोषसे हम सब बड़े क्लेशको प्राप्तहैं ॥ २५ ॥ व प्रिय प्राणोंको देहमें धारने के लिये किसीभांति समर्थ नहीं हैं श्रीदेवी
बोलीं कि आजसे लगाकर मेरी प्रसन्नता से तुम सबोंको सुखके उदयवाला पति से उपजा हुवा सौभाग्य निस्सन्देह होवैगा व पति से त्यागी जो अन्य भी

स्त्री सदैव इस क्षेत्र में भलीभांति टिकी व उपासी हुई चतुर्दशी में उत्तम भक्तिसे पूजैगी वह सौभाग्य से संयुत व पुत्रवती व पतिव्रता होवैगी ॥ २६ । २७ । २८ ॥ जबतक वर्षभर पूर्णहो तबतक एकबार भोजनमें तत्पर व बिनखारी लोन को भोजन करतीहुई जो स्त्री मुझको पूजैगी ॥ २९ ॥ उसको पतिसे उपजाहुआ दुःख या दुर्भाग्य न होगा व कुँआर महीने के शुक्लपक्ष में नवमीके दिन भलीभांति प्राप्तहोने पर उपास में तत्परहोतीहुई जो स्त्री नित्यही आधीरात में पूजैगी उसका अतिउग्र समस्त सौभाग्य भलीभांति होगा॥ ३० । ३१ ॥ हे ब्राह्मणोत्तमो ! वह देवी तो ऐसा कहकर चुप होगई व बहुतही प्रसन्न होतीहुई वे सबदक्ष जीके मन्दिर को चली

दा ॥ २७ ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या चतुर्दश्यामुपोषिता ॥ साभविष्यतिसौभाग्ययुक्तापुत्रवतीसती ॥ २८ ॥ यावत्संवत्सरंतावदेकभक्तपरायणा ॥ अक्षारलवणाशाया नारीमांपूजयिष्यति ॥ २९ ॥ नतस्याःपतिजंदुःखं दौर्भाग्यंवाभविष्यति ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे संप्राप्तेनवमीदिने ॥ ३० ॥ उपवासपरानित्यं निशीथेपूजयिष्यति ॥ तस्यास्सौभाग्यमत्युग्रंसर्वंसम्यग्भविष्यति ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वातुसादेवीविरराम द्विजोत्तमाः ॥ ताश्चसर्वास्सुसन्तुष्टा जग्मुर्दक्षस्यमन्दिरम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदक्ष आहूतःशूलपाणिना ॥ प्रोक्तःकस्मात्त्वया चन्द्रोयक्ष्मणासंनियोजितः ॥ ३३ ॥ तदयुक्तंकृतंदक्षजामातायंयतस्तव ॥ दक्षउवाच ॥ अनेनतनयामह्यं अष्टाविंशतिसंख्यया ॥ ३४ ॥ ऊढाअखण्डचारित्रास्तास्त्यक्तादोषवर्ज्जिताः ॥ मुक्त्वैकांरोहिणींदेवनिषिद्धेनमयासकृत् ॥ ३५ ॥ ततोमयातिकोपेन नियुक्तोराजयक्ष्मणा ॥ असत्यजल्पकोमन्दः कामदेववशंगतः ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिसर्वासां समंसद्मचरिष्यति ॥

गई॥ ३२ ॥ इसी अवसरमें त्रिशूलपाणि (शिव) जीने दक्षको बुलाया व कहा कि तुमने किस कारण चन्द्रमाको यक्ष्मारोग से संयुत किया ॥ ३३ ॥ हे दक्षजी ! वह अयोग्य किया जिसलिये कि यह तुम्हारा दामाद है दक्षजी बोले कि हे देव ! इसने सम्पूर्ण चरितवाली अट्ठाईश सङ्ख्यक मेरी कन्याओं को ब्याहा है व बार २ मुझ से मना कियेहुये इसने एक रोहिणी को छोड़कर दोषरहित उन कन्याओंको त्याग दिया ॥ ३४ । ३५ ॥ उसी कारण कामदेव के वशमें प्राप्त व असत्यवादी तथा मूढ़ चन्द्रमाको मैंने अति क्रोधसे राजयक्ष्मासे सयुत किया ॥३६॥ शिव भगवान् बोले कि आजसे लगाकर मेरे वचन से चन्द्रमा सब स्त्रियोंके घरको बराबर जावैगा इसमें सन्देह

नहींहै यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ३७ ॥ हे सद्द्विज ! तुमने भी जो वचन कहाहै वह कहीं झूंठ नहीं होवैहै इसलिये यह चन्द्रमा पक्षभर क्षीण व पक्षभर वृद्ध होवै ॥३८॥ त-
दनन्तर उस क्षेत्र में विशेषता से टिकीहुई वह सप्तविंशतिका देवी भी पृथ्वीतलमें स्त्रियोंको समस्त सौभाग्य की दायिनी कहीगई ॥ ३९ ॥ अष्टमी दिनको भलीभांति
प्राप्तहोनेपर पवित्र होकर जो मनुष्य उस देवीके इस चरितको पढ़ैहै वह सौभाग्यताको प्राप्त होवैहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमि
श्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तविंशतिकामाहात्म्यंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मद्वाक्यान्नात्रसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ त्वयापियद्वचःप्रोक्तमसत्यंस्यान्नतत्क्वचित् ॥ तस्मादेषक्षयंपक्षं प
क्षंवृद्धिंचसद्द्विज ॥ ३८ ॥ सापिदेवीततःप्रोक्ता सप्तविंशतिकाक्षितौ ॥ सर्वसौभाग्यदास्त्रीणां तस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थि
ता ॥ ३९ ॥ यश्चैतत्पुरुषस्तस्यास्संप्राप्तेचाष्टमीदिने ॥ शुचिर्भूत्वापठेद्भक्त्या ससौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेसप्तविंशतिकामाहात्म्यन्नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथातत्रास्तिविप्रेन्द्रास्सोमस्यायतनंशुभम् ॥ यस्यापिदर्शनादेव मुच्यतेपातकैर्नरः ॥ १ ॥ सोमवा
रेतुसम्प्राप्ते सोमस्यग्रहणेनरः ॥ यस्तंपश्यतिपापोपि नरकंसनपश्यति ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सर्वेषामेवदेवानां दृश्य
न्तेत्रसमाश्रयाः ॥ अथचन्द्रस्यतत्रैव कथञ्जातःसमाश्रयः ॥ ३ ॥ एतन्नःसूतपुत्रातिचित्रंमनसिवर्तते ॥ तस्माद्वदम
हाभाग सर्वंत्वंवेत्स्यशेषतः ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ एतज्जगद्द्विजश्रेष्ठास्सर्वंसोममयंस्मृतम् ॥ तस्मात्प्रतिष्ठितेतस्मि

दो० । पचासिवें अध्याय में सोम सदन माहात्म्य । शौनकादिकन ऋषिनसन कह्यो सूत याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! वैसेही उस क्षेत्रमें शुभदायक
चन्द्रमाका मन्दिर है जिसकेभी दर्शनहीसे मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ १ ॥ और सोमवार को भलीभांति प्राप्त होनेपर चन्द्रमा के ग्रहण में जो मनुष्य उन सोमजी
को देखता है वह पापीभी नरकको नहीं देखता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि इस क्षेत्रमें सबही देवोंके स्थान हैं और वहांपर चन्द्रमा का समाश्रय क्यों नहीं हुआ ॥
३ ॥ हे महाभाग, सूतनन्दन ! हमलोगोंके चित्तमें यह अत्यन्त आश्चर्य्य वर्तमान है इसलिये इस चरितको कहिये क्योंकि तुम समस्त वृत्तान्तको सम्पूर्णता से

त्रैलोक्यंस्यात्प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ एताश्चौषधयस्सर्वास्सस्याद्याश्चेहभूतले ॥ सर्वास्सोममयास्ताश्च याभिर्जीवन्तिजन्त
वः ॥ ६ ॥ तस्माद्ब्रह्मादयोदेवास्सोमम्प्राप्यक्रमाद्द्विजाः ॥ तृप्तिंयान्तिपरांहृष्टा यतस्तस्माद्वरोत्रसः ॥ ७ ॥ अग्निष्टो
मादयोयज्ञास्तथासोमेप्रतिष्ठिताः ॥ तस्यपानाद्यतस्तृप्तिंतत्रयान्तिद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणात्सोमस्सर्वेषा
मधिकःस्मृतः ॥ देवानान्दानवानाञ्चसहिपूज्यतमःस्मृतः ॥ ९ ॥ यथान्येषांसुरेन्द्राणां हर्म्याणिधरणीतले ॥ क्रिय
न्तेरात्रिनाथस्य तद्वत्कुर्वन्तिमानवाः ॥ १० ॥ यैर्नरैरात्रिनाथस्य प्रासादोविहितःक्षितौ ॥ तेतेमुक्तिपदम्प्राप्ताः कृत्वा
थशुभसञ्चयम् ॥ ११ ॥ यन्महेश्वरहर्म्याणां सहस्रेणभवेच्छुभम् ॥ तदेकेनैवचन्द्रस्य प्राप्नुवन्तियतोनराः ॥ १२ ॥
अथचन्द्रस्यहर्म्यस्य माहात्म्यंतुद्विजोत्तमाः ॥ ज्ञात्वाब्रह्मादयोदेवा भयसन्त्रस्तमानसाः ॥ १३ ॥ तत्सद्मार्थमिदम्प्रो
चुर्मेरुमूर्द्धानमाश्रिताः ॥ सौम्यर्क्षेसोमवारेण सौम्येमासिचसंस्थितौ ॥ १४ ॥ तिथौचसोमदैवत्येप्राप्तेसोमग्रहेतथा ॥

जानतेहो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! यह समस्त संसार सोममय कहागयाहै इसलिये उन सोमजीको प्रतिष्ठित होनेपर त्रिलोक प्रतिष्ठित होवै है ॥ ५ ॥ इस भूतल में जो ये समस्त ओषधियाँ व अन्नादिक हैं वे सबभी सोममयी हैं कि जिनसे प्राणी प्राणोंको धारते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये कि प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मादिक देवता क्रमसे चन्द्रमाको पाकर परम तृप्तिको पाते हैं उसी कारण इस चन्द्रमा में वह (अमृतमयत्व) वरदान है ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वैसेही अग्निष्टोमादिक यज्ञ चन्द्रमा में प्रतिष्ठित हैं जिसलिये कि उस चन्द्रमा में उस अमृत के पीने से देवादिक तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ८ ॥ इसी कारण चन्द्रमा सबमें अधिक कहागया है और वह चन्द्रमा देवता व दैत्यों को अत्यन्त पूजनीय कहागया है ॥ ९ ॥ जैसे कि धरातल में और देवेन्द्रों के मन्दिर निर्माण किये जाते हैं वैसेही मनुष्य निरानायक चन्द्रमा के मन्दिर को करते हैं ॥ १० ॥ और पृथ्वी में जिन मनुष्योंने निशानाथके मन्दिरको बनाया है वे वे शुभदायक कर्मको इकट्ठाकर मुक्ति के पदको पाते हैं ॥ ११ ॥ जिसलिये कि हज़ार महादेव मन्दिरोंके निर्माणसे जो कल्याण होताहै उसी कल्याणको मनुष्य चन्द्रमाके एकही मन्दिरसे पाते हैं ॥ १२ ॥ इसकेअनन्तर हे द्विजोत्तमो ! चन्द्रमाके मन्दिरके माहात्म्य को जानकर सुमेरुके मस्तकपै टिकेहुये भयभीत मनवाले ब्रह्मादिक देवता उस चन्द्रमाकेमन्दिर के लिये यह कहा कि सोमवार

व सौम्य नक्षत्र तथा सौम्य महीने को भलीभांति स्थित होनेपर ॥ १३ । १४ ॥ व सोमदेवतावाली तिथि सोमग्रहण के प्राप्त होनेपर पांच सकारोंसे संयुत समयमें पाराक व्रतवाले दिन के द्वारा सोम जीके मन्दिर में भलीभांति प्राप्तहोकर जो मनुष्य भलीभांति श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके चन्द्रमाके मन्दिर को स्थापन करैगा वह सब देवताओं के मन्दिर के हज़ार गुने उत्तम फलको पावैगा और जो पुरुष अन्यथा चन्द्रमाके मन्दिर को स्थापन करैगा॥ १५ । १६ । १७ ॥ वह वंशके विनाशको प्राप्त कर नरकको जावैगा हे सद्द्विजो ! इसी कारणसे डरेहुये मनुष्य भूतलमें अतिपुण्यदायक भी निशानाथके मन्दिरको नहीं निर्माण करतेहैं इस क्षेत्रमें जो यह रात्रिना-

चन्द्रस्यसर्वेदेवस्यह
सकारैःपञ्चभिर्युक्तेकालेसोमस्यमन्दिरे ॥ १५ ॥ पाराकाहेनसम्प्राप्य प्रासादंस्थापयिष्यति ॥
सहस्रगुणितंसम्यक्श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ अन्यथायस्तुचन्द्रस्य प्रासादंप्रकरिष्यति ॥
र्म्यस्याप्नोतिसत्फलम् ॥ १६ ॥
एतस्मात्कारणाद्भीतानकुर्वन्तिनराभुवि ॥ १८ ॥ प्रासादंरात्रिनाथस्य
१७॥ वंशोच्छेदंसमासाद्य नरकंसप्रयास्यति ॥
प्रासादस्त्वम्बरीषेण भूभुजासविनिर्मितः ॥
सुपुण्यमपिसद्द्विजाः॥ यएषरात्रिनाथस्य क्षेत्रेस्मिन्वैव्यवस्थितः ॥१९॥
चन्द्रमाधुन्धुमारे
कथञ्चित्समयम्प्राप्य यथोक्तंशास्त्रचिन्तकैः ॥ २० ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे द्वितीयोन्यःप्रतिष्ठितः ॥
णतद्वत्सोपिप्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥ ततश्चतौमहीपालौ तत्प्रभावाद्धुभौद्विजाः॥ गतौचपरमांसिद्धिञ्जन्ममृत्युविवर्जिताम् ॥
प्रासादत्रयमेत
२२ ॥ प्रासादोन्यस्तृतीयस्तुक्षेत्रेप्राभासिकेतथा ॥ इक्ष्वाकुणानरेन्द्रेणश्रद्धायुक्तेननिर्मितः ॥ २३ ॥
द्विमुक्त्वात्रधरणीतले ॥ अपरोनास्तिचन्द्रस्य सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२४॥ एकोस्तिनर्मदातीरे पुण्येरेवाहिसङ्गमे ॥

यक का मन्दिर विशेषतासे स्थित है वह अम्बरीष भूपति से विरचित हुआ है किसी प्रकार शास्त्रके चिन्तकों से यथोक्त समय को पाकर उसी मन्दिर के उत्तर दिशा के भागमें दूसरा और मन्दिर प्रतिष्ठित है धुन्धुमारने उस चन्द्रमा कोभी भलीभांति स्थापन किया है ॥ १८ । १९ । २० । २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर उस चन्द्रस्थापन के प्रभावसे वे दोनों भूपाल जन्म, मृत्युसे विशेषकर रहितवाली उत्तम गतिको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ वैसेही प्रभासक्षेत्रमें श्रद्धासंयुत इक्ष्वाकु नरेशने अन्य तीसरे मन्दिर का निर्माण किया है ॥ २३ ॥ इस धरातल में इन तीन मन्दिरों को छोड़कर और चन्द्रमाका मन्दिर निश्चयकर नहींहै यह मैंने सत्य कहा है ॥ २४ ॥ व पुण्यदायक

रेवानदी के सङ्गममें नर्मदा के किनारे एक मन्दिर है इस समस्त चन्द्रमाके उत्तम माहात्म्य को मैंने तुमलोगों से वर्णन किया ॥ २५ ॥ जोकि पढ़नेवाले व सुननेवाले भी मनुष्यों के समस्त पातकोंका विनाशक है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमप्रासादमाहात्म्यंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अम्बा अरु वृद्धा दोऊ थपित भई जिमि शक्ति । छियासिवें अध्याय में वर्णित सोइ सभक्ति ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने चमत्कारपुर की

एतद्वस्सर्वमाख्यातञ्चन्द्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥ पठतांशृण्वताञ्चापिसर्वपातकनाशनम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेसोमप्रासादमाहात्म्यन्नामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यास्त्वयादेवताःप्रोक्ताश्चतस्रस्सूतनन्दन ॥ चमत्कारमहिस्थावा महालक्ष्मीस्तथापरा ॥ १ ॥ अम्बा वृद्धाचतुर्थीच तासांतिस्रःप्रकीर्तिताः ॥ विस्तरेणचभोःसूतअम्बावृद्धानकीर्तिता ॥ २ ॥ एतस्यास्सर्वमाचक्ष्व प्रभावंसू तसम्भव ॥ केनैषानिर्म्मिताचाम्बा सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एषातपोमयीशक्तिरम्बावृद्धासुरेश्वरी ॥ यथात्रसंस्थितापूर्वं तत्सर्वंश्रूयतांमम ॥ ४ ॥ चमत्कारमहीपेन पुरमेतद्यदाकृतम् ॥ तदातद्रक्षणार्थाय निर्म्मिताभावितात्मना ॥ ५ ॥ चतस्रोदेवताह्येतास्संमतेनद्विजन्मनाम् ॥ अथतस्यमहीपस्य अम्बानामाभवत्सुता ॥ ६ ॥ वृद्धाचान्या

भूमि में टिकेहुये चारदेवताओं को कहा व अपर महालक्ष्मी जी को कहा ॥ १ ॥ हे सूतजी ! चौथी अम्बावृद्धा भगवती हैं उनमें से तीनको विस्तारसे कहा और अम्बावृद्धा नहीं कहीगई हैं ॥ २ ॥ हे सूतनन्दन ! इसके समस्त प्रभावको कहिये और यह अम्बा किससे स्थापित हुईहै इस समस्त चरितको विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि तपोमयी शक्ति यह अम्बावृद्धा सुरेश्वरी जिसप्रकार इस पुरमें पहले स्थापितहुई है उस समस्त चरितको मुझसे सुनिये ॥ ४ ॥ कि जिससमय शुद्धमनया चित्तवाले चमत्कार भूपतिने इस नगरका निर्माण किया है उसी समय उसकी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे इन चार देवताओं का निर्माण कियाहै इसके अनन्तर

उस भूपति के अम्बा नामक कन्या हुई ॥ ५ । ६ ॥ व रूप तथा उदारतादि गुणोंसे संयुत व प्यारी दूसरी वृद्धा नामक कन्या हुई हे ब्राह्मणोत्तमो ! काशी के राजाने देवता, द्विज व अग्नि के समीप गृह्यसूक्त में कहीहुई विधिसे उन दोनों को पाणिग्रहणकर स्वीकार किया ॥ ७ । ८ ॥ इसके अनन्तर किसी समय काशीनरेश भूपतिका उन कितेक म्लेच्छों के साथ बड़ाभारी संग्राम हुआ है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वरदानसे पायेहुये पराक्रमवाले उन विकराल म्लेच्छोंने युद्ध में प्रतापवान् पार्थिव को मारडाला ॥ १० ॥ इसके अनन्तर अम्बा और वृद्धा दुःखदायक वैधव्यता को पाकर तदनन्तर उन दोनोंने मनोरथदायक हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाकर पतिके शत्रुओ के नाश

तुदयिता रूपौदार्य्यगुणान्विता ॥ उभेतेकाशिराजेनपाणीगृह्यद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ गृह्योक्तेनविधानेन देवविप्रा
ग्निसन्निधौ ॥ ८ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य काशिराजस्यभूपतेः ॥ तैःकियद्यवनैस्सार्द्धमन्वभूत्सङ्गरोमहान् ॥ ९ ॥ अ
थतैर्निहतस्संख्ये सभृत्यबलवाहनः ॥ वरलब्धबलैरौद्रैःकाशिराजःप्रतापवान् ॥ १० ॥ अथाम्बाचैववृद्धाच वैधव्यंप्रा
प्यदुःखदम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं गत्वातेवाञ्छितप्रदम् ॥ ११ ॥ देव्याआराधनेयत्नं कृतवत्यौततःपरम् ॥ नाशार्थंपतिशत्रू
णां तपःकर्म्मशुभप्रदम् ॥ १२ ॥ यावद्वर्षशतंसाग्रं नचतुष्टासुरेश्वरी ॥ ततोवैराग्यमासाद्य वाञ्छन्त्यौस्वतनुक्षयम् ॥
१३ ॥ मन्त्रैराथर्वणैर्विप्राः क्षुरिकासूक्तसम्भवैः ॥ छित्त्वाछित्त्वास्वमांसानिमन्त्रपूतानिभक्तितः ॥ १४ ॥ कृतवत्यौततोहो
मं सुसमिद्धेहुताशने ॥ अग्निकुण्डात्ततस्तस्माच्चतुर्हस्ताशुभानना ॥ १५ ॥ श्वेतवस्त्राविनिष्क्रान्ता धाम्नाबालार्कस
न्निभा ॥ तथान्यावसुनेत्रास्या तप्तहाटकसन्निभा ॥ १६ ॥ तस्मात्कुण्डाद्विनिष्क्रान्ता धृतखड्गाभयावहा ॥ अपरापित

के लिये कुछ अधिक सौवर्षतक देवीके आराधन में शुभदायक तप कर्मरूप यत्नको किया ॥ ११ । १२ ॥ परन्तु सुरेश्वरी भगवती जी प्रसन्न न हुई तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! वैराग्य को प्राप्तहोकर अपने देहके नाशको चाहती हुई उन दोनों ने क्षुरिकासूक्त से उपजे हुये अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से अपने मांसोंको काटकाटकर तदनन्तर भक्तिसे बहुतही बढ़ेहुये अग्नि में मन्त्र से पवित्र मांसों का हवन किया उसके उपरान्त उसी अग्निकुण्ड से शोभन मुखवाली चौभुजी मूर्त्ति निकली ॥ १३ । १४ । १५ ॥ जोकि श्वेत वसनोंको पहने व तेजसे बाल याने प्रातःकालवाले सूर्य्यनारायण के समान थी वैसेही तेजसंयुत नयन व आननवाली या उत्तम नेत्र, मुखवाली व

तचेहुये सोने के समान तथा तलवारको धारे व भयानक अपर देवी उस कुण्डसे निकली और अन्य भी परम विकराल व वैसेही रूपवाली शक्ति निकली॥ १६ । १७ ॥ और वे बोलीं कि हृदय में टिकेहुये अतिदुर्लभ वरदान को मांगो वे दोनों बोलीं कि हे महादेवियो ! कालादिक क्रोधित म्लेच्छों ने समर में हमारे प्रिय पति व प्रतापी काशीनरेशको मारडाला है इस लिये तुम सबोंको यही प्रसाद देनाचाहिये कि जिस प्रकार उन म्लेच्छों का सब ओर से नाश होवै वैसाही निस्सन्देह करना चाहिये और तैसेही यहां पर तुम दोनों को भी आदर समेत टिकना चाहिये॥ १८ । १९ । २० ॥ इसी समय संख्यासे हीन याने असंख्य व अनेक रूपवाली सैकड़ों हज़ारो

थारूपा शक्तिःपरमदारुणा॥ १७ ॥ प्रोचुश्चतावरंहृत्स्थं प्रार्थयावोतिदुर्ल्लभम् ॥ तेऊचतुः ॥ अस्माकंदयितोभर्ता का
शिराजःप्रतापवान् ॥ १८ ॥ निहतस्सङ्गरेक्रुद्धैर्यवनैःकालपूर्वकैः ॥ युष्मद्देयःप्रसादोयंयथातेषांपरिक्षयः ॥ १९ ॥ संजा
यतेमहादेव्यस्तथाकार्य्यमसंशयम् ॥ स्थातव्यंचतथात्रैवउभाभ्यामपिसादरम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्मात्कुण्डा
च्छतसहस्रशः॥ निष्क्रान्ताःसंख्ययाहीना मातरोनैकरूपिकाः ॥ २१ ॥ एकागजमुखातत्र तथान्यातुरगानना ॥ सा
रमेयमुखाचान्या पक्षिराजमुखापरा ॥ २२ ॥ तिर्य्यञ्चवपुषाचान्या वक्त्रैर्मानुषसम्भवैः ॥ त्रिशीर्षाःपञ्चशीर्षाश्च सप्त
शीर्षास्तथापराः ॥ २३ ॥ गुह्यस्थानस्थितैर्वक्त्रैरेकाश्चान्याहृदिस्थितैः ॥ पार्श्वसंस्थैःस्थिताश्चान्या अन्याःपृष्ठाङ्गजैर्मु
खैः ॥ २४ ॥ एकहस्ताद्विहस्तावा दशहस्तास्तथापराः ॥ अन्याविंशतिहस्ताश्च विहस्ताश्चतथापराः ॥ २५ ॥ बहुपा

मातायें उस कुण्ड से निकलीं ॥ २१ ॥ उस स्थान पै एक गजमुखी व अन्य वाजिमुखी व अपरा कुत्ते के मुखवाली तथा अन्य गरुड़ के मुखवालीथी ॥ २२ ॥ और अपर मातायें पशु, पक्षियों के मुखों से उपलक्षित तथा अन्य मनुष्यसे उपजे हुये मुखोंसे उपलक्षित थीं वैसेही अपर शक्तियां तीन शिरवाली, पांच शिरवाली और सात शिरोंवाली थीं ॥ २३ ॥ व कितेक मातायें गुह्य इन्द्रिय में प्राप्त मुखसे उपलक्षित व कितेक हृदय में प्राप्तहुये मुखसे उपलक्षितथीं व अन्य मातायें बगल में प्राप्त हुये मुखो से तथा अपर मातायें पीठके अंग में उपजे हुये मुखों से उपलक्षितथीं॥ २४ ॥ वैसेही अपर शक्तियां एक हाथोंवाली व दोहाथोंवाली व दश हाथोंवाली थीं

व अन्य मातायें हाथों से हीन तथा अपर बीस हाथोंवाली थीं ॥ २५ ॥ वैसेहीं अन्य कितेक मातायें बिन पांवोंवाली व एक पांवोंवाली और अनेक पांवोंवाली थीं वैसे ही अपर शक्तियां आधे पांवोंवाली व नीचे मुखवाली तथा भयङ्कर थीं ॥ २६ ॥ व अपर मातायें एक नयनोंवाली व दो नयनोंवाली तथा तीन नेत्रोंवाली थीं कोई हाथियों पै सवार व अन्य घोड़ों पै सवारथीं ॥ २७ ॥ व अपर मातायें बैल, वानर, सिंह, छाग, व्याघ्र, व सांपों पै टिकीहुई थीं वैसेही कितेक शक्तियां गोहों, मूसों व गदहों पै सवार व पक्षियों पै बैठी थीं ॥ २८ ॥ वैसेहीं अन्य शक्तियां कछुओं, मुर्गों व सर्पादिकों पै चढ़ीहुई रोती, गाती और विकार को करती याने मुखादिकों को बिदोरतीथीं॥२९॥

दाविपादाश्च एकपादास्तथापराः ॥ तथान्याअर्द्धपादाश्चअधोवक्राविभीषणाः ॥ २६ ॥ एकनेत्राद्विनेत्राश्च बहुनेत्रा स्तथापराः ॥ काश्चिद्गजसमारूढा हयारूढास्तथापराः ॥ २७ ॥ वृषवानरसिंहाजव्याघ्रसर्प्पस्थिताःपराः ॥ गोधाखु रासभारूढास्तथाचविहगाश्रिताः ॥ २८ ॥ कूर्म्मकुक्कुटसर्पादिसमारूढाःसहस्रशः ॥ प्रकुर्वन्त्योरुदन्त्यश्चगायन्त्यश्च तथापराः ॥ २९ ॥ नृत्यन्तश्चहसन्त्यश्च क्रीडासक्ताःपरस्परम् ॥ ऊर्ध्वकेशाविकेशाश्च गात्रकेशाश्चभूरिशः ॥ ३० ॥ लम्बकेशाविकेशाश्च वाजिकेशास्तथैवच ॥ ह्रस्वदन्त्योविदन्त्यश्च दीर्घदन्त्योविभीषणाः ॥ ३१ ॥ गजद न्त्यस्तथैवान्या लोहदन्त्योभयावहाः ॥ लम्बकर्ण्योविकर्ण्यश्च शूर्पकर्ण्यस्तथापराः ॥ ३२ ॥ शङ्कुकर्ण्यःकुकर्ण्यश्च बहुकर्ण्यःसुकर्णिकाः ॥ एकवस्त्राविवस्त्राश्च बहुवस्त्रास्तथापराः ॥ ३३ ॥ चर्म्मप्रावरणाश्चैव कन्थाप्रावरणान्विताः ॥

व आपस में खेल में लगीहुई कितेक हँसती व नाचतीथीं और बहुतसी शक्तियां ऊपर उठे हुये बालोंवाली व बिन बालोंवाली व अंगों में केशों से उपलक्षितथीं ॥ ३० ॥ वैसेही लम्बे बालोंवाली व बिन बालोंवाली व घोड़े के से केशोंवाली थीं और छोटे दांतोंवाली व बिन दांतोंवाली तथा लम्बे दांतोंवाली व भयङ्करथीं ॥ ३१ ॥ व अपर मातायें हाथियोंकेसे दांतोंवाली व लोहेसे दांतोंवाली व भयदायकथीं व अन्य शक्तियां लम्बे कानोंवाली व बिन कानोंवाली व सूपसे कानोंवाली थीं ॥ ३२ ॥ व गांसी या भाला के समान उठे कानोंवाली व कुत्सित कानोंवाली तथा बहुत कानोंवाली व उत्तम कानोंवाली थीं व अपर मातायें एक वसनवाली व बिन

वस्त्रवाली तथा बहुतसे वसनोंवाली थीं ॥ ३३ ॥ व चमड़ोंको ओढ़े तथा गुदड़ियोंके ओहारसे संयुतथीं व अन्य मातायें तलवारोंको हाथमें लिये व बाणोंको हाथमें लिये व भालोंको हाथोंमें लिये और भयङ्कर थीं ॥३४॥ वैसे ही अन्य शक्तियां फँसरियोंको हाथोंमें लियेथीं व अपर मातायें सांगियों व धनुषोंको धारेथीं व शूलों तथा मुद्गरोंको हाथों में लिये व काँती या लोहेकी कीलोंसे चुभेहुये अस्त्रविशेषसे संयुत हाथोंसे शोभितथीं॥३५॥ इसके अनन्तर उन दोनोंसे उस भांति वृत्तान्तको सुनकर वे सब हर्षसंयुतहुई और उन्होंने वहांको प्रस्थान किया जहांपर कि वे कालयवनादिक टिकेथे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर देवीसे उपजीहुई उस सेना को वे सब विकारयुत मुखोंसे विकृत व भयङ्कर

खड्गहस्ताबाणहस्ताः कुन्तहस्ताश्चभीषणाः ॥ ३४ ॥ पाशहस्तास्तथैवान्याः प्राशचापधराःपराः ॥ शूलमुद्गरहस्ताश्च भुशुण्डिकरभूषिताः ॥ ३५ ॥ अथताभ्यांतथाकर्ण्य तास्सर्वाहर्षसंयुताः ॥ प्रस्थितास्तत्रतायत्र तेकालयवनाःस्थिताः ॥ ३६ ॥ ततस्तेतत्समालोक्य बलंदेवीसमुद्भवम् ॥ रौद्ररूपधरंतीव्रंविकृतंविकृतैर्मुखैः ॥ ३७ ॥ विवर्णवदनास्सर्वे भय भीतास्समन्ततः ॥ धावन्तिभक्षितास्ताभिर्देवताभिस्सुनिर्दयम् ॥ ३८ ॥ बालवृद्धसमोपेतन्तेषांराष्ट्रंदुरात्मनाम् ॥ स्त्री भिश्चसहितंताभिर्देवताभिःप्रभक्षितम् ॥ ३९ ॥ एवंनिर्वास्यतद्राष्ट्रं सर्वास्ताहर्षसंयुताः ॥ भूयएवनिजंस्थानं सम्प्राप्ताद्वि जसत्तमाः ॥ ४० ॥ ततःप्रोचुःप्रणम्योच्चैस्तास्संविनयपूर्वकम् ॥ हतास्तेयवनाःकृत्स्नास्सपुत्रपशुबान्धवाः ॥ ४१ ॥ उ द्वासितस्तथायावद्देशस्तेषांसर्वमहान् ॥ साम्प्रतन्दीयतांकश्चिदाहारस्सर्वहेतवे ॥ ४२ ॥ वासायवैततःस्थानं किञ्चिचा

रूपधारिणी तथा उग्र देखकर मलिनमुखवाले होगये जोकि उन देवतोंसे निर्दयीके समान खायेहुये भयसे भीत होकर चारोंओर भाग रहेथे ॥ ३७ । ३८ ॥ और उन दुष्टचित्त या मनवाले म्लेच्छोंका राज्य बालवृद्ध समेत व स्त्रियों सहित उन देवताओंसे भक्ष लिया गया ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसभांति उन म्लेच्छोंके राज्यको उजाड़ कर हर्षसंयुत होतेहुये वे समस्त देवता फिरभी अपने स्थानको भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ४० ॥ तदनन्तर उच्चप्रकारसे प्रणामकर उन्होंने विनयपूर्वक भलीभांति कहा कि हमने पुत्र, पशु व भाइयों समेत उन समस्त म्लेच्छों को मारडाला ॥ ४१ ॥ और उनका बड़ाभारी वह समस्त देश उजाड़दिया गया इस समय सबके लिये किसी

भोजन को दीजिये ॥ ४२ ॥ तदनन्तर निवासके लिये हमलोगों को किसी स्थानको बतलाइये देवी बोलीं कि इस मृत्युलोक में सन्ध्यासमय व प्रातःकाल जो स्त्रियां सोतीहैं उनका गर्भ तुम्हारे भोजनके लिये शीघ्रही होवै व रोतीहुई जो स्त्रियां वनों में व चौतरों या चौराहों में विशेषकर निकलती हैं ॥ ४३ । ४४ ॥ उनका गर्भ तुम सबोंको दियागया उसको भोजन करिये व उच्छिष्ट होकर जो स्त्रियां चलतीहैं व रमणकरती हैं तथा सोती हैं ॥ ४५ ॥ उन सबोंका गर्भ तुम्हारे भोजनके लिये होवै और जिस बालककी छठीका जागरण नहीं हुआहै ॥४६॥ वह तुम सबोंके भोजनके लिये होवैगा इसमें सन्देह नहींहै व जिस सौरि के घरमें अग्नि नहीं जातीहै॥४७॥

वेद्यतांहिनः ॥ देव्युवाच ॥ मर्त्यलोकेत्रयानार्य्यो गर्भवत्यस्स्वपन्तिच ॥ ४३ ॥ सन्ध्याकालेप्रभातेच तासाङ्गर्भोस्तुवो द्रुतम् ॥ रुदन्त्योयाविनिर्यान्तिचत्वरेषुवनेषुच ॥ ४४ ॥ तासाङ्गर्भस्तुयुष्माकंसम्प्रदत्तःप्रभुज्यताम् ॥ उच्छिष्टायाःप्र सर्प्पन्तिरमन्तेचस्वपन्तिच ॥ ४५ ॥ तासाङ्गर्भस्समस्तानांयुष्माकम्भोजनायच ॥ नषष्ठीजागरोयस्य बालकस्यभवि ष्यति ॥ ४६ ॥ सभविष्यतिभोज्याय युष्माकंनात्रसंशयः ॥ नसंयास्यतिवायत्र पावकंसूतिकागृहे ॥ ४७ ॥ सभविष्यति भोज्याय युष्माकंबालरूपधृक् ॥ मङ्गल्यैस्सम्परित्यक्तंयद्भवेत्सूतिकागृहम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्यस्तिष्ठतेबालस्सयु ष्माकंप्रकल्पितः ॥ सन्ध्यायांबालकायेवा स्वपन्त्याकाशदेशगाः ॥ ४९ ॥ तेसर्वेभोजनार्थाययुष्माकंसंनिवेदिताः॥ यस्यजन्मदिनेप्राप्तेवर्षान्तेक्रियतेनच ॥ ५० ॥ मङ्गल्यन्तस्यतद्गात्रंयुष्माकंपरिकल्पितम् ॥ तैलाभ्यङ्गंनरःकृत्वा यश्च स्नानंकरोतिन ॥ ५१ ॥ सदत्तोभोजनार्थाय युष्माकंनात्रसंशयः ॥ उच्छिष्टोयःपुमांस्तिष्ठेद्योवाचत्वरमध्यगः॥ ५२॥

वह बालरूपधारी तुमसबों को भोजन के लिये होवै और जो सौरिका घर मांगल्य पदार्थोंसे रहित होवे है ॥ ४८ ॥ उसमें जो बालक टिकता है वह तुम सबोंको कल्पित कियागया अथवा जो बालक आकाश देशमें प्राप्त होतेहुये सन्ध्याके समय सोते हैं॥४९॥वे सब तुम्हारे भोजनके लिये भलीभांति निवेदन कियेगये व वर्षके अन्तमें जिसका जन्मदिन प्राप्त होनेपर मङ्गल (उत्साह) नहीं कियाजाता है उसीका-वह शरीर तुमसबों को कल्पित कियागया और जो पुरुष तैलाभ्यङ्गकर स्नानको नहीं करताहै ॥। ५० । ५१ ॥ वह तुम सबोंको भोजन के लिये दियागया इसमें सन्देह नहींहै और जो पुरुष जूठा होकर टिकता है या जो चौतरे, आंगन या चौराहे में प्राप्त

होताहै ॥ ५२ ॥ वह तुम सबोंको भेदरहित चित्तसे भोजन करनेके योग्य है और कामदेव से मोहित जो पुरुष रजस्वला स्त्रीके समीप जाता है ॥ ५३ ॥ व नङ्गे होकर नहाता या सोताहै वह शीघ्रही तुम सबों को भक्षण करनेके योग्य है व विशेषकर मूढ़बुद्धिवाला जो पुरुष दक्षिणाभिमुख होकर रात्रिमें भोजन करताहै व शय्यापै सोताहै वहभी शीघ्रही भक्षण करने योग्य है और जो पुरुष रात्रिमें उत्तरमुख होकर व दिन में दक्षिणमुख होकर मूत्रोत्सर्ग, मलत्याग करता है वही भक्षण करने योग्य है और जो नर निशामुख (सन्ध्या) में दही, सत्तू को भोजन करता है ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ या अन्य जातिका प्रसङ्ग करताहै वह शीघ्रही भक्षण करनेके योग्य है

भक्षणीयस्ससर्वाभिर्निर्विकल्पेनचेतसा ॥ रजस्वलांव्रजन्योवापुरुषःकाममोहितः ॥ ५३ ॥ नग्नःशेतेतथास्नाति भक्षणीयोथसत्वरम् ॥ दक्षिणाभिमुखोरात्रौयश्चाश्नातिविमूढधीः ॥ ५४ ॥ शेतेचशयनेसोपि भक्षणीयश्चसत्वरम् ॥ उदङ्मुखश्चयोरात्रौदिवावादक्षिणामुखः ॥ ५५ ॥ मूत्रोत्सर्गपुरीषंवाप्रकुर्य्याद्भक्ष्यएवसः ॥ यःकुर्य्याद्रजनीवक्त्रेदधिसक्तुप्रभक्षणम् ॥ ५६ ॥ अन्यजातिगमोवाथ भक्षणीयोद्रुतंहिसः ॥ सूतउवाच ॥ एवंताभ्यांयदाप्रोक्तादेवतास्तास्समन्ततः ॥ ५७ ॥ परिवार्य्यतदातस्थुस्संप्रहृष्टेनचेतसा ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा चमत्कारःप्रतापवान् ॥ ५८ ॥ प्रासादंनिर्म्ममेताभ्यां कैलासशिखरोपमम् ॥ ततःप्रभृतितेख्यातेक्षेत्रेतत्रमहोदये ॥ ॥ ५९ ॥ अम्बावृद्धाभिधानेन पुररक्षेतुतेसदा ॥ यःपुमान्प्रातरुत्थाय ताभ्यांपश्यतिचाननम् ॥ ६० ॥ तस्यसंवत्सरंयावन्नतच्छिद्रम्प्रजायते ॥ वर्षादौवाथचान्तेवा ताभ्याम्पूजांकरोतियः ॥ ६१ ॥ नतस्यजायतेछिद्रंकथञ्चिदपिभूतले ॥ यात्राकालेपुमान्यश्चताभ्यांपूजां

सूतजी बोले कि जिससमय उन दोनों याने अम्बा, वृद्धासे वे देवता इसप्रकार कहेगये उस समय सबओर से घेरकर अतिप्रसन्न चित्तसे बैठगये इसी समय में प्रतापवान् चमत्कार नामक नृपति ने ॥ ५७ । ५८ ॥ उन दोनोंके लिये कैलास शिखर के समान मन्दिर को निर्मित किया तबसे लगाकर उस बड़े ऐश्वर्य्यवाले क्षेत्र में अम्बावृद्धा के नामसे वे दोनों प्रसिद्धहुई व सदैव वे दोनों नगरकी रक्षामें नियुक्तहुईं प्रातःकाल उठकर जो पुरुष उन दोनों के मुखको देखताहै ॥ ५९ । ६० ॥ उस मनुष्यका पूर्वोक्त दोष नहीं होताहै व वर्षके आदि में या अन्त में जो पुरुष उनदोनों के लिये पूजन करताहै भूतल में उसके किसी प्रकारभी दोष नहीं होताहै व यात्राके समय जो मनुष्य

उन दोनों के लिये भलीभांति पूजन करता है ॥ ६१ । ६२ ॥ वह मनोरथ फलको पाकर शीघ्रही निजघरको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष सदैव अष्टमी व चतुर्दशी तिथि में उनदोनों के लिये बलि देताहै ॥ ६३ ॥ वह चाहीहुई कामनाको पाताहै व अन्तमें उत्तम गतिको प्राप्त होताहै व महानवमीसे प्राप्त दिनमें श्रद्धासंयुत जो पुरुष उन दोनों के लिये पूजन करताहै वह सदैव निष्कण्टक होकर रहताहै ॥ ६४ । ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येऽम्बावृद्धामाहात्म्यंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सदाष्टम्याञ्चतुर्दश्यांयस्ताभ्याम्बलिमाहरेत् ॥
समाचरेत् ॥ ६२ ॥ सवाञ्छितंफलंप्राप्यशीघ्रंस्वगृहमाप्नुयात् ॥ सदाष्टम्याञ्चतुर्दश्यांयस्ताभ्याम्बलिमाहरेत् ॥ ताभ्यांसमाचरेत्पूजां
६३ ॥ सकामनामुपादिष्टांलभेदन्तेचसद्गतिम् ॥ योमहानवमीप्राप्तेदिवसेश्रद्धयान्वितः ॥ ६४ ॥ ताभ्यांसमाचरेत्पूजां
ससदास्यादकण्टकी ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येम्बावृद्धामाहा
त्म्यंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥
सूतउवाच ॥ एवंतत्रस्थितेनित्यंतस्मिन्मातृगणेद्विजाः ॥ बालकानांक्षयोजज्ञे ब्राह्मणानांगृहेगृहे ॥ १ ॥ तरुणीनांवि
शेषेण चमत्कारपुरोत्तमे ॥ छिद्रमन्वेषमाणास्ता भ्रमन्त्यखिलदेवताः ॥ २ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे ज्ञात्वाछिद्रसमुद्भ
वम् ॥ विघातंबालकानांच देवताभिर्विनिर्मितम् ॥ ३ ॥ अम्बावृद्धेसमासाद्य पूजयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्रोचुश्चदुःखसंतप्ता
देवताभिर्निजांस्थितिम् ॥ ४ ॥ रक्षार्थंसर्वविप्राणां चमत्कारेणभूभुजा ॥ भवद्भ्यांनिर्मितःश्रेष्ठः प्रासादोयंमनोहरः ॥ ५ ॥

दो० । अम्ब मातुकी पादुका पूजनको सुप्रभाव । सत्तासी अध्याय में कहत सूत मुनिराव ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस स्थानपै इस प्रकार नित्यही उस मातृगण को टिकतेहुये घरघरमें ब्राह्मणों के बालकोंका विनाशहुआ ॥ १ ॥ व उत्तम चमत्कार नगर में विशेषकर युवती स्त्रियोंके दोषोंको ढूंढ़तीहुई वे समस्त देवतायें घूम रहीथीं ॥ २ ॥ तदनन्तर छिद्रसे उपजेहुये व देवताओं से विशेषकर कियेहुये बालकों के विनाश को जानकर बहुतही दुःखित उन समस्त ब्राह्मणों ने अम्बावृद्धा के समीप जाकर व बड़े उपायसे पूजकर देवताओं से कीहुई अपनी स्थितिको कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि समस्त ब्राह्मणों की रक्षाके लिये चमत्कार भूपति ने आप दोनों के

लिये इस उत्तम व मनोहर मन्दिरका निर्माण कियाहै ॥ ५ ॥ रात्रि में छिद्रको पाकर तुम्हारे ये देवता सबओरसे हजारों बालकों को हरते हैं ॥ ६ ॥ इसकारण महात्मा ब्राह्मणों के ऊपर प्रसन्नता कीजाय नहीं तो हमलोग पुरको परित्यागकर अन्यत्र भूमितलमें चले जावेंगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर उनके उस वचनको सुनकर कृपासंयुत होतीहुई अम्बिकाने पांवके प्रहारसे भूमिको हनकर गुहाका निर्माण किया उसके उपरान्त उसी गुहामें निज पादुकाओं को धरकर तदनन्तर विनयसंयुत व झुकेहुये सब अङ्गोंवाली उन समस्त देवताओं से कहा ॥ ८ । ९ ॥ कि तुम सबोंको गुहाके बीचमें प्राप्त इन मेरी उत्तम पादुकाओंकी सदैव सेवा करनी चाहिये कहीं बाहर न

ह्रियन्तेबालकारात्रौ छिद्रंप्राप्यसहस्रशः ॥ युष्मदीयाभिरेताभिर्देवताभिस्समन्ततः ॥ ६ ॥ प्रसादःक्रियतांतस्माद्ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ नोचेत्पुरंपरित्यज्य यास्यामोन्यत्रभूतले ॥ ७ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ततोम्बाकृपयान्विता ॥ हत्वा पादप्रहारेण भूमिंचक्रेगुहांततः ॥ ८ ॥ तस्यांस्वपादुकेन्यस्य ततःप्रोवाचदेवताः ॥ सर्वास्तानतसर्वाङ्ग्यो विनयेनसमन्विताः ॥ ९ ॥ इमेमत्पादुकेदिव्ये गुहामध्येगतेसदा ॥ सर्वाभिस्सेवनीयंच नगन्तव्यंबहिःक्वचित् ॥ १० ॥ याकाचिल्लौल्यमास्थायनिष्क्रमिष्यतिमोहतः ॥ सादिव्यभावनिर्मुक्ता शृगालीसंभविष्यति ॥ ११ ॥ अत्रागत्यविनिर्मुक्ता योगिनोध्यानचिन्तकाः ॥ पूजांसम्यक्करिष्यन्ति सर्वासांभक्तिसंयुताः ॥ १२ ॥ पादुकेमेप्रपूज्यादौ मांसमद्यादिभिःक्रमात् ॥ अवाप्स्यन्तिचसंसिद्धिं दुर्लभाममरैरपि ॥ १३ ॥ ततस्तथेतिताःप्रोच्य गुहामध्येव्यवस्थिताः ॥ परिवार्य्यशुभे तस्याः पादुकेमोक्षदायिके ॥१४॥ ततस्तत्रसमागत्य पुरुषाअपिदूरतः ॥ प्रपूज्यपादुकेसम्यग् देवताश्चततःपरम् ॥१५॥

जाना चाहिये ॥ १० ॥ और जोकोई चञ्चलता में टिककर अज्ञानसे निकलैगी वह देवताके भावसे छूटकर सियारी होवैगी ॥ ११ ॥ और भक्तिसे संयुत व ध्यान के चिन्तक तथा विशेषकर मुक्तहुये योगी जन यहां आकर सबोंके पूजनको भलीभाति करैंगे ॥ १२ ॥ व पहले क्रमसे मेरी पादुकाओं को मांस मद्यादिकोंसे पूजकर देवताओं सेभी दुर्लभ संसिद्धि को पावैंगे ॥ १३ ॥ वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर वे सब मोक्ष देनेवाली व शुभ करनेवाली उन अम्बा जीकी पादुकाओं को घेरकर गुहाके बीचमें टिकगई ॥ १४ ॥ तदनन्तर दूर से भी मनुष्य वहांपर भलीभांति आकर व पादुकाओं को भलीभांति पूजकर तदनन्तर देवताओं को पूजकर जन्म मृत्युसे रहित

परमसिद्धि को प्राप्त होनेलगे इसी अवसर में अग्निष्टोमादिक कर्म नाश होगये ॥ १५ । १६ ॥ और जो तीर्थयात्रा व व्रतादिक तथा संयम, नियम थे वेभी नष्ट होगये व जो सदैव मांसके दूषक तथा शान्तचित्तवालेभी ब्राह्मणथे वेभी उसी कारण अनेकों प्रकारके मद्योंसे पूजन करनेलगे व सम्पूर्ण यज्ञके कर्मोंको छोड़ेहुये वे मांसों से तर्पण करने लगे ॥ १७ । १८ ॥ वैसेही मातृदेवताओं ने धूप व अनुलेपनों से पादुकाओं की सेवाक्रिया इसी अवसर में यज्ञकर्म के विनाश को देखकर डरे व क्षुधा प्यास से व्याकुल इन्द्र समेत समस्त देवता महादेव जीके समीप जाकर व नम्रता से नीचे झुककर स्थित होतेभये ॥ १९ । २० ॥ व अनेकों प्रकार के वेदोक्त शतरु-

प्रयान्तिचपरांसिद्धिं जन्ममृत्युविवर्ज्जिताम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेनष्टा अग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ १६ ॥ तीर्थया
त्राव्रतादीनि संयमानियमाश्रये ॥ येचापिब्राह्मणाश्शान्तास्सदामांसस्यदूषकाः ॥ १७ ॥ प्रकुर्वन्तिततःपूजां तेपिमद्यैः
पृथग्विधैः ॥ तर्प्पयन्तितथामांसैस्त्यक्ताशेषमखक्रियाः ॥ १८ ॥ पादुकेमातृभिर्जुष्टे तथाधूपानुलेपनैः ॥ एतस्मिन्नन्तरे
भीतास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वायज्ञक्रियाच्छेदं क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ प्रोचुर्महेश्वरङ्गत्वा विनयावनताःस्थि
ताः ॥ २० ॥ स्तुत्वापृथग्विधैस्स्तोत्रैर्वेदोक्तैःशतरुद्रियैः ॥ देवाऊचुः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पादुकेदेवसंस्थिते ॥ २१ ॥
अम्बायामातृभिस्सार्द्धं गुहामध्येसुगुप्तके ॥ ब्राह्मणाअपिदेवेश मद्यमांसेनभक्तितः ॥ २२ ॥ ताभ्यांपूजांप्रकुर्वन्ति
प्रयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ नष्टाधर्म्मक्रियास्सर्वा मर्त्यलोकेचसाम्प्रतम् ॥ २३ ॥ अस्माकंसंशयोजातो यज्ञभागंविनाप्र
भो ॥ तस्मात्त्वंकुरुदेवेश यथास्यात्पादुकाक्षयः ॥ २४ ॥ प्रभवन्तिमखाभूयश्चास्माकंस्यात्परामुदा ॥ भगवानुवाच ॥

द्रिय स्तोत्रों से स्तुति करके बोले देवता बोले कि हे देव ! हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें अतिगुप्त गुहाकेबीचमें मातृदेवताओं समेत अम्बा भगवतीकी पादुकायें भलीभांति स्थितहैं हे देवेश ! ब्राह्मण लोगभी भक्तिसे मद्यमांसके द्वारा उन दोनों पादुकाओं की पूजाकरते हैं व उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं इसलिये इस समय मृत्यु लोकमें समस्त धर्मके कर्म नष्ट होगये हैं ॥ २१ । २२ । २३ ॥ हे प्रभो ! यज्ञभाग के विना हमलोगोंके सन्देह उत्पन्न हुआ है इसलिये हे देवेश ! जिसप्रकार पादुकाओं

का विनाश होवै तुम वैसाही करो ॥ २४ ॥ क्योंकि फिर यज्ञ होवैं व हमलोगों को परम आनन्द होवै शिव भगवान् बोले कि जो अम्बा ऐसी प्रसिद्ध है वह परमेश्वर की शक्ति है ॥ २५ ॥ और वह संसार की माता व अविनाशिनी तथा साक्षात् मेरी भी जननी है इसलिये उसका विनाश करने के लिये किसी केभी मनसेभी समर्थ नहीं है हे बड़े भाग्यवाले देवेश्वरो ! तुमलोग उन पादुकाओंका सेवनकरो मैं वहां पर उत्तम सुखके उपायको करूंगा ॥ २६।२७ ॥ जिससे उन पादुकाओंसे तुम लोगों के लिये बड़ाई होगी ऐसा कहकर तदनन्तर महेश्वर देव जीने ध्यान किया ॥२८॥ कि हृदयमें टिकेहुये आठ पत्तोंवाले कमलको कर्णिका (गुजरी) समेत घुमाकर

यासाअम्बेतिविख्याता शक्तिस्सापरमेश्वरी ॥ २५ ॥ जगन्माताक्षयासाक्षान्ममापिजननीचसा ॥ तत्कथंसंक्षयन्त स्याः कर्तुङ्केनापिशक्यते ॥ २६ ॥ मनसापिमहाभागाःपादुकेतेनिषेवत ॥ परन्तत्रकरिष्यामि सुखोपायंसुरेश्वराः ॥ २७॥ युष्मभ्यंपादुकाभ्यांच महत्त्वंयेनजायते॥एवमुक्त्वाततोध्यानंचक्रेदेवोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ व्यावृत्यकमलंहृत्स्थ मष्टपत्रंसकर्णिकम् ॥ तस्यान्तर्गतमासीनमङ्गुष्ठाग्रनिभंशुभम् ॥ २९ ॥ द्वादशार्कप्रभंसूक्ष्मंस्वमात्मानंव्यलोकयत् ॥ तस्यैवन्ध्यायमानस्य तृतीयनयनात्ततः ॥ ३० ॥ श्वेताम्बरधराशुभ्रा निर्गताकन्यकाशुभा ॥ अथसाप्राहतन्देवं प्रणि पत्यमहेश्वरम् ॥ ३१ ॥ किमर्थन्देवसृष्टास्मि ममादेशःप्रदीयताम् ॥ भगवानुवाच ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पादुकेसंस्थि तेशुभे ॥ ३२ ॥ श्रीमातुर्जगतांमुख्येताभ्यांपूजान्त्वमाहर ॥ कन्यकांसम्परित्यज्य तवान्वयसमुद्भवाम् ॥ ३३ ॥ यःकरि

उसके अन्तर्गत बैठेहुये अपने आत्मा को देखा जोकि अँगूठाके अग्रभाग के समान व शुभदायक तथा बारह सूर्य्योंके समान प्रभावान् व सूक्ष्म था तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करतेहुये उन शिवजी के तीसरे नेत्रसे शुभदायक कन्या निकली जोकि श्वेतवर्णवाली व श्वेतही वसनोंको धारे थी इसके अनन्तर उसने उन महेश्वर देवजीको प्रणामकर कहा ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ कि हे देव ! मैं किस लिये उत्पन्न कीगई हूं मुझको आज्ञा दीजावै शिवभगवान् बोले कि हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें श्रीमती संसारकी माता की शुभदायिकायें व प्रसिद्ध पादुकायें भलीभांति स्थित हैं तुम उनका पूजनकरो तुम्हारे वंशमें उपजीहुई कन्याको परित्याग

कर ॥ ३२ । ३३ ॥ जो पुरुष उनकी पूजा करैगा वह मातृदेवताओंका आहार होगा और तुमको भी कुमारतारूप ब्रह्मचर्य्य के द्वारा उत्तम भक्तिसे उन पादुकाओं के
लिये पूजन करना चाहिये नहीं तो नाशको प्राप्तहोगी और भक्तिमें लगेहुये जे पुरुष तुम्हारी पूजाको करैंगे ॥ ३४ । ३५ ॥ वे सदैवही सुखसे संयुत व मातृदेवताओं के
सम्मत होंगे ऐसा कहकर शिवजी ने तदनन्तर उस कन्या से यथोचित मन्त्रमार्ग को व विशेषकर विस्तारसे पूजनमार्गको कहा उसके उपरान्त छत्रादि भूषण को
देकर बिदाकिया ॥ ३६ । ३७ ॥ वैसेही महादेवजी ने समस्त सुरेश्वरों को सिद्धिको देकर बिदाकिया कुमारी बोली कि हे देव ! तुमने यह कहा है कि तुम्हारे वंशमें

ताभ्यांपूजाप्रकर्तव्यानोचेन्नाशम ष्यतितत्पूजामाहारःस्यात्समातृषु ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येणत्वयापिचसुभक्तितः ॥३४॥ वाप्स्यसि ॥ तवपूजांकरिष्यन्ति येनराभक्तितत्पराः ॥ ३५ ॥ मातृणांसंमतास्तेस्युस्सर्वदैवसुखान्विताः ॥ एवमुक्त्वा ततस्तस्या मन्त्रमार्गंयथोचितम् ॥ ३६ ॥ पूजामार्गंविशेषेण कथयामासविस्तरात् ॥ ततोविसर्जयामास दत्त्वाछ त्रादिभूषणम् ॥ ३७ ॥ प्रतिपत्तिंमहादेवस्तथासर्वान्सुरेश्वरान् ॥ कुमार्य्युवाच ॥ त्वयैतत्कथितन्देव तवान्वयसमुद्भ वाः ॥ ३८ ॥ कन्यकाःपूजयिष्यन्ति पादुकेतेसुशोभने ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येण भविष्यत्यन्वयःकथम् ॥ ३९ ॥ एतन्मे विस्तरात्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यस्यायस्याःप्रसन्नात्वं कन्यकायावदिष्यसि ॥ ४० ॥ मन्त्रग्राम मिमंसम्यक् त्वद्भवासाभविष्यति ॥ एवंचान्यामहाभागेपारम्पर्य्येणकन्यकाः ॥४१॥ तववंशोद्भवास्सर्वाः प्रभविष्यन्ति मन्त्रतः ॥ ततस्सातांसमासाद्य पादुकासम्भवांगुहाम् ॥ ४२ ॥ पूजांचक्रेयथान्यायंयथोक्तंत्रिपुरारिणा ॥ सूतउवाच ॥

उपजीहुई कन्यायें उन सुन्दरी पादुकाओं को पूजैंगी तो कुमार ब्रह्मचर्य्यसे वंश कैसे होगा ॥ ३८ । ३९ ॥ इस समस्त चरित्रको तुम विस्तार से यथायोग्य कहने के
योग्यहो श्रीशिवभगवान् बोले कि प्रसन्न होतीहुई तुम जिस २ कन्यासे इस मन्त्रसमूहको भलीभांति कहोगी वह तुमसे उपजीहुई होगी हे महाभागे ! इसप्रकार परम्परासे
मन्त्रके द्वारा तुम्हारे वंशमें उपजीहुई अन्य समस्त कन्यायें होंगी तदनन्तर उस कन्याने पादुका से उपजीहुई उस गुहाको प्राप्तहोकर ॥ ४० । ४१ । ४२ ॥ जैसा कि त्रिपुरारि ने

कहाथा वैसेही यथायोग्य पूजनको किया सूतजी बोले कि सावधान होता हुवा जो नर उस कुमारीके वंशमें उपजीहुई कन्याके हाथसे पादुकाओंके लिये पूजन करावैगा वह इस लोक में सुखको पाकर अत्यन्त सुखसे संयुत होवैगा ॥ ४३ । ४४ ॥ इसलिये इस लोक में व परलोक में सदैव सुखके चाहनेवाले व भक्तिसंयुत मनुष्यों को सब उपायसे कन्या के हाथसे पादुकाओं को पूजना चाहिये और वह कन्या भी विशेषकर पूजने योग्य है यह महादेवने कहा है ॥ ४५ । ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! श्रीमाता अम्बा देवीके प्रसङ्गके द्वारा पादुकाओं से उपजेहुये इस समस्त माहात्म्यको मैंने तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ४७ ॥ चतुर्दशी में व विशेषकर अष्टमी तिथि में

तदन्वयसमुत्थायाः कन्यकायाःकरेणतु ॥ ४३ ॥ पादुकाभ्यांनरःपूजां कारयेद्यःसमाहितः ॥ इहलोकेसुखम्प्राप्य सस्यादतिसुखान्वितः ॥ ४४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कन्याहस्तेनपादुके ॥ पूजनीयेविशेषेण पूज्यासाचापिकन्यका ॥ ४५ ॥ वाञ्छद्भिःशाश्वतंसौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ मानवैर्भक्तिसंयुक्तैरित्युवाचमहेश्वरः ॥ ४६ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं माहात्म्यम्पादुकोद्भवम् ॥ श्रीमातुरनुषङ्गेणअम्बादेव्याद्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ तथाष्टम्यांविशेषेणसप्राप्नोतिपरम्पदम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे श्रीमातुःपादुकामाहात्म्यंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ अग्नितीर्थन्त्वयाप्रोक्तं ब्रह्मतीर्थञ्चयत्पुरा ॥ तयोःकथयचोत्पत्तिं माहात्म्यञ्चमहामते ॥ १ ॥ तस्मात्तद्विस्तराद्ब्रूहिएकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ नवयन्तृप्तिमापन्नाःशृण्वन्तस्तेगिरामृतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्त

सावधान होताहुआ जो मनुष्य भक्तिसे इस चरित्र को सुनता है वह परमपद को प्राप्तहोता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमातुःपादुकामाहात्म्यंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । निर्वर्षण को हाल अरु अग्नितीर्थ माहात्म्य । अट्ठासी अध्याय में वर्णित है याथात्म्य ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! पुरातन समय तुमने जिस अग्नितीर्थ को व ब्रह्मतीर्थ को कहा है उन दोनों की उत्पत्ति व माहात्म्य को कहिये ॥ १ ॥ जिसलिये कि तुम्हारी वाणीके द्वारा अमृतरूपी कथाको सुनतेहुये हमलोग तृप्ति

को नहीं प्राप्तहुये हैं इसलिये एक २ के उस चरितको अलग २ विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि इस विषयमें समस्त सुखोंकी प्रापक व शुभदायक तथा पातकों को विनाश करनेवाली अग्नितीर्थ से उपजीहुई कथाको मैं तुमलोगों से कहूंगा ॥ ३ ॥ पुरातन समय शूरतासे संयुत व ब्रह्मज्ञान में चतुर चन्द्रवंशमें उपजाहुआ प्रतीप नामक भूपति हुआहै ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस नृपति के समस्त लक्षणोंसे चिह्नित दोपुत्र पैदाहुये उनमें पहला देवापि व दूसरा शन्तनु हुआहै ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर जब नृपोत्तम प्रतीप शिवपदको प्राप्त होगया तब देवापि राज्यको छोड़कर तपस्याके लिये वनको निकलगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर समस्त मंत्रियोंने उसके छोटेभाई

यिष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् ॥ अग्नितीर्थसमुद्भूतांसर्वसौख्यावहांशुभाम् ॥ ३ ॥ सोमवंशसमुद्भूतः प्रतीपोनाम भूपतिः ॥ पुरासीच्छौर्य्यसम्पन्नोब्रह्मज्ञानविचक्षणः ॥ ४ ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञेसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ देवापि प्रथमस्तत्रद्वितीयःशन्तनुर्द्विजाः ॥ ५ ॥ अथोशिवपदंप्राप्ते प्रतीपेनृपसत्तमे ॥ तपोर्थंराज्यमुत्सृज्य देवापिर्निर्ययौवनम् ॥ ६ ॥ ततश्चमन्त्रिभिःसर्वैः शन्तनुस्तस्यचानुजः ॥ पितृपैतामहेराज्येसत्वरंसंनियोजितः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रोनववर्ष क्रुधान्वितः ॥ यावद्द्वादशवर्षाणि तस्मिन्राज्यंप्रशासति ॥ ८ ॥ अतःकृच्छ्रङ्गतस्सर्वोलोकःक्षुत्परिपीडितः ॥ चामुण्डासदृशोजातोयोनमृत्युवशङ्गतः ॥ ९ ॥ सन्त्यक्ताःपतिभिर्नार्य्यःपुत्राश्चपितृभिर्निजैः ॥ मातरश्चतथापुत्रैर्लोकेष्वन्येषु काकथा॥ १० ॥ दैवयोगात्कचित्किञ्चित्कस्यचिद्यदिदृश्यते ॥ सस्यंसिद्धमसिद्धंवाह्रियतेवीर्य्यतःपरैः ॥ ११ ॥ शुष्कास्तु

शन्तनु को पिता, पितामह वाले राज्यपै शीघ्रही भलीभांति नियुक्त किया ॥ ७ ॥ इसी अवसरमें उन शन्तनुको राज्यका पालन करतेहुये क्रोधसंयुत इन्द्रने बारहवर्षतक वृष्टि न किया ॥ ८ ॥ इसी कारण क्षुधासे बहुतही दुःखित होताहुआ समस्त संसार क्लेशको प्राप्तहुआ व जो मृत्युके वशमें नहींगया वह चामुण्डाके समान होगया याने भक्ष्याभक्ष्य में तत्परहुआ ॥ ९ ॥ पतियोंने स्त्रियोंको त्यागदिया व अपने पिताओंने पुत्रों को छोड़दिया वैसेही पुत्रोंने माताओंको त्यागदिया तो अन्य मनुष्यों की क्या कथा कहनी है ॥ १० ॥ यदि कहींपर दैवयोग से किसीके सिद्ध या असिद्ध कोई अन्न देखपड़ताथा तो बलसे दूसरे लोग हरलेतेथे ॥ ११ ॥ और समस्त वृक्ष सूखगये

वैसेही जो जलाशय थे वे सूखगये व गङ्गादिक भी नदियां थोड़े जलवाली होकर भलीभांति टिकती भईं ॥ १२ ॥ इस प्रकार वृष्टिका विनाशहोतेहुये व धर्ममार्ग को नष्ट होतेहुये और इस संसार को हड्डियोंके समूहों से पूरित होनेपर व भस्मसे आच्छादित होनेपर ॥ १३ ॥ किसीने यज्ञ व वेदपाठ व्रतको नहीं किया उस चरितको इस प्रकार देखकर क्षुधा बढ़ती के लिये प्राप्तहुई ॥१४॥ इसी अवसरमें चर्म व हड्डी शेष समस्त अङ्गवाले व भूंखसे दुःखित महामुनि विश्वामित्र इधरउधर भ्रमण करतेहुये तदनन्तर बिन जलवाले व मरेहुये मनुजों से उपजेहुये हड्डियों के समूहों से व्याप्तवाले किसी गाँवको पाकर अनन्तर उसी में घूमतेहुये मुनिने चाण्डाल के स्थान

भूरुहास्सर्वे तथायेचजलाशयाः॥नद्यश्चस्वल्पतोयाश्चगङ्गाद्याअपिसंस्थिताः ॥ १२ ॥ एवंवृष्टेःक्षयेजातेनष्टेधर्म्मपथेतथा ॥ लोकेऽस्मिन्नस्थिसंघातैःपूरितेभस्मनावृते ॥ १३ ॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे नस्वाध्यायंनचव्रतम् ॥ एवमालोक्यतद्वृत्तंवृद्ध्यर्थंक्षुत्समाययौ ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ चर्म्मास्थिशेषसर्वाङ्गो बुभुक्षार्तइतस्ततः ॥ १५ ॥ परिभ्रमंस्ततःप्राप्यकञ्चिद्ग्रामंनिरूदकम् ॥ मृतमर्त्योद्भवैर्व्याप्तमस्थिसङ्घैःसमन्ततः ॥ १६ ॥ अथतत्रभ्रमन्प्रापचाण्डालस्यनिवेशनम् ॥ शून्यंगोस्थिसमाकीर्णंदुर्गन्धेनसमावृतम् ॥ १७ ॥ अथापश्यन्मृतन्तत्रसारमेयंचिरोषितम् ॥ संशुष्कङ्गन्धनिर्मुक्तंगृहप्रान्तेव्यवस्थितम् ॥ १८ ॥ समादायततस्तञ्च आपद्धर्म्मपरायणः ॥ प्रक्षाल्यसलिलेपश्चात्प्रचकर्ततदामुनिः ॥ १९ ॥ ततश्चश्रपयामाससुसमिद्धेहुताशने ॥ क्षुत्क्षामोभोजनार्थायततःपाकाग्रमेवच॥२०॥ समादायपितॄंस्तर्प्ययावदग्नौजुहोतिसः ॥ तावद्वह्निःपरित्यज्यसमस्तमपिभूतलम् ॥ २१ ॥ गतश्चादर्शनंसद्यस्सर्वेषां

को पाया जोकि शून्याकार व गाइयोंके हड्डियोंके समूहोंसे व्याप्त व दुर्गन्धसे सब ओर घिराथा ॥ १५ । १६ । १७ ॥ इसके अनन्तर उसी स्थानमें बहुत दिनोंसे बसे व अत्यन्त सूखे तथा गन्धसे हीन व घरके समीप में स्थित मरेहुये कुत्तेको देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर उस समय आपत्तिके धर्ममें तत्पर मुनिने उस कुत्तेको लेकर व जल में भलीभांति धोकर पश्चात् काटडाला ॥ १९ ॥ तदनन्तर क्षुधासे दुबले विश्वामित्र ने भोजन के लिये बहुतही बढ़ेहुये अग्नि में पकाया उसके उपरान्त पकेहुये मांस के अग्रभागही को भलीभांति लेकर पितरोंका तर्पणकर वे मुनि जबतक अग्नि में हवनकरैं तबतक इन्द्रके ऊपर मनमें बहुतही क्रोधको धारकर अग्निदेव जी समस्त

भी भूतलको छोड़कर शीघ्रही सब भूमिनिवासियों के अदृश्य होगये ॥ २० । २१ । २२ ॥ इसी समय में ब्रह्मा व विष्णु को अगाड़ी किये सब देवताओं ने अग्निदेव को ढूंढ़नेके लिये धरातलमें भ्रमण किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये उन देवताओं ने बडेभारी हाथीको देखा जोकि अग्निके तापसे अत्यन्तपीड़ित व भूमि में पड़ाहुआ श्वास लेरहाथा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर शीघ्रता या संभ्रम संयुत देवताओं ने हाथीको देखकर पूंछा कि हे गज ! इस वनमें क्या तुमने अग्नि को नहीं देखा है ॥ २५ ॥ हाथी बोला कि इस सघन बाँसके गुच्छे में अग्निने भलीभांति प्रवेश किया है उन्हीं से जलायाहुआ मैं इस समय क्लेशसे यहां आयाहूं ॥ २६ ॥ इसके अ-

क्षितिवासिनाम् ॥ चित्तेकोपंसमाधाय शक्रस्योपरिभूरिशः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवा ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ वह्ने रन्वेषणार्थाय बभ्रामधरणीतलम् ॥ २३ ॥ अथतैर्भ्रममाणैश्चप्रदृष्टोभूद्गजोमहान् ॥ निःश्वसन्पतितोभूमौ वह्नितापप्रपीडितः ॥ २४ ॥ अथदेवागजंदृष्ट्वापप्रच्छुस्त्वरयान्विताः ॥ कच्चित्त्वयानदृष्टोत्रकाननेपावकोगज ॥ २५ ॥ गज उवाच ॥ वंशस्तम्बेत्रसंकीर्णे संप्रविष्टोहुताशनः ॥सांप्रतन्तेननिर्दग्धः कृच्छ्राच्चात्राहमागतः ॥ २६ ॥ अथतैर्वेष्टितस्तस्मिन्वंशस्तम्बेहुताशनः॥देवैर्दत्त्वागजेन्द्रस्य शापंपश्चाद्विनिर्गतः ॥ २७॥ यस्मात्त्वयाहमादिष्टोदेवानांवारणाधम ॥ तस्मात्तवमुखेजिह्वा विपरीताभविष्यति ॥ २८ ॥ एवंशप्त्वागजंशीघ्रं नष्टोवैश्वानरःपुनः ॥ देवाश्चापितथादृष्टेसंलग्नास्तद्दिदृक्षया ॥ २९ ॥ अथदृष्टःशुकस्तैश्च भ्रममाणैर्महावने ॥ भोभोःशुकत्वयावह्निर्यदिदृष्टोनिवेद्यताम् ॥ ३० ॥ शुकउवाच ॥ योयंसंदृश्यतेदूराच्छमीगर्भेचपिप्पलः ॥ सतस्मिंस्तिष्ठतेवह्निरश्वत्थेसुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ अश्वत्थेयः

नन्तर उन देवोंसे उस बाँसके गुच्छेमें घिरे हुये अग्निदेवजी गजेन्द्रको शापदेकर पश्चात् निकलगये ॥२७॥ हे हाथियों में नीच ! जिसलिये कि तुमने मुझको बतलादिया इससे तुम्हारे मुखमें उलटी जीभ होगी ॥ २८ ॥ इस प्रकार हाथीको शापदेकर फिर शीघ्रही अग्निदेव अदृश्य होगये और देवता भी उन अग्नि के देखनेकी इच्छासे पीछे लगचले ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर महावन में घूमतेहुये उन देवताओं ने सुआको देखा व पूंछा कि हे हेशुक ! यदि तुमने अग्निको देखाहै तो बतलाइये ॥ ३० ॥ सुआ बोला कि हे देवतोत्तमो ! शमीवृक्षके गर्भ (बीच) में जो यह दूरसे पीपल देख पड़ताहै उसी पीपलमें वे अग्निदेवजी टिके हैं ॥ ३१ ॥ पीपल मे पुत्रों समेत

जो मेरा घोंसलाथा उसको जिस अग्निने जलादिया और मैं क्लेशसे निकल आयाहूं ॥ ३२ ॥ उसको सुनकर उन समस्त देवताओं ने उसी क्षण शमीगर्भको घेरलिया और अग्निदेवभी सुआको शाप देकर निकल गये ॥ ३३ ॥ हे पक्षिन्, शुक ! जिसकारण तुमने मुझे देवताओं को भलीभांति बतलादिया इसलिये तुम्हारी वाणी विशेषकर प्रकट न होवैगी ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर अग्निदेवजी हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें पितामह देव जीके बडेगहरे जलाशय को देखकर जोकि पूर्व व उत्तरवाली विदिशा में स्थितथा देवताओं के न देखने की इच्छासे उसमें पैठगये व नम्र होकर भलीभांति टिके ॥ ३५ । ३६ ॥ इसी अवसरमें उस जलाशय में सैकड़ों मच्छ,

कुलायोमेआसीच्छिशुसमन्वितः ॥ सन्दग्धस्तत्तुवायेनअहंकृच्छ्राद्विनिर्गतः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वातैस्सुरैःसर्वैः शमीगर्भस्तुतत्क्षणात् ॥ वेष्टितःपावकोप्याशु शुकंशप्त्वाविनिर्गतः ॥ ३३ ॥ अहंयस्मात्त्वयापक्षिन्देवानांसंनिवेदितः ॥ तस्माच्छुकनतेवाणी विस्पष्टासंभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवमुक्त्वाजातवेदा देवादर्शनवाञ्छया ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे देवस्यपरमेष्ठिनः ॥ ३५ ॥ जलाशयंसुगम्भीरं पूर्वोत्तरविदिक्स्थितम् ॥ दृष्ट्वातत्रप्रविष्टस्तुनिभृतश्चसमाश्रितः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रमत्स्यकच्छपदर्दुराः ॥ वह्निप्रवेशनिर्दग्धादृश्यन्तेशतशोमृताः ॥ ३७ ॥ अथचैकोर्द्धनिर्दग्धआयुःशेषेणदर्दुरः ॥ तस्माज्जलाद्विनिष्क्रान्तो दृष्टोदेवैश्चदूरतः ॥३८॥ पृष्टश्चब्रूहिचेद्भेकत्वयादृष्टोहुताशनः ॥ तदर्थमिहसंप्राप्तास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ३९ ॥ भेकउवाच ॥ अस्मिञ्जलाशयेवह्निस्सांप्रतंपर्य्यवस्थितः ॥ तस्मात्तुजलमध्यस्थामृताभूरिजलोद्भवाः ॥ ४० ॥ अस्माकंनिधनंप्राप्तं वंशन्तुसुरसत्तमाः ॥ अहंकृच्छ्रेणनिष्क्रान्तएतस्माज्जलसंश्रयात् ॥४१॥

कच्छप व मेढ़क अग्निके पैठने से जलेहुये मरे देखपड़तेथे ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर आयुर्बलके शेषसे एक अधजला मेढ़क उस जलसे निकला व देवताओं ने दूरसे देखा ॥ ३८ ॥ व पूंछा कि हे दर्दुर ! यदि तुमने अग्निको देखा है तो कहिये क्योंकि उसीके लिये इन्द्र समेत हम सब देवता यहांपर भलीभांति प्राप्तहुये हैं ॥ ३९ ॥ मेढ़क बोला कि इस समय अग्निदेवजी इस जलाशय में टिके हैं उसी कारण जलके बीचमें टिके व जलसे उपजेहुये बहुतेरे जन्तु मरगये ॥ ४० ॥ हे देवतोत्तमो !

हमारा वंश तो नाशको प्राप्त होगया और मैं इस जलाशय से बड़े क्लेशसे निकला ॥ ४१ ॥ उस वचनको सुनकर वे समस्त देवता उस जलाशय को सबओर से घेरकर टिके और अग्निने मेढ़कको शापदिया ॥ ४२ ॥ कि हे मूढ़ मेढ़क ! जिस लिये तुमने देवताओं से मुझको निवेदन करदिया उसी कारण इस धरातल में तुम निश्चयकर जिह्वासे हीन होवो ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर अग्निदेव जी जबतक उस स्थानसे निकलैं तबतक महात्मा ब्रह्माने आपही उन अग्निसे कहा ॥ ४४ ॥ कि हे हे अग्निदेव ! तुम देवोंको देखकर किसलिये जातेहो तुम इन समस्त देवताओं के आदिभूत होकर मुखमें भलीभांति टिकेहो ॥ ४५ ॥ तुममें भलीभांति हवन कीहुई

तच्छ्रुत्वातुसुरास्सर्वैस्सर्वतस्तञ्जलाश्रयम्॥वेष्टयित्वास्थितास्तेचवह्निर्भेकंशशापह ॥ ४२ ॥ यस्माद्भेकत्वयामूढदेवेभ्यो हंनिवेदितः ॥ तस्मात्त्वम्भववैनूनंविजिह्वोत्रधरातले ॥ ४३ ॥ एवमुक्त्वाततस्स्थानाद्यावद्वह्निर्विनिर्गतः ॥ तावत्स ब्रह्मणाप्रोक्तस्स्वयमेवमहात्मना ॥ ४४ ॥ भोभोवह्नेकिमर्थन्त्वन्देवान्दृष्ट्वाप्रगच्छसि॥त्वमाद्यश्चैवसर्वेषामेतेषांसंस्थि तोमुखम् ॥ ४५ ॥ त्वय्याहुतिर्हुतासम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततःप्रजाः ॥ ४६ ॥ तस्मा द्धाताविधाताच त्वमेवजगतःस्थितः ॥ सन्तुष्टेधार्य्यतेविश्वन्त्वयिरुष्टेविनङ्क्ष्यति ॥ ४७ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञास्त्व यिसर्वेप्रतिष्ठिताः ॥ अथसर्वाणिभूतानिजीवन्तितवसंश्रयात् ॥ ४८ ॥ त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिसर्वदा ॥ यस्मा दन्नञ्चपानञ्चजठरस्थम्पचस्यलम् ॥ ४९ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादन्त्वंसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥कोपस्यकारणम्ब्रूहियतस्त्य क्त्वाप्रगच्छसि ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वादेवस्यपरमेष्ठिनः ॥ प्रोवाचप्रणयाद्वाक्यं कोपंमुक्त्वाचपद्म

आहुति सूर्य्यनारायणके समीप प्राप्त होती है सूर्य्यसे वृष्टि होतीहै व वृष्टिसे अन्न होता है और उस अन्नसे प्रजाहोती हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये संसार के धारने या पालने हारे व बनानेवारे तुम्हीं टिकेहो तुम्हारे सन्तुष्ट होनेपर संमार धारण कियाजाताहै और तुम्हारे क्रोधित होनेपर विनाश होजाता है ॥ ४७ ॥ व अग्निष्टोमादिक समस्त यज्ञ तुममें प्रतिष्ठित हैं व सबप्राणी तुम्हारे आश्रय से जीतेहैं ॥ ४८ ॥ हे अग्ने ! तुम सदैव समस्त प्राणियों के भीतर चलतेहो क्योंकि उदर में स्थित हुआ अन्नपान भलीभांति पचता है ॥ ४९ ॥ इसलिये तुम समस्त देवताओंके ऊपर कृपाकरो और क्रोधका कारण कहो कि जिसलिये त्यागकर जातेहो ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि उन

पितामहदेवजीके उस वचनको सुनकर क्रोधको त्यागकर अग्निदेव ब्रह्माजीसे नम्रतासे वचन बोले ॥ ५१ ॥ अग्नि बोले कि हे पद्मज ! जिस लिये मैं इन्द्रके ऊपर क्रोधको धारकर व संसार को छोड़कर अदृश्य होगया उस कारणको सुनिये ॥ ५२ ॥ कि महेन्द्र की अनावृष्टि से ओषधियों का नाश होगया उसी कारण विश्वामित्रने मुझको मांससे योजित किया ॥ ५३ ॥ इसी कारण अभक्ष्य के भक्षण से डराहुआ मैं अदृश्य होगया न कामनासे न उद्वेगसे यह मैंने सत्य कहा है ॥ ५४ ॥ उसको सुनकर तदनन्तर वे चार मुखवाले ब्रह्माजीने इन्द्रसे कहा कि अग्निदेवजी योग्यही कहाहै तुम किसलिये नहीं बरसतेहो ॥ ५५ ॥ इन्द्र बोले कि हे पितामह !

जम् ॥ ५१ ॥ अग्निरुवाच ॥ अहंकोपंसमाधाय शक्रस्योपरिपद्मज ॥ प्रणष्टोजगदुत्सृज्य यस्मात्तत्कारणंशृणु ॥ ५२ ॥ अनावृष्ट्यामहेन्द्रस्य सञ्जातश्चौषधीक्षयः ॥ ततोस्म्यहञ्चमांसेन विश्वामित्रेणयोजितः ॥५३॥ एतस्मात्कारणान्नष्टो नकामान्नचसम्भ्रमात् ॥ अभक्ष्यभक्षणाद्भीतःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वासचतुर्वक्त्रः शक्रमाह ततःपरम् ॥ युक्तमेवशिखीप्राह किमर्थंनचवर्षसि ॥ ५५ ॥ शक्रउवाच ॥ ज्येष्ठभ्रातरमुल्लङ्घ्यशन्तनुःपृथिवीपतिः ॥ पितृपैतामहेराज्ये संनिविष्टःपितामह ॥ ५६ ॥ एतस्मात्कारणाद्वृष्टिस्संनिरुद्धामयाप्रभो ॥ तद्ब्रूहिकिंकरोम्यद्यप्रमाणन्त्वंपितामह ॥ ५७ ॥ पितामहउवाच ॥ तस्याक्रमस्यसंप्राप्तंपापन्तेनमहीभुजा ॥ उपभुक्तंसमुद्योगन्तस्माद्वृष्टिंकुरुद्धतम् ॥ ५८ ॥ मद्वाक्ययाद्यातिनोनाशंयावदेतज्जगत्त्रयम् ॥ अकालेनापिदेवेन्द्रसस्याभावाद्बुभुक्षया ॥ ५९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्र आदिदेशत्वरान्वितः ॥पुष्करावर्तकान्मेघान्वृष्ट्यर्थंधरणीतले ॥ ६० ॥ तेपिशक्रसमादेशात्समस्तंधर

जेठेभाई को छोडकर शन्तनु भूपाल पिता, पितामह वाले राज्यपै भलीभांति बैठ गया ॥ ५६ ॥ हे प्रभो, पितामह ! इसी कारण मैंने वृष्टिको रोकलिया है आज मैं क्याकरूं उसको कहिये क्योंकि तुम प्रमाणहो ॥ ५७ ॥ पितामह जी बोले कि उस बिन क्रमके पापको उस भूपति ने भलीभांति पाया है और समुद्योग (उपाय) का उपभोग किया इसलिये हे देवेन्द्र ! जबतक अन्न न होनेके कारण अकालसे भी क्षुधाके कारण यह त्रिलोक नाश न होजाय तबतक मेरे वचनसे शीघ्रही वृष्टि करिये ॥ ५८ । ५९ ॥ इसी अवसर में शीघ्रतासंयुत इन्द्रने धरातल में बरसने के लिये पुष्करावर्त नामक मेघोंको आज्ञादिया ॥ ६० ॥ उसी क्षण गर्जतेहुये व बिजुली से

संयुत उन मेघों नेभी इन्द्रकी आज्ञासे समस्त धरातलको पूर्ण करदिया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर देवताओं समेत ब्रह्मा जीने फिर अग्निसे कहा कि हे पावक ! अग्निहोत्रों में ब्राह्मणों के दृष्टिगोचर होवो ॥ ६२ ॥ व इस समय तुम चाहेहुये वरदानको मुझसे मांगो अग्नि बोले कि हे चतुरानन ! यह पुण्यदायक जलाशय मेरे नामसे वह्नितीर्थ ऐसा कहाहुआ पृथ्वीतल में प्रसिद्ध होवै व प्रभातकाल उठकर श्रद्धासयुत होताहुआ जो पुरुष इस तीर्थ में नहाकर ॥ ६३ । ६४ ॥ व अग्निसूक्तको जपकर आदर समेत तुमको देखै हे प्रभो ! मेरे वचनसे उसके ऊपर शीघ्रही तुमको प्रसन्नता करनी चाहिये ॥ ६५ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रभात उठकर वेदका जाननेवाला जो

णीतलम् ॥ तत्क्षणात्पूरयामासुर्गर्जन्तोविद्युतान्विताः ॥ ६१ ॥ अथाब्रवीत्पुनर्ब्रह्मादेवैस्सार्द्धंहुताशनम् ॥ अग्निहोत्रेषुविप्राणांप्रत्यक्षोभवपावक॥ ६२ ॥ सांप्रतन्त्वंवरंमत्तःप्रार्थयस्वाभिवाञ्छितम् ॥ अग्निरुवाच ॥ अयञ्जलाशयःपुण्योमन्नाम्नापृथिवीतले ॥ ६३ ॥ ख्यातिंयातिचतुर्वक्त्रवह्नितीर्थमितिस्मृतम् ॥ अत्रयःप्रातरुत्थायस्नात्वाश्रद्धासमन्वितः ॥ ६४ ॥ अग्निसूक्तञ्चजप्त्वाचत्वांप्रपश्यतिसादरम् ॥ तस्यतुष्टिस्त्वयाकार्य्याद्रुतंमद्वाक्यतःप्रभो ॥ ६५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अत्रयःप्रातरुत्थाय स्नात्वावैवेदविद्द्विजः ॥ अग्निसूक्तंजपित्वाचवीक्षयिष्यतिमान्ततः ॥ ६६ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य सकलंलप्स्यतेफलम् ॥ अन्यस्मिन्दिवसेपापं नाशंनेष्यतिवह्निजम् ॥ ६७॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वा सभगवान्विररामपितामहः॥पावकोपिचविप्राणामग्निहोत्रेषुसंस्थितः ॥ ६८ ॥ एवमत्रसमुद्भूतंवह्नितीर्थमहाद्भुतम् ॥ तत्रस्नातोनरःप्रातस्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६९ ॥ अग्निरुवाच ॥ ममातृप्तस्यलोकेश तावद्द्वादशवत्सरान् ॥ क्षुधयासं

ब्राह्मण इस तीर्थ में नहाकर व अग्निसूक्तको जपकर तदनन्तर मुझको देखैगा ॥ ॥ ६६ ॥ वह अग्निष्टोम के समस्त फलको पावैगा व अन्य दिनमें अग्निसे उपजा हुआ पातक नाशको प्राप्त होवैगा ॥ ६७ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर वे पितामह भगवान् चुप होरहे व अग्निदेव भी ब्राह्मणों के अग्निहोत्रों में भलीभांति स्थित हुये ॥ ६८ ॥ इस प्रकार यहांपर बड़ा अद्भुत वह्नितीर्थ भलीभांति हुआहै उसमें प्रातःकाल नहाया हुआ मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाताहै ॥ ६९ ॥ अग्नि बोले कि

हे लोकेश अर्थात् पितामह ! मनुष्योंको क्षुधासे आच्छादित होनेपर तृप्तिसे रहित मुझको बारह वर्षतक कहींपर कुछ नहीं मिलाहै ॥ ७० ॥ वैसेही हे विभो ! बड़े भारी समय से फिर उपजेहुये पशुओंसे व अन्य अन्नादिकों सेभी यज्ञ होवैं ॥ ७१ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे अग्निदेव ! यहांपर जो कोई ब्राह्मण निवास करते हैं वे सदैव उत्तम भक्तिसे वसुधाराप्रदानके द्वारा तुमको तृप्त करैंगे उसीसे तुम पुष्टिको पावोगे और वेभी मनोभिलषित कामनाओं से संयुत होवैंगे ॥ ७२ । ७३ ॥ हे अनल ! संक्रान्ति के समय में जिन वसुधाराके देनेवाले मनुष्यों से तुम्हारा मुख हवन किया हुआ होवैगा ॥ ७४ ॥ हे तात ! जन्मसे लगाकर मरण समीप तक उन मनुष्योंका जो कुछ पातक

वृतेमर्त्यैनप्राप्तंकुत्रचित्किंचित ॥ ७० ॥ भविष्यन्तितथायज्ञाः कालेनमहताविभो ॥ सञ्जातैःपशुभिर्भूयःसस्याद्यैरप
रैरपि ॥ ७१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अत्रयेब्राह्मणाःकेचिन्निवसन्तिहुताशन ॥ वसोर्द्धाराप्रदानेनतेत्वांनक्तन्दिनंसदा ॥ ७२ ॥
तर्प्पयिष्यन्तिसद्भक्त्याततःपुष्टिमवाप्स्यसि ॥ तेपिकामैर्मनोभीष्टैर्भविष्यन्तिसमन्विताः ॥ ७३ ॥ संक्रान्तिसमयेयेषां
वसोर्द्धाराप्रदायिनाम् ॥ भविष्यतिकृतंवक्त्रं हूयमानन्तवानल ॥ ७४ ॥ तेषांपापञ्चयत्किञ्चित्तातअज्ञानतःकृतम् ॥
संयास्यतित्तयंसर्वमाजन्ममरणान्तिकम् ॥ ७५ ॥ त्वयितुष्टिङ्गतेपश्चाद्भविष्यतिमहीपतिः ॥ शिबिनेमिःसुविख्यातउ
शीनरसमुद्भवः ॥ ७६ ॥ सकृत्वाश्रद्धयायुक्तस्सत्रन्द्वादशवार्षिकम् ॥ वसोर्द्धाराप्रदानेनवर्षन्त्वांतर्प्पयिष्यति ॥ ७७ ॥
कलशस्यचवक्त्रेणविक्लिन्नेनदिवानिशम् ॥ ततस्तुष्टिंपरांप्राप्यपरांपुष्टिमवाप्स्यसि ॥ ७८ ॥ पूज्यमानोधरापृष्ठेसर्वैर्वेद
विदांवरैः ॥ अद्यप्रभृतियत्किञ्चित्कर्मचात्रभविष्यति ॥ ७९ ॥ शान्तिकंपौष्टिकंवापिवसोर्द्धारासमन्वितम् ॥ संभ

अज्ञानसे कियाहुआहै वह समस्त नाश होजावैगा ॥७५॥ व तुम्हारे सन्तुष्ट होनेपर पश्चात् उशीनर देशमें उपजाहुआ शिबिनेमि नामक अतिप्रसिद्ध भूपति होवैगा॥७६॥ व श्रद्धासंयुत वह शिबिनेमि बारहवर्ष वाले यज्ञको कर रात,दिन वसुधाराके प्रदानसे व भीगेहुये कलशके मुखसे सालभरतक तुमको तृप्तकरैगा तदनन्तर धरापृष्ठ में वेदके जाननेवालोंने श्रेष्ठ समस्त जनोंसे पूजित होतेहुये तुम परम प्रसन्नताको पाकर उत्तम पुष्टिको प्राप्त होगे व आजसे लगाकर यहांपर वसुधारासे संयुत जो कुछ शान्तिक

या पैष्टिक भी कर्म होगा वह सब तुमको परमतृप्तिकारक होगा ॥ ७७ । ७८ । ७९ । ८० ॥ और ब्राह्मणों का वैश्वदेववाला जो कुछ कर्म भी वसुधारा से रहित होगा वह निश्चयकर निष्फल होगा ॥ ८१ ॥ जिसलिये कि शान्तिक व वैश्वदेव और वह यज्ञादिक कर्म पूर्ण होताहै इस कारण पूर्णाहुति कही जातीहै ॥ ८२ ॥ श्रद्धासे संयुत जो पुरुष वसुधाराको देवैगा वह मनसे चिन्तित मनोरथ को सम्पूर्णतासे भलीभांति पावैगा ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नितीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विष्यतितत्सर्वन्तवतृप्तिकरम्परम् ॥ ८० ॥ अपियद्वैश्वदेवीयंकर्म्मकिञ्चिद्द्विजन्मनाम् ॥ वसोर्द्धाराविहीनंहिनिष्फलंसंभविष्यति ॥ ८१ ॥ यस्माद्भवतिसम्पूर्णंकर्म्मयज्ञादिकंहितत् ॥ शान्तिकंवैश्वदेवञ्चपूर्णाहुतिरतोच्यते ॥ ८२ ॥ यस्सम्यक्श्रद्धयायुक्तोवसोर्द्धारांप्रदास्यति ॥ सकामंमनसाध्यातंसमवाप्स्यतिकृत्स्नशः ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेऽग्नितीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाततोवह्निं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ सर्वैर्देवगणैस्सार्द्धं शक्रविष्णुशिवादिभिः ॥ १ ॥ जगामब्रह्मलोकञ्चदेवास्तेचनिजंपदम् ॥ पावकोपिद्विजेन्द्राणामग्निहोत्रेषुसंस्थितः ॥ २ ॥ हविर्जग्राहविधिवद्वसोर्द्धारोद्भवंतथा ॥ एवंतत्रसमुद्भूतमग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्रस्नातोनरःप्रातर्मुच्यतेदिनजादघात् ॥ अथतुप्रस्थितान्दृष्ट्वातान्देवा

दो० । शापित शुक गज दर्दुरन दिय देवन वरदान । नवासिवें अध्याय में सोई करत बखान ॥ सूतजी बोले कि इन्द्र, विष्णु व शिवादिक समस्त सुरसमूहों समेत मनुष्यों के पितामह (बाबा) ब्रह्माजी अग्निसे इस प्रकार कहकर तदनन्तर ब्रह्मलोक को चलेगये वे देवता अपने स्थानको गये और अग्निभी ब्राह्मणेन्द्रोंके अग्निहोत्रोंमें भलीभांति स्थितहुये ॥ १।२ ॥ और विधिपूर्वक वसुधारासे उपजेहुये हव्यको अग्निने ग्रहण किया इस प्रकार वहांपर अतिउत्तम अग्नितीर्थ उत्पन्न हुआहै ॥ ३ ॥ जिस तीर्थ में प्रभात नहायाहुआ पुरुष दिनमें उपजेहुये पातकसे छूटजाता है इसके अनन्तर अपने आश्रम को प्रस्थान करतेहुये उन देवताओं को देखकर दुःख

से संयुत होतेहुये उन गजेन्द्र, सुआ व दर्दुरों ने उनसे कहा कि हे देवेश्वरो ! तुम सबोंके लिये हमको अग्निने शापदिया है ॥ ४ । ५ ॥ इसलिये हमसबों की जीभके लिये उपाय भी चिन्तन किया जावे देवता बोले कि हे गजोत्तम ! जैसे कि अन्य प्राणियों की जिह्वा कार्य्य में समर्थ होतीहै वैसेहीं उलटी भी तुम्हारी जिह्वा विशेषता से होगी व तुमसब नरेशों के मन्दिरों में विशेषकर स्थित होगे ॥ ६ । ७ ॥ व बहुत आदर से संयुत होतेहुये मिष्टान्नका भोजन करोगे वैसेही हे शुक ! तुम्हारी जिह्वा अग्निसे मन्द कीगई है ॥ ८ ॥ तिसपर भी भूपालों के प्रशंसनीय होगी व हमारी प्रसन्नतासे अन्यपक्षियों के मध्यमें सुन्दरता होगी ॥ ९ ॥ हे मेढ़क ! जो तुम

न्स्वाश्रमंप्रति ॥ ४ ॥ गजेन्द्रशुकमण्डूकास्तेप्रोचुर्दुःखसंयुताः ॥ युष्मत्कृतेवयंशप्ताःपावकेनसुरेश्वराः ॥ ५ ॥ तस्मा ज्जिह्वाकृतेस्माकमुपायश्चिन्त्यतामपि ॥ देवाऊचुः ॥ विपरीतापितेजिह्वायथान्येषाङ्गजोत्तम ॥ ६ ॥ कार्य्यक्षमातथा तेऽपिभविष्यतिविशेषतः ॥ तथायूयंनरेन्द्राणांमन्दिरेषुव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ बहुमानसमायुक्तामिष्टान्नंभक्षयिष्यथ ॥ तथाचशुकतेजिह्वाकृतामन्दाहविर्भुजा ॥ ८ ॥ तथापिभूमिपालानां शंसनीयाभविष्यति ॥ श्रीमत्त्वञ्चतथान्येषामस्म दीयप्रसादतः ॥ ९ ॥ त्वञ्चमण्डूकयोनेनविजिह्वोवह्निनाकृतः ॥ तद्भविष्यन्तितेशब्दाविजिह्वस्यापिदीर्घगाः ॥१०॥ एवमुक्त्वाथतेदेवास्स्वस्थानंप्रस्थितास्ततः ॥ तेषामनुग्रहंकृत्वाकृपयापरयायुताः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागर खण्डेतृतीयपरिच्छेदेऽग्नितीर्थोत्पत्तिर्नामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अग्नितीर्थस्यमाहात्म्यमेतद्वःपरिकीर्तितम् ॥ ब्रह्मकुण्डसमुत्पत्तिरधुनाश्रूयतांद्विजाः ॥१॥ यदासंस्था

अग्निसे जिह्वारहित कियेगयेहो इसलिये जिह्वारहितभी तुम्हारे शब्द दीर्घगामी होवैंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहकर अनन्तर परम कृपासे संयुत उन देवताओंने उन सबोंके ऊपर दया करके तदनन्तर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नितीर्थोत्पत्तिर्नामनवाशीतितमोध्यायः ॥ ८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मकुण्ड माहात्म्य अरु उत्पत्तिक वृत्तान्त । नब्बेके अध्याय में बरणत शुभ सिद्धान्त ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह अग्नितीर्थ का माहात्म्य तुमलोगों

से कहागया इस समय ब्रह्मकुण्ड की भलीभांति उत्पत्तिको सुनिये ॥ १ ॥ जिस समय मार्कण्डेय महात्माने ब्रह्माका भलीभांति स्थापन किया है उसी समय वहांपर पवित्र जलसे संयुत कुण्डका निर्माण कियागया है ॥ २ ॥ व यह कहा कि कार्त्तिक महीने में कृत्तिका नक्षत्र पै चन्द्रमा को टिकने पर मनुष्य भलीभांति भीष्मव्रतको करके ब्रह्मलोक को जावैगा ॥ ३ ॥ उस समय ऐसा कहते हुये उन उत्तम मुनि मार्कण्डेयजी के उस वाक्य को किसी पशुपालक ने सुना ॥ ४ ॥ तदनन्तर कार्त्तिक महीने को भलीभांति प्राप्तहोने पर श्रद्धासंयुत उस पशुपालने यथायोग्य उस भीष्मपञ्चक व्रतको भलीभांति किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त पौर्णमासीमें कृत्तिका नक्षत्र

पितोब्रह्मामार्कण्डेनमहात्मना ॥ तदाविनिर्म्मितन्तत्रकुण्डंशुचिजलान्वितम् ॥ २ ॥ प्रोक्तञ्चकार्त्तिकेमासिकृत्तिकास्थेनिशाकरे ॥ कृत्वाभीष्मव्रतंसम्यग्ब्रह्मलोकंप्रयास्यति॥३॥ एवंप्रवदतस्तस्य मार्कण्डेयस्यसन्मुनेः॥श्रुतंतत्तुतदावाक्यंपशुपालेनकेनचित् ॥ ४ ॥ ततःश्रद्धाप्रयुक्तेनतेनतद्भीष्मपञ्चकम् ॥ यथावद्विहितंसम्यक् कार्त्तिकेमासिसंस्थिते ॥ ५ ॥ ततश्चकृत्तिकायोगेपौर्णमास्यांयथाविधि ॥ सम्पूज्यपद्मजम्पश्चात्पूजितःपुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ ततःकालविपाकेनसपञ्चत्वमुपागतः॥ब्राह्मणस्यगृहेजातः पुरेत्रैवद्विजोत्तमाः॥ ७ ॥ जातिस्मरःप्रभायुक्तोपितृमातृप्रतिष्ठितः ॥ एवंप्रगच्छतस्तस्यवृद्धिन्तत्रपुरोत्तमे ॥ ८ ॥ पितृमातृसमुद्भूतोयादृक्स्नेहोऽव्यवस्थितः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशूद्रेयःपितापूर्वजन्मनः ॥ ९ ॥ सतुपञ्चत्वमापन्नस्सम्प्राप्तेचायुषःक्षये ॥ अथतस्यमहाशोकंसकृत्वातदनन्तरम् ॥ १० ॥ चकारप्रेतकार्य्या

का योग होनेपर विधिपूर्वक कमलसे उपजेहुये ब्रह्माको भलीभांति पूजकर पश्चात् पुरुषोत्तम (विष्णु) का पूजन किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! कालके परिणामसे वह पशुपाल मृत्यु को प्राप्तहुवा व इसी नगर में ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुवा ॥ ७ ॥ जोकि जातिका स्मरण करनेवाला व कान्तिसे संयुत व प्रतिष्ठित माता, पितावालाथा इस प्रकार उसी उत्तम नगर में उसको वृद्धिको प्राप्त होतेहुये जैसा पिता माता से उपजाहुआ स्नेह होताहै वैसाही हुआ अन्य दिन में जो पूर्वजन्मका शूद्र पिताथा वह आयुर्बल क्षीण होनेपर मृत्युको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उस द्विजने उसका बड़ा शोचकर तदनन्तर ॥ ८ । ९ । १० ॥ बड़ीभक्ति से सम्पूर्ण

प्रेतकर्मोंको किया अनन्तर उसके वैसे उस विचेष्टित (कर्म) को भलीभांति देखकर भाइयों व ब्राह्मणों तथा पिता, माता, पुत्रादिकोंने पूंछा कि निर्लोभी भी तुम सदैव इस लालचरहित भी नीच पशुपालसे किस कारण संयुतहो तिसपरभी मरेहुये केभी प्रेतकर्मों को करतेहो उसको कहो ॥ ११।१२ । १३ ॥ तबतक इस गुप्त टिकेहुये समस्त चरित को हमलोगों से कहिये उनके उस वचनको सुनकर कुछ लज्जासंयुत हुआ ॥ १४ ॥ व यह बोला कि सुनिये मैं तुमलोगों से निस्सन्देह कहूंगा कि अन्य शरीर में मैं इसका सुसंमत पुत्र हुआहूं ॥ १५ ॥ जोकि मैं पशुपालन कर्मका जाननेवाला व सदैव प्राणोंसे प्रियथा अनन्तर किसी समय ब्रह्मकुण्ड से उपजे व मार्कण्ड

णिनिःशेषाणिप्रभक्तितः ॥ अथतस्यसमालोक्यताद्दशन्तद्विचेष्टितम् ॥ ११ ॥ पृष्टस्तुभ्रातृभिर्विप्रैः पितृमातृसुतादिभिः ॥ कस्मात्त्वमस्यनीचस्यपशुपालस्यसर्वदा ॥१२॥ अनीहोपिसमायुक्तोनिस्स्पृहस्यापिशंसतत् ॥ तथापिप्रेतकार्य्याणिमृतस्यापिकरोषिच ॥ १३ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्वतावद्गुह्यंव्यवस्थितम् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाकिञ्चिल्लज्जासमन्वितः ॥ १४ ॥ तानब्रवीच्छृणुध्वंवःकथयिष्याम्यसंशयम् ॥ अहमस्यान्यदेहत्वे पुत्रआससुसंमतः ॥ १५ ॥ पशुपालनकर्म्मज्ञः प्राणेभ्योवल्लभस्सदा ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मार्कण्डस्यमहामुनेः ॥ १६ ॥ श्रुतंप्रवदतोवाक्यंब्रह्मकुण्डसमुद्भवम् ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेभीष्मपञ्चकक्कन्नरः ॥ १७ ॥ सम्यक्श्रद्धासमायुक्तो यस्तुस्नानंकरिष्यति ॥ दृष्ट्वा पितामहन्देवम्पूजयित्वाजनार्दनम् ॥१८॥ सभविष्यतिशूद्रोपिब्राह्मणश्चान्यजन्मनि ॥ तन्मयाविहितंसम्यक्स्नात्वातत्रशुभावहे॥१९॥तत्कुण्डेकार्त्तिकेमासितेनजातोस्मिचद्विजः॥चन्द्रात्रेयस्यविप्रर्षेरन्वयेचभुविश्रुते॥२०॥ संस्मरन्पूर्वि

महामुनि के कहतेहुये वचनको मैंने सुना कि कृत्तिकानक्षत्र का योग होनेपर कार्त्तिकी में भलीभांति श्रद्धासंयुत व भीष्मपंचक व्रतका कर्ता जो मनुष्य स्नानकरैगा वह शूद्रभी पितामह देवको देखकर व जनार्दन जीको पूजकर अन्य जन्ममें ब्राह्मण होगा मैंने कार्त्तिक के महीने में उस शुभदायक कुण्ड में भलीभांति नहाकर उस वचनको किया उसीसे भूमिमें प्रसिद्ध चन्द्रात्रेय विप्रर्षि याने चन्द्रमा के वंशमें उत्पन्न हुआहूं ॥ १६ । १७ । १८ । १९ । २० ॥ उसी कारण पहले की जातिका भली

भांति स्मरण करताहुआ व बड़ाही बिनरोंकटोंकवाला मैं उस शूद्र केभी ऊपर स्नेहसंयुत हुआ ॥ २१ ॥ व भक्तिसंयुत मैं कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिकानक्षत्र के योग को सुनकर व जानकर उत्तम भीष्मपञ्चकव्रत करताहूं ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उसके ऐसे वचन को सुनकर उन और अन्य द्विजोत्तमों ने भलीभांति श्रद्धासंयुत होकर भीष्मपञ्चक व्रतको किया ॥ २३ ॥ तबसे लगाकर उत्तर दिशाके भागमें स्थित ब्रह्मकुण्ड ऐसा कहाहुआ वह कुण्ड धरातल में प्रसिद्ध हुआ ॥ २४ ॥ उस कुण्ड में सदैव जो ब्राह्मण स्नान करताहै वह बार बार पैदा होताहुआ निश्चयकर द्विजेन्द्र होताहै ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालु

काञ्जातिन्तेनस्नेहसमन्वितः ॥ तस्योपरिमहान्नित्यंशूद्रस्यापिनिरर्गलः ॥ २१ ॥ श्रुत्वाहंकृत्तिकायोगंकार्त्ति
क्यांभक्तिसंयुतः ॥ ज्ञात्वाकरोमिभीष्मस्यपञ्चकंव्रतमुत्तमम् ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वातेचान्येच
द्विजोत्तमाः ॥ भीष्मस्यपञ्चकञ्चक्रुःसम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ २३ ॥ ततःप्रभृतितत्कुण्डंविख्यातंधरणीतले ॥ स्थि
तमुत्तरदिग्भागेब्रह्मकुण्डमितिस्मृतम् ॥ २४ ॥ यःस्नानंसर्वदातत्रब्राह्मणःप्रकरोतिवै ॥ ससम्भवतिविप्रेन्द्रोजायमानः
पुनःपुनः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेब्रह्मकुण्डमाहात्म्यंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्ति गोमुखस्थंसुशोभनम् ॥ यद्गोवक्त्रात्पुरालब्धंसर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ पुरा
सीदत्रगोपालः कश्चित्कुष्ठसमावृतः ॥ चमत्कारपुरेविप्रो ह्यतीवक्षामताङ्गतः ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतेनमार्गेगगो
कुलम् ॥ मध्याह्नसमयेप्राप्तञ्चन्द्रेचित्रासमन्विते ॥ ३ ॥ एकादश्यान्तृषार्तञ्चभास्करेवृषसंस्थिते ॥ एकयापितता

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मकुण्डमाहात्म्यंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । गोमुख द्वारा भयो जिमि तीरथ गोमुख नाम । इक्यनबे अध्याय में बरणत सो मतिधाम ॥ सूतजी बोले कि वहांपर इसके अनन्तर औरभी गोमुखस्थ नामक अतिउत्तम तीर्थ है जोकि समस्त पातकों का नाशक पुरातन समय गौके मुखसे मिलाहै ॥ १ ॥ पुरातन समय इस चमत्कारपुर में गौवों का रक्षक कोई ब्राह्मण कुष्ठरोगसे घिरा व अत्यन्तही दुर्बलता को प्राप्तथा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वृषराशि में सूर्य्य को टिकते व चन्द्रमा को चित्रानक्षत्र से संयुत होतेहुये

एकादशी के दिन मध्याह्न समय में उसी मार्गसे प्याससे विकल गौओंका समूह प्राप्तहुआ तदनन्तर वहांपर दूरसे अत्यन्तही तिनुके के गुच्छे को एक गौने भी न देखा हे ब्राह्मणो ! प्रसन्न होतीहुई एक धेनुने जबतक शीघ्रही दन्तों से तृणको उखाड़कर खींचा ॥ ३ । ४ । ५ ॥ तबतक उस जलमार्गसे जलकी धारा निकली अनन्तर प्याससे विकल उस धेनुने तृणको खाकर धीरे धीरे श्रद्धापूर्वक उस सुन्दर स्वादुवाले व दूधके समान जलको पिया उस जलको उस धेनुको शीघ्रतासे पीतेहुये उस भूतलमें जलसे घिरे हुये व बहुत चौड़े गढ़े होगये तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! प्याससे व्याकुल अन्य सैकड़ों गाइयोंने अमृतरसके समान व अतिनिर्मल उस पानीको पिया

धेन्वातृणस्तम्बमतीवहि ॥ ४ ॥ नसमालोकितन्तत्रदूरादेकाप्रहर्षिता ॥ दन्तैर्द्रुतंसमुत्पाट्ययावदाकर्षतिद्विजाः ॥ ५ ॥ तावत्तज्जलमार्गेणतोयधाराविनिर्गता ॥ अथास्वाद्यतृणंसातुतृषार्तातच्छनैःशनैः ॥ ६ ॥ पपौजलंयथाश्रद्धंसुस्वादुक्षीरसन्निभम् ॥ तस्यावेगेनतत्तोयंपिबन्त्यास्तत्रभूतले ॥ ७ ॥ गर्ताजाताःसुविस्तीर्णाःसलिलेनसमावृताः ॥ ततोन्याःशतशोगावःपपुस्तोयंसुनिर्म्मलम् ॥ ८ ॥ तृषार्तास्तद्द्विजश्रेष्ठाः पीयूषरससन्निभम् ॥ यथायथागतागावस्तत्रतोयंपिबन्तिताः ॥ ९ ॥ तेगर्तावक्रसंस्पर्शाद्वृद्धिंयान्तितथापिच ॥ तद्गोकुलेकृतेपानेजातेतृष्णाविवर्जिते ॥ १० ॥ गोपालोपितृषार्तस्तुतस्मिंस्तोयेविवेशच ॥ अङ्गंप्रक्षाल्यपीत्वापोयावन्निष्क्रमतिद्रुतम् ॥ ११ ॥ तावत्पश्यतिगात्रंस्वन्द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ ततोविस्मयमापन्नोगत्वास्वीयन्निकेतनम् ॥ १२ ॥ वृत्तान्तंकथयामासलोकानांपुरतोखिलम् ॥ तृणस्तम्बोयथातत्रगवाचोत्पाट्यभक्षितः ॥ १३ ॥ यथाविनिर्गतन्तोयंयथातेनावगाहितम् ॥ तद्दृष्ट्वामानवास्सर्वेगत्वादिव्यंजलञ्च

व वहांपर गईहुई गाइयां ज्यों २ जलको पीतीथीं ॥ ६ । ७ । ८ । ९ ॥ तिसपर भी वे गढ़े मुखके भलीभांति स्पर्श से वृद्धिको प्राप्त होतेथे उस गौओं के वृन्द को जलपान करनेपर व प्याससे रहित होनेपर ॥ १० ॥ प्याससे दुःखी वह गौओंका रक्षकभी उसी जलमें प्रवेश किया व अङ्गको धोकर तथा जलको पीकर जबतक वह शीघ्रही निकला ॥ ११ ॥ तबतक बारह सूर्य्य के समान छविवाले अपने शरीरको देखताहै तदनन्तर विस्मयमें प्राप्त होतेहुये गोपालने अपने घरको जाकर ॥ १२ ॥ मनुष्यों के अगाड़ी समस्त वृत्तान्त को कहा जिस प्रकार कि वहांपर गऊने तृणके गुच्छेको खायाथा ॥ १३ ॥ व जिस प्रकार जल निकलाथा व जैसे उसने स्नान किया

था उसको देखकर समस्त मनुष्यों ने व विशेषकर रोगोंसे गँसेहुये नरोंने जो उत्तम या देवसम्बन्धी जल था उसके निकट जाकर सावधान होकर स्नान किया व उसी क्षण पापों व रोगोंसे विशेषकर छूटगये ॥ १४ । १५ ॥ व फिर पापसे रहित मनुष्य उसीक्षण स्वर्ग को जातेथे हे द्विजोत्तमो ! जिसलिये यह तीर्थ गऊके मुख से उत्पन्नहुआ उसी कारण तबसे लगाकर गोमुखसंस्थित तीर्थ प्रसिद्ध हुआ इसके अनन्तर बिन क्लेशही के मनुष्यों को श्रेष्ठपदार्थदायक तीर्थको देखकर डरेहुये इन्द्र ने धूरिसे पूर्णकरदिया ऋषिलोग बोलेकि हे सूतपुत्र ! वह क्या कारण कहागयाहै कि जिससे उस स्थानसे वैसा जल निकला उस चरित को हमलोगों से

यत् ॥ १४ ॥ व्याधिग्रस्ताविशेषेणस्नानंचक्रुस्समाहिताः ॥ भवन्तिस्मविनिर्मुक्तारोगैःपापैश्चतत्क्षणात् ॥ १५ ॥ अपा पाश्चपुनर्यान्तितत्क्षणात्त्रिदिवालयम् ॥ ततःप्रभृतितत्ख्यातन्तीर्थंगोमुखसंस्थितम् ॥ १६ ॥ गोमुखाद्भूतलेजातंयत श्चैतद्द्विजोत्तमाः॥अथभीतस्सहस्राक्षस्तद्दृष्ट्वाग्र्यप्रदायिकम् ॥ १७ ॥ अक्लेशेनमनुष्याणां पूरयामासपांशुभिः ॥ ऋष यऊचुः ॥ किन्तत्कारणमादिष्टंयेनतत्तादृशञ्जलम् ॥ तस्मात्स्थानाद्विनिष्क्रान्तंसूतपुत्रवदस्वनः ॥ १८ ॥ सूतउ वाच ॥ अत्रपूर्वन्तपस्तप्तमम्बरीषेणभूभुजा ॥ पुत्रशोकाभिभूतेनतोषितोगरुडध्वजः ॥ १९ ॥ तस्यपुत्रस्सुविख्यातः सुवर्चाइतिविश्रुतः ॥ एकोबभूववृद्धत्वेकथञ्चिद्द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेनसबालोपिचतत्सुतः ॥ कुष्ठव्या धिसमाक्रान्तःपिताचाभूत्सुदुःखितः ॥ २१ ॥ अथतत्कामिकंक्षेत्रंसम्प्राप्यपृथिवीपतिः ॥ चकाररोगनाशायस्वपुत्रार्थं महत्तपः ॥ २२ ततस्तुष्टिङ्गतस्तस्यस्वयमेवजनार्दनः ॥ प्रदायदर्शनंवाक्यन्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २३ ॥ परितुष्टोस्मि

कहिये॥१६।१७।१८॥सूतजीबोले कि पुरातन समय इसस्थानपै पुत्रके शोचसे तिरस्कृत याने दुःखी अम्बरीषभूपालने तप किया व गरुड़ध्वजको प्रसन्न किया है॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस अम्बरीषकी वृद्धावस्था में किसीभांति सुवर्चा ऐसा सुना हुवा अति प्रसिद्ध एक पुत्र हुवा है ॥ २० ॥ उसका पुत्र वह बालक भी पूर्वजन्मके कर्मफलसे कुष्ठरोग से घिरगया व पिता अत्यन्त दुःखित हुवा ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर अम्बरीष भूपति ने उस गोमुखस्थ कामदायक क्षेत्रको भलीभांति पाकर अप ने पुत्र के निमित्त रोगनाशके लिये बडेभारी तपको किया ॥ २२॥ तदनन्तर प्रसन्नताको प्राप्तहुये जनार्दन (विष्णु) जी आपही उसको दर्शन देकर उसके उपरान्त

आदर समेत वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे वत्स, पुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं इस लिये चित्तमें चाहे हुये वरको मांगो मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे केशव ! मेरा यह बालकभी सम्मत (प्यारा) पुत्र कुष्ठरोगसे ग्रसित होगया है तुम इसके कुष्ठरोग को नाशकरो ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि पुरातन समय में यह मेघ वाहन नामक राजा हुवा है जोकि ब्राह्मणको माननेवाला व कियेहुये उपकार का जाननेवाला व समस्त शास्त्रार्थ के पारजानेवाला था ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर इस ने किसीकाल में रात्रि के समय रनिवास में पैठे व जार कर्म (छिछोरी) करने वाले ब्राह्मणको मारा है ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर प्रातःकाल सूर्य्य उदयहोनेपर जब

तेवत्सतस्माच्चित्तेभिवाञ्छितम् ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामिवरंपुत्रनसंशयः ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ ममायंसम्मतःपुत्रोग्रस्तः कुष्ठेनकेशव ॥ बालोपित्वंकुरुष्वास्यकुष्ठव्याधिपरिक्षयम्॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ एषआसीत्पुराराजामेघवाहनस ञ्ज्ञितः ॥ ब्रह्मण्यश्चकृतज्ञश्चसर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ २६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यब्राह्मणोनेनघातितः॥ अन्तःपुरेरात्रिका लेप्रविष्टोजारकर्म्मकृत ॥२७॥ अथपश्यतियावत्तम्प्रभातेऽभ्युदितेरवौ ॥ यज्ञोपवीतसंयुक्तस्तावत्सद्विजरूपधृक्॥२८॥ अथतंब्राह्मणंमत्वाघृणाविष्टस्सुदुःखितः ॥ गत्वाकाशींपुरीम्पश्चात्तपश्चक्रेसमाहितः ॥ २९ ॥ राज्येपुत्रंसमाधायवैरा ग्यंपरमङ्गतः॥३०॥ नियतोनियताहारोभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ततःकालेनसम्प्राप्तोयमस्यसदनम्प्रति ॥ ३१ ॥ विपाप्मा पिचचिह्नेनयुतोयम्पृथिवीपतिः ॥ ब्रह्मघातोद्भवेनैवप्रभवेत्तस्यचस्थितिः ॥ ३२ ॥ येतुकुष्ठेनचग्रस्तादृश्यन्तेमानवाभुवि ॥ तैर्नरैर्ब्राह्मणाघातोविहितश्चान्यजन्मनि ॥ ३३ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेयोगत्वाश्राद्धमाचरेत् ॥ पितॄणाञ्चैवसर्वेषामनृणोपि

तक उसको देखा तबतक वह द्विजरूपधारी व जनेऊ से संयुतथा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर उसको ब्राह्मण मानकर अति दुःखित व लज्जा संयुक्त होतेहुये परम वैरा- ग्य में प्राप्त उसने राज्य पै पुत्रको बिठाकर व काशीपुरीको जाकर पश्चात् सावधान होकर तपस्या की ॥ २९ । ३० ॥ जोकि नियममें प्राप्त व नियम से भोजन करनेवाला व भिक्षान्नसे भोजन करनेहारा था तदनन्तर मृत्यु के द्वारा यमराजके मन्दिर प्रति प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ व पापरहित भी यह भूपति ब्रह्महत्या से उपजेहुये चिह्नसे संयुत हुवा व उसका वहीं पर ठिकानाहुआ ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य कुष्ठरोगसे ग्रसित देखपड़ते हैं उन मनुष्योंने अन्यजन्म में ब्रह्मघात कियाहै ॥ ३३॥

जो मनुष्य हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें जाकर श्राद्धको करताहै वह समस्त पितरोंके ऋणसे उद्धार भी होजाताहै ॥ ३४ ॥ हे भूपते ! मुझसे कहते हुये इस व-
चन को सत्य जानो कि ब्रह्मघातसे बाहर याने विना कुष्ठरोग नहीं होता है ॥३५॥ अम्बरीष बोले कि हे देवेश सुरेश प्रभो ! इसीलिये मैंने तुमको पूजाहै कि तुम्हारे
प्रसन्न होनेपर पृथ्वी में कुछ असाध्य (न होने योग्य) नहीं रहता है ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस अम्बरीषसे इस प्रकार कहेहुये उन भगवान् मधुसूदनजी ने समाधि से
पातालजाह्नवी के जलको स्मरण किया ॥ ३७ ॥ अनन्तर उन समर्थवान् विष्णु जी से मनके द्वारा ध्यानकीगई वे पातालगङ्गा छोटे छिद्रको कर उसी क्षण निकल

चजायते ॥३४॥ नब्राह्मणवधाद्बाह्यंकुष्ठव्याधिःप्रजायते ॥ एतत्सत्यंविजानीहिवदतोममभूपते ॥३५॥ अम्बरीषउवाच ॥
एतदर्थंसुराधीश मयात्वंपूजितःप्रभो ॥ प्रसन्नेत्वयिदेवेशनासाध्यंविद्यतेभुवि ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन भगवान्म
धुसूदनः ॥ पातालजाह्नवीतोयं ससस्मारसमाधिना ॥३७॥ साध्यातामनसातेन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृत्वातुविवरं
सूक्ष्मं विनिष्क्रान्ताथतत्क्षणात् ॥ ३८ ॥ ततःप्रोवाचवचनमम्बरीषंचतुर्भुजः ॥ निमज्जतुसुतस्तेत्र सुशुभेजाह्नवीज
ले ॥ ३९ ॥ येनकुष्ठविनिर्मुक्तस्तत्क्षणादेवजायते ॥ तथाब्रह्मवधोद्भूतैः पातकैरुपपातकैः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु
समानीयसुतंनृपः ॥ स्नापयामासतत्तोयैः प्रत्यक्षंशार्ङ्गधन्वनः ॥ ४१ ॥ ततस्सबालकःसद्यस्स्नातमात्रोद्विजोत्तमाः ॥
कुष्ठव्याधिविनिर्मुक्तो जातोबालार्कसन्निभः ॥ ४२ ॥ ततोननामतन्देवं यथानोवेत्तिकश्चन ॥ एतस्मात्कारणात्पूर्वं त

आई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर चार भुजावाले विष्णुजीने अम्बरीषसे कहा कि तुम्हारा पुत्र इस अतिउत्तम जाह्नवीजल में स्नानकरै ॥ ३९ ॥ जिससे कि उसी क्षण कु-
ष्ठरोग से निर्मुक्त होवै व ब्रह्मघातसे उपजे हुये पातकों तथा उपपातकों से छूटजावै ॥ ४० ॥ इसी समय में अम्बरीष नृपति ने पुत्रको भलीभांति लाकर शार्ङ्गधन्वा
वाले विष्णु के सामने उसी जाह्नवीके जलोंसे स्नानकराया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! केवल नहाया हुवा वह बालक उसी क्षण कुष्ठरोग से छूटकर बाल
सूर्य्य याने प्रातःकाल के दिनकरके समान होगया ॥ ४२ ॥ उसके उपरान्त जिस प्रकार कोई न जानै वैसेही उसने प्रणाम किया इसीकारण वह जल पूर्व समय में

समस्त पापहारी हुवा है ॥ ४३ ॥ जोकि गोमुखसे भूतल में फिर भी प्रकट किया गया आज भी उस तीर्थ के जलस्पर्शसे धरातल अत्यन्त पुण्यदायक है ॥ ४४ ॥ रविवार को जो पुरुष सूर्य्य उदय होने पर स्नान करता है उसके गलगण्डादिक रोग शीघ्रही नाशहोजाते हैं ॥ ४५ ॥ और पापसे उपजे व उपद्रव से उत्पन्न हुये जो फोड़ा व खजुली बड़े विकराल भी रोग हैं वे भी नाशहोजाते हैं ॥ ४६ ॥ व फिर जो अकाम मनुष्य भक्तिसे उस तीर्थ में स्नानकरता है वह चक्रधारी देवदेव याने विष्णु के लोकको प्राप्तहोताहै ॥ ४७ ॥ वहां पर वे गङ्गाजी विष्णु से जिस दिन भलीभांति लाईगई हैं उस दिन वृषराशि में सूर्य्य व चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा

त्तोयंसर्वपापहृत् ॥ ४३ ॥ यद्गोमुखेनभूयोपि भूतलेप्रकटीकृतम् ॥ अद्यापि तज्जलस्पर्शात्सुपवित्रंधरातलम् ॥ ४४ ॥ यःस्नानंसूर्य्यवारेण कुरुतेर्कोदयंप्रति ॥ तस्यनाशंद्रुतंयान्ति गलगण्डादिकागदाः ॥ ४५ ॥ व्याधयोपिमहारौद्रा येतु पापसमुद्भवाः ॥ उपसर्गोद्भवाश्चैव विस्फोटकविचर्चिकाः ॥४६ ॥ निष्कामस्तुपुनर्मर्त्यो यस्स्नानंतत्रभक्तितः ॥ कुरुते यातिलोकं स देवदेवस्यचक्रिणः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्दिनेसमानीता सागङ्गातत्रविष्णुना ॥ तस्मिन्दिनेवृषेसूर्य्यस्स्थित श्चित्रासुचन्द्रमाः ॥ ४८ ॥ तिथिश्चैकादशीचैव देवदेवस्यशार्ङ्गिणः ॥ गोवक्त्रेणतृणस्तम्बस्तस्मिंश्चैवतुवासरे ॥ ४९ ॥ समाकृष्टस्तुतत्रैव योगएवंव्यवस्थितः ॥ तथान्योपिदिनेतस्मिन् यदितोयमवाप्यच ॥ ५० ॥ स्नानंकरोतिसद्भक्त्या तत्फलंसोपिचाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेगोमुखतीर्थमाहात्म्यन्नामैकनवतित मोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

टिकाथा ॥ ४८ ॥ और देवताओंके देवता शार्ङ्गधनुषवाले (विष्णु) की एकादशी तिथि थी उसी दिन गऊके मुखसे तृणका गुच्छा खींचागया और वहीं पर ऐसा योग विशेषतासे प्राप्तहुवा वैसेही अन्य भी पुरुष यदि उस दिन जलको पाकर उत्तम भक्ति से स्नान करता है वह भी उसी फलको प्राप्तहोता होता है ॥ ४९ । ५० । ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमुखतीर्थमाहात्म्यंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । थप्यो रामके परशु सन विरचित दण्डविशाल । सो बनवे अध्याय में बरणत मुनि नरपाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही उस क्षेत्रमें परशुराम जीने अपने कुठार को तोड़कर उत्तम अन्य लोहेके दण्डको छोड़ा है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उपवास में तत्पर होताहुआ मनुष्य उस दण्डको भलीभाति छूकर उसीक्षण निश्चयकर अपने पातकसे छूटजाता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि परशुराम जीने अपने परशुको तोड़कर किसलिये लोहदण्डका निर्माण किया है और वहांपर वह किस लिये फेंकागया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि जिससमय परशुराम जीने रामकुण्ड को जाकर व अपने पितरों को तृप्तकर और यज्ञमें द्विजेन्द्रों को भूमि देकर कोप र-

सूतउवाच ॥ तथान्यालोहयष्टिस्तु तस्मिन्क्षेत्रेतिशोभना ॥ मुक्तापरशुरामेण भङ्क्त्वानिजकुठारकम् ॥ १ ॥ तां स्पृष्ट्वामानवस्सम्यगुपवासपरायणः ॥ मुच्यतेहिस्वकात्पापात्तत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कुतःपरशुरामेण भङ्क्त्वानिजकुठारकम् ॥ निर्म्मितालोहयष्टिस्तुतत्रोत्क्षिप्ताचसाकुतः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ यदारामह्रदंगत्वा तर्प्पयित्वानिजान्पितॄन् ॥ गतामर्षोद्विजेन्द्राणां दत्त्वायज्ञेवसुन्धराम् ॥ ४ ॥ रामस्सम्प्रस्थितोहृष्टो धृत्वामनसिसागरम् ॥ स्नानार्थंतंसमादाय कुठारंभास्करप्रभम् ॥ ५ ॥ तदातुमुनिभिस्सर्वैः पृष्टोरामस्तुसत्वरम् ॥ वाञ्छद्भिश्चद्विजत्वस्य सिद्धिंशमपरायणैः ॥ ६ ॥ रामराममहाभाग यद्धारयसिपाणिना ॥ शस्त्रंपुण्यप्रतीतेपि रामयुक्तंभवेन्नच ॥ ७ ॥ अनेनकरसंस्थेन तवकोपःकथञ्चन ॥ नयास्यतिशरीरस्यतस्मादेनंपरित्यज ॥ ८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ततोरामःकृताञ्जलिः ॥ प्रोवाचविनयोपेतो गृहसंस्थान्द्विजोत्तमान् ॥ ९ ॥ कुठारश्चैवविप्रेन्द्रा रुद्रतेजोद्भवेन च ॥ लोहेननिर्म्मितःपूर्वम

हित व प्रसन्न होतेहुये उस सूर्य्य के समान तेजवाले परशुको भलीभांति लेकर स्नानके लिये मनमें समुद्रको धरकर भलीभांति प्रस्थान किया है ॥ ४ । ५ ॥ उस समय शान्ति में परायण व ब्राह्मणता की सिद्धि को चाहने वाले समस्त मुनियोंने परशुराम जीसे पूंछा है ॥ ६ ॥ कि हे राम, राम, राम, महाभाग ! जिसलिये पुण्य की प्रसिद्धि मेंभी हाथसे शस्त्रको धारेहो वह योग्य नहीं होवै है ॥ ७ ॥ क्योंकि इस शस्त्रको हाथमें भलीभांति प्राप्त होतेहुये तुम्हारे शरीर का कोप किसी प्रकार न जावैगा इसलिये इसको छोड़दीजिये ॥ ८ ॥ उन मुनियों के उस वचनको सुनकर तदनन्तर हाथजोड़े व नम्रता से संयुत होतेहुये परशुराम जीने घरमें प्राप्तहुये द्विजो-

त्तमों से कहा ॥ ९ ॥ कि हे द्विजेन्द्रो ! पुरातन समय विश्वकर्माने रुद्रजीके तेजसे उपजेहुये लोहसे अविनाशी कुठारको बनाया है ॥ १० ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार क्षत्रिय के धर्म में तत्पर भी मैं कैसे इस परशुको छोड़कर दिगन्तर को जाऊं ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुझसे छोड़ेहुये इस कुठार को यदि कोई अन्य पुरुष ग्रहण करैगा तो वह मेरे अवध्य (न मारने योग्य) होगा ॥ १२ ॥ मुख्य ब्राह्मणके भी इस अपराधको सहने के लिये मैं किसी प्रकार समर्थ नहींहूं अन्य मनुष्य की क्याकथा है ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तिसपर भी इस परशुको छोड़ने व ग्रहण करने परभी मेरे शान्ति नहीं है इसलिये तुमलोगों को बड़े उपायसे इस कुठारकी

त्वयोविश्वकर्म्मणा ॥ १० ॥ तदहंसंपरित्यज्य कथमेनंद्विजोत्तमाः॥ क्षात्रधर्म्मपरोप्येवं प्रगच्छामिदिगन्तरम्॥११॥ यदिचैनंमयामुक्तं कुठारंचद्विजोत्तमाः ॥ गृहीष्यतिपरःकश्चिन्ममावध्योभविष्यति ॥ १२ ॥ नापराधमिमंशक्तस्सो ढुंचाहंकथञ्चन ॥ अपिब्राह्मणमुख्यस्य जनस्यान्यस्यकाकथा ॥ १३ ॥ तथापिनास्तिमेशान्तिर्मुक्तेप्यस्मिन्द्विजोत्त माः ॥ गृहीतेपिचयुष्माभिस्तस्माद्रक्ष्यःप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यद्येनंत्वंमहाभाग रक्षार्थंसंप्रयच्छसि ॥ अ स्माकंतत्प्रभङ्क्त्वाशु खण्डंकृत्वासमर्प्पय ॥ १५ ॥ एतद्रक्षामहेसर्वे परमंयत्नमाश्रिताः ॥ नचगृह्णातिवैकश्चित्कृतेका लान्तरेपिच ॥ १६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ चक्रेलोहमयींयष्टिं तंभङ्क्त्वासकुठारकम् ॥ १७ ॥ तत स्सब्राह्मणेन्द्राणामर्प्पयामाससादरम् ॥ रक्षार्थंभार्गवश्रेष्ठोविनयावनतःस्थितः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ लोहयष्टिमि मांरामत्वत्कुठारसमुद्भवाम् ॥ परमंयत्नमास्थाय रक्षयिष्यामएवहि ॥ १९ ॥ यथाशक्तिमयीकीर्तिस्स्कन्दस्यात्रप्र

रक्षाकरना चाहिये ॥ १४ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे महाभाग ! यदि हमलोगों को रक्षाके लिये इस परशु को देते होतो शीघ्रही तोड़ खण्डकरके दीजिये ॥ १५ ॥ क्योंकि बडे उपायमें टिकेहुये हमसब लोग इसकी रक्षा करैंगे और अन्य समय प्राप्तहोनेपरभी कोई ग्रहण न करैगा ॥ १६ ॥ उन द्विजोंके उस वचनको सुनकर शस्त्रधारियोंमें उत्तम उन परशुराम जीने उस कुठार को भञ्जनकर लोहमय दण्डको निर्मित किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर नम्रता से झुके हुये उन भृगूत्तम परशुराम जीने रक्षाके लिये आदर समेत अर्पण किया ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे राम ! तुम्हारे कुठारसे उपजेहुये इस लोहदण्ड को हम बड़े उपायमें टिककर रक्षा

तुम्हारी लोहदण्डमय कीर्ति होवैगी ॥ जैसे कि इस स्थानमें स्वामिकार्त्तिकेय जीकी लोहमयी शक्तिरूपी कीर्ति प्रतिष्ठित है वैसेही
करैंहीगे ॥ १९ ॥ हे परशुरामजी ! जैसे कि इस स्थानमें स्वामिकार्त्तिकेय जीकी लोहमयी शक्तिरूपी कीर्ति प्रतिष्ठित है वैसेही तुम्हारी लोहदण्डमय कीर्ति होवैगी ॥
२० ॥ और भ्रष्टराज्यवाला जो राजा इस दण्डका आराधन करैगा वह थोड़ेही समय में अपनी राज्यको पाकर प्रतापी होगा ॥ २१ ॥ अथवा जो ब्राह्मण विद्या के लिये सदैव इसको पूजैगा वह उत्तम विद्या को पाकर सर्वज्ञता को प्राप्त होवैगा ॥ २२ ॥ अथवा जो पुत्रहीन नर या नारी तुम्हारे इस दण्ड को पूजैगा वह पुत्रवान् होगा ॥ २३ ॥ व उपवास में तत्पर होकर जो पुरुष कुँआर के कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में विशेषतासे इस दण्डको पूजैगा वह उस समय मनमें टिकेहुये प्रिय कामों

तिष्ठिता ॥ लोहयष्टिमयीतद्वत्तवरामभविष्यति ॥ २० ॥ भ्रष्टराज्यस्तुयोराजा एतामाराधयिष्यति ॥ स्वंराज्यमचिरा त्प्राप्य सप्रतापीभविष्यति ॥ २१ ॥ विद्याकृतेद्विजोवायः सदैनांपूजयिष्यति ॥ सविद्यांपरमांप्राप्य सर्वज्ञत्वंप्रपत्स्यते ॥ २२ ॥ अपुत्रोवानरोयोथ नारीवापूजयिष्यति ॥ एतांयष्टिंत्वदीयांच पुत्रवान्सभविष्यति ॥ २३ ॥ उपवासपरोभूत्वा यश्चैनांपूजयिष्यति ॥ आश्विनस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ सप्राप्स्यतितदाकामानभीष्टान्मनसिस्थितान् ॥ २४ ॥ एवंश्रुत्वाततोरामस्तानेवद्विजसत्तमान् ॥ प्रणम्यप्रययौतूर्णं समुद्रसदनंप्रति ॥ २५ ॥ तेपिविप्रास्ततस्तस्याश्चक्रुः प्रासादमुत्तमम् ॥ तत्रसंस्थाप्यतांयष्टिं चक्रुःपूजांसमाहिताः ॥ २६ ॥ प्राप्नुवन्तिचतांस्पृष्ट्वा कामानेवहृदिस्थितान् ॥ सु स्तोकेनापिकालेनदुर्लभांस्त्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे लोहयष्टिमाहात्म्यन्नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को पावैगा ॥ २४ ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर परशुराम जी उन्हीं द्विजोत्तमों को प्रणामकर शीघ्रही समुद्र के घरको चलेगये ॥ २५ ॥ उसके उपरान्त उन द्विजोंनेभी उस दण्डके उत्तम मन्दिर को बनाया उसमें उस दण्डको भलीभांति थापकर व सावधान होकर पूजन किया ॥ २६ ॥ और उस दण्डको छूकर थोड़े ही समय से देवों से भी दुर्लभ हृदय में टिकेहुये अभिलाषों को पातेथे ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोहयष्टिमाहात्म्यंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अजापालि ईश्वरहि जिमि थाप्योहै अजभूप । तिरानबे अध्याय में कहत सुचरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उस तीर्थ में मनुष्यों को कामना की देनेवाली व पापों को नाशनेवाली और भी देवी है जोकि अजापाल नामक भूपसे थापित हुई है ॥ १ ॥ उसी कारण माघमहीने की शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो पुरुष भक्तिसे पुष्प, धूप व अनुलेपनों से अजापालेश्वरी को पूजता है ॥ २ ॥ वह उन देवीकी प्रसन्नता से समस्त मनुष्यों से दुर्लभ व चाहेहुये अभिलाषों को पाता है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ३ ॥ पुरातन समय उत्तम नरोंसे भलीभांति मानाहुआ अजापाल नामक भूपाल हुआहै जोकि माता व पिताकी नाईं समस्त मनुष्यों का हित-

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्तिदेवीकामप्रदानृणाम्॥अजापालेनभूपेनस्थापितापापनाशिनी ॥१॥ माघशुक्लच तुर्दश्यामजापालेश्वरीन्ततः ॥ योवैपूजयतेभक्त्याधूपपुष्पानुलेपनैः ॥ २ ॥ सप्राप्नोतीप्सितान्कामान्दुर्लभान्सर्वमान वैः ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेनसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३ ॥ अजापालोमहीपालःपुरासीत्सम्मतःसताम् ॥ हितकृत्सर्वलो कानां यथामातायथापिता ॥ ४ ॥ तेनराज्यंसमासाद्य पितृपैतामहंशुभम् ॥ चिन्तितंमनसापश्चात्स्वयमेवमहात्मना॥ ५ ॥ मयातत्कर्म्मकर्तव्यंयदन्यैरिहभूमिपैः ॥ नकृतंनकरिष्यन्तियेभविष्यन्त्यतःपरम् ॥ ६ ॥ एषएवपरोधर्म्मोभूप तीनामुदाहृतः ॥ यत्प्रजापालनंशश्वत्तासांचसुखसंस्थितिः ॥ ७ ॥ यथायथाकरंभूपास्तासांगृह्णन्तिलोलुपाः ॥ तथा तथामनःक्षोभोहृदयेसम्प्रजायते ॥ ८ ॥ नकरेणविनाभूपाहस्त्यश्वादिबलञ्चयत् ॥ शक्नुवन्तिपरित्रातुम्पादातञ्चवि शेषतः ॥ ९ ॥ विनातेनसगम्यःस्यान्नीचानामपिसत्वरम् ॥ एतस्मात्कारणाद्भूपाःकरंगृह्णन्तिलोकतः ॥ १० ॥ तस्मा

कारीथा ॥ ४ ॥ उस महात्माने पितृ पितामह वाले राज्यको भलीभांति पाकर पश्चात् आपही मनसे चिन्तन किया ॥ ५ ॥ कि मुझको वह कर्म करना चाहिये कि जिस को इस संसार में अन्य नरोंने न कियाहो और जो इसके उपरान्त होंगे वे न करैं ॥ ६ ॥ क्योंकि भूपोंको यही परम धर्म कहागया है जोकि सदैव प्रजाओंका पालन व उनकी सुखसे संस्थिति होवै ॥ ७ ॥ लालची भूपति लोग ज्यों ज्यों उन प्रजाओंके कर को ग्रहण करते हैं त्यों त्यों हृदय में मनका क्षोभ होताहै ॥ ८ ॥ जो हाथी घोड़े आदि व विशेष कर पैदर सेनाहै उसकी रक्षाके लिये भूपति लोग कर के विना समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥ और वह भूपति उस सेनाके विना शीघ्रही नीचजनों

केभी गम्य (जाने योग्य) होताहै इसी कारण से भूप मनुष्यों से कर लेते हैं॥ १०॥ इसलिये हाथियों व मनुष्यों के विनाभी मुझको तपस्याकी शक्तिसे राज्य को निष्कण्टक करना चाहिये ॥ ११ ॥ सदैव मनुष्यों को अनुराग करातेहुये व विशेषकर अन्य भूपालों के करोंको न ग्रहण करतेहुये उस महात्माने इसको चित्तमें धर या निश्चयकर तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ व पुरोहित वशिष्ठ जीको भलीभांति बुलाकर आदर समेत कहा॥ १२ । १३ ॥ हे विप्रजी ! इस भूतल में सबतीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थहो जहांपर कि महादेव या वासुदेव अथवा ब्रह्मा जी थोड़ेही समयमें प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं इसको शीघ्रही मुझसे कहिये कि जिससे हे द्विजोत्तम ! अपने लिये

न्मयाविनाप्याशुनागैश्चैवनरैस्तथा ॥ तपःशक्त्याप्रकर्तव्यंराज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ११ ॥ करानगृह्णतातेनलोकानूरञ्जयतासदा ॥ अन्येषांभूमिपालानां विशेषेणमहात्मना ॥ १२ ॥ एतच्चित्तेसमाधाय वशिष्ठंमुनिपुङ्गवम् ॥ पुरोधसंसमाहूयततःप्रोवाचसादरम् ॥ १३ ॥ अत्रभूमितलेविप्रसर्वेषांतीर्थमुत्तमम् ॥ अल्पकालेनसन्तुष्टिंयत्रयातिमहेश्वरः ॥ १४ ॥ वासुदेवोथवाब्रह्मा एतच्छीघ्रंवदस्वमे ॥ येनाहंसर्वलोकस्य हितार्थंतपआदधे ॥ १५ ॥ नस्वार्थम्ब्राह्मणश्रेष्ठ सत्येनात्मानमालभे ॥ वशिष्ठउवाच ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्चतीर्थानामिहभूतले ॥ १६ ॥ सन्तिपार्थिवशार्दूलप्रभावसहितानिच ॥ अष्टषष्टिस्ततोराजन्क्षेत्राणामस्तिभूतले ॥ १७ ॥ येषांसान्निध्यमभ्येतिसर्वदैवमहेश्वरः ॥ तथासर्वेसुरास्तुष्टाब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १८ ॥ परंसिद्धिप्रदंशीघ्रंमानुषाणांमहीपते ॥ हाटकेश्वरदेवस्यक्षेत्रंपातकनाशनम् ॥ १९ ॥ देवानामपिसर्वेषान्तुष्टिङ्गच्छतिचण्डिका ॥ शीघ्रमाराधितासम्यक्श्रद्धायुक्तैर्नरैर्भुवि ॥ २० ॥ तस्मात्क्षेत्रं

नहीं किन्तु समस्त संसार के हित के लिये तपस्याको करूं यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं वशिष्ठ जी बोले कि हे नृपोत्तम, राजन् ! इस संसारमें तीन कोटि व अर्ध कोटि याने साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ प्रभाव समेत हैं वैसेही भूतल में अरसठि क्षेत्रहैं ॥ १४ । १५ । १६ । १७ ॥ कि जिनकी समीपता मे सदैवही महादेव जी प्राप्तहोते हैं और ब्रह्मा विष्णु व शिवादिक समस्त देवता प्रसन्न होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे भूपते ! मनुष्योंकी परम सिद्धि का दायक व पातको का विनाशक हाटकेश्वर देवका क्षेत्र है ॥ १९ ॥ और भूतल में समस्त देवताओं के बीच में भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्यों से आराधन कीहुई अम्बिका जी शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं ॥ २० ॥

इसलिये उस क्षेत्र में प्राप्त होकर श्रद्धासंयुत व पवित्र तथा नियम में प्राप्त व नियम से भोजन करतेहुये तुम व्रतमें तत्पर व ब्रह्मचर्य्य में परायण होकर उन देवी का आराधन करो व त्रिकाल स्नान करो उस क्षेत्र में भूपति ने इस प्रकार चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से आराधन किया ॥ २१ । २२ ॥ उसके उपरान्त पूजन में तत्पर हुये उस भूपतिके ऊपर वह देवी प्रसन्न होगई देवी बोलीं कि हे वत्स ! नित्यप्रति के इस व्रतसे व आपही कियेहुये इस वलिपूजन के विधानसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहुईहूं इसलिये हे भूपाल ! कहिये कि जिससे मैं तुम्हारे मनमें टिकेहुये देवताओं सेभी दुर्लभ समस्त पदार्थ को शीघ्रही करूं राजा बोले कि मैंने मनुष्यों

समासाद्यतान्देवींश्रद्धया।न्वितः ॥ ब्रह्मचर्य्यपरोभूत्वाशुचिर्व्रतपरायणः ॥ २१ ॥ नियतोनियताहारस्त्रिकालंस्नानमाचर ॥ एवमाराधयत्तत्रगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ २२ ॥ पूजापरस्यसादेवीतस्यतुष्टिन्ततोगता ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मि तेवत्सव्रतेनानेननित्यशः ॥ २३ ॥ वलिपूजाविधानेनविहितेनामुनास्वयम्॥तद्ब्रूहियेनतेसर्वंप्रकरोमिहृदिस्थितम् ॥२४॥ सद्यएवमहीपालत्रिदशैरपिदुर्लभम्॥ राजोवाच॥लोकानांहितकामेनमयैतद्व्रतमाहितम् ॥२५॥ येनतेषांभवेत्सौख्यंमत्प्रसादादनुत्तमम्॥तस्माद्देहिमहाभागेज्ञानयुक्तानिभूरिशः ॥ २६ ॥ ममास्त्राणिविचित्राणिखेचराणिसमन्ततः ॥ यानि जानन्तिभूपृष्ठेममपार्श्वेस्थितान्यपि ॥ २७ ॥ अपराधंसदालोकेपरदारादिकञ्चयत् ॥ अनुरूपन्ततस्तस्यपातकस्यत्वि निग्रहम् ॥ २८ ॥ प्रकुर्वन्तिमिथोयेननतेषांसङ्करोभवेत् ॥ मन्त्रग्रामन्तथादेविममदेहिपृथग्विधम् ॥ २९ ॥ निग्रहंव्याधिसत्त्वानांयेनशीघ्रङ्करोम्यहम्॥ येनस्युर्मनुजाःसर्वेममराज्येसुखान्विताः ॥ ३० ॥ नीरोगाःपुष्टिसम्पन्नाभयशोकवि

के हितकी कामनासे इस व्रत को किया है ॥ २३।२४।२५ ॥ जिससे कि मेरी प्रसन्नतासे उन मनुष्यों को अतिउत्तम आनन्द होवै इसलिये हे महाभागे ! सबओर से आकाशचारी व विचित्र तथा ज्ञानसे संयुत बहुतेरे अस्त्रों को मुझे दीजिये कि मेरे समीप में स्थित भी जिन अस्त्रोंको भूतल में मनुष्य जानते हैं ॥ २६ । २७ ॥ व संसार में पराई भार्य्यादिकों में मनुष्य जिस अपराध को करते हैं उसीकारण उस पातक के सदृश दण्डको दीजिये क्योंकि जिससे उन मनुष्यों का सङ्कर वर्ण होताहै वैसेही हे देवि ! भिन्न प्रकार के मंत्रसमूह को मुझको दीजिये ॥ २८ । २९ ॥ कि जिससे शीघ्रही मैं रोगों व प्राणियों को दण्डकरूं जिससे मेरे राज्य में

समस्त मनुष्य सुखसे संयुत होवै ॥ ३० ॥ व रोगरहित होकर पुष्टिसे संयुत व भय तथा शोचसे रहित होवैं हे देवि ! मैं हाथी, घोड़ा व रथको संग्रह न करूंगा ॥ ३१॥ जिसलिये कि इस संसार में समस्त मनुष्यों के धनादिक सब पदार्थ को लेकर हाथी इत्यादि शोभित होते हैं उसी कारण मुझको वह प्रिय नहीं है ॥ ३२ ॥ देवी बोलीं कि हे भूपते ! तुमने इस अत्यन्तही अद्भुत कर्मका प्रारम्भ कियाहै जिसको किसी ने भी नहीं किया है न कोई करैगा ॥ ३३ ॥ तिसपर भी ऐसाही करूंगा तुम को ज्ञानयुक्त अस्त्रोंको व उसी प्रकार के मंत्रसमूह को मैं सम्पूर्णतासे दूंगी ॥ ३४ ॥ जिससे बड़े विकराल भी रोग तुमसे ग्रहण किये जावैंगे परन्तु उत्तम मंत्रोंसे

वर्जिताः ॥ नाहन्देविकरिष्यामिहस्त्यश्वरथसंग्रहम् ॥ ३१ ॥ यतोहस्त्यादिकंसर्वंराजतेऽत्रधनादिकम् ॥ गृहीत्वासर्वलोकानांतस्मात्तन्नममेप्सितम् ॥३२॥ देव्युवाच ॥ अत्यद्भुततरङ्कर्म्मत्वयैतत्पृथिवीपते ॥ प्रारब्धंयन्नकेनापिकृतंनच करिष्यति ॥ ३३ ॥ तथाप्येवंकरिष्यामितवदास्यामिकृत्स्नशः ॥ ज्ञानयुक्तानिशस्त्राणिमन्त्रग्रामञ्चतादृशम् ॥ ३४ ॥ गृह्यन्तेयेनतेसर्वेव्याधयोपिसुदारुणाः ॥ परंसदैवतेरक्ष्यास्सन्मन्त्रैरपिसंयताः ॥ ३५ ॥ यदिदृष्टिपथात्त्वत्तःक्वचिद्यास्यन्तिदूरतः ॥ मानवान्पीडयिष्यन्तिचिरात्प्राप्याधिकन्ततः ॥ ३६ ॥ यदात्वंपृथिवीपालस्वर्गंयास्यसिभूपते ॥ तदात्र सलिलेस्थाप्यामदग्रेयद्व्यवस्थितम् ॥ ३७ ॥ सर्वेमन्त्रास्तथास्त्राणिममवाक्यादसंशयम् ॥ येनस्यात्पूर्ववत्सर्वोव्यवहारोनयोद्भवः ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतेनोक्तेतत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ प्रादुर्भूतानिदिव्यानितस्यास्त्राणिबहूनिच ॥ ३९ ॥ ज्ञानसम्पत्प्रयुक्तानियादृशानिमहात्मना ॥ तेनसंयाचितान्येवव्याधिमन्त्रास्तथैवच ॥४०॥ व्याधयोयै

कीलित भी वे रोग रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ ३५ ॥ क्योंकि यदि तुम्हारे दृष्टिमार्गसे कहीं दूर जावैंगे तो बहुत दिनोंसे पाकर उससे अधिक मनुष्यों को दुःखित करैंगे ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपाल, भूपते ! जब तुम स्वर्ग को जावोगे तब ये समस्त मंत्र व अस्त्र मेरे वचनसे निरसन्देह इस जल में स्थापन के योग्य हैं जोकि मेरे आगे विशेषतासे प्राप्तहैं जिससे नीतिसे उपजाहुआ समस्त व्यवहार पूर्वके तुल्य होवै ॥ ३७ । ३८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस भूपति को हां यह कहने पर उसी क्षण जैसे कि उस महात्मा भूपतिने मागेथे वैसेही ज्ञानरूपी संपत्ति से संयुत बहुतेरे दिव्यअस्त्र उसके आगे प्रकट होगये और वैसेही रोगोंके मंत्र प्रकटहुये ॥ ३९ । ४० ॥ कि

जिन मंत्रों से सदैव अपनी इच्छासे रोग ग्रहण कियेजाते व छोड़े जातेथे व दृष्टिगोचर में भलीभांति टिकेहुये सबलोगोंका सुखसे परिपालन होताथा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नृपतिने चण्डिकासे उपजेहुये उस समस्त प्रसादको पाकर एक अपनी स्त्रीको व एक दशरथ पुत्रको छोड़कर उस समस्त हाथी इत्यादिक पदार्थको द्विजोंके लिये देदिया और उन समस्तभी रोगोंको यत्नसे मंत्रोंके द्वारा भलीभांति रोंककर ॥ ४२ । ४३ ॥ व छागरूपवाले रोगोंको वह नृप आपही पीछे दण्डको लेकर रक्षा करताथा भूतल में उस नरेश को इसप्रकार वर्तमान होनेपर ॥ ४४ ॥ किसी पुरुषका छिपा भी अपराध न हुआ प्रकट कहांसे होवै यदि कोई असावधानता से भूलोकमें पापको

अगृह्यन्तेमुच्यन्तेस्वेच्छयासदा ॥ सुखेनपरिपाल्यन्तेदृष्टिगोचरसंस्थिताः ॥४१॥ ततस्तंसकलम्प्राप्यप्रसादञ्चण्डिकोद्भवम् ॥ तच्चहस्त्यादिकंसर्वंब्राह्मणेभ्योददौनृपः ॥ ४२ ॥ एकांमुक्त्वानिजांभार्य्यामेकन्दशरथंसुतम् ॥ तांश्चापिसकलान्व्याधीन्मन्त्रैस्संयम्ययत्नतः ॥ ४३ ॥ अजारूपान्स्वयंपश्चाद्यष्टिमादायरक्षति ॥ एवन्तस्यनरेन्द्रस्यवर्तमानस्यभूतले ॥४४॥ गुप्तोपिनापराधस्स्यात्कस्यचित्प्रकटःकुतः ॥ प्रमादाद्यदिभूलोकेकश्चित्पापंसमाचरेत् ॥ ४५ ॥ तद्रूपोनिग्रहस्तस्यतत्क्षणादेवजायते ॥ वधंवायदिवाबन्धंक्लेशञ्चारतिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ अदृष्टान्यपिशस्त्राणितानिकुर्वन्तितत्क्षणात् ॥ अन्येषांचमहीपानांराज्येगुप्तान्यनेकशः ॥४७॥ कुर्वन्तिमनुजास्तेपाञ्चक्रेवैवस्वतोगृहम् ॥ नतत्रभयसन्त्रस्ततःपापंसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षंवाविशेषेणज्ञात्वाशस्त्रभयञ्चतत् ॥ ततस्तेपापनिर्मुक्तालोकास्संशुद्धगात्रकाः ॥ ४९ ॥ रोगेषुनिगृहीतेषुप्राप्तास्सुखमनुत्तमम् ॥ एवंस्थितेषुलोकेषुगतपापभयेषुच ॥ ५० ॥ प्रयाताःशून्यतांसर्वेनरका

करताथा ॥ ४५ ॥ तो उसी क्षणही उसको उस अपराध के समान दण्ड होताथा क्योंकि वध या बन्धन या पीडासे उपजेहुये क्लेश को वे न देखेहुये भी शस्त्र करते थे और अन्य भूपोंके राज्यमें छिपेहुये पापोंको जिन मनुष्यों ने किया उनके लिये यमराजने घर बनाया उसी कारण उस शस्त्रके भयको जानकर उस राज्यमें भयसे डराहुआ मनुष्य सामने विशेषकर पातक को नहीं किया उसी कारण पातकोंसे छूटेहुये व भलीभांति पवित्र अङ्गोंवाले वे मनुष्य ॥ ४६ । ४७ । ४८ । ४९ ॥ रोगों के पकड़लेने पर अतिउत्तम सुखको प्राप्तहुये और गयेहुये पाप भयवाले मनुष्य जब इसप्रकार स्थित हुये तब ॥ ५० ॥ जो यममन्दिर में नरक थे वे सब

शून्यताको प्राप्तहोगये कोई पुरुष नरकको नहीं जाता था व मृत्यु के मार्गको नहीं प्राप्त होता था ॥ ५१ ॥ जैसे सतयुग में व्यवहार था वैसेही त्रेता में भी भलीभांति स्थितहुआ उसी कारण जब यमलोक में उपजाहुआ व्यवहार नष्टहोगया व मृत्युरहित प्राणी स्वर्ग की समताको प्राप्तहोगये तब दुःखसे संयुत यमराज ने ब्रह्माके मन्दिर प्रति जाकर व पितामह जीको प्रणामकर कहा कि हे देव ! पुरातन समय धर्म व अधर्म के देखने की इच्छा से तुमने मुझको ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ मनुष्यों के निग्रह (दण्ड) व अनुग्रह (दया) में भलीभांति आज्ञा दियाथा हे सुरोत्तम ! अजापाल भूपति ने चण्डिका देवीको आराधकर तपस्या की शक्तिसे उस समस्त

व्यवहारेततोन येयमालये ॥ नकश्चिन्नरकंयातिनचमृत्युपथन्नरः ॥ ५१ ॥ यथाकृतयुगेतादृक्त्रेतायामपिसंस्थितम् ॥ ततोवैवस्वतोगत्वाब्रह्मणस्सदनम्प्रति ॥ ५३ ॥ ष्टेयमलोकसमुद्भवे ॥ ५२ ॥ स्वर्गेणतुल्यतांप्राप्तेप्राणिभिर्मृत्युवर्जितैः ॥ मानुषाणांसमादिष्टोनिग्र प्रोवाचदुःखसम्पन्नःप्रणिपत्यपितामहम् ॥ अहंपुरात्वयादेवधर्म्माधर्म्मदिदृक्षया ॥ ५४ ॥ नाथ हानुग्रहम्प्रति ॥ अजापालेनभूपेनतत्सर्वंनिष्फलीकृतम् ॥ ५५ ॥ तपःशक्त्यासुरश्रेष्ठ देवीमाराध्यचण्डिकाम् ॥ समीपउपविष्टस्यशिवस्यास्यंव्यलो योव्याधयस्तेननपापानिमहीतले ॥५६॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वाब्रह्मालोकपितामहः ॥ अत्यद्भुततमांश्रुत्वा तांवार्तांयमसम्भवाम् ॥ ५८ ॥ महे कयत् ॥ ५७ ॥ अथाब्रवीत्प्रहस्योच्चैस्त्रिनेत्रश्चतुराननम् ॥ कथन्निवारणन्तत्रक्रियतेकश्चनिग्रहः ॥ ५९ ॥ तस्मात्तेनमही श्वरउवाच ॥ धर्म्ममार्गप्रवृत्तस्य सदाचारस्यभूपतेः ॥ तन्मयापियथाचास्यप्रसादस्सुरसत्तम ॥ पेनयस्मान्मार्गःप्रदर्शितः ॥ अपूर्वोधर्म्मसम्भूतःकृतस्सम्यग्महात्मना॥६०॥

वस्तुको निष्फल करदिया उसी कारण भूतल में मानसी व्यथा व व्याधि व रोग नहीं है ॥ ५५ । ५६ ॥ उन यमराज के उस वचन को सुनकर लोकोंके पितामह ब्रह्मा जीने समीप में बैठेहुये शिव जीके मुखको विलोकन किया ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर तीन नेत्रवाले शिवजी यमराज से उपजीहुई अत्यन्तही अद्भुत उस वार्ताको सुन कर व उच्चप्रकार से हँसकर चतुर्मुख (ब्रह्मा) से बोले ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले कि धर्ममार्ग में वर्तमान व उत्तम, आचारवाले भूपका उस कर्ममें कैसे वारण (रोंक) कियाजावे व कौन निग्रह कियाजावे ॥ ५९ ॥ जिसलिये कि उस महात्मा भूपतिने धर्मसे उपजेहुये अपूर्व मार्गको दिखलाया है व भलीभांति किया है ॥ ६० ॥ इस

लिये हे सुरोत्तम ! जिसप्रकार इस नृपतिकी अपूर्व प्रसन्नता होवै वैसाही करना चाहिये जैसे कि धर्म दूषित न होवै ॥ ६१ ॥ शिवजीने चतुरानन से ऐसा कहकर तदनन्तर यमराज से कहा कि इस अजापाल भूपति के आयुर्बल का जो शेषहो उसको कहो ॥ ६२ ॥ कि जिससे वह समय प्राप्त होनेपर उस भूपको अपने स्थानको लेजाऊं यमराज बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! उसके आयुर्बल मेंसे पांचहजारवर्ष व्यतीत हुयेहैं व पचपन हज़ारवर्ष बीतने से अन्य याने शेष आयुर्बल स्थित है तभीतक निजाश्रम शून्य होगया ॥ ६३ । ६४ ॥ इसलिये उसके विनाशवाले किसी उपाय को शीघ्रही करिये यमराज के ऐसा कहनेपर इसके अनन्तर उन यमराजको घर

अपूर्वःकरणीयश्च यथा धर्म्मोनदुष्यति ॥ ६१ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्रंयमम्प्राहततःशिवः ॥ वदायुषोस्ययच्छेषमजापालस्यभूपतेः ॥ ६२ ॥ येनतत्समयेप्राप्तेतन्नयामिनिजं क्षयम् ॥ यमउवाच ॥ पञ्चवर्षसहस्राणितस्यातीतानिचायुषः ॥ ६३ ॥ तिष्ठन्तिपञ्चपञ्चाशदतीतान्यन्तथावयः ॥ तावत्कालंसुरश्रेष्ठशून्यञ्जातंस्वमाश्रमम् ॥ ६४ ॥ तस्मात्कुरुद्रुतं किञ्चिदुपायन्तद्विनाशनम् ॥ एवमुक्तेयमेनाथतंविसृज्यगृहम्प्रति ॥ ६५ ॥ व्याघ्ररूपंसमास्थायस्वयन्तत्सन्निधौययौ ॥ यत्रसंस्थोमहीपस्सप्रजापालनतत्परः ॥ ६६ ॥ मेघगम्भीरनिर्घोषङ्गर्ज्जमानोमुहुर्मुहुः ॥ अजास्ताश्चाथसंवीक्ष्य व्याघ्रंरौद्रवपुर्द्धरम् ॥ ६७ ॥ अजापालंसमुद्दिश्यसन्त्रस्ताःशरणङ्गताः ॥ तस्ययत्नपरस्यापिरक्ष्यमाणस्यभूपतेः ॥ ६८ ॥ अजास्ताव्याघ्ररूपेणशङ्करेणप्रभक्षिताः ॥ अजानांकदनन्दृष्ट्वाततस्सपृथिवीपतिः ॥ ६९ ॥ स्वहस्ताद्यष्टिमुत्सृज्यजग्राहनिशितायुधम् ॥ यत्तस्यतुष्टयादत्तञ्चण्डंचण्डार्चिषासमम् ॥ ७० ॥ अथतस्यतथान्यानिदेवीदत्तानिशङ्करः ॥

प्रति बिदाकर ॥ ६५ ॥ आपही व्याघ्ररूपमें भलीभांति स्थित होकर मेघोंके समान गम्भीर शब्दको बार बार गर्जतेहुये शिवजी उसके समीप गये जहांपर कि प्रजापालन में परायण होताहुआ वह भूप भलीभांति टिकाथा इसके अनन्तर विकराल शरीर को धारेहुये व्याघ्रको भलीभांति देखकर डरीहुई उन छागियोंने अजापाल भूपका भलीभांति उद्देशकर शरण में गमनकिया रक्षा करतेहुये व उपाय में परायण भी उस भूपतिकी ॥ ६६ । ६७ । ६८ ॥ उन छागियों को शङ्कर जीने व्याघ्ररूप से भक्षण करलिया तदनन्तर उस अजापाल भूपने छागियोंका विनाश देखकर ॥ ६९ ॥ अपने हाथसे दण्डको छोड़कर उस तीखे किरणों के तुल्य प्रचंड व पैने अस्त्रको

लिया कि जिसको प्रसन्नहुई भगवतीने दियाथा ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर उस भूप को देवीसे दियेहुये अन्यभी अस्त्रोंको शङ्कर (कल्याणकारक) महादेव जीने धीरे
धीरे अपने मुखके द्वारा ग्रहण किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अस्त्रके अभावसे शीघ्रही स्त्रीसे धारण कियेहुये भी भूपतिने तुर्तही द्वंद्वयुद्धसे उन शिव जीसे समर किया ॥ ७२ ॥
उसके उपरान्त उस भूपके अङ्गस्पर्श से उस बाघके शरीरको छोड़कर शिव जीने चन्द्रमासे भूषित व विभूति से लिपटेहुये अपने शरीरको धारण किया ॥ ७३ ॥ जो
कि खट्वाङ्ग सहित व सर्पों समेत व दिव्य (उत्तम) मुण्डोंकी मालाको धारण कियेथा उस शरीर को देखकर तदनन्तर स्त्री समेत प्रणाम करताहुआ व नम्रतासे

शनैःशनैःप्रजग्राहस्ववक्त्रेणमहेश्वरः ॥ ७१ ॥ अस्त्राभावात्ततस्तूर्णंध्रियमाणोपिकान्तया ॥ द्वन्द्वयुद्धेनतंशीघ्रंयोध
यामासभूपतिः ॥ ७२ ॥ ततस्तस्याङ्गसंस्पर्शान्मुक्त्वाव्याघ्रतनुंचताम् ॥ दधारभस्मसन्दिग्धांस्वान्तनुञ्चन्द्रभूषिता
म् ॥ ७३ ॥ मुण्डमालाधरान्दिव्यांसखट्वाङ्गांसपन्नगाम् ॥ तान्दृष्ट्वासमहीपालस्सभार्य्यःप्रणतस्ततः ॥ ७४ ॥ प्रोवा
चाथस्तुतिंकृत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नोहर्षगद्गदयागिरा ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ अज्ञानाद्यन्मया
देवप्रहारास्तवनिर्मिताः ॥ तिरस्कारतयादत्तास्तत्सर्वंक्षम्यतांविभो ॥ ७६ ॥ भगवानुवाच ॥ क्षान्तस्तुक्षमयापुत्रमया
सर्वःपराभवः ॥ परितुष्टेनतेकर्म्मदृष्ट्वाचैवातिमानुषम् ॥ ७७ ॥ यथाकृतन्त्वयाराज्यंप्रजास्संरक्षितानृप ॥ तथान्योभूपतिः
कश्चिन्नकर्तानकरिष्यति ॥ ७८ ॥ तस्माद्गच्छमयासार्द्धंपातालम्पार्थिवोत्तम ॥ अनेनैवशरीरेणधर्म्मपत्न्यानयासह ॥ ७९ ॥

नीचे झुका व टिका तथा आनन्द के आंसुओंसे सबओर भीगाहुआ वह भूप स्तुति को कर अनन्तर प्रसन्नता से गद्गदा वाणी से बोला ॥ ७४ । ७५ ॥ राजा बोले कि
हे व्यापक, देव ! जोकि अज्ञानताके कारण मुझसे कियेहुये प्रहार तुमको निरादरतासे दियेगये उस समस्त अपराधको क्षमा करिये ॥ ७६ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे
पुत्र ! मनुष्यसे अतिरिक्तवाले तुम्हारे कर्मको देखकर प्रसन्नहुये मैंने सहनशीलतासे समस्त तिरस्कारको क्षमाकिया ॥ ७७ ॥ हे नृप ! जिसभांति तुमने राज्य को किया
व प्रजाओं की भलीभांति रक्षाकियाहै उस प्रकार दूसरा कोई भूपति न करताहै न करैगा ॥ ७८ ॥ इसलिये हे भूपसत्तम ! इस धर्मपत्नी समेत इसी शरीरसे मेरे साथ

पाताल को चलो ॥ ७६ ॥ जिसलिये कि तुमसे उपजाहुआ कर्म समस्त देवताओंसे विरुद्ध है उसी कारण इसके उपरान्त तुमको मृत्युलोक में किसी प्रकार न टिकना चाहिये ॥ ८० ॥ राजा बोले कि हे देव ! अयोध्या महापुरी को जाकर व राज्यपै पुत्रको बिठाकर तथा मंत्रियों को भलीभांति निवेदनकर ऐसाही करूंगा ॥ ८१ ॥ व हे देव ! पुरातन समय जिसने अनेकों प्रकारके शस्त्रोंको व मंत्रसमूह को दियाहै उस प्रसन्न महादेवीने मुझसे कहाथा ॥ ८२ ॥ कि हे प्राज्ञ ! तुम जब अतिदुस्त्यज मृत्यु लोक को छोड़ियेगा तब मेरे इस कुण्डमें शस्त्र सम्पूर्णता से फेंकने योग्य हैं ॥ ८३ ॥ हे सुरेश ! उन अस्त्रों को फिरभी दीजिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से मैं इस

नातःपरन्त्वयास्थेयम्मर्त्यलोकंकथञ्चन ॥ विरुद्धंसर्वदेवानांयतःकर्म्मत्वदुद्भवम् ॥ ८० ॥ राजोवाच ॥ एवन्देव करिष्यामिगत्वायोध्यांमहापुरीम् ॥ पुत्रंराज्येप्रतिष्ठाप्यमन्त्रिणांसन्निवेद्यच ॥ ८१ ॥ तथाहन्देवदेव्याचप्रोक्तस्सन्तुष्टयापुरा ॥ मन्त्रग्रामोययादत्तःशस्त्राणिविविधानिच ॥ ८२ ॥ यदात्वन्त्यजसिप्राज्ञमर्त्यलोकंसुदुस्त्यजम् ॥ तदात्रमामकेकुण्डेप्रक्षेप्तव्यानिकृत्स्नशः ॥ ८३ ॥ तानिचार्प्पयभूयोपियेनानृण्यंव्रजाम्यहम् ॥ तस्यादेव्याःसुराधीशत्वत्प्रसादेनसाम्प्रतम् ॥ ८४ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनभगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ आज्ञाप्यतानिसर्वाणिददौतत्रद्रुतङ्गतः ॥ ८५ ॥ अब्रवीच्चसुतस्तेत्रस्वयंराजाभविष्यति ॥ वीर्य्यौदार्य्यशमोपेतोवंशस्यधारणक्षमः ॥ ८६ ॥ त्वञ्चगच्छमयासार्द्धमद्येवममममन्दिरम् ॥ प्रविश्यात्रजलेपुण्येदेवीकुण्डसमुद्भवे ॥ ८७ ॥ अद्यमाघचतुर्दश्यांशुक्लायामपरोपियः ॥ देवीमिमाञ्चसम्पूज्यजलेस्मिन्भक्तिसंयुतः ॥ ८८ ॥ करिष्यतिप्रवेशेनप्राणत्यागन्नृपोत्तम ॥ सचयास्यतियत्रास्तेपातालेहा

समय उस देवीसे उऋण होजाऊं ॥ ८४ ॥ उस भूपति से इसभांति कहेहुये त्रिपुरान्तक (शिव) भगवान् ने उन समस्त शस्त्रोंको दिया तदनन्तर आज्ञाको देकर शीघ्रही वहांगये व बोले कि तुम्हारा पुत्र आपही यहां राजाहोगा जोकि पराक्रम व उदारता व शान्ति से संयुत तथा वंशके धारनेमें समर्थ होगा ॥ ८५।८६ ॥ और तुम इस देवीकुण्डसे उपजेहुये पुण्यदायक जलमें पैठकर आजही मेरेसाथ मेरे मन्दिरको चलो ॥ ८७ ॥ हे नृपोत्तम ! आज शुक्लपक्षवाली माघमास की चतुर्दशी में भक्ति

संयुत अन्यभी जो पुरुष इन देवीको भलीभांति पूजकर व इस जलमें प्रवेशसे प्राणोंका त्याग करैगा वह पाताल में जावैगा जहांपर कि हाटकेश्वर जी टिके हैं ॥८८ । ८९ ॥ हे नृपोत्तम ! अथवा जो नर स्नान करैगा उसके एकसौ आठ रोगों के मध्यमें कोई रोग न होगा ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा कहकर व स्त्री समेत उस नृपको लेकर महादेव जीने उन छागियों व उन अस्त्रों सेभी समेत देवीके कुण्डसे उपजे हुये उस जल में प्रवेश किया तदनन्तर अपने मन्दिर को प्राप्तकिया ॥ ९१ । ९२ ॥ उस पाताल में निज पत्नी समेत उन हाटकेश्वर देवजीकी श्रद्धा करताहुआ वह नृप वृद्धता व मृत्युसे रहित होकर उसी मनुज शरीरसे आजभी टिका है वहांपर

टकेश्वरः ॥ ८९ ॥ स्नानंवापार्थिवश्रेष्ठयःकरिष्यतिमानवः॥ अष्टोत्तरशतन्तस्यव्याधीनांनभविष्यति॥ ९० ॥ एवमु क्त्वातमादायनृपम्भार्य्यासमन्वितम्॥ अजाभिस्ताभिरस्त्रैश्चतैश्चापिपरमेश्वरः ॥ ९१ ॥ प्रविवेशजलेतस्मिन्देवीकुण्ड समुद्भवे॥ततश्चमन्दिरन्नीतस्स्वकीयन्द्विजसत्तमाः ॥ ९२ ॥ तेनैवनरदेहेन स्वकलत्रसमन्वितः ॥ अद्यापितिष्ठतेतत्र जरामरणवर्जितः ॥ ९३ ॥ श्रद्दधानश्चतन्देवम्पातालेहाटकेश्वरम् ॥ एवंतत्रसमुद्भूतासादेवीयामहेश्वरी ॥ ९४ ॥ स्थापितानेनभूपेनश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमा हात्म्येऽजापालीश्वरीमाहात्म्यंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

एवंतस्मिन्गतेभूपे अजापालेरसातले ॥ पुत्रस्तस्याभवद्राजा मन्त्रिभिस्तुपुरस्कृतः ॥ १ ॥ योनित्यमगमत्स्वर्गे वासवंरमतेसदा ॥ शनैश्चरोजितोयेन रोहिणींपरिभेदयन् ॥ २ ॥ गृहेयस्यस्वयंविष्णुर्भूत्वाचैवचतुर्विधः ॥ रावणस्य

वह देवी इस प्रकार उत्पन्नहुई है कि जिस महेश्वरीको इस अजापाल भूपने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके स्थापन किया है ॥ ९३ । ९४ । ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजापालीश्वरीमाहात्म्यंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दशरथनृप शनिदेव सों कीन बतकही जौन । चौरनवे अध्यायमें कहत चरित सब तौन ॥ इसप्रकार जब वह अजापाल भूपति रसातल को चलागया तब मन्त्रियों से पुरस्कृत (माना हुआ) उस का पुत्र राजा हुआ ॥ १ ॥ जो नित्यही स्वर्ग में जाताथा व सदैव इन्द्रके साथ क्रीड़ा करताथा व जिसने रोहिणी को भेदन

करतेहुये शनैश्चरको जीताहै ॥२॥ व रावणके विनाशके लिये प्रसन्न होतेहुये विष्णुजीने आपही चार भांतिके होकर जिसके घरमें जन्म लियाहै ॥ ३ ॥ उस नृपति ने यहांपर उस क्षेत्रमें आकर व सुन्दर मन्दिरको रचकर तदनन्तर मधुसूदन (विष्णु) जीको प्रसन्न कियाहै ॥ ४ ॥ उसकी भी प्रसिद्ध बावलीहै जो कि आपही उससे रची हुई राजवापी ऐसी इस संसार में परमप्रसिद्धताको प्राप्तहै ॥ ५ ॥ पंचमी दिनको भलीभांति प्राप्त होने पर व विशेष कर पितरपक्षमें जो पुरुष उस बावली के निकट श्राद्ध करताहै वह सज्जनों का प्यारा होताहै ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि उस नृपने किस प्रकार शनैश्चरको जीता है जो कि रोहिणी रूप शकट को भेदन करता

विनाशार्थं जन्मचक्रेप्रहर्षितः ॥ ३ ॥ तेनागत्यात्रतत्क्षेत्रे तोपितोमधुसूदनः ॥ प्रासादंशोभनंकृत्वा ततश्चैवप्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥ तस्यापिविश्रुतावापी स्वयन्तेनविनिर्म्मिता ॥ राजवापीतिलोकेस्मिन्विख्यातिम्परमङ्गाता ॥ ५ ॥ तस्यां यःकुरुतेश्राद्धं सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने॥ प्रेतपक्षेविशेषेण सनरस्स्यात्सताम्प्रियः ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथन्तेनजितस्सौरोरोहिणीशकटंचयः ॥ भिनत्तितोषितस्तेन कथंनारायणोवद ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ तस्मिञ्छासतिधर्म्मज्ञेस्वधर्म्मेणवसुन्धराम्.॥ अतिसौख्यान्वितोलोकस्सर्वदैवव्यजायत ॥ ८ ॥ बहुक्षीरप्रदागावःसस्यानिगुणवन्तिच ॥ कामवर्षीचपर्जन्योयथर्तुफलिताद्रुमाः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यदैवज्ञैस्तस्यभूपतेः ॥ कथितंरोहिणीभेदंरविपुत्रःकरिष्यति॥ १० ॥ तस्यानन्तरमेवाशुदुर्भिक्षंसम्भविष्यति ॥ अनावृष्टिश्चभवितारौद्राद्वादशवार्षिकी ॥ ११ ॥ यथासम्पत्स्यते

था व उसने किसप्रकार नारायण को प्रसन्न कियाहै इस चरित्र को कहो॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि धर्मके जाननेहारे उस नृपतिको निज धर्मसे पृथ्वी को शासते (सिखलाते या परिपालन करते) हुये सदैवही अतिआनन्दसे संयुक्त संसार हुआ ॥ ८ ॥ व गौवें बहुत दूधदेनेवाली और अन्न गुणवान् तथा मेघ इच्छाके अनुकूल बरसनेवाले और वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल फलनेवाले हुयेहैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर किसी समय ज्योतिर्वित् पण्डितोंने उस भूपसे कहा कि रविपुत्र (शनैश्चर) रोहिणी का भेदन करैगा ॥ १० ॥ उसके बाद शीघ्रही दुर्भिक्ष होगा व ऐसा विकराल बारहवर्ष का अवर्षण होगा ॥ ११ ॥ कि जिस प्रकार समस्त पृथ्वीतल पुरुषों

से रहित होगा उन पण्डितोंके उस वचनको सुनकर क्रोधित होता हुआ वह राजा विमानपै चढ़कर व शनैश्चरका उद्देश कर गया पुरातन समयं प्रसन्न हुये इन्द्रने उस नृपको इच्छाके अनुकूल जानेवाले विमानको भलीभांति दिया था उसीपै संस्थित होताहुआ भूपति शनैश्चरके समीप शीघ्रही गया तदनन्तर सूर्य्यके पन्थको छोड़ कर उसके उपरान्त चन्द्रमाकी नक्षत्ररूप पद्धतिको पाकर व बड़े भारी धनुषको चढ़ाकर व उसमें बाणको समारोपणकर शनैश्चर अतिशीघ्रगामी हुआ ॥ १२। १३। १४। १५ ॥ व आगे खड़े होकर नीचे मुखवाले रविपुत्र (शनैश्चर) से बोला कि हे शनैश्चर ! इससमय तुम मेरे वचनसे इस रोहिणीके मार्गको छोड़

सर्वम्भूतलंगतमानवम् ॥ तेषान्तद्वचनंश्रुत्वासराजाकुपितोभ्यगात् ॥ १२ ॥ शनैश्चरंसमुद्दिश्यविमानमधिरुह्यच ॥ त
स्यतुष्टेनसन्दत्तंविमानंकामगम्पुरा ॥ १३ ॥ शक्रेणतत्रसन्तिष्ठञ्छनैश्चरमुपाद्रवत् ॥ ततःसूर्य्यपथंमुक्त्वाततश्चन्द्र
स्यपार्थिवः ॥ १४ ॥ नक्षत्रसरणिंप्राप्यसज्जंकृत्वामहद्धनुः॥ तत्रबाणंसमारोप्यशनैश्चरमुपाद्रवत् ॥ १५ ॥ प्रोवाचपुरत
स्स्थित्वासूर्य्यपुत्रमधोमुखम् ॥ त्यजैनंरोहिणीमार्गंसांप्रतंत्वंशनैश्चर ॥ १६ ॥ मद्वाक्यादन्यथाहन्त्वान्नयिष्यामिय
मक्षयम् ॥ एतेननिशिताग्रेणशरेणानतपर्वणा ॥ १७ ॥ दिव्यास्त्रमन्त्रयुक्तेनसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रु
त्वातादृग्रौद्रतमम्महत् ॥ १८ ॥ मन्दोविस्मयमापन्नस्ततश्चेदमभाषत ॥ कस्त्वम्ब्रूहिमहाभागममामार्गंरुणत्सियः ॥
१९ ॥ अगम्यंकेनचिल्लोकेसर्वैरपिसुरासुरैः ॥ राजोवाच ॥ अहंदशरथोनामवंशेसूर्य्यभवेन्नृपः ॥ २० ॥ अजस्यतन
यःप्राप्तःकामंवारयितुंक्रुधा ॥ मन्दउवाच ॥ नत्वयासहसम्बन्धः कश्चिदस्तिमहीपते ॥ २१ ॥ ममयस्त्वतिकोपाद्दैम

दो ॥ १६ ॥ नहीं तो मैं इस झुकेहुये गाँठिवाले व पैने अग्रभागवाले तथा दिव्यास्त्रोंके मंत्रसे छोड़े हुये इस बाणसे तुमको यमस्थान को पहुँचाऊँगा यह मैं सत्य कहता हूँ उस नृपके वैसे उस बड़े भारी विकराल वचनको सुनकर ॥ १७।१८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्तहोते हुये शनैश्चरने यह कहा कि हे महाभाग ! तुम कौनहो जो कि मेरे मार्ग को रोंकतेहो ॥ १९ ॥ जो मार्ग कि समस्तभी देवता व दैत्यों मेंसे किसीसे नहीं जाने योग्यहै राजा बोले कि सूर्य्यसे उपजे हुये वंशमें अजका पुत्र मैं दशरथ नामकहूँ और क्रोधसे रोंकने के लिये इच्छापूर्वक प्राप्तहुआहूं शनैश्चर बोले कि हे भूपते ! तुम्हारे साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥ २० । २१ ॥ जो तुम अतिक्रोधसे

मेरे मार्ग को रोंकनेके लिये चाहते हो राजा बोले कि रोहिणीसे उपजे हुये शकटको तुम निश्चयकर भेदन करोगे ॥ २२ ॥ हे शनैश्चर! इससमय दैवज्ञ याने ज्योतिषी पंडितोंने मुझसे इस वाक्य को कहाहै कि उस शकटको तुम्हारे भेदन करने पर इन्द्रजी नहीं वरसैंगे इसको ज्योतिषशास्त्रमें प्रवीण पण्डित लोग कहतेहैं अनन्तर वृष्टिका रोंक होजानेपर पृथ्वीमें अन्न नहीं उपजतेहैं ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर अन्न न होनेसे भूतलमें मनुष्य नाश होजाते हैं उसके उपरान्त नरों का नाश होनेपर धरणीपृष्ठमें अग्निष्टोमादिक क्रियायें नहीं होतीहैं उसके उपरान्त विनाशही होवै है इसी कारण हे सूर्य्यसम्भव (शनैश्चर) ! रोहिणी प्रति जानेकेलिये कामनावाले

न्मार्गंहन्तुमिच्छसि ॥ राजोवाच ॥ रोहिणीसम्भवन्त्वंहिशकटम्भेदयिष्यसि ॥ २२ ॥ साम्प्रतंममदैवज्ञैर्वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ तस्मिन्मन्दत्वयाभिन्नेनवर्षतिशतक्रतुः ॥२३ ॥ एतद्वदन्तिदैवज्ञाज्योतिःशास्त्रविचक्षणाः ॥ जातेवृष्टिनिरोधेथजायन्तेन्नानिनक्षितौ ॥२४॥ अन्नाभावात्क्षयंयान्तिततोभूमितलेजनाः॥जनोच्छेदेततोजातेअग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ २५ ॥ नभवन्तिधरापृष्ठेततस्स्यादेवसंक्षयः ॥ एतस्मात्कारणाद्रुद्धोमार्गस्तेसूर्य्यसम्भव ॥ २६ ॥ रोहिणींगन्तुकामस्यसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ शनिरुवाच ॥ गच्छपुत्रनिजङ्गेहंममापित्वंवरंवृणु ॥ २७ ॥ तुष्टोहन्तववीर्य्येणनत्वन्येनमहीपते ॥ नकेनचित्कृतंकर्म्मयदेतद्भवताकृतम् ॥ २८ ॥ नकरिष्यतिचैवान्योदेवोवामानवोथवा ॥ नाहंपश्यामिभूपालकथञ्चिदपिचोर्ध्वतः ॥ २९ ॥ यतोदृष्ट्याभवेद्दग्धमम्भस्मसाज्जायतेखिलम् ॥ जातमात्रेणबालेनमयापादौनिरीक्षितौ ॥ ३० ॥ जातस्यसहसादग्धौततोहंवारितोम्बया ॥ नत्वयातुप्रद्रष्टव्यंकिञ्चिद्देहंकथञ्चन ॥ ३१ ॥ प्रमाणंय

तुम्हारे मार्ग को रोंका यह मैंने सत्य कहाहै शनैश्चर बोले कि हे पुत्र ! तुम अपने घरको जावो व मुझसे भी वरदानको स्वीकारकरो ॥ २५ । २६ । २७ ॥ हे भूपते ! मैं तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्नहूं क्योंकि आपने जो इस कामको किया उसको अन्य किसी ने नहीं कियाहै ॥ २८ ॥ और न तो अन्य देवता या मनुष्य करैगा हे भूपाल ! मैं किसी प्रकार भी ऊपरसे नहीं देखताहूं ॥ २९ ॥ क्योंकि दृष्टिसे जलाहुआ सम्पूर्ण पदार्थ भस्म होजाताहै मुझ उत्पन्नमात्र बालकसे पांय देखेगये ॥३०॥ व पैदाहुये मेरे

अचानकही भस्म होगये तदनन्तर मुझको माताने रोंका कि यदि माताके वचन से उपजाहुआ धर्म तुमको प्रमाणहै तो तुमको किसी प्रकार किसी देहको न देखनाचाहिये उसीकारण तुमने बडे भारी इस दुष्कर (कठिन) कर्मको किया ॥ ३१।३२ ॥ हे नृपोत्तम ! जिसलिये कि प्रजाओंके लिये तुमने मेरे डरको दूरसे छोड़दिया उसी कारण तुम्हारे लिये मैं रोहिणीको भेदन न करूंगा ॥ ३३ ॥ राजा बोले कि तुम्हारा दिन प्राप्तहोनेपर जो पुरुष तैलाभ्यङ्ग करै उसकी व्यथाको तुमको अन्यदिन तक न करना चाहिये ॥ ३४ ॥ व तुम्हारे दिन में जो पुरुष शक्तिसे तिलदान व लोहदानही को करता हैं वह वर्ष भरतक क्लेशों समेत संकटों में सदैवही तुमसे रक्षाकरने

दितेधर्म्मोमातृवाक्यसमुद्भवः ॥ तस्मात्त्वयामहत्कर्म्मकृतमीदृक्सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ प्रजानाम्पार्थिवश्रेष्ठत्यक्तन्दूरा
द्भयंमम ॥ तस्मात्तवकृतेनाहंभेदयिष्यामिरोहिणीम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ तवयोवासरेप्राप्तेतैलाभ्यङ्गंकरोतिवै ॥ त
स्यान्यदिवसंयावत्पीडाकार्य्यानचत्वया ॥ ३४ ॥ तिलदानंकरोत्येवलोहदानन्तुयस्तव ॥ करोतिदिवसेशक्त्यायाव
द्वर्षन्त्वयाहिसः ॥ ३५ ॥ रक्षणीयस्सकृच्छ्रेषुसङ्कटेषुसदैवहि ॥ त्वयिगोचरपीडायांसंस्थितेवार्कसम्भव ॥ ३६ ॥ यःकु
र्य्याच्छान्तिकंसम्यक्तिललोहञ्चभक्तितः ॥ वासरेतवसम्प्राप्तेतवपूजांकरिष्यति ॥ ३७ ॥ तस्यसार्द्धाणिवर्षाणिसप्त
कार्य्याप्रयत्नतः ॥ त्वयारक्षाप्रकर्त्तव्याअयमेववरोस्तुमे ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ तथास्त्वितिनृपंचोक्त्वाविरराम ततःप
रम् ॥ शनैश्चरोमहीपालवचनाद्द्विजसत्तमाः ॥ ३९ ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यंशृणुयाद्योविशेषतः ॥ शनैश्चरकृतापीडा
तस्यनाशंहिगच्छति ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदशरथशनिसंवादोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

योग्य है और हे सूर्य्यसम्भव ! तुमको गोचरवाली पीडामें भलीभांति टिकनेपर ॥ ३५ । ३६ ॥ जब तुम्हारा दिन भलीभांति प्राप्तहोवै तब जो पुरुष भक्तिसे भलीभांति तिल लोहवाले शान्तिककर्मको करै व तुम्हारा पूजनकरै ॥ ३७ ॥ उस पुरुषकी रक्षा तुमको बड़े उपायसे साढ़े सातवर्षतक करना चाहिये यही मेरा वरदान होवै ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा यह नृपतिसे कहकर तदनन्तर शनैश्चर भूपालके वचन से चुपहोरहे ॥ ३९ ॥ जो पुरुष इस चरितको नित्यही पढ़ैगा व जो विशेषकर सुनैगा उसकी शनैश्चर से कीहुई पीड़ा निश्चय नाशको प्राप्त होतीहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेभाषाटीकायांचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

दो० । दशरथ नृपको चरित अरु राम जन्मको हाल । पञ्चनबे अध्यायमें बरणत अतिहि रसाल ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस दशरथ नृपति के वचनसे तब से लगाकर शनैश्चर रोहिणीशकटको नहीं भेदन करते हैं ॥ १ ॥ उस प्रकारके उत्पन्नहुये चरितको भलीभांति सुनकर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रजी उन दशरथ भूपाल के समीप जाकर तदनन्तर आदर समेत बोले ॥ २ ॥ कि हे भूपते ! तुमने इस अत्यन्त उत्तम कर्मका साधन किया कि जिससे मनसेभी नहीं चिन्ता कीजाती है ॥ ३ ॥ इसीसे आज मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हुआहूं मुझसे आज उस प्यारे वरको ग्रहणकरिये कि जो हृदय में स्थितहो ॥ ४ ॥ राजा बोले कि हे सुरोत्तम ! मैं तुम्हारे साथ

सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिनोमन्दो रोहिणीशकटंद्विजाः ॥ भिनत्तिवचनात्तस्य राज्ञोदशरथस्यच ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा तंसमाकर्ण्य तस्यशक्रःप्रहर्षितः ॥ भूपालन्तंसमभ्येत्यततश्चोवाचसादरम् ॥ २ ॥ अत्यद्भुततरंकर्म्मत्वयैतत्पृथिवीपते ॥ संसाधितम्परंयेनमनसापिनचिन्त्यते ॥ ३ ॥ अतएवहिसन्तुष्टस्सञ्जातोद्यतवोपरि ॥ वरंमत्तोगृहाणाद्ययदभीष्टंहृदिस्थितम् ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ त्वयासहसुरश्रेष्ठमैत्रींसम्प्रार्थयाम्यहम् ॥ शाश्वतींसर्वकृत्येषुपरमांलोकसंस्थिताम् ॥ ५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्रत्वयासहसदामम ॥ सम्पत्स्यतेसदामैत्रीवसोरिवचशाश्वती ॥ ६ ॥ त्वया सदैवमेपार्श्वंसन्ध्यायान्देवसन्निधौ ॥ आगन्तव्यंविशेषेणयेनमैत्रीप्रवर्द्धते ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षोजगामत्रिदशालयम् ॥ राजापिचागतोहर्म्यंस्वकीयंहर्षसंयुतः ॥ ८ ॥ रक्षयित्वाजगत्सर्वंशनैश्चरकृताद्भयात् ॥ अयोध्यांप्राप्यसत्कीर्तिंस्तूयमानस्स्ववन्दिभिः ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिनित्यंससन्ध्याकालउपस्थिते ॥ सायाह्नंसंविधायाथयातिशक्रस्यमन्दिर

समस्त कार्य्यों में सदैववाली उत्तम मैत्रीको मांगताहूं जोकि संसार में भलीभांति स्थित होवै ॥ ५ ॥ इन्द्र बोले कि हे नृपेन्द्र ! ऐसाही होगा वसुके समान मेरी निरन्तर वाली मैत्री तुम्हारे साथ सदैव भलीभांति प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ हे देवि ! सन्ध्यासमय में सदैव तुमको विशेषकर मेरे समीप आना चाहिये कि जिससे मित्रता बढ़ती है ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर हजार नेत्रवाले इन्द्रजी स्वर्ग को चलेगये व हर्षसंयुत होतेहुये नृपतिभी अपने घर को चलेआये ॥ ८ ॥ सब संसार को शनैश्चर से कीहुई भयसे बचाकर अयोध्यापुरी में उत्तम यशको पाकर निज वन्दीजनों से स्तुति कियेगये ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर नित्यही सन्ध्या समय समीप प्राप्तहोनेपर वे दशरथजी सन्ध्यो-

पासन कर्मको भलीभांतिकर अनन्तर इन्द्रके मन्दिरको जातेथे ॥ १० ॥ वहांपर बैठकर देरतक गन्धर्वों के मनोहर गीतको सुनकर व तालादिक से कियेहुये सुखदायक नाचको देखकर ॥ ११ ॥ व देवर्षियों के मुखसे निकलीहुई विचित्र अर्थवाली कथाओं को सुनकर व आपभी कहकर अपने मन्दिरको जातेथे ॥ १२ ॥ हंस,मयूरों से शब्दायमान व मनोहर ध्वजाओंसे सबओर अलंकृतवाले उत्तम विमानपै चढ़ेहुये जब जब वे दशरथ जी इन्द्रके स्थानसे अपने घरको जातेथे तब तब सदैव उन इन्द्रके आमनपै इन्द्रकी आज्ञासे छिरकाव किया जाताथा ॥ १३ । १४ ॥ उस समय वह भूप किसीभांति नहीं जानताथा अन्य दिन में उन्हीं दशरथके घरमें आयेहुये

म् ॥ १० ॥ तत्रस्थित्वाचिरंश्रुत्वागन्धर्वाणांमनोहरम् ॥ गीतंदृष्ट्वाथनृत्यञ्चतालादिविहितंशुभम् ॥ ११ ॥ विचित्रार्थाःकथाःश्रुत्वादेवर्षीणांमुखाच्च्युताः ॥स्वयञ्चकीर्तयित्वाचप्रयातिनिजमन्दिरम् ॥ १२॥ विमानवरमारूढोहंसबर्हिणनादितम् ॥ मनोहरपताकाभिःसमन्ताच्चविभूषितम् ॥१३॥ यदायदासनिर्यातिशक्रस्थानान्निजालयम् ॥ तदातदासनेतस्यक्रियतेभ्युक्षणंसदा ॥ १४ ॥ शक्रादेशात्तथावेत्तिनसभूपःकथञ्चन ॥ अन्यस्मिन्दिवसेतस्यनारदोमुनिसत्तमः ॥ १५ ॥ कथयामासतत्सर्वमभ्युक्षणसमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तन्तस्यराजर्षेस्तस्यैवगृहमागतः ॥ १६ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेनविद्वेषपरिवृद्धये॥तच्छ्रुत्वानारदेनोक्तंश्रद्धेयमपिभूपतिः ॥ १७ ॥ नचक्रेहृदयेऽधर्म्ममात्मानंपरिचिन्तयन् ॥ तथापिकौतुकाविष्टोगत्वाशक्रनिवेशनम् ॥ १८ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेस्थित्वाचिरन्तत्रचसंस्थितः॥अनन्तंवीक्षयामासस्वासनन्दूरमास्थितः ॥ १९॥ किञ्चित्सत्वन्तरम्प्राप्यकौतूहलसमन्वितः ॥ ततःशक्रसमादेशादुत्थायसुरकिङ्करः॥ २०॥

मुनिनायक नारद जीने तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उन इन्द्र जीके प्रोक्षण से उपजेहुये उस समस्त वृत्तान्तको वैर बढ़ने के लिये उन दशरथ राजर्षिसे कहा श्रद्धाके योग्य भी नारदसे कहेहुये उस वचनको सुनकर भूपतिने ॥ १५ । १६ । १७ ॥ आत्मा (विश्वव्यापक) को सबओर से चिन्तन करतेहुये चित्तमें अधर्मको न किया तिस परभी कौतुकमें व्याप्त होताहुआ वह अन्य दिनमें इन्द्रके स्थान को जाकर वहां बहुत देरतक बैठकर भलीभांति स्थितहुआ और किसी छिद्रको पाकर कौतुक से संयुत

व दूर टिकेहुये उस भूपने परोक्ष में निज आसन को देखा उसके उपरान्त इन्द्रकी आज्ञासे सुरसेवक ने उठकर ॥ १८ । १९ । २० ॥ भूपके उस आसनको जलसे प्रोक्षण किया याने धोया उसको देखकर क्रोधसंयुत होताहुआ वह नृप इन्द्रके समीपजाकर बोला ॥ २१ ॥ कि हे इन्द्र ! यह क्याहै कि जो मेरा आसन धोयाजाता है क्या मैंने ब्राह्मणों को माराहै अथवा क्या द्विजसे उपजीहुई किसी आज्ञाको लोप किया है या ब्राह्मणों की निन्दा कियाहै अथवा युद्ध में भलीभांति आयेहुये वैरियों को देखकर मैं भगाहूं ॥ २२ । २३ ॥ या उन शत्रुओं के भयभीत चित्तवाले मैंने दीन वचन कहाहै या हे इन्द्र ! मेरी राज्य में बड़े बलिष्ठ नरोंसे दुर्बल पीडित होता

प्रोक्षयामासतोयेनपार्थिवस्यतदासनम् ॥ तद्दृष्ट्वाकोपसम्पन्नः सराजाभ्येत्यवासवम् ॥ २१ ॥ प्रोवाचकिमिदंशक्र
प्रोक्ष्यतेयन्ममासनम् ॥ किंमयानिहताविप्राःकिंवाविप्रसमुद्भवम् ॥ २२ ॥ शासनंलोपितंकिञ्चित्किंवाविप्राविनिन्दि
ताः ॥ किंवानष्टोस्मिसंग्रामेदृष्ट्वाशत्रून्समागतान् ॥ २३ ॥ दैन्यंवाजल्पितन्तेषांभयत्रस्तेनचेतसा ॥ ममराज्येऽथवा
शक्रदुर्बलोबलवत्तरैः ॥ २४ ॥ पीड्यतेवाऽथचौराद्यैर्मुष्यतेवञ्चकैस्तथा ॥ किंवाराज्येमदीयेचजायतेयोनिविप्लवः ॥
सङ्करोवाथवर्णानांपरित्यक्तोविधानतः ॥ २५ ॥ किंवादुर्जनवाक्येनदूषितोदोषवर्जितः ॥ बाध्यतेममराज्येचक्के
नचित्त्रिदशेश्वर ॥ २६ ॥ किंवाचौरोथपापोवागृहीतोदोषवान्स्वयम् ॥ मुच्यतेद्रव्यलोभेनतथान्योवाजुगुप्सि
तः ॥ २७ ॥ कच्चिन्मयापरित्यक्तःकोप्यत्रशरणङ्गतः ॥ भयत्रस्तोविभीतेनप्राणानांत्रिदशाधिप ॥ २८ ॥ कस्यवापृष्ठ
मांसानिभक्षितानिमयाक्वचित् ॥ कच्चित्त्रिदशाधीशब्राह्मणस्यविशेषतः ॥ २९ ॥ किंवादानंमयादत्त्वाब्राह्मणाय

है अथवा चौरादिक व छली मनुष्यों से चोरी कीजाती है अथवा क्या मेरी राज्यमें योनिविप्लव याने जातियों में भ्रष्टता होतीहै याने नहीं अथवा विधिसे त्याग किया हुआ क्या वर्णसङ्कर होता है ॥ २४ । २५ ॥ अथवा हे सुरनायक ! क्या मेरे राज्यमें दुर्जन से दूषित होताहुआ दोषरहित पुरुष किसी से क्लेशित होताहै॥२६॥अथवा ग्रहण कियाहुआ आपही दोषवाला या चोर अथवा पापी या अपर निन्दित पुरुष क्या द्रव्यके लालचसे छोडदिया जाताहै ॥ २७ ॥ अथवा हे सुराधीश ! इस संसार में क्या प्राणों के भय से रहित मैंने भयभीत किसी भी शरणागत को परित्याग कियाहै ॥ २८ ॥ व हे देवनायक ! कहींपर किसी मनुष्यके व विशेष कर ब्राह्मणके पृष्ठ

मांसों का मैंने कभी भक्षण कियाहै ॥ २९ ॥ या मैंने महात्मा ब्राह्मणके लिये दानको देकर क्या पीछे पश्चात्ताप कियाहै या मैंने दिये हुये पदार्थ की अपेक्षा (लेने
की इच्छा) कियाहै ॥ ३० ॥ अथवा मेरे राज्यमें दिन या रात्रिको सब ओर से दुःखित व दीन मनुष्यों के अश्रुपात होते हैं ॥ ३१ ॥ अथवा हे सुरेश ! मेरे घर में
देवताओं व पितरों काभी कर्म क्या लोपको प्राप्त होताहै या विधि से हीन कियाजाता है ॥ ३२ ॥ जिस लिये कि तुमसे मुझ भूपति के आसन का प्रोक्षण नित्यही
किया जाताहै उसी कारण मैंने जिस पापको कियाहै उसको कहिये ॥ ३३ ॥ इन्द्र बोले कि हे महाराज ! तुम्हारे शरीर में पातक नहीं है ॥ ३४ ॥ और राज्य में व

महात्मने ॥ पश्चात्तापःकृतःपश्चाद्दत्तंवापेक्षितंमया ॥ ३० ॥ किंवाराज्येमदीयेचदीनानांप्रपतन्तिच ॥ अश्रुपातादि
वारात्रौदुःखितानांसमन्ततः ॥ ३१ ॥ दैवंवापैतृकंवापिकिंवाकर्म्मगृहेमम ॥ लोपङ्गच्छतिदेवेन्द्रक्रियतेवाविधिच्युत
म् ॥ ३२ ॥ यत्त्वयाभूपतेर्नित्यन्तोयैरभ्युक्षणंमम ॥ आसनस्यकृतंब्रूयायत्पापंविहितंमया ॥ ३३ ॥ इन्द्रउवाच ॥
नविद्यतेमहाराजशरीरेतवपातकम् ॥ ३४ ॥ नराष्ट्रेचकुलेगेहेभृत्यवर्गेविशेषतः ॥ परंशृणुप्रवक्ष्यामियत्तेपापंभविष्य
ति ॥ ३५ ॥ तेनसम्प्रोक्ष्यतेचैवआसनंसर्वदैवतु ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्तिनचस्वर्गंप्रपद्यते ॥ ३६ ॥ पैतृकेप्यसमापन्नः स
क्षणेनसदानृप ॥ द्वेष्यतांयातिदेवानांपितॄणाञ्चविशेषतः॥ ३७ ॥ यदापश्यतिपुत्रस्यवदनंपुरुषोनृप ॥ सोनृणयंसमवा
प्नोतिपितॄणाञ्चतदाध्रुवम् ॥ ३८ ॥ सत्वन्नैवगतोराजन्नानृण्यंयन्मयोदितम् ॥ पितॄणान्तेनतेनित्यमासनेऽभ्युक्षणंकृ
तम् ॥ ३९ ॥ तस्माद्यतस्वपुत्रार्थंयदीच्छसिपराङ्गतिम् ॥ आत्मानन्नरकात्त्रातुंपुंसंज्ञाच्चतथानृप ॥ ४० ॥ एवमुक्तःस

कुल में व घरमें व विशेष कर सेवक समूहमें पाप नहींहै परन्तु जो पातक तुम्हारे होगा उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ ३५ ॥ उसी से सदैवही आसन धोया जाता है
हे नृप ! पुत्रहीन पुरुषकी गति नहीं है और न स्वर्ग को प्राप्त होताहै और वह पुरुष सदैव हर्ष से पितरों के कर्म में परिपूर्ण नहीं होताहै व देवताओं तथा विशेषकर पितरों
की शत्रुता को प्राप्त होता है॥ ३६ । ३७ ॥ हे नृप ! जिस समय पुरुष पुत्र के मुखको देखताहै उसी समय वह निश्चय कर पितरों की उऋणता को भलीभांति प्राप्त
होताहै ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो मैंने कहा है उस पितरों की उऋणताको सो तुम नहीं प्राप्त हुये हो उसी से सदैव आसन में प्रोक्षण किया गयाहै ॥ ३९ ॥ इस लिये

हे नृप ! यदि तुम उत्तम गति को व जीवात्माको पुन्नामक नरकसे रक्षा करनेके लिये चाहतेहो तो पुत्रके निमित्त यत्न करो ॥ ४० ॥ उस समय इस प्रकार इन्द्रजी से कहेहुये राजादशरथजी पुत्रके लिये लज्जा के कारण बड़े दुःखसे संयुत हुये ॥ ४१ ॥ व उसी समय उन दशरथ जी ने पुत्र पैदा होनेवाले यज्ञको किया उस यज्ञ से जेठीरानी कौसल्याने उत्तम धर्मवान् रामचन्द्र नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥४२॥ व उन दशरथ भूपकी जो कैकयी नामक छोटीरानीथी उसके भरत नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥४३॥ वैसेही उन दशरथ की जो सुमित्रा नामक अपर मध्यमा स्त्री टिकीहुईथी उस के बड़े बलिष्ठ लषणलाल व शत्रुघ्नजी पैदाहुये ॥ ४४ ॥ व उत्तम वर्णवाली

शक्रेणराजादशरथस्तदा ॥ दुःखेनमहतायुक्तोतनयार्थन्तुलज्जया ॥ ४१ ॥ वशिष्ठेनसवैचक्रेपुत्रेष्टिन्तेनवैतदा ॥ ज्ये
ष्ठाप्रासूतकौसल्यारामंपुत्रंसुधार्म्मिकम् ॥ ४२ ॥ कैकयीनामभूपस्यतस्यभार्य्याकनिष्ठिका ॥ भरतोनामविख्यातस्त
स्याःपुत्रोभवत्तथा ॥ ४३ ॥ सुमित्राख्यातथाचान्यापत्नीयामध्यमास्थिता ॥ शत्रुघ्नलक्ष्मणौपुत्रौतस्याजातौमहाबलौ ॥
४४ ॥ तथान्याकन्यकाचैकाबभूववरवर्णिनी ॥ दत्तायापुत्रहीनस्यलोमपादस्यभूपतेः ॥ ४५ ॥ आनृण्यंभूपतिःप्राप्य
एवंदशरथस्तदा ॥ पितॄणांप्रययौस्वर्गंकृतकृत्यस्तथाद्विजाः ॥ ४६ ॥ अथराजाभवद्रामस्सार्वभौमस्ततःपरम् ॥ रा
वणोयेनदुर्द्धर्षोनिहतोदेवकण्टकः ॥ ४७ ॥ येनरामेश्वरश्चात्रनिर्मितोलक्ष्मणेश्वरः ॥ सीतादेवीतथामूर्तायेनचात्रप्रति
ष्ठिता ॥४८॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेराजवापीमाहात्म्यंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

और एक कन्याहुई है जोकि पुत्रसे रहित लोमपाद भूपति को दीगई है ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय इस प्रकार दशरथ भूपजी पितरों की उऋणता को पाकर कृतार्थ होते हुये स्वर्गको चलेगये ॥ ४६ ॥ और तदनन्तर रामचन्द्र जी चक्रवर्तीराजा हुये जिनने देवताओं के कण्टकरूप अतिउद्भट रावणको मारा है ॥ ४७ ॥ व जिनने यहांपर रामेश्वर व लक्ष्मणेश्वर का निर्माण कियाहै वैसेही यहांपर मूर्तिमती सीता देवीकी स्थापना किया है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजवापीमाहात्म्यंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । देवदूत जिमि रामसों कीन बतकही आय । कह छनबे अध्याय में सो चरित्र सुखदाय ॥ ऋषिलोग बोले कि जो आपने यह कहा है कि उन रामचन्द्र जी ने वहांपर रामेश्वर व सीता जीका निर्माण कियाहै उसमें सन्देह है ॥ १ ॥ वैसेही रामचन्द्र जीने लक्ष्मण के लिये लक्ष्मणेश्वर का निर्माण कियाहै उससे सन्देह है क्योंकि यह तुम्हारा समस्त वचन अतिविरोधवाला जान पड़ताहै ॥ २ ॥ हे सूतजी ! पहले जो तुमने कहाहै कि वनको चलेहुये रामचन्द्रजी साहित वे लषणलाल जी सीता समेत इस वनमें प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ व तुमने कहाहै कि जब श्राद्धको कर लक्ष्मण जीसे रामचन्द्र अपमानितहुये व उन लक्ष्मण जीके ऊपर क्रोधसंयुत होकर उन्हों

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तन्तत्ररामेणनिर्मितः ॥ रामेश्वरस्तथासीतातेनतत्रतुसंशयः ॥ १ ॥ तथाचलक्ष्मणा
र्थायनिर्म्मितस्तेनसंशयः ॥ एतन्महद्विरुद्धन्तेप्रतिभातिवचोखिलम् ॥ २ ॥ त्वयासूतपुराप्रोक्तंयत्सरामेणसंयुतः ॥ सी
तयासहितःप्राप्तःक्षेत्रेऽत्रप्रस्थितोवनम् ॥ ३ ॥ श्राद्धंकृत्वागयाशीर्षेलक्ष्मणेनविमानितः ॥ पुनःकृतन्तपोरण्येक्रोधा
विष्टश्चतंप्रति ॥ ४ ॥ ॥ यत्त्वयोक्तन्तदातेननिर्म्मितोऽत्रमहेश्वरः ॥ सूतउवाच ॥ अत्रमेनास्तिसन्देहोयुष्माकंचपुनः
स्थितः ॥ ५ ॥ ततोवक्ष्याम्यशेषेणश्रूयतान्द्विजसत्तमाः ॥ एतत्क्षेत्रयुतश्चायंकोपःपापंनकुत्रचित् ॥ ६ ॥ अन्यस्मि
न्दिवसेप्राप्तेसतदारघुनन्दनः ॥ यदाविरोधमापन्नःसार्द्धसौमित्रिणासह ॥ ७ ॥ एतत्क्षेत्रंपुनःप्राप्यचात्रतेनप्रतिष्ठितः ॥
रामेश्वरस्स्वयम्भक्त्यादुःखितेनमहात्मना ॥ ८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेतत्रकस्मिन्कालेरघूत्तमः ॥ सम्प्रा.

ने वनमें फिर तपस्या किया है तब यहांपर उन रामचन्द्रजी ने महादेव जीका निर्माण कियाहै सूतजी बोले कि इसमें मुझको सन्देह नहीहै फिर तुमलोगों के सन्देह स्थित है ॥ ४ । ५ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तमो ! मैं सम्पूर्णता से कहूंगा उसको सुनिये कि इस क्षेत्रसे संयुत यह कोपहै इसलिये कहींपर पाप नहीं होताहै ॥ ६ ॥ वे रामचन्द्रजी जब अन्य दिन प्राप्तहोनेपर लषणलाल जीके साथ वैरको प्राप्तहुये तब ॥ ७ ॥ इस क्षेत्रको पाकर यहांपर उन दुःखित महात्मा रामचन्द्र जीने आपही भक्तिसे रामेश्वर जीका स्थापन कियाहै ॥ ८ ॥ ऋषिलोग बोले कि अन्य दिन में वहांपर रघूत्तम (रघुनाथ) जी किस समय भलीभांति प्राप्तहुये हैं व इनको क्या दुःख उत्पन्न

हुआ है इस चरित को हमलोगों से कहिये ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि कमललोचम रामचन्द्रजीने सीताजीको परित्यागकर तदनन्तर लोककी निन्दासे डरकर राज्यको किया है ॥ १० ॥ और उन महाभाग्यवाले रामचन्द्र जीने यज्ञकी प्रसिद्धि के लिये स्वर्णमयी सीताको करके अन्य स्त्रीको किसी प्रकार न किया ॥ ११ ॥ व उन रघुनाथ जीने दशहजार व दशसौ याने गेरहहज़ारवर्ष ब्रह्मचर्य्य से निष्कण्टक राज्यको किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब गेरहहज़ारवर्ष का अन्त प्राप्तहुआ तब रामचन्द्र जीके मन्दिर में देवदूत भलीभांति आया ॥ १३ ॥ व उसने यह कहा कि सुरराज (इन्द्र) ने मुझको पठायाहै इसलिये तुम मेरेसाथ निर्जन स्थानका

प्तोस्यचकिंदुःखंसञ्जातंनःप्रकीर्तय ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ कृत्वासीतापरित्यागंरामोराजीवलोचनः ॥ लोकापवादसन्त्र स्तस्ततोराज्यञ्चकारह॥१०॥कृत्वास्वर्णमयींसीतांपत्नींयज्ञप्रसिद्धये ॥ नसचक्रेमहाभागोभार्यामन्यांकथञ्चन ॥११॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ ब्रह्मचर्य्येणचक्रेसराज्यंनिहतकण्टकम् ॥ १२ ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेप्राप्तेचैकाद शेद्विजाः ॥ देवदूतस्समायातोरामस्यसदनंप्रति ॥ १३ ॥ तेनोक्तन्देवराजेनप्रेषितोहंतवान्तिके ॥ तस्मात्कुरुसमालोकं विजनन्त्वम्मयासह ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तदातेनदूतेनरघुनन्दनः ॥ परंरहस्समासाद्यमन्त्रञ्चक्रेततःपरम् ॥ १५ ॥ त स्यैवमुपविष्टस्यमन्त्रस्थानेमहात्मनः ॥ ततोबहुत्वाविष्टस्यनरहस्यंप्रजायते ॥ १६ ॥ ततःकोपपरीतात्माद्दूतःप्रोवा चसादरम् ॥ विहस्यजनसंसर्गंदृष्ट्वैकान्तेपिसंस्थितम् ॥ १७ ॥ यथादंष्ट्राच्युतस्सर्पोनागोवामदवर्ज्जितः ॥ आज्ञा हीनस्तथाराजामानवैःपरिभूयते ॥ १८ ॥ कोयंविनारघुश्रेष्ठनाज्ञप्तंप्रतिवेद्यचहम् ॥ शङ्कालापमपित्वंयन्नैकान्तेश्रोतु

समालोकन करिये याने एकान्त में चलिये ॥ १४ ॥ उस समय उस दूत से इस भांति कहे हुये रघुनन्दन जी ने उत्तम एकान्त में प्राप्त होकर तदनन्तर सम्मति किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर बहुत जनोंसे घिरेहुये उन महात्मा रघुनाथजी को इस प्रकार सम्मति करनेके स्थान में बैठते हुये एकान्त नहीं हुआ ॥ १६ ॥ तदनन्तर एकान्त में भी भलीभांति प्राप्तहुये मनुष्यों के संसर्ग को देखकर क्रोध से घिरेहुये मन या चित्तवाले दूतने विहँसकर आदर समेत कहा ॥ १७ ॥ कि जैसे दाढ़ोंसे रहित सर्प व मदसे वर्जित हाथी मनुष्योंसे तिरस्कार किया जाता है वैसेही आज्ञासे रहित राजाका मनुष्य तिरस्कार करते हैं ॥ १८ ॥ हे रघूत्तम ! क्रोधके विना

मैं आज्ञा दीहुई वाक्य को नहीं जानूंगा क्योंकि एकान्त में शङ्कापूर्वक परिभाषणकोभी तुम नहीं सुनने के योग्य हो ॥ १६ ॥ तदनन्तर उस दूतके उस वचन को सुनकर क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाले उन रामचन्द्रजी ने भौंह को तीन शिखावालीकर याने टेढ़ीकर लक्ष्मणजी से कहा ॥ २० ॥ कि हे लक्ष्मण ! यहांपर मुझ को इसके साथ बैठेहुये यदि कोई वार्ताकारी मनुष्य अज्ञानसे आवैगा ॥ २१ ॥ तो निरसन्देह उसको शीघ्रही अपने हाथसे नाश करूंगा यदि यहांपर स्वदृष्टिगोचर में प्राप्तहुये मनुष्य को मैं न मारूं ॥ २२ ॥ तो धर्मवान् जनोंको जो उत्तम गति होतीहै वह मुझको न होवै ऐसा जानकर राजद्वार में प्राप्तहुये तुमको निरसन्देह वैसाही

समात्र
मर्हसि ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकोपसंरक्तलोचनः ॥ त्रिशाखांभ्रुकुटींकृत्वाततःसप्राहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥ स्वहस्तेननसन्देहस्सूदयिष्या
संनिविष्टस्यसहानेनप्रजल्पकः ॥ यदिकश्चिन्नरोमोहादागमिष्यतिलक्ष्मण ॥ २१ ॥ श्रेष्ठाधर्म्मिणांयाप्रपद्यते ॥ एवंज्ञा
मितन्द्धतम् ॥ नहन्मियदिचापन्नमत्रमद्दृष्टिगोचरम् ॥ २२ ॥ तन्माभून्मेगतिः तमोमित्येवसम्प्रोच्यलक्ष्मणश्शु
त्वाप्रपन्नेनत्वयाभाव्यमसंशयम् ॥ २३ ॥ राजद्वारियथाकश्चिन्नमयावध्यतेऽधुना ॥ मन्त्रंशक्रसमा
भलक्षणः ॥ २४ ॥ राजद्वारंसमासाद्यचकारविजनन्ततः ॥ देवदूतोपिरामेणसमंचक्रेततःपरम् ॥ २५ ॥ सचव्यापादितोदुष्टःपापस्त्रै
दिष्टन्तथान्यैस्स्वर्गवासिभिः ॥ दूतउवाच ॥ त्वंरावणविनाशार्थमवतीर्णोधरातले ॥ २६ ॥ तस्मात्सन्तुसनाथास्तेदेवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ यदि
लोक्यकण्टकः ॥ कृतंसर्वमहाभागदेवकृत्यंत्वयाऽधुना ॥ २७ ॥

होना चाहिये जिस प्रकार कि इस समय मुझसे कोई न माराजाय शुभ लक्षणोंवाले लक्ष्मणजीने ऐसाही होगा यह रघुनाथजीसे कहकर ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर राजद्वार को प्राप्त होकर निर्जन स्थान करदिया उसके उपरान्त देवदूतने रामचन्द्र जीके साथ इन्द्र व अन्य स्वर्गवासियों से कही हुई सम्मति को किया दूतने कहा कि रावण के विनाशके लिये तुमने धरातलमें अवतार लियाहै ॥ २५ । २६ ॥ हे महाभाग ! इससमय तुमने उस त्रिलोकके कण्टकरूप पापी व दुष्ट रावण का नाश किया व सम्पूर्ण देवताओंके कार्य्य को किया ॥ २७ ॥ इसलिये उपरोध (घेरने) से नहीं किन्तु यदि तुमको रुचिहो तो जिनके इन्द्र अगाड़ी चलते हैं वे देवता

इस समय सनाथ होवैं ॥ २८ ॥ इस लिये देवताओं के ऊपर प्रसन्नता करिये व अतिनिन्दित मृत्युलोक को छोड़कर शीघ्रही स्वर्गलोकको आइये ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर इसी अवसरमें क्षुधा से संयुत मुनिनायक दुर्वासाजी प्राप्त हुये व बोले-कि ये रघूत्तम (रघुनाथ) जी कहां हैं ॥ ३० ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! यह नृपोत्तम रामचन्द्रजी किसी देवकार्य्यसे आकुलहैं इसलिये जब तक इन्द्रसे उपजेहुये दूतको रामचन्द्रजी समझाते हैं तब तक विनयसे झुकेहुये मेरे ऊपर दयाकरके मुहूर्तभर याने कच्ची दो घड़ी परिपालन करिये याने परखिये ॥ ३१ । ३२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि यदि रामचन्द्र राजा मेरी दृष्टिमें न प्राप्त होवैंगे तो

तेरोचतेरामनोपरोधेनसाम्प्रतम् ॥ २८ ॥ प्रसादंकुरुदेवानांतस्मादागच्छसत्वरम् ॥ स्वर्गलोकम्परित्यक्त्वामर्त्यलोकं मुनिन्दितम् ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोदुर्वासामुनिपुङ्गवः ॥ प्रोवाचाथक्षुधाविष्टःक्वासौरघुसत्तमः ॥ ३० ॥ लक्ष्मणउवाच ॥ व्यग्रोसौपार्थिवश्रेष्ठोदेवकार्य्येणकेनचित् ॥ तस्मादत्रैवविप्रेन्द्रमुहूर्तंपरिपालय ॥ ३१ ॥ यावत्सान्त्वयतेरामोदूतंशक्रसमुद्भवम् ॥ ममोपरिदयांकृत्वाविनयावनतस्यहि ॥ ३२ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ यदियास्यति नोदृष्टिंममराजारघूत्तमः ॥ शापन्दत्त्वाकुलंसर्वन्तद्धक्ष्यामिनसंशयः ॥ ३३ ॥ ममापिदर्शनादन्यन्नकिञ्चिद्विद्यतेध्रुः ॥ कृत्यंलक्ष्मणयावत्त्वमन्यन्मूढप्रकथ्यसे ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणश्चित्तेचिन्तयामासदुःखितः ॥ उवाचदण्डवद्भूमौप्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥ दुर्वासामुनिशार्दूलोदेवतेद्वारितिष्ठति॥ दर्शनार्थंक्षुधाविष्टःकिङ्करोमिप्रशाधिमाम्॥ ३६॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वाततोदूतमुवाचतम्॥गत्वेमम्ब्रूहिदेवेशंममवाक्यादसंशयम् ॥३७॥ अहंसंवत्सरस्यान्तआ

शाप देकर निस्सन्देह समस्त कुलको भस्म करदूंगा ॥ ३३ ॥ क्योंकि हे मूढ़, लक्ष्मण ! जो तुम अन्य कार्य्यको कहते हो वह मेरे भी दर्शन से गरुआ कुछ अन्य कार्य्य निश्चयकर नहीं है ॥ ३४ ॥ उस वचनको सुनकर दुःखित हुये लक्ष्मणजीने चित्त से चिन्तन किया व हाथ जोडे हुये भूमिमें दण्डके समान प्रणामकर कहा ॥ ३५ ॥ कि हे देव ! तुम्हारे दर्शनके लिये क्षुधासे संयुत मुनिनायक दुर्वासाजी द्वारपै खडे हैं मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूं ॥ ३६ ॥ उन लक्ष्मणजीके उस वचन को सुनकर तदनन्तर रामचन्द्रजीने उस दूतसे कहा कि सुरेशके समीप जाकर मेरे वचनसे निस्सन्देह इस वाक्यको कहियेगा ॥ ३७ ॥ कि मैं वर्षके अन्तमें तुम्हारे

समीप आऊंगा ऐसा कहकर व उस दूतको बिदाकर अनन्तर लक्ष्मणजीसे कहा ॥३८॥ कि हे वत्स ! उन दुर्वासा मुनिको तुम शीघ्रही प्रवेश करावो तदनन्तर रामचन्द्र
जी अर्घ, पाद्यको लेकर सामने गये ॥ ३९ ॥ व मंत्रियों से घिरे तथा प्रसन्नमन या चित्तवाले रामचन्द्र देवजी विधिपूर्वक अर्घको देकर व उन दुर्वासा मुनिको बार बार
प्रणामकर ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर रामदेव जी हर्ष के हेतु गद्गदा वाणी से बोले कि हे मुनिसत्तम ! तुम्हारा आना अच्छी तरहसे हुआ व हे मुनिश्रेष्ठ, प्रभो ! अ-
त्यन्त सुखमें प्राप्त मेरी यह राज्य व ये पुत्र व ऐश्वर्य्य तुम्हाराही है उसको मेरे ऊपर प्रसन्नता करके ग्रहण करिये ॥ ४१ । ४२ ॥ मैं धन्यहूं अनुगृहीतहूं जोकि समस्त

गमिष्यामितेऽन्तिकम् ॥ एवमुक्त्वाविसृज्याथतन्दूतम्प्राहलक्ष्मणम् ॥ ३८ ॥ प्रवेशयद्रुतंवत्सतंत्वन्दुर्वाससंमुनिम् ॥
ततश्चार्घञ्चपाद्यञ्चगृहीत्वासंमुखोययौ ॥ ३९ ॥ रामदेवःप्रहृष्टात्मासचिवैःपरिवारितः ॥ दत्त्वाऽर्घंविधिवत्तस्यप्रणिपत्य
मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ प्रोवाचरामदेवोथहर्षगद्गदयागिरा ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठभूयःसुखगतञ्चमे ॥ ४१ ॥ एतद्राज्यममी
पुत्राविभवश्चतवप्रभो ॥ कृत्वाममप्रसादञ्चगृहाणमुनिसत्तम ॥ ४२ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियत्त्वंमेगृहमागतः ॥ पू
ज्योलोकत्रयस्यापिनिःशेषतपसांनिधिः ॥४३॥ मुनिरुवाच ॥ चातुर्मास्यव्रतंकृत्वानिराहारोरघूत्तम ॥ अद्यतेभवनम्प्राप्त
आहारार्थंबुभुक्षितः ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वंयच्छमेशीघ्रम्भोजनंरघुनन्दन ॥ नान्यत्तुकारणंकिञ्चित्सन्न्यस्तस्यधनादि
ना ॥ ४५ ॥ ततस्तम्भोजयामासश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ स्वयमेवाग्रतःस्थित्वामिष्टान्नैर्भोजनैःशुभैः ॥४६॥ लेह्यैश्चोष्यैस्त
थाचर्व्यैस्स्वाद्यैरेवपृथग्विधैः ॥ यावदिच्छामुनेस्तस्यतथाऽन्यैर्विविधैरपि ॥ ४७ ॥ इति षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

तपस्याओं के निधान व त्रिलोक के भी पूजनीय तुम मेरे घरको आयेहो ॥ ४३ ॥ दुर्वासा मुनि बोले कि हे रघूत्तम ! चौमासे के व्रतको कर निराहार व क्षुधित मैं भो-
जन के लिये आज तुम्हारे घरमें प्राप्तहुआहूं ॥ ४४ ॥ इसलिये हे रघुनन्दनजी ! मुझको शीघ्रही भोजन दीजिये संन्यासी पुरुषको धनादिक से और कुछ कारण नहीं
होताहै ॥४५॥ तदनन्तर उन रामचन्द्रजीने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके आपही अगाड़ी बैठकर उन मुनिकी इच्छा पूर्णतक सुखदायक मिष्टान्न भोजनोंसे व चाटनेवाले,
चूसनेवाले व अनेक प्रकारके स्वादिष्ठ चबानेवाले व अन्यभी विविध प्रकारके भोजनोंसे उन दुर्वासा मुनिको तृप्तकिया ॥ ४६ । ४७ ॥ इति षण्णवतितमोध्यायः ॥ ९६ ॥

दो० । गये सदन सुग्रीव के रामचन्द्र जगदीश । सत्तनबे अध्याय में बरणत सोइ मुनीश ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार इच्छासे राम जीके घरमें भोजनकर वे दुर्वासा मुनि आशीर्वाद को देकर पश्चात् राघवजीसे पूंछकर चलेगये ॥ १ ॥ इसके अनन्तर जब वे दुर्वासा मुनि उन रामचन्द्र जीके समीपसे चलेगये तब लक्ष्मणजी ने तलवार को लेकर रामदेव जीसे कहा ॥ २ ॥ हे प्रभो ! इस खड्ग को लेकर मुझको मारिये कि जिससे जो तुमने पहले प्रतिज्ञा कियाहै वह वचन सत्य होवै ॥ ३ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र जीने अपनीही कीहुई प्रतिज्ञा को देरतक स्मरणकर उसके उपरान्त दुःखित अन्तःकरण से समीप बैठेहुये पुरुष (लक्ष्मण) जीके मारनेके लिये

सूतउवाच ॥ एवंभुक्त्वासविप्रर्षिर्वाञ्छयाराममन्दिरे ॥ दत्ताशीर्निर्गतःपश्चादामन्त्र्यरघुनन्दनम् ॥ १ ॥ अथयाते मुनौतस्मिन्दुर्वाससितदन्तिकात् ॥ लक्ष्मणःखड्गमादायरामदेवमुवाचह ॥ २ ॥ एतत्खड्गंगृहीत्वातुमांप्रभोविनिपातय ॥ येनतेस्याद्दृतंवाक्यम्प्रतिज्ञातञ्चयत्पुरा ॥ ३ ॥ ततोरामश्चिरात्स्मृत्वाप्रतिज्ञाञ्चस्वयंकृताम् ॥ वधार्थंसंप्रविष्टस्यसमीपेपुरुषस्यच ॥ ४ ॥ ततोविचिन्तयामासव्याकुलेनान्तरात्मना ॥ जलव्याकुलनेत्रश्चनिःश्वसन्पन्नगोयथा ॥ ५ ॥ तन्दीनवदनंदृष्ट्वानिःश्वसन्तंमुहुर्मुहुः ॥ ततःप्रोवाचसौमित्रिर्विनयावनतःस्थितः ॥ ६ ॥ एषएवपरोधर्म्मोभूपतीनांविशेषतः ॥ यथात्मीयंवचस्तथ्यंक्रियतेनिर्विकल्पितम् ॥७॥ तस्मात्त्वयाप्रभोप्रोक्तंस्वयमेवमृषायतः ॥ तस्यैवदेवदूतस्यवाक्यवादेनकोपतः ॥ ८ ॥ यस्त्वागच्छतिसौमित्रेममदूतस्यसन्निधौ ॥ तञ्चेद्धन्मिस्वहस्तेननाहन्तस्मात्तुपापकृत् ॥ ९ ॥ यदहञ्चागतस्तातभयाद्दुर्वाससोमुनेः ॥ निषिद्धोपित्वयाऽतीवतस्माच्छीघ्रन्तुघातय ॥ १० ॥ ततःसं

चिन्तन किया जो रामचन्द्रजी कि जलसे विकल नयनवाले व सर्पके समान श्वास ले रहेथे ॥ ४ । ५ ॥ तदनन्तर बार बार श्वास लेतेहुये व दीनमुखवाले रघुनाथ जीको देखकर विनयसे नीचेनये खड़ेहुये लक्ष्मण जी बोले ॥ ६ ॥ कि जिसप्रकार विकल्परहित अपने वचन सत्य कियेजाते हैं यही विशेषता से भूपोंका परम धर्म है ॥७॥ जिसलिये कि उसी देवदूतकी बतकहीसे क्रोधके द्वारा जो आपही तुमने कहाहै वह उसी कारण असत्य होवैगा ॥ ८ ॥ कि हे सौमित्रे,लक्ष्मण ! मेरे व दूतके समीप जो आवैगा उसको यदि मैं अपने हाथसे मारूं तो उस वधसे पापकारी न हूंगा ॥ ९ ॥ हे तात ! जिसलिये कि तुमसे अत्यन्तही मना कियाहुआ भी मैं दुर्वासा

मुनि के डरसे आयाहूं उसी कारण शीघ्रही मारिये ॥ १० ॥ तदनन्तर बार बार श्वास लेतेहुये व आंसुओं से आर्द्रतासंयुत रामचन्द्र नृपने धर्मशास्त्रके जाननेवाले व
वेदों के पारङ्गत अन्य मन्त्रियों समेत बहुत समय तक सम्मतिकर पश्चात् नम्रतासे नये खड़े हुये लक्ष्मणजीसे गद्गदा वाणीसे कहा ॥ ११ । १२ ॥ कि हे लक्ष्मण !
मुझसे छोड़ेहुये तुम शीघ्रही अन्य देशको जावो क्योंकि उत्तम जनोंका त्याग अथवा वध दोनों बराबर हैं ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण ! फिर न मुझको दर्शन करना चाहिये और
न तुमको देखना चाहिये तदनन्तर ये लक्ष्मण जी अपने घर में मातासे व स्त्रीसे या पुत्रसे या किसी मित्रसे सम्मतिको न करके भी सरयू जीके समीप जाकर व उसके

प्रोवाचलक्ष्मणंपश्चाद्विनयाव

मन्त्र्यसुचिरंमन्त्रिभिस्सहितोनृपः ॥ ब्राह्मणैर्द्धर्म्मशास्त्रज्ञैस्तथाऽन्यैर्वेदपारगैः ॥ ११ ॥ प्रोवाचलक्ष्मणंपश्चाद्विनयाव
नतंस्थितम् ॥ बाष्पक्लिन्नयुतोरामोगद्गदन्निःश्वसन्मुहुः ॥ १२ ॥ व्रजलक्ष्मणमुक्तस्त्वंमयादेशान्तरंद्रुतम् ॥ त्यागोवा
थवधोवाथसाधूनामुभयंसमम् ॥ १३ ॥ नमयादर्शनंभूयस्त्वयाकार्य्यञ्चलक्ष्मण ॥ अकृत्वाऽपिसमाम्नायङ्केनचिन्निजम
न्दिरे ॥ १४ ॥ मात्रावाभार्ययावाथसुतेनसुहृदेनवा ॥ ततोसौसरयूङ्गत्वाअवगाह्यचतज्जलम् ॥ १५ ॥ शुचिर्भूत्वानि
विष्टोथतत्तीरेविजनेशुभे ॥ पद्मासनंविधायाथन्यस्यात्मानन्तथात्मनि ॥ १६ ॥ ब्रह्मद्वारेणतत्पश्चात्तेजोरूपंव्यसर्ज्जय
त् ॥ अथतद्राघवोदृष्ट्वामहातेजोवियद्गतम् ॥ १७ ॥ विस्मयेनसमायुक्तश्चिन्तयन्किमिदन्ततः ॥ अथप्राणेपरित्यक्तेते
जसातेनतत्क्षणात् ॥ १८ ॥ वैष्णवेनानुरागेणभावेनद्विजसत्तमाः ॥ पपातभूतलेकायंकाष्ठलोष्टोपमन्द्रुतम् ॥ १९ ॥ लक्ष्म
णस्यगतश्रीकंसरय्वाःपुलिनेशुभे ॥ ततस्तुराघवःश्रुत्वालक्ष्मणङ्गतजीवितम् ॥ २० ॥ पतितंसरितस्तीरेविललापसुदुः

किनारेपै कमलासन को कर व परमात्मा में जीवात्मा को न्यासकर बैठ
जलमें नहाकर ॥ १४ । १५ ॥ इसके अनन्तर पवित्र होकर सुखदायक व निर्जन उस सरयूके किनारेपै कमलासन को कर व परमात्मा में जीवात्मा को न्यासकर बैठ
गये ॥ १६ ॥ उसके पीछे ब्रह्मद्वार से तेजरूपवाले जीवात्मा को त्यागकिया अनन्तर रघुनाथजी आकाश में गयेहुये उस बड़े भारी तेजको देखकर ॥ १७ ॥ तदनन्तर
यह क्या है इसको चिन्तन करतेहुये आश्चर्य्य से संयुत हुये इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब विष्णु में स्नेहरूपी भक्तिसे उस तेजसे प्राणोंको परित्याग किया तब
उसी क्षण शीघ्रही सरयू जीके सुखदायक किनारेपै पृथ्वीमें काठ व ढेलाके समान व शोभारहित लक्ष्मण जीका शरीर गिरपड़ा तदनन्तर रामचन्द्र जीने जीवन से

रहित सरयू के किनारे पड़ेहुये लक्ष्मणजीको सुनकर बहुत दुःखितहो विलाप किया व मित्रजन सहित तथा मंत्रियों समेत रामचन्द्रजीने उनको उद्देशकर आपही जाकर ॥ १८ । १९ । २० । २१ ॥ व गिरेहुये लक्ष्मण को देखकर करुणापूर्वक विलाप किया कि हे वत्स ! सदैव तुम्हारे मतमें स्थित व प्राणके समान प्रिय मुझ उत्तम बन्धुको छोड़कर क्या तुमने स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥ २२ ॥ व भलीभांति धारितहुये भी तुमने पुरसे उस महावन मेंभी जातेहुये मेरे पीछे सदैव गमन किया ॥ २३ ॥ व अत्यन्तही बलिष्ठ राक्षसोंके घोर युद्धमें भी भयानक सन्ध्यासमय में तुमने स्त्री समेत मुझको किसप्रकार रक्षण कियाहै ॥ २४ ॥ जिसने युद्धमें वैसे रूपवाले मेघनाद

खितः ॥ स्वयङ्गत्वातमुद्देशंसामात्यःससुहृज्जनः ॥ २१ ॥ लक्ष्मणम्पतितंदृष्ट्वाकरुणंपर्य्यदेवयत् ॥ हावत्समांपरित्यज्यकिन्त्वंसंप्रस्थितोदिवम् ॥ प्राणेष्टंभ्रातरंश्रेष्ठंसदातवमतेस्थितम् ॥२२॥ तस्मिन्नपिमहारण्येगच्छमानःपुरादहम् ॥ अपिसंधार्य्यमाणेनअनुयातस्त्वयासदा ॥ २३ ॥ संग्रामेऽपिकथंघोरेराक्षसेबलवत्तरे ॥ त्वयारात्रिमुखेघोरेसभार्य्योहंप्ररक्षितः ॥ २४ ॥ येनेन्द्रजिद्धतोयुद्धेतादृग्रूपोनिशाचरः ॥ सएषपतितश्शेतेगतासुर्धरणीतले ॥ २५ ॥ येनशूर्पणखाध्वस्ताराक्षसीसाचदारुणा ॥ लीलयापिसमादेशात्सोयमेवंविधःस्थितः ॥ २६ ॥ यद्बाहुबलमाश्रित्यमयाध्वस्तोनिशाचरः ॥ सोयंनिपतितश्शेतेममभ्राताह्यनाथवत् ॥ २७ ॥ हावत्सक्कगतोमान्त्वंविमुच्यभ्रातरंनिजम् ॥ ज्येष्ठम्प्राणसमंकिन्तेस्नेहोयंविगतःक्वचित् ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ एवंबहुविधान्कृत्वाप्रलापान्रघुनन्दनः ॥ मातृभिस्सहितोदीनःशोकेनमहतान्वितः ॥ २९ ॥ ततस्तेमन्त्रिणस्तस्यप्रोचुस्तंवीक्ष्यदुःखितम् ॥ विलपन्तंरघुश्रेष्ठंस्त्रीजनेनसमन्वित

राक्षसको माराहै वही यह प्राणसे रहित होकर पृथ्वीमें पड़े सोतेहैं ॥ २५ ॥ जिसने उस भयङ्कर शूर्पणखा राक्षसीको आज्ञासे खेलके द्वाराही विध्वंस कियाहै वही यह इस प्रकारका होकर स्थित है ॥ २६ ॥ जिसकी भुजाके बलमें आश्रित होकर मैंने निशाचर(रावण) को माराहै वही यह मेरा भाई अनाथ के तुल्य पड़ाहुआ सोताहै ॥२७॥ हा वत्स ! प्राणके समान मुझ अपने बड़े बन्धुको छोड़कर तुम कहां चलेगये क्या तुम्हारा यह स्नेह कहीं जातारहा ॥२८॥ सूतजी बोले कि माताओं समेत दुःखित रघुनन्दन जी ऐसे बहुतप्रकार के विलापोंको करके शोचसे संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर स्त्रीजनों समेत उन दुःखित रघुनन्दन जीको विलाप करतेहुये देखकर उन रामचन्द्रजीके

उन मंत्रियों ने कहा ॥ ३० ॥ मंत्रीलोग बोले कि हे नृपेन्द्र ! जैसे अन्य सामान्य नर स्थितहो वैसेही शोक मत करिये इस समय आज्ञासे प्रेतकर्मको कीजिये क्योंकि खोये हुये पदार्थ को व मरे मनुष्यको जो शोचते हैं वे कुबुद्धिहैं ॥३१।३२॥ हे राजन् ! धीर मनुष्योंको फिर नष्ट पदार्थ नष्ट नहीं है व मराहुआ प्राणी मरा नहीहै याने ज्ञानके द्वारा नष्टवस्तु व मृत मनुष्यको नहीं शोचते हैं उन मंत्रियोंने ऐसा कहकर व उच्च प्रकारसे विलापकर तदनन्तर उन लक्ष्मणजीके शरीरको कपूर अगुरु मिलेहुये चन्दन खस व कुंकुमों से तथा अन्य सुगन्धियों से लेपनकर ॥ ३३ । ३४ ॥ व उत्तम वसनों से लपेटकर और सुन्दर फूलों से भलीभांति भूपितकर व चन्दन, अगुरु

म्॥३०॥ मन्त्रिणऊचुः ॥ माशोकंकुरुराजेन्द्रयथान्यःप्राकृतःस्थितः ॥३१॥ कुरुष्वचसमादेशात्सांप्रतञ्चौर्ध्वदैहिकम् ॥
नष्टंमृतंमनुष्यञ्चयेशोचन्तिकुबुद्धयः ॥ ३२ ॥ धीराणांनपुनाराजन्नष्टंनष्टंमृतंमृतम् ॥ एवन्तेमन्त्रिणःप्रोच्यततस्त
स्यकलेवरम् ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणस्यविलप्योच्चैश्चन्दनोशीरकुङ्कुमैः ॥ कर्पूरागुरुमिश्रैश्चतथाऽन्यैस्सुसुगन्धिभिः ॥ ३४ ॥
परिवेष्ट्यशुभैर्वस्त्रैःपुष्पैस्सम्भूष्यशोभनैः ॥ चन्दनागुरुकाष्ठैश्चचितिंकृत्वासुविस्तृताम् ॥ ३५ ॥ न्यदधुस्तस्यतद्गात्र
न्तत्रदक्षिणादिङ्मुखे ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातंतत्राश्चर्यन्द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ तन्मेनिगदतःसर्वं शृण्वन्तुद्विजसत्तमाः॥
यावद्रामस्समारोप्य चितांतस्यकलेवरम् ॥ ३७ ॥ प्रयच्छतिबहिर्वह्निस्तावन्नष्टङ्कलेवरम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेवाणीनि
र्गतागगनाङ्गणात् ॥ ३८ ॥ नादयन्तीदिशस्सर्वाःपुष्पवर्षादनन्तरम्॥रामराममहाबाहोमात्वंशोकपरोभव॥३९॥नचा
स्ययुज्यतेवह्निर्दातुञ्चैवकथञ्चन ॥ ब्रह्मज्ञानप्रयुक्तस्यसंन्यस्तस्यविशेषतः ॥ ४० ॥ अग्निदाहोनयुक्तःस्यात्सर्वेषामपि

के काष्ठोंसे अतिचौडी चिताको बनाकर उसमें उन लक्ष्मणजीके उस शरीरको दक्षिण दिशाके सम्मुख धरदिया हे द्विजोत्तमो ! वहांपर इसी अवसर में जो आश्चर्य हुआ है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समस्त वृत्तान्तको कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जब तक रामचन्द्रजी उन लक्ष्मणके शरीरको चितामें आरोपणकर बाहर अग्निदेवैं तब तक शरीर अदृश्य होगया इसी अवसरमें फूलोंकी वृष्टिके पीछे समस्त दिशाओंको शब्दायमान करतीहुई आकाशमण्डल से वाणी निकली कि हे महाबाहो, राम, राम ! तुम शोच में तत्पर न होवो ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ क्योंकि ब्रह्मज्ञानसे संयुत व विशेषकर कर्मोंको न्यास कियेहुये इन लक्ष्मणजी को

योगिनाम् ॥ तथाऽयंबान्धवोराम ब्रह्मणस्सदनङ्गतः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मरन्ध्रेणचात्मानं निष्क्रम्यसुमहायशाः॥अथतेमन्त्रिणःप्रोचुस्तच्छ्रुत्वाऽऽकाशगंवचः ॥ ४२ ॥ अशोच्योऽयंमहाराजसंसिद्धिपरमाङ्गतः ॥ लक्ष्मणोगम्यतांशीघ्रंतस्मात्स्वभवनंविभो ॥ ४३ ॥ चिन्त्यतांराजकार्य्याणितथाऽन्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ कुरुस्नेहोचितंतस्य पृष्ट्वाब्राह्मणसत्तमान् ॥ ४४ ॥राजोवाच॥ नाहंगृहंगमिष्यामिलक्ष्मणेनविनाऽधुना॥प्राणानत्रविहास्यामियथातेनमहात्मना ॥ ४५ ॥ एषपुत्रोमयादत्तःकुशाख्योममसंमतः ॥ युष्माभिःक्रियतांराज्येमदीयेयदिरोचते ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाततोरामोगन्तुकामोदिवालयम् ॥ चिन्तयामासभूयोपिस्मृत्वामित्रंविभीषणम् ॥ ४७ ॥ मयातस्यतदादत्तंलङ्कायांराज्यमक्षयम् ॥ बहुभक्तिप्रतुष्टेनयावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ४८ ॥ अतिक्रूरतराणाञ्चराक्षसानांयुतिःपुनः ॥ विशेषाद्वरपुष्टानांजायतेऽत्रधरातले॥ ४९ ॥ तच्चेद्राक्षसभावेनसमहात्माविभीषणः ॥ करिष्यतिसुरैस्सार्द्धंविरोधंरावणोयथा ॥ ५० ॥ तन्देवास्सूदयिष्यन्ति

अग्निदेनेके लिये किसीप्रकारसे योग्य नहीं है ॥ ४० ॥ व समस्तभी योगियों को अग्निदाह योग्य नहीं होवैहै वैसेही हे राम ! ये बड़ेयशस्वी बन्धु (लक्ष्मणजी) ब्रह्मछिद्रके द्वारा जीवात्मा को निकालकर ब्रह्ममन्दिर को चलेगये अनन्तर उन मंत्रियोंने उस आकाशगामी वचनको सुनकर कहा ॥ ४१ । ४२ ॥ कि हे महाराज ! परमसिद्धि को प्राप्त हुये ये लक्ष्मणजी शोचने योग्य नहीं हैं इस लिये हे विभो ! अपने मन्दिर को जाइये ॥ ४३ ॥ व राजकार्य्योंका चिन्तन करिये और स्नेहके योग्य जो उन लक्ष्मणजी का प्रेतकार्य्य है उसको द्विजोत्तमोंसे पूंछकर कीजिये ॥ ४४ ॥ रामचन्द्र राजा बोले कि लक्ष्मणके विना मैं इस समय घरको न जाऊँगा व जैसे उन महात्माने प्राणोंको छोड़ाहै वैसेही यहांपर मैं प्राणोंको त्याग करूंगा ॥ ४५॥ व यदि रुचि होवै तो भलीभांति माने व मुझसे दियेहुये मेरे कुशनामक पुत्रको तुम लोग मेरे राज्यपै करो ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर स्वर्गको जानेके लिये चाहनेवाले रामचन्द्रजीने फिर भी विभीषण मित्रको स्मरणकर चिन्तन किया ॥ ४७ ॥ कि उससमय अत्यन्त भक्तिसे प्रसन्नहुये मैंने चन्द्रमा, सूर्य्य व नक्षत्रोंकी अवधितक लंकामें उस विभीषणको अविनाशी राज्यको दियाहै ॥ ४८ ॥ और इस धरातलमें विशेषकर वरदानसे पुष्ट व अत्यन्तही क्रूर राक्षसोंका फिर योग होगा ॥ ४९ ॥ तो यदि वह महात्मा विभीषण राक्षसके स्वभावसे देवताओंके साथ रावणके नाईं वैर

करैगा ॥ ५० ॥ तो देवता प्रियवचनपूर्वक उपायोंसे उसको नाश करैंगे जिस प्रकार कि त्रिलोकी का कण्टकरूप उसका भाई दशानन नाश हुआ है ॥ ५१ ॥ उसी कारण मेरी वाणी असत्य होगी इसलिये उसके समीप जाकर उसप्रकार मैं उस विभीषणको शिक्षा दूंगा कि जिसप्रकार देवताओंको दूषित न करै ॥ ५२ ॥ वैसेही महाभाग सुग्रीवनामक वानरमेरे दूसरे परममित्र टिकेहैं व अन्य जाम्बवान् हैं ॥ ५३ ॥ और बालिपुत्र (अङ्गद) संयुत व सेवकों समेत पवनपुत्र (हनूमान्जी) हैं व कुमुदनामक वानर व तार तथा अन्यभी वानर हैं ॥ ५४ ॥ उसी कारण उन सबोंसे सम्भाषणकर व आदर समेत सम्मतिकर उसके उपरान्त देवताओंके कार्य्यको किये

उपायैस्सामपूर्वकैः॥ त्रैलोक्यकण्टकोयद्वत्तस्यभ्रातादशाननः ॥ ५१ ॥ ततोमेस्यान्मृषावाणीतस्माद्गत्वातदन्तिकम् ॥ शिक्षांददामितस्याहंयथादेवान्नदूषयेत् ॥ ५२ ॥ तथामेपरमंमित्रन्द्वितीयंवानरस्स्थितः ॥ सुग्रीवाख्योमहाभागो जाम्बवांश्चतथाऽपरः ॥ ५३ ॥ सभृत्योवायुपुत्रश्चबालिपुत्रसमन्वितः ॥ कुमुदाख्यश्चतारश्चतथाऽन्येऽपिचवानराः ॥ ५४ ॥ तस्मात्तानपिसम्भाष्यसर्वान्संमन्त्र्यसादरम् ॥ ततोगच्छामिदेवानांकृतकृत्योगृहम्प्रति ॥ ५५ ॥ एवंसञ्चिन्त्य सुचिरंसमाहूयचपुष्पकम् ॥ तत्राऽऽरुह्ययौतूर्णंकिष्किन्धाख्यांपुरींप्रति ॥ ५६ ॥ अथतेवानराद्दृष्ट्वाप्रद्योतंपुष्पकोद्भवम् ॥ विज्ञायराघवंप्राप्तंसत्वरंसंमुखाययुः ॥ ५७ ॥ ततःप्रणम्यतेदूराज्जानुभ्यामवनिङ्गताः ॥ जयेतिशब्दमाधायमुहुर्मुहुरितस्ततः ॥ ५८ ॥ ततस्तेनैवसंयुक्ताः किष्किन्धान्तांमहापुरीम् ॥ विविशुःसत्पताकाभिस्समन्तात्समलंकृताम् ॥ ५९ ॥ अथोत्तीर्य्यविमानाग्रात्सुग्रीवभवनेशुभे॥ प्रविवेशद्रुतंरामस्सर्वतश्शुचिभूषिते ॥ ६० ॥ तत्ररामंनिविष्टन्ते

हुये मैं घर प्रति जाऊंगा ॥ ५५ ॥ इसप्रकार बहुत कालतक भलीभांति विचारकर व पुष्पक विमानको बुलाकर रामचन्द्रजी उसपै चढ़कर शीघ्रही किष्किन्धा नामक पुरीको गये ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर पुष्पकसे उपजेहुये प्रकाशको देखकर वे वानर रघुनाथजी को प्राप्तहुये जानकर शीघ्रही सामने प्राप्तहुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर घुटुरुओंसे पृथिवीको प्राप्तहोतेहुये उन वानरों ने इधर उधर बार बार जय ऐसा शब्द कहकर व दूरही से प्रणामकर उसके उपरान्त उन रघुनाथजीसे संयुत उत्तम पताकाओं से सब ओर भलीभांति भूपित उस किष्किन्धामहापुरी में प्रवेश किया ॥ ५८ । ५९ ॥ इसके अनन्तर उत्तम विमानसे उतर कर रामचन्द्रजीने सब ओरसे पवित्र वस्तुओंसे

भूषित व शुभदायक सुग्रीवके मन्दिरमें शीघ्रही प्रवेश किया ॥ ६० ॥ उस मन्दिरमें विश्राम किये बैठेहुये रामचन्द्रजीको उन वानरोंने देखकर व अर्घादिकोंसे भली भांति पूजकर उसके उपरान्त पूंछा ॥ ६१ ॥ वानर बोले कि हे रघुनन्दन ! तुम तेजसे परित्यक्त व दुर्बल मुखवाले व अत्यन्तही ऊबेहुये देखपड़ते हो क्या तुम्हारे घरमें कल्याण है ॥ ६२ ॥ हे रघुनाथजी ! वैसेही नित्यही अनुगामी तुम्हारे छोटेभाई लक्ष्मणजी कहां हैं क्योंकि आज तुम्हारे समीप में स्थित नहीं देखपड़ते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! वैसेही प्राणों के समान प्यारी तुम्हारी नारी जानकीजी क्यों नहीं बगल में स्थित देख पड़ती हैं यह हमलोगोंको परमआश्चर्य्य है॥ ६४ ॥ सूतजी बोले कि हे

विश्रान्तंवीक्ष्यवानराः ॥ अर्घादिभिश्चसम्पूज्यपप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ६१ ॥ वानराऊचुः ॥ तेजसात्वंविनिर्मुक्तोदृश्यसे रघुनन्दन ॥ कृशास्योऽतीवचोद्विग्नःकच्चित्त्वेमंगृहेतव ॥ ६२ ॥ कास्तिवाऽनुगतोनित्यन्तथातेलक्ष्मणोऽनुजः ॥ नदृश्यतेसमीपस्थः किमद्यतवराघव ॥ ६३ ॥ तथाप्राणसमाऽभीष्टासीताभार्य्यातवप्रभो ॥ दृश्यतेकिन्नपार्श्वस्थाएतन्नः कौतुकंपरम् ॥ ६४ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाचिरंनिःश्वस्यराघवः ॥ वाष्पपूर्णेक्षणोभूत्वासर्वन्तेषांन्यवेदयत् ॥ ६५ ॥ यथासीतापरित्यक्तायथाभ्रातासलक्ष्मणः ॥ यदर्थंतत्रसम्प्राप्तःस्वयमेवद्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ तच्छ्रुत्वावानरास्सर्वेसुग्रीवप्रमुखास्ततः ॥ रुरुदुस्तेसुदुःखार्तास्समालिङ्ग्यपरस्परम् ॥ ६७ ॥ एवंचिरंप्रलप्योच्चैस्तमूचूरघुसत्तमम् ॥ आदेशोदीयतांराजन्योऽस्माभिरिहसिद्ध्यति ॥ ६८ ॥ धन्यावयंधरापृष्ठेयेषान्त्वंरघुसत्तमः ॥ ईदृक्स्नेहसमायुक्तस्समाग

द्विजोत्तमो ! उन वानरोंके उस वचनको सुनकर रामचन्द्र जीने बहुतकालतक उसांस लेकर व आंसुओंसे पूर्ण नयनवाले होकर जिसप्रकार सीता त्यागीगई व जैसे वे लक्ष्मण जी त्यक्तहुये व जिसलिये वहांपर आपही भलीभांति प्राप्तहुये इस समस्त चरित को उन वानरों से निवेदन किया ॥ ६५ । ६६ ॥ तदनन्तर उस वृत्तान्त को सुनकर अतिदुःखित होतेहुये उन सुग्रीवादिक समस्त वानरोंने आपस में लिपटकर रोदन किया ॥ ६७ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक उच्चप्रकार से विलापकर उन रघूत्तम (रामचन्द्र) जीसे कहा कि हे राजन् ! वह आज्ञा दीजावै कि जो यहांपर हमलोगों से सिद्ध होवै ॥ ६८ ॥ धरातलमें हमलोग धन्यहैं कि जिनके मन्दिर

में ऐसे स्नेहसे संयुत व रघूत्तम तुम भलीभांति आयेहो ॥ ६९ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे सुग्रीव ! तुम्हारे मन्दिरमें मैं एकरात्रि निवासकर तदनन्तर लङ्काको जाऊंगा
जहांपर वह विभीषण है ॥ ७० हे कपिनायक ! दीवान व मन्त्रियों सयुत तुमको भी मेरेसाथ विभीषणके घरको आनाचाहिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे
नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । जाय विभीषणपै यथा शिक्षा दी रघुवीर । अट्ठनवे अध्याय में बरणत सो मतिधीर ॥ इस प्रकार वहांपर उन समस्त वानरों से भक्ति समेत उपासित वे

॥ उषित्वारजनीमेकांसुग्रीवतवमन्दिरे ॥ ततोलङ्काङ्गमिष्यामियत्राऽऽस्तेसवि
च्छ्रसिमन्दिरे ॥ ६९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आगन्तव्यंमयासार्द्धंविभीषणगृहम्प्रति ॥ ७१ ॥ इति श्री
भीषणः ॥ ७० ॥ प्रधानाऽमात्ययुक्तेनत्वयापिकपिसत्तम ॥ हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥
स्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदे ॥ उपास्यमानस्सर्वैस्तैस्सभक्त्यावानरोत्तमैः ॥ १ ॥ ततःप्रभाते
सूतउवाच ॥ एवंतांरजनीन्तत्रसउषित्वारघूत्तमः ॥ सुग्रीवेणसुषेणेनतारेणकुमुदेनच ॥ अङ्ग
विमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ कृत्वाप्राभातिकंकर्म्मसमाहूयाथपुष्पकम् ॥ २ ॥ दशभिर्वानरैस्सार्द्धंसमारूढस्सपुष्प
देनाऽथकुण्डेनवायुपुत्रेणधीमता ॥ ३ ॥ गवाक्षेणनलेनैवतथाजाम्बवताऽपिच ॥ सम्प्राप्तस्तत्क्षणादेवलङ्का
कम् ॥४॥ ततःसंप्रस्थितःकालेलङ्कामुद्दिश्यराघवः ॥ मनोजवेनतेनैवविमानेनसुवर्च्चसा ॥ ५ ॥ रामं
ख्याञ्चमहापुरीम् ॥ वीक्षयंस्तान्प्रदेशांश्चयत्रयुद्धंपुराऽभवत् ॥ ६ ॥ ततोविभीषणोदृष्ट्वाप्रद्योतंपुष्पकोद्भवम् ॥

सूतजी बोले कि तदनन्तर पुष्पक विमानको बुला
रघूत्तम (राम) जी उस रात्रिको बसकर तदनन्तर जब प्रातःकाल में निर्मल सूर्य्यमण्डल उदय हुआ तब प्रातःकालवाले कर्मको कर अनन्तर पुष्पक विमानको बुला
कर ॥ १ । २ ॥ सुग्रीव, सुषेण, तार,कुमुद व अङ्गद, कुण्ड तथा बुद्धिमान् पवनसुत (हनूमान्) व गवाक्ष, नल तथा जाम्बवान् से भी इन दश वानरों समेत वे राम-
चन्द्र जी पुष्पक विमानपै चढ़तेहुये ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर समय में लङ्का को उद्देश कर रघुनाथ जीने उसी उत्तम तेजवाले व मनके समान वेगवाले विमानके द्वारा
प्रस्थान किया ॥ ५ ॥ व पहले जहांपर युद्ध हुआथा उन स्थानोंको दिखलातेहुये उसी क्षणहीं लङ्कानामक महापुरी में भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर पुष्पकसे उपजे

हुये प्रकाशको देखकर प्रसन्न होतेहुये विभीषण रामचन्द्र जीको प्राप्तहुये जानकर समस्त मंत्रियों व सेवकों तथा पुत्रों समेत भी सामने प्राप्तहुये अनन्तर दूरहीसे विभीषण उन रामदेव को देखकर ॥ ७ । ८ ॥ जय शब्दको कहतेहुये भूमिमें दण्डके समान गिरपड़े इसके अनन्तर उन रामचन्द्र जीने आकर व आदर समेत विभीषण को लिपटकर पश्चात् उन्हीं विभीषण के साथ उस लङ्का में प्रवेश किया उस पुरीमें विभीषण के घरमें प्राप्तहोकर उन वानरोंसे सबओर घिरेहुये रामजी सुखदायक सिंहासनपै बैठगये तदनन्तर विभीषण ने राज्य, पुत्र व और भी जो कुछ स्त्री आदिक पदार्थथा वह सब उन रामचन्द्र जीके लिये निवेदन करदिया ॥ ९ । १० । ११ । १२ ॥

विज्ञायसम्प्राप्तंप्रहृष्टस्संमुखोययौ ॥ ७ ॥ मन्त्रिभिस्सकलैस्सार्द्धन्तथाभृत्यैस्सुतैरपि ॥ अथदृष्ट्वासुदूरात्तंरामदेवंविभीषणः ॥ ८ ॥ पपातदण्डवद्भूमौजयशब्दमुदीरयन् ॥ अथाऽऽगत्यपरिष्वज्यसादरंसविभीषणम् ॥ ९ ॥ तेनैवसहितःपश्चाल्लङ्कांतांप्रविवेशह ॥ विभीषणगृहंप्राप्यतत्रसिंहासनेशुभे ॥ १० ॥ निविष्टोवानरैस्तैश्चसमन्तात्परिवारितः ॥ ततोनिवेदयामासतस्मैसर्वंविभीषणः ॥ ११ ॥ राज्यंपुत्रकलत्रादियच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ १२ ॥ ततःप्रोवाचतंरामंकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ आदेशोदीयतान्देवब्रूहिसत्यंकरोमिकिम् ॥ १३ ॥ अकस्मादेवसम्प्राप्तःकिमर्थंवदमेप्रभो ॥ किन्नाऽऽयातिससौमित्रिस्त्वयासार्द्धञ्चजानकी ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ निवेद्यराघवस्तस्मैसर्वङ्गद्गदयागिरा ॥ बाष्पपूरप्रतिच्छन्नवक्त्रोभूयोपिनिःश्वसन् ॥ १५ ॥ ततःप्रोवाचसत्यार्थंविभीषणकृतेहितम् ॥ तंचापिशोकसन्तप्तंसंबोध्यरघुनन्दनः ॥ १६ ॥ अहंराज्यंपरित्यज्यसाम्प्रतंराक्षसोत्तम ॥ यास्यामित्रिदिवन्तूर्णंलक्ष्मणोयत्रसंस्थितः ॥ १७ ॥ नते

तदनन्तर हाथजोड़े खडेहुये विभीषण उन रामचन्द्र जीसे बोले कि हे देव ! आज्ञा दीजावै सत्यही कहिये मैं क्याकरूं ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! अचानकही तुम किस लिये प्राप्तहुयेहो उसको मुझसे कहो क्या तुम्हारे साथ वे लक्ष्मण व जानकी जी नहीं आतीहैं ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कि रामचन्द्र जी गद्गदा वाणीसे फिरभी उन विभीषण के लिये समस्त वस्तुको निवेदनकर उसांस लेतेहुये व आंसुओंके प्रवाहसे छिपेहुये मुखवाले होगये ॥ १५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन जीने शोचसे अतिदुःखित उन विभीषण कोभी प्रबोधकर विभीषण के लिये उस सत्यार्थ वचनको कहा ॥ १६ ॥ कि हे राक्षसोत्तम ! इससमय राज्यको छोड़कर मैं शीघ्रही वैकुण्ठको जाऊँगा जहां

पर कि लक्ष्मणजी भलीभांति टिकेहैं ॥१७॥ हे राक्षसर्षभ! उन महात्मा बन्धु (लक्ष्मण) से रहित मैं मुहूर्तभरभी मृत्युलोकमें ठहरनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ १८ ॥
हे विभीषण ! मैं तुम्हारे सिखानेके लिये प्राप्तहुआहूं इसलिये सावधान चित्तसे सुनिये व कीजिये ॥१९॥ कि यह राज्यसे उपजीहुई लक्ष्मी मदिराकी नाई अत्यल्पबुद्धिवाले
मनुष्योंके मदको उपजाती है इसलिये तुमको वह मद न करना चाहिये॥२०॥और इन्द्रादिक समस्त देवता तुमसे सदैव पूजने योग्य व मानने योग्यहैं जिससे सदैव तुम्हारा
राज्य-अविनाशी होवै॥२१॥व मेरा वचन सत्यहोवै इसीकारण मैं आयाहूं क्योंकि राज्यकी प्रतिष्ठाको प्राप्त भी तुम्हारा बड़ा बलिष्ठ बन्धु(रावण)अचानक नाशको प्राप्तहोगया

नरहितोमर्त्येमुहूर्तमपिचोत्सहे ॥ स्थातुंराक्षसशार्दूलबान्धवेनमहात्मना ॥ १८ ॥ अहञ्चशिक्षणार्थायतवप्राप्तोविभीषण ॥ तस्मादव्यग्रचित्तेनसंशृणुष्वकुरुष्वच ॥ १९ ॥ एषाराज्योद्भवालक्ष्मीर्मदंसञ्जनयेन्नृणाम् ॥ मद्यवत्स्वल्पबुद्धीनान्तस्मात्कार्य्योनसत्वया ॥ २० ॥ शक्राद्याअमरास्सर्वेत्वयापूज्यास्सदैवहि ॥ मान्याश्चयेनतेराज्यंजायतेशाश्वतंसदा ॥ २१ ॥ ममसत्यंभवेद्वाक्यमेतस्मादहमागतः ॥ प्राप्तराज्यप्रतिष्ठोपितवभ्रातामहाबलः ॥ २२ ॥ नाशंससहसाप्राप्तस्तस्मान्मान्याःसुराःसदा ॥ यदिकश्चित्समायातिमानुषोऽत्रकथञ्चन ॥ २३ ॥ सत्कार्य्यएवसंहृष्टैस्सर्वैरेवनिशाचरैः ॥ तथानिशाचरास्सर्वेत्वयावार्य्याविभीषण ॥ २४ ॥ ममसेतुंसमुल्लङ्घ्यनगन्तव्यन्धरातले ॥ विभीषणउवाच ॥ एवंविभोकरिष्यामितवादेशमसंशयम् ॥ २५ ॥ परन्त्वयापरित्यक्तेमर्त्येमेजीवितंव्रजेत ॥ तस्मान्ममापितत्रैवत्वंविभोनेतुमर्हसि ॥ २६ ॥ आत्मनासहयत्रास्तेयद्गतोलक्ष्मणस्तदा ॥ श्रीरामउवाच ॥ मयातेऽक्षयमादिष्टंराज्यं

इसलिये सदैव देवता माननेके योग्यहैं यदि यहांपर किसीप्रकार कोई मनुष्य भलीभांति आवै ॥ २२।२३ ॥ तो वह प्रसन्न होतेहुये सबही निशाचरोंसे सत्कारके योग्यही
होगा वैसेही हे विभीषण ! तुमको समस्त निशाचरोंको मना करना चाहिये ॥२४॥ कि मेरे सेतुको नाँघकर धरातलमें जाने योग्य नहीं है विभीषण बोले कि हे विभो !
तुम्हारी आज्ञाको मैं निस्सन्देह ऐसाही करूंगा ॥२५॥ परन्तु मृत्युलोक को तुम्हारे छोड़नेपर मेरा जीव चलाजावेगा इसलिये हे विभो ! तुम मुझको भी अपने साथ वहां

पर लेजाने योग्यहो कि जहांपर उससमय गयेहुये लक्ष्मणजी टिके हैं श्रीरामजी बोले कि हे राक्षसोत्तम ! मैंने तुमको अविनाशी राज्यको दियाहै ॥ २६ । २७ ॥ इस लिये तुम मुझको मिथ्या आचारवाले करनेके लिये किसीप्रकार योग्य नहीं हो और मैं यशके लिये इस अपने सेतुमें शुभदायक तीन सदाशिवों को स्थापन करूंगा उनको दिनकर व निशाकर की अवधि तक सदैव भक्तिको हृदयमें भलीभांति धरकर आपको पूजना चाहिये ॥ २८।२९ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषणसे इसप्रकार कहकर तदनन्तर वानरों समेत रघुश्रेष्ठ (रामचन्द्र) जी जो पहलेही कीगईथीं उन अद्भुत युद्ध की कथाओंको करते व अनेकप्रकारके समस्त युद्धके स्थानोंको देखते व संग्राममें सामने

राक्षससत्तम ॥ २७ ॥ तस्मान्नार्हसिमांकर्तुंमिथ्याचारंकथञ्चन ॥ अहमस्मिन्स्वकेसेतौशङ्करत्रितयंशुभम् ॥ २८ ॥
स्थापयिष्यामिकीर्त्यर्थन्तत्पूज्यंभवतासदा ॥ भक्तिंहृत्प्रतिसन्धाययावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वारघुश्रेष्ठोरा
क्षसेन्द्रंविभीषणम् ॥ दशरात्रन्ततस्तस्थौलङ्कायांवानरैःसह ॥ ३० ॥ कुर्वन्युद्धकथाश्चित्रायाःकृताःपूर्वमेवहि ॥ पश्य
न्युद्धस्यसर्वाणिस्थानानिविविधानिच ॥ ३१ ॥ शंसमानःप्रवीरांस्तान्राक्षसान्बलवत्तरान् ॥ कुम्भकर्णेन्द्रजित्पूर्वान्सं
ख्येचाभिमुखागतान् ॥ ३२ ॥ ततश्चैकादशेप्राप्तेदिवसेरघुनन्दनः ॥ पुष्पकन्तत्समारुह्यप्रस्थितःस्वपुरीम्प्रति ॥ ३३ ॥
वानरैस्तैःसमोपेतोविभीषणपुरस्सरैः ॥ ततश्चस्थापयामाससेतुप्रान्तेमहेश्वरम् ॥ ३४ ॥ मध्येचैवतथादौचश्रद्धापूते
नचेतसा ॥ रामेश्वरत्रयंरामएवन्तत्रविधायमः ॥ ३५ ॥ सेतुबन्धंसमासाद्यप्रस्थितःस्वगृहम्प्रति ॥ तावद्विभीषणेनोक्तंप्र
णिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ विभीषणउवाच ॥ अनेनसेतुमार्गेणरामेश्वरदिदृक्षया ॥ मानवाआगमिष्यन्ति कौतुका

आयेहुये कुम्भकर्ण मेघनादपूर्वक उन बड़े बलिष्ठ व वीर राक्षसों की प्रशंसा करतेहुये दशरात्रि पर्य्यन्त लङ्कापुरीमें टिकतेभये ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर गेरहवां दिन प्राप्तहोनेपर जिनके विभीषण अगाड़ी चलनेवाले हैं उन वानरों समेत रघुनन्दनजी ने उस विमानपै चढ़कर अपनी पुरीके सामने प्रस्थान किया उसके उपरान्त श्रद्धासे पवित्र चित्त करके सेतुके अन्तमें व मध्य तथा आदिमें तीन रामेश्वरोंको स्थापन किया इसप्रकार उन रघुनाथजीने सेतुबन्धपै प्राप्तहोकर वहांपर रामेश्वरत्रय को विधानकर अपनी पुरीके सामने प्रस्थानकिया तबतक बार बार प्रणामकर विभीषणने कहा ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ विभीषण बोले कि श्रद्धासयुत मनुष्य उत्सवके कारण

रामेश्वरजीके दर्शनकी इच्छासे इसी सेतुमार्गके द्वारा आवैंगे ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! राक्षसोंकी जाति अत्यन्तक्रूर मानीगईहै क्योंकि आतेहुये मनुष्यको देखकर उनके
भोजनकी इच्छा उपजतीहै ॥ ३८ ॥ जब कोई राक्षस किसी मनुजको भक्षण करैगा तब अवश्यकर भक्तिमें तत्परहुये मेरी आज्ञाभङ्ग होगी ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कलि-
कालमें जो मनुष्य निर्धनी होवैंगे वे राक्षसोंसे कियेहुये डरको छोड़कर सुवर्णके लोभसे व देवदर्शनके लिये यहांपर नित्यही आवैंगे यदि कोई राक्षस उन मनुजोंके वध
को प्राप्त करैगा ॥४०।४१॥ तो हे प्रभो ! समुद्रसे उपजाहुआ वह दोष मुझको होगा इस लिये तुम किसी उपायको चिन्तनकरो कि जिसप्रकार हे रघूत्तम ! आज्ञाभंग से

च्छ्रद्धयान्विताः ॥ ३७ ॥ राक्षसानांमहाराजजातिःक्रूरतमामता ॥ दृष्ट्वामानुषमायान्तमशनेच्छाप्रजायते ॥ ३८ ॥
यदाकश्चिज्जनंकञ्चिद्राक्षसोभक्षयिष्यति ॥ आज्ञाभङ्गोध्रुवंभावीममभक्तिरतस्यच ॥ ३९ ॥ भविष्यन्तिकलौकालेद
रिद्रान्नृपमानवाः ॥ तेऽत्रस्वर्णस्यलोभेनदेवतादर्शनायच ॥ ४० ॥ नित्यञ्चैवागमिष्यन्तित्यक्त्वारक्षःकृतंभयम् ॥ तेषां
यदिवधंकश्चिद्राक्षसःप्रापयिष्यति ॥ ४१ ॥ भविष्यतिचमेदोषःससमुद्रोद्भवःप्रभो ॥ तस्मात्कञ्चिदुपायन्त्वञ्चिन्तयस्व
यथामम ॥ ४२ ॥ आज्ञाभङ्गकृतम्पापंजायतेनरघूत्तम ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाततःसरघुसत्तमः ॥ ४३ ॥ बाढमित्येवचो
क्त्वाथचापंसज्जीचकारसः ॥ ततस्तंकीर्तिरूपञ्चमध्यदेशेरघूत्तमः ॥ ४४ ॥ अच्छिनन्निशितैर्बाणैर्दशयोजनविस्तृत
म् ॥ तेनसंस्थापितोयत्रशिखरेशङ्करःस्वयम् ॥ ४५ ॥ शिखरन्तत्सलिङ्गञ्चपतितंवारिधेर्जले ॥ एवंमार्गमगम्यन्तंकृत्वा
सेतुसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ वानरैराक्षसैःसार्द्धंततःसंप्रस्थितोगृहम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीनागरखण्डेष्टनवतितमोध्यायः ॥ ९८ ॥

कियाहुआ पातक मुझको न होवै वे रघूत्तमजी उन विभीषणके उस वचनको सुनकर तदनन्तर ॥ ४२ । ४३ ॥ हां यही कहकर इसके अनन्तर उन रघूत्तम जीने
धनुष्को चढ़ाया उसके उपरान्त मध्यदेशमें जिस शिखरपै उन रामजीने आपही शिवजीको स्थापन कियाथा उसी दश योजन विस्तारवाले यशरूपी शिखरको पैने बाणों
से काटडाला ॥ ४४ । ४५ ॥ व लिङ्ग समेत वह शिखर समुद्र के जलमें गिरपड़ा इस भांति सेतुसे उपजेहुये उस मार्गको अगम्य (न जाने योग्य) कर तदनन्तर
वानरों व राक्षसों समेत घरको भलीभांति प्रस्थान किया ॥ ४६ । ४७ ॥ इति श्रीनागरखण्डेभाषाटीकायांरामेश्वरप्रतिष्ठाकथननामाष्टनवतितमोध्यायः ॥ ९८ ॥ ❀ ॥

दो॰। हाटकेश के क्षेत्रमें निश्चल भयो विमान। नव नब्बे अध्याय में बरणत सूत सुजान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! रामचन्द्र जीको अपने सदनके सामने भलीभांति प्रस्थान करतेहुये मार्ग में जो आश्चर्य्य हुआहै उसको सुनिये ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो! आकाश मार्गसे जाताहुआ अत्यन्तही आश्चर्य्यकारक पुष्पक विमान अचानकही अचल होगया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर आकाशरूपी आंगनमें उस पुष्पकको अचल देखकर रामचन्द्रजीने विस्मयसे पवनसुत (हनूमान्)जीसे कहा ॥ ३ ॥ कि हे मारुते याने पवनपुत्र! तुम भूमिमें जाकर यह कारण जानो कि यह पुष्पक विमान आकाश में क्यों अचलता को प्राप्त होगया ॥ ४ ॥ क्योंकि ब्रह्माकी दृष्टिसे उपजे

सूतउवाच ॥ संप्रस्थितस्यरामस्यस्वकीयंसदनंप्रति ॥ यदाश्चर्य्यमभून्मार्गेश्रूयतान्द्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ नभोमार्गेणगच्छत्तुविमानंपुष्पकंद्विजाः ॥ अकस्मादेवसंजातंनिश्चलंचित्रकृत्तमम् ॥ २ ॥ अथतन्निश्चलंदृष्ट्वापुष्पकंगगनाङ्गणे ॥ रामोवायुसुतञ्चेदंवचनंप्राहविस्मयात् ॥ ३ ॥ त्वङ्गत्वामारुतेशीघ्रंभूमौजानीहिकारणम् ॥ किमेतत्पुष्पकंव्योम्निनिश्चलत्वमुपागतम् ॥ ४ ॥ कदाचिद्धार्य्यतेनास्यगतिःकुत्रापिकेनचित् ॥ ब्रह्मदृष्टिप्रसूतस्यपुष्पकस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥ बाढमित्येवसप्रोच्यहनूमान्धरणीतलम् ॥ गत्वाशीघ्रंपुनःप्राहप्रणिपत्यरघूत्तमम् ॥ ६ ॥ अत्रास्त्यधःशुभंक्षेत्रंहाटकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ यत्रसाक्षाज्जगत्कर्तास्वयंब्रह्माऽव्यवस्थितः ॥ ७ ॥ आदित्यावसवोरुद्रादेववैद्यौतथाऽश्विनौ ॥ तत्रतिष्ठन्तितेसर्वेतथाऽन्येसिद्धकिन्नराः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणान्नैतदतिक्रामतिपुष्पकम् ॥ तत्क्षेत्रंनिश्चलीभूतंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकौतूहलसमन्वितः ॥ पुष्पकंप्रेरयामासतत्क्षेत्रंप्रतिराघवः ॥ १० ॥

हुये इस पुष्पक महात्माकी गति किसी समय व कहींपर भी किसीसे नहीं रुकतीहै ॥ ५ ॥ उन हनूमान्‌जीने हां यही कहकर व शीघ्रही धरातलको जाकर फिर रघूत्तम (राम) जीको प्रणामकर कहा ॥ ६ ॥ कि यहांपर नीचे शुभदायक हाटकेश्वर नामक क्षेत्र है जहांपर साक्षात् जगत्‌के कर्ता ब्रह्माजी आपही टिके हैं ॥ ७ ॥ और जे आदित्य, वसु, रुद्र व देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं वे तथा और सब सिद्ध किन्नर टिके हैं ॥ ८ ॥ इसी कारणसे उस क्षेत्रप्रति अचल हुआ यह पुष्पक विमान नहीं नांघता है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि उन हनूमान्‌जीके उस वचनको सुनकर आश्चर्य्यसे संयुत रघुनाथजीने उस क्षेत्रमें पुष्पकको प्रेरणा किया ॥ १० ॥

तदनन्तर उन समस्त वानरों व अनेकप्रकारके राक्षसों समेत उतरकर प्रसन्न होतेहुये उस क्षेत्रमें सब ओर तीर्थ व पुण्यदायक देवमन्दिरों को देखा उसके उप-
रान्त ब्रह्माजीसे निर्मितहुई चामुण्डाको देखा ॥ ११ । १२ ॥ और वहांपर कामदायक कुण्ड में स्नानकर उसके उपरान्त रामचन्द्रजीने अपने पितासे निर्माण किये
हुये देवेशको देखा व मानो अपनेही चतुर्भुज देवको देखकर व राजवापीमें स्नानकर पवित्र होकर और अपने पितरोंको तर्पणकर उसके उपरान्त चिन्तन किया व
बहुत पुण्यदायक क्षेत्र में अलग २ अपने २ लिङ्गोंको स्थापन किया ॥ १३ । १४ । १५ ॥ व उसी क्षेत्र में श्रद्धासंयुत होतेहुये वे सब बहुत समय तक टिके उसके

सर्वैस्तैर्वानरैःसार्द्धंराक्षसैश्चपृथग्विधैः ॥ अवतीर्य्यततोहृष्टस्तस्मिन्क्षेत्रेसमन्ततः ॥ ११ ॥ तीर्थमालोकयामासपुण्या
न्यायतनानिच ॥ ततोविलोकयामासपितामहविनिर्म्मिताम् ॥ १२ ॥ चामुण्डांतत्रचस्नात्वाकुण्डेकामप्रदायिनि ॥
ततोविलोकयामासपित्रास्वस्यविनिर्म्मितम् ॥ १३ ॥ रामःस्वमिवदेवेशंदृष्ट्वादेवंचतुर्भुजम् ॥ राजवाप्यांशुचिर्भूत्वा
स्नात्वातर्प्यनिजान्पितॄन् ॥ १४ ॥ ततश्चचिन्तयामासक्षेत्रेचबहुपुण्यदे ॥ लिङ्गानिस्थापयामासुःस्वानिस्वानिपृथक्
पृथक् ॥ १५ ॥ तत्रैवसुचिरंकालंस्थितास्तेश्रद्धयान्विताः ॥ ततोजग्मुरयोध्याञ्चविमानवरमाश्रिताः ॥ १६ ॥ एतद्वः
सर्वमाख्यातंयथारामेश्वरोमहान् ॥ लक्ष्मणेश्वरसंयुक्तस्तस्मिंस्तीर्थेसुशोभने ॥ १७ ॥ यस्तौप्रातःसमुत्थायसदापश्य
तिमानवः ॥ सकृत्स्नंफलमाप्नोतिश्रुतंरामायणेऽत्रयत् ॥ १८ ॥ अथाष्टम्याञ्चतुर्दश्यांयोरामचरितंपठेत् ॥ तदग्रेवा
जिमेधस्यसकृत्स्नंलभतेफलम् ॥ १९ ॥ इति श्रीनागरखण्डेरामेश्वरप्रतिष्ठाकथनंनामनवनवतितमोध्यायः ॥ ९९ ॥

उपरान्त उत्तम विमानपै चढ़कर अयोध्यापुरीको गमन किया ॥१६॥ उस अतिउत्तम तीर्थमें जिसप्रकार लक्ष्मणेश्वर संयुत श्रेष्ठ रामेश्वरजी स्थापितहुये इस समस्त च-
रित को तुमलोगोंसे वर्णन किया ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सदैव प्रातःकाल उठकर उन दोनों महादेवोंको देखता है वह उस समस्तफलको प्राप्त होता है कि जो यहां रामा-
सुननेपर मिलता है ॥ १८ ॥ अथवा अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें उन रामेश्वरजीके अगाडी जो पुरुष रामचरित को पढ़ताहै वह अश्वमेधके समस्त फलको पाता
१९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरप्रतिष्ठाकथनंनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ❀ ॥

दो० । आनर्तीय तड़ागकी महिमा कर सुचरित्र । यहि सौके अध्याय में बरणत अतिहि विचित्र ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! जो तुमने कहा है कि उन राक्षसों व वानरोंने भी लिङ्गोंको स्थापन कियाहै यह आश्चर्य्य है ॥ १ ॥ इसलिये हे सूतपुत्र ! जहां जहांपर व जिस जिस२ भांति तथा जिन२स्थानोंमें उन्होंने लिङ्गोंको स्थापन किया है उसको विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि सावधान होतेहुये सुग्रीवने समस्त क्षेत्रको सम्पूर्णतासे भ्रमणकर अनन्तर बालमण्डन तीर्थमें प्राप्त होकर व उसमें नहाकर तदनन्तर वहींपर त्रिशूलधारी (शिवजी) के मुख्य लिङ्गको स्थापन किया वैसेही हे द्विजोत्तमो ! अन्य समस्त वानरोंने अपने नामके

ऋषयऊचुः ॥ आश्चर्य्यंसूतपुत्रैतद्यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ तैःस्थापितानिलिङ्गानिराक्षसैरपिवानरैः ॥ १ ॥ तस्माद्विस्तरतोब्रूहियत्रयत्रयथायथा ॥ तैःस्थापितानिलिङ्गानियेषुस्थानेषुसूतज ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ सुग्रीवस्संभ्रमित्वाथ क्षेत्रंसर्वमशेषतः ॥ बालमण्डनकेप्राप्यतत्रस्नात्वासमाहितः ॥ ३ ॥ मुख्यलिङ्गंततस्तत्रस्थापयामासशूलिनः ॥ तथाऽन्यैर्वानरैःसर्वैर्मुख्यलिङ्गानिशूलिनः ॥ ४ ॥ स्वसंज्ञार्थन्द्विजश्रेष्ठाःस्थापितानियथेच्छया ॥ यस्तेषांमुख्यलिङ्गानांकरोतिघृतकम्बलम् ॥ मकरस्थेनसूर्य्येणशिवलोकंसगच्छति ॥ ५ ॥ ततःपश्चिमदिग्भागेतस्यक्षेत्रस्यराक्षसैः ॥ संस्थापितानिलिङ्गानिचतुर्वक्त्राणिचद्विजाः ॥ ६ ॥ रामेणपूर्वदिग्भागेप्रासादानाञ्चपञ्चकम् ॥ स्थापितंभक्तियुक्तेनसर्वपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ तथादक्षिणदिग्भागेकूपिकातेननिर्म्मिता ॥ आनर्तीयतडागस्यसमीपेपापनाशिनी ॥ ८ ॥ यस्तस्यांकुरुतेश्राद्धंसम्प्राप्तेदक्षिणायने ॥ सोऽश्वमेधफलम्प्राप्यपितृलोकेमहीयते ॥ ९ ॥ यस्तत्रदीपकंदद्यात्कार्त्तिके

लिये यथेच्छासे महादेवजीके मुख्य लिङ्गोंको स्थापन किया सूर्य्यको मकरराशिमें टिकतेहुये जो पुरुष उन मुख्य लिङ्गोंको घृतकम्बल करताहै याने कम्बल ओढ़ाता है वह शिवलोकको जाताहै ॥ ३ । ४ । ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजो ! उस क्षेत्रके पश्चिम दिशाके भागमें राक्षसोंने चारमुखवाले लिङ्गोंको भलीभांति स्थापन किया है ॥ ६ ॥ व पूर्वदिशाके भागमें भक्तिसंयुत रामचन्द्रजीने समस्त पातकोंके नाशक पांच मन्दिरोंको स्थापन किया ॥ ७ ॥ वैसेही उन रामजीने दक्षिणदिशा के भागमें आनर्त देशवाले तड़ागके समीप पातकों के विनाशक लघुकूपका निर्माण कियाहै ॥ ८ ॥ सूर्य्यको दक्षिणायनमें प्राप्तहोनेपर उस कूपके समीप जो पुरुष श्राद्धको करता

है वह अश्वमेधके फलको पाकर पितरोंके लोकमें पूजित होताहै ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! कार्त्तिकमहीनेमें वहांपर जो पुरुष दीपक देता (धरता) है वह उन इक्कीस घोरनरकों को नहीं देखताहै ॥ १० ॥ व जहां २ उत्पन्न होताहै कहीं भी अन्ध नहीं होताहै ॥ ११ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर उस आनर्तीय तड़ाग को किसने निर्माण कियाहै और किस प्रभाववालाहै इसको सम्पूर्णता से कहिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! आनर्तीय तड़ागकी महिमा एक मुखसे कहनेके लिये सौवर्ष सेभी समर्थ नहीं है ॥ १३ ॥ कुँवार के शुक्लपक्ष में चतुर्दशी तिथि में सावधान होताहुआ मनुष्य नहाकर विधिपूर्वक देवताओं तथा पितरोंको तर्पण करै ॥ १४ ॥

मासिचद्विजाः ॥ नसपश्यतिरौद्रांस्तान्नरकानेकविंशतिम् ॥१० ॥ नचान्धोजायतेकापियत्रयत्रप्रजायते ॥ ११ ॥ ऋष
यऊचुः ॥ आनर्तीयतडागन्तत्केनतत्रविनिर्म्मितम् ॥ किम्प्रभावश्चकात्स्न्येनसूतपुत्रप्रकीर्तय ॥ १२ ॥ सूतउवाच ॥
आनर्तीयतडागस्यमहिमाद्विजसत्तमाः ॥ एकवक्त्रेणनोशक्तोवक्तुंवर्षशतैरपि ॥ १३ ॥ आश्विनस्यासितपक्षेचतुर्दश्यां
समाहितः॥स्नात्वादेवान्पितृंश्चैवतर्प्पयेद्विधिपूर्वकम्॥१४॥ततोदीपोत्सवदिनेश्राद्धंकृत्वासमासतः॥दामोदरंयमम्पूज्य
दीपन्दद्यात्स्वभक्तितः ॥ १५॥ सम्पूज्योधर्म्मराजस्तुगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ माषास्तिलाश्चदातव्यागोविन्दःप्रीयतामि
ति ॥ १६ ॥ तिलमाषप्रदानेनद्विजानान्तर्प्पणेनच ॥ यमेनसहितोदेवः प्रीयतांपुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ यएवंकुरुतेविप्रा
स्तीर्थेचानर्तसञ्ज्ञिते ॥ सोऽश्वमेधफलम्प्राप्यब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १८ ॥ यस्मिन्दिनेसमायातोरामस्तत्रप्रहर्षितः ॥ त
स्मिन्द्विजोत्तमैस्सर्वैःप्रोक्तःसोभ्येत्यसादरम् ॥ १६ ॥ अत्रागस्त्योमुनिश्रेष्ठस्तिष्ठतेरघुनन्दन ॥ तङ्गत्वापश्यविप्रेन्द्रंमि

उसके उपरान्त दीपोत्सव (दिवाली) के दिन में संक्षेपसे श्राद्धकोकर व अपनी भक्तिसे दामोदर व यमराज को पूजकर दीपको देवै ॥ १५ ॥ और धर्मराजजी चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से भलीभांति पूजने योग्य हैं व गोविन्द प्रसन्न होवैं इस हेतुसे उड़द व तिलों को देना चाहिये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणोंको तिल व उडदोंके दानसे व तर्पणसे यमराज समेत पुरुषोत्तम (विष्णु जी) प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! आनर्त नामक तीर्थ में जो इसप्रकार करता है वह अश्वमेध के फलको पाकर ब्रह्मलोकमें पूजाजाताहै ॥ १८ ॥ उस क्षेत्रमें जिस दिन प्रसन्नहोतेहुये रामचन्द्र जी भलीभांति आयेहैं उसी दिन समस्त द्विजोत्तमोंने आकर उनसे आदर समेत कहा ॥ १६ ॥

कि हे रघुनन्दन ! यहांपर मुनिनायक अगस्त्य जी टिके हैं उनके समीप जाकर मित्रावरुण से उपजेहुये द्विजेन्द्रको देखिये ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उन द्विजोंके वचनको सुनकर प्रसन्न होतेहुये कमललोचन रामचन्द्र जी वानरों व राक्षसों समेत शीघ्रही गये ॥ २१ ॥ व रघूत्तम (रामचन्द्र) जी आठ अङ्गोंके प्रणिपात (गिरानें) के द्वारा उन अगस्त्य मुनिको प्रणामकर व आनन्द समेत उन महात्मासे पुष्टतापूर्वक लिपटा लियेगये ॥२२॥ तदनन्तर हाथ जोड़ेहुये स्थित व नम्रतासंयुत रघुनाथ जी उन अगस्त्य मुनिके नहीं अतिदूरमें याने कुछ दूरपै धरणीपृष्ठमें समीपही बैठगये ॥ २३ ॥ उसके उपरान्त मुनिसे स्वर्गके गमन प्रति पूछेहुये रामचन्द्र जीने अ-

त्रावरुणसम्भवम् ॥ २० ॥ अथतेषांवचःश्रुत्वारामोराजीवलोचनः ॥ वानरैराक्षसैस्सार्द्धम्प्रहृष्टःमत्वरंययौ ॥ २१ ॥ अष्टाङ्गप्रणिपातेनतम्प्रणम्यरघूत्तमः ॥ परिष्वक्तोदृढंतेनसानन्देनमहात्मना ॥ २२ ॥ नाऽतिदूरेततस्तस्यविनयेनसमन्वितः ॥ उपविष्टोधरापृष्ठेकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ २३ ॥ ततःपृष्टस्तुमुनिनाकथयामासविस्तरात् ॥ वृत्तान्तंसर्वमात्मीयंस्वर्गस्यगमनम्प्रति ॥ २४ ॥ यथासीतापरित्यक्तायथासौमित्रिणाकृतः ॥ परित्यागःस्वकायस्यसन्त्यक्तेन महात्मना ॥ २५ ॥ यथासुग्रीवमासाद्ययथैवचविभीषणम् ॥ सम्भाष्यआगमस्तत्रकृतःपुष्पकसंस्थितिः ॥ २६ ॥ ततोऽगस्त्यःकथाश्चित्राश्चक्रेतस्यपुरस्तदा ॥ राजर्षीणाम्पुराणानांदृष्टान्तैर्बहुभिर्मुनिः ॥ २७ ॥ ततःकथावसानेचबलवन्तंरघूत्तमम् ॥ विलोक्यप्रददौतस्मैरत्नाभरणमुत्तमम् ॥ २८ ॥ यक्षदेवेषुयक्षेषुसिद्धविद्याधरेषुच ॥ नागेषु

पने समस्त वृत्तान्तको विस्तारसे कहा ॥२४॥ कि जिसप्रकार सीताजी छोड़ीगईं व जिसप्रकार छुटेहुये महात्मा लक्ष्मणजीने अपने शरीरको त्यागकियाथा ॥ २५॥ व जिस प्रकार सुग्रीव पै प्राप्तहोकर जैसेही विभीषण से संभाषणकर वहांपर आगमन किया व जैसे पुष्पककी संस्थितिहुई याने गति रुकगईथी ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस समय अगस्त्य मुनिने उन रघुनाथ जी के अगाडी बहुतेरे दृष्टान्तों से पुराने राजर्षियों की विचित्र कथाओं को किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर कथाके अन्तमे बलवान् रघूत्तमजी को देखकर उन के लिये उत्तम रत्नालङ्कार को दिया ॥ २८ ॥ जोकि देवता, यक्ष, सिद्ध व विद्याधरों मे और नाग तथा राक्षसेन्द्रों में न था और मनुष्योंमे क्या कहना

है ॥ २९ ॥ व जिससे हजारों वज्रके समूह याने बिजुली निकलतीथीं रात्रिमें उस आभूषण के न देखनेपर भी यह देख पड़ताथा कि यह कौन उठा ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विस्मयसे फूले लोचनोंवाले रामचन्द्रजीने उस आभूषण को लेकर आश्चर्यसंयुत होतेहुये पूंछा कि हे मुने ! अत्यन्तही अद्भुत करनेवाला व अन्धकारका नाशक यह रत्नोंसे रचित कण्ठाभरण तुमको कहां से मिलाथा इसको कहिये क्योंकि यह त्रिलोक में नहीं है ॥ ३१ । ३२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे रघूत्तम ! मेरे आश्रम के समीप में प्राप्त जो इस तड़ाग को देखतेहो, वही यह देवता से रचित है ॥ ३३ ॥ हे रघुनन्दन ! उसके किनारेपै मैंने जो अतिउत्तम आश्चर्यको देखा है उसको मैं तुमसे

राक्षसेन्द्रेषुमानुषेषुचकाकथा ॥ २९ ॥ यस्येन्द्रायुधसङ्घाश्चनिष्क्रामन्तिसहस्रशः ॥ रात्रौतस्मिन्नलक्ष्येऽपिलक्ष्य तेकोयमुत्थितः ॥ ३० ॥ तद्रामस्तुगृहीत्वाथविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ पप्रच्छकौतुकाविष्टःकुतस्त्वेतन्मुनेतव ॥ ३१ ॥ अत्यद्भुतकरंरत्नैर्निर्मितंतिमिरापहम् ॥ कण्ठाभरणमाख्याहिनेदमस्तिजगत्त्रये ॥ ३२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यत्पश्यसि रघुश्रेष्ठतडागमिदमुत्तमम् ॥ ममाश्रमसमीपस्थन्तदेतद्देवनिर्म्मितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीरेमयादृष्टंयदाश्चर्य्यमनुत्तमम् ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामिशृणुष्वरघुनन्दन ॥ ३४ ॥ कदाचिद्राघवश्रेष्ठनिशीथेऽहंसमुत्थितः ॥ पश्यामिव्योममार्गेणप्रद्यो तम्भास्करोपमम् ॥ ३५ ॥ यावत्तावद्विमानन्तदप्सरोगणराजितम् ॥ तत्रमध्यगतश्चैकःपुरुषस्तरुणस्तथा ॥ ३६ ॥ अ धस्तत्रसमारूढःस्तूयतेकिन्नरैर्नृप ॥ रत्नाभरणमेतच्चबिभ्रत्कण्ठेसुनिर्म्मलम् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशःकामदेवइवापरः ॥ ३७ ॥ अथोत्तीर्य्यविमानाग्राद्भूमिलग्नाद्रघूद्वह ॥ एकेनदेवदूतेनसलिलान्तमुपागतः ॥ ३८ ॥ ततश्चसलिलात्तस्मा

भलीभांति कहूंगा सुनिये ॥ ३४॥ हे रघूत्तम ! किसी समय आधी रातमें उठा हुआ मैं जबतक आकाशमार्ग से सूर्य्य के समान प्रकाश को देखूं तबतक अप्सराओं के समूह से शोभित उस विमान को देखा व हे राजन् ! उसके बीचमें प्राप्त एक युवा पुरुषको देखा जो कि उस विमानमें नीचे चढ़ा व किन्नरों से प्रशंसित तथा इस निर्मल रत्नाभरणको गलेमें धारण किये बारह सूर्य्योंके समान व दूसरे कामदेवके सदृशथा ॥ ३५।३६।३७॥ इसके अनन्तर हे रघुवंशनायक ! वह पुरुष भूमि में लगेहुये विमान के अग्रभाग

से उतरकर एक देवदूत के साथ जलके समीप प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसने उस जलसे मुरदेके शरीर को खींचकर उसके उपरान्त दांतों से शीघ्रतापूर्वक भक्षण किया ॥ ३९ ॥ हे राघव ! ज्यों ज्यों वह मनुज मांस को भक्षण करता था त्यों त्यों वह शरीर (फिर उसी रूपवाला) याने वैसाही होजाता था ॥ ४० ॥ उसके उपरान्त बहुत समयसे तृप्तिको पाकर व पवित्र होकर प्रसन्न होता हुआ वह जलसे निकलकर जबतक विमान पै चढ़ै ॥ ४१ ॥ तबतक हे नृप ! मैंने शीघ्रही जाकर बुद्धि में परायण गन्धर्वों से सब ओर सेवित भी उस पुरुष से कुतूहलसे पूंछा ॥ ४२ ॥ कि हे हे वैमानिकोत्तम ! मुहूर्तभर परिपालन करिये याने रुक जाइये मैं मित्रावरुण से

दाकृष्यचकलेवरम् ॥ मृतकस्यततोदन्तैर्भक्षयामाससत्वरम् ॥ ३९ ॥ यथायथामहामांसंसभक्षयतिराघव ॥ तथातथा पुनःकायन्तद्रूपंतत्प्रजायते ॥ ४० ॥ ततस्तृप्तिञ्चिरात्प्राप्यशुचिर्भूत्वाप्रहर्षितः ॥ निष्क्रम्यसलिलाद्यावद्विमानमधिरोहति ॥ ४१ ॥ तावन्मयाद्रुतङ्गत्वासपृष्टःकौतुकान्नृप ॥ सेव्यमानोपिगन्धर्वैःसमन्ताद्बुद्धितत्परैः ॥ ४२ ॥ भोभोवैमानिकश्रेष्ठमुहूर्तंपरिपालय ॥ अगस्तिर्नामविप्रोहंमित्रावरुणसम्भवः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वासम्मुखोभूत्वाप्रणाममकरोत्ततः ॥ तैश्चवैमानिकैस्सार्द्धंसर्वैस्तैःकिन्नरादिभिः ॥ ४४ ॥ कस्त्वमीदृग्वपुःश्रीमान्विमानवरमाश्रितः ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्च गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यतडागान्तेमहामांसप्रभक्षणम् ॥ कृतवानसिवैकृत्यङ्कस्मात्तेदृष्टिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ वैमानिकउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठयस्त्वंप्राप्तोममान्तिकम् ॥ ४७ ॥ अवश्यंसानुकूलोमेविधिर्यत्त्वंसमागतः ॥ साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥ ४८ ॥ कालेनफलतेतीर्थंसद्यस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्सर्वंतवाख्यानंक

उपजा हुआ अगस्त्य नामक ब्राह्मणहूं ॥ ४३ ॥ उस वचन को सुनकर सामने होकर तदनन्तर उन विमानवाले पुरुषों व समस्त किन्नरादिकों समेत उसने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर मैंने पूंछा कि अप्सराओं व गन्धर्वों तथा किन्नरों से सेवित व उत्तम विमान पै आश्रय किये हुये और ऐसे शरीर व शोभावाले तुम कौनहो ॥ ४५ ॥ जो कि यहां पर तड़ाग के समीप आकर तुमने मनुष्य मांसको भक्षण कियाहै व तुम्हारे दृष्टि से उपजा हुआ विकार किस कारण है ॥ ४६ ॥ वैमानिक बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ! जो तुम मेरे समीप प्राप्त हुये हो यह बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ ॥ ४७ ॥ जिस लिये कि तुम भलीभांति आयेहो उसी कारण मेरे दैव सानुकूलहै क्योंकि साधुओं

में तुम ने कहीं पर किसी को कुछ नहीं दिया है ॥ ६८ ॥ उसी से हे दुर्मते ! यहां पर तुम्हारे क्षुधा वृद्धि को प्राप्त होती है और जो रत्न तुम्हारी दृष्टि में प्राप्त हुये उनको तुम ने हरलिया ॥ ६९ ॥ उसी कारण मेरे लोक में प्राप्तहुये भी तुम नेत्रों से रहित होगये और पाप संयुत भी जो तुम मेरे मन्दिर में भलीभांति प्राप्त हुयेहो ॥ ७० ॥ उस समस्त वृत्तान्त को मैं कहूंगा तुम एकमनवाले स्थित होकर सुनो कि पापमन या चित्तवाले भी तुमने जिम जलमें प्राणों को छोड़ाहै पुरातन समयमें कलिकाल के भय से दुःखित श्वेतद्वीप का स्वामी वहांपर इसके स्पर्श से उसीक्षण समस्त पातकों से छूटगया ॥ ७१ । ७२ ॥ अन्न के न देने से तुम्हारे क्षुधा से उपजी हुई अत्यन्त पीडा

थिवीतले ॥ ६८ ॥ तेनात्रापिबुभुक्षातेवृद्धिङ्गच्छतिदुर्मते ॥ तथाहृतानिरत्नानियानिदृष्टिङ्गतानिते ॥ ६९ ॥ चक्षुर्हीनस्ततोजातोममल्लोकगतोपिच ॥ यस्त्वंपातकयुक्तोपिसंप्राप्तोममममन्दिरे ॥ ७० ॥ तद्वक्ष्याम्यखिलंवृत्तंशृणुचैकमनाःस्थितः ॥ यस्मिञ्जलेत्वयामुक्ताःप्राणाःपापात्मनापिच ॥ ७१ ॥ श्वेतद्वीपपतिस्तत्रकलिकालभयातुरः ॥ पुरास्यस्पर्शनात्सद्योविमुक्तःसर्वपातकैः ॥ ७२ ॥ अन्नादानात्परापीडाजायतेक्षुत्समुद्भवा ॥ तथारत्नापहारेणसंजाताचान्धतातव ॥ ७३ ॥ नैवान्यत्कारणंकिञ्चित्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ततोमयाविधिःप्रोक्तःपुनरेवद्विजोत्तमाः ॥ ७४ ॥ एषोपिब्रह्मलोकस्तेनरकादतिरिच्यते ॥ तस्मात्तत्रैवमान्देवप्रेषयस्वाकिमत्रवै ॥ ७५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्तत्रैवगच्छेस्त्वंप्रेषितोपितदत्रवै ॥ नरकेणचवासेनश्वेतद्वीपसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ माहात्म्यंनाशमायातिशास्त्रंस्यात्सत्यवर्जितम् ॥ तस्मात्त्वंनित्यमारूढोविमानेत्रैवसुन्दरे ॥७७॥ गत्वाजलाशयेतस्मिन्यत्रप्राणाःसमुज्झिताः ॥ तमेवनिजदेहंचभक्षयस्वयथेच्छया ॥ ७८ ॥ तद्ध

उत्पन्न हुई है वैसेही रत्नों के अपहरण से तुम्हारे अन्धता उत्पन्न हुई है ॥ ७३ ॥ और कुछ कारण नहीं है यह मैंने सत्य कहा है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैंने फिर भी ब्रह्माजी से कहा ॥ ७४ ॥ हे देव ! यह तुम्हारा ब्रह्मलोक भी नरक से अधिक है इस लिये मुझ को वहींपर पठाइये यहां क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥७५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यदि यहांपर पठाये हुये भी तुम उसी नरक में जाते हो तो नरक के निवास से श्वेतद्वीप से उपजा हुआ माहात्म्य नाश होवै है व शास्त्र सत्य से रहित होवैगा इस लिये नित्यही इसी शोभन विमान पै चढ़ेहुये तुम वहींपर जाकर जहां कि प्राण छूटे हैं उसी अपने शरीर को यथेच्छा से भक्षण करो ॥ ७६ । ७७ । ७८ ॥ जल के बीच

से उतरकर एक देवदूत के साथ जलके समीप प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसने उस जलसे मुरदेके शरीर को खींचकर उसके उपरान्त दांतों से शीघ्रतापूर्वक भक्षण किया ॥ ३९ ॥ हे राघव ! ज्यों ज्यों वह मनुज मांस को भक्षण करता था त्यों त्यों वह शरीर (फिर उसी रूपवाला) याने वैसाही होजाता था ॥ ४० ॥ उसके उपरान्त बहुत समयसे तृप्तिको पाकर व पवित्र होकर प्रसन्न होता हुआ वह जलसे निकलकर जबतक विमान पै चढ़ै ॥ ४१ ॥ तबतक हे नृप ! मैंने शीघ्रही जाकर बुद्धि में परायण गन्धर्वों से सब ओर सेवित भी उस पुरुष से कुतूहलसे पूंछा ॥ ४२ ॥ कि हे हे वैमानिकोत्तम ! मुहूर्तभर परिपालन करिये याने रुक जाइये मैं मित्रावरुण से

दाकृष्यचकलेवरम् ॥ मृतकस्यततोदन्तैर्भक्षयामाससत्वरम् ॥ ३९ ॥ यथायथामहामांसंसभक्षयतिराघव ॥ तथातथा पुनःकायन्तद्रूपंतत्प्रजायते ॥ ४० ॥ ततस्तृप्तिञ्चिरात्प्राप्यशुचिर्भूत्वाप्रहर्षितः ॥ निष्क्रम्यसलिलाद्यावद्विमानमधिरो हति ॥ ४१ ॥ तावन्मयाद्रुतङ्गत्वासपृष्टःकौतुकान्नृप ॥ सेव्यमानोपिगन्धर्वैःसमन्ताद्बुद्धितत्परैः ॥ ४२ ॥ भोभोवैमानिक श्रेष्ठमुहूर्तंपरिपालय ॥ अगस्तिर्नामविप्रोहंमित्रावरुणसम्भवः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वासम्मुखोभूत्वाप्रणाममकरोत्ततः ॥ तै श्चवैमानिकैस्सार्द्धंसर्वैस्तैःकिन्नरादिभिः ॥ ४४ ॥ कस्त्वमीदृग्वपुःश्रीमान्विमानवरमाश्रितः ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्च गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यतडागान्तेमहामांसप्रभक्षणम् ॥ कृतवानसिवैकृत्यङ्कस्मात्तेदृष्टिसम्भवम् ॥ ४६ ॥ वैमानिकउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठयस्त्वंप्राप्तोममान्तिकम् ॥ ४७ ॥ अवश्यंसानुकूलोमेविधिर्यत्त्वंसमागतः ॥ साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥ ४८ ॥ कालेनफलतेतीर्थंसद्यस्साधुसमागमः ॥ तस्मात्सर्वंतवाख्यानंक

उपजा हुआ अगस्त्य नामक ब्राह्मणहूं ॥ ४३ ॥ उस वचन को सुनकर सामने होकर तदनन्तर उन विमानवाले पुरुषों व समस्त किन्नरादिकों समेत उसने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर मैंने पूंछा कि अप्सराओं व गन्धर्वों तथा किन्नरों से सेवित व उत्तम विमान पै आश्रय किये हुये और ऐसे शरीर व शोभावाले तुम कौनहो ॥ ४५ ॥ जो कि यहां पर तड़ाग के समीप आकर तुमने मनुष्य मांसको भक्षण कियाहै व तुम्हारे दृष्टि से उपजा हुआ विकार किस कारण है ॥४६ ॥ वैमानिक बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ! जो तुम मेरे समीप प्राप्त हुये हो यह बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ ॥ ४७ ॥ जिस लिये कि तुम भलीभांति आयेहो उसी कारण मेरे दैव सानुकूलहै क्योंकि साधुओं

में तुम ने कहीं पर किसी को कुछ नहीं दिया है ॥ ६८ ॥ उसी से हे दुर्मते ! यहां पर तुम्हारे क्षुधा वृद्धि को प्राप्त होती है और जो रत्न तुम्हारी दृष्टि में प्राप्त हुये उनको तुम ने हरलिया ॥ ६९ ॥ उसी कारण मेरे लोक में प्राप्तहुये भी तुम नेत्रों से रहित होगये और पाप संयुत भी जो तुम मेरे मन्दिर में भलीभांति प्राप्त हुयेहो ॥ ७० ॥ उस समस्त वृत्तान्त को मैं कहूंगा तुम एकमनवाले स्थित होकर सुनो कि पापमन या चित्तवाले भी तुमने जिस जलमें प्राणों को छोडाहै पुरातन समयमें कलिकाल के भय से दुःखित श्वेतद्वीप का स्वामी वहांपर इसके स्पर्श से उसीक्षण समस्त पातकों से छूटगया ॥ ७१ । ७२ ॥ अन्न के न देने से तुम्हारे क्षुधा से उपजी हुई अत्यन्त पीड़ा

त्वयाकृतंनदत्तंवैदानंवसु थिवीतले ॥ ६८ ॥ तेनात्रापिबुभुक्षातेवृद्धिङ्गच्छतिदुर्मते ॥ तथाहृतानिरत्नानियानिदृष्टिङ्गतानिते ॥ ६९ ॥ चक्षुर्हीनस्त तोजातोममलोकगतोपिच ॥ यस्त्वंपातकयुक्तोपिसंप्राप्तोममम‌न्दिरे ॥ ७० ॥ तद्वक्ष्याम्यखिलंवृत्तंशृणुचैकमनाःस्थ तः ॥ यस्मिञ्जलेत्वयामुक्ताःप्राणाःपापात्मनापिच ॥ ७१ ॥ श्वेतद्वीपपतिस्तत्रकलिकालभयातुरः ॥ पुरास्यस्पर्शनात्स द्योविमुक्तःसर्वपातकैः ॥ ७२ ॥ अन्नादानात्परापीडाजायतेक्षुत्समुद्भवा ॥ तथारत्नापहारेणसंजाताचान्धतातव ॥ ७३ ॥ नैवान्यत्कारणंकिञ्चित्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ततोमयाविधिःप्रोक्तःपुनरेवद्विजोत्तमाः ॥ ७४ ॥ एषोपिब्रह्मलोकस्तेनर कादतिरिच्यते ॥ तस्मात्तत्रैवमान्देवप्रेषयस्वकिमत्रवै ॥ ७५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्तत्रैवगच्छेस्त्वंप्रेषितोपितदत्रवै ॥ नर केणचवासेनश्वेतद्वीपसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ माहात्म्यंनाशमायातिशास्त्रंस्यात्सत्यवर्जितम् ॥ तस्मात्त्वंनित्यमारूढोविमा नेत्रैवसुन्दरे ॥ ७७ ॥ गत्वाजलाशयेतस्मिन्यत्रप्राणाःसमुज्झिताः ॥ तमेवनिजदेहंचभक्षयस्वयथेच्छया ॥ ७८ ॥ तद्भ

उत्पन्न हुई है वैसेही रत्नों के अपहरण से तुम्हारे अन्धता उत्पन्न हुई है ॥ ७३ ॥ और कुछ कारण नहीं है यह मैंने सत्य कहा है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैंने फिर भी ब्रह्माजी से कहा ॥ ७४ ॥ हे देव ! यह तुम्हारा ब्रह्मलोक भी नरक से अधिक है इस लिये मुझ को वहींपर पठाइये यहां क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यदि यहांपर पठाये हुये भी तुम उसी नरक में जाते हो तो नरक के निवास से श्वेतद्वीप से उपजा हुआ माहात्म्य नाश होवै है व शास्त्र सत्य से रहित होवैगा इस लिये नित्यही इसी शोभन विमान पै चढ़ेहुये तुम वहींपर जाकर जहां कि प्राण छूटे हैं उसी अपने शरीर को यथेच्छा से भक्षण करो ॥ ७६ । ७७ । ७८ ॥ जल के बीच

में प्राप्त वह शरीर मेरे वचन से नाशरहित होगा व भोजन के समय में उतने काल तक तुम्हारे दृष्टि होगी ॥ ७९ ॥ उसी कारण उन ब्रह्मा के वचन से मैं सदैव दीपोत्सव के दिन अर्धरात्र मे यहां आकर अपने शरीर को भक्षण करता हूं ॥ ८० ॥ व उसी कारण ऐसे रूपवाला मैं तबतक तृप्तिको प्राप्त होता हूं कि जबतक देवताओं का दिन स्थित रहता है व मनुष्यों का आधा वर्ष व्यवस्थित होता है ॥ ८१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोक में तुमको कुछ असाध्य नहीं है याने तुम सबकुछ करसक्तेहो क्योंकि जिन तुमने समुद्र को एक चुल्लू करके पीलिया ॥ ८२ ॥ इसलिये हे मुने ! मेरे ऊपर बडीभारी दया करके समस्त मनुष्योंसे विशेषकर निन्दित इस अकार्य्य से मुझको

विष्यतिमद्वाक्यादक्षयंजलमध्यगम् ॥ तावत्कालंचदृष्टिस्तेभोज्यकालेभविष्यति ॥ ७९ ॥ ततोहन्तस्यवाक्ये नदीपोत्सवदिनेमदा ॥ निशीथेत्रसमागत्यभक्षयामिनिजान्तनुम् ॥ ८० ॥ ततस्तृप्तिंप्रगच्छामियावद्दैवंदिनंस्थितम् ॥ मानुषञ्चतथाब्दार्धमीदृग्रूपोव्यवस्थितः ॥ ८१ ॥ नास्त्यसाध्यंमुनिश्रेष्ठतवकिञ्चिज्जगत्रये ॥ येनैकञ्चुलुकंकृत्वानिपीतःपयसांनिधिः ॥ ८२ ॥ तस्मान्मुनेदयांकृत्वाममोपरिमहत्तराम् ॥ अकृत्याद्रक्षमामस्मात्सर्वलोकविगर्हितात् ॥ ८३ ॥ तथादृष्टिप्रदानंमेकुरुष्वमुनिसत्तम ॥ निर्विण्णोस्म्यवमानेननान्यात्वत्तोस्तिमेगतिः ॥ ८४ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकृपाविष्टोमुनीश्वरः ॥ तम्प्रोवाचाथदुःखार्तंमृतंसञ्जीवयन्निव ॥ ८५ ॥ त्वमेनंविश्रुतन्देहिकण्ठस्थमिहभूषणम् ॥ येननाशंप्रयात्येपाबुभुक्षाजठरोद्भवा ॥ ८६ ॥ त्वमद्यप्रभृतिप्राज्ञरत्नदीपान्सुनिर्म्मलान् ॥ अत्रैवसरसस्तीरेदेहिदामोदरायच ॥ ८७ ॥ येनसञ्जायतेदृष्टिःशाश्वतीतवनिर्म्मला ॥ ममवाक्यादसन्दिग्धंसत्येनात्मानमालभे ॥ ८८ ॥ राजोवाच ॥

पालन करिये ॥ ८३ ॥ व हे मुनिसत्तम ! मेरे लिये दृष्टिदान को करिये क्योंकि मैं अपमान से वैराग्यको प्राप्त हूं और तुमसे अन्य मेरी गति नहीं है ॥ ८४ ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर अनन्तर दयासंयुत मुनिनायक ने मरेको जिलातेहुये से उस दुःख मे विकल पुरुषसे कहा ॥ ८५ ॥ कि गलेमें स्थित (पहनेहुये) इस अलंकार को यहांपर तुम देवो जिससे कि पेटमें उपजीहुई यह क्षुधा नाश होजावै ॥ ८६ ॥ व हे बुद्धिमन् ! आजसे लगा कर तुम इसी तडाग के किनारे दामोदर (विष्णु) के लिये अतिनिर्मल रत्नों के दीपकों को दीजिये ॥ ८७ ॥ कि जिससे निस्सन्देह मेरे वचन से तुम्हारी सदैववाली निर्मल दृष्टि होगी यह मै सत्यसे अपनी शपथ करताहूं ॥ ८८ ॥

राजा बोले कि हे मुनिसत्तम ! तुम मेरे ऊपर कृपाको कर रत्नमे उपजेहुये इस उत्तम कण्ठाभरण को लीजिये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर सत्यवादी मुनिने भयसे तिरस्कृत व निर्लोभ भी मुझको उस कण्ठाभरण के प्रतिग्रह (दान) को भलीभांति धारण कराया ॥ ९० ॥ तदनन्तर मेरे पांवोंको धोकर जबतक उस शुद्ध चित्तवाले नृपने उत्तम भक्तिसे इस अमूल्य आभूषण को दिया ॥ ९१ ॥ तबतक हे नृपदेव ! उसीक्षण उसकी क्षुधा नष्टहोगई व अमृत से उपजीहुई उत्तम तृप्ति होगई ॥ ९२ ॥ व पुरातन समयमें उपजा उसका वह पुराना व मराहुआ शरीर नाश होगया जोकि नित्यही उसजलमें पड़ाहुआ अविनाशीथा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर हे रघूत्तम ! उसी स्थान

ममोपरिदयांकृत्वात्वमेनंमुनिसत्तम ॥ गृहाणरत्नसम्भूतंकण्ठाभरणमुत्तमम् ॥ ८९ ॥ ततोभयाभिभूतेनमयातस्यप्रतिग्रहः ॥ निःस्पृहेणापिसंधार्य्योमुनिनासत्यवादिना ॥ ९० ॥ ततःप्रक्षाल्यमेपादौयावत्तेनात्रनिष्क्रयम् ॥ विभूषणमिदंदत्तं सद्भक्त्याभावितात्मना ॥ ९१ ॥ तावत्तस्यप्रणष्टातुबुभुक्षातत्क्षणान्नृप ॥ संजातापरमातृप्तिर्देवपीयूषसम्भवा ॥ ९२ ॥ तस्यनष्टंमृतंकायन्तच्चजीर्णपुरोद्भवम् ॥ यदासीदक्षयंनित्यन्तस्मिंस्तोयेव्यवस्थितम् ॥ ९३ ॥ ततःसंस्थापितस्तेन तस्मिन्स्थानेसुभक्तितः ॥ दामोदरोरघुश्रेष्ठकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ९४ ॥ तस्याग्रेश्रद्धयायुक्तोदीपंदद्याद्यथायथा ॥ तथातथाभवेद्दृष्टिस्तस्यनित्यंसुनिर्मला ॥ ९५ ॥ ततोमांससमासाद्यदिव्यचक्षुर्महीपतिः ॥ सबभूवनृपश्रेष्ठ स्पृहणीयतमःसताम् ॥ ९६ ॥ ततःप्रोवाचमांहृष्टःप्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ हर्षगद्गदयावाचाप्रस्थितस्त्रिदिवम्प्रति ॥ ९७ ॥ त्वत्प्रसादात्प्रणष्टामेबुभुक्षाऽतिसुदारुणा ॥ तथादृष्टिश्चसञ्जातादिव्याब्राह्मणसत्तम ॥ ९८ ॥ अनुज्ञान्देहिमेतस्माद्येनगच्छामि

में उसने उत्तम मन्दिरको बनाकर भलीभक्तिसे विष्णुजीको स्थापनकिया ॥ ९४ ॥ व उन विष्णुजीके आगे श्रद्धासंयुत होताहुआ ज्यों ज्यों दीपको देताथा त्यों त्यों उसकी नित्यही निर्मल दृष्टि होतीथी ॥ ९५ ॥ तदनन्तर वह दिव्यनयनवाला भूपति मेरे निकट आकर सज्जनों से अत्यन्त चाहा हुआ वह नृपोत्तम होगया ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त स्वर्ग को प्रस्थान करते व हाथजोडे हुये प्रसन्न भूपतिने प्रणामकर आनन्द से गद्गदावाणीके द्वारा मुझसे कहा ॥ ९७ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी अत्यन्तही विकराल क्षुधा नष्टहोगई व दिव्य दृष्टि भलीभांति उत्पन्नहुई ॥ ९८ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझको आज्ञा दीजिये कि जिससे इस तीर्थके प्रभावसे मैं

इस समय ब्रह्मलोक को जाऊं ॥ ९९ ॥ तदनन्तर मुझसे बिदाकिया हुआ व प्रसन्न मनवाला वह नृपति बार बार प्रणामकर सनातन (अविनाशी) ब्रह्मलोकको चला गया ॥ १०० ॥ इस प्रकार पुरातन समय यह अलङ्कार मेरे हाथमें प्राप्तहुआ इसको तुम्हारे योग्य जानकर उसीसे तुम्हारे लिये निवेदन किया ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! तबसे लगाकर मनुष्य यहांपर भलीभांति आकर कार्त्तिक महीने में उच्चप्रकार से रत्नदीपकों को देकर व शुभदायक जल में नहाकर इसके अनन्तर देहान्त में स्वर्ग को जाताथा हे रघूत्तम ! फिर सावधान होतेहुये जे नर प्राणों का त्याग करतेथे पाप चित्तवाले भी वे ब्रह्मलोक को जातेथे उसके उपरान्त उस जलसे

साम्प्रतम् ॥ ब्रह्मलोकंमुनिश्रेष्ठतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ९९ ॥ ततोमयाविनिर्मुक्तःप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ सजगामप्रहृष्टात्माब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ १०० ॥ एवंमेभूषणमिदंजातंहस्तङ्गमम्पुरा ॥ तवयोग्यमिमंज्ञात्वातुभ्यन्तेननिवेदितम् ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ततःप्रभृतिराजेन्द्रसमागत्यात्रमानवः ॥ रत्नदीपान्प्रदायोच्चैःस्नात्वाचसलिलेशुभे ॥ २ ॥ कार्त्तिकेमासिनिर्यातिदेहान्तेथदिवालयम् ॥ येपुनःप्राणसन्त्यागंप्रकुर्वन्तिसमाहिताः ॥ ३ ॥ पापात्मानोपितेयान्तिब्रह्मलोकंरघूत्तम ॥ ततोदृष्ट्वासहस्राक्षःप्रभावन्तज्जलोद्भवम् ॥ ४ ॥ पांशुभिःपूरयामाससमन्ताद्भयसंकुलः ॥ तदद्यदिवसःप्राप्तोदीपोत्सवसमुद्भवः ॥ ५ ॥ सुपुण्येऽत्रसमादेशेत्वंकुरुष्वसुकूपिकाम् ॥ तस्यांस्नानंविधायाथपितॄंस्तर्पयराघव ॥ ६ ॥ देवस्यास्यपुरोदेहिरत्नदीपमनुत्तमम् ॥ येनमंजायतेसिद्धिर्ब्रह्मलोकसमुद्भवा ॥ अनेनैवशरीरेणसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७ ॥ ततस्तेराघवादेशात्सर्वेराक्षसवानराः ॥ तस्मिन्देशेविनिदधुःकूपिकांविमलोदकाम् ॥ ८ ॥ तत्रस्नात्वापितॄंस्तर्प्यरत्नदीपंप्र

उपजे हुये प्रभाव को देखकर भयसंयुत होतेहुये इन्द्रने सब ओर से धूरि से पूर्ण करदिया आज दीपोत्सव से उपजा हुआ दिन प्राप्तहै इसलिये ॥ २ । ३ । ४ । ५ ॥ हे राघव ! इस अतिपुण्यदायक देशमें तुम उत्तम लघुकुयें को कीजिये उसी में स्नान कर इसके उपरान्त पितरों को तर्पण करिये ॥ ६ ॥ व इन देवके अगाड़ी अत्युत्तम रत्नदीप को दीजिये जिससे इसी शरीर से ब्रह्मलोक से उपजी हुई सिद्धि भलीभांति होती है यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजीकी आज्ञासे उन समस्त राक्षसों व वानरोंने उसदेशमें निर्मल जलवाले छोटेकुयें को बनाया ॥ ८ ॥ व उसी में नहाकर तथा पितरों को तर्पणकर व सम्पूर्ण कार्त्तिक भर रत्नदीपको देकर तदन-

न्तर अयोध्या को प्रस्थान किया ॥ ९ ॥ उसके उपरान्त विभीषण व हनूमान् वानर को छोड़कर उस तीर्थ के प्रभाव से सब ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ १० ॥ सूतजी बोले
कि कार्त्तिक महीने को भलीभांति प्राप्तहोने पर उस शुभदायक जलमें नहाकर जो पुरुष आदर समेत आजभी दीपदान करता है वह समस्त पातकों से छूटकर ब्रह्म-
लोक में पूजित होता है ॥ ११ । १२ ॥ इस प्रकार वहांपर शुभदायक आनर्तीय तड़ाग और वह सुन्दर विष्णुकूप भलीभांति उत्पन्न हुआहै ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानर्तकमाहात्म्यंनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दायच ॥ समस्तंकार्त्तिकंयावदयोध्यांप्रास्थितस्ततः ॥ ९ ॥ ततोविभीषणंमुक्त्वाहनूमन्तञ्चवानरम् ॥ ब्रह्मलोकङ्गतास्सर्वे
तस्यतीर्थप्रभावतः ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ अद्यापिदीपदानन्तुकुरुतेयस्तुसादरम् ॥ ११ ॥ संप्राप्तेकार्त्तिकेमासिस्नात्वातत्रज
लेशुभे ॥ मसर्वपातकैर्मुक्तोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ एवंतत्रसमुत्पन्नन्तडागन्तुशुभावहम् ॥ आनर्तीयन्तथाविष्णुकूपि
कासाचशोभना ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदआनर्तकमाहात्म्यंनामशततमोध्यायः १००
ऋषयऊचुः ॥ राक्षसैस्तत्रलिङ्गानियानिभक्त्यासमन्वितैः ॥ स्थापितानिचमाहात्म्यंतेषांसूतप्रकीर्तय ॥ १ ॥ सूत
उवाच ॥ तेषांपूजाकृतेरौद्राराक्षसाबलवत्तराः ॥ लङ्कापुर्य्याःसमायान्तिसदैवशतशःपुरा ॥ २ ॥ आगच्छन्तोव्रजन्त
स्तेह्यस्मिन्क्षेत्रेत्रतत्रच ॥ भक्षयन्तिजनौघांश्चबालवृद्धान्द्विजानपि ॥ ३ ॥ ततस्तेमानवाःसर्वेप्रगच्छन्तःसमन्ततः ॥ इत
श्चेतश्चधावन्तिप्राणरक्षणतत्पराः ॥ ४ ॥ तथाऽन्येबहवोगत्वाअयोध्याख्यांमहापुरीम् ॥ रामपुत्रंनृपश्रेष्ठंकुशंप्रोचुःसुदुः

दो० । इकसौ यक अध्याय में बरणत सो इतिहास । जिमि पठयो कुश दूत को नृपति विभीषण पास ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! भक्तिसंयुत राक्षसोंने वहांपर
जिन लिङ्गों को स्थापन किया है उनके माहात्म्य को कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय उन लिङ्गों के पूजन के लिये विकराल व बड़े बलिष्ठ सैकड़ों राक्षस
सदैव लङ्कापुरी से भलीभांति आतेथे ॥ २ ॥ व यहांपर इस क्षेत्रमें आते व लङ्कापुरी को जातेहुये वे राक्षस बालक व वूढ़े जन समूहों को तथा ब्राह्मणों को भी भक्षण
करतेथे ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्राणों के रक्षणमें परायण व सब ओर जातेहुये वे मनुष्य इधर उधर धावने लगे ॥ ४ ॥ व अतिदुःखित होतेहुये अन्य बहुत से मनुष्य अयोध्या

नामक महापुरी को जाकर रामजी के पुत्र नृपोत्तम कुशजी से बोले ॥ ५ ॥ कि हे राजन्! पुरातन समय जिनमें विभीषण आगे चलनेवालेथे वे राक्षस हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्रमें तुम्हारे पिताके साथ प्राप्त हुयेथे ॥ ६ ॥ और वहांपर उसी क्षेत्रके पश्चिम में उन राक्षसेन्द्रों ने अपने मन्त्रों से पांच मुखवाले लिङ्गोंको भलीभांति स्थापन किया है ॥ ७ ॥ और उसी प्रसङ्ग से उस क्षेत्रमें राक्षस नित्यही आते हैं व मनुष्यका भक्षण करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा यदि कोई मनुष्य उन लिङ्गो को भलीभांति पूजता है तो उसी क्षण विनाश को प्राप्त होताहै वहभी बड़ाभारी अनर्थ कहागया है॥ ९॥ उसी कारण हे भूपते! यदि आप हमलोगों की रक्षा न करैंगे तो धीरे २ यह समस्त

स्थिताः ॥ ५ ॥ तवपित्रासमंप्राप्ताःपूर्वंयेराक्षसान्नृप॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेविभीषणपुरस्सराः ॥ ६ ॥ संस्थापितानिलिङ्गानिपञ्चवक्त्राणितत्रवै ॥ राक्षसेन्द्रैःस्वमन्त्रैस्तैस्तस्यक्षेत्रस्यपश्चिमे ॥ ७ ॥ तेनैवचानुषङ्गेणसमागच्छन्तिनित्यशः ॥ तस्मिन्क्षेत्रेप्रकुर्वन्तितथालोकस्यभक्षणम् ॥ ८ ॥ यदिवातानिलिङ्गानिकश्चित्सम्पूजयेन्नरः ॥ सद्योविनाशमायातिसोप्यनर्थोमहान्स्मृतः ॥ ९ ॥ तस्माद्यदिनरक्षांनःकरिष्यतिमहीपते॥ तच्छनैर्यास्यतेलोकःसर्वोयंसंक्षयंध्रुवम्॥१०॥ तच्चक्षेत्रंविशेषेणयत्रागच्छन्तितेसदा ॥ राक्षसाःक्रूरकर्म्माणोमहामांसस्यलोलुपाः॥ ११ ॥ ततःश्रुत्वान्नृपस्तूर्णंस्वामात्यानांन्यवेदयत्॥ राज्यभारन्ततस्तत्रबलेनसहितोययौ॥ १२ ॥ अथप्राप्तंकुशंदृष्ट्वाहतशेषाद्विजोत्तमाः ॥ प्रोचुस्तंभर्त्सयित्वातुवचनैःपरुषाक्षरैः ॥ १३॥ किमेवंक्रियतेराज्यंयथात्वंक्षत्रियाधमः ॥ करोषियत्रविध्वंसंराक्षसैर्नीयतेजनः ॥ १४ ॥ नूनंजातोनरामेणभवान्रावणसम्भवः ॥ यन्नोरक्षसिसर्वान्नोराक्षसैःपरिपीडितान्॥ १५ ॥ सत्यमेतत्पुराप्रो

संसार निश्चयकर नाश होजायगा ॥ १० ॥ और वह क्षेत्र विशेषकर नाश होजायगा कि जहांपर क्रूर कर्मोंवाले व मनुष्यमांस के लोभी वे राक्षस सदैव आते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर नृपति ने उस वचन को सुनकर शीघ्रही निज मन्त्रियों को राज्यका भार निवेदन किया उसके उपरान्त उस क्षेत्र में सेना समेत गमन किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर प्राप्त हुये कुशको देखकर मरने से बचेहुये ब्राह्मणोत्तमोंने उनको निन्दकर कठोर आखरवाले वचनों से कहा ॥ १३ ॥ कि क्या इसप्रकार राज्य कीजाती है जिस प्रकार कि क्षत्रियों में नीच तुम करते हो कि जिस राज्य में राक्षस मनुष्यों को विध्वंस करते हैं ॥ १४ ॥ आप रामचन्द्र जी से उत्पन्न नहीं हुयेहो किन्तु रावण से उपजे हो

करतेहो ॥ १५ ॥ पुरातन समय नीतिशास्त्र में प्रवीण पुरुषों ने यह सत्य कहा है कि जिस जाति का जो राजा
क्योंकि राक्षसोंसे अत्यन्तही दुःखित हमसबों की रक्षा नहीं करतेहो ॥ १५ ॥ पुरातन समय नीतिशास्त्र में प्रवीण पुरुषों ने यह सत्य कहा है कि जिस जाति का जो राजा
होता है वही जाति सुख को प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ इसलिये तुम राक्षस के भाव को प्राप्तहुये उसी कारण राक्षसों से भक्षण किये जाते हुये समस्त द्विजोत्तमों व अन्य नरों को
त्याग करते हो ॥ १७ ॥ व नृपति से उपजे हुये दोषों से दुःखित मनुष्यों के आंसू जिस भूतल में गिरते हैं वहांका जो राजा है वही दोषभागी होता है ॥ १८ ॥ कुश
बोले कि हे ब्राह्मणो ! प्रसन्नता कीजावै क्योंकि मैंने ऐसे चरित्र को नहीं जाना जोकि राक्षसों से तुम सबों ब्राह्मणों का तिरस्कार पैदाहुआ ॥ १९ ॥ व आज से लगाकर कहीं

॥ १६ ॥ तस्मात्त्वंराक्षसीभूतोराक्षसैर्द्विजसत्तमान् ॥
क्तंनीतिशास्त्रविचक्षणैः ॥ यस्यवर्णस्ययोराजासवर्णःसुखमेधते ॥ १६ ॥ तस्मात्त्वंराक्षसीभूतोराक्षसैर्द्विजसत्तमान् ॥
उपेक्ष्यसेततःसर्वान्भक्ष्यमाणांस्तथापरान् ॥ १७ ॥ आर्तानांयत्रलोकानांदोषैःपार्थिवसम्भवैः ॥ पतन्त्यश्रूणिभूपृष्ठेत
त्रराजासदोषभाक् ॥ १८ ॥ कुशउवाच ॥ प्रसादःक्रियतांविप्रानमयाज्ञातमीदृशम् ॥ राक्षसैर्वःसमुत्पन्नोब्राह्मणानांपरा
भवः ॥ १९ ॥ अद्यप्रभृतियःकश्चिद्विनाशंनीयतेकचित् ॥ ब्राह्मणोवाथवान्योपितद्भवेन्ममपातकम् ॥ २० ॥ एवमुक्त्वात
तस्तूर्णंप्रेषयामासराघवः ॥ विभीषणायसंक्रुद्धोदूतम्भयविवर्जितम् ॥ २१ ॥ गच्छदूतद्रुतङ्गत्वात्वयावाच्योविभीष
णः ॥ रामोचितस्त्वयास्नेहोमयासहकृतोमहान् ॥ २२ ॥ यद्राक्षसगणैःसार्द्धंममभूमिंसमन्ततः ॥ त्वंक्लेशयासिदुर्बुद्धे
मांविश्वास्यसुभाषितैः ॥ २३ ॥ ममपित्राकृतेयन्तेप्रतिष्ठाराक्षसाधम ॥ तेननोहन्मितेभ्रातायथावातेननाशितः ॥
२४ ॥ विषवृक्षोपियोवृद्धिंस्वयमेवप्रतीयते ॥ कथंसंछिद्यतेसोत्रस्वयमेवमनीषिभिः ॥ २५ ॥ तस्मादद्यदिनादूर्ध्वंयदि

पर जो कोई ब्राह्मण या अन्य नर भी नाश होवै वह पातक मुझको होवैगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर अत्यन्त क्रोधित व रघुवंश में उपजे हुये कुशने शीघ्रही डर
से रहित दूत को विभीषण के लिये पठाया ॥ २१ ॥ कि हे दूत ! तुम जाओ व शीघ्रही जाकर तुम को विभीषण से कहना चाहिये कि तुम ने मेरे साथ रामचन्द्र के योग्य
बड़े स्नेह को किया ॥ २२ ॥ जो कि हे दुष्टबुद्धिवाले ! तुम मुझ को उत्तम वचनों से विश्वास कराकर राक्षसगणों समेत सब ओर से मेरी भूमिको दुःख देतेहो ॥ २३ ॥
हे राक्षसों में नीच ! मेरे पिताने तेरी इस प्रतिष्ठा को किया है उसी से मैं नहीं मारता हूं जिस प्रकार कि उन राम जी ने तेरे भाई (रावण) को मारा है ॥ २४ ॥ क्योंकि

जो विषका वृक्ष भी आपही वृद्धि को प्राप्त किया जाता है वह इस संसार में किसप्रकार आपही बुद्धिमानों से काटाजाय ॥ २५ ॥ इसलिये आज दिन से उपरान्त यदि कोई राक्षस किसी प्रकार समुद्र के उत्तर किनारे पै आवैगा ॥ २६ ॥ तो सेनासमेत मैं शीघ्रही तुम्हारी इस लङ्कापुरी को प्राप्त होकर विध्वंस करूंगा वह दूत सेतु के समीप जाकर व रामेश्वर के दर्शन कर जबतक अगाड़ी स्थित हुआ तबतक कुछ जनों ने पूंछा कि हे वत्स ! तुम कौनहो व यहां किस कार्य्य से आये हो इसको कहो क्योंकि यहां पर मनुष्य नहीं आताहै दूत बोला कि कुश भूपने कार्य्यको उद्देशकर मुझको विभीषण के घर को पठाया है वहांपर मैं किस प्रकार जाऊंगा मनुष्य बोले कि इस

कश्चिन्निशाचरः ॥ समुद्रस्योत्तरंपारंकथंचिदागमिष्यति ॥ २६ ॥ तदहंसत्वरंप्राप्यलङ्कान्तवपुरीमिमाम् ॥ ससैन्यो ध्वंसयिष्यामिसगत्वासेतुमन्तिकम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वारामेश्वरंयावदग्रेदूतोऽव्यवस्थितः ॥ तावत्पृष्टोजनैःकैश्चित्कस्त्वंवत्स इहागतः ॥ २८ ॥ केनकार्य्येणभोब्रूहिनात्रागच्छतिमानवः ॥ दूतउवाच ॥ अहंकुशेनभूपेनविभीषणगृहम्प्रति ॥ २९ ॥ प्रेषितःकार्य्यमुद्दिश्यतत्रयास्याम्यहङ्कथम् ॥ जनाऊचुः ॥ नातःपरंनरःकश्चिद्गन्तुंशक्तःकथञ्चन ॥ ३० ॥ भग्नःसेतुर्य तोमध्येरामेणाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ तस्मादत्रैवतेकार्य्यंसिद्धिंदूतप्रयास्यति ॥ ३१॥ विभीषणकृतंसर्वन्दर्शनात्पश्यरक्षसः॥ सर्वदाराक्षसेन्द्रोसौशुभंरामेश्वरत्रयम् ॥ ३२॥ त्रिकालम्पूजयत्येवनियमंसमुपाश्रितः ॥ लङ्काद्वारेस्थितोयोवैसेतुखण्डे महेश्वरः ॥ ३३ ॥ प्रभातेकुरुतेतस्यस्वयंपूजांविभीषणः ॥ जलमध्यगतंयत्तुसेतुखण्डंद्वितीयकम् ॥ ३४॥ तत्ररामेश्व रोयश्चमध्याह्नेतम्प्रपूजयेत् ॥ एनन्देवंनिशीथेचसर्वदागत्यभक्तितः ॥ ३५ ॥ सम्पूजयेन्नसन्देहःसत्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥

के उपरान्त जाने के लिये कोई मनुष्य किसी प्रकार समर्थ नहीं है ॥ २७।२८।२९।३० ॥ जिस लिये कि उत्तम कर्मवाले रामचन्द्र जी ने बीच में सेतु को तोड़डाला है उसी कारण हे दूत ! यहींपर तुम्हारा कार्य्य सिद्ध होजावैगा ॥ ३१ ॥ व राक्षस के दर्शन से विभीषण से किये हुये समस्त कार्य्य को देखियेगा नियम में भलीभांति टिका हुआ यह राक्षसेन्द्र (विभीषण) सदैव शुभदायक तीनों रामेश्वरों को तीनोकाल में पूजताही है लङ्का के द्वारवाले सेतु के टुकड़े पै जो ये महादेव जी टिके हैं ॥ ३२ । ३३ ॥ उनका पूजन प्रभात काल में आपही विभीषण करता है व जो दूसरा सेतु का खंड जल के बीच में प्राप्त है ॥ ३४ ॥ उस खण्ड पै जो रामेश्वर जी हैं उनको दुपहर में

पूजताहै व सदैव आधीरात में आकर भक्ति से इन देवको निस्सन्देह पूजन करताहै यह सत्य कहागया है इसलिये हे द्विज ! तबतक सावधान चित्तवाले तुम साथही इसी
स्थान पै टिको ॥ ३५।३६ ॥ जबतक कि उस राक्षस (विभीषण) महात्मा का आगमन होवै पश्चात् अपनी इच्छासे उसीके साथ उसके घरको जाइयेगा या उससे बिदा
होकर अपनेही घरको जाइयेगा वह दूत उन सबों के उस वचन को सुनकर आनन्दसंयुत हुआ ॥ ३७ । ३८ ॥ इसके उपरान्त हां यही कहकर वहींपर विशेषता से
टिका इसके अनन्तर जब आधीरात प्राप्तहुई तब राक्षसों से घिरे व उत्तम विमानपै चढ़े व सब ओरसे राक्षसों से प्रशंसित तथा वन्दीजनों के रूपवाले अन्य निशाचरों

तस्मात्तिष्ठत्वमव्यग्रःस्थानेत्रैवसमंद्विज ॥ ३६ ॥ यावदागमनन्तस्यराक्षसस्यमहात्मनः ॥ तेनैवसहितःपश्चात्स्वेच्छ
यातस्यमन्दिरम् ॥ ३७ ॥ प्रयास्यसिगृहंवापिस्वकीयन्तद्विसर्जितः ॥ तेषांवचस्तदाकर्ण्यसदूतोहर्षसंयुतः ॥ ३८ ॥ बा
ढमित्येवचोक्त्वाथतत्रैवव्यवस्थितः ॥ अथप्राप्तेनिशार्द्धेसराक्षसैःपरिवारितः ॥ ३९ ॥ विभीषणस्समायातस्तस्मि
न्नायतनेशुभे ॥ विमानवरमारूढःस्तूयमानःसमन्ततः ॥ ४० ॥ राक्षसैर्वन्दिरूपैस्तैर्गीयमानस्तथापरैः ॥ उत्तीर्य्यच
विमानाग्रात्कृत्वाथत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वरंप्रणम्योच्चैःस्तोत्रमेतच्चकारह ॥ नमस्तेदेवदेवेशभक्तानामभयप्र
द ॥ ४२ ॥ सर्वतःपाणिपादन्तेसर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्वंचन्द्रस्त्वंप्रभाकरः ॥ ४३ ॥ त्वंविष्णुस्त्वं
चतुर्वक्त्रःशक्रस्त्वंपरमेश्वरः ॥ यथातिलगतन्तैलंगूढन्तिष्ठतिसर्वदा ॥ ४४ ॥ तथात्वंसर्वलोकेषुगूढस्तिष्ठसिशङ्कर ॥

से गाये हुये उस विभीषण ने उसी शुभदायक मन्दिर में भलीभांति आगमन किया इसके अनन्तर विमान के आगे से उतरकर व रामेश्वर की तीन प्रदक्षिणाओं
को करके व उच्च प्रकार से प्रणामकर इस स्तोत्र को किया कि हे देव! हे देवनायक ! हे भक्तों को अभय देनेवाले! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३९।४०।४१।४२ ॥ सब
ओर तुम्हारे हाथ पांव हैं व सब ओर तुम्हारे नेत्र व शिर तथा मुख हैं व तुम्हीं यज्ञहो तुम्हीं वषट्कार (स्वाहा) हो तुम्हीं चन्द्रमाहो व तुम्हीं प्रकाश करनेवाले दिवा-
कर हो ॥ ४३ ॥ तुम्ही विष्णु हो तुम्हीं चतुरानन (ब्रह्मा) हो तुम्हीं इन्द्रहो तुम्हीं परमेश्वरहो जैसे तिल में प्राप्त छिपा हुआ तैल सदैव टिका है ॥ ४४ ॥ वैसेही हे शङ्कर!

समस्त मनुष्यों में छिपेहुये तुम टिके हो जैसे भलीभांति टिकी हुई भी काठ में प्राप्त अग्नि नहीं देख पड़ती है ॥ ४५ ॥ व जैसे दही में प्राप्त घी गुप्तता से टिका है वैसेही हे देव ! स्थावर जङ्गम प्राणियों में तुम भलीभांति स्थितहो ॥ ४६ ॥ जैसे मेघ के बरसनेसे मनुष्य अन्न को पाता है वैसेही नित्य तुमको पूजता हुआ पुरुष निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ हे देव ! तबतक स्वर्ग दुर्लभहै व शूरमा शत्रुहैं जबतक कि तुम देहधारियों को सन्तोष नहीं करते हो ॥ ४८ ॥ हे देवदेव ! मनुष्यों के तभीतक लक्ष्मी चलायमान है व तभीतक अनेकों प्रकार के रोग हैं जबतक कि तुम भलीभांति प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होतेहो ॥ ४९ ॥ हे देव ! इस संसार में तबतक पुत्र से उपजा व प्यारे

यथाकाष्ठगतोवह्निःसंस्थितोपिनलक्ष्यते ॥ ४५ ॥ यथादधिगतंसर्पिर्निगूढत्वेनसंस्थितम् ॥ चराचरेषुभूतेषुतथात्वंदेव संस्थितः ॥ ४६ ॥ यथाजलधराद्वृष्टादन्नंप्राप्नोतिमानवः ॥ तथात्वाम्पूजयन्नित्यंमोक्षमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४७ ॥ तावच्च दुर्लभःस्वर्गस्तावच्छूराश्चशत्रवः ॥ यावद्देवनसन्तोषंत्वङ्करोषिशरीरिणाम् ॥ ४८ ॥ तावल्लक्ष्मीश्चलानृणान्तावद्रोगाःपृ थग्विधाः॥नयावद्देवदेवत्वंसन्तोषञ्चप्रयास्यसि ॥ ४९ ॥ तावत्पुत्रोद्भवंदुःखंतथाप्रियसमुद्भवम् ॥ यावत्त्वंदेवनोयासिसंतो षंदेहिनामिह ॥ ५० ॥ एवंस्तुत्वाततोलिङ्गंस्थापयित्वायथाविधि ॥ गन्धानुलेपनैर्दिव्यैर्मर्द्दयामासवैततः ॥ ५१ ॥ पा रिजातकपुष्पैश्चतथासंतानसंभवैः ॥ कल्पपादपसंभूतैस्तथामन्दारजैरपि ॥ ५२ ॥ पूजांचक्रेसुविस्तीर्णांश्रद्धयापरया युतः ॥ दिव्यैराभरणैर्भूष्यदिव्यवस्त्रैस्ततःपरम् ॥ ५३ ॥ कृत्वागीतंस्वयंचक्रेतालमादायपाणिना ॥ मूर्च्छातालकृतं रम्यंसप्तस्वरविराजितम् ॥ ५४ ॥ तालयुक्त्यासमोपेतंमान्यैरागैस्सुसंस्कृतम् ॥ एवंकृत्वातुशुश्रूषांतस्यदेवस्यभ

से उत्पन्न हुआ दुःख है जबतक कि शरीरधारियों के ऊपर तुम प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होते हो ॥ ५० ॥ इसप्रकार स्तुति कर तदनन्तर विधिपूर्वक लिङ्ग को थापकर उसके उपरान्त विभीषण ने चन्दनादि अनुलेपनों से मर्दन किया ॥ ५१ ॥ व परमश्रद्धा से संयुत होते हुये उसने सन्तान (कल्पवृक्षविशेष) से उपजे हुये व पारिजात के पुष्पों से तथा कल्पवृक्ष से उपजे व मन्दार से उत्पन्न हुये भी फूलों से बड़े विस्तारवाली पूजा को किया उसके उपरान्त उत्तम वस्त्रों व दिव्य आभूषणों से भूषितकर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ व आपही हाथ से तालको लेकर तालकी युक्ति से संयुत व मान्य (उत्तम) रागो से भलीभांति संस्कार को प्राप्त व मूर्च्छा (स्वर के चढ़ाने व उतारने के क्रम) से

व ताल से किये हुये तथा सातों स्वरों से शोभित मनोहर गानको किया इस प्रकार उन रामेश्वर देव की भक्ति से सेवाकर विभीषण ने जबतक फिर लङ्कापुरी को प्रस्थान
किया तबतक दूत ने आगे खड़े होकर कुशजी के वचन को कहा ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ अत्यन्त कोप से तिरस्कृत व लाल लोचनोंवाले उस दूत ने पत्र के पहले समीप में
विशेषतासे कहा ॥ ५७ ॥ उस वचन को सुनकर अनन्तर जुड़े हुये हाथोंवाले होकर नम्रता से नीचेनये स्थित विभीषण ने दूत को उच्चप्रकार से प्रणामकर कहा ॥
५८ ॥ कि हे दूतोत्तम ! जो कि राम जी के पुत्र (कुश) की राज्य को राक्षसों ने इसप्रकार विध्वंस किया वह सब निश्चय कर मुझ से किया हुआ है ॥ ५९ ॥ इसलिये

क्षितः ॥ ५५ ॥ यावत्संप्रस्थितोभूयोलङ्कांप्रतिविभीषणः ॥ तावद्दूतोग्रतःस्थित्वाकुशवाक्यमुवाचह ॥ ५६ ॥ विशेषतस्तु
तेनोक्तंपत्रस्यपुरतःपुरा ॥ अतिकोपाभिभूतेनसंरक्तनयनेनच ॥ ५७ ॥ तच्छ्रुत्वाथप्रणम्योच्चैर्दूतंप्राहविभीषणः ॥ कृता
ञ्जलिपुटोभूत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ ५८ ॥ यदेवंविहतंराज्यंरामपुत्रस्यराक्षसैः ॥ तन्नूनंतुमयासर्वंविहितंदूतसत्त
म ॥ ५९ ॥ तस्मान्महाप्रसादोत्रकृतस्तेनमहात्मना ॥ कुशेनप्रेषितोयस्त्वंममसूर्खस्यसन्निधौ ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वासतता
न्सर्वाञ्छोधयामासराक्षसान् ॥ येगत्वाभूतलेमर्त्यान्ध्वंसयन्तिसदैवहि ॥ ६१ ॥ ततस्तथैवचानीयतस्यदूतस्यराक्ष
सः ॥ प्रत्येकंतानुवाचेदंकोपादश्रूणिचोत्सृजन् ॥ ६२ ॥ कृतोयैर्जनविध्वंसोराक्षसैस्सुदुरात्मभिः ॥ राज्येकुशस्यसंप्रा
प्तैःप्रभोर्ममहात्मनः ॥ ६३ ॥ तेसर्वेतितरंरौद्राःप्रभवन्तुसुदुःखिताः ॥ लङ्काद्वारगतानित्यंक्षुत्पिपासानिपीडिताः ॥ ६४ ॥
सर्वभोगपरित्यक्ताःशीतातपसहिष्णवः ॥ श्लेष्ममूत्रकृताहारानिन्द्याःसर्वजनस्यच ॥ ६५ ॥ एवंदत्त्वातुतेषांसशापं

इस विषयमें उन कुश महात्माने बडी प्रसन्नता किया जो तुम को मुझ मूर्ख के समीप पठाया ॥ ६० ॥ ऐसा कहकर उन विभीषणने उन समस्त राक्षसों को शोधन कराया
(खोजवाया) जोकि सदैव भूतल में जाकर मनुष्यों का विनाश करते थे ॥ ६१ ॥ तदनन्तर वैसेही उस दूत को लाकर क्रोध से आंसुओं को छोडते हुये राक्षस (विभीषण)
ने उन प्रत्येक राक्षसों से यह कहा ॥ ६२ ॥ कि मेरे स्वामी व महात्मा कुश की राज्यमें भलीभांति प्राप्त हुये जिन दुष्टचित्त या मनवाले राक्षसों ने जनोंका विध्वंस कियाहै ॥
६३ ॥ अत्यन्तही विकराल व नित्यही लंकापुरी के द्वारपै प्राप्त हुये वे समस्त राक्षस क्षुधा, प्यास से विकल होकर बहुतही दुःखित होवैं ॥ ६४ ॥ व समस्त भोगों से छुटे

हुये व शीतातप (जाड़े, घाम) के सहनेवाले व श्लेष्मा (कफ) तथा मूत्रको आहार करनेवाले व समस्त नरों से निन्दा करने के योग्य होवैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार उन राक्षसों को शाप देकर उसके उपरान्त हाथ जोड़े हुये उस राक्षसोत्तम ने फिर भी उस दूत से कहा ॥ ६६ ॥ कि आज से लगाकर कोई राक्षस न जावैगा इसलिये वे रघूत्तम कुश जी मेरे वचन के द्वारा तुमसे कहने योग्य हैं ॥ ६७ ॥ कि मेरा यह अपराध क्षमा किया जाय जो कि दुष्टजातिवाले व मनुष्य मांस के लोभी राक्षसों से किया गया है ॥ ६८ ॥ हे दूत! क्योंकि तुम्हारे सामने उन राक्षसों को दण्ड किया गया है व जब जब भी देवसम्बन्धी या मनुष्यवाला कार्य्य होवै ॥ ६९ ॥ वह सब निःशंकपूर्वक मुझ

राक्षससत्तमः ॥ ततःप्राहचतंदूतंपुनरेवकृताञ्जलिः ॥ ६६ ॥ अद्यप्रभृतिनोकश्चिद्राक्षसःसंप्रयास्यति ॥ तस्माद्वाच्योरघुश्रेष्ठोमद्वाक्यात्सकुशस्त्वया ॥ ६७ ॥ क्षम्यतामपराधोमेयदज्ञानादयंकृतम् ॥ राक्षसैर्दुष्टजातीयैर्महामांसस्यलोलुपैः ॥ ६८ ॥ कृतश्चनिग्रहस्तेषांप्रत्यक्षंतवदूतयत् ॥ यदायदापिकृत्यंस्याद्दैवंवामानुषञ्चवा ॥ ६९ ॥ ममभृत्यस्यतत्सर्वंकथनीयमशङ्कितम् ॥दूतउवाच॥ यानितत्रचलिङ्गानिराक्षसैर्निर्म्मितानिच ॥ ७० ॥ तानिगत्वास्वयंशीघ्रंत्वमुत्पाटयराक्षस ॥ अजानन्मानवःकश्चिद्यदिपूजांसमाचरेत् ॥ ७१ ॥ तत्क्षणान्नाशमायातिएतद्दृष्टंमयास्वयम् ॥ एतस्मात्कारणाद्वच्मित्वामहंराक्षसाधिप ॥ ७२ ॥ तैःस्थितैर्भूतलेलिङ्गैःस्थितास्सर्वेनिशाचराः ॥ विभीषणउवाच॥ मयापूर्वंप्रतिज्ञातंरामस्यपुरतःकिल ॥ ७३ ॥ रामेश्वरमतिक्रम्यनगन्तव्यंधरातले ॥ अन्यच्चकारणंदूतप्रोक्तमत्रमनीषिभिः ॥ ७४ ॥ उत्थितंसुस्थितंवापिशिवलिङ्गंनचालयेत् ॥ तत्कथंतत्रगत्वाथलिङ्गभेदंकरोम्यहम् ॥ ७५ ॥ स्वयंमाहे

दास से कहना चाहिये दूत बोला कि हे राक्षस! वहांपर राक्षसों ने जिन लिंगोंका निर्माण किया है शीघ्रही जाकर तुम उन लिंगों को आपही उखाड़ो क्योंकि न जानता हुआ कोई मनुष्य यदि पूजन करता है ॥ ७० । ७१ ॥ तो हे राक्षसाधिप! उसी क्षण वह नाश होजाता है इसको मैंने आपही देखा है इसी कारण मैं तुम से कहता हूं ॥ ७२ ॥ कि भूतल में उन लिंगों के स्थित होने से समस्त राक्षस टिके हैं विभीषण बोले कि प्रसिद्ध में पहले मैंने रामचन्द्र के आगे प्रतिज्ञा किया है ॥ ७३ ॥ कि रामेश्वर को लांघकर भूतल में न जाना चाहिये हे दूत! इस विषय में याने प्रतिमा के उखाड़ने में पण्डितों ने और भी कारण को कहा है ॥ ७४ ॥ कि उठे या भलीभांति स्थित

हुये भी शिव जी के लिंग को न चलावै उसी कारण वहां जाकर इसके उपरान्त आपही प्रतिज्ञाकर व आपही शैव होकर मैं कैसे लिंगको भेदन करूं इसलिये वे नरेश
(कुश जी) मेरे वचन से प्रसन्नता कराने के योग्यहैं ॥ ७५।७६ ॥ और जो मैंने अयोग्य कहाहो तो तुम दण्ड को करो ऐसा कहकर इसके उपरान्त समुद्र से उपजे
हुये बहुतेरे भूषणों से उस दूत को भूषितकर अनन्तर कुशनृपति प्रति बिदा किया ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन विभीषणसे शाप दियेहुये उन राक्षसोंने अतिदुःखित होकर
कहा कि हे राक्षसेश्वर! हम सबों के शापका मोक्ष कीजिये ॥ ७८ ॥ विभीषण बोले कि हे राक्षसाधमो! विशेषतासे शठों व शाप दिये हुये तुमलोगों के ऊपर मैं फिर भी

श्वरोभूत्वाप्रतिज्ञायचैवस्वयम् ॥ तस्मात्प्रसादनीयस्तुमद्वाक्यात्सनराधिपः ॥ ७६ ॥ यदयुक्तंमयाप्रोक्तंतत्त्वंकुरुविनिग्र
हम् ॥ एवमुक्त्वाथतंदूतंरत्नैस्सागरसंभवैः ॥ प्रभूतैर्भूषयित्वाथविससर्ज्जनृपंप्रति ॥ ७७ ॥ अथतेराक्षसास्तेनशप्ताःप्रोचुः
सुदुःखिताः ॥ कुरुशापस्यमोक्षंनःसर्वेषांराक्षसाधिप ॥ ७८ ॥ विभीषणउवाच ॥ नाहंकरोमिभूयोपियुष्माकंराक्षसाध
माः ॥ अनुग्रहःप्रशप्तानांवञ्चकानांविशेषतः ॥ ७९ ॥ तस्मात्सोपिरघुश्रेष्ठःप्रसादंवःकरिष्यति ॥ ममवाक्यादसंदिग्धं
कालःकश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वाथराजेन्द्रःप्रेषयामाससत्वरम् ॥ दूतंकुशमहीपस्यमानुषंदेवपूजकम् ॥ ८१ ॥
गत्वाब्रूहिकुशम्भूपंसत्वरंवचनान्मम ॥ ८२ ॥ एतेषांमत्प्रशप्तानांराक्षसानांदुरात्मनाम्॥अनुग्रहंकुरुविभोदीनानांभो
जनायवै ॥ ८३ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनदूतोदूतेनसंयुतः ॥ कुशसक्तेननिर्यातःसत्वरंद्विजसत्तमाः ॥ ८४ ॥ ततोगत्वाद्भुतं
दूतःकुशंप्रोवाचसादरम् ॥ प्रणिपत्ययथान्यायंविनयावनतःस्थितः ॥ ८५ ॥ विभीषणोमयादृष्टोदेवरामेश्वरेविभो ॥

दया न करूंगा ॥ ७९ ॥ इसलिये वे रघूत्तम (कुश) जी निश्चय कर मेरे वचन से तुम लोगों के ऊपर निस्सन्देह प्रसन्नता करैंगे किसी कालको परखिये ॥ ८० ॥ ऐसा
कहकर इसके उपरान्त नृपेन्द्र विभीषण ने देवताओं के पूजनेवाले मनुष्य दूत को कुशभूपति के समीप शीघ्रही पठाया ॥ ८१ ॥ कि कुश भूपति के निकट शीघ्रही जाकर
मेरे वचन से कहिये ॥ ८२ ॥ कि हे विभो! मुझसे शापित इन दुष्ट चित्तवाले व दीन राक्षसों के भोजन के लिये दया कीजिये ॥ ८३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो! उन
विभीषण से इस प्रकार कहाहुआ वह दूत कुशमें आसक्तवाले दूत से संयुत होकर शीघ्रही निकला ॥ ८४ ॥ उसके उपरान्त शीघ्रही जाकर व नम्रता से नीचेनये खड़े

हुये दूतने कुशभूपति को यथायोग्य प्रणामकर आदर समेत कहा ॥ ८५ ॥ कि हे व्यापक ! रामेश्वरदेव में मैंने विभीषणको देखा जोंकि बहुत राक्षसों से घिराहुआ वहांपर पूजन के लिये आयाथा ॥ ८६ ॥ हे रघुनन्दन कुशजी ! मैंने समस्त आपके वचनको कहा व विनय से झुकेहुये उस विभीषण ने भी उस सम्पूर्ण वाक्यको सुना ॥ ८७ ॥ हे प्रभो ! उसके न जानने से मनुष्यमांसके लोभी व दुष्ट चित्तवाले राक्षसोंने भूतलमें मनुष्यों को दुःखित कियाथा ॥ ८८ ॥ हे नृपोत्तम ! उस वचनको सुनकर सामनेही उन विभीषणने सब राक्षसों को दण्ड किया कि जिन्हों ने तुम्हारी भूमि में विनाश कियाथा ॥ ८९ ॥ पाप आहार विहारवाले वे सब विशेषता से बाहर कियेगये कि तुम

पूजार्थंतत्रचायातोराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ८६ ॥ प्रोक्तंमयाभवद्वाक्यमशेषंरघुनन्दन ॥ श्रुतंतेनापितत्सर्वंविनयावनतेन च ॥ ८७ ॥ अजानतःप्रभोतस्यराक्षसैस्सुदुरात्मभिः ॥ मनुष्याःपीडिताभूमौमहामांसस्यलोलुपैः ॥ ८८ ॥ तच्छ्रुत्वासंमुखंतेनसर्वेषांनिग्रहःकृतः ॥ यैःकृतंकदनंभूमौतवपार्थिवसत्तम ॥ ८९ ॥ कृतास्तेऽयन्तरास्सर्वेपापाहारविहारिणः ॥ भविष्यथतथायूयंक्षुत्पिपासानिपीडिताः ॥ ९० ॥ तैस्सर्वैःपार्थिवःसोपिभूयोभूयःप्रसादितः॥ आशप्तायद्वयंसर्वेप्रसादं कुरुतद्विभो ॥ ९१ ॥ तेतेनाथततःप्रोक्तानाहंवोराक्षसाधमाः॥ अनुग्रहंकरिष्यामिनदास्यामिचभोजनम् ॥ ९२ ॥ कुशादेशान्मयासर्वेयूयंपापसमन्विताः ॥ निगृहीतास्सयुष्माकंप्रसादंप्रकरिष्यति ॥ ९३ ॥ तदर्थंप्रेषितोदूतस्त्वत्सकाशं महीपते ॥ रक्षसातेनयद्युक्तमखिलंतत्समाचर ॥ ९४ ॥ किंवातेबहुनोक्तेननास्तिभक्तस्तथाविधः ॥ भक्तिशक्तिसमोपेतोयथातेसविभीषणः ॥ ९५ ॥ अद्यप्रभृतिनोभूमौविचरिष्यन्तिराक्षसाः ॥ तस्यवाक्यादसंदेहंत्वंराजन्सुखभाग्भ

लोग क्षुधा, प्याससे दुःखित होवोगे ॥ ९० ॥ उन सबोंने उस नृपतिको भी बारबार प्रसन्न किया कि जिस लिये हम सब शापित हुये हैं उसी कारण हे विभो ! प्रसन्नता करिये ॥ ९१ ॥ इसके उपरान्त उन विभीषण ने उन राक्षसों से कहा कि हे राक्षसाधमो ! मैं तुम लोगों के ऊपर अनुग्रह न करूंगा और न भोजन दूंगा ॥ ९२ ॥ क्योंकि कुशनृपतिकी आज्ञा से मैंने पापसंयुत तुमलोगोंको दण्ड दिया है और वे कुशजी तुमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता करैंगे ॥ ९३ ॥ हे भूपते ! उसीके लिये उस विभीषण राक्षस ने तुम्हारे समीप दूतको पठाया है जो योग्यहो उसको कीजिये ॥ ९४ ॥ अथवा तुम से बहुत कहने से क्याहै उस प्रकारका कोई भक्त नहीं है जैसा कि तुम्हारी भक्तिकी

शक्ति से संयुत वह विभीषण है ॥ ९५ ॥ हे राजन् ! आजसे लगाकर उस विभीषण के वचन से राक्षस भूमिमें नहीं विचरैंगे तुम निस्सन्देहपूर्वक सुखभागी होत्रो ॥ ९६ ॥
हे नृपेन्द्र, राजन् ! लिङ्गोंके लिये उस राक्षस ने कहा है कि मुझको यहां पर किसी प्रकार न आना चाहिये ॥ ९७ ॥ क्योंकि रामचन्द्र देवके वचन से जम्बूद्वीप में
मेरी गति नहीं है यहां पर टिकेहुये मुझसे देवताओं व मनुष्योंवाला जो कार्य्य होवै ॥ ९८ ॥ मैं तुम्हारी आज्ञाको करूंगा यद्यपि दुष्कर (कठिन) भी होगी इसलिये
हे महाराज ! रामेश्वरके पूजनेवाले जिस मनुष्य दूतको उन विभीषणने पठायाहै हे भूपते ! उसको देखिये और उन विभीषण की आज्ञासे अनेकों प्रकारके देखने

रामदेवस्यवाक्येनज
व ॥९६॥ लिङ्गानांचकृतेराजन्ब्रुवंसितंतेनरक्षसा ॥ नमयाचात्रराजेन्द्रआगन्तव्यंकथंचन ॥ ९७॥ त
म्बूद्वीपेनमेगतिः ॥ अत्रस्थितस्ययत्कार्य्यं दैवंवामानुषञ्चवा ॥ ९८॥ तवादेशंकरिष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ त
स्मात्तेनमहाराज रामेश्वरप्रपूजकः ॥ ९९ ॥ मनुष्यःप्रेषितोदूतो यस्त्वंपश्यमहीपते ॥ अथतस्यसमादेशाल्लोकनीयैः
पृथग्विधैः ॥ १०० ॥ सहितःसमयाऽऽयातोदूतोरक्षेन्द्रनोदितः ॥ धात्रीफलप्रमाणानां तेनप्रस्थास्त्रयोदश ॥ १ ॥ मौक्ति
कानांसमानीताः कृतेतस्यमहीपतेः ॥ वैदूर्य्याणांमारकतानां वज्राणाञ्चद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ जपानांषोडशद्रोणास्स
मानीतास्सुनिर्म्मलाः ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि तथादेवमयानिच ॥ ३ ॥ असङ्ख्यातानिवैहेमजात्यंसङ्ख्याविवर्ज्जि
तम् ॥ तत्सर्वंदर्शयित्वाऽथकुशायसुमहात्मने ॥४॥ कृत्वाप्रदक्षिणंपश्चात्प्रणाममकरोद्द्विजाः ॥ एषपार्थिवशार्दूल रा
क्षसेन्द्रोविभीषणः ॥ ५ ॥ प्रणामंकुरुतेभक्त्या सम्मुखोवेदमन्त्रवित् ॥ प्रसादात्तेपितुःक्षेमं ममराज्येमहीपते ॥ ६ ॥

योग्य भेटों से सहित रक्षेन्द्र (विभीषण) से प्रेरित (पठाया) हुआ वह दूत मेरे साथ आयाहै वह धात्रीफल (आँवलों) के प्रमाणवाले मोतियोंको तेरह प्रस्थ याने
तेरह सेर उन कुश भूपति के लिये लाया था व हे द्विजोत्तमो ! अत्यन्तही निर्मल वैदूर्य्यों, मारकतों व हीरों तथा जपानामक जवाहिरों को सोलह द्रोण (दो सौ
छप्पन सेर) लाया था व अग्नि से शोधे हुये तथा देवमय (देवताओं के योग्य) असङ्ख्य वस्त्रों को लाया था ॥ ९९ । १०० । १ । २ । ३ ॥ व सुवर्ण जातिवाले प-
दार्थों को असङ्ख्य लायाथा इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस दूतने उस समस्त वस्तु को कुश महात्माके लिये दिखलाकर व प्रदक्षिणाकर पश्चात् प्रणाम किया

व कहा कि हे नृपपुंगव ! वेदके मन्त्रोंका जाननेवाला यह राक्षसेन्द्र विभीषण सामने होकर भक्तिसे प्रणाम करताहै कि हे भूपते ! तुम्हारे पिताकी प्रसन्नता से मेरे राज्य में कुशल है ॥ ४ । ५ । ६ ॥ व यह मैं नित्यही तुम्हारे पिताके महादेवको पूजताहुआ टिकाहूं हे राजन् ! मेरे न जानेहुये इन जिन दुष्टचित्तवाले राक्षसों ने भूतल में जो कोई उत्पात किया है वह मेरा अपराध क्षमा कियाजावै हे प्रभो ! मैंने तुम्हारे लिये इन जिन राक्षसों को शाप दिया है ॥ ७ । ८ ॥ इन प्रेतरूपवाले राक्षसों के भोजन को तुम कहो कुशजी बोले कि मेरी आज्ञासे वे राक्षस यहां आकर बड़े यत्नके द्वारा धूलि से सब दिशाओं में लिंगोंको पूर्ण करदेवैं उसके उपरान्त

एषतिष्ठाम्यहंनित्यं पूजयंस्तेपितुर्हरम् ॥ ममराजन्नविज्ञातैर्यैरेतैस्सुदुरात्मभिः ॥ ७ ॥ महीतलेकृतःकश्चिदुत्पातःक्षम्यतांमम ॥ एतेयेराक्षसाश्शप्तास्तवार्थञ्चमयाप्रभो ॥ ८ ॥ एतेषांप्रेतरूपाणां त्वमाहारंप्रकीर्तय ॥ कुशउवाच ॥ ममादेशात्समागत्य तेऽत्रलिङ्गानिकृत्स्नशः ॥ ९ ॥ पूरयन्तुप्रयत्नेन पांशुभिःसर्वतोदिशम् ॥ ततस्तुभोजनंतेषां यद्भविष्यतिभूतले ॥ १० ॥ तद्वक्ष्यामिस्थिरोभूत्वा शृणुदेवप्रपूजक ॥ तुलागतेसदाऽऽदित्ये तैरागत्यधरातले ॥ ११ ॥ विहर्तव्यंप्रयत्नेन यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥ कन्यास्थेवारवौयावत्तत्तुलायांगतिर्भवेत् ॥ १२ ॥ तत्रयैर्नकृतंश्राद्धंप्रेतपक्षेनराधमैः ॥ ज्वररूपैस्तदङ्गस्थैर्भक्ष्यमन्नंपृथग्विधम् ॥ १३ ॥ मयादिष्टमसन्दिग्धं मासमेकंनिशाचरैः ॥ विधिहीनञ्चयैर्दत्तं भुक्तञ्चविधिवर्जितम् ॥ १४ ॥ श्राद्धंवामानुषास्सेव्याज्वररूपैश्चतेसदा ॥ एवंवाच्यास्त्वयासर्वे प्रेतास्तेमद्वचोखि

भूतल में जो उनका भोजन होगा ॥ ९ । १० ॥ उसको मैं कहूंगा हे देवपूजक ! तुम स्थिर होकर सुनो कि सूर्यको तुलाराशिमें आने पर वे राक्षस सदैव धरातल में आकर वृश्चिक राशिके दर्शन तक अथवा कन्याराशि में स्थित होतेहुये जबतक उन सूर्य्यका तुलाराशिमें गमन होवै तबतक बड़े यत्नसे विहार करने के योग्य हैं उस तुलाराशिके सूर्य्यों में पितरपक्ष में जिन नीचनरों ने श्राद्धको नहीं कियाहै उनके अंगमें टिकेहुये ज्वररूपवाले प्रेतोंको अनेक प्रकारका अन्न खाना चाहिये ॥ ११ । १२ । १३ ॥ व मुझसे कहेहुये एक महीने तक जिन्होंने विधिहीन दिया है या विधिरहित भोजन किया है अथवा विधिहीन श्राद्धको किया है उन मनुष्यों को

ज्वर रूपवाले निशाचरों को सदैव निस्सन्देहपूर्वक सेवन करना चाहिये इस प्रकार मेरे सम्पूर्ण वचन तुमको उन समस्त प्रेतोंसे कहना चाहिये ॥ १४ । १५ ॥ इसलिये कार्त्तिक महीने में आकर मेरे वचन को करैं हे दूत ! वैसेही मेरे वचन से तुमको विभीषण से कहना चाहिये ॥ १६ ॥ कि हे महाभाग ! असावधानता से जो मैंने तुम को कठोर वचन कहाहै मैं जानताहूं उससे तुमको कहीं पर विकार नहींहै ॥ १७ ॥ हे दूत ! इन राक्षसों से मनुष्यों को सब ओर से पीड़ित देखकर मेरे वचन कहेगये हैं जब भूमि में राक्षसेश तुम सदैव टिकेहो तब मैं जानताहूं ॥ १८ ॥ कि मेरे लिये शस्त्रधारियों में उत्तम पिता रामचन्द्रजी

लम् ॥ १५ ॥ तस्मादागत्यकुर्वन्तु कार्त्तिकेमासिमद्वचः ॥ तथादूतत्वयावाच्यो ममवाक्याद्विभीषणः ॥ १६ ॥ प्रमादाद्यन्मयाप्रोक्तं परुषंवचनंतव ॥ जानाम्यहंमहाभाग नतेऽस्तिविकृतिःक्वचित् ॥ १७ ॥ परिक्लिष्टंजनंदृष्ट्वा एतेषांदूतमद्वचः ॥ राक्षसेन्द्रेस्थितेभूमौ त्वयिजानाम्यहंसदा ॥ १८ ॥ तिष्ठतेजनकोमह्यं रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ एवमुक्त्वाततोदूतं पूजयामासराघवः ॥ १९ ॥ वस्त्रैर्बहुविधैरत्नैर्महीस्थैश्चपृथग्विधैः ॥ विभीषणकृतेपश्चात्प्रेषयामासराघवः ॥ २० ॥ लोकनीयान्यनेकानि यानिसन्तिधरातले ॥ सूतउवाच ॥ एवंससुखसंयुक्तान्कृत्वासर्वान्द्विजोत्तमान् ॥ २१ ॥ एतत्सर्वं ददौपश्चात्तेभ्योमुक्तादिकंनृपः ॥ लोकनीयंतथाऽऽयातंतल्लङ्कायांपृथग्विधम् ॥ २२ ॥ आसनानितथाऽन्यानि गजाश्वसहितानिच ॥ पत्तनानिविचित्राणि ग्रामाणिनगराणिच ॥ २३ ॥ यच्चान्यद्वाञ्छितंयेन तद्दत्तंतेनतस्यवै ॥ ततःकुशेश्व

टिकेहैं ऐसा कहकर तदनन्तर राघव (कुश) जी ने बहुत प्रकारके वस्त्रोंसे व भूमि में स्थित अनेक प्रकारके रत्नोंसे दूतको पूजन किया पश्चात् भूतल में देखने योग्य जो अनेक पदार्थ थे उनको राघव (कुश) जी ने विभीषणके लिये पठाया सूत जी बोले कि उन कुश नृपति ने इस प्रकार समस्त द्विजोत्तमों को सुखसे संयुक्त कर ॥ १९ । २० । २१ ॥ पश्चात् उनके लिये इस मोती आदि समस्त पदार्थ को दिया और देखने योग्य वह अनेक प्रकार की वस्तु लङ्कापुरी में आई ॥ २२ ॥ वैसे ही आसनों तथा हाथी, घोड़ों समेत अन्य वस्तुओंको व शहरों और विचित्र ग्रामों व नगरों को ॥ २३ ॥ व और जिस पदार्थको जिसने चाहा उस नरको उन कुशजीने

वही दिया तदनन्तर बड़े भाग्यवाले उन रघूत्तम भाइयों ने कुशेश्वर व लवेश्वर महादेवजी को थापकर व अपने शरीरको निवेदनकर और यथायोग्य द्विजेन्द्रों की जीविका करके कृतार्थ होकर शीघ्रही अयोध्यापुरी को गमन किया ॥२४।२५।२६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकुशेश्वरलवेश्वरमाहात्म्यंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । इकसौदै अध्याय में बृहदश्वक भूपाल। भयो नाश शिवलिंगके छेदनसों ततकाल॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर जब दिननायक (सूर्य)

रंदेवं विधायचलवेश्वरम् ॥ २४ ॥ स्वान्तनुञ्चमहाभागौभ्रातरौतौरघूत्तमौ ॥ निवेद्यब्राह्मणेन्द्राणां कृत्वावृत्तिंयथो चिताम् ॥२५॥ अयोध्यांनगरींतूर्णं कृतकृत्यौविनिर्गतौ ॥२६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटके श्वरक्षेत्रमाहात्म्येकुशेश्वरलवेश्वरमाहात्म्यंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथप्राप्तेदिनाधीशे तुलायांद्विजसत्तमाः ॥ प्रेतालिङ्गोद्भवांभूमिं पूरयामासुरेवहि ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्तत्र संस्थंतुआद्यतीर्थंसुरालयम् ॥ तत्सर्वंव्यन्तरैस्तैश्च पांशुभिःपरिपूरितम् ॥ २ ॥ ततःक्षेमंसमुत्पन्नं क्षेत्रेतत्रद्विजोत्तमाः ॥ अन्येषामपिलोकानां लिङ्गैस्तैर्लुप्तिमागतैः ॥ ३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य बृहदश्वोमहीपतिः ॥ शाल्वदेशात्समाया तः कस्मिंश्चिद्युगपर्यये ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वाविपुलांभूमिं प्रासादैःपरिवर्जिताम् ॥ प्रासादार्थंमतिंचक्रे तत्रक्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ शिल्पिनश्चसमाहूयानेकांस्तत्रसहस्रशः ॥ शोधयामासतांभूमिमधस्ताद्बहुविस्तृताम् ॥ ६ ॥ भूमौनिखन्य

तुलाराशि में प्राप्तहुये तब प्रेतों ने लिंगसे उपजीहुई भूमिको पूर्णही करदिया ॥ १॥ वहांपर जो कुछ आदिवाला तीर्थ व देवालय भलीभांति स्थितथा उस सबको बाहर कियेहुये उन प्रेतोंने धूरिसे सबओर पूर्णकरदिया ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके उपरान्त उस क्षेत्रमें अन्य मनुष्यों के भी उन लिंगोंको लुप्तहोनेपर कल्याण उत्पन्न हुआ॥३॥इसके उपरान्त किसी समय किसी युगके पलटनेपर बृहदश्व नामक भूपति शाल्वदेशसे भलीभांति आया ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस नृपने बहुतसी भूमिको मन्दिरों से रहित देखकर उस क्षेत्रमें मन्दिर के लिये बुद्धि किया॥ ५ ॥ और वहांपर अनेकों हज़ार कारीगरों को बुलाकर उस बहुत विस्तारवाली भूमि को नीचेसे शोधन

तदनन्तर उन लिंगोंसे घिरीहुई भूमिको देखकर शिल्पियों समेत
कराया ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त भूमिके खोदनेपर वेही पांचमुखवाले बहुतसे लिंग दृष्टिगोचरहुये ॥७॥ इति श्रीस्क
वह नृप उसी क्षण मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ तबसे लगाकर उस भूतलमें भय से कोई मनुष्य मन्दिर व तड़ाग व कूपकोभी नहीं निर्माण करताहै ॥ ९ ॥ ॥
न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येलिङ्गोच्छेदनंनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ❀
दो॰ । कौन धूरिसों पूर जिमि शिवलिङ्गन सब भूत । कहत एकसौ तीसरे माहिं चरित सो सूत ॥ ऋषिलोग बोले कि प्रेतोंको धूरिसे भूतलको परिपूर्ण करनेपर जो

ततःसपार्थिवस्तैश्च लिङ्गैर्दृष्ट्वावृतां
मानायां ततोलिङ्गानिभूरिशः ॥ पञ्चवक्त्राणितान्येव यान्तिदृष्टेश्चगोचरम् ॥७॥ प्रासादंकुरु
भुवम् ॥ तत्क्षणान्मृत्युमापन्नः शिल्पिभिश्चसमन्वितः ॥ ८ ॥ ततःप्रभृतिनोतत्र कश्चिन्मर्त्योमहीतले ॥ लिङ्गोच्छेदनं
तेभीत्या तडागंकूपमेवच ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्ये
नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच॥
ऋषयऊचुः ॥ भूपृष्ठेपांशुभिस्तस्मिन्प्रेतैस्तुपरिपूरिते ॥ यानितीर्थानिलुप्तानिलिङ्गानिचवदस्वनः ॥१॥ तत्रलोपंगतंतीर्थंचक्र
असंख्यातानितीर्थानि तथालिङ्गानिचद्विजाः॥ लोपंगतानिवक्ष्यामिप्राधान्येनप्रबोधत ॥ २ ॥ य
तीर्थमितिस्मृतम् ॥ यत्रचक्रंपुरान्यस्तं विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ३ ॥ मातृतीर्थन्तथैवान्यत्सर्वकामप्रदन्नृणाम् ॥ तत्रलोपङ्गतंविप्राःसगरस्य
त्रतामातरोदिव्याःकार्त्तिकेयप्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥ मुचुकुन्दस्यराजर्षेस्तथान्यल्लिङ्गमुत्तमम् ॥

मैं मुख्यतासे कहता हूं तुम
तीर्थ व लिङ्ग लोप होगये हैं उनको हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! असंख्य तीर्थ व लिंग लोप होगयेहैं वैसेही मनुष्यों
लोग जानो ॥ २ ॥ वहांपर चक्रतीर्थ ऐसा कहा हुआ तीर्थ लोप होगया है जहांपर कि पुरातन समय सर्वशक्तिमान् विष्णुजीने चक्रको धराहै ॥ ३ ॥ वैसेही वहांपर मुचुकुन्द
को समस्त कामनाओंका दायक अन्य मातृतीर्थ लोप हुआहै जहांपर कि स्वामिकार्त्तिकेयजीसे थापीहुई वे दिव्य मातायें थीं ॥४॥ हे द्विजो !

राजर्षिका उत्तम अन्य लिंग लोप होगया व सगर भूपतिका लिंग लुप्त होगया॥५॥व इक्ष्वाकु, सुषेण, महात्मा काकुत्स्थ व चन्द्रदेववाले पुरूरवा तथा अच्छी बुद्धिवाले काशिराजका लिंग लोप होगया है ॥ ६ ॥ व अग्निवेश, रैभ्य व च्यवन तथा भृगु व याज्ञवल्क्यजीका आश्रम वहांपर लोपको प्राप्तहोगया ॥ ७ ॥ व हारीत, रैभ्य व महात्मा हर्य्यश्व तथा कुश, वसिष्ठ, नारद व त्रितजीका लिंग लोप होगयाहै ॥ ८ ॥वैसेही वहांपर ऋषिपत्नियोंके बहुतसे लिंग लोप होगये हैं व पुरातन समय कात्यायनी (कात्यायन महर्षिकी स्त्री) व शाण्डिली तथा मैत्रेयीका लिंग लोप होगयाहै ॥ ९ ॥ व जिनकी गिनती नहीं है ऐसी अन्य मुनिपत्नियोंके लिंग लोप होगये हैं

तुभूपतेः॥ ५ ॥ इक्ष्वाकोस्तुसुषेणस्यकाकुत्स्थस्यमहात्मनः॥ ऐलस्यचन्द्रदेवस्यकाशिराजस्यसन्मतेः॥ ६ ॥ अग्निवेशस्यरैभ्यस्यच्यवनस्यभृगोस्तथा ॥ आश्रमोयाज्ञवल्क्यस्यतत्रलोपंसमाययौ ॥ ७ ॥ हारीतस्यचरैभ्यस्यहर्यश्वस्य महात्मनः॥ कुशस्यचवसिष्ठस्यनारदस्यत्रितस्यच ॥ ८ ॥ तथैवऋषिपत्नीनांतत्रलिङ्गानिभूरिशः॥कात्यायन्याश्चशाण्डिल्यामैत्रेय्याश्चतथापुरा ॥ ९ ॥ अन्यासांमुनिपत्नीनांयासांसंख्यानविद्यते ॥ तत्राश्चर्य्यमभूदन्यत्पूर्य्यमाणेमहीतले ॥ १० ॥ पांशुनाराक्षसैरेतैःप्रेतैर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ तद्वोहंसम्प्रवक्ष्यामिश्रोतव्यन्तुसमाहितैः ॥ ११ ॥ कृतापांशुमयावृष्टिः किञ्चित्तत्रनपूर्य्यते ॥ ततस्तेव्यन्तराःखिन्नानिराशास्तस्यपूरणे ॥ १२ ॥ भूतास्तेपुरतोगत्वाचुक्रुशुःकुशभूपतेः ॥ अस्माभिर्विहितातत्रपांशुवृष्टिर्महीपते ॥ १३ ॥ नीयतेशतधान्यत्रमातृयुक्तेनवायुना ॥ सत्वंतासांविघातार्थमुपायंभूपतेवद ॥ १४ ॥ येनतांपांशुभिर्भूमिंपूरयामःसमन्ततः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाततःकुशमहीपतिः ॥ १५ ॥ रुद्र

हे द्विजोत्तमो ! जब इन प्रेत राक्षसोंने धूरिसे भूतलको पूर्ण करदिया तब वहांपर अन्य आश्चर्य हुआहै उसको मैं तुमलोगोंसे भलीभांति कहूंगा सावधान होतेहुये सुनना चाहिये ॥ १० । ११ ॥ कि वहांपर धूरिमयी वर्षा कीगई परन्तु कुछ नहीं पूर्ण होताथा तदनन्तर बाहर कियेहुये व दुःखित वे प्रेत उसके पूर्ण करनेमें निराशहुये ॥ १२ ॥ व उन प्रेतों ने कुश भूपतिके आगे जाकर रोदन किया कि हे भूपते ! हमलोगों ने वहां धूरिकी वर्षा किया ॥ १३ ॥ परन्तु माताओंसे संयुत पवन ने सैकड़ोंप्रकार से अन्य स्थान में प्राप्त करदिया हे भूपते ! सो तुम उन माताओंके विनाशके लिये उपाय कहो ॥ १४ ॥ कि जिससे सब ओर उस भूमिको हमलोग धूरिसे पूर्ण करदेवें

उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर हे उत्तम द्विजो ! कुश भूपतिने उस क्षेत्र में प्राप्तहोकर शिवजीका आराधन किया उसके उपरान्त वर्षके अन्त में शिव भगवान् उन कुश जीके ऊपर प्रसन्न होगये ॥ १५ । १६ ॥ व बोले कि जो प्रिय अभिलाप तुम्हारे मनमें होवै उसको मांगो कुशजी बोले कि हे देव ! तुम्हारी प्रसन्नतासे इन प्रयुक्त (लगेहुये) प्रेतोंसे धूरिके द्वारा यह भूमिमण्डल जिसप्रकार शीघ्रही पूर्णहोवै वैसाही कीजिये उसके पूर्ण करनेमें मैंने प्रेतगणोंको आयसु दिया है ॥ १७ । १८ ॥ हे विभो ! मातृदेवताओंसे भलीभांति रक्षित वही यह पूर्ण करनेके लिये समर्थ नहीं है वहां राक्षसोंसे उपजेहुये मंत्रोंसे प्रतिष्ठित लिंगहैं उनके स्पर्शन व दर्शनसे नरोंका

माराधयामासतत्क्षेत्रम्प्राप्यसद्द्विजाः ॥ ततस्तस्यगतस्तुष्टिंवर्षान्तेभगवान्हरः॥१६॥ प्रोवाचप्रार्थयाभीष्टंयत्तेमनसि
वाञ्छितम् ॥ कुशउवाच ॥ यथासम्पूर्यतेचाशुपांशुभिर्भूमिमण्डलम् ॥ १७ ॥ एतदेतैःप्रयुक्तैश्चप्रसादात्तेनथाकुरु ॥
मयाप्रेतगणादेवनिर्दिष्टास्तस्यपूरणे ॥ १८ ॥ मातृसंरक्ष्यमाणन्तच्छक्यञ्चैतन्नपूरितम् ॥ तत्रराक्षसजैर्मन्त्रैस्सन्ति
लिङ्गानिवैविभो ॥ १९ ॥ प्रतिष्ठितानितत्स्पर्शाद्दर्शनात्स्याज्जनक्षयः ॥ अचलत्वात्तथादेवलिङ्गानांशास्त्रजाद्भयात् ॥
२० ॥ अन्यदुत्पाटनाद्यञ्चनैवकुर्म्मःकथञ्चन ॥ तस्माल्लिङ्गकृतोनाशोब्राह्मणानांतपस्विनाम् ॥ २१ ॥ यथानस्या
त्सुरश्रेष्ठतथानीतिर्विधीयताम् ॥ ततश्चभगवान्रुद्रस्तास्समाहूयमातरः ॥ २२ ॥ मातरऊचुः ॥ त्यक्ष्यामश्चतवादेशा
त्तत्स्थानंवृषभध्वज ॥ परंदर्शयचास्माकंकिञ्चिदन्यत्तथाविधम् ॥ २३ ॥ क्षेत्रेऽत्रैवनिवत्स्यामोयेनस्कन्दकृतेवय
म् ॥ तेनसंस्थापिताश्चात्रप्रोक्ताःस्थेयंसमासतः ॥ २४ ॥ ततःप्रोवाचभगवांस्तस्मात्स्थानान्महत्तरम् ॥ स्थानन्दास्या

नाश होवैहै व हे देव ! देवलिंगोंकी अचलताके कारण हमलोग शास्त्रमें उपजेहुये डरसे उत्पाटन(उखाड़ना)आदि कर्मको किसी प्रकारसे नहीं करतेहैं इसलिये जिसप्रकार लिंगोंसे कियाहुआ ब्राह्मणों व तपस्वियोंका नाश न होवै ॥ १९ । २० । २१ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! वैसाही न्याय कियाजाय तदनन्तर शिवभगवान् ने उन माताओंको बुला कर कहा कि इस स्थानको छोड़दो ॥ २२ ॥ मातायें बोलीं कि हे वृषभध्वज, शिव ! तुम्हारी आज्ञासे हमसब उस स्थानको छोड़देवैंगी परन्तु उसी प्रकार के किसी और स्थानको दिखलाइये ॥ २३ ॥ क्योंकि हमसब इसी क्षेत्रमें स्वामिकार्त्तिकेयजी के लिये बसती हैं व उन्होने भलीभांति स्थापन किया व कहाथा कि संक्षेप से यहां

टिकने योग्य है॥ २४॥ उसके उपरान्त शिवभगवान् बोले कि सबोंको उस स्थान से अत्यन्तही बड़े व शुभदायक स्थानको भिन्नतासे दूंगा॥२५॥ हे महाभागाओ ! मेरे क्षेत्रों के मध्यमें सबओर अरसठि क्षेत्रहैं जिनमें सदैव मेरा टिकाश्रय रहता है ॥ २६ ॥ तुम सब अरसठि विभागों से भिन्न २ होकर इसके अनन्तर उन उन क्षेत्रों में मेरे वचनसे उत्तम पूजनको पावोगी ॥ २७॥ उस समय उन महादेव के उस वाक्य को सुनकर प्रसन्न होतीहुईं उन माताओंने महासेन से बनायेहुये उस स्थान को छोड़कर ॥२८॥ अरसठि विभागसे होकर भिन्न २ प्रकारके रूपोंसे अरसठि क्षेत्रोंमें सदैव उस टिकाश्रय को किया ॥ २९ ॥ उसके उपरान्त उन माताओं से छोड़ा

मिसर्वासांपृथक्त्वेनशुभावहम् ॥ २५ ॥ अष्टषष्टिस्तुक्षेत्राणांमदीयानांसमन्ततः ॥ संस्थितास्ति महाभागायेषुमत्सं स्थितिःसदा ॥ २६ ॥ अष्टषष्टिविभागेनभूत्वासर्वाःपृथक्पृथक् ॥ तेषुतेष्वथमद्वाक्यात्पूजामग्र्यामवाप्स्यथ ॥२७॥ तस्यदेवस्यतच्छ्रुत्वावाक्यन्तामातरस्तदा ॥ प्रहृष्टास्तत्परित्यज्यस्थानंस्कन्दविनिर्मितम् ॥ २८ ॥ अष्टषष्टिविभागेन भूत्वारूपैःपृथग्विधैः ॥ अष्टषष्टिषुक्षेत्रेषुकृतासांसंस्थितिःसदा ॥ २९ ॥ ततस्ताभिर्विनिर्मुक्तंतत्सर्वम्भूमिमण्डलम् ॥ पांशुभिःपूरितंप्रेतैर्दिवारात्रिमतन्द्रितैः ॥ ३० ॥ एवंतस्यवरन्दत्त्वाभगवान्वृषवाहनः ॥ जगामादर्शनंपश्चात्सार्द्धंसर्वै र्गणैर्द्विजाः॥३१॥कुशोपिब्राह्मणैस्सर्वैस्तापसैश्चप्रशंसितः ॥ लब्धाशीःप्रययौतस्मादयोध्यांनगरीम्प्रति ॥३२॥ इति श्री स्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येलुप्ततीर्थकथनन्नामत्र्यधिकशततमोध्यायः॥१०३॥

हुआ वह समस्त भूमण्डल अहर्निश निरालसी प्रेतों से धूरिसे भरदियागया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! बैल वाहनवाले शिवभगवान् इसप्रकार उन कुशजीको वरदान देकर पश्चात् समस्त गणों समेत अन्तर्द्धान होगये ॥ ३१ ॥ व समस्त ब्राह्मणों तथा तपस्वियों से आशीर्वाद को पायेहुये व प्रशंसित कुशभी उस स्थान से अयोध्या नगरी के सामने गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येलुप्ततीर्थकथनंनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसौचौथेऽध्याय में बरणत सो शुभगाथ । थाप्यो है शिवलिंग जिमि चित्रशर्म द्विजनाथ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! देवताओं के देवता महादेव जीके जो ये अरसठि क्षेत्र कहेगये हैं वहांपर वे कैसे भलीभांति स्थितहुये ॥ १ ॥ इस समस्त वृत्तान्त को कहिये क्योंकि हमलोगों को बडा आश्चर्य्य है सूतजी बोले कि जो आपलोगोंने कहा है यह बडा प्रश्नभार है ॥ २ ॥ तिसपर भी महादेव जीको प्रणामकर कहूंगा पुरातन समय इस चमत्कारपुर में वत्सके वंशमें उपजाहुआ बड़ा यशस्वी चित्रशर्मा नामक द्विजोत्तम हुआहै ॥ ३ ॥ उसके यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि हाटकेश्वर जीको पातालसे यहां लाकर तदनन्तर दिन रात्रि भक्तिसे पूजनकरूं ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ अष्टषष्टिरियंप्रोक्तायात्वयासूतनन्दन ॥ क्षेत्राणान्देवदेवस्यकथंसातत्रसंस्थिता ॥ १ ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ प्रश्नभारोमहानेपयोभवद्भिःप्रकीर्तितः ॥ २ ॥ तथापिकीर्तयिष्यामिनमस्कृत्वापिनाकिनम् ॥ चमत्कारपुरेत्रासीत्पूर्वंब्राह्मणसत्तमः ॥ वत्सस्यान्वयसम्भूतश्चित्रशर्म्मामहायशाः ॥ ३ ॥ तस्यबुद्धिरियञ्जातापातालाद्धाटकेश्वरम् ॥ अत्रानीयततोभक्त्यापूजयामिदिवानिशम् ॥ ४ ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वातपश्चक्रेततःपरम् ॥ नियतोनियताहारःपरांनिष्ठांसमाश्रितः ॥ ५ ॥ तस्यापिभगवाञ्छम्भुःकालेनमहताततः ॥ सन्तुष्टोब्राह्मणश्रेष्ठास्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ६ ॥ वरंप्रार्थयविप्रेन्द्रयत्तेमनसिवर्तते ॥ ७ ॥ अपित्रैलोक्यराज्यन्तेतुष्टोदास्याम्यसंशयम् ॥ तस्मात्प्रार्थयतन्नित्यंयच्चचित्तेव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥ दुर्लभंसर्वदेवानांमनुष्याणांविशेषतः ॥ चित्रशर्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेववरंयन्ममयच्छसि ॥ ९ ॥ तदत्रायातुपातालाल्लिङ्गरूपीसुरेश्वरः ॥ यत्पातालेस्थितंलिङ्गंब्रह्मणातुप्र

उसके उपरान्त ऐसा निश्चयकर नियम में प्राप्त व नियत भोजन करनेवाले तथा उत्तम सिद्धि में टिकेहुये उसने तपस्याको किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! बहुत समय से भगवान् शिवजी उस चित्रशर्मा के ऊपरभी प्रसन्नहुये तदनन्तर आदर समेत बोले ॥ ६ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमानहै उस वरदान को मांगिये ॥ ७ ॥ क्योंकि प्रसन्नहुआ मैं तुमको निस्सन्देह त्रिलोक की राज्य भी दूंगा इसलिये जो नित्यही चित्तमें टिकाहो उसको मांगिये ॥ ८ ॥ जोकि समस्त देवताओं को व विशेषकर मनुष्यों को दुर्लभ होवै चित्रशर्मा बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व मुझको जो वरदान देतेहो ॥ ९ ॥ तो लिंगरूपवाले सुरनायक

पातालसे यहां आवैं ब्रह्मासे थापाहुआ हाटकेश्वर नामक जो लिंग पाताल में स्थितहै वह यहांपर शीघ्रही आवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरा लिंग सब कहींभी अचलहै॥१०।११॥फिर जो कि ब्रह्मासे आपही निर्मित हुआहै उसको क्या कहनाहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! उस लिंगको सुवर्णसे थापनकरो॥१२॥ वही हाटकेश्वर नामक लिंग संसारमें प्रसिद्ध होगा हे द्विज! शुक्लपक्षवाली सोमवार चतुर्दशीमें श्रद्धासंयुत व भक्तिसंयुत जो पुरुष उस लिंगको पूजैगा वह आदिलिंग से उपजेहुये कल्याण को पावैगा ॥ १३ । १४ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये इसके अनन्तर चित्रशर्मा नेभी अतिमनोहर मन्दिर को बनाकर उसमें भक्ति

तिष्ठितम् ॥ १० ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तुतदिहायातुसत्वरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अचलंममलिङ्गंस्यात्सर्वत्रापिद्विजोत्तम॥ ११ ॥ किंपुनःप्रथमंयच्चब्रह्मणानिर्म्मितंस्वयम् ॥ तस्मात्स्थापयलिङ्गंतद्धाटकेनद्विजोत्तम ॥ १२ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञं तुलोकेख्यातंभविष्यति ॥ सोमवारेचतुर्दश्यांशुक्लायांश्रद्धयान्वितः ॥१३॥ यस्तद्भक्तिसमायुक्तःपूजयिष्यतिमानवः॥ आद्यलिङ्गोद्भवंश्रेयःपूजयालभ्यतेद्विज ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चित्रशर्म्मापिकृत्वाऽथप्रासादंसुमनोहरम् ॥ १५ ॥ तत्रहेममयंलिङ्गंस्थापयामासभक्तितः ॥ शास्त्रोक्तेनविधानेनपूजांचकृतवान्पुनः ॥ १६ ॥ तत्रत्रैलोक्यविख्यातंतल्लिङ्गंसचवैद्विजः ॥ दूरादभ्येत्यलोकाश्चपूजयन्तिततःपरम् ॥ १७ ॥ अथतत्रद्विजाश्चापिसंस्थितागुणवत्तराः ॥ तेषांस्पर्द्धाततोजाताद्दृष्ट्वातस्यविचेष्टितम्॥१८॥ एकस्थानप्रसूतानांसर्वेषांगुणशालिनाम् ॥ अयंगुणविहीनोपिप्रख्यातोभुवनत्रये ॥ १९ ॥ हराराधनमासाद्ययस्मात्तस्माद्वयंहरम् ॥ तदर्थन्तोषयिष्यामिसाम्यंयेनप्रजाय

से सुवर्णमय लिंगको थापन किया व फिर शास्त्रमें कहेहुये विधानसे पूजन किया ॥ १५ । १६ ॥ उसके उपरान्त वह ब्राह्मण व मनुष्य दूरसे वहां आकर त्रिलोक मे प्रसिद्धहुये उस लिंगका पूजन करतेथे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वहांपर बड़े गुणवान् ब्राह्मण भी भलीभांति टिके तदनन्तर उस चित्रशर्मा के कर्मको देखकर उन ब्राह्मणों के डाह उत्पन्नहुई ॥ १८ ॥ कि एकही स्थान में पैदाहुये व गुणसे शोभित सम्पूर्ण मनुष्यों के मध्य में यह गुणरहित भी जिसलिये शिवजी का आराधनकर

त्रिलोक में प्रसिद्धहुआ उसी कारण हमलोग उसके लिये सदाशिव जीको प्रसन्न करैंगे जिससे समता होवै ॥ १९ । २० ॥ शूलपाणि (शिव) जीके ये अरसठि क्षेत्र कहेगये हैं जहांपर कि परमेश्वर शिव त्रिकालमें समीपता को प्राप्तहोते हैं ॥ २१ ॥ व इस मूढ़ मनवाले द्विज समेत हमलोगोंके सामान्य लक्षणवाले ये अरसठि क्षेत्र यहांपर भलीभांति स्थित हैं ॥ २२ ॥ इसलिये इसने त्रिनयन (शिव) भगवान्‌को आराधकर पातालमें टिकेहुये उस लिंगको यहां भलीभांति प्राप्तकियाहै ॥ २३ ॥ वैसेही तपस्या की शक्तिसे उन महादेव जीको आराधकर सबोंसे क्षेत्रों के लिंग सम्पूर्णता से लायेजावैं ॥ २४ ॥ इन सब क्षेत्रोंका समूह आवैगा व क्षेत्र समेत जो

ते ॥ २० ॥ अष्टषष्टिःस्मृताचेयंक्षेत्राणांशूलपाणिनः ॥ यत्रसान्निध्यमभ्येतित्रिकालंपरमेश्वरः ॥२१॥ अष्टषष्टिश्चक्षेत्रा णामस्माकंचात्रसंस्थिता ॥ एतेनमूढमनसासार्द्धंसामान्यलक्षणा ॥ २२ ॥ तस्मादनेनचाराध्यभगवन्तन्त्रिलोचन म् ॥ तच्चलिङ्गंसमानीतन्तत्रपातालसंस्थितम् ॥ २३ ॥ तथासर्वैश्चसर्वाणिक्षेत्रलिङ्गानिकृत्स्नशः ॥ आनीयतान्तमा राध्यतपःशक्त्यामहेश्वरम् ॥ २४ ॥ एतेषांसर्वक्षेत्राणामागमिष्यतिसञ्चयः ॥ यद्गोत्रंक्षेत्रसंयुक्तंयच्चान्यद्वाभविष्यति ॥ २५ ॥ ततस्तेशमसंयुक्तास्सर्वैयावद्द्विजोत्तमाः ॥ चक्रुस्तपःक्रियांसर्वान्दुष्करांसर्वजन्तुभिः ॥ २६ ॥ जपहोमोपवासै श्चनियमैश्चपृथग्विधैः॥बलिपूजोपहारैश्चस्नानदानादिभिस्तथा॥२७॥लिङ्गंसंस्थाप्यदेवस्यनाम्नाख्यातन्द्विजेश्वरम्॥ मनोहरतरेप्रोच्चैःप्रासादेपर्वतोत्तमे ॥ २८ ॥ त्यक्त्वागृहक्रियास्सर्वास्तथायज्ञसमुद्भवाः ॥ अन्याश्चलोकपालोत्थास्तो षयन्तिमहेश्वरम् ॥ २९ ॥ एवमाराध्यमानोपिसतेषांपरमेश्वरः ॥ नाभ्यगच्छत्परान्तुष्टिंकथञ्चिदपिसद्द्विजाः ॥३०॥

गोत्रहै या जो अन्य भीहै वह होगा ॥२५॥ तदनन्तर जितने द्विजोत्तम थे शान्तिसे संयुत होतेहुये उन सबोंने सब प्राणियोंसे दुष्कर समस्त तपस्याके कर्मको किया ॥ २६ ॥ व जप, होम, उपास व भिन्न प्रकारके नियमों से तथा भेंट पूजन उपहार व स्नान, दानादिकोंसे पर्वतोत्तमपै अत्यन्तही मनोहर व ऊंचे मन्दिरमें महादेव जीके उस लिंगको भलीभांति थापकर जोकि नामसे द्विजेश्वर प्रसिद्धथा ॥ २७ । २८ ॥ व यज्ञ से उपजेहुये तथा गृहकार्य्यों व लोकपालोंसे उठेहुये अन्य कर्मोंको छोड़ कर महादेव जीको प्रसन्न करतेथे ॥ २९ ॥ हे उत्तम द्विजो ! इसप्रकार आराधित भी वे परमेश्वर उन ब्राह्मणोंके ऊपर किसी प्रकार सेभी उत्तम प्रसन्नता को न प्राप्त

हुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर हजारवर्ष पर्य्यन्त उन महादेव जीको आराधकर व कुछेक फल को न पाकर उसके उपरान्त समस्त द्विज क्रोधितहुये ॥ ३१ ॥ कि हे त्रिशूल-धारी, शिवजी ! इस अत्यन्तहीमूर्ख भी चित्रशर्माके ऊपर तुम अति थोड़े भी समयसे परम प्रसन्नताको प्राप्तहोगये ॥ ३२ ॥ व हे शङ्कर जी ! शिशुता से लगाकर पूजतेहुये भी हमलोग वृद्धताको प्राप्त होगये तिसपर भी परमेश्वर (शिव) जी न देखपड़े ॥ ३३ ॥ इसलिये यह निश्चय कियागया है कि हमसबों को अग्नि में प्रवेश करना चाहिये जोकि बिन आदिवाला माहात्म्य है ॥ ३४ ॥ सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण अग्निको बहुतही बढ़ाकर व पुत्रों समेत जाकर जबतक प्रवेश करैं ॥ ३५ ॥

ततोवर्षसहस्रान्तंतमाराध्यमहेश्वरम् ॥ नचकिञ्चित्फलम्प्राप्ययात्क्रुद्धास्ततोखिलाः ॥ ३१ ॥ अस्यमूर्खतमस्यापित्वंशूलिंश्चित्रशर्म्मणः ॥ सुस्तोकेनापिकालेनसन्तोषंपरमङ्गतः ॥ ३२ ॥ वयंवार्द्धक्यमापन्नावाल्यात्प्रभृतिशङ्कर ॥ पूजयन्तोपिनोदृष्टस्तथापिपरमेश्वरः ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वैःप्रकर्तव्यंहव्यवाहप्रवेशनम् ॥ अस्माभिर्निश्चयोह्येपमाहात्म्यंयदनादिकम् ॥ ३४ ॥ कृत्वातेब्राह्मणास्सर्वेसुसमिद्धंहुताशनम् ॥ यावद्गत्वासुतैस्सार्द्धंप्रविशन्तिसमाहिताः ॥ ३५ ॥ तावत्सभगवांस्तुष्टस्तेषांसन्दर्शनंययौ ॥ अब्रवीच्चप्रहस्योच्चैर्मेघगम्भीरयागिरा ॥ ३६ ॥ सर्वांस्तान्ब्राह्मणश्रेष्ठान्मृतान्सञ्जीवयन्निव ॥ भोभोब्राह्मणशार्दूलामामैवंसाहसंमहत् ॥ ३७ ॥ यूयंकुरुतमद्वाक्यात्सन्तुष्टस्यविशेषतः ॥ तस्माद्धृदयच्चित्तेयुष्माकञ्चैवसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ तद्दत्त्वाप्रगच्छामिस्वमेवभवनम्पुनः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेसुरश्रेष्ठपुरस्यास्यचसन्निधौ ॥ ३९ ॥ क्षेत्राणामष्टषष्टिर्याधन्यासङ्कीर्त्यतेजनैः ॥ सदापूज्यतमालिङ्गैस्तैरशेषैस्सु

तबतक प्रसन्न होतेहुये वे शिव भगवान् उन ब्राह्मणों के भलीभांति दर्शन में प्राप्तहुये व मरेहुये उन सब द्विजोत्तमो को जिलातेहुये से उच्चप्रकार से हँसकर मेघ के समान गम्भीर गिरा (वाणी) से बोले कि हे द्विजपुंगवो ! विशेषकर सन्तुष्टहुये मेरे वचनसे तुमलोग ऐसे भारी साहसको मतकरो इसलिये तुमलोगों के चित्त मे जो भलीभांति टिकाहो उसको कहिये ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ उसको मैं देकर फिर अपने मन्दिर को जाऊं ब्राह्मण लोग बोले कि हे सुरोत्तम ! इस नगरके समीप इस क्षेत्र

में जो अरसठि क्षेत्रहैं वे जनोंसे धन्य कहेजातेहैं व हे सुरसत्तम ! उन आदिवाले लिंगोंसे वे सदैव अत्यन्त पूजनीयहैं ॥ ३९ । ४० ॥ इस संसारमें जिससे हमसबोंका क्रोध शान्तहोवै क्योंकि तुम्हारे लिंगके प्रतापसे यह हमसबोंके साथ डाह करताहै वही यह गुणोंसे हीनहै इसलिये इसको भलीभांति कहिये सूतजी बोले, कि हे द्विजोत्तमो ! इसी अवसरमें चित्रशर्मा द्विजने महादेवको वरदायक जानकर डाहसे संयुत होतेहुये कहा ॥ ४१ । ४२ ॥ चित्रशर्मा बोला कि हे देवेश ! इन्होंने बड़ीभारी तपस्या करके तदनन्तर प्राणोंके परित्याग को प्रारम्भकर तुमको प्रसन्न किया है ॥ ४३ ॥ जोकि केवल गुणसे गर्वित व मेरेसाथ डाह कररहेहैं ॥ ४४ ॥ इसलिये हे

रसत्तम ॥ ४० ॥ येनामर्षप्रशान्तिर्नःसर्वेषामिहजायते ॥ एषसंस्पर्द्धतेस्माभिःसोयंगुणविवर्जितः ॥ ४१ ॥ त्वल्लिङ्गस्य प्रभावेणतस्मादेतत्समावद ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रोज्ञात्वातुवरदंहरम् ॥ उवाचस्पर्द्धयायुक्तश्चित्रशर्म्माद्विजोत्तमाः ॥ ४२ ॥ चित्रशर्म्मोवाच ॥ एतैःप्राणपरित्यागमारभ्यतदनन्तरम् ॥ तुष्टिंनीतोसिदेवेशकृत्वातुसुमहत्तपः ॥ ४३ ॥ मयासंस्पर्द्धमानैश्चकेवलंगुणगर्वितैः ॥ ४४ ॥ तस्मादेषांप्रदातव्यन्त्वयाकिञ्चित्सुरेश्वर ॥ देवमामनतिक्रम्य सम्प्रदास्यसिवाञ्छितम् ॥ ४५ ॥ एतैःपुत्रकलत्रैश्चसार्द्धंवैप्रेक्षतस्तव ॥ पावकंसाधयिष्यामितस्माद्युक्तन्त्वमावह ॥ ४६ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभगवाञ्छशिशेखरः ॥ चिन्तयामासचित्तेनकिमत्रसुकृतंभवेत् ॥ ४७ ॥ एतेब्राह्मणशार्दूलाविनाशंयान्तिमत्कृते ॥ एषोपिगुणसंसिद्धोगणतुल्योद्विजोत्तमः ॥ ४८ ॥ तस्माद्द्वाभ्यांमयाकार्य्येक्षेत्रे सौख्यंयशोभवेत् ॥ ब्राह्मणानांविशेषेणक्षेत्रेचात्रनिवासिनाम् ॥ ४९ ॥ ममापिसर्वदाचित्तेकृत्यमेतद्विवर्तते ॥ एक

सुरेश्वर देव ! तुमसे इनको कुछ देने योग्य है मुझको उल्लङ्घन न कर मनोरथ को दीजियेगा ॥ ४५ ॥ व मैं तुम्हारे देखतेहुये इन पुत्रों व स्त्रियों समेत अग्निका साधन करूंगा इसलिये जो योग्यहो सो कीजिये ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि उस द्विजके उस वचन को सुनकर चन्द्रभाल (शिव) भगवान् ने चित्तसे चिन्तवन किया कि इस विषयमें क्या सुकृत होगा ॥ ४७ ॥ क्योंकि मेरेलिये ये द्विजपुङ्गव नाशको प्राप्तहोंगे व गुणों से भलीभांति सिद्धहुआ यह द्विजोत्तम मेरे गण के समान है ॥ ४८ ॥ इसलिये दोनों के लिये मुझको क्षेत्रों को करना चाहिये जिससे सुख व यशहोवै व इस क्षेत्र में निवासकरने वाले ब्राह्मणों के लिये विशेषकर

करना चाहिये ॥ ४९ ॥ व मेरे भी चित्तमें यह कार्य्य सदैव वर्तमान रहता है कि जो मेरे समस्त क्षेत्र हैं उनको निश्चयकर एकस्थान में करूं ॥ ५० ॥ क्योंकि वैसेही कलियुग से उपजाहुआ करालकाल होगा उसमें पृथ्वीतल में क्षेत्र व तीर्थ नष्ट हो जावैंगे ॥ ५१ ॥ उसी के डरसे तीर्थों समेत भलीभांति टिकेहुये इस समस्त क्षेत्रको व निज क्षेत्रोंको सम्पूर्णता से मैंभी लाऊंगा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर महादेव जी ने उस चित्रशर्मासे यह कहा कि मेरे समस्त वचनको सुनो उसके उपरान्तकरो ॥ ५३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे समस्त क्षेत्र यहां भलीभांति आवैं और वे ब्राह्मण प्रसन्न होवैं ॥ ५४ ॥ हे महामते, द्विजोद्भव ! यदि ईर्षा को छोड़कर मेरे वचन में

स्थानेकरोम्येवसर्वंक्षेत्राणियानिमे॥ ५० ॥ भविष्यतितथाकालोरौद्रःकलिसमुद्भवः ॥ तत्रक्षेत्राणितीर्थानिनाशंयास्यन्तिभूतले ॥ ५१ ॥ सतीर्थन्तद्भयात्सर्वंक्षेत्रमेतत्समाश्रितम् ॥ आनयिष्याम्यहमपिस्वानिक्षेत्राणिकृत्स्नशः ॥ ५२ ॥ ततस्तञ्चित्रशर्म्माणंप्राहचेदंमहेश्वरः ॥ शृणुमद्वचनंकृत्स्नंकुरुष्वतदनन्तरम् ॥ ५३ ॥ अत्रक्षेत्राणिसर्वाणिमदीयानिद्विजोत्तम ॥ समागच्छन्तुविप्राश्चतेभवन्तुप्रहर्षिताः ॥५४॥ तवापियोग्यतांश्रेष्ठांकरिष्यामिमहामते ॥ यदिमेवर्त्तसेवाक्यंमुक्त्वास्पर्द्धांद्विजोद्भव ॥ ५५ ॥ त्वदीयमपितेगोत्रंवेदोक्तेनक्रमेणच ॥ आद्यताञ्चापितेसर्वेकीर्तयिष्यन्तिसद्विजाः ॥५६॥ तथान्यदपिसम्मानंतवयच्छामिसद्द्विज ॥ आचन्द्रार्कमसन्दिग्धम्पुत्रपौत्रादिकञ्चयत् ॥ ५७ ॥ त्वदन्वयेभविष्यन्तिपुत्रपौत्रास्तथापरे ॥ कृतेश्राद्धेतर्पणेवाक्रियमाणेविधानतः ॥ ५८ ॥ आद्यस्यवत्ससञ्ज्ञस्यनामउच्चार्य्यगोत्रजम् ॥ ततोनामानिचाप्येवंकीर्तयिष्यन्तिभक्तितः ॥५९॥ ततःसन्तर्पयिष्यन्तिपितॄन्मातामहानपि ॥ तथान्यानपिवं

वर्तमान होते हो तो तुम्हारी भी उत्तम योग्यताको करूंगा ॥ ५५ ॥ कि वे समस्त उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे भी उत्तम गोत्रको व प्रथमताको भी वेदोक्त क्रमसे कीर्तन करैंगे ॥ ५६ ॥ हे सद्द्विज ! वैसेही और भी सम्मान तुमको देताहूं जोकि पुत्र, पौत्रादिक सूर्य्य, चन्द्रमा पर्य्यन्त तक निस्सन्देह होवैंगे ॥ ५७ ॥ कि तुम्हारे वंश में जो पुत्र पौत्रादिक व अन्य नर होवैंगे वे विधि से श्राद्ध करनेपर व तर्पण करतेहुये आदिवाले वत्ससंज्ञा के गोत्रसे उपजेहुये नामको कहकर तदनन्तर इसी प्रकार भक्तिसे नामोंको भी कहैंगे ॥ ५८ । ५९ ॥ तदनन्तर पितरों व मातामहों (नाना इत्यादिकों) कोभी भलीभांति तर्पण करैंगे वैसेही वंशके और भी मित्र व

सम्बन्धी व भाइयों को तर्पण करैंगे ॥ ६० ॥ तुम्हारे वंशमें विशेषकर मोहित जो पुरुष तुम्हारे नाम के विना पितरों का तर्पण करैंगे उनका श्राद्ध या दान या उसी से उपजाहुआ तर्पण व्यर्थ होवैगा इसलिये अहंकार को छोड़कर केवल मेरा आराधन करो ॥ ६१ । ६२ ॥ कि जिससे सिद्धभी तुम सदैववाली उत्तमसिद्धि को पावो इसप्रकार उस द्विजको भलीभांति बोधकर व पिछले कोभी पहले करके उस के उपरान्त शिवजी ने उन ब्राह्मणों से यह कहा कि मन्दिर किया जावै व गोत्र २ आगे कर अति उत्तम लिंग स्थापनकरने के योग्य है ॥ ६३ । ६४ ॥ जिससे हे ब्राह्मणो ! उनलिंगोंमें मेरा भली भांति गमन होवै इसके अनन्तर उस

येपितॄंस्तर्पयिष्यन्तितेषांऽयर्थंभविशस्यसुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ ६० ॥ त्वदन्वयेविनानाम्नात्वदीयेनविमोहिताः ॥ श्राद्धंवायदिवादानन्तर्पणञ्चतदुद्भवम् ॥ तस्मादहङ्कृतिंमुक्त्वामामाराधयकेवलम् ॥ ६२ ॥ येनसिद्धोष्यति ॥ ६१ ॥ सिंसिद्धिम्परामाप्नोषिशाश्वतीम् ॥ एवंसम्बोध्यतंविप्रंकृत्वाद्यमपिपश्चिमम् ॥ ६३ ॥ ततस्तान्ब्राह्मणानाहप्रासादःक्रियतामिति ॥ गोत्रंगोत्रम्पुरस्कृत्यस्थाप्यंलिङ्गमनुत्तमम्॥ ६४ ॥ येनसंक्रमणन्तेषुममसञ्जायतेद्विजाः ॥ अथतेब्राह्मणास्तत्रभूमिभागान्मनोहरान्॥६५॥दृष्ट्वादृष्ट्वाप्रचक्रुश्चतदाहर्षेणसंयुताः ॥ अष्टषष्टिमितान्दिव्यान्कैलासशिखरोपमान् ॥ ६६ ॥ तेषुसंस्थापयामासुर्लिङ्गानिविविधानिच॥ क्षेत्रेक्षेत्रेचयन्नामतत्तत्सञ्ज्ञांप्रचक्रिरे ॥ ६७॥ अथतेषांपुनराराधितस्तपःशक्त्यालिङ्गसंस्थापनादृष्टिङ्गत्वादेवस्त्रिलोचनः ।' प्रोवाचमधुरंवाक्यंकस्मिंश्चित्कालपर्य्यये ॥ ६८ ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मिविप्रेन्द्रायुष्माकमहमद्यवै ॥ ६९ ॥ एतन्ममकृतंकृत्यम्भवद्भिरखिलंकृतम् ॥ अस्मदनु

समय वहांपर हर्षसंयुतहोतेहुए उन द्विजों ने मनोहर भूमिभागों को देखदेखकर कैलाश शिखरके समान अरसठि संख्यक दिव्य मन्दिरों को निर्माणकिया ॥ ६५ । ६६ ॥ व उन मन्दिरों में अनेक प्रकार के लिंगोको स्थापन किया व क्षेत्र क्षेत्रमे जोनाम था उस उस संज्ञाको किया ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर लिंगस्थापन से पीछे किसी समयके पलटनेपर तपस्याकी शक्तिसे आराधन किये हुए तीननयनो वाले शिवजी फिर उनब्राह्मणों की दृष्टि को प्राप्त होकर मधुर वचन बोले श्रीशिवभगवान् बोले कि हेद्विजेन्द्रो ! आज मैं तुमलोगोके ऊपर अत्यन्तप्रसन्नहूं॥६८।६९॥ आपलोगोंने मेरे लिये इस समस्त कार्य्यको किया जोकि कलियुगके भयसे मेरे लिंग व क्षेत्र

लाये गये इसकारण तुमलोगों के विना अन्यनर प्रिय न होगा इसलिये हे द्विजोत्तमो ! चित्तमें टिके हुए मनोरथ को शीघ्रही मांगिये ॥ ७० । ७१ ॥ जिससे शीघ्र ही मैं उसको दूं यद्यपि दुर्लभभी होवै ब्राह्मण लोग बोले कि हे सुरनायक देव ! यदि तुम हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नहो ॥ ७२ ॥ तो जिसप्रकार पिछला चित्रशर्मा आप से पहला कियागयाहै वैसेही निस्सन्देह हमारा नाम सदैव कहना चाहिये ॥ ७३ ॥ कि जिस प्रकार इस समय तुम्हारी प्रसन्नतासे समस्त श्राद्धकार्य्यों में हमलोग उस चित्रशर्माके बराबर होवैं ॥ ७४ ॥ शिवभगवान् बोले कि तुमलोगोंके भी वंशमें जोकोई मनुष्य पैदाहोवैंगे वे युवा व शास्त्रोंसे संयुत तथा वेदविद्यामें चतुर व इसकी

दीयानिलिङ्गानिक्षेत्राणिचकलेर्भयात् ॥७०॥ आनीतानिविनायुष्मान्नप्रियोतोभविष्यति ॥ तस्माच्चित्तस्थितंशीघ्रंप्रार्थ यन्तुद्विजोत्तमाः ॥७१॥ सम्प्रयच्छामियेनाशु यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदिदेवप्रसन्नस्त्वमस्माकञ्चसुरे श्वर ॥७२॥ पश्चिमश्चित्रशर्म्माचयथाद्योभवताकृतः ॥ अस्मदीयंसदानामकीर्तनीयमसंशयम् ॥७३॥ श्राद्धकृत्येषुसर्वेषु यथातेनसमावयम् ॥ भवामस्त्वत्प्रसादेनसाम्प्रतञ्चित्रशर्म्मणा ॥ ७४ ॥ भगवानुवाच ॥ युष्माकमपियेकेचिद्वंशेयास्य न्तिमानवाः ॥ युवानःशास्त्रसंयुक्तावेदविद्याविशारदाः ॥७५॥ आनयिष्यन्तिवैपूर्वमामुष्यायणसञ्ज्ञिताः ॥ नित्यंस्थिताश्च तत्क्षेत्रेश्राद्धस्याक्षय्यकारकाः ॥ ७६ ॥ एवमुक्त्वासदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ तेपिविप्रास्सुसन्तुष्टास्तत्रस्थानेव्यवस्थि ताः ॥७७॥ एवंतत्रसमस्तानिक्षेत्राण्यायतनानिच ॥ कलिभीतानिविप्रेन्द्रानिवसन्तिसदैवहि ॥ ७८ ॥ एवंतेब्राह्मणाःप्राप्य सिद्धिञ्चेश्वरपूजनात् ॥ ख्यातास्सर्वत्रभुवनेश्राद्धस्याक्षय्यकारकाः ॥७९॥ इति चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

संज्ञामें प्राप्तहोते हुए निश्चयकर पूर्व संज्ञाको लावैंगे व श्राद्धके अक्षय कारक होकर नित्यही क्षेत्र में टिकैंगे ॥ ७५ । ७६ ॥ ऐसाकहकर तदनन्तर वे देवनायक शिवजी अन्तर्द्धान होगये और संतुष्ट होते हुये वे ब्राह्मण भी उसी स्थान में विशेषता से टिके ॥ ७७ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार कलियुग से डरेहुये समस्त क्षेत्र व देवमन्दिर वहांपर सदैवही निवास करते हैं ॥ ७८ ॥ इसप्रकार वे ब्राह्मण ईश्वर (शिव) जीके पूजनसे सिद्धिको पाकर संसारमें सबकहीं श्राद्धके अक्षयकारक प्रसिद्ध हुये ॥ ७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रशर्माद्विजलिंगस्थापनंनाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

दो० । अरसठि क्षेत्रनको कह्यो यथा उमासन शर्व । इकसौपंचममें कथा कथित सोइहै सर्व ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जिन अरसठि संख्यावाले क्षेत्रों को कहाहै उन्हींके नाम हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ वैसेही और जो तीर्थ भूतल में हैं उनको सम्पूर्णता से कहिये हमलोगों को बड़ा कौतुक है ॥ २ ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! भूतल में जो अरसठि संख्यक क्षेत्र व तीर्थ आपलोगोंसे कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वरो ! जब यहां कलियुग प्राप्तहुआ तब वे समस्त क्षेत्र व तीर्थ रसातलमें पैठगये ॥ ४ ॥ हे द्विजो ! पुरातन समयमें पार्वती नें परमेश्वरसे इसीको पूंछाहै जो कि तीर्थयात्राके लिये आपलोगोंने मुझसे पूंछा ॥५॥ पुरातन

ऋषयऊचुः ॥ अष्टषष्टिप्रमाणानियानिक्षेत्राणिसूतज ॥ त्वयोक्तानिचतान्येवनामतोनःप्रकीर्तय ॥ १ ॥ तथाऽन्यानिचतीर्थानियानिसन्तिधरातले ॥ तानिकीर्तयकार्त्स्न्येनपरंकौतूहलंहिनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ यानिप्रोक्तानितीर्थानिभवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ अष्टषष्टिप्रमाणानितथाक्षेत्राणिभूतले ॥ ३ ॥ तानिसर्वाणिक्षेत्राणिप्रविष्टानिरसातले ॥ तीर्थानिमुनिशार्दूलाःप्राप्तेचात्रकलौयुगे ॥ ४ ॥ एतदेवपुरापृष्टःपार्वत्यापरमेश्वरः ॥ यद्भवद्भिरहंपृष्टस्तीर्थयात्राकृतेद्विजाः ॥ ५ ॥ कैलासशिखरासीनःपुरादेवोमहेश्वरः ॥ सर्वैर्गणगणैस्सार्द्धमुपविष्टोवरासने ॥ ६ ॥ प्रणामकरणार्थायआगतेष्वमरेषुच ॥ गतेषुतेषुविप्रेन्द्रास्सर्वेषुत्रिदिवालयम् ॥ ७ ॥अर्द्धासनगतादेवीवाक्यमेतदुवाचह ॥ देव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवगङ्गाक्षालितशेखर ॥ ८ ॥ वदमेतीर्थमाहात्म्यंयद्यहंवल्लभातव ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्चतीर्थानामिहभूतले ॥ ९ ॥ संख्ययानामतोदेवमह्यंकीर्तयसाम्प्रतम् ॥ यानितीर्थान्यनेकानिक्षेत्राणिवदमेप्रभो ॥ १० ॥ तानिकीर्तयदेवेशसु

समय में कैलासके शिखरपै स्थित महेश्वर देवजी समस्त गणसमूहोंके साथ उत्तम आसनपै बैठेथे ॥६॥ हे द्विजेन्द्रो ! जिस समय प्रणाम करनेके लिये समस्त देवता आये व स्वर्गको चलेगये तब ॥ ७ ॥ आधे, आसनपै प्राप्तहुई पार्वतीदेवी इस प्रसिद्ध वचनको बोलीं कि हे देवताओंके देव, हे महादेव, हे गंगासे धोयेहुये मस्तक वाले ! ॥८॥ यदि मैं तुमको प्यारीहूं तो मुझसे तीर्थमाहात्म्यको कहिये हेदेव ! इसभूतलमें गिनतीसे साढ़ेतीन करोड़ तीर्थहैं उनको इस समय मेरे लिये नामसे कहिये हे प्रभो !

गम्यञ्चैवदेहिनाम् ॥ कीर्तनाच्चसमग्राणान्तीर्थानांलभ्यतेफलम् ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तीर्थशब्दोवरारोहेधर्मकृत्येषुवर्तते॥ धर्म्मस्थानेषुसर्वेषुतत्त्वंशृणुसमाहिता॥ १२॥ आश्रयाःसन्मुनीन्द्राणान्देवानाञ्चतथाप्रिये॥ भूमिभागाःपवित्राःस्युस्तत्कीर्त्यन्तीर्थमित्युत ॥ १३ ॥ तेषांसन्दर्शनादेवस्मरणाच्चावगाहनात् ॥ मुच्यन्तेजन्तवःपापैरपिजन्मशतोद्भवैः ॥ १४ ॥ तथापातकिनोयेचयेचविश्वासघातकाः ॥ तेपिसर्वेतथामुक्तास्तेषांचैवावगाहनात् ॥ १५ ॥ एवंपापानिसंयान्तिनाशंसर्वाङ्गसुन्दरि॥ अपिब्रह्मवधात्पापंयद्भवेद्देहिनामिह॥१६॥तच्चापितीर्थसंसर्गात्प्रलयंयात्यसंशयम्॥ ममापिकरसँल्लग्नंकपालंब्रह्मणःपुरा॥१७॥पतितन्तीर्थसंसर्गात्तेषांचैवावगाहनात् ॥ एवंसर्वेषुतीर्थेषुक्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥ १८ ॥ स्नातव्यंभक्तियुक्तेनचेतसानन्यगामिना ॥ यत्रस्नातैर्नरैस्सम्यक्सर्वेषांलभ्यतेफलम् ॥ १९ ॥ ममाश्रमंविशालाक्षिसर्वपातकनाशनम्॥ कामदंचतथानृणांनारीणांचविशेषतः ॥ २० ॥ एतद्गुह्यतमंदेविमसानित्यंव्यव

जो अनेक तीर्थ व क्षेत्रहैं उनको मुझसे कहिये व हे देवेश ! शरीरधारियों के जो भली भांति जाने योग्यहोवै उसको भी कहो क्योंकि कीर्तन से भी समस्ततीर्थों का फल मिलताहै ॥ ९ । १० । ११ ॥ ईश्वरजी बोले कि हे वरारोहे (उत्तमकटिवाली)! तीर्थशब्द धर्मकार्य्योंमें व समस्त धर्मस्थानोंमें वर्तमानहै उसको सावधान होती हुई तुम सुनो ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! अथवा उत्तम मुनीन्द्रों के तथा देवताओं के आश्रयवाले भूमि भाग पवित्र होतेहैं वही तीर्थ यह कीर्त्तनीयहै ॥ १३ ॥ उन भूमि भागों के दर्शनसे व स्मरणसे तथा स्नानसे प्राणी सैकड़ों जन्मोंसे उपजे हुए पातकोसेभी छूटजाते हैं ॥ १४ ॥ वैसेही जोपापी हैं व जो विश्वासघाती हैं वे सब भी उन्हींके स्नान से उसी प्रकार छूटजातेहैं ॥ १५ ॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! इसप्रकार पाप नाशको प्राप्तहोते हैं इस संसार मे ब्रह्मघात सेभी जो पातक शरीरधारियों को होता है ॥१६॥ वहभी तीर्थके संसर्ग से निस्सन्देह नाशहोजाताहै पुरातन समयमे मेरेभी हाथमें लगाहुआ ब्रह्मा का कपाल तीर्थ के संसर्गसे व उनमें स्नानसे गिरा पड़ा था इसप्रकार सबतीर्थों क्षेत्रों व देवमन्दिरों में ॥ १७ । १८ ॥ भक्तिसंयुत व अनन्यगामी(एकाग्र)चित्तसे स्नान करना चाहिये क्योंकि जिनमे भली भांति नहाये हुए पुरुषोंको समस्त तीर्थों का फल मिलताहै ॥ १९ ॥ हे विशालाक्षि ! मेरा आश्रम समस्त पातकोंका विनाशक व मनुष्यों तथा विशेषकर स्त्रियों को कामदायक है ॥ २० ॥ हे देवि !

यह मेरे नित्यही अतिगुप्त टिकाथा कि जिसको मैंने पूंछते हुये इन्द्र से व किसीसे भी नहीं कहा है ॥ २१ ॥ हे कल्याणकारिणि, उत्तम आननवाली ! उस तीर्थ को मैंने तुझ प्यारी से कहा मनुष्यों से जो अरसठि तीर्थ भक्ति से जाने योग्य हैं ॥ २२ ॥ हे उत्तमकटिवाली ! वेही मेरे स्थान मेरे प्रभाव से निस्सन्देह कामनाओंके दायक व समस्त पातकों के हारक है ॥ २३ ॥ मनुष्य जिस २ कामना को समाधानकर यदि उस तीर्थ में स्नान करके व उस समय महेश्वरदेव को पूजन करैहै ॥ २४ ॥ व हे उत्तमकटिवाली ! मनमें पुण्य को ध्यान कर जिन नरोंने महादेवजीको पूजा है उनका दर्शन व स्पर्शन होवै ॥ २५ ॥ मनुष्य स्मरणसे भी पहले किये

स्थितम् ॥ नकस्यापिमयाख्यातन्देवेन्द्रस्यापिपृच्छतः ॥ २१ ॥ वाल्लभ्यात्तवमेभद्रेकथितंवैवरानने ॥ अष्टषष्टिःप्रगम्यानिभक्त्यातीर्थानिमानवैः ॥ २२ ॥ ममाश्रयाणितान्येवसर्वपापहराणिच ॥ कामदानिवरारोहेमत्प्रभावादसंशयम् ॥२३॥ यंयंकामंसमाधायतत्रतीर्थेपुमान्यदि ॥ कृत्वास्नानंतदादेवमर्चयेच्चमहेश्वरम्॥२४॥सुकृतंमनसिध्यात्वायैर्नरैःपूजितोहरः ॥ आस्तान्तेषांवरारोहेदर्शनंस्पर्शनंतथा ॥ २५ ॥ स्मरणादपिमुच्यन्तेनराःपापैःपुराकृतैः ॥ एतेशक्रादयोदेवास्तेषुतीर्थेषुसुन्दरि ॥ २६ ॥ मांपूज्यत्रिदिवम्प्राप्तास्तथाऽन्येनारदादयः ॥ तान्यहन्तेप्रवक्ष्यामिविस्तरेणपृथक्पृथक् ॥ २७ ॥ नामतःशृणुदेवेशिसमाहितमनास्थिता ॥ वाराणसीप्रयागञ्चनिमिषञ्चापरन्तथा ॥२८॥ गयाशिरःसुपुण्यंचपवित्रंकुरुजाङ्गलम् ॥ प्रभासंपुष्करञ्चैवविश्वेश्वरमथापरम् ॥ २९ ॥ अट्टहासंमहेन्द्रञ्चतथैवोज्जयिनीमता ॥ मरुकोटिर्विशालाक्षिगोकर्णंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३० ॥ रुद्रकोटिःस्थलेशञ्चहर्षितंवृषभध्वजम् ॥ भद्रकर्णञ्चविख्या

हुये पातकों से छूट जाते हैं हे सुन्दरि ! ये इन्द्रादिक देवता उन तीर्थों में मुझको पूजकर स्वर्गको प्राप्त हुये वैसेही जो अन्य नारदादिक स्वर्गको प्राप्तहुये हैं उनतीर्थों को अलग अलग मैं विस्तार से तुमसे कहताहूं ॥ २६ । २७ ॥ हे देवेशि ! सावधान मनवाली स्थित होती हुई तुम नाम से सुनो कि काशी, प्रयाग, नैमिष और वैसेही पुण्यदायक गयाशिर व पवित्रकारक कुरुजाङ्गल, प्रभास व पुष्कर और ॥ २८ । २९ ॥ हे विशालाक्षि ! अट्टहास, महेन्द्र वैसेही मानीहुई उज्जयिनी, मरुकोटि

व उत्तम गोकर्णक्षेत्र ॥ ३० ॥ व रुद्रकोटि, स्थलेश व हर्षित, वृषभध्वज तथा प्रसिद्ध भद्रकर्ण व देवदारुवन ॥ ३१ ॥ व हे देवेशि ! दण्डकारण्यक्षेत्र, सकाग्र, कार्त्तिकेश्वर, कालञ्जर वैसेही अन्य मण्डलेश्वर ॥ ३२ ॥ व काश्मीर, मरुकेश व अतिउत्तम हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र व वामेश, कुक्कुटेश्वर ॥ ३३ ॥ व भस्मगात्र और ॐकार, त्रिसन्ध्या व वीरजा, अर्केश्वर, नेपाल, दुष्कर्ण व करवीरक ॥ ३४ ॥ वैसेही हे देवि ! जालेश्वर व पर्वतोत्तम श्रीशैल, पाताल, तीर्थवर्ण और बड़ाभारी कारोहणक्षेत्र ॥ ३५ ॥ व पुण्यदायक देविका नदी और सागर से संयुक्त श्रीगङ्गाजी (गङ्गासागर) व प्रसिद्ध अमरकण्टक तथा सप्तगोदावरी ॥ ३६ ॥ वैसेही निर्मलेश

कालञ्जरंचदेवेशि।तथान्यंमण्डलेश्वरम् ॥
तंदेवदारुवनंतथा ॥ ३१ ॥ दण्डकारण्यकंक्षेत्रंसकाग्रंकार्त्तिकेश्वरम् ॥
भस्मगात्रमथोङ्कारंत्रि
३२ ॥ काश्मीरंमरुकेशञ्चहरिश्चन्द्रंसुशोभनम् ॥ पुरश्चन्द्रञ्चवामेशंकुक्कुटेश्वरमेवच ॥ ३३ ॥
जालेश्वरन्तथादेविश्रीशैलम्पर्वतोत्तमम् ॥ पा
सन्ध्यावीरजातथा ॥ अर्केश्वरञ्चनेपालन्दुष्कर्णंकरवीरकम् ॥ ३४ ॥
ख्यातञ्चामरकण्टञ्चसप्तगोदाव
तालंतीर्थवर्णञ्चतथाकारोहणंमहत् ॥ ३५ ॥ देविकाचनदीपुण्यागङ्गासागरसंयुता ॥
कैलासंजाह्नवीतीरेजललिङ्गंमनोहरम् ॥ ३७॥ तथावि
रीतथा ॥ ३६ ॥ निर्मलेशंतथाचान्यत्कर्णिकारंसुशोभनम् ॥
बदरीतीर्थवीर्य्यञ्चकोटितीर्थंतथैवच ॥ न
न्ध्याचलञ्चैवहेमकूटंतथैवच॥लिङ्गेश्वरंविराजंचलङ्काद्वारञ्चखाण्डवम्॥३८॥
सुपर्णाख्यञ्चवामोरुतथान्यत्षष्टिकापथम् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
लेश्वरंतुमध्येशङ्केदारंरुद्रजालकम् ॥ ३९ ॥
णेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेऽष्टषष्टितीर्थानान्नामकथनन्नामपञ्चाधिकशततमोध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥

व अन्य अतिउत्तम कर्णिकार और गङ्गाजी के किनारे कैलास व मनोहर जललिङ्ग ॥ ३७ ॥ व विन्ध्याचल और वैसेही हेमकूट, लिङ्गेश्वर व विराज, लङ्काद्वार और खाण्डव ॥३८॥व बदरिकाश्रम, तीर्थवीर्य वैसेही कोटितीर्थ, नलेश्वर, मध्येश,केदार व रुद्रजालक ॥ ३९ ॥ व हे उत्तम जङ्घस्थलोंवाली ! सुपर्णनामक व अन्य षष्टिकापथ तीर्थहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टषष्टितीर्थानांनामकथनंनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

दो० । इकसौ छठयें में कह्यो रुचिर चरित सुखधाम । जेहि तीरथ में जौन है कीर्तनीय शिवनाम ॥ ईश्वरजी बोले कि हे उत्तममुखवाली ! जो मुझसे पूछागया इस सबही तीर्थोंके सारांशभूत तीर्थ समुदायवाले समस्त चरित को तुमसे कहा ॥ १ ॥ हे उत्तमकटिवाली ! इन सबही तीर्थोंमें देवताओं के हितके लिये मैं अन्य २ नाम से व्यवस्थित (टिका) हूं ॥ २ ॥ इन तीर्थों में नहाकर जो मनुष्य मुझको देखता है व कीर्तन करने के योग्य नाम से कीर्तन करता है वह निश्चयकर मोक्ष को पाताहै ॥ ३ ॥ देवी बोलीं कि हे प्रभो ! यदि मैं तुमको प्यारीहूं तो जिन तीर्थोंमें तुम्हारा जो नाम कीर्तन करनेके योग्यहो उसको मुझसे सम्पूर्णतासे कहिये ॥ ४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिवरानने॥ सर्वेषामेवतीर्थानांसारन्तीर्थसमुच्चयम् ॥ १ ॥ एतेष्वहंवरारोहेसर्वेष्वेवव्यवस्थितः ॥ नाम्नाचान्येनचान्येनत्रिदशानांहितार्थतः ॥ २ ॥ योमामेतेषुतीर्थेषुस्नात्वापश्यतिमानवः ॥ कीर्तयेत्कीर्त्यनाम्नाचसनूनंमोक्षमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ येषुतीर्थेषुयन्नामकीर्तनीयन्तवप्रभो ॥ तत्कात्स्न्र्येनममब्रूहियद्यहन्तववल्लभा ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वाराणस्यांमहादेवम्प्रयागेचमहेश्वरम् ॥ नैमिषेदेवदेवञ्चगयायांप्रपितामहम् ॥ ५ ॥ कुरुक्षेत्रेविदुःस्थाणुंप्रभासेशशिशेखरम् ॥ पुष्करेतुअजोगन्धंविश्वंविश्वेश्वरेतथा ॥ ६ ॥ अट्टहासेमहानादंमहेन्द्रेचमहाव्रतम् ॥ उज्जयिन्यांमहाकालंमरुकोटेमहोत्कटम् ॥ ७ ॥ शंकुकर्णेमहातेजंगोकर्णेचमहाबलम् ॥ रुद्रकोट्यांमहायोगीमहालिङ्गंस्थलेश्वरे ॥ ८ ॥ हर्षितेतुतथाहर्षंवृषभंवृषभध्वजे ॥ केदारेचैवईशानंशर्वंमध्यमकेश्वरे ॥ ९ ॥ सुपर्णाख्येसहस्रांशुंसुसूक्ष्मंकार्त्तिकेश्वरे ॥ भवंवस्त्रपथेदेविउग्रंकनखलेतथा ॥ १० ॥ भद्रकर्णे

ईश्वरजी बोले कि काशी में महादेव व प्रयाग में महेश्वर नैमिष में देवदेव (विष्णु) गया में प्रपितामह (ब्रह्मा) जी ॥ ५ ॥ व कुरुक्षेत्र में मुनियोंने स्थाणु को कहा है व प्रभास में शशिशेखर, पुष्कर में अजोगन्ध वैसेही विश्वेश्वर में विश्व कीर्तनीय हैं ॥ ६ ॥ अट्टहास में महानाद व महेन्द्र में महाव्रत, उज्जयिनी में महाकाल, मरुकोट में महोत्कट कीर्तनीय हैं ॥ ७ ॥ व शंकुकर्ण में महातेज, गोकर्ण में महाबल, रुद्रकोटि मे महायोगी और स्थलेश्वर मे महालिङ्ग ॥ ८ ॥ वैसेही हर्षित में हर्ष, वृषभध्वज में वृषभ, केदार में ईशान, मध्यमेश्वर में शर्व कीर्तनीयहैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! सुपर्ण नामक क्षेत्र में सहस्रांशु, कार्त्तिकेश्वर में सुसूक्ष्म, वस्त्र-

पथ में भव वैसेही कनखल में उग्र ॥ १० ॥ व भद्रकर्ण में शिव, दण्डक में दण्डी व त्रिदण्डा में ऊर्ध्वरेता, कुरुजांगल में चण्डीश ॥ ११ ॥ व आम्र में कृत्तिवास, छागलेय में कपर्दी, कालंजर में नीलकण्ठ व मण्डलेश्वर में श्रीकण्ठ कीर्तनीय हैं ॥ १२ ॥ व काश्मीर में विजय, मरुकेश्वरमें जयन्त, हरिश्चन्द्र में हर, पुरश्चन्द्रमें शङ्कर ॥ १३ ॥ व वामेश्वर में जटि व कुक्कुटेश्वर में सौम्य को जानिये व भस्मगात्र, ॐकार व अमरकण्टक में भूतेश्वर ॥ १४ ॥ व त्रिसन्ध्या में त्रैयम्बक, वीरजामें त्रिलोचन, अर्केश्वर में दीप्त, नैपाल में पशुपालक जानने के योग्यहैं ॥ १५ ॥ और दुष्कर्णमें यमलिंग, करवीरक में कपाली, जलेश्वर में त्रिशूली व श्रीशैल में त्रिपु-

शिवञ्चैवदण्डकेदण्डिनंतथा ॥ ऊर्द्ध्वरेतास्त्रिदण्डायाञ्चण्डीशंकुरुजाङ्गले ॥ ११ ॥ कृत्तिवासंतथैवाम्रेछागलेयेकप
र्दिनम् ॥ कालञ्जरेनीलकण्ठंश्रीकण्ठंमण्डलेश्वरे ॥ १२ ॥विजयंचैवकाश्मीरेजयन्तंमरुकेश्वरे ॥ हरिश्चन्द्रेहरंचैव
पुरश्चन्द्रेचशङ्करम् ॥ १३ ॥ जटिंवामेश्वरेविद्यात्सौम्यंवाकुक्कुटेश्वरे ॥ भूतेश्वरंभस्मगात्रेचोङ्कारेमरकण्टके ॥
१४ ॥ त्रैयम्बकंत्रिसन्ध्यायां वीरजायांत्रिलोचनम् ॥ दीप्तमर्केश्वरेज्ञेयं नेपालेपशुपालकम् ॥ १५ ॥ यमलिङ्गंतुदुष्कर्णे
कपालीकरवीरके ॥ जलेश्वरेत्रिशूलीचश्रीशैलेत्रिपुरान्तकम् ॥ १६ ॥ नागेश्वरमयोध्यायां पातालेहाटकेश्वरम् ॥
कारोहणेनकुलीशन्देविकायामुमापतिम् ॥ १७ ॥ भैरवेभैरवाकारममरंपूर्वसागरे ॥ सप्तगोदावरीभीमं विमलेशेस्वय
म्भुवम् ॥ १८ ॥ कर्णिकारेगणाध्यक्षं कैलासेतुगणाधिपम् ॥ गङ्गाद्वारेहिमस्थानं जललिङ्गेजलप्रियम् ॥ १९ ॥ अतलंवा
पाण्डवेचभीमंबदरिकाश्रमे॥अष्टषष्टिरियंदेवि तवाख्याताविशेषतः ॥ २० ॥ पठतांशृण्वतांवापि सर्वपातकनाशिनी ॥

रान्तक कीर्तनीय हैं ॥ १६ ॥ व अयोध्या में नागेश्वर, पाताल में हाटकेश्वर, कारोहण में नकुलीश, देविका में उमापति ॥ १७ ॥ व भैरव में भैरवाकार, पूर्वसागर में अमर व सप्तगोदावरी में भीम व विमलेश में स्वयम्भू कीर्तनीय हैं ॥ १८ ॥ व कर्णिकार में गणाध्यक्ष और कैलास में गणाधिप, गंगाद्वार में हिमस्थान, जललिंग में जलप्रिय ॥ १९ ॥ व पाण्डव में अतल, बदरिकाश्रम मे भीम कीर्तनीय हैं हे देवि ! इन अरसठि क्षेत्रों को विशेषता से तुमसे कहा ॥ २० ॥ जो कि पढ़ने व सुनने

वाले भी मनुष्यों के समस्त पातकों के विनाशक हैं इसलिये चतुर जनोंको त्रिकालमें भी यत्न से कीर्तन करने के योग्य हैं व पवित्र शिवदीक्षावाले (शैव) जनों को विशेषता से कीर्तन करने योग्यहैं हे उत्तमकटिवाली (पार्वती) ! लिखेहुयेभी ये अरसठि क्षेत्र जिसके घरमें स्थित होतेहैं ॥ २१।२२ ॥ हे उत्तममुखवाली (पार्वती) ! उस घरमें भूत, प्रेतसे उपजा हुआ दोष नहीं होताहै व और न रोग का न सर्पोंका न चोरोंका दोष होता है ॥ २३ ॥ व कहींपर कभी भी अन्य भूपालादिकों का दोष नहीं होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यंनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कीर्तनीयाविचक्षणैः ॥ २१ ॥ कालत्रयेपिशुचिभिर्विशेषाच्छिवदीक्षितैः ॥ लिखितापिवरारोहे य स्यैषातिष्ठतेगृहे ॥ २२ ॥ नतत्रजायतेदोषो भूतप्रेतसमुद्भवः ॥ नव्याधेर्नचसर्पाणांनचौराणांवरानने ॥ २३ ॥ नान्ये पांभूभुजादीनां कदाचिदपिकुत्रचित ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टष ष्टितीर्थमाहात्म्यंनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ नैतेष्वपिसुरश्रेष्ठ सर्वेषुभुविमानवाः ॥ अपिदीर्घायुषोभूत्वा स्नातुंशक्ताःकथंचन ॥ १ ॥ एतेषाम पिसाराणि ममतीर्थानिकीर्तय ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वेषांलभतेफलम् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एतेषांमध्यतोदेवि ती र्थाष्टकमनुत्तमम् ॥ अस्तिस्नातोनरस्तत्रसर्वेषांलभतेफलम् ॥ ३ ॥ नैमिषंचैवकेदारंपुष्करंकुरुजाङ्गलम् ॥ वाराण सीकुरुक्षेत्रम्प्रभासंहाटकेश्वरम् ॥ ४ ॥ अष्टस्वेतेषुयःस्नातःसम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ सस्नातस्सर्वतीर्थेषुसत्यमेतन्म

दो० । इकसौ सप्तम में रुचिर क्षेत्र समूह प्रभाव । शौनकादिकन ऋषिनसन वरण्यो सूत सचाव ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! भूतलमें मनुष्य बड़े आयुर्व- लवाले भी होकर इन सबों मेंभी नहानेके लिये किसी प्रकार समर्थ नहीं हैं ॥१॥ इसलिये इन क्षेत्रोंके मध्य मेंभी सारांशभूत याने मुख्य तीर्थों को कहिये जिनमें नहाया हुआ पुरुष सबतीर्थों के फलको पाता है ॥ २ ॥ ईश्वरजी बोले कि हे देवि ! इन तीर्थों के मध्य में अतिउत्तम आठ तीर्थ हैं उनमें नहायाहुआ नर समस्त तीर्थों के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ नैमिष, केदार, पुष्कर, कुरुजाङ्गल, काशी, कुरुक्षेत्र, प्रभास व हाटकेश्वर ॥ ४ ॥ इन आठोंतीर्थों में श्रद्धासंयुत होतेहुये जिस पुरुष ने

स्नान कियाहै वह समस्त तीर्थों में नहायाहुआहै यह मैंने सत्य कहा है ॥ ५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे महादेवजी ! कलिकालमें मनुष्य उन आठक्षेत्रोंमें नहानेके लिये किसी प्रकार समर्थ न होवैंगे हे देवदेव त्रिनयन शिवजी ! यदि मैं प्यारी व भक्ता व चित्तके अनुकूल बर्ताव करनेवालीहूं तो इन आठों क्षेत्रों के मध्य में जो मुख्य तीर्थहो उसको निश्चयकर मुझसे कहिये ॥ ६ । ७ ॥ ईश्वर बोले कि हे सुरेशि ! इन आठों क्षेत्रों के मध्य मेंभी वह हाटकेश्वर नामक क्षेत्र उत्तम है ॥ ८ ॥ जिस क्षेत्र में कलिकाल के भी संस्थित होनेपर मेरी आज्ञासे समस्त क्षेत्र व अन्यतीर्थ भलीभांति टिके हैं ॥ ९ ॥ इसलिये मोक्ष चाहनेवाले पुरुषों को सब उपायसे वह

योदितम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कलिकालेमहादेवभविष्यन्तिकथञ्चन ॥ स्नातुंतत्रममब्रूहियत्सारंतीर्थमेवहि ॥ ६ ॥
अष्टानामपिचैतेषांदेवदेवत्रिलोचन ॥ यद्यहंवल्लभाभक्तातथाचित्तानुवर्तिनी ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अष्टानामपिदेवे
शिक्षेत्राणामस्तिचोत्तमम् ॥ एतेषामपितत्क्षेत्रंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ ८ ॥ यत्रसर्वाणिक्षेत्राणिसंस्थितानिममाज्ञया ॥
तथान्यानिचतीर्थानिकलिकालेपिसंस्थिते ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतत्क्षेत्रंसेव्यमेवहि ॥ मानुषैर्मोक्षमिच्छद्भिःसत्य
मेतन्मयोदितम् ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातमष्टषष्टिसमुद्भवम् ॥ समुच्चयंद्विजश्रेष्ठानामदेवसमन्वित
म् ॥ ११ ॥ यथादेवेनचाख्यातंपार्वत्यागुह्यमुत्तमम् ॥ प्रसन्नेनमयाकृत्स्नंयुष्माकंसमुदाहृतम् ॥ १२ ॥ यश्चैतत्पठते
भक्त्याह्यष्टषष्टिसमुद्भवम् ॥ स्नानजंलभतेपुण्यंशृण्वानःश्रद्धयान्वितः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृ
तीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥

क्षेत्र सेवा करनेके योग्यहीहै यह मैंने सत्य कहाहै ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अरसठि क्षेत्रोंसे उपजेहुये इस नामों व देवताओंसे संयुत समस्त समुदायको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ११ ॥ जिस प्रकार प्रसन्न देव (शिव) जीने पार्वती जीसे उत्तम गुप्त चरितको कहाथा वैसेही मैंने समस्त वृत्तान्तको तुमलोगोंसे वर्णन किया ॥ १२ ॥ जो कोई मनुज अरसठि क्षेत्रों से उपजेहुये इस चरितको भक्तिसे पढ़ताहै वह और श्रद्धासंयुत सुनताहुआ भी पुरुष स्नानसे उपजे हुये पुण्यको पाता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवादयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रेऽष्टषष्टितीर्थमाहात्म्यनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ❀ ॥

होतीहुई शीघ्रही अपने पुरको प्रयाण करती भई व उस समय ईर्षा समेत तपस्विनियों ने भी घरको जाकर अनेक प्रकारके वस्त्रों व आभूषणों को धारण किया व व्रतोंको ग्रहण किये हुई चार तपस्विनियोंको छोड़कर ॥ ६०।६१ । ६२ ॥ शेष तपस्विनियों ने यथेच्छा से आभूषणोंको ग्रहण किया तदनन्तर प्रातःकाल जब निर्मल सूर्य्यमण्डल उदय हुआ तब ॥ ६३ ॥ फिर भी उस राजपत्नीने भूषणों व वस्त्रोंको उसीप्रकार उन तपस्विनियों को दिया व उन्होंने भी वैसेही ग्रहण किया ॥ ६४ ॥ इस प्रकार उस दमयन्ती को दिन दिन भक्ति से देतेहुये पांच रात्रियां व्यतीत होगईं परन्तु वे तापसप्रियायें तृप्त न हुईं ॥ ६५॥ व बड़ी भक्तिसे भूषणोंको देतीहुई रानी (दमयन्ती)

तापस्योपिगृहंगत्वावस्त्राणिविविधानिच ॥ ६१ ॥ भूषणानिचगात्रेषुसस्पर्द्धानिदधुस्तदा ॥ तापसीनाञ्चतुष्कञ्चपरित्य ज्ययतव्रतम् ॥ ६२ ॥ शेषाभिःप्रगृहीतानिमण्डनानियथेच्छया ॥ ततःप्रभातेविमलेप्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ६३ ॥ भूयो पिराजपत्नीसाभूषणान्यम्बराणिच ॥ तथैवप्रददौतासांजगृहुश्चतथैवताः ॥ ६४ ॥ एवंतस्याःप्रयच्छन्त्याअहन्यहनि भक्तितः ॥ पञ्चरात्रमतिक्रान्तंनतृप्तास्तापसप्रियाः ॥ ६५ ॥ नराज्ञीतृप्तिमायातिप्रयच्छन्तीप्रभक्तितः ॥ ततःशुश्रावता सान्तुचतस्रोयामुनिप्रियाः ॥ ६६ ॥ वल्कलाजिनधारिण्योनतस्याःपार्श्वमागताः ॥ नचान्याभूषितादृष्ट्वाचक्रुरीर्षांकथञ्च न ॥ ६७ ॥ अथसात्वरितंगत्वातासांपार्श्वमनिन्दिता ॥ भूषणानिमहार्हाणिगृहीत्वापञ्चमेदिने ॥ ६८ ॥ ततःप्रोवाचताःसर्वाः प्रसादःक्रियतामिति ॥ इमानिभूषणार्थायभूषणानिप्रगृह्यताम् ॥ ६९ ॥ तापस्यऊचुः ॥ नास्माकंभूषणैःकार्यंभूषितावल्कलैर्व यम् ॥ तस्माद्गच्छनिजंहर्म्यमर्थिभ्यस्सम्प्रदीयताम् ॥ ७० ॥ एवंसंवदतान्तासान्तयासार्द्धंद्विजोत्तमाः ॥ चत्वारःपतयःप्राप्ता

तृप्तिको न प्राप्तहुईं तदनन्तर उसने उनके मध्य में जो चार मुनिप्रियायेंथीं उनके चरित को सुना ॥ ६६ ॥ व वल्कल और मृगचर्मको धारनेवाली वे उस दमयन्ती के समीप न आईं और अन्य तपस्विनियोंको भूषित देखकर न किसी प्रकार ईर्षा किया ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर उस प्रशंसित दमयन्ती ने पांचवें दिन बडे मूल्यवाले आभूषणों को लेकरके शीघ्रही उन चारों के समीप जाकर ॥ ६८ ॥ तदनन्तर उन सबों से यह कहा कि प्रसन्नता कीजावै व भूषणके लिये इन अलंकारोंको ग्रहण कीजिये ॥ ६९॥ तपस्विनियां बोलीं कि हम सबोंका भूषणों से कार्य्य नहीं है क्योंकि हम बकलों से भूषितहैं इस लिये अपने घरको जावो व याचकों के लिये दीजिये ॥७०॥

हे द्विजोत्तमो ! उसके साथ इस भांति उनको संभापण करतेहुये एक एकके अलग २ चारों पति प्राप्तहुये ॥ ७१ ॥ जो कि शुनःशेप, शाक्रेय, बौद्ध व चौथे दान्त थे चारों आकाशमार्ग को पाकर अपने आश्रम को आये ॥ ७२ ॥ व शेप सब गतिभ्रंश (भूल) को प्राप्त होकर भूमिके मार्ग में आश्रितहुये इसके अनन्तर बिगड़े हुये आकार व भूषणोंवाले वे अपने आश्रम को देखकर ॥ ७३ ॥ यह क्याहै यह क्या है ऐसा कहा जो कि तपस्विनियों की विडम्बना कीगई व तपस्वियों को भूपणों, वसनों को देकर किस पापी ने हमलोगों के आश्रम को विकार किया है ॥ ७४।७५॥ उनकी स्त्रियां बोलीं कि चमत्कार भूपतिकी जो यह स्त्री विशेपतासे टिकी है इसने

एकैकस्याःपृथक्पृथक् ॥ ७१ ॥ शुनःशेपोथशाक्रेयोबौद्धोदान्तश्चतुर्थकः ॥ वियन्मार्गंहिचत्वारःप्राप्यस्वाश्रममाययुः ॥ ७२ ॥ शेषाःसर्वेगतिभ्रंशंप्राप्यभूमार्गमाश्रिताः ॥ अथतेस्वाश्रमन्दृष्ट्वाविकृताकारभूषणम् ॥ ७३ ॥ किमिदंकिमिदंप्रोचुर्यत्तापस्योविडम्बिताः॥ केनैवपाप्मनास्माकमाश्रमोयञ्चव्याकृतः ॥७४॥ प्रदत्त्वातापसानाञ्चभूषणान्यम्बराणिच ॥७५॥ तत्पत्न्यऊचुः ॥ चमत्कारस्यभूपस्ययैषाभार्याव्यवस्थिता ॥ अनयासंप्रदत्तानिसर्वासांभूषणानिवै ॥ ७६ ॥ अस्माकमपिसम्प्राप्तागृहेसौनृपवल्लभा ॥ दातुंविभूषणान्येवंनिपिद्धास्माभिरद्यसा ॥ ७७ ॥ सूतउवाच ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वाततस्तेकोपमूर्च्छिताः ॥ प्रोचुस्तेनृपतेर्भार्यान्तच्छापायमुहुर्मुहुः ॥ ७८ ॥ द्विसप्ततिर्वयंपापेस्नानार्थंपुष्करेगताः ॥ कार्त्तिक्यांव्योममार्गेणमनोमारुतरंहसा ॥ ७९ ॥ चत्वारस्तइमेप्राप्तायेषांदारैःप्रतिग्रहः ॥ नकृतस्तस्यभूपस्यकुभार्यायाःकथंचन ॥८०॥ यस्माद्विडम्बितोस्माकमाश्रमोयन्तपस्विनाम् ॥ शिलारूपासुनिश्चेष्टातस्माद्भवतुकुत्सि

सबों को अलंकारों को भलीभांति दियाहै ॥ ७६ ॥ व यह नृपप्रिया भूपणों को देने के लिये ऐसेही हमसबों के भी घर में भलीभांति प्राप्तहुई और वह आज हमसबों से निषेध कीगई ॥ ७७ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर तदनन्तर क्रोध से मूर्च्छित होतेहुये उनमुनीश्वरों ने उसके शाप के लिये नृपपत्नी से बारबार कहा ॥ ७८ ॥ कि हे पापिनि ! बहत्तरि संख्यावाले हमलोग कार्त्तिकी में पुष्कर तीर्थ में नहाने के लिये मन व पवनके वेगसे आकाशमार्ग के द्वारा गये थे ॥ ७९ ॥ उनमें से वे चार हम प्राप्तहुये जिनकी स्त्रियों ने उस भूपकी कुनारी के प्रतिग्रह (दान) को किसीप्रकार न ग्रहण किया ॥ ८० ॥ जिसलिये कि तपस्यावाले हमलोगों के इस आश्रम

की विडंबना किया इस लिये तुम निन्दित होकर चेष्टारहित पत्थर रूपवाली होवो ॥८१॥ इसके अनन्तर मुनिवचन के उपरान्त उसी क्षणही शिलारूप होगई व उसी क्षण चेष्टारहित होगई ॥ ८२॥ तदनन्तर उसके दुःख से अत्यन्त आकुल व दीन तथा आँसुओं से पूर्ण नयनोंवाले इसके उस परिवारने निज नगरको प्रस्थान किया॥८३॥ हे द्विजोत्तमो ! उस दमयन्ती से उत्पन्न व शापसे उपजेहुये उस समस्त चरितको कहा ॥ ८४ ॥ इसके अनन्तर शापसे उपजेहुये वृत्तान्तको सुनकर दुःखित होताहुआ वह नृपति ब्राह्मणों की प्रसन्नता के लिये वनको गया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर वे चारों भी मुनि स्त्री के निमित्त प्रसन्न करने के लिये शीघ्रही समीप में स्थितहुये भूपको जान

ताः ॥ ८१ ॥ अथसातत्क्षणादेवशिलारूपाबभूवह ॥ निश्चेष्टातत्क्षणादेवमुनिवाक्यादनन्तरम् ॥ ८२ ॥ ततस्सपरिवारोस्यास्तद्दुःखेनसमाकुलः ॥ बाष्पपूर्णेक्षिणोदीनःप्रस्थितस्स्वपुरंप्रति ॥ ८३ ॥ कथयामासतत्सर्वंदमयन्त्याःसमुद्भवम् ॥ वृत्तान्तम्ब्राह्मणश्रेष्ठास्तस्याःशापसमुद्भवम् ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाथपार्थिवस्तूर्णंवृत्तान्तंशापजन्तथा ॥ प्रसादनायविप्राणांदुःखितस्सवनंययौ ॥ ८५ ॥ ततस्तेमुनयस्तूर्णञ्चत्वारोपिमहीपतिम् ॥ ज्ञात्वाप्रसादनार्थायभार्यार्थंसमुपस्थितम् ॥ ८६ ॥ अग्निहोत्राणिदारांश्चसमादायततःपरम् ॥ कुरुक्षेत्रेसमाजग्मुःखमार्गगमनेनते ॥ ८७ ॥ पार्थिवोपिसमन्वेष्ययत्नात्तान्सर्वतोमुनीन् ॥ सुनिर्विण्णःश्रमार्त्तश्चभार्याव्यसनदुःखितः ॥ ८८ ॥ ततोजगामतन्देशंयत्रभार्याशिलामयी ॥ सास्थितातापसीवृन्दैस्सर्वतोपिसमन्विता ॥ ८९ ॥ अथतान्तादृशीन्दृष्ट्वासेवकैस्सकलैर्वृतः ॥ हाहेतिवचनंप्रोक्तामूर्च्छितोन्यपतत्क्षितौ ॥ ९० ॥ ततःकृच्छ्रात्समासाद्यसंज्ञान्तोयसमुक्षितः ॥ प्रलापमकरोत्पश्चात्स्मृत्वास्मृत्वाप्रियान्गुणा

कर ॥ ८६ ॥ तदनन्तर वे मुनि उस समय अग्निहोत्रों व स्त्रियों को भलीभांति लेकर कुरुक्षेत्र में आकाशमार्ग के गमन से गये ॥८७॥ व सब ओर यत्नसे उन मुनियों को भलीभांति खोजकर भूपतिभी स्त्री के व्यसन (कामजदोष) से दुःखित व श्रमसे विकल व निर्वेद को प्राप्त हुआ ॥८८॥ तदनन्तर उस देश को गया जहां कि तपस्विनियों के समूहों से सब ओर संयुत भी वह शिलामयी स्त्री स्थितथी ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर उस स्त्री को उस प्रकार की देखकर समस्त सेवकों से घिराहुआ वह भूपति हाय२ बड़ा खेद है ऐसा वचन कहकर मूर्च्छित होताहुआ भूमि में गिरपड़ा ॥ ९० ॥ तदनन्तर जलसे छिड़केहुये उस भूपने क्लेशसे चैतन्यता को भलीभांति प्राप्तहोकर पश्चात्

प्यारे गुणों को बार २ स्मरणकर प्रलाप किया ॥ ९१ ॥ कि हे प्रिये ! हे मृगशावकनयनि ! हे मेरे प्राणों को मोहनेवाली ! हे शुभानने ! आज मुझ प्रियपति को छोड़कर कहां गई हो ॥ ९२ ॥ तुम मेरे भोजन न करने पर नहीं खाती थी व नहीं सोनेपर शयन को नहीं प्राप्त होती थी और कहीं पर सौभाग्य के गर्व से मेरी आज्ञा नहीं उल्लङ्घन की गई ॥ ९३ ॥ हे अतिविशालनयनि ! एकान्त में तुम से कहेहुये विकारवाले वचन को मैं कभी नहीं स्मरण करताहूं व भोजनसभा में क्या कहना है ॥ ९४ ॥ सूतजी बोले कि उस भूपको इसप्रकार करुणापूर्वक बहुत विलाप करते हुये उस के मन्त्री लोग वैसे भूपको सुनकर आये ॥ ९५ ॥ तदनन्तर उन मंत्रियों ने आंसुओं

न् ॥ ९१ ॥ हाप्रियेमृगशावाक्षिममप्राणविमोहिनि ॥ मांमुक्त्वाद्यप्रियंकान्तंक्वगतासिशुभानने ॥ ९२ ॥ नाभुक्तेमयिभुक्तासिनशेषेऽशयनङ्गते ॥ नसौभाग्यस्यगर्वेणममाज्ञालङ्घिताक्वचित् ॥ ९३ ॥ नस्मरामित्वयाप्रोक्तंकदापिविकृतंवचः ॥ रहस्येऽतिविशालाक्षिकिमुभोजनसंसदि ॥ ९४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रलपतस्तस्यभूपतेःकरुणंबहु ॥ आयातामन्त्रिणस्तस्यश्रुत्वाभूपंतथाविधम् ॥ ९५ ॥ ततस्संबोध्यतंकृच्छ्राद्दृष्टान्तैर्बहुविस्तरैः॥राजर्षीणांपुराणानांमहद्व्यसनसम्भवैः ॥ ९६ ॥ पतितंभूपतिंदीनंबाष्पव्याकुललोचनम् ॥ निःश्वसन्तंयथानागंतेजसापरिवर्जितम् ॥ ९७॥ सोपिकृत्वालयन्तस्यास्समन्तात्सुमनोहरम् ॥ कर्पूरागुरुधूपाद्यैर्वस्त्रकुंकुमचन्दनैः ॥ ९८ ॥ पूजयामासतांभार्य्यांशिलारूपामपिस्थिताम् ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदमयन्त्युपाख्यानंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से विकल लोचनोंवाले व तेजसे रहित व सर्प के समान श्वास लेते व दीन तथा पड़ेहुये उस भूपति को बड़े विस्तारवाले व पुराने राजर्षियों के दृष्टान्तो से कष्ट से भलीभांति समझाकर बोध किया ॥ ९६।९७ ॥ व उस राजाने भी उस शिलामयी स्त्री के सब ओर अतिमनोहर मन्दिरको बनाकर व कपूर, अगुरु, धूपादिकों से व वसन, कुंकुम व चन्दन से शिलारूप भी स्थित हुई उस स्त्री का पूजन किया ॥ ९८ । ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदमयन्त्युपाख्यानंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ऊषरकी उत्पत्ति जिमि भई धरातलमाहिं । सोइ एकसौ नवम में कही कथा चितचाहि ॥ तदनन्तर परिवारसंयुत व दुःखसे विकल उस भूपतिके निजघर प्रति चले जानेपर किसी दिन धूलि से धूसरित मुखवाले व दुबले अङ्गोंवाले व थकेहुये अरसठि द्विजोत्तम चरणोंही से भलीभांति आये ॥ १ । २ ॥ व जब तक दिव्य आभूषणों से भूषित व उत्तम वस्त्रों से आच्छादित दूसरी नृपनारियों के समान अपनी स्त्रियों को देखा ॥ ३ ॥ तबतक विस्मय से संयुत व क्षुधासे विकल उन ब्राह्मणों ने पूंछा कि यह क्या है यह क्या है जो कि पापसे विरुद्ध वेष बनाया गया है ॥ ४ ॥ हे अतिनिन्दितनारियो ! जो ये उत्तम भूषण, वसन प्राप्तहुये हैं निश्चय

सूतउवाच ॥ ततःकतिपयाहस्यगतेतस्मिन्महीपतौ॥ स्वगृहम्प्रतिदुःखार्तेपरिवारसमन्विते ॥ १ ॥ पद्भ्यामेवसमा याताअष्टषष्टिर्द्विजोत्तमाः॥ परिश्रान्ताःकृशाङ्गाश्चधूलिधूसरिताननाः ॥ २ ॥ यावत्पश्यन्तिदाराःस्वादिव्याभरणभूषि ताः ॥ दिव्यवस्त्रैस्सुसंवीताराजपत्न्यइवापराः ॥ ३ ॥ तावच्चविस्मयाविष्टाःपप्रच्छुस्तेक्षुधार्दिताः ॥ किमिदंकिमिदंपा पाद्विरुद्धंविहितंवपुः ॥ ४ ॥ यानिप्राप्तानिवस्त्राणिभूषणानिवराणिच॥ नूनमस्मद्गतेर्भ्रंशःखेपातोनान्यथाभवत् ॥ ५ ॥ विकारमेनंसन्त्यक्त्वायुष्मदीयंसुगर्हिताः ॥ अथताःसर्ववृत्तान्तमूचुस्तापसयोषितः ॥ ६ ॥ यथाराज्ञीसमायातादम यन्तीनृपप्रिया ॥ भूषणानिचदत्तानितयाचैवयथाद्विजाः ॥ ७ ॥ यथाशापश्चसंयातोब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ अथते मुनयःक्रुद्धास्तच्छ्रुत्वागर्हितंवचः ॥ राजप्रतिग्रहोनिष्ठस्तापसानांविशेषतः ॥ ८ ॥ ततोभूपस्यराष्ट्रस्यनाशार्थंजगृहुर्ज लम् ॥ क्रोधेनमहताविष्टावेपमानानिरर्गलम् ॥ ९ ॥ अनेनपाप्मनास्माकंकुभूपेनप्रणाशिता ॥ खेगतिर्लोभयित्वातुप

कर इसी तुम सबों के विकार को छोड़कर अन्यथा मेरी गति की भ्रष्टता व आकाश से पात नहीं हुआ है इसके उपरान्त उन तपस्वियों की स्त्रियों ने समस्त चरित को कहा ॥ ५ । ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार नृपति की प्यारी दमयन्ती रानी भलीभांति आई थी व उसी ने जिस प्रकार भूषणों को दियाथा ॥ ७ ॥ व जिस प्रकार महात्मा ब्राह्मणों का शाप हुआथा उसको कहा इसके अनन्तर उस निन्दित वचन को सुनकर वे मुनि क्रोधितहुये क्योंकि तपस्वियों को विशेष कर राजाओं का प्रतिग्रहं अशुभ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोध से संयुत व निरर्गल (अत्यन्तही) कांपतेहुये उन तपस्वियों ने भूपति की राज्य के नाशके लिये जलको ग्रहण किया ॥ ९ ॥

कि इस पापी व कुत्सित भूपने बिन बनावटवाली व सरल स्वभाववाली हमारी स्त्रियों को लुभाकर आकाश की गतिको नष्ट करदिया कि जिस से वे हम लोग ऐसी विपत्ति में स्थितहुये ॥ १० । ११ ॥ सूतजी बोले कि इस भांति वे मुनि जबतक उस भूपको शाप देवैं तबतक संयुत होती हुई वे स्त्रियां बोलीं ॥ १२ ॥ कि हे द्विजोत्तमो! उस भूपति को शाप न देना चाहिये तबतक निःशङ्क होतेहुये आप लोगों को हमारेवचन सुनना चाहिये ॥ १३ ॥ कि हम सबोंको नरेश की स्त्रीने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके उत्तम वस्त्रों व दिव्य भूषणों से भलीभांति भूषित किया है ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम लोगों के गृह में प्राप्त हुई हम सब दरिद्रके दोषसे दुबली होगई और मनुज से

त्न्योस्माकमकृत्रिमाः ॥ १० ॥ सरलास्तेवयंसर्वेयेनेदृग्व्यसनास्थिताः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ एवन्तेमुनयोयावच्छापं तस्यमहीपतेः ॥ प्रयच्छन्तिचतास्तावद्बूचुर्भार्याःसमन्विताः ॥ १२ ॥ नदेयोभूपतेस्तस्यशापोब्राह्मणसत्तमाः ॥ अस्मदीयंवचस्तावच्छ्रोतव्यमविशङ्कितैः ॥ १३ ॥ वयंसर्वानरेन्द्रस्यभार्ययासमलंकृताः ॥ सुवस्त्रैर्भूषणैर्दिव्यैःश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ १४ ॥ वयंदरिद्रदोषेणसदायुष्मद्गृहङ्गताः ॥ कार्शितानचसम्प्राप्तंसुखंमर्त्येसमुद्भवम् ॥ १५ ॥ एतेषांपरलोकोत्रविद्यतेयेतपोरताः ॥ नचमर्त्यफलंकिञ्चित्यदिस्वल्पतरम्भवेत् ॥ १६ ॥ अन्येषांविषयस्थानामिहलोकःप्रकीर्तितः ॥ भोगसक्तप्रचित्तानांनीचानांसुदुरात्मनाम् ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रमिणांचैवस्वधर्म्मरतचेतसाम् ॥ इहलोकःपरश्चैव जायतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ तावयन्नात्रसन्देहो गृहस्थाश्रममुत्तमम् ॥ संसेव्यसाधयिष्यामो लोकद्वयमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ तस्माद्गृहाणिरम्याणि प्रवदन्तिसमाहिताः ॥ भूपालाद्भूमिमादाय वृत्तिञ्चैवाभिवाञ्छिताम् ॥ २० ॥

उपजेहुये सुख को न प्राप्तहुईं ॥ १५ ॥ इस लोक में जो पुरुष तपस्या में परायण है इनको परलोक विद्यमान है और मनुष्यों का फल जो अत्यन्त थोड़ा भी होवै वह नहीं ॥ १६ ॥ व विषय में टिके तथा भोगों में लगे हुये चित्तवाले नीच व दुष्टात्मा अन्य जनों को यह लोक कहा गया है ॥ १७ ॥ व निज धर्म में लगेहुये चित्तवाले गृहस्थाश्रमी नरों को निश्चयकर यह लोक व परलोक होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ और वे हम सब उत्तम गृहस्थाश्रम को भलीभांति सेवन कर अति उत्तम दोनों लोकों को साधन करूंगी ॥ १९ ॥ इसलिये भूपति से भूमि को लेकर व जीविका चाहनेवाले जनोंको सावधान होते हुये सज्जन लोग उत्तम गृहोंको कहतेहैं ॥ २० ॥

क्योंकि उसी गृहस्थाश्रमही से पुत्र, पौत्रोंसे उपजेहुये व कन्याओं तथा विशेषकर भाइयोंके सुखको तुमलोग देखो ॥ २१ ॥ यदि हमसबों से कहेहुये इस वचनको तुमलोग न करोगे तो निस्सन्देह हमसब प्राणों का परित्याग करेंगी ॥ २२ ॥ तदनन्तर स्त्रीहत्याके पापसे युक्त होतेहुये तुमलोग निश्चयकर कठिन रौरवनरक को जावोगे ॥ २३ ॥ इसप्रकार उन मुनियोंने उन स्त्रियोंके उन वचनों को सुनकर भूपृष्ठ में उस जलको छोड़दिया जोकि शापके लिये हाथोंमें धारण किया गयाथा ॥ २४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस समय उस जलसे जलाहुआ वह पृथ्वीका विभाग आजभी ऊपरताको प्राप्तहै ॥ २५ ॥ उस भूमिमें जो अन्नादिक बोयाजाता

नकरिष्यथचेद्वा ततश्चैवाथवीक्षध्वं पुत्रपौत्रसमुद्भवम् ॥ सौख्यंचापिकुमारीणां बान्धवानांविशेषतः ॥ २१ ॥ नकरिष्यथचेद्वा क्यमेतदस्मदुदीरितम् ॥ सर्वाःप्राणपरित्यागं करिष्यामोनसंशयः ॥२२॥ यूयंस्त्रीवधपापेन युक्ताःसन्तस्ततःपरम् ॥ नरकंरौरवंदुर्गं गमिष्यथसुनिश्चितम् ॥ २३ ॥ एवंतेमुनयःश्रुत्वा तासांवाक्यानितानिच ॥ भूपृष्ठेतत्यजुस्तोयं शापा र्थंयत्करैर्धृतम् ॥ २४ ॥ ततस्तत्तोयनिर्दग्धं तद्विभागंक्षितेस्तदा ॥ ऊषरत्वमनुप्राप्तमद्यापिचद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ भू मावन्नादिकंतत्र यद्दत्तंनप्ररोहति ॥ नजन्मचाप्नुयाद्भूयःपक्षीवाकीटएववा ॥ २६ ॥ तृणंवाथमृगंतत्र किंपुनर्भक्ति मान्नरः ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं फाल्गुन्यांफाल्गुनेनरः ॥२७॥ पौर्णिमास्यांरवेर्वारे सपितॄनुद्धारिष्यति ॥ अपिस्वकर्मणा प्राप्तान्नरकेदारुणाकृतौ ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्यऊषरोत्पत्तिर्नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है वह नहीं जमताहै व फिर पक्षी और कीट निश्चयकर जन्मको नहीं प्राप्त होवै है ॥ २६ ॥ व तृण अथवा मृग वहांपर जन्मको नहीं पातेहैं फिर भक्तिमान् नरको क्या कहनाहै और फाल्गुन महीने में फाल्गुनी पौर्णमासी को रविवार में जो नर वहांपर श्राद्ध करताहै वह निज कर्मसे दारुण आकारवाले नरकमें प्राप्तहुये भी पितरोंको उद्धार करैगा ॥ २७ । २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहत्म्यऊषरोत्पत्तिर्नामनवाधिकशततमो ध्यायः ॥ १०९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। शौनकादिकन ऋषिनसन सूत बुद्धि आगार। कही त्रिजातक द्विज कथा इकसौदशम मँझार॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर गयेहुये कोपवाले उन समस्त ब्राह्मणों ने पुत्र, पौत्र उपजनेवाले व यज्ञकर्मवाले सुन्दर गृहस्थाश्रम में बुद्धिको धारण किया॥ १॥ इसी अवसर में स्त्रियों से उपजेहुये वचनों से गृहस्थाश्रम में प्राप्तहुये ब्राह्मणों की क्रोध में कीहुई व शान्तिमें कीहुई बतकही को सुन व उन द्विजोत्तमोंको भलीभांति प्राप्तहुये सुनकर वह राजा प्रणामके लिये समीप आया॥२।३॥ तदनन्तर उस भूपतिने उन मुनियों को साष्टांग प्रणामकर उसके उपरान्त हाथोंको जोड़करके व नम्रतासे स्थित होकर कहा॥ ४॥ कि तुमलोगों की प्रसन्नता से

सूतउवाच॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे गतकोपादधुर्मतिम्॥यज्ञकर्मसुगार्हस्थ्ये पुत्रपौत्रसमुद्भवे॥ १॥ एतस्मिन्नन्तरेरा जातान्संप्राप्तान्द्विजोत्तमान्॥ श्रुत्वाभक्तिसमायुक्तो प्रणामार्थमुपागतः॥ २॥ श्रुत्वाकोपकृतांवार्त्तामुपशामकृतां तथा॥ गार्हस्थ्यप्रतिपन्नानांवाक्यैर्भार्यासमुद्भवैः॥ ३॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान्साष्टाङ्गंसमहीपतिः॥ ततःकृताञ्ज लिपुटःप्रोवाचविनतस्स्थितः॥ ४॥ युष्मदीयप्रसादेनसम्प्राप्तंजन्मनःफलम्॥ मयारोगविनाशेन तस्माद्ब्रूतकरोमि किम्॥ ५॥ ब्राह्मणाऊचुः॥ भार्ययातवराजेन्द्र वयंसर्वेप्रवासिनः॥ नीताःकृतार्थतांदत्त्वारत्नानिविविधानिच॥ ६॥ तस्मात्पुरवरंकृत्वा क्षेत्रेत्रैवसुशोभने॥ अस्माकंदेहिगार्हस्थ्यं येनसम्यक्प्रजायते॥ ७॥ जयामोविविधैर्यज्ञैस्सदास म्पूर्णदक्षिणैः॥इमंलोकंपरंलोकंसाधयामस्सदास्थिताः॥ ८॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोहृष्टस्तथेत्युक्त्वाततःपरम्॥ अनुकूलेदि नेप्राप्ते शिल्पीनाहूयभूरिशः॥ ९॥ पुरंप्रकल्पयामासबहुप्राकारसङ्कुलम्॥ प्राकारपरिखायुक्तं गोपुरैःसमलङ्कृत

रोगनाश होनेके कारण मैंने जन्मका मूल भलीभांति पाया इसलिये कहिये मैं क्या करूं॥ ५॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे नृपेन्द्र! तुम्हारी स्त्रीने अनेक प्रकार के रत्नों को देखकर हम सब परदेशनिवासियों को कृतार्थता में प्राप्त करदिया॥ ६॥ इस लिये इसी अतिउत्तम क्षेत्रमें उत्तम पुरको निर्माणकर हम लोगोंको दीजिये कि जिससे भलीभांति गृहस्थी होवै॥ ७॥ व सदैव स्थित होतेहुये हमलोग निरन्तर समस्त दक्षिणावाले अनेक भांति के यज्ञों से पूजन करैंगे व इसलोक व परलोक को साधन करैंगे॥ ८॥ उसको सुनकर प्रसन्नहोतेहुये नृपतिने वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर अनुकूल दिन प्राप्त होनेपर बहुतसे कारीगरो को बुलाकर॥ ९॥

बहुतेरे घेरोंसे व्याप्त व छहरदिवाली, खाईं व बाहरी फाटकों से भलीभांति भूषित नगरको बनवाया ॥ १० ॥ व उस नृपोत्तम ने उस पुरके बीच में अरसठि ब्राह्मणों के अरसठिही घरोंको पुष्टतापूर्वक निर्माण किया ॥ ११ ॥ व मस्तीले हाथियों से सेवित व बावलियों समेत व घरके निकटवाले बगीचों सहित जैसे राजाओंके घर होते हैं वैसेही करके इसके अनन्तर रत्नसमूहों व अन्य वस्तुओंसे पूर्णकर उसके उपरान्त उन ब्राह्मणों के लिये अरसठि ग्रामोंको दिया ॥ १२ । १३ ॥ तदनन्तर उन्हीं ब्राह्मणों के अगाड़ी समस्त पुत्रों व पौत्रों को भलीभांति बुलाकर ॐकार शब्दसे कहा कि मुझसे कहतेहुये वचनको सुनिये ॥ १४ ॥ कि मैंने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके

म् ॥ १० ॥ अष्टषष्टिःसविप्राणां तत्रमध्येनृपोत्तमः ॥ अष्टषष्टिर्गृहाण्येवचकारसुदृढंहिच ॥ ११ ॥ मत्तवारणजुष्टानि दीर्घिकासहितानिच ॥ गृहोद्यानैस्समेतानियथाराजगृहाणिच ॥ १२ ॥ तथाकृत्वाथरत्नौघैर्पूरयित्वातथापरैः ॥ ददौतेभ्योष्टषष्टिञ्च ग्रामाणांतदनन्तरम् ॥ १३ ॥ ततःसर्वान्समाहूय पुत्रपौत्रांस्तदग्रतः ॥ प्रोवाचतारनादेन श्रूयतां जल्पतोमम ॥ १४ ॥ एतत्पुरंमयादत्तमेभिर्ग्रामैस्समन्वितम् ॥ एतेभ्योब्राह्मणेन्द्रेभ्यो श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ १५ ॥ तस्माद्दृष्ट्वाप्रकर्तव्यं यथानस्यात्क्षतिःक्वचित् ॥ नकष्टंब्राह्मणेन्द्राणां तथाचैवपराभवम् ॥ १६ ॥ अस्मद्वंशसमुद्भूतो यस्त्वेतांस्तोषयिष्यति ॥ अन्योवाभूपतिर्वृद्धिमग्र्यांनूनंसयास्यति ॥ १७ ॥ यश्चापराधसंयुक्तानेतान्सर्वान्नयिष्यति ॥ योजयिष्यतिवाक्लेशैर्विविधैर्वापराभवैः ॥ १८ ॥ सशत्रुभिःपराभूतो वेष्टितोविविधैर्गदैः ॥ इहलोकेवियोगादीनप्राप्यक्लेशान्सुदारुणान् ॥ १९ ॥ रौरवादिषुनरकेषु रौद्रेषुप्रयास्यति ॥ एवमुक्त्वाथतान्सर्वांस्तेषांकृत्यंमहीपतिः ॥

इन द्विजेन्द्रो के लिये इन ग्रामों समेत इस पुर को दिया है ॥ १५ ॥ इसलिये देखकर वैसा करना चाहिये कि जिसप्रकार द्विजेन्द्रों को क्लेश व तिरस्कार और कहीं पर हानि न होवै ॥ १६ ॥ व हमारे वंशमें उपजाहुआ जो पुरुष व अन्य भूपति इन ब्राह्मणों का सन्तोष करैगा वह उत्तम वृद्धिको प्राप्त होगा ॥ १७ ॥ व अपराधसंयुत इन समस्त पुरुषोंको लेजावैगा अथवा क्लेशों व अनेक भांतिके अनादरों से युक्त करैगा ॥ १८ ॥ वह शत्रुओंसे पराजित होकर अनेक भांतिके रोगोंसे घिरैगा व इस लोकमें विरह आदिक अतिभयानक कष्टों को पाकर ॥ १९ ॥ रौरवादिक कराल नरकों में जावैगा उन सबों से ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस भूपतिने दिन रात्रि

निरालसी होकर आपही उन ब्राह्मणोंके कार्यको सदैव किया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! स्नेहप्रियवाली द्विजेन्द्रों की उन समस्त स्त्रियोंने दमयन्तीके मन्दिरको भलीभांति जाकर कुंकुम, अगुरु, कपूर, पुष्प व अनेक विधिके गन्धोंसे उसका भलीभांति पूजन किया व उस राजाने भी दिन, दिनमें पूजन किया ॥ २१ । २२ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस भूपके सन्तोप उपजाती व उसके अगाड़ी टिकी हुई वे तपस्विनियां आपस में बोलीं ॥ २३ ॥ कि जबकभी हमसबों के घरमें बड़ी बढ़ती होगी ॥ २४ ॥ तब आगे व पीछे दमयन्ती का पूजन सदैव सबकार्य्यों में निस्सन्देह करैंगी ॥ २५ ॥ और जो कन्या इस दमयन्ती को देखने के लिये जावैगी

स्वयमेवाकरोन्नित्यं दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ २० ॥ अथताब्राह्मणेन्द्राणां भार्य्यास्सर्वाद्विजोत्तमाः ॥ दमयन्त्यास्समासाद्य प्रासादंस्नेहवत्सलाः ॥ २१ ॥ कुङ्कुमागुरुकर्पूरैः पुष्पैर्गन्धैःपृथग्विधैः ॥ तांसमभ्यर्चयामास सचराजादिनेदिने ॥ २२ ॥ अथताःप्रोचुरन्योन्यं तापस्यस्तत्पुरःस्थिताः ॥ तस्यभूपस्यसन्तोषं जनयन्त्योद्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥ यदास्माकंगृहेवृद्धिः कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २४ ॥ तदग्रतश्चपश्चाच्च दमयन्त्याःप्रपूजनम् ॥ करिष्यामिनसन्देहः सर्वकृत्येषु सर्वदा ॥ २५ ॥ एनांद्रष्टुंकुमारीया दमयन्तींगमिष्यति ॥साभविष्यत्यसन्देहःपत्युःप्राणसमासदा ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कन्यापक्षउपस्थिते ॥ दमयन्तीप्रद्रष्टव्यापूजनीयाप्रयत्नतः ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रपुरेतेन भूभुजासुमहात्मना ॥ अष्टषष्टिञ्चसंस्थाप्य गोत्राणांनिवृतिःकृता ॥ २८ ॥ तेषामपिचचत्वारि गोत्राण्युरगजाद्भयात् ॥ गतानितत्रयत्रस्युस्तानिपूर्वोद्भवानिच ॥ २९ ॥ चतुःषष्टिःस्थितातत्र पुरेशेषाद्विजन्मनाम् ॥ ३० ॥ ऋषयऊचुः ॥

वह सदैव निस्सन्देह प्राणोंके सम प्रिय होगी ॥ २६ ॥ इसलिये कन्यापक्ष (विवाहादिक) समीप प्राप्त होनेपर सब उपायसे दमयन्तीको देखना चाहिये व बड़े यत्नसे पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि उस महात्मा भूपतिने इसभांति उस पुरमें अरसठि गोत्रों को भलीभांति थापकर निवारण किया ॥२८॥ उनके मध्य में भी चारगोत्र सर्पोंसे उपजीहुई भयसे वहां चलेगये जहां कि वे पहले उपजनेवाले थे ॥ २९ ॥ और शेष चौसठि ब्राह्मण उसी पुरमें टिके ॥ ३० ॥ ऋषिलोग बोले कि

हे विभो ! उनको कैसा सर्पोंका डरथा कि जिससे वे अपने स्थानको छोड़कर चलेगये इसको हमलोगोंसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय आनर्त देशका स्वामी प्रभंजननामसे हुआहै जोकि धर्मज्ञ,प्रतापवान् व शत्रुपक्षको क्षयकारक था ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! जब पिछली अवस्था प्राप्तहुई तब ग्रहोंको अशुभस्थानों में स्थित होनेपर उस प्रभंजन के पुत्र पैदाहुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उस भूपने शास्त्रों के जाननेवाले ज्योतिषियों को भलीभांति बुलाकर उनसे उस पुत्रके उपजनेवाले समस्त समय को कहा ॥ ३४ ॥ दैवज्ञ पण्डित बोले कि हे भूपाल ! तीन गंडान्तों से उपजेहुये अरिष्टदायक व विकराल तथा अतिनिन्दित

कीदृग्नागभयन्तेषांयेनतेविगताविभो ॥ परित्यज्यनिजंस्थानमेतन्नोविस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीन्नाम्नाप्रभञ्जनः ॥ धर्मज्ञश्चप्रतापीच परपक्षक्षयावहः ॥ ३२ ॥ ततस्तस्यसुतोजज्ञे प्राप्तेवयसिपश्चिमे ॥ अनिष्टस्थानसंस्थेषु ग्रहेषुद्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥ ततस्तेनसमाहूय दैवज्ञाञ्छास्त्रपण्डितान् ॥ तेषांनिवेदितंसर्वं कालंतस्यसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥ दैवज्ञाऊचुः ॥ एषतेपृथिवीपाल जातःपुत्रःसुगर्हिते ॥ कालेनिष्टप्रदेरौद्रे गण्डान्तत्रितयोद्भवे ॥ ३५ ॥ कथंचिदपियद्येष जीवयिष्यातिपार्थिव ॥ पितृमातृपुरार्थंच देशानुत्सादयिष्यति ॥ ३६ ॥ राजोवाच ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषोपिवा ॥ येनसञ्जायतेक्षेमं पुत्रस्यविषयस्यच ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यथासमुच्छ्रितंयन्त्रं यन्त्रेणप्रतिहन्यते ॥ यथाबाणप्रहाराणां कवचंवारणंभवेत् ॥ ३८ ॥ तथाग्रहविकाराणां शान्तिर्भवतिवारणम् ॥ तस्मान्नित्यमनुद्विग्नः शान्तिचकुरुभूपते ॥ ३९ ॥ येनसर्वेग्रहाःसौम्या जायन्तेचशुभास्तथा ॥ अनिष्ट

समयमें यह तुम्हारा पुत्र पैदाहुआ है ॥ ३५ ॥ हे पार्थिव ! किसी प्रकारभी यदि यह जीवैगा तो पिता,माता, नगर धन व देशोंको नाश करैगा ॥ ३६ ॥ राजा बोला कि इस विषय में कोई देवसम्बन्धी या मनुष्यवाला भी उपायहै कि जिससे पुत्र व देशका कुशल भलीभांति होवै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण बोले कि जैसे उठीहुई कल औज़ार से ताड़ित होतीहै व जैसे बाणों के प्रहारों की बख़्तररोक होती है ॥ ३८ ॥ वैसेही ग्रहके विकारों की शान्ति वारण होतीहै इसलिये हे भूपते ! सावधानहोतेहुये तुम

नित्यही शान्तिकरो ॥ ३९ ॥ कि जिससे विषय व अरिष्ट स्थानोंमें संस्थित ग्रहोंके मध्यमें समस्त ग्रह सौम्य व शुभ होवैं ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस प्रभंजन नृपने शीघ्रही चमत्कारपुरको जाकर वहां ब्राह्मणोंको भलीभांति बिठाकर सबोंसे आदरसमेत कहा ॥ ४१ ॥ कि हमलोग तुमसबोंकी प्रसन्नतासे निरन्तर राज्य करते हैं इस वंश में जो नृपोत्तम गत होचुकेहैं व जो होवैंगे ॥ ४२ ॥ इस विषय में उनकी आपलोग गति हैं जैसे कि अन्नोंकी गति मेघ होतेहैं जोकि ग्रहोंको दुष्टस्थानो में स्थित होतेहुये मेरेपुत्र उत्पन्न होताहै इस विषय में पंडितों ने उस पुत्रके अरिष्टका शान्तिदायक शान्तिक कर्मको कहा है इसलिये हे द्विजेन्द्रो ! जैसी कहीहो वैसीही शान्ति

स्थानसंस्थेषुग्रहेषुविषमेषुच ॥ ४० ॥ ततःससत्वरंगत्वाचमत्कारपुरंनृपः ॥ तत्रविप्रान्समावेश्य सर्वान्प्रोवाचसादरम् ॥ ४१ ॥ वयंयुष्मत्प्रसादेन राज्यंकुर्मःसदैवहि ॥ येतीतायेभविष्यन्ति वंशेस्मिंस्तुनृपोत्तमाः ॥४२॥ भवन्तोऽत्रगतिस्तेषां सस्यानांनीरदोयथा ॥ यदत्रमत्सुतोजातो दुष्टस्थानस्थितैर्ग्रहैः ॥ ४३ ॥ दैवज्ञैर्शान्तिकंप्रोक्तं तस्यानिष्टस्य शान्तिदम् ॥ तस्मात्कुरुतविप्रेन्द्रा यथोक्तंशान्तिकंमम ॥ ४४ ॥ येनपुत्रश्चराष्ट्रश्च विभवश्चविवर्द्धते ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुः संमन्त्र्याथपरस्परम् ॥ ४५ ॥ त्वेमायतवभूनाथकरिष्यामोत्रशान्तिकम् ॥ सदैवनियताःसन्तः शान्ताःषोडशतेद्विजाः ॥ ४६ ॥ उपहाराःसदाप्रेष्यास्त्वयाभक्त्यामहीपते ॥ मासान्तेचाभिषेकश्च ग्राह्योरुद्रघटोद्भवः ॥ ४७ ॥ एवंप्रकुर्वतस्तुभ्यं पुत्रोवृद्धिम्प्रयास्यति ॥ तथाराष्ट्रश्चकोशञ्च यच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ ४८ ॥ ततःप्रणम्यतान्हृष्टो गत्वानिजनिवेशनम् ॥ उत्सवंपुत्रजन्मोत्थं चक्रेतैःप्रेरितस्तदा ॥ ४९ ॥ सम्भारान्प्रेषयामासचमत्कारपुरेततः ॥

करो ॥ ४३ । ४४ ॥ कि जिससे पुत्र, राज्य व ऐश्वर्य्य विशेषकर बढ़ै तदनन्तर उन ब्राह्मणोंने आपस में सलाह करके इसके अनन्तर कहा ॥ ४५ ॥ कि हे पृथ्वीनाथ ! नियममें प्राप्त व शान्त होतेहुये वे हमलोग सोलह ब्राह्मण यहांपर तुम्हारे कल्याणके लिये सदैव शान्तिक कर्मको करैंगे ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! तुमको भक्तिसे उपहार (बलि आदिक) को सदैव पठाना चाहिये और महीनेके अन्त में रुद्रघटसे उपजेहुये अभिषेक को ग्रहण करना चाहिये ॥ ४७ ॥ तुम्हारे लिये ऐसा करतेहुये पुत्र, राज्य व खज़ाना व और भी जो कुछहै वह वृद्धिको प्राप्तहोगा ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उनको प्रणामकर उनसे प्रेरित प्रसन्न होतेहुये उस भूपने अपने घर जाकर उससमय पुत्र

जन्म से उठेहुये उद्धाह को किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर चमत्कारपुर में सामग्रियों को पठाया व महीने के अन्तमें विधिपूर्वक अभिषेक को ग्रहण किया ॥ ५० ॥ और
शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य्य में तत्पर उन द्विजोत्तमोंने भी महीने महीने प्रति सदैव क्रमसे पुरश्चरण से उपजेहुये शान्तिक कर्मको किया तदनन्तर
महीने के अन्तमें अन्य ब्राह्मणोंने उस शान्तिक कर्मको किया ॥ ५१।५२ ॥ इसके अनन्तर वह राजाभी महीने के अन्तमें भलीभांति आकर व उत्तम भक्तिसे अभिषेक
को ग्रहणकरके द्विजोत्तमों को पूजकर ॥ ५३ ॥ व वस्त्रों और मुकुटों तथा केवल गौ व भूमिदान में ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर वह भूपति अपने स्थानको जा-

मासान्तेचाभिषेकश्च ग्राह्योवैविधिपूर्वकम् ॥५०॥ तेपिब्राह्मणशार्दूलाः पुरश्चरणसम्भवम् ॥ क्रमेणशान्तिकंचक्रुर्ब्रह्म
चर्य्यपरायणाः ॥ ५१ ॥ मासंमासंप्रतिसदाशान्तादान्ताजितेन्द्रियाः॥ततोमासावसानेन्येचक्रुस्तच्छान्तिकंद्विजाः॥
५२ ॥ सोपिराजाथमासान्ते समागत्यसुभक्तितः ॥ अभिषेकंसमादाय पूजयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ ५३ ॥ वासोभिर्मुकुटै
श्चैव गोभूदानेनकेवलम् ॥ सन्तर्प्यचतथाविप्रान् स्वस्थानंयातिभूपतिः ॥ ५४ ॥ एवंप्रवर्तमानेच शान्तिकेतत्रभूप
तेः ॥ जगामसुमहान्कालः क्षेमारोग्यधनार्थिनः ॥ ५५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मासादावथभूपतेः ॥ प्रारब्धेशान्ति
केतस्मिन् महाव्याधिरजायत ॥ ५६ ॥ तत्पुत्रस्यविशेषेणतथैवान्तःपुरस्यच ॥ राष्ट्रस्यचसमग्रस्य वाहनानांतथा
त्वयः ॥ ५७ ॥ सततःप्रेषयामास शान्त्यर्थंचविशेषतः॥ यथायथाद्विजास्सर्वे होमंकुर्वन्तिपावके ॥ ५८ ॥ तथासर्वे
विशेषेण रोगावर्द्धन्तिसर्वतः ॥ म्रियन्तेवाजिनस्सर्वेबृंहन्तोवारणास्तदा ॥५९॥ शत्रवःसर्वकाष्ठासु विग्रहार्थमुपागताः॥

ताथा ॥५४॥ वहांपर कुशल निरोग व द्रव्यके चाहनेवाले भूपतिके शान्तिक कर्मको इसभांति वर्तमान होतेहुये बहुतही समय व्यतीतहुआ ॥५५॥ इसकेअनन्तर किसी
समय महीने के आदिमें उस शान्तिक कर्म के प्रारंभ होनेपर भूपतिके व विशेषकर उसके पुत्र व स्त्रियों के व समस्त राज्य के बड़ी व्याधि उत्पन्नहुई व सवारियों का
विनाश हुआ ॥ ५६ । ५७ ॥ तदनन्तर उस भूपतिने शान्ति के लिये विशेषता से सामग्री को पठाया समस्त ब्राह्मण अग्नि में ज्यों २ होम करतेथे ॥ ५८ ॥ त्यों २
विशेषकर सबओर रोग बढ़तेथे उससमय सब घोड़े मरनेलगे व हाथी गर्जने लगे ॥ ५९ ॥ सब दिशाओं में शत्रुजन विग्रह के लिये समीप आगये तदनन्तर रोगसे

ततःसव्याकुलीभूतो रोगग्रस्तोमहीपतिः ॥६०॥ चमत्कारपुरंप्राप्य सर्वान्विप्रानुवाचह ॥युष्माभिःस्वामिभिस्संस्थैरा पदोभिभवन्तिमाम् ॥ ६१ ॥ तत्किमेतन्महाभागाःक्षीयन्तेममसम्पदः ॥ रोगाश्चैवविवर्द्धन्ते शत्रुसङ्घैस्समन्विताः॥ ६२ ॥ तस्माद्विशेषतोहोमः कार्य्योरोगप्रशान्तये॥ दानानिबहुमौल्यानिदास्यामिचद्विजन्मनाम् ॥ ६३ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे प्रत्यक्षंतस्यभूपतेः ॥ चक्रुस्समाहिताभूत्वाशान्तिकंचद्वितीयकम् ॥ ६४ ॥ यथायथाप्रयुञ्जीरन् होमन्तेसुसमाहिताः॥तथातथास्यभूपस्य रोगावृद्धिंव्रजन्तिहि॥६५॥एतस्मिन्नन्तरेक्रुद्धास्तेसर्वेद्विजसत्तमाः॥ ग्रहानुद्दिश्यसूर्य्यादीञ्छापायकृतनिश्चयाः ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ पूजिताअपिसद्भक्त्या विधानेनयथाग्रहाः ॥ पीडयन्तिपुरंराज्ञः सपुत्रपशुबान्धवम् ॥ ६७॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वा शुचिभूताःसमाहिताः॥ यावद्दास्यन्तिसंशापंग्रहेभ्यःक्रोधमूर्च्छिताः॥ ६८॥तावदग्निरुवाचेदम्मूर्तिभूत्वाद्विजोत्तमान्॥ माप्रयच्छथविद्वासः शापंकोपात्कथञ्चन ॥ ६९ ॥ ग्रहेभ्योदोषमुक्ते

ऐसे व व्याकुलहुये उस भूपने चमत्कारपुर में प्राप्तहोकर समस्त ब्राह्मणोंसे कहा कि तुमलोग स्वामियोंके स्थित होनेपर मुझको विपत्तियां विकल कररहीहैं ॥६०।६१॥ हे महाभागो ! तो यह क्याहै कि मेरी सम्पदा क्षीण होती हैं व शत्रु समूहों समेत रोगही बढ़तेहैं ॥ ६२ ॥ इसलिये रोगों की शान्ति के लिये विशेषतासे होमकरना चाहिये मैं ब्राह्मणों के लिये बहुत मोलवाले दानोंको दूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर सावधान होकर उन समस्त ब्राह्मणोंने उस भूपके सामने दूसरे शान्तिक कर्मको किया ॥ ६४ ॥ सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण ज्यों २ होमका प्रयोग करतेथे त्यों २ इस भूपके रोग वृद्धिको प्राप्त होतेथे ॥ ६५ ॥ इसी अवसर में क्रोधित होतेहुये वे समस्त द्विजोत्तम सूर्य्यादिक ग्रहों को उद्देशकर शापके लिये निश्चय करते भये ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण बोले कि उत्तम भक्तिसे विधि पूर्वक पूजेहुयेभी ग्रह पुत्र,पशु,भाइयों समेत राजाके पुरको पीडितकररहे हैं ॥ ६७ ॥ इसप्रकार निश्चयकरके पवित्र व क्रोधसे मूर्च्छित व सावधान होतेहुये वे ब्राह्मण जबतक ग्रहोंके लिये शापदेवैं ॥ ६८ ॥ तबतक मूर्त्तिमान होकर अग्नि देवजी यह बोले कि हे विद्वान् लोगो ! दोषसे छुटेहुये ग्रहोंके लिये क्रोधसे किसी प्रकार शापको मतदीजिये किन्तु मेरे वचनको

सुनिये कि महीने २ में वे सोलह ब्राह्मण होम को करते हैं ॥ ६९ । ७० ॥ उनके मध्य में एक नीच ब्राह्मण त्रिजात (तीन से पैदाहुआ) है उसने होमसे उपजी हुई समस्त वस्तुको अति दूषितकर दियाहै ॥ ७१ ॥ इसी कारण वे सूर्य्यादिक ग्रह मुझसे दियेहुये हव्यादिको ग्रहण नहीं करतेहैं उसीसे भूपको इस अधिक पीडाको करते हैं ॥ ७२ ॥ इसलिये इस ब्राह्मण को परित्यागकर शीघ्रही हवन करिये जिससे सूर्य्य पूर्व वाले समस्तग्रह परम प्रीति को प्राप्तहोवैं ॥ ७३ ॥ व उत्तम शान्तिके प्रभावसे राजा पुत्रसे संयुत व नष्ट शत्रुओं वाला व निरोगहोवै और निरन्तर सुखको प्राप्तहोवै ॥ ७४ ॥ ऐसा कहकर वे प्रिय दर्शन वाले भगवान् अग्नि देवजी चुप

भ्योश्रूयतांवचनंमम ॥ मासिमासिप्रकुर्वन्ति होमन्तेषोडशद्विजाः ॥ ७० ॥ तेषांमध्येस्थितश्चैकस्त्रिजातोब्राह्मणाधमः ॥ तेनसंदूषितंद्रव्यं समग्रंहोमसम्भवम् ॥ ७१ ॥ मयादत्तंनगृह्णन्ति तेग्रहाभास्करादयः ॥ तेनकुर्वन्तिभूपस्य पीडामप्यधिकामिमाम् ॥ ७२ ॥ तस्मादेतंपरित्यज्यहोमंकुरुतमाचिरम् ॥ येनप्रीतिंपरांयान्तिग्रहास्सर्वेऽर्कपूर्वकाः ॥ ७३ ॥ आरोग्यश्चभवेद्राजा गतशत्रुःसुतान्वितः ॥ सततंसुखमभ्येति सुशान्तिकप्रभावतः ॥ ७४ ॥ एवमुक्त्वासभगवाननलश्चारुदर्शनः ॥ तेपिविप्राविषण्णास्यालज्जयापरयावृताः ॥ ७५ ॥ ततस्तम्पावकम्भूयःस्तुवन्तोतत्रसंस्थिताः ॥ प्रोचुर्वैश्वानरंब्रूहि त्रिजातोस्त्यत्रयोद्विजः ॥ ७६ ॥ येनतंसंपरित्यज्य शान्तिकुर्मःप्रशान्तये ॥ निःशेषाणांहि दोषाणां भूपस्यास्यमहात्मनः ॥ ७७ ॥ वह्निरुवाच ॥ नाहंदोषंद्विजेन्द्राणां जानन्नपिकथंचन ॥ ब्रवीमिब्राह्मणास्सर्वे वेदाममधरातले ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदितंब्राह्मणंवह्नेनास्माकंकीर्तयिष्यसि ॥ तत्तेशापंप्रदास्यामस्तस्माच्छी

होरहे और दीन मुखवाले वे द्विज भी बडी लज्जासे संयुतहुये ॥ ७५ ॥ तदनन्तर वहांपर टिकेहुये उन ब्राह्मणोंने फिर उन अग्नि देवजी की स्तुति करतेहुये अग्नि से कहा कि यहां जो त्रिजात ब्राह्मण है उसको कहो ॥ ७६ ॥ कि जिससे उस ब्राह्मण को छोडकर इस महात्मा भूपति के समस्त दोषोंकी शान्तिके लिये हमलोग शान्ति कर्म को करैं ॥ ७७ ॥ अग्नि देवजी बोले द्विजेन्द्रों के दोषको जानताहुआ भी मैं न कहूंगा क्योंकि भूतल में समस्त ब्राह्मण मेरे वेदहैं ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण बोले

कि हे अग्नि देव ! यदिउस ब्राह्मण को हमलोगों से न कहोगे तो तुमको शाप देवैंगे इसलिये हमलोगों से शीघ्रही कहिये ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले कि उन ब्राह्मणों के उस वचनको सुनकर भय संयुत होतेहुये अग्नि देवने देरतक चिन्तवन किया कि क्या करतेहुये मुझको शुभदायक होगा ॥ ८० ॥ यदि तबतक ब्राह्मण को दोषित करूं तो उससे उपजीहुई शापभी निस्सन्देह होगी ॥ ८१ ॥ अथवा वर्तमान द्विजोत्तमको न कहूं तो सर्पके समान क्रोधित ये ब्राह्मण लोग निस्सन्देह शापदेवैंगे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार चिन्तवन करतेहुये उन अग्नि देवजी के शरीर में बड़ा पसीना उत्पन्न हुआ कि जिससे वह कुण्ड पूर्णहोगया जोकि होमके लिये रचा गया

घ्रंवदस्वनः ॥ ७९ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा वह्निर्भयसमन्वितः ॥ चिरंविचिन्तयामास कुर्वतःकिंशुभावहम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणंदूषयिष्यामि यदितावच्चपातकम् ॥ भविष्यतिनसन्देहो शापश्चापितदुद्भवः ॥ ८१ ॥ कीर्त्तयिष्यामि वानैव विद्यमानंद्विजोत्तमम् ॥ शपिष्यन्तिनसन्देहःक्रुद्धाआशीविषोपमाः ॥ ८२ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य गात्रेस्वेदो भवन्महान् ॥ येनतत्पूरितंकुण्डं होमार्थंयत्प्रकल्पितम् ॥ ८३ ॥ ततःप्रोवाचतान्विप्रान् कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ वेपमानोभयत्रस्तः कुण्डान्निष्क्रम्यपावकः ॥ ८४ ॥ नाहंस्वजिह्वयादोषं ब्राह्मणस्यसमुद्भवम् ॥ कथंचित्कीर्तयिष्यामि तस्माच्छृण्वन्तुमेद्विजाः ॥ ८५ ॥ अत्रस्वेदजलेविप्रायेस्थिताःषोडशद्विजाः ॥ तेस्नानमद्यकुर्वन्तु प्रशुद्ध्यार्थायचात्मनः ॥ ८६ ॥ एतेषांमध्यगोयश्च त्रिजातःसभविष्यति ॥ तस्यविस्फोटकैर्युक्तंतस्याङ्गंचभविष्यति ॥ ८७ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे क्रमात्तत्रनिमज्जनम् ॥ चक्रुःशुद्धिंगताश्चापि मुक्त्वैकंब्राह्मणंतदा ॥ ८८ ॥ हाहाकारस्ततोजज्ञे

था॥८३॥ तदनन्तर कुण्डसे निकलकर भयभीत व कांपते तथा हाथोंको जोड़े खडेहुये अग्निदेवने उन ब्राह्मणोंसे कहा ॥८४॥ कि हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मणके उपजेहुये दोषको मैं किसीप्रकार अपनी जिह्वासे न कहूंगा इसलिये मेरे वचनको सुनिये ॥ ८५ ॥ कि यहांपर जो सोलह ब्राह्मण स्थितहैं वे अपनी शुद्धिके लिये आजइस पसीनेके जलमें स्नानकरैं ॥ ८६ ॥ इनके बीचमें प्राप्तजो वह त्रिजात होगा उस नहायेहुये ब्राह्मणका शरीर फोड़ोंसे सयुक्त होवैगा ॥ ८७ ॥ तदनन्तर उससमय उन समस्त ब्राह्मणों ने क्रमसे उस पसीने के जलमें स्नान किया व एक ब्राह्मणको छोड़कर शुद्धता कोभी प्राप्तहोगये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर अचानक उस ब्राह्मणोत्तम को फोड़ोंसे संयुत देखकर

वहांपर मनुष्यों से उपजाहुआ बड़ाभारी हाहाकारहुआ ॥ ८९ ॥ उस के उपरान्त लज्जा संयुत वह ब्राह्मण भी मुखको नीचे करके इसके अनन्तर ब्राह्मणों से उपजे हुये सभामध्य वाले स्थान से निकलगया ॥ ९० ॥ अग्निदेव जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने तुमलोगों के इस अपूर्व कार्य्यको साधन किया इसलिये आपलोगों से परम आनंदित मैं अपने स्थानको जाऊंगा ॥ ९१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! स्वप्न मेंभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होताहै इसलिये चित्तमें भलीभांति टिकेहुये किसी अभिलाष की प्रार्थना करिये ॥९२॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे अग्निदेवजी ! तुम्हारे पसीनेसे उपजाहुआ जो जलहै यह ब्राह्मणों की विशुद्धताके लिये यहींपर अचल होवै ॥९३॥

महांस्तत्रजनोद्भवः ॥ दृष्ट्वाविस्फोटकैर्युक्तमकस्मात्तंद्विजोत्तमम् ॥ ८९ ॥ सोऽपिलज्जान्वितोविप्रः कृत्वाधोवद नंततः ॥ निर्गतोथसभामध्यात्स्थानाद्विप्रसमुद्भवात् ॥ ९० ॥ वह्निरुवाच ॥ एतद्वःसाधितंकृत्यं मयाऽपूर्वंद्विजोत्त माः ॥ तस्माद्यास्येनिजंस्थानं भवद्भिःपरमोत्सितः ॥ ९१ ॥ नवृथादर्शनंचैव मेऽपिस्वप्नेद्विजोत्तमाः ॥ तस्मात्संप्रा र्थ्यतांकिञ्चिदभीष्टंहृदिसंस्थितम् ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एतत्तवजलंवह्ने स्वेदजंतुयदेवहि ॥ स्थिरंभवतुचात्रैव विशु द्ध्यर्थंद्विजन्मनाम् ॥९३॥ अन्यजातोनरोयोत्र प्रकरोतिनिमज्जनम् ॥ तस्यचिह्नंत्वयाकार्य्यं विस्फोटकसमुद्भवम् ॥ ९४ ॥ बाढमित्येवसम्प्रोक्त्वा गतश्चविपिनेहिसः ॥ पावकस्तेद्विजास्सर्वे मन्त्रञ्चक्रुःपरस्परम् ॥ ९५ ॥ अद्यप्रभृतिस र्वेषां ब्राह्मणानांसमुद्भवे ॥ शुद्धिरत्रप्रकर्तव्या पितृमातृसमुद्भवा ॥ ९६ ॥ चमत्कारपुराच्छीघ्रं कश्चिद्विप्रःप्रकीर्तितः ॥ सोत्रस्नातोविशुद्धश्चविज्ञेयःकुलपुत्रकः ॥ ९७॥ तस्मैकन्याप्रदातव्याश्रद्धोद्वाहोभविष्यति ॥ धर्मकृत्येषुसर्वेषुयोजनी

व अन्यसे उपजाहुआ जो पुरुष इस जलमें स्नानकरै उसके विस्फोटकसे उपजेहुये चिह्नको तुम्हैंकरना चाहिये ॥ ९४ ॥ वे अग्निदेव जी हां यही कहकर वन में चलेगये और उन सब ब्राह्मणोंने आपस में सलाह किया ॥ ९५ ॥ कि आजसे लगाकर समस्त ब्राह्मणों की उत्पत्ति में पितामाता से उपजीहुई शुद्धता यहांकरना चाहिये ॥ ९६ ॥ कोई प्रकीर्तित (प्रसिद्ध) ब्राह्मण चमत्कारपुरसे शीघ्रही यहांआवै और स्नानकरके विशेषकर शुद्ध होताहुआ वह कुल पुत्रक जानने के योग्यहै ॥ ९७ ॥

व उसी के लिये कन्याको अवश्य देना चाहिये वह श्रद्धोद्वाह होगा और समस्तधर्म कर्मोंमें वही योजित करने योग्यहै ॥ ९८ ॥ व मिलेहुये अरसठि गोत्रोंके मध्य में क्रम पूर्वक उसके सामने जो विशेषकर शुद्ध होवै वह शुद्धहुआ पुरुष पंक्तिपावक होगा ॥ ९९ ॥ और जो अन्य अपवाद इत्यादिक हैं वे सब नाश होजावैंगे ॥ १०० ॥ जो कोई अन्य ब्रह्महत्यादिक पापभी स्थितहै व मनुष्यों से कहेहुये धर्मके सन्देहकारक और भी जो पुरुष हैं ॥ १ ॥ वे सब यहां शुद्धहोकर कुलपौत्रक जानने योग्यहैं जबतक सब ब्राह्मणों के सामने स्नान न कीजावै तबतक वह प्रगटमें उत्तम द्विजनहीं होवैहै ॥ २ । ३ ॥ सूतजी बोले कि चमत्कारपुर से उपजे

यःसएवहि ॥ ९८ ॥ अष्टषष्टिषुगोत्रेषुमिलितेषुयथाक्रमम् ॥ तत्प्रत्यक्षंविशुद्धोयःसशुद्धःपंक्तिपावकः ॥ ९९ ॥ अपवादाश्चयेचान्येनाशंयास्यन्तिचाखिलाः ॥ १०० ॥ येकेपिपापाश्चान्येचब्रह्महत्यादिकाःस्थिताः ॥ अन्येपिचजनैःप्रोक्ताधर्मसन्देहकारकाः ॥ १ ॥ तेसर्वेऽत्रविशुद्धाःस्युर्विज्ञेयाःकुलपौत्रकाः ॥ यावन्नात्रकृतंस्नानंप्रत्यक्षंचद्विजन्मनाम् ॥ २ ॥ सर्वेषांतावदेवात्रनसद्विप्रोभवेत्स्फुटम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतेसमयंकृत्वाचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ ब्राह्मणाःशान्तिकंचक्रुःहितार्थन्तस्यभूपतेः ॥ ४ ॥ तस्मिन्कुण्डेततःस्नानंकृतंसर्वैर्महात्मभिः ॥ तैर्विशुद्धमनोभिश्चशेषहोमस्यसम्भवे ॥ ५ ॥ मयादत्तंनगृह्णन्तिभास्कराद्याश्चतेग्रहाः ॥ तेनकुर्वन्तिभूपस्यपीडामप्यधिकामिमाम् ॥ ६ ॥ तस्मादेनांपरित्यज्यपूजाचान्याभविष्यति ॥ एषायुगत्रयेशुद्धिरासीत्तत्रद्विजन्मनाम् ॥७॥ हितार्थञ्चैवसर्वेषामन्येषामपिपाप्मनाम् ॥ अथोयत्कलियुगंघोरंपरदारासुरञ्जितम् ॥८॥ तत्रशुद्धिंपरित्यज्यविप्राःप्रावञ्चिकास्तथा ॥ पुरतोदेवदेवस्यब्राह्मणाद्विजसत्तमाः ॥९॥

हुये उन ब्राह्मणोंने ऐसी प्रतिज्ञा करके उस भूपके हितके लिये शान्तिक कर्मको किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर शेष होमके संभव में विशुद्ध मनवाले उन समस्त महात्माओं ने उस कुण्ड में स्नान किया ॥ ५ ॥ व यह चिन्तवन किया कि मुझसे दीहुई हव्यादि को वे सूर्यादिकग्रह नहीं ग्रहण करतेहै उसीसे भूपके इस अधिक पीडाको करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये इसको छोडकर और पूजाहोगी वहांपर ब्राह्मणोंके हितके लिये यह शुद्धि तीनों युगमें हुई है ॥ ७ ॥ व अन्यभी समस्त पापियोंके हितके लिये यह शुद्धि हुईहै हे द्विजोत्तमो, ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर पराई स्त्रियों में-अनुरागवाला जो कलियुगहै उसमे शुद्धिको छोड़कर क्योंकि देवदेव विष्णु जीके

अगाड़ी भी ब्राह्मण प्रवञ्चक (छली) होते हैं ॥ १०८।१०९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पिता मातासे उपजेहुये वंशकी शुद्धिके लिये निरालसी पुरुष आजभी उस कुण्डमें स्नान
करते हैं ॥ ११० ॥ और जो पुरुष त्रिजात होताहै वह उस कुण्ड में निस्सन्देह अग्नि से जलाया जाता है ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरत्रिजातक माहात्म्यंतथाग्निमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । नागर नामक द्विजनकी कथा अतिहि सुखदाय। इकसौ गेरह गध्यमहँ कहत सूत मुनिराय॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! त्रिस्फोटक से सब ओर स्फुटित

पितृमातृजवंशस्यविशुद्ध्यर्थमतन्द्रितैः ॥ अद्यापिक्रियतेतत्रस्नानमेवद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ त्रिजातोदह्यतेतत्रवह्निनास
नसंशयः ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्रिजातकमाहात्म्यंतथा
ग्निमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सोपिविप्रोद्विजश्रेष्ठाविस्फोटकपरिस्फुटः॥ लज्जयापरिसंसिक्तोगत्वादूरेवनान्तरम् ॥ १ ॥ ततोवैराग्य
मापन्नोरौद्रेतपसिसंस्थितः ॥ त्यक्त्वासर्वंगृहंकृत्यंस्नेहंदारसुतोद्भवम् ॥ २ ॥ नियमैस्संयमैश्चैवशोषयन्नात्मनस्तनुम् ॥
कञ्चिज्जलाशयंस्थित्वास्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ ३ ॥ ततःकालेनमहतातुष्टस्तस्यमहेश्वरः ॥ प्रोवाचदर्शनङ्गत्वाप्रार्थ
यस्वमनोरथम् ॥ ४ ॥ त्रिजातउवाच॥मातृदोषादहन्देववैलक्ष्यंपरमंगतः ॥ मध्येब्राह्मणमुख्यानामानर्ताधिपतेस्त
था ॥ ५॥ अहंशक्नोमिनोकिञ्चिद्वक्तुंद्रष्टुञ्चहेप्रभो ॥ त्रिजातोस्मीतिविज्ञायभूरिविद्यान्वितोपिच ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वोत्त

(फूटाहुआ) व लज्जासे संयुत वह ब्राह्मण भी वैराग्य में प्राप्तहोकरके समस्त गृहकार्य्य व स्त्री,पुत्र से उपजे हुये स्नेहको छोड़कर तदनन्तर दूरवनके बीचमें जाकर विकराल
तपस्या में भलीभांति स्थितहुआ ॥ १।२ ॥ व नियमों और संयमों से अपने शरीरकोसुखातेहुये उसने किसी जलाशयके समीप टिकर व महादेवजी को थापकर आराधन
किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्नहोतेहुये महादेवजी दर्शनमें प्राप्तहोकर बोले कि मनोरथको मांगो ॥ ४ ॥ त्रिजात बोला कि हे देव ! माताके
दोष से मैं मुख्य ब्राह्मणों व आनर्ताधिपतिके बीचमें बड़ी विलक्षणता को प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! मैं त्रिजात (तीन से पैदाहुआ) हूं यह जानकर बड़ीविद्या से संयुत

भी मैं कुछ कहने व देखने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ ६ ॥ इसलिये हे देवनायक ! जिसभांति उन ब्राह्मणों के बीच में मैंही सर्वोत्तम होऊं वैसीही नीतिकीजावै ॥ ७ ॥ शिवभगवान् बोले कि चमत्कार पुरमें जो द्विजोत्तम बसते हैं उनके मध्य में तुम मेरी प्रसन्नतासे निश्चयकर सबसे उत्तमहोगे ॥ ८ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! तुम कुछेक समय को परखो जब समय प्राप्तहोगा तब वहां मैं तुमको ले चलूंगा ॥ ९ ॥ ऐसाकहकर इसके अनन्तर देवेश्वर शिवजी अन्तर्द्धानहोगये और ब्राह्मणने भी वैसेही शिवजी को भलीभांति पूजतेहुये तपस्या किया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणों ! किसीसमय चमत्कार पुरमें मौद्गल्यवंश में उपजाहुआ देवराज नामक ब्राह्मण

मस्तेषांमहञ्चैवद्विजन्मनाम् ॥ यथाभवामिदेवेशतथानीतिर्विधीयताम् ॥ ७ ॥ भगवानुवाच ॥ चमत्कारपुरेविप्रायेवसन्ति द्विजोत्तमाः ॥ तेषांसर्वोत्तमंनूनंमत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मात्कालंप्रतीक्षस्वकञ्चित्त्वंब्राह्मणोत्तम ॥ समयेसमनुप्राप्तेतत्रनेष्यामित्वामहम् ॥ ९ ॥ एवमुक्त्वाथदेवेशस्तदादर्शनकङ्गतः ॥ ब्राह्मणोपितपस्तेपेतथासम्पूजयन्हरम् ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यचमत्कारपुरेद्विजाः ॥ मौद्गल्यान्वयसम्भूतोदेवराजोभवद्द्विजः ॥ ११ ॥ तस्यपुत्रःक्रथोनामयौवनोद्धतविग्रहः ॥ सदागर्वसमायुक्तःपौरुषेचव्यवस्थितः ॥ १२ ॥ सकदाचिद्वयौविप्रोनागतीर्थंप्रतिद्विजाः ॥ श्रावणस्यासितेपक्षे पञ्चम्यांपर्य्यटन्वने ॥ १३ ॥ अथापश्यत्सनागेन्द्रतनयम्भूरिवर्चसम् ॥ रुद्रमालमितिख्यातंजनन्यासहसङ्गतम् ॥ १४ ॥ अथासौतंसमालोक्यसुलघुंसर्प्पपुत्रकम् ॥ जलसर्प्पमितिज्ञात्वालगुडेनव्यपोहयत ॥ १५ ॥ हन्यमानेनतेनाथचकारसुमहान्स्वनः ॥ हामाततातेतिलपन्हतोस्मिहिनिरागसः ॥ १६ ॥ सोपिश्रुत्वाथतंशब्दम्ब्राह्मणोमानुषोद्भवम् ॥ सर्पस्यभयसंत्र

हुआ है ॥ ११ ॥ उसका पुत्रयौवन से उठे हुये शरीरवाला व सदैव गर्व से संयुत तथा पराक्रम में व्यवस्थित क्रथ नामक हुआ है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणों ! किसीसमय वनमें घूमताहुआ वह क्रथ ब्राह्मण श्रावण की शुक्लपक्ष वाली पंचमी में नाग तीर्थ को गया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर उसने माता के साथ आयेहुये बड़े तेजवाले रुद्रमाल ऐसे प्रसिद्ध नागराजके पुत्रको देखा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इस द्विजने अतिछोटे साँप के पुत्र को देखकरके जलसर्प है यह जानकर उसको दण्ड से मारा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर उसके मारतेहुये सर्पने हा माता ! हा पिता ! मैं बिन अपराध मारागया ऐसाकहतेहुये बड़ा शब्द किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मणने भी मनुष्यसे

उपजेहुये उस शब्दको सुनकर सर्प से भयभीतहोकर शीघ्रही घरको प्रयाणकिया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उस सर्पकी माता जलाशय से निकली और उसने जबतक देखा तबतक किनारेपै स्थित पुत्रको मराहुआ देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर समस्त अंगोंमें रुधिर से सींचेहुये व दण्डताडनसे विदीर्ण वैसे पुत्र को देखकर मूर्च्छा को प्राप्तहुई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर फिर चैतन्यताको पाकर शोचसे अत्यन्तही तचीहुई व आंसुओं से सबओर विकल लोचनोंवाली उसने करुणा पूर्वक बहुतेरे प्रलापों को किया ॥ २० ॥ कि हे पुत्र ! मै छोड़दीगई और मुझको छोड़कर तुम न लौटनेवाले स्थानको चलेगये क्या मुझमें तुम्हारा स्नेह नहींहै ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! किस दुष्टात्मा पापीने तुझ निष्पाप

स्तःसत्वरन्तुगृहंययौ ॥ १७ ॥ अथसाजननीतस्यनिष्क्रान्तासलिलाश्रयात् ॥ यावत्पश्यतितीरस्थंतावत्पुत्रंनिपातितम् ॥ १८ ॥ ततोमूर्च्छामनुप्राप्ताद्दृष्ट्वापुत्रंतथाविधम् ॥ यष्टिप्रहारनिर्भिन्नंसर्वाङ्गरुधिरोक्षितम् ॥ १९ ॥ अथलब्ध्वापुनर्संज्ञांप्रलापानकरोद्बहून् ॥ करुणंशोकसन्तप्ताबाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ २० ॥ हाहापुत्रपरित्यक्तामात्यक्तासिविनिर्गतः ॥ अनावृत्तिकरंस्थानंकिंस्नेहोनास्तितेमयि ॥ २१ ॥ केनवैनिहतःपुत्रपापेनचदुरात्मना ॥ निष्पापोपिचपुत्रस्त्वंकस्यक्रुद्धोद्यवैयमः ॥ २२ ॥ सपुरस्यसराष्ट्रस्यसकुटुम्बस्यदुर्मतेः ॥ येनत्वंनिहतोद्यापिपञ्चम्यांपूजितोनच ॥ २३ ॥ रजसाक्रीडयित्वाद्यसमागत्यचिरादथ ॥ कामेनोत्सङ्गमागत्यम्लानंनेष्यतिकोम्बरम् ॥ २४ ॥ गद्गदानिमनोज्ञानिजनहास्यकराणिच ॥ त्वयाविनाद्यवाक्यानिकोवदिष्यतिमेपुरः ॥ २५ ॥ पितुरुत्सङ्गमाश्रित्यकुर्चाकर्षणसङ्गमम् । कःकरिष्यतिपुत्राद्यसन्तोषंभवताविना ॥ २६ ॥ निषिद्धोसिमयावत्सत्वयियातेनुपृष्ठतः ॥ मर्त्यलोकमिमंतातबहुदोषसमाकुलम् ॥ २७ ॥

पुत्रको मारा है आज पुर सहित व राज्य समेत व परिवार सहित किस दुष्टबुद्धिवाले नरके ऊपर यमराजजी क्रोधित हुयेहैं कि जिसने आज पञ्चमी कोभी तुम्हारा पूजन न किया किन्तु तुमको मारडाला ॥ २२ । २३ ॥ धूलिसे खेलकर व बहुत देरसे समागम कर इच्छा से अंकमें आकर आज बसन को कौन मलिनतामें प्राप्त करैगा ॥ २४ ॥ व मनुष्यों को हास्यकारक व मनोहर तथा गद्गदीले वचनों को आज तुम्हारे विना कौन मेरे अगाडी कहैगा ॥ २५ ॥ व पिताकी गोदमें भलीभांति बैठकर भौंह मध्य के खींचने से समागम वाले सन्तोष को आपके विना कौन करैगा ॥ २६ ॥ हे वत्स ! तुम्हारे आतेहुये पीछे से मैंने तुमको मनाकियाथा कि हे पुत्र ! यह मृत्यु

लोक बहुत दोषों से संयुतहै ॥ २७ ॥ शोचसे दुबली वह नागिनि इसप्रकार विलाप करके व उस मरेहुये पुत्रको लेकर नागराज के समीप गई ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस मरे निज बालक को उन नागाधिप के अगाड़ी फेंककर दीन नागिनिने वियोगिनी मृगी के नाईं प्रलापों को किया ॥ २९ ॥ नागराज भी मारेहुये उस अपने पुत्रको देखकर पुत्रके शोचसे दुःखित होते हुये वेभी मूर्च्छा को प्राप्तहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शीतलजल से छिड़के हुये नागराजने बड़े क्लेशसे चैतन्यता को पाकर पामर (सामान्य) पुरुष के समान बहुत से प्रलापों को किया ॥ ३१ ॥ इसी अवसर मे आंसुओं से सब ओर आकुल लोचनोंवाले व उन नागराज के दुःखसे दुःखित होतेहुये

एवंविलप्यनागीसासंक्रुद्धाशोककर्शिता ॥ तंमृतंसुतमादायजगामानन्तसन्निधौ ॥ २८ ॥ ततस्तदग्रतःक्षिप्त्वातंमृतं निजबालकम् ॥ प्रलापानकरोद्दीनावियुक्ताकुररीयथा ॥ २९ ॥ नागराजोपितंदृष्ट्वास्वपुत्रंविनिपातितम् ॥ जगामसोपिमूर्च्छांञ्चपुत्रशोकेनपीडितः ॥ ३० ॥ ततस्सिक्तोजलैःशीतैस्सञ्ज्ञाँल्लब्ध्वाप्रकृच्छ्रतः ॥ प्रलापान्कृतवान्भूरिप्राकृतःपुरुषोयथा ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तानागास्सर्वेसमागताः ॥ तद्दुखदुःखितास्सन्तोबाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ ३२ ॥ वासुकिःपद्मजःशङ्खस्तक्षकश्चमहाविषः ॥ शङ्खचूडःसुचूडश्चपुण्डरीकश्चदारुणः ॥ ३३ ॥ अञ्जनोवामनश्चैवकुमुदश्चतथापरः ॥ कम्बलाश्वतुरौनागौनागःकर्कोटकश्चवा ॥ ३४ ॥ पुष्पदन्तःसुदन्तश्चरेणुकोमूषकादकः ॥ एलपुत्रःसुपुत्राश्चदीर्घास्यःपुष्पवाहनः ॥ ३५ ॥ ऐतेचान्येतथानागास्तत्रायातास्सहस्रशः ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तंज्ञात्वातम्पन्नगाधिपम् ॥ ३६ ॥ ततसम्बोध्यतेसर्वेतमीशम्पवनाशनम् ॥ पूर्ववृत्तैःकथोद्भेदैर्दृष्टान्तैर्विविधैरपि ॥ ३७ ॥ एवंसम्बोधितस्तैस्तुचिरात्पन्न

समस्त नाग भलीभांति आकर प्राप्त हुये ॥ ३२ ॥ वासुकी, पद्मज, शंख, तक्षक व महाविष, शंखचूड, सुचूड, व विकराल पुण्डरीक ॥ ३३ ॥ व अञ्जन और वामन व कुमुद तथा अन्य कुमुद, कम्बल, अश्वतर नाग व कर्कोटक नाग ॥ ३४ ॥ व पुष्पदन्त, सुदन्त, रेणुक, मूषकादक, एलपुत्र व सुपुत्र, दीर्घास्य, पुष्पवाहन ॥ ३५ ॥ ये तथा और हज़ारों नाग उन सर्पनायकको पुत्रशोचसे अति सन्तप्त जानकर वहां आये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उन सबोंने पुरातन समय के चरित्रों और कथाओं से उपजे हुये दृष्टान्तों के द्वारा भी उन पवनाशी ईश (नागराज) को भलीभांति समझाकर बोध किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर इस प्रकार उन नागोंसे देरमें बोधित हुये व दुःखित सर्पों-

त्तमने उस पुत्रका अग्नि दाह किया ॥ ३८ ॥ व जलदान के समय उन नागराजने जलदान के लिये समीप में स्थित हुये समस्त नागों व सब सर्पों से कहा ॥ ३९॥
कि आपलोगों से व अन्य भाइयों से भी इसभांति प्रेरणा किया हुआ भी मैं तब तक किसी प्रकार पुत्रको जल न दूंगा ॥४०॥ जबतक कि स्त्री, पुत्र, सेवकों समेत
उस मेरे पुत्रके विनाशकारक दुष्ट पुरुषका संहार न किया जावैगा ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर शेषने उस ब्राह्मणका शोधन (खोज) कराया कि जिस पापीने
दण्ड रूप काष्ठसे पुत्रको नाश कियाथा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर नागराजने समीप में टिके हुये उन नागोंसे कहा कि हे मेरे उत्तम मित्रो ! आप लोग हाटकेश्वरजक्षेत्रमें

अग्निदाहन्ततश्चक्रेतस्यपुत्रस्यदुःखितः ॥ ३८ ॥ जलदानस्यकालेचसर्पान्सर्वानुवाचसः ॥ सर्वान्नागा
गसत्तमः ॥ नाहन्तोयंप्रदास्यामिस्वपुत्रस्यकथञ्चन ॥ भवद्भिःप्रेरितोप्येवन्तथान्यैर
न्प्रदानार्थंतोयस्यसमुपस्थितान् ॥ ३९ ॥ सदारपुत्रभृत्यस्यविहतोनपरिच्छयः ॥ ४१॥ एवमुक्त्वाततः
पिबान्धवैः ॥४०॥ यावत्तस्यनदुष्टस्यममपुत्रान्तकारिणः ॥ येनसंसूदितःपुत्रोदण्डकाष्ठेनपाप्मना ॥ ४२ ॥ ततःप्रोवाचतान्नागान्पार्श्वस्थान्पन्नगा
शेषःशोधयामासतंद्विजम् ॥ पुत्रघ्नन्तंनिहत्याशुसकुटुम्बपरिग्रहम् ॥ चमत्कारपुरंसर्वंभक्ष
धिपः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेयान्तुमेसुहृदोत्तमाः ॥ ४३ ॥ यथाभूपोवसेन्नैवतथाकार्यंचतत्पुरम् ॥४५॥ एवमुक्ता
णीयन्ततःपरम् ॥ ४४ ॥ तत्रैववसतिःकार्यासमस्तैःपन्नगैरपि ॥ देवरातसुतंसुप्तम्भक्षयित्वाततःप
ततस्तेननागाःप्राधान्यतस्तुये ॥ तेगत्वासत्वरन्तत्रप्रथमन्तंद्विजोत्तमम् ॥ ४६ ॥ तेसर्वेभक्षयामा
रम् ॥ सकुटुम्बंसमग्रंच क्रोधेनमहतान्विताः ॥ ४७ ॥ ततोन्यानपिसंक्रुद्धा बालान्वृद्धान्कुमारकान् ॥

जाइये ॥ ४३ ॥ क्योंकि उस पुत्रहन्ता को स्त्री व पुत्र समेत मारकर तदनन्तर समस्त चमत्कार नगर भक्षण करना चाहिये ॥ ४४ ॥ व समस्त सर्पोंको भी वहीं निवास
करना चाहिये व जिस प्रकार वह पुर फिर निश्चय कर न बसै वैसाही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर इस प्रकार उन नागराज से कहे हुये नाग जे मुख्यता से थे
उन्होंने शीघ्रही वहां जाकर पहले सोते हुये उस द्विजोत्तम देवरात के पुत्रको खाकर उसके उपरान्त बड़े क्रोधसे संयुत होकर परिवार समेत सम्पूर्ण भक्षणकर लिया ॥
४६ । ४७ ॥ तदनन्तर अति क्रोधित होते हुये उन समस्त नागोंने अन्यभी बालों, व वृद्धों व कुमारों को व पशु पक्षी की योनिमें प्राप्तहुये भी जन्तुओं को भक्षणकर

लिया ॥ ४८ ॥ इसी अवसर में उस पुरके बीच सर्प भक्षण से उपजे हुये अति भयङ्कर द्विजेन्द्रों के शब्द उत्पन्न हुये ॥ ४९ ॥ वैसेही उस भूमि में और जो कुछ भी देख पड़ताथा वह सब काले शरीर के धारनेवाले विकराल सर्पोंसे व्याप्त होगया ॥ ५० ॥ इसी अवसर में कोई मृत्यु के वशमें जाकर प्राप्त हुये व विषसे आघूर्णित होते हुये कोई भूतल में गिरपड़े ॥ ५१ ॥ व डरे हुये अन्य नर पुत्रादिक व समस्त गृहादिक को परित्यागकर दूरवाले वन को उद्देशकर सब ओर दौड़तेथे ॥ ५२ ॥ व मन्त्रों के जाननेवाले अन्य ब्राह्मण यत्नकर रहेथे व डरेहुये अपर पुरुष औषधियों को लेकर सब ओर धावतेथे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उस पुरको उद्देशकर वे समस्त स-

सुस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥४८॥ एतस्मिन्नन्तरेजाताः पुरेतत्रसुदारुणाः ॥ आक्रन्दाब्राह्मणेन्द्राणांसर्पभक्षणसम्भवाः ॥ ४९ ॥ तत्रभूमौतथान्यच्च यत्किञ्चिदपिदृश्यते ॥ तत्सर्वंपन्नगैर्व्याप्तं रौद्रैःकृष्णवपुर्द्धरैः ॥५०॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः केचिन्मृत्युवशंगताः ॥ विषसंघूर्णिताकेचित्पतिताधरणीतले ॥ ५१ ॥ अन्येगृहादिकंसर्वं परित्यज्यसुतादिकम् ॥ वित्रस्ताःपरिधावन्ति वनमुद्दिश्यदूरतः ॥ ५२ ॥ अन्येमन्त्रविदोविप्राः प्रयतन्तेसमन्ततः ॥ मन्दंधावन्तिसंत्रस्ता गृहीत्वौषधयःपरे ॥ ५३ ॥ एवंतत्पुरमुद्दिश्यसर्वेतेपन्नगोत्तमाः ॥ प्रचरन्तितथाकश्चिन्नतत्रब्राह्मणोयथा ॥ ५४ ॥ अथशून्यं पुरंकृत्वा सर्वेतेपन्नगोत्तमाः ॥ व्यचरन्स्वेच्छयातत्र तीर्थेष्वायतनेषुच ॥ ५५ ॥ नकश्चित्पन्नगःक्षेत्रंत्यक्त्वानिर्याति बाह्यतः ॥ प्रविशेन्नपरःकश्चित्तत्रक्षेत्रेचमानवः ॥ ५६ ॥ व्यवस्थैवंसमुद्भूता सर्पाणांमानुषैस्सह ॥ वधभक्षणाभ्यामन्योन्यं बाह्याभ्यन्तरमेवच ॥५७॥ एतस्मिन्नन्तरेशेषो मुक्त्वादुःखंसुतोद्भवम् ॥ प्रहृष्टःप्रददौतोयंतस्यज्ञातिभिर

पोंत्तम उस प्रकार चलतेथे कि जिस प्रकार कोई ब्राह्मण वहां न बसै ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर उन समस्त पन्नगोत्तमोंने नगर को शून्य करके वहापर अपनी इच्छा से तीर्थों व देवमन्दिरों में भ्रमण किया ॥ ५५ ॥ कोई सर्पक्षेत्र को छोडकर बाहर नहीं निकलताथा व और कोई मनुष्य उस क्षेत्रमें नहीं पैठताथा ॥ ५६ इस प्रकार बाहर व भीतरही आपस में वध तथा भक्षण से मनुष्यों के साथ सर्पोंकी व्यवस्था उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ इसी अवसर मे कुटुम्बियों से संयुत व प्रसन्न होते हुये शेषजीने पुत्रसे

उपजे हुये दुःख को छोडकर उसको जल दिया ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर सांपों के भयसे विकल वे कोई ब्राह्मण शोच संयुत होते हुये वे सब दिशाओंके सामने शीघ्र ही आपसमें मिलकर तदनन्तर वनको भलीभांति गये जहां कि त्रिजात टिकाहुआ था ॥ ५९ । ६० ॥ जो कि शिवजी से वरदानको पाये व प्रसन्न हुये बड़ी तपस्या में स्थितथा वह स्थान में उपजे हुये समस्त मनुष्यों को दुःखमें डूबे हुये देखकर ॥ ६१ ॥ व पुत्र, स्त्री आदि को स्मरणकर करुणा पूर्वक बहुत रोते हुये उन निजपुर में उत्पन्न हुये द्विजेन्द्रों को देखकर वह भी दुःख संयुत हुआ ॥ ६२ ॥ तदनन्तर आंसुओं से विकल लोचनोंवाले उस त्रिजात ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! इस समय

न्वितः ॥ ५८ ॥ अथतेब्राह्मणाःकेचित्सर्प्पेभ्योभयविह्वलाः ॥५९॥ सशोकादिग्मुखान्याशु तेसर्वेसङ्गतामिथः॥ ततोवनं समाजग्मुस्त्रिजातोयत्रसंस्थितः॥६०॥ हरलब्धवरोहृष्टः सुमहत्तपसिसंस्थितः ॥ सदृष्ट्वास्थानजान्सर्वांस्तथादुःखपरिप्लुतान् ॥ ६१ ॥ पुत्रदारादिकंस्मृत्य रुदन्तःकरुणंबहु ॥ सोपिदुःखसमायुक्तो दृष्ट्वातान्स्वपुरोद्भवान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणेन्द्रांस्ततःप्राहबाष्पव्याकुललोचनाः॥ शृण्वन्तुब्राह्मणास्सर्वे वचनंसाम्प्रतम्मम ॥ ६३ ॥ मयाविनिर्गतेनैव तत्पुरात्तोषितोहरः ॥ तेनमह्यंवरोदत्तो वाञ्छितोद्विजसत्तमाः ॥ ६४ ॥ गृहीतोनमयाद्यापि प्रार्थयिष्यामिसाम्प्रतम् ॥ यथास्यात्संक्षयस्तेषां नागानांसुदुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ यैःकृतंनःपुरंसर्वमुद्वासंपापकर्म्मभिः ॥ एवमुक्त्वासविप्रश्च त्रिजातःपरमेश्वरम् ॥ ६६ ॥ प्रार्थयामासमेदेव तंवरंयच्छसाम्प्रतम् ॥ ततःप्रोवाचदेवेशः प्रार्थयस्वद्रुतंद्विज ॥ ६७ ॥ येनाभीष्टंप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ ६८ ॥ त्रिजातउवाच ॥ नागैरस्मत्पुरंसर्वं कृतंजनविवर्जितम् ॥ तस्मा

मेरे वचनको आप सब सुनो ॥ ६३ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! उसपुर से निकलेही हुये मैंने सदाशिव जीको प्रसन्न किया उन शिव जीने मेरेलिये वाञ्छित (चाहेहुये) वरदान को दिया ॥ ६४ ॥ परन्तु मैंने आजतकभी नहीं ग्रहण किया आज वैसीही प्रार्थना करूंगा कि जिसप्रकार उन दुष्ट चित्त या मनवाले नागोंका संहार होवै ॥ ६५ ॥ कि जिन पापकर्मियों ने हमलोगों के समस्त पुरको उद्वास किया याने उजाड़दिया ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर उस त्रिजात ब्राह्मणने परमेश्वर शिव जीसे प्रार्थना किया कि हे देव ! इससमय उस वरको मुझे दीजिये तदनन्तर देवनायक शिवजी बोले कि हे द्विज ! शीघ्रही मांगिये ॥६७॥ कि जिससे अभिलापको देऊं यद्यपि दुर्लभभी होवै ॥६८॥

त्रिजात बोला कि हे वृषवाहन ! नागोंने हमारे समस्त नगरको जनों से विहीन करदिया इसलिये वे सब विनाश को प्राप्तहोवैं॥६९॥ जिससे कि हे सुरसत्तम ! फिर भी वह पुर ब्राह्मणोंसे पूर्ण होजावै और स्वस्थान के उधारनेसे उपजीहुई मेरीभी कीर्त्ति होवै॥७०॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम,द्विज! उन महात्मा सर्पोंने यह अयोग्य नहीं किया है क्योंकि पंचमी दिनके भलीभांति प्राप्त होनेपर उसमें भी श्रावणमास में जब कि सर्प विशेषकर पूजेजाते हैं उससमय जिन सर्पोंका निर्दोष भी पुत्र ब्राह्मण से मारागया ॥ ७१ । ७२ ॥ इसलिये मैं तुमसे अतिउत्तमसिद्ध मंत्रको कहूंगा कि जिसके उच्चारणमात्र से सर्पोंका विष नाश होजाता है ॥ ७३ ॥

तेसंक्षयंयान्तुसर्वेवृषभवाहन ॥ ६९ ॥ येनतत्पूर्यतेविप्रैर्भूयोपिसुरसत्तम ॥ ममापिजायतेकीर्तिः स्वस्थानोद्धारणोद्भवा ॥ ७० ॥ भगवानुवाच ॥ नायुक्तंविहितंविप्र पन्नगैस्तैर्महात्मभिः ॥ निर्दोषश्चापिपुत्रश्च येषांविप्रेणसूदितः ॥ ७१ ॥ विशेषेणद्विजश्रेष्ठ सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ तत्रापिश्रावणेमासे पूज्यन्तेयत्रपन्नगाः ॥ ७२ ॥ तस्मात्तेहंप्रवक्ष्यामि सिद्धंमन्त्रमनुत्तमम् ॥ यस्योच्चारणमात्रेण सर्पाणांनश्यतेविषम् ॥ ७३ ॥ तन्मन्त्रन्तत्रगत्वात्वं तद्विप्रैरखिलैर्वृतः ॥ श्रावयस्वमहाभाग तारशब्देनसर्वशः ॥ ७४ ॥ तंश्रुत्वायेनयास्यन्ति पातालंपन्नगाधमाः ॥ युष्मद्वाक्याद्भविष्यन्ति निर्विषास्तुनसंशयः ॥ ७५ ॥ त्रिजातउवाच ॥ ब्रूहितन्मेमहामन्त्रं सर्वतीक्ष्णविनाशनम् ॥ येनगत्वानिजंस्थानं सर्वानुत्सादयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ भगवानुवाच ॥ गरंविषमितिप्रोक्तं नतत्रास्तिचसाम्प्रतम् ॥ मत्प्रसादात्त्वयाह्येतदुच्चार्यंब्राह्मणोत्तम ॥ ७७ ॥ नगरंनगरंचैतच्छ्रुत्वायेपन्नगाधमाः ॥ तत्रस्थास्यन्तितेवध्या भविष्यन्तियथासुखं

हे महाभाग ! उन समस्त ब्राह्मणों से संयुत होतेहुये तुम वहां जाकर सबओर ओङ्कार शब्दसे उस मंत्रको सुनावो ॥ ७४ ॥ कि जिससे उस मंत्रको सुनकर नीच सर्प पातालको जावैंगे व तुमलोगों के वचन सेवे निस्सन्देह निर्विष होवेंगे ॥ ७५ ॥ त्रिजात बोला कि समस्त तीखे विषों के विनाशनेवाले उस महामंत्र को मुझ से कहिये कि जिससे अपने स्थानको जाकर मैं समस्त सर्पोंको उजाडदूं ॥ ७६ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम ! गर यह विष कहागयाहै उस गर में न यह वर्णहै याने नगर मेरी प्रसन्नतासे इससमय तुमको यह उच्चारण करना चाहिये ॥७७ ॥ नगर नगर यह सुनकर जो नीच सर्प वहां ठहरैंगे वे सुखपूर्वक मारने योग्य

होवैंगे ॥ ७८ ॥ आजसे लगाकर तुम्हारे यशका बढ़ानेवाला नगर नामक वह स्थान भूतल में अतिप्रसिद्ध होगा ॥ ७९ ॥ वैसेही शुद्धवंश में उत्पन्न और भी नागर ब्राह्मण नगर नामक मंत्रसे तीनबार जलको अभिमंत्रितकर ॥ ८० ॥ सर्पसे डसे व मृत्यु को प्राप्तहुये भी प्राणीको मुखमें आपही प्रक्षेपकर सजीव करैगा ॥ ८१ ॥ अन्यत्रभी टिका व भलीभांति सोताहुआ जो मनुष्य इस त्र्यक्षरमंत्र को स्मरणकरैगा वह सर्पके विपसे निर्विषहोगा ॥ ८२ ॥ व स्थावर जङ्गम व बनायाहुआ जो विषहै वह इसमंत्र से भलीभाति छुवाहुआ नाशको प्राप्तहोताहै ॥ ८३ ॥ व अजीर्णसे उपजेहुये जो रोगहैं व अन्य जे ज्वरसे उत्पन्नहुये हैं वे सब इस मंत्र के प्रभावसे शीघ्रही

म् ॥ ७८ ॥ अद्यप्रभृतितत्स्थानं नगराख्यंधरातले ॥ भविष्यतिसुविख्यातं तवकीर्तिविवर्द्धनम् ॥ ७९ ॥ तथान्योपि चयोविप्रो नागरःशुद्धवंशजः ॥ नागराख्यनमन्त्रेण चाभिमन्त्र्यत्रिधाजलम् ॥ ८० ॥ प्राणिनंकालसंदष्टमपिमृत्यु वशंगतम् ॥ प्रकरिष्यतिजीवाढ्यं प्रक्षिप्यवदनेस्वयम् ॥ ८१ ॥ अन्यत्रापिस्थितोमर्त्यो मन्त्रमेतंत्रिरक्षरम् ॥ यस्स्मरिष्यतिसंसुप्तो निर्विषःस्यादहेर्हिसः ॥ ८२ ॥ स्थावरंजङ्गमञ्चैव कृत्रिमंवागरंहियत् ॥ तदनेनचमन्त्रेण संस्पृष्टं यातिसंक्षयम् ॥ ८३ ॥ अजीर्णप्रभवारोगा येचान्येचज्वरोद्भवाः ॥ मन्त्रस्यास्यप्रभावेण सर्वेयान्तिद्रुतंक्षयम् ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वाथतंविप्रं भगवान्वृषभध्वजः ॥ जगामादर्शनंपश्चात्तैलंदीपोयथाविना ॥ ८५ ॥ त्रिजातोपिममांविप्रैर्हतशेषैस्तुतैर्द्रुतम् ॥ जगामसम्प्रहृष्टात्माचमत्कारपुरम्प्रति ॥ ८६ ॥ एवंतेब्राह्मणास्सर्वे त्रिजातेनसमन्विताः ॥ नगरं नगरंप्रोच्चैरुच्चरन्त·समाययुः ॥८७॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रंयत्तद्व्याप्तंसमन्ततः॥ रौद्रैराशीविषैःक्रूरैश्शेषवंशसमुद्भवैः ॥८८॥

नाश होजातेहैं ॥ ८४ ॥ उस द्विजसे ऐसा कहकर इसके अनन्तर पश्चात् जैसे कि तैलके विना दीपक अदृश्य होजाताहै वैसेही वृषभध्वज शिव भगवान् अन्तर्द्धान होगये॥ ८५ ॥ व मरनेसे बचेहुये उन समस्त ब्राह्मणों समेत प्रसन्न मनवाला वह त्रिजात भी चमत्कारपुरको गया ॥८६॥ त्रिजातसे संयुत वे समस्त ब्राह्मण नगर २ ऐसा उच्चस्वर से कहतेहुये उस हाटकेश्वर जीसे उपजेहुये क्षेत्रको भलीभांति आये जोकि शेपके वंशमें उपजे हुये भयंकर व क्रूरसर्पों से सबओर व्याप्तथा ॥ ८७ । ८८ ॥

इसके अनन्तर शिव से उपजेहुये सिद्ध मंत्रको सुनकर विषवर्जित व तेजरहित होते हुये वे सर्प सबओर दौड़े॥ ८६ ॥ कोई सर्प वृक्षके नीचे विचित्र छिद्रवाली बँबौरियों में जाकर स्थितहुये व अन्य सर्पभी पातालको चलेगये ॥ ६०॥ व जे कोई अन्य सर्प वृद्धतासे व शिशुतासे पीड़ित होतेहुये बहुत चलनेको समर्थ न हुये उन सब ग्रसेहुये हजारों सर्पोंको उस पुरमें कियेके प्रतिकारी (बदलालेनेवाले) उन समस्त ब्राह्मणोंने दण्डमय काठोंसे मारा ॥ ६१ । ६२ ॥ इसप्रकार उन समस्त सर्पोंको उजाड़कर पीड़ारहित उनसब ब्राह्मणोंने उस त्रिजातको अगाड़ीकर स्थान कार्य्योंको किया ॥ ६३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! देवदेव शिव जीकी प्रसन्नता के द्वारा उस त्रिजात

अथतेपन्नगाःश्रुत्वा सिद्धंमन्त्रंशिवोद्भवम् ॥ निर्विषास्तेजसाहीनास्समन्तात्तेप्रदुद्रुवुः ॥ ८६ ॥ वल्मीकान्केचिदासाद्य चित्ररन्ध्रान्तरोरधः ॥ अन्येचापिप्रजग्मुश्चपातालंदन्दशूककाः॥ ६० ॥ येकेचिद्भयसंत्रस्तावार्द्धक्येननिपीडिताः ॥ बालत्वेननचान्येच शक्नुवन्तिप्रसर्पितुम् ॥ ६१ ॥ तेसर्वेब्राह्मणैर्ग्रस्ताः कृतस्यप्रतिकारकैः॥ निहताःपन्नगास्तत्रदण्डकाष्ठैस्सहस्रशः ॥ ६२ ॥ एवमुत्साद्यतान्सर्वान् ब्राह्मणास्तेगतव्यथाः ॥ तन्त्रिजातम्पुरस्कृत्य स्थानकृत्यानिचक्रिरे ॥ ६३ ॥ एवन्तन्नगरंयातं तस्मात्कालान्तरंपुनः ॥ देवदेवस्यभर्गस्य प्रसादेनद्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥ एतद्यःपठतेनित्यमाख्यानंनगरोद्भवम् ॥ नसर्पजम्भयंतस्य कथञ्चिज्जायतेक्वचित् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येनागरसंज्ञोत्पत्तिर्नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

ऋषयऊचुः ॥ त्रिजातोब्राह्मणस्तत्र किंनामाकस्यसम्भवः ॥ किङ्गोत्रःकिञ्चसञ्ज्ञश्च कीर्तयस्वमहामुने ॥ १ ॥

ब्राह्मणसे दूसरे समय फिर वह नगर हुआहै ॥ ६४ ॥ जो पुरुष नगरसे उपजेहुये इस कथानक को पढ़ताहै उसको कहींपर किसी प्रकार भी सर्पसे उपजाहुआ डर नहीं होताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्ये नागरसंज्ञोत्पत्तिर्नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नागरपुरमें बसे द्विज तिन गोत्रनके नाम । इकसौ बारहवें कह्यो सूत सुबुद्धि ललाम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामुने ! उस पुरमें किस गोत्रवाला व किस

नामवाला व किससे उपजाहुआ त्रिजात ब्राह्मणथा इसको कहिये ॥ १ ॥ क्या कुलीन व गुणसंयुत व तेज, विद्यामें प्रवीण पुरुषोंसे वह त्रिजात (तीनसे पैदाहुआ) भी था कि जिसने अपने उत्तम स्थानको उद्धरण कियाहै ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि वह द्विजोत्तम सांकृत मुनि के वंशमें उत्पन्नहुआ और दत्तसंज्ञक निमिका पुत्र प्रभाव ऐसे नामसे प्रसिद्धहुआ है ॥ ३ ॥ उसने इसभांति स्थानको उधारकर याने फिर बसाकर त्रिजातेश्वर नामसे देवदेव त्रिशूलधारी शिवजीके शुभदायक मन्दिर का निर्माण किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर भलीभांति श्रद्धासंयुत होताहुआ वह त्रिजात अहर्निश उन शिव जीको आराधकर किसी समय शरीर समेत स्वर्गको चला

किङ्कुलीनैर्गुणाढ्यैर्वातेजोविद्याविचक्षणैः ॥ त्रिजातोपिवरंसोपि स्वस्थानंयेनचोद्धृतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ साङ्कृतस्यमुनेर्वंशे ससम्भूतोद्विजोत्तमः ॥ प्रभावइतिविख्यातोदत्तसंज्ञोनिमेस्सुतः ॥ ३ ॥ सएवंस्थानमुद्धृत्य चकारायतनंशुभम् ॥ त्रिजातेश्वरनाम्नाच देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४ ॥ तमाराध्यदिवानक्तं सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः॥सशरीरोगतस्स्वर्गं ततःकालेनकेनचित् ॥ ५ ॥ यस्तम्पश्यतिसद्भक्त्यास्नापयेद्विषुवेसदा॥ नत्रिजातोकुलेतस्य कथञ्चिदपिजायते ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यानिगोत्राणिनष्टानि यानिसंस्थापितानिच ॥ नामानितानिनोब्रूहितत्पुरेसूतनन्दन ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रोपमन्युगोत्रायेक्रौञ्चगोत्रसमुद्भवाः ॥ कैशोर्य्यगोत्रसम्भूतास्त्रैवणेयेद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ तेभूयोपिनसम्प्राप्ता यथागोत्रचतुष्टयम् ॥ तत्पूर्वकंशुकादीनां यन्नष्टंनागजाद्भयात् ॥ ९ ॥ शेषान्वःसम्प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान्गोत्रसम्भवा

गया ॥ ५ ॥ उन शिव जीको जो देखताहै व सदैव उत्तम भक्तिसे विषुव(सम रात्रिदिनवाले)समयमें स्नान कराताहै उसके वंशमें किसीप्रकार भी त्रिजात नहीं उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! उस पुरमें जो गोत्रनष्ट होगये व जो भलीभांति थापितहुये उन नामोंको हमलोगोंसे कहिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि उस पुरमें जो उपमन्यु गोत्रवालेथे व जो क्रौंच गोत्रसे उपजेहुये थे व कैशोर्य्य गोत्रमें उत्पन्न व त्रैवण गोत्रमें जो द्विजोत्तम पैदाहुयेथे ॥ ८ ॥ वे फिरभी गोत्र चतुष्टको यथोक्त भलीभांति न प्राप्तहुये व उन्हींके साथ नागोंसे उपजेहुये डरसे जो शुकादिकोंका गोत्रनष्ट होगयाथा वह भी न प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ व गोत्रोंमें उपजेहुये शेष

ब्राह्मणों को मैं आपलोगों से कहताहूं कि जो कौशिक वंशमें पैदाहुयेथे वे छब्बीस कहेगये हैं ॥ १० ॥ व कश्यप वंशमें उपजेहुये सत्तासी द्विजोत्तम व लक्ष्मणवंशमें उत्पन्नहुये इक्कीस ब्राह्मण आयेथे ॥ ११ ॥ वही नष्टहोकर दुःखित होतेहुये फिर उसीस्थान में प्राप्तहुये तीन भरद्वाज गोत्रवाले व चौदह कुण्डन गोत्रवाले प्राप्तहुये ॥ १२ ॥ वैसेही बीस रैतिक गोत्रवाले व आठ पराशर गोत्रवाले व बाईसगर्ग गोत्र वाले और तेईस हारीत गोत्रवाले प्राप्तहुये ॥ १३ ॥ व पचीस भार्गव गोत्रवाले कहेगये और गौतम गोत्रवाले छब्बीस व दालभ गोत्रवाले बीस कहेगये है ॥ १४॥ व माण्डव्य गोत्रवाले तेईस तथा बह्वृचगोत्रवाले तेईस व पृथक्तासे अतिउत्तम

-न् ॥ कौशिकान्वयसम्भूताये षड्विंशतितेस्मृताः॥१०॥कश्यपान्वयसम्भूताः सप्ताशीतिद्विजोत्तमाः ॥ लक्ष्मणान्वयसम्भूता एकविंशतिरागताः॥११॥तत्रनष्टाःपुनःप्राप्तास्तस्मिन्स्थानेसुदुःखिताः ॥ भरद्वाजास्त्रयःप्राप्ताः कौण्डनीयाश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ रैतिकानांतथाविंशत्पाराशर्याष्टकंतथा ॥ गर्गाणांचद्विविंशच्चहारीतानांत्रिविंशतिः ॥ १३ ॥ विदुर्भार्गवगोत्राणां पञ्चविंशदुदाहृता ॥ गौतमानाञ्चषड्विंशद्दालभानांचविंशतिः ॥ १४ ॥ माण्डव्यानान्त्रिविंशच्चबह्वृचानांत्रिविंशतिः ॥ सांकृत्यानांविशिष्टानां पृथक्त्वेनदशैवच॥ १५ ॥ वात्साःपञ्चसमाख्याताः कौशाख्यानवसप्तच ॥ शाण्डिल्याभार्गवाःपञ्चमौद्गल्याविंशतिःस्मृताः॥१६ ॥ बौद्धायनाःकौशिलाश्चत्रिंशन्मात्राप्रकीर्तिताः ॥ अथर्वाःपञ्चपञ्चाशन्मौशनास्सप्तसप्ततिः ॥१७॥ यजुषास्त्रिंशतिख्याताश्च्यावनास्सप्तविंशतिः ॥ आगस्त्याश्चत्रयस्त्रिंशज्जैमिनेयादशैवतु ॥ १८ ॥ नैवृताःपञ्चपञ्चाशत् पाठीनाःसप्ततिर्द्विजाः ॥ गोभिलाश्चापिकाकाश्च पञ्चपञ्चाद्वि

सांकृत गोत्रवाले दशही प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ व वत्स गोत्रवाले पांच कौशनामक सोलह कहेगये हैं व शांडिल्य और भार्गव गोत्रवाले पांच व मुद्गल गोत्रवाले बीस कहेगयेहैं ॥ १६ ॥ व बौद्धायन, कौशिल गोत्रवाले तीस संख्यक व अथर्व गोत्र वाले पचपन व उशना गोत्रवाले सतहत्तरि कहेगये हैं ॥ १७ ॥ व यजुष गोत्रवाले तीस, च्यवन् गोत्रवाले सत्ताईस, अगस्त्य गोत्रवाले तेतीस व जैमिनि गोत्रवाले दशही कहेगयेहैं ॥ १८ ॥ व निवृत गोत्रवाले पचपन, पाठीन गोत्रवाले सत्तरि

ब्राह्मण व गोभिल और काक गोत्रवाले भी पांच २ ब्राह्मण कहेगये हैं ॥ १६ ॥ व अशनस्य व दशम गोत्रवाले तीन तीन वैसेही लोकनामक साठि व ऐणिसगोत्र
वाले बहत्तरि कहेगये हैं ॥ २० ॥ व काविष्टल, शार्कर नामक व अक्षण नामक सतहत्तरि व शार्कव गोत्रवाले सौ तथा दर्प गोत्रवाले सतहत्तरि कहेगये हैं ॥ २१ ॥
व कात्यायन गोत्रवाले तीन जानने योग्य हैं व वैदश गोत्रवाले तीन कहेगये हैं वैसेही कृष्णात्रेय गोत्रवाले व दत्तात्रेय गोत्रवाले पांच कहेगये हैं ॥ २२ ॥ व ना-
रायण, शौनक व जाबालि गोत्रवाले सौ संख्यक कहेगये हैं व हे द्विजोत्तमो ! गोपाल, जामदग्न्य, शालिहोत्र व कर्णिक व भागुरायण, मातृक व त्रैणव गोत्रवाले

जाःस्मृताः ॥ १९ ॥ अशनस्याश्चदशमास्त्रयस्त्रयउदाहृताः ॥ लोकाख्यातास्तथाषष्टिरैणिसानांद्विसप्ततिः ॥ २० ॥
काविष्टलाःशार्कराख्या अक्षणाख्यास्सप्तसप्ततिः ॥शार्कवानांशतंप्रोक्तंदार्पानांसप्तसप्ततिः ॥ २१ ॥ कात्यायनास्त्रयो
ज्ञेया वैदशाश्चत्रयःस्मृताः ॥ कृष्णात्रेयास्तथापञ्च दत्तात्रेयास्तथैवच ॥२२॥ नारायणाःशौनकेया जाबाल्याःशतस
ङ्ख्यकाः ॥ गोपालाजामदग्न्याश्चशालिहोत्राश्चकर्णिकाः॥२३॥भागुरायणकाश्चैवमातृकास्त्रैणवास्तथा॥सर्वेतेब्राह्मणाः
श्रेष्ठाः क्रमेणद्विजसत्तमाः ॥२४॥ एतेषामेवसर्वेषां संस्कारायेद्विजोत्तमाः॥चत्वारिंशतिचाष्टौच पुराप्रोक्ताःस्वयम्भुवा॥
२५ ॥ तेसर्वेंचपृथक्त्वेन निर्दिष्टाःपद्मयोनिना॥ सन्ध्यातर्पणकृत्यानि वैश्वदेवोद्भवानिच ॥ २६ ॥ श्राद्धानिपत्त्रकृत्या
निं पितृपिण्डांस्तथैवच॥यज्ञोपवीतसंयुक्ताःप्रवराश्चैवकृत्स्नशः ॥२७॥ तथामौञ्जीविशेषाच्च शिखाभेदाःप्रकीर्तिताः ॥
त्रिजातेनसमाराध्य देवदेवंपितामहम् ॥ २८॥ तेषांकृतेद्विजेन्द्राणामात्मकीर्तिंकृतेसदा ॥ २९ ॥ ऋषयऊचुः ॥

जे थे वे सब द्विजोत्तम क्रमसे प्राप्तहुये ॥ २३ । २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन्हीं सबोंके जिन अड़तालिस संस्कारों को पुरातन समय ब्रह्माने कहाथा ॥ २५ ॥ उन सबोंको
पितामह जीने पृथक्ता से निर्देश कियाहै व सन्ध्या, तर्पण कार्य्य व वैश्वदेवसे उपजेहुये कर्मोंको ॥ २६ ॥ व श्राद्धों,पत्त्रकार्य्यों को वैसेही पितृपिण्डों को व यज्ञो-
पवीत संयुत सम्पूर्णतासे प्रवरों को और मौञ्जी के भेदसे शिखाओं के भेदोंके त्रिजातने देवदेव पितामह जीको भलीभांति आराधकर सदैव अपने यशके लिये उन

द्विजेन्द्रों के निमित्त कीर्त्तन किया है ॥ २७ । २८ । २९ ॥ ऋषिलोग बोले कि त्रिजात महात्माने किस प्रकार ब्रह्मा जीको सन्तोषित कियाहै व उन महात्मा पितामह जीने कैसे कर्मकांड को अलग कियाहै ॥३०॥ इस सब वृत्तान्तको विस्तारसे कहिये क्योंकि हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि उस त्रिजात के लिये समस्त ब्राह्मणोंने ब्रह्माको प्रसन्न किया कि हे विभो ! इसीने हमलोगोंके समस्त स्थानको उद्धार कियाहै ॥ ३२ ॥इसलिये हे विभो ! इसको अतिउत्तम वेद ज्ञानको दीजिये कि जिससे इस पुरोत्तम में कर्म विशेषहोवैं॥ ३३॥ व हे पद्मज, देवनायक ! तुम्हारी प्रसन्नतासे जिसभांति इस त्रिजातकी गुरुता होवै वैसा न्याय

कथंसन्तोषितोब्रह्मा त्रिजातेनमहात्मना ॥ कर्मकाण्डंकथंभिन्नं कृतंतेनमहात्मना ॥ ३० ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यार्थेब्राह्मणैस्सर्वैस्तोषितःप्रपितामहः ॥ अनेनैवोद्धृतंस्थानमस्माकंसकलंविभो॥ ३२ ॥ तस्मादस्यविभोयच्छ वेदज्ञानमनुत्तमम् ॥ येनकर्मविशेषाश्च जायन्तेत्रपुरोत्तमे ॥ ३३ ॥ एतस्यचगुरुत्वंच प्रसादात्तवपद्मजा ॥ यथाभवतिदेवेश तथानीतिर्विधीयताम् ॥ ३४॥ येनविज्ञायतेसर्वं वेदार्थंकर्मयाज्ञिकम् ॥ ततःप्रोवाचतान् विप्रान्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥ एषवेदार्थसम्पन्नो भविष्यतिमहायशाः ॥ भर्तृयज्ञइतिख्यातो यज्ञकर्मविचक्षणः ॥ ३६ ॥ यत्किञ्चिद्वक्तियुष्माकं क्रियाकाण्डमशङ्कितैः ॥ तत्कार्यंस्वर्गमोक्षाय ममवाक्यात्प्रबोधितैः ॥ ३७ ॥ वेदार्थानेषसर्वेषां युष्माकंयोजयिष्यति॥येचान्येषुचदेशेषु स्थानेषुचगताःक्वचित् ॥ ३८ ॥ एतत्स्थानम्परित्यज्य सत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ वेदार्थानेवबुद्ध्वैष सत्कर्म्मप्रचरिष्यति ॥ ३९ ॥ नानृतेवाथपापेच वाणीचास्यचरिष्यति॥

किया जावै ॥ ३४ ॥ कि जिससे वेदार्थक समस्त याज्ञिक कर्म विशेषकर जानाजावै तदनन्तर ब्रह्मा जीने प्रसन्न अन्तःकरण से उन ब्राह्मणों से कहा ॥ ३५ ॥ कि यह वेदोंके अर्थमें सम्पन्न व बड़ा यशस्वी और यज्ञके कार्य्यमें प्रवीण भर्तृयज्ञ ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ ३६ ॥ व तुमलोगों से जो कुछ कर्मकाण्ड यह कहै स्वर्ग व मोक्षके लिये वह मेरे वचनसे समझाये हुये व सन्देहरहित तुम सबोंको करना चाहिये ॥ ३७॥ व हे द्विजोत्तमो ! यह तुम सबोंको व जो इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यदेशों व स्थानों को चलेगये हैं उनको वेदार्थों में युक्त करैगा यह सत्यहै व यह वेदार्थोंहीको जानकर उत्तम कर्मका प्रचार करैगा ॥ ३८ । ३९ ॥ व झूंठ तथा पापमें इस

की वाणी न जावैगी ऐसा कहकर इसके अनन्तर पितामह (ब्रह्मा) जी चुपहोरहे॥ ४० ॥ व भर्तृयज्ञनेभी ब्राह्मणों के हितके लिये उनसब शुभदायक यज्ञकर्मों को किया केवल उस भर्तृयज्ञ के वेदार्थ के लिये दशप्रमाण वाले वे सब द्विजोत्तम भलीभांति कहेगये इसप्रकार चौंसठि गोत्रोंके मध्यमें वे द्विजोत्तमहुये ॥ ४१।४२ ॥ उसी कारण त्रिजात महात्मासे वे द्विजोत्तम भलीभांति लायेगये उन ब्राह्मणों के बीचमें जो पन्द्रह सौ एक ठिकाने पैदाहुये ॥ ४३ ॥ उनको पहले आय व्ययोद्भव पूर्वक याने पैदाहुये व मरेहुये मनुष्यों समेत उन भर्तृयज्ञ ने अरसठि के विभागसे सामान्य भागों के भोगी किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर तबसे लगाकर सब पुरुषों

एवमुक्त्वासदेवेशोविररामपितामहः ॥ ४० ॥ भर्तृयज्ञोपितास्सर्वाश्चक्रेयज्ञक्रियाःशुभाः ॥ ब्राह्मणानांहितार्थाय श्रुत्यर्थंतस्यकेवलम् ॥ ४१ ॥ दशप्रमाणसम्प्रोक्तास्सर्वेतेब्राह्मणोत्तमाः ॥ चतुष्षष्टिषुगोत्रेषु एवन्तेब्राह्मणोत्तमाः ॥ ४२ ॥ तेनतत्रसमानीतास्त्रिजातेनमहात्मना॥ तेषामेकत्रजातानिदशपञ्चशतानिच ॥ ४३ ॥ सामान्यभागभुक्तानि तानिते नक्तानिच ॥ अष्टषष्टिविभागेन पूर्वमायव्ययोद्भवम् ॥४४॥ तत्रासीदथगोत्रेषु पुरुषाणांप्रसङ्ख्यया ॥ ततःप्रभृतिसर्वेषां सामान्येनव्यवस्थितिः ॥ ४५ ॥ त्रिजातस्यचवाक्येनयेनदूरादपिद्रुतम् ॥ समागच्छन्तिविप्रेन्द्राः पुरवृद्धिःप्रजायते ॥ ४६ ॥ नकश्चिद्यातिसंत्यक्त्वा स्थानादन्यत्रचद्विजः ॥ ततस्तेषांसुतैःपौत्रैर्नप्तृभिश्चसहस्रशः ॥४७॥ दौहित्रैर्भागिनेयैश्च भूयोभूरिप्रपूरितम् ॥ तत्पुरंवृद्धिमापन्नैर्दूर्वाङ्कुरमिवद्विजाः ॥ ४८ ॥ काण्डात्काण्डात्प्ररोहद्भिरसंख्याहीनैरनेकधा ॥ ४९ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंगोत्रसङ्ख्यानकंशुभम् ॥ ऋषीणांकीर्त्तनञ्चापि सर्वपातकनाश

की संख्यासे वहां सामान्यतासे गोत्रोंमें विशेषकर स्थितहुई ॥ ४५ ॥ कि जिससे उस त्रिजात के वचनसे दूरसेभी शीघ्रही द्विजेन्द्र भलीभांति आयेथे व पुरकी बढ़ती होतीथी॥४६॥और कोई ब्राह्मण पुरको छोडकर स्थानसे अन्यत्र नहीं जाताथा तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! फिर वृद्धिको प्राप्तहुये उनके हजारों पुत्रों व पौत्रों व नातियों तथा कन्याओं के पुत्रोंसे व भागिनेयों (भानजों) से वह पुर बहुतही परिपूर्ण होगया जैसे कि प्रति ग्रन्थिसे जमेहुये असंख्य व अनेक प्रकार के पौडोंसे दूबका अंकुर वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४७ । ४८ । ४९ ॥ सूतजी बोले कि यह शुभदायक समस्त गोत्रसंख्यानक तुमलोगोंसे कहागया समस्त पातकोंके नाश करनेवाले ऋषियोंका कीर्त्तन भी कहा

गया ॥ ५०॥ जो मनुष्य भक्तिसे सदैव इस चरितको निश्चयकर भलीभांति पढ़ताहै उसके सन्तान का नाश भूतलमें कभी नहीं होताहै ॥ ५१ ॥ व जन्मसे लगाकर
मरण पर्य्यन्त के पातकोंसे छूटजाता है व कभी प्रियसे उपजेहुये वियोग को नहीं देखताहै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविर
चितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येमुनिगोत्रसंख्यादिकीर्त्तनंनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अम्बरेवती कर रुचिर अहै जौन माहात्म्य । इकसौतेरह मध्य महँ कह्यो सोई याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि वहांपर वैसेही और भी अतिप्रसिद्ध रेवती देवीहै

यश्चैतत्पठतेसम्यक्सदाचापिचभक्तितः ॥ नस्यात्तस्यकुलच्छेदः कदाचिदपिभूतले ॥ ५१ ॥ अथवि नम् ॥ ५० ॥ मुच्यतेपापैराजन्ममरणोद्भवैः॥नपश्यतिवियोगञ्चकदाचित्प्रियसम्भवम् ॥ ५२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्ये मुनिगोत्रसंख्यादिकीर्तनंनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यापिचतत्रास्तिसुविख्याताचरेवती॥देवीकामप्रदापुंसां बालकानांसुखप्रदा ॥ १ ॥ यांदृष्ट्वापूजयित्वाथ चैत्राष्टम्यांविशेषतः ॥ शुक्लायांनाप्नुयान्मर्त्यः कुटुम्बव्यसनंक्वचित् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनसंस्थापितातत्र सादेवीवाथरेवती ॥ किम्प्रभावासुरूपासासूतपुत्रवदस्वनः॥ ३ ॥ सूतउवाच॥ यदाशेषेणसंदिष्टानानानागाविषोल्बणाः॥ पुरस्यास्यविनाशाय क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ ४ ॥ तदातस्यप्रियासाच पुत्रशोकेनपीडिता ॥ स्वयमेवाग्रतोगत्वा भक्षयामासतंद्विजम् ॥ ५ ॥ कुटुम्बेनसमायुक्तं येनपुत्रोनिपातितः ॥ अथतस्यद्विजेन्द्रस्य बालवैधव्यसंयुता ॥ ६ ॥

जोकि पुरुषोंको वाञ्छितदायिनी व बालकोंको सुखदात्री है ॥ १ ॥ जिसको देखकर व विशेषतासे शुक्लपक्षवाली चैत्रकी अष्टमीमें पूजकर मनुष्य कहीं परिवार के क्लेश को नहीं पावैहै ॥२॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहां पर उस रेवती देवी को किसने भलीभांति थापन कियाहै और वह रूपवती किस प्रभाववाली है इसको हम लोगोंसे कहिये ॥३॥ सूतजी बोले कि जब शेषजीने इस पुरके विनाशनेके लिये विषसे विकराल व क्रोधसे अतिलाल लोचनोवाले अनेक प्रकारके नागोंको आज्ञा दिया है ॥४॥ तब पुत्रशोचसे पीड़ित उन शेषजीकी उस प्यारी (स्त्री)ने आपही अगाड़ी जाकर परिवार समेत उस ब्राह्मण को भक्षण करलिया कि जिसने पुत्रको मारा था

इसके अनन्तर जो भद्रिका नामक उस द्विजेन्द्रकी बहिन हुई है बालवैधव्यसे संयुत व तपस्या युक्त तथा ब्रह्मचर्य्य में हर्ष कियेहुई उसने सब परिवारको खाया हुआ देखकर॥ ५ । ६ । ७ ॥ तदनन्तर हाथ से जललेकर नागकी स्त्री से कहा कि हे दोजिह्वावाली नागिनि ! जिस लिये कि तुमने मेरे परिवारको नाश करदिया व मेरे भाई लोगोंसे उपजेहुयेदुःखको दिखलाया उसीसे नागयोनिमें वर्तमानहुई तुमको मैं शापदेतीहूं कि वैसेही तुमभी अतिनिन्दित मनुष्यभावको भलीभांति पाकर व मनुष्य से उपजे हुये पतिको पाकर व पुत्र,पोतोंको प्राप्तहोकर और उनसबोंके विनाशसे उपजेहुये बड़े भारी मनुष्यवाले दुःखको पावो इसके अनन्तर भद्रिकासे उपजे हुये उस

नागपत्नींततःप्राहजल भगिन्यासीत्तपोयुक्ताब्रह्मचर्य्यकृतक्षणा ॥ साहष्ट्वाभक्षितंसर्वं भद्रिकाख्याकुटुम्बकम् ॥ ७ ॥ मादायपाणिना ॥ यस्मात्त्वयाकुटुम्बंमे नाशंनीतंद्विजिह्वके ॥ ८ ॥ दर्शितंचमहद्दुःखं ममबन्धुजनोद्भवम् ॥ तथा त्वमपिसम्प्राप्य मानुषत्वंसुगर्हितम् ॥ ९ ॥ मानुषंपतिमासाद्य पुत्रपौत्रानवाप्यच॥ तेषांविनाशजंदुःखं महान्तम्मा नुषंतथा ॥ १० ॥ नागत्वेवर्तमानायाशापंतेनददामिते ॥ सापिश्रुत्वाथतंशापं रेवतीभद्रिकोद्भवम् ॥ ११ ॥ क्रोधेनम हताविष्टा अपश्यत्तांद्रुतंतथा ॥ अथतस्यास्तनुंप्राप्य नागीदंष्ट्राविषोल्बणा ॥ १२ ॥ जगामशतधानाशं विविधेनत्वचं क्वचित्॥ततस्सालज्जयाविष्टा स्वरक्तप्लावितानना॥१३॥ विषसाविश्रमार्थाय सन्निविष्टाधरातले ॥ एतस्मिन्नन्तरेनागा स्तथान्येचसमागताः ॥ १४॥ रेवतींतेसमालोक्य तथारूपांभयान्विताम् ॥ प्रोचुश्चकिमिदंदेवि तववक्त्रेरुजास्पदम् ॥ १५ ॥ अथवाकिम्प्रभावोयं कस्यचिद्रक्तसम्पदा ॥१६॥ रेवत्युवाच ॥ येयंदुष्टतमाकाचिद्दृश्यतेदुष्टतापसी॥अस्याजा

शापको सुनकर उस रेवतीनेभी॥८।९।१०।११॥बड़े क्रोधसे संयुक्त होकर उसको शीघ्रही डसलिया इसकेअनन्तर विषसे भयङ्कर नागिनीकी दाढ़ सौ खंड होकर नाश होगई व कहींपर त्वचाको न बेध किया इसके अनन्तर लज्जासे संयुक्त व अपने रक्तसे डूबे हुये मुखवाली वह नागिनि ॥ १२।१३ ॥ विषादमें प्राप्त होतीहुई विश्राम करने के लिये भूमिमें भलीभांति बैठगई इसी अवसरमें वैसेही और भी नाग भलीभांति आये ॥ १४ ॥ व उन्होंने वैसे रूपवाली व भयसंयुक्त रेवतीको भलीभांति देखकर कहा कि हे देवि ! तुम्हारे मुखमें क्या यह व्याधिस्थान है ॥ १५ ॥ अथवा किसीके रक्तकी सम्पदासे यह क्या प्रभावहै ॥ १६ ॥ रेवती बोली कि हे नागोत्तमो! जो

यह अतिदुष्टा कोई निन्दित तपस्विनी देखपड़तीहै मेरे मुखमें यह विकार इसीसे उत्पन्नहुआ है ॥ १७ ॥ हे सर्पोत्तमो ! जिस दुर्बुद्धि ब्राह्मण के पुत्रने इस समय मेरे पुत्रको मारा है उसी की यह बडी दुष्टा बहिन है जोकि मेरे नाशके लिये भलीभाति स्थित है व उसी से इससमय मेरे मुख में रक्त है इसलिये शीघ्रही भक्षण करिये भक्षण करिये ॥ १८ । १९ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित होतेहुये उन सर्पोंने साधारण स्त्रीकी नाई उस तपस्विनीके समस्त अङ्गोंमें साथही डसलिया ॥ २० ॥ तदनन्तर जैसे शेषपत्नी (नागिनि) की दाढ़ टूटगईथी वैसेही उन सर्पोंकेभी मुखसे दाढ़ निकलगई उसके उपरान्त रुधिर पैदाहुआ ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर नागों

तोविकारोयं ममास्येनागसत्तमाः ॥ १७ ॥ तस्मादेषामहादुष्टा भगिनीतस्यदुर्मतेः ॥ येनमेनिहतःपुत्रो द्विजपुत्रेणसा
म्प्रतम् ॥ १८ ॥ भक्ष्यतांभक्ष्यतांशीघ्रं ममनाशायसंस्थिता ॥ साम्प्रतम्मन्मुखेतेन रुधिरंपन्नगोत्तमाः ॥ १९ ॥ अथ
तेपन्नगाःक्रुद्धाददृशुस्तान्तपस्विनीम् ॥ समंसर्वेषुगात्रेषु यथान्याम्प्राकृतांस्त्रियम् ॥ २० ॥ ततस्तेषामपितथामुखा
द्दंष्ट्राविनिर्गता ॥ रुधिरंचततोजज्ञे शेषपत्न्यायथातथा ॥२१॥ अथतस्याःप्रभावन्तं दृष्ट्वातेनागसुन्दराः ॥ शेषाभयप
रित्रस्ताः प्रजग्मुश्चदिशोदश ॥ २२ ॥ भद्रिकापिजगामाशु स्वाश्रमंप्रतिदुःखिता ॥ भयत्रस्तैस्समन्ताच्चवीक्ष्य
माणामहोरगैः ॥ २३ ॥ ततस्सर्वंसमालोक्य त्यज्यमानंमहोरगैः ॥ तत्स्थानंस्वजनैर्मुक्तंदुःखेनमहतान्वितैः ॥ २४ ॥
जगामान्यत्रसासाध्वी सम्यग्व्रतपरायणा ॥ तीर्थयात्राम्प्रकुर्वाणा परिबभ्राममेदिनीम् ॥ २५ ॥ एवमुद्वासितेस्थाने त
स्मिन्सारेवतीतदा ॥ स्मृत्वातंभद्रिकाशापंदुःखेनमहतान्विता ॥ २६ ॥ कथम्मेमानुषेगर्भेशापाद्वासोभविष्यति ॥ मानु

में सुन्दर वे शेष उसके उस प्रभाव को देखकर भयभीत होतेहुये दशो दिशाओंमें चलेगये ॥२२॥ व भयभीत महासर्पोंसे चारोंओर देखी जातीहुई वह दुःखित भद्रिका भी शीघ्रही अपने आश्रम को चलीगई ॥ २३ ॥ तदनन्तर बड़े दुःखसे संयुत अपने जनों से छूटे व महासर्पों से त्यागेहुये उस समस्त स्थान को भलीभांति देखकर भलीभांति व्रतों में तत्पर उस पतिव्रता भद्रिका ने अन्यत्र गमन किया व तीर्थयात्राको करतीहुई पृथ्वीका भ्रमण किया ॥ २४ । २५ ॥ व जब वह स्थान इस प्रकार उजाड़ होगया तब रेवती उस भद्रिकाके शापको स्मरणकर बड़े दुःखसे संयुतहुई ॥ २६ ॥ कि शापसे मनुष्यवाले गर्भ में मेरा कैसे निवास होगा व मनुष्य पति से

मेरा कैसे संयोग होगा ॥ २७ ॥ यह पुत्रसे उपजाहुआ दुःख हृदय में वैसे नहीं बाधाकरता है कि जैसे यह मनुष्यगर्भ में मनुज प्रति निवास दुःख देताहै ॥ २८ ॥
वैसेही दांतोंसे त्यागेहुये अपने मुखको कैसे पतिको दिखलाऊंगी क्योंकि मेरे इस घावमें क्षार (प्रवाह) स्थितहै ॥ २९ ॥ इसलिये इसी क्षेत्रमें विशेषकर टिकीहुई मैं
तपस्या करूंगी और बिन पुत्रके कियेहुये घरको प्राप्तहोकर मैं क्या करूंगी ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस समय भलीभांति श्रद्धासंयुत होतीहुई उस रेवतीने सुरेश्वरी पार्वती
देवीको थापकर चन्दन,पुष्प, उपहार से व अनेकप्रकारके नैवेद्यों से व गाने, नाचने और मनोहर बाजनों से आराधन किया ॥ ३१ । ३२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई सुरे-

यथेयंमानुषङ्गर्भेसंवासोमानुषम्प्र
षेणचकान्तेनप्रभविष्यातिसङ्गमः ॥ २७ ॥ नैतत्पुत्रोद्भवंदुःखन्तथामांबाधतेहृदि ॥ यथेयंमानुषङ्गर्भेसंवासोमानुषम्प्र
ति ॥ २८ ॥ तथादशनसंत्यक्तंकथंभर्तुस्स्वमाननम् ॥ दर्शयिष्यामिभूयोपित्तत्क्षारोत्रमेस्थितः ॥ २९ ॥ तस्मात्तप
श्चरिष्यामिक्षेत्रेऽत्रैवव्यवस्थिता ॥ किङ्करिष्यामिसम्प्राप्यगृहम्पुत्रंविनाकृतम् ॥ ३० ॥ ततश्चाराधयामाससम्यक्छ्र
द्धासमन्विता ॥ अम्बिकांसातदादेवींस्थापयित्वासुरेश्वरीम् ॥ ३१ ॥ गन्धपुष्पोपहारेणनैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ गीतनृत्यै
स्तथावाद्यैर्मनोहारिभिरेवच ॥ ३२ ॥ ततःकतिपयाहस्यतस्यास्तुष्टासुरेश्वरी ॥ प्रोवाचवरदास्मीतिप्रार्थयस्वहृदिस्थि
तम् ॥ ३३ ॥ रेवत्युवाच ॥ अहंशप्तापुरादेविब्राह्मण्याकारणान्तरे ॥ पतिंमानुषमासाद्यस्वयम्भूत्वाचमानुषी ॥ ३४ ॥
ततस्सम्प्राप्स्यसिफलंतेषांनाशसमुद्भवम् ॥ महद्दुःखंस्वपुत्रोत्थंममशापान्निपीडिता ॥ ३५ ॥ तथाममसुखाद्दंष्ट्रास्स
न्नीताश्चसुरेश्वरि ॥ तेषांचसम्भवस्तावत्कथंस्यात्तेप्रभावतः ॥ ३६ ॥ भवन्तुतनयास्माकंयथावंशविवर्द्धनाः ॥ एतन्मे

श्वरी पार्वतीने किसी दिन उस रेवती से कहा कि मैं वर देनेवालीहूं तुम हृदय में टिकेहुए मनोरथको मांगो ॥ ३३ ॥ रेवती बोलीं कि हे देवि ! पुरातन समय अन्य
कारण मे मुझको ब्राह्मणीने शाप दियाहै कि तुम आपही मानुषी (स्त्री) होकर व मनुष्य पतिको पाकर ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मेरे शापसे पीड़ित होती हुई तुम उनके
नाशसे उपजेहुए फलको व अपने पुत्रसे उठेहुए दुःखको पावोगी ॥ ३५ ॥ हे सुरेश्वरि ! वैसेही मेरे मुखसे दाढ़ें हरलीगई तुम्हारे प्रभावसे उनकी उत्पत्ति निश्चयकर किस

प्रकार होवै ॥ ३६ ॥ व हे देवि ! जिसप्रकार मेरे पुत्र वंशके विशेषकर बढ़ानेवाले होवैं यही मेरा अभिलाषहै मैं और वस्तु नहीं मांगतीहूं ॥ ३७ ॥ देवी बोली कि हे शोभने ! इस विषय में तुमको किसीप्रकार भी भय न करना चाहिये जोकि मनुष्य गर्भमें निवास व मनुष्य पति होगा ॥ ३८ ॥ इसलिये हे उत्तम वर्णवाली रेवती ! इस समय तुम्हारे लिये जो दुःख नाशकारक व सत्य वचनको तुमसे कहतीहूं उस मेरी वाक्यको सुनो ॥ ३९ ॥ कि देवताओं के कार्यकी अवश्य सिद्धिके लिये तुम्हारा पति इस त्रिलोक में मनुष्यके शरीरको करके निरसन्देह उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ हे शुभे ! वैसेही ब्राह्मण की शापसे तक्षकनामक नाग सौराष्ट्रदेशमें रैवतनामक राजा

वाञ्छितन्देविनान्यत्संप्रार्थयाम्यहम् ॥ ३७ ॥ देव्युवाच ॥ नात्रत्रासस्त्वयाकार्यःकथञ्चिदपिशोभने ॥ मनुष्यगर्भसंवासोभर्त्ताचभवितानरः ॥ ३८ ॥ तस्माच्छृणुष्वमेवाक्यंयत्त्वांवक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ दुःखनाशकरन्तुभ्यंसत्यञ्चवरवर्णिनि ॥ ३९ ॥ उत्पत्स्यतिनसन्देहोदेवकार्यप्रसिद्धये ॥ तवभर्त्तात्रिलोकेस्मिन्कृत्वामानुषविग्रहम् ॥ ४० ॥ तत्तक्षाख्यस्तथानागःद्विजशापात्तथाशुभे ॥ सौराष्ट्रविषयेराजारैवताख्योभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यत्वेमङ्करीभार्यानागवंशसमुद्भवा ॥ भविष्यतिनसन्देहोविशिष्टाविप्रशापतः ॥ ४२ ॥ तस्यागर्भंसमासाद्यत्वंजन्मसमवाप्स्यसि ॥ समरूपस्यशेषस्यपुनर्भार्याभविष्यसि ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वन्देविमाशोकङ्कार्य्येस्मिन्कुरुशोभने ॥ तेनमानुषजेगर्भेसम्भूतिस्सम्भविष्यति ॥ ४४ ॥ तत्रपश्यसियन्नाशंस्वकुटुम्बसमुद्भवम् ॥ हितायतदवस्थायास्त्वंभविष्यस्यसंशयम् ॥ ४५ ॥ ततःपरंयुगंप्राप्तंयतोभीरुभविष्यति ॥ तदूर्ध्वंमृत्युधर्माणोम्लेच्छास्स्थास्यन्तिसर्वतः ॥ ४६ ॥ ततस्स्वर्गनिवासार्थंभगवान्देव

होगा ॥ ४१ ॥ व उसकी नागवंशमें उपजीहुई उत्तमा क्षेमंकरीनामक स्त्री निरसन्देह होगी ब्राह्मणकी शापसे उसके गर्भको प्राप्तहोकर तुम जन्म पावोगी फिर शेषके समान रूपवाले पुरुषकी स्त्री होगी ॥ ४२।४३ ॥ इसलिये हे शोभने, देवि ! तुम इस कार्य्य में शोच मतकरो उसी कारण मनुष्य से उपजेहुए गर्भमें उत्पत्ति होगी ॥४४॥ व उसी मनुष्य योनिमें अपने जो कुटुम्ब से उपजाहुआ नाशहै उसको देखोगी व उस दशाके हितके लिये तुम निरसन्देह होगी ॥ ४५ ॥ हे भीरु ! तदनन्तर और युग प्राप्त होगा उसके उपरान्त मृत्यु धर्मवाले याने मनुष्य म्लेच्छ होकर सब ओर स्थित होवैंगे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर स्वर्ग में निवास के लिये देवकी के पुत्र भगवान्

(कृष्ण) जी आपही समस्त कुलको नाश करैंगे ॥ ४७ ॥ व तुम्हारे मुखमें फिर मनोहर दाढ़ैं होंगी इसलिये तुम पातालको जाव्रो जहां कि तुम्हारा पति टिकाहै ॥ ४८ ॥ हे कल्याणि! और भी जो कुछ मनोरथ तुम्हारे चित्तमें विशेपतासे टिकाहो उसको कहो क्योंकि मेरे बड़ी प्रसन्नता स्थितहै ॥ ४९ ॥ रेवतीजी बोलीं कि हे देवेशि! मेरे नामसे तुमको सदैव इसी स्थान में टिकना चाहिये जिससे स्थावर, जङ्गम समेत त्रिलोकमें मेरा यश होवै ॥ ५० ॥ वैसेही नागलोक से आकर मैं सदैव अष्टमी, चतुर्दशीमें और विशेषकर नवमी दिनमें तुमको पूजूंगी ॥ ५१ ॥ व कुआरके शुक्लपक्षमें समस्त नागों से संयुत व परम श्रद्धायुक्त होकर मैं तुम्हारा बड़ा पूजन करूंगी ॥

भविष्यन्तिपुनर्दंष्ट्रास्तववक्त्रेमनोरमाः ॥ तस्मात्त्वङ्गच्छपाकीसुतः ॥ हरिष्यातिकुलंसर्वंस्वयमेवनसंशयः ॥ ४७ ॥ तालंस्वभर्त्तायत्रतिष्ठति ॥ ४८ ॥ अन्यच्चापियदिष्टन्तेकिञ्चिच्चित्तेऽव्यवस्थितम् ॥ तत्कीर्तयस्वकल्याणिमहांस्तोषोममस्थितः ॥ ४९ ॥ रेवत्युवाच ॥ स्थानेस्थेयंसदात्रैवममनाम्नासुरेश्वरि ॥ येनमेजायतेकीर्तिस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ५० ॥ तथाहंनागलोकाच्चचतुर्दश्यष्टमीषुच ॥ सदात्वांपूजयिष्यामिविशेषान्नवमीदिने ॥ ५१ ॥ आश्विनस्यसितेपक्षेसर्वैर्नागैःसमन्विता ॥ प्रपूजांतेविधास्यामिश्रद्धयापरयायुता ॥ ५२ ॥ तस्मिन्नहनियेऽन्येचपूजान्दास्यन्तितेनराः ॥ मापश्यन्तुप्रसादात्तेनरास्तेवल्लभक्षयम् ॥ ५३ ॥ देव्युवाच ॥ एवंभद्रेकरिष्यामिवासोमेत्रभविष्यति ॥ त्वन्नाम्नापूजकानाञ्चश्रेयोदास्यामितेसदा ॥ ५४ ॥ महानवमिजेचाह्निविशेषेणशुचिस्मिते ॥ ५५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तातपासाथरेवतीशेषवल्लभा ॥ जगामस्वगृहंपश्चाद्धर्षेणमहतान्विता ॥ ५६ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीतस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिता ॥ तन्नाम्नाकामदानन्दा

५२ ॥ व उसी दिन जे अन्य पुरुष तुमको पूजन देवैं वे तुम्हारी प्रसन्नता से प्रियका विनाश मतिदेखैं ॥ ५३ ॥ देवी बोलीं कि हे कल्याणि! मैं ऐसाही करूंगी व यहां मेरा निवास होगा और तुम्हारे नामसे पूजक पुरुषोंको मैं सदैव कल्यान दूंगी ॥ ५४ ॥ व हे शुचिस्मिते याने पवित्र मुसक्यानवाली! महा नवमी से उपजेहुए दिनमें पूजन करनेवाले जनोंको विशेषकर कल्याण दूंगी ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले कि उस देवीसे इसभांति कहीहुई वे शेषजी की प्यारी (स्त्री) रेवती पश्चात् बड़े हर्षसे संयुत होती हुई निजघरको चलीगई ॥ ५६ ॥ तबसे लगाकर कामनाओंकी दात्री व समस्त विपत्तियों की विनाशनेवाली व आनन्दरूपिणी वे देवीजी उस नामसे विशेषकर टिकती

भई ॥ ५७ ॥ वे दुर्गा अम्बा कहीजाती हैं और वह नागपत्नी रेवती कहलाती है उसी कारण भूतलमें मनुष्यों से अम्ब रेवती भलीभांति कहीजाती हैं ॥ ५८ ॥ व कुंवार महीने के शुक्लपक्षमें नवमी तिथिको सावधान होताहुआ श्रद्धासंयुत जो पुरुष पवित्र होकर उन अम्ब रेवतीको पूजन करै है ॥ ५९ ॥ वह बर्ष भरतक निजवंश से उपजेहुए दुःखको नहीं पाताहै व ग्रह भूत पिशाचों से उठेहुए व अन्य आपत्तियों से संयुत बालक उसके आगे धराहुआ दोषो से छूटजाताहै ॥ ६० । ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येअम्बारेवतीमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ॥

सर्वव्यसननाशिनी ॥ ५७ ॥ अम्बासाकीर्त्यतेदुर्गारेवतीसोरगप्रिया ॥ ततस्सङ्कीर्त्यतेलोकैर्भूतलेचाम्बरेवती ॥ ५८ ॥ यस्तांश्रद्धासमोपेतःशुचिर्भूत्वाप्रपूजयेत् ॥ नवम्यामश्विनेमासेशुक्लपक्षेसमाहितः ॥ ५९ ॥ नससंवत्सरंयावद्व्यसनंस्वकुलोद्भवम् ॥ तस्याग्रेनिहितंबालंयुक्तंदोषैर्विमुच्यते ॥ ६० ॥ ग्रहभूतपिशाचोत्थैस्तथान्यैरपिचापदैः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येअम्बारेवतीमाहात्म्यन्नामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

ऋषयऊचुः ॥ भद्रिकाख्यापुराप्रोक्तायात्वयासूतनन्दन ॥ कस्मात्तस्याःशरीरात्तादंष्ट्रानागसमुद्भवाः ॥ १ ॥ विशीर्णाःकिंप्रभावश्चतत्तपस्सूतनन्दन ॥ किंवामन्त्रप्रभावश्चएतन्नःकौतुकम्परम् ॥ २ ॥ यन्मानुषशरीरेपिविशीर्णास्ताविषोल्वणाः ॥ नागानान्तुविशेषेणतस्मात्सर्वंप्रकीर्तय ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ सापुराब्राह्मणीबाल्येवर्तमानापितुर्गृहे ॥ वैधव्येनसमायुक्ताजाताकर्मविपाकतः ॥ ४ ॥ ततोबाल्येपिसुश्रावशास्त्राणिविविधानिच ॥ देवयात्राम्प्रचक्रेथतीर्थेस्नाति

दो० ॥ भूतलमें उपज्यो यथा तीर्थ भद्रिका नाम । इकसौ चौदहवें कह्यो सोइ चरित अभिराम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत पुत्र! पुरातन समय तुमसे जो भद्रिका नामक कहीगई है उसके शरीरके स्पर्श से वे नागसे उपजीहुई दाढ़ैं किसकारण टूट गई व हे सूतनन्दन! क्या उसके तपका प्रभाव था अथवा क्या मंत्रका प्रभाव था यह हमको परम आश्चर्य्य है ॥ १ । २ ॥ जिस कारण कि विशेषकर विपसे भयङ्करनागोंकी वे दाढ़ैं मनुष्यके शरीर में भी टूटगईं इसलिये समस्त वृत्तान्त को कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय पिताके घरमें बाल्यावस्थामें वर्तमान वह ब्राह्मणी कर्म के फलसे वैधव्यता से संयुतहुई ॥ ४ ॥ तदनन्तर शिशुता में भी उसने

अनेकप्रकारों के शास्त्रोंको सुना व देवयात्रा किया इसके अनन्तर सावधान होतीहुई वह तीर्थमें स्नान करती थी ॥ ५ ॥ वैसेही सावधान होतीहुई उसने नित्य प्रातःकाल उठकरके केदारदेवको जाकर भक्तिसे उनके अगाड़ी गानकिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उसके गानेकी आकांक्षा से ब्राह्मणरूपके धारनेवाले तक्षक व वासुकी दोनों पाताल से भलीभांति आकर प्राप्तहुए ॥ ७ ॥ और उसने भी वहांपर उससमय समस्त तालों से भूषित व मूर्छना (स्वर के चढ़ाने व उतारने के क्रम) से संयुत व सातों स्वरों से शोभित व अलग २ यतियों (विरामों) और ग्रामों व वर्णग्रामों से संयुत बड़ा भारी गानकिया व तत (बीणादिक बाजा) व वितत, घन (झांझ मंजीरादि) व सुषिर

समाहिता ॥ ५ ॥ तथाकेदारदेवञ्चगत्वानित्यंसमाहिता ॥ प्रातरुत्थायगीतञ्चभक्त्याचक्रेतदग्रतः ॥ ६ ॥ ततस्तद्गीतलौल्येनपातालात्समुपेत्यच ॥ तक्षकोवासुकिश्चैवद्विजरूपधरावुभौ ॥ ७ ॥ सापितत्रमहद्गीतंतालैस्सर्वैरलंकृतम् ॥ मूर्च्छनाभिस्समोपेतंसप्तस्वरविराजितम् ॥ ८ ॥ यतिभिश्चतदाग्रामैर्वर्णग्रामैःपृथक्पृथक् ॥ ततश्चविततश्चैवघनंसुषिरमेवच ॥ ९ ॥ तालःकालक्रियामानोवर्द्धमानादिकञ्चयत ॥ अविदग्धापिसातेषाङ्गीताङ्गानांद्विजाङ्गना ॥ १० ॥ केवलंकण्ठसंशुद्ध्यातांभ्यान्तोपंसमादधे ॥ ततस्तद्गीतलोभेनसर्वेतत्पुरवासिनः ॥ ११ ॥ प्रातरुत्थायकेदारंसमागच्छन्तिकौतुकात् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यनागौतौस्वपुरंप्रति ॥ १२ ॥ आनिन्यतुःसमुद्यम्यसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ नागरूपंसमाधायरौद्रंजनविभीषणम् ॥ १३ ॥ भोगाग्रेणचसंवेष्ट्यपातालतलमीयतुः ॥ अथतांस्वगृहंनीत्वाप्रोचतुर्कामपीडितौ ॥ १४ ॥

(वंशीआदि) ॥ ८ । ९ ॥ व समय और कर्मके प्रमाणवाला ताल व जो वर्द्धमान याने लय आदिका बढ़ानाहै उन गानेके अंगोंमें अप्रवीण भी उस द्विज कन्याने ॥ १० ॥ केवल गलेकी संशुद्धिसे उन दोनों के लिये प्रसन्नताको समाधान किया तदनन्तर उसके गानकेलोभसे वे समस्त उस पुरके वासी ॥ ११ ॥ प्रातःकाल उठकर कुतूहलसे केदार क्षेत्रको भलीभांति आतेथे इसके अनन्तर किसी समय वे दोनों नाग मनुष्यों के डरपाने वाले भयङ्कर नाग रूपको धारणकर समस्त जनों के देखतेहुये भलीभांति उद्योग कर लेआये ॥ १२ । १३ ॥ व शरीर के अग्रभाग से भलीभांति लपेटकर पाताल तलको आये इसके अनन्तर उसको अपने घरमें लाकर कामदेव से व्यथितहोतेहुए

वे दोनोंबोले ॥ १४ ॥ कि हे चौड़े नयनवाली ! धर्म में लगीहुई तुम हम दोनों कीस्त्रीहोवो इसीलिये भूतल से तुम पातालको भलीभांति लाई गई हो ॥ १५ ॥ भद्रिका बोली कि हे तक्षक ! जिसकारण ब्राह्मणके वंशमें उपजी व रतिके उछाहको न चाहतीहुई मुझको तुम शीघ्रही अपहरण करलायेहो ॥ १६ ॥ व मनुष्यवाले रूपको प्राप्तहोकर कामदेव से ताडित चित्त या मनवाले तुम मेरेआगे भलीभांति टिकेहो इसलिये मनुष्यहोगे ॥ १७ ॥ व दुष्ट आचरणवाले तुम यदि बलसे मेरी धर्षणकरोगे तो शीघ्रही तुम्हारा मस्तक सौ खंड होजावैगा ॥ १८ ॥ उसभद्रिकाकी उसबड़ीभारी शापको सुनकर तदनन्तर हाथ जोड़कर खड़े व भयसे विकलहोतेहुये उसतक्षकने

भवाभ्यांविशालाक्षिभार्याधर्मपरायणा ॥ एतदर्थंसमानीतात्वंपातालेमहीतलात् ॥१५॥ भद्रिकाउवाच ॥ यत्त्वंतक्षकमांशान्तामनपेक्षांरतोत्सवम् ॥ आनैषीरपहृत्याशुब्राह्मणान्वयसम्भवाम् ॥ १६ ॥ मानुषंरूपमास्थायपुरोमेत्वंसमाश्रितः ॥ कामोपहतचित्तात्मातस्मान्मर्त्योभविष्यसि ॥ १७ ॥ यदिमान्त्वंदुराचारोधर्षयिष्यसिवीर्यतः ॥ शतधातवमूर्द्धाचसद्यएवभविष्यति ॥ १८ ॥ तंश्रुत्वातुमहाशापंतस्याःसभयविह्वलः ॥ ततःप्रसादयामासकृताञ्जलिपुटःस्थितः॥१९॥ मयात्वङ्कामसक्तेनसमानीतासुमुह्यता ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेशापस्यान्तोयथाभवेत् ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रसादितातेनतक्षकेनद्विजात्मजा ॥ ततःप्रोवाचतन्नागंबाष्पव्याकुललोचना ॥ २१ ॥ यदिमांमर्त्यलोकेत्वंभूयोनयसितक्षक ॥ तस्यशापस्यपर्य्यन्तंकरिष्यामिनसंशयम् ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेज्ञात्वामानुषींस्वगृहागताम् ॥ तक्षकेनसमानीतांकामोपहतचेतसा ॥२३॥ ततस्तस्यकलत्राणिमहेर्ष्यासंश्रितानिच ॥ तस्यानाशार्थमाजग्मुःकोपरक्तेक्षणानिच ॥ २४ ॥

प्रसन्नकराया ॥ १९ ॥ कि कामदेवमें आसक्त व अतिमोहित होतेहुये मुझसे तुम लाईगईहो इसलिये मेरे ऊपर वैसी प्रसन्नताकरो कि जिसप्रकार शापका अन्तहोवै ॥ २० ॥ सूतजीबोले कि तदनन्तर इसप्रकार उस तक्षकसे प्रसन्नकराईगई द्विजकन्या आंसुओं से विकललोचनोंवाली होकर उसनाग से बोली ॥२१॥ कि हे तक्षक ! यदि तुम मृत्युलोक को मुझे फिर लेचलोगे तो निस्सन्देह उस शाप का अन्तकरूंगी ॥ २२ ॥ इसी अवसर में कामदेव से ताडित चित्तवाले तक्षक से भलीभांति लाई व घर में आईहुई मानुषीको जानकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर कोपसे लाललोचनोंवाली व बड़ी ईर्षा से संयुत उस तक्षककी स्त्रियां उसभद्रिका के नाश करने के लिये आईं ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर शापके अन्तको चाहताहुआ व उस पापसे भय संयुत उस तक्षक ने उन स्त्रियों के इङ्गितको जानकर ॥ २५ ॥ उनसपौं से उपजीहुई विद्याको स्मरण किंया तदनन्तर वैसेही उसके शरीरको रक्षाकेलिये युक्त किया इसके अनन्तर नागिनिप्राप्तहुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर सौतिको मानतीहुई क्रोधितहोकर सांपिनिने पतिव्रता द्विजकन्या को डसलिया व उच्चप्रकारसे गिरीहुई दाढ़ोंवाली होगई ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मण से उपजीहुई उसक्रोधित द्विजकन्या ने भी ईर्षा समेत सौतिसे उपजेहुये भावों से बर्तमानहुई उस नागिनिको देखकर शापदिया ॥ २८ ॥ कि हे पापिनि ! जिसकारण तुम दोषरहित मुझको सदोपासी मानतीहो इसलिये शीघ्रहीदुःख

अथतासाम्परिज्ञायतक्षकःसविचेष्टितम् ॥ वाञ्छञ्छापस्यपर्यन्तन्तत्पापाद्भयसंयुतः ॥ २५ ॥ तज्जातामस्मरद्विद्यांतस्यागात्रन्ततस्तथा ॥ योजयामासरक्षार्थंप्राप्ताचाथभुजङ्गमी ॥ २६ ॥ अदशत्तान्ततःक्रुद्धाब्राह्मणस्यसुतांसतीम् ॥ सपत्नींमन्यमानोच्चैःशीर्षादंष्ट्राव्यजायत ॥ २७ ॥ अथतामपिसाक्रुद्धाशशापद्विजसम्भवा ॥ दृष्ट्वासापत्न्यजैर्भावैर्वर्तमानांसहेर्ष्यया ॥ २८ ॥ यस्मात्त्वंदोषहीनांमांसदोषामिवमन्यसे ॥ तस्माद्भवद्रुतंपापेमानुषीदुःखभागिनी ॥ २९ ॥ अथतांसंगृहीत्वासतक्षकोनागसत्तमः ॥ केदारायतनेतस्मिन्नर्द्धरात्रौमुमोचह ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतान्देवींकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ शापान्तंकुरुमेसाध्विस्वगृहंयेनयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ सौराष्ट्रविषयेराजात्वंभविष्यसिपन्नग ॥ भूमौरैवतकोनामभोगानांभाजनंसदा ॥ ३२ ॥ ततश्चायतनंकृत्वाक्षेत्रेष्वाश्रममध्यतः ॥ तंप्राप्स्यसिनिजंस्थानंतत्क्षेत्रस्यप्रभावतः ॥ ३३ ॥ तक्षकउवाच ॥ एषाममप्रियाकान्तात्वयाशापेनयोजिता ॥ यासाभवतुमेभार्यामानुषत्वेपिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

को भजनेवाली मानुषीहोवो ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर उस नागोत्तम तक्षक ने उस को भलीभांति लेकर आधीरातको उस केदारजी के मन्दिर में छोड़दिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर हाथ जोड़ेखड़े हुये उसने उस देवीसे कहा कि हे सतीजी ! मेरे शापका अन्तकीजिये कि जिससे मैं घरको जाऊं ॥ ३१ ॥ भद्रिका बोली कि हे पन्नग ! सदैव भोगों के पात्ररूप तुम भूमिमें सौराष्ट्रदेश में रैवतक नामक राजाहोगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्षेत्रों में आश्रम के बीचमें मन्दिरको बनाकर उस क्षेत्रके प्रभाव से अपने स्थानको प्राप्तहोगे ॥ ३३ ॥ तक्षक बोला कि जो यह मेरी प्यारी तुमसे शापसे योजितकीगई है वह मनुष्य योनिके भी वर्तमान होनेपर मेरी स्त्री होवै ॥ ३४ ॥

सब भांति से यांचतेहुये व मुझदीनके ऊपर इसप्रसन्नताको करिये क्योंकि अन्य पुरुषके साथ इसका संयोग मतहोवै ॥ ३५ ॥ भद्रिका बोली कि यह आनर्तदेशके स्वामी की शुभदायक कन्याहोगी तदनन्तर पाणिग्रहणको प्राप्तहोकर रूपयौवनसे शोभित क्षेमंकरी ऐसी प्रसिद्ध तुम्हारी स्त्रीहोगी इसके अनन्तर भूतल में उसके साथ बहुत से भोगोंको भोगकर फिर तुम उत्तम परलोकको जावोगे ॥ ३६।३७।३८ ॥ सूतजीबोले कि इस भांति उस भद्रिकासे कहा हुआ वह तक्षक क्षमाकरिये यह वचन से आदर पूर्वक कहकर व प्रणाम कर शीघ्रही अपने घरको चलागया ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर फिर केदार क्षेत्रकी भक्तिसे उसकेदारके देखने की इच्छावाले सैकड़ों ब्राह्मण व

एतत्कुरुप्रसादम्मेदीनस्यपरियाचतः ॥ मास्याभवतुचान्येनपुरुषेणसमागमः ॥ ३५ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ आनर्ताधिपतेरेषाभवित्रीदुहिताशुभा ॥ ततःपाणिग्रहंप्राप्यभार्यातवभविष्यति ॥ ३६ ॥ क्षेमंकरीतिविख्यातारूपयौवनशालिनी ॥ तयासार्द्धंबहून्भोगान्भुक्त्वाथधरणीतले ॥ ३७ ॥ परलोकंपुनस्त्वंवैचानुपास्यसिशोभनम् ॥ ३८ ॥ सूतउवाच ॥ एवंचसतयाप्रोक्तःक्षम्यतांवचसादरम् ॥ प्रणिपत्यजगामाशुतक्षकोनिजमन्दिरम् ॥ ३९ ॥ अथतस्यसमायाताःकेदारस्यदिदृक्षवः ॥ पुनःकेदारभक्त्याचब्राह्मणाःशतशःपरे ॥ ४० ॥ ततोदृष्ट्वासमायातांभद्रिकान्तांद्विजोद्भवाम् ॥ विस्मयेनसमायुक्ताःपप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ४१ ॥ कोसौब्राह्मणरूपेणनागःप्राप्तःसुशोभने ॥ तेनत्वंकुत्रनीतासिकिमर्थञ्चवदस्वनः ॥ ४२ ॥ कस्मात्पुनःप्रमुक्तासिसर्वंवदयथातथम् ॥ अत्रनःकौतुकञ्जातंसुमहत्त्वकारणात् ॥ ४३ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्साकथयामाससर्वंतक्षकसम्भवम् ॥ वृत्तान्तंनागसम्भूतंशापानुग्रहजन्तथा ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तंसर्वंतस्याःकु

अन्य पुरुषभलीभांतिआये ॥ ४० ॥ तदनन्तर द्विजसे उपजीहुई उस भद्रिकाको भली भांति आई हुई देखकर विस्मय से संयुतहुये व उसके उपरान्त उन्हों ने पूछा ॥ ४१ ॥ कि हे सुशोभने ! यह कौन नाग ब्राह्मण के रूप से प्राप्तहुआ था और वह किसलिये तुमको कहां लेगया था इसको हमलोगों से कहिये ॥ ४२ ॥ व फिर किस कारण तुमछोड़ीगई हो इससमस्त चरितको यथा तथ्य कहिये क्योंकि इस विषयमें तुम्हारे कारण हमलोगोंको बड़ाभारी आश्चर्य हुआहै ॥ ४३ ॥ सूतजीबोले कि तदनन्तर उसने तक्षक से उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको कहा व नागसे उत्पन्नवाले शापके अनुग्रहसे उपजेहुये चरितकोकहा ॥ ४४ ॥ इसी अवसरमें उसको वहां आईहुई

सुनकर दुःखसे विकल व अत्यन्तही रोताहुआ उस भद्रिका का समस्त परिवार प्राप्तहुआ ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर आंसुओंसे आकुल लोचनोंवाली उसकी उसमाताने व अन्य सखियों ने स्नेहवाले चित्तसे उस भद्रिकाको लिपटालिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर नागलोकसे उपजीहुई वार्ताकोबार २ सुनतेहुये विस्मयसे प्रवेशित चित्तवाले कुटुम्बी लोग अपने घरको लेगये ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर उस पुरमें समस्त पुरवासियोंने आपसमें कहा कि इस दुष्टात्मा ब्राह्मणने अयोग्यकिया ॥ ४८ ॥ क्योंकि पराये घरमें बसीहुई युवती कन्याको ले आया और भी जो ब्राह्मणोंकी अनेकों स्त्रियां युवती,रूपवती व वैधव्य से संयुतहैं उन सबों को भी यही न्यायहोजावैगा ॥ ४९।५० ॥ व उसी से

अथसाजननीतस्याबाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ सस्वजेता
टुम्बकम् ॥ रोरूयमाणन्दुःखार्तंश्रुत्वातान्तत्रचागताम् ॥ ४५ ॥ नागलोकोद्भवांवार्तांविस्मयावि
न्तथाचान्यासख्यःस्निग्धेनचेतसा ॥ ४६ ॥ ततोनिन्युर्गृहंस्वञ्चशृण्वन्तश्चमुहुर्मुहुः ॥ नागलोकोद्भवांवार्तांविस्मयावि
ष्टचेतसः ॥ ४७ ॥ अथतत्रपुरेपौरास्सर्वेप्रोचुःपरस्परम् ॥ अयुक्तंकृतमेतेनब्राह्मणेनदुरात्मना ॥ ४८ ॥ यदानीतासुतरुणी
परहर्म्योषितासुता ॥ अन्येषामपिविप्राणांसन्तिनार्योह्यनेकशः ॥ ४९ ॥ तरुण्योरूपवन्त्यश्चवैधव्येनसमन्विताः ॥
तासामपिचसर्वासामेषन्याय्योभविष्यति ॥ ५० ॥ योनिसङ्करजंनूनन्तस्यान्निर्वास्यतामिति ॥ एकीभूयततस्सर्वेब्राह्म
णन्तंद्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ सामपूर्वमिदंवाक्यंप्रोचुःशास्त्रसमुद्भवम् ॥ एषातवसुताविप्रतरुणीरूपसंयुता ॥ ५२ ॥ सानुरागेण
नागेनपातालेचसमाहृता ॥ साप्रवक्तिप्रमुक्ताहंनिर्दोषातेनरागिणा ॥ ५३ ॥ नश्रद्धांयातिलोकोयंशुद्धैषासमपाकृता ॥ त
स्माच्छुद्धिंद्विजेन्द्राणांप्रयच्छतुद्विजोत्तम ॥ ५४ ॥ येनान्येषामपिप्राज्ञविनश्यन्तिनयोषितः ॥ बाढमित्येवसप्रोक्त्वा

निश्चयकर योनि से उपजाहुआ दोषहोगा इसलिये यह निकालदियाजावै तदनन्तर समस्त द्विजोत्तमों ने एकताहोकर प्रिय वचन पूर्वक शास्त्रमें उपजेहुये इसवचनको उसब्राह्मण से कहा कि हे द्विज ! रूपसे संयुत व युवती यह तुम्हारी कन्या ॥ ५१।५२ ॥ स्नेह समेत नाग से पाताल में भलीभांति आहरण की गई और वह कहती है कि उस अनुरागी नागसे मैं निर्दोष छोड़ीगई ॥ ५३ ॥ परन्तु यह मनुष्य श्रद्धाको नहीं प्राप्तहोताहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! भलीभांति त्यागकीहुई यह शुद्ध कन्या

द्विजेन्द्रों को शुद्धिदेवै ॥ ५४ ॥ हे प्राज्ञ ! जिससे और मनुष्यों की भी स्त्री न विनाश होवै तदनन्तर हां यही कहकर उस ब्राह्मण ने एकान्तमें उस कन्या से पूछा ॥ ५५ ॥ कि यदि तुझमें कोई दोषहै तो कहो नहीं तो ब्राह्मणों की प्रसन्नताके लिये भलीभांति शुद्धिको देवो ॥ ५६ ॥ भद्रिकाबोली कि हे तात ! तुमने तथा और ब्राह्मणों ने भी योग्य कहाहै क्योंकि द्वारके नाँघनेसे भी स्त्री की शुद्धियोग्यहै ॥ ५७ ॥ फिर स्नेहवाले पुरुषके साथ परदेशको गई हुई स्त्रीको क्या कहनाहै इसलिये निस्सन्देह मैं प्रातःकाल नहाकर व अग्निमें पैठकर समस्त ब्राह्मणोंको निस्सन्देह शुद्धिकोदेऊंगी मैं मंत्रको तथा और भी जो कुछ है उसको जानतीहूं ॥ ५८।५९ ॥ व भलीभांति

ततस्तांविजनेसुताम् ॥ ५५ ॥ पप्रच्छयदितेदोषःकश्चिदस्तिप्रकीर्तय ॥ नोचेत्प्रयच्छसंशुद्धिंब्राह्मणानांप्रतुष्टये ॥ ५६ ॥ भद्रिकाउवाच ॥ युक्तमुक्तन्त्वयातातथान्यैरपिचद्विजैः ॥ युक्तास्याद्योषितःशुद्धिर्द्वारातिक्रमणादपि ॥ ५७ ॥ किम्पुनःपरदेशङ्गगतायारागिणासह ॥ तस्मादहंनसन्देहःप्रातःस्नात्वाहुताशनम् ॥ ५८ ॥ प्रविश्यसर्वविप्राणांशुद्धिंदास्याम्यसंशयम् ॥ अहम्मन्त्रञ्चजानामियच्चान्यदपिकिञ्चन ॥ ५९ ॥ दर्शयिष्यामिसम्प्रार्थ्यशुद्धिश्चैवहुताशनात् ॥ एवमुक्तस्तथासोथहर्षेणमहतान्वितः ॥ ६० ॥ प्रातरुत्थायदारूणिपुरबाह्येन्ययोजयत् ॥ भद्रिकापिततःस्नात्वाशुक्लाम्बरधराशुचिः ॥ ६१ ॥ सर्वैःपरिजनैस्सार्द्धंतथानिजकुटुम्बकैः ॥ प्रसन्नवदनाहृष्टाविष्णुध्यानपरायणा ॥ ६२ ॥ जगामतत्रयत्रास्तेसुमहान्दारुपर्वतः ॥ ततोवह्निसमादायस्वयंतत्रद्विजोत्तमाः ॥ ६३ ॥ प्रदक्षिणात्रयंकृत्वाप्राहचैवकृताञ्जलिः ॥ यदिमेस्तिकश्चिद्दोषःकामजोल्पोपिगात्रके ॥ ६४ ॥ कृतोवापिबलात्तेनतक्षकेनदुरात्मना ॥ अन्येनापिचके

प्रार्थनाकर अग्निसे शुद्धिको दिखलाऊंगी इसके अनन्तर इसभांतिकहेहुये उस द्विजने बड़े हर्षसे संयुतहोकर ॥६०॥ व प्रातःकाल उठकर पुरकेबाहर लकड़ियोंको इकट्ठा किया तदनन्तर पवित्र भद्रिका भी नहाकर श्वेतवसनों को धारे व प्रसन्न मुखी व विष्णुके ध्यानमें तत्पर तथा प्रसन्नहोतीहुई समस्त सखी आदिकों व कुटुम्बियों समेत ॥ ६१।६२ ॥ वहांगई जहां कि बड़ाभारी काठका पर्वत था तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वहांपर आपही अग्निको लेकर ॥ ६३ ॥ व तीन प्रदक्षिणाओं को करके हाथजोड़े हुई बोली कि यदि कामदेव से उपजाहुआ थोड़ा भी दोषमेरे किसी अंगमें है ॥ ६४ ॥ व उस दुष्टात्मा तक्षक ने बलसे दोषको कियाभीहो अथवा और किसी से अन्य

दोषहुआहो या होवै ॥ ६५ ॥ तो उसीकारण यह बढ़ीहुई अग्नि मुझको शीघ्रही जलावै ऐसाकहकर इसके अनन्तर वह पतिव्रता अपने घरके नाई पैठगई ॥६६॥ व अतिबढ़ी हुई अग्निचलीगई याने शान्तहोगई व क्षणभरमें जलमयहोगया व उस शुभदायककन्याने जलके बीच में प्राप्तहुये अपने शरीरको देखा ॥६७॥ इसके अनन्तर आकाश तलसे फूलोंकी बड़ीभारी बर्षाहुई व विमान पै बैठेहुये देवदूतने प्रगटही यह वचनकहा ॥ ६८॥ कि हे महाभागे ! अपने शरीरसे उपजेहुये चरित्रों से तुमपवित्रहो व तुम्हारे समान और कोई स्त्री न होगी ॥ ६९ ॥ हे महाभागे ! मनुष्यके शरीर में सब अंगोंमें जो साढ़ेतीन करोड़ रोम सदैव होते हैं ॥ ७० ॥ हे साध्वि ! उनके मध्यमें एक

नापिभविष्यत्यथवापरः ॥ ६५ ॥ तस्मात्प्रदहतुक्षिप्रंसमिद्धोयंहुताशनः ॥ एवमुक्त्वाथसासाध्वीप्रविष्टानिजहर्म्यंव त् ॥ ६६ ॥ सुसमिद्धोगतोवह्निर्यातोजलमयःक्षणात् ॥ साचपश्यतिचात्मानंजलमध्यगतंशुभा ॥ ६७॥ पपाताथमहा वृष्टिःकुसुमानांनभस्तलात् ॥ देवदूतोविमानस्थइदंवाक्यमुवाचह ॥ ६८ ॥ शुद्धासित्वंमहाभागेचरित्रैर्निजगात्रजैः ॥ नत्वयासदृशीचान्याकाचिन्नारीभविष्यति ॥ ६९॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीचयानिलोमानिमानुषे ॥ प्रभवन्तिमहाभागे सर्वगात्रेषुसर्वदा ॥ ७० ॥ तेषांमध्येनतेसाध्विपापमेकमपिकंचित् ॥ तस्माच्छीघ्रंगृहंगच्छनिजबान्धवसंयुता ॥ ७१ ॥ कुरुयज्ञानिपुण्यानिसमाराधयकेशवम् ॥ एतच्चैवचितास्थानंत्वदीयंजलपूरितम् ॥ ७२ ॥ तवनाम्नासुविख्यातंतीर्थंलो केभविष्यति॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्तिशयनेबोधनेहरेः॥७३॥तेयास्यन्तिपरांसिद्धिंदुष्प्राप्यममरैरपि॥ उक्त्वैवंविरतावाणी देवदूतसमुद्भवा ॥ ७४ ॥ भद्रिकातुततोहृष्टाप्रणम्यजनकंनिजम् ॥ नाहंगृहंगमिष्यामिकिंकरिष्याम्यहंगृहे ॥ ७५ ॥

भी रोम तुम्हारे किसी अंगमें पापी नहीं है इसलिये अपने भाइयोंसे संयुतहोतीहुई तुमशीघ्रही घरकोजावो ॥ ७१ ॥ व पुण्यदायक यज्ञोंकोकरो और विष्णुजीका आरा धनकरो और जलसे पूरित यह तुम्हारा चिताका स्थान ॥ ७२ ॥ तुम्हारे नामसे लोक में तीर्थ प्रसिद्धहोगा इस तीर्थ में विष्णुजी के शयन बोधन समय में जो मनुष्य स्नानकरैंगे ॥ ७३ ॥ वे देवताओं से दुर्लभ परमसिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ऐसाकहकर देवदूतसे उपजीहुई वाणी चुपहोरही ॥ ७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहोतीहुई भद्रिकाने अपने

पिताको प्रणाम करकहा कि मैं घरको न जाऊंगी क्योंकि घरमें जाकर मैं क्या करूंगी ॥ ७५ ॥ व इसी अपने तीर्थ में सदैव विष्णुजी को आराधन करूंगी व भिक्षाके अन्नसे भोजन करती हुई मैं तपको करूंगी ॥ ७६ ॥ इसलिये हे पिताजी ! तुम घरको जावो मैं इसी स्थान में टिकूंगी तदनन्तर उस कन्या का वह पिता और वे पुरवासी भी ॥ ७७ ॥ प्रसन्न होतेहुये व अलग अलग उस भद्रिकाकी प्रशंसा करते हुये घरको चले गये और पहले वहां पर उसने विष्णुजी की प्रतिमा को विशेषकर निर्माण किया ॥ ७८ ॥ पश्चात् उत्तम मन्दिर को बनाकर महादेवजी के लिङ्ग को स्थापन किया तदनन्तर चमत्कारपुरमें उपजे हुये समस्त नरों से प्रशंसित होतीहुई व भिक्षान्नसे किये

अत्रैवाराधयिष्यामिनिजतीर्थेसदाच्युतम् ॥ तथातपःकरिष्यामिभिक्षान्नकृतभोजना ॥ ७६ ॥ तस्मात्तातगृहंगच्छ स्थिताहंचात्रसंश्रये ॥ ततस्सजनकस्तस्यास्तेचापिपुरवासिनः ॥ ७७ ॥ सम्प्रहृष्टागृहंजग्मुःशंसन्तस्तांपृथक्पृथक् ॥ तथात्रैविक्रमीतत्रप्रतिमाप्राग्विनिर्मिता ॥ ७८ ॥ पश्चान्माहेश्वरंलिङ्गंकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ततःपरन्तपश्चक्रेभिक्षान्नकृतभोजना ॥ शंस्यमानाजनैस्सर्वैश्चमत्कारपुरोद्भवैः ॥ ७९ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ यथास्यात्सुदृढङ्कायमभेद्यंसंस्थितंसदा ॥ ८० ॥ सर्प्पाणाञ्चतथान्येषांशस्त्रादीनामपिद्विजाः ॥ यश्चैतत्पठते नित्यंभद्रिकाख्यानमुत्तमम् ॥ ८१ ॥ नापवादोभवेत्तस्यकुकृतोद्विजसत्तमाः ॥ ८२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेभद्रिकातीर्थोत्पत्तिर्नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भोजनोंवाली उस भद्रिकाने तपस्या किया ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो द्विजो ! मुझसे जो आप लोगों ने पूंछा इस समस्त चरित को मैंने कहा कि जिस भांति इस भद्रिका का अतिपुष्ट शरीर सर्पों व अन्य शस्त्रादिकों के भी न विदारने योग्य होकर सदैव स्थित था जो मनुष्य इस उत्तम भद्रिका के कथानक को नित्यही पढ़ता है ॥ ८० । ८१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस को कुकर्म से किया हुआ अपवाद नहीं होताहै ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभद्रिकातीर्थोत्पत्तिर्नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । क्षेमंकरी व रेवतेश्वर नामक दोउ देव । थापितभे सोइ एकसौ पन्द्रहवें महँ भेव ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जो कहा है कि वह तक्षक सौराष्ट्र देशमें बड़ा बलिष्ठ रैवतक नामक राजा होगा ॥ १ ॥ व वैसेही क्षेमंकरी ऐसे नाम से उस की प्यारी स्त्री होगी जो कि आनर्तदेशाधिपति के मन्दिर में भामिनी (सुन्दरी) कन्या पैदा होगी ॥ २ ॥ हे सूतनन्दन ! उन दोनों के समस्त चरितको भली भांति कहिये इस विषय में हम लोगों को आश्चर्य्य हुआ है क्योंकि विचित्र कहा गया है ॥ ३ ॥ हे सूतपुत्र ! हम लोगों ने केदारजी को हिमाचल पर्वत पै सुनाहै वह कैसे वहां पर उत्पन्न हुआ है इस समस्त चरित को विस्तार से कहिये ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ यत्त्वयासूतजप्रोक्तंतत्तक्षकस्सम्भविष्यति ॥ सौराष्ट्रविषयेराजारैवताख्योमहाबलः ॥ १ ॥ तथातस्यप्रियाभार्यानाम्नाक्षेमङ्करीतिया ॥ आनर्ताधिपतेर्हर्म्येसम्भविष्यतिभामिनी ॥ २ ॥ ताभ्यांसर्वंसमाचक्ष्ववृत्तान्तंसूतनन्दन ॥ अत्रनःकौतुकंजातंविचित्रञ्जल्पितञ्चयत् ॥ ३ ॥ केदारश्चश्रुतोस्माभिस्सूतपुत्रहिमाचले ॥ सकथन्तत्रसञ्जातस्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामि सर्वंब्राह्मणसत्तमाः ॥ यथामयाश्रुतंपूर्वंन्निजतातमुखाद्द्विजाः ॥५॥ पूर्वन्तच्छापदोषेण तक्षकोधरणीतले ॥ सौराष्ट्राधिपतेर्हर्म्ये रैवताख्योबभूवह ॥६॥ आनर्ताधिपतेश्चापि सञ्जातातस्ययागृहे ॥ तस्याश्चापिसुविख्यातन्नामजातन्धरातले ॥ ७ ॥ क्षेमङ्करीतिविप्रेन्द्राः कर्मणाप्रकटीकृतम् ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीद्राजाप्रभञ्जनः ॥ ८ ॥ तस्यवैरंसमुत्पन्नं बहुभिस्सहभूमिपैः ॥ ततोनिर्वास्यतेदेशो नीयन्ते

सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो द्विजो ! पुरातन समय इस विषय में मैंने जिसप्रकार अपने पिताके मुख से सुना है उस समस्त चरित को तुम लोगों से कहूंगा ॥ ५ ॥ कि पुरातन समय उस भद्रिका को शापके दोषसे तक्षक भूतल में सौराष्ट्र देश के स्वामी के मन्दिर में रैवत नामक हुआ है ॥ ६ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! जो उस आनर्त देश के स्वामी के घर में भी भली भांति उत्पन्न हुई है उसका भी कर्म से प्रकट कियाहुआ क्षेमंकरी ऐसा नाम भूतल में प्रसिद्ध हुआ पुरातन समय आनर्त देशका स्वामी प्रभञ्जन नामक राजा हुआ है ॥ ७ । ८ ॥ उस राजाका बहुत से भूपों के साथ वैर उत्पन्न हुआ तदनन्तर देश उजड़ने लगा व पशु पराक्रम से हरेजाने

लगे ॥ ९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! शत्रुओं के साथ दिन रात युद्ध होनेलगा तदनन्तर कुछ दिनों के बाद ऋतुसमयमें नहाई हुई प्रियवादिनी स्त्री ने अपने पेट में पुण्य दायक गर्भ को धारण किया तब से लगाकर वह गर्भ उसके पेट में आश्रित हुआ ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर उसके कमल के समान चौड़े नयनोंवाली, शुभ दायक कन्या उत्पन्नहुई उस रात्रिको अंधियारेमें भी सवरिका घर प्रकाशितहुआ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नतासंयुत इस नृपति ने गाने, बजाने के शब्दोंसे पुत्रके समान उस कन्या के बड़े भारी उछाहको किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! जब तेरहवां दिन प्राप्तहुआ तब उस भूपति ने ब्राह्मणों के आगे उसका यथायोग्य

पशवोबलात् ॥ ९ ॥ शत्रुभिर्जायतेयुद्धं दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ततःकतिपयाहस्य तस्यभार्याप्रियंवदा ॥ १० ॥ ऋतुस्नातादधाराथ गर्भंपुण्यन्निजोदरे ॥ ततःप्रभृतितस्यास्सगर्भोभूदुदराश्रयः ॥ ११ ॥ ततोजज्ञेशुभाकन्या तस्याः पद्मायतेक्षणा ॥ अन्धकारोपितद्रात्र्यां द्योतितंसूतिकागृहम् ॥ १२ ॥ अथासौपार्थिवश्चक्रे सुतवत्सुमहोत्सवम् ॥ तस्यास्तोषसमायुक्तो गीतवाद्यैश्चनिःस्वनैः ॥ १३ ॥ ततस्त्रयोदशेप्राप्ते नामतस्यायथोचितम् ॥ विहितंभूभुजातेन विप्राणाम्पुरतोद्विजाः ॥ १४ ॥ एवंसुविहिताख्यासा वृद्धिंयातिदिनेदिने ॥ शुक्लपक्षेकलाचान्द्री यथैवगगनाङ्गणे ॥ १५ ॥ ततस्तांयौवनोपेतां रैवतायमहीपतिः ॥ ददौसौराष्ट्रनाथाय कालेवैवाहिकेशुभे ॥ १६ ॥ अथताभ्यांसुताजाता रैवती नामविश्रुता ॥ भद्रिकाशापदोषेण शेषपत्नीयशस्विनी ॥ १७ ॥ याव्यूढारामरूपेण नागराजेनधीमता ॥ पुत्रपौत्रवती जाता सौभाग्यमदगर्विता ॥ १८ ॥ नचताभ्यांसुतोजातःकथञ्चिदपिवंशजः ॥ वयसोन्तेपिविप्रेन्द्रास्ततोदुःखंव्यजा

नाम किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार भली भांति कियेहुये नामवाली वह कन्या वैसेही दिनों दिन वृद्धिको प्राप्त होती थी कि जैसे आकाशरूपी आंगन में शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ती है ॥ १५ ॥ तदनन्तर शुभदायक विवाहवाले समय में यौवन संयुक्त उस कन्या को सौराष्ट्र देश के स्वामी रैवत के लिये दे दिया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर उन दोनों से रेवती नामक प्रसिद्ध कन्या उत्पन्न हुई जो कि भद्रिका के शापके दोषसे कीर्तिमती शेषजीकी स्त्री थी ॥ १७ ॥ व जिसको बलराम रूपवाले बुद्धिमान् नागराज ने व्याहा है जो कि सौभाग्य के अहंकारसे गर्वित व पुत्र पौत्रवती हुई है ॥ १८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! अवस्थाके अन्त भागमें भी उन दोनोंके सकाश

से वंशमें उपजाहुआ पुत्र किसी प्रकार भी न पैदा हुआ उसी कारण दुःख उत्पन्न भया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों समस्त राज्यको सम्पूर्णतासे मन्त्रियोंके वर्गको देकर पुत्रकेलिये तपोभूमि को भलीभांति आये ॥ २० ॥ तदनन्तर सावधान होते हुये वे दोनों अपने आश्रम को बनाकर व कात्यायनी देवी को थापकर उसके आराधन में तत्पर होतेहुये वहांपर टिके ॥ २१ ॥ कि उस विन्ध्याचल नामक महापर्वत पै कुँआरपनेके व्रतको धारेहुये जिन कात्यायनी देवीने भयङ्कर महिष नामक महासुर को मारा है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होती हुई उन कात्यायनीदेवीने उनदोनोंके लिये वंश के बढ़ाने वाले पुत्र को दिया जो कि नाम से क्षेमजित् ऐसा प्रसिद्ध

यत् ॥ १९ ॥ अथतौमन्त्रिवर्गस्य राज्यंसर्वमशेषतः ॥ अर्प्पयित्वातुपुत्रार्थं तपोभूमिंसमागतौ ॥ २० ॥ ततस्तौस्वाश्रमंकृत्वा स्थितौतत्रसमाहितौ ॥ देवींकात्यायिनींस्थाप्यतदाराधनतत्परौ ॥ २१ ॥ ययाविनिहितोरौद्रो महिषाख्यो महासुरः ॥ कौमारव्रतधारिण्या तस्मिन्विन्ध्येमहाचले ॥ २२ ॥ ततस्ताभ्यांददौतुष्टा सापुत्रंवंशवर्द्धनम् ॥ नाम्नाक्षेमजितंख्यातं परपक्षभयापहम् ॥ २३ ॥ ततःस्वंराज्यमासाद्य भूयोपिसमहीपतिः ॥ तंपुत्रंवर्द्धयामास हर्षेणमहतान्वितः ॥ २४ ॥ यदासयौवनोपेतस्सञ्जातःक्षेमजित्सुतः ॥ तदाराजानियोज्याथ स्वस्थानेसपुनर्ययौ ॥ २५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं तमेवद्विजसत्तमाः ॥ भार्य्यासहितंत्यक्त्वा शेषमन्यंपरिच्छदम् ॥ २६ ॥ तत्रसंस्थापयामास लिङ्गंदेवस्य शूलिनः ॥ प्रासादंचमनोहारि ततश्चक्रेसमाहितः ॥ २७ ॥ रैवतेश्वरमित्युक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ दर्शनादेवसर्वेषां देहिनांद्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ यापूर्वंस्थापितादुर्गा तस्मिन्क्षेत्रेमहीभुजा ॥ तस्याक्षेमङ्करीचक्रे प्रासादंश्रद्धयान्विता ॥ २९ ॥

व शत्रुओंके पक्षको क्षयदायक था ॥ २३ ॥ तदनन्तर बड़े हर्ष से संयुत उस भूपतिने फिर भी अपनी राज्यको प्राप्तहोकर उस पुत्रको बढ़ाया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब वह क्षेमजित् पुत्र यौवन से संयुत हुआ तब वह राजा अपने स्थान पै उस पुत्र को नियुक्त (बिठा) करके व स्त्री समेत सम्पूर्ण सामग्रीको छोड़कर फिरउसी हाटकेश्वर क्षेत्र को चलागया ॥ २५ । २६ ॥ सावधान होतेहुये भूपति ने वहांपर त्रिशूल वाले (शिव) देवजी के लिङ्ग को भलीभाति स्थापन किया तदनन्तर मनोहर मन्दिर को बनवाया ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रैवतेश्वर ऐसा कहाहुआ शिवजी का लिङ्ग दर्शनही से समस्त देहधारियों के सब पापों का विनाशक है ॥ २८ ॥

उस क्षेत्रमें पहले भूपालने जिस दुर्गाको थापन कियाहै उसके मन्दिरको श्रद्धासंयुत होती हुई क्षेमंकरीने निर्माण कियाहै ॥२९॥ तब से लगाकर महिषासुरको मर्दने वाली जो कात्यायनी भी कही गई है वह भी क्षेमंकरी नामसे कही जाती है ॥३०॥ हे द्विजोत्तमो ! चैत्रके शुक्ल पक्षमें अथवा अष्टमीके दिन जो पुरुष इन दुर्गाजीको पूजनकरैहै उसका अभिलाष सदैवही सिद्धहोवैहै॥ ३१ ॥ इस रैवतेश्वरके समस्त वर्णनको व सब पापों के विनाशने वाले क्षेमंकरीके प्रभाव को तुम लोगों से वर्णन किया ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेमंकरीरैवतेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

सापिक्षेमङ्करीनाम ततःप्रभृतिकीर्त्यते ॥ कात्यायन्यपियाप्रोक्ता महिषासुरमर्द्दिनी ॥ ३० ॥ यश्चतांतुसितेपक्षे चैत्रेवाचाष्टमीदिने ॥ तस्याभीष्टंभवेत्सिद्धिः सर्वदैवद्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं रैवतेश्वरवर्णनम् ॥ क्षेमङ्कर्याःप्रभावश्चसर्वपातकनाशनम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेक्षेमङ्करीरैवतेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यात्वयासूतजप्रोक्ता देवीकात्यायनीतथा ॥ माहिषान्तकरीजाता कथंसामेप्रकीर्त्तय ॥ १ ॥ कीदृग्दानववर्योसौ माहिषंरूपमाश्रितः ॥ कस्मात्ससूदितोदेव्यातन्मेविस्तरतोवद ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्त्तयिष्यामिदेव्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुतमात्रेपिमर्त्यानां येनशत्रुक्षयोभवेत् ॥ ३ ॥ हिरण्याक्षसुतःपूर्वं महिषोनामदानवः ॥ आसीन्महिषरूपेण येनभुक्तंजगत्त्रयम् ॥४॥ ऋषयऊचुः॥माहिषेणस्वरूपेण किञ्जातस्सूतनन्दन ॥ अथवाशापदोषे

दो० । महिषासुर जीत्यो सकल देवन इन्द्रसमेत । इकसौ सोलह में सोई बरणत सूतसचेत ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जिस कात्यायनी देवी को कहाहै वह कैसे महिषासुर की अन्तकारिणी हुई है इसको मुझसे कहो ॥ १ ॥ व कैसा यह दानवोत्तम भैंसे के रूपमें टिकताभया और किसकारण देवीने उसको मारा है उस चरितको मुझसे विस्तार समेत कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि इस विषय में मैं तुमलोगों से देवीके उत्तम माहात्म्य को कहूंगा कि जिसके सुननेमात्र सेभी मनुष्यों के शत्रुओं का नाशहोवैहै ॥ ३ ॥ कि पुरातन समय हिरण्याक्षका पुत्र महिष नामक दैत्य हुआहै जिसने भैंसे के रूपसे त्रिलोक को भोग किया ॥ ४ ॥

ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! क्या महिषके रूपसे वह पैदाहुआथा अथवा किसी शापके दोषसे महिष होगयाथा उसको कहो ॥ ५ ॥ सूतजी बोलेकि समस्त लक्षणोंसे चिह्नित व मोटी ग्रीवावाला व लम्बी भुजाओं वाला व कमलके समान मुखवाला वह स्वरूपसे संयुत पैदाहुआथा ॥ ६ ॥ जोकि तेज व पराक्रमसे संयुत नामसे चित्रसम कहागया है वह शिशुता से लगाकर बहुधा समस्त घोड़े आदि वाहनों को छोड़कर भैंसोंकी सवारी करताथा किसी समय उस दैत्यके पुत्रने भैंसे पै चढ़कर प्रस्थान किया ॥ ७ । ८ ॥ गंगाजीके किनारे जाकर जल पक्षियों को मारताहुआ वह भ्रमताभया इसकेअनन्तर गंगा के किनारे उच्चप्रकारसे अतिउत्तम

णसञ्जातःकेनचिद्दद ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ सञ्जातोहिसुरूपाढ्यो शतपत्रनिभाननः ॥ दीर्घबाहुःपृथुग्रीवस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६ ॥ नाम्नाचित्रसमःप्रोक्तस्तेजोवीर्यसमन्वितः ॥ सबाल्यात्प्रभृतिप्रायो माहिषाणांचधोरणम् ॥ ७ ॥ करोतिसम्परित्यज्य सर्वमश्वादिवाहनम् ॥ कदाचिन्महिषारूढस्सम्प्रतस्थेदनोस्सुतः ॥ ८ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य विनिघ्नञ्जलपक्षिणः ॥अथासीत्सुसमाधिस्थोदुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ९ ॥ गङ्गातीरेविधायोच्चैः पद्मासनमनुत्तमम् ॥ विहङ्गासक्तचित्तेन दैत्येनसमुनीश्वरः ॥ १० ॥ दृष्टोनमहिषक्षुण्णः खुरैर्वेगवशाद्द्विजाः ॥ ततःक्षतजदिग्धाङ्गः सदृष्ट्वादानवंपुरः ॥ ११ ॥ अथदृष्ट्वाप्रणामेन रहितंकोपमाविशत् ॥ ततःप्रोवाचतंक्रुद्धस्तोयमादायपाणिना ॥ १२ ॥ यस्मात्पापममक्षुण्णंगात्रंमहिषजैःखुरैः ॥ समाधेश्चकृतोभङ्गस्तस्मात्त्वंमहिषोभव ॥ १३ ॥ यावज्जीवसिदुर्बुद्धे सम्यग्ज्ञानसमन्वितः ॥ अथासौमहिषोजातः कृष्णगात्रधरोमहान् ॥ १४ ॥ अतिदीर्घविषाणश्च अञ्जनाद्रिरिवापरः ॥ ततःप्रसादयामास त

कमलासन को करके मुनिनायक दुर्वासा जी भलीभांति समाधि में स्थितथे हे ब्राह्मणो ! पक्षियों में लगेहुये चित्तवाले उस दैत्यने खुरोंके वेग वशसे भैंसे से कचरे हुये उन दुर्वासा जीको न देखा तदनन्तर रक्तसे लिपटेहुये अंगोवाले उन दुर्वासाजीने अगाड़ी दैत्यको देखकर ॥ ९ । १० । ११ ॥ व इसके अनन्तर प्रणामसे रहित देखकर क्रोधमें प्रवेश किया तदनन्तर क्रोधित होकरके हाथसे जल लेकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे पापी ! जिसकारण भैंसे से उपजेहुये खुरोंसे मेरा शरीर कटगया व समाधिका भंग कियागया इसलिये हे दुष्टबुद्धे ! जबतक जियो तबतक भलीभांति ज्ञानसे संयुत तुम महिषहोवो इसके अनन्तर अति लम्बे सींगोंवाला व काले शरीर

का धारनेवाला वह दूसरे अंजनाचल के समान बडाभारी भैंसाहोगया तदनन्तर विनय संयुत होतेहुये उसने उनमुनिको प्रसन्न कराया ॥ १३ । १४ । १५ ॥ हे द्विज ! बालभावसे न जानतेहुये मेरे शापान्तको कीजिये इसके अनन्तर वे दुर्वासामुनि उस दैत्यसे बोले कि मेरा वचन व्यर्थ न होवैगा ॥ १६ ॥ इसलिये दुष्ट बुद्धिवाले व भैंसे के स्वरूपसे निन्दित तुम्हारे जबतक प्राणस्थित रहैंगे तबतक ऐसाहीहोगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर मुनिनायक दुर्वासा जी गंगाके किनारेको छोड़कर अन्यत्र चलेगये और उस दैत्य नेभी शीघ्रही जाकर शुक्रजीसे कहा ॥ १८ ॥ कि मैं किसी कारण के बीचमें दुर्वासा से शापितहुआ भैंसे के शरीरको प्राप्तकर दियागया इस

म्मुनिंविनयान्वितः ॥१५॥ शापान्तंकुरुमेविप्र बाल्यभावादजानतः ॥ अथतंसमुनिःप्राह नमेस्याद्वचनंवृथा ॥ १६॥ तस्माद्यावत्स्थिताःप्राणास्तावदित्थंभविष्यति ॥ महिषस्यस्वरूपेण निन्दितस्यसुदुर्मतेः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वापरित्यज्य गङ्गातीरंमुनीश्वरः ॥ जगामान्यत्रसोप्याशु गत्वाशुक्रमुवाचह ॥ १८ ॥ अहंदुर्वाससाशप्तः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ महिषत्वंसमानीतस्तस्मात्त्वंमेगतिर्भव ॥ १९ ॥ यथास्यात्पूर्वजंदेहं तिर्यक्त्वंनश्यतेयथा ॥ प्रसादात्तवविप्रेन्द्र तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २० ॥ शुक्रउवाच ॥ तस्यशापोन्यथाकर्तुंनैवशक्यःकथंचन ॥ केनापिसम्परित्यज्य देवमेकंमहेश्वरम् ॥ २१ ॥ तस्मादाराधयाशुत्वं गत्वालिङ्गमनुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदायके ॥ २२ ॥ तत्रसञ्जायते सिद्धिः शीघ्रंदानवसत्तम ॥ अपिपापयुगेप्राप्ते किंपुनःप्रथमेयुगे ॥ २३ ॥ एवमुक्तस्सशुक्रेण दानवस्सत्वरंययौ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसर्वसिद्धिप्रदायके ॥ २४ ॥ स्थापयित्वामहल्लिङ्गं भक्त्यादेवस्यशूलिनः ॥ प्रासादंचतथाचक्रे कैला

लिये तुम मेरी गतिहोवो ॥ १९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जिसप्रकार प्रथम उपजीहुई देह होवै व तुम्हारी प्रसन्नता से तिर्यक्ता याने महिषत्व नाशहोवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ २० ॥ शुक्र बोले कि एक महेश्वर देवको छोडकर किसीसेभी उसका शाप किसी प्रकार अन्यथा करनेके लिये समर्थित नहींहै ॥ २१ ॥ इसलिये तुम शीघ्रही समस्त सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाकर अतिउत्तम लिंगका आराधन करो॥ २२ ॥ हे दैत्योत्तम ! पापयुगके भी प्राप्त होनेपर वहां शीघ्रही सिद्धि भलीभांति होतीहै फिर प्रथम याने सतयुगमें क्या कहनाहै ॥ २३ ॥ इसप्रकार शुक्र जीसे कहाहुआ वह दैत्य समस्त सिद्धियों के दायक हाटकेश्वर जीसे उपजेहुये क्षेत्र में

शीघ्रही गया ॥ २४ ॥ व उसने भक्तिसे त्रिशूल वाले (सदाशिव) जीके बड़ेभारीलिङ्गको थापकर और कैलास शिखर के समान मन्दिर को किया ॥ २५॥ तपस्या में टिके व इसप्रकार वर्तमान् होते हुये उस महात्मा का बहुतही समय व्यतीत हुआ फिर वह कृच्छ्र (कठिन) तपस्यामें वर्तमान हुआ ॥ २६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये महादेव जी उसके दृष्टिगोचर में प्राप्तहोकर बोले कि हे दानव ! मैं प्रसन्नहूं तुम वरदानको स्वीकार करो ॥ २७ ॥ महिषासुर बोला कि दुर्वासामुनि से शापदिया हुआ मैं भैंसेकी योनि में नियुक्त कियागया इसलिये तुम्हारी प्रसन्नता से तिर्य्यक्ता याने भैंसे का भावनाश को प्राप्त होवै ॥ २८ ॥ शिव भगवान् बोले कि उन

सशिखरोपमम् ॥ २५ ॥ तस्यैवंवर्तमानस्य तपस्थस्यमहात्मनः ॥ जगामसुमहान्कालः कृच्छ्रेतपसिवर्त्तितः ॥ २६ ॥
ततस्तुष्टोमहादेवो गत्वातद्दृष्टिगोचरम् ॥ प्रोवाचपरितुष्टोस्मिवरंवरयदानव ॥ २७ ॥ महिषउवाच ॥ अहंदुर्वाससाश
प्तोमहिषत्वेनियोजितः ॥ तिर्यक्त्वंनाशमायातु तस्मान्मेत्वत्प्रसादतः ॥ २८ ॥ भगवानुवाच ॥ नान्यथाशक्यतेकर्त्तुं त
स्यवाक्यंकथञ्चन ॥ तस्मात्तवकरिष्यामि सुखोपायंशृणुष्वतम् ॥ २९ ॥ येकेचिन्मानवाभोगा दैविकायेतथासुराः ॥
तेसर्वेतवगात्रेत्रसम्प्रयास्यन्तिसंश्रयम् ॥ ३० ॥ भोगार्थमिष्यतेकायंयतोमर्त्यंसुरासुरैः ॥ समवाप्स्यसितान्सर्वान्त
स्मात्तवकलेवरम् ॥ ३१ ॥ महिषउवाच ॥ यद्येवंदेवदेवेशभोगप्राप्तिर्भवेन्मम ॥ तस्मादवध्यमेवास्तुगात्रमेतन्ममप्रभो॥
३२ ॥ दशानांनवयोनीनांमनुष्याणांविशेषतः॥ तिर्यञ्चानाञ्चनागानांपक्षिणांसुरसत्तम ॥३३॥ भगवानुवाच॥ नावध्यो

दुर्वासा जी का शाप किसी प्रकार अन्यथा करने के लिये समर्थित नहीं है इस लिये तुम्हारे सुख का उपाय करूंगा उसको सुनो ॥ २९ ॥ कि जो कोई मनुष्यों व देवताओं तथा दैत्यों वाले सुखहैं वे सब तुम्हारे इस शरीर में भलीभांति आश्रयको प्राप्तहोंगे ॥ ३० ॥ जिसकारण कि देवताओं व दैत्यों से भोगके लिये मनुष्य का शरीर इच्छा कियाजाता है इसलिये तुम्हारा शरीर उन समस्त भोगों को भलीभांति पावैगा ॥ ३१ ॥ महिषासुर बोला कि हे देवदेवेश ! यदि मुझको ऐसी सुख की प्राप्तिहोगी तो उसी कारण हे सुरोत्तम, प्रभो ! नवलाख जलचर व दशलाख आकाशचर योनियों से व विशेषकर मनुष्यों व तिर्यक् कीटादिको व नागों और पक्षियों

से मेरा यह शरीर निश्चयकर अवध्य (न मारने योग्य) होवै ॥ ३२ । ३३ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे दैत्यपते ! भूपृष्ठ में कोई देहधारी व दैत्य अवध्य नहीं है इस लिये एकको छोड़कर शेष वरदानों को मांगिये ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उसने देरतक चिन्तवनकर वृषभध्वज शिवजी से कहा कि एक स्त्रीको छोड़कर अन्य प्राणियों से मेरा वध न होवै ॥ ३५ ॥ वैसेही अतिउग्र जो कोई पुरुष श्रद्धासे हमारे इस तीर्थ में स्नानकरै तदनन्तर तुमको देखै ॥ ३६ ॥ हे शङ्करजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से उसकी समस्त कामनाओंवाली संसिद्धिहोवै व सब उपद्रवोंका नाश और तेजकी बढ़ती होवै ॥ ३७ ॥ शिव भगवान् बोले कि अगहन महीनेकी शुक्ल पक्षवाली चौदसि में जो

स्तिधरापृष्ठेकश्चिद्देहीचदानवः ॥ तस्मादेकंपरित्यज्यशेषान्प्रार्थयदैत्यज ॥ ३४ ॥ ततस्ससुचिरन्ध्यात्वाप्रोवाचवृषभध्वजम् ॥ स्त्रियमेकांपरित्यज्यनान्येभ्यस्तुवधोमम ॥ ३५ ॥ तथात्रमामकेतीर्थेयःकश्चिच्छ्रद्धयानरः ॥ करोतिस्नानमत्युग्रःत्वांपश्यतिततःपरम् ॥ ३६ ॥ तस्यस्यात्त्वत्प्रसादेनसंसिद्धिस्सार्वकामिकी ॥ सर्वोपद्रवनाशश्चतेजोवृद्धिश्चशङ्कर ॥ ३७ ॥ भगवानुवाच ॥ मार्गशुक्लचतुर्दश्यांतीर्थेस्नात्वात्रतावके ॥ विलोकयिष्यतिप्रीत्याममलिङ्गन्ततःपरम् ॥ ३८ ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यःसम्भवास्तस्यतत्क्षणात् ॥ दोषास्संक्षयमायान्तितथारोगाःक्षयादयः ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वाचदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ महिषोपिनिजस्थानंप्रजगामततःपरम् ॥ ४० ॥ सगत्वादानवान्सर्वान्समाहूयततःपरम् ॥ प्रोवाचामर्षसंयुक्तस्सभामध्येऽव्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ पितामम पितृव्यश्चयेचान्येममपूर्वजाः ॥ दानवानिहतादेवैर्वासुदेवपुरोगमैः ॥ ४२ ॥ तस्मात्तान्नाशयिष्यामि देवानपिमहाहवे ॥ अहंत्रैलोक्यराज्यंहिगृहीष्यामिततःपरम् ॥ ४३ ॥

पुरुष तुम्हारे इस तीर्थ में नहाकर तदनन्तर प्रीतिसे मेरे लिङ्गको देखैगा ॥ ३८ ॥ उसके भूत, प्रेत, पिशाचों से उपजेहुए दोष व क्षयादिक रोग उसी क्षण नाश को प्राप्त होवेंगे ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर देवेश (शिव) जी अन्तर्द्धान होगये उसके उपरान्त महिषासुर भी अपने स्थानको चलागया ॥ ४० ॥ सभाके बीचमें बैठेहुए व क्रोध संयुक्त उस महिषासुरने जाकर समस्त दैत्यों को भलीभांति बुलाकर तदनन्तर कहा ॥ ४१ ॥ कि मेरे पिता व चचा और मेरे पहले उपजेहुए तथा विष्णुजीके आगे चलने वाले जो अन्य दानवहैं वे देवताओं से मारेगये हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये बड़े भारी युद्धमें मैं उन देवताओंको भी नाश करूंगा तदनन्तर त्रिलोककी राज्य निश्चय करलेलूंगा ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर उन दानवोंने कहा कि यह उचितहै क्योंकि स्वर्ग में जिस अतिउत्तम राज्यको इन्द्रजी करते हैं यह हम लोगोंकाहै ॥ ४४ ॥ इसलिये आजही जाकर रणशीर्ष में उन देवताओं को शीघ्रही मारकर दिव्य भोगों को भोगते व सुखी होतेहुए हम लोग स्वर्ग में टिकैंगे ॥ ४५ ॥ इसभांति वे सब दैत्य सम्मतिका विशेषकर निश्चयकर तदनन्तर सेवक, सेना व सवारियोंसमेत होकर सुमेरुगिरिके शिखरपै गये ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रादिक देवता शस्त्र व अस्त्रसे संयुत व अचानकही भली भांति प्राप्त दानवों से उपजीहुई उस सेनाको देखकर ॥ ४७ ॥ तदनन्तर जे आदित्य, वसु, रुद्र व उत्तमवैद्य अश्विनीकुमार व विश्वेदेवा, साध्य, सिद्ध व विद्याधर थे वे

अथतेदानवाःप्रोचुर्युक्तमेतदनुत्तमम् ॥ अस्मदीयमिदंराज्यंयच्छक्रःकुरुतेदिवि ॥ ४४ ॥ तस्मादद्यैवगत्वाशुहत्वातान्रणमूर्द्धनि ॥ दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जानाःस्थास्यामस्सुखिनोदिवि ॥ ४५ ॥ एवंतेदानवास्सर्वेकृत्वामन्त्रविनिश्चयम् ॥ मेरुश्रृङ्गन्ततोजग्मुःसभृत्यबलवाहनाः ॥ ४६ ॥ अथशक्रादयोदेवादृष्ट्वातद्दानवोद्भवम् ॥ अकस्मादेवसम्प्राप्तंबलंशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ ४७ ॥ युद्धार्थन्तेपुरद्वारैर्निर्ययुस्तदनन्तरम् ॥ आदित्यावसवोरुद्रानासत्यौचभिषग्वरौ ॥ ४८ ॥ विश्वेदेवास्तथासाध्यासिद्धाविद्याधराश्चये ॥ ततस्समभवद्युद्धन्देवानांसहदानवैः ॥ ४९ ॥ मिथःप्रभतर्स्यमानानांमृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ एवंसमभवद्युद्धंयावद्वर्षत्रयंदिवि ॥ ५० ॥ रक्तनद्योतिविपुलास्तत्रातीवप्रसुस्रुवुः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेशक्रंदृष्ट्वैरावतसंस्थितम् ॥ ५१ ॥ सुशुक्लेनातपत्रेणध्रियमाणेनमूर्द्धनि ॥ देवैःपरिवृतंदेवंशस्त्रपाणिभिरेवच ॥ ५२ ॥ ततःकोपपरीतात्मामहिषोदानवाधिपः ॥ महावेगंसमासाद्यतस्यैवाभिमुखोययौ ॥ ५३ ॥ श्रृङ्गाभ्यांसुतीक्ष्णाभ्यांततश्चैरावतञ्च

समरके लिये पुरके द्वारपै निकले उसके उपरान्त मृत्युको लौटाकर आपसमें घुड़कतेहुए देवताओंका दैत्यों के साथ भलीभांति युद्धहुआ इसभांति स्वर्ग में तीन वर्षतक युद्धहुआ ॥४८।४९।५० ॥ और वहांपर अत्यन्तही विस्तारवाली रुधिरकी नदियां बहतीभई अन्य दिनमें मस्तकपै धरेहुए श्वेतछत्र से उपलक्षित व शस्त्र हाथोंवाले देवताओं से घिरे व ऐरावत पै भलीभांति बैठेहुए इन्द्रदेवजीको देखकर ॥५१।५२॥ तदनन्तर क्रोधमे घिरेहुए चित्त या मनवाला दैत्यनायक महिषासुर बड़े वेगको प्राप्तहोकर

उन्ही इन्द्रके सामने गया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उसने बड़े पैने सींगों से उस ऐरावतके हृदय में वेधनकिया इसके अनन्तर उस ऐरावतने बड़ेभयंकर शब्दको किया ॥५४॥ तदनन्तर विमुखहोकर भागने में तत्पर वह ऐरावत वेगसे उसी सामने दौड़ा कि जहां अमरावतीपुरी थी ॥ ५५ ॥ बहुतेरे अंकुशों के उठेहुए प्रहारों से कटेहुए मस्तक वाला भी व हाथीवान् से रोंकाहुआ भी वह ऐरावत किसीप्रकार न खड़ाहुआ ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर हजार नेत्रवाले इन्द्रजीने गर्वमें प्राप्तहुए महिषासुरको व सिंहनादों के शब्दादिकों से गर्जतेहुए दैत्यों को देखकर कहा ॥ ५७ ॥ कि हे दैत्य ! जिसलिये तुम जानतेहो कि त्रिदशनायक (इन्द्र) जी भागगये क्योंकि मेरा यह विवश हाथी

तम् ॥ विव्याधहृदयेसोथचक्रेरावंसुदारुणम् ॥ ५४ ॥ ततःपराङ्मुखोभूत्वापलायनपरायणः ॥ अभिदुद्राववेगेनपुरीय त्रामरावती ॥ ५५ ॥ अंकुशोत्थप्रहारैश्चक्षतकुम्भोपिभूरिशः ॥ महामात्रनिरुद्धोपिनसतस्थौकथञ्चन ॥ ५६ ॥ अथा ब्रवीत्सहस्राक्षोमहिषंवीक्ष्यगर्वितम् ॥ गर्जमानान्तथादैत्यान्क्ष्वेडानांक्रन्दनादिभिः ॥ ५७ ॥ मांदैत्यप्रविजानीषिय न्नष्टस्त्रिदशाधिपः ॥ एषनागोरणंहित्वाविवशोयातिमेबलात् ॥ ५८ ॥ तस्मात्तिष्ठमुहूर्तंत्वंयावदास्थायस्वंरथम् ॥ ना शयामिचतेदर्प्पंनिहत्वानिशितैश्शरैः ॥ ५९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोमातलिःशक्रसारथिः ॥ सहस्रैर्दशभिर्युक्तंवाजिनां वातरंहसाम् ॥ ६० ॥ तेथमातलिनाअश्वाःप्रतोदेनसमाहताः ॥ उत्पतन्तइवाकाशेसत्वरम्प्रतिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ अथचा पंसमारोप्यसत्वरंपाकशासनः ॥ शरैराशीविषैर्घोरैश्छादयामासदानवम् ॥ ६२ ॥ ततोवेगंसमास्थायभूयोपिक्रोधमू र्च्छितः ॥ अभिदुद्राववेगेनसयत्रत्रिदशाधिपः ॥ ६३ ॥ ततस्तान्सुहयान्तस्यशृङ्गाभ्यांवेगमाश्रितः ॥ दारयामाससंकु

युद्धको छोडकर बलसे जाताहै ॥ ५८ ॥ इसलिये तुम मुहूर्तभर याने कच्ची दो घड़ीतक ठहरिये जबतक मैं अपने रथपै बैठकर व पैने बाणों से मारकर तुम्हारे गर्व को नाश करूंगा ॥ ५९ ॥ इसी अवसरमें पवनके समान वेगवाले दशहजार घोड़ों से संयुत (जुतेहुए) रथको लेकर इन्द्रका सारथी मातलिनामक प्राप्तहुआ ॥ ६० ॥ मातलि से चाबुकके द्वारा अतिताड़ित होते हुए वे घोड़े आकाशमें उछलतेहुए से सामने शीघ्रही दौड़े ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रजीने शीघ्रही धनुषको चढ़ाकर सर्पों के समान भयंकर बाणों से दैत्यको आच्छादन करलिया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वेगको प्राप्तहोकर फिर भी कोपसे मूर्च्छित होताहुआ वह दैत्य वेगसे सामने दौड़ा जहां कि

इन्द्रजी थे ॥६३॥ तदनन्तर वेगमें आश्रित होतेहुए उस महिषासुरने उन इन्द्रजी के उन उत्तम घोडों को सींगों से बार २ बेध २ कर विदारणकिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर कटे हुए वक्षस्थलवाले व रुधिर से डूबेहुए समस्त अंगोंवाले व डरेहुए घोड़े ऐरावतके मार्गको भलीभांति चलेगये ॥ ६५ ॥ तदनन्तर इन्द्रजी के रथको विमुख देखकर डरेहुए समस्त देवतोत्तम उस रथके मार्गका आश्रयकर भागगये ॥ ६६ ॥ उसके उपरान्त शस्त्रोंकी वृष्टिको छोड़तेहुए समस्त दैत्य संग्राम में कटे पिटे या भागेहुए देवताओं को देखकर मेघों के समान गर्जतेहुए ॥ ६७ ॥ इसी अवसरमें अन्धकार से घिरीहुई रात प्राप्तहुई उस रातमें किसी के दृष्टिगोचरमें कुछ न प्राप्तहोता था ॥ ६८ ॥ तदनन्तर

द्धश्राविध्याविध्यचासकृत् ॥ ६४ ॥ ततस्तेवाजिनस्त्रस्तास्सञ्जग्मुःक्षतवक्षसः ॥ रक्तप्लावितसर्वाङ्गामार्गमैरावतस्य च ॥ ६५ ॥ ततःशक्ररथंदृष्ट्वाविमुखंसुरसत्तमाः ॥ सर्वेविदुद्रुवुर्भीतास्तस्यमार्गमुपाश्रिताः ॥ ६६ ॥ ततस्तुदानवास्सर्वैभग्नान्दृष्ट्वारणेसुरान् ॥ शस्त्रवृष्टिञ्चमुञ्चन्तोगर्जमानायथाघनाः ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तारजनीतमसावृता ॥ नकिञ्चित्तत्रसंयातिकस्यचिद्दृष्टिगोचरे ॥ ६८ ॥ ततस्तुदानवास्सर्वेयुद्धान्निर्वृत्यसर्वतः ॥ मेरुशृङ्गंसमाश्रित्यरम्यंवासम्प्रचक्रमुः ॥ ६९ ॥ विजयेनसमायुक्तास्तुष्टिञ्चपरमाङ्गताः ॥ कथाञ्चक्रुश्चयुद्धोत्थायुद्धंयस्ययथाभवत् ॥ ७० ॥ देवाश्चापि हतोत्साहाःप्रहारैःक्षतवक्षसः ॥ मन्त्रञ्चक्रुर्मिथोभूत्वाबृहस्पतिपुरस्सराः ॥ ७१ ॥ साम्प्रतन्दानवैस्सैन्यमस्माकंविमुखंकृतम् ॥ विध्वस्तञ्चनिरुत्साहमक्षमंयुद्धकर्मणि ॥ ७२ ॥ तस्मात्त्यक्त्वाप्रवेक्ष्यामःपुरीञ्चैवामरावतीम् ॥ ब्रह्मणस्सदनंयत्र नस्याद्दानवजम्भयम् ॥ ७३ ॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वाब्रह्मलोकंततोगताः ॥ शून्यांशक्रपुरींकृत्वासर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ७४ ॥

समस्त दैत्यों ने युद्धसे लौटकर व सुमेरुगिरिके शिखरपै सब ओर भलीभांति टिकाश्रयकर सुन्दर निवासकिया ॥ ६९ ॥ व जीतसे संयुत तथा परम प्रसन्नताको प्राप्तहुए उन दैत्योंने वैसेही युद्धसे उठीहुई कथाओं को किया कि जिसका जिसप्रकार युद्ध हुआथा ॥ ७० ॥ व प्रहारों से कटेहुए वक्षस्थलोंवाले व नष्ट उत्साहवाले तथा बृहस्पति अग्रगामीवाले देवताओं ने भी आपसमें होकर सम्मति किया ॥ ७१ ॥ कि इस समय दैत्योंने हम लोगोंकी सेनाको विमुख व विध्वंस व उत्साहहीन व युद्ध कर्ममें असमर्थ कियाहै ॥ ७२ ॥ इसलिये अमरावतीपुरीको छोड़कर ब्रह्माके मन्दिर में प्रवेश करेंगे कि जहांपर दैत्यों से उपजाहुआ डर नहीं है ॥ ७३ ॥ वे इन्द्रसमेत समस्त देवता

इसप्रकार निश्चयकरके व इन्द्रपुरीको शून्यकर तदनन्तर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ७४ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल उठकर इन्द्रपुरीको शून्य देखकर उसके उपरान्त प्रसन्न होतेहुए उन दैत्योंने प्रवेशकिया ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नता संयुत उन दैत्योंने इन्द्रजी के स्थानपै महिषासुरको भलीभांति बिठाकर प्रणामकिया व बड़ा उछाह किया ॥ ७६ ॥ व जिन्होंने देवताओं को जीतलिया है उन्होंने समस्त देवस्थानों में सब देवताओं के यज्ञभागों को ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवसैन्यपराजयोनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ततःप्रातःसमुत्थायदानवास्तेप्रहर्षिताः ॥ शून्यांशक्रपुरींदृष्ट्वाविविशुस्तदनन्तरम् ॥ ७५ ॥ अथशाक्रेपदेदैत्यं महिषंसन्निधायच ॥ प्रणेमुस्तुष्टिसंयुक्ताश्चक्रुश्चैवमहोत्सवम् ॥ ७६ ॥ जगृहुर्यज्ञभागांश्चसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ देव स्थानेषुसर्वेषुदेवतानिर्जितास्तुयैः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवसेनापराजयोनामषो डशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंशक्रादयोदेवाजितास्तेतुरणाजिरे ॥ महिषेणततोराज्यंत्रैलोक्येपिचकारसः ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्त्रि षुलोकेषुसारभूतम्प्रपश्यति ॥ गजवाजिरथास्त्रादिसर्वंगृह्णातिसोसुरः ॥ २ ॥ एवंप्रवर्तमानस्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ वधार्थंमिलिताश्चक्रुःकथादुःखसमन्विताः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोनारदोमुनिसत्तमः ॥ तदातंमाहिषंसर्वंव्यवहारंम होत्कटम् ॥ ४ ॥ ततश्चकथयामाससर्वंतेषांसविस्तरम् ॥ तस्यसञ्चेष्टितम्भूरिलोकत्रयप्रपीडनम् ॥ ५ ॥ अथतेषांम

दो० । कात्यायनि देवीभई महिषासुर वध हेत । इकसौ सत्रहमें सोई बरणत बुद्धि निकेत ॥ सूतजी बोले कि रणरूपी आंगन में महिषासुरने इसभांति उन इन्द्रादिक देवताओं को जीताहै तदनन्तर उसने त्रिलोक में भी राज्यकिया ॥ १ ॥ वह महिषासुर तीनों लोकों में हाथी, घोड़ा, रथ व स्त्री आदिक जो कुछ वस्तु सारभूत (श्रेष्ठ) देखता था उस सबको ग्रहण करता था ॥ २ ॥ उस दैत्यको इसप्रकार वर्तमान होनेपर दुःखसंयुत होतेहुए इन्द्रसमेत समस्त देवताओंने मिलकर उस महिषासुरके मारने के लिये कथाओं को किया ॥ ३ ॥ इसी अवसर मे मुनिनायक नारदजी प्राप्त हुये तदनन्तर उन ने उस समय महिषासुर के उस समस्त बड़े उग्र ब्योहार

को व बहुतही तीनों लोकों के पीड़ावाले उसके समस्त कर्मको उन देवताओं से विस्तार समेत कहा ॥ ४ । ५ ॥ इसके अनन्तर लोककी कथाओं से उपजे हुये नारद जी के वैसे वचन को सुनकर फिर भी उन देवताओं के बड़ाभारी क्रोध बढ़ा ॥ ६ ॥ व उन देवताओं के क्रोधसे उपजाहुआ धुवाँ मुख के द्वारसे निकला कि जिससे उसी क्षण समस्त दिशाओं का मण्डल मलिन करदियागया ॥ ७ ॥ इसी अवसर में वहांपर स्वामिकार्त्तिकेय जीने भलीभांति आगमन किया व पूंछा कि हे मुने ! यह क्या देवताओंके क्रोधका कारणहै कि जिससे समस्त दिग्मंडल मलिनता को प्राप्त होगया ॥ ८ ॥ नारद जी बोले कि हे स्वामिकार्त्तिकेय जी ! जिसप्रकार उन

हाकोपोभूयएवाभ्यवर्द्धत ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वाताद्दग्लोककथोद्भवम् ॥ ६ ॥ तेषांकोपोद्भवोधूमोवक्त्रद्वारेणनिर्ययौ ॥ येनदिग्मण्डलंसर्वंतत्क्षणात्कलुषीकृतम् ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्रकार्त्तिकेयःसमभ्ययात् ॥ पप्रच्छचकिमेतद्धिदेवानांकोपकारणम् ॥ येनकालुष्यताम्प्राप्तं दिक्चक्रंसकलंमुने ॥ ८ ॥ नारदउवाच ॥ एतेषांसाम्प्रतंस्कन्द मयावार्ता निवेदिता ॥ त्रैलोक्यंदानवैस्सर्वैर्यथानीतंमहोत्कटैः ॥९॥ स्त्रीरत्नमश्वरत्नंवा नकिञ्चित्कस्यचिद्गृहे ॥ तद्दृष्ट्वामोचयन्तिस्म दुर्निवार्यामदोत्कटाः ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वाकार्त्तिकेयस्य विशेषाज्जायतेचरुट् ॥ वक्त्रमार्गेणदेवानां यथाकोपःसमागतः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजाता तत्कोपान्तेकुमारिका ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ना दिव्यतेजोन्विताशुभा ॥ १२ ॥ कार्त्तिकेयस्यकोपेन कोपेमिश्रेदिवौकसाम् ॥ यस्माज्जाताचसाकन्या तस्मात्कात्यायनीस्मृता ॥ १३ ॥ ततस्तस्याद

बड़ेभारी उग्र समस्त दैत्योंने त्रिलोकको प्राप्तकिया इससमय मैंने वही वार्ता इन देवताओं से निवेदन किया ॥ ९ ॥ कि उत्तम स्त्री व श्रेष्ठ घोड़ा इत्यादि कुछ किसी के घरमें नहीं है क्योंकि क्लेशसे मना करने के योग्य व गर्वसे उग्र उन दैत्योंने देख कर लेलियाहै ॥ १० ॥ उस वचनको सुनकर स्वामिकार्त्तिकेय जीके विशेषता से क्रोध उत्पन्नहुआ जैसे कि देवताओं के मुखमार्गसे क्रोध पैदाहुआथा ॥ ११ ॥ इसी अवसरमें उस क्रोध के बाद दिव्य तेजसे संयुत व समस्त लक्षणों से चिह्नित शुभदायक कन्या पैदाहुई ॥१२॥ जिस कारण देवताओंके क्रोधको स्वामिकार्त्तिकेयजीके क्रोधसे मिलनेपर कन्या उत्पन्नहुई उसी लिये वह कात्यायनी कहीगई है ॥१३॥

तदनन्तर इन्द्र जीने वज्रास्त्र को व महासेन जीने अति पैने अग्रभागवाली शक्तिको व विष्णुदेव जीने उस को धनुष् दिया ॥ १४ ॥ व महादेव जीने त्रिशूल व आपही वरुणजीने फँसरी व सूर्य्यजीने पैने बाणोंको व चन्द्रमाने उत्तम ढालको दिया ॥ १५ ॥ व प्रसन्न होतेहुये निर्ऋति देवने तलवार व अग्निदेवजीने उत्कल अस्त्रको व पवन ने पैनी छुरीको तथा कुबेरजीने परिघको दिया ॥ १६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! दैत्योंके मारनेके लिये यमराजजीने भयंकर दंडको दिया तदनन्तर उस कात्यायनीने ऐसे बारह अस्त्रों को भलीभांति देखकर बारह भुजाओंको किया व देवताओं के उन सुन्दरे अस्त्रोंको शीघ्रही ग्रहण किया ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर भ-

दौवज्रमायुधंत्रिदशाधिपः ॥ शक्तिस्कन्दस्सुतीक्ष्णाग्रां चापंदेवोजनार्द्दनः ॥ १४ ॥ त्रिशूलञ्चमहादेवः पाशञ्चवरुणस्स्वयम् ॥ आदित्यश्चशितान्बाणांश्चन्द्रमाश्चर्मचोत्तमम् ॥ १५ ॥ निस्त्रिंशंनिर्ऋतिस्तुष्ट उत्कलंचहुताशनः ॥ वायुश्चक्षुरिकांतीक्ष्णां धनदःपरिघंतथा ॥ १६ ॥ दण्डंप्रेताधिपोरौद्रं वधायसुरविद्विषाम् ॥ द्वादशैवंसमालोक्य सायुधानिद्विजोत्तमाः ॥१७॥ कात्यायनीततश्चक्रे भुजद्वादशकन्तथा ॥ जग्राहचद्रुतंतानि सुशस्त्राणिदिवौकसाम् ॥ १८ ॥ ततःप्रोवाचतान्सर्वान् सम्प्रहृष्टतनूरुहान् ॥ यदर्थंविबुधश्रेष्ठाः सृष्टातद्ब्रूतमाचिरम् ॥ १९ ॥ सर्वंकार्यंकरिष्यामि युष्माकंनात्रसंशयः ॥ २० ॥ देवाऊचुः ॥ महिषोदानवोरुद्रःसमुत्पन्नोत्रसाम्प्रतम् ॥ अवध्यस्सर्वभूतानां मानुषाणांविशेषतः ॥ २१ ॥ मुक्त्वैकायोषितंतेन त्वमस्माभिर्विनिर्मिता ॥ तस्मात्त्वंसाम्प्रतंगच्छ विन्ध्याख्यंपर्वतोत्तमम् ॥२२॥ तपस्तत्रकुरुष्वोग्रं तेजोयेनाभिवर्द्धते ॥ ततस्तुतेजसायुक्तांत्वांज्ञात्वावयमेवहि ॥ २३ ॥ अग्रेकृत्वाकरिष्यामो युद्धंतेन

लीभांति प्रसन्न लोमोंवाले उन समस्त देवताओं से कहा कि हे देवतोत्तमो ! जिस लिये मैं रचीगईहूं उसको शीघ्रही कहिये ॥ १९ ॥ मैं तुमलोगों के समस्त कार्य्य को करूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ देवतालोग बोले कि इससमय इस भूतल में महिष नामक विकराल दैत्य उत्पन्नहुआ है जोकि एक स्त्रीको छोड़कर सम्पूर्ण प्राणियों के व विशेषकर मनुष्योंके न मारने योग्यहै उसीसे हमलोगोंने तुमको रचा है इसलिये इससमय तुम विन्ध्याचल नामक पर्वतोत्तम को जावो ॥ २१ । २२ ॥ और वहांपर उग्र तपस्याको करो कि जिससे तेज बढ़ै तदनन्तर तेजसे संयुतहुई तुमको जानकर हमलोग निश्चयकर अगाड़ीकरके उस दुष्टात्मा के साथ युद्धकरैंगे

तदनन्तर तुम्हारे बाणसे जलाहुआ वह मृत्युको प्राप्तहोगा ॥ २३ । २४ ॥ व मरेहुये शत्रुवाले हमलोग देवताओं के ऐश्वर्य्यको पावैंगे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोत्
तीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां कात्यायन्युत्पत्तिर्नामसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । इन्द्रादिक देवन सकल पायो निज निज थान । सोइ एकसौ अठारह माहिं कहत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर देवताओंके उस वचनको सुनकर उन
कात्यायनी परमेश्वरीने कहा कि हे देवताओ! मुझको शीघ्रही किसी वाहनको दीजिये ॥ १ ॥ तदनन्तर सवारीके लिये पार्वती जीने बीभत्सित मुखवाले सिंहको दिया

दुरात्मना ॥ ततस्त्वच्छरसंदग्धःपञ्चत्वंसंप्रयास्यति॥२४॥वयंचत्रिदशैश्वर्यं लभिष्यामोहतद्विषः॥२५॥इति श्रीस्कन्द
पुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येकात्यायन्युत्पत्तिर्नामसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७॥
सूतउवाच ॥ देवानांतद्वचःश्रुत्वाततःसापरमेश्वरी ॥ प्रोवाचवाहनंकिञ्चिद्देवायच्छन्तुमेद्रुतम् ॥ १ ॥ ततस्सिंहंद
दौगौरी यानार्थंविकृताननम् ॥ तमारुह्यप्रतस्थेसा ततोविन्ध्यंनगम्प्रति ॥ २ ॥ तस्यैवंशृङ्गमास्थायरम्यंश्रेष्ठसमन्वि
तम् ॥ फलपुष्पसमाकीर्णं तालमण्डपमण्डितम् ॥ ३ ॥ ततस्तपोकरोत्साध्वी तीव्रव्रतपरायणा ॥ संयम्येन्द्रियवर्गंस्वं
ध्यायमानामहेश्वरम् ॥ ४ ॥ यथायथातपोवृद्धिस्तस्यास्संजायतेद्विजाः ॥ तथारूपंचकान्तिश्च शरीरेपिचवर्धते ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्तत्रदैत्येश्वरेश्वराः ॥ तेतांदृष्ट्वाव्रतोपेतामत्यद्भुतवपुर्धराम् ॥ ६ ॥ गत्वाप्रोचुस्स्वनाथस्य माहि

उसके उपरान्त उस भगवतीने उस सिंहपै चढकर विन्ध्याचलके सामने प्रस्थान किया ॥ २ ॥ उस विन्ध्याचलके उत्तमता संयुक्त तथा मनोहर व फल, फूलोंसे व्याप्त
और तालोंके मण्डपोंसे शोभित शिखरपै टिककर ॥ ३ ॥ तदनन्तर तीव्र (उग्र) व्रतोंमें परायण व महादेवजीको ध्यान करतीहुई उस उत्तम आचरणोंवाली कात्या-
यनीने इन्द्रियोंके समूहको भलीभांति रोंककर तपस्या किया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! ज्यों ज्यों उस कात्यायनीके तपकी वृद्धि होती थी त्यों त्यों शरीर मेंभी रूप व शोभा
बढ़तीथी ॥ ५ ॥ इसी अवसर में दैत्येश्वर महिषासुरके सेवक लोग वहांपर प्राप्तहुये उन्होंने अतिअद्भुत शरीरको धारनेवाली व व्रतसे संयुक्त उस भगवतीको देखकर

व जाकर दुष्टात्मा महिषासुर नामक अपने स्वामीसे कहा ॥ ६।७ ॥ निशाचर बोले कि धरातलमें घूमते हुये हमलोगोंने विन्ध्याचल पर्वतपै नाना प्रकारके शस्त्रोंको धारनेवाले व प्रकाशवाले बारह भुजाओंसे संयुत व ढालसे ढके हुये मस्तकवाली अपूर्व कन्याको देखाहै पुरातन समय हमलोगोंने वैसे रूपवाली किसीभी देवी व गन्धर्विणी व दैत्यपत्नी व नागकन्याको नहीं देखा है और हम नहीं जानते हैं कि उस नितम्बिनी याने उत्तमनितम्बवाली व कीर्तिमती स्त्रीने जिसलिये तपस्या किया है ॥ ८।९।१० ॥ हे विभो ! स्वर्गकी इच्छावाली या द्रव्य चाहनेवाली अथवा पतिके अभिलाषवाली है ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उन सेवकोंके उस वचन

षस्यदुरात्मनः ॥ ७ ॥ निशिचराऊचुः ॥ भ्रममाणैर्धरापृष्ठेदृष्टापूर्वाकुमारिका ॥ विंध्याचलेतुचास्माभिर्भुजैर्द्वादश भिर्युता ॥ ८ ॥ नानाशस्त्रधरैर्दीप्तैश्चर्मच्छादितमस्तका ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनागकन्यका ॥ ९ ॥ तादृग्रूपापुरा स्माभिर्नापिदृष्टानितम्बिनी ॥ नविद्मोयन्निमित्तंसा तपश्चक्रेयशस्विनी ॥ १० ॥ स्वर्गकामार्थकामावा पतिकामाथ वाविभो ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा महिषोदानवाधिपः ॥ कामदेववशम्प्राप्तः श्रवणादपितत्क्षणात् ॥ १२ ॥ ततस्तानग्रतःकृत्वा सैन्येनमहतान्वितः ॥ जगामकौतुकाविष्टो यत्रास्तेसातुकन्यका ॥ १३ ॥ यथामृत्युकृते मन्दः शृगालःसिंहवल्लभाम् ॥ वनेसुप्तांसुविश्वस्तां सर्वतोप्यकुतोभयाम् ॥ १४ ॥ तस्यास्सन्दर्शनादेव ततःकामशरै र्हतः ॥ सदानवप्रधानश्च तत्क्षणादेवसद्द्विजाः ॥ १५ ॥ अथप्राहप्रियंवाक्यमेकाकीतत्पुरःस्थितः ॥ धृत्वादूरतरे

को सुनकर महिषनामक दैत्यनायक सुनने से भी उसी क्षण कामदेवके वशमें प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन सेवकों को अगाड़ी करके बड़ीसेनासे संयुत व कौतुक से पैठाहुआ महिषासुर वहांगया जहाँकि वह कन्या बैठीथी ॥ १३ ॥ जैसे कि भलीभांति विश्वास कियेहुई व सबओर सेभी निर्भय व वनमें सोतीहुई सिंह की प्यारी (सिंहिनी) के निकट मृत्युके लिये मूर्खसियार जावै ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो ! वह दैत्योंमें मुख्य (महिषासुर) उन भगवती जीके भलीभांति दर्शनहीसे कामदेव के बाणोंसे ताड़ितहुआ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर बड़ी दूर में सेनाको धरकर याने टिकाकर उस देवीके रूपसे मोहित व अकेले उसके अगाड़ी

टिकाहुआ महिषासुर प्यारे वचनको बोला ॥ १६ ॥ कि हे मनोहर हास्यवाली ! यह व्रत तुम्हारे यौवनके विरुद्धहै इसलिये इसको छोड़कर त्रिलोक की स्वामिनी होवो ॥ १७ ॥ यदि सुनागयाहूं याने कदाचित् तुमने सुनाहो तो मैं महिषासुर नामक दैत्येन्द्रहूं कि जिस मैंने द्वन्द्व याने दोही के युद्धमें हजार नेत्रवाले इन्द्र जी को विशेषकर जीताहै ॥ १८ ॥ हे उत्तम कटिवाली ! इससमय समस्त त्रिलोक मेरे वशमें स्थितहै इसलिये तुम मेरी अतिप्यारी नारी होवो ॥ १९ ॥ व मेरे और अति उत्तम हजार स्त्रियाहैं इस समय आज वे सब तुम्हारी सेवकाई करैंगी ॥ २० ॥ व हे उत्तम कटिवाली ! दीहुई समस्त सम्पदाओंवाला मैंही तुम्हारे अत्यन्त दासभाव

सैन्यंतस्यारूपेणमोहितः ॥ १६ ॥ विरुद्धंयौवनस्येदंव्रतन्तेचारुहासिनि ॥ तस्मादेतत्परित्यक्त्वात्रैलोक्यस्वामिनी भव ॥ १७ ॥ अहंहिमहिषोनाम दानवेन्द्रोयदिश्रुतः ॥ मयायेनसहस्राक्षो द्वन्द्वयुद्धेविनिर्जितः ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यंस कलंमह्यं साम्प्रतञ्चवशेस्थितम् ॥ तस्मात्त्वंभवसुश्रोणिभार्याममसुवल्लभा ॥ १९ ॥ सहस्रंममभार्याणामन्यदस्ति सुशोभनम् ॥ तत्सर्वंतेद्यभृत्यत्वं साम्प्रतंप्रकरिष्यति ॥ २० ॥ अहञ्चैवतवात्यन्तं दासभावंसमाश्रितः ॥ वर्त्तयिष्यामिसु श्रोणिप्रदत्ताशेषसम्पदः ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा ततस्सापरमेश्वरी ॥ प्रोवाचभर्त्समानातंकोपसंर क्तलोचना ॥ २२ ॥ धिग्धिक्पापसमाचार कुमारव्रतधारिणीम् ॥ कामोपहतचित्तात्मा किंमामित्थंप्रभाषसे ॥ २३ ॥ अहंतववधार्थाय निर्मिताविबुधोत्तमैः ॥ तस्मात्त्वांनाशयिष्यामिस्मरेष्टंयद्धृदिस्थितम् ॥ २४ ॥ महिषउवाच ॥ य द्येवंतद्वरारोहेयुक्तंस्याच्चकुमारिका ॥ प्रार्थनीयाभवेदत्र सर्वेषांप्राणिनांयथा ॥ २५ ॥ स्वर्गार्थंक्रियतेधर्मं तपश्चवरव

में भलीभांति टिककर वर्तमान हूंगा ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस महिषासुर के उस वचनको सुनकर क्रोधसे अतिलाल लोचनोंवाली व उसको घुड़कतीहुई वह कात्यायनी परमेश्वरी बोली ॥ २२ ॥ कि हे पाप आचरणोंवाले ! तुमको धिक्कारहै धिक्कार है कामदेवसे ताड़ित चित्त या मनवाले तुम कन्याव्रतके धारनेवाली मुझसे क्यों ऐसा कहतेहो ॥ २३ ॥ देवतोत्तमोंने तुम्हारे मारनेके लिये मुझको रचाहै इसलिये हृदयमें टिकाहुआ जो प्रियपदार्थ हो उसको स्मरणकरो क्योंकि मैं तुमको नाश करूंगी ॥ २४ ॥ महिषासुर बोला कि हे वरारोहे याने सुशोभने ! यदि ऐसाहै तो योग्यहै जैसे कि इस संसारमें कन्या समस्त प्राणियोंके प्रार्थना योग्य होवैहै ॥ २५ ॥

वैसेही हे सुशोभने ! स्वर्गके लिये धर्म व तप कियाजाता है कि जिससे जो देवताओंवाले व जो मनुष्योंवाले भोगहैं उनको भोग करते हैं ॥ २६ ॥ इसलिये हे सुशोभने ! गन्धर्वविवाहसे मुझे आत्माको दीजिये जिस लिये कि अन्य विवाहोंके मध्यमें वह मुख्य कहागयाहैं ॥ २७ ॥ उस महिषासुर को इसप्रकार कहतेहुये वह देवी क्रोधसे मूर्च्छितहुई व देवीने उसके मुखमध्य को भलीभांति उद्देशकर बाणको छोड़ा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर वह बाण उसके मुखमें वैसेही पैठगया जैसे कि बेंबैरिमें सर्प पैठजाता है तदनन्तर उन बाणोंसे मुखके बीचमें वेधित वह महिषासुर शब्द करताभया ॥ २९ ॥ तदनन्तर गेरूवाले पर्वत के समान बहुत रुधिर बहा

णिनि ॥ येनभोगाःप्रभुञ्जन्ति येदिव्यायेचमानुषाः ॥ २६ ॥ तस्माद्देहिममात्मानं गान्धर्वेणसुशोभने ॥ विवाहेनय तोन्येषां सप्रधानःप्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ एवंप्रवदतस्तस्यसादेवीक्रोधमूर्च्छिता ॥ तद्वक्रान्तंसमुद्दिश्य शरोदेव्याविमोचितः ॥ २८ ॥ विवेशवदनंतस्य वल्मीकंपन्नगोयथा ॥ अथतैर्मार्गणैर्विद्धो सवक्रान्तेनदंस्ततः ॥ २९ ॥ सुस्रावरुधिरम्भूरिगैरिकंपर्वतंयथा ॥ ततःकोपपरीतात्मा निवर्त्याथशनैश्शनैः ॥ ३० ॥ स्वसैन्यंत्वरितम्भेजे कामेनचवशीकृतः ॥ प्रोवाचसैनिकान्सर्वान् दुष्टास्त्रीयम्प्रगृह्यताम् ॥ ३१ ॥ यथानत्यजतिप्राणान् प्रहारैर्जर्जरीकृता ॥ एषाममनसन्देहोविप्राभार्याभविष्यति ॥ ३२ ॥ यदिनोशस्त्रपातेनपञ्चत्वमुपयास्यति ॥ एवमुक्तास्तदातेनदानवायुद्धदुर्मदाः ॥ ३३ ॥ दुद्रुवुःसम्मुखास्तस्या मुञ्चन्तोनिशिताञ्छरान् ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवीसादृष्ट्वातानुपस्थितान् ॥ ३४ ॥ युद्धायकृतसङ्कल्पांस्तर्जतश्चमुहुर्मुहुः ॥ ततस्तुलीलयादेवीमुक्त्वातीक्ष्णान्महाशरान् ॥ ३५ ॥ तान्सर्वांस्ताडयामास सर्वमर्मसु

इसके अनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाला व कामदेवसे वश कियाहुआ वह महिषासुर धीरे २ लौटकर शीघ्रही अपनी सेनाको प्राप्तहुआ वह सेनावाले समस्त मनुष्योंसे बोला कि यह दुष्टा स्त्री उस प्रकार पकड़लीजाय ॥ ३० । ३१ ॥ कि जिस प्रकार प्रहारों से जर्जर कीहुई वह प्राणों को न त्यागकरै यदि शस्त्रोंके ताड़नसे मृत्यु को न प्राप्तहोगी तो हे ब्राह्मणो ! यह निस्सन्देह मेरी स्त्रीहोगी उससमय उससे इसभांति कहेहुये युद्धमें दुर्मदवाले दैत्य ॥ ३२।३३ ॥ पैने बाणोंको छोड़तेहुये उस कात्यायनी के सामने दौड़े इसी अवसरमें उस देवीने युद्धके लिये कियेहुये संकल्पोंवाले व बार बार डरवातेहुये उन दैत्योंको समीपमें प्राप्तहुये देखकर तदनन्तर देवीने लीलासे पैने

इसके अनन्तर उससमय पैने बाणोंसे मारेहुये कितेक दैत्य महाबाणोंको छोडकर ॥ ३४ । ३५ ॥ व उसीक्षण उन समस्त दैत्योंके सब मर्मस्थानों में ताड़न किया इसके अनन्तर उससमय पैने बाणोंसे मारेहुये कितेक दैत्य मृत्युको प्राप्तहुये व ताड़ित होतेहुये अन्य दानव दिशाओं में चलेगये तदनन्तर युद्ध में उस भगवती से उस सेनाको कटीपिटी देखकर ॥ ३६ । ३७ ॥ तदनन्तर क्रोध संयुत होताहुआ वह दैत्य आपही उन भगवती के समीप दौड़ा व उस देवीको सैकड़ों हज़ारों सींगोंके प्रहारोंको देतेहुये उसने हर्षसे शरद्समय के मेघों के समान घोर गर्जन किया इसी अवसर में शब्दको कियेहुई उस देवीने हास्यकिया ॥ ३८ । ३९ ॥ कि जिस हास्यके शब्दसे त्रैलोक्य का रन्ध्र पूर्ण होगया इसके

अथतीव्रैःशरैर्दैत्यानिहतादानवास्तदा ॥३६॥ एकेपञ्चत्वमापन्ना गतान्येदिक्षुसंहताः ॥ ततस्सैन्यंसमा तत्क्षणात् ॥ कोपाविष्टस्ततोदैत्यः स्वयंतांसमुपाद्रवत् ॥ यच्छञ्छृङ्गप्रहारांश्च तस्याःशतसहस्र शः ॥ ३८ ॥ गर्जितंविदधेचोग्रं शारदाभ्रसमंमुदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवी साजहासकृतस्वना ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्य विवरंसर्वं यच्छब्देनप्रपूरितम् ॥ एवंतस्याहसन्त्याथ वक्त्रान्तादथनिर्ययुः ॥ ४० ॥ पुलिन्दाःशवराम्लेच्छास्तथान्येर ण्यवासिनः ॥ शकाश्चयवनाश्चैव शतशस्तुवपुर्धराः ॥ ४१ ॥ वर्मस्थगितगात्राश्च यमदूताइवापरे ॥ तेप्रोचुःदेवि लोक्य तद्गगनञ्चतयारणे ॥३७॥ नोब्रूहियेनसृष्टावयंक्षितौ ॥ ४२ ॥ कार्येणाक्रियतेसर्वंयेनशीघ्रंवरानने ॥ ४३ ॥ देव्युवाच ॥ एतानस्यसुदुष्टस्य सै निकान्बलगर्वितान् ॥ सूदयध्वंद्रुतंवाक्यादस्मदीयाद्यथेच्छया ॥ ४४ ॥ अथतेतद्वचःश्रुत्वा बलवन्तोधनुर्धराः ॥ दैत्येय

अनन्तर इसप्रकार उस भगवती के हँसतेहुये मुखके मध्यसे शरीर के धारनेवाले सैकड़ों पुलिन्द, शबर, म्लेच्छ व और वनके निवासी शक व यवन लोग निश्चयकर निकले ॥ ४०।४१ ॥ जोकि बख्तरोंसे आच्छादित अङ्गोंवाले दूसरे यमदूतोंके समानथे उन्होंने कहा कि हे देवि ! जिस कार्यके लिये हमलोग भूमिमें रचेगये हैं उसको हमलोगों से कहो कि जिससे हे वरानने ! वह सब किया जावै ॥ ४२ । ४३ ॥ देवीबोलीं कि इस अतिदुष्ट महिषासुर की सेनावाले बलसे गर्वित इन दैत्योंको हमारी वाक्यसे तुमलोग शीघ्रही यथेच्छासे नाशकरो ॥४४॥ इसके अनन्तर धनुषधारनेवाले वे बलिष्ठ पुलिन्दादिक उस वचनको सुनकर स्वर्गमें टिकीहुई दैत्योंकी सेनाको

उद्देशकर दौड़े ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन सबोंका आपसमें बड़ाभारी घोर युद्ध हुआ उसमें कहींपर किसीसे अपना, पराया नहीं जानाजाताथा ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर देवीसे उपजेहुये योधाओंने उन समस्त दैत्योंको भंगकरदिया व मारडाला तथा अन्य दानवों को प्रहारों से जर्जर करदिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर कटीपिटी सेना को देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होतेहुये महिषासुर ने उस देवीसे क्रोध के कारण कठोर आखरवाले वचनोंसे कहा ॥ ४८ ॥ कि अहो पापिनि ! जिसकारण मुझसे तुम स्त्री के निमित्त युद्धमें नहीं मारीगईहो उसको तुम अन्यथा जानतीहो इसलिये मेरे प्रभाव को देखिये ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर बार२ घुड़कतेहुये उस बड़ेवेगवान् महिषा-

बलमुद्दिश्य दुद्रुवुःस्वर्गमाश्रितम् ॥ ४५ ॥ ततस्तेषांमहद्युद्धं मिथोजज्ञेसुदारुणम् ॥ नात्मीयंनपरन्तत्र केनचिज्ज्ञा यतेकचित् ॥ ४६ ॥ अथतेदानवास्सर्वे योधैर्देवीसमुद्भवैः ॥ भग्नाव्यापादिताश्चान्येप्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥४७॥ ततोभ ग्नंबलंदृष्ट्वा महिषःक्रोधमूर्च्छितः ॥ तामुवाचक्रुधादेवींवचनैःपरुषाक्षरैः ॥ ४८ ॥ आःपापेस्त्रीनिमित्ताद्यन्नहतासिम यायुधि ॥तस्मात्पश्यप्रभावंमे तत्त्वंबुध्यसिचान्यथा ॥४९॥ एवमुक्त्वाविशेषेण प्रहारैस्तांसचिक्षिपे ॥ विषाणाभ्यांम हावेगोभर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ५० ॥ ततोभ्युपगतंदृष्ट्वा सादेवीदानवंचतम् ॥ आरुरोहाथवेगेन पृष्ठदेशेनकोपतः ॥ ५१ ॥ ततश्चुक्रोशदैत्योसौ व्योममार्गसमाश्रितः ॥ पृष्ठ्यास्तलेननिर्भिन्नो रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्त रेसिंहः सतस्याज्योतिसम्भवः ॥ जग्राहपश्चिमेभागे दंष्ट्राग्रैर्निशितैःक्रुधा ॥ ५३ ॥ ततोनिश्चलतांप्राप्तः पादाक्रान्त श्चदानवः ॥ अकरोद्भैरवान्नादानशक्तश्चलितुंपदम् ॥ ५४ ॥एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ व्योमस्थास्तांत

सुरने विशेषकर सींगों के प्रहारों से उस भगवतीको फेंकदिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर वह देवी समीप में आयेहुये उस दैत्यको देखकर इसके अनन्तर क्रोधसे पृष्ठदेश (पीठ) पै चढ़गई ॥ ५१ ॥ तदनन्तर आकाशमार्गमें टिका व पीठके नीचे भागसे विदीर्णहुये इस दैत्यने रुधिरके प्रवाहसे डूबकर शब्दकिया ॥ ५२ ॥ इसी अवसरमें उस देवी की दीप्ति से उपजेहुये उस सिंहने क्रोधसे पैनी दाढ़ोंके अग्रभाग से पिछले भागमें पकड़लिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर पांवोंसे घिराहुआ वह दैत्य अचलताको प्राप्तहुआ व पगभर चलनेके लिये न समर्थहुआ और भयंकर शब्दोंको किया ॥ ५४ ॥ इसी अवसरमें इन्द्र समेत समस्त देवता प्राप्तहुये व आकाश में टिके तथा

हर्षसे संयुत होतेहुये उन्होंने उस देवीसे कहा ॥५५॥ कि हे सुरेश्वरि ! जबतक अन्यत्र न जावै तबतक इस पैनी तलवार से शीघ्रही इसके शिरका छेदनकरो ॥ ५६ ॥ उन देवताओं के वचनको सुनकर क्रोधसंयुत होतीहुई उस देवीने उस महिषासुरके मोटे भी गले में तलवार को मारा ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर देवताओंकी प्रसन्नता को धारण करतीहुई दैत्यकी वह मोटी व पुष्ट भी ग्रीवा उस तलवारके ताड़न से दो खंड होगई ॥ ५८ ॥ उससमय उस महादेवीको घुड़कतेहुये व बारह सूर्य्योंके समान मुखमध्य वाले व ढाल तलवार को धारनेहारे व खड्गसे उद्यत हाथवाले महिषासुरने बालसूर्य्य के समान तलवारको उस भगवतीके शरीर में व्यापारकिया याने

थाप्रोचुर्देवींहर्षसमन्विताः ॥ ५५ ॥ एतस्यशिरसश्छेदं शीघ्रंकुरुसुरेश्वरि ॥ खड्गेनानेनतीक्ष्णेन यावन्नोयातिचान्यतः ॥ ५६ ॥ साश्रुत्वावचनंतेषां देवीकोपसमन्विता ॥ खड्गंव्यापारयामास कण्ठेतस्यापिपीवरे ॥ ५७ ॥ सतेनखड्गघातेन कण्ठःपीनोपिनिष्ठुरः ॥ द्विधाजज्ञेथदैत्यस्य दधंस्तुष्टिंदिवौकसाम् ॥५८॥ द्वादशार्कप्रतीकाशवक्रान्तश्चर्मखड्गधृक् ॥ भर्त्सयंस्तांमहादेवीं खड्गोद्यतकरस्तदा ॥ ५९ ॥ खड्गंव्यापारयन्गात्रे तस्याबालार्कसन्निभम् ॥ ततःकेशेषुचादाय यावत्तस्यापिचिक्षिपे ॥ ६० ॥ प्रहारंगात्रनाशाय तावदूचेसदानवः ॥ ६१ ॥ दानवउवाच ॥ जयदेविजयाचिन्त्ये जयसर्वसुरेश्वरि ॥ जयसर्वगतेदेवि जयसर्वजनप्रिये ॥ जयकामप्रदेनित्यं जयत्रैलोक्यसुन्दरि ॥ ६२ ॥ जयदेविकृतानन्दे जयदैत्यविनाशिनि ॥ यतस्त्रैलोक्यरक्षार्थमुद्यतास्यकुतोभये ॥ ६३ ॥तस्मात्कुरुप्रसादम्मे प्राणान्रक्षदया-

चलाया तदनन्तर बालोंको पकडकर जबतक उस दैत्य केभी शरीरको नाश करनेके लिये प्रहार फेंकागया तबतक वह महिषासुर दैत्य बोला ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ दैत्य बोला कि हे देवि ! जयकरो हे अचिन्त्ये ! जयकरो हे सर्वसुरेश्वरि ! तुम जयकरो हे सर्वव्यापिनि ! जयकरो हे सर्वजनप्रिये ! तुम जयकरो हे नित्यकामप्रदायिनि ! जयकरो हे त्रैलोक्यसुन्दरि ! तुम जयकरो ॥ ६२ ॥ हे देवि, हे कृतानन्दे ! तुम जयकरो हे दैत्यविनाशिनि ! जयकरो व हे अकुतोभये याने सबकहीं से भयरहिते ! जिसलिये कि तुम त्रिलोककी रक्षाके लिये उद्यतहो ॥ ६३ ॥ उसी लिये प्रणाम कियेहुये व अतिदीन तथा विशेषकर नमेहुये मेरे ऊपर प्रसन्नता करो व

मेरे प्राणोंकी रक्षाकरो व दयाकरो मैं दुर्वासा मुनिसे शापित हिरण्याक्षका बलिष्ठ पुत्रहूं ॥ ६४ । ६५ ॥ हे देवि ! भैंसेके भावको भलीभांति प्राप्तहुआ मैं तुमसे छुड़ाया गया इसलिये आज मैंने दानवसे उपजेहुये अहंकार को छोड़दिया ॥ ६६ ॥ हे सर्वव्यापिनि, हे देवि, हे सर्वदुष्टविनाशिनि ! तुम जयकरो हे सुरेश्वरि ! इससमय मैं तुम्हारे दासभावको प्राप्तहूंगा ॥ ६७ ॥ तदनन्तर उस महिषासुरके ऐसे दीन वचनको सुनकर दयासंयुत होतीहुई उस सुरेश्वरीने आकाशमें खड़ेहुये देवताओंसे कहा ॥ ६८॥ कि हे देवताओ ! मैं क्याकरूं क्योंकि इस दैत्यके ऊपर मेरे दया उत्पन्नहुईहै इसलिये मैं दीन वचनको कहनेवाले दैत्यको न मारूंगी ॥ ६९ ॥ क्योंकि विमुख

कुरु ॥ ६४ ॥ प्रणतस्यसुदीनस्य विनतस्यविशेषतः ॥ अहंदुर्वाससाशप्तो हिरण्याक्षसुतोबली ॥ ६५ ॥ महिषत्वंस मानीतस्त्वयादेविविमोक्षितः ॥ तस्माद्दर्प्पःप्रमुक्तोद्य मयादानवसम्भवः ॥ ६६ ॥ किङ्करत्वंप्रयास्यामि साम्प्रतन्तेसु रेश्वरि ॥ जयसर्वगतेदेवि सर्वदुष्टविनाशिनि ॥ ६७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा कृपणंसासुरेश्वरि ॥ कृपाविष्टाब्रवीद्वाक्यं ततोव्योमस्थितान्सुरान् ॥ ६८ ॥ किङ्करोमिदयाजाता ममैनंप्रतिहेसुराः ॥ तस्मान्नाहंहनिष्यामि दानवंदीनजल्पक म् ॥ ६९ ॥ विमुखंचाप्यशस्त्रञ्च तवास्मीतिप्रवादिनम् ॥ अपिमेपितृवधकरंनहन्मिरिपुमाहवे ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ नहि चेद्धंसिदेवेशि त्वमेनंदानवाधमम् ॥ नाशयिष्यतितत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ७१ ॥ एषव्यर्थःश्रमस्सर्वस्तथास्माकम्भ विष्यति ॥ तवसम्भूतिसम्भूतस्तवक्लेशस्तथाखिलः ॥ ७२ ॥ देव्युवाच ॥ नाहमेनंहनिष्यामि त्यजिष्यामितथामराः ॥ एनङ्कचग्रहंकृत्वा धारयिष्यामिसर्वदा ॥ ७३ ॥ देवाऊचुः ॥ साधुसाधुमहाभागे युक्तमुक्तंत्वयावचः ॥ एतद्धियुज्यतेकर्तु

व शस्त्ररहित व तुम्हाराहूं ऐसा कहताहुआ यदि मेरेपिताका वधकारक भी शत्रु होवै तो मैं युद्धमें न मारूं ॥ ७० ॥ देवता बोले कि हे देवेश्वरि ! यदि इस नीच दैत्य को तुम न मारोगी तो स्थावर जङ्गम समेत समस्त त्रिलोकको नाशकरैगा ॥ ७१ ॥ व हमलोगों का यह समस्त परिश्रम व तुम्हारे ऐश्वर्य्योंसे उपजाहुआ व तुम्हारा सम्पूर्ण क्लेश व्यर्थ होवैगा ॥ ७२ ॥ देवी बोली कि हे देवताओ ! मैं इस दैत्यको न मारूंगी और न छोड़ूंगी किन्तु बालोंको पकड़कर सदैव धारण करूंगी ॥ ७३ ॥ देवता बोले कि

हे महाभागे ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा हुआ तुमने योग्य वचनको कहाहै हे सुरेश्वरि ! इससमय में यही करनेके लिये योग्यहै ॥ ७४ ॥ इससमय शस्त्रसे उठेहुये हाथवाली व विकराल व भैंसे के ऊपर भलीभांति बैठीहुई तुम मृत्युलोक में इस रूपप्रति समाश्रित होवो याने टिको ॥ ७५ ॥ इस मृत्युलोक में देवताओं सेभी दुर्लभ व उत्तम पूजनको पावोगी व जो पुरुष इस रूपसे भलीभांति टिकीहुई तुमको पूजैगा वह अपने मनोरथ को प्राप्तहोगा ॥ ७६ ॥ व इस महिष के ऊपर बैठीहुई तुम विन्ध्यवासिनी प्रसिद्धहोगी अथवा तुमसे बहुत कहनेसे क्या है समस्त मनुष्यों के हितके लिये हमारे सत्य व उत्तम वचन को संक्षेप से सुनिये कि हे देवि ! युद्ध

ङ्कालेस्मिंस्त्रिदशेश्वरि ॥ ७४ ॥ साम्प्रतंमर्त्यलोकेत्वं रूपमेतत्समाश्रिता ॥ शस्त्रोद्यतकरारौद्रा महिषोपरिसंस्थि ता ॥७५॥ अत्राप्स्यसिपराम्पूजां दुर्लभाममरैरपि ॥ यस्त्वामेतेनरूपेण संस्थिताम्पूजयिष्यति ॥७६॥ त्वमस्यसङ्ग तादेवि विख्याताविन्ध्यवासिनी ॥ किन्तेवाबहुनोक्तेन शृणुसंक्षेपतोवचः ॥ ७७ ॥ अस्मदीयंपरंतथ्यं सर्वलोकहिता यच ॥ पार्थिवानांत्वदायत्तं बलंदेविभविष्यति ॥ युद्धकालेसमुत्पन्ने भक्तानांनात्रसंशयः ॥ ७८ ॥ प्रस्थानंवाप्रवेशं वा यःकरिष्यतिमानवः ॥ त्वांस्मृत्वाप्रणिपत्याशु पूजयित्वाविशेषतः ॥ ७९ ॥ तस्यसंजायतेसिद्धिस्सर्वकृत्येषुसर्व दा ॥ इहकापुरुषस्यापि किम्पुनस्सुभटस्यच ॥ ८० ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे नवम्यामष्टमीदिने ॥ पूजयिष्यतियोमर्त्य स्त्वासुभक्तिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ तस्यसंवत्सरंयावत् समग्रंसुरसुन्दरि ॥ नभविष्येत्क्वचिद्रोगो नभयन्नपराभवः ॥ ८२ ॥ नापमृत्युर्नचौरादिसमुद्भूतउपद्रवः ॥ ८३ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथतेदेवास्तांदेवींहर्षसंयुताः ॥ अनुज्ञातास्तयाज

समय को भलीभांति उत्पन्न होनेपर तुम्हारे भक्तराजाओं का बल तुम्हारे वशहोगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७७ । ७८ ॥ व जो पुरुष तुमको स्मरणकर व शीघ्रही प्रणाम कर व विशेषता से पूजकर प्रस्थान या प्रवेशकरैगा ॥ ७९ ॥ उस कायर या निन्दित पुरुषकी भी सदैव इस लोक में समस्त कार्यों में सिद्धि होतीहै फिर सुवीरको क्या कहनाहै ॥ ८० ॥ व कुँवार महीने के शुक्लपक्ष में अष्टमी व नवमी दिन में जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे संयुत होकर तुमको पूजैगा ॥ ८१ ॥ हे सुरसुन्दरि ! उसके पूर्ण वर्ष भरतक कहीं रोग न होगा व न डर न तिरस्कार न अपमृत्यु व न चौरादिकोंसे उपजाहुआ उपद्रव होताहै ॥ ८२ । ८३ ॥ सूतजी बोले कि हर्षसंयुत होतेहुये वे देवता

उस देवी प्रति इसप्रकार कहकर इसके अनन्तर उससे आज्ञालेकर अमरावती नामक अपने स्थानको चलेगये ॥ ८४ ॥ वहां जाकर व बहुत दिनोंसे अपनी राज्यको पाकर प्रसन्न होतेहुये इन्द्रजीने नष्टहुये कंटकोंवाले त्रिलोकको पालन किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर समस्त मनुष्य सुखसे सम्पन्नहुये व त्रिलोक में फिर देवता यज्ञभागों के भोजन करनेवाले हुये ॥ ८६ ॥ व उसके उपरान्त समस्त तीर्थों व स्थानों व क्षेत्रोंमें व विशेषकर त्रिलोक में वह देवी प्रसिद्धि को प्राप्तहुई ॥ ८७ ॥ इसी अवसर में आनर्तदेशीय सुरथ नामक भूपति हुआहै उसने उत्तम भक्तिसे इसी क्षेत्रमें उस भगवती को विशेषकर निर्माण कियाहै ॥ ८८ ॥ चैत्र महीनेके शुक्लपक्ष में अष्टमी

ग्मुस्स्वस्थानममरावतीम् ॥ ८४ ॥ तत्रगत्वाचिरात्प्राप्य स्वंराज्यंपाकशासनः ॥ पालयामाससंहृष्टस्त्रैलोक्यंहतकण्टकम् ॥ ८५ ॥ लोकाश्चसुखसम्पन्नास्सर्वेजातास्ततःपरम् ॥ यज्ञभागभुजोदेवा भूयोजाताजगत्त्रये ॥ ८६ ॥ ततःपरञ्चसा देवी त्रैलोक्येख्यातिमागता ॥ सर्वतीर्थेषुस्थानेषु क्षेत्रेषुचविशेषतः ॥ ८७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातस्सुरथोनामभूपतिः ॥ आनर्तस्तेनसम्भक्त्या क्षेत्रेत्रैवविनिर्मिता ॥ ८८ ॥ यस्ताम्पश्यतिसद्भक्त्या चैत्राष्टम्यांसितेहनि ॥ सपुमान्वत्सरंयावत् कृतार्थस्स्यान्नसंशयः ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरमाहात्म्येमहिषासुरपराजयकात्यायनीमाहात्म्यन्नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ यथासनिहतोदेव्या महिषाख्योदनूत्तमः ॥ साम्प्रतङ्कीर्त्तयिष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् ॥ १ ॥ केदारसम्भवाम्पुण्यां तांशृणुध्वंसमाहिताः ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केदारःश्रूयतेसूत गङ्गाद्वारेहिमाचले ॥ सकथंचेहसम्प्रा

के दिन जो पुरुष उत्तम भक्तिसे उस भगवती को देखताहै वह वर्षभरतक कृतार्थ(प्रसन्न)होवैहै इस में सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येमहिषासुरपराजयकात्यायनीमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि केदार नामक शिवहिं थापन कियो सुरेश । इकसौ उन्नीसवें महँ वरणत सूत सुवेश ॥ सूतजी बोले कि जिसप्रकार वह महिषनामक दैत्योत्तम देवीसे मारा गया उसको कहा इससमय केदार से उपजीहुई पुण्यदायक व पातकोंके विनाशनेवाली कथाको कहूंगा उसको सावधान होतेहुये तुमलोग सुनो ॥ १ । २ ॥ ऋषि

लोग बोले कि हे सूतजी ! केदार जी हिमालय पर्वतपै गंगाके द्वारमें सुनेजाते हैं वे यहां कैसे प्राप्तहुये इस समस्त चरितको विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह सत्यहै उस पर्वतपै समर्थवान् ब्रह्माजी भलीभांति बैठेहैं परन्तु वहांपर आठमहीने तक शिवदेव जी बसतेहैं ॥ ४ ॥ जबतक उष्ण समय व वर्षा रहतीहै तबतक सदाशिव प्रभुजी वहां बसते हैं व सदैव शीतकालमें फिर इसी क्षेत्रमें भलीभांति टिकतेहैं ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वह क्या कार्य होवैहै कि जिससे चारमहीने क्षेत्रमें और वैसेही आठमहीने हिमालय पर्वतपै बसतेहैं उसको हमलोगों से कहिये ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय स्वायम्भुवमनुके आदि

प्तस्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एतत्सत्यंगिरौतस्मिन्स्वयम्भूस्संस्थितःप्रभुः ॥ परन्तत्रवसेद्देवो यावन्मा साष्टकंद्विजाः ॥ ४ ॥ यावद्घर्मश्चवर्षाच तावत्तत्रवसेत्प्रभुः ॥ शीतकालेपुनश्चात्र क्षेत्रेसन्तिष्ठतेसदा ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किंतत्कार्यंभवेद्येन क्षेत्रेमासचतुष्टयम् ॥ हिमाचलेतथैवाष्टौ सूतपुत्रवदस्वनः ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंस्वाय म्भुवस्यादौ मनोर्दैत्योमहाबलः ॥ हिरण्याक्षोमहातेजास्तपोवीर्यसमन्वितः ॥ ७ ॥ तैर्व्याप्तंजगदेतद्धि निरस्यत्रिदशा धिपम् ॥ यज्ञभागाश्चदेवानां हृतावीर्यप्रभावतः ॥ ८ ॥ अथशक्रःसुरैःसार्द्धं गङ्गाद्वारंसमाश्रितः ॥ तपस्तेपेसुदुःखार्त्तः स राज्येनोपवर्जितः ॥ ९ ॥ तस्यैवन्तप्यमानस्य तपस्तीव्रंमहात्मनः ॥ माहिषंरूपमास्थाय निश्चक्रामधरातलात् ॥ १० ॥ स्वयमेवमहादेवस्ततःशक्रमुवाचह ॥ केदारयामिमेशीघ्रं ब्रूहिसर्वंसुरोत्तम ॥ ११ ॥ दैत्यानामथसर्वेषां रूपेणा नेनवासव ॥ १२ ॥ इन्द्रउवाच ॥ हिरण्याक्षोमहादैत्यस्सुबाहुर्वक्रकन्धरः ॥ त्रिशृङ्गोलोहिताक्षश्च पञ्चैवदारयप्र

में हिरण्याक्ष नामक बड़ाबली दैत्य हुआहै जोकि बड़ा तेजस्वी और तपोबल से संयुक्तथा ॥ ७ ॥ उन दैत्योंने इन्द्रको निकालकर इस संसारको व्याप्त करलिया व पराक्रमके प्रभावसे देवताओं के यज्ञभाग हरलियेगये ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर राज्यसे रहित होकर अतिदुःखित होतेहुये उन इन्द्रजीने देवताओं समेत गंगाद्वारपै भलीभांति टिककर तपस्या किया ॥ ९ ॥ उन इन्द्र महात्माको इसप्रकार तीव्रतपस्या तपतेहुये आपही महादेव जी भैंसेका रूप धारणकर भूतल से निकले तदनन्तर इन्द्र से बोले कि हे सुरोत्तम, इन्द्रजी ! मुझसे शीघ्रही सब कहिये कि इस रूपसे जलमें विदारण करूं अथवा समस्त दैत्योंके मध्य में किसीको भेदनकरूं ॥ १०।११ । १२ ॥

इन्द्रजी बोले कि हे प्रभो ! महादैत्य हिरण्याक्ष व सुबाहु, वक्रकन्धर, त्रिशृंग, लोहिताक्ष ये पांचही हैं उनको विदारण करिये ॥ १३ ॥ इनके मरने से निस्सन्देह सब दैत्य मरे हैं इसलिये अन्य दीन दैत्योंके विध्वंसनसे क्याहै कि जिनसे यहां कुछ नहीं सिद्ध होताहै ॥ १४ ॥ उन इन्द्रजी के उस वचन को सुनकर भगवान् शिव जी शीघ्रही वहांगये जहांपर कि बड़ा बलवान् हिरण्याक्ष नामक मुख्य दैत्यथा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर पर्वत के समान व भयंकर रूपसे आयेहुये उस भैंसे को देखकर तदनन्तर जो दैत्यथे उन्होंने सबओर पत्थरोंसे व दण्डोंसे मारा वैसेही बल से गर्वित अन्य दैत्य सिंहनादको करते व तालोंको ठोंकतेथे ॥ १६ । १७ ॥ इसके

भो॥१३॥हतैरेतैर्हतंसर्वं दानवानामसंशयम् ॥ किमन्यैःकृपणैर्ध्वस्तैर्यैःकिञ्चिन्नात्रसिध्यति ॥१४॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भगवांस्तूर्णमभ्यगात् ॥ यत्रदानवमुख्योस्ति हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ १५ ॥ अथतंदूरतोदृष्ट्वा महिषम्पर्वतोपमम् ॥ आयातंरौद्ररूपेणदानवास्सर्वतश्चये ॥ १६ ॥ ततोजघ्नुश्चपाषाणैर्लगुडैश्चतथापरे ॥ क्ष्वेडिताःस्फोटिताश्चैव तथा न्येबलगर्विताः ॥ १७ ॥ अथावमन्यतान्देवःप्रहारंलीलयाददौ ॥ यत्रासौदानवेन्द्रोसौ चतुर्भिस्सचिवैस्सह ॥ १८ ॥ ततःशस्त्रंसमुद्यम्ययावद्धावतिसम्मुखः ॥ तावच्छृङ्गप्रहारेणसोनयद्यमसादनम् ॥ १९ ॥ हत्वातंसचिवान्पश्चात्सुबाहुप्रमुखांश्चतान् ॥ जघानहन्यमानोपिसमन्ताद्दानवैःपरैः ॥ २० ॥ नतस्यलगतेक्वापिशस्त्रंगात्रेकथञ्चन ॥ यत्नतोपिविसृष्टञ्चलक्ष्यलक्षैःप्रहारिभिः ॥ २१ ॥ एवंपञ्चप्रधानांस्तान्हत्वादैत्यान्महेश्वरः ॥ भूयोजगामतद्देशंयत्रशक्रोऽव्यव

अनन्तर शिव देवजीने उन दैत्योंको अनादरकर जहांपर चारों मंत्रियों समेत यह हिरण्याक्ष दैत्यथा वहांपर लीलासे प्रहार को दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर शस्त्रको भली भांति उठाकर जबतक हिरण्याक्ष सामने दौडा तभीतक उन शिवजी ने सींगों के प्रहारोंसे यमराज के मन्दिरमें प्राप्त करदिया ॥ १९ ॥ उस हिरण्याक्षको मारकर पश्चात् अन्य दैत्योंसे सबओर मारेजाते हुयेभी शिवजीने सुबाहु आदिक उन दैत्यों को मारा ॥ २० ॥ व निशाना के देखनेवाले प्रहारकर्ता दैत्योंसे उपायपूर्वक छोड़ा हुआभी शस्त्र किसीप्रकार उन महादेव जीके अंगमें कहींपर भी न लगताथा ॥ २१ ॥ इसप्रकार महादेव जी उन मुख्य पांच दैत्योंको मारकर फिर उस देशको चलेगये

जहां कि इन्द्रजी विशेषतासे टिकेथे ॥ २२ ॥ व प्रसन्न मनवाले शिवजीने वैसेही तपस्या में संयुत इन्द्र जीसे कहा कि जिन पांच दानवों को तुमने कहाथा उनको मैंने मारडाला ॥ २३ ॥ इसलिये हे सुरेश ! तुम फिर त्रिलोक की राज्यकरो व मुझ से और भी चाहेहुये वरदानको मांगो ॥ २४ ॥ कि जिससे शीघ्रता संयुत मैं कैलास के शिखरपै जाऊं ॥ २५ ॥ इन्द्र बोले कि हे शंकर जी ! त्रिलोक की रक्षाके लिये व धर्म तथा कल्याण के लिये तुम इसी रूपसे यहां टिको ॥ २६ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे इन्द्रजी ! उस हिरण्याक्ष के मारने के लिये मैंने इस रूपको कियाहै जिसलिये कि अन्य समस्त प्राणियोंके न मारने योग्य वह मुझसे मारागया ॥२७॥

स्थितः ॥ २२ ॥ अब्रवीच्चप्रहृष्टात्मातथाशक्रंतपोन्वितम् ॥ मयातेनिहताःपञ्चदानवायेत्वयेरिताः ॥ २३ ॥ तस्मात्त्रैलोक्यराज्यंस्वंभूयएवसमाचर ॥ मत्तोन्यदपिदेवेशवरम्प्रार्थयवाञ्छितम् ॥ २४ ॥ कैलासशिखरंयेनगच्छामित्वरयान्वितः ॥ २५ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अनेनैवहिरूपेणतिष्ठत्वंचात्रशङ्कर ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थायधर्मायचशिवायच ॥ २६ ॥ भगवानुवाच ॥ एतद्रूपंमयाशक्रकृतंतस्यवधायवै ॥ अवध्यस्सर्वभूतानांयतोन्येषांमयाहतः ॥ २७ ॥ तस्मादत्रैवतेवाक्यात्स्थास्यामिसुरसत्तम ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थायधर्मायचशिवायच ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वाविरूपाक्षश्चक्रेकुण्डंततःपरम् ॥ शुद्धस्फाटिकसङ्काशंसुस्वादुक्षीरवत्प्रियम् ॥ २९ ॥ ततःप्रोवाचदेवेन्द्रंमेघगम्भीरयागिरा ॥ शृण्वतांसर्वदेवानांभगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ ३० ॥ योमांदृष्ट्वाशुचिर्भूत्वा कुण्डमेतत्प्रपश्यति ॥ त्रिःपीत्वावामसव्येनद्वाभ्यांचैवततोजलम् ॥३१॥ कराभ्यांसपुमान्नूनं तारयिष्यतिकुलत्रयम् ॥ अपिपापसमाचारं नरकेपिव्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥

इसलिये हे सुरोत्तम ! त्रिलोककी रक्षाके लिये व धर्म तथा कल्याण के लिये तुम्हारे वाक्यसे मैं यहींपर टिकूंगा ॥ २८ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर शिवजीने शुद्ध स्फटिकके समान व सुस्वादु जलवाले प्रिय कुण्डको किया ॥२९॥ तदनन्तर त्रिपुरके मारनेवाले भगवान् शिवजीने समस्त देवोंके सुनतेहुये मेघके समान गंभीर वाणी से सुरेशसे कहा ॥३०॥ कि जो पुरुष पवित्र होकर मुझको देखकर इस कुण्डको देखैगा तदनन्तर बायें व दाहिनेसे व दोनों हाथोंसे तीनबार जलको पीकर वह पुरुष निश्चय

कर पाप आचरणवाले भी व नरक मेंभी टिकेहुये तीनोंकुलोंको तारैगा ॥ ३१।३२ ॥ जैसे कि मेरे वचन हैं वैसेही बायें हाथ से मातावाले व दाहिनेसे पितावाले पक्षको व दोनों हाथों से अपनाको तारैगा ॥ ३३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे बैल वाहनवाले शिवजी ! मैं नित्यही स्वर्ग से यहां आकर तुमको भलीभांति पूजूंगा व वैसेही जल को पीऊँगा ॥ ३४ ॥ व जिसलिये महिषरूपवाले तुमसे यह कहागया कि केदारयामि याने जलमें विदारणकरूं उसीसे तुम केदार ऐसे नामसे प्रसिद्ध होगे ॥ ३५ ॥ शिव भगवान् बोले कि हे इन्द्रजी ! यदि ऐसा करोगे तो तुमको दैत्योंका डर न होगा व शरीर में समस्त उत्तम तेज देखपड़ैगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर इसभांति कहे

वामेनमातृकंपक्षं दक्षिणेनाथपैतृकम् ॥ उभाभ्यामथचात्मानं कराभ्यांमद्वचोयथा ॥ ३३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अहमागत्यनित्यंत्वां स्वर्गाद्वृषभवाहन ॥ अत्रसम्पूजयिष्यामिपास्यामिचतथोदकम् ॥ ३४ ॥ केदारयामियत्प्रोक्तं त्वया महिषरूपिणा ॥ केदारइतिनाम्नात्वं ततःख्यातोभविष्यसि ॥ ३५ ॥ भगवानुवाच ॥ यद्येवंकुरुषेशक्र ततोदैत्यभयं नते ॥ भविष्यातिपरंतेजो गात्रेसम्पश्यतेखिलम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्सहस्राक्षस्तस्यःप्रासादमुत्तमम् ॥ तदर्थेनिर्मयामास साध्वालोकंमनोहरम् ॥ ३७ ॥ ततःप्रणम्यतंदेवमनुमन्त्र्यततःपरम् ॥ जगामनिजमावासं मेरुश्रृङ्गाग्रसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ ततश्चागत्यनित्यंस स्वर्गाद्देवस्यशूलिनः ॥ केदारस्यसुभक्त्याढ्यः पूजांचक्रेसमाहितः ॥ ३९ ॥ कुण्डोदकं चत्रिःपीत्वा ययौब्राह्मणसत्तमाः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्ययावत्तत्रसमाययौ ॥ ४० ॥ तावद्धिमेनतत्सर्वं गिरेःश्रृङ्गंप्रपूरितम् ॥ तच्चकुण्डंसदेवंच प्रासादेनसमन्वितम् ॥ ४१ ॥ ततोदुःखपरीतात्मा भक्त्यापरमयायुतः ॥ तांदिशंप्रणिप

हुये हज़ारनेत्रवाले इन्द्रजीने उन शिवजीके लिये अच्छे दर्शनवाले व उत्तम तथा मनोहर मन्दिर का निर्माण किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उन शिवदेवजीको प्रणामकर उसके उपरान्त सम्मति कर सुमेरु गिरिके शिखरके अग्रभागपै संस्थित निज निवासस्थानको चलेगये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उत्तम भक्ति से संयुत व सावधान होतेहुये उन इन्द्रजीने नित्यही स्वर्ग से आकर त्रिशूलवाले केदार देवका पूजन किया ॥ ३९ ॥ व हे ब्राह्मणोत्तमो ! कुण्डके जलको तीनवार पीकर प्रयाण किया इसके अनन्तर किसी समय जबतक वे इन्द्रजी वहां भलीभांति आये ॥ ४० ॥ तबतक मन्दिर समेत व देव सहित वह कुण्ड और पर्वतका सम्पूर्ण शिखर पालासे पूर्ण

होगया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर दुःखसे घिरेहुये मन या चित्तवाले व उत्तम भक्तिसे संयुक्त इन्द्रजी उस दिशाको उच्च प्रकारसे प्रणामकर अपने घरको चलेगये ॥४२॥ इसप्रकार उन इन्द्रजीको आते व शिवजीको न देखते और उस दिशाको प्रणाम करते हुये चार महीने व्यतीत होगये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! फिर उष्ण समय प्राप्त होनेपर उस समय हिमालय पर्वतपै रूपमें भलीभांति प्राप्त वे शिवदेवजी दृष्टिपथमें प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर श्रद्धासंयुक्त होकर इन्द्रने चौमासे से उपजी हुई पूजाको उच्चप्रकार से करके व उन महादेवजी के अगाड़ी गाना, बजाना आदिक किया ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर त्रिपुर के अन्तकारक भगवान् शिवदेवजीने उन

त्योच्चैर्जगामनिजमन्दिरम् ॥ ४२ ॥ एवमागच्छतस्तस्यगतंमासचतुष्टयम् ॥ अपश्यतोमहादेवं तद्दिशाप्रणतस्यच ॥
४३ ॥ ततःप्राप्तेपुनर्विप्रा घर्मकालेहिमालये ॥ सञ्जातोदृक्पथंदेवस्सतदारूपसंस्थितः ॥ ४४ ॥ ततःपूजांविधायोच्चै
श्चातुर्मास्यसमुद्भवाम् ॥ गीतवाद्यादिकञ्चक्रे तत्पुरःश्रद्धयान्वितः ॥४५॥ अथदेवस्समालोक्यतांश्रद्धांतस्यगोपतेः ॥
प्रोवाचदर्शनंगत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ ४६ ॥ परितुष्टोस्मिदेवेशभक्त्याचानन्ययानया ॥ तस्मात्प्रार्थयदास्या
मि यंकामंहृदिसंस्थितम् ॥ ४७ ॥ शक्रउवाच ॥ तवप्रसादात्सञ्जातं ममैश्वर्यमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥ पर्वतोयंभवेद्रम्यो
मासानष्टौसुरेश्वर ॥ यावन्मीनस्थितोभानुः प्रगच्छतिश्रुतंमया ॥ ४९ ॥ ततःपरमगम्यश्च हिमपूरेणसंवृतः ॥ तदा
स्याच्चतुरोमासान् यावत्कुम्भगतोरविः ॥ ५० ॥ सञ्जायतेप्यगम्यश्च ममापित्रिपुरान्तक ॥ किम्पुनस्स्वल्पसत्त्वानां

इन्द्रजीकी उस श्रद्धाको भलीभांति देखकर दर्शन में जाकर कहा ॥ ४६ ॥ कि हे देवेश ! इस अनन्य भक्ति से मैं अतिप्रसन्नहूं इसलिये जो कामना हृदय में भलीभांति टिकीहो उसको मांगिये मैं दूंगा ॥ ४७ ॥ इन्द्र बोले कि तुम्हारी प्रसन्नतासे मेरे अति उत्तम ऐश्वर्य्य हुआ है ॥ ४८ ॥ हे सुरेश्वर शिवजी ! मैंने सुनाहै कि मीनराशि में प्राप्तहोकर सूर्यनारायणजी जबतक आठ महीने गमन करते हैं तबतक यह पर्वत मनोहर होवै है ॥ ४९ ॥ उसके उपरान्त याने जब वृश्चिक राशिमे दिनकरजी स्थितहोकर चलते हैं तबसे जबतक कुंभराशिमें प्राप्तरहैंगे तबतक चारमहीने पालाके प्रवाहसे घिराहुआ वह पर्वत न जानेयोग्य होगा ॥ ५० ॥ हे त्रिपुरान्तक,

सुरेश्वर, शिवजी ! चारमहीने तक वह पर्वत-मुझको भी अगम्य होगा फिर थोड़े पराक्रमवाले मनुष्यादिकों को क्या कहना है ॥ ५१ ॥ इसलिये हे त्रिदशनायक शिवजी ! चारमहीने स्वर्ग या पाताल या मृत्युलोकमें इसी रूपसे टिकाश्रय करिये ॥ ५२ ॥ कि जिससे हे सुरेश्वर सदाशिवजी ! मेरी प्रतिज्ञाकी हानि न होवै ॥५३॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर बड़ी देरतक विष्णुदेव जीको ध्यानकर परम प्रसन्नताको प्राप्तहुये शिवजीने बलदैत्यके नाशनेवाले इन्द्रसे मेघ गर्जन के समान शब्दवाले वचनको कहा ॥ ५४ ॥ कि हे सहस्र लोचनवाले इन्द्रजी ! भूतलपै आनर्त देशमें हाटकेश्वरनामक हमारा क्षेत्र विद्यमान है ॥ ५५ ॥ हे इन्द्रजी ! वृश्चि-

नरादीनांसुरेश्वर ॥ ५१ ॥ तस्मात्स्वर्गेथपाताले मर्त्येवात्रिदशेश्वर ॥ कुरुष्वानेनरूपेण स्थितिंमासचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥ येननस्यात्प्रतिज्ञाया हानिर्ममसुरेश्वर ॥ ५३ ॥ सूतउवाच ॥ ततोदेवंचिरंध्यात्वा प्रोवाचबलसूदनम् ॥ परंसंतोषमापन्नो मेघनिर्घोषनिस्स्वनम् ॥ ५४ ॥ आनर्तविषयेक्षेत्रंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ अस्मदीयंसहस्राक्ष विद्यतेधरणीतले॥५५॥तत्राहंवृश्चिकेस्थेर्केसदास्थास्यामिवासव ॥ यावत्कुम्भस्यपर्यन्तं तववाक्यादसंशयम् ॥ ५६ ॥ तस्मात्तत्रद्रुतं गत्वा कृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ ममरूपंप्रतिष्ठाप्यकुरुपूजांयथोचिताम्॥५७॥येनतत्रनिजंतेजोधारयामितवार्थतः॥५८॥ सूतउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वासहस्राक्षो देवदेवस्यशूलिनः॥गत्वातत्रततश्चक्रे यद्देवेनेरितंवचः ॥ ५९ ॥ प्रासादंनिर्मयित्वाथ रूपंसंस्थाप्यशूलिनः ॥ कुण्डंचक्रेसतद्रूपं स्वच्छोदकसमावृतम् ॥ ६० ॥ ततश्चाराधयामास पुष्पधूपानुलेपनैः ॥

कराशिमें स्थित होते हुये सूर्य्यनारायणजी जबतक कुंभराशिके अन्तको प्राप्तहोंगे तबतक निरसन्देह तुम्हारे वचनसे सदैव हम उस हाटकेश्वर क्षेत्रमें टिकैंगे ॥ ५६ ॥ इसलिये वहां शीघ्रही जाकर व उत्तम मन्दिर को बनाकर और मेरे रूपको स्थापनकर यथायोग्य पूजनको कीजिये ॥ ५७ ॥ कि जिससे तुम्हारे लिये उस लिंग में मैं अपने तेजको धारणकरूं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्र जीने त्रिशूलवाले देवदेव सदाशिव जीके इस वचनको सुनकर वहां जाकर उसके उपरान्त शिवदेवजीने जो वचन कहाथा उसको किया ॥५९॥कि मन्दिरको निर्माणकराकर इसके अनन्तर उन इन्द्रजीने त्रिशूलधारी शिवजीके रूपको भलीभांति थापकर निर्मल जलसे परि-

पूर्ववाले तद्रुप (वैसेही) कुण्डको किया ॥ ६० ॥ तदनन्तर कुण्ड में नहाकर पुष्प,धूप व अनुलेपनों से शिवजीका आराधन किया व पहलेकी नाईं तीनबारकर जलको
पिया ॥ ६१ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! पुरातनसमय इन्द्र जीसे इसभांति आराधन कियेहुये वे शिव भगवान् अतिमनोहर हिमाचल से यहां भलीभांति आये हैं ॥ ६२ ॥ हिम-
पातसे उपजेहुये समयमें याने शीतकाल में सदैव चार महीने जो पुरुष उन शिवजी को आराधन करता है वह कल्याण के लिये प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ व शेष समय में
भी जो प्रवीण पुरुष उत्तम भक्तिसे निश्चय कर पूजन करताहै,वह जन्म से लगाकर मरण पर्यन्त के पातक को प्रक्षालन याने नाश करता है ॥ ६४ ॥ समस्त शास्त्रों

स्नात्वाकुण्डेऽपिबत्तोयं त्रिःकृत्वाचयथापुरा ॥ ६१ ॥ एवंसभगवांस्तत्र शक्रेणाराधितःपुरा ॥ समायातोत्रविप्रेन्द्राः
सुरम्यात्तुहिमाचलात् ॥ ६२ ॥ यस्तमाराधयेत्सम्यक् सदामासचतुष्टयम् ॥ हिमपातोद्भवेमर्त्यः सशिवायप्रपद्यते ॥
६३ ॥ शेषकालेपियःपूजां करोत्येवसुभक्तितः ॥ सपापंक्षालयेत्प्राज्ञ आजन्ममरणान्तिकम् ॥ ६४ ॥ तत्रगीतंप्रशंस
न्ति नृत्यञ्चैवपृथग्विधम् ॥ देवस्यपुरतःप्राज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ६५ ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो नारदेनसुरर्षिणा॥
तद्वोहंकीर्त्तयिष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ६६ ॥ केदारेसलिलंपीत्वा गयापिण्डंप्रदायच ॥ ब्रह्मज्ञानमथासाद्य पु
नर्जन्मनविद्यते ॥ ६७ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं केदारस्यचसम्भवम् ॥ आख्यानंब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम् ॥
६८ ॥ यश्चैतच्चरितंभक्त्या पठेद्वातस्यचाग्रतः ॥ शृणुयाद्वापिभोविप्रास्सर्वपातकनाशनम् ॥ ६९ ॥ केदारस्यचमा

में प्रवीण व विद्वान् पुरुष उस हाटकेश्वर क्षेत्रमें उन शिवदेवजी के आगे गानकी व अनेक भांतिके नृत्यकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६५ ॥ हे मुनीश्वरो ! पुरातन समय इस
विषय में नारद देवर्षिने श्लोकको गायाहै उसको मैं तुम लोगोंसे कहूंगा सुनिये ॥६६॥ कि केदार क्षेत्रमें जल पीकर व गया तीर्थ मे पिण्डदेकर व ब्रह्मज्ञान को प्राप्तहोकर
फिर जन्मको नहीं पाता है ॥ ६७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! केदार से उपजेहुये इस समस्त कथानकको मैंने तुमलोगों से कहा जोकि सब पातकोंका विनाशक है ॥ ६८ ॥ हे ब्रा-
ह्मणो ! समस्त पातकों के विनाशक व पुत्र,पौत्रों को विशेषकर बढ़ानेहारे इस केदार जीके माहात्म्यवाले चरितको जो पुरुष भक्तिसे उनके अगाड़ी पढ़ता है या सुनता

भी है उसके समस्त मनोरथ परिपूर्ण होते हैं ॥ ६९ । ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये केदारोत्पत्तिकथनंनामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । बरणत इकसौ बीसमहँ शुक्ल तीर्थको हाल । जहां श्याम वसनादि सब श्वेत होहिं ततकाल ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! वैसेही वहां पर और भी अति उत्तम शुक्ल तीर्थ है जोकि आजभी श्वेत कुशोंसे भलीभांति सूचित है ॥ १ ॥ पुरातन समय उत्तम कारीगरीको जाननेवाला व पुत्रपौत्रोंसे संयुत कोई शुद्धक नामक धोबी हुआ

हात्म्यं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये केदारोत्पत्तिकथनन्नामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्तिशुक्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ दर्भैःसंसूचितंश्वेतैर्यदद्यापिद्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ चमत्कारपुरे पूर्वमासीत्कश्चित्सुशिल्पवित् ॥ रजकःशुद्धकोनाम पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ २ ॥ ससर्वरजकानांच प्राधान्येनव्यवस्थितः ॥ प्रधानब्राह्मणानांच करोत्यम्बरशोधनम् ॥ ३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नीलीकुण्ड्यांसमाहितः ॥ प्राक्षिपद्ब्राह्मणेन्द्राणां वासोविज्ञातवाञ्चिरात् ॥ ४ ॥ अथासौमन्दचित्तश्च समाहूयकुटुम्बिनीम् ॥ पुत्रांश्चवचनंप्राह रहस्येभयविह्वलः ॥ ५ ॥ निर्मूल्यानिसुवस्त्राणि ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ नीलीमध्येविमोहेन प्रक्षिप्तानिबहूनिच ॥ ६ ॥ वधबन्धादिकंकर्म तेकरिष्यन्त्यसंशयम् ॥ तस्मादन्यत्रगच्छामो गृहीत्वारजकीमिमाम् ॥ ७ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा सार

है ॥ २ ॥ वह समस्त धोबियों के मध्यमें मुख्यतासे विशेषकर स्थित था व प्रसिद्ध ब्राह्मणोंके वस्त्रशोधनको करता था याने कपड़े धोताथा ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय सावधान होतेहुये उस रजकने ब्राह्मणेन्द्रों के वस्त्रोंको नीलके घड़े या कूंड़ेमें फेंकदिया व बहुत देरसे जाना ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर मूढ़चित्तवाला व भयसे विकल यह अपनी कुटुम्बिनी (स्त्री) व पुत्रोंको एकान्त में बुलाकर वचन बोला ॥ ५ ॥ कि महात्मा ब्राह्मणों के बहुत से अमूल्य वस्त्रोंको मैंने अज्ञान से नील के मध्यमें फेंक दिया ॥ ६ ॥ और वे ब्राह्मण लोग निस्सन्देह वध बन्धनादिक कर्म को करैंगे इसलिये इस धोबिनिको लेकर मैं अन्यत्र चलाजाऊंगा ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो! उस भयभीतने

ऐसा निश्चयकर व घरसे श्रेष्ठ वस्तुको लेकर जबतक स्त्री समेत प्रस्थान किया ॥ ८ ॥ तबतक उसकी कन्याने सेवकसे उपजी हुई अपनी सखी के पास जाकर कहा कि हे भद्रे ! तुम्हारे साथ खेलती हुई मैंने अज्ञान या ज्ञानसे भी या नम्रता, शिशुता, क्रोध अथवा ईर्ष्या से जो कुछ दुष्कृत कियाहो उसको क्षमाकरियेगा ॥ ९।१०॥ इसके अनन्तर आंसुवों से आकुल लोचनोंवाली उस सखी ने अचानक जाकर कहा कि हे भद्रे ! यह क्या है कि जो मुझसे ऐसा कहतीहो ॥ ११ ॥ कन्या बोली कि हे सुनयनि ! मेरे पिताने ब्राह्मणों के बड़े मोलवाले वसनों को भूलसे नीलमें फेंकदिया ॥ १२ ॥ प्रातःकाल उसको जानकर वे ब्राह्मण दारुण दण्ड देवेंगे ऐसा चित्त में स-

मादायमन्दिरात् ॥ प्रस्थितोभार्ययासार्द्धं कान्दिशीकोद्विजोत्तमः ॥ ८ ॥ तावत्तस्यसुतागत्वा स्वांसखींदाससम्भवाम् ॥ उवाचत्तम्यतांभद्रे यन्मयाकुकृतंकृतम् ॥ ९ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि प्रक्रीडन्त्यात्वयासह ॥ प्रणयाद्बाल्यभावाच्च क्रोधाद्वाथोचईर्ष्यया ॥ १० ॥ अथसासहसागत्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ उवाचकिमिदंभद्रे यन्मामित्थंप्रभाषसे ॥ ११ ॥ कन्योवाच ॥ ममतातेननीलायां प्राक्षिप्तान्यम्बराणिच ॥ ब्राह्मणानांमहार्घाणि विभ्रमेणसुलोचने ॥ १२ ॥ तत्प्रभातेपरिज्ञाय दण्डंदास्यन्तिदारुणम् ॥ एवंचित्तेसमाधाय तातःसम्प्रस्थितोधुना ॥ १३ ॥ अहंतवान्तिकंप्राप्ता दर्शनार्थमनिन्दिते ॥ अनुज्ञाताप्रयास्यामित्वयातस्मात्समुच्यताम् ॥ १४ ॥ अथसातद्वचःश्रुत्वा प्रसन्नवदनाब्रवीत् ॥ यद्येवंमासरोजाक्षि कुत्रचित्सम्प्रयास्यसि ॥ १५ ॥ निवारयद्रुतंगत्वातातंनोगम्यतामिति ॥ अस्तिपूर्वोत्तरेभागेस्थानादस्माज्जलाशयः ॥ १६ ॥ तत्रैकदाविनिक्षिप्तं ममतातेनजालकम् ॥ अतीवकृष्णकेशोत्थं तावच्छुक्लत्वमागतम् ॥ १७ ॥ तत

माधान कर मेरे पिताने इस समय प्रस्थान किया है ॥ १३ ॥ व हे अनिन्दिते ! मैं दर्शन के लिये तुम्हारे समीप प्राप्तहुई हूं क्योंकि तुमसे आज्ञाको प्राप्तहोती हुई मैं जाऊंगी इस लिये कहिये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उसके वचन को सुनकर उस प्रसन्नमुखवाली सखीने कहा कि हे कमललोचनि ! यदि ऐसा है तो कहीं मतजावो ॥ १५ ॥ व शीघ्रही जाकर न जाइये यह कहकर पिताको मनाकरिये क्योंकि इस स्थान से पूर्व व उत्तर दिशाके भागमें जलाशयहै ॥ १६ ॥ उसमें एक समय मेरे पिताने

जबतक अत्यन्तही काले बालों से उठे (बने) हुये जालको फेंका तबतक श्वेतताको प्राप्तहोगया ॥ १७ ॥ तदनन्तर जबतक विस्मय संयुत होते हुये काले शरीर के धारनेवाले मेरे पिताजी आपही कौतुकसे खड़े होरहे तबतक उसी क्षण अति श्वेत बालोंवाले व स्त्रियोंको वैराग्य करानेवाले वे पिताजी श्वेतभाव को प्राप्तहोगये तबसे लगाकर यह जानकर वहां कोई नहीं जाता है ॥ १८ । १९ ॥ इस लिये हे शुभे ! शीघ्रही उसी जलाशय में वस्त्रोंको प्रक्षालन करै तो तुम्हारे पिताके वे वसन उत्तम शुद्धता को प्राप्तहोवेंगे ॥ २० ॥ इसके अनन्तर प्रसन्नमुखवाली होतीहुई उसने शीघ्रही जाकर अपने पितासे उस वचनको शीघ्रतासे कहा ॥ २१ ॥ कि मेरी सखीसे भली

स्सविस्मयाविष्टःस्वयंतस्थौकुतूहलात् ॥ यावच्छुक्लत्वमापन्नस्तावत्कृष्णवपुर्धरः ॥ १८ ॥ सुश्वेतमूर्द्धजस्सद्यस्स्त्रीणां वैराग्यकारकः॥ ततःप्रभृतिनोज्ञात्वा कश्चित्तत्रप्रगच्छति ॥१९ ॥ तस्मात्तत्रैववस्त्राणिप्रक्षालयतुसत्वरम् ॥ तातस्यत वयास्यन्ति विशुद्धिंपरमांशुभे ॥ २० ॥ अथसासत्वरंगत्वानिजतातस्यतद्वचः ॥ सत्वरंकथयामास प्रहृष्टवदनासती ॥ २१ ॥ ममसख्यासमादिष्टो नातिदूरेजलाशयः ॥ तत्रश्वेतत्वमायाति सर्वंक्षिप्तंसितेतरम् ॥ २२ ॥ तस्मात्प्रक्षालय प्रातस्तत्रगत्वाजलाशये॥ वस्त्राण्यमूनिशुक्लत्वंसम्प्रयास्यन्त्यसंशयम् ॥ २३ ॥ रजकउवाच ॥ नैतत्सम्पश्यतेपुत्रि यत स्तस्यपरिक्षयः ॥ वस्त्रलग्नस्यजायेत यतःप्रोक्तंपुरातनैः ॥ २४ ॥ वज्रलेपस्यमूर्खस्य नारीणांकर्कटस्यच ॥ एकोग्रह स्तुमीनानां नीलीमद्यपयोस्तथा ॥ २५ ॥ कन्योवाच ॥ तत्रप्रगम्यतांयावद्वस्त्राण्यादायसर्वशः ॥ तावच्छुद्धिंप्रयास्य न्ति तदागन्तव्यमेवहि ॥ २६ ॥ भूयोपिमन्दिरेप्राप्य तस्मात्स्थानाद्दिगन्तरम् ॥ गन्तव्यंसकलैस्सर्वं ममैतद्धृदिसं

भांति बतलाया हुआ कुछ दूरपै जलाशय है उस में फेंकीहुई समस्त कालीवस्तु श्वेतताको प्राप्तहोती है ॥ २२ ॥ इसलिये प्रातःकाल वहां जाकर इन वस्त्रोंको उस जलाशय में धोइये तो निस्सन्देह श्वेतभाव को प्राप्तहोजावैंगे ॥ २३ ॥ रजक बोला कि हे पुत्रि ! यह नहीं देख पड़ता कि जिससे वस्त्रमें लगेहुये उस नीलका संक्षय होवै क्योंकि प्राचीन पुरुषोंने कहाहै ॥ २४ ॥ कि वज्रलेप (लुक) मूर्ख व स्त्री व गेंगटे व मछलियां तथा नील मदिरा पीनेवाले मनुष्य का एकही हठ होता है ॥ २५ ॥ कन्या बोली कि जबतक सम्पूर्णता से वस्त्रोंको लेकर वहां चलिये तबतक जो शुद्धिको प्राप्तहोवैंगे तो निश्चयकर आनाही चाहिये ॥ २६ ॥ व फिरभी मन्दिर में प्राप्तहोकर

उस स्थान से दिशाओं के मध्यमें सवोंको जानाचाहिये यह सब मेरे हृदयमें भलीभांति टिकाहै ॥ २७ ॥ उस कन्या के उस वचन को सुनकर वे भाई व सेवक बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बार २ कहकर इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! अपने ऐश्वर्य्यसे संयुत व बड़े विस्मय में प्राप्तहोते हुये दासकन्या (सखी) को अगाड़ी कर रात्रिहीको चलेगये ॥ २८ । २९ ॥ तदनन्तर उस दासकन्याने बहुतेरी लताओं से अत्यन्त छिपेहुये व शरीरधारियों के क्लेश से पैठने योग्य जलाशय को दिखलाया ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो ! वहांपर वह धोबी वसनों को सम्पूर्णता से लेकर उस जलमें पैठगया व वस्त्रोंको धोया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर उसी क्षण वे काले

स्थितम् ॥ २७ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा साधुसाध्विततेऽसकृत ॥ प्रोक्ताबान्धवभृत्याथ रात्रावेवप्रजग्मिरे ॥ २८ ॥ दासकन्यांपुरस्कृत्वा संशयंपरमङ्गताः ॥ विभवेनसमायुक्तानिजेनद्विजसत्तमाः ॥ २९ ॥ ततस्सादर्शयामासदासकन्या जलाशयम् ॥ बहुवीरुधसञ्छन्नंदुष्प्रवेश्यञ्चदेहिनाम् ॥३०॥ ततस्सरजकस्तत्रवस्त्राण्यादायसर्वशः ॥ प्रविष्टःसलिलेतस्मिन्क्षालयामाससाद्विजाः ॥ ३१ ॥ अथतानिसुवस्त्राणिमेचकाभानितत्क्षणात् ॥ जातानिस्फाटिकाभानितत्क्षणादेवकृत्स्नशः ॥ ३२ ॥ ततस्तुष्टिसमायुक्तोसाधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ समालिङ्ग्यसुतांप्राहदासकन्याञ्चसादरम् ॥ ३३ ॥ सुवस्त्राणिद्विजेन्द्राणामर्प्पयामोयथाक्रमम् ॥ ततश्चस्वगृहङ्गत्वातानिवस्त्राणिकृत्स्नशः ॥ ३४ ॥ सर्वाणितानिसंहृष्टःप्रददौद्विजसत्तमाः ॥ अथतेब्राह्मणादृष्ट्वातांशुद्धिंवस्त्रसंभवाम् ॥ ३५ ॥ तञ्चश्वेतीकृतंदृष्ट्वारजकंविस्मयान्विताः ॥ पप्रच्छुःकिमिदञ्चित्रंवस्त्रमूर्द्धजसम्भवम् ॥ ३६ ॥ नानौपम्यञ्चसञ्जातंवदस्वयदिमन्यसे ॥ ३७ ॥ रजकउवाच ॥ एतानिवि

वर्णवाले समस्त उत्तम वसन शीघ्रही बिल्लौर पत्थरके समान श्वेत होगये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर प्रसन्नता में प्राप्तहुये उस धोबीने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा व कन्या और दासपुत्री को आदर समेत भलीभांति लिपटाकर कहा ॥ ३३ ॥ कि हमलोग उत्तम वसनों को ब्राह्मणेन्द्रों के लिये क्रमपूर्वक देवेंगे तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! अपने घर को जाकर प्रसन्न होतेहुये उस रजकने उन समस्त वस्त्रोंको सम्पूर्णता से देदिया इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों ने वस्त्रोंसे उपजी हुई उस शुद्धता को देखकर ॥ ३४ । ३५ ॥ व श्वेत कियेहुये उस रजकको देखकर आश्चर्य्य संयुत होतेहुये पूंछा कि वसन व बालों से उपजा हुआ यह क्या आश्चर्य्य है ॥ ३६ ॥

जोकि नानाप्रकार की उपमावाला होगया यदि मानते हो तो कहिये ॥ ३७ ॥ रजक बोला कि हे ब्राह्मणो ! मैंने अज्ञान से इन वसनों को नीलके मध्य में फेंक
दिया व वे उत्तम वसन सम्पूर्णता से नष्ट होगये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बड़ा डर हुआ व कुटुम्ब संयुक्त मैं निशामुख याने सन्ध्यासमय में दिशा के अन्त को
गमन किया ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर दुःख से विकल व फिर देखने की लालसावाली हमारी यह कन्या दास से उपजी हुई अपनी सखी के पास गई ॥ ४० ॥ उस
दासकन्या ने मेरे दुःखहेतुवाले समस्त प्रयोजन को जानकर तदनन्तर खड़ी होकर आगे जलाशय को भलीभांति दिखलाया ॥ ४१ ॥ उस जलाशय में केवल

प्रावस्त्राणिमयाक्षिप्तानिमोहतः ॥ नीलीमध्येसुवस्त्राणिविनष्टानिचकृत्स्नशः ॥ ३८ ॥ ततोभयम्महद्भूतंकुटुम्बेनसम
न्वितः ॥ चलितोरजनीवक्त्रेदिगन्तेब्राह्मणोत्तमाः ॥ ३९ ॥ अथैपातनयास्माकङ्गतानिजसखीम्प्रति ॥ दासात्मजांसुदुः
खार्त्तापुनर्दर्शनलालसा ॥ ४० ॥ तयासर्वमभिप्रायंज्ञात्वामेदुःखहेतुकम् ॥ तनस्सन्दर्शयामासस्थिताचाग्रेजलाशयम् ॥
४१ ॥ तस्मिन्प्रक्षिप्तमात्राणिवस्त्राणीमानितत्क्षणात् ॥ ईदृग्वर्णानिजातानिविस्मयस्यहिकारणम् ॥ ४२ ॥ तथामेभू
र्द्धजाःकृष्णास्तत्रस्नातस्यतत्क्षणात् ॥ परंशुक्लत्वमापन्नाएतत्प्रोक्तंमयास्फुटम् ॥ ४३ ॥ एवंतेब्राह्मणास्सर्वेकौतूहलसम
न्विताः ॥ तत्रजग्मुःपरीक्षार्थंविक्षिप्यतदनन्तरम् ॥ ४४ ॥ कृष्णद्रव्याणिभूरीणिकेशादीनिसहस्रशः ॥ सर्वन्तच्छुक्ल
तांजातंत्यक्त्वावर्णंमलीमसम् ॥ ४५ ॥ ततोवृद्धतयायुक्ताविशेषान्मूर्द्धजाःस्थिताः ॥ तेसस्नुःश्रद्धयायुक्तास्तरुणाश्चा
पिधर्मिणः ॥ ४६ ॥ ततःशुक्लत्वमापन्नास्तेजोवीर्यसमन्विताः ॥ भवन्तितत्प्रभावेणप्रयान्तिचपराङ्गतिम् ॥ ४७ ॥

फेंकेहुये वसन उसी क्षण ऐसे रंगवाले होगये यही विस्मयका कारण है ॥ ४२ ॥ और वैसेही उस जलाशय में नहाये हुये मेरे कालेबाल उसी क्षण अतिश्वेतताको
प्राप्त हुये मैंने इसको प्रकटही कहा है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार कौतुक संयुत होते हुये समस्त ब्राह्मण वहां गये तदनन्तर परीक्षा के लिये बहुतसी काली वस्तुओं को व
हज़ारों बालों को उस जलाशय में फेंककर खडे होगये और वह सब काली वस्तु मलिन रंग को छोडकर श्वेतता को प्राप्त होगई ॥ ४४ । ४५ ॥ तदनन्तर धर्मवान्
व युवा भी उन ब्राह्मणों ने श्रद्धायुक्त होकर स्नान किया व बाल विशेषता से वृद्धता संयुत स्थित होगये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर श्वेतता को प्राप्तहुये वे तेज पराक्रम से

संयुत होते थे और उत्तम गतिको जाते थे ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर उस शुक्ल तीर्थ को निश्चयकर मुक्तिदायक देखकर इन्द्रजीने मनुष्यों से उपजे हुये भय के कारण धूरिसे पूर्णकरदिया ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर आज भी वहांपर जो कुछ तृणादिक उत्पन्न होता है वह सब उस जलके प्रभाव से शुक्लता को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ व श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहांपर उठे याने उपजे हुये श्वेत कुशों से श्राद्ध करताहै वह उससे नरकगामी भी समस्त पितरों को तार देताहै ॥ ५० ॥ व उस तीर्थ से उठी हुई मिट्टी को अंग में लेपन कर इसके अनन्तर जो पुरुष स्नान करता है वह समस्त तीर्थोंके फलको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो पुरुष भक्ति से उन कुशों से

अथतद्वासवोदृष्ट्वाशुक्लतीर्थंप्रमुक्तिदम् ॥ पूरयामासरजसामानुषोत्थभयेनच ॥ ४८ ॥ अद्यापितत्रयत्किञ्चिज्जायतेऽथतृणादिकम् ॥ तत्सर्वंशुक्लतामेतितत्तोयस्यप्रभावतः ॥४९॥ तत्रोत्थैर्यःकुशैश्श्राद्धंकुरुतेश्रद्धयान्वितः ॥ श्वेतैस्तैस्तारयेत्पितॄन्सर्वान्नरकगानपि ॥ ५० ॥ तत्तीर्थोत्थांमृदङ्गात्रेलेपयित्वाथयोनरः ॥ स्नानङ्करोतितीर्थानांसर्वेषांलभतेफलम् ॥ ५१ ॥ यस्तैर्दर्भैर्नरोभक्त्यातिलैश्चारण्यसम्भवैः ॥ करोतितर्प्पणंविप्राःसप्रीणातिपितामहान् ॥५२॥ अथाश्वमेधात्सम्प्राप्यंगयाश्राद्धेनयत्फलम् ॥ नीलवृषस्यतूत्सर्गेतदत्रापिद्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ शुक्लंतीर्थङ्कथञ्जातन्तत्रत्वंसूतनन्दन ॥ विस्तरेणसमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ ५४ ॥ सूतउवाच ॥ श्वेतद्वीपःसमानीतोविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ तत्क्षेत्रेकलिभीतेनयेनशौक्ल्यंनसन्त्यजेत् ॥ ५५ ॥ कलिकालेनसंस्पृष्टःश्वेतद्वीपोपिश्यामताम् ॥ सम्प्रयातिद्विजश्रेष्ठा

और वन में उपजे हुये तिलों से तर्पण करता है वह पितामह आदिकों को तृप्त करता है ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! अश्वमेध व गया के श्राद्ध से व नीले बैल के उत्सर्ग याने छोडने में जो फल भलीभांति प्राप्त होनेके योग्य होताहै वह इस शुक्लतीर्थ में भी होता है ॥ ५३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वहांपर शुक्ल तीर्थ कैसे पैदाहुआ है इसको विस्तारसे भलीभांति कहिये क्योंकि हमलोगों को बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि कलियुगसे डरेहुये सामर्थ्यवान् विष्णुजी उस क्षेत्रमें श्वेत द्वीपको भलीभांति लायेहैं कि जिससे श्वेतताको न त्यागकरै ॥ ५५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! कलिकाल से भलीभांति छुवाहुआ श्वेत द्वीपभी श्यामताको प्राप्त

होताहै उसीसे विशेषकर वहां लायागयाहै॥५६॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

दो० । इकसौ इक्कीसवेंमहँ सुषरतीर्थ इतिहास । शौनकादिकनसन कह्यो सूत समेत विलास ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसके अनन्तर वहांपर और भी उत्तम सुषरतीर्थ है जहांपर कि मुनिश्रेष्ठों का चोरसे समागम हुआ है ॥ १ ॥ व जहांपर उसके प्रभावसे सिद्धिको प्राप्तहुआ वह चोर बाल्मीकि ऐसे नाम से प्रसिद्ध होकर रामायणका निबन्धकारक याने बनानेवाला हुआ है ॥ २ ॥ पुरातन समय चमत्कार नगर में माण्डव्य मुनिके वंशमें उत्पन्न व पितामाताकी भक्ति में तत्पर

स्तत्रतेनविशेषतः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरतीर्थमाहात्म्येशुक्लतीर्थमाहात्म्यंनामविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्तिसुषरन्तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रतेमुनयःश्रेष्ठाविप्राश्चौरेणसङ्गताः ॥ १ ॥ यत्रसिद्धिंसमापन्नस्सचौरस्तत्प्रभावतः ॥ बाल्मीकिरितिविख्यातोरामायणनिबन्धकृत् ॥ २ ॥ चमत्कारपुरेपूर्वंमाण्डव्यान्वयसम्भवः ॥ लोहजङ्घोद्विजोह्यासीत्पितृमातृपरायणः ॥ ३ ॥ तस्यैकाचाभवत्पत्नीप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ पतिव्रतापतिप्राणापतिप्रियहितेरता ॥ ४ ॥ अथतस्यास्थितस्यात्रब्रह्मवृत्त्याभिवर्ततः ॥ जगामसुमहान्कालःपितृमातृरतस्यच ॥ ५ ॥ एकदाभगवाञ्छक्रोनववर्षधरातले ॥ आनर्तविषयेकृत्स्नेयावद्द्वादशवत्सराः ॥ ६ ॥ ततस्संकष्टमापन्नोलोहजङ्घोद्विजोत्तमः ॥ नप्राप्नोतिक्वचिद्भिक्षांनचकिञ्चित्प्रतिग्रहम् ॥ ७ ॥ ततस्तौपितरौद्दौतुदृष्ट्वाक्षुत्परिपीडितौ ॥ भार्याञ्चचिन्तया

लोहजंघ नामक ब्राह्मण हुआहै ॥ ३ ॥ उसके एक प्राणोंसेभी गरुई (प्यारी) स्त्री हुईहै जोकि पतिमें प्राणोंवाली व पतिके प्रिय व हितमें तत्पर व पतिव्रताथी ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर यहां टिके व पितामाता की भक्तिमें तत्पर व ब्राह्मणकी जीविका से वर्तमानहुये उसका बहुत सा समय व्यतीतहुआ ॥ ५ ॥ एकसमय भगवान् इन्द्रजी ने भूतलपै समस्त आनर्त देशमें बारहवर्षतक वृष्टि न किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर वह लोहजंघ द्विजोत्तम कष्टको प्राप्तहुआ क्योंकि न कहीं भिक्षा पाताथा व न कुछ दान

प्रासहोताथा ॥ ७ ॥ तदनन्तर भूखसे अत्यन्तही दुःखित उन दोनों माता पिताओं को व स्त्रीको देखकर बड़े दुःख से संयुत होतेहुये उस ब्राह्मणने चिन्तन किया ॥ ८ ॥ कि मैं क्याकरूं व कहांजाऊं किसप्रकार मेरा भोजन होवै व विशेषकर इन माता पिताओं केभी व स्त्रीके कैसे भोजन होवै ॥ ९ ॥ तदनन्तर दुःखसे संयुत होता हुआ वह फलोंके लिये वनको गया परन्तु कुछ नहीं मिला क्योंकि सब वृक्ष सूखगयेथे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मणने वसन व अन्नसे संयुत व उसीसे बडे परिश्रमसे युक्त व जातीहुई बूढ़ी स्त्रीकोदेखा ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह निर्दयी ब्राह्मण अन्न व वसनों को लेकर प्रसन्न होताहुआ अपने घरको गया व माता पिताओं के लिये

मासदुःखेनमहतान्वितः ॥ ८ ॥ किङ्करोमिकगच्छामिकथंस्यादशनंमम ॥ एताभ्यामपिवृद्धाभ्यांपत्न्याश्चैवविशेषतः ॥ ९ ॥ ततस्सदुःखसंयुक्तःफलार्थंप्रययौवनम् ॥ नचकिञ्चिदवाप्तंयत्सर्वेशुष्कामहीरुहाः ॥ १० ॥ अथापश्यत्सवृद्धांस्त्रींवस्त्रसस्यसमन्विताम् ॥ गच्छमानांतथातेनश्रमेणमहतान्विताम् ॥ ११ ॥ ततस्तुसस्यमादायवस्त्राणिचसनिर्दयः ॥ जगामस्वंगृहंहृष्टःपितृभ्याञ्चन्यवेदयत् ॥ १२ ॥ सएवंलक्षलक्ष्योपिदस्युकर्माणिनित्यशः ॥ कृत्वाचौर्यंपुपोषाथनिजमेवकुटुम्बकम् ॥ १३ ॥ सुभिक्षेचापिसम्प्राप्तेनान्यत्कर्मकरोतिसः ॥ ब्राह्मींवृत्तिंपरित्यक्त्वाचौर्यकर्मसमाचरत् ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ तत्रसप्तर्षयःप्राप्तामरीचिप्रमुखाद्विजाः ॥ १५ ॥ ततस्तान्विजनेदृष्ट्वाद्रोहकोपसमन्वितः ॥ यष्टिमुद्यम्यवेगेनतिष्ठध्वमितिचाब्रवीत् ॥ १६ ॥ त्रिशिखाम्भृकुटींकृत्वासत्वरंसमुपाद्रवत् ॥

निवेदन करताभया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर चोरी के काममें लक्षणों से लक्षणीय भी उसने नित्यही चोरी करके अपनेही कुटुम्बको परिपालन किया ॥ १३ ॥ वह सुभिक्षके भी भलीभाति प्राप्तहोनेपर और काम को नहीं करताथा उसने ब्राह्मणवाली जीविका को छोडकर चोरीके कामको भलीभांति किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसंग से वहांपर मरीचि इत्यादिक सप्तर्षि प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन सप्तर्षियोंको एकान्त में देखकर द्रोह व कोधसे संयुत होतेहुये उस ब्राह्मणने वेगसे दंडको उठाकर खड़े रहिये यह कहा ॥ १६ ॥ व घुड़कता हुआ व कठोर वचनोंसे उन सप्तर्षियों को ताड़न करताहुआ सा

वह भौंहको तीन शिखावाली (टेढ़ी) कर शीघ्रही दौड़ा ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने यमदूतके समान उस को देखकर जिसलिये कि यज्ञोपवीत से संयुत था उसी कारण दयासंयुत होकर कहा ॥ १८ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह आश्चर्य्य है कि तुम ब्राह्मण हो तो किस लिये मूर्ख होकर इस म्लेच्छों के कार्य को करते हो ॥ १९ ॥ व समस्त परिवार या द्रव्यादिक को छोडे हुये व शान्तचित्तवाले हमलोग मुनि हैं व हमलोगों के समीप स्थित भी कुछ नहीं है कि जिसको तुम ग्रहण करोगे ॥ २० ॥ लोहजंघ बोला कि हे ब्राह्मणो ! पनहियों समेत इन श्वेत वसनों व बक्कलों और मृगचर्म्मों को मेरे लिये शीघ्रही दीजिये ॥२१॥

भर्त्सयान्स्सपरुषैर्वाक्यैस्तान्ताडयन्निव ॥१७॥ ततस्तेमुनयोदृष्ट्वायमदूतोपमञ्चयत् ॥ यज्ञोपवीतसंयुक्तंप्रोचुस्तत्कृपयान्विताः ॥ १८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अहोत्वंब्राह्मणोसीतितत्कस्मादतिगर्हितम् ॥ करोषिकर्मचैतद्धिम्लेच्छकृत्यन्तुबालिशः ॥ १९ ॥ वयञ्चमुनयःशान्तास्त्यक्ताशेषपरिग्रहाः ॥ नास्माकमपिपार्श्वस्थंकिञ्चिद्गृह्णातियद्भवान् ॥ २० ॥ लोहजङ्घउवाच ॥ एतानिशुभ्रचीराणिवल्कलान्यजिनानिच ॥ उपानहसमेतानिशीघ्रंयच्छन्तुमेद्विजाः ॥ २१ ॥ नोचेद्धत्वाप्रहारेणयष्ट्यावज्रोपमेनच ॥ प्रापयिष्याम्यसन्दिग्धंधर्मराजनिवेशनम् ॥२२॥ ऋषयऊचुः ॥ सर्वदास्यामहेतुभ्यंवयन्तावन्मलिम्लुच ॥ किंवदन्तींवदास्माकंयांपृच्छामःकुतूहलात् ॥ २३ ॥ किमर्थंकुरुषेचौर्य्यन्त्वंविप्रोसिसुनिर्घृणः ॥ किञ्जितोव्यसनैरौद्रैःकिंवाव्याधद्विजोभवान् ॥ २४ ॥ लोहजङ्घउवाच ॥ व्यसनार्थंनमेकृत्यमेतच्चौर्यसमुद्भवम् ॥ कुटुम्बार्थंविजानीथधर्ममेतन्नसंशयः ॥ २५ ॥ पितरौममवार्द्धक्येवर्तमानौव्यवस्थितौ ॥ तथापतिव्रतापत्नीगृहधर्मविचक्ष

नहीं तो निस्सन्देह वज्र के समान दण्डके ताड़न से मारकर शीघ्रही यमराजके स्थान को पठाऊंगा ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे चोर ! हमलोग तुम्हारे लिये सब देवैंगे तबतक कौतुक से जिस वार्त्ता को पूंछते हैं उसको हम लोगों से कहिये ॥ २३ ॥ कि तुम निर्दयी ब्राह्मणहो तो किसलिये चोरी करतेहो क्या विकराल व्यसनों याने काम व क्रोध से उपजेहुये दोषों से जीतेगये हो या आप बहेलिया ब्राह्मणहो ॥ २४ ॥ लोहजंघ बोला कि मेरा यह चोरी से उपजा हुआ कार्य व्यसनके लिये नहीं है किन्तु इस धर्म को परिवार के लिये जानिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ क्योंकि मेरे माता पिता वृद्धतामें वर्तमान होकर विशेषतासे स्थित

हैं वैसेही घर के धर्म में चतुर पतिव्रता स्त्री है ॥ २६ ॥ मैं जो कुछ इस कर्म से इकट्ठा करता हूं वह सब निश्चय कर उन्हीं के लियेहै यह सत्य से अपनी सौगन्द करता हू ॥ २७ ॥ इसलिये पहले सब ऐश्वर्यको छोड दीजिये वृथा कियेहुये वचनों से क्या है याने कुछ नहीं और मेरा यह हाथ मारनेही के लिये फरकताहै ॥ २८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे चोर ! यदि ऐसा है तो तुम जाकर परिवार से पूंछो कि क्या मेरे पापांशके भागी होंगे या नहीं ॥ २९ ॥ यदि भलीभांति विभाग (बॉट) से तुम्हारे पाप का अंश भी जाता रहै तो करिये अथवा विकराल रौरव नरक में गिरेहुये तुझ अतिदुष्ट बुद्धिवाले का समस्त पाप दुर्वह याने क्लेश से लेजानेवाला

णा ॥ २६ ॥ उपार्जयामियत्किञ्चिदहमेतेनकर्मणा ॥ तत्सर्वन्तत्कृतेनूनंसत्येनात्मानमालभे ॥ २७ ॥ तस्मान्मुञ्चथ प्राक्सर्वंविभवंकिंवृथोक्तिभिः ॥ कृताभिःस्फुरतेहस्तोममायंहन्तुमेवहि ॥ २८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यद्येवञ्चोरतद्गत्वात्वंपृ च्छस्वकुटुम्बकम् ॥ ममपापांशभागीत्वंकिम्भविष्यसिकिन्नवा ॥ २९ ॥ यदितेसंविभागेनपापस्यांशोपिगच्छति॥ तत्कुरुष्वाथवापापंदुर्वहन्तेभविष्यति ॥ ३० ॥ सकलंरौरवेरौद्रेपतितस्यसुदुर्मतेः ॥ वयन्त्वांब्राह्मणंमत्वाब्रूमएतदसं शयम् ॥ ३१ ॥ कृपाविष्टैःसहास्माभिः सञ्जातोपिसुदर्शने ॥ मुनीनांयतचित्तानांदर्शनाद्धिशुभंभवेत् ॥ ३२ ॥ ए कःपापानिकुरुतेफलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ भोक्तारोपिप्रमुच्यन्तेकर्तादोषेणलिप्यते ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ एतेषांतद्वचःश्रुत्वा चौरःकिञ्चिद्भयान्वितः ॥ सत्यमेतन्नसन्देहो यदेतैर्व्याहृतंवचः ॥ ३४ ॥ तस्मात्पृच्छामितद्गत्वा निजमेवकुटुम्ब कम् ॥ यदिस्यात्संविभागोमे पापांशस्यकरोमिवै ॥ ३५ ॥एतत्कर्म्मनगृह्णन्ति यदिवासन्त्यजाम्यहम् ॥ महद्भयंस

होगा हमलोग तुम को ब्राह्मण मानकर इसको निस्सन्देह से कहते हैं ॥ ३० । ३१ ॥ व दयासंयुत हमलोगों के साथ उत्तम दर्शनमें भलीभांति प्राप्तहुयेभी हो क्योंकि वश कियेहुये चित्तोंवाले मुनियों के दर्शन से शुभ होवै है ॥ ३२ ॥ व एकही महापुरुष पापों को करताहै व फल को भोगता है व भोग करनेवाले भी छूट जाते हैं और कर्त्ता दोष से संयुक्त होताहै ॥ ३३ ॥ सूत जी बोले कि वह चोर उन सप्तर्षियों के वचन को सुनकर कुछ भयसंयुक्त हुआ कि इन्होंने जो वचन कहाहै यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ इसलिये जाकर अपनेही उस कुटुम्ब से पूंछूंगा कि यदि मेरे पापांश का भलीभांति विभाग होवै तो मैं निश्चय कर इस कर्म को

करूं और यदि न ग्रहण करैंगे तो मैं इसको छोड़दूंगा क्योंकि इससमय मेरे चित्तमें बड़ाभारी डर उत्पन्न हुआहै ॥ ३५।३६ ॥ हे मुनीश्वरो ! यदि तुम लोग अन्यत्र न जावो तो मैं पलायन में परायण होकर याने दौड़कर अपने घरको जाकर विशेषता से तुम लोगों के वचन को पालन के योग्य वर्ग (मातापितादिकों) से पूंछूं व यदि मेरे पाप के भाग को परिवार ग्रहण करैगा ॥ ३७ । ३८ ॥ तो जो कुछ तुम लोगों के समीप में स्थित होगा उसको मैं ग्रहण करूंगा अथवा वह कुटुम्ब मेरे इस पाप को मना करैगा ॥ ३९ ॥ तो निरसन्देह सामग्री समेत तुम सबों को मैं छोड़ दूंगा तदनन्तर उस चोर के विश्वास के कारण उन मुनियों ने सौगन्दोंको

मुत्पन्नं ममचेतसिसाम्प्रतम् ॥ ३६ ॥ यदियूयंनचान्यत्र प्रयास्यथमुनीश्वराः ॥ पलायनपरोभूत्वातद्गत्वानिजमन्दिरम् ॥ ३७ ॥ पृच्छामिपोष्यवर्गञ्च युष्मद्वाक्यंविशेषतः ॥ यदितत्पातकांशोमेग्रहीष्यतिकुटुम्बकम् ॥ ३८ ॥ तद्युष्माकंग्रहीष्यामि यत्किञ्चित्पार्श्वसंस्थितम् ॥ अथवातन्निषेधंमेपापस्यास्यकरिष्यति ॥ ३९ ॥ तत्त्यजिष्याम्यसंदिग्धं सर्वान्वस्सपरिच्छदान् ॥ ततस्तेशपथान्कृत्वातस्यप्रत्ययकारणात् ॥ ४० ॥ तस्योपरिदयांकृत्वामुमुचुस्तंगृहम्प्रति ॥ सोपिगत्वाथपप्रच्छत्वरितंपितरंप्रति ॥ ४१ ॥ शृणुतातवचोस्माकंततःप्रत्युत्तरङ्कुरु ॥ यत्कृत्वाहमकृत्यानिचौर्यादीनिसहस्रशः ॥ ४२ ॥ पुष्टिङ्करोमितेनित्यं तद्भागस्तेऽस्तिवानवा ॥ पापस्यममप्रब्रूहि पृच्छतोऽत्रयथातथम् ॥ ४३ ॥ अत्रमेसंशयोजातस्तस्माच्छीघ्रंप्रकीर्तय ॥ ४४ ॥ पितोवाच ॥ बाल्येपुत्रमयानीतस्त्वम्पुष्टिंव्याकुलात्मना ॥ शुभा

करके व उसके ऊपर दया कर उस लोहजंघको घर प्रति छोड़दिया याने जानेदिया उसने भी शीघ्रही जाकर अपने पिता से पूंछा ॥ ४० । ४१ ॥ कि हे पिताजी ! हमारे वचनको सुनिये, तदनन्तर प्रत्युत्तर को करिये याने जवाब दीजिये कि जो मैं न करने के योग्य चोरी आदि हजारों कार्यों को करके नित्यही तुम्हारा परिपालन करता हूं तुम्हारा उसमें भाग है या नहीं इस विषय में पूंछते हुये मुझ पापी से यथायोग्य वचन को कहिये ॥ ४२ । ४३ ॥ इस विषय में मेरे सन्देह उत्पन्न हुआहै इसलिये शीघ्रही कहिये ॥ ४४ ॥ पिता बोला कि हे पुत्र ! व्याकुल चित्त या मनवाले मैंने भले, बुरे कर्मों को करके स्नेहवाले चित्तसे तुम्हे शिशुता में

इसीलिये पुष्टिको प्राप्तकिया है ॥ ४५ ॥ कि जिससे फिर वृद्धता को भलीभांति प्राप्तहोनेपर तुम शुभाऽशुभ कर्मकरके मुझको फिर भी पालनकरो ॥ ४६ ॥ हे पुत्र ! जिसप्रकार उस शुभ या पाप कर्म में तुम्हारा भाग नहीं है वैसेही इससमय मेरा भाग नहीं है ॥ ४७ ॥ अपनेही से कियाहुआ शुभ या अशुभकर्म आपही से भोग कियाजाता है और भोक्ता याने भोजन करनेवाले अन्य नर कहेगये हैं ॥ ४८ ॥ उत्तमता, चोरी, खेती व व्यापार से तुम भोजनको समीप लातेहो परन्तु मुझको चिन्ता नहीं होतीहै ॥ ४९ ॥ इसलिये यह हृदयमें स्थापित करनेके योग्य नहीं है जो तुम निन्द्यकर्म करोगे उसके पापके भोगनेवाले तुमहोगे व हमसब भोजन

शुभानिकृत्यानिकृत्वास्निग्धेनचेतसा ॥ ४५ ॥ एतदर्थम्पुनर्येनवार्द्धक्येसमुपस्थिते ॥ माम्पालयसिभूयोपिकृत्वाक मंशुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ नतस्याविद्यतेभागस्तवस्वल्पोपिपुत्रक ॥ शुभस्यवाथपापस्यसाम्प्रतञ्चतथामम ॥ ४७ ॥ आत्मनैवकृतङ्कर्मस्वयमेवोपभुज्यते॥शुभंवायदिवापापंभोक्तारोन्यजनाःस्मृताः॥४८॥साधुत्वेनाथचौर्य्येणकृष्यावाव णिजेनवा॥ त्वमुपानयसेभोज्यं नमेचिन्ताप्रजायते ॥४९॥ तस्मान्नैतद्धृदिस्थाप्यङ्कर्मनिन्द्यङ्करिष्यसि॥यत्तस्यांहःप्रभो क्तात्वंवयंसर्वेप्रभुञ्जकाः ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ सएतद्वचनंश्रुत्वा व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ पप्रच्छमातरंगत्वा तमे वार्थम्प्रयत्नतः ॥ ५१ ॥ ततस्तयापितच्चोक्तंयत्पित्रापिचजल्पितम् ॥ असामान्यंशुभेपापे कृत्येतस्याद्द्विजोत्तमाः ॥ ५२ ॥ ततःपप्रच्छताम्भार्याङ्गत्वादुःखसमन्वितः ॥ साप्युवाचततस्तादृक्पापंगुरुजनोद्भवम् ॥ ५३ ॥ ततस्सशोकस न्तप्तः पश्चात्तापेनसंयुतः ॥ गर्हयन्नेवचात्मानंययौयत्रैवतापसाः ॥ ५४ ॥ ततःप्रणम्यतान्सर्वान् कृताञ्जलिपुटःस्थि

करनेवाले हैं ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इस वचनको सुनकर उसने विकल अन्तःकरण से जाकर मातासे उसी प्रयोजन को बड़ी यत्नसे पूंछा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! शुभ व अशुभ कार्य में विभाग कर्मको जो पिताने निश्चयकर कहाथा उसीको उस मातानेभी कहा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर दुःखसे संयुत होतेहुये द्विजने उस स्त्रीके समीप जाकर पूंछा उसके उपरान्त उसनेभी गुरुजनोंसे उपजे याने सासु व श्वशुरसे कहेहुये वैसेही पापको कहा ॥ ५३ ॥ तदनन्तर शोचसे अत्यन्तही तचा व पश्चात्तापसे संयुत व अपनेको निन्दताही हुआ वह लोहजंघ वहां गया कि जहांही वे तपस्वी लोगथे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उन सबोंको प्रणामकर हाथों को

जोड़े, खड़ेहुये उस ब्राह्मणने कहा कि हे ब्राह्मणो ! जाइये २ व क्षमा करिये क्षमा करिये ॥ ५५ ॥ जिसलिये कि मूर्खता में टिककर अतिपापी व विशेषकर मन्द मैंने तुमलोगोंकी निन्दा किया उसीलिये आज मेरा क्षमापन करना चाहिये ॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरे गुरुओं (माता पिताओं) ने व स्त्रीने तुम्हारे सम्पूर्ण वचन को कहा उसीसे मेरे दुःख आगया ॥ ५७ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! उपदेशके प्रदानसे मेरे ऊपर समस्त प्रसन्नताको करिये कि जिससे मैं पापको नाशकरूं ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने सदैव नित्यही ऐसा कर्म कियाहै कि स्त्रीभी व द्विजोत्तम व विशेषकर तपस्वी लोग जे जे अत्यन्तही दीन मनुष्य युद्धके लिये समर्थ न थे मैंने उन

तः ॥ गम्यतांगम्यतांविप्राःक्षम्यतांक्षम्यतांमम ॥ ५५ ॥ यन्मयामौर्ख्यमास्थाययुष्मन्निर्भर्त्सनाकृता ॥ सुपाप्मना विमूढेन तस्मात्कार्याक्षमाद्यमे ॥ ५६ ॥ युष्मदीयंवचःकृत्स्नंमद्गुरुभ्याम्प्रजल्पितम् ॥ भार्ययाचद्विजश्रेष्ठास्तेन मेदुःखमागतम् ॥ ५७ ॥ तस्मात्कुर्वन्तुमेसर्वम्प्रसादम्मुनिसत्तमाः ॥ उपदेशप्रदानेन येनपापंक्षिपाम्यहम् ॥ ५८ ॥ मयाकर्मकृतान्नित्यं सदैवद्विजसत्तमाः ॥ स्त्रियोपिचद्विजेन्द्राश्च तापसाश्चविशेषतः ॥ ५९ ॥ येयेदीनतरा लोकानसमर्थाःप्रयोधितुम् ॥ तेमयामुषितास्सर्वेनसमर्थाःकदाचन ॥ ६० ॥ कुटुम्बार्थंविमूढेनसाधुसङ्गविवर्जता ॥ यथैवपठितंशास्त्रन्तन्मेद्यपतितंहृदि ॥ ६१ ॥ यदिनस्याद्भवद्भिर्मेदर्शनञ्चाद्यसत्तमाः ॥ तदन्यानपिपापानिकर्त्ताहन्नात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ तेषाम्मध्यगतश्चासीत्पुलहोनामसन्मुनिः ॥ हास्यशीलस्सतम्प्राह विप्लवार्थंद्विजोत्तमम् ॥ ६३ ॥ अहन्तेकीर्त्तयिष्यामि मन्त्रमेकंसुशोभनम् ॥ यन्ध्यायञ्जपमानश्च सिद्धियास्यसिशाश्वतीम् ॥ ६४ ॥

सबों की चोरी कियाहै और सामर्थ्यवाले पुरुषोंकी कभी नहीं ॥ ५९।६० ॥ परिवार के लिये विशेषकर मूढ़ व साधुके संगसे रहित मैंने जैसाही शास्त्र पढ़ाथा वह आज मेरे हृदय में प्राप्तहुआ ॥ ६१ ॥ हे उत्तम मुनियो ! आज यदि मुझको आपलोगों का दर्शन न होता तो मैं और भी पापोंको करता इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ उन मुनियों के मध्यमे हास्य स्वभाववाले पुलह नामक उत्तम मुनिथे उनने पाप नाशने के लिये उस द्विजोत्तम से कहा ॥ ६३ ॥ कि मैं तुमसे एक अतिउत्तम मंत्रको

कहूंगा कि जिसको ध्यानकरते व जपतेहुये तुम सदैववाली सिद्धिको प्राप्तहोगे ॥ ६४ ॥ राटघोट ऐसा यह मंत्र समस्त सिद्धियों का अवश्यकर दायकहै हे विप्र ! निरालसी होतेहुये तुम दिनरात उसी इस मंत्रको जपो ॥ ६५ ॥ उसी जप से देवताओं सेभी दुर्लभ संसिद्धिको प्राप्तहोगे ऐसा कहकर तदनन्तर वे ब्राह्मण तीर्थयात्राको चलेगये ॥ ६६ ॥ व जपमें तत्पर होताहुआ वह चोरभी वहांही स्थितहुआ उससमय उसने अनन्य याने एकाग्र मनसे जपका प्रारम्भ किया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थितहुआ कि जिससे उत्तम दशाको प्राप्तभया उस मंत्रका स्मरण करते हुये उस द्विजका शरीर अचलताको प्राप्तहुआ और वह द्विज कार्य में स्थिरहुआ

राटघोटेतिमन्त्रोयंसर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ तमेनञ्जपविप्रत्वं दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ६५ ॥ ततोयास्यसिसंसिद्धिंदुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ एवमुक्त्वाथतेविप्रास्तीर्थयात्रान्ततोययुः ॥ ६६ ॥ सोपितत्रैवचौरस्तु स्थितोजपपरायणः ॥ अनन्यमनसातेन प्रारब्धस्सतदाजपः ॥६७॥ ततोभवत्समाधिस्थो येनावस्थाम्यसङ्गतः ॥ तस्यैवंस्मरमाणस्यतन्मन्त्रंब्राह्मणस्यच ॥ ६८ ॥ निश्चलत्वङ्गतंकायंकार्यैचनिश्चलस्तथा ॥ ततःकालेनमहतावल्मीकेनसमावृतः ॥ ६९ ॥ समन्ताद्ब्राह्मणश्रेष्ठा ध्यानस्थस्यमहात्मनः ॥ तौमातापितरौतस्य साचभार्यापतिव्रता ॥ ७० ॥ जातामृत्युवशंसर्वें तमन्वेष्यप्रयत्नतः ॥ नविज्ञातस्तुतैस्सर्वैस्ततस्सचमहाव्रती ॥ ७१ ॥ संसारभावनिर्मुक्तस्तस्मान्मुनिसमागमात् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तेनमार्गेणतेपुनः ॥ ७२ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन मुनयस्समुपस्थिताः ॥ प्रोचुश्चैतद्द्विजस्थानंयत्रचौरेणसङ्गमः ॥७३॥ आसीनस्तेनरौद्रेण ब्राह्मणच्छद्मधारिणा ॥ ततोवल्मीकमध्यस्थं शुश्रुवुर्निःस्वनञ्चते ॥ ७४ ॥

तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बड़े समय के बाद सबओर बँबौरिसे घिरगया व ध्यानमें टिकेहुये उस महात्मा के वे माता पिता और वह पतिव्रता स्त्री उसको बड़े उपायसे ढूंढ़कर वे सब मृत्युवशको प्राप्तहोगये तदनन्तर उन सबोंसे न जानाहुआ वह महाव्रतवाला लोहजंघ ॥ ६८ । ६९ । ७० । ७१ ॥ उस मुनिके संयोग से संसारके भाव से छूटगया इसके अनन्तर किसी समय तीर्थयात्राके प्रसंग से वे मुनि फिर उसी मार्ग से समीप मे प्राप्तहुये व बोले कि यह ब्राह्मणका स्थानहै जहांपर कपट से ब्राह्मणके रूपको धारनेवाले उस भयंकर चोरसे हमसबोंका समागम हुआथा तदनन्तर उसी लोहजंघ द्विज महात्माके बँबौरि के मध्यमें स्थितहुये शब्दको उन्होंने

मुना इसके अनन्तर उन्होंने भूमिमें सबओर दिशाओंमें देखा ॥ ७२ । ७३ । ७४ । ७५ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने वँवौरिको देखकर उसीके मध्यमें वह चोर प्राप्तथा और पुलहमुनि से बतलायेहुये उस मंत्रको जप करताथा ॥ ७६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जोकि हास्यरूपवाले पुलहमुनिसे दियागयाथा वह सिद्धहोगया अथवा शास्त्रके देखनेवाले आचार्य्योंसे यह सिद्ध कहागयाहै ॥ ७७ ॥ जिसलिये कि उसकी सिद्धि के लिये सिद्धिका समूह समीप में स्थितहुआ मंत्र, तीर्थ, जप, देवता, यज्ञ, औषधि व गुरुमें जिसकी जैसी भावना होतीहै उसकी वैसीही सिद्धि होती है ॥ ७८ ॥ इसके अनन्तर दुष्टमंत्रसे भी सिद्धहुये उस चोरको देखकर वे ब्राह्मण आश्चर्य्य से व वि-

लोहजङ्घस्यविप्रस्यतस्यैवचमहात्मनः ॥ अथभूम्यांद्विजास्तेतु ददृशुस्सर्वतोदिशम् ॥ ७५ ॥ तेवल्मीकंततो दृष्ट्वा सचौरस्तस्यमध्यगः॥जपमानस्तुतन्मन्त्रंपुलहेननिवेदितम्॥ ७६ ॥ हास्यरूपेणयद्दत्तं सिद्धञ्चद्विजसत्तमाः॥ यद्वासिद्धमिदंप्रोक्तमाचार्यैःशास्त्रदृष्टिभिः ॥ ७७ ॥ स्तोमःसिद्धिकृतेतस्ययस्मात्सिद्धेरुपस्थितः ॥ मन्त्रेतीर्थेजपे देवे यज्ञेचभेषजेगुरौ ॥ यादृशीभावनायस्य सिद्धिर्भवतितादृशी ॥ ७८ ॥ अथतंवीक्ष्यसंसिद्धं कुमन्त्रेणापितस्करम् ॥ तेविप्राविस्मयाविष्टाः कृपयाचविशेषतः ॥ ७९ ॥ समाध्यर्हैस्ततोद्रव्यैस्तैलैःसद्भेषजैरपि ॥ ममर्दुस्तस्यतद्गात्रंसमाधिस्थञ्चिराद्द्विजाः॥८०॥ततस्सर्वान्मुनीँल्लब्ध्वाविलोक्यचमुहुर्मुहुः॥ प्रोवाचविस्मयाविष्टस्तान्मुनीन्पुनरागतान् ॥ ८१ ॥ लोहजङ्घउवाच ॥ किमर्थन्नगतायूयंमयामुक्ताद्विजोत्तमाः ॥ नाहङ्किञ्चिद्ग्रहीष्यामियुष्मदीयङ्कथञ्चन ॥८२॥ कुटुम्बार्थमतस्तस्माद्व्रजध्वंस्वेच्छयाधुना॥८३॥ मुनयऊचुः॥ चिरकालाद्वयंप्राप्ताः पुनर्भ्रान्त्वाथकानने ॥

शेपकर दयासे संयुतहुये ॥ ७९ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों ने बहुत दिनोंसे समाधिमें टिके हुये उस लोहजंघके उस अंगको समाधिके योग्य वस्तुओं से व तैलों तथा उत्तम दवाइयों सेभी मर्दन किया ॥ ८० ॥ तदनन्तर सब मुनियोंको पाकर व बार २ देखकर आश्चर्य्य संयुत होताहुआ वह द्विज फिर आयेहुये उन मुनियोंसे बोला ॥ ८१ ॥ लोहजंघ बोला कि हे द्विजोत्तमो ! मुझ से छोडेहुये तुम लोग किसलिये नहीं गये मैं कुटुम्ब के लिये तुम्हारी कुछ वस्तु को न लूंगा इसलिये उसीकारण इससमय तुम लोग अपनी इच्छा से चलेजावो ॥ ८२ । ८३ ॥ मुनिलोग बोले कि हमलोग वन में घूमकर इसके अनन्तर बहुत समय से फिर प्राप्त हुये हैं समाधि में टिकेहुये

तुमने बहुतसे बीतेहुये समय को नहीं जाना है॥ ८४ ॥ व तुमसे छोड़ेहुये वे माता पिता नाश होगये और तुम मेरी प्रसन्नतासे उत्तम संसिद्धिको प्राप्तहुयेहो ॥ ८५ ॥
जिसकारण कि बँबौरि के बीच में स्थित होतेहुये तुम उत्तम सिद्धिको प्राप्तभये हो इसलिये संसार में तुम वाल्मीकि नाम से प्रसिद्धहोगे ॥ ८६ ॥ हे द्विज ! पुरातन
समय जिसलिये यहां टिकेहुये तुमने मनुष्यों की चोरी किया है उसीकारण यह मुपरनामक तीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ८७ ॥ हे द्विज ! श्रावणी पौर्णमासी में
जो पुरुष श्रद्धासे इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे चोरी के काम से उपजे हुये पापको नाशकरैंगे ॥ ८८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! ऐसा कहकर इसके अनन्तर

समाधिस्थेननज्ञातःकालोतीतस्त्वयाबहु ॥ ८४ ॥ तौमातापितरौवृद्धौ त्वयामुक्तौक्षयङ्गतौ ॥ त्वञ्चसंसिद्धिमापन्नः
परामस्मत्प्रसादतः ॥ ८५ ॥ वल्मीकान्तस्थितोयस्मात्संसिद्धिंपरमाङ्गतः ॥ वाल्मीकिर्नामविख्यातस्तस्माल्लोकेभ
विष्यति ॥ ८६ ॥ अत्रस्थेनत्वयामुष्णायतोलोकाःपुराद्विज ॥ मुपराख्यंततस्तीर्थमेतत्ख्यातिंगमिष्यति ॥ ८७ ॥
यत्रस्नानंकरिष्यन्ति श्रावण्यांश्रद्धयाद्विज ॥ क्षालयिष्यन्तितेपापञ्चौर्यकर्मसमुद्भवम् ॥ ८८ ॥ सूतउवाच ॥ एवमु
क्त्वाथविप्रेन्द्रास्तमामन्त्र्यमुनिंतथा ॥ प्रणतानेनसञ्जग्मुर्वाञ्छिताशांततःपरम् ॥ ८९ ॥ तपःस्थस्सोपितत्रैववाल्मी
किरितियःस्मृतः॥मुनीनाम्प्रवरःश्रेष्ठस्ततोजातस्ततःपरम्॥९०॥ अद्यापितिष्ठतेमूर्त्तस्सतत्रस्थोमुनीश्वरः ॥ यस्तम्पू
जयतेभक्त्यासकविर्जायतेध्रुवम् ॥ ९१ ॥ अष्टम्यांचविशेषेण सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
नागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रेमुपरतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

उन मुनिसे पूंछकर तदनन्तर उन वाल्मीकिसे प्रणाम कियेहुये वे सप्तर्षि चाहीहुई दिशाको चलेगये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर जो वाल्मीकि ऐसे कहेगये हैं वहींपर तपस्या
में टिकेहुये वे भी उसके उपरान्त मुनीश्वरोंमें श्रेष्ठ हुये हैं ॥ ९० ॥ व वहांपर टिकेहुये वे मूर्तिमान् मुनिनायक आजभी स्थित हैं जो पुरुष उन मुनिनायकको भक्तिसे
पूजताहै वह निश्चयकर कवि होताहै ॥९१॥ व भलीभांति श्रद्धा संयुत होताहुआ जो पुरुष विशेषकर अष्टमीतिथिको पूजैगा वहभी अवश्यकर कविहोगा ॥ ९२ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रे मुपरतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

दो० । सत्यसन्ध निज सुतालै गये चतुर्मुख पास । इकसौ बाइसमें सोई वर्णित है इतिहास ॥ सूतजी बोले कि वैसेही कर्णोत्पल नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है जिसमें भलीभांति नहायाहुआ पुरुष प्रियसे व धन से व निज जनसे व पराक्रम,धर्म तथा विशेषकर स्त्री आदिकोंसे किसी प्रकारभी विरहको नहीं प्राप्तहोता है ॥१।२॥ पुरातन समय इक्ष्वाकु वंशमें उपजाहुआ समस्त रूप व गुणों से संयुत सत्यसन्ध ऐसा प्रसिद्ध भूपति हुआहै ॥ ३ ॥ बहुत पुत्रवाले उस सत्यसन्ध के समस्त लक्षणों से चिह्नित वह एक कर्णोत्पला नामक कन्या पैदाहुई ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर बारहवें दिन पिताने ब्राह्मणों, नौकरों और मंत्रियों के साथ बार २ सलाह करके उस

सूतउवाच ॥ तथाकर्णोत्पलन्तीर्थंविख्यातञ्चास्तिशोभनम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यङ्नवियोगंसमाप्नुयात् ॥ १ ॥ कथञ्चिदपिचेष्टेन धनेनस्वजनेनच ॥ पराक्रमेणधर्मेण कलत्रेणविशेषतः ॥ २ ॥ सत्यसन्धइतिख्यातः पुरासीत्पृथिवीपतिः ॥ इक्ष्वाकुकुलसम्भूतस्सर्वरूपगुणैर्युतः ॥ ३ ॥ तस्यकर्णोत्पलानाम जाताकन्यासुशोभना ॥ बहुपुत्रस्यचैकासा सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ४ ॥ अथतस्याःपितानाम चक्रेद्वादशमेदिने ॥ सम्मन्त्र्यब्राह्मणैस्सार्द्धम्भृत्यामात्यैर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ यस्मात्कर्णोत्पलाचेवंजाताममकुमारिका ॥ तस्मात्कर्णोत्पलानाम जायतांद्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ कृतनामथसाबाला वृद्धिंयातिदिनेदिने ॥ आह्लादकारिणीनित्यङ्कलाचान्द्रमसीयथा ॥ ७ ॥ अथसाक्रमशःप्राप्ता यौवनम्बन्धुलालिता ॥ हस्ताद्धस्तम्प्रगच्छन्तीसर्वेषांद्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ अथतांयौवनोपेतां दृष्ट्वासपृथिवीपतिः ॥ चिन्तयामासचित्तेन कस्येमाम्प्रददाम्यहम् ॥ ९ ॥ नतस्यास्सदृशःकश्चिद्वरोत्रधरणीतले ॥ नस्वर्गेनचपाताले किंकृत्यम्मेधुना

का नाम किया ॥ ५ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! जिस कारण यह मेरी कन्या कमल सरीखे कानोंवाली उत्पन्नहुईहै इसलिये कर्णोत्पला नाम होवै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कियेहुये नामवाली व आनन्द करानेवाली वह कन्या दिनोदिन वृद्धिको प्राप्तहोतीथी जैसे कि नित्यही चन्द्रमाकी कला बढ़ती है ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! सब मनुष्यों के हाथसे हाथमें जाती व भाइयोंसे प्यार कीहुई वह कन्या क्रम से वृद्धिको प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त उस कन्याको यौवनसे संयुत देखकर उस भूपति ने चित्तसे चिन्तन किया कि मैं इसे किसको देऊं ॥ ९ ॥ इस भूतल में व स्वर्ग और पाताल में उसके समान कोई वर नहीं है इससमय मुझको क्या कार्य

होवै है ॥ १० ॥ उस भूपति ने उस कन्याके लिये ऐसा बहुत भांतिसे ध्यान करके चित्तमें निश्चय किया कि मुझको इस विषय में आज ब्रह्मा से पूंछना चाहिये वे पितामह इस कार्य में जिसके लिये प्रेरणा करैंगे उसीके निमित्त कन्याको दूंगा और पुरुषके लिये किसी प्रकार से न दूंगा ॥ ११ । १२ ॥ वह भूपाल इस भांति निश्चयकर तदनन्तर उस कन्या को लेकर इसके अनन्तर उसके निमित्त वरको पूंछनेके लिये ब्रह्मलोक को गया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! वह नरनायक जबतक ब्रह्मलोकको भलीभांति प्राप्तहुआ तबतक ब्राह्मी याने ब्रह्मावाली सन्ध्या भलीभांति उत्पन्नहुई ॥ १४ ॥ इसी अवसर में सन्ध्योपासन कर्ममें उत्कं-

भवेत् ॥ १० ॥ सएवम्बहुधाध्यात्वातदर्थम्पृथिवीपतिः ॥ निश्चयम्प्राकरोच्चित्ते प्रष्टव्योऽत्रपितामहः ॥ ११ ॥ मया
द्यविषयेचास्मिन्सदेवःप्रेरयिष्यति ॥ तस्मैपुत्रींप्रदास्यामिनान्यस्मैवैकथञ्चन ॥ १२ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा तामादा
यततःपरम् ॥ ब्रह्मलोकञ्जगामाथप्रष्टुन्तस्याःकृतेवरम्॥१३॥अथयावत्ससम्प्राप्तोब्रह्मलोकंनरेश्वरः ॥ तावत्सन्ध्या
समुत्पन्ना ब्राह्मीब्राह्मणसत्तमाः ॥ १४॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मासायन्तनक्रियोत्सुकः ॥ उपविष्टस्समाधिस्थस्तत्कालेसम
पद्यत ॥ १५ ॥ सत्यसन्धोपितंदृष्ट्वा समाधिस्थम्पितामहम् ॥ समाध्यन्तम्प्रतीक्षन्सउपविष्टस्समीपतः ॥ १६ ॥ त
तोविलोक्यचात्मानमात्मनिप्रपितामहः ॥ पद्मेप्रवर्तितेसम्यगष्टपत्रेहृदिस्थिते ॥ १७ ॥ कर्णिकामध्यगंदीप्तं बहुव
र्णमतिस्थिरम् ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नवदनःपुलकाङ्कितः ॥ १८ ॥ ततआचम्यप्रक्षाल्य चरणौसर्वतोदिशम् ॥ अप
श्यत्प्रणतस्सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा तामादायशुभाननाम् ॥ नमस्कृत्यतयासार्द्धं

ठित ब्रह्माजी समाधि में स्थितहोकर बैठे उसी समय में सत्यसन्ध प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ और वे सत्यसन्ध भी समाधि में टिकेहुये ब्रह्माजीको देखकर समाधि के अन्त को परखतेहुये समीप बैठगये ॥ १६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी आत्मामें परब्रह्मको देखकर जोकि हृदयमें टिके व भलीभांति पलटेहुये आठपत्तोंवाले कमलमें गुजरी के बीचमें प्राप्त व अत्यन्तही अचल व बहुरंगवाला तथा प्रकाशमानथा तदनन्तर आनन्दके आंसुओंसे सबओर भीगे मुखवाले व रोमांचसे चिह्नितहुये॥१७।१८॥ तदनन्तर समस्त ब्रह्मलोकनिवासियों से प्रणाम कियेहुये ब्रह्माजीने आचमनकर व चरणोंको धोकर सब दिशाओंमें देखा ॥ १९ ॥ इसी अवसर में सत्यसन्ध राजाने उस शोभन

मुखवाली कन्याको लेकर व उसके सहित प्रणामकर तदनन्तर आदर समेत कहा॥ २० ॥ कि हे देव ! आनर्त भूमिमें सत्यसन्ध ऐसा विख्यात मैं मृत्युलोक से तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं ॥ २१ ॥ यह अतिशुभदायक कर्णोत्पला नामक मेरी कन्याहै इस भूमि में मैंने कहीं इसके समान पतिको न पाया ॥ २२ ॥ उसीसे हे सुरनायक ! तुम्हारे समीप आयाहूं इसलिये मुझसे इसके पतिको कहिये कि जिससे मैं इसको देऊं ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस भूपतिके उस वचनको सुनकर तदनन्तर विहँसकर ब्रह्माजीने समस्त देवताओं की सभामें कहा॥ २४ ॥ कि हे भूप ! यदि मुझसे कन्याके धर्मपति को पूंछते हो तो यह कन्या इस

न्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २० ॥ अहंदेवसमायातो मर्त्यलोकात्तवान्तिकम् ॥ सत्यसन्धोमहीपाल आनर्तभुविविश्रुतः ॥ २१ ॥ इयंकर्णोत्पलानाम ममकन्यासुशोभना ॥ अस्याभुविमयालब्धोनसमोत्रपतिःक्वचित् ॥ २२ ॥ सदृशंतेनचायातस्तवपार्श्वेसुरेश्वर ॥ तस्मान्मेब्रूहिभर्तारमस्यायेनददाम्यहम् ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा ततः प्रोवाचपद्मजः ॥ विहस्यसर्वदेवानां समजेद्विजसत्तमाः ॥ २४ ॥ यदिपृच्छसिमेभूपकन्याधर्म्मपतिम्प्रति ॥ तदेषाकस्यचिद्देया साम्प्रतंशृणुकारणम् ॥ २५ ॥ आत्मश्रेणीप्रसूताय वयोज्येष्ठायभूपते ॥ कन्यादेयाचधर्माय यशसेकुलवृद्धये ॥२६॥ सेयन्तवसुतामर्त्ये ज्येष्ठभावंसमाश्रिता ॥ सर्वेषाम्भूमिपालानां यत्तत्त्वंकारणंशृणु ॥२७॥ ममान्तिकम्प्रपन्नस्यतवजातंयुगत्रयम् ॥ अतीताभूतलेमर्त्यायेदृष्टाःप्राक्त्वयानृप ॥ २८ ॥ अन्यासृष्टिस्समुत्पन्ना साम्प्रतन्धरणीतले ॥ नत्वंजानासिमाहात्म्यं ममलोकसमुद्भवम् ॥ २९ ॥ नदेवामानुषीम्भार्य्यांकुर्वन्तिचकथञ्चन ॥ श्लेष्ममूत्रपुरी

समय किसको देने योग्य है क्योंकि कारणको सुनिये ॥ २५ ॥ हे भूपते ! धर्म व यश व वंशकी वृद्धिके निमित्त अपनी पंक्ति में पैदाहुये व अवस्था में बडे के लिये कन्याको देना चाहिये ॥ २६ ॥ जिस कारण वही यह तुम्हारी कन्या मृत्युलोक में सबही भूपालों की ज्येष्ठता में प्राप्तहै तुम उस कारणको सुनो ॥ २७ ॥ कि हे नृप ! तुमको मेरे समीप प्राप्तहुये तीन युग बीतगये भूतल में पहले तुमने जिन मनुष्योंको देखाथा वे गत होगये ॥ २८ ॥ और इससमय भूतल में अन्य सृष्टि भलीभांति पैदाहुई है तुम मेरे लोकसे उपजेहुये माहात्म्यको नहीं जानतेहो ॥ २९ ॥ और कफ, मूत्र, विष्ठा की स्थानवाली व अतिनिन्दित मानुषी को देवता किसी प्रकार स्त्री न

करैंगे ॥ ३० ॥ इसलिये हे नृप ! कन्या समेत तुम यहींपर टिको क्योंकि हे नृप ! जो हाथी घोड़े आदिक थे वे सब नाशको प्राप्तहोगये ॥ ३१ ॥ पृथ्वी में आयके जो कोई पुत्र व पौत्र तथा सेवक व अन्य भाईथे वे सब व जो और स्नेही आदि थे वे मृत्युको प्राप्त होगये ॥ ३२ ॥ वह नृपोत्तम वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर जबतक स्थितहुआ तबतक दुःखसे विकल व रोतीहुई वह कन्या बोली ॥ ३३ ॥ कि उसी कारण मैं वहां जाऊंगी जहांपर कि वह मेरी माता व कियेहुये आनन्दोंवाली वे सखियां है कि जिनके साथ मैंने क्रीड़ा कियाहै ॥ ३४ ॥ जिसकारण कि मैं विना माताके यहां समयकी स्थिति को न व्यतीत करूंगी इसलिये शीघ्रही वहां चलिये कि

षाणांसंस्थानमतिगर्हिताम् ॥ ३० ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठत्वं सुतयासहितोन्नृप ॥ यद्धस्त्यश्वादिकंसर्वं त्तयन्नीतन्तुतन्नृ
प ॥ ३१ ॥ पुत्राःपौत्रास्तथाभृत्या येचान्येबान्धवास्तथा ॥तेसर्वैनिधनंप्राप्ता येचान्येभवतःक्षितौ ॥ ३२ ॥ सतथेतिप्र
तिज्ञाय स्थितःपार्थिवसत्तमः ॥ यावत्तावत्सुदुःखार्त्ता रुदतीसाब्रवीत्सुता ॥ ३३ ॥ तस्माद्यास्यामितत्रैव यत्रसाजन
नीमम ॥ ताश्चसख्यःकृतानन्दायैस्सार्द्धंक्रीडितंमया ॥ ३४ ॥ मात्राविनायतोनाहंनयिष्येकालसंस्थितिम् ॥ तस्मा
त्तत्रद्रुतङ्गच्छ यत्रमेजननीस्थिता ॥ ३५ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा स्नेहार्द्रेणसचेतसा ॥ तामादायततःप्राप्तःस्वदेशस्पार्थि
वोत्तमः ॥३६॥ यावत्पश्यातितावत्सस्थलस्थानेजलाशयाः॥जलस्थानेषुसञ्जातास्स्थलसङ्घाःसुदुर्गमाः ॥ ३७ ॥ अन्ये
लोकास्तथाधर्म्मास्तेषाम्मध्येव्यवस्थिताः ॥ पृच्छन्नपिनजानातिसम्बन्धंकेनचित्सह ॥ ३८ ॥ तथामर्त्यानिलस्पृष्ट
स्तत्क्षणात्समहीपतिः ॥ पृच्छन्नपिनजानाति सम्बन्धङ्केनचित्सह ॥३९॥ तथामर्त्यानिलस्पृष्टस्तत्क्षणात्समहीपतिः ॥

जहां मेरी माता टिकी है ॥ ३५ ॥ उस कन्याके उस वचनको सुनकर वह भूपसत्तम स्नेह से भीगे चित्तसे उसको लेकर तदनन्तर अपने देशको प्राप्तहुआ ॥ ३६ ॥ व जबतक वह देखताहै तबतक स्थलके स्थानपै जलाशय व जलके स्थान में अतिक्लेश से जाने योग्य स्थलों के समूह होगये ॥ ३७ ॥ व उन स्थलसमूहोंके मध्यमें औरही मनुष्य व औरही धर्म विशेषता से टिकगये व पूंछतेहुये भी कोई किसी के साथ सम्बन्धको नहीं जानताहै ॥ ३८ ॥ वैसेही मृत्युलोक के पवनसे छुवा हुआ वह भूपति उसी क्षण पूंछताहुआ भी किसी के साथ सम्बन्धको नहीं जानता है ॥ ३९ ॥ वैसेही मृत्युलोक के पवनसे स्पर्श किया हुआ वह भूप और वह कन्या उसी

त्तए श्वेतबालोंवाली व वृद्धतासे ग्रसित होगई ॥ ४० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सिमिटोंसे पूर्ण अङ्गोंवाली, गिरे दांतोंवाली व गिरे याने नये स्तनोंवाली व अमनोहारिणी और कुरूप अङ्गोंवाली व चिपटे नयनोंवाली होगई ॥ ४१ ॥ व पग २ पै कांपते और उस प्रकार के हुये उस भूपनेभी पूंछा कि यहां राजा कौनहै व यह देश कौनहै और यह कौन पुरहै ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर मनुष्यों ने उस भूपसे कहा कि आनर्त ऐसा कहाहुआ देशहै व उत्तम धर्मको जाननेवाला यह भूपभी बृहद्बल ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ४३ ॥ व यह प्राप्तिपुर नामक नगरहै और यह शुभ्रमती नदीहै व इसीका यह गढ़ातीर्थ कहागयाहै ॥४४॥ जहां कि शान्त स्वभाववाले व इन्द्रियोंको दमन कियेहुये

साचकन्याजराग्रस्ता सञ्जाताश्वेतमूर्द्धजा ॥ ४० ॥ वलिभिःपूर्णताङ्गीचशीर्णदन्ताकुचच्युता ॥ असनोज्ञाविरूपाङ्गीचिपिटाक्षीद्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ सोपिराजातथाभूतो वेपमानःपदेपदे ॥ पप्रच्छभूपतिःकोत्र देशःकोयम्पुरञ्चकिम् ॥ ४२ ॥ अथप्रोचुर्जनास्तस्य देशानर्तइतिस्मृतः ॥ अयम्भूपोपिविख्यातो सुधर्मज्ञोबृहद्बलः ॥ ४३ ॥ एतत्प्राप्तिपुरंनाम एषाशुभ्रमतीनदी ॥ गर्तातीर्थमिदम्प्रोक्तमेतस्याःपरिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥ यत्रैतेमुनयःशान्तादान्ताःश्रेष्ठगुणेरताः ॥ तपोरतामहाभागा जपस्नानपरायणाः ॥ ४५ ॥ ततस्तुससमाकर्ण्यरुरोदकृतनिःस्वनः ॥ स्वसुतान्तांसमालिङ्ग्य दुःखशोकसमन्वितः ॥ ४६ ॥ तौचवृद्धतमौदृष्ट्वारुदन्तौकृपयान्विताः ॥ सर्वेलोकास्समाजग्मुःपप्रच्छुश्चसुदुःखिताः ॥ ४७ ॥ किन्त्वंवृद्धसुदुःखार्तःप्ररोदिषिनिर्गलम् ॥अनयावृद्धयासार्द्धंतस्मान्नःकारणंवद ॥ ४८ ॥ किन्तेनष्टःप्रियःकश्चित्किंवाजातोधनक्षयः ॥ पराभूतोसिवाकिन्त्वं केनापिवदमाचिरम् ॥ ४९ ॥ धर्मज्ञोदुष्टहन्ताच साधू

व स्नान, जप में लगे व श्रेष्ठगुणों में तत्पर ये बड़े भाग्यवाले मुनिलोग तपस्यामें परायण हैं ॥ ४५ ॥ तदनन्तर वह भूप सुनकर अपनी उस कन्याको लिपटाकर व दुःख शोचसे संयुत होकर शब्द करताहुआ रोताभया ॥ ४६ ॥ रोतेहुये व अत्यन्तही बूढ़े उन कन्या पिताओं को देखकर दयायुक्त व अतिदुःखित होते हुये सब मनुष्य भलीभांति आये व पूछते भये ॥ ४७ ॥ कि हे वृद्ध ! दुःखसे विकल तुम इस वृद्धा समेत बिन रोंक टोंक याने अत्यन्तही क्यों रोतेहो इसलिये हमलोगों से कारण कहो ॥ ४८ ॥ क्या तुम्हारा कुछ प्रियपदार्थ नष्टहोगया है व धनका नाश हुआहै अथवा क्या तुम किसीसे तिरस्कृत हुये हो शीघ्रही कहिये ॥ ४९ ॥ क्योंकि

धर्मका जाननेवाला व दुष्टों को मारनेहारा और उत्तम जनोंकी रक्षा में लगाहुआ हम लोगों का बृहद्बल राजा जिससे तुम्हारे सुखको करै ॥ ५० ॥ सत्यसन्ध बोले कि सत्यसन्ध ऐसा कहाहुआ मैं आनर्त देशका स्वामीहूं व सदैव प्यारी यह कर्णोत्पला नामक मेरी कन्या है ॥ ५१ ॥ सो मैं इसको देनेके लिये ब्रह्मादेवजी से पूंछने के निमित्त यहां से ब्रह्मलोक को गया वहां मुहूर्त तुल्य याने कच्ची दो घड़ीतक स्थितरहा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर फिर भलीभांति आयाहुआ मैं जब तक पृथ्वीतलको देखा तबतक सर्व विलोमताको प्राप्त होगया याने उलटा होगया मैं कुछ नहीं जानताहूं ॥ ५३ ॥ उस वचनको सुनकर आश्चर्य्य से फूलेहुये

नाम्पालनेरतः ॥ राजाबृहद्बलोस्माकं येनतेकुरुतेसुखम् ॥ ५० ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ आनर्ताधिपतिश्चाहं सत्यसन्ध इतिस्मृतः ॥ ममकर्णोत्पलानाम सुतेयंदयितासदा ॥५१॥ सोहमस्याःप्रदानार्थं ब्रह्मलोकमितोगतः ॥ प्रष्टुम्पितामहंदेवं स्थितस्तत्रमुहूर्तवत् ॥ ५२ ॥ ततोभूयःसमायातोयावत्पश्यामिभूतलम् ॥ तावद्विलोमतांप्राप्तं सर्वंनोवेद्मिकिञ्चन ॥५३॥ तच्छ्रुत्वातेजनागत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ बृहद्बलायतत्सर्वमाचख्युस्तुष्टिसंयुताः ॥ ५४ ॥ सोपितत्सर्वमाकर्ण्यततःशीघ्रतरङ्गतः ॥ पद्भ्यामेवस्थितोयत्रसत्यसन्धोमहीपतिः ॥ ५५ ॥ ततस्तम्प्रणिपत्योच्चैः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ स्वागतम्मेमहीपाल भूयस्सुस्वागतञ्चते ॥ ५६ ॥ इदंराज्यन्निजम्भूयो मयाभृत्येनसादरम् ॥ कुरुथ स्वेच्छयादेहि दानानिविविधानिच ॥ ५७ ॥ ततस्तञ्चसमालिङ्ग्य शिरस्याघ्रायचासकृत् ॥ उवाचाश्रुपरिक्लिन्नव

लोचनोंवाले व हर्षसंयुक्त होतेहुये उन मनुष्यों ने बृहद्बल नृपतिके लिये उस समस्त वृत्तान्तको कहा ॥ ५४ ॥ वह बृहद्बल भी उस समस्त चरित्रको सुनकर चरणोंही से (पैदल) अत्यन्तही शीघ्र वहांगया जहांपर कि सत्यसन्ध भूपति टिकाथा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उच्च प्रकार से प्रणामकर हाथों को जोड़े खड़ेहुये उस भूपति ने कहा कि हे भूपाल ! मेरा आना अच्छी तरह से हुआ व हे भूप ! तुम्हारा आना बहुत भलीभांति हुआ है ॥ ५६ ॥ मुझ दास समेत इस अपनी राज्यको फिर आदर सहित कीजिये व अपनी इच्छासे अनेक भांतिके दानों को दीजिये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर उस भूपको भलीभांति लिपटाकर व बार २ मस्तक में सूंघकर आंसुवों

से भीगेहुये मुखवाले सत्यसन्धने गद्गदीले आखरोंसे कहा ॥ ५८ ॥ कि हे वत्स ! मैंने राज्य किया व अनेक भांतिके दानको दिया व सम्पूर्ण दक्षिणावाले अश्वमेधादिक यज्ञों से पूजन किया है ॥ ५९ ॥ इस लिये इस कन्या समेत मैं वैसेही तपकरूंगा कि जैसे पहलेवाली उत्तम तरुणता फिर मिलै ॥ ६० ॥ बृहद्बल बोला कि हे नृपेन्द्र ! परम्परा से मैंने यह सब सुनाहै उसको मुझसे सुनिये कि सत्यसन्ध भूपाल कन्याको लेकर कहीं निकलगया था वह भूपभी जब न आया तदनन्तर हे नृप ! उस के मन्त्रियो ने बहुत दिनोंतक राज्यको परिपालन कर ॥ ६१ । ६२ ॥ उन्होंने सुहयनामक प्रसिद्ध पुत्रका अभिषेक किया हे विभो ! क्रमसे उस सुहयके

दनोगद्गदाक्षरम् ॥ ५८ ॥ वत्सचीर्णंमयाराज्यं दानंदत्तंपृथग्विधम् ॥ वाजिमेधमुखैर्यज्ञैरिष्टंसम्पूर्णदक्षिणैः ॥५९॥ तस्मात्तपश्चरिष्यामि सुतयाचानयासह ॥ यथैवलभ्यतेभूयस्तारुण्यम्प्राक्तनंशुभम् ॥६०॥ बृहद्बलउवाच ॥ पारम्पर्येणराजेन्द्र मयैतत्सकलंश्रुतम् ॥ सत्यसन्धोमहीपालकन्यामादायनिर्गतः ॥ ६१ ॥ कुत्रचिन्नसमायातस्सभूपोपिशृणुष्वमे ॥ ततस्तत्सचिवैराज्यम्प्रतिपाल्यचिरान्नृप ॥ ६२ ॥ अभिषिक्तस्तुतैःपुत्रस्सुहयोनामविश्रुतः ॥ तस्याहंक्रमशोजातस्सप्तसप्ततिमेविभो ॥ ६३ ॥ पुरुषेतववंशस्य समुद्धर्तामहीपतिः ॥ तस्मादत्रैवकल्याणे स्थानेस्मिन्मेध्यताङ्गते ॥ ६४ ॥ गर्तातीर्थेकुरुविभोतपस्त्वमनयासह ॥ येनतेचरणौनित्यम्प्रणिपत्यत्रिसन्ध्यजम् ॥ ६५ ॥ श्रेयःप्राप्नोम्यसंदिग्धम्प्रसादःक्रियतामिति ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयासीत्स्थापितम्पुरा ॥ लिङ्गंवृषभनाथस्यतावदस्तिसुपुत्रक ॥६६॥ यत्तस्याराधनन्नित्यंकरिष्यामिदिवानिशम् ॥ तस्मात्प्रापयमान्तत्र अनयासुतयासह॥६७॥

सतहत्तरिवें पुरुष (पुश्त) में पैदाहुआहूं जोकि तुम्हारे वंशको भलीभांति उद्धार करनेवाला भूपतिहूं इसलिये हे विभो ! पवित्रताको प्राप्तहुये इसी कल्याणदायक गर्तातीर्थवाले स्थान में तुम इस कन्या समेत तपस्याकरो जिससे नित्यही तीनों सन्ध्याओं से उपजेहुये समयों में तुम्हारे चरणों को प्रणामकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ निस्सन्देह कल्याणको प्राप्तहोऊं इसकारण प्रसन्नता कीजावै सत्यसन्ध बोला कि हे उत्तम पुत्र ! तबतक पुरातन समय हाटकेश्वरसे उपजेहुये क्षेत्रमें मुझसे थापन कियाहुआ वृषभनाथ जीका लिङ्गहै ॥६६॥ जिसलिये कि मैं नित्य अहर्निश उस लिङ्गका आराधन करूंगा उसी कारण इस कन्या समेत मुझको वहां पठाइये ॥ ६७ ॥

उन दोनों भूपोंको इस भाति कहतेहुये बहुत दिनवाले गुरु याने वृद्ध व उत्तम भूपतिको प्राप्तहुये सुनकर कौतुक संयुत होतेहुये ब्राह्मण गर्तातीर्थसे भलीभांति आये तदनन्तर हाथोंको जोड़ेहुये उस भूपतिने उन ब्राह्मणोंको अर्घ देकर व बैठिये यह आदर समेत कहकर स्वर्गके चरितको कहा इसके अनन्तर विस्मयको प्राप्तहोने हुये वे ब्राह्मण जो जैसा बड़ाथा वैसेही सुखपूर्वक नरेशकी चारों दिशाओंमे निकट बैठगये व उस भूपालसे ब्रह्माके घरमें उपजीहुई वार्ताको पूछतेभये॥६८।६९।७०।७१॥ जिसप्रकार पुरातनसमय वह भूप वहांगया व जिसभांति आयाथा व जिस भांति अनेकों वार्तालाप ब्रह्मासे हुयेथे उस समस्त चरित को उन ब्राह्मणोंने पूछा ॥ ७२ ॥

एवंतयोःप्रवदतोरन्योन्यम्भूमिपालयोः ॥ गर्तातीर्थात्समायाता ब्राह्मणाःकौतुकान्विताः ॥ ६८ ॥ श्रुत्वाभूमिपतिम्प्राप्तं चिरन्तनगुरुंशुभम् ॥ ततस्सपार्थिवस्तेषां दत्त्वार्घ्यम्प्राञ्जलिःस्थितः ॥ ६९ ॥ प्रोवाचस्वर्गवृत्तान्तमास्यतामितिसादरम् ॥ अथतेब्राह्मणास्सर्वेयथाज्येष्ठंयथासुखम् ॥ ७० ॥ उपविष्टानरेन्द्रस्य चतुर्दिक्षुसुविस्मिताः ॥ पप्रच्छुस्तञ्चभूपालं वार्ताब्रह्मगृहोद्भवाम् ॥ ७१ ॥ यथासतत्रानिर्यात आगतश्चयथापुरा ॥ आलापाःपद्मयोनेश्चयथायाताह्यनेकशः ॥ ७२ ॥ ततःकथान्तमासाद्य सत्यसन्धोमहीपतिः ॥ किञ्चिद्विश्रम्यतम्प्राह समीपस्थम्बृहद्बलम् ॥ ७३ ॥ मयायष्टम्मखैश्चित्रैरनेकैर्भूरिदक्षिणैः ॥ दानानिचविचित्राणि येषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ ७४ ॥ एकदाहंगतःपुत्र चमत्कारपुरोत्तमे ॥ दृष्टम्मयापुरन्तच्च समन्ताद्ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ ७५ ॥ तपःस्वाध्यायसम्पन्नैरग्निहोत्रपरायणैः ॥ गृहस्थधर्मसम्पन्नैर्लोकद्वयफलान्वितैः ॥ ७६ ॥ ततश्चचिन्तितञ्चित्ते सधन्योममपूर्वजः ॥ येनैषोपार्जिताकीर्तिः शाश्वतीद्वयव

तदनन्तर कथाके अन्त को प्राप्तहोकर व कुछ विश्राम करके सत्यसन्ध भूपति ने समीप में बैठेहुये उन बृहद्बलसे कहा ॥ ७३ ॥ कि मैंने बहुत दक्षिणा वाले अनेक विचित्र यज्ञों से पूजन किया व जिनकी गिनती नहीं है ऐसे विचित्र दानों को दिया ॥ ७४ ॥ हे पुत्र ! एकसमय मैं उत्तम चमत्कारपुर को गया व मैंने सबओर ब्राह्मणों से घिरेहुये उस नगरको देखा ॥ ७५ ॥ जो ब्राह्मण कि तपस्या व वेदपाठ से संयुत व अग्निहोत्र में लगेहुये व गृहस्थ धर्म से युक्त और दोनोंलोकों के फलोंसे संयुतथे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर मैंने चित्तमें चिन्तवन किया कि मुझसे पहले पैदाहुआ वह पुरुष धन्यहै कि जिसने नाशसे रहित व सदैववाली

इस कीर्त्तिको इकट्ठा कियाहै ॥ ७७ ॥ इसलिये मैंभी ऐसेही अत्यन्त ऊंचे नगरको थापकर याने निर्माणकर उस यशकी बढ़ती के लिये ब्राह्मणोंके निमित्तदूंगा ॥७८॥ हे भूपते ! इसप्रकार नित्यही चिन्तवन करतेहुये मेरा इसी अवसर में ब्रह्मलोकको प्रयाण होगया ॥ ७९ ॥ यही एक मेरे चित्तमें पश्चात्तापकारक स्थित है हे भू- पाल ! सबओर कार्योंको कियेहुये मेरे चित्तमें और कुछ नहीं पछिताव है ॥ ८० ॥ इसलिये महात्मा व विद्वान् द्विजेन्द्रोंसे प्रार्थना करिये कि जिससे उत्तम स्थान को बनाकर तुम्हारी आज्ञासे मैं उनके लियेदेऊं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर उस बृहद्बल ने द्विजोत्तमों से उसके लिये प्रार्थना किया कि हे द्विजोत्तमो ! मेरे ऊपर दयाकरके

जिता ॥ ७७ ॥ तस्मादहमपिस्थाप्य पुरमीदृक्समुच्छ्रितम् ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यामि तत्कीर्तिपरिवृद्धये ॥ ७८ ॥ एवञ्चिन्तयमानस्य ममनित्यंमहीपते ॥ अत्रान्तरेणसञ्जातम्ब्रह्मलोकप्रयाणकम् ॥ ७९ ॥ एतदेकंहिमच्चित्तेपश्चात्तापकरंस्थितम् ॥ नान्यंकिञ्चिन्महीपाल कृतकृत्यस्यसर्वतः ॥ ८० ॥ तस्मात्प्रार्थयविप्रेन्द्रान्कोविदांश्चमहात्मनाम् ॥ येनयच्छामिसुस्थानं कृत्वातेभ्यस्तवाज्ञया ॥ ८१ ॥ ततस्सप्रार्थयामास तदर्थम्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ममोपरिदयाङ्कृत्वा क्रियतांमेप्रतिग्रहः ॥ ८२ ॥ अस्यभूपस्यसद्भक्त्या यच्छातःपुरमुत्तमम् ॥ अहंवःपालयिष्यामि सर्वेमद्वंशजाश्चते ॥ ८३ ॥ ततःकांश्चित्सुकृच्छ्रेण समानीयबृहद्बलः ॥ राज्ञेनिवेदयामास एतेभ्योदीयतामिति ॥ ८४ ॥ ततःप्रक्षाल्यसर्वेषां पादान्सपृथिवीपतिः ॥ सत्यसन्धोददौतेभ्यः पुरार्थम्भूमिमुत्तमाम् ॥ ८५ ॥ बृहद्बलस्यतंदेशंददौसम्प्रस्थितस्स्वयम् ॥ त्वयैतद्भोग्यतांनेदम्पुरंपरपुरञ्जय ॥ ८६ ॥ गत्वाचसतयासार्द्धन्तत्क्षेत्रंहाटकेश्वरम् ॥ तल्लिङ्ग

भलीभक्तिसे उत्तम पुरको देतेहुये इस नृपतिका प्रतिग्रह कीजिये याने दानलेवो मैं तुमलोगों का पालनकरूंगा व जे मेरे वंशमें उत्पन्नहोंगे वे पालन करेंगे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ तदनन्तर बृहद्बलने बड़े क्लेशसे कितेक ब्राह्मणोंको भलीभांति लाकर राजाके लिये यह निवेदन किया कि इनके निमित्त दियाजावै ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस सत्यसन्ध भूपतिने सबके चरणोंको धोकर उनके लिये उत्तम नगरके निमित्त अच्छी भूमिको दिया ॥ ८५ ॥ व प्रस्थान करतेहुये सत्यसन्ध ने आपही बृहद्बल को वह देश दिया व कहा कि अहो शत्रुवों के पुरको जीतनेवाले ! तुमइसको भोगकरो और इस पुरको नहीं ॥ ८६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उस भूपति ने उस

कन्या समेत उस हाटकेश्वर क्षेत्रको जाकर व उस लिङ्गको प्राप्तहोकर विचित्र तपस्या किया ॥ ८७ ॥ व उस कर्णोत्पला नेभी किसी पुण्यदायक जलाशयको पाकर श्रद्धासंयुत होतीहुई पार्वती जीको थापकर तप किया ॥ ८८ ॥ इसी अवसरमें युद्धमें पुत्रों समेत माराहुआ आनर्ताधिपति बृहद्बल राजाकाल धर्म (मृत्यु) को प्राप्त होगया ॥ ८९ ॥ तदनन्तर गर्त्तातीर्थ में भलीभांति उपजेहुये व दुःखसंयुत उन समस्त ब्राह्मणोंने सत्यसन्ध के समीप जाकर कहा ॥ ९० ॥ कि हे भूपते ! हमलोगों ने केवल प्रतिग्रह कियाहै और हमलोगों को पुरसे उत्पन्न व जीविका से उपजाहुआ कोई फल न हुआ ॥ ९१ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! अपने धर्मकी बढ़तीके लिये उस

म्प्राप्यसंहृष्टश्चित्रन्तेपेतपस्ततः ॥ ८७ ॥ सापिकर्णोत्पलाप्राप्य कञ्चित्पुण्यञ्जलाशयम् ॥ तपस्तेपेप्रतिष्ठाप्य गौरींश्रद्धासमन्विता ॥ ८८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा कालधर्ममुपागतः ॥ आनर्ताधिपतिर्युद्धे हतःपुत्रैस्समन्वितः ॥८९॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे गर्तातीर्थेसमुद्भवाः ॥ सत्यसन्धंसमभ्येत्यप्रोचुर्दुःखसमन्विताः ॥ ९० ॥ प्रतिग्रहःकृतोस्माभिः केव लम्पृथिवीपते ॥ नचकिञ्चित्फलंजातंवृत्तिजन्नःपुरोद्भवम् ॥ ९१ ॥ तस्मात्कुरुस्थितिन्ताञ्चस्वधर्मपरिवृद्धये ॥ येन नद्वर्तनोपायमस्माकन्नृपसत्तम ॥ ९२ ॥ राजाबृहद्बलोयुद्धेकालधर्ममुपागतः ॥ त्वयानदर्शितोऽस्माकंवृत्यर्थन्नृ पसत्तम ॥ ९३ ॥ सत्यसन्धउवाच ॥ संन्यस्तोहंद्विजश्रेष्ठावृत्तिङ्कर्तुनचक्षमः ॥ यदिमेस्यात्पुमान्कश्चिदन्वयेपिनसं शयः ॥ ९४ ॥ तस्माद्व्रजथहर्म्यंस्वंप्रसादःक्रियतांमम ॥ अभाग्यैर्भवदीयैश्चहतोराजाबृहद्बलः ॥ ९५ ॥ एवमुक्ताश्च

जीविका को स्थित कीजिये कि जिससे हमलोगोंकी उस जीविका का यत्नहोवै ॥ ९२ ॥ हे नृपोत्तम ! बृहद्बल राजायुद्धमें मृत्युको प्राप्तहोगया उसको हमलोगोंकी जीविकाके लिये तुमने नहीं दिखलाया ॥ ९३ ॥ सत्यसन्ध बोला किहे द्विजोत्तमो ! संन्यस्त याने संन्यास धर्मको प्राप्त मैं जीविका करने के लिये समर्थ नहींहूं व यदि मेरे वंशमेंभी कोई पुरुष होगा तो निस्सन्देह तुम लोगोंकी जीविका करैगा ॥ ९४ ॥ इसलिये अपने घरको जाइये व मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजावै आपलोगोंकी अभाग्य

से बृहद्बल राजा मरगया ॥९५॥ इसप्रकार कहेहुये वे ब्राह्मण उस भूपकेवचनको सत्यमानकर शीघ्रही अपने स्थानको चलेगये व उस नेभी बहुत समयतक तपस्या किया ॥९६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

दो० । शिवहिं समर्पण कीन्ह जिमि विप्रनकहं सतसन्ध । इकसौ तेइस महँ कहत सोई कथा प्रबन्ध ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस नरेशको इस प्रकार तपस्यामें टिकते हुए चमत्कार पुरसे उपजे हुए समस्त ब्राह्मण आये ॥ १ ॥ ब्राह्मण बोले कि समस्त सन्देहोंमें व विशेषकर झगड़ों में भूपके न होनेसे अना-

तेविप्रामत्वातथ्यञ्चतद्वचः ॥ स्वस्थानन्त्वरितंजग्मुस्सोपिचक्रेतपश्चिरम् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवन्तस्यनरेन्द्रस्यतपस्थस्यद्विजोत्तमाः ॥ आजग्मुर्ब्राह्मणास्सर्वे चमत्कारपुरोद्भवाः ॥ १ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ सन्देहेषुचसर्वेषु विवादेषुविशेषतः ॥ अभावात्पार्थिवेन्द्रस्यसञ्जातश्चपराभवः ॥ २ ॥ ततोद्विजवरान्सर्वान् संन्यस्तःपृथिवीपतिः ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राहकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ अनर्होहंद्विजश्रेष्ठाः सन्देहंकर्तुमेववः ॥ रक्षाकर्तुंविशेषेणत्यक्तंशस्त्रंमयाऽधुना ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सर्वेवयंमहाराजभूपस्याप्यधिकायतः ॥ अहङ्कारेणदर्पेण निजंस्थानंसमाश्रिताः ॥ ५ ॥ नकस्यचिन्महराज कदापिचकथञ्चन ॥ वर्तनायाश्चसन्देहः स्थानकृत्येपिसंस्थितः ॥ ६ ॥ असङ्ख्याताकृतावृत्तिःपुरास्माकम्महात्मना ॥ ततस्सावृद्धिमानीतातत्परैःपार्थिवोत्तमैः ॥ ७ ॥ तत्र

दूर होगया है ॥ २ ॥ तदनन्तर संन्यास में प्राप्त हाथों को जोड़े स्थितहुए भूपतिने अन्यदिनमें सब द्विजोत्तमों से कहा ॥ ३ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों से मैं सन्देह करने के लिये व विशेषकर पालनेके लिये अयोग्यहूं क्योंकि इस समय मैंने शस्त्र को छोडदिया है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे महाराज ! हम सब भूपके भी अहंकारसे अधिक हैं क्योंकि गर्वसे अपने स्थान में भलीभांति टिके हैं ॥ ५ ॥ हे महाराज ! कभी किसी को स्थान के कार्य में भी व किसीप्रकार जीविका का सन्देह नहीं स्थित है ॥ ६ ॥ क्योंकि पुरातन समय चमत्कार महात्माने हम लोगों की असंख्यक जीविकाको किया है तदनन्तर उसके पीछेवाले नृ-

पोत्तमों से वह वृद्धिको प्राप्तकी गई ॥ ७ ॥ व जबतक बृहद्बल राजारहे तबतक विशेषकर तुमसे वृद्धिको प्राप्तहुई आनर्त देशमें जो जो राजा होता है वह बड़े यत्न से यथा योग्य गृहस्थों की समस्त जीविका को देता है तुम्हारे आगे हमलोग क्याकहैं जिसलिये कि तुमसब जानते हो ॥ ८ । ९ ॥ पुरातन समय तुमने जिसभांति जीविका को दिया व जिसप्रकार रक्षाकिया है इसलिये हे नृपेन्द्र ! स्थान के बर्तावसे उपजे हुए उपायको चिन्तवन करिये कि जिससे सुख पूर्वक हमलोगों की मर्यादाका बर्ताव होवै तदनन्तर उसने देरतक ध्यानकर व गर्ता तीरमें उपजे व उत्तम वंश में उत्पन्न हुये वेदों के पारजानेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर इसके अनन्तर

सर्वांवृत्तिंगृहस्थानां यथायोग्यं याचैवविशेषेण यावद्राजाबृहद्बलः ॥ आनर्तविषयेराजायोयःस्यात्सप्रयच्छति ॥ ८ ॥ यथावृत्तिःपुरादत्ता यथासंरक्षितात्वया ॥ तस्माच्चिन्तयराजेन्द्र स्थानवर्तनसम्भवम् ॥ १० ॥ उपायंयेनमर्यादा वृत्तिःस्यान्नःसुखेनतु ॥ ततस्ससुचिरंध्यात्वागर्तातीरसमुद्भवान् ॥ ११ ॥ आहूयचसुवंशस्यसम्भवान्वेदपारगान् ॥ प्रणिपातम्प्रकृत्वाथततःप्रोवाचसादरम् ॥ १२ ॥ मदीयस्थानसंस्थानाम्ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ सर्वकृत्यानिकार्याणिभृत्यवद्विनयान्वितैः ॥ १३ ॥ नित्यंरक्षाविधातव्यायुष्मदीयंवचोखिलम् ॥ एतेषाम्पालयिष्यन्तिमर्यादाकरमुत्तमम् ॥ १४ ॥ सन्देहेषुचसर्वेषुविवादेषुविशेषतः ॥ राजकार्येषुवान्येषुएते दास्यन्तिनिर्णयम् ॥ १५ ॥ युष्मदीयंवचःश्रुत्वा शुभंवायदिवाशुभम् ॥ एतेपाल्याःप्रसादेन पुष्टिर्नेयाचशक्तितः ॥ ईर्ष्यां सर्वाम्परित्यज्य मदीयस्थानवृद्धये ॥ १६ ॥ बाढमित्येवतैःप्रोक्तस्सराजाब्राह्मणोत्तमान् ॥ चमत्कारपुरोद्भूतान्भूयःप्रोवाच

प्रणामकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ १० । ११ । १२ ॥ किमेरे स्थान में भलीभांति टिकनेवाले व विशेषकर ब्राह्मणोंके समस्त कार्य्योंको दासके समान नम्रता संयुत होतेहुये तुमलोगों को करना चाहिये ॥ १३ ॥ व नित्यही रक्षाकरनी चाहिये व मर्यादाकारक व उत्तम तुमलोगों के समस्त वचन इनको पालन करैंगे ॥ १४ ॥ व समस्त सन्देहों में और विशेषकर झगड़ों व अन्य राज कार्य्योंमें तुम्हारे शुभ या अशुभ वचनको सुनकर ये निश्चयको देवैंगे याने निर्णय करैंगे व मेरे स्थानकी बढ़तीके लिये समस्त ईर्षा छोड़कर ये पालनके योग्य हैं व शक्तिसे पुष्टि प्राप्तकरने योग्य है ॥ १५ । १६ ॥ उन ब्राह्मणों से बहुत अच्छा ऐसेही कहेहुये उस राजाने

फिर चमत्कार पुरमें उपजेहुये ब्राह्मणोंसे आदर समेत कहा ॥ १७ ॥ कि सदैव समस्त कार्य्यों में तुमलोगों के वर्तावके लिये मैंने गर्तातीर्थ से उपजेहुये इन ब्राह्मणों को दिया ॥ १८ ॥ इनके वचनों से तुमलोगों का सबकार्य होगा व निश्चयकर समस्त ऐश्वर्योंसे संयुत प्रतिष्ठा होगी ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों के पुरसे उपजेहुये लक्षसंख्यक अन्य ब्राह्मणों से थोड़ा अथवा बहुत कहाहुआ वचन अन्यथा न होगा ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन ब्राह्मणों ने द्विजोत्तमों को लेकर स्थानों में गमन किया व उनके मतसे सदैव समस्त कार्योंको किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस पुरमें सब मनुष्यों के समस्त कार्यों में धर्मको ब-

सादरम् ॥ १७ ॥ युष्माकंवर्तनार्थाय सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ एतेविप्रामयादत्ता गर्तातीर्थसमुद्भवाः ॥ १८ ॥ एतेषांवचनैस्सर्वं युष्मदीयम्प्रजायताम् ॥ प्रतिष्ठाजायतेनूनं सर्वैश्वर्यसमन्विता ॥ १९ ॥ नान्यथाब्राह्मणश्रेष्ठास्स्वल्पंवायदि वाबहु ॥ प्रोक्तंलक्षमितैरन्यैर्युष्मदीयपुरोद्भवैः ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणाहृष्टाःस्थानान्यादायद्विजोत्तमान् ॥ तेषांमतेनचक्रुश्च सर्वकृत्यानिसर्वदा ॥ २१ ॥ ततस्तत्रपुरेजाता मर्यादाधर्मवर्द्धिनी ॥ सर्वकृत्येषुसर्वेषां तथावृद्धिःपुरस्यच ॥ २२ ॥ तेपितेषाम्प्रसादेन गर्तातीर्थभवाद्विजाः ॥ परांविभूतिमादाय मोदन्तेसुखसंयुताः ॥ २३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसराजातत्पुरोत्तमम् ॥ समभ्येत्यद्विजान्सर्वान्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ २४ ॥ युष्मदीयप्रसादेनक्षेत्रेऽत्रसुमहत्तपः ॥ तस्याहंलिङ्गमेतद्वैदर्शयामिद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ पूजार्थञ्चापिवृत्त्यर्थं भोगार्थञ्चविशेषतः ॥ तस्माद्युष्माभिरेवास्य पूजाकार्याविशेषतः ॥ २६ ॥ रथयात्राविशेषेण दयांकृत्वाममोपरि ॥ २७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सप्तविंशतिलिङ्गा

ढ़ाने हारी मर्यादाहुई और वैसेही पुरकी वृद्धिहुई ॥ २२ ॥ व उनकी प्रसन्नता से गर्तातीर्थ से उपजेहुये वे ब्राह्मणभी उत्तम ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोकर सुखसंयुत होतेहुये आनन्द करते थे ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस राजाने उस उत्तम पुरको भलीभांति आकर तदनन्तर समस्त ब्राह्मणों से आदर समेत कहा ॥ २४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने तुमलोगों की प्रसन्नतासे इस क्षेत्र में बडीभारी तपस्या किया है उन शिवजीके इसलिङ्ग को मैं पूजन, जीविका और विशेषकर भोगके लिये दिखलाताहूं इसलिये तुम्हीं लोगों को विशेषकर इसलिंग का पूजन करनाचाहिये ॥ २५ । २६ ॥ व मेरे ऊपर दयाकरके विशेषकर रथयात्रा करना चाहिये ॥ २७ ॥

ब्राह्मणलोग बोले कि जैसे भूतल में चमत्कार के पुत्रों के सत्ताईस इष्ट (प्यारे) लिंग सदैव पूजेजाते हैं ॥ २८ ॥ वैसेही हे पार्थिव ! तुमसे उपजेहुये इस अट्ठाईसवें लिङ्गको हमलोग सदैव पूजैंगे तुम निश्चिन्त होवो ॥ २९ ॥ व सदैव कार्त्तिक महीने में इनकी यात्राकरैंगे व शक्तिसे भेंट, पूजन, उपहार, गान व बाजनको करैंगे॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वंशका विनाश स्थित होनेपर उस सत्यसन्ध भूपति ने वरदानसे उपजेहुये उस लिङ्गको इसभांति सब द्विजेन्द्रों को समर्पण करदिया ॥ ३१ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य समस्त कार्त्तिकभर उस लिङ्गको नहलाता है व पूजनभी करताहै वह निश्चयकर मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ३२ ॥ व उद्यापन

नि यथेष्टानिमहीतले ॥ चमत्कारसुतानाञ्च पूज्यन्तेसर्वदैवतु ॥ २८ ॥ अष्टाविंशतिमंतद्वदेतल्लिङ्गंतवोद्भवम् ॥ सर्वदा पूजयिष्यामो निश्चिन्तोभवपार्थिव ॥ २९ ॥ अस्ययात्रांकरिष्यामः कार्त्तिकेमासिसर्वदा ॥ बलिपूजोपहारांश्च गीत वाद्यानिशक्तितः ॥ ३० ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमर्पितंलिङ्गंतेनतद्वरसम्भवम् ॥ सर्वेषांब्राह्मणेन्द्राणां वंशोच्छेदे स्थितेद्विजाः ॥ ३१ ॥ सकलङ्कार्त्तिकम्मर्त्योयस्तच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ स्नापयेत्पूजयेच्चापिसंनूनम्मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ सोमस्यदिवसेप्राप्ते वर्षंयावत्कृतक्षणः ॥ तस्यपूजांकरोत्येवंस्नापयित्वाविधानतः ॥ ३३ ॥ सोपिमुक्तिंव्रजेन्म र्त्यएतद्वृत्तम्मयाश्रुतम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसत्यसन्धे श्वरमाहात्म्यंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यासाकर्णोत्पलानामत्वयास्माकम्प्रकीर्तिता ॥ कञ्चित्कालान्तरंप्राप्यततस्तपसिसंस्थिता ॥ १ ॥

को कियेहुये जो पुरुष वर्षभर सोमवार दिनके प्राप्त होनेपर उस लिंगको विधि से स्नानकराकर इसभांति पूजन करताहै ॥ ३३ ॥ वहभी मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है मैंने इस चरित को सुना है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसत्यसन्धेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कर्णोत्पल तीरथ यथा भयो भूमिमहँ ख्यात । इकसौ चौबिस में सोई कहत सर्व विज्ञात ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने जिस कर्णोत्पला नामकै कन्याको

कहाहै वह कुछ समय के अन्तरको प्राप्तहोकर तदनन्तर तपस्या में भलीभांति स्थित हुई ॥ १ ॥ इसलिये समस्त चरितको भलीभांति कहिये कि जिस प्रकार तपस्यामें स्थितहुई है सूतजी बोले कि परमश्रद्धासे संयुत वह जबतक पार्वतीजीके स्थानमें स्नान करतीभई तबतक पर्वतसे उपजीहुई व शङ्कर जीकी प्यारी पार्वती देवी जी प्रसन्नताको प्राप्तहुई ॥२॥ तदनन्तर बोलीं कि हे पुत्रि ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं तुम मनोरथको कहो कि जिससे यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि मैं निस्सन्देह देऊं ॥ ३ ॥ कर्णोत्पला बोली कि हे देवि ! मेरे पतिके लिये मेरा पिता अतिदुःखित व राज्य तथा सुखसे भी पृथक् होकर परिवारसे रहित होगया॥ ४॥ तदनन्तर परम वैराग्यको प्राप्त

तस्मात्सर्वंसमाचक्ष्व यथातपसिसंस्थिता ॥ सूतउवाच ॥ गौरीपदेकृतस्नानाश्रद्धयापरयायुता ॥ तावत्तुष्टिंगतादेवी गिरिजाशङ्करप्रिया ॥ २ ॥ ततःप्रोवाचतेपुत्रि तुष्टाहंवाञ्छितंवद ॥ येनयच्छाम्यसंदिग्धं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ कर्णोत्पलाउवाच ॥ ममपत्युःकृतेदेवि ममतातःसुदुःखितः ॥ राज्याद्भ्रष्टस्सुखाच्चापिकुटुम्बेनविवर्जितः ॥ ४ ॥ ततश्चैवतपस्तेपे वैराग्यम्परमङ्गतः ॥ अहंवार्द्धक्यमापन्नाकौमार्यत्वेपिसंस्थिता ॥ ५ ॥ तस्माद्भवतुमेभर्त्ता कश्चिद्रूपोत्करःस्मृतः ॥ सर्वेषांदेवमर्त्यानांत्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ ६ ॥ तथास्यात्परमंरूपं तारुण्यंत्वत्प्रसादतः ॥ यथास्य जायतेसौख्यन्तापसस्यापिमेपितुः ॥७॥ देव्युवाच ॥ माघमासतृतीयायांशनैश्चरदिनेशुभे ॥ नक्षत्रेवसुदैवत्ये रूपं ध्यात्वाथयौवनम् ॥ ८ ॥ त्वयास्नानंप्रकर्तव्यं सुपुण्येऽत्रजलाशये ॥ ततोदिव्यंवपुर्भूत्वा यौवनेनसमन्विता ॥ ९ ॥

होतेहुये उसने तप किया व कुमार अवस्थामेंभी भलीभांति प्राप्त मैं वृद्धताको प्राप्तहोगई ॥ ५ ॥ इसलिये हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे सब देवताओं व मनुष्योंके मध्यमें रूपकी राशि कहाहुआ याने अतिरूपवान् कोई पुरुष मेरा पतिहोवै ॥ ६ ॥ वैसेही तुम्हारी प्रसन्नतासे व उत्तम रूप व तरुणाई होवै कि जिस प्रकार इस तपस्वी भी मेरे पिताको आनन्द होवै ॥ ७ ॥ देवी बोलीं कि माघमहीने की तीज तिथि व शुभदायक शनैश्चर दिनमें वसु देवतावाले (धनिष्ठा) नक्षत्रमें यौवन वा रूपको ध्यानकरके इसके अनन्तर तुमको इस अतिपुण्यदायक जलाशयमें स्नान करना चाहिये तदनन्तर उत्तम शरीर होकर तुम निस्सन्देह यौवनसे संयुत होगी ॥ ८ । ९ ॥

भविष्यतिनसंदेहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अन्यापियामहाभागे नारीस्नानंकरिष्यति ॥ १० ॥ तस्मिन्नहनिसा
प्येवंरूपयुक्ताभविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी जगामादर्शनंततः ॥ ११ ॥ सापिचान्वेषयामास
तृतीयांशनिनासह ॥ वसुदेवात्मकेनैव नक्षत्रेणप्रयत्नतः ॥ध्यायमानाञ्चतांदेवीं सर्वकामप्रदायिनीम् ॥१२॥ ततःक
तिपयाहस्यजातासायोगसंयुता ॥ तृतीयायायथोक्ताच तथादेव्यापुराद्विजाः ॥ १३ ॥ ततस्सारूप्यसौभाग्यं यौवनं
वाञ्छितंचयत् ॥ ध्यायमानाजलेतस्मिन्नर्द्धरात्रेविवेशच ॥ १४ ॥ ततोदिव्यंवपुर्भूत्वा यौवनेनसमन्विता ॥ निष्क्रान्ता
सलिलात्तस्माज्जनविस्मयकारिणी ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो गौरीवाक्यप्रबोधितः ॥ तदर्थंभगवान्कामः प
त्न्यर्थंप्रीतिसंयुतः ॥ १६ ॥ अब्रवीच्चमहाभागे कामोहंस्वयमागतः ॥पार्वत्यादेशितोभार्यातस्मान्मेभवमाचिरम् ॥१७॥
यस्मात्प्रीत्यासमायातस्तवान्तिकमहंशुभे ॥ तस्मात्प्रीतिरितिख्याता ममभार्याभविष्यति ॥ १८ ॥ कर्णोत्पलाउ

यह मैंने सत्य कहा है हे महाभागे ! और भी जो नारी उस दिन स्नान करैगी वहभी ऐसीही रूपसंयुत होगी सूतजी बोले कि वह देवी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगई ॥ १० । ११ ॥ व समस्त कामनाओं को देनेवाली उस देवीको ध्यान करतीहुई उस कर्णोत्पला नेभी वसुदेववाले नक्षत्र व शनैश्चर समेत तीज तिथिको बड़े उपायसे खोज किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! कुछ दिनों के वाद योग समेत वह तीज वैसेहीहुई कि जिसको पहले पार्वती जीने जैसी कहाथा ॥ १३ ॥ तदनन्तर रूप, सौभाग्य, यौवन व जो कुछ मनोरथथा उसको ध्यान करतीहुई उस कर्णोत्पला ने आधीरातको उस जलमें प्रवेशकिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर दिव्य शरीर होकर यौवन से संयुत व मनुष्यों को आश्चर्य्य करानेवाली वह उस जलसे निकली ॥ १५ ॥ इसी अवसर में उसके लिये पार्वती जीके वचनसे प्रबोध करायेहुये भगवान् कामदेव जी प्रीतिसंयुत होकर स्त्रीके निमित्त प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ व बोले कि हे महाभागे ! पार्वती जीकी आज्ञासे आपही आयाहुआ मैं कामदेवहूं इस लिये शीघ्रही मेरी स्त्री होवो ॥ १७ ॥ हे शुभे ! जिसकारण प्रीति से मैं तुम्हारे समीप आयाहूं इसलिये प्रीति ऐसी प्रसिद्ध मेरी स्त्री होगी ॥ १८ ॥ कर्णोत्पला बोली

कि हे कामदेव जी! यदि ऐसाहै तो आपही जाकर मेरे पितासे प्रार्थना करिये क्योंकि कन्या किसीप्रकार स्वाधीन नहीं वर्तमान होवै है ॥ १९ ॥ अति दूरमें नहीं यानी कुछ दूरपै जो यह मनोहर मन्दिर देख पड़ता है इसके समीप तपस्या में भलीभांति टिकेहुये मेरे पिताजी विद्यमान हैं ॥ २० ॥ यहां पर मैं पहले जाकर उनके समीप स्थितहूंगी तदनन्तर पीछे आप आकर मुझको मांगियेगा ॥ २१ ॥ कामदेवजीके बहुत अच्छा यही कहनेपर वह उन पिताजी के समीपगई व प्रणामकरके तदनन्तर बोली कि हे पिताजी ! आनन्दहै कि मैं शिवजीकी प्यारी पार्वती जीको भलीभांति आराधकर फिर सुन्दर यौवन को पायाहै इसलिये मेरा विवाह कीजिये

वाच ॥ यद्येवंस्मरमत्तातंतद्गत्वाप्रार्थयस्वयम् ॥ स्वच्छन्दास्याद्यतःकन्यानकथञ्चित्प्रवर्तिता ॥ १९ ॥ यएषदृश्यतेरम्यः प्रासादोनातिदूरतः ॥ अस्यान्तेतिष्ठतेस्माकंतातस्तपसिसंस्थितः ॥ २० ॥ अत्राहम्पूर्वतोगत्वा तस्यतिष्ठामिचान्तिके ॥ भवानागत्यपश्चाच्च प्रार्थयिष्यतिमांततः ॥२१॥ बाढमित्येवकामोक्तेगतासातत्समीपतः ॥ प्रणिपत्यततःप्राह दिष्ट्यातातमयापुनः ॥ २२ ॥ सम्प्राप्तंयौवनंकान्तंसमाराध्यहरप्रियाम् ॥ तस्मात्कुरुविनाहंमेहृत्स्थंसुखमवाप्नुहि॥ २३ ॥ मदर्थेप्रेषितोभर्तातयादेव्यातिसुन्दरः ॥ पुष्पचापस्स्वयम्प्राप्तःसोपितातत्वान्तिकम् ॥ २४ ॥ अथतांसत्समालोक्यस्वांसुतांयौवनान्विताम् ॥ हर्षेणमहतायुक्तां कान्तियुक्तांविशेषतः ॥ २५ ॥ अब्रवीदद्यमेपुत्रिसञ्जातंतपसःफलम् ॥ जीवितस्यचकल्याणि यस्त्वंप्राप्तानवंवयः ॥ २६ ॥ भर्तारञ्चतयाभीष्टं देव्यादत्तंमनोद्भवम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेकामस्तस्यान्तिकमुपाद्रवत् ॥ २७॥ अब्रवीद्देहिमेभूपस्वांकन्यांचारुहासिनीम् ॥ अस्यार्थेहंसमादिष्टस्स्वयंगौर्य्यानृपोत्त

व हृदय में टिकेहुये सुखको प्राप्तहूजिये ॥ २२ । २३ ॥ हे पिताजी ! उन देवीजीने अतिसुन्दर पुष्प धनुषवाले (कामदेव) जीको मेरे लिये पति भेजाहै वह आपही तुम्हारे निकट प्राप्तहुआ है ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उन सत्यसन्ध जीने यौवन से संयुत व बड़े हर्ष समेत और विशेषतासे कान्ति (छवि) युक्त उस अपनी कन्या को देखकर कहा ॥ २५ ॥ कि हे कल्याणि, पुत्रि ! आज मेरी तपस्या व जीवनका फल भलीभांति हुआ जोकि तुम नवीन अवस्था को प्राप्तहुईहो ॥२६॥ व मनसे उपजेहुये प्यारे पतिको उस देवीने दियाहै इसी अवसर में कामदेव जी उसके समीप प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ व बोले कि हे नृपोत्तम, भूप ! मनोहर हास्यवाली अपनी कन्या

...दियाहै ॥ २८ ॥ जो मैं कि कामदेव ऐसा प्रसिद्धहूं व जिसने त्रिलोक को मोहित किया
को मुझे दीजिये इसके लिये आपही पार्वती जीने मुझको भलीभांति आज्ञा दियाहै ॥ २८ ॥ जो मैं कि कामदेव ऐसा प्रसिद्धहूं व जिसने त्रिलोक को मोहित किया
है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उस भूपतिने ब्राह्मणों के वचनसे अग्निको साक्षीकरके उस कन्या को उन कामदेव जीको अर्पण करदिया जिसलिये कि रति के उपरान्त
वह सुन्दर नयनोंवाली कर्णोत्पला इन कामदेव जीकी प्रीतिका स्थानहुई उसी कारण शुभदायिका प्रीति नामक हुई जिसकारण इसप्रकार उसने उस जलाशयमें त-
पस्या किया है उसीसे ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ उस कर्णोत्पला के नामसे वह तीर्थ इस समस्त भूतल में प्रसिद्धिको प्राप्तहुआ जो स्त्रीसमस्त माघमहीनेभर उस जलाशय

म ॥ २८ ॥ कामदेवइतिख्यातस्त्रैलोक्यंयेनमोहितम् ॥ ततस्तमर्पयामास तांकन्यांसमहीपतिः ॥ २९ ॥ कृत्वाग्निसा
क्षिणंवाक्याद्ब्राह्मणानांद्विजोत्तमाः ॥ साचास्यचाभवत्प्रीतेःस्थानंयस्मात्सुलोचना ॥ ३० ॥ रतेरनन्तरातस्मात्प्रीति
नामाभवच्छुभा ॥ एवंतयातपस्तप्तं तस्मात्तत्रजलाशये ॥ ३१ ॥ तन्नाम्नाख्यातिमायातं समस्तेऽत्रमहीतले ॥
सकलंमाघमासञ्च यास्त्रीस्नानंसमाचरेत् ॥ ३२ ॥ पुमान्वाप्रातरुत्थायसप्रयागफलंलभेत ॥ रूपवाञ्जायतेदक्षः सदा
जन्मनिजन्मनि ॥ ३३ ॥ नवियोगमवाप्नोति कदाचिद्बान्धवैस्सह ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागर
खण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकर्णोत्पलातीर्थमाहात्म्यंनामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ सत्यसन्धोपिहृष्टात्मा सुतांदृष्ट्वासुखान्विताम् ॥ अभीष्टपतिनायुक्तां कृतकृत्योबभूवह ॥ १ ॥ ततस्त

में भलीभांति स्नान करती है ॥ ३२ ॥ अथवा जो पुरुष प्रभातकाल उठकर उसमें स्नान करता है वह प्रयाग जीके फलको प्राप्तहोता है व सदैव जन्म जन्ममें प्रवीण
व रूपवान् होताहै ॥ ३३ ॥ और कभी भाइयोंके साथ वियोगको नहीं प्राप्त होताहै ॥३४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभा
षाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकर्णोत्पलातीर्थमाहात्म्यंनामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । यथा बृहद्बल के भयो क्षेत्रजसुत अटभूप। इकसौ अरु पच्चीसमहँ सोई चरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि प्रसन्नमनवाले सत्यसन्ध भी कन्या को प्यारे पति

से संयुत व सुख समेत देखकर कृतार्थ होगये ॥ १ ॥ तदनन्तर वैसेही लिङ्गकी दाहिनीमूर्ति के आश्रित होते हुये व भलीभांति ध्यानमें परायण तथा सुस्थित व रोमावलीसे संयुत भूपतिने पुष्ट पद्मासनको कर तदनन्तर आत्मा (शरीर) से जीवात्माको ब्रह्मद्वार से निकाल दिया ॥ २ । ३ ॥ इस के अनन्तर चमत्कार से उपजेहुये वे ब्राह्मण उस भूप के देवता के दर्शन के लिये प्राप्तहुये व दाह के लिये जहां भूप प्रस्थान कराया गया था वहां लिङ्ग के कुछ दूर पै स्थित व न छूने की योग्यताको प्राप्त व तेज से रहित और अप्रिय तथा मरेहुये शरीर को देखकर ॥ ४ । ५ ॥ व जबतक बड़ीभारी चिता को बनाकर उसके खोजनेके लिये उद्यतहुये तबतक वहां

थैवलिङ्गस्य दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ दृढंपद्मासनंकृत्वा सम्यग्ध्यानपरायणः ॥ २ ॥ आत्मानमात्मनैवाथ ब्रह्मद्वारेणसुस्थितः ॥ ततोनिस्सारयामास पुलकेनसमन्वितः॥३॥अथतेब्राह्मणास्तस्यचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ देवतादर्शनार्थाय प्राप्तादृष्ट्वाकलेवरम् ॥ ४ ॥ अप्रियंतेजसाहीनं मृतमस्पृश्यतांगतम्॥ लिङ्गस्यनातिदूरस्थंदाहार्थंयत्रप्रास्थितः ॥ ५ ॥ यावद्गुर्वींचितांकृत्वा तमन्वेष्टुंसमुद्यताः॥ तावन्नष्टंशवंतत्रज्ञायतेनैवकुत्रचित् ॥६॥ ततश्चविस्मयाविष्टास्तम्प्रशंसासमन्वितैः॥ वचनैर्बहुशोभूपं विकथ्यचमुहुर्मुहुः ॥७॥ ततस्तस्योत्थलिङ्गस्य सर्वपूजादिकञ्चयत् ॥ सर्वेनिरूपयामासुःसप्तविंशतिमध्यतः ॥ ८ ॥ लिङ्गानान्तद्भवेन्नित्यंसत्यसन्धस्यभूपतेः ॥ कामदम्भक्तजन्तूनांसर्वपातकनाशनम्॥ ९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ चमत्कारनरेन्द्रस्यवंशेक्षीणेमहामते॥ आनर्ताधिपतिःकोन्यस्तत्रराजाबभूवह ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ बृहद्बलेहतेभूपेसङ्गमेद्विजसत्तमाः ॥ पुत्रबन्धुसमायुक्तेसर्वेलोकास्समाययुः ॥११॥ यत्रस्थस्समहीपालस्सत्यस

पर मुर्दा नष्ट होगया व कहींपर न जानागया ॥ ६ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत होतेहुये उन सबों ने प्रशंसासंयुत वचनों से उस भूप को बहुतभांति से बारबार विशेषता से कहकर उसके उपरान्त उस भूपति से उठे (उपजे) हुये उस लिङ्गका जो पूजनादिक था उस सब को निरूपण किया व सत्ताईस लिङ्गों के मध्य में वह सत्यसन्ध भूपका शिवलिङ्ग भक्त प्राणियों को नित्यही कामदायक व समस्त पातकों का विनाशक होवै है ॥ ७।८।९ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! जब चमत्कार नरेशका वंश क्षीण होगया तब वहां और आनर्ताधिपति कौन राजा हुआ है ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! जब पुत्र व भाइयों समेत बृहद्बल भूपति

युद्ध में नष्टहोगया तब समस्त मनुष्य वहांपर भलीभांति आये ॥ ११ ॥ जहां कि तपस्या संयुत वह सत्यसन्ध भूपति टिकाथा तदनन्तर शोचसे ऊबेहुये उन द्विजों ने एकान्त में प्राप्तहुये उस भूपसे कहा ॥ १२ ॥ कि तुम्हारा यह वंश क्षीण होगया क्योंकि कोई पुत्र या भाई भी न विद्यमान है इसलिये इससमय यह पृथ्वी कैसे होगी ॥ १३ ॥ हे नृपोत्तम ! जब राजा नहीं होताहै तब राज्य में व पुर तथा विशेषकर ग्रामों में मछलियों का न्याय वर्त्तमान होताहै याने बलवान् निर्बली को नाश करदेता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जे पराई स्त्रियों में आसक्त हैं व जे चोरोंकी जीविकावाले हैं वे सब निश्चयकर राजाके डरसे मर्यादा को पालते हैं ॥ १५ ॥

न्यस्तपोन्वितः॥शोकोद्विग्नास्ततःप्राहुस्तम्भूपंरहसिस्थितम् ॥ १२॥ क्षीणोयन्तावकोवंशोनकश्चिद्विद्यतेयतः ॥ दा यादोपिकथंपृथ्वी सम्प्रतीयम्भविष्यति ॥ १३ ॥ अराजकेनृपश्रेष्ठमात्स्योन्यायःप्रवर्तते ॥ राष्ट्रेचैवपुरेचैव ग्रामेचैववि शेषतः ॥ १४ ॥ परदाररतायेचयेचतस्करवृत्तयः ॥ सर्वेराजभयाद्राजन् मर्य्यादाम्पालयन्तिवै ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वंतप उत्सृज्यन्भूयःपूर्वक्रमागतम्॥ कुरुराज्यंतथादारान्पुत्रार्थम्प्राप्यमाचिरम् ॥ १६॥ राजोवाच ॥ सन्न्यस्तोहंद्विजश्रे ष्ठानराज्यंकर्तुमुत्सहे ॥ नसन्तानंनदाराणां संग्रहञ्चकथञ्चन ॥ १७ ॥ तत्पुत्रार्थंप्रवक्ष्यामियुष्माकंस्वामिनःकृते ॥ उपायंयेनराजास्यादानर्तोलोकपालकः ॥१८॥ जामदग्न्येनरामेणयदाक्षत्रन्निपातितम्॥गर्भस्थमपिकात्स्न्र्येनकोपो पहतचेतसा ॥ १९ ॥ ततःक्षत्रियभार्याः प्राक्ऋतुस्नातास्समाययुः ॥ ब्राह्मणान्पुत्रजन्मार्थं नकामार्थंकदाचन ॥२०॥

इसलिये तुम तपस्याको छोडकर व स्त्री पुत्र व द्रव्यको प्राप्तहोकर शीघ्रही पहलेके क्रमसे आईहुई राज्यको फिर कीजिये ॥ १६ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं संन्यासी होचुकाहूं इसलिये राज्य करनेके लिये व सन्तान और स्त्रियों के संग्रह करने को किसी प्रकार नहीं उत्साह करताहूं ॥ १७ ॥ और तुमलोगों के स्वामी के लिये उस बृहद्बल के पुत्र निमित्त यत्न को कहूंगा जिससे आनर्तदेशवाला राजा मनुष्यों का पालनेवाला होवैहै ॥ १८ ॥ कि जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम जीने क्रोधके कारण ताडित चित्तसे गर्भमें टिकेहुये भी क्षत्रियको सम्पूर्णतासे नष्ट करदियाहै ॥ १९ ॥ उसके उपरान्त ऋतु धर्ममें नहाईहुई वे क्षत्रियों की स्त्रियां पहले पुत्र

जन्म के लिये न कि कदापि कामके निमित्त ब्राह्मणों के समीप भलीभांति आई ॥ २० ॥ तदनन्तर तेज व पराक्रम से संयुत पुत्र उत्पन्न हुये जोकि ब्राह्मणों के द्वारा भूपालों के क्षेत्रज पुत्र भलीभांति भये ॥ २१ ॥ इस लिये इससमय जो ये बृहद्वल की स्त्रियां स्थित हैं ऋतु समयमें नहाईहुई वे यथायोग्य ब्राह्मणों के समीप जाकर ॥ २२ ॥ उन ब्राह्मणों से क्षत्रियों में श्रेष्ठ उन पुत्रोंको पावैंगी जे कि पृथ्वीको पालैंगे व प्रजाओंकी रक्षा करैंगे ॥ २३ ॥ वैसेही यहांपर पुत्रजन्मदायक वसिष्ठ जीका उत्तम कुण्डहै जिसमें ऋतु समयमें नहाईहुई स्त्री उसीक्षण गर्भवती होवैहै ॥ २४ ॥ व इस कुण्ड में स्नानसे सफल वीर्यवाला सुन्दर पुत्र उत्पन्न होताहै पहले क्षत्रियों

ततःपुत्रास्समुत्पन्नास्तेजोवीर्य्यसमन्विताः ॥ क्षेत्रजाभूमिपालानां संजाताश्चमहीसुरैः ॥ २१ ॥ तस्माद्बृहद्बलस्यैताभार्यास्तिष्ठन्तियाधुना॥ ब्राह्मणांस्ताउपागम्यऋतुस्नातायथोचितान् ॥२२॥ लभिष्यन्तिचपुत्रांस्तांस्तेभ्यः क्षत्रियपुङ्गवान्॥ येभूमिम्पालयिष्यन्ति पालयिष्यन्तिचप्रजाः ॥ २३ ॥ तथात्रास्तिशुभंकुण्डंवासिष्ठम्पुत्रजन्मदम् ॥ यत्रस्नाताऋतौनारीसद्योगर्भवतीभवेत् ॥ २४ ॥ अमोघरेताःकान्तश्च स्नानादत्रप्रजायते ॥ येपूर्वंक्षत्रियाजाता ब्राह्मणैःक्षत्रियासुच ॥ २५ ॥ तेसर्वेतत्प्रभावेण सञ्जातानात्रसंशयः ॥ययायया द्विजोयश्चक्षत्रिण्याभूद्वृतःपुरा॥२६॥ तयासहसमागत्य स्नानम्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ सकृन्मैथुनसंसर्गात् तस्यतीर्थप्रभावतः ॥ २७ ॥ सर्वासांयत्सुताजाताद्दुहितानकथञ्चन ॥ येकेचित्पुत्रदामन्त्राः पुरश्चरणसम्भवाः ॥२८॥ तेसर्वेत्रवसिष्ठेन प्रयुक्ताःक्षत्रमिच्छता ॥ दम्पत्योःस्नानमात्रेण यतोत्रस्यात्सुपुत्रकः ॥ २९ ॥ तस्मात्सुपुत्रदंनामकुण्डमेतन्निगद्यते ॥ तस्माद्भार्यासमस्तास्ता बृहद्बलसमु

की स्त्रियों में जो ब्राह्मणों से पुत्र पैदाहुये हैं ॥ २५ ॥ वे सब उस कुण्ड के प्रभावसे हुये हैं इसमें सन्देह नहीं है पुरातन समय जिस २ क्षत्रियाणी ने जिस ब्राह्मणको घेरलिया है ॥ २६ ॥ उसके साथ भलीभांति आकर व मंत्रसे पुरस्कृत स्नानको करके उस तीर्थ के प्रभाव से एकहीवार मैथुनके संसर्ग से जिसलिये सब स्त्रियों के पुत्र पैदाहुये व कन्या किसी प्रकार न हुई क्योंकि जो कोई पुरश्चरण से उपजेहुये पुत्रदायक मंत्र हैं ॥ २७ । २८ ॥ क्षत्रियों को चाहतेहुये वसिष्ठजीने उन सब मंत्रो के यहां प्रयोग कियाहै जिस कारण कि इस कुण्डमें स्त्री पुरुषोंके स्नान मात्रसे उत्तम पुत्र होवैहै ॥ २९ ॥ उसी लिये सुपुत्रद नामक यह कुण्ड कहाजाता है इसलिये

हे मनुष्यो ! बृहद्वल से उपजीहुई वे समस्त स्त्रियां यथोक्त विधिसे इस तीर्थ में स्नान करें इसमें कुछ असत्य नहीं है और वैसेही रमण करनेमें निन्दा नहीं है ॥
३० । ३१ ॥ क्योंकि पहलेवाले आचार्य्यों से कहेहुये श्लोक सुनेजाते हैं कि जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय व पत्थर से लोह उत्पन्नहुआ है ॥ ३२ ॥ उनका सब कहीं
जानेवाला तेज अपनी योनियों में शान्त होताहै उन समस्त नरोंने उस वृत्तान्तको सुनकर और शीघ्रही जाकर सत्यसन्ध के उस समस्त वृत्तान्तको मंत्रियों से कहा
तदनन्तर अतिहर्षित व ऋतु समय में नहाईहुई वे सम्पूर्ण नृपनारियां अति सुन्दर ब्राह्मणों के समीपगई जहां कि वसिष्ठ जीसे बनायाहुआ वह पुत्रदायक तीर्थ

द्भवाः ॥ ३० ॥ अत्रस्नानंप्रकुर्वन्तियथोक्तविधिनाजनाः ॥ नैवकिञ्चिदसत्यंस्यान्ननिन्दारमणेतथा ॥३१॥ श्रूयन्तेचय
तःश्लोकाःपूर्वाचार्यैरुदाहृताः ॥ अद्भ्योग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ॥ ३२ ॥ तेषांसर्वत्रगंतेजस्स्वासुयोनिषु
शाम्यति ॥ तच्छ्रुत्वातेजनास्सर्वे सचिवानाञ्चचाखिलम् ॥ ३३ ॥ तदाचख्युर्द्रुतंगत्वासत्यसन्धस्यभूपतेः ॥ ततस्तुसर्व
शःदाराब्राह्मणानतिसुन्दरान् ॥ ३४ ॥ ऋतुस्नातास्तुताजग्मुर्नृपपत्न्यस्सुहर्षिताः ॥ यत्रतत्पुत्रदंतीर्थंवसिष्ठेनविनिर्मि
तम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नात्वासकृत्सङ्गंसमासाद्यद्विजोद्भवम् ॥ सर्वास्ताःपुत्रवत्यश्च संजाताद्विजसत्तमाः ॥ ३६ ॥ अटेश्व
रइतिख्यातं येनपुत्रेणनिर्मितम् ॥ सुभक्त्यायेनदृष्टेन वंशोच्छित्तिर्नजायते ॥ ३७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्तत्रकृतं
नाम अटेश्वरइतिस्मृतः ॥ अन्वयेनपरित्यक्तं तस्मात्कीर्तयसूतज ॥ ३८ ॥ सचिवैर्ब्राह्मणैर्वापि तस्यैतन्नामनिर्मि
तम् ॥ मात्रावातत्समाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ नमात्रातत्कृतंनाम नविप्रैःसचिवैर्नरैः ॥ तत्क

था ॥३३।३४।३५॥ हे द्विजोत्तमो ! उस तीर्थमें नहाकर व ब्राह्मणसे उपजेहुये संगको एक ही बार प्राप्तहोकर वे सब पुत्रवती होगई ॥३६॥ व जिस पुत्रने अटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध
शिवलिंग को निर्मित कियाहै उत्तम भक्तिसे जिन देवको देखने से वंशका उच्छेद (नाश) नहीं होताहै ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! वंश से त्यागाहुआ
अटेश्वर ऐसा कथित नाम किस लिये कियागया उसी कारण कहिये ॥ ३८ ॥ कि मंत्रियों व ब्राह्मणों नेभी या माताने उसका यह नाम कियाहै उसको कहो क्योंकि
हमलोगों को परम आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मातासे व ब्राह्मणों, मंत्रियों व पुरुषोंसे वह नाम नहीं कियागया है किन्तु उस नामको आकाश

में टिकेहुये दूतने कियाहै ॥ ४० ॥ मैं जिस २ भांति से कहूं उसको सावधान होते हुये तुमलोगों को सुनना चाहिये कि तदनन्तर उस जलमें नहाकर बहुत उत्तम धनुषधारी पुरुष निकला ॥ ४१ ॥ मार्ग में जाताहुआ भी वह कामदेव के धर्मको प्राप्तहुआ याने कामवश होगया इसके अनन्तर अत्यन्त उत्कंठित व अतिप्रसन्न होतेहुये उसने लज्जाको दूर छोडकर ॥ ४२ । ४३ ॥ मनुष्यों से निन्दित होतेहुये भी द्विजने नृपतिकी प्यारीको आलिङ्गन किया इसके अनन्तर वीर्य्य को निकलते हुये जबतक वह उठै ॥ ४४ ॥ तबतक अचानक देवताओंसे निर्माण कीहुई आकाशगामिनी वाणी हुई कि जिस कारण कि राजमार्ग से जातेहुये इस ब्रह्मके जाननेवाले

तंनामदूतेन व्योमस्थेनद्विजोत्तमाः ॥४०॥ यथायथाप्रवक्ष्यामि श्रोतव्यंसुसमाहितैः ॥ ततःस्नात्वाजलेतस्मिन्नुनिष्क्रा न्तस्तुसुकार्मुकः ॥ ४१ ॥ व्रजमानोपिमार्गेच कामधर्ममुपागतः ॥ अत्युत्सुकःसुसंहृष्टोलज्जान्त्यक्त्वाथदूरतः ॥ ४२ ॥ निन्द्यमानोपिलोकैस्तुशिश्लेषनृपतिप्रियाम् ॥ वीर्योत्सर्गेथसंजाते यावदुत्तिष्ठतिद्विजः ॥ ४३ ॥ तावदाकाशगा वाणी सहसादेवनिर्मिता ॥ अटताराजमार्गेण विप्रेणानेनवैयतः ॥ ४४ ॥ उत्पादितस्तुपुत्रोयमौत्सुक्याद्ब्राह्मणेनतु ॥ अटाख्योभूपतिस्तस्माल्लोकेख्यातोभविष्यति ॥ ४५ ॥ दीर्घायुर्बहुपुत्रश्चशत्रुपक्षक्षयावहः ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्रा अ टाख्यःसबभूवह ॥ ४६ ॥ स्ववंशोद्धारचन्द्रोपि वाञ्छितार्थप्रदोर्थिनाम् ॥ तेनैतत्क्षेत्रमासाद्य स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४७॥ स्वनाम्नाब्राह्मणश्रेष्ठाः सर्वेषामिष्टदंनृणाम् ॥ यस्तंमाघचतुर्दश्यांपूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ४८ ॥ नतस्यजायतेकि ञ्चिद्दुःखंसन्तानसम्भवम् ॥ अपिवर्षशतानारीस्नात्वाकुण्डेसुतप्रदे ॥ ४९ ॥ अटेश्वरंततःपश्येच्छिवभक्तिपरायणा ॥

द्विजने उत्कंठता से इस पुत्रको पैदा किया है इसलिये संसार में अटनामक भूपति प्रसिद्ध होगा ॥ ४५ ॥ व दीर्घ आयुर्बलवाला व बहुत पुत्रोंवाला और शत्रुपक्षों का क्षयकारक होगा हे ब्राह्मणो ! इसी कारण वह अटनामक हुआ ॥ ४६ ॥ व अपने वंशको उधारने में आनन्दकारक भी वह याचक जनोंको अभिलषित प्रयोजनका दायकहुआ हे द्विजोत्तमो ! जिसने इस क्षेत्र को भलीभांति प्राप्तहोकर समस्त मनुष्यों के मनोरथदायक लिङ्गको अपने नामसे थापन किया है जो पुरुष श्रद्धासंयुत होकर माघ महीनेकी चौदसि में उन शिव जीको पूजता है ॥ ४७ । ४८ ॥ उसको सन्तानसे उपजाहुआ कुछ क्लेश नहीं होताहै व सौ वर्षवाली भी स्त्री सुतदायक

कुण्डमें नहाकर ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर होतीहुई अटेश्वर जी को देखैहै वह उनकी प्रसन्नतासे उसी क्षण जैसे कि स्वामिकार्त्तिकेय जीके वचन हैं वैसेही वंशके वृद्धिकारक उत्तम पुत्रको प्राप्तहोवै है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० । ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽटेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । सिधिदायक सब नरनकहँ याज्ञवल्क्य मुनि ठाम । इकसौ छब्बिस महँ चरित वर्णत हैं सुखधाम ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर मूर्खों को भी सिद्धिदा-

सद्यःपुत्रमवाप्नोति वंशवृद्धिकरम्परम् ॥ ५० ॥ तत्प्रसादान्नसन्देहः कार्त्तिकेयवचोयथा ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽटेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति याज्ञवल्क्यसमुद्भवः ॥ आश्रमोलोकविख्यातोमूर्खाणामपिसिद्धिदः ॥ १ ॥ तत्रतप्तंतपस्तीव्रंयाज्ञवल्क्येनधीमता ॥ सम्प्राप्तानिखिलावेदागुरुणापहृताश्चये ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कोसौगुरुरभूत्तस्य याज्ञवल्क्यस्यधीमतः ॥ पाठयित्वापुनर्येन हृतावेदामहात्मना ॥३॥ किमर्थञ्चसमाचक्ष्व सूतपुत्राथविस्तरात् ॥ कौतुकम्परमंजातं सर्वेषांनोद्विजन्मनाम् ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्ब्राह्मणशार्दूलःशाकल्यइतिविश्रुतः ॥ भार्गवान्वयसम्भूतोवेदवेदाङ्गपारगः ॥५॥ वृहत्कल्पेपुराविप्रावर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ वहुशिष्यसमायुक्तोवेदाध्ययनतत्परः ॥६॥

यक व संसार में प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यजी से उपजाहुआ आश्रम है ॥ १ ॥ वहांपर बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजी ने तीव्र तपस्याको किया है व जो गुरुसे भी हरलिये गये थे उन समस्त वेदों को भलीभांति पायाहै ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य जी का यह कौन गुरु हुआ है कि जिस महात्माने पढ़ाकर फिर किसलिये वेदों को हरलिया है हे सूतपुत्र ! इस को विस्तार से भलीभांति कहिये क्योंकि हम सब ब्राह्मणोंके बड़ा आश्चर्य्य उत्पन्न हुआहै ॥ ३।४ ॥ सूतजी बोले कि भार्गव के वंश में उपजे हुये व वेद, वेदांगों के जाननेवाले शाकल्य ऐसे प्रसिद्ध द्विज श्रेष्ठ हुये हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय बड़े कल्पमें वर्धमान नामक

उत्तम नगरमें वे शाकल्य जी बहुत शिष्योंसे संयुत होकर वेदाध्ययनमें तत्पर थे ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वे शाकल्य जी सदैव प्रातःकाल उठकर उत्तम रूपवाले शिष्यों के लिये प्रसन्नता से विद्यादान को देते थे ॥ ७ ॥ व सावधान होताहुआ शिष्य भी उन गुरुजी के समस्त कर्मको करके और आशीर्वाद देने के लिये भूपति के घरही को जाता था ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार पुरोहिती कर्म को करते हुये उन शाकल्य महात्माका किंचिन्मात्र समय व्यतीत हुआ ॥ ९ ॥ उससमय वेदी में प्राप्त हुये उन के विकार को देखकर विवाह के समय में जो आपही शिवजी से शाप दियेगये थे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उन शाकल्य जी ने वैसेही परिपाटी से आये हुये

ससदाप्रातरुत्थाय विद्यादानम्प्रयच्छति ॥ शिष्येभ्यश्चारुरूपेभ्यः प्रसादाद्द्विजसत्तमाः ॥ ७ ॥ शिष्योपिस कलंकृत्वा तत्कर्मसुसमाहितः ॥ आशीर्वादंप्रदातुंच भूपतेर्गृहमेवच ॥ ८ ॥ एवंप्रकुर्वतस्तस्य शाकल्यस्यमहात्मनः । पौरोहित्यंगतःकालः कियन्मात्रोद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ तदावैवाहिकेकाले शप्तोयःशम्भुनास्वयम् ॥ सुनिन्द्यांविकृतिंदृष्ट्वा तस्यवेद्यांगतस्यवा ॥ १० ॥ अथतंयोजयामास शान्त्यर्थंनृपमन्दिरे ॥ याज्ञवल्क्यंसशाकल्यः परिपाट्यागतं तथा ॥ ११ ॥ सोपितारुण्यगर्वेण वेश्याकरजविक्षतः ॥ सर्वाङ्गेषुचनिर्लज्जःप्रकटाङ्गोजगामसः ॥ १२ ॥ ततश्च शान्तिकंकृत्वा जपान्तेभूपतिंप्रतम् ॥ शान्तोदकप्रदानायहास्यमानोजनैर्ययौ ॥ १३ ॥ पार्थिवोपिचतंदृष्ट्वा तादृग्रूपंचिरंद्विजम् ॥ नादत्ताशीश्चतेनोक्तावाक्यमेतदुवाचह ॥ १४ ॥ उच्छिष्टोहंद्विजश्रेष्ठ शय्यारूढोव्यवस्थितः ॥ अत्रशालोद्भवेस्तम्भे तस्मादेतज्जलंक्षिप ॥ १५ ॥ सोप्यवज्ञांसमास्थायतम्भूपंकुपिताननः ॥ तच्चस्तम्भंसमुद्दि

उन याज्ञवल्क्य को नृपति के मन्दिर में शान्ति के लिये युक्त किया ॥ ११ ॥ व तरुणता के मदसे समस्त अंगों में वेश्याके नखों से कटेहुये वे निर्लज्ज व प्रकट अंगोंवाले याज्ञवल्क्यभी गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर जप के अन्त में शान्तिक कर्म को करके जनों से हँसे जाते हुये वे याज्ञवल्क्य जी शान्ति के जलको देने के लिये उस भूपतिके निकट गये ॥ १३ ॥ भूपतिने भी देरसे वैसे रूपवाले उस ब्राह्मणको देखकर उससे कहे हुये आशीर्वाद को न ग्रहण किया व यह वचन कहा ॥ १४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! शय्यापै चढ़ा व स्थितहुआ मैं उच्छिष्टहूं इस लिये मन्दिरसे उपजे हुये इस खम्भे में जलको फेंकदीजिये ॥ १५ ॥ अनादर को प्राप्त होकर उस भूपके

ऊपर क्रोधित मुखवाले उन याज्ञवल्क्यजी ने भी उस खम्भे को भलीभांति उद्देशकरके उस अविनाशी ब्रह्मको ध्यानकर ॥ १६ ॥ व वेदीमें लिखकर और त्र्यायुष ऐसेही मन्त्रको पढ़कर शान्तिवाले जलको शीघ्रही उस खम्भेके मस्तकपै फेंकदिया ॥१७॥ तदनन्तर जलके गिरनेपर वह स्तम्भ उसी क्षण पत्तों से शोभित व फल फूलों से विभूषित होगया ॥ १८ ॥ उस जलके प्रभावसे उस खम्भे को देखकर आश्चर्य से प्रफुल्लित लोचनोंवाले भूपने पश्चात्ताप को करके इसके अनन्तर यह वचन कहा ॥ १९ ॥ कि अहो द्विजोत्तम! मेरेभी पवित्रता भलीभांति स्थित है इसलिये इसी मन्त्रसे तुम मुझको भी अभिषेक देवो ॥२०॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे राजन्! मेरे अभिषेक

श्यध्यात्वातद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ १६ ॥ वेद्यामालिख्यइत्येवंप्रोक्त्वामन्त्रञ्चत्र्यायुषम् ॥ अक्षिपच्छान्तिकन्तोयंतस्यमूर्द्धनिसत्वरम् ॥ १७ ॥ ततस्सपतितेतोयेस्तम्भःपल्लवशोभितः ॥ तत्क्षणादेवसंजज्ञेफलपुष्पैर्विराजितः ॥ १८ ॥ तन्दृष्ट्वापार्थिवस्तेनविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ पश्चात्तापंविधायाथवाक्यमेतदुवाचह ॥ १९ ॥ अभिषेकंद्विजश्रेष्ठममापित्वंप्रयच्छभोः ॥ अनेनैवतुमन्त्रेणशुचिर्मेपिचसंस्थितम् ॥ २० ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ ममाभिषेकदानस्यत्वमनर्होसिपार्थिव ॥ तस्माद्यास्याम्यहंसद्योयत्रस्थस्सगुरुर्मम ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ तवदास्यामिवस्त्राणिवाहनानिवसूनिच ॥ तस्माद्यच्छाभिषेकंमेमन्त्रेणानेनसाम्प्रतम् ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ नहोमान्तंविनामन्त्रःस्फुरतेपार्थिवोत्तम ॥ अभिषेकविधौप्रोक्तोयःपूर्वंपद्मयोनिना ॥ २३ ॥ तस्मान्नाहंकरिष्यामितवयद्धृदिस्थितम् ॥ जगामस्वगृहंतूर्णंनिःस्पृहत्वंसमाश्रितः ॥ २४ ॥ अपरेह्निसमायातंशाकल्यमथभूपतिः ॥ प्रोवाचप्राञ्जलिर्भूत्वाविनयावनतःस्थितः ॥ २५ ॥ यस्त्वया

दानके तुम अयोग्यहो इसलिये मैं शीघ्रही वहां जाऊंगा जहां कि वे मेरे गुरुजी टिके हैं ॥ २१ ॥ राजा बोले कि मैं तुमको वसनों, वाहनों और धनोंको दूंगा इसलिये इस समय मुझको इस मन्त्र से अभिषेक दीजिये ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! जो कि पहले ब्रह्माजीने कहा है वह मन्त्र अभिषेक की विधि में होमान्त के विना नहीं स्फुरित होताहै ॥ २३ ॥ इसलिये जो निश्चयकर तुम्हारे चित्त में स्थित है उसको मैं न करूंगा यह कहकर निर्लोभ में भलीभांति स्थित होते हुये वे मुनि शीघ्रही अपने घरको चलेगये ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर और दिनमें भलीभांति आये हुये शाकल्यजी से हाथ जोड़कर नम्रतासे नीचे झुके खड़े हुये भूपतिने कहा ॥२५॥

कि हे द्विजसत्तम ! प्रातःकाल तुमने जिस शिष्य को पठाया था फिरभी इसी प्रकार वह मेरे घरमें शान्तिके निमित्त पठाने योग्य है ॥ २६ ॥ तदनन्तर हां यही कहकर अपने घरको जाकर शाकल्यजीने याज्ञवल्क्य को भलीभांति बुलाकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ २७ ॥ कि हे पुत्र ! आजभी तुम शान्ति के लिये नरेश के घरमें जावो क्योंकि नृपेन्द्र से विशेषकर भलीभांति बुलाये गयेहो ॥ २८ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे तात याने गुरुजी ! गर्वसे युक्त व पवित्रता से रहित उस राजाके मन्दिर में मैं शान्ति के लिये न जाऊंगा ॥ २९ ॥ क्योंकि मैंने उसके अभिषेक के लिये जिस जलको तैयार किया उस जलको उस दुष्टबुद्धिने काठमें आज्ञा दिया ॥३०॥

प्रेषितःकल्येशिष्योब्राह्मणसत्तम ॥ शान्त्यर्थंप्रेषणीयश्चभूयोप्येवंगृहेमम ॥ २६ ॥ बाढमित्येवसम्प्रोक्त्वाततोगत्वानिजालयम् ॥ याज्ञवल्क्यंसमाहूयततःप्रोवाचसादरम् ॥ २७ ॥ अद्यापित्वंनरेन्द्रस्यशान्त्यर्थंभवनंव्रज ॥ विशेषात्पार्थिवेन्द्रेणसमाहूतोसिपुत्रक ॥ २८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ नाहंतातगमिष्यामिशान्त्यर्थंतस्यमन्दिरे ॥ अवलेपेनयुक्तस्यशुद्ध्याविरहितस्यच ॥ २९ ॥ मयातस्याभिषेकार्थंसलिलंचोद्यतंचयत् ॥ सलिलन्तेनतत्काष्ठेसमादिष्टंकुबुद्धिना ॥ ३० ॥ ततोमयापितत्रैवतत्क्षणात्सलिलञ्चतत् ॥ तस्मिन्काष्ठेपरिक्षिप्तंनीतंवृद्धिञ्चतत्क्षणात् ॥ ३१ ॥ शाकल्यउवाच ॥ अतएवविशेषेणसमाहूतोसिपुत्रक ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगच्छनावज्ञेयामहीभुजः ॥ ३२ ॥ अपमानाद्भवेन्मानंपार्थिवानामसंशयम् ॥ यःकरोतिपुनस्तत्रमानंनसभवेत्प्रियः ॥ ३३ ॥ कोपप्रसादवस्तूनिविचिन्वन्तिचरोचकः ॥ आरोहन्तिशनैर्भृत्याधुन्वन्तमपिपार्थिवम् ॥३४॥ समोमानेऽपमानेचचित्तज्ञःकालवित्सदा ॥ सर्वसहःक्षमीविज्ञःसभवेद्राजवल्लभः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर मैंने भी वहींपर उसी क्षण उस जलको उस काठ में फेंकदिया व उसीक्षण वृद्धि को प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ शाकल्यजी बोले कि हे पुत्र ! इसी कारण विशेषकर भलीभांति बुलाये गयेहो इसलिये वहां शीघ्रही जाओ क्योंकि भूपालों का अपमान न करना चाहिये ॥ ३२ ॥ भूपालों के यहां अपमान से निस्सन्देह मान होताहै फिर वहां जो मान करता है वह प्रिय नहीं होताहै ॥ ३३ ॥ रुचिकारक सेवक क्रोध व प्रसन्नतावाली वस्तुओं को ढूंढ़ते हैं व धीरे २ कँपाते हुये भी भूपति के समीप चढ़ जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो मान व अपमान में समान व चित्त का जाननेवाला व सदैव समय का जाननेहारा व सब सहनेवाला और क्षमावान् व विशेषकर ज्ञाता होताहै

वह राजाओंका प्यारा होता है ॥ ३५ ॥ इसलिये अपमान का अनादरकर नृपमन्दिर को जाइये जिसमें मेरी आज्ञाभी न उल्लंघन होवै यह सनातनधर्म है ॥ ३६ ॥
याज्ञवल्क्यजी बोले कि तुमने जिनको वहां योजित किया है यदि उन शिष्यों की परिपाटीका व्यतिक्रम करोगे तो अवश्यकर आज्ञाभंग होगी ॥ ३७ ॥ इसलिये यदि
तुम उस राजाप्रति मुझको हठसे युक्त करोगे तो तुमको छोड़कर अन्यत्र चलाजाऊंगा क्योंकि महर्षियों ने कहा है ॥ ३८ ॥ कि गर्वित व कार्य को न जानते हुये और
कुपन्थ में वर्तमान गुरुका भी परित्याग किया जाता है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन याज्ञवल्क्यजी के उस वचन को सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित व बार २

अपमानमनादृत्यतस्माद्गच्छनृपालयम् ॥ ममाज्ञापिनलङ्घेतएषधर्मःसनातनः ॥ ३६ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ आज्ञाभ
ङ्गोध्रुवंभावीपरिपाटीव्यतिक्रमम् ॥ करोषियदिशिष्याणांयेत्वयातत्रयोजिताः ॥ ३७ ॥ तस्माद्यदिबलान्मांत्वंयोज
यिष्यतितम्प्रति ॥ त्वांत्यक्त्वान्यत्रयास्यामियतःप्रोक्तंमहर्षिभिः ॥ ३८ ॥ गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमविन्दतः ॥
उत्पथेवर्तमानस्यपरित्यागोविधीयते ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाशाकल्यःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ततःप्रोवाचतं
भूयोभर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ एकमप्यक्षरंयत्रगुरुःशिष्येनिवेदितम् ॥ पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वानृणीभवे
त् ॥ ४१ ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंगत्वामदध्ययनमालयम् ॥ त्यजविद्यांमयादत्तांनोचेच्छप्स्यामित्वामहम् ॥ ४२ ॥ एवमु
क्त्वाभिमन्त्र्याथनादबिन्दुसमुद्भवैः ॥ मन्त्रैराथर्वणैस्तोयंपानार्थंचार्पयेत्ततः ॥ ४३ ॥ सोपिवैतत्क्षणात्तोयंतत्पीत्वा
व्याकुलेन्द्रियः ॥ उद्गीर्णंवान्तधर्मेणतत्त्वंविद्याविमिश्रितम् ॥ ४४ ॥ ततःप्रोवाचतम्भूयःशाकल्यंकुपिताननम् ॥ ए

घुड़कते हुये शाकल्यजी ने उनसे फिर कहा ॥ ४० ॥ कि गुरु एक भी अक्षर को जिस शिष्य के लिये निवेदन करता है तौ पृथ्वी में वह द्रव्य नहीं है कि जिसको
देकर उऋण होवै ॥ ४१ ॥ इसलिये मेरे पढ़ानेवाले मन्दिर में जावो व जाकर मुझ से दीहुई विद्याको त्यागकरो नहीं तो मैं तुमको शापदूंगा ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर इस
के अनन्तर शाकल्य मुनिने ॐकारसे उपजे हुये आथर्वण मन्त्रों से जलको अभिमन्त्रितकरके तदनन्तर पीने के लिये जलको अर्पण करदिया ॥ ४३ ॥ उस जलको
उसी क्षण पीकर निकल इन्द्रियोंवाले उन याज्ञवल्क्यजीने भी वमन धर्म से विद्याओं से मिलेहुये तत्त्वको वमन करादिया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर फिर कोपित मुखवाले

उन शाकल्यजी से कहा कि मेरे पेटमें तुम्हारा एकभी अक्षर नहीं है ॥ ४५ ॥ इसलिये मैं तुम्हारा शिष्य नहीं हूं और न तुम मेरे गुरु स्थितहो इस समय अपनी इच्छा से मैं अन्यत्र जाऊंगा तुम क्या करोगे ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस बहुत समयवाले स्थान से निकलकर फिर मनुष्यों से बार२ सिद्धिक्षेत्रों को पूंछा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर विद्वानोंने समस्त प्राणियों को सिद्धिदायक इस क्षेत्र को भलीभांति आदेश किया कि किसी प्रकार वृथा न होवै है ॥ ४८ ॥ तब तक तपीहुई तपस्या व व्रत नियम निश्चयकर होवैं परन्तु हाटकेश्वरजक्षेत्र में भलीभांति निवास से भी सिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ मनुष्य जिस २ भाव से उस क्षेत्रमें बसता है शुभहो या अशुभहो

कमप्यक्षरंनास्तितावकीयंममोदरे ॥ ४५ ॥ तस्माच्छिष्योस्मितेनाहंनचमेत्वंगुरुःस्थितः ॥ साम्प्रतंस्वेच्छयान्यत्रप्रयास्यामिकरोषिकिम् ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाथनिर्गत्यतस्मात्स्थानाच्चिरन्तनात् ॥ पप्रच्छमानवान्भूयःसिद्धिक्षेत्राणिचासकृत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्यसमादिष्टंक्षेत्रमेतन्मनीषिभिः ॥ सिद्धिदंसर्वजन्तूनांनवृथास्यात्कथञ्चन ॥ ४८ ॥ आस्तान्तावत्तपस्तप्तंव्रतन्नियमएववा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसिद्धिस्संवासतोपिवा ॥ ४९ ॥ येनयेनचभावेनतत्रक्षेत्रेवसेज्जनः ॥ तस्यानुरूपिणीसिद्धिःशुभास्याद्यदिवाशुभा ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वाथद्रुतम्प्राप्यक्षेत्रमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ भानुमाराधयामासस्थापयित्वाततःपरम् ॥ ५१ ॥ नियतोनियताहारोब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ गायत्रीन्यासमासाद्यनिर्विकल्पेनचेतसा ॥ ५२ ॥ ततश्चभगवांस्तुष्टोवर्षान्तेतमुवाचह ॥ दर्शनेतस्यसंस्थित्वातेजस्संयम्यदारुणम् ॥ ५३ ॥ याज्ञवल्क्यवरम्ब्रूहि यत्तेमनसिरोचते ॥ सर्वमेवप्रदास्यामिनादेयंविद्यतेत्वयि ॥ ५४ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ यदितुष्टःसुरश्रेष्ठवेदाध्ययनस

उसके अनुरूपवाली सिद्धि होती है ॥ ५० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसको सुनकर इसके अनन्तर इस हाटकेश्वर क्षेत्रको प्राप्त होकर तदनन्तर सूर्य्यनारायण को थापकर नियम में प्राप्त व नियत आहार करनेवाले व ब्रह्मचर्य्य में तत्पर उन याज्ञवल्क्यजीने गायत्री के न्यास को पाकर विकल्परहित चित्तसे सूर्य्य को आराधन किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तदनन्तर वर्षके अन्तमें प्रसन्न होते हुये सूर्य्यनारायणजीने कठिन तेजको रोंककर व उनके दर्शन में भलीभांति प्राप्त होकर उन याज्ञवल्क्यजी से प्रकटही कहा ॥ ५३ ॥ कि हे याज्ञवल्क्य ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरदान को कहो मैं सबही कुछ दूंगा तुममें न देने योग्य नहीं है ॥ ५४ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि

हे सुरश्रेष्ठ ! यदि प्रसन्नहो तो वेद पढ़ने की उत्पत्ति में आजही मेरे गुरु होवो यही मेरे हृदय में मनोरथ है ॥ ५५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे द्विज ! तुम्हारे ऊपर कृपा संयुत होताहुआ मैं तेजको संहारकर तदनन्तर यहां आयाहूं उसी से नहीं जलतेहो ॥ ५६ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! इसी कुण्ड में शुभदायक सरस्वतीवाले वेदोक्त मन्त्रों को आपही सिखलाऊंगा ॥ ५७ ॥ उस कुण्ड में नहा करके पवित्र होकर वेदसे उपजा हुआ जो कुछ एक बार पढ़ोगे वह कण्ठस्थ होजावैगा ॥ ५८ ॥ व मेरी प्रसन्नता से सम्पूर्ण निश्चित अर्थ प्रकटहोकर तुमको विदित होजायगा इसमें सन्देह नहीं है मैंने यह सत्य कहा है ॥ ५९ ॥ अबभी जो मनुष्य प्रातःकाल उस कुण्डमें नहाकर व

म्भवे ॥ गुरुर्भवममाद्यैवममैतद्वाञ्छितंहृदि ॥ ५५ ॥ भास्करउवाच ॥ अहंतवकृपाविष्टस्तेजःसंहृत्यतत्परम् ॥ ततश्चा
त्रसमायातस्तेननोदह्यसेद्विज ॥ ५६ ॥ तस्मादत्रैवकुण्डेचमन्त्रान्सारश्वताञ्छुभान् ॥ वेदोक्ताञ्छिक्षयिष्यामिस्वय
मेवद्विजोत्तम ॥ ५७ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वायत्किञ्चिद्वेदसम्भवम् ॥ पठिष्यसिसकृत्तत्तेकण्ठस्थंसम्भविष्यति ॥ ५८ ॥
तत्त्वार्थप्रकटंकृत्स्नंविदितंतेभविष्यति ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहोसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५९ ॥ अन्योपिमानवःप्रातःस्ना
त्वातत्रह्रदेचयः ॥ सावित्रेणचसूक्तेनमांदृष्ट्वाप्रपठिष्यति ॥ ६० ॥ तस्मैदास्याम्यसंदिग्धंयत्तवोक्तंमयाद्विज ॥ ६१ ॥
याज्ञवल्क्यउवाच ॥ एवंभवतुदेवेशयत्त्वयोक्तंवचोमम ॥ परंममवचोन्यच्चतच्छृणुष्वब्रवीमिते ॥ ६२ ॥ नाहंमनुष्यध
र्माणामुपाध्यायंकथञ्चन ॥ करिष्यामिजगन्नाथकृपांकुरुममोपरि ॥ ६३ ॥ ततस्तस्यददौसूर्य्योलघिमांनामशोभना
म् ॥ विद्यांहितत्प्रभावायसुतुष्टेनान्तरात्मना ॥ ६४ ॥ ततस्तम्प्राहकर्णान्तेममाश्वानांप्रवेश्यवै ॥ अभ्यासंकुरुविद्यानांवै

मुझको देखकर सावित्रसूक्त से पाठ करैगा ॥ ६० ॥ उस के लिये हे द्विजो ! निस्सन्देह उसको दूंगा जो कि मैंने तुमसे कहा है ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे देवेश ! तुमने मुझसे जो वचन कहाहै वह ऐसाही होवै परन्तु मेरे और वचनको सुनिये मैं उसको तुमसे कहताहूं ॥ ६२ ॥ कि हे जगन्नाथ ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये मैं मनुष्य धर्मवाले को किसी प्रकार उपाध्याय याने पढ़ानेवाला न करूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजी ने अतिप्रसन्न अन्तःकरण से उस प्रभाव के लिये उन याज्ञवल्क्यजी को शुभदायिनी लघिमा नामक विद्या को दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उनसे कहा कि हे द्विजोत्तम ! यदि यह तुम्हारा मनोरथ है तो मेरे घोड़ों के कान के

मध्य में पैठकर मेरे मुख से विद्याओं का अभ्यास कीजिये व वेदपाठ को करिये कि जिससे मेरी किरणों से उपजा हुआ दोष तुमको न होवै ॥ ६५ । ६६ ॥ उन सूर्य्य-नारायणजी से ऐसा कहे हुये याज्ञवल्क्यजी लघुरूप होकर व घोड़े के कानमें भलीभांति टिककर वैसेही सूर्य्यनारायण के मुख से वेदोंको पढ़ते भये ॥ ६७ ॥ इसभांति याज्ञवल्क्य द्विजोत्तम सिद्धिको भलीभांति प्राप्तहुये तदनन्तर समस्त वेदार्थोंसे संयुत उत्तम उपनिषद् को बनाकर जनक नरेन्द्र के लिये व्याख्यान करके वेदसूत्र के करनेवाले कात्यायनि पुत्रको प्राप्त होकर और वहां शरीरको त्यागकर व ब्रह्मद्वारसे निकलेहुये उस तेजको शक्तिसे ब्रह्मके अंगमें युक्त कर दिया ॥ ६८।६९।७०॥ मनुष्य

दाध्ययनमाचर ॥ ६५ ॥ मन्मुखाद्ब्राह्मणश्रेष्ठयद्येतत्तववाञ्छितम् ॥ नतेस्याद्येनदोषोयंममरश्मिसमुद्भवः ॥ ६६ ॥ एवमुक्तस्सतेनाथवाजिकर्णसमाश्रितः ॥ लघुर्भूत्वापठन्वेदान्भास्करस्यमुखात्तथा ॥ ६७ ॥ एवंसिद्धिंसमापन्नोयाज्ञवल्क्योद्विजोत्तमः॥कृत्वोपनिषदांचारुवेदार्थैःसकलैर्युतम् ॥ ६८ ॥ जनकायनरेन्द्रायव्याख्यायचततःपरम् ॥ कात्यायनसुतम्प्राप्यवेदसूत्रस्यकारकम् ॥ ६९ ॥ त्यक्त्वाकलेवरंतत्रब्रह्मद्वारविनिर्गतम् ॥ तत्तेजोब्रह्मणोगात्रेयोजयामासशक्तितः ॥ ७० ॥ तस्यतीर्थेनरःस्नात्वादृष्ट्वातञ्चदिवाकरम् ॥ नादबिन्दुंपठित्वाचतदग्रेमुक्तिमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्याश्रममाहात्म्यंनामषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ याज्ञवल्क्यसुतोसूतयस्त्वयापरिकीर्तितः ॥ कतमातस्यमाताभूत्सर्वंनोब्रूहिविस्तरात् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ तस्यभार्याद्वयंश्रेष्ठमासीत्सर्वगुणान्वितम् ॥ एकागुणवतीतस्यमैत्रेयीतिप्रकीर्तिता ॥ २ ॥ ज्येष्ठायान्याचक

उस तीर्थ में नहाकर व उन सूर्यनारायणजी को देखकर उनके अगाड़ी नादबिन्दु याने ॐकार ऐसे मंत्रको पढ़कर मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये याज्ञवल्क्याश्रममाहात्म्यंनामषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ॥

दो० । सौति मानि श्रीगंगकहँ गिरिजा जिमि तपकीन । इकसौ सत्ताईस महँ कह्यो सो चरित नवीन ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने जिस याज्ञवल्क्यजी के पुत्रको कहाहै उसकी कौन माता हुई है हमलोगों से समस्त वृत्तान्त को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि उन याज्ञवल्क्यजी के समस्त गुणों से संयुत दो स्त्रियां

हुई हैं उनकी एक बड़ी स्त्री गुणवती मैत्रेयी ऐसी कहीगई है व और छोटी कल्याणकारिणी कात्यायनी भी हुई है जिसके पुत्र कात्यायनजी वेदार्थों के कहनेवाले हुये ॥ २ । ३॥ उन दोनों से निर्माण किये हुये वहांपर अति उत्तम दो कुण्ड हैं जिनमें नहाये हुये पुरुष उन बड़े ऐश्वर्यवाले लोकोंको जातेहैं ॥ ४ ॥ वैसेही वहांपर शांडिल्ली का उत्तम तीर्थ व पातिव्रत्य से युक्त कात्यायनी का अन्य तीर्थभी भलीभांति स्थित है ॥ ५ ॥ शाण्डिली से बोधकराई हुई व सौतिके दुःखसे दुःखित कात्यायनीजी परम वैराग्य को प्राप्त होकर जहांपर प्राप्तहुई हैं ॥ ६ ॥ अगहन के शुक्लपक्ष में सावधान होतीहुई जो स्त्री उसमें स्नानकरती है वह सौभाग्यवती होती है ॥ ७ ॥ अथवा

ल्याणीख्याताकात्यायनीतिच ॥ यस्याःकात्यायनःपुत्रोवेदार्थानाम्प्रजल्पकः ॥ ३ ॥ ताभ्यांकुण्डद्वयंतत्रसन्तिष्ठति सुशोभनम् ॥ यत्रस्नातानरायान्तिलोकांश्चतान्महोदयान् ॥ ४ ॥ कात्यायन्याश्चतीर्थोपिशाण्डिल्यास्तीर्थमुत्तमम् ॥ पतिव्रतात्वयुक्तायास्तथान्यत्तत्रसंस्थितम् ॥ ५ ॥ यत्रकात्यायनीप्राप्ताशाण्डिल्याप्रतिबोधिता ॥ वैराग्यंपरमम्प्राप्ता सपत्नीदुःखदुःखिता ॥ ६ ॥ तत्रयाकुरुतेस्नानंतृतीयायांसमाहिता ॥ नारीमार्गसितेपक्षेसासौभाग्यवतीभवेत् ॥ ७ ॥ अथदौर्भाग्यसम्पन्नाकाणावृद्धाथवामना ॥ अभीष्टमयतेसाचतत्प्रभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कीदृक्स पत्निजंदुःखंकात्यायन्याउपस्थितम् ॥ उपदेशःकथंलब्धःशाण्डिल्यासूतकीदृशः ॥ ९ ॥ कात्यायन्याःसमाचक्ष्वकौ तुकंनोव्यवस्थितम् ॥ सामान्योभवितानैषउपदेशस्तयेरितः ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ मैत्रेय्यासहसंसक्तंयाज्ञवल्क्यंविलो क्यसा ॥ कात्यायनीसुदुःखार्तासंयुताचेर्ष्ययाततः ॥ ११ ॥ सानस्नातिनभुंक्तेचनहास्यंकुरुतेकचित् ॥ केवलंबाष्पपूर्णा

हे द्विजोत्तमो ! जो दुर्भाग्यसे संयुत व एक नेत्रवाली व बूढ़ी और वामनी होती है वह उसके प्रभाव से प्रियत्व को प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! सौतिसे उपजा हुआ कैसा दुःख कात्यायनी के समीप प्राप्त हुआ व किस प्रकार शाण्डिली से कैसा उपदेश कात्यायनी को मिला है ॥ ९ ॥ उस चरित्र को भलीभांति कहिये हमलोगों को बड़ा आश्चर्य व्यवस्थित है क्योंकि उस शाण्डिली से कहा हुआ यह उपदेश साधारण न होगा ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि वह कात्यायनी मैत्रेयी के साथ आसक्त हुये याज्ञवल्क्यजी को देखकर तदनन्तर ईर्षा से संयुत होती हुई अतिदुःखित हुई ॥ ११ ॥ वह कात्यायनी न नहातीथी न भोजन करती

थी न कभी हास्य करतीथी केवल आंसुवों से पूर्ण नयनोंवाली होकर श्वसती हुई ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर वैसेही किसी समय फलों के लिये बाहर निकली व उसने पतिके समीप विशेषता से टिकी हुई शाण्डिली नामक नारी को देखा ॥ १३ ॥ जो कि हाथ जोड़े हुई व विनय से झुकी हुई व पतिव्रताथी और अनुराग समेत प्रसन्न मुखवाला वह पतिभी उस शाण्डिली के मुखप्रति आसक्त याने मुखकी ओर निहार रहाथा ॥ १४ ॥ व उसने प्रसन्न होकर गुण दोष से उपजी हुई वार्ताको कहा उस समय उस कात्यायनी ने आपस में प्रसन्न उन पति पत्नी को देखकर ॥ १५ ॥ अपने चित्तमें चिन्तन किया कि यह तपस्विनी धन्य है जिसका पति मुखमें लगा हुआ

त्वीनिःश्वसन्तीबभूवह ॥ १२ ॥ तथाकदाचिदेवाथफलार्थंनिर्गताबहिः ॥ अपश्यच्छाण्डिलींनामपतिपार्श्वेऽव्यवस्थिताम् ॥ १३ ॥ कृताञ्जलिपुटांसाध्वींविनयावनतास्थिताम् ॥ सोपितस्यामुखासक्तःसानुरागःप्रसन्नदृक् ॥ १४ ॥ गुणदोषोद्भवांवार्तांसंहृष्याकथयत्तदा ॥ साचतौदम्पतीदृष्ट्वासंहृष्टावितरेतरम् ॥ १५ ॥ चित्तेस्वेचिन्तयामासस्तुधन्येयंतपस्विनी ॥ यस्याःपतिर्मुखासक्तोगुणदोषप्रजल्पकः ॥ १६ ॥ सानुरागस्थसुस्निग्धोनान्यांनारीम्बिभर्तिच ॥ एवंसञ्चिन्त्यसासाध्वीभूयोभूयोद्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ जगामस्वाश्रमंपश्चान्निन्द्यमानास्वकंवपुः ॥ ततःकदाचिदेकान्तेस्थितांतांशाण्डिलीं द्विजाः ॥ १८ ॥ बहिर्गतोयदाभर्त्तातदाकार्य्येणकेनचित् ॥ कात्यायनीसमागम्यततःपप्रच्छसादरम् ॥ १९ ॥ वदकल्याणिमेकंचिदुपदेशंमहोदयम् ॥ मुखप्रेक्षःसदाभर्त्तायेनस्त्रीणाम्प्रजायते ॥ २० ॥ नापमानंकरोत्येवदुरुक्तवचनैःक्वचित् ॥

व गुण दोषों को कहरहा है ॥ १६ ॥ और अतिस्नेहवान् व अनुराग समेत स्थित है और स्त्री को नहीं धारण करता है हे द्विजोत्तमो ! वह पतिव्रता कात्यायनी बार बार इस प्रकार संचिन्तन कर पश्चात् अपने अङ्गको निन्दती हुई निज आश्रम को चली गई तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय जब पति किसी कार्य से बाहर गया तब एकान्त में टिकी हुई उस शाण्डिली के समीप कात्यायनीने भलीभांति जाकर तदनन्तर आदर समेत पूंछा ॥ १७ । १८ । १९ ॥ कि हे कल्याणि ! बड़े ऐश्वर्यवाले किसी उपदेश को मुझसे कहो कि जिससे स्त्रियोंका पति सदैव मुखको देखनेवाला होताहै ॥ २० ॥ व कभी दुरुक्त वचनों से अपमान करताही नहींहै व किसी प्रकार

नाऽन्यां सङ्गच्छते नारीं चित्तेनापि कथञ्चन ॥ २१ ॥ अहम्भर्तुः कृतैर्दुःखैरतीव परिपीडिता ॥ सपत्निजैर्विशेषेण तस्मान्मे त्वं प्रकीर्तय ॥ २२ ॥ यथा ते वशगो भर्त्ता संयातः कामदस्सदा ॥ मनसापि न संदध्यान्नारीमेषकथञ्चन ॥ २३ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ शृणु साध्वि प्रवक्ष्यामि तवाहं गुह्यमुत्तमम् ॥ मम तातः कुरुक्षेत्रे शाण्डिल्यो मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमेऽतिष्ठत्पूर्वे वयसि संस्थितः ॥ तत्रैकाहं समुत्पन्ना कन्या तस्य महात्मनः ॥ २५ ॥ वृद्धिङ्गता क्रमेणाथ तस्मिन्नेव तपोवने ॥ करोमि तस्य शुश्रूषां होमकाले यथोचिताम् ॥ २६ ॥ नीवारादीनि धान्यानि नित्यञ्चैवानयाम्यहम् ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नारदो मुनिरागतः ॥ २७ ॥ आश्रमे मम तातस्य सुश्रान्तत्वमुपागतः ॥ पित्रादेशाद्दुतं तत्र मया मविश्रमः कृतः ॥ २८ ॥ पादशौचादिकं कृत्वा स्नानाद्यैश्च तथाविधैः ॥ ततो भुक्तावसाने च निविष्टः सुखसंस्थितः ॥ २९ ॥ मम मात्रा च संपृष्टो विनयाद्वरवर्णिनि ॥ एकेयं कन्यकास्माकं याते वयसि संस्थिते ॥ ३० ॥ संजाता मुनिशार्दूल प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ तदास्याः की

अन्य नारी को चित्तसे भी समागम नहीं करता है ॥ २१ ॥ जिस कारण पतिसे किये हुये दुःखोंसे व विशेषकर सौतिसे उपजे हुये क्लेशों से मैं अत्यन्तही पीडितहूं इसलिये तुम मुझसे कहो ॥ २२ ॥ कि जिस प्रकार यह सदैव कामदायक पति तुम्हारे वशमें प्राप्त हुआ है और किसी प्रकार मनसे भी अन्य नारी को नहीं ध्यान करता है ॥ २३ ॥ शाण्डिली बोली कि हे पतिव्रते ! सुनिये मैं तुमसे उत्तम गुप्त चरित को कहतीहूं कि पहली अवस्था में भलीभांति टिके हुये मेरे पिता मुनिनायक शाण्डिल्यजी कुरुक्षेत्र में वानप्रस्थ आश्रम में स्थित भये वहींपर उन महात्मा के मैं एक कन्या पैदाहुई ॥ २४ । २५ ॥ इसके अनन्तर उसी तपोवन में क्रमसे वृद्धिको प्राप्तहुई और मैं होम समय में उन पिताजी की यथायोग्य सेवा करतीथी ॥ २६ ॥ व नित्यही मैं नीवार (फसही) इत्यादि अन्नों को आनतीथी इसके अनन्तर किसी समय मेरे पिताजी के आश्रम में अति थकावट को प्राप्त नारद मुनि आये तदनन्तर वहांपर मैंने पिताकी आज्ञासे शीघ्रही चरण को प्रक्षालन कर व वैसेही स्नानादिकों से उन नारदजी को श्रमहीन कराया इसके अनन्तर भोजन के अन्त में सुखपूर्वक स्थित होते हुये बैठे ॥ २७ । २८ । २९ ॥ व नम्रता के द्वारा मेरी माता से पूंछे गये कि हे मुनिपुङ्गव ! अवस्था के भलीभांति स्थित होनेपर प्राणों से भी प्यारी यह एक कन्या हमारे पैदाहुई है इसलिये शीघ्रही उत्तम ऐश्वर्यवाले इसके पतिको

कहिये ॥ ३० । ३१ ॥ व व्रत या नियम या होम अथवा मन्त्रही को कहिये कि जिसके चीर्ण याने इकट्ठा करने से उत्तम गुणों से संयुत व अतिसौम्य स्वभाववाला, प्रियवक्ता, मुखको देखनेवाला व पराई स्त्री से विमुख पति होवै वे नारद मुनि उसके उस वचन को सुनकर तदनन्तर ॥ ३२ । ३३ ॥ प्रसन्न मुखवाले नारदजी देरतक ध्यानकर वचन बोले कि हाटकेश्वर रो उपजे हुये क्षेत्रमें पांच पिण्डा व्यवस्थितहैं ॥ ३४ ॥ वहांपर आपही पार्वतीजी ने गौरी परमेश्वरी को थापा है परम श्रद्धासे संयुत होती हुई यह कन्या उन भगवती को सदैव वर्षभर पूजन करै व तीज तिथिमें विशेपता से पूजै तदनन्तर वर्षान्त को प्राप्त होकर वैसे रूपवाले व जैसा कहा है

तेयत्तिप्रंभर्तारंसुसुखोदयम् ॥ ३१ ॥ व्रतंवानियमंवात्वंहोमंवामन्त्रमेवच ॥ येनचीर्णेनभर्तास्यात्सुसौम्यस्सद्गुणान्वितः ॥ ३२ ॥ प्रियंवदोमुखप्रेक्षःपरनारीपराङ्मुखः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वासमुनिस्तदनन्तरम् ॥ ३३ ॥ चिरंध्यात्वावचःप्राहप्रसन्नवदनस्ततः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेपञ्चपिण्डाव्यवस्थिता ॥ ३४॥ गौरीगौर्यास्वयंतत्रस्थापितापरमेश्वरी ॥ तामेषावत्सरंयावच्छ्रद्धयापरयायुता ॥ ३५ ॥ सदापूजयतुप्रीत्यातृतीयायांविशेषतः ॥ ततोवर्षान्तमासाद्यसम्प्राप्स्यतियथोचितम् ॥ ३६ ॥ भर्त्तारंनात्रसन्देहोतादृग्रूपंयथोदितम् ॥ तत्रपूर्वंगतागौरीपरित्यज्यमहेश्वरम् ॥ ३७॥ गङ्गेर्ष्ययामहाभागेज्ञात्वाक्षेत्रंसुसिद्धिदम् ॥ ततस्साचिन्तयामासकान्देवींपूजयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ सौभाग्यार्थंयतोन्यामांपूजयन्तिसुरस्त्रियः ॥ तस्मादहंप्रभक्त्याद्यस्वयमात्मानमेवच ॥ ३९ ॥ आत्मनाचकृतोत्साहापूजयिष्यामिसिद्धये ॥ ततःप्राणाग्निहोत्रैश्चमन्त्रैराथर्वणैश्चसा ॥ ४० ॥ मृत्पिण्डान्पञ्चसंयोज्यस्थानैकस्मिन्समाहिता ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च

वैसेही यथायोग्य पतिको भलीभांति पावैगी इसमें सन्देह नहीं है हे महाभागे ! अतिसिद्धिदायक क्षेत्रको जानकर गंगाजी की ईर्षा से महादेवजी को छोड़कर वहां पहले पार्वतीजी गई हैं तदनन्तर उनने चिन्तन किया कि मैं किस देवीका पूजन करूं ॥ ३५ । ३६ । ३७ । ३८ ॥ जिसलिये कि सौभाग्य के लिये अपर देवताओं की स्त्रियां मुझको पूजती हैं इसलिये उत्साह को कियेहुई मैं सिद्धिके निमित्त बड़ी भक्तिसे अपनासे आत्माहीका पूजन करूंगी तदनन्तर सावधान होतीहुई उन पार्वती

जीने अथर्वण वेदवाले प्राणाग्नि मन्त्रों से पांच मिट्टी के पिंडों को एकही स्थान में भलीभांति योजितकर जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशहीथे ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥ उन पार्वतीजी ने मिट्टी के पिंडों को भलीभांति धरकर उनमें युक्त किया तदनन्तर व्रतको ग्रहण कियेहुई पार्वतीजीने इन पांच महाभूतों को पुष्प, धूप व अनुलेपनों से भलीभांति पूजन किया इसके अनन्तर उन पार्वतीजी के मन्त्रसे खींचे हुये चित्तवाले सदाशिवजी पार्वतीजी को तपस्या मे टिकीहुई जानकर शीघ्रही समीप आये व प्रसन्न मनवाले होकर बोले कि सदैव मुख देखने में तत्पर व दोषसे छुटे हुये मुझको छोड़कर तुम किसलिये यहां आगई इस कारण मेरे साथ बैल पै सवार होती हुई तुम

वायुराकाशमेवच ॥ ४१ ॥ तेषुसंयोजयामासमृत्पिण्डान्सुनिधायसा ॥ महद्भूतानिचैतानिपञ्चदेवीयतव्रता ॥ ४२ ॥ त तत्सम्पूजयामासपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ अथतान्तत्रविज्ञायतपःस्थांगिरिजाम्भवः ॥ ४३ ॥ तन्मन्त्राकृष्टचित्तश्चसत्वरं समुपागतः ॥ प्रोवाचचप्रहृष्टात्माकस्मात्त्वमिहचागता ॥ ४४ ॥ मामुक्त्वादोषनिर्मुक्तंमुखप्रेक्ष्येसदारतम् ॥ तस्मादा गच्छकैलासंवृषारूढामयासह ॥ ४५ ॥ अथवाकारणम्ब्रूहियदिदोषोस्तिमेकचित् ॥ ४६ ॥ देव्युवाच ॥ त्वंमूर्ध्नाजाह्नवीं धत्सेमूर्त्तायत्सलिलात्मिकाम् ॥ तस्मान्नाहंगमिष्यामिमन्दिरन्तेकथञ्चन ॥४७॥ यावन्नत्यजसित्वंतांममसापत्न्यतां गताम् ॥ तथानित्यंप्रणामंत्वंकरोषिवृषभध्वज ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षमपिमेनित्यंसन्ध्यायाञ्चनलक्षसे ॥ तस्मादेतत्परित्य ज्यकर्मलज्जाकरम्परम् ॥ ४९ ॥ आकारयसिमान्देवतत्स्यादभिमतंमम ॥ अन्यथाहंनयास्यामितवहर्म्यंकथञ्चन ॥ ५० ॥ एतज्ज्ञात्वायदिष्टन्तेकुरुष्ववृषभध्वज ॥ ५१ ॥ देवउवाच ॥ नाहंसौख्येनताङ्गङ्गांधारयामिसुरेश्वरि ॥ भगीरथे

कैलासको आवो ॥ ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ अथवा यदि मुझमें कहीं दोष हो तो कारण कहिये ॥ ४६ ॥ पार्वतीदेवी बोलीं कि जिसलिये जल आत्मावाली मूर्त्तिमती गंगा जीको तुम मस्तक से धारण कियेहो उसी कारण मैं तबतक तुम्हारे घरको किसी प्रकार न जाऊंगी ॥ ४७ ॥ कि जब तक मेरे सौति भाव में प्राप्त हुई उन गंगाजी को तुम न छोड़ोगे वैसेही हे वृषभध्वज ! मेरे सामने भी तुम नित्यही संध्या में प्रणामकरतेथे और देख नहीं पड़ते थे इसलिये हे देव ! इस परम लज्जाकारक कर्मको छोड़ कर मुझको प्रणामादि कीजिये तो मेरा मनोरथ होवै अन्यथा मैं तुम्हारे मन्दिर में किसी प्रकार न जाऊंगी ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ हे वृषभध्वज ! इसको जानकर जो

किये हूं किन्तु कुटुम्ब के कारण देवताओं की हजार वर्षतक
तुमको प्रियहो वह कीजिये ॥ ५१ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरेश्वरि ! मैं सुखसे उन गंगा को नहीं धारण किये हूं किन्तु कुटुम्ब के कारण देवताओं की हजार वर्षतक
विकराल तपस्या को कर भगीरथ भूपने मेरी प्रार्थना किया है कि हे देव ! स्वर्ग से गिरी हुई गंगाजी जिससे पाताल को न जावैं उसी कारण मेरे वचन से गंगाजी को
अपने मस्तक से धारण कीजिये मैंने उस भगीरथ से प्रतिज्ञा किया कि भूतल में गिरते हुये आकाशगंगाके वेगको मैं निस्सन्देह धारण करूंगा नहीं तो यदि मैं छोड़
देऊं तो पाताल को चलीजावै इस विषय मे जो वृत्तान्त स्थित है ॥ ५२ । ५३ । ५४ । ५५ ॥ उसको मैं तुमसे कहताहूं तुम एक मनवाली याने एकाग्र मन करके सुनो

दिव्यवर्षसहस्रन्तुतपस्तप्त्वासुदारुणम् ॥ येननोयातिपातालंगङ्गास्वर्गपरि
नभूपेनप्रार्थितोज्ञातिकारणात् ॥ ५२ ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तुतपस्तप्त्वासुदारुणम् ॥ येननोयातिपातालंगङ्गास्वर्गपरि
च्युता ॥ ५३ ॥ तस्मात्त्वन्देवमेवाक्यात्स्वमूर्ध्नावहजाह्नवीम् ॥ मयातस्यप्रतिज्ञातंधारयिष्याम्यसंशयम् ॥ ५४ ॥ आका
शाज्जाह्नवीवेगम्पतन्तंधरणीतले ॥ नोचेत्त्यजामिपातालंयात्यत्रविषयेस्थितम् ॥ ५५ ॥ यत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामितादिहैक
मनाःशृणु ॥ एषागङ्गावरारोहेममूर्ध्नाविनिर्गता ॥ ५६ ॥ हिमवन्तंनगंभित्त्वाद्विधायातातत:परम् ॥ ततस्सिन्धवभिधा
नासापश्चिमंसागरङ्गता ॥ ५७ ॥ शतानिनवसंगृह्यनदीनांपरमेश्वरी ॥ तथागङ्गाभिधायातुसैवप्राक्सागरङ्गता ॥ ५८ ॥
तावत्यश्चसमादायनद्यःपर्वतनन्दिनि ॥ एवमष्टादशैतानिनदीनाम्पर्वतात्मजे ॥ ५९ ॥ शतानिसागरेयान्तितेननि
त्यंसतिष्ठति ॥ सततंशोष्यमाणोपिवाडवेनदिवानिशि ॥ ६० ॥ समुद्रात्सलिलंमेघाःसमादायततःपरम् ॥ मर्त्यलोके
प्रवर्षन्तिततःसस्यंप्रजायते ॥ ६१ ॥ सस्येनजीवतेलोकःप्रभवन्तिमखास्तथा ॥ मखांशेनसुरास्सर्वेतृप्तिंयान्तिततःप

कि हे वरारोहे ! यह गंगा मेरे मस्तक से निकली है ॥ ५६ ॥ और हिमालय पर्वत को फोडकर तदनन्तर दो भाग होगई तदनन्तर सिन्धु नामवाली वे परमेश्वरी गंगा
जी नौसै नदियोंको भलीभांति लेकर पश्चिमवाले समुद्र में मिलगई वैसेही हे पर्वतपुत्रि ! जो गंगा नामवाली हैं वही इतनीही याने नौसे नदियोंको लेकर पूर्ववाले
समुद्र में चलीगई हे पर्वतसुते ! इसप्रकार ये अठारह सौ नदियां समुद्रमें जातीहैं उसीसे सदैव अहर्निश वड़वानल से शोषा जाताहुआ भी वह समुद्र नित्यही स्थित
रहताहै ॥ ५७ । ५८ । ५९ । ६० ॥ व मेघ समुद्र से जललेकर तदनन्तर मृत्युलोकमें बरसते हैं उसीसे अन्न उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ व अन्नसे मनुष्य जीवताहै तथा

यज्ञहोतेहैं तदनन्तर यज्ञके अंशसे समस्त देवता तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ६२ ॥ हे देवि ! इसी कारण से मैं गंगा जीको मस्तकपै धारण कियेहूं न स्नेह से, न कामसे केवल संसारकी रक्षाके कारण धारेहूं ॥ ६३ ॥ अथवा यदि किसी प्रकार इन गंगाजीको मस्तकसे छोड़देऊं तो वेगसे पृथ्वी को दूर भेदनकर रसातल को चलीजावै ॥ ६४ ॥ व उसी कारण बड़वानल से पियाजाताहुआ नदियोंका पति समुद्र यहां शीघ्रही शोषको प्राप्तहोजावै तदनन्तर वृष्टि न होवै ॥ ६५ ॥ और वृष्टि के न होने से समस्त संसार नाशहोजावै यह मैंने कहा हे सुरेश्वरि ! इसप्रकार गंगा के लिये मैंने इस चरित को तुमसे कहा ॥ ६६ ॥ और सन्ध्याके लिये अन्य चरित को सुनिये

रम् ॥ ६२ ॥ एतस्मात्कारणान्मूर्द्ध्निदेविगङ्गांदधाम्यहम् ॥ नस्नेहात्कामतोनैव जगद्रक्षणकेनवै ॥६३॥ अथवासन्त्यजाम्येतांयदिमूर्ध्नःकथञ्चन ॥ तद्दूरंवेगतोभित्त्वापृथ्वींयातिरसातलम् ॥ ६४ ॥ ततःशोषंव्रजेदाशुसमुद्रस्सरिताम्पतिः ॥ और्वेणपीयमानोत्र ततोवृष्टिर्नजायते ॥ ६५ ॥ वृष्ट्यभावाज्जगत्सर्वन्नाशमेतन्मयोदितम् ॥ एवङ्गङ्गाकृतेप्रोक्तं मयातवसुरेश्वरि ॥ ६६ ॥ शृणुसन्ध्याकृतेन्यच्चयेनतांप्रणमाम्यहम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

देवउवाच ॥ एषारात्रिःसमादिष्टादानवानांसुरेश्वरि ॥ पिशाचानाञ्चभूतानां राक्षसानांविशेषतः ॥ १ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्रस्नानादिकञ्चयत ॥ तत्सर्वंजायतेतेषाम्पुरादत्तंस्वयम्भुवा ॥ २ ॥ मर्यादातैस्समंयेन देवानाञ्चयदाकृ

कि जिससे मैं उन गंगा जीको प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पञ्चपिंडिका गौरि अरु थपे यथा ईशान । इकसौ अट्ठाईसमहँ सोई करत बखान ॥ महादेव जी बोले कि हे सुरेश्वरि ! दानव, पिशाच व विशेषकर प्रेतों के लिये यह रात्रि भलीभांति आज्ञा दीगई है ॥ १ ॥ उस रात्रिमें जो कुछ स्नानादिक कर्म कियाजाता है वह सब उन राक्षसादिकों का होताहै क्योंकि पुरातन समय

ब्रह्माजीने दियाहै ॥ २ ॥ हे पर्वतात्मजे ! जिन ब्रह्माजीने जब यज्ञभाग के योग्य कश्यप जीके पुत्रों देवताओंकी मर्यादा उन दैत्यों के साथ कियाहै ॥ ३ ॥ उसी के लिये युद्धमें दुष्टमदवाले व भाला, बरछी हाथोंवाले व उठायेहुये धनुषवाले दशहजार दानव सूर्य्यनारायण के सामने दौड़तेहैं ॥ ४ ॥ उन हज़ारों किरणोंवाले सूर्यनारायण को उद्देशकर गायत्रीके मंत्रसे जो जल फेंकाजाता है वह उन को फल होता है ॥ ५ ॥ हे सुरेश्वरि ! उस वज्रके समान जल से उसी क्षण मारेहुये वे दानव नित्यही सूर्य जीको छोड़ते हैं॥ ६ ॥ हे पार्वती जी ! इसी कारण सन्ध्यासमय में सन्ध्योपासनके मध्य सूर्यनारायण को उद्देशकर मैं अर्घ रूप जलको फेंकताहूं ॥ ७ ॥ क्योंकि

ता ॥ अर्हाणांयज्ञभागस्य काश्यपानांनगात्मजे ॥ ३ ॥ तदर्थंदशसाहस्रादानवायुद्धदुर्मदाः ॥ कुन्तप्रासकराभानुं धावन्त्युद्गतकार्मुकाः ॥ ४ ॥ तमुद्दिश्यसहस्रांशुं यज्जलम्परिक्षिप्यते ॥ सावित्रेणचमन्त्रेण तेषांतज्जायतेफलम् ॥ ५ ॥ तेहतास्तेनतोयेन वज्रतुल्येनतत्क्षणात्॥ प्रमुञ्चन्तिसहस्रांशुं नित्यमेवसुरेश्वरि ॥ ६ ॥ एतस्मात्कारणात्तोयमर्घरूपं क्षिपाम्यहम् ॥ सन्ध्याकालंसमुद्दिश्य भानुंसन्ध्यान्तुपार्वति ॥ ७ ॥ यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तत्राद्दूरतःस्थितः ॥ उदयार्थं रविंयातं निरुन्धन्तिचदारुणाः ॥ ८ ॥ तेपिसन्ध्याजलैर्देविनिहताब्राह्मणोत्तमैः ॥ मयाचतंविमुञ्चन्ति मूर्च्छितानिपतन्तिच ॥ ९ ॥ एतस्मात्कारणाद्देवि सन्ध्ययोरुभयोरपि॥ अहञ्चान्येचविप्रायेतेनमन्तिदिवाकरम् ॥ १० ॥ तस्मात्त्वं गृहमागच्छ त्यक्त्वेर्ष्याम्पर्वतात्मजे ॥ प्रशंस्यांत्वाम्परित्यक्त्वानान्यास्तिहृदयेमम॥११॥देव्युवाच ॥ निष्कामोवासकामोवासन्ध्यांस्त्रीसंज्ञितामिमाम् ॥ यत्त्वंनमसिदेवेशतन्मेदुःखंप्रजायते॥१२॥तस्माद्गङ्गापरित्यागं सन्ध्यायाश्चविशेष

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करताहै उस उसको अगाड़ी स्थितहुआ पुरुष करैगा उदयके लिये जातेहुये दिनकर को जे विकराल दानव रोंकते हैं ॥ ८ ॥ हे देवि ! वे भी द्विजोत्तमों और मेरे सन्ध्योपासन के जल से उनको छोडते हैं व मूर्च्छित होकर गिरते हैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! इसी कारण से दोनों सन्ध्याओं मेंभी मैं और जे ब्राह्मण हैं वे दिवाकर जीको नमस्कार करतेहैं ॥ १० ॥ इसलिये हे पर्वतपुत्रि ! ईर्षा को छोड़कर तुम घरको आवो क्योंकि प्रशंसा के योग्य तुमको त्यागकर और स्त्री मेरे हृदय में नहीं है ॥ ११ ॥ पार्वती देवी बोलीं कि हे देवेश ! निष्काम या सकाम तुम जिसलिये सन्ध्या व इस स्त्रीसंज्ञक गंगाको प्रणाम करतेहो उसी कारण मेरे दुःख

होताहै इस लिये हे देव ! जबतक विशेषकर सन्ध्या व गंगाजी को न छोड़ोगे तबतक मेरी प्रसन्नता न होगी ऐसा कहकर इसके अनन्तर आपही प्रार्थना करते हुये भी महादेवजी का निरादर कर वे पार्वती देवी विशेषकर व्रतमें स्थित हुई तदनन्तर उन महादेवजी ने चिन्तन किया कि यह क्या कारण स्थित है कि जिससे ये वियोगिनी भी पार्वती जी मेरी उत्कंठा नहीं करती हैं व किसी प्रकार भी प्रियवचन से न प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं ॥ १२ । १३ । १४ । १५ ॥ देवी (पार्वती) जी झूंठही ईर्षा को धारे हैं यह थोड़ा कारण नहीं है तदनन्तर मन्त्र को विचारकर इसके अनन्तर अतिसूक्ष्म ज्ञानसे ध्यान धरकर परमेश्वर (सदाशिव) जी ने उस

तः ॥१२॥ यावन्नकुरुषेदेवतावत्तुष्टिर्नमेभवेत ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी विशेषव्रतमास्थिता ॥ १३ ॥ अवमन्यन्महादेवं प्रार्थयानमपिस्वयम् ॥ ततःसञ्चिन्तयामास किमेतत्कारणंस्थितम् ॥ १४ ॥ वियुक्तापिममोत्कण्ठंयेनैषाप्रकरोतिन ॥ नचसाम्नाव्रजेत्तुष्टिं कथञ्चिदपिपार्वती ॥ १५ ॥ मृषेर्ष्याधारिणीदेवी नैतत्स्वल्पंहिकारणम् ॥ ततोविचार्य्यतन्मन्त्रंविज्ञायपरमेश्वरः ॥ १६ ॥ ध्यानंघृत्वासुसूक्ष्मेण ज्ञानेनाथस्वयंततः ॥ तेनमन्त्रेणतांमूर्तिमीशानाख्यांविशेषतः ॥ १७ ॥ सम्यगाराधयामास संपूज्यात्मानमात्मना ॥ यथादेव्यात्मभूतानिपृथक्कृत्वाचपञ्चच ॥ १८ ॥ पूजितानितथादेवाः सर्वेषामपिसंस्थिताः ॥ तानेवपूजयामास पृथक्कृत्वासमाधितः ॥ १९ ॥ नियोज्यचपुनर्वाथततःपूजांसमाचरेत् ॥ यस्मात्कश्चित्परंनास्ति पूज्यपूज्यःसदाव्ययः ॥२०॥ ऐश्वर्य्यात्सर्वदेवानामीशानस्तेननिर्म्मितः ॥ एवंयावत्सईशानंसमाराधयतिप्रभुः ॥ २१ ॥ तावद्देवीसमायातामन्त्राकृष्टाचयत्रसः ॥ ततःप्रोवाचतंदेवं प्रणिपत्यकृताञ्ज

वृत्तान्त को जानकर उसके उपरान्त आपही उस मंत्रसे विशेषकर ईशाननामक उस मूर्ति को आत्माही से आत्मा को भलीभांति पूजन कर उत्तम विधिसे आराधन किया जिसप्रकार पांच महाभूतों को अलग करके देवीजी ने पूजन किया था वैसेही जे पांच तत्त्व समस्त प्राणियों के भी स्थितहैं उन्हीं को समाधिसे अलग करके सदाशिवदेवजी ने पूजन किया ॥ १६ । १७ । १८ । १९ ॥ व फिर नियोगकर याने एकहीमें मिलाकर तदनन्तर पूजन किया जिनसे कोई श्रेष्ठ नहींहै व जे पूजनीयोंके पूजने योग्यहैं॥२०॥उनने समस्त देवताओंके ऐश्वर्य्यसे ईशानजीको निर्मितकिया इसप्रकार जबतक वे समर्थवान् शिवजी ईशानदेवको भलीभांति आराधन करतेथे॥२१॥

तबतक मन्त्रसे खींचीहुई पार्वतीदेवी वहां भलीभांति आई जहांपर कि वे सदाशिवजी थे तदनन्तर उन शिव देवको प्रणाम कर हाथोंको जोड़ेहुई उनने कहा ॥ २२ ॥ कि हे विभो ! मैंने समस्त वृत्तान्त को जाना कि मुझ को छोडकर तुमको कोई प्रिय नहीं है इसलिये हे प्रभो ! आइये जहां तुम चाहते हो वहां चलूं ॥ २३ ॥ हे देव ! मैंने जो तुम्हारे वचन को नहीं किया वह सब मेरा क्षमा कीजियेगा तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजीने उन पवित्र मुसक्यानवाली पार्वतीजी को आलिङ्गनकर ॥ २४ ॥ व उच्च प्रकार से बिहँसकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से वह कहा कि तुमने महाभूतोंसे उठे (उपजे) हुये जो इस उत्तम शरीरको निर्मित किया

लिः ॥२२॥ ज्ञातंमयाविभोस्सर्वं नमान्त्यक्त्वातवप्रियम्॥तस्मादागच्छगच्छामो यत्रत्वंवाञ्छसिप्रभो ॥ २३ ॥ क्षम्य तांदेवमेसर्वं नकृतंयद्वचस्तव ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तामालिङ्ग्यशुचिस्मिताम् ॥ २४ ॥ इदमूचेविहस्योच्चैर्मेघगम्भीर यागिरा ॥ यैषात्वयात्मभूतोत्था निर्मितापरमातनुः ॥ २५ ॥ एतांयाकामिनीकाचित्पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ अनेनचवि धानेन तस्याभर्ताभविष्यति ॥ २६ ॥ तृतीयायांविशेषेणयावत्संवत्सरंशुभे ॥ सालभिष्यतिसत्कान्तं पुत्रदंसर्वकाम दम् ॥ २७ ॥ तथैतांमामकींमूर्तिमीशानाख्यांचयेनराः ॥ तेषांदुष्टाचयाकान्तासौम्यासैवभविष्यति ॥२८॥ येपुनःकाम नाहेतोःपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥ यान्कामान्मनसिस्थाप्यताल्लँभिष्यन्तिसंशयम् ॥२९॥ निष्कामावाथयेमर्त्याःपूज यिष्यन्तिसर्वदा ॥ तेयास्यन्तिपरांसिद्धिंजरामरणवर्जिताम् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वामहादेवो वृषमारोप्यतांप्रियाम् ॥

है ॥ २५ ॥ इसको जो कोई स्त्री भक्ति से इसी विधि के द्वारा पूजैगी उसका पतिहोगा ॥ २६ ॥ व हे शुभे ! संवत्सर पर्य्यन्त जो स्त्री विशेषकर तीजतिथि में पूजन करैगी वह उत्तम मनोहर व पुत्रदायक और समस्त कामनाओं के देनेवाले पतिको पावैगी ॥ २७ ॥ वैसेही जो मनुष्य ईशान नामक इस मेरी मूर्तिको पूजैंगे उनकी जो दुष्टा स्त्री होतीहै वही सौम्यस्वभाववाली होजावैगी ॥ २८ ॥ व फिर जो मनुष्य जिन कामनाओंको मन में स्थापित कर कामना के कारण भक्तिसे पूजैंगे उन कामनाओं को भलीभांति पावैंगे ॥ २९ ॥ अथवा जे अकाम मनुष्य सदैव पूजनकरैंगे वे वृद्धता व मृत्युसे रहितवाली उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर

महादेवजी उस प्यारीपार्वती को बैलपर आरोपितकर व पश्चात् आप सवार होकर कैलास पर्वतको चलेगये ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि इस लिये तुम्हारी जो यह कन्या है वह सालभर विशेषकर तीजतिथि में उन शुभदायिनी पञ्चपिण्डमयी गौरी को शीघ्रही आराधन करै उसी आराधन से मुख के देखनेवाले व अतिप्रीति वालें और स्वरूपादि गुणों से संयुत उत्तम पति को पावैगी ॥ ३२ । ३३ ॥ शाण्डिली बोली कि ऐसा कहकर तदनन्तर मेरी मातासे विदाकिये हुये मुनिनायक नारदजी प्रीति से तीर्थयात्रा को चलेगये ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! कुमारी भी भलीभाति टिकी हुई मैंने भी पति की कामनासे उन नारदजी की आज्ञासे अगहन महीने के

स्वयमारुह्यपश्चाच्चकैलासंपर्वतंगतः ॥ ३१ ॥ नारदउवाच ॥ तस्मात्तवसुतेयंयातामाराधयतुद्रुतम् ॥ पञ्चपिण्डमयांगौरींयावत्संवत्सरंशुभाम् ॥ ३२ ॥ तृतीयायांविशेषेण ततःप्राप्स्यलिसत्पतिम् ॥ मुखप्रेक्षमतिप्रीतं सुरूपादिगुणैर्युतम् ॥ ३३ ॥ शाण्डिल्युवाच ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो नारदःप्रययौततः ॥ तीर्थयात्रांप्रतिप्रीत्याममामात्राविसर्ज्जितः ॥ ३४ ॥ मयापिचतदादेशात्कौमार्य्यापिचसंस्थया ॥ सद्भक्त्यावत्सरंयावत्पूजितापतिकाङ्क्षया ॥ ३५ ॥ तृतीयांविशेषेणमार्गमासादितःशुभे ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्दानैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ३६ ॥ तत्प्रभावादयंप्राप्तोजैमिनिर्नामसद्द्विजः ॥ कात्यायनियथादृष्टस्त्वयाकिंकीर्तितःपरैः ॥ ३७ ॥ तस्मात्त्वमपिकल्याणि पूजयैनांसमाहिता ॥ संप्राप्स्यसिसुसौभाग्यंमैत्रेय्यासदृशंशुभे ॥ ३८ ॥ त्वयानपूजिताचेयं कौमार्य्येवर्तमानया ॥ यावत्संवत्सरंगौरीतृतीयायांनचाधिकम् ॥ ३९ ॥ सापत्न्यंतेनसञ्जातं सौभाग्येपिनिरर्गले ॥ यथोक्तविधिनादेवि सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ४० ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वाकात्यायनी

प्रारम्भ से सालभर व विशेषकर तीज तिथिमें उत्तम भक्तिसे अनेकप्रकारके नैवेद्य दानों से व चन्दन माला अनुलेपनों से उन पंचपिण्डिका गौरी का पूजन किया है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे कात्यायनि ! उसी के प्रभाव से जैसे कि तुमने देखा है वैसेही जैमिनिनामक उत्तम ब्राह्मण मिले हैं अन्य वचनों के कहने से क्या है ॥ ३७ ॥ इस लिये हे कल्याणि, शुभदायिके ! सावधान होतीहुई तुमभी इन पंचपिण्डिका गौरी को पूजन करो तो मैत्रेयी के समान उत्तम सौभाग्यको भलीभांति पावोगी ॥ ३८ ॥ और कुमारपन में वर्तमान तुमने अधिक नहीं किन्तु वर्षपर्यन्त इन गौरीजी को यथोक्त विधि से नहीं पूजन किया उसीसे हे देवि ! बिन रोंक टोंक सौभाग्य

में भी सापत्न्य (सौतिभाव) उत्पन्न हुआ यह मैंने सत्य कहा है ॥ ३६ । ४० ॥ सूतजी बोले कि जो शांडिलीने कहा उस समस्त चरितको कात्यायनी जी सुनकर तदनन्तर उनको प्रणामकर प्रसन्न होती हुई अपनेही घरको चली गईं ॥४१॥ इसके अनन्तर अगहन महीनेको भलीभांति प्राप्त होनेपर वर्षपर्य्यन्त शुभदायक तृतीया तिथि में हर्ष कियेहुई कात्यायनी ने उन गौरी देवी का पूजन किया ॥ ४२ ॥ व मीठे या निर्मल अन्नवाले रसीले भोजनों से गौरी को भोजन कराया तदनन्तर इन कात्यायनी जीके पतिने आकर व यह वचन कहा कि अनुरागी व कामदायक मुझ पतिसे सदैव रमण करो ॥ ४३ ॥ इसलिये हे शुभे ! आइये अपनेही घरको चलें ऐसा

सर्वं शाण्डिल्यायत्प्रकीर्तितम् ॥ ततःप्रणम्यतांहृष्टास्वमेवभवनंययौ ॥ ४१ ॥ मार्गशीर्षेथसम्प्राप्ते तृतीयादिवसेशुभे ॥ तांदेवींपूजयामास वर्षयावत्कृतक्षणा ॥ ४२ ॥ गौरींसम्भोजयामास मृष्टान्नैर्भोजनैरसैः ॥ ततोऽस्याःपतिरागत्य वच नंचेदमब्रवीत ॥ मयाकान्तेनरक्तेन कामदेनसदैवतु ॥ ४३॥ तस्मादागच्छगच्छामस्स्वमेवभवनंशुभे ॥ एवमुक्त्वातुतां हृष्टांगृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ ४४ ॥ जगामभवनंपश्चात्पुलकाङ्कितगात्रिकाम् ॥ ततःपरंतयासार्द्धं वर्ततेहर्षितानन:॥४५॥ मैत्रेय्यासदृशोयद्वदविशेषेणसर्वदा ॥ ततस्संजनयामासतस्यांपुत्रंगुणान्वितम् ॥ ४६ ॥ कात्यायनाभिधानञ्च यज्ञ विद्याविचक्षणम् ॥ पुत्रोवररुचिर्यस्यबभूवगुणमागरः ॥ ४७ ॥ सर्वज्ञस्सर्वकृत्येषु वेदवेदान्तपारगः॥स्थापितोत्रगणे शस्तु येनविद्यार्थिनांकृते ॥ ४८ ॥ तमाराध्यविशेषेण चतुर्थ्यांशुक्रवासरे ॥ वेदान्तकृत्सविप्रस्स्यात्सदाजन्मनिजन्म

कहकर व रोमांचित अंगोंवाली उस हर्षित कात्यायनी को दाहिने हाथमें पकड़कर पश्चात् घरको चलेगये तदनन्तर प्रसन्न आननवाले होतेहुये याज्ञवल्क्य जी उस कात्यायनी के साथ वैसेही मैत्रेयीके समान वर्तमान होते थे जैसे कि सदैव अविशेषसे थे तदनन्तर याज्ञवल्क्यजीने उन कात्यायनीमें कात्यायन नामक गुण संयुत पुत्रको पैदाकिया जोकि यज्ञविद्यामें चतुरथे व जिन कात्यायन जीके गुणोंके समुद्ररूप वररुचि उत्पन्नहुये हैं ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ जोकि समस्त कार्य्यों में सर्वज्ञ व वेदों और वेदान्तों के पारगामीहुये हैं व जिन वररुचिने विद्यार्थियों के लिये गणेश जीको स्थापन कियाहै ॥ ४८ ॥ शुक्रवार को चौथि तिथिमें विशेषकर उन

गणनायक को आराधकर वह सदैव जन्म २ में वेदान्तकर्ता ब्राह्मण होताहै ॥ ४९॥ व असमर्थ से जो उस आराधनको धनसे ग्रहण करताहै वह विशेषकर वेद वेदांगों का पारगामी ब्राह्मण होताहै ॥ ५० ॥ व सदैव यज्ञोंके करनेवाले व विद्वानोंके घरमें जन्म पाताहै और कभी निन्दित व मूर्खोंके घरमें किसी प्रकार नहीं जन्मको प्राप्तहोताहै ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यईशानोत्पत्तिपञ्चपिण्डिकागौरीमाहात्म्येवररुचिगणपतिस्थापनंनामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विदुषाञ्चगृहेजन्म याज्ञिकानांसदालभेत् ॥ नकदाचित्तुमूर्खाणां निन्दितानांकथञ्चन ॥ ४९ ॥ अशक्त्यावाथतद्यस्ययोगृह्णातिधनेनच ॥ सविशेषाद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्यईशानोत्पत्तिपञ्चपिण्डिकागौरीमाहात्म्ये वररुचिगणपतिस्थापनंनामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

ऋषयऊचुः ॥ त्वयासूतजतत्रस्थं याज्ञवल्क्यस्यकीर्तितम् ॥ तीर्थंवररुचेश्चैव वैनायक्यंप्रपद्यते ॥ १ ॥ कात्यायनस्य नप्रोक्तंकिञ्चित्तत्रमहामते ॥ किंवातेनकृतंनैव किंवातेविस्मृतंगतम् ॥ २ ॥ तस्मादाचक्ष्वनःशीघ्रं यदिकिञ्चिन्महात्मना ॥ क्षेत्रेत्रनिर्म्मितंतीर्थं सर्वतीर्थप्रदायकम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ तेनवास्तुपदंनाम तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ कात्यायनेनमन्त्रेण सर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ ४ ॥ चत्वारिंशत्त्रिभिर्युक्तादेवतायत्रपञ्चच ॥ पूज्यन्तेपूजिताश्चापि सिद्धिंयच्छ

दो० । हाटकेश के क्षेत्रमहँ तीर्थ वास्तुपद नाम । इकसौ उन्तिसमें कहत सोइ चरित सुखधाम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! वहांपर स्थितहुये याज्ञवल्क्य के तीर्थको कहा व वररुचि के तीर्थको तुमने कहा जोकि विनायकवाले स्थानको प्राप्तहै ॥ १ ॥ हे महामते ! उस क्षेत्रमें कात्यायन जीके किसी तीर्थको नहीं कहा क्या उनने कियाही नहीं या क्या तुमको भूलगया ॥ २ ॥ इसलिये कात्यायन महात्माने इस क्षेत्रमें यदि समस्त तीर्थोके देनेवाले किसी तीर्थको निर्माण कियाहै तो शीघ्रही कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि उस क्षेत्र में उन कात्यायन ने मनुष्यों के समस्त कामदायक वास्तुपद नामक अतिउत्तम तीर्थ को निर्माण कियाहै ॥ ४ ॥

जहांपर कि तीन से संयुत चालीस और पांच याने अड़तालीस देवता पूजेजाते हैं और पूजेहुये भी उसीक्षण सिद्धिको देते हैं ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! वहांपर टिकेहुये देवता किस कारण पूजेजाते हैं व नामके विभागसे अलग २ कहिये ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय काले दांतोंवाला व भयानक व अति उग्र तथा रौद्रकोई बड़ाभारी अपूर्व प्राणी धरातल से निकला ॥ ७ ॥ जोकि दुबले मुखवाला व कीलोंके समान कर्णोंवाला और उठेहुये बालोंवालाथा जिसको दानवेन्द्र (बलि) ने शुक्रसे दिखलायेहुये मंत्रों के द्वारा देवताओं व विशेषकर मनुष्यों के नाशके लिये खींचाथा जोकि समस्त शस्त्रों व अस्त्रों के अवध्य (न मारने योग्य)

न्तितत्क्षणात् ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्तद्देवताःसूतपूज्यन्तेतत्रसंस्थिताः ॥ नामतश्चविभागेनकीर्तयस्वपृथक् पृथक् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंकिञ्चिन्महद्भूतं निर्गतंधरणीतलात् ॥ अपूर्वंरौद्रमत्युग्रंकृष्णदन्तंभयानकम् ॥ ७ ॥ शङ्कुकर्णंकृशास्यञ्च ऊर्ध्वकेशंभयानकम् ॥ देवानांनाशनार्थायमानुषाणांविशेषतः ॥ ८ ॥ आकृष्टंदानवेन्द्रेण मन्त्रैःशुक्रप्रदर्शितैः ॥ अवध्यंसर्वशस्त्राणामस्त्राणांचविशेषतः ॥ ९ ॥ अथदेवास्समालोक्य तादृग्रूपंभयावहम् ॥ जघ्नुः शस्त्रैश्शितैश्चित्रैःकोपेनमहतान्विताः ॥ १० ॥ नैवशेकुस्तदङ्गेषु प्रहर्तुंयत्नमास्थिताः ॥ भक्ष्यन्तेकेवलंतेन शतशोथ सहस्रशः ॥ ११ ॥ अथतेयत्नमास्थायसर्वेदेवास्सवासवाः॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वातंभूतमभिदुद्रुवुः ॥ १२ ॥ ततस्संगृह्य तेन सर्वगात्रेषुसर्वतः॥ तच्चपञ्चगणैर्देवैःपातितंधरणीतले ॥१३ ॥ उपविष्टास्ततस्तस्यसर्वेभूत्वासमन्ततः ॥ प्रहारान्सं प्रयच्छन्तिनलगन्तिचतस्यते॥१४॥आथर्वणेनसूक्तेनजातंचामृतबिन्दुना ॥तद्भूतंप्रेषितंदैत्यैर्मुण्डेनचतदन्तिके॥१५॥

था ॥ ८ । ९ ॥ इसके अनन्तर देवताओं ने वैसे रूपवाले भयदायक भूतको देखकर बडे क्रोधसंयुत होकर पैने व विचित्र शस्त्रोंसे हनन किया ॥ १० ॥ व यत्नमें टिके हुये देवता उसके अङ्गोंमें प्रहार करनेके लिये समर्थ न हुये किन्तु केवल उस से सैकड़ों व हजारों भक्षण किये जातेथे ॥ ११ ॥ इसकेउपरान्त इन्द्र समेत वे समस्त देवता यत्न में स्थितहोकर व ब्रह्माको अगाडीकर उस प्राणी के सामने दौड़े ॥ १२ ॥ तदनन्तर देवताओं के पांच यूथोंने यत्नसे समस्त अङ्गोंमें सबओर भलीभांति पकड़ कर उसको भूतल में गिराया ॥ १३ ॥ तदनन्तर समीप बैठेहुये समस्त देवता उसके सबओर होकर प्रहारों को देतेथे परन्तु वे उसके नहीं लगतेथे ॥ १४ ॥ क्योंकि

अथर्वण वेदवाले सूक्त (स्तोत्र) के द्वारा अमृत बूंदसे उपजाहुआ वह भूत दैत्योंसे व मुण्ड से उस बलिके समीप पठायागयाथा॥१५॥इसप्रकार हजारवर्षके अन्त तक वह भूत वैसाही स्थितरहा क्योंकि वे देवता डरसे नतो छोड़तेथे और न मारनेके लिये समर्थहुये ॥ १६ ॥ ब्रह्मा उस महाभूत के उदरपै स्थितथे व जे इन्द्रादिक देवताथे वे क्रोधित होतेहुये चारों दिशाओं में टिकेथे ॥ १७ ॥ तदनन्तर भलीभांति टिकेहुये उन दैत्योंने आपस में सलाह किया कि शुक्रसे रचेहुये इस भयानक भूत के उसीक्षण इस सुरसंहार में एकही उपाय कहागया है तदनन्तर वे बड़े बलिष्ठ हज़ारों दानव पैने शस्त्रों को लेकर अनेक प्रकार के शब्दों को करतेहुये भलीभांति

एवंवर्षसहस्रान्तेतत्तथैवव्यवस्थितम् ॥ नमुञ्चन्तिभयात्तेतुनहन्तुंशक्नुवन्तिच ॥ १६ ॥ तस्योदरेस्थितोब्रह्माश
क्राद्याअमराश्चये॥चतुर्दिक्षुस्थिताःक्रुद्धामहद्भूतस्यसंस्थिताः ॥ १७ ॥ ततस्तेदानवास्सर्वे मन्त्रंचक्रुःपरस्परम् ॥ अ
स्यभूतस्यरौद्रस्य शुक्रसृष्टस्यतत्क्षणात् ॥ १८ ॥ एकएवात्रनिर्दिष्ट उपायोदेवसंक्षये ॥ ततःशस्त्राणितीक्ष्णानिदान
वास्तेमहाबलाः ॥ १९ ॥ मुञ्चन्तोविविधान्नादान्समाजग्मुस्सहस्रशः ॥ एतस्मिन्नन्तरेविष्णुश्चागतस्तत्रतत्क्षणात् ॥
२०॥आहभूतंतदाविष्णुर्वचसाह्लादयन्निव॥योयस्मिन्संस्थितोगात्रेदेवःशुक्रसमुद्भव॥२१॥तत्रपूजांसमादायतस्मात्त्वां
तर्पयिष्यति ॥ नैवंविधातुलोकेस्मिन्पूजादेवस्यसंस्थिता॥२२ ॥ कस्यचिद्यादृशीतेथ मयासंप्रतिपादिता ॥ ततस्तेन
प्रतिज्ञातमविकल्पेनचेतसा ॥२३॥ एवंतेहंकरिष्यामिपरंमेवचनंशृणु ॥ यदिकश्चिन्नमेपूजां करिष्यतिकदाचन ॥ २४॥
कथंचिन्मानवःकश्चित्समेमुक्तोभविष्यति ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोक्ते ततोदेवेनचक्रिणा ॥ भूतंतुनिश्चलं

आये इसी अवसर में उसीक्षण वहां विष्णुजी आगये ॥ १८ । १९ । २० ॥ व उस समय वचन से आनन्द करतेहुये से विष्णु जी भूतसे बोले कि हे शुक्रसमुद्भव ! जो देवता जिस अङ्ग में भलीभांति टिकाहै ॥ २१ ॥ वह वहींपर पूजनको भलीभांति लेकर उससे तुमको तृप्तकरैगा और इस संसार में किसी देवताका इसप्रकार का पूजन नहीं संस्थितहै जैसी कि मैंने तुम्हारी संसिद्धि कियाहै तदनन्तर उस भूतने विकल्परहित चित्तसे प्रतिज्ञाकिया ॥ २२ । २३ ॥ कि मैं ऐसाही तुम्हारा आयसु करूंगा परन्तु मेरे वचनको सुनिये कि यदि कोई पुरुष कभी मेरा पूजन किसी प्रकारसे न करैगा तो वह कोई मनुष्य मेरा भोजन कियाहुआ होवैगा ॥ २४ । २५ ॥

सूतजी बोले कि उसके उपरान्त चक्रधारी देव (विष्णु) जीको हां यही कहनेपर भूत तो अचल होगया तदनन्तर वड़े हर्षसे संयुत तथा शस्त्रहाथोंवाले देवताओंने उस भूतको छोड़करके उठकर लज्जारहित व गयेहुये क्रोधवाले तथा दीन वचनोंको कहनेवाले व भागने में उत्कंठित दैत्यों को पैने शस्त्रोंसे मारा तदनन्तर दैत्यों के निपातित होने (मरने) से स्वस्थ होकर वे विष्णु जी ॥ २६ । २७ । २८ ॥ कमलसे उपजेहुये (ब्रह्मा) से बोले कि हे ब्रह्मन् ! इस भूतका नाम कीजिये ब्रह्मा बोले कि हे हरे ! इसने तुम्हारे वचन को वास्तु यह ऐसा कहा है इसलिये वास्तु नाम होगा इसप्रकार विष्णुजी से कहकर व बुलाकर विश्वकर्मा के लिये विस्तार

जातंहर्षेणमहतायुताः ॥ २६ ॥ ततोदेवाःसमुत्थाय तत्त्यक्त्वाशस्त्रपाणयः ॥ जघ्नुश्चनिशितैःशस्त्रैःपलायनसमुत्सु
कान् ॥ २७ ॥ लज्जाहीनान्गतामर्षान्दीनवाक्यप्रजल्पकान् ॥ ततःस्वस्थस्सभूत्वातु हरिर्दैत्यैर्निपातितैः ॥ २८ ॥
प्रोवाचपद्मजंनाम भूतस्यास्यकुरुष्वभोः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अनेनतववाक्यस्य प्रोक्तंवाक्यंहरेयतः ॥ २९ ॥ वास्त्वेतादितिय
स्माच्चतस्माद्वास्तुभविष्यति ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशमाहूयविश्वकर्म्मणे ॥ ३० ॥ विधानंकथयामास पूजार्थंविस्तरान्वि
तम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राहयाज्ञवल्क्यसुतःसुधीः ॥ ३१ ॥ विश्वकर्म्माणमाहूय प्रथमंद्विजसत्तमः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेम
माश्रमपदंकुरु ॥ ३२ ॥ अनेनैवविधानेन प्रोक्तेनतुमहामते ॥ ततोहंसकलंबुद्ध्वा तद्विनेष्यामिभूतले ॥ ३३ ॥ म
मावबोधनार्थाय तस्मादागच्छसत्वरम् ॥ ततस्संप्रेषयामास तंब्रह्मापितदन्तिकम् ॥ ३४ ॥ विश्वकर्म्माणमाहूयस्वसु
तस्यहितेस्थितः ॥ विश्वकर्म्मापितत्रैत्यवास्तुपूजांयथोदिताम् ॥ ३५ ॥ चकारब्रह्मणाप्रोक्तांयादृशींसकलांततः ॥

संयुक्त विधिको पूजन के निमित्त कहा इसी अवसर में उत्तम बुद्धिवाले द्विजोत्तम याज्ञवल्क्य के पुत्रने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि हे महामते ! हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें इसी कहेहुये विधान से पहलेमेरे आश्रमस्थानको कीजिये तदनन्तर मैं सब जानकर उसको भूतल में लाऊंगा ॥२९।३०।३१।३२।३३ ॥ इसलिये मेरे ज्ञानके लिये शीघ्रही आइये तदनन्तर अपने पुत्रके हितमें टिकेहुये ब्रह्माने भी उन विश्वकर्माको बुलाकर उनके समीप भलीभांति पठाया विश्वकर्माने भी वहां आकर

[illegible]

एवंनाम्नापदंजातं

कात्यायनोपिनामर्षी दृष्ट्वात्वकौशलक्षरः ॥ ३६ ॥ तदाविश्वजितायाथ शालाकर्मादिपूर्विकाम् ॥ तथानप्राप्नुयाद्दोषं गृहजातंकथंचन ॥
तस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेनरःपापात्प्रमुच्येतकर्मणः ॥ वैशाखस्यतृतीयायांशुक्लायांरोहिणीयदा ॥ ३८ ॥ तत्पदंनिखिलंतत्र
३८ ॥ शिलोत्थंकुण्डोत्थंवकुनास्तुजगथापिन ॥ तस्मिन्नपिच्यःपूजां लेनेनविधिनानरः ॥ ४० ॥ तस्ययःकुरुतेमर्त्यःकृत्स्नपत्नीगृहात्स्यात ॥
वास्तोस्तेनमहात्मना ॥ तस्मिन्नपिचयःपूजां तेनेनविधिनानरः ॥ ४१ ॥ तस्यापिसकलंप्राप्य मृपूर्द्धियातिनद्विनात ॥४२॥ इति श्रीस्कन्द
गृहंदापान्वितंप्राप्य शिल्पादिभिरुपद्रुतम् ॥ ४१ ॥ तस्यापिसकलंप्राप्य मृपूर्द्धियातिनद्विनात ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रेवास्तुपदोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥
सूतउवाच ॥ तथान्यापिचतत्रास्तिदेवताद्विजसत्तमाः ॥ अजापालेतिविख्याता सर्वरोगक्षयावहा ॥ १ ॥ अजापालो

[illegible] ॥ १२९ ॥ ॥ ॥

प्रसिद्ध और भी देवता है जोकि समस्त रोगों का क्षयदायक है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब समस्त मनुष्यों के हित में परायण अजापाल राजा हुआ है तब सब रोग अजारूप होगये ॥ २ ॥ उससमय वह भूपति रात्रि में उनको लाकर उस स्थान में धारण करताथा उसी कारण उनका टिकाश्रय स्थान धरातल में समस्त मनुजों से अजागृह ऐसा कहागया जोकि दर्शनसे पातकोंका विनाशक है हे द्विजोत्तमो ! वहां पर पुरातन समय जो आश्चर्य्य हुआ है उसको मैं तुमलोगों से कहूंगा सावधान होकर सुनना चाहिये कि उस क्षेत्रमें तपस्वी का रूपधारी कोई ब्राह्मण आया ॥ ३ । ४ । ५ ॥ जोकि तीर्थयात्रा के प्रसङ्गसे रात्रि में प्राप्तहुआ व भलीभांति टिका वह

यदाराजा सर्वलोकहितेरतः ॥ अजारूपाःप्रयान्तिस्मव्याधयस्सकलाद्विजाः ॥ २ ॥ तदारात्रौसमानीय तस्मिन्स्थानेदधातिसः ॥ ततस्तदाश्रयस्थानमजागृहमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ सर्वैर्जनैर्धरापृष्ठे दर्शनात्पापनाशनम् ॥ तत्राश्चर्य्यमभूत्पूर्वं यत्तद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४ ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिश्रोतव्यंसुसमाहितैः ॥ तत्रायातोद्विजःकश्चित्क्षेत्रेतापसरूपधृक् ॥ ५ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन रात्रौप्राप्तस्समाश्रितः ॥ अजावृन्दंसमालोक्य निविष्टंसुसुखान्वितम् ॥ ६ ॥ रोमन्थकर्म्मसंसक्तं विश्वस्तमकुतोभयम् ॥ सञ्ज्ञात्वामानुषेणात्रभवितव्यमसंशयम् ॥ ७ ॥ नशून्याःपशवोरात्रौ स्थास्यन्तिवेपिनेपिच ॥ आगन्तव्यंकुतोप्याशुतस्मात्तिष्ठामिनिर्भयः ॥ ८ ॥ एवंतस्यप्रसुप्तस्य गतासारजनीततः ॥ तस्यसुप्तोत्थितस्यैव सुश्रान्तस्यद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ अथयावत्प्रभातेतु समपश्यन्निजान्तनुम् ॥ तावत्कुष्ठादिभीरोगैस्समन्तात्परिवारितम् ॥ १० ॥ अशक्तश्चलितुंस्थानादपिचैकपदंक्वचित ॥ तेजोहीनोपिरौद्रेण चिन्तयामासवैद्विजः ॥ ११ ॥

सुखसंयुत व पागुरि कर्म में लगे व विश्वासित और सबकहीं से निडर बैठेहुये अजावृन्द को भलीभांति अवलोकन करके यह जानकर कि यहांपर मनुष्य को निस्सन्देह होना चाहिये ॥ ६ । ७ ॥ क्योंकि जङ्गल मेंभी रातको शून्य पशु न टिकैंगे कहीं सेभी शीघ्रही किसीको आनाचाहिये इसलिये निडर होकर मैं टिकताहूं ॥ ८ ॥ तदनन्तर इसभांति सोयेहुये उस ब्राह्मण की रात व्यतीत हुई हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर प्रातःकाल उस द्विजने जबतक अपने शरीर को देखा तबतक भलीभांति सहताये व सोकर उठेहुये उस ब्राह्मणका शरीर सबओर कुष्ठादिक रोगों से घिर गया ॥ ९ । १० ॥ व ठिकाने से कहीं एक पग भी चलने के लिये असमर्थ व

भयङ्कर रोगसे तेजरहितभी द्विजने चिन्तन किया ॥ ११ ॥ कि यह क्या कारण है जिससे मेरा शरीर ऐसा संस्थित (प्राप्त) होगया व अन्नानकही यह रोग हुआ
और मैं चलने के लिये समर्थ नहींहूं ॥ १२ ॥ उस द्विजको इसप्रकार चिन्तन करतेहुये उसीक्षण बारह सूर्य्योंके समान प्रकाशवाला पुरुष भलीभांति आया ॥१३॥
व तदनन्तर उसने उस अजायूथ को नामोंसे अलग २ पुकारा व बायें हाथ में दण्डको लेकर गमन कराया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उस पुरुष ने कहींभी चलने
के लिये असमर्थ व रोगों से सबओर घिरेहुये उस ब्राह्मणको देखा तदनन्तर आदर समेत कहा ॥१५॥ कि हे द्विजोत्तम ! इसप्रकारके तुम इस स्थानमें प्राप्तहुये कौनहौ

एवंचिन्तयमानस्य तस्यावि
किमिदंकारणंयेन ममैवंसंस्थितातनुः ॥ अकस्मादेवरोगोयंचलितुंनैवचक्षमः ॥ १२ ॥ एवंचिन्तयमानस्य तस्यावि
प्रस्यतत्क्षणात् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशः पुरुषस्समुपागतः ॥१३॥ तंपूगंकालयामासततःसंज्ञाभिराह्वयत् ॥ पृथक्त्वेनस
मादाय यष्टिंसव्येनपाणिना ॥ १४ ॥ अथाऽपश्यत्सतंविप्रं व्याधिभिःसर्वतोवृतम् ॥ अशक्तंचलितुंकापि ततःप्रोवा
चसादरः ॥ १५ ॥ कस्त्वमेवंविधःप्राप्तस्स्थानेचात्रद्विजोत्तम ॥ नास्तिराज्येममव्याधिः कस्यचित्कुत्रचित्स्फुटम् ॥
१६॥अजोनामनरेन्द्रोहं यदितेश्रोत्रमागतः ॥ व्याधयश्छागरूपेण रक्षामिजनकारणात् ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्रूहिशरीर
स्थो यस्तेव्याधिर्व्यवस्थितः ॥ येनाहंनिग्रहंतस्य करोमिद्विजसत्तम ॥ १८ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ तीर्थयात्रापरोहञ्चभ्र
मामिक्षितिमण्डलम् ॥ क्रमेणात्रसमायातः क्षेत्रेस्मिन्हाटकेश्वरे ॥१९॥ निशिचक्रेनृपश्रेष्ठवासस्संचिन्तितोमया ॥
दृष्ट्वामीपशवोभूप मानुषैर्भाव्यमेवहि ॥ २० ॥ ततश्चात्रप्रसुप्तोहंतत्पशूनांसमीपतः ॥ अथयावत्प्रभातेहंप्रपश्यामिनि

यह प्रकटहै कि मेरी राज्यमें कहींपर किसी पुरुषके रोग नहीं है ॥ १६ ॥यदि तुम्हारे कर्णमें आयाहो तो मैं अजनामक नरेशहूं मनुष्यों के कारण छागरूप से रोगोंकी
रक्षा करताहूं ॥ १७ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे शरीर में टिकाहुआ जो रोग व्यवस्थितहो उसको कहो कि जिससे मैं उसका दण्डकरूं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोला
कि तीर्थयात्रा में परायण मैं भूमण्डल का भ्रमण करताहूं क्रमसे इस हाटकेश्वर क्षेत्रमें भलीभांति आया ॥ १९ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ, भूप ! इन पशुओंको देखकर मैंने चि-
न्तन किया कि मनुष्यों को होनाही चाहिये और रात्रिमें निवास किया ॥ २० ॥ तदनन्तर उन पशुओं के समीप मैं यहां सोरहा इसके अनन्तर प्रातःकाल जबतक

मैं अपने शरीर को देखूं ॥ २१ ॥ तबतक कुष्ठादिक रोगों से सबओर घिरगया हे नृपश्रेष्ठ ! मैं और किसी कारण को तत्त्वसे नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ हे नृपोत्तम ! बार २ इस बहुत कहनेसे क्याहै इसलिये जिसप्रकार मेरा शरीर नीरोग होवै वैसेही करो ॥ २३ ॥ उसके उपरान्त अजापाल भूपालने उन रोगोंसे कहा कि किसने मेरी आज्ञाको भङ्गकिया है व इससमय कौन बाधने योग्यहै ॥ २४ ॥ रोग बोले कि हे भूपाल ! इस कार्यमें तुम किसी प्रकार क्रोध मत करो जिसकारण इससमय यह ब्राह्मण तीन रोगों से पैठाहुआहै ॥ २५ ॥ राजयक्ष्मा, कुष्ठ व विचर्चिका रोग द्विजोत्तम में है संसर्ग से उपजेहुये ये दोष आज मुझसे कहेगये ॥ २६ ॥ इनके मध्यमें

जांतनुम् ॥ २१ ॥ तावत्कुष्ठादिरोगैश्च समन्तात्परिवारितम् ॥ नान्यत्किञ्चिन्नृपश्रेष्ठ कारणंवेद्मितत्त्वतः ॥ २२ ॥ किमेतेननृपश्रेष्ठभूयोभूयःप्रजल्पता ॥ बहुनाकुरुतस्मान्मेयथास्यान्नीरुजातनुः ॥ २३ ॥ ततस्तेव्याधयःप्रोक्ता अजापालेनभूभुजा ॥ केनाज्ञाखण्डितामेद्य कोबाध्यस्सांप्रतंमम ॥ २४ ॥ व्याधयऊचुः ॥ माकोपंकुरुभूपालकृत्येस्मिंस्त्वं कथंचन ॥ यस्माद्देषद्विजोविष्टस्सांप्रतंव्याधिभिस्त्रिभिः ॥२५ ॥ राजयक्ष्माचकुष्ठंच पामाचद्विजसत्तमे ॥ एतेसंसर्गजादोषामयाद्यपरिकीर्तिताः ॥ २६ ॥ एतेषांप्रथमौयौद्वौनिवृत्तिरहितौस्मृतौ ॥ औषधैश्चैवमन्त्रैश्चशेषानाशंव्रजन्ति हि ॥ २७ ॥ आभ्यांचब्रह्मशापोस्तियेननास्तिनिवर्तनम् ॥ तस्मादत्रनृपश्रेष्ठ कुरुयत्तेक्षमंभवेत् ॥ २८ ॥ एतेनब्राह्मणेनैतेस्पृष्टाराजंस्त्रयोपिच ॥ तस्माद्यावत्तनुश्चास्यस्यात्तांतावदसंशयम् ॥ २९ ॥ अपरंशृणुभूपाल वचनन्तुमुखाच्च्युतम् ॥ हितायसर्वजन्तूनां तवश्रेयोविवृद्धये ॥ ३० ॥ यत्रस्थानंचिरंतत्र मेदिन्यांविहितंनृप ॥ पुरीषंचसमाविद्धं सानष्टा

पहलेवाले जो दो रोगहैं वे निवृत्ति (नाश) से रहित कहेगये हैं और शेष ओषधियों व मंत्रों से नाश होजाते हैं ॥ २७ ॥ इन दोनोंके लिये ब्रह्मशापहै जिससे निवृत्ति नहीं होती है इसलिये हे नृपोत्तम ! इस विषय में जो योग्य होवै उसको करो ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस ब्राह्मणने इन तीनों भी रोगोंको स्पर्श किया है इसलिये जब तक इसका शरीर होवैगा तबतक निरसन्देह दोनों रोग रहैंगे ॥ २९ ॥ हे भूप ! समस्त प्राणियों के हितके लिये व तुम्हारे कल्याण की विवृद्धिके निमित्त मुखसे

निकलेहुये उत्तम वचनको सुनिये ॥ ३० ॥ कि हे नृप ! पृथ्वी में जहांपर बहुत दिन ठिकाना कियागया वहां विष्ठा संवेधित हुआ और वह भूमि शीघ्रही नष्टहोगई ॥३१॥
दूसरे समय मेंभी इस भूमिमें आयेहुये जो मनुष्य भूमिका स्पर्श करैंगे वे इसी प्रकारके होवैंगे ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! हम शेष रोग व्यवस्थितहैं जोकि तुमसे छोड़ेहुये
मंत्रों व औषधों के भलीभांति अनुगामी होवैंगे ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मशापसे उपजेहुये जौन दो पहलेवाले हैं वे नहीं पवित्र करते हैं उस वचनको सुनकर वह अजापाल
नृपभी उसी स्थान में विशेषतासे टिका ॥ ३४ ॥ व उस ब्राह्मणसे फिर कहा कि हे द्विज ! तुमको डरना न चाहिये क्योंकि इस विकराल रोग से मैं तुम्हारी रक्षा

मेदिनीद्रुतम् ॥ ३१ ॥ कालान्तरेपियेमर्त्या भूम्यामस्यांसमागताः ॥ भूमेःस्पर्शंकरिष्यन्ति तेभविष्यन्तिचेदृशाः ॥
३२ ॥ वयंशेषामहाराजव्याधयोवैव्यवस्थिताः ॥ त्वयामुक्ताभविष्यामो मन्त्रौषधसमानुगाः ॥ ३३ ॥ नैवंपुनीतोयौचा
द्यौब्रह्मशापसमुद्भवौ ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवस्सोपितस्मिन्स्थानेव्यवस्थितः ॥३४॥ तंब्राह्मणंपुनःप्राह नभेतव्यंत्वयाद्विज ॥
अहंत्वांरक्षयिष्यामि व्याधेरस्मात्सुदारुणात ॥ ३५ ॥ अत्रतस्मात्प्रतीक्षस्व किञ्चित्कालंममाज्ञया ॥ एवमुक्त्वाततश्च
क्रेतदर्थंसुमहत्तपः ॥ ३६ ॥ आराधयन्प्रभक्त्यासम्यक्तां क्षेत्रदेवताम् ॥ मुण्डेनाथर्वशीर्षेण दिवारात्रमतन्द्रितः ॥३७॥
क्षेत्रपालोत्थसूक्तेन वास्तुसूक्तेनचद्विजाः ॥ सिद्धार्थैरक्तपुष्पैश्च गुग्गुलेनसुधूपितैः ॥ ३८ ॥ होमंकुर्वन्नृपः पश्चान्नीलरु
द्रान्विशेषतः ॥ अथनक्तावसानेन तस्माद्धोमात्समुत्थिता ॥ ३९ ॥ भित्त्वाधरातलंदेवी मन्त्राकृष्टाविनिर्गता ॥ देवतात
स्यक्षेत्रस्य ततःप्रोवाचतंनृपम् ॥ ४० ॥ तुष्टाहन्तवभूपालहोमस्यास्यप्रभावतः ॥ विनिर्गताधरापृष्ठात्क्षेत्रस्यास्याधि

करूंगा ॥ ३५ ॥ उसी कारण तुम मेरी आज्ञासे यहांपर कुछेक समय परखिये ऐसा कहकर तदनन्तर बड़ेभारी तपको किया ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह निरालसी
अजापाल नृपति मुण्ड, अथर्वशीर्ष, क्षेत्रपाल से उठेहुये स्तोत्र व वास्तुसूक्तके द्वारा दिनरात उस क्षेत्रदेवता को बडी भक्ति से भलीभाति आराधन करताहुआ व
सरसों लाल फूल व गुग्गुल और सुधूपित पदार्थों से होम करता हुआ पश्चात् विशेषता से नील रुद्र मन्त्रोंको जपकिया इसके अनन्तर रात्रि के बीतने से मंत्रके
रा खींचीहुई उस क्षेत्रकी देवता देवी उस होम से भलीभांति उठी व भूतलको फोड़कर निकली तदनन्तर उस नृपति से बोली ॥ ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥

हे भूपाल ! इस क्षेत्रकी स्वामिनी कहीहुई मैं इस होमके प्रभावसे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होतीहुई भूतलसे निकली हूं ॥ ४१ ॥ इसलिये हे महाभाग ! कहिये जो तुम्हारा कार्य हो उसको मैं करूं क्योंकि परम प्रसन्नताको प्राप्तहूं उस कारण जो वाञ्छितहो उसको कहो ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि हे देवि ! इस स्थान में विशेषता से तुमको सदैव टिकना चाहिये रोगके संसर्ग से उपजाहुआ दोष जिसप्रकार इस भूमिसे चलाजावै ॥ ४३ ॥ हे सुरेशि ! आजसे लगाकर वैसाही न्याय कियाजावै नहीं तौ इस भूमिके प्रसंगसे मनुष्य विशेषकर रोगग्रस्त होवैंगे जैसे कि अगाड़ी यह देख पड़ताहै व जिसलिये कि बहुत दिनोंसे मुझसे यहांपर रोग टिकाये हुये हैं ॥ ४४ । ४५ ॥

पास्मृता ॥ ४१ ॥ तस्माद्वदमहाभाग यत्तेकृत्यंकरोम्यहम् ॥ परांतुष्टिमनुप्राप्ता तस्माद्ब्रूहियदीप्सितम् ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ अत्रस्थानेसदास्थेयं त्वयादेविविशेषतः ॥ व्याधिसंसर्गजोदोषो भूमेरस्माद्यथाव्रजेत् ॥ ४३ ॥ अद्यप्रभृति देवेशितथानीतिर्विधीयताम् ॥ नोचेदस्याःप्रसङ्गेन प्रभविष्यन्तिमानवाः ॥ ४४ ॥ व्याधिग्रस्ताविशेषेण यथायंदृश्यतेपुरः ॥ मयात्रव्याधयःकालं चिरन्तुस्थापितायतः ॥४५॥ भविष्यतिचमेदोषो नोचेद्देविनसंशयः ॥ यथायंब्राह्मणोरोगात्त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ ४६ ॥ मुक्तोभवतिमेदिन्यामत्रस्थेयंसदात्वया ॥ क्षेत्रदेवतोवाच ॥ एतत्स्थानंमयासर्वं व्याधिदोषविवर्जितम् ॥ ४७ ॥ विहितंसर्वदैवात्रस्थास्येहमिहसर्वदा ॥ सांप्रतंयोत्रमेस्थानेव्याधिग्रस्तस्समेष्यति ॥ ४८ ॥ पूजयिष्यतिमांभक्त्यानीरोगस्संभविष्यति ॥ तस्माद्द्यद्विजेन्द्रोयं मांपूजयतुसादरम् ॥ ४९ ॥ भक्त्यापरमया युक्तश्शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ अत्रक्षेत्रेपरान्यास्ति विख्याताचन्द्रकूपिका ॥ ५० ॥ तस्यांस्नातुयथान्यायं नित्यमेव

हे देवि ! नहीं तो मुझको दोष होगा इसमें सन्देह नहीं है हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी प्रसन्नता से जिसप्रकार यह ब्राह्मण रोग से मुक्तहोवै वैसेही सदैव तुमको इस पृथ्वी में टिकना चाहिये क्षेत्रदेवता बोली कि इस समस्त स्थानको मैंने सदैवही रोगोंके दोष से रहित किया ॥ ४६ । ४७ ॥ व यहां इस स्थानमें मैं सदैव टिकूंगी इस समय रोगग्रस्त जो पुरुषमेरे इस स्थानमें भलीभांति आवैगा ॥ ४८ ॥ और मुझको भक्तिसे पूजैगा वह नीरोग होवैगा इसलिये परमभक्तिसे संयुक्त व सावधान होता हुआ यह द्विजेन्द्र पवित्र होकर आज मुझको आदर समेत पूजै और इस क्षेत्र में परम प्रसिद्ध अपर चन्द्रकूपिका है ॥ ४९ । ५० ॥ हे भूपते ! उसीमें यह नित्यही

न्यायपूर्वक स्नानकरै जिस चन्द्रकूपिका को पुरातन समय दक्षजीके शापसे संसक्त व क्षयरोग से ग्रस्त चन्द्र महात्माने अपने स्नानके लिये कियाथा वैसेही इस क्षेत्रमें खण्डशिलानामक देवता स्थित है ॥ ५१ । ५२ ॥ सौभाग्यकूपिका में नहाकर वहांपर उस खण्डशिलाको देखै जिस सौभाग्यकूपिका को पुरातन समय कुष्ठ रोग से ग्रस्त कामदेवने कुष्ठके विनाशके लिये स्नानके निमित्त आदर समेत कियाथा वैसेही हे नृपोत्तम ! यहांपर अप्सराकुण्ड है ॥ ५३ । ५४ ॥ उस कुण्ड में रविवार को नहाकर उससे पामा (खुजली या दाद) नष्ट होताहै सूतजी बोले कि तदनन्तर उस ब्राह्मण ने अतिपुण्यदायक चन्द्रकूपिकाको प्राप्तहोकर ॥ ५५ ॥ व

स्वस्नानार्थं क्षयव्याधिग्रस्तेन च महात्मना ॥ तथा खण्डशिला महीपते ॥ दक्षशापप्रसक्तेन याचन्द्रेणपुराकृता ॥५१॥ स्वस्नानार्थंक्षयव्याधिग्रस्तेनचमहात्मना ॥ तथाखण्डशिला नाम देवताचात्रतिष्ठति ॥ ५२ ॥ सौभाग्यकूपिकास्नानं कृत्वातांतत्रपश्यतु ॥ याकृताकामदेवेन कुष्ठग्रस्तेनवैपुरा ॥ ५३ ॥ स्नपनार्थंचकुष्ठस्यविनाशायचसादरम् ॥ तथैवाप्सरसंकुण्डमत्रास्तिनृपसत्तम ॥५४॥ तत्रस्नात्वारवावह्नितत: पामाविनश्यति ॥ सूतउवाच ॥ ततस्सब्राह्मणःप्राप्य सुपुण्यांचन्द्रकूपिकाम् ॥ ५५ ॥ स्नानंकृत्वाचतांदेवींपूजयामास भक्तितः ॥ यावन्मासंततोमुक्तस्सत्वरंराजयक्ष्मणा ॥५६॥ततस्सौभाग्यकूपींतां दृष्ट्वाकामविनिर्मिताम् ॥ तथास्नानं विधायाथ पश्यन्खण्डशिलांचताम् ॥ ५७ ॥ तद्वन्मासेननिर्मुक्तःकुष्ठेनद्विजसत्तमाः ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेन कूपिकायाविशेषतः ॥ ५८ ॥ ततश्चाप्सरसांकुण्डेस्नात्वैवरविवासरे ॥ पामयासंपरित्यक्तो बुद्ध्यैवविषयात्मकः ॥५९॥ ततस्स ब्राह्मणोजातो द्वादशार्कसमप्रभः ॥ तोषेणमहताविष्टो दत्ताशीस्तस्यभूपतेः ॥ ६० ॥ प्रययौवाञ्छितंदेशमनुज्ञातश्चभू

नहाकर महीने भरतक उस देवीको भक्तिसे पूजन किया तदनन्तर वह शीघ्रही राजयक्ष्मा से छूटगया ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! कामदेवसे बनाई हुई उस सौभाग्यकूपिका को देखकरके स्नानकर व उस खंडशिलाको देखताहुआ उसीप्रकार एक महीने में उस देवी की व विशेषकर कूपिका की प्रसन्नता से कुष्ठसे छूटगया ॥ ५७।५८ ॥ उसके उपरान्त रविवारको अप्सराओंके कुण्डमें स्नानहीकर बुद्धिहीसे विषय आत्मावाला वह पामा (खुजली) से छूटगया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर बड़ी प्रसन्नता से संयुत व उस भूपको आशीर्वाद दियेहुये वह ब्राह्मण बारह सूर्य्योंके समान कान्तिमान् होगया ॥ ६० ॥ व भूपालसे आज्ञा दियाहुआ व उन रोगोंसे

छूटाहुआ वह द्विज बार बार देवीका पूजनकर चाहेहुये देशको चलागया ॥ ६१ ॥ और वह राजाभी उन दोषों को अजारूप देखकरके व उसी ब्राह्मण को देखकर अतिप्रसन्नहुआ ॥ ६२ ॥ व अपनी स्त्री समेत उसी शरीरसे वहां आपही चलागया जहां कि हाटकेश्वर जी टिके हैं ॥ ६३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस लिये कि वह क्षेत्र-देवता देवी अजागृह में स्थितहुई इसलिये सबकहीं अजागृहा प्रसिद्ध हुई ॥ ६४ ॥ यक्ष्मा रोग से गँसाहुआ जो पुरुष आजभी उसी विधिसे उस देवता को भलीभांति पूजता है वह शीघ्रही नीरोग होताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजागृहो

भुजा ॥ ताभिर्विमुक्तोदेव्यास्तु पूजांकृत्वापुनःपुनः ॥ ६१ ॥ सोपिराजातुदोषांस्तानजारूपान्विलोक्यच ॥ तमेवब्राह्मणं दृष्ट्वा तथाचसंप्रहर्षितः ॥ ६२ ॥ स्वयंचप्रययौतत्र यत्रस्थोहाटकेश्वरः ॥ तेनैवचशरीरेणनिजकान्तासमन्वितः ॥ ६३ ॥ अजागृहेस्थितायस्मात्सादेवीक्षेत्रदेवता ॥ अजागृहाततःख्यातासर्वत्रैवद्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥ अद्यापियक्ष्मणाग्रस्तो यस्तांपूजयतेनरः ॥ तेनैवविधिनासम्यक् सनीरोगोद्भुतंभवेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽजागृहोत्पत्तिर्नामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदादक्षेणक्रुद्धेन पुराशप्तोहिमद्युतिः ॥ तत्सर्वंभवताप्रोक्तं सोमनाथकथानकम् ॥ १ ॥ सांप्रतंवदकामस्य यथाकुष्ठोभवत्पुरा ॥ येनदोषेणशापश्च केनतस्यनियोजितः ॥ २ ॥ शिलाखण्डाचयादेवी तथासौभाग्यकू

त्पत्तिर्नामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भई सुभाग्यककूपिका अरु तीरथ शिलखड । इकसौ इकतिसमहँ सोई बरणत बुद्धिप्रचंड ॥ ऋषिलोग बोले कि पुरातन समय जब क्रोधित दक्ष जीने चन्द्रमा को शाप दियाहै उस समस्त सोमनाथ जीके कथानक को आपने कहा ॥ १ ॥ व पुरातन समय जिसप्रकार कामदेव के कुष्ठ हुआ और जिस दोष से किसने उनके शाप नियुक्त कियाहै इस समय उस चरितको कहिये ॥ २ ॥ व जो सिलाखण्डा देवीहै वह और सौभाग्यकूपिका वहांपर जिसप्रकार भलीभांति पैदाहुई है

वैसेही हमलोगों से कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय हारीत नामक ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मणहुआ है वानप्रस्थ आश्रम में बसतेहुये उसने उस हाटकेश्वर क्षेत्र में तपस्याको किया ॥ ४ ॥ उसकी पूर्णकला नामक प्रसिद्ध व पतिव्रता स्त्रीहुई जोकि रूप व उदारतादि गुणों से संयुत तथा समस्त गुणों से समुदित (प्रकाशित) व त्रिलोकमें सुन्दरी साक्षात् विष्णु जीकी स्त्री लक्ष्मी के समानथी जिसको देखकर पवित्र या इन्द्रियजितभी पुरुष शीघ्रही कामके वशमें प्राप्तहोवै है ॥ ५ । ६ ॥ किसी समय रति व प्रीति समेत कामदेव भी कामेश्वर के देखने की इच्छासे उसी क्षेत्रमें भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ इसी अवसर में वह पूर्णकला भी वहींपर स्नानके

पिका ॥ यथातत्रसमुत्पन्ना तथास्माकंप्रकीर्तय ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ पुरासीद्ब्राह्मणोनामहारीतइतिविश्रुतः ॥ सतपस्तत्रसन्तेपेवानप्रस्थाश्रमेवसन् ॥ ४ ॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वीरूपौदार्य्यसमन्विता ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीसाक्षाल्लक्ष्मीरिवमधुद्विषः ॥ ५ ॥ ख्यातापूर्णकलानाम सर्वैस्समुदितागुणैः ॥ यांदृष्ट्वाप्रयतोप्याशुकामस्यवशगोभवेत् ॥ ६ ॥ कदाचिदपिसंप्राप्तस्तस्मिन्क्षेत्रेमनोभवः ॥ सहरत्यातथाप्रीत्याकामेश्वरदिदृक्षया ॥७॥ एतस्मिन्नन्तरेसापि स्नानार्थंतत्रचागता ॥ कृत्वावस्त्रपरित्यागंप्रविवेशजलाशयम् ॥ ८ ॥ अथतांकामदेवोपि समालोक्यशुभाननाम् ॥ आत्मीयैरपिनिर्विद्धोहृदयेपुष्पशायकैः ॥ ९ ॥ ततोरतिंपरित्यज्यप्रीतिंचापिनिपीडितः ॥ विजनंकञ्चिदासाद्यप्रसुप्तःसतरोरधः ॥१०॥ गात्रैःपुलकितैस्सर्वैर्निःश्वसान्निःश्वसन्मुहुः ॥ अग्निवर्णान्सुदीर्घांश्च बाष्पपूर्णविलोचनः ॥ ११ ॥ तिष्ठन्सदर्शनेतस्या एकदृष्ट्यावलोकयन् ॥ योगीवसुसमाधिस्थोध्यायंस्तद्ब्रह्मसंस्थितम् ॥ १२ ॥ सापिकामंसमालोक्यसानुरागंपुरःस्थ

लिये आई व वसनोंको परित्यागकर जलाशय में पैठगई ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर कामदेव भी उस उत्तम मुखवाली पूर्णकला को भलीभाति देखकर अपनेभी पुष्पशरों से हृदय में वेधित हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर दुःखित होताहुआ वह कामदेव रति व प्रीति कोभी छोड़करके किसी एकान्त में प्राप्तहोकर वृक्षके नीचे सोरहा ॥ १० ॥ जोकि आंसुओंसे पूरित नयनोंवाला व रोमांचित समस्त अङ्गों से उपलक्षित व अग्निवर्णवाले बड़े दीर्घ श्वासोंको बारबार लेरहाथा ॥ ११ ॥ और वह कामदेव एक दृष्टि से अवलोकन करताहुआ भलीभांति टिकेहुये उस ब्रह्मको ध्यान करते व उत्तम समाधि में स्थितहुये योगी के समान उसके दर्शन में स्थितथा ॥ १२ ॥ वह पूर्णकला

कामदेव को भलीभांति देखकर ॥ १३ ॥ उस कामदेव के रूपसे भी अगाड़ी टिके व जमुहाईके भंग में परिश्रम करतेहुये तथा कंपित शरीरवाले व अनुराग समेत कामदेव को भलीभांति देखकर ॥ १३ ॥ उस कामदेव के रूपसे मोहित व उसके बाणसे विदीर्ण वह पूर्णकला भी विशेषकर कामदेव प्रति प्रकटही अभिलाष समेतहुई ॥ १४ ॥ व स्वच्छ हास्यवाली वह उस जलसे शीघ्रही क्लेश से निकलकरके किनारे के समीपमें प्राप्तहोकर उसके दृष्टिगोचर में स्थितहुई ॥ १५ ॥ तदनन्तर कामदेव जी उठकर धीरे से उसके निकटगये व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर उसके उपरान्त आदर समेत बोले ॥ १६ ॥ कि हे विशाललोचनि, सुन्दर अंगोंवाली ! मेरे नाशके लिये इस जलाशय में स्नानको प्राप्तहुई तुम कौनहौ इसलिये

सापितद्बाणनिर्भिन्ना साभिलाषावभूवह ॥ कामंप्रतिविशेषेण तम् ॥ जृम्भाभङ्गकृतायासवेपमानशरीरकम् ॥ १३ ॥ तस्यरूपेणमोहिता ॥ १४ ॥ आशुतस्माज्जलात्कृच्छ्राद्विनिष्क्रम्यशुचिस्मिता॥ तीरोपान्तंसमासाद्यस्थितातद्दृष्टि गोचरे ॥१५॥ ततःकामःसमुत्थाय शनैस्तस्यान्तिकंययौ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा ततःप्रोवाचसादरम् ॥ १६ ॥ कात्वम त्रविशालाक्षि प्राप्तास्नानंजलाशये ॥ ममनाशायचार्वङ्गितस्माच्छृणुवचोमम ॥१७॥ अहंपुष्पशरोलोके प्रसिद्धश्चा रुहासिनि ॥ विडम्बनांमयानीता देवाअपिनिजैःशरैः॥१८॥मद्बाणेनाहतोरुद्रःस्वशरीरेनितम्बिनीम् ॥ अर्द्धेनधारयामा स लज्जांत्यक्त्वासुदूरतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मामच्छरनिर्भिन्नस्स्वसुतांचकमेततः ॥ जनयामासतान्विप्रान्बालखिल्यांस्तथा विधान् ॥ २० ॥ अहल्यांचकमेशक्रो गौतमस्यप्रियांसतीम् ॥ मद्बाणैःपीडितोतीवस्वर्गादेत्यधरातलम् ॥ २१ ॥ एवंदेवाश्चनिर्भिन्ना मच्छरैर्येमहत्तराः ॥ किंपुनर्मानवास्सुभ्रुकृमिप्रायास्सुचञ्चलाः ॥ २२ ॥ आक्रम्यैतज्जगत्सर्व

मेरे वचनको सुनो ॥ १७ ॥ कि हे रुचिर हास्यवाली ! संसार में मैं पुष्पशायक (कामदेव) प्रसिद्धहूं मैंने अपने बाणोंसे देवताओं कोभी विडम्बना में प्राप्तकियाहै ॥१८॥ मेरे बाणसे ताड़ित होतेहुये शिव जीने लज्जाको बहुतही दूर छोड़कर उत्तम नितंबवाली (पार्वती जीको) निज शरीर में आधेअंग से धारण किया ॥ १९ ॥ व मेरे बाणसे भेदित ब्रह्माजीने अपनी कन्याको चाहा तदनन्तर उस प्रकार के उन बालखिल्य द्विजों को पैदाकिया ॥ २० ॥ व मेरे बाणोंसे अत्यन्तही पीड़ित होतेहुये इन्द्रजी ने स्वर्ग से भूतल में आकर गौतममुनि की प्यारी व पतिव्रता अहल्या को इच्छा किया ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी भौंहोंवाली ! जे बड़ेभारी देवता हैं वे

मेरे बाणसे विदीर्णहुये फिर कीटों के समान व अतिचंचल मनुष्योंको क्या कहनाहै ॥ २२ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली ! कीटसे लगाकर वैसेही ब्रह्मा पर्य्यन्त यह समस्त संसार मेरे बाणोंसे परम विडम्बना (पराभव) को प्राप्तहुआहै ॥२३॥ हे भीरु ! हे शुभे ! फिर मैं तुमसे इस दशाको प्राप्त कियागया इसलिये हे महाभागे ! आज मुझको रतिरूपी दक्षिणा को तबतक दीजिये ॥ २४ ॥ कि जबतक मेरे प्राण शरीरको त्यागकर न जावैं सूतजी बोले कि उन कामदेव जीके वचनको सुनकर पतिव्रतधर्म में तत्पर वह पूर्णकला भी ॥ २५ ॥ उन कामदेव के बाणोंसे हृदय में विशेषकर अतिताड़ितहुई और वह पतिव्रता केवल कामदेव के धर्मको नहीं जानतीथी ॥ २६ ॥

माब्रह्मान्तंतथैवच ॥ विडम्बनांपरंप्राप्तं मच्छरैश्चारुहासिनि ॥ २३ ॥ अहंपुनस्त्वयाभीरु नीतोवस्थामिमांशुभे ॥ तस्माद्देहिमहाभागे ममाद्यरतिदक्षिणाम् ॥ २४ ॥ यावन्नयान्तिसंत्यज्य ममप्राणाःकलेवरम् ॥ सूतउवाच ॥ सापितद्वचनंश्रुत्वा पतिव्रतपरायणा ॥ २५ ॥ हन्यमानाविशेषेण तद्बाणैर्हृदयेभृशम् ॥ अनभिज्ञाचसासाध्वी कामधर्म्मस्यकेवलम् ॥ २६ ॥ तापसैस्सहसंवृद्धानसंजानातिकिञ्चन ॥ वक्तुंतद्विषयेयच्चप्रोच्यतेकामपीडितैः ॥ २७ ॥ अधोमुखालिखद्भूमिमङ्गुष्ठेनस्थिताचिरम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेभानुःप्राप्तश्चास्तागिरिंप्रति ॥ २८ ॥ विहारसमयेप्राप्तआहिताग्निर्निवेशने ॥ हारीतोपिचिरंवीक्ष्य तन्मार्गंचाकृताशनः ॥ २९ ॥ ततस्सचिन्तयामास कस्मात्साचात्रनागता ॥ स्नात्वातीर्थवरेतस्मिन्दृष्ट्वातांचन्द्रकूपिकाम् ॥ कामेश्वरंचदेवेशं कामदंसुखदंनृणाम् ॥ ३० ॥ ततःशिष्यसमायुक्तो वीक्ष्यमाणाद्भुत

व तपस्वियोंके साथ भलीभांति बढ़ीहुई पूर्णकला उस विषय में कहनेके लिये कुछ नहीं जानतीथी जोकि कामदेवसे पीड़ित मनुष्यो से कहाजाताहै ॥ २७ ॥ बड़ी देरतक टिकीहुई नीचे मुखवाली उसने अंगूठे से भूमिको लिखा इसी अवसर में सूर्य्यनारायण अस्ताचलपै प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व भोजन को नहीं कियेहुये हारीतमुनि भी देरतक उसके मार्गको देखकर विहारके समय अग्न्याधानवाले घरमें प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस हारीतने चिन्तन किया कि उस उत्तम तीर्थ में नहाकरके उस चन्द्रकूपिका को व मनुष्यों को सुखदायक व कामनाओंके दायक सुरनायक कामेश्वर जीको देखकर वह पूर्णकला यहां किसकारण नहीं आई ॥ ३० ॥ तदनन्तर

शिष्यों से संयुत होकर इधर उधर देखतेहुये हारीत उस देशको भलीभांति प्राप्तहुये जहापर कि वे दोनोंभी स्थितथे ॥ ३१ ॥ अपने बाणोंसे ताड़ित होतेहुये कामदेव जी अनेक भाति से प्रलाप करतेथे और वह पूर्णकलाभी लज्जासे नीचे मुखवाली होकर बैठीथी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर झाड़ी से छिपेहुये वे हारीत कामदेव से कहेहुये उस समस्त वृत्तान्त को सुनकर व उसके हृदय में प्राप्तहुये भावको देखकर क्रोधसे यह बोले ॥ ३३ ॥ कि हे पाप ! जिसलिये तुमने अनजान व उत्तम स्वभाववाली तथा पतिव्रत धर्म में लगीहुई मेरी स्त्रीको इसप्रकार बाणसे व्यथित किया ॥ ३४ ॥ इसलिये हे पापात्मन् ! तुम कुष्ठरोग से संयुत व अप्रिय दर्शनवाले तथा निज स्त्रियों

स्ततः ॥ तंदेशंसमनुप्राप्तो यत्रतौद्वावपिस्थितौ ॥ ३१ ॥ आलपन्बहुधाकामोहन्यमानोनिजैःशरैः ॥ सापिचैवविशेषेण व्रीडयाधोमुखीस्थिता ॥ ३२ ॥ सगुल्मान्तरितस्सर्वं तच्छ्रुत्वाकामजल्पितम् ॥ तस्याश्चहृद्गतंभावं तत्कोपादब्रवीदिदम् ॥ ३३ ॥ यस्मात्पापत्वयापत्नी ममैवंशरपीडिता ॥ अनभिज्ञातथासाध्वी पतिधर्म्मपरायणा ॥ ३४ ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तस्तस्माद्विप्रियदर्शनः ॥ त्वंभविष्यसिपापात्मन्मुक्तोदारैःस्वकैरपि ॥ ३५ ॥ सापिचैवविशेषेणव्रीडयाधोमुखीस्थिता ॥ एषापिचशिलाप्राया भविष्यतिविचेतना ॥ ३६ ॥ त्वांदृष्ट्वाप्राप्तरागाभून्निजधर्म्मबहिष्कृता ॥ ३७ ॥ ततःप्रसादयामासतंकामःप्रणिपत्यच ॥ नज्ञातेयंमयाविप्रतवभार्य्येतिसुन्दरी ॥ ३८ ॥ तत्प्रोक्तानिविरुद्धानि वचांसिविविधानिच ॥ तस्मान्नार्हसिशापंत्वंदातुमस्याःकथञ्चन ॥ ३९ ॥ ममविप्रापराधोत्र तस्मान्मेनिग्रहंकुरु ॥ भूयोपिब्राह्मणश्रेष्ठअस्याःशापसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ अपिरुद्रादयोदेवा मद्बाणांस्तुकथञ्चन ॥ सोढुंशक्तानतेयस्मात्तत्कथंस्यादियंशि

सेभी छुटे होवोगे ॥ ३५ ॥ और लज्जासे विशेषकर नीचे मुखवाली टिकीहुई वह भी शिलाके समान अचेतन होगी क्योंकि निजधर्म से बाहर की हुई यहभी तुमको देखकर अनुराग (स्नेह)को प्राप्तहुई है ॥ ३६।३७ ॥ तदनन्तर कामदेवने प्रणामकर उन हारीतको प्रसन्न किया कि हे विप्र ! मैंने इसको नहीं जाना कि यह सुन्दरी तुम्हारी स्त्री है ॥३८॥ उसीसे अनेकप्रकारके विरुद्ध वचन कहेगये इसलिये तुम इसको शाप देनेके लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हो ॥३९॥ हे विप्र ! इस विषय में मेरा अपराधहै इसलिये मुझ को दण्डकीजिये फिरभी हे द्विजोत्तम ! इसके शापसे उपजेहुये निग्रहको करो ॥ ४० ॥ जो शिवादिक देवता हैं वे भी मेरे बाणोंको सहनेके लिये किसी

प्रकार समर्थ नहीं हैं उस कारण यह कैसे शिला होगी ॥ ४१ ॥ और वैसेही विद्वान् लोग तीनप्रकार का पातक कहते हैं मानस, वाचिक और तीसरा कर्म से उपजा हुआ (कायिक) है॥४२॥ हे मुनिनायक! मुझको वह दो प्रकारका पातक हुआहै और तुम्हारी इस स्वरूपवतीस्त्री को एकही हुआहै इसलिये सम्पूर्ण अंगको करूंगा ॥ ४३ ॥ और तुमको परलोक से उपजाहुआ कुछ डर नहीं है क्योंकि मानस पाप मन के सन्तापसे जावै है और जो वाचिक है वह ॥ ४४ ॥ उसी के प्रसन्नही करने से कि जिसके ऊपर कहागया है व कर्म से उपजाहुआ (कायिक) पातक यथोक्त प्रायश्चित्तों से जावै है ॥ ४५ ॥ हे महामुने ! जिसलिये कि समस्त धर्मशास्त्रों से

ला ॥ ४१ ॥ तथाचत्रिविधंपापं प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ मानसंवाचिकंचैवकर्म्मजञ्चतृतीयकम् ॥ ४२ ॥ तदस्माकंद्विधा जातमेकंचास्यामुनीश्वर ॥ भार्य्यायास्तेसुरूपायास्तस्मात्संपूर्णविग्रहम् ॥४३॥ करिष्यामिनतेभीतिःकश्चिदस्तिपर त्रजा ॥ मनस्तापाद्व्रजेत्पापंमानसंवाचिकंचयत् ॥ ४४ ॥ तस्यप्रसादनेनैवयस्योपरिविजल्पितम्॥प्रायश्चित्तैर्यथोक्तै श्च कर्म्मजंपातकंव्रजेत् ॥ ४५ ॥ धर्म्मशास्त्रैःपरिप्रोक्तंयतस्सर्वैर्महामुने ॥ हारीतउवाच ॥ अन्यत्रविषयेतत्तु पातकं कामदेववै ॥ ४६ ॥ एतस्यतवधर्म्मस्य प्राधान्यंमनसास्मृतम् ॥ तस्मादेवंविधाचेयं सदास्थास्यतिवाधमा ॥ ४७ ॥ किंपुनर्यत्कृतंकृत्यंनाहंवक्ष्यामिकिञ्चन ॥ प्रथमंमनसासर्वं चिन्त्यतेतदनन्तरम् ॥ ४८ ॥ ततःप्रजल्पतेवाचा क्रियते कर्म्मणापुनः ॥ प्रथमंहिमनस्तस्मात्सर्वकृत्येषुसर्वदा॥४९॥एतस्मात्कारणात्पूर्णामयास्यानिग्रहःकृतः ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो हारीतश्चाश्रमंययौ ॥ ५० ॥ सापिखण्डशिलाजाता शिलारूपाचतत्क्षणात् ॥ कामदेवोपिकु

कहागयाहै हारीत बोले हे कामदेव ! वह तो पातक अन्य विषय में है ॥ ४६ ॥ और तुम्हारे इस धर्म की प्रधानता मनसे कही गई है फिर जो कार्य कियागयाहै उसको क्या कहना है मैं कुछ न कहूंगा इसलिये यह अधमा सदैव इसीप्रकार की टिकैगी पहले मनसे समस्त पदार्थ चिन्तन कियाजाताहै उसके उपरान्त॥ ४७ । ४८ ॥ उसी कारण वाणीसे कहाजाता है फिर कर्मसे कियाजाताहै इसलिये सदैव समस्त कार्य्योंमें प्रथम मनही कारण है ॥ ४९ ॥ इसी कारण मैंने इसको पूर्ण दण्ड किया सूत जी बोले कि ऐसा कहकर मुनिनायक हारीत जी आश्रम को चलेगये ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! वह पूर्णकला भी उसीक्षण शिलारूप होतीहुई खण्डशिला होगई व

कामदेव भी विकराल कुष्ठरोग से ग्रस्तहुआ ॥ ५१ ॥ व टूटेफूटेहुये नासिका व चरण व हाथोंवाला और नेत्रों को अप्रिय होगया इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! कामदेव को रोगग्रस्त व उत्साहहीन होजानेपर इस संसार में सृष्टिका रुकावट होगया केवल जलसे उपजेहुये व स्थलज जन्तुवों समेत संसार क्षीण होतारहा ॥५२।५३॥ व कहींपर उपजीहुई कोई स्त्री व कोई पुरुष व कोई नपुंसक न देख पड़ता था व कहींपर गर्भवती स्त्री व कामदेवका क्षोभ नहीं देखाजाताथा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस कामदेव को रोगग्रस्त जानकर शीघ्रता में प्राप्तहुये उस क्षेत्र के टिकनेवाले समस्त पुरुष विकल अन्तःकरण से आये ॥ ५५ ॥ व कामेश्वर देवके अगाड़ी टिके

ष्ठेनग्रस्तोरौद्रेणचद्विजाः ॥ ५१ ॥ शीर्णनासांघ्रिपाणिश्चनेत्राणामप्रियोभवत् ॥ अथकामेनिरुत्साहेसंजातेद्विजसत्तमाः ॥ ५२ ॥ व्याधिग्रस्तेजगत्यस्मिन्सृष्टिरोधोऽभ्यजायत ॥ केवलंक्षीयतेलोको जलजैस्स्थलजैस्सह ॥ ५३ ॥ नदृश्यतेकचिज्जाता कापिकश्चिन्नकिञ्चन ॥ नचगर्भवतीनारी कचित्क्षोभंस्मरस्यतु ॥ ५४ ॥ ततस्तंव्याधिनाग्रस्तं ज्ञात्वा तत्क्षेत्रसंशयः ॥ आजग्मुस्त्वरितास्सर्वे व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ५५ ॥ कामेश्वरपुरःस्थंच तंदृष्ट्वाकुसुमायुधम् ॥ अत्यन्तविकृताकारं चिन्तयानंमहेश्वरम् ॥ ५६ ॥ ततःप्रोचुस्सुदुःखार्ताःकिमिदंकुसुमायुध ॥ निरुत्साहःसमुत्पन्नः कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ ५७ ॥ ततश्चाधोमुखोजातोलज्जयापरयावृतः ॥ प्रोवाचशापजंसर्वं हारीतस्यविचेष्टितम् ॥ ५८ ॥ ततस्तेविबुधाःप्रोचुः पातकंयत्त्वयाकृतम् ॥ हरस्याराधनात्सर्वं संक्षयंतत्कृतंभवेत् ॥ ५९ ॥ नतेऽस्तिकायजंपापं यतोमुक्त्वाप्रवाचिकम् ॥ अत्रकुण्डेत्वदीयेन्योयःस्नातःश्रद्धयान्वितः ॥ ६० ॥ एनांपापविनिर्मुक्तांशिलांवैमानवस्स.

व महादेव को ध्यान करतेहुये अत्यन्त बिगड़े आकारवाले उस पुष्पायुध (कामदेव)को देखकर ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त बहुत दुःखसे विकल होतेहुये उन्होंने कहा कि हे कुसुम अस्त्रवाले, कामदेव ! यह क्या है जोकि निरुत्साह उत्पन्नहुआ व कुष्ठरोग से अतिआकुलहो ॥५७॥ तदनन्तर बड़ी लज्जासे घिरे व अधोमुख होतेहुये कामदेव, ने शापसे उपजेहुये हारीत के समस्त कर्मको कहा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर देवताओं ने कहा कि तुमने जिस पातकको कियाहै वह कियाहुआ समस्त पातक सदाशिव जी के आराधन से संहार होवै है ॥ ५९ ॥ क्योंकि वाचिक कर्मको छोड़कर तुम्हारे शरीरज पाप नहीं है व शरीर से उठेहुयेभी कर्मके द्वारा कुष्ठरोग से सयुत जो अन्य

पुरुष श्रद्धासंयुत होकर तुम्हारे इस कुण्ड में नहाया हुआ सदैव पापसे छूटीहुई इस शिला को देखैहै ॥ ६०।६१ ॥ वहभी पातक से छूटा हुआ गयेहुये ज्वरवाला होगा व यह सौभाग्यरूप जलाशय संसार में समस्त रोगोंका क्षयकारक प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है और दाद दुष्टरोग अन्य विचर्चिका (खुजली) इस जलाशय में नहाये हुये पुरुष के इस शिलाको देखकर उसी क्षणही चले जाते हैं ऐसा कहकर इस के अनन्तर वे देवता स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! वहां टिके हुये कामदेवने भी उन कामदेवेश्वर का पूजन किया उसके उपरान्त मासमात्र व्यतीत होनेपर ॥६५॥ कामदेव आपही वैसे रूपवाला होगया

दा ॥ कुष्ठव्याधिसमोपेतःकायोत्थेनापिकर्मणा ॥ ६१ ॥ सोपिपापविनिर्मुक्तोभविष्यतिगतज्वरः ॥ एतत्सौभाग्यरूपंच लोकेख्यातञ्जलाशयम् ॥ ६२ ॥ भविष्यतिनसन्देहःसर्वरोगक्षयावहम् ॥ दद्रूणिदुष्टरोगाश्चतथान्याचविचर्चिका ॥६३॥ अत्रस्नातस्ययास्यन्तिदृष्ट्वैनांसद्यएवहि ॥ एवमुक्त्वाथतेदेवाःप्रजग्मुस्त्रिदशालयम् ॥ ६४ ॥ कामदेवोपितत्रस्थस्तस्य पूजामथाभ्यधात् ॥ ततश्चसमतिक्रान्तेमासमात्रेद्विजोत्तमाः ॥ ६५ ॥ तादृग्रूपस्स्वयंजातोयादृगासीत्पुरास्मरः ॥ त तश्चायतनन्तस्यकृत्वाश्रद्धासमन्वितः ॥ ६६ ॥ जगामवाञ्छितन्देशंसृष्ट्यर्थंयत्नमास्थितः ॥ सापिनम्रमुखीतादृक्तेन शप्तातथैवच ॥ ६७ ॥ सञ्जाताखण्डकाकारातेनखण्डशिलास्मृता ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्यात्रयोदश्यान्तथैवच ॥ ६८ ॥ नापवादोभवेत्तस्यपरदारसमुद्भवः ॥ कामिन्याश्चविशेषेणप्राहचैतत्कदापिमाम् ॥ ६९ ॥ कार्त्तिकेयोद्विजश्रेष्ठाः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ तथाकामेश्वरन्देवंकामदेवप्रतिष्ठितम् ॥७० ॥ त्रयोदश्यांसमाराध्यसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ र

जैसा कि पहलेथा तदनन्तर श्रद्धासंयुत होताहुआ उनके मन्दिर को बनाकर ॥ ६६ ॥ यत्नमें स्थित होताहुआ सृष्टि के लिये चाहेहुये देशको चलागया वैसेही उन हारीत से शापित व वैसी नम्रमुखवाली वह पूर्णकलाभी ॥ ६७ ॥ खण्डाकार होगई उस से खण्डशिला कहीगई वैसेही त्रयोदशी तिथि में जो पुरुष भक्तिसे उस खण्डशिला को पूजता है ॥ ६८ ॥ उसको पराई स्त्री से उपजा हुआ अपवाद नहीं होवै है व स्त्री को विशेषकर कलङ्क नहीं होता है यह मुझसे किसी समय स्वामिकार्त्तिकेय जी ने निश्चयकर कहा है हे द्विजोत्तमो ! यह मैंने सत्य कहा है वैसेही कामदेव से थापेहुये कामेश्वर देवको ॥ ६९ । ७० ॥ त्रयोदशी तिथिमें भलीभांति आराधकर मनुष्य

समस्त कामनाओं को पावै है हे द्विजोत्तमो ! रति व प्रीतिसे संयुत कामदेवजी उत्तम मन्दिर में आश्रित होते हुये उस मूर्त्तिमें टिके हैं त्रयोदशी तिथिमें सावधान होता हुआ जो कुरूप या दुष्ट ऐश्वर्य्यवाला पुरुष उन कामेश्वर देव को कुंकुप से उपजे हुये फूलों से भलीभांति पूजता है वह सौभाग्यसे संयुत व रूपवान् होता है ॥ ७१।७२। ७३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सौतियों से घिरी तथा पति से त्यागीहुई जो स्त्री पत्नी आदिकों समेत उन कामेश्वर देव को त्रयोदशी तिथि में केसर व कुंकुम से उपजे हुये पुष्पों से नित्यही उसी प्रकार पूजन करती है वह सौभाग्यवती व पुत्रवती होती है ॥ ७४ । ७५ ॥ व धन धान्यसे समृद्ध तथा दुःख शोकसे रहित व समस्त दोषों से

तिप्रीतिसमायुक्तस्स्थितस्तत्रस्मरस्तथा ॥ ७१ ॥ मूर्तौब्राह्मणशार्दूलाःश्रेष्ठंप्रासादमाश्रितः ॥ विरूपोदुर्भगोयोवात्रयोदश्यांसमाहितः ॥ ७२ ॥ तन्तुकुङ्कुमजैःपुष्पैस्सम्पूजयतिमानवः ॥ ससौभाग्यसमायुक्तोरूपवांश्चप्रजायते ॥ ७३ ॥ यानारीपतिनात्यक्तासपत्नीभिश्चसंवृता॥ तन्देवंसकलत्राद्यन्तथैवपरिपूजयेत् ॥ ७४ ॥ त्रयोदश्यांद्विजश्रेष्ठाःकेशरैःकुङ्कुमोद्भवैः ॥ सासौभाग्यवतीनित्यंजायतेचप्रजावती॥ ७५ ॥ धनधान्यसमृद्धाचदुःखशोकविवर्जिता ॥ दोषैःसर्वैर्विनिर्मुक्ताशंसिताधरणीतले ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रेशिलासौभाग्यकूपिकोत्पत्तिर्नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्तिदीर्घिकातीर्थनायिका ॥ आसीत्पूर्वंद्विजोनामवीरशान्तेतिविश्रुतः ॥ १ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातोवर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ तस्यकन्यासमुत्पन्नाकदाचिल्लक्षणान्विता ॥ २ ॥ अतिदीर्घाप्रमाणेनजनहास्यावि

छुटीहुई वह भूतल में प्रशंसित होती है ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रे शिलासौभाग्यकूपिकोत्पत्तिकथनंनामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा पतिव्रत नारि कहँ दियो सुरन वरदान । इकसौ बत्तिस महँ सोई बरणत बुद्धिनिधान ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उसी क्षेत्र में दीर्घिका याने बावली तीर्थनायिकाहै पुरातन समय वीरशान्त ऐसे नामवाला प्रसिद्ध ब्राह्मण वर्धमान नामक पुरोत्तममें हुआहै जो कि वेदविद्या व्रतमें प्रवीणथा उसके किसीसमय लक्षणोंसे संयुत

कन्या पैदाहुई है ॥ १२ ॥ जो कि प्रमाण से बड़ी लम्बी व मनुष्यों के हास्य को बढ़ानेवालीथी तदनन्तर वैसे रूपवालीभी वह कुमारिका युवावस्था को प्राप्तहुई ॥ ३ ॥
परन्तु शास्त्र के वचन को स्मरण करता हुआ कोई पुरुष उसको स्वीकार न किया क्योंकि अतिसंक्षेप केशोंवाली व अति लम्बी तथा बहुतही छोटी कन्याओं को
कामदेव से मोहित हुआ जो पुरुष ब्याह करता है वह छह महीने के बीचमें निस्सन्देह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ । ५ ॥ इसी कारण समस्त मनुष्य सबओर देखकर व
अतिदीर्घता को कहकर उस कुमारिकाको छोड़ देतेथे ॥ ६ ॥ उसी कारण वैराग्यको प्राप्त होतीहुई उस कन्याने बड़े विकराल तपको किया वैसेही अनेकों कृच्छ्रचान्द्रा-

वर्द्धिनी ॥ ततस्सायौवनंप्राप्तातद्रूपापिकुमारिका ॥ ३ ॥ नकश्चिद्वरयामासशास्त्रवाक्यमनुस्मरन् ॥ अतिसंक्षिप्तकेशी
याअतिदीर्घातिवामनाः ॥ ४ ॥ उद्वाहयतियःकन्याःपुरुषःकाममोहितः ॥ षण्मासाभ्यन्तरेमृत्युंसप्राप्नोतिनसंशयः ॥
५ ॥ एतस्मात्कारणात्सर्वेतान्त्यजन्तिकुमारिकाम् ॥ पुरुषाअतिदीर्घत्वमुक्त्वावीक्ष्यसमन्ततः ॥ ६ ॥ ततोवैराग्यमाप
न्नातपस्तेपेसुदारुणम् ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणितथाचीर्णान्यनेकशः ॥ ७ ॥ पाराकानियथोक्तानितथासान्तपना
निच ॥ व्रतंयद्विद्यतेकिञ्चिन्नियमःसंयमस्तथा ॥ ८ ॥ अन्यच्चापिशुभंकृत्यन्तत्सर्वञ्चतयाकृतम् ॥ एवंतस्याव्रतस्थाया
राजसम्पदुपस्थिता ॥ ९ ॥ तथापितेजसोवृद्धिर्वर्द्धतेतपसःकृतात् ॥ साचनित्यंमहेन्द्रस्यसभांयात्यतिकौतुकात् ॥
१० ॥ देवर्षीणांमतंश्रोतुन्देवतानांविशेषतः ॥ यदासास्वासनन्त्यक्त्वाप्रयातिस्वगृहोन्मुखी ॥ ११ ॥ तदैवाभ्युक्षणञ्च
क्रुस्तत्रशक्रस्यकिङ्कराः ॥ तथान्यदिवसेदृष्टंक्रियमाणन्तयाहितत् ॥ १२ ॥ अभ्युक्षणंस्वकीयेचआसनेद्विजसत्तमाः॥

यणों को चीर्ण (इकट्ठा) किया ॥ ७ ॥ व यथोक्त पाराक, सान्तपन (पंचाग्नि) व जो कुछ व्रत व नियम तथा संयम वर्तमान है ॥ ८ ॥ व अन्यभी जो शुभकार्य्य है वह
सब उस कन्याने किया इसप्रकार व्रतमें टिकीहुई उस कन्याके समीप राजसम्पदा प्राप्तहुई ॥ ९ ॥ तिसपर भी कियेहुये तपसे तेजकी वृद्धि बढ़तीथी और वह अतिकौतुक
से देवर्षियों व विशेषता से देवताओं के सम्मत को सुनने के लिये महेन्द्रकी सभाको नित्यही जातीथी व जब अपने आसन को छोड़कर निज घरके सामने चलती
थी ॥ १० । ११ ॥ उसी समय उस आसन में इन्द्रके सेवकों ने सिंचन किया हे द्विजोत्तमो ! और दिनमें वैसेही अपने आसन पै किये हुये उस प्रोक्षण को उसने देखा

तदनन्तर कोपसे घिरे हुये अङ्गोंवाली उस दीर्घिका कन्याने भौंह को तीन शिखावाली (टेढ़ी) करके तदनन्तर इन्द्र से कहा कि हे शक्र ! मेरे किरा दोष को देखकर तुमने आसन को सींचा ॥ १२ । १३ । १४ ॥ क्या मैंने कहीं पराई स्त्री से किये हुये इस दोषको कियाहै याने नहीं इस लिये हे इन्द्र ! मेरे पातक नहीं है व मैं तुमको बड़े विकराल शापको निरसन्देह दूंगी यह सत्य से अपनी शपथ करतीहूं इन्द्र बोले कि हे शुभदायिके, दीर्घे ! इस विषय में तुम्हारे एकके विना और दोष नही है ॥ १५ । १६ ॥ उसीसे इस आसन का प्रोक्षण किया जाता है जो कि कन्याभी तुम निन्दित ऋतुकाल (रजोधर्म) को प्राप्त हुईहो ॥१७॥ उसीसे तुम दोषता को प्राप्तहो इसमें और

ततःकोपपरीताङ्गीदीर्घिकासाकुमारिका ॥ १३ ॥ त्रिशाखांभृकुटिंकृत्वाततःप्राहपुरन्दरम् ॥ कंदोषंवीक्ष्यमेशक्रप्रोक्षितञ्चासनन्त्वया ॥ १४ ॥ परदारकृतन्दोषंकिंमयैतत्कृतंकचित् ॥ तस्मान्मेपातकंशक्रनास्तिशापंसुदारुणम् ॥१५॥ तवदास्याम्यसन्दिग्धंसत्येनात्मानमालभे ॥ इन्द्रउवाच ॥नतेदीर्घेस्तिदोषोत्रकश्चिदेकंविनाशुभे ॥ १६ ॥ तेनाथक्रियतेचैतदासनस्यनिषेचनम् ॥ त्वंकुमार्य्यपिसंप्राप्ताऋतुकालंविगर्हितम् ॥ १७ ॥ तेनदोषत्वमापन्नानान्यदस्तीहकारणम् ॥ तस्मादद्यापित्वाङ्कश्चिदुद्वाहयतितापसः ॥ १८ ॥ तन्त्वंवरयभर्तारंयेनगच्छसिमेध्यताम् ॥ तच्छ्रुत्वालज्जयायुक्तासातदादीर्घकन्यका ॥ १९ ॥ गत्वाभूमितलेतूर्णंवर्द्धमानेपुरोत्तमे ॥ ततःपूर्वंसमारभ्यचत्वरेषुत्रिकेषुच ॥ २० ॥ उद्धृत्यदक्षिणम्पाणिंभ्रममाणाइतस्ततः ॥ यदिकश्चिद्द्विजोजात्यःकरोतुममसाम्प्रतम् ॥ २१ ॥ पाणिग्रहन्तपोर्द्धस्याच्छ्रेयोयच्छामितस्यच ॥ एवंताम्प्रविजल्पन्तींश्रुत्वालोकादिवानिशम् ॥ २२ ॥ उत्सृष्टेयमिदंमत्वाहास्यञ्चक्रुःपरस्परम् ॥ त

कारण नहीं है इसलिये यदि कोई तपस्वी आजभी तुमको विवाहै ॥१८॥ तो उस पतिको तुम स्वीकार करो जिससे पवित्रताको प्राप्तहोवो उस समय उस वचनको सुनकर लज्जासंयुत होतीहुई दीर्घकन्या ॥ १९ ॥ शीघ्रही भूतल में वर्धमान नामक पुरोत्तम में जाकर तदनन्तर दाहिने हाथको उठाकर पहले चत्वरों व त्रिकोंमें प्रारम्भ करके इधर उधर घूमती हुई बोली कि यदि इस समय कोई कुलीन ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण करै तो उसका आधातप होवै और कल्याण को दूंगी इसप्रकार अहर्निश बकती हुई उसको मनुष्य सुनकर ॥ २० । २१ । २२ ॥ यह छोडीहुई है यह मानकर उन्होंने आपस में हास्य किया तदनन्तर कुछ दिनों के बाद कुष्ठरोगसे ग्रहण किये

हुये ब्राह्मणने बकती हुई कुमारिका को सुना उसके उपरान्त उस अतिदुःखित दीर्घिका कुमारिका को भलीभांति बुलाकर कहा ॥ २३ । २४ ॥ कि यदि सदैवही मेरे समस्त वचनका अनुष्ठान करो तो मैं तुम्हारे पाणिग्रहण को करके विवाहकरूं ॥ २५ ॥ कुमारिका बोली कि हे द्विजनायक ! मैं तुम्हारे वचन को निरसन्देह करूंगी तुम विधिपूर्वक देखेहुये कर्मसे मेरा व्याह करो ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस द्विजने देवता, द्विज व गुरुओं के समीप गृह्यसूक्तमें कहेहुये विधानसे उस कन्याके दाहिने हाथको ग्रहण किया याने व्याहा ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर विवाह में कियेहुये मङ्गलोंवाली उस दीर्घिकाने फिरभी कहा कि हे नाथ ! मुझको जिस आज्ञा को दीजिये

तःकतिपयाहस्यप्रजल्पन्तीचदीर्घिका ॥ २३ ॥ कुष्ठव्याधिगृहीतेनब्राह्मणेनपरिश्रुता ॥ ततःप्रोवाचतान्दीर्घांसमाहूय
सुदुःखिताम् ॥ २४ ॥ अहन्त्वांसुद्वहिष्यामिकृत्वापाणिग्रहन्तव ॥ यदिमद्वचनंसर्वंसर्वदैवानुतिष्ठसि ॥ २५ ॥ कुमारिको
वाच ॥ करिष्यामिनसन्देहस्तववाक्यंद्विजाधिप ॥ कुरुपाणिग्रहंमेत्वंविधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ तत
स्तस्याःकुमार्य्याःसपाणिञ्जग्राहदक्षिणम् ॥ गृह्योक्तेनविधानेनदेवाग्निगुरुसन्निधौ ॥ २७ ॥ अथसाप्राहभूयोपिविवाहकृ
तमङ्गला ॥ आदेशन्देहिमेनाथयङ्करोमितवाधुना ॥ २८ ॥ पतिरुवाच ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुस्नातुमिच्छामिसुन्दरि ॥ सहा
येनत्वदीयेनयदिशक्नोषितत्कुरु ॥ २९ ॥ बाढमित्येवसाप्रोक्तातततस्तूर्णंपतिव्रता ॥ तत्प्रमाणंदृढंकृत्वारम्यंवंशकुटीर
कम् ॥ ३० ॥ मृदुतूलसमायुक्तंततःप्राहनिजम्पतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३१ ॥ एतत्तवकृते
रम्यंकृतंवंशकुटीरकम् ॥ ममनाथारुह्याशुत्वंयेनकृत्वाथमूर्द्धनि ॥ ३२ ॥ नयामिसर्वतीर्थेषुक्षेत्रेषुचशुभेषुच ॥ ततःकुष्ठीप्रहृ

तुम्हारे उस कार्यको इससमय करूं ॥ २८ ॥ पति बोला कि हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारी सहायतासे अरसठि तीर्थोंमें नहाने के लिये इच्छा करताहूं यदि समर्थ हो तो उसको करो ॥ २९ ॥ तदनन्तर हां यही कहकर उस पतिव्रताने शीघ्रही उस पतिके प्रमाणवाले व नम्र रुईसे संयुक्त मनोहर व पुष्ट बांसोंके कुटीरक (निवासस्थान) को बनाकरके जुडेहुये हाथोंवाली होकर प्रसन्न अन्तःकरणसे कहा ॥ ३० । ३१ ॥ कि हे ममनाथ ! तुम्हारे लिये यह मनोहर वंशकुटीर कियागया तुम चढ़ो कि जिससे इसके उपरान्त मस्तक पै धरकर ॥ ३२ ॥ शुभदायक तीर्थों व क्षेत्रोंको लेचलूं तदनन्तर प्रसन्न मन या चित्तवाला व उठेहुये शरीरवाला वह कुष्ठी भूतल से धीरेसे उठकर इसके उपरान्त वंश-

कुटीरक पै बैठगया तदनन्तर उसको माथे पै करके अपने पतिको समस्त तीर्थों में नहलाती हुई सुखपूर्वक सब तीर्थों में घूमतीभई इसके उपरान्त उस कुष्ठभागी ने ज्यों ज्यों तीर्थों में स्नान किया ॥ ३३।३४।३५॥ त्यों त्यों तेज इसके शरीर में बढ़ती को प्राप्तहुआ उसके उपरान्त भूतल में क्रमसे घूमतीहुई वह पतिव्रता सन्ध्यासमय हाटकेश्वर जी से उपजेहुये क्षेत्रमें प्राप्तहुई जो पतिव्रता कि बोझसे घिरी व कुम्हिलाई हुई व विकलतामें प्राप्त और नींदसे अन्धी व श्वास लेतीहुई और पग, पग पै लरखराती थी ॥ ३६।३७॥ इसके अनन्तर उसी स्थान में शूली में आरोपित शरीरवाले व अतिदुःखित माण्डव्य मुनिपुङ्गव टिके थे ॥ ३८॥ इसके उपरान्त रात्रि में भारवाले निज शरीरसे जाती हुई

ष्टात्माशनैरुत्थायभूतलात ॥ ३३ ॥ अथोचोद्धृतदेहस्सस्थितोवंशकुटीरकम् ॥ ततस्तेमस्तकेकृत्वासर्वतीर्थेयथासुख म् ॥ ३४॥ सर्वक्षेत्रेषुबभ्रामस्नापयन्तीनिजम्पतिम् ॥ यथायथासचक्रेथस्नानन्तीर्थेषुकुष्ठभाक् ॥ ३५ ॥ तथातथा स्यगात्रेषुतेजोवृद्धिम्प्रगच्छति ॥ ततःक्रमेणसासाध्वीभ्रममाणामहीतले ॥ ३६ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेसम्प्राप्तारजनीमु खे ॥ क्रान्तावैक्लव्यमापन्नाभाराक्रान्तापतिव्रता ॥ निद्रान्धानिःश्वसन्तीचप्रस्खलन्तीपदेपदे ॥ ३७॥ अथतत्रप्रदेशेतुमा ण्डव्योमुनिपुङ्गवः ॥ शूलारोपितगात्रस्तुसन्तिष्ठेदतिदुःखितः ॥ ३८ ॥ अथसातंसमासाद्यशूलंरात्रौपतिव्रता ॥ निजगा त्रेणभारेणगच्छमानामहासती ॥ ३९ ॥ तयासञ्चालितस्सोथमाण्डव्योमुनिपुङ्गवः ॥ ४० ॥ परांपीडांसमासाद्यततःप्रा हसुदुःखितः ॥ केनेदम्पाप्मनाशल्यंममान्तःपरिचालितम् ॥ ४१ ॥ येनाहंदुःखयुक्तोपिभूयोदुःखात्ययीकृतः ॥ दीर्घि कोवाच ॥ नमयात्वंमहाभागनिद्रोपहतयादृशा ॥ ४२ ॥ दृष्टस्तेनपरिस्पृष्टोह्यस्पृश्यःपापकृत्तमः ॥ नत्वयासदृश

महासती व पतिव्रता वह उस शूलीको प्राप्तहोकर ॥३९॥ इसके अनन्तर उसने उन माण्डव्य मुनिनायकको चलादिया ॥४०॥ तदनन्तर परमपीडाको पाकर अतिदुःखित होतेहुये माण्डव्य ने कहा कि किस पापीने इस गांसीको मेरे भीतर सब ओर चला दिया ॥ ४१ ॥ कि जिस से दुःखसंयुत भी मैं फिर दुःख से क्लेशित कियागया दीर्घि- का बोली कि हे महाभाग! नींदसे नष्ट दृष्टिके कारण मैंने तुमको न देखा उसी से अत्यन्त पापकारी व न छूने योग्य तुम मुझसे स्पर्श कियेगये हो भूतल में तुम्हारे

समान और पापात्मा नहीं है ॥ ४२ । ४३ ॥ क्योंकि मस्तक में वेधित शूलीवाले भी जो तुम मृत्युको नहीं प्राप्त होते हो हे मूढ़ ! पतिव्रता मैं मस्तक से धारेहुये विकल अङ्गवाले प्यारे पतिको तीर्थयात्रा के लिये बहती (लेचलती) हूं उसी मुझको मनुज से उत्पन्न व मूढ़बुद्धिवाले होतेहुये तुम विशेषतासे न जानकर निठुरतापूर्वक पराभव को किस कारण देतेहो माण्डव्य बोले कि हे निठुरे ! यदि प्रातःकाल तुम्हारा यह पति जीवै तो मैं जैसा तुमसे कहागया वैसाही पापात्मा व मूढ़बुद्धिवाला व समस्त देह-धारियों के न छूने योग्य हूं ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ जिस से प्राणोंको अन्त करनेवाली कठोर पीड़ा मेरे उत्पन्न कीगई उसी से मुझसे शापित तुम्हारा प्रिय सूर्य्यकी

श्चान्यःपापात्मास्तिधरातले ॥ ४३ ॥ शिरस्युद्धृतशूलोपियोमृत्युंनाधिगच्छसि ॥ अहंपतिव्रतामूढवहामिशिरसाधृतम् ॥ ४४ ॥ तीर्थयात्राकृतेकान्तंविकलाङ्गंसुवल्लभम् ॥ कस्मात्तस्यास्तिरस्कारंममयच्छसिनिष्ठुरम् ॥ ४५ ॥ अज्ञात्वामूढबुद्धिस्सन्विशेषान्मानुषोद्भवः ॥ माण्डव्यउवाच ॥ अहंयादृक्त्वयाप्रोक्तस्तादृगेवनसंशयः ॥ ४६ ॥ पापात्मामूढबुद्धिश्चअस्पृश्यस्सर्वदेहिनाम् ॥ यदिप्रातस्तवायंचपतिर्जीवतिनिष्ठुरे ॥ ४७ ॥ येनमेजनितापीडाप्राणान्तकरणीदृढा ॥ तस्मादेवतवाभीष्टस्स्पृष्टस्सूर्य्यस्यरश्मिभिः ॥ ४८ ॥ मयाशप्तोपरित्यागंजीवितस्यकरिष्यति ॥ दीर्घिकोवाच ॥ यद्येवमरणंपत्युःप्रभातेसम्भविष्यति ॥ मदीयस्यततःप्रातर्नोदिष्यतिचभास्करः ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वाततस्साथनिषसादधरातले ॥ भूमौतद्भर्तृसंयुक्तंमुक्त्वावंशकुटीरकम् ॥ ५० ॥ अथतांप्राहकुष्ठीसपिपासासंप्रवर्तते ॥ तस्मात्तोयंसमानीहिपानार्हमतिशीतलम् ॥५१॥ तदैवसासमाकर्ण्यभर्तुरादेशमुत्सुका ॥ इतस्ततश्चबभ्रामजलार्थंनप्रपश्यति ॥५२॥ नचानि

किरणों से छुवाहुआ जीवको त्याग न करैगा दीर्घिका बोली कि यदि प्रभातही में मेरे पतिका मरण होवैगा तो प्रातःकाल सूर्य्यनारायण जी न उदय होंगे ॥ ४८ । ४९ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर पतिसंयुत बांस के कुटीरको भूमि में धरकर इसके अनन्तर भूतल में बैठगई ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर उस कोढ़ी ने उस पतिव्रता से कहा कि प्यास लगी है इसलिये पीनेके योग्य अतिशीतल जलको लावो ॥ ५१ ॥ पतिकी आज्ञाको सुनकर उसी समय उस उत्कण्ठिता ने जलके लिये इधर उधर

भ्रमण किया परन्तु न देखा ॥ ५२ ॥ और हृदय में शापके दोषसे उठे हुये डरको विस्तारती हुई वह दीर्घिका जङ्गल में उस प्रकार के पतिको छोड़कर दूर नहीं निकली ॥ ५३ ॥ इसी समय में माण्डव्य मुनिके देखते हुये पादताड़नके बाद स्वादिष्ठ व निर्मल जल निकला ॥ ५४ ॥ तदनन्तर परिश्रम से पीड़ित उस पतिको उसी जलमें नहवाया ॥ ५५ ॥ फिर पीछेको जल पिलाकर आपभी नहाकर जल को पिया इसी अवसर में पतिव्रतके किये हुये भयसे सूर्य्यनारायणजी न उदय हुये उसी कारण बड़ा कालात्यय उत्पन्न हुआ याने बहुत समय बीतगया इसके अनन्तर रात्रिको बड़ीभारी देखकर जो कामीजन थे ॥ ५६ । ५७ ॥ वे सब प्रसन्नता को प्राप्त

र्यातिदूरंसात्यक्त्वारण्येतथाविधम् ॥ भर्तारंशापदोषोत्थंभयंहृदिवितन्वती ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतोयंपादाघाताद नन्तरम् ॥ निष्क्रान्तंनिर्मलंस्वादुमाण्डव्यस्यचपश्यतः ॥ ५४ ॥ ततस्तंस्नापयामासतस्मिंस्तोयेश्रमातुरम् ॥ ५५ ॥ पा ययित्वापुनःपश्चात्स्वयंस्नात्वापपौजलम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेसूर्य्यःपतिव्रतकृताद्भयात् ॥ ५६ ॥ नाभ्युदेतिसमुत्पन्नस्त तःकालात्ययोमहान् ॥ अथरात्रिंसमालोक्यदीर्घांयेकामुकाजनाः ॥ ५७ ॥ तेसर्वेतुष्टिमापन्नास्तथाचकुलटास्त्रियः ॥ कौशिकाराक्षसाश्चापिचौराजाराश्चयेनराः ॥ ५८ ॥ तेसर्वेप्रोचुस्संहृष्टास्समालिङ्ग्यपरस्परम् ॥ अद्यास्माकंविधिस्तु ष्टोभगवान्मन्मथस्तथा ॥ ५९ ॥ येनदीर्घाकृतारात्रिर्नाशंनीतश्चभास्करः ॥ येपुनर्ब्राह्मणाश्शान्तायज्ञकर्म्मसमुद्य ताः ॥ ६० ॥ तेसर्वेदुःखमापन्नाविनासूर्य्योदयंकृताः ॥ नकश्चिद्यजनञ्चक्रेयाजनंनचसद्द्विजाः ॥ ६१ ॥ नश्राद्धंनचसङ्क ल्पंनस्वाध्यायंकथञ्चन ॥ नस्नानंनचदानञ्चलोकयात्रांविशेषतः ॥ ६२ ॥ व्यवहारोनकृत्यञ्चकिञ्चिद्धर्मसमुद्भवम् ॥

हुये और वैसेही कुलटा स्त्रियां व घुघुवा व राक्षस भी व चोर और जे जार (परस्त्रीरत) पुरुष थे ॥ ५८ ॥ वे सब आपस में लिपटकर प्रसन्न होतेहुये बोले कि आज हम लोगों के ऊपर भगवान् ब्रह्मा और कामदेवजी प्रसन्नहैं ॥ ५९ ॥ कि जिनने रात्रिको दीर्घ (बड़ी) किया व सूर्य्य को नाश में प्राप्त किया व फिर जो यज्ञकर्म में भली भांति उद्यत व शान्तचित्तवाले ब्राह्मण थे ॥ ६० ॥ वे सब सूर्य्योदय के विना दुःख को प्राप्त किये गये हे उत्तम ब्राह्मणो! किसीने यजन (यज्ञकरना) व याजन (यज्ञकराना) नहीं किया ॥ ६१ ॥ वनश्राद्ध न संकल्प न किसीप्रकार वेदपाठ व न स्नान, न दान व विशेषतासे लोकयात्राको न किया ॥ ६२ ॥ और न व्यवहार, न

धर्म से उपजे हुये किसी कार्य्य को किया इसी अवसर में जिनमें इन्द्र अग्रगामी हैं वे सब देवता यज्ञभाग से रहित होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त हुये तदनन्तर सूर्य्य नारायण के निकट प्राप्त होकर दुःखसंयुत होते हुये उन्हों ने कहा ॥ ६३ । ६४ ॥ कि हे दिवाकर, देव ! तुम किस लिये उदय नहीं करते हो तुम्हारे विना यह समस्त संसार विकलता को प्राप्त है ॥ ६५ ॥ तुम सब मनुष्यों के हित के लिये पहले की नाईं उदय होवो कि जिससे भूमिमें अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्त्तमान होवैं ॥ ६६ ॥ सूर्य्यनारायण बोले कि पतिव्रताकी आज्ञा से मैंने उदय को त्याग कियाहै इस लिये सब देवता जाकर मेरे लिये उससे कहैं ॥ ६७ ॥ जिससे उसके वचनको प्राप्त होकर

एतस्मिन्नन्तरेदेवास्सर्वेशक्रपुरोगमाः ॥ ६३ ॥ परंदुःखंसमापन्नायज्ञभागविवर्जिताः ॥ ततोभास्वन्तमासाद्यऊचुर्दुःखसमन्विताः ॥ ६४ ॥ कस्मान्नोद्गमनन्देवप्रकरोषिदिवाकर ॥ एतत्त्वयाविनासर्वंजगद्व्याकुलताङ्गतम् ॥ ६५ ॥ सर्वलोकहितार्थायत्वमुद्गच्छयथापुरा ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञावर्तन्तेयेनभूतले ॥ ६६ ॥ सूर्य्यउवाच ॥ पतिव्रतासमादेशात्त्यक्तश्चाभ्युदयोमया ॥ तस्माद्गत्वासुराःस्सर्वेतांवदन्तुकृतेमम ॥ ६७ ॥ येनतद्वाक्यमासाद्यप्रवर्तामियथासुखम् ॥ अन्यथामांशपेत्क्रुद्धानूनंसाहिपतिव्रता ॥ ६८ ॥ एवंसातपसायुक्ताप्रोत्कृष्टेनसुरोत्तमाः ॥ पतिव्रतात्वमाधत्तेतथान्यदपरंमहत् ॥ ६९ ॥ कस्तस्यावचनंशक्तःकर्तुञ्चैवमतोन्यथा ॥ एतस्मात्कारणाद्भीतोनोद्गच्छामिकथञ्चन ॥ ७० ॥ शतक्रतुसहस्रेणयजेत्तत्प्राप्नुयात्फलम् ॥ पतिव्रतात्वमापन्नायास्त्रीविन्दतिकेवलम् ॥ ७१ ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वेगत्वात्क्षेत्रमनुत्तमम् ॥ प्रोचुस्तांदीर्घिकांवाक्यैर्मृदुभिःपुरतःस्थिताः ॥ ७२ ॥ त्वयापतिव्रतेसूर्य्योयन्निषिद्धोनतत्कृतम् ॥ शुभंयन्नततो

मैं सुखपूर्वक वर्तमान होऊं अन्यथा क्रोधित होती हुई वह पतिव्रता मुझको निश्चय कर शाप देवैगी ॥ ६८ ॥ हे सुरोत्तमो ! बड़े उत्कृष्ट (भारी) तपसे संयुत वह पतिव्रता ऐसे पतिव्रत धर्म को व अन्य बड़े भारी तेजको धारण किये है ॥ ६९ ॥ उस पतिव्रता के मतके अन्यथा वचन करने के लिये कौन समर्थ है इसी कारण डरा हुआ मैं किसी प्रकार उदय नहीं होताहूं ॥ ७० ॥ हजार अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन करै व जो फल प्राप्त होवै है उसी फलको जो स्त्री केवल पतिव्रतधर्म को प्राप्त है वह पाती है ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उन सब देवताओंने अति उत्तम क्षेत्रको जाकर अगाड़ी खड़े होते हुये उस दीर्घिका से नम्रवचनों से कहा ॥ ७२ ॥ कि हे पतिव्रते ! तुमने

जो सूर्य्य को निषेध किया वह शुभ नहीं किया क्योंकि उसी कारण भूतल में शोभन क्रियायें नहीं होती हैं ॥ ७३ ॥ इसलिये हे प्राज्ञे, शुभदायिके ! तुम्हारे वचन से सूर्य्यनारायण जी उदय होवैं कि जिससे विशेषकर यज्ञकी क्रियायें वर्तमान होती हैं ॥ ७४ ॥ दीर्घिका बोली कि इस अतिपापी व दुष्ट माण्डव्य मुनिने विना कार्य्य के भी मेरे प्रिय (पति) को शाप दिया है व पतिके विना सूर्य्य के उदय से व यज्ञों से व अन्य श्राद्धदानादिक कार्य्यों के होने से मेरा कुछ कार्य्य नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर बहुत देरतक दुःखित होते हुये वे सब देवता आपस में देखकर विनयसंयुत होते हुये उस दीर्घिका से बोले ॥ ७७ ॥ हे कल्याण-

हेतोर्भूतलेशोभनाःक्रियाः ॥७३॥ तस्मादुद्गच्छतुप्राज्ञेत्वद्वाक्यात्तीक्ष्णदीधितिः ॥ यज्ञक्रियाविशेषेणप्रवर्तन्तेयतश्शुभे ॥ ७४ ॥ दीर्घिकोवाच ॥ मुनिनानेनदुष्टेनमाण्डव्येनसुपाप्मना ॥ कार्य्यंविनापिमेशप्तःप्रियोवैभास्करस्यच ॥७५॥ उदयेननमेयज्ञैःकार्य्यंकिञ्चिन्नचापरैः ॥ श्राद्धदानादिकैःकृत्यैस्संजातैर्दयितंविना ॥ ७६ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वेसमालोक्यपरस्परम् ॥ चिरकालंसुदुःखार्तास्तामूचुर्विनयान्विताः ॥ ७७ ॥ उद्गच्छतुरविर्भद्रेतवायंदयितःपतिः ॥ प्रयातुनिधनंसत्योभूयादेषमुनीश्वरः ॥ ७८॥ तंपुनर्जीवयिष्यामःपतिंवयमपिद्रुतम् ॥ मृत्युमार्गमनुप्राप्तंत्वत्कृतेपतिव्रते ॥ ७९ ॥ पञ्चविंशतिवर्षीयंकामदेवमिवापरम्॥त्वन्द्रक्ष्यसिसुदीप्ताङ्गंसर्वलक्षणलाञ्छितम् ॥ ८० ॥ भूत्वापञ्चदशाब्दीयापद्मपत्रायतेक्षणा ॥ मर्त्यलोकेसुखंसम्यक्स्वेच्छयासाधयिष्यसि ॥ ८१ ॥ एषोपिमुनिशार्दूलोविपाप्मासांप्रतंशुभे ॥ शूलभेदेननिर्मुक्तस्सुखभागीभवत्वयम् ॥ ८२ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोक्तेतयासद्विजसत्तमाः ॥ उद्गतो

कारिणि ! सूर्य्यनारायण उदय होवैं व तुम्हारा यह प्रिय पति मृत्युको प्राप्तहोवै और यह मुनिनायक माडण्व्यजी सत्य होवैं ॥ ७८ ॥ हे पतिप्रिये ! मृत्युमार्ग को प्राप्त हुये तुम्हारे उस पतिको तुम्हारे लिये फिर हमलोग भी शीघ्रही जियावैंगे ॥ ७९ ॥ व प्रकाशित अङ्गोंवाले, समस्त लक्षणों से चिह्नित व पचीस वर्षवाले तथा दूसरे कामदेवके समान पतिको तुम देखोगी ॥ ८० ॥ व कमलदल के समान चौड़े नेत्रोंवाली व पन्द्रह वर्षवाली होकर तुम मृत्युलोकमें अपनी इच्छासे सुखको भलीभांति साधन करोगी ॥ ८१ ॥ हे शुभदायिके ! पापरहित यह मुनिपुङ्गव माण्डव्य भी शूली भेदन से छूटकर इस समय यह सुखभागी होवैगा ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले कि

हे द्विजोत्तमो ! उस दीर्घिका के हां यही कहनेपर उसी क्षणही भगवान् सूर्य्यनारायणजी वेग से उदय हुये ॥ ८३ ॥ तदनन्तर सूर्य्यकी किरणों से भलीभांति छुवाहुआ वह कुष्ठभागी मरगया व देवताओं के हाथोंसे छुवाहुआ फिर भलीभांति उठ पड़ा ॥ ८४ ॥ व पचीस वर्षवाले कामदेव के समान वह सब पूर्वजाति को स्मरण करता हुआ हर्षसंयुत होगया ॥ ८५ ॥ व शिवदेव से आपही सब ओर छुईहुई वह दीर्घिका भी युवावस्था से संयुत व उत्तम लक्षणों से चिह्नित होगई ॥ ८६ ॥ व कमलदल लोचनोंवाली, मनोहारिणी व चन्द्रमा के बिम्बके समान मुखवाली और मध्य (कटि) में पतली व अतिगौर अङ्गोंवाली तथा पुष्ट व ऊंचे स्तनोंवाली होगई ॥ ८७ ॥

भगवान्सूर्य्यस्तत्क्षणादेववेगतः ॥ ८३ ॥ ततस्सूर्यांशुसंस्पृष्टस्संमृतश्चसकुष्ठभाक् ॥ विबुधानांकरैस्स्पृष्टः पुनरेवसमुत्थितः ॥ ८४ ॥ पञ्चविंशतिवर्षीयकामदेवइवापरः ॥ संस्मरन्पूर्विकांजातिंसर्वांहर्षसमन्वितः ॥ ८५ ॥ दीर्घिकापिपरिस्पृष्टास्वयंदेवेनशम्भुना ॥ संजातायौवनोपेतादिव्यलक्षणलक्षिता ॥ ८६ ॥ पद्मपत्रेक्षणारम्याचन्द्रबिम्बसमानना ॥ मध्येक्षामासुगौराङ्गीपीनोन्नतपयोधरा ॥ ८७ ॥ ततस्तंमुनिशार्दूलंशूलाग्रादवतार्य्यच ॥ प्रोचुश्चविबुधश्रेष्ठास्सादरंहर्षसंयुताः ॥ ८८ ॥ एतत्सत्यंकृतंवाक्यंमुनेतवयथोदितम् ॥ मृतोपिब्राह्मणःकुष्ठीसंस्पृष्टोरविरश्मिभिः ॥ ८९ ॥ पुनरुत्थापितोस्माभिःकृतश्चतरुणःपुनः ॥ अनयाभार्य्ययासार्द्धंतस्मात्त्वंस्वाश्रमंव्रज ॥ ९० ॥ नास्माकंदर्शनंव्यर्थंकथञ्चिदपिजायते ॥ तस्मात्प्रार्थययच्चित्तेतवनित्यंसमाश्रितम् ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्येपतिव्रतावरलाभोनामद्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर उन मुनिपुङ्गव (माण्डव्य) को शूली के अग्रभाग से उतारकर आनन्द संयुत होते हुये देवतोत्तमों ने आदर समेत कहा ॥ ८८ ॥ कि हे मुने ! तुम्हारा यह यथोदित वचन सत्य कियागया व सूर्य्यकी किरणों से भलीभांति छुवा व मरा हुआभी कुष्ठी ब्राह्मण हमलोगों से फिर उठाया गया व इस स्त्री समेत फिर युवा कियागया इसलिये तुम अपने आश्रम को जावो ॥ ८९।९० ॥ और हमलोगोंका दर्शन किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं होता है इसलिये तुम्हारे चित्तमें जो नित्यही भलीभांति टिकाहो उसको मांगो ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपतिव्रतावरलाभोनामद्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥

दो० । कौन पतिव्रत नारि जिमि तीर्थ दीर्घिका नाम । इकसौ तैंतीसवें महँ सोइ चरित अभिराम ॥ माण्डव्यजी बोले कि हे देवतोत्तमो ! तुम लोगों से उपजेहुये वर-
दान को मैं ग्रहण करूंगा परन्तु मेरे एक निर्णय को यमराज कहैं ॥ १ ॥ हे सुरोत्तमो ! संसार में समस्त प्राणियों से कियो हुआ शुभ अशुभ कर्म समीप में टिकता है न
कि और कर्म यह सत्यहै ॥ २ ॥ मैंने इस लोक व परलोकमें भी क्या पातक किया है कि जिससे ऐसी पीड़ा प्राप्तहुई और किसी प्रकार मृत्यु न हुई ॥ ३ ॥ यमराज बोले
कि हे विप्र ! अन्य शरीर में शिशुता के वर्तमान होनेपर तुमने पृथ्वी में अधिक जन्तुओं के शरीर में शूलाग्र से वेधन किया है ॥ ४ ॥ हे द्विज ! और कुछेकही थोड़े

माण्डव्यउवाच ॥ गृहीष्यामिसुरश्रेष्ठावरंयुष्मत्समुद्भवम् ॥ परंमेनिर्णयञ्चैकंधर्म्मराजःप्रवक्ष्यति ॥ १ ॥ सर्वेषांप्रा
णिनांलोकेकृतङ्कर्म्मशुभाशुभम् ॥ उपतिष्ठतिनान्यत्तुसत्यमेतत्सुरोत्तमाः ॥ २ ॥ मयाऽमुत्रपरेचापिकिंकृतम्पातकञ्चय
त् ॥ ईदृशीवेदनाप्राप्तानचमृत्युःकथञ्चन ॥३॥ यमउवाच ॥ अन्यदेहेत्वयाविप्रबालभावेप्रवर्तिते ॥ शूलाग्रेणसुतीक्ष्णेन
कायेविद्धोधिकःक्षितौ ॥४॥ नान्यत्कृतमपिस्वल्पम्पातकङ्किञ्चिदेवहि ॥ एतस्मात्कारणादेषाव्यवस्थासेविताद्विज ॥५॥
सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभृशंक्रोधसमन्वितः ॥ ततस्तम्प्राहमाण्डव्योधर्म्मराजम्पुरःस्थितम् ॥ ६ ॥ अस्यस्व
ल्पापराधस्ययस्माद्भूयान्विनिग्रहः ॥ कृतस्त्वयासुदुर्बुद्धेतस्माच्छापंगृहाणमे ॥ ७ ॥ त्वम्प्राप्यमानुषन्देहंशूद्रयोनौ
व्यवस्थितः ॥ जातिक्षयकृतन्दुःखम्प्रभूतंसेवयिष्यसि ॥८॥ तथाकृताममैषाचव्यवस्थासर्वदेहिनाम् ॥ अष्टमाद्वत्सराद्ध

भी पापको तुमने नहीं किया है इसी कारण यह दशा सेवित हुई ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन धर्मराज के उस वचन को सुनकर अतिक्रोधसंयुत होतेहुये
माण्डव्यजी ने अगाड़ी खड़े हुये उन धर्मराज से कहा ॥ ६ ॥ कि हे दुष्टबुद्धे ! जिस लिये तुमने थोड़े अपराधका बड़ा दण्ड किया उसी कारण मेरे शापको ग्रहण करो
७ ॥ कि मनुष्य के शरीरको पाकर शूद्रयोनि में टिकेहुये तुम जातिके संहारसे किये हुये बहुत दुःख को सेवन करोगे ॥ ८ ॥ वैसेही हे देवताओ ! मैंने समस्त शरीर-
धारियों की यह व्यवस्था किया कि आठ वर्ष के ऊपर प्राणी व अन्य पुरुषभी निन्दित कर्मसे ग्रहण किया जावैगा हे ब्राह्मणो ! धर्मराज से ऐसा कहकर तदनन्तर

रोगसे छूटेहुये उन माण्डव्यजी ने चाही हुई दिशाके सामने प्रस्थान किया ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर धर्मराज के लिये उस प्रकार के शापको सुनकर व प्रस्थान किये हुये उन माण्डव्य को देखकर आकुल होते हुये समस्त देवताओं ने कहा ॥ ११ ॥ देवता बोले कि हे भगवन् ! केवल न्याय में लगे हुये धर्मराज को तुम शाप से शूद्र करने के लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हो ॥ १२ ॥ इसलिये हे द्विज ! हमलोगोंके वचन से तुम इस धर्मराज के ऊपर प्रसन्नता करो व इसी क्षण वरदान को मांगो ॥ १३ ॥ माण्डव्यजी बोले कि हे सुरोत्तमो ! जो मुझसे कहीगई है वह वाणी झूंठ न होवैगी ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त भी यह धर्मराज शूद्रयोनि में जावैगा परन्तु

द्वकर्म्मणागर्हितेनच ॥ ९ ॥ प्रग्रहीष्यतिवैजन्तुःपुरुषोन्योपिदेवताः ॥ एवमुक्त्वासमाण्डव्योधर्म्मराजंततःपरम् ॥ प्रस्थितोरोगनिर्मुक्तोवाञ्छिताशाम्प्रतिद्विजाः ॥ १० ॥ अथतंप्रस्थितन्दृष्ट्वाप्रोचुस्सर्वेदिवौकसः ॥ धर्म्मराजकृतेव्यग्राः श्रुत्वाशापन्तथाविधम् ॥ ११ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवन्न्यायशक्तस्यधर्म्मराजस्यकेवलम् ॥ नत्वमर्हसिशापेनशूद्रंकर्तुं कथञ्चन ॥ १२ ॥ प्रसादंकुरुतस्मात्त्वमस्यधर्म्मपतेर्द्विज ॥ अस्माकंवचनात्सद्यःप्रार्थयस्वतथावरम् ॥ १३ ॥ माण्डव्यउवाच ॥ नमृषाजायतेवाणीयामयोक्तासुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ अथापिधर्म्मराजोयंशूद्रयोनौप्रयास्यति ॥ परमेवास्य संज्ञानंतस्यांयोनौभविष्यति ॥ १५ ॥ सम्प्राप्स्यतिचभूयोपिधर्म्मराजमनुत्तमम् ॥ आराधयतुचाव्यग्रःक्षेत्रेत्रैवत्रिलोचनम् ॥ १६ ॥ प्रसादात्तस्यदेवस्यशीघ्रंमुक्तिमवाप्स्यति ॥ तथादेयोवरोमह्यंभवद्भिर्यदिस्वर्गदा ॥ तदेषाशूलिकामह्यं स्पर्शाद्भूयात्सुधर्म्मदा ॥ १७ ॥ देवाऊचुः ॥ एतांयःप्रातरुत्थायस्पर्शयिष्यतिशूलिकाम् ॥ पातकात्सविनिर्मुक्तइहलो

उस योनिमें इसको भलीभांति ज्ञान होवैगा ॥ १५ ॥ व फिर भी अत्युत्तम धर्मराज को भलीभांति प्राप्त होवैगा व सावधान होते हुये इसी क्षेत्रमें त्रिनयन (शिव) जी का आराधन करै ॥ १६ ॥ क्योंकि उन सदाशिवजी की प्रसन्नता से शीघ्रही मोक्ष को पावैगा व यदि मेरे लिये आप लोगोंसे वरदान देने योग्यहै तो यह मेरी शूलिका स्पर्श से स्वर्गदायक व उत्तम धर्मदायक होवै ॥ १७ ॥ देवता बोले कि प्रातःकाल उठकर जो पुरुष इस शूलीको स्पर्श करैगा वह इस संसार में पातकसे छुटाहुआ

होवैगा ॥ १८ ॥ इन्द्र अग्रगामीवाले उन देवताओं ने उन माण्डव्य मुनिसे ऐसा कहकर तदनन्तर पति समेत उस पतिव्रता से आदर सहित कहा ॥ १९ ॥ कि हे उत्तम वर्णवाली ! जो तुम्हारे चित्तमें सदैव टिकाहो उस प्रिय वरदान को तुमभी हमलोगों से मांगो इस विषय में हमलोगोंको अदेय (न देने योग्य) नहीं है ॥ २० ॥ पतिव्रता बोली कि हे सुरेश्वरो ! इस स्थान में मुझसे किया हुआ जो यह गढ़ा है वह मेरे नामसे त्रिलोक में दीर्घिका ऐसा प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ २१ ॥ देवता बोले कि आजसे लगाकर लोकमें यह गढ़ा तुम्हारे आयसु से त्रिलोकमें दीर्घिका ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २२ ॥ जे अपुत्र नर श्रद्धा से सहित होतेहुये इस दीर्घिका (बावली)

केभविष्यति ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वामुनिंतन्तेदेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ततस्तांसादरम्प्रोचुस्सहभर्त्रांपतिव्रताम् ॥ १९ ॥ त्वम
पिप्रार्थयाभीष्टमस्मत्तोवरवर्णिनि ॥ यत्तेचित्तेस्थितंनित्यंनादेयंविद्यतेत्रनः ॥ २० ॥ पतिव्रतोवाच ॥ योयंमयाकृतोगर्त
स्स्थानेत्रत्रिदशेश्वराः ॥ नाम्नाख्यातिंममायातुदीर्घिकेतिजगत्त्रये ॥ २१ ॥ देवाऊचुः ॥ अद्यप्रभृतिलोकेचगर्तोयंतव
शासनात् ॥ दीर्घिकेतिसुविख्यातोभविष्यतिजगत्त्रये ॥ २२ ॥ येस्यांस्नानंकरिष्यन्तिश्रद्धयासहितानराः ॥ अपुत्रा
स्तेभविष्यन्तिसपुत्रावंशवर्द्धनाः ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वाचतांदेवाजग्मुस्स्वर्गंद्विजोत्तमाः ॥ पतिव्रतापितेनैवसहकान्तेनसुन्द
री ॥ २४ ॥ सेवयामासकल्याणीस्मरसौख्यमनुत्तमम् ॥ पर्वतेषुचरम्येषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ २५ ॥ उद्यानेषुविचित्रेषु
वनेषूपवनेषुच ॥ ततोवयसिसम्प्राप्तेपश्चिमेकालपर्य्ययात् ॥ २६ ॥ तदेवात्मीयतीर्थन्तुसेवयामाससादरम् ॥ ततोदेहंप
रित्यक्त्वास्वकान्तंवीक्ष्यतंमृतम् ॥ २७ ॥ सहतेनजगामाथब्रह्मलोकंपतिव्रता ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंदीर्घिकाख्यानमुत्त

में स्नान करैंगे वे सपुत्र व वंशके बढ़ानेहारे होवैंगे ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस पतिव्रता से ऐसा कहकर देवता स्वर्गको चलेगये और कल्याणी व सुन्दरी पतिव्रता ने भी उसी पति समेत पर्वतों व मनोहर नदियों के किनारों में व उद्यानों (बगीचों) तथा विचित्र वनों व उपवनों में अतिउत्तम कामदेव के सुखको सेवन किया तदनन्तर जब समय के व्यतीत होने से पिछली अवस्था भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २४ । २५ । २६ ॥ उसी समय आदर समेत अपने तीर्थ को सेवन किया तदनन्तर उस अपने पतिको मरेहुये देखकरके देहको छोड़कर अनन्तर पतिव्रता उसी के साथ ब्रह्मलोक को चली गई इस उत्तम समस्त दीर्घिका के आख्यान को तुम लोगों से

वर्णन किया ॥ २७।२८ ॥ कि जिसके भलीभाति सुननेही से मनुष्य पातक से छूट जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविर
चितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येदीर्घिकामाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १३२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । जिमि मुनीश माण्डव्यजी पायो शूलि कलेश । इकसौचौंतीसवें महँ कहत सोइ उपदेश ॥ ऋषिलोग बोले कि बड़े भारी तपस्वी इन माण्डव्य मुनिपुङ्गवको
किस कारण और किसने शूली के अग्रभाग में स्थापित किया था यह हम लोगों से कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय परमश्रद्धासे संयुत व तीर्थयात्रा को

ममू ॥ २८॥ यस्यसंश्रवणादेवनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्व
रमाहात्म्येदीर्घिकामाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥ * ॥
ऋषयऊचुः ॥ केनासौमुनिशार्दूलोमाण्डव्यस्सुमहातपाः ॥ शूलाग्रेस्थापितःकेनकारणेनचनोवद ॥ १ ॥ सूतउ
वाच ॥ समाण्डव्योमुनिःपूर्वंतीर्थयात्रांसमाचरन् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेसमायातःश्रद्धयापरयायुतः ॥२॥ विश्वामित्रीयमासा
द्यतत्तीर्थंपावनंस्मृतम् ॥ पितॄणान्तर्प्पणञ्चक्रेभास्करम्प्रतिसव्रती ॥ ३ ॥ जपन्विभ्राडितिश्रेयःसूक्तंभास्करवल्लभम् ॥
एतस्मिन्नन्तरेचौरोलोप्त्रमावापकस्यचित् ॥४॥ कोपितत्रसमायातःपृष्ठलग्नजनोद्विजाः ॥ ततश्चौरोपितंदृष्ट्वामौनस्थं
मुनिसत्तमम् ॥ ५ ॥ लोप्त्रंमुक्त्वातदग्रेथप्रविवेशगुहान्तरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्तेजनालोप्त्रहेतवे ॥ ६॥ दृष्ट्वालोप्त्रं
तदग्रस्थंतमूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥ मार्गेणानेनचायातोलोप्त्रहस्तोमलिम्लुचः ॥७॥ ब्रूहिशीघ्रंमहाभागकेनमार्गेणनिर्गतः ॥

करतेहुये वे माण्डव्यमुनि इस क्षेत्रमें भलीभांति आये ॥ २ ॥ व नियमवाले उन माण्डव्य ने पवित्रकारक कहेहुये उस भास्कर तीर्थ को प्राप्तहोकर पितरों का तर्पण
किया ॥ ३ ॥ वे मुनि बिभ्राट् ऐसे सूर्यप्रिय श्रेयः सूक्त को जप कररहेथे इसी अवसर में चोर ने किसी के धनको पाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! पीछे लगाहुआ
कोई मनुष्य भी वहां आया व चोर भी मौनमें टिकेहुये मुनिनाथ (माण्डव्य) को देखकर ॥ ५ ॥ उनके अगाड़ी चोरी के धनको छोड़कर इसके अनन्तर गुहाके मध्य
में पैठगया इसी अवसरमें चुरायेहुये धनके निमित्त वे मनुष्य प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ व उनके अगाड़ी धरेहुये चोरित धनको देखकर उन मुनिश्रेष्ठ से बोले कि इस राहसे चुराये

धनको हाथमें लिये चोर आयाहै ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! कहिये कि वह किस मार्ग से निकलगया गुहामें टिकेहुये चोर को जानतेहुये भी मौनव्रत में परायण उन बुद्धिमान्ने कुछ भी न कहा जब बार२ कहे जातेहुये भी चिन्ता से रहित व चोरके जीव की रक्षा करतेहुये उन मुनिने कुछ न कहा तब उन सबोंने सलाह किया कि निश्चय कर यह चोरहै ॥ ८।९।१० ॥ जो कि हम सबों से पीछे लगा हुआ मुनिरूप होगया तदनन्तर नहीं विचारकर उन सब दुष्टचित्त या मनवाले अहीरों ने कुछेक वनके बीचमें लेजाकर उसीक्षण शूली में आरोपित किया इसप्रकार उन दोषरहित व बुद्धिमान् मुनिने उस समय पुरातन कर्मके फलसे विकराल शूली पायाहै ॥ ११।१२।१३ ॥

सचजानन्नपिप्राज्ञोगुहासंस्थंमलिम्लुचम् ॥ ८॥ नकिञ्चिदपिप्रोवाचमौनव्रतपरायणः॥ असकृत्प्रोच्यमानोपिमुनिश्चिन्ताविवर्जितः ॥९॥ यदाप्रोवाचनोकिञ्चित्सरक्षंश्चौरजीवितम् ॥ ततस्तैर्मन्त्रितंसर्वैरेषनूनंमलिम्लुचः ॥१०॥ संलग्नः पृष्ठतोस्माभिर्मुनिरूपोबभूवह ॥ अविचार्य्यततस्सर्वैराभीरैस्तैर्दुरात्मभिः ॥ ११ ॥ शूलामारोपितस्सद्योनीत्वाकिञ्चिद्वनान्तरे ॥ एवंप्राप्तातदाशूलामुनिनातेनदारुणा ॥ १२॥ पूर्वकर्म्मविपाकेनदोषहीनेनधीमता॥१३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमाण्डव्यशूलावाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१३४॥

ऋषयऊचुः ॥ सुकृतंधर्म्मराजेनतपोध्यानादिकञ्चयत् ॥ माण्डव्यशापनाशायतदस्माकंप्रकीर्तय ॥ १॥ सूतउवाच ॥ माण्डव्यशापमासाद्यधर्म्मराजस्सुदुःखितः ॥ ततस्तेपेद्विजश्रेष्ठास्तस्मिन्क्षेत्रेव्यवस्थितः॥ २॥ प्रासादन्देवदेवस्य संविधायकपर्द्दिनः ॥ अत्युग्रंपूजयामासपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ ३ ॥ ततःकालेनमहतातुष्टोह्यस्यमहेश्वरः ॥ प्रोवाचवरदो

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये माण्डव्यशूलावाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥१३४॥

दो० । इकसौ पैंतिसमें कहत सोई उत्तम गाथ । यथा शिवहिं आराधि पुनि भे यमराज सनाथ ॥ ऋषिलोग बोले कि माण्डव्यके शापके नाशकेलिये धर्मराजने जिस तपस्या व ध्यानादिकको कियाहो उसको हम लोगोंसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! माण्डव्यके शापको पाकर अतिदुःखित यमराजने उस क्षेत्र में टिकते हुये तपस्या को कियाहै ॥ २ ॥ व जटाधारी देवदेव (शिव) जीके मन्दिरको बनाकर पुष्प, धूप व अनुलेपनों से अति उग्रतापूर्वक पूजन किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर बहुत

समय से इस धर्मराज के ऊपर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी यह बोले कि मैं वरदायकहूं तुम मनसे चाहेहुये पदार्थ को मांगो ॥ ४ ॥ धर्मराज बोले कि हे देव ! सब दोषों से रहित व निज धर्म में वर्तमानभी मैं पुरातन समय माण्डव्य महात्मा से शापित हुआ ॥ ५ ॥ उन क्रोधित माण्डव्य ने कहा कि तुम शूद्रयोनि में होवोगे व उसमें भी जातिके नाशसे उपजेहुये बड़े भारी दुःख को पावोगे ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि उन उत्तम मुनि के वचन अन्यथा करने के लिये समर्थ नहीं है इसलिये तुम शूद्र भी होकर सन्तानको न पावोगे ॥ ७ ॥ व जातिके संहारको देखकर भी दुःखको न पावोगे जिस लिये मना किये हुये भी वे (कौरव) तुम्हारे वचनको न करैंगे ॥ ८ ॥

स्मीतिप्रार्थयस्वहृदीप्सितम् ॥४॥ धर्मराजउवाच ॥ अहंदेवपुराशप्तोमाण्डव्येनमहात्मना ॥ स्वधर्मेवर्तमानोपिसर्वदो षविवर्जितः ॥ ५ ॥ कुपितेनचतेनोक्तंशूद्रयोनौभविष्यसि ॥ तत्रापिचमहद्दुःखंजातिनाशसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ शिवउ वाच ॥ नतस्यसन्मुनेर्वाक्यंशक्यतेकर्तुमन्यथा ॥ तस्माच्छूद्रोपिभूत्वात्वंनसन्तानमवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ जातिक्षयंप्रदृ ष्ट्वापिनैवदुःखमवाप्स्यसि ॥ यतोनिषिद्धमानापिनकरिष्यन्तितेवचः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणाच्चित्तेनतेदुःखंभविष्यति ॥ ज्ञातिजन्धर्म्मराजैतत्सत्यमेवमयोदितम् ॥ ९ ॥ स्थित्वावर्षशतञ्चाथत्वंशूद्रोधर्म्मवत्सलः ॥ उपदेशान्बहून्दत्त्वाज्ञा तिभ्योहितकाम्यया ॥ १० ॥ अपिश्रद्धाविहीनेभ्यःपापात्मभ्यःसदैवहि ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे ब्रह्मद्वारेणकेवलम् ॥ ११ ॥ आत्मानंसम्यगुत्सृज्यमोक्षमेवप्रयास्यसि ॥ एवमुक्त्वासभगवान्गतश्चादर्शनंहरः ॥ १२ ॥ धर्म्मराजोपितंशापं भोक्तुं माण्डव्यसम्भवम् ॥ तदाविदुररूपेणअवतीर्य्यधरातले ॥ माण्डव्यस्यवचस्सत्यं सचकारमहामतिः ॥ १३ ॥ जातोभ

इसी कारण हे धर्मराज ! तुम्हारे चित्तमें कुटुम्बियों से उपजाहुआ दुःख न होगा यह मैंने सत्यही कहाहै ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर धर्मप्रिय शूद्र तुम सौ वर्ष टिककर श्रद्धारहित व पापात्माभी कुटुम्बियों के लिये हितकी कामना से सदैवही बहुतसे उपदेशोंको देकर तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर जीवात्माको केवल ब्रह्मद्वार से भलीभांति त्यागकर मोक्षही को पावोगे ऐसा कहकर वे सदाशिव भगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ १०।११।१२ ॥ व उससमय उन महामति धर्मराजने भी माण्डव्य से उपजेहुये उस शापको भोगने के लिये भूतल में विदुररूपसे अवतार लेकर माण्डव्यके वचनको सत्य किया ॥ १३ ॥ दासी के गर्भ से उपजेहुये जो विदुर अतुलित

तेजवाले पराशर के पुत्र साक्षात् भगवान् व्यासनामक ब्राह्मणसे उत्पन्नहुयेथे॥ १४ ॥ इस धर्मराजसे उपजेहुये व सब पापों के नाशक समस्त कथानकको तुम लोगोंसे वर्णन किया जोकि मुझसे पूंछागयाथा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधर्मराजेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। यमराजेश्वर को रुचिर अति उत्तम माहात्म्य। इकसौ छत्तिस महँ कहत सूत सकल याथात्म्य ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय धर्मराजेश्वर

गवतासाक्षाद्व्यासेनामिततेजसा ॥ पाराशर्य्येणविप्रेणदासीगर्भसमुद्भवः ॥ १४ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं धर्म्मराजसमुद्भवम् ॥ आख्यानंयदहंपृष्टस्सर्वपातकनाशनम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये धर्मराजेश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

सूतउवाच ॥ धर्म्मराजेश्वरोत्थंच माहात्म्यंद्विजसत्तमाः ॥ यन्मयाप्रश्रुतंपुण्यं सकाशात्स्वपितुःपुरा ॥ १ ॥ तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ त्रैलोक्येपिसुविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ तत्रक्षेत्रवरेविप्रःकाश्यपान्वयसम्भवः ॥ उपाध्यायइतिख्यातो वेदविद्यापरायणः ॥ ३ ॥ पश्चिमेवयसिप्राप्ते तस्यपुत्रोबभूवह ॥ स्वाध्यायनियमस्थस्य प्रभूतविनयस्यच ॥ ४ ॥ पञ्चवर्षप्रमाणस्तु यदाजज्ञेथतत्सुतः ॥ तदामृत्युवशंप्राप्तः पितृमातृसुदुःखकृत् ॥ ५ ॥ ततःसब्राह्मणःकोपं चक्रेवैवस्वतोपरि ॥ धर्म्मराजगृहंप्राप्तंदृष्ट्वानिजकुमारकम् ॥ ६ ॥ आदायसलिलंहस्ते शुचिर्भू

से उठाहुआ जो पुण्यदायक माहात्म्य मैंने अपने पिताके सकाश से सुना है ॥ १ ॥ त्रिलोक में भी प्रसिद्ध व समस्त पातकों के विनाशक को मैं कहूंगा तुम लोग सावधान होते हुये सुनो ॥ २ ॥ कि उस उत्तम क्षेत्रमें कश्यप के वंशमें उपजा हुआ उपाध्याय ऐसा प्रसिद्ध व वेदविद्या में तत्पर ब्राह्मण हुआ है ॥ ३ ॥ उस बहुत विनयवाले व वेदपाठ तथा नियम में टिके हुये द्विजकी जब पिछली अवस्था प्राप्त हुई तब पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर जब उसका पुत्र पांच वर्ष के प्रमाणका हुआ तब पिता माता को अति दुःखकारक वह मृत्युवश को प्राप्त होगया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस ब्राह्मण ने यमराज के घरको प्राप्तहुये निजपुत्र को देखकर धर्मराज

के ऊपर क्रोधकिया ॥ ६ ॥ व सावधान होते हुये उस दुःखित द्विजने पवित्र हो हाथमें जललेकर धर्मराज के लिये घोर शाप दिया ॥ ७ ॥ कि जिसलिये उस दुष्टात्मा से मैं पुत्रहीन कियागया इसी कारण वहभी दुष्ट चित्त या मानसवाला यमराज अपुत्र होवै ॥ ८ ॥ जिस प्रकार कि भूतल में मनुष्य उसका पूजन न करै व जैसे अन्य देवोंका नाम कहा जाता है वैसेही नामका कीर्तन न करै ॥ ९ ॥ व मङ्गल कार्य्य के करने में जो कोई प्रातःकाल उठकर इन यमराज का नाम लेवैगा इसके अनन्तर उसको विघ्नहोगा ॥ १० ॥ अपने धर्म में वर्तमान वे यमराज उस ब्राह्मण के उस विकराल शापको सुनकर तदनन्तर दुःख संयुक्त हुए ॥ ११ ॥ इसी

त्वासमाहितः ॥ प्रददौदारुणंशापं धर्म्मराजायदुःखितः ॥ ७ ॥ अपुत्रश्च कृतोयस्मादहंतेनदुरात्मना ॥ अतस्सोपिच दुष्टात्मा यमोऽपुत्रीभविष्यति ॥ ८ ॥ यथाचभूतलेलोको नैवपूजांविधास्यति ॥ कीर्तयिष्यतिनोनाम यथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ९ ॥ यःकश्चित्प्रातरुत्थाय नामचास्यगृहीष्यति ॥ माङ्गल्यकरणेचाथ विघ्नंतस्यभविष्यति ॥ १० ॥ तंश्रुत्वातस्यविप्रस्य यमःशापंसुदारुणम् ॥ स्वधर्म्मेवर्तमानस्सततोदुःखान्वितोभवत् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेगत्वाब्रह्मणस्सदनंप्रति ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वायमःप्राहपितामहम् ॥ १२ ॥ पश्यदेवेशशप्तोहं निर्दोषोपिद्विजन्मना ॥ स्वधर्म्मे वर्तमानस्तु यथान्यःप्राकृतोजनः ॥ १३ ॥ तस्मादहंत्यजिष्यामि नियोगंतेपितामह ॥ ब्रह्मशापभयाद्भीतः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १४ ॥ पुरामाण्डव्यशापेन शूद्रयोनौप्रतारितः ॥ साम्प्रतंपुत्ररहितः कृतोपूज्यश्चसत्तम ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा दीनंवैवस्वतस्यच ॥ तत्कालोचितमाहेदं स्वयमेवशतक्रतुः ॥ १६ ॥ युक्तमुक्तमनेनैतद्

समय में यमराजने ब्रह्माके मन्दिरको जाकर व जुडेहुए हाथोंवाले होकर पितामह जीसे कहा ॥ १२ ॥ कि हे देवेश ! देखिये निज धर्म में वर्त्तमान व निर्दोषभी मुझको ब्राह्मणने अन्य पामर नरकी नाईं शाप दिया ॥ १३ ॥ इसलिये हे पितामह ! ब्राह्मणके शापसे भय भीत मैं तुह्मारी आज्ञाको छोड़ दूंगा यह मैंने सत्य कहा है ॥ १४ ॥ हे अति उत्तम पितामहजी ! पुरातन समय माण्डव्य के शापसे मैं शूद्र योनिमें वञ्चित हुआ और इस समय पुत्रहीन व अपूज्य किया गया ॥ १५ ॥ सूत जी बोले कि उन यमराजके उसदीन वचनको सुनकर आपही इन्द्रजीने उस समय के योग्य इस वचन को कहा ॥ १६ ॥ कि हे कमलसे उपजे हुये सुरनायक ! तुम्हारे

आयसुमें वर्त्तमान इस यमराजने यह योग्य कहाहै ॥ १७ ॥ क्योंकि हे पितामह ! शिशुतामें या युवावस्थामें या वृद्धावस्थामें समय स्थित होनेपर अवश्यही मनुष्य मरैंगे॥१८॥समयमें ये संहार करतेहैं अकालमें किसीप्रकार नहीं इसीसे तुम्ह महात्माने सम शत्रु व सम मित्र वाले इनका नाम उत्तम धर्मराजाख्य कहाहै इसलिये यत्न से भली भांति देखकर कोई उपाय अवश्य कर चिन्तवन किया जावे कि जिससे दोषरहित धर्मराजजी तुम्हारी आज्ञाकरैं ब्रह्माजी बोले कि ब्राह्मणकी शापको अन्यथा करनेके लिये मैं किसी प्रकार नहीं समर्थहूं ॥१९।२०।२१॥ हे त्रिदशेश्वर ! इस समय उपायसे करूंगा तदनन्तर लोकोंके पितामह उन ब्रह्माजीने भलीभांति सावधान

मेराजेनपद्मज ॥ नियोगेवर्तमानेन तावकीयेसुरेश्वर ॥१७॥अवश्यमेवमर्त्तव्या मनुष्याःसमयेस्थिते ॥ बाल्येवायौ
वनेवाथ वार्द्धक्येवापितामह ॥ १८ ॥ संहर्तुकामेनानेन नाकालेचकथंचन ॥ एतेनैवकृतन्नाम धर्म्मराजाख्यमुत्तमम् ॥
१९ ॥ त्वयाचसममित्रस्य समशत्रोर्महात्मना ॥ तस्माद्यत्नात्समालोक्य कश्चिदेवविचिन्त्यताम् ॥ २० ॥ उपायो
येननिर्दोषो नियोगंकुरुतेतव ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्रह्मशापंनशक्तोहमन्यथाकर्तुमेवच ॥ २१ ॥ उपायेनकरिष्यामि साम्प्र
तंत्रिदशाधिप ॥ ततोध्यानंप्रचक्रेस ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ तदर्थंसर्वदेवानांपुरतस्सुसमाहितः ॥ तस्यैवंध्यानश
क्तस्य प्रादुर्भूतास्समन्ततः ॥ २३ ॥ भूत्वारोगास्सुरौद्रास्तेवातगुल्मकफात्मकाः ॥ अष्टोत्तरशतंप्रायाः प्रोचुस्तंतुकृता
दराः ॥२४॥ रोगाऊचुः ॥ किमर्थंदेवदेवेश त्वयासृष्टावयंविभो ॥ आदेशोदीयतांशीघ्रं प्रसादःक्रियतामिति ॥२५॥ ब्रह्मो
वाच ॥ व्रजध्वंभूतलेशीघ्रं ममादेशादसंशयम् ॥ यमादेशान्मनुष्येषु गन्तव्यमविकल्पितम् ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वातु

होकर समस्त देवताओंके आगे उसके लिये ध्यान किया इस भाँति ध्यानमें लगे हुये ब्रह्माजीके चारोंओर ॥२२।२३॥ बड़े विकरालबात गुल्म व कफआत्मावाले रोगहोकर और कियेहुये आदरवाले मुख्य एकसौ आठ रोग उनसे बोले ॥२४॥ रोगबोले कि हे देवदेवेश, हे विभो ! तुमने हमलोगोंको किसलिये उत्पन्न कियाहै प्रसन्नताकी जावै व शीघ्रही आज्ञा दीजावै ॥२५॥ ब्रह्मा बोले कि तुम लोग मेरी आज्ञासे भूतलमें शीघ्रही जाओ और यमराजके आयसुसे मनुष्योंमें निर्विकल्प पूर्वक जाना चाहिये ॥२६॥

उन रोगोंसे ऐसा कह कर तदनन्तर पितामह जीने अत्यन्तही दीन व नीचे मुख वाले समीपमें टिके हुये यमराज से कहा ॥२७॥ कि ये समस्त रोग तुम्हारीसहायता में विशेषकर युक्तकिये गये जोकि सदैव समस्त कार्यांमें तुम्हारी सहायता करैंगे ॥ २८ ॥ इससमय मृत्युलोक में बीते आयुर्बल वाला जो कोई प्राणी प्राप्तहो उसके मारने के लिये तुमको सदैव उन रोगोंको पठाना चाहिये ॥२९॥ उससे भूतलमें मनुष्योंके नाशसे उपजाहुआ कलङ्क इनरोगोंको होगा और तुमको नहीं होवेगा ॥३०॥ इसलिये मेरीआज्ञासे अपने स्थानको जाकर निस्सन्देह पूर्वक निज अधिकारमें परायणहोओ दोषको न पावोगे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रविनन्दन (यमराज) जी ने उन

एतेतेऽयाधयस्सर्वे सहायेविनियोजि ॥ २७ ॥ ताः ॥ साहाय्यंतेकरिष्यन्ति सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ २८ ॥ यःकश्चिदधुनामर्त्यें गतायुस्संप्रपद्यते ॥ वधायतस्ययत्नेनत्वया प्रेष्याश्चसर्वदा ॥२९॥ एतेषांजायतेतेन जननाशसमुद्भवः ॥ अपवादोधराप्रष्ठे नचसंजायतेतव ॥ ३० ॥ तस्माद्गत्वानिजं स्थानं स्वाधिकारपरोभव ॥ ममादेशादसंदिग्धं नैवदोषमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥ ततस्तान्सकलान्व्याधीन्गृहीत्वारविनंद नः ॥ यमलोकंसमासाद्य ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३२ ॥ पृष्ट्वासर्वैःप्रगन्तव्यं चित्रगुप्तंधरातले ॥ गन्तव्यंजननाशा य समयेसमुपस्थिते ॥ ३३ ॥ परमस्तिमयातत्र स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वपातकनाशनम् ॥ ३४ ॥ यस्तंपश्यतिसद्भक्त्या प्रातरुत्थायमानवः ॥ युष्माभिस्ससदात्याज्यो दूरतोवचनान्मम ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासतान्व्या धीन्ततोवैवस्वतःस्वयम् ॥ तस्यविप्रस्यतंपुत्रं गृहीत्वासत्वरंययौ ॥ ३६ ॥ तस्यैवमन्दिरेरम्ये कृत्वारूपंद्विजन्मनः ॥

समस्त रोगों को लेकर यमलोकको जाकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ ३२ ॥ कि तुम सबोंको चित्रगुप्तसे पूंछकर भूतलमें जानाचाहिये व समयको समीप प्राप्त होनेपर मनुष्योंके नाशके लिये जाने योग्यहै ॥३३॥ परन्तु उसभूतलमें हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें मैंने समस्त पातकोंके विनाशक उत्तम लिङ्गको थापन कियाहै॥३४॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे उन महादेवजीको देखताहै उसको मेरे वचनसे दूरही से तुमलोगोंको त्यागकरना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन रोगों से ऐसा कहकर तदनन्तर वे यमराज ब्राह्मणके रूपको करके आपहीं उस ब्राह्मण के उसमरेहुये पुत्रको लेकर उसीके मनोहर घरमें शीघ्रहीगये इसके अनन्तर वह ब्राह्मण

विप्र रूपवाले व बुद्धिमान धर्मराज समेत घर में आयेहुये अपने पुत्रको देखकर तदनन्तर प्रसन्न चित्तसे शीघ्रही सामनेगया ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ तदनन्तर बहुत आंसुओंसे सबओर आकुल लोचनोंवाला, निज स्त्री समेत वह ब्राह्मण हे पुत्र, पुत्र! ऐसा कहताहुआ लिपटकर तदनन्तर मस्तक सूंघकर हर्षसे यह वचन बोला ब्राह्मण बोला कि हे पुत्र! उस यमराज के मन्दिरसे तुम कैसे भलीभांति आयेहो ॥ ३९ । ४० ॥ कि जहां जाकर कोई बलवान् भी फिर नहीं आताहै अथवा मेरे समीप क्या यह इन्द्रजाल (माया) उत्पन्नहुई है ॥४१॥ अथवा क्या यह स्वप्नहै या क्या यह मेरी दृष्टिकी भ्रान्तिहै हे सुत! तुम्हारे समीप दिव्य तेजसे संयुत यह कौन

अथासौब्राह्मणोदृष्ट्वा स्वपुत्रंगृहमागतम् ॥ ३७ ॥ सहितंविप्ररूपेण धर्म्मराजेनधीमता ॥ ततःप्रहृष्टचित्तेन सत्वरं सम्मुखोययौ ॥ ३८ ॥ पुत्रपुत्रेतिजल्पन्स निजभार्य्यासमन्वितः ॥ परिष्वज्यततोभूयो बाष्पपर्य्याकुलेक्षणः ॥ ३९ ॥ आघ्रायचततोमूर्द्ध्निवाक्यमेतदुवाचह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कथंपुत्रसमायातस्तस्मात्तुयममन्दिरात् ॥ ४० ॥ नकश्चित्पुनरायाति यत्रगत्वापिवीर्य्यवान् ॥ किंवाचैतत्समुत्पन्नमिन्द्रजालंममान्तिकम् ॥ ४१ ॥ किंवास्वप्नमिमंकिंवाममायंदृष्टिविभ्रमः ॥ कश्चायंब्राह्मणःपार्श्वेतवसंतिष्ठतेसुत ॥ दिव्येनतेजसायुक्तस्तंनमाम्यहमात्मज ॥ ४२ ॥ पुत्रउवाच ॥ एषब्राह्मणरूपेणसमायातोयमस्स्वयम् ॥ समादायकृपाविष्टोज्ञात्वात्वांदुःखसंयुतम् ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वंकुरुचैतस्यशापानुग्रहमद्यवै ॥ गृहंप्राप्तस्यशप्तस्ययद्यहंतववल्लभः ॥ ४४ ॥ ततस्तथाप्रमाणंसकृत्वाब्राह्मणसत्तमः ॥ व्रीडयाधोमुखोभूत्वाततःप्रोवाचसादरम् ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् ॥ ४६ ॥ यत्पुत्रस्य

ब्राह्मण भलीभांति स्थितहै हे पुत्र! उसको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४२ ॥ पुत्रबोला कि तुमको दुःख संयुत जानकर दयायुत ये आपही यमराज ब्राह्मणके रूपसे मुझको लेकर भलीभांति आयेहैं ॥ ४३ ॥ इसलिये यदि मैं तुमको प्रियहूं तो आज निश्चय कर तुम घरमें प्राप्त व शाप दियेहुये इन यमराजके शापका अनुग्रहकरो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वह ब्राह्मणोत्तम वैसेही प्रमाणकर याने सत्यजानकरके लज्जासे नीचे मुखवाला होकर उसके उपरान्त आदर समेत बोला ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण बोला कि

आज मेरा जन्म सफलहुआ व जीवन सुजीवितहुआ ॥ ४६ ॥ क्योंकि यम मन्दिर में गयेहुये पुत्रकी मुझको प्राप्तिहुई यमराज बोले कि हे तात ! तुम ...
तुमबडे सन्तोषको प्राप्तहुयेहो ॥ ४७ ॥ इसलिये मैं जिसप्रकार पुत्रसे भलीभांति युक्तहोऊँ वैसाकरो ब्राह्मण बोला कि हेपुत्र ! स्वच्छन्दतासेभी जो मुझसे कहागया
है वह कभीभी मेरा वचन झूंठ नहीं होवैहै फिर दुःखित मुझसे जो कहागया उसको क्या कहनाहै इसलिये हे प्राज्ञ ! मेरे शापके वशसे निश्चयकर किसी प्रकार
भी तुम्हारे देवयोनिसे उपजाहुआ पुत्र न होवैगा ॥ ४८।४९ ॥ वयोनिसे उपजाहुआ अन्य मनुष्य पुत्रहोगा जोकि राजसूय व अश्वमेध यज्ञोंसे इसको तारैगा ॥ ५० ॥

ममप्राप्तिर्गतस्ययमसादनम् ॥ यमउवाच ॥ त्वंचपुत्रकृतेतातसंतोषंपरमंगतः ॥ ४७ ॥ तस्मात्पुत्रेणसंयुक्तोयथाहं
स्यांतथाकुरु॥ ब्राह्मणउवाच ॥ नमेस्यादनृतंवाक्यंकदाचिदपिपुत्रक ॥४८॥ अपिस्वैरेणयत्प्रोक्तंकिंपुनर्दुःखितेनच ॥त
स्मात्तवभवेत्पुत्रोदैवयोनिसमुद्भवः ॥ नकथञ्चिदपिप्राज्ञममशापवशाद्ध्रुवम्॥४९॥भविष्यतिसुतश्चान्योमानुषोयोनि
सम्भवः॥राजसूयाश्वमेधाभ्यांयश्चैनंतारयिष्यति॥५०॥कोर्थःपुत्रेणजातेनयोनसंतारणेत्तमः॥पितृपक्षेशुभंकर्मकृ
त्वासर्वोत्तमंभुवि ॥ ५१ ॥ तथापूजाकृतेयस्तेशापोदत्तश्चवैपुरा ॥ तत्रापिशृणुमेवाक्यंतस्यपुत्रकजल्पतः ॥५२॥ वेदो
क्तैर्विविधैर्मन्त्रैर्यापूजाचास्यसंस्थिता ॥ नभविष्यतिसालोके कथञ्चिदपिपुत्रक ॥ ५३ ॥ अस्यमानुषसम्भूतैर्मन्त्रैःपू
जाभविष्यति॥ विशिष्टासर्वदेवेभ्यःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥५४ ॥ पुत्रउवाच ॥ अहमेनंप्रतिष्ठाप्य द्विजश्रेष्ठमहीतले ॥

उस पुत्रके पैदाहोनेसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछभी नहीं जोकि भूतलमें पितर पक्षमें सबसे उत्तम शुभदायक कर्मको करके तारने में समर्थ नहीं है ॥ ५१ ॥ वे-
सेही हे पुत्रक ! पहले पूजाके लिये जो तुमको शापदियागया उस विषय मेंभी उसको कहतेहुये मुझसे वचनको सुनिये ॥५२॥ हे पुत्रक ! वेदमें कहेहुये अनेक प्रकार
के मंत्रोंसे इन धर्मराजकी जो पूजा भलीभांति स्थितथी वह संसार में किसीप्रकार भी न होवैगी ॥ ५३ ॥ किन्तु मनुष्यों से उपजेहुये मंत्रोंसे समस्त देवताओं से वि-
शिष्ट (उत्तम) पूजन इन यमराजकी होगी यहमैंने सत्यकहा है ॥ ५४ ॥ पुत्रबोला कि हे द्विजोत्तम ! भूतल में मैं इन यमराज को थापकर भलीभांति आराधन

करूंगा मुझको विविध मंत्रोंसे क्याहै ॥५५॥ इसलिये मनुष्यों से उपजेहुये मंत्रोंको मैं भलीभांति कहूंगा और वैसेही पहले प्रसन्नतासे पूजनकी विधिको कहूंगा ॥५६॥ तदनन्तर प्रसन्न मन या चित्तवाले उस द्विजपुत्रने धर्मराज के सुनतेहुये "सुगन्सुपन्था" ऐसे उनके मंत्रको बनाकर पूजन किया ॥ ५७ ॥ उसको सुनकर यमराज ने अति प्रसन्न चित्तसे आनन्दसमेत गद्गदवाणी के द्वारा उच्चप्रकार से उस ब्राह्मणसे यह बोले ॥ ५८॥ यमराज बोले कि हे द्विजेन्द्र ! अन्यभी देवताओं के दर्शन व्यर्थ नहीं होते तो मेरे ये दर्शन कैसे अफल होवैं इसलिये मनोरथको मांगिये॥ ५९ ॥ ब्राह्मण बोले कि इसलोकमें मुझको किसीप्रकार पुत्रका शोच न होवै ॥६०॥

सम्यगाराधयिष्यामि किंमन्त्रैर्विविधैर्मम ॥ ५५ ॥ तस्मात्संकीर्तयिष्यामिमन्त्रान्मानुपसम्भवान् ॥ तथापूजाविधानं यत्प्रसादेनतुपूर्वतः ॥५६॥ ततःसुगन्सुपन्थेतितस्यमन्त्रंविधायसः ॥ समाचरत्प्रहृष्टात्माधर्म्मराजस्यशृण्वतः ॥५७॥ तच्छ्रुत्वातुयमःप्रोच्चैस्सुप्रसन्नेनचेतसा ॥ तंब्राह्मणमुवाचेदंहर्षगद्गदयागिरा ॥ ५८ ॥ यमउवाच ॥ कथंविप्रेन्द्रसंजात मेतन्मेदर्शनंवृथा ॥ अन्येषामपिदेवानां तस्मात्प्रार्थयवाञ्छितम् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ नस्यान्मेपुत्रशोकोहि इ हलोकेकथञ्चन ॥ ६० ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय संप्रहृष्टमनायमः ॥ यमलोकंजगामाथ स्वाधिकारपरोभवत् ॥ ६१ ॥ सो पिब्राह्मणदायादःकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ यममाराधयामासमध्येसंस्थाप्यभक्तितः ॥ ६२ ॥ पित्राप्रोक्तेनमन्त्रेण तेनैव विधिपूर्वकम्॥ ततश्चक्रमशःप्रापपुत्रपौत्राननेकशः ॥ ६३ ॥ कालधर्म्ममनुप्राप्तश्चिरंस्थित्वामहीतले ॥ एतद्वस्सर्वमा ख्यातं पुराणेयन्मयाश्रुतम् ॥ ६४ ॥ यश्चैतत्कीर्तयेद्भक्त्यासंप्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ नापमृत्युर्भवेत्तस्य नैवशोकस्सु

वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वे अतिप्रसन्न मनवाले यमराज जी यमलोकको चलेगये इसके अनन्तर अपने अधिकार में तत्परहुये ॥ ६१ ॥ और उस द्विजपुत्र नेभी उत्तम मन्दिरको बनाकरके बीच में भक्तिसे यमराज को भलीभांति थापकर पितासे कहेहुये उसी मंत्रसे विधिपूर्वक आराधन किया तदनन्तर क्रमसे अनेकों पुत्र व पौत्रोंको पाया ॥ ६२ । ६३ ॥ और भूतलमें बहुत दिनतक टिककर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ जो मैंने पुराण में सुनाथा इस समस्त चरितको तुमलोगों से वर्णन किया ॥ ६४ ॥ पञ्चमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोनेपर जो पुरुष भक्ति से इस चरितको कीर्तन करै है उसकी अपमृत्यु न होवै व पुत्रसे उपजाहुआ शोच

न होवैहैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येधर्मराजेश्वरमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशाधिकश
ततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । मिष्टान्नद शिवको थप्यो सत्यसेन भूपाल । इकसौ सैंतिसमें सोई बरणत चरित रसाल ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जो आपने यह कहा कि इस
संसार में यमराजके मनुष्य शरीरवाला पुत्र होगा वह कौन हुआहै ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि भूतल में उन यमराजके पाण्डुकी स्त्रीमें युधिष्ठिर ऐसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न

तोद्भवः ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरमाहात्म्येधर्म्मराजेश्वरमाहात्म्यंनाम
षट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तः पुत्रोमानुषविग्रहः ॥ भविष्यतियमस्यात्रकस्संभूतश्चसूतज ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥
तस्यपुत्रस्समुत्पन्नःपाण्डुक्षेत्रेमहीतले ॥ युधिष्ठिरइतिख्यातः सर्वक्षत्रियपुङ्गवः ॥ २ ॥ राजसूयोमखोयेन कृतस्सम्पू
र्णदक्षिणः ॥ सर्वान्भूमिपतीन्वीर्य्यात्संविधायकरप्रदान् ॥ ३ ॥ अश्वमेधःकृतोयज्ञस्तथासम्पूर्णदक्षिणः ॥ भ्रामयित्वा
हयंभूमौ पश्चात्प्रापससद्गतिम् ॥ ४ ॥ एष्टव्याबहवःपुत्रायद्येकोपिगयांव्रजेत् ॥ यजेतवाश्वमेधेन नीलंवावृषमुत्सृजे
त् ॥ ५ ॥ तत्तेनप्रकृतंमन्ये पुत्रत्वंसुमहात्मना ॥ हयमेधान्महायज्ञान्संविधाययथोचितान् ॥ ६ ॥ एतेनकृतकृत्यत्वं ये
नपुत्रेणधर्म्मपः ॥ तथापुत्रशतैर्जीवद्वंशोद्धारप्रकारकैः ॥७॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं धर्मराजसुतोद्भवम् ॥ आ

हुये हैं जोकि समस्त क्षत्रियोंमें श्रेष्ठथे ॥ २ ॥ जिन युधिष्ठिरने सबभूपोंको पराक्रमसे करदायक करके सम्पूर्ण दक्षिणावाले राजसूय यज्ञको किया॥३॥वैसे ही उन युधिष्ठिर
ने घोडेको भूमिमें घुमाकर सम्पूर्ण दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञको किया व पश्चात् उत्तम गतिको पाया ॥ ४ ॥ बहुत पुत्र इच्छा करने योग्य हैं क्योंकि यदि
एकभी गयाको जावै व अश्वमेधसे पूजन करै व नीले बैल को छोड़ै ॥ ५ ॥ तो उस महात्मा पुत्रसे प्रकृत (भलीभांति की हुई) पुत्रता को मानते हैं क्योंकि वे युधि-
ष्ठिर जी यथायोग्य अश्वमेध नामक बड़ी भारी यज्ञों को करके स्थित हुये ॥ ६ ॥ व जीते हुये वंशके उद्धार करनेवाले सौ पुत्रोंके मध्यमे जिन युधिष्ठिर पुत्रसे इस

ख्यानंमिष्टान्नदस्यबृहत्कल्पेद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ अन्योमिष्टान्नदोदेवस्तत्रास्तिश्रूयतांद्विजाः ॥ वसुषेणोथनृपतिरानर्ते
भूत्पुराततः॥९॥राज्यैश्वर्य्यसमायुक्तो गजवाजिरथान्वितः॥जितारिपक्षस्तेजस्वीदाताभोगीजितेन्द्रियः ॥ १०॥ससंक्रा
न्तौव्यतीपाते ग्रहणेरविसोमयोः ॥ पर्वकालेषुचान्येषुविविधेषुसुभक्तितः ॥११॥प्रयच्छतिद्विजातिभ्योरत्नानिविविधानि
च ॥ इन्द्रनीलमहानीलविद्रुमस्फाटिकानिच ॥ १२ ॥ माणिक्यमौक्तिकान्येव विद्रुमाणिविशेषतः॥हस्त्यश्वरथयाना
नि वस्त्राणिविविधानिच ॥ १३ ॥ नकस्यचित्प्रदद्यात्स चान्नंब्राह्मणसत्तमाः ॥ अतीवसुलभंमत्वा तथातोयंविशेषतः ॥
१४ ॥ ततोराज्यंचिरंकृत्वा दृष्ट्वापुत्रोद्भवान्सुतान् ॥ कालधर्म्ममनुप्राप्तःकस्मिंश्चित्कालपर्य्यये॥ १५ ॥ ततश्चमन्त्रि
भिस्तस्यसत्यसेनइतिस्मृतः ॥ अभिषिक्तःसुतोराज्येवीर्यौदार्य्यसमन्वितः ॥ १६ ॥ वसुषेणोपिसंप्राप्तस्स्वर्गंदानप्रभा
वतः ॥ दिव्याम्बरधरोभूत्वा दिव्यरत्नैर्विभूषितः ॥ १७ ॥ सेव्यमानोप्सरोभिश्चविमानवरमाश्रितः ॥ तथापिस्वर्गलोके

कर्मके द्वारा धर्मराज कृतकृत्यताको प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! बृहत्कल्प में धर्मराज के पुत्रसे उपजे हुये मिष्टान्नदके कथानकको तुमलोगों से कहा ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर वहांपर दूसरे मिष्टान्नद देव हैं उनको सुनिये कि इस के अनन्तर पुरातन समय आनर्त्त देशमें वसुषेण नामक राजा हुआहै ॥ ९ ॥ जोकि राज्यके ऐश्वर्य से संयुक्त व हाथी, घोड़ों व रथों से युक्त व शत्रुपक्ष को जीतनेवाला व तेजस्वी, दाता, भोगी व जितेन्द्रिय था ॥ १० ॥ वह वसुषेण संक्रान्ति, व्यतीपात व सूर्य्य चन्द्रमा के ग्रहण में व अनेकों प्रकारके अन्य पर्वकालों में विविध रत्नोंको व इन्द्रनील, महानील, विद्रुम, स्फटिक, मानिक व विशेषकर मूंगों को और हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन व विविध वसनोंको उत्तम भक्तिसे ब्राह्मणों के लिये देताथा॥ ११ । १२ । १३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! वह वसुषेण अन्नको व विशेषतासे जलको अत्यन्तही सुलभ मानकर किसी को नहीं देताथा ॥१४॥ तदनन्तर बहुत दिनतक राज्यकरके पुत्रसे उपजेहुये पुत्रोंको देखकर किसी समय के पलटनेपर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर मंत्रियोंने पराक्रम व उदारता से संयुत सत्यसेन ऐसे कहेहुये उसके पुत्रको अभिषेक किया ॥ १६ ॥ व दिव्य रत्नोंसे भूषित व अप्सराओं से सेवित तथा उत्तम विमानपै सवार वसुषेण भी दानके प्रभावसे उत्तम वस्त्रधारी होकर स्वर्गको भलीभांति प्राप्तहुआ तिस

परभी स्वर्गलोकों में अपनी इच्छासे क्षुधासे घिरगया ॥ १७ । १८ ॥ व प्यास से आकुल चित्तवाले व सबओर सूखेहुये मुखसे उपलक्षित उस नृपतिने उस स्वर्गमें भोजन करतेहुये अन्य किसीको न देखा ॥ १९ ॥ व पीने में परायण पुरुष को व अन्न तथा जलको न देखा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! लज्जासे नीचे मुखवाले होकर स्थित होतेहुये उस नृपने हजार नेत्रवाले इन्द्रके निकट जाकर कहा कि क्षुधा, प्यास मुझको पीड़ित कररहीहै हे सुरश्रेष्ठ ! यहांपर मुझको छोड़कर कोई भूख, प्यास से पीड़ित नहीं है यह क्याहै उसको मुझसे कहो क्योंकि स्वर्गरूप से यह नरक मेरे समीप स्थितहै ॥ २० । २१ । २२ ॥ हे शचीपते ! क्षुधा से अतिपीडित

षुस्वेच्छयाक्षुत्समावृतः ॥ १८ ॥ पिपासाकुलचित्तस्तु मुखेनपरिशुष्यता ॥ नकञ्चिद्ददृशेतत्र भुञ्जानमपरंदिवि ॥ १९ ॥ नचपानसमासक्तंनचान्नंसलिलेनतु ॥ ततोगत्वासहस्राक्षमुवाचद्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ क्षुत्तृषाबाधतेमांतु लज्जयाधोमुखःस्थितः॥नैवात्रदृश्यतेकश्चित्क्षुत्तृषापरिपीडितः॥२१ ॥ मांमुक्त्वाविबुधश्रेष्ठ तत्किमेतद्वदस्वमे॥ एषमेस्वर्गरूपेण नरकस्समुपस्थितः ॥२२॥ किमेतैर्भूषणैर्वस्त्रैर्विमानादिभिरेवच ॥ क्षुधासम्पीड्यमानस्य स्वर्गमेतच्छचीपते ॥ २३ ॥ अग्नितुल्यंसमुद्दिष्टंमचित्तेहिप्रवर्तते ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेयथाक्षुन्नप्रबाधते ॥ २४ ॥ नोचेत्क्षिपसुरश्रेष्ठ रौरवे नरकेद्रुतम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ अनर्होसिमहीपाल नरकस्यत्वमेवहि ॥ २५ ॥ त्वयादानानिदत्तानि सङ्ख्याहीनानिसर्वदा ॥ यत्किञ्चित्तुकचिन्नान्नंदत्तंयन्ननवोदकम् ॥ २६ ॥ नकिञ्चिदपिसंचिन्त्य ततःक्षुद्वान्भवानिह ॥ तोयमत्रसदादद्यादन्नं चैवसदाक्षिणम् ॥ २७ ॥ यइच्छेच्छाश्वतींतृप्तिमिहलोकेपरत्रच ॥ तस्मात्त्वन्तुक्षुधाविष्टस्स्वर्गेचैवमहीपते ॥ भूषितो

होतेहुये मनुष्यको इन भूषणों व वस्त्रों व विमानादिकोंहीसे क्याहै याने कुछ नहीं और भलीभांति उद्देश कियाहुआ यह स्वर्ग मेरे चित्तमें अग्निके समान वर्तमानहै इसलिये मेरे ऊपर वैसीही प्रसन्नता करिये कि जिसप्रकार क्षुधा न पीड़ितकरै ॥ २३ । २४ ॥ नहीं तो हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही रौरव नरक में फेंकिये इन्द्र बोले कि हे भूपाल ! निश्चयकर तुम नरक के अयोग्यहो ॥ २५ ॥ क्योंकि सदैव तुमने असंख्य दानोंको दियाहै और जिसलिये कि कहींपर जिस किसी अन्नको व नवीन जलको कुछभी न संचिन्तनकर नहीं दिया उसी कारण आप इस स्वर्ग में क्षुधावान्हो जो पुरुष इस लोक व परलोक में सदैववाली तृप्तिको चाहै वह इस संसार में दक्षिणा

समेत अन्न व जलको सदैव देवै उसी कारण हे भूपते ! उत्तम भूषणोंसे भूपित व श्रेष्ठ विमानपै चढ़ेहुये तुम स्वर्ग मेंभी क्षुधार्त्तसंयुतहो ॥ २६ । २७ । २८ ॥ राजा बोले कि इस क्षुधाके विषय में देवता व मनुष्यवालाभी कोई उपायहै कि जिससे मेरी अतितीव्र क्षुधा, प्यास नाश को प्राप्तहोवै ॥ २९ ॥ इन्द्र बोले कि उपायहै कोई पुत्र सदैव तुम्हारे निमित्त ब्राह्मणोंके लिये अन्न व जलको देवै उसीसे सदा तृप्ति-होवैगी ॥ ३० ॥ हे नृपपुङ्गव ! अन्यथा एक दिन मेंभी अन्नसे तुम्हारी प्रीति न होगी यह मैंने सत्य कहाहै ॥३१॥ हे भूपते ! वह तुम्हारा पुत्रभी तुम्हारे लिये स्मरण करता हुआ ब्राह्मणोंके निमित्त अन्न व जलको नहीं देताहै ॥३२॥ इसी अवसर में वहांपर ब्रह्म-

भूषणैःश्रेष्ठैर्विमानवरमाश्रितः ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषोपिवा ॥ क्षुत्पिपासेतितीव्रेमे विनाशंयेनगच्छतः ॥ २९ ॥ इन्द्रउवाच ॥ अस्तिकश्चित्सुतस्तुभ्यंविप्रेभ्यस्सततंजलम् ॥ ददातिचसदासस्यंततस्तृ प्तिःप्रजायते ॥ ३० ॥ अन्यथापार्थिवश्रेष्ठ एकस्मिन्नपिवासरे ॥ अन्नतोनतवप्रीतिस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३१ ॥ सोपिभूमिपतेपुत्रस्तवयच्छतिनोदकम् ॥ नचसस्यंद्विजातिभ्यस्त्वदर्थमनुसंस्मरन् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नार दोमुनिसत्तमः ॥ ब्रह्मलोकात्स्थितौयत्र तौभूमिपसुरेश्वरौ ॥ ३३ ॥ ततःशक्रस्समुत्थाय तस्मैतुष्टिसमन्वितः ॥ अर्घं दत्त्वाविधानेन सादरंचेदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ कुतःप्राप्तोसिविप्रेन्द्र प्रस्थितःक्वचसांप्रतम् ॥ केनकार्य्येणचेद्गुह्यंनमेस्ति वदसांप्रतम् ॥ ३५ ॥ नारदउवाच ॥ ब्रह्मलोकादहंप्राप्तः प्रस्थितस्तुधरातले ॥ तीर्थयात्राकृतेशक्रनान्यदस्तीहकारण म् ॥ ३६ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासनृपोहृष्टस्तमुवाचमुनीश्वरम् ॥ ३७ ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं दीनायमुनिपुङ्गव ॥

लोकसे मुनिनायक नारदजी प्राप्तहुये जहांपर कि वे भूपति व सुरपति दोनों स्थितथे ॥३३॥ तदनन्तर प्रसन्नता संयुत इन्द्रजी उन नारद के लिये विधिसे अर्घ देकर व आदर समेत यह बोले ॥ ३४ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! इस समय तुम कहांसे प्राप्त हुयेहो और तुमने किस कार्य से कहांको प्रस्थान किया यदि गुप्त नहो तो इससमय मुझसे कहो ॥ ३५ ॥ नारद बोले कि हे इन्द्र ! तीर्थयात्रा के लिये भूतलको प्रस्थान कियेहुये मैं ब्रह्मलोकसे प्राप्तहुआहूं इसमें और कारण नहीं है ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर प्रसन्नहोतेहुये उस नृपति ने उन मुनिनायक से कहा ॥ ३७ ॥ कि हे मुनिनायक, प्रभो ! मुझ दीन के लिये प्रसन्नता कीजावै कि

भूतल में आनर्त देशका स्वामी सत्यसेन ऐसे नामवाले मेरे पुत्र भूपतिसे तुमको यह कहना चाहिये कि इन्द्रके मन्दिर में मैंने तुम्हारे पिताको देखाहै ॥ ३८ । ३९ ॥ जो कि क्षुधा, प्यास से विरेहुये अङ्गोंवाला व दीनमन या चित्तवाला व देवताओं के बीच में प्राप्तथा इसलिये यदि तुम पुत्रहो व सत्यका परिपालन करतेहो तो मेरे लिये उच्चप्रकार से मिष्टान्नको व अन्नों तथा जलोंको दीजिये वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकरके वे नारद मुनिनायक ने ॥ ४० । ४१ ॥ इन्द्रसे आज्ञा लेकर पृथ्वीतल को प्रस्थान किया तदनन्तर क्रमसे तीर्थोंको भ्रमण करतेहुये वे नारद द्विज आनर्तदेशको प्राप्तहोकर सत्यसेन के समीपगये व शीघ्रही उस भूपति से भलीभांति संपूजित

त्वयाभूमितलेवाच्यो ममपुत्रोमहीपतिः ॥ ३८ ॥ आनर्ताधिपतिःश्रीमान्सत्यसेनइतिप्रभो ॥ तवतातोमयादृष्टश्श क्रस्यसदनंप्रति ॥ ३९ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गो दीनात्मादेवमध्यगः ॥ तस्मात्पुत्रोसिचेन्मह्यं त्वंसत्यंपरिरक्षसि ॥ ४० ॥ तन्मिष्टान्नंप्रयच्छोच्चैः सस्यानिसलिलानिच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्यसहस्राक्षंप्र स्थितोभूतलंप्रति ॥ ततःक्रमेणतीर्थानि भ्रममाणश्चसद्द्विजः ॥ ४२ ॥ आनर्तविषयंप्राप्य सत्यसेनमुपाद्रवत् ॥ आशु सम्पूजितस्तेन सम्यग्भूपतिनामुनिः ॥ ४३ ॥ पितुस्सन्देशमाचख्यौ विजनेतस्यसादरम् ॥ तच्छ्रुत्वाशोकसंतप्तःस त्यसेनोमहीपतिः ॥ ४४ ॥ तंविसृज्यमुनिश्रेष्ठं पूजयित्वाविधानतः ॥ ततोजनकमुद्दिश्य मिष्टान्नेनसुभक्तितः ॥ ४५ ॥ सहस्रंब्राह्मणेन्द्राणां भोजयामासनित्यशः ॥ प्रपादानंतथाचक्रे ग्रीष्मकालेविशेषतः ॥ त्यक्त्वान्याःसकलायाश्च क्रि याधर्मसमुद्भवाः ॥ ४६ ॥ एवंतस्यमहीपस्य वर्तमानस्यचद्विजाः ॥ अनावृष्टिरभूद्रौद्रा सर्वसस्यक्षयावहा ॥ ४७ ॥ या

मुनिने ॥ ४२ । ४३ ॥ एकान्त में उसके पिताके सन्देशको आदर समेत कहा उसको सुनकर सत्यसेन भूपति शोचसे संतप्तहुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर विधिसे पूजकर के उन मुनिनायक नारदजी को बिदाकर उसने पिताको उद्देशकर भक्तिसे नित्यही हज़ार द्विजेन्द्रों को मिष्टान्नसे भोजन कराया वैसेही धर्मसे उपजेहुये अन्य समस्त कर्मोंको छोड़कर ग्रीष्म समय में विशेषता से प्रपादान (पौशाले) को किया ॥ ४५ । ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस भूपतिको इसप्रकार वर्तमान होतेहुये समस्त अन्नोंकी क्षय-

कारिणी, भयानक अनावृष्टि हुई ॥ ४७ ॥ इन्द्रने बारहवर्षतक भूपृष्ठ में जलको न छोंड़ा और समस्त संसार क्षुधासे विकलहुआ ॥ ४८ ॥ उसी कारण जैसे पहले ब्राह्मणों को अन्न देताथा वैसेही उस भूपति ने ब्राह्मणों के लिये भलीभाति उद्देशकर अन्न व जलको नहीं दिया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर क्षुधासे संयुत अङ्गोंवाला उस भूपति का वह पिता अत्यन्तही बलिष्ठ नरोंमें उत्तम उस पुत्रसे स्वप्न में बोला ॥ ५० ॥ कि जिसलिये स्वर्ग में टिकाहुआ भी मैं तुम्ह पुत्र के द्वारा क्षुधा, प्यास से अति आकुल होताहुआ टिकाहूं इसलिये अन्नको देवो व अन्नसे उपजाहुआ जलसंयुत मिष्टान्न देना चाहिये ॥ ५१ । ५२॥ तदनन्तर स्वप्न देखनेसे वह भूप शोचसंयुत हुआ

वद्द्वादशवर्षाणि नजलंत्रिदशाधिपः ॥ मुमोचधरणीपृष्ठेसर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ४८ ॥ अन्नमापस्ततोभूपो नसस्यं संप्रयच्छति ॥ ब्राह्मणेभ्यस्समुद्दिश्य ब्राह्मणानांयथापुरा ॥४९ ॥ ततस्सक्षुत्परीताङ्गःपितातस्यमहीपतेः ॥ स्वप्नेप्रोवाचतंपुत्रमतीवबलिनांवरम् ॥ ५० ॥ त्वयापुत्रेणयच्चाहं क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ ५१ ॥ स्वर्गस्थोपिहितिष्ठामि तस्मादन्नं प्रयच्छतु ॥ मिष्टान्नंतोययुक्तंच देयंसस्यसमुद्भवम् ॥ ५२ ॥ ततःशोकसमायुक्तस्सततस्स्वप्नदर्शनात् ॥ अन्नाभावात्ममंमन्त्रंमन्त्रिभिस्सतदाकरोत् ॥५३॥ अहमाराधयिष्यामिसस्यार्थंवृषभध्वजम् ॥ राज्येरक्षाविधातव्या भवद्भिस्सादरंसदा ॥ ५४ ॥ ततोत्रैवसमागत्यस्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ सम्यगाराधयामास यमैश्चनियमैस्तथा ॥ ५५ ॥ अथतस्यगतस्तुष्टिं वर्षान्तेभगवाञ्छिवः॥अब्रवीद्वरदोस्मीतिप्रार्थयस्वयथेप्सितम्॥५६॥राजोवाच॥ अन्नार्थेदेवदेवेश मयायंविहितोविधिः ॥ तस्मात्त्वंयच्छमेशीघ्रमसंख्यंवृषवाहनः ॥ ५७ ॥ तथासंजायतांवृष्टिस्समस्तेधरणीतले ॥ येन

उसके उपरान्त उस समय उस भूपति ने अन्न के न होनेसे मंत्रियों के साथ सम्मति किया ॥ ५३ ॥ कि मैं अन्नके लिये वृषभध्वज (शिव) को आराधन करूंगा व तुमलोगों को आदर समेत सदैव राज्य में रक्षा करना चाहिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस भूपतिने यहीं आकर व महादेव जीको भलीभांति थापकर यमों तथा नियमोंसे भलीभांति आराधन किया ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर वर्षके अन्तमें उस भूपतिके ऊपर प्रसन्नताको प्राप्तहोतेहुये शिवभगवान् ने यह कहा कि मैं वरदायकहूं तुम यथेप्सित मनोरथ को मागो ॥ ५६ ॥ राजा बोले कि हे वृषवाहन, देवदेवेश ! मैंने अन्नके लिये इस विधिको कियाहै इसलिये शीघ्रही तुम मुझको असंख्य अन्नको देवो ॥ ५७ ॥

वैसेही समस्त धरातलमें वृष्टि होवै जिससे इससमय अन्न व जल उत्पन्न होवैं ॥५८॥ व हे देवेश ! तुम्हारी प्रसन्नतासे स्वर्ग में टिकेहुये उस महात्मा मेरे पिताकी तृप्तिहोवै
हे सुरसत्तम ! मेरी रक्षाकीजिये ॥५९॥ शिवभगवान् बोले कि थोड़ेही देरमें समस्त धरातलमें वृष्टिहोगी व भूतलमें जो कोई अन्नहैं वे होवैंगे ॥ ६० ॥ इसलिये हे नृपेन्द्र!
इससमय तुम अपने घरको जावो मेरे वचन से निरसन्देह यही होगा ॥ ६१ ॥ हे नृप ! वहां तुमने जो मेरा लिङ्ग स्थापन किया है इसको प्रभात उठकर जो मनुष्य
देखैगा वह अपने चाहेहुये फलको पावैगा ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ ६२ ॥ इसके उपरान्त बड़े हर्षसे संयुत वह राजाभी अपने स्थान

तृप्ततामममतातस्य स्वर्गस्थस्यमहात्मनः ॥ प्रसादात्तवदेवेशरक्ष
सस्यानिजायन्ते सलिलानिचसाम्प्रतम् ॥ ५८ ॥ भवितानचिराद्वृष्टिः समस्तेधरणीतले ॥ भविष्यन्तितथान्नानि यानिकानि
मांसुरसत्तम ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ममवाक्यादसंदिग्धमेतदेवभविष्यति ॥ ६१ ॥ तत्रै
महीतले ॥ ६० ॥ तस्मात्त्वंगच्छराजेन्द्र स्वगृहंप्रतिसाम्प्रतम् ॥ एवंसभगवानुक्त्वा ततश्चादर्श
तन्मामकंलिङ्गं यत्त्वयास्थापितंनृप ॥ प्रातरुत्थाययःपश्येत्स्वेप्सितंफलमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ सूतउ
नंगतः ॥ ६२ ॥ सोपिराजानिजंस्थानं हर्षेणमहतायुतः ॥ आजगामचकाराथ राज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ६३ ॥ समिष्टान्नमवाप्नो
वाच ॥ अद्यापिकलिकालेच सम्प्राप्तेदारुणेयुगे ॥ यस्तंमिष्टान्नदंपश्येत्प्रातरुत्थायभक्तितः ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छे
तियदिकामयतेद्विजाः ॥ निष्कामोवासमभ्येति स्थानंदेवस्यशूलिनः ॥ ६५ ॥ ॥ १३७ ॥
देनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमिष्टान्नदेश्वरलिङ्गमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशाधिकशततमोध्यायः ॥

को आया व नाशकियेहुये कण्टकोंवाली राज्यको किया ॥ ६३ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! भयङ्कर कलिकालयुगको भलीभांति प्राप्तहोनेपर आजभी जो पुरुष
प्रातःकाल उठकर उस मिष्टान्नद लिङ्गको भक्तिसे देखताहै वह यदि मिष्टान्न को चाहता है तो प्राप्तहोताहै अथवा अकाम मनुष्य त्रिशूलवाले देवता के स्थानको भ-
लीभांति आता है ॥ ६४ । ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमिष्टान्नदेश्वरलिङ्गमाहा
त्म्यंनामसप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। हाटकेश के क्षेत्र महँ थपे तीन गणनाथ। इकसौ अड़तिस में सोई वर्णित है शुभ गाथ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहांपर और भी पुण्यदायक तीन गणेश हैं जो कि स्वर्गदायक मृत्युलोकदायक, पुण्यदायक तथा अन्य नरक के अपहारकहैं ॥ १ ॥ व समस्त विघ्नों के नाशक व देवता दैत्यों से पूजित व निश्चय कर समस्त कामनाओं के देनेवाले व विद्या, कीर्ति (यश) के विशेषकर बढ़ानेवाले हैं ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस भूतल में तीन भांति के पुरुष पैदा होते हैं जो कि उत्तम अन्य मध्यम तथा अन्य अधम कहेगये हैं ॥ ३ ॥ उत्तम पुरुषों ने केवल मोक्षही की प्रार्थना किया है कि जिस मोक्ष में

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति पुण्यंगणपतित्रयम् ॥ स्वर्गदंमर्त्यदंपुण्यं तथान्यंनरकापहम् ॥ १ ॥ हन्तारंस र्वविघ्नानां पूजितंसुरदानवैः ॥ सर्वकामप्रदंचैव विद्याकीर्तिविवर्द्धनम् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रिविधाःपुरुषास्सूतजाय न्तेत्रमहीतले ॥ उत्तमामध्यमाश्चान्ये तथान्येप्यधमाःस्मृताः ॥ ३ ॥ उत्तमाःप्रार्थयन्तिस्म मोक्षमेवहिकेवलम् ॥ ग तायत्रनिवर्तन्ते नकथंचिद्धरातले ॥ ४ ॥ मध्यमाःस्वर्गमार्गेच दिव्यान्भोगान्मनोरमान् ॥ अप्सरोभिःसमंक्रीडां य ज्ञाद्यैःकर्म्मभिःकृताम् ॥ ५ ॥ अधमामर्त्यलोकेत्र रमन्तिविषयात्मकाः ॥ कृमिकीटकवत्तत्र रतिंकृत्वागरीयसीम् ॥ ६ ॥ स्वर्गमोक्षौपरित्यज्य त्यक्त्वान्यान्मर्त्यइष्यते ॥ ऋषयऊचुः ॥ केनासौप्रार्थ्यतेमर्त्ये मर्त्यदोगणनायकः ॥ ७ ॥ के नसंस्थापितास्तेच तस्मिन्क्षेत्रेगजाननाः ॥ कस्मिन्कालेप्रद्रष्टव्यास्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ पूर्वंकृत्वात

प्राप्तहुये पुरुष किसी प्रकार भूतल में नहीं पलटते हैं ॥ ४ ॥ व मध्यम मनुष्य स्वर्गमार्ग को व स्वर्गवाले मनोहर भोगों को तथा यज्ञादिक कर्मों से कीहुई अप्सराओं के साथ क्रीड़ा को चाहते हैं ॥ ५ ॥ व विषय आत्मावाले अधम नर उस विषय में गरिष्ठ स्नेह को करके इस मृत्युलोक में रमण करते हैं ॥ ६ ॥ व स्वर्ग मोक्ष को छोड़कर व अन्यलोकों को त्यागकर मृत्युलोक इच्छा कियाजाता है व मृत्युलोकमें ये मृत्युलोकदायक गणनायक किस पुरुष से प्रार्थना किये जाते हैं ॥ ७ ॥ और उस क्षेत्र में वे गजानन किससे स्थापित हुये हैं व उन को किससमय में देखना चाहिये यह सब विस्तार से कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन

समय में मृत्युलोक में मनुष्य तीव्र तपस्या को करके तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये अपनी इच्छा से स्वर्ग को जाते थे ॥ ९ ॥ वैसेही ध्यानों से नष्टपातकोंवाले अन्य नर मोक्षमार्ग को प्राप्त होते थे तदनन्तर किसी समय उत्तम मनुष्यों से स्वर्ग व्याप्त होगया ॥ १० ॥ जब उसके प्रभाव से देवता सबओर क्षिप्त (तिरस्कृत) हुये तब समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी आपही जाकर पार्वती समेत एकही आसन पै बैठेहुये शिवजीसे बोले ॥ ११ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे परमेश्वर ! तपस्याके प्रभाव से भलीभांति सिद्धहुये मनुष्यों से हमलोगों की समस्त गृहादिक महिमा व्याप्तहोगई ॥ १२ ॥ इसलिये हम लोगों के ऊपर प्रसन्नता करके इस समय किसी

पस्तीव्रं मर्त्यलोकेद्विजोत्तमाः ॥ ततोगच्छन्तिसंहृष्टास्स्वेच्छयात्रिदिवंप्रति ॥ ९ ॥ मोक्षमार्गेतथैवान्ये ध्यानैर्विधुतकल्मषाः ॥ ततःस्वर्गंसमाकीर्णं कदाचिन्मनुजोत्तमैः॥१०॥देवेषुक्षिप्यमाणेषु समन्तात्तत्प्रभावतः ॥ गत्वास्वयंसहस्राक्षस्सर्वैर्देवगणैस्सह ॥ प्रोवाचशङ्करंगौर्य्या सार्द्धमेकासनेस्थितम् ॥ ११ ॥ इन्द्रउवाच ॥ तपःप्रभावसंसिद्धैर्मानवैःपरमेश्वर ॥ अस्माकंव्याप्यतेसर्वं महिमानंगृहादिकम् ॥१२॥ तस्मात्कृत्वाप्रसादंनः किञ्चिच्चिन्तयसाम्प्रतम् ॥ उपायंयेनतिष्ठामस्सौख्येनात्रदिवालये ॥ १३ ॥ अथश्रुत्वाविरूपाक्षस्तेषांतद्वचनंद्विजाः ॥ पार्वत्याःपार्श्वसंस्थाया मुखचन्द्रंव्यलोकयत् ॥ १४ ॥ निजगात्रंततोदेवी सुसंमर्द्यमुहुर्मुहुः ॥ मलमाहृत्यतंकृत्स्नं चक्रेनागमुखंततः ॥ १५ ॥ चतुर्हस्तंमहाकायंलम्बोदरसमन्वितम् ॥ सकौतुककरंतेषां सर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ ततस्सविनयादाह देवींशिखरवासिनीम् ॥ १७ ॥ यदर्थमत्रसृष्टोहं तत्कार्यंवदमाचिरम् ॥ त्रैलोक्येत्वत्प्रसादेन नासाध्यंविद्यतेमम ॥ १८ ॥ देव्युवाच ॥

यत्न को चिन्तन करिये कि जिससे हमलोग इस स्वर्ग में सुखसे टिकैं ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! उन देवताओं के उस वचनको सुनकर विरूपाक्ष (शिव) जीने बगलमें भलीभांति बैठीहुई पार्वतीजी के मुखरूपी चन्द्रमा को देखा ॥ १४ ॥ तदनन्तर देवीने अपने अंग को बार २ मीड़कर व उस समस्त मल को लेकर उसके उपरान्त चारहाथोंवाले व हाथीके मुखवाले बड़ेभारी शरीरका निर्माण किया जो कि लम्बे पेट से संयुक्त व समस्त देवताओं को कौतुक सहित करनेवाला था ॥ १५ । १६ ॥ तदनन्तर उसने नम्रतासे शिखर पै बसनेवाली देवीसे कहा ॥ १७ ॥ कि यहांपर जिसलिये मैं रचागयाहूं उस कार्य्य को शीघ्रही कहिये

क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नतासे मुझको त्रिलोकमें कुछ असाध्य नहीं है ॥ १८ ॥ देवी बोलीं कि मृत्युलोक में जो मनुष्य सदैव स्वर्ग व मोक्षमें तत्पर हैं उनके शुभकार्यों में तुमको विघ्न करना चाहिये ॥ १९ ॥ व तीस सागर, सतहत्तरि शंख, साठि महापद्म, बीस निखर्व ॥ २० ॥ व दशहजार अर्बुद, पंचानबे करोड़, पचपन लाख, पचीस हजार ॥ २१ ॥ और उनहत्तरि सौ तथा अन्यगण यहां भलीभांति टिकेहैं कि जिन गणसमूहोंकी स्वामिता में तुम विशेषता से स्थितहुयेहो ॥ २२ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस सुरेश्वरी देवीने आपही ओषधियों से भरे व उत्तम तीर्थजलोंसे परिपूर्ण व महोदयवाले सुवर्णघटों को भलीभांति लाकर गाने, बजाने के विनोद

मर्त्यलोकेनरायेच स्वर्गमोक्षपरास्सदा ॥ तेषांविघ्नंत्वयाकार्य्यं शुभकृत्येषुचैवहि ॥ १९ ॥ सरितांपतयस्त्रिंशच्छङ्खा नांसप्तसप्ततिः ॥ महासरोजषष्टिश्च निखर्वाणांचविंशतिः ॥ २० ॥ अर्बुदायुतसंयुक्ताः कोट्योनवतिपञ्चच ॥ लक्षाश्चप ञ्चपञ्चाशत्सहस्राःपञ्चविंशतिः ॥ २१ ॥ शतानिनवषष्टिश्चगणाश्चान्येत्रसंस्थिताः ॥ येषांगणकवृन्दानामाधिपत्येऽव्य वस्थितः ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वाथसादेवी समानीयौषधीभृतान् ॥ हेमकुम्भान्सुतीर्थाम्भःपरिपूर्णान्महोदयान् ॥ २३ ॥ तस्याभिषेचनंचक्रे स्वयमेवसुरेश्वरी ॥ गीतवाद्यविनोदेननृत्यमङ्गलजैःस्वनैः ॥ २४ ॥ त्रयस्त्रिंशन्मिताःकोट्यो दे वायेसंस्थितादिवि ॥ तेसर्वेंचतदागत्य तस्यचक्रुश्चमङ्गलम् ॥ २५ ॥ अथतस्यददौतुष्टो भगवान्वृषभध्वजः ॥ कुठा रंनिशितंहस्ते तदावैश्रेष्ठमायुधम् ॥ २६ ॥ पात्रंमोदकसम्पूर्णमक्षयंचैवपार्वती ॥ भोजनार्थंमहाभागा मातृस्नेहपरा यणा ॥ २७ ॥ मूषकंकार्त्तिकेयस्तु वाहनार्थंप्रहर्षितः ॥ भ्रातरंमन्यमानस्तु बन्धुस्नेहेनसंयुतः ॥ २८ ॥ ज्ञानंदिव्यंददौ

से व नृत्य, मङ्गलसे उपजेहुये शब्दों से उस गणनायक का अभिषेक किया ॥ २३ । २४ ॥ उससमय तैंतीस कोटि प्रमाणवाले जे देवता आकाश या स्वर्ग में भलीभांति टिकेथे उन सबोंने आकर उन गणेश जीके मङ्गल को किया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्नहोतेहुये शिवभगवान् ने उससमय पैने व उत्तम परशुको उसके हाथ में दिया ॥ २६ ॥ व माताके स्नेह में तत्पर होतीहुई महाभाग्यवती पार्वती जीने भोजन के लिये लड्डुओंसे भरेहुये अविनाशी पात्रको दिया ॥२७॥ व बन्धुके स्नेहसे

संयुत व भाईको मानतेहुये प्रसन्न स्वामिकार्त्तिकेय जीने सवारीके लिये मूषक को दिया॥ २८ ॥ व भूत, भविष्य और जो वर्तमान होताहै उस दिव्य ज्ञानको ब्रह्माजीने प्रसन्नचित्तसे उस गणपति के लिये दिया ॥ २९ ॥ व विष्णुजी ने बुद्धिकों व इन्द्रने बड़ेभारी उत्तम सौभाग्यको व शिव जीमें वैर कियेहुये भी कामदेव ने स्वरूप को दिया ॥ ३० ॥ व सूर्य्यभगवान् ने प्रतापको व चन्द्रमाने उत्तम शोभा को दिया वैसेही अन्य समस्त देवताओं ने देवी व सामर्थ्यवान् देव (शिव) जीकी प्रसन्नता के लिये बहुत से अपने प्यारेपदार्थों को दिया हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर पायेहुये वरदानवाले उन गणेश जीने देवकार्यमें तत्पर होकर धर्मके लिये व पुण्य तथा

ब्रह्मातस्मैतुष्टेनचेतसा ॥ अतीतानागतंचैव वर्तमानंचयद्भवेत् ॥ २९ ॥ प्रज्ञांविष्णुस्सहस्राक्षस्सौभाग्यंचोत्तमंमहत् ॥ स्वरूपंकामदेवस्तु कृतवैरोभवेपिच ॥ ३० ॥ प्रतापंभगवान्सूर्य्यः कान्तिमग्र्यांनिशाकरः ॥ तथान्येविबुधास्सर्वे ददु रिष्टानिभूरिशः ॥ ३१ ॥ आत्मीयानिप्रतुष्ट्यर्थं देव्यादेवस्यचप्रभोः॥ एवंलब्धवरस्सोथ गणनाथोद्विजोत्तमाः ॥३२॥ देवकृत्यपरोनित्यं चक्रेविघ्नानिभूतले ॥ धर्म्मार्थंयतमानानां मोक्षायसुकृतायच ॥ ३३ ॥ ततोभूमितलेभ्येत्य गणेश स्तत्रयःस्मृतः ॥ वैमानिकैस्समायातैः स्थापितस्तत्रसद्विजाः ॥ ३४॥ येनस्वर्गार्थिनोलोकाः पूजांतस्यप्रचक्रिरे ॥ प्रथमं सर्वकृत्येषु विघ्ननाशायतत्पराः ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु चमत्कारपुरोद्भवैः ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मविज्ञानतत्परैर्मोक्षहेतु भिः ॥ ३६ ॥ ईशानःस्थापितस्तत्र मोक्षदोयउदाहृतः ॥ स्वर्गवाञ्छद्भिरेवान्यैःस्वर्गद्वारप्रदस्तथा ॥ ३७ ॥ हेरम्बःस्थापि तस्तत्र सत्यंनामयथोचितम् ॥ तथान्यैर्मर्त्यदोनाम गणेशस्तत्रयःस्थितः ॥ ३८ ॥ येनस्वर्गाच्च्युतायान्तिकदाचि

मोक्षके निमित्त यत्नकरनेवाले मनुष्योंका भूतल में नित्यही विघ्नकिया ॥ ३१ । ३२ । ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर जो गणेशजी कहेगयेहैं वे उस भूतलमें आकर आयेहुये विमानवाले (देवों) से स्थापितहुये ॥ ३४ ॥ जिससे समस्त कार्यों में विघ्न नाशके लिये तत्पर होतेहुये स्वर्ग के चाहनेवाले मनुष्यों ने पहले उन गणेशजी का पूजन किया ॥ ३५ ॥ इसी समय में चमत्कारपुरमें उपजेहुये व ब्रह्मके विज्ञान में परायण व मोक्ष हेतुवाले ब्राह्मणोंने वहांपर ईशान को स्थापित किया है जो कि मोक्षदायक कहेगये हैं वैसेही स्वर्गही को चाहनेवाले अन्य पुरुषोंसे वहांपर स्वर्गद्वारको देनेवाले हेरम्ब (गणेश) जी स्थापित हुये हैं तथा अन्य पुरुषों से वहां

थापेहुये जो मर्त्यद नामक टिकेहैं वे यथायोग्य सत्यनामवाले हैं ॥ ३६।३७।३८ ॥ जिससे कि स्वर्ग से गिरेहुये मनुष्य कभी नरकादिकको जातेहैं व पशुपक्षीकी योनि या कीट योनि अथवा स्थावरता (वृक्षादिभाव) कोभी प्राप्तहोते हैं ॥ ३९ ॥ इसी कारण हे द्विजोत्तमो ! उस पुण्यदायक क्षेत्रमें सदैव स्वर्गी नरोंको मृत्युलोकदायक हेरम्ब जी मर्त्यदहुये ॥ ४० ॥ हेरम्ब से उपजेहुये इस पुण्यदायक समस्त कथानक को तुमलोगोंसे वर्णन किया जोकि सुनाहुआ चरित मनुष्यों के समस्त विघ्नोंको नाशकरता है ॥ ४१ ॥ व माघमासकी शुक्लपक्षवाली चौथिमें जो नर इन हेरम्ब जीको पूजते हैं उनको वर्ष पर्य्यन्त कहीं विघ्न नहीं होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्क-

न्नरकादिकम् ॥ तिर्य्यक्त्वंवाकृमित्वंवा स्थावरत्वमथापिवा ॥ ३९ ॥ एतस्मात्कारणात्तत्र क्षेत्रेपुण्येद्विजोत्तमाः ॥ हेरम्बोमर्त्यदोजातः स्वर्गिणांमर्त्यदःसदा ॥ ४० ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं पुण्यंहेरम्बसम्भवम् ॥ आख्यानंसर्वविघ्नानि यन्निहन्तिश्रुतंनृणाम् ॥ ४१ ॥ एतन्माघचतुर्थ्यान्तु शुक्लायांपूजयेन्नरः ॥ नतेषांवत्सरंयावद्विघ्नंसंजायतेक्वचित् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये गणपतित्रयमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति देवश्चित्रेश्वरोद्विजाः ॥ चित्रपीठस्यमध्यस्थश्चित्रसौख्यप्रदोनृणाम् ॥ १ ॥ यं दृष्ट्वापूजयित्वाथनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ मुच्यतेपरदारोत्थैःपातकैश्चोपपातकैः ॥ २ ॥ धर्षयित्वागुरोःपत्नीं कन्यांवानिजवंशजाम् ॥ वधूंवाव्रतयुक्तांवा कामासक्तेनचेतसा ॥ ३ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ सततपापंनिहत्याशु

न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगणपतित्रयमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

दो० । रंभाको पठयो सुरन मुनि जाबालिहि पास । इकसौ उन्तालीसमहँ कहत समेत विलास ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वैसेही उस क्षेत्र में चित्रपीठ के मध्यमें टिकेहुये अन्य चित्रेश्वरदेवभी मनुष्यों को विचित्र सुखदायक हैं ॥ १ ॥ जिनको देखकर व पूजकर मनुष्य पाप से छूटजाताहै व पराई स्त्री से उठेहुये पातकों व उपपातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ व काम में लगेहुये चित्तसे गुरुकी स्त्रीको व अपने वंशमें उपजीहुई कन्याको व पतोहू को तथा व्रतसंयुत स्त्रीकी धर्षणा

करके जो पुरुष चैत्रमहीने की शुक्लपक्षवाली चौदसि में उन चित्रेश्वर देव को पूजताहै वह उस पातकको शीघ्रही नाशकर तदनन्तर स्वर्गलोकको जाताहै ॥ ३।४ ॥ वैसेही उस क्षेत्रमें उन जाबालि मुनि से उपजीहुई नग्नकन्या सहित व जाबालि मुनि समेत चित्रांगद नृपति भलीभांति टिकाहै जोकि पुरातन समय जाबालि जीसे उस कन्याके अगाड़ी शाप दियागयाहै उस दिन जो उन तीनोंकोभी पूजताहै वह और भलीभांति देखकर स्त्री मनमें टिकीहुई सिद्धिको पातीहै ऋषिलोग बोले कि पुरातनसमय किस कारण जाबालिमुनिने चित्रांगद युवाको शापदिया है ॥ ५। ६। ७ ॥ और वसनहीन व विरुद्धरूप में टिकीहुई उन जाबालिकी वह कन्या किस

स्वर्गलोकंततोव्रजेत् ॥४॥ तथाचित्राङ्गदस्तत्र जाबालिसहितोनृपः ॥ कुमार्य्यासहितस्सार्द्धं नग्नयातत्समुत्थया ॥५॥ सन्तिष्ठतेतदग्रेतु शप्तोजाबालिनापुरा ॥ त्रयाणामपियस्तेषां तस्मिन्नहनिपूजयेत्॥ ६ ॥ संदृष्ट्वालभतेनारी सिद्धिंच मनसिस्थिताम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्माज्जाबालिनाशप्तः पूर्वंचित्राङ्गदोयुवा ॥ ७ ॥ साचतत्तनयाकस्मात्कुमारीवस्त्रव र्जिता ॥ अद्यापितिष्ठतेतत्र विरुद्धंरूपमाश्रिता ॥ ८ ॥ निजहास्यकरंनित्यं तस्मात्सूतवदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ आसी त्पूर्वंमुनिर्नाम जाबालिरितिविश्रुतः ॥ ६ ॥ कौमारब्रह्मचर्य्येण येनचीर्णंतपस्सदा ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं समासाद्यससद् द्विजाः ॥ बाल्येपिवयसिप्राप्ते समारेभेमहत्तपः ॥ १० ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि पाराकाणिशनैःशनैः ॥ कुर्वतानेन तेदेवास्संनीताभयगोचरम् ॥ ११ ॥ ततःशक्रादयोदेवाः संत्रस्तामेरुमूर्द्धनि ॥ मिलित्वाचक्रिरेमन्त्रं तस्यविघ्नकृतेमि

कारण उस क्षेत्रमें आजभी टिकी है ॥ ८ ॥ हे सूतजी ! जिसकारण कि नग्नरूप नित्यही निज हास्यकारक है इसलिये हमलोगों से इस चरितको कहिये सूतजी बोले कि पुरातनसमय जाबालि ऐसे नामवाले प्रसिद्ध मुनि हुये हैं ॥९॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! जिन मुनिने हाटकेश्वरजीसे उपजे हुये क्षेत्रमें प्राप्तहोकर सदैव कुमार ब्रह्मचर्य्य से तपस्या को इकट्ठा कियाहै उन जाबालिने बाल्यावस्था भी प्राप्तहोनेपर बड़ीभारी तपस्याका प्रारम्भ किया धीरे २ कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व पाराक व्रतोंको करतेहुये इन मुनिने उन देवताओंको भयगोचरमें प्राप्तकियायाने भयभीत किया ॥१०।११॥ तदनन्तर डरेहुये इन्द्रादिक देवताओंने सुमेरु गिरिके मस्तकपै मिलकर उन

जाबालि के विघ्नके लिये आपसमें सम्मति किया ॥ १२ ॥ कि यदि इन मुनिकी तपस्याकी वृद्धि नित्यही इस प्रकार होवैगी तो निश्चयकर स्वर्गकी राज्यसे इन्द्र को गिरावैगा ॥ १३ ॥ इसलिये शुद्ध मन या चित्तवाले उन ऋषि के ब्रह्मचर्य्य नाशने के लिये विगत वसनोंवाली (नग्न) रंभा उन के समीप जावै ॥ १४ ॥ क्योंकि ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य्यको तपस्याकी जड़ कहा है व्रतमें उस ब्रह्मचर्य्य के न होने से केवल क्लेश मिलता है फल नहीं ॥ १५ ॥ उस समय महेन्द्र आदिक उन समस्त देवताओं ने ऐसा निश्चयकरके तदनन्तर रम्भाको भलीभांति बुलाकर आदर समेत कहा ॥ १६ ॥ कि हे महाभागे ! जिस हाटकेश्वरज क्षेत्रमें जाबालि

थः ॥ १२ ॥ यद्यस्यतपसोवृद्धिरेवंयास्यतिनित्यशः ॥ च्यावयिष्यतितन्नूनं स्वर्गराज्याच्छतक्रतुम् ॥ १३ ॥ तस्माद्गच्छतुरम्भाच तत्पार्श्वेविगताम्बरा ॥ ब्रह्मचर्य्यविघातायतस्यर्षेर्भावितात्मनः ॥ १४ ॥ ब्रह्मचर्य्यंतपोमूलं यतस्संकीर्तितंद्विजैः ॥ तस्याभावात्परिक्लेशं केवलंनफलंव्रते १५ ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा समाहूयततःपरम् ॥ रम्भामूचुर्महेन्द्राद्यास्सर्वेदेवास्तदादरात् ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रंमहाभागेजाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तपोविघ्नायतस्य वै ॥ १७ ॥ कामभावाःप्रयोक्तव्याः कथास्तास्तामनोहराः ॥ वर्द्धयन्तियथाचित्ते तस्यकामंनिरर्गलम् ॥ १८ ॥ रम्भोवाच ॥ समुनिर्नविजानाति कामधर्म्मंसुरेश्वर ॥ १९ ॥ अरसज्ञंकथंदेव करिष्यामिस्मरान्वितम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ एषयास्यतिमद्वाक्याद्वसन्तस्तस्यसन्निधौ ॥ २० ॥ अस्यसन्दर्शनादेव भविष्यतिससस्मरः ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंतत्र सहानेनवरानने ॥ २१ ॥ संसिद्धिर्जायतेयेन देवकृत्यंभवेद्द्रुतम् ॥ अथसातंप्रणम्योच्चैः प्रस्थिताधरणीतलम् ॥ २२ ॥ व

जी टिके हैं वहां तुम शीघ्रही उनकी तपस्याके विघ्नके लिये जावो ॥ १७ ॥ व काम होने (उपजाने) वाली वे वे मनोहर कथायें उस प्रकार प्रयोग करनेके योग्य है कि जिस भांति उन जाबालि के चित्तमें निरर्गल (असह्य) कामदेव को बढ़ावैं ॥ १८ ॥ रंभा बोली कि हे सुरनायक ! वे मुनि कामदेव के धर्मको नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ हे देव ! रसके न जाननेवाले उन जाबालि को मैं कैसे कामसंयुत करूंगी इन्द्र बोले कि मेरे वचन से यह वसन्तऋतु उस जाबालि के समीप जावैगा ॥ २० ॥ हे उत्तम मुखवाली ! इस वसन्त के भलीभांति देखनेही से वे मुनि सकाम होवेंगे इसलिये इसके सहित वहां शीघ्रही जावो ॥ २१ ॥ कि जिससे संसिद्धि

होवै व शीघ्रही देवकार्य्य होवै इसके अनन्तर वसन्तसे संयुत उस रम्भाने उच्चप्रकार से उन इन्द्रजी को प्रणाम कर भूतल को प्रस्थान किया जहांपर कि जाबालिजी टिके थे इसके अनन्तर एकाएकी अशोक वृक्ष के पुष्प समूह पैदा होगया ॥ २२ । २३ ॥ व तिलक तथा आम्र वृक्षके भलीभांति मंजरी उपस्थित होगई व शिशिर ऋतुमें कमल विकास को प्राप्तही हुये ॥ २४ ॥ व सुकामदायक दक्षिण दिशावाली सुगन्धित वायु चलती भई इसी अवसर में उत्तम रम्भा अप्सरा वहां प्राप्त हुई ॥ २५ ॥ जहा कि पितरों का तर्पण करके श्रद्धासंयुत जाबालिजी रुद्राक्ष की मालाको हाथ में धारे व प्रियमंत्र को अनेकप्रकार से जपते हुये जलाशय के किनारे पै

सन्तेनसमायुक्ता जाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ अथाकस्मादशोकस्य सञ्जातःपुष्पसंचयः ॥ २३ ॥ तिलकस्यचचूतस्यम ञ्जर्य्यस्समुपस्थिताः॥ शिशिरेचसरोजानि विकाशंप्रापुरेवहि ॥ २४ ॥ ववौचसुरभिर्वायुर्दाक्षिणात्यःसुकामदः ॥ एत स्मिन्नन्तरेतत्र रम्भाप्राप्तावराप्सरा ॥ २५ ॥ सलिलाशयतीरस्थो जाबालिर्यत्रतिष्ठति ॥ अक्षमालाधृतकरो जपन्म न्त्रमनेकधा ॥ २६॥ अभीष्टंश्रद्धयायुक्तो विधायपितृतर्प्पणम् ॥ अथसंपश्यतस्तस्य मुक्त्वावस्त्रपरिग्रहम् ॥ स्नानार्थं तज्जलंसा च प्रविवेशवराप्सरा ॥ २७ ॥ विवस्त्रांतांसमालोक्य सोपियौवनशालिनीम् ॥ याम्यानिलेनसंस्पृष्टः काम स्यवशगोभवत् ॥ २८ ॥ ततस्तस्याऽभवत्कम्पस्तत्क्षणादेवसन्मुनेः ॥ अक्षमालाकराग्राच्च पपातधरणीतले ॥ २९ ॥ पुलकस्सर्वगात्रेषु तंजज्ञेऽतीवदारुणः ॥ ३० ॥ अश्रुपाताःपतन्तिस्मकोणाग्रात्तस्यनेत्रयोः॥अथतंक्षुभितंज्ञात्वाचित्तज्ञा सावराप्सरा ॥ ३१ ॥ निर्गत्यसलिलात्तस्माच्चक्रेवस्त्रपरिग्रहम् ॥ ततस्तस्यान्तिकंगत्वा प्रणिपत्यकृतादरम् ॥ ३२ ॥ प्रो

स्थित व टिके थे इसके अनन्तर उन मुनिके भलीभांति देखतेहुये वह उत्तम अप्सरा वसन परिग्रह को छोरकर स्नान के लिये उस जलमें पैठगई ॥ २६ । २७ ॥ यौवन से शोभित व वसन से रहित उस अप्सरा को भलीभांति देखकर दक्षिण पवनसे संस्पर्श कियेहुये वे जाबालि भी कामदेव के वशमें प्राप्त हुये ॥ २८ ॥ तदनन्तर उसी क्षणही उन उत्तम मुनिके कम्पहुआ व रुद्राक्ष की माला हाथ के अग्रभाग से भूतल में गिरपड़ी ॥ २९ ॥ व सब अंगोंमें अत्यन्तही कठिन रोमाञ्च हुआ ॥ ३० ॥ व उन मुनि के नेत्रोंके कोणाग्र भाग से अश्रुपात गिरते भये इसके अनन्तर उन मुनि को क्षुभित जानकर चित्तको जाननेवाली वह उत्तम अप्सरा ॥ ३१ ॥

उस जल से निकलकर वसन परिग्रह किया तदनन्तर उन मुनिके निकट जाकर व प्रणामकरि उन जाबालि के कामदेव को बढ़ाती हुई वह अप्सरा कियेहुये आदर वाले उन जाबालि से मधुर वचन को बोली कि हे ब्रह्मन्, मुने ! क्या तुम्हारे आश्रममें स्वाध्याय (वेदपाठ) में, तपस्याकी प्राप्तिमें व शिष्यों और मृगों व पक्षियों में सब कुशल है मुनि बोले कि हे उत्तम नितम्बवाली ! इस समय मेरे सबकहीं कुशलही है ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ हे महाभागे ! समस्त लक्षणों से लक्षित व मेरे कामदेव को बढ़ानेहारी व यहांपर विशेषकर प्राप्तहुई तुम कौनहो इसको कहो ॥ ३५ ॥ क्या देवीहो या आसुरी (दैत्योंकी स्त्री) हो या क्या पन्नगीहो अथवा क्या

वाचमधुरंवाक्यं वर्द्धन्तीतस्यमन्मथम् ॥ आश्रमेसकलंब्रह्मन् कच्चित्तेकुशलंमुने ॥ ३३ ॥ स्वाध्यायेतपसःप्राप्तौ शिष्येषुमृगपक्षिषु ॥ मुनिरुवाच ॥ कुशलंमेवरारोहे सर्वत्रैवाधुनास्थितम् ॥ ३४ ॥ विशेषेणात्रसंप्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ कात्वंवदमहाभागे मममन्मथवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥ किंदेवीचासुरीवाकिं पन्नगीकिन्नुमानुषी ॥ निवेदयशरीरेमे किंनपश्यसिवेपथुम् ॥ ३६ ॥ निरर्गलस्सरोमाञ्चो बाष्पपूरश्चनेत्रतः ॥ रम्भोवाच ॥ किन्तेगात्रस्वभावोयं किंचान्योव्याधिसम्भवः ॥ ३७ ॥ कश्चिज्जनयतेऽस्वास्थ्यं प्रपश्यामिशरीरजम् ॥ मुनिरुवाच ॥ नायंगात्रस्वभावेन व्याधिभिश्चसुलोचने ॥ ३८ ॥ शृणुष्वकारणंकृत्स्नं येनेदृक्संस्थितंवपुः ॥ यावतीवर्ततेवेला तवदर्शनसम्भवा ॥ ३९ ॥ तावत्कालमिदंरूपं ममगात्रसमुद्भवम् ॥ तदहंमन्मथाविष्टो दर्शनात्तेसुशोभने ॥ ४० ॥ ब्रह्मचर्य्यपरोपीत्थं महाव्रतधरोपिच ॥

मानुषीहो इसको निवेदनकरो क्या मेरे शरीर में कम्पको नहीं देखतीहो ॥ ३६ ॥ व बिनरोंक टोंकवाले रोमांच को व नेत्रोंसे आंसुओंके प्रवाहको नहीं देखतीहो रंभा बोली कि क्या यह तेरे शरीरका स्वभावहै व रोगसे उपजाहुआ कोई अन्य उपद्रव अस्वस्थताको उत्पन्नकररहा है जिसको मैं देखतीहूं मुनि बोले कि हे सुलोचनि ! यह अंगके स्वभावसे व रोगोंसे नहीं है ॥ ३७ । ३८ ॥ जिससे ऐसा शरीर स्थितहै उस समस्त कारणको सुनिये कि तुम्हारे दर्शनसे उपजीहुई जितनी वेला वर्तमान है ॥ ३९ ॥ उतनेही समय में मेरे देहसे उपजाहुआ यह रूपहै उसी कारण हे सुशोभने तुम्हारे दर्शनसे ब्रह्मचर्य में परायणभी व ऐसे महाव्रतका धारीभी मैं कामदेव ! से घिराहूं

रंभा बोली कि हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि ऐसा है तो मुझको सुखपूर्वक भजो ॥४०।४१॥ हे द्विज ! इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि मैं पण्यनारी याने वेश्याहूं व जिसलिये कि सबही मनुष्योंके विशेषकर ब्राह्मणोंके लिये साधारण हमसब ब्रह्मासे रचीगई हैं ॥ ४२ ॥ हे मुने ! कामदेवके समान तुमको देखकर तीखे कामके बाणोंसे ताड़ित होतीहुई मैंभी जानेके लिये नहीं उत्साह करतीहूं ॥ ४३ ॥ मैंने समस्त देवता, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर व नाग और गुह्यकोंको देखा मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ४४ ॥ हे द्विजपुङ्गव ! जिसलिये कि उन सबों के बीचमें एकके भी ऐसे रूपको नहीं देखा इसलिये मुझ भक्ता को भजो ॥ ४५ ॥ क्योंकि जो पुरुष कामसे अत्यन्त तचाई व

रम्भोवाच ॥ यद्येवंब्राह्मणश्रेष्ठ मांभजस्वयथासुखम् ॥४१॥नात्रकश्चिद्भवेद्दोषः पण्यनारीयतोस्म्यहम् ॥ साधारणाव
यंविप्रयतस्सृष्टाःस्वयम्भुवा ॥ सर्वेषामेवलोकानां विशेषेणद्विजन्मनाम् ॥ ४२ ॥ अहंचापिसमालोक्य त्वांमुनेमन्म
थोपमम् ॥ हताकामशरैस्तीक्ष्णैर्नचगन्तुंसमुत्सहे ॥ ४३ ॥ मयादृष्टास्सुरास्सर्वे यक्षविद्याधरास्तथा ॥ सिद्धाश्चकिन्न
रानागा गुह्यकाःकिन्नुमानुषाः ॥ ४४ ॥ नेदृग्रूपंचयत्तेषामेकस्यापिविलोकितम् ॥ मध्येब्राह्मणशार्दूल तस्माद्भक्तांभ
जस्वमाम् ॥ ४५ ॥ योनारींकामसंतप्तां स्वयंप्राप्तांपरित्यजेत् ॥ ४६ ॥ समूर्खःपचतेघोरे नरकेशाश्वतीस्समाः ॥ एव
मुक्त्वातयासोथ परिष्वक्तोमहामुनिः ॥ ४७ ॥ अनिच्छन्नपिवाक्येन हृदयेनचसस्पृहः ॥ ततोलतानिकुञ्जेतं समा
नीयमुनीश्वरम् ॥ ४८ ॥ कामशास्त्रोदितैर्भावैरमयन्तीचतंमुनिम् ॥ एवंतयासमंतत्र स्थितोयावद्दिनत्रयम् ॥ ४९ ॥
कामधर्म्मसमासक्तस्तत्सकाशेचकामुकः ॥ ततोनिष्कामतांप्राप्तो लज्जयापरिवारितः ॥ ५० ॥ विससर्जचतांरम्भां

आपही प्राप्तहुई स्त्रीको त्याग करता है ॥ ४६ ॥ वह मूर्ख सैकड़ों वर्ष घोर नरक में पचता है ऐसा कहकर इसके अनन्तर वचन से नहीं चाहतेहुये भी व हृदय से मनोरथ सहित वे महामुनि उस रंभा से आलिंगितहुये तदनन्तर उन मुनिनायक को लतानिकुंज में भलीभांति लाकर ॥ ४७ । ४८ ॥ व कामशास्त्रमें कहेहुये भावों से उन मुनिको रमणकराया इसप्रकार उस रंभा समेत वे मुनि वहांपर दिनत्रय (सन्ध्या) पर्य्यन्त टिके ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस रंभा के सकाश में कामधर्म में

तत्पर वे जाबालि कामुक (कामी) अकामता को प्राप्तहुये व लज्जा से घिरगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर उन मुनिने उस रंभाको बिदाकिया व शौच किया और उनसे छूटी व कार्यको कियेहुये वह विलासिनी भी ॥ ५१ ॥ प्रसन्न होतीहुई वहांगई जहांपर कि इन्द्र समेत देवताथे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येजाबालिक्षोभणोनामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । निज कन्यहि चित्रांगदहि दिय जाबालि सराप । इकसौ चालिसवें महँ बरणत सोइ प्रलाप ॥ सूतजी बोले कि वह रंभा स्वर्गको जाकर पश्चात् देवताओं

शौचंचक्रेततःपरम् ॥ सापितेनविनिर्मुक्ता कृतकृत्याविलासिनी ॥ ५१ ॥ प्रतुष्टाप्रययौतत्रयत्रदेवास्सवासवाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये जाबालिक्षोभणोनामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सागत्वात्रिदिवंपश्चात्सहस्राक्षंसुरैर्युतम् ॥ प्रोवाचभगवन्दिष्ट्या क्षोभितोसौमहामुनिः ॥ १ ॥ तपस्तस्यहतंकृत्स्नं यत्कृच्छ्रेणसमाचितम् ॥ तथानिस्तेजसत्वंचनीतस्त्वंसुखभाग्भव ॥ २ ॥ एवमुक्त्वाथसारम्भा शंसितानिखिलैस्सुरैः ॥ अमोघरेतसस्तस्य दध्रेगर्भंनिजोदरे ॥ ३ ॥ जाबालिरपिकृत्वाच पश्चात्तापमनेकधा ॥ भूयस्तुतपसिस्थित्वास्थितस्तत्रैवचाश्रमे ॥ ४ ॥ ततस्तुदशमेमासे सम्प्राप्तेसुषुवेशुभाम् ॥ कन्यांसरोजपत्राक्षीं दिव्यलक्षणलक्षिताम् ॥ ५ ॥

से संयुत इन्द्रजी-से बोली कि हे भगवन् ! आनन्द है जोकि ये जाबालि महामुनि क्षोभितहुये ॥ १ ॥ व जो क्लेश से इकट्ठा कियागयाथा वह उसका समस्त तप नाश होगया वैसेही निस्तेजताको प्राप्तहुआ तुम सुखभागी होवो ॥ २ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर समस्त देवताओंसे प्रशंसित होतीहुई उस रंभाने सफल वीर्यवाले उन जाबालिमुनि केसकाशसे अपनेपेट मे गर्भको धारण किया॥ ३ ॥ जाबालिमुनि भी अनेक प्रकारके पश्चात्ताप को करके फिर तपस्या में स्थितहोकर उसी आश्रम मे टिके ॥ ४ ॥ तदनन्तर जब दशम महीना भलीभांति प्राप्तहुआ तब उस रंभाने उत्तमलक्षणों से लक्षित व कमलदल लोचनोंवाली उत्तम कन्याको पैदा किया ॥५॥

इसके अनन्तर उसको मनुजसे उपजीहुई मानकर व उसीं जाबालि के आश्रमको जाकर उन्हीं ऋषिके सामने छोड़ दिया व यह कहा ॥ ६ ॥ कि हे मुनिपुङ्गव ! तु-
म्हारे वीर्यसे उपजी व मेरेगर्भमें आरोपितहुई यह कन्याहै इसलिये इससमय पालन करो ॥ ७ ॥ क्योंकि किसी प्रकार मनुष्यों का स्वर्ग में वास नहीं विद्यमान है इसी
कारण हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हारे लिये समर्पण किया ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर रंभा शीघ्रही स्वर्गको चलीगई व जाबालि नेभी उस कन्याको देखकर स्नेह में प्रवेशकिया ॥ ९ ॥
तदनन्तर उस सोतीहुई कन्याको लताके घरमें धरकर मीठेफलोंसे उपजेहुये रसोंसे अहर्निश पोषणकिया ॥ १० ॥ वह कन्याभी दिन दिन धीरे २ उत्तम वृद्धिको प्राप्त

अथतांमानुषोद्भूतां मत्वातस्यैवचाश्रमम् ॥ गत्वामुमोचप्रत्यक्षं तस्यर्षेश्चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ तववीर्य्यसमुद्भूता ममगर्भे
प्ररोपिता ॥ कन्यकामुनिशार्दूल तस्मात्पालयसाम्प्रतम् ॥ ७ ॥ नस्वर्गेविद्यतेवासो मानुषाणांकथञ्चन ॥ एतस्मात्का
रणात्तुभ्यं मयाब्रह्मन्समर्पिता ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाययौरम्भासत्वरंत्रिदशालयम् ॥ जाबालिरपितांदृष्ट्वा कन्यकांस्नेह
आविशत् ॥ ९ ॥ ततस्तांकन्यकांधृत्वा प्रसुप्तांचलतागृहे ॥ रसैर्मिष्टफलोद्भूतैः पुपुषेचदिवानिशम् ॥ १० ॥ सापिक
न्यापरांवृद्धिं शनैर्यातिदिनेदिने ॥ शुक्लपक्षंसमासाद्ययथाचन्द्रकलादिवि॥११॥ यथायथाथसायाति वृद्धिंकमललोच
ना ॥ तथातथास्यसुस्नेहो जाबालेरप्यवर्द्धत ॥ १२ ॥ साशिशुत्वेमृगैस्सार्द्धं पक्षिभिश्चशुभानना ॥ क्रीडांचक्रेसुवि
श्रब्धैर्वर्द्धयन्तीमुनेर्मुदम् ॥ १३ ॥ ततोबाल्यात्परित्यक्तावल्कलावृतगात्रिका ॥ तस्यर्षेःसर्वकृत्येषु साहाय्यंप्रक
रोतिच ॥ १४ ॥ समित्कुशादियत्किंचित्फलपुष्पसमन्वितम् ॥ वनात्तदानयामास तस्यप्रीतिंप्रवर्द्धयन् ॥ १५ ॥ ततः

होतीथी जैसे कि शुक्लपक्ष को पाकर आकाशमें चन्द्रमाकी कला बढ़ती हैं ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर वह कमललोचनोंवाली कन्या ज्यों २ वृद्धिको प्राप्तहोतीथी त्यों २
इन जाबालिमुनिका सुन्दर स्नेह भी बढ़ा ॥ १२ ॥ व मुनिके हर्षको बढ़ातीहुई शोभनमुखवाली उस कन्याने शिशुतामें अति विश्वस्त मृगों व पक्षियोंके साथक्रीड़ा
किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर शिशुता से परित्यक्त याने युवावस्थावाली व बकलों से आच्छादित अङ्गोंवाली वह कन्या उन ऋषिके समस्त कार्योंमें सहायता करती
थी ॥ १४ ॥ व उन मुनि के स्नेह को बढ़ातीहुई वह कन्या फल, फूल संयुत जो कुछ समिधा व कुशादिथे उनको वनसे लातीथी ॥ १५ ॥ तदनन्तर किसी दिन

ग्रीष्मकाल में वह मृगनयनी फलोंके लिये अपने आश्रमसे दूरचलीगई ॥ १६ ॥ इसीअवसरमें उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ चित्रांगद नामक देवताओंका गन्धर्व वहांपर प्राप्तहुआ ॥ १७ ॥ व भूमिमें गिरीहुई चन्द्रमाकी लेखा (प्रकाशपंक्ति) के समान व पूर्ण चन्द्रमाके सदृश आननवाली उस कन्याको निर्जन स्थानमें उस चित्रांगद ने देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर कामदेव से घिरे अंगवाले उस गन्धर्वने विमानसे भूतल में उतर हाथ जोड़कर मीठे वचनों से उसे कहा ॥ १९ ॥ कि हे बाले, सुलोचनि कमल गर्भके समान शोभावाली ! तुमकौन इसनिर्जन महावनमें अकेले वनके बीच घूमतीहो ॥ २० ॥ कन्या बोली कि जाबालिमुनिकी कन्या फलवती नामक मैं

कतिपयाहस्य फलार्थंसामृगेक्षणा ॥ निदाघसमयेदूरं स्वाश्रमात्प्रजगामह ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र विमानवरमाश्रितः ॥ प्राप्तश्चित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ १७॥तेनसाविजनेबालापूर्णचन्द्रनिभानना ॥ दृष्टाचान्द्रमसीलेखा पतितेवधरातले ॥ १८ ॥ ततःकामपरीताङ्गस्सोऽवतीर्य्यधरातलम् ॥ विमानान्मधुरैर्वाक्यैस्तामुवाचकृताञ्जलिः ॥ १९ ॥ कात्वंकमलगर्भाभे विजनेत्रमहावने ॥ भ्रमस्यैकाकिनीबाले वनमध्येसुलोचने ॥ २० ॥ कन्योवाच ॥ अहंफलवतीनाम जाबालेर्दुहितामुनेः ॥ फलपुष्पार्थमायाता तदर्थमिहकानने ॥ २१ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ कुमारब्रह्मचारीस श्रूयतेमुनिसत्तमः ॥ तत्कथंतस्यवामोरु त्वंजाताभार्य्ययाविना ॥ २२ ॥ कन्योवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग नास्तिदारपरिग्रहः ॥ तस्याहंकिन्तुसञ्जाता यथातन्मेवधारय ॥ २३ ॥ रम्भानामाप्सरातेन पुरादृष्टासुराङ्गना ॥ तदाकामपरीतेन सेविताचयथासुखम् ॥ २४ ॥ ततस्तदुदराज्जाता देवलोकेमहत्तरे ॥ तयापिचाहंतस्यार्थंभूपृष्ठेविनियो

उन मुनिके निमित्त फलफूलों के लिये इस वनमें आईहूं ॥ २१ ॥ चित्रांगद बोला कि हे वामोरु ! वे मुनिनायक कुमार ब्रह्मचारी सुनेजाते हैं इसलिये उनके स्त्री के विना तुमकैसे उत्पन्नहुईहो ॥ २२ ॥ कन्या बोली कि हे महाभाग ! यह सत्यहै कि उन मुनि के स्त्रीका परिग्रह नहीं है परन्तु मैं जिस प्रकार उत्पन्नहुईहूं उसको मुझसे सुनों ॥ २३ ॥ कि पुरातनसमय उन मुनिने रंभा नामक देवांगनाको देखा व उसीसमय कामदेव से घिरेहुये जाबालि ने यथा सुखपूर्वक सेवनकिया ॥ २४ ॥

तदनन्तर आति प्रतिष्ठित सुरलोक में उसके पेट से मैं पैदाहुई व उसने भी मुझको भूपृष्ठपै उन मुनि के लिये विशेषकर नियुक्त किया ॥ २५ ॥ वे जाबालि मुनिनायक इस प्रकार मेरे पिता हुये तदनन्तर उन मुनिने अनेक प्रकार के फलोंसे उपजे हुये रसों से मुझको पालन किया ॥ २६ ॥ उसी कारण उन महात्माने मेरे अनुरूप फलवती नाम किया जो तुम मुझसे पूंछते हो वह यही है ॥ २७ ॥ चित्रांगद बोला कि तुम्हारे रूपको मैं भलीभांति देखकर कामके वश होगया इस लिये हे भीरु ! तुम मुझको भजो नहीं तो विनाश को प्राप्त हूंगा ॥ २८ ॥ देवताओं का गन्धर्व चित्रांगद नामक मैं श्रद्धा संयुत होकर तीर्थयात्रा के लिये इस

जिता ॥ २५ ॥ एवंसमेपिताजातो जाबालिर्मुनिसत्तमः ॥ पोषिताहंततस्तेन नानाफलसमुद्भवैः ॥ २६ ॥ ततःफलवती नाम कृतंतेनमहात्मना ॥ ममानुरूपमेतद्धि यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ २७ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ तवरूपंसमालोक्य कामस्याहंवशंगतः ॥ तस्माद्भजस्वमांभीरु नोचेद्यास्यामिसंक्षयम् ॥ २८ ॥ अहंचित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्राकृतेप्राप्तः क्षेत्रेस्मिन्श्रद्धयान्वितः ॥ २९ ॥ कन्योवाच ॥ कुमारधर्म्मिणीचाहमद्यापिवशगापितुः ॥ कामधर्म्मंनजानामि चित्राङ्गदकथञ्चन ॥ ३० ॥ तस्मात्प्रार्थयमेतातं समांतुभ्यंप्रदास्यति ॥ अनुरूपाययोग्याय तरुणायमनस्विनीम् ॥ ३१ ॥ ममापिरोचतेचित्ते तववाक्यमिदंशुभम् ॥ धन्याहंयदिते कण्ठमालिङ्गामि यथेच्छया ॥ ३२ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ नशक्नोमिमहाभागे तावत्कालंप्रतीक्षितुम् ॥ मांदहत्येवगात्रोत्थः सुमहत्कामपावकः ॥३३॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे वरदानेनशोभने ॥ कोजानातिहितंचित्तं कीदृग्रूपंभविष्यति ॥ ३४ ॥ कन्योवाच ॥ यद्येवंवर्तमा

क्षेत्रमें प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ कन्या बोली कि हे चित्रांगद ! पिताके वशमें प्राप्त व कन्या धर्मवाली मैं आजभी किसी प्रकार कामदेव के धर्मको नहीं जानती हूं ॥ ३० ॥ इस लिये मेरे पितासे मांगिये वे मुझ मनस्विनी को योग्य व समान व युवावस्थावाले तुम्हारे लिये देवेंगे ॥ ३१ ॥ व सुखदायक यह तुम्हारा वचन मेरे भी चित्तमें रुचता है क्योंकि यदि यथेच्छा पूर्वक मैं तुम्हारे गलेको आलिंगन करूं तो धन्यहूं ॥ ३२ ॥ चित्रांगद बोला कि हे महाभागे ! उतना समय परखने के लिये मैं नहीं समर्थहूं क्योंकि शरीर से उठीहुई बड़ी भारी कामरूपी अग्नि मुझको जलाही रही है ॥ ३३ ॥ इस लिये हे शोभने ! वरदान से मेरे ऊपर प्रसन्नता करो

क्योंकि कौन जानता है कि उन मुनिका चित्त कैसे रूपवाला होवै ॥ ३४ ॥ कन्या बोली कि यदि तुम इस प्रकार वर्तमान हो तो मेरा पिता क्रोधसे अति भयङ्कर शाप देकर तुमको निस्सन्देह जलावैगा ॥ ३५ ॥ चित्रांगद बोला कि हे मानदायिनि ! तुम्हारा पिता तो समय में मुझको जलावैगा व फिर यह कामाग्नि शीघ्रही भस्म करैगा ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस काँपती हुई लज्जावती कन्या को दाहिने हाथमें पकड़कर देवालय को पैठगया ॥ ३७ ॥ व उस समय काम से अतिपीड़ित चित्रांगद ने उसी समय उपजे हुये स्नेह से अन्धी व निर्लज्जताको प्राप्त हुई उस कन्याको रमण कराया ॥ ३८ ॥ हे मुनिसत्तमो ! उस गन्धर्व के साथ

नस्त्वं ममतातःप्रकोपतः ॥ दहिष्यतिनसन्देहः शापंदत्त्वासुदारुणम् ॥ ३५ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ तवतातस्तुकालेमां दहिष्यतिहिमानदे ॥ कामानलःपुनःसद्य एषभस्मकरिष्यति ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वाथतांबालां वेपमानांत्रपावतीम् ॥ गृहीत्वादक्षिणेपाणौ प्रविवेशसुरालयम् ॥ ३७ ॥ तत्रतांरमयामास तदाकामप्रपीडितः ॥ तत्कालजातरागान्धां निर्लज्जत्वमुपागताम् ॥ ३८ ॥ एवंतस्याःसमन्तेन स्थितायादिवसोगतः ॥ निमेषवन्मुनिश्रेष्ठास्ततश्चास्तंगतोरविः ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रो जाबालिर्दुःखसंयुतः ॥ अनायातांसुतांज्ञात्वा परिबभ्रामसर्वतः ॥ ४० ॥ अहोसादुहितामह्यं किन्तु व्याघ्रैःप्रभक्षिता ॥ वृक्षंकञ्चित्समारूढा पतिताधरणीतले ॥ ४१ ॥ किंवाजलाशयंकञ्चित्प्राप्तागाधमजानती ॥ निमग्ना तत्रसाबाला सम्प्रविष्टाजलार्थिनी ॥ ४२ ॥ एवंसप्रलपन्विप्रो बभ्रामगहनेवने ॥ कुशकण्टकविद्धाङ्गः क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ ४३ ॥ यंयंशृणोतिशब्दंस मृगपक्षिसमुद्भवम् ॥ रजन्यांतत्रनिर्य्याति मत्वाफलवतींचताम् ॥ ४४ ॥ अथा

इस भांति टिकीहुई उस कन्याका दिन पलभर के नाई व्यतीत होगया तदनन्तर सूर्य्य अस्त होगये ॥ ३९ ॥ इसी अवसर में दुःख संयुत जाबालि द्विज ने न आई हुई कन्याको जानकर सब ओर भ्रमण किया ॥ ४० ॥ अहो बड़ा खेदहै कि उस मेरी कन्याको क्या व्याघ्रोंने खाडाला वा किसी वृक्षपर चढ़कर भूतल में गिरपड़ी ॥ ४१ ॥ अथवा क्या गहरे को न जानती हुई जलार्थिनी वह बाला (कन्या) किसी जलाशयको प्राप्तहुई व उसमें पैठकर डूबगई ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निरर्थक वचन कहते हुये कुश व कांटोंसे बेधित अंगोंवाले व क्षुधा, प्याससे अतिआकुल उस द्विज ने सघनवन में भ्रमण किया ॥ ४३ ॥ व मृगों तथा पक्षियों से उपजेहुये जिस जिस २

शब्दको वे जाबालिजी सुनते थे वहां पै उस फलवती कन्याको मानकर रात्रि में जाते थे ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये वे उत्तम मुनि मनोहर मन्दिर को भली भांति आये जहां कि चित्रांगद संयुत वह कन्या भलीभांति टिकीथी ॥ ४५ ॥ जो कि निःशङ्क होकर विशेष कर ब्राह्मणों से उपजी हुई कन्याओं के अयोग्य अनेक अनुराग चरितों को कहरही थी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुक्त व दूर टिका हुआ वह बहुत देरतक सुनकर व कन्या के कर्मको देखकर क्रोधसे लाल लोचनों वाला होगया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर वार २ निन्दता हुआ वह दोनों ही के विनाश के लिये काष्ठसमुदायको लेकर शीघ्रता से दौड़ा ॥ ४८ ॥ हे पापआचरण

क्रमन्समायातो रम्यंहर्म्यंससन्मुनिः ॥ यत्रचित्राङ्गदोपेतासासंतिष्ठतिकन्यका ॥ ४५ ॥ निःशङ्काजल्पमानातु रागवृत्तान्यनेकशः ॥ अनर्हाणिकुमारीणां ब्रह्मजानांविशेषतः ॥ ४६ ॥ ततस्ससुचिरंश्रुत्वा दूरस्थोविस्मयान्वितः ॥ कुमार्य्याश्चेष्टितंदृष्ट्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ ४७ ॥ अथदुद्राववेगेन गृह्यकाष्ठसमुच्चयम् ॥ द्वाभ्यांचैवविनाशाय भर्त्सयानोमुहुर्मुहुः ॥ ४८ ॥ धिक्धिक्पापसमाचारे कौमार्य्यंदूषितंत्वया ॥ लाञ्छनंचसमानीतं ममलोकेजनेपिच ॥ ४९ ॥ नितरांपतिमासाद्य कर्म्मणानेनचाधमे ॥ तस्मादनेनपापेन युक्तांत्वांनाशयाम्यहम् ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वाप्रहारंस यावत्क्षिपतिसन्मतिः ॥ तावच्चित्राङ्गदोनष्टो व्योममार्गेणसत्वरम् ॥ ५१ ॥ विवस्त्रासापितत्रैव खिन्नाङ्गीकामसेवया ॥ नशशाक क्वचिद्गन्तुंसमुत्थायततःक्षितेः ॥ ५२ ॥ ततःकाष्ठप्रहारौघैर्हत्वातांपतितांक्षितौ ॥ मृतामितिपरिज्ञाय सक्रोधपरिवारि

वाली ! तुमने कुमारपनको दूषितकर दिया इससे धिक्कारहै धिक्कार है हे अधमे ! विशेपकर पतिको प्राप्तहोकर जिस लिये कि संसार व मनुष्यों में भी मुझको कलंक प्राप्तकिया है उसी कारण इस पापसे युक्तहुई तुमको मैं नाश करताहूं ॥ ४९ । ५० ॥ ऐसा कहकर वे उत्तम बुद्धिवाले जाबालिजी जबतक प्रहार को फेंकैं तबतक चित्रांगद शीघ्रही आकाशमार्ग से अदृश्य होगया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वहीं पर कामदेवके सेवनसे दुःखित अंगोंवाली व वसनसे रहित वह कन्याभी भूमिसे उठकर कहींजानेके लिये न समर्थहुई ॥ ५२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये वे जाबालिजी पृथ्वी में पड़ीहुई उसको काठके प्रहारादिकों से मारकर मरीहुई है यह जानकर

खड़ेहोरहे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उन जाबालि जीने भयसे आतुर व आकाशमार्ग से जातेहुये देखकर उस चित्रांगद कोभी अति विकरालशाप दिया ॥ ५४ ॥ किजो यह मेरी कन्याको धर्षणीकरके ऊपरजाता है वह पापी कटेहुये पंखवाले पक्षी आदिके समान शीघ्रही गिरपड़ै ॥ ५५ ॥ व कुष्ठरोग से संयुत व चलनेके लिये न समर्थहोवै वह चित्रांगद इसी अवसर में आकाशतलसे भूमि में गिरपड़ा ॥ ५६ ॥ व वह युवा चित्रांगद कुष्ठरोगसे संयुत होगया तदनन्तर क्रोधसे काठ के अधपरचे हाथोंवाले उन जाबालि मुनिने क्रोधसे उससे कहा ॥ ५७ ॥ कि कुमारीको दूषित करनेवाले व पापआचरण वाले तुमकौनहो उसीकारण यह मैं आज तुमको यमराज के घरको प्राप्तकरूंगा ॥

तः ॥ ५३ ॥ ततश्चित्राङ्गदस्यापि ददौशापंसुदारुणम् ॥ सदृष्ट्वाकाशमार्गेण गच्छमानंभयातुरम् ॥ ५४ ॥ यएषकन्यकां मह्यं धर्षयित्वासमुत्पतेत् ॥ सपतत्वचिरात्पापः छिन्नपक्षइवाण्डजः ॥ ५५ ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तश्चलितुंनैवचक्षमः ॥ एतस्मिन्नन्तरेभूमौ सपपातनभस्तलात् ॥ ५६ ॥ कुष्ठव्याधिसमायुक्तस्सचचित्राङ्गदोयुवा ॥ ततस्तंसमुनिःप्राह काष्ठोल्मुककरःक्रुधा ॥ ५७ ॥ कस्त्वंपापसमाचारः कुमारीपरिदूषकः ॥ तन्नयाम्येषत्वामद्य यमस्यसदनम्प्रति ॥ ५८ ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ अहंचित्राङ्गदोनाम गन्धर्वस्त्रिदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन क्षेत्रेस्मिन्समुपागतः ॥ ५९ ॥ ततस्तुकन्यकांदृष्ट्वाकामदेववशंगतः ॥ ततस्सेवितवानत्र लताहर्म्यैवनस्थले ॥ ६० ॥ तस्मात्कुरुक्षमांमह्यं दीनस्यप्रणतस्यच ॥ यथाव्याधेर्भवेन्नाशो यथास्याद्गगनेगतिः ॥ ६१ ॥ भूयोपित्वत्प्रसादेन स्वल्पःकोपोहिसाधुषु ॥ जाबालिरुवाच ॥ ईदृग्रूपधरस्त्वंहि ममवाक्याद्भविष्यसि ॥ ६२ ॥ एषापिमत्सुतापापा वस्त्रहीनासदेदृशी ॥ भविष्यतिनसन्देहो जी

५८ ॥ चित्रांगद बोला कि चित्रांगद नामक देवताओं का गन्धर्व मैं तीर्थयात्रा के प्रसंगसे इस क्षेत्रमें भलीभांति आया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर कन्या को देखकर कामदेव के वशमें प्राप्तहुआ उसके उपरान्त इसी वन स्थल के बीच लता घरमें सेवन किया ॥ ६० ॥ इसलिये प्रणाम कियेहुये मुझदीनके ऊपर क्षमाकरिये कि जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नतासे रोगका नाशहोवै व फिर भी जिसभांति आकाश में गमनहोवै क्योंकि साधुओं में थोड़ाकोप चाहिये जाबालि जी बोले कि मेरे वचनसे तुम ऐसेहीरूपके

धारनेवाले होंगे ॥ ६१ ६२ ॥ और यदि कहीं जीवैगी तो यह पापिनी मेरी कन्याभी सदैव निरसन्देह ऐसीही वसनहीन होवैगी ॥६३॥ व कहींपर किसी अंगमें भी यदि यह कन्या वसनको धारैगी तो निरसन्देह शीघ्रही इसका मस्तक फूटजायगा॥६४॥ ऐसा कहकर विन क्रोधवाले वे जाबालिजी अपने आश्रमको चलेगये और उस कन्या समेत चित्रांगद वहींपर वैसेही स्थितहुआ ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर किसी समय चैतकी शुक्लपक्षवाली चौदसि में सन्ध्याप्राप्त होनेपर चित्रेश्वरी पीठ पै रमणकरनेके लिये रौद्रगणोंसे घिरेहुये व उग्र योगिनियों समेत भगवान् चन्द्रभाल (शिव) जी उस क्षेत्रमें भलीभांति आये॥ ६६ । ६७ ॥ इसके अनन्तर आधीरात प्राप्त होनेपर सब

वयिष्यतिचेत्कचित् ॥ ६३ ॥ यद्येषाधास्यतिकापि वस्त्रंगात्रेनिजेकचित्॥सत्वरंचाशिरोप्यस्याः फलिष्यतिनसंशयः॥ ६४ ॥ एवमुक्त्वाविकोपश्च सजगामनिजाश्रमम् ॥ चित्राङ्गदोपितत्रैव तयासार्द्धंतथास्थितः ॥ ६५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतत्रक्षेत्रेसमाययौ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां भगवाञ्छशिशेखरः ॥ ६६ ॥ रन्तुंचित्रेश्वरीपीठे गणैरौद्रैःसमावृतः ॥ योगिनीभिःप्रचण्डाभिः सार्द्धंप्राप्तेनिशामुखे ॥ ६७ ॥ अथप्राप्तेनिशार्द्धेतु योगिन्यस्ताःसुदारुणाः ॥ महामांसंमहामांसमित्यूचुर्भक्षणायवै ॥ ६८ ॥ नृत्यमानाःपुरस्तस्य देवदेवस्यशूलिनः ॥ स्पर्द्धन्त्योगणमुख्यैस्तैर्नर्तमानैस्समन्ततः ॥ ६९ ॥ यस्तेतत्समयेस्माकं महामांसंप्रयच्छति ॥ मन्त्रपूतंसुसंसिद्धिं ससंप्राप्नोतिवाञ्छिताम् ॥ ७० ॥ मद्यंमांसंतथाचान्नं नैवेद्यंवाफलादिकम् ॥ तस्यासिद्धिस्समादिष्टायथास्वेहृदयेस्थिता ॥ ७१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकन्या साजाबालिसमुद्भवा॥सचचित्राङ्गदस्तत्र गत्वाप्रोवाचसादरम् ॥ ७२ ॥ अस्मदीयमिदंमांसं योगिन्योहर्षसंयुताः॥ भक्षय

और नाचतेहुये गणमुख्योंसे ईर्षाकरती व उन त्रिशूलधारी देवदेव (शिव) जीके अगाड़ी नाचतीहुई उन अतिभयंकर योगिनियों ने भक्षण के लिये महामांस २ ऐसा कहा ॥ ६८ । ६९ ॥ कि इससमय में जो मंत्र से पवित्र महामांस को हमसबोंको देवैगा वह चाहीहुई संसिद्धि को भलीभांति पावैगा ॥ ७० ॥ वैसेही जो मदिरा, मांस,अन्न व फलादिक को नैवेद्य देवैगा उसकी वैसेही सिद्धि कहीगईहै कि जिसप्रकार अपने हृदय में स्थित होवै ॥ ७१ ॥ इसी अवसर में जाबालि से उपजीहुई वह

कन्या और वह चित्रांगद वहां जाकर आदर समेत बोला ॥ ७२॥ कि हर्षसंयुत होतीहुई योगिनियां सुखपूर्वक आपहीसे कल्पित कियेहुये हमारे इस मांसको भक्षणकरैं ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर कुष्ठरोग से घिरेहुये उस पुरुष व वसनहीन उस कन्याको देखकर वे सब योगिनियां विस्मयसंयुत हुईं ॥ ७४ ॥ और वे समस्त रौद्रगण व तीन नयनवाले वे सामर्थ्यवान् शिवदेव जीने विस्मययुक्त होकर वहां चित्रांगद से पूंछा कि ॥ ७५ ॥ बड़े सत्त्व (जीवट) वाले व धैर्य से संयुत तुम कौनहो जोकि कीड़े कोभी अतिप्यारे अपने जीवको देतेहो ॥ ७६ ॥ और तुम्हारे साथ गईहुई पीड़ावाली व वस्त्रोंसे रहित यह कन्या अपने शरीरको देती है जोकि किसीको देने योग्य नहीं

न्तुतथासौख्यं स्वयमेवप्रकल्पितम् ॥ ७३ ॥ अथतंपुरुषंदृष्ट्वा कुष्ठव्याधिसमावृतम् ॥ विवस्त्रांकन्यकांतांच सर्वास्ता विस्मयान्विताः ॥७४॥ तेचसर्वेगणारौद्रास्सचदेवस्त्रिलोचनः ॥ पप्रच्छकौतुकाविष्टस्तत्रचित्राङ्गदंविभुः ॥७५॥ कस्त्वंधैर्यसमायुक्तो महत्सत्त्वोऽव्यवस्थितः ॥ यःप्रयच्छसिजीवंस्वं कीटस्यापिसुवल्लभम् ॥ ७६ ॥ एषाचवसनैर्हीना त्वया सार्द्धंगतव्यथा ॥ प्रयच्छतिनिजंदेहं यद्देयंनैवकस्यचित् ॥ ७७ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्सकथयामास सर्वमात्मविचेष्टितम् ॥ यथाचकन्ययासङ्गस्ततःशापश्चतन्मुनेः ॥ ७८ ॥ ततश्चित्राङ्गदंदृष्ट्वासगन्धर्वंदिवौकसाम् ॥ तथारूपंकृपाविष्टस्ततःप्रोवाचशङ्करः ॥ ७९ ॥ ममसन्दर्शनंप्राप्तो वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ चित्राङ्गदउवाच ॥ यथाव्याधिक्षयोभावी देहनाशोनशङ्कर ॥ ८० ॥ तथाकुरुक्षयंव्याधेर्यदियच्छसिमेवरम् ॥ खेचरत्वंपुनर्देहि येनस्वर्गंव्रजाम्यहम् ॥ ८१ ॥ शङ्करउवाच ॥ त्वंस्थापयात्रमल्लिङ्गं पीठेगन्धर्वसत्तम ॥ ततश्चाराधयप्रीत्या यावद्वर्षमुपस्थितः ॥ ८२ ॥ यथायथाचपूजां

है ॥७७॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उस गन्धर्वने अपने समस्त कर्मको कहा कि जिसप्रकार कन्याके साथ संग हुआ उसके उपरान्त जिसभांति उन मुनिका शापहुआ ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वैसे रूपवाले देवताओं के गन्धर्व चित्रांगद को देखकर उसके उपरान्त कृपायुत होतेहुये उन सदाशिव जीने कहा ॥ ७९ ॥ मेरे दर्शनको भलीभांति प्राप्तहुये तुम यथेप्सित वरदानको मांगो चित्रांगद बोला कि हे शंकर जी ! यदि मुझको वरदेते हो तो जिसप्रकार रोगका नाशहोवै व शरीरका क्षय न होवै वैसेही व्याधि का विनाशकीजिये व फिर आकाशगामित्व को दीजिये कि जिससे मैं स्वर्ग को जाऊं ॥ ८० । ८१ ॥ शंकर जी बोले कि हे गन्धर्वसत्तम ! तुम इस पीठमें मेरे लिंग

को थापन करो तदनन्तर समीप स्थितहोकर वर्षपर्य्यन्त प्रीतिसे आराधनकरो ॥ ८२ ॥ तुम ज्यों२ मेरे लिंगका पूजन करोगे त्योंही दिनोदिन तुम्हारे रोगका नाशहोगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर मेरी प्रसन्नतासे आकाश में गमनको पाकर फिर निस्सन्देह स्वर्गको जावोगे यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ८४ ॥ व जिसकारण यह कन्याभी पीठके मध्य में प्रतिष्ठित है उसीसे फलवती नामक योगिनी होगी ॥ ८५ ॥ व इसीही नग्नत्वरूपसे विशेषकर टिकीहुई मुख्य पूजनको पावैगी व उससमय पूजक पुरुषोंके चित्तमें टिकेहुये मनोरथको सौगुना देवैगी जो मनुष्य इसको भलीभांति पूजनकरै तदनन्तर इस पीठ को पूजन करैगा उसकी ऐसी इष्टसिद्धि होगी इसभांति कही

त्वं मल्लिङ्गस्यकरिष्यसि ॥ दिनेदिनेतथाव्याधेस्तवनाशोभविष्यति ॥ ८३ ॥ ततस्तुखेगतिंप्राप्य पुनःस्वर्गंप्रयास्यसि ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८४ ॥ एषापिकन्यकायस्मात्प्रतिष्ठापीठमध्यतः ॥ तस्मात्फलवतीनामयोगिनीसम्भविष्यति ॥ ८५ ॥ अनेनैवतुरूपेण नग्नत्वेनव्यवस्थिता ॥ मुख्यामवाप्स्यतेपूजां वाञ्छितंचप्रदास्यति ॥ ८६ ॥ पूजकानांस्थितंचित्तेशतसंख्यगुणंतदा ॥ एतांसम्पूजयेन्मर्त्यः पीठमेतत्ततःपरम् ॥ ८७ ॥ पूजयिष्यतितस्येष्टसिद्धिरेवंभविष्यति ॥ एवमुक्तातस्साथ हर्षेणमहतान्विता ॥ ८८ ॥ योगिनीवृन्दमध्यस्था नृत्यंचक्रेततःपरम् ॥ एवंबभूवसातत्र योगिनीचवराङ्गना ॥ ८९ ॥ तथाचक्रेपरंनृत्यं यथातुष्टोमहेश्वरः ॥ ततःप्रोवाचतांहृष्टस्सर्वयोगिनिसन्निधौ ॥ ९० ॥ अनेनतवनृत्येन गीतेनचविशेषतः ॥ परितुष्टोस्मितेवत्से तस्माच्छृणुवचोमम ॥ ९१ ॥ निशीथेद्यदिनेप्राप्ते ऽयस्तेपूजांकरिष्यति ॥ पुण्यमांसादिसत्कारैर्मन्त्रैरागमसम्भवैः ॥ ९२ ॥ सभविष्यतितत्कालंशापा

हुई वह तदनन्तर बड़े हर्ष से संयुत हुई ॥ ८६ । ८७ । ८८ ॥ तदनन्तर योगिनीयूथके मध्य में टिकीहुई उसने नृत्य किया इसप्रकार उत्तम अङ्गोंवाली उस योगिनी ने वहां वैसेही उत्तम नृत्यको किया कि जिसप्रकार महादेवजी प्रसन्न होगये तदनन्तर समस्त योगियों के समीप प्रसन्न होते हुये शिवजीने उससे कहा ॥ ८९ । ९० ॥ कि हे वत्से ! तुम्हारे इस नाचने व विशेषकर गाने से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं इसलिये मेरे वचनको सुनो ॥ ९१ ॥ आजकी आधीरातको प्राप्त होनेपर जो पुरुष वेद से उपजेहुये मन्त्रों के द्वारा पवित्र मांसादिकोंके सत्कारों से तुम्हारा पूजन करैगा ॥ ९२ ॥ वह उसीसमय शापानुग्रहमें सामर्थ्यवान् होगा व वैसेही बन्धन, मोहन

को भी व शत्रुका उच्चाटन व निस्सन्देह वशीकरण भी करैगा और त्रिकोण कुण्डपै देशपालको धरकर पूजनकरै ॥ ९३ । ९४ ॥ व जो नर क्षेत्रपाल और आकाश से उपजेहुये उन समस्त देवताओं तथा ईश्वर (शिव) जी का विधिपूर्वक पूजन करके पश्चात् तुमको पूजकर पीछे शत्रु के बायें चरणसे उठी व छुई हुई धूरि से गुग्गुल समेत हज़ार आहुति हवनकरैगा वह स्तम्भन करैगा और जो नेत्र व वक्षःस्थल में स्थित व नखसे उपजेहुये मल को उठाकर आंवलों समेत होम करैगा वह मोहन करैगा व जो पुरुष शत्रु के स्नान से उपजे हुये जल व पङ्क को ग्रहणकर इसके अनन्तर शिवजी के निर्माल्य संयुत तुम्हारे आगे अग्नि में हवन

नुग्रहशक्तिमान् ॥ बन्धनंमोहनंचापि शत्रोरुच्चाटनंतथा ॥ ॥ ९३ ॥ करिष्यतिनसन्देहो वशीकरणमेवच ॥ त्रिकोणं कुण्डमाधाय देशपालंप्रपूजयेत् ॥ ९४ ॥ क्षेत्रपालंचसर्वास्ता देवतागगनोद्भवाः ॥ तथाचेश्वरपूजांच प्रकृत्वाविधिपू र्वकम् ॥ ९५ ॥ पश्चात्त्वांपूजयित्वाच होमंपश्चात्करिष्यति ॥ शत्रुवामपदोत्थेनस्पृष्टेनरजसातथा ॥ ९६ ॥ गुग्गुलुना सहस्रन्तुस्तम्भनंचकरिष्यति ॥ यश्चनेत्रहृदिस्थंवा उद्धृतंनखसम्भवम् ॥ ९७ ॥ मलंधात्रीफलैस्सार्द्धं मोहनंसकरिष्य ति ॥ यःशत्रोःस्नानजंतोयं गृहीत्वाचाथकर्द्दमम् ॥ ९८ ॥ शिवनिर्माल्यसंयुक्तं जुहुयिष्यतिपावके ॥ तवाग्रेसनरोनूनं शत्रुमुच्चाटयिष्यति ॥ ९९ ॥ एषोपितवसङ्गेन तथाचित्राङ्गदःप्रियः ॥ संप्राप्स्यतिचसम्पूजामानुषङ्गात्तवोद्भवात् ॥ १०० ॥ फलवत्युवाच ॥ यदिदेवप्रसन्नोमे तथान्यमपिसद्वरम् ॥ हृदिस्थंदेहिसौख्यंमे येनसञ्जायतेखिलम् ॥ १ ॥ येनसञ्जायतेदुःखं पश्यन्नपिवि पितामममैषजाबालिर्निर्मुक्तोवसनैस्सदा ॥ अहंयथातथाचैवसंतिष्ठतुदिवानिशम् ॥ २॥

करैगा वह निश्चय कर शत्रुको उच्चाटन करैगा ॥ ९५।९६ । ९७ । ९८।९९ ॥ वैसेही यह प्रिय चित्रांगद भी तुमसे उपजे हुये प्रसङ्ग के कारण तुम्हारे संग से पूजन को भलीभांति पावैगा ॥१००॥ फलवती बोली कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो वैसेही और भी हृदयमें टिके उत्तम वरको दीजिये कि जिससे मुझ को सम्पूर्ण सुख होवै ॥ १ ॥ कि जैसे मैं हूं वैसेही यह मेरा पिता जाबालि सदैव वसनों से रहित होकर दिनरात स्थित होवै ॥ २ ॥ कि जिससे माघमास से उपजी हुई ब्राह्मण वंश

के विरोधवाली क्रीड़ा को देखतेहुये भी दुःख होवै ॥ ३ ॥ जो मद्यगन्ध को भलीभांति सूंघता है व संस्कार कियेहुये मांस को देखताहै वह स्वच्छन्दता में तत्पर नित्यही दिनोदिन दुःख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ श्रीशिव भगवान् बोले कि हे शुभदायिके ! इससमय कहाहुआ ऐसाही होगा मैं कैलासको जाताहूं तुम्हारी यथोदित प्रतिष्ठा होगी ॥५॥ सूतजी बोले कि वे शिव भगवान्जी ऐसा कहकर अदृश्य होगये और वे समस्त योगिनियां अपने २ स्थानमें विशेषकर स्थितहुईं ॥ ६ ॥ व चित्रांगद ने भी वहींपर उत्तम मन्दिरको बनाकर त्रिशूलवाले देवदेव (शिव) जी के लिङ्गको स्थापन किया ॥७॥ तदनन्तर निरालसी होतेहुये दिन रात आराधन किया उसके

रोधिनीम् ॥ क्रीडांब्राह्मणवंशस्य मद्यमांससमुद्भवाम् ॥ ३ ॥ संजिघ्रतिमद्यगन्धं मांसंपश्यतिसंस्कृतम् ॥ सस्वच्छन्दरतोनित्यं दुःखंयातिदिनेदिने ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥एवंभविष्यतिप्रोक्तं सञ्जातमधुनाशुभे ॥ अहंयास्यामिकैलासं त्वत्प्रतिष्ठायथोदिता ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसभगवान्प्रोक्त्वा गतश्चादर्शनंहरः ॥ योगिन्यस्ताश्चवैसर्वाःस्वेस्वेस्थानेव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ चित्राङ्गदोपितत्रैवकृत्वाप्रासादमुत्तमम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ ७ ॥ ततश्चाराधयामास दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ततःसंवत्सरस्यान्तेव्याधिमुक्तःस्वरूपधृक् ॥८॥ विमानवरमारूढो जगामत्रिदशालयम् ॥ सोपिजाबालिनामाथ विवस्त्रस्समपद्यत ॥ ९ ॥ जनहास्यकरोलोके स्थितस्तत्रैवसर्वदा ॥ पश्यमानोविकारांस्तान्दुःखितःस्वसुतोद्भवान् ॥ १० ॥ ततश्चगर्हयामासस्त्रीणां जन्ममहामुनिः ॥ तस्मिन्पीठेसमासाद्य दुःखेनमहतान्वितः ॥ ११ ॥ अहोपापात्मनांपुंसां सम्भविष्यन्तियोषितः ॥ यासामीदृक्समाचारो द्विजवंशोद्भवामपि ॥ १२ ॥

उपरान्त वर्षके अन्तमें स्वरूपका धारी व रोग से छूटा व उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ वह चित्राङ्गद स्वर्ग को चलागया इसके अनन्तर वे जाबालि नामक मुनिभी वसनहीनत्व को प्राप्तहुये ॥ ८ । ९ ॥ व संसार में जनों के हास्यकारक होकर सदैव वहींपर टिकेतेभये व अपनी कन्या से उपजेहुये उन विकारोंको देखतेहुये दुःखितहुये ॥१०॥ तदनन्तर उस पीठपै भलीभांति प्राप्तहोकर बड़े दुःखसे संयुत होतेहुये महामुनिने स्त्रियोंके जन्मकी निन्दा किया॥११॥कि बड़ाखेदहै जोकि पापात्मा पुरुषोंके स्त्रियां उत्पन्न

होती हैं क्योंकि ब्राह्मण वंशमें उपजीहुई भी जिन स्त्रियोंका ऐसा आचरणहै ॥१२॥मैंने एकहीबार स्त्रीके साथ संगकिया जिससे मुझको जन्म से लगाकर मरणपर्य्यन्त
ऐसा पाप प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ फिर जो नीच नर उन स्त्रियोंमें सदैव आसक्त रहते हैं उनकी संसार में कौन गति होती है उसको मैं चिन्तन करताहूं ॥ १४ ॥ उन
जाबालि जीको इसभांति कहतेहुये योगमें स्थितहोकर योगिनीने कहा कि जिसलिये यह चराचर संसार जिन स्त्रियोंसे भलीभांति धारण कियाजाताहै ॥ १५ ॥ व जिन
स्त्रियों ने शेषको पैदाकिया तदनन्तर कूर्मको उत्पन्नकिया कि जिनसे पृथ्वी भलीभांति धारित होतीहै व जिस पृथ्वीमे संसार प्रतिष्ठितहै ॥ १६ ॥ हे विप्रजी ! यह तुम्हारी

सकृदेवमयासङ्गः कृतोनार्य्यासमंयतः ॥ आजन्ममरणंयावत्पापंप्राप्तंममेदृशम् ॥ १३ ॥ येपुनस्तासुसंसक्ताः सदैवपु
रुषाधमाः ॥ कातेषांजायतेलोके गतिस्तांसमचिन्तयम्॥१४॥एवंतस्यब्रुवाणस्य योगमाश्रित्ययोगिनी॥एतच्चराचरंवि
श्वं स्त्रीभिस्संधार्य्यतेयतः ॥ १५ ॥ याभिस्सञ्जनितःशेषःकूर्मश्चतदनन्तरम् ॥ याभ्यांसन्धार्य्यतेपृथ्वी यस्यांविश्वं
प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ धन्येयंतेसुताविप्र याप्राप्तायोगमुत्तमम् ॥ प्राप्ताचपरमंस्थानं स्तोकैरेवात्रवासरैः ॥ १७ ॥ त्वंपु
नर्मूर्खतांप्राप्तश्छन्दसांमार्गमाश्रितः ॥ अविद्ययासमायुक्तस्संसारेत्रभ्रमिष्यसि ॥ १८ ॥ मुनिरुवाच ॥ स्त्रियोनिन्द्यत
माःसर्वास्सर्वावस्थासुदुःखदाः ॥ इहलोकेपरेचैव ताभ्यस्सौख्यंनलभ्यते ॥ १९ ॥ यदर्थंनिहतःशुम्भो निशुम्भश्चमहा
सुरः ॥ रावणोदण्डभूपश्च तथान्येपिसहस्रशः ॥ २० ॥ प्राप्यतादृग्द्विजंकान्तं गौतमंस्त्रीस्वभावतः ॥ अहल्याशक्र
मासाद्य चकमेशीलवर्ज्जिता ॥ २१ ॥ कन्योवाच ॥ यत्त्वंनिन्दसिमूढात्मन्सन्तिनिन्द्याश्चयोषितः ॥तद्वदस्वमयासा

कन्या धन्यहै कि जो उत्तम योगको प्राप्तहुई व यहांपर थोडेही दिनोंसे उत्तम स्थानको प्राप्तहुईहै ॥१७॥ और वेदोंके मार्ग प्रति आश्रितहुये तुम फिर मूर्खताको प्राप्तहुये
व मायासे संयुक्त होकर इस संसार में घूमोगे ॥१८॥ मुनि बोले कि सब स्त्रियां अतिनिन्दाके योग्यहैं क्योंकि समस्त अवस्थाओं में बहुत दुःखदायिनी है व उनसे इस
लोक और परलोक में सुख नहीं मिलताहै ॥ १९ ॥ व जिन स्त्रियोंके लिये शुम्भ, निशुम्भ मारागया व रावण और दंडभूपति तथा औरभी हजारों मनुष्य मारेगयेहैं ॥
२०॥ और वैसे मनोहर गौतम-ब्राह्मणको पतिपाकर उत्तम चरितसे रहित अहल्याने स्त्रीस्वभावसे इन्द्रजीको प्राप्तहोकर इच्छा किया॥२१॥कन्या बोली कि हे मूढात्मन् !

हे मुने ! न तुम्हारे बुद्धिहै न हृदयमें लज्जाहै न इन्द्रियों
जो तुम निन्दा करतेहो कि स्त्रियां निन्द्याके योग्यहैं तो मेरें साथ बतलाइये कि जिससे मैं तुमको बोधकरूं ॥ २२ ॥ हे मुने ! न तुम्हारे बुद्धिहै न हृदयमें लज्जाहै न इन्द्रियों
का दमनहै क्या चांडालभी उस कर्मको करताहै कि जो तुमने कियाहै ॥ २३ ॥ हे अधम ! तबतक तुमने मुझको प्रहारसे मारा और स्त्रीहत्या से उपजेहुये पातककी चिन्ताको
हृदयमें न धारण किया ॥ २४ ॥ व कोपसे संयुत चित्तकरके विशेषकर कन्याकी हत्यासे उपजेहुये पातकको हृदयमें न धारण किया व अनेकभांतिके प्रायश्चित्तोंसे जो पाप
जातेहैं और यदि फिर स्त्रीवधसे उठाहुआ पातक जाताहै तो तुम कहो ॥ २५ ॥ हे द्विजोंमें नीच ! जो मैं मारीगईहूं यह मेरे दुःख नहीं है ॥ २६ ॥ हे दुष्टबुद्धे ! जो सदैव

किमन्त्यजोपितत्कर्म कुरुतेयत्त्वयाकृ
तम् ॥ २३ ॥ अहंतावत्प्रहारेण त्वयाव्यापादिताधम ॥ स्त्रीहत्योद्भवपापस्य नचिन्ताविधृताहृदि ॥ २४ ॥ विशेषेणसु
तायाश्च कोपाविष्टेनचेतसा ॥ गच्छन्तिपातकायेच प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ॥ स्त्रीवधोत्थंपुनर्याति यदितत्त्वंप्रकीर्तय ॥ २५ ॥
एतन्मेनचदुःखंस्याद्यद्धतास्मिद्विजाधम ॥ २६ ॥ यत्सदानग्नसद्भावं नीतंतत्पातकंचते ॥ कल्पान्तेपिसुदुर्बुद्धे नतेया
स्यतिकुत्रचित् ॥ २७ ॥ तस्माद्भुङ्क्ष्वसुदुःखार्तः स्थितोत्रैवमयासह ॥ नभूयोनिन्दसिप्रायो नचव्यापादयिष्यसि ॥
२८ ॥ अनिन्द्यायोषितस्सर्वा नैतादुष्यन्तिकर्हिचित् ॥ मासिमासिरजोह्यासां दुष्कृतंपरिकर्षति ॥ २९ ॥ मुनिरुवाच ॥
स्त्रियःपापसमाचारा नैताःशुद्ध्यन्तिकर्हिचित् ॥ परकान्तरतिर्यासामन्त्यजत्वंप्रयच्छति ॥ ३० ॥ कन्योवाच ॥ मा
मैवंवदमूढात्मन्नमेध्याःसन्तियोषितः ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो मनुनातंनिबोधमे ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणाःपादतोमेध्या गा

नग्न का भाव प्राप्त कियागया है वह तुम्हारा पातक कहीं पर कल्पान्त में भी न जावैगा ॥ २७ ॥ इसलिये मेरे साथ यहींपर टिकेहुये अतिदुःख से विकल तुम कर्म
फलको भोग करो फिर न निन्दा करोगे न बहुधा मारोगे ॥ २८ ॥ समस्त स्त्रियां निन्दा के योग्य नहीं होती हैं और कभी ये दूषित नहीं होती हैं क्योंकि महीने २ में
रजोधर्म इन स्त्रियों के पातकको खींचता है ॥ २९ ॥ मुनि बोले कि ये पाप आचरणवाली स्त्रियां कभी शुद्ध नहीं होतीहैं क्योंकि पराये पतिमें अनुराग जिन स्त्रियोंको
चांडालत्व देताहै ॥ ३० ॥ कन्या बोली कि हे मूढात्मन् ! ऐसा मत कहिये कि स्त्रियां अपवित्र होतीहैं इस विषयमें मनुजीने जो श्लोक गायाहै उसको मुझसे जानिये ॥ ३१ ॥

कि ब्राह्मण पांवसे पवित्र होते हैं व गाई पूंछसे पवित्र हैं छाग मुखसे पवित्र हैं व स्त्रियां सब ओर से पवित्र हैं ॥ ३२ ॥ मुनि बोले कि ब्राह्मण सबओर से पवित्र हैं व गाई सब ओर से शुचिहैं और छाग भी कहीं पर पवित्र होतेहैं और स्त्रियां किसी अंग में भी शुचि नहीं हैं ॥ ३३ ॥ कन्या बोली कि उसके हाथमें चिन्तामणि है व उसके घर में कल्पवृक्ष है व उसके कुबेर सेवक हैं कि जिसके घर में स्त्री होवे है ॥ ३४ ॥ मुनि बोले कि उसके समस्त आपत्तियां होती हैं व उसके घरमें अखिल दुःख हैं व उसको निश्चयकर यहीं नरकहै कि जिसके घरमें स्त्री है ॥ ३५ ॥ कन्या बोली कि इस लोकमें जो कोई सुख व धर्म, अर्थ व कामसे उपजेहुये जो भोग के स्थानहैं

वोमेध्याश्वपुच्छतः ॥ अजाश्वमुखतोमेध्याः स्त्रियोमेध्याश्चसर्वतः ॥ ३२ ॥ मुनिरुवाच ॥ ब्राह्मणास्सर्वतोमेध्या गावोमेध्याश्वसर्वतः ॥ अजाश्चापिकचिन्मेध्या नमेध्याश्चस्त्रियःकचित् ॥ ३३ ॥ कन्योवाच ॥ तस्यचिन्तामणिर्हस्ते तस्यकल्पद्रुमोगृहे ॥ कुबेरःकिङ्करस्तस्य यस्यस्यात्कामिनीगृहे ॥ ३४ ॥ मुनिरुवाच ॥ तस्यापदोखिलाश्चैव दुःखंतस्याखिलंगृहे ॥ नरकोस्त्यत्रवैतस्य यस्यस्यात्कामिनीगृहे ॥ ३५ ॥ कन्योवाच ॥ यानिकान्यत्रसौख्यानि भोगस्थानानियानिच ॥ धर्मार्थकामजातानि तानिस्त्रीभ्योभवन्तिहि ॥ ३६ ॥ मुनिरुवाच ॥ यानिकानिसुदुःखानि यानिपापानिदेहिनाम् ॥ यानिकष्टानितिष्ठन्ति स्त्रीभ्यस्तानिभवन्तिच ॥ ३७ ॥ कन्योवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च चतुरोपिचतस्रभिः ॥ वह्निप्रदक्षिणाभिश्च विवाहोपिप्रदर्शयेत् ॥ ३८ ॥ मुनिरुवाच ॥ संसारभ्रमणंनारी प्रथमेपिसमागमे ॥ वह्निप्रदक्षिणान्यायव्याजेनैवप्रदर्शयेत् ॥ ३९ ॥ कन्योवाच ॥ केनामनैवरज्यन्ते ज्ञानयुक्तापिमानवाः ॥ कर्णान्तलग्ननेत्रान्तां

वे स्त्रियोंसे होते हैं ॥ ३६ ॥ मुनि बोले कि जो कोई दुःख है व शरीरधारियों के जो पाप होते हैं व जो कष्ट होते हैं वे स्त्रियोंसे होते हैं ॥ ३७ ॥ कन्या बोली कि विवाह भी चार अग्नि की प्रदक्षिणाओं से चारों भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्षों को दिखलाताहै ॥ ३८ ॥ मुनि बोले कि प्रथम समागम में भी स्त्री अग्नि की प्रदक्षिणाके न्याय रूपी व्याजही से संसार के भ्रमण को दिखलाती है ॥३९॥ कन्या बोली कि कानों के अन्त तक लगेहुये नेत्रान्तोंवाली व स्थूल स्तनोंवाली स्त्री को देखकर ज्ञान से युक्त

भी कौन पुरुष प्रसिद्ध में अनुराग नहीं करते हैं ॥ ४० ॥ मुनि बोले कि कृतज्ञ पुरुष नहीं नष्ट होते हैं किन्तु अग्नि प्रति पांखी के समान मन्दज्ञानवाले नर रमण की बुद्धि से नितम्बिनी (स्त्री) के समीप जाते हैं ॥ ४१ ॥ कन्या बोली कि मुखरहित व ऊपर को गयेहुये व मनोहर स्त्री के स्तनरूपी कुटीर (निवासगृह) विशेषकर चैत्र महीने में धन्य पुरुषों से सेवित होते हैं ॥ ४२ ॥ मुनि बोले कि मण्डलाकारवाले व फणसे रहित व उसी क्षण छोड़ीहुई केंचुलिवाले व छुयेहुये निश्चय कर सर्प होते हैं कदापि स्तन नहीं हैं ॥ ४३ ॥ कन्या बोली कि इन स्त्रियों का केवल रचनामात्र मनोहर नहीं है किन्तु शरीरधारियों से स्त्रियोंका आलिङ्गन भी सौख्य

दृष्ट्वापीनपयोधराम् ॥ ४० ॥ मुनिरुवाच ॥ कृतज्ञानविनश्यन्ति मूढज्ञानानितम्बिनीम् ॥ रम्यबुद्ध्याप्रसर्पन्तिज्वलनं शलभाइव॥ ४१ ॥ कन्योवाच ॥ निर्मुखौचकुटीरौच प्रोद्गतौचमनोरमौ ॥ स्त्रीस्तनौसेवितौधन्यैर्मधुमासेविशेषतः॥४२॥ मुनिरुवाच ॥ अभोगिनौमण्डलिनौ तत्क्षणान्मुक्तकञ्चुकौ ॥नूनमाशीविषौस्पृष्टौ नतुजातुपयोधरौ ॥ ४३ ॥ कन्योवाच॥ नचासांरचनामात्रंकेवलंरम्यमङ्गिभिः ॥ परिष्वङ्गोपिरामाणां सौख्यायपुलकायच ॥ ४४ ॥ मुनिरुवाच ॥ नचासां रचनामात्रं रम्यंसाप्तपदंदृशः ॥ वपुस्स्पृष्टंविनाशाय स्त्रीणांचनरकायच ॥ ४५ ॥ कन्योवाच ॥ कोनामनसुखीलोके कोनामसुकृतीनच ॥ स्पृहणीयतमःकोन स्त्रीजनोयेनरज्यते ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ कोनमुक्तिंव्रजेदत्र कोनशस्ततरो भवेत् ॥ कोनस्यात्क्षेत्रसंयुक्तः स्त्रीजनेयोनरज्यते ॥ ४७ ॥ कन्योवाच ॥ संसारान्तःप्रसूतस्य कीटस्यापिसुरोचते ॥ स्त्रीशरीरंमनुष्यस्य किम्पुनर्नुविवेकिनः ॥ ४८ ॥ मुनिरुवाच ॥ अमेध्यजातस्ययथात्यन्तंतद्रोचतेकृमेः ॥ तथासंसार

व रोमांच के लिये होताहै ॥ ४४ ॥ मुनि बोले कि इन स्त्रियों की दृष्टिकी मनोहरमैत्री रचनामात्र नहीं है किन्तु स्त्रियों का छुवाहुआ शरीर विनाश व नरक के लिये होताहै ॥ ४५ ॥ कन्या बोली कि प्रसिद्ध में संसार के मध्य कौन सुखी नहीं है व प्रसिद्धमें कौन पुण्यवान् नहीं है और कौन अत्यन्त चाहने के योग्य नहीं है जो कि स्त्रीजनका अनुराग करता है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले कि जो स्त्रीजनमें अनुराग नहीं करता है वह कौन इस संसार में मुक्ति को नहीं प्राप्त होताहै व कौन अतिउत्तम नहीं है व कौन क्षेत्रसे संयुत नहीं होताहै ॥ ४७ ॥ कन्या बोली कि संसार के मध्यमें पैदाहुये कीड़े को भी स्त्री का शरीर भलीभांति रुचता है फिर विवेकवाले पुरुषको

क्या कहना है ॥ ४८ ॥ मुनि बोले कि जैसे अपवित्र वस्तु से पैदाहुये कीट को अत्यन्तही वह शरीर रुचता है वैसेही संसार में उपजे हुये कामी नरको स्त्री का शरीर रुचता है ॥ ४९ ॥ कन्या बोली कि मनुष्यों के जिस किसी सौख्य स्थानको ब्रह्माने देखा उसीको इस किसी अपूर्व भी स्त्रीमयी फँसरीको स्त्रीरूपसे कैसे कियाहै ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि वे मुनिपुङ्गव जाबालिजी जब संयोग में उस कन्या से बिन उत्तर कियेगये तब उसके उपरान्त अपनी कन्यासे बोले ॥ ५१ ॥ मुनि बोले कि इस समय तुम्हारे साथ मुझको कुछ संवाद न करना चाहिये क्योंकि जो तुम बाला भी मुझको सबओर से इसभांति मना करती हो ॥ ५२ ॥ इसलिये आज मैं अपनाको

भूतस्य स्त्रीशरीरंचकामिनः ॥ ४९ ॥ कन्योवाच ॥ सौख्यस्थानंनृणांकिञ्चिद्वेधसायदपश्यत् ॥ स्त्रीरूपेणकृतःकोपि पाशोयंस्त्रीमयःकथम् ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमुनिशार्दूलस्तयातीवसमागमे ॥ निरुत्तरीकृतोयावत्ततःप्राहनिजांसुताम् ॥ ५१ ॥ मुनिरुवाच ॥ त्वयासहनसंवादो मयाकार्य्योधुनाक्वचित् ॥ यात्वंबालापिमामेवं निषेधयसिसर्वतः ॥ ५२ ॥ तस्माद्धन्यतरंमन्ये त्वहमात्मानमद्यवै ॥ यस्यमेत्वंसुताजाता ईदृक्शास्त्रविचक्षणा ॥ ५३ ॥ तस्मान्नमेमहाभागे कोपःस्वल्पोपिविद्यते ॥ तस्माद्यथेच्छयाक्रीडां कुरुयोगिनिमध्यगा ॥ ५४ ॥ ततस्सालज्जितंदृष्ट्वा पितरंस्नेहवल्लभम् ॥ प्रणिपत्यपुनःप्राह योगिनीमध्यसंस्थिता ॥ ५५ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाद्यन्निषिद्धोमयाप्रभो ॥ क्षन्तव्यंसकलंमे च बालिकायाविशेषतः ॥ ५६ ॥ अथपीठेसमागत्य प्रथमंतेद्विजोत्तम ॥ पूजांसर्वेकरिष्यन्ति मानवाभक्तितत्पराः ॥ ५७ ॥

निश्चयकर अत्यन्त धन्य मानताहूं कि जिस मेरे तुम ऐसी शास्त्र में चतुर कन्या पैदाहुई हो ॥ ५३ ॥ इसलिये हे महाभागे ! मेरे थोड़ा भी क्रोध नहीं विद्यमान है उसी कारण योगिनियों के बीचमें प्राप्त होतीहुई तुम यथेच्छासे क्रीड़ा करो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर योगिनियों के मध्य में भलीभांति टिकीहुई उस कन्या ने स्नेह से प्यारे व लज्जितहुये पिता को देखकरके प्रणामकर फिर कहा ॥ ५५ ॥ कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान व ज्ञान से जो तुमको मना कियाहै मुझ बालिका का वह सब विशेषकर क्षमा करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तम ! भक्ति में लगेहुये सब मनुष्य भलीभांति आकर पीठ पै पहले तुम्हारा पूजन करैंगे ॥ ५७ ॥

व पश्चात् समस्त पीठका पूजन करैंगे व उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे इसभांति वहांपर जाबालि मुनि से उपजीहुई वह कन्या व मुनिसत्तम जाबालिजी तथा चित्रांगदेश्वर स्थित होतेभये जो मनुष्य उन तीनों देवताओं का पूजन भलीभांति करै है॥ ५८।५९ ॥ वह वहांपर दिन २ में संसिद्धि को प्राप्त होवैहै व इस धरातल में कुछ असाध्य नहीं होवै है ॥ ६० ॥ व भूमिपालादिकों से वे पूजे जाते हैं और वे दिव्यभोगोंको प्राप्त होते हैं इसलिये समस्त उपाय से वे जाबालि मुनि और वह कन्या विशेष कर पूजने योग्य है इसके अनन्तर वे महेश्वरदेवजी का पूजन करना चाहिये इस समस्त कथानक को मैंने तुमलोगों से वर्णन किया जो कि पढ़ने व सुननेवाले नरों

पश्चात्सर्वस्यपीठस्य यास्यन्तिचपरांगतिम् ॥ एवंसातत्रसंजाता जाबालिमुनिसम्भवा ॥ ५८ ॥ जाबालिश्चमुनिश्रेष्ठस्तथाचित्राङ्गदेश्वरः ॥ त्रयाणामपियस्तेषां पूजांमर्त्यःसमाचरेत् ॥ ५९ ॥ दिवसेदिवसेतत्रसंसिद्धिंसमवाप्नुयात् ॥ नासाध्यंविद्यतेकिञ्चिद्भवेदत्रधरातले ॥ ६० ॥ पूज्यन्तेभूमिपालाद्यैर्भोगान्दिव्याँल्लभन्तिते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पूज्यःसमुनिःसाचकन्यका ॥ ६१ ॥ पूजनीयोविशेषेण सदेवोथमहेश्वरः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातमाख्यानंसर्वकामदम् ॥ ६२ ॥ पठतांशृण्वतांचैव इहलोकेपरत्रच ॥ १६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चित्राङ्गदेश्वरफलवतीजाबाल्याख्यानन्नाम चत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४० ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यत्त्वयाकथितंसूत नमृतासाकुमारिका ॥ हतारौद्रप्रहारैश्च कौतुकंतन्महत्तरम् ॥ १ ॥ यतोभूयःप्रसंजाता योगिनीहरतुष्टिदा ॥ तत्त्वार्थंसर्वमाचक्ष्व कारणंचतदद्भुतम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ साप्रविश्यसमंतेन सुपुण्य

को इसलोक व परलोक में समस्त कामनाओं का दायक है ॥ १६१।१६२।१६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येचित्राङ्गदेश्वरफलवतीजाबाल्याख्यानं नामचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा । इकसौ इकतालीस महँ अमरेश्वर परभाव । शौनकादिकन ऋषिनसन बरणत सूत सचाव ॥

ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहाहै कि बडे विकराल प्रहारों से मारीहुई वह कन्या न मरी वह बड़ाभारी आश्चर्य है ॥ १ ॥ जिसलिये कि वह शिवजी को तुष्टिदायिनी योगिनी हुई है उसी कारण समस्त निश्चित अर्थ व

उस अद्भुत कारण को कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! माघमास की कृष्णपक्षवाली चौदसि में वह कन्या उस पिता समेत अतिपुण्यदायक अमरेश्वर स्थान में पैठकर स्थित हुई है जहांपर मृत्यु नहीं होती है और आयुर्बल के शेष में भी अकाल से उपजीहुई मौतको क्या कहनाहै उसी कारण उस समय अत्यन्तही कठोरतासे मारीहुई भी वह कन्या मृत्युको न प्राप्तहुई ॥ ३ । ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि अमरके दायक जो अमरेश्वर ऐसे देव कहेगयेहैं वे यहां किससे स्थापितहुयेहैं व किस प्रभाववाले हैं उसको कहिये ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि अदिति और दिति दोनों दक्षप्रजापतिकी कन्याहुई हैं उनको पुरातनसमय कश्यप महात्माने विवाहके द्वारा व्याह

ममरेश्वरम् ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां यत्रमृत्युर्नविद्यते ॥ ३ ॥ अपिचैवायुषःशेषे किमुताकालजोद्विजाः ॥ तेननोनिधनं प्राप्ता हतापिसुदृढंतदा ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अमरेश्वरइत्युक्तो योदेवोवामरप्रदः ॥ केनसंस्थापितोह्यत्र किंप्रभावश्चकीर्तय ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ अदितिश्चदितिश्चैव प्रजापतिसुतेउभे ॥ ऊढेपुराविवाहेन कश्यपेनमहात्मना ॥ ६ ॥ अदित्यां विबुधाजाता दित्यांचैवतुदैत्यपाः ॥ तेषांसापत्न्यभावेन महद्वैरमुपस्थितम् ॥ ७ ॥ अथदैत्यैःसुराध्वस्ताःकृताःसर्वेपराङ्मुखाः ॥ अन्येतुभयसंत्रस्ता दिशोजग्मुःक्षताङ्गकाः ॥ ८ ॥ ततोदुःखसमायुक्ता देवमातात्रसंस्थिता ॥ तपश्चक्रेदिवानक्तं शिवध्यानपरायणा ॥ ९ ॥ एवंतस्याव्रतस्थाया गतेयुगचतुष्टये ॥ निर्भिद्यधरणीपृष्ठं शिवलिङ्गंसमुत्थितम् ॥ १० ॥ ततस्तस्मैकृतानन्दास्तुत्वास्तोत्रैःपृथग्विधैः ॥ अष्टाङ्गप्रणिपातेन नमश्चक्रेसमाहिता ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेवाणी सं

कियाहै ॥ ६ ॥ व अदिति में देवता और दिति में निश्चयकर दैत्यनायक पैदा हुयेहैं उनका शत्रुभावसे बड़ाभारी वैर उपस्थितहुआ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर दैत्यों से विध्वंस कियेहुये सब देवता विमुख करदियेगये व कटेहुये अंगोंवाले अन्य देवता भयभीत होकर दिशाओं को चलेगये ॥ ८ ॥ तदनन्तर शिवजीके ध्यान में परायण होतीहुई दुःखसे संयुत देवोंकी माता दितिजीने यहां भलीभांति टिककर दिनरात तपस्या किया ॥ ९ ॥ इसभांति उन दितिजीको व्रतमें टिकेहुये जब चारयुग बीतगये तब भूपृष्ठको फोड़कर शिवलिङ्ग भलीभांति उठा ॥ १० ॥ तदनन्तर आनन्द किये व सावधान होतीहुई दिति ने अनेकप्रकारके स्तोत्रों से स्तुतिकरके आठोअङ्गों के

प्रणिपातसे उस लिंगके लिये नमस्कार किया ॥ ११ ॥ इसी अवसर में उससमय मेघके समान गम्भीर शब्दवाली व अशरीरिणी दिव्यवाणी आकाशरूपी आंगनमें होतीभई ॥ १२ ॥ कि हे कल्याणि ! जो तुम्हारे चित्तमें विशेषता से टिकाहो उस वरदान को मांगो आज प्रसन्न होताहुआ चन्द्रभाल नामक मैं तुमको अवश्यकर दूंगा ॥ १३ ॥ अदिति बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मेरे पुत्र युद्ध में दैत्यों से मारेजाते हैं उन सबोंको युद्धमें दैत्योंसे अवध्य व अमर कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे शुभे ! जो हमारे इस लिंगको छूकर युद्धमें जावैंगे वे वर्षपर्यन्त अवध्य होवेंगे ॥ १५ ॥ व और भी सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहांपर माघमहीने की कृष्णपक्षवाली

प्रणिपत्यचकल्याणि यत्तेहृदिव्यवस्थितम् ॥ प्र
जाता गगनाङ्गणे ॥ अशरीरातदादिव्या मेघगम्भीरनिःस्वना ॥ १२ ॥ वरंप्रार्थयकल्याणि यत्तेहृदिव्यवस्थितम् ॥ प्र
सन्नोहंप्रदास्यामि तवाद्यशशिशेखरः ॥ १३ ॥ अदितिरुवाच ॥ ममपुत्रासुरश्रेष्ठ हन्यन्तेयुधिदानवैः ॥ तान्कुरुष्वाम
रान्सर्वानवध्यान्युधिदानवैः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतल्लिङ्गंमदीयंये स्पृष्ट्वायास्यन्तिसंयुगे ॥ अवध्यास्तेभवि
ष्यन्ति यावत्संवत्सरंशुभे ॥ १५ ॥ अन्येपिमानवायेत्रचतुर्दश्यांसमाहिताः ॥ माघमासस्यकृष्णायां प्रकरिष्यन्ति
जागरम् ॥ १६ ॥ तेपिसंवत्सरंयावद्भविष्यन्तिनिरामयाः ॥ अपिमृत्युदिनेप्राप्ते योस्मिन्नायतनेशुभे ॥ १७ ॥ आगमि
ष्यतितं मृत्युर्दूरात्परिहरिष्यति ॥ एवमुक्त्वाथसावाणी विररामततःपरम् ॥ १८ ॥ अदितिश्चापिसंतुष्टा हतशेषान्सु
तांस्ततः ॥ समानीयाथतल्लिङ्गं तेषामेवन्यदर्शयत ॥ १९ ॥ कथयामासतत्सर्वं माहात्म्यंयद्भवोदितम् ॥ ततस्तेविबुधा
स्सर्वे तल्लिङ्गंप्रणिपत्यच ॥२०॥ प्रजग्मुस्तुष्टिसंयुक्ताःशस्त्राण्यादायतान्प्रति ॥ यत्रतेदानवाहृष्टाः स्थिताःशक्रपदेशु

चौदसि में जागरण करेंगे ॥ १६ ॥ वेभी सालभरतक नीरोग होवैंगे व मृत्युदिनके भी प्राप्तहोनेपर जो मनुष्य इस शुभदायक मन्दिरमें आवैगा उसको मृत्यु दूरसे परिहार करैगी यानी छोड़देवेगी ऐसा कहकर उसकेउपरान्त वह वाणी चुपहोगई ॥१७।१८॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई अदितिजीने भी मारनेसे बचेहुये पुत्रोंको भलीभांति लाकर इसके अनन्तर उन्हींको उस लिंगको दिखलाया ॥ १९ ॥ और जो शिवजीसे कहागया था उस समस्त माहात्म्य को कहा तदनन्तर प्रसन्नतासंयुत वे समस्त

देवता उस लिंगको प्रणाम कर व शस्त्रोंको लेकर उन दैत्यों के प्रति गये जहां कि प्रसन्न होतेहुये वे दैत्य उत्तम इन्द्रके स्थान पै टिकेथे ॥ २० । २१ ॥ व स्वर्ग के सुखोंसे संयुत होकर नन्दन (इन्द्रके वन) में विशेषता से स्थितथे इसके अनन्तर युद्धके लिये नानाप्रकार के शस्त्रोंको धारेहुये बहुतेरे देवताओं को अचानक भलीभांति देखकर व शस्त्र, अस्त्र और बख्तरों को धारेहुये देवोत्तमों को भलीभांति बुलाकर घनके समान गर्जते हुये वे दैत्य युद्धके लिये सामनेगये तदनन्तर उस समय मृत्युको लौटाकर याने न गिनकर दानवों के साथ क्रोधसे घिरेहुये देवताओंका बड़ाभारी युद्ध हुआ तदनन्तर महादेव से वरदान को पायेहुये उन समस्त देव-

भे ॥ २१ ॥ स्वर्गभोगसमायुक्ता नन्दनेचव्यवस्थिताः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वा संप्राप्तांस्त्रिदिवौकसः ॥ २२ ॥ सहसासङ्गरार्थाय नानाशस्त्रधरान्बहून् ॥ सुरवर्य्यान्समाहूय धृतशस्त्रास्त्रवर्मिणः ॥ २३ ॥ युद्धार्थंसम्मुखंजग्मुर्गर्जमानाघनाइव ॥ ततस्समभवद्युद्धं देवानांदानवैस्सह ॥ २४ ॥ तदारोषपरीतानां मृत्युंकृत्वानिवर्त्तनम् ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वे हरलब्धवरास्तदा ॥ २५ ॥ जघ्नुर्दैत्यानसंख्याताञ्छितैःशस्त्रैरनेकधा ॥ हतशेषाश्चयेतेषां तेत्यक्त्वात्रिदशालयम् ॥ २६ ॥ पलायनकृतोत्साहाः प्रविष्टामकरालयम् ॥ ततःशक्रस्समापेदे स्वंराज्यंदानवैर्हृतम् ॥ २७ ॥ यदासीत्पूर्वकालेतु समग्रंहतकण्टकम् ॥ ततस्तेदानवाःशेषा ज्ञात्वातल्लिङ्गसम्भवम् ॥ २८ ॥ माहात्म्यंवृषनाथस्य क्षेत्रस्यास्योद्भवस्यच ॥ शुक्रेणकथितंसर्वं माघकृष्णेनिशागमे ॥ २९ ॥ चतुर्दश्यांशुचिर्भूत्वा यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ कालेप्राप्तेपिनप्राणैस्सपुमांस्त्यज्यतेक्वचित् ॥ ३० ॥ तस्माद्यूयंसमासाद्यतल्लिङ्गंतद्दिनेनिशि ॥ पूजयध्वंमहाभागा येनस्युर्मृत्युवर्जि

ताओंने उस समय ॥ २२ । २३ । २४ । २५ ॥ पैने शस्त्रोंसे अनेक भांतिसे असंख्य दैत्योंको मारा व उन दैत्योंके बीचमें जे मारनेसे बचे वे स्वर्ग को छोड़कर ॥ २६ ॥ भागने में उत्साह को कियेहुये समुद्र में पैठगये तदनन्तर दानवों से हरीहुई उस अपनी राज्यको इन्द्रजी भलीभांति प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ जो सब कि पूर्वसमय में मरेहुये शत्रुओं या नष्ट कण्टकोंवाली थी तदनन्तर बचेहुये दानवोंने लिंगसे उपजे उस माहात्म्य को जानकर शुक्रजी से पूंछा व शुक्रजी ने इस क्षेत्रके उपजेहुये वृषभनायक (शिव) जीके समस्त माहात्म्य को कहा कि माघ महीने में कृष्णपक्षवाली चतुर्दशी के दिन रात्रिके आनेपर जो पुरुष पवित्रहोकर

उस लिंगका पूजन करताहै वह कालके प्राप्त होने परभी कहीं प्राणोंको नहीं छोड़ताहै ॥ २८ । २६ । ३० ॥ इस लिये हे महाभाग्यवाले दानवो ! तुम लोग भलीभांति
प्राप्त होकर उस दिन रात में उस लिंगको पूजो जिससे सालके अन्ततक मृत्युरहित होवो यह मैंने सत्य कहाहै जिस प्रकार कि उसके प्रभावसे निस्सन्देह वे दे-
वताओं के समूह मृत्युरहित होगये हैं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रजी ब्रह्माके पुत्र नारदजी से उस दैत्येन्द्रोंकी सलाह को जानकर फिर डरेहुये मनवाले हो
गये तदनन्तर ॥ ३३ ॥ समस्त देवताओं के साथ वैसीही सम्मति किया कि जिस प्रकार उस दिन उन शिवदेवजी की रक्षामें सबओर भलीभांति उद्यम होवै ॥३४॥

तदनन्तर उन शिवदेवकी रक्षाके लिये अस्त्रोंसमेत व प्रहार करनेवाले तथा तैयारहुये तेंतीस करोड़ देवता उस क्षेत्रमें माघमहीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि में नि-
शेपता से टिकते भये इसके अनन्तर वहांपर भलीभांति टिकेहुये उन देवताओंको देखकर भयसे भीतमनवाले वे दैत्य सब दिशाओं में भगगये इसके अनन्तर नि-
र्मल प्रभातकाल में जब सूर्य्यमण्डल उदयहुआ तब ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ फिर भी समस्त देवताओं ने आपस में सम्मति किया कि यदि हमलोग इस क्षेत्रको
छोड़कर स्वर्गको चलेजावैंगे ॥ ३८ ॥ तो दैत्य भलीभांति आकर इस लिंगको पूजैंगे तदनन्तर जैसे हमलोग हैं वैसेही वे सब भी अवध्य होजावैंगे ॥३९॥ इस लिये

ताः ॥ ३१ ॥ यावत्संवत्सरस्यान्तं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ तथातेदेवसङ्घाश्च तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ३२ ॥ अथतंदान
वेन्द्राणां मन्त्रंज्ञात्वासुरेश्वरः ॥ नारदाद्ब्रह्मणःपुत्राद्भूयस्त्रस्तमनास्ततः ॥ ३३ ॥ मन्त्रंचक्रेसमंदेवैस्तस्यदेवस्यरक्षणे ॥
यथास्यादुद्यमस्सम्यक्तस्मिन्नहनिसर्वतः ॥ ३४ ॥ कोटयस्तुत्रयस्त्रिंशद्देवानांसायुधास्ततः ॥ रक्षार्थंतस्यलिङ्गस्य
तस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिताः ॥ ३५ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां सुसन्नद्धाःप्रहारिणः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वा तान्देवांस्तत्रसंस्थि
तान् ॥ ३६ ॥ भयसंत्रस्तमनसो दुद्रुवुस्सर्वतोदिशम् ॥ अथप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ३७ ॥ भूयएवसुरास्सर्वे
मन्त्रंचक्रुःपरस्परम् ॥ यद्येतत्क्षेत्रमुत्सृज्य गमिष्यामस्सुरालयम् ॥ ३८ ॥ लिङ्गमेतत्समभ्येत्य पूजयिष्यन्तिदान
वाः ॥ ततोऽवध्याभविष्यन्ति तेपिसर्वेयथावयम् ॥ ३९ ॥ तस्मादत्रैवतिष्ठामस्त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणकाः ॥ कोटीनामेवसर्वे

तेंतीस कोटिही देवता यहींपर टिकैं और स्वर्गकी सबओर रक्षा करनेवाले शेष देवता इन्द्रसे संयुत होकर वहां जावैं तदनन्तर वहांपर आठ वसु और वैसेही बारह सूर्य्य ॥ ४० । ४१ ॥ और वैसेही गेरहरुद्र व सुन्दरे दोनों अश्विनीकुमार ये उस लिंगकी रक्षाके लिये उस क्षेत्रमें विशेषता से टिकें ॥ ४२ ॥ व शेष इन्द्रसे संयुत होकर स्वर्गको चलेगये सूतजी बोले कि जो आपलोगोंने पूछाहै वह ऐसे प्रभाववाला त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी का लिंग पुरातन समय अदिति से थापित हुआहै जिस लिये कि उस लिंगके देखने से शरीरधारियोंकी मृत्यु नहीं होती है ॥ ४३ । ४४ ॥ उसी कारण तीनों भुवन में अमरनामक लिंग प्रसिद्धहुआ

षां शेषागच्छन्तुतत्रच ॥ ४० ॥ सहस्राक्षेणसंयुक्तास्स्वर्गस्यपरिरक्षकाः ॥ ततोष्टौवसवस्तत्र द्वादशार्कास्तथैवच ॥ ४१॥ एकादशतथारुद्रा नासत्यौद्वौचसुन्दरौ ॥ एतेतल्लिङ्गरक्षार्थं तस्मिन्क्षेत्रेव्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥ शेषाःशक्रसमायुक्ताः प्रजग्मुस्त्रिदशालयम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रभावंलिङ्गंतु देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४३ ॥ भवद्भिःपरिपृष्टंयददित्यास्थापितम्पुरा ॥ यस्मान्नविद्यतेमृत्युस्तेनदृष्टेनदेहिनः ॥ ४४ ॥ अमराख्यंततोलिङ्गं विख्यातंभुवनत्रये ॥ यस्मिन्देशेपिसाकन्या हतानेनद्विजन्मना ॥ ४५ ॥ जाबालिनासुक्रुद्धेन तस्यदेवस्यमन्दिरे ॥ आसीत्तत्रदिनेकृष्णा माघमासचतुर्दशी ॥ ४६ ॥ तेननोनिधनंप्राप्ता सुहतापितपस्विना ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं तस्यलिङ्गस्यसम्भवम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यंब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम् ॥ यश्चैतत्पठतेभक्त्यातस्यलिङ्गस्यसन्निधौ ॥ ४८ ॥ नापमृत्युभयंतस्य कथञ्चिदपिजायते ॥ तस्याग्रेस्तिशुभंकुण्डं पूरितंस्वच्छवारिणा ॥ ४९ ॥ अदित्यानिर्मितंदेव्या स्नानार्थंचात्मनःकृते ॥ स्ना

व जिस स्थान पैभी उन देवके मन्दिरमें इस क्रोधित जाबालि ब्राह्मण ने कन्याको माराहै उस दिन माघ महीनेकी कृष्णपक्षवाली चौदसि थी ॥ ४५ । ४६ ॥ उसी कारण तपस्वी से बहुतही मारीहुई भी वह कन्या मृत्युको न प्राप्तहुई हे द्विजोत्तमो ! उस लिंगसे उपजे हुये व समस्त पातकों के विनाशक इस सब माहात्म्यको तुम लोगों से कहा जो पुरुष भक्तिसे उस लिंगके समीप इस चरित को पढ़ता है ॥ ४७ । ४८ ॥ उसको किसी प्रकारभी अपमृत्यु से डर नहीं होताहै व उस लिंगके अगाड़ी निर्मलजल से पूरित उत्तमकुण्ड है ॥ ४९ ॥ जोकि अपने स्नान के लिये अदिति देवीसे निर्माण कियागया था उसमें नहाकर जो नर उस

लिंगको देखता है ॥ ५० ॥ व उसी शुभदायक दिनमें रात्रिजागरण करता है वह भी वर्ष पर्यन्त अपमृत्यु को नहीं प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४१ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसौ बैयालीस महँ कहत चरित सुखधाम । जिमि वसुरुद्रादिकन के कहे भिन्न करि नाम ॥ ऋषि लोग बोले कि हे महामुने! वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार व समस्त आदित्यों को प्रत्येक से कहिये हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि मृगव्याध, शर्व व तीसरे मृगव्याध, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य और

नंक्तत्वानरस्तस्मिन्यस्तल्लिङ्गंप्रपश्यति ॥ ५० ॥ करोतिजागरंरात्रौ तस्मिन्नेवदिनेशुभे ॥ सोपिसंवत्सरंयावन्नापमृत्यु मवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरमाहात्म्यं नामैकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ आदित्यानांचसर्वेषां वसूनरुद्रांस्तथाश्विनौ ॥ प्रत्येकशस्समाचक्ष्व नमामत्वांमहामुने ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ मृगव्याधश्चशर्वश्च मृगव्याधस्तृतीयकः ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकीषष्ठएवच ॥ २ ॥ दहनश्चकपालीच रैवतोनवमस्तथा ॥ वृषाकपिस्तुदशमो रुद्रास्त्र्यम्बकएवच ॥ ३ ॥ धरोध्रुवश्चसोमश्चमखश्चैवानिलोनलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौप्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥ वरुणश्चतथासूर्य्यो भानुःपूषाचतापनः ॥ इन्द्रश्चैवार्यमाचैव धाताचैवभगस्तथा ॥ ५ ॥ गभस्तिर्धर्मराजश्च द्वादशैतेचभास्कराः ॥ नासत्यश्चैवदस्रश्च ख्यातावेतौतथाश्विनौ ॥ ६ ॥ देववैद्यौमहाभागौ

छठयें पिनाकी ॥ २ ॥ व दहन, कपाली और नवयें रैवत दशवें वृषाकपि व निश्चयकर त्र्यम्बक ये रुद्रहैं ॥ ३ ॥ व धर, ध्रुव और सोम, मख और अनिल, नल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसु कहे गयेहैं ॥ ४ ॥ व वरुण तथा सूर्य, भानु, पूषा, तापन, इन्द्र और अर्यमा, धाता, विधाता तथा भगदेव ॥ ५ ॥ गभस्ति, धर्मराज ये बारह भास्कर हैं व नासत्य, दस्र ये दोनों अश्विनीकुमार कहेगये हैं ॥ ६ ॥ जोकि सूर्यके सकाशसे त्वष्टाकी कन्या अश्विनीरूपवाली संज्ञा स्त्री में उपजेहुये बड़े भाग्यवाले

व देवताओंके वैद्यहैं व येही तेंतीस सुरनायक कहे गयेहैं ॥ ७ ॥ जोकि दैत्योंके मारनेके लिये नित्यही क्षेत्रही में स्थित हैं इन्द्रियों को रोंकेहुये जो पुरुष पूर्वोक्त दिवस के प्राप्तहोने पर भक्तिसे उन देवताओं को भलीभांति पूजता है उसकी अपमृत्यु नहीं होती है अष्टमी व चौदसि तिथि में विद्वानों को रुद्रोंका पूजन करना चाहिये ॥ ८ । ९ ॥ व परमपद चाहनेवाले पुरुषोंको उस क्षेत्रमें दशमी व विशेषकर प्रतिपदा तिथिमें वसुओंका पूजन विशेषता से करना चाहिये ॥ १० ॥ व सदैव लीलादिक के विधान मे स्वर्गके चाहनेवाले पुरुषोको सप्तमी व छठि तिथिमें देवताओंका पूजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ व जो पुरुष शत्रुओंसे रहितवाले पराक्रमको चाहतेहैं तथा

त्वाष्ट्रीगर्भसमुद्भवौ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समाख्याता एतेचसुरनायकाः ॥ ७ ॥ क्षेत्रेचैवस्थितानित्यं दानवानांवधायच ॥ यस्तान्सम्पूजयेद्भक्त्या पुरुषस्संयतेन्द्रियः ॥ ८ ॥ पूर्वोक्तदिवसेप्राप्ते नापमृत्युःप्रजायते ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां रुद्राःपूज्याविचक्षणैः ॥ ९ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेविशेषेण वाञ्छद्भिःपरमंपदम् ॥ दशम्यांवसवःपूज्यास्तत्राद्यायांविशेषतः ॥ १० ॥ स्वर्गंसमीहमानैश्च विलासादिविधौसदा ॥ सप्तम्यामथषष्ठ्यांचपूजनीयादिवौकसः ॥ ११ ॥ येवाञ्छन्तिनराःसत्त्वं परिपन्थिविवर्जितम् ॥ देववैद्यौतथापूज्यौ द्वादश्यांव्याधिसंक्षयम् ॥ १२ ॥ येवाञ्छन्तिसदामर्त्या नीरुजास्सम्भवन्तिच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरामरकुण्डमाहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति देवःपुत्रप्रदोनृणाम् ॥ चटकेश्वरनामाच सर्वपापहरोहरः ॥ १ ॥ यस्मिश्चेटि

जो रोगके नाशको चाहते हैं उनको द्वादशी तिथि में देवताओं के वैद्यों अश्विनीकुमारोंको पूजना चाहिये और वे मनुष्य नीरोग होतेहैं ॥ १२ । १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽमरेश्वरामरकुण्डमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥
दो० । यथा व्यास सों व्रतकही कीन्हों बहु शुकदेव । इकसौ तेंतालीस महँ सोई कहत सुभेव ॥ सूतजी बोले कि वैसेही समस्त पातको के हारक चटकेश्वर

नामक औरभी हरदेवजी वहांपर हैं जोकि मनुष्यों को पुत्रोंके दायक हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस स्थान पै पुरातन समय चेटिका नें तपस्या किया है व शुकदेव जीके वनमें चलेजाने पर व्यास से कपिंजल पुत्रको पायाहै ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह चेटिका किसकी कन्याहै और यहां कैसे तपस्या करती भई और शुकदेवभी किस लिये घरको छोड़कर वनमें आश्रित हुये ॥ ३ ॥ और पवित्र मुसक्यानवाली चेटिका ने व्यास से किसभांति कपिञ्जल पुत्रको पाया है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! किसी समय अकाम व शान्तचित्तवाले व सर्वज्ञ व्यास महात्माके स्त्रीके लिये बुद्धिहुई ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विचित्रवीर्य भूपको

प्राप्तापुत्रंशुकेयाते वनंव्यासात्कपिञ्जलम् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्यासौचेटिकातत्र कयापूर्वं तपस्तप्तंद्विजोत्तमाः ॥ कस्माद्गृहंपरित्यक्त्वा शुकोपिवनमाश्रितः ॥ ३ ॥ कथंकपिञ्जलंपुत्रंव्यासाल्लेभेशुचिस्मिता ॥४॥ कथंतप्तवतीतपः ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्व्यासस्यविप्रेन्द्राः कलत्रार्थेमतिंकचित् ॥ निष्कामस्यप्रशान्तस्य सर्वज्ञस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥ ततः क्षयमनुप्राप्ते वंशेकुरुसमुद्भवे ॥ विचित्रवीर्य्यमासाद्य पार्थिवंद्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ सत्यवत्यास्समादेशात्तस्यक्षेत्रेततः परम् ॥ सपुत्राञ्जनयामासत्रीञ्छूरान्पाण्डुपूर्वकान् ॥७॥ वानप्रस्थव्रतेतिष्ठन्सकृन्मैथुनतत्परः ॥ क्षेत्रजैस्तनयैर्वंशे कुरोस्तस्मादुपस्थिते ॥ ८ ॥ ततस्सचिन्तयामास भार्य्यामद्यकरोम्यहम् ॥ गार्हस्थ्येनाथधर्म्मेण साधयामिशुभाङ्गतिम् ॥ ततस्तंप्रार्थयामास जाबालिंतुसुतांशुभाम् ॥ ९ ॥ चेटिकाख्यांशुभांकन्यां सददौतस्यसत्वरम् ॥ ततस्तयासमे

प्राप्तहोकर कुरु से उपजेहुये कुलको नाश होनेपर ॥ ६ ॥ उसके उपरान्त वानप्रस्थ आश्रममें टिकेहुये उन व्यासजीने सत्यवती की आज्ञासे एकबार मैथुन में परायण होकर उन विचित्रवीर्यकी स्त्रियों में पाण्डुपूर्वक तीन शूरमा पुत्रोंको पैदा किया व उन व्यासजी से क्षेत्रज पुत्रोंके द्वारा कुरुवंश को उपस्थित होनेपर ॥ ७ । ८ ॥ तदनन्तर उन व्यासजी ने चिन्तन किया कि आज मैं स्त्रीको करूं इसके अनन्तर गृहस्थीवाले धर्मसे उत्तमगति को साधन करूं तदनन्तर उन जाबालिजी से शुभदायक कन्याकी प्रार्थना किया ॥ ६ ॥ उन जाबालिजी ने शीघ्रही उन व्यासजीको चेटिका नामक कन्या दिया तदनन्तर वानप्रस्थाश्रम में टिके व मैथुन करने मे

भी परायण होतेहुये व्यासजी उस स्त्रीसमेत वनवासके भलीभांति आश्रितहुये तदनन्तर सत्यवती के पुत्र व्यासजी से ऋतुसमय में मैथुन को प्राप्तहोकर पिंजला उनके पार्श्व (सकाश) से गर्भवतीहुई इसके अनन्तर जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है वैसेही व्यासजीकी स्त्रीके पेटमें भलीभांति टिकाहुआ वह गर्भ परमवृद्धि को प्राप्तहोता था इस प्रकार उस गर्भको नित्यप्रति बढ़तीको प्राप्त होतेहुये ॥ १० ।११ । १२ । १३ ॥ बारह वर्ष व्यतीत होगये और जन्मको न प्राप्तहुआ गर्भ में टिकाहुआभी उस पेटमें कहीं जो कुछ सुनता था ॥ १४ ॥ उस समस्त वस्तु को बुद्धिसंयुत उसने हृदय स्थित किया और गर्भवास में भी उसने अंगों समेत वेदोंको

तंतु वनवासंसमाश्रितः ॥ १० ॥ वानप्रस्थाश्रमेतिष्ठन्कृतमैथुनतत्परः ॥ ततोगर्भवतीजज्ञे पिङ्गलातस्यपार्श्वतः ॥
११ ॥ ऋतौमैथुनमासाद्य व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ अथयातिपरांवृद्धिं सगर्भस्तत्रसंस्थितः ॥ १२ ॥ उदरेव्यासभार्य्या
याः शुक्लपक्षेयथाशशी ॥ एवंसंगच्छतस्तस्य वृद्धिंगर्भस्यनित्यशः ॥ १३ ॥ द्वादशाब्दाअतिक्रान्ता नचजन्मस
माप्नुयात् ॥ यत्किञ्चिच्छृणुतेतत्र गर्भस्थोपिवचःक्वचित् ॥ १४ ॥ तत्सर्वंहृदयेसंस्थं चक्रेप्रज्ञासमन्वितः ॥ वेदास्सा
ङ्गास्समाधीता गर्भवासेपितेनच ॥ १५ ॥ स्मृतयश्चपुराणानिमोक्षशास्त्राणिकृत्स्नशः ॥ तत्रस्थोपिदिवानक्तं स्वा
ध्यायंप्रकरोतिसः ॥ १६ ॥ नचजन्मोत्थजांबुद्धिं कथञ्चिदपिचिन्तयेत् ॥ सामाताथपराम्पीडां नित्यंयातितथाकुला ॥
१७ ॥ यथायथासुतोयाति वृद्धिंजठरमाश्रितः ॥ ततश्चविस्मयाविष्टो व्यासोवचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥ कस्त्वंमद्गृहि
णीकुक्षौ प्रविष्टोगर्भरूपधृक् ॥ ननिष्क्रामसिकस्मात्त्वं किमेतांसूदयिष्यसि ॥ १९ ॥ गर्भउवाच ॥ राक्षसोहंपिशाचोहं

भलीभांति पढ़ा ॥ १५ ॥ व उस उदर में टिकाहुआ भी वह स्मृति, पुराण व मोक्षवाले शास्त्रों को दिन रात सम्पूर्णता से स्वाध्याय (पाठ) करताथा ॥ १६ ॥ और किसी प्रकारभी जन्म से उपजीहुई बुद्धिको नहीं चिन्तन करता था इसके अनन्तर पेटमें टिकाहुआ पुत्र ज्यों २ वृद्धिको प्राप्तहोता था त्योंही नित्यही विकलहोती हुई वह माता बड़ी व्यथा को प्राप्तहोतीथी तदनन्तर विस्मय से संयुत होतेहुये व्यासजी ने वचन को कहा ॥ १७ । १८ ॥ कि गर्भरूप के धारनेवाले तुम कौन मेरी स्त्रीकी कुक्षि (कोखि) में पैठेहो और तुम किसलिये नहीं निकलते हो क्या इसको मारडालोगे ॥ १९ ॥ गर्भ बोला कि मैं राक्षसहूं मैं पिशाचहूं मैं देवताहूं वैसे

ही मनुष्यहूं मैं हाथीहूं व मैं अश्वभी और मुरगा व छाग निश्चयकर हूं ॥ २० ॥ जिसलिये कि संख्या से चौरासीही लाख योनिहैं उन सबोंमें मैंने भ्रमण किया है उसीकारण क्या कहूं कि मैं कौनहूं ॥ २१ ॥ जिस लिये कि इस भयङ्कर संसार में घूमताहुआ निर्वेदको प्राप्त मैं इस समय मनुष्य होकर पेटमें भली भांति टिकाहूं उसी कारण इस मनुष्यलोक में मैं किसी प्रकार निष्क्रम न करूंगा याने न निकलूंगा किन्तु संसार से छूटा व सदैव योगाभ्यास में परायण होकर यहां टिकाहुआ मैं॥ २२ । २३ ॥ मोक्षमार्गको प्राप्तहूंगा तदनन्तर निस्सन्देह मुक्तिको पाऊंगा व्यासजी बोले कि यदि तुम्हारा ऐसा मनोरथ है तो तुमको पाप न

योनीनांचतुराशीतिर्लक्षाण्येवचसंख्यया ॥ भ्रान्तो हंतेषुसर्वेषु तत्कोहंप्रब्रवीमिकिम् ॥ २१ ॥ साम्प्रतंमानुषोभूत्वा जठरंसमुपाश्रितः ॥ मानुष्येत्रकरिष्यामि निष्क्रमं नकथञ्चन ॥ २२ ॥ निर्विण्णोभ्रममाणोत्र संसारेदारुणेततः ॥ अत्रस्थोभवनिर्मुक्तो योगाभ्यासरतस्सदा ॥ २३ ॥ मोक्ष मार्गंप्रयास्यामि ततोमोक्षमसंशयम् ॥ व्यासउवाच ॥ भविष्यतिनतेपापं यद्येवंतेस्तिवाञ्छितम् ॥ २४ ॥ सुघोरान्नर कादस्मान्निष्क्रामस्वविगर्हितात् ॥ गर्भवासात्ततोयोगं समाश्रित्यशिवंव्रज ॥ २५ ॥ गर्भउवाच ॥ तावज्ज्ञानंचवैराग्यं पूर्वजातिस्मृतिस्तथा ॥ यावद्गर्भस्थितोजन्तुस्सर्वोपिद्विजसत्तम ॥ २६ ॥ यदागर्भाद्विनिष्क्रान्तःस्पृश्यतेविष्णुमाय या ॥ तदानाशंव्रजत्याशु सत्यमेतदसंशयम् ॥ २७ ॥ तस्मान्नाहंद्विजश्रेष्ठ निष्क्रमिष्येकथञ्चन ॥ गर्भादस्मात्प्रया स्यामि स्थानंमोक्षमसंशयम् ॥२८॥ व्यासउवाच ॥ नभविष्यतितेमाया वैष्णवीसाकथञ्चन ॥ तस्माद्दर्शयमेवक्रं स्व देवोहंमानुषस्तथा ॥ गजोहंतुरगश्चापि कुक्कुटश्छागएवच॥२०॥

होगा ॥ २४ ॥ और इस अतिनिन्दित व अत्यन्त विकराल गर्भवासरूपी नरक से निकलिये तदनन्तर योगके भलीभांति आश्रित होकर कल्याणको प्राप्तहोवो॥२५॥ गर्भ बोला कि हे द्विजोत्तम ! तबतक ज्ञान, वैराग्य तथा पहली जातिका स्मरण होताहै जबतक कि सब प्राणी भी गर्भमें स्थितरहता है ॥ २६ ॥ व जब गर्भसे नि- कलाहुआ जन्तु विष्णु जीकी मायासे स्पर्श किया जाताहै तब शीघ्रही पूर्वोक्त सब नाश होजाताहै यह निस्सन्देह सत्यहै ॥ २७ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! मैं इस गर्भ से किसी प्रकार न निकलूंगा किन्तु निस्सन्देह मोक्ष स्थानको प्राप्तहूंगा ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले कि वह वैष्णवी माया तुमको किसी प्रकार न होगी इसलिये मुझ

को अपना मुख दिखलाइये कि जिसकरके तुम्हारे मुखके दर्शन से पितृलोक की उऋणता भलीभांति होवै गर्भ बोला कि हे द्विज ! यदि तुम मुझे विष्णुजी को प्रतिभू (जामिन) दीजिये तो इससमय आपही मेरा जन्म होवै अन्यथा न होगा सूतजी बोले कि तदनन्तर द्वारकाको शीघ्रही जाकर दुःखित होतेहुये व्यास जीने ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ चक्रपाणि (विष्णु) जीसे विस्तारपूर्वक वृत्तान्तको कहा पश्चात् उन विष्णु समेत फिर घरकोआये ॥ ३२ ॥ व व्यास जीने उस गर्भके लिये जामिन देनेके निमित्त निरंजन विष्णु जीसे कहा विष्णु बोले कि हे गर्भ ! मैं जामिनहूं कि आज मेरी मायाका निर्गम (रुकावट) होगा ॥ ३३ ॥ मेरी वाक्य से निकल

कीयंयेनसम्भवेत् ॥ २९ ॥ आनृण्यंपितृलोकस्य तववक्त्रस्यदर्शनात् ॥ गर्भउवाच ॥ वासुदेवंप्रतिभुवं यदिमेत्वंप्रयच्छसि ॥ ३० ॥ इदानींतुस्वयंतन्मे जन्मस्यान्नान्यथाद्विज ॥ सूतउवाच ॥ ततोव्यासोद्रुतंगत्वा द्वारकांप्रतिदुःखितः ॥ ३१ ॥ कथयामासवृत्तान्तं विस्तराच्चक्रपाणिने ॥ तेनैवसहितःपश्चात्स्वगृहंपुनरागतः ॥ ३२ ॥ व्यासःप्रतिभुवंतस्मै दातुंविष्णुं निरञ्जनम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रतिभूरस्मिगर्भाद्यमायायाममनिर्गमम् ॥ ३३ ॥ मद्वाक्यान्निष्क्रमंकृत्वागच्छमोक्षमनुत्तमम् ॥ ततोद्रुतंविनिष्क्रान्तोविष्णुवाक्येनसद्द्विजाः ॥ ३४ ॥ द्वादशाब्दप्रमाणस्तुयौवनस्यसमीपगः ॥ ततःप्रणम्यदैत्यारिंव्यासंचजननींतथा ॥ ३५ ॥ प्रस्थितोवनवासाय तत्क्षणादेवसद्द्विजाः ॥ अथतंसमुनिःप्राह तिष्ठपुत्रात्ममन्दिरे ॥ ३६ ॥ संस्काराञ्जातकाद्यांश्च येनतेप्रकरोम्यहम् ॥ शुकउवाच ॥ संस्काराःशतशोजाता ममजन्मनिजन्मनि ॥ ३७ ॥ भवार्णवेपरिक्षिप्तो यैरहंबन्धनात्मकैः ॥ भगवानुवाच ॥ शुकवज्जल्पतेयस्मात्तवायंपुत्रकोमुने ॥ ३८ ॥ तस्माच्छुकोयंनाम्ना

कर तुम अतिउत्तम मोक्ष को जावो तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! बारहवर्षके प्रमाणवाले व यौवन के समीपमें प्राप्त वे शुकदेव जी विष्णुके वचनसे निकलतेभये तदनन्तर हे उत्तम ब्राह्मणो ! दैत्यारि (विष्णु) व व्यास तथा माताको प्रणामकर उसी क्षण वनवास के लिये चले इसके अनन्तर उन व्यासमुनि ने उन शुकदेव जीसे कहा कि हे पुत्र ! अपने घरमें टिको ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ कि जिससे मैं तुम्हारे जातकादिक संस्कारोंको करूं शुकदेव जी बोले कि मेरे जन्म २ में सैकड़ों संस्कार हुये हैं ॥ ३७ ॥ कि जिन बन्धनात्मक संस्कारों से मैं भवसागर में फेंका गयाहूं भगवान् बोले कि हे मुने ! जिसलिये कि तुम्हारा यह पुत्र सुवाके समान बोलताहै ॥ ३८ ॥ इसलिये

योगविद्यामें चतुर यह शुक नामक होगा और मोह, मायासे रहित यह घरमें नहीं टिकैगा ॥ ३९ ॥ इसलिये यह जावै व तुम इससे उपजेहुये स्नेहको मतकरो मैं घरको जाऊंगा और तुम पुत्रके दर्शनही से पितरोंके ऋणसे छूटगयेहो यह मैंने सत्य कहा ऐसा कह इन्द्रियों के नायक (विष्णु) जी व्यास से पूंछकर शीघ्रही ॥ ४० । ४१ ॥ गरुड़पै चढ़कर द्वारकाको चलेगये तदनन्तर जब व्यास जीसे पूंछकर शीघ्रही विष्णुजी चलेगये तब व्यास जीने पुत्रसे कहा ॥ ४२ ॥ कि हेपुत्र ! पिताको छोड़कर जो योगको करताहै वह नरकको जाताहै इसलिये मतजावो ॥ ४३ ॥ शुकदेव जी बोले कि जैसे मैं पैदाहुआहूं वैसेही और जन्म में मुझसे तुम उत्पन्न हुयेहो हे मुनि-

तु योगविद्याविचक्षणः ॥ नचस्थास्यत्यसौगेहे मोहमायाविवर्जितः ॥ ३९ ॥ तस्माद्गच्छतुमास्नेहं त्वंकुरुष्वास्यसम्भवम् ॥ अहंगृहंप्रयास्यामि त्वंमुक्तःपैतृकादृणात् ॥ ४० ॥ दर्शनादेवपुत्रस्य सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशो व्यासमामन्त्र्यसत्वरम् ॥ ४१ ॥ विहगाधिपमारूढःप्रययौद्वारकाम्प्रति ॥ ततोगतेहृषीकेशे व्यासमामन्त्र्यसत्वरम् ॥ ४२ ॥ पितरन्तुपरित्यज्य योगंयस्तुसमाचरेत् ॥ सयातिनरकंतस्मान्मद्वाक्यात्पुत्रमाव्रज ॥ ४३ ॥ शुकउवाच ॥ यथात्वहंतथाजातो मयात्वंचान्यजन्मनि ॥ सञ्जातोसिमुनिश्रेष्ठ तथाहमपितेपिता ॥ ४४ ॥ तस्माद्वाक्यंत्वयाकार्य्यं यद्येषाधर्मसंस्थितिः॥नाहंनिषेधनीयस्तु व्रजमानस्तपोवनम् ॥ ४५ ॥ व्यासउवाच ॥ ब्राह्मणस्यगृहेजन्म पुण्यैःसम्प्राप्यसञ्चितैः ॥ संस्कारान्यत्रसम्प्राप्य वेदोक्तान्सविशिष्यते ॥ ४६ ॥ शुकउवाच ॥ संस्कारात्प्राप्यतेमुक्तिर्यदिकर्म्मशुभंविना ॥ पाखण्डिनोपियास्यन्ति तन्मुक्तिंब्रह्मचारिणः ॥ ४७ ॥ व्यासउवाच ॥ ब्रह्मचारीभवेत्पूर्वं गृहस्थश्च

श्रेष्ठ ! उसीप्रकार मैंभी तुम्हारा पिताहूं ॥ ४४ ॥ इसलिये यदि यह धर्मकी संस्थितिहै तो तुमको वचन करना चाहिये और तपोवन को जाताहुआ मैं मनाकरने के योग्य नहींहूं ॥ ४५ ॥ व्यास जी बोले कि इकट्ठा कियेहुये पुण्योंसे ब्राह्मणके घरमें जन्म होताहै और इस ब्राह्मणशरीर में वेदोक्त संस्कारों को भलीभांति पाकर वह विशेष याने श्रेष्ठ होताहै ॥ ४६ ॥ शुकदेव जी बोले कि यदि शुभकर्म के विना संस्कार से मोक्ष मिलताहै तो पाखंडी भी ब्रह्मचारी मुक्तिको जावैंगे ॥ ४७ ॥ व्यास

जी बोले कि पहले ब्रह्मचारी होवै तदनन्तर गृहस्थ उसके उपरान्त वानप्रस्थ व संन्यासी होवै तदनन्तर मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ४८ ॥ शुकदेव जी बोले कि यदि ब्रह्मचर्यसे मोक्ष होताहै तो वह नपुंसकोंको सदैव होवै है और गृहस्थाश्रम जो बनियाहैं वे सब संसार से छूटजाते हैं ॥ ४९ ॥ अथवा वनमें अनुरागवाले जन्तुओंको मोक्ष होता है तो मृगोंका होवै अथवा यदि यतिधर्मवाले मनुष्यों का मोक्ष होवै है ॥ ५० ॥ तो सब निर्धनी पुरुषोंका पहले मोक्ष होवै व्यास जी बोले कि गृहस्थधर्ममें अनुरागी व उत्तम मार्ग में चलनेवाले पुरुषों को मनुजीने इस लोक व परलोक को भलीभांति कहाहै ॥ ५१ । ५२ ॥ शुकदेव जी बोले कि भाइयों के बन्धनसे बँधेहुये व

ततःपरम् ॥ वानप्रस्थोयतिश्चैव ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४८ ॥ शुकउवाच ॥ ब्रह्मचर्य्येणचेन्मोक्षस्तत्षण्ढानांसदाभवेत् ॥ गृहस्थाश्रमिणोवैश्यास्तैस्सर्वैर्मुच्यतेजगत् ॥ ४९ ॥ अथवावनरक्तानांतन्मृगाणांप्रजायते ॥ अथवायतिधर्माणां यदिमोक्षोभवेन्नृणाम् ॥ ५० ॥ दरिद्राणांचसर्वेषांतन्मुक्तिःप्रथमाभवेत् ॥ ५१ ॥ व्यासउवाच ॥ गृहस्थधर्म्मरक्तानां नृणांसन्मार्गगामिनाम् ॥ इहलोकःपरश्चैव मनुनासंप्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥ शुकउवाच ॥ गृहस्थोद्यमरक्तानां बद्धानांबन्धुबन्धनैः ॥ मोहरागसमावेशात्सन्मार्गगमनंकुतः ॥ ५३ ॥ व्यासउवाच ॥ कष्टंवनेनिवसतोत्रसदानरस्य नो केवलंनरतनुप्रभवेभवेच ॥ देवंचपित्र्यमखिलंनविभातिकृत्यं तस्माद्गृहेनिवसतांसकलंविचिन्त्य ॥ ५४ ॥ शुकउवाच ॥ भावेनभावितमहातपसाम्मुनीनां तिष्ठन्तितावदखिलानितपःफलानि ॥ यत्तेनिकामशरणाःपुरुषानजातु पश्यन्तिसज्जनमुखानिसुखंतदेव ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ गृहेपरिग्रहःपुंसांगृहस्थाश्रमधर्मिणाम् ॥ इहलोकेपरेचैव सुखंय

गृहस्थीके उद्यम में अनुरागी पुरुषों को अज्ञान व स्नेह के समावेश याने भलीभांति पैठने से उत्तम मार्ग में गमन कहां से होताहै ॥५३॥ व्यासजी बोले कि मनुष्य शरीर की उत्पत्तिवाले इस संसारके बीच केवल वनमें कष्ट नहीं है किन्तु सम्पूर्ण देव व पितर कार्य्य नहीं शोभित होताहै इस लिये घरमें बसनेवाले जनोंकी सम्पूर्ण वस्तुको चिन्तनकर रहिये ॥ ५४ ॥ शुकदेव जी बोले कि भक्ति से भावना कीहुई बड़ी तपस्यावाले मुनियों के तबतक समस्त तपस्या के फल स्थित रहते हैं कि जब तक अकामशरणवाले वे पुरुष सज्जनोंके मुखोंको नहीं देखते हैं और वही सुखहै ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले कि गृहस्थाश्रम धर्मवाले पुरुषोंको घरमें परिग्रह (स्त्री

आदिका स्वीकार) इसलोक व परलोक में निश्चयकर अविनाशी सुखको देता है ॥ ५६ ॥ शुकदेव जी बोले कि दैवयोग से अग्नि सेभी ठंढक होतीहै व चन्द्रमा सेभी ताप होतीहै परन्तु इस मृत्युलोक में स्त्री आदिसे सौख्यकी उत्पत्ति न हुई है न होती है न होगी ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि बड़े पुण्योंके द्वारा क्लेशसे भूमिमें दुर्लभ मनुज शरीर मिलताहै यदि गृहस्थीके धर्मको जानताहो तो उस मनुष्य देहके मिलने पर क्या नहीं मिलाहै याने सबकुछ मिलगया ॥ ५८ ॥ शुकदेवजी बोले कि इस संसार में जन्मके समय यदि मनुष्य ज्ञानसंयुत होताहै तो अपनी अवस्था को देखकर यह ज्ञान नष्ट होजाताहै ॥ ५९ ॥ व्यासजी बोले कि इस संसार में भस्म व

च्छतिशाश्वतम् ॥ ५६ ॥ शुकउवाच ॥ शीतंहुताशादपिदैवयोगात्संजायतेचन्द्रमसोपितापम् ॥ परिग्रहात्सौख्यस मुद्भवोत्र भूतोद्भवाद्भाविनमर्त्यलोके ॥ ५७ ॥ व्यासउवाच ॥ सुपुण्यैर्लभ्यतेक्लेशाज्जन्ममानुष्यंभुविदुर्लभम् ॥ तस्मिल्ल ब्धेनकिंलब्धं यदिस्याद्गृहधर्म्मवित् ॥ ५८ ॥ शुकउवाच ॥ यदिस्याज्ज्ञानसंयुक्तो जन्मकालेत्रमानवः ॥ निजाव स्थांसमालोक्य तज्ज्ञानंहिविलीयते ॥ ५९ ॥ व्यासउवाच ॥ मनुजस्यापिपुत्रस्य गर्दभस्यार्भकस्यच ॥ भस्मधूलिस्थलो केस्मिञ्छब्दोपिरटतोमुदे ॥ ६० ॥ शुकउवाच ॥ रसतासर्पताधूलौ लोकेतुशुचिवर्जिते ॥ मुनेत्राशिशुनालोकस्तु ष्टिंयातिसुबालिशः ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ पुन्नामास्तिमहारौद्रो नरकोयममन्दिरे ॥ पुत्रहीनोव्रजेत्तत्र तेनपुत्रःप्रश स्यते ॥ ६२ ॥ शुकउवाच ॥ यदिस्यात्पुत्रतःस्वर्गस्सर्वेषांस्यान्महामुने ॥ शूकराणांशुनांचैव शलभानांविशेषतः ॥ ६३ ॥ व्यासउवाच ॥ पितॄणामनृणोमर्त्यो जायतेपुत्रदर्शनात् ॥ पौत्रस्यापिचदेवानां प्रपौत्रस्यदिवाश्रयः ॥ ६४ ॥

धूरि में टिकते तथा शब्द करतेहुये पुत्रका शब्दभी मनुज व गर्दभ के अर्भकको भी आनन्द के लिये होताहै ॥ ६० ॥ शुकदेवजी बोले कि हे मुने ! पवित्रतारहित इस संसार में धूलि के बीच लोटते व शब्द करतेहुये बालक से अतिमूर्ख मनुष्य प्रसन्नताको प्राप्तहोता है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले कि यमराजके मन्दिर में बड़ाभयं-कर पुन्नामक नरकहै पुत्रसे हीन पुरुष उसमें जावैहै उसीसे पुत्र प्रशंसित होताहै ॥ ६२ ॥ शुकदेवजी बोले कि हे महामुने ! यदि सबको पुत्रसे स्वर्ग होवैहै तो शू-करों कुत्तों व विशेषकर पांखियोंको स्वर्गहोगा ॥ ६३ ॥ व्यासजी बोले कि पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितरोंसे उऋण होताहै व पौत्र केभी देखने से देवताओं से उऋण

होताहै और प्रपौत्रके देखने से स्वर्ग में आश्रित होताहै ॥ ६४ ॥ शुकदेवजी बोले कि विराम (अन्तसमय) के प्रकटहोनेपर तृष्णावान् नर अपनी सन्तानको देखता है इस क्रमसे वंश होताहै तो वह किसकारण मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर व अनेक प्रकारसे विलाप करतीहुई व दुःखित माता व पिताको छोड़कर वे शुकदेवजी वनको चलेगये ॥ ६६ ॥ उनको देखकर दुःखित व पुत्रके दर्शनमें निराश व्यासजी स्त्री समेत पुत्र शोचसे अत्यन्तही तप्तहोगये ॥६७॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येव्यासशुकसंवादोनामात्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३ ॥

शुकउवाच ॥ विरामेजनितेगृध्नुः संततिंपश्यतेनिजाम् ॥ क्रमेणसन्ततिःकेन समोक्षंप्रतिपद्यते ॥ ६५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वापरित्यज्य पितरंसवनङ्गतः ॥ मातरंचसुदुःखार्तांप्रलपन्तीमनेकधा ॥ ६६ ॥ तंदृष्ट्वादुःखितोव्यासो निराशःपुत्रदर्शने ॥ पुत्रशोकाभिसंतप्तो भार्य्ययासहितोभवत् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येव्यासशुकसंवादोनाम त्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतंनिःस्पृहंज्ञात्वा गृहम्प्रतिनिजात्मजम् ॥ चेटिकादुःखसंयुक्ता व्यासमेतदुवाचह ॥ १ ॥ अहंतपश्चरिष्यामि पुत्रार्थंद्विजसत्तम ॥ अनुज्ञांदेहिमेयेन तोषयामिमहेश्वरम् ॥ २ ॥ पुत्रोयेनभवेन्मह्यं वंशवृद्धिकरःपरः ॥ एवंसानिश्चयंकृत्वा लब्ध्वानुज्ञांमुनेस्ततः ॥ ३ ॥ क्षेत्रमेतत्समासाद्य तपस्तेपेपतिव्रता ॥ संस्थाप्यशङ्करन्देवं तदग्रे निर्म्मलोदकाम् ॥ ४ ॥ कृत्वावापींसुविस्तीर्णां स्नानात्पातकनाशिनीम् ॥ ततस्तस्याःगतस्तुष्टिं सभवस्त्रिपुरान्तकः ॥

दो० । चेटिकेश शिव को थप्यो यथा चेटिका नारि । इकसौ चौवालीसमहँ कहत सोइ परचारि ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उस अपने पुत्रको घरप्रति निर्लोभ जानकर दुःखसंयुत चेटिकाने यह वचन कहा ॥ १ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं पुत्रके लिये तपस्या करूंगी मुझको आज्ञादीजिये जिससे महादेव जीको प्रसन्नकरूं ॥ २ ॥ व जिससे वंशको वृद्धिकारक मेरे उत्तम पुत्रहोवै उस पतिव्रताने इसभांति निश्चयकरके तदनन्तर मुनिकी आज्ञापाकर इसक्षेत्रको प्राप्तहोकर शंकर देवजीको भली

भांति थापकर व उन शिवजीके आगे निर्मल जलवाली व स्नानसे पापोंको विनाशनेवाली बडी चौड़ी बावली को बनाकर तपस्या किया तदनन्तर त्रिपुर के नाशन वाले वे सदाशिव जी उसके ऊपर प्रसन्नहोगये व प्रसन्न अन्तःकरणसे उससे यह बोले कि मैं वरदायकहूं ॥ ३ । ४ । ५ ॥ महादेव जी बोले कि हे सुव्रते, भद्रे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं जो नित्यही हृदयमें स्थितहो उस वरदानको मांगिये मुझको कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ चेटिका बोली कि हे सुरश्रेष्ठ ! विनयसे संयुत व सुशील व नित्यही मित्रों को आनन्दकारक व वंशके बढ़ानेवाले पुत्रको मुझे दीजिये ॥ ७ ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि हे सुशोभने, महाभागे ! तुमने जैसे पुत्रकी

वरदोस्मीतिताम्प्राह प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५ ॥ देवउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेभद्रे वरंवरयसुव्रते ॥ यःस्थितोहृदये नित्यंनादेयंविद्यतेमम ॥ ६ ॥ चेटिकोवाच ॥ सुतन्देहिसुरश्रेष्ठ ममवंशविवर्द्धनम् ॥ मित्राह्लादकरन्नित्यं सुशीलंविनयान्वितम् ॥ ७ ॥ श्रीदेवउवाच ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तवपुत्रःसुशोभने ॥ यादृक्त्वयामहाभागे प्रार्थितस्तद्विशेषतः॥ ८ ॥ अत्रापिमानुषीयात्रा वाप्यांस्नात्वासमाहिता ॥ ९ ॥ पञ्चम्यांवत्सरंयावच्छुक्लपक्षेह्युपस्थिते ॥ पूजयिष्यतिमल्लिङ्गं यच्चाद्यस्थापितंत्वया ॥ १० ॥ साथलप्स्यतिसत्पुत्रं यथाकुलमनुत्तमम् ॥ याचदौर्भाग्यसंयुक्ता तृतीयादिवसेत्रवै ॥ ११ ॥ स्नात्वात्रसलिलेपश्चान्मल्लिङ्गंपूजयिष्यति ॥ सासौभाग्यसमोपेता वर्षान्तेचभविष्यति ॥ १२ ॥ यःपुनःपुरुषश्चात्रस्नात्वामांपूजयिष्यति ॥ सकामोलप्स्यतेकामानकामोमोक्षमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्ततश्चाद

प्रार्थना कियाहै उससे विशेष निस्सन्देह तुम्हारे होगा ॥ ८ ॥ और यहांपर भी शुक्लपक्षको समीप प्राप्तहोनेपर पञ्चमीतिथिमें वर्षपर्य्यन्त सावधान होतीहुई जो मानुषी स्त्री इस बावलीमें नहाकर और तुमने आज जिस लिंगको थापाहै उस लिंगको पूजैगी ॥ ९ । १० ॥ वह इसके अनन्तर कुलके अनुकूल अतिउत्तम सत्पुत्रको पावैगी व दुर्भाग्यसे संयुत जो स्त्री तीजके दिन इस जल में नहाकर पश्चात् मेरेलिंगको पूजैगी वह वर्ष के अन्तमें सौभाग्यसे संयुत होवैगी ॥ ११ । १२ ॥ व फिर जो पुरुष इसमें नहाकर मुझको पूजैगा वह सकाम होवै तो कामनाओं को पावैगा और अकाम होवै तो मोक्षको पावैहै ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर महादेव जी अन्तर्द्धान होगये

और उस नेमी व्यासजीके सकाश से कपिंजल ऐसे सुनेहुये वैसे पुत्रको पाया ॥ १४ ॥ जैसा कि उन त्रिशूलधारी देवदेव शिवजीने पुरातनसमय कहाथा और जिसी कपिंजलने यहांपर पहले केलीश्वरी देवीको थापाहै ॥ १५ ॥ पुरातनसमय संसार में वहां आराधन कीहुई जो देवी समस्त सिद्धियोंकी दायिनी हुईहै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येचेटिकेश्वरमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४४॥

दो० । यथा अंधकासुर कियो योगिनीन सन युद्ध । इकसौ पैंतालीसमहँ कहत सोइ मतिशुद्ध ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जो केलीश्वरी देवी सुनीजाती

र्शनङ्गतः ॥ सापिलेभेसुतंव्यासात्कपिञ्जलमितिश्रुतम् ॥ १४ ॥ यादृक्तेनपुराप्रोक्तो देवदेवेनशूलिना ॥ येनैवस्थापिताचात्र देवीकेलीश्वरीपुरा ॥ १५ ॥ सर्वसिद्धिप्रदालोकेतत्रयाराधितापुरा ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चेटिकेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४४॥

ऋषयऊचुः ॥ केलीश्वरीचयादेवी श्रूयतेसूतनन्दन ॥ माहात्म्यंवदतस्यास्त्वमुत्पत्तिंचसुविस्तरात् ॥ १ ॥ कस्मिन्कालेसमुत्पन्ना किमर्थंचसुरेश्वरी ॥ किमस्याजायतेश्रेयः पूजयानमनेनच ॥ २ ॥ त्वयाकात्यायनीप्रोक्ता चामुण्डाच सुरेश्वरी ॥ श्रीमाताचतथातारा देवशत्रुविनाशिनी ॥ ३ ॥ केलीश्वरीनसंप्रोक्ता तस्मात्तांवदसाम्प्रतम् ॥ कौतुकंचसमुत्पन्नमत्रार्थेसूतनन्दन ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ अथैकादेवतालोके बहुरूपाव्यवस्थिता ॥ देवतानांहितार्थाय दैत्यपक्षक्षयायच ॥ ५ ॥ यदायदात्रदेवानां व्यसनंजायतेक्वचित् ॥ तदातदापराशक्तिर्यासाव्याप्यव्यवस्थिता ॥ ६ ॥ सर्वमेतज्ज

है उसकी उत्पत्ति व माहात्म्यको तुम विस्तार से कहो ॥ १ ॥ कि किससमय और किसलिये वह सुरेश्वरी उत्पन्न हुईहै व इसके पूजन व प्रणाम करनेसे क्या कल्याण होताहै ॥ २ ॥ तुमने कात्यायनी व सुरेश्वरी चामुण्डा, श्रीमाता व देवताओं के शत्रुओंको विनाशनेवाली ताराको कहाहै ॥ ३ ॥ व केलीश्वरी को नहीं कहा इस लिये इससमय उसको कहिये हे सूतपुत्र ! इस विषयमें आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर संसारमें देवताओं के हितके लिये व दैत्यों के पक्षके संहारके लिये बहुरूपवाला एक देवता विशेषतासे टिकाहै ॥ ५॥ जब जब यहां कहींपर देवताओंको विपत्ति होती है तब तब जो उत्तम शक्ति इससमस्त संसार

को व्यापकर स्थित है उस जगद्धात्री ने भूतलमें जन्म कियाहै और इस त्रिभुवन को दुःखित होनेपर महिषासुर के नाशने के लिये उस उत्तम कात्यायनी मूर्त्तिने अवतार लिया है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ व जब बलसे गर्वित शुंभ, निशुंभ दो दैत्य हुये हैं तब चामुण्डा रूपमें टिकतीहुई उसीने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ और जब समस्त देवों को भयदायक कालयवन उन्नतिको प्राप्तहुआ है तब वही श्रीमाता रूपवाली देवी उत्पन्नहुई है ॥ १० ॥ और जिससे यह संसार व्याप्तहै उस केलीश्वरी देवीको अन्धकासुरको मारने के लिये शंभुजीने दुःखित चित्तसे रचाहै ॥ ११ ॥ तदनन्तर उसी केलीश्वरी के प्रभावसे अनेकों दैत्यों को मारकर पश्चात् त्रिलोकको दुःखदा-

गद्धात्री जन्मचक्रेधरातले ॥ महिषासुरनाशाय साचकात्यायनीभुवि ॥ ७ ॥ अवतीर्णापरामूर्तिरेतस्मिन्भुवनत्रये ॥ ८ ॥ यदाशुम्भनिशुम्भौद्धौ दानवौबलदर्पितौ ॥ अवतीर्णातदासैव चामुण्डारूपमाश्रिता ॥ ९ ॥ प्रोद्धतेकालयवने सर्वदेवभयावहे ॥ श्रीमातारूपिणीदेवी सैवजाताधरातले ॥ १० ॥ अन्धासुरवधार्थाय शम्भुनाक्रान्तचेतसा ॥ सृष्टाकेलीश्वरीदेवी ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ ११ ॥ ततस्तस्याःप्रभावेण हत्वादैत्याननेकशः ॥ अन्धकोनिहतःपश्चात्त्रैलोक्यव्यसनप्रदः ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अन्धकःकस्यपुत्रोयं किंप्रभावःकथंहतः ॥ कस्माद्धतस्तुसंग्रामे सर्वेविस्तरतोवद ॥ सूतउवाच ॥ दक्षस्यदुहितानाम दितिःसर्वगुणास्पदा ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम तस्याःपुत्रोबभूवह ॥ येनशक्रादयोदेवा जितास्सर्वेरणाजिरे ॥ १४ ॥ स्वर्गराज्यंहृतंभूरि स्वयमेवमहात्मना ॥ यद्भयात्सकलैर्देवैर्नानाशस्त्राण्यनेकशः ॥ १५ ॥ निर्मित्यपर्विमुख्यानि धनुर्वर्मशतानिच ॥ स्वयंविदारितोयश्च विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १६ ॥

यक अन्धकासुर को मारा है ॥ १२ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह किस प्रभाववाला अन्धकासुर किसका पुत्रथा व कैसे मारागया है व संग्राम में किस पुरुषसे मारागया है इससमस्त चरितको विस्तारसे कहिये सूतजी बोले कि समस्त गुणोंकी स्थानभूत दिति नामक दक्षकी कन्याहुई है ॥ १३ ॥ उसके हिरण्यकशिपु नामक पुत्रहुआ जिसने रणरूपी आंगन में इन्द्रादिक समस्त देवताओं को जीतलिया है ॥ १४ ॥ व बड़ीभारी स्वर्गकी राज्यको आपही महात्माने हरलिया है जिसकी भयसे समस्त देवता वज्रहै मुख्य जिनमें ऐसे सैकड़ों धनुष व बख्तरोंको निर्माणकर स्वस्थहुयेहैं और सामर्थ्यवान् विष्णुजीने आपही क्रोधसे जिसको भूपृष्ठमें धरकर नखोंसे विदारण

जिन में बड़ा प्रह्लाद ऐसा कहागया है और दूसरा अन्धक हुआ है जब हि-
कियाहै उसके पराक्रम व उदारतादि गुणोंसे संयुत दो पुत्र पैदाहुये हैं ॥ १५।१६।१७ ॥ रण्यकशिपु मृत्युके लोकको प्राप्तहुआ उसके उपरान्त विनयसंयुत मित्रगणों व मंत्रियों ने प्रह्लादसे कहा कि इस समय पिता, पितामहवाले इस राज्यको करिये ॥ १८।१९ ॥ व राज्यसे उठेहुये भारको धरिये और राज्यसे देवताओं को गिराइये प्रह्लाद बोले कि जिसलिये मैं किसी प्रकार भूतलमें राज्य न करूंगा उसीकारण इससमय मेरे वचनको सुनिये कि इन्द्र अग्रगामीवाले देवता दैत्योंकी राज्य को नहीं चाहते हैं ॥ २०।२१ ॥ उन देवताओंकी नित्यही रक्षाकरनेवाले आपही

करजैर्हिंधरापृष्ठे विनिधायप्रकोपतः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञे वीर्य्यौदार्य्यगुणान्वितम् ॥ १७ ॥ ज्येष्ठःप्रह्लादइत्युक्तो द्विती यश्चान्धकस्तथा ॥ हिरण्यकशिपौप्राप्ते मृत्युलोकंसुहृद्गणैः ॥ १८ ॥ अमात्यैश्चततःप्रोक्तः प्रह्लादोविनयान्वितैः ॥ पितृपैतामहंराज्यमेतदाचरसाम्प्रतम् ॥ १९ ॥ धुरन्धरस्वराज्योत्थान्देवान्राज्यान्निपातय ॥ प्रह्लादउवाच ॥ नाहंरा ज्यंकरिष्यामि कथंचिदपिभूतले ॥ २० ॥ यतस्ततोनिबोधध्वं वचनंममसाम्प्रतम् ॥ दैत्यराज्यंनवाञ्छन्ति देवाःश क्रपुरोगमाः ॥ २१ ॥ तेषांरक्षाकरोनित्यं विष्णुस्सभगवान्स्वयम् ॥ अथाहंसन्त्यजेप्राणान्सर्वस्वंवानसंशयः ॥ २२ ॥ नतेनसहसंग्रामं कर्तुमिच्छेकथ हरिणासहसंग्रामं नैवकर्तुमहंक्षमः ॥ योमयाभ्यर्चितोनित्यं प्रणतश्चसुरेश्वरः ॥ २३ ॥ प्रह्लादेनचसंत्यक्ते राज्येपितृसमुद्भवे ॥ २४ ॥ अन्धकःस्थापितस्तत्र संमन्त्र्यसचिवैर्मिथः ॥ सोपि ञ्चन ॥ सूतउवाच ॥ राज्यंसमालेभे निधायतदनन्तरम् ॥ २५ ॥ तपश्चक्रेचिरंकालं ध्यायमानःपितामहम् ॥ त्यक्त्वाकामंतथाक्रोधं

परन्तु मैं विष्णु जीके साथ युद्धकरने के लिये समर्थ नहींहूं भगवान् विष्णु जीहैं इसके अनन्तर मैं प्राणों व सर्वस्व को निस्सन्देह भलीभांति त्याग करूंगा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि जो सुरनायक विष्णु जी मुझसे नित्यही पूजित व प्रणाम कियेजाते हैं ॥ २३ ॥ उनके साथ युद्ध करनेके लिये मैं किसी प्रकार नहीं चाहताहूं पितासे उपजेहुये राज्यको प्रह्लादके त्याग करनेपर ॥ २४ ॥ मंत्रियों ने आपस में सलाहकर उस राज्यपै अन्धकको थापित किया उस अन्धकने भी राज्यको भली भांति पाया तदनन्तर मंत्रियों के ऊपर राज्यके भारको धरकर ॥ २५ ॥ व काम क्रोध पाखण्ड व ईर्षाको निश्चय कर छोड़कर पितामह को ध्यानकरतेहुये उसने बहुत

दम्भंमत्सरएवच ॥ २६॥ जितेन्द्रियःप्रशान्तात्मा समःसर्वेषुजन्तुषु ॥ यावद्वर्षसहस्रान्ते चतुर्थेसमुपस्थिते ॥ २७ ॥ वृक्षमूलाश्रयःशान्तःसन्तुष्टेनान्तरात्मना॥ यावद्वर्षसहस्रन्तु फलाहारोबभूवह॥२८॥शीर्णपर्णाशनोनित्यं यावद्वर्षसहस्रकम् ॥ ध्यायमानोदिवानक्तं देवदेवंपितामहम् ॥ २९ ॥ वायुभक्ष्यस्ततोजज्ञे तावत्कालंद्विजोत्तमाः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते चतुर्थेसमुपस्थिते ॥ ३० ॥ तमुवाचस्वयंब्रह्मा स्वयमभ्येत्यहर्षितः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥ ३१ ॥ तुष्टोहंतेप्रवक्ष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ यदियच्छसिमेब्रह्मन्वरंमनसिवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥ जरामरणनाशाय दीयतांसुरसत्तम ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नकश्चिचजराहीनो विद्यतेत्रधरातले ॥ ३३ ॥ मरणेनविनानैवं यस्यजन्मभवेत्त्विती ॥ तथापितवदास्यामि वधधर्म्मरतस्यच ॥ ३४ ॥ तस्मात्कुरुमहाभाग राज्यंगत्वानिजंगृहम् ॥ भवेद्बहुफलंराज्यं श्मशानभवनंयथा ॥ ३५ ॥ बहुकण्टकसंकीर्णं क्रूरकर्मभिरावृतम् ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाचतु

व चारहज़ारवर्षके अन्तको उपस्थित होनेपर वह जितेन्द्रिय व अतिशान्तचित्त या मनवाला व समस्त प्राणियों में सम हुआहै ॥२७॥ वृक्ष मूलके आश्रित व शान्तमनवाला अन्धक प्रसन्न अन्तःकरण से हज़ारवर्ष तक फलाहारी हुआ ॥ २८ ॥ व दिनरात ब्रह्माजीका ध्यान करताहुआ वह हज़ारवर्ष तक नित्य गिरेहुये पत्तोंका आहारी हुआ ॥२९॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उतनाही समय याने हज़ारवर्ष पवन भोजन करनेवाला हुआ तदनन्तर चौथे हज़ारवर्ष के अन्तको उपस्थित होनेपर ॥ ३० ॥ प्रसन्न ब्रह्माजीने आपही आकर उस अन्धक से स्वयं कहा ब्रह्मा बोले कि हे उत्तम व्रतवाले, वत्स ! तुम्हारे ऊपर मैं अतिप्रसन्न हूं वरदानको मांगो ॥ ३१ ॥ यद्यपि दुर्लभ होगा तथापि प्रसन्न होताहुआ मैं उसको तुमसे कहूंगा अन्धक बोला कि हे ब्रह्मन् ! मनमें इच्छा कियेहुये वरदानको यदि मुझे देतेहो ॥ ३२ ॥ तो हे सुरश्रेष्ठ ! वृद्धता व मृत्युके नाशके लिये दीजिये ब्रह्मा बोले कि इस धरातलमें कोई भी वृद्धताहीन नहीं विद्यमान है ॥ ३३ ॥ कि जिसका जन्म पृथ्वी में मृत्युके विना होवै ऐसा नर नहीं है तिस पर भी मारने के धर्म में लगे हुये तुमको दूंगा ॥ ३४ ॥ इसलिये हे महाभाग ! अपने घरको जाकर राज्य करो और बहुतेरे कण्टकों से व्याप्त व क्रूर कर्म करनेवाले जनों से घिरीहुई व श्मशान भवनके समान राज्य बहुत फलोंवाली होवै सूतजी बोले कि चतुरानन जी

ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्धान होगये ॥३५।३६॥ इसके अनन्तर किसी समय मृत्युके धर्मसे प्रेरित व पिताके वैरको स्मरण करताहुआ वह समस्त मंत्रियोंसे बोला॥ ३७ ॥ अन्धक बोला कि हमारे पिता व चचाको कपटके द्वारा न कि शूरता से देवों ने माराहै इसलिये मैं उनको मारूंगा ॥ ३८ ॥ उस पुत्रके पैदा होनेसे क्या अर्थहै जोकि प्रशंसित होताहुआ सबकहीं वैसेही प्रकटताकोनप्राप्तहोवै जैसे कि बांसके अग्रभाग में ध्वजा प्रकट होतीहै ॥ ३९ ॥ मंत्री बोले कि हे महाभाग! जो वचन तुमने कहाहै यह योग्यहै कि जो देवता हमारे शत्रुहैं वे सब मारने योग्यहैं॥ ४० ॥ और ये लोक हमलोगोंके हैं देवता कौनहैं व ब्राह्मण कौनहैं हमलोग इन्द्र आदिक

वैक्स्ततश्चादर्शनंगतः ॥ ३६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य प्रेरितःकालधर्मतः॥ प्रोवाचसचिवान्सर्वान् पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ ३७ ॥ अन्धकउवाच ॥ पितास्माकंहतोदेवैः पितृव्यश्चमहाबलः॥ कपटेननशौर्य्येण तस्मात्तान्सूदयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ कोर्थःपुत्रेणजातेन योनकृत्येषुशंसितः॥ प्राकट्यंयातिसर्वत्र वंशस्याग्रेध्वजोयथा॥ ३९ ॥ मन्त्रिणऊचुः ॥ युक्तमेतन्महाभाग यत्त्वयोदाहृतंवचः॥ वध्याःस्युर्विबुधास्सर्वेयेस्माकंपरिपन्थिनः॥ ४० ॥ अस्माकंचइमेलोकाः केदेवाःके द्विजातयः ॥ यज्ञभागान्हरिष्यामो हत्वाशक्रमुखान्सुरान् ॥ ४१ ॥ एवंतेसमयंकृत्वा सैन्येनमहतान्विताः ॥ प्रजग्मुस्त्वरितास्तत्र यत्रशक्रोऽव्यवस्थितः॥ ४२ ॥ शक्रोपिदानवानीकं दृष्ट्वातान्सहसागतान् ॥ आरुह्यैरावतंनागं युद्धार्थंनिर्ययौतदा॥ ४३ ॥ सहदेवगणैस्सर्वैर्वसुरुद्रार्कसंयुतैः ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रो वज्रंरौद्रतमंचयत् ॥ ४४ ॥ समुद्दिश्यान्धकंतस्मै मुमोचपरवीरहा ॥ सहतस्तेनवज्रेण विहस्यदनुजोत्तमः ॥ ४५ ॥ शक्रंप्रोवाचसंहृष्टस्तारनादेनसंयुगे ॥

देवताओं को मारकर यज्ञभागों को हरलेवैंगे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार प्रतिज्ञाकर बड़ी सेनासे संयुत व शीघ्रतामें प्राप्त वे दैत्य वहांगये जहां कि इन्द्रजी विशेषता से टिके थे ॥ ४२ ॥ उस समय दैत्योंकी सेना व अचानक आयेहुये उन दैत्यों को देखकर इन्द्रभी ऐरावत हाथीपै चढ़कर वसु, रुद्र व सूर्य्य संयुत समस्त सुरसमूहों समेत युद्ध करनेके लिये निकले इसी अवसरमें शत्रुशूरमाको मारनेवाले इन्द्रजीने अन्धकको भलीभांति उद्देशकर जो अत्यन्त भयंकर वज्र था उसको उस अन्धकके लिये छोड़ा उस वज्रसे माराहुआ वह दैत्यसत्तम विहँसकर ॥ ४३ । ४४ । ४५ ॥ अतिप्रसन्न होताहुआ युद्धमें ॐकार शब्दसे इन्द्र प्रति बोला कि हे इन्द्र ! आज मैंने

बहुत दिनसे तुम्हारे भुजबलको देखाहै ॥४६॥ व हे बलसूदन ! इससमय हमारे बलको तुम्हीं देखो सूतजी बोले कि ऐसा कहकर इसके अनन्तर गदाको घुमाकर प-
राक्रम से छोड़दिया ॥ ४७ ॥ जो गदा कि सौ घण्टाओंवाली व बड़े शब्दवाली व विश्वकर्मा से बनाईहुई व सब लोहमयी और गरुई व दूसरी यमराजकी जिह्वाके
समान ॥ ४८ ॥ व प्रमाणसे सौ हाथवाली तथा प्राणियों को डर बढ़ानेहारीथी उस से मारेहुये इन्द्रजी मूर्च्छासे विकल इन्द्रियोंवाले होगये ॥ ४९ ॥ व ध्वजाके दण्ड
का सहाराभरकर गजके मस्तकपै बैठगये इसके अनन्तर स्वामिकार्त्तिकेय जीने मूर्च्छितहुये इन्द्रको देखकर बड़े क्रोध से वज्रके समान व सफला अपनी सांगिको

दृष्टंबाहुबलंशक्र मयाद्यसुचिरात्तव ॥ ४६ ॥ अधुनापश्यचास्माकं त्वमेवबलसूदन ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाथचा
विध्यगदांवीर्य्यान्मुमोचह ॥ ४७ ॥ शतघण्टांमहारावांनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ सर्वायसमयींगुर्वीं यमजिह्वामिवा
पराम् ॥ ४८ ॥ शतहस्तांप्रमाणेन प्राणिनांभयवर्द्धिनीम् ॥ तयाविनिहतःशक्रो मूर्च्छाव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥
ध्वजयष्टिंसमाश्रित्य निविष्टोगजमूर्द्धनि ॥ अथसंमूर्च्छितंदृष्ट्वा शक्रंस्कन्दःप्रकोपतः ॥ ५० ॥ मुमोचाथनि
जांशक्तिममोघांवज्रसन्निभाम् ॥ तामायान्तींसमालोक्यदानवोनिशितैःशरैः ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमांततश्चक्रे लीलयैव
महाबलः ॥ ततःस्कन्दोपिसंगृह्य चापात्तंप्रतिसायकान् ॥ ५२ ॥ मुमोचाशीविषाकारांल्लँघ्वस्त्रंतस्यदर्शयन् ॥ एतस्मि
न्नन्तरेदेवास्सर्वेशस्त्रप्रवृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ समन्ताच्छादयामासुर्दानवानामनीकिनीम् ॥ ततस्तुदानवाःसर्वे देवताना
मनीकिनीम् ॥ ५४ ॥ प्रहारैःपीडयामासुर्दुद्रुवुस्तेदिवौकसः ॥ ततोभग्नान्सुरान्दृष्ट्वा सगणोवृषवाहनः ॥ ५५ ॥ दर्श

छोड़ा तदनन्तर दैत्यने आतीहुई उस शक्तिको देखकर पैने बाणोंसे विलोम किया याने लौटार दिया तदनन्तर बड़ेबली स्वामिकार्त्तिकेय जीने भी लीलाहीसे उस
को पकड़कर व उस दैत्यको अस्त्र चलानेकी शीघ्रता को दिखलातेहुये उसके ऊपर सर्पके समान आकारवाले बाणोंको धनुषसे छोड़ा इसी अवसरमें समस्त देवताओं
ने शस्त्रोंकी वृष्टियों से ॥ ५० । ५१ । ५२ । ५३ ॥ दैत्योंकी सेनाको सबओर से आच्छादन किया तदनन्तर समस्त दानवोंने देवताओंकी सेनाको प्रहारों से पीडित

किया और वे देवता भगे उसके उपरान्त देवताओंको दुःखित देखकर गणों समेत बैल वाहनवाले शिवजी ने देवताओं को समझातेहुये से अपने को दिखलाया कि हे समस्त देवताओ ! मतडरो हमारे कर्मको देखिये ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ उस समय ऐसा कहकर शंभु भगवान् ने अति उत्तम विश्वेश्वरी नामक परमशक्तिको अथर्वण वेदवाले मंत्रोंसे आह्वान किया ॥ ५७ ॥ व बुलाईहुई उत्तम शक्ति महादेव जीके समीप प्राप्तहुई व प्राप्तहुई उस विश्वेश्वरीको देखकर समस्त सुरों से संयुत शिवजीने प्रणाम किया ॥५८॥ व अत्यन्तही नम्रहोकर भक्तिसे इस स्तोत्रके द्वारा स्तुति किया शिवभगवान् बोले कि हे देवदेवेश्वरि ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै हे भक्तवत्सले ! तुम्हारे

यामासचात्मानं देवानाश्वासयन्निव ॥ माभैष्टदेवताःसर्वाःपश्यध्वंमद्विचेष्टितम् ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छम्भुर्मन्त्रै राथर्वणैस्तदा ॥ आह्वयामासविश्वेशीं परांशक्तिमनुत्तमाम् ॥ ५७ ॥ आहूतापरमाशक्तिर्जगामहरसन्निधिम् ॥ दृष्ट्वा ननामतांप्राप्तां सर्वैर्देवैस्समन्वितः ॥ ५८ ॥ अस्तुवत्प्रणतोभूत्वा स्तोत्रेणानेनभक्तितः ॥ भगवानुवाच ॥ नमस्तेदेव देवेशे नमस्तेभक्तवत्सले ॥ ५९ ॥ सर्वगेसर्वदेदेवि नमस्तेविश्वधारिणि ॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधादेवि त्वंसृष्टिस्त्वंशुचिर्धृ तिः ॥ ६० ॥ अरुन्धतीतथेन्द्राणी त्वंलक्ष्मीस्त्वंचपार्वती ॥ यत्किञ्चित्स्त्रीस्वरूपंच समस्तंभुवनत्रये ॥ ६१ ॥ तत्सर्वंत्व त्स्वरूपंस्यादितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थंचसमाहूता त्वयाहंवृषवाहन ॥ ६२ ॥ मन्त्रैराथर्वणैरौद्रैस्तत्स र्वंमेप्रकीर्तय ॥ येनतत्कृत्स्नशःकृत्यं प्रकरोमियथोदितम् ॥ ६३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतेशक्रादयोदेवाःसर्वेस्वर्गाद्दिवा

लिये नमस्कारहै ॥५९॥ व हे सर्वगामिनि, सर्वदायिनि, विश्वधारिणि, देवि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवि ! तुम्हीं स्वाहाहो तुम्हीं स्वधाहो व तुम्हीं सृष्टि,शुचि और धैर्यहो ॥६०॥ व अरुन्धती, इन्द्राणी और लक्ष्मी तुम्हीं हो व पार्वती तुम्हीं हो और त्रिभुवनमें जो कुछ सब स्त्रीस्वरूप है ॥ ६१ ॥ वह सब तुम्हारा स्वरूप होवै है यह शास्त्रोंमें निश्चयहै देवी बोलीं कि हे वृषभवाहन ! तुमने विकराल अथर्वण वेदवाले मन्त्रों से मुझको किसलिये भली भांति बुलाया है वह सब मुझ से कहिये कि जिस से मैं यथोदित कार्य को सम्पूर्णता से करूं ॥ ६२ । ६३ ॥ श्रीशिवभगवान् बोले कि हे महाभागे ! दैत्यों के अधिपति अन्धक ने इन समस्त इन्द्रादिक देव-

ताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है ॥ ६४ ॥ इसलिये उसके मारने के लिये जातेहुये मेरे वचनको सुनो व शीघ्रही मेरी सहायता करो मैं रणरूपी आंगनमें मारूं ॥ ६५ ॥ ये क्षुधा से दुबले समस्त मातृगण अगाड़ी खड़े हैं इन को इस समयमैंने तुमको दिया कि जो दैत्यों को मारैंगे ॥ ६६ ॥ जिससे केलिमयी रूप को कर के युद्धके बीच में हजारों भांति से अनेकों विकारवाले रूपों के द्वारा भलीभांति बुलाई गई हो ॥ ६७ ॥ इसलिये त्रिलोक में तुम केलीश्वरी नामक होगी व इसी रूप से तुमको जो पुरुष अष्टमी व चौदसिमें भक्तिसे पूजैगा उसका मनोरथ होवैगा इसके अनन्तर युद्धसमयको प्राप्त होनेपर जो भूपति इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुतिकरैगा

सिताः ॥ अन्धकेनमहाभागे दैत्यानामधिपेनच ॥ ६४ ॥ तस्मात्तस्यवधायाथ गच्छमानस्यमेशृणु ॥ साहाय्यंकुरुमे चाशु सूदयामिरणाजिरे ॥ ६५ ॥ एतेमातृगणास्सर्वेमयादत्तास्तवाधुना ॥ क्षुत्क्षामास्सूदयिष्यन्ति दानवान्येपुरः स्थिताः ॥ ६६ ॥ यस्मात्केलिमयंरूपं विधायत्वंसहस्रधा ॥ अनेकैर्विकृतैःरूपैस्समाहूताजिमध्यतः ॥ ६७ ॥ तस्मात्केलीश्वरीनाम त्रैलोक्येत्वंभविष्यसि ॥ अनेनैवतुरूपेणयस्त्वांभक्त्यार्चयिष्यति ॥ ६८ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां तस्याभीष्टंभविष्यति॥युद्धकालेथसम्प्राप्तेस्तोत्रेणानेनतेस्तुतिः॥६९॥ यःकरिष्यतिभूपालो जयस्तस्यभविष्यति ॥ अपि स्वल्पस्यसैन्यस्य स्वल्पाश्वस्यचसङ्गरे ॥ ७० ॥ भविष्यतिजयोनूनं त्वत्प्रसादान्नसंशयः॥ एवंसादेवदेवेन प्राप्ताकेलीश्वरीतदा ॥ ७१ ॥ प्रस्थिताचपुरस्तस्य भवसैन्यस्यहर्षिता ॥ सर्वैर्मातृगणैस्सार्द्धं रौद्रारावैस्सुभीषणैः ॥ ७२ ॥ युद्धोत्साहपरैरौद्रैर्नानाशस्त्रप्रहारिभिः ॥ अथतेदानवादृष्ट्वाास्त्रीसैन्यंतत्समागतम् ॥ ७३ ॥ विकृतंविकृताकारं विकृता

उसकी जीतहोगी व थोड़ी सेनावाले और थोड़े घोड़ेवालेभी भूपतिके युद्धमें तुम्हारी प्रसन्नतासे निस्सन्देह निश्चयकर जय होगी उससमय देवदेव (शिव) जीसे इस भांति वह केलीश्वरी प्राप्तहुई है ॥ ६८।६९।७०।७१ ॥ और उन महादेवजीकी सेनाके अगाड़ी नानाप्रकार के शस्त्रों से प्रहार करनेवाले व विकराल तथा युद्धके बीच उत्साहमें परायण व अतिभयंकर और विकराल शब्दोंवाले समस्त मातृगणों समेत प्रसन्न होतीहुई विकराल केलीश्वरीने प्रस्थान किया इसके अनन्तर वे समस्त दैत्य

आईहुई उस विकृत सेनाको जोकि बिगड़ेहुये आकारवाली व बिगड़े आकारके शब्दोंवाली व शस्त्रोंसे उठाये हाथोंवाली तथा युद्धकी इच्छामें तत्पर थी उसको देखकर ॥ ७२।७३।७४॥ कोई उत्तम शब्दसे हँसतेभये व कोई घुड़क रहेथे और अन्य दैत्य स्त्रीहै यह जानकर प्रहार नहीं करतेथे ॥७५॥ व अपने पराक्रममें विशेषतासे टिकेहुये दैत्य मारे जातेथे व लज्जाको प्राप्तहोतेथे इसी अवसरमें मुनिनायकनारदजी प्राप्तहुये॥७६॥व अन्धकसे समस्त वृत्तान्तको कहा कि हे असुरोत्तम ! युद्धके लिये समीप प्राप्तहुई ये स्त्रियां नहींहै ॥ ७७ ॥ किन्तु चक्रसे चिह्नित हाथवाली जो यह सिंहपै चढ़ीहुई स्थितहै इसको तुम्हारे मारने के लिये शिवजीने निर्माण कियाहै ॥ ७८ ॥ व मंत्रके

काररावेिणम् ॥ शस्त्रोद्यतकरंसर्वं युद्धवाञ्छापरायणम् ॥ ७४ ॥ जहसुस्सुस्वनंकेचित्केचिन्निर्भर्त्सयन्तिवा ॥ अन्ये स्त्रीतिपरिज्ञाय प्रहरन्तिनदानवाः ॥७५॥ वध्यमानाविलज्जन्तः पौरुषेस्वेऽव्यवस्थिताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते नारदोमुनिसत्तमः ॥७६॥ अन्धकायसुवृत्तान्तं कथयामासकृत्स्नशः ॥ नैताःस्त्रियोदनुश्रेष्ठ युद्धार्थसमुपस्थिताः ॥ ७७ ॥ एषाकृतावधार्थाय तवरुद्रेणनिर्मिता ॥ यैषासिंहसमारूढाचक्राङ्कितकरास्थिता ॥ ७८ ॥ एषाकेलीश्वरीनाम वह्निकुण्डाद्विनिर्गता ॥ एताभिस्सहरौद्राभिस्स्त्रीभिर्मन्त्रबलाश्रयात् ॥ ७९ ॥ स्वरक्तेनकृतंहोमं देवदेवेनशम्भुना ॥ सएषभगवान्क्रुद्धःस्वयमभ्येतितेन्तिकम् ॥ ८० ॥ युद्धायनिजहर्म्येतान्स्थापयित्वासुरोत्तमान् ॥ प्रतिज्ञायवधंतुभ्यं पुरतः परमेष्ठिनः ॥ ८१ ॥ एतज्ज्ञात्वामहाभाग यदुक्तंतत्समाचर ॥ अन्धकउवाच ॥ नाहंबिभेमिरुद्रस्य तथान्यस्यापिकस्यचित् ॥ ८२ ॥ नस्त्रीणांप्रहरिष्यामि पालयन्पुरुषव्रतम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रवदतस्तस्य दानवस्यमहात्मनः ॥ ८३ ॥

पराक्रमके आश्रयसे इन भयंकर स्त्रियों समेत यह केलीश्वरी नामक अग्नि कुण्डसे निकली है ॥ ७९ ॥ व हे देवदेव शंभुजीने अपने रक्तसे होम किया है क्रोधित हुये वे ये शिवभगवान् अपने मन्दिरमें उन सुरोत्तमों को थापकर व ब्रह्माके अगाड़ी तुम्हारे वधकी प्रतिज्ञाकर युद्धके लिये तुम्हारे समीप आपही आते हैं ॥ ८० । ८१ ॥ हे महाभाग ! इसको जानकर जो योग्यहो उसको करिये अन्धक बोला कि मैं महादेव व अन्य किसीको नहीं डरताहूं ॥ ८२ ॥ व पुरुषके नियम को पालनकरता

हुआ मैं स्त्रियोंके ऊपर प्रहार न करूंगा सूतजी बोले कि उस महात्मा दैत्य को इसप्रकार कहतेहुये ॥ ८३ ॥ उस स्थानपै सबओर से बड़ाभारी शब्दहुआ कोई दैत्य खाये जातेथे व अपर दैत्य बांधेजातेथे ॥ ८४ ॥ व अन्य वे भी दानव वैसेही शक्तिसे युद्ध करतेथे जोकि वहांपर मातृगणों से अस्त्रों समेत व सवारियों सहित खायेजाते थे ॥ ८५ ॥ उस बडेभारी शब्दको सुनकर यह क्या है यह क्याहै ऐसा कहताहुआ व क्रोधसे मूर्च्छित अन्धकासुर तलवारको लेकर उठा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर बल से गर्वित दैत्योंको विध्वंसित व वैसेही खायेजाते हुये अन्य दानवोंको भागने में तत्पर देखताथा ॥ ८७ ॥ और वैसेही वह अन्धकासुर मरेहुये अन्य दैत्योंकी सैकड़ों

आक्रन्दःसुमहाञ्जज्ञे तस्मिन्देशेसमन्ततः ॥ भक्ष्यन्तेदानवाःकेचिद्बध्यन्तेत्वथवापरे ॥ ८४ ॥ युध्यमानास्तथैवा न्ये शक्त्यावैतेपिदानवाः ॥ भक्ष्यन्तेमातृभिस्तत्र सायुधाश्चसवाहनाः ॥ ८५ ॥ तच्छ्रुत्वासुमहाक्रन्दमन्धकःक्रोधमू र्च्छितः ॥ आदायखड्गमुत्तस्थौ किमिदंकिमिदंब्रुवन् ॥८६॥ अथपश्यतिविध्वस्तान्दानवान्बलदर्पितान् ॥ भक्ष्यमाणां स्तथैवान्यान्पलायनपरायणान् ॥ ८७ ॥ अन्येषांनिहतानांच रुदन्त्यःकोटयस्तथा ॥ सपश्यतिप्रियाभार्याः प्रल पन्त्योतिदुःखिताः ॥ ८८ ॥ अथतत्कदनंदृष्ट्वा अन्धकःक्रोधमूर्च्छितः ॥ भर्त्सयामासताःसर्वा योगिन्यस्समरोद्य ताः ॥ ८९ ॥ नचतास्तस्यदैत्यस्य भयंचक्रुःकथञ्चन ॥ केवलंसूदयन्तिस्म भक्षयन्तिचदानवान् ॥ ९० ॥ ततस्सदान वस्तासां दृष्ट्वातच्चेष्टितंरुषा॥ स्वस्यगात्रस्यरक्षांस चकारभयसंकुलः॥९१॥तमोस्त्रंमुमुचेरौद्रं कृत्वाएवंसतत्क्षणात्॥ एत स्मिन्नन्तरेकृत्स्नं त्रैलोक्यंतमसावृतम् ॥ ९२ ॥ नकिञ्चिज्ज्ञायतेतत्र समंविषममेवच ॥ केवलंदानवेन्द्राश्च सर्वेपश्य

प्यारी नारियों को अतिदुःखित व प्रलाप करतीहुई देखताथा ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर उस मारपीट को देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होतेहुये अन्धकासुर ने संग्राम में तैयारहुई उन समस्त योगिनियों का भर्त्सन किया याने अपकारवाले वचन कहा ॥ ८९ ॥ और उन्होंने किसीप्रकार उस दैत्यका भय न किया केवल दैत्यों को नाश व भक्षण किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर उस दैत्यने उन योगिनियों के कर्मको देखकर उस भयसंकुल दैत्यने क्रोधसे अपने अंगकी रक्षाकिया ॥ ९१ ॥ इसभांति करके उसी क्षण उसने अन्धकारवाले भयंकर अस्त्रको छोड़ा इसी अवसर में समस्त त्रिलोक अन्धकारसे घिरगया ॥ ९२ ॥ वहांपर कुछ सम व विषमही नहीं जानपड़ताथा केवल

समस्त दैत्येन्द्र देखतेथे और नहीं देखताथा ॥ ९३ ॥ तदनन्तर उसने जैसेही उन योगिनियों को पैने बाणोंसे मारा वैसेही उसी रूपवाली और स्त्रियां होगईं ॥ ९४ ॥ इसके अनन्तर भयसंयुत उस दानवने योगिनियोंकी बड़ी बढ़ती देखकर उस अस्त्रका संहार करलिया याने घुमालिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर शुक्रके समीप जाकर दीन व हाथ जोड़ेहुये अन्धकासुरने कहा कि हे भृगूत्तम ! स्त्रियों ने मेरा जो विनाश कियाहै उसको देखिये ॥ ९६ ॥ कि असुरवैरी (शिव) जीके मंत्रकी शक्तिसे पैदाहुई व मेरे अस्त्रोंके अवध्य बहुतसी स्त्रियोंसे सबओर सेना मारी जातीहै ॥ ९७ ॥ इसलिये हे महामते ! यदि मेरा कल्याण चाहतेहो तो तुमभी उस विद्याको साधनकरो अन्यथा

न्तिनेतरः ॥ ९३ ॥ ततस्ससूदयामास योगिन्यस्ताःशितैःशरैः ॥ यथातथापरानार्य्यस्तादृग्रूपाभवन्तिच ॥ ९४ ॥ अथदृष्ट्वापरांवृद्धिं योगिनीनांसदानवः ॥ संहारंतस्यचास्त्रस्यचकारभयसंकुलः ॥ ९५ ॥ ततःशुक्रंसमासाद्य दीनःप्राह कृताञ्जलिः ॥ पश्यमेभार्गवश्रेष्ठ स्त्रीभिर्यत्कदनंकृतम् ॥ ९६ ॥ अवध्याभिर्ममास्त्राणां मन्त्रशक्त्यासुरद्विषः ॥ उत्पन्नाभिःप्रभूताभिर्हन्यतेसर्वतोबलम् ॥ ९७ ॥ तस्मात्त्वमपितांविद्यां प्रसाधयमहामते ॥ यदिमेवाञ्छसिश्रेयो नान्यथास्तिजयोरणे ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽन्धकासुरसंग्रामवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ शुक्रस्तस्यवचःश्रुत्वा चित्तेकृत्वादयांततः ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं गत्वासिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥ चकार विविधंहोमं स्वमांसेनहुताशने ॥ मन्त्रैराथर्वणैरौद्रैः कुण्डंकृत्वात्रिकोणकम् ॥ २ ॥ एवंसंजुह्वतस्तस्य तेनैवविधिना

युद्ध में जीत न होगी ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽन्धकासुरसंग्रामवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । होम किये पर प्रकटभइ जिमि केलीश्वरि देवि । इकसौ छियलिसवें सोई कहत कथा सुखसेवि ॥ सूतजी बोले कि उस दैत्यके वचन सुनकर तदनन्तर चित्त में दयाकरके शुक्र जीने सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरजक्षेत्र में जाकर ॥ १ ॥ व त्रिकोणकुण्डको बनाकर बड़े त्रिकराल अथर्वण वेदवाले मंत्रोंकरके अपने मांस से

अग्नि में अनेक प्रकारका होम किया ॥ २ ॥ उस समय इसभांति उसी विधि से उन शुक्रजीके हवन करतेहुये जैसे महादेव जीसे केलीश्वरीदेवी संतुष्टहुईथी वैसेही
प्रसन्नहुई ॥ ३ ॥ व शीघ्रही भलीभांति आकर दैत्यों के पुरोहित शुक्रजीसे बोलीं कि हे भृगुपुङ्गव ! तुम मांसको परिक्षीण मतकरो ॥ ४ ॥ मैं तीन नेत्रवाले शिवजीसे
भावित (आराधित) हुईहूं इसलिये कहिये कि मैं तुम्हारा क्या कार्यकरूं शुक्रजी बोले कि हे शुभे ! जैसे तुमने यहांपर शिवजीकी सहायता कियाहै ॥ ५ ॥
वैसेही अन्धक की भी सहायताकरो यह मेरा वरदानहै व हे देवि ! युद्धमें इसकी सेनाके जो कोई दानव भक्षित व विनाशित हुयेहैं वे सब शीघ्रही जीवैं देवी बोलीं कि युद्ध

तदा ॥ यथारुद्रेणसन्तुष्टा देवीकेलीश्वरीतदा ॥ ३ ॥ तंप्रोवाचसमेत्याशु शुक्रंदैत्यपुरोहितम् ॥ मात्वंभार्गवशार्दूल कु
रुमांसपरिक्षयम् ॥ ४ ॥ ॥ भाविताहंत्रिनेत्रेण तत्किंब्रूहिकरोमिते ॥ शुक्रउवाच ॥ यथारुद्रस्यसाहाय्यं त्वयात्रविहि
तंशुभे ॥ ५ ॥ अन्धकस्यापिसाहाय्यं तथैवैषवरोमम ॥ येकेचिद्दानवायुद्धे भक्षिताश्चविनाशिताः ॥ ६ ॥ अस्यसैन्य
स्यतेसर्वे देविजीवन्तिसत्वरम् ॥ देव्युवाच ॥ जीवयिष्यामितान्सर्वान्दानवान्निहितान्रणे ॥ ७ ॥ नचसम्भक्षितान्विप्र
प्रविष्टान्योगिनीमुखे॥एवमुक्त्वाददौतस्मै सादेवीहर्षितानना ॥ ८ ॥ नाम्नामृतवतींविद्यां ययाजीवन्तितेमृताः ॥ ततः
शुक्रःप्रहृष्टात्मा गत्वान्धकमुवाचह ॥ ९ ॥ सिद्धाकेलीश्वरीदेवी यथाशम्भोस्तथामम ॥ तयादत्ताशुभाविद्याममदैत्या
मृताश्चये ॥ १० ॥ तान्सर्वांस्तत्प्रभावेण योजयिष्यामिजीविते ॥ त्वयास्याःसततंभक्तिः कार्य्यादानवसत्तम ॥ ११ ॥
अष्टम्यांचविशेषेण चतुर्दश्यांचसर्वदा ॥ एषासापरमाशक्तिर्यया व्याप्तमिदंजगत् ॥ १२ ॥ केवलंभक्तिसाध्यासा न

में मारेहुये उन समस्त दैत्यों को मैं जिलाऊंगी ॥ ६ । ७ ॥ व हे विप्रजी ! योगिनियोंके मुखमें पैठे व भक्षण कियेहुये दानवोंको नहीं ऐसा कहकर प्रसन्न मुखवाली उस
देवीने उन शुक्रजीके लिये अमृतवती नामक विद्या को दिया कि जिससे वे मरेहुये दैत्य जीते हैं तदनन्तर प्रसन्नमनवाले शुक्रजीने अन्धकके समीप जाकर कहा ॥८।९॥
कि जैसे शिवजीके सिद्धथी वैसेही केलीश्वरी देवी मेरे सिद्धहोगई उसने मुझको शुभदायिनी विद्या दियाहै जो दैत्य मरगये हैं ॥१०॥ उन सबोंको उस विद्याके प्रभाव
से जीव में युक्तकरूंगा व हे दैत्यसत्तम ! तुमको निरन्तर इस देवीकी भक्ति करना चाहिये ॥ ११ ॥ व अष्टमी तथा चौदसि में विशेषकर सदैव भक्ति करना चाहिये

क्योंकि यह वही उत्तम शक्तिहै कि जिससे यह संसार व्याप्तहै ॥ १२ ॥ वह केवल भक्तिसे साधन करने योग्यहै दण्डसे किसीप्रकार नहीं उससमय शुक्रजीसे ऐसा कहेहुये उस अन्धक दैत्यने भक्तिभावसे संयुत होकर उस देवी और वैसेही जो जैसी जेठीथी वैसेही क्रमपूर्वक अन्य समस्त माताओं को पूजन किया तदनन्तर अनेक प्रकारके स्तोत्रों से स्तुतिकरके आदर समेत कहा कि हे देवि ! अज्ञान से मैंने जो तुम्हारे ऊपर क्रोध किया है॥ १३ । १४ । १५ ॥ प्रणाम कियेहुये व मुझ दीन का वह अपराध आज तुमको क्षमा करना चाहिये देवी बोलीं कि हे वत्स ! भार्गव (शुक्र) जी के प्रभाव से मैं तुम्हारे ऊपर अतिप्रसन्नहूं ॥ १६ ॥ व मेरा दर्शन वृथा

दण्डेनकथञ्चन ॥ एवमुक्तस्तुशुक्रेण सतदादानवोन्धकः ॥ १३ ॥ तांदेवींपूजयामास भावभक्तिसमन्वितः ॥ स्तुत्वा चविविधैःस्तोत्रैस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ १४ ॥ तथान्यामातरस्सर्वा यथाज्येष्ठंयथाक्रमम् ॥ अज्ञानाद्यन्मयादेवि कृ तःकोपस्तवोपरि ॥ १५ ॥ सहनीयस्त्वयासोद्य दीनस्यप्रणतस्यच ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेवत्स प्रभावाद्भार्गवस्य च ॥ १६ ॥ वरंवरयतस्मात्त्वंनवृथादर्शनंमम ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेण येत्वांध्यायन्तिदेहिनः ॥ १७ ॥ पूजयन्तिचसद्भक्त्या संस्थाप्यप्रतिमांतव ॥ तेषांसिद्धिःप्रदातव्या त्वयाहृदयवाञ्छिता ॥ १८ ॥ देव्युवाच ॥ योमाम नेनरूपेण स्थापयिष्यतिमानवः ॥ तस्यमोक्षंप्रदास्यामिपापस्यापिनसंशयः ॥ १९ ॥ योष्टम्यांवाचतुर्दश्यां ममपू जांकरिष्यति ॥ तस्मैस्वर्गंप्रदास्यामि पापायापिदनूत्तम॥२०॥केवलंदर्शनंयश्चध्यानंमेवाकरिष्यति॥तस्यराज्यंप्रदा स्यामि भोगान्मानुषसम्भवान् ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वाचसादेवी ततश्चादर्शनंगता ॥ तैश्चमातृगणैस्सार्द्धं पश्यतस्त

नहीं होता है इसलिये वरदान को मांगो अन्धक बोला कि जे देहधारी पुरुष तुमको इसी रूपसे ध्यान करते हैं ॥ १७ ॥ व तुम्हारी प्रतिमाको भलीभांति थाप कर उत्तम भक्तिसे पूजते हैं उनके लिये हृदयसे चाहीहुई सिद्धि तुमको देना चाहिये ॥ १८ ॥ देवी बोलीं कि जो पुरुष इस रूपसे मुझको थापन करैगा उस पापी को भी मैं निस्सन्देह मोक्षदूंगी ॥ १९ ॥ व हे दैत्योत्तम ! जो पुरुष अष्टमी व चौदसिमें मेरा पूजन करैगा उस पापी के लियेभी मैं स्वर्गदूंगी ॥२०॥ व जो पुरुष केवल मेरे दर्शन या ध्यानको करैगा उसको राज्य और मनुष्योंसे उपजेहुये सुखोंको दूंगी ॥२१॥ ऐसा कहकर तदनन्तर उस दैत्यके देखतेहुये उन मातृगणों समेत उसीक्षण वह

देवी अन्तर्द्धान होगई ॥ २२ ॥ तदनन्तर शुक्रजीने भी उस भलीभांति सिद्धहुई विद्यासे समस्त मरेहुये दैत्योंको भलीभांति जिला दिया और खायेहुये उन दैत्योंको नहीं ॥ २३ ॥ उस अन्धक दैत्येश्वरने उन दैत्यों समेत होकर प्रसन्न अन्तःकरणसे उस पुरीको प्राप्तहोकर दिनरात इन्द्रकी राज्य किया ॥ २४ ॥ वह बड़ा बलवान् दैत्य दिनरात उस देवीको ध्यान व पूजन करताहुआ व विशेषकर अष्टमी व चौदसिमें पूजता भया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस देवीसे उपजेहुये उस प्रभावको जानकर भलीभांति सिद्धिको प्राप्तहुये उस अन्धकासुरने इस स्थानमें थापन किया ॥ २६ ॥ सूतजीबोले कि इसप्रकार परमेश्वरी केलीश्वरी देवी उत्पन्नहुई है इसलिये विशेषतासे

ते स्यतत्त्वणात् ॥ २२॥ शुक्रोपिदानवान्सर्वांस्तयासंसिद्धयाततः ॥ मृतान्संजीवयामास नतुतान्संप्रभक्षितान् ॥२३॥ तांदेवींध्यायमान स्तु पूजयानोदिवानिशि ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां विशेषेणमहाबलः ॥ २५ ॥ अथतस्याःप्रभावन्तं ज्ञात्वादेव्याःसमुद्भ वम् ॥ स्थानेत्रस्थापयामास संसिद्धिंचपरांगतः ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ एवंकेलीश्वरीदेवी सञ्जातापरमेश्वरी ॥ तस्मा त्स्थाप्याचपूज्याच ध्येयाचैवविशेषतः ॥ २७ ॥ इदंदेव्यानरोयोवा पठतेवाशृणोतिवा ॥ बाध्यमानस्समुच्येत व्य सनेनगरीयसा ॥२८॥ भ्रष्टराज्योथवाराजा यःशृणोत्यष्टमीदिने ॥ सराज्यंलभतेभूयो निखिलंहतकण्टकम् ॥२९॥ युद्धकालेचसम्प्राप्ते यश्चैतच्छृणुयादपि ॥ सहसाशत्रुसंघातं विजयंचसमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृती यपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकेलीश्वरीमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४६॥

स्समेत्यसदैत्येन्द्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मनः ॥ ताम्पुरींप्राप्यशक्रस्य राज्यंचक्रेदिवानिशम् ॥ २४ ॥

थापन, पूजन व ध्यान करने योग्यहै ॥ २७ ॥ बड़े गुरु (कठिन) दुःखसे बाधितहोता हुआ जो मनुष्य देवी के इस चरितको पढ़ता या सुनताहै वह व्यसनसे छूटजाता है ॥ २८ ॥ अथवा छूटीहुई राज्यवाला जो राजा अष्टमीके दिन सुनताहै वह नष्टहुये कण्टकोंवाली राज्यको फिर पाताहै ॥ २९ ॥ व युद्ध समयके भलीभांति प्राप्तहोने पर जो इस चरितको सुनताभी है वह एकाएकी शत्रुसंक्षय व जीत को भलीभांति प्राप्तहोताहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि तायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येकेलीश्वरीमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इकसौ सैंतालीस महँ बरणत बुद्धिअगार । भैरव शिव माहात्म्यकी कथा सहित विस्तार ॥ सूत जी बोले कि उससमय शुक्र से इकट्ठा हुई विद्या व बलको वृद्धिदायक व शक्तिदायक केलीश्वरी के प्रसाद को जानकर ॥१॥ व अपनाको ब्रह्माके वरदान से उपजी हुई न मारने की योग्यता को जानकर तदनन्तर महादेवको भलीभांति उद्देशकर क्रोध किया ॥ २ ॥ व कैलास पर्वत पै दूत को पठाया कि हे दूत ! इससमय महादेव के समीप जावो व मेरे वचनसे कहो ॥ ३॥ कि इन इन्द्र जी को छोड़कर इस पर्वत पै सुख से टिको नहीं तो मैं शीघ्रही आकर कैलास समेत व स्त्री सहित और गणों समेत युद्ध में मारकर तुमको नाशकरूंगा व सुखी

सूतउवाच ॥ अन्धकोपिपरांविद्यां ज्ञात्वाशुक्रार्जितांतदा ॥ केलीश्वर्य्याःप्रसादंच शक्तिदंबलवृद्धिदम् ॥१॥ अवध्यं चात्मनश्चैव पितामहवरोद्भवम् ॥ महेश्वरंसमुद्दिश्य कोपंचक्रेततःपरम् ॥ २ ॥ दूतंचप्रेषयामास कैलासंपर्वतम्प्रति ॥ गच्छदूतहरंब्रूहि ममवाक्येनसाम्प्रतम् ॥ ३ ॥ शक्रमेनंपरित्यक्त्वा सुखंतिष्ठात्रपर्वते ॥ नोचेद्द्रुतंसमागत्यसकैलासं सभार्य्यकम्॥४॥सगणंचरणेहत्वा सुखीस्थास्यामिनन्दने ॥ त्वामहंनाशयिष्यामि सत्येनात्मानमालभे ॥५॥ एवमुक्तः सदैत्येन्द्र दूतोगत्वाद्रुतंततः ॥ प्रोवाचशङ्करंवाक्यैः परुषैःसविशेषतः ॥ ६ ॥ ततःकोपपरीतात्मा भगवान्वृषभध्वजः ॥ गणान्संप्रेषयामास वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ७ ॥ वीरभद्रंमहाकालं नन्दिहस्तिमुखंतथा ॥ अघोरंघोरनादंच घोरघण्टंमहाबलम् ॥ ८ ॥ एतेषामनुगाश्चान्ये कोटिरेकापृथक्पृथक् ॥ गणानांप्रेषयामास वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ९ ॥ अथसंप्रेषितास्तेन गणास्तेविकृताननाः ॥ हर्षेणमहताविष्टागर्ज्जमानायथाघनाः ॥ १० ॥ घृतायुधागतास्सर्वे युद्धार्थं

होकर नन्दन (इन्द्र के वन) में टिकूंगा यह सत्य से अपनी सौगन्द करता हूं ॥ ४ । ५ ॥ तदनन्तर इस भांति कहेहुये दैत्यनायक के उस दूत ने शीघ्रही जाकर उसने विशेषतापूर्वक कठोर वचनों से शङ्कर जी से कहा ॥ ६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मन वा चित्तवाले वृषभध्वज भगवान् (शिव) जी ने उस दुष्ट बुद्धिवाले दैत्य को मारने के लिये वीरभद्र, महाकाल, नन्दी, हस्तिमुख, अघोर, घोरनाद व बड़े बलिष्ठ घोरघण्ट गणों को पठाया ॥ ७ । ८ ॥ व उस दुष्टबुद्धिवाले दैत्य को मारने के लिये इन गणों के अलग २ एक कोटि अनुगामियों को पठाया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर बड़े हर्ष से संयुत व मेघों के समान गर्जते हुये व अस्त्रों को धारे व

विगड़े मुखवाले जोकि उन शिव जीसे पठायेगयेथे वे सब युद्धके लिये वहांगये जहां कि इन्द्रजीकी वह पुरी बलिष्ठ दैत्य से आक्रान्तथी ॥ १०।११ ॥ इसके अ-
नन्तर प्राप्तहुये गणोंको देखकर अस्त्रोंको धारे व अतिगर्वित वे दैत्य युद्धके लिये अचानक निकले ॥ १२ ॥ तदनन्तर मृत्युको लौटाकर दैत्योंके साथ गणोंका आपस
में बड़ाभयंकर युद्धहुआ ॥ १३ ॥ व महादेव जी भी उन समस्त गणोंको देखकर क्रोधसे निकले तदनन्तर अन्धकासुर का महादेवके साथ वैसाही युद्ध हुआ ॥ १४॥
जैसा कि पुरातनसमय वृत्रासुरका इन्द्रसे बड़ाभारी युद्धहुआ है चक्र व सफल बाण तोमर, तलवार, मुद्गर व अनेक प्रकारके अस्त्रों से इसभांति उस दैत्यको मारने के

यत्रसापुरी ॥ शक्रस्यासादितातेन दानवेनबलीयसा ॥११॥अथप्राप्तान्गणान्दृष्ट्वा दानवास्तेधृतायुधाः ॥ निश्चक्रमुर्वै
सहसायुद्धार्थमतिगर्विताः ॥ १२ ॥ ततस्समभवद्युद्धं गणानांदानवैस्सह॥ परस्परंमहारौद्रं मृत्युंकृत्वानिवर्तनम्॥१३॥
हरोपितान्गणान्सर्वान्दृष्ट्वाकोपाद्विनिर्ययौ ॥ ततोयुद्धंसमभवदन्धकस्यहरेणतु ॥१४॥ वृत्रवासवयोःपूर्वं यथायुद्धमभू
त्पुरा ॥ चक्रेणालीकनाराचैस्तोमरैःखड्गमुद्गरैः ॥ १५ ॥ एवंनशक्यतेहन्तुं दानवोविविधायुधैः ॥ अस्त्रयुद्धंपरित्यज्य
बाहुयुद्धमुपागतौ ॥ १६ ॥ करंकरेणसंगृह्यमुष्टिप्रहरणैस्तदा ॥ दानवेनाथदेवेशो बन्धेनाक्रम्यपीडितः ॥ १७ ॥ नि
स्पन्दंभावमापन्नस्ततो मूर्च्छामुपागतः ॥ मूर्च्छागतन्तुतंज्ञात्वा अन्धकोनिर्ययौरणात् ॥ १८ ॥ तावत्स्थाणुःक्षणा
ल्लब्ध्वाचेतनामात्तकार्मुकः ॥ आयसंलकुटंगृह्य महद्भारसहस्रकम् ॥ १९ ॥ दानवेन्द्रंततःप्राप्यताडयामासमूर्द्ध
नि ॥ सोपिखड्गेनदेवेशं ताडयामासवैततः ॥ २० ॥ अथदेवोपिसस्मारकौबेरास्त्रंमहाहवे ॥ अस्त्रेणतेनहृदये ताडया

लिये न समर्थितहुये और अस्त्र युद्धको छोड़कर भुजायुद्ध प्रति प्राप्तभये ॥ १५।१६ ॥ इसके अनन्तर उससमय हाथको हाथसे पकड़कर मुष्टिको के प्रहारसे युद्ध
हुआ व दानवने बन्धनसे देवेश (शिव) जीको घेरकर पीड़ित किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर शिवजी निश्चलताको प्राप्तहोतेहुये मूर्च्छाको प्राप्तहुये व अन्धकासुर मूर्च्छामें
प्राप्तहुये उन शिवजीको जानकर युद्धसे निकलगया ॥ १८ ॥ तबतक क्षणभर में चैतन्यता को पाकर धनुषको लियेहुये शिवजीने हजारभार (ढाईहजार मन) वाले
लोहे के बड़ेभारी दण्डको लेकर ॥ १९ ॥ तदनन्तर दैत्येन्द्र को प्राप्तहोकर मस्तकपै मारा तदनन्तर उस नेभी सुरेश शिवजीको तलवारसे मारा ॥ २० ॥ इसके अ-

नन्तर शिव देवनेभी महायुद्ध में कौबेराস্ত্রको स्मरण किया व उस अस्त्रसे दैत्यके हृदय में ताड़न किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस कौबेरास्त्र से ताड़ित होकर रक्तोद्गार को उगिलताहुआ नीचे मुखकरके गिरपड़ा तदनन्तर त्रिशूलसे भेदन कियागया ॥ २२ ॥ उससमय शूलके अग्रभागमें भलीभांति टिकाहुआ पापी चाकके नाईं भ्रमता भया व उससमय अन्धकासुर नेभी अपनाको वैसी दशा में प्राप्त देखकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर सपुष्ट वचनोंसे महेश्वर देवकी स्तुति किया अन्धकासुर बोला कि जगत् के धारनेवाले व त्रिगुण आत्मावाले जो तुम शिवजी हो उनके लिये नमस्कारहै ॥२४॥ हे चन्द्रमासे कियेहुये भूषणवाले शिवजी ! बैल आसनपै भलीभांति बैठेहुये तुम्हारे

मासदानवम् ॥ २१ ॥ ततस्सताडितस्तेन रुधिरोद्गारमुद्वमन् ॥ पतितोधोमुखोभूत्वा ततःशूलेनभेदितः ॥ २२ ॥ शूलाग्रेसंस्थितःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ अन्धकोपितदात्मानं तथावस्थामुपागतम् ॥ २३ ॥ ततोवाग्भिस्सपुष्टाभिरस्तौद्देवंमहेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ नमस्तेजगतांधात्रे शर्वायत्रिगुणात्मने ॥ २४ ॥ वृषभासनसंस्थाय शशाङ्ककृतभूषण ॥ नमःखट्वाङ्गहस्ताय नमःशूलधरायच ॥ २५ ॥ नमोडमरुकोदण्डकपालानलधारिणे ॥ स्मरदेहविनाशाय मूर्त्यष्टकधृतात्मने ॥ २६ ॥ नमस्सुरूपदेहाय अरूपबहुरूपिणे ॥ उत्तमाङ्गविनाशाय विरञ्चेःसृष्टिकारिणः ॥ २७ ॥ श्मशानवासिनेतुभ्यं नमोभैरवरूपिणे ॥ सर्वगस्सर्वकर्ताच त्वंहन्तानान्यएवहि ॥ २८ ॥ त्वंभूमिस्त्वंरविश्चैव त्वंज्योतिस्त्वंतमस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जीवभूतोमहेश्वर ॥ २९ ॥ अस्तौद्देवंदानवेन्द्रो देवशूलाग्रसंस्थितः ॥ सूतउवा

लिये नमस्कार है व खट्वाङ्ग हाथवाले और त्रिशूलधारनेहारे के लिये नमस्कार है व डमरु, धनुष, कपाल व अग्निके धारनेवाले के लिये और कामदेवकी देह के विनाशनेवाले व आठमूर्तियोंसे शरीरको धारनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥२५।२६॥ व स्वरूपवाली देहवाले व बिन रूप तथा बहुत रूपवाले के लिये व सृष्टि के करनेहारे ब्रह्माजीके मस्तकके विनाश करनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ २७ ॥ व भयंकररूपवाले तथा श्मशानके बसनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और सर्वगामी व सर्व-कर्ता, हर्ता तुम्हींहो और निश्चयकर नहीं है ॥ २८ ॥ हे महेश्वर! तुम भूमिहो और तुम सूर्यहो, तुम ज्योतिहो, तुम अन्धकारहो व सम्पूर्ण प्राणियों के जीवभूत पवन

तुम्हींहो ॥ २९ ॥ शिवदेव के त्रिशूलके अग्रभाग में भलीभांति टिकेहुये दैत्येन्द्रने सदाशिव जीकी स्तुति किया सूतजी बोले कि इसप्रकार उसकी स्तुतिकरके महेश्वर देवजी प्रसन्नहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शूलके अग्रभागमें टिकेहुये उस दैत्योत्तमसे प्रसन्नतासे श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! यह शूरोंका नियम नहीं है जो कि शत्रु के हाथके दुःखसे प्रिय वचन कहेजाते हैं व दैत्यके जन्ममें विशेषकर नहींहै अन्धक बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! त्रिशूलके अग्रभाग प्रति टिकाहुआ मैं निर्वेद को प्राप्तहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसलिये मुझको शीघ्रही मारिये कि जिससे मेरी पीड़ाका नाशहोवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! मैंने चिन्तन किया कि तुम्हारा किसी

च ॥ एवंतस्यस्तुतिंश्रुत्वा परितुष्टोमहेश्वरः ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतंहर्षाच्छूलाग्रस्थंदनूत्तमम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैवं
दंवीरव्रतंदैत्य यच्छत्रुकरपीडनात् ॥ ३१ ॥ प्रोच्यंतेसामवाक्यानि विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ अन्धकउवाच ॥ निर्विण्णो
स्मिसुरश्रेष्ठ त्रिशूलाग्रंसमाश्रितः ॥ ३२ ॥ तस्मात्सूदयमांयेन ह्युतंस्यान्मेऽव्यथात्तयः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नतेऽस्तिम
रणंदैत्य कथंचिच्चिन्तितम्मया ॥ ३३ ॥ तेनेत्थंविधृतोव्योम्नि भित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ तस्मात्त्वंगणतांगच्छ साम्प्रतं
पापवर्जितः ॥ ३४ ॥ त्यक्त्वातुदानवंभावं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अन्धकउवाच ॥ गतोमेदानवोभावः साम्प्रतंतवकि
ङ्करः ॥ ३५ ॥ भविष्यामिनसन्देहस्सत्येनात्मानमालभे ॥ शङ्करउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स ब्रूहियत्तेभिवाञ्छितम् ॥
३६ ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेणत्रिशूलाग्रेमयिस्थिते ॥३७॥
योमर्त्यस्त्वांप्रकृत्वावै स्थापयिष्यतिभूतले ॥ तस्यमोक्षस्त्वयादेयो मद्वाक्यात्सुरसत्तम ॥ ३८ ॥ तथेत्युक्त्वाथदेवे

प्रकार मरण नहीं है ॥३३॥ उसी कारण शूलसे हृदयमें विदारणकर आकाशमें ऐसे धरेगयेहो इसलिये दैत्यभावको छोड़कर इससमय पापरहित होतेहुये व परम श्रद्धासे संयुत तुम गणभावको प्राप्तहोवो अन्धकासुर बोला कि मेरा दानव भाव जातारहा इस समय निस्सन्देह तुम्हारा सेवकहूंगा यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं शङ्कर जी बोले कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारा मनोरथहो उसको कहिये ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ तुम प्रार्थना करो यद्यपि दुर्लभहोगा तथापि मैं दूंगा अन्धकासुर बोला कि हे सुरसत्तम ! मुझको त्रिशूल के अग्रभाग पै स्थित होते हुये इसी रूप से तुमको जो पुरुष बनाकर भूतल में स्थापन करैगा मेरे वचन से तुमको उसे मोक्ष देना

नन्तर शिव देवनेभी महायुद्ध में कौबेरास्त्रको स्मरण किया व उस अस्त्रसे दैत्यके हृदय में ताड़न किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस कौबेरास्त्र से ताड़ित होकर रक्तोद्गार को उगिलताहुआ नीचे मुखकरके गिरपड़ा तदनन्तर त्रिशूलसे भेदन कियागया ॥ २२ ॥ उससमय शूलके अग्रभागमें भलीभांति टिकाहुआ पापी चाकके नाईं भ्रमता भया व उससमय अन्धकासुर नेभी अपनाको वैसी दशा में प्राप्त देखकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर सपुष्ट वचनोंसे महेश्वर देवकी स्तुति किया अन्धकासुर बोला कि जगत् के धारनेवाले व त्रिगुण आत्मावाले जो तुम शिवजी हो उनके लिये नमस्कारहै ॥२४॥ हे चन्द्रमासे कियेहुये भूषणवाले शिवजी ! बैल आसनपै भलीभांति बैठेहुये तुम्हारे

मासदानवम् ॥ २१ ॥ ततस्सताडितस्तेन रुधिरोद्गारमुद्गमन् ॥ पतितोधोमुखोभूत्वा ततःशूलेनभेदितः ॥ २२ ॥ शूलाग्रेसंस्थितःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ अन्धकोपितदात्मानं तथावस्थामुपागतम् ॥ २३ ॥ ततोवाग्भिस्सपुष्टाभिरस्तौद्देवंमहेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ नमस्तेजगतांधात्रे शर्वायत्रिगुणात्मने ॥ २४ ॥ वृषभासनसंस्थाय शशाङ्ककृतभूषण ॥ नमःखट्वाङ्गहस्ताय नमःशूलधरायच ॥ २५ ॥ नमोडमरुकोदण्डकपालानलधारिणे ॥ स्मरदेहविनाशाय मूर्त्यष्टकधृतात्मने ॥ २६ ॥ नमस्सुरूपदेहाय अरूपबहुरूपिणे ॥ उत्तमाङ्गविनाशाय विरञ्चेःसृष्टिकारिणः ॥ २७ ॥ श्मशानवासिनेतुभ्यं नमोभैरवरूपिणे ॥ सर्वगस्सर्वकर्ताच त्वंहन्तानान्यएवहि ॥ २८ ॥ त्वंभूमिस्त्वंरविश्चैव त्वंज्योतिस्त्वंतमस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जीवभूतोमहेश्वर ॥ २९ ॥ अस्तौद्देवंदानवेन्द्रो देवशूलाग्रसंस्थितः ॥ सूतउवा

लिये नमस्कार है व खट्वाङ्ग हाथवाले और त्रिशूलधारनेहारे के लिये नमस्कार है व डमरु, धनुष, कपाल व अग्निके धारनेवाले के लिये और कामदेवकी देह के विनाशनेवाले व आठमूर्तियोंसे शरीरको धारनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥२५।२६॥ व स्वरूपवाली देहवाले व बिन रूप तथा बहुत रूपवाले के लिये व सृष्टि के करनेहारे ब्रह्माजीके मस्तकके विनाश करनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ २७ ॥ व भयंकररूपवाले तथा श्मशानके बसनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और सर्वगामी व सर्वकर्ता, हर्ता तुम्हींहो और निश्चयकर नहीं है ॥ २८ ॥ हे महेश्वर! तुम भूमिहो और तुम सूर्यहो, तुम ज्योतिहो, तुम अन्धकारहो व सम्पूर्ण प्राणियों के जीवभूत पवन

तुम्हींहो ॥ २९ ॥ शिवदेव के त्रिशूलके अग्रभाग में भलीभांति टिकेहुये दैत्येन्द्रने सदाशिव जीकी स्तुति किया सूतजी बोले कि इसप्रकार उसकी स्तुतिकरके महे-श्वर देवजी प्रसन्नहुये ॥ ३० ॥ तदनन्तर शूलके अग्रभागमें टिकेहुये उस दैत्योत्तमसे प्रसन्नतासे श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! यह शूरोंका नियम नहीं है जो कि शत्रु के हाथके दुःखसे प्रिय वचन कहेजाते हैं व दैत्यके जन्ममें विशेषकर नहींहै अन्धक बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! त्रिशूलके अग्रभाग प्रति टिकाहुआ मैं निर्वेद को प्राप्तहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ इसलिये मुझको शीघ्रही मारिये कि जिससे मेरी पीड़ाका नाशहोवै श्रीशिवभगवान् बोले कि हे दैत्य ! मैंने चिन्तन किया कि तुम्हारा किसी

च ॥ एवंतस्यस्तुतिंश्रुत्वा परितुष्टोमहेश्वरः ॥ ३० ॥ ततःप्रोवाचतंहर्षाच्छूलाग्रस्थंदनूत्तमम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैदंवीरव्रतंदैत्य यच्छत्रुकरपीडनात् ॥ ३१ ॥ प्रोच्यंतेसामवाक्यानि विशेषाद्दैत्यजन्मनि ॥ अन्धकउवाच ॥ निर्विण्णोस्मिसुरश्रेष्ठ त्रिशूलाग्रंसमाश्रितः ॥ ३२ ॥ तस्मात्सूदयमांयेन द्रुतंस्यान्मेऽव्यथात्त्वयः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नतेस्तिमरणंदैत्य कथंचिच्चिन्तितम्मया ॥ ३३ ॥ तेनेत्थंविधृतोऽव्योम्नि भित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ तस्मात्त्वंगणतांगच्छ साम्प्रतंपापवर्जितः ॥ ३४ ॥ त्यक्त्वातुदानवंभावं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अन्धकउवाच ॥ गतोमेदानवोभावः साम्प्रतंतवकिङ्करः ॥ ३५ ॥ भविष्यामिनसन्देहस्सत्येनात्मानमालभे ॥ शङ्करउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स ब्रूहियत्तेभिवाञ्छितम् ॥ ३६ ॥ प्रार्थयस्वप्रयच्छामि यद्यपिस्यात्सुदुर्ल्लभम् ॥ अन्धकउवाच ॥ अनेनैवतुरूपेणत्रिशूलाग्रेमयिस्थिते ॥३७॥ योमर्त्यस्त्वांप्रकृत्वावै स्थापयिष्यतिभूतले ॥ तस्यमोक्षस्त्वयादेयो मद्वाक्यात्सुरसत्तम ॥ ३८ ॥ तथेत्युक्त्वाथदेवे

प्रकार मरण नहीं है ॥३३॥ उसी कारण शूलसे हृदयमें विदारणकर आकाशमें ऐसे धरेगयेहो इसलिये दैत्यभावको छोड़कर इससमय पापरहित होतेहुये व परम श्रद्धासे संयुत तुम गणभावको प्राप्तहोवो अन्धकासुर बोला कि मेरा दानव भाव जातारहा इस समय निस्सन्देह तुम्हारा सेवकहूंगा यह सत्यसे अपनी शपथ करताहूं शङ्करजी बोले कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारा मनोरथहो उसको कहिये ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥ तुम प्रार्थना करो यद्यपि दुर्लभहोगा तथापि मैं दूंगा अन्धकासुर बोला कि हे सुरसत्तम ! मुझको त्रिशूल के अग्रभाग पै स्थित होते हुये इसी रूप से तुमको जो पुरुष बनाकर भूतल में स्थापन करैगा मेरे वचन से तुमको उसे मोक्ष देना

चाहिये ॥३७।३८॥ वैसाही होगा यह कहकर इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! देवेश शिवजीने त्रिशूल के अग्रभाग से अस्थिशेषवाले व दुबले अंगोंवाले तथा चामुण्डा के समान उस अन्धकासुरको छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर गणभाव को प्राप्तहुये उस अन्धकासुर ने देवदेव (शिव) जी के व विशेषकर पार्वतीजीके अगाड़ी मनोहर गान को किया ॥ ४० ॥ जिसलिये कि उसका शब्द भ्रमरके समान कर्णोंको सुखदायक था उसीसे त्रिपुरारि शिवजीने उसको भृङ्गरीट ऐसा कहा ॥ ४१ ॥ वह अन्धकासुर देवदेव त्रिशूलधारी शिवजी की मुख्यगणता को प्राप्तहुआ व समस्त कार्यों में विश्वास करने योग्य वह उन शिवजी में परायण हुआ ॥ ४२ ॥ तब से

शस्त्रिशूलाग्रान्मुमोचह ॥ अस्थिशेषंकृशाङ्गंच चामुण्डासदृशंद्विजाः ॥३९॥ ततःसगणतांप्राप्तो गीतंचक्रेमनोहरम् ॥ पुरतोदेवदेवस्य पार्वत्याश्चविशेषतः ॥ ४० ॥ भृङ्गवद्रटनंयस्मात्तस्य श्रोत्रसुखावहम् ॥ भृङ्गरीटइतिप्रोक्तस्ततस्सत्रिपुरारिणा ॥४१॥ समुख्यगणताम्प्राप्तो देवदेवस्यशूलिनः ॥ विश्वास्यस्सर्वकृत्येषु तत्परंसमपद्यत ॥ ४२ ॥ ततःप्रभृतिलोकेत्र देवदेवोमहेश्वरः ॥ तादृशेनैवरूपेण स्थाप्यतेभूतलेजनैः ॥ ४३ ॥ प्राप्यतेचपरासिद्धिस्तत्प्रसादादलौकिकी ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य राज्याद्भ्रष्टोमहीपतिः ॥ ४४ ॥ सुरथाख्यःप्रसिद्धोत्र सूर्य्यवंशसमुद्भवः ॥ ततोवसिष्ठमासाद्य सचात्मीयंपुरोहितम् ॥ ४५ ॥ प्रोवाचप्रणतोभूत्वा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ त्वयिनाथेममब्रह्मन्संस्थितेचापिशत्रुभिः ॥ बलादपहृतंराज्यं मन्दभाग्यस्यसाम्प्रतम् ॥ ४६ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे येनराज्यस्यसंस्थितिः ॥ भूयो

लगाकर इस संसार के बीच भूतल में मनुष्यों से देवदेव महेश्वर जी वैसेही रूप से स्थापित होते हैं ॥ ४३ ॥ व उनकी प्रसन्नता से अलौकिक उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है इसके अनन्तर किसी समय सूर्यवंश में उपजे हुये इस संसार में सुरथनामक प्रसिद्ध भूपति राज्य से भ्रष्टहुये तदनन्तर आंसुओं से विकल लोचनोंवाले उसने अपने पुरोहित वसिष्ठ जी के समीप जाकर व प्रणामकर कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुमको मेरे स्वामी संस्थित होने पर भी इससमय मुझ मन्दभाग्यवाले की राज्य को शत्रुओंने बलसे हरलिया ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिससे फिरभी तुम्हारी प्रसन्नता से राज्य की भलीभांति स्थितिहोवै मेरी और

गति नहीं है ॥ ४७ ॥ वसिष्ठ जी बोले कि हे महाराज ! यदि ऐसा है तो समस्त सिद्धियों के देनेवाले हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्र में शीघ्रही मेरे वचन से जावो वहांपर उठीहुई भुजाके त्रिशूलवाले अग्रभाग पै स्थित हुये अन्धकासुर के शरीरवाले महादेवजी को भैरवरूप से थाप कर तदनन्तर हे नृप ! नृसिंहजी के मंत्र के द्वारा लाल फूलों से व धूपों तथा अरुण अनुलेपनों से उनको पूजो ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ तदनन्तर उस पराक्रमको प्राप्तहोकर तेज, बलसे संयुत होतेहुये तुम उनकी प्रसन्नतासे निस्सन्देह समस्त शत्रुओंको मारोगे ॥ ५१ ॥ परन्तु पवित्रता समेत तुमको शिवभगवान्‌का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ अन्यथा विघ्नको पावोगे

पित्वत्प्रसादेन नान्यामेविद्यतेगतिः ॥ ४७ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यद्येवंतन्महाराज मद्वाक्यात्सत्वरंव्रज ॥ ४८ ॥ हाटके श्वरजेक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदायके ॥ तत्रभैरवरूपेण स्थापयित्वामहेश्वरम् ॥ ४९ ॥ भुजोद्यतत्रिशूलाग्रस्थितान्धककले वरम् ॥ नारसिंहेनमन्त्रेण ततःपूजयतंनृप ॥ रक्तपुष्पैस्तथाधूपै रक्तैश्चैवानुलेपनैः ॥ ५० ॥ ततस्तद्वीर्य्यमासाद्य तेजो वीर्य्यसमन्वितः ॥ हनिष्यस्यखिलाञ्छत्रूंस्तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ५१ ॥ परशौचसमेतेन सम्पूज्योभगवांस्त्वया ॥ ५२ ॥ अन्यथाप्राप्स्यसेविघ्नं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वा सराजासत्वरंययौ ॥ ५३ ॥ तत्रक्षे त्रे ततो देवं स्थापयामास भैरवम् ॥ ततःसम्पूजयामास नारसिंहेनभक्तितः ॥ ५४ ॥ मन्त्रेणप्रयतोभूत्वा ब्रह्म चर्य्यपरायणः ॥ ततोदशसहस्रान्ते तस्यमन्त्रस्यसंख्यया ॥ ५५ ॥ भैरवस्तुष्टिमापन्नः प्रोवाचतदनन्तरम् ॥ भैरव उवाच ॥ परितुष्टोस्मितेराजन्मन्त्रेणानेनपूजितः ॥ ५६ ॥ तस्मात्प्रार्थययच्चेष्टं तत्तेसर्वंददाम्यहम् ॥ सुरथउवाच ॥ श

यह मैंने सत्य कहाहै इसके अनन्तर उन वसिष्ठ जीके वचनको सुनकर उस राजाने शीघ्रही उस क्षेत्रमें गमन किया तदनन्तर भैरव देवको थापन किया उसके उपरान्त पवित्र होकर ब्रह्मचर्य्य में तत्पर होतेहुये भक्तिसे नृसिंह मंत्रके द्वारा भलीभांति पूजन किया उसके उपरान्त संख्या से उस मंत्रके दशहज़ारके अन्त में ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ भैरवजी प्रसन्नताको प्राप्तहुये तदनन्तर बोले भैरवजी बोले कि हे राजन् ! इस मंत्र से पूजन कियाहुआ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ५६ ॥ इसलिये जो प्रियहो

उसको मांगो मैं तुमको सब दूंगा सुरथ बोला कि हे सुरेश्वर ! मेरी राज्यको शत्रुओंने हरलियाहै तुम्हारी प्रसन्नतासे वह फिरभी वैरियोंसे सबओर रहित होवै व अन्यभी जो पुरुष यहां आकर इसीभांति व इसीही मंत्रसे तुमको पूजै हे विभो, सुरेश्वर, देव ! तुमको उसे सिद्धि देना चाहिये जैसे कि हजार मंत्रोंके अन्तमें मुझको सिद्धि दिया है ॥ ५७ । ५८ । ५९ ॥ वैसाही होगा यह उस राजासे प्रतिज्ञाकर महादेवजी अन्तर्धान होगये व सुरथ नेभी समरमें शत्रुओंको मारकर अपने राज्यको पाया ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभैरवमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥१४७॥

त्रुभिर्मेहृतंराज्यं त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ ५७ ॥ तन्मेभवतिभूयोपि शत्रुभिःपरिवर्जितम् ॥ अन्योपियःपुमानित्थं त्वा मिहागत्यपूजयेत् ॥ ५८ ॥ अनेनैवतुमन्त्रेण तस्यसिद्धिस्त्वयाविभो ॥ देयादेवसहस्रान्तेयथाममसुरेश्वर ॥ ५९ ॥ तथेतितंप्रतिज्ञाय गतश्चादर्शनंहरः ॥ सुरथोपिनिजंराज्यंप्रापहत्वारणेरिपून् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरि च्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये भैरवमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ असंख्यातानितीर्थानि त्वयाप्रोक्तानिसूतज ॥ देवमानुषजातानि देवतायतनानिच ॥ १ ॥ तथाविस्त रतस्तानि राक्षसैःस्थापितानिच ॥ सूतपुत्रवदास्माकं यैर्दृष्टैःस्पर्शितैरपि ॥२॥ सर्वेषांलभ्यतेपूर्णं फलंचेत्सन्तितत्रच ॥ सूतउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागास्तत्रसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ तीर्थानांचैवलिङ्गानामाश्रमाणांतथैवच ॥ तत्रयःकुरुते स्नानं शङ्खतीर्थेसमाहितः ॥ ४ ॥ एकादश्यांविशेषेण सर्वेषांलभ्यतेफलम् ॥ यःपश्यतिनरोभक्त्या तत्रैकादशरुद्रि

दो० । चक्रपाणि नामक हरिहि थाप्यो अर्जुनवीर । इकसौ अरतालीसमहँ कहत सोई मतिधीर ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! देवताओं व मनुष्योंसे उपजेहुये देवमंदिरों व असंख्यक तीर्थों को तुमने कहा ॥ १ ॥ वैसेही राक्षसों से थापेहुये लिङ्गोंको विस्तारसे कहा व हे सूतपुत्र ! वहांपर यदि ऐसे तीर्थ होवैं कि जिनके दे-खने व छूने सेभी समस्त जनोंको पूर्णफल होवै तो उनको हमलोगों से कहो सूतजी बोले कि हे बडेभाग्यवाले मुनियो ! यह सत्यहै कि वहांपर तीर्थों व लिंगों तथा आश्रमों की संख्या नहीं विद्यमान है वहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य शखतीर्थ में स्नान करता है ॥ २ । ३ । ४ ॥ व जो विशेषकर एकादशी तिथि में स्नान

करताहै वह समस्त तीर्थोंके फलको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष वहां भक्ति से सिद्धेश्वर समेत एकादश रुद्रको देखताहै उसने समस्त महादेवों को देखा वैसेही श्रद्धासंयुत जो पुरुष ग्रहसे उपजीहुई देवीको देखताहै ॥ ५।६॥ उसने उन समस्त दुर्गाओंको देखाहै इसमें सन्देह नहीं है व जो पुरुष मनुष्यों को स्वर्ग देनेवाले गणेश जीको देखताहै ॥ ७ ॥ उसने समस्त गणनायकोंको भलीभांति देखा इसमें सन्देह नहींहै व जो पुरुष वहां बरगद के समीप शर्मिष्ठा से थापीहुई गौरी जीको देखताहै ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसने समस्त गौरियों को देखाहै व प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य वहांपर चक्रहाथवाले (विष्णुजी) को देखताहै उसने समस्त वासुदेवों को देखाहै

यम् ॥ ५ ॥ सिद्धेश्वरसमंतेन दृष्टास्सर्वेमहेश्वराः ॥ ग्रहोत्थांपश्यतितथा योदेवींश्रद्धयान्वितः ॥ ६ ॥ तेनदुर्गास्सम स्तास्ता वीक्षितानात्रसंशयः ॥ यःपश्यतिगणेशंच स्वर्गद्वारप्रदंनृणाम् ॥ ७ ॥ सर्वेविनायकास्तेन संदृष्टानात्रसंश यः ॥ शर्मिष्ठास्थापितांगौरीं न्यग्रोधेतत्रपश्यति ॥ ८ ॥ तेनगौरीसमस्तापि वीक्षिताद्विजसत्तमाः ॥ चक्रपाणिंचयःप श्येत्प्रातरुत्थायमानवः ॥ ९ ॥ वासुदेवास्समस्ताश्च तेनतत्रनिरीक्षिताः ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्वयासूततथास्माकं नाख्या तश्चस्मृतःकथम् ॥ १० ॥ कस्मिन्कालेविशेषेण सद्रष्टव्योमनीषिभिः ॥ सूतउवाच ॥ अर्जुनेनैवविप्रेन्द्राः क्षेत्रेत्रैवप्रति ष्ठितः ॥ ११ ॥ शयनेबोधनेचैव प्रातरुत्थायमानवः ॥ स्नानंकृत्वासुभक्त्याच यःपश्येच्चक्रपाणिनम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मह त्यादिपापानि तस्यनश्यन्तितत्क्षणात् ॥ भूभारोत्तारणार्थाय धर्म्मसंस्थापनायच ॥ १३ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितौविप्रा नरनारायणावुभौ ॥ कृष्णार्जुनौतदामर्त्ये द्वापरान्तेद्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ अवतीर्णौधरापृष्ठे मिथःस्नेहानुगौसदा ॥ नर

ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! तुमने हमलोगों से उसप्रकार नहीं कहा और स्मरण कैसे कियागया ॥ ९।१० ॥ कि विशेषकर किस समयमें वे वासुदेवजी बुद्धिमानों से देखने योग्य हैं सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! इसी क्षेत्रमें अर्जुनहीने प्रतिष्ठा किया है ॥ ११ ॥ जो पुरुष शयन, बोधन समय में प्रातःकाल उठकर व नहाकर उत्तम भक्तिसे चक्रपाणि जीको देखताहै ॥ १२ ॥ उसी क्षण उसके ब्रह्महत्यादिक पाप नाश होजाते हैं हे ब्राह्मणो ! भूमिभारके उतारने व धर्म के भलीभांति थापने के लिये ब्रह्माने नरनारायण दोनोंकी प्रार्थना कियाहै हे द्विजोत्तमो ! उस समय द्वापर के अन्त में मृत्युलोक के बीच सदैव स्नेह के अनुगामी कृष्ण व अर्जुनने

धरापृष्ठ में अवतार लिया व ये नरनारायण आपही भारको हरैंगे ॥ १३।१४।१५ ॥ जैसे कि राक्षसोंके विनाश करनेके लिये दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी धरणीतलमें अ-वतरे हैं वैसेही द्वापर में कृष्णने भी अवतार लिया है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब अर्जुनजी युधिष्ठिर की आज्ञासे दिल्ली नामक उत्तम नगरसे तीर्थयात्रा प्रति भली भांति आये हैं तब ॥ १७ ॥ एकान्तमें अपने भाई युधिष्ठिरको-द्रौपदी समेत देखकर प्रणाम किये होकर नम्रतासे झुकेहुये अर्जुनजी बोले॥१८॥अर्जुन बोले कि हे नृपोत्तम ! इससमय मैं अस्त्रके लिये प्राप्तहूं हे भूपते ! ब्राह्मणकी गौओंको छुड़ाने के लिये मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे अर्जुन ! वहांपर शीघ्रही जावो

नारायणावेतौ स्वयमेवहरिष्यथः ॥ १५ ॥ यथारक्षोविनाशाय रामोदशरथात्मजः ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे तथाकृष्णोपिद्वापरे ॥ १६ ॥ यदापार्थस्समायातस्तीर्थयात्रांप्रतिद्विजाः ॥ युधिष्ठिरसमादेशाच्छक्रप्रस्थात्पुरोत्तमात् ॥ १७ ॥ द्रौपद्यासहितंदृष्ट्वारहसिभ्रातरंनिजम् ॥ प्रोवाचप्रणतोभूत्वा विनयावनतोर्ज्जुनः ॥ १८ ॥ अर्ज्जुनउवाच ॥ आयुधार्थमहंप्राप्तस्साम्प्रतंपार्थिवोत्तम ॥ द्विजधेनुविमोक्षाय ममाज्ञांदेहिपार्थिव ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ गच्छार्ज्जुनद्रुतंतत्र नीयतेयत्रतस्करैः ॥ धेनवोद्विजवर्य्यस्य विमोक्षयधनंजय ॥ २० ॥ तीर्थयात्रांततोगच्छ यावद्द्वादशवत्सरान् ॥ ततःपापविनिर्मुक्तस्समेष्यसिममान्तिकम् ॥ २१ ॥ यस्सदारंनरंपश्येदेकान्तस्थन्तुबुद्धिमान् ॥ अपिचात्यन्तपापःस्यात्किम्पुनर्निजबान्धवम् ॥ २२ ॥ तस्मान्नवीक्षयेत्कञ्चिदेकान्तस्थंसभार्य्यकम् ॥ बान्धवंचविशेषेण परश्चेच्छुभमात्मनः ॥ २३ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय रथमारुह्यसत्वरम् ॥ धनुरादायबाणांश्च जगामतदनन्तरम् ॥ २४ ॥ नगाग्रेणगतागावो नीयन्तेतस्करै

जहांपर कि द्विजोत्तम की गौवें चोर लिये जातेहैं हे धनंजय ! उनको छुड़ाइये ॥ २० ॥ तदनन्तर बारहवर्षतक तीर्थयात्रा को जावो उसके उपरान्त पापसे छूटेहुये तुम मेरे समीप आवो ॥ २१ ॥ जो बुद्धिमान् भी एकान्तमें टिकेहुये स्त्री समेत पुरुष को देखताहै वह अत्यन्त पापी होवै फिर अपने भाईको देखकर क्या कहना है ॥ २२ ॥ इसलिये यदि अपने शुभमें परायण होवै तो एकान्तमें टिकेहुये स्त्री समेत किसी पुरुष को व विशेषकर भाईको न देखै ॥ २३ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व शीघ्रही रथपै सवार होकर तथा धनुष व बाणों को लेकर तदनन्तर वहांगये ॥ २४ ॥ जहां पर्वतके अग्रभागपै प्राप्त गौओं को चोर लिये जातेथे हे ब्राह्मणो ! पैने

शस्त्रोंको धारेहुये समस्त चोरोंको क्षणभर में मारकर इसके अनन्तर समस्त गौओं को अपहरणकर आपही आदर कीहुई अपनी २ गौओंको महात्मा ब्राह्मणोंके लिये निवेदन किया ॥ २५ । २६ ॥ तदनन्तर अनेकों तीर्थों व नगरोंको भलीभांति देख कर पाण्डु जीके पुत्र अर्जुन जी स्नानके लिये इसी क्षेत्रमें भलीभांति आये ॥ २७॥ उन अर्जुन ने पहले भी प्राप्तहोकर उस क्षेत्रको देखाथा जब कि दुर्योधन संयुक्त वहां आयेथे ॥ २८ ॥ तदनन्तर पुरातनसमय जिस अर्जुनेश्वर नामक लिङ्ग को थापन कियाथा उसको व विशेषकर अन्य कौरवेन्द्रों व पाण्डवों के लिंगों को पुष्प, धूप व अनुलेपनों से भलीभांति पूजन किया इसके अनन्तर पाण्डुजी के पुत्र अर्जुन

बलात् ॥ अपहृत्यस्थितान्सर्वाञ्छितशस्त्रधरान्द्विजाः ॥ २५ ॥ अथहत्वाक्षणाचौरान्गास्सर्वाःस्वयमादृताः॥ स्वाःस्वा निवेदयामास ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ २६ ॥ ततस्तीर्थान्यनेकानि संदृष्ट्वापत्तनानिच ॥ क्षेत्रेत्रैवसमायातःस्नानार्थं पाण्डुनन्दनः ॥ २७ ॥ तेनपूर्वमपिप्राप्य तत्क्षेत्रमवलोकितम् ॥ दुर्य्योधनसमायुक्तो यदातत्रसमागतः ॥ २८ ॥ तत स्संपूजयामास यल्लिङ्गंस्थापितम्पुरा ॥ अर्जुनेश्वरसंज्ञन्तुपुष्पधूपानुलेपनैः ॥ २९ ॥ अन्येषांकौरवेन्द्राणां पाण्डवा नांविशेषतः ॥ अथसंचिन्तयामास मनसापाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥ अहंनरःस्वयंसाक्षात्कृष्णोनारायणःस्वयम् ॥ तस्मा दत्रकरिष्यामि चक्रपाणिंसुरेश्वरम् ॥ ३१ ॥ प्रासादोमानवैश्चैव यादृग्नास्तिधरातले ॥ कल्पान्तेपिननाशःस्यादस्य क्षेत्रस्यकर्हिचित् ॥ ३२ ॥ प्रासादोपितथाचायमत्रक्षेत्रेभविष्यति ॥ प्रतिष्ठांकारयामास ततस्तस्यसमाश्रितः ॥ ३३ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि शासनानिबहूनिच ॥ अन्यच्चप्रददौपश्चात्सतेषांपुष्टिदानकम् ॥ ३४ ॥ ततःप्रोवाचतान्सर्वान्क्ष

ने मनसे चिन्तन किया ॥ २९ । ३० ॥ कि मैं आपही साक्षात् नरहूं व कृष्णजी आपही नारायण हैं इसलिये यहांपर सुरनायक चक्रपाणि जीको करूंगा ॥ ३१ ॥ और जैसा कि भूतल में नहीं है वैसेही मन्दिर को मनुष्यों के द्वारा करूंगा व जिस प्रकार कभी इस क्षेत्रका कल्पान्त मेंभी नाश न होवै है ॥ ३२ ॥ वैसेही इस क्षेत्रमें यह मन्दिरभी होगा तदनन्तर भलीभांति टिकेहुये अर्जुनने उन चक्रपाणि जीकी प्रतिष्ठाकिया ॥ ३३ ॥ व अनेकों दानों और बहुतेरी शिक्षाओं को

देकर पश्चात् उन अर्जुनजीने उन ब्राह्मणोंकेलिये अन्य पुष्टिदानको दिया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर हाथोंको जोड़े खड़ेहुये अर्जुन ने उन सबोंसे कहा कि हे ब्राह्मणो ! उस उत्तम बदरिकाश्रम को छोड़कर मैं पाण्डु भूपतिके मन्दिर में मनुष्यही रूपसे पैदाहुआहूं व इस क्षेत्रमें मैंने प्रसिद्धिके लिये मन्दिरका निर्माण कियाहै॥३५।३६॥व श्रद्धासे पवित्र चित्त करके मेरे नामसे नरसंज्ञक निर्मित हुयेहैं इसलिये हे ब्राह्मणो ! आपलोगोंसे ये चक्रपाणि ऐसे सदैव कहने योग्यहैं कि जिससे जबतक चन्द्रमा सूर्य रहैं तबतक तीनों लोकमें मेरे नामसे प्रकाशताको प्राप्तहोवैं॥३७।३८॥वैसेही विष्णुके शयन,बोधन समयमें व विशेषकर चैत्रमहीने के बीच विष्णुवासर (द्वादशी) प्राप्त होनेपर बड़ा

ताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ नरोहंब्राह्मणाजातः पाण्डोर्भूमिपमन्दिरे ॥ ३५ ॥ मानुषेणैवरूपेण त्यक्त्वातांबदरींशुभाम् ॥ प्रसिद्ध्यर्थंमयाचात्र प्रासादोत्रविनिर्मितः ॥ ३६ ॥ मन्नाम्नानरसंज्ञश्च श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तस्मादेषभवद्भिश्च चक्रपाणिरितिद्विजाः ॥ ३७ ॥ कीर्तनीयस्सदायेन मन्नाम्नातुप्रकाश्यताम् ॥ त्रिषुलोकेषुनिर्य्याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३८॥ तथामहोत्सवःकार्य्यः शयनेबोधनेहरेः ॥ चैत्रमासेविशेषेण सम्प्राप्तेविष्णुवासरे ॥ ३९ ॥ त्रिषुलोकेषुत्यक्त्वान्यच्छुभांचबदरीमपि ॥ पूजनंचकरिष्यामि स्वयंविष्णोर्द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥ यस्तत्रदिवसेमर्त्यः पूजामस्यविधास्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंप्रयास्यति ॥ ४१ ॥ तथायेवासुदेवात्र क्षेत्रेकेचिद्व्यवस्थिताः ॥ तेषांचदर्शनाच्छ्रेयो नित्यंदृष्ट्वाचलप्स्यति ॥ ४२ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतैरुक्तोदाशार्हःपाण्डुनन्दनः ॥ तेषांतद्भारमावेश्य प्रतस्थेनान्तरात्मना ॥ ४३ ॥ ययौतीर्थानिचान्यानि कृतकृत्यस्ततःपरम् ॥ एवंतत्रस्थितोदेवश्चक्रपाणिरितिस्मृतः ॥ ४४ ॥ स्व

उछाह करना चाहिये ॥ ३९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! मैं तीनों लोकोंमें अन्यस्थान व शुभदायक बदरिकाश्रम को भी छोड़कर आपही विष्णुजीका पूजन करूंगा ॥ ४० ॥ उस दिन जो पुरुष इन चक्रपाणि जीका पूजन करैगा वह सबपापोंसे मुक्तहो विष्णुलोकको जावैगा ॥ ४१ ॥ वैसेही इस क्षेत्रमें जे कोई वासुदेव विशेषतासे स्थितहैं नित्य ही उनके दर्शनसे देखकर कल्याणको पावैगा ॥ ४२ ॥ उन ब्राह्मणोंसे बहुत अच्छा ऐसाही कहेहुये दाशार्हवंश या देशमें उत्पन्न पाण्डुके पुत्र (अर्जुन) जीने उन ब्राह्मणों के ऊपर उस भारको धर कर प्रस्थान किया अन्तःकरणसें नहीं किया ॥ ४३ ॥ व अन्य तीर्थोंको गमन किया तदनन्तर कृतकृत्य होगये इसभांति चक्रपाणि ऐसे

कहेहुये आपही हृषीकेश (विष्णु) जी वहांपर स्थित हुये जोकि प्राणियों के पापविंनाशक हैं आजभी विष्णुजीकीकला प्राप्तहै इसलिये तीन एकादशियों के प्राप्तहोने पर याने शयन, बोधन व चैत्रमासकी एकादशीमें पहले कहे हुये विधानसे श्रद्धासंयुत पुरुषोंको विशेषकर वे चक्रपाणि देव पूजन व प्रणाम करने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ ४५ । ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येचक्रपाणिमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टचत्वारिंशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

यमेवहृषीकेशो जन्तूनांपापनाशनः ॥ अद्यापिचकलाविष्णोः प्राप्ताचैकादशीत्रये ॥ ४५ ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनतस्मा
च्छ्रद्धासमन्वितैः ॥ सदेवःपूजनीयश्च वन्दनीयोविशेषतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहा
टकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये चक्रपाणिमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥ १४८ ॥ ✻ ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति रूपतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्विरूपोरूपवान्भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वंभ
गवतातेन ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ सृष्टिंकृत्वातिविस्तीर्णां यथोक्तांचचतुर्विधाम् ॥ २ ॥ ततस्सञ्चिन्तयामास रूपसंचय
संयुताम् ॥ एकामप्सरसंदिव्यां देवमायांसृजाम्यहम् ॥३॥ ततश्चसर्वदेवानां समादायतिलंतिलम् ॥ रूपंचनिर्म्ममेप
श्चादत्याश्चर्य्यमयींचताम् ॥४॥ यांदृष्ट्वाक्षोभमापन्नःस्वयमेवपितामहः ॥ ततस्तांप्रेषयामास कैलासम्प्रतिपद्मजः ॥५॥

दो० । एक अप्सराकुंड अरु दूजो तीरथरूप । इकसौ उंचासवें महँ वर्णित अतिहि अनूप ॥ सूतजी बोले कि वैसेही वहां औरभी अति उत्तम रूपतीर्थ है जिसमें नहाया हुआ कुरूप पुरुष भलीभांति रूपवान् होवेहै ॥ १ ॥ पुरातन समय लोकों के कर्ता उन ब्रह्मा भगवान् जीने अतिविस्तारवाली यथोक्त चारप्रकार की सृष्टिको करके तदनन्तर चिन्तन किया कि रूपराशिसे संयुत एक दिव्य देवमाया अप्सराको मैं रचूं ॥ २ । ३ ॥ तदनन्तर समस्त देवताओंके तिल २ रूपको भलीभांति लेकर पश्चात् अतिआश्चर्य्यमयी उस अप्सरा को बनाया ॥ ४ ॥ कि जिसको देखकर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माजी आपही क्षोभको प्राप्तहुये तदनन्तर उसको कैलासपै पठाया ॥ ५ ॥

कि हे शुचिस्मिते ! महेश्वर देवके समीप जावो व प्रणामकरो तदनन्तर उसने शीघ्र ही कैलास पर्वतोत्तम को जाकर ॥ ६ ॥ वहां बैठेहुये पार्वती जीके मित्र शङ्करजी को देखा व शंकरजी भी उसको देखकर अत्यन्त आश्चर्य्य को प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ व उन्होंने समीप टिकी हुई पार्वती जीको देखकर पापिनी दृष्टिको न किया तदनन्तर हाथों को जोड़ खड़ी व परम श्रद्धासे सयुत उसने महादेवको प्रणामकर प्रदक्षिणा किया जबतक वह दाहिने बगलमें स्थित हुई तबतक उसके रूपसे खींचेहुये नेत्रोंवाले उन महादेवजीने मुखको दक्षिणमुख किया व जब वह शुभदायिनी अप्सरा प्रदक्षिणा के वशसे पश्चिम दिशामें हुई॥८।९।१०॥तब उसके लिये उन महादेवजीने पश्चिम ओर मुख किया

गच्छदेवंमहादेवं प्रणमस्वशुचिस्मिते ॥ ततःसासत्वरंगत्वा कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ६ ॥ अपश्यच्छङ्करंतत्र नि
विष्टंपार्वतीसखम् ॥ शङ्करोपिचतांदृष्ट्वा विस्मयंपरमंगतः ॥ ७ ॥ सदृष्टिंनाकरोत्पापां पार्श्वस्थांवीक्ष्यपार्वतीम् ॥ त
तःप्रदक्षिणांचक्रे साप्रणम्यमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ श्रद्धयापरयायुक्ता कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ यावद्दक्षिणपार्श्वस्था तावद्द
क्त्रंसदक्षिणम् ॥ ९ ॥ सचकारमहादेवस्तद्रूपाकृष्टलोचनः॥ पश्चिमायांयदासाभूत्प्रदक्षिणवशाच्छुभा ॥ १० ॥ पश्चिमंव
दनंतेन तदर्थंचकृतन्ततः ॥ एवमुत्तरसंस्थायां तस्यांदेवेनशम्भुना ॥ ११ ॥ उत्तरंवदनंकृत्य गौरीभीतेनचेतसा ॥ न
ग्रीवांचालयामास कथंचिदपिसद्द्विजाः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ अब्रवीत्पार्वतींपश्चात्प्रणिप
त्यमहेश्वरम् ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ पश्यपार्वतित्वंपत्युश्चेष्टितंगर्हितंयतः ॥ दृष्ट्वारूपवतींनारीं कृतंमुखचतुष्टयम् ॥
१४ ॥ अहमेतद्विजानामि नत्वयासदृशीक्वचित् ॥ अस्तिनारीतथान्यांच विजानामिसुरेश्वरीम् ॥ १५ ॥ हास्यस्य

ऐसेही हे उत्तम ब्राह्मणो ! उसको उत्तर दिशामें स्थित होनेपर शंभु देवजीने पार्वतीजीसे डरेहुये चित्तकरके उत्तर ओर मुखकर किसी प्रकार ग्रीवाको न चलाया॥११।१२॥ इसी अवसरमें वहां मुनिनायक नारद आये व पार्वती और पश्चात् महादेव जीको प्रणामकर बोले॥ १३ ॥ नारद बोले कि हे पार्वती जी ! तुम पतिके निन्दित कर्मको देखो क्योकि रूपवती स्त्रीको देखकर चार मुखोंको किया ॥ १४ ॥ मैं यह जानताथा कि कहींपर तुम्हारे समान स्त्री नहीं है परन्तु वैसेही अन्य भी सुरेश्वरी को

हे विचक्षणे, देवि ! जानताहूं ॥ १५ ॥ हे पार्वतीजी ! अन्य स्त्रियां महादेव जीके कामको जानकर आज तुम समस्त सुरस्त्रियों के हास्यके स्थानको प्राप्तहोंगी ॥ १६ ॥ हे शुभे ! इसको भलीभांति लेकर अपने अंगमें भलीभांति थापन करैंगे परन्तु लज्जासंयुतहो वचनको नहीं कहते हैं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि नारदजी के वचन सुनकर व चारमुखवाले उन महादेवजीको विकृत देखकर बडे क्रोध से संयुतहुई ॥ १९ ॥ तदनन्तर स्त्री धर्मपै टिकीहुई पर्वतकी कन्या पार्वतीजीने शीघ्रही शिव देवजीके समस्त नयनोंको रोकलिया ॥ २० ॥ इसी अवसर में जैसा कि शिव जीसे उपजाहुआ चित्त इस निन्दित वेश्याके ऊपर हरगयाहै उसको जानतीहो ॥ १७ ॥

हृतन्देविविजानासि यादृक्
पदवीमद्य त्वंगमिष्यसिपार्वति ॥ सर्वासांदेवपत्नीनां ज्ञात्वान्याःकाममीशितुः ॥ १६ ॥ समादायनिजेचाङ्के एतांसंस्थापयिष्यति ॥
चित्तंशिवोद्भवम् ॥ अस्याउपरिवेश्याया निन्दितायाविचक्षणे ॥ १७ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा दृष्ट्वाकान्तंचतुर्मुखम् ॥ क्रोधेनमह
परंलज्जासमोपेतो नब्रवीतिवचःशुभे ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ सर्वनेत्राणिदेवस्यमहिषीधर्ममाश्रिता ॥ २० ॥
ताविष्टाविकृतंवीक्ष्यतंहरम् ॥ १९ ॥ ततोनिरोधयामाससत्वरंपर्वतात्मजा ॥ प्रलयस्यसमुत्थानं
एतस्मिन्नन्तरेशैला विशीर्य्यन्तिसमन्ततः ॥ मर्य्यादांसन्त्यजन्तिस्म सर्वेचमकरालयाः ॥ २१ ॥ ब्रह्म
सञ्जातंद्विजसत्तमाः ॥ तावद्ब्रह्मदिनंप्राप्तमन्तत्वंसृष्टिलक्षणम् ॥ २२ ॥ नियोगमुततत्तेन प्रलयस्यप्रजायते ॥ तेपिदेवींनमस्कृत्य तामुचा
णस्सानिशाप्रोक्ता सर्वन्तोयमयंभवेत् ॥ २३ ॥ अथतत्रगणास्सर्वे भृङ्गिनन्दिपुरस्सराः ॥ ए
चसुरेश्वरीम् ॥ २४ ॥ मुञ्चमुञ्चसुरश्रेष्ठ देवनेत्राणिपश्यतु ॥ नोचेत्कालःसमस्तस्य लोकस्यास्यभविष्यति ॥ २५ ॥

पर्वत सबओर से फूटनेलगे व समस्त समुद्रोंने अपनी मर्यादाको छोड़दिया ॥ २१ व हे द्विजोत्तमो ! प्रलयकी भलीभांति उत्पत्तिहोगई तबतक सृष्टिके लक्षणोंवाला ब्रह्माका दिन अन्तताको प्राप्तहुआ ॥ २२ ॥ वितर्कणा में उसीसे प्रलयका नियोग होताहै वह ब्रह्माकी रात्रि कहीगई है कि जिसमें सब जलमय होवै है ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर जो सब भृंगि नन्दिपूर्वक गणथे उन्होंनेभी उस देवेश्वरी देवीको प्रणामकर कहा ॥ २४ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! देव (शिवजी) के नेत्रोंको छोड़ो २ नहीं

तो देखो कि इस समस्त संसारका अन्तहोजावैगा॥२५॥इसप्रकार कहीहुई भी उस देवीने जबतक न छोड़ा तबतक शिवदेवजीने मस्तकवाले अन्य उत्तम नेत्रको रचा ॥ २६ ॥ कृपासे संयुत जिन शिवजी से मनुष्योंकी रक्षा होती है वे शिवजी प्राणोंसेभी प्रियदेवीको मनाकरनेके लिये न समर्थहुये ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये कि तीन नयनहुये उसीसे देवोंने त्र्यम्बक कहाहै व संसारमें सुरेश्वर (शिव) जी त्र्यम्बक कहेजाते हैं ॥ २८ ॥ तदनन्तर पर्वतकी पुत्री (पार्वती) देवीने उन शिव जीको छोड़कर क्रोधसे लाललोचनोंवाली होतीहुई अगाड़ीखड़ीहुई उस तिलोत्तमासे कहा ॥ २९ ॥ कि हे पापिनि ! जिस लिये कि चारमुख के निमित्त मेरे पतिको

वंप्रोक्तापिसादेवी यावच्चनमुमोचसा ॥ तावद्देवेनलालाटंविसृष्टंलोचनम्परम् ॥ २६ ॥ कृपाविष्टेनलोकानां येनरक्षाप्र जायते ॥ नशक्तोवारितुन्देवीं प्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥२७॥ त्र्यम्बकंविबुधाःप्राहुस्त्र्यम्बकानियतोद्विजाः॥तस्मात्संकी र्त्यतेलोके त्र्यम्बकश्चसुरेश्वरः ॥ २८ ॥ ततस्सन्त्यज्यतन्देवं देवीपर्वतपुत्रिका ॥ प्रोवाचकोपरक्ताक्षी पुरस्थांतान्तिलो त्तमाम् ॥ २९ ॥ यस्मान्मेदयितःपापे त्वयारूपाद्विडम्बितः ॥ चतुर्वक्त्रकृतेतस्मात्त्वं विरूपाभवद्रुतम् ॥ ३० ॥ तत स्सासहसाभूता तत्क्षणाद्भग्ननाशिका ॥ शीर्णकेशाबृहद्दन्ती चिपिटाक्षीमहोदरी ॥ ३१ ॥ अथवीक्ष्यनिजन्देहं तथा भूतावराप्सरा ॥ प्रोवाचवेपमानासा कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ ३२ ॥ अहंसम्प्रेषितादेवि प्रणामार्थंत्रिशूलिनः ॥ ब्रह्म णातेनचायाता युष्माकंचविशेषतः ॥ ३३ ॥ निर्दोषायाविरागायास्तस्माद्युक्तंनमेभवेत् ॥ शापंदातुंप्रसादम्मे तस्मा त्त्वंकर्तुमर्हसि॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा दीनंसत्यंचपार्वती ॥ पश्चात्तापसमोपेता ततःप्रोवाचसुप्रियम् ॥ ३५ ॥

तुमने रूपसे विडम्बित किया उसी कारण तुम शीघ्रही विरूपिणी होवो ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसी क्षण वह अचानकही टूटीहुई नासिकावाली व गिरेहुये बालोंवाली व बड़े दाँतों वाली तथा भारी पेटवाली व चिपटे नयनोंवाली होगई॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर वैसीहुई उत्तम अप्सराने अपने शरीरको देखकर हाथजोडे खड़ी व काँपती हुई उस तिलोत्तमाने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे देवि ! त्रिशूलधारी (शिव) जीके प्रणामके लिये ब्रह्माने मुझको पठायाथा उसीसे तुमलोगोंके समीप विशेषकर आईहूं ॥ ३३ ॥ इसलिये स्नेहसे रहित व निर्दोषिणी मुझको शाप देनेके लिये योग्य नहीं होवैहै उसी कारण तुम मेरे ऊपर प्रसन्नता करने के योग्यहो ॥ ३४ ॥ तदनन्तर

उस तिलोत्तमाके उस दीन व सत्य वचनको सुनकर पश्चात्ताप से संयुत पार्वतीजी अति प्यारे वचनको बोलीं ॥ ३५ ॥ कि जिस लिये स्त्री के स्वभावसे तुम्हारे ऊ-
पर शीघ्रही क्रोधआगया उसी कारण आइये मेरे साथ भूतलमें चलो ॥ ३६ ॥ वहां मुझसे आपही उत्पन्न कियाहुआ रूपदायक तीर्थहै स्नान के लिये माघमहीने की
शुक्लपक्षवाली तीजमें जो स्त्री प्रभातकाल उठकर उस निर्मल जलवाले तीर्थ में स्नान करैहै वह निश्चयकर रूपवती होवैहै सूर्य्यमण्डल के नहीं दीखनेपर ॥ ३७ ।
३८ ॥ मैं सदैव माघमहीनेकी तीजमें उसमें स्नान करतीहूं आज वही तीजहै इस लिये स्नान के निमित्त निश्चय कियेहुई मैं वहां जाऊंगी ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले

स्त्रीस्वभावात्समायातः कोपोयत्त्वांप्रतिद्रुतम् ॥ तस्मादागच्छगच्छत्वं मयासार्द्धंतरातले ॥ ३६ ॥ तत्रास्तिरूपदंती
र्थंमयाचोत्पादितंस्वयम् ॥ माघशुक्लतृतीयायांस्नानार्थंविमलोदके ॥३७॥ यानारीप्रातरुत्थायतत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ सा
स्याद्रूपवतीनूनमदृष्टेरविमण्डले ॥३८॥ सदामाघतृतीयायांतत्रस्नानंकरोम्यहम् ॥ अद्यसातत्रयास्यामि स्नानायकृत
निश्चया ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासमादाय सादेवींतांतिलोत्तमाम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे रूपतीर्थंसमाययौ ॥
४० ॥ तत्रस्नानंस्वयंचक्रे विधिपूर्वंसुरेश्वरी ॥ तस्याअनन्तरंसापि भक्तियुक्तातिलोत्तमा ॥ ४१ ॥ ततःकान्तिमती
जाता तत्क्षणादेवभामिनी ॥ पूर्वमासीद्यथारूपा तथारूपाविशेषतः ॥ ४२ ॥ अथतुष्टिसमायुक्ता तांप्रणम्यसुरेश्वरी
म् ॥ प्रोवाचविस्मयाविष्टो हर्षगद्गदयागिरा ॥ ४३ ॥ प्राप्तंरूपंमहादेवि त्वत्प्रसादाच्चिरंतनम् ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यामि

कि ऐसा कहकर व उस तिलोत्तमा को लेकर वे पार्वती देवीजी हाटकेश्वरज क्षेत्रमें रूप तीर्थपै भलीभांति आईं ॥ ४० ॥ व सुरेश्वरी (पार्वती) जीने आपही उस
में विधिपूर्वक स्नान किया उसके बाद भक्तिसंयुत उस तिलोत्तमा नेभी नहाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उसी क्षणही भामिनी (तिलोत्तमा) कान्तिमती होगई व
पहले जैसे रूपवालीथी विशेषकर वैसेही रूपवतीहुई ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उन सुरेश्वरी (पार्वती) जीको प्रणामकर प्रसन्नता संयुत व विस्मय से घिरीहुई तिलो-
त्तमाने हर्षके कारण गद्गदी वाणीमे कहा ॥ ४३ ॥ कि हे महादेवि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे चिरन्तन (पहले वाला) रूपप्राप्तहुआ मैं ब्रह्मलोक को जाऊंगी इससे

तुम मुझको आज्ञा देनेके लिये योग्यहो ॥ ४४ ॥ गौरी बोलीं कि हे पुत्रि ! जो कुछ तुम्हारे हृदयमें भलीभांति टिकाहो मैं उस वरदानको दूंगी इसलिये विश्वास किये हुये वरको मांगो क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ तिलोत्तमा बोली कि हे देवि ! मैं इस क्षेत्रमें अपने उत्तम तीर्थको करूंगी वह तुम्हारी प्रसन्नता से भूतल में प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ४६ ॥ तुमको समस्त स्त्रियोंके हितके लिये वर्षके अन्तमें उस तीर्थमें भी रूप व सौभाग्य को देनेवाले स्नानही को करना चाहिये ॥ ४७ ॥ गौरी बोलीं कि हेशुभे ! सदैव चैत्र महीनेकी शुक्लपक्षवाली तीजमें मध्याह्नके प्राप्तहोनेपर तुम्हारे वचनसे समस्तस्त्रियोंके हितके लिये मैं निस्सन्देह तुम्हारेनि-

मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४४ ॥ गौर्य्युवाच ॥ वरंयच्छामितेपुत्रियत्किञ्चिद्धृदिसंस्थितम् ॥ तस्मात्प्रार्थयविश्रब्धंनवृथाममदर्शनम् ॥ ४५ ॥ तिलोत्तमोवाच ॥ अहमत्रकरिष्यामि क्षेत्रेतीर्थंनिजंशुभम् ॥ त्वत्प्रसादेनतद्देवि यातुख्यातिन्धरातले ॥ ४६ ॥ त्वयातत्रापिकर्तव्यं वर्षान्तेस्नानमेवहि ॥ हितार्थंसर्वनारीणां रूपसौभाग्यदायकम् ॥ ४७ ॥ गौर्य्युवाच ॥ चैत्रेशुक्लतृतीयायां सदाहंत्वत्कृतेशुभे ॥ स्नानंतत्रकरिष्यामि मध्याह्नेसमुपस्थिते ॥ ४८ ॥ हितार्थंसर्वनारीणां तववाक्यादसंशयम् ॥ यातत्रादिवसेनारी तस्मिन्स्तीर्थेकरिष्यति ॥ ४९ ॥ स्नानंसारूपसंयुक्ता भविष्यतिसुखान्विता ॥ स्पृहणीयाचनारीणां सर्वासांधरणीतले ॥ ५० ॥ पुरुषोपिस्वभक्त्यायस्तत्रस्नानंकरिष्यति ॥ सप्तजन्मानिरूपाढ्यस्स सौभाग्योभविष्यति ॥ ५१ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तातदादेव्यासाप्सराद्विजसत्तमाः ॥ ततःप्रभृतिसञ्जातंकुण्डमप्सरसाकृतम् ॥ ५२ ॥ स्नातमात्रोनरोयत्र सौभाग्यंलभतेद्विजाः ॥ नारीभिश्चविशेषेण पुत्रप्राप्तिरनुत्तमा ॥ ५३ ॥ तथा

मित्त उसमें स्नानकरूंगी उस दिनजो स्त्री उस तीर्थ में स्नानकरैगी वह रूपसे संयुत व सुखसंयुक्त और भूतलमें समस्त स्त्रियों के बीच चाहना के योग्यहोगी ॥ ४८ । ४९ । ५० ॥ व जो पुरुषभी निज भक्तिसे उसमें स्नान करैगा वह सात जन्मोंमें रूपसे संयुत व सौभाग्यवान् होगा ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस समय वह अप्सरा देवी से इसभांति कहीगई तबसे लगाकर अप्सरा से कियाहुआ वह कुण्ड उत्पन्नभया है ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसमें केवल नहाया हुआ पुरुष

सौभाग्य को प्राप्तहोता है व स्त्रियोंको विशेषकर अतिउत्तम पुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५३ ॥ व वैसेहीं और भी जो कुछ मनोरथ हृदयमें स्थितहोता है वह प्राप्तहोता है ॥ ५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअप्सरसःकुण्डोत्पत्तिर्नामऊनपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा तामसी सात्त्विकी सिद्धिहोहिं सुखदाइ । इकसौ पच्यासवें महँ सोई कहत बनाइ ॥ सूतजी बोले कि उस उत्तम कुंडमें जो स्त्री नहाईहुई है वह

न्यदपियत्किंचिद्वाञ्छितंहृदयस्थितम् ॥ ५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽप्सरसःकुण्डोत्पत्तिर्नामऊनपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १४९ ॥ * ॥ *

सूतउवाच ॥ यानारीतत्रसत्कुण्डे स्नातासापार्वतीम्पुनः ॥ दृष्ट्वास्नातिततस्तीर्थे तस्मिन्रूपमयेशुभे ॥ १ ॥
पुनश्चपार्वतींपश्येच्छ्रद्धयापरयायुता ॥ सद्यस्साप्रमुच्यतेकृत्स्नैराजन्ममरणान्तिकैः ॥ २ ॥ तत्रैवास्तिजयानाम पार्वत्याःकिङ्करीद्विजाः ॥ तयातत्रकृतंकुण्डं गौरीकुण्डसमीपतः ॥ ३ ॥ यातस्मिन्कुरुतेस्नानं तृतीयादिवसेबला ॥ सुतसौभाग्यसम्पन्ना साभवेत्पतिवल्लभा ॥ ४ ॥ तथान्यदपितत्रास्तिविजयाकुण्डमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाचवन्ध्यास्त्री जायतेपुत्रसंयुता ॥५॥ नचपश्यतिपुत्राणां कदाचिन्नाशनंद्विजाः ॥ नवियोगंचदुःखंच स्वप्नान्तेपिकदाचन ॥ ६ ॥ काकवन्ध्या

पार्वती को देखकर तदनन्तर फिर शुभदायक उस रूपमय तीर्थमें स्नान करै ॥ १ ॥ व परमश्रद्धासे संयुत होतीहुई जो फिर पार्वती जीको देखैहै वह जन्म से लगाकर मरण पर्य्यन्तके सब पातकोंसे छूटजातीहै ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहींपर पार्वती जीकी दासी जयानामक है उसने गौरीकुण्ड के समीप वहां कुण्ड कियाहै ॥ ३ ॥ तीज के दिन जो स्त्री उसमें स्नान करतीहै वह पुत्र, सौभाग्यसे संयुत व पतिको प्यारीहोतीहै ॥ ४ ॥ वैसेही वहांपर और भी उत्तम विजयाकुण्डहै उसमें नहाकर बन्ध्या स्त्री पुत्रसे संयुत होतीहै ॥ ५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कभी पुत्रोंका नाश नहीं देखती है और न कभी स्वप्नान्त मेंभी वियोग व दुःखको देखतीहै ॥ ६ ॥ व काकबन्ध्याभी

जो स्त्री उसमें स्नानको करै वह अनेक प्रकार के पुत्रोंको प्राप्तहोकर स्वर्गलोक में पूजित होतीहै ॥ ७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इन तीर्थोंके मध्यमें कहीं कोई ऐसा तीर्थहै कि जिसमें ब्राह्मण स्नानकरै व सिद्धिहोवै ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जो सत्ताईस लिङ्गहैं उनकेमध्य एक लिङ्गमें सब सिद्धि होवै है ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! कुवारकी अंधेरी चौदसि में उन लिङ्गोंके बीच पराक्रम से संयुत व सत्त्व युक्तवाले एक लिङ्गको जो पुरुष विधिसे आधीरात में पूजन करताहै व जो साधकोत्तम भक्त क्रमसे पहले कहेहुये पूजनको करताहै ॥ १० । ११ ॥ अङ्ग न्यासकोकर उच्चप्रकारसे छुरिका सूक्तको उच्चारण करताहै व उनके अगाड़ी

पियानारी तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ सापुत्रान्विविधाँल्लब्ध्वा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ एतेषांसूततीर्थानां तीर्थमस्तिसुसिद्धिदम् ॥ क्वचित्किञ्चिद्भवेत्सिद्धिर्यत्रस्नानंचरेद्द्विजः ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानियानिसन्तिद्विजोत्तमाः ॥ तेषाम्मध्येभवेत्सिद्धिरेकस्मिन्निखिलाद्विजाः ॥ ६ ॥ एकस्यसत्त्वयुक्तस्य तथावीर्य्ययुतस्यच ॥ आश्विनस्यचतुर्दश्यां कृष्णायांद्विजसत्तमाः ॥ १० ॥ अर्द्धरात्रौविधानेन तेषांपूजाङ्करोतियः ॥ प्रागुक्तंयजनंभक्तो यःक्रमात्साधकोत्तमः ॥ ११ ॥ अङ्गन्यासंविधायोच्चैः क्षुरिकासूक्तमुच्चरेत् ॥ तेषामग्रेस्थितःसम्यक् पूजयित्वा चराचरम् ॥ १२ ॥ पृथगेकैकशोभक्त्या पश्चाद्दिक्षुपतीनथ ॥ अथागत्यगणेशोवै विकरालोभयानकः ॥ १३ ॥ लम्बोदरोवैनग्नश्च कृष्णदेहसमुद्भवः ॥ खड्गहस्तोऽब्रवीद्युद्धं प्रकुरुष्वमयासमम् ॥ १४ ॥ मुक्त्वैतत्कर्पटंभूमौ स्थविरोसिससात्त्विकम् ॥ ततस्तत्कर्षणाच्चापि यस्तेनाशुप्रताडयेत् ॥१५॥ सतेनैवशरीरेण नीयतेतेनतत्पदे ॥ यत्रस्थानेजरामृत्युर्न

स्थितहो भलीभाति चराचर को पूजकर ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पश्चात् दिशाओं के स्वामियों को भक्ति से अलग एक २ पूजनकरै इसके उपरान्त कृष्ण शरीर से उपजेहुये नग्न व लंबे पेटवाले व विकराल तथा भयानक व तलवारको हाथ में लिये गणेशजी आकर बोले कि इस चिथड़े या अगौछे को भूमिमें छोड़कर मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि तुम वृद्ध व सात्त्विक समेत हो तदनन्तर उन गणेशजीके खीचने से भी जो पुरुष शीघ्रही उससे ताड़न करै है ॥ १३ । १४ । १५ ॥ वह उसी

शरीरसमेत उससे उस स्थानपै प्राप्त कियाजाता है कि जिस स्थानपै कभी वृद्धता व मृत्यु और शोक नहीं होताहै ॥ १६ ॥ वैसेही चित्रेश्वरीपीठमें एक सिद्धि कहीगई है कि वहांपर माघ महीनेमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको भलीभांति श्रद्धासंयुत जो पुरुष वेदमें कहीहुई विधि से पीठको पूजन करता है व पश्चात् महामांससे पूरित कपालको लेकर ॥ १७ । १८ ॥ यह कहता है कि आज मैं इस महामांसकी विक्री करूंगा यदि कोई सात्त्विक है तो वह इस सिद्धिको ग्रहणकरै ॥ १९ ॥ तदनन्दर हे उत्तम ब्राह्मणो ! जो मोललेवै व ग्रहणकरै वह उसको लेकर वहां जावै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ २० ॥ व उस स्थान के मध्यमें टिकाहुआ

शोकश्चकदाचन ॥ १६ ॥ तथाचित्रेश्वरीपीठे सिद्धिरेकाप्रकीर्तिता ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यांयःपीठंतत्रपूजयेत् ॥ १७॥ आगमोक्तविधानेन सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ॥ पश्चात्कपालमादाय महामांसप्रपूरितम् ॥ १८ ॥ अहमद्यकरोम्यस्य महामांसस्यविक्रयम् ॥ सिद्धिमेनांसगृह्णातु कश्चिचेदस्तिसात्त्विकः ॥ १९ ॥ ततश्चक्रयतेयश्च प्रगृह्णातिचसद्विजाः ॥ सतमादायनिर्याति यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ हाटकेश्वरजंलिङ्गं चित्रशर्म्मप्रतिष्ठितम् ॥ तस्यस्थानस्यमध्यस्थोय स्तम्पूजयतेनरः ॥ २१ ॥ शिवरात्रौनिशीथेचपुष्पलक्षेणभक्तितः ॥ ससिद्धिमाप्नुयात्तूर्णंसशरीरेणतत्क्षणात् ॥ २२ ॥ सिद्धिस्थानानिसर्वाणितस्मिन्क्षेत्रेस्थितानिवै ॥ वीरव्रतप्रयुक्तानांमानवानांद्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ तामसीयात्वयाप्रोक्तासिद्धिरेतामहामते ॥ अनर्हाब्राह्मणेन्द्राणांश्रोत्रियाणांविशेषतः ॥ २४ ॥ शुद्धान्तःकरणैःसूतभूतहिंसा विवर्जितैः ॥ यथासम्प्राप्यतेमोक्षोब्राह्मणैःसुचिरादपि ॥ २५ ॥ तांस्त्वंब्रूहिमहाभागमोक्षोपायान्द्विजन्मनाम् ॥ सूत

जो पुरुष चित्रशर्म से प्रतिष्ठा कियाहुआ जो हाटकेश्वरज लिङ्गहै उन शिवजी को भक्तिसे शिवरात्रि को आधीरातमें लाखफूलों से पूजता है वह शरीरसमेत उसीक्षण शीघ्रही सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ २१ । २२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वीरोंके व्रतसे युक्त पुरुषों के समस्तसिद्धिस्थान उस क्षेत्रमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! तुमने जिस तामसीसिद्धिको कहाहै यह द्विजेन्द्रों व विशेपकर वेदपाठियों के अयोग्य है ॥ २४ ॥ हे सूतजी ! जिस प्रकार शुद्धचित्तवाले व प्राणियों की हिंसासे रहित ब्राह्मणों को बहुत देरसे भी मोक्ष भलीभांति मिलती है ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! ब्राह्मणोंके लिये तुम उन मोक्षके यत्नोंको कहो सूतजी बोले कि जैसे

उवाच ॥ रुद्रैर्दशभिस्संयुक्तमानन्देश्वरकन्तथा ॥ २६ ॥ स्नात्वातदग्रतःकुण्डेशास्त्रदृष्टेनकर्मणा॥ ससिद्धिमाप्नुया
न्मर्त्योदुर्लभान्त्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ माघमासेनरस्स्नातिविश्वामित्रहृदेचयः ॥ प्रत्यूषेतिलपात्रञ्चब्राह्मणायनिवेदयेत॥
२८ ॥ ससर्वपापनिर्मुक्तोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ यद्यपिस्याद्दुराचारस्सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ २९ ॥ सुपर्णाख्यस्यदेवस्यपु
रतःश्रद्धयान्वितः ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वाउपवासपरोनरः ॥ ३० ॥ यस्त्यजेन्मानवःप्राणान्नसभूयोभिजायते ॥ एवंसि
द्धित्रयंप्रोक्तम्ब्राह्मणानांहितावहम् ॥ ३१ ॥ सात्त्विकंब्राह्मणश्रेष्ठास्संशितन्त्रिदशैरपि ॥ अन्यानितत्रतीर्थानिदेवतायत
नानिच ॥ ३२ ॥ तानिस्वर्गप्रदान्याहुर्मुनयस्संशितव्रताः ॥एतद्वस्सर्वमाख्यातंक्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्॥३३॥हाटकेश्वर
देवस्यसर्वपातकनाशनम् ॥ योत्रसर्वेषुतीर्थेषुस्नात्वापश्यतिभक्तितः ॥ ३४ ॥ सर्वाण्यायतनान्येवसपापोपिविमुच्य
ते ॥ एतत्खण्डंपुराणस्यप्रथमम्परिकीर्तितम् ॥ ३५ ॥ कार्त्तिकेयप्रणीतस्यसर्वपापहरम्परम् ॥ यश्चैतत्कीर्तयेद्भक्त्या

ही दशरुद्रोंसे संयुत जो आनन्देश्वरजी हैं ॥ २६ ॥ जो उनके अगाड़ी कुण्ड में शास्त्रके मध्य देखेहुये कर्मसे नहाकर उनको पूजताहै वह पुरुष देवताओंसे भी दुर्लभ सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ और जो पुरुष माघ महीनेमें विश्वामित्रजीके कुण्डमें स्नान करता है व प्रातःकाल तिलसे पूरित पात्रको ब्राह्मण के लिये निवेदन करता है ॥ २८ ॥ वह समस्तपापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै यद्यपि दुष्टआचरणवाला व सर्व्व भक्षी व समस्तवस्तुको बेचनेवाला भी होवै ॥ २९ ॥ व श्रद्धासंयुत उपास में तत्पर जो पुरुष सुपर्णनामक देवजी के अगाड़ी अन्न जलको छोड़ मरनेपै उतारू होकर प्राणोंको त्यागताहै वह मनुष्य फिर नहीं उत्पन्न होताहै हे द्विजोत्तमो ! इसभांति ब्राह्मणों को हितदायक व देवताओं से भी प्रसंशित सात्त्विक सिद्धित्रय को याने तीन सिद्धियोंको कहा और जो वहां अन्य तीर्थ व देवमन्दिर हैं ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ उनको प्रसंशितव्रतवाले मुनियोंने स्वर्गदायक कहा है इस समस्तपातकों के विनाशक हाटकेश्वर देवजी के उत्तम सब माहात्म्य को मैंने तुमलोगों से कहा जो पुरुष यहां समस्ततीर्थोंमें नहाकर भक्तिसे समस्तक्षेत्रों या देवमन्दिरोंही को देखताहै वह पापीभी विशेषकर मुक्त होजाताहै स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहीहुई पुराणका यह उत्तम पहलाखण्ड कहागया जोकि समस्तपातकोंको हरताहै सावधान होताहुआ जो पुरुष इसको भक्ति से कीर्तनकरै

गा व सुनैगा ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ वह इससंसारमें बहुतेरे भोगोंको भोगकर स्वर्गको जावैगा समस्ततीर्थोंमें जोफल होताहै व सबदानोंसे जो फलहोताहै ॥३७॥ उसी फलको श्रद्धासंयुत सुनताहुआ पुरुष भलीभांति प्राप्तहोता है हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में इस पुराण को सुनकर करोड़जन्मों में उपजेहुये पातकसे निश्चयकर छूटजाता है व कुलको उधारताहै तदनन्तर वसन दानादि व भूषणों व गऊ, भूमि, सुवर्णके दानों और अनेकप्रकारके भी दानोंमे व्यास (वाचक) को पूजनाचाहिये जिसन व्यास (वाचक) को भलीभांति पूजाहै उसने समर्थवान् साक्षात् सत्यवतीजी के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यासको पूजन किया जो गुरु शिष्यके

शृणुयाद्वासमाहितः ॥ ३६ ॥ इहभुक्त्वासविपुलान्भोगान्याति त्रिविष्टपम् ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वदानैश्चयत्फलम् ॥ ३७ ॥ तत्फलंसमवाप्नोतिशृण्वन्श्रद्धासमन्वितः ॥ श्रुत्वापुराणमेतद्धिजन्मकोटिसमुद्भवात् ॥ ३८ ॥ पृथिव्याम्पातकाद्विप्रामुच्यतेकुलमुद्धरेत् ॥ ततोव्यासःपूजनीयोवस्त्रदानादिभूषणैः ॥ ३९ ॥ गोभूहिरण्यनिर्वापैर्दानैश्चविविधैरपि ॥ तेनसम्पूजितोव्यासःकृष्णद्वैपायनःप्रभुः ॥ ४० ॥ साक्षात्सत्यवतीपुत्रोयेनव्यासःसुपूजितः ॥ एकमप्यक्षरंयस्तुगुरुःशिष्येनिवेदयेत् ॥ ४१ ॥ पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वाचानृणीभवेत् ॥ एतत्पवित्रमायुष्यंधन्यंस्वस्त्ययनम्महत् ॥ ४२ ॥ यच्छ्रुत्वासर्वदुःखेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ४३ ॥ इतिश्री स्कान्देनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदे हाटकेश्वरसंवादेचतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायःप्रथमखण्डःसमाप्तः ॥ १५० ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंसंबोधितस्तैस्तुलोकैःपुष्पस्तदाद्विजाः ॥ तानब्रवीत्ससंक्रुद्धोकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥ १ ॥ तद्वद

लिये एक अक्षर को भी निवेदन करता है ॥ ३८ । ३९ । ४० । ४१ ॥ तो पृथ्वीमें वह द्रव्य नहीं है कि जिसको देकर उऋण होवै यह कथा पवित्र, आयुर्बलदायक, धन्य व बड़ा मंगलकारक है ॥ ४२ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य समस्तदुःखोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायःप्रथमखण्डःसमाप्तः ॥ १५० ॥ ❁ ॥

दो० । पुष्परविहिं आराधिजिमि पायो गुटिकादोइ । इकसौ इक्यावने महँ चारितमनोहर सोइ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उससमय उनमनुष्योंसे इसभांति बोध

हे महाभागवाले जनो ! मुझसे उसको कहो कि जो देवता या देव
करायेहुये वे पुष्पजी अतिक्रोधितहो उनसे बोले कि मैं प्रतीकार करूंगा याने बदलेको लूंगा ॥ १ ॥ हे महाभागवाले जनो ! मुझसे उसको कहो कि जो देवता या देव
या उसी क्षण विश्वासकरानेवाले सिद्धमन्त्र होवैं ॥ २ ॥ व आराधनकियाहुआ जो देव उसीक्षण मनुष्योंको वरदायक होवै जन बोले कि यहां उसीक्षण विश्वास-
कारक एक देवजी स्थित हैं ॥ ३ ॥ और वैसेही इस धरातलमें एकदेवता सुनीजाती है पुष्प बोला कि यह कौन देवता कितनी दूर पै किस स्थानमें विशेष कर
टिकाहै ॥ ४ ॥ वैसेही मेरे ऊपर दयाकर देवताको कहिये जन बोले कि हे विप्र जी ! हमलोगोंने सुना है कि उसीक्षण विश्वासके करानेवाले, याज्ञवल्क्यजी से

ध्वंमहाभागादेवोवादेवताथवा ॥ तथामेसिद्धमन्त्रावासद्यःप्रत्ययकारकाः ॥ २ ॥ आराधितोयथासद्योमानुषाणांवरप्रदः ॥ जनाऊचुः ॥ एकोदेवस्थितश्चात्रसद्यःप्रत्ययकारकः ॥ ३ ॥ तथैकादेवताचात्रश्रूयतेजगतीतले ॥ पुष्पउवाच ॥ कोसौदेवःकियद्दूरेकस्मिन्स्थानेऽयवस्थितः ॥ ४ ॥ तथाचदेवताम्ब्रूतदयांकृत्वाममोपरि ॥ जनाऊचुः ॥ चमत्कारपुरेसूर्य्योयाज्ञवल्क्यप्रतिष्ठितः ॥ ५ ॥ अस्तिविप्रश्रुतोस्माभिःसद्यःप्रत्ययकारकः ॥ आराधितोयथासद्योददेन्मनसिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यांफलहस्तःप्रदक्षिणाम् ॥ यःकरोतिनरस्तस्यह्यष्टोत्तरशतंद्विज ॥ ७ ॥ तस्यासिद्धिप्रदःसम्यग्मनसावाञ्छितानिच ॥ तथान्याशारदानामदेवीकाश्मीरसंस्थिता ॥ ८ ॥ उपवासैःकृतैरेवसापिसिद्धिप्रदायिनी ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तेषाञ्जनानांसद्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ समुद्दिश्यचमत्कारंतस्मात्स्थानात्ततःपरम् ॥ चमत्कारपुरंप्राप्यसप्त

॥ ५ । ६ ॥ कि हे ब्राह्मण ! रविवार
प्रतिष्ठा कियेहुये चमत्कारपुरमें सूर्य्यनारायण हैं जिसभांति आराधन कियेहुये वे उसीक्षण मनोभिलाषको देवै हैं उसको सुनो ॥ ५ । ६ ॥ कि हे ब्राह्मण ! रविवार
सप्तमी तिथिमें फलको हाथमें लिये जो पुरुष उन सूर्य्यजी की एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको करता है ॥ ७ ॥ उस पुरुषको भलीभांति मनोरथ व सिद्धिदायक होते
हैं वैसेही काश्मीरमें भलीभांति टिकीहुई अन्य शारदानामक देवी हैं ॥ ८ ॥ उपासों के करनेहीसे वे भी सिद्धिदायिनी होती हैं वह पुष्प द्विजोत्तम ! उन मनुष्यों के
उस वचन को सुनकर ॥ ९ ॥ तदनन्तर उस स्थान से चमत्कार नगर को उद्देशकर व चमत्कारपुरको पाकर रविवार सप्तमीमें वहां आकर तदनन्तर स्नानकरके

पवित्र होकर सावधान होताहुआ वहां टिका जहांपर कि याज्ञवल्क्यजीसे कियेहुये सूर्यजी हैं ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर वैसेही परमश्रद्धासे संयुत वह नारियरफलोंको लेकरके एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको कर ॥ १२ ॥ तदनन्तर क्षुधासे सूखे या दुबले कण्ठवाला व थकाहुआ वह पुष्प ब्राह्मण सूर्य्याष्टकस्तोत्रोंमें जप करताहुआ उन सूर्यजीके आगे समीप बैठगया ॥ १३ ॥ तदनन्तर मण्डल ब्राह्मणादिकोंसे ॐकारस्वरमें प्राप्तहुआ व पद्मपञ्जरवाद्यों से ॐकारस्वरपै आश्रितभया ॥ १४ ॥ व पद्मपंजर वाद्यों और आदित्यव्रतसंज्ञादिक सामवेदवाले मन्त्रोंसे दृढ़भक्तिका भागी वह बड़ीभक्ति से अग्निहीको सेवताभया ॥ १५ ॥ वैसेही अथर्वणवेदसे

म्यांसूर्य्यवासरे ॥ १० ॥ तत्रागत्यततःस्नात्वाशुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ स्थितस्सन्तिष्ठतेतत्रयाज्ञवल्क्यकृतोरविः ॥ ११ ॥ ततःप्रदक्षिणांकृत्वाअष्टोत्तरशतन्तथा ॥ नारिकेराणिचादायश्रद्धयापरयायुतः ॥ १२ ॥ ततःक्षुत्क्षामकण्ठस्सपरिश्रान्तस्तदग्रतः ॥ उपविष्टोजपंकुर्वन्सूर्याष्टैस्स्तवनैस्तथा ॥ १३ ॥ मण्डलब्राह्मणाद्यैश्चतारस्वरमुपस्थितः ॥ पद्मपञ्जरवाद्यैश्चतारस्वरमुपाश्रितः ॥ १४ ॥ पद्मपञ्जरवाद्यैश्चवह्निमेवप्रभक्तितः ॥ आदित्यव्रतसंज्ञाद्यैःसामभिर्दृढभक्तिभाक् ॥ १५ ॥ क्षुरिकामण्डपूर्वैश्चतथैवाथर्वणोद्भवैः ॥ यावदाग्रयोर्कवारस्तुनैवतुष्टोदिवाकरः ॥ १६ ॥ पौर्णमासीदिनेप्राप्तेवैराग्यंपरमङ्गतः ॥ ततःपुष्पोविधायाथस्नानन्धौताम्बरःशुचिः ॥ १७ ॥ भूसाम्नासाध्यभूमिञ्चस्थण्डिलार्थन्द्विजोत्तमाः ॥ स्थण्डिलंहस्तमात्रञ्चस्थण्डिलेप्रत्यकल्पयत् ॥ १८ ॥ अग्निमीलेतिमन्त्रेणततोग्निंसविधायच ॥ तृणैःपरिस्तृणानीतिकृत्वोपस्तरणन्तथा ॥ १९ ॥ आब्रह्मन्निातिमन्त्रेणदत्त्वाब्रह्मासनन्ततः ॥ सत्रामणिरितिप्रोच्यसमिधस्स्थापनञ्चयत् ॥ २० ॥

उपजेहुये क्षुरिकामुण्डपूर्वादिक मन्त्रोंसे श्रेष्ठ सूर्य्यवार तक स्तुतिकिया परन्तु दिनकरजी न प्रसन्नहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! पौर्णमासी दिन प्राप्तहोने पर परमवैराग्यको प्राप्त पुष्पने स्नानकर इसके अनन्तर धोये वसन पहिन व पवित्र होकर (भूसाम्ना) इस मन्त्रसे चौतरेके लिये साध्यभूमि अनुष्ठानके योग्य पृथ्वीको बनाकर स्थंडिल (सस्कारितभूमि) मे हाथभर प्रमाणवाले यज्ञचौतरेको कल्पित किया ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर उस पुष्प द्विजने (अग्निमीले) इस मन्त्रसे अग्निको धरकर वैसेही (तृणैः परिस्तृणाणि) इस मन्त्रसे कुशोंको बिछाकर ॥ १९ ॥ तदनन्तर (आब्रह्मन्) इस मन्त्रसे ब्रह्माको आसन देकर (सत्रामणि) ऐसे मन्त्रको

प्रोक्षणीरासादयेतिप्रोक्षणंकृतवांस्ततः ॥ मन्त्राणामथसर्वेषामृगादीनांयथाक्रमम् ॥ २१ ॥ ततःप्रकल्पयामास ग्रहाणाम्प्रोक्षणञ्चैवसूर्य्यायत्वेतिचोच्चर हविस्थानेनिजन्तनुम् ॥ आयन्तुदेवतास्थानंसआचार्य्यविधानतः ॥ २२ ॥ आह्वयामासवह्निञ्च येतेशतेतिमन्त्रेणकृत्वाचैवसुदारुणम् ॥ २३ ॥ समिधासमिद्धसइतिसन्धायसमिधन्ततः ॥ कालीकरालिकाद्याश्चसप्तजिह्वाश्चयाःस्मृताः ॥ ततःक्षोभयदेवय ॥२४॥ एवंमन्त्रेणकृत्वातंसमिध्यज्वलनन्ततः ॥ लोमभ्यःस्वाहेति २५ ॥ तासामावाहनंकृत्वाततोदीप्तेहविर्भुजि ॥ जुहुयामासमांसानिस्वानिचोत्कृत्यशस्त्रतः ॥ २६ ॥ तावद्धृतस्तुसूर्य्येणस्वहस्तेनस विदिशोदिग्भ्योदत्त्वाततःपरम् ॥ अग्नयेस्विष्टकृतेतियावदात्मानमाक्षिपत् ॥ २७ ॥ तुष्टोहञ्चमहाभा मन्ततः ॥ पुष्पस्ससादरंतेनमाविप्रकुरुमाहसम् ॥ २८ ॥ नेदृग्घोमःकृतःक्वापिकदाचित्केनचिद्द्विज ॥ यदितुष्टोसिदेवेशयदिदेयोवरोम गब्रूहिकिङ्करवाणिते ॥ २९ ॥ अदेयमपिदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥ पुष्पउवाच ॥

कहकर जो समिधा स्थापनहै उसको किया ॥ २० ॥ तदनन्तर (प्रोक्षणीरासादय) इसमन्त्रसे प्रोक्षण किया इसके अनन्तर क्रमपूर्वक ऋकादिक समस्तमन्त्रोंको पढ़ा ॥ २१ ॥ तदनन्तर उसने आचार्यकी विधिसे (आयन्तुदेवतास्थानं) ऐसे मन्त्रसे हव्यके स्थानमें अपने शरीरको कल्पनाकिया ॥ २२ ॥ व (सूर्यायत्वा) इस मन्त्रका उच्चारण करतेहुये उसने ग्रहोंका प्रोक्षणकिया तदनन्तर (समिधासमिद्ध से) इस मन्त्रसे समिधाओंको धरकर ॥ २३ ॥ व (येतेशते) इस मन्त्रको उच्चारणकर भयंकर अग्निदेवको बुलाया तदनन्तर (क्षोभयदेवय) ऐसे मन्त्रको उच्चारणकर उन अग्निदेवजीको जलाकर उसके उपरान्त जोकाली करालिकादिक सातजिह्वायें कही हैं ॥ २४ । २५ ॥ उनका आवाहनकर तदनन्तर शस्त्रसे अपने मांसोंको काटकर जलतीहुई अग्निमें होम किया ॥२६॥ तदनन्तर (लोमभ्यःस्वाहा) इस मन्त्रसे विदिशाओं व दिशाओंके लिये देकर (अग्नयेस्विष्टकृते) इस मन्त्रसे जबतक अपनाको प्रक्षेपकिया ॥ २७ ॥ तबतक उन सूर्य्यजीने अपने हाथसे उसपुष्पको सबओर से पकड़लिया व आदरसमेत कहा कि हे विप्र ! साहसको मतकरो ॥ २८ ॥ हे द्विज ! कभी कहींपरभी किसीने ऐसा होम नहीं कियाहै हे महाभाग ! मैं प्रसन्नहूं कहिये तुम्हारे लिये क्या करूं ॥ २९ ॥ जो तुम्हारेमनमें वर्त्तमानहै उस न देनेयोग्य को भी मैं दूंगा पुष्प बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदेनेयोग्य

है ॥३०॥ तो हे विभो ! मेरे लिये दो गोलियोंको देना चाहिये क्योंकि मणिभद्रनामक बड़ा धनवान् वैदिशनगरमें है ॥३१॥ जोकि कुबेरअंगोंवाला वह क्षत्रियदेव वृद्धता व सिमटोंसे संयुत व ब्राह्मणों को न माननेवाला व बड़ानीच और कृपण व मनुष्योंका दूषकहै ॥ ३२ ॥ हे सुरनायक ! सदैव जब उन गोलियों में से एकको मैं मुखमें करूं तब जैसा नगर में मणिभद्र है वैसाही मेरारूप विकल्पता (तर्कणा) रहित होवै ॥ ३३ ॥ व हे सुरेश्वर ! जब फिर उसको लेकर मैं दूसरी गोलीको फेंकूं तब मेरा सहजरूप होवै ॥ ३४ ॥ व उसके घरमें और जो कुछ धन धान्यादिक है वह सब मुझको ज्ञातहोवे तथा प्रजाओं में देनेयोग्य होवै ॥ ३५ ॥ अथवा तुमसे बहुत

म ॥ ३० ॥ तद्देयंगुटिकायुग्मंमदर्थंयाम्यहंविभो ॥ वैदिशेनगरेचास्तिमणिभद्रोमहाधनी ॥ ३१ ॥ कुञ्जाङ्गःक्षत्रदेवस्सजरावलिसमन्वितः ॥ अब्रह्मण्योमहान्नीचःकीनाशोजनदूषकः ॥ ३२ ॥ तयोरेकांयदावक्त्रेसदाचैवकरोम्यहम् ॥ यादृशोनगरेचास्तिमणिभद्रःसुरेश्वर ॥ तदामेतादृशंरूपमविकल्पम्भवत्विति ॥ ३३ ॥ यदापुनर्गृहीत्वातांद्वितीयांप्रक्षिपाम्यहम् ॥ ततश्चसहजंरूपंममभूयात्सुरेश्वर ॥३४॥ अपरन्तस्ययत्किञ्चिद्धनधान्यादिकंगृहे॥तत्सर्वंविदितंमेस्यात्तथादेयंप्रजास्वपि ॥ ३५ ॥ किंवातेवहुनोक्तेनतस्यमित्राणिबान्धवाः ॥ व्यवहारास्तथासर्वेप्रकटास्स्युःसदैवहि ॥ ३६ ॥ नकश्चिज्जायतेतत्रविकल्पःकस्यचित्कचित् ॥ ममतस्यापियत्किञ्चित्सर्वंकृत्येषुसर्वदा ॥३७॥ भास्करउवाच ॥ गृहाणत्वंमहाभागगुटिकाद्वितयंशुभम् ॥ शुक्लंकृष्णञ्चवक्त्रस्थंविभेदजनन्महत् ॥ ३८ ॥ शुक्लयातस्यरूपञ्चतवनूनंभविष्यति ॥ कृष्णयापिपुनःपुष्पस्वंरूपञ्चभजिष्यसि ॥ ३९ ॥ पुष्पउवाच ॥ अपरंवदमेदेवसन्देहंहृदयेस्थितम् ॥ तत्त्वां

कहने से क्या है उसके मित्र,भाई, व समस्त व्यवहार सदैवही प्रकटहोवैं ॥ ३६ ॥ व सदैव समस्तकार्य्यों में मेरा जो कुछकार्य होवै उसमें किसीको व उस मणिभद्र कोभी कोई भ्रम न उत्पन्नहोवै ॥ ३७ ॥ भास्करजी बोले कि हे महाभाग ! मुखमें धरनेपर बड़े भेदको पैदाकरनेवाली व श्वेत तथा काली उत्तम दो गोलियों को तुम ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ हे पुष्प ! सफेदगोलीसे निश्चयकर तुम्हारा उसीका रूप होगा व फिर कालीसे भी अपने रूपको भजोगे ॥ ३९ ॥ पुष्प बोला कि हे देवदेवेश !

तुमसे पूछताहूं मुझसे कहिये ॥ ४० ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने सुनाहै कि रविवार सप्तमी
भरे हृदय में और सन्देह टिकीहै आपके यशको बढानेवाली उस सन्देहको उसी क्षणही तद्विद् ('उसे
में जो पुरुष तुम्हारी एकसौआठ प्रदक्षिणाओं को करता है ॥ ४१ ॥ फलहाथवाले उस मूर्खकेभी व पापी तथा समस्तदोषोंसे संयुत पुरुषको उसी क्षणही तद्विद् ('उसे
जाननेवाले) होतेहैं ॥ ४२ ॥ तीर्थयात्रामें तत्पर मुझ चतुर्वेदीको ऐसे होमकरने व सातरातोंके बीतने पर किसकारण प्रसन्न हुयेहो ॥ ४३ ॥ सूर्य्यजी बोले कि तुम
ने तामसभाव से यह सब किया उसीकारण तुमसे जो सब कियागया वह सम्पूर्ण वृथा होगया ॥४४॥ हे विप्रजी ! तामसभावपै टिकेहुये पुरुषोंसे जो कुछ कियाजाता

पृच्छामिदेवेशभवत्कीर्तिविवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ मयाश्रुतंसुरश्रेष्ठसप्तम्यांसूर्य्यवासरे ॥ यस्तेप्रदक्षिणानाञ्चकुर्य्यादष्टो
त्तरंशतम् ॥ ४१ ॥ तस्यत्वन्तत्क्षणादेवफलहस्तस्यतद्विदः ॥ मूर्खस्यापिचपापस्यसर्वदोषान्वितस्यच ॥ ४२ ॥ चतु
र्वेदस्यमेकस्मात्तीर्थयात्रापरस्यच ॥ सप्तरात्रेगतेतुष्टोहोमएवंविधेकृते ॥ ४३ ॥ सूर्य्यउवाच ॥ तामसेनतुभावेनत्वया
सर्वमिदंकृतम् ॥ तेनसर्वंवृथाजातन्त्वयासर्वञ्चयत्कृतम् ॥ ४४ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेविप्रतामसम्भावमाश्रितैः ॥ तत्सर्वं
जायतेऽव्यर्थंनकिंवेत्तिभवानिदम् ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वाततस्सूर्य्यस्तस्यगात्राण्युपस्पृशत् ॥ खण्डितानिस्वहस्तेन निरु
जानिकृतानिच ॥ ४६ ॥ अब्रवीच्चपुनःपुष्पं प्रसन्नवदनंस्थितम् ॥ अनेनैवविधानेन यःकृत्वाकुशकण्डिकाम् ॥ ४७ ॥
सौम्यभावंसमाश्रित्य समिद्भिश्चार्कसम्भवैः ॥ तिलाक्षतैर्विशेषेण होमंयस्तुसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ छन्दःऋषिसमोपेतंए
वंयावत्सहस्रकम् ॥ तस्यदास्याम्यहंहृत्स्थमधिकेभ्योधिकंफलम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥

है वह सब व्यर्थ होजाता है क्या आप इसको नहीं जानतेहो ॥४५॥ ऐसा कहकर तदनन्तर सूर्यनारायणजी उसके कटेहुये अंगोंको अपनेहाथ से स्पर्शकिया व नीरोग
किया ॥ ४६ ॥ व प्रसन्नमुखवाले और खडेहुये पुष्पसे फिर कहा कि जो पुरुष इसी विधिसे कुशकंडिकाको करके व सौम्यभावमें भलीभांति टिककर मदार से उपजीहुई
समिधाओं से व विशेषकर तिलअक्षतों से जो पुरुष छन्द, ऋषिसंयुक्त इसभांति हजारआहुतियों तक हवन करै मैं उसको हृदय में टिकेहुये अभिलाष को दूंगा व
अधिकआहुतियोंसे अधिकफलहै ॥ ४७ । ४८ । ४९ ॥ ऐसा कहकर हज़ारकिरणोंवाले सूर्यजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये व दीपके समान नहीं देखेगये कि किसमार्ग

से निकलगये ॥५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुष्पवरलाभोनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

दो० । माणिभद्रकी नारि जिमि लह्यो पुष्प द्विजनाह । इकसौबावन में सोई बरणत सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि जलको चुरानेवाले सूर्यजी से गोलीको पाकर व बहुतदिनों से भोजन को प्राप्तहोकर पुष्पभी वैदिशनगर को चला ॥ १ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वैदिशपुरमें जाकर प्रसन्नमनवाले उसपुष्पने उस सफेद गोलीको मुखमें किया ॥ २ ॥ व उसी क्षण वह उत्तमब्राह्मण मणिभद्र के समान हुआ इसके अनन्तर बाजार के मार्गको गया उसके उपरान्त उस घरमें

दीपवल्लक्षितोनैव केनमार्गेणनिर्गतः ॥५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पुष्पवरलाभोनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५१॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुष्पोपिगुटिकांलब्ध्वा भास्कराद्वारितस्करात् ॥ चिराद्भोजनमासाद्य प्रस्थितोवैदिशंप्रति ॥ १ ॥ ततो वैदिशमासाद्य सपुष्पोहृष्टमानसः ॥ शुक्लांतांगुटिकांवक्त्रे चकारद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ मणिभद्रसमोजातस्तत्क्षणादेवस द्विजः ॥ हट्टमार्गंगतस्सोथ तस्मिन्गत्वाथमन्दिरे ॥ ३ ॥ प्रविष्टस्सहसामध्ये प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ततश्चवारयामास तंषण्ढोद्वारमाश्रितः ॥ ४ ॥ तस्यदत्त्वाथवस्त्राणि पश्चात्षण्ढमुवाचसः ॥ षण्ढकश्चित्पुमानत्र सम्यग्वेषकरोहि सः ॥ ५ ॥ ममवेषंममासाद्य भ्रमतेसकलेपुरे ॥ साम्प्रतंममगेहंच लोभेनाथागमिष्यति ॥ ६ ॥ सतुकृत्रिमवेषेण निषेध्यस्त्वयाहिसः ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय द्वारदेशंसमाश्रितः ॥ ७ ॥ पुष्पोवाथाऽब्रवीद्भार्य्यां माहिकाख्यांततःपरम् ॥ मा

जाकर प्रसन्न अन्तःकरण से अचानक बीचमें पैठगया तदनन्तर द्वारपै बैठेहुये नपुंसकने उसको मनाकिया ॥३।४॥ इसके अनन्तर उसकेलिये वसनोंको देकर पश्चात् उस पुष्पने नपुंसकसे कहा कि हे षण्ढ ! कोई पुरुष यहां सब वेषोंको करता है ॥ ५ ॥ वह मेरे वेषको प्राप्त होकर समस्तनगरमें घूमता है इस समय लोभसे मेरे घरको आवैगा ॥ ६ ॥ बनावट के वेषसे वह तुम से रोंकनेयोग्य है वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वह द्वारस्थानपै भलीभांति बैठा ॥ ७ ॥ तदनन्तर पुष्पने माहिका

नामक स्त्रीसे कहा कि हे माहिके ! अपने नगरमें टिकेहुये वीरभद्रनामक तुम्हारे पिताको मैंने देखाहै जोकि दुःखसे विकल व मलिनवसनों से घिरे थे तदनन्तर क्रोधके कारण मुझसे ऐसे कठोरअाखरवाले वचन बोले ॥८।९॥ कि हे पापी ! धिक्कार है धिक्कारहै कि उस समय मुझ पिताको भी छलकर अत्यन्त रूपवती व उत्तम कटिवाली उस कन्याको तूने ब्याहाहै ॥ १० ॥ न तो कुछ उसके पिताको दिया और न कुछ उसीको दिया व हे पापात्मन् ! जैसी विधवानारी सदैव श्वेतवसन धारनेवाली होतीहैं वैसेही तुम धारण करातेहो व नष्टभोजन को देतेहो इसलिये तुम उस पिताको दशकरोड़ अशर्फियों को देवो और जो उसको रुचिपूर्वक होवै उस

हिकेऽद्यमयादृष्टस्त्वत्तातस्स्वपुरंस्थितः ॥ ८ ॥ वीरभद्रस्तुदुःखार्तो मलिनाम्बरसंवृतः ॥ अब्रवीच्चततःकोपान्मामेवंप रुषाक्षरम् ॥ ९ ॥ धिग्धिक्पापत्वयातीव कन्यारूपवतीतदा ॥ वञ्चयित्वापिपितरं मामूढासासुमध्यमा ॥ १० ॥ नद त्तंतत्पितुःकिञ्चिन्नचतस्याश्चकिञ्चन ॥ विधवायादृशीलोकेश्वेताम्बरधरासदा॥११॥ त्वंधारयसिपापात्मन्नष्टंभोज्यंप्रय च्छसि ॥ तस्मात्तस्यपितुर्देहि त्वन्तुस्वर्णायुतायुतम् ॥१२॥ भूषणंवाञ्छितंतस्या यत्त्वंदेहिरुचिपूर्वकम् ॥ येनसंधार्य्यमाणे न सानन्दापरमाङ्गना ॥ १३ ॥ निरानन्दायतोनारी नगर्भंधारयेत्स्फुटम् ॥ निस्सन्तानोयतोवंशस्स्वर्गादपिक्षितिंव्र जेत् ॥ १४ ॥ सपतिष्यत्यसन्दिग्धं कुलाङ्गारेणचत्वया ॥ सात्वमानयवस्त्राणि गृहमध्याच्छुभानिच ॥ १५ ॥ यानिद त्तानिभूपेन व्यवहारैस्तदामम ॥ यच्चदत्तंप्रसादेन मयाप्राप्तंत्वयासह ॥ १६ ॥ त्वंसंधारयगात्रेस्वे शीघ्रंरसवतींकुरु॥ भोजनार्थेवशीघ्रंच त्वयासार्द्धंकरोम्यहम्॥ १७ ॥ एकस्मिन्नपिपात्रेच तदादेशादसंशयम् ॥ सापिसर्वंतथाचक्रे यदुक्तं

चाहेहुये भूषणको देवो कि जिसके भलीभांति धारण करनेसे उत्तम स्त्री आनन्दसमेत होतीहै ॥ ११ । १२ । १३ ॥ क्योंकि यह प्रकटहै कि आनन्दहीन स्त्री गर्भको नहीं धारती है व जिसलिये कि सन्तानहीन वंश स्वर्गसे भी पृथ्वीतलको प्राप्तहोवै है ॥ १४ ॥ व कुलमें अंगाररूपी तुमसे वह वंश निरसन्देह गिरैगा इसलिये तुम घरके बीचसे उत्तमवसनों को लावो ॥ १५ ॥ जिनको कि उससमय भूपति ने मुझको व्यवहारों से दियाहै व प्रसन्नतासे जो दियाहै तुम समेत उसको मैंने पाया है ॥ १६ ॥ उन भूषणादिकों को तुम अपने शरीर में धारण करो व भोजनहीके लिये शीघ्रही रसोईकरो मैं एकही पात्रमें भी तुम्हारे साथ भोजन करूंगा उसकी

आज्ञासे प्रसन्न होतीहुई उसने भी वैसाही सब निस्सन्देह किया जोकि उस पुष्पने कहाथा॥ १७। १८॥ व भेदरहित चित्तसे भोजन आच्छादनहीको किया तदनन्तर
कामदेव से विकल पुष्पने मैथुनके लिये प्रारम्भ किया ॥ १९॥ इसी अवसर में भलीभांतिउत्कण्ठित माणिभद्र प्राप्तहुआ व तबतक बार २ घुडककर उस नपुंसकसे
रोंकागया ॥ २०॥ जबतक कि क्षुधासे दुबला व प्याससे विकल तथा भलीभांति उत्कण्ठित वह ब्यौहार से उठेहुये लालचके हेतु घरके बीचमें प्रवेशकरै ॥ २१॥
व जबतक उसने हठसे अपने घरमें प्रवेशकिया तबतक उस नपुंसक ने दण्डकाठसे मस्तक में मारा ॥ २२॥ इसके अनन्तर मूर्च्छा से अतिडूबाहुआ वह भूमि

तेनहर्षिता ॥ १८ ॥ भोजनाच्छादनंचैव निर्विकल्पेनचेतसा ॥ ततःकामातुरःपुष्पो मैथुनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥ एत
स्मिन्नन्तरेप्राप्तो माणिभद्रस्समुत्सुकः॥ निषिद्धस्तेनपण्डेन भर्त्स्ययित्वामुहुर्मुहुः॥ २०॥ क्षुत्क्षामस्सपिपासार्तो व्य
वहारोत्थलिप्सया ॥प्रवेशंकुरुतेयावद्गृहमध्येसमुत्सुकः ॥ २१॥ हठाद्यावत्प्रवेशंस चकारनिजमन्दिरे॥ तावच्चदण्ड
काष्ठेन मस्तकेतेनताडितः ॥ २२ ॥ अथसपतितोभूमौ मूर्च्छयासम्परिप्लुतः॥ कर्तव्यंनैवजानाति तत्प्रहारप्रपीडि
तः॥ २३॥ ततःकोलाहलोजातस्तस्यद्वारेगृहस्यच ॥ जनस्यसम्प्रयातस्य हाहाकारपरस्यच॥ २४ ॥ तच्छ्रुतन्तुज
नैःकैश्चिद्धिक्षण्ढकिमिदंकृतम् ॥ वृत्तिभङ्गकृतेचैवं अथत्वंव्यन्तरार्दितः॥ २५॥ इमामवस्थांयन्नीतस्सम्प्राप्नोषिनृ
पाद्वधम्॥ षण्डउवाच॥ नवृत्तिर्गर्हितातेन नाहंव्यन्तरपीडितः ॥ २६ ॥ माणिभद्रोनचैषस्यादेषवेषकरःपुमान्॥

में गिरपड़ा व उसकोप्रहार से व्यथितहो करने के योग्य वस्तुको न जानताथा॥ २३॥ तदनन्तर उस घरके द्वारपै भलीभांति गयेहुये व हाहाकारमें तत्पर पुरुषका
कोलाहल उत्पन्न हुआ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उसको कुछ मनुष्योंने सुना व कहा कि हे षण्ड ! धिक्कार है तुमने यह क्या किया जो तुम कि जीविका भंगके
लिये बाहरीपुरुषसे ऐसे दुःखित हुयेहो॥ २५॥ व जिसलिये इस दशाको प्राप्तकिया है उसी कारण राजासे मृत्युको भलीभांति पावोगे षण्डबोला कि उसने जीविका
को नहीं निन्दा कियाहै और मैं बाहरीजनसे नहीं पीडितहुआहूं॥ २६॥ व यह माणिभद्र नहीं है किन्तु यह वेषकारीपुरुष माणिभद्र के रूपको कर धन मांगने के

लिये भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ व हठसे पैठतेहुये इसको मैंने मस्तकमें ताडन किया और माणिभद्र घरके भीतर भोजन करके शय्यापै आश्रितहो ॥ २८ ॥ भली भांति स्थित है और आम्रेड याने दुबाराकहनेवाले स्थितवृत्तान्त को नहीं जानताहै तदनन्तर बाहर उस कोलाहल को सुनकर पुष्पभी ॥ २९ ॥ माणिभद्र के रूप से द्वारदेश पै भलीभांति आया व बोला कि वेषधारी यह कोई नीच धनही मांगने के लिये नित्यही मेरेरूप से आताहै और इस नपुंसक ने भी कल्याण को नहीं अ- नुष्ठान किया ॥ ३० । ३१ ॥ क्योंकि मांगने के लिये भलीभांति प्राप्तहुये इस पुरुष को किस कारण मस्तक में मारा इसी अवसर में वह भी सम्पूर्णता से चैतन्यताको

माणिभद्रवपुःकृत्वा सम्प्राप्तोयाचितुन्धनम् ॥२७॥ हठात्प्रविशमानस्तु समयामूर्द्धिताडितः ॥ माणिभद्रोगृहस्यान्त र्भुक्त्वाशयनमाश्रितः ॥ २८ ॥ सन्तिष्ठतेनजानाति वृत्तंचाम्रेडमास्थितम् ॥ ततःपुष्पोपितच्छ्रुत्वा तंचकोलाहलंब हिः ॥ २९ ॥ मणिभद्रस्यरूपेण द्वारदेशंसमागतः ॥ अब्रवीन्नित्यमभ्येतिममरूपेणचाधमः ॥ ३० ॥ एषवेषधरःक श्चिद्याचितुंधनमेवहि ॥ एतेनापिचषण्डेन नचभद्रमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ यत्कुतोयंहतोमूर्द्ध्नि याचितुंसमुपस्थितः ॥ एत स्मिन्नन्तरेसोपि चेतनांप्राप्यकृत्स्नशः ॥ ३२ ॥ वीक्ष्यतेपुरतोयावत्तावदात्मसमन्नरम् ॥ संवर्तमानमालोक्य ततोवच नमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ कश्चौरस्संप्रविष्टोमे ममरूपेणमन्दिरे ॥ भेदयित्वाचषण्डाख्यमेवंदत्त्वाचवाससी ॥ ३४ ॥ याव द्भूपगृहंगत्वा त्वांषण्डेनसमन्वितम् ॥ वधाययोजयाम्येवतावद्द्रुततरंव्रज ॥ ३५ ॥ पुष्पउवाच ॥ ममरूपंसमाधा यत्वमायातोगृहेमम ॥ शून्यंमत्वाततोज्ञातं त्वयामेगृहसंस्थितम् ॥ ३६ ॥ ततोनृपायदास्यामि वधार्थंचनसंशयः ॥

पाकर ॥ ३२ ॥ जबतक अगाडी देखै तबतक अपने समान पुरुषको आगे भलीभांति वर्त्तमान देखकर तदनन्तर वचन बोला ॥ ३३ ॥ कि षण्डनामक (नपुंसक) को इस प्रकार वसन देकर व भेदकरके मेरेघरमें मेरेरूपसे कौन चोर पैठाहै ॥ ३४ ॥ जबतक राजा के घर जाकर षण्डसमेत तुमको वधके लिये युक्तही करूं तबतक अति शीघ्रही जाओ ॥३५॥ पुष्प बोला कि शून्यमानकर मेरेरूपको धरकर तुम मेरे घरमें आयेहो उसीसे तुमने मेरेघरमें स्थितहुई वस्तुको जानलिया ॥ ३६ ॥

उसी कारण हे पापी ! मारने के लिये निस्सन्देह नृपको दूंगा नहीं तो शीघ्रही चलेजावो यदि जीनेकी इच्छा करते हो ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कह कर तदनन्तर आपस में भुजाओं के युद्धसे लड़तेहुये वे दोनों अन्यपुरुषोंसे बड़े क्लेशसे मनाकिये गये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर माणिभद्र के जे निजजन आये वे उन दोनोंके मध्यमें उत्तम माणिभद्र के भेदको नहीं जानते थे ॥ ३९ ॥ जोकि तारा के लिये बालि सुग्रीवके नाईं युद्ध करतेथे इस प्रकार क्रोधसे ताम्रके तुल्य लाल लोचनोंवाले व विवाद करतेहुये ॥ ४० ॥ राजद्वारपै प्राप्त होकर अपनेजनों से घिरेहुये वे दोनों खड़ेहुये व द्वारपै टिकेहुये दोनों राजा के लिये सूचित कियेगये व

नोचेद्गच्छद्रुतंपाप यदिजीवितुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाततस्तौतु बाहुयुद्धेनवैमिथः ॥ युध्यमानौनरै रन्यैः कृच्छ्रेणतुनिवारितौ ॥ ३८ ॥ ततस्तेस्वजनायेतु मणिभद्रस्यचागताः ॥ परंजानन्तिनतयोर्विशेषंमाणिभद्रक म् ॥ ३९ ॥ बालिसुग्रीवयोर्युद्धं तारार्थेयुध्यमानयोः ॥ एवंविवदमानौतु क्रोधताम्रायतेक्षणौ ॥ ४० ॥ राजद्वारंसमा साद्य स्थितौस्वजनसंवृतौ ॥ द्वारस्थौसूचितौराज्ञे सभातलमुपस्थितौ ॥ ४१ ॥ चौरश्चौरेतिजल्पन्तौ परस्परवधैषिणौ ॥ भूभुजावीक्षितौतौच द्विजौतुद्विजसत्तमाः ॥ ४२ ॥ नविशेषोस्तिनिश्चेतुं तथानैकोपिकायतः ॥ ततश्चव्यवहारेषु सम तीतेषुवैतदा ॥ ४३ ॥ पृष्टौगुह्येषुसर्वेषु प्रत्यक्षेषुविशेषतः ॥ वदतस्तौयथावृत्तं पृथक्पृथग्विस्थितम् ॥ ४४ ॥ ततस्तु स्वजनैस्सर्वै रेकंनीत्वाथवान्यतः ॥ पृष्टोगोत्रान्वयंसर्वं द्वितीयस्तुततःपरम् ॥ ४५ ॥ तेषामपितथासर्वं यथासम्यग्नि वेदितम् ॥ अथराजाबृहत्सेनस्सर्वास्तानिदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ पत्नीचानीयतामस्य माणिभद्रस्यवागृहात् ॥ निजका

सभातलमें समीप प्राप्तहुये ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! परस्परवधकीइच्छावाले व चोर २ ऐसा कहतेहुये उन दोनों द्विजोंको भूपाल ने देखा ॥ ४२ ॥ वैसेही शरीर से निश्चय करनेकेलिये एकभी भेद न था तदनन्तर उससमय बीतेहुये समस्तगुप्तव्यवहारों व विशेषकर प्रत्यक्षव्यवहारों में पूंछेगये व वे दोनो अलग २ स्थित हो जैसा वृत्तान्त था उसको कहते थे ॥ ४३ । ४४ ॥ तदनन्तर समस्तस्वजनों ने एकको अन्यत्र लेजाकर सब गोत्र व वंशको पूंछा तदनन्तर दूसरे से पूंछा ॥ ४५ ॥ उन सबोंसे भी जैसाथा वैसाही सब भलीभांति निवेदनकिया इसके अनन्तर बृहत्सेनराजाने उन सबोंसे यह कहा ॥ ४६ ॥ कि इस माणिभद्रकी स्त्री घरसे

लाईजावै वह अपने पतिके जाननेमें प्रमाण होगी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर नृपसे उपजेहुये पुरुषों ने जाकर उससे कहा कि आवो पतिको जानो तुम प्रमाण होगी ॥४८॥ तदनन्तर लज्जासे युक्त व छिपेहुये मुखवाली वह गई व आगे खड़ीहुई उससे राजाने कहा कि अपने पतिको भलीभांति जानो ॥ ४६ ॥ क्योंकि ये तुम्हारे स्वजन व हमलोग निश्चयको नहीं जानते हैं तदनन्तर उस उत्तमअंगोंवाली स्त्रीने अपने चित्तमें चिन्तवन किया ॥ ५० ॥ कि ईर्ष्यारूपीअग्निमें प्राप्त मैं सदैव माणिभद्रसे जलाईगई तदनन्तर पिताको छलकर ग्रहण कीगईहूं ॥५१॥ क्योंकि बहुतधनको कहकर पापीने कुछ नहीं दिया और मेरे दूसरेपुरुषने मृत्युलोकमें सुख किया ॥५२॥

न्तस्यविज्ञाने साप्रमाणंभविष्यति ॥ ४७ ॥ ततोगत्वाचसाप्रोक्ता पुरुषैर्नृपसम्भवैः ॥ आगच्छकान्तंजानीहि त्वंप्रमा
णंभविष्यसि ॥ ४८ ॥ ततस्साव्रीडयायुक्ताप्राच्छादितमुखागता ॥ नृपोग्रेसंस्थितांप्रोचे विद्धिसम्यग्निजंप्रियम् ॥४९॥
नवयंनिश्चयंविद्मो नचैतेस्वजनास्तव ॥ ततस्साचिन्तयामास निजचित्तेवराङ्गना ॥ ५० ॥ माणिभद्रेणदग्धाहं ई
र्ष्यावह्निगतानिशम् ॥ वञ्चयित्वातुपितरं गृहीतास्मिततः परम् ॥ ५१ ॥ नकिञ्चित्पाप्मनादत्तं जल्पयित्वाधनंबहु ॥
द्वितीयेनतुमेपुंसा मर्त्यलोकेकृतंसुखम् ॥ ५२ ॥ ददौवस्त्राणिरम्याणि तथैवाभरणानिच ॥ प्रदास्यतिचमेनूनं सुवर्णं
कथितंचयत् ॥ ५३ ॥ तद्गृह्णामिस्वहस्तेन माणिभद्रंद्वितीयकम् ॥ एवंनिश्चित्यमनसा दृष्ट्वावक्रंपरिप्लुतम् ॥
५४ ॥ प्रथमंमाणिभद्रंमा जहौचाथद्वितीयकम् ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं सर्वलोकस्यशृण्वतः ॥ ५५ ॥ अहंतातेनद
त्तास्य विवाहेचाग्निसन्निधौ ॥ द्वितीयोयंदुराचारो वेषकर्तासमागतः ॥ ५६ ॥ मांचप्रार्थयतेगुप्तं नानारत्नैःपृथग्विधैः ॥

व मनोहरवस्त्रों और वैसेही आभूषणोंको दिया व जो सुवर्ण कहाहै उसको मुझे निश्चयकर देवैगा ॥५३॥ इसलिये अपने हाथसे दूसरे माणिभद्रको ग्रहणकरूंगी ऐसा मनसे निश्चयकर व चञ्चलमुखको देखकर उसने पहले माणिभद्रको त्यागकिया व इसकेअनन्तर दूसरे को ग्रहण किया और समस्तमनुष्योंके सुनते हुये कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ कि विवाहमें अग्निके समीप पिताजी ने मुझे इसको दियाहै व दुष्टआचरणवाला, यह दूसरा वेषकारी आयाहै ॥ ५६ ॥ और अनेकभांतिवाले नाना

प्रकार के श्लोंके द्वारा चुपके से मेरी प्रार्थना करता है तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! क्रोधितहो राजाने उस दुष्टबुद्धिवाले माणिभद्रको शाखामें लटकाने की आज्ञा दिया इसके अनन्तर इसी अवसरमें वह बधिक (हिंसक) जनोंको समर्पण कियागया ॥ ५७ । ५८ ॥ उस समय हिंसकजनों से लियेजातेहुये उसने इन श्लोकों को पढ़ा कि निर्दयत्व, द्रोह तथा विशेषकर कुटिलता ॥ ५९ ॥ व अपवित्रता और निर्घृणता ये स्वभाव से पैदाहुये स्त्रियोंके दोष हैं ये स्त्रियां भीतर विषमयी और बाहरीभाग मे मनोहर होतीहैं ॥ ६० ॥ व सदैवही स्त्रियां गुञ्जाफल (घुंघुची) के समान आकारवाली होतीहैं और जिसशास्त्रको शुक्रजी जानते हैं व जिसको

ततस्तुपार्थिवःक्रुद्धस्तस्यशाखावलम्बनम् ॥ ५७ ॥ आदिदेशद्विजश्रेष्ठा माणिभद्रस्यदुर्मतेः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसोथ वधकानांसमर्पितः ॥ ५८ ॥ वधकैर्नीयमानस्तु श्लोकानेतांस्तदापठत् ॥ निर्दयत्वंतदाद्रोहंकुटिलत्वंविशेषतः ॥ ५९ ॥ अशौचंनिर्घृणत्वंच स्त्रीणांदोषास्स्वभावजाः ॥ अन्तर्विषमयाह्येता वहिर्भागेमनोरमाः ॥ ६० ॥ गुञ्जाफलसमाकारायोषितस्सर्वदैवहि ॥ उशनावेदयच्छास्त्रं यच्चवेदबृहस्पतिः ॥ ६१ ॥ मन्वादयस्तथान्येपि स्त्रीबुद्धेस्तन्नकिञ्चन ॥ पीयूषमधरेयासां देहेहालाहलंविषम् ॥ ६२ ॥ आस्वाद्यतेधरस्तेन हृदयंचप्रपीड्यते ॥ अरक्तकोयथारक्तो नरःकामीतथैवच ॥ ६३ ॥ हृतसारस्ततस्सोपि पादमूलेनिपात्यते ॥ संसारविषवृक्षस्य कुकर्मकुसुमस्यच ॥ ६४ ॥ नरकार्तिफलस्योक्ता मूलमेषानितम्बिनी ॥ कस्यनोजायतेत्रासो दृष्ट्वादूरादपिस्त्रियम् ॥ ६५ ॥ संसारभ्रमणंनारी प्रथमेपिसमाग

बृहस्पतिजी जानते हैं ॥ ६१ ॥ व मनुआदिक तथा अन्यभी जिस शास्त्रको जानते हैं वह स्त्रीकी बुद्धिके सामने कुछ नहीं है कि जिन स्त्रियोंके ओंठमें अमृत व शरीर में हालाहल विषहै ॥ ६२ ॥ उसी कारण ओंठ आस्वादन कियेजातेहैं व हृदय अति पीडितकियाजाता है व जैसे अनुरागहीन कामीपुरुष हरेहुये बल या सारांशवालाहोकर चरणो के समीप गिरायाजाता वैसेही जो अनुरागी कामीपुरुष चरणमूलमें निपातित होता है व नरक के दुःखरूपीफलवाले व कुकर्मरूपफूलवाले संसाररूपी विषवृक्ष की यह नितम्बिनी (उत्तमनितम्बवाली स्त्री) जड़ कहीगई है व दूरसे भी देखकर किसको डर नहीं होताहै अर्थात् सबही को होताहै ॥ ६३।६४।६५ ॥

स्त्री प्रथमसंयोगमें भी अग्नि की प्रदक्षिणारूपन्यायके बहानेहीसे संसार के भ्रमणको अतिशयकरके दिखलातीहै ॥ ६६ ॥ व ये स्त्रियां नित्यप्रति निर्घृणता व निर्दयता से विशेषकर जडता के भावसे तीनोंकुलों को दूषित करती हैं ॥ ६७ ॥ तीनों कुलोंको व घर, यश व श्वेतकियेहुये त्रिजयको दीपककी शिखा (लौ) के समान स्त्री अकार्य से काला करती है ॥ ६८ ॥ व धर्मरूपीवृक्ष को वाताली (आंधी) व चित्तरूपीकमलको चन्द्रमा की दीप्ति और कामरूपसमुद्र में ग्राहरूप व मोक्षमें पुष्टअर्गला बेडकनरूप नारी को किसने रचाहै ॥ ६९ ॥ सन्तानरूपी राशि या मायाका कारागृह व संसाररूपी भँवरकी बौर व स्वर्गमार्गके

मे ॥ वह्निप्रदक्षिणान्यायव्याजेनैवप्रदर्शयेत् ॥ ६६ ॥ एतास्तुनिर्दयत्वेन निर्घृणत्वेननित्यशः ॥ विशेषाज्जाड्यभावे नदूषयन्तिकुलत्रयम् ॥ ६७ ॥ कुलत्रयंगृहंकीर्तिं विजयंधवलीकृतम् ॥ कृष्णंकरोत्यकृत्येन नारीदीपशिखेवतु ॥ ६८ ॥ धर्म्मवृक्षस्यवाताली चित्तपद्मशशिप्रभा ॥ सृष्टाकामार्णवग्राहा केनमोक्षदृढार्गला ॥ ६९ ॥ कारासन्तानकूटस्यसंसारावर्तवागुरा ॥ स्वर्गमार्गदृढागर्ता पुंसांस्त्रीवेधसाकृता ॥ ७० ॥ वेधसाबन्धनंकिञ्चिन्नृणान्दातुमदृश्यत ॥ स्त्रीरूपेण ततःकोपि पाशोयंतुदृढीकृतः ॥ ७१ ॥ इत्येवंबहुधासोपिविललापसुदुःखितः ॥ स्त्रीचिन्तांबहुधाकृत्वाआत्मानंचाप्यगर्हयत् ॥ ७२ ॥ अहोमयापिज्ञातंचलब्धंसंसारजंफलम् ॥ नकदाचिन्मयादत्तं तृष्णाव्याकुलचेतसा ॥ ७३ ॥ ऐश्वर्य्येपि स्थितेभूरि नमयासुकृतंकृतम् ॥ कदाचिन्नैवदत्तंच नहुतंचहुताशने ॥ ७४ ॥ अथवासत्यमेवोक्तंकेनापिचमहात्मना ॥ कृपणेनसमोदाता नभूतोनभविष्यति ॥ ७५ ॥ अस्पृष्ट्वापिचवित्तंस्वं यःपरेभ्यःप्रयच्छति ॥ शरणंकिंप्रपन्नानि विषव

लिये बड़ापुष्ट गढ़ारूपस्त्रीको ब्रह्माने पुरुषों के लिये कियाहै ॥ ७० ॥ ब्रह्माने मनुष्योंको कुछ बन्धन देने के लिये देखा तदनन्तर स्त्रीरूपसे कोई भी अपूर्वफसरी को पुष्टकिया ॥ ७१ ॥ इसीप्रकार अति दुःखितहो उसने भी बहुत प्रकार से विलाप किया व बहुतभांतिसे स्त्रीकी चिन्ताकर अपनीभी निन्दा किया ॥ ७२ ॥ कि यह आश्चर्य है कि मैंनेभी जाना व संसारसे उपजेहुये फलको पाया परन्तु तृष्णाके कारण विकलचित्तसे मैंने कभी कुछ नहीं दिया ॥ ७३ ॥ व ऐश्वर्यके भी स्थित होनेपर मैंने बहुत से पुण्यको न किया व कभी न दिया और न अग्निमें हवन किया ॥७४॥ अथवा किसी महात्मानेभी सत्यही कहाहै कि कृपणके समान दानी न हुआहै न होगा ॥ ७५ ॥

जोकि नहीं छूकर भी अपने धनको अन्यजनों के लिये देताहै क्या शरण में प्राप्तहुये हैं व क्या विषके समान मारते हैं॥ ७६ ॥ जिस लिये कि कृपण धनों को न देताहै न भोग करता है व दान, भोग, नाश, द्रव्यकी तीन गतियां हैं जो पुरुष न देताहै न भोग करताहै उसकी तीसरी गति (नाश) होतीहै ॥ ७७ ॥ इस के अनन्तर बिन दानके ऐश्वर्य्यवाले धनीजन कृपणोंके अगाड़ी गिनेजाते हैं क्यों कि जो प्यासको नहीं नाश करता है वह समुद्रभी मरु (निर्जलदेश) ही माना गयाहै ॥ ७८ ॥ कृपणजनके समीप मानों इस प्रार्थना से धन प्राप्तहुये हैं कि हे कृपणनरो ! आयेहुये पुरुषोंके लिये तुमलोग मुझको प्राणोंकी नाईं मतदीजिये-

न्मारयन्तिकिम् ॥ ७६ ॥ नदीयन्तेनभुज्यन्ते कृपणेनधनानियत् ॥ दानंभोगोनाशस्तिस्रोगतयोभवन्तिवित्तस्य ॥ योनददातिनभुङ्क्तेतस्यतृतीयागतिर्भवति ॥ ७७ ॥ धनिनोथदानविभवागण्यन्तेधुरिदरिद्राणाम् ॥ योनहन्तिपिपासामतःसमुद्रोपिमरुरेव ॥ ७८ ॥ असूनिवमामुञ्चतयूयंप्रागतेभ्योनृपेभ्योभोकृपणाः ॥ कृपणजनसंनिकाशं प्रार्थनयेतीवप्राप्तानि ॥ ७९ ॥ नलभन्तेभोगान्भोक्तुं स्वकर्मणाकृपणाः ॥ मुखपाकःकिलभवतिद्राक्षापाकेबलिभुजाम् ॥ ८० ॥ नादातव्यंसतिविभवे सतिविभवेनभर्तव्याः ॥ यदिहमधुकराणांसञ्चितमर्थंहरन्त्यन्ये ॥ ८१ ॥ सञ्चितंद्विजवरेनदीयतेसंचितंनचक्रतौप्रयुज्यते ॥ तत्कदर्य्यपरिरक्षितंधनंचौरपार्थिवगृहेषुभुज्यते ॥ त्यागोगुणोवित्तवतांवित्तंत्यागवतांगुणः ॥ ८२ ॥ परस्परंवियुक्तौतु कुरुतश्चविडम्बनाम् ॥ किन्तयाक्रियतेलक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ॥ ८३ ॥ याचवे

गा ॥ ७९ ॥ कृपण अपने कर्मसे भोगोंको भोगने के लिये नहीं पातेहैं क्योंकि प्रसिद्धहै कि दाख (मुनक्का) के पाकमें कौवोंका मुख पकजाता ॥ ८० ॥ विभवहोने पर न देना चाहिये किन्तु देना चाहिये व ऐश्वर्य के होनेपर नहीं पालने के योग्य हैं किन्तु पालनेयोग्य हैं क्योंकि इस संसारमें मधुमक्खियों की इकट्ठा कीहुई वस्तुको औरनर हरलेते हैं ॥ ८१ ॥ जो इकट्ठाकीहुई द्रव्य द्विजोत्तमके लिये नहीं दीजाती है जो सञ्चितवस्तु यज्ञमें नहीं प्रयोग कीजातीहै कृपणसे सबओर रक्षा कियाहुआ वह धन चोरों व राजाओंके घरोंमें भोगाजाताहै धनवान् पुरुषों का दान गुणहै व दानियों का धन गुणहै ॥ ८२ ॥ वे दोनों याने दानी व धनी आपस में वियोग को

प्राप्तहोकर विडम्बना करते हैं उस लक्ष्मीसे क्या कियाजाता है जोकि केवल वधू (बहू) की नाईं है ॥ ८३ ॥ क्योंकि जो सामान्यावेश्याके समान राहियों से भी भोग कीजाती है वह रक्षकों से द्रव्यकी गरमी से सौतेली माके समान ग्रहण होवैहै ॥ ८४ ॥ इस प्रकार कृपणकी गरमीसे वह भूमि भलीभांति ध्यानकी जाती है व कृपणकी प्रसन्नता से शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ८५ ॥ क्योंकि उस कृपणकी गरमी से उस धनको मनुष्य इकट्ठा करता है इसभांति बहुतभांति के वचनों को बकते हुये माणिभद्रको राजासे आज्ञादियेहुये उन पुरुषों ने लेजाकर कठोरआखरवाले वचनों से निन्दाकिया व बहुत बकतेहुयेही उसको शाखावलम्बन किया

श्येवसामान्या पान्थिकैरपिभुज्यते ॥ अर्थोष्मणाभवेद्रक्षैर्विमातृग्रहिणायतः ॥८४॥ एवंसन्ध्यायतेभूमिःकृपणस्योष्मणाहिसा ॥ कृपणानांप्रसादेन शेषोधारयतेमहीम् ॥ ८५ ॥ यतस्तंसञ्चितंवित्तं कुर्वतेतस्यचोष्मणा ॥ एवंबहुविधावाचःप्रलपन्माणिभद्रकः ॥ ८६ ॥ नीत्वातैःपार्थिवोद्दिष्टैर्निन्दितंपरुषाक्षरम् ॥ बहुधाप्रलपश्चैवकृतःशाखावलम्बनः ॥८७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमणिभद्रोपाख्यानन्नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ पुष्पोपितांसमादाय माहिकाख्यांवराङ्गनाम् ॥ सतदाप्रययौहृष्टो माणिभद्रस्यसत्वरम् ॥ १ ॥ शङ्खतूर्यनिनादेन सर्वैस्तैःस्वजनैर्वृतः ॥ नकश्चित्तत्रसंभूतोतद्विकल्पसमुद्भवः ॥ २ ॥ मार्तण्डस्यप्रसादेन तथैवान्यस्य

याने डालमें लटका दिया ॥ ८६।८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमाणिभद्रोपाख्यानंनामद्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । द्विजन आदिकन दीन जिमि पुष्पअनेकन दान । इकसौतिरपनमें सोई करत चरित्र बखान ॥ सूतजीबोले कि पुष्पभी माणिभद्रकी उसमाहिकानामक उत्तम स्त्रीको भलीभांति लेकर प्रसन्नहो उस समय शीघ्रही चलागया ॥ १ ॥ जोकि शङ्ख तुरुही के शब्दसमेत उन समस्तनिजजनों से घिराथा वहां उसमाणिभद्रके भ्रमसे

उपजा कोई पुरुष न हुआ याने किसीने सन्देह न किया ॥ २ ॥ वैसेही सूर्य्यनारायण व अन्य किसीकी प्रसन्नतासे उसने भी जैसे अपने पितासे उत्पन्न हुआ होवै वैसेही घरमें प्राप्तहोकर ॥ ३ ॥ तदनन्तर बीचमें बैठकर समस्तभाइयोंको भलीभांति बुलाया व कहा कि निश्चयकर आजके दिनतक फिर मेरा सुख मेरेआश्रितहुआ ॥ ४ ॥ व चलतेहुये भी प्राण निजनारी के वचन से फिर स्थितहुये और इतनेही समयतक मेरे कृपणता भलीभांति स्थितथी ॥ ५ ॥ आज चञ्चललक्ष्मी को जानने के लिये उसीसे दूरमें त्यागकियाहै इसलिये बन्धुजनोंसमेत देवताओं व ब्राह्मणों के लिये सम्पूर्णता से भलीभांति बांटदूंगा यह सत्य से अपनी शपथ करताहूं ऐसा

कस्यचित् ॥ सोपिमन्दिरमासाद्य यथात्मपितृसम्भवम्॥ ३ ॥ उपविश्यततोमध्ये बन्धून्सर्वान्समाह्वयत् ॥ अद्य यावद्दिनेमह्यं पुनर्मेसुखमाश्रितम् ॥ ४ ॥ चलिताःपिपुनःप्राणाः स्वपत्न्यावाक्यतास्थिताः ॥ इयंतंचैवकालंमे कार्पण्यं चैवसंस्थितम् ॥ ५ ॥ ज्ञातुमद्यचलांलक्ष्मीः तेनत्यक्तंसुदूरतः ॥ तस्माद्बन्धुजनैस्सार्द्धं देवैर्विप्रैश्चकृत्स्नशः ॥ ६ ॥ संवि भक्तांकरिष्यामि सत्येनात्मानमालभे ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वान्समाहूयपृथक्पृथक् ॥ ७ ॥ स्वनामभिर्ददौवस्त्रभूषणा नियथार्हतः ॥ ततोवेदविदोविप्रांस्तान्ससमाहूयनामभिः ॥ ८ ॥ एकैकस्यददौवित्तंसवस्त्रंश्रद्धयान्वितः ॥ नटीसुन र्तकेभ्यश्च दीनान्धेभ्योविशेषतः ॥ ९ ॥ ददौभोज्यंसमिष्टान्नंसवस्त्रंचद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तुस्वयमेवान्नं बुभुजेभार्य्यया सह ॥ १० ॥ विसृज्यतान्समायातान्स्वजनान्ब्राह्मणैस्सह ॥ एवंतेनतदाप्राप्तं वित्तंचपरसम्भवम् ॥ ११ ॥ बुभुजेस्वेच्छ यानित्यं तदाभार्य्यासमन्वितः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेत्रिपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः॥१५३॥

कहकर तदनन्तर अलग २ सबोंको भलीभांति बुलाकर ॥ ६।७ ॥ व अपने नामों से यथायोग्य वसनों भूषणों को दिया तदनन्तर जो वेदके जाननेवाले ब्राह्मण थे उनको नामोंसे बुलाकर ॥ ८ ॥ श्रद्धासंयुत होतेहुये उसने एक २ को वसनसमेत द्रव्यको दिया व हे द्विजोत्तमो नटी व नाचनेवाले व विशेषकर दीन अन्धपुरुषों के लिये मिष्टान्नसमेत व वसनसमेत भोजनदिया तदनन्तर आयेहुये उन स्वजनोंको ब्राह्मणोंसमेत बिदाकर स्त्रीसमेत आपही अन्नको भोजन किया उससमय इसप्रकार पराये से उपजेहुये धनको उसने पायाहै ॥ ९।१०।११ ॥ व उससमय स्त्रीसमेत नित्यही निजइच्छासे भोग किया ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेत्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

दो० । निज पतिके ममरूप लखि पूंछ्यो है जिमि नारि । इकसौचौवन में कहत सोइ कथा सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि अन्यदिन प्राप्तहोने पर एकान्त में
रात्रिको बगल में सोतेहुये उससे स्त्रीने उसीक्षण चरणों को छूकर कहा ॥ १ ॥ किहे विभो ! जबतक जीव है तबतक निस्सन्देह तुम मेरे पतिहो इसलिये मुझसे क-
हिये क्योंकि तुम्हारे लिये मैंने उसको छोड़दिया ॥ २ ॥ यह क्या इन्द्रजाल (माया) है अथवा क्या तुम्हारेमन्त्रका साधनहै या यह देवताओंकी प्रसन्नता है जिस
से तुम वैसेही रूपपै स्थितहो ॥ ३ ॥ उससमय प्रथम भी दिन स्थित होनेपर मैंने तुमको जानाथा जब कि वसनों व वस्तु विभूषणों से भलीभांति भूषित हुईथी ॥४॥

सूतउवाच ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते रहस्युक्तस्सभार्य्यया ॥ रात्रौप्रसुप्तःपार्श्वेच पादौसंस्पृश्यतत्क्षणात् ॥ १ ॥ त्वं
तावन्ममभर्तासि यावज्जीवमसंशयम् ॥ तद्वदस्वविभोस्माकं त्वदर्थंसमयोज्झितः ॥ २ ॥ इन्द्रजालमिदंकिन्ते किंवाम
न्त्रप्रसाधनम् ॥ देवानांवाप्रसादोयं येनत्वंतादृशंस्थितः ॥ ३ ॥ मयात्वंहितदाज्ञातः प्रथमेपिदिनेस्थिते ॥ यदासम्भू
पितावस्त्रैस्तथावस्तुविभूषणैः ॥ ४ ॥ यद्यहंतववार्ताच सर्वांकपटसम्भवाम् ॥ कथयामिद्वितीयस्य तत्तेपादौशपाम्य
हम् ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोविहस्योच्चैस्सतदाब्राह्मणोत्तमाः ॥ तामालिङ्ग्यततःप्राह वचनंमधुराक्षरम् ॥ ६ ॥ सा
धुसाधुप्रियेज्ञातं सर्वंममविचेष्टितम् ॥ अहंचविप्रस्सुभगे माणिभद्रेणयःपुरा ॥ ७ ॥ विडम्बितोमुखंपश्यन्त्वदीयंचन्द्रस
न्निभम् ॥ चमत्कारपुरङ्गत्वा मयाचाराधितोरविः ॥ ८ ॥ तेनतुष्टेनमेदत्तं तद्रूपंज्ञानमेवच ॥ माहिकोवाच ॥ त्वदीय
दर्शनेनाहं कामदेववशङ्गता ॥ ९ ॥ तस्मादाराधयिष्यामितंगत्वादिननायकम् ॥ येनतेतादृशंभूयः प्रतुष्टोविदधातु

यदि कपटसे उपजीहुई तुम्हारी समस्तवार्ता को मैं दूसरेसे कहूं तो मैं तुम्हारे पावों की सौगन्ध करतीहूं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उससमय इसभांति
कहेहुये उसने उच्चप्रकार से विहँसकर उसको लिपटाकर तदनन्तर मीठेअक्षरोंवाले वचनको कहा ॥ ६ ॥ कि हे प्रिये ! बहुतअच्छा२ तूने मेरे समस्तकर्मको जाना
हे शुभगे ! मैं वही विप्रहूं जोकि पुरातनसमय चन्द्रमा के समान तुम्हारे मुखको देखताहुआ माणिभद्रसे विडम्बित हुआथा मैंने चमत्कारपुर को जाकर सूर्य्यका आ-
राधन कियाहै ॥ ७ । ८ ॥ प्रसन्न हुये उन सूर्य्यजीने मुझको उस रूप व ज्ञानही को दियाहै माहिका बोली कि तुम्हारेदर्शन से मैं कामदेवके वशमें प्राप्तहुईथी ॥ ९ ॥

इसलिये मैं जाकर उन सूर्य्यजी का आराधन करूँगी किं जिससे प्रसन्न हुये वे दिननायकजी फिर तुम्हारे वैसे रूपको करैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! इसही रूपसे व तरुणतासेभी क्या है क्योंकि मैं अहर्निश तुम्हारे उस प्रकारके रूपको भजतीहूं ॥११॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर पुष्पने मुखसे गोलीको भलीभांति लेकर उसके उपरांत अन्य गोलीको धरलिया उससमय वैसाही रूपहोगया जैसा कि पुरातनसमय उस ने देखाथा ॥ १२ ॥ तदनन्तर आश्चर्य के कारण रोमाञ्चसे संयुत व हर्षित होतीहुई उसने उसको लिपटकर सेवनकिया व इस गुप्तवचन को कहा ॥ १३ ॥ कि आज मेरा जन्म, यौवन व रूप निश्चयकर सफलहुआ क्योंकि हृदयमें टिकेहुये कामदेव

स ॥ १० ॥ किमेवैतेनरूपेण तारुण्येनापिचप्रभो ॥ यत्तेतथाविधंरूपं सम्भजामिदिवानिशम् ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तुगुटिकांपुष्पस्समादायमुखात्ततः ॥ दधौचान्यांतदाजातं यादृग्दृष्टंपुरातया ॥ १२ ॥ ततस्साहर्षिताचाहो पुल केनसमन्विता ॥ तमालिङ्गयाभजद्गूढं वाक्यमेतदुवाचह ॥ १३ ॥ अद्यमेसफलंजन्म यौवनंरूपमेवच ॥ यत्त्वंहृदि स्थितःकान्तो प्रलब्धोमदनोपमः ॥ १४ ॥ अद्यापिकालेयस्सम्यग्दृष्टोभक्त्यासुरेश्वरः ॥ नाशयेद्दिनजंपापं नराणां नात्रसंशयः ॥ १५ ॥ तथाचसप्तमीप्राप्ते सूर्य्यवारेद्विजोत्तमाः ॥ अष्टोत्तरशतंतस्य फलहस्तःकरोतियः ॥ १६ ॥ प्रद क्षिणांचसद्भक्त्या सलभेद्वाञ्छितंफलम् ॥ ऐहिकामुष्मिकमपि नित्यमेवप्रपश्यति ॥ १७ ॥ नपश्यतिचकष्टानि त स्मिन्नहनिकर्हिचित् ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ तस्यसंवत्सरंयावत्पीडानोजायतेक्वचित् ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेपुष्पादित्यमाहात्म्यन्नामचतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

के समान तुमको पति पाया ॥ १४ ॥ आजभी समयमें भक्तिसे भलीभांति देखेहुये जे सुरनायक (सूर्यजी) मनुष्यों के दिनमें उपजे हुये पापको नाश करतेहैं इसमें सन्देह नहींहै ॥ १५ ॥ वैसेही हे द्विजोत्तमो ! रविवारमें सप्तमी प्राप्तहोनेपर फलहाथोंवाला जोपुरुष उत्तमभक्ति से एकसौआठ प्रदक्षिणाओंको करताहै वह इसलोक व पर लोकवाले भी चाहेहुये फलको प्राप्तहोता है व जो सदैवही उसदिन उन सूर्य्यजी को देखता है वह कभी कष्टोंको नहीं देखताहै व चैत्रकी शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो पुरुष उन सूर्यजीको पूजता है उसके सालभर तक कहीं पीडा नहीं होती है ॥ १६ । १७ । १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४ ॥

दो० । जौन मास में सूर्य की जेहि विधि पूजाहोत । इकसौपचपन मध्यमहँ सोई चरित उदोत ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार शुद्धके लिये पुष्पने ब्राह्मणों के आगे उन किरणमाली सूर्यजीके कर्मको कहा ॥ १ ॥ व जिस भांति माणिभद्रका वधकिया व कपटसे उसकी स्त्रीको अपनी स्त्री बनायाथा उस अपने निन्दितकर्म को उनसे सम्पूर्णता से कहा ॥ २ ॥ तदनन्तर उस वृत्तान्त को सुनकर क्रोधसंयुत होतेहुये उन ब्राह्मणों ने बहुतेरे सीत्कारों को करके उससे कहा कि हे पापी! धिक्कारहै २ तू चलाजा ॥ ३ ॥ आत्मा (शरीर) के प्रमाणभर सुवर्ण लेकर तुम्हारी शुद्धि न होगी क्योंकि स्मृतिशास्त्रों के विशेषकर पढ़नेवाले जनोंने ब्राह्मण, क्षत्री,

सूतउवाच ॥ एवंशुद्धिकृतेतस्य भास्करस्यांशुमालिनः ॥ द्विजानांपुरतःपुष्पः कथयामासचेष्टितम् ॥ १ ॥ आत्मीयं कुत्सितंतेषां माणिभद्रवधोयथा ॥ विहितोविहितापत्नी तस्यव्याजेनकृत्स्नशः ॥ २ ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुस्तंश्रुत्वा कोपसंयुताः ॥ सीत्कारान्प्रचुरान्कृत्वा धिग्धिक्पापप्रगम्यताम् ॥ ३ ॥ आत्मीयंहेमचादाय नतेशुद्धिर्भविष्यति ॥ ब्रह्मघ्नोसियतःप्रोक्तास्त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः स्मृतिशास्त्रप्रपाठकैः ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तु दुःखितःपुष्पो बाष्पसम्पूरितेक्षणः ॥ ५ ॥ ब्रह्मस्थानाद्विनिर्गत्य प्ररुरोदसुदुःखितः ॥ रोरूयमाणमालोक्य तन्ततस्तेद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ दयांचमहतींकृत्वा ततःप्रोचुःपरस्परम् ॥ नानाविधानिशास्त्राणिस्मृतयश्चपृथग्विधाः ॥ ७ ॥ पुराणानिसमस्तानि वीक्षयध्वंसमाहिताः ॥ कुत्रचित्कापिदेवास्यकथञ्चिच्छुद्धिरस्तिचेत् ॥ ८ ॥ नतच्चविद्यतेशास्त्रं ब्रह्मस्थानेनवास्तियत् ॥ नस्मृतिर्नपुराणंच वेदान्तंवाद्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥ नचास्तिब्राह्मणःसोत्रसर्वज्ञप्रतिमश्चयः ॥ तस्माच्चिन्त

वैश्य इन तीनोंवर्णों को द्विजाति कहाहै इसलिये तुम ब्रह्मघाती हो सूतजी बोले कि तदनन्तर आंसुओं से परिपूरितलोचनोंवाले व दुःखित पुष्पने ॥ ४ । ५ ॥ ब्राह्मणोंके स्थानसे निकलकर अतिदुःखितहो रोदनकिया तदनन्तर अतिरोतेहुये उसपुष्पको देखकर उन द्विजोत्तमोंने ॥ ६ ॥ बड़ीदयाकर तदनन्तर आपस मे कहा कि सावधान होतेहुये तुमलोग अनेकप्रकारके शास्त्रों व नानाभांति की स्मृतियों और समस्तपुराणोंको देखो कहींपर किसीप्रकार यदि इसकी कोई शुद्धिहोवै तो कहिये ॥ ७ । ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहशास्त्र या स्मृति या पुराण अथवा वेदान्त नहीं है जो कि ब्राह्मणों के स्थानमें नहीं विद्यमान है ॥ ९ ॥ और यहां वह ब्राह्मण नहींहै जोकि

सर्वज्ञ के सदृशहै इसलिये उसको शीघ्रही चिन्तवन करो जोकि इसको शुद्धिदायक होवै ॥ १० ॥ व उसीको प्रमाणता में प्राप्तकर इसको शुद्धि दीजावै इसके अ-
नन्तर एक चण्डशर्मा ऐसेप्रसिद्धब्राह्मण ने कहा ॥ ११ ॥ कि मैंने इस स्कन्दपुराणमें पुरश्चरणसंहिता पढ़ी है जोकि सातवींपुरश्चरणसंज्ञक है ॥ १२ ॥ हे द्विजे-
न्द्रो ! उस पुरश्चरणसप्तमी को जो करता है उसका वह कियाहुआ पाप तिसपर भी जिसलिये जातारहता है उसी कारण वह निस्सन्देह जावै ॥ १३ ॥ इसलिये
यह पुरुष उस पुरश्चरणसप्तमीको करै व उसका वह भयङ्करपातक राजाही को होगा ॥१४॥ व दूसरे माणिभद्र को राजाके आदेशसे वधकों (जल्लादों) ने माराहै उसका

यतत्त्विप्रमस्यशुद्धिप्रदंहियत् ॥ १० ॥ तच्चप्रमाणतान्नीत्वा शुद्धिरस्यप्रदीयताम् ॥ अथैकोब्राह्मणःप्राह चण्डश
र्मेतिविश्रुतः ॥ ११ ॥ मयास्कन्दपुराणेस्मिन्पुरश्चरणसंहिता ॥ पठितासप्तमीयातु पुरश्चरणसंज्ञिता ॥ १२ ॥ तांयःक
रोतितत्पापं विहितन्तुयतोव्रजेत् ॥ सतथापिचविप्रेन्द्रास्ततोयातिनसंशयः ॥ १३ ॥ तस्मात्करोतुतामेष पुरश्चरणस
प्तमीम् ॥ तस्यतत्पातकंघोरं राज्ञश्चैवप्रजायते ॥ १४ ॥ अपरोभूभुजादेशान्माणिभद्रोनिपातितः ॥ वधकैस्तस्ययत्पा
पं तद्धिराज्ञःप्रजायते ॥ १५ ॥ राजाभूत्वानयःसम्यग्विचारयतिवादिनम् ॥ तस्यतत्पातकंघोरं राज्ञश्चैवप्रजायते ॥
१६ ॥ तथास्ययत्नात्तत्पापं जातन्नयदिपापकृत् ॥ सत्यक्तोब्राह्मणैर्व्यर्थं यःपुरावक्तिसन्निधौ ॥ १७ ॥ तस्माज्जनेनचा
नेन कृतेप्रतिकृतंकृतम् ॥ तस्मान्नचास्यदोषःस्याद्यतःप्रोक्तंमुनीश्वरैः ॥ १८ ॥ कृतेप्रतिकृतंकुर्य्याद्धिंसतेप्रतिहिंसन
म् ॥ नतत्रजायतेदोषो दुष्टेदुष्टमिवाचरेत् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यद्येवंवदविप्रास्य पुरश्चरणसंहिताम् ॥ सप्तमी

जो पापहै वह राजाको होगा ॥१५॥ जो राजा होकर भलीभांति वादी (मुद्दई) को नहीं विचारताहै उस राजाही को वह विकरालपाप होता है ॥ १६ ॥ वैसेही यत्नसे
वह पाप इसका नहींहुआ व यदि पापकारी नहीं है तो वह ब्राह्मणों से व्यर्थही त्याग कियागया जोकि पहले समीपमें कहताथा इसलिये इस मनुष्यने किये पै ब-
दला कियाहै उसीकारण इसको दोष नहींहै क्योंकि मुनीश्वरोंने कहाहै ॥१७।१८॥ कि कियेहुये पुरुषके लिये बदलाकरै व हिंसकजनके लिये प्रतिहिंसाकरै व दुष्टप्रति
दुष्टके नाईं आचरण करै उसमें दोष नहीं होताहै ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे द्विजेन्द्र विप्रजी ! यदि ऐसाहै तो आज इस बिचारेकी शुद्धिकेलिये सातवींपुरश्चरण

संहिताको कहिये ॥ २० ॥ सूतजी बोले हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर चण्डशर्मानामक ने उसके ऊपर दयाकरके इससे उस पुरश्चरणसप्तमीको कहा ॥ २१ ॥ त्र उस पुष्पने भी जैसे उसके मुखसे सुना वैसेही भलीभांति किया तदनन्तर एक वर्षके अन्तमें पापहीन होगया ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! पुरश्चरणसंज्ञा को कहिये कि किससमय के उपस्थित होनेपर किसविधि से करना चाहिये ॥२३॥ सूतजी बोले कि मैं कहूंगा जोकि पुरातनसमय भक्तिसे पूंछहुये मार्कण्डेयमुनिने रोहिताश्व भूपति से कहाहै ॥ २४ ॥ जो मार्कण्डेयजी द्विज महामुनि सातकल्पकेस्मरणवाले थे उनसे हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने पूछाहै ॥ २५ ॥ रोहिताश्व

मद्यविप्रेन्द्र वराकस्यविशुद्धये ॥ २० ॥ सूतउवाच ॥ अथास्यकथयामास सप्तमींतांद्विजोत्तमाः ॥ चण्डशर्म्माभिधानस्तुकृत्वातस्योपरिकृपाम् ॥ २१ ॥ तेनापिविहितासम्यग्यथावत्तन्मुखाच्छ्रुता ॥ ततःसंवत्सरस्यान्ते विपाप्मासमपद्यत ॥ २२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ पुरश्चरणसंज्ञान्तु सप्तमींवदसूतज ॥ विधिनाकेनकर्तव्या कस्मिन्कालउपस्थिते ॥२३॥ सूतउवाच ॥ अहंचकीर्तयिष्यामिरोहिताश्वस्यभूपतेः ॥ मार्कण्डेनपुराप्रोक्ता पृच्छ्यमानेनभक्तितः ॥ २४ ॥ सप्तकल्पस्मरोविप्रो मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ रोहिताश्वेनपृष्टःसहरिश्चन्द्रात्मजेनच ॥ २५ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यत्पापंकुरुतेनरः ॥ उपायंतस्यनाशाय कञ्चिन्मेवदसन्मुने ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मानसंवाचिकंचैव कायजंचतृतीयकम् ॥ त्रिविधंपातकंलोके नराणामिहजायते ॥ २७ ॥ तानहंतेप्रवक्ष्यामि शृणुष्वनृपसत्तम ॥ मानसंचैवयत्पापं नराणामिहजायते ॥ २८ ॥ पश्चात्तापंकृतेतस्य तत्क्षणादेवनश्यति ॥ वाचिकंकायजंपापं नाभुक्त्वातत्प्रणश्यति ॥ २९ ॥ पुरश्चरणबाह्यन्तु सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ निवेद्यब्राह्मणेन्द्राणां तदुक्तंचसमाचरेत् ॥ ३० ॥

बोले कि हे उत्तममुने ! मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे भी जिस पापको करताहै उसके नाशके लिये मुझसे किसी उपाय को कहिये ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इस संसारमें मानस, वाचिक व तीसरा कायिक तीन प्रकारका पापहोता है ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम ! उनको मैं तुमसे कहूंगा सुनिये कि यहां जो मानसही पाप मनुष्यों को होताहै ॥ २८ ॥ उसका वह पाप पश्चात्ताप करने से उसीक्षणही नष्ट होजाताहै और वाचिक व कायिक जो पापहै वह बिन भोगकरे नहीं नष्टहोताहै ॥ २९ ॥

व पुरश्चरण से बाह्य (नाश) होनेयोग्य है मैंने यह सत्य कहाहै कि ब्राह्मणेन्द्रों के लिये निवेदनकर और उनसे कहेहुये प्रायश्चित्त को यथोक्त करै तदनन्दर शुद्धि को पावैहै अथवा राजा जानकर उसका दण्ड करताहै ॥ ३० । ३१ ॥ तो उससे शुद्धिको प्राप्तहोता है यद्यपि वह पातकी होवै और जो लज्जाके कारण किसीप्रकार द्विजेन्द्रों से नहीं कहता है ॥ ३२ ॥ और न राजा जानता है जोकि शरीर में टिकेहुये पातकको नाशकरै उसके दण्डकर्ता आपही वैवस्वत यमराज होतेहैं ॥ ३३ ॥ इसलिये पापके उपाय को विशेषकर जानतेहुये पुरुष को ब्राह्मणों से कहेहुये यथोक्तप्रायश्चित्त को सबउपाय से करना चाहिये ॥ ३४ ॥ रोहिताश्व बोला कि

प्रायश्चित्तंयथोक्तंतु ततःशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अथवापार्थिवोज्ञात्वा कुरुतेतस्यनिग्रहम् ॥ ३१ ॥ तेनशुद्धिमवाप्नोति यद्यपिस्यात्सकिल्बिषी ॥ लज्जयाब्राह्मणेन्द्राणां योनब्रूतेकथञ्चन ॥३२॥ नचराजाविजानाति शरीरस्थंचयोनयेत्॥ तस्यनिग्रहकर्ताच स्वयंवैवस्वतोयमः ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापोपायंविजानता ॥ प्रायश्चित्तंतुकर्तव्यं यथोक्तं ब्राह्मणोदितम् ॥ ३४ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ सर्वेषामेवपापानां विहितानांमुनीश्वर ॥ किंचिद्व्रतंसमाचक्ष्व दानंवाहोममेवच ॥ ३५ ॥ विपाप्माजायतेतेन पुरश्चरणवर्जितम् ॥ नित्यंपापानिकुरुते नरःसूक्ष्माणिसर्वतः ॥ ३६ ॥ प्रायश्चित्तानिसर्वेषां कर्तुंशक्तिःकथम्भवेत् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अस्तिराजन्व्रतंपुण्यं पुरश्चरणसंज्ञितम् ॥ ३७ ॥ पुरश्चरणसंज्ञातुसप्तमीसूर्य्यवल्लभा ॥ ययासंकृतयाराजन्कायस्थोयमसम्भवः ॥ ३८ ॥ विचित्रोमार्जयेत्पापं कृतंजन्मनिसञ्चितम् ॥ तस्मात्कुरुमहाराज तथासुवचनंमम ॥ ३९ ॥ येनवामुच्यसेपापात्सर्वस्मात्कायसम्भवात् ॥ रोहिताश्वउवाच ॥

हे मुनिनाथ ! कियेहुये समस्तहीपापोंके लिये किसी व्रत या दान या होमही को भलीभांति कहिये ॥ ३५ ॥ कि उससे पुरश्चरणके विना अपापी होजावै मनुष्य सब ओर नित्यही सूक्ष्मपापों को करता है ॥ ३६ ॥ और सबोंके प्रायश्चित्तों को करने के लिये कैसे शक्तिहोवैहै मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पुरश्चरणनामक पुण्यदायकव्रत है ॥ ३७ ॥ सूर्य्यकी प्यारी सातवींपुरश्चरणसंज्ञा है हे राजन् ! जिसको भलीभांति करनेसे यमराज को उत्पन्नकरनेवाले व शरीरमें टिकेहुये विचित्र सूर्यजी जन्ममे इकट्ठा कियेहुये पातकको नाश करतेहैं इस लिये हे महाराज ! वैसेही मेरे उत्तमवचन को करो ॥ ३८ । ३९ ॥ कि जिससे शरीर से उपजेहुये समस्तपातकसे

छूटजावोगे रोहिताश्व बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ ! सातवींपुरश्चरणसंज्ञाको किससमय व किस विधिसे करनाचाहिये उसको मुझसे कहिये मार्कण्डेयजी बोले कि माघमास के शुक्लपक्षमें सूर्यको मकरराशि पै स्थितहोनेपर ॥ ४०।४१ ॥ रविवारसमेत सप्तमीतिथिमें इस व्रतको करै उस दिन पाषण्डियों व चाण्डालोंके साथ न संभाषण करै ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम, नृप ! प्रातःकाल दतून को भक्षणकर पश्चात् इसमन्त्रसे नियम करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कि हे दिननायक ! पुरश्चरण करने के योग्य सप्तमी में मैं उपास करूंगा आज तुम मेरे रक्षकहो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे महावीर तीसरेपहर नहाकर धोयेवसन पहन, पवित्रहो भक्तिकेद्वारा दिननायकसे उपजी हुई मूर्त्तिको लाले-

पुरश्चरणसंज्ञातु सप्तमीमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ विधिनाकेनकर्तव्या कस्मिन्कालेवदस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ माघमाससितेपक्षे मकरस्थेदिवाकरे ॥ ४१ ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यांव्रतमेतत्समाचरेत् ॥ पाषण्डैःपतितैस्सार्द्धं तस्मिन्नहनिनालपेत् ॥ ४२ ॥ भक्षयित्वान्नृपश्रेष्ठ प्रभातेदन्तधावनम् ॥ मन्त्रेणानेनपश्चाच्च कर्तव्योनियमोनृप ॥ ४३ ॥ पुरश्चरणकृत्यायां सप्तम्यांदिवसाधिप ॥ उपवासंकरिष्यामि अद्यत्वंशरणंमम ॥ ४४ ॥ ततोपराह्णसमये स्नात्वाधौताम्बरश्शुचिः ॥ प्रतिमांपूजयेद्भक्त्या दिनाधिपसमुद्भवाम् ॥ ४५ ॥ रक्तैःपुष्पैर्महावीर पादार्घंपूजयेत्ततः ॥ पतङ्गायनमःपादौ मार्तण्डायेतिजानुनी ॥ ४६ ॥ गुह्यंदिवसनाथायनाभ्यांद्वादशमूर्तये ॥ बाहूचपद्महस्ताय हृदयंतीक्ष्णदीधितेः ॥ ४७ ॥ कण्ठंपद्मदलाभाय शिरस्तेजोमयायच ॥ एवंसम्पूज्यविधिवद्धूपंकर्पूरमाददेत् ॥ ४८ ॥ गुडौदनंचनैवेद्यं रक्तवस्त्राभिवेष्टितम् ॥ रक्तसूत्रेणदीपंच तथैवारार्तिकंनृप ॥ ४९ ॥ शङ्खेतोयंसमादाय रक्तचन्दनमिश्रितम् ॥ सफलंचैवतत्कृत्वा

फूलों से पूजै उसके उपरान्त पादार्घपूजन करै (पतङ्गायनमः) इसमन्त्रसे चरणोंको व (मार्तण्डायनमः) इसमन्त्रसे घुटुरोंको ॥ ४५।४६ ॥ व (दिवसनाथायनमः) इस मन्त्रसे गुह्यइन्द्रिय को व (द्वादशमूर्त्तयेनमः) इस मन्त्रसे नाभिमें पूजै (पद्महस्तायनमः) इसमन्त्रसे बाहुओं को व (तीक्ष्णदीधितयेनमः) इसमंत्रसे हृदयको पूजै ॥ ४७ ॥ (पद्मदलाभायनमः) इसमन्त्रसे कण्ठको पूजनकरै (तेजोमयायनमः) इसमंत्रसे मस्तक को पूजै इसप्रकार भलीभांति विधिपूर्वक पूजनकर कपूरकी धूपदेवै ॥ ४८ ॥ लालवस्त्र से सबओर लपेटकर गुडभात की नैवेद्य देवै व हे नृप! लालसूतसेदीप और वैसेही आरती करै ॥ ४९ ॥ व शङ्खमें लालचन्दन से मिलेहुये जलको लेकर

व सफल करके तदनन्तर अर्घदेवै ॥ ५० ॥ कि हे देव ! मैंने अज्ञान या ज्ञानसेभी जो कुछ कियाहै उसके प्रायश्चित्त के लिये मेरे अर्घको अवश्यकर ग्रहण कीजिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से ब्राह्मण को भलीभांति पूजन करै और उसके लिये भोजन व अपनी शक्तिसे दक्षिणाको देकर ॥ ५२ ॥ शरीरशुचिके लिये पञ्चगव्यको भोजनकरै व जुड़ेहाथोंवाला होकर सूर्यजीको भलीभांति देखै ॥ ५३ ॥ व दिनकरको प्रणाम करताहुआ इसमन्त्रको भलीभांति उच्चारणकरै कि हे देव ! इसव्रतको मैंने तुम्हारे अगाड़ी ग्रहण कियाहै ॥ ५४ ॥ हे भास्करजी ! तुम्हारीप्रसन्नतासे वह व्रत निर्विघ्नतासे सिद्धिको प्राप्तहोवै तदनन्तर हे नृपोत्तम ! फागुन

अर्घंदद्यात्ततःपरम् ॥ ५० ॥ यत्कृतन्तुमयाकिञ्चिज् ज्ञानादज्ञानतोपिवा ॥ प्रायश्चित्तकृतेदेव ममार्घश्चप्रगृह्यताम् ॥ ५१ ॥ ततस्सम्पूजयेद्विप्रं गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ दत्त्वातुभोजनंतस्मै दक्षिणांचस्वशक्तितः ॥ ५२ ॥ प्राशनंकायशुद्ध्यर्थंपञ्चगव्यंसमाचरेत् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा समुद्वीक्षेद्दिवाकरम् ॥ ५३ ॥ दिवाकरंनतश्चैव मन्त्रमेतंसमुच्चरेत् ॥ इदं व्रतंमयादेव गृहीतंपुरतस्तव ॥ ५४ ॥ अविघ्नंसिद्धिमायातुप्रसादात्तवभास्कर ॥ ततश्चफाल्गुनेमासि सम्प्राप्तेनृपसत्तम ॥ ५५ ॥ कुन्देनपूजयेद्देवं तेनैवविधिनाततः ॥ धूपञ्चगुग्गुलंदद्यान्नैवेद्यंभक्तमेवच ॥ ५६ ॥ प्राशनंगोमयंप्रोक्तं सर्वपापविशुद्धये ॥ चैत्रेमासितुसम्प्राप्ते सुरभ्यापूजयेद्धरिम् ॥ ५७ ॥ नैवेद्येगुडकंप्रोक्तं धूपंसर्ज्जरसोद्भवम् ॥ कुशोदकंचसंप्राश्य कायशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ वैशाखेकिंशुकैःपूजांयथावच्चघृताशनः ॥ नैवेद्येस्मरसालान्तु धूपंचविनिवेदयेत ॥ ५९ ॥ दधिप्राशनमेवात्र कर्तव्यंकायशुद्धये ॥ ज्येष्ठेपाटलयापूजा विधातव्यारवेर्नृप ॥ ६० ॥ नैवेद्येसक्तवःप्रो

महीनेको भलीभांति प्राप्तहोने पर ॥ ५५ ॥ उसी विधिसे सूर्य देवको कुन्दके फूलोंसे पूजै तदनन्तर गुग्गुलकी धूपदेवै व भातही की नैवेद्यदेवै ॥५६॥ व समस्तपापोंकी विशुद्धिके लिये गोमयका प्राशन (भोजन) कहाहै और चैत्रमहीनेको भलीभाति प्राप्तहोनेपर सुरभी (धेनु) समेत सूर्य्यजी को पूजै ॥ ५७ ॥ व नैवेद्यमें गुडकहा है ॥ व सर्जरस से उपजीहुई (राल) धूप देनाचाहिये व कुशके जलको भलीभांतिभोजनकर शरीरकी शुद्धिको पावै ॥ ५८ ॥ व वैशाखमें घृतका भोजनकरताहुआ टेशू के फूलोंसे यथायोग्य पूजनकरै व नैवेद्यमें सिखरनिदेवै व धूपको निवेदनकरै ॥५९॥ व इस महीने में शरीर शुद्धिके लिये दही भोजन करना चाहिये व हे नृप ! जेठमें

पांडुरसे सूर्यका पूजन करना चाहिये ॥ ६० ॥ और नैवेद्यमें सतुवा कहे हैं व समस्तपातकों से विशुद्धिके लिये भोजन कपिलाधेनुका घृत कहागया है ॥ ६१ ॥ हे नृप! आषाढमें अगस्त्यके फूलोंसे सूर्य्यका पूजनकरै नैवेद्य में खीर कहीहै व भोजन में घीसमेत शहद देवै ॥ ६२ ॥ व परमश्रद्धासे संयुतहो अगुरुहीको धूपदेवै व सावन में तीक्ष्णकिरणोंवाले सूर्यका कदम्बके फूलसे पूजनकरै ॥ ६३ ॥ व नैवेद्यमें लड्डुओं को देवै और नहीं व धूपदेवै और गऊके सींगका जल लेकर उसीक्षण पापसे छूट जाताहै ॥ ६४ ॥ व भादों में चमेली से पूजना चाहिये नैवेद्य में क्षीर (दूध) देवै और सर्जसे उपजीहुई (राल) धूपदेवै, भोजन दूधही चाहिये ॥ ६५ ॥ कुंवारमें

क्तः प्राशनंचघृतंस्मृतम् ॥ कपिलायामहावीर सर्वपापविशुद्धये ॥ ६१ ॥ आषाढेमुनिपुष्पैश्च पूजयेद्भास्करंनृप ॥ नैवेद्ये क्षीरिकाप्रोक्ता प्राशनेमधुसर्पिषा ॥ ६२ ॥ धूपंचैवागुरुंदद्याच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ श्रावणेतुकदम्बेन पूजनंतीक्ष्णदीधितेः ॥ ६३ ॥ नैवेद्येमोदकांश्चैव नापरंधूपमाददेत् ॥ गोशृङ्गोदकमादायसद्यःपापात्प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥ जात्याभाद्रपदेपूज्यं क्षीरंनैवेद्यमाददेत् ॥ धूपंसर्जसमुद्भूतं प्राशनंक्षीरमेवच ॥ ६५ ॥ आश्विनेकमलैःपूज्यं नैवेद्येघृतपूरिकाः ॥ धूपंकुङ्कुमजंप्रोक्तं कर्पूरंप्राशनंस्मृतम् ॥ ६६ ॥ तुलस्याकार्त्तिकेपूजा भास्करस्यप्रकीर्तिता ॥ नैवेद्येचैवखण्डाख्यं धूपं कौसुम्भिकंनृप ॥ ६७ ॥ प्राशनंचलवङ्गाख्यं सर्वपापविशोधनम् ॥ भृङ्गराजेनपूजाच सौम्येमासिसमाचरेत् ॥ ६८ ॥ नैवेद्येपूपकादेया धूपंगुडसमुद्भवम् ॥ कङ्कोलप्राशनंचैव भास्करस्यप्रतुष्टये ॥ ६९ ॥ शतपत्रिकयापूजा पौषेमासिरवेः स्मृता ॥ सघृतंधूपमादिष्टं नैवेद्येशष्कुलीयकाः ॥ ७० ॥ प्राशनंपूर्वमुक्तानि सर्वाण्येवसमाचरेत् ॥ समाप्तौचततोदद्यात्

कमलोंसे पूजना चाहिये व नैवेद्य में घृतकी पूरियां और केसरि से उत्पन्नहुई धूप कही है भोजन कपूर कहाहै ॥ ६६ ॥ व हे नृप! कार्त्तिकमें तुलसी से सूर्य्यनारायण की पूजा कही है व नैवेद्य में खांडनामक व धूपमें कुसुमके पुष्पादि कहे हैं ॥ ६७ ॥ व समस्तपापोंकोनाशनेवाला लवंगका भोजन कहागया है व अगहन महीने में भगरा से पूजनकरै ॥ ६८ ॥ व नैवेद्यमें पुवा देना चाहिये व गुडसे उपजीहुई धूप देना चाहिये और सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये शीतलचीनी भोजनके योग्यहै ॥ ६९ ॥ व पौषमें सेवती या गुलाबसे सूर्यका पूजन कहाहै, घृतसमेत धूप कहीहै व नैवेद्य में पूरियां कहीहैं ॥ ७० ॥ व पहले कहीहुई सबही वस्तुओंको भोजनकरै तदनन्तर हे नृपोत्तम

समाप्ति में समस्तपापोंकी विशुद्धिके लिये घरसे उत्पन्नहुये छठेभागको ब्राह्मणके लिये देवै तदनन्तर हे नृपोत्तम ! अपनी शक्तिसे इष्टमित्रादिकों को भोजन कराना चाहिये॥७१।७२॥जो सूर्यसे उपजीहुई सप्तमीको यहां करताहै वह समस्तपातकों से विशेषकर छूटकरके निर्मलताको प्राप्तहोताहै॥७३॥ब्राह्मणबोले कि हे महाभाग ! पुरातन समय इसप्रकार मार्कण्डेय महात्माने उस सप्तमीको रोहिताश्वके लिये कहाहै इसलिये तुम भी उसको करो ॥ ७४ ॥ कि जिससे तुम्हारा भलीभांति पुरश्चरणही होजावै सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर द्विजोत्तम पुष्पने भी ॥ ७५ ॥ प्रसन्न होकर वैसेही उस सप्तमी को किया कि जैसे उसने निवेदन कियाथा और गृहमें

षड्भागंगृहसम्भवम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणायनृपश्रेष्ठ सर्वपापविशुद्धये ॥ इष्टभोज्यंततःकार्य्यं स्वशक्त्यापार्थिवोत्तम ॥ ७२ ॥ एवन्तुकुरुतेयोत्र सप्तमींभास्करोद्भवाम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो निर्मलत्वंसगच्छति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोवाच ॥ एवं पुरावैकथिता रोहिताश्वायधीमते ॥ मार्कण्डेनमहाभाग तस्मात्त्वमपिताङ्कुरु ॥ ७४ ॥ येनसंजायतेसम्यक् पुरश्चरणमेवते ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुष्पोपिद्विजसत्तमः ॥ ७५ ॥ ताञ्चक्रेसप्तमींहृष्टो यथातेननिवेदिता ॥ षड्भागं प्रददौतस्मै ब्राह्मणायमहात्मने ॥ ७६ ॥ स्ववित्तस्यगृहस्थस्यजातरूप्यस्यकृत्स्नशः ॥ सोपिजग्राहतद्वित्तं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७७ ॥ सुवर्णमपिरत्नानि संख्ययापरिवर्ज्जितम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुरश्चरणकथनसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथतेनागरास्सर्वेदृष्ट्वातंवित्तभाजनम् ॥ एकेनापिगृहीतव्यंसर्वानस्मान्निरस्यच ॥ १ ॥ ततस्तेशपथं

स्थितहुए सब सुवर्णवाले अपने धनके छठेभागको उस महात्मा ब्राह्मणकेलिये दिया और उसने भी प्रसन्नअन्तःकरण से उस धन व सुवर्णको भी व रत्नोंको ग्रहणकिया जोकि संख्यासे रहित याने असंख्यथा ॥ ७६ । ७७।७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पुरश्चरणकथनसमाप्तिर्नामपञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । भयो भिन्न नागरनसन चण्डशर्म द्विजनाथ । इकसौछप्पनमध्यमहँ बरणत सोई गाथ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन समस्तनागरब्राह्मणोंने

उसको द्रव्यका पात्र देखकर चिन्तवनकिया कि हम सबोंको निकालकर एकही से ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥ तदनन्तर उन्होंने शपथ या प्रतिज्ञाकरके मध्यवर्तीको प्राप्तकर उसके उपरान्त ब्रह्मस्थान में व्यवस्थित होकर उसके मुखके द्वारा कहा ॥ २ ॥ कि इस लालचयुक्त ब्राह्मणने द्विजोत्तमोंका अनादरकर पुष्पके धनको लेकर प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ३ ॥ व वैसेही ऐश्वर्यका छठवांभाग ग्रहणकियाहै इसलिये समस्तनागरद्विजोत्तमों में यह पृथग्भूतहोवै जैसे कि और सामान्यहैं वैसाही होवै व आजसे लगाकर जो इससे सम्बन्ध करैगा ॥ ४ । ५ ॥ वह भी समस्तनागरब्राह्मणोंके बाहर होगा अथवा जो कभी इसके घरमें भोजन या जलपान करैगा वह भी

कृत्वा समानीयचमध्यगम् ॥ तस्यास्येनततःप्रोचुर्ब्रह्मस्थानेऽव्यवस्थिताः ॥ २ ॥ अनेनलोभयुक्तेन तिरस्कृत्यद्विजो
त्तमान् ॥ पुष्पवित्तंसमादाय प्रायश्चित्तंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ तथाचैवतुषड्भागोगृहीतोविभवस्यच ॥ तस्मादेषसमस्ता
नांबाह्यभूतोभविष्यति ॥ ४ ॥ नागराणांद्विजेन्द्राणांयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ अद्यप्रभृतिचानेनयस्सम्बन्धंकरिष्यति ॥
५ ॥ सोपिबाह्यस्तुसर्वेषांनागराणांभविष्यति ॥ भोजनंचाथपानीयंयोस्यसद्मनिकर्हिचित् ॥ ६ ॥ करिष्यतिचसोप्येवंप
तितस्तुभविष्यति ॥ एवमुक्त्वाततस्तेनदत्तंतालत्रयंद्विजाः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणेनद्विजश्रेष्ठाःकृत्वापुष्पस्यलाञ्छनम् ॥ अथते
ब्राह्मणास्सर्वेजग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ ८ ॥ चण्डशर्म्मापिसोद्विग्नःपुष्पपार्श्वंतदागतः ॥ एतेषामेवसर्वेषांसम्मतेनम
यातवे ॥ ९ ॥ प्रायश्चित्तंतदादत्तंतथापिद्विजसत्तम ॥ तस्मादहंपतिष्यामि सुसमिद्धेहुताशने ॥ १० ॥ नैवजीवितुमि
च्छामि स्वजनैःपरिवर्ज्जितः ॥ पुष्पउवाच ॥ नविषादस्त्वयाकार्य्यःकार्य्येऽस्मिन्द्विजसत्तम ॥ ११ ॥ वित्तार्थेदूषित

ऐसाही पतित होगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे द्विजोत्तमो, द्विजो! पुष्पको कलंक लगाकर उस ब्राह्मणने तीनतालियोंको दिया इसके अनन्तर समस्तब्राह्मण अपने अपने घरको गये ॥ ६ । ७ । ८ ॥ उस समय ऊबाहुआ वह चण्डशर्मा भी पुष्पके समीपगया व बोला कि इन्हीं सबके सम्मतसे मैंने उससमय तुमको प्रायश्चित्तदिया तिसपर भी हे द्विजोत्तम! मैं उसी कारण जलतीहुई अग्नि में गिरूंगा ॥ ९ । १० ॥ क्योंकि निजजनों से रहित होताहुआ मैं जीनेके लिये नहीं चाहताहूं पुष्प बोला

कि हे द्विजोत्तम ! इस कार्यमें तुमको शोच न करना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि हे द्विजोत्तम ! तुम द्रव्यके लिये दूषितहुएहो मैं उन नागर ब्राह्मणोंको अनेकप्रकारके धनों से प्रसन्न करूंगा ॥ १२ ॥ वे जितनी प्रमाणभर याचना करैंगे उतनाही तुम्हारे कारण दूंगा ऐसा कहकर वह शीघ्रता संयुतहो ब्रह्मस्थानमें भलीभांति आकर ॥ १३ ॥ व चण्डशर्माको लेकर उसने मध्यवर्तीके मुखके द्वारा कहा कि जो चण्डशर्मा ब्राह्मण मेरे लिये तुम लोगोंसे धन लोभके कारण पतित कियागयाहै उसी कारण मैं तुम लोगोंको वह सब धन दूंगा जोकि मेरे घरमें है ब्राह्मणों से वचन कियाजावै याने कहाजावै ॥ १४ । १५ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित उन सबही द्विजोत्तमोंने क्रोधसे

स्त्वंहि यतोब्राह्मणसत्तम ॥ नागरांस्तोषयिष्यामि तानहंविविधैर्द्धनैः ॥ १२ ॥ याचयिष्यान्तियन्मात्रं दास्यामितव कारणात् ॥ एवमुक्त्वासमागत्य ब्रह्मस्थानंत्वरान्वितः ॥ १३ ॥ चण्डशर्माणमानीय मध्यगास्येनसोब्रवीत् ॥ चण्ड शर्म्माद्विजोयस्तु मदर्थेपतितःकृतः ॥ १४ ॥ युष्माभिर्वित्तलोभेन तद्वित्तंवोददाम्यहम् ॥ समस्तंमद्गृहेयच्च क्रिय तांवचनंद्विजैः ॥ १५ ॥ अथतेकुपिताःप्रोचुस्सर्वएवद्विजोत्तमाः ॥ सीत्कारान्विविधान्कृत्वा क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ १६ ॥ धिग्धिक्पापसमाचारजिह्वातेशतधापतेत् ॥ किंतयापियदेवंत्वं प्रजल्पसिविगर्हितम् ॥ १७ ॥ पतितोयंकृतोस्माभि र्नैववित्तस्यकारणात् ॥ प्रायश्चित्तंयतोदत्तं एकेनापिदुरात्मना ॥ १८ ॥ स्मृतयोदूषितास्तेन पुराणानिविशेषतः ॥ स्था नंचैवास्मदीयंच कृत्यंचैतत्प्रकुर्वता ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तंप्रदातव्यं चतुर्भिरपरैस्सह ॥ संमन्त्र्यमनुनाप्रोक्तं एतदेवद्विजो त्तम ॥ २० ॥ त्वदीयंपातकंचास्य शरीरेसंव्यवस्थितम् ॥ एकाकिनायतोदत्तं तेनायंपतितःस्थितः ॥ २१ ॥ सूतउवा

अतिलाललोचनोंवाले होतेहुए अनेकविधिके सीत्कारोंको कर कहा ॥ १६ ॥ कि हे पापआचरणवाले ! तुझको धिकारहै २ तुम्हारी जीभ सौखण्ड होकर गिरैगी उस जिह्वा से क्याहै कि जो तुम ऐसे निन्दितवचन कहतेहो ॥ १७ ॥ हमलोगोंने धनके कारणइसको नहीं पतित कियाहै जिसलिये कि एकही दुष्टात्मा से प्रायश्चित्त दियागया ॥ १८ ॥ उसीसे इस कार्यको करतेहुये उसने स्मृतियों व विशेषकर पुराणों और हमलोगोंके स्थानको निश्चयकर दूषितकरदिया ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तम ! मनुने यही कहाहै कि अन्यचारविद्वानोंसे भलीभांति सलाहकरके प्रायश्चित्त देनाचाहिये ॥ २० ॥ व तुम्हारापाप इसकी देहमें विशेषकर टिकाहै जिसलिये कि अकेले प्रायश्चित्त दियाहै उसी

कारण यह पतित स्थितहै ॥ २१ ॥ सूतजीबोले कि ऐसा कहकर सब ब्राह्मण अपने २ घरको चलेगये और अत्यन्त ऊबाहुआ पुष्पभी परमविलक्षणताको प्राप्तहुआ ॥२२॥ इसके अनन्तर जैसे सर्प श्वासलेता है वैसेही श्वसताहुआ अपने निवासस्थान को चलागया तदनन्तर उसने भलीभांति चिन्तवन किया कि जबतक साहस नहीं कियाजाता है ॥ २३ ॥ तबतक मनुष्यों की सिद्धि किसीप्रकार नहीं होती है ब्रह्मघाती व मद्यप, चोर व व्रतभङ्गकारी व छलीमें पण्डितोंने प्रायश्चित्त कहाहै परन्तु कृतघ्नमें निष्कृति नहींहै ॥ २४ ॥ ऐसा मनसे निश्चयकर उससमय हे द्विजोत्तमो ! रविवारसमेत सप्तमी तिथिमें उस पुष्पनामक बुद्धिमान् ने पुष्पादित्य की एकसौ

च ॥ एवमुक्त्वाद्विजास्सर्वे जग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ पुष्पोपिचसमुद्विग्नो वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ २२ ॥ जगामाथनिजा वासं निश्श्वसन्नुरगोयथा ॥ ततस्संचिन्तयामास यावन्नोसाहसंकृतम् ॥ २३ ॥ तावत्सिद्धिर्मनुष्याणां नकथञ्चित्प्रजायते ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापेच चौरेभग्नव्रतेशठे ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ २४ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा सूर्य्यवारेणसप्तमी ॥ पुष्पनाम्नाद्विजश्रेष्ठास्तदाचाष्टोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणाकृतातेन पुष्पादित्यस्यधीमता॥ तीक्ष्णशस्त्रंसमादाय पूर्वोक्तविधिनाततः ॥२६॥ तेनच्छित्वानिजाङ्गानिजुहुयाज्जातवेदसि ॥ ततःपूर्णाहुतिंयावत्कायशेषेणयच्छति ॥ २७ ॥ तावत्प्रत्यक्षतांगत्वा सप्रोक्तोभास्करेणच ॥ पुष्पमासाहसङ्कार्षीः परितुष्टोस्मितेनघ ॥ २८ ॥ भूयएवमहाभाग ब्रूहिकिन्तेददाम्यहम् ॥ पुष्पउवाच ॥ चण्डशर्म्माद्विजेन्द्रोयं मदर्थेपतितःकृतः ॥ २९ ॥ नागरैर्ब्राह्मणैः

आठ प्रदक्षिणाओं को किया- तदनन्तर पैनेशस्त्र को लेकर उससे पूर्वोक्तविधिके द्वारा अपने अंगोंको काटकर अग्निमें हवन किया तदनन्तर बचेहुये शरीर से जब तक पूर्णाहुति देवै ॥ २५ । २६ । २७ ॥ तबतक प्रत्यक्षता में प्राप्तहोकर सूर्यजीने उससे कहा कि हे निष्पाप पुष्प ! साहस मतकरो मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं ॥ २८ ॥ हे महाभाग ! फिरभी कहिये मैं तुमको क्या देऊं पुष्प बोला कि यह चण्डशर्मा द्विजोत्तम न सहनेवाले समस्त क्षुद्रनागर ब्राह्मणोंसे मेरे लिये पतित (धर्मभ्रष्ट) किया गया। श्रीसूर्य भगवान् बोले किहे द्विजोत्तम ! एकभी नागर ब्राह्मणका वचन अन्यथा करने के लिये नहीं समर्थितहोता फिर सबोंका क्या कहनाहै परन्तु यह चण्डशर्मा

ब्राह्मण पवित्रहोगा ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ व समस्तभूतलमें यह बाहरवाला नागर प्रसिद्धहोगा और इनके जो पुत्र भूतलमें होवैंगे ॥ ३२॥ वे भी भूपालोंके माननीय व पूजनीय होकर प्रसिद्ध होवैंगे और भलीभांति आयेहुयेजो मित्र व भाईभी इसकी समताकरैंगे वेभी अतिउत्तम होवैंगे और यह दोषरहित चण्डशर्मा जिननागरब्राह्मणों से दूषित कियागयाहै ॥ ३३ । ३४ ॥ सन्ध्यासमयमें उनके नित्यही पराक्रम या प्रभावहरण को मैं करूंगा और तुमभी मेरी प्रसन्नतासे सम्पूर्ण अंगवाले होगे ॥ ३५॥ सूर्यनारायणजी ऐसा कहकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये व उसीक्षण पुष्पभी बिन घाववाले शरीरत्व को भलीभांति प्राप्तहोगया ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीये

क्षुद्रैस्समस्तैरसहिष्णुभिः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एकस्यापिवचोनैव शक्यतेकर्तुमन्यथा ॥ ३० ॥ नागरस्यद्विजश्रेष्ठ समस्तानांचकिम्पुनः ॥ परमेषद्विजःपूतश्चण्डशर्म्माभविष्यति ॥ ३१ ॥ बाह्योयंनागरःख्यातस्समस्तेधरणीतले ॥ एतेषांयेसुताश्चैव भविष्यन्तिधरातले ॥ ३२ ॥ विख्यातिंतेपियास्यन्ति मान्याःपूज्यामहीभृताम् ॥ येचापिबान्धवा श्चास्य सुहृदश्चसमागताः ॥ ३३ ॥ करिष्यन्तिसमन्तेपि भविष्यन्तिसुशोभनाः ॥ निर्दोषश्चण्डशर्म्मायं दूषितोनागरै र्द्विजैः ॥ ३४ ॥ सन्ध्यायांवीर्य्यहरणं नित्यन्तेषांकरोम्यहम् ॥ त्वंचापिमत्प्रसादेन सम्पूर्णाङ्गोभविष्यसि ॥ ३५ ॥ ए वमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ पुष्पोपिचाक्षताङ्गत्वं तत्क्षणात्समपद्यत ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येबाह्यनागरोत्पत्तिर्नामषट्पञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १५६ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेपुष्पः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ चण्डशर्म्मगृहंगत्वा दिष्ट्यादिष्ट्येतिचाब्रवीत् ॥ १ ॥ विवर्णवदनंदृष्ट्वा बाष्पपूरोक्षितंतदा ॥ बान्धवैस्सहितंसर्वैर्दारैर्भृत्यैस्तथासुतैः ॥ २ ॥ पुष्पउवाच ॥ तवार्थेचमयासू

परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबाह्यनागरोत्पत्तिर्नामषट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चण्डशर्म शिवलिंग कहँ पूजिगयो कैलास । इकसौ सत्तावनें महँ सोइ कीन्हो कथा प्रकास ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसरमें पुष्पने प्रसन्नचित्तसे चण्डशर्मा के घर जाकर उससमय भाइयों सहित व समस्तस्त्रियों, दासों व पुत्रोंसमेत रंगहीनमुखवाले व आंसुवोंके प्रवाहसे भीगे हुये चण्डशर्माको देखकर आनन्दहै आनन्द

है यह कहा ॥ १ । २ ॥ पुष्प बोला कि तुम्हारे लिये मैंने शरीर त्याग से सूर्यजीको प्रसन्न कियाहै उनकी प्रसन्नतासे तुम्हारी देहमें पाप न होगा ॥ ३ ॥ और वंशमें उत्पन्नहुये जो तुम्हारे पुत्र पौत्र होवेंगे वे सब नागरोंसे गुणमें अधिक होवेंगे ॥ ४ ॥ इस लिये हे द्विज़ ! उठिये पुण्यदायक सरस्वतीनदी के समीप चलैं उसके किनारे बसने के लिये आश्रमको बनाकर ॥ ५ ॥ मैंही तुम्हारे साथ निस्सन्देह बसूंगा मेरे बहुतधन है जो अन्य तुम्हारे पीछे जीविकावाले हैं उनसवोंको मैं पालन करूंगा तुम्हारा मानसिकज्वर जावै तदनन्तर उस वचनको सुनकर पुत्रों व भाइयोंसे संयुत चण्डशर्मा ॥ ६ । ७ ॥ सरस्वतीको भलीभांति उद्देशकर तदनन्तर स्थानकी प्रदक्षिणा

र्य्यः कायत्यागेनतोषितः ॥ पातकन्तुनतेकाये तत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ३ ॥ तवपुत्राश्चपौत्राश्च येभविष्यन्तिवंशजाः ॥ नागराणांचतेसर्वे भविष्यन्तिगुणाधिकाः ॥ ४ ॥ तस्मादुत्तिष्ठगच्छामो नदींपुण्यांसरस्वतीम् ॥ तस्यास्तटेनिवासाय कृत्वाचैवाश्रमंद्विज ॥ ५ ॥ त्वयाचसहवत्स्यामि अहमेवनसंशयः ॥ अस्तिमेविपुलंवित्तं येचान्येतेनुजीविनः ॥ ६ ॥ तान्सर्वान्पोषयिष्यामि व्येतुतेमानसोज्वरः ॥ ततःश्रुत्वाचण्डशर्म्मा पुत्रैर्बन्धुभिरन्वितः ॥ ७ ॥ सरस्वतींसमुद्दिश्य निष्क्रान्तोनगरात्ततः ॥ स्थानंप्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्यसुदुःखितः ॥ ८ ॥ बाष्पपूर्णेक्षणोदीन उत्तराभिमुखो ययौ ॥ पुष्पेणसहितश्चैव मुहुर्मुहुःप्रबोधितः ॥ ९ ॥ ततस्सरस्वतींप्राप्य पुण्यांशीतजलांनदीम् ॥ सेवितांमुनिसङ्घैस्तां हंसकल्लोलमालिनीम् ॥ १० ॥ तस्यादक्षिणकूलेतु निवासमकरोत्तदा ॥ पुष्पस्यमतिमास्थाय बन्धुभिस्सकलैर्वृतः ॥ ११ ॥ तस्यासीन्नगरस्थस्य प्रतिज्ञाचण्डशर्म्मणः ॥ सप्तविंशतिभिर्लिङ्गैर्दृष्टैर्भोक्ष्याम्यहंसदा ॥ १२ ॥ तांचसंस्मरत

कर व नमस्कार कर अतिदुःखित होताहुआ नगरसे निकला ॥ ८ ॥ व पुष्पसमेत और बार बार समझाया हुआ व आंसुवोंसे पूर्णनेत्रोंवाला व दीन चण्डशर्मा उत्तर दिशाके सामने गया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पुण्यदायिनी व ठण्ढेजलवाली व मुनिसमूहोंसे सेवित और हंसोंकी कल्लोलोंसमेत मालावाली उस सरस्वतीनदी को पाकर ॥ १० ॥ उस समय पुष्पकी बुद्धि पै स्थित होकर सकलभाइयोंसे घिरेहुये चण्डशर्माने उस सरस्वतीके दक्षिणकिनारे पै निवास किया ॥ ११ ॥ नगरमें टिकेहुये उस चण्डशर्माकी यह प्रतिज्ञाहुईथी कि सदैव सत्ताईस लिंगोंको देखकर मैं भोजन करूंगा ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्वसंज्ञक उस प्रतिज्ञाको भलीभांति स्मरण करते

हुये उस चण्डशर्माका हृदय दिनरात अत्यन्तही जलताथा ॥ १३ ॥ और वह सरस्वती में नहाकर पवित्र होकर सावधान होता हुआ वह षडक्षर मन्त्रको जपताथा और अलग अलग लिंगके उस उस नामको कहकर नमस्कारान्त तक किया हे द्विजोत्तमो! पांचअंगुलके प्रमाणभर पङ्कसे लिंगको भलीभांति थापकर भक्तिके द्वारा पुष्प, धूप व अनुलेपनोंसे पूजताथा व परमश्रद्धासे संयुत वह पश्चात् प्राणरुद्र ऐसे मन्त्रोंका जपकरताथा ॥ १४ । १५ । १६ ॥ व दुःस्थित और सुस्थित भी शिवलिंगको न चलावै ऐसा मानकर यह द्विजेन्द्र उन लिंगोंको नहीं विसर्जन करताथा ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तमो! उन लिंगोंके ऊपर २ नित्यही सत्ताईसकी गिनती

स्तस्य प्रतिज्ञांपूर्वसंज्ञिताम् ॥ हृदयंदह्यतेत्यन्तं दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ सचस्नात्वासरस्वत्यां शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ षडक्षरस्यमन्त्रस्य जपंसचपृथक्पृथक् ॥ १४ ॥ तन्तमुच्चार्य्यलिङ्गस्य नमस्कारान्तमादधे ॥ कर्द्दमेनद्विजश्रेष्ठाः पञ्चाङ्गुलमयेनच ॥ १५ ॥ संस्थाप्यपूजयेद्भक्त्या पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ प्राणरुद्राञ्जपन्पश्चाच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ १६ ॥ दुःस्थितंसुस्थितंवापि शिवलिङ्गंनचालयेत् ॥ इतिमत्वाद्विजेन्द्रोसौ नैवतानिविसर्ज्जयेत् ॥ १७ ॥ उपर्य्युपरितेषांचकर्द्दमेनद्विजोत्तमाः ॥ चक्रेलिङ्गानिनित्यंच सप्तविंशतिसङ्ख्यया ॥ १८ ॥ ततःकालेनमहता जातःकर्द्दमपर्वतः ॥ अथतुष्टोमहादेवस्तस्यभक्त्यतिरेकतः ॥ १९ ॥ निर्भिद्यधरणीपृष्ठं तस्यलिङ्गमदर्शयत् ॥ अब्रवीत्सादरंतञ्चमेघगम्भीरयागिरा ॥ २० ॥ चण्डशर्म्मन्प्रतुष्टोस्मि यश्चैवम्पूजयिष्यति ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानांसोपिश्रेयोभिलप्स्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चण्डशर्म्मापितंदृष्ट्वा पूजयामासतत्त्वतः ॥ २२ ॥ प्रासादंकारयामास तस्य

से लिंगोंको किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर बड़ेभारी समयसे चहलाका पर्वत होगया इस के अनन्तर उस चण्डशर्माकी भक्तिके अधिकत्वसे महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १९ ॥ व भूतलको भेदनकर उस चण्डशर्माको लिंग दिखलाया व मेघके समान गम्भीरवाणीसे आदरसमेत उससे कहा ॥ २० ॥ कि हे चण्डशर्मन्! मैं प्रसन्नहूं और जो इस भांति सत्ताईस लिंगोंको पूजैगा वहभी कल्याण या पुण्यको पावैगा ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे शिवभगवान् अन्तर्द्धान होगये व चण्डशर्माने भी देखेहुये

उस लिंगको यथार्थ पूजन किया ॥ २२ ॥ व उस लिंगके उत्तममन्दिरको निर्मित कराथा उसीसे नगरेश्वरनामक होगा ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि उस समय चण्ड-
शर्मा द्विजोत्तमने इसभांति उसलिंगको भलीभांति थापकर पुष्प व धूप व अनुलेपनों से आराधन किया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वैसेही सत्ताईस लिंगोंके पूजनेवाले फल
को प्राप्तहोताथा तदनन्तर नगरमें जो लिंगथे उनकाभी पूजन किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर बहुत समयसे नगरेश्वरकी प्रसन्नताके कारण क्षणहीके मध्यमें साक्षात् शिव-
लोकसेवित हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त उसपुष्पने पुण्यदायक सरस्वती के किनारे पै अन्य पुष्पादित्यको थापा तदनन्तर पूजनमें तत्पर हुआ ॥ २७ ॥ उसकेभी दर्शन

लिङ्गस्यशोभनम् ॥ नगरेश्वरसंज्ञंतु तस्मादेवभविष्यति ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसंस्थाप्यतल्लिङ्गं चण्डशर्म्माद्वि
जोत्तमः ॥ आराधयामासतदा पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ २४ ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानां प्राप्नोतिचतथाफलम् ॥ पूजितानिद्विज
श्रेष्ठा नगरेयानितानिच ॥ २५ ॥ ततःकालेनमहतानगरेश्वरतुष्टितः ॥ शिवलोकंततःसाक्षात्क्षणमध्येनिषेवितम् ॥
२६ ॥ सपुष्पःस्थापयामास पुष्पादित्यमथापरम् ॥ पुण्येसरस्वतीतीरे ततःपूजापरोभवत् ॥ २७ ॥ तस्यापिदर्शनङ्ग
त्वा प्रीतोवचनमब्रवीत् ॥ पुष्पतुष्टोस्मिभद्रन्ते वरम्प्रार्थयसुव्रत ॥ २८ ॥ अदेयमपिदास्यामि तस्मात्प्रार्थयमाचिर
म् ॥ पुष्पउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ २९ ॥ तद्देहियाचमानस्य यथावद्धृदिसंस्थितम् ॥ चम
त्कारपुरेदेव यस्सूर्य्यःस्थापितोमया ॥ ३० ॥ नगरादित्यइत्येष ख्यातोभवतुभूतले ॥ योयंसरस्वतीतीरे प्रासादःस्था
पितोमया ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतश्चादर्शनंरविः ॥ दीपवद्ब्राह्मणश्रेष्ठास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥

में प्राप्तहोकर प्रसन्नहोते हुये सूर्यनारायणजी बोले कि हे उत्तमव्रतकरनेवाले पुष्प ! तुम्हारा कल्याण होवे मैं प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये ॥ २८ ॥ न देनेके योग्य वरको
भी मैं दूंगा इसलिये शीघ्रही मांगिये पुष्प बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो और यदि मुझको वर देनेयोग्यहै ॥ २९ ॥ तो हे देव ! मांगते हुये मुझको हृदयमें भली
भांति टिकेहुये वरको यथायोग्य दीजिये कि चमत्कारनगर में मैंने जिन सूर्यजीका थापन कियाहै ॥ ३० ॥ ये नगरादित्य ऐसे भूतल में प्रसिद्ध होवैं और जो यह
सरस्वतीजीके किनारे मैंने मन्दिरका थापन कियाहै वहभी प्रसिद्ध होवै ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर सूर्यनारायणजी दीपकके

समान अदृश्य होगये वह आश्चर्यसा होगया ॥३२॥ तदनन्तर बहुत समयसे द्विजोत्तम पुष्पभी उत्तमतेजवाले विमानके द्वारा स्वर्गलोकको प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ और शाकम्भरी ऐसी प्रसिद्ध जो चण्डशर्माकी स्त्रीथी उसने सरस्वती नदीके शुभदायककिनारे पै दुर्गाजीको भलीभांति थापन किया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उत्तमभक्तिसे अहर्निश आराधन किया तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! प्रसन्न होतीहुई उन दुर्गाजीने उस शाकम्भरीको वरदान दिया ॥ ३५ ॥ कि हे पुत्रि, शाकम्भरि ! तुम्हारा कल्याणहो मैं प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये व ग्रहण करिये मेरीप्रसन्नतासे निरसन्देह तुम्हारामनोरथ होगा ॥ ३६ ॥ शाकम्भरी बोली कि हे देवि ! चमत्कारपुरमे

ततःकालेनमहता पुष्पोपिद्विजसत्तमः ॥ स्वर्गलोकमनुप्राप्तो विमानेनसुवर्चसा ॥ ३३ ॥ शाकम्भरीतिविख्याता भार्य्यायाचण्डशर्म्मणः ॥ तयासंस्थापितादुर्गा सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ ३४ ॥ आराधिताथसद्भक्त्या दिवानक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तुष्टावरन्तस्याः सादादौद्विजसत्तमाः ॥ ३५ ॥ पुत्रितुष्टास्मिभद्रन्ते शाकम्भरिप्रगृह्यताम् ॥ वरंवरयतेभीष्टं मत्प्रसादादसंशयम् ॥ ३६ ॥ शाकम्भर्य्युवाच ॥ चतुःषष्टिगणादेवि मातॄणान्तेऽव्यवस्थिताः ॥ चमत्कारपुरेख्याता हास्यात्तुष्टिंव्रजन्तुवा ॥ ३७ ॥ यारात्रौबलिदानेन या तेवृद्धौततःपरम् ॥ तत्सर्वंजायतेपुण्यं या तेमूर्तिम्प्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ अत्रागत्यनदीतीरेयस्मात्संस्थापितामया ॥ देव्युवाच ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे महानवमिसञ्ज्ञिते ॥ ३९ ॥ योममाग्रेसमागत्य पूजयिष्यतिभक्तितः ॥ तस्यकृत्स्नंफलन्तस्य भविष्यतिनसंशयः ॥ ४० ॥ नागरस्यविशेषेण सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वातुसादेवी ततश्चादर्शनङ्गता ॥४१॥ तस्यनाम्नाचसादेवी प्रोक्ताशाकम्भरीभुवि॥ वृद्धैरनन्त

जो प्रसिद्ध चौंसठि माताओं के गण विशेषकर स्थितहैं वे हास्यसे प्रसन्नहोवैं ॥ ३७ ॥ व जो रात्रिमें बलिदानसे पूजनकरै व जो बढ़ती में पूजनकरै उसके उपरान्त वही सबपुण्य उसको होवै जोकि तुम्हारी मूर्त्तिका पूजनकरै ॥ ३८ ॥ क्योंकि यहां आकर नदीके किनारे मैंने भलीभांति थापन किया है देवी बोलीं कि कुँवारके शुक्लपक्षमें महानवमीनामक तिथिमें ॥ ३९ ॥ जो मेरे अगाडी भलीभांति आकर भक्तिसे पूजैगा उसको उस पूजनका सम्पूर्ण फल निरसन्देह होगा ॥ ४० ॥ व नागर ब्राह्मणको विशेषकर होगा यह मैंने सत्यकहाहै ऐसा कहकर तदनन्तर वह देवी अन्तर्द्धान होगई ॥ ४१ ॥ व उसीके नामसे वह देवी भूमिमें शाकम्भरी कहीगई

हे द्विजोत्तमो ! वृद्धिके उपरान्त जो पुरुष उन शाकम्भरीजीका पूजन करताहै उस की बढ़तीका कभी विघ्न नहीं होताहै ॥ ४२ । ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरि
च्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुष्पादित्यशाकम्भरीस्थापनंनामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५७ ॥ ❁ ॥

दो० । इकसौ अट्ठावने महँ सोई चरित नवीन । श्यामकर्णअश्वन निमित मुनि ऋचीक तप कीन ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तबसे लगाकर सरस्वतीजी
के पुण्यदायक व उत्तमकिनारे पै बाहरवाले नागरों का बड़ाभारीस्थान हुआ व पुत्र, पौत्रोंसे बढ़ेहुये व नातियोंकी विद्या व महाधनों मे चमत्कारपुरके आगे याने

रन्तस्या यःपूजांकुरुतेनरः ॥ ४२ ॥ तस्यवृद्धेर्नविघ्नःस्यात्कदाचिद्द्विजसत्तमाः ॥४३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे
तृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्पादित्यशाकम्भरीस्थापनंनामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५७॥
सूतउवाच ॥ ततःप्रभृतिपुण्येच सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ बाह्यानांनागराणांच स्थानंजातंमहत्तरम् ॥ १ ॥ पुत्रपौत्रप्र
वृद्धानां दौहित्राणांद्विजोत्तमाः॥ चमत्कारपुरस्याग्रे ख्यातंविद्यामहाधनैः ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विश्वामित्रेण
धीमता ॥ शप्तासरस्वतीकोपात् कृता रुधिरवाहिनी ॥ ३ ॥ ततःसंसेव्यतेहृष्टै राक्षसैस्सादिवानिशम् ॥ गीतनृत्यपरै
श्चान्यैर्भूतैःप्रेतैःपिशाचकैः ॥ ४ ॥ ततस्तेनागराबाह्याःतांत्यक्त्वादूरतःस्थिताः ॥ कांदिशीकास्तथायाता भक्ष्यमा
णास्तुराक्षसैः ॥ ५ ॥ नर्मदायास्तटेपुण्ये मार्कण्डाश्रमसन्निधौ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्सरस्वतीशप्ता विश्वामित्रेण
धीमता ॥ ६ ॥ महानद्याकोपराधस्तयातस्यविनिर्मितः ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पुरामहद्वैरंविश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ ७ ॥

अधिकप्रसिद्ध हुआ ॥ १ । २ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय बुद्धिमान् विश्वामित्रने क्रोधसे सरस्वतीको शापदिया व रक्तबहनेवाली किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न
राक्षसों व नाचने गानेमें तत्पर अन्यभूतों, प्रेतों व पिशाचोंसे अहर्निश वे सरस्वतीजी भलीभांतिसेवित होतीथीं ॥ ४ ॥ तदनन्तर वे बाहरीनागर उस सरस्वती नदी
को छोड़कर दूरमें टिके वैसेही राक्षसोंसे भक्षित होतेहुये भयभीत होकर नर्मदानदीके पुण्यदायक किनारे पै मार्कण्डजीके आश्रमके समीप चलेगये ऋषिलोग बोले कि
बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने किसकारण सरस्वतीजीको शाप दियाहै ॥ ५।६ ॥ व उस महानदीने उन विश्वामित्रजीका क्या अपराध किया था सूतजी बोले कि हे ब्राह्मण !

पुरातनसमय ब्राह्मणताके लिये विश्वामित्र व वसिष्ठजीका अत्यन्त प्राणोंका अन्तकारक वडाभारी वैर हुआ क्योंकि देवदेव पितामह (ब्रह्मा) को अगाड़ीकर याने
पहिले उनके कहनेपर समस्तब्राह्मणोंने क्षत्रियभी महामुनि विश्वामित्रजीको ब्राह्मण कहा परन्तु वसिष्ठजीने न कहा उसीसे वह वैर हुआहै ॥ ७ । ८ । ९ ॥ ऋषिलोग
बोले कि हे महामते ! जिन क्षत्रियभी विश्वामित्रजीको आपही ब्रह्माने कैसे विप्र कहा व उनको वसिष्ठने क्यों नहीं कहा ॥ १० ॥ इस समस्तचरितको हमलोगों
से कहिये क्योंकि परमआश्चर्य्य प्राप्तहै सूतजी बोले कि पुरातनसमय भृगुजी के पुत्रऋचीकनामक महामुनि हुये हैं ॥ ११ ॥ जोकि व्रतों व वेदपाठसे संयुक्त व बड़े

ब्राह्मण्यस्यकृतेविप्राः प्राणान्तकरणम्महत् ॥ ससर्वैर्ब्राह्मणःप्रोक्तोविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ ८ ॥ क्षत्रियोपिपुर स्कृत्य देवदेवंपितामहम् ॥ नवैप्रोक्तोवसिष्ठेन तेनैतद्वैरमाहितम् ॥ ९ ॥ ऋषयउचुः ॥ क्षत्रियोपिकथं विप्रोविश्वामि त्रोमहामते ॥ वसिष्ठेनकथंनोक्तो यःप्रोक्तोब्रह्मणा स्वयम् ॥ १० ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व परंकौतूहलंस्थितम् ॥ सूतउवा च ॥ आसीत्पुराऋचीकाख्यो भृगुपुत्रोमहामुनिः ॥ ११ ॥ व्रताध्ययनसम्पन्नोऽभूत्तपस्वीमहायशाः ॥ तीर्थयात्राप्रसं ङ्गेन सकदाचिन्मुनीश्वरः ॥ १२ ॥ स्थानंभोजकटंनाम प्राप्तोगाधिर्महीपतिः ॥ यत्रसाकौशिकीनाम नदीत्रैलोक्यवि श्रुता ॥ १३ ॥ तस्यांस्नात्वाद्विजश्रेष्ठो यावत्तिष्ठतितीरगः॥ समाधिस्थोजपंकुर्वन् सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ १४ ॥ तावत्त त्रसमायाता राजकन्यासुशोभना ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वैरेवगुणैर्युता ॥ १५ ॥ सतांसंवीक्षतेयावत्सर्वावयवशोभना म् ॥ तावत्कामशरैर्व्याप्तः कर्तव्यंनाभ्यविन्दत ॥ १६ ॥ ततःपप्रच्छलोकान्स लब्ध्वाकृच्छ्रेणचेतनाम् ॥ कस्येयंकन्य

यशस्वी तपस्वी हुये हैं वे मुनिनायक ऋचीकजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे किसी समय भोजकटनामक स्थानको प्राप्तहुये जहांपर कि गाधिनामक भूपतिथा व त्रैलोक्य
में प्रसिद्ध कौशिकीनामक नदीथी ॥ १२ । १३ ॥ किनारे पै प्राप्तद्विजोत्तम ऋचीकजी उसकौशिकीनदी में नहाकर व पितरों तथा देवोंको भलीभांति तर्पणकर जबतक
जप करते हुये समाधिमें स्थित होकर बैठे ॥ १४ ॥ तबतक सबही गुणोंसे संयुत व समस्तलक्षणोंसे सम्पूर्ण अतिउत्तम राजकन्या वहां भलीभांति आई ॥ १५ ॥
वे ऋचीकजी समस्तअंगोंसे सुन्दरी उसकन्याको जबतक भलीभांति देखैं तबतक कामदेवके बाणोंसे व्याप्तहोते हुये कर्तव्यताको न प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर क्लेश

से चैतन्यताको पाकर उन ऋचीकजीने मनुष्योंसे पूछा कि उत्तमआचरणवाली यह किसकी कन्याहै और यहां किस लिये आई है ॥ १७ ॥ व हे मनुष्यो ! उत्तम कटिवाली यह कहांको जावेगी इस समस्तवृत्तान्तको मुझसे कहिये मनुष्य बोले कि प्रसिद्धमें त्रैलोक्यसुन्दरी ऐसी प्रसिद्ध यह गाधिकी कन्याहै ॥ १८ ॥ व समस्त गुणोंसे भलीभांतिप्रकाशित उत्तमपतिको मांगतीहुई व पार्वतीजीके पूजनेकी अतिअभिलाषवाली यह रनिवाससे भलीभांति आईहै ॥ १९ ॥ यहां नदीके किनारे जो यह बड़ाभारी मन्दिर स्थितहै इसमें समस्तदेवताओंसे भलीभांति पूजीहुई पार्वतीजी टिकी हैं ॥ २० ॥ यह राजकन्या क्रमपूर्वक पूजकर व अनेकभांतिकी नैवेद्यदेकर

कासाध्वी किमर्थमिहचागता ॥ १७ ॥ कथयस्यतिवरारोहासर्वमेकथ्यतांजनाः ॥ जनाऊचुः ॥ एषागाधिसुतानामख्या तात्रैलोक्यसुन्दरी ॥ १८ ॥ अन्तःपुरात्समायाता गौरीपूजनलालसा ॥ प्रार्थ्यमानासुभर्तारं सर्वैःसमुदितंगुणैः ॥ १९ ॥ प्रासादोयंस्थितोयोत्र नदीतीरेबृहत्तमः ॥ उमासन्तिष्ठतेचात्र सर्वैःसम्पूजितासुरैः ॥ २० ॥ एषाब्रह्मजपित्वाचपूजयित्वा यथाक्रमम् ॥ नैवेद्यंविविधंदत्त्वा करिष्यतिततःपरम् ॥ २१ ॥ वीणाविनोदगानंच श्रुतिमार्गसुखावहम् ॥ ततोयास्य तिहर्म्यं स्वं मन्दीभूतेचभास्करे ॥ २२ ॥ ऋचीकस्तुतदाकर्ण्य लोकानांवचनंचयत् ॥ ययौगाधिगृहंशीघ्रं कामबाणप्र पीडितः ॥ २३ ॥ तंदृष्ट्वासहसाप्राप्तं ऋचीकंभृगुसत्तमम् ॥ सम्मुखःप्रययौतूर्णं गाधिःपार्थिवसत्तमः ॥ २४ ॥ गृह्योक्तेन विधानेन कृत्वाचैवार्हणंततः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यमेतदुवाचह ॥ २५ ॥ निस्पृहस्यापितेविप्र किमागमनकार णम् ॥ तत्सर्वंमेसमाचक्ष्व येनयच्छामितेऽखिलम् ॥ २६ ॥ ऋचीकउवाच ॥ तवकन्यास्तिराजेन्द्र वरार्हावरवर्णिनी ॥

और ब्रह्म (वेद) को जपकर या ब्रह्मका ध्यानकर तदनन्तर कर्णपथको सुखदायक वीणाके विनोदसे गानकरैगी उसके उपरान्त सूर्यनारायणको मन्दहोनेपर याने सायङ्काल में अपने घरको जावैगी ॥ २१ । २२ ॥ मनुष्योंका जो वचनथा उसको सुनकर कामदेवके बाणसे अतिव्यथित होतेहुये ऋचीक मुनि शीघ्रही गाधिके घर को गये ॥ २३ ॥ अचानक प्राप्तहुये उन भृगूत्तम ऋचीकजीको देखकर नृपोत्तम गाधिजी शीघ्रही सामनेगये ॥ २४ ॥ तदनन्तर गृह्यसूक्तमें कहीहुई विधिसे पूजन कर जुड़ेहुयेहाथोंवाले होकर यह वचन बोले ॥ २५ ॥ कि हे विप्रजी ! निर्लोभीभी तुम्हारे आनेका कारण क्याहै वह सब मुझसे कहो कि जिससे मैं तुमको सम्पूर्ण

देऊं ॥ २६ ॥ ऋचीकजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तमरंगवाली व वरके योग्य तुम्हारी कन्याहै हे भूपते ! ब्राह्मण विवाहसे मुझको उसे दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इसी के लिये वरकी योग्यतासे मैं तुम्हारे घरमें प्राप्तहुआहूं व पार्वतीजीके पूजनके निमित्त आईहुई उसको मैंने देखाहै ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर उन ऋचीकजीको असवर्ण याने कन्याके समान नहीं रंगवाले या अपनी जातिसे रहित व निर्धनी तथा वृद्धहीको मानकर नृपोत्तम गाधिजी भयभीत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर न देनेमें शापसे डरेहुये गाधिने वचन कहा कि हे द्विजोत्तम ! हमलोगोंके कन्या दानमें शुल्क (वरसे धनादि) लियाजाता है ॥३०॥ यदि उसको देवोगे तो

ब्राह्मणेनविवाहेन तांमेदेहिमहीपते ॥ २७ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तो गृहेतववरार्हतः ॥ सामयावीक्षिताराजन् गौरीपूजार्थमा
गता ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तो गाधिःपार्थिवसत्तमः ॥ असवर्णंचतंमत्वा दरिद्रंवृद्धमेवच ॥ २९ ॥
अदानेशापभीतस्तु ततोवाक्यमुवाचह ॥ अस्माकंकन्यकादाने शुल्कमस्तिद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ तच्चेद्यच्छसिकन्यांतां
तुभ्यंदास्याम्यसंशयम् ॥ ऋचीकउवाच ॥ ब्रूहिपार्थिवशार्दूल कन्यकाशुल्ककंमम ॥३१॥ दत्तंयच्छामितेसर्वं यद्यपि
स्यात्सुदुर्लभम् ॥ गाधिरुवाच ॥ एकतःश्यामकर्णानामश्वानांवातरंहसाम् ॥ ३२ ॥ शतानिसप्तविप्रेन्द्र श्वेतानां
चैवसर्वतः ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ ३३ ॥ कान्यकुब्जंसमासाद्य गङ्गातीरेविवेशह ॥ अषोवोह्वेति
यत्सूक्तंचतुष्षष्टिसमुद्भवम् ॥३४॥ छन्दऋषिदेवतायुक्तं जपंचक्रेततःपरम् ॥ विनियोगंवाजिकृतेगाधिनायत्प्रकीर्तित
म् ॥ ३५ ॥ ततस्तेवाजिनस्तस्मान्निष्क्रान्तास्सलिलाद्द्विजाः ॥ सर्वेश्वेतास्सुवेगाश्च श्यामैकश्रवणास्तथा ॥ ३६ ॥

निस्सन्देह तुम्हारे लिये उस कन्याको दूंगा ऋचीक बोले कि हे नृपपुंगव ! कन्याके शुल्कको मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥ यद्यपि अतिदुर्लभभी होगा तथापि तुमको सब दूंगा गाधि बोले कि हे द्विजेन्द्र ! पवनवेगवाले सातसौ घोड़ोंका शुल्कहै जोकि सबओर सफेद होवैं और जिनके केवल कान कालेहोवैं वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर मुनिसत्तम ऋचीकजी ॥ ३२ । ३३ ॥ कान्यकुब्जदेशको भलीभांति प्राप्तहोकर गंगाके किनारे बैठगये तदनन्तर जो गाधिने कहाथा घोड़ेके लिये उस विनियोगको करके चौंसठिऋचाओंसे उपजाहुआ व छन्द ऋषि देवतासंयुत जो अषोवोह्व ऐसा मन्त्रहै उसका जप किया ॥ ३४।३५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! उस जलसे वे समस्त

घोड़े निकले जो सम्पूर्णश्वेतरंगवाले व अत्यन्तवेगवाले तथा श्यामकानोंवाले थे ॥ ३६ ॥ व सातसौसंख्यक तथा उतनेहीसंख्यक मनुष्योंसे संयुतथे तबसे लगा
कर पुण्यदायक गंगाजीके उत्तमकिनारे पै कान्यकुब्जदेशके समीप प्राप्त भूतलमें वह अश्वतीर्थ प्रसिद्ध हुआ जिसमें स्नानकरनेपर मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको
प्राप्तहोताहै ॥ ३७ । ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअश्वतीर्थोत्पत्तिनामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ❀ ॥

दो० । मुनिनायक जमदग्निके भये पुत्र जिमिराम । इकसौउंसठिमें सोई कह्यो चरित अभिराम ॥ सूतजीबोले कि इस के अनन्तर ऋचीकमुनिभी विश्वासकारी पुरुषों

शतानिसप्तसंख्यानि तावत्संख्यैर्नरैर्युताः ॥ ततःप्रभृतिविख्यातमश्वतीर्थंधरातले ॥ ३७ ॥ गङ्गातीरेशुभेपुण्ये का
न्यकुब्जसमीपगम् ॥ यस्मिन्स्नानेकृतेमर्त्यो वाजिमेधफलंलभेत ॥ ३८ ॥ इतिश्री स्कान्देनागरखण्डेतृतीयपरिच्छे
देहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येअश्वतीर्थोत्पत्तिर्नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १५८ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ ऋचीकोपिसमादाय पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ तानश्वान्प्रजगामाथ यत्रगाधिर्व्यवस्थितः ॥ १ ॥ तस्मै
निवेदयामास कन्यार्थेतान्हयोत्तमान् ॥ गाधिस्तुतान्प्रगृह्याथ अश्वान्वाजिमखस्यच ॥ २ ॥ एकैकंपरमंयेषां सज
गामाथपार्थिवः ॥ ततस्तांप्रददौतस्मै कन्यांत्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ ३ ॥ विप्राग्निसाक्षिसम्भूतां गृह्योक्तविधिनान्वितः॥
ततोविवाहनिर्वृत्ते ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ ४ ॥ तस्याःसंवेशनेचैव निष्कामःसमपद्यत ॥ अथाब्रवीन्निजांभार्यां नि
ष्कामंसंस्थितोमुनिः ॥ ५ ॥ अहंयास्यामिसुश्रोणिकाननेतपसःकृते ॥ त्वंप्रार्थयवरंकञ्चिद् येनाभीष्टंददामिते ॥ ६ ॥

से उनघोड़ोंको भलीभांति लेकर वहां गये जहांपर कि गाधि विशेषतासे टिकाहुआ था व उन ऋचीकजीने कन्याके लिये उन उत्तमघोड़ोंको उस गाधिके लिये निवेदनकिया
इसके अनन्तर गाधिजीने अश्वमेधयज्ञके उन घोड़ोंको लेकर कि जिनके मध्य में एकसेएक उत्तमथा इसके अनन्तर वे गाधिनृपति चलेगये उसके उपरान्त गृह्यसूक्त
में कहीहुई विधिसे संयुत होतेहुये गाधिने ब्राह्मण व अग्निकी साक्षीसे उपजीहुई उस त्रैलोक्यसुन्दरी कन्याको उन ऋचीकके लिये दिया तदनन्तर विवाहके निवृत्त
होनेपर मुनिसत्तम ऋचीकजी ॥ २ । ३ । ४ ॥ उसके रतिकरने में अकामहुये इसके अनन्तर अकामप्रति भलीभांति टिकेहुये मुनिने अपनीस्त्रीसे कहा ॥ ५ ॥

कि हे! सुश्रोणि (उत्तम कटिवाली)! मैं तपस्याके लिये वनको जाऊंगा तुम किसी वरदानको मांगो कि-जिससे मैं तुम्हारे अभिलाषको देऊ ॥६॥ उन अकाम ऋचीकजी के उस वचनको सुनकर आंसुवोंसे पूर्णनेत्रोंवाली वह दुखिया माताके समीपगई ॥७॥ उस समय हे द्विजोत्तमो! उन अकाम मुनिके वचनको व जैसा उनमुनिने वरदान कहाथा उसको कहा ॥८॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उससे उसप्रकार भलीभांति कहेहुये वचनको सुनहीकर तदनन्तर उस माताने पुत्रके लिये वचन को कहा ॥९॥ कि हे पुत्रि! यदि यह पति तुमको चाहेहुये वरको देताहै तो उसी कारण ब्राह्मणता से संयुत पुत्रको मांगो ॥१०॥ व हे शुभे! मेरे लिये सम्पूर्ण

साश्रुत्वातस्यतद्वाक्यं निष्कामस्यप्रजल्पितम् ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीना जगामजननींप्रति ॥ ७ ॥ प्रोवाचवचनंतस्य निष्कामस्यमुनेस्तदा ॥ वरदानंतथातेन यथोक्तंद्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ अथश्रुत्वैवसामाता तथासंजल्पितंतया ॥ सुतार्थं ब्राह्मणश्रेष्ठास्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ यद्ययंपुत्रितेभर्ता वरंयच्छतिवाञ्छितम् ॥ तत्प्रार्थयसुतंतस्माद्ब्राह्मण्येनसमन्वितम् ॥ १० ॥ मदर्थंचैकपुत्रन्तु निश्शेषक्षात्रतेजसा ॥ संयुक्तंयाचयशुभे विप्रंतन्तुतपःस्थितम् ॥ ११ ॥ साश्रुत्वा जननीवाक्यमृचीकंप्राप्यसुव्रता ॥ अब्रवीज्जननीवाक्यंसर्वंविस्तरतोद्विजाः ॥ १२ ॥ सतस्याश्चवचःश्रुत्वा चकाराथचरुद्वयम् ॥ पुत्रेष्टिंविधिवत्कृत्वा चरुंकृत्यस्वयंभुवम् ॥ १३ ॥ एकस्मिन्योजयामास ब्राह्मयतेजोखिलंयशः ॥ क्षात्रंतेजस्तथान्यस्मिन् सकलंद्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ भार्यायैप्रददौपूर्वं ब्राह्मयंचचरुमुत्तमम् ॥ अब्रवीत्प्राशयत्वेनमश्वत्थालिङ्गनंकुरु ॥ १५ ॥ ततःप्राप्स्यसिसत्पुत्रं ब्रह्मतेजःसमन्वितम् ॥ द्वितीयोयंचरुर्यश्च तंत्वंमात्रेनिवेदय ॥ १६ ॥

क्षत्रिय तेजसे संयुतवाले एक पुत्रको तपस्यामें टिकेहुये उन द्विजसे मांगिये ॥११॥ हे ब्राह्मणो! माताके वचनको सुनकर उत्तमव्रतवाली उस कन्याने ऋचीकजीको प्राप्तहोकर माताके समस्त वचनको विस्तारसे कहा ॥१२॥ उन ऋचीकजीने उसके वचनको सुनकर विधिपूर्वक पुत्रवाले यज्ञकोकर व अपनेहीसे उपजीहुई यज्ञखीर को बनाकर इसके अनन्तर दो यज्ञखीरोंको किया ॥१३॥ व हे द्विजोत्तमो! एकमें समस्तब्राह्मणवाले तेज व यशको युक्त किया वैसेही दूसरे में क्षत्रियवाले समस्त तेजको युक्त किया ॥१४॥ व पहिले स्त्रीके लिये ब्राह्मणवाले उत्तमतेजको दिया व कहा कि इसको खाकर पीपलका आलिंगन करो ॥१५॥ तदनन्तर ब्राह्मणके

तेजसे संयुत उत्तमपुत्रको पावोगी व दूसरा जो यह चरुहै उसको तुम माताके लिये निवेदनकरो ॥ १६ ॥ तदनन्तर मुनिसत्तम ऋचीकजीने उससे कहा कि तुम मातासे यह कहना कि तुम इस यज्ञवाली खीरको खाकर बरगदका आलिंगन करो ॥ १७ ॥ उसके उपरान्त क्षत्रियतेज से संयुक्त उत्तम पुत्रको विशेषकर पावोगी हे महाभागे! मेरा वचन वृथा नहीं होताहै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो! अपने तेजसे उत्तम नियमोंवाली व अतिप्रसन्न उस स्त्रीसे ऐसा कहकर ऋचीकजी आपही प्रसन्न हुये ॥ १९ ॥ व वे दोनों सुता माताओंने प्रसन्न चित्तसे घरमें जाकर आपसमें कहा कि उन ऋचीकजीसे कहाहुआ यह सत्य होगा ॥ २० ॥ तदनन्तर माताने कन्या

अब्रवीच्चततस्तान्तु ऋचीकोमुनिसत्तमः ॥ त्वमेनंचरुकंप्राश्यन्यग्रोधालिङ्गनंकुरु ॥ १७ ॥ ततःप्राप्स्यसिसत्पुत्रं संयुक्तंक्षत्रतेजसा ॥ विशेषेणमहाभागे न मेस्याद्वचनंवृथा ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वाऋचीकस्तु सुव्रतांस्वेनतेजसा ॥ सुहृष्टांब्राह्मणश्रेष्ठाः स्वयंचमुदितोभवत् ॥ १९ ॥ तेचैवतुगृहेगत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ऊचतुश्चमिथस्तेन सत्यमेतद्भविष्यति ॥ २० ॥ ततोमातासुतांप्राह आत्मार्थंसकलोजनः ॥ त्वदीयोद्विजमात्रोपि तवतुष्टिंकरिष्यति ॥ २१ ॥ अथसाविजनेप्रोक्ता तयामात्रायशस्विनी ॥ अकरोद्व्यत्ययंवृक्षे चरौचद्विजसत्तमाः ॥ २२ ॥ ततःपुंसवनेस्नाने तेशुभेचारुलोचने ॥ दधातेगर्भमेकातु भर्तुःसंयोगतःक्षणात् ॥ २३ ॥ ततस्तुगर्भमासाद्यसाचत्रैलोक्यसुन्दरी ॥ क्षात्रेणतेजसातेन तत्क्षणात्समपद्यत ॥ २४ ॥ मनोराज्यंततश्चक्रे हस्त्यश्वारोहणोद्भवम् ॥ युद्धवार्तास्तथाचक्रे देवासुरगणोद्भवाः ॥ २५ ॥ शृणोतिच

से कहा कि अपने लिये समस्तमनुष्य कल्याण चाहता है तुम्हारा द्विजमात्रभी तुम्हारी प्रसन्नता करैगी ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उस मातासे एकान्त में कहीहुई उस कन्याने वृक्ष व यज्ञकीखीरमें वदलाकरलिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर पुंसवनस्नान में सुन्दरेनयनोंवाली व उन दोनों स्त्रियोंने गर्भधारण किया एक तो क्षणभर में पतिके संयोगसे गर्भको धारण किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर वह त्रैलोक्य सुन्दरी गर्भको प्राप्तहोकर उसीक्षण क्षात्रियवालेतेजसे भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २४ ॥ तदनन्तर हाथी, घोड़ों के चढ़नेसे उपजीहुई राज्य पै मन किया वैसेही सुरासुरसमूहोंसे उपजीहुई समरकी बातोंओंको किया ॥ २५ ॥ व वैसेही सुना और नित्यही

लीलाओंमें मनको धारण किंया तदनन्तर पिताके घरसे कुलीनघोड़ों व हाथियों व लालवसनों और केशर आदिक विलेपनको भलीभांति लाकर राज्यसे उपजे हुये अनुष्ठानको किया ॥ २६ । २७ ॥ बहुतेरे भोगोंके धारनेवाले ऋचीकजीने ब्राह्मणोंके योग्य सम्पूर्ण आचरणोंसे त्यागेहुये व राजाओंके योग्य उसके उस कर्मको देख-कर ॥ २८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होतहुये कहा कि हे पापिनि ! धिक्कारहै तूने यह क्या किया हे पापिनि ! तूने निश्चयकर यज्ञकीखीर व वृक्षका बदला कियाहै कि जिससे क्षत्रियके लिये समस्त ब्राह्मणोंके आचरणोंसे रहित तुम्हारे इस कर्म व चीर बकलोंसे त्यागेहुये व जप रहित स्नान व कस्तूरी पूर्वक अनेक प्रकारकी सुगन्धों

तथानित्यं विलासेषुमनोदधे ॥ अनुष्ठानंतथाचक्रे ततोराज्यसमुद्भवम् ॥ २६ ॥ पितुर्गृहात्समानीय जात्यानश्वांस्त
थागजान् ॥ रक्तानिचैववस्त्राणि काश्मीराद्यंविलेपनम् ॥ २७ ॥ तन्दृष्ट्वाचेष्टितंतस्या राजार्हंबहुभोगधृक् ॥ ब्राह्मणा
र्हैःपरित्यक्तं समाचारैश्चकृत्स्नशः ॥ २८ ॥ अब्रवीच्चततःक्रुद्धो धिक्पापेकिमिदंकृतम् ॥ व्यत्ययोविहितोनूनं चरुकस्य
नगस्यच ॥ २९ ॥ त्वयापापेप्रपश्यामि येनैतत्तवचेष्टितम् ॥ क्षत्रियार्थंद्विजाचारैस्सकलैःपरिवर्जितम् ॥ ३० ॥ चीर
वल्कलसंत्यक्तं स्नानंजाप्यविवर्जितम् ॥ संयुक्तंविविधैर्गन्धैर्मृगनाभिपुरस्सरैः ॥ ३१ ॥ तवमाताशमस्थासा जपहो
मपरायणा ॥ तीर्थयात्रापराचैव वेदश्रवणलालसा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तेक्षत्रियःपुत्रो भविष्यतिनसंशयः ॥ भ्राताचब्राह्म
णश्रेष्ठोब्रह्माचैवयथापरः ॥ ३३ ॥ भविष्यतितथाचिह्नैर्गर्भलक्षणसम्भवैः ॥ यस्मादुदीरितःपूर्वं श्लोकोऽयंशास्त्रचिन्त
कैः ॥ ३४ ॥ यादृशादौर्हृदास्सन्ति सगर्भाणांचयोषिताम् ॥ तादृशानांभवेत्स्थानं तस्याःपुत्रोत्रजायते ॥ ३५ ॥ सैवमु

से संयुत तुम्हारे चेष्टितको मैं देखताहूं ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ और शान्तिमें टिकीहुई तुम्हारी वह माता जप, होममें तत्पर व तीर्थयात्रा में परायण और निश्चयकर वेदके सुनने में अत्यन्त अभिलाषवाली है ॥ ३२ ॥ इसलिये निस्सन्देह तुम्हारे क्षत्रिय पुत्रहोगा और गर्भवाले लक्षणोंसे उपजेहुये चिह्नोंके कारण द्विजोंमें उत्तमभाई जैसा दूसरे ब्रह्माहोवैं वैसाही होगा क्योंकि पुरातन समय शास्त्रके चिन्तकोंने यह श्लोक कहाहै ॥ ३३ । ३४ ॥ कि गर्भ संयुत स्त्रियों के जैसे अभिलाषहोवैं यहां उस

का जो पुत्र पैदाहोवै वह वैसेही वस्तुओंका स्थानहोगा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कही व भयभीत और आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंवाली व दीन तथा कांपतीहुई उसने हाथजोड़ कर यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ कि हे प्रभो! जो तुमने वाक्य कहा यह सत्यहै क्योंकि इस संसारमें विना चिह्नोंसे भूत, भविष्यको आप जानतेहो ॥ ३७ ॥ इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण पुत्रहोवै और किसी प्रकार क्षत्रियके पुत्रकी उत्पत्तिसे रक्षा कीजिये ॥ ३८ ॥ इसकारण मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिसभांति ब्राह्मण पुत्रहोवै ऋचीकजी बोले कि जो कुछ ब्रह्मतेजथा उसको मैंने तुम्हारी यज्ञखीरमें धराथा ॥ ३९ ॥ और क्षत्रियवाले तेजको तुम्हारी माताके चरुमें

क्षाभयत्रस्ता वेपमानाकृताञ्जलिः ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीनावाक्यमेतदुवाचह ॥ ३६ ॥ सत्यमेतत्प्रभोवाक्यं यत्त्वयास मुदाहृतम् ॥ अतीतानागतंवेत्ति विनालिङ्गैर्भवानिह ॥ ३७ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादम्मे यथास्याद्ब्राह्मणस्सुतः ॥ क्षत्रिय स्यतुपुत्रस्य भवात्राहिकथञ्चन ॥ ३८ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादम्मे यथास्याद्ब्राह्मणस्सुतः ॥ ऋचीकउवाच ॥ यत्किञ्चि द्ब्रह्मतेजस्तु तन्न्यस्तंतेचरौमया ॥ ३९ ॥ क्षात्रंतेजश्चतेमातुर्व्यत्ययंचकथन्ततः ॥ करोमिचाधमेलुब्धेशास्त्रस्यचव्यति क्रमम् ॥ ४० ॥ पौत्रस्तुदुर्द्धरःसङ्ख्ये संयुक्तःक्षात्रतेजसा ॥ ततःसत्यंवरंलब्ध्वा प्रसन्नवदनासती ॥ ४१ ॥ मातुर्निवेदया मास तत्सर्वंकान्तजल्पितम् ॥ ततस्सादशमेमासि सम्प्राप्तेगुरुदैवते ॥ ४२ ॥ नक्षत्रेजनयामास पुत्रंबालार्कसन्निभ म् ॥ ब्राह्म्यालक्ष्म्यासमोपेतं निधानंतपसश्शुचिम् ॥ ४३ ॥ जमदग्निरितिख्यातो योसौत्रैलोक्यविश्रुतः ॥ तस्यपुत्रोभ वेत्ख्यातो रामोनाममहायशाः ॥ ४४ ॥ एकविंशतिधायेन धरानिःक्षत्रियाकृता ॥ क्षात्रतेजःप्रभावेण पितामहप्र

धराथा उसीकारण हे अधमेलुब्धे! मैं उलटा कैसे करूं व किसभांति शास्त्रका व्यतिक्रम करूं ॥ ४० ॥ तदनन्तर कहाकि क्षत्रियवाले तेजसे संयुत पौत्रतो युद्धमें दुर्धर्ष होगा सत्य वरदानको पाकर प्रसन्नमुखवाली होतीहुई उसने पतिसे कहेहुये उस समस्त वृत्तान्तको मातासे निवेदन किया उसके उपरान्त उसने दशम महीनेको भली भांति प्राप्तहोनेपर बृहस्पति देवतावाले (पुष्य) नक्षत्रमें बालसूर्य्यकेसमान व ब्राह्मणवाली सम्पत्तिसे संयुत और तपस्याके निधान व पवित्र पुत्रको पैदाकिया ॥ ४१ ॥ ४२ । ४३ ॥ जो यह जमदग्नि ऐसे कहेहुये त्रिलोकमें प्रसिद्धहुये उन जमदग्निजीके बड़े यशस्वी व प्रसिद्ध रामनामक पुत्रहुये ॥ ४४ ॥ जिन परशुरामजीने बाबाकी

प्रसन्नता व क्षत्रियवाले तेजके प्रभावसे इक्कीसबार पृथ्वीको बिन क्षत्रियोंकी करदियाहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरशुरामोत्पत्तिनामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गाधिसुवन जिमिराज्यतजि गये वनहिं तपहेत । सोइ इकसौसाठि महँ वरणत सूत सचेत ॥ सूतजी बोले कि यज्ञखीरके खानेसे गाधिकी उस राजभार्याने भी मन्त्रके कारण उसी वर्षमें गर्भको धारण किया ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब वह गर्भसे संयुतहुई तब व्रतोंमें तत्पर व उत्तम आचरणोंवाली तथा तीर्थयात्रामें परायण हुई ॥ २ ॥ व सदैव राजाओंके योग्य समस्त अलङ्कारों व सुखोंको छोड़कर जहां वेदकी ध्वनि होतीथी वहां रोमांचित समस्त अंगोंवाली व हर्षसंयुत उसने सुना इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! दशम महीनेको भलीभांति प्राप्तहोने पर उसनेभी ॥ ३।४ ॥ ब्राह्मणवाली लक्ष्मीसे चारों ओर घिरेहुये व उत्तम कान्तिवाले पुत्रको पैदाकिया और वह स्थावर जंगम समेत त्रिलोकमें विश्वामित्र ऐसा कहागया ॥ ५ ॥ बड़े भाग्यवाले वे विश्वामित्रजी नित्यही मनुष्योंके बीचमें बढ़े जैसे कि शुक्लपक्षमें प्राप्तहो कर आकाशके मध्य चन्द्रमा बढ़ताहै ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वरो ! जब यौवनसे संयुक्त ये विश्वामित्रजी राज्यके योग्यहुये तब गाधिने राज्यपै भलीभांति नियोगकिया ॥ ७ ॥

सादतः ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरशुरामोत्पत्तिर्नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

सूतउवाच ॥ गाधेस्तुराजपत्नीच प्राशनाच्चरुकस्यच ॥ सापिगर्भंदधेतत्र वत्सरेमन्त्रतश्शुभा ॥ १ ॥ साचगर्भसमोपेतायदाजाताद्विजोत्तमाः ॥ तीर्थयात्रापरासाध्वी जाताव्रतपरायणा ॥ २ ॥ वेदध्वनिर्भवेद्यत्र तत्रहर्षसमन्विता ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी साशुश्रावचसर्वदा ॥ ३ ॥ त्यक्त्वाराज्ञोचितान्सर्वानलङ्कारान्सुखानिच ॥ अथसापिद्विजश्रेष्ठा दशमे मासिसंस्थिते ॥ ४ ॥ सुषुवेसुप्रभंपुत्रं ब्राह्मयालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ विश्वामित्रस्सचाख्यातस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ५ ॥ ववृधेसमहाभागो नित्यमेवाधिकंनृणाम् ॥ शुक्लपक्षेसमासाद्य तारापतिरिवाम्बरे ॥ ६ ॥ यदासौयौवनोपेतस्सञ्जातो मुनिसत्तमाः ॥ राज्यक्षमस्तदाराज्येगाधिनासन्नियोजितः ॥ ७ ॥ अनिच्छमानस्स्वंराज्यं पितृपैतामहंमहत् ॥ वेदा

और पिता व पितामहोंवाली अपनी बड़ीभारी राज्यको न चाहतेहुये वे विश्वामित्रजी वेदाध्ययनमें संयुतहोकर नित्यही पढ़तेथे ॥८॥ इसके अनन्तर महाभाग गाधिजी अहर्निश ब्राह्मणोंके योग्य मार्गसे चलतेहुये पुत्रको राज्यपै भलीभांति विठाकर वानप्रस्थ आश्रममें तत्परहो स्त्री समेत वनचारी हुये याने वनको चलेगये और ब्राह्मणों में भलीभांति पूजन में परायण व राज्यपै स्थित विश्वामित्रभी ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर स्नान, जपमें तत्परहोकर समस्त ब्राह्मणोंके साथ चले याने वैसाही आचरण किया इसके उपरान्त किसी समय पापकी बढ़तीमें प्राप्तहुये विश्वामित्रने अनेक प्रकारके मृगोंसे संकुल वनमें प्रवेश किया और उस वनमें सूकरों, चौगड़ों

ध्ययनसम्पन्नो नित्यंचपठतेहिसः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोचितमार्गेणगच्छमानंदिवानिशम् ॥ संस्थाप्याथसुतंराज्ये बभूववन गोचरः ॥ ९ ॥ सकलत्रोमहाभागो वानप्रस्थाश्रमेरतः ॥ विश्वामित्रोपिराज्यस्थो द्विजसम्पूजनेरतः ॥ १० ॥ द्विजैस्सर्वैश्चचाराथ स्नानजाप्यपरायणः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पापर्द्धिसमुपागतः ॥ ११ ॥ प्रविवेशवनंरौद्रं नानामृग समाकुलम् ॥ जघानविपिनेतत्र वराहाञ्छशकान्गजान्॥१२॥ तरक्षूंश्चमरान्न्यङ्कून्नरण्यमहिषांस्तथा ॥ सिंहान्व्याघ्रान्महासर्पाञ्छरभांश्चविशेषतः ॥ १३ ॥ मृगयासक्तचित्तःसभ्रममाणोदिवानिशम् ॥ मध्याह्नसमयेप्राप्तेवृषस्थे चदिवाकरे ॥ १४ ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रान्तो विश्वामित्रोद्विजोत्तमाः ॥ आससादाश्रमेपुण्ये वसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ १५ ॥ वसिष्ठोपिसमालोक्य विश्वामित्रंनृपोत्तमम् ॥ निजाश्रमेतुसम्प्राप्तं सानन्दंसम्मुखोययौ ॥ १६ ॥ दत्त्वातस्मैतदार्घञ्च मधुपर्कञ्चभूभुजे ॥ अब्रवीचततोवाक्यं स्वागतन्तेमहीपते ॥ १७ ॥ वदकृत्यङ्करोम्येव गृहायातस्ययच्चते ॥ विश्वामित्र

व हाथियों, चीतों, चमरों, न्यंकुओं (मृगभेदों) तथा जंगली भैंसों व सिंहों, व्याघ्रों व बड़ेभारी सांपों और विशेषकर शरभों (मृगजाति भेदों) को मारा ॥ ११ ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जब कि सूर्य्यजी वृषराशि पै टिकेथे तब मध्याह्न समयके प्राप्तहोने पर दिनरात घूमतेहुये व शिकारमें लगे चित्तवाले वे विश्वामित्रजी क्षुधा प्याससे अति थकगये व महात्मा वसिष्ठजीके पुण्यदायक आश्रममें प्राप्तहुये ॥ १४ । १५ ॥ व अपने आश्रममें भलीभांति प्राप्तहुये नृपोत्तम विश्वामित्रजी को देखकर आनन्द समेत वसिष्ठभी सामने गये ॥ १६ ॥ और उस समय उन विश्वामित्र भूपतिके लिये अर्घ व मधुपर्कको देकर तदनन्तर वचन बोले कि हे भूपते !

तुम्हारा आना अच्छा हुआ ॥ १७ ॥ व जो कार्यहो कहिये घरमें आयेहुये तुम्हारे उस कार्यको मैं निश्चयकर करूंगा विश्वामित्रजी बोले कि हे मुनिनाथ! शिकार में थकाहुआ व प्याससे विकल इन्द्रियोंवाला मैं पानी पीनेके लिये तुम्हारे इस आश्रममें प्राप्तहुआ व उस ठण्ढेजलको पिया और प्यासहीन स्थित भया ॥ १८।१९ ॥ हे ब्रह्मन्! मुझको आज्ञा दीजिये जिससे घरको जाऊं वसिष्ठजी बोले कि मध्याह्नसमयमें विकराल सूर्य्यनारायण अत्यन्तही तापदायकहैं ॥ २० ॥ इसलिये हे राजन्! मेरे आश्रममें भोजनके योग्य अन्नको भोजन करके पराह्णके व्यवस्थित होनेपर याने उसपहर अपने निवासस्थानको जाइयेगा ॥ २१ ॥ राजाबोले कि मैं चतुरंगिणी

उवाच ॥ मृगयायांपरिश्रान्तः पिपासाऽव्याकुलेन्द्रियः ॥ १८ ॥ पानार्थमिहसम्प्राप्त आश्रमेतेमुनीश्वर ॥ तत्पीतंशीतलन्तोयं वितृष्णोहंव्यवस्थितः ॥ १९ ॥ अनुज्ञान्देहिमेब्रह्मन् येनगच्छामिमन्दिरम् ॥ वसिष्ठउवाच ॥ मध्याह्नसमयेरौद्रः सूर्योतीवसुतापदः ॥ २० ॥ तत्कृत्वाभोजनंराजन् पराह्णेतुव्यवस्थिते ॥ गन्तासिनिजमावासं भोज्यान्नंममचाश्रमे ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ चतुरङ्गेणसैन्येन मृगयामहमागतः ॥ तवाश्रमस्यद्वारस्थंममसैन्यंव्यवस्थितम् ॥२२॥ बुभुक्षितेषुभृत्येषु यःस्वामीकुरुतेशनम् ॥ सयातिनरकंघोरं त्यज्यतेचगुणैर्हतः ॥ २३ ॥ तस्मादाज्ञापयक्षिप्रं मांमुने स्वगृहायभोः ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यदितेसेवकाःसान्तिद्वारदेशेबुभुक्षिताः ॥ २४ ॥ सर्वांनिहानयक्षिप्रं तृप्तिंनेष्याम्यहम्पराम् ॥ अस्तिमेनन्दिनीनाम कामधेनुःसुशोभना ॥ २५ ॥ वाञ्छितंयच्छतिसर्वं तपसापार्थिवोत्तम ॥ तृप्तिंनेष्यतितेसर्वंसैन्यम्पार्थिवसत्तम ॥ २६ ॥ तस्मादानीयतांक्षिप्रं पश्यमेधेनुजम्बलम् ॥ तच्छ्रुत्वाचानयामाससर्वंसैन्यंमहीपतिः ॥२७॥

सेना समेत शिकारको आयाथा मेरी सेना तुम्हारे द्वारपै स्थित होकर विशेषता से टिकीहै ॥ २२ ॥ और सेवकोंके क्षुधित होनेपर जोस्वामी भोजन करताहै वह भयङ्कर नरकको जाताहै व गणोंसे त्याग किया जाताहै तथा माराजाताहै ॥ २३ ॥ इसलिये अहोमुने! घरके लिये मुझको शीघ्रही आज्ञादीजिये वसिष्ठजी बोले कि यदि तुम्हारे भूंखे सेवक द्वारदेशपै हैं ॥ २४ ॥ तो शीघ्रही सबोंको यहां लाइये मैं परम तृप्तिको प्राप्तकरूंगा मेरे अति उत्तम नन्दिनी नामक कामधेनुहै ॥ २५ ॥ हे नृपोत्तम! तपस्यासे वह समस्त अभिलाषको देतीहै हे भूपसत्तम! तुम्हारी सब सेनाको तृप्ति प्राप्तकरैगी ॥ २६ ॥ इसलिये शीघ्रही लाइये व मेरी गऊसे उत्पन्नहुये बलको

देखिये उस वचनको सुनकर भूपतिने समस्त सेनाको लाया ॥ २७ ॥ व नहाये और जप कियेहुये वे विश्वामित्रजी पितरों व देवताओंको भलीभांति तृप्तिकर और
ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन बँचाकर सिंहासनपर बैठगया ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें सायाह्न समय वसिष्ठजीसे भलीभांति बुलाईहुई वह नन्दिनी विश्वामित्रजीके अगाड़ी
खड़ीहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठजीने वचनको कहा कि जबतक विश्वामित्र राजर्षिको भोजन संस्थिति होवै ॥ ३० ॥ तबतक अनेक भांतिके समस्त खानेवाले,
चाटनेवाले, चूंसनेवाले व पीनेवाले पदार्थोंसे सेना समेत भूपतिको तृप्ति पर्य्यन्त कीजिये ॥ ३१ ॥ व घोड़ों हाथियोंके लिये क्रम पूर्वक घासआदिकको रचिये सूतजी

ब्राह्मणान्वाचयित्वाच सिंहासनमुपाश्रितः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे
स्नातश्चकृतजप्यश्च सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ ब्राह्मणान्वाचयित्वाच सिंहासनमुपाश्रितः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे
धेनुः सायाह्नेसाचनन्दिनी ॥ वसिष्ठेनसमाहूता विश्वामित्रंपुरःस्थिता ॥ २९ ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं कुरुष्ववचनान्म
म ॥ विश्वामित्रस्यराजर्षेर्यावद्भोजनसंस्थितिः ॥ ३० ॥ खाद्यैस्सर्वैस्तथालेह्यैश्चोष्यैःपेयैःपृथग्विधैः ॥ कुरुष्वतृप्तिपर्य
न्तं ससैन्यस्यमहीपतेः ॥ ३१ ॥ अश्वानांचगजादीनां यवसादियथाक्रमम् ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवसाप्युक्त्वा तत
स्ततस्सृजेत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ यत्प्रोक्तन्तेनमुनिना भृत्यानांचायुतंतथा ॥ ततस्तेसर्वमादायभृत्याभोज्यंददुस्तथा॥३३॥
एकैकस्यपृथक्त्वेन प्रतिपत्तिपुरस्सरम् ॥ एवंतयाक्षणेनैव तृप्तिंनीतोमहीपतिः ॥ ३४॥ ससैन्यःसपरीवारो गजोष्ट्राश्वैर्वृ
षस्सह ॥ ततस्तुकौतुकंदृष्ट्वा विश्वामित्रोमहीपतिः ॥३५॥ सामात्योविस्मयाविष्टो मेनेमायामयंद्विजाः ॥ अहोचित्र
महोचित्रं ययासामेवरूथिनी ॥ ३६ ॥ तृप्तिंनीताह्यकस्माच्च क्षुत्पिपासासमाकुला ॥ तस्मात्सन्नीयतामेषा स्वगृहंधेनु

बोले कि उस धेनुनेभी हां यहा कहकर तदनन्तर उनमुनिने जो कहाथा उस सबको व दशहज़ार सेवकोंको उत्पन्न किया तदनन्तर उन सेवकोंने समस्त भोजनको
लेकर वैसेही सिद्धि पूर्वक भिन्नतासे एक एकको दिया इस प्रकार उसधेनुने सेना-समेत व परिवारसहित और हाथी, ऊंट, घोड़े व बैलों समेत विश्वामित्र भूपतिको
क्षणहीभरमें छकावटपै प्राप्तकिया तदनन्तर विश्वामित्र भूपतिने कौतुक (तमाशे या आश्चर्य) को देखकर ॥ ३२ । ३३ । ३४ । ३५ ॥ हे ब्राह्मणो ! मन्त्रियों समेत
आश्चर्यमें प्राप्तहोकर मायामय मानाकि आश्चर्य है २ जिस धेनुने क्षुधा, प्याससे अति विकल मेरी सेनाको अचानकही तृप्ति प्राप्तकर दिया इसलिये यह उत्तम गऊ

अपने घरको भलीभांति लेचलीजावै ॥ ३६ । ३७ ॥ नौकरोंसे रहित व अग्नि परिवारवाला यह ब्राह्मण क्याकरैगा अथवा हे मुनिसत्तम ! मूल्यके लिये मैं तुमको उत्तम रथों, हाथियों व घोड़ों व और इच्छाके अनुकूल अन्यभी पदार्थोंको दूंगा ॥ ३८ । ३९ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे राजन्! कामनाओंको प्रपूरणकरनेवाली यह हमारी होम धेनुहै हे महाराज ! सामान्यभी गऊ ब्राह्मणोंको देना न चाहिये ॥४०॥ फिर समस्त मनोरथोंको देनेवाली इस नन्दिनीको क्या कहनाहै हे नृपेन्द्र! अन्य अतिउत्तम शान्ति वचनको सुनिये ॥ ४१ ॥ जोकि गौवोंके बेंचनेके लिये आपही मनुजीने कहाहै कि गौवोंको बेंचकर उस धनको जो ब्राह्मणोत्तम ग्रहण करता है ॥ ४२ ॥

वरानुत्तमा ॥ ३७ ॥ किङ्करिष्यतिविप्रोयं निर्भृत्योग्निपरिग्रहः ॥ अथवातवदास्यामि क्रयार्थेमुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ वरानुत्तमा ॥ ३७ ॥ रथांश्चहस्त्यश्वानन्यांश्चापियथेप्सितान् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ होमधेनुरियंराजन्नस्माकंकामदोहिनी ॥ अदेयागौर्महाराज सामान्यापिद्विजन्मनाम् ॥ ४० ॥ किम्पुनर्नन्दिनीह्येषासर्वकामप्रदायिनी ॥ अपरंशृणुराजेन्द्रशान्तिवाक्यमनुत्तमम् ॥४१॥ गवांहिविक्रयार्थेचयदुक्तंमनुनास्वयम् ॥ गवांविक्रीयतद्वित्तं योगृह्णातिद्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ अन्त्यजस्सपरिज्ञेयो मातृविक्रयकारकः ॥ तस्मान्नाहंप्रदास्यामिनन्दिनींतांमहामते ॥ ४३ ॥ नसाम्नानैवभेदेन नदानेनकथञ्चन ॥ नदण्डेनमहाराज तस्माद्गच्छनिजालयम् ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यत्किञ्चिद्विद्यतेरत्नं पार्थिवस्यक्षितौद्विज ॥ तत्सर्वंराजकीयंस्यादितिनीतिविदोविदुः ॥ ४५ ॥ रत्नभूताततोधेनुर्नन्दिनीयंप्रगृह्यताम् ॥ अथसाभृत्यवर्गेणनीयमानाचनन्दिनी ॥ ४६ ॥ हन्यमानाप्रहारैश्च पाषाणैर्लकुटैरपि ॥ अश्रुपूर्णेक्षणादीना प्रहारैर्जर्जरीकृता ॥ ४७ ॥ कृ

न प्रियवचनसे न भेदकरनेसे न किसी प्रकार दानसे न दण्डसे दूंगा इसलिये हे महाराज ! अपने स्थानको जावो ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे द्विज ! राजाकी भूमिमें जो कुछ रत्न (श्रेष्ठपदार्थ) विद्यमान होताहै वह सब राजाका है यह नीतिके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है ॥ ४५ ॥ व यह नन्दिनीधेनु रत्नभूतहै उसीकारण ग्रहणकीजावै इसके अनन्तर सेवक समूहसे लीजाती हुई वह नन्दिनी ॥ ४६ ॥ पत्थलों व दण्डोंकेभी प्रहारोंसे मारीगई और आंसुओंसे पूर्ण नयनोंवाली व दुखिया और प्रहारोंसे जर्जरकी हुई उसधेनुने क्लेशसे मुनिश्रेष्ठ

वह माताका विक्रयकर्ता चाण्डाल जानने योग्य है इसलिये हे महामते ! मैं उसनन्दिनीको न दूंगा ॥ ४३ ॥

उन वसिष्ठजीके समीप जाकर कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! क्या तुमने इस भूपको मुझेदेदियाहै ॥ ४७।४८ ॥ कि जिससे जैसे स्वामीके पुरुष होतेहैं वैसेही मुझको चलाते हैं वसिष्ठजी बोले कि हे धेनो! प्राणत्यागके भी उपस्थित होनेपर मैं तुमको न दूंगा ॥ ४६ ॥ इसलिये हे धेनो! मेरे प्रभावसे आपही अपनी रक्षाकीजिये उससमय महात्मा वसिष्ठजीसे इसप्रकार कहीहुई धेनु कोप संयुतहुई तदनन्तर उस समय भयङ्कर हुङ्कारोंको किया उसी कारण हुङ्कारके शब्दोंसे संख्या रहित यानें असंख्य शबर पुलिन्द और म्लेच्छ नर अस्त्रोंसमेत निकले और उन्होंने विश्वामित्र भूपतिके समस्त सेवकोंको मारा ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे रहित तिरस्कृत व

च्छाद्दुपेत्यतंप्राह वसिष्ठंमुनिसत्तमम् ॥ किंदत्तास्मिमुनिश्रेष्ठ त्वयाहंचास्यभूपतेः ॥ ४८ ॥ येनमांकालयन्तिस्म पुरुषाःस्वामिनोयथा ॥ वसिष्ठउवाच ॥ नत्वांयच्छाम्यहंधेनोप्राणत्यागेपिसंस्थिते ॥ ४९ ॥ तद्रक्षस्वस्वयंधेनो आत्मानंमत्प्रभावतः ॥ एवमुक्तातदाधेनुर्वसिष्ठेनमहात्मना ॥ ५० ॥ कोपाविष्टाततश्चक्रेहुङ्कारान्दारुणांस्तदा ॥ तस्माद्धुङ्कारशब्देश्च निष्क्रान्तास्सायुधानराः ॥ ५१ ॥ शबराश्चपुलिन्दाश्च म्लेच्छास्संख्याविवर्जिताः ॥ तैश्चभृत्याहतास्सर्वे विश्वामित्रस्यभूपतेः ॥ ५२ ॥ ततःकोपाभिभूतोसौ विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सज्जंकृत्वास्वसैन्यन्तु सत्वरन्तुप्रकोपतः ॥ ५३ ॥ युद्धंचक्रेचतैस्सार्द्धं मरणेकृतनिश्चयः ॥ अथतेसैनिकास्तस्य तेगजास्तेचवाजिनः ॥ ५४ ॥ पश्यतोनिहतास्सर्वे पुरुषैर्धेनुसम्भवैः ॥ विश्वामित्रंपरित्यज्य शेषंसर्वंनिपातितम् ॥ ५५ ॥ तन्दृष्ट्वावेष्टितंम्लेच्छैर्युध्यमानंमहीपतिम् ॥ कृपांकृत्वावसिष्ठस्तु नन्दिनीमिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ रक्षनन्दिनिभूपालं म्लेच्छैरेतैस्समावृतम् ॥ राजाहियत्नतोरक्ष्यो

मरणमें निश्चय कियेहुये ये विश्वामित्रभूपतिने शीघ्रही बड़ेकोपसे अपनी सेनाको तैयारकर उनके साथ समर किया इसके अनन्तर उन विश्वामित्रके देखते हुये वे सेनाके नर वे हाथी व वे घोड़े सब धेनुसे उपजेहुये पुरुषोंसे मारेगये विश्वामित्रको छोड़कर शेष सब गिरा दिया गया ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ व युद्ध करतेहुये उन विश्वामित्रभूपतिको म्लेच्छोंसे घिरे देखकर वसिष्ठजीने दयाकरके नन्दिनीसे यह कहा ॥ ५६ ॥ कि हे नन्दिनि! इन म्लेच्छोंसे घिरेहुयेभूपतिकी रक्षाकरो क्योंकि उपायसे राजाकी रक्षा करना चाहिये कि जिसकी प्रसन्नतासे यह समस्त संसार उत्तम मार्गमें विद्यमान है और समस्त प्राणी कुमार्ग में नहीं वर्तमान होता है तदनन्तर

जबतक नन्दिनी मना करनेके लिये आई ॥ ५७ । ५८ ॥ तबतक विश्वामित्रने भलीभांति उठाकर प्रहार करनेके लिये प्रारम्भ किया उससमय वशिष्ठजीने भी मारी जातीहुई उस नन्दिनीको भलीभांति देखकर ॥ ५९ ॥ उस विश्वामित्रभूपतिकी तलवार समेत उस भुजाको रोंकदिया इसके अनन्तर विलक्षणता में प्राप्त व लज्जासे युक्त विश्वामित्र भूपतिने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! अति भयङ्कर म्लेच्छोंसे मारेजाते हुये मुझे तुम रक्षाकरो व मेरी भुजाको स्तम्भसे रहितकरो मेरे अपराधसे समस्त अनन्त सेना नष्टहोगई ॥ ६० । ६१ । ६२ ॥ इसलिये मैं घरको जाऊंगा युद्धसे प्रयोजन नहींहै दुर्विनीत (नम्रता रहित) नर लक्ष्मी, विद्या व

यत्प्रसादादिदंजगत् ॥ ५७ ॥ सन्मार्गेविद्यतेसर्वो नचामार्गेप्रवर्तते ॥ ततस्तुनन्दिनीयावन्निषेधयितुमागता ॥ ५८ ॥
विश्वामित्रसमुद्यम्य प्रहर्तुमुपचक्रमे ॥ वसिष्ठोपिसमालोक्य वध्यमानाञ्चतान्तदा ॥ ५९ ॥ तंबाहुंस्तम्भयामास स
खड्गंतस्यभूपतेः ॥ अथवैलक्ष्यमापन्नो विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ ६० ॥ प्रोवाचव्रीडयायुक्तो वसिष्ठंमुनिसत्तमम् ॥ रक्ष
मांत्वंमुनिश्रेष्ठ वध्यमानंसुदारुणैः ॥ ६१ ॥ म्लेच्छैःकुरुष्वमेबाहुं स्तम्भेनतुविवर्जितम् ॥ ममापराधात्सन्नष्टं सर्वसैन्य
मनन्तकम् ॥ ६२ ॥ तस्माद्यास्याम्यहंहर्म्यं नयुद्धेनप्रयोजनम् ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्य्यमेवच ॥ ६३ ॥
नतिष्ठतिचिरंयुद्धे यथाहंमदगर्वितः ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तोवसिष्ठस्तु विश्वामित्रेणभूभुजा ॥ ६४ ॥ चकारतंभुजंत
स्यस्तम्भदोषविवर्जितम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं विधायसुसुखङ्करम् ॥ ६५ ॥ गच्छराजन्विमुक्तोसिस्तम्भदोषेणवैम
या ॥ माकार्षीर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं विरोधंभूयएवच ॥ ६६ ॥ अनुज्ञातस्सतेनाथ विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सव्रीडःप्रययौहर्म्यं

ऐश्वर्य्यको पाकर बहुत समयतक नहीं स्थित रहताहै जैसे कि मदसे गर्वित मैं युद्धमें बहुत समयतक न ठहरसका सूतजी बोले कि विश्वामित्र भूपालसे इसभांतिकहे हुये वसिष्ठजीने ॥ ६३ । ६४ ॥ उनकी उस बाहुको स्तम्भ (रुकावट) के दोषसे रहितकिया व हाथको सुखपूर्वक विधानकर हँसतेहुये वसिष्ठजीने वचनकहा ॥ ६५ ॥ कि हे राजन्! जाइये मैंने स्तम्भ दोषसे तुमको विमुक्त कियाहै और फिर ब्राह्मणों के साथ निश्चयकर वैर न करियेगा ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो! उन

वसिष्ठजीसे आज्ञादिये हुये लज्जासमेत विश्वामित्रभूपति चरणोंहीसे (पैदल) घरको गये ॥ ६७ ॥ व निशामुख (सन्ध्या) में अपने पुरद्वारपै पहुँचकर अति गुप्त व आंसुवोंसे सब ओर विकल नेत्रोंवाले विश्वामित्रने वहां प्रलाप किया याने निरर्थक वचनोंको कहा ॥ ६८ ॥ कि क्षत्रियोंके बलको धिक्कारहै व प्रभावको धिक्कारहै व जीवनको धिक्कारहै और एक ब्राह्मणका पराक्रम प्रशंसनीयहै व केवल ब्राह्मणवाला तेज प्रशंसाकरने योग्यहै ॥ ६९ ॥ मुझको वह कर्म करना चाहिये कि जिसभांति ब्राह्मणवाला बल होवै मैं अपनी राज्यको निश्चयकर छोड़कर बड़ाभारी तपकरूंगा ॥ ७० ॥ इसभांति निश्चयकर वे विश्वामित्रजी विश्वसह नामक प्रसिद्ध पुत्रको

पद्भ्यामेवद्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ स्वपुरद्वारमासाद्य सुगुप्तोरजनीमुखे ॥ प्रलापमकरोत्तत्र बाष्पपर्य्याकुलेक्षणः ॥६८॥ धिग्बलंक्षत्रियाणांच धिग्वीर्य्यंधिक्प्रजीवितम् ॥ श्लाघ्यंब्रह्मबलंचैकं ब्राह्मंतेजश्चकेवलम् ॥ ६९ ॥ तत्कर्म्मचमया कार्य्यं यथास्याद्ब्राह्मणंबलम् ॥ त्यक्त्वाचैवनिजंराज्यंचरिष्यामिमहातपः ॥ ७० ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वा राज्येसंस्थाप्यवैसुतम् ॥ नाम्नाविश्वसहंख्यातं प्रजगामतपोवनम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये विश्वामित्रराज्यपरित्यागोनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंराज्यंपरित्यज्य विश्वामित्रोद्विजोत्तमाः ॥ हिमवन्तंनगंप्राप्य तपश्चक्रेसुदारुणम् ॥ १ ॥ वर्षास्वाकाशशायीच हेमन्तेसलिलाशये ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे स्थितोवर्षशतत्रयम् ॥ २ ॥ फलमूलकृताहारस्ततो

राज्यपै भलीभांति बिठाकर तपोवनको चलेगये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येविश्वामित्रराज्यपरित्यागोनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि वसिष्ठ बधहित रच्यो गाधिसुवन मुनिशक्ति । इकसौ इकसठिमें सोई बरणत सूतसभक्ति ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार राज्यको छोड़कर विश्वामित्रजीने हिमवान् पर्वतको प्राप्तहोकर अति विकराल तपस्या किया ॥१॥ व वर्षामें आकाश (मैदान) शायी, हेमन्त ऋतुमें जलाशयशायी और ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि साधक होकर तीनसौ वर्ष स्थित हुये तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! परब्रह्मको ध्यान करतेहुये फलों,मूलोंसे कियेहुये आहारवाले तीनसौ वर्षतक स्थितहुये ॥ २॥

३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पश्चात् उतनेही समयतक गिरे पत्तोंका भोजनकर्ता होकर स्थित हुआ व हजार वर्षोंतक जलाहारी हुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर उतनेही समयतक जलाहारी होकर स्थित हुआ तदनन्तर वह विश्वामित्र नृपतिसौवर्ष पवनभोजनकर्ताहुआ ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन विश्वामित्रजीके उसतपोबल को देखकर इन्द्रने मनमें चिन्तवन किया यह स्थिति कर्ता नृपोत्तम निश्चयकर मुझको सन्तापित करैगा ॥६॥ तदनन्तर भलीभांति आकर परममनोहर प्रियवचनसे बोले इन्द्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआहूं इच्छाके अनुकूल वरदानको मांगो ॥ ७ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे इन्द्रजी ! प्रसन्नहुये तुम इस

वर्षशतत्रयम् ॥ ध्यायमानःपरंब्रह्म स्थितोब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३ ॥ शीर्णपर्णाशनःपश्चात्तावत्कालंव्यवस्थितः ॥ जला
हारश्चविप्रेन्द्रास्सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ ४ ॥ ततश्चैवजलाहारस्तावन्मात्रंव्यवस्थितः ॥ कालंसवायुभक्षश्च ततश्चैवशतं
समाः ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ अथदृष्ट्वातपःशक्तिं तस्यतांत्रिदशाधिपः ॥ तापयिष्यतिमांनूनं एपस्थातान्नृपोत्तमः ॥
६ ॥ ततःप्रोवाचसङ्गम्य साम्नापरमवल्गुना ॥ शक्रउवाच ॥ तुष्टोस्मितवराजेन्द्र वरंब्रूहियथेप्सितम् ॥ ७ ॥ विश्वामि
त्रउवाच ॥ ब्राह्मण्यंदेहिमेशक्र परितुष्टोसिसाम्प्रतम् ॥ तदर्थंतपसश्चर्य्यां जानीहित्वंपुरन्दर ॥ ८ ॥ इन्द्रउवाच ॥
अनेनैवशरीरेण क्षत्रियस्यकथंद्विजः ॥ चतुर्विंशतिसंस्कारैर्द्विगुणैर्यःप्रजायते ॥ ९ ॥ तदन्यत्प्रार्थयक्षिप्रं यत्तेभीष्टत
रंस्थितम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ नब्राह्मणात्परंकिंचित्प्रार्थयामिसुरेश्वर ॥ अपित्रैलोक्यराज्यन्ते वस्तुष्वन्येपुकाक
था ॥ १० ॥ तस्माद्गच्छसुरश्रेष्ठ स्वंराज्यंपरिपालय ॥ परित्यक्ष्याम्यहंदेहं प्राप्स्येवापिद्विजन्मताम् ॥ ११ ॥ तच्छ्रु

समय मुझको ब्राह्मणता दीजिये हे पुरन्दर ! तुम उसीके लिये तपश्चर्य्याको जानो ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि दुगुने चौबीस याने अरतालीस संस्कारोंसे जो ब्राह्मण होताहै वह ब्राह्मणता क्षत्रियको इसी शरीरसे कैसे होवै ॥ ९ ॥ इसलिये शीघ्रही अन्य वरको मांगिये जोकि तुम्हारे अत्यन्त प्रिय स्थितहो विश्वामित्रजी बोले कि हे सुरेशजी ! ब्राह्मणसे पर (अन्य) किसी वस्तुको व त्रिलोककी राज्यकोभी तुमसे नहीं मांगताहूं अन्य वस्तुओंको क्या कहनाहै॥ १० ॥ इसलिये हे सुरश्रेष्ठ ! जाइये

उन विश्वामित्रजीके उस वचनको सुनकर व उनके उस निश्चयको जानकर अपनी राज्यको पालन करिये मैं शरीरको त्यागकरूंगा या ब्राह्मणताको पाऊंगा ॥ ११ ॥ उन विश्वामित्रजीके उस वचनको सुनकर व उनके उस निश्चयको जानकर समस्त देवोंसे घिरेहुये सुरराज स्वर्गको चलेगये ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! विश्वामित्रने भी वैसेही दुष्कर तपको किया व हजार वर्षभी बीतगये ॥ १३ ॥ अन्य दिनमें पवनभोजी भूपति विश्वामित्रजीके समीप पुण्यदायक देवर्षियों समेत आपही ब्रह्माजी आये ॥ १४ ॥ व तपस्यासे जलेहुये पातकोंवाले उनभूपतिसे बोले ब्रह्मा बोले कि हे उत्तम, विश्वामित्र ! इस तपस्यासे मैं प्रसन्नहूं ॥ १५ ॥ तुम्हारा कल्याणहो वरदानको मांगिये मैं दुर्लभभी वरको दूंगा विश्वामित्र बोले कि हे देव ! यदि मेरे

त्वावचनंतस्य देवराजोदिवङ्गतः ॥ तस्यतन्निश्चयंज्ञात्वा सर्वदेवसमावृतः ॥ १२ ॥ विश्वामित्रोपितद्रूपं चकारदुश्चरंत पः ॥ अपिवर्षसहस्रन्तु व्यतिक्रान्तंद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ अन्यस्मिन्वायुभक्षस्य विश्वामित्रस्यभूपतेः ॥ आजगामस्वयंब्रह्मापुण्यैर्देवर्षिभिस्सह ॥ १४ ॥ अब्रवीत्तंमहीपालं तपसादग्धकिल्बिषम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वामित्रप्रतुष्टोस्मि तपसानेनसत्तम ॥ १५ ॥ वरंवरयभद्रन्ते प्रदास्याम्यपिदुर्लभम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरो मम ॥ १६ ॥ ब्राह्मण्यन्देहिमेदेव नान्यदिष्टतमम्महत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्षत्रियेणप्रजातस्य द्विजत्वंजायतेकथम्॥१७॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धंहि किम्मेवरयसीप्सितम् ॥ यन्नजातन्धरापृष्ठे नभविष्यतिकर्हिचित् ॥ १८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ गच्छत्वन्देवदेवेश ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ देहंत्यक्ष्यामिविप्राणां सम्प्राप्स्येवाद्विजन्मताम् ॥ १९ ॥ अथदेवर्षिमध्यस्थ ऋचीकोवाक्यमब्रवीत् ॥ अस्यजन्मकृतेदेव ब्राह्मैर्मन्त्रैर्मयाचरु॥ २० ॥ अमितंब्रह्मवर्चस्वं तत्रसंयोजितंचरौ ॥

ऊपर प्रसन्नहोव यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ १६ ॥ तो हे देव ! मुझको ब्राह्मणता दीजिये और बड़ाभारी प्रिय नहीं है ब्रह्मा बोले कि क्षत्रियसे पैदाहुये पुरुषकी ब्राह्मणता कैसे होवै ॥ १७ ॥ मुझसे तुम श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध अभिलापको क्यों मांगतेहो जोकि धरणी पृष्ठमें कभी न हुआहै न होगा ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे देवदेवेश ! तुम अति उत्तम ब्रह्मलोकको जाइये मैं देहको छोड़ दूंगा या ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणताको भलीभांति पाऊंगा ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर देवर्षियोंके बीचमें टिकेहुये ऋचीकजीने वचनको कहा कि हे देव ! मैंने इसके जन्मके लिये ब्राह्मण वाले मन्त्रोंसे अतुलित ब्रह्मतेजको उस चरु यज्ञकीखीरमें भलीभांति युक्त कियाथा

उसी कारण हे चतुर्मुख ! क्षत्रियसे पैदाहुआभी यह ब्राह्मणहै ॥ २०।२१ ॥ इसलिये हे प्रपितामहजी ! तुम इनको ब्रह्मर्षि कहो जिस कारण कि राज्यपै बैठाहुआभी यह ब्राह्मणवाले मन्त्रोंके प्रभावसे ब्राह्मणोंके योग्य कर्मोंको करताहै उसी लिये ब्रह्मर्षिको पुकारिये कि जिससे हम सब विश्वामित्रको द्विजोत्तम कहैं ॥ २२। २३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माने बहुतदेरतक ध्यानकर निरसन्देह ब्रह्मर्षित्वको कहा तदनन्तर वैसेही ऋचीकादिक समस्त देवर्षियोंने कहा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर उनके मध्यमें प्राप्त जो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीथे ॥ २५ ॥ क्रोधसे संयुक्त होतेहुये उनने कहा कि हे पितामहजी ! क्षत्रियसे पैदाहुये विश्वामित्रको जानताहुआ भी मैं कभी ब्राह्मण

तेनैवक्षत्रजन्मापि ब्राह्मणश्चतुरानन ॥ २१ ॥ ब्रह्मर्षिंकीर्तयस्वैनं तस्मात्त्वंप्रपितामह ॥ राज्यस्थोपिद्विजार्हाणि प्रकृत्यानिकरोत्यसौ ॥ २२ ॥ ब्राह्मयमन्त्रप्रभावेण तस्माद्ब्रह्मर्षिमाह्वय ॥ येनकीर्तामहेसर्वे विश्वामित्रंद्विजोत्तमम् ॥ २३ ॥ अथब्रह्माचिरंध्यात्वा ब्रह्मर्षिस्त्वमसंशयम् ॥ ऋचीकाद्यैस्ततःसर्वैः प्रोक्तोदेवर्षिभिस्तथा ॥ २४ ॥ अथतेषांमध्यगतो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ २५ ॥ सोऽब्रवीत्कोपसंयुक्तोनाहंवक्ष्यामिकर्हिचित् ॥ ब्राह्मणंक्षत्रियाज्जातं जानन्नपि पितामह ॥ २६ ॥ ऋचीकस्यचदाक्षिण्यात्तथात्वंवदसिप्रभो ॥ प्रोच्यमानोपिबहुधा वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ २७ ॥ पितामहेनमुनिभिर्नारदाद्यैरनेकधा ॥ जगामाथपरित्यज्यतान्सर्वान्द्विजसत्तमान् ॥ २८ ॥ सचागत्यमुनिश्रेष्ठो देशंचानर्तसंज्ञितम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे शङ्खतीर्थसमीपतः ॥ २९ ॥ यत्रब्रह्मशिलापुण्या श्वेतद्वीपसमन्विता ॥ सरस्वतीस्थिता यत्र नदीपापहराशुभा ॥ ३० ॥ तत्राश्रमपदंकृत्वा चकारविपुलंतपः ॥ विश्वामित्रोपितत्स्थानं तद्वधार्थंसमागतः ॥ ३१ ॥

न कहूंगा ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! वैसेही, ऋचीकजीकी चतुरतासे तुम कहतेहो इसके अनन्तर ब्रह्मा व नारदादिक मुनियोंसे अनेकभांति व बहुत प्रकारसे कहेहुये भी मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी उन समस्त द्विजोत्तमोंको छोड़कर चलेगये ॥ २७। २८ ॥ व उनमुनिनायक वसिष्ठजीने हाटकेश्वरज क्षेत्रमें शङ्खतीर्थके समीप आनर्त नामक देशमें आकर ॥ २९ ॥ जहां कि श्वेतद्वीपसे संयुत पुण्यदायिका ब्रह्मशिलाहै व जहांपर पाप हारिणी उत्तम सरस्वतीजी स्थितहैं ॥ ३० ॥ वहां आश्रम स्थानको बनाकर

बड़ीभारी तपस्या किया और विश्वामित्रभी उनके मारनेके लिये उस स्थानपै भलीभांति आये ॥ ३१ ॥ व उन वसिष्ठजीके दूरस्थ स्थानपै दक्षिण दिशामें भलीभांति टिककर और वहां आश्रम स्थानको बनाकर उन वसिष्ठजीके छिद्रों (दोषों) को चिन्ततेहुये बहुत समयतक भलीभांति टिके परन्तु किसी छिद्रको न देखा इसके अनन्तर उन विश्वामित्रजीने उन वसिष्ठके ऊपर अभिचारवाले कर्म (मारणादि प्रयोग) को प्रारम्भ किया ॥ ३२ । ३३ ॥ सामवेदमें मन्त्रकी विधिसे जो बधात्मक अभिचार कहाहै उन दारुण मन्त्रोंसे उन विश्वामित्रजीको अग्निमें हवनकरते हुये वानरके कन्धे पै चढ़ी व किल किल शब्दको करती हुई व छुटे बालोंवाली भयङ्करी शक्ति

तस्याश्रमस्यदूरस्थं याम्यांदिशिसमाश्रितः ॥ कृत्वाश्रमपदंतत्र तस्यच्छिद्राणिचिन्तयन् ॥ ३२ ॥ संस्थितस्सुचि रंकालं नचपश्यतिकश्चन ॥ अथाभिचारिकन्तेन प्रारब्धंतस्यचोपरि ॥ ३३ ॥ यदुक्तंमन्त्रविधिना सामवेदेवधात्मकम् ॥ तस्यतैर्दारुणैर्मन्त्रैर्जुह्वतोजातवेदसम् ॥ ३४ ॥ निष्क्रान्तादारुणाशक्तिर्मुक्तकेशाभयानका ॥ वानरस्कन्धमारूढा कुर्वाणाकिलकिलध्वनिम् ॥ ३५ ॥ नानायुधसमोपेता यमजिह्वायथापरा ॥ साब्रवीद्वदविप्रेन्द्र किन्तेकृत्यंकरोम्यहम् ॥ ३६ ॥ त्रैलोक्यमपिकृत्स्नञ्च संहरामितवाज्ञया ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ममशत्रुर्महान्योत्र वसिष्ठःकुमुनिःस्थितः ॥ ३७ ॥ तत्त्वंजहिद्रुतंगत्वा तदर्थंचमयाकृता ॥ एवमुक्तातुसातेन विश्वामित्रेणधीमता ॥ ३८ ॥ वसिष्ठाश्रममुद्दिश्य प्रस्थिताचोत्तरामुखी ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वसिष्ठस्याश्रमेद्विजाः ॥ ३९ ॥ दुर्निमित्तानिजातानि प्रभूतानिमहान्तिच ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ ४० ॥ तथारुधिरवृष्टिश्च अस्थिमिश्राव्यजायत ॥ दीप्तांदिशंसमा

निकली ॥ ३४ । ३५ ॥ जोकि अनेक प्रकारके अस्त्रों से संयुत जैसे दूसरी यमजिह्वाहोवै वैसीथी उसने कहा कि हे द्विजेन्द्र ! कहिये मैं तुम्हारे किस कार्यकोकरूं ॥ ३६ ॥ तुम्हारी आज्ञासे मैं समस्त त्रिलोककोभी संहारकरूं विश्वामित्रजी बोले कि मेरे बड़ाभारी बैरी जो यहां निन्दित मुनि वसिष्ठ टिकेहैं ॥ ३७ ॥ शीघ्रही जाकर उनको मारिये उसीके लिये मैंने कियाहै उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीसे इस प्रकार कहीहुई उस शक्तिने उत्तर मुखवाली होकर वसिष्ठजीके आश्रमको उद्देशकर प्रस्थान किया इसी अवसरमें हे ब्राह्मणों ! वसिष्ठजीके आश्रममें ॥ ३८ । ३९ ॥ बड़ेभारी बहुतसे अशकुन हुये कि सूर्यमण्डलको ताड़नकर बडीभारी उल्का गिरी ॥ ४० ॥ वैसेही

अस्थियोंसे मिलीहुई रक्तकी वर्षाहुई व प्रकाशित दिशाको प्राप्तहोकर सियारीने रोदन किया ॥ ४१ ॥ उन बडेभारी उत्पातोंको देखकर मुनिपुंगव वसिष्ठजी जबतक ज्वालाकी मालाओंसे भलीभांति उज्वल रूपको रुव ओरसे देखैं ॥ ४२ ॥ तबतक दिव्यदृष्टिसे भलीभांति सब जानकर कि मेरे मारनेके लिये सामवेदसे उपजेहुये उत्तम मन्त्रोंके द्वारा यह कृत्या रूपिणी शक्ति विश्वामित्रसे प्रयुक्तकीगईहैं तदनन्तर उन वसिष्ठजीसे ठहरो २ ऐसा कहीहुई वह शक्ति अचल होगई ॥ ४३ । ४४ ॥ उन व-सिष्ठजीने अथर्वणवेदसे उपजे हुये अपने मन्त्रोंके द्वारा उसको रोंकदिया तदनन्तर स्त्रीरूपको धरकर मुनिसत्तम वसिष्ठजीसे बोली ॥ ४५ ॥ कि वेदोंके मध्यमें सामवेद

साय रुरोदचतथाशिवा ॥ ४१ ॥ तान्दृष्ट्वासुमहोत्पातान्वसिष्ठोमुनिपुङ्गवः॥यावदालोकतेरूपं ज्वालामालासमुज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥ ततःसम्यक्परिज्ञाय सर्वंदिव्येनचक्षुषा ॥ विश्वामित्रप्रयुक्तेयं शक्तिर्ममवधायच ॥ ४३ ॥ कृत्यारूपासुमन्त्रैश्चसामवेदसमुद्भवैः॥तिष्ठतिष्ठेतितेनोक्ता ततस्सानिश्चलाभवत् ॥ ४४॥ निजमन्त्रैश्चसातेन स्तम्भिताथर्वणोद्भवैः॥ ततःस्त्रीरूपमाधाय प्रोवाचमुनिपुङ्गवम् ॥ ४५ ॥ सामवेदस्तुवेदानां प्राधान्येनव्यवस्थितः ॥ विधिनातस्यसंसृष्टा विश्वामित्रेणधीमता ॥ ४६ ॥ माकुरुष्वाप्रमाणन्तु प्रहारंसहमेमुने ॥ रक्षयिष्यामितेप्राणान्स्वल्पस्पर्शेनतेमुने॥ ४७॥ वसिष्ठउवाच ॥ यद्येवंकुरुमेस्पर्शं मर्ममास्पर्शशोभने ॥ मयाचाथर्वणामन्त्रास्संहृताःकृपयातव ॥ ४८ ॥ ततस्सादारुणाशक्तिर्विश्वामित्रप्रयोजिता॥ तस्याङ्गदेशंस्पृष्ट्वाच निपपातधरातले ॥ ४९ ॥ ततस्तुष्टोवसिष्ठस्तुतामाहमधुरंवचः ॥ अद्यप्रभृतितेपूजां करिष्यन्तिसमाहिताः ॥ ५० ॥ जनास्सर्वेमहाभागे भक्त्यापरमयायुताः ॥ चैत्रमासेसितपक्षे

मुख्यतासे व्यवस्थित (टिका) है उस सामवेदकी विधिसे बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने मुझको सिरजाहै ॥ ४६ ॥ हे मुने ! अप्रमाण मतकीजिये मेरे प्रहारको सहिये हे मुने ! तुम्हारे थोडे स्पर्शसे तेरे प्राणोंकी रक्षाकरूंगी ॥ ४७ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे शोभने ! यदि ऐसाहै तो मेरे स्पर्शकरो परन्तु मर्म (नाजुक अंग) को मतस्पर्श कीजियेगा और तुम्हारे ऊपर दयासे मैंने अथर्वणवेदवाले मन्त्रोंका संहार कियाहै ॥ ४८ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रसे प्रयोगकीहुई वह भयङ्करी शक्ति उन वसिष्ठजीके अंग स्थानको छूकर भूतलमें गिरपड़ी॥ ४९ ॥ तदनन्तर अप्रसन्न वसिष्ठजीने उस शक्तिसे मधुर वचनको कहा कि हे महाभागे ! आजसे लगाकर सावधान होतेहुये समस्त

नर परम श्रद्धासे युक्तहोकर तुम्हारी पूजाकरैंगे और चैतमहीने के मध्यशुक्लपक्षमें अष्टमी दिनके स्थित होनेपर॥ ५० । ५१ ॥ परम श्रद्धासे संयुत होतेहुये जोमनुष्य तुम्हारा पूजनकरैंगे वे सब वर्षभरतक निरोग होवैंगे ॥ ५२ ॥ इसलिये मेरे वचनसे तुमको सदैव यहीं टिकना चाहिये सूतजी बोले कि उन महात्मा वसिष्ठजी से इस प्रकार कहीहुई वह शक्ति ॥ ५३ ॥ उन वसिष्ठजीके वचनसे उसीक्षण वह देवीवहींपर स्थितहुई व नागर द्विजोंसे विशेषकर कीहुई उत्तम पूजनको प्राप्तहोतीहै ॥ ५४ ॥ व भक्तजनों को सुखदायिनी धारा ऐसे नामसे प्रसिद्धहुई ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां हाटकेश्वरमाहात्म्ये

अष्टम्यांदिवसेस्थिते ॥ ५१ ॥ येतेपूजांकरिष्यन्ति श्रद्धयापरयायुताः ॥ तेसर्वेवत्सरंयावद्भविष्यन्तिनिरामयाः ॥५२॥ तस्मादत्रैवस्थातव्यं सदैवममवाक्यतः ॥ सूतउवाच॥एवमुक्ताचसातेन वसिष्ठेनमहात्मना ॥ ५३ ॥ स्थितातत्रैवसादेवी तस्यवाक्येनतत्क्षणात् ॥ प्राप्नोतिपरमांपूजां विशेषान्नागरैःकृताम् ॥ ५४ ॥ धारानामेतिविख्याता भक्तलोकसुखप्रदा ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे नागरखण्डेतृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ कस्मात्सातुष्टिदाप्रोक्ता नागराणांविशेषतः ॥ धारानामेतिविख्याता कस्मात्साधरणीतले ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ चमत्कारपुरेपूर्वं धारानामेतिविश्रुता ॥ आसीत्तपस्विनीपूर्वं नागरीब्राह्मणोत्तमाः ॥ २ ॥ तस्यास्सख्यमरुन्धत्याश्चासीत्पूर्वंसुमेधसः ॥ अरुन्धतीयदाप्राप्ताचमत्कारपुरेशुभे ॥ ३ ॥ स्नानार्थंशङ्खतीर्थेतु वसिष्ठेनसमागता ॥

धारोत्पत्तिर्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भई शक्ति मुनिकी रची धारानामक देवि । इकसौ बासठिमें सोई कहत कथासुखसेवि ॥ ऋषिलोग बोले कि वह विशेषकर नागर द्विजों को सन्तोषदायिनी किस कारणहुई और धाराऐसे नामसे वह किस कारण प्रसिद्धहुई ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय चमत्कारपुरमें धाराऐसे नामसे प्रसिद्ध पहिले नागरी (नागर द्विज कन्या) तपस्विनीहुई है ॥ २ ॥ पुरातन समय उस उत्तम बुद्धिवाली तपस्विनीकी अरुन्धतीके साथ मित्रता हुईहै जब अरुन्धतीजी उत्तम चम-

त्कारपुर में प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ व शङ्खतीर्थ में नहानेके लिये वसिष्ठजीके साथ भलीभांति आई तब उन अरुन्धतीजीने उस पतिव्रताधारासे पूंछा कि हे शुभे ! तुम किसकी कन्या व कौनहो ॥ ४ ॥ हे शुभे ! और किस लिये श्रेष्ठ तपस्यामें टिकीहो धाराबोली कि देवशर्मा नामक नागर ब्राह्मणकी मैं कन्याहूं ॥ ५ ॥ बाल्यावस्थामें वर्तमानमेरे समीप वैधव्यता व्यवस्थित (प्राप्त) हुई तदनन्तर शङ्खतीर्थ व शङ्खेश्वरजीका माहात्म्य सुनकर यहां भलीभांति स्थितहुई व उन्ही शङ्खेश्वरजीके आराधनमें स्थितहूं अरुन्धती बोलीं कि देखनेसे तुम्हारे ऊपर बड़ाभारी स्नेह प्राप्तहुआ ॥ ६।७ ॥ इसलिये आइये समस्त पातकोंके नाशनेवाले सरस्वतीजीके उज्ज्वल किनारे पै मेरा उत्तम

तयापृष्टाचसासाध्वी कात्वङ्कस्यसुताशुभे ॥ ४ ॥ किमर्थन्तुस्थिताचाग्रे तपसिब्रूहिमेशुभे ॥ धारोवाच ॥ देवशर्म्माख्य विप्रस्य सुताहंनागरस्यच ॥ ५ ॥ बाल्यत्वेवर्तमानाया वैधव्यंमेव्यवस्थितम् ॥ शङ्खतीर्थस्यमाहात्म्यं श्रुत्वाशङ्खेश्व रस्यच ॥ ६ ॥ ततोहंसंस्थिताचात्र तस्यैवाराधनेस्थिता ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ तवोपरिमहास्नेहो दर्शनाच्चव्यवस्थितः ॥ ७ ॥ तस्मादागच्छगच्छावो ममाश्रमपदंशुभम् ॥ सरस्वत्यास्तटेशुभ्रे सर्वपातकनाशने ॥ ८ ॥ शास्त्रगोष्ठीरतानि त्वं तत्रतिष्ठमयासह ॥ ततस्सम्प्रस्थितासातु तयासार्द्धन्तपस्विनी ॥ ९ ॥ अनुज्ञातास्वपित्रातुजनन्याबान्धवैस्तथा ॥ तस्याःसख्यंचिरङ्कालं तयासहबभूवह ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य साशक्तिस्तत्रचागता ॥ विश्वामित्रेणसंसृष्टा व सिष्ठस्यवधायच ॥ ११ ॥ सास्तम्भितावसिष्ठेन कृतादेवीस्वरूपिणी ॥ सम्पूज्यादेवमर्त्यानांसर्वरक्षाप्रदाशुभा ॥ १२ ॥ ततस्तुधारयातस्याःकैलासशिखरोपमः ॥ प्रासादोनिर्म्मितोविप्रा नानारत्नविचित्रितः ॥ १३ ॥ चकाराथततस्स्तोत्रं

आश्रम स्थानहै वहां चलैं ॥ ८ ॥ वहा शास्त्रोंकी सभामें परायणहोतीहुई तुम मेरे साथ टिको तदनन्तर अपने पिता, माता व भाइयोंसे आज्ञादीहुई उस धारा तपस्विनीने उन अरुन्धतीजीके साथ भलीभांति प्रस्थान किया उस धाराकी उन अरुन्धतीके साथ बहुत समयतक मित्रताहुई ॥ ९।१० ॥ इसके अनन्तर किसी समय वसिष्ठजीके वधके लिये विश्वामित्रजीसे सिरजीहुई वह शक्ति वहां आई ॥ ११ ॥ व स्तम्भन कीहुई वह वसिष्ठजीसे देवीरूपिणी कीगई व सबोंको रक्षा देनेवाली व उत्तमा वह देवों व मनुष्योंके भलीभांति पूजने योग्य कीगई ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! धाराने अनेक प्रकारके रत्नोंसे विचित्रित व कैलास पर्वतके समान उस देवीके मन्दिर

का निर्माण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस तपस्विनीने उसके लिये स्तुति किया कि हे परमे, ब्राह्मि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे ध्यानयोग्ये ! नमस्कार है नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे आधीमात्रा से परे, हे शून्ये, हे उसके आधेकी आधी ! तुम्हारे लिये नमस्कार होवै हे जगदाधारे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे भूतधारिणि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे कमलदललोचानि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कनकच्छवि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सिंहवाहनाढ्ये ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महाभुजे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे देवप्रिये ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे दैत्यदालनि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महिषक्रान्तशरीरे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे छिन्नमस्तके ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे उत्तमध्यानतत्परे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे मद्यमांसबलिप्रिये ! तुम्हारे लिये नमस्कार है

तस्यार्थेसातपस्विनी ॥ नमस्तेपरमेब्राह्मि ध्यानयोग्येनमोनमः ॥ १४ ॥ अर्द्धमात्रापरेशून्ये तस्यार्द्धार्द्धेनमोस्तुते ॥ नमस्तेजगदाधारे नमस्तेभूतधारिणि ॥ १५ ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि नमस्तेकाञ्चनद्युते ॥ नमस्तेसिंहयानाढ्येनमस्तेस्तु महाभुजे ॥ १६ ॥ नमस्तेदेवताभीष्टे नमस्तेदैत्यसूदिनि ॥ नमस्तेमहिषक्रान्तशरीरेछिन्नमस्तके ॥ १७ ॥ नमस्तेसु ध्यानरते सुरामांसबलिप्रिये ॥ त्वंलक्ष्मीस्त्वंशचीगौरी त्वंसिद्धिस्त्वंविभावरी ॥ १८ ॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधातुष्टिस्त्वंपुष्टि स्त्वंसुरेश्वरी ॥ शक्तिरूपासिदेवित्वं सृष्टिसंहारकारिणि ॥ १९ ॥ त्वयिदृष्टमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यथातिले तिलेतैलं दधिसंस्थंयथाघृतम् ॥ २० ॥ हविर्भुजश्चकाष्ठस्थः सगुप्तोलभ्यतेनहि ॥ तथात्वमपिदेवेशि सर्वगापिनलक्ष्य से ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ एतेनस्तोत्रमुख्येनस्तुतासापरमेश्वरी ॥ बहूनिवर्षपूगानिपूजयन्त्यादिनेदिने ॥ २२ ॥ कस्य

तुम्हीं लक्ष्मीहो व इन्द्राणी, मृडानी (पार्वती) तुम्हींहो व सिद्धि तुम्हींहो रात्रि तुम्हींहो ॥ १८ ॥ तुम्हीं स्वाहाहो तुम्हीं स्वधाहो तुम्हीं तुष्टिहो तुम्हीं पुष्टिहो तुम्हीं देवेश्वरीहो हे सृष्टिसंहारकारिणि, देवि ! तुम्हीं शक्तिरूपिणीहो ॥ १९ ॥ व स्थावर जंगम समेत यह समस्त त्रिलोक तुम में देखा गयाहै जैसे तिल तिल में तेल है व जैसे घृत दही में भलीभांति टिकाहै ॥ २० ॥ व काठ में टिके हुये अग्नि हैं जैसे अति छिपे हुये वे अग्नि नहीं मिलते हैं वैसेही हे सुरेशि ! सर्वव्यापिनी तुम भी नहीं देखपड़तीहो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि दिन दिन में पूजती हुई उसने बहुत वर्ष समूहोंतक इस मुख्य स्तोत्रसे उन परमेश्वरीजी की स्तुति किया ॥ २२ ॥ इसके

चित्त्वथकालस्य चैत्रशुक्लाष्टमीस्थिता ॥ तस्मिन्नहनिदेवीसानयासंस्नाप्यपूजिता ॥ २३ ॥ बलिम्पूर्णान्ततोदत्त्वास्तो
त्रेणानेनचस्तुता ॥ ततःप्रत्यक्षताङ्गत्वा तामुवाचतपस्विनीम् ॥ २४ ॥ पुत्रितुष्टास्मिभद्रन्ते स्तोत्रेणानेनचानघे ॥ वरं
वरयभद्रन्ते तवदास्यामिवाञ्छितम् ॥ २५ ॥ धारोवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ ममनामतवाप्यस्तु
प्रासादेत्रहिकेवलम् ॥ २६ ॥ अपरोनागरोयोत्र तस्मिन्नहनिसंस्थिते ॥ प्रदक्षिणत्रयंकृत्वातवदत्त्वाफलत्रयम् ॥ २७॥
स्तोत्रेणानेनभवतींस्तुत्वाचकुरुतेनतिम् ॥ तस्यसंवत्सरंयावद्रोगोरक्ष्यस्त्वयाखिलः ॥ २८ ॥ याचबन्ध्याभवेन्नारी सा
भूयात्पुत्रसंयुता ॥ दुर्भगाचसुसौभाग्या कुरूपारूपसंयुता ॥ २९ ॥ रोगिणीरोगनिर्मुक्ता सर्वसौख्यसमन्विता ॥ देव्यु
वाच ॥ अहन्धारेतिविख्याता प्रासादेत्रत्वयाकृते ॥ ३० ॥ भविष्यामिनसन्देहस्तवकीर्तिकृतेसदा ॥ अत्रयोनागरोभ
क्त्या समागत्यतपस्विनि ॥३१॥ प्रदक्षिणत्रयंकृत्वा दत्त्वाममफलत्रयम् ॥ सोपिसंवत्सरंयावद्भवितारोगवर्जितः ॥३२॥

अनन्तर किसी समय चैतमहीने की शुक्लपक्षवाली अष्टमी स्थितहुई उस दिन उस धाराने उन देवीको भलीभांति नहवाकर पूजन किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर पूर्णबलि को देकर इस स्तोत्रसे स्तुति किया उसके उपरान्त प्रत्यक्षतामें प्राप्तहोकर उस तपस्विनी से शक्तिजी बोलीं ॥ २४ ॥ कि हे निष्पापे, पुत्रि! तुम्हारा कल्याणहोवै इस स्तोत्रसे मैं प्रसन्नहुईहूं तुम्हारा कल्याणहो वरदानको मांगिये मैं तुमको मनोरथ दूंगी ॥ २५ ॥ धारा बोली कि हे देवि! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदेने योग्यहै तो इसमन्दिरमें केवल मेरा नाम तुम्हाराभी होवै ॥ २६ ॥ व उस दिनके संस्थित होनेपर याने चैत्रशुक्लाष्टमी में अन्य जो नागर द्विज तीनप्रदक्षिणाओंको करके तुमको तीन फलोंको देकर व इस स्तोत्रसे आपकी स्तुतिकर प्रणामकरै उसकी रोगोंसे रक्षा तुमको सालभरतक करना चाहिये ॥ २७। २८ ॥ व जो बांझ स्त्री होवै वह पुत्र संयुत होजावै व दुष्टभाग्यवाली सौभाग्यवती होवै और कुरूपिणी स्वरूपसे संयुत होवै ॥ २९ ॥ व रोगिणी रोगसे छूटजावै व समस्त सौख्यों से संयुत होवै देवी बोलीं कि तुमसे कियेहुये इसमन्दिर में तुम्हारे यशके लिये मैं निरसन्देह सदैव धारा ऐसी प्रसिद्ध हूंगी हे तपस्विनि! यहां भक्ति से भलीभांति आकर जो नागर ब्राह्मण ॥ ३० । ३१ ॥ तीन प्रदक्षिणाओंको करके व मुझे तीनफलों को देकर पूजैगा वहभी वर्ष भरतक रोगरहित होगा ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर तदनन्तर वह देवी अन्तर्द्धान होगई व अरुन्धती संयुक्त धाराभी वहां भलीभांति टिकतीभई ॥ ३३ ॥ जोकि उन अरुन्धतीजीके समीपवर्तिनी आजभी आकाशमें देखपडती है जो पुरुष धारासे उपजेहुये इस वृत्तान्तको यहां कीर्तन करैगा ॥ ३४ ॥ या हे द्विजोत्तमो ! सुनैगा वह दिनमे उपजेहुये पापको त्याग करैगा इसलिये समस्त बड़े उपायसे विशेषकर पढ़ना चाहिये ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

एवमुक्त्वातुसादेवी ततश्चादर्शनङ्गता ॥ धारापिसंस्थितातत्र अरुन्धत्यासमन्विता ॥ ३३ ॥ अद्यापिदृश्यतेऽद्यो म्नितस्याश्चापिसमीपगा ॥ एतद्धारोद्भवंयोत्र वृत्तान्तङ्कीर्तयिष्यति ॥३४॥ शृणुयाद्वाद्विजश्रेष्ठामुञ्चेत्पापंदिनोद्भवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठनीयंविशेषतः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येधारोत्पत्तिर्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपिसञ्जातमाश्चर्य्यंयदभूद्द्विजाः ॥ विश्वामित्रेणसाशक्तिर्वसिष्ठायमहात्मने ॥ १ ॥ वधार्थन्तस्यविप्रर्षेर्वसिष्ठेनचधीमता ॥ स्तम्भिताथर्वणैर्मन्त्रैः स्वेदस्तुसमजायत ॥ २ ॥ स्वेदात्समभवत्तोयं शीतलंसमजायत ॥ पादाभ्यांनिर्गतन्तोयमत्रकुण्डमजायत ॥ ३ ॥ तिर्य्यग्भूमेस्तुसञ्जाताजलधारासुशीतला ॥ निर्मलंपावनं

दो० । यथाशक्ति के स्वेदसन निकसीहैं श्रीगंग । इकसौ तिरसठिमें सोई वरणत रुचिर प्रसंग ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वैसेही और भी भलीभांति उपजा हुआ जो आश्चर्य भयाहै उसको सुनिये कि उन विप्रर्षिके वधके लिये बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने उस शक्तिको महात्मा वसिष्ठजीके निमित्त छोड़ाहै और मतिमान् वसिष्ठजीने अथर्वण वेदवाले मन्त्रोंसे रोंकदिया व पसीना उत्पन्न हुआहै ॥ १ । २ ॥ व पसीनासे जो जल उत्पन्न हुआ वह ठण्ढा होगया व दोनों चरणोंसे वह जल निकला और यहा कुण्ड होगया ॥ ३ ॥ और भूमिसे अतिठण्ढी व तिरछी जलधारा उत्पन्नहुई जो जल कि पवित्रकारक व श्वेत और निर्मलतथा वे कल्याणकारिणी

हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! गंगा निकलीं ॥ ४ ॥ समस्त तीर्थोंसे संयुत गंगाजी प्रत्यक्षतामें प्राप्तहुई व जलसे अमल शीतल व कल्याणकारक कुण्ड पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जो बन्ध्या स्त्री उन गंगाजीमें स्नानकरतीहै वह भयङ्कर कलियुगमें पुत्रवती होतीहै ॥ ६ ॥ व और भी जो स्नान करताहै वह सर्वथा अर्थ (प्रयोजन या धन) रूप फलको प्राप्तहोताहै व जो पुरुष उस कुण्डमें विधिसे नहाकर और देवीको देखताहै ॥ ७ ॥ उसके धन, धान्य व पुत्र तथा राज्यसे उत्पन्नहुआ समस्त सुख होताहै व जो स्त्री दुर्भाग्यवती तथा बांझ होतीहै वहभी पुत्रवती होतीहै चैत महीनेकी शुक्लपक्षवाली अष्टमीमें महारात्रिके बीच भक्तियोगसे संयुत जो आपही स्त्री या प्रसन्न कन्या

स्वच्छं गङ्गाभद्राविनिस्सृता ॥ ४ ॥ गङ्गाप्रत्यक्षतांजाता तीर्थैस्सर्वैस्समन्विता ॥ पूरितंवारिणाकुण्डं निर्म्मलंशीत
लंशिवम् ॥ ५ ॥ तस्यांयाकुरुतेस्नानं नारीबन्ध्याद्विजोत्तमाः ॥ सद्यःपुत्रवतीसास्याद्रौद्रेकलियुगेद्विजाः ॥ ६ ॥ अ
न्योपिकुरुतेस्नानं सर्वथार्थफलंलभेत् ॥ स्नात्वातत्रतुयोदेवीम्पश्येच्चविधिनानरः ॥ ७ ॥ धनंधान्यन्तथापुत्रान् रा
ज्योत्थंसकलंसुखम् ॥ यानारीदुर्भगाबन्ध्या सापिपुत्रवतीभवेत् ॥ ८ ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां भक्तियोगसमन्विता ॥
महानिशायांतत्रैव नैवेद्यबलिपिण्डकाम् ॥ ९ ॥ प्रसन्नयाकुमार्य्यातु स्वयंवाथकरोतिया ॥ गृह्णातियाचवैनारी पि
ण्डकांबलिसंयुताम् ॥ १० ॥ शतवर्षातुयानारी पिण्डकांभक्षयेद्द्विजाः ॥ सापिपुत्रवतीचस्याद्यदिवृद्धतमाभवेत् ॥
११ ॥ किम्पुनर्यौवनोपेता सौभाग्येनसमन्विता ॥ पुत्रसौख्यवतीनारी देव्यावैदर्शनेनच ॥ १२ ॥ सर्वेषांनागराणाञ्च
भावजादेवतास्मृता ॥ सासार्द्धाष्टद्विपञ्चाशद्गोत्राणांकुलदेवता ॥ १३ ॥ एतस्मात्कारणाद्यात्रा नागरैस्सुकृताभवेत् ॥

के द्वारा वहींपर नैवेद्यमें बलि पिण्डको करती है और जो स्त्री बलि संयुक्त पिण्डको ग्रहण करतीहै ॥ ८।९।१० ॥ हे ब्राह्मणो ! सौवर्षवाली जो स्त्री पिण्डको भक्षणकरै यदि अतिवृद्ध होवै तो वहभी पुत्रवती होवै ॥ ११ ॥ फिर यौवनसे संयुक्त स्त्री को क्या कहनाहै निश्चयकर देवीजीके दर्शनसे स्त्री सौभाग्यसे सयुत व पुत्रवती तथा सौख्यवती होतीहै ॥ १२ ॥ जोकि समस्त नागरोंके भावसे उपजीहुई देवता कहीगईहै वह साढ़े साठि गोत्रोंकी कुलदेवताहै ॥ १३ ॥ इसी कारण नागरोंसे भलीभांति

कहीहुई यात्रा होवै है बिन नागरोंकी यात्राके वह देवेश्वरी प्रसन्नताको नहीं प्राप्तहोतीहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधारोत्पत्तिकथनंनामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा सरस्वति नदीको भयो सकल जलरक्त । इकसौ चौंसठिमें सोई कह्यो सूत मुनि भक्त ॥ सूतजी बोले कि जब मतिमान् विश्वामित्रजीने सरस्वतीजी को शाप दिया तब उसका जल रक्तहोगया व भूत, प्रेत और राक्षस रक्तको पीकर गाने व हँसनेलगे वहां उस सरस्वतीके किनारे जो कोई तपस्वी विशेषतासे टिकेथे ॥ १ । २ ॥

नविनानागरैर्यात्रातुष्टिंयातिसुरेश्वरी ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये धारोत्पत्तिर्नामत्रिषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ सरस्वतीयदाशप्ता विश्वामित्रेणधीमता ॥ तज्जलंरक्तमापन्नं भूताःप्रेतानिशाचराः ॥ १ ॥ पीत्वार क्तंप्रनृत्यन्ति गायन्तिचहसन्तिच ॥ येतत्रतापसाःकेचित्तटेतस्याव्यवस्थिताः ॥ २ ॥ चण्डशर्म्मप्रभृतयस्तेपिजा तास्सुदूरतः ॥ वसिष्ठोपिमुनिश्रेष्ठो जगामार्बुदपर्वतम् ॥ ३ ॥ विश्वामित्रस्तुविप्रर्षिश्चमत्कारपुरङ्गतः ॥ हाटकेश्वरजेक्षे त्रे यत्स्थितंविप्रसंकुलम् ॥ ४ ॥ तत्राश्रमपदंकृत्वा तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ येनसृष्टिक्षमोजातःस्पर्द्धतेब्रह्मणासह ॥ ५ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यथासारस्वतञ्जलम् ॥ रुधिरंसमनुप्राप्तंविश्वामित्रस्यसन्मुनेः ॥ ६ ॥ मन्त्रप्रभावतोयेन तत्तो यंरुधिरीकृतम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ ततःप्रभृतिसम्प्राप्तंकथन्तोयम्प्रकीर्तय ॥ सरस्वत्यामहाभाग सर्वंविस्तरतोवद ॥ ७ ॥

चण्डशर्म इत्यादिक वे भी बहुतदूर चलेगये व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठभी अर्बुद पर्वतको चलेगये व विश्वामित्र ब्रह्मर्षि चमत्कार पुर को गये व हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें जो द्विजोंसे व्याप्त स्थान स्थितथा ॥ ३ । ४ ॥ वहां आश्रम स्थान करके अतिभयङ्कर तपस्याकी जिससे सृष्टिके समर्थ हुये व ब्रह्माके साथ ईर्षा करनेलगे ॥ ५ ॥ तुम लोगोंसे इस समस्त वृत्तान्तको कहा कि जिस प्रकार उत्तममुनि विश्वामित्रजीके उत्तम प्रभावसे जिस कारण वह सरस्वतीजीका जल रक्त कियागया है ऋषि

लोग बोले कि हे महाभाग ! तबसे लगाकर सरस्वतीजी का जल किसभांति हुआहै इस समस्त चरितको विस्तारसे कहिये ॥ ६ । ७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! सरस्वतीजीका वह प्रवाह भूत राक्षसोंसे सेवित महारक्तमय बहुत समयतकरहा ॥८॥ इसके अनन्तर किसीसमय दुःख संयुत उस दीन सरस्वतीने अर्बुद पर्वतपै टिकेहुये मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा ॥ ९ ॥ कि हे मुने ! तुम्हारे लिये विश्वामित्रजीने मुझको क्रोधसे शापदिया व तपस्वियोंसे रहित और रक्तप्रवाह बाहिनी होगईहूं ॥ १० ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिस प्रकार मेरे प्रवाहमें फिर जल होवै व रक्तका क्षयहोवै ॥ ११ ॥ हे मुनिनायक, विप्र ! त्रिलोकके रचने,

सूतउवाच ॥ बहुकालंसप्रवाहः सरस्वत्याद्विजोत्तमाः ॥ महारक्तमयोजातो भूतराक्षससेवितः ॥ ८ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ अर्बुदस्थस्तयाप्रोक्तो दीनयादुःखयुक्तया ॥ ९ ॥ तवार्थायमुनेशप्ता विश्वामित्रेणकोपतः ॥ रुधिरौघवहाजाता तपस्विजनवर्जिता ॥ १० ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे यथास्यात्सलिलम्पुनः ॥ प्रवाहेममविप्रेन्द्रप्रयातिरुधिरक्षयम् ॥११॥ त्रैलोक्यकरणेविप्र संक्षयेवास्थितौहिवा ॥ नाशक्तिर्विद्यतेकाचित्तवसर्वंमुनीश्वर॥ १२॥ वसिष्ठउवाच ॥ तथाभद्रेकरिष्यामियथास्यात्सलिलम्पुनः ॥ प्रवाहेतवनिर्य्याति सर्वंरक्तपरिक्षयम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिरवतीर्य्यधरातले ॥ गतःप्लक्षतरुंयस्मादवतीर्णासरस्वती ॥ १४ ॥ समाधिंतत्रसन्धाय निर्विष्टोधरणीतले ॥ सम्भ्रमंपरमंगत्वा विश्वामित्रस्यचोपरि ॥ १५ ॥ ब्राह्मणेनतुमन्त्रेण वीक्ष्यतंवसुधातलम् ॥ ततोनिर्भिद्यवसुधांभूरितोयंविनिर्गतम् ॥ १६ ॥ रन्ध्रद्वयेनविप्रेन्द्रा लोचनाभ्यांनिरीक्षणात् ॥ एकस्यसलिलंक्षिप्रंयत्रजातासरस्वती॥१७॥

संहारने व पालनेमें तुमको कोई असामर्थ्य नहीं है सब विद्यमानहै ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे भद्रे ! मैं वैसाही करूंगा कि जिसप्रकार तुम्हारे प्रवाहमें फिर जल होगा व समस्त रक्तका संहार होजायगा ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर वे ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीभूतलमें उतरकर पकरिया वृक्षके समीपगये जहांसे कि सरस्वतीजी उतरीथीं ॥ १४ ॥ वहां विश्वामित्रजीके ऊपर बड़े क्रोधको प्राप्तहो करके समाधिको भलीभांति धारणकर धरातलमें बैठगये ॥ १५ ॥ व ब्राह्मण मन्त्रसे उस भूतलको देखकर स्थितहुये तदनन्तर हे द्विजेन्द्रो ! नयनोंके देखने से पृथ्वीको फोड़कर दो छिद्रोंसे बहुत जल निकला तदनन्तर शीघ्रही एक छिद्रका जल जहां सरस्वतीजी उत्पन्नहुई थीं वहां

पकरियाकी जड़में उस बलके द्वारा उसके वेगसे डुबाकर उस प्रवाहसे वह रक्त पूर्णहोगया उसके उपरान्त उसी प्रवाहसे महानदी होगई ॥ १६ । १७ । १८ ॥ व उनके क्रोधसे जो दूसरा प्रवाह निकला वह भ्रमती नामक नदी धरातलमें उत्पन्नहुई ॥ १९ ॥ इसलिये हे महाभागो, द्विजो ! फिर भी सरस्वतीजी प्रकृतिमें प्राप्तहुई सरस्वतीजी के लिये जो मैं पूंछागया उसको कहा ॥२०॥ जो पुरुष अति बुद्धिदायक इस सारस्वत नामक कथानकको पढ़ता या सुनताभी है उसकी बुद्धि सरस्वतीजीकी प्रसन्नतासे बढतीहै यह मैंने सत्य कहाहै ॥ २१ । २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीय परिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांश्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहा

पुच्छमूलेततस्तस्य वेगेनाप्लाव्यतद्बलात् ॥ तद्रक्तंतेनसम्पूर्णं ततस्तेनमहानदी ॥ १८ ॥ द्वितीयस्तुप्रवाहोयः सम्भ्रमात्तस्यनिर्गतः ॥ साख्याताभ्रमतीनाम नदीजाताधरातले ॥ १९ ॥ एवंप्रकृतिमापन्ना भूयएवसरस्वती ॥ यत्पृष्टोस्मिमहाभागास्सरस्वत्याकृतेद्विजाः ॥ २० ॥ एतत्सारस्वतंनाम व्याख्यानमतिबुद्धिदम् ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापि मतिस्तस्यविवर्द्धते ॥ २१ ॥ सरस्वत्याःप्रसादेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभ्रमतीमाहात्म्यंसरस्वत्युपाख्यानन्नामचतुःषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥१६४॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपिवोवच्मिलिङ्गंयत्तत्रसंस्थितम् ॥ स्थापितंपिप्पलादेन कंसारीश्वरमित्युत ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कएषपिप्पलादस्तु कस्यपुत्रोवदस्वनः ॥ किमर्थंस्थापितंलिङ्गं क्षेत्रेतत्रमहात्मना ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ प्रश्नभारोमहानेष भवद्भिस्समुदाहृतः ॥ तथापिकथयिष्यामिनमस्कृत्वास्वयम्भुवे ॥३॥ याज्ञवल्क्यस्यभगिनी कंसारीति

त्म्येभ्रमतीमाहात्म्यंसरस्वत्युपाख्यानंनामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । याज्ञवल्क्यके वीर्यसन भयोभगिनिमें बाल । इकसौ पैंसठि में सोई वरणत बुद्धि विशाल ॥ सूतजी बोले कि वैसेही पिप्पलादसे थापति कंसारीश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो लिंग वहां भलीभांति स्थितहै उसको तुम लोगोंसे कहताहूं ॥ १ ॥ ऋषि लोग बोले कि किसका पुत्र यह कौन पिप्पलाद है व उसक्षेत्र मे उस महात्माने किस कारण लिंगको थापाहै उसको हमलोगोंसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि आप लोगोंने इसबड़ेभारी प्रश्नभारको कहाहै तिसपरभी ब्रह्माके लिये प्रणाम

कर कहूंगा ॥ ३ ॥ कंसारी ऐसी प्रसिद्ध व भाईसे संयुत याज्ञवल्क्यजीकी बहनने पुण्यदायक याज्ञवल्क्यजीके आश्रममें कुमार ब्रह्मचर्य से अति दारुण तपस्या किया इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय किसी उत्तम अप्सराको देखकर तपस्यासे युक्त व तरुणतामें भलीभांति प्राप्त याज्ञवल्क्यजीका वीर्य शीघ्रही वसन मध्यमें स्खलित होगया ॥ ४ । ५ । ६ ॥ उन याज्ञवल्क्यके बहुत वीर्यसे पहननेवाला वसन सब ओर डूबगया प्रभातकाल समुपस्थितहोनेपर उन याज्ञवल्क्यजीने उस वसनको त्याग किया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उसीदिन कंसारिकाने स्नानके लिये उस वसनको लिया और सफल वीर्यसे भीगेहुये वसनको न जानती व स्नानकरती

तुविश्रुता ॥ कुमारब्रह्मचर्य्येण तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ याज्ञवल्क्याश्रमेपुण्ये बान्धवेनसमन्विता ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य याज्ञवल्क्यस्यभोद्विजाः ॥ ५ ॥ चस्कन्दरेतोवस्त्रान्ते दृष्ट्वाकांचिद्वराप्सराम् ॥ तारुण्यभावसंस्थस्य तपोयुक्तस्यसत्वरम् ॥ ६ ॥ रेतसातस्यमहतापरिधानंपरिप्लुतम् ॥ तच्चतेनपरित्यक्तं प्रभातेसमुपस्थिते ॥ ७ ॥ कंसारिकाथ तत्राह्निस्नानार्थंवसनंचतत् ॥ अमोघरेतसाक्लिन्नमजानन्त्याद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ कुर्वन्त्यामज्जनंतस्या जलंवीर्य्यसमन्वितम् ॥ प्रविष्टंभगमध्येतु ऋतुकालउपस्थिते ॥ ९ ॥ ततोगर्भस्समभवत्तस्याउदरमध्यगः ॥ वृद्धिंचाप्यगमन्नित्यं शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ १० ॥ सापितंगर्भमासाद्य स्वोदरस्थंतपस्विनी ॥ दुःखेनमहतायुक्ता लज्जयाचतदावृता ॥ ११ ॥ चिन्तयामाससुचिरं विस्मयेनसमन्विता ॥ गोपायतितदात्मानं दर्शनंयातिनोनृणाम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्य्यमिषं कृत्वा सदारहसिसंस्थिता ॥ संप्राप्तेदशमेमासि निशीथेसमुपस्थिते ॥ १३ ॥ तस्याःकुमारकोजातो वालार्कसदृशद्यु

हुई उसके ऋतु-समय प्राप्तहोनेपर योनिके मध्यमें वीर्य संयुत जल पैठगया ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर उसके पेटमें प्राप्तहोकर वह गर्भ भलीभांति होगया व जैसे शुक्ल-पक्षमें चन्द्रमा बढ़ताहै वैसेही नित्य वृद्धिको प्राप्तहुआ ॥ १० ॥ उस समय वह तपस्विनी यह भी अपने पेटमें प्राप्तहुये गर्भको पाकर बड़े दुःखसे संयुतहुई व लज्जासे घिरगई ॥ ११ ॥ व विस्मयसे संयुतहोती हुई उसने बहुत देरतक चिन्तवन किया उस समय अपने शरीरको छिपातीथी व मनुष्योंके दर्शनमें नहीं प्राप्तहोतीथी ॥ १२ ॥ वब्रह्मचर्य्यका बहाना करके सदैव एकान्तमें स्थिर रहतीथी और दशम महीनेको प्राप्तहोनेपर जब आधीरात भलीभांति प्राप्तहुई तब ॥ १३ ॥ बाल सूर्य्य नारायणके

समान शोभावाला पुत्र उसके पैदाहुआ इसके अनन्तर उस पुत्रको भलीभांति लेकर व सूक्ष्म वसनसे वेष्टितकर वह मनुष्योंसे रहित वनको चलीगई जोकि आंसुवोंसे पूर्णनेत्रोंवाली व दीन तथा गुप्तही रोरहीथी ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर उसने निर्जनवनमें बड़ेभारी पिप्पलके समीप जाकर व उसके नीचे पुत्रको छोड़कर इसके अनन्तर इस वचनको कहा ॥ १६ ॥ कि हे पिप्पल ! देवताओंमें प्रतिष्ठित तुम विष्णु रूपहो इसलिये हे वनस्पते ! तुम सब ओरसे मेरे पुत्रकी रक्षाकरो ॥ १७ ॥ हे वृक्ष ! मुझ निर्दयी व पापिनीका यह छोटापुत्र तुम्हारी शरणमें प्राप्तहै इसलिये रक्षाकीजिये ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर व बहुत देरतक रोकर पश्चात् आंसुवोंसे विकल लोचनों

अश्रुपूर्णेक्षणादीना रुदन्तीगुप्तमेवच ॥ १५ ॥ ततोगत्वाचसाश्वत्थं विजनेसुमहत्तरम् ॥ तस्याधस्ताद्विमुच्याथ वाक्यमेतदुवाचह ॥ १६ ॥ अश्वत्थविष्णुरूपोसि त्वन्देवेषुप्रतिष्ठितः ॥ तस्माद्रक्षस्वमेपुत्रं सर्वतस्त्वंवनस्पते ॥ १७ ॥ एषतेशरणंप्राप्तो ममपुत्रस्तुबालकः ॥ पापायानिर्दयायाश्च तस्माद्वृक्षसमाचर ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वारुदित्वाच सुचिरंसातपस्विनी ॥ जगामस्वाश्रमंपश्चाद्बाष्पव्याकुललोचना ॥ १९ ॥ यावद्रोदितिसामाता तस्याधस्ताद्वनस्पतेः ॥ तावदाकाशजावाणी संजातामेघनिःस्वना ॥ २० ॥ मात्वंशोकंकुरुष्वास्य बालकस्यकृतेशुभे ॥ एषशापादुतथ्यस्य ज्येष्ठभ्रातुर्बृहस्पतेः ॥ २१ ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे योगंसम्यग्विधास्यति ॥ एषचाथर्वणंवेदं शतकल्पंसविस्तरम् ॥ २२ ॥ सप्तभेदंचनवधापञ्चकल्पंकरिष्यसि॥ पिप्पलस्यतरोरेषरसंसम्भक्षयिष्यति ॥ २३ ॥ पिप्पलादइतिख्यातं ततोलोकेभविष्यति ॥ यात्वं

तिः ॥ अथसातंसमादाय सूक्ष्मवस्त्रेणवेष्टितम् ॥ १४ ॥ कृत्वाजगामचारण्यं मनुष्यैःपरिवर्जितम् ॥

वाली वह तपस्विनी अपने आश्रमको चलीगई ॥ १९ ॥ जबतक उस वनस्पति (पीपल) के नीचे वह रोतीथी तबतक मेघके समान शब्दवाली आकाशसे उपजी हुई वाणी उत्पन्नभई ॥ २० ॥ कि हे शुभे ! इस बालकके लिये तुम शोच मतकरो बड़ेभाई उतथ्यकी शापसे यह बृहस्पति धरणीतलमें अवतार लेकर भलीभांति योगको विधान करैगा व सौकल्पवाले अथर्वण वेदको यह विस्तार समेत सात, भेद व नवखण्ड और पांचकल्प करैगा और यह पिप्पल वृक्षके रसको भलीभांति भक्षण करैगा ॥ २१ । २२ । २३ ॥ उसी कारण संसारमें पिप्पलाद ऐसा प्रसिद्धहोगा और जो तुम विस्मयको प्राप्तहुईहो कि पुरुषके विना यह उन्नत पुत्र मेरे उत्पन्न

हुआहै तुम उसका कारण सुनो कि तुम्हारे भाईके वीर्यसे डूबाहुआ जो स्नानवाला वसनथा ॥ २४।२५ ॥ हे शुभे ! ऋतुसमयको प्राप्तहुई तुमने उसीको परिधान किया याने पहनलिया इसके अनन्तर स्नान समयमे जलके साथ वीर्यने योनिको स्पर्श किया ॥ २६ ॥ कि जिस सफल वीर्यसे तुम्हारा यह पुत्र भलीभांति स्थितहै हे महाभागे ! ऐसा जानकर जो योग्यहो उसको करो ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि देवलोकके उस वज्रपातके समान वचनको सुनकर वह हाहाकार में तत्पर होकर भूतल में गिर पड़ी ॥ २८ ॥ जैसे वृक्षसे लता गिरतीहै वैसेही वह तपस्विनी गिरपड़ी और उसके गिरनेपर याज्ञवल्क्य महामुनि ने ॥ २९ ॥ अपने आश्रमको शून्य देखकर

विस्मयमापन्ना पुरुषेणविनाशिशुः ॥ २४ ॥ संजातोयंममप्रांशुस्तस्यत्वंकारणंशृणु ॥ स्नानवस्त्रंचतेभ्रातूरेतसायत्परिप्लुतम् ॥ २५ ॥ गतयाऋतुकालंतु परिधानीकृतंशुभे ॥ स्नानकालेतुतोयेन रेतोयोनिमथास्पृशत् ॥ २६ ॥ अमोघरेतसायेन पुत्रोयंतवसंस्थितः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागे यदुक्तंतत्समाचर ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वादेवलोकस्य वज्रपातोपमंवचः ॥हाहाकारपराभूत्वा निपपातधरातले ॥ २८ ॥ यथावृक्षाल्लतातद्वत्पतितासातपस्विनी ॥ निपतन्त्यांतुतस्यान्तु याज्ञवल्क्योमहामुनिः ॥ २९ ॥ शून्यन्तुस्वाश्रमंदृष्ट्वा पप्रच्छान्यान्मुनीश्वरान् ॥ क्वचमेभगिनीजाताकंसारीसुतपस्विनी ॥ ३० ॥ तयाविनाद्यमेसर्वं शून्यमाश्रममण्डलम् ॥ आचख्यौतापसःकश्चिद्भगिनीतेयवीयसी ॥ ३१ ॥ निश्चेष्टापतिताभूमावश्वत्थस्यसमीपतः ॥ मयादृष्टामुनिश्रेष्ठ तांत्वमानयमाचिरम् ॥ ३२ ॥ अथासौत्वरयायुक्तस्संभ्रान्तस्तुप्रधावितः ॥ यत्रसाकथितातेन तापसेनतपस्विनी ॥ ३३ ॥ वीक्ष्यतांसतुतत्रस्थांश्वसमानांव्यवस्थि

अन्य मुनिनायकोंसे पूंछा कि उत्तम तपस्विनी मेरी बहन कंसारी कहांगई ॥३०॥ उसके विना आज मुझको समस्त आश्रम मण्डल शून्य देख पड़ता है किसी तपस्विनीने कहा कि तुम्हारी छोटी बहन ॥ ३१ ॥ चेष्टासे रहित होकर पीपलके समीपभूमिमें पड़ीहै मैंने उसको देखाहै हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम उसको शीघ्रही लेआवो ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर सम्भ्रममें प्राप्त व शीघ्रतासे संयुत थे मुनि दौड़े जहां उस तपस्वीने उस तपस्विनीको कहाथा वहां पर टिकी व श्वास लेतीहुई उस बहनको व्यवस्थित

देखकर इसके अनन्तर उन याज्ञवल्क्यजीने ठण्ढे जलसे बार २ सींचकर ॥ ३३ । ३४ ॥ व फिरभी पवन देकर जबतक चैतन्यता समेत किया तबतक कात्यायनी मैत्रेयीजी सम्भ्रम (शीघ्रता) समेत प्राप्तहुई ॥ ३५ ॥ व बोलीं कि हे ननन्दे ! यह क्या हुआ यह क्या हुआ शीघ्रही कहो क्या सर्पसे डसीगईहो या सन्निपातसे दूषितहो ॥३६ ॥ अथवा महेन्द्रवाले ज्वरसे या भूतसे ग्रहण कीगई हो इसके अनन्तर चैतन्यताको पाकर उसने स्त्री समेत याज्ञवल्क्यजीको अगाड़ी खड़ेहुये देखकर लज्जासे प्राणोंको छोड़दिया इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! उसको मरी देखकर बहुतदेरतक रोकर स्त्री समेत शोचधारी वे याज्ञवल्क्यजी अग्नि देकर पश्चात् जलांजलीको देकर अपने आश्रमको चलेगये ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ और पिप्पलाद ऐसा नामक वह बालकभी विशेषकर बढ़ताभया उसी पीपलके नीचे धीरे धीरे वृद्धिको प्राप्तहोता था ॥४०॥ इसके अनन्तर किसी समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी तीर्थयात्राके प्रसंगमे उसी मार्गकेद्वारा आये ॥ ४१ ॥ उनने बारह सूर्य्योंके समान प्रकाशवाले व पीपलके आस्वादन (भोजन) में तत्पर उस अकेले बालकको शून्य वनमें देखकर विस्मयसे संयुत होकर पूंछा कि सिंह, बाघोंसे संयुक्त इस बड़े भयङ्कर शून्य वनमें अकेले आप

ताम् ॥ अथतोयेनशीतेन सेचयित्वामुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥ दत्त्वाभूयोपिवातंच यावच्चक्रेसचेतनाम् ॥ तावत्कात्यायनीप्राप्ता मैत्रेयीचससंभ्रमा ॥ ३५ ॥ किमिदंकिमिदंजातं ननन्देवदमाचिरम् ॥ किंवासर्प्पेणदष्टासि सन्निपातेनदूषिता ॥ ३६ ॥ किंवाभूतगृहीतासिमाहेन्द्रेणज्वरेणवा ॥ अथसाचेतनांलब्ध्वा याज्ञवल्क्यंपुरःस्थितम् ॥ ३७॥ भार्य्ययासहितंदृष्ट्वा व्रीडयासून्मुमोचह ॥ अथताञ्चमृतांदृष्ट्वा रुदित्वाचचिरंद्विजाः॥३८॥याज्ञवल्क्यस्सभार्य्यस्तु दत्त्वावह्निंसशोकधृक् ॥ जगामस्वाश्रमंपश्चाद्दत्त्वाचसलिलाञ्जलिम् ॥ ३९ ॥ सोपिबालोविववृधे पिप्पलादेतिसंज्ञितः॥अश्वत्थस्यतलेतस्य वृद्धिंयातिशनैःशनैः ॥ ४० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तेनमार्गेणचागतः ॥४१॥ सदृष्ट्वाबालकंतन्तु द्वादशार्कसमप्रभम् ॥ एकाकिनंवनेशून्ये पिप्पलास्वादतत्परम् ॥ ४२ ॥ पप्रच्छविस्मयाविष्ट एकाकीकोभवानिह ॥ वनेशून्येमहारौद्रे सिंहव्याघ्रसमाकुले ॥ ४३ ॥ कतेमातापिताचैव किमर्थंचेहतिष्ठसि ॥ निव

कौनहो ॥ ४२ । ४३ ॥ और तुम्हारे माता, पिता कहांहैं व तुमे किस लिये यहां टिकेहो और कैसे बसोगे मुझसे सब विस्तारसे कहो ॥ ४४॥ पिप्पलाद बोले कि मैं माता,
पिता व भाईको नहीं जानताहूं व जो इस समय मेरे समीप यहां आयेहो सो आप कौनहो ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले कि उस बालकके उस वचनको सुनकर व देरतक
ध्यानकर तदनन्तर हँसते हुये मुनिनायक नारदजीने दिव्यदृष्टिसे जानकर उससे कहा ॥४६॥ नारदजी बोले कि हे वत्स ! मुझसे तुम जानेगयेहो कि याज्ञवल्क्यजीके
वीर्यसे बहनके पेटमें तुम उतथ्यजीके शाप दोषसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये देवाचार्य्य बृहस्पति दैवयोगसे पृथ्वीमें भलीभाति पैदाहुये हो इसलिये उस कारणको

कस्त्वं किमर्थमत्र स्थितो वद ॥ पिता माता च कुत्र ते ॥ सम्भवान्कोत्र
स्यसिकथञ्चैव सर्वमेविस्तराद्वद ॥ ४४ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ नाहंजानामिपितरं मातरंनचबान्धवम् ॥ सभवान्कोत्र
चायातो ममपार्श्वेतुसाम्प्रतम् ॥ ४५ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वामुनीश्वरः ॥ ततस्तंप्रहसन्प्राह ज्ञा
त्वादिव्येनचक्षुषा ॥ ४६ ॥ नारदउवाच ॥ मयाज्ञातोसिवत्सत्वं याज्ञवल्क्यस्यरेतसा ॥ दैवयोगात्समुत्पन्नो भगिन्या
उदरेस्थितौ ॥ ४७ ॥ उतथ्यशापदोषेण देवाचार्य्योबृहस्पतिः ॥ देवकार्य्यस्यसिद्ध्यर्थं तस्मात्तच्छृणुकारणम् ॥ ४८ ॥
अथर्ववेदोयश्चैष शतशाखोविनिर्मितः ॥ शतकल्पश्चगूढार्थो भूपानांकार्य्यसिद्धये ॥ ४९ ॥ नवशाखःपञ्चकल्पः प्र
सन्नार्थसुखावहः ॥ तवमात्रामहाभाग रेतसाचपरिप्लुतम् ॥ ५० ॥ यद्वस्त्रंयाज्ञवल्क्यस्य परिधानीकृतंचतत् ॥ भगि
न्यासुतपस्विन्या स्नानार्थंनचकाम्यया ॥ ५१ ॥ तदेतज्जलमिश्रन्तु भगमध्येविनिर्गतम् ॥ अमोघंतेनसम्भूतस्त्वम
त्रजगतीतले ॥ ५२ ॥ माताचमृत्युमापन्ना ज्ञात्वैवंलज्जयातथा ॥ चमत्कारपुरेतुभ्यं मातुलोजनकस्तथा ॥ ५३ ॥ सं

सुनो ॥ ४७ । ४८ ॥ और भूपोंकी कार्य सिद्धिके लिये गूढ़ अर्थवाला व सौ शाखाओं वाला जो यह अथर्वण वेद निर्माण किया गयाहै ॥ ४९ ॥ वह नवशाखाओंवाला
व पञ्चकल्पवाला व प्रसन्न अर्थसे सुखदायक होगा हे महाभाग ! याज्ञवल्क्यके वीर्यसे सब ओर जो डूबाहुआथा उसी वसनको स्नानके लिये न कि कामनासे उत्तम तप-
स्विनी बहेन तुम्हारी माताने पहन लिया ॥ ५० । ५१ ॥ वही यह जलसे मिलाहुआ सफल वीर्य योनिके बीचमें चलागया उससे इस धरातल में तुम भलीभांति उत्पन्न
हुयेहो ॥ ५२ ॥ और ऐसा जानकर लज्जासे माता मृत्युको प्राप्तहोगई हे महाभाग! चमत्कार पुरमें तुम्हारे मामा तथा पिता भलीभांति टिके हैं उनके समीप तुम यहां से

जावो इस समय तुम्हारे व्रत (यज्ञोपवीत) का समयहै क्योंकि आठवांवर्ष निश्चयकर स्थितहै ॥ ५३ ।५४॥ उन नारदजीके उस वचनको सुनकर लज्जासे नीचे मुखकरके खड़ा होगया तदनन्तर उसने उन नारदजी से देरमें इस दीनवचन को कहा ॥ ५५ ॥ कि पहले दूसरी देहमें मैंने क्या पाप कियाहै उसको कहिये कि जिस से निन्दित जन्महुआ व मातासे उपजाहुआ वियोग भया ॥ ५६ ॥ हे सन्मुने ! इस दुःखसे मैं अपने जीवको छोड़दूंगा नारदजी बोले कि तुमने पहले दूसरी देहमें कुछ पाप नहीं कियाहै ॥५७॥ परन्तु जिससे तुमको यह दुःख हुआहै उसको सुनो कि शनि नामक भगवान् निस्संदेह जन्मराशिमें स्थितहुये हैं ॥ ५८ ॥ उसीसे इस दशाको

तिष्ठतेमहाभाग तत्पार्श्वेत्वमितोव्रज ॥ साम्प्रतंव्रतकालस्तेवर्षेचैवाष्टमंस्थितम् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य लज्जयाधोमुखःस्थितः ॥ ततश्चिरेणदीनंस वाक्यमेतदुवाचतम् ॥ ५५ ॥ किंमयापापमाख्याहि पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ येनेदंगर्हितंजन्म वियोगोमातृसम्भवः ॥ ५६ ॥ परित्यक्ष्यामिजीवंस्वं दुःखेनानेनसन्मुने ॥ नारदउवाच ॥ नत्वयादुष्कृतंकिञ्चित्पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ ५७ ॥ परंयेनतुसञ्जातं तवेदंव्यसनंशृणु ॥ जन्मस्थोभगवाञ्जातः शनिनामानसंशयः ॥ ५८ ॥ तेनावस्थामिमांप्राप्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य कोपसंरक्तलोचनः ॥ ५९ ॥ ऊर्ध्वमालोकयामास समुद्दिश्यशनैश्चरम् ॥ तस्यदृष्टिनिपातेन न्यपतत्सतुतत्क्षणात् ॥ ६० ॥ विमानात्खाद्रवेःपुत्रोययातिरिवनाहुषः ॥ तंदृष्ट्वापतमानन्तु शनैश्चरमधोमुखम् ॥ ६१ ॥ नारदउवाच ॥ बाल्यभावादनेनत्वं पातितोसिशनैश्चर ॥ तस्मान्मावीक्षयस्वैनं भविष्यतिप्रकोपभाक् ॥ ६२ ॥ मापतस्वतथाभूमौ बलान्मद्वाक्यसम्भवात ॥ स्तम्भयित्वातथाप्येवं

प्राप्तहो और कारण इसमें नहीं है उन नारदजीके उस वचनको सुनकर क्रोधसे अतिअरुण नयनोंवाले पिप्पलादने ॥ ५९ ॥ शनैश्चरको भलीभांति उद्देशकर ऊपर देखा उसके दृष्टिनिपातसे वे सूर्यके पुत्र शनैश्चरजी आकाशस्थ विमानसे उसी क्षण नहुषके पुत्र ययातिके समान गिरपड़े नीचे मुखवाले उन शनैश्चरको गिरतेहुये देखकर ॥ ६० । ६१ ॥ नारदजी बोले कि हे शनैश्चर ! शिशुताकेस्वभावसे इसने तुमको गिरायाहै इसलिये इसको मत देखिये यह कोपभागी होगा ॥ ६२ ॥ वैसेही

मेरे वचनसे उपजेहुये पराक्रमसे भूमिमें मतगिरो तिसपर भी आकाशमें टिके हुये शनैश्चरको इसप्रकार रोंककर ॥ ६३ ॥ तदनन्तर उस बालक मुनिनायक पिप्पलाद से कहा कि तुम बालक क्रोध मतकरो ये सूर्यके पुत्र (शनैश्चर) ग्रह ॥ ६४ ॥ आठवीं राशिमें प्राप्तहोकर देवताओंके भी व्यथाकरते हैं और जन्मस्थ तथा अपर द्वितीय राशिमें होकर विशेषकर पीड़ाकरते हैं ॥ ६५ ॥ यदि कदाचित् क्रोधित होते हुये ये शनैश्चर तुमको देखैंगे तो निस्सन्देह मेरे अगाड़ी भस्म राशिकरैंगे ॥ ६६ ॥ जातमात्र याने पैदाहुये इन शनैश्चरने अपने पांवोंको देखा और प्रसन्नहुये उन शनैश्चरकी माता पुत्र देखनेकी इच्छासे अन्तर्धानकृतवसन (परदे) में उसको वि-

गगनस्थंशनैश्चरम् ॥ ६३ ॥ ततःप्रोवाचतंबालं पिप्पलादंमुनीश्वरम् ॥ माकोपंकुरुबालस्त्वमेषसूर्य्यसुतोग्रहः ॥ ६४ ॥ देवानामपिपीडांच कुरुतेष्टमराशिगः ॥ जन्मस्थस्तुविशेषेण द्वितीयस्तुतथापरः ॥ ६५ ॥ यद्येषकुपितस्त्वान्तु वीक्षयिष्यतिकर्हिचित् ॥ करिष्यतिनसन्देहो भस्मराशिंममाग्रतः ॥ ६६ ॥ अनेनवीक्षितौपादौ जातमात्रेणस्वीयकौ॥ अम्बातस्यतुतुष्टस्य पुत्रदर्शनवाञ्छया ॥ ६७ ॥ अन्तर्द्धानकृतेवस्त्रे ज्ञात्वातंरौद्रचक्षुषम् ॥ ततोदग्धावुभौचापि तिष्ठ तश्चर्म्मवेष्टितौ ॥ ६८ ॥ दृश्येतेद्यापिमूर्तौयौ घटितौचधरातले ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यनारदस्यसबालकः॥ ६९ ॥ भयेनमहतायुक्तस्ततःपप्रच्छतंमुनिम् ॥ कथंयास्यतिमेतुष्टिं वदैषममसन्मुने ॥ ७० ॥ अज्ञानात्पातितोऽव्योम्नः शक्तिंचास्यविजानता ॥ नारदउवाच ॥ ग्रहागावोनरेन्द्राश्चब्राह्मणाश्चविशेषतः ॥७१॥ पूजिताःप्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्य वमानिताः ॥ तस्मात्कुरुस्तुतिंचास्य स्वशक्त्याभास्करेःप्रभोः ॥ ७२ ॥ प्रसादंगच्छतेयेन कोपंत्यजतितावकम् ॥ त

कराल दृष्टिवाला जानकर विस्मयमें प्राप्तहुई तदनन्तर दोनोंभी जलगये व चमड़े से लपेटेहुये स्थितभये ॥ ६७ । ६८ ॥ जोकि भूतलमें मूर्त्तिके मध्य बनायेहुये आज भी देख पड़ते हैं सूतजी बोले कि उन नारदजीके उस वचनको सुनकर वह बालक ॥ ६९ ॥ बड़े डरसे युक्तहोकर तदनन्तर उन मुनिसे पूंछा कि हे सन्मुने ! ये मेरे ऊपर कैसे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैंगे ॥ ७० ॥ इनकी शक्तिको न जाननेवाले मैंने अज्ञानके कारण आकाशसे गिरादिया नारदजी बोले कि ग्रह, गाइयां, नरेश व विशे- षकर ब्राह्मण ॥ ७१ ॥ पूजेहुये प्रति पूजन करतेहैं याने पूजकपै प्रसन्नहोते हैं और अनादर कियेहुये ये पूर्वोक्त सब जलाते हैं इसलिये तुम इन समर्थवान् सूर्य्यपुत्र

(शनैश्चर) की अपनी शक्तिसे स्तुतिकरो ॥ ७२ ॥ जिससे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैं व तुम्हारेवाले क्रोधको छोड़देवैं तदनन्तर उन नारदमुनि से पूंछा उसके उपरान्त हे
द्विजोत्तमो ! बड़ेडरसे संयुक्त उस पिप्पलाद बालकने हाथोंको जोड़कर व बार २ प्रणामकर स्तुति किया ॥ ७३ । ७४ ॥ कि क्रोधमें भलीभांति टिकेहुये तुम्हारे लिये
नमस्कारहै व पिंगल वर्णवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै बहुत रूपवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै व कृष्णवर्णवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ७५ ॥ विकराल शरीरवाले
तुम्हारे लिये नमस्कारहै व अन्तकारक तुम्हारे लिये नमस्कारहै यमनामक तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे विभो ! सूर्यपुत्र तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥७६॥ व मन्द नामक

भयेनमहतायुक्तस्ततःपप्रच्छतंमुनिम् ॥ पिप्पलादोद्विजश्रेष्ठाः प्रणि
तःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुतिंचक्रेमबालकः ॥ ७३ ॥ नमस्तेक्रोधसंस्थाय पिङ्गलायनमोस्तुते ॥ नमस्तेबहुरूपाय कृष्णायचनमोस्तुते ॥ ७५ ॥ न
पत्यमुहुर्मुहुः ॥ ७४ ॥ नमस्तेरौद्रदेहाय नमस्तेचान्तकायच ॥ नमस्तेयमसंज्ञायनमस्तेसौरयेविभो ॥ ७६ ॥ नमस्तेमन्दसंज्ञाय शनैश्चरन
मस्तेरौद्रदेहाय नमस्तेचान्तकायच ॥ नमस्तेयमसंज्ञायनमस्तेसौरयेविभो ॥ ७६ ॥ नमस्तेमन्दसंज्ञाय शनैश्चरन
मोस्तुते ॥ प्रसादंकुरुदेवेश दीनस्यप्रणतस्यच ॥ ७७ ॥ शनैश्चरउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्सस्तोत्रेणानेनसाम्प्रतम् ॥
वरंवरयभद्रन्ते येनयच्छामिसाम्प्रतम् ॥ ७८ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अद्यप्रभृतिनोपीडा बालानांरविनन्दन ॥ त्वया
कार्य्यामहाभाग स्वकीयाचकथंचन ॥ ७९ ॥ यावदष्टतमंवर्षं ममवाक्येनसूर्य्यज ॥ स्तोत्रेणानेनयोत्रत्वांस्तूयात्प्रा
तरसमुत्थितः ॥ ८० ॥ तस्यपीडानकर्तव्या त्वयाभास्करनन्दन ॥ तववारेचसंजाते तैलाभ्यङ्गंकरोतियः ॥ ८१ ॥ दि

तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे शनैश्चर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे देवेश ! दीन व प्रणाम किये हुये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ७७ ॥ शनैश्चरजी बोले कि हे व-
त्स ! इस स्तोत्र से इस समय मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआहूं तुम्हारा कल्याण हो तुम वरदानको मांगो कि जिससे इस समय मैं उसको देऊं ॥ ७८ ॥ पिप्पलाद
बोले कि हे महाभाग, रविनन्दन, सूर्यपुत्र ! आज से लगाकर मुझ बालकों के ऊपर आठवर्षतक मेरे वचन से तुमको अपनी पीड़ा न करना चाहिये व यहां पर
प्रातःकाल भलीभांति उठाहुआ जो पुरुष इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करै ॥ ७९ । ८० ॥ हे सूर्यनन्दन ! तुमको उसके पीड़ा न करना चाहिये व तुम्हारे दिनको

भलीभांति प्राप्त होनेपर जो पुरुष तैलाभ्यंग करता है ॥ ८१ ॥ तुमको आठदिन तक किसी प्रकार उसके पीड़ा न करना चाहिये और जो पुरुष नीचे मुखवाले तुमको लोहमय बनाकर तैल के बीचमें धरै तदनन्तर उस तैल से स्नान करै उसके तुमको पीडा न करना चाहिये व भूपालके लिये लाभ देना चाहिये ॥ ८२ । ८३ ॥ हे विभो ! तुम्हारे अध्यर्द्धाष्टमिका योग होनेपर याने साढ़साती होनेपर जब तुम्हारा दिन भलीभांति प्राप्तहोवै तब जो पुरुष लोह संयुत तिलोंको शक्ति से देता है उसके तुमको पीड़ा न करना चाहिये व तुम्हारे उद्देश से जो पुरुष कालीगऊ को ब्राह्मण के लिये देता है उसके साढ़साती से उपजी हुई पीड़ा तुमको न क-

नाष्टकन्नकर्तव्या त्वयापीडाकथञ्चन ॥ यस्त्वांलोहमयंकृत्वा तैलमध्येह्यधोमुखम् ॥ ८२ ॥ धारयेत्तेनतैलेन ततःस्नानंसमाचरेत् ॥ तस्यपीडानकर्तव्या देयोलाभोमहीभुजे ॥ ८३ ॥ अध्यर्द्धाष्टमिकायोगे तावकेसंस्थितेनरः ॥ तववारेतु सम्प्राप्ते यस्तिलाल्लँोहसंयुतान् ॥ ८४ ॥ शक्त्याददातिनोतस्य पीडाकार्य्यात्वयाविभो ॥ कृष्णांगांयस्तुविप्राय तवोद्देशेनयच्छति ॥ ८५ ॥ अध्यर्द्धाष्टमजापीडा तस्यकार्य्यात्वयानच ॥ शमीसमिद्भिर्योहोमं तवोद्देशेनयच्छति ॥८६॥ तथाकृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेपनैः ॥ पूजाङ्करोतियस्तुभ्यं धूपंवैगुग्गुलुंदहेत् ॥ ८७ ॥ कृष्णवस्त्रेणसंवेष्ट्य त्याज्यापीडातदात्वया ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तःशनिस्तेनबाढमित्येवजल्प्यच ॥ ८८ ॥ नारदंसमनुप्राप्य जगामनिजसंश्रयम् ॥ नारदोपितमादाय बालकंकृपयान्वितः ॥ ८९ ॥ चमत्कारपुरङ्गत्वा याज्ञवल्क्यायचार्पयत् ॥ कथयामासवृत्तान्तं तस्यसम्भूतिसम्भवम् ॥ ९० ॥ यद्दृष्टंज्ञानदीपेनतस्मैसर्वंन्यवेदयत् ॥ एषतेवीर्य्यसम्भूतो बालकोभगिनीसु

रना चाहिये व जो पुरुष तुम्हारे उद्देश से शमीकी समिधोंके द्वारा होम करता है वैसेही जो पुरुष काले वसन से लपेटकर काले तिलों से व काले फूलों तथा अनुलेपनोंसे तुम्हारा पूजन करता है व गुग्गुलकी धूप जलाता है उस समय तुमको उसके पीड़ा त्याग करना चाहिये सूतजी बोले कि उन पिप्पलादसे इसभांति कहेहुये शनैश्चरजी हां यह बहुत अच्छा यही कहकर ॥ ८४ । ८५ । ८६ । ८७ ॥ ८८ ॥ व नारदमुनिको भलीभांति प्राप्तहोकर अपने स्थानको चलेगये व दयासंयुत नारदजीने भी उस बालकको लेकर व चमत्कारपुरको जाकर याज्ञवल्क्यजीके लिये अर्पण किया व उसकी उत्पत्तिसे उपजेहुये वृत्तान्तको कहा ॥ ८९ । ९० ॥ जो ज्ञान

पी दीपकसे देखाथा उस समस्त चरितको उन याज्ञवल्क्यजीके लिये निवेदन किया कि तुम्हारे वीर्यसे पैदाहुये इस बहनके पुत्र बालकको मैंने पीपलके तले वन पिप्पलके समीप पायाहै यह आठवर्षका है तुम इसका यज्ञोपवीत करो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे द्विजेन्द्र ! इस विषयमें तुम्हारा व तुम्हारी बहनका दोष नहीं है इसलिये पने भानजे पुत्रको विशेषकर ग्रहण कीजिये ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर वे देवर्षि नारदजी अन्तर्द्धानहोगये व याज्ञवल्क्य भी उसको सुनकर बड़े श्चर्य्यको प्राप्तहुये ॥ ९४ ॥ व उस पापको चिन्तन करतेहुये शान्तिको नहीं प्राप्तहोते थे व नित्यही दिनरात अपनेको निन्दतेहुये शोचतेथे ॥ ९५ ॥ व टिकेहुये

तः ॥ ९१ ॥ मयाश्वत्थतलेलब्धः काननेश्वत्थसन्निधौ ॥ व्रतबन्धंकुरुष्वास्य साम्प्रतंचाष्टवार्षिकः ॥ ९२ ॥ नात्रदो षोस्तिविप्रेन्द्र नभगिन्यास्तथातव ॥ तस्माद्गृहाणपुत्रंस्वंभागिनेयंविशेषतः ॥ ९३ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वासदेव र्षिस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ याज्ञवल्क्योपितच्छ्रुत्वा विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ९४ ॥ पापंतच्चिन्तयन्सोपि नशान्तिमधिगच्छ ति ॥ आत्मानंगर्हयन्नित्यं दिवानक्तंचशोचति ॥ ९५ ॥ तञ्चपुत्रंपरिज्ञाय तैस्तैश्चिह्नैर्निजैःस्थितैः ॥ सूतउवाच ॥ एवं संशोचतेयावदात्मानंपरिगर्हयन् ॥ ९६ ॥ ततस्तुब्रह्मणाप्रोक्तं स्वयमभ्येत्यचद्विजाः ॥ त्वयाशङ्कानकर्तव्यापुत्रस्या स्यकृतेद्विज ॥ ९७ ॥ अज्ञानादेवतेजातो दैवयोगेनबालकः ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ तथापिदेवमेशुद्धिर्वदयस्मात्प्रजाय ते ॥ ९८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तत्स्थापयमहाभाग लिङ्गंदेवस्यशूलिनः ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यत्पापंकुरुतेनरः ॥ ९९ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं स्त्रीवधाद्यपियद्भवेत् ॥ पञ्चेष्टिकमयंवापियःकुर्य्याद्धरमन्दिरम् ॥ १०० ॥ तस्यतन्नाशमायाति तम

उन उन अपने चिह्नोंसे उस पुत्रको सब तरहसे जानकर विस्मितहुये सूतजी बोले कि अपनी निन्दा करतेहुये याज्ञवल्क्यजी जबतक शोचते थे ॥ ९६ ॥ तबतक हे ब्राह्मणो ! आपही आकर ब्रह्माजीने कहा कि हे द्विज ! इस पुत्रके लिये तुमको शङ्का न करना चाहिये ॥ ९७ ॥ तुम्हारे अजानही से दैवयोगके द्वारा यह बालक पैदाहुआ है याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे देव ! तिसपरभी जिससे शुद्धि होवै उसको मुझसे कहिये ॥ ९८ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महाभाग ! त्रिशूलधारी देव (शिवजी) के उस लिंगको थापिये मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे भी जिस पातकको करता है ॥ ९९ ॥ व ब्रह्महत्यादि पाप व स्त्रीहत्यादिक भी जो पाप व पञ्चयज्ञमयभी पाप होवै हैं जो

उसका वह पाप वैसेही नष्ट होताहै जैसे कि सूर्य्योदयमें अँधियाला नाश होजाता है हे महाभाग ! और हाटके-
पुरुष शिवजीके मन्दिरको निर्माण करता है ॥ १०० ॥ विशेषकर पातक नाश होजाताहै जहांपर कि कलिकालकेभी भलीभांति
श्वरजीसे उपजेहुये उस अतिपवित्र व समस्त पातकोंके विनाशक क्षेत्रमें शिवमन्दिर निर्माणसे विशेषकर पातक नाश होजाताहै जहांपर कि कलिकालके भयसे
प्राप्तहोनेपर पाप नहीं विद्यमान होताहै ॥ १ । २ ॥ हे द्विजोत्तम ! यहां यज्ञ करनेके लिये मैंभी इच्छा करताहूं व अपने प्रिय उस पुष्कर तीर्थको मैं कलिकालके भयसे
लाऊंगा कि जिसप्रकार व्यर्थताको न प्राप्तहोवै और हे विप्र ! कलिकालके भलीभांति प्राप्तहोनेपर इस उत्तम तीर्थको छोड़कर समस्त तीर्थ व्यर्थताको प्राप्तहोजावैंगे

क्षेत्रेतत्रसुमेध्येतु सर्वपातकनाशने ॥ कलिकालेपि
विशेषेणमहाभाग हाटकेश्वरसम्भवे ॥ १ ॥
स्सूर्य्योदयेयथा ॥ विशेषेणमहाभाग हाटकेश्वरसम्भवे ॥ १ ॥ क्षेत्रेतत्रसुमेध्येतु सर्वपातकनाशने ॥ कलिकालेपि
सम्प्राप्ते यत्रपापंनविद्यते ॥ २ ॥ अहमप्यत्रवाञ्छामियज्ञंकर्तुंद्विजोत्तम ॥ आनयिष्यामितत्तीर्थं पुष्करंचात्मनःप्रिय
म् ॥ ३ ॥ कलिकालभयाच्चैव यथानोव्यर्थतांव्रजेत् ॥ कलिकालेतुसम्प्राप्ते तीर्थानिसकलानिच ॥ ४ ॥ यास्यन्तिव्यर्थ
तांविप्र मुक्त्वेदंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्योपितच्छ्रुत्वा
पितामहवचोखिलम् ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं मेघगम्भीरयागिरा ॥ अ
ष्टम्याञ्चचतुर्दश्यांयोलिङ्गंमामकंत्विदम् ॥ ७ ॥ स्नापयिष्यतिसद्भक्त्या तस्यपापंप्रयास्यति ॥ परदारकृतंयच्च मा
त्रापिचसमंकृतम् ॥ ८ ॥ क्षालयिष्यतितत्पापं स्नापितंपूजितंपरैः ॥ अस्मिन्नहनिसम्प्राप्ते तस्यपक्षसमुद्भवम् ॥ ९ ॥
प्रयास्यतिक्षयंपापं यदज्ञानाद्विनिर्मितम् ॥ ततःप्रभृतिविख्यातोयाज्ञवल्क्येनधीमता ॥ १० ॥ स्वमातुःशुद्धिदःश्रेष्ठो

सूतजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर चतुराननजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ३।४।५ ॥ याज्ञवल्क्यजी ने सम्पूर्ण ब्रह्माजी के वचन को सुनकर व अति उत्तम क्षेत्र को
जानकर लिंग को भलीभांति थापन किया ॥ ६ ॥ व तदनन्तर मेघके समान गम्भीरवाणीसे वचनको कहा कि अष्टमी व चतुर्दशीमें (मामक) मेरे थापेहुये इस
लिंगको जो पुरुष उत्तम भक्तिसे नहवावैगा उसका पाप अवश्यकर नाश होजावैगा व पराई स्त्रीसे किया तथा माताके साथभी कियाहुआ जो पातक होताहै ॥ ७ । ८ ॥
परपुरुषोंसे नहवाया व पूजाहुआ वह लिंग उस पातकको नाश करता है व और दिनके भलीभांति प्राप्तहोने परजो अज्ञानसे किया गयाहै वह उस नर का पल में

उपजाहुआ पाप नाश होवैगा तबसे लगाकर हाटकेश्वर नामक क्षेत्रमें बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजी से थापित व निज माताके शुद्धिदायक पिप्पलादसे स्थापित श्रेष्ठ शिवजी प्रसिद्धहुये ॥ १०९।११०।१११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्येश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। कंसारीश्वर शिवहिं जिमि थाप्यो ताको पूत । इकसौ छाछठिमें कहत चरित सोइ मुनिसूत ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीसे थापेहुये लिंग

हाटकेश्वरसंज्ञिके ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयाज्ञवल्क्येश्वरोत्पत्तिर्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ दृष्ट्वाप्रतिष्ठितंलिङ्गं याज्ञवल्क्येनधीमता ॥ स्वमातुःशुद्धिहेतोश्च तन्नाम्नालिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥ स्थापयामासविप्रेन्द्राः श्रद्धयापरयायुतः ॥ ततश्चानीयविप्रेन्द्रं मध्यगंनगरोद्भवम् ॥ २ ॥ गर्ततीर्थसमुद्भूतमाहिताग्निम्प्रयाजिनम् ॥ मयास्मिन्नागरेस्थाने तथात्वमपिदीक्षितः ॥ ३ ॥ अष्टषष्टिस्तुगोत्राणां नायकत्वेऽव्यवस्थितः ॥ तववाक्येनसर्वाणि गोत्राणिद्विजसत्तम ॥ ४ ॥ वर्तयिष्यन्तिकृत्येषु यावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥ गोवर्द्धनत्वयाचिन्ताकार्य्याचास्यसमुद्भवा ॥ ५ ॥ लिङ्गस्यपूजनार्थाय प्रेरणीयाश्चनागराः ॥ पूजयातस्यलिङ्गस्य वृद्धिंयास्यतितेन्वयः ॥ ६ ॥ अपूजया

को देखकर परमश्रद्धासे संयुत होतेहुये पिप्पलादने अपनी माताकी पवित्रताके कारण उसके नामसे अति उत्तम लिंगको थापन किया तदनन्तर नगरमें उपजे हुये मध्यवर्ती द्विजेन्द्रको जोकि गर्त तीर्थमें भलीभांति उत्पन्न व अग्नि रखनेवाला व यज्ञकर्ताथा उसको लाकर कहा कि मैंने इस नागर स्थानमें वैसेही तुमकोभी दीक्षित किया ॥ १ । २ । ३ ॥ कि जिसप्रकार अरसठि गोत्रोंकी स्वामितामें विशेषकर स्थितहोवो हे द्विजोत्तम ! जबतक चन्द्रमा, सूर्य्य व नक्षत्र रहैंगे तबतक समस्त गोत्र तुम्हारे वचनसे कार्योंमें वर्तमान होवेंगे हे गोवर्द्धन ! इस कार्य्यसे उपजीहुई चिन्ता तुमको करना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥ और लिंगके पूजनके लिये नागर द्विजोंकी प्रेरणा

करना चाहिये उस लिंगकी पूजासे तुम्हारा वंश बढ़तीको प्राप्तहोगा ॥ ६ ॥ व न पूजनेसे विनाशको प्राप्तहोवैगा इसमें सन्देह नहीं है और हे दीक्षित! तुम्हारे वंशमें उपजेहुये जो पुरुष बडी भक्तिसे इसलिंगको पूजकर जो नर अनेक प्रकारके कार्य्योंकोकरैंगे वे इनकी प्रसन्नतासे सिद्धिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ७।८ ॥ गोवर्द्धन बोले कि हे द्विज! मैं सदैव इस लिंगका समस्त कार्यकरूंगा पिप्पलाद बोले कि हे गोवर्द्धन! नागर ब्राह्मणोंको तुम वहां शीघ्रही लावो ॥ ९ ॥ उनके मतसे मैं देव (शिवजी) का नाममात्र करूंगा तदनन्तर गोवर्द्धनजी उन चतुर ब्राह्मणोंको लाये ॥ १० ॥ जोकि शास्त्र पढ़नेमें सम्पन्न व यज्ञकर्म में तत्परथे उनको उच्चप्रकारसे प्रणामकर पिप्पलाद

एतल्लिङ्गंकरिष्यन्ति कृत्यानिविविधा
निच ॥ तानिसिद्धिम्प्रयास्यन्ति प्रसादादस्यदीक्षित ॥ ८ ॥ गोवर्द्धनउवाच ॥ अहंसर्वंकरिष्यामि लिङ्गस्यास्यसदा
द्विज ॥ पिप्पलादउवाच ॥ गोवर्द्धनद्रुतंविप्रांस्तत्रचानयनागरान् ॥ ९ ॥ तेषांमतेनदेवस्य नाममात्रङ्करोम्यहम् ॥ तत
स्तांश्चानयामास विप्रांश्चैवविचक्षणान् ॥ १० ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नान्यज्ञकर्म्मपरायणान्॥ तानब्रवीत्प्रणम्योच्चैः पि
प्पलादोमहामुनिः ॥ ११ ॥ ममभातामृतापूर्वं कंसारीतिचनामतः ॥ तस्याउद्देशतोलिङ्गं मयैतत्सम्प्रतिष्ठितम्॥१२॥
युष्मद्वाक्यात्प्रसिद्धिश्च प्रयातद्विजसत्तमाः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां यश्चैतत्स्नापयिष्यति ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्येश्वरोत्थ
स्यसन्मुनेः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ कंसारीश्वरसञ्ज्ञस्तुयथाजातस्तुपापहा ॥ स्थापि
विनाशञ्च यास्यत्यत्रनसंशयः ॥ तववंशोद्भवायेच पूजयित्वाप्रभक्तितः ॥७॥
श्च सहिश्रेयोह्यवाप्स्यति ॥ सूतउवाच ॥ अथतैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्तस्यनामप्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥ कंसारीश्वरइत्येवं गौरवात्त

महामुनिने कहा ॥११॥ कि हे द्विजोत्तमो! कंसारी ऐसी नामक मेरी माता पहले मरगईहै मैंने उसके उद्देशसे इस लिंगको भलीभांति थापाहै वह तुम लोगोंके वचनसे प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै अष्टमी व चौदसि तिथि में जो पुरुष इस लिंगको नहवावैगा ॥ १२।१३ ॥ व याज्ञवल्क्यजीसे उत्थ (थापेहुये) लिंगको स्नान करावैगा वह निश्चयकर कल्याण या पुण्यको पावैगा सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उन उत्तम मुनिके गौरवसे उन समस्त ब्राह्मणोंने उस लिंगका कंसारीश्वर ऐसाही नाम थापन किया हे द्विजोत्तमो! जिस चरितको तुम लोगोंने पूंछाथा उस समस्त चरितको वर्णन किया ॥ १४ । १५ ॥ जिसप्रकार कि महात्मा पिप्पलादसे आपही थापेहुये पाप-

हारी कंसारीश्वर नामक हुयेहैं ॥ १६ ॥ उन देवके समीप इस पुण्यदायक कथानक को जो पढ़ताहै व जो सुनताभी है वह भलीभांति सिद्धिसे संयुत होताहै ॥ १७ ॥ व मनसे चिन्तित पातक व पराई स्त्री आदिकोंसे जो पाप किया गयाहै उसका वह पाप वैसाही प्रशान्तिको प्राप्तहोता है जैसा कि पिप्पलादका वचन है ॥ १८ ॥ व जो नर उन शिवजीके आगे भक्तिसे सदैव नीलरुद्रोंको व विशेषकर भवरुद्रसे संयुत प्राणरुद्रोंको जपताहै ॥ १९ ॥ उसका ब्रह्मघातसे उपजाहुआभी पातक अवश्यकर नाश होजाता है व पराई सेना से भयके उत्पन्न होने व अवर्षण होने पर ॥ २० ॥ जो पुरुष अथर्व वेद के आदि अन्तवाले मन्त्रों को पढ़ता है उस का वैरी विनाश

तःपिप्पलादेन स्वयञ्चैवमहात्मना ॥ १६ ॥ यश्चैतत्पुण्यमाख्यानं तस्यदेवस्यसन्निधौ ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापि सम्य क्सिद्धिसमन्वितः ॥ १७ ॥ मनसाचिन्तितंपापं परदारकृतञ्चयत ॥ तस्यतत्प्रशमंयाति पिप्पलादवचोयथा ॥ १८ ॥ यस्तस्यपुरतोभक्त्या नीलरुद्रान्सदाजपेत ॥ प्राणरुद्रान्विशेषेण भवरुद्रसमन्वितान् ॥ १९ ॥ ब्रह्महत्योद्भवञ्चैव अपि तस्यप्रणश्यति ॥ परचक्रभयेजाते अनावृष्टिभयेतथा ॥ २० ॥ अथर्ववेदस्याद्यन्ते पठितेतस्यचाग्रतः ॥ शत्रुर्विलयम भ्येति वृष्टिस्सञ्जायतेद्रुतम् ॥ २१ ॥ राजदौःस्थ्येसमुत्पन्ने राजाभवतिधार्म्मिकः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तः प्रजापालनतत्प रः ॥ २२ ॥ उपसर्गभयेजाते तस्यचौघःप्रशाम्यति ॥ शनैश्शनैरसन्दिग्धं पिप्पलादवचोयथा ॥ २३ ॥ किंवातेबहुनो क्तेन यत्किञ्चिद्व्यसनंमहत ॥ अस्यदेवस्यपुरतोयातिनाशञ्चतद्द्रुतम् ॥ २४ ॥ नतस्यव्यसनंकिञ्चिदथर्वणप्रकीर्तना त् ॥२५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेकंसारीश्वरोत्पत्तिर्नामषट्षष्ट्यधिकशततमोध्यायः॥१६६॥

को प्राप्त होता है व शीघ्रही वृष्टि होती है ॥ २१ ॥ व राजा की दुःस्थिति उत्पन्नहोने पर धर्मवान् व समस्त रोगों से छूटाहुआ व प्रजाओं के पालने में परायण नृपति होता है ॥ २२ ॥ व उत्पात का डर उत्पन्न होने पर धीरे २ निस्सन्देह उस उपद्रव का समूह शान्त होजाता है जैसा कि पिप्पलादजी का वचन है ॥ २३ ॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है जो कुछ बड़ी भारी विपत्ति होती है वह इन देव के अगाड़ी शीघ्रही नाश होजातीहै ॥ २४ ॥ व अथर्वण वेदके कहनेसे उसको कुछ क्लेश नहीं होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकंसारीश्वरोत्पत्तिर्नामषट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

दो० । निज सौतिनसों कह्यो जिमि अमा आपनो हाल । इकसौ सरसठि मध्य महँ सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर वहां मनुजतामें विशेष कर स्थित हुई लक्ष्मी जी से भलीभांति थापित अन्यभी पञ्चपिण्डिका गौरी जी हैं ॥ १ ॥ जिनके दर्शनमात्र से स्त्री सौभाग्य को प्राप्त होती है जेठ महीने के शुक्लपक्ष में जब सूर्यनारायण वृषराशि पै स्थितहोवैं तब अहर्निश नहवाती हुई जो नारी उन गौरी जी के ऊपर जलयंत्र (घट) को धरती है वह उत्तम सौभाग्य को प्राप्त होती है ॥ २ । ३ ॥ समस्त उत्तम कर्म करने से व उन के प्रियसे उत्पन्न हुये तथा गौरी से उपजे हुये दानों के देने से स्त्री जिस फलको पाती है ॥ ४ ॥ उस समस्त

सूतउवाच ॥ अथान्यापिचतत्रास्ति गौरीवैपञ्चपिण्डिका ॥ लक्ष्म्यासंस्थापिताचैव मानुषत्वव्यवस्थया ॥ १ ॥ यस्यादर्शनमात्रेणनारीसौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षे वृषभस्थेदिवाकरे ॥ २ ॥ तस्याउपरिनारीया जलयन्त्रंदधातिवै ॥ स्नाव्यमानादिवानक्तं सौभाग्यंपरमंलभेत् ॥ ३ ॥ यत्फलंलभतेनारी समस्तैर्विहितैश्शुभैः ॥ गौरीसमुद्भवैश्चैव दानैर्दत्तैस्तदिष्टजैः ॥ ४ ॥ तत्फलंलभतेसर्वंजलयन्त्रस्यकारणात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्त्रीभिःसौभाग्यकारणात् ॥ ५ ॥ जलयन्त्रंविधातव्यं ज्येष्ठेगौर्य्याःप्रयत्नतः ॥ किंव्रतैर्नियमैर्वापि स्त्रीणांब्राह्मणसत्तमाः ॥ ६ ॥ जपैर्होमैः कृतैरन्यैर्बहुक्लेशकरैश्चतैः ॥ स्त्रीणांब्राह्मणशार्दूलाजलयन्त्रेधृतेसति ॥ ७ ॥ गौर्य्याउपरिसद्भक्त्या वृषस्थेतीक्ष्णदीधितौ ॥ नैवसञ्जायतेबन्ध्या काकबन्ध्यानजायते ॥ ८ ॥ नदौर्भाग्यसमोपेतासप्तजन्मान्तराणिच ॥ ऋषयऊचुः ॥ गौरीचतुर्भुजाप्रोक्ता दृश्यतेपरमेश्वरी ॥ ९ ॥ पञ्चपिण्डाकथंजाता एतंनःसंशयंवद॥ सूतउवाच ॥ यदाचप्रलयोभावीत

फलको जलयन्त्र के हेतु से पाती है इसलिये जेठ महीने में सौभाग्य के कारण सब उपाय से गौरीजी के ऊपर स्त्रियोंको बडे यत्न के द्वारा जलयन्त्रको करना चाहिये हे द्विजोत्तमो ! स्त्रियों के व्रतों व नियमों से भी क्या है ॥ ५ । ६ ॥ व हे द्विजपुङ्गवो ! स्त्रियोंको उन बहुत क्लेशकारक अन्य जपों व होमों के करने से क्या है याने कुछ नहीं सूर्यनारायणको वृषराशि में टिकने पर उत्तम भक्तिसे गौरी जी के ऊपर जलयन्त्र (घट) के धरने पर बन्ध्या व काकबन्ध्या नहीं होती है ॥ ७।८॥ व सात जन्मों के मध्य में दुर्भाग्य से संयुक्त नहीं होती है ऋषिलोग बोले कि परमेश्वरी गौरी चौभुजी कही गई हैं व देख पड़ती हैं ॥ ९ ॥ वे पञ्चपिंडिका कैसे हुईं

इस सन्देह को हमलोगों से कहिये सूतजी बोले कि जब प्रलय होनेवाला होता है तब यह आत्मा (अपने शरीर) को उत्पन्न करती है ॥ १० ॥ वही यह सुरेश्वरी उत्तम शक्ति विद्या समस्त संसार में व्याप्त होकर पंचपिंडमय उत्तम रूपको करती है ॥ ११ ॥ उससे स्थावर जंगम समेत यह समस्त त्रिलोक व्याप्त है और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश पांचों तत्त्वोंसे यह निश्चयकर रचती है उसी कारण पंचपिंडिका कही जाती है इसके प्रत्यक्ष पूजित होने पर जो फल होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जेठमहीने में जहां पञ्चपिंडिकाजी हैं वहां जलयन्त्रके पूजन से विशेषकर उसके हज़ार गुना फल होताहै ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! काशिराज की स्त्रीका जो

दात्मानङ्करोत्यसौ ॥ १० ॥ पञ्चपिण्डमयंविद्या कुरुतेरूपमुत्तमम् ॥ एषासापरमाशक्तिः सर्वव्याप्यसुरेश्वरी ॥ ११ ॥ तयासर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च वायुराकाशमेवच ॥ १२ ॥ पञ्चभीरचयेदेषा ततःसापञ्च पिण्डिका ॥ यदस्याम्पूजितायाञ्च प्रत्यक्षायाम्प्रजायते ॥ १३ ॥ सहस्रगुणितन्तस्य यत्रस्यात्पञ्चपिण्डिका ॥ ज्येष्ठे मासिविशेषेण जलयन्त्रार्चनेनच ॥ १४ ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ यद्वृत्तंकाशिराजस्य भार्य्या याद्विजसत्तमाः ॥ १५ ॥ काशिराजःपुराचासीज्जयसेनइतिश्रुतः ॥ तस्यभार्य्यासहस्रन्तु आसीद्रूपसमन्वितम् ॥ १६ ॥ अथचामाप्रियातेन लब्धाभार्य्यासुशोभना ॥ सुतामद्राधिराजस्य विष्वक्सेनस्यधीमतः ॥ १७ ॥ सागत्वाप्रातरुत्था यशुभेगङ्गातटेतदा ॥ पञ्चपिण्डात्मिकाङ्गौरीं कृत्वाकर्दमसम्भवाम् ॥ १८ ॥ ततःसम्पूजयामाससमन्त्रैःपञ्चभिरेवच ॥ ततोगन्धैःपरैर्माल्यैर्धूपैर्वस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ १९ ॥ नैवेद्यैःपरमान्नैश्च गीतैर्नृत्यैःप्रणोदितैः ॥ ततोविसृज्यतान्देवीं तद्वद्दे

चरित है उस पुरातन इतिहासको इस विषय में तुमलोगों से कहूंगा ॥ १५ ॥ पुरातन समय जयसेन ऐसा सुनाहुआ काशी का नृपति भया है उसके रूपसे संयुत हज़ार स्त्रियांथीं ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर मद्र देशके अधिपति बुद्धिमान् विष्वक्सेन की कन्याको उस नृपतिने अन्य अति उत्तम अमा नामक प्यारी नारीको पायाहै ॥ १७ ॥ उससमय प्रातःकाल उठकर उत्तम गंगाजी के किनारे पै जाकर उस स्त्रीने कीचड़ से उपजी हुई पञ्चपिण्डात्मिका गौरीजी को बनाकर तदनन्तर पांचही मन्त्रों से भलीभांति पूजन किया व उसके उपरान्त उत्तम गन्धों व मालाओं तथा धूपों और अति उत्तम वसनों से व परमान्न (खीर पूरी) की नैवेद्यों व प्रणोदित

(कियेहुये) गाने व नाचने से आराधन किया तदनन्तर उन देवीको विसर्जन करके उसके उपरान्त उन देवीके उद्देश मे गौरी कन्याओं व ब्राह्मणों को बहुतसे दानों
को देकर तदनन्तर बहुत बाजाओं के शब्दों से घर को आती थी ॥ १८। १९। २०। २१। वह रानी ज्यों २ उन गौरीजी की उस पूजा को करती थी त्यों २ उसका
सौभाग्य अधिक होता है ॥ २२ ॥ व समस्त सौतियों के मध्य में उसका सौभाग्य अधिकहुआ इसके अनन्तर दिनदिनमें उसीके सौभाग्यकी बढ़ती देखकर जो उसकी
सौतियां थीं वे सब दुःखसंयुत हुईं व कितेक स्त्रियां बोलीं कि यह जो इस कर्म को सदैव करती है ॥ २३। २४ ॥ कि मिट्टीमय पांच पिण्डों को भलीभांति लेकर पू-

शेनवैततः ॥ २० ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिगौरीणाञ्चद्विजन्मनाम् ॥ ततश्चगृहमभ्येति भूरिवादित्रनिःस्वनैः ॥ २१ ॥ य
थायथाचताम्पूजां तस्यागौर्याःकरोतिसा ॥ तथातथातुसौभाग्यं तस्याश्चाप्यधिकंभवेत् ॥ २२ ॥ सर्वासाञ्चसपत्नीनां
सौभाग्यञ्चाधिकंभवेत् ॥ अथतस्याःसपत्न्योयाःसर्वादुःखसमन्विताः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वासौभाग्यवृद्धिन्तां तस्याएवदिने
दिने ॥ एकाःप्रोचुःकर्म्मचैतद्यदेषाकुरुतेसदा ॥ २४ ॥ मृन्मयांश्चसमादाय पूजयेत्पञ्चपिण्डकान् ॥ अमान्तांमन्त्र
सिद्धाञ्च प्रवदन्तिमहर्षयः ॥ २५ ॥ अन्यावदन्तिपुण्यानि अस्याःपूर्वकृतानिच ॥ एवंतासांसदुःखानां महान्कालोग
तस्ततः ॥ २६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सर्वाःसम्मन्त्र्यतामिथः ॥ तस्यास्सन्निधिमाजग्मुस्तस्मिन्नेवजलाशये ॥ २७ ॥
यत्रसापूजयेद्गौरीं कृत्वातांपञ्चपिण्डिकाम् ॥ ताःसासमागतालोक्य त्यक्त्वागौरीप्रपूजनम् ॥ २८ ॥ सम्मुखाप्रययौतूर्णं
कृताञ्जलिपुटास्थिता ॥ स्वागतंवोमहाभागा भूयस्तुस्वागतंवचः ॥ २९ ॥ कृत्यंनिवेद्यतांशीघ्रं येनाशुप्रकरोम्यहम् ॥

जती है उसको महर्षिजन मन्त्र से सिद्धअमा कहते हैं ॥ २५ ॥ और स्त्रियां कहती थीं इसके पुरातन समय में किये हुए पुण्य हैं तदनन्तर इसप्रकार दुःख समेत
उन स्त्रियों का बहुतसा समय व्यतीत होगया ॥ २६ ॥ इस के अनन्तर किसी समय वे समस्त स्त्रियां आपस में सलाह कर उसी जलाशय के निकट उसके समीप
गईं ॥ २७ ॥ जहां कि वह अमा पंचपिंडिका गौरी को बनाकर पूजती थी भलीभांति आई हुई उन सौतियों को देखकर वह गौरी पूजन को त्यागकर ॥ २८ ॥ जुड़े
हुए हाथोंवाली अमा शीघ्रही सामने गई फिर स्वागत वचन को बोली कि हे बड़ी भाग्यवाली स्त्रियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ ॥ २९ ॥ शीघ्रही कार्य को

निवेदन करिये जिस से मैं जल्दी करूं सौतिया बोलीं कि तुम्हारे सौभाग्य से उपजीहुई दुर्भाग्यरूपी अग्निसे जलीं हुईं हम सब कुतूहल से तुम्हारे समीप आई हैं इसलिये हे महाभागे ! कहिये कि तुम मृत्तिकामय पंचपिण्डको नित्यही पूजती हो क्या वही सौभाग्य विवर्द्धक है तुम्हारे यह क्या कारण है अथवा हे महाभागे ! क्या मन्त्रसे उपजाहुआ यह प्रभाव है इस विषय में हमलोगों से गुप्त चरित को कहिये अमाबोलीं कि हे उत्तम मुखवाली सौतियो ! जो मैं पूंछी गईहों याने मुझ से जिस वृत्तान्त को तुम सबोंने पूंछा है यह परम गुप्त छिपी हुई वस्तु है ॥ ३० । ३१ । ३२ । ३३ ॥ व नहीं कहने योग्य है तिसपर भी जिसलिये कि गौरीजी के

सपत्न्यऊचुः ॥ वयंसर्वाःसमायाताः कौतुकेनतवान्तिकम् ॥३०॥ दौर्भाग्यवह्निनादग्धास्तवसौभाग्यजेनच ॥ तस्माद्द दमहाभागे मृन्मयम्पञ्चपिण्डकम् ॥ ३१ ॥ नित्यमर्चयसित्वंकिं तत्सौभाग्यविवर्द्धनम् ॥ किन्तेकारणमेतद्धि किंवा मन्त्रसमुद्भवः ॥ ३२ ॥ प्रभावोयंमहाभागे गुह्यञ्चात्रवदस्वनः ॥ अमोवाच ॥ रहस्यंपरमंगुह्यं यत्पृष्टास्मिशुभाननाः ॥ ३३ ॥ अवक्तव्यंवदिष्यामि भवतीनांतथापिच ॥ गौरीपूजनकालेतु यस्माच्चैवसमागताः ॥ ३४ ॥ सर्वाममभगिन्यःस्थ ईर्ष्याधर्म्मोनमेस्तिच ॥ अहमासम्पुराकन्या पुरेकुसुमसञ्ज्ञिते ॥ ३५॥ वीरसेनस्यशूद्रस्य वणिक्पुत्रस्यधीमतः॥ते नदत्तास्मिधर्म्मेण विवाहार्थंमहात्मना ॥ ३६ ॥ ततोविवाहसमयेममप्रीत्यातिवृद्धया ॥ येचाक्षराणिश्रेष्ठानि योषिता न्दीक्षयासह ॥ ३७ ॥ गौरीपूजाकृतेचैवं प्रोक्ताचाहन्ततःपरम् ॥ यावत्पुत्रित्वमात्मानमेतैःपूजयसेऽक्षरैः ॥ ३८ ॥ ज लपानंनकर्तव्यं तावच्चैवकथञ्चन ॥ येनसम्प्राप्स्यसेऽभीष्टं तत्प्रभावाद्यदीप्सितम् ॥ ३९ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तं तस्माच्चै

पूजन समय में भलीभांति आई हो उसी कारण आप सबोंसे कहूंगी ॥ ३४ ॥ तुम सब मेरी बहनैं हो मेरे ईर्षा धर्म नहीं है पुरातन समय कुसुम नामक नगर में बुद्धिमान् बनिये के पुत्र वीरसेन शूद्रकी मैं कन्या हुई उस महात्मा ने धर्म से बिवाह के लिये मुझको दिया ॥ ३५ । ३६ ॥ तदनन्तर बिवाह समय में अत्यन्त बढ़ी हुई प्रीतिसे मैंने स्त्रियों की दीक्षाके साथ जिन श्रेष्ठ अक्षरों को सुना ॥ ३७ ॥ तदनन्तर इसी भांति मैं गौरी पूजन के लिये कहीगई कि हे पुत्रि ! जबतक इन अक्षरों से तुम आत्मा (परमात्मा) को पूजन करना ॥ ३८ ॥ तबतक किसी प्रकार जल पान न करना चाहिये जिससे उसके प्रभावके द्वारा जो मनोरथ होगा उस प्रिय प-

दार्थको भलीभांति पावोगी ॥ ३९ ॥ हे सुन्दर मुखियो ! मैंने उससे तथा यहीकहा याने वैसाही होगा तदनन्तर गौरीजी की भक्ति में लगीहुई मैं विवाह को भली
भांति प्राप्तहुई ॥ ४० ॥ तदनन्तर मूर्त्तिको पूजकर जल में फेंकती थी उसके उपरान्त घरको जाती थी इस के अनन्तर किसी समय मेरे उत्तम पतिने वैश्यवृत्ति (जी-
विका) के कारण अन्य देशको प्रस्थान किया वह भी मार्ग में भलीभांति आश्रित हुआ व स्नेह से मुझको भलीभांति लेकर मरुमार्ग से गमन करता हुआ वह पति
जब वृषराशि में सूर्य स्थित थे तब अति विकराल समय में अतिभयङ्कर मरुमण्डल निर्जल देशको भलीभांति प्राप्तभया ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ तदनन्तर गम्भीरमेघ

प्रक्षिपामिततस्तोये ततोगच्छामिमन्दिरम् ॥ कस्यचि त्ववरानना: ॥ ततोविवाहंसम्प्राप्ता गौरीभक्तिपरायणा ॥ ४० ॥ द्दायस्नेहतः ॥ ४२ ॥ देशान्तरंवणिग्वृत्त्या सोपिमार्गेसमाश्रितः ॥ सगच्छन्मरुमार्गेणमांसमा त्त्वथकालस्य भर्तामेप्रस्थितःशुभः ॥ ४१ ॥ सम्प्राप्तोनिर्ज्जलंदेशं सुरौद्रंमरुमण्डलम् ॥ तथारौद्रतमेकाले वृषस्थेदिवसाधिपे ॥४३ ॥ ततः सार्थःसमस्तश्च विश्रान्तःस्थलमध्यगः ॥ वृक्षमेकंसमाश्रित्यगम्भीरजलदोपमम् ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु मयाद्द ष्टंसमीपगम् ॥ तोयाकारंमरुदेशं ततश्चित्तेविचिन्तितम् ॥ ४५ ॥ एतच्चदृश्यतेतोयं समीपस्थन्तथाबहु ॥ अत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वागौरीमभ्यर्च्यभक्तितः ॥ ४६ ॥ पिबामिसलिलंपश्चात्सुस्वादुसरसोद्भवम् ॥ ततःसम्प्रस्थितायावत्प्रगच्छा मिपदात्पदम् ॥ ४७ ॥ यावद्दूरतरंयामि तावत्सामृगतृष्णिका ॥ तृष्णार्ताहंततस्तस्मिन्मरुमार्गेसमाकुला ॥४८॥ ततश्चपतिताभूमौ विस्फोटकसमावृता ॥ ततोमयास्मृताचित्ते कथाभारतसम्भवा ॥ ४९ ॥ व्रतेनतुयथायज्ञोपूजया

के समान एक वृक्ष प्रति भलीभांति आश्रित होकर चट्टान के बीच में प्राप्त उस समस्त वैश्यसमूहने विश्राम किया ॥ ४४ ॥ इसी समयमें मैंने जल के आकारवाले
मरु देशको समीपवर्ती देखा तदनन्तर चित्त में चिन्तवन किया ॥ ४५ ॥ कि समीपमें स्थित व बहुत यह जल देख पड़ता है इस में नहाकर व पवित्र होकर भक्तिसे
गौरीजी को पूजकर ॥ ४६ ॥ पश्चात् तडाग से उपजे हुए सुस्वादिष्ठ जलको पीऊं तदनन्तर भलीभांति प्रस्थान किये हुई मैं जबतक पैगसे पैग पै चलूं ॥ ४७ ॥ व
जबतक अतिदूरजाऊं तब तक वह मृग जल (जलाभास) दूर होताथा तदनन्तर प्याससे विकल मैं उस मरु मार्ग में अतिआकुल हुई ॥ ४८ ॥ उस के उपरान्त

फोड़ों से घिरी हुई मैं भूमि में गिरपड़ी तदनन्तर मैंने भारत में उत्पन्नहुई कथाको चित्तमें स्मरण किया ॥ ४९ ॥ कि जैसे त्रितने यज्ञ किया है वैसे ही मैं शिवप्रिया का पूजन करूंगी जिससे प्रसन्न होतीहुई वह देवी आज दूसरे शरीर में भलीभांतिटिकने पर मनको प्यारी व अनन्त राज्य मुझको देवै तदनन्तर बालूमें उठी (उपजी) हुई पांच मूठियों से निर्माणकी हुई देवीको इसभांति स्मरण आये हुए पांच मन्त्रों से पूजन किया उसके उपरान्त हे उत्तम आननवाली स्त्रियो ! उस समय मैं मृत्युको प्राप्त होगई ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ व उसी देवी की प्रसन्नता से जातिस्मरण संयुक्त मैं संसार में प्रसिद्ध दशार्णदेश के स्वामी के घर में उत्पन्नहुई ॥ ५३ ॥

मिहरप्रियाम् ॥ येनतुष्टातुसादेवी ममराज्यम्प्रयच्छति ॥ ५० ॥ अद्यदेहान्तरेसंस्थे मनोभीष्टमनन्तकम् ॥ ततस्तुपञ्चभिर्मन्त्रैरेवंस्मृतिसमागतैः ॥ ५१ ॥ पञ्चभिर्मुष्टिभिर्देवी बालुकोत्थैःप्रपूजिता ॥ ततःपञ्चत्वमापन्ना तत्कालेऽहंवराननाः ॥ ५२ ॥ दशार्णाधिपतेर्जाता सदनेलोकविश्रुते ॥ जातिस्मरणसंयुक्ता तस्यादेव्याःप्रसादतः ॥ ५३ ॥ भवतीयांकनिष्ठास्मि ज्येष्ठासौभाग्यतःस्थिता ॥ एतस्मात्कारणाद्गौरीं कृत्वैतान्पञ्चपिण्डकान् ॥ ५४ ॥ कर्द्दमेनविधायाथपूजयामिदिनेदिने ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतीनामसंशयम् ॥ ५५ ॥ सत्येनानेनमेगौरी ममाभीष्टंप्रयच्छतु ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ ततःसर्वास्सपत्न्यस्ताः कृताञ्जलिपुटाःस्थिताः ॥ ५६ ॥ मामूचुर्विनयाद्वाचा प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ प्रसादंकुरुचास्माकंदीयतांमन्त्रपञ्चकम् ॥ ५७ ॥ तदेवयेनतेदेवी तुष्टासापरमेश्वरी ॥ त्वयाप्रोक्तावयंसर्वाः प्रार्थयामोयथेच्छया ॥ ५८ ॥ अहंसर्वंप्रयच्छामि तत्सत्यंवचनंकुरु ॥ ततोदेवमयाप्रोक्तं तासान्तन्मन्त्रपञ्चकम् ॥ ५९ ॥ शिष्यत्वङ्ग

जो आप सबों के मध्य में छोटी हूं व सौभाग्य से जेठी हूं इसी कारण इन पांचपिण्डों को करके कीचड़ से गौरी को बनाकर इसके अनन्तर दिन दिन में पूजती हूं आप सबों से इस गुप्त चरित को मैंने निस्सन्देह कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ इस सत्यसे पार्वती जी मेरे मनोरथ को देवैं लक्ष्मी जी बोलीं कि तदनन्तर हाथों को जोड़े खड़ी हुई उन समस्त सौतियों ने नम्रता से बार २ प्रणामकर मुझ से वचन के द्वारा कहा कि हम सबोंके ऊपर प्रसन्नता कीजिए व उन्हीं पांच मन्त्रों को दीजिये कि जिनसे वह परमेश्वरी देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुई है तुम से कहीहुई हम सबइच्छा के अनुकूल प्रार्थना करैंगी ॥ ५६ । ५७ । ५८ ॥ मैं सब देती हूं उस सत्य

वचन को करो तदनन्तर हे देव ! वाणी,मन, शरीर व कर्म से शिष्यताको प्राप्तहुई उन सौतियों से मैंने उस मन्त्रपंचक को कहा विष्णुजी बोले कि हे देवेशि ! वह मन्त्र पचक कैसाहै मुझसे भी कहो ॥ ५९।६०॥ कि जिस गौरीजीके मन्त्रको पुरातनसमय तुमने प्रसन्नताके द्वारा उन सौतियों से कहाहै लक्ष्मी जी बोलीं कि हे सुरेश्व रि ! पृथ्वीके लिये नमस्कारहै हे जलमये,हे उत्तमे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥६१॥ हे तेजस्विनि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे पवनस्वरूपे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे आकाशरूप सम्पन्ने, हे पंचरूपे ! नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ६२ ॥ पुरातन समय मैंने इन मन्त्रोंसे परमेश्वरी को पूजा है उसीकारण समस्त स्त्रियों को अति दुर्लभ राज्य

यत्त्वयातुष्टितःपूर्वं तासाङ्गौर्य्यानिवेदितम् ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ नमःपृथिव्यैक्षान्तीशिनमआपोमयेशुभे ॥ ६१ ॥ तेजस्विनिनमस्तुभ्यं नमस्तेवायुरूपिणि ॥ आकाशरूपसम्पन्ने पञ्चरूपेनमोनमः ॥ ६२ ॥ एभिर्मन्त्रैर्मयापूर्वं पूजितापरमेश्वरी ॥ तेनराज्यम्परिप्राप्तं सर्वस्त्रीणांसुदुर्लभम् ॥ ६३ ॥ ततःप्रस्थापितादेवी कृतारत्नमयीशुभा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयातत्रसुरेश्वर ॥ ६४ ॥ तांयापूजयतेनारी सद्योपिपतिवल्लभा ॥ जायतेनात्रसन्देहः सर्वपापविवर्ज्जिता ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चपिण्डिकोत्पत्तिर्नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६७ ॥ * ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एवंराज्यंमयाप्राप्तं गौरीपूजाकृतेप्रभो ॥ सौभाग्यंपरमंचैव दुर्लभंसर्वयोषिताम् ॥ १ ॥ नचापत्यं

मितानाञ्च वाङ्मनःकायकर्म्मभिः ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममापिवददेवेशि कीदृक्तन्मन्त्रपञ्चकम् ॥ ६० ॥

प्राप्त हुई है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर हे सुरेश्वर ! उत्तम व रत्नमयी की हुई उस देवीको मैंने उस हाटकेश्वरज क्षेत्रमें प्रस्थान कराया ॥ ६४ ॥ जो स्त्री उस देवीको पूजतीहै वह समस्त पातकोंसे रहित होकर उसीक्षण भी पतिप्रिया होतीहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपञ्चपिण्डिकोत्पत्तिकथनन्नामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पंच पिण्डिकागौरि को थप्यो लक्ष्मिमहरानि । इकसौ अरसठि में सोई कहत चरित सुखदानि ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे प्रभो ! इसप्रकार गौरी पूजन करने पर

मैंने समस्त स्त्रियों को दुर्लभ उत्तम सौभाग्य व राज्य को पाया ॥ १ ॥ तिसपरभी हे परमेश्वर ! वैसे भी सौभाग्य व उस प्रकार की तरुणता के स्थित होने पर मैंने सन्तान को न पाया ॥ २ ॥ उस दुःख से मैं दिनरात जलती थी और मुझको सुख न था इसके अनन्तर किसी समय वे मुनिनायक दुर्वासाजी चातुर्मास्य के लिये व मृत्तिका लेनेके निमित्त गौरव के अर्थ आनर्ताधिपके घरमें भलीभांति प्राप्तहुए ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर आनर्त देशके राजा ने क्रमपूर्वक पूजन किया व अर्घ तथा मधुपर्क को देकर उसके उपरान्त प्रणामकर कहा ॥ ५ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हाराआना बहुत अच्छा हुआ व फिर भी तुम्हारा आना बहुत उत्तम भया संसारमें मेरे समान

मयालब्धं तथापिपरमेश्वर ॥ तादृशेऽपिचसौभाग्ये तारुण्येतादृशेस्थिते ॥ २ ॥ दह्यामितेनदुःखेन दिवानक्तंसुखन्नमे ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यदुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ आनर्ताधिपतेर्हर्म्यं सम्प्राप्तोगौरवायसः ॥ चातुर्मास्यकृतेचैव मृत्तिकाग्रहणायच ॥ ४ ॥ ततःसम्पूजितोराज्ञा आनर्त्तेनयथाक्रमम् ॥ दत्त्वाऽर्घमधुपर्कंच ततःप्रोक्तःप्रणम्यच ॥ ५ ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ भूयःसुस्वागतंचते ॥ नान्योधन्यतमोलोके भूपोस्तिसदृशोमया ॥६॥ यत्तेपादौरजोध्वस्तौ केशैर्मेनिर्म्मलीकृतौ ॥ तद्ब्रूहिकिङ्करोम्यद्य गृहायातस्यतेमुने ॥ ७ ॥ अपिराज्यंप्रयच्छामि कावार्ताऽन्येषुवस्तुषु ॥ दुर्वासाउवाच ॥ चातुर्मास्यविधानन्ते करिष्येनृपमन्दिरे ॥ ८ ॥ मृत्तिकाग्रहणंतावच्छुश्रूषाक्रियतांमम ॥ बाढमित्येवमुक्त्वाथ मयासर्वमनुष्ठितम् ॥ ९ ॥ शुश्रूषार्हंचयत्कर्म दुहितेवपितुर्यथा ॥ चातुर्मास्यांव्यतीतायांयदासंप्रस्थितोमुनिः ॥ १० ॥ तदाप्रोवाचमान्तुष्टः पुत्रिकिंकरवाणिते ॥ ततःसभगवान्प्रोक्तः प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥ अपत्यंनास्तिब्रह्मन्मे

अन्य भूपति अति धन्य नहींहै ॥ ६ ॥ जिसलिये कि धूलिसे ध्वस्त (भरेहुये) तुम्हारे दोनोंचरण मेरे बालों से निर्मल किये गये उसकारण हे मुने ! कहिये कि घर आये हुये तुम्हारा मैं आज क्या कार्य्य करूं ॥ ७ ॥ मै राज्य को भी देऊं अन्य वस्तुओं की क्या कथा है दुर्वासा जी बोले कि हे नृप ! तुम्हारे घर में मैं चातुर्मास्य विधि को करूंगा व मृत्तिका ग्रहण करूंगा तब तक मेरी सेवा की जावै बहुत अच्छा ऐसाही कहकर इस के अनन्तर मैंने सब कार्य किया ॥ ८ ॥ व सेवा के योग्य जो कर्मथा उसको वैसेही किया जैसे कि पिताके कार्य को कन्या करती है चौमासा व्यतीत होनेपर जब मुनिने भलीभांति प्रस्थान किया ॥ १० ॥ तब प्रसन्न होते हुए

मुझसे कहा कि हे पुत्रि ! हम तुम्हारा क्या कार्य करैं तदनन्तर बार २ प्रणामकर उन दुर्वासा भगवान् से मैंने कहा ॥ ११ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरे सन्तान नहीहै उसी से ऐसी राज्य के भी व बड़ेभारी यौवन के होने पर मैं अहर्निश जलती हूं ॥ १२ ॥हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम उसको कहो कि जिस व्रत नियम या दान व हवन से मेरे सन्तान होवै ॥ १३ ॥ तदनन्तर बहुत देरतक ध्यानकर मुसक्याते या विस्मय करतेहुये से मुझ से बोले कि हे पुत्रि ! मृत्युकाल के समीप स्थितहोनेपर तुमने दूसरे शरीर के मध्यमें ताती बालुओं से उन पार्वती जी को पूजा है उस कारण भक्तिसे राज्य पाई हुई भी तुम दाह (जलन) से संयुक्त हो ॥ १४ । १५ ॥ जिसलिये कि

तेनदह्याम्यहर्निशम् ॥ ईदृशेसतिराज्येऽपि यौवनेचमहत्तरे ॥ १२ ॥ तत्त्वंवदमुनिश्रेष्ठ येनस्यान्ममसन्ततिः ॥ व्रतेननियमेनाथ दानेनचहुतेनच ॥ १३ ॥ ततस्तुसुचिरंध्यात्वा मामुवाचस्मयन्निव ॥ अन्यदेहान्तरेपुत्रि त्वयागौरीप्रपूजिता ॥ १४ ॥ तप्ताभिर्बालुकाभिःसा मृत्युकालउपस्थिते ॥ तद्भक्त्यालब्धराज्यापि दाहेनपरियुज्यसे ॥ १५ ॥ गौरीयत्तापसंयुक्तबालुकाभिःकृतात्वया ॥ नदेवोविद्यतेकाष्ठे पाषाणेमृत्तिकासुच ॥ १६ ॥ भावेषुविद्यतेदेवो मन्त्रसंयोगसंयुतः ॥ तवभक्तिसमायुक्तं मन्त्रसंयोजनेनच ॥ १७ ॥ देवीमन्त्रसमायाता त्वयाबालुकयार्चिता ॥ कृतायत्तापसंयुक्तातत्तापःसर्वदास्मृतः ॥ १८ ॥ ब्रह्मरुद्रमयींगौरीं कृत्वात्वंपञ्चपिण्डिकाम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे संस्थापयशुभानने ॥ १९ ॥ वृषस्थेभास्करेपश्चात्तस्याउपरिसान्वयम् ॥ जलयन्त्रंदिवानक्तंधारयस्वप्रयत्नतः ॥ २० ॥ ततोयथायथातस्या

तापसंयुक्त बालुओं से तुमने पार्वती जी का निर्माण किया है काठ, पत्थर व मिट्टियोंमें देवता नहीं विद्यमानहै ॥ १६ ॥ किन्तु मन्त्रसंयोग से संयुत देवता भावोंमें विद्यमान है भक्तिसंयुक्तपूर्वक तुम्हारे मन्त्रसयोग ॥ १७ ॥ व मन्त्र के द्वारा भलीभांति आई हुई देवीको तुमने पूजन किया व जिसलिये बालुका से तापसंयुत की गई उसी से सदैव ताप कहागया है ॥ १८ ॥ हे शोभन मुखवाली ! तुम ब्रह्मरुद्रमयी गौरी को पंचपिण्डिकामय बनाकर हाटकेश्वरजक्षेत्रमें भलीभांति थापनकरो ॥ १९ ॥ पश्चात् जब सूर्य्यनारायण वृषराशि में स्थित होवैं तब वंश समेत उसके ऊपर बड़े यत्न से दिन रात जलयन्त्र (घट) को धरो ॥ २० ॥ तदनन्तर ज्यों ज्यों

उसके शीतभाव होगा त्यों त्यों दिनरात तुम्हारा ताप शान्तिको प्राप्तहोगा ॥२१॥ तदनन्तर तापके अन्त में गर्भ होगा उस गर्भ से तीनों लोकों में प्रसिद्ध राज्यभार के योग्य तथा शूरवीर पुत्रको पावोगी ॥ २२ ॥ और भी जो स्त्री जेठ महीने में यहां उस देवीको इस भांति पूजैगी वह भी वैसीही होगी जैसी कि तुम होवोगी ॥ २३ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि तदनन्तर मैंने फिर उन मुनिनायक दुर्वासा भगवान् से कहा कि हे उत्तम द्विज ! भलीभांति जिसके चीर्ण(इकट्ठा)करने से मनुजता न होवै उसको कहिये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उनने वहुत देरतक ध्यानकर मुझ से कहा कि हे पुत्रि ! गौरीजी को सन्तोपकारक एक उत्तम व्रत है ॥ २५ ॥ कि जिसके करने

श्शीतभावोभविष्यति ॥ तथातथाचतेदाहः शान्तियास्यत्यहर्निशम् ॥ २१ ॥ दाहान्तेभवितागर्भस्ततःपुत्रमवाप्स्यसि ॥ राज्यभारक्षमंशूरं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २२ ॥ अन्यापिकामिनीयात्र एवंताम्पूजयिष्यति ॥ ज्येष्ठेमासेतथासापि यथात्वम्प्रभविष्यसि ॥ २३ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ ततोमयापुनःप्रोक्तो भगवान्समुनीश्वरः ॥ मानुषत्वंनयेनस्यात्सम्यक्चीर्णेनसद्विज ॥२४॥ ततःससुचिरन्ध्यात्वामामाहपरमेश्वरः ॥ अस्तिपुत्रिव्रतम्पुण्यंगौरीतुष्टिकरम्परम् ॥२५॥ येनचीर्णेनवैसम्यग्योषिद्देवत्वमाप्नुयात् ॥ गोमयाख्यामहादेवी कृतावैगोमयेनसा ॥ २६ ॥ ततोगोलोकमापन्नासवस्त्रावरवर्णिनि ॥ तांत्वंकुरुष्वकल्याणियेनदेवत्वमाप्स्यसि ॥ २७ ॥ ततोमयापुनःप्रोक्तःसमुनिःसुरसत्तम ॥ कस्मिन्कालेप्रकर्तव्याविधिनाकेनसन्मुने ॥२८॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहियेनताम्प्रकरोम्यहम् ॥ दुर्वासाउवाच ॥ नभस्येचासितेपक्षे तृतीयादिवसेस्थिते ॥२९॥ प्रातरुत्थाययश्चैव भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ततश्चनियमंकृत्वाउपवाससमुद्भवम् ॥३०॥ गौरीनाम

से स्त्री भलीभांति देवत्व को प्राप्तहोती है हे उत्तमवर्णवाली ! गोमय से की हुई महादेवी तदनन्तर वसन समेत गोलोक को प्राप्त होगई हे कल्याणि ! उसको तुम करो जिससे देवताके भाव को प्राप्त होवो ॥ २६ । २७ ॥ तदनन्तर मैंने फिर उन मुनि से कहा कि हे सन्मुने ! किस विधिसे व किससमय में करना चाहिये ॥२८॥ इस सबको विस्तार से कहो जिससे मैं उन देवीको करूं दुर्वासाजी बोले कि भाद्रपद के कृष्णपक्ष में जब तीजदिन स्थित होवै तब ॥ २९ ॥ जो प्रातःकाल उठकर दन्तधावन को भक्षणकरै उसके उपरान्त श्रद्धा से पवित्रचित्त करके उपास से उपजे हुये नियमको करके व गौरीजी के नाम को भलीभांति उच्चारण कर उसके उप-

वै-
रान्त रात्रिके आगमको भलीभांति प्राप्त होनेपर जैसी मृत्तिकामयी चार गौरियोंको बनाकर पूजै उसको एकमनवाली याने सावधान होकर सुनो कि जैसी कही है
सीही पंचपिण्डमयी एक गौरी करना चाहिये ॥ ३० । ३१ । ३२ ॥ व पहर २ के प्राप्त होनेपर जिन मन्त्रों से उन गौरियों में एक २ को पूजनकरै उनको तुम जानो ॥
३३ ॥ कि हे शङ्करप्रिये देवि ! मेना के गर्भ से उपजीहुई तुम हिमाचल के घर में पैदाहुई हो पूजाको ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ तदनन्तर
श्रद्धासमेत कपूर की धूप देवै व लालसूत से बत्ती बनाकर घृताक्त करके दीप देवै ॥ ३५ ॥ व लालवसन से भलीभांति थापकर व अर्घदेकर तदनन्तर चमेलीके फूलों

मृन्मयंयादृशञ्चैवतदिहैकमनाः ॥ ततोनिशागमेप्राप्ते कृत्वागौरीचतुष्टयम् ॥ ३१ ॥
समुच्चार्य्य श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ३२ ॥ प्रहरेप्रहरेप्राप्ते तासुपूजांसमाचरेत् ॥ यैर्मन्त्रैस्तान्निबोधत्व
श्रृणु ॥ एकागौरीप्रकर्तव्या पञ्चपिण्डायथोदिता ॥ ३३ ॥ हिमाचलगृहेजाता देवित्वंशङ्करप्रिये ॥ मेनागर्भसमुद्भूता पूजांगृह्णनमोस्तुते ॥ ३४ ॥
मेकैकस्याःपृथक्पृथक् ॥ रक्तसूत्रेणदीपञ्च घृतेनपरिकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ जातीपुष्पैस्समभ्यर्च्य नैवेद्यंमोद
धूपंदद्यात्ततश्चैव कर्पूरंश्रद्धयासह ॥ रक्तवस्त्रेणसंस्थाप्य अर्घन्दत्त्वाततःपरम् ॥ ३६ ॥ यस्यवृक्षस्यपुष्पंयत्तस्यतद्दन्तधावनम् ॥ मातुलुङ्गेनत
कान्ददेत् ॥ अर्घमेनंमयादत्तंप्रतिगृह्णनमोस्तुते ॥ ३८ ॥
स्याशुमन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ ३७ ॥ शङ्करस्यप्रियेदेवि हिमाचलसुतेशुभे ॥ ३९ ॥ सुरम्याम्पूजयेद्भक्त्या मन्त्रे
तदेवप्राशनंकृत्वाततःकायविशुद्धये ॥ द्वितीयेप्रहरान्तेच अर्द्धनारीश्वरीन्ततः ॥ सामेपूजाम्प्रगृह्णातु तस्यैदेव्यैनमोस्तुते ॥ अगु
णानेनपार्वतीम् ॥ वामाङ्गार्द्धेशरीरस्य याहरस्यव्यवस्थिता ॥ ४० ॥

से भलीभांति पूजकर लड्डुओं की नैवेद्य देवै ॥ ३६ ॥ जिस वृक्षका जो फूल है उसकी वही दतवन है उस देवी के लिये भक्तिके द्वारा शीघ्रही इस मन्त्र से बिजौरा
नींबू से अर्घ देवै ॥ ३७ ॥ हे शङ्करजी की प्यारी, हे देवि, हे हिमालयसुते, हे शुभे ! मेरे दिये हुये इस अर्घको ग्रहणकरो तुम्हारे लिये प्रणाम होवै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर
शरीर की शुद्धिके लिये वही भोजन करके उसके उपरान्त दूसरे पहर के अन्त में भक्ति से अतिमनोहर पार्वती जी को इस मन्त्रके द्वारा पूजै कि शिवजी के बांये

अर्द्धाङ्ग में जो विशेषकर टिकी है ॥ ३९ । ४० ॥ वह मेरे पूजनको ग्रहणकरै तुम्हीं उन देवी के लिये नमस्कारहै हे शुभे ! तदनन्तर अगुरुको देवै व धूप देवै ॥४१॥ व गुड़ की नैवेद्य देवै व इस मन्त्र के द्वारा नारियर से अर्घ देना चाहिये वही भोजन कहागया है ॥ ४२ ॥ और आधे अंगमें स्त्री व आधे में ईश्वर ऐसे जो परमेश्वर भलीभांति टिके हैं उन उमामहेश्वर देवजी को इस मन्त्रसे पूजनकरै ॥ ४३ ॥ कि हे देवताओ ! मेरे अर्घको ग्रहण कीजिये व समस्त सुखों के दायक हूजिये तीसरे पहरमें शतावरि से पूजन करै ॥ ४४ ॥ कि जौन वे उमामहेश्वर देव सृष्टिकेसंहारसे संयुक्तहैं वे मुझसे बड़ी भक्तिके द्वारा दियेहुये इस पूजनको ग्रहण करैं ॥४५॥

रुंचततोदद्याद्धूपंदद्यात्तथाशुभे ॥ ४१ ॥ नैवेद्यंगुडकञ्चैव नारिकेरेणचार्घकम् ॥ मन्त्रेणानेनदातव्यंतदेवप्राशनंस्मृतम् ॥ ४२ ॥ अर्द्धनारीश्वरौयौच संस्थितौपरमेश्वरौ ॥ उमामहेश्वरौदेवौ मन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ ४३ ॥ अर्घोमेगृह्यतान्देवौ स्यातांसर्वसुखप्रदौ ॥ तृतीयेप्रहरेप्राप्ते शतपत्र्याप्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥ उमामहेश्वरौदेवौ यौतौसृष्टिलयान्वितौ ॥ तौगृह्णीतामिमाम्पूजां मयादत्ताम्प्रभक्तितः ॥ ४५ ॥ गुग्गुलोत्थंततोधूपं नैवेद्यंधारयेत्ततः ॥ सजातीसलिलार्घञ्च तदेवप्राशनंस्मृतम् ॥ ४६ ॥ ततश्चार्घःप्रदातव्यो मन्त्रेणानेनभक्तितः ॥ ग्रन्थिचूर्णेनधूपञ्च अर्घम्मदनजंफलम् ॥ ४७ ॥ तदेवप्राशनञ्चार्य्यं ततःकायविशुद्धये ॥ उमामहेश्वरौदेवौ सर्वकामसुखप्रदौ ॥ ४८ ॥ गृह्णीतामर्घदानंमे दयांकृत्वामहत्तमाम् ॥ चतुर्थेप्रहरेप्राप्ते तांगौरीम्पञ्चपिण्डिकाम् ॥ ४९ ॥ भृङ्गराजेनसम्पूज्यमन्त्रेणानेनभक्तितः॥पृथिव्यादीनिभूतानि

तदनन्तर गुग्गुल से उठी हुई धूपदेवै उस के उपरान्त नैवेद्य धरै व चमेली के फूलों समेत जलार्घ देवै व वही भोजन कहागया है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भक्ति के द्वारा इस मन्त्र से अर्घ देना चाहिये व नागरमोथा के चूर्ण से धूप व मदनजफल (मैनफल) अर्घ देना चाहिये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर शरीर शुद्धि के निमित्त वही भोजन करना चाहिये समस्त कामनाओं व सुखों के दायक उमामहेश्वरदेव जी मेरे ऊपर बड़ीभारी दयाको करके अर्घदान ग्रहणकरैं व चौथे पहर के प्राप्तहोनेपर इस मन्त्र के द्वारा भक्तिसे उन पंचपिण्डका गौरीजी को भँगरा से भलीभांति पूजकर वही भोजनकरै कि हे देवेशि ! पृथ्वी आदिक जो पांच महाभूत कहे गये

हैं ॥४८ । ४९ । ५० ॥ वे जिसके रूपहैं वेही तुम पूजनको ग्रहणकरो-तुम्हारे लिये नमस्कारहोवै पांच महाभूतमयी देवी जो पांच विभागसे विशेषकर स्थितहै वह सुर-स्वामिनी मुझ से दियेहुये इस अर्घ को ग्रहणकरै और गीतों, बाजाओं आदिके शब्दों से वह समस्त रात व्यतीत करना चाहिये ॥ ५१ । ५२ ॥ व उन पंचपिण्डिकाओं के आगे गाने से निद्राको न प्राप्त करै याने सोवै नहीं तदनन्तर जब प्रातःकाल निर्मल होवै तब सूर्य्यमण्डल के उदय होनेपर ॥ ५३ ॥ हे राजपुत्रि ! स्नान करके बड़ी भक्तिके द्वारा स्त्री समेत ब्राह्मणको अपनी शक्ति के अनुमार वसनों व आभूषणों से, भलीभांति पूजनकरै ॥ ५४ ॥ व हे पवित्र या श्वेत मुसक्यानवाली !

यानिप्रोक्तानिपञ्चच ॥ ५० ॥ यस्यारूपाणिदेवेशि पूजांगृह्णनमोस्तुते ॥ पञ्चभूतमयादेवी पञ्चधाचव्यवस्थिता॥५१॥ अर्घमेनंमयादत्तं सागृह्णातुसुरेश्वरी ॥ नेयासर्वानिशासाच गीतवाद्यादिभिःस्वनैः ॥ ५२ ॥ तासाञ्चैवाग्रतोगानैर्निद्रांनैवसमाचरेत् ॥ ततःप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ५३ ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्विप्रंसहपत्न्याप्रभक्तितः॥वस्त्रैराभरणैश्चैवस्वशक्त्यानृपनन्दिनि ॥ ५४ ॥ गौरीभक्तश्चभोक्तव्यो मिष्टान्नेनशुचिस्मिते ॥ ततःकरेणुमानीय वडवाञ्चसुमध्यमे ॥ ५५ ॥ गौरीचतुष्टयन्तच्च समारोप्यतथोपरि ॥ गीतवादित्रशब्देन वेदध्वनियुतेनच ॥ ५६ ॥ नद्यांवाथतडागेवावाप्यांवाऽथपरिक्षिपेत् ॥ मन्त्रेणानेनसद्भक्त्या तवेदंवच्मिसुन्दरि ॥ ५७ ॥ आहूतासिमयादेवि पूजितासिमयाशुभे ॥ ममसौभाग्यदानाय यथेष्टङ्गम्यतामिति ॥ ५८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एवंमयाकृतादेव सातृतीयायथोदिता ॥ नभस्येमा

गौरीजी के भक्तको मिष्टान्नसे भोजन कराना चाहिये तदनन्तर हे सुन्दरकटिवाली ! हथिनी या अश्विनी को लाकर ॥ ५५ ॥ व उस गौरीचतुष्टयको वैसे ही उस के ऊपर समारोपण (चढ़ा) कर वेदध्वनिसंयुक्त गानों, बाजनों के शब्दों से ॥ ५६ ॥ नदी या तड़ाग या बावली में उत्तम भक्तिके द्वारा इस मन्त्रसे विसर्जन करै हे सुन्दरि ! तुम से इस मन्त्रको कहती हूं ॥ ५७ ॥ कि हे शुभे देवि ! मैंने तुमको आह्वान किया व तुम्हारा पूजन किया मेरे सौभाग्य दान के लिये इच्छा के अनुकूल जाइये ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी जी बोलीं कि हे देव ! जैसी कही है इसप्रकार मैंने उस तीज को किया है कि भाद्रपद महीने के भलीभांति प्राप्त होने पर परमभक्तिसे

संयुत मैं ॥ ५९ ॥ दूसरे व विशेषकर वैसे ही तीसरे पहर व प्रभातसमयमें जब तक गौरीचतुष्टयको देखूं तब तक ॥ ६० ॥ प्रकाश से परिपूर्ण वह रत्नमय होगया और नदीतीर को उद्देशकर मैंने प्रस्थान किया कि विसर्जन करूं या न करूं तब तक प्रकट हुई उस सुरेश्वरी ने कहा कि इस जल के बीच में मुझको पूजो व मेरे वचन को सुनकर कीजिये कि तुम हाटकेश्वर से उपजे हुये क्षेत्र में मुझको थापनकरो मत फेंको ॥ ६१ । ६२ । ६३ ॥ कि जिससे समस्त स्त्रियों के हित के लिये अविनाशी होवै व तुम समस्त वरदान को मांगो यहां पूजी हुई मैं दूंगी ॥ ६४ ॥ पूजन कीहुई पर्वतपुत्री (गौरी) सुरेश्वरी से मैंने कहा कि हे देवि ! प्रसन्न होती

सिसम्प्राप्ते भक्त्यापरमयान्विता ॥ ५९ ॥ द्वितीयेचतथाप्राप्ते तृतीयेचविशेषतः ॥ यावत्पश्यामिप्रत्यूषे तावद्गौरीचतुष्टयम् ॥ ६० ॥ जातंरत्नमयंतच्च प्रभयापरिपूरितम् ॥ प्रस्थिताहंनदीतीरमुद्दिश्यचविसर्जनम् ॥ ६१ ॥ करिष्यामिनसाप्राहव्यक्तीभूतासुरेश्वरी ॥ माम्पुत्रिजलमध्येऽत्रममर्मूर्तिचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥ परिभावयमद्वाक्यं श्रुत्वाचैवविधीयताम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेस्थापयत्वञ्चमाक्षिप ॥ ६३ ॥ अक्षयंजायतेयेन सर्वस्त्रीणांहितायच ॥ त्वम्प्रार्थयवरंसर्वंददाम्यहमिहार्चिता ॥ ६४ ॥ अभ्यर्चितागिरिसुता मयाप्रोक्तासुरेश्वरी ॥ यदियच्छसिमेदेवि वरंतुष्टासुरेश्वरी ॥ ६५ ॥ तदहंमानुषेगर्भे माभूयासंकथञ्चन ॥ भर्ताभवतुमेविष्णुःशाश्वतोभीष्टदःसदा ॥ ६६ ॥ नान्यत्किञ्चिदभीष्टंमेराज्यन्त्रिदिवशोभनम् ॥ अन्यापिकुरुतेयाच व्रतमेतत्समाहिता ॥ ६७ ॥ सर्वैर्व्रतैर्यथातुष्टिस्तवदेविप्रजायते ॥ तथातस्याःप्रकर्तव्याएकेनानेनपार्वति ॥६८॥ तथेतिगौरीमामुक्त्वाततश्चादर्शनङ्गता ॥ सादेवीचमयातत्र तच्चगौरीचतुष्टयम् ॥६९॥

सुरेश्वरी तुम यदि मुझको वरदान देती हो ॥ ६५ ॥ तो मैं किसी प्रकार मनुष्यके गर्भमें मतहोऊं और सदैव मनोरथदायक अविनाशी विष्णुजी मेरे पति होवैं ॥६६॥ और कुछ स्वर्ग की उत्तम राज्यका भी मेरा मनोरथ नहीं है व सावधान होती हुई और भी जो स्त्री इस व्रतको करै ॥ ६७ ॥ हे देवि, पार्वती जी ! समस्तव्रतों से तुम्हारी जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही इस एक व्रत से उसके ऊपर प्रसन्नता कीजावै ॥ ६८ ॥ वैसाही होगा यह मुझ से पार्वती जी कहकर तदनन्तर वह देवी

ब्रह्मलोक में बसतेहुए देवर्षि नारद मुनि त्रिलोक में घूमकर प्राप्तहुए ॥ ६ ॥ वे शिरसे चरणोंको प्रणाम कर उन ब्रह्माके अगाड़ी बैठगये ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! बहुत दिनों से किस कारण देखपड़े व इस समय आप कहांसे प्राप्तहुएहो ॥ १० हे वत्स ! कहां भ्रमण किया है इस विषय में समस्त कारणको कहिये नारद जी बोले कि हे विभो ! इस समय शीघ्रता संयुत मैं तुम्हारे चरण पूजने के लिये मृत्युलोक से प्राप्तहुआहूं सत्यसे अपनी शपथ करताहूं ब्रह्माबोले कि मृत्युलोक में उपजे हुए मनुष्य क्या कहते हैं उसको मुझसे कहिये ॥ ११ । १२ ॥ व उस मृत्युलोकमें किसप्रकार के राजाहैं व द्विजोत्तम कैसे हैं और इस समय वहां कैसे व्यौहार वर्त्त-

रदःप्राप्तो भ्रान्त्वालोकत्रयंमुनिः ॥ ६ ॥ सप्रणम्यशिरःपादानुपविष्टस्तदग्रतः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कस्माद्वत्सचिराद् दृष्टः कुतःप्राप्तोधुनाभवान् ॥ १० ॥ क्वभ्रान्तःसर्वमाचक्ष्व ब्रूहिवत्सात्रकारणम् ॥ नारदउवाच ॥ मर्त्यलोकादिहोप्राप्तःसांप्रतंसत्वरान्वितः ॥ ११ ॥ तवपादप्रपूजार्थं सत्येनात्मानमालभे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किंवदन्तिममाचक्ष्व मर्त्यलोकसमुद्भवाः ॥ १२ ॥ कीदृशाःपार्थिवास्तत्र कीदृशाद्विजसत्तमाः ॥ कीदृशाव्यवहाराश्च वर्तन्तेतत्रसाम्प्रतम् ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ मर्त्यलोकेकलिर्जातः साम्प्रतंसुरसत्तम ॥ राजानस्सत्पथंत्यक्त्वा तथालोभपरायणाः ॥ १४ ॥ पीडयन्तिचलोकांश्च अर्थहेतोःसुनिर्घृणाः ॥ शौर्य्यभावपरित्यक्ताः परदारावमर्द्दकाः ॥ १५ ॥ पूजयन्तिनतेविप्रान्नगुरून्नपितॄनपि ॥ वेदविक्रयकर्तारो ब्राह्मणाःशौचवर्जिताः ॥ १६ ॥ तथाप्रतिग्रहासक्ताः सन्ध्याहीनास्सुनिर्घृणाः ॥ कृषिकर्म्मरतानित्यंवैश्यवत्पशुपालकाः ॥ १७ ॥ वैश्यास्सर्वेसमुच्छेदं प्रयाताधरणीतले ॥ शूद्रानित्यंधर्म्मकामाः शूद्राश्चैवतपस्विनः ॥ १८ ॥

मान है ॥ १३ ॥ नारदजी बोले कि हे सुर श्रेष्ठ ! इस समय मृत्युलोक में कलियुग वर्त्तमानहै वैसेही राजालोग लालच में तत्पर होकर उत्तम मार्गको छोड़कर ॥ १४ ॥ अति निर्दयी व वीरतासे छुटे और पराई नारियों को मर्दन करनेवाले वे द्रव्यके कारण मनुष्यों को पीड़ित करते हैं ॥ १५ ॥ और वे राजालोग ब्राह्मणों व गुरुवों को भी व पितरों को भी नहीं पूजते हैं वेदके विक्रय कर्ता (बेंचनेवाले) व शुद्धि रहित ब्राह्मण हैं ॥ १६ ॥ वैसेही दानमें परायण व सन्ध्योपासन कर्म से हीन व अति निर्दयी व वैश्य वर्णकी नाईं नित्यही कृषी में तत्पर व पशुवों के पालक हैं ॥ १७ ॥ व भूतल में समस्त वैश्य विनाशको प्राप्तहोगये व शूद्र नित्यही धर्मकी

दो० । लाये तीर्थ त्रिपुष्करहिं यथा पितामह देव । कहत एकसौ उन्हत्तरिं महँसो उत्तम भेव ॥ सूतजी बोले कि वैसेही उस हाटकेश्वरज क्षेत्र में और भी शुभदायक व समस्त पातकों के नाशक तीन पुष्कर हैं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस पुष्करत्रय के देखने, पूंछने व कहने पर वैसेही पाप नाश होजाता है कि जैसे सूर्य्यनारायण से अन्धकार नष्ट होताहै ॥ २ ॥ समस्त तीर्थ स्नान व दान से निस्सन्देह पवित्र करते हैं और पुष्कर के देखनेही से सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ३ ॥ ऋषि लोग बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध पुष्कर नामक तीर्थ सुनाजाता है जो कि योजनप्रमाण भर ब्रह्मासे वहां निर्मितहुआ है ॥ ४ ॥ चन्द्रभागा नदी के उत्तर ओर सर-

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति पुष्करत्रितयंशुभम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यस्मिन्दृष्टेथवापृष्टे कीर्तितेवाद्विजोत्तमाः ॥ पातकंनाशमायाति भास्करेणतमोयथा ॥ २ ॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादसंशयम् ॥ पुष्करालोकनादेवसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ श्रूयतेपुष्करंनाम तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ब्रह्मणानिर्मितंतत्र यच्चयोजनमात्रकम् ॥ ४ ॥ उत्तरेचन्द्रभागाया नद्यायावत्सरस्वती॥दक्षिणेकरतोयायाःसीमेयंपुष्करत्रयम् ॥ ५ ॥ अस्माकन्तुपुरासूत यत्त्वयोक्तंवियत्स्थितम् ॥ एतन्नःकौतुकंसूततत्कथंहाटकेश्वरे ॥ ६ ॥ तत्रक्षेत्रंसमायातंतस्मात्त्वंवक्तुमर्हसि ॥ सूतउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेद्विजश्रेष्ठास्तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ सर्वंविस्तरतोवच्मि नमस्कृत्वास्वयम्भुवे ॥ ८ ॥ वसतोब्रह्मलोकेवैब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ देवर्षिनां

स्वती पर्य्यन्त व करतोया (गौरी विवाह में कन्यादान के जलसे उत्पन्न) नदी के दक्षिण किनारे तक यही तीनों पुष्करों की हदहै ॥ ५ ॥ हे सूतजी! पुरातन समय जो तुमने हमलोगों से आकाश में स्थितहुए तीर्थको कहाहै यह हम लोगोंको आश्चर्य है हे सूतजी ! वह तीर्थ कैसे उस हाटकेश्वर क्षेत्रमें भलीभांति आयाहै इस लिये तुम कहने के योग्यहो, सूतजी बोले कि हे बड़े भाग्यवाले मुनियो ! जो आप लोगोंने कहाहै यह सत्यहै ॥ ६ । ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस क्षेत्रमें जिसभांति वह तीर्थ आयाहै उस समस्त चारितको ब्रह्माके लिये प्रणाम कर विस्तार से कहताहूं उसको सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो ॥ ८ ॥ अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजीको

अन्तर्द्धान होगई व हे विभो ! उस हाटकेश्वरजक्षेत्र में मैंने उस गौरी चतुष्टय (चारों मूर्तियों) को भलीभाति स्थापित किया उसी के प्रभाव से हे परमेश्वर ! मुझ को तुम पति मिले हो ॥ ६९ । ७० ॥ जोकि शाश्वत (सदारहनेवाले) व अविनाशी व सदैव मुखको देखने हारे हो हे सुरेश्वर ! मुझसे जो वृत्तान्त पूंछागया यह सब तुमसे वर्णन किया ॥ ७१ ॥ हे देवेशजी ! इस सत्य से मैं तुम्हारे चरणों को स्पर्श करती हूं सूतजी बोले कि उन लक्ष्मीजी के उस वचनको सुनकर शङ्ख,चक्र, गदा के धारनेवाले (विष्णुजी) ॥ ७२ ॥ विहँसकर इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुए बार २ भलीभांति लिपटाकर व वक्षस्थल के ऊपर टिकी हुई उन महालक्ष्मीजीसे

हाटकेश्वरजेक्षेत्रे मयासंस्थापितंविभो ॥ तत्प्रभावान्मयालब्धो भर्तात्वम्परमेश्वर ॥ ७० ॥ शाश्वतश्चाक्षयश्चै वमुखप्रेक्षश्चसर्वदा ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिसुरेश्वर ॥ ७१ ॥ सत्येनानेनदेवेश तवपादौस्पृशाम्यहम् ॥ सूतउ वाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥ विहस्याथमहालक्ष्मीं तामुवाचप्रहर्षितः ॥ मुहुर्मुहुःसमालि ङ्ग्यवक्षसश्चोपरिस्थिताम् ॥ ७३ ॥ साधुसाधुमहाभागे सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ जानतापिमयापृष्टाभवतीवरवर्णिनी ॥ ७४ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ चतुर्भुजायथागौरी सञ्जातापञ्चपिण्डिका ॥ ७५ ॥ यश्चैत त्पठतेभक्त्या प्रातरुत्थायमानवः ॥ नसलक्ष्म्याविमुच्येतनचदौर्भाग्यमाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठनीय मिदंशुभम् ॥ आख्यानंगौरिकंविप्रा यन्मयापरिकीर्तितम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे पञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ * ॥ * ॥

कहा ॥ ७३ ॥ कि हे महाभागे ! बहुतअच्छा २ तुमसे कहाहुआ यह सत्यहै जानतेहुये भी मैंने उत्तम अंगोंवाली आपसे पूंछा ॥ ७४ ॥ सूतजीबोले कि हे द्विजोत्तमो ! जो चरित मुझसे पूंछागया इस सबको तुम लोगोंसे कहा कि जिस प्रकारपंच पिण्डिका पार्वतीजी चतुर्भुजीहुई हैं ॥ ७५ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इस चरितको भक्तिसे पढ़ताहै वह लक्ष्मीसे बियोगी नहीं होताहै व दुर्भाग्यको नहीं पाताहै ॥ ७६ ॥ इसलिये हे ब्राह्मणो ! जो मैंनेकहाहै इसगौरीवाले उत्तम कथानकको समस्त उपायसे पढ़ना चाहिये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चपिण्डिकागौर्य्युत्पत्तिर्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

कामनावाले हैं व शूद्रही तपस्वी हैं ॥ १८ ॥ व बिन लज्जावाले समस्त नर लोक की यात्राओं व कार्य्यों को हँसते हैं जिसके घरमें धन व युवती स्त्रियां हैं ॥ १९ ॥ उसीके साथ मनुष्य मित्रता करते हैं व कलियुगसे सेवित वडरे हुये समस्त आश्रम व तीर्थ दशो दिशाओं में दौड़ते हैं ॥ २० ॥ हे ब्रह्माजी ! कलि समय में मैं यत्नसे वहां स्थितहुआ जहां कि कामदेव के अंगमें परायण होती हुई स्त्रियां पतियों के साथ विवाद करती हैं ॥ २१ ॥ व वे स्त्रियां अपने पतियों के कार्य्यों को छोड़कर व्रतोंको करती हैं तुम्हारे वरदान से कलियुग अत्यन्तही बलवान किया गया है ॥ २२ ॥ जब मृत्युलोक में युद्ध होताहै तब मेरे हृदय में खजुहावट होती है

लोकयात्राक्रियास्सर्वे प्रहसन्तिव्यपत्रपाः ॥ यस्यचास्तिगृहेवित्तं तरुण्यश्चतथास्त्रियः ॥ १९ ॥ समंसख्यंप्रकुर्व न्ति नरास्तेनाश्रितानिच ॥ कलेर्भीतानिसर्वाणि विद्रवन्तिदिशोदश ॥ २० ॥ अहंतत्रस्थितोयत्नात्कलिकालेपिताम ह ॥ भर्त्राविवदमानाश्च स्त्रियःकामाङ्गतत्पराः ॥ २१ ॥ तथाव्रतानिकुर्वन्ति त्यक्त्वाताःस्वपतेःक्रियाः ॥ कलिर्बलिष्ठः सुतरां वरदानेनतेकृतः ॥ २२ ॥ यदामर्त्येभवेद्युद्धं कण्डूतिर्जायतेहृदि ॥ स्वर्गेवामस्तकेचैव पातालेवाथपादयोः ॥२३॥ साम्प्रतंमर्त्यलोकेच मयादृष्टमनेकशः ॥ श्वश्रूणांचवधूनांच तथाजनकपुत्रयोः ॥ २४ ॥ बान्धवानांविशेषेण तथाच स्वामिभृत्ययोः॥चौराणांपार्थिवाणांच दम्पत्योश्चविशेषतः ॥ २५ ॥ स्वल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पसस्याचमेदिनी ॥ स्वल्पक्षीरास्तथागावः क्षीरेसर्पिर्नविद्यते ॥ २६ ॥ एवंयुद्धानितेषांच वीक्ष्यमाणोदिवानिशम् ॥ अहंमर्त्येपरिभ्रान्तश्चि त्तेतेनसमागतः ॥ २७ ॥ भूयोयास्यामितत्रैव कण्डूतिर्हृदिचोत्थिता ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य नारदस्यपितामहः ॥२८॥

व स्वर्ग में युद्ध होताहै तब मस्तक में और जब पाताल में समर होताहै तब चरणों में होतीहै ॥ २३ ॥ इस समय मृत्युलोक में मैंने सासु पतोहुओं व पिता पुत्रोंकी अनेकों लडाईयोंको देखाहै ॥ २४ ॥ व विशेषकर भाइयों व स्वामी सेवकोंतथा चोरों राजाओं और विशेषता से स्त्री पुरुषों के युद्धोंको देखाहै ॥ २५ ॥ वैसेही मेघ थोड़े जलवाले और भूमि थोड़े अन्नवाली व गाइयां थोड़े दूधवाली और दूधमें घी नहीं विद्यमान है ॥ २६ ॥ इस प्रकार उनके युद्धोंको अहर्निश देखताहुआ

मैं मृत्युलोक में भ्रमता भया व हृदय में खजुहावट उठी है उसी से चित्त में भलीभांति आया कि फिर वहीं जाऊंगा ॥ २७ । २८ ॥ उन नारद जी के उस वचन को सुनकर ब्रह्माजी पुष्कर के लिये चिन्तासे विकल इन्द्रियोंवाले होगये कि मृत्युलोक में पुष्कर नामक प्रसिद्ध मेरातीर्थहै ॥ २९ ॥ कलिकाल से व्याप्त वह निश्चय कर नाशको प्राप्तहोगा इस लिये अन्यस्थान में लेजाऊंगा जहां कि कलियुग विद्यमान नहीं है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणों ! उन पितामहजी नें इस भांति निश्चय कर व हाथमें कमलको लेकर जब तक आपही फेंकैं ॥ ३१ ॥ कि हे कमल ! जहां कलियुग न होवै वहां भूतल में जावो कि जिससे पुष्कर नामक अपने तीर्थको

पुष्करस्यकृतेजातश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ मर्त्येचमामकंतीर्थं पुष्करन्नामविश्रुतम् ॥ २९ ॥ नाशंयास्यतितन्नूनं कलिकालपरिप्लुतम् ॥ तस्मादन्यत्रनेष्यामि कलिर्यत्रनविद्यते ॥ ३० ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वा गृहीत्वापङ्कजंकरे ॥ यावत्क्षिपतिसद्विप्राः स्वयमेवपितामहः ॥ ३१ ॥ व्रजत्वंभूतलेपद्मकलिर्यत्रनविद्यते ॥ येनतत्रविमुञ्चामि निजतीर्थंचपुष्करम् ॥ ३२ ॥ कलिकालेचसंप्राप्ते सर्वप्राणिभयङ्करे ॥ तत्रप्रयान्तुतीर्थानिसर्वाण्येवावशेषतः ॥ ३३ ॥ प्रयास्यन्ति निजंस्थानं ममवाक्यादसंशयम् ॥ इतिनिश्चित्यमनसा हस्तस्थंकमलन्ततः ॥ ३४ ॥ प्रोवाचसादरंतच्च स्वयन्ध्यात्वा पितामहः ॥ पतत्वंपद्मभूपृष्ठे कलिर्यत्रनवर्तते ॥ ३५ ॥ येनानयामितत्रैव पुष्करंतीर्थमात्मनः ॥ ततस्तत्प्रेषितंतेन पद्मं भ्रान्त्वामहीतलम् ॥ ३६ ॥ समस्तंपतितंक्षेत्रे हाटकेश्वरसम्भवे ॥ दृष्ट्वावेदविदोविप्रान्स्वाध्यायनिरतान्मुनीन् ॥ ३७ ॥ तेषांयज्ञक्रियाभिश्च यज्ञजातैस्समन्ततः ॥ यूपाद्यैस्सर्वतोव्याप्तं सदिशंगगनाङ्गणे ॥ ३८ ॥ ऋग्यजुःसामघोषेणतथा

वहां छोड़ूं ॥ ३२ ॥ समस्त प्राणियोंके भयङ्कर उस कलिकाल के भलीभांति प्राप्त होनेपर वहां सब तीर्थ निश्शेषता से जावैं ॥ ३३ ॥ मेरे वचन से निस्सन्देह अपने स्थानको जावैंगे यह मनसे निश्चयकर तदनन्तर आपही ब्रह्माजी ध्यानकर हाथ में टिकेहुए उस कमलसे कहा कि हे कमल ! जहां कलियुग नहीं वर्त्तमान है वहां धरणी पृष्ठमें तुम गिरो ॥ ३४ । ३५ ॥ जिससे अपने पुष्कर तीर्थको वहीं आनूं तदनन्तर उन ब्रह्माजीसे पठायाहुआ वह कमल समस्त भूतलको भ्रमकर हाटकेश्वर जीसे उपजेहुए क्षेत्रमें वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों व वेद पाठमें परायण मुनियोंकोदेखकर गिरपड़ा ॥ ३६ । ३७ ॥ जहां कि दिशाओं समेत आकाश रूपी आंगन

चारोंओर उन मुनियों की यज्ञ क्रियाओं और यज्ञमें उपजेहुए यूप (स्तम्भ) इत्यादिकों से सब ओर व्याप्ततथा ॥ ३८ ॥ व ऋग्यजुः सामके शब्दसे व अथर्वण वेद की ध्वनिसे दिशाओं के मण्डल को उस भांति व्याप्त होनेपर और शब्द भलीभांति नहीं सुनपड़ताथा ॥ ३९ ॥ वैसेही कार्तान्तिकों याने ज्योतिषियों के बड़े भारी विवादों व बहुधा सुनेहुए समस्त वेदान्तों के व्याख्यान में मुनिलोग तत्पर थे ॥ ४० ॥ व नियमों में भलीभांति टिकेहुए मुनि जन जहां देखपड़ते हैं जो कि एकबार भोजनकरनेवाले व निराहारी तथा एक दिन के अन्तर से भोजन कर्तेथे ॥ ४१ ॥ व तीन रातों के उपासवाले व अन्य कृच्छ्र चान्द्रायण में तत्पर तथा

चाथर्वणेनच ॥ दिङ्मण्डलेतथाव्याप्तेनान्यःसंश्रूयतेध्वनिः ॥ ३९ ॥ तथाचकार्त्तिकाणांच विवादेषुमहत्सुच ॥ वेदान्तानांसमस्तानां व्याख्यानेवहुधाश्रुते ॥ ४० ॥ दृश्यन्तेमुनयोयत्र संस्थितानियमेषुच ॥ एकाहारानिराहारा एकान्तरकृताशनाः ॥ ४१ ॥ त्रिरात्रोपोषिताश्चान्ये कृच्छ्रचान्द्रायणेरताः ॥ महापाराकिनश्चान्ये तथामासोपवासिनः॥४२॥ अश्मकुट्टाशिनश्चान्येदन्तोलूखलिकास्तथा॥शीर्णपर्णाशिनश्चैके फलाहारामहर्षयः॥४३॥तंदृष्ट्वातादृशंक्षेत्रं संयुक्तंविविधैर्गुणैः ॥ ततस्तत्पतितंतत्र पुण्यंज्ञात्वामहीतले ॥ ४४ ॥ यत्रस्थानेपतत्पूर्वं तस्मादुत्पतितंपुनः ॥ अन्यस्मिंश्चततःस्थाने द्वितीयेद्विजसत्तमाः ॥ ४५ ॥ तस्मादपितृतीयेतु पतितंपङ्कजंहितत् ॥ ततोगर्तात्रयंजातं तेषुस्थानेषुचत्रिषु ॥ ४६ ॥ गर्तासुचजलंजातं स्वच्छंस्फटिकसन्निभम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः स्वयमेवपितामहः ॥ ४७ ॥ तत्रस्थानेद्वि

अन्य मुनि महापाराक व्रतवाले व महीने के उपासी थे ॥ ४२ ॥ और पत्थल में कूटकर खानेवाले व अन्यमुनि दन्त रूपी ओखली में कूटकर खानेवाले व कि गिरे पत्तोंके भोजनकारी व फलाहारवाले महर्षिथे॥४३॥अनेकों प्रकारकेगुणोंसे संयुत वैसे उस क्षेत्रको देखकर तदनन्तर भूतलमें पुण्यरूप जानकर वह कमल वहां गिरपड़ा ॥ ४४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस स्थानमें पहले गिरा उससे उछला हुआ फिर तदनन्तर दूसरे स्थान में गिरपड़ा ॥ ४५ ॥ और वह कमल उस स्थानसे भी तीसरे स्थान में गिरा उसीकारण उन तीनों स्थानोंमें तीनगढ़े होगये ॥ ४६ ॥ और गढ़ोंके मध्यमें स्फटिक के समान निर्मलजल होगया इसी अवसर में हे द्विजो

त्तमो ! यज्ञकार्यकी सिद्धिके लिये उस स्थानमें आपही ब्रह्माजी प्राप्तहुये व हाटकेश्वरनामक क्षेत्रको सबओर देखकर ॥ ४७ । ४८ ॥ जोकि वेदवेदाङ्गोंके जाननेवाले अनेक प्रकार के ब्राह्मणों व व्रतचर्य्या में लगेहुये अनेकों तपस्वियों से व्याप्तथा ॥ ४९ ॥ अहो (आश्चर्य) है कि यह क्षेत्र जोकि पुण्यदायक व परम मनोहर और ब्राह्मणों को प्रियहै यह आश्चर्य है इस लिये उत्तम द्विजोंसे आश्रित इस क्षेत्रमें यज्ञ करूंगा ॥ ५० ॥ व उस उत्तम पुष्करत्रय को भी श्रेष्ठ, मध्यम, लघुके क्रमसे इन गर्त्तोंमें लाऊंगा ॥ ५१ ॥ कि जिससे कलिकाल के भी भलीभांति प्राप्त होनेपर लोपको न प्राप्तहोवै भूतलमें बैठकर व आपही मनसे निश्चयकर ॥ ५२ ॥ और

जश्रेष्ठा यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ दृष्ट्वासमन्ततःक्षेत्रं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥ नानाविप्रैस्समाकीर्णं वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ तपस्विभिस्तथानेकैर्व्रतचर्य्यापरायणैः ॥ ४९ ॥ अहोक्षेत्रमहोपुण्यं परंरम्यंद्विजप्रियम् ॥ तस्माद्यज्ञंकरिष्यामिक्षेत्रे स्मिन्सद्विजाश्रये ॥ ५० ॥ आनयिष्यामितच्चापि पुष्करत्रितयंशुभम् ॥ गर्त्तास्वेतासुपुण्यासु श्रेष्ठंमध्यङ्कनीनकम् ॥ ५१ ॥ कलिकालेचसम्प्राप्ते येनलोपंनगच्छति ॥ स्वयंनिश्चित्यमनसा उपविश्यधरातले ॥ ५२ ॥ ध्यात्वाचसुचिरं कालमानयामासतत्रच ॥ पुष्करत्रितयंश्रेष्ठं ज्येष्ठंमध्यंकनीनकम् ॥ ५३ ॥ ततोब्रवीत्प्रहृष्टात्मा एतद्वैपुष्करत्रयम् ॥ मयासम्यक्समानीतं कलिकालभयेनच ॥ ५४ ॥ अत्रस्नानंकरिष्यन्ति श्रद्धयापरयायुताः ॥ तेयास्यन्तिपरांसिद्धिम त्त्वयांमत्प्रसादतः ॥ ५५ ॥ येचश्राद्धंकरिष्यन्ति कार्त्तिक्यांसुसमाहिताः ॥ करिष्यन्तिगयाशीर्षे तेषांपुण्यंमहत्तमम् ॥ ५६ ॥ तत्राद्यात्पुष्करात्पुण्यं लभिष्यन्तिशताधिकम् ॥ मयायज्ञःकृतस्तत्र कार्त्तिक्यांपूर्वपुष्करे ॥ ५७ ॥ वैशाख्यांच

बहुत समयतक ध्यानकर ज्येष्ठ, मध्य व छोटे तीनों उत्तम पुष्करोंको वहांलाये ॥ ५३ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन या चित्तवाले ब्रह्मा बोले कि कलिकाल के डरसे मैं इन तीनों पुष्करोंको भलीभांति लाया ॥ ५४ ॥ परमश्रद्धासे संयुत जो पुरुष यहां स्नान करैंगे वे मेरी प्रसन्नतासे अविनाशिनी व उत्तम सिद्धिको प्राप्त होवैंगे ॥ ५५ ॥ व सावधान होतेहुये कार्त्तिकी पौर्णमासीको जो पुरुष गयाशीर्ष में श्राद्धकरैंगे उन को बड़ीभारी पुण्यहोगी ॥ ५६ ॥ और वहां आदिपुष्कर से सौगुनी अधिक पुण्य

होगी मैंने वहां पूर्वपुष्कर में कार्त्तिकी को यज्ञ कियाहै ॥ ५७ ॥ और वैशाखी को यहां दूसरे पुष्कर में करूंगा ऐसा कहकर तदनन्तर ब्रह्माजी ने पवन को आज्ञा दिया ॥ ५८ ॥ कि हे पवनजी ! मेरी आज्ञासे आदित्य, वसु, रुद्र, पवनगण, गंधर्वों, लोकपालों व सिद्धों तथा विद्याधरों समेत इन्द्रजी को शीघ्रही भलीभांति लावो जिससे समस्त यज्ञकर्म में तुम मेरी सहाय में होवो ॥ ५९ । ६० ॥ उस समस्त वचनको सुनकर पवनने इन्द्रजी के घर जाकर वह सब कहा जोकि परमेष्ठी (ब्रह्मा) ने कहाथा ॥ ६१ ॥ व समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी शीघ्रही वहांगये व उन ब्रह्माजी को प्रणामकर तदनन्तर वचन बोले ॥ ६२ ॥ कि हे देव ! आज्ञा

करिष्यामि अत्राहंचद्वितीयके ॥ एवमुक्त्वाततोब्रह्मा आदिदेशसदागतिम् ॥ ५८ ॥ ममादेशाद्द्रुतंवायो समानयपुरन्दरम् ॥ आदित्यैर्वसुभिस्सार्द्धं रुद्रैश्चैवमरुद्गणैः ॥ ५९ ॥ गन्धर्वैर्लोकपालैश्च सिद्धैर्विद्याधरैस्तथा ॥ येनमेस्यात्सहायेत्वं समस्तेयज्ञकर्म्मणि ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वासकलंवायुर्गत्वाशक्रनिवेशनम् ॥ कथयामासतत्सर्वं यदुक्तंपरमेष्ठिना ॥ ६१ ॥ सत्वरंप्रययौतत्र सर्वैर्देवगणैस्सह ॥ प्रणिपत्यततस्तञ्च ब्रह्माणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ आदेशोदीयतान्देव अहमानायितस्त्वया ॥ यदर्थंतत्करिष्यामि तस्माच्छीघ्रंनिवेदय ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मयाशक्रात्रयन्नीतं सुपुण्यंपुष्करत्रयम् ॥ कलिकालभयाच्चैव करिष्येतदहंस्थिरम् ॥ ६४ ॥ अग्निष्टोमंक्रतुंकृत्वा वैशाख्याञ्चयथार्चितम् ॥ सम्भारमाहरस्वाशु तदर्थंसर्वमेवहि ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणाश्चतदर्हाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तच्छ्रुत्वाविनयाच्छक्रस्तथेत्युक्त्वात्वरान्वितः ॥ ६६ ॥ सम्भारानानयामास तदर्हांश्चद्विजोत्तमान् ॥ ततश्चकारविधिवद्यज्ञंसप्रपितामहः ॥ ६७ ॥ यथोक्तविधिनासर्वं तथास

दीजावै जिस लिये मैं तुमसे आनागयाहूं उसको करूंगा इस कारण शीघ्रही निवेदन करिये ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! मैं जिन अतिपुण्यदायक तीनों पुष्करों को यहां लायाहूं वैशाखी में यथापूजित अग्निष्टोम यज्ञको करके उनको कलिकालके डरसे निश्चयकर अचल करूंगा उसके लिये सबही सामग्री को शीघ्रही लाइये ॥ ६४ । ६५ ॥ व उस यज्ञके योग्य और वेद वेदाङ्गों के जाननेवाले ब्राह्मणों को लाइये उस वचनको सुनकर इन्द्रजी नम्रता से तथा याने वैसाहीं होगा यह कहकर शीघ्रता संयुत हुये ॥ ६६ ॥ व सामग्रियों तथा उसके योग्य द्विजोत्तमों को लाये तदनन्तर उन ब्रह्माजीने कही हुई विधिके अनुकूल व विधिपूर्वक सम्पूर्ण

दक्षिणावाले समस्त यज्ञको किया ॥ ६७ । ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्करत्रयोत्पत्तिर्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कौन यज्ञ प्रारम्भ जिमि ब्रह्मा मुनिन बुलाय । इकसौ सत्तरि महँ सोई कहत चरित सुखदाय ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहा है यह अत्यन्त अद्भुत है जोकि उस क्षेत्र में महात्मा ब्रह्माजी ने यज्ञकिया है ॥ १ ॥ भूतल में जो अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्त्तमान होते हैं उन यज्ञोंमें वेही सुरनायक

म्पूर्णदक्षिणम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपुष्करत्रयोत्पत्तिर्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ अत्यद्भुतमिदंसूत यत्त्वयासमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणायत्कृतोयज्ञस्तत्रक्षेत्रेमहात्मना ॥ १ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञा येवर्तन्तेधरातले ॥ यष्टव्यस्तेषुयज्ञेषु सएवहिसुरेश्वरः ॥ २ ॥ तेनैवयजतातत्र कोहीष्टःप्रब्रवीहिनः ॥ ऋत्विजःकेस्थितास्तत्र यैस्तत्कर्म्ममखोद्भवम् ॥ ३ ॥ तत्प्रत्यक्षंकृतंसर्वमेतन्नःकौतुकंपरम् ॥ काचैवदक्षिणादत्ता तेनतेषांद्विजन्मनाम् ॥ ४ ॥ कोध्वर्य्युर्विहितस्तत्र येनतद्यजनंकृतम् ॥ कोहोताकश्चवाग्नीध्रः कोब्रह्मातत्रसंस्थितः ॥ ५ ॥ उद्गाताकःस्थितस्तत्र आचार्य्योयज्ञकर्म्मणि ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामि सर्वंयज्ञस्यसम्भवम् ॥ ६ ॥ सृ

(ब्रह्माजी) पूजने योग्य होते हैं ॥ २ ॥ व उन्हीं ब्रह्माके यज्ञकरने पर उस यज्ञमें कौन पूजितहुआ उसको हमलोगों से कहिये उस यज्ञमें कौन ऋत्विज् (यज्ञकारक) हुये हैं कि जिन्होंने यज्ञसे उपजे हुये उस कर्मको उनके सामने किया है यह सब हमलोगों को परम आश्चर्य है व उन ब्रह्माने उन ब्राह्मणों को क्या दक्षिणा दी है ॥ ३ । ४ ॥ व उसमें कौन ऋग्वेदी कियागया है जिसने उस यज्ञको किया है और कौन होता व कौन आग्नीध्र तथा उस यज्ञमें कौन ब्रह्मा भलीभांति स्थित हुआ है ॥ ५ ॥ व उस यज्ञकर्म में कौन सामवेदी कौन आचार्य स्थितथा सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! यज्ञसे उपजेहुये समस्त वृत्तान्त को मैं तुमलोगोंसे कहूंगा व

हे द्विजश्रेष्ठो ! उस यज्ञमें टिकाहुआ जो आचार्य था व जो सामाजिक स्थित थे व उसमें जो ऋत्विज् थे व यज्ञ करते हुये अतुलित तेजवाले देवदेव उन महात्मा ब्रह्माने उन ब्राह्मणों के लिये जो दक्षिणा दीहै उसको मैं कहूंगा॥६।७।८॥यज्ञ करने की इच्छावाले चतुराननको जानकर सहायके लिये समस्त सुरसमूहों समेत इन्द्रजी समीप में आये॥ ९ ॥ और वैसेही समस्त देवगणों समेत भगवान् शिव जी आये व मनुष्य धर्म में भलीभांति टिकेहुये ऐश्वर्य्यवान् ब्रह्माजीने उन देवताओं को देखकर॥ १० ॥ हाथ जोड़े हुये खड़े व नम्रतासंयुत हो कहा कि हे सुरोत्तमो ! तुमलोगोंका आना बहुत अच्छा हुआ मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजानै ॥११॥

तान्तंयच्चतत्रस्थमाचार्य्यंद्विजपुङ्गवाः॥ येसदस्याःस्थितास्तत्र ऋत्विजश्चद्विजोत्तमाः॥ ७ ॥ दक्षिणायाप्रदत्ताच तेभ्यस्तेनमहात्मना॥ यजतादेवदेवेन ब्रह्मणामिततेजसा॥ ८ ॥ यज्ञकामंचतुर्वक्त्रं ज्ञात्वादेवःशतक्रतुः॥ सर्वैस्सुरगणैस्सार्द्धं सहायार्थमुपागतः॥ ९ ॥ तथाचभगवाञ्छम्भुःसर्वैर्देवगणैस्सह॥ तान्दृष्ट्वाभगवान्ब्रह्मा मर्त्यधर्म्मंसमाश्रितः॥ १० ॥ प्रोवाचविनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः॥ स्वागतंवःसुरश्रेष्ठाः प्रसादःक्रियतांमम॥ ११ ॥ निविंश्य तांयथान्यायंस्थानेषुसुचिरेषुच॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियद्यूयंस्वयमागताः॥ १२ ॥ मन्त्राहूतायतःकृच्छ्रात्सर्वसत्रेषुगच्छथ॥ देवाऊचुः॥येनयच्चात्रकर्तव्यं तच्छीघ्रंवदपद्मज॥ १३ ॥ यज्ञेतवमहाभाग तस्यतत्त्वंसमादिश॥ ब्रह्मोवाच॥ विश्वकर्म्मन्द्रुतंगच्छयज्ञमण्डपसिद्धये॥ १४ ॥ पत्नीशालास्सदश्चैव यज्ञवेदीस्तथैवच॥ कुण्डानिचैवसर्वाणि यथास्थानेषुकारय॥ १५ ॥ यज्ञपात्राणिसर्वाणि गृहाश्चचमसास्तथा॥ यूपश्चयत्प्रमाणेनकर्तव्यःसचषालकः॥ १६॥

व बहुत समयवाले स्थानों में न्यायपूर्वक बैठिये मैं धन्य व अनुगृहीत (दया कियागया) हूं क्योंकि तुमलोग आपही आयेहो॥ १२ ॥ जिस लिये कि मन्त्रों से बुलायेहुये तुमलोग समस्त यज्ञोंमें जातेहो देवता बोले कि हे कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ! जिससे यहां जो करने योग्यहो उसको शीघ्रही कहिये॥ १३ ॥ हे महाभाग! तुम्हारे यज्ञमें जिससे जो करने योग्यहो उस देवतासे तुम उस कार्य्यकी आज्ञा देवो ब्रह्माजी बोले कि हे विश्वकर्मन् ! यज्ञमण्डप की सिद्धिके लिये तुम शीघ्रही जावो॥ १४ ॥ व पत्नीशालाओं, यज्ञवेदियों व वैसेही समस्त कुण्डों को जैसे स्थान में चाहिये वैसेही कराइये॥ १५ ॥ व समस्त यज्ञपात्रों, गृहों व चमसों (यज्ञ-

पात्र भेदों) की व चषालक समेत जिस प्रमाण से स्तम्भ करना चाहिये उसको कराइये ॥ १६ ॥ वैसेही शयनके लिये जिस प्रमाण से गढ़ोंको करना चाहिये उन को व दश हज़ार आठसा ईंटोंको तुम्हें शीघ्र करना चाहिये व शीघ्रही चौतरों को व सुवर्णमय पुरुष को भी करनाही चाहिये ॥ १७ । १८ ॥ वैसाही होगा यह कहकर तदनन्तर विश्वकर्मा शीघ्रसे शीघ्र गये उसके उपरान्त ब्रह्माने देवताओं के आचार्य बृहस्पतिजी से कहा ॥ १९ ॥ कि हे बृहस्पते ! वेदों व वेदाङ्गों के पार जानेवाले सोलह संख्यातक यज्ञके योग्य समस्त ब्राह्मणों को तुम लावो ॥ २० ॥ व हे इन्द्रजी ! तुमको ब्राह्मणों की सेवा व शान्त द्विजों के हाथ पांव अंगका मर्दन व चरण

कर्तव्यानित्वयाशीघ्रं स्थ ॥ १७ ॥ शयनार्थंतथागर्ताः कर्तव्यायत्प्रमाणतः ॥ इष्टकानिसहस्राणिदशचाष्टशतानिच ॥ १७ ॥ कर्तव्यानित्वयाशीघ्रं स्थ ण्डिलानिचसत्वरम् ॥ तथाहिरण्मयश्चापि पुरुषःकार्य्यएवहि ॥ १८ ॥ तथेत्युक्त्वाततस्त्वष्टा शीघ्राच्छीघ्रतरंययौ ॥ ततस्तुपद्मजःप्राह देवाचार्य्यंबृहस्पतिम् ॥ १९ ॥ बृहस्पतेत्वमानीहि यज्ञार्हान्त्विजोखिलान् ॥ यावत्षोडशसंख्या च वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ २० ॥ त्वयाशक्रसदाकार्य्या शुश्रूषाचद्विजन्मनाम् ॥ हस्तपादाङ्गमर्दश्च शान्तानांपदमर्दन म् ॥ २१ ॥ धनाध्यक्षत्वयादेया दक्षिणाकालसम्भवा ॥ सुवस्त्राणिहिरण्यञ्च तथान्यद्वापिवाञ्छितम् ॥ २२ ॥ त्वया विधेसदाकार्य्यं कृत्याकृत्यपरीक्षणम् ॥ युक्तंकृतमथोनैवसावधानेनसर्वदा ॥ २३ ॥ लोकपालाश्चयेसर्वे रक्षन्त्वैन्द्र्यादि कादिशः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां प्रवेशंराक्षसोद्भवम् ॥ २४ ॥ योयंकामयतेकामं किंचिद्वस्त्रंधनंचवा ॥ विचार्य्यतस्यत द्देयं सर्वयज्ञाधिपेनतु ॥ २५ ॥ आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ भवन्तुपरिवेष्टारो भोक्तुकामजनस्यच॥२६॥

मर्दन करना चाहिये ॥ २१ ॥ व हे धनाधिप ! समय से उपजीहुई दक्षिणा व उत्तम वसन, सुवर्ण व और भी जो कुछ वाञ्छित हो वह तुमको देना चाहिये ॥ २२ ॥ हे विधे ! करने व न करने योग्यके परीक्षावाले कार्यको तुमको सदैव करना चाहिये कि सदैव सावधानता से योग्य कार्य्य किया गया या नहीं ॥ २३ ॥ व जो लोकपाल हैं वे सब राक्षसों से उपजेहुये प्रवेश भूत, प्रेत, पिशाचोंके प्रवेशको पूर्वादिक दिशाओं में रक्षाकरैं ॥ २४ ॥ व जो जिस कामना या किसी वसन अथवा धनादिकी इच्छाकरै उसको विचारकर समस्त यज्ञके स्वामीको देनाचाहिये ॥ २५ ॥ व आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव व पवनगण भोजन की इच्छावाले जनको परो-

सनेहारे होवैं ॥ २६ ॥ इसी अवसर में शीघ्रतासंयुत विश्वकर्मा प्राप्तहुये व ब्रह्मासे बोले कि यज्ञका मण्डप भलीभांति सिद्ध होगया ॥२७॥ हे चतुराननजी ! तुमने अन्य जो आज्ञा दिया व कहाथा वह सब सिद्धहै तदनन्तर बृहस्पति जी भलीभांति आकर ब्रह्मा से बोले ॥ २८ ॥ कि हे देव ! मैं यज्ञकर्मके लिये सोलह ब्राह्मणों को लाया उनको ऋत्विजों के कर्म में युक्त करिये ॥ २९ ॥ हे देवेश ! यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये आपही परीक्षा लेकर यज्ञमें युक्तकरो तदनन्तर ब्रह्माजीने बड़े उपाय से आपही परीक्षा लेकर उन ब्राह्मणों को ऋत्विक्कर्म में नियोग करके वैसेही उनका पूजन किया ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! समस्त ऋत्विजों के नामोंको क-

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो विश्वकर्म्मात्वरान्वितः ॥ अब्रवीत्पङ्कजभवंसंसिद्धोयज्ञमण्डपः ॥ २७ ॥ सर्वमन्यत्समादिष्टं यत्त्व योक्तंचतुर्मुख ॥ ततोबृहस्पतिःप्राह समभ्येत्यपितामहम् ॥ २८ ॥ समानीतामयादेव ब्राह्मणायज्ञकर्म्मणे ॥ विप्राः षोडशसंख्याश्च ऋत्विक्कर्म्मणियोजय ॥ २९ ॥ स्वयंपरीक्ष्यदेवेश यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ ततोब्रह्मास्वयंविप्रांस्तान्प रीक्ष्यप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ ऋत्विक्त्वेचनियोज्याशु तथाचक्रेतदर्हणम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ ऋत्विजाञ्चैवसर्वेषां सूतनामानि कीर्तय ॥ ३१ ॥ तेनयोविहितस्तत्र यदर्थेसूतनन्दन ॥ सूतउवाच ॥ यज्ञार्हास्तेततस्तेन वृताब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३२ ॥ मैत्रावरुणसंज्ञस्तु तथैवच्यवनोमुनिः ॥ अथर्वाकोमरीचिश्च मार्कवोगालवोमुनिः ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यश्चतथाध्वर्य्युः प्रस्थातायत्रसंस्थितः ॥ तत्ररैभ्योमुनिश्रेष्ठस्तत्रोन्नेतासनातनः ॥ ३४ ॥ ब्रह्माचनारदोगर्गो ब्राह्मणःसत्रवीक्षकः ॥ अ ग्नीध्रश्चभरद्वाजो होतापाराशरस्तथा ॥ ३५ ॥ बृहस्पतिस्तथाचार्य्य उद्गातागोभिलोमुनिः ॥ शाण्डिल्यःप्रतिहर्ता

हिये ॥ ३० । ३१ ॥ हे सूतपुत्र ! उन ब्रह्मासे उस यज्ञमें जिसके लिये जो किया गयाहो सूतजी बोले कि तदनन्तर उन ब्रह्माजीसे वे यज्ञके योग्य द्विजोत्तम वरण कियेगये ॥ ३२ ॥ मैत्रावरुणनामक व च्यवन मुनि और अथर्वाक, मरीचि, मार्कव व गालवमुनि थे ॥ ३३ ॥ जिस यज्ञमें प्रस्थानकर्ता अध्वर्यु पुलस्त्य जी भली- भांति स्थित थे उसमें मुनिश्रेष्ठ रैभ्य उस यज्ञमें सनातन उन्नेता थे ॥ ३४ ॥ व नारदजी ब्रह्माथे व गर्गब्राह्मण यज्ञके देखनेवाले थे भरद्वाज अग्नीध्र व पराशर होता

यह मेरी कन्या किसी समय जिस राजा को दीजावै ॥ २१ ॥ उसका पुरोहित जो ब्राह्मण होवै उसके लिये तुमको अपनी कन्या देना चाहिये कि जिससे हे द्विजो-त्तम श्रेष्ठ ! तुम्हारी अतिउत्तम प्रसन्नता से एक स्थान में टिकी हुई उन दोनों का आपस में अन्तर न होवै छन्दोग्य बोला कि जो नागर ब्राह्मण नागरको छोड़कर और के लिये कन्याको देता है ॥ २२ । २३ ॥ व जो किसीप्रकार विवाहके लिये कन्या को ग्रहण करता है वह पंक्तिका दूषक नागर यहां न होवै है ॥ २४ ॥ उसी कारण मैं किसी प्रकार नागर को छोड़कर अन्य के लिये अपनी कन्या न दूंगा मैंने यह निश्चय किया है ॥ २५ ॥ ब्राह्मणी बोली कि हे पिताजी ! ब्रह्मचारिणी व कन्या

पतेरियम् ॥ २१ ॥ पुरोधास्तस्ययोविप्रस्तस्मैदेयानिजासुता ॥ येननस्यान्मिथोभेदस्ताभ्यांद्विजवरोत्तम ॥ २२ ॥ एकस्थानेस्थिताभ्याञ्च प्रसादात्तवसत्तमात् ॥ छन्दोग्यउवाच ॥ नागरोनागरंमुक्त्वा योन्यस्मैसंप्रयच्छति ॥ २३ ॥ कन्यकांयःप्रगृह्णाति विवाहार्थंकथञ्चन ॥ सपङ्क्तिदूषकःपापान्नागरोनभवेदिह ॥ २४ ॥ तस्मान्नाहंप्रदास्यामि कथञ्चिन्निजकन्यकाम् ॥ अन्यस्मैनागरंमुक्त्वा निश्चयोयंमयाकृतः ॥ २५ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ नाहंतातप्रयास्यामि कुमारीब्रह्मचारिणी ॥ देयाप्रियासखीयत्र तावद्यास्यामितत्रच ॥ २६ ॥ यदितातबलान्मह्यं विवाहंत्वंकरिष्यसि ॥ विषंवाभक्षयिष्यामि साधयिष्यामिपावकम् ॥ २७ ॥ शस्त्रेणवाहनिष्यामिस्वदेहंतातनिश्चयम् ॥ एवंज्ञात्वातुतातत्वं यत्क्षमंतत्समाचर ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तंनिश्चयंज्ञात्वा सविप्रोदुःखसंयुतः ॥ स्त्रीहत्यापापभीतस्तुतांत्यक्त्वास्वगृहंययौ ॥ २९ ॥ सापिरेमेतयासार्द्धं रत्नवत्याद्विजोत्तमाः ॥ संहृष्टहृदयानित्यं संत्यक्तपितृसौहृदा ॥ ३० ॥ यौवनंसमनुप्राप्ता

मैं तबतक न जाऊंगी जहां प्यारी सखी देने योग्य होवै मैं वहीं जाऊंगी ॥ २६ ॥ हे पिताजी ! यदि हठ से तुम मेरा ब्याह करोगे तो विष खाऊंगी या अग्निको साधन करूंगी याने जलजाऊंगी ॥ २७ ॥ अथवा हे पिताजी ! अपने शरीर को शस्त्र से हनूंगी ऐसा निश्चय जानकर हे पिताजी ! जो योग्य हो उसको कीजिये ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि उस कन्या के उस निश्चय को जानकर स्त्रीहत्या के पातक से डरा हुआ व दुःखसंयुत वह ब्राह्मण उसको छोड़कर अपने घर चलागया ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! छोड़े हुये पिताके स्नेहवाली व अतिप्रसन्न चित्तवाली उसे कन्याने भी नित्यही उस रत्नवती के साथ क्रीड़ा किया ॥ ३० ॥ जोकि भूमिमें रूपसे

कर्म को जानकर उससमय दुःख संयुत व सखी के विरहसे डरी व दीन तथा आंसुओं से पूर्ण नयनोंवाली उसने आंसुओं के कारण गद्गदी वाणी के द्वारा रत्नवती से कहा कि हे सखि ! इससमय पिताजी मेरा ब्याह करैंगे ॥ ११ । १२ ॥ और ब्याह कीहुई मेरी कभी मित्रता न होगी वज्रपात के समान उसके वचन को सुनकर स्नेह से विकल इन्द्रियोंवाली उस सखी ने गले में लिपटाकर रोदन किया इसके अनन्तर उसके रोदनको सुनकर उसकी माता मृगावती ने ॥ १३ । १४ ॥ शीघ्रता समेत भलीभांति आकर इस वचन को कहा कि हे पुत्रि ! किसलिये रोती हो किसने तुम्हारा अप्रिय किया है ॥ १५ ॥ आजही उस दुष्टात्माका मैं जिससे दण्डकरूं

वर्तीतदा ॥ ११ अश्रुपूर्णेक्षणादीना बाष्पगद्गदयागिरा ॥ सखितातोविवाहंमेप्रकरिष्यतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ विवाहितायाश्चसख्यंनभविष्यतिकर्हिचित् ॥ वज्रपातोपमंवाक्यं तस्याःश्रुत्वासखीचसा ॥ १३ ॥ रुरोदकण्ठमालिङ्ग्य स्नेहव्याकुलितेन्द्रिया ॥ अथतद्रुदितंश्रुत्वा मातातस्यामृगावती ॥ १४ ॥ ससंभ्रमासमागत्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ किमर्थंरुद्यसेपुत्रिकेनतेविप्रियंकृतम् ॥ १५ ॥ करोमिनिग्रहंयेन तस्याद्यैवदुरात्मनः ॥ रत्नवत्युवाच ॥ गुह्यमेसुप्रियातीव ब्राह्मणीप्राणसम्मिता ॥ १६ ॥ विवाहंप्राप्यकल्याणी प्रयास्यतिपतेर्गृहम् ॥ अनयारहिताहञ्च नजीवामिकथञ्चन ॥ १७ ॥ एतस्मात्कारणाद्देवि प्ररोदिमिसुदुःखिता ॥ मृगावत्युवाच ॥ तेनपुत्रिप्रदास्यामि सखीमेनांतवप्रियाम् ॥ १८ ॥ तत्रापियेनसंयोगो भविष्यत्यनयासह ॥ एवमुक्त्वाततोराज्ञी छन्दोग्यंद्विजसत्तमम् ॥ १९ ॥ समानीयाब्रवीदेनं विनयावनतास्थिता ॥ इयंतवसुताब्रह्मन्सुतायाममसुप्रिया ॥ २० ॥ तस्मात्कुरुवचोमह्यं यच्चवक्ष्यामिसुव्रत ॥ यस्यमेदीयतेकन्या कदाचिन्न

रत्नवती बोली कि प्राणों के समान अत्यन्तही मेरी गुप्तप्यारी ब्राह्मणी है ॥ १६ ॥ वह कल्याणी विवाह को प्राप्त होकर पति के घर जायगी और इससे रहित मैं किसी प्रकार न जीऊंगी ॥ १७ ॥ इसी कारण हे देवि ! अतिदुःखित होतीहुई मैं बहुत रोतीहूं मृगावती बोली कि हे पुत्रि ! उसी कारण इस तुम्हारी प्यारी सखीको मैं दूंगी ॥ १८ ॥ कि जिससे वहां भी इस के साथ समागम होवै ऐसा कहकर तदनन्तर द्विजोत्तम छन्दोग्य को भलीभांति आनकर नम्रतासे नीचेनई खड़ी हुई रानीने इनसे कहा कि हे ब्रह्मन् ! यह तुम्हारी कन्या मेरी कुमारी को अतिप्यारी है ॥ १९ । २० ॥ इसलिये हे उत्तम नियमवाले द्विज ! जो मैं कहूं मेरे उस वचनको कीजिये कि

हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्र में जो अतिउत्तम दो तीर्थों को कहा है ॥ १ ॥ वे कैसे वहां हुये हैं और किसने उनको बनाया है हे महामते ! इस समस्त वृत्तान्त
को विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ हमलोगों ने पुरातन समय तुमसे पादुकाओं की उत्पत्ति सुनी है सूतजी बोले कि छन्दोग्य ऐसा प्रसिद्ध द्विजेन्द्र जाना भी गया है ॥
३ ॥ सामवेद के जाननेवाले व गृहस्थाश्रमवाले उस सन्तानरहित ब्राह्मण के पिछली अवस्था प्राप्तहोनेपर ॥ ४ ॥ मनुजों को मोहनेवाली व चौड़ेनेत्रोंवाली कन्या
पैदा हुई सूक्ष्मअङ्गोंवाली व मनुष्यों के नयनों को हर्ष देनेवाली वह कन्या वैसेही बढ़ती भई जैसे कि शुक्लपक्ष के भलीभांति प्राप्त होनेपर चन्द्रमा की रेखा बढ़ती

तत्रसञ्जातं केनतद्वाविनिर्मितम् ॥ एतच्चसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामते ॥ २ ॥ पादुकाभ्यांसमुत्पत्तिः श्रुतास्माभिः
पुरातव ॥ सूतउवाच ॥ विदितश्चापिविप्रेन्द्रश्छन्दोग्यइतिविश्रुतः ॥ ३ ॥ सामवेदविदस्तस्यगृहस्थाश्रमधर्म्मिणः ॥
पश्चिमेवयसिप्राप्ते अपत्यरहितस्यच ॥ ४ ॥ कन्याजाताविशालाक्षी सुन्दरीजनमोहनी ॥ ववृधेसाचतन्वङ्गी चन्द्रले
खायथातथा ॥ शुक्लपक्षेतुसंप्राप्ते जनलोचनतुष्टिदा ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनिसञ्जाता छन्दोग्यस्यमहात्मनः ॥ आनर्ताधि
पतेस्तस्मिंस्तादृग्रूपासुताभवत् ॥ ६ ॥ यस्याःकायप्रभावेणसर्वंतत्सूतिकागृहम् ॥ निशागमेपिसञ्जातंरत्नौघैरिवसुप्रभ
म् ॥ ७ ॥ ततस्तस्याःपितानाम चक्रेरत्नवतीतिच ॥ अथसख्यंसमापन्ना ब्राह्मण्यासहसाशुभा ॥ ८ ॥ नैरन्तरेणताभ्याञ्चवि
योगोनैवजायते ॥ एकासनंतथाशय्या एकान्नेनचभोजनम् ॥ ९ ॥ अथाष्टमेचसञ्जाते पितातस्याद्विजोत्तमाः ॥ वि
वाहंचिन्तयामास प्रदानायवरंतथा ॥ १० ॥ साज्ञात्वाचेष्टितंतस्य पितुर्दुःखसमन्विता ॥ सख्यावियोगभीताच प्रोवाचरत्न

है ॥ ५ ॥ जिसदिन छन्दोग्य महात्मा के कन्या पैदा हुई उसी दिन वैसे ही रूपवाली आनर्तदेशनायक के कन्या हुई ॥ ६ ॥ जिसके शरीर के प्रभाव से वह सब
सौवरिका घर रात्रि के आगमन में भी रत्नसमूहों की नाईं उत्तम प्रकाशवान् सा होगया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिताने उसका रत्नवती ऐसा नाम किया इस के अनन्तर
वह उत्तम कन्या ब्राह्मणी के साथ मित्रता को प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ उन दोनों का निरन्तर से वियोग न होता था वैसेही एकही आसन पै शय्या व एकही अन्न से भो-
जन होता था ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस के अनन्तर आठवां वर्ष प्राप्त होने पर उस के पिताने वरको देने के लिये विवाह चिन्तन किया ॥ १० ॥ उस पिता के

भलीभांति स्थितहुआ ॥ ५३॥ व हे ब्राह्मणो ! इस विषयमें प्रमाण संस्थित है कि जो वर्तमान व भविष्यत् होता है उसको मैं उनकी प्रसन्नता से निस्सन्देह जानता हूं ॥ ५४ ॥ एक वेदपाठको छोड़कर क्योंकि मुझ में सूतत्व है याने क्षत्रिय पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री में पैदा हुआ हूं परन्तु उस वेद के भी सब अर्थ को जानताहूं जैसे कि भर्तृयज्ञ मुनि जानते हैं ॥ ५५ ॥ इसलिये यदि मुक्ति में प्रयोजन है तो तुमलोग वहीं जावो और फिर आवृत्ति करानेवाली याने संसार को लौटानेवाली इन स्वर्ग-दायक यज्ञों से क्या है अर्थात् कुछ नहीं ॥ ५६ ॥ तुमलोग जाकर मनुष्योंको सिद्धि देनेवाली उन पादुकाओं का आराधनकरो जिस से वर्ष के अन्त में ब्रह्म

जाः ॥ तत्प्रसादादसंदिग्धं प्रमाणंचात्रसंस्थितम् ॥ ५४ ॥ मुक्त्वैकंवेदपठनंसूतत्वश्चयतोमयि ॥ तस्यापिवेद्मिसर्वार्थं भर्तृयज्ञोयथामुनिः ॥ ५५ ॥ तस्मात्तत्रैवगच्छध्वं यदिमुक्तौप्रयोजनम् ॥ किमेतैःस्वर्गदैस्सत्रैः पुनरावृत्तिकारकैः ॥ ५६ ॥ आराधयध्वंतेगत्वा पादुकेसिद्धिदेनृणाम् ॥ येनसंवत्सरस्यान्ते ब्रह्मज्ञानम्प्रजायते ॥ ५७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुसाधुमहाभाग उपदेशःकृतोमहान् ॥ येनसन्तारितास्सर्वे वयंसंसारसागरात् ॥ ५८ ॥ यास्यामोपिवयंतत्र सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ समाप्तेस्मिन्नसन्देहः सर्वेचकृतनिश्चयाः ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मज्ञानसूचनंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ शूद्रीचब्राह्मणीचापि यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ १ ॥ तत्कथं

ज्ञान उत्पन्न होवै ॥ ५७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! बहुत अच्छा २ आपने बड़ा भारी उपदेश किया जिससे हमलोग संसाररूपी समुद्र से भलीभांति उतार दियेगये ॥ ५८ ॥ और बारह वर्षवाली इस यज्ञके समाप्त होनेपर निश्चय किये हुये हमलोग सब भी वहां जावैंगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मज्ञानसूचनंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । द्विज अरु नृपकी सुतासन भयो अनूपम सङ्ग ॥ इकसौ पचासिवें महँ वर्णत सोइ प्रसङ्ग ॥ ऋषिलोग बोले कि तुमने शूद्री व ब्राह्मणीको भी कहा व

धीरे से बहुत जन्मों के द्वारा मुक्तिको पाता है एक जन्म में उस ज्ञानका सूक्ष्मलव प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ और दूसरे जन्म में उसका दुगुना व तीसरे में तिगुना ऐसे ही सदैव जन्म जन्म में एक गुना अधिक होवै है ॥ ४५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन! मनुष्यों को ब्रह्मज्ञान की कैसे प्राप्ति होती है यदि तुम जानते हो तो इस समस्त वृत्तान्त को कहिये ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि मनुष्यों से उपजे हुये ज्ञान के कहने में मेरी क्या शक्ति है परन्तु हाटकेश्वर जी से उपजे हुये क्षेत्र में उत्तम दो तीर्थ हैं ॥ ४७ ॥ जो कि कन्याओं से किये हुये व मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानदायक हैं वे शूद्रा व ब्राह्मणी की कन्याओं से बनाये गयेहैं ॥ ४८ ॥ अष्टमी व चौदसि में जो

नस्यतस्यच ॥ ४४ ॥ द्वितीयेद्विगुणस्तस्य तृतीयेत्रिगुणोभवेत् ॥ एकोत्तरंभवेदेवं सदाजन्मनिजन्मनि ॥ ४५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्मज्ञानस्यसंप्राप्तिर्मर्त्यानांजायतेकथम् ॥ एतत्तुसर्वमाचक्ष्व यदित्वंवेत्सिसूतज ॥ ४६ ॥ सूतउवाच ॥ काशक्तिर्ममवक्तव्ये ज्ञानेमर्त्यसमुद्भवे ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे अस्तितीर्थद्वयंशुभम् ॥ ४७ ॥ कुमारिकाभ्यांविहितं ब्रह्मज्ञानप्रदंनृणाम् ॥ शूद्रीचब्राह्मणीचैव कुमारीभ्यांविनिर्म्मितम् ॥ ४८ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां यस्ताभ्यांस्नानमाचरेत् ॥ पश्चात्पूजयतेभक्त्या प्रसिद्धेपादुकेशुभे ॥४९॥ सुपुण्येगर्तमध्यस्थे कुमार्य्यापरिपूजिते ॥ तस्यसंवत्सरस्यान्ते ब्रह्मज्ञानंप्रजायते ॥ ५० ॥ शक्त्याविनिहितेतेचस्वदर्शनविवृद्धये ॥ लोकानांमुक्तिकामानां ब्रह्मज्ञानसुखावहे ॥५१॥ममतातोगतस्तत्र ततश्चज्ञानवान्स्थितः॥ तस्यादेशादहंतत्रगतःसंवत्सरंस्थितः ॥ ५२ ॥ पादुकेपूजयामास ततोज्ञानञ्चसंस्थितम् ॥ यत्किञ्चिद्वाङ्मयंलोके पुराणानांव्यवस्थितम् ॥ ५३ ॥ वर्तमानम्भविष्यञ्च तदहंवेद्मिभोद्विजाः

पुरुष उन दोनों तीर्थों में स्नान करता है पश्चात् भक्तिसे प्रसिद्ध व उत्तम पादुकाओं को पूजता है ॥ ४९ ॥ जो पादुकायें कि गढ़ा के बीच में स्थित व कन्या से पूजी हुई व अतिपुण्यदायक हैं उस पुरुष को वर्षके अन्त में ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ५० ॥ वे पादुकायें अपने अपने दर्शन की विवृद्धिके लिये शक्ति से स्थापित कीगई हैं जोकि मुक्ति कामनावाले पुरुषों को ब्रह्मज्ञानवाले सुखके देनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ मेरे पिताजी वहां गये थे उसी कारण ज्ञानवान् होकर स्थित हैं व उन की आज्ञा से मैं वहांगया व वर्षभर टिका ॥ ५२ ॥ व पादुकाओं का पूजन करता भया उसी कारण संसार में पुराणों के बीच जो कुछ वचनमय स्थित है वह ज्ञान

सूतजी बोले कि संख्यासे रहित समय बिन जन्म व बिन नाशवालाहै और असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महादेव अपने प्रमाणसे अपने सौवर्षके पूर्ण होनेपर नाश होगयेहैं जैसे कि बालूकी रेणुका नाश होजातीहैं और उन मनुष्योंके यदि जो ब्रह्मज्ञानसे उपजी हुई श्रद्धा है वह होवै तो निस्सन्देह मुक्ति होजावै जैसे मनुष्योंके मध्यमें ये डांस, मशा व कीड़े ॥ ३५।३६। ३७ ॥ पैदा होते हैं व मरते हैं परन्तु भूतल में गिने नहीं जाते हैं वैसेही ब्रह्मा भी विष्णु के कीटस्थान में विशेषकर स्थित हैं ॥ ३८ ॥ जैसे विष्णु के कीटस्थान में ब्रह्मा जी स्थित हैं वैसे ही हे द्विजोत्तमो ! शिवशक्तियों से वे विष्णुजी जानने योग्य हैं ॥ ३९ ॥ व सदाशिव जी के वे दोनों याने ब्रह्मा

सूतउवाच ॥ अनादिनिधनःकालः सङ्ख्ययापरिवर्जितः ॥ असङ्ख्यातागतानाशं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३५ ॥ निजेवर्षशतेपूर्णे बालुकारेणवोयथा ॥ निजमानेनयाश्रद्धा ब्रह्मज्ञानसमुद्भवा ॥ ३६ ॥ तेषांचेन्मानुषाणाञ्च तन्मुक्तिःस्यादसंशयम् ॥ यथैतेदंशमशकामानुषाणाञ्चकीटकाः ॥ ३७ ॥ जायन्तेचम्रियन्तेच गण्यन्तेनैवभूतले ॥ तथाब्रह्मापिविष्णोश्च कीटस्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ३८ ॥ पितामहोयथाविष्णोःकीटस्थानेऽव्यवस्थितः ॥ तथासशिवशक्तिभ्यः परिज्ञेयोद्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ सदाशिवस्यविज्ञेयौ तथातौक्रमिरूपकौ ॥ एवंचविविधैर्यज्ञैः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ ४० ॥ ब्रह्मज्ञानात्परंयान्ति सदाशिवसमुद्भवम् ॥ अग्निष्टोमादिकैर्यज्ञैर्जातैस्सम्पूर्णदक्षिणैः ॥ ४१ ॥ तदर्थंतेदिवंयान्ति भुक्त्वा भोगान्पृथग्विधान् ॥ तत्क्षयेपुनरायान्ति सुकृतस्यमहीतले ॥ ४२ ॥ ब्रह्मज्ञानात्परंप्राप्य पुनर्जन्मनविद्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्राभ्यासंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥ जन्मभिर्बहुभिःपश्चाच्छनैर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ एकजन्मनिचप्राप्तो लेशोज्ञा

विष्णु कीटरूप जानने योग्यहैं इस प्रकार श्रद्धा से पवित्र चित्त करके अनेकप्रकारकी यज्ञों के द्वारा ॥ ४० ॥ ब्रह्मज्ञान से सदाशिवजी से उपजे हुये परमस्थान को प्राप्तहोते हैं व सम्पूर्ण दक्षिणाओंवाली अग्निष्टोमादिक यज्ञों करके ॥ ४१ ॥ उसी के लिये स्वर्ग को जाते हैं व भिन्नभांति के भोगों को भोगकर उस कारण पुण्य के नाश में फिर भूतल में आते हैं ॥ ४२ ॥ व ब्रह्मज्ञान से परमपद को पाकर फिर जन्म नहीं होता है इसलिये सब उपाय से उस में अभ्यास करै ॥ ४३ ॥ पश्चात्

विष्णुको पैदा हुए पचपन वर्ष बीते हैं ॥ २४ ॥ व सोमवार समेत आधा महीना व पांच तिथियां व्यतीत हुई हैं व विष्णुजी के वर्ष से महादेव का दिन होवै है ॥ २५ ॥ वैसेही रूप से शिवजी सौ वर्ष तक स्थितरहते हैं जब तक सदाशिव से उपजाहुआ मुख ऊपरको श्वास लेता है व पश्चात् जब तक शक्तिको भलीभांति प्राप्त होता है तब तक निश्वसित होता है और सबही शरीरधारियों व ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गन्धर्व, नाग व राक्षसों के इक्कीसहजार सात सौ निश्वास व उच्छ्वासों के प्रमाण में दिन रात कहागया है हे द्विजोत्तमो ! छः उच्छ्वास निश्वासों से एककला वर्तमान होती है ॥ २६ । २७ । २८ । २९ ॥ व साठिकलाओं की नाड़ी कहीगई

अमासार्द्धंसोमवारेणसङ्गतम् ॥ वैष्णवेनतुवर्षेण दिनंमाहेश्वरंभवेत् ॥ २५ ॥ शिवोवर्षशतंयावत्तेनरूपेणचस्थितः ॥ यावदुच्छ्वासितंवक्त्रंसदाशिवसमुद्भवम् ॥ २६ ॥ पश्चाच्छक्तिसमभ्येति यावन्निःश्वसितंभवेत् ॥ निःश्वासोच्छ्वासितानाञ्च सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्चगन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ एकविंशत्सहस्राणि शतैःषड्भिःशतानि च ॥ २८ ॥ अहोरात्रेणप्रोक्तानि प्रमाणेद्विजसत्तमाः ॥ षड्भिरुच्छ्वासनिःश्वासैःकलामेकाप्रवर्तिता ॥ २९ ॥ नाडीषाष्टिकलाप्रोक्ता तासांषष्ट्यादिनंनिशा ॥ निःश्वासोच्छ्वासितानाञ्च परिसङ्ख्यानविद्यते ॥ ३० ॥ सदाशिवसमुत्थानामेतस्मात्सोऽक्षयःस्मृतः ॥ अन्येपियेप्रगच्छन्ति ब्रह्मज्ञानसमन्विताः ॥ ३१ ॥ अक्षयास्तेपिजायन्ते सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ यद्येवंसूतपुत्रात्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३२ ॥ आत्मवर्षशतेपूर्णे यान्तिनाशमसंशयम् ॥ तत्कथंमानुषाणाञ्च मर्त्यलोकेत्रजीविनाम् ॥ ३३ ॥ कथयन्तिचयेमुक्तिंमानवाअपिसूतज ॥ नूनंतेषांमृषावादोमोक्षमार्गसमुद्भवः ॥ ३४ ॥

है उन साठि नाड़ियों का दिनरात कहा गया है और सदाशिवजीसेउठे हुये निश्वास, उच्छ्वासों की गिनती नहीं विद्यमान है इसी कारण वे अविनाशी कहे गये हैं और भी जे ब्रह्मज्ञान से संयुत पुरुष श्वासोंकी असंख्यताको प्राप्त होवैंगे ॥ ३० । ३१ ॥ वे भी अविनाशी होवैंगे यह मैंने सत्य कहा है ऋषिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! यदि इस विषय में ऐसा है कि ब्रह्मा, विष्णु, व महादेव जी ॥ ३२ ॥ अपनी सौ वर्षोंके पूर्ण होनेपर निस्सन्देह नाश होजाते हैं तो किसप्रकार इस मृत्युलोक में जीते हुये मनुष्यों का जे मनुष्य भी मोक्ष कहते हैं हे सूतनन्दन ! मुक्तिमार्ग से उपजा हुआ उनका विवाद निश्चय कर झूंठा है ॥ ३३ । ३४ ॥

कहा है ॥ १३ ॥ व तीस दिनरातोंका महीना, दो महीनों की ऋतु संज्ञा, तीन ऋतुओंका अयन व वर्ष में दो अयन होते हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस वर्ष में देवों वाली दिनरात होती है यानें उसवर्ष मे उत्तर अयन दिन है वैसेही अपर अर्थात् दक्षिणायन रात है ॥ १५ ॥ मनुष्यों के सत्रह लाख व अन्य अट्ठाईस हजार वर्षों से ॥ १६ ॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! वह पहले वाला कलियुग होगा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बारह लाख छानवे हजार वर्षों से दूसरा त्रेतायुग भली भांति कहागया है व तीसरा द्वापर युग आठ लाख चौंसठिहजार वर्षों की गिनती से यथा योग्य कहा गया है और अन्तवाले कलियुग का प्रमाण चारहीलाख बत्तीस

यनञ्च अयनेद्वेतुवत्सरे ॥ १४ ॥ दैविकन्तुभवेत्तत्र अहोरात्रंद्विजोत्तमाः ॥ उत्तरंचायनंतत्र दिनंरात्रिस्तथापरम् ॥ १५ ॥
लक्षैस्सप्तदशाख्यैस्तु मानुषाणाञ्चवत्सरैः ॥ अष्टाविंशतिभिश्चैव साहस्रैस्तुतथापरैः ॥ १६ ॥ आद्यंकृतयुगंचैव तद्भवि
ष्यतिसद्द्विजाः ॥ ततोद्वादशभिर्लक्षैःषण्णवत्यासहस्रकैः ॥ १७ ॥ त्रेतायुगंसमादिष्टं द्वितीयंद्विजसत्तमाः ॥ द्वापरंचाष्ट
भिर्लक्षैस्तृतीयंपरिकीर्तितम् ॥ १८ ॥ चतुःषष्टिसहस्रैस्तु यथावत्परिसङ्ख्यया ॥ कलेःप्रमाणंनिर्दिष्टं लक्षाश्चत्वारएव
च ॥ १९ ॥ द्वात्रिंशच्चसहस्राणियुगस्यैवान्तिमस्यतु ॥ चतुर्युगसहस्रेण दिनंपैतामहंभवेत् ॥ २० ॥ तेषांत्रिंशद्दिनैर्मासो
रविभिर्वत्सरोभवेत ॥ ब्राह्मस्तेषांशतंयावत्सञ्जीवतिपितामहः ॥ २१ ॥ सांप्रतंचाष्टवर्षीयः षण्मासश्चैवसंस्थितः ॥
प्रतिपद्दिवसश्चास्यप्रथमस्यतथागतम् ॥ २२ ॥ यामद्वयंशुक्रवारे वर्तमानेमहात्मनः ॥ ब्रह्मणोवर्षमात्रेण दिनंवैष्णव
मुच्यते ॥ २३ ॥ सोपिवर्षशतंयावदात्ममानेनजीवति ॥ पञ्चपञ्चाशदादिष्टास्तस्यजातस्यवत्सराः ॥ २४ ॥ तिथयःप

हजार वर्ष बतलाया गया है और हजार चतुर्युग से ब्रह्मावाला दिन होता है ॥ १७ । १८ । १९ । २० ॥ उन तीस दिनों से महीना व बारह महीनों से ब्रह्माका वर्ष होवै है उन वर्षों की सौवर्ष तक ब्रह्माजीते हैं ॥ २१ ॥ इस समय आठवर्षोंवाला छठा महीना भलीभांति स्थित है और इनके पहले परेवा दिनके वर्तमान शुक्र वार में दोपहर बीते हैं व महात्मा ब्रह्मा के वर्ष भरके प्रमाण से विष्णुका दिन कहाजाता है ॥ २२ । २३ ॥ वे विष्णुभी अपने ही प्रमाण से सौ वर्ष तक जीते हैं उन

जो मनुष्य ब्राह्मण को पूजकर पश्चात् इन सुरेश्वरी को पूजैंगे वे उत्तम गति को प्राप्त होवैंगे ॥ ४ ॥ व यहां सावधान होती हुई जो कन्या पति के संयोग को भलीभांति पाकर तदनन्तर गायत्रीजी के चरण को प्रणाम करैगी ॥ ५ ॥ वह प्रजापति को पति पाकर निस्सन्देह सब कामनाओं व सुखों से संयुत व धन धान्य से संयुक्त होगी ॥ ६ ॥ व जो स्त्री दुर्भाग्यवती व वन्ध्या होगी वह अतिउत्तम होवैगी ऋषिलोग बोले कि आपने जो यह कहाहै कि एकसौ पांच ब्रह्मा के बीतने पर प्रसन्न होते हुए महादेव जीने ब्राह्मणों के लिये इस अनुत्तम पदार्थको दियाहै यह कैसे हुआ अथवा क्या अन्य महादेवजी हैं ॥ ७ । ८ ॥ वह हमलोगों के

स्तेतुयान्तिपरांगतिम् ॥ ४ ॥ याकन्यापतिसंयोगं संप्राप्यात्रसमाहिता ॥ ततःपादप्रणामञ्च गायत्र्याश्चकरिष्यति ॥ ५ ॥ पतिंप्रजापतिंप्राप्य साभविष्यत्यसंशयम् ॥ सर्वकामसुखोपेता धनधान्यसमन्विता ॥ ६ ॥ यानारीदुर्भगावन्ध्या भविष्यतिसुशोभना ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं गतेपञ्चोत्तरेशतम् ॥ ७ ॥ पद्मजानांहरःप्रादादेतत्कथमनुत्तमम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ससन्तुष्टः किंचान्योस्तिमहेश्वरः ॥ ८ ॥ तन्नःसंशयोभूयान् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ आयुष्यंशङ्करस्यापि यत्प्रमाणंतथाहरेः ॥ ९ ॥ ब्रह्मणोपिसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ अहंचकीर्तयिष्यामि विस्तरेणद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ त्रयाणामपिचायुष्यं यत्प्रमाणंव्यवस्थितम् ॥ निमेषस्यचतुर्भागं त्रुटिःस्यात्तद्द्वयंलवः ॥ ११ ॥ लवद्वयंयवःप्रोक्तः काष्ठातुदशपञ्चभिः ॥ त्रिंशत्काष्ठाःकलामाहुःक्षणस्त्रिंशत्कलोमतः ॥ १२ ॥ मुहूर्तमानंमौहूर्ता वदन्तिद्वादशक्षणम् ॥ त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रंमनीषिभिः ॥ १३ ॥ मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्विमासौऋतुसञ्ज्ञितः ॥ ऋतुत्रयञ्चा

बड़ा सन्देह है तुम यथायोग्य कहने के योग्यहो व महादेव का भी व विष्णुका जिसप्रमाण वाला आयुर्बल होवै उसको ॥ ९ ॥ व ब्रह्मा के भी आयुर्बल को भलीभांति कहिये क्योंकि हम लोगों को परम आश्चर्यहै सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तीनों का भी जिस प्रमाण का आयुर्बल व्यवस्थित है उसको मैं विस्तार से कहूंगा कि निमेष का चौथाई अंश त्रुटि होती है और वे दो त्रुटि लव हैं ॥ १० । ११ ॥ व दो लव का यव कहा गया है और पन्द्रह यवों से काष्ठाकही होती है व तीस काष्ठा कला कहेगये हैं व तीस कलाका क्षण माना गया है ॥ १२ ॥ व ज्योतिषी लोग बारह क्षण को मुहूर्त का प्रमाण कहते हैं और विद्वानोंने तीस मुहूर्त का दिनरात

मुक्तकरैंगे तदनन्तर युद्ध में पैठे हुए तुम हारको न पावोगे ॥ १७ ॥ हे अग्निदेव जी ! क्रोधितहोती हुई उसने जो तुमको सर्वभक्षी कहा है इसलिये बहुधा तुम्हा
री ज्वालाओं से अगाड़ी छुई हुई अशुचिभी वस्तु ॥ १८ ॥ शीघ्रही पवित्रता को प्राप्त होगी तदनन्तर पूजन को पावोगे व स्वाहा स्त्री के द्वारा देवों को भलीभांति
तृप्त करावोगे ॥ १९ ॥ व मेरे वचनसे स्वधास्त्री के द्वारा निस्सन्देह समस्त पितरों को तृप्त करावोगे हे रुद्रजी ! जो उन सावित्री ने प्रिया (पत्नी) के साथ वियोग
को कहा है ॥ २० ॥ इसलिये गौरी ऐसे नामसे प्रसिद्ध हिमालय की उत्तम कन्या उससे अत्यन्त श्रेष्ठ तुम्हारी स्त्री होगी ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे

त्वंवह्नेसर्वभक्षश्च यत्प्रोक्तोरुष्टयातया ॥ तदमेध्यमपिप्रायःस्पृष्टंतेर्चिभिरग्रतः ॥ १८ ॥ मेध्यतांयास्यतिक्षिप्रं
ततःपूजामवाप्स्यसि ॥ स्वाहयाभार्य्ययाचैव देवान्सन्तर्पयिष्यसि ॥ १९ ॥ स्वधयापिपितॄन्सर्वान्ममवाक्यादसंश
यम् ॥ यद्रुद्रप्रिययासार्द्धं वियोगःकथितस्तया ॥ २० ॥ तस्याःश्रेष्ठतराचान्या तवभार्य्याभविष्यति ॥ गौरीनामेतिवि
ख्याता हिमाचलसुताशुभा ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगाय
त्रीवरप्रदानंनामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच॥ एवंतेषांवरान्दत्त्वा सर्वेषांशापगामिनाम् ॥ मौनव्रतधराभूत्वा निविष्टाथधरातले ॥ १ ॥ ततोदेवगणा
स्सर्वे तेचसर्वेमहर्षयः ॥ साधुसाध्वितितांप्रोक्त्वा ततःप्रोचुरिदंवचः ॥ २ ॥ एतांदेवप्रसादेन ब्राह्मणानांविशेषतः ॥
पूजयिष्यन्तिमर्त्यैत्र सर्वेलोकास्समाहिताः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणंपूजयित्वातु पश्चादेनांसुरेश्वरीम् ॥ पूजयिष्यन्तियेमर्त्या

नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये गायत्रीवरप्रदानन्नामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ❀ ॥ ❀

दो॰ । कालादिक परमान अरु ब्रह्मज्ञान को यत्न । इकसौ चौरासिवेंमहँ कह्योसूत मुनिरत्न ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उन समस्त शापगामियों को वरदेकर
इसके अनन्तर मौनव्रत धारिणी होकर गायत्री भूतल पै बैठगई ॥ १ ॥ तदनन्तर वे समस्त सुर समूह और वे सम्पूर्ण महर्षि बहुत अच्छा २ ऐसा कहकर तदनन्तर
उन गायत्रीसे यह वचन बोले ॥२॥ कि विशेषकर ब्राह्मणों व देवताओंकी प्रसन्नतासे इस मृत्युलोकमें सावधान होते हुए सब मनुष्य इन गायत्रीजीको पूजैंगे ॥ ३ ॥

सबही जातियों व ब्राह्मणों के न पूजने योग्य कहा है ॥ ७ ॥ परन्तु समस्त भूतल में सब ब्रह्मस्थानों में ब्रह्माके विना कुछ कार्य सिद्धिको न प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ व कृष्णके पूजने में जो पुण्यहै व शिवजी के लिङ्ग पूजनेमें जो पुण्य होती है उसके कोटि गुना फल सदैव ब्रह्मा के दर्शनसे होगा व सब त्योहारों में निस्सन्देह विशेषतासे होवैंगे व हे विष्णुजी ! तुमसे उसने कहा है कि जब मनुष्य का जन्म पावोगे ॥ ९ । १० ॥ उसमें भी तुमको पराई सेवकाई होगी इसलिये वहां दो रूपकरके जन्म पावोगे ॥ ११ ॥ व उसने जो मेरे इस गोपसंज्ञकवंश को कहा है उसमें तुम पवित्र करने के लिये बहुतसमय तक वृद्धिको पावोगे ॥ १२ ॥ एक कृष्णनामक

ववर्णानांविप्रादीनांसुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ ब्रह्मस्थानेषुसर्वेषुसमग्रेधरणीतले ॥ नब्रह्मणाविनाकिञ्चित्कृत्यंसिद्धिमुपेष्यति ॥ ८ ॥ कृष्णार्चनेचयत्पुण्यं यत्पुण्यंलिङ्गपूजने ॥ तत्फलंकोटिगुणितं सदास्याद्ब्रह्मदर्शनात् ॥ ९ ॥ भविष्यतिनसन्देहो विशेषात्सर्वपर्वसु ॥ त्वञ्चविष्णोतयाप्रोक्तो मर्त्यजन्मयदाप्स्यसि ॥ १० ॥ तत्रापिपरभृत्यत्वं परेषांतेभविष्यति ॥ तत्कृत्वारूपद्वितयंतत्रजन्मत्वमाप्स्यसि ॥ ११ ॥ यत्तयाकथितोवंशो ममायंगोपसंज्ञितः ॥ तत्रत्वंपावनार्थाय चिरंवृद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२ ॥ एकःकृष्णाभिधानस्तु द्वितीयोर्जुनसंज्ञितः ॥ तदात्मनोर्जुनाख्यस्य सारथ्यंत्वंकरिष्यसि ॥ १३ ॥ मयाकृतेपिशप्तास्तेगोपायास्यन्तिपूज्यताम् ॥ सर्वेषामेवलोकानां देवानाञ्चविशेषतः ॥ १४ ॥ यत्रयत्रवसिष्यन्तितद्वंशप्रभवानराः ॥ तत्रतत्राश्रयोवासोवनेपिप्रभविष्यति ॥ १५ ॥ भोभोःशक्रभवानुक्तस्तयाकोपप्रमुक्तया ॥ पराजयंरिपोःप्राप्य कारागारंपतिष्यति ॥ १६ ॥ तन्मुक्तिंवैस्वयंब्रह्मामद्वाक्येनकरिष्यति ॥ ततःप्रविष्टासंग्रामे नपराजयमाप्स्यसि ॥ १७ ॥

व दूसरे अर्जुन नामक होंगे उन दोनों आत्मा (शरीरों) के मध्य में तुम अर्जुन नामक के सारथी का भावकरोगे ॥ १३ ॥ व मेरे लिये शाप दिये हुए वे गोप भी सबही मनुष्यों व विशेषकर देवताओं की पूज्यता को प्राप्त होवैंगे ॥ १४ ॥ व उन के वंश में उपजे हुए मनुष्य जहां २ बसैंगे वहां २ वन में भी आश्रय व निवास होगा ॥ १५ ॥ हे इन्द्र जी ! कोप से संयुत उसने आपसे कहा है कि शत्रु से पराजय पाकर कारागृह में पड़ोगे ॥ १६ ॥ मेरे बचन से आपही ब्रह्माजी उसे

है हे द्विजोत्तमो ! मुझ से जो पूंछागया इस समस्त सावित्रीजी के माहात्म्य को तुम लोगोंसे कहा फिर तुम सबोंसे क्या कहूं ॥१०५।१०६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सावित्रीमाहात्म्यन्नामद्व्यशीतयधिकशततमोध्यायः ॥ १८२ ॥ ❁ ॥

दो०। दियो देव द्विज आदिकन गायत्री वरदान। इकसौ और तिरासि महँ सोई करत बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! जब क्रोध समेत सावित्री जी इसप्रकार चलीगई तब वहां गायत्री ने क्या किया व ब्रह्मादिक देवताओंने भी क्या किया है ॥ १ ॥ इस समस्त वृत्तान्तको हम लोगों से कहिये क्योंकि हम सबों

द्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोहंद्विजोत्तमाः ॥५॥ सावित्र्याःकृत्स्नमाहात्म्यं किंभूयःप्रवदामिवः ॥१०६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसावित्रीमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

ऋषयऊचुः ॥ एवंगतायांसावित्र्यांसकोपायांचसूतज ॥ किंकृतंतत्रगायत्र्या ब्रह्माद्यैश्चापिकिंसुरैः ॥१॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥कथंशापान्वितादेवास्संस्थितायज्ञमण्डपे ॥२॥ सूतउवाच ॥ गतायामथसावित्र्यांशापंदत्त्वाद्विजोत्तमाः ॥ गायत्रीसहसोत्थाय वाक्यमेतदुदैरयत् ॥ ३ ॥ पूज्याचसर्वदेवानां ज्येष्ठाश्रेष्ठाचसद्गुणैः ॥ परंस्त्रीणांस्वभावोयं सर्वासांसुरसत्तमाः ॥ ४ ॥ अपिसह्योवज्रपातः सपत्न्यानपुनःकथम् ॥ ५ ॥ मत्कृतेयेचशपितास्सावित्र्याब्राह्मणास्सुराः ॥ तेषामहंकरिष्यामि शक्त्यासूद्धरणंस्वयम् ॥ ६॥ अपूज्योयंविधिःप्रोक्तस्तयामन्त्रपुरस्सरः ॥ सर्वेषामे

को बड़ा आश्चर्य है कि शापसे संयुत देवता यज्ञ मण्डप में कैसे भलीभांति स्थितहुए हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर जब शापदेकर सावित्री जी चलीगई तब अचानक गायत्री उठकर यह वचन बोलीं ॥ ३ ॥ कि हे सुरोत्तमो ! सावित्री सब देवों के पूजनीय व जेठी व उत्तम गुणों से श्रेष्ठ थीं परन्तु समस्त स्त्रियों का यह स्वभाव होता है ॥ ४ ॥ वज्रपात भी सहने के योग्य है फिर सौति के वचन को क्या कहना है ॥ ५ ॥ मेरे लिये सावित्री ने जिन ब्राह्मणों व देवताओं को शाप दिया है मैं अपनी शक्तिसे आपही उनका उत्तम उद्धार करूंगी ॥ ६ ॥ हे देवोत्तमो ! उन सावित्री ने मन्त्रपूर्वक इन ब्रह्माको

वर्षतक स्वर्ग में बसती है व जो स्त्री सावित्री का उद्देशकर फलदान करती है ॥ ९५ ॥ वह फल संख्या के प्रमाण भर युगोंतक स्वर्ग में आनन्द करती है व उन
सावित्री की दाहिनी मूर्ति के समीप पतिसमेत जो स्त्री विशेषकर स्त्रियों के लिये मिष्टान्न देती है वह हे द्विजोत्तमो ! अन्नसंख्या की प्रमाण भर युगोंतक स्वर्ग में ह-
र्षित होती है ॥ ९६ । ९७ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहां एक रससे व एकही अन्नसे भलीभांति श्राद्ध करता है ॥ ९८ ॥ उसको भी वही पुण्य होती
है जो कि गयाजीके श्राद्धसे होवै है हे द्विजोत्तमो ! सन्ध्या समय के भली भांति प्राप्त होनेपर उन सावित्रीजीकी दक्षिण दिशामें बैठाहुआ जो ब्राह्मण कुशोंसे छिरके

यासमुद्दिश्य फलदानंकरोतिच ॥ ९५ ॥ फलसङ्ख्याप्रमाणानि युगानिदिविमोदते॥ मिष्टान्नंयच्छतेयाच नारीणाञ्च
विशेषतः ॥ ९६ ॥ तस्यादक्षिणमूर्तौच भर्त्रासार्कंद्विजोत्तमाः ॥ सस्यसङ्ख्याप्रमाणानि युगानिदिविमोदते ॥ ९७ ॥
यःश्राद्धंकुरुतेतत्र सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ रसेनैकेनसस्येनतथैकेनद्विजोत्तमाः ॥ ९८ ॥ तस्यापिजायतेपुण्यं गया
श्राद्धेनयद्भवेत् ॥ यःकरोतिद्विजस्तस्या दक्षिणांदिशमाश्रितः ॥ ९९ ॥ सन्ध्योपासनमेकन्तु कुशैस्संप्रोक्षितैर्जलैः ॥
सायन्तनेचसंप्राप्ते कालेब्राह्मणसत्तमाः ॥ १०० ॥ येनसन्ध्योदितासन्ध्या सम्यग्द्वादशवार्षिकी ॥ योजपेद्ब्राह्मणस्त
स्या सावित्रींपुरतःस्थितः ॥ १ ॥ तस्ययद्यत्फलंविप्राः श्रूयतांतद्वदामिवः ॥ दशभिर्जन्मजनितं शतेनचपुराकृतम् ॥
२ ॥ त्रियुगन्तुसहस्रेण तस्यनश्यतिपातकम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चमत्कारपुरंप्रति ॥ ३ ॥ गत्वातांपूजयेद्देवीं श्रो
तव्याचविशेषतः ॥ सावित्र्यमिदमाख्यानंयःपठेच्छृणुयाच्चवा ॥ ४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सुखभागत्रजायते ॥ एत

हुये जलों के द्वारा केवल सन्ध्योपासन करता है ॥ ९९ । १०० ॥ जिससे कि बारह वर्षवाली सन्ध्या भलीभांति ध्यान में कही गई है सावित्री जी के अगाड़ी
बैठाहुआ जो ब्राह्मण गायत्री को जपताहै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसका जो जो फलहै उसको मैं कहताहूं सुनिये कि दश गायत्री के जपने से जन्म में उपजा हुआ व
सौसे पुरातन समय किया हुआ ॥ २ ॥ व हजार से तीन युगों में किया हुआ पातक उसका नष्ट होजाताहै इसलिये सब उपायसे चमत्कार नगरको ॥३॥ जाकर उस
देवी को पूजै व विशेषकर सुनना चाहिये जो मनुष्य इस सावित्रीवाले कथानक को पढ़ता या सुनताहै ॥ ४ ॥ वह समस्त पातको से छूटाहुआ यहां सुखभागी होता

उस यज्ञ के ऊपर चढ़ीं वहां उन सावित्री जी का वह वामचरण आजभी देख पड़ता है ॥ ८५ ॥ जो कि पर्वत के किनारे पै स्थित व समस्त पापों का विनाशक व पुण्यदायक है पाप आचरणवाला भी जो पुरुष उसको पूजता है ॥ ८६ ॥ समस्त पातकों से छूटाहुआ वह परम पद को प्राप्त होता है जो पुरुष जिस कामना को चिन्तनकर उस चरण को पूजता है ॥ ८७ ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि उसको वह मनुष्य अवश्य प्राप्त होता है सूतजी बोले कि इसप्रकार उससमय अपने पतिके सकाश से बड़े निरादर को पाकर पर्वत पै टिकाश्रय किये हुये वे सावित्री देवी वहां स्थित हुईं विशेषकर पौर्णमासीमें जो उन सावित्री जी को भलीभांति

अद्यापितत्पदंवामं तस्यास्तत्रप्रदृश्यते ॥ ८५ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं स्थितंपर्वतरोधसि ॥ अपिपापसमाचारो यस्तंपूजयतेनरः ॥ ८६ ॥ सर्वपातकनिर्मुक्तः सयातिपरमंपदम् ॥ योयंकाममभिध्याय तमर्चयतिमानवः ॥ ८७ ॥ अवश्यंतदवाप्नोति यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ सूतउवाच ॥ एवंतत्रस्थितादेवी सावित्रीपर्वताश्रया ॥ ८८ ॥ अपमानंमहत्प्राप्य सकाशात्स्वपतेस्तदा ॥ यस्तामर्चयतेसम्यक्पूर्णमास्यांविशेषतः ॥ ८९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वयंयेवाञ्छितांस्ततः ॥ यानारीकुरुतेभक्त्या दीपदानंतदग्रतः ॥ ९० ॥ रक्ततन्तुभिराज्येन श्रूयतांतस्ययत्फलम् ॥ यावन्तस्तन्तवस्तस्या दह्यन्तेदीपसम्भवाः ॥ ९१ ॥ मुहूर्तानिचयावन्ति घृतदीपश्चतिष्ठति ॥ तावज्जन्मसहस्राणि सास्यात्सौभाग्यभागिनी ॥ ९२ ॥ पुत्रपौत्रसमोपेता धनिनीशीलमण्डना ॥ नदुर्भगानवन्ध्याच नचकाणाविरूपिका ॥ ९३ ॥ यान्नृत्यंकुरुतेनारी विधवापितदग्रतः ॥ गीतंवाकुरुतेतत्र तस्यायावन्तितत्रच ॥ ९४ ॥ तावन्तिदिविवर्षाणि सहस्राणिवसेचसा ॥ सावित्रीं

पूजन करता है ॥ ८८ । ८९ ॥ तदनन्तर आपही से चाहे हुये समस्त मनोरथों को पाता है और जो स्त्री भक्तिसे उन सावित्रीजी के आगे घृतसमेत लालडोरों से दीप दान करती है उस का फल सुनिये कि दीपसे उपजे हुये जितने डोरे उसके जलते हैं ॥ ९० । ९१ ॥ व घृतका दीपक जितने मुहूर्ततक ठहरता है उतने हजार जन्म तक वह सौभाग्यभागिनी होवै है ॥ ९२ ॥ व पुत्र, पौत्रों से संयुत, धनवती व शीलसे शोभित होती है और न दुष्टभाग्यवाली न बांझ न एकाक्षिणी न कुरूपिणी होती है ॥ ९३ ॥ व जो विधवा भी स्त्री वहां उन सावित्री जी के आगे नृत्य करती है या वहां जितने मुहूर्त उनके आगे गान करती है ॥ ९४ ॥ वह उतनेही हजार

जो सम्पूर्ण धन है वह न भोगने योग्य होगा ॥ ७५ ॥ वैसेही पांच पतियोंवाली व दोष से संयुत यह जहां पैठीहैं और भलीभांति टिके हुये जे समस्त सुरसमूह यहां सहायता करते हैं ॥ ७६ ॥ वे निस्सन्देह सन्तान से रहित होवैंगे व दानवों से तिरस्कृत होते हुये केवल क्लेश को पावैंगे ॥ ७७ ॥ व इसके बगल में जो और चार गोपियां बैठी हैं उन सौतियों से आभीरी ऐसी कहीगई व अन्न से प्रसन्न वे समस्त दूतीपूर्वक नित्यही मेरे वैर में परायणहैं उनका कभी आपस में संग न होगा ॥ ७८ । ७९ ॥ व यहां अन्य दूसरे से भी दृष्टिमात्र न अपेक्षा कीजावैंगी व शरीरधारियों के न जाने योग्य व दुर्गम पर्वत के अग्रभागों में समस्त सुखों से रहित

खविप्लुवे ॥ तस्माद्यत्तेऽखिलंवित्तमभोग्यंसम्भविष्यति ॥ ७५ ॥ तथादेवगणास्सर्वे साहाय्यंयेसमाश्रिताः ॥ अत्रकुर्वन्तिदोषाढ्यायज्ञेवैपञ्चभर्तृका॥७६॥सन्तानेनपरित्यक्तास्संभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ दानवैश्चपराभूता दुःखंप्राप्स्यन्तिकेवलम् ॥ ७७॥ एतस्याःपार्श्वतश्चान्याश्चतस्रोयाऽव्यवस्थिताः ॥ आभीरीतिसपत्नीभिः प्रोक्ताधान्यप्रहर्षिताः ॥ ७८ ॥ ममद्वेषपरानित्यं सर्वादूतीपुरस्सराः ॥ तासांपरस्परंसङ्गःकदाचिन्नभविष्यति ॥ ७९ ॥ नान्येनात्रपरेणापि दृष्टिमात्रमपेक्षिताः ॥ पर्वताग्रेषुदुर्गेषु अगम्येषुचदेहिनाम् ॥ ८० ॥ वासःसंपत्स्यतेनित्यंसर्वभोगैर्विवर्जितः ॥ एवमुक्त्वाथसावित्री कोपोपहतचेतसा ॥ ८१ ॥ विसृज्यदेवपत्न्यस्ताः सर्वायाःपार्श्वतःस्थिताः ॥ उदङ्मुखीप्रतस्थेचवार्य्यमाणापिसर्वतः॥ ८२ ॥ सर्वाभिर्देवपत्नीभिर्लक्ष्मीपूर्वाभिरेवच ॥ नात्रस्थास्यामिहेदेव्यो नामापिकिलनोयतः ॥ ८३ ॥ श्रूयतेकामुकस्यास्य तत्रयास्याम्यहंद्रुतम् ॥ एकश्चरणयोर्न्यस्तो वामःपर्वतरोधसि ॥ ८४ ॥ द्वितीयेनसमारूढा तद्यागस्यतथोपरि॥

निवास प्राप्त होगा ऐसा कहकर इसके अनन्तर सावित्री ने क्रोधके द्वारा ताड़ितचित्तसे ॥ ८० । ८१ ॥ उन सुरस्त्रियों को बिदाकर जो सब कि बगल में बैठी थीं और लक्ष्मीपूर्वकहीं समस्त सुरस्त्रियों से सब ओर मना कीहुई भी उत्तराभिमुखी होकर प्रस्थान किया व कहा कि हे देवियो ! मैं यहां न टिकूंगी किन्तु इस कामी का प्रसिद्ध में नाम भी न सुन पड़े वहां मैं शीघ्रही जाऊंगी पांवों के मध्य एक बांये चरण को पर्वत के किनारे धरा ॥ ८२ । ८३ । ८४ ॥ व वैसेही दूसरे चरण से

व निस्सन्देह कारागृहमें तुम बहुत समय तक प्राप्तहोगे व हे वासुदेव ! ब्रह्मासे पहले तुमने इस पांच पतिवाली गोपीका अनुमोदन किया उसीकारण निस्सन्देह शाप दूंगी कि हे दुर्मते ! तुमभी पराई सेवकाईको भलीभांति पावोगे ॥६५।६६॥ हे मूढ,रुद्रजी ! जिसकारण समीप टिकेहुये भी तुम इस कर्मकी उपेक्षा(त्याग)करतेहो व मना नहीं करते हो इस लिये मेरे वचन को सुनो ॥ ६७ ॥ कि मैंने पतिके जीतेहुये उसके विरह से उपजे हुये दुःखको सेवन किया है और तुमको स्त्री के मरनेपर क्लेश होगा ॥ ६८ ॥ और जो यह पांच पतियोंवाली व निन्दित गोपी यज्ञ में पैठी है व भलीभांति शङ्कारहित तुम जैसे अन्य उत्तम यज्ञों में हव्य भोजन करते थे वैसेही

कारागारेचिरंकालं सङ्गमिष्यत्यसंशयम् ॥ वासुदेवत्वयायस्मादेषावैपञ्चभर्तृका ॥ ६५ ॥ अनुमोदिताविधेःपूर्वंतस्मा च्छप्स्याम्यसंशयम् ॥ त्वंचापिपरभृत्यत्वं संप्राप्स्यसिसुदुर्मते ॥ ६६ ॥ समीपस्थोपिरुद्रत्वं कर्म्मैतद्यदुपेक्ष्यसे ॥ निषेधयसिनोमूढ तस्माच्छृणुवचोमम ॥ ६७ ॥ जीवमानस्यकान्तस्यमयातद्विरहोद्भवम् ॥ संसेवितंमृतायान्ते परितापो भविष्यति ॥ ६८ ॥ यच्चयज्ञेप्रविष्टेयं गर्हितापञ्चभर्तृका ॥ तथैवचहविर्वह्नेर्यत्त्वंगृह्णासिलौल्यतः ॥ ६९ ॥ यथान्येषुसु यज्ञेषु सम्यक्छङ्काविवर्जितः ॥ तस्माद्दुष्टसमाचारः सर्वभक्षोभविष्यसि ॥ ७० ॥ स्वधयास्वाहयासार्द्धं सदादुःखमवा प्स्यसि ॥ नैवाप्स्यसिपरंसौख्यं सर्वकालंयथापुरा ॥ ७१ ॥ एतेचब्राह्मणास्सर्वे लोभोपहतचेतसः ॥ होमंप्रकुर्वतेचैव मखे चापिविगर्हिते ॥ ७२ ॥ वित्तलोभेनयत्रैषाप्रविष्टापञ्चभर्तृका ॥ तथाचवचनंप्रोक्तं ब्राह्मणीयंभविष्यति ॥ ७३ ॥ दरि द्रोपहतास्तस्माद्वृषलीपतयस्तथा ॥ वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्तिनसंशयम् ॥ ७४ ॥ भोभोवित्तपतेवित्तं ददासिम

जिसलिये चंचलता या सतृष्णता से तुम अग्निके द्वारा हव्यको ग्रहण करते हो उसी कारण दुष्ट आचरणवाले होते हुये तुम सर्वभक्षी होवोगे ॥ ६९।७० ॥ व स्वधा स्वाहा समेत तुम सदैव दुःख पावोगे और जैसे पुरातन समय सब काल में सुख पाते थे वैसेही न पावोगे ॥ ७१ ॥ व लोभ से नष्टचित्तवाले ये समस्त ब्राह्मण धन के लोभसे निन्दित भी यज्ञ में होम करते हैं जहां कि यह पांच पतियोंवाली पैठ आई थी व वैसेही यह वचन बोले कि यह ब्राह्मणी होगी ॥ ७२ । ७३ ॥ उसी कारण शूद्रास्त्रियों के पति व निर्धनता से नष्ट व निस्सन्देह वेदों के बेचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ हे धनाधीश ! तुम यज्ञ के नाशमें धन देते हो उसीकारण तुम्हारा

इसलिये जैसे भूतल में अन्य देवताओं का पूजन होताहै वैसेही आजसे लगाकर इस समय कोई तुम्हारा पूजन न करैगा जो मनुष्य मन्त्रसे पवित्र तुम्हारा पूजन करैगा वह ब्राह्मण, क्षत्रिय भी व वैश्य या शूद्र भी होवै उस के वंश में मृत्यु पर्यन्त दरिद्र व दुःखसंयुत होगा व जिसलिये यह निन्दित अहीरकी कन्या मेरे स्थान में हुई है ॥ ५५ । ५६ । ५७ ॥ उसी कारण मेरे ही वचन से सन्तान न होगी व सुरस्त्रियों के समान संसार में पूजन न पावैगी ॥ ५८ ॥ और जो स्त्री कहीं इसका भी पूजन करैगी वह दुःखसंयुत व बांझ और दौर्भाग्य से संयुक्त होगी ॥ ५९ ॥ व जैसे यह पांच पतियोंवाली है वैसेही नष्ट चरित्रोंवाली व पापिनी होगी

श्चित्सांप्रतंप्रकरिष्यति ॥ अद्यप्रभृतियःपूजां मन्त्रपूतांकरिष्यति ॥ ५५ ॥ तवमर्त्योधरापृष्ठेयथान्येषांदिवौकसाम्॥ भविष्यतिचतद्वंशे दरिद्रोदुःखसंयुतः ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि वैश्यःशूद्रोपिचाल्पयम् ॥ एषाभीरसुतायस्मा न्ममस्थानेविगर्हिता ॥ ५७ ॥ भविष्यतिनसंतानं तस्माद्वाक्यान्ममैवहि॥ नपूजांलप्स्यतेलोकेयथावद्देवयोषितः ॥ ५८ ॥ करिष्यतिचयानारी पूजामस्याअपिकचित् ॥ साभविष्यतिदुःखाढ्या बन्ध्यादौर्भाग्यसंयुता ॥ ५९ ॥ पापिष्ठानष्टचारित्रा यथैषापञ्चभर्तृका॥नक्षान्तियास्यतेलोकेयथाचासौतथैवसा ॥ ६० ॥ एतस्याआत्मजाःपापाभविष्यन्तिनिशाचराः ॥ सत्यशौचपरित्यक्ताशिष्टसङ्गविवर्जिताः ॥ ६१ ॥ अनिकेताभविष्यन्ति वंशेस्याअल्पजीविनः॥ एवंशप्त्वाविधिंसाध्वी गायत्रींचततःपरम्॥ ६२ ॥ ततोदेवगणान्सर्वाञ्छशापचतदासती॥ भोभोश्शक्रसमानीता यद्देषापञ्चभर्तृका ॥ ६३ ॥ तदाप्नुहिफलंसम्यक्छुभंकृत्वाशचीपते॥ त्वंशत्रुभिर्जितोयुद्धे बन्धनंसमवाप्स्यसि॥६४॥

व जैसे यह संसार में क्षमाको नहीं प्राप्त होती है वैसेही वह होगी ॥ ६० ॥ और इस के पुत्र पापी व निशाचर और सत्य, शौच से छुटे हुये व उत्तम जनों के संग से रहित होवैंगे ॥ ६१ ॥ व इसके वंश में अल्पजीवी व बिनस्थानवाले होवैंगे इसप्रकार पतिव्रता सावित्री ने ब्रह्मा को शाप देकर तदनन्तर गायत्री को शापदिया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर उससमय पतिव्रता सावित्री ने समस्त सुरसमूहों को शापदिया कि हे इन्द्रजी ! जिसलिये यह पांच पतियोंवाली तुमसे भलीभांति लाई गई ॥ ६३ ॥ उसी कारण हे इन्द्रजी ! भलीभांति शुभ करके फल को पावोगे कि युद्ध में शत्रुओं से जीते हुये तुम बन्धनको पावोगे ॥ ६४ ॥

पौत्रों व अन्य देवताओं तथा ब्राह्मणों के अयोग्य है ॥ ४५ ॥ अथवा यह तुम्हारा दोष नहीं है क्योंकि कामदेव के वश में प्राप्तहुये मनुष्य न लजाते हैं और न कार्य, अकार्य्य व शुभ अशुभ को विशेषकर जानते हैं ॥ ४६ ॥ कामदेव के वश में प्राप्त पुरुष कार्य्यको अकार्य्य मानता है व मित्रको शत्रु मानता है और शत्रुको मित्र मानता है ॥ ४७ ॥ जैसे जुवां खेलनेवाले में सत्य व चोर में मित्रता और जैसे राजाके मित्र नहीं होता है वैसेही कामियों के लज्जा नहीं होती है ॥ ४८ ॥ चाहै अग्नि ठण्ढी भी होवै व चन्द्रमा अग्नि के समान होवै व यदि क्षारसमुद्र मीठा होवै परन्तु कामी निश्चयकर नहीं लजाता है ॥ ४९ ॥ मेरे यह निश्चयकर

दिवौकसाम् ॥ अयोग्यंचैवविप्राणां यदेतत्कृतवानसि ॥ ४५ ॥ अथवानैषदोषस्ते नकामवशगानराः ॥ लज्जन्ति चविजानन्ति कृत्याकृत्यंशुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ अकृत्यंमन्यतेकृत्यं मित्रंशत्रुञ्चमन्यते ॥ शत्रुञ्चमन्यतेमित्रं जनः कामवशङ्गतः ॥ ४७ ॥ द्यूतकारेयथासत्यं यथाचौरेचसौहृदम् ॥ यथानृपस्यनोमित्रं तथालज्जानकामिनाम् ॥ ४८ ॥ अपिस्याच्छीतलोवह्निश्चन्द्रमादहनात्मकः ॥ क्षारोब्धिर्यदिमिष्टस्स्यान्नकामीलज्जतेध्रुवम् ॥ ४९ ॥ नमेस्याद्दुःख मेतद्धियत्सापत्न्यमुपस्थितम् ॥ सहस्रमपिनारीणां पुरुषाणांयथाभवेत् ॥ ५० ॥ कुलीनानाञ्चशुद्धानां स्वजात्यानां विशेषतः ॥ त्वंकुरुष्वापराणांच यदिकामवशङ्गतः ॥ ५१ ॥ एतत्पुनर्महादुःखं यदाभीराविगर्हिता ॥ वेश्येवनष्टचारि त्रात्वयोढाबहुभर्तृका ॥ ५२ ॥ तस्मादहंप्रयास्यामि यत्रमामन्यतेविधे ॥ श्रूयतेकामलुब्धस्य मयापरिहृतस्यच ॥ ५३ ॥ अहंविडम्बितायस्माद्त्रातीवत्वयाविधे ॥ पुरतोदेवपत्नीनां देवानांचद्विजन्मनाम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्पूजांनतेक

दुःख नहीं है जोकि सौति समीप प्राप्तहुई क्योंकि जैसे कुलीन व शुद्ध व विशेष कर निजजातिवाले पुरुषों के हजारों भी स्त्रियां होती हैं वैसेही यदि तुम कामदेव के वश में प्राप्त हो तो अन्य स्त्रियों को कीजिये ॥ ५० । ५१ ॥ व फिर यह महादुःख है जोकि वेश्या के समान नष्ट आचारवाली व बहुत पतियोंवाली निन्दित अहीरिनि को तुमने ब्याहा है ॥ ५२ ॥ उसी कारण हे विधे ! मुझको जहां मानिये याने आज्ञा दीजिये वहां मैं जाऊंगी क्योंकि मुझ से त्यागे हुये व कामदेव के लालचवाले तुम्हारा चरित सुनपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विधे ! जिसकारण यहां तुमने सुरस्त्रियों, देवताओं व ब्राह्मणोंके अगाड़ी मुझको अत्यन्तही विडम्बितकिया ॥ ५४ ॥

॥ ३६ ॥ का समस्त वंश केवल मठा खाताहै ॥ ३५ ॥ व जन्मके सुखसे रहित वह कुल मूत्र,विष्ठाको करके और आदरके आश्रयसे करने योग्य धर्मको नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ चाण्डाल भी जिस निन्दित कर्मको नहीं करतेहैं उसको अहीर करतेहैं इसलिये तुमने यह क्या किया ॥ ३७ ॥ हे विधे ! यदि यज्ञमें अन्य स्त्री से तुम्हारा अवश्य कार्य था तो त्रिलोक में पैदा हुई किसी भी ब्राह्मणी का न ब्याह किया हे वृथामूढ ! तुम निश्चय कर धूर्त हो जिसलिये कि तुमने पवित्रता से रहित कन्याको रतिसे दूषित किया है ॥ ३८ । ३९ ॥ जो यह गोपकन्या पहले बहुत नरोंसे भोगीहुई प्रायः अतिपापिनी व वेश्याजनों से सौगुना अधिक है ॥ ४० ॥ व वैसेही चाण्डाल से उपजी

वच ॥ तद्ददस्याःकुलंसर्वं तक्रमश्नातिकेवलम् ॥ ३५ ॥ कृत्वामूत्रपुरीषंच जन्मभोगविवर्जितम् ॥ नजानन्तिचकर्तव्यं धर्म्ममादरसंश्रयात् ॥ ३६ ॥ अन्त्यजाअपिनोकर्म्मयत्कुर्वन्तिविगर्हितम् ॥ आभीरास्तच्चकुर्वन्ति तस्किमेतत्त्वयाकृतम् ॥ ३७ ॥ अवश्यंयदितेकार्य्यं भार्य्ययापरयामखे ॥ तत्त्वयाब्राह्मणीकापि प्रसूताभुवनत्रये ॥ ३८ ॥ नोढाविधेवृथामूढ नूनंधूर्तोसिमेमतिः ॥ यत्त्वयाशौचसंत्यक्ताकन्यारतिप्रदूषिता ॥ ३९ ॥ प्रभुक्तावहुभिःपूर्वं तथागोपकुमारिका ॥ एषाप्रायःसुपापाच वेश्याजनशताधिका ॥ ४० ॥ अन्त्यजातातथाचैषा क्षतयोनिःप्रजायते ॥ नान्यागोपकुमारीणां काचित्तादृक्प्रजायते ॥ ४१ ॥ मातृकंपैतृकंवंशंश्वशुरञ्चप्रपातयेत् ॥ तस्मादेतेनकृत्येनगर्हितेनधरातले ॥ ४२ ॥ नत्वंप्राप्स्यसिताम्पूजां यथान्येविबुधोत्तमाः ॥ अनेनकर्म्मणाचैव यदिमेसुकृतंकचित् ॥ ४३ ॥ पूजांयेचकरिष्यन्ति भविष्यन्तिचनिर्द्धनाः ॥ कथंनलज्जितोसित्वमेतत्कुर्वन्विगर्हितम् ॥ ४४ ॥ पुत्राणामथपौत्राणामन्येषाञ्च

हुई यह क्षत (भ्रष्ट) योनि वाली है और अहीरकी कन्याओंके बीच में वैसी और कोई नहीं है ॥ ४१ ॥ और यह माता, पितावाले वंश को व श्वशुर को अधःपात करावैगी इस लिये इस निन्दित कर्म से तुम भूतल में पूजा न पावोगे जैसे कि और सुरोत्तम पाते हैं और इस कर्म से यदि कहीं मेरा पुण्य होगा ॥ ४२ । ४३ ॥ तो जो तुम्हारा पूजनकरैंगे वे निर्धनी होवैंगे तुम ऐसा निन्दित कर्म करतेहुये कैसे नहीं लज्जित होते हो ॥ ४४ ॥ तुमने जो इस निन्दित कर्म को किया है वह पुत्रों

में स्थित हुये शृंगार को बोझ मानती थीं आंसुओंसे पूर्ण नयनोंवाली व दीन होती हुई गमन करती भई ॥ २५ ॥ तदनन्तर क्लेशसे जैसे कारागृह दृष्टिमार्गको दुःख से देखने योग्य होताहै वैसेही उस यज्ञमण्डपको वे सावित्री जी इस भांति क्लेशसे प्राप्त होकर खड़ीहुई॥२६॥इसके अनन्तर यज्ञमण्डपमें भलीभांति प्राप्तहुई सावित्री को देखकर उसीक्षण चतुरानन जी लज्जा से नीचे मुख करके स्थित हुये ॥ २७ ॥ व शिव, इन्द्र तथा विष्णु व और जे देवता उस यज्ञ में बैठे थे वे वैसेही याने नीचे मुखवाले होगये ॥ २८ ॥ व भयभीत मनवाले वे समस्त द्विजोत्तम वेदध्वनि को छोड़कर तदनन्तर मूकता को प्राप्त होगये याने चुपहोरहे ॥ २९ ॥ इसके अ-

क्षणादीना प्रजगाममहासती ॥ २५ ॥ ततःकृच्छ्रात्समासाद्य सैवंतंयज्ञमण्डपम् ॥ कृच्छ्रात्कारागृहंयद्वद्दुष्प्रेक्ष्यंदृक्पथस्यतु ॥ २६ ॥ अथदृष्ट्वातुसम्प्राप्तां सावित्रींयज्ञमण्डपे ॥ तत्क्षणाच्चचतुर्वक्त्रः संस्थितोधोमुखोह्रिया ॥ २७ ॥ तथाशम्भुश्चशक्रश्च वासुदेवस्तथैवच ॥ येचान्येविबुधास्तत्रसंस्थितायज्ञमण्डपे ॥ २८ ॥ तेचब्राह्मणशार्दूलास्त्यक्त्वा वेदध्वनिन्ततः ॥ मूकीभावंगतास्सर्वे भयसंत्रस्तमानसाः ॥ २९ ॥ अथसंवीक्ष्यसावित्री सपत्न्यासहितंपतिम् ॥ कोपसंरक्तनयना परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥ सावित्र्युवाच ॥ किमेतद्युज्यतेकर्तुं तववृद्धतमाकृतेः ॥ कृतवानसियत्पत्नीमेतांगोपसमुद्भवाम् ॥ ३१ ॥ उभयोःपक्षयोर्यस्याः स्त्रीणांकान्तायथेप्सिताः ॥ शौचाचारपरित्यक्ता धर्मकृत्यपराङ्मुखाः ॥ ३२ ॥ यस्यान्वयेजनास्सर्वे पशुधर्मरतोत्सवाः ॥ सोदर्य्यांभगिनींत्यक्त्वा जननींचतथापराम् ॥ ३३ ॥ तथाकुलेप्रसेवन्ते सर्वेनारींजनाःपराम् ॥ यथाहिपशवोदन्तितृणानिचजलानिच ॥ ३४ ॥ विण्मूत्रंकेवलंचक्रुर्भारोद्वहनमे

नन्तर सौति के समेत पति को देखकर क्रोधसे अति लाल लोचनोंवाली सावित्रीने कठोर वचन कहा ॥ ३० ॥ सावित्री जी बोलीं कि अतिवृद्ध आकारवाले तुमको क्या यह करने को योग्यथा जो कि गोप से उपजीहुई इसको तुमने स्त्री कियाहै ॥ ३१ ॥ कि जिसके दोनों पक्षों में स्त्रियों के पति इच्छानुकूल पवित्रता व आचारसे छूटे व धर्मकार्योंमें विमुख होते हैं ॥ ३२ ॥ जिसके वंशमें सब मनुष्य पशुधर्म के उछाहों में तत्पर होते हैं व सगी बहन व अन्य माताको छोड़कर ॥ ३३ ॥ व वंश में अन्यस्त्री को सब मनुष्य सेवन करते हैं जैसे कि पशु तृण व जल को खातेहैं ॥ ३४ ॥ और केवल विष्ठा, मूत्र व बोझ लेचलनाही कार्य करते हैं वैसेही इस गोपी

नस्य (उदासी) में प्राप्त होकर स्थिरताको प्राप्त हुई उससमय उन सावित्री को देखकर उन सुरस्त्रियों ने नारद से कहा ॥ १६ ॥ कि तुमको धिक्कार है २ तुमतो स्नेह में वैराग्य को करानेवाले कलिप्रियहो उन ब्रह्माजीके इस समस्त भेदको तुमने किया है ॥ १७ ॥ गौरी बोलीं कि देवि ! ये झगड़े के प्रियवाले मुनि झूठे सांचे वचन को बोलते हैं और इसी कर्म से ये मुनि सदैव प्राणों को धारते हैं ॥ १८ ॥ हे सावित्री जी ! पुरातन समय त्रिलोचन (शिव) जी ने मुझसे बार२ कहा है कि हे प्रिये ! यदि मुझसे पैदा हुये सुखों को नित्यही चाहती हो तो तुमको नारद के वचन का विश्वास न करना चाहिये तब से लगाकर मैं कहीं वचन को विश्वास

नस्यंपरंगत्वानिश्चलत्वमुपस्थिता ॥ तान्दृष्ट्वादेवपत्न्यस्ता जगदुर्नारदन्तदा ॥ १६ ॥ धिक्धिक्कलिप्रियस्त्वन्तु रागवैराग्यकारकः ॥ त्वयाकृतंसर्वमेतद्विधेस्तस्यतथान्तरम् ॥ १७ ॥ गौर्युवाच ॥ अयंकलिप्रियोदेवि ब्रूतेसत्यानृतंवचः ॥ अनेनकर्म्मणाप्राणान् बिभर्त्येषसदामुनिः ॥ १८ ॥ अहंत्र्यक्षेणसावित्रि पुराप्रोक्तामुहुर्मुहुः ॥ नारदस्यमुनेर्वाक्यं नश्रद्धेयंत्वयाप्रिये ॥ १९ ॥ यदिवाञ्छसिसौख्यानि मयाजातानिनित्यशः ॥ ततःप्रभृतिनैवाहं श्रद्दधेनवचःक्वचित् ॥ २० ॥ तस्माद्गच्छामहेतत्र यत्रतिष्ठतिनत्वसौ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः सावित्रीहर्षवर्जिता ॥ मखमण्डपमुद्दिश्य प्रस्खलन्तीपदेपदे ॥ २१ ॥ प्रजगामद्विजश्रेष्ठाः शून्येनमनसातदा ॥ प्रतिभात्यंतदागीतं तस्यामधुरमप्यहो ॥ २२ ॥ कर्णमूलंसमायातमसकृद्द्विजसत्तमाः ॥ वन्ध्यंवाद्यंयथावाद्यं मृदङ्गानकपूर्वकम् ॥ २३ ॥ प्रेतसन्दर्शनंयद्वन्नृत्यं तत्सा महासती ॥ वीक्षितुंनचशक्नोति गच्छमानामहामखे ॥ २४ ॥ शृङ्गारञ्चतथाभारं मन्यतेसातनुस्थितम् ॥ वाष्पपूर्ण

नहीं करती हूं ॥ १९ ॥ २० ॥ इसलिये हम सब वहां चलैं कि जहां यह न स्थित होवै उन पार्वती जी के उस वचन को सुनकर सावित्री आनन्दरहित हुई व हे द्विजोत्तमो ! यज्ञमण्डप को उद्देशकर पग २ पै लरखराती हुई सावित्री जी उस समय शून्यमन के द्वारा गईं हे द्विजोत्तमो ! कर्णमूल में बार २ आता हुआ मीठा भी गान उससमय उन सावित्री को उलटा मालूम होताथा याने नहीं रुचता था व मृदङ्ग, ढोलपूर्वक बाजाभी निष्फल बाजनके समान जान पड़ताथा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ व महायज्ञ में जाती हुई वे महासती सावित्री जी प्रेतदर्शन के समान उस नाचको देखनेके लिये न समर्थ होतीथीं ॥ २४ ॥ व वे महासती सावित्रीजी शरीर

भलीभांति लाये तदनन्तर विष्णु ने विवाहके लिये अनुमोदन (सम्मति स्वीकार)किया ॥ ५ । ६ । ७ ॥ व ईश्वर ने तुम्हारी छोटी बहन (सौति) का गायत्री नाम किया व समस्त ब्राह्मणों ने यह कहा कि यह ब्राह्मणी होवै ॥ ८॥ हे विभो,ब्रह्मन् !हम लोगों के वचन से पाणिग्रहण कीजिये तदनन्तर समस्त देवताओं से कहेहुये उन चतुर्मुख ने ॥ ९ ॥ उस गायत्री को धर्म्मसे पत्नी पाकर शीघ्रही यज्ञ कराया तुम से बहुत कहने से क्या है पत्नीशाला (यज्ञघर) को भलीभांति आई ॥ १०॥ व हे सुरेश्वरि ! उस गोपी की कटि में रशना (ग्रन्थिबन्धन) युक्त कियागया उस निन्दित कर्म को देखकर मैं यज्ञमण्डप से निकला ॥ ११ ॥ धर्म से रहित

भागे समानीताथतत्क्षणात् ॥ साविष्णुनाविवाहार्थं ततश्चैवानुमोदिता ॥ ७ ॥ ईश्वरेणकृतंनाम गायत्रीचतवानुजा ॥ ब्राह्मणैस्सकलैःप्रोक्तं ब्राह्मणीतिभवत्वियम् ॥ ८ ॥ अस्माकंवचनाद्ब्रह्मन्कुरुहस्तग्रहंविभो ॥ देवैस्सर्वैस्ससम्प्रोक्तस्त तस्तुचतुराननः ॥ ९ ॥ तांपत्नींप्राप्यधर्म्मेण याजयामाससत्वरम् ॥ किंवातेबहुनोक्तेन पत्नीशालांसमागता ॥ १० ॥ रशनांयोजितातस्या गोप्याःकट्यांसुरेश्वरि ॥ तन्दृष्ट्वागर्हितंकर्म्म निष्क्रान्तोयज्ञमण्डपात् ॥ ११ ॥ गच्छवातिष्ठ वातत्र मण्डपेधर्म्मवर्ज्जिते ॥ तच्छ्रुत्वासातदादेवी सावित्रीद्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ प्रम्लानचन्द्रभाजाता पद्मिनीवहि मागमे ॥ लतेवच्छिन्नमूलासा चक्रीवप्रियविच्युता ॥ १३ ॥ शुचिशुक्रगतेकाले सरसीवगतोदका ॥ प्रक्षीणचन्द्रलेखे व मृगीमृगविवर्जिता ॥ १४ ॥ सेनेवहतभूपाला सतीवगतभर्तृका ॥ संशुष्कापुष्पमालेव मृतवत्सेवसौरभी ॥१५॥ वैम

उस मण्डप में तुम जावो या ठहरो हे द्विजोत्तमो ! उस समय उस वचन को सुनकर वे सावित्री देवी ॥ १२ ॥ पाला या जाड़के आने पर कमलिनी की नाई व मलिन चन्द्रमा की शोभा के समान होगई व कटी हुई जड़वाली लता के समान और प्रिय (पति) से छुटी हुई चकई के नाई वे होगई ॥ १३ ॥ व ज्येष्ठ,आषाढ़ का समय प्राप्त होने पर गत याने सूखे जलवाले तड़ागके सदृश व अतिक्षीण चन्द्रमा की लकीर के समान और मृग से रहित मृगी की नाई ॥ १४ ॥ व मारेहुये राजावाली सेना के समान व मरेहुये पतिवाली पतिव्रता के नाई व अति सूखीहुई फूलों की माला के सदृश व मरेहुये बछरावाली गऊके समान ॥ १५ ॥ बड़ी वैम-

से संयुत व एक में मिली हुई वे सब जाती थीं ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सावित्रीयज्ञागमनंनामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। यज्ञमाहिँ सावित्रि जिमि दीन्ह्यो सबकहँ शाप। इकसौ बैयासिवेंमहँ कहत सूतमुनि श्राप ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर समीप में प्राप्त हुये बाजाओं के बड़ेभारी शब्दको सुनकर व अपनी माताको जानकर नारदजीने सामने प्रयाण किया ॥ १ ॥ आंसुओं से सबओर डूबेहुये व दीनमनवाले होकर व प्रणाम कर

न्विताः ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येसावित्रीयज्ञागमनन्नामैकाशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथश्रुत्वामहानादं वाद्यानांसमुपस्थितम् ॥ नारदःसंमुखःप्रायाज्ज्ञात्वाचजननींनिजाम् ॥ १ ॥ प्रणिपत्यसुदीनात्मा भूत्वाचाश्रुपरिप्लुतः ॥ प्राहगद्गदयावाचा कण्ठेबाष्पसमावृते ॥ २ ॥ आत्मनःशापरक्षार्थं तस्याः कोपविवृद्धये॥कलिप्रियस्तदाविप्रो देवस्त्रीणांपुरःस्थितः ॥ ३॥ मेघगम्भीरयावाचा प्रस्खलंस्तुपदेपदे ॥ मयात्वन्देविचाहूता पुलस्त्येनततःपरम् ॥ ४ ॥ स्त्रीस्वभावंसमाश्रित्य दीक्षाकालेपिनागता ॥ ततोविधेस्समादेशाच्छक्रेणान्यासमाहृता ॥ ५ ॥ काचिद्गोपसमुद्भूता कुमारीदेवरूपिणी ॥ गोवक्त्रेणप्रवेश्याथ गुह्यमार्गेणतत्क्षणात् ॥ ६ ॥ आकर्षितामहा

कण्ठको आंसुओं से घिरने पर गद्गदी वाणी से कहा ॥ २ ॥ उससमय सुरस्त्रियोंके आगे खड़ेहुये व झगड़े प्रियवाले विप्र (नारद) ने अपने शापके रक्षाके लिये व उन सावित्री के क्रोध की विवृद्धि के निमित्त पद पद पै लरखराते हुये मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा कि हे देवि ! मैंने तुमको बुलाया तदनन्तर पुलस्त्य ने बुलाया ॥ ३ । ४ ॥ और तुम स्त्रियोंके स्वभाव में भलीभांति टिककर दीक्षा के समय में भी न आई उसके उपरान्त ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने गोप से उपजी हुई किसी देवरूपिणी अन्य कन्या को लाये इसके अनन्तर हे महाभागे ! गऊ के मुख में पैठाकर उसीक्षण गुदा के द्वारा खींच लिया इसके अनन्तर उसीसमय

आईं ॥ ३। ४ ॥ उसीकारण स्थिर होकर समस्त सुरनारियोंको भलीभांति आनयन किया गौरी, लक्ष्मी, इन्द्राणी, मेधा और वैसेही अरुन्धतीजी ॥ ५ ॥ व स्वधा, स्वाहा तथा मेधा, बुद्धि, पुष्टि, क्षमा, धृति व अप्सराओं से संयुत और बहुत सुरस्त्रियां आईं ॥ ६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा और समस्त अप्सराओं के गण भलीभांति आये ॥ ७ ॥ उन पूर्णहाथोंवाली व अतिप्रसन्नमनवाली सुरस्त्रियों के समेत उन सावित्री देवी ने मण्डप को प्रस्थान किया॥ ८ ॥ व मुख्य गन्धर्वों व विशेषकर किन्नरों के गान की ध्वनि से संयुत बाजाओं के बाजने पर ॥ ९ ॥ जबतक बड़े भाग्यवाली उन सावित्री ने यज्ञ के मण्डप को

ज्ञात्वाविश्वासमागता ॥ ४ ॥ स्थिराभूत्वाततस्सर्वा देवपत्नीस्समानयत् ॥ गौरीलक्ष्मीः शचीमेधा तथाचैवअरुन्धती ॥ ५ ॥ स्वधास्वाहातथामेधाबुद्धिःपुष्टिःक्षमाधृतिः ॥ तथाचान्याश्चबहवोह्यप्सरोभिस्समन्विताः ॥ ६ ॥ घृताचीमेनकार म्भा उर्वशीचतिलोत्तमा ॥ अप्सरसांगणास्सर्वेसमाजग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ साताभिस्सहितादेवी पूर्णहस्ताभिरेवच ॥ संप्रहृष्टमनोभिश्चप्रस्थितामण्डपम्प्रति ॥ ८ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु गीतध्वनियुतेषुच ॥ गन्धर्वाणांप्रमुख्यानां किन्नराणां विशेषतः ॥ ९ ॥ प्रस्थितासामहाभागा यावत्तद्यज्ञमण्डपम् ॥ तावत्तस्यास्तदाचक्षुः प्रस्फुरद्दक्षिणंनिजम् ॥ १० ॥ दक्षिणानितथाङ्गानिस्फुरमाणानिवैमुहुः ॥ तस्यामनसिसंक्षोभं जनयन्तिनिरर्गलम् ॥ ११ ॥ ताश्चदेवस्त्रियस्सर्वानृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ गायन्तिचतथोत्साहं तस्याःपार्श्वेव्यवस्थिताः ॥ १२ ॥ नजानन्तिचसंक्षोभं तस्याव्यसनजंद्रुतम् ॥ अन्योन्यस्पर्द्धयासर्वा गीतनृत्यपरायणाः ॥ १३ ॥ अहंपूर्वंप्रविश्यामिपितामहमहामखे ॥ इत्यौत्सुक्यसमोपेतास्तागच्छन्तिसम

प्रस्थान किया तबतक उस समय उन सावित्री का अपना दाहिना नेत्र फरकने लगा ॥ १० ॥ वैसेही बारबार फरकते हुये दाहिने अंग उसके मन में बिन रोंक टोंक संक्षोभ को पैदा करते थे ॥ ११ ॥ व उन सावित्री के बगल में बैठी हुई वे समस्त सुरस्त्रियां नाचती हँसतीं व उत्साह से गाती थीं ॥ १२ ॥ व आपसमें ईर्षा से गाने, नाचने में लगी हुई वे शीघ्रही उन सरस्वती जी के व्यसन से उपजेहुये क्षोभको नहीं जानती थीं ॥ १३ ॥ ब्रह्माकी बड़ीभारी यज्ञ में मैं पहले पैठूंगी इस उत्कण्ठा

तदनन्तर उन से पृथ्वी को पाकर इसके अनन्तर अपने आश्रमको किया वहांपर रविवारसमेत परेवा दिन के स्थित होने पर जो स्नान करता है वह यक्ष्मा से सेवित भी छूट जाता है यहां आज भी उससे उत्पन्न हुआ विश्वास देखपड़ता है ॥ ७९ । ८० ॥ कि कलिकालके भी प्राप्त होनेपर समस्त साग्निक व विशेषकर नागर द्विजों के यक्ष्मा नहीं होता है ॥ ८१ ॥ वैसेही उनके घर में बसनेवाले चौपायोंको नहीं होता है उस यक्ष्माकी न ओषधियां हैं न मन्त्रहैं न वैद्यहैं ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयक्ष्मतीर्थोत्पत्तिर्नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ❋ ॥

तेभ्यःप्राप्यततोभूमिं चकाराथाश्रमंनिजम् ॥ तत्रयःकुरुतेस्नानं प्रतिपद्दिवसेस्थिते ॥ ७९ ॥ सूर्य्यवारेणमुच्येत यक्ष्मणासेवितोपिच ॥ अद्यापिदृश्यतेचात्र प्रत्ययस्तस्यसम्भवः ॥ ८० ॥ सर्वेषामाहिताग्नीनां नागराणांविशेषतः ॥ कलिकालेपिसम्प्राप्ते नयक्ष्मासंप्रजायते ॥ ८१ ॥ तथाचतुष्पदानांच तेषांगृहनिवासिनाम् ॥ नतस्यभेषजानिस्युर्नमन्त्रानचिकित्सकाः ॥ ८२॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येयक्ष्मतीर्थोत्पत्तिर्नामाशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ सूतपुत्रत्वयाप्रोक्तं सावित्रीनागतात्रयत ॥ कौटिल्येनसमायुक्तैराहूतावचनैस्तथा ॥ १ ॥ पुलस्त्येन पुनश्चैव प्रसक्तागृहकर्म्मणि ॥ ततस्तुब्रह्मणाकोपाद्गायत्रीचविवाहिता ॥ २॥ देवैर्विप्रैश्चसातीवशंसिताभार्य्यतांगता॥सावित्रीचकथंजाता तांज्ञात्वायज्ञमण्डपे ॥ ३॥ पत्नीशालांप्रविष्टांच सर्वंनोविस्तराद्वद ॥सूतउवाच ॥ सावित्रीवशगंकान्तं

दो० । गइ सावित्री यज्ञमहँ जिमि सुरनारिन संग । इकसौ इक्यासिवें महँ सोइ कह्यो परसंग ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतनन्दन ! तुमने जो कहा है कि वैसेही कुटिलतायुक्त वचनों से बुलाई हुई सावित्री जी न आई ॥ १ ॥ व फिर पुलस्त्यजीसे बुलाईहुई गृहकार्य में तत्पर सावित्री न आई तदनन्तर ब्रह्मा ने क्रोध से गायत्री का विवाह किया ॥ २ ॥ व स्त्रीत्व को प्राप्तहुई वे गायत्री जी देवों व द्विजों से अत्यन्तही प्रशंसित हुई और यज्ञमण्डप में पत्नीशाला में पैठी हुई उन गायत्री को जानकर सावित्री जी कैसी हुई हैं इस समस्त चरित्र को हम लोगों से विस्तारपूर्वक कहो सूतजी बोले कि सावित्री ने पतिको वश में प्राप्त जानकर त्रिस्वासमें

गयाहूं और श्रद्धासंयुक्त यदि कोटिगुनाभी दियागयाहो तो इसका यज्ञसे उपजाहुआ फल वृथा होवै है ॥ ६९ ॥ हे देव ! यहां वेदमें मैंने यज्ञका प्रमाण सुनाहै इसलिये यज्ञके भलीभांति स्थित होने पर निश्चयकर ब्राह्मण को तृप्त करै ॥ ७० ॥ हे देवोत्तम ! जिस प्रकार आजही तुम्हारी प्रसन्नता से प्रत्यक्ष मेरी तृप्ति होवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा ने उस यक्ष्मा के सत्य व पथ्य सम्पूर्ण वचन को सुनकर व वेदके प्रमाण से प्राप्तकर तदनन्तर वचन कहा ॥ ७२ ॥ कि आजसे लगाकर भूतल में जो साग्निक ब्राह्मण हैं उन सबों को वैश्वदेव के अन्त में तुम्हें भी बलि देना चाहिये ॥ ७३ ॥ उन देवों के लिये देकर इस

जंफलम् ॥ यदिकोटिगुणंदत्तमपिश्रद्धासमन्वितम् ॥ ६९ ॥ एतच्छ्रुतंमयादेव यज्ञमानंश्रुताविह ॥ तस्मात्सम्यक् स्थितेयज्ञे ब्राह्मणंतर्पयेत्तुवै ॥ ७० ॥ प्रत्यक्षंमेयथातृप्तिरद्यएवप्रजायते ॥ त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ तथानीतिर्विधीयते ॥ ७१ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजस्तस्य तथ्यंपथ्यंवचोखिलम् ॥ श्रुतिप्रमाणतोनीत्वा ततोवचनमब्रवीत् ॥ ७२ ॥ अद्यप्रभृतियेविप्राः साग्नयःस्युर्धरातले ॥ तैस्सर्वैर्वैश्वदेवान्ते बलिर्देयस्तवापिच ॥ ७३ ॥ दत्त्वातेभ्योथदेवेभ्यस्तवतृप्तिर्भविष्यति ॥ तवपक्षेद्वितीयेतु सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७४ ॥ येविप्रास्तेबलिंदद्युर्वैश्वदेवान्तआगते ॥ नतेषामन्वयेवापि त्वयासेव्योत्रकश्चन ॥ ७५ ॥ यक्ष्मोवाच ॥ तीर्थेस्मिंस्तावकेदेव सदाहंतपसिस्थितः ॥ तिष्ठामियदिवादेशस्ताव कोजायतेध्रुवम् ॥ ७६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यद्येवंकुरुचाप्यत्र त्वमाश्रमपदंनिजम् ॥ सम्प्राप्यभूमिदेशंच कञ्चिद्यदभिरोचते ॥ ७७ ॥ अर्चयित्वाद्विजानेतान्यथायज्ञंकृतम्मया ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाप्रार्थयामास चमत्कारपुरोद्भवान् ॥७८॥

के अनन्तर तुम्हारे दूसरे पक्ष में तुम्हारी तृप्ति होगी यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ७४ ॥ वैश्वदेव के अन्तसमय को आनेपर जो ब्राह्मण तुमको बलि देवैं यहां उनके वंश में भी कोई पुरुष तुम से सेवनीय नहीं है ॥ ७५ ॥ यक्ष्मा बोला कि हे देव ! यदि तुम्हारी निश्चय कर आज्ञा होवै तो तुम्हारे इस तीर्थ में सदैव तपस्या में स्थित होताहुआ मैं टिकूं ॥ ७६ ॥ ब्रह्मा बोले कि यदि ऐसाहै तो जो रुचताहो उस किसी भूमिस्थानको भलीभांति प्राप्तहोकर व इन ब्राह्मणोंको पूजकर जैसे मैंने यज्ञ कियाहै वैसेही तुम यहांपर भी अपने आश्रम स्थानको करो सूत जी बोले कि उस वचनको सुनकर चमत्कारपुर में उपजे हुये ब्राह्मणों की प्रार्थना किया ॥ ७७ । ७८ ॥

वैसेही जब कार्त्तिकी व्यतीत होजावै तब दूसरा दिन प्राप्तहोने पर उससमय याने कुतुप कालको पाकर जो मनुष्य उस दिन इसी कुण्ड में स्नान करैंगे वे सालभर तक निस्सन्देह पाप से रहित व मानसी व्यथा व रोगोंसे निर्मुक्त होवैंगे ॥५९।६०॥ इसी अवसर में देवों व धन्वन्तरिके भी चिकित्सा करनेयोग्य यक्ष्मानामक भयंकर रोग प्राप्तहुआ ॥६१॥ जो कि नीलवसनको धारे व दुबला, दीन तथा दण्डके आश्रित व श्लेष्मासे छींक करता हुआ तबतक कष्टसे पांव को धरताथा ॥६२॥ तदनन्तर कियेहुये प्रणामवाला होकर यह वचन बोला यक्ष्मा बोला कि हे पितामह जी ! क्षुधासे दुबले कण्ठवाला मैं तुम्हारे यज्ञको सुनकर आज दूरहीसे बड़े क्लेशसे आकर

स्थिते ॥ तथातत्कालमासाद्य येकरिष्यन्तिमानवाः ॥ ५९ ॥ स्नानंतत्रदिनेत्रैव वर्षंपापविवर्जिताः ॥ आधिव्याधिवि
निर्मुक्तास्तेभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ ६० ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो यक्ष्माख्योदारुणोगदः ॥ विचिकित्स्योपिदेवानां तथा
धन्वन्तरेरपि ॥६१॥ नीलाम्बरधरःक्षामो दीनोदण्डंसमाश्रितः॥क्षुत्कुर्वञ्छ्लेष्मणातावत्कृच्छ्रात्सन्धारयन्पदम् ॥६२॥
ततश्चप्रणतोभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ यक्ष्मोवाच ॥ तवयज्ञमहंश्रुत्वा दूरादेवपितामह ॥ ६३ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठआयात
स्समागत्याद्यकृच्छ्रतः ॥ दक्षेणाहंपुरासृष्टश्चन्द्रार्थंकुपितेनच ॥ ६४ ॥ रोहिणींसेवमानश्चसंत्यक्त्वान्याःसुतास्तथा॥
स्तुतोमहेश्वरोदेवस्तेनतुष्टेनतस्यच ॥ ६५ ॥ पक्षमेकंकृतंमह्यं तस्यासादनकर्म्मणि ॥ अन्यपक्षेनकिञ्चिचयेनवृद्धिः
प्रजायते ॥६६॥ यज्ञस्यैवतुसर्वस्य तर्पयित्वाद्विजोत्तमम् ॥ ततस्तद्वचनंग्राह्यं तर्प्पितोहमसंशयम्॥६७॥पौर्णमास्यां त
तोदेव यस्ययज्ञस्यकृत्स्नशः॥पश्यन्तोब्राह्मणायेन यज्ञस्यान्तेनतर्प्पिताः ॥६८॥ तर्प्पितोस्मीतितेनास्य वृथास्याद्यज्ञ

प्राप्त हुआ हूं जोकि मैं पुरातन समय चन्द्रमा के लिये क्रोधित दक्ष जीसे रचागयाथा ॥ ६३ । ६४ ॥ जो चन्द्रमा कि दक्षकी अन्य कन्यकाओं को छोड़कर रोहिणी को सेवता था उसने महेश्वर देवकी स्तुति किया व उसके ऊपर प्रसन्न हुये उन शिवजीने ॥ ६५ ॥ उसके क्लेशकर्म में एक पक्षको मेरे लिये किया अन्यपक्ष में कुछ नहीं किया कि जिससे वृद्धि होती है ॥ ६६ ॥ समस्त यज्ञ के अन्त में द्विजोत्तम को तृप्त कराकर तदनन्तर उसके वचन ग्रहण करना चाहिये कि मैं निस्सन्देह तृप्तहूं॥६७॥ तदनन्तर हे देव ! पौर्णमासीमें सम्पूर्ण यज्ञको देखतेहुये ब्राह्मणोंको जिसने जिस यज्ञ के अन्त में तृप्त नहीं कराया ॥६८॥ उससे मैं तृप्त कराया

ब्रह्माने देवताओं समेत स्नान किये व नम्रतासे नीचे खड़ेहुये इन्द्रसे आदर समेत कहा कि ॥४६॥ हे सहस्रलोचन ! मेरी यज्ञमें तुमने बड़ा कष्ट किया इसलिये मनोरथ को मांगिये इससमय मैं उसको तुम्हें दूंगा इन्द्र बोले कि हे सुरनायक ! यदि तुम प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदान देने योग्य है ॥ ५० ॥ हे विभो ! यदि मैं तुम से आज प्रार्थना करूं तो वह वैसाही होवै कि हे पितामहजी ! प्रतिवर्षमें इस उत्तम दिन के प्राप्त होने पर जो भूपति बांस के अग्रभाग में मृगचर्म को भलीभांति धर कर व आपही उत्तम हाथी पै सवार होकर वैसाही करै ॥ ५१।५२ ॥ व यथायोग्य जलमें फेंक देवै वह पापसे रहित व समस्त शत्रुओंके न जीतने योग्य और सब वि-

हस्राक्षत्वयाकष्टं मन्मखेविपुलंकृतम् ॥ तस्मात्प्रार्थयचाभीष्टं तत्तेयच्छामिसाम्प्रतम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश यदिदेयोवरोमम ॥५०॥ यदित्वांप्रार्थयाम्यद्य भूयात्तत्तादृशंविभो ॥ वर्षेवर्षेतथाकुर्य्यात्सम्प्राप्तेस्मिन्दिनेशुभे ॥ ५१ ॥ मृगचर्म्मसमाधाय वंशाग्रेयोमहीपतिः ॥ नागप्रवरमारुह्य स्वयमेवपितामह ॥ ५२ ॥ यथार्हंप्रक्षिपेत्तोयेसस्यात्पापविवर्जितः ॥ अजेयस्सर्वशत्रूणां सर्वव्यसनवर्जितः ॥ ५३ ॥ येकरिष्यन्तिचब्रह्मन्ननेनमृगचर्म्मणा ॥ सार्द्धमन्येपियेलोका अपिपापसमन्विताः ॥ ५४ ॥ तेषांवर्षकृतंपापं त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्सर्वंसहस्राक्ष तववाक्यमसंशयम् ॥ ५५ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ योराजाश्रद्धयायुक्तो वैदिशस्यसमुद्भवः ॥ ५६ ॥ आनर्तस्यगजारूढो मृगचर्म्मंक्षिपिष्यति ॥ अत्रकुण्डेमदीयेतु मांसंपूज्यतटस्थितम् ॥ ५७ ॥ सर्वलोकहितार्थाय सम्प्राप्तेप्रतिपद्दिने ॥ सम्प्राप्तेकुतुपेकाले विजयीसभविष्यति ॥ ५८ ॥ कार्त्तिक्यांचव्यतीतायां द्वितीयेह्निव्यव

पत्तियोंसे वर्जितहोवे ॥५३॥ व हे ब्रह्मन् ! इस मृगचर्म समेत जो पुरुष स्नानकरैं वे और अन्य भी जो मनुष्य पापसंयुक्त भी होवैं ॥५४॥ उनका वर्षभरमें कियाहुआ पाप तुम्हारी प्रसन्नता से नाश होजावे ब्रह्मा बोले कि हे सहस्रलोचन ! यह सब तुम्हारा वचन निरसन्देह होगा इस में संशय नहीं है मैंने यह सत्य कहा है कि वैदिश व आनर्त देशका उत्पन्न श्रद्धासंयुत जो राजा सब नरों के हितके लिये हाथी पै चढ़कर मृगचर्म को इस मेरे कुण्ड में फेंकैगा व परेवा दिनके भलीभांति प्राप्त होने पर जब कुतुप (मध्याह्नका दूसरा मुहूर्त्त) प्राप्तहोवै तब किनारे पै टिकेहुये मुझ को भलीभांति पूजकर वह विजयवान् होगा ॥ ५५ । ५६ । ५७ । ५८ ॥

व्याप्त होने पर वहां न ब्रह्मा और न वरुणवाला वह कर्म देख पड़ताथा ॥ ३९ ॥ इस के अनन्तर उस कर्म के अन्त में समस्त मनुष्यों के हित के लिये ब्रह्माने नम्रता से नीचे नये खड़े हुये इन्द्र से कहा ॥ ४० ॥ कि स्नान के लिये आयेहुये दूरमें टिके मनुष्य जल में उपजे इस संमर्द में पुण्यदायक जल में नहातेहुये मुझको न जानैंगे ॥ ४१ ॥ इस लिये हे वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र जी ! अपने हाथी पै चढ़कर और कृष्णसार मृग के चर्म को बांसके आगे धरकर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर स्नान के समय में तुमको वह जलमें फेंकना चाहिये कि जिससे ये समस्त मनुष्य स्नानसे उपजे हुये समय को जानैं ॥ ४३ ॥ व स्नान करैं और यथोदित कल्याण

थान्तेकर्म्मणस्तस्यब्रह्माप्राहशतक्रतुम् ॥ हितार्थंसर्वलोकस्य विनयावनतंस्थितम् ॥ ४० ॥ नमांज्ञास्यन्तिदूरस्था जनाःस्नानार्थमागताः ॥ मज्जमानंजलेपुण्ये संमर्देस्मिञ्जलोद्भवे ॥ ४१ ॥ तस्मान्नागंसमारुह्य निजंवृत्रनिषूदन ॥ एणस्यकृष्णसारस्य वंशाग्रेचर्म्मन्यस्यच ॥ ४२ ॥ ततस्तत्स्नानवेलायां क्षेप्तव्यंसलिलेत्वया ॥ येनलोकस्समस्तोयं वेत्तिकालन्तुस्नानजम् ॥ ४३ ॥ स्नानञ्चकुरुतेश्रेयःसम्प्राप्नोतियथोदितम् ॥ दूरस्थोपिसुवृद्धोपि बालोपिचसमागतः ॥ ४४॥ स्नानजंलभतेश्रेयस्तस्मात्त्वंकुरुमेवचः ॥सूतउवाच॥ बाढमित्येवसप्रोच्य सत्वरंप्रययौहरिः ॥ ४५ ॥ ततोनागंसमारुह्य कृत्वावंशंकरेनिजे ॥ मृगचर्म्मसमायुक्तंतोयमध्येव्यवस्थितः ॥ ४६ ॥ एतत्कर्म्मावसानेस स्नातुकामेपितामहे ॥ तच्चर्म्मप्राक्षिपत्तोये स्वयमेवशतक्रतुः ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवास्सर्वेगन्धर्वगुह्यकाः ॥ मानुषाश्चविशेषेण स्नातास्तत्रसमाहिताः ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा शक्रंप्रोवाचसादरम् ॥ कृतस्नानंसुरैस्सार्द्धं विनयावनतंस्थितम् ॥ ४९ ॥ स

या पुण्य को भलीभांति पावैं भलीभांति आया व दूर टिकाहुआ भी व अतिवृद्ध भी और बालक भी ॥ ४४ ॥ स्नान से उपजे हुये पुण्य या कल्याण को पाता है उसी कारण तुम मेरे वचन को करो सूतजी बोले कि वे इन्द्र जी हां यही कहकर शीघ्रता से गये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर मृगचर्म से संयुत बांसको अपने हाथमें कर के हाथी पै भलीभांति चढ़कर जल के बीचमें विशेषता से खड़ेहुये ॥ ४६ ॥ व इस कर्म के अन्तमें ब्रह्मा को नहाने की इच्छा करने पर इन्द्रजी ने आपही उस चर्म को जल में फेंक दिया ॥ ४७ ॥ इसी अवसर में सावधान होते हुये समस्त देवता, गन्धर्व, गुह्यक व विशेषकर मनुष्योंने वहां स्नान किया ॥ ४८ ॥ इसी अवसर में

होम कीजाती है वैसेही समस्त अशुभों की शान्ति के निमित्त ऋत्विजों समेतही स्नान करना चाहिये ॥ २९ । ३० ॥ उस समय में तुम्हारे साथ जो अन्यभी कोई ब्राह्मण स्नान करैगा वह पापहीन होगा ॥ ३१ ॥ स्थावर जङ्गम समेत इस त्रिलोक में जो तीर्थ हैं वे वरुणवाली यज्ञ को प्राप्तहोकर जहां समीप में प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये अवभृथ के उछाह में समस्त उपाय से दीक्षित (यज्ञकर्ता) समेत ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों व समस्त साथियों को वहां जल के बीच में स्नान करना चाहिये इस लिये इन ब्राह्मणों को तभीतक बिदा कीजिये ॥ ३३ । ३४ ॥ क्योंकि ये भी तुम्हारे साथ वहां स्नान करैंगे सूत जी बोले कि उसको सुनकर उससमय

तम् ॥ २९ ॥ वरुणस्यप्रतुष्ट्यर्थं स्नानंकार्य्यंतथैवच ॥ ऋत्विग्भिस्सहितेनैव सर्वानिष्टप्रशान्तये ॥ ३० ॥ यस्तत्रसम
येस्नानं करिष्यतित्वयासह ॥ अन्योपिमानवःकश्चिद्विपाप्मासभविष्यति ॥ ३१ ॥ यत्रेहसन्तितीर्थानि त्रैलोक्येसच
राचरे ॥ वारुणीमिष्टिमासाद्य तानियान्तिचसन्निधौ ॥३२॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीक्षितेनसमन्वितैः॥तत्रस्नानंप्रकर्तव्यं
जलमध्येतुसार्थिभिः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैस्सर्वैरवभृथोत्सवे ॥ तस्माद्विसर्जयेच्चैतान्ब्राह्मणांस्तावदेवहि ॥ ३४ ॥
एतेपिचकरिष्यन्ति स्नानंतत्रत्वयासह ॥ सूतउवाच॥तच्छ्रुत्वाप्रस्थितोब्रह्माज्येष्ठंकुण्डंतदाशुभम् ॥ ३५ ॥ गायत्र्यास
हितोहृष्टः कृतकृत्यत्वमागतः ॥ अथतद्वचनंश्रुत्वासुरास्सर्वेतथाद्विजाः ॥ ३६ ॥पुलस्त्यश्चशुभार्थाय स्नानार्थंप्रस्थितस्त
था॥ब्रह्मणासहिताहृष्टाः पुत्रदारसमन्विताः ॥ ३७॥अथसंकीर्णतांजातास्समाजेज्येष्ठपुष्करे ॥ स्नानार्थमाश्रितैर्लो
कैरूर्ध्वबाहुभिरेवच ॥ ३८ ॥ नतत्रलक्ष्यतेब्रह्मानतत्कर्म्मचवारुणम् ॥ सर्वैरेवद्विजैस्तत्रव्याप्तेभूमितलेखिले ॥ ३९ ॥ अ

कृतकृत्यताको प्राप्त व प्रसन्न होते हुये गायत्री समेत ब्रह्मा ने उत्तम जेठे कुण्डको प्रस्थान किया इसके अनन्तर उस वचनको सुनकर समस्त देवताओं व द्विजोंने ॥ ३५ । ३६ ॥ व पुलस्त्यजी ने शुभके निमित्त व स्नान के लिये प्रस्थान किया इसके अनन्तर पुत्र, स्त्रियों समेत प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा समेत सब ज्येष्ठपुष्करवाली सभा में एकत्र होगये याने एक में मिल गये व स्नान के लिये ऊर्ध्वबाहुवालेही मनुष्यों के आश्रित होने से ॥ ३७ । ३८ ॥ उस समस्त भूतलको सबही ब्राह्मणों से

ब्रह्मा बोले कि मन्त्र से बुलाया हुआ उत्तम पुष्करतीर्थ उस आकाशमार्ग से हाटकेश्वरजी के क्षेत्र में आवैगा ॥ २० ॥ और हे ब्राह्मणो ! तीर्थगामी जो पुरुष अघमर्षण (ऋतंचसत्यंचेति) इस मन्त्र का जपकरैगा व स्नानकर जो ब्राह्मण चारों समयों में मेरी मूर्त्ति के आगे बैठकर पैल, मैत्रेयपूर्वक मन्त्र को जपैगा उस को मैं ब्रह्मलोक से भलीभांति आकर सुनूंगा ॥ २१ । २२ ॥ सूत बोले कि इस के अनन्तर प्रसन्नहो उन समस्त नागरब्राह्मणों ने यज्ञके फलकी सिद्धिके लिये पुण्य दान के पूर्ण करनेवाली आज्ञा को दिया ॥ २३ ॥ इसी अवसर में यजुर्वेदियों में उत्तम पुलस्त्य जी वहां प्राप्त हुये कि जिस स्थान में नागरों से घिरेहुये ब्रह्मा जी

मन्त्राहूतंततःश्रेष्ठं नभोमार्गाद्विजोत्तमाः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे पुष्करंचागमिष्यति ॥ २० ॥ अघमर्षणजपंचैव यःकरिष्यतितीर्थगः ॥ ममभूर्तेःपुरःस्थित्वा पैलमैत्रेयपूर्वकम् ॥ २१ ॥ जपिष्यतिद्विजःस्नात्वा सवनानाञ्चतुष्टयम् ॥ ब्रह्मलोकात्समागत्य प्रश्रोष्यामिचतद्विजाः ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ अथतेनागरास्सर्वे पुण्यदानप्रपूरकाम् ॥ अनुज्ञांप्रददुस्तुष्टा यज्ञस्यफलसिद्धये ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः पुलस्त्योध्वर्य्युसत्तमः ॥ यत्रस्थानेस्थितोब्रह्मा नागरैःपरिवारितः ॥ २४ ॥ अब्रवीचसमभ्येत्य यज्ञस्सम्पूर्णदक्षिणः ॥ प्रायश्चित्तैर्विरहितो यथानान्यस्यकस्यचित् ॥ २५ ॥ अतःपरंकर्म्मशेषं किञ्चिदस्तिपितामह वरुणेष्टिञ्जपञ्चैतंकरिष्यामिचसांप्रतम् ॥ २६ ॥ तथाचावभृथस्नानं प्रकर्त्तव्यंत्वयासह ॥ तस्माद्उत्तिष्ठगच्छामोयत्रतोयंव्यवस्थितम् ॥ २७ ॥ येनेष्टिंवारुणींतत्र कुर्म्मोविप्रैर्यथोचितैः ॥ ऋत्विग्भिर्ब्रह्मपूर्वैश्चसाचार्य्याग्नीध्रहोतृभिः ॥ २८ ॥ यथावह्नौतथातोयेसर्वैस्तत्रहविःशुभम् ॥ हूयतेसंविधानेन यज्ञपात्रैस्समन्वि

स्थित थे ॥ २४ ॥ व भलीभांति आकर बोले कि प्रायश्चित्तों से रहित व सम्पूर्ण दक्षिणाओंवाला यज्ञ हुआ जैसा कि और किसी का नहीं हुआ है ॥ २५ ॥ हे पिताजी ! इस के उपरान्त कुछ कर्म शेष है इस समय में वरुणेष्टि व इस जपको करूंगा ॥ २६ ॥ वैसेही तुम्हारे साथ अवभृथ स्नान करना चाहिये इसलिये उठो चलै जहां कि जल धरा है ॥ २७ ॥ कि जिससे वहांपर हम लोग यथायोग्य ब्राह्मणों व ब्रह्मापूर्वक ऋत्विजों और आचार्य, आग्नीध्र व होताओं समेत लें पूजन को करै ॥ २८ ॥ वहां जैसे अग्नि में वैसेही जल में यज्ञपात्रों समेत सब होताओं से भलीविधि के द्वारा वरुणजी की प्रसन्नता के लिये उत्तम हव्य

१०।११ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि हे द्विजोत्त-
हे सुरश्रेष्ठ पितामहजी ! उसके माहात्म्यको हम लोगों से कहिये कि जिस से हम लोग स्नानादिक समस्त कर्मों को करैं ॥ १०।११ ॥ ब्रह्मा जी बोले कि हे द्विजोत्त-
मो ! सदैव आकाश में स्थित होनेवाले इस तीर्थ को मैंने रचा है क्या पुराणों में आप लोगों ने नहीं सुना है ॥ १२ ॥ कि पृथ्वी में नैमिष तीर्थ व आकाशमें पुष्कर
और विशेष कर त्रिलोक में भी कुरुक्षेत्र व्यवस्थित है ॥ १३ ॥ मेरे वचनसे प्रेरणा कियाहुआ वह तीर्थ तुम लोगों के हित के लिये भूतलमें निस्सन्देह पांच रातें आवै-
गा ॥ १४ ॥ कातिक के शुक्लपक्ष में एकादशी दिन के स्थित होने पर जबतक पापों के नाशनेवाली पौर्णमासी तिथि होवै तबतक ॥ १५ ॥ पांच रातों के बीच में

यदेतद्भवताचात्र पुष्करंतीर्थमुत्तमम् ॥ १० ॥ स्थापितंतस्यनोब्रूहि माहात्म्यंसुरसत्तम ॥ येनस्नानादिकास्सर्वाःक्रि
याःकुर्म्मःपितामह ॥११॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्तीर्थंमयासृष्टमन्तरिक्षस्थितंसदा ॥ किन्नश्रुतंपुराणेषु भवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥
१२ ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रैलोक्येपिकुरुक्षेत्रं विशेषेणव्यवस्थितम् ॥ १३ ॥ तद्युष्माकं
हितार्थाय पञ्चरात्रंधरातले ॥ आगमिष्यत्यसन्दिग्धं ममवाक्यप्रणोदितम् ॥ १४ ॥ कार्त्तिक्यांशुक्लपक्षेतु एकादश्या
दिनेस्थिते ॥ यावत्पञ्चदशीतावत्तिथिःपापप्रणाशिनी ॥ १५ ॥ पञ्चरात्रस्यमध्येतुयःस्नानञ्चकरिष्यति ॥ श्राद्धंवा
श्रद्धयायुक्तस्तस्यस्यादक्षयंहितत् ॥ १६ ॥ अहंवैपञ्चरात्रञ्चब्रह्मलोकादुपेत्यच ॥ संश्रयञ्चकरिष्यामि तीर्थेत्रैवद्विजोत्त
माः ॥ १७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ तवमूर्तिंकरिष्यामः स्थानेत्रप्रपितामह ॥ तस्मात्संक्रमणंनित्यं सदाकार्य्यंत्वयाविभो ॥
१८ ॥ तीर्थंचैवसदाप्यत्र समागच्छतुचाम्बरात् ॥ लोकानांपापनाशाय तस्मादानयनिर्म्मितम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥

जो स्नान करैगा व श्रद्धासे युक्तहो श्राद्ध करैगा उसका वह अविनाशी होगा ॥ १६ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मलोक से आकर मैं पांचरातों तक अवश्य कर इसी
तीर्थ में टिकाश्रय करूंगा ॥ १७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे विभो ब्रह्माजी ! हमलोग इस स्थान में तुम्हारी मूर्ति को करैंगे इस लिये सदैव नित्यही तुमको भलीभांति
आगमन करना चाहिये ॥ १८ ॥ व तीर्थ भी सदैवही आकाशसे भलीभांति आवै इस लिये मनुष्यों के पाप नाशनेके लिये निर्माण किये हुये तीर्थको आनिये ॥१९॥

दो० । जिमि अवभृथ असनानमें आये नर अरु देव । कहत एकसौ असीमें सोई उत्तम भेव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें इस क्रमसे समस्त कामोंकी समृद्धिमती पांचरातें व्यतीत हुईं ॥ १ ॥ तदनन्तर उस यज्ञकी समाप्तिमें ब्राह्मणों,कुमारों व विशेषकर दीनों व अन्धों तथा समस्त जनोंको भली भांति तृप्तकर ॥२॥ तदनन्तर उन यथोक्त ऋत्विज् द्विजोत्तमोंको दक्षिणाओंसे तृप्तकरके चिन्तन किया व चतुरतासे सम्पन्न तथा श्रुति, स्मृतिसे संयुक्त उन नागर द्विजोत्तमों से हाथजोड़कर आदर समेत कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! कलिकालके डरसे मैंने भूमि में जिस दूसरे पुष्कर को भलीभांति निवेशित किया

सूतउवाच ॥ एवंक्रमेणसञ्जातं पञ्चरात्रंद्विजोत्तमाः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सर्वकामसमृद्धिमत् ॥ १ ॥ विप्राणांचकुमाराणां दीनान्धानांविशेषतः ॥ समाप्तौतस्ययज्ञस्य संतर्प्यसकलांस्ततः ॥ २ ॥ ऋत्विजोदक्षिणाभिस्तान्यथोक्तान्द्विजसत्तमान् ॥ ततस्संचिन्तयामास नागरान्ब्राह्मणोत्तमान् ॥३॥ चातुर्य्येणचसम्पन्नाञ्छ्रुतिस्मृतिसमन्वितान् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा ततस्तान्प्राहसादरात् ॥ ४ ॥ यद्भूमौतुमयातीर्थं पुष्करंसन्निवेशितम् ॥ कलिकालस्यभीतेन द्वितीयंब्राह्मणोत्तमाः ॥ ५ ॥ येनैनोनाशमभ्येतिम्लेच्छैरपिसमाश्रितैः ॥ हाटकेश्वरदेवस्य प्रभावेणमहात्मनः ॥ ६ ॥ कलिकालेचसम्प्राप्ते तीर्थान्यायतनानिच ॥ म्लेच्छैस्स्पृष्टान्यसन्दिग्धं प्रयागादीनिकृत्स्नशः ॥ ७ ॥ यज्ञस्तु विहितस्तेन मयायंतत्कृतेनच ॥ तस्माद्ददथकिन्देयं युष्मद्भूमेरपिक्रये ॥ ८ ॥ प्रयच्छामिचयज्ञस्य येनमेस्यात्फलंद्विजाः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदियच्छसिचास्माकं दक्षिणांयज्ञसम्भवाम् ॥ ९ ॥ तदस्माकंस्ववामेन स्थानंनयपवित्रकम् ॥

है ॥५॥ कि जिससे महात्मा हाटकेश्वर देवके प्रभावसे म्लेच्छोंके भी भलीभांति टिकनेसे पातक नाशको प्राप्त होताहै॥६॥ व कलिकालके भलीभांति प्राप्तहोनेपर म्लेच्छों से छुयेहुये प्रयागादिक समस्त तीर्थ व मन्दिर निस्सन्देह नाशहोजाते हैं ॥ ७॥ उससे मैंने यह यज्ञ किया इस लिये उसके करने से तुम लोग कहो कि तुम्हारी भूमि के भी मूल्य में क्या देना चाहिये ॥ ८ ॥ उसको मैं देऊं कि जिस से हे ब्राह्मणो ! मुझ को यज्ञ का फल होवै ब्राह्मण लोग बोले कि यदि यज्ञ से उपजी हुई दक्षिणा हम लोगोंको देते हो ॥ ९ ॥ तो अपने बाईं ओर से हम लोगोंके लिये पवित्रस्थान को प्राप्त कीजिये व आपने यहां जो इस उत्तम पुष्कर तीर्थ को स्थापित किया है

इसी अवसर में देवशर्मा द्विजोत्तम प्राप्तहुआ जोकि उस समय स्त्री समेत पर्वत नामक गन्धर्व पैदाहुआ है ॥ २० ॥ जब क्रोधित होतेहुये नारददेवर्षिने औदुम्बरी को शापदिया कि मानुषी होवो तब उसने भलीभांति प्रार्थना किया ॥ २१ ॥ कि हे पिताजी ! मातासमेत तुम मेरे लिये मनुष्य होकर मुझको भजिये कि जिससे हे विभो ! विष्ठा, मूत्रसे संयुक्त व समस्त दोषोंसे संयुत मनुष्यवाले गर्भमें मैं न जाऊं तदनन्तर उसके ऊपर दयासे स्त्रीसमेत उस पर्वत नामक गन्धर्वने ॥ २२ । २३ ॥ भूपृष्ठमें अवतार लिया तदनन्तर वानप्रस्थ आश्रम में हुआ इस प्रकार उदुम्बरीके व्यतिक्रमके कारण मनोहर उछाहसे उस यज्ञकी वह पांचवीं रात्रि व्यतीतहुई तद-

सहितस्तदा ॥ २० ॥ यदाचौदुम्बरीशप्ता नारदेनसुरर्षिणा ॥ मानुषीभवक्रुद्धेन तदासम्प्रार्थितस्तया ॥ २१ ॥ मदर्थंमानुषोभूत्वा तातत्वंचाम्बयासह ॥ भजमांमानुषेचैव येनगच्छामिनोविभो ॥ २२ ॥ विण्मूत्रसंयुतेगर्भे सर्वदोषसमन्विते ॥ ततस्सकृपयातस्यास्सहपत्न्याचपर्वतः ॥ २३ ॥ अवतीर्णोधरापृष्ठे वानप्रस्थाश्रमेततः ॥ एवंसापञ्चमीरात्रिस्तस्ययज्ञस्यसागता ॥ २४ ॥ उत्सवेनमनोज्ञेन उदुम्बर्य्याव्यतिक्रमात् ॥ प्रत्यूषेचततोजाते यदातेनविसर्जिता ॥ २५ ॥ औदुम्बरीतदाप्राह पर्वतंजनकंनिजम् ॥ कल्पेत्रावभृथोभावी विधियज्ञसमुद्भवः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयस्तस्मिन्स्नानंकृत्वाततःपरम् ॥ यास्यामःस्वगृहंभूयस्सर्वैर्देवैस्समन्विताः ॥ २७ ॥ अनेनैवविमानेन त्रयश्चापियथासुखम् ॥ ममापिचवरोजातो यःशापोनारदोद्भवः ॥ २८ ॥ यज्ञभागोमयाप्राप्तो देवानामपिदुर्लभः ॥ पौर्णमासीदिनेप्राप्ते विशेषात्स्त्रीजनैःकृतः ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेउदुम्बर्य्युत्पत्तिर्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७९ ॥

नन्तर प्रातःकाल होनेपर जब उसने बिदा किया ॥ २४ । २५ ॥ तब औदुम्बरी ने पर्वत नामक अपने पितासे कहा कि प्रातःकाल यहां ब्रह्माकी यज्ञसे उपजाहुआ समस्त देवमय अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) होगा उसमें स्नान करके तदनन्तर सब देवोंसे संयुत होतीहुई फिर अपने घरको इसी विमानके द्वारा तीनोंभी सुखपूर्वक जावैंगे नारदसे उपजाहुआ जो शापथा वह मुझकोभी वरदानहोगया ॥ २६ । २७ । २८ ॥ क्योंकि मैंने देवताओंसेभी दुर्लभ यज्ञभागको व पौर्णमासी दिनके प्राप्तहोनेपर विशेषकर स्त्रीजनोंसे कियेहुये पूजनको पाया ॥२९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे उदुम्बर्युत्पत्तिर्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ❀ ॥

शापदिया तबतक नष्ट मनोरथोंवाली होगई ॥ १० ॥ इसलिये हे कल्याणि ! जिसप्रकार हम सबोंकी गतिहोवै वैसाही कीजिये क्योंकि तुम्हारा माहात्म्य स्थावर जङ्गम समेत त्रिलोकमें भी व्याप्तहै ॥ ११ ॥ उदुम्बरी बोली कि सावित्रीसे उपजेहुये वचनको अन्यथा करनेके लिये हमारे कौन सामर्थ्य विद्यमान है व ऐसेही समस्त देवों, दैत्योंसे अन्यथा करनेके लिये सामर्थ्य नहीं है ॥ १२ ॥ तिसपर भी तुम सबोंके हितके लिये मैं शक्तिसे सब यत्न करूंगा आप सबको प्रसन्नहोतेहुये ब्रह्माने अरसठि गोत्रोंमें भलीभांति युक्त किया है वहांपर तुम सब रातमें हास्यपूर्वकही संज्ञाओंसे पूजनको पावोगी ॥ १३ । १४ ॥ आजसे लगाकर जिस नागर के घरमें विशेषकर

था ॥ १० ॥ तस्मात्कुरुष्वकल्याणि यथास्माकंगतिर्भवेत् ॥ माहात्म्यंतवयद्व्याप्तं त्रैलोक्येपिचराचरे ॥ ११ ॥ उदुम्ब
र्य्युवाच ॥ काशक्तिर्विद्यतेस्माकं कर्तुंसावित्रिसम्भवम् ॥ अन्यथाकर्तुमेवंच सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ १२ ॥ तथापिशक्तित
स्सर्वं यतिष्यामिहितायवः ॥ अष्टिषष्टिषुगोत्रेषु भवत्यःसन्नियोजिताः ॥ १३ ॥ पितामहेनतुष्टेन तत्रपूजामवाप्स्यथ ॥
यूयंरात्रौचसंज्ञाभिर्हास्यपूर्वाभिरेवच ॥ १४ ॥ अद्यप्रभृतियस्यात्र नागरस्यतुमन्दिरे ॥ वृद्धिःसम्पत्स्यतेकाचिद्विशेषा
न्मण्डपोद्भवा ॥ १५ ॥ तथायायोषितःकाश्चित्पुरद्वारंसमेत्यच ॥ अदृष्टहास्यमाधाय प्रयच्छन्तिबलिन्ततः ॥ १६ ॥
तेनवोभवितातृप्तिर्देवानाञ्चतथामखैः ॥ याःपुनर्नकरिष्यन्तिपूजामेतांमयोदिताम् ॥ १७ ॥ युष्माकंपुनरेतासां सुपु
त्रोनाशमाप्स्यति ॥ युष्माकमपमानेन सदारोगीभविष्यति ॥ १८ ॥ तस्मात्तिष्ठध्वमत्रैव रक्षार्थंनगरस्यच ॥ शाप
व्याजेनयुष्माकं वरोयंसमुपस्थितः ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो देवशर्म्माद्विजोत्तमः ॥ गन्धर्वःपर्वतोजातस्सपत्न्या

मण्डपसे उपजीहुई या कोई वृद्धि भलीभांति प्राप्तहोगी ॥ १५ ॥ व वैसेही जो कोई स्त्रियां नगरके द्वारपै भलीभांति आकर न देखे हुये हास्यको करके तदनन्तर वलि देवैंगी ॥ १६ ॥ उससे व देवोंकी यज्ञोंसे तुम सबोंकी तृप्तिहोगी व फिर जो तुम सबोंकी मुझसे कहीहुई इस पूजाको न करैंगी इनका उत्तमपुत्र फिर नाशको प्राप्तहोगा व तुम सबोंके अपमानसे सदैव रोगी होगा ॥ १७ । १८ ॥ इसलिये नगरकी रक्षाके लिये यहीं टिकिये शापके बहानेसे तुम सबोंको यह वरदान उपस्थितहुआ ॥ १९ ॥

दो० । अरसठि मातन दीन जिमि उदुम्बरी वरदान । इकसौ उन्नासिवेंमहँ सोई करत बखान ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर जबतक सावित्रीने उन माताओंको शापदिया तबतक वे वहां प्राप्तहुईं जहांकि गन्धर्विणी टिकीथी ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रणामकरके उन सबोंने औदुम्बरीसे वचन कहा कि हे देवि ! जिस लिये हम सब तुम्हारे यज्ञमें भलीभांति आई ॥ २ ॥ कि औदुम्बरीकी प्रसन्नतासे यज्ञांशको पावैंगी व हमने सावित्रीको नहीं जाना कि यहां टिकी है ॥ ३ ॥ जोकि दुर्भाग्यके दोषसे संयुत व नागरी स्त्रियोंसे घिरीहुईथी व नृत्य गीतसे उपजा हुआ यह हम सबोंका सुखमार्ग है ॥ ४ ॥ हे गन्धर्वसत्तमे ! रातमें उस नृत्यगीतको करती

सूतउवाच ॥ अथयावच्चताःशप्ता मातरोद्विजसत्तमाः ॥ सावित्र्यातास्तुगन्धर्वी सम्प्राप्तायत्रातिष्ठति ॥ १ ॥ ततः प्रणम्यताऊचुः सर्वाऔदुम्बरींवचः ॥ वयंसमागतादेवि सर्वास्तवमखेयतः ॥ २ ॥ यज्ञभागंलभिष्याम औदुम्बर्य्याः प्रसादतः ॥ नचास्माभिःपरिज्ञाता सावित्रीचात्रतिष्ठति ॥ ३ ॥ दौर्भाग्यदोषसम्पन्ना नागरीभिस्समावृता ॥ अस्मा कंसुखमार्गोयं नृत्यगीतसमुद्भवः ॥ ४ ॥ तंकुर्वाणास्ततोरात्रौ शप्तागन्धर्वसत्तमे ॥ स्त्रीणांदुःखेनदुःखार्ता जायन्तेसर्व योषितः ॥ ५ ॥ यूयमानन्दितास्सर्वाः सपत्न्याममचोत्सवे ॥ तांप्रणम्यप्रपूज्याथ नाहंसम्भावितापिच ॥ ६ ॥ विशेषा न्नृत्यगीतंच प्रारब्धंममचाग्रतः ॥ तस्माद्व्योमगतिर्नैव भवतीनांभविष्यति ॥ ७ ॥ अस्मिन्स्थानेसदादीनास्तथाश्रम विवर्जिताः ॥ संतिष्ठध्वंनवःपूजांकरिष्यन्तिचमानवाः ॥ ८ ॥ दीनानामसमर्थानां यात्राकृत्येषुसर्वदा ॥ तस्यास्तद्वच नन्देवि नान्यथासम्भविष्यति ॥ ९ ॥ औदुम्बर्य्याःपूजनाय ध्रुवंसाहिप्रकामदा ॥ तयात्रसहसाशप्ता यावन्नष्टमनोर

हुईं हम सब शापितहुईं कि स्त्रियोंके दुःखसे समस्त स्त्रियां दुःखसे विकल होती हैं ॥ ५ ॥ और तुम सब मेरी सौतिके उत्साहमें हर्षित होतीहुईं उसको प्रणाम व पूजकर मेरी मर्यादाभी न किया ॥ ६ ॥ और मेरे अगाड़ी विशेपतासे नृत्यगीतका प्रारम्भ किया इसलिये आप सबोंकी आकाशमें गति न होगी ॥ ७ ॥ व सदैव दीन तथा आश्रमसे रहित होतीहुईं तुम सब इस स्थानमें भलीभांति टिको व मनुष्य सदैव यात्राके कार्यों में दीन व समर्थसे रहित तुम सबोंका पूजन न करैंगे हे देवि ! उन सावित्रीजीका वह वचन अन्यथा न होगा ॥ ८ । ९ ॥ औदुम्बरी के पूजनके लिये निश्चयकर वह अभिलाषको देनेवाली है उसने अचानक जबतक हम सबोंको

उत्तम स्त्रीको व्याहाहै ॥ ७८ ॥ उनके उस वचनको सुनकर सावित्रीजी भ्रमित चित्तवाली व दुःख शोचसे संयुत और आंसुओंसे विकल लोचनोंवाली होगई ॥ ७९ ॥ व परम सन्तोषको प्राप्तहुई उन ऊर्ध्व (ऊपर उठेहुये) दांतोंवाली माताओंको भूपृष्ठमें नाचती व वैसेही गातीहुई देखकर ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर सावित्रीने आंसुओं से गद्गदीवाणी के द्वारा शापदिया कि जिसलिये मेरी सौतिको पूजकर तुम सब भलीभांति आईहो ॥ ८१ ॥ व हमको प्रणाम नहीं किया और मेरे दुःख में दुःखित न हुईहो उसी कारण किसी प्रकार अन्य स्थानको न जावोगी ॥ ८२ ॥ व कभी नागरब्राह्मणोंकी पूजा न होगी और तुम लोगोंके कभी घर न होगा ॥ ८३ ॥ व तुम

तच्छ्रुत्वावचनन्तेषां सावित्रीभ्रान्तचेतना ॥ दुःखशोकसमोपेता बाष्पव्याकुललोचना ॥ ७९ ॥ दृष्ट्वातान्नृत्यमा नाश्च गायमानास्तथैवच ॥ ऊर्द्ध्वदन्त्योधरापृष्ठे सन्तोषंपरमङ्गताः ॥ ८० ॥ शशापाथचसावित्री बाष्पगद्गदयागिरा ॥ सपत्न्याममयत्पूजां कृत्वावःसुसमागताः ॥ ८१ ॥ नप्रणामःकृतोस्माकंममदुःखेनदुःखिताः ॥ तस्मान्नैवापरंस्थानं गमिष्यथकथञ्चन ॥ ८२ ॥ नागराणांचनोपूजा कदाचित्प्रभविष्यति ॥ नप्रासादोथयुष्माकं कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ८३ ॥ शीतेनशीतकालेतु उष्णकालेचरश्मिभिः ॥ वर्षाकालेतुतोयेन क्लेशंयास्यथभूरिशः ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वातदादेवी सातत्रैवव्यवस्थिता ॥ नागराणांवरस्त्रीभिस्सर्वाभिःपरिवारिता ॥ ८५ ॥ संबोध्यमानासततंसुस्त्रीणांचेष्टितेनच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ ८६ ॥ अस्तंगतोमहाञ्छब्दः प्रोत्थितोयज्ञमण्डपे ॥ याज्ञिकानांचविप्राणां सुमहाञ्छास्त्रसम्भवः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मातृगणानयनंनामाष्टसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७८ ॥

लोग ठण्ढक समयमें जाड़से व गरम समयमें किरणों से तथा वर्षाकालमें जलसे बड़े क्लेशको पावोगी ॥ ८४ ॥ उस समय ऐसा कहकर वे सावित्री देवी वहीं विशेषता से टिकगई और नागरोंकी समस्त उत्तम स्त्रियोंसे घिरीहुई वे सावित्रीजी सदैव उत्तम स्त्रियों के व्यवहारोंसे भलीभांति समझाई गई इसी अवसरमें तीक्ष्ण किरणोंवाले भगवान् सूर्यनारायणजी ॥ ८५ । ८६ ॥ अस्त होगये व यज्ञमण्डपमें यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंका शास्त्रसे उपजा हुआ बड़ाभारी शब्द उठताभया ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येमातृगणानयनन्नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥ ॥

प्रमाणसे स्थान देवैं हे नागरब्राह्मणो ! आप लोगोंको मेरी यह सहायता करना चाहिये ॥ ६८ । ६९ ॥ कि जिससे उत्तम घरको बनाकर वे प्रसन्नताको प्राप्तहोवैं तदनन्तर उसने शीघ्रही जाकर उन नागर द्विजोंको भलीभांति बुलाकर ॥ ७० ॥ उसके उपरान्त प्रणामकर नम्रतासंयुतहो उस वृत्तान्तको कहा उसको सुनकर परम प्रसन्नताको प्राप्तहोतेहुये उन समस्त नागरोंने ॥ ७१ ॥ उस समय एकहीएक गणको अपने स्थानको दिया तदनन्तर वे समस्त मातायें ब्रह्माको प्रणामकर ॥ ७२ ॥ व उसके उपरान्तही भक्तिपूर्वक गायत्रीको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे भलीभांति बतलायेहुये स्थानमें विशेषतासे टिकगईं ॥ ७३ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकारकी भेटोंमे पूजित

स्वेस्वेभूमिविभागेच स्थानंयच्छन्तुसाम्प्रतम् ॥ एतत्साहायकङ्कार्य्यं भवद्भिर्ममनागराः ॥ ६९ ॥ प्रासादंप्रवरं कृत्वा येनतुष्टिंप्रयान्तिच ॥ ततस्ससत्वरंगत्वा तान्समाहूयनागरान् ॥ ७० ॥ प्रोवाचविनयोपेतः प्रणिपत्यततःपरम् ॥ तच्छ्रुत्वानागरास्सर्वे सन्तोषंपरमंगताः ॥ ७१ ॥ एकैकस्यगणस्यैवाददत्स्थानंनिजंतदा ॥ ततस्तामातरस्सर्वाः प्रणिपत्यपितामहम् ॥ ७२ ॥ तदनन्तरमेवाथ गायत्रींभक्तिपूर्वकम् ॥ विप्रसंसूचितेस्थाने सर्वाश्चैवव्यवस्थिताः ॥ ७३ ॥ पूजितास्तर्पिताश्चैव बलिभिर्विविधैरपि ॥ ततोगायन्तिताहृष्टा नृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ ७४ ॥ तर्पिताब्राह्मणेन्द्रैश्च प्रोचुश्चतदनन्तरम् ॥ नयास्यामःपरंस्थानं स्थास्यामोत्रैवसर्वदा ॥ ७५ ॥ ईदृशायत्रविप्रेन्द्रास्सर्वेभक्तिसमन्विताः ॥ ईदृशंचमहत्क्षेत्रं हाटकेश्वरसम्भवम् ॥ ७६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सावित्रीतत्रसंस्थिता ॥ प्रणिपत्यद्विजैस्सर्वैर्गच्छमानानिवारिता ॥ ७७ ॥ मादेवयजनंगच्छ सावित्रिपतिवल्लभे ॥ ब्रह्मणापरिणीतास्ति गायत्रीतिवराङ्गना ॥ ७८ ॥

व तृप्त कराई हुई वे प्रसन्न मातायें गातीं, नाचती व हँसतीथीं ॥ ७४ ॥ व तदनन्तर द्विजेन्द्रोंसे तृप्त कराई हुई वे मातायें बोलीं कि हमसब उत्तम स्थानको न जावैंगी किन्तु सदैव यहीं टिकैंगी ॥ ७५ ॥ जहांपर कि समस्त द्विजेन्द्र ऐसे भक्तिसे संयुत हैं व हाटकेश्वरसे उपजा हुआ ऐसा बड़ाभारी क्षेत्रहै ॥ ७६ ॥ इसी समयमें प्रणाम करके जातीहुई सावित्रीजी समस्त ब्राह्मणोंसे मनाकीगई व वहांपर भलीभांति टिकीं ॥ ७७ ॥ हे पतिप्रिये, सावित्रीजी ! देवयज्ञको मतजाओ क्योंकि ब्रह्माने गायत्री ऐसी

परकि ब्रह्माजी थे ॥ ५८ ॥ तदनन्तर मस्तकसे प्रणामकर प्रसन्न होते हुये आदर समेत बोले कि हमलोग इसभांति तुम्हारे उत्तम यज्ञको सुनकर भलीभांति आये हैं ॥ ५६ ॥ व हे देवेश ! संसारके आयुर्बलरूपी पवनसे हमलोग निमन्त्रित हुये हैं यज्ञकर्म में हमलोगोंका यज्ञांश नहीं विद्यमान है ॥ ६० ॥ उसीसे हे ब्रह्मन् ! यहां इतने दिनोंतक न आये व हमलोग अपूर्व उदुम्बरीको सुनकर उसीकारण भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ६१ ॥ और हमलोगोंने उसको देखा व प्रणामपूर्वक पूजन किया जिस लिये कि पर्वत नामक महात्मा गन्धर्वकी कन्याहै ॥ ६२ ॥ उसीकारण स्त्रियोंके सब मनोरथों को देनेवाली वह समस्त देवताओंसे थापीगई है हे देव, प्रपितामहजी !

प्रणम्यशिरसाहृष्टास्ततःप्रोचुश्चसादरम् ॥ वयमेवंसमायाताः श्रुत्वातेयज्ञमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ आमन्त्रिताश्चदेवेश वायुनाजगदायुना ॥ यज्ञभागोनचास्माकं विद्यतेयज्ञकर्म्मणि ॥ ६० ॥ एतान्येवदिनानीह नायातास्तेनपद्मज ॥ उदुम्बरीं वयंश्रुत्वा अपूर्वान्तेनसङ्गताः ॥ ६१ ॥ सादृष्टापूजितास्माभिःप्रणिपातपुरस्सरम् ॥ पर्वतस्यसुतायस्माद्गन्धर्वस्यमहात्मनः ॥ ६२ ॥ सर्वकामप्रदास्त्रीणां सर्वदेवैःप्रतिष्ठिता ॥ स्थानन्दर्शयचास्माकं त्वन्देवप्रपितामह ॥ ६३ ॥ अष्टषष्टिप्रमाणश्च गणोस्माकंव्यवस्थितः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजोगत्वा संकीर्णयज्ञमण्डपम् ॥ ६४ ॥ व्याप्तंदेवगणैस्सर्वैस्त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणकैः ॥ ततोमध्यगमाहूय सतदानागरोद्भवम् ॥ ६५ ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नं बृहस्पतिमिवापरम् ॥ अब्रवीच्छ्लक्ष्णयावाचा त्यक्त्वामौनंपितामहः ॥ ६६ ॥ त्वंगत्वाममवाक्येन विप्रान्नगरसम्भवान् ॥ प्रब्रूहिगोत्रमुख्यांश्च अष्टषष्टिप्रमाणतः ॥ ६७ ॥ एतेमातृगणाःप्राप्ता अष्टषष्टिप्रमाणकाः ॥ एकैकशोगोत्रमुख्या एकैकस्यप्रमाणतः ॥ ६८ ॥

तुम हमलोगोंको स्थान दिखलावो ॥ ६३ ॥ क्योंकि हमलोगों का अरसठिसंख्यक गण व्यवस्थितहै उस वचनको सुनकर ब्रह्माने भरेहुये यज्ञमण्डपको जाकर ॥ ६४ ॥ जोकि तेंतीस संख्यक समस्त सुरसमूहों से व्याप्तथा तदनन्तर उस समय उन ब्रह्माजीने मौनको छोड़कर नागर वंशमें उपजेहुये मध्यवर्तीको जोकि शास्त्रके पढ़ने से सम्पन्न व दूसरे बृहस्पतिके समानथा उसे बुलाकर नम्रवाणीसे कहा ॥ ६५ । ६६ ॥ कि तुम जाकर मेरे वचनसे नगरमें उपजेहुये मुख्य गोत्रोंवाले अरसठि संख्यक ब्राह्मणोंसे कहो ॥ ६७ ॥ कि अरसठि प्रमाणवाले ये मातृगण प्राप्तहुये हैं ये मुख्य गोत्रोंवाले इस समय एक एक ब्राह्मण अपने २ भूमिके विभाग में एक एक गणके

व उस नागरीको देवोंके समीप देवत्व कहा वैसेही वहां हम
कि हे सुरनायक, देव ! सामवेदीने समाजके मध्यमें कन्याको धरकर अपने मार्गको वेदसे रहित किया ॥४८॥ व उस नागरीको देवोंके समीप देवत्व कहा वैसेही वहां हम
लोग उसके साथ सोमपान करते हैं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माने उन सामवेदीको आनकर पूछा कि यह कन्या कौनहै और तुमने किसलिये सभाके बीचमें
धराहै ॥ ५० ॥ वे सामवेदीजी बोले कि शापसे भ्रष्टहुई यह गन्धर्विणी ब्राह्मणके घरमें उपजीहै व ब्रह्माकी यज्ञमें इसकी मुक्ति कहीगई है ॥ ५१ ॥ हे देव ! पहले
उस समय नारदने क्रोधसे उसको शापदिया है हे देव ! इस समय प्रसन्नहुये मैंने उसको वरदान दियाहै ॥ ५२ ॥ कि तुम्हारा शंकुका प्रचालन कहीं बाहर न प्राप्त

श्वर ॥ ४८ ॥ देवत्वंजल्पितंतस्या नागर्य्यास्सुरसन्निधौ ॥ सोमपानंतथाकुर्म्मो वयंतत्रतयासह ॥ ४९ ॥ ततोविधिस्तमा
नीय पप्रच्छद्विजसत्तमाः ॥ कासौकन्याकिमर्थंच सदोमध्येधृतात्वया ॥ ५० ॥ सोब्रवीच्छापभ्रष्टेयं गन्धर्वाब्राह्मणा
लये ॥ अवतीर्णाविधेर्यज्ञे मुक्तिरस्याःप्रकीर्तिता ॥ ५१ ॥ नारदेनपुरादेव कोपाच्छप्तातुसातदा ॥ तस्यादेववरोदत्तोम
यातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ शङ्कुप्रचारोनोबाह्यं तवसंपत्स्यतेक्वचित् ॥ देवैस्सर्वैस्समानीता प्रतिष्ठाद्विजसत्तमैः ॥ ५३ ॥
अनेनसहितास्सर्वाः कामिनीलालसेनच ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताः कैलासाच्चद्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥ हृष्टामातृगणायेच
अष्टषष्टिप्रमाणतः ॥ पूज्यन्तेयेचगन्धर्वैस्सिद्धैस्साध्यैर्मरुद्गणैः ॥ ५५ ॥ पृथक्पृथग्विधैरूपैर्लोकविस्मयकारकैः ॥ नृत्यन्त्य
श्चहसन्त्यश्चगायन्त्यश्चतथापराः ॥ ५६ ॥ तासांकोलाहलंश्रुत्वाब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ विस्मयंपरमम्प्राप्तास्सर्वेदेवास्स
वासवाः ॥ ५७ ॥ किमेतदितिजल्पन्तः प्रोत्थितायज्ञमण्डपात् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्सर्वास्तायत्रपद्मजः ॥ ५८ ॥

इसी अवसर में
होगा व द्विजोत्तमों समेत समस्त देवों ने प्रतिष्ठाको भलीभांति प्राप्तकिया ॥ ५३ ॥ व इन समेत समस्त स्त्रियोंने कामिनीकी लालसासे पूजन कियाहै इसी अवसर में
कैलाससे द्विजोत्तम प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ व अरसठि प्रमाणवाले जे मातृगण हैं प्रसन्न होतेहुये वे और जिनको गन्धर्व, सिद्ध, साध्य व पवनगण पूजते हैं वे ॥ ५५ ॥
मनुष्योंको विस्मय करानेवाले भिन्न २ प्रकारके रूपों से संयुत होकर आये व वैसेही अपर शक्तियां नाचतीं, हँसतीं व गातीथीं ॥ ५६ ॥ उनके कोलाहलको सुनकर
ब्रह्मा, विष्णुपूर्वक इन्द्र समेत समस्त देवता बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ५७ ॥ व यह क्याहै ऐसा कहतेहुये यज्ञके मण्डपसे उठे इसी अवसरमें वे सब वहां प्राप्तहुये जहां

लसावाली समस्त स्त्रियां आश्चर्यसे भलीभांति आईं ॥ ३७।३८॥ हे द्विजोत्तमो ! किसीने फलोंको लेकरव किसीने भक्तिसे वसनोंको लेकर उन सबोंने यथायोग्य पूजन किया ॥ ३९ ॥ अपनी कन्याको सुनकर आश्चर्यसे फूलेलोचनोंवाला व प्रसन्नमनवाला वह देवशर्माभी स्त्री समेत आया ॥ ४० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उस समये स्त्री समेत उसनेभी जबतक उसका प्रणाम किया तबतक उसने मनाकिया व कहा ॥ ४१ ॥ कि हे पिताजी ! हे पिताजी !! तुम माता समेत मेरा प्रणाम मत कीजिये क्योंकि हे पिताजी ! प्राप्तहुई मेरी स्वर्गकी गति नाशको प्राप्तहोगी ॥ ४२ ॥ हे विभो ! आज जबतक स्त्रीसमेत तुम यहीं टिको मैं देवोत्तमोंसे मांगकर शीघ्रही स्त्रीसमेत तुमको

त् ॥ ३७ ॥ देवीनगरमध्यस्था सर्वानार्य्योद्विजोत्तमाः ॥ कुतूहलात्समायान्ति तस्यादर्शनलालसाः ॥ ३८ ॥ काचि
त्फलानिचादाय काचिद्वस्त्राणिभक्तितः ॥ यथार्हंपूजितातामिस्सर्वाभिश्चद्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ श्रुत्वास्वदुहितुस्सोपि दे
वशर्म्मासमाययौ ॥ सपत्नीकःप्रहृष्टात्मा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ४० ॥ सोपियावत्प्रणामंच तस्याश्चक्रेद्विजोत्तमाः ॥
सपत्नीकस्तदाप्रोक्तो निषिद्धस्तुतयातथा ॥ ४१ ॥ ताततातनमस्कारं मामेकुरुसहाम्बया ॥ प्राप्तास्वर्गगतिस्तात मम
नाशंप्रयास्यति ॥ ४२ ॥ तिष्ठात्रैवसपत्नीको यावदद्यद्रुतंविभो ॥ त्वामादायसपत्नीकं यास्यामित्रिदिवालयम् ॥ ४३ ॥
अनेनैवशरीरेण याचयित्वासुरोत्तमान् ॥ ततस्तौहर्षितौतत्र मातापित्रौस्वयंस्थितौ ॥ ४४ ॥ प्रेक्षमाणौसुतायास्तां पू
जांजनविनिर्म्मिताम् ॥ मन्यमानौतदात्मानमधिकंसर्वदेहिनाम् ॥ ४५ ॥ तस्ययेस्वजनाःकेचित्सर्वेतेपिद्विजोत्तमाः॥
शंसमानास्सुतांतान्तु तत्समीपेव्यवस्थिताः ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो भृगुर्यत्रपितामहः ॥ निष्क्रम्यसदसस्त
स्मात्कृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ ४७ ॥ उद्भ्रान्तादेवचात्मीयोमार्गःश्रुतिविवर्जितः ॥ विहितःकन्यकान्धृत्वासदोमध्येसुरे

इसी शरीरसे लेकर स्वर्गको जाऊंगी तदनन्तर प्रसन्नहोतेहुये माता, पिता आपही वहां टिके ॥ ४३ । ४४ ॥ उस समय नरोंसे निर्माण कीहुई कन्याकी पूजाको देखते हुये वे दोनों समस्त शरीरधारियों के मध्यमें अपनाको अधिक मानरहे थे ॥ ४५ ॥ उसके जो कोई स्वजन थे वेभी समस्त द्विजोत्तम उस कन्याकी प्रशंसा करते हुये उसके समीप विशेषतासे खड़ेहुये ॥ ४६ ॥ इसी अवसर में उस समाजसे निकल कर हाथ जोड़ेहुये भृगुजी वहां प्राप्तहुये जहां कि ब्रह्माजीथे और उनसे बोले ॥४७॥

बोले कि उसके उसवचनको सुनकर इसके अनन्तर सामवेदीने उससे कहा ॥ २७ ॥ कि आजसे लगाकर जो यहां यज्ञकरैगा वह समाजके बीचमें तुमको भलीभांति थापकर व विलेपनों तथा वसनों व आभूषणों और चन्दन, पुष्प, अनुलेपनोंसे पूजकर तदनन्तर उस प्रतिमाके आगे शंकुप्रचारको करैंगे ॥ २८ । २९ ॥ मैंने समस्त देवताओंके समागम में यह वचन कहा अन्यथा न होगा तुम्हारा कल्याणहोवै तुम परम सन्तोषको प्राप्तहोवो ॥ ३० ॥ हे भद्रे ! जो तुमसे रहित सभाका कार्य करैगा वह सब वैसेही वृथा होजावैगा जैसे कि भस्ममें हवन व्यर्थ होजाता है ॥ ३१ ॥ व जो स्त्री सभाके बीचमें तुमको फलोंसे पूजैगी उसका कोटिगुना फल फलैगा व

अद्यप्रभृतियःकश्चिद्यज्ञमत्रकरिष्यति ॥ सदोमध्येतुसंस्थाप्य पूजयित्वाविलेपनैः ॥ २८ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ ततश्शङ्कुप्रचारन्तु करिष्यन्तितदग्रतः ॥ २९ ॥ एतद्वाक्यंमयाप्रोक्तं सर्वदेवसमागमे ॥ नान्यथा भाविभद्रन्ते त्वंसन्तोषंपरंव्रज ॥ ३० ॥ त्वयाविरहितंभद्रेसदःकर्म्मकरिष्यति ॥ वृथाभाविचतत्सर्वं तथाभस्महुतंयथा ॥ ३१ ॥ यानारीसदसोमध्ये फलैस्त्वांपूजयिष्यति ॥ फलंफलेत्कोटिगुणं तस्याःश्रेयोभविष्यति ॥ ३२ ॥ सफलाश्चदिशस्सर्वा भविष्यन्तिनसंशयः ॥ वस्त्रमाभरणंयाथ पुष्पधूपादिकंतथा ॥ ३३ ॥ तुभ्यंदास्यतितत्सर्वं तस्याःकोटिगुणंफलम् ॥ परंतावत्प्रतीक्षस्व माविमानंसमारुह ॥ ३४ ॥ देवःकेनापिकार्य्येण तवपूजांसमाचरेत् ॥ देवाऊचुः ॥ युक्तंत्वयाद्विजश्रेष्ठ वचनंसमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥ अस्माकमपिवाक्येन सत्यमेतद्भविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ उद्भ्रान्तासैव मुक्ताच तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ देवीवरविमानेन गृहीताचाम्बरस्थिता ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु देवशर्म्मसुताभव

कल्याणहोगा ॥ ३२ ॥ और निस्सन्देह समस्त दिशायें सफलहोवैंगी अथवा जो स्त्री वसन, भूषण व पुष्प, धूपादिक ॥ ३३ ॥ तुम्हारे लिये देवैगी वह सब उसको कोटि गुना फलहोगा परन्तु तबतक परखो विमानपै मत चढ़ो ॥ ३४ ॥ क्योंकि देवता किसीभी कार्यसे तुम्हारा पूजनकरैंगे देवता बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुमने योग्य वचन को भलीभांति कहाहै ॥ ३५ ॥ हम सबोंकेभी वचनसे यह सत्यहोगा सूतजी बोले कि सामवेदीसे वह इसभांति कहीगई व खड़ीहो खड़ीहो यह कहा ॥ ३६ ॥ उत्तम विमानके द्वारा जाती व आकाशमें खड़ीहुई देवीको पकड़ लिया इसी समयमें देवशर्माकी कन्या नगरके मध्यमें टिकीहुई देवीहुई व हे द्विजोत्तमो ! उसके दर्शनकी ला-

स्थानमें ब्राह्मणके घर अन्तकालहोवै तदनन्तर उनने मुझसे कहा कि उत्तम चमत्कारपुरमें ॥ १८ ॥ देवशर्मा नामक द्विजेन्द्र कुलीन व समस्त शास्त्रोंका ज्ञाताहै उसकी उत्तम ब्राह्मणी सत्यभामा ऐसे नामसे प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ उसके गर्भमें प्राप्तहोकर मनुजताको कीजिये जब उसक्षेत्रमें ब्रह्माकी यज्ञहोगी ॥ २० ॥ उससमय उसके शंकुके उलटनेपर तब सब देवोंकी सभाके बीचमें तुमको अपने स्थान में धरेहुये उस शंकुको कहना चाहिये तब मोक्षहोगी व हे द्विजोत्तम ! तुम मेरी इस दैवी शोभा को देखो ॥ २१ । २२ ॥ व मेरे पितासे पठाये हुये आते विमानको देखिये उद्गाता यानें सामवेदी बोला कि हे विशाललोचनि ! यज्ञको निर्विघ्न करनेवाली तुम्हारे ऊपर

स्यनिवेशने ॥ ततस्तेनतुसम्प्रोक्ताचमत्कारपुरेशुभे ॥ १८ ॥ देवशर्म्मातुविप्रेन्द्रःकुलीनःसर्वशास्त्रवित् ॥ तस्यसुब्रा
ह्मणीनाम सत्यभामेतिविश्रुता ॥ १९ ॥ तस्यागर्भेसमासाद्यमानुषत्वंसमाचर ॥ यदापैतामहोयज्ञस्तस्मिन्क्षेत्रेभवि
ष्यति ॥ २० ॥ तदाचसमयेतस्य शङ्कोश्चैवविपर्य्यये ॥ तदाचसत्वयावाच्यो स्वथानेशङ्कुराहितः ॥ २१ ॥ सर्वदेवस
भामध्ये तदामोक्षोभविष्यति ॥ इमांमेदैविकींकान्तिं त्वन्तुपश्यद्विजोत्तम ॥ २२ ॥ विमानंपश्यचायान्तं पित्रासम्प्रे
षितंमम ॥ उद्गातोवाच ॥ तुष्टोहंतेविशालाक्षि यज्ञस्याविघ्नकारके ॥ २३ ॥ नवृथादर्शनम्मेस्याद्विशेषाद्देवसङ्गमे॥
उदुम्बर्य्युवाच ॥ यदिमेयच्छसिवरं सन्तुष्टोब्राह्मणोत्तम ॥ २४ ॥ सर्वेषामेवदेवानां पुरतस्त्वंददस्वमे ॥ अद्यप्रभृतियः
कश्चिद्यज्ञंभूमौसमाचरेत् ॥ २५ ॥ तस्मिन्सदसिमध्यस्थाभुक्तिःकार्य्यायथामम ॥ ततोमत्पुरतश्चैव कार्य्यंशङ्कुप्रचा
रणम् ॥ २६ ॥ स्वर्गस्थायाभवेत्तुष्टिर्ममतेजःकृतेनच ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा उद्गातातामथाब्रवीत् ॥२७॥

मैं प्रसन्नहूं ॥ २३ ॥ मेरा दर्शन वृथा नहीं होता व देव संयोगमें विशेषकर व्यर्थ नहीं होताहै उदुम्बरी बोली कि हे द्विजोत्तम ! यदि भलीभांति प्रसन्नहोते हुये तुम मुझको वरदान देतेहो ॥ २४ ॥ तो मुझको सबही देवताओंके आगे दीजिये कि आजसे लगाकर जो कोई भूमिमें यज्ञकरै ॥ २५ ॥ उस समाजमें जिसभांति मुझको मध्यस्थ भोजन करना चाहिये तदनन्तर मेरे अगाड़ी शंकुचालन करना चाहिये ॥ २६ ॥ व मेरे तेजसे कियेहुये कर्मके द्वारा स्वर्गमें टिकीहुई मेरी प्रसन्नताहोवै सूतजी

आई जोकि शंकु वर्णको अपने चित्तमें चाहतीथी ॥ ७ ॥ वह देवशर्मा नामक छन्दोगकी श्रेष्ठ कन्या उदुम्बरी नामक सामवेदके सुननेकी अति इच्छावाली थी ॥ ८ ॥ उसने समाजमें सामवेदी से वैसेही वचन कहा जैसे कि सामवेदसे सूचित शंकु वर्तमानहोते हैं ॥ ९ ॥ कि शीघ्रही जाकर दक्षिणाग्निमें यथोदित हवन कीजिये जिससे तुम पापसे छूटोगे व व्यर्थ न होगा ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसने जितना वचन कहाथा उसके उसवचनको अभिप्राय समेत सुनकर तदनन्तर उसने चिन्तवन किया ॥ ११ ॥ उसके उपरान्त बड़े आश्चर्य से संयुत होतेहुये उसने उस कन्यासे पूंछाकि तुम कहांसे आतीहो व किसकी कन्याहो उसको मुझसे कहो ॥ १२ ॥ उ-

भिधस्यच ॥ उदुम्बरीतिनाम्नासा सामश्रवणलालसा ॥ ८ ॥ उद्गातारञ्चसदसि वचनंव्याजहारसा ॥ यथातथाप्रवर्तन्ते शङ्कवस्सामसूचिताः ॥ ९ ॥ दक्षिणाग्नौद्रुतंगत्वा कुरुहोमंयथोदितम् ॥ येनत्वंमुच्यसेपापान्नवैव्यर्थोभविष्यति ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा साभिप्रायंद्विजोत्तमाः ॥ ततस्सचिन्तयामास यावत्तद्व्याहृतंवचः ॥ ११ ॥ ततःपप्रच्छतांकन्यां महताविस्मयान्विताः ॥ कुतस्त्वमसिचायाता सुताकस्यवदस्वमे ॥ १२ ॥ उदुम्बर्य्युवाच ॥ पर्वतस्यसुतास्मीति विख्यातादेवशर्म्मणः ॥ जातिस्मरामहाभाग प्राप्तागन्धर्वलोकतः ॥ १३ ॥ नारदःपर्वतश्चैव गन्धर्वौविदितौजनैः ॥ पर्वतस्य सुताचास्मि स्वरभङ्गतयागता ॥ १४ ॥ ततस्सकुपितोमह्यंददौशापंद्विजोत्तमः ॥ मिथ्योपहसितोयस्मादहंशापमतोहसि ॥ १५ ॥ मानुषाणामयंधर्म्मस्तस्मात्त्वंमानुषीभव ॥ मयाप्रसादितस्सोथ पित्रासार्द्धंमुनीश्वरः ॥ १६ ॥ शापान्तंकुरुमेनाथ बालिशायाविशेषतः ॥ मानुषत्वंचमेभूयात्सुस्थानेसुकुलेविभो ॥ १७ ॥ सुस्थानेचान्तकालश्च ब्राह्मण

दुम्बरी बोली कि हे महाभाग ! जातिके स्मरणवाली मैं देवशर्मा व पर्वतकी कन्या प्रसिद्ध हूं और गन्धर्वलोकसे प्राप्तहुई हूं ॥ १३ ॥ जनोंसे जानेहुये नारद व पर्वत गन्धर्व हैं मैं पर्वतकी कन्या हूं जोकि स्वरभङ्गतासे नारदके समीप गईथी ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! क्रोधितहो उन नारदने मुझको शापदिया कि जिसलिये तू मुझको झूंठही हँसीहै इसलिये शापके योग्यहै ॥ १५ ॥ यह मनुष्योंका धर्म्महै इसलिये तुम मानुषीहोवो इसके अनन्तर पिता समेत मैंने उन मुनिनायक को प्रसन्न कराया ॥ १६ ॥ कि हे स्वामिन् ! विशेषतासे मुझ मूर्खिणीके शापका अन्त कीजिये हे विभो ! मेरी मनुजता उत्तम ठिकाने व अच्छे वंशमेंहोवै ॥ १७ ॥ व अच्छे

पितामह ब्रह्माजी चुपहोगये ॥ ४४ । ४५ ॥ और उस राक्षसनेभी वहींपर राक्षसवाले स्थानको पाया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येराक्षसश्राद्धकथनंनामसप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः१७७ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । मातृगणन को दीन जिमि देविसवित्री शाप । इकसौ अठतरि में सोई करत कथा आलाप ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर पांचवें दिनको भलीभांति प्राप्तहोने पर श्वेत धोतियोंको पहने व नहायेहुये व पवित्र समस्त ऋत्विज् लोग स्थितहुये ॥ १ ॥ व पुलस्त्यजीसे प्रबोधकराये और समाज के बीचमें गयेहुये

सोपितत्रैव लेभेस्थानन्तुराक्षसम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये राक्षसश्राद्धकथनन्नामसप्तसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ ततस्तुपञ्चमेचाह्निसंजातेद्विजसत्तमाः ॥ श्वेतधौताम्बरास्सर्वे सुस्नाताःशुचयःस्थिताः ॥ १ ॥ चक्रुस्सर्वाणिकर्म्माणि पुलस्त्येनप्रबोधिताः ॥ सदोमध्येगताश्चैव ऋत्विग्वरणपूर्वकम् ॥ २ ॥ अध्वर्य्युणासमादिष्टाने तान्प्रोचुर्यथाक्रमम् ॥ होमार्थंदीप्तवह्नौच ऋत्विग्भिस्सुसमाहितैः ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु उद्गात्राकर्म्मयोजितम् ॥ शङ्कुभिःक्रियतेयच्च सामगीतिप्रसूचितम् ॥ ४ ॥ तत्रावर्तेद्विजश्रेष्ठास्सदोमध्येगतेनच ॥ यत्रागच्छन्तितेसर्वे देवाय ज्ञांशलालसाः ॥ ५ ॥ सोमपानंकृतञ्चैव विशेषेणमुदान्वितैः ॥ प्रारब्धेसोमभक्ष्येथ गीतेचोद्गातृनिर्म्मिते ॥ ६ ॥ आगताकन्यकाचैव सामगीतिसमुत्सुका ॥ शङ्कुवर्णन्निजंचित्तेवाञ्छमानाविचक्षणा ॥ ७ ॥ छन्दोगस्यसुताश्रेष्ठा देवशर्म्मा

उन्होंने ऋत्विजोंके वरण पूर्वक समस्त कर्मोंको किया ॥ २ ॥ व सावधान होतेहुये ऋत्विजों समेत अध्वर्यु (यजुर्वेदी) से आज्ञादियेहुये इन होताओंसे जलती अग्नि में होमके लिये कहा ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें साम वेदके गानसे सूचन किया हुआ जो कर्म शंकुवोंसे युक्त कियाजाताहै उसको सामवेदीने किया ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सभाके बीच उस आवर्त (मण्डल) में गमनसे जहां यज्ञभागकी लालसावाले वे समस्त देवता आते हैं ॥ ५ ॥ व विशेषकर आनन्द संयुत देवोंने सोमपान किया इसके अनन्तर सोमभक्षणके प्रारम्भ करनेपर व सामवेदीसे निर्माण कियेहुये गानके प्रारम्भ होनेपर ॥ ६ ॥ सामवेदके गानकी भलीभांति उत्कण्ठावाली एक चतुरकन्या

रहित तथा बीताभरसे अधिक कुशोंसे जो श्राद्धहोगी वह सब तुम्हारीहोगी अथवा जिसमें भैंसा या चीता बाघ या कुनखवाला नरभी ॥ ३६।३७ ॥ अथवा कुष्ठीब्राह्मण भोजनकरै वह श्राद्ध तुम्हारीहोगी और विन नहाये व बिनधोयेहुये वसनको पहननेवालेनरोंसे जो श्राद्धकीगई है ॥ ३८ ॥ और तैलाभ्यंग संयुत जनोंसे जो श्राद्धकीजावै वह तुम्हारीहोगी व श्याव याने बन्दरके वर्णवाले दांतोंवाला व शूद्राकापति जिसश्राद्धमेंभोजनकरै ॥३९॥ व जिसके माता व पिता दोनों पक्षोंमें तीन पुश्तियोंतक वेद तथा अग्निका नाशाहो वह विप्र जिसको भोजनकरै वह श्राद्ध तुम्हारीहोगी व जो यज्ञ दक्षिणासे हीन व जो अशुद्धि संयुत जनोंसे व ब्रह्मचर्य रहित नरोंसे कीगई है उस

वितस्तेरधिकैर्वापि तत्सर्वंतेभविष्यति ॥ यद्वामाहिषिकोभुङ्क्ते चित्रीवाकुनखोपिवा ॥ ३७ ॥ कुष्ठीवाथद्विजोभुङ्क्ते तत्ते श्राद्धंभविष्यति ॥ अस्नातैर्यत्कृतंश्राद्धं यच्चाधौताम्बरैःकृतम् ॥ ३८ ॥ तैलाभ्यङ्गयुतैश्चैव तत्तेश्राद्धंभविष्यति ॥ श्याव दन्तस्तुयद्भुङ्क्ते वृषलीपतिरेवच ॥ ३९ ॥ द्विर्नग्नोवाथयद्भुङ्क्तेतत्तेश्राद्धंभविष्यति॥ योयज्ञोदक्षिणाहीनोयश्चाशौचयुतैःकृतः ॥ ब्रह्मचर्य्यविहीनैस्तु तत्फलंतेभविष्यति ॥ ४० ॥ यस्मिन्नैवातिथेःपूजा श्राद्धेवायज्ञकर्म्मणि ॥ सम्प्राप्ते वैश्वदेवान्ते तत्तेसर्वंभविष्यति ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षंलवणंयच्चतक्रंवाविकृतम्भवेत् ॥ जातीपुष्पप्रदानंच तत्तेसर्वम्भविष्यति ॥ ४२ ॥ यजमानोद्विजोवाथ ब्रह्मचर्य्यविवर्जितः ॥ तच्छ्राद्धन्तेमयादत्तं पावित्र्येणविवर्जितम् ॥ ४३ ॥ आयसेनतुपात्रेण यत्रान्नञ्चप्रदीयते ॥ तच्छ्राद्धन्तेमयादत्तं तथान्यदपिहीनतः ॥ ४४ ॥ मन्त्रक्रियाभ्यांयत्किञ्चिद्रात्रौदत्तंहुतंतथा ॥ संक्रान्तिसोमपर्वाभ्यां व्यतिरिक्तंतुकुत्सितम् ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४५ ॥ राक्षसः

का फल तुमकोहोगा ॥ ४० ॥ और जिस श्राद्ध या यज्ञकर्म में वैश्वदेव कर्मका अन्त प्राप्तहोनेपर अतिथिका पूजन न होवै वह सब तुम्हाराहोगा ॥ ४१ ॥ व जो प्रत्यक्ष लोन या बिगड़ाहुआ तक्र (मठा) होवै व चमेली के फूलोंका प्रदान जहांहोवै वह सब तुम्हाराहोगा ॥ ४२ ॥ व जहां यजमान या ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से हीनहोवै मैंने पवित्रतासे रहित उस श्राद्धको तुम्हें दिया ॥ ४३ ॥ व जहां लोहेके पात्रसे भोजन दियाजाता है वह श्राद्ध व मन्त्र तथा कर्मसे हीन अन्यभी मैंने तुमको दिया व संक्रान्ति या चन्द्र ग्रहणसे भिन्न जो कुछ निन्दित पदार्थ रातमें दियाजाता है व होम कियाजाता है वह मैंने तुमको दिया ऐसा कहकर इसके अनन्तर लोकोंके

तुम इस रूपसे टिको व मेरे वचनको करो कि जिससे मैं तुमको अति उत्तम स्थान दूंगा ॥ २७ ॥ कि इस चमत्कार नगरके पश्चिम ओर स्थानमें टिकेहुये बहुत से राक्षस, कूष्माण्ड व पिशाचहैं ॥ २८ ॥ वहां जे सब आते हैं उनको उसीक्षण भूत, प्रेत, पिशाच व विशेषकर कूष्माण्ड ग्रहण करते हैं॥ २९ ॥ और नागर ब्राह्मण तो अगाड़ी देखकर उनके डरसे दूरचलेजाते हैं इसलिये हे पुत्र ! तुम वहां जावो व सबोंके स्वामी होवो ॥ ३० ॥ इस समय मैंने तुमको राक्षसोंकी राज्य दिया राक्षस बोला कि हे ब्रह्माजी ! राक्षसोंकी स्वामितामें इस प्रकार टिकेहुये मुझको वहां क्या भोजन करना चाहिये व क्या उनकोदेना चाहिये उसको कहिये हे विभो ! जिसलिये

चोमम ॥ कुरुष्वतेप्रयच्छामि येनस्थानमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ चमत्कारपुरस्यास्य पश्चिमस्थानमाश्रिताः ॥ राक्षसाबहवस्सन्ति कूष्माण्डाश्चपिशाचकाः ॥ २८ ॥ तत्रागच्छन्तियेसर्वे तान्निगृह्णन्तितत्क्षणात् ॥ भूताःप्रेताःपिशाचाश्च कूष्माण्डाश्चविशेषतः ॥ २९ ॥ नागरास्तुपुरोदृष्ट्वा तद्भयाद्यान्तिदूरतः ॥ तद्गच्छपुत्रतत्रत्वं सर्वेषामधिपोभव ॥ ३० ॥ राक्षसानांमयादत्तं तवराज्यंचसाम्प्रतम् ॥ राक्षसउवाच ॥ आधिपत्येस्थितेनैवं राक्षसानांपितामह ॥ ३१ ॥ किम्मयातत्रभोक्तव्यं तेभ्योदेयंचकिंवद ॥ राज्ञाचैवयतोदेयं भृत्यानांभोजनंविभो ॥ ३२ ॥ तन्ममाचक्ष्वदेवेश दयांकृत्वागरीयसीम् ॥ नकरोतिचयोराजा भृत्यवर्गस्यपोषणम् ॥ ३३ ॥ तेनैवनरकंयाति सएवहिश्रुतंमया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यच्छ्राद्धंदक्षिणाहीनं तिलैर्दर्भैर्विवर्जितम् ॥ ३४ ॥ तत्सर्वन्तेमयादत्तं यद्यपिस्यात्सुतीर्थकम् ॥ यच्छ्राद्धंशूकरःपश्येन्नारीवाथरजस्वला ॥ ३५ ॥ कौलेयकोथबालेयस्तत्सर्वंतेभविष्यति ॥ विधिहीनन्तुयच्छ्राद्धं दर्भैर्वामूलवर्जितैः ॥ ३६ ॥

कि सेवकों के लिये राजाहीको भोजन देनाचाहिये॥३१।३२॥ इसलिये हे देवनायक ! मेरे ऊपर बड़ीभारी दयाकरके कहिये क्योंकि जो राजा सेवक समूहका पालन नहीं करताहै ॥ ३३ ॥ वही उसीसे नरकको जाताहै यह मैंनेसुनाहै ब्रह्माबोले कि तिलों व कुशोंसे रहित तथा दक्षिणासे विहीन जो श्राद्धहोवै ॥ ३४ ॥ वह सब मैंने तुम को दिया यद्यपि उत्तम तीर्थभी होवै व जिस श्राद्धको शूकर या रजस्वला नारी देखै ॥ ३५ ॥ अथवा कुत्ता या गधा देखै वह सब तुम्हारीहोगी औरविधिसे रहित व जड़से

लिये कल्पितकीगई थी उसको न जानतेहुये मैंने खालिया ॥ १७ ॥ इसलिये हे देव ! दया कीजिये व मुझको मनुजतादीजिये जिसप्रकार राक्षसता जावै वैसाही न्यायकिया जावै ॥ १८ ॥ उसके कहेहुये उस वचनको सुनकर पितामह (ब्रह्मा) जी दयाकर प्रस्थातासे यह वचन बोले ॥ १९ ॥ किं हे द्विजोत्तम ! यह मेरा पुत्र बालकहै व कार्य, अकार्य्यको नहीं जानता है इसलिये तुम इसकी राक्षसताको हरो ॥ २० ॥ उस वचनको सुनकर उन मुनिने कहा कि हे विभो, देव ! तुम्हारे यज्ञमें गुदाको दूषतेहुये इसने प्रायश्चित्तको पैदा कियाहै ॥ २१ ॥ इसलिये मेरे यज्ञके विघ्नकारक इसको मैंने शापदियाहै मैं किसी प्रकार इसकी राक्षसताको न हरूंगा ॥ २२ ॥ क्योंकि मैंने

भक्षितंतन्मयादेव होमार्थंयत्प्रकल्पितम् ॥ १७ ॥ तस्मान्मानुषतान्देव ममदेहिदयांकुरु ॥ राक्षसत्वंयथायातित थानीतिर्विधीयताम् ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वाजल्पितंतस्य दयांकृत्वापितामहः ॥ प्रतिप्रस्थातरमिमं वाक्यमेतदुवाचह ॥ १९ ॥ बालोयंममपौत्रस्तु कृत्याकृत्यंनवेत्तिच ॥ तस्मात्त्वंराक्षसम्भावं हरस्वास्यद्विजोत्तम ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वासमुनिः प्राह प्रायश्चित्तंमखेतव ॥ अनेनजनितंदेव गुदंदूषयताविभो ॥ २१ ॥ तस्मादेषमयाशप्तो यज्ञविघ्नकरोमम ॥ नाह मस्यहरिष्यामि राक्षसत्वंकथञ्चन ॥ २२ ॥ नर्मणापिमयाप्रोक्तं कदाचिन्नानृतंवचः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रायश्चित्तंकरि ष्येहं यज्ञस्यास्यविशुद्धये ॥ २३ ॥ दक्षिणांगांप्रदत्त्वाचकृत्वाहोमंविधानतः ॥ त्वमस्यराक्षसंभावं हरस्वममवाक्य तः ॥ २४ ॥ सोऽब्रवीच्छीतलोवह्निर्यदिस्यादुष्णगुश्शशी ॥ तन्मेस्यादन्यथावाक्यं व्याहृतंप्रपितामह ॥ २५ ॥ तस्य तद्वचनंश्रुत्वा ज्ञात्वाचैवतुनिश्चयम् ॥ विश्वावसुंविधिःप्राहततोराक्षसरूपिणम् ॥ २६ ॥ त्वंवत्सानेनरूपेण तिष्ठतावद्

कभी हँसीसे भी झूंठवचनको नहीं कहाहै ब्रह्माजी बोले कि विधिसे होमकरके व गऊ दक्षिणा देकर मैं इस यज्ञकी विशेषकर शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करूंगा तुममेरे वचनसे इसकी राक्षसताको हरो ॥ २३ । २४ ॥ उसने कहा कि हे पितामहजी ! यदि अग्नि ठण्ढीहोवै व चन्द्रमा गरम किरणवानहोवै तो मेराकहाहुआ वचन अन्यथा होगा ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस प्रस्थाताके उस वचनको सुनकर व निश्चय जानकर ब्रह्माने राक्षस रूपवाले विश्वावसुसे कहा ॥ २६ ॥ कि हे वत्स ! तबतक

राक्षसोंका कर्महै कि जिसको तूने कियाहै ॥ ७ ॥ इस लिये मेरे वचनसे तुम शीघ्रही राक्षस होवो इसी अवसरमें वह ऊपर उठेबालोंवाला व लाललोचनोंवाला व कील के समान कानोंवाला काले दांतोंवाला व अतिभयानक तथा लम्बे ओठोंवाला, भयङ्कर मुखवाला व मांस मेदासे रहित तथा त्वचा, हड्डी व नसमात्र शेषवाला और चामुण्डा के आकारही वाला होगया वह पुलस्त्य का पुत्र विश्वावसुनामक मुनि था ॥ ८ । ९ । १० ॥ जोकि ब्रह्माका पौत्र व वेदों तथा वेदाङ्गों के तत्त्वका जानने हाराथा वह मन्त्रसे पवित्र मांसके खानेके लिये भलीभांति आयाथा ॥ ११ ॥ राक्षस के आकारवाले उसको देखकर सबओर से ब्राह्मण डरगये वैसेही अन्य द्विजोंने

एतस्मिन्नेवकालेतु ऊर्ध्वकेशाभवद्द्विसः ॥ ८ ॥ रक्ताक्षःशङ्कुकर्णश्च कृष्णदन्तोतिभैरवः ॥ लम्बोष्ठोविकरालास्योमांसमेदोविवर्जितः ॥ ९ ॥ त्वगस्थिस्नायुशेषश्च चामुण्डाकृतिरेवच ॥ सवैविश्वावसुर्नाम पुलस्त्यस्यसुतोमुनिः ॥ १० ॥ मन्त्रपूतस्यमांसस्य भक्षणार्थंसमागतः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञःपौत्रस्तुपरमेष्ठिनः ॥ ११ ॥ तन्दृष्ट्वाराक्षसाकारं वित्रेसुस्सर्वतोद्विजाः ॥ रक्षोघ्नानिचसूक्तानि जजपुश्चापरेतथा ॥ १२ ॥ केचिच्छरणमापन्ना विष्णोरुद्रस्यचापरे ॥ पितामहस्यचान्येतु गायत्र्याश्शरणङ्गताः ॥ १३ ॥ रक्षरक्षेतिजल्पन्तोभयसंत्रस्तमानसाः ॥ सोपिदृष्ट्वातदात्मानं गतंराक्षसतांद्विजाः ॥ १४ ॥ बाष्पपूर्णेक्षणोदीनः पितामहमुपाद्रवत् ॥ सप्रणम्यततोवाक्यं कृताञ्जलिरुवाचतम् ॥ १५ ॥ पौत्रोहंतवदेवेश पुलस्त्यस्यसुतोद्विजः ॥ नीतोराक्षसतामद्य प्रस्थात्राकोपतोविभो ॥ १६ ॥ जिह्वालौल्येनदेवेश पशोर्गुदमजानता ॥

राक्षसोंके नाशनेवाले सूक्तोंका जप किया ॥ १२ ॥ व कोई विष्णुजीकी शरण व अन्यद्विज महादेवकी शरणमें प्राप्तहुये तथा अपर ब्रह्मा व गायत्रीजीकी शरणमेंगये ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! भयभीत मनवाले वे ब्राह्मण रक्षा कीजिये २ ऐसा कहरहे थे वह राक्षसभाव में प्राप्तहुये उस शरीर को देखकर आंसुवों से पूर्णनयनोंवाला व दीन वह भी ब्रह्माके समीप शीघ्रगया तदनन्तर हाथ जोड़हुये उसने उन ब्रह्माजी को प्रणामकर वचन को कहा ॥ १४ । १५ ॥ कि हे विभो, देवेश ! पुलस्त्यका पुत्र मैं तुम्हारा पौत्रहूं जो कि आज प्रस्थाताके कोपसे राक्षसत्वको प्राप्त किया गया ॥ १६ ॥ हे देवनायक, देव ! जिह्वाकी सतृष्णता या चञ्चलता के कारण जो पशुकी गुदा होमके

ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथिमाहात्म्यंनाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । यथा श्राद्ध यज्ञादि सब होत राक्षसन भोग्य । इकसौ सतहत्तर महँ कहत चरित सो योग्य ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर यज्ञसे उपजाहुआ चौथा दिन प्राप्त होनेपर उसके उपरान्त ऋत्विजों ने यज्ञवाले कर्मको प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ वैसेही समस्त सोमपानादि व पशुका हिंसादिककर्म किया और हे द्विजोत्तमो ! होमके लिये

भोज्योन्यो ब्राह्मणोगृहमेधिना ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथिमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ चतुर्थेदिवसेप्राप्ते ततोयज्ञसमुद्भवे ॥ ऋत्विग्भिर्याज्ञिकङ्कर्म्म प्रारब्धन्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ सोमपानादिकंसर्वं पशोर्हिंसादिकंतथा ॥ पशोर्गुदंसमादाय प्रस्थाताचव्यधारयत् ॥ २ ॥ एकान्तेसदसोमध्येहोमार्थंद्विजसत्तमाः ॥ तस्मिन्व्याकुलतांयाते ब्राह्मणःकश्चिदागतः ॥ ३ ॥ युवातत्रप्रविष्टस्तु मांसभक्षणलालसः ॥ ततोगुदंधृतंदृष्ट्वा भक्षयामाससोत्सुकः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः प्रस्थातातस्यसन्निधौ ॥ भक्ष्यमाणंसमालोक्य तंशशापततःपरम् ॥ ५ ॥ धिक्धिक्पापसमाचार होमार्थन्तद्गुदंधृतम् ॥ तत्त्वयादूषितंलौल्याद्यज्ञविघ्नकरंकृतम् ॥ ६ ॥ उच्छिष्टेनमयाहोमः कर्तव्योनैवसाम्प्रतम् ॥ राक्षसानामिदंकर्म्म यत्त्वयासमनुष्ठितम् ॥ ७ ॥ तस्मात्त्वंममवाक्येन राक्षसोभवमाचिरम् ॥

प्रस्थाताने पशुकी पायु इन्द्रियको भलीभांति लेकर सभाके बीच एकान्तमें धर दिया उसको विकलता के प्राप्तहोनेपर कोई ब्राह्मण आया ॥ २ । ३ ॥ जोकि युवा व मांसभक्षणकी अति इच्छावाला वह उस यज्ञमें पैठगया तदनन्तर उत्कण्ठा समेत उसने धरीहुई गुदाको देखकर भक्षण किया ॥ ४ ॥ इसी अवसर में प्रस्थाता उसके समीप प्राप्तहुआ तदनन्तर खातेहुये उसको देखकर उसने शाप दिया ॥ ५ ॥ कि हे पाप आचरणवाले ! तुझको धिक्कार है धिक्कार है क्योंकि होमके लिये वह गुदा धरीथी उसको सतृष्णता या चञ्चलता से तूने दूषित किया व यज्ञके विघ्नकारक कर्मको दिया ॥ ६ ॥ इस समय जूंठे मांससे मुझको होम न करना चाहिये यह

जो प्रिय या शत्रु अथवा मूर्ख या पण्डित ॥ १२ । १३ ॥ १४ ॥ वैश्वदेव समयमें भलीभांति प्राप्तहुआहो वह अतिथि स्वर्गको पहुँचानेवाला होताहै गोत्र, वर्ण,स्थान व वेदको भी न पूंछै ॥ १५ ॥ किन्तु जनेऊ को देखकर उसको बड़ीभक्तिसे भोजन करावै व श्राद्ध या वैश्वदेव में यदि अतिथि न आवै ॥ १६ ॥ तो घृत चूतीहुई यज्ञ की खीरको अतिथि के नामसे अग्निमें देवै तदनन्तर भोजन देनेके असमर्थ पुरुष को शक्तिसे देना चाहिये ॥ १७ ॥ कि जिससे उसके अन्न से थोड़ी भी प्रसन्नताको प्राप्तहोवै जिस प्रकार अन्य तीसरा सूर्य्योढ अतिथि कहाजाता है उसको सुनिये ॥ १८ ॥ कि भोजन करने पर या रातमें जो आवै उसके लिये गृहस्थ को अपनी

यदिवाद्वेष्यो मूर्खोवापण्डितोथवा ॥ १४ ॥ वैश्वदेवेतुसम्प्राप्तः सोतिथिःस्वर्गसंक्रमः ॥ नपृच्छेद्गोत्रचरणं न स्थानंवेदमेववा ॥ १५ ॥ दृष्ट्वायज्ञोपवीतञ्च भोजयेत्तम्प्रभक्तितः ॥ श्राद्धेवावैश्वदेवेवा यद्यागच्छतिनोतिथिः ॥ १६ ॥ घृताप्लुतन्तंतोदद्याच्चरुनाम्नाहविर्भुजे ॥ अशक्तोभोज्यदानस्य देयंशक्त्याततःपरम् ॥ १७ ॥ तस्यान्नेनापिसुस्तोकां येनतुष्टिम्प्रगच्छति ॥ यथान्यस्तुतृतीयस्तु सूर्य्योढोतिथिरुच्यते ॥ १८ ॥ कृतेतुभोजनेयस्तुरात्रौवाचाधिगच्छति ॥ तस्यशक्त्याप्रदातव्यमन्नञ्चगृहमेधिना ॥ १९ ॥ सूर्य्योढोयस्यसम्प्राप्तो गृहात्पूजांविनाव्रजेत् ॥ निराशःपातकंतस्यनिजंदत्त्वाप्रयातिसः ॥ २० ॥ तृणानिभूमिरुदकंवाक्चतुर्थीचसूनृता ॥ एतान्यपिसतांगेहे नोच्छिद्यन्तेकदाचन ॥ २१ ॥ स्वागतेनसदातृप्तिर्गृहस्थस्यप्रयातिच ॥ आसनेनव्रजेत्तुष्टिंस्वयम्भूःप्रपितामहः ॥ २२ ॥ अर्घेणशम्भुःपाद्येन सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ भोज्यदानेनविष्णुश्च सर्वदेवमयोतिथिः ॥ २३ ॥ तस्मात्पूज्यःसदाविप्रा भोजनीयोविशेषतः ॥ नामप्रोच्चार्य्य

शक्तिसे अन्न देना चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्य्योढ अतिथि जिसके यहां प्राप्तहुआ हो और पूजन के विना निराश होकर घरसे चलाजावै वह उसको अपना पाप देकर जाता है ॥ २० ॥ तिनुका, भूमि, जल व चौथी सत्यवती प्रियवाणी ये भी सज्जनों के घरमें कमी नाश नहीं होती हैं ॥ २१ ॥ स्वागत (कुशलप्रश्न) से सदैव तृप्ति गृहस्थको प्राप्त होतीहै व आसनसे स्वयम्भू (ब्रह्मा)जी प्रसन्नता को प्राप्तहोतेहैं ॥ २२ ॥ व अर्घदानसे शिव पाद्यसे इन्द्रसमेत समस्त देवता और भोजनदेनेसे विष्णुजी तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं इस लिये हे ब्राह्मणो! समस्तदेवमय अतिथि सदैव पूजनेयोग्य व विशेषकर भोजन करानेयोग्य है और अतिथि का नाम कहकर गृहस्थ को अन्य

से अन्य उत्तम धर्म नहीं है ॥ ३ ॥ और उस अतिथि के उल्लंघन से देवता नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि भंगहुई आशावाला अतिथि जिसके घरसे लौटजाता हैं ॥४॥ तो उसके लिये पापको देकर व पुण्य लेकर जाताहै व जो अतिथि को नहीं पूजताहै उसका सौ वर्षतक जो सत्य, तपस्या व पठित व दान और यज्ञ कियाहुआ होताहै यह सब नष्टहोजाता है व आनन्दित होतेहुये अतिथि जिसके घर आतेहैं ॥ ५ । ६ ॥ वह गृहस्थ ऐसा कहागया है शेष गृहके रक्षकहैं इस भूतल में पुरातन समय बहुत कियेहुये पुण्यवाले पुरुषों के श्राद्ध व दान और उत्तमवाणी ये तीन वस्तुयें प्राप्तहोती हैं गृहस्थके ऊपर अतिथिके प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न

अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥४॥ तद्दत्त्वादुष्कृतन्तस्मै पुण्यमादायगच्छति ॥ सत्यन्तथातपोधीतं दत्त मिष्टंशतंसमाः ॥ ५ ॥ तस्यसर्वमिदंनष्टमतिथिंयोनपूजयेत् ॥ दूरादतिथयोयस्य गृहमायान्तिनिर्वृताः ॥ ६ ॥ सगृह स्थइतिप्रोक्तःशेषाश्चगृहरक्षिणः ॥ पुराप्रकृतपुण्यानां नराणामिहभूतले ॥७॥त्रीण्येतानिप्रपद्यन्ते श्राद्धंदानंशुभागि रः ॥ तुष्टेतिथौगृहस्थस्य सन्तुष्टाःसर्वदेवताः ॥ ८ ॥ विमुखेविमुखास्सर्वा भवन्तिचनसंशयः ॥ तस्मात्तोषयितव्यश्च गृहस्थेनसदातिथिः ॥ ९ ॥ अथात्मनःप्रदानेन यदीच्छेत्पुण्यमात्मनः ॥ त्रिविधस्त्वतिथिःप्रोक्तो गृहस्थानांद्विजोत्त माः ॥ १० ॥ तस्याहंवच्मितत्कालं शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ श्राद्धीयोवैश्वदेवीयः सूर्योढश्चतृतीयकः ॥ ११ ॥ येचापि भोजनार्थाय तेषांमात्राःप्रकीर्तिताः ॥ सङ्कल्पेविहितेश्राद्धे पितॄणाम्भोजनोद्भवे ॥ १२ ॥ समागच्छतियःकाले तच्छ्राद्धी यमुदाहृतम् ॥ दूराध्वानाचविश्रान्तं वैश्वदेवीयमागतम् ॥ १३ ॥ अतिथिंतंविजानीयान्नातिथिःपूर्वमागतः ॥ प्रियोवा

होतेहैं ॥ ७ । ८ ॥ व विमुख होनेपर निस्सन्देह सब विमुख होजातेहैं इस लिये यदि अपनाको पुण्य चाहै तो जीवात्माके भी दानसे सदैव गृहस्थके अतिथि प्रसन्न करानेयोग्य है हे द्विजोत्तमो ! गृहस्थोंको तीन प्रकारका अतिथि कहागयाहै ॥ ९ । १० ॥ उस अतिथि के उस समयको मैं कहताहूं सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो कि श्राद्धीय, वैश्वदेवीय व तीसरा सूर्योढ है ॥ ११ ॥ व जे भोजन के लिये भी हैं उनकी मात्रा कहीगई हैं पितरों की श्राद्धमें संकल्प करनेपर भोजन से उपजे हुये समय में जो भलीभांति आताहै वह श्राद्धीय कहागया है और दूरवाले मार्गसे आये व विश्राम कियेहुये उस अतिथिको वैश्वदेवीय जानै पहले आयाहुआ अतिथि नहीं है

दिन वहां समस्त देवताओं की समीपता करना चाहिये ॥ २० ॥ व जो पुरुष उस दिनके भलीभांति स्थित होनेपर उसी तीर्थमें स्नान करै उसको तुम सबोंकी प्रसन्नतासे समस्त तीर्थोंका फलहोवै ॥२१॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे देव! कौतुकसे संयुक्त जे सब ऋत्विज् लोग भलीभांति बैठेहैं वे यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये शीघ्रही उठैं ॥ २२ ॥ इसी अवसर में उन पुलस्त्यजी के वचन से प्रेरित जे ऋत्विज् थे वे सब उठकर अपने स्थानों पै प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! फिर वह यज्ञ वर्त्तमान हुआ व जो हवनपूर्वक यज्ञवाले कर्मथे उनको करनेलगे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटके

ऋत्विजःसकलादेव संस्थिताःकौतुनिसंस्थिते ॥ सर्वतीर्थफलन्तस्य जायतेवःप्रसादतः ॥ २१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ उत्तिष्ठन्तुचतेशीघ्रं यज्ञकर्म्मप्रसिद्धये ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वे तस्यवाक्यप्रणोदिताः ॥ उत्थिताऋत्विजोयेचस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥२३॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञः सपुनर्द्विजसत्तमाः ॥ कुर्वन्तियज्ञकर्म्माणि होमपूर्वाणियानिच ॥ २४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथेरुत्पत्तिस्तत्तीर्थमाहात्म्यतृतीयदिनयज्ञकर्मचरितकथनंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७५ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ भूयएवमहाभाग वदमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अथितेःकृत्स्नमस्माकं विस्तरेणचसूतज ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ शृण्वन्तुमुनयस्सर्वे माहात्म्यमिदमुत्तमम् ॥ येनसंश्रुतमात्रेण नश्येत्पापंदिनोद्भवम् ॥ २ ॥ यन्मयाचश्रुतम्पूर्वं सकाशात्स्वपितुःशुभम् ॥ गृहस्थानाम्परोधर्म्मो नान्योस्त्यातिथिपूजनात् ॥ ३ ॥ अतिथेर्नचदेवोस्ति तस्यातिक्रमणेनच ॥

श्वरक्षेत्रमाहात्म्येऽतिथेरुत्पत्तिरतत्तीर्थमाहात्म्यतृतीयदिनयज्ञकर्मचरितकथनंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ॥ ॥

दो० । अहैं समयके भेदसों अतिथि तीनि परकार । इकसौ छिहत्तरिवें महँ कह्यो सो चरित उदार ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन महाभाग ! अतिथि के समस्त उत्तम माहात्म्य को फिरभी हम लोगोंसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि इस उत्तम माहात्म्य को समस्त मुनिलोग सुनैं कि जिसके भलीभांति सुनने मात्रसे दिनमें उपजाहुआ पाप नष्ट होताहै ॥ २ ॥ व पुरातन समय अपने पिताके सकाश से मैंने जिस उत्तम माहात्म्य को सुनाहै कि गृहस्थों को अतिथि के पूजन

भाग से अधिक तृप्ति होगी ॥ ६।१०।११॥ व इसको न देकर जो कुछ कीहुई श्राद्ध होवैगी वह सब इसकी वैसेही व्यर्थ होजावेगी जैसे कि भस्म में हवन व्यर्थ जाता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष वैश्वदेव कर्म के अन्तको प्राप्त होकर विष्णु जी के नाम समेत इसको पूजैगा तो श्रद्धासे पवित्र चित्त करके प्रीतिसे थोड़ाभी दियाहुआ वह अविनाशी होगा व श्राद्ध या वैश्वदेव में जो इसको न पूजैगा ॥ १३ । १४ ॥ उसका वह सब व्यर्थ होजायगा व इसको प्रसन्नता में प्राप्तहोने पर समस्त देवता भलीभांति आनन्द को प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥ और वैसेही विमुखहुये पितर सम्मुख होजाते हैं महेश्वरजी के उस वैसे वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये ब्रह्मा, विष्णु-

तेनास्यभवितातृप्तिर्यज्ञांशाभ्यधिकासदा ॥ ११ ॥ अदत्त्वास्यकृतंश्राद्धं यत्किञ्चित्प्रभविष्यति ॥ तत्तथास्याखिलंव्य
र्थं यातिभस्महुतंयथा ॥ १२ ॥ वैश्वदेवान्तमासाद्य यश्चैनंपूजयिष्यति ॥ विष्णुनामसमोपेतं भविष्यतितदक्षयम् ॥
१३ ॥ दत्तंस्वल्पमपिप्रीत्या श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ श्राद्धेवावैश्वदेवेवा यश्चैनंनार्चयिष्यति ॥ १४ ॥ अखिलंव्यर्थंतान्त
स्य तच्चसर्वंभविष्यति ॥ अस्मिंस्तुष्टिङ्गतेसर्वे सुरायास्यन्तिसंमुदम् ॥ १५ ॥ पितरश्चतथायान्ति विमुखास्संमुखन्त
था ॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे महेश्वरवचस्तथा ॥ १६ ॥ तथेतिमुदिताःप्रोचुर्ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ ततःप्रभृतिसञ्जाता
पूजाचातिथिसम्भवा ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजाकार्य्यातिथेःसदा ॥ यज्ञपूरुषयज्ञस्य नचैकस्यकथञ्चन ॥१८॥
अतिथिरुवाच ॥ अत्रास्तिमामकंतीर्थं मयातत्रस्वयंकृतम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं पुराकालेद्विजोत्तमाः ॥ १९ ॥ अङ्गार
केणसंयुक्ता चतुर्थीस्याद्यदातिथिः ॥ सान्निध्यन्तत्रकार्य्यञ्च सर्वैर्देवैश्चतद्दिने ॥ २० ॥ कुर्य्यात्तत्रैवयःस्नानंतस्मिन्नह

पूर्वक समस्त देवताओं ने तथा (वैसाही होगा) यह कहा तबसे लगाकर अतिथि (पाहुन) से उपजी हुई पूजा भलीभांति उत्पन्न हुई ॥ १६ । १७ ॥ इस लिये सदैव सब उपाय से पाहुन का पूजन करना चाहिये और अकेले यज्ञपुरुषवाले यज्ञका पूजन किसी प्रकार न करना चाहिये ॥ १८ ॥ अतिथि बोला कि हे द्विजोत्तमो ! यहां मेरा तीर्थहै वहांपर पुरातन समय मैंने आपही हाटकेश्वरजी से उपजे हुये क्षेत्रको कियाहै ॥ १९ ॥ जिस समय चौथि तिथि भौमवार से संयुतहोवै उस

कि अहो विप्रजी ! यज्ञभाग से रहित तुम निश्चयकर देवता होकर इसी शरीरसे देवलोक में बसोगे व तुम्ह मनुष्य को हम लोग यदि यज्ञभाग देवैं ॥१००। १२ ॥ तो तुमको उस दियेहुये वर से वेदकी अप्रमाणता होगी अतिथि बोला कि यज्ञभाग से वर्जित देवभाव से मेरा कार्य्य नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये मैं उसप्रकार साधना करूंगा कि जिसभांति मोक्ष होगा उस वचनको सुनकर हाथ जोड़े हुये ब्रह्मा जी समस्त देवताओं से बोले ॥ ४ ॥ कि मैं जो हितवाले वचन को कहता हूं उस को सब देवता सुनैं कि यह ब्राह्मण दूरही से मेरे यज्ञ में आया है ॥ ५ ॥ जो कि ज्ञान की उत्पत्ति में पात्र व विशेष कर नागर है व वैसेही जिसलिये कि समस्त

चुः ॥ नूनंत्वंविबुधोभूत्वा देवलोकेनिवत्स्यसि ॥ १ ॥ अनेनैवशरीरेण यज्ञभागविवर्जितः ॥ यच्चाभोयदितेविप्र यज्ञांशंमानुषस्यभोः ॥ २ ॥ अप्रामाण्यंश्रुतेर्भावि तवदत्तेनतेनच ॥ अतिथिरुवाच ॥ देवत्वेननमेकार्य्यं यज्ञांशरहितेनच ॥ ३ ॥ तदहंसाधयिष्यामि यथामुक्तिर्भविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राहसर्वान्देवान्कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ शृण्वन्तुदेवतास्सर्वायद्ब्रवीमिहितंवचः ॥ ममायंब्राह्मणोयज्ञे दूरादेवसमागतः ॥ ५ ॥ नागरस्तुविशेषेण पात्रंज्ञानसमुद्भवे ॥ प्रतिज्ञातस्तथासर्वैर्वरोस्यविबुधैर्यतः ॥ ६ ॥ तस्मात्तद्दीयतामस्मै यदभीष्टंसुरोत्तमाः ॥ महेश्वरउवाच ॥ यथास्यजायतेतृप्तिर्यज्ञभागाधिकासदा ॥ ७ ॥ तथाहङ्कथयिष्यामि शृण्वन्तुविबुधोत्तमाः ॥ यएषःक्रियतेयज्ञस्तस्यनाथोहरिःस्मृतः ॥ ८ ॥ एतस्मात्कारणात्प्रोक्तस्सदेवोयज्ञपूरुषः ॥ अद्यप्रभृतियत्किञ्चिच्छ्राद्धंमर्त्येभविष्यति ॥ ९ ॥ दैवंवापैतृकंवापि तस्यचान्तेऽव्यवस्थिते ॥ एतस्यनामसङ्कीर्त्य पश्चाच्चयज्ञपूरुषम् ॥ १० ॥ सङ्कीर्त्यभोजनंदेयं ब्राह्मणस्यद्विजोत्तमाः ॥

देवताओं ने इससे वर की प्रतिज्ञा किया है ॥ ६ ॥ इस लिये हे देवोत्तमो ! जो मनोरथ हो वह इसके लिये देना चाहिये महेश्वर जी बोले कि जिसप्रकार यज्ञभाग से अधिक इसको सदैव तृप्ति होगी ॥ ७ ॥ मैं वैसेही कहूंगा सब देवोत्तम उसको सुनैं कि जो यह यज्ञ कीजाती है उसके स्वामी विष्णुजी कहेगये हैं ॥ ८ ॥ इसी कारण वे देव यज्ञपुरुष कहेगये हैं आजसे लगाकर मृत्युलोक में जो कुछ देवता या पितरोंवाली श्राद्ध होगी उसकी समाप्ति के व्यवस्थित (प्राप्त) होनेपर इस ब्राह्मण का नाम भलीभांति कहकर पश्चात् यज्ञपुरुष (विष्णु) जी को सङ्कीर्तन करके हे द्विजोत्तमो ! ब्राह्मण को भोजन देना चाहिये उसी से सदैव इसकी यज्ञ

बोला कि हे द्विजोत्तमो ! जहांपर सूर्यास्त होता था वहीं शयन करता हुआ मैंने संख्या से रहितही अनेकों सैकड़ों वर्षतक अनेक हजारों व सैकड़ों ग्रामों में भ्रमण किया व मुख्य तीर्थों और वैसेही देवमन्दिरों को देखा ॥ ९१ । ९२ ॥ व उत्तम पर्वतों तथा निर्मल जलवाली नदियों को देखा और काशी जी में टिकेहुये मैंने आपही जाना ॥ ९३ ॥ कि जिसलिये हे द्विजोत्तमो ! इस मेरे स्थान में ब्रह्मा की यज्ञ होनेवाली है उसी कारण कौतुक से मैं शीघ्रतापूर्वक प्राप्तहुआ ॥ ९४ ॥ कि वह कैसी यज्ञहोगी जहांपर पूजनेवाले ब्रह्मा जी हैं इसी अवसर में दूसरे कर्म को प्राप्त होकर याने एक कार्य की समाप्ति में पुलस्ति आदिक ऋत्विज् व विष्णुजी

शायीसन्ननेकानिद्विजोत्तमाः ॥ ९१ ॥ संख्ययारहितान्येव वर्षाणाञ्चशतानिच ॥ दृष्टानिमुख्यतीर्थानि तथैवायतनानिच ॥९२॥ दृष्टाश्चपर्वताःश्रेष्ठा नद्यश्चविमलोदकाः ॥ स्वयमेवमयाज्ञातो वाराणस्यांस्थितेनच ॥ ९३ ॥ यज्ञःपैतामहोभावी स्थानेस्मिन्मामकेयतः ॥ ततोहंसत्वरम्प्राप्तः कौतुकेनद्विजोत्तमाः ॥९४॥ कीदृशःसमखोभावी यत्रयाजीपितामहः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ९५ ॥ वासुदेवम्पुरस्कृत्वा तथाचैवमहेश्वरम् ॥ कर्म्मान्तरंसमासाद्य पुलस्त्याद्यास्तथर्त्विजः ॥९६॥ ब्रह्मापिस्वयमायातो मृगचर्म्मधरस्तथा ॥ ततस्तेतुष्टिमापन्नास्तस्यज्ञानेनतेनच ॥ ९७ ॥ प्रोचुश्चवरदास्तुभ्यं सर्वएवदिवौकसः ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते प्रार्थयस्वयथेप्सितम् ॥ ९८ ॥ अवश्यंतवदास्यामो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ अतिथिरुवाच ॥ यदितुष्टास्सुरामह्यं प्रयच्छन्तिवरंमम ॥ ९९॥ अनेनैवशरीरेणदेवत्वम्प्रार्थयाम्यहम् ॥ यज्ञभागसमोपेतं तथान्येषांदिवौकसाम् ॥ १०० ॥ विशेषेणसुरश्रेष्ठास्स्थानञ्चोपरिसंस्थितम् ॥ देवाऊ

तथा महादेवजी को अगाड़ी कर इन्द्र समेत समस्त देवता प्राप्त हुये ॥ ९५।९६ ॥ वैसेही मृगचर्मधारी ब्रह्मा भी आपही प्राप्तहुये तदनन्तर उसके उस ज्ञानसे वे देवता प्रसन्नताको प्राप्तभये ॥ ९७ ॥ व बोले कि सबही देवता तुम्हारे लिये वरदायक हैं इसलिये स्वीकार करो तुम्हारा कल्याण होवै इच्छाके अनुकूल मांगिये ॥ ९८ ॥ यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि तुमको अवश्य कर हम लोग देवैंगे अतिथि बोला कि यदि मेरे ऊपर देवता प्रसन्न हैं व मुझको वरदान देते हैं ॥ ९९ ॥ तो हे देवोत्तमो! यज्ञभाग से संयुत देवभाव को मैं इसी शरीर से मांगता हूं वैसेही विशेषकर अन्य देवताओं के ऊपर भलीभांति टिकेहुये स्थान की प्रार्थना करता हूं देवता बोले

में स्थित हुई उस एक चूड़ी का न शब्दहुआ और न संघर्ष (घिसन) हुई ॥८१॥ उसको विशेषकर चिन्तनकर मैंने उस आश्रम को भी छोड़ दिया व मैंने उत्तम निश्चय करके चित्त में चिन्तन किया ॥ ८२ ॥ कि बहुत जनोंसे नित्यही झगड़ा होता है वैसेही दो से संघर्षण होता है इसलिये कन्या की चूडीके समान मैं अकेले विचरूंगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर पुत्रसंयुत व सोती हुई उस स्त्री को छोड़कर मैं दूर वाले मार्ग को चलागया कि जहां वह मुझको नहीं जानती थी ॥ ८४ ॥ संसार के बन्धन को छोड़कर जहां सूर्यास्त हुआ वहीं शयन करनेवाला व जो मिला उसको भोजन करनेवाला मैं भूपृष्ठमें घूमता हूं ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीकारण

न्त्यमयासोपि आश्रमःपरिवर्जितः ॥ चिन्तितञ्चमयाचित्ते कृत्वाचैवसुनिश्चयम् ॥ ८२ ॥ बहुभिःकलहोनित्यं द्वाभ्यां संघर्षणन्तथा ॥ एकाकीविचरिष्यामि कुमारीवलयंयथा ॥ ८३ ॥ ततःसुप्ताम्परित्यज्य ताम्भार्य्यांशिशुसंयुताम् ॥ गतोहंदूरमध्वानं यत्रनोवेत्तिसाचमाम् ॥ ८४ ॥ यत्रास्तमितशायीच यल्लब्धंकृतभोजनः ॥ भ्रमामिमेदिनीपृष्ठे त्यक्त्वासंसारबन्धनम् ॥ ८५ ॥ ततोमेज्ञानमुत्पन्नमेवंविप्राश्शनैःशनैः ॥ अतीतानागतञ्चैव वर्तमानंविशेषतः ॥ ८६ ॥ एवंमेकन्यकाजाता गुरुत्वेद्विजसत्तमाः ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिगुरोःकृते ॥ ८७ ॥ नयुष्माकंपुरोज्ञानंकीर्तयामकथञ्चन ॥ एवंमेज्ञानमुत्पन्नं प्रकारैःषड्भिरेवच ॥ ८८ ॥ एभिर्लोकान्तरज्ञानं युष्मत्प्रत्ययकारकम् ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे पप्रच्छुस्तंद्विजोत्तमाः ॥ ८९ ॥ वानप्रस्थाश्रमंत्यक्त्वा भार्य्यांशिशुसमन्विताम् ॥ क्वगतस्त्वन्तदाचक्ष्व कियत्कालञ्चसंस्थितः ॥ ९० ॥ अतिथिरुवाच ॥ अहंभ्रान्तःसहस्राणि ग्रामाणाञ्चशतानिच ॥ यत्रास्तमित

धीरे २ विशेषकर भूत, भविष्य, वर्तमान वाला ऐसा ज्ञान मेरे उत्पन्न हुआ ॥८६॥ हे द्विजोत्तमो ! इसभांति मेरी गुरुतामें कन्या हुई है गुरु के लिये जिस चरित्रको तुम सबों ने पूंछा इससमस्त वृत्तान्तको तुम लोगों से वर्णन किया ॥ ८७ ॥ मैं तुम लोगों के आगे किसी प्रकार ज्ञानको नहीं कहता हूं इसभांति छहप्रकारोंसे मेरेज्ञान उत्पन्नहुआ है ॥ ८८ ॥ इनसे तुम लोगों के विश्वासको करानेवाला लोकों के मध्य का ज्ञान है सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर उन समस्त ब्राह्मणों ने उस से पूंछा ॥ ८९ ॥ कि वानप्रस्थ आश्रम व बालक समेत स्त्री को छोड़कर तुम कहांगये व कितने समय तक भलीभांति टिकेरहेहो उसको कहो ॥ ९० ॥ अतिथि

तो मैं मरजाऊंगी यह निस्सन्देह सत्य है व मेरे मरनेपर यह तुम्हारा बालक भी मरजायगा ॥ ७१ ॥ व कुमारी और कुमार मरजावैगा इसलिये हे स्वामिन् ! दया कीजिये आपही जानतेहुये भी तुम अन्य तीर्थ को मत जावो ॥ ७२ ॥ हे विभो ! मैंने सुना है कि सबही तीर्थों के मध्य में हाटकेश्वरसे उपजाहुआ यह क्षेत्र अतिपुण्यदायक कहागया है ॥ ७३ ॥ हे नाथ ! हे विभो ! अन्य तपस्वियों व द्विजेन्द्रों के कहते हुये व बहुधा सत्यवादी उत्तममुनि विश्वामित्र जीके मुखसे कहते हुये इस श्लोक को मैंने सुना है कि समस्त तीर्थ निस्सन्देह स्नान व दान से पवित्र करते हैं ॥ ७४ । ७५ ॥ व हाटकेश्वरज क्षेत्र स्मरणसे भी तारताहै तदनन्तर

मारीचकुमारश्च तस्मान्नाथदयांकुरु ॥ मात्रजस्वपरंतीर्थं परिजानन्नपिस्वयम् ॥ ७२ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रमेतत्पुण्यतरंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां श्रुतमेतन्मयाविभो ॥ ७३ ॥ वदतांब्राह्मणेन्द्राणां तथान्येषान्तपस्विनाम् ॥ श्लोकोयं बहुधानाथ कीर्त्यमानोमयाविभो ॥ ७४ ॥ विश्वामित्रस्यवक्त्रेण सन्मुनेःसत्यवादिनः ॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादसंशयम् ॥ ७५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं स्मरणादपितारयेत् ॥ ततःकृच्छ्रात्परिज्ञातं मयाश्रमनिषेवणम् ॥ ७६ ॥ वानप्रस्थोद्भवंस्थित्वा ततोहंतत्रसंस्थितः ॥ तत्रस्थस्यहिमेकन्याक्रीडतेपुरतःस्थिता ॥ ७७ ॥ वलयापूरिताभ्याञ्च भ्रममाणाइतस्ततः ॥ यथायथासाकुरुते कन्दमूलफलाशनम् ॥ ७८ ॥ तनुत्वंयातिकायेन तथाचैवदिनेदिने ॥ ततोमेजायतेदुःखंतेषांपतनसम्भवम् ॥ ७९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसञ्जातंवलयद्वयम् ॥ तस्याहस्तेततस्ताभ्यांशब्दःसञ्जायतेमिथः ॥ ८० ॥ ततःकालेनमहता ताभ्यामेकंव्यवस्थितम् ॥ नसंघर्षोनशब्दश्चतत्रस्थस्यचजायते ॥ ८१ ॥ तद्विचि

मैंने कष्ट से आश्रम का सेवन जाना ॥ ७६ ॥ उसके उपरान्त वानप्रस्थ से उपजे हुये आश्रम में टिककर मैं वहां भलीभांति टिकताभया वहां टिकेहुये मेरे अगाड़ी स्थित होती हुई कन्या खेलती है ॥ ७७ ॥ चूड़ियों से पूरित हाथोंसे संयुत व इधर उधर घूमती हुई वह ज्यों २ कन्द, मूल, फल भोजन करती है ॥ ७८ ॥ त्यों २ दिन २ में शरीर से लघुता को प्राप्त होती थी उसी कारण मुझको उन चूड़ियों के गिरने से उपजाहुआ दुःख होता था ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस के हाथ में दो चूड़ियां रहगईं तदनन्तर उन दोनों से आपस में शब्द होता था ॥ ८० ॥ तदनन्तर बड़े समय से उन दोनों में से एक व्यवस्थित हुई (रहगई) हाथ

में चिन्तन किया ॥ ६१ ॥ कि ब्रह्मज्ञानसे उपजाहुआ योग एकाग्र चित्तसे होगा अन्यथा यह योग मेरे न होगा इसलिये ब्रह्मसंसिद्धिके लिये मैं चित्तका निरोध करूं उसीसे मेरे यह योग होगा उसके उपरान्त तबसे लगाकर सदैव अपने चित्तमें हृदयके कमल में बसनेवाले समस्त विश्वरूप (परमात्मा) को धारण करता हूं उसीकारण दिशाओं व दिगन्तों और आकाश व भूतल में ॥ ६२।६३।६४ ॥ उस एकही पुरुष को देखता हूं हे द्विजोत्तमो ! और कुछ नहीं देखताहूं व उसके अभाव से मैं तेज संयुत टिका हूं ॥ ६५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह बाणकारक इसप्रकार मेरा गुरु हुआ है व पुरातन समय जिसप्रकार मेरी गुरुता में कन्या हुई है उस को सु-

या ॥ ६१ ॥ एकचित्ततयायोगो ब्रह्मज्ञानसमुद्भवः ॥ नान्यथाभवितामेसौ ततश्चित्तनिरोधनम् ॥ ६२ ॥ करोमिब्रह्मसंसिद्ध्यै ततोमेसौभविष्यति ॥ ततःप्रभृतिचित्तस्वे धारयामिसदैवतु ॥ ६३ ॥ विश्वरूपंततःसर्वं हृत्पङ्कजनिवासिनम् ॥ ततोदिक्षुदिगन्तेषु गगनेधरणीतले ॥ ६४ ॥ तमेकञ्चैवपश्यामि नान्यत्किञ्चिद्द्विजोत्तमाः ॥ अहञ्चतेजसायुक्तस्तत्प्रभावेणसंस्थितः ॥ ६५ ॥ एवंमेसगुरुर्जातःशरकारोद्विजोत्तमाः ॥ शृणुध्वंकन्यकाजाता गुरुत्वेमेयथापुरा ॥ ६६ ॥ सर्वसङ्गपरित्यागी यदाहंनिर्गतोगृहात् ॥ ममानुपृष्ठतश्चैव ततोभार्याविनिर्गता ॥ ६७ ॥ शिशुंपुत्रंसमादाय कन्यामेकांश्वशोभनाम् ॥ ततोहंभार्य्ययाप्रोक्तो वानप्रस्थाश्रमेस्थितः ॥ ६८ ॥ कुरुयोगंततोमुक्तिरत्रैवहिभविष्यति ॥ ब्रह्मचारीगृहस्थोवा वानप्रस्थोथवायतिः ॥ ६९ ॥ यदिस्यात्संयतात्मास नूनंमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ अथवामाम्परित्यज्य यदियास्यथवान्यतः ॥ ७० ॥ तदहञ्चमरिष्यामि सत्यमेतदसंशयम् ॥ मृतायामपितेबालश्चासावपिमरिष्यति ॥ ७१ ॥ कु

निये ॥ ६६ ॥ कि समस्त संगों का छोड़नेवाला मैं जब घर से निकला तदनन्तर छोटे पुत्रको व एक उत्तम कन्याको भली भांति लेकर मेरे पछिसे स्त्री निकली उसके उपरान्त वानप्रस्थ आश्रममें टिकेहुये मुझसे स्त्रीने कहा ॥ ६७।६८ ॥ कि योगको कीजिये तदनन्तर यहीं मोक्ष होगा ब्रह्मचारी,गृहस्थ या वानप्रस्थ अथवा संन्यासी होवे ॥ ६९ ॥ यदि संयतात्मा याने चित्त या मनको रोंकनेवाला होगा वह निश्चय कर मुक्ति को पावैगा अथवा यदि मुझको छोड़कर तुम अन्यत्र जावोगे ॥ ७० ॥

कर ॥ ५० ॥ मृत्युलोकमें ब्राह्मणों के लिये उनके अनुहारवाले ग्रन्थोंको किया है हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार भ्रमर मेरी गुरुता में प्राप्तहुआ है ॥ ५१ ॥ व बाणकारक जिसभांति गुरु हुआहै वैसेही तुमलोगों से कहताहूं कि मैंने परमात्मा के देखने के लिये हज़ारों ज्ञानसे संयुत योगियों से पूंछा व उन्होंने अपनी शक्तिसे कहा कि उत्तम शिष्यके लिये समाधि से उपजाहुआ आत्माका निरीक्षण होवैगा ॥५२।५३॥ व उसके प्रमाणवाले आसनों व आसनों को पूर्ण करनेवाले असंख्य कारणों से व अध्यात्म के पढ़ने से ब्रह्मका अवलोकन होता है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मैंने किसीप्रकार परमात्माको न देखा उसके उपरान्त वैराग्यको प्राप्त होताहुआ मैं गुरुके लिये

एवंमेगुरुताम्प्राप्तो मधुपोद्विजसत्तमाः ॥ ५१ ॥ इषुकारोयथाजातस्तथाचैवब्रवीमिवः ॥ आत्मावलोकनार्थाय मया पृष्टास्सहस्रशः ॥ ५२ ॥ योगिनोज्ञानसम्पन्नास्तैःप्रोक्तञ्चस्वशक्तितः ॥ आत्मावलोकनम्भावि सुशिष्यायसमाधिजम् ॥ ५३ ॥ आसनैस्तत्प्रमाणैश्च तथासनप्रपूरकैः ॥ असंख्यैःकारणैश्चैव अध्यात्मपठनैस्तथा ॥ ५४ ॥ ततोवलब्धितोनैव मयात्माचकथञ्चन ॥ ततोवैराग्यमापन्नःप्रभ्रमामिधरातले ॥ ५५ ॥ गुर्वर्थञ्चैवनोपश्यं गुरुमात्मावलोकने ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते राजमार्गेणगच्छता ॥ ५६ ॥ मयादृष्टोमहीपालस्सैन्येनमहतावृतः ॥ कश्चिदागत्यपप्रच्छ त्वरयासंयुतोनरः ॥ ५७ ॥ शरकर्मणिसंयुक्तमृजुत्वेतंनरन्तदा ॥ इषुकारममब्रूहि श्रेयस्तवभविष्यति ॥ ५८ ॥ कियतीवर्ततेवेला गतस्यपृथिवीपतेः ॥ ५९ ॥ इषुकारउवाच ॥ नमयावीक्षितःकश्चिद्राजमार्गेणभूपतिः ॥ तदन्यम्पृच्छचेत्कार्यं तवान्योपिब्रवीतुवा ॥ ६० ॥ शरकर्मणिसंसक्तस्त्वहमत्रव्यवस्थितः ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तस्य स्वचित्तेचिन्तितम्म

भूतल में घूमताथा परन्तु आत्मा के देखने में मैंने गुरुको न देखा अन्य दिनके प्राप्तहोने पर बड़ी सेनासे घिरे व राजमार्ग से जातेहुये भूपालको देखा॥५५।५६।५७॥ उस समय शीघ्रतासंयुत कोई मनुष्यने आकर सीधेकरनेवाले बाणकर्म में लगे हुये उस पुरुषसे पूंछा ॥ ५८ ॥ कि हे शरकारक ! तुम्हारा कल्याणहोगा मुझसे कहिये कि गयेहुये भूपतिको कितना समय वर्त्तमानहै ॥ ५९ ॥ बाणकारक बोला कि मैंने राजमार्गमें जातेहुये किसी भूपतिको नहीं देखाहै यदि कार्यहो तो अन्यपुरुष से पूंछिये और अन्य नर तुमसे कहैगा ॥ ६० ॥ मैं तो बाणके कार्यमें लगाहुआ यहां विशेषता से टिकाथा उस शरकारकके उस वचनको सुनकर मैंने अपने चित्त

वैसाही तुमलोगों से कहताहूं ॥ ४० ॥ कि मैने किसी वृक्षमें किसी भी प्राप्तहुये भ्रमरको देखा जोकि शाखाके अग्रभागमें भलीभांति टिककर पहले कियेहुये निबन्धन (स्थान) वालाथा ॥ ४१ ॥ वसन्त समयके प्राप्त होने पर जो वृक्ष सुगन्ध, फल, पत्तोंवाले व उत्तम सुगन्धसे संयुत व फूलोंवाले थे ॥ ४२ ॥ उनके बीचसे उत्तमसे अतिउत्तम रसको भलीभांति लेकर सदैवही इस वृक्षकी शाखाके अग्रभागमें नियोग करता था ॥ ४३ ॥ उस समय निर्वेदन प्राप्तहुये भावसे देखा व मैंने भलीभांति निरीक्षण किया तदनन्तर बहुत समय से बहुत भारी मधु (शहद) समूह होगया ॥ ४४ ॥ कि जिस शहद से सैकड़ों हज़ारों अन्य भ्रमर तृप्तिको प्राप्तहुये मैंने

शाखाग्रन्तुसमाश्रित्य कृतपूर्वनिबन्धनः ॥ ४१ ॥ वसन्तसमयेप्राप्ते पुष्पवन्तश्चयेद्रुमाः ॥ सुगन्धफलपत्राश्च सुसुगन्धेनसंयुताः ॥ ४२ ॥ तेषांमध्यात्समादाय श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरंरसम् ॥ नियोजयतिशाखाग्रे तरोरस्यसदैवहि ॥ ४३ ॥ अनिर्विण्णतयादृष्टस्तदासम्यङ्निरीक्षितः ॥ मधुजालन्ततोजातं कालेनमहतामहत् ॥ ४४ ॥ येनान्येमधुनातृप्तिं प्राप्ताश्शतसहस्रशः ॥ तच्चेष्टितंमयादृष्टं शास्त्राण्यन्यानिभूरिशः ॥ ४५ ॥ ततस्तेषांसमादाय सारभूतंपृथक्पृथक् ॥ कृतानिभूरिशास्त्राणि वेदान्तानिचकृत्स्नशः ॥ ४६ ॥ उपजीवन्तियेनान्ये यथाभृङ्गास्तथाद्विजाः ॥ एवंमेमधुपोजातो गुरुत्वेचद्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ तेनाहंतेजसायुक्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ वेदान्तवादिनोयेत्र प्रभवन्तिव्रतान्विताः ॥ ४८ ॥ निर्लोभागततृष्णाश्चतेभवन्तिसुतेजसः ॥ एकेत्रापिविहीनाये प्रभवन्तिकुबुद्धयः ॥ ४९ ॥ लोभमोहान्वितावाये जायन्तेतेवितेजसः ॥ वेदान्तानिसुभूरीणि मयादृष्ट्वाविचार्य्यच ॥ ५० ॥ अनुरूपाःकृताग्रन्था मर्त्यलोकेद्विजार्थतः ॥

उसके कर्मको देखा व अन्य बहुतसे शास्त्रोंका अवलोकन किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन शास्त्रोंसे अलग २ सारांशभूत वस्तुको लेकर मैंने अनेक शास्त्रों व सम्पूर्ण वेदान्तों का निर्माण किया ॥ ४६ ॥ कि जिससे जैसे भ्रमर जीते थे वैसेही अन्य ब्राह्मण जीविका करतेहैं हे द्विजोत्तमो ! इसभांति भ्रमर मेरी गुरुतामें हुआहै ॥ ४७ ॥ उसीसे मैं तेजसंयुत हूं इसमें और कारण नहीं है यहां व्रतों से संयुत जे वेदान्तवादी निर्लोभ व तृष्णारहित होते हैं वे उत्तम तेजस्वी होते हैं व कितेक कुबुद्धी जो पुरुष यहां भी व्रतादिकों से विहीन होते हैं ॥ ४८ । ४९ ॥ या जो लोभ, मोह से संयुत होते हैं वे बिन तेजवाले होतेहैं मैंने बहुतसे वेदान्तों को देखकर व विचार

मैंने सांपके कर्मको देखकर त्यागकिया जो संन्यासी एकरात ग्राममें बसै व तीन रातैं शहर में निवासकरै ॥ ३० । ३१ ॥ वही यति (संन्यासी) कहागया है व जो अन्यहै वह योगकी विडम्बना करताहै और जो मुख्य ब्राह्मणों के घरमें धुँवा रहित व शान्त अग्निमें मधुकरी (भौंरियां) पकाताहै वह यतिहै अन्य नहीं कहा गयाहै अथवा दण्डी भिक्षाको करै व जो पुरुष दुःख के विना उसी भिक्षा करने पै स्थित होता है व वैराग्यको प्राप्तही होताहै वह निश्चयकर यतिहै दिनमें सोना व पराया अन्न, स्त्रियोंकी कथा व सम्भाषण ही ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ व श्वेत वसन, सुवर्ण ये छह संन्यासियों के पातहैं याने इन्हींसे संन्यासी पतित होता है और जो

सर्पविचेष्टितम् ॥ एकरात्रंवसेद्ग्रामे त्रिरात्रंपत्तनेवसेत् ॥ ३१ ॥ योयतिःसयतिःप्रोक्तोयोन्योयोगविडम्बकः ॥ विधूमे चप्रशान्ताग्नौ यस्तुमाधुकरीञ्चरेत् ॥ ३२ ॥ गृहेचविप्रमुख्यानां सयतिर्नेतरःस्मृतः॥ दण्डीभिक्षाञ्चवाकुर्य्यात्तदेवा व्यसनंविना ॥ ३३ ॥ यस्तिष्ठतिचवैराग्यं यातिचैवयतिर्हिसः ॥ दिवास्वापम्परान्नञ्चस्त्रीकथालापमेवच ॥ ३४ ॥ श्वेत वस्त्रंहिरण्यञ्च यतीनांपत्तनानिषट् ॥ समःशत्रौचमित्रेच समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ३५ ॥ सयतिर्नेतरोयश्चसमोमाना पमानयोः ॥ स्वदेशेपरदेशेवा स्वकीयेपरकेपिवा ॥ ३६ ॥ योनहृष्यतिनद्वेष्टिसयतिर्नेतरःस्मृतः ॥ यस्मिन्गृहेविशेषे णलभेद्भिक्षाञ्चवाशनम् ॥ ३७ ॥ तत्रनोयातियोभूयः सयतिर्नेतरःस्मृतः ॥ एवंज्ञात्वामयाविप्रा दृष्ट्वासर्पविचेष्टित म् ॥ ३८ ॥ सर्वसङ्गपरित्यागं मोक्षार्थंपरिकल्पितम् ॥ एवंममाहिःसञ्जातो गुरुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ३९ ॥ तत्प्रभावान्म हत्तेजः सञ्जातंविग्रहेमम ॥ यथामेभ्रमरोजातो गुरुस्तद्वदामिवः ॥४०॥ कस्मिन्वृक्षेमयादृष्टोभ्रमरःकोपिसङ्गतः ॥

शत्रु व मित्रमें समभाव तथा ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समदृष्टि है ॥ ३५ ॥ वह यति है अन्य नहीं है व मान, अपमान में सम और अपने देश या विदेश में व अपने तथा पराये में ॥ ३६ ॥ जो न प्रसन्न होता है न वैर करताहै वह यतिहै अन्य नहीं कहागया है व जिस घर में विशेषकर भिक्षा या भोजनको पावै ॥ ३७ ॥ वहां जो फिर न जावै वह यतिहै अन्य नहीं कहागया है हे ब्राह्मणो ! सांपके कर्मको देखकर मैंने ऐसा जानकर ॥ ३८ ॥ मोक्षके लिये समस्त सङ्गोंके त्यागकी कल्पना किया हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार सर्प मेरा गुरुहुआ है ॥ ३९ ॥ उसके प्रभावसे मेरे शरीरमें बड़ाभारी तेज भलीभांति उत्पन्न हुआहै व जिसप्रकार भ्रमर मेरा गुरुहुआ है

तेजाते वैरंसञ्जायतेमिथः ॥ एतस्मात्कारणाद्वित्तं मयात्यक्तंतपोधनाः ॥ २१ ॥ तेनसौख्येनतिष्ठामि कुररस्यप्रसादतः ॥ शृणुध्वञ्चमहाभागा यथामेहिर्गुरुःस्थितः ॥ २२ ॥ यथामयागृहंत्यक्तं दृष्ट्वासर्पविचेष्टितम् ॥ गृहारम्भस्तु दुःखाय सुखायनकदाचन ॥ २३ ॥ सर्पःपरकृतंवेश्म प्रविश्यसुखमेधते ॥ उषित्वातत्रसौख्येन भूयस्त्यक्त्वादिशंव्रजेत् ॥ २४ ॥ ममत्वंकुरुतेनैव ममेदंगृहमुत्तमम् ॥ नगृहंजायतेतस्य नस्वयंहिकृतंयतः ॥ २५ ॥ यःपुनःकुरुतेहर्म्यं तथाक्लेशैःपृथग्विधैः ॥ तस्ययातिममत्वाय मृत्युकालेपिसंस्थिते ॥ २६ ॥ गृहात्संजायतेभार्य्याततःपुत्राश्चकन्यकाः ॥ तेषामर्थेकरोतिस्म कृत्याकृत्यंततःपरम् ॥ २७ ॥ कोशकारमिवात्मानं चेष्टयन्नैवबुध्यते ॥ पुत्रदारगृहक्षेत्रसक्तास्सीदन्तिजन्तवः ॥ २८ ॥ स्नेहपङ्कार्णवेमग्ना नष्टावनगजाइव ॥ एकःपापानिकुरुते फलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ २९ ॥ भोक्तारोपिप्रमुच्यन्ते कर्तादोषेणलिप्यते ॥ एतस्मात्कारणाद्धर्म्यंमयात्यक्तंद्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥ मोक्षमार्गार्गलाभूतं दृष्ट्वा

प्राप्त होनेपर परस्पर वैरहोजाता है हे तपस्यारूप धनवाले मुनियो ! इसी कारण मैंने धनको त्याग कियाहै ॥ २१ ॥ उसी कारण कुररकी प्रसन्नतासे मैं आनन्द से टिकाहूं हे महाभाग्यवाले ऋषियो ! जिसभांति सांप मेरा गुरु स्थित भया है उसको सुनिये ॥ २२ ॥ कि जिसप्रकार मैंने सांपके कर्मको देखकर घरको त्याग किया है क्योंकि घरका प्रारम्भ दुःखके लिये है कदापि सुखके लिये नहीं होताहै ॥ २३ ॥ सांप पराये कियेहुये घरमें पैठकर सुखको पाताहै और वहां सुखसे बसकर फिर छोड़कर दिशाको चलाजाता है ॥ २४ ॥ व ममता नहीं करता कि मेरा यह घर उत्तम है उसके घर नहीं होता क्योंकि अपनारो नहीं बनायागया है ॥ २५ ॥ फिर जो पुरुष अनेक भांतिके क्लेशोंसे मन्दिर को करता है उसके मृत्युसमय को भी संस्थित (प्राप्त) होनेपर ममताके लिये होताहै ॥ २६ ॥ घरसे स्त्री होती है व उस स्त्रीसे पुत्र, कन्या होतीहैं तदनन्तर उनके लिये कार्य्याकार्य्य को करताहै ॥ २७ ॥ व कोशाकार (खुशियालीके कीट) की नाईं चेष्टा करता हुआ अपनाको नहीं जानताहै व पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्रमें आसक्त प्राणी दुःखितहोतेहैं ॥ २८ ॥ व वनके हाथियों के समान स्नेहरूपी कीचड़में फँसकर नष्टहोजाते हैं एक महापुरुष पापोंको करता है व फल भोगता है ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भोगकरनेवाले भी छूटजाते हैं व करनेवाला नर दोषसे लिप्तहोता है इसी कारण मोक्षमार्ग के बेंड़कनरूप घरको

व इस कारण तीनबार सौगन्द करके कि मेरे यह धनहै और मेरे घरमें नहीं है और न्यायपूर्वक व विधिके अनुकूल धनको बांटकर ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! तबसे लगाकर उनसे छूटाहुआ मैं सुखसे टिकताहूं इसी कारण यह कुरर मेरा गुरुहुआ है ॥ १३ ॥ और लक्ष्मी अज्ञान के लिये है व अज्ञान नरक के निमित्त होता है इसलिये मोक्षका चाहनेवाला पुरुष अनर्थरूपी धनको दूरसे त्यागकरै ॥ १४ ॥ जैसे मांस जलमें मछलियोंसे व भूमिमें सिंहादिक हिंसक पशुवोंसे और आकाशमें पक्षियों से निश्चयकर खायाजाता है वैसेही सबकहीं धनवान् नर पुरुषोंसे व्यथित होता है ॥ १५ ॥ दोषरहित भी धनवान् को भूपाल संतप्त करते हैं और दोषको

न्यदस्तीतिमेगृहे ॥ विभज्यार्थंयथान्यायं ममैतच्चयथाविधि ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतितैर्मुक्तः सुखंतिष्ठाम्यहंद्विजाः ॥ एत
स्मात्कारणाज्जातो ममासौकुररोगुरुः ॥ १३ ॥ अथसम्पद्विमोहाय विमोहोनरकायच ॥ तस्मादर्थमनर्थन्तु मोक्षा
र्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ १४ ॥ यथामिषंजलेमत्स्यैर्भक्ष्यतेश्वापदैर्भुवि ॥ आकाशेपक्षिभिश्चैव तथासर्वत्रवित्तवान् ॥ १५ ॥
दोषहीनोपिधनवान्भूपालैःपरितप्यते ॥ दरिद्रःकृतदोषोपिसर्वत्रनिरुपद्रवः ॥१६॥ आलम्बिताःपरैर्यान्ति प्रस्खलन्तिप
देपदे ॥ गद्गदानिचजल्पन्ति धनिनोमद्यपाइव ॥ १७ ॥ भक्तेद्वेषोबहिःप्रीती रुचिरंगुरुलघ्वपि ॥ मुखेचकटुकंनित्यं ध
निनांज्वरिणामिव ॥ १८ ॥ अर्थार्थंजीवलोकोयं श्मशानमपिसेवते ॥ जनितारमपित्यक्त्वा निःस्वंयान्तिसुताअपि ॥
१९ ॥ सुतस्यवल्लभस्तावत्पितापुत्रोपिवैपितुः ॥ यावन्नार्थस्यसम्बन्धस्ताभ्यांभावीपरस्परम् ॥ २० ॥ सम्बन्धेधिग

कियेहुये भी निर्धनी सबकहीं उपद्रवरहित होता है ॥ १६ ॥ मदिरा पीनेवाले नरोंकी नाईं धनी पुरुष और जनोंसे अवलम्बित होकर चलते हैं व पग २ पै लरखराते हैं और गद्गद वचनों को बोलते हैं ॥ १७ ॥ भक्त या भात में वैर व बाहरमें स्नेह और गरिष्ठ व हलके भोजन या बड़ा व छोटा भी पुरुष सुन्दर तथा मुखमें नित्यही कटुता ज्वरवान् नरोंकी नाईं धनियों के होतीहै ॥ १८ ॥ यह जीव लोक धनके लिये श्मशानको भी सेवताहै व पुत्रभी निर्धनी जनकको छोड़कर चलेजाते हैं ॥ १९ ॥-तब तक पुत्रको पिता प्यारा है व पुत्रभी तब तक पिताको प्रियहै कि जब तक उन दोनों से आपस में धनका सम्बन्ध नहीं होगा ॥ २० ॥ और सम्बन्ध

कि जिस प्रकार पिंगला मेरी गुरुहुई है व जिसप्रकार कुरर हुआ है उसको सुनिये मैं तुमसे यथायोग्य कहताहूं ॥ १ ॥ किं पिता, पितामहवाला बहुतसा धन मेरे था और जो पुत्र व पौत्र, सुत व भाई भी थे ॥ २ ॥ वे सब सदैव द्रव्यके लिये मुझको पीड़ित करते थे मैं जिसको न देऊं वही मुझको दुःखित करता था व प्राण संहार को दिखलाते हुये मैं दुःख के द्वारा याचित होताथा कोई प्रिय वचन से द्रव्य को मांगते थे अन्य भेदसे मांगते थे ॥ ३ । ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! अन्य जयके प्रदान से व कोई दण्डकेद्वारा मांगते थे इस भांति मैं उनके समीप से कहीं सुखको न प्राप्त होताथा ॥ ५ ॥ दिन रात दुःख के विनाश को चिन्तन करता हुआ मैं उपायको न

दद्द्रविणंभूरि पितृपैतामहंमहत् ॥ तथापुत्राश्चपौत्राश्च दायादाबान्धवाअपि ॥ २ ॥ तेमांसर्वेप्रबाधन्ते द्रविणस्यकृते सदा ॥ यस्याहन्नप्रयच्छामि समांचैवप्रबाधते ॥ ३ ॥ याच्यमानस्तुदुःखेन दर्शयन्प्राणसंक्षयम् ॥ एकेसाम्नाप्रयाचन्ते वित्तंभेदेनचापरे ॥ ४ ॥ जयप्रदानैश्चान्येपि केचिद्दण्डेनचद्विजाः ॥ एवंनाहंकचित्सौख्यं तेषांपार्श्वाल्लभामिभोः ॥ ५ ॥ चिन्तयानोदिवानक्तं क्लेशस्यपरिसंक्षयम् ॥ उपायन्नचपश्यामि येनशान्तिःप्रजायते ॥ ६ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेदृष्टो हृतंमांसपरिग्रहः ॥ कुररश्चञ्चुनाव्योम्नि गच्छमानस्त्वरान्वितः ॥ ७ ॥ हन्यमानस्समन्ताच्च मांसार्थेविविधैःखगैः ॥ अथतेनपरिक्षिप्तं तन्मांसंपक्षिजाद्भयात् ॥ ८ ॥ यावत्तावत्सुखीजातस्तैश्चसर्वैःसमुज्झितः ॥ मयापिक्लिश्यमानेन तद्वच्चनिजबान्धवैः ॥ ९ ॥ सामिषंकुररंदृष्ट्वा वध्यमानंनिरामिषैः ॥ आमिषस्यपरित्यागात्कुररस्सुखमेधते ॥ १० ॥ एवंनिश्चित्यमनसा सर्वानानीयबान्धवान् ॥ पुत्रान्पौत्रांस्तथासर्वं पुरस्तेषांनिवेदितम् ॥ ११ ॥ त्रिवारंशपथंकृत्वा ना

देखता था कि जिससे शान्ति होवै ॥ ६ ॥ मैंने अन्य दिनमें शीघ्रतासंयुक्त व चोंच से मांस को लिये और आकाश में शीघ्रता से जातेहुये कुरर पक्षीको देखा ॥ ७ ॥ जोकि मांसके लिये सबओर अनेक प्रकारके पक्षियों से मारा जाताथा इसके अनन्तर जब तक वह पक्षियों से उत्पन्नहुये डरके कारण उस मांसको फेंकै तब तक उन सबोंसे त्यागाहुआ सुखी होगया वैसेही अपने भाइयोंसे क्लेशित मैंने भी ॥ ८ । ९ ॥ मांसरहित पक्षियों से मारेजाते हुये मांसरहित कुररको देखकर कि मांसके छोड़ने से कुरर सुखको प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥ इस भांति मनसे निश्चयकर समस्त भाइयों, पुत्रों व पौत्रों को आनकर सब धन उनके अगाड़ी निवेदन करदिया ॥ ११ ॥

उसीकारण परम पुष्टिकारक भोजन को ग्रहण करती है उसीलिये मेरे तेज की बढ़तीके निमित्त यह कारण हुआ है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसीसे वह पिंगला मेरी गुरुतामें हुईहै आशारूपी फँसरीसे घिरेहुये अंगोंवाले जो पुरुष उससे दुःखित होते हैं ॥ ३६ ॥ वे उस वस्तुके न मिलनेकी चिन्तासे रात्रिमें नहीं सोते हैं उनका जागरण होताहै और अग्नि नहीं जलती है तदनन्तर ॥ ३७ ॥ आहारको नहीं चाहतीहै उसी कारण तेजकी वृद्धि नहीं होती है व समस्त पुरुषकी इच्छाका अन्त किसीप्रकार नहीं विद्यमानहै ॥ ३८ ॥ इस संसारमें मनुष्योंके अभिलाषका ज्यों २ लाभ होताहै त्यों २ हव्यसे अग्निके समान बढ़तीको प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥ जैसे

जोभिवृद्धये ॥ ३५ ॥ गुरुत्वेपिङ्गलाजाता तेनसामेद्विजोत्तमाः ॥ आशापाशैःपरीताङ्गा येभवन्तितयार्दिताः ॥ ३६ ॥ तेरात्रौशेरतेनैव तदप्राप्तिविचिन्तया ॥ नैवाग्निर्दीप्यतेतेषां जागरश्चततःपरम् ॥ ३७ ॥ आहारंवाञ्छतेनैव ततस्ते जोभिवर्द्धनम् ॥ सर्वस्यविद्यतेचान्तं नवाञ्छायाःकथञ्चन ॥ ३८ ॥ यथायथाभवेल्लाभो वाञ्छितस्यनृणामिह ॥ हवि षाकृष्णवर्त्मेव वृद्धिंयातितथातथा ॥ ३९ ॥ यथाशृङ्गंरुरोःकाये वर्द्धमानस्यवर्द्धते ॥ एवंतृष्णापिवित्तेन वर्द्धमानेनव र्द्धते ॥ ४० ॥ एवंज्ञात्वामहाभागाः पुरुषेणविजानता ॥ दिवातत्कर्म्मकर्तव्यं येनरात्रौसुखंस्वपेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्क न्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येब्रह्मयज्ञेतृतीयदिवसे पिङ्गलोपाख्यानन्नामचतुस्सप्तत्य धिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अतिथिरुवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यथामेपिङ्गलागुरुः ॥ श्रूयतांकुररोजातो यथावत्तेवदाम्यहम् ॥ १ ॥ ममासी

बढ़तेहुये मृगके शरीरमें सींग बढ़ता है ऐसेही धनके बढ़तेहुये तृष्णाभी बढ़ती है ॥ ४० ॥ हे महाभाग्यवाले द्विजोत्तमो ! ऐसा जानकर विज्ञानी पुरुषको दिनमें वह काम करना चाहिये कि जिससे रातको सुखसे सोवै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येब्रह्मयज्ञेतृतीयदिवसेपिङ्गलोपाख्यानन्नामचतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि ब्रह्माकी यज्ञ महँ आयो पाहुन एक । इकसौ पचहत्तरिहि महँ कहत चरित सो नेक ॥ अतिथि बोला कि तुमलोगोंसे इस समस्त चरितको कहा

स्थित थीं ॥ २४ ॥ वे सब रातके बीच में विकलता को प्राप्त होतीथीं अपर स्त्रियां वसन, धूपों व फूलों को लाती थीं ॥ २५ ॥ वैसेही अपर स्त्रियां सुगन्धित लेपों को व अन्य विचित्र फूलों और सूक्ष्म वसनों को आनती थीं ॥ २६ ॥ जबतक सोने से उपजा हुआ समय स्थित होता था तबतक वे स्त्रियां कामदेव के उत्साह से संयुक्त व रोमांच युत होती थीं ॥ २७ ॥ व परस्परमें अक्षमासे एक जानतीथी कि मुझको शय्यापर निश्चय कर बुलावैंगे व एक जानती थी कि मुझही को बुलावैंगे ॥ २८ ॥ व ईर्षा करती तथा अपने रूपों को देखती व कहती थीं तदनन्तर उन सबों के मध्य से एक नृपति के समीप जाती थी ॥ २९ ॥ शेष स्त्रियां विलक्षणता

पनानिमुख्यानि सुरभीणितथापराः ॥ पुष्पाणिचविचित्राणि अन्यास्सूक्ष्माम्बराणिच ॥ २६ ॥ तावद्यावत्स्थितः कालश्शयनीयसमुद्भवः ॥ मन्मथोत्साहसंयुक्ताः पुलकेनसमन्विताः ॥ २७ ॥ एकाजानातिमांशय्यां नूनमेवाह्व यिष्यति ॥ एकाजानातिमांचैव परस्परममर्षतः ॥ २८ ॥ स्पर्द्धयन्तिप्रपश्यन्ति स्वरूपाणिवदन्तिच ॥ तासांमध्यात्ततश्चैका प्रयातिनृपसन्निधौ ॥ २९ ॥ शेषावैलक्ष्यमासाद्यनिःश्वस्यप्रस्वपन्तिच ॥ दुःखार्तानलभन्तिस्मताश्चनिद्रांपराभवात् ॥ ३० ॥ कामेनपीडिताङ्ग्यश्च बाष्पपूर्णेक्षणाःस्थिताः ॥ आशाहिपरमंदुःखं नैराश्यंपरमंसुखम् ॥ ३१ ॥ आशांनिराशांकृत्वाच सुखंस्वपितिपिङ्गला ॥ नकरोतिचशृङ्गारं नस्पर्द्धांचकथञ्चन ॥ ३२ ॥ नव्याकुलत्वमापेदे सुखंस्वपितिपिङ्गला ॥ ततोमयापितद्दृष्टं तस्याश्चेष्टितमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ आशास्सर्वाःपरित्यक्त्वा प्रसुप्तोहंयतस्सुखी ॥ येस्वपन्तिस्वयंरात्रौ तेषांकायाग्निरिध्यते ॥ ३४ ॥ आहारंप्रतिगृह्णाति ततःपुष्टिकरंपरम् ॥ तदेतत्कारणंजातं ममने

को प्राप्त होकर श्वास लेकर सोरहती थीं वे दुःख से विकल होती हुई अनादर के कारण नींद को नहीं पाती थीं ॥ ३० ॥ व कामदेव से पीड़ित अंगों वाली व आंसुओं से पूर्ण नयनों वाली स्थित होती थीं आशा अत्यन्त दुःख है व निराशता परम आनन्द है ॥ ३१ ॥ क्योंकि आशाको निराश करके पिंगला सुख से सोती थी और शृंगार व ईर्षा को किसी प्रकार नहीं करती थी ॥ ३२ ॥ व न विकलता को प्राप्तहोतीथी किन्तु पिंगला सुख से शयन करती थी तदनन्तर मैंने भी उसके उस उत्तम चेष्टितको देखा ॥ ३३ ॥ जिसलिये कि समस्त आशाओंको छोड़कर मैं सुखी होताहुआ सोताहूं जो आपही रातमें सोते हैं उनके शरीरकी अग्नि बढ़ती है ॥ ३४ ॥

बनानेवाला और कन्या ये छः मेरेगुरू हैं इन्हीं सबकी चेष्टा सेही मैं विचेष्टा करता हूं ॥ १६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि तुम किस देश में व किस स्थान में उत्पन्न हुये हो हम लोगों से यह कहो व क्या नामहै कौन गोत्रहै सबको विस्तारसे कहिये ॥ १७ ॥ अतिथि बोला कि हे ब्राह्मणो ! इस पुर में मैं हुआ हूं व शाकद्वीप में निकाल दिया गया जो शुभ, शेष व शाक्रेय और चौथे बौद्ध हुये हैं ॥ १८ ॥ उनके मध्य में जो बौद्ध संज्ञक अनन्त ऐसे कहेगये हैं वे छन्दोग्य गोत्र में प्रसिद्ध और वेदों व वेदांगोंके पारगामी थे ॥ १९ ॥ उनसे उपजाहुआ नागर द्विज भया है उसकी पिछली अवस्था स्थित होने पर प्राणों से भी अधिक प्रिय मैं पहला पुत्र हुआ ॥ २० ॥

च षडेतेगुरवोमम ॥ एतेषांचैवसर्वेषां चेष्टयैवविचेष्टितम् ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कस्मिन्देशेत्वमुत्पन्नः कस्मिन्स्थानेवदस्वनः ॥ किन्नामाकिन्तुगोत्रंच सर्वंविस्तरतोवद ॥ १७॥ अतिथिरुवाच ॥ आसमत्रपुरेविप्राश्शाकद्वीपेविवासितः ॥ शुभःशेषोथशाक्रेयो बौद्धसंज्ञश्चतुर्थकः ॥ १८ ॥ तेषांमध्येतुयोबौद्धसंज्ञोनन्तइतिस्मृतः ॥ छन्दोग्यगोत्रविख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १९ ॥ नागरस्तत्समुत्पन्नः पश्चिमेवयसिस्थिते ॥ तस्याहंप्रथमःपुत्रः प्राणेभ्योपिसुहृत्तमः ॥२० ॥ ततोहंयौवनंप्राप्तो यदाद्विजवरोत्तमाः ॥ तदामेदयितस्तातः पञ्चत्वंसमुपागतः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजाआनर्ताधिपतिर्द्विजाः ॥ सुतपास्तेननिर्दिष्टस्त्वहंचगृहकर्म्मणि ॥ २२ ॥ शान्तंदान्तंसमालोक्य विश्वस्तेनमहात्मना ॥ तस्यचान्तःपुरेप्यासीत्पिङ्गलानामनायिका ॥ २३ ॥ दौर्भाग्येनसमोपेता रूपेणापिसमन्विता ॥ अथान्याश्शतशस्तस्यभार्याश्चैवतथास्थिताः ॥ २४ ॥ तास्सर्वारजनीमध्ये व्याकुलत्वंप्रयान्तिच ॥ आहरन्त्यःपरावस्त्रं धूपांश्चकुसुमानिच ॥ २५ ॥ विले

तदनन्तर हे द्विजवरोत्तमो ! जब मैं युवा अवस्था को प्राप्तभया तब मेरा प्रियपिता मृत्युको प्राप्तहोगया ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसर में आनर्ताधिपति नृपाति बड़ातपस्वी हुआ है उसने मुझको गृह कार्य में निर्देश किया ॥ २२ ॥ विश्वास को प्राप्त उस महात्माने मुझ को शान्त व दान्त (इन्द्रियजीत) देखकर गृहकार्य में लगाया उसके रनिवास में पिंगला नामक नायका भी थी ॥ २३ ॥ जो कि रूप से भी संयुत दुर्भाग्यता से समन्वित थी व वैसेही उसके अन्य सैकड़ों स्त्रियां

पक्वान्नके कियेहुये उत्तम पर्वत देख पड़ते थे व घी दूध बहनेवाली नदियां और दान के लिये धनके ढेर देख पड़तेथे ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें हे द्विजोत्तमो ! कोई ज्ञानी प्राप्तहुआ जो कि सदैव भूत, भविष्य, वर्तमान को जानता था ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह ब्रह्माको प्रणाम कर उनके अगाड़ी समीप बैठगया व कर्म की समाप्तियों में उसने समस्त ब्राह्मणों से जो अपना चरित था वह सबकहा तदनन्तर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनों वाले व कौतुक से संयुत चित्तवाले और भूले हुये अपनेकार्यों को स्मरण करते हुये उन समस्त ऋत्विजों ने उस ज्ञानी से पूंछा उसके उपरान्त ॥ ८ । ९ । १० ॥ उस ज्ञानी ने अनिन्दित असंख्य कार्यों को सम्पूर्णता से कहा

स्यकृतास्तत्र दृश्यन्तेपर्वताश्शुभाः ॥ घृतक्षीरवहानद्योदानार्थंवित्तराशयः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः कश्चिज्ज्ञानी द्विजोत्तमाः ॥ अतीतानागतंवेत्ति वर्तमानंचयःसदा ॥७॥ ब्रह्माणञ्चनमस्कृत्य उपविष्टस्तदग्रतः ॥ कर्म्मोत्तरेषुविप्राणां ससर्वेषांद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ कथयामासयद्वृत्तं चात्मानंप्रतिकृत्स्नशः ॥ ततस्तुऋत्विजस्सर्वे कौतुकाविष्टचेतसः ॥ ९ ॥ पप्रच्छुर्ज्ञानिनंतंच विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ विस्मृतानिस्मरन्तस्ते निजकृत्यानिवैततः ॥१०॥ प्रोक्तान्यगर्हणीयानि असंख्यातानिसर्वशः॥ ततस्तेपुनरेवात्र पप्रच्छुर्ज्ञानिनञ्चतम् ॥ ११ ॥ लोकोत्तरमिदंज्ञानं कथंतेसंस्थितंद्विज ॥ कोगुरुस्तेसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ १२ ॥ अहोज्ञानमहोज्ञानन्नैतद्दृष्टंश्रुतन्नच ॥ यादृशंतेद्विजश्रेष्ठ दृश्यतेपार्श्वसंस्थितम् ॥ १३ ॥ किंब्रह्मणास्वयंविप्र त्वमेवंप्रतिबोधितः ॥ किंवाहरेणतुष्टेन किंवादेवेनचक्रिणा ॥ १४ ॥ नान्यत्रप्रबोधितस्यैवं ज्ञानंसंजायतेस्फुटम् ॥ अतिथिरुवाच ॥ पिङ्गलाकुररस्सर्पो भ्रमरश्चतथापरः ॥ १५ ॥ इषुकारःकुमारी

तदनन्तर उन्हों ने फिर भी इस विषय में उस ज्ञानी से पूंछा ॥ ११ ॥ कि हे द्विज! यह लोकोत्तर (अपूर्व) ज्ञान तुम्हारे कैसे भलीभांति टिका है व तुम्हारा कौन गुरू है इसको भलीभांति कहिये हम लोगों को परम आश्चर्य है ॥ १२ ॥ कि विस्मय है यह ज्ञान न देखागया न सुनागया जैसा कि हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम्हारे समीप स्थित है ॥ १३ ॥ हे विप्रजी ! क्या तुम आपही ब्रह्मा से इसभांति प्रतिबोध करायेगये हो अथवा प्रसन्न हुये शिवजीसे या चक्रधारी देव (विष्णुजी) से बोधित हुये हो ॥ १४ ॥ क्योंकि और से प्रबोधित पुरुषका ऐसा प्रकट ज्ञान नहीं होता है अतिथि बोला कि पिंगला कुरर पक्षी व सांप तथा अन्य भ्रमर ॥ १५ ॥ व बाण

माहात्म्य अत्यन्तही पढ़ाजाता है काल से देखाहुआ भी वह जीता है व नागतीर्थ से उपजे हुये माहात्म्य वाली यह लिखी हुई पोथी जहां स्थित होती है वहां सर्प नहीं टिकताहै ॥ ४५।४६।४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येनागतीर्थोत्पत्तिर्नामत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । आयो यक सर्वज्ञ द्विज ब्रह्मा यज्ञ मँझार । इकसौ चौहत्तरेमहं वरणतचरित उदार ॥ सूत जी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! त्रयोदशी तिथि में तीसरा दिन प्राप्त

स्ययस्यैतत्पुरतःपठ्यतेभृशम् ॥ ४५ ॥ नागतीर्थस्यमाहात्म्यं कालदष्टोपिजीवति ॥ पुस्तकंलिखितञ्चैतन्नागतीर्थंसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ माहात्म्यंतिष्ठतेयत्र नसर्पस्तत्रतिष्ठति ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागतीर्थोत्पत्तिर्नामत्रिसप्तत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १७३ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तृतीयेचदिनेप्राप्ते त्रयोदश्यांद्विजोत्तमाः ॥ प्रातस्सवनमासाद्य ऋत्विजःसर्वएवते ॥ १ ॥ स्वेस्वेकर्म्मणिसंलग्ना यज्ञकृत्यसमुद्भवे ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञस्तदापैतामहोमहान् ॥ २ ॥ सर्वकामसमृद्धस्तु सर्वैस्समुदितोगुणैः ॥ दीयतांदीयतांतत्र भुज्यतांभुज्यतामिति ॥ ३ ॥ एकःसंश्रूयतेशब्दो द्वितीयोद्विजसम्भवः ॥ नान्यत्तत्रतृतीयस्तु यज्ञेपैतामहेशुभे ॥ ४ ॥ योयंकामयतेकामं हेमरत्नसमुद्भवम् ॥ सतंप्राप्नोत्यसंदिग्धं वाञ्छिताच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥ पक्वान्न

होनेपर प्रातःकाल सवन (यज्ञौषधी कूटनेवाले) कर्म को प्राप्तहोकर वे सबहीऋत्विज् ॥ १ ॥ यज्ञकार्य से उपजे हुये कर्म के मध्य अपने २ कार्य में भली भांति लगगये तदनन्तर उससमय पितामहवाली बड़ीभारी यज्ञ वर्तमान हुई ॥ २ ॥ जो कि समस्त गुणों से भली भांति उदय को प्राप्त व सबकामनाओंसे बढ़तीको प्राप्त थी वहां दीजिये २ व भोजन कीजिये २ यह एक शब्द सुन पड़ताथा व दूसरा द्विजों से उत्पन्न हुआ सुनाजाता था और तीसरा शब्द उस पितामहकी उत्तम यज्ञ में नहीं सुन पड़ता था ॥ ३।४ ॥ जो पुरुष सुवर्ण व रत्नसे उपजे हुये जिस काम को चाहताथा वह अभिलाष से चौगुन निस्सन्देह प्राप्त होता था ॥ ५ ॥ उस यज्ञ में

ब्रह्माजी बोले कि उसी कारण सावधान होते हुये तुम सबोंको नाग तीर्थ में स्थित होना चाहिये मेरे इस यज्ञ में जो कोई दुष्टभाव में आश्रित होकर विघ्न के लिये भलीभांति आवै उसकी शीघ्रही रक्षा कीजिये राक्षसहो या पिशाच या भूत या मनुष्य भी होवे ॥ ३६ । ३७ ॥ हे नागो! मेरे यज्ञ की रक्षा यही अत्यन्त करनेयोग्य कार्य है व तुम लोग भी भादों के महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर ॥ ३८ ॥ कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि में जहां पूजन को पावोगे सूतजी बोले कि हां यही कहकर व ब्रह्माको प्रणामकर ॥ ३९ ॥ सनातन सुत से संयुत होते हुये नाग तीर्थमें भली भांति टिके जो तीर्थके स्नान करनेवाले भक्त जनों को कामदायकहै ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नागतीर्थेततःस्थेयं सर्वैस्तत्रसमाहितैः ॥ यःकश्चिन्ममयज्ञेत्र दुष्टभावंसमाश्रितः ॥ ३६ ॥ समागच्छतिविघ्नाय रक्षणीयःसत्वरम् ॥ राक्षसोवापिशाचोवा भूतोवामानुषोपिवा ॥ ३७ ॥ एतत्कृत्यतमन्नागा मम यज्ञस्यरक्षणम् ॥ तेयूयमपिसम्प्राप्ते मासिभाद्रपदेतथा ॥ ३८ ॥ पञ्चम्यांकृष्णपक्षस्य यत्रपूजामवाप्स्यथ ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवचप्रोच्य प्रणिपत्यपितामहम् ॥ ३९ ॥ सनातनसुतोपेता नागतीर्थंसमाश्रिताः ॥ कामप्रदश्चभक्तानांनराणांस्नानकारिणाम् ॥ ४० ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं सकृद्भक्त्यासमन्वितः ॥ नान्वयेपिभयंतस्य जायतेसर्पसम्भवम् ॥ ४१ ॥ तत्रयच्छतिमिष्टान्नं द्विजेभ्यःसज्जनैस्सह ॥ पूजयित्वातुनागेन्द्रान्सनातनपुरस्सरान् ॥ ४२ ॥ सप्तजन्मान्तरंयावन्नसदौःस्थ्यमवाप्नुयात् ॥ भूतप्रेतपिशाचानांशाकिनीनांविशेषतः ॥ ४३ ॥ नाच्छिद्रंनचरोगांश्च नाधिर्नच रिपोर्भयम् ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानंद्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥ सोपिसंवत्सरंयावत्पन्नगैर्नचपीड्यते ॥ सर्पदष्ट

भक्ति से संयुत जो पुरुष एकबार उस तीर्थ में स्नान करता है उसके वंश में भी सांप से उपजाहुआ डर नहीं होता है ॥ ४१ ॥ जो पुरुष वहां सनातन अग्रगामी (श्रेष्ठ) वाले नागेन्द्रों को पूजन कर सज्जनों समेत ब्राह्मणों के लिये मिष्टान्न देता है ॥ ४२ ॥ वह सात जन्मकी अवधि तक दुस्थिति को नहीं प्राप्त होता है व विशेषकर भूत, प्रेत, पिशाच व डाकिनियों के छिद्र याने उपद्रव को व रोग तथा मानसी व्यथा व शत्रुके भय को नहीं प्राप्तहोता है हे द्विजोत्तमो! बांचे जातेहुये इस चरित्र को जो पुरुष भक्ति से सुनता है ॥ ४३ । ४४ ॥ वह भी वर्षभरतक सांपों से पीड़ित नहीं होता है व सांप से डसे हुये जिस पुरुष के आगे यह नागतीर्थ का

चाहिये वहां टिके व तपस्या में स्थितहुये तुमको उत्तम कर्मवाला कर्कोटक नाग अपनी कन्याको देवैगा उसीसे मर्यादा समेत इस नवम कुलकी भूमि में सृष्टि होगी ॥ २५ । २६ ॥ सावनके कृष्णपक्षमें पंचमी दिनको भलीभांति प्राप्तहोने पर पृथ्वीके मध्य तुम नवयें वंशमें परम पूजनको भलीभांति पावोगे ॥ २७ ॥ व आज से लगाकर समस्त पातकोंका विनाशक नागतीर्थ ऐसा कहाहुआ वह तीर्थ धरातल में प्रसिद्ध को प्राप्तहोगा ॥ २८ ॥ पंचमी दिनके भलीभांति प्राप्तहोने पर जो पुरुष इस नागतीर्थ में स्नानकरैंगे उनको वर्ष पर्यन्त सांपसे उपजाहुआ डर न होगा ॥ २९ ॥ विषसे विकल जो पुरुष उसमें स्नानकरैगा वह उसी क्षण विषरहि

स्यतिसत्कर्म्मा ततःसृष्टिर्भविष्यति ॥ नवमस्यकुलस्यास्य समर्य्यादस्यभूतले ॥ २६ ॥ श्रावणेकृष्णपक्षेतु सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजां पृथिव्यांनवमेकुले ॥ २७ ॥ अद्यप्रभृतितत्तीर्थं नागतीर्थमितिस्मृतम् ॥ ख्यातिंयास्यतिभूपृष्ठे सर्वपातकनाशनम् ॥ २८ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सम्प्राप्तेपञ्चमीदिने॥ नतेषांवत्सरंयावद्भविष्यत्यहिजंभयम् ॥ २९ ॥ विषार्दितस्तुयोमर्त्यस्तत्रस्नानंकरिष्यति ॥ तत्क्षणान्निर्विषीभूत्वा सप्राप्स्यतिपरंसुखम् ॥ ३० ॥ पुत्रकामातुयानारी पञ्चम्यांभास्करोदये ॥ करिष्यतियादिस्नानं फलहस्ताप्रभक्तितः ॥ ३१ ॥ भविष्यतिचशीघ्रंसा बन्ध्यापिचसुपुत्रिणी ॥ सूतउवाच ॥ एवंप्रवदतस्तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ३२ ॥ अन्येनागास्समायातास्तत्रयज्ञेनिमन्त्रिताः ॥ वासुकिस्तक्षकश्चैव पुण्डरीकःकृषीहरः ॥३३॥ कम्बलाश्वतरौनागौ शेषःकालपरोबलः॥तेप्रणम्यवचःप्रोचुः प्रोच्चैर्देवंपितामहम् ॥३४॥ तवादेशाद्वयंप्राप्ता यज्ञेत्रप्रपितामह ॥येनकुर्म्मोवयंशीघ्रं नागंराज्येप्रतिष्ठितम् ॥३५॥

त होकर परम सुखको भलीभांति पावैगा ॥ ३० ॥ व पुत्रकी कामनावाली व फल हाथोंवाली जो स्त्री यदि पंचमी तिथिमें सूर्य्योदयके समय बड़ी भक्तिसे स्नानकरैगी ॥ ३१ ॥ वह वन्ध्या भी शीघ्रही उत्तम पुत्रवती होगी सूतजी बोले कि अव्यक्त जन्मवाले उन ब्रह्माको इसप्रकार कहतेहुये ॥ ३२ ॥ उस यज्ञमें जो अन्यनाग निमन्त्रितहोकर आयेथे याने वासुकि, तक्षक व पुण्डरीक, कृषीहर ॥ ३३ ॥ कम्बलाश्वतरनाग व शेष, कालपर और बल उन सबोंने पितामहदेवको उच्चप्रकारसे प्रणामकर वचन को कहा ॥ ३४ ॥ कि हे प्रपितामहजी ! तुम्हारी आज्ञासे हम सब इसयज्ञमें प्राप्तहुयेहैं जिससे हम नागको राज्यपै प्रतिष्ठितकरैं उसको कहिये ॥३५॥

च्यवनजी से निर्दोष मैं शाप दियागयाहूं इस लिये हे द्विजोत्तम ! मुझको शापसे रक्षाकीजिये उस वचन को सुनकर दयासंयुत भृगुजीने च्यवनसे कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि हे तात ! तुमने जो इस ब्रह्मचारी को शापदिया यह अयोग्य किया क्योंकि विष संयुत भी सांप तुमको धर्षणा करने के लिये नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥ फिर रसरी के समान व निर्विष इस सांपको क्या कहनाहै और इस ब्राह्मण ने तुमको उद्देशकर सांपको नहीं छोड़ाथा ॥ १८ ॥ इसलिये शीघ्रही इस ब्राह्मण के शापको मोक्ष कीजिये च्यवनजी बोले कि यदि सूर्य्यनारायण मर्य्यादा को त्यागकरैं कि उनकी किरण शीतलता को प्राप्तहोवै ॥ १९ ॥ व निशानायक (चन्द्रमा) उष्णता को

पातुरक्षमाम् ॥ तच्छ्रुत्वाच्यवनंप्राह कृपाविष्टोभृगुःस्वयम् ॥ १६ ॥ अयुक्तंविहितंतात यच्छप्तोयंवटुस्त्वया ॥ नत्वांध र्षयितुंशक्तो विषाढ्योपिभुजङ्गमः ॥ १७ ॥ किम्पुनर्जलसर्पोयं निर्विषोरज्जुसन्निभः ॥ नत्वामुद्दिश्यनिर्मुक्तः सर्पोनेन द्विजन्मना ॥ १८ ॥ शापमोक्षंकुरुष्वास्य तस्माच्छीघ्रंद्विजन्मनः ॥ च्यवनउवाच ॥ यदित्यजतिमर्य्यादामर्चिःशै त्यंव्रजेद्रविः ॥ १९ ॥ उष्णत्वंचक्षपानाथस्तन्मेस्यादनृतंवचः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यस्वयमेवपितामहः ॥ २० ॥ त त्रायातःस्थितोयत्र सर्पौत्रःसर्परूपधृक् ॥ प्रोवाचनविषादस्ते पुत्रकार्य्यःकथञ्चन ॥ २१ ॥ सर्पत्वंसमनुप्राप्तःशृणुष्वा त्रवचोमम ॥ पुरासंस्रष्टुकामोहं नागानांनवमंकुलम् ॥ २२ ॥ तद्भविष्यतिवैत्वत्तः समर्य्यादन्धरातले ॥ मन्त्रौषधियु तांपुंसो नपीडांसंचरिष्यसि ॥ २३ ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजांसमस्तेजगतीतले ॥ अत्रास्तिसुशुभंतीर्थं हाटकेश्वरसंज्ञि तम् ॥ २४ ॥ क्षेत्रेतत्रसमावासः पुत्रकार्य्यस्त्वयासदा ॥ तत्रस्थस्यतपःस्थस्य नागःकर्कोटकोनिजाम् ॥ २५ ॥ तवदा

प्राप्तहोवै तो मेरा वचन झूंठहोगा उन च्यवनजीके उस वचनको सुनकर आपही ब्रह्माजी ॥ २० ॥ वहां आये जहां सांपके रूपको धारनेवाला वह पौत्रथा और बोले हे पुत्र ! तुमको किसी प्रकार विषाद न करना चाहिये ॥ २१ ॥ व सर्पताको प्राप्तहुये तुम इस विषय में मेरे वचनको सुनो कि पुरातन समय मैं नागोंके नवें का सृष्टिकामक हुआथा ॥ २२ ॥ वह नवां कुल भूतल में तुमसे मर्य्यादा सहितहोगा और तुम पुरुषकी मन्त्र व ओषधी से संयुत पीड़ाको न प्राप्तहोगे ॥२३॥ व समस्त धरातल में उत्तम पूजन को भलीभांति पाओगे यहां हाटकेश्वर नामक अति उत्तमतीर्थ है ॥ २४ ॥ हे पुत्र ! उस क्षेत्र में तुमको सदैव निवास करना

में बैठेहुये ब्राह्मणों के मध्यमें होता (ऋग्वेदी) के समीप स्थितहुआ ॥ ५ ॥ उस सर्पने सब ओर से उस होताके शरीर को लपेटलिया परन्तु प्रायश्चित्त के डरसे
अपने स्थानसे न चला ॥ ६ ॥ व भयभीत लोचनोंवाले उस ऋग्वेदी ने यहां वचन नहीं कहा सर्पसे लिपटेहुये उसको देखकर बड़ाभारी हाहाकार हुआ ॥७॥ उन ब्रह्मा
के यज्ञमें नम्रचित्त या मनवाले मुनि मैत्रावरुण कर्ममें भलीभांति स्थितथे उन्होंने सर्पसे सब ओर लिपटेहुये पिताजीको देखा ॥ ८ ॥ तदनन्तर सांपमें उपजेहुये डर
को व उनके चेष्टित को देखकर क्रोधसंयुत उन मुनिने उस ब्रह्मचारीको शाप दिया ॥ ९ ॥ कि हे दुष्टबुद्धिवाले पापी ! जिसलिये तुमने समाज में सांपको फेंकदिया

पोंवेष्टयामास तस्यगात्रंसमन्ततः ॥ नचचालनिजस्थानात्प्रायश्चित्तविभीषया ॥ ६ ॥ नोवाचवचनंसोत्र भयसंत्रस्त
लोचनः ॥ हाहाकारोमहानासीत्तंदृष्ट्वासर्पवेष्टितम् ॥ ७ ॥ तस्यसत्रेविनीतात्मा मैत्रावरुणकर्म्मणि ॥ संस्थितस्तेनसंदृ
ष्टः पितासर्पाभिवेष्टितः ॥ ८ ॥ ज्ञात्वातुचेष्टितंतस्य भयंसर्पसमुद्भवम् ॥ शशापक्रोधसंयुक्तस्ततस्तंसवटुंमुनिः ॥ ९ ॥
यस्मात्पापत्वयासर्पः क्षिप्तःसदसिदुर्मते ॥ तस्माद्भवद्भुतंसर्पो ममवाक्यादसंशयम् ॥ १० ॥ वटुरुवाच ॥ हास्येनजल
सर्पोयं मयामुक्तोत्रलीलया ॥ नतेजातंसमुद्दिश्यतत्किंमांशपसिद्विज ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरेमुक्त्वा तस्यगात्रंसपन्न
गः ॥ जगामतत्रतस्यापि सर्पत्वंसमपद्यत ॥ १२ ॥ सोपिसर्पत्वमापन्नः सनातनसुतोवटुः ॥ दुःखशोकसमायुक्तो ब्राह्म
णैःपरिवेष्टितः ॥ १३ ॥ अथगत्वाभृगुंसोपि बाष्पव्याकुललोचनः ॥ प्रोवाचगद्गदंसोपि प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ १४ ॥ स
नातनसुतश्चास्मि पौत्रस्तुपरमेष्ठिनः ॥ शप्तस्तवसुतेनास्मिच्यवनेनमहात्मना ॥ १५ ॥ निर्दोषोब्राह्मणश्रेष्ठ तस्माच्छा

उसी कारण मेरे वचन से निस्सन्देह शीघ्रही सांप होवो ॥१०॥ ब्रह्मचारी बोला कि हे द्विज ! मैंने हास्यसे यहां लीलाके द्वारा इस जलसांपको छोड़ाथा न कि तुम से
उपजेहुये (होता) को उद्देश करके तो मुझको क्यों शापदेते हो ॥ ११ ॥ इसी अवसर में वह सांप उसके शरीरको छोड़कर वहांगया व उसको भी सर्पता प्राप्त
हुई ॥१२॥ वही सनातन का पुत्र ब्रह्मचारी दुःखशोचसे संयुत व ब्राह्मणोंसे घिराहुआ सर्पताको प्राप्त होगया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर आंसुवों से विकल लोचनोंवाले
उसने भृगुजीके समीप जाकर व प्रणामपूर्वक उस ब्रह्मचारी ने गद्गद वचन को कहा ॥ १४ ॥ कि ब्रह्माजीका पौत्र मैं सनातनका पुत्रहूं जो कि तुम्हारे पुत्र महात्मा

वहांपर वाणी में चतुर व क्रोधसे लाल लोचनोंवाले मीमांसा शास्त्रके ज्ञाता अन्य पुरुषोंने उनके सत्य व झूंठे विवादको हनन किया ॥६६॥ अन्य जो द्विजोत्तम विशेष जानते थे उन मध्यस्थों ने विवादको छोड़कर अभिप्राय समेत जैसा कहागया है वैसाही कहा ॥ ६७ ॥ वैसेही शंख व च्यवन मुनि इत्यादिक महाविवादमें लगेहुये थे व अपने २ पक्षमें भलीभांति आश्रित होतेहुये अन्य विद्वानोंने विवाद किया ॥६८॥ इसप्रकार उन ब्राह्मणों की वह रात व्यतीत होगई ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरूपतीर्थोत्पत्तिर्नामद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ ❀ ॥

अन्येमीमांसकास्तत्र कोपसंरक्तलोचनाः ॥ हन्युस्तेषामृतंवादमनृतंवाग्विचक्षणाः ॥ ६६ ॥ परिशिष्टविदश्चान्ये मध्यस्थाद्विजसत्तमाः ॥ प्रोचुर्वादंपरित्यज्य साभिप्रायंयथोदितम् ॥ ६७ ॥ महावादपराश्शङ्खच्यवनप्रमुखास्तथा ॥ विवादंचक्रिरेचान्ये स्वंस्वंपक्षंसमाश्रिताः ॥ ६८ ॥ एवंसारजनीतेषामतिक्रान्ताद्विजन्मनाम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येरूपतीर्थोत्पत्तिर्नामद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

सूतउवाच ॥ द्वितीयेदिवसेप्राप्ते यज्ञकर्म्मसमुद्भवे ॥ द्वादश्यामभवत्तत्र शृणुध्वंतद्द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ वृत्तान्तंसर्वदेवानां महाविस्मयकारकम् ॥ मखकर्म्मणिप्रारब्धे ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥ २ ॥ जलसर्पंसमादाय वटुःकश्चित्सुनर्म्मकृत् ॥ प्रविश्याथसदस्तत्र तंसर्पंब्रह्मणोन्तिके ॥ ३ ॥ चिक्षेपप्रहसंश्चैव सर्वतस्सुभयङ्करम् ॥ ततस्तुडुण्डुभस्तूर्णं भ्रममाणइतस्ततः ॥ ४ ॥ विप्राणांसदसिस्थानां सक्तानांयज्ञकर्म्मणि ॥ अथहोतुःस्थितःपार्श्वे दीर्घसत्रसमुद्भवे ॥ ५ ॥ सस

दो० । सर्प फेंकिकरि शाप लहि भयो विप्र जिमि नाग । कह्यो तिहत्तरि एकसौ माहिं सूत बड़भाग ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! दूसरा दिन प्राप्तहोने पर यज्ञकर्मसे उपजेहुये कार्यमें द्वादशी तिथिको वहां जो हुआ है उसको सुनिये ॥ १ ॥ जोकि वेदके पारगामी ऋत्विजोंसे यज्ञकर्मको आरम्भकरने पर समस्त देवताओं को बड़ा विस्मयकारक वृत्तान्त हुआहै ॥ २ ॥ कि हँसी करनेवाले किसी ब्रह्मचारी ने जलसर्पको लेकर व सभामें पैठकर वहां हँसते हुये उसने सब ओरसे भयङ्कर उस सांपको ब्रह्माके समीप फेंकदिया तदनन्तर शीघ्रही इधर उधर घूमताहुआ वहजलसांप ॥ ३ । ४ ॥ इसके अनन्तर बड़े समयसे उपजेहुये यज्ञकार्य में लगे व समाज

हमलोग यहीं टिकैंगे यद्यपि अति उत्तमभी होवै तथापि हमलोग तीर्थको न जावैंगे ॥ ५६ ॥ ऐसा कहकर उन मुनियोंने उस समस्त तीर्थका विभाग किया इसके अनन्तर यज्ञोपवीत के प्रमाणभर अपने तीर्थोंको किया ॥ ५७ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! आजभी उस तीर्थ में जगत्के गुरु (ब्रह्मा) जी जलको स्पर्शकरते हैं उसी कारण नित्यही शुभ होवै भी है ॥ ५८ ॥ और फिर जो अकाम पुरुष श्रद्धासे उस तीर्थ में स्नान करताहै वह सिद्धि लक्षणवाले परम कल्याण को प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ इस भांति वे समस्त मुनि उस बड़े भारी तड़ागको बांटकर वहीं पर सायङ्कालवाली विधिको विस्तार समेत करके तदनन्तर सन्ध्यासमय में वहां प्राप्त

मत्रैव साम्प्रतंकृतसंश्रयाः ॥ नयास्यामोवयंतीर्थंयद्यपिस्यात्सुशोभनम् ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वाथऽयभजंस्तत्सर्वंमुनयश्च ते ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि स्वानितीर्थानिचक्रिरे ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ अद्यापिचद्विजश्रेष्ठास्तत्रतीर्थेजगद्गुरुः ॥ प्रथ मंस्पर्शतेतोयं नित्यंस्यादपितच्छुभम् ॥ ५८ ॥ निष्कामस्तुपुनर्मर्त्यो यःस्नानंतत्रश्रद्धया ॥ कुरुतेसपरंश्रेयः प्राप्नु यात्सिद्धिलक्षणम् ॥ ५९ ॥ एवन्तेमुनयस्सर्वे तद्विभज्यमहत्सरः ॥ सायन्तनञ्चतत्रैव कृत्वाकर्म्मसुविस्तरम् ॥ ६० ॥ ततोनिशामुखेप्राप्ता यत्रदेवःपितामहः ॥ दीक्षितस्तुयतोसौच यज्ञमण्डपसंश्रितः ॥ ६१ ॥ तेप्रणम्यततस्सर्वे गता यत्रर्त्विजःस्थिताः ॥ उपविष्टाःपरिश्रान्ता दिवायज्ञियकर्म्मणा ॥ ६२ ॥ इन्द्रादिकैस्सुरैर्भक्त्यापूज्यमानायतःस्थिताः॥ अभिवाद्याथतान्सर्वानुपविष्टास्तदग्रतः ॥ ६३ ॥ चक्रुश्चैवकथाश्चित्रा यज्ञकर्म्मसमुद्भवाः ॥ सोमपानस्यसम्बन्धे वि धायचसमुद्भवम् ॥ ६४ ॥ उद्गातुःप्रभवस्यैव तथाध्वर्य्योःपरस्परम् ॥ प्रोचुस्तेतत्त्वमाश्रित्य तथान्येदूषयन्तितत्॥६५॥

भये जहां कि ब्रह्माजी देवताथे जिसलिये कि यज्ञमण्डप में भलीभांति टिकेहुये ये ब्रह्माजी दीक्षामें प्राप्तथे ॥ ६० । ६१ ॥ उसी कारण वे सब प्रणामकर वहांगये जहां कि ऋत्विज् स्थितथे जोकि दिनमें यज्ञवाले कर्म से थकेहुये बैठेथे ॥ ६२ ॥ जिस लिये कि इन्द्रादिक देवताओं से भक्तिके द्वारा पूजेहुये स्थितथे उसी कारण उन सबोंको प्रणामकर उनके आगे समीप बैठगये ॥ ६३ ॥ व सोमपान के सम्बन्धमें उपजेहुये कर्मको विधानकर यज्ञकर्म में उपजीहुई अद्भुत कथाओं को किया ॥ ६४ ॥ व उद्गाता से उपजे हुये पुरुषका व अध्वर्य्यु का परस्पर में सम्भाषण हुआ व वे तत्त्व वस्तु का आश्रयकरके बोले वैसेही अन्यपुरुष उसको दूषते थे ॥ ६५ ॥

दक्षिण दिशा के बसनेवाले व कौतुक से संयुत कोटि ऋषि ब्रह्माजीकी यज्ञको सुनकर आये कि जहांपर ब्रह्माजी दीक्षित हैं वहां कैसी यज्ञहोगी ॥ ४५ । ४६ ॥ वे हाटकेश्वर नामक वह पुण्यदायक कैसा क्षेत्र है व उस यज्ञमें जो ऋत्विज् स्थित हैं वे द्विजेन्द्र कैसे हैं ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर सूर्यको मध्य दिन में प्राप्तहोने पर व रविवारके भलीभांति प्राप्तहोतेहुये अश्विनी नक्षत्रके संस्थितहोनेपर व सप्तमी तिथिके प्राप्तहोने पर घामसे दुःखित वे बहुत ही थकगये और किसी जलाशय को पाकर उत्तम जलमें पैठे ॥ ४८ । ४९ ॥ जो ऋषिलोग कीलके तुल्य कानोंवाले व बड़े भारी कानोंवाले व अपर टेढ़ी नाकवाले व काले अंगोंवाले व फटेहुये चरणों तथा

शोभवितायज्ञो दीक्षितोयत्रपद्मजः ॥ ४६ ॥ कीदृक्क्षेत्रंचतत्पुण्यंहाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ कीदृशास्तेचविप्रेन्द्रा ऋत्विजस्तत्रयेस्थिताः ॥ ४७ ॥ अथतेसुपरिश्रान्ता मध्यंदिनगतेरवौ ॥ रविवारेणसम्प्राप्ते नक्षत्रेचाश्विसंस्थिते ॥ ४८ ॥ वैवस्वत्यांतिथौचैव सम्प्राप्तेघर्मपीडिताः ॥ किञ्चिज्जलाशयंप्राप्य प्रविष्टास्सलिलंशुभम् ॥ ४९ ॥ शङ्कुकर्णामहाकर्णा वक्रनासास्तथापरे ॥ कृष्णाङ्गाःस्फुटितैःपादैर्नखैर्दीर्घैस्समुत्थितैः ॥ ५० ॥ ततोयावद्विनिष्क्रान्ताः प्रपश्यन्तिपरस्परम् ॥ तावद्वैरूप्यनिर्मुक्ताः सञ्जाताःकामसन्निभाः ॥ ५१ ॥ ततोविस्मयमापन्ना मिथःप्रोचुःप्रहर्षिताः ॥ रूपवन्तस्समालोक्य ज्ञात्वातीर्थंतदुत्तमम् ॥ ५२ ॥ अत्रस्नानादिदंरूपमस्माभिःप्राप्तमुत्तमम् ॥ यस्मात्तस्मादिदंतीर्थं रूपतीर्थंभविष्यति ॥ ५३ ॥ पितरस्तर्प्पयिष्यन्ति येऽत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ जलेनापिगयाश्राद्धात्तेलप्स्यन्तेऽधिकंफलम् ॥ ५४ ॥ येऽत्ररत्नप्रदानञ्च प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ पितरस्तर्प्पयिष्यन्ति राजानस्तेभवन्तिच ॥ ५५ ॥ स्थास्यामोवय

उठेहुये लम्बे नखों से उपलक्षित थे ॥ ५० ॥ तदनन्तर जबतक निकलेहुये आपसमें देखैं तबतक विरूपता से छूटेहुये व कामदेव के समान होगये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त व प्रसन्नहोते हुये उन रूपवान् ऋषियों ने भलीभांति देखकर व उस क्षेत्रको उत्तम जानकर आपसमें कहा ॥ ५२ ॥ कि जिसलिये इस जलाशय में स्नानसे हमलोगों ने इस उत्तमरूपको पायाहै उसी कारण यह तीर्थ रूपतीर्थ होगा ॥ ५३ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष इस जलाशय में जलसे भी पितरोंका तर्पण करैंगे वे गया श्राद्धसे अधिक फलको पावैंगे ॥ ५४ ॥ व जो मनुष्य यहां रत्नदान करैंगे व पितरोंका तर्पणकरैंगे वे राजाहोवैंगे ॥ ५५ ॥ इस समय कियेहुये टिकाश्रयवाले

चाहिये ॥ ३६ ॥ व समस्त यज्ञोंमें विशेषकर जपकरना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे देवेश जी ! आजसे लगाकर यज्ञोंमें ब्राह्मणों को तुम्हारे उद्देशसे शतरुद्रिय मन्त्रके द्वारा पुरोडाशात्मिक हवन करना चाहिये ॥ ३६ ॥ व समस्त यज्ञोंमें विशेषकर जपकरना चाहिये और हे सुरसत्तम ! तुमने विशेषकर कपालों के द्वारा अपने रूपको प्रकटकिया इसलिये हे रुद्रजी ! इस क्षेत्रमें तुम अन्य बारहवें कपालेश्वर नामक होगे ॥ ३७ । ३८ ॥ यहां यज्ञको भलीभांति प्रारम्भ करके जो पुरुष पहले तुमको पूजैगा उसकी यज्ञ निर्विघ्न से समाप्ति को प्राप्तहोगी ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन ब्रह्माजी के इस भांति कहने पर तदनन्तर वे सब कपाल संख्या से रहित व नष्टहोगये ॥ ४० ॥ ऐसा कहकर चतुराननजी ने वहां पर उसी क्षण

शेनदेवेश होतव्यंशतरुद्रियम् ॥ ३६ ॥ विशेषात्सर्वयज्ञेषुजप्यंचैवविशेषतः ॥ कपालानान्तुद्वारेण त्वयारूपंनिजंकृ
तम् ॥ ३७ ॥ प्रकटञ्चसुरश्रेष्ठ कपालेश्वरसंज्ञितम् ॥ तस्मात्त्वंभवितारुद्र क्षेत्रेऽस्मिन्द्वादशोपरः ॥ ३८ ॥ अत्रयज्ञंसमा
रभ्य यस्त्वांप्राक्पूजयिष्यति ॥ अविघ्नेनक्रतुस्तस्य समाप्तिंप्रव्रजिष्यति ॥ ३९ ॥ एवमुक्तेततस्तेन कपालानिद्विजो
त्तमाः ॥ तानिसर्वाणिनष्टानि संख्ययारहितानिच ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रः स्थापयामासतत्क्षणात् ॥ लिङ्गंमाहे
श्वरंतत्र कपालेश्वरसंज्ञितम् ॥ ४१ ॥ अब्रवीचततोवाक्यंयश्चैतत्पूजयिष्यति ॥ ममकुण्डत्रयेस्नात्वा सयास्यतिप
राङ्गतिम् ॥ ४२ ॥ एवमुक्तेतुविधिना प्रहृष्टस्त्रिपुरान्तकः ॥ यज्ञमण्डपमासाद्य प्रस्थितोवेदिसन्निधौ ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणैश्चत
तःकर्म्म प्रारब्धंयज्ञसम्भवम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनैर्नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ ४४ ॥ सूतउवाच ॥ एवंचयजतस्तस्य चतु
र्वक्त्रस्यतत्रच ॥ ऋषीणांकोटिरायाता दक्षिणापथवासिनाम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वापैतामहंयज्ञं कौतुकेनसमन्विताः ॥ कीदृ

कपालेश्वर नामक महादेवजीके लिङ्गको थापन किया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वचन को कहा कि जो पुरुष मेरे तीनों कुण्डों में नहाकर इस लिंगको पूजैगा वह उत्तम गतिको प्राप्तहोगा ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी को इसप्रकार कहने पर प्रसन्न शिवजीने यज्ञमण्डप को प्राप्तहोकर वेदी के समीप प्रस्थान किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर महादेवको प्रणामकर विस्मय से फूलेहुये लोचनोंवाले ब्राह्मणोंने यज्ञसे उपजेहुये कर्मका प्रारम्भकिया ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले कि वहां इसप्रकार उन ब्रह्माजी को यज्ञ करते हुये

में कर्मकी हानि है इस लिये हे सुरनायक ! समस्त कपालोंका संहारकीजिये ॥ २६ ॥ तुम्हारे आनेपर यह यज्ञकर्म का विलोप मतहोवै तदनन्तर अति क्रोधितहोते हुये भगवान् चन्द्रभाल जी बोले ॥ २७ ॥ कि हे पितामहजी ! इसप्रकार का यह पात्रसदैव भोजनके लिये अति पवित्र स्थितहै ये किसलिये बैर करते हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अन्य देवताओं का उद्देशकर हवनकिया गयाहै वैसेही मुझको भलीभांति उद्देशकर मन्त्रसे पवित्र हव्यको अग्नि में नहीं हवनकिया ॥ २९ ॥ इसलिये हे विधे ! यदि यज्ञकर्म में समाप्ति करने योग्यहो तो हे ब्रह्मन् ! समस्त हव्यको कपाल में स्थित करनाचाहिये ॥ ३० ॥ वैसेही इसयज्ञमें मुझको भलीभांति उद्देशकर

तस्मात्संहरसर्वाणि कपालानिसुरेश्वर ॥ २६ ॥ यज्ञकर्म्मविलोपोयं माभूत्त्वयिसमागते ॥ ततःप्रोवाचसंक्रुद्धो भगवाञ्छशिशेखरः ॥ २७ ॥ एतन्मेध्यतमंपात्रं भोजनायसदास्थितम् ॥ एतद्विधममीकस्माद्विद्विषन्तिपितामह ॥ २८ ॥ तथानमांसमुद्दिश्य जुहुवुर्जातवेदसि ॥ यथान्यादेवतास्तद्वन्मन्त्रपूतंहविर्विधे ॥ २९ ॥ तस्माद्यदिविधेकार्य्या समाप्तिर्यज्ञकर्म्मणि ॥ तत्कपालाश्रितंहव्यं कर्तव्यंसकलंविधे ॥ ३० ॥ तथाचमांसमुद्दिश्य विशेषाज्जातवेदसि ॥ होतव्यं हविरेवात्र समाप्तिंयास्यतिक्रतुः ॥ ३१ ॥ नान्यथासत्यमेवोक्तं तवाग्रेचतुरानन ॥ पितामहउवाच ॥ रूपाणितवदेवेश पृथग्भूतान्यनेकशः ॥ ३२ ॥ संख्ययापरिहीनानि ध्येयानिसकलानिच ॥ एतन्महाव्रतंरूपमाख्यातंतेत्रिलोचन ॥ ३३ ॥ नैवंचमसकर्म्मस्यात्तत्रैवंनचयुज्यते ॥ अद्यैतत्कर्म्मकर्तुञ्च श्रुतिवाक्यंकथञ्चन ॥ ३४ ॥ तववाक्यमपित्र्यक्षनान्यथाकर्तुमुत्सहे ॥ मृन्मयेषुकपालेषु हविःपाच्यंसुरेश्वर ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृतियज्ञेषु पुरोडाशात्मिकंद्विजैः ॥ तवोद्दे

विशेषकर हव्यही को अग्नि में होमकरना चाहिये इसप्रकार यज्ञ समाप्ति को प्राप्तहोगी ॥ ३१ ॥ अन्यथा न होगी हे चतुर्मुख ! तुम्हारे आगे सत्यही कहागयाहै पितामहजी बोले कि हे देवेश ! भिन्नभूत तुम्हारे अनेकों रूपहैं ॥ ३२ ॥ जोकि संख्यासे हीन याने असंख्यहैं और वे सब ध्यानकरने योग्यहैं हे त्रिलोचन ! तुम्हारा यह महाव्रत रूपकहा गयाहै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार चमस (यज्ञपात्र) का कर्म न होगा व उस यज्ञमें ऐसा नहीं योग्यहै व आज यह कर्म करने के लिये किसी प्रकार वेद वचन नहीं है ॥ ३४ ॥ हे त्रिलोचन जी ! मैं तुम्हारे वचनको भी अन्यथा करनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं हे सुरेश्वरजी ! मृत्तिकामय कपालों में हव्य पकाना

तुम भोजनकी कामनावाले आयेहो तो शीघ्रही इस अन्नशाला में जावो जहां कि तपस्वी लोग व दीन, अन्ध, कृपण तथा क्षुधासे दुबले ब्राह्मण भोजन करते हैं ॥ १६ । १७ ॥ अथवा तुम धनकी कामनावाले या यदि वसनकी इच्छावालेहो तो वहां जावो जहां कि धनेश (कुबेरजी) दान मन्दिर में भलीभांति टिकेहैं॥१८॥ हे दुष्ट बुद्धिवाले, मूर्ख ! ब्रह्मासे भलीभांति उद्यतकीहुई यह यज्ञ निन्दाके योग्य नहींहै व याचकों के लिये देने से सब ओर पुण्य है इस लिये क्यों निन्दा करते हो ॥ १९ ॥ सूतजीबोले कि हे द्विजोत्तमो ! इस भांति कहाहुआ वह कपाल को भूतलमें फेंककर उसी क्षण दीपक के समान अदृश्य होगया ॥ २० ॥ ऋत्विज्

जाः ॥ १७ ॥ अथवाधनकामस्त्वं वस्त्रकामोथवायदि ॥ व्रजवित्तपतिर्यत्र दानशालांसमाश्रितः ॥ १८ ॥ अनिन्द्योयं मूर्खयज्ञः पितामहसमुद्यतः ॥ अर्थिभ्यःसर्वतः पुण्यन्तत्किन्निन्दसिदुर्मते ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तःकपालंस परि क्षिप्यधरातले ॥ जगामादर्शनंसद्यो दीपवद्द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥ ऋत्विजऊचुः ॥ कथंयज्ञक्रियाकार्य्या कपालेसद सिस्थिते ॥ परिक्षिपततत्तस्मादेवमूचुर्द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥ दण्डकाष्ठंसमुद्यम्य चिक्षिपुस्तद्बहिस्तदा ॥ अथान्यत्तत्र संजातं कपालंतादृशम्पुनः ॥ २२ ॥ तस्मिन्नपिपरिक्षिप्ते ततोन्यत्समपद्यत ॥ एवंशतसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानिच ॥ २३ ॥ तत्रजातानितैर्व्याप्तो यज्ञवाटःसमन्ततः ॥ हाहाकारस्ततोजज्ञे समस्तेयज्ञमण्डपे ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाकपालसङ्घाता न्यज्ञकर्म्मप्रदूषकान् ॥ अथसञ्चिन्तयामास यज्ञवाटसमाश्रितः ॥ २५ ॥ किमिदंयुज्यतेदेवयज्ञेस्मिन्कर्म्मणःक्षतिः॥

बोले कि कपालको सभामें स्थितहोनेपर कैसे यज्ञकर्म करने योग्यहै उसीलिये उसको फेंको इसप्रकार उन द्विजोत्तमोंने कहा ॥२१॥ उस समय दण्डमय काठको भली भांति उठाकर उस कपालको बाहर फेंकदिया इसके अनन्तर वहां फिर वैसाही अन्यकपाल प्राप्तहोगया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उस के भी फेंकनेपर अन्य प्राप्तहुआ इस भांति सैकडों, हजारों, दशहजार व अर्बुदों कपाल ॥ २३ ॥ वहां हो गये उनसे सब ओर यज्ञ वाट व्याप्त होगया तदनन्तर समस्त यज्ञ मण्डपमें हाहाकारहुआ॥२४॥ इसके अनन्तर यज्ञकर्मकेदूषक कपाल समूहों को देखकरं यज्ञवाटमें भलीभांति आश्रित ब्रह्माजी ने चिन्तवन किया ॥ २५ ॥ किं क्या यह युक्तहै हे देव ! इसयज्ञ

में प्राप्तकरके कटिमें अन्य उत्तम मुंजमयी मेखलाको धारणकिया ॥७॥ तदनन्तर यज्ञमण्डपमें जो उत्तम कार्य कहागया उसको वेद वचनपै भलीभांति आदरकियेहुये व ऋत्विजों समेत ब्रह्माने किया ॥ ८॥ कर्मकाण्डके होतेहुये वहां बड़ाभारी आश्चर्य हुआ कि बिगड़ेहुये मुखवाला व दिशारूप वसनोंवाला (नग्न) तथा जाल्म (मेहरेके), रूपका धारनेहारा व खोपडी हाथ में लिये कोई पुरुषआया व भोजनदीजिये यह बोला व उन तपस्वियोंसे घुड़काहुआ भी व मनाकियाहुआ भी वह नटके समान मायाकरके यज्ञमण्डप में पैठआया सामाजिक बोले कि पापसमेत तुम किसलिये यज्ञमण्डपमें पैठेहो ॥ ९ । १० । ११ ॥ जोकि नग्नरूप व यज्ञ कर्म

ऋत्विग्भिःसहितोब्रह्मा वेदवाक्यंसमादृतः ॥ ८ ॥ प्रवर्गेजायमानेच तत्राश्चर्य्यमभून्महत् ॥ जाल्मरूपधरःकश्चि द्दिग्वासाविकृताननः ॥ ९ ॥ कपालपाणिरायातो भोजनन्दीयतामिति॥ निषेध्यमानोपिचतैःप्रविष्टोयज्ञमण्डपम् ॥ १० ॥ सकृत्वानटवन्मायांभर्त्स्यमानोपितापसैः ॥ सदस्याऊचुः ॥ कस्मात्पापसमेतस्त्वं प्रविष्टोयज्ञमण्डपे ॥ ११ ॥ कपालीनग्नरूपोयो यज्ञकर्म्मविवर्ज्जितः ॥ तस्माद्गच्छद्रुतंमूढ यावद्ब्रह्मानकुप्यति ॥ १२ ॥ तथान्येब्राह्मणश्रेष्ठा स्तथादेवास्सवासवाः ॥ जाल्मउवाच ॥ ब्रह्मयज्ञमिमंश्रुत्वाकुहरादहमागतः ॥ १३ ॥ बुभुक्षितोद्विजश्रेष्ठास्तत्किमर्थंवि गर्हितः ॥ दीनान्धैःकृपणैस्सर्वैस्तर्पितैरिष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥ अन्यथासौविनाशाय यदुक्तंब्राह्मणैर्वचः ॥ अन्नहीनोदहे द्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तुऋत्विजः ॥ १५ ॥ याज्ञिकंदक्षिणाहीनोनास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदित्वंभोक्तुकामस्तु समायातोव्रजद्रुतम् ॥ १६ ॥ एतस्यामन्नशालायां भुज्यन्तेयत्रतापसाः ॥ दीनान्धाःकृपणाश्चैव तथाक्षुत्क्षामकाद्वि

से रहित, और कपालको धारेहो इस लिये हे मूढ़ ! जब तक ब्रह्माजी तथा अन्य द्विजोत्तम व इन्द्र समेत देवता क्रोध न करैं तब तक शीघ्रही जाओ जाल्मबोला कि इस ब्रह्म यज्ञको सुनकर मैं बिलसे आयाहूं ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जोकि क्षुधितहूं तो किसलिये निन्दितहुआ क्योंकि दीन अन्ध व समस्त कृपणोंके तृप्त करने से यज्ञकहीजाती है ॥ १४ ॥ अन्यथा यह यज्ञ विनाशके लिये होतीहै जिस लिये कि ब्राह्मणों ने वचनकहा है कि अन्नसे हीन राज्यको जलातीहै व मन्त्र से हीन यज्ञ ऋत्विजोंको विनाशती है॥ १५ ॥ और दक्षिणासे हीन यज्ञ यज्ञकर्ता को नाशकरती है इसी कारण यज्ञके समान शत्रु नहीं है ब्राह्मण लोगबोले कि यदि

पितरस्तस्यसन्तुष्टास्तर्पिताःपितृतीर्थवत् ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमा
हात्म्ये गायत्रीविवाहोनामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंपत्नींसमासाद्य गायत्रींचतुराननः ॥ सम्प्रहृष्टमनाभूत्वा प्रस्थितोयज्ञमण्डपम् ॥ १ ॥ गायत्र्यपि
समादाय मूर्द्धितामरणींमुदा ॥ प्रतस्थेसम्परित्यज्य गोपभावंविनिर्गतम् ॥ २ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु ब्रह्मघोषेदिवंगते॥
कालंप्रगायमानेषु गन्धर्वेषुसमन्ततः ॥ ३ ॥ सर्वदेवद्विजोपेतः सम्प्राप्तोयज्ञमण्डपम् ॥ गायत्र्यासहितोब्रह्मा मानुषं
भावमाश्रितः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेचक्रे केशनिर्वपणंविधिः ॥ विश्वकर्म्मानखानांच गायत्र्यास्तदनन्तरम् ॥ ५ ॥
औदुम्बरंततोदण्डं पुलस्त्योस्मैसमाददे ॥ एणश्रृङ्गान्वितंचर्म्म मन्त्रवद्द्विजसत्तमाः ॥ ६ ॥ पत्नींशालांगृहीत्वाथ
गायत्रींमौनधारिणीम् ॥ मेखलान्निदधेचान्यांकट्यांमौञ्जीमयींशुभाम् ॥ ७ ॥ ततश्चक्रेपरंकर्म्म यदुक्तंयज्ञमण्डपे ॥

एडदान करताहै ॥ ७४ ॥ उसके पितर अत्यन्तही प्रसन्न व पितर तीर्थके समान तृप्तहोते हैं ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येगायत्रीविवाहोनामैकसप्तत्यधिक शततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। कोटि मुनिन जहँ न्हायकरि पायो उत्तमरूप । इकसौ बहत्तरिवें महँ सोई चरित अनूप ॥ सूतजी बोले कि चारमुखवाले ब्रह्माजी ने इस भांति गायत्रीको स्त्री पाकर व अति प्रसन्न मनवाले होकर यज्ञमण्डप को प्रयाणकिया ॥१॥ व जब बाजन बजनेलगे तब ब्रह्मशब्दको आकाश जानेपर व सब ओर से समय के अनुकूल गन्धर्वों के गानेपर गायत्रीने भी निकलेहुये गोपभावको छोड़कर हर्षसे उस अरणी (अग्नि मथनेवाली लकड़ी) को मस्तकपै लेकर प्रस्थानकिया ॥ २ । ३ ॥ मनुजतामें टिके व समस्त देवताओं तथा द्विजोंसे संयुत व गायत्री समेत ब्रह्मा जी यज्ञमण्डप को भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ इसी अवसर में ब्रह्माने केश निर्वपण (क्षौर कर्म) किया तदनन्तर विश्वकर्मा ने गायत्री के नखों का छेदन किया ॥ ५ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजोत्तमो ! पुलस्त्यने इन ब्रह्माजी के लिये गूलर के दण्डको व मन्त्र पूर्वक मृगके सींग संयुत चर्मको भलीभांति दिया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर मौनको धारेहुई गायत्री स्त्रीको लेकर शाला (सभा या मण्डप)

स्वरूपवान् अंगोंवाली इस शुभदायक कामवती को मैं तुम्हारे लिये लायाहूं ॥६४॥ हे चतुरानन जी ! पवित्रकरने के लिये मैंने इस गोपकन्याको पकड़कर व गऊके मुखमें प्रवेशकर के गुदाके द्वारा खींचलिया है ॥ ६५ ॥ गौओं व ब्राह्मणों का एकही कुल दो प्रकारका कियागया है एक ठिकाने मन्त्र स्थितहैं व एकतौर पै हव्य टिकी है ॥ ६६ ॥ हे देव ! गऊके पेटसे निकली है इस लिये यह ब्राह्मणताको प्राप्तहुई है तुम विधिके अनुकूल इसका विवाहकरो ॥ ६७ ॥ जब तक कि यज्ञ में पीनेसे उपजाहुआ समय न चलाजावै रुद्रजी बोले कि जिसलिये गऊके मुख में पैठी व गुदाके द्वारा निकली है ॥ ६८ ॥ उसी कारण हे देव ! गायत्री नामक

गोपकन्यांप्रगृह्येमां गोवक्त्रेणप्रवेश्यच ॥ आकर्षिताचगुह्येन पावनार्थंचतुर्मुख ॥ ६५ ॥ गवांचब्राह्मणानांच कुलमेकं
द्विधाकृतम् ॥ एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्रतिष्ठति ॥ ६६ ॥ गोरुदराद्विनिष्क्रान्ता तज्जातेयंद्विजन्मताम् ॥ अ
स्याःपाणिग्रहन्देव त्वंकुरुष्वयथाविधि ॥ ६७ ॥ यावन्नचलतेकालो यज्ञपानसमुद्भवः ॥ रुद्रउवाच ॥ प्रविष्टागोमुखे
यस्मादपानेनविनिर्गता ॥ ६८ ॥ गायत्रीनामतत्पत्नी तस्माद्देवभविष्यति ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वदन्तुब्राह्मणास्सर्वे गोप
कन्याप्यसौयदि ॥ ६९ ॥ साभूयब्राह्मणीश्रेष्ठा यथापत्नीभवेन्मम ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ एषास्याद्ब्राह्मणीश्रेष्ठा गोपजा
तिविवर्जिता ॥ ७० ॥ अस्मद्वाक्याचतुर्वक्त्र कुरुपाणिग्रहंद्रुतम् ॥ सूतउवाच ॥ ततःपाणिग्रहंचक्रे तस्यादेवःपितामहः ॥
७१ ॥ यस्तत्रकुरुतेमर्त्यो कन्यादानंसमाहितः ॥ ७२ ॥ ससमंफलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ कन्याहस्तग्रहंतत्र
प्राप्नोतिपतिनासह ॥७३॥ सास्यात्पुत्रवतीसाध्वी सुखसौभाग्यसंयुता॥पिण्डदानंनरस्तस्यांयःकरोतिद्विजोत्तमाः॥७४॥

तुम्हारी स्त्री होगी ब्रह्माजीबोले कि यदि समस्त ब्राह्मणलोगकहैं कि यह गोपकन्या भी ॥ ६९ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणी होकर वह जिसप्रकार मेरी स्त्री होवै ब्राह्मणलोगबोले कि गोपजाति से रहित यह उत्तम ब्राह्मणी होवै है ॥ ७० ॥ हे चतुरानन जी ! हमलोगों के वचनसे शीघ्रही पाणिग्रह (विवाह) कीजिये सूतजीबोले कि तदनन्तर ब्रह्मादेवजी ने उसका विवाह किया ॥ ७१ ॥ वहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य कन्यादान करता है ॥ ७२ ॥ वह राजसूय अश्वमेधके बराबर फलको प्राप्तहोता है व जो कन्या वहां पतिके साथ पाणिग्रहको प्राप्तहोती है ॥ ७३ ॥ वह पुत्रवती व पतिव्रता तथा सौभाग्य से संयुत होतीहै व हे द्विजोत्तमो ! उस भूमिमें जो नर पि-

यज्ञ अन्य स्त्री के द्वारा अवश्यकर करना चाहिये हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माजी के वचनको सुनकर इन्द्रने समीप भ्रमतीहुई कन्याको उसके लिये शीघ्रही प्राप्तकिया इस के अनन्तर उन इन्द्रने वहां घड़े से आकुल मस्तकवाली कन्याको देखा ॥ ५५ । ५६ ॥ जो कि कमल लोचनोंवाली व चन्द्रमा के समान मुखवाली व सूक्ष्मअ-ङ्गोंवाली और समस्त लक्षणों से सम्पूर्ण व यौवन के प्रारम्भ में प्राप्त गोपसे उपजी हुई कन्याथी ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने उससे भलीभांति पूंछा कि हे कमल लोचनि ! तुम कुमारी या सनाथा (ब्याही) व किसकी कन्या और कौनहो इसको हमसे कहौ ॥ ५८ ॥ कन्याबोली कि तुम्हारा कल्याणहो दही बेचने के

भार्य्ययायज्ञो मयाकार्य्योयमेवतु ॥ पितामहवचःश्रुत्वा तदर्थंकन्यकाद्विजाः ॥ ५५ ॥ शक्रेणासादिताशीघ्रं भ्रममा णासमीपतः ॥ अथतत्रघटव्यग्रमस्तकातेनवीक्षिता ॥ ५६ ॥ कन्यकागोपजातन्वी चन्द्रास्यापद्मलोचना ॥ सर्वल क्षणसम्पूर्णा यौवनारम्भमाश्रिता ॥ ५७ ॥ साशक्रेणाथसम्पृष्टा कात्वंकमललोचने ॥ कुमारीवासनाथावा सुताकस्य ब्रवीहिनः ॥ ५८ ॥ कन्योवाच ॥ गोपकन्यास्मिभद्रन्ते तक्रंविक्रेतुमागता ॥ परिगृह्णासिमेमूल्यं तच्छीघ्रंदेहिमाचि रम् ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वात्रिदिवेन्द्रोपि मत्वातांगोपकन्यकाम् ॥ जगृहेत्वरयायुक्तस्तक्रंचोत्सृज्यभूतले ॥ ६० ॥ अथतां रुदतींशक्रः समादायत्वरान्वितः ॥ गोवक्त्रेणप्रवेश्याथ गुदेनाकर्षयत्ततः ॥ ६१ ॥ एवंमेध्यतमांकृत्वा संस्नाप्यसलि लैश्शुभैः ॥ ज्येष्ठकुण्डस्यविप्रेन्द्राः परिधायसुवाससी ॥ ६२ ॥ ततश्चहर्षसंयुक्तः प्रोवाचचतुराननम् ॥ द्रुतङ्गत्वापुरो धृत्वा सर्वदेवसमागमे ॥ ६३ ॥ कामुकेयंसुरश्रेष्ठ समानीतामयाशुभा ॥ तवार्थायसुरूपाङ्गी सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ६४ ॥

लिये आई हुई मैं, गोपकी कन्याहूं उसको मुझसे लीजिये व शीघ्रही मूल्यको दीजिये ॥ ५९ ॥ उस वचनको सुनकर शीघ्रतासंयुत इन्द्रनेभी दहीको भूमिमें उतारकर पकड़लिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर शीघ्रता संयुत इन्द्रजीने रोतीहुई उस गोपकन्या को भलीभांति लेकर व गऊके मुखमें बैठाकर तदनन्तर गुदाके द्वारा खींच लिया ॥ ६१ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार अति पवित्रकरके बड़े कुण्डके उत्तम जलसे भलीभांति नहवाकर व उत्तम दो वसनों को पहनाकर ॥ ६२ ॥ तदनन्तर हर्ष संयुक्त होतेहुये इन्द्रजी ने समस्त देवताओं की सभामें शीघ्रही जाकर व अगाड़ी धरकर चतुरानन से कहा ॥ ६३ ॥ कि सुरोत्तम जी समस्त लक्षणों से लक्षित व

टिंकीथीं तदनन्तर बोले कि हे देवि ! आलसीले मन या चित्तवाली तुम क्यों स्थितहो ॥ ४५ ॥ सावित्रीजी बोलीं कि हे तात ! तुम्हारे तात (ब्रह्माजी) समस्त देवताओं
से घिरेहुये स्थित हैं ॥ ४६ ॥ वहां बिन स्वामी के समान मैं अकेली कैसे जाऊं इस लिये जाकर पितासे कहिये कि मुहूर्त भर परिपालनकरो याने परखो ॥ ४७ ॥
जब तक इन्द्राणी, भवानी व लक्ष्मी तथा और देवकन्यायें आतीहैं उनसबों के साथ मैं शीघ्रही इस सुरसमाज में आऊंगी ॥ ४८ ॥ मैंने सबोंके निमन्त्रण के लिये
पवनको भेजाहै वे शीघ्रही आवैंगी इस प्रकार तुमको पितासे कहना चाहिये ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले कि उन पुलस्त्यने भी शीघ्रही जाकर सोमके भारसे विकल ब्रह्माजी

तन्नृत्यसमाकुला ॥ ततःप्रोवाचकिन्देवि त्वंतिष्ठस्यलसात्मिका ॥ ४५ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सर्वदेववृतस्तात तत्रतातोऽव
वस्थितः ॥ ४६ ॥ एकाकिनीकथंतत्र गच्छाम्यहमनाथवत् ॥ तद्ब्रूहिपितरंगत्वा मुहूर्तंपरिपाल्यताम् ॥ ४७ ॥ याव
दभ्येतिशक्राणी गौरीलक्ष्मीस्तथापराः ॥ देवकन्यास्समाजेऽत्र ताभिरेष्याम्यहंद्रुतम् ॥ ४८ ॥ सर्वासाम्प्रेषितोवायुर्नि
मन्त्रणकृतेमया ॥ आगमिष्यन्तिताश्शीघ्रमेवंवाच्यःपितात्वया ॥ ४९ ॥ सूतउवाच ॥ सोपिगत्वाद्रुतंप्राह सोमभा
रार्दितंविधिम् ॥ नैषाऽभ्येतिजगन्नाथ प्रसक्तागृहकर्म्मणि ॥ ५० ॥ सामांप्राहचदेवानां पत्नीभिःसहितामखे ॥ अहंया
स्यामितासांच नैकाद्यापिप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥ एवंज्ञात्वासुरश्रेष्ठ कुरुयत्तेसुरोचते ॥ अतिक्रामतिकालोयं यज्ञपानसमु
द्भवः ॥ ५२ ॥ तिष्ठन्तीचगृहव्यग्रा सापिस्त्रीशिथिलात्मिका ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य पुलस्त्यस्यपितामहः ॥ ५३ ॥ समी
पस्थंतदाशक्रं प्रोवाचवचनंद्विजाः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शक्रनायातिसावित्री सापिस्त्रीशिथिलात्मिका ॥ ५४ ॥ अन्यया

से कहा कि हे जगदीश ! गृह कार्य्य में लगीहुई यह ब्रह्माणी नहीं आती है ॥ ५० ॥ व उसने मुझसे कहाहै कि सुर स्त्रियों समेत मैं यज्ञमें जाऊंगी और उनके मध्य
में एक अभीतक नहीं देखपड़ती है ॥ ५१ ॥ हे सुरोत्तमजी ! ऐसा जानकर जो तुम को रुचताहो उसको कीजिये व यज्ञमें पानसे उपजाहुआ यह समय व्यतीत
होताहै ॥ ५२ ॥ व शिथिल मनवाली तथा गृह कर्ममें आकुल वे सरस्वती भी बैठीहैं हे द्विजोत्तमो ! उन पुलस्त्य जी के उस वचनको सुनकर ब्रह्माजीने उस समय
समीप बैठेहुये इन्द्रसे वचनको कहा ब्रह्माजी बोले कि हे इन्द्रजी ! शिथिल मन या चित्तवाली वे स्त्री सावित्री भी नहीं आती हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ और मुझको यह

में स्त्री लाईजावै इस कारण ब्रह्माजीने मुनिनायक नारदजी को संज्ञासे पठाया ॥ ३५ ॥ उन नारदने भी धीरेसे आकर सावित्री के समान व समर प्रियके उत्त रवाले वचनको फिर सावित्रीजी से लीलापूर्वक कहा ॥ ३६ ॥ कि हे सुरेश्वरि ! पिताने मुझको तुम्हारे समीप पठायाहै आइये क्योंकि नहायेहुये उनने इस समय यज्ञ मण्डपको प्रस्थान कियाहै ॥ ३७ ॥ परन्तु वहां अकेले जातीहुई तुम सुरेश्वरीअनाथ के समान सभामें कैसे रूपवाली देखपडोगी ॥ ३८ ॥ इस लिये हे देवि ! जो कोई सुरस्त्रियां हैं उन सबोंको आनिये कि जिनसे घिरीहुई तुम महायज्ञ में जावोगी ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी पिताके पास जाकरबोले कि हे

सत्तम ॥ संज्ञयाप्रेषयामास पत्नीचानीयतामिति ॥ ३५ ॥ सोपिमन्दंसमागत्य सावित्रींप्राहलीलया ॥ युद्धप्रियोत्तरं वाक्यं सावित्र्यासदृशंपुनः ॥ ३६ ॥ अहंसंप्रेषितःपित्रा तवपार्श्वेसुरेश्वरि ॥ आगच्छप्रस्थितःस्नातः साम्प्रतंयज्ञम एडपम् ॥३७॥ परमेकाकिनीतत्र गच्छमानासुरेश्वरी ॥ कीदृग्रूपासदसिवै दृश्यसेत्वमनाथवत् ॥३८॥ तस्मादानीयतां सर्वां याःकाश्चिद्देवयोषितः ॥ याभिःपरिवृतादेवि यास्यसित्वंमहामखे ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठो नारदोमुनिसत्त मः ॥ अब्रवीत्पितरंगत्वा ताताम्बाप्रोदितामया ॥ ४० ॥ परंतस्याःस्थिरोभावः किञ्चित्संलक्षितोमया ॥ तस्यतद्वच नंश्रुत्वा ततोमन्युसमन्वितः ॥ ४१ ॥ पुनस्तुप्रेषयामाससावित्र्याःसन्निधौततः ॥ गच्छवत्ससमानीहि स्थानंसाशि थिलात्मिका ॥ ४२ ॥ सोमभारपरिश्रान्तं पश्यमामूर्द्ध्वसंस्थितम् ॥ एषकर्मात्ययस्तापी यज्ञकर्म्मणिसाम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ यज्ञपानमुहूर्तन्तु सावशेषोऽव्यवस्थितः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुलस्त्यःसत्वरंययौ ॥ ४४ ॥ सावित्रीतिष्ठतेयत्रगी

पिताजी ! मैं माता से कह आया ॥ ४० ॥ परन्तु मैंने उनकी कुछ स्थिरताको देखा है तदनन्तर उन नारदजी के उस वचनको सुनकर ब्रह्माजी क्रोध संयुतहुये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सावित्रीके समीप फिर पठाया कि हे वत्स ! स्थान पै भलीभांति लावो वह शिथिल मन या चित्रवाली है ॥ ४२ ॥ ऊपर भलीभांति टिकेहुये व सोम (वल्ली विशेष) के भारसे थकेहुये मुझको देखो इस समय यज्ञकर्म में यह कर्मका उल्लंघन या दोष तापकारक है ॥ ४३ ॥ और यज्ञमें सोमपीने का मुहूर्त्त सावशेष (कुछ बाकी) व्यवस्थित है उन ब्रह्माजी के उस वचनको सुनकर पुलस्त्यजी शीघ्रही वहांगये ॥ ४४ ॥ जहां कि गाने व नाचने से संयुक्त सावित्री जी

शीघ्रही शूलधारी शिवजी के समीप जावैंगे ब्रह्माबोले कि आजसे लगाकर यहां जो कोई यज्ञ करैगा ॥ २४ । २५ । २६ ॥ व नागरों से बाह्यजो श्राद्धकरैगा वह वृथा होवैगा और जो कोई नागरभी ब्राह्मण इस क्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र यज्ञ करैगा वह वृथाहोगी हे ब्राह्मणो!मैंने इस समय नागरोंकी यह मर्यादा की ॥ २७।२८॥ हमारे ऊपर प्रसन्नता करके यज्ञके लिये आज्ञादेने के योग्यहो शीघ्रही आज्ञादीजिये कि जिससे मैं यज्ञकरूं ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्नहुये उन ब्राह्मणों से आज्ञादिये हुये ब्रह्माजी ने उन ब्राह्मणों के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञको किया कि जिनका वरण कियाथा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! नागरों के मत में

या ॥ यद्येवमपिदेवेश यज्ञकर्मकरिष्यसि ॥ २५ ॥ अवमन्यद्विजान्सर्वान् क्षिप्रंगच्छामशूलिनम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अद्यप्रभृतियःकश्चिद्यज्ञमत्रकरिष्यति ॥ २६ ॥ श्राद्धंचनागरैर्बाह्यं वृथातत्सम्भविष्यति ॥ नागरोपिचयोन्यत्रकश्चिद्यज्ञं करिष्यति ॥ २७ ॥ एतत्क्षेत्रंपरित्यज्य वृथातत्सम्भविष्यति ॥ मर्यादेयंकृताविप्रा नागराणांमयाधुना॥ २८ ॥ कृत्वा प्रसादमस्माकं यज्ञार्थंदातुमर्हथ॥ अनुज्ञांदीयतांक्षिप्रं येनयज्ञंकरोम्यहम् ॥ २९ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तैर्ब्राह्मणैस्तुष्टै रनुज्ञातःपितामहः ॥ चकारविधिवद्यज्ञं येवृताब्राह्मणाश्चतैः ॥ ३० ॥ विश्वकर्म्मासमागत्य ततोमध्यगमण्डपम् ॥ चकारब्राह्मणश्रेष्ठा नागराणांमतेस्थितः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मापिपरमंतोषं गत्वानारदमब्रवीत् ॥ सावित्रीमानयक्षिप्रंयेनगच्छामिमण्डपम् ॥ ३२ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु सिद्धकिन्नरगुह्यकैः ॥ गन्धर्वैर्वाद्यसंयुक्तैरुच्चारणपरैर्द्विजैः ॥ ३३ ॥ अरणिंसमुपादाय पुलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ पत्नीपत्नीतिविप्रेन्द्राः प्रोच्चैस्तत्रव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा नारदंमुनि

स्थित विश्वकर्मा ने मध्यवर्ती मण्डप को भलीभांति आकर कर्मकिया ॥ ३१ ॥ व ब्रह्माने भी परम प्रसन्नता को प्राप्तहोकर नारद से कहा कि शीघ्रही सावित्री को लाइये जिससे मैं यज्ञमण्डप को जाऊं ॥ ३२ ॥ बाजाओं से संयुत सिद्ध, किन्नर, गुह्यक व गन्धर्वोंके बाजनबजाने पर व द्विजोंको उच्चारणमें तत्पर होनेपर ॥३३॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां विशेषतासे स्थितहुये पुलस्त्यजी ने अरणी (अग्नि मथनेवालीलकड़ी) को लेकर उच्चस्वर से पत्नी २ ऐसी वाक्यको कहा ॥ ३४ ॥ इसी अवसर

इस संसार में सब ब्राह्मणों के मध्यमें नागर उत्तमहैं ॥ १५ ॥ इस लिये यदि तुमयज्ञसे उपजीहुई इस प्राप्तिको चाहतेहो तो हे पितामहजी ! भक्तिसे समस्त नागरों
की प्रसन्नताकीजिये ॥ १६ ॥ सूतजीबोले कि उस वचनको सुनकर डरे व ऋत्विजों से घिरेहुये ब्रह्माजी वहांगये जहां कि क्रोधित नागर ब्राह्मण टिकेथे ॥ १७ ॥
तदनन्तर सबोंको प्रणामकर हाथजोड़े खड़े व नम्रता से संयुत ब्रह्माजी भक्तिसे वचनबोले ॥ १८ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! मैं जानताहूं कि इस हाटकेश्वर क्षेत्रमें तुम
लोगोंसे बाहरवाला यज्ञकर्म व वैसेही श्राद्धवृथाहोताहै ॥ १९ ॥ कलियुगके डरसे मैं इस स्थानमें अपने पुष्करको लाया व तुम्हारे तीर्थको यह निक्षेप (धरोहर) सम-

तस्माच्चेद्वाञ्छसिप्राप्तिं त्वमेनांयज्ञसम्भवाम् ॥ तद्भक्त्यानागरान्सर्वान्प्रसादयपितामह ॥ १६ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रु
त्वापद्मजोभीत ऋत्विग्भिःपरिवारितः ॥ जगामतत्रयत्रस्था नागराःकुपिताद्विजाः ॥ १७ ॥ प्रणिपत्यततःसर्वान् वि
नयेनसमन्वितः ॥ प्रोवाचवचनंभक्त्या कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ १८ ॥ जानाम्यहंद्विजश्रेष्ठाः क्षेत्रेऽस्मिन्हाटकेश्व
रे ॥ युष्मद्बाह्यंवृथाश्राद्धं यज्ञकर्मतथैवच ॥ १९ ॥ कलिभीत्यामयानीतं स्थानेस्मिन्पुष्करंनिजम् ॥ तीर्थंचयुष्म
दीयंचनिक्षेपोयंसमर्पितः ॥ २० ॥ ऋत्विजोमीसमानीतागुरुणायज्ञसिद्धये ॥ अजानताद्विजश्रेष्ठा आधिक्यंनागरा
त्मकम् ॥ २१ ॥ तस्माच्चक्षम्यतांमह्यं यतश्चवरणंकृतम् ॥ एतेषामेवविप्राणामग्निष्टोमकृतेमया ॥ २२ ॥ एतच्च
मामकंतीर्थं युष्माकंपापनाशनम् ॥ भविष्यतिनसन्देहः कलिकालेपिसंस्थिते ॥ २३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ यदित्वंनागरै
र्बाह्यं यज्ञंचात्रकरिष्यसि ॥ तदन्येपिसुरास्सर्वे तवमार्गानुयायिनः ॥ २४ ॥ भविष्यन्तितदाभूयस्तत्कार्योनमखस्त्व

र्पणकीगई ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! नागरात्मक अधिकताको न जानतेहुये बृहस्पति जी यज्ञ सिद्धिके लिये इन ऋत्विजों को लायेहैं ॥ २१ ॥ जिस लिये कि
मैंने अग्निष्टोमके लिये इन्हीं ब्राह्मणों का वरणकिया इस कारण मेरे अपराधको क्षमाकीजिये ॥ २२ ॥ व कलिकालके भी भलीभांति टिकने पर यह मेरा तीर्थ
निस्सन्देह तुमलोगों का पाप विनाशक होगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मण लोगबोले कि यदि तुम नागरों से बाहरवाले यज्ञको यहां करोगे तो और भी समस्त देवता तुम्हारे मार्ग
के अनुगामी होवेंगे उसी कारण उस समय तुमको फिर यज्ञ न करना चाहिये हे सुरनायक ! यदि समस्त ब्राह्मणोंका अपमानकर ऐसाभी यज्ञकर्म करोगे तो हम लोग

ने भी हमलोगों का पराभव नहीं किया तुमने कियाहै ॥ ५ ॥ नागर ब्राह्मणों से बाहर जो यहां यज्ञ या श्राद्धको करता है वह समस्त द्विजोत्तमों के मारने योग्य होता है ॥ ६ ॥ उसी कारण उस यज्ञसे उठाहुआ कल्याण किसी प्रकार नहीं होताहै उसी समय इन शिवजीने यह कहाथा जब कि हमलोगोंको स्थान दियाथा॥७॥ इस लिये यदि यज्ञ करतेहो तो नागर ब्राह्मणों के द्वाराकरो अन्यथा जीतेहुये नागर ब्राह्मणों से न करने पावोगे ॥ ८ ॥ तदनन्तर इस भांति कहा व ब्राह्मणों से घिरा हुआ वह मध्यवर्ती ब्राह्मण जहां ब्रह्माजी थे वहां जाकर यज्ञमण्डप के दूर में स्थितहुआ ॥ ६ ॥ व समस्त नागर ब्राह्मणों ने जो कहाथा उसने विशेषता समेत

गरैर्ब्राह्मणैर्बाह्यो योत्रयज्ञंसमाचरेत् ॥ श्राद्धंवासहिवध्यःस्यात्सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ नतस्माज्जायतेश्रेयस्तत्समुत्थंकथञ्चन ॥ एतत्प्रोक्तंतदातेन यदास्थानंददौहिनः ॥ ७ ॥ तस्माद्यत्कुरुषेयज्ञं ब्राह्मणैर्नागरैःकुरु ॥ नान्यथालप्स्यसेकर्तुं जीवद्भिर्नागरैर्द्विजैः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्ततोगत्वामध्यगोयत्रपद्मजः ॥ यज्ञमण्डपदूरस्थो ब्राह्मणैःपरिवारितः ॥ ९ ॥ यत्प्रोक्तंनागरैस्सर्वैः सविशेषंतदाहसः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राह सान्त्वपूर्वमिदंवचः ॥ १० ॥ मानुषंभावमापन्न ऋत्विग्भिःपरिवारितः ॥ त्वयासत्यमिदंप्रोक्तं सर्वमध्यगसत्तम ॥ ११ ॥ किङ्करोमिवृतास्सर्वे मयातेयज्ञकर्म्मणि ॥ ऋत्विजोध्वर्य्युपूर्वाये प्रसादेननकाम्यया ॥ १२ ॥ तस्मादानयतान्सर्वांस्तत्रस्थानेद्विजोत्तमान् ॥ अनुज्ञातस्तुतैर्येन गच्छामिमखमण्डपम् ॥ १३ ॥ मध्यगउवाच ॥ त्वन्देवत्वंपरित्यज्य मानुषंभावमाश्रितः ॥ तत्कथन्तेद्विजश्रेष्ठास्समागच्छन्तितेऽन्तिकम् ॥ १४ ॥ श्रेष्ठागावःपशूनांच यथापद्मसमुद्भव ॥ विप्राणामिहसर्वेषां तथाश्रेष्ठाहिनागराः ॥ १५ ॥

उसको कहा उस वचनको सुनकर ब्रह्माजीने प्रिय वचन पूर्वक यह वचन कहा॥१०॥कि हे मध्यगश्रेष्ठ ! तुमने यह सब सत्यकहा है परन्तु मनुजभाव में प्राप्त ऋत्विजों से घिराहुआ मैं ॥ ११ ॥ क्याकरूं क्योंकि अध्वर्यु पूर्वक जे ऋत्विज् हैं उन सबोंको कामना से नहीं किन्तु प्रसन्नता से मैंने यज्ञकर्म में वरणकिया है ॥ १२ ॥ इस लिये उस स्थानमें उन समस्त द्विजोत्तमों को लाइये कि जिससे उन ब्राह्मणों से आज्ञादियाहुआ मैं यज्ञमण्डप को जाऊं ॥ १३ ॥ मध्यग बोला कि तुम देवभाव को छोड़कर मनुजतापै टिकेहो इस लिये वे द्विजोत्तम कैसे तुम्हारे समीप आवैंगे ॥ १४ ॥ हे कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ! जैसे पशुवोंमें गाइयां श्रेष्ठहैं वैसेही

था ॥ ३५ ॥ वैसेही बृहस्पति जी आचार्य व गोभिल मुनि उद्गाता (सामवेदी) थे शांडिल्यजी प्रतिहर्ता व अंगिरा उत्तम ब्रह्मण्य थे ॥ ३६ ॥ उन ब्रह्मा की यज्ञ की सिद्धि के लिये ये सोलह ब्राह्मण ऋत्विज् थे जोकि धनाधिपसे वसन भूषणों से शोभासंयुत कियेगये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी आपही गृह्योक्त विधिसे समस्त ब्राह्मणों के पूजन कर्मको करके उसके उपरान्त आदर समेत बोले ॥३८॥ कि हे द्विजोत्तमो ! यहमैं तुमलोगों की शरण में प्राप्तहूं वे सब यज्ञ कर्मकी दीक्षाकेलिये मुझको ग्रहण कीजिये ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मयज्ञसमारम्भो नामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

च सुब्रह्मण्यस्तथाङ्गिराः ॥ ३६ ॥ तस्ययज्ञस्यसिद्ध्यर्थमेतेषोडशचर्त्विजः ॥ वस्त्राभरणशोभाढ्या वित्तपेनकृताश्च ये ॥ ३७ ॥ ततःकृत्वास्वयंब्रह्मा सर्वेषामर्हणक्रियाम् ॥ गृह्योक्तेनविधानेन ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ३८ ॥ एषोहंशरणं प्राप्तो युष्माकंद्विजसत्तमाः ॥ तेतुगृहीतमांसर्वे दीक्षायैयज्ञकर्म्मणः ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डे तृतीयपरिच्छेदेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये ब्रह्मयज्ञसमारम्भोनामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वैर्नागरैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ प्रेषितोमध्यगस्तत्र गतस्तीर्थसमुद्भवम् ॥ १ ॥ रेरेमध्यगग त्वात्वं ब्रूहितंकुपितामहम् ॥ तन्तुहेविप्रहोतारं नीतिमार्गविवर्जितम् ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रंप्रदत्तंनः पूर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ महेश्वरेणतुष्टेन पूरितंसर्वतोखिलम् ॥ ३ ॥ तस्यदत्तस्यचाद्यैव पितामहशतङ्गतम् ॥ पञ्चोत्तरमसंदिग्धं यावत्त्वंकुपितामह ॥ ४ ॥ नकेनापिकृतोस्माकं तिरस्कारस्त्वयाकृतः ॥ त्वांमुक्त्वापापकर्म्माणं न्यायमार्गविवर्जितम् ॥ ५ ॥ ना

दो० । यथा पितामह देवजी किय गायत्रि विवाह । इकसौ इखतरि में सोई वरणत सहित उछाह ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में समस्त नागर द्विजोत्तमों से मध्यवर्ती ब्राह्मण पठायागया व तीर्थसे उपजेहुये उसक्षेत्र को गया ॥१॥ किरेरे मध्यग, व हे विप्रजी ! नीतिमार्गसे रहित उन होता के समीप जाकर तुम उन निन्दित पितामहजी से कहो ॥ २ ॥ कि सब ओर से पूर्ण इस समस्त क्षेत्रको प्रसन्न महादेवजी ने हमारे पूर्ववाले ब्राह्मणों को दियाथा ॥ ३ ॥ हे कुपितामहजी ! उनको दिये हुये आजही पांच अधिक सौ ब्रह्मा व्यतीतहोगये हैं इसमें सन्देह नहीं जब तक कि तुमहुयेहो ॥ ४ ॥ व न्याय मार्गसे रहित व पापकर्मवाले तुमको छोड़कर किसी

अनूप व यौवनको भलीभांति प्राप्तथी ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चाशीत्य
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । देखि चित्रमहँ रत्नवति कियो पतिहिं स्वीकार ॥ कह्यो एकसौ छियासिवें महँ सो चरित उदार ॥ सूतजी बोले कि इसके अनन्तर उत्तम वर्ण (रंग) वाली व अनूप रूपसे संयुत व यौवनयुक्त उस अपनी कन्याको देखकर आनर्त देशवाले राजाने चिन्तन किया कि मैं कन्याको देऊं परन्तु जो पुरुष कार्य्य कारणके

रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चाशीत्य
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ अथतांयौवनोपेतांस्वसुतांप्रेक्ष्यपार्थिवः ॥ अनौपम्येनरूपेण संयुक्तांवरवर्णिनीम् ॥ १ ॥ आनर्ताश्चि
न्तयामास कन्यकांप्रददाम्यहम् ॥ अनर्हायचयोदद्याद्वरायनिजकन्यकाम् ॥ २ ॥ कार्य्यकारणलोभेन नरकंसप्रग
च्छति ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य महान्कालोव्यवस्थितः ॥३॥ नपश्यतिचतद्योग्यं कञ्चिद्वरमनुत्तमम् ॥ अथसंप्रेषयामास
सर्वभूताश्रयेषुये ॥ ४ ॥ चित्रकर्म्मणिविख्याता यूयंचित्रकरास्ततः ॥ गच्छध्वंममवाक्येन सर्वान्भूमितलेनृपान् ॥
५ ॥ लिखित्वापट्टमध्येतु दर्शयध्वंततःपरम् ॥ सुतायाममयेनासौ दृष्ट्वाभीष्टंनराधिपम् ॥ ६ ॥ पत्यर्थंवरयेत्साध्वी म
मदोषोभवेन्नहि ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेचित्रकरास्तदा ॥ ७ ॥ प्रस्थिताधरणीपृष्ठे पार्थिवानांगृहेषुच ॥ तांल्लिखित्वा

लोभसे अयोग्यवर के लिये कपनी कन्या देता है वह नरक को जाताहै इसप्रकार चिन्तवन करते हुये उसका बहुत समय व्यवस्थित (व्यतीत) हुआ ॥ १ । २ । ३ ॥ और उसके योग्य किसी अति उत्तम वरको न देखता था इस के अनन्तर समस्तप्राणियों के आश्रय स्थानों में जे चित्रकर्म (तसवीर खींचने) में प्रसिद्ध थे उनको भलीभांति पठाया कि तुमलोग चित्रकार हो उसी कारण जावो व मेरे वचन से भूतल में समस्त राजाओं को ॥ ४ । ५ ॥ पीठ के मध्य में लिखकर तदनन्तर मेरी कन्याको दिखलाओ जिस से प्रिय नरनायक को देखकर यह उत्तम आचरणवाली कन्या पतिके लिये स्वीकार करै मेरा दोष न होवै उस के उस वचन को सुन-

कर उससमय समस्त चित्रकारों ने ॥ ६ । ७ ॥ भूपृष्ठ में नृपों के मन्दिरों में प्रयाणकिया व अवस्था से संयुत और यौवन में टिके हुए उन भूपालों को लिखकर ॥
८ ॥ जोकि रूप व उदारतादि गुणों से संयुत थे उनको क्रम ही से उन भूपतिकी आज्ञासे रत्नवती के आगे दिखलाया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर उन सबों के बीच में
होनेहार व दशार्ण देशके स्वामी बृहद्बल राजा को उसने पति के लिये स्वीकार किया ॥ १० ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुए आनर्त देश के स्वामी ने विवाह के लिये
उन बृहद्बल के समीप दूतों को पठाया व भलीभांति जानकर यह वचन कहा ॥ ११ ॥ कि मेरे वचन से तुमलोग दशार्णाधिपति (बृहद्बल) के समीप जाओ

महीपालान्यौवनस्थान्वयोन्वितान् ॥ ८ ॥ रूपौदार्य्यगुणोपेतान्दर्शयामासुरग्रतः ॥ रत्नवत्याःक्रमेणैव तस्यभूपस्य शासनात् ॥ ९ ॥ अथतेषान्तुसर्वेषां मध्येराजाबृहद्बलः ॥ दशार्णाधिपतिर्भाव्यः पत्यर्थंचवृतस्तया ॥ १० ॥ ततोनर्ताधिपोहृष्टः प्रेषयामासतंप्रति ॥ विवाहार्थंसुविज्ञाय वाक्यमेतदुवाचह ॥ ११ ॥ गच्छध्वंममवाक्येन दशार्णाधिपतिंप्रति ॥ वाच्यःसविनयाद्गत्वा विवाहार्थेममान्तिकम् ॥ १२ ॥समागच्छनिजांकन्यां येनयच्छामिसांप्रतम् ॥ नाम्नारत्नवतीख्याता त्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ॥ १३ ॥ गत्वाशुसत्वरंतत्र यत्रराजाबृहद्बलः ॥ प्रोचुस्तत्सकलंवाक्यमानर्ताधिपतेःस्फुटम् ॥ १४ ॥ सोपितत्सहसाश्रुत्वा तेषांवाक्यमनुत्तमम् ॥ परमांतुष्टिमासाद्य प्रस्थितस्तत्पुरम्प्रति ॥ १५ ॥ सैन्येनमहतायुक्तश्चतुरङ्गेणपार्थिवः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

और जाकर नम्रता से उससे यह कहना चाहिये कि विवाह के लिये मेरे समीप ॥ १२ ॥ भलीभांति आवो जिससे इस समय अपनी कन्याको देऊं जोकि नाम से
रत्नवती ऐसी प्रसिद्ध व त्रिलोक के बीच में भी सुन्दरी है ॥ १३ ॥ उन दूतोंने जहां बृहद्बल राजा था वहां शीघ्रही जाकर आनर्ताधीश के समस्त वचन को प्रकटही
कहा ॥ १४ ॥ उनदूतोंके अति उत्तम उसवचनको अचानकही सुनकर उसबृहद्बल राजानेभी परमप्रसन्नताको पाकर बड़ीभारी चतुरङ्गिणी सेनासंयुतहो उसके पुरको
प्रयाणकिया॥१५।१६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येषडशीत्यधिकशततमोध्यायः॥१८६॥

दो॰। मद्यपानकरि परावसु कीन्हो प्रायश्चित्त। इकसौ सत्तासिवें महँ कह्यो सूत शुभचित्त॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! इसी अवसर में वेदों व वेदाङ्गों का
जाननेवाला विश्वावसु ऐसा प्रसिद्ध नागर ब्राह्मण था॥ १॥ उस के पिछली अवस्था के प्राप्तहोनेपर परावसु ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ जो कि उसको सदैव प्राणों के
समान प्रिय था॥ २॥ युवा अवस्थाके प्राप्त होनेपर सदैव सेवा में लगे व भलीभांति माने हुए एक अवस्था वाले बालकों के साथ उसने वेदाध्ययन किया याने
वेदको पढ़ा॥ ३॥ इसके अनन्तर किसीसमय माघ महीने के प्राप्तहोने पर रातमें पाठक के घरको गये हुए उसने पठन किया॥ ४॥ व आधीरात में समस्त मित्रों

सूतउवाच॥ एतस्मिन्नेवकालेतु नागरोद्विजसत्तमः॥ विश्वावसुरितिख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः॥ १॥ पश्चिमेवय
सिप्राप्ते तस्यपुत्रोबभूवह॥ परावसुरितिख्यातस्तस्यप्राणसमःसदा॥२॥ सवेदाध्ययनंचक्रे यौवनेसमुपस्थिते॥ वय
स्यैस्सम्मतैस्सार्द्धंसदादास्यपरायणैः॥३॥ कस्यचित्त्वथकालस्य माघमासउपस्थिते॥ रात्रौसोध्ययनंचक्र उपाध्या
यगृहंगतः॥ ४॥ निशीथेससमुत्थाय सर्वैर्मित्रैरलक्षितः॥ वेश्यागृहंसमासाद्य प्रसुप्तोवेश्ययासह॥ ५॥ जलपूर्णंसमा
धाय जलपात्रंसमीपगम्॥ निजाचमनयोग्यन्तु जलापानार्थमेवच॥ ६॥ निशाशेषेतुसम्प्राप्ते सपिपासासमाकु
लः॥ निद्रालस्यसमोपेतः शय्यांत्यक्त्वासमुत्थितः॥ ७॥ वेश्यायामद्यपात्रन्तु अधस्तात्संव्यवस्थितम्॥ तदादायप
पौमद्यं जलभ्रान्त्यायदैवसः॥ ८॥ तदामद्यंपरिज्ञात्वा पात्रंत्यक्त्वासुदुःखितः॥ वैराग्यंपरमंगत्वा प्रलापानकरोद्बहू
न्॥ ९॥ अहोनिद्रान्वितेनाद्य किंमयाविकृतंकृतम्॥ यदद्यमद्यमापीतं जलभ्रान्त्याविगर्हितम्॥ १०॥ किंकरोमि

से न देखाहुआ वह उठकर व वेश्या के घर जाकर अपने आचमन के योग्य जलसे भरे हुए व समीप में प्राप्त पानी के पात्रको जल पीनेही के लिये भलीभांति धर
कर वेश्याके साथ सो गया॥ ५। ६॥ व निशा शेषके प्राप्तहोने पर याने जब कुछरात बाकी रही तब प्यास से विकल व नींदके आलस्य से संयुत वह शय्या को
छोड़कर उठा॥ ७॥ और नीचे जो वेश्या का मदिरा वाला पात्र भलीभांति धरा था उसको लेकर जबहीं उसने पानी के धोखे से मदिरा को पिया॥ ८॥ उस स-
मय मदिरा जानकर व पात्रको छोड़कर अति दुखित होते हुये उसने बड़े वैराग्य को प्राप्तहोकर बहुत से प्रलापोंको किया॥ ९॥ कि आश्चर्य है आज नींदसे संयुत

मैंने क्या विकार किया है जो कि आज पानी के भ्रमसे मैंने निन्दित मदिरा को पिया ॥ १० ॥ क्याकरूं कहां जाऊं किसप्रकार मेरी शुद्धिहोगी यद्यपि अति कठिन भी होवै तथापि मैं प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ११ ॥ ऐसा मन से निश्चयकर प्रातःकाल प्राप्तहोने पर शङ्ख तीर्थको जाकर उस के उपरान्त शिखासमेत क्षौर कराकर व स्नानकर पश्चात् शीघ्रता संयुतहो वहां गया जहां कि ब्रह्मस्थान में भलीभांति बैठे हुए व वेदके घोषने में तत्पर शिष्यों समेत पाठकजी टिके थे वह द्विजजाकर व दूर स्थित होकर यथायोग्य बैठगया ॥ १२ । १३ । १४ ॥ जब मित्रों ने दाढ़ी व बालों से रहित देखा तब हँसी से बार २ हाथों के अग्रभाग से शिरमें मारा ॥ १५ ॥

क्वगच्छामि कथंशुद्धिर्भवेन्मम ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ ११ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा प्रभातेस मुपस्थिते ॥ शङ्खतीर्थंसमासाद्य कृत्वास्नानंततःपरम् ॥ १२ ॥ सशिखंवपनंपश्चात्कारयित्वात्वरान्वितः ॥ गतश्च तिष्ठतेयत्र ब्रह्मघोषपरायणः ॥ १३ ॥ उपाध्यायस्सशिष्यश्चब्रह्मस्थानंसमाश्रितः ॥ सगत्वाद्दूरतःस्थित्वा संनिविष्टोय थाद्विजः ॥ १४ ॥ श्मश्रुमूर्द्धजहीनस्तु यदामित्रैर्विलोकितः ॥ तदाहास्याद्धतोमूर्द्ध्नि हस्ताग्रैश्चमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ उपा ध्यायस्तुतंदृष्ट्वा दीनंबाष्पपरिप्लुतम् ॥ श्मश्रुमूर्द्धजसंत्यक्तंततःप्रोवाचसादरम् ॥ १६ ॥ किमद्यवत्सतादृक्त्वं हरौत्व ष्टातुदैन्यधृक् ॥ एहिमेसन्निधौब्रूहिपराभूतोसिकेनवा ॥ १७ ॥ परावसुरुवाच ॥ अयोग्योहंगुरोजातस्सेवायास्तवसांप्रतम् ॥ वेश्यायामन्दिरस्थेन ज्ञात्वानिजकमण्डलुम् ॥ १८ ॥ वेश्यायामद्यपात्रन्तु मद्यपूर्णंप्रगृह्यच ॥ तस्माद्देहिविभोमद्य प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ १९ ॥ धर्मग्रन्थेषुयत्प्रोक्तं तत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ अथतंवटवःप्रोचुर्वयस्यास्तस्ययेस्थि

और उपाध्याय (पढ़ानेवाले) ने आंसुओं से डूबे व दीन तथा दाढ़ी व बालों से रहित उसको देखकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ १६ ॥ कि हे वत्स ! जैसे कि इन्द्र में दीनता को धारे त्वष्टा थे वैसेही आज तुम क्योंहो मेरे समीप आवो व कहो कि किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है ॥ १७ ॥ परावसु बोले कि हे गुरूजी ! इस समय मैं तुम्हारी सेवा के अयोग्य होगया क्योंकि वेश्याके मन्दिर में टिके हुए मैंने अपने कमण्डलु को जानकर ॥ १८ ॥ मदिरा से भरे हुए वेश्याके मद्यपात्र को लेकर पीलिया इसलिये हे विभो ! विशेषकर शुद्धिके लिये मद्यके प्रायश्चित्तको दीजिये ॥ १९ ॥ जो कि धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में कहाहो उसको मैं

निरसन्देह करूंगा इस के अनन्तर गुरुके समीप जे उसके एक अवस्थावाले ब्रह्मचारी बैठे थे उन्हों ने कामदेव से वेश्याके समीप गमन के कारण हँसी करके उस परावसु से कहा कि जो यह राजाकी कन्या जनों में रत्नवती ऐसी कही गई है ॥ २० । २१ ॥ इस के कुचों को पकड़कर तुम शीघ्रही श्रोष्ठ पियो उससे तुम्हारी विशेषकर पवित्रताहोगी अन्यथा न होवैगी ॥ २२ ॥ परावसु बोले कि हे मित्रो ! मेरे विषम याने विपत्ति के स्थित होनेपर यह हास्य का समय है यदि शिशुताकी मित्रता से उपजाहुआ स्नेह मेरे ऊपर होवै ॥ २३ ॥ तो अन्य ब्राह्मणों को आनकर मेरे प्रायश्चित्त को कहिये इस के अनन्तर हँसी को छोड़कर उसके दुःखसे दुखित

ताः ॥ २० ॥ हास्यंकृत्वाप्रकामाच्च वेश्यायागुरुसन्निधौ ॥ एषायान्नृपतेःकन्या ख्यातारत्नवतीजने ॥ २१ ॥ अस्याःस्तनौ गृहीत्वात्वमधरंपिबसिद्धतम् ॥ ततस्तेस्याद्विशुद्धिश्च नान्यथाप्रभविष्यति ॥ २२ ॥ परावसुरुवाच ॥ वयस्यानर्म्म कालोयं विषमेममसंस्थिते ॥ ममोपरियदिस्नेहो बालमित्रत्वसम्भवः ॥ २३ ॥ तदानीयद्विजानन्यान्वदध्वंनिष्कृतिं मम ॥ अथतेनर्म्मचोत्सृज्य तद्दुःखेनचदुःखिताः ॥ २४ ॥ विश्वावसुंसमासाद्य तद्वृत्तान्तंपुरास्थितम् ॥ सोपितेषांस माकर्ण्य विषवत्कटुकंवचः ॥ २५ ॥ सभार्य्यःप्रययौतत्र यत्रपुत्रोव्यवस्थितः ॥ दुःखेनमहतायुक्तःस्खलमानःपदेपदे ॥ २६ ॥ वृद्धभावात्तथाशोकात्पुत्रकृत्यसमुद्भवात् ॥ ततस्तौप्रोचतुःपुत्रं बाष्पगद्गदयागिरा ॥ २७ ॥ दम्पतीचैवशोकार्तौ हापुत्रकिमिदंकृतम् ॥ सोपिसर्वंसमाचख्यौ ताभ्यांवृत्तान्तमात्मनः ॥ २८ ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि तस्मादात्मविशुद्धये ॥ ततोविश्वावसुर्विप्रान्स्मार्ताञ्छ्रुतिसमन्वितान् ॥ २९ ॥ तदर्थमानयामास वेदविद्याविचक्षणान् ॥ ततःपराव

होते हुये उन्हों ने ॥ २४ ॥ विश्वावसु के समीप जाकर पुरातन समय स्थित हुये वृत्तान्त को कहा वे विश्वावसु भी उनके विष समान कडुये वचन को सुनकर ॥ २५ ॥ स्त्री समेत वहां गये जहां कि पुत्र टिकाथा जो विश्वावसु कि पुत्र के कार्य से उपजे हुये शोचके कारण व वृद्धतासे बड़े दुःख संयुत व पग २ पै लरखराते थे तदनन्तर शोचसे विकल उन स्त्री पुरुषोंने आंसुवोंसे गद्गदी वाणी के द्वारापुत्र से कहा कि बड़े खेदकी बातहै हे पुत्र ! तूने यह क्या किया उसने भी उन दोनों पिता माताओं से अपने उस समस्त चरितको कहा ॥ २६।२७।२८ ॥ इसलिये अपनी पवित्रताकेलिये प्रायश्चित्त करूंगा तदनन्तर विश्वावसुने उसके लिये वेद विद्यामें चतुर

व वेद संयुत स्मृतियोंके जाननेवाले जनोंकोआना तदनन्तर हाथ जोड़ेहुये परावसु ने उनके आगे खड़े होकर ॥ २९ । ३० ॥ कहा कि रातमें न जानते हुये मैंने अपने कमण्डलुको जानकर वेश्याके पात्रको भलीभांति लेकर मदिरा पीलिया ॥ ३१ ॥ ऐसा जानकर यथायोग्य प्रायश्चित्तको दीजिये कि जिससे हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों की प्रसन्नतासे मेरी पवित्रता होवै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! उससे इस भांतिकहेहुये उन स्मृतिवादी द्विजोंने धर्मशास्त्रको भलीभांति देखकर तदनन्तर उससेकहा ॥ ३३ ॥ कि अतिआदर या अत्यन्त क्रोध या स्नेह अथवा डरसे जो अयोग्य प्रायश्चित्तको देता है तो उससमय उस पापको वह भोग करता है ॥ ३४ ॥ उसलिये हमलो-

सुस्तेषां पुरःस्थित्वाकृताञ्जलिः ॥ ३० ॥ प्रोवाचास्वादितंमद्यं मयारात्रावजानता ॥ वेश्याभाण्डंसमादाय ज्ञात्वानिजकमण्डलुम् ॥ ३१ ॥ एवंज्ञात्वायथार्हञ्च प्रायश्चित्तंप्रदीयताम् ॥ येनमेजायतेशुद्धिः प्रसादाद्वोद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥ एवमुक्तास्ततस्तेन विप्रास्तेस्मृतिवादिनः ॥ धर्म्मशास्त्रंसमालोक्य ततःप्रोचुश्चतंद्विजाः ॥ ३३ ॥ अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वायदिवाभयात् ॥ प्रायश्चित्तमनर्हन्तु तदातत्पापमश्नुते ॥ ३४ ॥ प्रायश्चित्तंप्रदास्यामस्तस्माद्युक्तंवयंतव ॥ यदिशक्नोषितत्कर्तुंत्वंकुरुष्वसमाहितः ॥ ३५ ॥ परावसुरुवाच ॥ करोमियोनचेद्वाक्यं तत्पृच्छामिकुतोद्विजाः ॥ नाहंकेनापिसंदृष्टो मद्यपानंसमाचरन् ॥ ३६ ॥ तस्माद्ब्रूतयथार्हंमेप्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ अपिप्राणहरंरौद्रं नोचेत्पापमवाप्स्यथ ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ बुद्ध्यमानोद्विजोयस्तुमद्यपानंसमाचरेत् ॥ तावन्मात्रंहिरण्यञ्च तप्तंपीत्वाविशुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ अज्ञानतोयदापीतं मद्यंविप्रेणकर्हिचित् ॥ अग्नितुल्यंघृतंपीत्वा तावन्मात्रंविशुद्ध्यति ॥ ३९ ॥

ग तुमको योग्य प्रायश्चित्तको देवैंगे यदि उसको करने के लिये तुम समर्थ हो तो सावधान होते हुये करिये ॥ ३५ ॥ परावसु बोला कि हे ब्राह्मणो ! यदि तुम लोगों का वचन न करूं तो किसलिये पूंछता हूं क्योंकि मदिरा पान करते हुये मुझको किसीने भी न देखा था ॥ ३६ ॥ उसी कारण यदि प्राणोंको हरनेवाला व भयङ्कर भी होवै तथापि विशुद्धि के लिये मुझसे यथायोग्य प्रायश्चित्त को कहिये नहीं तो तुमलोग पाप पावोगे ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि जानता हुआ जो ब्राह्मण मदिरा पान करता है उतने ही प्रमाण भर तचाहुआ सुवर्ण पीकर विशेषकर पवित्र होता है ॥ ३८ ॥ व जबकभी ब्राह्मण ने अनजानसे मदिरा पीलिया हो तो उतने

ही प्रमाणभर अग्नि के समान घी पीकर विशेषता से शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तम ! विशुद्धिके लिये इसभांति तुमसे समस्त प्रायश्चित्त कहा यदि तुम करने के लिये समर्थ हो तो करिये ॥ ४० ॥ परावसु बोला कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने एक कुल्लाभर मदिरा पिया है तुमलोगों की आज्ञा से अपने शरीर की विशुद्धि के लिये आजही मैं उतने ही प्रमाण भर अग्नि के समान किये हुये घृतको निश्चयकर पीऊंगा ब्राह्मणों व पुत्र के वज्र गिरने के समान उस वचनको सुनकर विश्वावसु ने बहुत आंसुवों को छोड़कर दुःखितहो आंसुवों से गद्गदी वाणी के द्वारा उन ब्राह्मणों से कहा ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ कि इस पुत्रकी विशेषकर शुद्धिके लिये मैं

एवन्तेसर्वमाख्यातं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ यदिशक्तोषिचेत्कर्तुंत्वंकुरुष्वद्विजोत्तम ॥ ४० ॥ परावसुरुवाच ॥ गण्डूषमेकं मद्यस्य मयापीतंद्विजोत्तमाः ॥ तावन्मात्रंपिबाम्येव घृतंवह्निसमंकृतम् ॥ ४१ ॥ युष्मदादेशतोद्यैव स्वशरीरविशुद्धये ॥ विश्वावसुश्चतच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमंवचः ॥ ४२ ॥ विप्राणांचाथपुत्रस्य तान्प्रोवाचसुदुःखितः ॥ कृत्वाश्रुमोक्षणंभूरि बाष्पगद्गदयागिरा ॥ ४३ ॥ सर्वस्वमपिदास्यामि पुत्रस्यास्यविशुद्धये ॥ प्रायश्चित्तंसमाकर्तुं नदास्यामिकथञ्चन ॥ ४४ ॥ अश्राद्धीयोविपाङ्क्तेयःसपुत्रोवाभवाम्यहम् ॥ स्थानंवासंत्यजाम्येतत्पुत्रनैवंसमाचर ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य पितुर्विघ्नकरंपरम् ॥ प्रायश्चित्तस्यसस्नेहं पुत्रोवचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ त्यजताततममस्नेहं माविघ्नंमेसमाचर ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि निश्चयोयंमयाकृतः ॥ ४७ ॥ मातोवाच ॥ यदिपुत्रत्वयाकार्य्यं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ तदहंपतिनासार्द्धं प्रवेक्ष्यामिपुरोनलम् ॥ ४८ ॥ त्वांद्रष्टुंनैवशक्नोमि पिबन्तमग्निवद् घृतम् ॥ पश्चात्प्राणपरित्यक्तं सत्येनात्मानमालभे ॥ ४९ ॥

सर्वस्व भी दूंगा परन्तु प्रायश्चित्त करने को किसी प्रकार न दूंगा ॥ ४४ ॥ चाहै पुत्र समेत मैं श्राद्धके अयोग्य व पंक्ति से अलग होजाऊं या हे पुत्र ! इस स्थान को भलीभांति छोड़दूं परन्तु ऐसा न करो ॥ ४५ ॥ उस पिता के प्रायश्चित्तके अतिविघ्नकारक व स्नेह समेत उस वचनको सुनकर पुत्र वचन बोला ॥ ४६ ॥ कि हे पिता जी ! मेरे स्नेह को छोड़दो व मेरा विघ्न मत करो मैंने यह निश्चय किया है कि प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ४७ ॥ माता बोली कि हे पुत्र ! यदि विशुद्धिके लिये तुमसे प्रायश्चित्त करने योग्य है तो पति समेत मैं पहले अग्निमें पैठूंगी ॥ ४८ ॥ क्योंकि अग्नि के समान घी को पीते हुये व पीछे प्राणों से रहित तुमको देखने के लिये मैं

नहीं समर्थ हूं यह सत्य से अपनी सौगन्द करती हूं॥ ४६ ॥ पिता बोला कि हे पुत्र ! तुम्हारी इस माताने योग्य व हित कहा है मेरी भी यही सलाह है निस्सन्देह इस को करूंगा ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में उसके जे शुद्धिदायक स्थित थे उस वृत्तान्त को सुनकर दुःखसंयुत होते हुये वे सब भलीभांति आये ॥ ५१ ॥ व मरण में निश्चय किये और पुत्रके शोचसे अति तचेहुये स्त्री समेत विभावसु से अनेक प्रकार के वचनों से बोले ॥ ५२ ॥ और प्रायश्चित्त से निवृत्तिके लिये पुत्रको समझाया व जब साक्षात् प्राण के त्यागमें आदर किये हुये उन पिता पुत्रोंको निवृत्त करने के लिये न समर्थ हुये तदनन्तर वास्तुपदको गये जहां कि

पितोवाच ॥ युक्तंपुत्रानयाप्रोक्तं मात्रातवहितंतथा ॥ ममापिसम्मतंह्येतत्करिष्यामिनसंशयम् ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वे शुद्धिदास्तस्ययेस्थिताः ॥ तच्छ्रुत्वातेसमायाता वृत्तान्तंदुःखसंयुताः ॥ ५१ ॥ प्रोचुश्च विविधैर्वाक्यैस्सपत्नीकंविभावसुम् ॥ पुत्रशोकेनसंतप्तं मरणेकृतनिश्चयम् ॥५२॥ पुत्रंप्रबोधयामासुः प्रायश्चित्तनिवृत्तये ॥ यदानशक्नुवन्तिस्म निवर्तयितुमञ्जसा ॥५३॥ तावुभौचपितापुत्रौ प्राणत्यागेकृतादरौ ॥ ततोवास्तुपदंजग्मुः सर्वज्ञोयत्रतिष्ठति ॥ ५४ ॥ भर्तृयज्ञोमहाभागस्सर्वसन्देहहारकः ॥ तस्यसर्वंसमाचख्युः परावसुसमुद्भवम् ॥ ५५ ॥ वृत्तान्तंमद्यपानोत्थं यन्मित्रैस्तस्यकीर्तितम् ॥ प्रायश्चित्तंतुहास्येन यच्चस्मार्त्तैःप्रकीर्तितम् ॥ ५६ ॥ विश्वावसोश्चसङ्कल्पं वह्निसाधनसम्भवम् ॥ सपत्नीकस्यविप्राणां यच्चदुःखमुपस्थितम् ॥ ५७ ॥ निवेद्यतंतथाप्रोचुर्भूयोपिविनयान्विताः ॥ अतीतंवर्तमानञ्च भविष्यंवापियद्भवेत् ॥ ५८ ॥ नतेस्त्यविदितंकिञ्चित्सर्वंजानीमहेवयम् ॥ एतच्चनगरंसर्वं वि

समस्त सन्देह के हरनेवाले व बड़े भाग्यवाले सर्वज्ञ भर्तृयज्ञ टिके थे उनसे परावसुसे उपजेहुये समस्त वृत्तान्तको भलीभांति कहा ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ जो वृत्तान्त कि मदिरा के पीने से उठाथा और उनके मित्रों ने हास्य से जो प्रायश्चित्त कहा था व स्मृति शास्त्रों के जाननेवाले जनोंने जो कहा था उसको कहा ॥ ५६ ॥ और अग्निसाधन से उपजे हुये स्त्री समेत विश्वावसु के सङ्कल्पको और ब्राह्मणोंको जो क्लेश उपस्थित हुआ उसको ॥५७॥ उन भर्तृयज्ञ से निवेदन करके फिरभी नम्रता संयुत होतेहुये बोले कि भूत वर्तमान व भविष्यत्भी जो होजावै है ॥५८॥ वह कुछ तुमको अप्रकट नहीं है यह सब हमलोग जानते हैं और इससमय विश्वावसु के

लिये यह समस्त पुर ॥ ५९ ॥ परम सन्देहको प्राप्त है उसी कारण हमलोग तुम्हारे समीप प्राप्तहुये हैं इस लिये हे महाभाग ! यदि और ही प्रायश्चित्त होवै तो इस ब्राह्मणके मदिरा पीने से विशुद्धि के लिये उसको कहिये क्योंकि वेद में उपजा हुआ कुछ तुमको अप्रकट नहीं है ॥ ६० । ६१ ॥ भर्तृयज्ञ उच्चप्रकार से बिहँसकर तदनन्तर वचन बोले कि इस ब्राह्मण की विशुद्धिके लिये महात्माओंसे यह कहना चाहिये ॥ ६२ ॥ कि कैसे है व किसप्रकार नहीं है और किसलिये तुमलोग उनसे कहने योग्य हो यह बड़ाभारी विस्मय समस्त ब्राह्मणोंको हुआहै ॥६३॥ भर्तृयज्ञ बोले कि व्रत का छिद्र व तपस्याका छिद्र व यज्ञकार्य में जो छिद्र(दोष) हुआहो जिसको

श्वावसुकृतेऽधुना ॥ ५९ ॥ संशयंपरमंप्राप्तं तेनप्राप्तास्तवान्तिकम् ॥ तस्माद्ब्रूहिमहाभागा यद्यस्त्यपरमेवहि ॥६०॥ प्रायश्चित्तंद्विजस्यास्य मद्यपानविशुद्धये ॥ नतुह्यविदितंकिञ्चित्तववेदसमुद्भवम् ॥ ६१ ॥ भर्तृयज्ञोविहस्योच्चैस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणस्यास्यशुद्ध्यर्थं वाच्यमेतन्महात्मभिः ॥ ६२ ॥ कथमस्तिकथंनास्ति कस्मात्तंवक्तुमर्हथ ॥ विस्मयोयंमहाञ्जातस्सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ६३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ व्रतच्छिद्रंतपश्छिद्रं यच्छिद्रंयज्ञकर्म्मणि ॥ सर्वंभवतिनिश्छिद्रं यस्यचेच्छन्तिब्राह्मणाः ॥६४॥अच्छिद्रमपियद्वाक्यं वदन्तिक्षितिदेवताः ॥ विशेषान्नागरोद्भूतास्तत्तथैवनचान्यथा ॥ ६५ ॥ तथाचब्रह्मशालायां संस्थितैर्यदुदाहृतम् ॥ नान्यथातत्परिज्ञेयं केनापिस्मृतिवादिना ॥६६॥ सएषहास्यभावेन प्रोक्तोमित्रैःपरावसुः ॥ रत्नवत्याःस्तनौगृह्य यद्यास्वादयसेधरम् ॥ ६७ ॥ तद्भविष्यतितेशुद्धिर्मद्यपानसमुद्भवा ॥ तदुपायोमयाप्रोक्तो विप्रस्यास्यसुखावहः ॥ ६८ ॥ पराशरमतेनैवकरोतियदिशुद्ध्यति ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥

ब्राह्मण चाहैं उसका वह सब छिद्ररहित होताहै॥६४॥ पृथ्वीके देवता याने ब्राह्मणलोग व विशेष नागरों से उत्पन्न द्विज बिन छिद्रवाले भी जिस वचनको कहते हैं वह वैसाही होताहै अन्यथा नहीं होता ॥ ६५ ॥ वैसेही ब्राह्मणोंकी सभा में भलीभांति टिकेहुये नागर द्विजों ने जो कहा है वह किसी स्मृतिवादी से अन्यथा न जानने के योग्य है ॥ ६६ ॥ सो इस परावसु से हँसी के स्वभाव से मित्रों ने कहा कि यदि रत्नवती के कुचों को पकड़कर ओंठ का आस्वादन करो याने पियो ॥ ६७ ॥ तो मदिरा पीने से उपजीहुई तुम्हारी शुद्धि होगी यदि पराशर महर्षि के मतसे शुद्धि करै तो मैंने इस ब्राह्मण को सुखदायक वही उपाय कहा ब्राह्मण बोले कि यदि राजा यह वचन

सुनैगा तो ईर्ष्या में परायण होकर ॥ ६८ । ६९ ॥ समस्त ब्राह्मणों का वध करैगा व अन्यथा होवैगा इस लिये माता, पिता समेत यह परावसु ब्राह्मण अभिलाष को करैं हम लोग घर जावैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि वह राजा नीतिमान् व विशेषकर ज्ञाता और समस्त धर्मों में तत्पर है ॥ ७० । ७१ ॥ और देवों व द्विजों का भक्त तथा समस्त शास्त्रों में चतुर है इसलिये मुझ समेत सब नागर ब्राह्मण उसके घर को चलैं ॥ ७२ ॥ और मध्यवर्ती नागर को अगाड़ीकर तदनन्तर उसके मुखद्वारा परावसु के मदिरा पीने से उपजे हुये वृत्तान्त को कहैं व हास्य में आश्रित मित्रों ने जो कहा उसको व पराशर से उठी हुई स्मृति की श्रेष्ठ वाक्य व उसके वचन को

यद्येतच्छृणुतेराजा वाक्यमीर्ष्यापरायणः ॥ ६९ ॥ तत्सर्वेषांवधंकुर्य्याद्विप्राणामन्यथाभवेत् ॥ तस्मात्करोतुचाभीष्टमेषविप्रःपरावसुः ॥ ७० ॥ मातापितृसमोपेतो वयंयास्यामहेगृहम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सराजानीतिमान्विज्ञः सर्वधर्म्मपरायणः ॥ ७१ ॥ भक्तोदेवद्विजानांच सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥ तस्मान्मयासमंसर्वे नागरायान्तुतद्गृहम् ॥ ७२ ॥ मध्यगंपुरतःकृत्वा तद्वक्रेणततःपरम् ॥ कथयन्तुचवृत्तान्तं मद्यपानसमुद्भवम् ॥ ७३ ॥ परावसोश्चयत्प्रोक्तं वयस्यैर्हास्यमाश्रितैः ॥ पराशरसमुत्थश्च तद्वाक्यंतत्स्मृतेःपरम् ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वायदिभूपाल ईर्ष्यालोभसमन्वितः ॥ भविष्यतिततोहन्तं साधयिष्यामिसत्पथम् ॥ ७५ ॥ सूतउवाच ॥ ततस्तेनागरास्सर्वे सन्तोषंपरमङ्गताः ॥ साधुवादैस्समभ्यर्च्य भर्तृयज्ञंपृथग्विधैः ॥ ७६ ॥ तेनैवसहितास्तूर्णंमध्येकृत्वाचमध्यगम्॥ गर्ततीर्थसमुद्भूतंवेदवेदाङ्गपारगम्॥ ७७ ॥ स्मृतिज्ञंलक्षणज्ञन्तमाहिताग्निंयशस्विनम् ॥ यष्टारंबहुयज्ञानां भर्तृयज्ञमतोस्थितम् ॥ ७८ ॥ आनर्तनापिभूपे

कहैं ॥ ७३ । ७४ ॥ उसको सुनकर यदि राजा ईर्ष्या, लोभ से संयुत होवै तो मैं उसको उत्तम मार्ग पै साधन कराऊंगा ॥ ७५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हुये वे समस्त नागर द्विज अनेक भांति के प्रशंसितवादों से भर्तृयज्ञ को भलीभांति पूजकर ॥ ७६ ॥ व उसी समेत वे शीघ्रही मध्यवर्ती को मध्य में करके जो कि गर्ततीर्थ में उपजा हुआ वेदों व वेदाङ्गों के पारगामी था ॥७७॥ व स्मृति के जाननेवाले व लक्षणों के ज्ञाता व अग्निसञ्चयकारी और यशस्वी व बहुत यज्ञों के यजन करनेवाले व भर्तृयज्ञ के मत में टिकेहुये उसको ॥ ७८ ॥ जो कि पुरातन समय स्वर्ग से भ्रष्ट (गिरे) हुये व कर्णोत्पला के पैदाकरनेवाले आनर्त

भूप से भी ब्राह्मणों के गौरव के कारण चमत्कार नगरवाले इस स्थान में बहुत समय पहले उसी कारण न्यास किया गया था जिससे समस्त ब्राह्मणों के कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७९ । ८० ॥ व वैसेही चमत्कार नगर के अन्य कार्य सिद्ध होते हैं उन हरिभद्र नामक को भर्तृयज्ञ से संयुत करके व माता पिता समेत उन परावसु को भलीभांति लेकर सब नागर राजद्वार के समीप आये ॥ ८१ । ८२ ॥ इस के अनन्तर द्वार पै बैठे हुये पुरुषने शीघ्रही जाकर भर्तृयज्ञ व हरिभद्र से संयुत उन ब्राह्मणों को भूपति से निवेदन किया ॥ ८३ ॥ उस समय राजद्वार में भलीभांति आयेहुये उन ब्राह्मणों को सुनकर पुरोहित से संयुत आनर्त नृपने भी सामने प्रयाण

न स्वर्गभ्रष्टेनवैपुरा ॥ कर्णोत्पलाजनित्रेण यश्चपूर्वंचिरन्ततः ॥ ७९ ॥ चमत्कारपुरेन्यस्तःस्थानेस्मिन्विप्रगौरवात् ॥ येनसिद्ध्यन्तिकार्य्याणि सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ ८० ॥ तथाचैवतुचान्यानिचमत्कारपुरस्यच ॥ हरिभद्राभिधानन्तं भर्तृयज्ञसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ कृत्वातन्नागरास्सर्वे राजद्वारमुपागताः ॥ परावसुंसमादाय मातापितृसमन्वितम् ॥ ८२ ॥ अथद्वाःस्थोद्रुतंगत्वा भूपतेस्तान्न्यवेदयत् ॥ ब्राह्मणान्भर्तृयज्ञेन हरिभद्रेणसंयुतान् ॥ ८३ ॥ आनर्तोपिचताञ्छ्रुत्वा राजद्वारसमागतान् ॥ पुरोधसासमायुक्तस्संमुखंप्रययौतदा ॥ ८४ ॥ दत्त्वार्घंमधुपर्कञ्च विष्टरञ्चान्तथानृपः ॥ प्रथमं भर्तृयज्ञाय हरिभद्रायवैततः ॥ ८५ ॥ चतुर्णान्तुसहस्राणांतथान्येषांद्विजन्मनाम् ॥ अथर्वऋग्यजुःसाम्नां प्रगृह्याशीर्वचःपुरम् ॥ ८६ ॥ सभामण्डपमासाद्य सर्वान्समुपवेशयत् ॥ आसनेषुचहैमेषु यथावदनुपूर्वशः ॥ ८७ ॥ तथातेषूपविष्टेषुसर्वेषुपृथिवीपतिः ॥ उपविश्यधरापृष्ठे कृताञ्जलिरभाषत ॥ ८८ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यन्मेगृहमुपागतः ॥

किया ॥ ८४ ॥ व नृपतिने पहले भर्तृयज्ञ के लिये तदनन्तर हरिभद्र के निमित्त अर्घ, मधुपर्क व विष्टर (आसन) और वाणी को देकर ॥ ८५ ॥ व वैसेही अन्य चार हजार ब्राह्मणों को देकर अथर्व, ऋक्, यजुर्वेद व सामवेदों के उत्तम आशीर्वादवाले वचन को पहिले ग्रहणकर॥ ८६ ॥ सभा के मण्डप में प्राप्त होकर सुवर्णमय आसनों के ऊपर सबों को पहले व पश्चात् यथायोग्य बिठलाया ॥ ८७ ॥ वैसेही जब उन आसनों में वे सब बैठगये तब हाथों को जोड़ के भूपतिने भूपृष्ठमें समीप

बैठकर कहा ॥ ८८ ॥ कि मैं धन्य व अनुग्रह कियागयाहूं क्योंकि भर्तृयज्ञ संयुक्त समस्त यह नागर जन मेरे घर आया ॥ ८९ ॥ इसलिये मनुष्य मुझको वह आज्ञा देवैं कि तुम लोगों के जिस कार्य को मैं करूं इस समय घर आये हुये सब को मैं न देनेके योग्य भी पदार्थको देऊं ॥ ९० ॥ व न जाने के योग्य भी स्थान को जाऊंगा व कार्यही को करूंगा उस को सुनकर भलीभांति उठकर शीघ्रतासंयुत हरिभद्रने ॥ ९१ ॥ उसके लिये आद्य जनों से व तदनन्तर बह्वृचों व अध्वर्यु और छन्दोग्यों से पूंछा व उस समय उनसे आज्ञा को पाया ॥ ९२ ॥ व कहा कि आद्य पुरुष प्राणरुद्रों को व बह्वृच जीवसूक्तको कहैं ऐसेही जो पुरातमक पृथिव्यादि सवनहै ॥ ९३ ॥

सर्वोयन्नागरोलोको भर्तृयज्ञसमन्वितः ॥ ८९ ॥ तदादिशतुमांलोको यत्कृत्यंप्रकरोमिवः ॥ अदेयमपियच्छामि गृहायातस्यसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ अगम्यमपियास्यामि करिष्येकृत्यमेवच ॥ तच्छ्रुत्वाहरिभद्रस्तुसमुत्थायत्वरान्वितः॥ ९१ ॥ पप्रच्छाद्यांस्तदर्थंच बह्वृचांस्तदनन्तरम्॥ अध्वर्यूंचैवछन्दोग्याननुज्ञातश्चतैस्तदा॥ ९२॥ प्राणरुद्रान्वदन्त्वाद्या जीवसूक्तंचबह्वृचः॥ एवंचैवपृथिव्यादिसवनंयत्पुरातमकम्॥ ९३ ॥ वदन्त्वध्वर्यवस्सर्वे छान्दोग्याश्चपृथक्पृथक्॥ मधुच्युतेनसंयुक्तं प्रपठन्तुचशुद्धये॥ ९४ ॥ भर्तृयज्ञमतेनैवं तेनप्रोक्तंद्विजोत्तमाः ॥ पपठुश्चैवतत्सर्वं यत्प्रोक्तन्तेनधीमता॥ ९५ ॥ ततःपाठावसानेतु मध्यगःप्राहसादरम् ॥ परावसुसमुद्भूतं वृत्तान्तंतस्यभूपतेः॥ ९६ ॥ यथातेनासवःपीतो यथामित्रैःप्रजल्पितम् ॥ प्रायश्चित्तंसमादिष्टं यथास्मार्तैर्घृतोद्भवम्॥ ९७॥ भर्तृयज्ञेनचानीता यथासर्वेद्विजातयः॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोहृष्टः कृताञ्जलिपुटोब्रवीत्॥ ९८ ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं यस्यमेनागरैर्द्विजैः ॥ विप्रत्रयस्य

उसको सब अध्वर्यु (यजुर्वेदी) कहैं और छान्दोग्य अलग २ शुद्धि के लिये मधुच्युत से संयुक्त मन्त्रको पढ़ैं ॥ ९४ ॥ इस भांति भर्तृयज्ञ के मतसे उस हरिभद्र ने कहा और द्विजोत्तमों ने वह सब पढ़ा जो कि उस बुद्धिमान्ने कहा था ॥ ९५ ॥ तदनन्तर पढ़ने के अन्तमें मध्यवर्ती द्विजने परावसु से उपजे हुये वृत्तान्तको उस भूपति से आदर समेत कहा ॥ ९६ ॥ जिस प्रकार कि उसने मदिरा पिया व जैसा मित्रोंने कहा था व जिसभांति स्मृतियों के जाननेवाले विद्वानों ने घी से उपजे हुये प्रायश्चित्त की आज्ञा दिया था ॥ ९७ ॥ व जिस प्रकार भर्तृयज्ञ से समस्त ब्राह्मण लायेगये उसको सुनकर हाथ जोड़े व प्रसन्न होतेहुये राजाने कहा ॥ ९८ ॥ कि मैं

धन्यहूं व मैं कृतकृत्यहूं कि जिस मेरे ऊपर नागर ब्राह्मणों ने तीन द्विजों की रक्षा के लिये यह बड़ी भारी प्रसन्नता किया ॥ ९९ ॥ व मेरी यह कन्या धन्य है जो कि मरणमें निश्चय किये हुये इन तीनों ब्राह्मणोंकी आपही रक्षा करैगी ॥ १०० ॥ वैसेही हे ब्राह्मणो ! सभाके बीचमें बैठेहुये इस राजाने उसी क्षण उस कन्याको मँगवाया व ब्राह्मणों के लिये निवेदन किया ॥ १ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों के वचन से मैंने इस कन्या को आनाहै और भर्तृयज्ञ ने जो कहा है उसको वह ब्राह्मण करै ॥ २ ॥ तदनन्तर भर्तृयज्ञ ने उस परावसु ब्राह्मण को वहां भलीभांति आनकर उस के उपरान्त कन्या के अगाड़ी वचन कहा ॥ ३ ॥ कि ओंठ का आस्वादन करते हुये

रक्षार्थं प्रसादोयंमहान्कृतः ॥ ९९ ॥ धन्यामेकन्यकाचेयं रक्षयिष्यतिचस्वयम् ॥ ब्राह्मणत्रितयन्त्वेतन्मरणेकृतनिश्चयम् ॥ १०० ॥ तथासौचानयामास तांकन्यांतत्क्षणाद्विजाः ॥ उपविष्टःसभामध्ये ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १ ॥ एषाकन्यामयानीता युष्मद्वाक्याद्विजोत्तमाः ॥ भर्तृयज्ञेनयत्प्रोक्तं तत्करोतुचसद्विजः ॥ २ ॥ ततस्तत्रसमानीय ब्राह्मणन्तंपरावसुम् ॥ भर्तृयज्ञस्ततोवाक्यं कन्यायाःपुरतोब्रवीत् ॥ ३ ॥ इमांत्वंकन्यकांचित्ते जननींयदिमन्यसे ॥ अधरास्वादनंकुर्वंस्ततश्शुद्धिमवाप्स्यसि ॥ ४ ॥ अनुरागपरोभूत्वा यद्यास्वादनतत्परः ॥ भविष्यतिततोरक्तं तववक्त्रेपरावसो ॥ ५ ॥ शुद्धस्यत्वथदुग्धंच भविष्यतिनसंशयः ॥ त्वत्पीताभ्यांस्तनाभ्यां चस्पर्शात्क्षीरंभवेद्यदि ॥ ६ ॥ तत्तेशुद्धिःपरिज्ञेयारक्तंवानभविष्यति ॥ एवमुक्त्वाथतांकन्यां ततःप्रोवाचसद्विजः ॥ ७ ॥ एनंत्वंपुत्रवत्पश्य पुत्रिब्राह्मणसत्तमम् ॥ येन शुद्धिमवाप्नोति त्वदोष्ठास्वादनेनच ॥ ८ ॥ स्पर्शिताभ्यांस्तनाभ्याञ्च प्रायश्चित्तंयतःस्मृतम् ॥ एतदस्यद्विजेन्द्रस्य वै

तुम यदि इस कन्या को चित्तमें माता मानोगे तो उससे शुद्धि को पावोगे ॥ ४ ॥ व यदि स्नेह में परायण होकर आस्वादन में तत्पर होगे तो हे परावसो ! उसी से तुम्हारे मुख में रुधिर होगा ॥ ५ ॥ अथवा शुद्धहुये तुम्हारे मुखमें दूध होगा इस में सन्देह नहीं है और यदि तुम से पियेहुये स्तनों से स्पर्श के कारण दूध होवै ॥ ६ ॥ तो तुम्हारी शुद्धि जानने योग्यहै अथवा रक्तहोवै तो शुद्धि न होगी ऐसा कहकर व तदनन्तर उस ब्राह्मण ने उस कन्या से कहा ॥ ७ ॥ कि हे पुत्रि ! इस द्विजोत्तम को तुम पुत्रके समान देखो कि जिससे तुम्हारे ओंठ के आस्वादन से पवित्रता को पावै ॥ ८ ॥ क्योंकि हास्य में भलीभांति प्राप्त इस द्विजेन्द्रके मित्रों ने छुयेहुये

स्तनों के द्वारा इस प्रायश्चित्त को कहा है ॥९॥ जिससे कि पवित्रता को प्राप्त होवै नहीं तो मृत्युको पावैगा सूतजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वह कन्या उन लज्जा समेत परावसु से बोली ॥ १० ॥ कि हे वत्स ! आइये व माता के भाव को भलीभांति आधान करके विशेषकर शुद्धि के लिये तुम प्रायश्चित्त करो मैंने तुमको पुत्र कल्पना कियाहै ॥ ११ ॥ उसने भी माताके तुल्य मानकर उसके समीप आगमन किया व समस्त मनुष्यों के देखते हुये उसके स्तनों का स्पर्श किया ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! छुयेहुये उन कुचों से उसी क्षण कुन्द, चन्द्रमा व पाला के समान दूधकी धारैं निकलीं ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर जबतक परावसु ब्राह्मण उस

यस्यैहास्यसङ्गतैः ॥ ९ ॥ येनशुद्धिमवाप्नोति नोचेन्मृत्युमवाप्स्यति ॥ सूतउवाच ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय सव्रीडन्तमुवाचह ॥ १० ॥ एहिवत्सकुरुष्वत्वं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ मातृभावंसमाधाय मयात्वंकल्पितःसुतः ॥ ११ ॥ सोपितांमातृवन्मत्वा तस्यास्सान्निध्यमागतः ॥ स्पृष्टवांश्चस्तनौतस्याः सर्वलोकस्यपश्यतः ॥ १२ ॥ स्पृष्टाभ्यांचस्तनाभ्यांचतत्क्षणाद्द्विजसत्तमाः ॥ क्षीरधारेविनिष्क्रान्ते कुन्देन्दुहिमसन्निभे ॥ १३ ॥ अथोष्ठास्वादनंयावत्तस्यास्संकुरुतेद्विजः ॥ तावत्क्षीरंविनिष्क्रान्तं तादृग्रूपंतदाननात् ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसर्वैस्तालंदत्तंद्विजातिभिः ॥ जातोयंब्राह्मणःशुद्धो वदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ सोपिप्रदक्षिणीकृत्य त्वंमातःपुत्रवत्सला ॥ तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्य्यमानर्तोविस्मयान्वितः ॥ १६ ॥ शशंसभर्तृयज्ञंतं प्रायश्चित्तप्रदायकम् ॥ अहोतीवसुभाग्योहं यस्यमेगृहमागताः ॥ १७ ॥ ईदृशाब्राह्मणास्सर्वेचमत्कारपुरोद्भवाः ॥ तथाचैवेदृशीकन्या ममाज्ञावशवर्तिनी ॥ १८ ॥ महासतीमहाभागा सत्यशौचसमन्वि

के ओंठ का आस्वादन भलीभांति करै तबतक उसके मुख से वैसेही रूपवाला याने कुन्देन्दुहिम समान दूध निकला ॥ १४ ॥ इसी अवसर में बारबार कहते हुये उन समस्त ब्राह्मणों ने ताल दिया याने ताली बजाया कि यह ब्राह्मण शुद्ध होगया ॥ १५ ॥ व उसने भी प्रदक्षिणा करके कहा कि हे माता ! तुम पुत्रवत्सला हो अर्थात् तुमको पुत्र प्रियहै उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर विस्मयसंयुत आनर्त नृपति ने ॥ १६ ॥ प्रायश्चित्त के देनेवाले उस भर्तृयज्ञकी प्रशंसा किया कि यह आश्चर्य है व मैं अत्यन्तही भाग्यवान् हूं कि जिस मेरे घर को चमत्कार नगर में उपजे हुये ऐसे समस्त ब्राह्मण आये ॥ १७ ॥ और वैसेही मेरे आज्ञावशमें वर्त्तमान होनेवाली

ऐसी कन्या है ॥ १८ ॥ जो कि महासती व बड़ी भाग्यवती और सत्य व पवित्रतासे संयुतहै वैसेही अन्य परावसु ब्राह्मण सामान्य नहीं है ॥ १९ ॥ जो कि ऐसी कन्या को प्राप्त होकर विकार में न स्थित हुआ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों को बिदाकर नृपोत्तम ॥ २० ॥ उस कन्या को भलीभांति लेकर तदनन्तर रनिवास को चलागया और तदनन्तर उन समस्त नागर ब्राह्मणों ने मर्यादा किया ॥ २१ ॥ कि आज से लगाकर जो वेश्या इस स्थान में निवास को पावैगी उसको किसी प्रकार घर में मदिरा, मांस को न धरना चाहिये ॥ २२ ॥ क्योंकि यहाँ वे दुष्टा वेश्यायें नागर द्विजों को दूषित करती हैं अथवा व्यवस्था (मर्यादा) को नाँघकर जो

ईदृशींसमासाद्य कन्यांनोविकृतिंस्थितः ॥ एवमुक्त्वाविसृ
ता ॥ तथान्योनैवसामान्यो ब्राह्मणश्चपरावसुः ॥ १९ ॥ यश्चे
ज्याथ तान्विप्रान्पार्थिवोत्तमः ॥ २० ॥ तांकन्याञ्चसमादाय ततश्चान्तःपुरंययौ ॥ अथतेनागरास्सर्वे मर्य्यादांचक्रिरे
ततः ॥ २१ ॥ अद्यप्रभृतियावेश्या स्थानेस्मिन्वासमेष्यति ॥ तथानैवगृहेधार्य्यं सुरामांसंकथञ्चन ॥ २२ ॥ दूषयन्ति
सदादुष्टा नागराणांसुतानिह ॥ अथव्यवस्थामुत्क्रम्य याहितद्धारयिष्यति ॥ २३ ॥ स्थानादस्माच्चनिर्वास्या साभवे
त्पापभागिनी ॥ ऊर्ध्ववेगंमध्यगेन दत्तंतालत्रयन्तदा ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटके
श्वरक्षेत्रमाहात्म्येपरावसुप्रायश्चित्तन्नामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ * ॥ * ॥
सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुदशार्णाधिपतिस्तदा ॥ रत्नवत्याविवाहार्थं तत्रस्थानेसमागतः ॥ १ ॥ सश्रुत्वातस्य
वृत्तान्तं रत्नवत्यास्समुद्भवम् ॥ विरक्तिंपरमांकृत्वा प्रस्थितःस्वपुरम्प्रति ॥ २ ॥ तंश्रुत्वाप्रस्थितंभूपमानर्तस्स्वपुरम्प्रति ॥ धृ

वेश्या उस मदिरा, मांस को धारण करैगी ॥ २३ ॥ वह पापभागिनी इस स्थानसे निकालने योग्य होगी उस समय मध्यवर्ती ब्राह्मण ने ऊपर के वेगसे तीन तालों को दिया ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपरावसुप्रायश्चित्तंनामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८७ ॥

दो० । रत्नवती अरु ब्राह्मणी जैसी विधि तप कीन । इकसौ अट्ठासिवें महँ सोई चरित नवीन ॥ सूतजी बोले कि इसी समय में तब रत्नवती के ब्याह के लिये दशार्णदेशका स्वामी उस स्थान में भलीभांति आया ॥ १ ॥ उसने रत्नवती से उपजे हुये उसके वृत्तान्त को सुनकर बड़े वैराग्य को करके अपने नगर को प्रस्थान

किया ॥ २ ॥ उस समय आनर्त नृपति ने अपने नगरके सामने प्रस्थान कियेहुये उस भूपति को सुनकर उसके लौटाने के लिये पीछे से प्रयाण किया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उसको पाकर कहा कि हे नृप ! मेरी कन्या से उपजे हुये व्याह को न करके तुमने किस लिये प्रस्थान किया ॥ ४ ॥ दशार्ण बोला कि तुम्हारे जीतेहुये यह तुम्हारी कन्या दूषित हुई कि जिसके ओंठ को अन्य पुरुष ने पिया व उत्तम कुचों का मर्दन किया ॥ ५ ॥ इस कारण तुम्हारी यह कन्या उद्गरी संज्ञक होगई यह उद्गरी किसी प्रकार जिस किसी पुत्र को पैदा करै है ॥ ६ ॥ वह दश पहले व दश पीछेवाले पुरुषों और इक्कीसवें अपना को भी गिरावै याने नरक को पठावैगा ॥ ७ ॥

ष्ठतःप्रययौतस्य व्यावर्तनकृतेतदा ॥ ३ ॥ अथाब्रवीच्चतंप्राप्यकस्मात्त्वंप्रस्थितोनृप ॥ पाणिग्रहमकृत्वातु ममकन्या समुद्भवम् ॥ ४ ॥ दशार्णउवाच ॥ दूषितेयंतवसुताकन्यकात्वयिजीवति ॥ पीतोयस्याधरोन्येन मर्दितौचस्तनौशुभौ ॥ ५ ॥ पुनर्भूरितिसंज्ञासा सञ्जाताद्दुहितातव ॥ पुनर्भूर्जनयेत्पुत्रमियंकञ्चित्कथञ्चन ॥ ६ ॥ सपातयत्वसंदिग्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ एकविंशत्तमंचैव तथैवात्मानमेवच ॥ ७ ॥ नवरिष्याम्यहंतत्ते सुतामेतान्नराधिप ॥ सदाक्षिण्यमिदंप्रोच्य दशार्णाधिपतिस्तदा ॥ ८ ॥ छन्द्यमानोपिविविधैर्हस्त्यश्वरथपूर्वकैः ॥ अवज्ञायमहीपालं प्रस्थितःस्वपुरम्प्रति ॥ ९ ॥ आनर्तोपिगृहंप्राप्य मृगावत्याःसमाकुलः ॥ तद्वृत्तंकथयामास यदुक्तंतेनभूभुजा ॥ १० ॥ स्वभार्यायाःसुतायाश्च मन्त्रिणोदुःखसंयुताः ॥ तेप्रोचुस्सन्तिभूपालास्संख्याहीनामहीतले ॥ ११ ॥ रूपाढ्यायौवनोपेता हस्त्यश्वरथसंयुताः ॥ तेषामेकतमस्यत्वं देहिकन्यांनिजांविभो ॥ १२ ॥ माविषादेमनःकृत्वा दुःखस्यवशगोभव ॥ आनर्तोपि

हे नरनायक ! उसी कारण मैं तुम्हारी इस कन्या को स्वीकार न करूंगा उस समय इस चतुरतावाले वचन को कहकर वह दशार्णाधिपति राजा ॥ ८ ॥ अनेक प्रकार के हाथी, घोड़े व रथ आदिक वस्तुवों से इच्छा कराया हुआ भी भूपालका अनादर कर अपने नगर को चला ॥ ९ ॥ और अत्यन्त विकल आनर्त नृपति ने भी घरको प्राप्त होकर उस भूपालने जो कहा था उस वृत्तान्त को मृगावती अपनी स्त्री से व कन्या से कहा तब दुःखसंयुत होतेहुये उन मन्त्रियों ने कहा कि भूतल में संख्याहीन याने असंख्य भूपाल हैं ॥ १० । ११ ॥ जो कि रूपसंयुक्त व यौवन से युत तथा हाथी, घोड़ों व रथों से संयुक्त हैं हे विभो ! उनके बीचमें एकको अपनी

कन्या देवो ॥१२॥ और विषाद में मन करके दुःख के वश में मत प्राप्त होवो उनके उस वचन को सुनकर अतिदुःखित आनर्त नृपति ने भी॥१३॥ तदनन्तर प्रसन्नमन होकर उन मन्त्री आदिक जनों से व वहां बैठीहुई उस कन्या से परम सुन्दर प्रिय वचन के द्वारा कहा ॥ १४ ॥ कि हे उत्तमे, कन्ये ! तुमने यहां आये हुये सब भूपों को देखा है उनके मध्य में से किसी और नृपति को स्वीकार करो ॥ १५ ॥ जो कि दृष्टिमार्ग में प्राप्त होता हुआ तुम्हारे चित्तको सन्तोष करताहो रत्नवती बोली कि दशार्ण देशके स्वामी को छोड़कर अन्य पतिको मैं किसी प्रकार न स्वीकार करूंगी क्योंकि इस विषय में कारण सुनो कि राजा एकही बार कहते हैं व ब्राह्मण एकही

चतच्छ्रुत्वा तेषांवाक्यंप्रदुःखितः ॥ १३ ॥ ततःप्राहप्रहृष्टात्मा तान्सर्वान्मन्त्रिपूर्वकान् ॥ ताञ्चकन्यांस्थितांतत्र साम्ना परमवल्गुना ॥ १४ ॥ पुत्रिदृष्टामहीपालास्सर्वेचात्रागतास्त्वया ॥ तेषांमध्यान्नृपंचान्यंकञ्चिद्वरयशोभने ॥ १५ ॥ यस्तेचित्तस्यसन्तोषं कुरुतेदृक्पथङ्गतः ॥ रत्नवत्युवाच ॥ नचाहंवरयिष्यामि पतिमन्यंकथञ्चन ॥ १६ ॥ दशार्णाधि पतिंमुक्त्वा श्रूयतामत्रकारणम् ॥ सकृज्जल्पन्तिराजानस्सकृज्जल्पन्तिचद्विजाः ॥ १७॥ सकृत्कन्याप्रदीयेत त्रीण्ये तानिसकृत्सकृत् ॥ एवंज्ञात्वानमांतात त्वमन्यस्यमहीपतेः ॥ १८ ॥ दातुमर्हसिधर्म्मोयं नभवेच्छास्त्रतोयतः ॥ आ नर्तउवाच ॥ वाङ्मात्रेणप्रदत्तात्वं दशार्णाधिपतेर्मया॥१९॥नतेहस्तग्रहंप्राप्तं विप्राग्निगुरुसन्निधौ ॥ तत्कथंसपतिर्जात स्तवपुत्रिवदस्वमे ॥ २० ॥ रत्नवत्युवाच ॥ मनसाचिन्त्यतेकार्य्यं सकृत्तातपुरायतः ॥ वाचातुप्रोच्यतेपश्चात्कर्म्मणाक्रि यतेततः ॥ २१ ॥ तन्मयामनसादत्तस्तस्यचात्मापुराकिल ॥ त्वयाचवचसाचास्मै प्रदत्तास्मितथाविभो ॥ २२ ॥ तत्कथं

बार बोलते हैं ॥ १६ । १७ ॥ और कन्या एकही बार दीजाती है ये तीनों एकही एक बार होते हैं ऐसा जानकर हे पिताजी ! तुम अन्य भूपको मुझे नहीं ॥ १८ ॥ देने के लिये योग्यहो क्योंकि शास्त्रसे यह धर्म नहीं है आनर्त बोला कि मैंने तुम को वचनमात्रसे दशार्ण देशके स्वामी के लिये दियाहै ॥ १९ ॥ और ब्राह्मण, अग्नि व गुरूके समीप करग्रहण (विवाह) नहीं प्राप्त हुआ है तो हे पुत्रि ! कैसे वह तुम्हारा पति होगया यह मुझ से कहिये ॥ २० ॥ रत्नवती बोली कि हे पिताजी ! पहले जिस लिये कि एकबार कार्य मन से चिन्तन किया जाताहै पीछे वचन से कहाजाताहै तदनन्तर कर्म के द्वारा किया जाताहै ॥ २१॥ इस लिये प्रसिद्ध में मैंने

पहले मन से उसको आत्मा (शरीर) देचुकीहूं और हे विभो! वैसेही इसके लिये तुम से वचन के द्वारा दीगईहूं ॥ २२ ॥ तो कैसे मेरा पति नहीं है यदि तुम जानते हो तो कहो सो कुमारपन रूप व्रतको धारे हुई मैं तप करूंगी ॥ २३ ॥ किन्तु अन्य पतिको न करूंगी मैंने यह निश्चय किया है उस भयङ्कर वचनको सुन कर आंसुओं से पूर्ण नयनोंवाली व दीन (दुखिया) उसकी मृगावती मातानें यह वचन कहा कि हे पुत्रि! तपस्या के लिये तुमको किसी प्रकार साहस न करना चाहिये ॥ २४।२५ ॥ हे प्रशंसिते! सदैव सुखभागिनी व सुकुमार अङ्गोंवाली तुम बालाहो और कन्दमूल, फलों को आहार करती व चीर बकलों को धारतीहुई तुम

नपतिर्मेस्याद्ब्रूहित्वंयदिमन्यसे ॥ साहंतपश्चरिष्यामि कौमारव्रतधारिणी ॥ २३ ॥ नान्यंपतिंकरिष्यामि निश्चयोयं मयाकृतः॥ तच्छ्रुत्वावचनंरौद्रं मातातस्यामृगावती॥२४॥अश्रुपूर्णेक्षणादीना वाक्यमेतदुवाचह ॥ मापुत्रिसाहसंकार्षं तपोर्थंतेकथञ्चन ॥ २५ ॥ बालात्वंसुकुमाराङ्गी सदैवसुखभागिनी ॥कथंतपस्समर्थासि विधातुंत्वमनिन्दिते॥२६॥ कन्दमूलफलाहारा चीरवल्कलधारिणी ॥ तस्मान्मुख्यस्यभूपस्य कस्यचित्त्वांददाम्यहम् ॥ २७॥ एषातेब्राह्मणी नाम सखीपरमसम्मता ॥ प्रतीक्ष्यतेविवाहंते कौमारम्भावमाश्रिता ॥ २८ ॥ यस्यभूपस्यत्वंहर्म्ये प्रयास्यतिविवाहिता ॥ पुरोधास्तस्ययोजज्ञे भार्य्येयंसुखभागिनी ॥ २९ ॥ रत्नवत्युवाच ॥ नचभूयस्त्वयावाच्यं वाक्यमेवंविधंक्वचित्॥ मदर्थेयदिमेप्राणांस्त्वंवाञ्छसिसुतैषिणी ॥ ३० ॥ अथवात्वंहठार्थेच तपोविघ्नंकरिष्यसि ॥ ततस्त्यक्ष्याम्यहंदेहं भक्षयित्वामहाविषम् ॥ ३१ ॥ खण्डयिष्याम्यहंजिह्वां प्रवेक्ष्यामिचवानलम् ॥ एवंसानिश्चयंकृत्वा प्रोच्यतांजननीं

कैसे तप करने के लिये समर्थहो इस लिये किसी प्रसिद्ध भूपको मैं तुम्हें दूंगी ॥ २६ । २७ ॥ और कन्यापनमें टिकी व अत्यन्तही मानीहुई यह तुम्हारी ब्राह्मणी सखी प्रसिद्ध में तुम्हारे विवाह को परखती है ॥ २८ ॥ विवाही हुई तुम जिस भूप के घरमें जावोगी उसका जो पुरोहित होगा उसकी यह सुखभागिनी स्त्री होगी ॥ २९ ॥ रत्नवती बोली कि कन्या को चाहनेवाली तुम यदि मेरे प्राणों को चाहती हो तो मेरे लिये फिर कहीं तुमको इस प्रकार का वचन न कहना चाहिये ॥ ३० ॥ अथवा हठके लिये तुम तपका विघ्न करोगी तो उसी कारण महाविष को खाकर मैं शरीरको त्यागूंगी ॥ ३१ ॥ या मैं जीभ को काटडालूंगी अथवा अग्निमें पैठूंगी उस

समय उसने ऐसा निश्चय करके उस माता से कहकर ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जुड़ेहुये हाथोंवाली होकर भलीभांति मानीहुई उस ब्राह्मणी को आदर समेत लिपटकर कहा ॥
३३ ॥ कि हे शुभदायिके ! मुझ से पठाई हुई तुम अपने पिता के घर जावो कि जिस से पिता तुमको महात्मा नागर द्विज के लिये देवै ॥ ३४ ॥ व मैंने कभी जो
झूठ वचन कहा हो उसको क्षमा कीजिये और तुमने भी जो मुझसे कहा है इस को मैंने अवश्य कर क्षमा किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणी बोली, कि आठ वर्षकी गौरी व
नव वर्ष की रोहिणी होती है और दशवर्ष की कन्या होती है इस के ऊपर रजस्वला होती है ॥ ३६ ॥ हे उत्तममुखवाली ! तुम्हारे मेलसे मेरा कुमारपन नष्ट होगया

तदा ॥ ३२ ॥ ततःप्रोवाचतांकन्यां ब्राह्मणींसम्मतांसखीम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वा समालिङ्ग्यचसादरम् ॥ ३३ ॥ गच्छत्वं
स्वपितुर्हर्म्ये प्रेषितासिमयाशुभे ॥ येनत्वांयच्छति पिता नागरायमहात्मने ॥ ३४ ॥ क्षमस्वयन्मयाप्रोक्तं कदाचिच्चा
नृतंवचः ॥ त्वयापियन्ममप्रोक्तं क्षान्तञ्चैतन्मयाध्रुवम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षाचरोहिणी ॥
दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ ३६ ॥ कौमार्य्यंचप्रणष्टंमे त्वत्सम्पर्काद्वरानने ॥ अतीतेषोडशेवर्षे स्त्रीध
र्म्मेणसमन्विता ॥ ३७ ॥ नमेपाणिग्रहंकश्चिन्नागरोत्रकरिष्यति ॥ स्मृत्यर्थंबुध्यमानस्तुवक्ष्यमाणंवरानने ॥ ३८ ॥
रजस्वलाञ्चयःकन्यामुद्वाहयतिनिर्घृणः ॥ तस्यास्सन्तानमासाद्य पातयत्यपरान्दश ॥ ३९ ॥ रजस्वलाञ्चयःकन्यां
पितायच्छतिनिर्घृणः ॥ सपातयेदसन्दिग्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ४० ॥ तस्मादहंकरिष्यामि त्वयासार्द्धन्तपःशुभे ॥
पित्रानैवहिमेकार्य्यं नचमात्राकथञ्चन ॥ ४१ ॥ सूतउवाच ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा कन्यकेद्वेद्विजोत्तमाः ॥ गतेयत्रस्थितः

और सोलह वर्ष बीतने पर स्त्री के धर्म याने रजोधर्म से युक्त होगई ॥ ३७ ॥ हे वरानने ! कहेजाते हुये स्मृति के अर्थ को जानता हुआ कोई नागर ब्राह्मण यहां
मेरा विवाह न करैगा ॥ ३८ ॥ क्योंकि जो निर्घृणी पुरुष रजस्वला कन्याको विवाह करता है वह उसके सन्तान को प्राप्त होकर और दश पुरुषों को गिराता है ॥ ३९ ॥
व जो निर्दयी पिता रजस्वला कन्या को देताहै वह निस्सन्देह दश पहले व दश पीछेवाली पुश्तियों को गिराता याने नरक को पठाताहै ॥ ४० ॥ उसी कारण हे
उत्तमे ! तुम्हारे साथ मैं तप करूंगी और किसी प्रकार माता व पितासे मेरा कार्य नहीं है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वे दोनों कन्यायें इस प्रकार निश्चय

कर वहांगईं जहां कि साक्षात् महामुनि भर्तृयज्ञ ॥ ४२ ॥ समस्त तीर्थमय व उत्तम तथा मनोहर वास्तुपदमें टिके थे उनकी तपस्या के प्रभाव से पशु पक्षी की योनि में प्राप्त व किसी मनुष्यका भी उत्पन्न हुआ क्रोध न देख पड़ता था क्योंकि सर्पोंके साथ नेउले व मूसों के साथ बिलार खेलते थे ॥ ४३ । ४४ ॥ व सिंहों के साथ हाथी व घुघुवों के साथ कौवा खेलते थे वहां वे दोनों उत्तम कन्यायें जाकर सुखसे बैठे हुये भर्तृयज्ञ से ॥ ४५ ॥ नम्रतासंयुत व जुड़ेहुये हाथोंवाली वे बोलीं ब्राह्मणी बोली कि इस राजकन्या से संयुत मैं ॥ ४६ ॥ तपस्या के लिये आई हूं इसलिये तपस्या की विधि कहिये हे महामते ! कहो कि जिससे उस कृच्छ्र (कठिन तप)

साक्षाद्भर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ ४२ ॥ स्थितोवास्तुपदेरम्ये सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ तस्यतपःप्रभावेण जातःकोपोनदृश्यते॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वपिमर्त्यस्य तिर्य्यग्योनिगतस्यच ॥ क्रीडन्तिनकुलास्सर्पैर्मार्जारास्सहमूषकैः ॥ ४४ ॥ सारङ्गाद्वीपिभिस्सार्द्धं काकाश्चसहकौशिकैः ॥ भर्तृयज्ञंसुखासीनं तत्रगत्वातुतेशुभे ॥ ४५ ॥ प्रोचतुर्विनयोपेते कृताञ्जलिपुटे स्थिते ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अहंसख्यासमोपेता अनयाराजकन्यया ॥ ४६ ॥ तपोर्थेचतथायाता तद्ब्रूहितपसोविधिम् ॥ वदस्वयेनतत्कृच्छ्रं प्रकरोमिमहामते ॥ ४७ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ अहंतेकथयिष्यामि तपश्चर्य्याविधिंपृथक् ॥ येनसम्प्राप्यतेमोक्षः किंपुनस्त्रिदशालयः ॥ ४८ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि तथासान्तपनानिच ॥ षष्ठेकालेतथाभोज्यं दिनान्तरितमेवच ॥ ४९ ॥ व्रतंकुर्वंस्त्रिरात्रञ्च एकभक्ततयान्वितम् ॥ तपोद्वाराणिसर्वाणि रागद्वेषविवर्जितैः ॥ ५० ॥ वाञ्छितैर्वाञ्छितफलं सर्वेषामेवपुत्रिके ॥ ५१ ॥ ततःसिद्धिमवाप्नोति यासदामनसिस्थिता ॥ समत्वंशत्रुमित्राभ्यां तथा

को करूं ॥ ४७ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि मैं तुमसे अलग तपश्चर्या याने तप करने की विधि को कहूंगा जिससे भलीभांति मुक्ति मिलती है फिर स्वर्गको क्या कहना है ॥ ४८ ॥ व कृच्छ्र चान्द्रायणों व कृच्छ्रसान्तपनों व छठे समय में भोजन व दिनके अन्तर में भोजन ॥ ४९ ॥ व एक बार भोजन करने से संयुत तीन रातोंवाले व्रतको करता हुआ ये सब हे पुत्रिके ! अनुराग व वैरसे रहित और चाहे हुये मनोरथ फलके अभिलाषों से सबही के तपस्या के द्वार हैं ॥ ५० । ५१ ॥ तदनन्तर जो सदैव

१ गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रसान्तपनंस्मृतम् ॥

तदनन्तर उसने तपस्याके पहले चान्द्रायण व्रतको किया तदनन्तर कृच्छ्रव्रतको व उसके उपरान्त सान्तपन व्रतको किया ॥ ५६ ॥ और तीनवर्ष तक वह दिन के छठे
वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके उस रत्नवती समेत किसी जलाशय को गई जो कि निर्मल जलसे भलीभांति पूर्ण व कमलिनी के समूह से शोभित था ॥ ५४ । ५५ ॥
चिह्न का ग्रहण करके तदनन्तर क्रोधमें तत्पर होवैहै ॥ ५२।५३ ॥ उसका वह सब वैसेही वृथाहै जैसे कि भस्म में हवन व्यर्थ होजाताहै सूतजी बोले कि वह ब्राह्मणी
मनमें स्थित होती है उस सिद्धिको प्राप्त होताहै व शत्रु, मित्रों के लिये समता व सदैव पत्थर व रत्न के मध्य समभाव चित्तमें होवै तब मुक्ति को पाता है और जो

पाषाणरत्नयोः ॥ ५२ ॥ सदासञ्जायतेचित्ते तदामोक्षमवाप्नुयात् ॥ योलिङ्गग्रहणंकृत्वा ततःकोपपरोभवेत् ॥ ५३ ॥
तस्यवृथाहितत्सर्वं यथाभस्महुतंतथा ॥ सूतउवाच ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय ब्राह्मणीसहितातया ॥ ५४ ॥ रत्नवत्याजगा
माथ कञ्चिच्चैवजलाशयम् ॥ स्वच्छोदकेनसम्पूर्णं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ ५५ ॥ ततश्चान्द्रायणंचक्रे तपसःप्रथमं
व्रतम् ॥ ततःकृच्छ्रव्रतंचक्रे ततःसान्तपनंचसा ॥ ५६ ॥ षष्ठाह्नकालभोज्यंच साबभूवशरत्रयम् ॥ हेमन्तेजलमध्य
स्था साबभूवतपस्विनी ॥ ५७ ॥ पञ्चाग्निसाधकाग्रीष्मेसाबभूव यशस्विनी ॥ निराश्रयाचसासाध्वी वर्षाकालउप
स्थिते ॥ ५८ ॥ ध्यायमानादिवानक्तं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ यद्यद्व्रतंपुराचक्रे ब्राह्मणीसाचतद्व्रतम् ॥ ५९ ॥ अ
न्यज्जलाशयंप्राप्य साचक्रेतुनृपात्मजा ॥ प्रीत्यापरमयायुक्ता तदातुद्विजसत्तमाः ॥ ६० ॥ ततोवर्षशतंसार्द्धं फला
हाराबभूवसा ॥ शीर्णपर्णाशिनीपश्चात्तावन्मात्रंव्यवस्थिता ॥ ६१ ॥ ततश्चैवजलाहारा यावद्वर्षशतानिषट् ॥ वायु

भाग में भोजन करती भई व हेमन्त ऋतु में वह तपस्विनी जलके बीचमें टिकनेवाली हुई ॥ ५७ ॥ और वह कीर्त्तिमती ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि साधन करनेवाली हुई
व वर्षाकालके उपस्थित होनेपर उत्तम आचरणोंवाली वह बिन आश्रय के रहती भई ॥ ५८ ॥ और देवताओं के देवता महादेव को दिन रात ध्यान करती हुई उस
ब्राह्मणी ने पहले जिस २ व्रतको किया उसी व्रतको ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समय परमप्रीति से संयुत उस नृपकन्या ने अन्य जलाशय को पाकर किया ॥ ६० ॥
तदनन्तर डेढ़सौ वर्षतक वह फलाहारिणी हुई पश्चात् उतनेही प्रमाणभर याने डेढ़सौ वर्षतक गिरे पत्तोंको खातीहुई टिकी ॥ ६१ ॥ तदनन्तर छहसौ वर्षतक जला-

हारिणी हुई इसके अनन्तर हज़ार वर्षोंतक पवन को भोजन करती भई ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस कन्याने ज्यों ज्यों तपस्या किया त्यों त्यों उसके अति उत्तम तेजकी वृद्धिहुई ॥ ६३ ॥ इसी अवसर में प्रसन्नमनवाले भगवान् चन्द्रभाल जी पार्वती समेत उसकी दृष्टि में आये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर मेघके समान गम्भीर वाणीसे वचन बोले कि हे वत्से! तुम मेरे वचन से तपस्या की निवृत्ति करो ॥ ६५ ॥ व मुझसे मनोरथ को मांगो जिससे मैं तुमको सब देऊं ब्राह्मणी बोली कि हे देव-नायक, शङ्करजी ! यही मनोरथ है जोकि तुम देखेगयेहो ॥ ६६ ॥ क्योंकि हे देव ! स्वप्नमें भी मनुष्यों को तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है भगवान् शिवजी बोले कि हे सुत-

भक्षावभूवाथ सहस्रंपरिवत्सरान् ॥ ६२ ॥ यथायथातपश्चक्रे साकुमारीद्विजोत्तमाः ॥ तथातथाभवत्तस्यास्तेजोवृद्धिर नुत्तमा ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवाञ्छशिशेखरः ॥गौर्य्यासहप्रसन्नात्मा तस्यागोचरमागतः ॥ ६४ ॥ मेघग म्भीरयावाचा ततोवचनमब्रवीत् ॥ वत्सेतपोनिवृत्तिंत्वं कुरुष्ववचनान्मम ॥ ६५ ॥ प्रार्थयस्वममाभीष्टं येनसर्वंददा मिते ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अभीष्टमेतद्देवेश यत्त्वंदृष्टोसिशङ्कर ॥ ६६ ॥ स्वप्नेपिदर्शनन्देव दुर्लभंतेनृणांयतः ॥ भगवा नुवाच ॥ नमेस्याद्दर्शनंव्यर्थं कथञ्चित्सुतपस्विनि ॥ ६७ ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयेनददाम्यहम् ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ए षामेसुसखीसाध्वी राजपुत्रीयशस्विनी ॥ ६८ ॥ ख्यातारत्नवतीनाम प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ममतुल्यंतपश्चक्रे शूद्रयो नावपिस्थिता ॥ ६९ ॥ निवर्ततेतुयद्येषा तपसस्तुनिवर्तनम् ॥ करोम्यद्यजगन्नाथ तदहंसंशयंविना ॥ ७० ॥ अस्या स्स्नेहेनसन्त्यक्तो मयाभर्तासुरेश्वर ॥ तस्माद्देववरन्देहि त्वमस्यामनसिस्थितम् ॥ ७१ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यास्तद्वच

पस्विनि ! किसी प्रकार मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होवै है ॥ ६७ ॥ इस लिये तुम्हारा कल्याण होवै वरदान को मांगो जिससे मैं देऊं ब्राह्मणी बोली कि उत्तम आचरणों वाली व कीर्त्तिमती-यह राजकन्या मेरी उत्तम सखीहै ॥ ६८ ॥ जोकि रत्नवती ऐसे नामसे प्रसिद्ध व प्राणोंसे भी गरुई (प्यारी) है शूद्रयोनि में भी स्थित इस ने मेरेही समान तपस्या कियाहै ॥ ६९ ॥ हे जगदीश्वर ! यदि यह निवृत्त होवै तौ मैं आजही निस्सन्देह तपस्याकी निवृत्ति करूं ॥ ७० ॥ हे देवनायक ! इसके स्नेह से मैंने पतिको भलीभांति त्यागदिया उसी कारण हे देव ! तुम इसके मनमें टिकेहुये वरदानको दीजिये ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले कि उस ब्राह्मणीके उस वचन को सुनकर

भगवान् चन्द्रभालजीने मेघके तुल्य गम्भीर वाणीके द्वारा उस राजकन्यासे कहा ॥ ७२ ॥ कि हे वामे (सुन्दरि)! तुम यहां आज मेरेवचन से तपको त्यागनेयोग्य हो हे कल्याणि! नित्य मनमें भलीभांति टिकेहुये वरको स्वीकार करिये ॥ ७३ ॥ हे भामिनि! इससमय तुमको न देनेयोग्य भी पदार्थको दूंगा रत्नवती बोली कि जो यह कमलिनीसमूहों से शोभित पुण्यदायक जलाशय है ॥ ७४ ॥ यहां उत्तम आचरणोंवाली यह ब्राह्मणी नित्य तपस्या में भलीभांति टिकी है इसके नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्तहोवै ॥ ७५ ॥ हे देवदेव! परमश्रद्धा से संयुत जो इस तीर्थमें स्नान करै उसका स्वर्गमें सदैव वासहोवै ॥ ७६ ॥ व उसका तीर्थ मेरे नामसे शूद्री-

तंश्रुत्वा भगवाञ्छशिशेखरः ॥ अब्रवीद्राजपुत्रींतां मेघगम्भीरयागिरा ॥ ७२ ॥ वामेमद्वचनादद्य तपस्त्यक्तुमिहार्हसि ॥ वरंवरयकल्याणि नित्यंमनसिसंस्थितम् ॥ ७३ ॥ अदेयमपिदास्यामि साम्प्रतंतवभामिनि ॥ रत्नवत्युवाच ॥ एतज्जलाशयंपुण्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ ७४ ॥ अत्रैषाब्राह्मणीसाध्वी नित्यंतपसिसंस्थिता ॥ अस्यानाम्नाच विख्यातिंतीर्थमेतत्प्रपद्यताम् ॥ ७५ ॥ अत्रयःकुरुतेस्नानंश्रद्धयापरयायुतः ॥ तस्यभूयात्सदावासो देवदेवत्रिविष्टपे ॥ ७६ ॥ तदीयंममनाम्नातु शूद्रीसंज्ञन्तुजायताम् ॥ अस्यास्तुल्यप्रभावस्य तीर्थस्यप्रतिपद्यताम् ॥ ७७ ॥ आवाभ्यां नित्यशःकार्यंकुमारत्वेमहत्तपः ॥ आराध्यस्त्वंसुरश्रेष्ठो वाङ्मनःकर्म्मभिस्तथा ॥ ७८ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु निर्भिद्य धरणीतलम् ॥ लिङ्गंमाहेश्वरंविप्रा निष्क्रान्तंसूर्य्यसन्निभम् ॥ ७९ ॥ ततःप्रोवाचतान्देवः स्वयमेवमहेश्वरः ॥ ताभ्यांसुतपसातुष्टस्सादरंभक्तवत्सलः ॥ ८० ॥ एतत्तीर्थद्वयंख्यातं त्रैलोक्येपिभविष्यति ॥ शूद्रीनामतदीयन्तुब्राह्मणी

संज्ञकहोवै व इसके तुल्य प्रभाववाले तीर्थको प्राप्तहोवै ॥ ७७ ॥ और हम दोनों से कन्यापन में नित्यही बड़ा तप करना चाहिये व वैसेही देवोंमें उत्तम तुम वाणी, मन व कर्म से आराधने के योग्यहोवो ॥ ७८ ॥ इसी अवसर में हे ब्राह्मणो! भूतल को फोड़कर सूर्यनारायण के समान महादेवजी का लिङ्ग निकला ॥ ७९ ॥ तदनन्तर भक्तप्रिय व उत्तम तपस्या से प्रसन्न महेश्वर देवजी आपही आदर समेत उस राजकन्या से बोले ॥ ८० ॥ कि वे दोनों तीर्थ त्रिलोकमें भी प्रसिद्ध होवैंगे और जो

॥ ८१ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष इन दोनों तीर्थोंमें भी नहाकर तदनन्तर कमलों व इसके निर्मल जलको लेकर ॥ ८२ ॥ चैत
तुम्हारी ब्राह्मणी है उसका शूद्रीनामहोगा ॥ ८१ ॥ श्रद्धासंयुत जो पुरुष इन दोनों तीर्थोंमें भी नहाकर पश्चात् कमलों से पूजन करैगा वह यद्यपि अतिपापकारी होवै
महीने के भलीभांति प्राप्तहोने पर शुक्लपक्षवाली चौदसि सोमवार में इस मेरे लिङ्गको नहवाकर पश्चात् कमलों से पूजन करैगा वे दोनों भी सखियां
तथापि समस्त पापों से निर्मुक्तहोगा ॥ ८३ । ८४ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होगये व वृद्धता और मृत्यु से रहित वे दोनों तीर्थ भूतल में
जबतक सौ कल्प बीते तबतक नित्यही वहांपर टिकीं और नक्षत्ररूपिणी वे आजभी आकाश में देखपड़ती हैं ॥ ८५ । ८६ ॥ तब से लगाकर वे दोनों तीर्थ भूतल में

चसखीतव॥ ८१ ॥ तीर्थद्वयेपियःस्नात्वा एतस्मिञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ततःपद्मानिसंगृह्य अस्यास्तोयंचनिर्म्मलम् ॥८२॥ चैत्रेमासिचसम्प्राप्ते एतच्चमामकंलिङ्गं स्नापयित्वार्चयिष्यति ॥ पश्चात्पद्मैश्चतुर्दश्यां शुक्लायांसोमवासरे ॥ ८३ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ चिरायुस्सम्भविष्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो यद्यपिस्यात्सुपापकृत् ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ अद्यापिगगनेतेच दृश्येते तत्रनित्यंचतपसिस्थितेसख्यावुभावपि ॥ ८५ ॥ यावत्कल्पशतंतावज्जरामरणवर्जिते ॥ आगत्याथनरोदूराताभ्यांकृत्वानिमज्जनम् ॥ ८७ ॥ तारकात्मके ॥ ८६ ॥ ततःप्रभृतिविख्यातं तीर्थयुग्मंधरातले ॥ एतस्मिन्नन्तरेमर्त्ये नष्टा पूजयित्वातुलिङ्गंतु ततोयातिदिवालयम् ॥ महापातकयुक्तोपि तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ८८ ॥ व्याप्तस्तथाखिलःस्वर्गो मानवैस्स्पर्द्धयान्वितैः ॥ सा धर्म्मस्यचक्रियाः ॥ यज्ञदानकृतायावद्देवार्चनसमुद्भवाः ॥ ८९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु धर्म्मराजःसमाययौ ॥ यत्रवेदध्वनिर्ब्रह्मा ब्रह्मलोकं द्धंदेवैर्विमानस्थैरप्सरोगणसेवितैः ॥ ९० ॥

और लिङ्गको पूजकर उसके उपरान्त महापाप से युक्त भी उस तीर्थ के प्रभाव से
प्रसिद्धहुये व मनुष्य दूरसे आकर इसके अनन्तर उन दोनोंमें स्नानकरके ॥ ८७ ॥ और लिङ्गको पूजकर उसके उपरान्त महापाप से युक्त भी उस तीर्थ के प्रभाव से
निरसन्देह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ इसी अवसरमें मृत्युलोकके बीच यज्ञ व दानसे कीहुई व देवपूजनसे उपजी धर्मकी क्रियायें नाश होगईं ॥ ८९ ॥ व वैसेही
अप्सराओंके समूह से सेवित व देवोंके साथ विमान पै बैठेहुये ईर्षासंयुत मनुष्योंसे समस्त स्वर्ग व्याप्त होगया ॥ ९० ॥ इसी अवसर में जहां ब्रह्मलोकमें भलीभांति

आश्रित वेदध्वनिवाले ब्रह्माजीथे वहां यमराजजी भलीभांति आये ॥ ९१ ॥ व आगे दो पत्रोंको फेंककर दुःखित व दीनहो बोले जिनमें एक पापसे उपजा व दूसरा धर्म से उत्पन्न हुआथा और जोकि एक चित्रसे लिखा व दूसरा विचित्र से लिखाथा कि हे देव! हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें दो तीर्थ स्थितहैं ॥ ९२।९३ ॥ एक शूद्राख्य व दूसरा कमलिनी से शोभित ब्राह्मणी नामक है वैसेही वहांपर बड़ा पुण्यदायक महादेवजीका लिङ्गहै ॥ ९४ ॥ और उन तीनोंके प्रभावसे पातकयुक्त भी सब पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोते हैं ॥ ९५ ॥ और ये रौरवादिक सब मेरे नरक शून्य होगये न किसीने पूजन किया और देवों, पितरों व विशेषकर मनुष्यों को दान व तर्पण नहीं

समाश्रितः ॥ ९१ ॥ अब्रवीद्दुःखितोदीनः क्षिप्त्वाग्रेपत्रकद्वयम् ॥ एकंपापसमुद्भूतमन्यंधर्मसमुद्भवम् ॥ ९२ ॥ चित्रेणलिखितंयच्च विचित्रेणतथापरम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेदेवतीर्थद्वयंस्थितम् ॥ ९३ ॥ शूद्राख्यंब्राह्मणीनामतथान्य त्पद्ममण्डितम् ॥ तथातत्रास्तिलिङ्गंच पुण्यंमाहेश्वरंमहत् ॥ ९४ ॥ त्रयाणामथतेषांच प्रभावात्सर्वमानवाः ॥ अपि पापसमायुक्ताः प्रयान्तित्रिदशालयम् ॥ ९५ ॥ शून्यामेनरकाजातास्सर्वेतेरौरवादयः ॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे नदानंनच तर्प्पणम् ॥ ९६ ॥ देवतानांपितॄणांच मनुष्याणांविशेषतः ॥ तस्मान्मुक्तोमयासर्वो योधिकारस्तवोद्भवः ॥ ९७ ॥ नियो जयस्वतत्रान्यं कञ्चिच्छक्ततमंततः ॥ अप्रमाणंस्थितंसर्वमेतत्पत्रद्वयंमम ॥ ९८ ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजःप्राह समानीय शतक्रतुम् ॥ गत्वाशीघ्रतमंमर्त्यें त्वंशक्रवचनान्मम ॥ ९९ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ शूद्राख्यंब्रा ह्मणीत्येव यत्रलिङ्गमनुत्तमम् ॥ १०० ॥ तत्रस्थंनाशयक्षिप्रं कृत्वापांशुप्रवर्षणम् ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंशक्रो

किया उसी कारण जो तुमसे उपजाहुआ अधिकार है वह सब मैंने छोड़ दिया ॥ ९६ । ९७ ॥ उसी कारण उस अधिकार में अन्य किसी शक्तिमान् को युक्त करो क्योंकि ये मेरे दोनों पत्र सब अप्रमाण स्थित हैं ॥ ९८ ॥ उसको सुनकर व इन्द्रको भलीभांति आनकर ब्रह्माने कहा कि हे इन्द्रजी! तुम मेरे वचन से अत्यन्त शीघ्रही मृत्युलोक में जाकर ॥ ९९ ॥ जहां कि हाटकेश्वरजक्षेत्र में शूद्राख्य व ब्राह्मणी नामक ऐसेही अतिउत्तम दोतीर्थ और अतिमनोहर लिंग हैं ॥ १०० ॥ वहां टिके

हुये उन तीनों तीर्थों को धूलिकी वर्षाकरके शीघ्रही नाशकरो सूतजी बोले कि तदनन्तर उस वचन को सुनकर शीघ्रही इन्द्रजी ने भूतल में जाकर ॥ १ ॥ उस तीर्थ व लिंगको निश्चयकर धूलियों से पूर्ण करदिया आजभी इस कलिकाल में दोनों तीर्थोंसे उत्तम मिट्टीको लेकर ॥ २ ॥ व समस्त पातकों की विशुद्धिके लिये नहाकर तिलक करना चाहिये और सोमवार को भलीभांति प्राप्तहोने पर जब चौदसि दिन प्राप्तहोवै तब ॥ ३ ॥ परमश्रद्धासे संयुत होताहुआ जो पुरुष दोनोंके समीप श्राद्ध करता है उसको गयाकी श्राद्धसे क्या है याने कुछ नहीं यह स्वायंभुव मनुने कहाहै ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो चरित मुझसे पूंछागया इस समस्त कथा-

गत्वाभूमितलंततः ॥ १ ॥ पांशुभिःपूरयामास तत्तीर्थंलिङ्गमेवच ॥ अद्यापिकलिकालेस्मिन्द्वाभ्यांगृह्यसुमृत्तिकाम् ॥ २ ॥ स्नात्वाचतिलकंकार्य्यंसर्वपापविशुद्धये ॥ चतुर्दशीदिनेप्राप्ते सोमवारेचसंस्थिते ॥ ३ ॥ द्वाभ्यांयःकुरुतेश्राद्धं श्रद्धयापरयायुतः ॥ गयाश्राद्धेनाकिन्तस्य मनुःस्वायम्भुवोब्रवीत् ॥ ४ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ यथासाब्राह्मणीजाता शूद्रीचापितथापरा ॥ ५ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या पाठकाद्विजसत्तमाः ॥ सोपितद्दिनजात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ६ ॥ एवंसरोमकःसिद्धस्तस्यलिङ्गस्यपूजनात् ॥ चिरायुश्चतथाजातो यथान्योनात्रविद्यते ॥ १०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये शूद्रीब्राह्मणीमाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च तीर्थानामिहभूतले ॥ श्रूयतेसूतकृत्स्नेन कीर्त्यमानामुनीश्वरैः ॥ १ ॥ कथं

नकको कहा जिस प्रकार वह ब्राह्मणी व दूसरी शूद्रीभी हुईहै ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो! पाठक याने वाचक से जो पुरुष भक्तिसे इस चरितको सुनताहै वह भी उस दिन उपजेहुये पापसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ६ ॥ व ऐसेही उस लिङ्गके पूजनसे सरोमक सिद्ध हुआहै व वैसेही दीर्घजीवी हुआ जैसा कि यहां और नहीं विद्यमान है ॥१०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशूद्रीब्राह्मणीमाहात्म्यंनामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८ ॥

दो० । द्विज सुभद्र निज सुता कहँ किय अन्त्यज सँग व्याह । इकसौ नव्वासिवें महँ कहत सो सहित उछाह ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस भूतलमें मुनि-

नायकों से कहेहुये सब साढ़ेतीन करोड़तीर्थ सुनेजाते हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! कलिकालके उपस्थित होनेपर थोड़े आयुर्बलवाले मनुष्यों को समस्त तीर्थोंके स्नान से उपजाहुआ फल कैसे मिलताहै ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि यहां तीन क्षेत्र वैसेही बड़ेभारी तीन जंगल व तीन पुरी व तीनही वन और तीन ग्राम प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ और अन्य तीन तीर्थ व तीन पर्वत तथा समस्त पातकोंके नाश करनेवाली तीन नदियां ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाली स्थितहैं इन सबोंमें जो नहाता है वह समस्त तीर्थोंका जो फल है उसको पाताहै ॥ ५ ॥ जो एक त्रिकमें स्नान करता है वह चौबीस संख्यक सब त्रिकोंके फलको पाता है यह ब्रह्माने कहाहै ॥ ६ ॥

लभन्तेसर्वेषां तीर्थानांस्नानजंफलम् ॥ अल्पायुर्भिर्महाभाग कलिकालउपस्थिते ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ क्षेत्रत्रयमिहाख्यातं तथारण्यत्रयंमहत् ॥ पुरीत्रयंवनान्येव त्रीणिग्रामास्तथात्रयः ॥ ३ ॥ तथातीर्थत्रयंचान्यत् पर्वतत्रितयंतथा ॥ महानदीत्रयंचैव सर्वपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ मर्त्यलोकेस्थितंविप्रास्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ सर्वेष्वेतेषुयःस्नाति सर्वेषांयत्फलंलभेत् ॥ ५ ॥ यएकस्मिंस्त्रिकेस्नाति सर्वत्रिकफलंलभेत् ॥ चतुर्विंशतिसंख्यानामिदमाहप्रजापतिः ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रीणिक्षेत्राणिकानीह तथारण्यानिकानिच ॥ पुर्य्यस्तिस्रोमहाभाग केख्यातावावनानिच ॥ ७ ॥ केग्रामाःकानितीर्थानि केनगास्सरितश्चकाः ॥ नामभिर्वदनःसूतसर्वाण्येतानिविस्तरात् ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ कुरुक्षेत्रमितिख्यातं प्रथमंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं द्वितीयंपरिकीर्तितम् ॥ ९ ॥ प्राभासिकंतृतीयन्तु क्षेत्रंहिद्विजसत्तमाः ॥ एतत्क्षेत्रत्रयंपुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १० ॥ यथोक्तविधिनादृष्ट्वा नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ योयंकाममभिध्याय क्षेत्रे

ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! इस भूमिमें कौन तीन क्षेत्र व कौन तीन अरण्य और कौन तीन पुरियां कहीहैं या कौन तीन वनहैं ॥ ७ ॥ व कौन ग्राम, कौन तीर्थ, कौन पर्वत व कौन नदियां हैं हे सूतजी ! इन सबोंको नामोंसे विस्तारपूर्वक हमलोगों से कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि पहला कुरुक्षेत्र ऐसा उत्तमतीर्थ कहा है व दूसरा हाटकेश्वरजक्षेत्र कहागया है ॥ ९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! तीसरा प्रभास क्षेत्रहै ये तीनों क्षेत्र पुण्यरूप व समस्त पातकों के नाशक हैं ॥ १० ॥ मनुष्य

यथोक्त विधिसे उसको देखकर ,पापसे छूटजाताहै और जो पुरुष जिस कामना को चिन्तन करके इन क्षेत्रों में बड़ी भक्तिसे ॥ ११ ॥ स्नान करता है उसके मन का प्रिय फल होताहै है व हे उत्तम ब्राह्मणो ! चौबीस भागोंमें नहायाहुआ होता है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! एक पुष्करारण्य व दूसरा नैमिषारण्यही व तीसरा धर्मारण्य उन तीर्थोंके मध्यमें कहागया है ॥ १३ ॥ इन तीनोंमें जो नहाता है वह चौबीस तीर्थोंके फलका भागी होताहै व एक वाराणसी (काशी) पुरी दूसरी द्वारकापुरी ॥ १४ ॥ व तीसरी अवन्ती (उज्जैनी) नामकपुरी त्रिभुवन में प्रसिद्ध है जो मनुष्य इनमें नहाता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होताहै ॥ १५ ॥ वैसेही एक

ष्वेतेषुभक्तितः ॥११॥ स्नानंकरोतितस्येष्टं मनसोजायतेफलम् ॥ चतुर्विंशतिभागेषु स्नातोभवतिसद्द्विजाः ॥ १२ ॥
एकन्तुपुष्करारण्यं नैमिषारण्यमेवच ॥ धर्म्मारण्यंतृतीयन्तु तेषांसंकीर्तितंद्विजाः ॥ १३ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति
चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ वाराणसीपुरीत्येकाद्वितीयाद्वारकापुरी ॥ १४ ॥ अवन्त्याख्यातृतीयाच विश्रुताभुवनत्रये ॥ ए
तासुयोनरःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ १५ ॥ वृन्दावनंतथाचैकं द्वितीयंखाण्डवंतथा ॥ ख्यातंद्वैतवनंचान्यत्तृतीं
यंधरणीतले ॥ १६ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥ कालग्रामःस्मृतश्चैकश्शालग्रामोद्वितीयकः ॥
१७ ॥ नन्दिग्रामस्तृतीयस्तु विश्रुतोद्विजसत्तमाः ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत ॥ १८ ॥ अग्नितीर्थंस्मृ
तंचैकं शुक्लतीर्थमथापरम् ॥ तृतीयंपितृतीर्थंतु पितृणामतिवल्लभम् ॥ १९ ॥ त्रिष्वेतेषुचयःस्नाति चतुर्विंशतिभा
ग्भवेत् ॥ श्रीपर्वतःस्मृतश्चैको द्वितीयश्चार्बुदस्तथा ॥ २० ॥ तृतीयोरैवताख्यस्तु विख्यातःपर्वतोत्तमः ॥ त्रिष्वेतेषुच

वृन्दावन दूसरा खाण्डव व अन्य तीसरा द्वैतवन भूतलमें प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥ इन तीनोंमें जो स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होता हैं व एक कालग्राम कहाहै दूसरा शालग्राम ॥ १७ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! तीसरा नन्दिग्राम प्रसिद्धहै इन तीर्थोंमें जो नहाता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होताहै ॥ १८ ॥ एक अग्नितीर्थ कहाहै दूसरा शुक्लतीर्थ और तीसरा पितरोंको अतिप्यारा पितृतीर्थ है ॥ १९ ॥ इन तीनोंमें जो स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होताहै व एक

श्रीपर्वत कहाहै वैसेही दूसरा अर्बुद ॥२०॥ व तीसरा पर्वतों में उत्तम रैवत नामक है इन तीर्थोंमें जो नहाता है वह चौबीस तीर्थोंका भागी होता है ॥ २१ ॥ और
पहली गङ्गानदी कहीहै और दूसरी नर्मदानामक और तीसरी पकरिया से उपजी हुई सरस्वती नदीहै ॥२२॥ इन सबोंमें जो नहाताहै वह चौबीसतीर्थोंका भागी होताहै
व इन्हीं समस्त तीर्थोंमें जो नर स्नान करताहै ॥२३॥ वह यहां साढ़ेतीन करोड़तीर्थों के समस्त फलको पाताहै और जो मनुष्य एकतीर्थमें नहाताहै वह त्रिक (तीनों)
के फलको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो मुझ से पूँछागया इस समस्त चरित को संक्षेप से तुमलोगों से कहा जोकि भूमिमें मनुष्योंको तीर्थसे उपजाहुआ

यःस्नाति चतुर्विंशतिभागभवेत् ॥ २१ ॥ गङ्गानदीस्मृतापूर्वा नर्म्मदाख्यातथापरा ॥ सरस्वतीतृतीयातु नदीप्लक्षसमु
द्भवा ॥ २२ ॥ आसुसर्वासुयःस्नाति चतुर्विंशतिभागभवेत् ॥ एतेष्वेवहिसर्वेषु यःस्नानंकुरुतेनरः ॥ २३ ॥ सार्द्धकोटि
त्रयस्यात्र सकृत्स्नंफलमाप्नुयात् ॥ यश्चैकस्मिन्नरःस्नातिसत्रिकस्यफलंलभेत् ॥ २४ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टो
स्मिद्विजोत्तमः ॥ संक्षेपात्तीर्थजंपुण्यं लभ्यतेयन्नरैर्भुवि ॥ २५ ॥ साम्प्रतंकिन्तुवोवच्मि यत्तद्वदतमाचिरम् ॥ ऋषय
ऊचुः ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे यानितीर्थानिसूतज ॥ २६ ॥ तानिप्रोक्तानिसर्वाणि त्वयास्माकंसुविस्तरात् ॥ तानिचायत
नान्येव संख्ययारहितानिच ॥ २७ ॥ अपिवर्षशतेनात्रस्नातुन्तेषुनशक्यते ॥ अल्पायुषःसदामर्त्याः कृतेपिपरिकीर्ति
ताः ॥ २८ ॥ त्रेतायांद्वापरेवापि किमुप्राप्तेकलौयुगे ॥ एवमल्पायुषोज्ञात्वा मानवान्सूतनन्दन ॥ २९ ॥ कथंप्राप्नुस्सम
स्तानां तीर्थानांस्नानजंफलम् ॥ देवदर्शनजंवापि विशेषान्निर्द्धनाश्चये ॥ ३० ॥ अस्तिकश्चिदुपायोत्र दैवोवामानुषो

पुण्य मिलता है ॥ २५ ॥ और इस समय तुम लोगोंसे क्या कहूं जो होवै उसको शीघ्रही कहिये ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्र
में जो तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ उन सबोंको तुमने हमलोगों से बड़े विस्तारपूर्वक कहा व संख्या से रहित उन मन्दिरों ही को वर्णन किया है ॥ २७ ॥ यहां सौ वर्ष से भी
उन में स्नान के लिये नहीं समर्थ होसक्ता क्योंकि सतयुग में भी सदैव थोड़े आयुर्बलवाले नर कहे हैं ॥ २८ ॥ व त्रेता, द्वापर में भी और कलियुग के प्राप्त होने
पर क्या कहना है हे सूतनन्दन ! ऐसेही थोड़े आयुर्बलवाले मनुष्यों को जानकर कहो ॥ २९ ॥ कि जे निर्धनी हैं वे समस्त तीर्थों के स्नान से उपजे हुये व देवों के

दर्शन से उत्पन्न भी फलको कैसे पावैंगे ॥ ३० ॥ इस विषय में देवता व मनुष्यवाला कोई यत्न है कि जिससे उन सबही का पुण्य लीला से होवै ॥ ३१ ॥ सूत जी बोले कि पुरातन समय आनर्त भूपति ने उन विश्वामित्र जी के आश्रम को भलीभांति जाकर इसी प्रयोजन को विश्वामित्र से पूंछा है ॥ ३२ ॥ राजा बोले कि हे भगवन्! इस पृथ्वी में संख्यासे रहित (असंख्य) तीर्थ हैं उन सबही में अलग २ स्नान का विधान कहा है ॥ ३३ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ! कहीं महीने, दिन व तिथि में कहा है व विचित्र दानों व स्नान की विधि कही है ॥ ३४ ॥ और देवोंका दर्शन भी भिन्नता से कहा गयाहै हे मुने! सौवर्ष से भी सबों का फल कोई पाने

पिवा ॥ येनतेषांभवेत्पुण्यं सर्वेषामेवहेलया ॥ ३१ ॥ सूतउवाच ॥ अस्मिन्नर्थेपुरापृष्टो विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ समुपेत्याश्रमंतस्य आनर्तेनमहीभुजा ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्नत्रतीर्थानि संख्ययारहितानिच ॥ तेषुस्नानविधिःप्रोक्तः सर्वेष्वेवपृथक्पृथक् ॥ ३३ ॥ मासेवारेदिनेचैव कुत्रचिन्मुनिसत्तम ॥ दानानिचविचित्राणि तथास्नानविधिस्तथा ॥ ३४ ॥ देवानांदर्शनंचापि पृथक्त्वेनप्रकीर्तितम् ॥ नशक्यतेफलंप्राप्तुं सर्वेषांकेनचिन्मुने॥३५॥अपिवर्षशतेनापि किम्पुनस्तोकवासरैः ॥ तस्माद्वदमहाभाग सुखोपायंचदेहिनाम् ॥३६॥ एकस्मिन्नपिचस्नातस्तीर्थेप्राप्नोतिमानवः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां स्नानजंसकलंफलम् ॥ ३७ ॥ सोब्रवीच्छृणुराजेन्द्र सरहस्यंवदामिते ॥ चत्वार्यत्रप्रकृष्टानि मुख्यतीर्थानि पार्थिव ॥ ३८ ॥ येषुस्नानेकृतेराजञ्छ्राद्धंचतदनन्तरम्॥ सर्वेषामेवतीर्थानां स्नानजंलभ्यतेफलम् ॥ ३९ ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानि तथात्रैवस्थितानिच ॥ सिद्धेश्वरप्रपूर्वाणि सर्वपापहराणिच ॥ ४० ॥ तेषुसर्वेषुदृष्टेषु श्रद्धापूतेनचेतसा ॥

के लिये समर्थ नहीं होसक्ता फिर थोड़े दिनों से क्या कहना है उसी कारण हे महाभाग! शरीरधारियों के सुखपूर्वक यत्न को कहिये ॥ ३५ । ३६ ॥ कि जिससे एक भी तीर्थ में नहाया हुआ पुरुष सबोंही तीर्थों के स्नान से उपजे हुये समस्त फलको पाता है ॥ ३७ ॥ उन विश्वामित्र ने कहा कि हे राजेन्द्र, राजन्! सुनिये गुप्त चरित समेत तुमसे कहताहूं कि इस भूमिमें चार बड़े भारी मुख्य तीर्थहैं ॥३८॥ कि जिनमें स्नान करनेपर तदनन्तर श्राद्ध करै तो हे राजन्! सबही तीर्थों के स्नान से उपजाहुआ फल मिलता है ॥ ३९ ॥ वैसे ही सिद्धेश्वरपूर्वक समस्त पातकों के हरनेवाले सत्ताईस शिवलिङ्ग यहीं स्थित हैं ॥ ४० ॥ श्रद्धा से पवित्रचित्त करके

उन सबों के देखने पर सबोंही देवों के दर्शन से उपजा हुआ फल होवै है ॥ ४१ ॥ हे नृपोत्तम ! एक भी लिङ्गके भलीभांति देखने व पूजने पर उससे सत्ताईस लिङ्गों की पूजा की हुई होती है ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि हे सन्मुने ! वहां कौन चार प्रसिद्ध तीर्थ हैं कि जिनमें भलीभांति नहाया हुआ नर सबों के फलको पाता है ॥ ४३ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे महाराज ! यहां पुण्यदायिनी कूपिका है जब दिनकर (सूर्यनारायण) जी कन्याराशि में स्थित होते हैं तब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी व विशेषकर उत्तम अमावास्या दिन में भूमिके मनुष्यों से कीहुई अनेक प्रकारकी श्राद्धोंसे निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्तहुई गयाजी जिसमें भलीभांति टिकती

सर्वेषामेवदेवानां भवेद्दर्शनजंफलम् ॥ ४१ ॥ एकस्मिन्नपिसंदृष्टेपूजितेवान्नृपोत्तम ॥ सप्तविंशतिलिङ्गानां पूजातेनकृताभवेत् ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ कानिचत्वारितीर्थानि तत्रमुख्यानिसन्मुने ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वेषांलभतेफलम् ॥ ४३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रास्तिकूपिकापुण्या यस्यांसंश्रयतेगया ॥ कृष्णपक्षचतुर्दश्यां त्वमावास्यादिने शुभे ॥ ४४ ॥ विशेषेणमहाराज कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ निर्विण्णाभूमिलोकानां कृतैःश्राद्धैरनेकधा ॥ ४५ ॥ यस्तस्यां कुरुतेश्राद्धं सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तस्मिन्नहनिराजेन्द्रशतंतारयतेपितॄन् ॥ ४६ ॥ तथातीर्थंद्वितीयन्तु शङ्खतीर्थमितिस्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वानरोयस्तु पश्येच्छङ्खेश्वरन्ततः ॥ ४७ ॥ सर्वेषांफलमाप्नोति माघस्यप्रथमेहनि ॥ तथातन्मामकंतीर्थं तृतीयम्मुख्यताङ्गतम् ॥ ४८ ॥ अत्रस्नात्वातुयःपश्येन्मयासंस्थापितंहरम् ॥ विश्वामित्रेश्वरन्नाम सर्वेषांचफलंलभेत् ॥ ४९ ॥ नभस्यस्यासिताष्टम्यां सर्वेषांलभतेफलम् ॥ शक्रतीर्थमितिख्यातं चतुर्थंबालमण्डने ॥ ५० ॥

है ॥ ४४।४५ ॥ उस दिन श्रद्धासंयुत जो पुरुष भलीभांति उस कूपिकाके समीप श्राद्ध करता है वह सौ पितरों को तारता है ॥ ४६ ॥ वैसेही शङ्खतीर्थ ऐसा कहाहुआ दूसरा तीर्थहै जो मनुष्य माघ के पहले दिन में उसमें नहाकर तदनन्तर शङ्खेश्वर को देखता है वह सबके फलको प्राप्तहोता है वैसेही मुख्यता को प्राप्त वह तीसरा मेरा तीर्थहै ॥ ४७ । ४८ ॥ इसमें नहाकर जो मनुष्य मुझसे भलीभांति थापेहुये विश्वामित्रेश्वर नामक शिवजी को देखता है वह सब तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ ४९ ॥

व भाद्रपद की अँधेरी अष्टमी में नहाकर सब तीर्थोंके फलको पाताहै व चौथा बालमण्डन में शक्रतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ कुँवार की जो उजेरी अष्टमीमें उस में नहाकर शक्रेश्वरको पूजकर व देखकर सब तीर्थोंके फलको प्राप्तहोता है ॥ ५१ ॥ राजा बोले कि हे महाभाग विप्रजी ! गयाकूपिका से उपजेहुये विधान को मुझ से विस्तार से कहिये क्योंकि मेरे बड़ी श्रद्धा संस्थित (भलीभांति टिकी) है ॥ ५२ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि जब सूर्य कन्याराशि में प्राप्तहोवैं तब अमावस दिनके प्राप्त होनेपर वहां जो मनुष्य स्थान में उपजे द्विजोंके द्वारा भर्तृयज्ञ की विधि से भक्ति समेत श्राद्ध करता है वह अपने पितरों को तारता है व जो मन्दमनवाला मनुष्य

तत्रस्नात्वार्चयित्वाच शक्रेश्वरमवेक्ष्यच ॥ आश्विनस्यसिताष्टम्यां सर्वेषांलभतेफलम् ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ विधानंवदमेविप्र गयाकूप्याःसमुद्भवम् ॥ विस्तरेणमहाभाग श्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ ५२ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अमावास्यादिनेप्राप्ते तत्रकन्यागतेरवौ ॥ यःश्राद्धंकुरुतेभक्त्यासपितॄंस्तारयेन्निजान् ॥ ५३ ॥ भर्तृयज्ञविधानेन शुद्धैःस्थानोद्भवैर्द्विजैः ॥ भर्तृयज्ञविधिंत्यक्त्वा योन्येनविधिनानरः ॥ ५४ ॥ श्राद्धंकरोतिमूढात्मा विहीनंस्थानजैर्द्विजैः ॥ अन्यस्थानोद्भवैरशुद्धैस्तस्यतद्व्यर्थतांव्रजेत् ॥ ५५॥ वृष्टिःस्यादूषरेयद्वत्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ अन्धस्याग्रेयथानृत्यंप्रगीतंबधिरस्यच ॥ ५६॥ तथाचव्यर्थतांयाति अन्यस्थानोद्भवैर्द्विजैः ॥ ब्राह्मणैःकारयेच्छ्राद्धं मूर्खैरपिद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ चतुर्वेदाअपित्याज्या अन्यस्थानसमुद्भवाः ॥ दैवेकर्म्मणिपित्र्येवा सोमपानेविशेषतः ॥ ५८ ॥ देशान्तरगतोयस्तु श्राद्धंचकुरुतेनरः ॥ वैश्वानरपुरःस्थेन कार्य्यंनान्यद्विजस्यच ॥ ५९ ॥ दक्षिणाभोजनंदेयं स्थानिकानांद्विजादपि ॥ ६०

भर्तृयज्ञ की विधिको छोड़कर स्थान में उत्पन्न द्विजों से रहित श्राद्धको अन्य स्थान में उपजेहुये शुद्ध ब्राह्मणों के द्वारा करता है उसकी वह श्राद्ध वैसेही व्यर्थता को प्राप्तहोती है ॥ ५३ । ५४ । ५५ ॥ जैसे कि ऊषर में वर्षा व्यर्थ होतीहै यह मैंने सत्य कहाहै अन्धके आगे जैसे नाचना व बधिरके अगाड़ी गाना व्यर्थ होताहै॥५६॥वैसेही अन्यस्थानमें उपजे हुये ब्राह्मणोंसे श्राद्ध व्यर्थ होतीहै हे द्विजोत्तमो ! वहां के मूर्खभी ब्राह्मणोंसे श्राद्ध करावै॥५७॥व चारों वेदोंके जाननेवाले भी अन्यस्थान में उपजेहुये ब्राह्मण देवतावाले व पितरोंवाले कर्म व विशेषकर सोमपानमें त्यागने योग्यहैं॥५८॥और जो पुरुष दूसरे देशको गयाहो उसको वैश्वानरपुरमें टिकेहुये ब्राह्मणसे श्राद्ध कराना

चाहिये और स्थानवाले ब्राह्मणों के मध्यमें ब्राह्मण से भी अन्य ब्राह्मणको दक्षिणा व भोजन न देना चाहिये हे नृपोत्तम ! जैसे मदिरा का एक बूंद गिरने से पञ्च-
गव्यका सम्पूर्ण घट दूषित होजाता है वैसेही बहुतोंके बीचमें एकभी बाहरी ब्राह्मण से विनाश करदेताहै ॥ ५६ । ६० । ६१ ॥ इस लिये गुणियों के भी न मिलने में
स्थानवाले कुलीन को पाकर सब उपाय से शुद्ध ब्राह्मण को लावै ॥ ६२ ॥ और हीनअङ्गोंवाला व दूसरा अधिक अङ्गोंवाला पुरुष दूषित है जो अपनी शुद्धि चाहै
उसको बड़ेउपाय से कन्यादान व श्राद्धमें सदैव कुलीन ब्राह्मण को लाना चाहिये यदि हे नृपोत्तम ! वह भी शुद्धिसंयुत होवै ॥ ६३ । ६४ ॥ जैसे वृक्षोंमें पीपल व

विन्दुनैकेनमद्यस्य पतितेनन्नृपोत्तम ॥ एकेनापिचबाह्येन बहुमध्ये

पञ्चगव्यस्यसम्पूर्णो यथाकुम्भःप्रदुष्यति ॥ ६० ॥ विन्दुनैकेनमद्यस्य पतितेनन्नृपोत्तम ॥ एकेनापिचबाह्येन बहुमध्ये
विनाशयेत् ॥ ६१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धंब्राह्मणमानयेत् ॥ स्थानिकंकुलिकंप्राप्य अलाभेगुणिनामपि ॥ ६२ ॥
हीनाङ्गमधिकाङ्गंच दूषितंचतथापरम् ॥ कन्यादानेतथाश्राद्धे कुलीनोब्राह्मणस्सदा ॥ ६३ ॥ आहर्तव्यःप्रयत्नेनय इच्छे
च्छुद्धिमात्मनः ॥ सोपिशुद्धिसमायुक्तो यदिस्यान्नृपसत्तम ॥ ६४ ॥ वृक्षाणांचयथाश्वत्थो देवतानांयथाहरिः ॥ श्रे
ष्ठःस्थानजविप्राणां तथाचाष्टकुलोद्भवः ॥ ६५ ॥ आयुधानांयथावज्रं सरसांसागरोयथा ॥ श्रेष्ठःस्थानजविप्राणां त
थाष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६६ ॥ उच्चैःश्रवायथाश्वानांगजानांशक्रवाहनः ॥ यथास्थानजविप्राणां तथाष्टकुलसम्भवः ॥
६७ ॥ नदीनांचयथागङ्गा सतीनांचाप्यरुन्धती ॥ तद्वत्स्थानजविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६८ ॥ ग्रहाणांभास्क
रोयद्वन्नक्षत्राणांनिशाकरः ॥ तद्वत्स्थानजविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ६९ ॥ पर्वतानांयथामेरुर्द्विपदानांद्विजोत्त

जैसे देवोंमें विष्णुजी उत्तम हैं वैसेही स्थान में उपजेहुये ब्राह्मणों के बीच अष्टकुल में उत्पन्न द्विजश्रेष्ठ है ॥ ६५ ॥ जैसे अस्त्रोंमें वज्र व जैसे तड़ागों में समुद्र श्रेष्ठहै
वैसेही स्थानमें उपजे हुये ब्राह्मणों में अष्टकुलवाला कहागया है ॥ ६६ ॥ जैसे घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा व हाथियों में इन्द्रका वाहन (ऐरावत) है वैसेही स्थानजद्विजों
के बीच अष्टकुलमें उपजाहुआ द्विजहै ॥ ६७ ॥ जैसे नदियों में गङ्गा व पतिव्रताओं में अरुन्धती (वसिष्ठ की स्त्री) हैं वैसेही स्थानज ब्राह्मणों के बीचमें आठ कुलमें
उपजा ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा है ॥ ६८ ॥ जैसे ग्रहों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा है वैसेही स्थान में उपजेहुये ब्राह्मणों के मध्यमें आठकुलवाला कहाहै ॥ ६९ ॥

पर्वतों में जैसे सुमेरु व दो पैरवालों में द्विजोत्तम श्रेष्ठहै वैसेही स्थान में उत्पन्न ब्राह्मणोंके बीच अष्टकुलमें उपजाहुआ श्रेष्ठहै ॥ ७० ॥ जैसे पक्षियों में गरुड़ व वनवासियों में सिंह है वैसेही स्थानज ब्राह्मणों के बीच अष्टकुलवाला श्रेष्ठहै ॥ ७१ ॥ ऐसा जानकर हे राजन् ! श्राद्ध व यज्ञ और विशेषकर कन्यादान में बड़े उपाय से अष्टकुल में उपजाहुआ युक्त करनेयोग्यहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! वेदीकी जड़पै प्राप्त हुये अष्टकुलवाले द्विजको भलीभांति देखकर उसके पिता नाचते हैं व पितामह तृप्तहोते हैं ॥ ७३ ॥ व प्रसन्न होतेहुये फिर कहते हैं कि दौहित्र (कन्याका पुत्र) हम लोगोंको अपसव्य के द्वारा जल कुश व तिलोंसे संयुत क्या देवैगा ॥ ७४ ॥

मः ॥ स्थानजानान्तुविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलसम्भवः ॥ ७० ॥ पक्षिणांगरुडोयद्वत्सिंहोरण्यनिवासिनाम् ॥ स्थानजानान्तुविप्राणां श्रेष्ठोष्टकुलिकःस्मृतः ॥ ७१ ॥ एवंज्ञात्वाप्रयत्नेन श्राद्धेयज्ञेचपार्थिव ॥ कन्यादानेविशेषेण योज्यश्चाष्टकुलोद्भवः ॥ ७२ ॥ नृत्यन्तिपितरस्तस्य तृप्यन्तिचपितामहाः ॥ वेदीमूलंसमालोक्य प्राप्तमष्टकुलंनृप ॥ ७३ ॥ पुनर्वदन्तिसंहृष्टाः किमस्माकंप्रदास्यति ॥ दौहित्रश्चापसव्येनजलदर्भतिलान्वितम् ॥ ७४ ॥ राजोवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं श्रेष्ठश्चाष्टकुलोद्भवः ॥ सर्वेषांनागराणांच तत्किंवदमहामते ॥ ७५ ॥ नह्यत्रकारणंस्वल्पं भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यत्त्वयोदाहृतंवचः ॥ ७६ ॥ अन्येपिनागरास्सन्ति वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ श्राद्धार्हायज्ञयोग्याश्च कन्यायोग्याविशेषतः ॥ ७७ ॥ परन्तेस्थापिताराजन् पुर्य्यामिन्द्रेणतत्रच ॥ प्रधानत्वेनसर्वेषां नागरैश्चापिकृत्स्नशः ॥ ७८ ॥ तेनतेगौरवंप्राप्ताः स्थानेत्रैवविशेषतः ॥ तस्माच्छ्राद्धंप्रकर्तव्यं विप्रैश्चाष्टकुलोद्भवैः ॥७९॥

राजा बोले कि हे महामते ! जो आपने यह कहा कि सब नागरों के मध्य में अष्ट कुलमें उपजाहुआ श्रेष्ठ है वह क्या है उसको कहिये ॥ ७५ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसमें थोड़ा हेतु न होगा विश्वामित्रजी बोले कि हे महाराज ! तुमने जो वचन कहा है यह सत्य है ॥ ७६ ॥ कि वेदों व वेदाङ्गों के पार जानेवाले और भी नागर श्राद्धके योग्य व यज्ञयोग्य और विशेषकर कन्या के योग्य हैं ॥ ७७ ॥ परन्तु इन्द्र व समस्त नागरों ने भी सबकी प्रधानता से उस पुरीमें उनको थापा है ॥ ७८ ॥ व उसी कारण विशेषता से इसी स्थान में वे गौरवताको प्राप्त हुये हैं इस लिये अष्टकुल में उपजे हुये ब्राह्मणों के द्वारा श्राद्ध करना चाहिये ॥ ७९ ॥

और उनके अलाभमें नागरसे उपजेहुये ब्राह्मणोंकेद्वारा करनाचाहिये अन्य स्थानमें उपजेहुये चतुर्वेदी भी द्विजोंसे नहीं॥८०॥क्योंकि भर्तृयज्ञ महात्माने यह मर्यादा कियाहै कि नागर द्विजको छोड़कर यहां जो अन्यके द्वारा श्राद्ध या यज्ञकरैगा उसका व्यर्थ होजायगा राजा बोले कि मध्यदेशमें उत्पन्न व अन्य तीर्थोंमें उपजेहुये अन्य अनेक प्रकार के विप्र वेदवेदांगके पारगामी व शान्तहैं वे विशेषकर श्राद्ध व यज्ञमें भर्तृयज्ञ से त्याग कियेगये ॥ ८१।८२।८३ ॥ और हीन अंगोंवाले व अधिकाङ्गी, दुर्नग्न (जिसके माता व पिता दोनों पक्षोंमें तीन पुश्तियोंतक वेद व अग्निका नाशहो) व बन्दर सरीखे दांतोंवाले व निन्दित नखोंवाले व कोढ़से युक्त व मूर्ख भी और जो

अप्राप्तौचैवतेषान्तु कार्य्यंनागरसम्भवैः ॥ नान्यस्थानसमुद्भूतैश्चातुर्वेदैरपिद्विजैः ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञेनमर्य्यादाकृताह्येषा महात्मना ॥ मुक्त्वातुनागरंविप्रं योन्येनात्रकरिष्यति ॥ ८१ ॥ श्राद्धंवायदिवायज्ञं व्यर्थंतस्यभविष्यति ॥ राजोवाच ॥ सन्त्यन्येविविधाविप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ८२ ॥ मध्यदेशोद्भवाश्शान्तास्तथान्यत्तीर्थसम्भवाः ॥ भर्तृयज्ञेनतेत्यक्ताःश्राद्धेयज्ञेविशेषतः ॥ ८३ ॥ हीनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्च दुर्नग्नाःश्यावदन्तकाः ॥ कुनखाःकुष्ठसंयुक्ता मूर्खाअपिविगर्हिताः ॥ ८४ ॥ श्राद्धार्हास्सूचितास्तेन सर्वंमेसंशयंवद ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ कीर्तयिष्येनरव्याघ्र कारणानिबहूनिच ॥ ८५ ॥ चमत्कारस्यपत्न्याश्च दानेनपतितायतः ॥ स्त्रीणांप्रतिग्रहेणैव विप्रेषुप्रोषितेषुच ॥ ८६ ॥ पृथक्त्वंचततोजातं बाह्याभ्यन्तरसंज्ञकम् ॥ दुर्वाससाततःशप्ता रुष्टेनैवाहिनायथा ॥ ८७ ॥ विद्याधनाभिमानेन शापेनपतितास्सदा ॥ कुशेराज्यंगतेराजन् राक्षसानांमहाभयम् ॥ ८८ ॥ प्रजाभिर्विदितंसर्वं तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥ विभीषणस्यलङ्कायां दूतश्चप्रे

निन्दित हैं ॥ ८४ ॥ वे उन भर्तृयज्ञ से श्राद्धके योग्य सूचित कियेगये इस सब मेरी सन्देह को कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नरनायक ! बहुतेरे कारणोंको कहूँगा ॥ ८५ ॥ जिस लिये कि ब्राह्मणों के विदेश जानेपर चमत्कार की स्त्री के दानके कारण स्त्रियोंके प्रतिग्रह (दानलेने) हीसे पतित (धर्मभ्रष्ट) होगये ॥८६॥ उसी कारण बाहरी व भीतरी संज्ञावाली भिन्नताहुईहै तदनन्तर जैसे सांप वैसेही क्रोधित दुर्वासाजी से शापित हुये ॥ ८७ ॥ और विद्या व धनके गर्वके कारण शाप से सदैव पतित हुये हे राजन् ! कुशको राज्य पै प्राप्त होने पर उन महात्मा कुश राजाको प्रजाओं के द्वारा राक्षसों का सब महाडर विदित (प्रकट) हुआ व उस

समय लङ्कामें विभीषणके निकट पठायागया ॥ ८८ । ८९ ॥ रामके चरितको याद करते हुये उसने प्रणामकर प्रजाओं के डरसे उपजी हुई सब कुशजी की आज्ञाको निवेदन किया ॥९०॥ व उन विभीषण की आज्ञासे उसने लङ्कापुरीको देखा व सब उपद्रवके करनेवाले राक्षस दशों दिशाओं को चलेगये ॥ ९१ ॥ व बड़े डरसे गन्धर्वों के लोकोंको चलेगये व विभीषण के डरसे वे वहां टिकने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९२ ॥ व कुशही की आज्ञा से बड़े डर से वे उस पृथ्वीमें बहुत से स्थानोंको भी भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ९३ ॥ व ब्राह्मणों के रूपोंको बनाकर वहां भलीभांति आये परन्तु द्विजोंकी महिमा से बीचमें टिकने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९४ ॥ तदनन्तर भलीभांति टिकेहुये पतितों के मध्य चमत्कारपुरको गये तदनन्तर धन व विद्याके कारण माया में प्रवीण उन सबोंसे व उनके बीचमें बैठेहुये उन राक्षसों के सब्ब से आधा ज्ञान भस्महोगया तबसे लगाकर वे सब राक्षसता को प्राप्तहुये ॥ ९५।९६॥ और पग २ पै क्रूरभी कर्मोंको करते हैं उस कारण हे राजन्! वे सर्वदा श्राद्ध व यज्ञमें बड़े उपाय से वर्जित करने योग्य हैं ॥ ९७ ॥ क्योंकि हे नरनायक ! वे नरक में गिराते हैं हे अपाप ! और भी उनके दूषणको तुमसे कहूंगा ॥ ९८ ॥ हे राजन् !

षितस्तदा ॥ ८९ ॥ सर्वंनिवेदयामास प्रजानांभयसम्भवम् ॥ अभिवन्द्यकुशादेशं रामस्यचरितंस्मरन् ॥ ९० ॥ पुरीं विलोकयामास सलङ्कांतस्यशासनात् ॥ उपप्लवस्यकर्तारोगतास्सर्वेदिशोदश ॥ ९१ ॥ गन्धर्वाणांचलोकंहि भयेनमहतागताः ॥ स्थातुंतत्रनशक्तास्ते विभीषणभयेनच ॥ ९२ ॥ पृथिव्यांसमनुप्राप्ताः स्थानान्यपिबहूनिच ॥ भयेनमहतातत्र कुशस्यैवतुशासनात् ॥ ९३ ॥ ब्राह्मणानांचरूपाणिकृत्वातत्रसमागताः ॥ बाडवानांमहिम्नाच मध्येस्थातुन्नशक्नुते ॥ ९४ ॥ पतितानांचसंस्थानां चमत्कारपुरङ्गताः ॥ मायाविशारदैस्तैश्च धनेनविद्ययाततः ॥ ९५ ॥ अर्द्धंदग्धंततस्तैस्तु तेषांमध्येस्थितैश्चतैः ॥ ततःप्रभृतितेसर्वे राक्षसत्वंप्रपेदिरे ॥ ९६ ॥ क्रूराण्यपिचकर्म्माणि कुर्वन्तिचपदेपदे ॥ ततस्तेसर्वथाराजन्वर्ज्जनीयाःप्रयत्नतः ॥ ९७ ॥ श्राद्धेयज्ञेनरव्याघ्र नरकेपातयन्तिच ॥ अन्यच्चदूषणंतेषां कीर्तयिष्येतवानघ ॥ ९८ ॥ त्रिजातःस्थापितोराजन्सर्पाणांनागराशनात् ॥ नागरत्वंततोजातं चमत्कारपुरस्यतु ॥ ९९ ॥

सर्पोंको नगरके खाजानेसे त्रिजात स्थापित हुआहै और उसी कारण चमत्कारपुरकी नगरताहुई ॥९९॥ वहां विशेषतासे सबके त्रिजातत्व (तीनसे पैदाहोना) हुआ है इन कारणों से वे भर्तृयज्ञ से वर्जित कियेगये ॥ १०० ॥ व फिर कारण है कि उन के छूनेसे भी पवित्रताका भागी नहीं होताहै क्योंकि चाण्डाल से उपजीहुई बड़ी भारी कुम्भकता प्राप्तहुईहै ॥ १ ॥ राजा बोले किहे विप्रजी ! इस कारणको प्रसन्नतासे कहिये तुमको स्थावर जंगमवाले संसार का निश्चयकर ज्ञान है ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि इस विषय में कथा के मध्य पहले वृत्तान्त को तुमसे कहूंगा जो कि द्विजोत्तमों से पूंछे हुये भर्तृयज्ञ ने कहा है ॥ ३ ॥ पुरातनसमय वर्धमान

त्रिजातत्वंचसर्वेषां जातंतत्रविशेषतः ॥ एतेभ्यःकारणेभ्यश्च भर्तृयज्ञेनवर्जिताः ॥ १०० ॥ पुनश्चकारणंतेषांस्पर्शाद
पिनशुद्धिभाक् ॥ कुम्भकत्वंचसम्प्राप्तं महच्चण्डालसम्भवम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ एतच्चकारणंविप्र कथयस्वप्रसादतः ॥
स्थावरस्यचरस्यैव जगतोज्ञानमस्तिते ॥ २ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तंकथान्तरम् ॥ भर्तृय
ज्ञेनयत्प्रोक्तं पृष्टेनब्राह्मणोत्तमैः ॥ ३ ॥ वर्द्धमानपुरेपूर्वमासीदन्त्यजजातिजः ॥ चण्डालःकुम्भकोनाम निर्दयःपाप
कर्मकृत् ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्यपुत्रोबभूवह ॥ कुरूपस्यापिरूपाढ्यः पूर्वकर्मप्रभावतः ॥ ५ ॥ पिङ्गाक्षस्य
सुकृष्णस्य यवमध्यस्यपार्थिव ॥ दक्षस्सर्वेषुकृत्येषु सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६ ॥ सवृद्धिंद्रुतमभ्येति शुक्लपक्षेयथोडुरा
ट् ॥ तथासौशंसमानस्तु सर्वलोकैस्सुरूपभाक् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाकुटुम्बकंनित्यं वैराग्यंपरमंगतः ॥ गतोदेशान्तरंदुःखाद्भ्र
ममाणइतस्ततः ॥ ८ ॥ चमत्कारपुरंप्राप्तो द्विजरूपंसमाश्रितः ॥ सस्नातिसर्वतीर्थेषु भिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ९ ॥ एत

पुरमें चाण्डाल जाति में उपजाहुआ अतिनिर्दयी व पापकर्मकारी कुम्भकनामक चाण्डाल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! किसी समय पिंगलनेत्रवाले व अतिकाले और यव के समान मध्य (कटि) वाले उस कुरूप के भी पूर्वकर्मके प्रभाव से रूपसंयुत पुत्र पैदाहुआ जो कि समस्त कार्यों में दक्ष (चतुर) व सब लक्षणों से लक्षित था ॥ ५।६ ॥ जैसे कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा वैसेहीं वह शीघ्रही बढ़ती को प्राप्त होता था व वैसेही सब मनुष्योंसे यह स्वरूपभागी प्रशंसित होता था ॥ ७ ॥ नित्यही अपने परिवार को देखकर परम वैराग्य को प्राप्त इधर उधर घूमताहुआ वह दुःख से अन्य देश को चलागया ॥ ८ ॥ व ब्राह्मण के रूप में भली

भांति टिका हुआ वह चमत्कारपुरको प्राप्तहुआ और भिक्षान्न से कियेहुये भोजनवाला वह समस्त तीर्थों में स्नान करता था ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें हे राजन् ! वहां द्विजजातिवाला नागर ब्राह्मण सुभद्र नामक था जो कि प्रशंसित व्रतोंवाला व छन्दोग्य गोत्र में प्रसिद्ध तथा वेदों व वेदांगों का पारगामी था उसके वंश में दुगुने दांतों से संयुत एक कन्या थी ॥ १० । ११ ॥ जो कि भयङ्कर तीन स्तनों से उपलक्षित व बड़ी नाभि से संयुत थी हे राजन् ! निर्धनी भी व अतिदुष्ट भी व कुलहीन भी कोई पुरुष दीजाती हुई भी उस कन्या को नहीं ग्रहण करता था क्योंकि वह छह महीने के बीच में पति को खाजाती है ॥ १२ । १३ ॥ कि जिसके दुगुने

स्मिन्नेवकालेतु ब्राह्मणस्संशितव्रतः ॥ छन्दोगयगोत्रविख्यातस्सुभद्रोनामपार्थिव ॥ १० ॥ नागरोविप्रजातीयो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ तत्रास्तितस्यसन्ताने कन्यैकाद्विगुणैरदैः ॥ ११ ॥ तथात्रिभिस्स्तनैरौद्रैः पृथ्वावर्तकसंयुता ॥ दरिद्रोपिसुदुष्टोपि कुलहीनोपिपार्थिव ॥ १२ ॥ दीयमानामपिचतां नप्रगृह्णातिकश्चन ॥ यद्भक्षयतिभर्तारं षण्मासाभ्यन्तरे हिसा ॥ १३ ॥ यस्यास्स्युर्द्विगुणादन्ता एतत्सामुद्रिकाजगुः ॥ त्रिस्तनीकन्यकायातु श्वशुरस्यकुलंस्वयम् ॥ १४ ॥ सा धूर्तानास्तिसन्देहस्तस्मात्तांपरिवर्जयेत् ॥ अथतांवृद्धिमापन्नां दृष्ट्वाविप्रस्सुभद्रकः ॥ १५ ॥ चिन्ताचक्रेसमारूढोन शान्तिमधिगच्छति ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामि कथमस्याःपतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ नकश्चित्प्रतिगृह्णाति प्रार्थितोपिमुहुर्मुहुः ॥ दरिद्रोव्याधितोवापि वृद्धोपिब्राह्मणोहिसः ॥ १७ ॥ स्मृतौयस्मादिदंप्रोक्तं कन्यार्थंप्राग्महर्षिभिः ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षाचरोहिणी ॥ १८ ॥ दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ माताचैवपिताचैव ज्येष्ठोभ्रातातथैवच ॥ १९ ॥

दांत होते हैं यह सामुद्रिक जाननेवालों ने कहा है और तीन कुचोंवाली जो कन्या होतीहै वह धूर्ता आपही श्वशुर के कुल को खा जाती है इसमें सन्देह नहीं है उसी कारण उसको वर्जित करै इसके अनन्तर बढ़ती को प्राप्त हुई उस कन्या को देखकर वह सुभद्रक द्विज ॥ १४।१५ ॥ चिन्तारूपी चक्र पै चढ़ाहुआ शांतिको न प्राप्त होताथा कि मैं क्या करूं कहां जाऊं कैसे इसका पति होवै ॥१६॥ दरिद्री व रोगी भी व बूढ़ा भी वह कोई ब्राह्मण बार २ प्रार्थना कियाहुआ भी नहीं ग्रहण करता है ॥ १७ ॥ जिसलिये कि पहले महर्षियों ने कन्या के लिये स्मृति (धर्मशास्त्र) में यह कहाहै कि आठ वर्षवाली गौरी व नव वर्षवाली रोहिणीसंज्ञक होती है ॥ १८ ॥

रजस्वला कन्या को देखकर वे तीनों नरक को और दश वर्षवाली कन्या होवै है इसके उपरान्त रजस्वला होती है व माता, पिता व बड़ा भाई ॥ १९ ॥ जाते हैं इसभांति उसके चिन्तन करते हुये द्विजरूपधारी वह चाण्डाल ॥ २० ॥ भिक्षा के लिये उसके घर प्राप्त हुआ उन महात्मा ने देखा व उस प्रकारके रूप को देखकर आश्चर्यही से पूंछा ॥ २१ ॥ कि हे भिक्षुक ! तुम यहां कहांसे प्राप्त हुये हो और कहां जावोगे व ऐसे अतिकल्याणरूप होकर किस कारण माधुकरी वृत्ति याने भिक्षुकी जीविका पै प्राप्तहो ॥ २२ ॥ तुम्हारा क्या गोत्र है व कितना प्रवर है यह मुझ से कहो वह बोला कि गौड़देशवाला भोजकट नाम से प्रसिद्ध

एवंचिन्तयतस्तस्य सोन्त्यजोद्विजरूपधृक् ॥ २० ॥ भिक्षार्थंतद्गृहं
त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य सोन्त्यजोद्विजरूपधृक् ॥ २१ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः क्वयास्यसिचभि
प्राप्तो दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ पृष्टश्चविस्मयेनैव दृष्ट्वारूपंतथाविधम् ॥ २१ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः क्वयास्यसिचभि
क्षुक ॥ ईदृग्भव्यतरोभूत्वा कस्मान्माधुकरीङ्गतः ॥ २२ ॥ किंगोत्रंतवमेब्रूहि कतमःप्रवरश्चते ॥ सोब्रवीद्गौडदेशीयं
स्थानंमेसुमहत्तरम् ॥ २३ ॥ नाम्नाभोजकटंख्यातं नानाद्विजसमाश्रितम् ॥ तत्रासीन्माधवोनामब्राह्मणोवेदपारगः ॥
२४ ॥ वसिष्ठगोत्रेविख्यात एकप्रवरसूचितः ॥ तस्याहंतनयोनाम्ना चन्द्रप्रभइतिस्मृतः ॥ २५ ॥ ततोहमष्टमेवर्षे यदा
व्रतधरःस्थितः ॥ तदापञ्चत्वमापन्नः पितामेवेदपारगः ॥ २६ ॥ मातामेसहतेनैव प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ ततोवैराग्य
मापन्नो निष्क्रान्तोहंनिजालयात् ॥ २७ ॥ तीर्थानिभ्रममाणोत्र सम्प्राप्तस्सुपुरेतव ॥ अधुनासम्प्रयास्यामि प्रभासंक्षे

जो कि एक प्रवर मेरा स्थान है जो कि बड़ाभारी व अनेक भांति के ब्राह्मणों से समाश्रित है वहां वेदों का पारगामी माधव नामक ब्राह्मण हुआ है ॥ २३ । २४ ॥ से सूचित व वसिष्ठ गोत्रमें प्रसिद्ध था नाम से चन्द्रप्रभ ऐसा कहा हुआ मैं उसका पुत्र हूं ॥ २५ ॥ तदनन्तर जब मैं आठवें वर्ष व्रतधारी स्थित हुआ याने जब मेरा जनेऊ होचुका तब वेद के पारगामी मेरे पिता जी मृत्यु को प्राप्त होगये ॥ २६ ॥ व मेरी माता उन्हीं के साथ अग्नि में पैठगई तदनन्तर वैराग्य को प्राप्त मैं अपने घर से निकला ॥ २७ ॥ और तीर्थों में घूमताहुआ मैं इस तुम्हारे अति उत्तम पुर में भलीभांति प्राप्त हुआ व इस समय उत्तम प्रभास क्षेत्र को जाऊंगा जहां कि

सोमेश्वर देवजी कैलास को छोड़कर आये हैं हे द्विजोत्तम! मैंने वेद व शास्त्रको नहीं पढ़ा है ॥ २८ । २९ ॥ उसी कारण तीर्थयात्रा के प्रसंग से मैं भिक्षाटन करता हूं विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर चित्त में चिन्तन किया ॥ ३० ॥ कि उत्तम देशवाला व अतिकल्याणरूप आकारवाला यह ब्राह्मण यदि मेरी कन्या को ग्रहण करै तो मैं तबतक देऊं ॥ ३१ ॥ कि जबतक वह दुष्टा विरूपवती रजस्वला न होवै और मेरे समस्त वंश को न नाश करै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर स्त्री के साथ सलाह करके उस म्लेच्छ (चाण्डाल) से कहा हे द्विज! यदि मेरी कन्या को लेवो तो मैं तुमको देऊं ॥ ३३ ॥ और सदैव दोनों का भरण

त्रमुत्तमम् ॥ २८ ॥ यत्रसोमेश्वरोदेवस्त्यक्त्वाकैलासमागतः ॥ नमयापठितोवेदो नचशास्त्रंद्विजोत्तम ॥ २९ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तेनभिक्षांचराम्यहम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिन्तयामासचेतसि ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोयंसुदेशीयस्तथाभव्यतमाकृतिः ॥ यदिगृह्णातिमेकन्यां तदास्मैप्रददाम्यहम् ॥ ३१ ॥ यावद्रजस्वलानैव जायतेसाविरूपिता ॥ कृत्स्नंक्षपयतिक्षिप्रं नैववंशंममाधमा ॥ ३२ ॥ ततःप्रोवाचतंम्लेच्छं संमन्त्र्यसहभार्य्यया ॥ यदिगृह्णासिमे कन्यां तवयच्छाम्यहंद्विज ॥ ३३ ॥ भरणंपोषणंद्वाभ्यां करिष्यामिसदैवहि ॥ तच्छ्रुत्वाहर्षितःप्राह सोन्त्यजस्तंद्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥ तवादेशंकरिष्यामि यच्छमेकन्यकांद्विज ॥ तथेत्युक्त्वाततस्तेन तस्मैदत्तानिजासुता ॥ ३५ ॥ गृह्योक्तेनविधानेन विवाहोविहितस्ततः ॥ ततोददौधनंधान्यं गृहंक्षेत्रंचगोधनम् ॥ ३६ ॥ तस्मैतुष्टिसमायुक्तो मन्यमानः कृतार्थताम् ॥ अथसोपिचतांप्राप्य विलासानकरोद्बहून् ॥ ३७ ॥ खाद्यैःपानैस्सुवस्त्रैश्च गन्धमाल्यैर्विभूषितैः ॥ परंस

पोषण करूंगा उसको सुनकर प्रसन्न होता हुआ वह चाण्डाल उस द्विजोत्तम से बोला ॥ ३४ ॥ कि हे द्विज! तुम्हारी आज्ञा करूंगा मुझ को कन्या दीजिये ऐसा ही होगा यह कहकर तदनन्तर उस ब्राह्मणने अपनी कन्याको उसके लिये दिया॥ ३५ ॥ तदनन्तर गृह्यसूत्र में कहीहुई विधि से विवाह किया गया उसके उपरान्त कृतार्थता को मानते हुये प्रसन्नतासंयुक्त उस ब्राह्मण ने उसके लिये धन, अन्न, घर, खेत व पशुवर्ग को दिया इसके अनन्तर उस कन्या को पाकर उसने भी

भोजनों, पानों व वसनों और गन्ध, पुष्प व अलङ्कारों से बहुत भोग विलासोंको किया परन्तु प्रायः वह जिस किसी मार्ग से जाता था ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ वहां शब्द समेत कूकुर पीछे चलते थे व विशेषकर अन्य चाण्डालोंकी पद्धति (मार्ग) के पीछे चलते थे ॥ ३९ ॥ और यदि कहीं वेदाभ्यास में तत्पर होता था तो उसी तथा उस दुर्बुद्धि के मुखसे रुधिर गिरता था ॥ ४० ॥ इसी अवसरमें सबही मनुष्यों ने बड़ी शङ्का किया व आपस में आकर कहा कि यह निस्सन्देह चाण्डाल है ॥ ४१ ॥ क्योंकि शब्द करते हुये कूकुर उसके पीछे जाते हैं उनके उस वचन को सुनकर उसे सत्य मानताहुआ बड़े दुःख से संयुत सुभद्र भी चिन्ता में तत्पर

व्रजतिप्रायो येनमार्गेणकेनचित् ॥ ३८ ॥ सारमेयास्सशब्दाश्च पृष्ठतोनुव्रजन्तिवै ॥ अन्येषामन्त्यजात्यानां पद्धतिश्चविशेषतः ॥ ३९ ॥ वेदाभ्यासपरश्चैव यदिसंजायतेकचित् ॥ रक्तंपततिवक्त्रेण तत्क्षणात्तस्यदुर्मतेः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरेलोकः सर्वएवप्रशङ्कितः ॥ अब्रवीच्चमिथोभ्येत्यचण्डालोयमसंशयम् ॥ ४१ ॥ यतस्तत्पृष्ठतोयान्ति सारमेयास्सुनिःस्वनाः ॥ सुभद्रोपिचतत्तेषां श्रुत्वाचिन्तापरोभवत् ॥ ४२ ॥ मन्यमानश्चतत्सत्यं दुःखेनमहतान्वितः ॥ नूनमन्त्यजजातीयो भविष्यतिसुतापतिः ॥ ४३ ॥ ज्ञायतेचेष्टितैस्सर्वैर्यथायंजल्पतेजनः ॥ एवंरात्रिदिनंतस्य चिन्तयानस्यभूपते ॥ ४४ ॥ लोकापवादयुक्तस्य कियान्कालोभ्यवर्तत ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते आयाताद्विजसत्तमाः ॥ ४५ ॥ मध्यगेनसमायुक्ता ब्रह्मस्थानंसमागताः ॥ तस्यशुद्धिकृतेप्रोचुर्येन शङ्काप्रणश्यति ॥ ४६ ॥ अथोचुस्तंद्विजश्रेष्ठा ब्रह्मस्थानस्यमध्यगम् ॥ मध्यगस्यतुवक्त्रेण विवर्णवदनंस्थितम् ॥ ४७ ॥ कुलंगोत्रंचत्वंब्रूहि प्रवरांश्चविशेषतः ॥ स्था

हुआ कि निश्चयकर कन्याका पति चाण्डाल जातिवाला होगा ॥ ४२ । ४३ ॥ क्योंकि जिसप्रकार ये मनुष्य कहते हैं वैसाही समस्त व्यवहारों से जान पड़ता है हे भूपते ! मनुष्य के अपवाद (निन्दा) से युक्त उस ब्राह्मण को इसप्रकार चिन्तन करते हुये कुछ काल व्यतीत हुआ अन्य दिन प्राप्त होने पर द्विजोत्तम आये ॥ ४४ । ४५ ॥ व मध्यवर्ती से संयुक्त ब्रह्मस्थान को भलीभांति आये हुये वे उसकी शुद्धि के लिये बोले कि जिस से शङ्का नाश होजावे ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मस्थान के बीच में प्राप्त व विवर्ण (रंगहीन) मुखवाले स्थित उस से द्विजोत्तमों ने मध्यवर्ती के मुखद्वारा कहा ॥ ४७ ॥ कि तुम द्विजों के कुल, गोत्र व विशेषता

से प्रवरों व स्थान, व देश को कहो कि जिससे शुद्धि दीजाती है ॥ ४८ ॥ इस के अनन्तर पसीना संयुक्त मुखवाले व नीचे नयनवाले और अञ्जलियों को किये कांपते हुये इस ने गद्गदी वाणी से यह कहा ॥ ४६ ॥ कि गर्भ से लगाकर मेरे आठवें वर्ष में मेरे पिता जी मृत्युको प्राप्त हुये उसी कारण तदनन्तर मेरी वह पतिव्रता माता उसको भलीभांति लेकर ॥ ५० ॥ व दुःखित और दीन मुझ को छोड़कर अग्नि में पैठ गई और वैराग्य को प्राप्त होताहुआ मैं तीर्थयात्रा में भलीभांति आश्रित हुआ ॥ ५१ ॥ पिता के दुःख से और एकअवस्थावाले बालकों के साथ मैंने लड़कपन में वेद नहीं पढ़ा व शास्त्र नहीं निरूपण किया ॥ ५२ ॥ व

नंदेशंचविप्राणां येनशुद्धिःप्रदीयते ॥ ४८ ॥ अथासौवेपमानस्तु प्रस्विन्नवदनस्तथा ॥ अधोदृष्टिरुवाचेदं गद्गदंविहिताञ्जलिः ॥ ४६ ॥ गर्भाष्टमेपितामेवै वर्षेमृत्युंगतस्ततः ॥ ततस्सातंसमादाय जननीमेपतिव्रता ॥ ५० ॥ मान्त्यक्त्वा दुःखितंदीनं प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ अहंवैराग्यमापन्नस्तीर्थयात्रांसमाश्रितः ॥ ५१ ॥ बालभावेपितुर्दुःखाद्वयस्यैरपरैस्सह ॥ नमयापठितोवेदो नचशास्त्रंनिरूपितम् ॥ ५२ ॥ तीर्थयात्रापरोहञ्च समायातोभवत्पुरम् ॥ अभद्रेणसुभद्रेण श्वशुरेणदुरात्मना ॥ ५३ ॥ एतज्जानाम्यहंविप्रा गोत्रंवासिष्ठमेवमे ॥ अथैकःप्रवरोदेशो गौडोमधुपुरंपुरम् ॥ ५४ ॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुर्यस्यनोज्ञायतेकुलम् ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या घटद्वारेणकेवला ॥ ५५ ॥ सत्वंघटंसमारुह्य ब्राह्मणार्थंचकेवलम् ॥ शुद्धिंप्राप्यततोभोगान् भुङ्क्ष्वात्रस्थोपिकेवलान् ॥ ५६ ॥ सोब्रवीत्साहसंकृत्वा सर्वानेवद्विजोत्तमान् ॥ प्रतिगृह्णाम्यहंकालं तप्तमायसमेववा ॥ ५७ ॥ प्रविशामिहुताशंवा भक्षयिष्याम्यहंविषम् ॥ किंपुनर्घटादिव्यंच क्रियमा

तीर्थयात्रा में परायण मैं आप लोगों के नगरको आया व दुष्टमनवाले, अकल्याणरूप सुभद्रनामक श्वशुर से मेरा समागम हुआ ॥ ५३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह मैं जानता हूं कि मेरा वसिष्ठही गोत्रहै व एकप्रवर, गौड़ देश और मधुपुरनामक पुर है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर वे ब्राह्मण बोले कि जिसका कुल नहीं जानाजाता है उस को घट के द्वारा केवल शुद्धि देना चाहिये ॥ ५५ ॥ सो तुम ब्राह्मण के लिये केवल कुम्भ पै भलीभांति चढ़कर तदनन्तर यहां टिके हुये भी तुम केवल भोगों (सुखों) को भोगकरो ॥ ५६ ॥ उसने साहसकरके सबही द्विजोत्तमोंसे कहा कि मैं काल (मृत्यु) व तचे हुये लोहको पकड़ लेऊं ॥ ५७ ॥ या अग्निमें पैठूं अथवा मैं विषको खालेऊं

फिर सुखदायक की जाती हुई घटरूप दिव्य पवित्रताको क्या कहना है ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों के चित्त में ब्राह्मण के लिये मेरी घृणाहै इसके अनन्तर वे ब्राह्मण उसको घट पै चढ़ने से उपजीहुई शुद्धि व सूर्यनारायण के दिनको निर्देश (बतला) कर तदनन्तर सब द्विज अपने २ घर चलेगये और उस चाण्डाल द्विज ने भी ॥ ५९ । ६० ॥ हे नृपोत्तम ! तदनन्तर एकान्त में अपनी स्त्री से कहा कि सब ब्राह्मणों ने चाण्डालसे उपजे हुये मुझ को जान लिया ॥ ६१ ॥ इस लिये मैं अन्यदेश को जाऊंगा तुम मेरे साथ आवो स्त्री बोली कि मैं अग्नि में पैठूंगी तुम्हारेसाथ न जाऊंगी ॥ ६२ ॥ हे पापबुद्धे ! मैं नरक रूपी अग्नियों में न गिरूंगी और

णंसुखावहम् ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणस्यकृतेविप्राश्चित्तेवोमामकीघृणा ॥ अथतेब्राह्मणास्तस्य घटारोहणसम्भवाम् ॥ ५९ ॥
शुद्धिंनिर्दिश्यवारञ्च सूर्य्यस्यचततःपरम् ॥ जग्मुःस्वंस्वंगृहंसर्वे सोपिविप्रोन्त्यजोद्विजाः ॥ ६० ॥ ततःप्राहनिजांभा
र्य्यां रहस्येनृपसत्तम ॥ ज्ञातोहंब्राह्मणैस्सर्वैरन्त्यजातिसमुद्भवः ॥ ६१ ॥ देशान्तरङ्गमिष्यामि त्वमागच्छमयासह ॥
भार्य्योवाच ॥ अहमग्निंप्रवेश्यामि नायास्यामित्वयासह ॥ ६२ ॥ पापबुद्धेपतिष्यामि नचाहंनरकाग्निषु ॥ बुद्ध्वमा
नानसंविश्ये त्वामन्त्यजसमुद्भवम् ॥ ६३ ॥ पापसन्दूषितंसर्वं त्वयैतत्स्थानमुत्तमम् ॥ तथाममपितुर्हर्म्यं संवत्सरप्रवा
सिना ॥ ६४ ॥ तस्माद्द्रुततरंगच्छ यावन्नोवेत्तिकश्चन ॥ नोचेत्पापसमाचार संप्राप्स्यसिमहापदम् ॥ ६५ ॥ ततोनिशा
मुखेप्राप्ते कौपीनावरणान्वितः ॥ गतोभीष्टांदिशंप्राप्य तदाजीवितजाद्भयात् ॥ १६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयप
रिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ * ॥ * ॥

चाण्डालसे उपजे हुये तुमको जानती हुई मैं तुम्हारा संयोग न करूंगी ॥ ६३ ॥ हे धूर्त ! तूने इस उत्तम समस्त स्थान को दूषित किया वैसेही वर्षभर निवास से मेरे पिताका घर दूपित किया ॥ ६४ ॥ इस लिये हे पाप आचरणवाले ! जबतक कोई न जाने तबतक अतिशीघ्रही चलेजावो नहीं तो बड़ी विपत्ति को प्राप्तहोगे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर उस समय सन्ध्याके प्राप्त होने पर कौपीन (लँगोटी) रूप आच्छादनसे संयुत वह चाण्डाल जीवसे उपजेहुये डरके कारण चाही हुई दिशाको प्राप्त होकर चलागया ॥ १६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरमाहात्म्येएकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

दो० । भर्तृयज्ञ द्विज आदिकनै कहे प्रायश्चित जौन । एकसौ अरु नब्बै महँ कह्यौ चरित सब तौन ॥ विश्वामित्र जी बोले कि तदनन्तर जब प्रभातहुआ तब सूर्य्य मण्डल के उदय होने पर उन महात्मा दीक्षित की वह कन्या भी ॥ १ ॥ अत्यन्तही रोती हुई पिता, माता के समीप गई व आंसुओं से विकल लोचनवाली वह गद्गद वचनको बोली ॥ २ ॥ कि हे पिता माता जी ! तुम दोनों ने यह क्या पाप किया कि जो दुष्टात्मा, पापी चाण्डाल को मुझे दिया ॥ ३ ॥ वह निशामुख (सन्ध्या) में अपने कुल को भली भांति बतलाकर नष्ट (अदृश्य) होगया उस कारण मैं जलती अग्नि में पैठ जाऊंगी ॥ ४ ॥ उस के उस वचन को सुनकर चै-

विश्वामित्रउवाच ॥ ततःप्रभातेसञ्जाते प्रोद्गतेरविमण्डले॥साचापिदुहितातस्यदीक्षितस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ रोरूयमाणाभ्यगमत्पितरंमातरंचसा ॥ प्रोवाचगद्गदंवाक्यं बाष्पव्याकुललोचना ॥ २ ॥ तातामबकिमिदंपापं युवाभ्यांसमनुष्ठितम् ॥ अन्त्यजस्यप्रदत्ताहं यत्पापस्यदुरात्मनः ॥ ३ ॥ सनष्टोरजनीवक्त्रे समावेद्यनिजंकुलम् ॥ तस्मादहंप्रवेक्ष्यामि प्रदीप्तेहव्यवाहने ॥ ४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा दीक्षितस्ससुभद्रकः॥ निश्चेष्टःपतितोभूमौ वातभग्नइवद्रुमः॥ ५ ॥ ततःसुशीततोयेन संसिक्तःसपुनःपुनः ॥ लब्ध्वासचेतनांकृच्छ्रात्स्वजनैःपरिवारितः ॥ ६ ॥ प्रलापान्विविधांश्चक्रे ताडयन्स्वशिरोमुहुः ॥ अथतेब्राह्मणास्सर्वे तस्यसंपर्कदूषिताः ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञंसमासाद्य तेनैवसहितास्ततः ॥ प्रोचुर्विनयसंयुक्ताः प्रोच्चैस्तत्सुतयासह ॥ ८ ॥ सुभद्रेणनिजेहर्म्येसुतादत्तानिवेशितः ॥ चण्डालोद्विजरूपोत्र चन्द्रप्रभइतिस्मृतः॥ ९ ॥ यावत्संवत्सरस्यार्द्धं दैवेपित्र्येचयोजितः ॥ पापकर्म्मानविज्ञातस्सोधुनाप्रकटोभवत् ॥ १० ॥ सुभद्रस्यानुषङ्गेण

तन्यता रहित हो वह दीक्षित सुभद्रक पवन से टूटे वृक्ष के समान पृथ्वी में गिर पड़ा ॥ ५ ॥ तदनन्तर उत्तम ठण्ढजल से बार २ भली भांति छिरका व निजजनों से घिराहुआ वह क्लेशसे चैतन्यता को पाकर बार २ अपने शिर को पीटते हुये उसने अनेकप्रकार के प्रलापों को किया इसके उपरान्त उस के मेल से दूषित वे सब ब्राह्मण ॥ ६ । ७ ॥ उसी सुभद्र समेत व उसकी कन्या सहित भर्तृयज्ञ के समीप जाकर तदनन्तर नम्रता संयुत होते हुये बोले ॥ ८ ॥ कि यहां सुभद्र ने अपनी कन्या दिया व चन्द्रप्रभ ऐसे कहेहुये ब्राह्मण रूपवाले चाण्डाल को वर्षार्द्ध याने छःमहीने तक अपने घरमें पैठाया और देव व पितर वाले कार्यमें नियुक्त किया

व पापकर्मोंवाला वह न जानागया किन्तु इस समय विदित हुआ ॥९।१० ॥ हे महाभाग ! सुभद्रके प्रसंगसे चाण्डालसे समस्त स्थान दूषित होगया इसलिये प्रायश्चित्त रूप दण्डको कीजिये ॥ ११ ॥ कितनेही द्विजों ने उसके घर में भोजन किया व अन्यों ने पानी पिया और वैसेही अपर ब्राह्मणों ने घर लाकर भोजन दिया ॥१२॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है वह कौन द्विजोत्तम है जो कि उस पाप के सम्भव (होने) से सङ्कर नहीं हुआ याने एकही में नहीं मिला ॥ १३ ॥ हे महा- मते ! तुमने पहले इस स्थान को पुण्य (पवित्र) किया है और तुम सबोंके गुरूहो उसीकारण हम लोगों से शुद्धिको कहिये ॥ १४ ॥ तदनन्तर अनेकों स्मृति

अन्त्यजेनमहाभाग तत्कुरुष्वविनिग्रहम् ॥ ११ ॥ कैश्चित्तस्यगृहेभुक्तं जलंपीतंतथापरैः ॥ अ न्यैश्चगृहमानीय प्रदत्तंभोजनंतथा ॥ १२ ॥ किंवातेबहुनोक्तेन नसकोस्तिद्विजोत्तमः ॥ सङ्करोयश्चनोजातस्तस्यपाप स्यसम्भवात् ॥ १३ ॥ त्वयास्थानमिदंपुण्यं कृतंपूर्वमहामते ॥ सर्वेषांचगुरुस्त्वंहि तस्माच्छुद्धिंवदस्वनः ॥ १४ ॥ ततः सञ्चिन्त्यसुचिरं स्मृतिशास्त्राण्यनेकशः ॥ प्रायश्चित्तंददौतेषां सर्वेषांचद्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥ चान्द्रायणशतंप्रादात्सु भद्रायाहिताग्नये ॥ सर्वभाण्डपरित्यागं पुनराधानमेवच ॥ १६ ॥ लक्षहोमविधानंच गृहमध्यविशुद्धये ॥ वह्निप्रवेश नंतस्यास्तत्सुतायाः प्रकीर्तितम् ॥ १७ ॥ येनयावन्तिभोज्यानि तस्यभुक्तानिमन्दिरे ॥ तस्यतावन्तिकृच्छ्राणि ते नोक्तानिमहात्मना ॥ १८ ॥ यैर्जलानिप्रपीतानि यावन्मात्राणितद्गृहे ॥ प्राजापत्यानिदत्तानि तेभ्यस्तावन्तिपार्थि

शास्त्रों को बहुत देरतक भलीभांति चिन्तवन कर उन सब ब्राह्मणों को प्रायश्चित्त दिया ॥ १५ ॥ आहिताग्नि याने यज्ञ के निमित्त अग्नि रखनेवाले सुभद्र के लिये सौ चान्द्रायण व्रतों को दिया व समस्त पात्रों का त्याग और फिर नवीन पात्रों का धरना कहा ॥ १६ ॥ व घर भीतर की पवित्रताके लिये लक्ष मन्त्र से होम की विधि कहा और उसकी उस कन्याको अग्नि में पैठना कहा ॥ १७ ॥ व जिसने उस के घर में जितने भोजन किया था उस के लिये उस महात्मा ने उतनेही

१ एकैकंह्रासयेत्पिण्डं कृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् ॥

कृच्छ्रों को कहा ॥ १८ ॥ व जिन्हों ने उस के घरमें जितने मात्र जल पिया था उनके लिये हे राजन्! उतनेही प्राजापत्य दियेगये ॥ १६ ॥ वैसेही उसके छूने से दूषित उस स्थानके बसने वाले ब्राह्मणों व अन्य नरों को अलग २ प्राजापत्यव्रत दिया ॥ २० ॥ व उसका आधा प्रायश्चित्त स्त्रियों व शूद्रों को और उसका आधा बाल, वृद्ध को व मिट्टी के विकारवाले पात्रों का त्याग निवेदन किया॥ २१ ॥ और सबही मनुष्यों को रसका त्याग व वैसेही ब्रह्म स्थान में यथोदित कोटि संख्यक होम को कहा ॥ २२ ॥ व समस्त स्थान की शुद्धिके लिये केवल स्थान की द्रव्यसे कीर्तन किया इसके अनन्तर फिर बाहुको उठाकर नागरसे उपजे हुये उन समस्त

व ॥१९॥ ब्राह्मणानांतथान्येषां तत्रस्थाननिवासिनाम् ॥ तत्स्पर्शदूषितानाञ्च प्राजापत्यंपृथक्पृथक् ॥२०॥ स्त्रीशूद्राणां तदर्द्धंच तदर्द्धंबालवृद्धयोः ॥ मृन्मयानांचभाण्डानां परित्यागोनिवेदितः ॥ २१ ॥ सर्वेषामेवलोकानां रसत्यागस्तथैवच ॥ कोटिहोमस्तुनिर्दिष्टो ब्रह्मस्थानेयथोदितः ॥ २२ ॥ सर्वस्थानविशुद्ध्यर्थं स्थानवित्तेनकेवलम् ॥ अथोवाचपुनर्विप्रान्सकृत्वाप्रोद्धृतंभुजम् ॥ २३ ॥ तारनादेनमहता सर्वांस्तान्नागरोद्भवान् ॥ सुभद्रेणचसर्वस्वं देयंविप्रेभ्यएवच ॥ २४ ॥ चतुर्थांशश्चयैर्भुक्तं तद्गृहेस्वधनस्यच ॥ अष्टांशंयैर्जलंपीतं गोदानंस्पर्शसम्भवम् ॥ २५ ॥ शेषाणामपिलोकानां यथाशक्त्यातुदक्षिणा ॥ दीक्षितेनजपःकार्य्यो लक्षंगायत्रिसम्भवम् ॥ २६ ॥ शेषैर्विप्रैर्यथावित्तं तथाकार्य्योजपोखिलः ॥ अहश्चैवकरिष्यामि प्राणायामंशतत्रयम् ॥ २७ ॥ नित्यमेवद्विजश्रेष्ठाः षष्ठकालकृताशनः ॥ यावत्संवत्सर

ब्राह्मणोंसे बड़े भारी ओंकार शब्दके द्वारा कहाकि सुभद्रको ब्राह्मणोंहीके लिये सर्वस देना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ और अपने धन का चौथाई भाग उनको देना चाहिये कि जिन्होंने उसके घरमें भोजन किया हो व जिन्होंने पानी पिया हो उनको आठवां भाग देना चाहिये व स्पर्शसे उपजे हुये नर को गोदान देनाचाहिये ॥२५॥ व शेष भी मनुष्यों को शक्ति के अनुकूल दक्षिणा देनाचाहिये और दीक्षित(सुभद्र) को गायत्री से उत्पन्न लक्ष जप करना चाहिये ॥ २६ ॥ और शेष ब्राह्मणों के जैसा धन हो वैसाही सब जप करना चाहिये और हे द्विजोत्तमो! छठे समयमें भोजन करता हुआ मैं भी वर्ष के अन्त तक नित्यही तीनसौ प्राणायाम करूंगा तदनन्तर

१ गोमूत्रंगोमयक्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रंसान्तपनंस्मृतम् ॥ २ त्र्यहप्रातस्त्र्यहसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहंपरञ्चनाश्नीयात्प्राजापत्यञ्चरन्द्विज ॥

शुद्धि होगी ॥ २७।२८ ॥ उस दुष्टात्माके जन मेलनसे वह शुद्धि इसप्रकार हुई है ऐसा कहकर तदनन्तर फिर उसने ब्रह्मस्थान में भली भांति बैठेहुये आदि २ वाले द्विजोत्तमों से मध्यवर्ती के मुख द्वारा कहा कि आज से लगाकर जो नागर द्विजनागरको न जानकर कभी कन्या देवैगा वह धर्मसे भ्रष्ट होगा और वह ब्राह्मणश्राद्ध के अयोग्य व पंक्ति से भिन्न होगा ॥ २९।३०।३१ ॥ और जो नागर को छोड़ अन्य के लिये श्राद्ध वाली वस्तु देगा उसके पितर देवताओं समेत विमुख होजावैंगे ॥ ३२ ॥ व नागरके विना जो सोमपान करैगा वह नागर निरसन्देह मद्यपान करैगा ॥ ३३ ॥ और जो उसके सम्मत विना श्राद्ध कर्म करैगा तदनन्तर निरसन्देह

स्यान्तं ततःशुद्धिर्भविष्यति ॥ २८ ॥ जनसंपर्कतोजाता सैवंतस्यदुरात्मनः ॥ एवमुक्त्वाततोभूयः सप्रोवाचद्विजोत्तमा
न् ॥ २९ ॥ आद्याद्यान्मध्यगास्येन ब्रह्मस्थानंसमाश्रितान् ॥ अद्यप्रभृतियःकन्यामविदित्वातुनागरम् ॥ ३० ॥ नाग
रोदास्यतिकापि पतितःसभविष्यति ॥ अश्राद्धेयोह्यपाङ्क्तेयोनागरस्सभविष्यति ॥ ३१ ॥ यःश्राद्धंनागरंमुक्त्वा अन्य
स्मैसम्प्रदास्यति ॥ विमुखास्तस्ययास्यन्ति पितरोविबुधैस्सह ॥ ३२ ॥ नागरेणविनायस्तु सोमपानंकरिष्यति ॥ स
करिष्यत्यसंदिग्धं मद्यपानन्तुनागरः ॥ ३३ ॥ तन्मतेनविनायस्तु श्राद्धकर्म्मकरिष्यति ॥ ततःसर्ववृथातस्य भविष्य
तिनसंशयः ॥ ३४ ॥ विशुद्धिरहितंयस्तु नागरंभोजयिष्यति ॥ श्राद्धंतस्यापितत्सर्वं व्यर्थतांसम्प्रयास्यति ॥ ३५ ॥ स
वैषांनागराणांच मर्यादेयंकृतामया ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धिःकार्य्याद्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ वर्षेवर्षेचसंप्राप्ते स्वस्थान
स्यविशुद्धये ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिन्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ श्राद्धार्हानागरायेन नागराणां

उसका सब वृथा होजावैगा ॥ ३४ ॥ और जो विशेषकर पवित्रता से रहित नागर को भोजन करावैगा उसकी भी वह सब श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होगी ॥ ३५ ॥ मैंने सब नागरों की इस मर्यादा को किया इसलिये वर्ष २ के भली भांति प्राप्त होने पर अपने स्थान की पवित्रता के लिये द्विजोत्तमों को सब उपाय से श्राद्धक-रना चाहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मुझ से जो पूंछागया इससमस्त वृत्तान्तको तुम से कहा ॥ ३६।३७ ॥ कि जिससे नागरोंके मध्य में श्राद्ध के योग्य

नागर व्यवस्थित हुये वैसेही पहले भर्तृयज्ञ ने उन नागरों की मर्यादा किया है ॥ ३८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांभर्तृयज्ञमर्यादावर्णनंनामनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। ब्रह्मसभा में आयकरि शुद्ध विप्र जिमि होत। इकसौ इक्यानबे महँ सोई चरित उदोत ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इसके अनन्तर समस्त ब्राह्मणों ने हाथों को जोड़ बार २ स्तुति कर उन बड़ी बुद्धिवाले भर्तृयज्ञ से कहा ॥ १ ॥ कि जो आपने यह कहा है कि जो शुद्ध कियाहुआ ब्राह्मण हुआहो वह श्राद्ध, कन्या

व्यवस्थिताः ॥ भर्तृयज्ञेनमर्य्यादा तथातेषांपुराकृता ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये भर्तृयज्ञमर्य्यादावर्णनन्नामनवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६० ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ अथतंब्राह्मणास्सर्वे भर्तृयज्ञंमहामतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वा स्तुतिंकृत्वामुहुर्मुहुः ॥ १ ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं शोधितोयोभवद्द्विजः ॥ श्राद्धस्यकन्यकायाश्च सोमपानस्यसोर्हति ॥ २ ॥ कथंशुद्धिःप्रकर्तव्या तस्य सर्वंब्रवीहिनः ॥ नागरस्यसमस्तस्य देशान्तरगतस्यच ॥ ३ ॥ देशान्तरेप्रजातस्य तत्रजातस्यवापुनः ॥ अज्ञातपितृवर्गस्य सामान्यंपदमिच्छतः ॥ ४ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामते ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाब्राह्मणानांनृपोत्तम ॥ ५ ॥ अब्रवीद्भर्तृयज्ञस्तु स्वाभिप्रायंसुसंमतम् ॥ प्रश्नभारोमहानेष भवद्भिस्समुदाहृतः ॥ ६ ॥ तथापिकथयिष्यामिनमस्कृत्यस्वयम्भुवे ॥ अज्ञातपितृवंशोयो दूरादपिसमागतः ॥ ७ ॥ सामान्यंवाञ्छतिपदं नागरो

और सोमपान के योग्य है ॥ २ ॥ दूसरे देश में गयेहुये उस समस्त नागर को कैसे शुद्धि करना चाहिये यह सब हम लोगों से कहिये ॥ ३ ॥ व दूसरे देश में पैदा हुये या वहां उपजे हुये फिर न जानेहुये पितादि वर्ग वाले व साधारण स्थान को चाहते हुये जनकी किंसप्रकार शुद्धि करना चाहिये ॥ ४ ॥ हे महामते ! इस समस्त चरित्रको हम लोगों से विस्तार से कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन ब्राह्मणों के उस वचन को सुनकर ॥ ५ ॥ भर्तृयज्ञजी ने सुसंमत अपने अभिप्राय को कहा कि यह बड़ाभारी प्रश्नका भार है जो कि आप लोगों ने कहा है ॥ ६ ॥ तिसपरभी ब्रह्मा के लिये प्रणामकर कहूंगा कि न जाने हुये पिताके वंश

वाला दूरसे भी जो आयाहो ॥ ७॥ और मैं नागरहूं यह कहताहुआ वह सामान्य स्थानको चाहता होवै उसकी शुद्धि गर्ता तीर्थसे उपजेहुये ब्राह्मणको अग्रगामी करके मुख्य, शान्त व उत्तम ब्राह्मणों को देना चाहिये और विशेषकर पवित्रता की प्रार्थना करते हुये जन को यदि ब्राह्मण काम से अथवा क्रोधसे या वैर से व वाच्यता (अपवाद) के भयसे शुद्धि नहीं देते हैं तो वहां ब्रह्मघातसे उपजाहुआ पातकसबों को होता है ॥ ८ । ९ । १० ॥ उसी कारण विशेषकर जो दूरसे आया हो उस को बड़े उपायसे उत्तम ब्राह्मणों को शुद्धि देना चाहिये ॥ ११ ॥ और मेरे वचनसे उपजीहुई अनेक भांति की शुद्धिको पाकर अन्य देशोंमें भी पैदाहुआ वह नागर शुद्धि

स्मीतिकीर्तयन् ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या मुख्यैश्शान्तैश्शुभैर्द्विजैः ॥ ८ ॥ गर्ततीर्थभवंविप्रं कृत्वाचैवपुरस्सरम् ॥ विशुद्धिंप्रार्थयानस्य यदियच्छन्तिनद्विजाः ॥ ९ ॥ कामाद्वायदिवाक्रोधात्प्रद्वेषाद्वाच्यताभयात् ॥ ब्रह्महत्योद्भवंपापं स र्वेषांतत्रजायते ॥ १० ॥ तस्मादभ्यागतोयस्तु दूरादपिविशेषतः ॥ तस्यशुद्धिःप्रदातव्या प्रयत्नेनद्विजोत्तमैः ॥ ११ ॥ शुद्धिन्तुविविधांप्राप्य ममवाक्यसमुद्भवाम् ॥ सशुद्धोनागरोज्ञेयो जातोदेशान्तरेष्वपि ॥ १२ ॥ पूर्वंविशोधयेद्देशं त तोमातृकुलंस्मृतम् ॥ ततश्शीलंत्रिभिःशुद्धस्सामान्यंपदमर्हति ॥ १३ ॥ सर्वेषामपिविप्राणां वर्षान्तेसमुपस्थिते ॥ शुद्धिःकार्य्याप्रयत्नेन स्वस्थानस्यविशुद्धये ॥ १४ ॥ तदर्थंशरदश्चान्ते शुद्ध्यर्थेब्राह्मणोत्तमाः ॥ चातुश्चरणसम्पन्नास्सं स्थाप्याःषोडशैवतु ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाःपुरतस्सर्वे शान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ गर्ततीर्थोद्भवंविप्रं तेषांमध्येनिवेशयेत्॥ १६॥तदग्रेपोटिकादेयाश्चतस्रोलक्षणान्विताः ॥ यावत्कार्त्तिकपर्य्यन्तं चातुश्चरणकल्पिताः ॥ १७॥ प्रथमाबह्वृचस्या

जानने योग्य है ॥ १२ ॥ पहले देशको विशोधन करै तदनन्तर माताकाकुल कहा गया है उसके बाद शील (स्वभाव) को शुद्ध करै तीनों से शुद्ध हुआ पुरुष सामान्य पद के योग्य होता है ॥ १३ ॥ व वर्ष का अन्त भली भांति उपस्थित होने पर निजस्थान की विशुद्धिके लिये सब भी ब्राह्मणों को बड़े उपाय से शुद्धि करना चाहिये ॥ १४ ॥ व उसके लिये शरद् के अन्तमें शुद्धि के निमित्त द्विजों में उत्तम सोलहही ब्राह्मण अगाड़ी भलीभांति थापने योग्य हैं जो सब कि चातुश्चरण से संयुत व शान्त, दान्त और जितेन्द्री होवैं उनके मध्य में गर्त तीर्थ में उपजेहुये ब्राह्मण को बिठावै ॥ १५ । १६ ॥ व उनके आगे लक्षणों से संयुत व चातुश्चरणोंसे

कल्पनाकीहुई चार पुटिका कार्तिकपर्यन्त भर देना चाहिये॥ १७॥ पहली बह्वृचके लिये, दूसरी यजुर्वेदीको वैसेही तीसरी सामवेदीको व चौथी आदित्रालेको देना चाहिये॥ १८॥ और वैसेही अन्य पांचवीं मुद्रिकाके लिये कही है पावमान श्रीसूक्त व विष्णु देववाला शाकुन सूक्त॥ १९॥ वैसेही जीवसूक्तसे संयुत रुद्रसूक्त व अन्य शान्तिकको बह्वृच कीर्तनकरै॥ २०॥ व शिव सङ्कल्पवाले शांतिक व चारभांतिके ऋषि कल्पको और माङ्गल्य ब्राह्मण वैसेही गायत्री ब्राह्मण ॥२१॥ तथा पुरुष सूक्त व मधुब्राह्मण मन्त्रको निश्चयकर कीर्तनकरै इसके अनन्तर पंचाङ्गसे संयुत उन रुद्रदेवोंको कहै॥ २२॥ व देवव्रत और गायत्रीवाले व्रतको, वैसेही चन्द्रमा, सूर्यके व्रतोंको

र्थे यजुषस्यतथापरा॥ सामगस्यतथैवान्यातथाद्यस्यचतुर्थिका॥ १८॥ मुद्रिकार्थंतथैवान्या पञ्चमीपरिकीर्तिता॥ श्रीसूक्तंपावमानञ्च शाकुनंविष्णुदैवतम्॥ १९॥ तथैवरुद्रसूक्तंच जीवसूक्तेनसंयुतम्॥ बह्वृचंकीर्तयेत्तत्र शान्तिकञ्चतथापरम्॥ २०॥ शान्तिकंशिवसङ्कल्पं ऋषिकल्पंचतुर्विधम्॥ माङ्गल्यंब्राह्मणंचैव गायत्रीब्राह्मणंतथा॥ २१॥ तथा पुरुषसूक्तंचमधुब्राह्मणमेवच॥ अथतान्कीर्तयेत्तत्र रुद्रान्यञ्चाङ्गसंयुतान्॥ २२॥ देवव्रतंचगायत्र्यं सोमसूर्य्यव्रतेतथा॥ एकविंशतिपर्य्यन्तं तथान्यच्चरथन्तरम्॥२३॥ माव्रतंसहितंविष्णुं ज्येष्ठसामतथैवच॥ सामवेदोक्तरुद्रांश्च भारुण्डैस्सामभिर्युतान्॥२४॥छान्दोग्यःकीर्तयेत्तत्र यच्चान्यच्छान्तिकम्भवेत्॥ गर्भोपनिषदञ्चैव स्कन्दसूक्तंतथापरम्॥२५॥ नीलरुद्रैस्समोपेतान्प्राणरुद्रांस्तथापरान्॥ नाभिचारिकरुद्रांश्च क्षुरिकाद्यान्प्रकीर्तयेत्॥ २६॥ ततःपुण्याहघोषेणगीतवादित्रनिस्स्वनैः॥ शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लचन्दनचर्चितः॥ २७॥ शुद्धिकामोव्रजेत्तत्र यत्रतेब्राह्मणाःस्थिताः॥

और इक्कीसतक अन्यरथन्तर मन्त्रोंको कहै॥ २३॥ और लक्ष्मी व्रत सहित विष्णुको व वैसेही ज्येष्ठ साम व भारुण्ड सामोंसे संयुत सामवेदमें कहेहुये रुद्रोंको ॥२४॥ वहां छान्दोग्य कीर्तनकरै और जो अन्य शान्तिकहोवै उसे व गर्भोपनिषद् और अन्य स्कन्दसूक्तोंको कहै ॥२५॥ और नील रुद्रोंसे संयुत अन्य प्राणरुद्रोंको व अभिचारिक रुद्रोंको नहीं व क्षुरिकादिकसूक्तोंको कीर्तनकरै ॥२६॥ तदनन्तर पुण्याहघोष(शब्द)से व गाने बजानेके शब्दोंद्वारा श्वेत मालाओं व वसनोंको धारे और श्वेत चन्दनसे

चर्चित ॥ २७ ॥ शुद्धिकी कामनावाला मनुष्य वहां जावै जहां वे ब्राह्मण स्थितहोवैं तदनन्तर शिर से उनका प्रणाम कर मध्यवर्ती से कहना चाहिये ॥ २८ ॥ कि तुम प्रसन्नता करने के योग्यहो और मेरे लिये इन समस्त द्विजोत्तमों से प्रार्थना करिये कि जिससे शुद्धि देवैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर गऊके चर्म में भलीभांति लगा हुआ गर्त तीर्थ में उत्पन्न ब्राह्मण नम्रता से नीचे झुँकके खड़ाहो शुद्धिकामनावाले नागर को उसके लिये विशुद्धिके निमित्त ब्राह्मणों से प्रार्थना करै तदनन्तर उस सें सबही द्विजोत्तम पूंछने योग्य हैं ॥ ३० । ३१ ॥ कि यह नागर द्विज बहुतदूर से शुद्धिके लिये प्राप्त हुआ है यदि तुम लोगों को रुचताहो तो इसको शुद्धिदेना

प्रणम्यशिरसातेषां ततोवाच्यस्तुमध्यगः ॥ २८ ॥ मदर्थंप्रार्थयत्वंहि सर्वानेतान्द्विजोत्तमान् ॥ यतःशुद्धिंप्रयच्छन्तिप्र सादंकर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ ततस्तुप्रार्थयेद्विप्रांस्तदर्थंचविशुद्धये ॥ गर्ततीर्थोद्भवोविप्रो विनयावनतःस्थितः ॥ ३० ॥ गो चर्मणिसमालग्नं शुद्धिकामञ्चनागरम् ॥ प्रष्टव्यास्तुततस्तेन सर्वएवद्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥ एषशुद्धिकृतेप्राप्तस्सुदूरान्ना गरोद्विजः ॥ अस्यशुद्धिःप्रदातव्या युष्माकंरोचतेयदि ॥ ३२ ॥ अथतैर्वेदसूक्तेन निषेधोनप्रवर्तनम् ॥ वक्तव्यंवचसा नैव ममवाक्यमिदंस्थितम् ॥ ३३ ॥ तत्रैवबह्वृचान्दृष्ट्वा सचाध्वर्युंततःपरम् ॥ छान्दोग्यांश्चतथाद्यांश्चक्रमेणतुनृपोत्त म ॥ ३४ ॥ यदितेषांमनस्तुष्टिर्जायतेद्विजसत्तमाः ॥ तदासूक्तानिवाक्यानि सौम्यानिसुशुभानिच ॥ ३५ ॥ वारुणया नितथेन्द्राणि माङ्गल्यप्रभवानिच ॥ श्रेष्ठानिमन्त्रलिङ्गानि तथावृद्धिकराणिच ॥ ३६ ॥ यदिनोमानसीतुष्टिस्तेषांचैव प्र जायते ॥ तदारौद्राणियाम्यानि नैर्ऋत्यानिविशेषतः ॥ ३७ ॥ आग्नेयानिचनेष्टानि तथानाशकराणिच ॥ अथयेतत्र

चाहिये ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर उन ब्राह्मणों को वेद सूक्त के कारण वचन से न निषेध कहना चाहिये न विधि कहना चाहिये कि मेरी वाक्य यह स्थित है ॥३३॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! वहींपर वह बह्वृचों अध्वर्यु(यजुर्वेदी)को व छान्दोग्य तथा आद्योंकोक्रमसे देखकर॥३४॥यदि उनके मनकी प्रसन्नता होतीहै तो उस समय द्विजो- त्तम सौम्य व अतिउत्तम सूक्त वाक्यों को ॥ ३५ ॥ जो कि वरुणवाली व इन्द्रवाली व मांगल्यसे उपजी व श्रेष्ठ और मन्त्र चिह्नों वाली व वृद्धिकारी होती हैं उन को कहते हैं ॥ ३६ ॥ और यदि उनके मन वाली प्रसन्नता नहीं होती है तो उस समय, रुद्र, यम व विशेषकर निर्ऋति देववाले मन्त्रों को ॥ ३७॥ व आग्नेय तथा

अशुभ व नाशकारक मन्त्रोंको पढ़तेहैं इसके अनन्तर वहां जो मूर्ख वेदपाठमें तत्पर नहींहोतेहैं ॥ ३८ ॥ उन प्रसन्न द्विजोत्तमोंको पुष्टिदान कहनाचाहिये व प्रसन्नता से रहित तथा क्रोधित द्विजोंको सीत्कार (सी ऐसाशब्द) करनाचाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार समस्त कार्योंमें विशेषकर निर्णय न करनाचाहिये व जैसे मनुष्य प्राकृत वचनोंसे निर्णय करते हैं ॥ ४० ॥ वैसेही निर्णयके अन्तमें मध्यगामी ब्राह्मणको सबके निर्णयसे उपजेहुये तालत्रय (तीन तालों) को भलीभांति देनाचाहिये ॥४१॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येनागरनिर्णयोनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

मूर्खाःस्युर्नवेदपठनेरताः ॥ ३८ ॥ पुष्टिदानन्तुवक्तव्यं तैस्सन्तुष्टैर्द्विजोत्तमैः ॥ सीत्कारःकुपितैःकार्य्यस्सन्तोषेण विवर्जितैः ॥ ३९ ॥ एवंसर्वेषुकृत्येषु नचकार्य्योविनिर्णयः ॥ प्राकृतैर्वचनैश्चैव यथाकुर्वन्तिमानवाः ॥ ४० ॥ तथैवनिर्णयस्यान्तेमध्यगेनविपश्चिता ॥ देयंतालत्रयंसम्यक्सर्वेषांनिर्णयोद्भवम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये नागरनिर्णयोनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाब्राह्मणास्सर्वे विनयावनताःस्थिताः ॥ तेपप्रच्छुर्द्विजश्रेष्ठं कौतुकाविष्टचेतसः ॥ १ ॥ कस्यचिन्निर्णयोदेयो मध्यस्थस्यद्विजोत्तमैः ॥ वेदवाक्येनसन्त्यज्य वाक्यैर्मनुजसम्भवैः ॥ २ ॥ कस्मात्तालत्रयंदेयंमध्यगेनमहात्मना ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिनः ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वाभर्तृयज्ञस्तुतानुवाचद्विजोत्तमान् ॥ श्रूयतामभिधास्यामियदेतत्कारणंस्थितम् ॥ ४ ॥ नासत्यंजायतेवाक्यंनागराणांकथञ्चन ॥ ब्रह्मशालास्थितानाञ्च शुभंवायदि

दो० । जिमि मध्यग द्विज सबन सों निर्णय करत अपार । इकसौ अरु बानवे महँ सो कह चरित उदार ॥ विश्वामित्रजी बोले कि उसको सुनकर कौतूहल से संयुत चित्तवाले व नम्रतासे नीचे झुकेखड़े हुये उन समस्त ब्राह्मणों ने द्विजोत्तम (भर्तृयज्ञ) से पूंछा ॥ १ ॥ कि किसी मध्यस्थ को भलीभांति त्यागकर द्विजोत्तमों को वेद वाक्यके द्वारा मनुष्यसे उपजीहुई वाक्योंसे निर्णयदेना चाहिये ॥ २ ॥ और मध्यगामी महात्माको किस कारण तीनतालों को देनाचाहिये यह सब हम लोगोंसे कहो क्योंकि हम सबोंको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३ ॥ उसको सुनकर भर्तृयज्ञ उन द्विजोत्तमों से बोले कि सुनिये मैं कहूंगा जोकि यह कारण स्थित है ॥ ४ ॥

ब्रह्म सभामें बैठेहुये नागरोंका वचन झूंठ नहीं होताहै चाहै शुभहो या अशुभहो ॥ ५ ॥ उसी कारण प्रिय या अप्रिय प्रार्थना करतेहुये अर्थी (याचक)को वेदोक्त सवनों के द्वारा द्विजोत्तमों को दिखलाते हैं ॥ ६ ॥ तदनन्तर वह मध्यस्थ उस पावन (पवित्र कारक) के निमित्त निर्णयवाले प्रश्नको बार २ द्विजोत्तमों से करै ॥ ७ ॥ क्योंकि ब्रह्मसभा में बैठेहुये ब्राह्मणों का वचन यदि वृथा होजावै तो उनका माहात्म्य नाशहोता है उसी कारण क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ व क्रोधसे वैरहोता है व वैरसे पापका संयोग होताहै इसीकारण मध्यस्थ बार २ द्विजोंसे पूंछता है ॥ ९ ॥ और जब सबका समूह होताहै तब जो मध्यस्थ है वह तीनतालों को देताहै ॥ १० ॥

वाशुभम् ॥ ५ ॥ वेदोक्तैस्सवनैस्तस्माद्दर्शयन्तिद्विजोत्तमान् ॥ इष्टंवायदिवानिष्टं प्रार्थ्यमानस्यचार्थिनः ॥ ६ ॥ भूयो भूयस्ततःकुर्य्यान्मध्यस्थःसद्विजन्मनाम् ॥ प्रश्नंयस्यनिमित्तञ्च पावनस्यविनिर्णयम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मशालोपविष्टानां यदि वाक्यंवृथाभवेत् ॥ माहात्म्यंनश्यतेतेषां ततःक्रोधःप्रजायते ॥ ८ ॥ क्रोधात्सञ्जायतेद्रोहो द्रोहात्पापस्यसङ्गमः ॥ एत स्मात्कारणाद्विप्रान् मध्यस्थःपृच्छतेमुहुः ॥ ९ ॥ समुदायःसमस्तानां यदाचैवप्रजायते ॥ तदातालत्रयंयच्च मध्यस्थः सम्प्रयच्छति ॥ १० ॥ तासान्तुपूर्वायाकामं हन्तिदत्ताप्रदायिनी ॥ द्वितीयायातथाक्रोधं हन्तिलोभंतृतीयका ॥ ११ ॥ एतस्मात्कारणाद्देयं तेनतालत्रयंद्विजाः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ आथर्वस्तुचतुर्थस्तु ब्राह्मणःपरिकीर्तितः ॥ १२ ॥ सकस्मात्प्र थमःपश्चान्नागराणांप्रकीर्तितः ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ आथर्वःप्रथमःपश्चाद्यस्मात्प्रोक्तोमयाद्विजः ॥ १३ ॥ तदहंसंप्रवक्ष्या मि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ ऋग्यजुस्सामसञ्ज्ञाख्या अग्निष्टोमादिकामखाः ॥ १४ ॥ पारत्रिकाःप्रवर्तन्ते नैहिका

उन तालियों के मध्यमें जो पहली तालीहै दी हुई वह कामको नाशकरती है और जो दूसरी प्रदायिनी है वह क्रोधको व तीसरी लोभको नाशकरती है ॥ ११ ॥ इसी कारण हे ब्राह्मणो ! उसे तीनतालोंको देनाचाहिये ब्राह्मणबोले कि आथर्व तो चौथा ब्राह्मण कहागयाहै ॥ १२ ॥ वह पहला किस लिये नागरोंके पीछे कहागया भर्तृयज्ञ बोले कि जिस लिये मैंने प्रथम आथर्व द्विजको पश्चात् कहाहै ॥ १३ ॥ उसको मैं कहूंगा सावधान होतेहुये सुनिये कि ऋग्, यजुः, साम संज्ञक नामक अग्निष्टो

मादिक यज्ञ ॥ १४ ॥ अभिचार वाले व परलोक वाले हैं और अथर्वण वेदमें जो कहा है वह सब इस लोकवाला ॥ १५ ॥ समस्त मनुष्यों के हितके लिये लोकों के करनेवाले ब्रह्मा ने कहाहै पहले अथर्व वेदको कार्यकी सिद्धिके लिये पूंछना चाहिये ॥ १६ ॥ इसी कारण वह पहलाभी चौथा भलीभांति संस्थित हुआ है द्विजोत्तमो ! मुझसे जो पूंछा गया इस समस्त वृत्तान्तको मैंने कहा ॥ १७ ॥ इसी प्रकार सदैवही प्रश्न सम्बन्धी सब करना चाहिये ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ● ॥ ● ॥

आभिचारिकाः ॥ अथर्ववेदेयत्प्रोक्तं सर्वंचैवैहिलौकिकम् ॥ १५ ॥ हितायसर्वलोकानां ब्रह्मणालोककारिणा ॥ अथर्व वेदःप्रथमं प्रष्टव्यःकार्य्यसिद्धये ॥ १६ ॥ एतस्मात्कारणादाद्यस्सचतुर्थोपिसंस्थितः॥एतद्वःसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मि द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ प्रश्नसंबन्धिनंसर्वमेवंकार्य्यंसदैवहि ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ एवंशुद्ध्यर्थमायातो नागराणांपुरःस्थितः ॥ नागरःशुद्धिमाप्नोति यथातन्मेवदद्विज ॥ १ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एवंमध्यस्थवचनात्समुदायेस्थिरेसति ॥ संप्रष्टव्यःपितामाता कतमातेवदस्वनः ॥ २ ॥ किंगोत्रंकतमस्तस्याः पिताकिंप्रवरःस्मृतः ॥ एवंतस्यान्वयंज्ञात्वा गोत्रप्रवरसंयुतम् ॥ ३ ॥ प्रष्टव्याचततोमाता तस्याअपिचया भवेत् ॥ जनित्रीचापिप्रष्टव्यातस्याश्चापिचयाभवेत् ॥ ४ ॥ ज्ञातव्यासाप्रयत्नेन ब्राह्मणैश्शुद्धिकर्म्मणि ॥ पितापिता

दो० । मात पिता कुल पूंछिकै करत शुद्धि ततकाल । इकसौ अरु तिरनवें महँ सोई वर्णत हाल ॥ आनर्त्त बोला कि हे द्विज ! इस भांति शुद्धिके लिये आया व नागरों के आगे बैठाहुआ नागर द्विज जिसभांति शुद्धिको प्राप्तहोता है उसको मुझ से कहो ॥ १ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इस प्रकार समूह के स्थिर होनेपर मध्यस्थ के वचन से वह पूंछने योग्यहै कि तुम्हारा पिता, माता कौन है यह हमलोगोंसे कहो ॥ २ ॥ व कौन गोत्रहै और पिता कौन प्रवरवाला है व उस माताका कौन प्रवरहै इस प्रकार गोत्र, प्रवर से संयुत उसके वंशको जानकर ॥ ३ ॥ तदनन्तर उसकी माताभी जो होवै वह पूंछने योग्यहै व उसकी भी जो माता होवै वह भी

पूंछने योग्य है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों को शुद्धिके कर्म में बड़े यत्नसे उसे पूंछना चाहिये वैसेही पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीनों को भी बड़े यत्नसे शोधन कर-
ना चाहिये वैसेही हे द्विजोत्तमो ! पितामही (आजी, दादी) के पत्तमें ये तीनों पूंछने योग्य है ॥ ५ । ६ ॥ तदनन्तर उसका मातामह (नाना) व पिता और उस
काभी जो पिताहो वह और वैसेही मातामही (नानी) व अन्य पूर्ववाली ॥ ७ ॥ और पितामही की जो माताहो वह पति समेत शोधन करने योग्यहै इस प्रकार
क्रमपूर्वक उसके सब शाखागमको जानकर ॥ ८ ॥ कि सब ओरसे बरगदके समान जड वंशसे नीचे स्थितहै तदनन्तर सिन्दूरके तिलकसे शुद्धि देना चाहिये ॥ ९ ॥

शोधनीयाःप्रयत्नेन त्रयोप्येतेतुतस्यच ॥ तथापितामहीपत्ते त्रयएतेद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥
महश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥५॥ मातामहीचैवतथातथैवान्याःप्रपूर्विका: ॥ ७ ॥ पितामह्याश्चयामाता सा
मातामहस्ततस्तस्य पितातस्यापियःपिता ॥ मूलंवंशादवाधिष्ठं न्यग्रोधस्येवसर्वतः ॥ ततःशु
पिशोध्यासभर्तृका ॥ एवंशाखागमंज्ञात्वा तस्यसर्वंयथाक्रमम् ॥ ८ ॥ ततोवाच्यंनृपश्रेष्ठ मध्यस्थेनतद
द्धिःप्रदातव्यासिन्दूरतिलकेनतु॥ ९ ॥ चातुश्चरणमन्त्रैश्चदत्त्वाशीर्वचनंक्रमात् ॥ सञ्जातःसाम्प्रतंद्विजाः ॥ ११ ॥ ततोग्नि
ग्रतः ॥ १० ॥ दत्त्वातालत्रयंराजञ्छुद्धोयंनागरोद्विजः ॥ सामान्यपदयोग्यश्च दत्त्वापूर्णाहुतिंततः ॥ १२ ॥ विप्रेभ्योदत्तिणांदद्यात्स्वशक्त्या
शरणंगत्वा सन्तर्प्यचहुताशनम् ॥ पञ्चवक्रेणमन्त्रेण ब्राह्मार्थेद्विजवाक्यतः ॥ १३ ॥ पितॄणांजायतेतुष्टिर्वंशोयेनप्रतिष्ठितः ॥ यस्य
भोजनान्विताम् ॥ सिन्दूरतिलकेजाते ब्राह्मार्थेद्विजवाक्यतः ॥ निग्रहस्तस्यकर्तव्योद्विजार्होद्विजसत्तमैः॥ यथानान्योहिजायेतशुद्धि
नोजायतेशुद्धिः शाखाभिर्मूलवशगाः ॥ १४ ॥

और क्रम से चातुश्चरण के मन्त्रों से आशीर्वादके वचनको देकर तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ राजन् ! उसके आगे तीन तालोंको देकर मध्यस्थको कहना चाहिये कि हे ब्रा-
ह्मणो ! शुद्ध हुआ यह नागर द्विज इससमय सामान्य पदके योग्य होगया ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर अग्निके शरणमें जाकर अग्निको भलीभांति तृप्तकरके तदनन्तर
पंचमुख मन्त्रसे पूर्णाहुति देकर ॥ १२ ॥ अपनी शक्तिसे भोजन संयुत दक्षिणा को द्विजोंके लिये देवै ब्राह्मणोंके वचनसे ब्राह्मणताके लिये सिन्दूरका तिलक होनेपर ॥
१३ ॥ पितरों की प्रसन्नता होती है कि जिससे वंश प्रतिष्ठाको प्राप्तहै और वंशकी जड़में प्राप्त जिसकी शुद्धि शाखाओं से नहीं होतीहै ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोत्तमोंको द्विज

योग्य उसके निग्रहं (दण्ड, प्रायश्चित्त) को करना चाहिये कि जिसप्रकार अन्य न उत्पन्न होवै वैसेही उसकी शुद्धि कल्पना कीगई है ॥ १५ ॥ तदनन्तर इसप्रकार शुद्ध कियाहुआ अष्टकुलमें पैदाभी वह ब्राह्मण श्राद्धके योग्य होताहै फिर उस सामान्यको क्या कहनाहै ॥ १६ ॥ जो अशुद्ध ब्राह्मणके द्वारा श्राद्धादिक करताहै उसका वह सब वैसेही वृथा होजाताहै जैसे भस्म(खाक)में हवन वृथा होताहै ॥१७॥ इसलिये अपने स्थानकी शुद्धिकेलिये व वैसेही अष्टकुलकी विशुद्धिके निमित्त यह नागर ब्राह्मण सब उपायसे शुद्ध करनेयोग्यहै ॥१८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

स्तस्यप्रकल्पिता ॥ १५ ॥ एवंसशोधितोविप्रः श्राद्धार्होजायतेततः ॥ अपिचाष्टकुलोत्पन्नस्सामान्यःकिंपुनर्हिसः॥१६॥ अशुद्धेनतुविप्रेण श्राद्धाद्यंप्रकरोतियः ॥ तस्यभस्महुतंयद्वत्सर्वंतज्जायतेवृथा ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शोध्यो यंनागरोद्विजः ॥ स्वस्थानस्यविशुद्ध्यर्थंतथैवाष्टकुलस्यच ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरं खण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ प्रोक्तास्माकन्त्वयाविप्र शुद्धिर्नागरसम्भवा ॥ वंशजाविस्तरेणैव यथापृष्टोसिसुव्रत ॥ १ ॥ साम्प्रतंशीलजांब्रूहिनष्टवंशश्चयोभवेत् ॥ पितामहंनजानातिनचमातामहंनिजम् ॥२॥ तस्यशुद्धिःकथंकार्य्यानागरोस्मीति योवदेत् ॥ विश्वामित्रउवाच॥ एतदर्थंपुरापृष्टो भर्तृयज्ञश्चनागरैः ॥ ३ ॥ नष्टवंशकृतेराजन् यथापृष्टोस्मिवैत्वया ॥

दो० । समर मरे गति सुरनकी पूंछ्यो हरिसों इन्द्र । इकसौ चौरानबेमें सोई चरित सुभद्र ॥ आनर्त बोला कि हे सुव्रत, विप्रजी ! जिस भांति तुमसे पूंछा वैसेही तुमने नागरसे उपजीहुई वंशमें उत्पन्न शुद्धिको विस्तारही से हमलोगोंसे कहा ॥ १ ॥ इस समय शील (स्वभाव या चालचलन) से उत्पन्न हुई शुद्धिको कहिये कि जो नष्टवंशवाला नागर होवै और न पितामहको जानता है न अपने मातामह (नाना) को जानता है ॥ २ ॥ और मैं नागर हूं यह जो कहता है उसकी शुद्धि कैसे करना चाहिये विश्वामित्र जी बोले कि पुरातन समय इसी के लिये नागरों ने भर्तृयज्ञ से पूंछा है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार कि हे राजन् ! नष्टवंशके लिये

तुमने मुझसे पूंछा भर्तृयज्ञ बोले कि जो नष्टवंशवाला सभामें मैं नागर हूं यह कहै ॥ ४ ॥ उसका शील अवश्य जानना चाहिये तदनन्तर शुद्धिकी आज्ञादेवै
नागरोंके जो केवल धर्म व व्यवहार हैं ॥ ५ ॥ वे जिसमें नित्यही वर्तमान हैं वह नागरकी सम्भावना करने योग्यहै हे द्विजोत्तमो ! उस की शुद्धिके लिये घड़ादेना
चाहिये ॥ ६ ॥ तदनन्तर घटमें शुद्धिके प्राप्तहोने पर यह शुद्धताको प्राप्त होता है और श्राद्धके योग्य व कन्या के योग्य तथा विशेषकर सोमपान के योग्य होता
है ॥ ७ ॥ और समस्त स्थान कर्म में सामान्य स्थानके योग्य होताहै हे नृपोत्तम ! मुझसे जो पूंछागया इस सब वृत्तान्त को तुमसे मैंने कहा ॥ ८ ॥ कि जिस प्रकार

भर्तृयज्ञउवाच ॥ नष्टवंशस्तुयोब्रूयान्नागरोस्मीतिसंसदि ॥ ४ ॥ तस्यशीलंप्रविज्ञेयं ततःशुद्धिंसमादिशेत् ॥ नागराणा
न्तुयेधर्म्मा व्यवहाराश्चकेवलाः ॥ ५ ॥ तेतुयस्मिन्प्रवर्त्तन्तेसम्भाव्योनागरोहिसः ॥ तस्यशुद्धिकृतेदेयं घटंब्राह्मण
सत्तमाः ॥ ६ ॥ घटेतुशुद्धिमापन्ने ततोसौशुद्धतांव्रजेत् ॥ श्राद्धार्हःकन्यकार्हश्च सोमार्हश्चविशेषतः ॥ ७ ॥ सामान्य
पदयोग्यश्च समस्तेस्थानकर्म्मणि ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिन्नृपोत्तम ॥ ८ ॥ द्वितीयाजायतेशुद्धिर्यथानष्टान्व
येद्विजे ॥ तस्माद्वदमहाराज यद्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ९ ॥ आनर्तउवाच ॥ कस्मात्तेनागराभूत्वा विप्राश्चाष्टकुलोद्भ
वाः ॥ सर्वेषामुत्तमाजाताः प्राधान्येनव्यवस्थिताः ॥ १० ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तपसस्तुप्रभावोयमेतेषांचद्विजन्मना
म् ॥ विशेषश्चापरस्तेषां तेशक्रेणप्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ तेनतेगौरवंप्राप्तास्सर्वेषाञ्चद्विजन्मनाम् ॥ आनर्तउवाच ॥ क
स्मिन्कालेतुतेविप्राश्शक्रेणात्रप्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥ किमर्थञ्चवदास्माकं विस्तरेणमहामते ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ हिर

नष्टवंशवाले द्विजमें दूसरी शुद्धि होती है इसलिये हे महाराज ! फिर जो सुनना चाहतेहो उसको कहो ॥ ९ ॥ आनर्त बोला कि अष्टकुल में उपजेहुये वे ब्राह्मण
नागर होकर किसलिये सबोंके मध्यमें उत्तम हुये व मुख्यता से टिके ॥ १० ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इन ब्राह्मणों की तपस्या का यह प्रभाव है व उनमें अन्य
विशेष है कि वे इन्द्रसे स्थापित हुये हैं ॥ ११ ॥ उसी कारण समस्त ब्राह्मणोंके बीचमें वे गौरव को प्राप्तहैं आनर्त बोला कि किस समय इन्द्रजीने यहां उन ब्राह्मणों

को थापा है ॥ १२ ॥ और किसलिये हे महामते ! यह हमसे विस्तार समेत कहिये विश्वामित्रजी बोले कि पहले हिरण्याक्ष नामक ऐसा प्रसिद्ध दानवों में उत्तम हुआहै ॥ १३ ॥ उसका इन्द्रके साथ भयङ्कर युद्धहुआ है हे महाराज ! उस सुरासुरसंग्राम में आपसमें जीतकी इच्छावाले बहुत से देवता व दैत्य मरगये इस के अनन्तर इन्द्रने संग्राममें जिन दैत्योंको मारा ॥ १४ । १५ ॥ उनको शुक्रजीने विद्या के बलसे फिर सजीव किया और मृत्यु को प्राप्तहुये देवता किसी प्रकार न जिये ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्रने विष्णुसे कहा कि हे प्रभो ! प्रहारों से सामने धारारूपी तीर्थ में मरेहुये जनोंकी ॥ १७ ॥

हिरण्याक्षइतिख्यातः पुरासीद्दानवोत्तमः ॥ १३ ॥ अभवत्तस्यसङ्ग्रामः शक्रेणसहदारुणः ॥ तत्रदेवासुरेयुद्धे मृताभूरि दिवौकसः ॥ १४ ॥ दानवाश्चमहाराजपरस्परजिगीषवः ॥ अथयेदानवाःसङ्ख्ये शक्रेणविनिपातिताः ॥१५॥ विद्याबले नताञ्छुक्रः सजीवान्कुरुतेपुनः ॥ देवाश्चनिधनंप्राप्तानजीवन्तिकथञ्चन ॥ १६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विष्णुंप्रोवाचवृत्रहा ॥ धारातीर्थंमृतानाञ्च प्रहारैस्संमुखेप्रभो ॥ १७ ॥ यागतिश्चसमादिष्टातांमेवदजनार्द्दन ॥ पराङ्मुखामृतायेच पलायनपरायणाः ॥ १८ ॥ तेषामपिगतिंब्रूहिपादकञ्जममाच्युत ॥ विष्णुरुवाच ॥ धारातीर्थंमृतानाञ्च सम्मुखानांमहाहवे ॥ १९ ॥ यथाचोच्छिन्नबीजानां पुनर्जन्मनविद्यते ॥ येपुनःपृष्ठदेशेतु हन्यन्तेभयविह्वलाः ॥ २० ॥ भज्यमानाः परैस्तेच प्रेतास्स्युस्त्रिदशाधिप ॥ इन्द्रउवाच ॥ केचिद्देवामृतायुद्धे युध्यमानाश्चसम्मुखाः ॥ २१ ॥ तथैवान्येमयादृष्टाहन्यमानाःपराङ्मुखाः ॥ प्रेतत्वंदानवानाञ्च सर्वेषांस्यान्नवाविभो ॥ २२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ असंशयंसहस्राक्ष हतायु

जो गति कहीहो हे जनोंके क्लेश नाशनेवाले (विष्णुजी) ! उसको मुझसे कहिये और भागने में तत्पर व विमुख होतेहुये जे मरे हैं ॥ १८ ॥ हे कमल सरीखे चरणोंवाले, हे अच्युत ! उनकी भी गतिको मुझसे कहिये विष्णुजी बोले कि महायुद्धमें धारारूपी तीर्थमें मरेहुये सम्मुखवाले जनोंकी वही गतिहै ॥ १९ ॥ कि जैसे कटे बीजोंका फिर जन्म नहीं होताहै वैसेही उनका जन्म नहीं होता व हे सुरनायक ! फिर भयसे विकल व भागते हुये जिनको पृष्ठस्थान याने पीठमें शत्रु मारते हैं वे प्रेत होवै हैं इन्द्र बोले कि सामने होतेहुये युद्ध करते कोई देवता युद्धमें मरे हैं ॥ २० । २१ ॥ वैसेही विमुख होकर मारेहुये अन्य देवों को मैंने देखाहै हे विभो !

और समस्त दैत्योंकी प्रेतता होगी या नहीं ॥ २२ ॥ विष्णुजी बोले कि हे हज़ार लोचनोंवाले इन्द्रजी ! युद्धमें जे विमुख होतेहुये मारेगये हैं वे निस्सन्देह प्रेतत्वको
प्राप्तहोते हैं चाहै देवताहों या मनुष्य होवैं ॥ २३ ॥ हे सुरनायक ! विषसे व अग्नि से कुलको नाशनेवाले व आत्मघाती याने स्वयंप्राणोंको नाशनेवाले व दाढ़ व
सींगोंवाले प्राणियों से नष्टदेहवालों को ॥ २४ ॥ निश्चयकर प्रेतता होती है यह निस्सन्देह सत्यहै इन्द्र बोले कि हे विभो ! उनके भयङ्कर प्रेतत्व से कब मुक्तिहोवै-
गी ॥ २५ ॥ यह सब मुझसे कहो कि जिससे मैं यत्न करूं भगवान् बोले कि हे सुरनायक ! जब कन्याराशि में सूर्यनारायण भलीभांति स्थितहोवैं तब भाद्रपद के

दंष्ट्रिभिर्हत
द्वेपराङ्मुखाः ॥ प्रेतत्वंयान्तितेसर्वे देवावामानुषायदि ॥२३॥विषादग्नेःकुलघ्नानां तथाचैवात्मघातिनाम् ॥ दंष्ट्रिभिर्हत
देहानां शृङ्गिभिश्चसुरेश्वर ॥ २४ ॥ प्रेतत्वंजायतेनूनं सत्यमेतदसंशयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कदातेषांभवेन्मुक्तिःप्रेतत्वा
द्दारुणाद्विभो ॥ २५ ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्व येनयत्नंकरोम्यहम् ॥ भगवानुवाच ॥ तेषांसंयुज्यतेश्राद्धं कन्यासंस्थेदिवा
करे ॥ २६ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नभस्यस्यसुरेश्वर ॥ गयायांभक्तिपूर्वन्तु पितामहवचोयथा ॥ २७ ॥ ततःप्रयान्तिते
मोक्षं सत्यमेतदसंशयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कस्मात्तत्रदिनेश्राद्धं क्रियतेमधुसूदन ॥ २८ ॥ शस्त्रैर्विनिहतानाञ्च सर्वमे
विस्तराद्वद ॥ भगवानुवाच ॥ भूतैःप्रेतैःपिशाचैश्च कूष्माण्डैराक्षसैरपि ॥ २९ ॥ यदासम्प्रार्थितःशम्भुर्दिनेतत्रसमागमे ॥
अथैकंदिवसंदेवकन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ ३० ॥ अस्माकंदेहियेनस्यात्तृप्तिर्वंषसमुद्भवा ॥ प्रदत्तेवंशजेश्राद्धे दीनानांत्वं

कृष्णपक्षमें चौदसि तिथि में गयाक्षेत्रके मध्य भक्तिपूर्वक उनकी श्राद्ध भलीभांति योग्य है जैसे कि ब्रह्माजीके वचन हैं ॥ २६ । २७ ॥ तदनन्तर वे मुक्तिको प्राप्त
होतेहैं यह निस्सन्देह सत्यहै इन्द्रजी बोले कि हे मधु दैत्यके मारनेवाले विष्णुजी ! शस्त्रसे मरेहुये प्राणियों की श्राद्ध किस कारण उस दिन कीजातीहै यह सब
मुझसे विस्तारपूर्वक कहो भगवान् बोले कि भूत, प्रेत, पिशाचों, कूष्माण्डों व राक्षसों ने भी ॥ २८ । २९ ॥ समागम (समाज) में जब शिवजी से उस दिन भली
भांति प्रार्थना किया कि हे देव ! कन्याराशि में सूर्य्यनारायणको टिकनेपर एक दिन ॥ ३० ॥ हमलोगों को दीजिये कि जिससे वंशमें उपजेहुये पुरुष के श्राद्ध देने

पर वर्षसे उपजीहुई तृप्तिहोवै तुम हमदीनों के ऊपर दयाकरो ॥ ३१ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि इस दिन के भलीभांति प्राप्त होने पर भादोंकी कृष्णपक्षवाली चौदसि में वंशमें उत्पन्न जो श्राद्ध करैगा ॥ ३२ ॥ उससे जब तक वर्ष स्थित रहैगा तब तक परमप्रीति होगी फिर जो गयामें जाकर तुमलोगों के वंशमें उपजा हुआ पुरुष ॥ ३३ ॥ वैसेही श्राद्ध करैगा उससे मोक्ष पावोगे और शस्त्रसे मरे व निश्चयकर स्वर्ग में टिकेहुये भी पितरों की श्राद्ध जो पुरुष उस दिन के संस्थित (प्राप्त) होनेपर नहीं करैगा उसके पितर दुःखित व क्षुधा, प्यास से विकल देहवाले होकर ॥ ३४ । ३५ ॥ वर्षभर टिकैंगे यह ब्रह्माजीने कहाहै इसलिये सब उपाय-

दयांकुरु ॥ ३१ ॥ भगवानुवाच ॥ यःकरिष्यतिवैश्राद्धमस्मिन्नहनिसंस्थिते ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नभस्यस्यचवंश जः ॥ ३२ ॥ भविष्यतिपराप्रीतिर्यावत्संवत्सरंस्थितम् ॥ यःपुनस्तुगयांगत्वा युष्मद्वंशसमुद्भवः ॥ ३३ ॥ करिष्यति तथाश्राद्धं तेनमुक्तिमवाप्स्यथ ॥ शस्त्रेणनिहतानाञ्च स्वर्गस्थानामपिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ नकरिष्यतियःश्राद्धं तस्मिन्नह निसंस्थिते ॥ क्षुत्पिपासार्तदेहाश्च पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ ३५ ॥ स्थास्यन्तिवत्सरंयावदेतदाहपितामहः ॥ तस्मात्स र्वप्रयत्नेन तस्मिन्नहनिकारयेत् ॥ ३६ ॥ अन्यमुद्दिश्यतत्सर्वं प्रेतानामिहजायते ॥ ततोभगवतादत्ता तेषांचैवतुसाति थिः ॥ ३७ ॥ श्राद्धेकर्म्मणिसञ्जाते विनाशस्त्रहतंजनम् ॥ सम्मुखस्यापिसङ्ग्रामे युध्यमानस्यदेहिनः ॥ ३८ ॥ कदाचि च्चलतेचित्तं तीक्ष्णशस्त्रहतस्यच ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येप्रे तश्राद्धकथनंनामचतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से उस दिन अन्यको उद्देश करावै वह सब यहां प्रेतोंको होताहै उसी कारण भगवान् ने उनको वह तिथि दियाहै ॥ ३६ । ३७ ॥ शस्त्रसे मरे हुये पुरुषके विना संग्राम में सामनेभी युद्ध करतेहुये शरीरधारीका श्राद्ध कर्म भलीभांति होनेपर कभी तीक्ष्ण शस्त्रसे मरे हुये पुरुषका चित्त चलताहै ॥ ३८ । ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां प्रेतश्राद्धकथनंनामचतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ❀ ॥

दो• । गये हिमाचल पै यथा द्विजन काज सुरराज । इकसौ पंचानवे महँ सोई वरणत साज ॥ विष्णुजी बोले कि हे सहस्रलोचन ! ऐसा जानकर मेरा वचन कीजिये कि तुम्हारे आगे युद्धकरतेहुये जे समरशिरमें मरेहैं यदि वे तुमको प्रिय होवैं तो उन सबोंको गया श्राद्धसे तृप्त कराइये जिससे प्रेततासे वे मोक्षको भजैं ॥ १ । २ ॥ और जे भागने में तत्पर व जे पृष्ठदेश (पीठ) में मारेगये हैं उनकीभी श्राद्ध कीजिये इन्द्र बोले कि उस समय वर्ष २ में ब्रह्माजी गयाको जाकर उस दिन दिव्यरूपवाले पितरोंकी श्राद्ध करते हैं इसलिये हे देव ! वहां श्राद्धकी सिद्धिके लिये मैं कैसे जाऊं ॥ ३ । ४ ॥ उस कारण हे जनार्दनजी ! श्राद्धके लिये पृथ्वी

विष्णुरुवाच ॥ एवंज्ञात्वासहस्राक्ष ममवाक्यंसमाचर ॥ यदितेवल्लभास्तेच येहतारणमूर्द्धनि ॥ १ ॥ युध्यमानास्त वाग्रेच गयाश्राद्धेनतर्प्पय ॥ सर्वांस्तान्प्रेतभावाच्च येनमुक्तिंभजन्तिते ॥ २ ॥ पलायनपरायेच पृष्ठदेशेहताश्चये ॥ इन्द्रउवाच ॥ वर्षेवर्षेतदाश्राद्धं प्रकरोतिपितामहः ॥ ३ ॥ गयांगत्वादिनेतस्मिन्पितॄणांदिव्यरूपिणाम् ॥ तत्कथंदेवग च्छामि तत्रश्राद्धस्यसिद्धये ॥ ४ ॥ तस्मात्कथयमेतीर्थं कञ्चिच्छ्राद्धायभूतले ॥ मुक्तिदंयेनगच्छामि तववाक्याज्ज नार्द्दन ॥ ५ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ततस्ससुचिरंध्यात्वा प्रत्युवाचजनार्द्दनः ॥ अस्तितीर्थंमहत्पुण्यं तस्मादभ्यधिकं चयत ॥ ६ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे कूपिकामध्यसंस्थितम् ॥ अमावस्यादिनेतत्र चतुर्दश्याश्चदेवप ॥ ७ ॥ गयासंक्रमतेस म्यक्सर्वतीर्थसमन्विता ॥ कन्यासंस्थेरवौतत्र यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ ८ ॥ अष्टवंशोद्भवैर्विप्रैस्सपितॄंस्तारयेन्निजान् ॥ अपिप्रेतत्वमप्राप्तान्किंपुनःस्वर्गसंस्थितान् ॥ ९ ॥ तत्क्षेत्रप्रभवाविप्रा अष्टवंशसमुद्भवाः ॥ तपउग्रंसमास्थाय वर्तन्ते

में किसी मुक्तिदायक तीर्थको मुझसे कहो जिससे तुम्हारे वचनसे मैं जाऊं ॥ ५ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि तदनन्तर विष्णुजीने बहुत देरतक ध्यानकर प्रत्युत्तरदिया जो उससे भी अधिक बडाभारी पुण्यदायक तीर्थ है ॥ ६ ॥ वह हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्रमें कूपिका के बीचमें संस्थितहै हे सुरपालक ! अमावस व चौदसि न वहां ॥ ७ ॥ समस्त तीर्थों से संयुत गयातीर्थ भलीभांति गमन करताहै जब कन्याराशिमें सूर्य संस्थित होवैं तब वहां जो पुरुष अष्टकुल में उपजेहुये द्विजोंके श्राद्धकरताहै वह प्रेततामें प्राप्त अपने पितरोंको तारताहै फिर स्वर्ग में टिकनेवालों को क्याकहना है ॥ ८ । ९ ॥ उस क्षेत्रमें उत्पन्न व अष्टकुल में उपजेहुये

द्विज उग्र तपस्या में भलीभांति टिककर हिमाचल पै वर्तमानहोते हैं ॥ १० ॥ आनर्ताधिपति के दानसे डरेहुये वहां भलीभांति प्राप्तहैं प्रिय वचन पूर्वक उपायों से भलीभांति समझाकर तुम उनको लाकर वहां गौरव से आइये और उनके आगे न्याय पूर्वक श्राद्ध करिये तदनन्तर मनोरथ को पावोगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ व श्राद्धके कारण तुम समेत हम सबोंसे पूजने योग्य वे भी सब सुखी होवैंगे ॥ १३ ॥ उस को सुनकर अचानक हीं इन्द्रजी बड़े सन्तोषको प्राप्तहुये व हिमाचल पै भलीभांति आश्रित होकर इन्द्रने भी विष्णुसे कहे हुये अष्टवंश में उत्पन्न ब्राह्मणोंको देखा ॥ १४।१५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

हिमपर्वते ॥ १० ॥ आनर्ताधिपतेर्दानाद्भीतास्तत्रसमागताः ॥ तान्गृहीत्वात्वमागच्छ तत्रसम्बोध्यगौरवात् ॥११॥
सामपूर्वैरुपायैश्च तेषामग्रेसमाचर ॥ श्राद्धंचैवयथान्यायंततःप्राप्स्यसिवाञ्छितम् ॥१२॥ तेचापिसुखिनस्सर्वे भवि
ष्यन्तिसमागताः ॥ त्वयासहप्रपूज्याश्च अस्माभिःश्राद्धकारणात् ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वासहसाशक्रस्सन्तोषंपरमंगतः॥
हिमवन्तंसमाश्रित्य शक्रोपिददृशेद्विजान् ॥ १४ ॥ अष्टवंशसमुद्भूतान्विष्णुनासमुदाहृतान् ॥ १५॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे हाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ * ॥
विश्वामित्रउवाच॥ इन्द्रोपिविष्णुवाक्येनहिमवन्तंसमागतः ॥ ऐरावतंसमारुह्य नागेन्द्रंपर्वतोपमम् ॥ १ ॥ तत्राप
श्यद्दर्षींस्तांश्च चमत्कारसमुद्भवान् ॥ नियमैस्संयमैर्युक्तान्सदाचारपरायणान् ॥ २ ॥ वानप्रस्थाश्रमोपेतान्कामक्रो
धविवर्जितान् ॥ एकचित्ताःस्थिताः केचिदेकान्तरितभोजनाः ॥ ३ ॥ षष्ठकालाशिनश्चान्ये चान्द्रायणपरायणाः ॥ अ

भाषाटीकायांइन्द्रस्यहिमाचलगमनंनामपंचनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥
दो० । यथा सुरनकी श्राद्धको कीन्ह्यो है सुरपाल । इकसौ अरु छानबे महँ सोई चरित रसाल ॥ विश्वामित्रजी बोले कि विष्णुके वचनसे पर्वतके समान व हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावतपै भलीभांति चढ़कर इन्द्रभी हिमाचल पै आये ॥ १ ॥ वहां नियमों संयमोंसे संयुत व उत्तम आचारमें तत्पर उन चमत्कार पुरमें उपजेहुये ऋषियोंको देखा ॥ २ ॥ जोकि वानप्रस्थ आश्रमसे संयुत व काम, क्रोध से रहितथे कोई एकाग्र चित्तवाले व एक दिनके अन्तर से खानेवाले थे ॥ ३ ॥ व अन्य छठे समय में

भोजन करनेवाले व चान्द्रायण व्रतोंमें तत्पर थे कोई पत्थलसे कूटकर खानेवाले व अन्य दन्त रूप ओखलीमें कूटकर भोजनकरनेवालेथे ॥ ४ ॥ व कोई गिरे पत्तोंके खानेवाले व अपर जलहीके भोजनवाले थे व पवन भोजनवाले अन्य ऋषियों ने भयङ्कर तपस्या कियाहैं ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर चारणों, सिद्धों व साध्योंसे उत्तम वचनों के द्वारा पूजित इन्द्रको वहां आतेहुये भलीभांति देखकर द्विजोत्तमों ने आपस में कहा ॥ ६ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! आपलोगों के आश्रम में ये इन्द्र भलीभांति आये हैं इनके लिये जो शास्त्र चिन्तकों ने कहाहो वह पूजन कियाजावै ॥ ७ ॥ तदनन्तर विस्मय से हर्षित लोचनोंवाले व हाथोंको जोड़ेहुये स्थित सब ब्राह्मण शीघ्रही सामने

श्मकुट्टाशिनःकेचिद्दन्तोलूखलिनःपरे ॥ ४ ॥ शीर्णपर्णाशिनःकेचिज्जलाहारास्तथापरे ॥ वायुभक्षास्तथैवान्ये तपस्तेपुःसुदारुणम् ॥ ५ ॥ अथशक्रंसमालोक्य तत्रायान्तंद्विजोत्तमाः ॥ पूजितंचारणैस्सिद्धैस्तथासाध्यैःसदुक्तिभिः ॥ ६ ॥ अयंशक्रःसमायातो भवतामाश्रमेद्विजाः ॥ क्रियतामर्हणंचास्मैयच्चोक्तंशास्त्रचिन्तकैः ॥ ७ ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ सम्मुखाःप्रययुस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटाःस्थिताः ॥ ८ ॥ गृह्योक्तविधिनातस्मै संप्रहृष्टतनूरुहाः ॥ प्रोचुश्चविनयात्सर्वे किमागमनकारणम् ॥ ९ ॥ निरीहस्यापिदेवेन्द्र कौतुकंनोव्यवस्थितम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ कुशलंवो द्विजश्रेष्ठा अग्निहोत्रेषुकृत्स्नशः ॥ १० ॥ तपश्चर्य्यासुसर्वासुवेदाभ्यासेतथाश्रुतौ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं बहुतीर्थमयंशुभम् ॥ ११ ॥ कस्मादत्रसमायाता हिमाद्रिजनकेगिरौ ॥ तस्मात्सर्वेमयासार्द्धंसमागच्छन्तुभोद्विजाः ॥ १२ ॥ चमत्कारपुरेपुण्ये बहुविप्रसमाकुले ॥ वासुदेवसमादेशात्तत्रगत्वाथसाम्प्रतम् ॥ १३ ॥ गयाकूप्यांकरिष्यामि श्राद्धंभक्त्या

गये ॥ ८ ॥ व प्रसन्न रोमोंवाले सब गृह्योक्त विधानसे उन इन्द्रके लिये पूजन कर नम्रतासे बोले कि हे सुरेशजी ! निरीह (निर्लोभ) भी तुम्हारे आनेका क्याकारण है यह हमलोगों को आश्चर्य प्राप्तहै इन्द्रबोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों के समस्त अग्निहोत्रों में कुशल है ॥ ९ । १० ॥ व वैसेही समस्त तप व वेदाभ्यास और वेदमें कुशलहै हाटकेश्वरज क्षेत्र बहुत तीर्थों से प्रधान व उत्तम है ॥ ११ ॥ और इस हिम (पाला) आदिक पैदा करनेवाले पर्वत पै तुम लोग किस कारण आये हो इसलिये अहो ब्राह्मणो ! बहुत द्विजोंसे भलीभांति व्याप्त व पुण्यदायक चमत्कार नगरमें मुझ समेत आपलोग चलिये विष्णुजीकी आज्ञासे वहां जाकर इसके

अनन्तर इस समय ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! प्रेत पक्षके प्राप्त होनेपर चौदसि तिथिमें मैं गयाकूपिका के समीप तुमलोगोंके आगे भक्तिसे श्राद्ध करूंगा ॥ १४ ॥ आप सबोंके प्रगटही आकाश गामित्व भलीभांति प्राप्तहै इसलिये बाल,वृद्ध, स्त्रियों समेत व अग्निहोत्र सहित तुमलोग मेरेसाथ उसस्थान पै चलिये तुमलोगों का कल्याणहोगा ब्राह्मण बोले कि हमलोग फिर वहां चमत्कार पुरको न जावैंगे ॥ १५ । १६ ॥ वहां और भी वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले व यज्ञ कराने वाले, स्मृत्तियों के जाननेहारे व वेदोंमें तत्पर नागर ब्राह्मणहैं ॥ १७ ॥ यदि तुम्हारे श्राद्धसेउपजीहुई श्रद्धाहै तो उनके आगे श्राद्ध करिये इन्द्रबोले कि वहां जिन किसी ब्राह्मणोंको आप

द्विजोत्तमाः ॥ युष्मदग्रेचतुर्दश्यां प्रेतपक्षउपस्थिते ॥ १४ ॥ खेचरत्वंसमायातं सर्वेषांभवतांस्फुटम् ॥ सबालवृद्धपत्नी
काःसाग्निहोत्रामयासह॥१५॥तस्माद्गच्छथभद्रंवस्तत्रस्थानेभविष्यति ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नवयंतत्रयास्यामश्चमत्कार
पुरंपुनः ॥ १६ ॥ अन्येपिब्राह्मणास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ नागरायाज्ञिकाःसन्तिस्मार्ताःश्रुतिपरायणाः ॥ १७ ॥ तेषाम
ग्रेकुरुश्राद्धं श्रद्धाचेच्छ्राद्धजातव ॥ इन्द्रउवाच ॥ तत्रयेब्राह्मणाःकेचिद्भवद्भिःसम्प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ तथाविधाश्चते
सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्ना याज्ञिकाश्चविशेषतः ॥ १९ ॥ परंद्वेषपरास्सर्वे तथापरुषवादिनः ॥ अहङ्का
रेणसंयुक्ताः परस्परजिगीषया ॥ २० ॥ तपसाविप्रयुक्ताश्चभोगसक्तादिवानिशम् ॥ यूयंसर्वेगुणोपेता विष्णुनामेप्रकी
र्तिताः ॥ २१ ॥ तस्मादागमनंकार्य्यं मयासहसमस्तकैः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ अस्माभिस्तेनदोषेण त्यक्तंस्थानंनिजंहित
त् ॥ २२ ॥ बहुतीर्थसमोपेतं स्वर्गमार्गप्रदर्शकम् ॥ यदियास्यामहेतत्र त्वयासार्द्धंपुरन्दर ॥ २३ ॥ अस्माकंस्वजनास्स

लोगोने भलीभांति कहाहै ॥१८॥ वे सब उसीभांतिके व वेद वेदाङ्गके पारगामी, शास्त्र पठनमें सम्पन्न व विशेषतासे यज्ञ कराने वालेहैं ॥१९॥ परन्तु वे सब वैरमें तत्पर व कठोर कहनेवाले और आपसमें जीतकी इच्छासे गर्वयुक्तहैं ॥२०॥ और तपस्यासे भिन्न व दिनरात सुखमें आसक्त (लगेहुये) हैं और विष्णुजीने तुम सबोंको गुणोंसे संयुक्त मुझसे कहाहै ॥ २१ ॥ उसी कारण मेरेसाथ सबों को आगमन करना चाहिये ब्राह्मणबोले कि हमलोगों ने अपने उस स्थानको उस दोषसे त्यागकियाहै ॥ २२ ॥ जो स्थान कि बहुत तीर्थों से संयुत व स्वर्गमार्ग को भलीभांति दिखलानेवाला है हे पुरन्दर ! यदि हम लोग तुम्हारे साथ वहां जावैंगे ॥ २३ ॥ तो अनुराग व वैरमें

लगेहुये हमलोगोंके निजजन नित्यही पग २ पै अपराधोंको करैंगे ॥२४॥ क्योंकि वे ईर्ष्या धर्मसे संयुत व कठोर आखरों के कहनेवाले हैं उससे क्रोध उत्पन्नहोगा और क्रोधसे तपस्याका नाशहोगा ॥ २५ ॥ और उस तपस्याके नाशसे मुक्ति नहीं मिलतीहै इसलिये हे विभो ! हमलोग कैसेजावैं और उस देशमें सदैव दानमें त त्पर भूपति है ॥ २६ ॥ वह प्रसिद्ध आनर्त देशका स्वामी सदैव त्यौहारके समयमें हाथी, घोड़ा व सुवर्णादिक अनेक भांतिके दान देताहै ॥ २७ ॥ यदि हमलोग वहां नहीं ग्रहण करतेहैं तो, वह क्रोधको प्राप्तहोताहै राजाको क्रोधमें प्राप्तहोने परव निज जनोंके वैरीहोने पर ॥ २८ ॥ हमलोगों की तपस्याकी सिद्धि नहीं होती उसीसे अ-

ततः वैं रागद्वेषपरायणाः ॥ अपराधान्करिष्यन्ति नित्यमेवपदेपदे ॥ २४॥ ईर्ष्याधर्म्मसमोपेताः परुषाक्षरजल्पकाः ॥ ततः सम्पत्स्यतेक्रोधः क्रोधाच्चतपसःक्षयः ॥ २५ ॥ ततोनप्राप्यतेमुक्तिस्तद्गच्छामःकथंविभो ॥ अपरंतत्रभूपोस्ति देशे दानपरःसदा ॥ २६ ॥ आनर्ताधिपतिःख्यातःपर्वकालेसदैवसः ॥ ददातिविविधंदानं हस्त्यश्वकनकादिकम् ॥ २७ ॥ य दितत्रनगृह्णीमस्तदाकोपंसगच्छति ॥ भूपालेकोपमापन्नेस्वजनेषुविरोधिषु॥२८॥ सिद्धिर्नतपसोस्माकंतेनत्यक्तंनिजंपुर म् ॥ यदिगृह्णीमहेदानं तस्यभूपस्यदेवप ॥ २९॥ तपसस्संप्रणाशःस्याद्यत्तुप्रोक्तंस्वयंभुवा ॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्री समोध्वजी ॥ ३० ॥ दशध्वजीसमोवेश्या दशवेश्यासमोनृपः ॥ तत्कथंतस्यगृह्णीमोदानंपापरतस्यच ॥ ३१ ॥ यथा न्येनागरास्सर्वे लोभेनमहतान्विताः ॥ इन्द्रउवाच ॥ प्रभावोयंद्विजश्रेष्ठास्तस्यक्षेत्रस्यसंस्थितः ॥ ३२ ॥ हाटकेश्वरसं ज्ञस्य सर्वदैवव्यवस्थितः ॥ पितॄणाञ्चसुतानाञ्च बन्धूनाञ्चविशेषतः ॥ ३३ ॥ श्वश्रूणाञ्चस्नुषाणाञ्च भगिनीभ्रातृजाय

पना नगर छोड़ागया हे सुरपालक ! यदि उस भूपका दान ग्रहणकरैं ॥ २९ ॥ तो तपस्या का विनाश होताहै जोकि स्वयम्भूने कहा है कि दशसूना (खन्धानी) के बराबर चक्री (कुँभार) होताहै व दश कुलालोंके समान ध्वजी (तेली) होता है ॥ ३० ॥ व दश ध्वजियों के समान वेश्या होती है और दश वेश्याओं के बराबर राजाहोताहै इसलिये पापमें परायण उस राजाके दानको हमलोग कैसेलेवैं ॥ ३१ ॥ जैसे कि बड़े लालचसे युक्त और नागर ग्रहण करते हैं इन्द्रबोले कि हे द्विजोत्त मो ! उस हाटकेश्वर संज्ञक क्षेत्रका यह प्रभाव सदैवही भलीभांति स्थित व व्यवस्थितहै कि विशेषकर पिताओं व पुत्रों और भाइयों ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ व सासु, पतोहुवोंका

बहिन व भाई की स्त्री का वैर वर्त्तमान है क्योंकि हाटकेश्वर संज्ञक देव विद्यमान हैं व उस पुरके प्रभाव से समस्त जन भलीभांति मुक्तहोजाते हैं उसीसे आपस में बहुत वैर करतेहैं ॥ ३४ । ३५ ॥ क्या आपलोगों ने नहीं जाना कि जिसप्रकार लक्ष्मण समेत रामजी उसी क्रोधके कारण सीताजी के साथ बड़े वैरको प्राप्तहुये हैं ॥ ३६ ॥ और लक्ष्मणही सीताके साथ क्रोधसे संयुत हुये हैं और हे ब्राह्मणो ! उस समय उसीसे उन राम जानकी जी से न कहने योग्य वचन कहाहै ॥ ३७ ॥ यदि क्रोध रहितहो मनुष्य वहां महीने भरभी निवासकरै तो मुक्तिको प्राप्तहोवै और यज्ञ से स्वर्ग होताहै ॥ ३८ ॥ इसलिये वहां मेरेसाथ तुमलोगों को अवश्यजाना चाहिये

योः ॥ विरोधंवर्ततेदेवो हाटकेश्वरसञ्ज्ञितः ॥ ३४ ॥ पुरस्यविद्यतेतस्य प्रतापेनाखिलाजनाः ॥ संमुच्यन्तेततोद्वेषं प्र
कुर्वन्तिपरस्परम् ॥ ३५ ॥ किंनज्ञातंभवद्भिस्तुयथारामःसलक्ष्मणः ॥ सीतयासहसंप्राप्तो विरोधंपरमंततः ॥ ३६ ॥
सीतयालक्ष्मणश्चैव सार्द्धकोपेनसंयुतः ॥ अवाच्यंप्रोक्तवान्विप्रास्तौचतेनस्वयंतदा ॥ ३७ ॥ अपिमासंवसेत्तत्र यदिको
पविवर्जितः ॥ तदामुक्तिमवाप्नोति स्वर्गंभवतिसत्रतः ॥ ३८ ॥ तस्मात्तत्रप्रगन्तव्यं युष्माभिस्तुमयासह ॥ ईर्ष्याधर्म्मंन
युष्माभिस्तेकरिष्यन्तिनागराः ॥ ३९ ॥ नचैवभवतांकोपस्तत्रस्थानेभविष्यति ॥ प्रसादान्ममविप्रेन्द्रास्सत्यमेतन्म
योदितम् ॥ ४० ॥ आनर्तःपार्थिवोदाने योजयेन्नैवकर्हिचित् ॥ युष्माकंपुत्रपौत्रेभ्यः प्रदास्यन्तिचकन्यकाः ॥ ४१ ॥
सहस्रगुणितंतेषां तत्फलंसंभविष्यति ॥ अमावस्यादिनेश्राद्धं कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ ४२ ॥ युष्मदग्रेद्विजश्रेष्ठा गयाकू
प्यांकरिष्यति ॥ यस्तस्यतत्फलंभावि सहस्रशतसम्मितम् ॥ ४३ ॥ गयाश्राद्धान्नसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥

और वे नागर तुमलोगों के साथ ईर्षा धर्म को न करैंगे ॥ ३९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! मेरी प्रसन्नता से उस स्थानमें आपलोगों को क्रोध न होगा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ४० ॥ और आनर्त राजा कभी दानमें न युक्त करैगा व तुम्हारे पुत्र, पौत्रोंको जे कन्या देवैंगे ॥ ४१ ॥ उनको वह फल हजार गुनाहोगा व कन्याराशि में सूर्यको टिकनेपर अमावसके दिन ॥ ४२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! गया कूपिकाके समीप जो तुम लोगों के आगे श्राद्धकरैगा उसको यह फल निरसन्देह गया श्राद्धसे सहस्र शत

याने लाखगुना के बराबर होगा यह मैंने सत्य कहाहै हे द्विजोत्तमो ! यदि श्राद्धके लिये वहां न जावोगे ॥ ४३।४४ ॥ तो तुमलोगों की तपस्याके विघ्नकारक वचन
को मैं आपही कहूंगा ऐसा जानकर वहां मेरेसाथ आदरसमेत जाकर प्राप्तहोवो ॥ ४५ ॥ उन इन्द्रजी से इस प्रकार कहेहुये वे सब उसी क्षण इन्द्रके साथ कश्यप व
कौण्डिन्य व विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ, भरद्वाज व अत्रि हे राजन् ! इन्द्रके साथ यह कुलाष्टक प्राप्तहुआ और भलीभांति ॥ ४६।४७ ॥ श्रद्धासंयुत इन्द्रने अग्निष्वा-
त्तादिक समस्त पितरों व विश्वेदेवों को बुलाकर चमत्कार पुरको प्रस्थान किया इसीअवसरमें लोकोंके पितामह जो ब्रह्माजी हैं ॥ ४८।४९ ॥ उन्होंने भी उस दिन श्राद्ध

यदिश्राद्धकृतेतत्रनयास्यथद्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥ ततःस्वयंप्रवक्ष्यामि तपोविघ्नकरंहिवः ॥ एवंज्ञात्वामयासार्द्धं तत्रगत्वाच
सादरम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्तास्तेनतेसर्वे शक्रेणसहतत्क्षणात् ॥ कश्यपश्चैवकौण्डिन्यो विश्वामित्रोथगौतमः ॥ ४६ ॥ जमद
ग्निर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोत्रिरेवच ॥ एतत्कुलाष्टकंप्राप्तमिन्द्रेणसहपार्थिव ॥ ४७ ॥ अग्निष्वात्तादिकान्सर्वान्पितॄनाहूयकृ
त्स्नशः ॥ विश्वेदेवांस्तथाचैव प्रस्थितःपाकशासनः ॥ ४८ ॥ सम्यक्श्रद्धासमाविष्टश्चमत्कारपुरंप्रति ॥ एतस्मिन्न
वकालेतु ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४९ ॥ गयायांप्रस्थितःसोपिश्राद्धार्थंतत्रवासरे ॥ विश्वेदेवाःप्रतिज्ञाय गयायांप्रस्थितं
विधिम् ॥ ५० ॥ शक्रश्राद्धंपरित्यज्य गतायत्रपितामहः ॥ शक्रोपितत्पुरंप्राप्य गयाकूप्यामुपागतः ॥ ५१ ॥ ततःस्ना
त्वाह्वयामास श्राद्धेश्रद्धासमन्वितः ॥ विश्वेदेवांस्ततश्चैवकालेकुतुपसञ्ज्ञिते ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तास्समाहूता
श्चतेनये ॥ पितरोदेवरूपाये प्रेतरूपास्तथैवच ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षरूपिणस्सर्वे द्विजोपान्तेसमाश्रिताः ॥ विश्वेदेवानसंप्रा

के लिये गयामें प्रस्थान किया व गयामें प्रस्थान कियेहुये ब्रह्माको जानकर विश्वे देवताओं ने ॥ ५० ॥ इन्द्रकी श्राद्ध छोड़कर वहांगये जहां कि ब्रह्माजी थे व इन्द्र
भी उस पुरको पाकर गयाकूपिका के समीप आये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर नहाकर उस के उपरान्त विश्वेदेवों को बुलाकर कुतुप संज्ञक (आठवें मुहूर्त) वाले समय में
श्राद्धके निमित्त श्रद्धा संयुत हुये ॥ ५२ ॥ इसी अवसर में उन इन्द्रसे जे देवरूप पितर व जे प्रेत रूपवाले पितर बुलायेगये वे प्राप्तहुये ॥ ५३ ॥ व प्रत्यक्ष रूपवाले

सब द्विजोंके समीप भलीभांति आश्रित हुये उससमय जो गयामें गयेथे वे विश्वे देवता न प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ उसी कारण इन्द्रने उस श्राद्धके लिये देरकिया क्योंकि श्राद्धमें विश्वेदेवा पहलेही पूजने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ इसी अवसर में मुनिश्रेष्ठ नारद जी प्राप्तहुये व भलीभांति आकर विश्वेदेवों की इच्छावाले इन्द्र से बोले ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले कि हे इन्द्रजी! विश्वेदेवता संयुतहोकर ब्रह्माकी श्राद्धमें गयाको गयेहैं प्रसन्नजातेहुये उनको मैंने देखाहै ॥ ५७ ॥ उसको सुनकर उसीक्षण ब्राह्मणों के आगे बैठेहुये इन्द्र उन विश्वेदेवोंके ऊपर क्रोधितहोकर कठोर वचनबोले ॥ ५८ ॥ कि अहो ब्राह्मणो ! मैं आज विश्वेदेवों के विना श्राद्धकरूंगा वैसेही और समस्त

ष्ठा येगयायांगतास्तदा ॥ ५४ ॥ ततोविलम्बमकरोत्तदर्थेपाकशासनः ॥ विश्वेदेवायतःश्राद्धे पूज्याःप्रथममेवच ॥ ५५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नारदोमुनिसत्तमः ॥ शक्रंप्राहसमागत्य विश्वेदेवाभिकाङ्क्षिणम् ॥ ५६ ॥ नारदउवाच ॥ विश्वेदेवागताश्शक्र श्राद्धेपैतामहेयुताः ॥ गयायांतेमयादृष्टा गच्छमानाःप्रहर्षिताः ॥ ५७ ॥ तच्छ्रुत्वातत्रकुपितस्ते षामुपरितत्क्षणात् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं विप्राणांपुरतःस्थितः ॥ ५८ ॥ विश्वेदेवान्विनाश्राद्धं करिष्याम्यहमद्यभोः ॥ तथान्येमानवास्सर्वे करिष्यन्तिधरातले ॥ ५९ ॥ विश्वेदेवान्पुरःस्थाप्य पितृश्राद्धंकरिष्यति ॥ व्यर्थंतांयास्यतेतस्य ऊषरेवर्षितंयथा ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्ष एकोद्दिष्टानिकृत्स्नशः ॥ चकारसर्वदेवानां येहतारणमूर्द्धनि ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ येषामुद्दिश्यतच्छ्राद्धं कृतंतेषांनृपोत्तम ॥ ६२ ॥ शक्रशक्रमहाबाहोयेषांश्राद्धं कृतंत्वया ॥ प्रेतत्वंसंस्थितानाञ्च प्रेतत्वेनविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ गतास्स्वर्गेप्रसादात्ते दिव्यरूपवपुर्द्धराः ॥ येपुनःस्वर्गताःपू

मनुष्य भूतलमें करैंगे ॥ ५९ ॥ व जो विश्वेदेवों को आगे थापकर पितर श्राद्ध करैगा उसका यह वैसेही व्यर्थताको प्राप्तहोगा जैसे कि ऊसरमें वरसना व्यर्थहोता है॥ ६० ॥ ऐसा कहकर हजार लोचनोंवाले इन्द्रने उन समस्त देवताओं के एकोद्दिष्टों को सम्पूर्णता से किया जोकि संग्राम शिरमें मारेगये थे ॥ ६१ ॥ इसी अवसरमें हे नृपोत्तम ! जिनको उद्देशकर वह श्राद्धकीगई उनकी बिन शरीरवाली (आकाश) वाणीहुई ॥ ६२ ॥ कि अहोइन्द्र अहोइन्द्र हे महाबाहो ! तुमने प्रेततामें भली भांति टिकेहुये जिनदेवों की श्राद्धकिया वे प्रेतत्वसे रहित ॥ ६३ ॥ व दिव्यरूपवाले शरीरोंको धारेहुये तुम्हारी प्रसन्नतासे स्वर्गमें गये व फिर महासमरमें युद्ध करतेहुये

जे पहले स्वर्गगयेथे ॥६४॥ हे इन्द्रजी ! वे समस्त तुम्हारी प्रसन्नतासे मोक्षको प्राप्तहुये उस वचनको सुनकर इन्द्रजी बड़ी प्रसन्नतासे संयुतहुये ॥६५॥ व अहोतीर्थ अहोतीर्थ ऐसीबार २ प्रशंसा करतेहुये स्थितथे इसी अवसरमें हे राजन् ! गयामें ब्रह्माकी श्राद्धको सिद्धकर भलीभांति उत्कंठित होतेहुये विश्वेदेवता वहां प्राप्तहुये व वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्रसे बोले कि हे शतक्रतो (इन्द्रजी)! फिर भी श्राद्धकरिये ॥ ६६ । ६७ ॥ क्योंकि हमलोगोंके विना श्राद्धसे उपजाहुआ फलनहीं मिलता और तुम्हारी श्राद्धके कारण ब्रह्माकी श्राद्धको सिद्धकरके हमलोग दूरसेआये हैं जिससे कि पहले न्योतेगये थे उनके उस वचनको सुनकर क्रोधहो इन्द्रने ॥ ६८ । ६९ ॥ मेघके स

वैं युध्यमानामहाहवे ॥ ६४ ॥ तेचमोक्षंगतास्सर्वे प्रसादात्तववासव ॥ तच्छ्रुत्वावासवोवाक्यं तोषेणमहतान्वितः ॥६५॥ अहोतीर्थमहोतीर्थं शंसमानःपुनःपुनः॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ताविश्वेदेवास्समुत्सुकाः ॥ ६६ ॥ निर्वृत्यब्रह्मणःश्राद्धंगयायां तत्रपार्थिव ॥ प्रोचुश्चवृत्रहन्तारं कुरुश्राद्धंशतक्रतो ॥ ६७॥भूयोपिनविनास्माभिर्लभ्यतेश्राद्धजंफलम् ॥ वयंदूरात्समायातास्तवश्राद्धस्यकारणात् ॥ ६८ ॥ निर्वार्त्यब्रह्मणःश्राद्धंयेनपूर्वंनिमन्त्रिताः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां कुपितःपाकशासनः ॥ ६९ ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं मेघगम्भीरयागिरा ॥ अद्यप्रभृतियःश्राद्धं मर्त्यलोकेकरिष्यति ॥ ७० ॥ अन्योपि योभवत्पूर्वं वृथातस्यभविष्यति ॥ एकोद्दिष्टानिश्राद्धानि करिष्यन्त्यखिलाजनाः ॥ ७१ ॥ साम्प्रतंमर्त्यलोकेत्र मर्य्यादेयंकृतामया ॥ भूताःप्रेताःपिशाचाश्च येचान्येश्राद्धहारकाः ॥ ७२ ॥ विश्वेदेवैःप्ररक्ष्यन्ते रक्षयिष्यामितानहम् ॥ यजमानस्यकार्यञ्च श्राद्धंसंयोज्ययत्नतः ॥ ७३ ॥ मयाहताःप्रयास्यन्ति सर्वेतेदूरतोद्रुतम् ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षो वि

मान गम्भीरवाणी से कठोर वचन कहा कि आजसे लगाकर जो मृत्युलोकमें श्राद्ध करैगा ॥ ७० ॥ व अन्यने भी जो पहले कियाहो उसका वह वृथाहोगा व समस्त मनुष्य एकोद्दिष्ट श्राद्धोंको करैंगे ॥ ७१ ॥ इस समय इसमृत्युलोकमें मैंने यह मर्यादा किया और भूत, प्रेत, पिशाच व और जे श्राद्ध हरनेवाले ॥ ७२ ॥ विश्वेदेवोंसे रक्षाकिये जातेहैं उनकी मैं रक्षाकरूंगा व यजमान को श्राद्ध कार्यमें उपायसे भलीभांति युक्तकरके ॥ ७३ ॥ मुझसे मारेहुये वे सब शीघ्रही दूरप्राप्त होवैंगे विश्वेदेवोंसे

ऐसा कहकर सहस्र लोचनोंवाले इन्द्रजीने उसके उपरान्त ॥ ७४ ॥ समस्त ब्राह्मणोंसे कहा कि विश्वेदेवोंसे विना किया हुआ श्राद्धकर्म आपलोगों व अन्य मनुष्योंको करना चाहिये ॥ ७५ ॥ वैसाही होगा यह ब्राह्मणों के कहनेपर अति दुःखित विश्वेदेवोंने आंसुवों के प्रवाहसे पृथ्वीको पूर्ण करतेहुये रोदन किया ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! जिसलिये उनके छोड़ेहुये उन आंसुवों से पृथ्वी डूबगई उस से संख्या रहित (असंख्य) व अनेक प्रकार के आंसूहोगये ॥ ७७ ॥ तदनन्तर उन आंसुवों से भयङ्कर रूपवाले प्राणी निकले जोकि कालेदांतोंवाले व शंकु (कीलों) के समान कानोंवाले व ऊपर उठेहुये केशोंवाले व भयदायक व लाललोचनोंवाले थे हे राजन्! उन्हों

श्वेदेवांस्ततःपरम् ॥ ७४ ॥ प्रोवाचब्राह्मणान्सर्वान्विश्वेदेवैर्विनाकृतम् ॥ श्राद्धकर्म्मभवद्भिस्तु कार्य्यमन्यैश्चमानवैः ॥ ७५ ॥ तथेत्युक्तेद्विजेन्द्रैश्च विश्वेदेवास्सुदुःखिताः ॥ रुरुदुर्बाष्पपूरेण पूरयन्तोवसुन्धराम् ॥ ७६ ॥ तेषांमुक्ताश्रुणातेनय त्पृथ्वीप्लावितान्नृप ॥ तेनभूतान्यनेकानि सङ्ख्ययारहितानिच ॥ ७७ ॥ ततस्तेभ्योविनिष्क्रान्ताः प्राणिनोरौद्ररूपिणः॥ कृष्णदन्ताश्शङ्कुकर्णाऊर्ध्वकेशाभयावहाः ॥ ७८ ॥ रक्ताक्षाश्चततःप्रोचुर्विश्वेदेवांश्चतेन्नृप ॥ वयंबुभुक्षितास्सर्वे भोज नंदीयतांध्रुवम् ॥ ७९ ॥ भवद्भिर्विहितायस्माद्याचमानानचापरम् ॥ विश्वेदेवाऊचुः ॥ अस्माभीरहितंश्राद्धं किञ्चित्स ञ्जायतेक्षितौ ॥ ८० ॥ श्रद्धयापरयायच्च युष्माकंभोजनंहितत् ॥ एवमुक्त्वातुतेश्राद्धं विश्वेदेवान्नृपोत्तम ॥ ८१ ॥ ब्रह्म लोकंगतास्सर्वे दुःखेनमहतान्विताः ॥ प्रोचुश्चदीनयावाचाप्रणिपत्यपितामहम् ॥ ८२ ॥ वयंबाह्याःकृतादेवश्राद्धानां बलविद्विषा ॥ तवश्राद्धेगतायस्माद्गयायांप्राङ्निमन्त्रिताः ॥ ८३ ॥ तेनरुष्टस्सहस्राक्षस्तवचान्तेसमागताः ॥ तस्मात्कु

ने विश्वेदेवों से कहा कि हम सब क्षुधितहैं हमलोगों को अवश्यकर भोजन दीजिये ॥ ७८ । ७९ ॥ जिसलिये कि आपलोगों से रचेगये हैं उसी कारण अन्यसे नहीं मांगते हैं विश्वेदेवा बोले पृथ्वीमें हमलोगोंसे रहित जो कुछ बड़ी श्रद्धा से श्राद्धहोगी वह श्राद्ध तुमलोगों का भोजनहोगी श्राद्धको ऐसा कहकर हे नृपोत्तम ! वे विश्वेदेवा ॥ ८० । ८१ ॥ बड़े दुःखसे संयुत सब ब्रह्मलोकको गये व ब्रह्माको प्रणाम कर दीनवाणीसे बोले ॥ ८२ ॥ कि हे देव ! बल दैत्यके वैरी (इन्द्र) से हमलोग श्राद्धोंके बाहर कियेगये व पहले न्योतेहुये हम सब जिसलिये गयामें तुम्हारी श्राद्धको गये ॥ ८३ ॥ और तुम्हारी श्राद्धके अन्तमें भलीभांति आये उसी कारण सहस्र

लोचनोंवाले इन्द्रजी क्रोधित होगये इसलिये हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता कीजिये कि जिसप्रकार हम सब श्राद्धके योग्यहोवैं ॥ ८४ ॥ उस वचनको सुनकर बड़ीदया से संयुत ब्रह्माजी शीघ्रही उन कूष्माण्डों समेत विश्वेदेवों को लेकर गमन करतेभये ॥ ८५ ॥ और इन्द्रभी उन देवोंके श्राद्ध कर्मोंको करके वैसेही तीर्थयात्रामें तत्पर होकर व्यवस्थितहुये (बैठे) ॥ ८६ ॥ इसी अवसर में हंसकी सवारी पै भलीभांति चढ़े व विश्वेदेवों से संयुक्त ब्रह्माजी वहांआये ॥ ८७ ॥ इन्द्रभी अचानक प्राप्तहुये कमल आसनवाले ब्रह्माको देखकर अर्घ्य व पाद्यको लेकर शीघ्रही सामने गये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर शिरसे साष्टांग प्रणामकर नम्रता संयुत इन्द्रजी हाथोंको जोड़कर

रुप्रसादंनः श्राद्धार्हाःस्युर्यथावयम् ॥ ८४ ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंब्रह्माकृपयापरयान्वितः ॥ विश्वेदेवान्समादाय कूष्माण्डै स्तैस्समन्वितान् ॥ ८५ ॥ शक्रोपिश्राद्धकर्म्माणि कृत्वातेषांदिवौकसाम् ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वा तथैव च व्यवस्थितः ॥ ८६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु ब्रह्मातत्रसमागतः ॥ विश्वेदेवसमायुक्तो हंसयानंसमाश्रितः ॥ ८७ ॥ शक्रोपिसहसादृष्ट्वा सं प्राप्तंकमलासनम् ॥ अर्घ्यमादायपाद्यं च सत्वरंसम्मुखोययौ ॥ ८८ ॥ ततःप्रणम्यशिरसासाष्टाङ्गंविनयान्वितः ॥ प्रो वाचप्राञ्जलिर्भूत्वास्वागतंतेपितामह ॥ ८९ ॥ तवसंदर्शनादेव ज्ञातंजन्मत्रयंमया ॥ कृतंपूर्वंशुभंकर्म्म करोमिचयथा धुना ॥ ९० ॥ करिष्यामिपरेलोके व्यक्तमेतदसंशयम् ॥ निःस्पृहस्यापितेदेव यदागमनकारणम् ॥ ९१ ॥ तन्मेद्रुततरं ब्रूहि येनसर्वंकरोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यैर्विनानभवेच्छ्राद्धंममापिसुरसत्तम ॥ ९२ ॥ विश्वेदेवास्त्वयातेद्य श्राद्धबाह्याविनिर्मिताः ॥ तत्त्वयानकृतंभद्रंतेनकर्म्मवितन्वता ॥ ९३ ॥ अप्रमाणंकृतावेदा यतश्चस्मृतयस्तथा ॥ एतेपूर्वंमयाशक्र

बोले कि हे पितामहजी ! तुम्हाराआना अच्छाहुआ ॥ ८९ ॥ तुम्हारे भलीभांति दर्शनहीं से मैंने तीन जन्मोंको जाना कि पहले शुभकर्म कियाहै व जैसे इस समय क रताहूं ॥ ९० ॥ व परलोकमें करूंगा यह निरसन्देह प्रगटहोगया हे देव ! निर्लोभ भी तुम्हारे आनेका कारण जोहोवै ॥ ९१ ॥ उसको मुझसे अतिशीघ्र कहिये कि जिस से मैं सबकरूं ब्रह्माबोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! जिनके विना मेरीभी श्राद्धनहीं होवै है ॥ ९२ ॥ उन विश्वेदेवों को आज तुमने श्राद्धसे बाहर बनाया उस कर्मको विस्तार करतेहुये तुमने उस कारण वह अच्छा नहीं किया ॥ ९३ ॥ जिस लिये कि वेद व स्मृतियां बिन प्रमाण की गई हे इन्द्र ! इनको पहले मैंने श्राद्धके लिये निमन्त्रण

कियाथा ॥ ६४ ॥ व पीछे तुमने निमन्त्रण किया इससे उनका दोष नहीं है व जिस कारण उन महात्माओं का दोषनहीं है उसी कारण हे सुरनायक ! शाप छूटनेके लिये उपाय करिये ॥ ६५ ॥ कि जिससे अत्यन्तही दुःखित सबभी श्राद्धके योग्य होवैं पुरातन समय मैंने समस्त ब्राह्मणोंसे यह कहाहै ॥ ६६ ॥ इन विश्वेदेवों पूर्वक जो श्राद्धहोगी वह सफल होवैगी तो तुमकैसे मेरेवचन को झूंठ करतेहो ॥ ६७ ॥ इन्द्रबोले कि हे पितामह जी ! क्रोध संयुत मैंने भी इनको शापदिया है इस लिये जिस भांति मैं सत्य वचन वालाहोऊं वैसाकरो ॥ ६८ ॥ ब्रह्माबोले कि हे इन्द्रजी ! तुम्हारा बचन जिसप्रकार सत्यहोगामैं विश्वेदेवोंहीके लिये वैसाही भलीभांति

श्राद्धार्थंविनिमन्त्रिताः ॥९४॥ पश्चात्त्वयानतद्दोषो यस्माच्चैवमहात्मनाम् ॥ तस्माच्छापविमोक्षार्थं यत्नंकुरुसुरेश्वर ॥ ९५॥ येनस्युःश्राद्धयोग्याश्च सर्वेपिदुःखिताभृशम्॥पुराह्येतन्मयाप्रोक्तं सर्वेषाञ्चद्विजन्मनाम्॥९६॥एतत्पूर्वंचयच्छ्राद्धं सफलंतद्भविष्यति॥ तत्कथंममवाक्यंत्वमसत्यंप्रकरोषिच॥९७ ॥ इन्द्रउवाच ॥ मयापिकोपयुक्तेन शप्ताएतेपितामह॥ तद्यथासत्यवाक्योहं प्रभवामितथाकुरु ॥ ९८ ॥ ब्रह्मोवाच॥तववाक्यंयथासत्यं प्रभविष्यतिवासव ॥ तथाहंसंविधास्यामि विश्वेदेवार्थमेवहि ॥ ९९ ॥ विश्वेदेवैर्विनाश्राद्धं यत्त्वयासमुदाहृतम्॥एकोद्दिष्टंतदासर्वेकरिष्यन्तिधरातले॥१००॥ तस्मिन्नहनिदेवेन्द्रत्वयायच्चविनिर्मितम्॥प्रेतपक्षेचतुर्दश्यांशस्त्रेणनिहतस्यच ॥ १ ॥ क्षयाहेचापिसञ्जाते विश्वेदेवैर्विनाकृतम्॥ नागरस्यशुभंश्राद्धं वचनान्मेभविष्यति ॥ २ ॥ शेषकालेतुयःश्राद्धं प्रकरिष्यतितैर्विना॥व्यर्थंसम्पत्स्यतेतस्य ममवाक्यादसंशयम् ॥३॥ मुक्त्वाशस्त्रहतंचैकंतस्मिन्नहनियोनरः॥करिष्यतितथाश्राद्धं भूतभोज्यंभविष्यति॥४॥

करूंगा ॥९९॥ तुमने जो विश्वेदेवोंके विना श्राद्धकहाहै उस समय भूतल में सब एकोद्दिष्ट करैंगे ॥१००॥ हे देवेन्द्रजी ! उसदिन जो तुमने निर्माण कियाहै कि प्रेतपक्ष में चौदसिको शस्त्रसे मारेहुये प्राणी के ॥ १ ॥ क्षयाहके भी भलीभांति प्राप्तहोनेपर वैश्वदेवोंके विना नागरकी की हुई श्राद्धमेरे वचन से उत्तमहोगी ॥ २ ॥ और शेष समयमें उन विश्वेदेवों के विना जो श्राद्धकरैगा मेरे वचनसे उसकी वह श्राद्ध निस्सन्देह व्यर्थको भलीभांति प्राप्तहोगी ॥३॥ केवल शस्त्रसे मारेहुये पुरुषकी श्राद्धको

छोड़कर उसदिन जो पुरुष श्राद्धकरैगा वह भूतोंका भोजन होगी ॥ ४ ॥ विश्वामित्रजीबोले कि हां ऐसा इन्द्रके कहनेपर तदनन्तर नम्रतासे नीचे झुंके खड़ेहुये विश्वे-
देवोंने लोकोंके पितामह ब्रह्माजी से कहा ॥ ५ ॥ कि हे विभो ! हमारे शरीरहीसे ये पुत्र भलीभांति पैदाहुये हैं चुधासे विकल उन पुत्रोंको इन्द्रके ऊपर क्रोधित हमसबों
से रहित यह श्राद्ध भोजनको दीगईहै हमसे कहाहुआ वचन जिस प्रकार सत्यहोवै ॥ ६ । ७ ॥ हे पितामहजी ! हमारा व इन्द्रका भी वचन जिस प्रकार सत्यहोवै वै-
साही कीजिये हे कमल से उपजेहुये (ब्रह्माजी) ! उत्तम भोजनको निरूपण करिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से इन्हीं सबोंकी उत्तम तृप्तिहोवै ब्रह्माबोले कि

विश्वामित्रउवाच ॥ तथेत्युक्तेतुशक्रेण ब्रह्मालोकपितामहः ॥ विश्वेदेवैस्ततःप्रोक्तो विनयावनतस्थितैः ॥ ५ ॥ एते
पुत्राःसमुत्पन्ना अस्मद्देहेभ्यएवच ॥ तेषान्तुभोजनंदत्तं क्षुधार्तानामिदंविभो ॥ ६ ॥ अस्मद्विवर्जितंश्राद्धं कुपितैर्वासवोप
रि ॥ तद्यथाजायतेसत्यं वाक्यमस्मदुदीरितम् ॥ ७ ॥ अस्माकंवासवस्यापि तथाकुरुपितामह ॥ निरूपयशुभाहारं
येनस्यात्तृप्तिरुत्तमा ॥ ८ ॥ एतेषामेवसर्वेषां प्रसादात्तवपद्मज ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्राद्धकालेतुविप्राणां भोज्यपात्रेषुकृत्स्न
शः ॥ ९ ॥ कुशब्देनस्मृताभूमिःसंसिक्ताचाश्रुणायतः ॥ ततोजातानिअण्डानि तेभ्योजाताअमीयतः ॥ १० ॥ कूष्मा
ण्डाइतिविख्याता भविष्यन्तिजगत्त्रये ॥ ततस्तांश्चत्रिधाकृत्वा क्रमेणैवार्पयत्तदा ॥ ११ ॥ अग्नेर्वायोस्तथार्कस्य वा
क्यमेतदुवाचह ॥ यजुर्वेदेप्रविख्याता यद्देवेतितुऋक्स्वयम् ॥ १२ ॥ तेनभागःप्रदातव्य एतेषांभक्तिहोमतः ॥ कोटिहोमो
द्भवेचैव निजभागस्यमध्यतः ॥ १३ ॥ तेनतृप्तिंप्रयास्यन्तिममवाक्यादसंशयम् ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रस्ततश्चादर्शनंग

श्राद्ध समय में ब्राह्मणों के सम्पूर्ण भोजन पात्रोंमें तृप्तिहोगी ॥ ८ । ९ ॥ कु शब्द से पृथ्वी कहीगई है जिसलिये वह आंसुवों से भलीभांति सींचीगई उससे अण्डापैदा
हुये व जिसलिये उन अण्डों से ये पैदाहुये ॥ १० ॥ उसी कारण तीनों जगत्में कूष्माण्ड ऐसे प्रसिद्ध होवैंगे तदनन्तर उस समय तीन विभाग करके उनको क्रम से
अग्नि, पवन व सूर्यको अर्पण किया व यह वचन कहा कि यजुर्वेद में यद्देव ऐसी ऋचा आपही प्रसिद्ध है ॥ ११ । १२ ॥ उसीके द्वारा कोटि होमकी उत्पत्तिमें भक्ति
पूर्वक होमसे अपने भागके बीचसे इनको भाग अवश्यदेना चाहिये ॥ १३ ॥ उसी भागके द्वारामेरे वचन से निस्सन्देह तृप्तिको प्राप्तहोवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर

चतुराननजी अन्तर्द्धान होगये ॥१४॥ वैसेही विश्वेदेवा व विशेषकर कूष्माण्ड प्रसन्नहुये इसीकारण श्राद्धमें द्विजोंके भोजनपात्रोंमें कूष्माण्डोंसे उपजेहुये डरके कारण भस्म से उपजीहुई रक्षाकीजाती है व उसी से नागरों की श्राद्धमें छिद्रको नहीं चाहते हैं उसको सुनिये ॥ १५ । १६ ॥ जिसलिये कि उनके स्थानमें चतुरतासे संयुत हुयेहैं उसी कारण भर्तृयज्ञसे तेजके द्वारा भस्मसे उपजीहुई रक्षा निषेधहुई ॥ १७ ॥ उसी लिये समस्त नागर कभी रक्षानहीं करते हैं और जब वे चतुराननजी अपने स्थानको चलेगये तब इन्द्रभी ॥ १८ ॥ चमत्कार पुरमें उपजेहुये समस्त ब्राह्मणोंसे बोले कि हे ब्राह्मणो ! मेरेवचन सुनिये व तदनन्तर कीजिये ॥ १९ ॥ कि देव देव

तः ॥१४॥ विश्वेदेवास्तथाहृष्टाःकूष्माण्डाश्चविशेषतः ॥ एतस्मात्कारणाद्रक्षा क्रियतेभस्मसम्भवा ॥ १५ ॥ विप्राणां भोज्यपात्रेषु श्राद्धेकूष्माण्डजाद्भयात् ॥ नागराणांनवाञ्छन्ति श्राद्धेछिद्रंततःशृणु ॥ १६ ॥ तेषांस्थानेयतोजाता दाक्षिण्येनसमन्विताः ॥ निषिद्धाभस्मजारक्षाभर्तृयज्ञेनतेजसा ॥ १७ ॥ तदर्थंनागरास्सर्वे नकुर्वन्तिहिकर्हिचित् ॥ इन्द्रोपिचगतेतस्मिंश्चतुर्वक्त्रेनिजालयम् १८ अब्रवीद्ब्राह्मणान्सर्वांश्चमत्कारपुरोद्भवान् ॥ श्रूयतांमद्वचोविप्राः करिष्यथततःपरम् ॥ १९ ॥ स्थापयिष्याम्यहंलिङ्गंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ ततस्तैर्ब्राह्मणैस्तस्य दर्शितंस्थानमुत्तमम् ॥ २० ॥ सोपिलिङ्गंचसंस्थाप्यप्रहृष्टस्त्रिदिवंययौ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ २१ ॥ गयाकूप्याश्चमाहात्म्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ आनर्तउवाच ॥ गयाकूप्याश्चमाहात्म्यंभवतामेप्रकीर्तितम् ॥ २२ ॥ बालमण्डनजंवापिसाम्प्रतंवक्तुमर्हसि ॥ कस्मिन्स्थानेचशक्रेणतच्चलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ २३ ॥ तदस्माकंमहाभागतस्मिन्दृष्टेतुकिंफलम् ॥ विश्वामित्र उ

त्रिशूलधारीके लिङ्गको मैं थापूंगा तदनन्तर उन ब्राह्मणोंने उन इन्द्रको उत्तम स्थान दिखलाया ॥ २० ॥ व वे इन्द्रभी लिङ्गको थापकर प्रसन्नहो स्वर्गको चलेगये हे नर नायक ! मुझसे जो पूंछागया यह सब वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा ॥ २१ ॥ व समस्त कामनाओं के देनेवाले गया कूपिका के माहात्म्य को कहा आनर्त बोला कि आपने मुझसे गया कूपिका का माहात्म्य कहा ॥ २२ ॥ इस समय बाल मण्डनसे उपजेहुये चरितको तुमें कहनेके लिये योग्यहो और किस स्थानमें इन्द्रने उस लिङ्ग

को थापन कियाहै ॥ २३ ॥ हे महाभाग ! उसके देखने पर क्या फलहोताहै उसको कहिये विश्वामित्रजी बोले कि जब सहस्र लोचनोंवाले इन्द्रने उन विप्रों से लिंग थापन के लिये याचना किया ॥ २४ ॥ तब उन्होंने समस्त क्षेत्रके बीचमें प्राप्त व उत्तम तथा पवित्र स्थानको दिखलाया जो स्थान कि अति पुण्यदायक बाल मण्डन नामक है ॥ २५ ॥ जहां कि पुरातन समय मरुत् नामक बालक दितिके पुत्रपैदाहुयेहैं व पुरातन समय उन्हीं इन्द्रसे विध्वंस कियेहुये वे मृत्युको न प्राप्तभये ॥ २६ ॥ उसी कारण उस को अति पवित्र जानकर जिस स्थानको कि पहले देखाथा व जहां उत्तम पुत्रको चाहतीहुई दितिने तपस्या कियाथा ॥ २७ ॥ उस उत्तम स्थानको

वाच ॥ सहस्राक्षेणतेविप्रालिङ्गार्थंयाचितायदा ॥ २४ ॥ स्थानंशुभंपवित्रंचसर्वक्षेत्रस्यमध्यगम् ॥ ततस्तैर्दर्शितंस्था
नंसुपुण्यंबालमण्डनम् ॥ २५ ॥ यत्रबालाःपुराजातामरुदाख्यादितेःसुताः ॥ तेनैवचपुराध्वस्तानचमृत्युमुपागताः ॥
२६ ॥ तच्चमेध्यतमंज्ञात्वास्थानंदृष्टंपुराचयत् ॥ यत्रदित्यातपस्तप्तंसत्सुतंकाङ्क्षमाणया ॥ २७ ॥ तंदृष्ट्वापरमंस्थानंजी
वंप्रोवाचदेवपः ॥ गुरोब्रूहिममश्रुत्यंसुमुहूर्तंश्वसाम्प्रतम् ॥ २८ ॥ दिवसन्तत्रसल्लिङ्गंस्थापयामिहरोद्भवम् ॥ प्रलयेपिस
मुत्पन्नेननाशोयत्रजायते ॥ २९ ॥ ततःसोपिचिरंध्यात्वातंप्रोवाचशचीपतिम् ॥ माघमासेसितपक्षेपुष्यर्क्षेरविवासरे ॥
३० ॥ त्रयोदश्यामभीष्टेतुसंजातउदयेशुभे ॥ संस्थापयविभोलिङ्गंममवाक्येनसाम्प्रतम् ॥ ३१ ॥ आकल्पान्तमसंदि
ग्धंस्थिरन्तेतद्भविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजस्तुहर्षेणमहतान्वितः ॥ ३२ ॥ बालमण्डनसान्निध्येस्थापयामासतन्तदा ॥

देखकर सुरपति ने बृहस्पति से कहा कि हे गुरो ! इस समय श्रुतिवाले उत्तम मुहूर्त व दिनको कहिये ॥ २८ ॥ कि वहां मैं शिवजी से उपजेहुये उत्तम लिङ्गको थापन करूं कि जहां पर प्रलयभी होनेपर नाश न होवै ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे बृहस्पति भी देरतक विचारकर इन्द्राणी के पति उन इन्द्रसे बोले कि हे विभो ! माघ महीने के शुक्लपक्ष में त्रयोदशी रविदिन पुष्य नक्षत्र में उत्तम व प्रिय उदयहोनेपर इस समय मेरे वचनसे लिङ्गको भलीभांति थापन करिये ॥ ३० । ३१ ॥ तुम्हारा वह थापाहुआ लिङ्ग कल्प पर्यंत निस्सन्देह स्थिरहोगा उस वचनको सुनकर सुरराज बड़े हर्ष से संयुतहुये ॥ ३२ ॥ व उस समय ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन वाले

शब्दसे व गाने, बजानेके शब्दों द्वारा बाल मण्डन तीर्थके समीप उन शिवजीको थापन किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर होमके अन्तमें द्विजोत्तमों को तृप्तकराकर दक्षिणा में उनको उत्तम माघाट स्थानको दिया ॥ ३४ ॥ जोकि उत्तम शहर दिवाली से भूषित मा नदीके किनारे पै भलीभांति स्थितहै उसको हे नृपोत्तम ! सबही ब्राह्मणोंको सामान्य से दिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर आठकुलवाले ब्राह्मणोंको भलीभांति बुलाकर यह कहा कि तुमलोगों को सदैव लिङ्गसे उपजी हुई चिन्ताकरना चाहिये ॥ ३६ ॥ व पश्चात् चन्द्रमा सूर्य पर्यन्त समयवाली वृत्ति मैंने इसको दिया बारह ग्रामसे उपजीहुई वह जीविका उसके लिये ग्रहण करने योग्यहै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणबोले कि हे

विप्रपुण्याहघोषेणगीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३३ ॥ ततोहोमावसानेतुतर्पयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ दक्षिणायांददौतेषां माघाटंस्थानमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ माकूलेसंस्थितंयच्चदिव्यप्राकारभूषितम् ॥ सर्वेषामेवविप्राणांसामान्येननृपोत्तम ॥ ३५ ॥ ततोष्टकुलिकान्विप्रान्समाहूयाब्रवीदिदम् ॥ युष्माभिस्तुसदाकार्य्याचिन्तालिङ्गसमुद्भवा ॥ ३६ ॥ अस्यपश्चान्मयादत्तावृत्तिश्चन्द्रार्ककालिका ॥ साचग्राह्यातदर्थञ्चद्वादशग्रामसम्भवा ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नवयंविबुधश्रेष्ठ करिष्यामोवचस्तव ॥ लिङ्गचिन्तासमुद्भूतं श्रूयतामत्रकारणम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मस्वंविबुधस्वञ्च तथागोत्थंविशेषतः ॥ भक्षितंस्वल्पमप्यत्र नाशयेत्सप्तपूर्वजान् ॥ ३९ ॥ यदिकश्चित्कुलेस्माकंजातस्तद्भक्षयिष्यति ॥ पातयिष्यतितान्सर्वांस्तदस्माकंमहद्भयम् ॥ ४० ॥ अथतंमध्यगःप्राह कृताञ्जलिर्द्विजोत्तमः ॥ दृष्ट्वाविमनसंशक्रं कृतपूर्वोपकारिणम् ॥ ४१ ॥ देवशर्म्माभिधानस्तु विख्यातःप्रवरैस्त्रिभिः ॥ अहंचिन्तांकरिष्यामि तवलिङ्गसमुद्भवाम् ॥ ४२ ॥ अपुत्रस्यतुमेपुत्रं

सुर श्रेष्ठजी ! लिङ्ग चिन्तासे उपजेहुये तुम्हारे वचनको हमलोग न करैंगे इस विषय में कारण सुनिये ॥ ३८ ॥ कि ब्राह्मणका धन व देवताकी द्रव्य व विशेषकर गऊ से उठा (उपजा) हुआ थोड़ाभी भक्षित धन यहां सात पहले उपजेहुये नरोंको नाशकरता है ॥ ३९ ॥ यदि हमलोगों के वंशमें पैदाहुआ कोई उसको खावैगा तो उन सातोंको गिरावैगा वह हमको बड़ाभारी डरहै ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर पहले किये उपकारवाले इन्द्रको विमनस (उदास) देखकर तीन प्रवरोंसे प्रसिद्ध व मध्यवर्ती देवशर्मा नामक द्विजोत्तम हाथोंको जोड़कर उन इन्द्रसे बोला कि मैं तुम्हारे लिंगसे उपजी हुई चिन्ताकरूंगा ॥ ४१ । ४२ ॥ कि हे इन्द्रजी ! यदि मुझ अपुत्र

वंश भलीभांति उत्पन्नहोवै ॥ ४३ ॥ जो वंश कि धर्मज्ञ, कृतज्ञ व देवद्रव्य को वर्जित करनेवालाहोवै उस वचनको सुन
को पुत्र दीजिये कि जिस पुत्रसे प्रलय पर्यन्त वंश भलीभांति उत्पन्नहोवै ॥ ४३ ॥ जो वंश कि धर्मज्ञ, कृतज्ञ व देवद्रव्य को वर्जित करनेवाला और समर्थवान् पुत्र तु-
कर प्रसन्नहोते हुये इन्द्रजी उस ब्राह्मणसे बोले ॥ ४४ ॥ इन्द्रबोले कि वंशधारी व शुभ, धर्मात्मा सत्यवक्ता व देवद्रव्य को वर्जित करनेवाला और समर्थवान् पुत्र तु-
म्हारे होगा ॥ ४५ ॥ उससे तुम्हारे वंशमें जो पुत्रहोवैंगे वे सब यहां महात्मा व तुम्हारे सदृश रूपवाले व वेदके पारजानेवाले होवैंगे ॥ ४६ ॥ व हे उत्तम द्विज ! जो
तुमसे कहताहूं उस, मेरे अन्य वचनको तुम सुनो व जे द्विजेन्द्र यहां भलीभांति आये हैं वे सुनैं ॥ ४७ ॥ कि मैंने चतुरानन की आज्ञासे बाल मण्डन तीर्थ में चार

धर्म्मज्ञस्तुकृतज्ञस्तु देवस्वपरिवर्ज्जकः ॥ त
यदियच्छसिवासव ॥ यस्मात्सञ्जायतेवंशो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मज्ञस्तुकृतज्ञस्तु देवस्वपरिवर्ज्जकः ॥ त
च्छ्रुत्वावासवोहृष्टस्तमुवाचद्विजोत्तमम् ॥ ४४ ॥ इन्द्रउवाच ॥ भविष्यतिप्रभुस्तुभ्यं पुत्रोवंशधरःशुभः ॥ धर्म्मात्मासत्य
वादीच देवस्वपरिवर्ज्जकः ॥ ४५ ॥ तस्मात्त्वदन्वयेपुत्रा भविष्यन्तिमहात्मनः ॥ तेसर्वेत्रभविष्यन्ति त्वद्रूपावेदपारगाः ॥
४६ ॥ अपरंशृणुमेवाक्यं यत्तेवक्ष्यामिसद्द्विज ॥ तथाशृण्वन्तुविप्रेन्द्रास्सर्वेयेत्रसमागताः ॥ ४७ ॥ बालमण्डन
केतीर्थे मयैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ चतुर्वक्त्रसमादेशाच्चतुर्वक्त्रप्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ योत्रस्नानविधिंकृत्वा तीर्थेत्रपितृतर्प्पणम् ॥
आजन्मपितरस्तेन प्रभविष्यन्तितर्पिताः ॥ ४९ ॥ ग्रामाद्वादशयेदत्ता मयादेवस्यमाघटाः ॥ वसिष्यन्त्यत्रयेवि
प्रा वृद्धिश्राद्धउपस्थिते ॥ ५० ॥ तेश्राद्धंप्रथमंचास्य कृत्वाश्राद्धंततःपरम् ॥ तत्कृत्यानिकरिष्यन्ति ततोविघ्नैस्तुवर्जि
ताः ॥ ५१ ॥ वृद्धिःसम्पत्स्यतेतेषां नोचेद्विघ्नंभविष्यति ॥ माघमासेसितेपक्षे त्रयोदश्यादिनेस्थिते ॥ ५२ ॥ तद्ग्राम

तृप्तहोवैंगे ॥ ४९ ॥ और
मुखवाले इस उत्तम लिङ्गको थापाहै ॥ ४८ ॥ जो इसतीर्थमें स्नान विधिको करके यहां पितरों का तर्पण करैगा उससे जन्म पर्य्यन्त पितर तृप्तहोवैंगे ॥ ४९ ॥ और
मैंने देवको जो बारह माघाट ग्रामदिया है व यहां जो ब्राह्मण बसैंगे वे वृद्धिश्राद्धके उपस्थित होनेपर पहले इनकी श्राद्धकरके तदनन्तर उसके कार्योंको करैंगे उसके
उपरान्त विघ्नोंसे रहित होवैंगे ॥ ५० । ५१ ॥ व उनके बढ़ती भलीभांतिहोगी नहीं तो विघ्नहोगा माघ महीनेमें शुक्लपक्ष में त्रयोदशी दिनके भलीभांति स्थितहोने

पर॥ ५२ ॥ जो लोग उस ग्राममें भलीभांति टिकेहैं सावधान होतेहुये जे यहां आकर उत्तम भक्ति पूर्वक पूजैंगे वे विनाशको न प्राप्तहोवैंगे॥ ५३ ॥ समुद्र व तड़ाग पर्यंत पृथ्वी में जो तीर्थ हैं वे उस दिन बालमण्डन तीर्थ में आवैंगे ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि सहस्र लोचनों वाले इन्द्रजी ऐसा कहकर तदनन्तर क्रोध संयुतहो आगेखड़े हुये अष्टकुलवाले ब्राह्मणों से उसी कारण वचनबोले ॥ ५५ ॥ कि जिसलिये इन सप्त कुलवाले कृतघ्न ब्राह्मणों से मेरा वचन नहीं कियागया उसी कारण कृतघ्नतासे निस्सन्देह उनको शापदूंगा ॥ ५६ ॥ पुरातन समय जिसलिये सत्यवादी स्वयम्भू मनुने समस्त कृतघ्न जनको उद्देशाकर यह कहाहै ॥ ५७ ॥ कि ब्रह्मघाती,

संस्थितालोका येत्रागत्यसमाहिताः ॥ पूजयिष्यन्तिसद्भक्त्या तेयास्यन्तिनसंक्षयम् ॥ ५३ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रसरांसिच ॥ बालमण्डनकेतीर्थं आगमिष्यन्तितद्दिने ॥ ५४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतदुक्त्वासहस्राक्षस्ततश्चाष्टकुलान्द्विजान् ॥ अग्रतःकोपसंयुक्तस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ एतैस्सप्तकुलैर्विप्रैर्यत्कृतंवचनंनमे ॥ कृतघ्नैस्ताञ्छपिष्यामि कृतघ्नत्वादसंशयम् ॥ ५६ ॥ यस्मादिदंपुराप्रोक्तं मनुनासत्यवादिना ॥ स्वायम्भुवेनप्रोद्दिश्य कृतघ्नंसकलंजनम् ॥ ५७ ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापेच चौरेभग्नव्रतेशठे ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिः कृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ५८ ॥ अवध्याब्राह्मणागावः स्त्रियोबालास्तपस्विनः ॥ तेनाहंनवधाम्येतांश्छिद्रेपिमहतिस्थिते ॥ ५९ ॥ ममवाक्यादपिप्राप्य एतेलक्ष्मींद्विजोत्तमाः ॥ निर्धनास्सम्भविष्यन्ति नीचद्वाररताखिलाः ॥ ६० ॥ भक्तानाञ्चपरित्यागमेतेषांवंशजाद्विजाः ॥ करिष्यन्तिनसन्देहो यथाममसुनिष्ठुराः ॥ ६१ ॥ दाक्षिण्यरहितास्सर्वे तथाबह्वाशिनस्सदा ॥ एवमुक्त्वाथ

मदिरा पीनेवाले, चोर व व्रतभंग करनेवाले व शठमें उत्तम जनों ने प्रायश्चित्त कहाहै परन्तु कृतघ्नमें प्रायश्चित्त नहींहै ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण, गऊ, स्त्री, बालक व तपस्वी अबध्य होतेहैं उसीसे बड़े छिद्रके भी स्थितहोने पर मैं इनको नहीं मारताहूं ॥ ५९ ॥ ये सब द्विजोत्तम लक्ष्मीको पाकर भी मेरे वचन से निर्धनी व नीचके द्वार में तत्पर होवैंगे ॥ ६० ॥ और इनके वंशमें उपजेहुये अति निठुर ब्राह्मण निस्सन्देह भक्तोंका परित्यागकरैंगे जैसे कि मुझको छोड़ाहै ॥ ६१ ॥ व सब सदैव उदारतासे

रहित व बहुत भोजन करनेवाले होवैंगे सप्तवंशमें उपजेहुयेउन ब्राह्मणोंसे ऐसाकहकर इसके उपरान्त ॥६२॥ नागर वंशमें उपजेहुये उन शेष ब्राह्मणोंसे फिर कहा कि हे द्विजोत्तमो ! वैसेही यहां मुझको स्थानदीजिये ॥ ६३ ॥ कि जिससे मृत्युलोककेसुखके निमित्त व इनदेवके पूजनके लिये व यहां आप सब ब्राह्मणोंके पूजनके लिये मैं वर्ष के अन्तमें पांचरातैं निवासकरूं विश्वामित्रजी बोले कि तदनन्तर उन समस्त ब्राह्मणोंने उन इन्द्रके लिये उत्तम स्थानको दिखलाया ॥६४।६५॥ व तदनन्तर अति प्रसन्नहो कहा कि हे इन्द्रजी ! ब्रह्मस्थान में प्राप्तहोकर तुमको पांचरातैं मृत्युलोकमें टिकना चाहिये व हे प्रभो ! सुखसे सेवन करनाचाहिये इसस्थानमें हमलोग

ममात्रदीयतांस्थानं तथैवचद्विजो तान्विप्रान्सप्तवंशसमुद्भवान् ॥ ६२ ॥ पुनःप्रोवाचतान्विप्राञ्छेषान्नागरसम्भवान् ॥ त्तमाः ॥ ६३ ॥ येनसंवत्सरस्यान्ते पञ्चरात्रंवसाम्यहम् ॥ देवस्यास्यप्रपूजार्थं मर्त्यलोकसुखायच ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणानां प्रपूजार्थं सर्वेषांभवतामिह ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे तदर्थंस्थानमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ संहृष्टादर्शयामासु रूचुश्चतदनन्तरम् ॥ ब्रह्मस्थानेत्वयाशक्र पञ्चरात्रमुपेत्यच ॥ ६६ ॥ स्थातव्यंमर्त्यलोकेच सुखमासेव्यतांप्रभो ॥ अ त्रस्थानेतवाग्रेतु करिष्यामोमहोत्सवम् ॥ ६७ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ द्विजानांतर्पणंचैव सर्व कामसमृद्धिदम् ॥ ६८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां प्रहृष्टःपाकशासनः ॥ पूजयित्वाद्विजान्सर्वान् गतोथत्रिदिवालयम् ॥६९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेबालमण्डनमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १९६ ॥

बालमण्डनमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥

गाने, बजानेके शब्दोंसे व गन्ध (चन्दन) माला व अनुलेपनों के द्वारा तुम्हारे आगे बड़ा उछाह करैंगे व समस्त कामनाओंका समृद्धिदायक द्विजोंका तर्पण करैंगे ॥ ६६ । ६७ । ६८ ॥ उनके उस वचन को सुनकर प्रसन्नहोते हुये इन्द्रजी समस्त ब्राह्मणोंको पूजकर इसके अनन्तर स्वर्गको चलेगये ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबालमण्डनमाहात्म्यन्नामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । निज नारी अरु इन्द्रको दीन्हो गौतम शाप । इकसौ सत्तानवें महँ सोई करत अलाप ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे नर नायक ! मुझसे जो पूंछागया इस

समस्त बोल मरोड्डनके माहात्म्यको तुमसे वर्णन किया जोकि समस्त पातकों का नाशक है ॥ १ ॥ हे नृपोत्तम ! माघ महीने की शुक्लपक्ष वाली तेरसि के प्राप्तहोने पर जिस एकभी तीर्थ में स्नान करने से सब तीर्थों के स्नानसे उपजाहुआ पुण्य मिलता है आनर्त बोला कि किसलिये धरातलमें इन्द्रकी संस्थिति पांचरातें होती हैं ॥ २ । ३ ॥ व अधिक नहींहोती जैसे कि अन्यदेवोंका टिकाश्रय रहताहै व वर्षके अन्तमें कौन दिनहैं कि जिनमें इन्द्रजी भूतल पै भलीभांति आतेहैं व कौन मही नाहैं यह सब मुझसे कहिये विश्वामित्रजी बोले कि हे नरनाथ ! इस कथाको मैं कहूंगा सुनिये ॥ ४ । ५ ॥ कि जिस भांति पांचरातोंसे परे (अधिक) इन्द्र भूतल

यत्रैकस्मिन्नपिस्नाने कृतेपार्थिवसत्तम ॥ सर्वेषांलभ्यतेपुण्यं तीर्थानांस्नानसम्भवम् ॥ २ ॥ माघमासेत्रयोदश्यां शु क्लपक्षउपस्थिते ॥ आनर्तउवाच ॥ कस्माच्छक्रस्यसंस्थानं पञ्चरात्रंधरातले ॥ ३ ॥ नाधिकंजायतेतेषां यथान्येषां दिवौकसाम् ॥ वर्षान्तेकानिचाहानि येषुशक्रोधरातले ॥ ४ ॥ समागच्छतिकोमास एतत्सर्वंब्रवीहिमे ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि कथामेनांनराधिप ॥ ५ ॥ पञ्चरात्रात्परंशक्रो यथानस्याद्धरातले ॥ आसीत्पूर्वंबृहत्क ल्पे जयसेनस्सुरेश्वरः ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यस्यसमस्तस्य स्वामीदानवदर्पहा ॥ त्रैलोक्येसकलेपूजां भजमानस्सदैवहि ॥ ७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य गौतमस्यमुनेःप्रिया ॥ अहल्यानामभार्य्याभूद्रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ८ ॥ तान्दृष्ट्वाचक मेशक्रः कामदेववशङ्गतः ॥ नित्यमेवसमागत्य स्वर्गलोकात्सकामभाक् ॥ ९ ॥ गौतमेनिर्गतेराजन् समित्सिद्ध्यर्थ मेवहि ॥ दर्भार्थंफलमूलार्थं स्वयमेवमहात्मनि ॥ १० ॥ अथतस्यसमाचख्यौ नारदोमुनिसत्तमः ॥ शक्रस्यचेष्टितंस

में नहीं रहते हैं पुरातन समय बृहत्कल्प में जयसेन नामक सुरेश (इन्द्र) हुयेहैं ॥ ६ ॥ जोकि समस्त त्रिलोक के स्वामी व दानवों के दर्प (गर्व) को नाशनेवाले थे व सब त्रिलोक में सदैवही पूजनको भजते (पाते) थे ॥ ६ । ७ ॥ इसके अनन्तर किसी समय गौतम मुनिकी प्यारी नारी अहल्या नामकहुई है जोकि भूमि में रूपसे असमान यानेे एकही थी ॥ ८ ॥ उसको देखकर कामदेवके वशमें प्राप्त इन्द्रजीने नित्यही भलीभांति आकर सकामभागी होकर हे राजन् ! जब समिधाओं की सिद्धिके लिये व कुशोंके निमित्त व फल, मूलके लिये आपही गौतम महात्माचलेगये तब उस अहल्या की इच्छाकिया ॥ ९ । १० ॥ इसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ

नारदजीने इन्द्रके व अहल्या से उपजेहुये समस्त कर्मको उन गौतमजी से भली भांति कहा ॥ ११ ॥ उसको अचानक ही सुनकर गौतम जी शीघ्रही घरकोआये व जब तक स्त्री के साथ समागम को प्राप्त इन्द्रको देखा ॥ १२ ॥ तब तक गौतमको देखकर भयसे विकल व विन वसनभी भागने में तत्परहो इन्द्रभी उस आश्रमसे निकलगये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस समय पतिको आयेहुये देखकर भयभीत व नीचे मुखकिये खड़ी अहल्या भी विकल इन्द्रियोंवालीहुई ॥ १४ ॥ और गौतमने भी भलीभांति स्त्रीके कर्मको देखकर उन इन्द्रसे कहा कि तुमने मेरी पतिव्रता स्त्रीको दूषित किया इस कारण अण्डकोश हीनहोवो ॥ १५ ॥ व उसी कारण

यावत्पश्यतिदेवेशं सहपत्न्यासमागतं तथाहल्यासमुद्भवम् ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वासहसातूर्णं गौतमोगृहमभ्यगात् ॥ निर्जगामाश्रमात्तस्माद्विवस्त्रोपिभयाकुलः ॥ १३ ॥ अहल्यापिभयत्रस्ता दृष्ट्वाभर्तारमागतम् ॥ अधोमुखीस्थिताराजंस्तदाव्याकुलितेन्द्रिया ॥ १४ ॥ गौतमोपिचतंदृष्ट्वा सम्यग्भार्य्याविचेष्टितम् ॥ भार्य्यामेदूषितासाध्वी तस्माद्वृषणोभव ॥ १५ ॥ पूजाक्रुतेततोमूर्द्धा शतधातेभविष्यति ॥ एवं शप्त्वाचतंशक्रं ततोहल्यामुवाचसः ॥ १६ ॥ कोपसंरक्तनेत्रस्तु भर्त्सयित्वामुहुर्मुहुः ॥ यस्मात्पापेत्वयाकर्म्म कृतमेतद्विगर्हितम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छिलामयीभूत्वा त्वंतिष्ठवसुधातले ॥ ततःसातत्क्षणाज्जाता तस्यभार्य्याशिलात्मिका ॥ १८ ॥ इन्द्रोपिचपरित्यक्तो वृषणाभ्यांतदाभवत् ॥ अथापरंसमासाद्य कन्दरंविजनंहरिः ॥ १९ ॥ सव्रीडस्सेवतेनित्यं नजगामनिजंपुरम् ॥ ततोदेवगणास्सर्वे सोद्वेगास्तेनवर्जिताः ॥ २० ॥ नजानन्तिचतत्रस्थं कन्दरालेषणोरत

लोचनोंवाले उन गौतमने बार २ घुड़क कर अहल्यासे कहा कि हे पापिनि ! जिस कारण तुमने इस निन्दित कर्म को किया ॥ १६ । १७ ॥ उसी लिये पत्थलमयी होकर तुम भूतलमें टिको तदनन्तर उसीक्षण उनगौतम की वह स्त्री शिलामयी होगई ॥ १८ ॥ व उस समय इन्द्रभी अण्डकोशों से हीनहोगये इसके अनन्तर अन्य एकान्त कन्दराको भलीभांति प्राप्त होकर इन्द्रने ॥ १९ ॥ लज्जा समेत होकर नित्यही कन्दरा सेवनकिया अपने नगरको नहींगये तदनन्तर उनसे रहित समस्त सुरसमूह उद्वेग (ऊब) समेतहुये ॥ २० ॥

पूजन के लिये तुम्हारा मस्तक सौखण्डहोगा याने पूजा न होगी इस प्रकार उन इन्द्रको शापदेकर तदनन्तर क्रोधसे अतिलाल

और वहां टिके व कन्दरा के लेपण (निवास) में तत्पर इन्द्रको न जानते थे व स्वर्गको राजा रहितहोने पर भयंकर दानवों से पीड़ित किये जातेथे ॥ २१ ॥ इसी अवसर में ऊब समेत व भयभीत इन्द्राणीने बृहस्पतिसे पूंछा कि आज इन्द्रजी कहांगये हैं ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर बृहस्पति जी देरतक ध्यानकर उन इन्द्रको ज्ञानरूपी दृष्टिसे देखकर देवों समेतगये व निठुरता समेत बोले ॥ २३ ॥ कि राज्य के सुखोंको छोड़कर तुम क्यों एकान्त में स्थितहो क्या तुमने ध्यान किया है या विकराल तपस्या का भलीभांति आश्रय कियाहै ॥ २४ ॥ बृहस्पतिके वचन सुनकर योनि मुखवाले इन्द्रजी बोले जो इन्द्र कि लज्जासे युक्त व दीन व आंसुओंसे डूबे

म् ॥ पीड्यन्तेदानवैरौद्रैस्स्वर्गेजातेविराजके ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेजीवश्शक्राण्याभयभीतया ॥ सोद्वेगयापरिपृष्टः क्वगतोद्यपुरन्दरः ॥ २२ ॥ अथजीवश्चिरन्ध्यात्वा दृष्टवांज्ञानचक्षुषा ॥ जगामसहितोदेवैः प्रोवाचाथसनिष्ठुरम् ॥ २३ ॥ किमिदंराज्यभोगांस्त्वं त्यक्त्वाविजनमाश्रितः ॥ किन्त्वयाविहितंध्यानं किंरौद्रंसंश्रितंतपः ॥ २४ ॥ बृहस्पतेर्वचःश्रुत्वा भगवक्त्रःपुरन्दरः ॥ प्रोवाचलज्जयायुक्तो दीनोबाष्पपरिप्लुतः ॥ २५ ॥ नाहंराज्यंकरिष्यामि त्रैलोक्येपिकथञ्चन ॥ पश्यमेयादृशीजाता अवस्थागौतमान्मुनेः ॥ २६ ॥ अनेनभगचिह्नेन कथंवक्त्रेणतानहम् ॥ देवान्सम्भाषयिष्यामि पौलोमीञ्चतथाप्रियाम् ॥ २७ ॥ मर्त्यलोकोद्भवापूजा ममनष्टाबृहस्पते ॥ गौतमस्यमुनेःशापात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वादेवराजस्य बृहस्पतिरुदारधीः ॥ दुःखेनमहतायुक्तः सर्वैर्देवैस्समावृतः ॥ २९ ॥ ततोबृहस्पतिर्गत्वा गौतमंमुनिमब्रवीत् ॥ एकच्छत्रपरित्यक्तंत्रैलोक्यमपिचाखिलम् ॥ ३० ॥ पीड्यन्तेदानवैर्विप्रा नष्ट

हुये थे ॥ २५ ॥ मैं त्रिलोकमें भी किसी प्रकार राज्य न करूंगा देखिये कि गौतम मुनिसे मेरी जैसी दशाहुई है ॥ २६ ॥ इस योनिचिह्नवाले मुख से उन देवों तथा प्यारी इन्द्राणीसे कैसे सम्भाषण करूंगा ॥ २७ ॥ व हे बृहस्पते ! किसी दूसरे कारण में गौतम मुनिकी शापसे मेरी मृत्युलोकमें उपजीहुई पूजा नष्ट होगई ॥२८॥ सुरराज के उस वचनको सुनकर समस्त देवताओं से घिरे व उदार बुद्धिवाले बृहस्पति जी बड़े दुःख से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर बृहस्पति जी जाकर गौतम

मुनिसे बोले कि समस्त त्रिलोकभी एक छत्रसे हीन होगया ॥ ३० ॥ व नष्टहुये यज्ञके उत्साह कर्मोंवाले ब्राह्मण दानवोंसे पीड़ित होतेहैं और परम लज्जासे घिरे येइन्द्र जी अपनी राज्यकी इच्छानहीं करते हैं ॥ ३१ ॥ उसी कारण हे द्विजोत्तम ! मेरे वचनसे इन इन्द्रकी शापके अनुग्रह के द्वारा यथा योग्य प्रसन्नताको कहने योग्य हो ॥ ३२ ॥ उस वचनको सुनकर गौतम ने कहा कि मेरा वचन झूंठ नहोगा व जिसको आपही कहाहै उस वचनको लोप न करूंगा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर आपही विष्णुजी व महादेव भी व नम्रतासे नीचे झुकेहुये समस्त सुरसमूह उन गौतम से बोले ॥ ३४ ॥ कि ब्रह्माके वचन तुमको अन्यथा करनेके लिये नहीं योग्य हैं इस

यज्ञोत्सवक्रियाः ॥ नैषवाञ्छतिराज्यंस्वं लज्जयापरयावृतः ॥ ३१ ॥ तस्मादस्यप्रसादंत्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ अनुग्रहेणशापस्य ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वागौतमःप्राह नमेवाक्यंमृषाभवेत् ॥ नवाक्यंलोपयिष्यामि यदुक्तंस्वयमेवहि ॥ ३३ ॥ ततःप्रोवाचतंविष्णुः स्वयंचापिमहेश्वरः ॥ तथादेवगणास्सर्वे विनयावनताःस्थिताः ॥ ३४ ॥ अन्यथाब्रह्मणोवाक्यं नतेकर्तुंप्रयुज्यते ॥ तस्मात्कुरुष्वविप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहंद्विज ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणोन्तिकमभ्येत्यतस्मै सर्वंन्यवेदयत् ॥ शापंशक्रस्यसंजातं यथातस्मान्महामुने ॥ ३६ ॥ यथाविडम्बनाजाता देवराजस्यगर्हिता ॥ यथाचदानवैस्सर्वं त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम् ॥ ३७ ॥ यथानकुरुतेराज्यं व्रीडितस्सशचीपतिः ॥ तच्छ्रुत्वापद्मजस्तूर्णंहरिशम्भुसमाश्रितः ॥ ३८ ॥ जगामतत्रयत्रास्ते दुःखितःपाकशासनः ॥ गौतमंचसमानीय तत्रैवचपितामहः ॥ ३९ ॥ ततःप्रोवाचप्रत्यक्षं देवानांवासवस्यच ॥ अयुक्तन्देवराजेन विहितोमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ यत्तेप्रदूषिताभार्य्या कामोपहतचेतसा ॥ तत्ते

लिये हे द्विजेन्द्र, द्विज ! शापकी अनुग्रह कीजिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके समीप आकर उनके लिये सब निवेदन किया कि जिस प्रकार उन गौतम महामुनि से शापहुई थी ॥ ३६ ॥ व जिस भांति सुरराजकी निन्दित विडम्बनाहुई व जिसभांति दानवोंने समस्त त्रिलोकको विकलकिया ॥ ३७ ॥ व जिसप्रकार लज्जित वे इन्द्राणीके पति (इन्द्र) राज्यनहीं करते थे उसको सुनकर विष्णु व शिवसे भलीभांति आश्रित होतेहुये ब्रह्माजी शीघ्रही ॥ ३८ ॥ वहांगये जहां कि दुःखित इन्द्रजी थे व वहीं गौतमको भलीभांति लाकर ब्रह्माजीने ॥ ३९ ॥ तदनन्तर देवों व इन्द्रके सामने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! सुरराजने अयोग्य कियाहै ॥ ४० ॥ जिसलिये कि कामदेव

से ताड़ित चित्तके कारण तुम्हारी नारीको दूषित किया उसीकारण तुम्हारा थोड़ाभी दोष नहीं है किन्तु इन इन्द्रमें छिद्र (दोष) है ॥ ४१ ॥ परन्तु मुनियोंकी उत्तम क्षमा नित्यही प्रशंसा कीजातीहै जिसप्रकार इन्द्र अपनी त्रिलोककी राज्यकोकरैं ॥ ४२ ॥ व तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस प्रकारहोवै वैसाही न्याय कियाजावै व इनको फिर अण्डकोश देकर व इन योनियोंको नाशकरके ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार मृत्युलोक में इनकी गतिहोवै वह करिये और वहां नित्यही वृषण समेत इन्द्रजीजावैं ॥४४॥ उनके उस वचनको सुनकर देवोंके गौरवसे उन गौतमजीने उस समय मेष (भेंड़ा) से उपजेहुये उन अण्डकोशों को युक्तकिया ॥ ४५ ॥ व उन योनियोंको हाथ

दोषोस्तिनस्वल्पश्छिद्रश्चास्मिन्पुरन्दरे ॥ ४१ ॥ परंप्रशस्यतेनित्यं मुनीनांपरमाक्षमा ॥ यथात्रैलोक्यराज्यंस्वं प्रकरोतिशतक्रतुः ॥ ४२ ॥ यथास्यात्त्वत्प्रसादेन तथानीतिर्विधीयताम् ॥ दत्त्वास्यवृषणौभूयो नाशयित्वाभगानि मान् ॥ ४३ ॥ मर्त्यलोकेगतिश्चास्य यथास्यात्तत्समाचर ॥ तत्रयातुसवृषणो नित्यमेवपुरन्दरः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्तेषां समुनिर्देवगौरवात् ॥ वृषणौमेषसम्भूतौ योजयामासतौतदा ॥ ४५ ॥ तान्भगान्पाणिनास्पृष्ट्वा चक्रेनेत्राणि सन्मुनिः ॥ ततःप्रोवाचतान्देवान्गौतमश्चमहातपाः ॥ ४६ ॥ सहस्राक्षोमयास्वामी निर्मितोयंसुरोत्तमाः ॥ समेषवृषणश्चापि स्वंराज्यंप्रकरिष्यति ॥ ४७ ॥ शोभास्यनेत्रजावक्रेसुरम्यासम्भविष्यति ॥ पुंस्त्वञ्चमेषजोत्थाभ्यांवृषणाभ्यां भविष्यति ॥ ४८ ॥ नचमर्त्येगतिश्चास्य पूजार्थंसम्भविष्यति ॥ एतस्मिन्नन्तरेजातः सहस्राक्षःपुरन्दरः ॥ ४९ ॥ शोभयापरयायुक्तो मुनेस्तस्यप्रभावतः ॥ ततःसंगृह्यपादौच गौतमस्यमहात्मनः ॥ ५० ॥ प्रोवाचवचनंशक्रः सर्वदेवसमा

से छूकर नेत्र करदिया तदनन्तर बड़े तपस्वी व उत्तममुनि गौतमजी उन देवताओंसे बोले ॥ ४६ ॥ कि हे देवोत्तमो ! भेंड़ाके अण्डकोशों समेत भी हज़ारनेत्रवाले इन्द्र को स्वामी बनाया ये अपनी राज्यकरैंगे ॥४७॥ व इनके मुखमें नेत्रोंसे उपजीहुई अति मनोहारिणी शोभाहोगी व मेढ़ासे उपजेहुये अण्डकोशोंसे पुरुषत्वहोगा ॥४८॥ और पूजनकें लिये इनकी मृत्युलोक में गतिनहोगी इसी अवसर में उन मुनिके तेज से इन्द्र बड़ी शोभासे युक्त व हज़ार नेत्रोंवाले होगये तदनन्तर गौतम महात्मा

के चरणोंको भलीभांति पकड़कर ॥ ४९।५० ॥ समस्त देवोंकी समाजमें इन्द्र वचन बोले कि हे द्विजसत्तम ! मृत्युलोकमें उपजीहुई पूजा दुर्लभहै ॥ ५१ ॥ वह मेरी पूजा जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नतासे होवै वह करिये हे द्विज ! त्रिलोकमें उपजी हुई मेरी पूजा मत नाशको प्राप्तहोवै ॥ ५२ ॥ तुम्हारी प्रसन्नतासे वह जिसप्रकार नित्य ही होवै उसको कीजिये उस वचनको सुनकर लज्जा व दयासे संयुत उत्तम मुनि गौतम जी ॥ ५३ ॥ समस्त देवताओं के सामने उन इन्द्रसे बोले कि मृत्युलोकमें तुम्हारा पूजन पांच रातैं होगा ॥ ५४ ॥ कि जिस प्रकार वर्षभर अनन्य (उत्तम) तृप्तिको प्राप्तहोगे जिस देश,नगर व ग्राममें पांचरातोंके मध्य महाउछाह होगा ॥ ५५ ॥

त्रैलोक्यसम्भवापूजा मानाशंयातुमेद्विज ॥ ५२ ॥ प्रसादात्तवसानित्यं यथास्यात्तद्विधीयताम् ॥ तच्छ्रुत्वालज्जयाविष्टः कृपयावाथसन्मुनिः ॥ ५३ ॥ तमूचेसर्वदेवानां प्रत्यक्षंपाकशासनम् ॥ पञ्चरात्रंचतेपूजा मर्त्यलोकेभविष्यति ॥ ५४ ॥ अनन्यांतृप्तिमभ्येषि यथाचैवतुवत्सरम् ॥ यत्रदेशेपुरेग्रामे पञ्चरात्रेमहोत्सवः ॥ ५५ ॥ तत्रसंवत्सरंयावन्नीरोगोभविताजनः ॥ आधयोव्याधयोनैव नदुर्भिक्षंकथञ्चन ॥ ५६ ॥ नचराज्यविनाशःस्यान्नैवलोकेसुखंकचित ॥ यत्रस्थानेमहोभावी तावकस्तुपुरन्दर ॥ ५७ ॥ प्रभूतपयसोगावः प्रभविष्यन्तितत्रच ॥ सुभिक्षंसुखिनोलोकाः सर्वोपद्रववर्जिताः ॥ ५८ ॥ इन्द्रउवाच ॥ यद्येवंशरदिप्राप्ते सर्वसत्त्वमनोहरे ॥ सप्तच्छदसमाकीर्णे बन्धूकसुविराजिते ॥ ५९ ॥ मालतीगन्धसङ्कीर्णे बहुसस्यसमाकुले ॥ चन्द्रज्योत्स्नाकृतोद्योते मयूरकुलसंकुले ॥ ६० ॥ कुमुदोत्पलसंयुक्ते तत्रस्यात्सुमहोत्सवः ॥ सामेतवप्रसादेन यथास्यात्तत्समाचर ॥ दुर्लभामर्त्यलोकोत्था पूजाब्राह्मणसत्तम ॥ ५१ ॥

वहां वर्षभर तक मनुष्य नीरोग होवैंगे व किसी प्रकार मानसी पीड़ा व रोग और दुर्भिक्ष न होगा ॥ ५६ ॥ और न राज्यका नाशहोगा व संसारमें कहीं क्लेश न होगा हे पुरन्दर ! जिस स्थानमें तुम्हारा उछाह होगा ॥ ५७ ॥ वहां बहुत दूधवाली गाइयां होंगी व सुभिक्ष होगा और मनुष्य समस्त उपद्रवोंसे रहित व सुखी होवैंगे ॥ ५८ ॥ इन्द्र बोले कि यदि ऐसाहै तो समस्त प्राणियोंको मनोहर शरद्ऋतु प्राप्तहोने पर जो शरद् कि छतौंड़ से व्याप्त व दुपहरी के पुष्पों से सुशोभित ॥ ५९ ॥ व चमेली की सुगन्ध से भरीहुई व बहुत अन्नोंसे घिरी और चन्द्रमा की चांदनी से किये हुये प्रकाशवाली व मयूरसमूहों से व्याप्त ॥ ६० ॥ व कुमुद, (को-

कावेली) कमल से संयुक्त होती है उसमें उत्तम महाउछाह होवै कि जिससे बालकभी व वृद्धभी देखकर उसको करै ॥ ६१ ॥ गौतमजी बोले कि आज विष्णु वाले श्रवण नक्षत्र में तुमको महाउछाह दिया जो नक्षत्र कि पुण्यदायक व समस्त पापोंसे रहितहै ॥ ६२ ॥ तुमने पहले पौष्ण (रेवती) सञ्ज्ञक नक्षत्रमें स्त्रीकी धर्षणा कियाहै उस दिन हे पुरन्दरजी ! तुम्हारा पातक प्रकटहोगा ॥ ६३ ॥ कि जिससे यह मेरी कीर्ति व तुम्हारा वह बहुकर्म इस संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होवै और कोई पातक न करै ॥ ६४ ॥ जो श्रवणादिक अलग २ पांच नक्षत्र हैं वे तुम्हारे पूजन के लिये पांचयज्ञों के बराबर ॥ ६५ ॥ व निरसन्देह समस्त तीर्थमय होवैंगे जो जिस

येनबालोपिवृद्धोपि दृष्ट्वातत्तुसमाचरेत् ॥ ६१ ॥ गौतमउवाच ॥ अद्यश्रवणनक्षत्रे तवदत्तोमहोत्सवः ॥ वैष्णवेपुण्य नक्षत्रे सर्वपापविवर्जिते ॥ ६२ ॥ त्वयाग्रेधर्षिताभार्य्या पौष्णेनक्षत्रसंज्ञिते ॥ तस्मिन्भविष्यतिव्यक्तं तवपापंपुरन्दर ॥ ६३ ॥ येनैषामासकीकीर्तिस्तावकंबहुकर्म्मतत् ॥ विख्यातिंयातिलोकेत्र नकश्चित्पापमाचरेत् ॥ ६४ ॥ श्रवणादीनि पञ्चैव नक्षत्राणिपृथक्पृथक् ॥ तवपूजाकृतेपञ्चक्रतुतुल्यानितानिच ॥ ६५ ॥ भविष्यन्तिनसन्देहः सर्वतीर्थमयानि च ॥ योयंकाममभिध्याय पूजांतवकरिष्यति ॥ ६६ ॥ विशेषात्फलपुष्पैश्च सतंकृत्स्नमवाप्नुयात् ॥ परंमूर्तिर्नतेपूज्या कुत्रापिचभविष्यति ॥ ६७ ॥ त्वयामेदूषिताभार्य्याब्राह्मणीप्राणसम्मता ॥ तस्माद्वृक्षोद्भवांयष्टिं ब्राह्मणावेद पारगाः ॥ ६८ ॥ तावकैस्सकलैर्मन्त्रैः स्थापयिष्यन्तिशक्तितः ॥ पञ्चरात्रविधानेन यथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ६९ ॥ ततःसंक्रमणंकृत्वा पूजामर्त्यसमुद्भवा ॥ त्वयाग्राह्यासहस्राक्ष तृप्तिश्चैवभविष्यति ॥ ७० ॥ योयथाचैवतेयष्टिं सुप्तासु

कामनाको चिन्तनकर विशेषकर फल फूलों से तुम्हारा पूजन करैगा वह उस सम्पूर्ण फलको पावैगा परन्तु तुम्हारी मूर्ति कहीं भी पूजने योग्य न होगी ॥ ६६।६७॥ तुमने प्राणों के समान मेरी स्त्री ब्राह्मणीको दूषित किया है उसीकारण वेदके पारगामी ब्राह्मण वृक्षसे उपजीहुई यष्टि (छड़ी) को शक्ति से पंचरात्र विधान के द्वारा तुम्हारे समस्त मन्त्रों से स्थापन करैंगे जैसे कि अन्य देवताओं का स्थापन करते हैं ॥ ६८।६९ ॥ तदनन्तर हे सहस्रलोचन ! भलीभांति गमनकरके मनुष्योंसे उपजीहुई

पूजा तुमको ग्रहण करनाचाहिये क्योंकि तृप्ति होवैगी ॥७०॥ जो जिसप्रकार सोती (पड़ी) हुई तुम्हारी छड़ीको उठावैगा हे वासव ! उस उसकी अधिक सिद्धि होगी ॥ ७१ ॥ व ब्रह्मचर्य में तत्पर और पंचरात्रिव्रतमें टिकाहुआ जो पुरुष यथोदित फल फूलों से तुम्हारा पूजन करैगा ॥ ७२ ॥ वह पराई स्त्रीमें कियेहुये समस्त पातक से मोक्षको पावैगा हे सुनाशीर ! हे परायण ! शक्रदेवके लिये नमस्कारहै ॥ ७३ ॥ व वज्र हाथोंवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व वज्रपाणि जो तुमहो उनके लिये नमस्कार है हे इन्द्रजी ! जो पुरुष इस मन्त्रसे तुमको अर्घ देवैगा ॥ ७४ ॥ उसका पराई स्त्री में कियाहुआ समस्त पातक नाश होजावैगा हे पुरन्दर ! जो पुरुष मेरे

त्थापयिष्यति ॥ तस्यतस्याधिकासिद्धिःसम्भविष्यतिवासव ॥ ७१ ॥ पञ्चरात्रव्रतस्थोयो ब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ प्रकरिष्यतितेपूजां फलपुष्पैर्यथोदितैः ॥ ७२ ॥ परदारकृतात्पापात्ससर्वान्मुक्तिमेष्यति ॥ नमःशक्रायदेवाय सुनाशीरपरायण ॥ ७३ ॥ नमस्तेवज्रहस्ताय नमस्तेवज्रपाणये ॥ मन्त्रेणानेनयश्चार्घं तवशक्रप्रदास्यति ॥ ७४ ॥ परदारकृतंपापंतस्यसर्वंप्रणश्यति ॥ यश्चेमंतवसंवादं मयासार्द्धंपुरन्दर ॥ ७५ ॥ कीर्तयिष्यतिसद्भक्त्या तथैवकथयिष्यति ॥ तस्यसंवत्सरंयावन्नैवरोगोभविष्यति ॥७६॥ तच्छ्रुत्वाविबुधास्सर्वे तथेत्युक्त्वाप्रहर्षिताः॥जग्मुःशक्रंसमादाय पुनरेवामरावतीम्॥ गौतमोपिनिजावासं गतकोपःसमाश्रितः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे इन्द्रमहोत्सवोनामसप्तनवत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ एवंशक्रेदिवंप्राप्ते देवेषुसकलेषुच ॥ गौतमःस्वाश्रमंप्राप्तः कोपेनमहताज्वलन् ॥ १ ॥ ततस्स

साथ इस तुम्हारे संवादको उत्तम भक्तिसे कहैगा व कीर्तन करावैगा उसके वर्षभर तक रोग न होगा ॥७५।७६॥ उस वचनको सुनकर वैसाही होगा यह कहकर प्रसन्नहोते हुये समस्त देवता इन्द्र को भलीभांति लेकर फिरभी अमरावती को चलेगये और गये क्रोधवाले गौतमभी अपने निवासस्थानमें भलीभांति आश्रित हुये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रमहोत्सवोनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गौतम सुत अरु नारि सह थाप्यो लिंगन तीन । इकसौ अट्ठानबे महँ सोई बर्णन कीन ॥ विश्वामित्रजी बोले कि इसप्रकार जब इन्द्र व समस्त देवता स्वर्गको

प्राप्तहुये तब बड़े कोपसे जलतेहुये गौतमभी अपने स्थान पै प्राप्तहुये ॥ १ ॥ तदनन्तर उन गौतमजी ने शतानन्दके आगे समस्त देवोंके कर्म व इन्द्रके लिये वरदान को कहा ॥ २ ॥ उस वचनको सुनकर नम्रता से नीचे झुँके खड़ेहुये शतानन्द ने पितासे कहा कि हे पिताजी ! मेरी माताके उठानेमें किसलिये नहीं प्रसन्नता करतेहो हे विभो ! तुमको कुछ असाध्य नहीं है इसलिये मेरेऊपर प्रसन्नता करिये कि जिसप्रकार हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझ दीन व उत्कंठित का माताके साथ संयोग होवै इस लिये उसको शीघ्रही उठाकर तदनन्तर प्रायश्चित्त विधिको ॥ ३ । ४ । ५ ॥ उसीकारण शीघ्रही मुझसे कहिये कि जिससे पवित्रता होवै गौतमजी बोले कि मदिरा लगेहुये

कथयामास सर्वदेवविचेष्टितम् ॥ वरदानंचशक्राय शतानन्दस्यचाग्रतः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वापितरंप्राह विनयावनतःस्थितः ॥ ताताम्बायानकस्मात्त्वं प्रसादंप्रकरोषिमे ॥ ३ ॥ उत्थापनेनतेकिञ्चिदसाध्यंविद्यतेविभो ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमे यथास्यान्ममचाम्बया ॥ ४ ॥ समागमोमुनिश्रेष्ठ दीनस्योत्कण्ठतस्यच ॥ तस्मादुत्थायतांतूर्णं प्रायश्चित्तविधिन्ततः ॥ ५ ॥ तस्मादादिशमेक्षिप्रं येनशुद्धिःप्रजायते ॥ गौतमउवाच ॥ मद्यावलिप्तभाण्डानां यदिशुद्धिःप्रजायते ॥ ६ ॥ तत्स्त्रीणांजायतेशुद्धिर्योनौशुक्राभिषेचनात् ॥ ब्राह्मणस्तुसुरांपीत्वा मौञ्जीहोमेनशुध्यति ॥ ७ ॥ अथाग्निसाधयित्वाच नतुनारीविधर्म्मिता ॥ मद्यभाण्डमपिप्रायो यथावद्वह्निशोधितम् ॥ ८ ॥ विशुध्यतितथानारी वह्निदग्धाविशुध्यति ॥ यस्यारेतोथसंक्रान्तमुदरेह्यन्यसम्भवम् ॥ ९ ॥ एतस्मात्कारणान्माता मयातेपुत्रसाशिला ॥ विहितानहितस्यास्ति विशुद्धिस्तुकथञ्चन ॥ १० ॥ शतानन्दउवाच ॥ यद्येवंसाधयिष्यामि तत्कृतेहंहुताशनम् ॥ विषंवाभक्षयिष्या

पात्रोंकी यदि शुद्धि होतीहै ॥ ६ ॥ तो योनिमें वीर्यके सींचनेसे स्त्रियोंकी शुद्धि होती है ब्राह्मण तो मदिरा पीकर मौंजी होमसे शुद्ध होताहै ॥ ७ ॥ और विधर्ममें प्राप्तहुई स्त्री अग्निको साधनकर भी नहीं शुद्ध होती है व बहुधा मदिराका पात्रभी यथायोग्य अग्निमें शोधाहुआ विशेष कर शुद्ध होता है वैसेही अग्निमें जली हुई वह स्त्री विशुद्धहोती है कि जिसके पेटमें अन्यसे उपजाहुआ वीर्य भलीभांति गयाहै ॥ ८ । ९ ॥ हे पुत्र ! इसी कारण मैंने तुम्हारी माताको शिला किया है उसकी शुद्धि तो

किसी प्रकार नहीं है ॥ १० ॥ शतानन्द बोले कि यदि ऐसाहै तो उसके लिये मैं अग्नि साधन करूंगा या विषखाऊंगा अथवा जलाशयमें गिरूंगा ॥ ११ ॥ हे पिता जी ! माताके वियोग से मैंने यह सत्य कहाहै व वैसेही धर्मके पूर्ण करनेवाले अन्य मनु आदिके मुनि स्थितहुयेहैं ॥ १२ ॥ हे पिताजी ! इतिहासों, पुराणों व बहुतेरे समस्त वेदान्तोंको भलीभांति चिन्तन करके मेरी माता व मुझकोभी शुद्धि दीजिये नहीं तो प्राणोंका नाशकरूंगा विश्वामित्रजी बोले कि उस वचनको सुनकर व बहुत देरतक ध्यानकर गौतम ने अपनी भुजाओं से उस पुत्रको लिपटाकर व मस्तकमें सूँघकर तदनन्तर कहा कि हे वत्स ! यदि ऐसाहै तो अपने शरीरके मारने

मि पतिष्यामिजलाशयम् ॥ ११ ॥ मातुर्वियोगतस्तात सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ धर्म्मदोहाःस्थिताश्चान्ये मन्वाद्यामु
नयस्तथा ॥ १२ ॥ इतिहासपुराणानि वेदान्तानिबहूनिच ॥ सञ्चिन्त्यतातसर्वाणि देहिशुद्धिममापिताम् ॥ १३ ॥ मम
मातुःकरिष्यामि नोचेत्प्राणपरिक्षयम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासुचिरंध्यात्वा गौतमःप्राहतंसुतम् ॥ १४ ॥ प
रिष्वज्यस्वबाहुभ्यां मूर्धन्याघ्रायततःपरम् ॥ यद्येवंवत्समाकार्षीः साहसंपापसम्भवम् ॥ १५ ॥ आत्मदेहविघातेन श्रू
यतांवचनंमम ॥ मेध्यत्वेतवमातुश्च शुद्धिर्ज्ञातामयातथा ॥ १६ ॥ यथासाममहर्म्यार्हा भविष्यतिनसंशयः ॥ उत्प
त्स्यतेरवेर्वंशे रामरूपीजनार्द्दनः ॥ १७ ॥ रावणस्यवधार्थाय मानुषंरूपमास्थितः ॥ तस्यपादस्यसंस्पर्शाद्भूयःशुद्धाभ
विष्यति ॥ १८ ॥ तस्मात्प्रतीक्षतावत्त्वमौत्सुक्यंव्रजपुत्रक ॥ एतत्सम्यङ्मयाज्ञातं वत्सदिव्येनचक्षुषा ॥ १९ ॥ एत
च्छ्रुत्वातथेत्युक्त्वा शतानन्दःप्रहर्षितः ॥ स्थितःप्रतीक्षमाणस्तु तंकालंमातृवत्सलः ॥ २० ॥ ततःकालेनमहता राम

द्वारा पापसे उपजाहुआ साहस मतकरो किन्तु मेरे वचन सुनो कि तुम्हारी माताकी शुद्धता के निमित्त मैंने वैसेही शुद्धिजाना है ॥ १३ । १४ । १५ । १६ ॥ कि जिस प्रकार वह निस्सन्देह मेरेघरके योग्य होगी सूर्यवंशमें रामरूपवाले जनार्दन (विष्णु) उत्पन्न होवैंगे ॥ १७ ॥ वे रावणके मारने के लिये मनुज रूपसे टिकैंगे उनके चरण के भलीभांति छूनेसे फिर शुद्धहोगी ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम तबतक परखो व उत्कण्ठताको प्राप्तहोवो हे वत्स ! मैंने यह सब दिव्यदृष्टिसे देखा है ॥१९॥ इस वचनको सुनकर वैसाही होगा यह कहकर प्रसन्न होतेहुये मातृप्रिय शतानन्दजी उस समयको परखतेहुये टिके ॥ २० ॥ तदनन्तर बहुत समयसे रामरूपवाले जना-

दैनजी रावणके मारने के लिये दशरथजी के घरमें पैदाहुये ॥ २१ ॥ शिशुतामेंभी भलीभांति टिकेहुये उन विष्णुभगवान्‌को मैं अपने यज्ञकी रक्षाके लिये व यज्ञ-कर्म के विनाश करनेवाले राक्षसों के नाशके निमित्त अपने आश्रम को भलीभांति लाया व मेरे यज्ञके वर्तमान होनेपर वे भयङ्कर राक्षस मारेगये ॥ २२ । २३ ॥ व मैं उन सीताका स्वयंवर व राजाओं का समागम सुनकर लक्ष्मण समेत उन रघुनन्दनको जानकी जी के विवाह के लिये अयोध्या से भलीभांति लाया तदनन्तर गौतमजी के उत्तम आश्रम में मैंने प्रमाणसे बड़ीभारी उन शिलारूपिणी अहल्या को देखा तदनन्तर मैंने रामजी से कहा कि हे वत्स ! हाथसे इनको स्पर्श

रूपीजनार्द्दनः ॥ रावणस्यवधार्थाय जातोदशरथालये ॥ २१ ॥ समयाभगवान्विष्णुर्बालभावेपिसंस्थितः ॥ निजयज्ञस्यरक्षार्थं समानीतस्स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥ राक्षसानांविनाशाय यज्ञकर्म्मविनाशिनाम् ॥ हतास्तेराक्षसारौद्रा ममयज्ञेनिवर्तिते ॥ २३ ॥ अयोध्यायास्समानीतस्समयारघुनन्दनः ॥ सीतायाश्चविवाहार्थं लक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ २४ ॥ श्रुत्वास्वयंवरंतस्याः पार्थिवानांसमागमम् ॥ ततोमार्गेमयादृष्टा गौतमस्याश्रमेशुभे ॥ २५ ॥ अहल्यासाशिलारूपा प्रमाणेनमहत्तमा ॥ ततःप्रोक्तोमयारामः स्पृशेमांवत्सपाणिना ॥ २६ ॥ मानुषत्वंलभेद्येन गौतमस्यप्रियामुनेः ॥ शापदोषेणसञ्जाता शिलेयंतस्यसन्मुनेः ॥ २७ ॥ अविशङ्कंततोरामो ममवाक्येनतांशिलाम् ॥ पस्पर्शपार्थिवश्रेष्ठ कौतूहलसमन्वितः ॥ २८ ॥ अथरामेणसंस्पृष्टा सहसैववपुर्द्धरा ॥ शुशुभेमानुषीजाता दिव्यरूपवपुर्द्धरा ॥ २९ ॥ ततस्सालज्जयाविष्टा प्रणिपत्यचगौतमम् ॥ स्मरमाणात्मनःकृत्यं यच्चक्रेणसमन्वितम् ॥ ३० ॥ प्रायश्चित्तं

करिये ॥ २४।२५।२६ ॥ कि जिससे गौतम मुनिकी प्यारी मनुजताको प्राप्तहोवै क्योंकि उन उत्तम मुनिके शापदोषसे यह शिला होगई है ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! कौतुक से संयुत रामचन्द्रजीने मेरे वचनसे निस्सन्देह उस शिलाको स्पर्श किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर अचानकही रामजीसे भलीभांति छुई व शरीरधारिणी व दिव्यरूपवाली देहधारिणी मानुषी होतीहुई शोभित भई ॥ २९ ॥ तदनन्तर लज्जा से संयुत व जो इन्द्रके साथ अपना कर्मथा उसको यादकरतीहुई वह गौतमजीको

मैं इस

प्रणामकर बोली ॥ ३० ॥ कि हे स्वामिन् ! मुझको समस्त प्रायश्चित्त सम्पूर्णतासे दीजिये जो वह कि अन्य जार (उपपति) के संयोग से होता है ॥ ३१ ॥ मैं इस
दुष्कर (कठिन) भी प्रायश्चित्त को निरसन्देह करूगी कि जिससे पुरश्चरण के सेवन से मेरी शुद्धिहोवै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बहुत देरतक भलीभांति चिन्तवन कर
उस समय गौतमजी बोले कि सौ चान्द्रायण व्रत व हज़ार कृच्छ्र व्रतकरो ॥ ३३ ॥ व तीर्थयात्रा में तत्पर होतीहुई दशहजार प्राजापत्य व्रतकरो और भूतलमें अरसठि
तीर्थोंके मध्य जो तीर्थहैं॥३४॥उनके भलीभांति दर्शनसे उस पापसे शुद्धिको पावोगी वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर नित्यही व्रतमें तत्पर होतीहुई वह अहल्या ॥ ३५ ॥

परस्यतत्प्रजायते ॥ ३१ ॥ अहंदुष्करमप्येतत्करिष्यामिन ममस्वामिन्देहिसर्वमशेषतः ॥ यज्जारस्यसमायोगे परस्यतत्प्रजायते ॥ ३१ ॥ अहंदुष्करमप्येतत्करिष्यामिन
संशयम् ॥ येनशुद्धिर्भवेन्मह्यं पुरश्चरणसेवनात् ॥ ३२ ॥ ततःसञ्चिन्त्यसुचिरं तदाप्रोवाचगौतमः ॥ कुरुचान्द्रायण
शतं कृच्छ्राणांचसहस्रकम् ॥ ३३ ॥ प्राजापत्यायुतंचापितीर्थयात्रापरायणा ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषु यानितीर्थानिभूतले ॥
३४ ॥ तेषांसन्दर्शनात्सम्यक् ततःशुद्धिमवाप्स्यसि ॥ सातथेतिप्रतिज्ञाय नित्यंव्रतपरायणा ॥ ३५ ॥ अष्टषष्टिषु
तीर्थेषु वाराणस्यादिषुक्रमात् ॥ बभ्रामतानिलिङ्गानि पूजयन्तीप्रभक्तितः ॥ ३६ ॥ क्रमेणैवतुसाप्राप्ता हाटकेश्वरदैव
तम् ॥ तस्मिंस्तपःप्रकुर्वन्ती स्थित्वाचैवसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ दर्शनार्थंहिदेवस्य पातालनिलयस्यच ॥ पञ्चाग्निमाधका
ग्रीष्मे हेमन्तेसलिलाश्रया ॥ ३८ ॥ वर्षास्वाकाशशयना साबभूवतपस्विनी ॥ हरलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नाचान्तिकेत
दा ॥ ३९ ॥ त्रिकालंपूजयामास गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ एवंतपसिसंस्थायास्तस्याःकालोमहान्गतः ॥ ४० ॥ नचसन्द

और वह क्रमहीसे हाटकेश्वरदेवता वाले तीर्थको प्राप्तहुई
काशी इत्यादिक अरसठि तीर्थोंमें क्रमसे उन लिंगोंको बड़ी भक्तिसे पूजती हुई घूमती भई ॥ ३६ ॥ और वह क्रमहीसे हाटकेश्वरदेवता वाले तीर्थको प्राप्तहुई
व उस तीर्थ में टिककर दुष्कर तपको करतीहुई टिकी ॥ ३७ ॥ व पातालमें स्थान वाले (शिव) देवके देखने के लिये ग्रीष्ममें पंचाग्नि साधन करनेवाली व हेमन्त
में जलाश्रय वालीहुई ॥ ३८ ॥ व वर्षामें वह तपस्विनी आकाश (मैदान) में सोने वालीहुई और उस समय समीपमें अपने नामसे शिवलिंगको थापकर ॥३९॥ चन्द-
न, फूल व अनुलेपनों से त्रिकालमे पूजतीभई इस भांति तपस्यामें भली विधि से टिकीहुई उस अहल्या का बहुतसा समय व्यतीत हुआ ॥ ४० ॥ और हाटकेश्वरसे

उपजाहुआ दर्शन न भया इसके अनन्तर किसी समय उनके पुत्र जो शतानन्दजी थे ॥ ४१ ॥ उसको ढूंढ़तेहुये वे उस क्षेत्रमें भलीभांति आये जोकि माताके स्नेहसे घिरेहुये मन या चित्तवाले व तीर्थोंके मध्य ढूंढ़ने में तत्पर थे ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर वहां भयंकर तपस्या में टिकीहुई उन अहल्या को देखकर प्रणाम करके स्थित होतेहुये दीन व दुःख समेत शतानन्दजी वचनबोले ॥ ४३ ॥ कि हे माता ! विकराल तपस्याको करके क्यों शरीर क्लेशित किया जाता है उन सरसठि तीर्थोंमें जो लिंगहैं ॥ ४४ ॥ उन महादेवजी के लिंगोंको तुमने देखाहै और पाताल में भलीभांति टिकेहुये इस हाटकेश्वर नामक लिंगको ॥ ४५ ॥ कोई मनुष्य नहीं देखता है

र्शनंजातं हाटकेश्वरसम्भवम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य शतानन्दश्चतत्सुतः ॥ ४१ ॥ सतामन्वेषमाणस्तु तस्मिन्क्षेत्रेसमागतः ॥ मातृस्नेहपरीतात्मा तीर्थान्वेषणतत्परः ॥ ४२ ॥ अथतांतत्रसंवीक्ष्य दारुणेतपसिसंस्थिताम् ॥ प्रणिपत्यस्थितोदीनः सदुःखोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ किंमातःक्लिश्यसेकायस्तपःकृत्वासुदारुणम् ॥ सप्तषष्टिषुतीर्थेषु यानिलिङ्गानितेषुच ॥ ४४ ॥ माहेश्वराणिलिङ्गानि तानिदृष्टानिचत्वया ॥ एतत्पातालसंस्थंच हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥४५॥ नपश्यतिनरःकश्चिद्दृष्टंक्षेत्रंनकेनचित् ॥ तेनशुद्धिश्चसंजाता स्वभर्त्राभिहितातुया ॥ ४६ ॥ तस्मादागच्छगच्छामस्ताताश्रमपदेशुभे ॥ अहल्योवाच ॥ तावद्गच्छामिनोगेहं यावत्पश्यामिनोहरम् ॥ ४७ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तु निश्चयोयंमयाकृतः ॥ तच्छ्रुत्वासोपितांप्राह एषचेन्निश्चयस्तव ॥ ४८ ॥ मयापितातपार्श्वेतु नगन्तव्यंत्वयासह ॥ एवमुक्त्वाततःसोपि स्थापयामासशाम्भवम् ॥ ४९ ॥ षष्ठाहकालभोज्यस्य व्रतचर्य्यारतस्यच ॥ एवंतस्यापिसंस्थस्य

और न किसीने क्षेत्र देखाहै उसी कारण निजपति से जो कहीगई थी वह शुद्धि भलीभांति होगई ॥ ४६ ॥ इस लिये आइये व शुभदायक पिताजी के आश्रममें चलैं अहल्या बोली कि जब तक हाटकेश्वर नामक महादेवजी को न देखूंगी तब तक घर न जाऊंगी मैंने यह निश्चय किया है उसको सुनकर उन शतानन्दने भी उस से यह कहा कि यदि तुम्हारा यह निश्चय है ॥ ४७ । ४८ ॥ तो तुम समेत मुझ को भी पिताके समीप न जाना चाहिये ऐसा कहकर तदनन्तर उन शतानन्दने भी

शिवलिंग थापन किया ॥४९॥ छठे दिनके समय भोजन करनेवाले व व्रतचर्या में परायण इस भांति टिकेहुये उन शतानन्द मुनिका भी बहुत समय व्यतीत हुआ ॥५०॥ और उन दोनों से किसी प्रकार शिवदेवजी प्रसन्न न हुये तदनन्तर बहुत समय से गौतम महामुनिभी ॥ ५१ ॥ आपही वहां आये व पुत्र दर्शन की लालसा वाले वे गौतम जी स्त्री समेत पुत्रको तपस्यामें भलीभांति टिकेहुये देखकर तबतक पहले प्रसन्न हुये व पश्चात् दुःख संयुत हुये कि अहो खेदहै व बड़ा कष्ट है कि मेरा पुत्र कृशत्वको प्राप्तहोगया यानी दुबला होगया ॥ ५२।५३ ॥ मैं तपस्यासे निवृत्त करके अपने घरको लेजाऊं शतानन्दजी बोले कि हे पिताजी ! बहुत प्रकार

गतःकालोमहान्मुनेः ॥ ५० ॥ नचतुष्टिङ्गतोदेवस्ताभ्यांद्वाभ्यांकथञ्चन ॥ ततःकालेनमहता गौतमोपिमहामुनिः ॥ ५१ ॥ आजगामस्वयंतत्र पुत्रदर्शनलालसः ॥ सदृष्ट्वाभार्य्ययासार्द्धं पुत्रंतपसिसंस्थितम् ॥ ५२ ॥ तुतोषप्रथमं तावत्पश्चाद्दुःखसमन्वितः ॥ अहोबतमहत्कष्टं पुत्रोमेकृशताङ्गतः ॥ ५३ ॥ नयामिस्वगृहंकृत्वा तपसःसन्निवर्तनम् ॥ शतानन्दउवाच ॥ ताताम्बाबहुधाप्रोक्ता तपसःसन्निवर्तनम् ॥ ५४ ॥ नागच्छातितथाहम्यमदृष्टेहाटकेश्वरे ॥ अहंतया विहीनस्तु नैवयास्यामिनिश्चितम् ॥ ५५ ॥ एवंज्ञात्वामहाभाग यद्युक्तंतत्समाचर ॥ गौतमउवाच ॥ अद्यैवनिश्चयोवत्स तवमातुश्चसंस्थितः ॥ ५६ ॥ अहंतंदर्शयिष्यामि तपसाहाटकेश्वरम् ॥ एवमुक्त्वाततस्सोपि तपश्चक्रेमहामुनिः ॥ ५७ ॥ एकान्तरोपवासस्तु स्थितोवर्षशतम्मुनिः ॥ षष्ठाहकालभोजीच तावत्कालंततोभवत ॥ ५८ ॥ त्रिरात्रभो

से कहीहुई माता तपस्या से निवृत्तिको नहीं प्राप्तहोती है वैसेही जब तक हाटकेश्वर जी न देख पड़ैंगे तब तक उस से विहीन मैं घरको न जाऊंगा यह निश्चय किया गयाहै ॥ ५४ । ५५ ॥ हे महाभाग ! ऐसा जानकर जो योग्यहो वह करिये गौतमजी बोले कि हे वत्स ! आजही तुम्हारा व तुम्हारी माताका निश्चय भली-भांति स्थितहै ॥ ५६ ॥ मैं तपस्या से उन हाटकेश्वर जी को दिखाऊंगा ऐसा कहकर तदनन्तर उन महामुनि गौतम ने भी तपस्या किया ॥ ५७ ॥ मुनि (गौतम) जी सौ वर्ष तक एक दिनके अन्तर से उपासी होतेहुये टिके तदनन्तर उतनेही समय तक दिनके छठेभाग में भोजन करनेवाले हुये ॥ ५८ ॥ पश्चात् उतनेही समय

तक मुनि नायक भी न रातोंके बाद भोजन करने वाले हुये व उतनेही समय नित्यही फलोंसे भोजन करने वाले व उतनेही समय जलभोजी होकर ॥ ५९ ॥ तदनन्तर मुनिजी उतनेही समय तक पवन भोजीहुये उसके उपरान्त उत्तम हज़ार वर्षके अन्तको व्यवस्थित होनेपर ॥ ६० ॥ भूपृष्ठको फोड़कर बारह सूर्य्योंके समान व समस्त लक्षणों से लक्षित उत्तम लिंग निकला ॥ ६१ ॥ इसी समय में जिनके मस्तक में चन्द्रमा है वे भगवान् शिवजी ॥ ६२ ॥ उन गौतम के नेत्रमार्ग में प्राप्त होकर यह वचन बोले कि हे सुव्रत गौतमजी ! तुम्हारी इस तपस्यासे हम प्रसन्न हुये हैं ॥ ६३ ॥ हे महामुने ! तुम्हारी भक्तिसे यह हाटकेश्वर नामक मेरा लिंग पा-

जीपश्चाच्च तावत्कालंमुनीश्वरः ॥ तावत्कालंफलैर्नित्यं तावत्कालंजलाशनः ॥ ५९ ॥ वायुभक्षस्ततोभूत्वा तावत्कालमभून्मुनिः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते परमेसंव्यवस्थिते ॥ ६० ॥ प्रभिद्यमेदिनीपृष्ठं निष्क्रान्तंलिङ्गमुत्तमम् ॥ द्वादशार्कप्रतीकाशं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवाञ्छशिशेखरः ॥ ६२ ॥ तस्यदृष्टिपथंगत्वावाक्यमेतदुवाचह ॥ गौतमाहंप्रतुष्टस्ते तपसानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ एतच्चमामकंलिङ्गं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ पातालाच्चविनिष्क्रान्तं तवभक्त्यामहामुने ॥ ६४ ॥ एतदर्थंतपस्तप्तं सभार्य्येणत्वयाहितत् ॥ सपुत्रेणाखिलंजातं फलंतस्ययथेप्सितम् ॥ ६५ ॥ एतत्पश्यतुतेभार्य्या अहल्यादेवरूपिणी ॥ अष्टषष्ट्युद्भवंयेन यात्राफलमवाप्नुयात् ॥६६॥ त्वंचापिप्रार्थयवरं येनसर्वंददामिते ॥ गौतमउवाच ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तु सकृद्दृष्टेथयत्फलम् ॥ ६७ ॥ पातालस्थंच यत्पुण्यं नराणांजायतेफलम् ॥ दृष्टेनानेनतत्पुण्यं पूजितेनविशेषतः ॥ ६८ ॥ अन्येपियेजनास्तच्च पूजयन्तिप्रभ

तालसे निकला है ॥ ६४ ॥ इसीके लिये स्त्री समेत व पुत्र सहित तुमने तपकिया है उसका वह इच्छाके अनुकूल समस्त फल हुआ ॥ ६५ ॥ व देवरूपिणी तुम्हारी अहल्या स्त्री इसको देखै कि जिससे अरसठि क्षेत्रोंसे उपजाहुआ यात्राका फल प्राप्तहोवै ॥ ६६ ॥ और तुमभी वरदानकी प्रार्थना करो कि जिससे तुमको सब देऊं गौतम बोले कि हाटकेश्वर संज्ञक महादेवको एकही बार देखने पर जो पुण्यहोती है ॥ ६७ ॥ व पातालमे टिकीहुई जो पुण्यहोती है वह पुण्य इनको देखने व विशे-

चौदासि में पूजनकरैं वे स्वर्गको जावैं ॥ ६९ ॥ शुद्धिके अभिलाषी
पकर पूजनेसे मनुष्यों का होवै ॥ ६८ ॥ व और भी जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे उस लिंगको चैत शुक्ल
पुरुष इस लिंगको नहीं जानते हैं उसी कारण हाटकेश्वर की इच्छामे बिलमें पैठते हैं ॥ ७० ॥ पाप संयुत भी पुरुष इस लिंगके प्रभाव से व अहल्येश्वर के दर्शन
से पराई स्त्री से उपजेहुये पातक से शुद्धहोते है ॥ ७१ ॥ व उनके मध्यमें शतानन्देश्वर के दर्शन से भी व उस दिन किये हुये उस पूजन से मनुष्य शुद्धहोते हैं ॥७२॥
व्रत व नियम दानको भी व कथाको मनुष्य नही करतेथे उसी कारण उस लिंगको देखकर व भक्तिसे छूकर छूटजाता था ॥ ७३ ॥ तदनन्तर स्वर्ग मे मनुष्यों

एतल्लिङ्गंनजानन्ति नराःशुद्ध्यभिकाङ्क्षिणः ॥ विशन्तिविवरं
क्तितः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तेप्रयान्तुत्रिविष्टपम् ॥ ६९ ॥
तेन हाटकेश्वरकाङ्क्षया ॥ ७० ॥ अपिपापसमोपेता लिङ्गस्यास्यप्रभावतः ॥ परदारोद्भवात्पापादहल्येश्वरदर्शना
त् ॥ ७१ ॥ शुद्ध्यन्तिमानवास्तेषां शतानन्देश्वरादपि ॥ तस्मिन्दिनेविहितया तयाचैवप्रपूजया ॥ ७२ ॥ नव्रतंनिय
मंचैव दानस्यापिकथामपि ॥ तल्लिङ्गंचततोदृष्ट्वा स्पृष्ट्वामुच्येतभक्तितः ॥ ७३ ॥ ततोभीतास्सुरास्सर्वे स्वर्गेवैमानुषैर्वृताः॥
प्रोचुःपुरन्दरङ्गत्वा व्यथयापरयायुताः ॥ ७४ ॥ मर्त्यलोकेसहस्राक्ष सर्वेधर्म्माःक्षयङ्गताः ॥ अपिपापसमाचारा अभ्ये
त्यपुरुषाइह ॥७५॥ अस्माभिस्सहगर्वाढ्याः स्पर्द्धांकुर्वन्तिसर्वदा ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे लिङ्गत्रयमनुत्तमम् ॥ ७६ ॥ तल्लि
ङ्गस्थापितंतत्र गौतमेनमहात्मना ॥ सपुत्रेणसदारेण पापात्तस्यप्रभावतः ॥ ७७ ॥ अपिपापसमाचारा इहागच्छन्ति
तेखिलाः ॥ यमस्यनरकास्सर्वे साम्प्रतंशून्यताङ्गताः ॥ ७८ ॥ गौतमेनसमानीतः पातालाद्धाटकेश्वरः ॥ तपसातोष

से घिरेहुये समस्त देवता डरकर बड़ी व्यथामे संयुत होतेहुये इन्द्रके समीप जाकर बोले ॥ ७४ ॥ कि हे सहस लोचन ! मृत्युलोक में समस्त धर्मनाश होगये
व पाप आचरणवाले भी पुरुष यहां आकर ॥ ७५ ॥ सदैव अहंकारसे संयुत वे हम सबोंके साथ ईर्षा करते हैं व हाटकेश्वरजीसे उपजेहुये क्षेत्रमें अति उत्तमतीन लिं-
गहैं ॥ ७६ ॥ वहां उन तीनों लिंगोंको स्त्री समेत व पुत्र सहित पाप के कारण महात्मा गौतमजीने थापाहै उस के प्रभावसे ॥ ७७ ॥ पाप आचरणवाले भी वे समस्त
पुरुष यहां आतेहैं इस समय यमराज के समस्त नरक शून्यता को प्राप्तहोगये ॥ ७८ ॥ हे सुरनायक ! गौतमजीने तपस्या से प्रसन्न करके उस स्थान में पाताल

से हाटकेश्वरजी को भलीभांति प्राप्त कियाहै ॥ ७९ ॥ उनके प्रभावसे भूतलमें यह व्यौहार हुआहै ऐसा जानकर जिसप्रकार यज्ञैं वर्त्तमान होवैं वैसाही कीजिये ॥८०॥ क्योंकि उन यज्ञोंके बिना किसी प्रकार हमलोगों की तृप्ति न होगी उसको सुनकर इन्द्रजीने वहां कामदेवको भलीभांति बुलाकर ॥८१ ॥ व क्रोध, काम, लोभ व वैर संयुत ईर्षाको बुलाकर कहा कि अहो क्रोधादिको मेरी आज्ञा से सब भूतल को शीघ्रही जाकर तदनन्तर गौतमेश्वर के पूजकों को व अहल्येश्वर देव और शतानन्देश्वर के पूजन करने वालोंको मनाकरो ॥ ८२ । ८३ ॥ इन्द्रकी आज्ञाको पाकर वे कामादिक भूतल को जाकर गौतमेश्वरके पूजक नरोंको भजते भये ॥ ८४ ॥

थित्वातु तत्रस्थानेसुरेश्वर ॥ ७९ ॥ तत्प्रभावादयंजातोऽव्यवहारोधरातले ॥ एवंज्ञात्वाप्रवर्तन्ते यथायज्ञास्तथाकुरु ॥ ८० ॥ तैर्विनानैवतृप्तिःस्यादस्माकन्तुकथञ्चन ॥ तच्छ्रुत्वावासवस्तत्र समाहूयचमन्मथम् ॥ ८१ ॥ क्रोधंकामंचलोभंच मत्सरंद्वेषसंयुतम् ॥ गत्वाधरातलंसर्वे ममादेशाद्द्रुतंततः ॥ ८२ ॥ स्वशक्त्यावारयध्वंभो गौतमेश्वरपूजकान् ॥ अहल्येश्वरदेवस्य शतानन्देश्वरस्यच ॥ ८३ ॥ शक्रादेशन्तुसम्प्राप्य तेगत्वाधरणीतले ॥ कामादिकानरान्भेजुर्गौतमेश्वरपूजकान् ॥ ८४ ॥ तथाहल्येश्वरस्यापि शतानन्देश्वरस्यच ॥ सम्पूर्णदक्षिणास्सर्वे व्रतानिनियमास्तथा ॥ ८५ ॥ तीर्थयात्राजपोहोमं याश्चान्यास्तुक्रतोःक्रियाः ॥ एतत्सर्वंमयाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ ८६ ॥ गयाकूप्यानुषङ्गेण शक्रगौतमचेष्टितम् ॥ ८७ ॥ बालमण्डनमाहात्म्यं शक्रेश्वरसमन्वितम् ॥ इन्द्रस्यास्थापनंमर्त्ये अहल्याख्यानमेवच ॥ ८८ ॥ गौतमेश्वरमाहात्म्यं तथाहल्येश्वरस्यच ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं श्रद्धयापरयायुतः ॥ ८९ ॥

वैसेही शतानन्देश्वर व अहल्येश्वरके भी पूजनेवालों को भजते भये और सब व्रत, नियम सम्पूर्ण दक्षिणा वाले होगये ॥ ८५ ॥ और तीर्थयात्रा, जप, होम व और जो यज्ञके कर्म थे वे होनेलगे हे नरनायक ! जो मुझसे पूछागया इस समस्त चरित को मैंने कहा ॥ ८६ ॥ व गया कूपिका के प्रसंगसे इन्द्र व गौतमजी का व्यौहार ॥८७॥ और इन्द्रेश्वर संयुत बालमण्डनका माहात्म्य व मृत्युलोकमे इन्द्र का आस्थापन व अहल्या ख्यानको भी ॥ ८८ ॥ और गौतमेश्वर का माहात्म्य व अह-

ल्येश्वर का माहात्म्य वर्णन किया परम श्रद्धासे संयुत जो पुरुष इस चरित्रको नित्य सुनैगा ॥ ८९ ॥ वह पराई स्त्रीमें कियेहुये पातकसे उसी क्षण छूट जावैगा ॥ ९० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि शंखादिक त्यहिं थप्यो शंख नाम द्विजनाथ । इकसौ निन्नानबे में सोई वर्णत गाथ ॥ आनर्त बोला कि हे मुनिपुंगव ! इस समय शंखतीर्थसे उपजे हुये समस्त माहात्म्य को मुझसे कहिये क्योंकि मेरे बड़ी श्रद्धा स्थितहै ॥ १ ॥ आश्चर्य है कि यह तीर्थ विस्मयदायक तीर्थ है और जो भूपृष्ठ में हाटकेश्वरसंज्ञक

समुच्येत्पातकात्सद्यः परदारसमुद्भवात् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेगौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ साम्प्रतंमुनिशार्दूल शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंवदमेकृत्स्नं श्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ १ ॥ अहोतीर्थमहोतीर्थं हाटकेश्वरसंज्ञितम् ॥ क्षेत्रंयच्चधरापृष्ठे सर्वाश्चर्य्यमयंशुभम् ॥ २ ॥ नाहंतृप्तिंद्विजश्रेष्ठप्रगच्छामि कथञ्चन ॥ शृण्वानस्तुसुमाहात्म्यं क्षेत्रस्यास्यसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तंकथान्तरम् ॥ शङ्खतीर्थस्यमाहात्म्यं यथाजातन्धरातले ॥ ४ ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमासीद्दम्भोमहीपतिः ॥ यथात्वं साम्प्रतंभूमौ सर्वलोकप्रपालकः ॥ ५ ॥ सोकस्मात्कुष्ठभाग्जातो विकलाङ्गोबभूवह ॥ अपुत्रःशत्रुभिर्ग्रस्तस्ततश्चनृपसत्तमः ॥ ६ ॥ ससर्वैर्भूमिपालैश्च सर्वतःपरिपीडितः ॥ राज्यभ्रंशसमोपेतः प्राप्तोरैवतकंगिरिम् ॥ ७ ॥ तत्रापिपीड्य

तीर्थ है वह समस्त आश्चर्यमय व उत्तम है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस क्षेत्र के उपजे हुये उत्तम माहात्म्यको सुनता हुआ मैं किसी प्रकार तृप्तिको नहीं प्राप्त होताहूं ॥ ३ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि इस विषयमें कथाके मध्यवर्ती पुरातनवाले चरितको तुमसे कहूंगा कि जिस प्रकार भूतलमें शंखतीर्थका माहात्म्य हुआहै ॥ ४ ॥ पुरातन समय आनर्त देशका स्वामी दम्भ भूपति हुआ है जैसे इस समय तुमहो वैसेही यह समस्त मनुष्यों को पालन करनेवाला था ॥ ५ ॥ पुत्रहीन वह नृपोत्तम अचानक कुष्ठका भागी हुआ व विकल अंगोंवाला हुआ तदनन्तर शत्रुओंसे गांसा गया ॥ ६ ॥ व समस्त भूपालों से सब ओर पीड़ित व राज्यभ्रष्टको पाया हुआ वह रैवतक

पर्वतपै प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ वहां भी नित्य चोरोंसे सब ओर पीड़ित होताथा जब वह हाथी, घोड़ों व रथोंसे हीन व खज़ाने से वर्जित होगया ॥ ८ ॥ तब उसने चिन्तन किया मैं इस समय क्याकरूं क्योंकि चोर बल से समस्त स्त्रियोंको हरते हैं ॥ ९ ॥ हे नृपपुंगव ! इसभांति चिन्तन करताहुआ वह विष्णुजी का दिन (एकादशी) स्थित होनेपर समर्थवान् नारदजीको देखने के लिये गया ॥ १० ॥ उसने विष्णुको देखनेकी इच्छासे तीर्थयात्राके प्रसंग द्वारा वहां भलीभांति प्राप्तहुये मुनिश्रेष्ठ नारदजी को देखा ॥ ११ ॥ हाथोंको जोड़े खड़े हुये उसने मस्तक से प्रणाम करके व पूजकर उनके आगे समीप बैठकर दीनवचन कहा ॥ १२ ॥ राजा बोले

तेनित्यं सर्वतस्तुमलिम्लुचैः ॥ हस्त्यश्वरथहीनस्तु कोशहीनोयदाभवत् ॥ ८ ॥ सतदाचिन्तयामास किङ्करोमिचसाम्प्रतम् ॥ कलत्राणिचसर्वाणि ह्रियन्तेतस्करैर्बलात् ॥ ९ ॥ सएवंचिन्तयानस्तु गतोवैनारदंविभुम् ॥ द्रष्टुंपार्थिवशार्दूल वैष्णवेदिवसेस्थिते ॥ १० ॥ तत्रापश्यतससंप्राप्तं नारदंमुनिसत्तमम् ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दामोदरदिदृक्षया ॥ ११ ॥ प्रणम्याभ्यर्च्यशिरसाकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ प्रोवाचवचनंदीनमुपविश्यतदग्रतः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ शत्रुभिःपरिभूतोहं समन्तान्मुनिसत्तम ॥ ततोराज्यपरिभ्रंशं सम्प्राप्तोरैवतंगिरिम् ॥ १३ ॥ विपिनेतस्करैःपापैः पीडितोहंसमन्ततः ॥ यत्किञ्चिदश्वनागाद्यं मयासहसमागतम् ॥ १४ ॥ तत्सर्वंतस्करैर्नीतं कोशादारास्तथावसु ॥ तस्माद्वदमुनिश्रेष्ठ वैराग्यंमेमहत्स्थितम् ॥ १५ ॥ अन्यजन्मोद्भवंकिञ्चिन्ममपापंसुदारुणम् ॥ येनेमांचदशांप्राप्तस्सहसामुनिसत्तम ॥ १६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वामुनीश्वरः ॥ प्रोवाचाथनृपंदीनं ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ १७ ॥ नारदउवाच ॥ न

कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं वैरियों से सब ओर तिरस्कृत हुआ व उसी कारण राज्य छूट गई और मैं रैवतक पर्वतपै भलीभांति प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और वनमें मैं सब ओर पापी चोरोंसे पीडितहुआ और जो कुछ हाथी, घोड़ाआदिक मेरेसाथ आयाथा ॥ १४ ॥ वह सब और ख़ज़ाने, स्त्रियां व धनको चोर लेगये मेरे बड़ा वैराग्य टिकाहुआहै इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! कहिये ॥ १५ ॥ कि अन्य जन्म में उपजाहुआ कुछ अतिभयंकर मेरे पापहै कि जिससे हे मुनिश्रेष्ठ ! इस दशामें अचानकही प्राप्त होगया ॥ १६ ॥ उनके उस वचनको सुनकर व देरतक ध्यानकर मुनिनायकने दिव्यदृष्टिसे देखकर इसके अनन्तर दीन राजासे कहा ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि हे महाराज ! तुमने

पहले दूसरी देहमें कुछ निन्दित कर्म नहीं कियाहै मैंने दिव्यदृष्टिसे सब जाना है ॥ १८ ॥ पुरातन समय सिद्धापन्नग नामक नगर में तुम समस्त शत्रुओंके मारनेहारे, चन्द्रवंशवाले राजा हुयेहो ॥ १९ ॥ तुमने सदैव समस्त दक्षिणाओंवाली महायज्ञोंसे पूजन किया व दानोंको दिया व ब्राह्मणों की पूजा कियाहै ॥ २० ॥ उसी कर्म के फलसे फिर नृपत्वको प्राप्तहुये हो आनर्त बोला कि हे विभो! इस जन्ममें किये हुये पापको मैं नहीं याद करताहूं ॥ २१ ॥ तो किसलिये अचानक राज्यका छूटना मेरे समीप भलीभांति उठा याने उत्पन्न हुआ हे मुनिपुगव! इस समय मैंने जाना है कि इस लोकमें लक्ष्मीसे हीन मनुष्य का जीवन व्यर्थताको प्राप्तहोताहै गई

मयाज्ञातंमहाराज सर्वंदिव्येनचक्षुषा ॥ १८ ॥ त्वमासीःपार्थिवःपूर्वं सिद्धाप
त्वयाकुत्सितंकिञ्चित्पूर्वदेहान्तरेकृतम् ॥ मयाज्ञातंमहाराज सर्वंदिव्येनचक्षुषा ॥ १८ ॥ त्वमासीःपार्थिवःपूर्वं सिद्धापन्नगसंज्ञिते ॥ पत्तनेसोमवंशीयः सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ १९ ॥ त्वयाचेष्टंमहायज्ञैस्सदासम्पूर्णदक्षिणैः ॥ महादानानिदत्तानि पूजिताब्राह्मणोत्तमाः ॥ २० ॥ तेनकर्म्मविपाकेनभूयःपार्थिवताङ्गतः ॥ आनर्तउवाच ॥ इहजन्मनिनोकृत्यं संस्मरामिविभोकृतम् ॥ २१ ॥ तत्किंराज्यपरिभ्रंशस्सहसामेसमुत्थितः ॥ लक्ष्म्याहीनस्यमर्त्यस्य लोकेस्मिन्व्यर्थतांव्रजेत् ॥ २२ ॥ जीवितंमुनिशार्दूल विज्ञातंहिमयाधुना ॥ मृतोनरोगतश्रीको मृतंराज्यमराजकम् ॥ २३ ॥ मृतमश्रोत्रियंदानं मृतोयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥ लक्ष्म्याहीनस्यमर्त्यस्य वान्धवोपिपरायते ॥ २४ ॥ प्रार्थयिष्यतिद्रव्यंमे दृष्ट्वा तंचान्यतोव्रजेत् ॥ यथामांसाम्प्रतंदृष्ट्वायेमयाविप्रतर्पिताः ॥ २५ ॥ तेपिदूरतरंयान्ति एषमांप्रार्थयिष्यति ॥ धनहीनंनरंदृष्ट्वा कुलीनमपिचोत्तमम् ॥ २६ ॥ स्वजनान्यत्रगच्छन्ति शुष्कवृक्षमिवाण्डजाः ॥ तत्कार्य्यहरणार्थाय दरिद्रो

हुई लक्ष्मीवाला मनुष्य मराहै व बिन राजावाली राज्य मरी है ॥ २२ । २३ ॥ व बिन वेदपाठीको दियाहुआ दान मराहै और बिन दक्षिणावाली यज्ञ मरी है लक्ष्मी से रहित पुरुष के भाई भी शत्रुके नाईं आचरण करते हैं ॥ २४ ॥ मुझसे धन मांगैगा इस कारण उस निर्धनी को देखकर अन्यत्र चला जाताहै जिस प्रकार कि मैंने जिनको भलीभांति तृप्त कियाहै मुझको देखकर वे भी अतिदूर चलेजातेहैं कि यह मुझसे मांगैगा कुलीन व उत्तम नरको भी धनहीन देखकर ॥ २५ । २६ ॥ निज

जन वैसेही अन्यत्र चलेजातेहैं कि जैसे सूखे वृक्षको छोड़ पक्षी चले जातेहैं व उस के कार्य के प्राप्त करने के लिये यदि निर्धनी घर आताहै ॥ २७ ॥ तो धनी घुड़कते हैं और समीप नहीं आते व यदि दूसरा भी धनाढ्य मांगने के लिये आता है ॥ २८ ॥ तो मनुष्योंके चित्तमें यह होताहै कि यह मुझको कुछ देवैगा व इस संसार में धनियों के आगे बैठे हुये पुरुष यह वार्ता करते हैं कि तुम मेरे पूर्ववंशवाले हो और तुम्हारे पिता सदैव मेरे पिता के स्नेह में तत्पर थे परन्तु तुम स्नेहरहितहो ॥ २९ । ३० ॥ कुलीन भी धन लेनेकी इच्छासे पापियों के मध्य देखेजातेहैं व पृथ्वी में राज्य करते हुये निर्धनीके समीप नहीं देखपड़ते हैं ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! यह

भ्येतिचेद्गृहम् ॥ २७ ॥ धनिनोभर्त्सयन्त्येनं समागच्छन्तिनोन्तिकम् ॥ अपरोपिधनाढ्यश्चेदागच्छतिहियाचितु म् ॥ २८ ॥ एषदास्यतिमेकिञ्चिदितिचित्तेनृणाम्भवेत् ॥ ममत्वंपूर्ववंशीयः पितातेचपितुर्मम ॥ २९ ॥ सदास्नेहपरश्चासीत्त्वंचस्नेहविवर्जितः ॥ इतिकुर्वन्तिलोकेत्र धनिनांपुरतःस्थिताः ॥ ३० ॥ कुलीनाअपिपापानां दृश्यन्तेधनलिप्सया ॥ दरिद्रस्यमनुष्यस्य क्षितौराज्यंप्रकुर्वतः ॥ ३१ ॥ नत्वेषकेवलंगर्वो हृदयस्यमहामुने ॥ द्वाविमौकटुकौतीक्ष्णौ शरीरपरिपन्थिनौ ॥ ३२ ॥ यश्चाधनःकामयते यश्चकुप्यत्यनीश्वरः ॥ श्मशानमपिसेवन्ते धनलुब्धानिशागमे ॥ ३३ ॥ जनितारमपित्यक्त्वा नित्यंयान्तिसुदूरतः ॥ समूर्खोपिभवेद्विद्वानकुलीनोपिसत्कुलः ॥ ३४ ॥ यस्यवित्तंभवेद्धर्म्ये विपरीतमतोन्यथा ॥ निर्विण्णोहंमुनिश्रेष्ठ जीवितस्यचसाम्प्रतम् ॥ ३५ ॥ तस्माद्ब्रूहितदर्थंमे दारिद्र्यंसमुपस्थितम् ॥ कुष्ठश्चापिसमोपेतः शत्रुभिश्चपराभवम् ॥ ३६ ॥ अन्यजन्मान्तरंदृष्टं त्वयादिव्येनचक्षुषा ॥ कुकर्मणानसंस्पृष्टं स्वल्पे

केवल हृदयका मद नहीं है किन्तु ये दोनों तीखे व कड़ुये और शरीरके शत्रु होतेहैं ॥ ३२ ॥ एक जो निर्धन इच्छा करताहै व दूसरा जो स्वामी नहीं है वह क्रोध करताहै धनके लोभी रातके आनेपर श्मशान को भी सेवतेहैं ॥ ३३ ॥ और पिताको भी छोड़ कर नित्यही दूरजाते हैं वह मूर्ख भी विद्वान् है और अकुलीन भी उत्तम कुलवान् होता है ॥ ३४ ॥ कि जिसके घरमें धनहै और इससे अन्यथा उलटा है याने निर्धनी कुलीन भी अकुलीन है और निर्धनी विद्वान् भी मूर्ख है हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय में जीवनसे निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्तहूं ॥ ३५ ॥ इस लिये उसके निमित्त मुझसे कहिये मेरे दरिद्रता प्राप्तहै और कुष्ठभी संयुक्त है व शत्रुओंसे अनादर

प्राप्त हुआ है ॥ ३६ ॥ तुमने दिव्यदृष्टिसे अन्य दूसरा जन्म देखाहै व थोड़े भी कुकर्म से छुयेहुये मुझको नहीं कहते हो ॥ ३७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस जन्मके बीच में देखेहुये कर्मको मैं स्मरण करताहूं कि कभी मैंने कुछ कुकर्म नहीं कियाहै ॥ ३८ ॥ हे सन्मुने ! तो यह मेरी राज्यका छूटना क्योंहुआ इस विषय में मुझको आश्चर्य हुआहै उस कारण विशेषकर निर्णय दीजिये ॥ ३९ ॥ कि कियाहुआ शुभ या अशुभ कर्म होवै है या नहीं होवैहै विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर और देर तक ध्यान करके नारदजी ॥ ४० ॥ परम कृपासे संयुत होतेहुये तदनन्तर आदर समेत बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं कहूंगा कि जिस प्रकार शुद्धि होती है ॥ ४१ ॥

नापिब्रवीषिमाम् ॥ ३७ ॥ एतज्जन्मान्तरंदृष्टं स्मरामिमुनिसत्तम ॥ नमयाकुकृतंकिञ्चित्कदाचित्समनुष्ठितम् ॥
३८ ॥ तत्किंराज्यपरिभ्रंशो जातोयंममसन्मुने ॥ अत्रमेकौतुकंजातं तस्माद्देहिविनिर्णयम् ॥ ३९ ॥ भवेन्नवाभवेत्क
र्म्म कृतंयच्चशुभाशुभम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरन्ध्यात्वातुनारदः ॥ ४० ॥ कृपयापरयाविष्टस्त
तःप्रोवाचसादरम् ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि यथाशुद्धिःप्रजायते ॥ ४१ ॥ तवराज्यस्यसम्प्राप्तिर्यथाभूयोपिजायते ॥ त
वभूमौमहापुण्यमस्तिक्षेत्रंजगत्त्रये ॥ ४२ ॥ हाटकेश्वरसंज्ञन्तुतीर्थंतत्रास्तिशोभनम् ॥ शङ्खतीर्थमितिख्यातं सर्व
पातकनाशनम् ॥ ४३ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं श्रद्धयापरयायुतः ॥ अष्टम्यांशुक्लपक्षस्य सम्प्राप्तेमासिमाधवे ॥ ४४ ॥
सूर्य्यवारेतुसम्प्राप्ते भास्करस्योदयंप्रति ॥ सर्वकुष्ठविनिर्मुक्तो जायतेसूर्य्यसन्निभः ॥ ४५ ॥ योयंकाममभिध्याय त
न्तंसर्वंसुदुर्लभम् ॥ सतदाप्नोत्यसंदिग्धं दृष्ट्वाशङ्खेश्वरंशुभम् ॥ ४६ ॥ किन्त्वयानश्रुतंतत्र स्वदेशंवसतान्नृप ॥ त

और जिस प्रकार फिरभी तुम्हारी राज्य भलीभांति प्राप्तहोगी तुम्हारी भूमिमें त्रिलोक के बीच महापुण्यवान् क्षेत्रहै ॥ ४२ ॥ उस क्षेत्रमें हाटकेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है व समस्त पातकों का नाशक शंखतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ४३ ॥ परम श्रद्धासे संयुत जो पुरुष वैशाख महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भलीभांति प्राप्तहोनेपर जब रविवार प्राप्तहोवै तब सूर्य्योदयमें उस तीर्थमें स्नान करताहै वह समस्त कुष्ठों से छूटा हुआ सूर्यके समान होजाता है ॥ ४४ । ४५ ॥ जो जिस २ कामनाको चिन्तन कर स्नान करताहै वह उस समय शुभदायक शंखेश्वर को देखकर उस उस सब अतिदुर्लभ कामनाको निस्सन्देह प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! अपने देशमें बसते हुये

तुमने क्या वहां उस तीर्थ का माहात्म्य नहीं सुनाथा कि जो तुम यहां भलीभांति आयेहो ॥ ४७ ॥ सिद्धसेन बोला कि हे सन्मुने ! शंखेश्वर देव किस प्रकार हुये हैं यह कहिये नारदजी बोले कि मैं तुमसे पुरानी कथा कहूंगा ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! कि जिस प्रकार शंखेश्वर व शंखतीर्थ हुआ है पुरातन समय लिखित शंखही ब्राह्मण हुये हैं ॥ ४९ ॥ वेदके जाननेवाले वे दोनों भाई उग्र (विकराल) तपस्यामें विशेषकर टिके इसके अनन्तर किसी समय जेठ भाई लिखितके आश्रमको नमस्कारके लिये शंख भलीभांति प्राप्तहुआ हे राजन् ! उसने लिखितसे रहित, शून्य आश्रमको देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर उस शंखने उस वनमें सब ओर पकेफलों को

स्यतीर्थस्यमाहात्म्यं यत्त्वमत्रसमागतः ॥ ४७ ॥ सिद्धसेनउवाच ॥ कथंशङ्खेश्वरोदेवः सञ्जातोवदसन्मुने ॥ नारद उवाच ॥ अहन्तेकथयिष्यामि कथामेतांपुरातनीम् ॥ ४८ ॥ यथाशङ्खेश्वरोजातः शङ्खतीर्थन्तुपार्थिव ॥ आसतुर्ब्राह्मणौपूर्वं लिखितःशङ्खएवच ॥ ४९ ॥ भ्रातरौवेदविदुषौ तपस्युग्रेऽव्यवस्थितौ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य लिखितस्याश्रमम्प्रति ॥ ५० ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्यसम्प्राप्तो नमस्कारकृतेनृप ॥ सोपश्यदाश्रमंशून्यं लिखितेनविवर्जितम् ॥ ५१ ॥ अथापश्यद्वनेतस्मिन्परिपक्कफलानिसः ॥ प्रणयात्प्रतिजग्राहमत्वाभ्रातुर्नृपाश्रमम् ॥ ५२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो लिखितस्तत्रचाश्रमे ॥ यावत्पश्यतिशङ्खंस प्रगृहीतबृहत्फलम् ॥ ५३ ॥ किमिदंविहितंपापं साधुभिर्गर्हितंचयत् ॥ शङ्खउवाच ॥ एकोदरसमुत्पन्नो ज्येष्ठोभ्रातायथापिता ॥ ५४ ॥ भूयादितिश्रुतिर्लोके प्रसिद्धासर्वतःस्थिता ॥ तत्किंपुत्रस्यविप्रेन्द्र नाधिकारःपितुर्धनम् ॥ ५५ ॥ यदेवंनिष्ठुरंवाक्यैर्निर्भर्त्सयसिमांविभो ॥ लिखितउवाच ॥ नदोषोजायतेहर्तुः

देखा व हे राजन् ! भाई का आश्रम मानकर नम्रतासे उनको ग्रहण किया ॥ ५२ ॥ इस अवसर में उस आश्रम में लिखित प्राप्त भया व जब तक उसने बड़े फलोंको लियेहुये शंखको देखा तब तक कहा ॥ ५३ ॥ कि जो साधुवों से निन्दित है यह पाप क्यों कियागया शंख बोला कि एकही पेटमें पैदाहुआ बड़ा भाई वैसही है जैसा कि पिताहोताहै सबओर टिकीहुई यह श्रुति (वेदकी ऋचा) संसारमें प्रसिद्धहै इस लिये हे द्विजेन्द्र ! क्या पिताके धनको पुत्रका अधिकार नहीं है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जोकि हे विभो ! निठुरतासे इस प्रकार वचनों के द्वारा मुझको घुड़कतेहो लिखित बोला कि इस संसार में एकतीर टिकेहुये पिताके धनको हरनेवाले पुत्रको

यहां निरसन्देह किसी प्रकार दोष नहीं होताहै और जब विभाग कियाहुआ पुत्र या भाई धन लेताहै ॥५६।५७॥ तब चोरीसे उठेहुये दोषको निरसन्देह प्राप्त होताहै फिर
पिता पुत्रके धनको सदैव लेताहै ॥ ५८ ॥ उसमें विभाजित भी पिताका किसी प्रकार दोष नहीं है इस विषयमें स्मृतिकर्ता मनुजीने पुरातन समय श्लोक गाया है
५९ ॥ धर्मशास्त्र से उपजेहुये उस वचनको मैं तुमसे भलीभांति कहूंगा कि स्त्री, सेवक और पुत्र तीनही निर्धनी कहेगये हैं ॥ ६० ॥ वे सेवकादिक जिसके समीप
भलीभांति जातेहैं वे उसके हैं व उनका धन उसका है शंख बोला कि हे भाई ! यदि ऐसाहै तो मुझको बड़ाभारी चोरी का दोषहै ॥ ६१ ॥ शीघ्रही मुझको दण्ड

एकत्रसंस्थितस्यात्र पितुर्वित्तमसंशयम् ॥ विभक्तस्तुयदापुत्रोभ्रातावाथहरेद्धनम् ॥५७॥
पुत्रस्यात्रकथञ्चन ॥ ५६ ॥
चौर्य्योत्थन्नचसंशयम् ॥ पुत्रस्यतुपुनर्वित्तं पिताहरतिसर्वदा ॥ ५८ ॥ नतत्रविद्यतेदोषो विभक्त
तदादोषमवाप्नोति
स्यापिकर्हिचित् ॥ अत्रश्लोकःपुरागीतो मनुनास्मृतिकारिणा ॥ ५९ ॥ तत्तेहंसंप्रवक्ष्यामि धर्म्मशास्त्रोद्भवंवचः ॥ त्र
यएवाधनाःप्रोक्ता भार्य्यादासस्तथासुतः ॥ ६० ॥ यन्तेसमभिगच्छन्ति तस्यतेतस्यतद्धनम् ॥ शङ्खउवाच ॥ यद्येवं
चौर्य्यदोषोस्ति ममतातमहत्तरम् ॥६१॥ निग्रहंकुरुमेशीघ्रंयेनयास्यतिसंक्षयम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तस्यतन्निश्चयं
ज्ञात्वा शस्त्रमादायनिर्मलम् ॥ ६२ ॥ चकर्ताथभुजौतस्यभ्राताभ्रातुश्चनिर्घृणम् ॥ सोपिच्छिन्नकरोविप्रः कञ्चित्प्राप्य
जलाशयम् ॥६३॥ वर्षास्वाकाशशायीचहेमन्तेसलिलाश्रयः ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे षष्ठकालकृताशनः ॥६४॥ सं
स्थाप्यभास्करंस्थाणुं तत्पुरस्सुसमाहितः ॥ शतरुद्रियंजपन्सामोक्तरुद्रांस्तथाजपन् ॥६५॥ प्राणरुद्रांस्तथानीलान्रुस्क

कीजिये कि जिसमे दोष नाशहोजावै विश्वामित्रजी बोले कि उसके उस निश्चय को जानकर व निर्मल शस्त्रको लेकर ॥६२॥ इसके अनन्तर भ्राता लिखितने उस
शंख बन्धुकी दोनों भुजाओं को निर्दयत्व से काटडाला व कटेहुये हाथोंवाला वह ब्राह्मण भी किसी जलाशय को पाकर ॥ ६३ ॥ वर्षा में आकाशशायी (मैदान में
सोनेवाला) व हेमन्त में जलाश्रयी और ग्रीष्म में छठें समय भोजन करता हुआ पंचाग्नि को साधनेवाला हुआ ॥ ६४ ॥ और सूर्यनारायण व शिवजी को भलीभांति

थापकर उनके आगे सावधान होताहुआ वह शतरुद्रियको जपता व वैसेही सामोक्त रुद्रोंको जपता हुआ ॥ ६५ ॥ और प्राणरुद्रों व स्कन्दसूक्तो समेत नीलरुद्रों का जप करता भया तदनन्तर हजार वर्षके अन्तमें महादेवजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ६६ ॥ व सूर्य्यनारायण व गणनायकों समेत दर्शनको प्राप्तकर बोले महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, वत्स, शंख ! तुम्हारी इस तपस्या से मैं प्रसन्न हुआहूं ॥ ६७ ॥ इसलिये मुझसे शीघ्रही कहिये तुमको इस समय वर अवश्य दूंगा शंख बोला कि हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो व यदि मुझको वरदान देने योग्यहै ॥ ६८ ॥ तो मेरे वैसेही हाथहोवैं कि जैसे पहले स्थितथे व हे सुरश्रेष्ठ नायक, हे देव ! मेरे

न्दसूक्तसमन्वितान्॥ततोवर्षसहस्रान्तेतुष्टस्तस्यमहेश्वरः॥६६॥प्रोवाचदर्शनंगत्वासहसूर्य्यगणेश्वरैः॥महेश्वरउवाच॥ शङ्खतुष्टोस्मितेवत्स तपसानेनसुव्रत ॥ ६७ ॥ तस्मात्कथयमेक्षिप्रं प्रददामितवाधुना ॥ शङ्खउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ६८ ॥ जायेतांतादृशौहस्तौ यादृशौमेपुरास्थितौ ॥ त्वयात्रैवसदावासः कार्य्यःसुरवरेश्वर॥ ६९ ॥ लिङ्गेकृत्वादयान्देव ममोपरिमहत्तराम् ॥ एतज्जलाशयन्नाथ ममनाम्नाधरातले ॥ प्रसिद्धिंयातुलोकस्य यावदाचन्द्रतारकम् ॥७०॥ अत्रयःकुरुतेस्नानं धृत्वामनसिदुर्लभम् ॥ किञ्चिद्वस्तुसमग्रन्तु तस्यसम्पत्स्यतेविभो ॥७१॥ भगवानुवाच ॥ अद्याहंदर्शनंप्राप्तस्तवचैवाष्टमीदिने ॥ ७२ ॥ माधवस्यसितेपक्षे यस्माद्ब्राह्मणसत्तम ॥ तस्मात्संक्रमणंलिङ्गे तावकेस्मिन्द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥ करिष्यामिनसन्देहो दिनमेकमसंशयम्॥ यश्चात्रदिवसेप्राप्ते करिष्यति चपूजनम् ॥ ७४ ॥ स्नानंकृत्वारवेर्वारे उदयेममसंस्थिते॥ पूजयिष्यतिमेमूर्तिं त्वयासंस्थापितांद्विज ॥ ७५ ॥ कुष्ठंव्या

ऊपर बड़ीभारी दया करके तुमको सदैव इसी लिंगमें निवास करना चाहिये व हे स्वामिन् ! संसारके मध्यमें जब तक चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं तब तक यह जलाशय मेरे नामसे भूतलमें प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ६९ । ७० ॥ हे विभो ! मनमें किसी दुर्लभ वस्तुको धरकर जो इसमें स्नान करै उसको सम्पूर्ण भलीभांति प्राप्तहोवै ॥ ७१ ॥ भगवान् सूर्यजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! जिस लिये वैशाख के शुक्लपक्ष में अष्टमी के दिन आजमैं तुम्हारे दर्शनको प्राप्तहुआ उसी कारण हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे इस लिंगमें निस्सन्देह एक दिन भलीभांति आगमन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है व इस दिनके प्राप्तहोने पर रविवारके दिन जब मेरा उदय प्राप्तहोवै तब जो इसमें

वह कुष्ठरोग से विशेषकर छूटकर मेरे लोक
को जावैगा व हे द्विजेन्द्र द्विजोत्तम ! शेष समय में भी निरसन्देह मेरे वचन से अज्ञानसे कियेहुये पातकसे छुटकारामुक्ति पावैगा वैसेही ये दोनों भी तुम्हारे भी जो
कटेहुये हाथहैं ॥ ७६ । ७७ ॥ वे उस लिंगमें अभिषेक से फिरभी वैसेही होजावैंगे हे विप्र जी ! इस समय यह मेरा विश्वास तुमको होगा ॥ ७८ ॥ और फिर स्नान करके
तदनन्तर तुम मेरी मूर्तिको पूजो व वैसेही संयोग के स्थित होनेपर जो और भी बिगडे हुये शरीरत्वको प्राप्तहैं वे इसमें नहाकर मुझको पूजैंगे तो हे द्विज ! वे
स्नान करके पूजन करैगा व हे द्विज ! तुमसे भलीभांति थापन की गई मेरी मूर्ति को पूजैगा ॥ ७२ । ७३ । ७४ । ७५ ॥

धिविनिर्मुक्तो ममलोकंप्रयास्यति ॥ शेषकालेपिविप्रेन्द्र अज्ञानविहितादघात् ॥ ७६ ॥ मुक्तिंप्राप्स्यन्त्यसंदिग्धं मम
वाक्याद्विजोत्तम ॥ तथातवापियौहस्तौ छिन्नावेताबुभावपि ॥ ७७ ॥ तस्मिँल्लिङ्गेऽभिषेकात्तु स्यातांभूयोपिताद्दशौ ॥
एषमेप्रत्ययोविप्र भविष्यतितवाधुना ॥ ७८ ॥ भूयःस्नानंविधायत्वं ततोमूर्तिममार्चय ॥ अन्येपिव्यङ्गतांप्राप्ताः सं
योगेत्रतथास्थिते ॥ ७९ ॥ स्नात्वामांपूजयिष्यन्ति मुक्तियास्यन्तितेद्विज ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥
८० ॥ शङ्खोपितत्क्षणंस्नात्वा पूजयित्वादिवाकरम् ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं तावद्धस्तसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ आ
त्मानंपश्यमानस्तु विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ततःप्रभृतितत्रैवकृत्वाश्रमपदंनृप ॥ ८२ ॥ तपस्तेपेद्विजश्रेष्ठो गतश्चपरमां
ङ्गतिम् ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र संयोगेप्राप्यतत्त्वतः ॥८३॥ तेनैवविधिनास्नात्वा त्वंपूजयदिवाकरम् ॥ यश्चैतच्छृणुया
न्नित्यं पठेद्वापुरतोरवेः ॥ ८४ ॥ तस्यान्वयेपिनोकुष्ठी कदाचित्सम्प्रजायते ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरि

मुक्तिको प्राप्त होवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर हज़ार किरणों वाले सूर्यनारायणजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ७९ । ८० ॥ व शंखभी उसी क्षण नहाकर व सूर्यजी को पूजकर
जब तक अपने शरीरको देखै तब तक हाथों से संयुत ॥ ८१ ॥ अपना को देखताहुआ वह बडे विस्मयको प्राप्तहुआ हे राजन् ! तबसे लगाकर वहीं आश्रम स्थान
बनाकर ॥ ८२ ॥ द्विजोत्तम तपस्या करता भया व उत्तम गतिको प्राप्तहुआ उसी कारण हे नृपेन्द्र ! तुमभी संयोगमें तत्त्वसे प्राप्तहोकर ॥ ८३ ॥ उसी विधि से नहाकर
तुम सूर्यनारायण का पूजन करो जो मनुष्य नित्य इस चरित्र को सूर्यनारायण के आगे पढ़ता या सुनताहै ॥ ८४ ॥ उसके वंशमें भी कभी कुष्ठी (कोढ़ी) नहीं

होताहै ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशंखादित्योत्पत्तिर्नामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

दो० । नागवल्लि जिमि स्वर्ग से आई भूमि मंझार । दोसोके अध्याय में सोई चरित उदार ॥ विश्वामित्र जी बोले कि उन देवर्षि नारदजी के उस वचनको सुन
कर सिद्धसेन भूपाल उत्तम संयोगको पाकर ॥ १ ॥ इसके अनन्तर वैशाख महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर रविवार अष्टमी में जब सूर्योदय भलीभांति प्राप्त हुआ
तब नहाकर जब तक सूर्यको पूजै ॥ २ ॥ तब तक अचानकही कुष्ठमे छूटा हुआ भलीभांति प्राप्त होगया तदनन्तर दिव्य देहवाला होकर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त

च्छेदेनागरखण्डे शङ्खादित्योत्पत्तिर्नामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥ * ॥ * ॥

विश्वामित्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य देवर्षेर्नारदस्यच॥ सिद्धसेनोमहीपालः प्राप्यसंयोगमुत्तमम्॥१॥ माधवेमा
सिसम्प्राप्ते अष्टम्यांसूर्य्यवासरे ॥ सूर्य्योदयेथसम्प्राप्ते यावत्स्नात्वार्चयेद्रविम् ॥ २ ॥ तावत्कुष्ठविनिर्मुक्तः सहसासम
पद्यत ॥ ततोदिव्यवपुर्भूत्वा सन्तोषंपरमङ्गतः ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तंततश्चक्रे ताम्बूलस्यचभक्षणम् ॥ अज्ञानेनकृतंयच्चचू
र्णपत्रसमन्वितम् ॥ ४ ॥ ततश्चपरमांलक्ष्मीं सम्प्राप्तस्समहीपतिः ॥ पितृपैतामहंराज्यं सप्रचक्रेयथापुरा ॥ ५ ॥ एत
त्तेसर्वमाख्यातं शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ माहात्म्यंपार्थिवश्रेष्ठ किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ६ ॥ आनर्तउवाच ॥ अत्या
श्चर्य्यमिदंब्रह्मन् यत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ यल्लक्ष्मीस्तस्यसंनष्टा चूर्णपत्रस्यभक्षणात् ॥ ७ ॥ कीदृक्तेनकृतंतस्य प्राय
श्चित्तंविशुद्धये ॥ कीदृक्तेनकृतंतच्च निजराज्यंयथापुरा ॥ ८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यथापुण्यतमामेध्या नागवल्लीन

हुआ ॥ ३ ॥ उसके उपरान्त प्रायश्चित्त किया क्योंकि अज्ञानसे चूना व पत्ता समेत ताम्बूल का भक्षण कियाथा ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह भूपति उत्तम लक्ष्मी को भली
भांति प्राप्त हुआ और उसने पहले के नाईं पिता पितामह वाली राज्यकिया ॥५॥ हे नृपोत्तम ! मैंने शंखतीर्थ से उपजेहुये इस समस्त माहात्म्य को तुमसे कहा फिर
क्या सुनने के लिये चाहतेहो ॥ ६ ॥ आनर्त बोला कि हे ब्रह्मन् ! जो तुमने कहा है यह बड़ा आश्चर्य है जोकि चूना समेत पत्ताके खाने से उसकी लक्ष्मी नष्ट
होगई थी ॥ ७ ॥ उसने उसकी पवित्रताके लिये कैसा प्रायश्चित्त कियाहै व पहलेकी नाईं उसने कैसे उरा अपनी राज्यको कियाहै ॥ ८ ॥ विश्वामित्र जी बोले कि

जैसे कि राक्षसी होवै ॥१७॥ और वह अंगुलीमें लगेहुये बालक समेत व गर्भके श्रमसे संयुतथी तदनन्तर समस्त सुर गण व विशेषकर दानव ॥ १८ ॥ उस मथानीको छोडकर उनको पकडनेके लिये दौड़े इसके अनन्तर विकार आकार वाले उनको देखकर सब सन्देह संयुतहुये ॥१९॥ व हे नृपेन्द्र! उन्होंने ग्रहण न किया और परस्पर हास्य किया इसके अनन्तर हाथजोड़े खड़ेहुये बलि दैत्यबोले ॥ २० ॥ कि जो पहले उत्पन्नहोवै वह सब ब्राह्मण के लिये होवै है उसी कारण इन तीनों रत्नोंको ब्रह्माजी ग्रहणकरैं ॥२१॥ जिससे ब्रह्माकी तृप्तिसे आज मथनेमें सिद्धिहोवै उस बलिके वचनकी विष्णु वा शिवजीने प्रशंसा किया ॥२२॥ व इन्द्रादिक सब देवताओं व विशेषकर

यथा ॥ १७॥ शिशुनाङ्गुलिलग्नेन गर्भश्रमपरायणा ॥ ततोदेवगणास्सर्वे दानवाश्चविशेषतः ॥ १८ ॥ मन्थानंतत्परित्यज्य तान्ग्रहीतुंप्रधाविताः ॥ अथतान्विकृतान्दृष्ट्वासर्वेशङ्कासमन्विताः ॥ १९ ॥ जगृहुर्नैवराजेन्द्र जहसुश्चपरस्परम् ॥ अथोवाचबलिर्दैत्यः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ २० ॥ ब्राह्मणायभवेत्सर्वं यत्पुरस्तात्प्रजायते ॥ रत्नत्रितयमेतद्धि तस्माद्गृह्णातुपद्मजः ॥ २१ ॥ येनसिद्धिर्भवेदद्य मन्थनेकस्यतर्पणात् ॥ तद्वाक्यंविष्णुनातस्य शंसितंशङ्करेण तु ॥२२॥ इन्द्राद्यैश्चसुरैस्सर्वैर्दानवैश्चविशेषतः ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा जग्राहत्रितयंचतत् ॥ २३॥ दाक्षिण्यात्सर्वदेवानां अनिच्छन्नपिपार्थिव ॥ ममन्थुस्सागरंराजन् पुनस्तेयत्नमाश्रिताः ॥ २४ ॥ ततश्चवारुणीजाता दिव्यगन्धसमन्विता ॥ बलिनासंगृहीतासा प्रत्यक्षंबलविद्विषः ॥ २५ ॥ आनर्तचापरोजातो निष्क्रान्तःकौस्तुभोमणिः ॥ सगृहीतोमहाराज विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ २६ ॥ अथापरेस्थितेतत्र महावर्तेनिशापतिः ॥ सञ्जातःसद्यपाङ्केण संगृहीतश्चतत्क्षणात् ॥२७॥

दानवों ने प्रशंसा किया इसी अवसर में हे राजन्! नहीं इच्छा करतेहुये भी ब्रह्माने समस्त देवताओंकी चतुरता या उदारतासे उन तीनोंको ग्रहण किया हे राजन्! यत्न में टिकेहुये उन सुरासुरों ने फिर समुद्रको मथा ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर उत्तम गन्धसे संयुत वारुणी (मदिरा) उत्पन्न हुई उसको बलदैत्य के वैरी (इन्द्र) सामने बलिने भलीभांति ग्रहण किया ॥ २५ ॥ हे आनर्त्त महाराज! और कौस्तुभ मणि निकलती भई उसको समर्थवान् विष्णुजी ने ग्रहण किया ॥ २६ ॥ इस अनन्तर उस समुद्र में जब और महावर्त (बड़ा घुमाव) स्थित हुआ तब निशानायक चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसको उसी क्षण शिवजी ने भलीभांति ग्रहण

अत्यन्त पुण्यदायक व पवित्रहै वैसे ही अयथा योग्य मुखमें कियाहुआ पान बहुत दोषोंको देताहै ॥ ९ ॥ इस लिये
हे नर नायक ! जैसे नागवल्ली (पान) अत्यन्त पुण्यदायक व पवित्रहै वैसे ही अयथायोग्य भक्षणसे बड़ाभारी दोष कहा
अपनी शक्तिसे उपायके द्वारा देकर भलीभांति भक्षण करने योग्यहै आनर्त बोला कि नागवल्ली कैसे हुई है व किस लिये अयथायोग्य भक्षणसे बड़ाभारी दोष कहा
है ॥ १० । ११ ॥ हे राजन्! तिसपर भी मैं
गयाहै उसको तुम मुझसे कहने के लिये योग्यहो विश्वामित्र जी बोले कि तुमने मुझसे यह बड़ाभारी प्रश्नका भारकहा है ॥ १० । ११ ॥ हे राजन्! तिसपर भी मैं
तुमसे कहूंगा यदि तुमको आश्चर्य है कि चूना समेत पत्ताके भक्षणसे जिस कारण दोष होताहै ॥ १२ ॥ पुरातन समय देवताओंने मन्दराचलको मन्थान (मथानी)

दत्त्वाचैवस्वशक्तितः ॥ आनर्तउवा
राधिप ॥ अयथावत्कृतावक्त्रे बहून्दोषान्प्रयच्छति ॥ ९ ॥ तस्माद्यत्नेनसम्भक्ष्या दत्त्वाचैवस्वशक्तितः ॥ आनर्तउवा
च ॥ नागवल्लीकथंजाता कस्माद्दोषोमहान्स्मृतः ॥ १० ॥ अयथावद्भक्षणाच्चतन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ विश्वामित्रउवाच ॥
प्रश्नभारोमहानेष त्वयामेपरिकीर्तितः ॥ ११ ॥ तथापिचवदिष्यामि यदितेकौतुकंनृप ॥ यस्मात्सञ्जायतेदोषश्चू
र्णपत्रस्यभक्षणात् ॥ १२ ॥ अमृतार्थंपुरादेवैर्मथितःक्षीरसागरः ॥ मन्थानंमन्दरंकृत्वा नेत्रंकृत्वाथवासुकिम् ॥१३॥
मुखदेशेबलिर्लग्नः पुच्छदेशेऽखिलास्सुराः ॥ वासुदेवमतेनैवतन्दधाराथकच्छपः ॥ १४ ॥ मन्दरेभ्रममाणेतु प्रागेव
नृपसत्तम ॥ आनर्तसहसाजातं रत्नत्रितयमेवच ॥ १५ ॥ नीलाम्बरधरःकृष्णःपुरुषोवक्रनासिकः ॥ कृष्णदन्तःस्थूल
शिरा दीर्घग्रीवोमहोदरः ॥ १६ ॥ शूर्पकर्णस्तथैवासो चिपिटाक्षोभयावहः ॥ तथातद्रूपिणीतस्य कुभार्य्याराक्षसी

बनाकर व वासुकी नागको नेत्र (नेती याने दही मथने की रस्सी) बनाकर अमृत के लिये दुग्ध समुद्र को मथाहै ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी के सम्मत से
वासुकी के मुख स्थानमें बलिलगे और पुच्छ स्थान में समस्त देवतालगे और उस मन्दराचल को कच्छप (कछुये) ने धारण किया ॥ १४ ॥ हे आनर्त, नृपोत्तम !
मन्दराचलके घूमने पर अचानक पहलेही तीनरत्न उत्पन्नहुये ॥ १५ ॥ नील वसन को धारे व टेढ़ी नासिका वाला, काले दन्तोंवाला, मोटे शिरवाला व लम्बी घींच
वाला और बड़े पेटवाला काला पुरुष था ॥ १६ ॥ वैसेही यह सूपसे कानोंवाला व चिपटे चक्षुओं वाला व भयदायक था वैसेही उसीके रूपवाली उसकी कुनारी थी

किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर उत्तम सुगन्धसे संयुत पारिजात वृक्ष निकला उसको सब देवताओं ने लेकर नन्दन वनमें स्थापित किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर ही बछड़ा समेत सुरभी निकली वह आकाशमार्गसे गोलोक को भलीभांति प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ उसके उपरान्त हाथमें अमृतही से भरेहुये कमण्डलु को धारेहुये धन्वन्तरि उत्पन्न हुये हे राजन् ! आपस में जीतकी इच्छा से क्रोधित देव दैत्योंने एकही साथ उन को पकड़ लिया वैद्य (धन्वन्तरि) देवोंके हाथमें प्राप्तहुये और कमण्डलु दैत्यों के हाथ में प्राप्तहुआ ॥ ३० । ३१ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! लालचसे संयुक्त सबोंने समुद्रको मथा उसके उपरान्त इस समुद्र में श्वेतवसनवाली व कमल हाथवाली

पारिजातस्ततोजातो दिव्यगन्धसमन्वितः ॥ सगृहीत्वासुरैस्सर्वैस्स्थापितोनन्दनेवने ॥ २८ ॥ तस्यानन्तरमेवाथ सुरभीवत्ससंयुता ॥ निष्क्रान्ताऽयोममार्गेण गोलोकंसासमाश्रिता ॥ २९ ॥ ततोधन्वन्तरिर्जातो बिभ्रद्धस्तेकमण्डलुम् ॥ सम्पूर्णममृतेनैव सदेवैर्दानवैर्नृप ॥ ३० ॥ गृहीतोयुगपत्क्रुद्धैः परस्परजिगीषया ॥ देवानांहस्तगोवैद्यो दैत्यानाञ्चकमण्डलुः ॥ ३१ ॥ ततस्तंलोभसंयुक्तामममन्थुस्सागरन्नृप ॥ पद्महस्तात्रसञ्जाता ततोलक्ष्मीःसिताम्बरा ॥ ३२ ॥ स्वयमेववृतोविष्णुस्तयापार्थिवसत्तम ॥ मथ्यमानेततोतीव समुद्रेदेवदानवैः ॥ ३३ ॥ कालकूटंसमुत्पन्नं येनसर्वेसुरासुराः ॥ सम्प्राप्ताःपरमंकष्टं प्रभग्नाश्चदिशोदश ॥ ३४ ॥ तद्दृष्ट्वाभगवाञ्छम्भुस्तमतीवपराक्रमः ॥ भक्षयामासराजेन्द्रनीलकण्ठस्ततोभवत् ॥ ३५ ॥ अथसन्त्यज्यमन्थानंमन्दरंवासुकिंतथा ॥ अमृतार्थेभवद्युद्धं दैत्यानांविबुधैस्सह ॥ ३६ ॥ अथस्त्रीरूपमाधाय विष्णुर्देवानुरागवान् ॥ ततोहृष्टोबलिस्तस्यैदत्त्वापीयूषमेवतत् ॥ ३७ ॥ विश्वासंपरमं

लक्ष्मी जी भलीभाति उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ हे नृपोत्तम ! उन लक्ष्मीने आपही विष्णुजीको स्वीकार किया तदनन्तर जब देवों व दानवोंने बहुतही समुद्र मथा ॥ ३३ ॥ तब कालकूट (विष) उत्पन्नहुआ जिससे समस्त देवता, दैत्य बड़े कष्टको प्राप्तहुये व दशों दिशाओं को भगे ॥ ३४ ॥ हे नृपेन्द्र ! उसको देखकर अत्यन्त बलवाले भगवान् सदाशिव जीने उस विषको खालिया उसी कारण नीले कण्ठवाले होगये ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर मन्दराचल रूप मथानी व वासुकी को भलीभांति छोड़कर अमृतके लिये देवोंके साथ दैत्योंको समर हुआ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर देवोंके स्नेहवाले विष्णुजी स्त्री का रूप धर कर वहां प्राप्तहुये तदनन्तर प्रसन्न

होते हुये बलिने उस अमृतही को उस स्त्री के लिये देकर ॥ ३७ ॥ व बड़े विश्वास को प्राप्त होकर देवताओं के साथ युद्ध किया उस के उपरान्त स्त्रीरूपको छोड़ पुरुष रूपवाले विष्णुजी ॥ ३८ ॥ वैसेही अमृत लेकर वहांगये जहां कि देवताथे व अतिप्रसन्न मनवाले विष्णुजी उनसे बोले कि हे देवताओ ! अमृतको पियो ॥ ३९ ॥ जिससे अमरताको प्राप्तहोकर दानवों को नाशकरो वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके उन देवताओं ने उत्तम अमृतको पिया ॥ ४० ॥ हे भूपते ! उसी कारण अमर हो समर में महादानवों को मारा है जब उन देवोंके पीनेका विधान वर्तमान हुआ तब ॥ ४१ ॥ देवोंके रूपसे राहुने उत्तम अमृतको पिया व उस महादैत्य को उसी

गत्वा युद्धंचक्रेसुरैस्सह ॥ ततोविष्णुःपरित्यज्य स्त्रीरूपंपुरुषाकृतिः ॥३८॥ तथैवामृतमादाय ययौयत्रदिवौकसः ॥ अब्रवीत्तान्सुहृष्टात्मापिबध्वममृतंसुराः ॥ ३९ ॥ येनामरत्वमासाद्य व्यापादयथदानवान् ॥ तेतथेतिप्रतिज्ञाय पपुःपीयूषमुत्तमम् ॥ ४० ॥ अमराश्चततोजाता जघ्नुस्संख्येमहासुरान् ॥ तेषांपानविधौतत्र वर्तमानेमहीपते ॥ ४१ ॥ राहुर्विबुधरूपेण पपौपीयूषमुत्तमम् ॥ सलक्षितोमहादैत्यश्चन्द्रार्काभ्यांचतत्क्षणात्॥४२॥ निवेदितोहरौराजन्नायन्देवोमहासुरः॥ तच्छ्रुत्वावासुदेवेन तस्यचक्रंसुदर्शनम् ॥४३॥ वधायपार्थिवश्रेष्ठ मुक्तंचार्कसमप्रभम् ॥ यावन्मात्रंशरीरस्य तावत्पीतंमहीपते ॥ ४४ ॥ अमृतेननतत्कृत्तं मोघेनापिकथञ्चन ॥ ततोमरत्वमापन्नः सप्रायात्सिंहिकासुतः ॥ ४५ ॥ तावत्प्रोक्तोच्युतेनाथ साम्नापरमवल्गुना ॥ त्यजदैत्यान्महाभाग देवानांसम्मतोभव ॥ ४६ ॥ सम्प्राप्स्यसिपरांपूजां सदात्वं

क्षण चन्द्रमा, सूर्यने देखलिया ॥ ४२ ॥ और हे राजन्! विष्णुसे उसको बतलादिया कि यह देवता नहीं है किन्तु महादानव है हे नृपोत्तम ! उसको सुनकर उस राहु के शरीर को मारने के लिये जब तक वासुदेव विष्णुने सूर्यके समान प्रभावाले सुदर्शन चक्रको छोड़ा तब तक हे भूपते ! उसने अमृत पीलिया ॥ ४३।४४ ॥ और अमृतके निरर्थ होनेके कारण किसी प्रकार भी वह शरीर न कटा तदनन्तर अमरताको प्राप्त होता हुआ सिंहिका का पुत्र वह राहु जब तक जावै ॥ ४५ ॥ तब तक विष्णुजीने अत्यन्त मनोहर प्रिय वचन से कहा कि हे महाभाग ! दैत्योंको छोड़ो व देवोंके भलीभांति मतमें होवो ॥ ४६ ॥ व सदैव ग्रहोंके मण्डल में तुम उत्तम

पूजन पावोगे इसी अवसर में सुरोत्तमों ने दैत्यों को जीतलिया ॥ ४७ ॥ व डरेहुये कोई दैत्य दिशाओं को चलेगये व कोई मृत्युको प्राप्तहुये और पीने से बचाहुआ अमृत नन्दनवनमें स्थापित कियागया ॥ ४८ ॥ जहांही कि नागराज ऐरावत का आलान (हाथी बांधनेवाला खूंटा) स्थित था वह नागेन्द्र भी दिन रात सूंघकर भलीभांति स्थित रहता था ॥ ४९ ॥ उस के प्रभावसे वह अमृत का कमण्डलु फूटगया तदनन्तर उसी कमण्डलुसे वल्ली (बेलि) पैदाहुई ॥ ५० ॥ व वह बेलि वहां भलीभांति चढ़ी व बड़ी बढ़तीको प्राप्त हुई है उससे उपजेहुये पत्तों को लेकर वे सुरोत्तम ॥ ५१ ॥ अपूर्व व सुगन्धित मानकर हे राजन्! विशेषकर प्रसन्न

ग्रहमण्डले ॥ एतस्मिन्नन्तरेदैत्या निर्जिताःसुरसत्तमैः ॥ ४७ ॥ दिशोजग्मुःपरित्रस्ताःकेचिन्मृत्युमुपागताः ॥ पीत शेषंचपीयूषं स्थापितंनन्दनेवने ॥ ४८ ॥ नागराजस्ययत्रैवस्थितआलानएवच ॥ अहर्निशमवघ्राय करीन्द्रस्सोपिसं स्थितः ॥ ४९ ॥ तत्प्रभावैःप्रभिन्नंतत्पीयूषस्यकमण्डलुम् ॥ ततोवल्लीसमुत्पन्ना तस्माच्चैवकमण्डलोः ॥ ५० ॥ तत्र साचसमारूढा वृद्धिञ्चपरमाङ्गता ॥ तदुद्भवानिपत्राणि गृहीत्वासुरसत्तमाः ॥ ५१ ॥ अपूर्वाणिसुगन्धीनि मत्वातेभ क्षयन्तिच ॥ वक्त्रशुद्धिकृतेराजन्विशेषेणप्रहर्षिताः ॥ ५२ ॥ अथधन्वन्तरिर्वैद्यः स्वबुद्ध्यापृथिवीपते ॥ नागालानेयतो जातानागवल्लीभविष्यति ॥ ५३ ॥ सदास्मरस्यसंस्थानं ममवाक्याद्भविष्यति ॥ नागवल्लीतिवैनाम तस्याश्चक्रेततःप रम् ॥ ५४ ॥ संयोगञ्चचकाराथ ताम्बूलंजायतेयथा ॥ पूगीफलेनचूर्णेन खदिरेणापिपार्थिव ॥ ५५ ॥ अतोपयत्तदाश क्रं तपसानिर्मलेनच ॥ इन्द्रउवाच ॥ भोभोःपार्थिवतुष्टोस्मितपसानेनसाम्प्रतम् ॥ ५६ ॥ ब्रूहियत्तंवरंदद्मिमनसावाञ्छि

होते हुये मुखशुद्धिके लिये खाते थे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर हे भूपते! धन्वन्तरि वैद्य ने अपनी बुद्धिसे चिन्तन किया कि जिस कारण हाथी के बांधनेवाले खूंटे के समीप पैदाहुई है उसी लिये नागवल्ली होवैगी ॥ ५३ ॥ व मेरे वचन से सदैव कामदेव का स्थान होगी तदनन्तर उसका नागवल्ली ऐसा नाम किया ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर हे राजन्! जिस प्रकार ताम्बूल होवै वैसेही सुपारी, चून व खैरसे भी संयोग किया ॥ ५५ ॥ उस समय निर्मल तपस्या से राजाने इन्द्रको प्रसन्न

किया इन्द्र बोले कि हे राजन्! इस समय मैं इस तपस्यासे प्रसन्न हूं ॥ ५६ ॥ जो कहिये उस सदैव मनसे चाहे हुये वरको देऊं उसने कहा कि यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो मेरे लिये मन व पवन के समान वेग धारनेवाले विमान को दीजिये उस विमानपै चढ़कर बड़ी भक्तिसे संयुत वह नित्यही इन्द्रको प्रणाम करने के लिये स्वर्गको जाताथा और इन्द्र उसको अपने हाथसे ताम्बूल देतेथे ॥ ५८।५९ ॥ व उसने प्रसन्न चित्तसे उसको खाया व वृद्धताके भी भलीभांति प्राप्त होनेपर ताम्बूलके प्रभावसे उसके बहुतही कामदेव बढ़ताभया इसके अनन्तर हे राजन्! नम्रतासंयुत वह राजा इन्द्रसे यह बोला ॥६०।६१॥

तंसदा ॥ सोब्रवीद्यदिमेतुष्टो यदिदेयोवरोमम ॥ ५७ ॥ विमानन्देहितन्मह्यं मनोमारुतवेगधृक् ॥ सतत्रनित्यमारुह्य प्रयातित्रिदशालयम् ॥ ५८ ॥ भक्त्यापरमयायुक्तः सहस्राक्षंप्रवन्दितुम् ॥ तस्यशक्रःस्वहस्तेन ताम्बूलंचप्रयच्छति॥ ५९ ॥ सचतद्भक्षयामास प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ वृद्धभावेपिसम्प्राप्ते तस्यकामोप्यवर्द्धत ॥ ६० ॥ ताम्बूलस्यप्रभावेण सुमहान्पृथिवीपते ॥ अथशक्रमुवाचेदं सराजाविनयान्वितः ॥ ६१ ॥ नागवल्लीप्रदानेन प्रसादोमेविधीयताम् ॥ मर्त्यलोकेसमायातु प्रचारंयेनगच्छति ॥ ६२ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय तस्मैतांप्रददौतदा ॥ गत्वानिजंपुरंसोपि स्वोद्या नेस्थापयत्तदा ॥ ६३ ॥ ततःकालेनमहता प्रचारंक्षिप्रमागता ॥ यस्यास्वादनतोलोकः कामात्मासमपद्यत ॥ ६४ ॥ नकश्चिद्यजनंचक्रे याजनञ्चविशेषतः ॥ अन्यधर्म्मक्रियास्सर्वाः प्रणष्टाधर्म्मसम्भवाः ॥ ६५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे य ज्ञभागविवर्जिताः ॥ पीड्यमानाः क्षुधाविष्टा गत्वाप्रोचुःपितामहम् ॥ ६६ ॥ मर्त्यलोकेसुरश्रेष्ठ नष्टाधर्म्मक्रियाभृश

कि नागवल्ली के देनेसे मेरी प्रसन्नता करिये कि जिससे वह मृत्युलोक में जावै व प्रचार को प्राप्तहोवै ॥ ६२ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उस समय उन इन्द्र ने उस नागवल्ली को उसके लिये दिया उसी समय उसने भी अपने नगर को जाकर अपनी फुलवारी में स्थापन किया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर बड़े समयसे शीघ्रही प्रचार को प्राप्तहुई कि जिसके खानेसे मनुष्य कामात्मा होगया ॥ ६४ ॥ किसीने यज्ञ नहीं किया व विशेषता से यज्ञ नहीं कराया और धर्म से उपजीहुई अन्य समस्त धर्म की क्रियायें नष्ट होगईं ॥ ६५ ॥ तदनन्तर समस्त सुरसमूह यज्ञभागोंसे रहित होगये और क्षुधासे संयुत व पीडित होनेहुये ब्रह्माके समीप जाकर बोले॥६६॥

कि हे सुरोत्तम ! मृत्युलोक में धर्मके कर्म नष्ट होगये क्योंकि ताम्बूल के खानेसे मनुष्य अत्यन्त कामदेव से आसक्त होगये ॥ ६७ ॥ इस लिये हमलोगों के ऊपर प्रसन्नता करिये कि जिससे हमलोगों के कार्य होवैं इसी अवसर में हे राजन् ! दरिद्रने आकर तदनन्तर नम्रतासे नीचे झुके खड़े हुये उसने पूजन के लिये भली भांति आते व कमलपै बैठेहुये ब्रह्मासे कहा ॥ ६८।६९ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ब्राह्मणों के घरमें टिकाहुआ मैं निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त हुआहूं इस लिये धनवानों का जो श्रेष्ठ स्थान होवै उसको मुझसे कहिये ॥ ७० ॥ हे विभो ! वहां सदैववाली बड़ी तृप्ति होगी उसके उस वचनको सुनकर व देरतक ध्यान करके ब्रह्माने ॥ ७१ ॥ यहां

म् ॥ कामासक्तोयतोलोकस्ताम्बूलस्यचभक्षणात् ॥ ६७ ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंनो येनास्माकंक्रियाभवेत् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु पुष्करस्थंपितामहम् ॥ ६८ ॥ यजनार्थेसमायान्तंदरिद्रोभ्येत्यपार्थिव ॥ प्रणिपत्यततःप्राह विनयावनतःस्थितः ॥ ६९ ॥ निर्विण्णोहंसुरश्रेष्ठ ब्राह्मणानांगृहेस्थितः ॥ तस्मात्कीर्तयमेस्थानं श्रेष्ठंवित्तवतांहियत् ॥ ७० ॥ तत्रसंजायतेतृप्तिः शाश्वतीप्रचुराविभो ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वापितामहः ॥ ७१ ॥ अब्रवीचदरिद्रन्तं छिद्रार्थंधनिनामिह ॥ चूर्णपत्रेत्वयावासस्सदाकार्योदरिद्रभोः ॥ ७२ ॥ ताम्बूलस्यतुपर्णाग्रे भार्य्ययाममवाक्यतः ॥ पर्णानांचैववृन्तेषु वासस्तवसुतेनच ॥ ७३ ॥ रात्रौखदिरसारेच त्रिभिःकार्य्यःसदैवहि ॥ धनिनांछिद्रकृत्योक्तमेतत्स्थानञ्चतुष्टयम् ॥ ७४ ॥ पार्थिवानांविशेषेण ममवाक्याद्व्रजद्रुतम् ॥ नारदउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ ७५ ॥ ताम्बूलोत्थानिछिद्राणियथास्युर्धनिनामिह ॥ तानिचीर्णानिसर्वाणि त्वयाराजन्नजानता ॥ ७६ ॥ तेनवैविभवो

धनियों के छिद्रके लिये उस दरिद्रसे कहा कि हे दरिद्र ! तुमको चूर्ण समेत पत्ता (ताम्बूल) में सदैव निवास करना चाहिये ॥ ७२ ॥ मेरे वचन से ताम्बूलके पत्ते के आगे स्त्री समेत निवास करो व पत्तोंके टेंभुवोंमें पुत्र समेत तुम्हारा वासहोगा ॥ ७३ ॥ और रातमें खैरके मध्य तीनोंको याने स्त्री, पुत्र समेत तुमको सदैवही वास करना चाहिये धनियों के छिद्रकार्यसे ये चार स्थान कहेगये ॥ ७४ ॥ व विशेष कर राजाओं के समीप तुम मेरे वचन से शीघ्रही जाओ नारदबोले कि हे नरनायक ! जो मुझसे पूंछागया यह सब मैंने तुमसे कहा ॥ ७५ ॥ कि जिस प्रकार यहां ताम्बूलों से उपजेहुये छिद्र (दोष) धनियों को होतेहैं हे राजन् ! न जानते हुये

तुमने उन समस्त दोषोंको इकट्ठा कियाहै ॥ ७६ ॥ उसीसे हे राजन् ! अचानक ऐश्वर्यका नाश होगया राजा बोले कि हे मुनिनाथ ! उसके लिये भी मुझसे प्रायश्चित्त कहो ॥ ७७ ॥ कि वैसी विधिवाला ताम्बूल का भक्षण मुझको कभी होगा कि जिससे निन्दित ताम्बूल से उपजीहुई मेरे शुद्धि होवै ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे राजन् ! मैं कहूंगा सुनिये कि ताम्बूल के भक्षण से विशुद्धि के लिये आस्वादन में जो प्रायश्चित्त करै ॥ ७९ ॥ परन्तु समयको भलीभांति उद्देशकर व श्रद्धामंयुत पुरुष ॥ ८० ॥ हे राजन् ! वेद, वेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण को लावै व उसके चरणोंको धोकर वसन पहनावै ॥ ८१ ॥ व चन्दन, पुष्पादिको से भलीभांति

च्छित्तिः सञ्जातासहसान्नृप ॥ राजोवाच ॥ तदर्थमपिमेब्रूहि प्रायश्चित्तंमुनीश्वर ॥ ७७ ॥ कदाचिद्भक्षणंमेस्यात्ताम्बूलस्यतथाविधि ॥ येनमेजायतेशुद्धिः कुताम्बूलसमुद्भवा ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तंतुयच्चरेत् ॥ आसादनेविशुद्ध्यर्थं कुताम्बूलस्यभक्षणात् ॥ ७९ ॥ परंकालंसमुद्दिश्य सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ८० ॥ आनयेद्ब्राह्मणंराजन्वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ प्रक्षाल्यचरणौतस्य वाससीपरिधापयेत् ॥ ८१ ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पाद्यैस्ततःपत्रंहिरण्मयम् ॥ स्वशक्त्याकारयित्वाथ चूर्णंमुक्ताफलंन्यसेत् ॥ ८२ ॥ पूगीफलंचवैदूर्य्यं खदिरेरूप्यमेवच ॥ मन्त्रेणानेनविप्राय तथैवचसमर्पयेत् ॥ ८३ ॥ यन्मयाभक्षितंपूर्वं वृन्तंपत्रसमुद्भवम् ॥ चूर्णपत्रंतथैवान्यद्रात्रौखदिरमेवच ॥ ८४ ॥ तस्यपापस्यशुद्ध्यर्थं ताम्बूलंमेप्रगृह्यताम् ॥ ततस्तुब्राह्मणोमन्त्रमेवंराजन्नुदाहरेत् ॥ ८५ ॥ यजमानहितार्थाय सर्वपापविशुद्धये ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि कुताम्बूलंप्रभक्षितम् ॥ ८६ ॥ भक्षयिष्यसियच्चान्यत्कदाचिन्मे

पूजकर तदनन्तर अपनी शक्तिके द्वारा सुवर्णमय पत्तेको बनवाकर चूनेके स्थानमें मुक्ताफल (मोती) धरै ॥ ८२ ॥ व वैदूर्यरत्नमय सुपारी व खैरके स्थान में चांदी ही धरै व वैसेही इस मन्त्रसे ब्राह्मण के लिये समर्पण करै ॥ ८३ ॥ कि जो मैंने पहले पत्तासे उपजेहुये टेंभुवाको व चूना समेत पत्ता व रातमें वैसेही खैरहीको खाया हो ॥ ८४ ॥ उस पापकी पवित्रताके लिये मेरा ताम्बूल ग्रहण करिये तदनन्तर हे राजन् ! ब्राह्मण इस भांति मन्त्र कहै ॥ ८५ ॥ कि यजमानके हितके लिये व समस्त

पातकों से शुद्धिके लिये अज्ञान या ज्ञानसे भी जो तुमने निन्दित ताम्बूल खायाहो ॥ ८६ ॥ व जो और कभी खावोगे मेरी प्रसन्नता व वचन से निस्सन्देह तुम
को उसका दोष न होगा ॥ ८७ ॥ इस विधिसे ताम्बूल को देकर शुद्धिको प्राप्तहोता है व हे राजन्! मनुष्य कुताम्बूल के दोषसे नहीं ग्रहण किया जाताहै ॥ ८८ ॥
इस लिये हे महाराज! तुम इस व्रतको करो क्योंकि यह बहुतही पुण्यदायक व बड़ी भाग्यको बढ़ाने वालाहै ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य भक्तिके द्वारा इस विधान से द्वि
जेन्द्रको ताम्बूल देताहै वह जन्म जन्मोंके मध्यमें निन्दित ताम्बूल से छूटजाता है ॥ ९० ॥ व ताम्बूलको खाकर जो इस दानको नहीं देता है वह यहां जन्म

प्रसादतः ॥ तस्यदोषोनतेभावी ममवाक्यादसंशयम् ॥ ८७ ॥ अनेनविधिनादत्त्वा ताम्बूलंशुद्धिमाप्नुयात् ॥ कुता
म्बूलस्यदोषेण गृह्यतेननरोनृप ॥ ८८ ॥ तस्मात्त्वंहिमहाराज व्रतमेतत्समाचर ॥ बहुपुण्यतमंह्येतन्महाभाग्यविव
र्द्धनम् ॥ ८९ ॥ यःप्रयच्छतिविप्रेन्द्रं विधिनानेनभक्तितः ॥ जन्मजन्मान्तरेवापि कुताम्बूलेनमुच्यते ॥ ९० ॥ ताम्बू
लंभक्षयित्वायो नैतद्दानंप्रयच्छति ॥ ताम्बूलवर्जितःसोत्रभवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ९१ ॥ ताम्बूलवर्जितंतस्य मुखं
स्यात्पृथिवीपते ॥ कृपणस्यदरिद्रस्य तद्बिलंनहितन्मुखम् ॥ ९२ ॥ ताम्बूलंब्राह्मणेन्द्राय योदत्त्वाप्राक्प्रभक्ष
येत ॥ सुरूपोभाग्यवान्दक्षो भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ९३ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कुताम्बूलस्यभक्षणात् ॥ यत्फ
लंजायतेपुंसांयद्दानेनमहीपते ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेताम्बूलमाहात्म्यन्नामद्विश
ततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जन्ममें ताम्बूल से रहितहोगा ॥ ९१ ॥ व हे भूपते! उसका मुख ताम्बूल से रहित होगा व उस कृपण व दरिद्री का वह मुख नहीं है किन्तु वह बिलहै ॥ ९२ ॥ और
जो पहले द्विजेन्द्रके लिये ताम्बूल देकर खाताहै वह जन्म २ में सुरूपवान् व भाग्यवान् और चतुर होताहै ॥ ९३ ॥ हे भूपते! निन्दित ताम्बूल के भक्षणसे जो फ
लहोता है व दानसे पुरुषों को जो फलहोता है इस समस्त चरितको तुमसे कहा ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभा
षाटीकायांताम्बूलमाहात्म्यंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा द्विजन अस्थान दै लह्यो राज्य निजभूप । दोसौ इक अध्यायमें वरणत चरित अनूप ॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे राजन्! शंखादित्यके प्रसंगसे ताम्बूल का भक्षण व ताम्बूल के भक्षण व दानमें जो दोष व गुणहैं वे कहेगये ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन्! दिव्य दृष्टिसे दरिद्र का आगम भलीभांति जानकर यह सब कुष्ठका कारण तुमसे कहा गया ॥ २ ॥ इस समय वह भलीभांति कहूंगा कि जिस प्रकार यहां ब्राह्मणों के अपमान से शत्रुओं से तुम्हारा तिरस्कार हुआहै ॥३॥ इस राज्यमें जिस किसी आनर्ताधिपति का अभिषेक होताहै वह पहले बड़ी भक्ति से नागरों को ग्राम देताहै ॥ ४ ॥ हे राजन्! तुमने असावधानता से उन ब्राह्मणोंके

विश्वामित्रउवाच ॥ शङ्खादित्यानुषङ्गेण ताम्बूलस्यचभक्षणम् ॥ येदोषायेगुणाराजन्दानेचैवप्रभक्षणे ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं राजन्कुष्ठस्यकारणम् ॥ दरिद्रस्यागमंसम्यग्ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ २ ॥ अधुनासंप्रवक्ष्यामि यथातवपराभवः ॥ शत्रुभ्यस्सम्प्रजातोत्र द्विजानामपमानतः ॥ ३ ॥ आनर्ताधिपतिर्योत्र कश्चिद्राज्येभिषिच्यते ॥ सपूर्वंयच्छतिग्रामं नागराणांप्रभक्तितः ॥ ४ ॥ त्वयातत्कल्पितंराजन्नैवतेषांप्रमादतः ॥ पराभूताद्विजास्तेच याचमानामुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ तथाकोपवशाद्यानि शासनानिद्विजन्मनाम् ॥ लोपितानित्वयान्यानि पितृपैतामहानिच ॥ ६ ॥ तेनतेत्रपराभूतिस्सञ्जाताशत्रुसम्भवा ॥ एवंज्ञात्वाद्विजेन्द्राणां सुस्थानानिप्रयच्छभोः ॥ ७ ॥ गृहीतानिचयान्येव तेषांमोक्षंसमाचर ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवस्सोथ शङ्खतीर्थेप्रभक्तितः ॥ ८ ॥ स्नात्वाविप्रान्समाहूय मध्यगेनसमन्वितान् ॥ शङ्खादित्यस्यपुरतः प्रक्षाल्यचरणौनृपः ॥ ९ ॥ ददौचस्थानशतकंप्रक्षाल्यचरणांस्ततः ॥ षड्विंशत्यधिकंराजा

लिये वह नहीं कल्पना किया याने ग्राम न दिया व बार २ मांगते हुये वे ब्राह्मण अनादर कियेगये ॥ ५ ॥ वैसेही ब्राह्मणों की जो आज्ञायें थीं तुमने क्रोधके वशसे उनको व पिता, पितामहों वाले अन्य कर्मोंको लोप किया ॥ ६ ॥ उसी कारण शत्रु से उपजाहुआ तिरस्कार तुमको यहां प्राप्तहुआ ऐसा जानकर हे राजन्! द्विजेन्द्रों को उन स्थानों को दीजिये ॥ ७ ॥ कि जिनको ग्रहण किया है व उनकी मुक्ति करिये उस वचनको सुनकर इसके अनन्तर उस राजाने बडी भक्तिसे शंख तीर्थ में नहाकर व मध्यवर्ती समेत ब्राह्मणों को बुलाकर शंखादित्य के आगे नृपतिने चरणों को धोकर ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर राजाने चरणोंको धोकर महात्मा नागर द्विजों

को छब्बिस अधिक सौ स्थानों को दिया ॥ १० ॥ इसी अवसरमें वहां जो शत्रु भलीभांति स्थित थे वे ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मृत्युको प्राप्तहोगये ॥ ११ ॥ विश्वामि
त्र जी बोले कि हे नृपोत्तम ! शंखतीर्थ से उपजेहुये इस समस्त प्रभाव को मैंने तुमसे कहा फिर क्या सुना चाहते हो ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे
नागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांशंखतीर्थमाहात्म्यंनामैकाधिक द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥
दो० । यथा जलाशय न्हाय करि भयो सुभग पशुपाल । दोसौदूजेमें सोई रत्नादित्य हवाल ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत नन्दन ! हाटकेश्वर नामक इस क्षेत्रमें तुम

नागराणांमहात्मनाम् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र शत्रवोयेचसंस्थिताः ॥ तेवैमृत्युंसमापन्ना ब्राह्मणानांप्रसादतः ॥
११ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं शङ्खतीर्थसमुद्भवम् ॥ प्रभावंपार्थिवश्रेष्ठ किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
१२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेशङ्खतीर्थमाहात्म्यन्नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥
ऋषयऊचुः ॥ श्रुतंतीर्थत्रयंपुण्यं हाटकेश्वरसंज्ञिते ॥ क्षेत्रेत्रयत्त्वयाप्रोक्तमस्माकंसूतनन्दन ॥ १ ॥ विश्वामित्र
स्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ साम्प्रतंतत्समाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ समुद्रस्यापिपारोत्र
लक्ष्यतेचक्षितेरपि ॥ तारकाणांमुनेस्तस्य नगुणानांद्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ लक्ष्यतेकेनचित्प्रान्तो गाधिपुत्रस्यधीमतः ॥
क्षत्रियोपिद्विजत्वेयः सम्प्राप्तोद्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥ अन्त्यजत्वंगतस्यापि त्रिशङ्कोःपृथिवीपतेः ॥ यज्ञभागभुजोदेवाः
प्रत्यक्षेणविनिर्मिताः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःस्पर्द्धयायेन पुरासृष्टिर्द्विजोत्तमाः ॥ प्रारब्धातत्प्रसादेवैः प्रणिपत्यनिवारिता ॥ ६ ॥

ने जो हमलोगों से तीन पुण्यदायक तीर्थोंको कहा वे सुनेगये ॥ १ ॥ इस समय हमलोग विश्वामित्र जी का माहात्म्य सुनने के लिये इच्छा करते हैं उसको कहिये
क्योंकि हमलोगों को परम आश्चर्य है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इस संसारमें समुद्रका भी पार व पृथ्वीका भी प्रमाण व नक्षत्रों की भी संख्या देखीजा
ती है परन्तु उन बुद्धिमान् गाधिसुत (विश्वामित्र) मुनिके गुणोंका अन्त किसी से नहीं देखाजाता है हे द्विजोत्तमो ! क्षत्रिय भी जो मुनि ब्राह्मणत्व को भलीभांति
प्राप्तहुये ॥ ३ । ४ ॥ व जिनसे चाण्डालताको प्राप्तभी त्रिशंकु भूपतिके यज्ञभाग भोजी देवता प्रत्यक्षसे निर्माण कियेगये ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय जिन

विश्वामित्र ने ब्रह्माकी ईर्षा से सृष्टिका प्रारम्भ किया व वहां उस सृष्टिको देवों ने प्रणामकर मनाकिया ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस समय समस्त पातकोंके नाशक उस तीर्थ के माहात्म्य को कहते हुये मुझसे सुनिये ॥ ७ ॥ उन विश्वामित्र महात्माने वहां पर शस्त्रके विना भी अपने हाथसे भूपृष्ठमें सब ओर खोदकर कुण्ड कियाहै ॥ ८ ॥ वहां ध्यान करके पाताल से गंगानदी भलीभांति लाईगई है कि जिनगंगा जीका निर्मल जल मृत्युलोकको भली विधिसे आया है ॥ ९ ॥ जो जल कि सुस्वादिष्ठ व स्नान से समस्त पातकों का नाशक है व उन्हीं विश्वामित्र ने भी वहां जलको चुराने वाले सूर्यजीको थापा है ॥ १० ॥ माघ महीने के शुक्ल पक्षमें रविवार

तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यं साम्प्रतंवदतोमम ॥ श्रूयतांब्राह्मणश्रेष्ठास्सर्वपातकनाशनम् ॥७॥ तेनतत्रकृतंकुण्डं स्वहस्तेनमहात्मना ॥ शस्त्रंविनापिभूपृष्ठे प्रविदार्य्यसमन्ततः ॥८॥ तत्रध्यात्वासमानीता पाताळाज्जाह्नवीनदी ॥ मर्त्यलोकंसमायातं यस्यास्तोयंसुनिर्म्मलम् ॥ ९ ॥ सुस्वादुचतथास्नानात्सर्वपातकनाशनम् ॥ तेनापिस्थापितस्तत्र भास्करोवारितस्करः ॥ १० ॥ यस्सप्तम्यांसूर्य्यवारे स्नात्वातस्यह्रदेशुभे ॥ माघमासेसितेपक्ष उद्गच्छतिदिवाकरे ॥ ११ ॥ सकुष्ठेर्मुच्यतेसर्वैस्तथापापैर्द्विजोत्तमाः ॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागे तस्यास्तिजलसञ्चयम् ॥ १२ ॥ धन्वन्तरिकृतावापी सर्वरोगविनाशिनी ॥ तत्रपूर्वंतपस्तेपे धन्वन्तरिरुदारधीः ॥ १३ ॥ वर्चस्वन्तंसमायुक्तो ध्यायमानस्समाहितः ॥ ततःकालेनमहता तुष्टस्तस्यचभास्करः ॥ १४ ॥ उवाचवरदोस्मीति प्रार्थयस्वमहामते ॥ धन्वन्तरिरुवाच ॥ अत्रकुण्डेनरोभक्त्या यःस्नानंकुरुतेविभो ॥ १५ ॥ तस्यस्यात्सर्वरोगाणां संक्षयःसुरसत्तम ॥ भगवानुवाच ॥ अद्यशस्तदिनेयोत्रसप्तम्यां

सप्तमी में सूर्यके उदय होनेपर जो पुरुष उन विश्वामित्र जी के उत्तम कुण्डमें नहाकर स्थित होताहै ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह समस्त कुष्ठों व पातकों से छूटजाता है और उस कुण्डके पश्चिम व उत्तर दिशाके विभागमें जलराशि है ॥ १२ ॥ और समस्त रोगोंको विनाश करनेवाली धन्वन्तरि से की हुई बावली है वहां पहले उदार बुद्धिवाले धन्वन्तरि ने तपस्या कियाहै ॥ १३ ॥ व सावधान होतेहुये तेजवान् (सूर्यजी) को ध्यातेहुये भलीभांति तपस्या में युक्तहुये तदनन्तर बहुत समयसे उन धन्वन्तरिके ऊपर सूर्यनारायण प्रसन्नहोगये ॥ १४ ॥ व यह बोले कि मैं वरदायकहूं हे महामते ! वरको मांगिये धन्वन्तरि बोले कि हे विभो ! जो मनुष्य इस

कुण्ड में भक्तिसे स्नान करै ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! उसके सबरोगों का विनाश होवै भगवान् सूर्य जी बोले आजवाले शुभ रविवार, सप्तमी दिनमें सावधान होता हुआ जो पुरुष सूर्योदयमें यहां स्नान करैगा उसके सबरोग नाश होजावैंगे ऐसा कहकर सुरोत्तम सूर्य्यनारायणजी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ । १७ ॥ प्रसन्न मन या चित्तवाले धन्वन्तरि सदैव अपने स्थान में तत्पर हुये जो कि शूर वीर व बड़े तेजस्वी व समस्त शत्रुओं के नाशक थे ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पूर्व जन्मवाले कर्मके फलसे उन धन्वन्तरि भूपके भयंकर कुष्ठरोग हुआ जोकि त्रिलोक में दुःखसे औषधी करने योग्य था ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मणो ! संसार में वह दवाई नहीं है कि जिसको कुष्ठसे

रविवासरे ॥ १६ ॥ सूर्य्योदयेनरःस्नानं करिष्यतिसमाहितः ॥ एवमुक्त्वासुरश्रेष्ठो ह्यन्तर्धानंगतोरविः ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिःप्रहृष्टात्मा स्वस्थानेनिरतस्सदा ॥ शूरःपरमतेजस्वी सर्वशत्रुनिषूदनः ॥ १८ ॥ पूर्वकर्म्मविपाकेन तस्यभूमिपतेर्द्विजाः ॥ कुष्ठव्याधिरभूद्रौद्रा दुश्चिकित्स्याजगत्त्रये ॥ १९ ॥ तदस्तिनौषधंलोके यत्तेननकृतंद्विजाः ॥ कुष्ठग्रस्तेनवादानंयन्नदत्तंमहात्मना ॥ २० ॥ यथायथौषधान्येव सकरोतिददातिच ॥ तथातथाततःकायो व्याधिनाक्षामितोभृशम् ॥ २१ ॥ ततोवैराग्यमापन्नः सनृपोद्विजसत्तमाः ॥ पुत्रंराज्येथसंस्थाप्य वाञ्छयामासपावकम् ॥ २२ ॥ प्रविष्टस्सहितैस्सर्वैः कलत्रैराज्यसेवकैः ॥ दत्त्वादानानिविप्रेभ्यःपूजयित्वासुरोत्तमान् ॥ २३ ॥ सम्भाष्यचसुहृद्वर्गं शासयित्वानिजंसुतम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भ्रममाणोयदृच्छया ॥ २४ ॥ कश्चित्कार्पटिकःप्राप्तो दिव्यरूपवपुर्द्धरः ॥ अथा

ग्रसे हुये उन धन्वन्तरि महात्माने नहीं किया और वह दान नहीं है कि जिसको नहीं दिया याने सब दवाइयों को किया व समस्त दानदिया ॥ २० ॥ और वे धन्वन्तरि ज्यों २ दवाइयां करते थे व दान देतेथे त्यों त्यों उसी कारण रोगसे अत्यन्त दुबले होते थे ॥ २१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वह राजा वैराग्य को प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उसने पुत्रको राज्यपै भलीभांति बिठाकर अग्निकी इच्छा किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों के लिये दान देकर व देवोत्तमों को पूजकर व मित्रगणों से सम्भाषण करके और अपने पुत्रको सिखलाकर समस्त स्त्रियों व राज्य सेवकों समेत वह अग्नि में पैठगया इसी समय में अपनी इच्छासे घूमता हुआ ॥ २३ । २४ ॥ कोई

दिव्य रूपवाले शरीरका धारनेवाला कार्पटिक (गुदड़ी वाला फ़क़ीर) प्राप्त हुआ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! राजाके उस समस्त नगरको विकल देखकर विस्मय सं युत होते हुये इसने किसी मनुष्यको देखकर पूंछा कार्पटिक बोला कि हे कल्याण रूप ! यह सब महापुरी क्यों व्याकुल हुई है ॥ २५ । २६ ॥ जोकि बाल वृद्धोंसे सेवित व आंसुवोंके गिरनेसे आनन्द रहित है वह बोला कि कुष्ठरोग से संयुत यह राजा ॥ २७ ॥ स्त्रियों समेत बहुत जलते हुये अग्निको साधन करैगा उसी कारण यह समस्त नगरी बड़ेदुःखको प्राप्तहै ॥२८॥ गुणों से भलीभांति संयुत यह निश्चय कर मृत्युको प्राप्तहोगा उस वचनको सुनकर शीघ्रही जाकर नरेश के समस्त मरेहुये

सोऽव्याकुलंदृष्ट्वा तत्सर्वंनृपतेःपुरम् ॥ २५ ॥ अपृच्छद्विस्मयाविष्टो दृष्ट्वाकञ्चिन्नरंद्विजाः ॥ कार्पटिकउवाच ॥ किमेषा
व्याकुलाभद्र सर्वाजातामहापुरी ॥ २६ ॥ निरानन्दाश्रुप्लवेन बालवृद्धैर्निषेविता ॥ सोऽब्रवीन्नृपतिश्चायं कुष्ठव्याधिस
मन्वितः ॥ २७ ॥ साधयिष्यतिसन्दीप्तं सकलत्रोहुताशनम् ॥ तेनेयंनगरीकृत्स्ना परंदुःखमुपागता ॥ २८ ॥ गुणैरयं
समाविष्टो नूनंमृत्युंप्रयास्यति ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंगत्वा नृपंकार्पटिकोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥ सर्वंजनंनरेन्द्रस्य मृतंसञ्जीवय
न्निव ॥ मानृपानेनदुःखेन व्याधिजेनहुताशने ॥ ३० ॥ प्रविशत्वंस्थितेतीर्थे सर्वव्याधिक्षयावहे ॥ मदीयोभूपतेदेह
ईदृगासीद्यथातव ॥ ३१ ॥ अत्रस्नातस्यसद्योऽथ जातईदृक्पुनर्विभो ॥ सप्तम्यांसूर्यवारेण भास्करस्योदयंप्रति ॥३२॥
यस्तत्रकुरुतेस्नानं व्याधिग्रस्तोनरोभुवि ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तस्तत्क्षणात्कल्पतांव्रजेत् ॥ ३३ ॥ तथापापविनि
र्मुक्तो यथाहंनृपसत्तम ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्देशेमहातीर्थंतादृशंवदमेद्रुतम् ॥ ३४ ॥ कार्पटिकउवाच ॥ अस्ति

मनुष्यको जिलाता हुआ सा कार्पटिक राजासे बोला कि हे राजन् ! जब सब रोगों का क्षयदायक तीर्थस्थितहै तब रोगसे उपजेहुये इस दुःखसे तुम अग्निमें मत पैठो हे राजन् ! ऐसाही मेरा शरीर था जैसा कि तुम्हारा है ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ इसके अनन्तर हे विभो ! वहां नहाये हुये मेरा शरीर फिर उसी क्षण ऐसा होगया रविवार सप्तमी में जब सूर्यनारायण उदय होवैं तब ॥ ३२ ॥ भूमिमें रोगसे ग्रसाहुआ जो पुरुष उसमें स्नान करता है वह उसी क्षण समस्त रोगोंसे छूटकर निरोगता को प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ व हे नृपोत्तम ! जैसा मैं हूं वैसाही पापसे छूटाहुआ हो जाता है राजाबोले कि किस देश में वैसा महातीर्थ है मुझसे शीघ्रही कहिये ॥ ३४ ॥

कार्पटिक बोला कि हे भूपते ! नगर ऐसा उत्तम क्षेत्र भूतल में प्रसिद्ध है कुष्ठरोगसे ग्रसित व तीर्थयात्रा में तत्पर मैं उसके भलीभांति दर्शन के लिये वहां गया अति-दुःखित व रोगसे गँसेहुये मुझ दीनको देखकर वहां पर ॥ ३५ । ३६ ॥ कोई वहांके टिकाश्रयवाला तपस्वी दयासंयुत हो बोला कि जलशायी देवके पश्चिम व उत्तर दिशाके विभागमें ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रजी का जलाशय महापुण्यवान् तीर्थ है वहां जाकर माघ महीने को भलीभांति प्राप्त होनेपर शुक्लपक्षमें रविवार सप्तमी तिथिको सूर्योदय होनेपर विशेषकर स्नान करो जिससे तुम्हारा कोढ़ जातारहै ॥ ३८ । ३९ ॥ उस वचनको सुनकर सूर्यसंयोगवाली सप्तमी में मैं उस तीर्थ में

भूमितलेख्यातं क्षेत्रंनगरमुत्तमम् ॥ कुष्ठव्याधिसमाक्रान्तो गतोहंतत्रभूपते ॥ ३५ ॥ तस्यसन्दर्शनार्थाय तीर्थयात्रापरायणः ॥ तत्रमान्दीनमालोक्य व्याधिग्रस्तंसुदुःखितम् ॥ ३६ ॥ कश्चित्तत्राश्रयःप्राह तपस्वीकृपयान्वितः॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागे देवस्यजलशायिनः॥ ३७ ॥ तीर्थमस्तिमहापुण्यं विश्वामित्रजलावहम् ॥ तत्रगत्वाकुरुस्नानं सप्तम्यांरविवासरे ॥ ३८ ॥ माघमासेतुसम्प्राप्ते शुक्लपक्षेविशेषतः ॥ येननिर्य्यातितेकुष्ठो भास्करस्योदयंप्रति ॥ ३९ ॥ तच्छ्रुत्वाहञ्चतत्प्राप्तस्सप्तम्यांसूर्य्यसंयुजि ॥ ततश्चकृतवान्स्नानं विदूरेतत्रशाम्भवम् ॥ ४० ॥ ततस्तस्माद्विनिष्क्रान्तो यावत्पश्याम्यहंततः ॥ तावन्नृपेदृशोजातस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ४१ ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र तत्रस्नानंसमाचर ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण भास्करस्योदयंप्रति ॥ ४२ ॥ येननश्यतिव्याधिर्विशेषमपिपातकम् ॥ तच्छ्रुत्वामनृपस्तूर्णं तेनैवसहितोययौ ॥ ४३ ॥ चकारसतथास्नानं सप्तम्यांसूर्य्यवासरे ॥ माघमासेतुसम्प्राप्ते विश्वामित्रजलेशुभे ॥४४॥

प्राप्तहुआ तदनन्तर उसमें स्नान किया जहांसे कि दूरमें शिवजीका लिङ्ग है ॥४०॥ तदनन्तर मैं उससे निकला व जब तक देखूं तब तक हे राजन्! उसी कारण ऐसा होगया यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ४१ ॥ उसी कारण हे नृपेन्द्र ! तुम भी रविवार सप्तमी में सूर्य्योदय होनेपर उसमें स्नान करो ॥ ४२ ॥ जिससे तुम्हारा रोग व विशेष पातक भी नाशहोवै उस वचनको सुनकर वह राजा उसी कार्पटिक समेत शीघ्रही गया ॥ ४३ ॥ और माघ महीने के भलीभांति प्राप्त होनेपर रविवार सप्तमी में

उत्तम विश्वामित्र जी के जलमें उसने स्नान किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उसी क्षण कुष्ठरोग से छूटा व दिव्यरूपवाले शरीर का धारी दूसरे कामदेव के समान प्राप्त होगया ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये नरेश ने उस कार्पटिकके लिये तीन करोड़ अशर्फियां दिया तदनन्तर वचन कहा ॥ ४६ ॥ कि तुम्हारी प्रसन्नताके कारण इस भयंकर रोगसे मैं छूटगया इस लिये तुम अपने घर जावो मैं इसी निर्झर (झरना) के समीप टिकूंगा ॥ ४७ ॥ व अपनी स्त्रियों समेत मैं नित्यही तपस्या करूंगा क्योंकि राज्यके कर्ममें समर्थ पुत्रको भलीभांति स्थापित कियाहै ॥ ४८ ॥ उससे यह कहकर तदनन्तर वैसेही अन्य सावधान सेवकोंको अपने घरके लिये

ततःकुष्ठविनिर्मुक्तस्तत्क्षणात्समपद्यत ॥ दिव्यरूपवपुर्द्धारी कामदेवइवापरः ॥ ४५ ॥ अथतुष्टोनरेन्द्रस्तु तस्मैकार्पटिकायच ॥ ददौकोटित्रयंहेम्नः प्रोवाचचततोवचः ॥४६॥ त्वत्प्रसादाद्विनिर्मुक्तो रोगादस्मात्सुदारुणात् ॥ तस्मात्त्वंगच्छगेहंस्वं स्थास्येहंचात्रनिर्झरे ॥ ४७ ॥ करिष्यामितपोनित्यं स्वकलत्रसमन्वितः ॥ राज्येसंस्थापितःपुत्रः समर्थोराज्यकर्म्मणि ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाप्रेरयामास तन्तथान्यान्समाहितान् ॥ सेवकान्स्वगृहायैवं स्वयंतत्रैनचस्थितः ॥ ४९ ॥ कृत्वाश्रमपदंरम्यं स्वकलत्रसमन्वितः ॥ सम्प्राप्तश्चपरांसिद्धिं कालेनद्विजसत्तमाः ॥ ५० ॥ तस्यनाम्नाततःख्यातं तीर्थमेतत्रिविष्टपे ॥ सर्वव्याधिहररम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ५१ ॥ तेनसंस्थापितस्तत्र देवदेवोदिवाकरः ॥ रत्नादित्यमितिख्यातं निजनाम्नामहात्मना ॥ ५२ ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण तत्रस्नात्वाप्रपश्यति ॥ यस्तुपापविनिर्मुक्तस्सूर्य्यलोकंसगच्छति ॥५३॥ यदन्यत्तत्रसंवृत्तं क्षेत्रजातंद्विजोत्तमाः ॥ तदहंकीर्तयिष्यामिशृणुध्वंसुसमाहिताः॥५४॥

इस प्रकार प्रेरणा किया व हे द्विजोत्तमो ! सुन्दर आश्रम स्थान बनाकर अपनी स्त्रियों समेत वह आपही वहीं स्थित हुआ और समय से उत्तम सिद्धिको भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ४९ । ५० ॥ तदनन्तर समस्त पातकोंका नाशक व सब व्याधियोंका विनाशक यह मनोहर तीर्थ उसके नामसे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ५१ ॥ और वहां उस महात्मा ने अपने नामसे देवताओं के देवता दिनकर (सूर्यनारायण) को भलीभांति थापाहै वे रत्नादित्य ऐसे प्रसिद्धहैं ॥ ५२ जो पुरुष रविवार समेत सप्तमी तिथिमें उस कुण्डमें नहाकर रत्नादित्य को देखताहै पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक को जाताहै ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां क्षेत्रमें उपजा हुआ जो और वृत्तान्त

हुआ है मैं उसको कहूंगा सावधान होतेहुये तुम लोग सुनो ॥ ५४ ॥ कि वहां ग्रामीण स्थानवाला कोई पुरुष हुआहै जोकि जरात्मक (बूढ़ा) व कोढ़ीथा तिसपर भी वह नित्यही पशुओं की रक्षा करताथा ॥ ५५ ॥ एक समय उस पहाड़के नीचे पशुओं की रक्षा करतेहुये उसका एक पशु तिनुका के लोभसे उत्तम मार्गसे निकलगया ॥ ५६ ॥ व रविवार सप्तमी में उसके झरने में गिरपड़ा और उसने जातेहुये पशुको किसी प्रकार भलीभांति न देखा ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर वह जब तक भोजन के लिये घरको प्राप्तहुआ तबतक घुड़कता हुआ उस पशुका स्वामी भलीभांति समीप आया ॥ ५८ ॥ व बोला कि मेरा वह पशु किस लिये मेरे घर नहीं

आसीत्तत्रपुमान्कश्चिद्देशग्राम्योजरात्मकः ॥ कुष्ठीतथापिनित्यंस करोतिपशुरक्षणम् ॥ ५५ ॥ एकदारक्षतस्तस्य पशूंस्तस्यगिरेरधः ॥ एकःपशुर्विनिष्क्रान्तस्सत्पथात्तृणलोभतः ॥ ५६ ॥ सप्तम्यांरविवारेण पतितस्तस्यनिर्झरे ॥ नचसंलक्षितस्तेन गच्छमानःकथञ्चन ॥ ५७ ॥ अथयावद्गृहंसोथ भोजनार्थमपद्यत ॥ तावत्तस्यपशोःस्वामी भर्त्सयन्समुपागतः ॥ ५८ ॥ नायातःसपशुःकस्मान्मदीयोमामकेगृहे ॥ तस्मादानयतंशीघ्रं नोचेत्प्राणान्हरामिते ॥ ५९ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तस्सकुष्ठीसत्वरंययौ ॥ तेनमार्गेणयेनैव दिवाभ्रान्तोमहीतले ॥ ६० ॥ अथदूरात्सशुश्राव तस्यरावंपशोस्तदा ॥ पतितस्यमहागर्तेनिशान्तेतमसिस्थिते ॥ ६१ ॥ ततोगत्वाथतद्गर्ते प्रविश्यजलमध्यतः ॥ चकर्षतंपशुंकृच्छ्रात्पङ्कमध्यात्सुदारुणात् ॥ ६२ ॥ तमादायाथतद्धर्म्यं प्रजगामशनैश्शनैः ॥ अर्पयित्वाथतंतस्य स्वकीयंचाश्रमंगतः ॥ ६३ ॥ ततःसुप्तोमहाभागः सम्प्रबुद्धःपुनर्यदा ॥ प्रभातेवीक्ष्यतेगात्रं यावत्कुष्ठविवर्जितम् ॥ ६४ ॥

आया उसी कारण शीघ्रही उसको आनिये नहीं तो तेरे प्राणोंको हरूंगा ॥५९॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर भयभीत वह कुष्ठी शीघ्रही उस मार्गसे गया कि जिसी मार्ग से दिनको भूमिमें चलाथा ॥६०॥ इसके अनन्तर जब कि रातके मध्य अन्धकार स्थितथा तब उसने बड़े गढ़ेमें पड़ेहुये उस पशुका शब्द दूरसे सुना ॥६१॥ तदनन्तर जाकर व उस गढ़ेमें जलके बीच पैठकर बड़े कठिन कीचड़के बीचसे उस पशुको क्लेशसे खींचा ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर उस पशुको लेकर धीरे२ उसके घरको गया व उसके स्वामीको उसे देकर अपने आश्रमको गया ॥६३॥ उसके उपरान्त वह बड़ा भाग्यवान् सोरहा जब फिर प्रातःकाल जगा व जब तक अपने शरीरको

देखै तब तक परम शोभा से संयुत व कुष्ठरहित होगया तब आश्चर्य से फूले लोचनोंवाले उसने चिन्तन किया कि यह क्या है व किससे रोगका विनाश होग-या ॥६४।६५॥ निश्चयकर उसी तीर्थका यह प्रभावहै जोकि मैंने पशुके लिये रात्रिके आगमनमें उत्तम कीचड़को अवगाहन कियाहै ॥६६॥ तदनन्तर समस्त कोढ़से रहित व तेजसे घिराहुआ वह उसीकारण कुतूहलसे जाकर देखताभया ॥ ६७ ॥ वहां स्थानको आपही जाकर व अति उत्तम तीर्थ जानकर वहीं वनवासी सूर्यनारायणको दिन रात भलीभांति ध्यान करतेहुये उस निरालसी ने तपस्या किया व देवोंसे भी दुर्लभ उत्तम सिद्धिको पाया ॥ ६८ । ६९ ॥ इसलिये सब उपायसे उसमें स्नान करै व

शोभयापरयायुक्तं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ चिन्तयामासकिंह्येतत्कस्माद्रोगस्यसंक्षयः ॥ ६५ ॥ नूनंतस्यप्रभावोयं तीर्थस्याद्यनिशागमे ॥ मयावगाहितंयच्च पशोरर्थेसुकर्दमम् ॥ ६६ ॥ ततश्चवीक्षयामास तेनगत्वासुकौतुकात् ॥ यावत्कुष्ठविनिर्मुक्तस्तेजसापरिवारितः ॥ ६७ ॥ तत्रस्थानंस्वयंगत्वा ज्ञात्वातीर्थमनुत्तमम् ॥ तपस्तेपेथतत्रैव ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ ६८ ॥ अरण्यवासिनंसम्यग्दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥ गतश्चपरमांसिद्धिं दुर्लभांत्रिदशैरपि॥ ६९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ प्रपूजयेच्चतन्देवंभास्करंवारितस्करम् ॥ ७० ॥ अद्यापिकलिकालेच तत्रस्नातोनरःशुचिः ॥ तत्रपुण्यजलेकुण्डे सप्तम्यांसूर्यवासरे ॥ ७१ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या सोपिपापैःप्रमुच्यते॥ गायत्र्यष्टसहस्रंयो जपेत्तत्पुरतःस्थितः ॥ ७२ ॥ सोपिरोगविनिर्मुक्तो मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तस्योद्देशेनयोदद्याद्धेनुंश्रद्धासमन्वितः ॥ ७३ ॥ नतस्यान्वयजातोपि व्याधितःपरिगृह्यते ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं मयादित्यस्यसम्भवम् ॥ ७४ ॥ माहा

जल चुरानेवाले सूर्य देवको अवश्य पूजै ॥ ७० ॥ आज भी कलिकाल में वहां रविवार सप्तमी में उस पवित्र जलवाले कुण्डमें नहाया हुआ पवित्र पुरुष ॥ ७१ ॥ जो भक्तिसे उन सूर्यनारायण को पूजताहै वह भी पातकों से छूटजाता है व उन सूर्यजीके अगाड़ी खड़ाहुआ जो पुरुष आठ हज़ार गायत्री जप करता है ॥ ७२ ॥ वह भी रोगसे छूटकर समस्त पापोंसे छूटजाता है व श्रद्धासंयुत जो पुरुष उन सूर्यनारायणके उद्देशसे गऊको देताहै ॥७३॥ उसके वंशमें उपजाहुआ भी पुरुष रोगसे

नहीं ग्रहण कियाजाता है मैंने सूर्यनारायणसे उपजे हुये इस समस्त माहात्म्यको तुमलोगों से कहा कि जिसके सुनने से मनुष्य पापसे छूटजाता है ॥ ७४ । ७५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरत्नादित्यमाहात्म्यंनामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा कृष्णसुत साम्बजी साम्बादित्यक नाम । थाप्यो दोसौ तीसरे महँ सो चरित ललाम ॥ सूतजी बोले कि यह रत्नादित्य का माहात्म्य तुम लोगों से कहागया जोकि समस्त पातकों का नाशक व सब कुष्ठोंका हारक कहाहै ॥१॥ वैसेही फिर सूर्य्यनारायण के उत्तम माहात्म्यको सुनिये पुरातन समय कुष्ठरोगसे बहुत

त्म्यंश्रवणाद्यस्य नरःपापाद्विमुच्यते ॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेरत्नादित्यमाहात्म्यंनाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ रत्नादित्यस्यमाहात्म्यमेतद्वःपरिकीर्तितम् ॥ सर्वकुष्ठहरंप्रोक्तं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ भूयस्तथैव माहात्म्यं श्रूयतांपरमंरवेः ॥ पुरासीद्ब्राह्मणःकश्चित्कुष्ठव्याधिसमाकुलः ॥ २ ॥ तेनचाराधितस्सूर्य्यस्तत्रस्थेनद्विजोत्तमाः ॥ पूर्वदक्षिणदिग्भागे समासाद्यततःपरम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनजांकृत्वा प्रतिमाम्भावितात्मना ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुष्टस्तस्यदिवाकरः ॥ ४ ॥ वरदोस्मीतितम्प्राह दृष्टिगोचरमागतः ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव कुष्ठव्याधिहरप्रभो ॥ ५ ॥ नान्येनकारणंमेस्ति राज्येनापित्रिविष्टपे ॥ भगवानुवाच ॥ सप्तम्यांसूर्य्यवारेण कुरुविप्रप्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्स्नात्वापुण्यह्रदेशुभे ॥ फलहस्तःपृथक्त्वेन ततःकुष्ठेनमुच्यसे ॥७॥ अन्योत्रगाङ्गतोयोहि

ही विकल कोई ब्राह्मण हुआ है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां टिकेहुये शुद्धचित्तवाले उसने पूर्व व दक्षिण दिशाके विभागमें प्राप्तहोकर तदनन्तर लाल चन्दन से उपजी हुई मूर्त्तिको बनाकर सूर्यनारायण का आराधन किया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्तमें सूर्यजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ३ । ४ ॥ व दृष्टिगोचर में आयेहुये सूर्य ने उससे यह कहा कि मैं वरदायकहूं ब्राह्मण बोला कि हे प्रभो, देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो कुष्ठरोग को हरिये ॥ ५ ॥ व अन्य त्रिलोक में राज्यसे भी मेरा कारण नहीं है भगवान् सूर्यनारायण जी बोले कि हे विप्रजी ! रविवार सप्तमी में उत्तम पुण्यदायक कुण्ड में नहाकर फल हाथोंवाले तुम भिन्नतासे एकसौ आठ

संख्यक प्रदक्षिणाओं को करिये तदनन्तर कुष्ठसे छूटोगे॥ ६ । ७ ॥ व पृथ्वी में प्राप्त हुआ जो अन्य पुरुष यहां इस व्रतको करैगा सबरोगों से छूटा हुआ वह मेरेलोक को जावैगा ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर श्रद्धासंयुत उस ब्राह्मण ने वैसाही किया और वह उस समय कुष्ठसे छूटगया व दिव्य देहको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर फिर भी भगवान् सूर्यनारायण ने उस नीरोग से कहा कि हे द्विजोत्तम ! मैं आज तुम्हारा क्या प्रियकरूं उसको कहिये ॥ १० ॥ उसने कहा कि हे विभो ! आपको सदैवही यहां टिकना चाहिये भगवान् सूर्यनारायण-जी बोले कि इसके उपरान्त इस स्थानमें मेरा निवास होगा ॥ ११ ॥ व नामसे कुहरवास

व्रतमेतत्करिष्यति ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो ममलोकंसगच्छति ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासतथाचक्रे ब्राह्मणःश्रद्ध
यान्वितः ॥ विमुक्तश्चतदाकुष्ठाद्दिव्यदेहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥ अथभूयोपितम्प्राह नीरोगंभगवान्रविः ॥ किन्तेप्रियङ्करो
म्यद्य वदब्राह्मणसत्तम ॥ १० ॥ सोब्रवीत्सर्वदेवात्रस्थातव्यंभवताविभो ॥ भगवानुवाच ॥ अतःपरंमयावासः स्थाने
त्रचभविष्यति ॥ ११ ॥ नाम्नाकुहरवासाख्यं संज्ञाममभविष्यति ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विष्णुपुत्रोबभूवह ॥ १२ ॥
साम्बोनामसुरूपाढ्यो जाम्बवत्याद्विजोत्तमाः ॥ क्षोभसञ्जनकःस्त्रीणां मातॄणामपिसद्विजाः॥ १३ ॥ अथतंराजमार्गेण
गच्छन्तंद्विजसत्तमाः ॥ पुरनार्य्योपिसन्तुष्टा वीक्षांचक्रुःसकौतुकाः ॥ १४ ॥ गृहकार्य्याणिसन्त्यज्य समारूढागवा
क्षकान् ॥ तस्यकामात्मदेहस्य दर्शनार्थंसमुत्सुकाः ॥ १५ ॥ काश्चिदर्द्धानुलिप्ताङ्ग्यः काश्चिदेकाञ्जितेक्षणाः ॥ अर्द्ध
संयमितैःकेशैस्तथान्यास्त्यक्तबालकाः ॥ १६ ॥ एकस्मिंश्चरणेकाचिद्दियोज्योपानहंद्रुतम् ॥ पादुकान्तुद्वितीयेतु

नामक मेरी संज्ञा होगी इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! किसी समय जाम्बवती के सकाश से विष्णुके पुत्र स्वरूपसंयुत साम्ब नामक हुये जोकि हे उत्तम द्विजो ! स्त्रियों व माताओं के भी क्षोभ पैदा करनेवाले थे ॥ १२ । १३ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! राजमार्ग से जातेहुये उन साम्बजीको आश्चर्य समेत व प्रसन्न होतीहुई पुरनारियों ने भी देखा ॥ १४ ॥ व उन कामात्मशरीरवाले साम्ब को देखने के लिये भलीभांति उत्कंठित होती हुई स्त्रिया घरके कामोंको छोड़कर झरोखों में चढ़ गई ॥ १५ ॥ जिनमें से कोई आधे अङ्गमें लेपन किये व कोई एक आंख आंजे हुई व कोई आधे बालोंको बांधे व अन्य पुत्रोंको छोड़ेहुई थीं॥ १६ ॥ व कोई नितम्बिनी

स्त्री शीघ्रही एक पांव में पनहीं व दूसरे में खडाऊं पहन कर दौडी ॥ १७॥ वैसेही जब अन्य स्त्रियां झरोखों में गईं तब भूख से संयुत बालक व गुरू (श्वसुर, जेठादिक) चिल्ला रहेथे ॥ १८ ॥ व नारेके बन्धन के अलग होनेसे व्याकुल चित्तवाली अन्य उत्तम अंगवती स्त्रियां उन झरोखों में जाती ही भईं ॥ १९ ॥ उस समय कामदेव के समान उन युवावस्था वाले साम्बने भूतलमें गिरीहुई नेत्रोंकी किरणों द्वारा इन स्त्रियोंके हृदयोंको खींच लिया ॥ २० ॥ उन साम्ब भूपति के उस रूपको देखही कर अचला व कामदेव से तचे हुये अङ्गोंवाली कोई कामिनी स्त्री लिखीहुई सी जान पड़ती थी यानें ज्योंकी त्यों रहगई ॥ २१ ॥ व कोई स्त्रियां उनको देखकर

पर्यधावन्नितम्बिनी ॥ १७॥ व्रजन्तीषु तथान्यासु वनितासु गवाक्षकान् ॥ व्याक्रोशन्ति क्षुधाविष्टाः शिशवो गुरवस्तथा ॥ १८ ॥ नीवीबन्धनविश्लेषसमाकुलितचेतसः ॥ ययुरेवापरास्तेषु गवाक्षेषु वराङ्गनाः ॥ १९ ॥ सचकर्ष तदा साम्ब पति तैर्नेत्ररश्मिभिः ॥ हृदयानि धरापृष्ठे कामदेवसमो युवा ॥ २० ॥ काचिद् दृष्ट्वैव तद्रूपं तस्य भूपस्य कामिनी ॥ निश्चलाका मतप्ताङ्गी लिखितेव विभाव्यते ॥ २१ ॥ काश्चिदेव समालोक्य बभूवुः कामपीडिताः ॥ एकास्तं च समालोक्य रूपयौवनसंयुतम् ॥ २२ ॥ गवाक्षेभ्यः पतन्ति स्म निश्चेष्टा धरणीतले ॥ अन्याः परस्परालापं प्रकुर्वन्ति वरस्त्रियः ॥ २३ ॥ एषा सा कामिनी धन्या यास्य चक्रे वगूहनम् ॥ निश्शेषां रजनीं प्राप्य माघमाससमुद्भवाम् ॥ २४ ॥ आस्तां तावत्स्त्रियो याश्च नरा अपि निरर्गलम् ॥ जल्पन्ति चेदृशं सर्वे तस्य रूपेण विस्मिताः ॥ २५ ॥ अन्ये वदन्ति तं कामं राजमार्गेण पूरुषाः ॥ वीक्ष्यमाणाश्च तं येन नित्यमेवेन्दुसन्निभम् ॥ २६ ॥ कर्णाभ्यां वारिता वृद्धिर्नेत्रयोरप्यसंशयम् ॥ नोचेज्जानीमहे नैव कि

कामदेव से पीडित हुईं व एक स्त्रियों ने रूपसे संयुत उन साम्बजी को देखकर ॥ २२ ॥ संज्ञा रहित होती हुई झरोखों से गिरपडीं व अन्य उत्तम स्त्रिया परस्पर में बार्तालाप करती भईं ॥ २३ ॥ यह वह कामिनी धन्यहै कि जिसने माघ महीनेमें उपजीहुई समस्त रातको पाकर इसका आलिंगन किया ॥ २४ ॥ तबतक जो स्त्रियां हैं वे होवैं मनुष्य भी उसके रूपसे विस्मित होते हुये बिनरोंक टोंक ऐसा सब कहते थे ॥ २५ ॥ जिससे कि नित्यही चन्द्रमा के समान उनको देखतेथे उसी से राजमार्ग के द्वारा जातेहुये उन साम्बको मनुष्य कामदेव कहते थे ॥ २६ ॥ व कानों ने नेत्रोंकी वृद्धिको निस्सन्देह मना किया नहीं तो नहीं जानते हैं कि वह वृद्धि

कितनी होती ॥ २७ ॥ इस प्रकार स्त्रियों व पुरुषों से देखेहुये वे पिता के दर्शनकी लालसा वाले साम्बजी राजमार्ग से निकलगये ॥ २८ ॥ बहिनी व जो मातायें व जो भाई की स्त्रिया स्थितथीं वे और ब्राह्मणों की स्त्रियां ऐसी दशाको प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ और जो उनकी माता भी व विशेष कर बहनैं थीं वे ऐसी दशाको प्राप्त भई अन्यदिन प्राप्तहोने पर वर्षा समय में जब रात आई तब ॥ ३० ॥ कृष्ण पक्ष में अन्धकार होनेपर जब कि आगे प्राप्त भीवस्तु नहीं देख पड़ती थी तब नन्दिनी नामक उनकी माता कामदेव के वशमें प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ व उसकी स्त्री का वेषधरकर उन साम्बकी शय्यापै प्राप्तहुई उनने भी अपनी स्त्री जानकर उससे श्रद्धाही

यतीसाभविष्यति ॥ २७ ॥ एवंसवीक्ष्यमाणस्तु कामिनीभिर्नरैस्तथा ॥ निर्ययौराजमार्गेण पितृदर्शनलालसः ॥ २८॥ भगिन्योमातरोयाश्च भ्रातृपत्न्यश्चयाःस्थिताः ॥ अवस्थामीदृशींप्राप्ता ब्राह्मणानांतथास्त्रियः ॥ २९ ॥ मातरोपिचया स्तस्य भगिन्यश्चविशेषतः ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते प्रावृट्कालेनिशागमे ॥ ३० ॥ कृष्णपक्षेतमोभूते अलक्ष्येपिगते पुरः ॥ तन्मातानन्दिनीनाम कामदेववशंगता ॥ ३१ ॥ तत्पत्न्यावेषमाधाय तस्यशय्यामुपस्थिता ॥ सोपितांचस्व कांज्ञात्वा सेवयामासकामिनीम् ॥ ३२ ॥ रतोपचारविविधैःश्रद्धयैवविनिर्मितैः ॥ तयातत्रयदुश्रेष्ठो निकाममकरोत्तदा ॥ ३३ ॥ अङ्गराजसुतायामे प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ नैवंविधंरतंवेद अनयायद्विनिर्म्मितम् ॥ ३४ ॥ वेश्याअपिनजान न्ति रतमीदृक्कथञ्चन ॥ ततोगार्द्धकरेधृत्वा दीपमानीयतत्क्षणात् ॥ ३५ ॥ यावत्पश्यतिसामाता नन्दिनीतिचया स्मृता ॥ ततश्चगर्हयामास धिक्पापेकिमिदंकृतम् ॥ ३६ ॥ गर्हितंसर्वलोकानां नरकार्तिप्रदंतथा ॥ सापिलज्जासमोपे

से कियेहुये अनेक प्रकार के रतिके उपचारोंसे उसे सेवन किया व उस समय यदूत्तम साम्बने इच्छाके अनुकूल रति किया ॥ ३२ । ३३ ॥ व विचार किया कि अंग राजकी कन्या जोकि मुझको प्राणोंसे भी प्यारी है वह इस प्रकार के रतिको नहीं जानती है जैसा कि इसने किया है ॥ ३४ ॥ व वेश्यायें भी किसी प्रकार ऐसे रति को नहीं जानती हैं तदनन्तर हाथमें पुष्ट पकड कर व उसी क्षण दीपक को आनकर ॥ ३५ ॥ जब तक देखैं तब तक वह माता थी जोकि नन्दिनी ऐसी कही जाती थी तदनन्तर निन्दा किया कि हे पापिनि ! तूने यह क्या किया ॥ ३६ ॥ जोकि समस्त मनुष्यों को निन्दित व नरकके क्लेश का दायकहै लज्जासे संयुत व बड़े भय

से विकल वह भी ॥ ३७ ॥ बड़े डरसे युक्तहोती हुई उसी क्षणही भगगई हे ब्राह्मणो ! व वैसेही साम्ब ने भी विकल होकर नींदको न पाया ॥ ३८ ॥ उस समय उन साम्बजीको बचीहुई रात सौ वर्षके समान होगई इसके अनन्तर जब रातबीत गई तब सूर्य मण्डल के उदय होनेपर ॥ ३९ ॥ बड़े दुःखसे संयुत वे विष्णुजी के पुत्र साम्बजी उठे व आवश्यक भी कार्यको छोड़कर धर्म शास्त्र विधिके जाननेवाले किसी उत्तम ब्राह्मणको भलीभांति आनकर इसके उपरान्त हाथजोड़े खड़ हुये व नम्रतासे संयुत होकर एकान्त में बोले ॥ ४० । ४१ ॥ कि माता, बहन व कन्याके साथ यदि मोहन होवै तो उसकी परमार्थ से कैसे शुद्धिहोवै क्रम पूर्वक समस्त धर्म

ता महाभयसमाकुला ॥ ३७ ॥ प्रणष्टातत्क्षणादेव भयेनमहतान्विता ॥ साम्बोपिचतथैवार्तो निद्रांलेभेनवैद्विजाः ॥ ३८ ॥ रात्रिशेषमभूत्तस्य तदावर्षशतोपमम् ॥ अथरात्र्यांव्यतीतायां प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ३९ ॥ दुःखेनमहतायुक्तः प्रोत्थि तस्सहरेस्सुतः ॥ आवश्यकमपित्यक्त्वा कञ्चिद्ब्राह्मणमुत्तमम् ॥ ४० ॥ धर्म्मशास्त्रविधानज्ञं समानीयाथचाब्रवीत् ॥ रहस्येविनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ४१ ॥ मात्रास्वस्त्राद्दुहित्रावा स्वयंस्याद्यदिमोहनम् ॥ कथंशुद्धिर्भवेत्त स्यपरमार्थेनतद्वद ॥ ४२ ॥ धर्म्मशास्त्राणिसंवीक्ष्य सर्वाणिचयथाक्रमम् ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ परनार्य्याःकृतेवत्स प्राय श्चित्तंविनिर्म्मितम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मद्रोणेषुसर्वेषु वर्णानाञ्चपृथग्विधम् ॥ आसाञ्चतिसृणाञ्चैव स्त्रीणांतुपरिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥ एकमेवविनिर्दिष्टं प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ ४५ ॥ मात्रामोहनमासाद्य भगिन्याचाथयद्भवेत् ॥ दुहित्राचप्रमादाच्च यदिसंगम्यतेसुधीः ॥ ४६ ॥ शुद्ध्यर्थंतिङ्गिनीमेकां नान्यजानाम्यहंद्विजाः ॥ ४७ ॥ धर्म्मद्रोणेषुसर्वेषु निर्णयोयमुदाहृ

शास्त्रोंको भलीभांति देखकर उसको कहिये ब्राह्मण बोला कि हे वत्स ! पराई स्त्री के लिये समस्त धर्मशास्त्रों में वर्णोंको भिन्न प्रकार का प्रायश्चित्त निर्माण किया गया है व इन तीनों स्त्रियोंकी विशुद्धिके लिये एकही प्रायश्चित्त निर्देश किया हुआकहाहै ॥ ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! यदि माता व बहनसे जो मोहनको प्राप्त होवै व असावधानता से कन्याके साथ संगको प्राप्त होवै तो शुद्धिके लिये एक तिंगिनी को जानता हूं मैं और नहीं जानताहूं ॥ ४६ । ४७ ॥ हे यदु पुङ्गव !

समस्त धर्म के ग्रन्थों में यह निर्णय कहा गया है जोकि मैंने तुमसे कहा और नहीं है ॥ ४८ ॥ व पूंछा हुआ जो पुरुष अपनी इच्छा से अन्यथा प्रायश्चित्त करता है वह वैसेही उसके पापका भागी होताहै जैसे कर्ता होताहै ॥ ४९ ॥ साम्ब बोलेकि हे द्विजोत्तम ! तिंगिनी का क्या स्वरूप व क्या प्रमाण है सब विस्तारसे कहिये मेरा इसमें प्रयोजनहै ॥ ५० ॥ ब्राह्मण बोला कि हे यादव ! गऊकेमार्गवाली धूलि लेकर मुख पर्यन्त अपने प्रमाणसे उपजेहुये गढ़ेको भरकर उसमें शयन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ व उसमें ऊपरसे गऊके मार्गसे उपजीहुई धूलिको धरना चाहिये व मुख प्रमाणतक सब ओरसे गर्तमान कराकर ॥ ५२ ॥ तदनन्तर चरणके स्थान

तः ॥ योमयातेचकथितो नान्योऽस्तियदुपुङ्गव ॥ ४८ ॥ अन्यथायोवदेत्पृष्टः प्रायश्चित्तंस्वछन्दतः ॥ तस्यपापस्यभागीस्याद्यथाकर्तातथैवसः ॥ ४९ ॥ साम्बउवाच ॥ तिङ्गिन्याःकिंस्वरूपंच किंप्रमाणंद्विजोत्तम ॥ सर्वविस्तरतोब्रूहि ममास्त्यत्रप्रयोजनम् ॥ ५० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गोवाटचूर्णमादाय गर्तंभृत्वास्वमानजम् ॥ शयनंतत्रकर्तव्यं यावद्वक्त्रेण यादव ॥ ५१ ॥ उपरिष्टात्तत्रचूर्णं धार्यंगोवाटसम्भवम् ॥ यावद्वक्त्रप्रमाणञ्च वर्तयित्वाचसर्वतः ॥ ५२ ॥ ततःपादप्रदेशेतु ज्वालयेद्धव्यवाहनम् ॥ यथायथाशनैर्दाहः शरीरस्यप्रजायते ॥ ५३ ॥ नचैवचालयेदङ्गं कथञ्चित्तत्रसंस्थितः ॥ नैवाक्रन्दंतथाकुर्य्याद्ध्यायेदेकंजनार्द्दनम् ॥ ५४ ॥ ततोजीवितनाशेन मातृशुद्धिःप्रजायते ॥ तिङ्गिन्यायत्स्वरूपञ्च तन्मयापरिकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ प्रायश्चित्तमिदंसम्यङ्महापातकनाशनम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ ५६ ॥ हृदयेनिश्चयंकृत्वा तिङ्गिनीसाधनोद्भवम् ॥ ततःप्रोवाचविजने वासुदेवंघृणान्वितः ॥ ५७ ॥ ताताहंविप्रलब्ध

में अग्निको जलावै ज्यों २ धीरे २ शरीरका दाह होता जावै ॥ ५३ ॥ उसमें भलीभांति टिकाहुआ वह किसी प्रकार अंग न चलावै व रोदन न करै और एक विष्णुजी को ध्यान करै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर जीवके नाशसे माता के पातकसे शुद्धिहोती है तिंगिनी का जो स्वरूप है मैंने उसको कहा ॥ ५५ ॥ यह प्रायश्चित्त भलीभांति महा पातकों का नाशक है उनके उस वचनको सुनकर जाम्बवती के पुत्र साम्ब जीने ॥ ५६ ॥ तिंगिनी साधन से उपजेहुये निश्चयको करके तदनन्तर घृणा

संयुत हो एकान्तमें विष्णुजीसे कहा ॥ ५७ ॥ कि हे पिताजी ! अन्धकार स्थित होने पर स्त्रीका रूपधरकर नन्दिनी नामक तुम्हारी पापिनी स्त्रीने मुझको छललिया ॥ ५८ ॥ मैंने अपनी स्त्रीकी बुद्धिकरके उसका निश्चय किया तदनन्तर कर्मको जानकर उसे निन्दकर बिदाकिया ॥ ५९ ॥ तबसे लगाकर मेरे यह कुष्ठरोग स्थितहै इसके अनन्तर मैंने किसी धर्मशास्त्र के जानने वाले द्विजसे पूंछा ॥ ६० ॥ कि माताके सेवन से यथोक्त प्रायश्चित्त मुझसे कहो उसने मेरी शुद्धिके लिये भलीभाति तिगिनी साधन कहा ॥ ६१ ॥ सो मैं उस पापकी शुद्धिके लिये उस तिंगिनी को साधन करूंगा मुझको शीघ्रही आज्ञा दीजिये कि जिससे मैं कार्य्य करूं ॥ ६२ ॥ व शिशु

स्तु नन्दिन्यातवभार्य्यया ॥ भार्य्यायारूपमाधाय पापयातमसिस्थिते ॥ ५८ ॥ सामयानिजभार्य्याया मतिंकृत्वावि निश्चिता ॥ ततस्तुचेष्टितंज्ञात्वा गर्हयित्वाविसर्ज्जिता ॥ ५९ ॥ ततःप्रभृतिमात्रम्मे कुष्ठव्याधिरयंस्थितः ॥ मयाथध र्म्मशास्त्रज्ञः कश्चित्पृष्टोद्विजोत्तमः ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्तंयथोक्तंमे वदमातृनिषेवणात् ॥ तेनोक्तंसाधनंसम्यक्तिङ्गिन्या ममशुद्धये ॥ ६१ ॥ सोहन्तांसाधयिष्यामि तस्यपापस्यशुद्धये ॥ अनुज्ञान्देहिमेशीघ्रं कार्य्यंयेनकरोम्यहम् ॥ ६२ ॥ क्षन्तव्यञ्चमयाबाल्ये यत्किञ्चित्कुकृतंकृतम् ॥ ममयाताथथादुःखं नकुर्य्यात्त्वंतथाकुरु ॥ ६३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य वज्रपातोपमंहरिः ॥ वाष्पपूर्णेक्षणोदीनस्ततःप्रोवाचगद्गदम् ॥ ६४ ॥ नत्वयाकामतःपुत्र कृत्यमेतदनुष्ठितम् ॥ नज्ञा नेनकृतंयस्मात्तस्मात्स्वल्पंहिपातकम् ॥ ६५ ॥ ज्ञानतोयत्कृतंपापं तन्नैवाक्षयतांव्रजेत् ॥ नकरोतिमहीपालो यदित स्यविनिग्रहम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्तेकीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ दानञ्चैवमहाभाग येनकुष्ठंप्रणश्यति ॥ ६७ ॥

तामें मैंने जो कुछ दुःकृत (अपराध) कियाहो वह क्षमा करना चाहिये और मेरी माता जिस प्रकार दुःख न करै तुम वैसाही करो ॥ ६३ ॥ उन साम्बजी के उस वचन को वज्रपात के समान सुनकर तदनन्तर दीन व आंसुवों से पूर्ण नेत्रों वाले विष्णुजी गद्गद वचनबोले ॥ ६४ ॥ कि हे पुत्र ! जिसलिये तुमने इच्छासे यह कार्य नहीं किया न ज्ञानसे किया उसी कारण थोड़ा पापहै ॥ ६५ ॥ क्योंकि ज्ञानसे जो पाप किया जाताहै वह अक्षयता को नहीं प्राप्तहोता है यदि भूपाल उसका

दण्ड न करै ॥ ६६ ॥ इस लिये हे महाभाग ! विशुद्धिके लिये तुमसे प्रायश्चित्त व दान कहूंगा। जिससे कुष्ठ नाश होजावै ॥ ६७ ॥ कहे व मना किये व फिर सम्भाव ना किये हुये व अपेक्षा समेत व अपेक्षा रहित सम्पूर्ण मुनियों के वचन हैं ॥ ६८ ॥ हे पुत्र ! वह यहां विद्यमान है मेरा वचन करिये तो बड़ा कल्याण होगा व पातक की हानि होगी ॥ ६९ ॥ हाटकेश्वर जी से उपजेहुये क्षेत्रमें विश्वामित्र जी से थापे हुये समस्त कुष्ठोंके विनाशक व अति प्रसिद्ध सूर्य्यनारायण जी हैं ॥ ७० ॥ जब बैशाख महीना भलीभांति प्राप्तहोवै तब शुक्ल पक्षके भलीभांति आनेपर रविवार को पितृ देवता वाले (मघा) नक्षत्रमें ॥ ७१ ॥ सूर्य्यनारायण का उदय प्राप्त होने

उक्तानिप्रतिषिद्धानि पुनःसम्भावितानिच ॥ सापेक्षनिरपेक्षाणिमुनिवाक्यान्यशेषतः ॥ ६८ ॥ तदत्रविद्यतेपुत्र मम व.क्यंसमाचर ॥ भविष्यतिमहच्छ्रेयः पापहानिस्तथैवच ॥ ६९ ॥ हाटकेश्वरजक्षेत्रे विश्वामित्रप्रतिष्ठितः ॥ मार्तण्डोस्तिसुविख्यातः सर्वकुष्ठविनाशकः ॥ ७० ॥ सूर्य्यवारेणसप्तम्यां सम्प्राप्तेमासिमाधवे ॥ नक्षत्रेपितृदैवत्ये शुक्लपक्षेसमागते ॥ ७१ ॥ भास्करस्योदयेप्राप्ते श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्कुरुतेचप्रदक्षिणम् ॥ ७२ ॥ तावत्संख्यांपुमानेव सूर्य्यलोकेमहीयते ॥ सूर्य्यवारेणयोमर्त्यस्तस्यकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ७३ ॥ नमस्करोतिसद्भक्त्या सोपिरोगैःप्रमुच्यते ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग तमाराधयभास्करम् ॥ ७४ ॥ देवंचविधिनानेन योमयोक्तोखिलस्तव ॥ अविकल्पेनमनसा समाराधयसत्वरम् ॥ ७५ ॥ मुक्तरोगोविपाप्माथदिव्यदेहमवाप्स्यसि ॥ माकुरुष्वविषादन्तं कुष्ठव्याधिसमुद्भवम् ॥ ७६ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेस्थितेदेवे कुहराश्रयसंज्ञिते ॥ अथतद्वचनंश्रुत्वाप्रस्थितोविष्णुनन्दनः ॥ ७७ ॥ सूतउवाच ॥

पर श्रद्धासे पवित्र चित्त करके जो पुरुष एक सौ आठ प्रदक्षिणायें करता है ॥ ७२ ॥ वह मनुष्य उतनीही संख्यक वर्षों तक सूर्यलोक में पूजित होताहै रविवार सप्तमी में जो पुरुष उन सूर्यनारायण की प्रदक्षिणा करताहै ॥ ७३ ॥ व उत्तम भक्तिसे प्रणाम करताहै वह भी रोगोंसे छूटजाता है इस लिये हे महाभाग ! तुम उन सूर्यनारायण का आराधन करो ॥ ७४ ॥ मैंने जो सब तुमसे कहा है इसी विधिसे निर्भेद मनके द्वारा शीघ्रही सूर्यदेवका आराधन करो ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर बिन पाप व रोगसे छुटेहुये तुम दिव्य शरीरको पावोगे जबकि उस क्षेत्रमें कुहराश्रय संज्ञक देव स्थित हैं तब तुम कुष्ठरोग से उपजेहुये विषाद को मत कीजियो इसके अनन्तर

उस वचनको सुनकर विष्णुजी के पुत्र साम्बजी ने प्रस्थान किया ॥ ७६ । ७७ ॥ सूतजी बोले कि उन देव देव चक्रधारी विष्णुजीके यह वचन सुनकर इन साम्बने अर्बुद पहाड़पै जानेकी बुद्धि किया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर शुभादिन प्राप्त होनेपर हाथी, घोड़ों व रथों से संयुत व सेना से घिरेहुये उन विष्णुजी के साम्बपुत्र ने प्रस्थान किया ॥ ७९ ॥ आंसुओंसे पूर्ण नयनही वाले समस्त अनुगामी जन समेत सहज कर्मोंवाले कृष्ण व बलभद्र वीर व बुद्धिमान् वसुदेव जी दूर तक उन साम्ब के पीछे चलेगये तदनन्तर उस समय तीर्थ के सामने जातेहुये पुत्रको देखकर जाम्बवतीने जैसे कि कुररी होवै वैसेही विलाप किया कि अभागिनी व मन्द भागिनी मैं हाय

एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य देवदेवस्यचक्रिणः ॥ चकारगमनेबुद्धिं साम्बोसावर्बुदम्प्रति ॥ ७८ ॥ ततःशुभेऽहनिप्राप्ते हस्त्यश्वरथसंयुतः ॥ प्रतस्थेससुतोविष्णोस्सेनयापरिवारितः ॥ ७९ ॥ अनुयातःसदूरंच कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ बाष्पपूर्णेक्षणेनैव सर्वेणानुजनेनच ॥ ८० ॥ बलभद्रेणवीरेणवसुदेवेनधीमता ॥ ततोजाम्बवतीपुत्रं दृष्ट्वातीर्थोन्मुखंतदा ॥ ८१ ॥ गच्छमानंप्रचक्रेथ प्रलापान्कुररीयथा ॥ हाहतास्मिविनष्टास्मि मन्दभाग्याह्यभागिनी ॥ ८२ ॥ एकोपितनयो यस्या ममायंनदृष्टशङ्कतः ॥ अथतांरुदतीं दृष्ट्वा प्रोवाचमधुसूदनः ॥ ८३ ॥ किममङ्गलमेतस्य प्रस्थितस्यकरिष्यसि ॥ बाष्पपूर्णेक्षणादीना मुक्तकेशीविशेषतः ॥ ८४ ॥ एषव्याधिविनिर्मुक्तस्तीर्थयात्राफलान्वितः ॥ कुष्ठव्याधिविनिर्मुक्तःपुनरेष्यतितेऽन्तिकम् ॥ ८५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयानादवतीर्य्यत्वरान्वितः ॥ साम्बोसौप्रस्थितस्तत्र यत्रजाम्बवतीस्थिता ॥ ८६ ॥ सप्रणम्यप्रहृष्टात्मा कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ प्रणिपत्यविहस्योच्चैर्वाक्यमेतदुवाचह ॥ ८७ ॥ मात्वंमातर्वृथादुःखम

मरगई व नष्ट होगई ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ क्योंकि जिसका एक भी पुत्र दृष्टिमें न प्राप्तहुआ इसके अनन्तर रोतीहुई उस जाम्बवतीको देखकर मधु दैत्यके मारने वाले विष्णुजीबोले ॥ ८३ ॥ कि आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंवाली व दीन और विशेषकर छुटे हुये बालोंवाली तुम इन प्रस्थान कियेहुये साम्बका क्यों अशकुन करती हो ॥ ८४ ॥ रोगसे छुटे व तीर्थयात्रा के फलसे संयुत और कुष्टरोग से छोड़ेहुये ये साम्बजी फिर तुम्हारे समीप आवैंगे ॥ ८५ ॥ इसी अवसर में सवारी से उतर कर शीघ्रता संयुत ये साम्बजी वहां गये जहां कि जाम्बवती बैठीथीं ॥ ८६ ॥ प्रसन्न मनवाले व हाथोंको जोड़े खड़ेहुये वे साम्बगिरकर प्रणाम करके व उच्च प्रकारसे वि-

हँसकर यह वचन वोले ॥ ८७ ॥ कि हे मातः ! हमारे लिये तुम वृथा दुःख मतकरो क्योंकि मैं तीर्थ यात्रा करकेशीघ्रही आऊंगा ॥ ८८ ॥ जाम्बवती बोलीं कि हे वत्स, पुत्र ! वनमें वे समस्त वनके देवता हिंसक जंगली जीवों व दुष्ट पिशाचों से सब ओर तुम्हारी रक्षाकरैं ॥ ८९ ॥ गोविन्द जी तुम्हारे मस्तक की रक्षाकरैं व मधुसूदन जी कण्ठ (गले) की रक्षाकरैं व हृषीकेश भुजाओं की तथा दैत्यों के नाश ने वाले हृदय की रक्षाकरैं ॥ ९० ॥ पुण्डरीकाक्ष पेटकी व गदाधर कटिकी रक्षाकरैं और कृष्णजी दोनों फीलियों की तथा भूधरजी चरणों की रक्षाकरैं ॥ ९१ ॥ उन जाम्बवती ने अपने हाथसे उन साम्बके अंगोंको भलीभाति छूकर व लिपटाकर व

स्मदर्थेकरिष्यसि ॥ आगमिष्याम्यहंशीघ्रं तीर्थयात्रांविधायवै ॥ ८८ ॥ जाम्बवत्युवाच ॥ रक्षन्तुत्वांवनेवत्स सर्वास्तावनदेवताः ॥ श्वापदेभ्यःपिशाचेभ्यो दुष्टेभ्यःपुत्रसर्वतः ॥८९॥ शिरस्तेपातुगोविन्दः कण्ठञ्चमधुसूदनः ॥ बाहुदेशंहृषीकेशो हृदयंदैत्यनाशनः ॥ ९० ॥ जठरंपुण्डरीकाक्षः कटिंपातुगदाधरः ॥ जानुनोर्युगलंकृष्णः पादौचधरणीधरः ॥ ९१ ॥ एवंसंस्पृश्यहस्तेननिजेनाङ्गानितस्यसा ॥ समालिङ्ग्यसमाघ्रायपूर्वदेशेमुहुर्मुहुः ॥ ९२ ॥ प्रेषयामास तम्पुत्रं कृतरक्षंयशस्विनी ॥ सासर्वतःपुरीयुक्ता निवृत्तातदनन्तरम् ॥ ९३ ॥ अश्रुपूर्णेक्षणादीना निःश्वसन्तीयथोरगी ॥ तथाचभगवान्विष्णुर्यादवैस्सकलैस्सह ॥ ९४ ॥ प्रविष्टोद्वारकापुर्य्यां साम्बंप्रेष्यततःपरम् ॥ अश्रुपूर्णेक्षणोदीनो बलभद्रपुरस्सरः ॥ ९५ ॥ पुत्रैःपौत्रैस्तथामित्रैर्बान्धवैरपरैरपि ॥ द्वारकायाविनिष्क्रम्य साम्बोपिद्विजसत्तमाः ॥ ९६॥ सम्प्राप्तश्चक्रमेणाथ सिन्धुसागरसङ्गमे ॥ यत्रयोगीश्वरस्साक्षादम्बरीषप्रतिष्ठितः ॥ ९७ ॥ अद्यापितिष्ठतेविष्णुर्ज

पूर्वदेश (मस्तक) में बार २ सूंघकर ॥ ९२ ॥ उन कीर्तिमती ने की हुई रक्षावाले उसपुत्रको पठाया तदनन्तर जैसे कि नागिनि होवै वैसेही श्वासलेती हुई व दीन तथा आंसुओं से पूर्ण नयनों वाली व सब ओर सखियों से संयुत वे नगरी को लौटीं वैसेही समस्त यादवों समेत भगवान् विष्णुजी ॥ ९३ । ९४ ॥ साम्बको पठाकर तदनन्तर द्वारकापुरी में पैठे व बलभद्रहैं अग्रगामी जिनके वे कृष्ण जी पुत्रों व पौत्रों और मित्रों तथा अन्यभी भाइयों समेत आसुओं से पूर्णनेत्रों वाले व दुखिया हुये हे द्विजोत्तमो ! द्वारका से निकल कर साम्बभी ॥ ९५ । ९६ ॥ इसके अनन्तर सिन्धु नदी व समुद्र के सङ्गम में भलीभांति प्राप्तहुये जहां कि अम्बरीष से थापे

हुये साक्षात् योगीश्वर थे ॥ ९७ ॥ आजभी नरोंके पाप नाशक विष्णुजी जहां पै टिके हैं वहा नहाकर तदनन्तर योगीश्वर देवको भलीभांति पूजकर ॥ ९८ ॥साम्ब ने शक्तिसे ब्राह्मणों के लिये व दीन, अन्ध व कृपणों और अन्यों ही के लिये अनेक प्रकार के दानोंको दिया ॥ ९९ ॥ व सवारियों तथा वसनों व रत्नोंको दिया कि जिससे जो यथा योग्य था और सावधान होतेहुये वे विष्णुके पुत्र वहां तीन रातैं टिके ॥ १०० ॥ तदनन्तर पुण्यदायक च्यवन जीके आश्रम को गये जहां कि सिंधु नदी के पुण्यरूप किनारे पै च्यवनसे थापेहुये समस्त पातकोंके नाशक विष्णुजी भलीभांति टिकेहैं वहां भी मुख्य ब्राह्मणों के लिये विधिपूर्वक दान देकर॥ १। २ ॥

तत्रस्नात्वासमभ्यर्च्य देवंयोगीश्वरंततः ॥ ९८ ॥ ददौदानानिविप्रेभ्यो नानारूपाणिशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च तथैवान्येभ्यएवच ॥ ९९ ॥ यानानिवस्त्ररत्नानि यच्चयेनयथोचितम् ॥ सत्रिरात्रंहरेःपुत्रः स्थितस्तत्रसमाहितः ॥ १०० ॥ च्यवनस्याश्रमंपुण्यं जगामाथततःपरम् ॥ यत्रसन्तिष्ठतेविष्णुश्च्यवनेनप्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ सिन्धोस्तटे चपुण्येच सर्वपातकनाशनः ॥ तत्रापिविप्रमुख्येभ्यो दत्त्वादानंयथाविधि ॥ २ ॥ त्रिरात्रंप्रजगामाथ स्नात्वासिन्धूदकेशुभे ॥ ततस्तुपुष्करादीनि समुद्दिश्यशनैश्शनैः ॥ ३ ॥ पुष्करावासिनन्देवं ध्यायमानस्त्वहर्निशम् ॥ ततस्तुपुष्करंप्राप्य क्रमेणयदुसत्तमः ॥ ४ ॥ पुण्येकुण्डजलेस्नात्वा सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ सप्तम्यांसूर्यवारेण गृहीत्वासुफलानिच ॥ ५ ॥ गतःसन्तिष्ठतेयत्र देवोवैविष्णुसूचितः ॥ पूजयित्वाततोभक्त्या देवंकुहरवासिनम् ॥ ६ ॥ वस्त्रानुलेपनैर्धूपैर्नैवेद्यैश्चपृथग्विधैः ॥ ततःप्रदक्षिणीचक्रे फलहस्तःशनैश्शनैः ॥ ७ ॥ प्रपठन्सूर्यगायत्रीं श्रद्धयापर

नानापापनाशनः ॥

तदनन्तर दिन रात पुष्करमें बसने वाले देव को ध्यातेहुये यदुश्रेष्ठ साम्बजी क्रमसे पुष्कर को प्राप्तहोकर ॥ ४ ॥ व पुण्यदायक कुण्डके जलमें नहाकर व पितरों और देवोंको भलीभांति तर्पण कर व रविवार सप्तमी में उत्तम फलोंको लेकर ॥ ५ ॥ वहांगये जहा कि विष्णुजी से बतलाये हुये देव भलीभांति टिकेथे ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुहरवासी देव को भक्तिके द्वारा वसनों व अनुलेपनों व धूपों और अनेक प्रकारकी नैवेद्योंसे पूजकर उसके उपरान्त फल हाथोंवाले व परम श्रद्धासे संयुत साम्बजी ने सूर्यगायत्री

तीन रातैं बसे इसके अनन्तर शुभ दायक सिन्धुके जल में नहाकर तदनन्तरपुष्करादिकों को भलीभांति उद्देशकर धीरे २ चलेगये ॥ ३ ॥

को पढ़तेहुये धीरे २ प्रदक्षिणा किया ये साम्बजी ज्यों२ उन सूर्यकी प्रदक्षिणा करतेथे ॥ ७ । ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! त्यों २ उनका कुष्ठ शान्तिको प्राप्त होताथा उसी क्षण उन बुद्धिमान् साम्बजी का चित्त प्रसन्न हुआ ॥ ९ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! भेद रहित मैं कुष्ठरोग से छूट गया तदनन्तर उनके साथ जो कुछ वहां आयाथा ॥१०॥ वह सब हाथी, घोड़ा, रथ व रत्नादिक नागर द्विजों के भक्ति पूर्वकदिया व और सब पांच गांवोंको दिया ॥ ११ ॥ व साम्बादित्यको थापकर तदनन्तर घरको प्रस्थान किया और जो कुछ धनथा वह सब भक्ति संयुत साम्बने ॥ १२ ॥ सूर्यजी के ब्राह्मणों के लिये दिया और सूर्यनारायण को पूजकर आठ हज़ार घोड़े व तीन सौ

यायुतः ॥ यथायथाकरोत्येष रवेस्तस्यप्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥ तथातथाशमंयाति तस्यकुष्ठंद्विजोत्तमाः ॥ तत्रक्षणेभवत्त
स्य चित्तंहृष्टंसुधीमतः ॥ ९ ॥ मुक्तोहंकुष्ठरोगेण निर्विकल्पंद्विजोत्तमाः ॥ ततश्चसहितन्तेन यत्किञ्चित्तत्रचागतम् ॥
१० ॥ हस्त्यश्वरथरत्नाद्यं तत्सर्वंभक्तिपूर्वकम् ॥ नागराणांददौसर्वं तथान्यद्ग्रामपञ्चकम् ॥ ११ ॥ साम्बादित्यंप्रतिष्ठा
प्यततःसंप्रस्थितोगृहम् ॥ किञ्चित्तुद्रविणंयच्च तत्सर्वंभक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥ प्रददौसूर्य्यविप्रेभ्यः पूजयित्वादिवाकरम् ॥
अष्टौवाजिसहस्राणि नागानाचशतत्रयम् ॥ १३ ॥ रथानांषट्शतान्येव अन्यैर्युक्तानिवाजिभिः ॥ अनन्तानिचर
त्नानि दत्त्वासाम्बोगृहङ्गतः ॥ १४ ॥ यएतत्पठतेभक्त्या साम्बाख्यानमनुत्तमम् ॥ शृणोतिचान्वयेतस्य नकुष्ठंसम्प्र
जायते ॥ १५ ॥ सूतउवाच ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातं विश्वामित्रीयमुत्तमम् ॥ चतुर्थंपुण्यतीर्थंच स्त्रीणांचैवशुभावह
म् ॥११६॥ इति श्रीविश्वामित्रीयमाहात्म्येकुहरादित्यसाम्बादित्यप्रभावोनामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०३ ॥

हाथी ॥ १३ ॥ व अन्य घोड़ोंसे युक्त छःसौ रथों व अनन्त रत्नोंको देकर साम्बजी घरगये ॥ १४ ॥ जो मनुष्य इस अतिउत्तम साम्बजी के आख्यान को भक्तिसे पढ़ता या सुनताहै उसके वंशमें कुष्ठ नहीं होताहै ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि इस विश्वामित्रवाले चौथे उत्तम समस्त पुण्यतीर्थको तुमलोगों से वर्णन किया जो कि स्त्रियों को शुभदायक है ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविश्वामित्रीयमाहात्म्येकुहरादित्यसाम्बादित्यप्रभावो नामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

दो० । विश्वामित्र द्विजत्व हित पूज्यो गणपति देव । इकसौ चौथे में सोई कहत चरित सुखदेव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसेही वहांपर मनुष्योंको समस्त सिद्धिदायक अन्यभी विश्वामित्र से थापेहुये गणनायकजी हैं ॥ १ ॥ माघ महीनेमें शुक्लपक्षवाली चौथिमें जो मनुष्य उनको पूजता है वह वर्षभर तक समस्त विघ्नों से छूटजाता है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस समय गणनायक की उत्पत्ति को कहिये कि ये कैसे उत्पन्न हुये व क्या माहात्म्य कहाहै ॥३॥ सूतजी बोले कि पार्वतीजी ने अपने अंगके मलसे इनको क्रीडाके लिये उत्पन्न किया है जोकि मनुष्य वाले अंगों व हाथीके मुखसे शोभितहैं ॥ ४॥ व चारों हाथों

सूतउवाच ॥ तथान्योपिचतत्रास्ति विश्वामित्रप्रतिष्ठितः ॥ गणनाथोद्विजश्रेष्ठास्सर्वसिद्धिप्रदोनृणाम् ॥ १ ॥ माघमासेचतुर्थ्यांच शुक्लायांपूजयेत्तुयः ॥ सचसंवत्सरंयावत्सर्वविघ्नैर्विमुच्यते ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ गणनाथस्यचोत्पत्तिं साम्प्रतंसूतनोवद ॥ कथमेषसमुत्पन्नः किंमाहात्म्यंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ एषचोत्पादितोगौर्य्या निजाङ्गमलतःस्वयम् ॥ क्रीडार्थैमानुषैरङ्गैर्मातङ्गाननशोभितः ॥ ४ ॥ चतुर्हस्तसमोपेत आखुवाहनगस्तथा ॥ कुठारहस्तश्च तथा मोदकाशनतोषकृत ॥ ५ ॥ सर्वसिद्धिप्रदोलोके भक्तानांचविशेषतः ॥ एषपूर्वंप्रभोःकार्य्येसंग्रामेतारकामये ॥६॥ संग्राममकरोद्रौद्रं नकृतंतच्चकेनचित् ॥ निहतादानवास्सर्वेसंख्ययापरिवर्ज्जिताः ॥ ७ ॥ ततःशक्रेणतुष्टेन प्रोक्तःसंग्रामभूमिपः ॥ क्षतविक्षतसर्वाङ्गो रुधिरेणपरिप्लुतः ॥ ८ ॥ अस्मदर्थंत्वयायुद्धं यत्कृतन्तुगजानन ॥ निहतादानवास्सर्वे संख्ययापरिवर्जिताः ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वंसर्वदेवानामपिपूज्योभविष्यसि ॥ किंपुनर्मानुषाणांच येनित्यंविघ्नसंप्लु

से संयुत तथा मूसकी सवारी पै प्राप्त व फरसा हाथ वाले व लड्डुवोंके भोजन से प्रसन्नता कारकहैं ॥ ५ ॥ व संसार में विशेषकर भक्तोंको समस्त सिद्धि दायक हैं इन गणेशजी ने पहले प्रभुके तारका मय युद्धके कार्यमें ॥ ६ ॥ भयंकर समर किया कि उसको किसी ने नहीं कियाथा संख्यासे रहित (असंख्य) सब दानव मारे गये ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न इन्द्रने समर भूमिके स्वामी (गणेश) जी से कहा जोकि कटेपिटे समस्त अंगोंवाले व रक्तसे डूबेहुये थे ॥ ८ ॥ हे गजानन ! जिस लिये तुमने हमारे लिये युद्धकिया व असंख्य समस्त दानवोंको मारा है ॥ ९ ॥ उसी कारण तुम समस्त देवताओं के भी पूजने योग्य होगे फिर मनुष्यों को क्या क-

हना है जोकि नित्यही विघ्नसे संयुतहोते हैं॥ १० ॥ हे हिरण्मय! कार्यके प्रारम्भोंमें जो मनुष्य तुमको सब ओरसे भलीभांति पूजैंगे फिर उनके कार्य सिद्धिका सन्देह न होगा ॥ ११ ॥ उस समय ऐसा कहकर हज़ार लोचनों वाले इन्द्रने बहुत आदरसे सन्मान करके उन गणेशको शिवा शिवके समीप बिदा किया ॥ १२ ॥ पुरातन समय समस्त विघ्नोंके विनाशके लिये बुद्धिमान् रोहिताश्व ने यही प्रयोजन महामुनि मार्कण्डेय जी से पूंछाहै ॥ १३ ॥ हे महा भाग्यवानो ! उसी प्रयोजन को मैं यथार्थ से कहूंगा उस पुरातन वाले सब चरित्र को सावधान होतेहुये सब सुनो ॥ १४ ॥ रोहिताश्व बोले कि हे भगवन् ! इस संसार में जो सब मनुष्यहैं वे भी उन

ताः ॥ १० ॥ येत्वांसम्पूजयिष्यन्ति कार्य्यारम्भेषुसर्वतः ॥ कार्य्यसिद्धिर्नसन्देहस्तेषांभूयोहिरण्मय ॥ ११ ॥ एवमु क्त्वासहस्राक्षो विससर्ज्जाथतंतदा ॥ सम्मान्यबहुमानेनगौरीशङ्करपार्श्वतः ॥ १२ ॥ अयमर्थःपुरापृष्टो रोहिताश्वेन धीमता ॥ सर्वविघ्नविनाशार्थं मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ १३ ॥ तमेवार्थंमहाभागाः कथयिष्येयथार्थतः ॥ तंशृणुध्वंपुरा वृत्तं सर्वंसर्वेसमाहिताः ॥ १४ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ भगवन्नत्रयेमर्त्यास्तेसर्वेविघ्नसमन्विताः ॥ शुभकृत्येषुसर्वेषु जायन्ते तेषुतेपिच ॥ १५ ॥ प्रारब्धेषुचकार्य्येषु धर्म्मजेषुविशेषतः ॥ तानिविघ्नानिजायन्ते यैस्तत्कार्य्यंनसिध्यति ॥ १६ ॥ तस्मा द्विघ्नविनाशाय किञ्चिन्मेव्रतमादिश ॥ व्रतंवानियमंवाथतपोवादानमेववा ॥ १७ ॥ सकृच्चीर्णेनयेनात्र यावज्जीवति मानवः ॥ तावन्नजायतेविघ्नमाजन्ममरणान्तिकम् ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि सर्वविघ्नविना शनम् ॥ विश्वामित्रेणसंचीर्णं यत्पुराभावितात्मना ॥ १९ ॥ विश्वामित्रइतिख्यातो गाधिपुत्रःप्रतापवान् ॥ वशिष्ठेन

समस्त शुभकार्यों में विघ्न संयुत होते हैं ॥ १५ ॥ व विशेषकर धर्म से उपजे हुये कार्योंमें वे विघ्न होते हैं जिनसे उनका कार्य नहीं सिद्ध होताहै ॥ १६ ॥ उसी कारण विघ्न विनाशनेके लिये मुझसे किसी नियमको कहिये व्रत या नियम या तप अथवादानही को कहिये ॥ १७ ॥ कि जिसके एकही बार करने से मनुष्य जब तक यहां जियै तब तक व जन्मसे लगाकर मृत्युके समीप तक विघ्न न होवै ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इस विषयमें समस्त विघ्नोंके विनाश ने वाले उपायको कहूंगा जिसको पहले शुद्ध चित्तवाले विश्वामित्र ने संचय किया है ॥ १९ ॥ गाधिजीके पुत्र प्रतापवान् विश्वामित्र ऐसे प्रसिद्ध हुये हैं उन महात्माकी वशिष्ठके साथ शत्रु-

ताहुई है ॥ २० ॥ वसिष्ठने ब्राह्मणता के लिये उन बड़े तपस्वी विश्वामित्र के ब्राह्मणत्व को किसी प्रकार न कहा उसी कारण वैरहुआ ॥ २१ ॥ रोहिताश्व बोले कि
वसिष्ठ ब्राह्मण ने किसी प्रकार क्यों नहीं कहा ब्रह्मादिकों ने भी आपही उत्तमता से उनको ब्राह्मण कहाहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि पहले विश्वामित्र भूपति
क्षत्रिय स्थित थे शिकारमें थकेहुये वे विश्वामित्र उस समय वसिष्ठ के आश्रम में पैठगये ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उन वसिष्ठजी ने क्षुधा, प्याससे विकल उन विश्वा
मित्र का पूजन किया वे विश्वामित्र भी गऊसे उपजे हुये उस समस्त प्रभावको देखकर विस्मय युक्त हुये ॥ २४ ॥ तदनन्तर यह राजाहै यह जानकर उन वसिष्ठने

ब्राह्मणत्वंवशिष्ठेन ततोवैरमजाय
समंतस्य वैरभावंमहात्मनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणार्थंनसम्प्रोक्तःकथञ्चित्समहातपाः ॥ ब्राह्मणःसपरंप्रोक्तो ब्रह्मादिभिरपिस्वयम् ॥
त ॥ २१ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ कस्मान्नप्रोक्तवान्विप्रो वशिष्ठस्तुकथञ्चन ॥ मृगयासुपरिश्रान्तो वशिष्ठस्याश्रमन्तदा ॥
२२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ क्षत्रियश्चस्थितःपूर्वं विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ सोपिदृष्ट्वाप्रभावन्तं सर्वंधेनोश्चसम्भवम् ॥ २४ ॥ तत्प्रभावात्सभूपा
२३ ॥ प्रविष्टःक्षुत्पिपासार्तः सतेनाथप्रपूजितः ॥ पार्थिवोयमितिज्ञात्वा अर्घाद्यैर्भोजनैस्सह ॥
लः सभृत्यबलवाहनः ॥ तेनतृप्तिंपरान्नीतो मिष्टान्नैर्विविधैस्ततः ॥ २५ ॥ नददौसमहाविप्रस्सामदानेन
अथसानन्दिनीनाम धेनुःकामदुघातदा ॥२६॥ प्रार्थयामासतांमूल्यैर्गजवाजिसमुद्भवैः ॥ सात्रवी
वापुनः ॥ २७ ॥ भेदेनचततोदण्डं योजयामासवैनृपः ॥ चालयामासतान्धेनुं ततःकोपात्सपार्थिवः ॥ २८ ॥ नेवदत्ताकदा
नीयमानाथ वशिष्ठंकिन्त्वयाप्रभो ॥ दत्ताहमस्यनृपतेर्यन्मान्नयतियत्नतः ॥ २९ ॥ वशिष्ठैनवमुक्तातु

अर्घादिकों व भोजनों से तृप्त किया इसके अनन्तर उस
उस धेनुके प्रभाव से विविध भांतिके मिष्टान्नों से सेवक सेना सवारियों समेत उस विश्वामित्र भूपति को अर्घादिकों व भोजनों से तृप्त किया इसके अनन्तर उस
समय जो वह नन्दिनी नामक गऊ कामोंको पूर्णकियाथा ॥ २५ । २६ ॥ उसको हाथी घोड़ों से उपजेहुये मूल्यों के द्वारा मांगा परन्तु उन महाविप्र वसिष्ठ जी ने न
दिया फिर साम (प्रिय वचन) से व दानसे ॥ २७ ॥ व भेदसे न दिया तदनन्तर विश्वामित्र नृपति ने दण्डको युक्तकिया उसके उपरान्त उस राजाने क्रोधसे उस
गऊको चलाया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर लिये जातीहुई वह वसिष्ठ से बोली कि हे प्रभो ! क्या तुमने इस राजाको मुझे दियाहै जोकि यह मुझको यत्न से लिये

जाता ॥ २९ ॥ वसिष्ठनें उससे ऐसा कहा कि कभी नहीं दीगईहो तदनन्तर उसके मुखसे बाती होकर उत्पन्न हुई उसकें उपरान्त ॥ ३० ॥ उस बातीसे बड़ी भयङ्कर ज्वालायें निकलीं उसके उपरान्त हज़ारों योधा निकले वे अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारेहुये जैसे यमदूत होवैं वैसेही थे ॥ ३१ ॥ जोकि पुलिन्द, वर्वर, आभीर, किरात यवन व शवथे वे उससे बोले कि हे शुभे ! हमलोग किस लिये रचेगये हैं यह हम से कहिये ॥ ३२ ॥ नन्दिनी बोली कि इनके मध्यमें जो बड़े पापी राज सेवक मारते हैं मेरी आज्ञासे उनको मारिये और कुछ नहीं चाहती हूं ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! उन सबोंने दशरातोंके मध्य समरमें युद्ध करती हुई विश्वामित्र की सेनाको

चन ॥ भूत्वावर्तिस्ततोजाता तस्यावक्त्रात्ततःपरम् ॥ ३० ॥ ततोज्वालामहारौद्रास्ततोयोधास्सहस्रशः ॥ नाना
शस्त्रधरारौद्रायमदूतायथाचते ॥ ३१ ॥ पुलिन्दावर्व्वराभीराः किरातायवनाःशकाः ॥ तेप्रोचुस्तांवदास्माकं
कस्मात्सृष्टावयं शुभे ॥ ३२ ॥ नन्दिन्युवाच ॥ एतेषांयेमहापापा बध्नन्तिनृपसेवकाः ॥ तान्निघ्नन्तुममादे
शान्नान्यद्वाञ्छामिकिञ्चन ॥ ३३ ॥ तस्यतैस्सकलैस्सैन्यं विश्वामित्रस्यसूदितम् ॥ युध्यमानंमहाराज दशरात्रे
णसंयुगे ॥ ३४ ॥ विश्वामित्रोपितंदृष्ट्वा ब्राह्मयंबलमनुत्तमम् ॥ प्रतिज्ञामकरोत्तत्र तारेणसुस्वरेणच ॥ ३५ ॥
अथाहंसम्भविष्यामि ब्राह्मणोनात्रसंशयः ॥ ममापिजायतेयेन प्रभावस्त्वीदृशोद्भवः ॥ ३६ ॥ तस्मात्तपःकरिष्या
मि यदसाध्यंसुरैरपि ॥ स्वपुत्रंस्वेपदेधृत्वा ततश्चक्रेतपोमहत् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण्यार्थंमहारौद्रं सुमहद्दुष्करन्तपः ॥
ब्राह्मण्यन्तेननैवाप्तं वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ ३८ ॥ ततःकैलासमासाद्य देवदेवंमहेश्वरम् ॥ सम्यगाराधयामास गौरीयुक्तं

मारा ॥३४॥ विश्वामित्रने भी अति उत्तम उस ब्राह्मणवाले बलको देखकर वहां ॐकार स्वरसे प्रतिज्ञाकिया ॥३५॥ कि इसके अनन्तर मैं ब्राह्मणहूंगा इसमें सन्देह नहीं है कि जिससे ऐसा उपजाहुआ प्रभाव मेरे भी होवै ॥ ३६ ॥ इस लिये उस तपको करूंगा जोकि देवोंसे भी असाध्य है तदनन्तर अपने पुत्रको अपने स्थानपै धरकर बड़ी तपस्या किया ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र ने ब्राह्मणताके लिये बड़ी भारी तपस्या किया परन्तु उससे ब्राह्मणता न मिली

तदनन्तर कैलास पर्वत पै देवदेव महादेवजीके समीप प्राप्तहुये व पार्वती समेत महादेवजी को भलीभांति आराधन किया ॥ ३९ ॥ कि हे प्रभो ! ब्राह्मणता के लिये शरणमें प्राप्तहुआ मैं तुम्हारे इस कैलास पर्वतोत्तम में तप करूंगा ॥ ४० ॥ उसी कारण देवदेव जी मेरे विघ्नकी रक्षादेवैं कि जिस प्रकार बड़ी भारी की हुई समस्त तपस्या नाशको न प्राप्तहोवै ॥४१॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! इसकार्यमें जो शुद्धिके लिये कार्य होवै तो तुम गणेश से उपजीहुई पूजाकरो ॥ ४२ ॥ जिससे ब्राह्मण से उपजी हुई तुम्हारी सिद्धि भलीभांति होवै विश्वामित्र जी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! उसको कहिये मैं पहले समस्त विघ्नोंकी शान्ति के लिये उन गणेश

महेश्वरम् ॥ ३९ ॥ अहंतपःकरिष्यामि ब्राह्मण्यस्यकृतेप्रभो ॥ तवास्मिन्पर्वतश्रेष्ठे कैलासेशरणंगतः ॥ ४० ॥ तस्माद्विघ्नस्यमेरक्षां देवदेवःप्रयच्छतु ॥ यथानोनाशमायातितपःसर्वंकृतंमहत् ॥ ४१ ॥ भगवानुवाच ॥ शुद्ध्यर्थंचैवयत्कार्यं कार्य्येस्मिन्नृपसत्तम ॥ विनायकसमुद्भूतां तत्त्वंपूजांसमाचर ॥ ४२ ॥ येनतेजायतेसिद्धिः सम्यग्ब्राह्मणसम्भवा ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ तद्वदस्वसुरश्रेष्ठ तथातस्यकरोम्यहम् ॥ ४३ ॥ पूर्वंपूजांगणेशस्य सर्वविघ्नप्रशान्तये ॥ भगवानुवाच ॥ एषगौर्य्यापुराकृत्वा निजाङ्गोद्वर्तनात्ततः ॥ ४४ ॥ तन्मलेनकृतःपश्चान्नराकारश्चतुर्भुजः ॥ क्रीडार्थममपुत्रोयं बालभावेप्रकल्पितः ॥ ४५ ॥ गजवक्त्रोमयाकार्यो लम्बोदरलघूरुकः ॥ ततोहमनयाप्रोक्तःसजीवःक्रियतांविभो॥ ४६॥पुत्रकोमेयथाभावी लोकेपूज्यतमःप्रभो॥ ततोमयापिसंस्पृष्टः सृष्टिसूक्तेनपार्थिव ॥ ४७ ॥ जीवसूक्तेनसम्यक्सप्रा

जी का वैसाही पूजनकरूं शिव भगवान् बोले कि पुरातन समय पार्वती जी ने अपने अङ्गके उबटनेसे इनको बनाकर तदनन्तर ॥ ४३ । ४४ ॥ पश्चात् उस मलसे चार भुजा वाला व मनुष्यकासा आकार बनाया कि शिशुता में कल्पना कियाहुआ यह क्रीडा के लिये मेरा पुत्रहै ॥ ४५ ॥ मुझको गजमुख व लम्बे पेटवाला व छोटी जांघवाला इसको करना चाहिये तदनन्तर इसने मुझसे कहा कि हे विभो ! इसको सजीव करिये ॥ ४६ ॥ कि जिस प्रकार हे प्रभो ! मेरा पुत्र संसार में अत्यन्त पूजनीय होवै तदनन्तर हे राजन् ! मैंने भी सृष्टि सूक्त से उसको भलीभांति स्पर्श किया ॥ ४७ ॥ और जीव सूक्तके द्वारा वह भलीभांति प्राणवान् होगया तदनन्तर

प्रसन्न होतेहुये मैंने हिमाचल की कन्या पार्वती देवी से कहा ॥ ४८ ॥ कि हे महाभागे ! आज चौथि दिनके प्राप्तहोने पर मैंने जीव सूक्तके प्रभाव से तुम्हारे इस पुत्र का निर्माण किया है ॥ ४९ ॥ हे सुरेश्वरि ! मेरे समस्त गणोंका यह निस्सन्देह स्वामी होगा उसी कारण गणनायक ऐसा प्रसिद्धहोगा ॥५०॥ हे सुन्दरि ! जो पुरुष बांचे जाते हुये जीव सूक्तके द्वारा उत्तम भक्तिसे उत्तम चौथि दिनमें इनको पूजैगा ॥ ५१ ॥ हे देवि ! उसके समस्त कार्योंमें सब विघ्न सम्पूर्णतासे नाशको प्राप्त होवैंगे जैसे कि सूर्य्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ५२ ॥ लम्बोदर के लिये नमस्कार है व हे गणनायक ! फरसा धारने वाले के लिये नित्यही नमस्कार है व

णवान्समजायत ॥ ततोमयाप्रहृष्टेन प्रोक्तादेवीहिमाद्रिजा ॥ ४८ ॥ चतुर्थीदिवसेप्राप्ते मयाद्यायंविनिर्म्मितः ॥ पुत्रस्तवमहाभागे जीवसूक्तप्रभावतः ॥ ४९ ॥ एषसर्वगणानांच मदीयानांसुरेश्वरि ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तस्माच्चगणनायकः ॥ ५० ॥ वाच्यमानेनयश्चैनं जीवसूक्तेनसुन्दरि ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या चतुर्थीदिवसेशुभे ॥ ५१ ॥ तस्यसर्वेषुकृत्येषु सर्वविघ्नानिकृत्स्नशः ॥ प्रयास्यन्तिक्षयन्देवि तमःसूर्य्योदयेयथा ॥ ५२ ॥ नमोलम्बोदरायेति नमोगणविभो तथा ॥ कुठारधारिणेनित्यंतथावृकगतायच ॥ ५३ ॥ नमोमोदकभक्षाय नमोदन्तैकधारिणे ॥ एभिर्मन्त्रैस्समभ्यर्च्य पश्चान्मोदकजंशुभम् ॥ ५४ ॥ नैवेद्यंचप्रदातव्यं ततश्चार्घंनिवेदयेत् ॥ अहंकर्म्मकरिष्यामि यत्किञ्चिच्छम्भुसम्भवम् ॥ ५५ ॥ अविघ्नंतत्रकर्तव्यं सर्वदैवत्वयाविभो ॥ ततस्तुब्राह्मणानान्तु भोजनेमोदकोद्भवम् ॥ ५६ ॥ यथाशक्त्याप्रदातव्यं वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ एवमुक्तेमयापूर्वं स्वयमेवनृपोत्तम ॥ ५७ ॥ गणनाथंसमुद्दिश्यगौर्य्याःपुरतएवच ॥

मूसपै प्राप्त होनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ लड्डुवों को भोजन करनेवाले के लिये नमस्कार है व एक दांतके धारनेवाले के लिये नमस्कारहै इन मन्त्रोंसे भली भांति पूजकर पश्चात् लड्डुवों से उपजी हुई नैवेद्य देना चाहिये तदनन्तर अर्घ निवेदन करै कि मैं शिवजी से उपजा हुआ जो कर्म करूंगा ॥ ५४ । ५५ ॥ हे विभो ! उसमें सदैवही तुमको विघ्न न करना चाहिये तदनन्तर ब्राह्मणों के भोजनमें लड्डुवोंसे उपजा हुआ भोजन ॥ ५६ ॥ यथा शक्तिसे देना चाहिये व वित्त शाठ्य याने शठताका धन वर्जित करै हे नृपोत्तम ! पहले मुझको आपही गणनायक को भलीभांति उद्देशकर पार्वती जी के आगेही ऐसा कहने पर तदनन्तर प्रसन्न

होती हुई वह देवी यह वचन बोली ॥ ५७ । ५८ ॥ कि आजसे लगाकर जो पुरुष चौथि तिथि में मेरे गणेश पुत्रको इसी विधिसे भलीभांति पूजैगा ॥ ५९ ॥ तदनन्तर निस्सन्देह उसकी लक्ष्मी अचलाहोगी भगवान् शिवजी बोले कि हे महाभाग ! इस लिये तुम चौथि में गणेशसे उपजा हुआ पूजन भलीभांतिकरो कि जिससे मनो-रथ से युक्त होगे मार्कण्डेय जी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर विश्वामित्रभूपतिने ॥ ६० । ६१ ॥ जैसा कहा है वैसाही गणनायक से उपजा हुआ पूजन कर के तदनन्तर समस्त विघ्नों से रहित बड़ी तपस्या किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर सबोंसे भी दुर्लभ ब्राह्मणता को पाया इस लिये हे महाभाग ! जब चौथि प्राप्तहोवै तब

ततःप्रहृष्टासादेवी वाक्यमेतदुवाचह ॥ ५८ ॥ अद्यप्रभृतियःपुत्रं मदीयंगणनायकम् ॥ अनेनविधिनासम्यक् चतुर्थ्यांपूजयिष्यति ॥ ५९ ॥ नसन्देहस्ततस्तस्य ह्यचलाश्रीर्भविष्यति ॥ भगवानुवाच ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग चतुर्थ्यां सम्यगाचर ॥ ६० ॥ विनायकोद्भवांपूजां येनाभीष्टेनयुज्यसे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विश्वामित्रोमहीपतिः ॥ ६१ ॥ गणनाथसमुद्भूतां कृत्वापूजांयथोदिताम् ॥ ततश्चचारविपुलं सर्वविघ्नविवर्जितम् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण्यञ्च ततःप्राप्तं सर्वेषामपिदुर्लभम् ॥ तस्मात्त्वंहिमहाभाग विनायकसमुद्भवाम् ॥ ६३ ॥ पूजांकुरुचतुर्थ्यांच प्राप्तायाञ्च विशेषतः ॥ सम्प्राप्नोषिमहाभोगान् हृदिस्थान्नात्रसंशयः ॥ ६४ ॥ योयंकाममभिध्याय गणनाथंप्रपूजयेत् ॥ सतंसर्वमवाप्नोतिमहेश्वरवचोयथा ॥ ६५ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं धनहीनोमहद्धनम् ॥ शत्रूञ्जयतिसंग्रामे स्मृत्वातंगणनायकम् ॥ ६६ ॥ यानारीपतिनात्यक्ता दुर्भगाचविरूपिता ॥ सासौभाग्यमवाप्नोति गणनाथस्यपूजनात् ॥ ६७ ॥ यइदंपठ

तुम विशेषकर गणेश से उपजा हुआ पूजन करो व हृदय में टिकेहुये महासुखों को भलीभांति प्राप्तहोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ । ६४ ॥ जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तवन करके गणेशजी को पूजता है वह उस सबको प्राप्तहोता है जैसे कि महादेव जी के वचन हैं ॥ ६५ ॥ पुत्रहीन पुत्रको पाताहै व धन हीन बड़ी द्रव्य पाता है और उन गणेशजीको स्मरण करके समरमें शत्रुओंको जीतताहै ॥६६॥ जो दुर्भगा व कुरूपिणी स्त्री पतिसे छोड़ी गई है वह गणेशजीके पूजनसे सौभाग्यको

इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेना
तेनित्यं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ अविघ्नंजायतेतस्य सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेना
गरखण्डेगणपतिपूजामाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ * ॥ * ॥
ऋषयऊचुः ॥ साम्प्रतंवदनःसूत श्राद्धकल्पस्ययोविधिः ॥ विस्तरेणमहाभाग यथातच्चाक्षयंभवेत् ॥ १ ॥ कस्मि
न्कालेप्रकर्तव्यं श्राद्धंपितृपरायणैः ॥ कीदृशैर्ब्राह्मणैस्तच्च तथाद्रव्यैर्महामते ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ एतदर्थंपुरापृष्टो मा
र्कण्डेयोमहामुनिः ॥ रोहिताश्वेनविप्रेन्द्रा हरिश्चन्द्रसुतेनच ॥३॥ हरिश्चन्द्रेगतेस्वर्गे रोहिताश्वेनृपेस्थिते ॥ तीर्थयात्रा
प्रसङ्गेन मार्कण्डोमुनिसत्तमः ॥४॥ सरय्वाःसङ्गमेपुण्येस्नानार्थंसमुपस्थितः ॥ तत्रस्नात्वापितॄन्देवान्संतर्प्यविधिपूर्वक
म् ॥ ५ ॥ प्रविष्टस्तांपुरींरम्यामयोध्यांसप्तनामिकाम् ॥ रोहिताश्वोपितंश्रुत्वा समायातंमुनीश्वरम् ॥ ६ ॥ पदातिः

पाती है ॥ ६७ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष नित्यहीं इस चरितको पढ़ता या सुनताहै उसके सदैव समस्त कार्योंमें विघ्न न होगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृ- तीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणपतिपूजामाहात्म्यंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ॥

दो० । यथा ऋषिन सब सूत सन पूंछ्यो श्राद्ध विधान । सोई एकसौ पांच महँ कीन्ह्यो चरित बखान ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग, सूतजी ! श्राद्ध कल्प की जो विधिहै व जिस प्रकार वह श्राद्ध अक्षय होती है उसको इस समय हम लोगों से विस्तार पूर्वक कहो ॥ १ ॥ हे महामते ! पितृ परायण पुरुषों को किस समय में श्राद्ध करना चाहिये व वह कैसे ब्राह्मणों से व कैसी वस्तुवों से की जाती है ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! पुरातन समय हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने इसी प्रयोजन को मार्कण्डेय महामुनि से पूंछा है ॥ ३ ॥ जब हरिश्चन्द्र जी स्वर्ग को गये तब रोहिताश्व को राजा स्थित होने पर तीर्थ यात्रा के प्रसंग से मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय जी ॥ ४ ॥ पुण्यदायक सरयूजी के संगम में नहाने के लिये भलीभांति प्राप्तहुये उसमें नहाकर व पितरों तथा देवों को भलीभांति तर्पण कर ॥ ५ ॥ सात पुरियों के मध्य ये नामवाली उस मनोहर अयोध्या पुरी में पैठे रोहिताश्व ने भी भलीभांति आयेहुये उन मुनिनायक को सुनकर ॥ ६ ॥

शीघ्रही पैदल दूर देश के सामने गये तदनन्तर उनको मस्तक से प्रणाम कर हाथों को जोड़े खड़े हुये रोहिताश्व ॥ ७ ॥ नम्रतासंयुत मीठे वचन बोले
हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ व फिर उत्तम आगमन होवै ॥ ८ ॥ मैं धन्यहूं व मैं किये हुये पुण्यवाला हूं व उत्तम गतिको भलीभांति
प्राप्तहुआ जोकि तुम्हारे चरणोंकी धूलियों से मेरे बाल निर्मल किये गये ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर उससमय वे रोहिताश्व हस्तावलम्बन करके पकड़कर वहां
गये जहां कि बड़ेभारी सिंहासन के आश्रयवाला स्थान था ॥ १० ॥ इस के अनन्तर उन मार्कण्डेय मुनिको सिंहासनपै बिठाकर हाथ जोड़े हुये स्थित नृपोत्तम

प्रययौतूर्णंदूरदेशन्तुसम्मुखम् ॥ ततःप्रणम्यतंमूर्ध्ना कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ७ ॥ प्रोवाचमधुरंवाक्यं विनयेनसमन्वि
तम् ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ भूयःसुस्वागतन्तुते ॥ ८ ॥ धन्योहंकृतपुण्योहं सम्प्राप्तःपरमाङ्गतिम् ॥ यत्तेपादरजोभि
र्मे मूर्द्धजाविमलीकृताः ॥ ९ ॥ एवमुक्त्वागृहीत्वातुसहस्तालम्बनंतदा ॥ ययौतत्रसभास्थानं बृहत्सिंहासनाश्रयम् ॥
१० ॥ सिंहासनेनिवेश्याथ तम्मुनिंपार्थिवोत्तमः ॥ उपविष्टोधरापृष्ठेकृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ११ ॥ ततःप्रोवाचमधु
रंविनयावनतःस्थितः ॥ निःस्पृहस्यापिविप्रेन्द्र किमागमनकारणम् ॥ १२ ॥ तद्ब्रवीहियथाहञ्च करोमितवसाम्प्रत
म् ॥ अदेयमपिदास्यामिगृहायातस्यतेविभो ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन वयमत्रसमागताः ॥ स
रय्वास्सङ्गमेपुण्येकाश्यांयास्यामहेपुनः ॥ १४ ॥ निःस्पृहैरपिद्रष्टव्याधर्म्मवन्तोनृपोत्तमाः ॥ ततःप्रोक्तंपुगणज्ञैर्ब्राह्मणै
श्शास्त्रदृष्टिभिः ॥ १५ ॥ धर्म्मवन्तंनृपंदृष्ट्वा लिङ्गंस्वायंभुवंतथा ॥ नदींसागरगांचैव मुच्येत्पापंदिनोद्भवम् ॥ १६ ॥ ए

रोहिताश्व जी भूपृष्ठमें समीप बैठगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर नम्रतासे नीचे खड़े हुये रोहिताश्व जी मीठे वचन बोले कि हे द्विजेन्द्र! निर्लोभ भी तुम्हारे आनेका
क्या कारण है ॥ १२ ॥ उसको कहिये कि जिस प्रकार इस समय मैं करूं हे विभो! घर में आये हुये तुमको मैं न देने के योग्य भी पदार्थ को दूंगा ॥ १३ ॥
मार्कण्डेय जी बोले कि तीर्थयात्राके प्रसग से हम यहां सरयूके पुण्यदायक संगममें भलीभांति आये हैं फिर काशीमें जावेंगे ॥ १४ ॥ निर्लोभियों को भी धर्मवान्
नृपोत्तमोंको देखना चाहिये उसी कारण शास्त्रोको देखेहुये व पुराणोंको जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहाहै ॥ १५ ॥ कि धर्मवान् राजा और महादेवजीके लिंगको व समुद्र

में प्राप्त नदी को देखकर दिनमें उपजाहुआ पाप नष्टहोजाता है ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर मुनिनायकने भूपतिको प्रणाम किया व उनको देखकर नम्रतासंयुत व आगे खड़ेहुये नृपपुंगव बोले ॥ १७ ॥ रोहिताश्व बोले कि वेद किस प्रकार सफल होवै हैं व धन किस प्रकार सफल होवै है मार्कण्डेयजी बोले कि अग्निहोत्र (यज्ञ) फल वाले वेदहैं व स्वभाव तथा उत्तम आचरण फल वाला शास्त्रहै ॥ १८ ॥ और मैथुन व पुत्र फलवाली स्त्रियां हैं तथा देने व भोगने फलवाला धनहै ऐसा जानकर हे महाराज ! अन्यथा करनेके लिये नहीं योग्यहो ॥ १९ ॥ मैंने जिन इन चार कार्यों को तुमसे कहा है उनको दोनोंलोकों के चाहनेवाले पुरुषों को वैसेही करना

वमुक्त्वानमश्चक्रे पृथ्वीशंमुनिसत्तमः ॥ तंदृष्ट्वानृपशार्दूलःपुरःस्थोविनयान्वितः ॥ १७ ॥ रोहिताश्वउवाच ॥कथंस्युः सफलावेदाः कथंस्यात्सफलंधनम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अग्निहोत्रफलावेदाः शीलवृत्तफलंश्रुतम् ॥ १८ ॥ रतिपुत्र फलादारा दत्तभुक्तफलंधनम् ॥ एवंज्ञात्वामहाराज नान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ चत्वार्य्येतानिकृत्यानिमयोक्तानिचया निते ॥ तथातानिप्रकृत्यानि लोकद्वयमभीप्सता ॥ २० ॥ एवमुक्त्वाततश्चक्रे कथाश्चित्राश्चतत्पुरः ॥ राजर्षीणांपुरा णानां देवर्षीणांविशेषतः ॥ २१ ॥ ततःकथावसानेच कस्मिंश्चिद्द्विजसत्तमम् ॥ पप्रच्छतंमुनिश्रेष्ठं रोहिताश्वोमहीप तिः ॥ २२ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि श्राद्धकल्पंयथार्थतः ॥ दृश्यतेबहवोभेदाद्विजानांश्राद्धकर्म्मणि ॥ २३ ॥ मार्कण्डे यउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग यत्पृष्टोस्मित्वयानृप ॥श्राद्धस्यबहवोभेदाश्शाखाभेदैर्व्यवस्थिताः ॥ २४॥ तस्मा त्तेनिर्णयंवच्मि भर्तृयज्ञेनयत्पुरा ॥ आनर्ताधिपतेःप्रोक्तं सम्यक्श्राद्धस्यलक्षणम् ॥ २५ ॥ भर्तृयज्ञंसुखासीनं निजा

चाहिये॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर मार्कण्डेयजीने पुराने राजर्षियों व विशेष कर देवर्षियों की अद्भुत कथाओंको उनके आगे वर्णन किया ॥२१॥ तदनन्तर किसी कथाके अन्तमें रोहिताश्व भूपतिने उन द्विजोत्तम व मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय जी से पूंछा ॥ २२ ॥ कि हे भगवन् ! मैं श्राद्धकल्पको यथार्थता से सुनने के लिये इच्छा करताहूं क्योंकि ब्राह्मणों के श्राद्धकर्म में बहुत भेद देख पड़तेहैं ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! यह सत्यहै जोकि तुमने मुझसे पूंछा है शाखाओं के भेदोंसे श्राद्धके बहुत भेद विशेषकर स्थितहैं ॥ २४ ॥ उसी कारण तुम से निर्णय कहताहूं पुरातन समय जिस श्राद्धके लक्षण को भर्तृयज्ञ ने आनर्त देश

नायक नृपति ने जाकर व अपने आश्रम स्थान में सुखपूर्वक बैठेहुये भर्तृयज्ञ को प्रणामकर तदनन्तर कहा ॥ २६ ॥
के स्वामी से भलीभांति कहा है ॥ २५ ॥ आनर्तनायक नृपति ने जाकर व अपने आश्रम स्थान में सुखपूर्वक बैठेहुये भर्तृयज्ञ को प्रणामकर तदनन्तर कहा ॥ २६ ॥ आनर्त बोला कि हे ब्रह्मन्! इस समय श्राद्धकल्पके वाञ्छितको मुझसे कहिये कि जिससे श्राद्धमें तृप्त किये हुये मेरे पितर प्रसन्नताको प्राप्तहोवें ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम! श्राद्धमें कौन समय विधान किया गयाहै व कौन वस्तुवें कही हैं व श्राद्धके योग्य अन्य पवित्र वस्तुवोंको मुझसे कहिये ॥ २८ ॥ जोकि पितरों की उत्तम तृप्ति चाहनेवाले पुरुषों को युक्त करना चाहिये व कैसे ब्राह्मण श्राद्धके योग्य भलीभांति कहे गये हैं ॥ २९ ॥ और कैसे वर्जित करने योग्य हैं सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये

आनर्ताधिपतिर्गत्वा प्रणिपत्यततोब्रवीत् ॥ २६ ॥ आनर्तउवाच ॥ सांप्रतंवदमेब्रह्मञ्छ्राद्धकल्पपरीप्सि
श्रमपदेनृपः ॥ आनर्ताधिपतिर्गत्वा प्रणिपत्यततोब्रवीत् ॥ २६ ॥ आनर्तउवाच ॥ सांप्रतंवदमेब्रह्मञ्छ्राद्धकल्पपरीप्सि
तम् ॥ येनमेतुष्टिमायान्ति पितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ २७ ॥ कःकालोविहितःश्राद्धेकानिद्रव्याणिमेवद ॥ श्राद्धार्हाणितथा
न्यानिमेध्यानिद्विजसत्तम ॥ २८ ॥ यानियोज्यानिवाञ्छद्भिः पितृणांतृप्तिमुत्तमाम् ॥ कीदृशाब्राह्मणाश्चैव श्राद्धार्हा
स्संप्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥ कीदृशावर्जनीयाश्च सर्वमेविस्तराद्वद ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ अहन्तेकीर्तयिष्यामिश्राद्धकल्प
मनुत्तमम् ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वापिमहाराज लभेच्छ्राद्धफलंनरः ॥ श्राद्धमिन्दुक्षयेऽवश्यं सदाकार्य्यंविपाश्चिता ॥ ३१ ॥
यदिज्येष्ठतमःसर्गे सञ्ज्ञानेचतथानृप ॥ शीतार्तायद्वदिच्छन्ति वह्निमावरणानिच ॥ ३२ ॥ पितरस्तद्वदिच्छन्तिक्षुत्क्षामा
श्चन्द्रसंक्षयम् ॥ यथावृष्टिंप्रवाञ्छन्ति कर्षुकास्सस्यवृद्धये ॥ ३३ ॥ तथात्मप्रीतयेप्रीताः प्रवाञ्छन्तीन्दुसंक्षयम् ॥ य
थोषश्चक्रवाकाश्चवाञ्छन्तिरविदर्शनम् ॥ ३४ ॥ पितरस्तद्वदिच्छन्ति श्राद्धंदर्शसमुद्भवम् ॥ जलेनापिचयःश्राद्धं शा

भर्तृयज्ञ बोले कि मैं अति उत्तम श्राद्धकल्प को तुमसे कहूंगा ॥ ३० ॥ हे महाराज! उसको सुनकर भी मनुष्य श्राद्धका फल पाता है विद्वान्को चन्द्रमाके क्षय (अमावस) में अवश्य श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३१ ॥ यदि हे राजन्! उत्पत्ति व भलीभांति ज्ञान में अत्यन्त बड़ाहो जैसे जाड़से विकल पुरुष अग्नि व ओढ़नों को चाहते हैं ॥ ३२ ॥ वैसेही क्षुधासे दुबले पितर अमावस्या को इच्छा करते हैं जैसे किसान अनाज की बढ़ती के लिये वर्षाकी इच्छा करतेहैं ॥ ३३ ॥ वैसेही प्रसन्न पितर अपनी प्रीतिके लिये चन्द्रमा का क्षय (अमावस) चाहते हैं जैसे चकवा प्रभात व सूर्यदर्शन को चाहते हैं ॥ ३४ ॥ वैसेही पितर दर्श (अमावस) में उपजे

हुये श्राद्धको चाहते हैं जो अमावसमें जलसे भी व जो सागसे भी श्राद्ध करताहै ॥ ३५ ॥ इसके पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं व पातक नाश होजाता है अमावस दिन के प्राप्तहोने पर घरके द्वारपै पवन होते हुये भलीभांति टिके मनुष्यों के पितरगण जब तक सूर्यनारायण अस्त होतेहैं तब तक क्षुधा प्याससे विकलहोकर श्राद्धको चाहतेहैं ॥ ३६ । ३७ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायण के अस्तहोनेपर बिन आसरेव दुःखसंयुत पितर बहुत देरतक श्वास लेकर अपने वंशमें उपजेहुये पुरुषको शापदेतेहैं ॥ ३८ ॥ आनर्त बोला कि हे द्विज ! विशेषकर अमावस के दिन किस लिये श्राद्ध कीजाती है यह विस्तारसे यथायोग्य कहिये ॥ ३९ ॥ हे विप्रजी ! मरे पुरुष अपने

केनापिकरोतियः ॥ ३५ ॥ दर्शेऽस्यपितरस्तृप्तिंयान्तिपापंप्रणश्यति ॥ अमावास्यादिनेप्राप्ते गृहद्वारंसमाश्रिताः ॥३६॥ वायुभूताःप्रवाञ्छन्ति श्राद्धंपितृगणान्नृणाम् ॥ यावदस्तमयंभानोः क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ ३७ ॥ ततश्चास्तंगतेभानौ निराशादुःखसंयुताः ॥ निःश्वस्यसुचिरंकालं शपन्तिचस्ववंशजम् ॥३८॥ आनर्तउवाच ॥ किमर्थंक्रियतेश्राद्धममावास्यादिनेद्विज ॥ विशेषेणसमाचक्ष्व विस्तरेणयथातथम् ॥ ३९ ॥ मृताश्चपुरुषाविप्रस्वकर्मजनितांगतिम् ॥ प्राप्नुवन्तिकथंतस्य स्वसुतस्याश्रमंययुः ॥ ४० ॥ एषनःसंशयोविप्रसुमहान्हृदिसंस्थितः ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग यत्त्वयाव्याहृतंवचः ॥४१॥ स्वकर्म्मणोगतिंयान्ति मृतास्सर्वेचमानवाः ॥ परंयथासमायान्ति वंशजस्याश्रयंप्रति ॥ ४२ ॥ यथातेऽहंप्रवक्ष्यामिनतथासंशयोभवेत् ॥ मृतायान्तितथाराजन्येत्रकेचिन्महीपते ॥ ४३ ॥ तेजायन्तेचमर्त्येऽत्र यावद्वंशस्यसंस्थितिः ॥ परेशुभात्मकायेचतेतिष्ठन्तिसुरालये ॥ ४४ ॥ पापात्मानोनरायेचवैवस्वतनि

कर्मसे उत्पन्न गतिको प्राप्तहोते हैं वे कैसे अपने पुत्रके आश्रमपै प्राप्तहोते हैं ॥४०॥ हे विप्रजी ! हमारे हृदय में यह बड़ी भारी सन्देह भलीभांति टिकी है भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! जो वचन तुमने कहाहै यह सत्यहै ॥ ४१ ॥ कि मरेहुये समस्त मनुष्य अपने कर्म की गतिको प्राप्तहोतेहैं परन्तु जिस प्रकार वंशमें उपजे हुये पुरुषके आश्रम पै भलीभांति आते हैं ॥४२॥ उसको मैं वैसेही तुमसे कहूंगा कि जिसप्रकार सन्देह न होगी हे राजन्, भूपते ! यहां जो कोई मरकर प्राप्तहोते हैं ॥ ४३ ॥ वे इस लोकमें जब तक वंशकी भलीभांति स्थिति रहतीहै तब तक उत्पन्न होते हैं उसके उपरान्त वे उत्तम स्वर्गलोक में अपने शुभ शरीर पै टिकते हैं ॥ ४४ ॥ व जो

पापात्मा मनुष्य हैं वे वैवस्वत (यमराज) के यहां बसते हैं व अन्य शरीर में भलीभांति टिककर कर्मका फल भोगते हैं ॥ ४५ ॥ शुभ हो अथवा पापहो जोकि आप ही अपने से कियाहुआ होताहै यमलोकमें टिके व स्वर्गमें स्थित पुरुषोंके भी क्षुधा ॥४६॥ व वैसेही हे राजन् ! तब तक प्यास अधिक होतीहै हे राजन् ! जब तक कि माता व पितासे तीन पुरुष होते हैं ॥ ४७ ॥ व उनके आगे याने तीन पुश्तियोंके बाद जो पितरहैं वे अपने कर्मके शुभाशुभको भोगते हैं और उनके कभी भूंख, प्यास नहीं होती है ॥ ४८ ॥ हे भूपते ! वैसेही उस स्थानसे गिराहुआ होता है वंश विनाश के पहलेही सब भूतल में गिरते हैं जैसे कि पिटारी से रहित पात्र निराश्रय

शुभंवायदिवापापं स्वयंविहितमात्मनः ॥ यमलोकवासिनः॥ अन्येदेहंसमाश्रित्य भुञ्जानाःकर्म्मणःफलम् ॥४५॥ यावन्नरत्रयंराजन्मातृतःपि तृतस्तथा ॥ ४७ ॥ स्थितानांहि स्वर्गस्थानामपिक्षुधा ॥ ४६ ॥ पिपासाचतथाराजंस्तेषांसञ्जायतेऽधिका ॥ तेषाञ्चपुरतोयेचस्वकर्म्मचशुभाशुभम् ॥ भुञ्जतेक्षुत्पिपासाच नतेषांजायतेक्वचित् ॥ ४८ ॥ तथानिपतितस्तस्मात्स्थानाद्भवतिभूमिप ॥ वंशोच्छेदात्पुरःसर्वे निपतन्तेमहीतले ॥ ४९ ॥ यथापेटिकयाभाण्डावर्जि ताश्चनिराश्रयाः॥ एतस्मात्कारणाद्यत्नःसन्तानायविचक्षणैः ॥ ५० ॥ प्रकर्त्तव्योमनुष्येन्द्रस्ववंशस्थितयेसदा॥ अपि द्वादशधाराजन्नुरसादिसमुद्भवः ॥ ५१ ॥ तेषामेकतमोनात्रचेद्दैवाज्जायतेसुतः॥ पितॄणांगुप्तयेतेनस्थाप्योऽश्वत्थःसमे धितः ॥ ५२ ॥ पुत्रवत्परिपाल्यश्चनिर्विशेषंनराधिप॥ यावत्सन्धारयेद्भूमिस्तमश्वत्थंनराधिप ॥ ५३ ॥ कृतोद्वाहसमं तस्यांतावद्वंशोपितिष्ठति ॥ अश्वत्थजनकामर्त्या निपत्यजगतीतले ॥ ५४ ॥ पापात्मानस्समायान्ति योनिश्रेष्ठांशु

होते हुये गिर पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ इसी कारणसे हे नरेन्द्र ! सदैव अपने वंशकी स्थिति के लिये चतुर पुरुषों को सन्तान के निमित्त उपाय अवश्य करना चाहिये हे राजन् ! निश्चयकर उर आदिसे उपजेहुये बारह प्रकारके सन्तानहैं ॥ ५०।५१ ॥ यदि उन बारहोंमेंसे यहां एक पुत्र भाग्यसे न होवै तो पितरोंकी रक्षाके लिये उस को भलीभांति बढ़ाहुआ पीपल लगाना चाहिये ॥ ५२ ॥ और हे नरनायक ! भेदरहित से पुत्रके समान परिपालन करना चाहिये हे नरनाथ ! जब तक भूमि उस पीपल को भलीभांति धारण करती है ॥ ५३ ॥ तब तक किये हुये विवाह समेत उस भूमिमें वंशभी स्थित रहताहै पीपल पुत्रवाले पापात्मा पुरुष पृथ्वीतलमें गिरकर

शुभसंयुत होतेहुये उत्तम योनि में भलीभांति आते हैं इसी कारण हे राजन् ! पितरों को उद्देश करके नित्यही अन्न वैसेही जल देना चाहिये क्योंकि वे पितर तन्मय याने उसी दिये हुये अन्न व जलको पानेवाले कहेगये हैं पितरों को जल व अन्न न देकर जो नीच नर ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ आपही भोजन करताहै या जल पीता है वह पितरों का वैरी होताहै और वे स्वर्गमें भी जलको व अन्नको भी नहीं पातेहैं ॥ ५७ ॥ जिनके वंशमें उपजे हुये मनुष्यों से अन्न जलादिक नहीं दियागया है वे क्षुधा प्याससे उपजी हुई भयंकर पीड़ाको प्राप्तहोते हैं इस लिये हे राजन् ! शक्तिसे नित्यही जल व अनेक प्रकारके अन्नों व वसनों और नैवेद्यों तथा फूल, चंदन

भान्विताः ॥ एतस्मात्कारणादन्नं नित्यंदेयंतथोदकम् ॥ ५५ ॥ समुद्दिश्यपितॄन्राजन्यतस्तेतन्मयाःस्मृताः ॥ अदत्त्वा सलिलंसस्यं पितॄणांयोनराधमः ॥ ५६ ॥ स्वयमश्नातिवातोयं पिबेत्सस्यात्पितृद्रुहः ॥ स्वर्गेपिचनतेतोयं लभन्तेनान्नमेवच ॥ ५७ ॥ दत्तंनवंशजैर्मर्त्यैस्तेऽव्यथांयान्तिदारुणाम् ॥ क्षुत्पिपासासमुद्भूतांतस्मात्सन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ ५८ ॥ नित्यंशक्त्याथवाराजन्पयोन्नैश्चपृथग्विधैः ॥ तथावस्त्रैश्चनैवेद्यैःपुष्पगन्धानुलेपनैः ॥ ५९ ॥ पितृमेधादिभिःपुण्यैः श्राद्धैरुच्चावचैरपि ॥ तर्पितास्तेप्रयच्छन्ति कामानिष्टान्हृदिस्थितान् ॥ ६० ॥ त्रिवर्गञ्चमहाराज पितरःश्राद्धतर्पिताः॥ तर्पयन्तिनयेपापास्स्वपितॄन्नित्यशोनृप ॥ ६१ ॥ पशवस्तेसदाज्ञेया द्विपदाश्शृङ्गवर्ज्जिताः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डेश्राद्धकल्पेपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ * ॥ * ॥

व अनुलेपनों से पितरों को भलीभांति तृप्तकरै ॥ ५८ । ५९ ॥ पुण्यदायक श्राद्धों व उच्च नीच यज्ञोंसे भी तृप्त कियेहुये वे पितर हृदयमें टिकेहुये प्रिय मनोरथों को देते हैं ॥ ६० ॥ व हे महाराज ! श्राद्ध में तृप्त किये हुये पितर त्रिवर्ग याने धर्म, अर्थ व कामको देते हैं हे राजन् ! जो पापी नित्य अपने पितरोंको तृप्त नहीं करते हैं ॥ ६१ ॥ वे सदैव सींगरहित दो पावोंवाले पशु जानने योग्य हैं ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां श्राद्धकल्पेपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । यथा क्षुधित पितरन सबन ब्रह्मा कीन प्रबोध । सोई दोसौ छठेमें बरणत सूत सुबोध ॥ आनर्त बोला कि हे द्विज ! और भी अनेक प्रकार के अतिपुण्यदायक समयहैं तो किसलिये विशेषकर चन्द्रक्षय (अमावस) में विशेषकर श्राद्ध कहीगई है ॥ १ ॥ हे महामुने ! यह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! यह सत्यहै कि श्राद्धके योग्य बहुत समय पितृगणों को तृप्तिदायक व आपही प्रसन्नतादायक हैं कि मन्वादिक व युगादिक समय व अन्य संक्रान्तियां ॥ २ । ३ ॥ और व्यतीपात व गजछाया और चन्द्रमा, सूर्यके ग्रहण इन समयों में पितरों की तृप्ति के लिये करनेवाले को श्राद्ध योग्य है ॥ ४ ॥ वैसेही पुण्य-

आनर्तउवाच ॥ अन्येपिविविधाःकालास्सन्तिपुण्यतमाद्विज ॥ कस्माच्चन्द्रक्षयेश्राद्धंविशेषात्समुदाहृतम् ॥ १ ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्व विस्तरेणमहामुने ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज श्राद्धार्हास्सन्तिभूरिशः ॥ २ ॥ कालाः पितृगणानाञ्च तृप्तिदास्तुष्टिदाःस्वयम् ॥ मन्वाद्यावायुगाद्यावातथासंक्रान्तयोपराः ॥ ३ ॥ व्यतीपातोगजच्छाया ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ एतेषुयुज्यतेश्राद्धं प्रकर्तुंपितृतृप्तये ॥ ४ ॥ तथातीर्थेविशेषेण पुण्येचायतनेशुभे ॥ श्राद्धार्हैर्ब्राह्मणैःप्राप्तैर्द्रव्यैर्वापितृवल्लभैः ॥ ५ ॥ अपर्वण्यपिकर्तव्यं सदाश्राद्धंविचक्षणैः ॥ सोमक्षयेविशेषेण शृणुष्वैकमनान्नृप ॥ ६ ॥ अमागत्यरवेरश्मिसहस्रप्रमुखःस्थितः ॥ यस्यस्वतेजसासूर्य्यः प्रोक्तस्त्रैलोक्यदीपकः ॥ ७ ॥ तस्मिन्वसतियेनेन्दुरमावास्याततःस्मृता ॥ अक्षयाधर्म्मकृत्येसा पितृकल्पेविशेषतः ॥ ८ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदश्चाज्यपाःसोमपा

दायक तीर्थ व उत्तम स्थान में श्राद्ध करना योग्यहै व श्राद्धके योग्य प्राप्त हुये ब्राह्मणों से व पितरों को प्रिय वस्तुवों के भी प्राप्त होने से ॥ ५ ॥ बिन पर्वमें भी सदैव चतुरों को श्राद्ध करना चाहिये व विशेषकर चन्द्रमा के क्षय (अमावस) में करना चाहिये हे राजन् ! एक मनवाले (सावधान) होकर सुनिये ॥ ६ ॥ सूर्यके साथही आकर हज़ारों किरणों से प्रधान चन्द्रमा स्थित होताहै व जिसके निज तेजसे सूर्यनारायण त्रिलोकके दीपक कहेगये हैं ॥ ७ ॥ जिससे चन्द्रमा उस दिन सूर्यके साथ बसताहै उसी कारण अमावस्या कहीगई है वह धर्मकार्योंमें अविनाशिनी व विशेषकर पितृकल्पमें अक्षयाहै याने अविनाशिनी तृप्ति देनेवालीहै ॥ ८ ॥ क्योंकि

किरणोंके स्वामी अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप व सोमप और तदनन्तर अन्य पितर गण बुलाये जातेहैं ॥ ९ ॥ वैसेही हे राजन्! अन्य नान्दीमुख पितर श्राद्ध में भोजन करनेवाले कहेगये हैं देवोंसे उपजेहुये ये पितरोंके गण तुमसे कहेगये ॥ १० ॥ आदित्य, वसु, रुद्र व अश्विनीकुमारभी नान्दीमुख पितरों को छोड़कर उन्हीं इन पितरों को भलीभांति तृप्त करते हैं ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माने उन पितरोंको भलीभांति आज्ञा दियाहै उसी कारण कमल से उपजे हुये ब्रह्माजी उनको भलीभांति तृप्तकरके सृष्टि करते हैं ॥ १२ ॥ और भी पितर मनुष्य होतेहुये त्रिलोक में बसते हैं वे दो प्रकार के देख पड़ते हैं एक दुःखी और दूसरे सुखी होतेहैं ॥१३॥

स्तथा ॥ रश्मिपाउपहूताश्च तथैवान्येततःपरम् ॥ ९ ॥ तथाश्राद्धभुजश्चान्येस्मृतानान्दीमुखान्नृप ॥ एतेपितृगणाः ख्यातास्तवदेवसमुद्भवाः ॥ १० ॥ आदित्यावसवोरुद्रा नासत्यावश्विनावपि॥ सन्तर्पयन्तितांश्चैतान्मुक्त्वानान्दीमुखान्पितॄन् ॥ ११ ॥ब्रह्मणातेसमादिष्टाः पितरोन्नृपसत्तम ॥ तान्सन्तर्प्यततःसृष्टिं कुरुतेपद्मसम्भवः ॥ १२ ॥ अन्येपिपितरोमर्त्या निवसन्तित्रिविष्टपे ॥ द्विविधास्तेप्रदृश्यन्ते दुःखिनस्सुखिनःपरे ॥ १३ ॥ येभ्यःश्राद्धानियच्छन्ति मर्त्यलोकेस्ववंशजाः ॥ तेसर्वेतत्रसंहृष्टा देववन्मुदिताःस्थिताः ॥ १४ ॥ येषांप्रयच्छतेनैव किञ्चित्कश्चित्स्ववंशजः॥ भक्त्याहृष्टामहाराज सहस्राक्षप्रपूजिताः ॥ १५ ॥ तथान्यैर्विबुधैस्सर्वैः प्रस्थितास्स्वंनिकेतनम् ॥ पितृलोकंमहाराज दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ १६ ॥ तान्दृष्ट्वाप्रस्थितान्राजन्पितरोमर्त्यसम्भवाः ॥ क्षुत्पिपासार्दितायेच रुरुदुर्दैन्यमाश्रिताः ॥१७॥ स्तुत्वाथसुस्तवैर्दिव्यैः पितृसूक्तैश्चपार्थिव ॥ वेदोक्तैरपरैश्चैवपितृतुष्टिकरैःपरैः ॥ १८ ॥ ततःप्रोचुश्चसंहृष्टाः पितरस्तान्सु

अपने वंशमें उपजेहुये पुरुष मृत्युलोक में जिनके लिये श्राद्ध देते हैं वहां प्रसन्न होतेहुये वे सब देवोंके नाई आनन्दितहो स्थित होते हैं ॥ १४ ॥ और निजवंश में उपजा हुआ कोई पुरुष जिनको कुछ नहीं देता है हे महाराज! वे हज़ार लोचनों वाले इन्द्र व अन्य समस्त देवोंसे भक्ति समेत पूजेहुये प्रसन्न होकर हे महाराज! देवोंसे भी दुर्लभ पितृलोक नामक अपने स्थानको प्रस्थान करते हैं ॥ १५ । १६ ॥ हे राजन्! प्रस्थान किये हुये उन पितरों को देखकर मनुष्यों से उपजे हुये पितर जोकि क्षुधा, प्याससे विकल हैं वे दीनता में आश्रित होकर रोनेलगे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त हे राजन्! पितरों को तुष्टिकारक उत्तम स्तोत्रों व अन्य वेदोक्त

तथा पितृसूक्तवाले दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करके प्रसन्न करतेभये ॥ १८ ॥ तदनन्तर अतिप्रसन्न होतेहुये देवताओं से उत्पन्न पितर उनसे बोले कि प्रशंसित व्रतवाले हम सब तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हैं ॥ १६ ॥ इसलिये कहिये कि जिससे हमलोग तुमलोगों के मनमें टिकेहुये मनोरथ को देवैं पितर बोले कि यहां आये हुये हम लोग मनुष्यों के पितर कहेगये हैं ॥ २० ॥ हमलोग अपने कर्मसे हंस, मयूरों से प्रसिद्ध व मधु (वसन्त ऋतु) ध्वजा, पताका वाले चाहे हुये लोकों में सब दिशाओं के बीच पवित्र विमानोंपै नित्यही देवताओंके साथ बसते हैं तथा अप्सरा समूहों से भलीभांति सेवित होकर ॥ २१ । २२ ॥ गन्धर्वों से गाये और गुह्यकों से स्तुति

रोद्भवान् ॥ प्रसन्नाःस्मोवयंसर्वे युष्माकंसंशितव्रताः ॥ १६ ॥ तस्माद्ब्रूतवयंयेन यच्छामोवोहृदिस्थितम् ॥ पितरऊचुः ॥ वयंहिपितरःख्याता मनुष्याणामिहागताः ॥ २० ॥ स्वर्गेस्वकर्म्मणानित्यं निवसामस्सुरैस्सह ॥ विमानेषुपवित्रेषु संस्थिताःसर्वतोदिशम् ॥ २१ ॥ वाञ्छितेषुचलोकेषुमधुध्वजपताकिषु ॥ हंसबर्हिणमुख्येषु संसेव्याप्सरसांगणैः ॥ २२ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानाश्चस्तूयमानाश्चगुह्यकैः ॥ परंसंतिष्ठमानानामस्माकंत्रिदशैस्सह ॥ २३ ॥ अत्यर्थंजायते तीव्रा क्षुत्पिपासासुदारुणा ॥ यस्यांमन्यामहेचित्ते वह्निमध्यगतावयम् ॥ २४ ॥ भक्षयामःकिमेतान्हि पक्षिणोविविधानपि ॥ हंसादीन्मधुरालापान्कञ्चिदादायपक्षिणम् ॥ २५ ॥ गृध्रोगृह्णातिभक्षार्थेहन्तुंशक्नोतिसोपिन ॥ अजराश्चामराश्चैव स्वर्गेयेस्वर्गगाःखगाः ॥ २६ ॥ तथामनोरमावृक्षानन्दनादिवनेषुच ॥ फलितायेप्रदृश्यन्ते प्राप्याश्चापिमनोरमाः ॥ २७ ॥ तत्फलानिवयंसर्वे गृह्णीमःपितरोयदि ॥ नत्रुटन्तिचयत्नेन समाकृष्टानितान्यपि ॥ २८ ॥ एतच्चाकाश

किये जाते हैं परन्तु देवताओं के साथ भलीभाति बैठेहुये हमलोगों के ॥ २३ ॥ अत्यन्तही तीव्र व भयङ्कर क्षुधा, प्यास उत्पन्न होती है कि जिसमें हमलोग चित्त में यह मानते हैं कि अग्निके बीचमें प्राप्तहैं ॥ २४ ॥ क्या हमलोग इन मीठे वचन वाले हंसादिक अनेक प्रकार के पक्षियों को भी भक्षणकरैं किसी पक्षीको लेकर ॥ २५ ॥ गीध खानेके लिये ग्रहण करता है परन्तु मारने के लिये वहभी नहीं समर्थ होता है क्योंकि स्वर्ग में जो स्वर्गगामी पक्षी हैं वे अजर व अमरही हैं ॥ २६ ॥ वैसेही नन्दनादिक वनोंमें फलेहुये जो मनोहर वृक्ष देखपड़ते हैं वे सुन्दर व पानेके योग्य भी हैं ॥ २७ ॥ हे पितरो ! यदि सब हमलोग उनके फलोंको ग्रहण करतेहैं

तो यत्न से भलीभांति खींचे हुये भी वे नहीं टूटते हैं ॥ २८ ॥ और प्यासले विकल हमलोग यदि इस आकाशगामिनी नदीके जलको पीते हैं तो वह हाथोंमें नहीं आता व न फिर स्पर्शकरता है ॥ २९ ॥ इस स्वर्ग में भोजन करता व पीता हुआ कोई भी नहीं देख पड़ता है उसी कारण हमलोगों का स्वर्ग में निवास कठिन व भयङ्कर है ॥ ३० ॥ ये समस्त सुरगण व और जो गुह्यकादिक इस स्वर्गमें विमानों में बैठे हैं वे सब प्रसन्न मनवाले ॥ ३१ ॥ व क्षुधा, प्यास से वर्जित व अनेकों प्रकार के सुखोंमें भलीभांति टिके हैं और क्षुधा, प्यास से रहित व उत्तम तृप्ति को प्राप्त हम सब कभी नहीं देवोंके समान घूमते हैं तो यह क्या कारणहै कि भूंख

गातोयं तृषार्तायदियत्नतः॥ प्रपिबामोनहस्तेषु घटतेनपुनःस्पृशेत् ॥२९॥ भुञ्जानश्चनकोप्यत्रदृश्यतेऽत्रपिबन्नपि ॥ तस्मात्त्रिविष्टपेवासश्चास्माकंघोरदारुणः ॥ ३० ॥ एतेसुरगणास्सर्वे येचान्येगुह्यकादयः॥ दृश्यन्तेऽत्रविमानस्थास्सर्वेसंहृष्टमानसाः ॥ ३१ ॥ क्षुत्पिपासापरित्यक्ता नानाभोगसमाश्रयाः ॥ कदाचिन्नवयंसर्वे बभ्रमुस्त्रिदशाइव ॥ ३२ ॥ क्षुत्पिपासापरित्यक्तास्संतृप्तिंपरमाङ्गताः॥तत्किंकारणमेतद्धिक्षुत्पिपासाप्रजायते ॥ ३३ ॥ यथैवाकस्मिकीबाधा कदाचिन्नप्रणश्यति ॥ तथाकुरुतभद्रंवोयथातुष्टिःप्रजायते ॥ ३४ ॥ शाश्वतीनोयथान्येषां तेनवःशरणङ्गताः ॥ पितरऊचुः ॥ अस्माकमपिचैवैषा कष्टावस्थाप्रजायते ॥ ३५ ॥ शक्राद्याविबुधाव्यग्राःश्राद्धंयच्छन्तिनोयदा ॥ ततश्चागत्यतान्सर्वान्देवान्सम्प्रार्थयामहे ॥ ३६ ॥ ततस्तृप्तिंप्रगच्छामस्तैर्देवैस्तर्पितावयम् ॥ वंशजायेचयच्छन्ति प्रयच्छन्तिसमाहताः ॥ ३७ ॥ कथंनतृप्तिमायातास्तैस्सर्वैस्तेप्रतर्पिताः॥ येऽत्रप्रमादिभिर्वंश्यैर्नतृप्यन्तेकथञ्चन ॥ ३८ ॥ क्षुत्पिपासाकु

प्यास उत्पन्न होतीहै ॥ ३२ । ३३ ॥ और जैसेही अचानकवाली बाधा कभी नहीं नाशहोती है वैसेही यह है तुमलोगों का कल्याण होवै जिस प्रकार अन्य सबोंकी है वैसेही हम सबोंकी सदैव वाली तृप्ति जिसभांति होवै वैसाही कीजिये उसी से तुम लोगों की शरण में प्राप्त हैं पितर बोले कि हम लोगोंकी भी यही कष्टीली दशा है ॥ ३४।३५ ॥ जब असावधान होतेहुये इन्द्रादिक देवता हमलोगों को श्राद्ध नहीं देते हैं तदनन्तर आकर हम उन समस्त देवोंसे भलीभांति प्रार्थना करते हैं ॥३६॥ उसके उपरान्त उन देवोंसे तृप्त कियेहुये हमलोग तृप्तिको प्राप्तहोते हैं वंशमें उपजेहुये जो पुरुष देते हैं व सावधान होते अन्य नरजो देतेहैं ॥ ३७ ॥ तो उन सबों

से तृप्त किये हुये वे क्यों नहीं तृप्तिको प्राप्त होते हैं व यहां वंश में उपजे हुये असावधान नरोंसे जो किसी प्रकार नहीं तृप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ वे सब उस समय निःसन्देह भूंख, प्याससे विकलहोते हैं फिर जो धर्मराजके घरमें नरकोंमें टिके हैं उनको क्या कहना है ॥ ३९ ॥ किसी प्रकार इस कारणको मैंने तुमलोगों से कहा जो कि तुम सबोंने क्षुधा, प्यास से उपजे हुये वृत्तान्त को कहाथा ॥ ४० ॥ हे श्रेष्ठ पितरो ! यदि तुमलोग सब दीहुई कन्यका विभाग हमलोगों को भलीभांति देवो तो हम ब्रह्मासे प्रार्थना करके व आपही उनके समीप जाकर उत्तम हितकरैं तदनन्तर हां यही उनसे कहेहुये वे उनको भी लेकर ॥ ४१ । ४२ ॥ देवताओं वाले पितरगण

त्तास्सर्वेतेतदास्युर्नसंशयः ॥ किंपुनर्नरकस्थायेधर्म्मराजनिवेशने ॥ ३९ ॥ एतद्धिकारणंप्रोक्तं युष्माकंचकथञ्चन ॥ क्षुत्पिपासोद्भवंरौद्रं युष्माभिर्य्यदुदीरितम् ॥ ४० ॥ तदस्माकंविभागञ्चेत्संप्रयच्छतसत्तमाः ॥ सर्वेकन्यस्यदत्तस्यतत्कुर्मोवैहितंशुभम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणंप्रार्थयित्वाच स्वयंगत्वातदन्तिकम् ॥ बाढमित्येवतैरुक्तास्ततआदायतानपि ॥ ४२ ॥ दिव्याःपितृगणाःप्राप्ता विधेस्सदनमुत्तमम् ॥ नान्दीमुखान्पुरस्कृत्य पितॄन्यांस्तर्पयेद्विधिः ॥ ४३ ॥ सृष्टिकालेतुसम्प्राप्ते वृद्धिकामस्सुरेश्वरः ॥ अथतैस्सहतेसर्वेस्तुत्वातंकमलासनम् ॥ ४४ ॥ प्रणिपत्यस्थितास्सर्वे पितरोविनयान्विताः ॥ पितॄंस्तान्विनयोपेतान्प्रणिपातपुरस्सरान् ॥ ४५ ॥ विधिःप्रोवाचराजेन्द्र सान्त्वयञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ किमर्थंपितरस्सर्वे समायातामामान्तिकम् ॥ ४६ ॥ देवतानांमयासार्द्धं सम्पूज्यास्सर्वदास्थिताः ॥ पितरऊचुः ॥ पितरोमानवाह्येते स्वर्गप्राप्तास्स्वकर्म्मभिः ॥ ४७ ॥ देवतामध्यसंस्थाश्चविद्यन्तेक्षुत्पिपासया ॥ यदागच्छन्तिनोतृप्तिं यथास्माकंसदासुरैः ॥ ४८ ॥

उन नान्दीमुख पितरों को आगेकर कि सृष्टि समय प्राप्त होनेपर वृद्धिकी कामना वाले सुरनायक ब्रह्माजी जिनको तृप्त करते हैं ब्रह्माके उत्तम मन्दिर में प्राप्तहुये इसके अनन्तर उन समेत वे सब उन कमल आसन वाले ब्रह्माकी स्तुति करके ॥ ४३ । ४४ ॥ व नम्रता संयुत सब पितर प्रणाम करके खड़े हो रहे हे नृपेन्द्र ! प्रणामपूर्वक नम्रता संयुत उन पितरों को नम्रवाणीसे समझाते हुये ब्रह्माजी बोले कि सब पितर मेरे समीप क्यों आयेहो ॥ ४५ । ४६ ॥ जो सब कि मुझ समेत देवताओं से सदैव भलीभांति पूजने योग्य स्थितहो पितर बोले कि अपने कर्मोंसे स्वर्ग में प्राप्तहुये ये मनुष्य पितर हैं ॥ ४७ ॥ जैसे कि देवोंसे हमारी तृप्ति होती है

वैसेही जब तृप्तिको नहीं पाते हैं तब देवोंके मध्यमें भलीभांति टिकेहुये भूंख, प्याससे विद्यमान होतेहैं ॥४८॥ उसी कारण निरन्तर वाली तृप्तिकेलिये इन्होंने हमलोगोंसे प्रार्थना किया और हम देनेके लिये समर्थ नहीं हैं इसी कारण तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ ४९ ॥ हे प्रभो, सुरनायक ! जब देवता असावधान होतेहैं तब कव्य (पितरोंके निमित्त खीरआदिभाग) के विना हमलोगोंको भी यह भूंख कष्टदायक होती है ॥ ५० ॥ इस लिये हे सुरनायक ! उन समेत हमलोगोंके ऊपर प्रसन्नता करिये कि जिससे अपने स्थान में टिकेहुये भी पितरों की तृप्तिहोवै ॥ ५१ ॥ ये पितर निज वंशमें उपजेहुये नरोंसे दीहुई कव्य हमलोगों को देवैंगे उसी कारण हे देव !

तदैतैःप्रार्थनास्माकंकृताशाश्वतितृप्तये ॥ नचशक्तावयंदातुमतस्त्वांसमुपस्थिताः ॥ ४९ ॥ यदातुदेवताव्यग्रा
तदास्माकमपिप्रभो ॥ कव्यंविनाभवेदेषाक्षुधाकष्टासुरेश्वर ॥ ५० ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंनः समंतेषांसुरेश्वर ॥ यस्मा
त्स्याच्छाश्वतीतृप्तिः स्वस्थानस्थायिनामपि ॥ ५१ ॥ एतेस्माकंप्रदास्यन्तिकव्यंयन्निजवंशजैः ॥ प्रदत्तंतेनसम्प्राप्ता
तृप्तिंदेवत्वदन्तिके ॥ ५२ ॥ देवानाञ्चैवयत्कव्यं तन्नास्माकंप्रतृप्तये ॥ यतःक्रियाविहीनन्तन्नतेषांविद्यतेक्रिया॥५३॥
पितॄनुद्दिश्ययत्कव्यं ब्राह्मणेभ्यःप्रदीयते ॥ स्नातैर्धौताम्बरैर्मर्त्यैस्तद्भवेत्तृप्तिदंमहत् ॥ ५४ ॥ पितॄणांसर्वदेवेश यदेषावै
दिकीश्रुतिः ॥ नस्नानस्याधिकारोस्ति देवानाञ्चद्विजातिवत् ॥ ५५ ॥ पीयूषमपितैर्दत्तं तेनतस्यान्नतृप्तये ॥ तस्मा
न्मानुषदत्तैर्नोयथाकव्यैःप्रजायते ॥ ५६ ॥ स्वर्गस्थानांपरातृप्तिस्समंमेतैस्तथाकुरु ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वा
सुचिरंध्यात्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ५७ ॥ तानुवाचततःसर्वान्पितॄन्पार्थिवसत्तम ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अस्मिंस्त्रेतायुगेसञ्ज्ञा

तुम्हारे समीप भलीभाति प्राप्तहुये हैं ॥ ५२ ॥ और देवताओं की जो कव्य है वह हमको तृप्तिके लिये नहीं होती है क्योंकि वह कव्य किया से हीन होती है और उन देवोंके कर्म नहीं विद्यमान होते हैं ॥ ५३ ॥ धोये हुये वसनों वाले व नहायेहुये पुरुषों से जो कव्य पितरों को उद्देश कर ब्राह्मणों के लिये दीजाती है वह पितरों को बड़ी भारी तृप्तिदायक होती है हे समस्तसुरस्वामिन् ! जिस लिये कि यह वैदिकी (वेदवाली) श्रुतिहै कि द्विजाति याने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्योंकी नाईं देवों को नहाने का अधिकार नहीं है ॥ ५४ । ५५ ॥ उसी कारण उन देवोंसे दियाहुआ वह अमृत भी तृप्तिके लिये नहीं होताहै इस लिये जिस प्रकार इन समेत स्वर्गमें

टिकेहुये हमलोगोंको मनुष्यों से दीहुई कव्योंसे उत्तम तृप्तिहोवै वैसाही कीजिये भर्तृयज्ञ बोले कि उस वचनको सुनकर बहुत देरतक ध्यान करके लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ॥ ५६।५७॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम!उन समस्त पितरोंसे कहा ब्रह्मा बोले कि इस त्रेतायुग में हव्य कव्य से उपजी हुई संज्ञा होगी ॥ ५८ ॥ व युग्म (द्वापर) युगमें भलीभांति जावैगी और कलियुग में न होगी ज्यों २ पुरुषों की यह न्यूनता होगी ॥ ५९ ॥ त्यों २ मनुष्य दुष्ट व बिन भक्तिवाले होवैंगे और किसी प्रकार पितरों को हव्य, कव्य न देवैंगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर पितरों की अत्यन्त कष्टवाली दशा होगी इस लिये मैं शरीरधारियों के सुखके उपायको करूंगा ॥ ६१ ॥ जिससे

हव्यकव्यसमुद्भवा ॥५८॥ सम्प्रयातायुगेयुग्मेकलौनप्रभविष्यति ॥ यथायथाचपुंसांवैह्रासएषभविष्यति ॥ ५९ ॥ तथा तथाजनादुष्टाःप्रभविष्यन्त्यभक्तिकाः ॥ हव्यंकव्यंपितॄणाञ्चनदास्यन्तिकथञ्चन ॥ ६० ॥ ततःकष्टतरावस्थापितॄणां सम्भविष्यति ॥ तस्मादहंकरिष्यामि सुखोपायंशरीरिणाम् ॥ ६१ ॥ येनसन्तर्पितायूयं परांतृप्तिमवाप्स्यथ ॥ पितुः पितामहस्यैवतत्पितुश्चततःपरम् ॥ ६२ ॥ समुद्देशेनदत्तेनब्राह्मणेभ्यःप्रशक्तितः ॥ सर्वेषांसादरातृप्तिर्यावन्तःपितरोधु ना ॥ ६३ ॥ तथामातामहानाञ्च पक्षेतत्रनसंशयः ॥ त्रिभिस्सन्तर्पितैस्तेऽपि तर्पितास्स्युर्ममावधि ॥ ६४ ॥ युष्माकंतृ प्तयेयश्च सुखोपायोभविष्यति ॥ तच्छ्रूयतांमहाभागा वदतोममसाम्प्रतम् ॥ ६५ ॥ पितॄन्येनैवयत्नेन समुद्दिश्यद्वि जोत्तमान् ॥ तर्पयिष्यन्तितेनैव पिण्डान्दास्यन्तिभक्तितः ॥ ६६ ॥ तेनैवकर्म्मणातृप्तिश्शाश्वतीसम्भविष्यति ॥

भलीभांति तृप्तहोते हुये तुमलोग उत्तम तृप्तिको पावोगे कि पिता, पितामह तदनन्तर प्रपितामह (परबाबा) के भलीभांति उद्देशसे ब्राह्मणोंके लिये शक्तिसे दीहुई वस्तुके द्वारा सब की आदर समेत तृप्तिहोगी जितने कि इस समय पितर हैं ॥ ६२ । ६३ ॥ वैसेही वहां मातामहों (नानाआदिकों) के पक्षमें तीनों को भलीभांति तृप्त करने से निरसन्देह वे भी पितर मेरी अवधि तक तृप्तहोवैंगे ॥ ६४ ॥ व तुम लोगों की तृप्ति के लिये जो सुखपूर्वक उपाय होगा हे महाभाग्यवाले, पितरो! उसको कहते हुये मुझसे इस समय सुनिये ॥ ६५ ॥ कि जिस उपाय से ही भली भांति पितरों को उद्देशकर द्विजोत्तमों को तृप्त करैंगे उसी यत्नसे भक्तिसे पिण्डों

को देवैंगे ॥६६॥ उसी कर्मसे निरन्तरवाली तृप्ति भलीभांति होगी इसलिये पहले उपजे हुये तुमलोग प्रसन्न होकर अपने स्थानोंको जावो ॥ ६७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! उन पितरों से मिलेहुये वे दिव्य पितर स्तुति करके व सूर्यनारायण के समान विमानों के द्वारा जाकर अपने स्थानोंको भजते भये (प्राप्तहुये) ॥ ६८ ॥ और तदनन्तर हे राजन् ! बहुत समय व्यतीत होनेसे यहां बहुत मनुष्य नित्यही पितरों को भलीभांति उद्देशकर जो तीन पुरुषों में श्राद्ध है उसको भी न दिया हे नराधिपते, नृपते ! जैसे पहले थी वैसेही फिर उन पितरों के ॥ ६९ । ७० ॥ क्षुधा, प्यास से उपजी हुई बड़ी व्यथा हुई व हे नृपोत्तम ! उन देववाले पितरों को वही पीड़ा

तस्माद्गच्छतसन्तुष्टास्स्वानिस्थानानिपूर्वजाः ॥ ६७ ॥ ततस्तेसंहतास्तैस्तु स्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ विमानैस्सूर्य्य सङ्काशैर्गत्वापार्थिवसत्तम ॥ ६८ ॥ अथसङ्गच्छताराजन्कालेनमहताततः ॥ तच्चापिनददुःश्राद्धं मर्त्यास्त्रिपुरुषेचयत् ॥ ६९ ॥ नित्यंपितॄन्समुद्दिश्य बहवोत्रनराधिप ॥ कव्याभावात्पुनस्तेषां यथापूर्वंतथान्नृप ॥ ७० ॥ क्षुत्पिपासोद्भवापीडा महतीसम्प्रजायते ॥ तेषाञ्चदैविकानाञ्च पितॄणांन्नृपसत्तम ॥ ७१ ॥ समेत्याथपुनस्सर्वे ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ प्रोचुश्चप्रणिपत्योच्चैस्सुदीनाःप्रपितामहम् ॥ ७२ ॥ भगवन्नप्रयच्छन्ति नित्यंनोवंशसम्भवाः ॥ श्राद्धानिदौःस्थ्यमापन्नास्तेनसीदामहेविभो ॥ ७३ ॥ यथापूर्वंतथादेव तदुपायंविचिन्तय ॥ किञ्चिद्येनदरिद्रोवै प्रीत्याचैवार्चयेत्पितॄन् ॥ ७४ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा तानाहप्रपितामहः ॥ कृपाविष्टोमहाराज सर्वान्पितृगणांस्तथा ॥ ७५ ॥ सत्यमेतन्महाभागा दौःस्थ्यंयान्तिदिनेजनाः ॥ यथात्रकलिकालेचयुगश्रेष्ठेचपृष्ठतः ॥ ७६ ॥ तथापिचकरिष्यामि युष्मदर्थम

हुई ॥७१॥ इसके अनन्तर फिर सब मिलकर ब्रह्मा की शरण गये व उच्च प्रकारसे प्रणाम कर अतिदीन होतेहुये प्रपितामह (ब्रह्मा) जी से बोले ॥ ७२ ॥ हे विभो, भगवन् ! हमलोगों के वंशमें उपजे हुये पुरुष नित्य श्राद्धोंको नहीं देते हैं उसीसे दुष्टदशामें प्राप्त हमलोग क्लेशित होते हैं ॥ ७३ ॥ व हे देव ! जैसे पहले थे वैसे ही होगये उसका कुछ उपाय चिन्तन करिये कि जिस से निर्धनी निश्चय कर प्रीति से पितरों को पूजै ॥ ७४ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे महाराज ! उन पितरों के उस वचन को सुनकर दयासंयुत होते हुये ब्रह्माजी उन समस्त पितृगणों से बोले ॥ ७५ ॥ हे महाभाग्यवाले पितरो ! यह सत्यहै कि जैसे पीछे कलिकालवाले

दिन में मनुष्य दुःस्थिति को प्राप्तहोते हैं वैसेही इस युगोत्तम में होगये ॥ ७६ ॥ तिसपर भी तुमलोगों के लिये निरसन्देह छोटा उपाय करूंगा जिससे यही भली भांति तृप्ति होगी ॥ ७७ ॥ साथही चन्द्रमा सूर्यकी हज़ारों आदिक किरणोंमें स्थित होताहै उसमें चन्द्रमा जिससे बसता है उसी कारण अमावास्या कहीगई है ॥७८॥ उस दिन जो मनुष्य अपने पितरों को उद्देशकर भक्तिसे श्राद्ध करैंगे वे भलीभांति स्थित होवैंगे ॥ ७९ ॥ व मेरे वचन से निरसन्देह धन, धान्यसे संयुत और समस्त शत्रुओं से रहित तथा अपमृत्यु से छुटेहुये होवैंगे ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उन ब्रह्माजी के उस वचनको सुनकर पितर फिर प्रसन्नमनवाले होगये व कमल से

संशयम् ॥ उपायंलघुसंतृप्तिर्येनचात्रभविष्यति ॥ ७७ ॥ अमासोमरवेरश्मिसहस्रप्रमुखस्थितः ॥ तस्मिन्वसतियेनेन्दुरमावास्याततःस्मृता ॥ ७८ ॥ तस्मिन्नहनियेश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यचात्मनः ॥ करिष्यन्तिनराभक्त्या तेभविष्यन्तिसुस्थिताः ॥७९॥ धनधान्यसमोपेतास्सर्वशत्रुविवर्जिताः ॥अपमृत्युपरित्यक्ता ममवाक्यादसंशयम् ॥ ८० ॥ भर्तृयज्ञ उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा बभूवुर्हृष्टमानसाः ॥ पितरःपुनरासाद्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८१॥ ययुःस्वानिनिकेतानि प्रेषिताःपद्मयोनिना ॥ अमावास्यादिनेप्राप्य श्राद्धंदत्तंस्ववंशजैः ॥८२॥ सन्तुष्टामासमात्रन्तु तस्थुस्सन्तुष्टमानसाः ॥ गच्छताकलिकालेन दौःस्थ्यंप्राप्यनराभुवि ॥ ८३ ॥ दर्शेसत्यपिनोश्राद्धं प्रायःकुर्वन्तिकेचन ॥ ततःपितृगणास्सर्वे येदिव्यायेचमानुषाः ॥ ८४ ॥ क्षुत्पिपासाकुलाभूयो ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ प्रोचुश्चप्रणिपत्योच्चैस्तेसमेताःपितामहम् ॥ ८५ ॥ परमंदैन्यमास्थाय बाष्पगद्गदयागिरा ॥ भगवन्निन्दुक्षयेश्राद्धं प्रोक्तंमासंत्वयाविभो ॥ ८६ ॥ अस्माकंप्री

उपजेहुये ब्रह्मासे पठायेहुये वे प्रसन्न अन्तःकरणसे जाकर अपने घरोंमें प्राप्तहुये व अमावास्याके दिन अपने वंशमें उपजेहुये पुरुषोंसे दीहुई श्राद्धको पाकर ॥८१।८२॥ प्रसन्न होतेहुये सन्तुष्टमनवाले होकर महीना भर टिकते भये व कलिकालके गमन करने से मनुष्य भूमिमें दुःस्थिति को पाकर ॥ ८३ ॥ अमावास्या के होने पर भी बहुधा कोई नहीं श्राद्ध करते थे उसी कारण जो दिव्य और जो मनुष्यवाले हैं वे समस्त पितर समूह ॥ ८४ ॥ भूंख, प्यास से विकल होतेहुये फिर ब्रह्माकी शरणगये व साथही वे उच्च प्रकार से प्रणाम कर व बड़ी दीनतामें प्राप्तहोकर आंसुवों से गद्गदी वाणी के द्वारा ब्रह्मासे बोले कि हे विभो, भगवन् ! तुमने जो

उसी कहा था कि हम लोगों की महीने भर तृप्ति के लिये अमावसमें मनुष्य श्राद्ध करैंगे हे पितामह! बहुधा दुःस्थितिसे उसको भी नहीं करते हैं ॥ ८५ । ८६ । ८७ ॥
से हे सुरनायक! जैसे पहलेथी वैसेही हम लोगों को भूंख, प्यास से उपजी हुई बड़ी व्यथा है इस लिये हम लोगों के ऊपर प्रसन्नता करिये ॥ ८८ ॥ क्योंकि तिस
पर भी सूर्यनारायण में चन्द्रमा को स्थित होने पर इससमय नहीं तृप्त करैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि इसके अनन्तर भलीभांति ध्यान करके दयासंयुतहो ब्रह्माने भी उन
से कहा ॥ ८९ ॥ कि हे पितरो! मैं ने तुम लोगों के लिये छोटा यत्न चिन्तन किया है कि जिससे इसके अनन्तर सब उत्तम तृप्ति को प्राप्त होगे ॥ ९० ॥ अमा-

तेनास्माकंपरापीडा क्षुत्पिपासासमुद्भवा ॥ तस्मात्कुरुप्रसादन्नो यथापूर्वंसुरेश्वर ॥८८॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ अथब्रह्मापिसञ्चिन्त्य तानुवाचकृपान्वितः ॥ ८९ ॥ युष्मदर्थंमयोपायश्चिन्तितःपितरोलघुः ॥ येनतृप्तिंपरांसर्वेगमिष्यथइतःपरम् ॥ ९० ॥ अमावास्योद्भवंश्राद्धमलब्ध्वाप्रतिवत्सरम् ॥ यथाममप्रसादेन तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ ९१ ॥ आषाढ्याःपञ्चमेपक्षे कन्यासंस्थेदिवाकरे ॥ मृताहनिपुनर्योवै श्राद्धंदास्यतिमानवः ॥ ९२ ॥ तस्यसंवत्सरंयावत्संतृप्ताःपितरोध्रुवम् ॥ एवंज्ञात्वाकरिष्यन्ति प्रेतपक्षेनराभुवि॥९३॥ श्राद्धंयूयंनसन्देहो भविष्यथसुतर्पिताः ॥ यावत्संवत्सरन्तेन एकेनापितुसत्तमाः ॥ ९४ ॥ तस्मिन्नपितुयःश्राद्धंयुष्माकंनप्रदास्यति ॥ शाकेनापिदरिद्रोसावन्त्यजत्वमुपैष्यति ॥ ९५ ॥ आसनंशयनंभोज्यं स्पर्शंसम्भाषणंतथा ॥ येकरिष्यन्तितैस्सार्द्धं तेपिपापतमानराः ॥ ९६ ॥ नतेषांस

...प्राणार्थाय यत्करिष्यन्तिमानवाः ॥ दौःस्थ्यात्तदपिनोकुर्य्युःप्रायशस्तुपितामह ॥ ८७॥ तथापीन्दुस्थितेभानौ तर्पयिष्यन्तिनोधुना ॥

वास्या में उपजेहुये श्राद्धको न पाकर प्रतिवर्ष जिसप्रकार मेरी प्रसन्नता से तृप्तहोवोगे उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ ९१ ॥ कि असाढ़ी से पांचवें पक्षमे सूर्यना-
रायणको कन्याराशि में भलीभांति टिकने पर फिर मरेहुयेके दिन में जो श्राद्ध देवैगा ॥ ९२ ॥ उसके पितर वर्ष भरतक अवश्यकर भलीभांति तृप्त होवेंगे ऐसा जान-
कर प्रेतपक्षमें भूतलके मध्य मनुष्य श्राद्ध करैंगे ॥९३॥ व हे पितृश्रेष्ठो! तुमलोग निस्सन्देह उस एकभी श्राद्ध से वर्षभर तक भलीभांति तृप्तहोगे ॥ ९४ ॥ ॥ और उस
दिनभी जो शाकसे भी तुम लोगों को श्राद्ध न देवैगा यह निर्धनी चाण्डालताको प्राप्त होगा ॥ ९५ ॥ और जो मनुष्य उन चाण्डालों के साथ आसन (बैठना)

सोना, खाना, छूना व सम्भाषण करैंगे वे भी मनुष्य अतिपापी होवेंगे ॥ ९६ ॥ और कभी उनके सन्तानकी वृद्धि न होगी व किसी प्रकार उनके सुख, धन व धान्य न होगी ॥ ९७ ॥ उसी कारण हे पितरो! अवश्यकर सावधान होतेहुये तुम लोग अपने स्थान को जाओ निर्धनी मनुष्योंवाले व भयंकर कलिकालके भी भली भांति प्राप्त होनेपर ॥९८॥ एक श्राद्ध विद्यमानहै उसको मनुष्य करैंगे जिससे समस्त वर्ष में तुम लोगोंकी उत्तम तृप्ति होगी ॥ ९९ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि प्रसन्नहोतेहुये वे पितर निश्चयकर अपने २ घर चलेगये और वर्षान्तमें श्राद्धको न पाकर क्षुधितहुये ॥ १०० ॥ इसके अनन्तर इस संसार में जो दुष्टात्मा व निःशंक तथा कृपण चित्त

न्ततेर्वृद्धिस्सम्प्रयास्यतिकर्हिचित॥नसुखंधनधान्यञ्च तेषांभाविकथञ्चन ॥ ९७॥ तस्माद्गच्छतचाव्यग्रास्स्वस्थानंपि
तरोध्रुवम्॥ कलिकालेपिसम्प्राप्ते दारुणेनिर्द्धनेजने ॥ ९८॥ विद्यतेश्राद्धमेकंहि प्रकरिष्यन्तिमानवाः ॥ येनाखिलेभवेद्व
र्षे युष्माकंतृप्तिरुत्तमा ॥ ९९ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तेध्रुवंपितरोहृष्टा जग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम्॥ वर्षान्तेऽपिसमासाद्य श्रा
द्धंनस्युर्बुभुक्षिताः ॥ १०० ॥ अथयेत्रदुरात्मानो निश्शङ्काःकृपणात्मकाः ॥ कलिनामोहिताःश्राद्धं वत्सरान्तेपिनोद
दुः ॥ १ ॥ तेषाञ्चपितरोभूयो दिव्यैःपितृभिरन्विताः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुः प्रोचुश्चदीनमानसाः ॥ २॥ भगवन्वत्सरा
न्तेपि कन्यासंस्थेदिवाकरे॥ नास्माकंवंशजाःश्राद्धं प्रयच्छन्तिदुरात्मकाः ॥ ३ ॥ तेनसम्पीडितादेव क्षुत्पिपासासमा
कुलाः ॥ वयंशरणमापन्नास्तत्प्रतीकारमाचर ॥ ४ ॥ यथापूर्वंमहाभाग वदोपायंलघूत्तमम् ॥ एकाहिकेनश्राद्धेन येना
स्माकञ्चशाश्वती ॥ ५ ॥ तृप्तिस्सञ्जायतेदेव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ वंशक्षयेऽपिजातेपि अस्माकन्तुयतोभवेत् ॥६॥

वाले व कलियुग से मोहित थे उन्होंने वर्षान्त में भी श्राद्ध न दिया ॥ १ ॥ दीन मनवाले उनके पितर दिव्य (देवताओंवाले) पितरोंसे युक्त होतेहुये ब्रह्माकी शरण गये व बोले ॥ २ ॥ कि हे भगवन्! जब कन्याराशि में सूर्यनारायण टिकते हैं तब वर्ष के अन्त में भी वंश में उपजेहुये दुष्टात्मा पुरुष हम लोगों को श्राद्ध नहीं देते हैं ॥ ३ ॥ हे देव! उसी कारण क्षुधा, प्यास से विकल हम लोग शरण में प्राप्त हैं उसका प्रतीकार (यत्न) करिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जैसे कि पहले कहा था वैसेही उत्तम छोटे उपाय को कहिये कि जिससे हे सुरनायक देव! तुम्हारी प्रसन्नता से एकदिनवाले श्राद्धसे हम लोगों को निरन्तरवाली तृप्ति (छकावट)

होवे और वंश विनाश होने पर भी जिससे हम लोगों की तृप्ति होवै ॥ ५ । ६ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उनके उस वचनको सुनकर देरतक ध्यानकरके तद-नन्तर बड़ी दयासंयुत होतेहुये ब्रह्माजीने आदरसमेत कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि मैंने तुम लोगोंकी तृप्तिके लिये और उपाय विचार कियाहै वह छोटाहै कि जिमसे तुम लोगोंकी सदैववाली अत्यन्त तृप्तिहोगी ॥ ८ ॥ कि गयाशिर तीर्थमें भलीभांति प्राप्तहोकर जो मनुष्य एकभी श्राद्ध देवैंगे उसके प्रभाव से उत्तम तृप्ति को पावोगे ॥ ९ ॥ पापात्माभी पुरुष व ब्रह्मघाती भी प्राणी तथा रौरवनरक में टिकेहुये भी व कुम्भीपाक नरक में गयेहुये नरको ॥ १० ॥ व प्रेतयोनि में प्राप्तभी जिसपुरुष

भर्तृयज्ञ उवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा चिरन्ध्यात्वापितामहः ॥ कृपयापरयाविष्टस्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ७ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ अन्योयुष्मत्प्रतृप्त्यर्थमुपायश्चिन्तितोमया ॥ सलघुर्येनवोत्यर्थं तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ८ ॥ गया
शिरस्समासाद्यश्राद्धंदास्यन्तियेनराः ॥ अप्येकन्तत्प्रभावेण दिव्यांतृप्तिमवाप्स्यथ ॥ ९ ॥ अपिपापात्मनःपुंसो ब्र
ह्महस्यापिदेहिनः ॥ अपिरौरवसंस्थस्य कुम्भीपाकगतस्यच ॥ १० ॥ प्रेतभावगतस्यापि यस्यश्राद्धंप्रदास्यति ॥ गया
शिरसिवंशस्यतस्यमुक्तिर्भविष्यति ॥ ११ ॥ एतन्ममवचःश्रुत्वा सांप्रतंभुविमानवाः ॥ निर्द्धनापिकरिष्यन्ति श्राद्धमे
कदिनेत्रच ॥ १२ ॥ गयाशिरसिसुव्यक्तं युष्माकंमुक्तिदायकम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वापितरस्तस्य वचनंपरमे
ष्ठिनः ॥ १३ ॥ अनुज्ञातास्ततस्तेनस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ ततःप्रभृतिश्राद्धानिप्रवृत्तानिधरातले ॥ १४ ॥ पिण्डदान
समेतानि यावदापुरुषत्रयम् ॥ पूर्वंब्रह्मादितःकृत्वायेकेचित्पुरुषागताः ॥ १५ ॥ परलोकंसमुद्दिश्यतावन्तःशक्तितो

को जो गयाशिर में श्राद्ध देवैगा उसके वंशकी मुक्ति होगी ॥ ११ ॥ मेरे इस प्रकट वचन को सुनकर इससमय भूमि में धनहीन भी पुरुष तुम लोगों की मुक्तिदा-यक श्राद्धको एकदिन इस गयाशिरतीर्थ में करैंगे भर्तृयज्ञ बोले कि उन ब्रह्माके उस वचनको सुनकर पितर ॥ १२ । १३ ॥ तदनन्तर उन ब्रह्मासे आज्ञा दिये हुये व अपने स्थानों को भजते भये (प्राप्तहुये) तब से लगाकर तीनपुरुषोंतक पिण्डदान सहित श्राद्ध भूतल में वर्तमान हुए पहले ब्रह्मा से लगाकर जो पुरुष पर-

लोक गये हैं हे राजन्! उतनेही गिनतीके द्विजेन्द्रों को शक्ति से मनोरथदेते हुये भी उतनेही पुरुषों को भलीभांति उद्देशकर श्राद्ध करते हैं ॥ १४ । १५ । १६ ॥
यह बिन देवोंवाली श्राद्ध निर्धनियों को सुखदायक व पितरों, देवताओं तथा मनुष्यों को अतितृप्तिदायक है ॥ १७ ॥ उसी कारण पितरोंकी तृप्तिको चाहनेवाले
व विशेषकर जाननेवाले पुरुषको इन समयोंमें उपायसे श्राद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥ व दोनों लोकोंको चाहनेवालेनरको गयामें विशेषकर श्राद्धकरना चाहिये जो पुरुष
चन्द्रसंक्षय (अमावस) में पितरों को श्राद्ध नहीं देता है ॥ १९ ॥ उसके पितर क्षुधा, प्याससे घिरेहुये अङ्गोंवाले व दुःखित होते हैं और गुप्त मनोरथ से संयुतहोते

नृप ॥ तत्सङ्ख्यानांद्विजेन्द्राणां दत्तवन्तोपिवाञ्छितम् ॥१६॥ अदैवतमिदंश्राद्धं दरिद्राणांसुखावहम् ॥ पितृणांदेवताना
ञ्च मनुष्याणांसुतृप्तिदम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छ्राद्धंप्रकर्तव्यंपुरुषेणविजानता ॥ पितृणांवाञ्छतातृप्तिं कालेष्वेतेषुयत्नतः ॥
१८ ॥ गयायाञ्चविशेषेण लोकद्वयमभीप्सता ॥ नददातिनरःश्राद्धं पितृणांचन्द्रसंक्षये ॥ १९ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः
पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ प्रेतपक्षंप्रतीक्षन्ते गूढवाञ्छासमन्विताः ॥ २० ॥ कर्षुकाजलदंयद्वद्दिवानक्तमतन्द्रिताः ॥ प्रे
तपक्षेऽत्यतिक्रान्ते यावत्कन्यागतोरविः ॥ २१ ॥ तावच्छ्राद्धंप्रवाञ्छन्ति दत्तंस्वैःपितरस्सुतैः ॥ ततस्तुलागतेप्येके सू
र्य्येवाञ्छन्तिपार्थिव ॥ २२ ॥ श्राद्धंस्ववंशजैर्दत्तं क्षुत्पिपासासमाकुलाः ॥ तस्मिन्नपिव्यतिक्रान्ते कालेचालिगतेरवौ ॥
२३ ॥ निराशाःपितरोदीनास्ततोयान्तिनिजालयम् ॥ मासद्वयंप्रतीक्षन्ते गृहद्वारंसमाश्रिताः ॥ २४ ॥ वायुभूताःपिपा
सार्ताः क्षुत्क्षामाःपितरोनृणाम् ॥ यावत्कन्यागतस्सूर्य्यस्तुलास्थश्चमहीपते ॥ २५ ॥ तथादर्शदिनेतद्वद्ब्रह्मणोवचनान्नृ

हुये प्रेत पक्षको वैसेही परखते हैं ॥ २० ॥ जैसे कि निरालसीहोते हुये किसान दिनरात मेघको देखते हैं व प्रेत पक्षके बीतने पर जबतक सूर्यनारायण कन्याराशि
में प्राप्त रहते हैं ॥ २१ ॥ तबतक अपने पुत्रोंसे दीहुई श्राद्धको पितर इच्छा करते हैं तदनन्तर हे राजन्! तुला में सूर्य को प्राप्त होने पर भी कितेक क्षुधा, प्याससे
विकल पितर अपने वंश में उपजेहुये पुरुषों से दीहुई श्राद्धको चाहते हैं उससमयके भी बीतजाने पर जब सूर्यनारायण वृश्चिक राशि में प्राप्त होते हैं तब ॥
२२।२३ ॥ उसके उपरान्त बिनआसरे व दीन होतेहुये पितर अपने स्थानको चले जाते हैं और प्यास से विकल व भूंख से दुबले मनुष्यों के पितर पवन होतेहुये घर

के द्वार पै भली भांति टिककर दो महीने तक परखते हैं हे भूपते ! जबतक सूर्य कन्याराशि में होवैं व तुलाराशि में स्थित होवैं तबतक ॥ २४ । २५ ॥ व वैसेही दर्श (अमावस) दिन में हे राजन् ! पितरोंकी तृप्तिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदैव उसीकारण ब्रह्माके उस वचनसे श्राद्ध करना चाहिये ॥ २६ ॥ व हे राजन् ! जैसे कि ब्रह्मा के वचन हैं वैसेही विशेषकर तिलों से मिलाहुआ जल देना चाहिये और उसके अभाव में भी विद्वान्को अमावसवाली श्राद्ध देना चाहिये ॥ २७ ॥ व उसके अभाव में जब दिन नायक (सूर्य) कन्याराशि में भलीभांति टिके हों तब व उसके अभाव में गया तीर्थ में एकबार श्राद्ध देवै ॥ २८ ॥ कि जिससे नित्य ही दीहुई श्राद्ध का फल भोग करताहै हे नरनायक ! मुझ से जो पूंछा गया यह सब तुमसे मैंने वर्णन किया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! पितरों में परायण पुरुष अमावस व

प ॥ तस्माच्छ्राद्धंसदाकार्य्यं पितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ २६ ॥ तिलोदकंविशेषेण यथाब्रह्मवचोनृप ॥ तदभावेपिदर्शीयं श्राद्धंदेयंविपश्चिता ॥ २७ ॥ तदभावेचकन्यायां संस्थितेदिवसाधिपे ॥ तदभावेगयायाञ्च सकृच्छ्राद्धंविनिर्वपेत ॥२८॥ येननित्यप्रदत्तस्य श्राद्धस्यफलमश्नुते ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ २९ ॥ यत्नेनक्रियतेश्राद्धं जनैःपितृपरायणैः॥ अमावास्यांविशेषेण प्रेतपक्षेचपार्थिव॥३०॥ यश्चैताञ्छृणुयात्पुण्यां श्राद्धोत्पत्तिपरश्चयः ॥ ससर्वदोषनिर्मुक्तः श्राद्धदानफलंलभेत् ॥ ३१ ॥ श्राद्धकालेपठेद्यस्तुश्राद्धोत्पत्तिमिमांनृप ॥ अक्षयंभवतेश्राद्धं सर्वच्छिद्रविवर्जितम् ॥ ३२ ॥ असद्द्रव्येणवाचीर्णमनर्हैर्ब्राह्मणैरपि ॥ अनुक्तंकर्महीनंवा मन्त्रहीनमथापिवा ॥ ३३ ॥ सर्वसम्पूर्णतां याति कीर्तनात्पार्थिवोत्तम॥ अस्याःश्राद्धसमुत्पत्ते कीर्तनाच्छ्रवणादपि ॥३४॥ इति षडधिकद्विशततमोध्यायः॥२०६॥

विशेषकर प्रेतपक्षमें यत्नसे श्राद्ध करते हैं ॥ ३० ॥ जो पुण्यदायक इस श्राद्धकी उत्पत्ति को सुनताहै व जो तत्पर होताहै समस्त दोषोंसे छूटा हुआ वह श्राद्ध दान के फल को पाताहै ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! जो श्राद्ध समय में इस श्राद्ध की उत्पत्ति को पढ़ताहै उसकी समस्त श्राद्ध दोषों से रहित अविनाशिनी होतीहै ॥ ३२ ॥ व अशुभ वस्तुओं से कीहुई व अयोग्य ब्राह्मणों से भी न कहा व कर्म से हीन अथवा मन्त्रहीन भी जो होवै ॥ ३३ ॥ वह सब हे नृपोत्तम ! इसके कहने से सम्पूर्णताको प्राप्त होताहै व श्राद्ध के भलीभांति उत्पन्न होनेपर इसके कहने व सुनने से भी सब सम्पूर्णताको प्राप्त होतीहै ॥ ३४ ॥ इति श्राद्धोत्पत्तिर्नामषडधिकद्विशततमोध्यायः॥२०६॥

दो० । जिमि मन्वादिक समय सब कहे श्राद्ध के हेत । दोसौ सप्तममें सोइ सब वरणत हर्ष समेत ॥ आनर्त्त बोला कि हे मुनिनायक ! सब नरों को जिस विधि से श्राद्ध करना चाहिये उसको सम्पूर्णतासे कहिये मेरे बड़ी भारी श्रद्धा स्थित है ॥१॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं मनुष्यों को समस्त कामनादायक व पितरों को नित्यही प्रसन्नतादायक श्राद्धकी उत्तम विधि कहूंगा ॥ २ ॥ कि उत्तम कर्म से इकट्ठा किये हुये धनों से श्राद्ध कर्मोंको करै व मायादिकों और चोरी, छलादिक व ठगपनों से इकट्ठा कियेहुये धन से न करै ॥ ३ ॥ व अपनी जीविका से इकट्ठा कियेहुये धनों से श्राद्ध की वस्तुको लावै व उत्तम दान से उत्पन्न द्रव्यों व विशेष कर

आनर्तउवाच ॥ विधिनायेनकर्त्तव्यं श्राद्धंसर्वैर्मुनीश्वर ॥ तमाचक्ष्वाथकात्स्न्र्येन श्रद्धामेमहतीस्थिता ॥१॥ भर्तृयज्ञ उवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि श्राद्धस्यविधिमुत्तमम् ॥ पितॄणांतुष्टिदंनित्यं सर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ २ ॥ सुकर्म्मोपार्जितैर्वित्तैः श्राद्धकार्य्याणिचाहरेत् ॥ मायादिभिर्नचौर्येण नच्छलाद्यैर्नवञ्चनैः ॥ ३ ॥ स्ववृत्त्योपार्जितैर्वित्तैः श्राद्धद्रव्यंसमाहरेत् ॥ सुप्रतिग्रहजैर्द्रव्यैर्ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ४ ॥ रक्ष्यमाणैःक्षत्रियस्य वैश्यस्यक्षेत्रसम्भवैः ॥ शूद्रस्यपुण्यलब्धैश्च श्राद्धंकर्तुंप्रयुज्यते ॥ ५ ॥ एवंशुद्धिसमोपेते द्रव्येप्राप्तेगृहान्तिकम् ॥ पूर्वसायाह्नमासाद्य श्राद्धार्हाणां द्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ गृहंगत्वाशुचिर्भूत्वा कामक्रोधविवर्जितः ॥ आमन्त्रयेद्द्विजान्पश्चात्स्नातकान्बाह्यकर्म्मिणः ॥ ७ ॥ तदभावेगृहस्थांश्च ब्रह्मज्ञानपरायणान् ॥ अग्निहोतृपरान्विप्रान्वेदविद्याविचक्षणान् ॥ ८ ॥ श्रोत्रियांश्चतपोवृद्धा

ब्राह्मणों के दान से उपजे हुये धनों से श्राद्धकी वस्तु लावै ॥ ४ ॥ रक्षाकिये हुये क्षत्रिय के व क्षेत्रमें उपजे हुये वैश्य के व पुण्य (पवित्रता) से मिले हुये शूद्र के धनों से श्राद्ध करने के लिये प्रयोग किया जाताहै ॥ ५ ॥ इस प्रकार जब शुद्धि संयुत द्रव्य (वस्तु) घर के समीप प्राप्त होवै तब पहले सन्ध्याको प्राप्त होकर श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों के घर जाकर पवित्र होकर काम, क्रोध से रहित होतेहुये ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करै पश्चात् बाहर कर्मवाले ब्रह्मचारियों का न्योता करै ॥६।७॥ व उनके अभाव में ब्रह्मज्ञान में लगेहुये व अग्निहोत्र में परायण व वेद विद्या में चतुर गृहस्थ ब्राह्मणों का न्योता करै ॥ ८ ॥ व सदैव अपने धर्म में लगे

तथा तपस्या से वृद्ध वेद पाठियों व बहुत सेवकों तथा परिवार वाले व गुणों से संयुत निर्धनी नरोंका निमन्त्रण करै ॥ ९ ॥ और सावधान व रोग से छूटेहुये व भोजनों को जीते व पवित्र ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै हे राजन् ! ये ब्राह्मण श्राद्ध के योग्य कहेगये हैं ॥ १० ॥ और जो अयोग्य कहे गये हैं उनको भी सुनिये मैं तुमसे कहता हूं कि हीन अंगोंवाले, अधिक अंगवाले व सब खानेवाले और निकालेहुये ॥ ११ ॥ व बन्दरके से दांतोंवारे व बिन दांतोंवारे तथा वेद बेंचनेहारे व वेदियोंको नष्टकरने हारे और वेद शास्त्रोंसे रहित ॥१२॥ व निन्दित नखोंवारे, रोगसे संयुक्त, निर्धनी व जीवकी हिंसाकरने वाले व मनुष्यों की निन्दा से संयुक्त, नास्तिक पराये (वेदादि

न्स्वधर्म्मनिरतान्सदा ॥ बहुभृत्यकुटुम्बांश्च दरिद्रान्संयुतान्गुणैः ॥ ९ ॥ अरोगान्रोगनिर्मुक्ताञ्जिताहारांस्तथाशुचीन् ॥ एतेस्युर्ब्राह्मणाराजञ्छ्राद्धार्हाःपरिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥ अनर्हायेचनिर्दिष्टास्तानपिशृणुवच्मिते ॥ हीनाङ्गानधिकाङ्गांश्च सर्वभक्षान्निराकृतान् ॥ ११ ॥ श्यावदन्तानथादन्तान्वेदविक्रयकारकान् ॥ वेदिविप्लवकांश्चापिवेदशास्त्रविवर्ज्जितान् ॥ १२ ॥ कुनखान्रोगसंयुक्तान्निर्द्धनान्परहिंसकान् ॥ जनापवादसंयुक्तान्नास्तिकान्नर्तकानपि ॥ १३ ॥ वार्द्धुषिकान्विकर्मस्थाञ्छौचाचारविवर्जितान् ॥ अतिदीर्घान्कृशान्वापि स्थूलानपिचलोमशान् ॥ १४ ॥ निर्लोमान्वर्जयेच्छ्राद्धे यइच्छेत्पितृगौरवम् ॥ परदाररतांश्चैव तथायोवृषलीपतिः ॥ १५ ॥ षण्डान्मलिम्लुचश्चौरान्राजवैश्यस्य वृत्तयः ॥ सगोत्रायाश्चसम्भूतस्तथैकप्रवरस्तुयः ॥ १६ ॥ कनिष्ठःप्राक्कृतधनः कृतोद्वाहश्चप्राक्शटः ॥ तथाप्राग्दीक्षितोयश्च तथायोगृहसंयुतः ॥ १७ ॥ मातृपितृपरित्यागी तथाचगुरुतल्पगः ॥ निर्दोषांयस्त्यजेत्पत्नीं कृतघ्नोय

निन्दक) व नाचनेवाले भी ॥ १३ ॥ व ब्याजकी जीविकावाले, पराये कर्ममें टिके व पवित्र आचरणोंसे रहित, अति लम्बे व दुबले भी व मोटे भी बहुत रोमोंवाले ॥ १४ ॥ व बिन रोमोंवाले ब्राह्मणों को श्राद्ध में वह वर्जित करै जो कि पितरोंकी गुरुताको इच्छा करै व पराई स्त्रियों में तत्पर व जो शूद्रा का पति होवै उसको ॥ १५ ॥ व नपुंसकों, मलिम्लुचों चोरोंको और जो राजा व वश्य की जीविकावाले हैं उनको व एकही गोत्रवाली स्त्री में उत्पन्न व जो एकप्रवर वालाहै ॥ १६ ॥ व पहले किये धनवाला, पहले किये ब्याह वाला व पहलेही किये जटाओंवाला और जिसने पहले दीक्षा लियाहो ऐसा छोटा द्विज ॥ १७ ॥ व माता, पिताको छोड़नेवाला व गुरुकी

है ॥ १८ ॥ व थवई की जीविकावाला, भालासे जीविकावाला व चमड़े के द्वारा जी-
शय्या पै जानेवाला और जो दोष रहित स्त्री को छोड़ताहै व जो कृतघ्न व किसान ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त श्राद्ध कर्म में शुभ ब्राह्मणों को कहूंगा कि जो ब्राह्मण पुरातन
विकासे संयुत व जिसका वंश नहीं जाना जाताहै इनको श्राद्ध में वर्जित करै ॥ २० ॥ अध्वर्यु के वेदभाग का पाठी व पांचों अग्नियोंवाला और वह्वृचों के वेदभाग का पाठी व शिक्षादिक वेद
समय पापियों की पांति के पवित्र कारक कहे गये हैं ॥ २१ ॥ व पुराण का जाननेवाला, ज्ञानी जानने योग्य, ज्येष्ठ सामका जानने
के छः अंगोंका जाननेवाला जो विद्या, व्रत में चतुर व धर्म के ग्रन्थों का पढ़ानेवालाहो

शिल्पजीवीप्रासजीवी चर्मणाजीविकायुतः ॥ एतानिवर्जयेच्छ्राद्धे येषांनोज्ञायतेकुलम् ॥१९॥
अकर्षुकः ॥ १८ ॥ येब्राह्मणाःपुराख्याताः पापानांपङ्क्तिपावनाः ॥ २० ॥ त्रिणाचिके
अतऊर्द्ध्वंप्रवक्ष्यामि प्रशस्ताञ्छ्राद्धकर्म्मणि ॥ यश्चविद्याव्रतस्नातो धर्म्मद्रोणस्यपाठकः ॥२१॥ पुराणज्ञस्तथाज्ञानी विज्ञेयोज्ये
तःपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ॥ २२ ॥ सद्यःप्रक्षालकःशुक्लस्तथादौहित्रएवच ॥ जामाता
ष्ठसामवित् ॥ अथर्वशिरसोवेत्ता ऋतुगामीसुकर्म्मवित् ॥ मिष्टान्नदोमिष्टवाग्यः सदाजपपरायणः ॥ एतेचब्राह्मणाज्ञेया विशेषात्पङ्क्तिपाव
भागिनेयश्च परोपकरणेरतः ॥ २३ ॥ पितॄणान्तेपिकुर्वन्ति तृप्तिमेवकुलोद्भवाः ॥ २५ ॥ तस्मात्स
नाः ॥ २४ ॥ एतैर्विमिश्रितास्सर्वे गर्हिताअपियेद्विजाः ॥ २६ ॥ श्रुतिशीलविहीनाय सर्वज्ञाया
र्वप्रयत्नेन कुलंज्ञेयंद्विजन्मनाम् ॥ शीलंपश्चाद्वयोनाम कन्यादानंततःपरम् ॥

॥ २२ ॥ व एकही दिन के योग्य भोजन सञ्चय करनेवाला,
वाला, अथर्व शिर का वेत्ता व ऋतु समय में स्त्री के निकट जानेवाला व उत्तम कर्म का जाननेहारा ॥ २३ ॥ व मिष्ठान्न देनेवाला व जो मीठी वाणीवाला हो व सदैव जपमें परायण हो ये ब्राह्मण
गोरे गातवाला व नाती, दामाद, भानजा व पराये उपकार में परायण ॥ २५ ॥ इस
विशेषकर पांतियों के पवित्र कारक कहे हैं ॥ २४ ॥ इन से मिले हुये जो सब निन्दित भी द्विज हैं कुलमें उपजे हुये वे भी पितरों की तृप्तिही करते हैं ॥२६॥
लिये समस्त उपाय से ब्राह्मणों का कुल जानना चाहिये पश्चात् शील (उत्तम आचरण) अवस्था व नाम जानना चाहिये तदनन्तर कन्याको देना योग्य है

ौर जो पुरुष वेद व उत्तम आचरण से हीन सर्वज्ञ के लिये भी श्राद्ध व कन्या को देता है उसने विन अग्नि में हवन किया ॥ २७ ॥ व ऊसर में बीज बोया ौर भूसी का कूटना किया इसलिये कुल, आचार से संयुत ब्राह्मणको श्राद्ध में युक्त करै ॥ २८॥ हे नृप श्रेष्ठ ! जो थोड़ी विद्या को धारनेवाले भी विप्र होवैं उनद्विजों ो इस भांति जानकर तदनन्तर पांव पकडकर ॥ २९ ॥ बड़े उपाय से बायें, दाहिने व दोनों हाथों से शक्ति के अनुकूल वार बार प्रणामकर ॥ ३० ॥ वैसेही दाहिने ाथ से स्पर्श करके इस मन्त्र को कहै कि हे बड़े भाग्यवाले, महाबली, विश्वेदेवताओ ! आइये ॥ ३१ ॥ व मुझ से भक्तिके द्वारा लाये हुये तुम भी व्रत के भागी

पिमानवः ॥ श्राद्धंददातिकन्यांच यस्तेनाग्निंविनाहुतिम् ॥ २७ ॥ ऊषरेवापितंबीजं तुषाणांकण्डनंकृतम् ॥ कुला
चारसमोपेतं तस्माच्छ्राद्धेनियोजयेत् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणान्नृपशार्दूल मन्दविद्याधरानपि ॥ एवंविज्ञायतान्विप्रान्गृहीं
त्वाचरणौततः॥२९॥प्रयत्नेनतुसव्येन पाणिनादक्षिणेनतु ॥ युग्मेनाथयथाशक्त्या नमस्कृत्यपुनःपुनः ॥ ३० ॥ दक्षिणे
नतथालभ्यमन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥ आगच्छन्तुमहाभागाविश्वेदेवामहाबलाः ॥ ३१ ॥ भक्त्याहूतोमयादेव त्वंचापिव्र
तभाग्भव ॥ एवंयुग्मान्समामन्त्र्य विश्वेदेवाकृतेद्विजान् ॥ ३२ ॥ अपसव्यंततःकृत्वा पित्र्यर्थंचाभिमन्त्रयेत् ॥ ब्राह्म
णान्मातृपक्षेच एषएवविधिःस्मृतः ॥ ३३ ॥ ततःपादौपरिस्पृष्ट्वा द्विजस्येदमुदीरयेत् ॥ श्रद्धायुतेनमनसा पितृभक्तिप
रायणः ॥ ३४ ॥ पितामेऽत्रकार्येऽस्मिंस्तथाचैवपितामहः ॥ स्वपित्रासहितोह्येतु त्वञ्चव्रतपरोभव ॥ ३५ ॥ एवंपितॄन्स
माहूय तथामातामहानपि ॥ संमन्त्रिताश्चतेविप्रास्संयतात्मानएवये ॥ ३६ ॥ यजमानःशान्तमना ब्रह्मचर्यसमन्वि

होवो इस प्रकार विश्वेदेवों के लिये दो द्विजों का भलीभांति आमन्त्रण कर ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपसव्य करके पितरों के लिये ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै व मातृपक्ष यही विधि कही गई है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर श्रद्धा संयुत मनकर पितरों की भक्ति मे तत्पर हो ब्राह्मणके पांवोंको पकड़कर यह मन्त्रकहै ॥ ३४ ॥ कि मेरा पिता व अपने पिता समेत पितामह (बाबा) तुम्हारे इस कार्य में आवै व तुम नियममें तत्पर होवो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पितरों व नानादिकों को भी बुलाकर व रोंके हुये मनवाले

जो ब्राह्मण होवैं निमन्त्रण कियेहुये वे आवैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्मचर्य से संयुत व शान्तमनवाला यजमान मनुष्य उस रात्रि को उल्लंघन कर प्रातःकाल उठकर ॥
३७ ॥ उस दिन क्रोध को जीतै व वेदपाठ, निन्दित कर्म, तैल लगाना, मिहनत, यात्रा व सवारी इनको दूर से त्याग करै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर जब सूर्यनारायण मध्य
में प्राप्त होवैं तब कुतुपसंज्ञक (आठवें मुहूर्त) के समय में नहाये व श्वेत वसन धारेहुये वह पितरों व देवताओं का भलीभांति तर्पणकर ॥ ३९ ॥ घर के मध्य
में प्राप्त मनोहर, पवित्र व एकान्त तथा दक्षिण दिशा में झुके हुये स्थान में भली भांति बुलाये हुये संतुष्ट ब्राह्मणों को आनकर श्राद्धकरै ॥ ४० ॥ व जो दक्षिणारहित

तदह्निचजयेत्कोपं स्वाध्यायंकर्म्मकुत्सितम् ॥ तैलाभ्यङ्गंश्रमं
तः ॥ तांरात्रिंसमतिक्रम्य प्रातरुत्थायमानवः ॥ ३७ ॥ तदह्निचजयेत्कोपं स्वाध्यायंकर्म्मकुत्सितम् ॥ तैलाभ्यङ्गंश्रमं
यानं वाहनंचाथदूरतः ॥ ३८ ॥ ततोमध्यङ्गतेभानौ कालेकुतुपसंज्ञिते ॥ स्नातःशुक्लाम्बरधरः सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥
३९ ॥ सन्तुष्टांश्चसमाहूतांस्तान्विप्राञ्छ्राद्धमाचरेत् ॥ विविक्तेगृहमध्यस्थे मनोज्ञेदक्षिणाप्लवे ॥ ४० ॥ दक्षिणारहितं
यचतच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ घटोत्थोलूखलोत्थौच यत्रशब्दौव्यवस्थितौ ॥ ४१ ॥ सूर्य्यस्यचविशेषेण तच्छ्राद्धंव्यर्थं
तांव्रजेत् ॥ यत्रसंस्क्रियमाणेच कलहंसम्प्रजायते ॥ ४२ ॥ पङ्क्तिभेदोविशेषेण तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ ब्राह्मणोयज
मानोवा ब्रह्मचर्य्यंविनायदि ॥ ४३ ॥ भुङ्क्तेदद्याच्चयःश्राद्धंतच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ तुषधान्यमनिष्पूतं यच्चोच्छिष्टंचदी
यते ॥ ४४ ॥ अर्द्धभुक्तघृतंक्षारं तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ येषुकालेषुयद्दत्तं श्राद्धमक्षयतांव्रजेत् ॥ ४५ ॥ तानहंसंप्रव

होवै वह श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होता है व घड़ा और ओखली से उपजे हुये शब्द जहां पै स्थित होवैं ॥ ४१ ॥ व जहां विशेषकर सूपका शब्द प्राप्त होवै वह श्राद्ध
व्यर्थता को प्राप्त होता है व जहां संस्कार करनेपर लड़ाई होवै ॥ ४२ ॥ व विशेषकर पंक्तिभेद होवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व जो ब्राह्मण और यजमान यदि
विना ब्रह्मचर्य्यके श्राद्ध को भोजन करै व देवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व बिन बसाई हुई भूसीवाली धान्य और जो जूठा अन्न दिया जाताहै ॥ ४३ । ४४ ॥
व आधा भोजनकरके धराहुआ व क्षारहोवै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होताहै व जिन समयोंमें जो दिया हुआ श्राद्ध अक्षय (नाशरहित) को प्राप्त होताहै ॥ ४५॥

उनको मैं भलीभांति कहूंगा हे राजन्! एक मन वालेहो सुनिये हे नरनायक! मन्वादिकों को भी तुमसे कहताहूं उनको सुनिये ॥ ४६ ॥ जो कि समस्त पापों के क्षयकारक व नित्यही पितरोंको प्यारे हैं और जो नहाकर श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके तिलोंसे मिलाहुआ जल भी पितरों के लिये देताहै वह अक्षयताको प्राप्तहोता है कुँवार की शुक्लपक्षवाली नवमी व कातिक की द्वादशी ॥ ४७ । ४८ ॥ औरमाघ तथा भादोंकी तीज, फागुनकी अमावस तथा कातिक की एकादशी ॥ ४९ ॥ वैसे ही आपाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी, श्रावण की कृष्ण पक्षवाली सप्तमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ५० ॥ व हे राजन्! वैसेही कातिक महीने की व अन्य फागुन,

क्ष्यामिशृणुचैकमनान्नृप ॥ मन्वादीनपितेवच्मिताञ्छृणुष्वनराधिप ॥४६॥ पितॄणांवल्लभानित्यंसर्वपापक्षयावहाः॥ यस्तुतोयमपिस्नात्वा ददातितिलमिश्रितम् ॥ ४७ ॥ पितृभ्योक्षयतांयाति श्रद्धापूतेनचेतसा॥ आश्वियुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्तिकस्यच ॥ ४८ ॥ तृतीयापिचमाघस्य तथाभाद्रपदस्यच ॥ अमावास्यातपस्यस्य ऊर्जस्यैकादशीतथा ॥ ४९ ॥ तथाषाढस्यदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ५० ॥ तथाकार्त्तिकमासस्य याचान्याफाल्गुनस्यच ॥ चैत्रस्यज्येष्ठमासस्य पञ्चैताःपूर्णिमान्नृप ॥ ५१ ॥ मनूनामादयःप्रोक्ता आसांपूर्वाश्चया नृप ॥ आसुतोयमपिस्नात्वा तिलदर्भविमिश्रितम् ॥ ५२ ॥ पितॄनुद्दिश्ययोदद्यात्सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ इहलोकेपरेचैव पितॄणाञ्चप्रसादतः ॥ ५३ ॥ किमन्नैर्विविधैरत्नैरन्यैर्वस्त्रैःप्रदक्षिणैः ॥ अधुनाशृणुराजेन्द्र युगाद्याःपितृवल्लभाः ॥ ५४ ॥ यासांसंकीर्तनेनापि क्षीयतेपापसञ्चयः ॥ नवमीकार्त्तिकेशुक्ला तृतीयामाधवेसिता ॥ ५५ ॥ अमावास्याचतपसो नभ

चैत व जेठ महीने की ये पांच पौर्णमासी ॥ ५१ ॥ व हे राजन्! जो इनके पहले हैं वे मनुवों की आदि याने मन्वादि कहीगई हैं इनमें स्नानकर जो पुरुष पितरों को उद्देश करके तिल, कुशोंमें मिलाहुआ जल भी देताहै वह पितरों की प्रसन्नतासे इस लोक व परलोक में उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ५२ । ५३ ॥ व अनेक प्रकारके अन्नों, रत्नों व और वसनों और दक्षिणाओं के देनेसे क्या कहना है हे नृपेन्द्र! इस समय पितरों को प्यारे युगादि समयों को सुनिये ॥ ५४ ॥ जिनके भलीभांति कहने से भी पातकों का समूह क्षीणहोजाताहै कातिकमें उजेरी नवमी व वैशाख में शुक्लपक्षवाली तीज ॥ ५५ ॥ और माघकी अमावस, सावन की त्रयोदशी ये क्रम

से सतयुग, त्रेता, कलियुग व द्वापर की आदितिथियां हैं ॥ ५६ ॥ व जब विषुव (दिनरात बराबरवाला) समय होताहै तब वह समय अक्षयकारक कहाहै व हे राजन्! जब मकर व कर्कराशिमें सूर्यनारायण जाते हैं ॥ ५७ ॥ तब अयन नामक समय विषुवसे विशेष होता है व अन्य राशियों में भलीभांति सूर्यका गमन समय संक्रांति ऐसी कहीजाती है ॥ ५८ ॥ जो संक्रांति स्नान, दान, जप, श्राद्ध व होमोंमें बड़े फलको देनेवाली है क्रमसे संक्रांतिपूर्वक सतयुगादिकोंके आदि समय कहेगये ॥ ५९ ॥ हे विप्रजी! इन समयों में दीहुई वस्तुकी क्षय (नाश) संज्ञा नहीं होती है ॥ ६० ॥ व इन समयों में मनुष्य अश्रद्धासे भी जो कुपात्रों के लिये बिन समय में

सश्चत्रयोदशी ॥ कृतत्रेताकलीनान्तु द्वापरस्यादयःक्रमात् ॥ ५६ ॥ तदास्याद्विषुवाख्यस्तु कालश्चाक्षयकारकः ॥ मकरेकर्कटेचैव यदाभानुर्व्रजेन्नृप ॥ ५७ ॥ तदायनाभिधानस्तु विषुवाच्चविशिष्यते ॥ अन्यसंक्रमणंराशौ संक्रांतिरितिकथ्यते ॥ ५८ ॥ स्नानदानजपश्राद्धहोमेषुचमहाफला ॥ कृताद्याःक्रमशःप्रोक्ताः कालास्संक्रान्तिपूर्विकाः ॥ ५९ ॥ नैतेषुविद्यतेविप्र दत्तस्यक्षयसंज्ञिता ॥ ६० ॥ अश्रद्धयापियद्दत्तं कुपात्रेभ्योपिमानवैः ॥ अकालेपिचतत्सर्वं सद्योह्यक्षयतांव्रजेत् ॥ ६१ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ एतत्सामान्यतःप्रोक्तं मयाश्राद्धंयथानरैः ॥ कर्तव्यंविप्रपूर्वैर्यद्वर्णैःपार्थिवसत्तम ॥ १ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि स्वशाखायाःस्मृतंनृप ॥ स्वदेशंवर्णजातीयं यथास्यादत्रनिर्वृतिः ॥ २ ॥ श्राद्धेश्रद्धायतोमूलं तेनश्राद्धंप्रकी

भी दियाजाता है वह सब अक्षयताको प्राप्तहोताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

श्राद्धभोजि द्विजके तथा यजमानहु के धर्म । दोसौ अठवें में कह्यो चरित सुहावन पर्म ॥ भर्तृयज्ञ जी बोले कि हे नृपोत्तम! मैंने यह साधारण से कहा कि जिस प्रकार द्विजपूर्वक जातिवाले मनुष्यों को जो श्राद्ध करना चाहिये ॥ १ ॥ हे राजन्! इसके उपरान्त अपनी शाखासे कहा हुआ निजदेश, वर्ण व जातिवाला विधान कहूंगा कि जिस प्रकार यहां आनन्दहोवै ॥ २ ॥ जिस कारण श्राद्धमें श्रद्धा जड़है उसीसे श्राद्ध कहीगई है इस लिये उस श्रद्धाके करने पर कुछ अनिष्ट भी

व्यर्थताको नहीं प्राप्तहोता है हे नृपेन्द्र ! इस लिये श्रद्धाकरै हे राजन् ! ब्राह्मण के चरणका जल जो भूमिमें गिरता है ॥ ३ । ४ ॥ जो कोई गोत्रमें उपजेहुये बिनपुत्र मरणको प्राप्तहुये हैं वे उस से बड़ी तृप्तिको प्राप्तहोते हैं जैसे कि अमृतसे देवता तृप्तहोते हैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण के चरणजलसे भीगी हुई भूमि जब तक रहती है तब तक पुष्कररूपी पात्रों में पितर पानी पीते हैं ॥ ६ ॥ हे नरेश ! जब श्राद्ध कीजाती है तब फूल, चन्दनादिक जल, अन्न व जलभी जो कुछ भूमिमें गिरता है ॥ ७ ॥ उससे वे पितर उत्तम तृप्तिको प्राप्तहोते हैं कि जो कीटताको प्राप्तहुये हैं हे नरनायक ! कीटता भी व तिर्यक्ता (पशुपक्षी की योनिमें) व जो सर्पताको

र्तितम् ॥ तत्तस्मिन्क्रियमाणेतु नकिञ्चिद्व्यर्थतांव्रजेत् ॥ ३ ॥ अनिष्टमपिराजेन्द्र तस्माच्छ्रद्धांसमाचरेत ॥ विप्रपादोद
कंयच्च भूमौपततिपार्थिव ॥ ४ ॥ जनायेगोत्रजाःकेचिदपुत्रामरणङ्गताः ॥ तेयान्तिपरमांतृप्तिममृतेनयथासुराः ॥ ५ ॥
विप्रपादोदकक्लिनायावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ तावत्पुष्करपात्रेषुपिबन्तिपितरोजलम् ॥ ६ ॥ श्राद्धेचक्रियमाणेतु यत्किञ्चि
त्पतितिक्षितौ ॥ पुष्पंगन्धोदकंचान्नमपितोयंनरेश्वर ॥ ७ ॥ तेनतृप्तिंपरांयान्ति येक्रमित्वमुपागताः ॥ कीटत्वंचापिति
र्यक्त्वं व्यालत्वंयन्नराधिप ॥ ८ ॥ यदुच्छिष्टंक्षितौयाति पात्रप्रक्षालनोद्भवम् ॥ तेनतृप्तिंपरांयान्ति येप्रेतत्वमुपागताः ॥
९ ॥ येचापमृत्युनाकेचिन्मृत्युंप्राप्तास्स्ववंशजाः ॥ असंस्कृतप्रणीतानां त्यागिनांकुलयोषिताम् ॥ १० ॥ उच्छिष्टभाग
धेयानां दर्भेषुविकरश्चयः ॥ विकरेणप्रदत्तेन तृप्तिंयान्तितथाखिलाः ॥ ११ ॥ यत्किञ्चिन्मन्त्रहीनंवा कालहीनमथा
पिवा ॥ विधिहीनञ्चसम्पूर्णं दक्षिणयातुतद्भवेत् ॥ १२ ॥ तस्मान्नदक्षिणाहीनं श्राद्धंकार्य्यंविपश्चिता ॥ यइच्छेच्छाश्व

प्राप्तहोतेहैं वेभी उसीसे तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ८ ॥ पात्रोंके धोनेसे उत्पन्नहुई जूंठनि जो भूमिमें प्राप्तहोतीहै उससे वे उत्तम तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं कि जो प्रेतताको प्राप्त हुये हैं ॥ ९ ॥ व जो कोई अपने वंशमें उपजे हुये अपमृत्यु से मौतको प्राप्तहुयेहैं वे भी उस से तृप्ति को पातेहैं और बिन संस्कार के मरेहुये व कुलमें उपजी हुई स्त्रीको त्यागनेवाले ॥ १० ॥ उच्छिष्ट भागवाले पितरों का जो कुशों में विकर (फेंकाहुआ) है उसी विकर के देने से पूर्वोक्त वे सब तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ११ ॥ और जो कुछ मन्त्रहीन या समयहीन भी अथवा विधिसे हीन होताहै वह दक्षिणा से सम्पूर्ण होताहै ॥ १२ ॥ उसी कारण जो पितरों की सदैववाली तृप्तिको चाहै

व अपनी तृप्ति चाहै उस विद्वान्को दक्षिणासे हीन श्राद्ध न करना चाहिये ॥ १३ ॥ जैसे ऊषर में वर्षा, जैसे अँधियाले में नाच व बधिर के आगे गान निष्फल होता है वैसेही दक्षिणारहित श्राद्ध होती है ॥ १४ ॥ श्राद्धको देकर व भोजनकर वेदपाठ न करना चाहिये व दूसरे ग्रामको न जावै क्योंकि श्राद्ध निष्कामताको प्राप्तहोती है ॥ १५ ॥ श्राद्धमें भोजन करनेवाला व कर्ता जो स्त्रीकी शय्यापै जाता है तो महीने भर उसके पितर वीर्यभोजी होतेहैं ॥ १६ ॥ व श्राद्धभोजी और श्राद्धका दाता जो मैथुन सेवन करताहै उसके पितर निरसन्देह वर्षभर तक वीर्य के भोजन करनेवाले होते हैं यह ऐसी वेदकी ऋचाहै और श्राद्धभोजन करके अथवा श्राद्ध को

तींतृप्तिं पितॄणामात्मनश्चयः ॥ १३ ॥ दक्षिणारहितंश्राद्धंयथैवोषरवर्षितम् ॥ यथातमसिनृत्यञ्च गीतञ्चबधिरस्य च ॥ १४ ॥ श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाच श्राद्धंनिष्कामतांव्रजेत्॥नस्वाध्यायंप्रकर्तव्यं नग्रामान्तरकंव्रजेत् ॥ १५ ॥ श्राद्धभुग्रमणीतल्पं यश्चकर्ताधिगच्छति ॥ तन्मासम्पितरस्तस्यजायन्तेवीर्य्यभोजिनः ॥ १६ ॥ श्राद्धभुक्श्राद्धदाताच यः सेवयतिमैथुनम् ॥ तस्यसंवत्सरंयावत्पितरःशुक्रभोजिनः ॥ १७ ॥ प्रभवन्तिनसन्देह इत्येषावैदिकीश्रुतिः ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा यःश्राद्धंकुरुतेल्पधीः ॥ १८ ॥ स्वाध्यायंपितरस्तस्य यावत्संवत्सरंनृप ॥ व्यर्थश्राद्धफलास्सन्तः पीड्यन्तेक्षुत्पिपासया ॥ १९ ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा यःश्राद्धंमानवाधमः ॥ ग्रामान्तरंप्रयात्यत्र तच्छ्राद्धंव्यर्थतांव्रजेत् ॥ २० ॥ ब्राह्मणेननभोक्तव्यं समायातेनिमन्त्रणे ॥ श्राद्धेभुक्त्वातथान्यत्र सम्प्रयातिह्यधोगतिम् ॥ २१ ॥ यजमानेनचतथा नकार्य्यंभोजनंपरम् ॥ कुर्वन्तियेनरास्सर्वे तेयान्तिनरकंध्रुवम् ॥ २२ ॥ श्राद्धंभुक्त्वाथदत्त्वावा श्राद्धंयोयुद्धमा

देकर जो थोड़ी बुद्धिवाला पुरुष वेदपाठ करताहै हे राजन्! उसके पितर सालभर तक श्राद्धके व्यर्थ फलवाले होकर भूंख, प्याससे पीड़ित होतेहैं ॥ १७ । १८ । १९ ॥ और श्राद्धको भोजनकर व श्राद्धको देकर जो नीचनर यहां दूसरे ग्रामको जाताहै वह श्राद्ध व्यर्थताको प्राप्त होती है ॥ २० ॥ निमन्त्रणके आनेपर ब्राह्मण को भोजन न करना चाहिये क्योंकि जो भोजन कर अन्यत्र श्राद्ध में जाताहै वह अधोगति (नरक) को जाताहै ॥ २१ ॥ और वैसेही यजमान को दुबारा भोजन न करना चाहिये व जो मनुष्य भोजन करलेतेहैं वे सब निश्चय कर नरकको जातेहैं ॥२२॥ श्राद्धको भोजन कर या श्राद्ध देकर जो युद्ध करता है वह निस्सन्देह उस समस्त

श्राद्धको व्यर्थताको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥ उसी कारण हे भूपते ! श्राद्धमें भोजन करनेवाला व यजमान विशेषकर उन समस्त दोषोंको परित्याग करै ॥ २४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । कह्यो मनोरथ भेदहित श्राद्ध सबै बिलगाइ । दोसौ नवयँ में सोई चरित अहै सुखदाइ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे भूपते ! उनके मध्यमें तुमसे कामनावाली श्राद्धों को कहताहूं कि जिनके करने से मनुष्य मनमें टिकेहुये प्रयोजन को भलीभांति प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य इस लोक व परलोकमें भी शीलभूषणवाली

चरेत् ॥ असंदिग्धंहितच्छ्राद्धं समस्तंव्यर्थतांनयेत् ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दोषांस्तान्वैपरित्यजेत् ॥ श्राद्धभुग्यजमानश्च विशेषेणमहीपते ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेऽष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ काम्यानितेषुतेवच्मि श्राद्धानिपृथिवीपते ॥ यैःकृतैस्समवाप्नोति मर्त्योहृदयसंस्थितम् ॥ १ ॥ यो नरोवाञ्छतेनारीं रूपाढ्यांशीलमण्डनाम् ॥ इहलोकेपरेचैव तस्याहंप्रथमंदिनम् ॥ २ ॥ श्राद्धायप्रेतपक्षस्य मुख्यभूतश्चयन्नृप ॥ यइच्छेत्कन्यकांश्रेष्ठां सुशीलांरूपसंयुताम् ॥ ३ ॥ द्वितीयादिवसेतेन श्राद्धंकार्य्यंमहीपते ॥ योवाञ्छति नरोश्वांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ॥ ४ ॥ तृतीयादिवसेश्राद्धं तेनकार्य्यंविपश्चिता ॥ योवाञ्छतिपशून्मुख्यांस्तथाकुप्यधनानिच ॥ ५ ॥ चतुर्थ्यांतेनकर्तव्यं श्राद्धंपितृप्रतुष्टये ॥ पुत्रान्वाञ्छतियोभीष्टान्सुशीलान्वंशमण्डनान् ॥ ६ ॥ पञ्चम्यांतेनकर्तव्यं सदाश्राद्धंनराधिप ॥ यःश्राद्धंवंशजैर्दत्तं परलोकगतिंनृप ॥ ७ ॥ वाञ्छतेतेनकर्तव्यं षष्ठ्यांश्राद्धंविप

व रूप से संयुत स्त्रीकी इच्छा करता है उसको प्रेतपक्षका पहलादिन श्राद्धके लिये योग्य है जोकि हे राजन् ! मुख्यभूत है व जो सुन्दर शीलवाली तथा रूपसे संयुत व श्रेष्ठ कन्याको चाहता है ॥ २ । ३ ॥ हे भूपते ! उसको द्वितीया के दिन श्राद्ध करना चाहिये और जो मनुष्य वेग में पवनके समान वेगवाले घोड़ोंको इच्छाकरताहै ॥ ४ ॥ उस विद्वान् को तीजके दिन श्राद्ध करना चाहिये और जो पुरुष मुख्य पशुवों तथा ताम्रादि धनोंको चाहता है ॥ ५ ॥ उसको पितरोंकी प्रसन्नता के लिये चौथिमे श्राद्ध करना चाहिये और जो वंशको भूषित करनेवाले व सुशील तथा प्रिय पुत्रोंको चाहताहै ॥ ६ ॥ हे नरनायक ! उसको सदैव पंचमी तिथिमें श्राद्ध करना

चाहिये व हे राजन्! जो पुरुष वंशमें उपजे हुये जनोंसे दीहुई श्राद्ध व परलोककी गतिको चाहता है उस विद्वान्को छठिमें श्राद्ध करना चाहिये व हे शत्रुनाशक! जो ग्रीष्म ऋतुवाली ऋषियों की सिद्धिको चाहता है ॥ ७ । ८ ॥ उसको सप्तमी में श्राद्ध करना योग्यहै इसमें सन्देह नहींहै और जो व्यवहार से उपजीहुई द्रव्यकी भलीभांति सिद्धिको चाहता है ॥ ९ ॥ हे नरनाथ! उसको अष्टमी में श्राद्ध करनेके लिये योग्यहै और नवमी में श्राद्धके कार्य से बहुत गुणोंवाले बहुत पुत्रोंको ॥१०॥ व सौभाग्य और रोगनाश व प्रिय संयोग को प्राप्तहोता है और सावधान होताहुआ जो पुरुष दशमी के दिन श्राद्ध करता है ॥ ११ ॥ उसकी समस्त कार्यों में सदैव

ञ्छिता ॥ ऋषिसिद्धिंयइच्छेत ग्रीष्मिकांयोह्यरिन्दम ॥ ८ ॥ सप्तम्यांयुज्यतेतस्य श्राद्धंकर्तुंनसंशयः ॥ यइच्छेत्पण्यसं सिद्धिं व्यवहारसमुद्भवाम् ॥ ९ ॥ अष्टम्यांयुज्यतेश्राद्धं तस्यकर्तुंनराधिप ॥ नवम्यांश्राद्धकृत्येन पुत्रान्बहुगुणान्बहू न् ॥ १० ॥ सौभाग्यंरोगनाशञ्च तथावल्लभसङ्गमम् ॥ दशमीदिवसेश्राद्धं यःकरोतिसमाहितः ॥ ११ ॥ तस्यस्याद्वा ञ्छितासिद्धिस्सर्वकृत्येषुसर्वदा ॥ एकादश्यांधनंधान्यं श्राद्धकर्तालभेन्नरः ॥ १२ ॥ तथारूपप्रसादञ्च यच्चान्यन्मनसि स्थितम् ॥ यःकरोतिचद्वादश्यां श्राद्धंश्रद्धासमन्वितः ॥ १३ ॥ लभेच्चपुत्रान्प्रवरान्सपशून्वाञ्छितानपि ॥ योवाञ्छति नरोमुक्तिं पितृभिस्सहचात्मनः ॥ १४ ॥ असन्तानश्चयस्तस्य श्राद्धेप्रोक्तात्रयोदशी ॥ सन्तानयुक्तोयःकुर्य्यात्तस्यवं शक्षयोभवेत् ॥ १५ ॥ नसन्तानविवृद्धिश्च तस्मान्नेष्टात्रयोदशी ॥ श्राद्धकर्म्मणिराजेन्द्र श्रुतिरेषापुरातनी ॥ १६ ॥ अ पिनःसकुलेभूयाद्योदद्याच्चत्रयोदशीम् ॥ पायसंमधुसर्पिर्भ्यां वर्षासुचमघासुच ॥ १७ ॥ मघात्रयोदशीयोगे पायसे

सिद्धि होतीहै व एकादशीमें जो पुरुष श्राद्ध करताहै वह धन, धान्यको प्राप्तहोता है॥ १२ ॥ व रूप तथा प्रसन्नता व और जो मनमें स्थित होताहै उसको प्राप्त होता है और श्रद्धासंयुत जो पुरुष द्वादशी में श्राद्ध करता है॥ १३ ॥ वह श्रेष्ठ पुत्रों व चाहे हुये पशुवों को भी प्राप्त होताहै व जो नर पितरों समेत अपनी मुक्तिचाहता है॥ १४॥ और जो बिन सन्तान होताहै उसके श्राद्धमें त्रयोदशी कहीगई है व सन्तानयुक्त जो पुरुष तेरसि में श्राद्ध करता है उसका वंश क्षय होजाता है॥ १५॥ और सन्तान की बढ़ती नहीं होती है उसी कारण त्रयोदशी श्राद्ध कर्म में अशुभहै हे नृपेन्द्र! यह पुरानी श्रुतिहै॥ १६॥ पितर कहते हैं कि हमलोगों के वंशमें वह

होवै कि जो तेरसि तिथिमें शहद घी समेत खीरको मघा व वर्षा ऋतुमें देवै ॥ १७ ॥ मघातेरसिके योगमें जो खीरसे पितरोंको पूजताहै उसके पितर उसवर्षभर श्राद्धकी उत्तम क्रियाको नहीं चाहते हैं ॥ १८ ॥ पुण्यकी अधिकता से डरेहुये इन्द्रने उस दिन पिण्डदानका निराकरण किया व पुत्रके मरणमें भय दिखलाया ॥ १९ ॥ जिन की शस्त्रसे मौतहुई है अथवा अपमृत्यु भी हुईहै व उत्पातसे मरेहुये व विषसे मृत्यु को प्राप्त ॥ २० ॥ तथा अग्निसे जलेहुये व जलसे मृत्युको प्राप्त तथा सांप व्याघ्रादिको से नष्ट कियेहुये व सींगों तथा बन्धनोंसे भी जो मरेहैं ॥ २१ ॥ हे नरनायक ! चौदसि में उनका एकोद्दिष्ट करना चाहिये उस दिन श्राद्ध करने पर उनकी उस

नयजेत्पितॄन् ॥ पितरस्तस्यनेच्छन्ति तद्वर्षंश्राद्धसत्क्रियाम् ॥ १८ ॥ पुण्यातिशयभीतेन पिण्डदानंनिराकृतम् ॥ शक्रेणतद्दिनेपुत्रमरणेदर्शितंभयम् ॥ १९ ॥ येषांशस्त्रेणमृत्युःस्यादपमृत्युरथापिवा ॥ उपसर्गमृतानाञ्च विषमृत्युमुपेयुषाम् ॥ २० ॥ वह्निनातुप्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम् ॥ सर्पव्याघ्रहतानाञ्च शृङ्गैरुद्बन्धनैरपि ॥ २१ ॥ एकोद्दिष्टंप्रकर्तव्यं चतुर्दश्यांनराधिप ॥ तेषांतस्मिन्कृतेश्राद्धे तृप्तिस्तत्पक्षजाभवेत् ॥ २२ ॥ सर्वान्कामान्पुराप्रोक्तान्युष्माकंयेमयान्नृप ॥ अमावास्यांददच्छ्राद्धं तानाप्नोतिनसंशयः ॥२३॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं काम्यश्राद्धफलंनृप॥ यच्छ्रुत्वावाञ्छितान्कामान्सर्वानाप्नोतिमानवः ॥ २४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाम्यश्राद्धवर्णनंनामनवाधिकद्विशततमोध्यायः ॥२०९॥
आनर्तउवाच ॥ त्रयोदश्यांकृतेश्राद्धे कस्माद्वंशक्षयोभवेत् ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्वविस्तरात्त्वंमहामुने ॥ १ ॥ भर्तृय

पक्षमें उपजीहुई तृप्ति होती है ॥ २२ ॥ हे पुरुषपते ! मैंने जो तुमसे पहले कहा है अमावस में श्राद्ध देताहुआ पुरुष उन समस्त मनोरथों को निरसन्देह प्राप्तहोता है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस समस्त कामनावाली श्राद्धोंके फलको मैंने तुमसे कहा कि जिसको सुनकर मनुष्य चाहे हुये समस्त अभिलाषों को प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां काम्यश्राद्धवर्णनंनामनवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ❀ ॥

दो० । गजछायादिक योग सब कहे श्राद्धके काल । दोसौ अरु दश में सोई वर्णत उत्तम हाल ॥ आनर्त बोला कि हे महामुने ! त्रयोदशी में श्राद्ध करनेसे किस

कारण वंशका विनाश होताहै यह सब तुम मुझसे विस्तारसे कहो ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन् ! कलियुग से उपजी हुई यह युगादि तिथि अत्यन्त पवित्र और स्नान, दान, जप, हवन व श्राद्धमें अक्षया जानने योग्यहै याने इसमें जो किया जाताहै वह अविनाशी होताहै ॥ २ ॥ हे राजन्! यदि इसी तिथिमें गजच्छाया होवै तो उस महायोग में निश्चयकर श्राद्ध अक्षय तृप्तिवाली होती है ॥ ३ ॥ उस दिन जो पितरों को उद्देश कर शहद समेत दूधको देताहै और वार्द्धीणस के मांस को देता है ॥ ४ ॥ तो वार्द्धीणसके मांस से बारह वर्षकी तृप्ति होती है वार्द्धीणसको कहते हैं कि त्रिपिब याने नदी आदिकों में जल पीतेहुये जिसके तीन अंग जलको

अस्यांचेत्तुगज
ज्ञउवाच ॥ एषामेध्यतमाराजन्युगादिकलिसम्भवा ॥ स्नानेदानेजपेहोमे श्राद्धेज्ञेयातथाक्षया ॥ २ ॥
च्छाया यदिराजन्प्रजायते ॥ तदक्षयंमहायोगे श्राद्धंसञ्जायतेध्रुवम् ॥ ३ ॥ यःक्षीरंमधुनायुक्तं तस्मिन्नहनियच्छति ॥
पितॄनुद्दिश्ययोमांसं दद्याद्वार्द्धीणसस्यच ॥ ४ ॥ वार्द्धीणसस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ त्रिपिबन्त्विन्द्रियक्षीणं
श्वेतंवृद्धमजापतिम् ॥ ५ ॥ तन्तुवार्द्धीणसंविद्यात्सर्वयूथाधिपन्तथा ॥ खड्गमांसञ्चवादद्यात्तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ६ ॥
सञ्जायतेनसन्देहस्तेषांवाक्यंनमेमृषा ॥ ७ ॥ आसीद्रथन्तरेकल्पे पूर्वंपार्थिवसत्तम ॥ सिताश्वोनामपाञ्चालदेशीयः
पितृभक्तिमान् ॥ मधुनाकालशाकेन खड्गमांसेनकेवलम् ॥ ८ ॥ सहिश्राद्धंत्रयोदश्यां कुरुतेपायसेनच ॥ सोमवंशंसमु
द्दिश्य श्राद्धंयच्छतिभक्तितः ॥ ९ ॥ क्षीरदानेनमधुना खड्गमांसेनकेवलम् ॥ अथतैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्सभूपःकौतुका

छूते हैं दो कान व जीभ तीनों से पीताहै वह त्रिपिब है और इन्द्रियोंमे क्षीण, श्वेत व वृद्ध अजापति (छाग) जोकि समस्त समूहों का स्वामी हो उसको वार्द्धीणस जानै अथवा जो गैंड़ाका मांस देताहै तो उन पितरों की बारह वर्षवाली तृप्ति निस्सन्देह होती है यह मेरा वचन झूंठ नहीं है ॥ ५ । ६ । ७ ॥ हे, नृपश्रेष्ठ ! पहले रथन्तरकल्प में पांचाल देशका निवासी भलीभांति उद्देशकर सिताश्व नामक पितरों का भक्तिमान् हुआहै वह चन्द्रवंशको त्रयोदशी तिथिमें केवल कालशाक नामक शाक व गैंड़ेके मांस तथा खीरसे भक्ति समेत श्राद्ध करता था ॥ ८ । ९ ॥ व केवल दूधके दानसे व शहद समेत गैंडेके मांससे श्राद्ध करता था इसके अनन्तर किसी

समय हे राजन्! श्राद्धके उपरान्त उस राजाको श्रद्धासंयुत देखकर उन समस्त ब्राह्मणों ने इच्छाके अनुकूल भोजन कर आश्चर्यसंयुक्त हो उससे पूंछा ॥ १०।११॥ जो राजा कि प्रणामपूर्वक चरण मर्दने में तत्पर था ब्राह्मण बोले कि हे महाराज! श्राद्ध करके अनन्तर ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा देना चाहिये तदनन्तर श्राद्ध पितरों के समीप प्राप्त होती है हे राजन्! वह समर्थित दक्षिणा हमलोगों को अभीतक नहीं दीगई ॥ १२ । १३ ॥ उसी कारण क्रोध छोड़कर उसको शीघ्रही दीजिये देर मत कीजिये भर्तृयज्ञ बोले कि उसको सुनकर उस नृपतिने अतिप्रसन्नचित्त करके कहा ॥ १४ ॥ कि आज मैं धन्यहूं व ब्राह्मणों से दया कियागया हूं इसमें सन्देह नहीं

न्वितैः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पृष्टोभुक्त्वाययेच्छया ॥ श्राद्धादनन्तरंराजन् दृष्ट्वातंश्रद्धयान्वितम् ॥ ११ ॥ पादावमर्द्दनपरंप्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कृत्वाश्राद्धंमहाराज प्रदातव्याथदक्षिणा ॥ १२ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ततःश्राद्धं पितॄणामुपतिष्ठति ॥ सात्वयाकल्पितास्माकं वितीर्णाद्यापिनोनृप ॥ १३ ॥ ततःकोपंपरित्यज्य तांद्रुतंदेहि माचिरम् ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासनृपःप्राहसम्प्रहृष्टेनचेतसा ॥ १४ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि विप्रैरद्यनसंशयः ॥ येवाञ्छन्तिममाभीष्टं श्राद्धेभुक्त्वाथपैतृके ॥ १५ ॥ तस्माद्ब्रूतमहाभागा युष्मभ्यंकिन्ददाम्यहम् ॥ नरान्नागान्मदोन्मत्तान्भद्रजातिसमुद्भवान् ॥ १६ ॥ किंवासप्तिप्रधानांश्च मनोमारुतरंहसः ॥ किंवास्थानानिचित्राणि ग्रामांश्चनगराणिच ॥ १७ ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चिन्नादेयंविद्यतेयतः ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नास्माकंवाजिभिःकार्य्यं नरत्नैर्नच हस्तिभिः ॥ १८ ॥ नदेशैर्ग्राममुख्यैर्वा नान्येनार्थेनकेनचित् ॥ तदर्थेनमहाराज पृष्टोस्माभिर्यतोभवान् ॥ १९ ॥ तस्मा

जोकि पितरों के श्राद्धमें भोजन करके मेरे प्रियको चाहते हैं ॥ १५ ॥ इस लिये हे महाभाग्यवाले द्विजो! आप लोग कहैं मैं क्या तुमलोगों के लिये देऊं मनुष्यों व मदसे मस्त हाथियों या भद्रजाति से उपजेहुये व मन, पवनके समान मुख्य घोड़ों या विचित्र स्थानों व ग्रामों तथा नगरों को देऊं ॥ १६ । १७ ॥ क्योंकि जो कुछ है वह सब पितरोंको उद्देशकर न देनेके योग्य नहीं है ब्राह्मण लोग बोले कि घोड़ों, रत्नों व हाथियों से हमलोगों का कुछ कार्य नहींहै ॥ १८ ॥ और न देशोंसे व मुख्य ग्रामोंसे कार्य है तथा अन्य किसी वस्तुमे कार्य नहीं है क्योंकि हे महाराज! उस प्रयोजनके लिये हमलोगोंने आपसे नहीं पूंछाहै ॥ १९ ॥ इस कारण हे नृपोत्तम!

कौतुकसे संयुत हम सब लोग जो पूंछते हैं उस दक्षिणाको निस्सन्देह हम सबोंको दीजिये ॥२०॥ राजा बोले कि महात्मा ब्राह्मणोंको उपदेश का अधिकारहै क्योंकि वेद शाली क्रियाको देने व ग्रहण करनेके लिये वे उत्पन्न हुये हैं ॥२१॥ हे द्विजोत्तमो ! सो मैं सर्वज्ञ राजा उन तुम सबोंको उपदेश न दूगा जोकि सर्वज्ञ व चतुरहो ॥२२॥ ब्राह्मण बोले कि हे भूपते ! गुरू व शिष्य से उपजा हुआ यह उपदेश होताहै हे राजन् ! हमलोग कुछ प्रार्थना करते हैं उसको तुम भलीभांति कहो ॥ २३ ॥ हे भूपते ! आश्चर्यसंयुत समस्त ब्राह्मणोंके प्रश्न में हमलोग यदि एक प्रश्न पूंछते हैं ॥ २४ ॥ तो इस लिये हे महाभाग ! यदि तत्त्वसे जानते हो व यदि अत्यन्त गुप्त

यांपृच्छामोवयंसर्वेकौतूहलसमन्विताः ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ उपदेशाधिकारो ह्योदक्षिणांदेहि निःसन्देहंनृपोत्तम ॥ स्ति ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ दातुंचैवग्रहीतुञ्च जातास्तेवैदिकींक्रियाम् ॥ २१ ॥ सोहंराजानसर्वज्ञो प्रयच्छामोद्विजो त्तमाः ॥ उपदेशंहियुष्मभ्यं सर्वज्ञायेविचक्षणाः ॥ २२॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ गुरुशिष्यसमुत्थोयमुपदेशोमहीपते ॥ प्रा र्थयामोवयंकिञ्चिन्नृपतन्त्वंसमादिश ॥ २३ ॥ वयञ्चप्रश्नमेकंहि पृच्छामोयदिभूपते ॥ प्रश्नेकौतुकयुक्तानां सर्वेषाञ्च द्विजन्मनाम् ॥ २४ ॥ तस्माद्वदमहाभाग यदिजानासितत्त्वतः ॥ नचेद्गुह्यतमंकिञ्चित्पृच्छामस्त्वांकुतूहलात् ॥२५॥ राजोवाच ॥ यदिवःसंशयोविप्रा युष्मत्प्रश्नमसंशयम् ॥ कथयिष्यामिचेद्गुह्यं तद्वदध्वङ्गतज्वराः ॥ २६ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ अन्नेषुचविचित्रेषु लेह्येषुविविधेषुच ॥ अमृतेषुचसर्वेषु तथान्येषुचपार्थिव ॥ २७ ॥ कस्माद्द्यदिनेब्रूहि मधुय च्छसिगर्हितम् ॥ वर्ततेचयतोभक्ष्यं ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ २८ ॥ तथाविचित्रमांसेषु संस्थितेषुनराधिप ॥ खड्गमांसं

न हो तो कहिये क्योंकि आश्चर्यसे कुछ तुम से पूंछता हूं ॥ २५ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! यदि तुमलोगों को सन्देहहै तो निस्सन्देह तुमलोगों का प्रश्न कहूंगा यदि गुप्तहो तो गये ज्वर (दुःख) वाले तुमलोग कहो ॥ २६ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि हे राजन् ! विचित्र अन्नों व विविध भांति के भोजनों तथा समस्त अमृ- तों और अन्य वस्तुवोंके होनेपर ॥ २७ ॥ और जिसलिये कि विशेषकर ब्राह्मणोंका भोजन वर्तमानहै तो किस कारण आजके दिन निन्दित शहदको देतेहो ॥ २८ ॥

वैसेही हे नरनायक ! विचित्र मांसों के भलीभांति स्थित होनेपर केवल बिन स्वादवाला गैंड़ेका मांस किस लिये देतेहो ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र भूपते ! यहां सम्पूर्णता से भले स्वादुकारक पर्वतोंवाले शाक व्यञ्जनों के लिये हैं ॥ ३० ॥ तो परमभक्तिसे संयुत तुम हमलोगोंको नहीं बड़े स्वादुको पैदाकरनेवाले व कटुता समेत कालशाकको किसलिये देतेहो ॥ ३१ ॥ किसी प्रकार श्राद्धमें मना न करना चाहिये व जिस लिये बतलाया हुआ त्यागना न चाहिये उसीसे हमलोग भोजन करते हैं ॥ ३२ ॥ व जिससे बहुधा तुम देतेहो उसी कारण (मर्यादा) से इस विषयमें गरुवा कारण होहीगा जिससे कि श्राद्धमें स्थिति होती है ॥ ३३ ॥ उसी कारण हमलोगों

निरास्वादं कस्माद्यच्छसिकेवलम् ॥ २९ ॥ सन्तिशाकानिराजेन्द्र पार्वतीयानिसर्वशः ॥ सुष्ठुस्वादुकराण्यत्र व्यञ्जनार्थंमहीपते ॥ ३० ॥ कालशाकंसकटुकंनस्वादुजनकंमहत् ॥ कस्माद्यच्छसिचास्माकं भक्त्यापरमयायुतः ॥ ३१ ॥ नश्राद्धेप्रतिषेधश्च प्रकर्तव्यःकथञ्चन ॥ नत्याज्यञ्चसमुद्दिष्टं तेनभुञ्जामहेयतः ॥ ३२ ॥ तदत्रकारणेनैव गुरुणाभाव्यमेवहि ॥ येनत्वंयच्छसिप्रायो यस्माच्छ्राद्धेभवेत्स्थितिः ॥ ३३ ॥ तस्मात्कथयनःसर्वं परंकौतूहलंहिनः ॥ निःस्वादितं यथाचाद्य यादृक्श्राद्धेविगर्हितम् ॥ ३४ ॥ यथात्वंनृपशार्दूल श्रद्धयासम्प्रयच्छसि ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषां ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ ३५ ॥ सविलक्ष्यस्मितंप्राह सलज्जंपृथिवीपतिः ॥ गुह्यमेतन्महाभागा अस्माकमपिसंस्थितम् ॥ ३६ ॥ अवाच्यमपिवक्ष्यामि शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ अहमासंपुरापापो लुब्धकश्चान्यजन्मनि ॥ ३७ ॥ निहन्तासर्वजन्तूनां तथाभक्षयितापुनः ॥ पर्य्यटामिसदारण्ये धनुषामृगयारतः ॥ ३८ ॥ सिंहोव्याघ्रोगजेन्द्रोवा सारमेयोद्विजोत्तमाः ॥

से सब कहिये क्योंकि हमको परम आश्चर्य है कि आज श्राद्धमें जिस प्रकार जैसा बिन स्वादुवाला व निन्दित भोजन ॥ ३४ ॥ हे नृपपुंगव ! तुम जिस भांति श्रद्धा से भलीभांति देतेहो उन महात्मा ब्राह्मणों के उस वचनको सुनकर ॥ ३५ ॥ विलक्षणता व मुसक्यान समेत व लज्जासहित भूपति बोले कि हे महाभाग्यवाले ब्राह्मणो ! हमलोगों के भी यह गुप्त टिका है ॥ ३६ ॥ मैं न कहने के योग्य भी चरित को कहूंगा सावधान होतेहुये सुनिये पुरातन समय अन्य जन्म में मैं पापी बहेलिया हुआहूं ॥ ३७ ॥ जोकि समस्त जन्तुवों को मारनेवाला व फिर खानेवाला था धनुषसे शिकार में लगाहुआ मैं सदैव जंगल मे घूमता था ॥ ३८ ॥ हे द्विजो-

त्तमो ! सिंह, व्याघ्र, गजेन्द्र या कुत्ता मेरे बाण के सामने प्राप्तहोकर कभी जीताभी न था ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे महाभाग्यवानो ! किसी समय भूतलमें घूमता
हुआ उत्तम मुनि अग्निवेशके आश्रम में जब तक भूंखा व प्यासा मैं आधीरात प्राप्त होनेपर भलीभांति प्राप्त हुआ तब तक वहां शिष्यों से श्राद्धकर्मकी विधिको
कहते हुये वे अग्निवेश ॥ ४० । ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सब ओर शिष्यों से घिरेहुये भलीभांति बैठेथे कि जब चन्द्रमा मघानक्षत्र में टिकाहो व सूर्यभी हस्त में स्थित
होवैं ॥ ४२ ॥ तब वह त्रयोदशी गजसे उपजी हुई छाया जानने योग्य है व जब मघा में चन्द्रमा स्थित होवै व सूर्यभी हस्तनक्षत्र में स्थित होवैं ॥ ४३ ॥ तब वह

कस्यचित्त्वथकालस्य भ्रममाणोमहीतले ॥ सम्प्राप्तोहंमहाभागा महाणगोचरंप्राप्तो नजीवत्यपिकर्हिचित् ॥ ३९ ॥ तावत्तत्रसशिष्याणां श्राद्धकर्म्मविधिंव अग्निवेशस्यसन्मुनेः ॥ ४० ॥ आश्रमेसमनुप्राप्ते निशीथेक्षुत्पिपासितः ॥ त्रयोद दन् ॥ ४१ ॥ संस्थितोवेष्टितःशिष्यैस्समन्ताद्द्विजसत्तमाः ॥ ऋक्षेपित्र्येयदाचन्द्रो भानुश्चापिकरेव्रजेत् ॥ ४२ ॥ त्रयोद शीतुसाछाया विज्ञेयाकुञ्जरोद्भवा ॥ पित्र्येयदास्थितश्चेन्दुर्भानुश्चापिकरेस्थितः ॥ ४३ ॥ तिथिर्वैश्रवणाज्ञेया साछाया कुञ्जरस्यच ॥ सैंहिकेयोयदाचन्द्रं ग्रसतेपर्वसन्धिषु ॥ ४४ ॥ हस्तिच्छायातुसाज्ञेया तस्यांश्राद्धंसमाचरेत् ॥ तस्यांयः कुरुतेश्राद्धं जलैरपिप्रभक्तितः ॥ ४५ ॥ यावद्द्वादशवर्षाणिपितरस्तस्यतर्पिताः ॥ वनस्पतिपतौसोमे याछायासूर्य्यदि ङ्मुखी ॥ ४६ ॥ गजच्छायातुसाज्ञेया पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ साभवेचनसन्देहः पुण्यदापैतृकीतिथिः ॥ ४७ ॥ तस्यांश्रा द्धंप्रकर्तव्यं सम्भारास्सम्भ्रियन्तुये ॥ प्रभातेतुनसन्देहःपितॄणांपितृतृप्तये ॥ ४८ ॥ शाकैस्तथागुडैर्बिल्वैर्बदरैश्चिभि

त्रयोदशी गजकी छाया जानने योग्यहै और जब पर्वकी सन्धियों में राहु चन्द्रमा को ग्रसता है ॥ ४४ ॥ वह गजच्छाया जानने योग्य है उसमें श्राद्धकरै उसमें जो
मनुष्य बड़ी भक्तिसे जलसे भी श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसके पितर बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं व वनस्पतियों के स्वामी चन्द्रमामें जो सूर्यकी दिशाके सम्मुखवाली
छाया होतीहै यानें अमावस तिथि वह गजच्छाया जानने योग्य है उस में पितरों को दियाहुआ अक्षय होता है क्योंकि वह निस्सन्देह पितरों की पुण्यदायक तिथि
होवैहै ॥४६।४७॥ उसमें जो सामग्रियोंको इकट्ठाकरैं पितरोंकी तृप्तिके लिये उनको प्रभातमें पितरोंकी निस्सन्देह श्राद्ध अवश्य करना चाहिये ॥४८॥ शाक, गुड, बिल्व,

बेर व चिर्भटोंसेभी श्राद्धकरै क्योंकि मनुष्य जिस अन्नको खाताहै उसके देवता उसी अन्नके खानेवाले होते हैं ॥ ४९ ॥ उन शिष्योंने बहुत अच्छा ऐसाही कहा व हे महाराज ! नारायण हैं अग्रगामी जिनके वे समस्त शिष्य अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५० ॥ व अन्य ब्राह्मणों समेत अग्निवेश भी सोरहे रातमें उनसे कहेहुये वृत्तान्त को मैंने सुनाहै ॥ ५१ ॥ मैं भी गैंड़ेको मारकर उसका बहुतसा मांस लेकर प्रातःकाल निरसन्देह श्राद्ध करूंगा ॥ ५२ ॥ वैसेही शहद लेकर व विशेषकर कालशाक को भलीभांति लेकर निज जातिवालों के लिये देकर उन पितरों को तृप्त करूंगा ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैं मनसे ऐसा निश्चयकर सो गया

टैरपि ॥ यदन्नंपुरुषोश्नाति तदन्नास्तस्यदेवताः ॥४९॥ बाढमित्येवचैवोक्तं गतास्स्वंस्वंनिकेतनम्॥सर्वेशिष्यामहाराज नारायणपुरोगमाः ॥ ५० ॥ अग्निवेशोपिसुष्वाप सममन्यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तेनसङ्कथ्यमानञ्च रात्रौतत्रश्रुतंमया ॥ ५१ ॥ अहंचापिकरिष्यामि प्रातःश्राद्धमसंशयम् ॥ निहत्यखङ्गमादाय तस्यमांसंसुपुष्कलम् ॥ ५२ ॥ तथामधुसमादाय कालशाकंविशेषतः ॥ स्वजातीयेभ्यआदाय तर्पयिष्यामितान्पितॄन् ॥ ५३ ॥ एवंनिश्चित्यमनसा प्रसुप्तोहंद्विजोत्तमाः ॥ ततःप्रभातेविमले प्रोद्गतेरविमण्डले ॥ ५४ ॥ मधुजालानिभूरीणि गृहीतानिमयाततः ॥ कालशाकस्तथालक्ष्य स्वेच्छयाद्विजसत्तमाः ॥ ५५ ॥ ततस्सर्वंसमादाय अपितंतत्क्षणान्मया ॥ स्नात्वाचनिजवर्गाणां पितॄनुद्दिश्य चात्मनः ॥ ५६ ॥ प्रदत्तंलुब्धकानाञ्च भक्तिपूर्वंद्विजोत्तमाः॥एवंमयापुरादत्तं पितॄनुद्दिश्यतान्निजान् ॥ ५७ ॥ नान्यत्किञ्चित्कचिद्दत्तं कदाचित्कस्यचिन्मया ॥ ततःकालेनमहतामृत्युंप्राप्तोस्म्यहंद्विजाः ॥ ५८ ॥ तद्दानस्यप्रभावेण पार्थिवीं

तदनन्तर प्रातःकाल जब निर्मल रविमण्डल उदय हुआ तब ॥ ५४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! मैं ने बहुत शहद समूहों तथा अपनी इच्छा से काल शाक को देख कर ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उसी क्षण मैं ने उस सब वस्तु को लेकर नहाकर और अपने पितरों को उद्देश कर हे द्विजोत्तमो ! अपने वर्ग वाले बहेलियों को भक्तिपूर्वक दिया इस प्रकार पुरातन समय मैं ने उन अपने पितरों को उद्देश कर दिया है ॥ ५६ । ५७ ॥ व मैंने कभी कहीं किसी को और कुछ नहीं दिया तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! बहुत समयके बाद मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस दानके प्रभाव से राजा की योनि में प्राप्त हुआ व इस प्रकार

मुझ को जाति की स्मरणता भलीभांति प्राप्त हुई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर मेरे वे पितर शहद समेत उस गैंड़े के मांस से बारह वर्षवाली उत्तम तृप्ति को भली भांति प्राप्त हुये ॥ ६० ॥ इसी कारण श्राद्ध में उसका यह फल प्राप्त हुआ इस समय हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धासंयुत मैं वेद के पारगामी व समीप बैठेहुये ब्राह्मणों के द्वारा कुशों व तिलोंसे संयुत मन्त्रपूर्वक जिस श्राद्धको भली भांति विधि से करता ही हूं ॥ ६१ । ६२ ॥ और नहीं जानता हूं कि इस समय क्या फल होगा हे द्विजोत्तमो ! उसीसे तुम लोग भी जानकर ॥ ६३ ॥ जब गजच्छाया उत्पन्न होवै तब अपने २ अवास याने मृत्युवाले दिनके स्थित होने पर पितरोंको भली भांति तृप्त करो ॥६४॥

योनिमाश्रितः ॥ एवंजातिस्मरत्वञ्च सञ्जातंमेद्विजोत्तमाः॥ ५९ ॥ तेचमत्पितरस्तेन खड्गमांसेनमाक्षिकैः ॥ सम्प्राप्ताः परमांतृप्तिं ततोद्वादशवार्षिकीम् ॥ ६० ॥ एतस्मात्कारणाच्छ्राद्धे तस्यैतत्फलमागतम् ॥ साम्प्रतंविधिनासम्यग्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ६१ ॥ उपविष्टैःकरोम्येव यच्छ्राद्धंश्रद्धयान्वितः ॥ दर्भैस्तिलैस्समोपेतं मन्त्रवच्चद्विजोत्तमाः ॥ ६२ ॥ नोजानामिफलंकिंवा साम्प्रतञ्चभविष्यति ॥ तस्मादेवपरिज्ञाय यूयंचैवद्विजोत्तमाः ॥ ६३ ॥ सन्तर्प्पयध्वंपितरो निजावासदिनेस्थिते ॥ छायायांचैवजातायां कुञ्जरस्यद्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥ येनसञ्जायतेतृप्तिः पितृणांद्वादशाब्दिका ॥ युष्माकञ्चगतिःश्रेष्ठा यथाजातामयाधुना ॥६५॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेतेब्राह्मणोत्तमाः ॥ तैस्सर्वैस्तर्पितैस्तेन दत्ताचाशीर्महीपतेः ॥ ६६ ॥ ततःप्रभृतिचक्रुस्तेश्राद्धानिद्विजसत्तमाः ॥ त्रयोदश्यांनभस्यस्य कृष्णायांभक्तितत्पराः ॥ ६७ ॥ मधुनाकालशाकेन खड्गमांसेनतर्प्पिताः ॥ प्राप्नुवन्तिपरांसिद्धिं विमानंवरमास्थिताः ॥ ६८ ॥

जिस से पितरों की बारह वर्षवाली तृप्ति होवै व तुम लोगों की उत्तम गति होवै जैसे कि इस समय मेरी हुई है ॥ ६५ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि उसके उस वचन को सुन कर वे समस्त द्विजोत्तम उससे तृप्त किये गये व उन सबों ने भूपति को आशीर्वाद दिया ॥ ६६ ॥ तब से लगा कर भक्तिमें तत्पर उन द्विजोत्तमोंने श्रावणकी कृष्ण पक्षवाली त्रयोदशी में श्राद्धोंको किया ॥ ६७ ॥ व शहद, कालशाक समेत गैंड़े के मांस से तृप्त किये हुये व उत्तम विमानोंपै बैठेहुये वे पितर उत्तम सिद्धिको प्राप्त

होते थे ॥ ६८ ॥ व विशेष कर पितर देवों के साथ ईर्षा करते थे वंश में उपजे हुये पुरुष से दी हुई श्राद्ध का प्रभाव देख कर देवतोत्तमों ने ॥ ६९ ॥ उस श्राद्ध के अर्थ को जान कर तदनन्तर हे राजन् ! आदित्य, वसु, रुद्र व अश्विनीकुमार भी इन सबों ने सलाह किया ॥ ७० ॥ कि वैसे ही सूर्यनारायण को कन्याराशि में स्थित होने पर जो पुरुष तेरसि में श्राद्ध करैगा उस का वंश विनाश होगा ॥ ७१ ॥ जिससे डरे हुये नर गजच्छाया व विशेष कर तेरसि में श्राद्ध नहीं करतेहैं क्योंकि उस का वंश नाश होजाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेगजच्छायामाहात्म्येदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

स्पर्द्धन्तेसहितादेवैः पितरश्चविशेषतः ॥ वंशजेनप्रदत्तस्यप्रभावंसुरसत्तमाः ॥ ६९ ॥ श्राद्धार्थंतत्परिज्ञाय मन्त्रंचक्रुस्ततःपरम् ॥ आदित्यावसवोरुद्रा नासत्याविपिपार्थिव ॥ ७० ॥ तथायोमानवःश्राद्धं त्रयोदश्यांकरिष्यति ॥ कन्यासंस्थेसहस्राशौ तस्यस्याद्वंशसंक्षयः ॥ ७१ ॥ येनभीतानकुर्वन्तिछायायांकुञ्जरस्यच ॥ विशेषेणत्रयोदश्यां तस्यवंशोयतोहतः ॥ ७२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेगजच्छायामाहात्म्येदशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१० ॥

भर्तृयज्ञउवाच ॥ एतस्मात्कारणात्कश्चित्तस्मिन्नहनिपार्थिव ॥ ददातिनैवचश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यकर्हिचित् ॥ १ ॥ वंशच्छेदभयाद्राजन्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ श्राद्धंविनापिदातव्यं तद्दिनेमधुनासह ॥ २ ॥ पायसंब्राह्मणेभ्यश्च सघृतंतृप्तिकारणात् ॥ खड्गमांसंकालशाकं मांसंवार्ध्रीणसोद्भवम् ॥ ३ ॥ प्रदेयंब्राह्मणेभ्यश्च तत्समंतदुदाहृतम् ॥ अपिबाह्येन्द्रिय

दो॰ । जिमि मांसादिक समय सब कह्यो श्राद्ध के हेत । दोसौ गेरह में सोई बरणत बुद्धिनिकेत ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे राजन् ! इसी कारण वंशनाशके डर से उस दिन कभी कोई पितरों को उद्देश कर श्राद्ध नहीं देता है हे राजन् ! मैं ने यह सत्य कहा है उस दिन श्राद्ध के विना भी तृप्ति के कारण ब्राह्मणों के लिये शहद समेत व घृत सहित खीर देना चाहिये व गैंड़े का मास, कालशाक व वार्ध्रीणस से उपजा हुआ मांस ॥ १ । २ । ३ ॥ ब्राह्मणों के लिये अवश्य कर देना चाहिये क्योंकि

॥ ४ ॥ यह छाग पितरों को सदैव तृप्तिदायक वार्द्धीणस कहा गया है उस
उसी के बराबर वह कहा गया है बाहरी इन्द्रियों से क्षीण व समस्त यूथों का अनुगामी
के अभाव में भी तिलों से मिला हुआ जल देना चाहिये ॥५॥ जो कि कुश समेत व सोने सहित तथा सुवर्ण के खण्ड से संयुत होवै हे राजन् । पुरुष को पक्ष भर
श्राद्ध करने से जो फल होता है हे भूप! वह सब उस दिन में होता है हे राजन्! श्राद्ध के विना भी पितरों को उद्देश कर घृत, शहद व खीर से या कालशाक, शहद
समेत गैंड़े के मांस से जो श्राद्ध देता है उस के पितर तृप्त होते हैं यह पुरानी श्रुति वेद की ऋचा है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ इस लिये सब उपाय से पितृपक्ष के उप-

क्षीणः सर्वयूथानुगस्तथा ॥ ४ ॥ एषवार्द्धीणसःप्रोक्तः पितॄणांतृप्तिदःसदा ॥ तस्याभावेपिदातव्यं जलंतिलविमिश्रितम् ॥ ५ ॥ सदर्भंसहिरण्यञ्च हिरण्यशकलान्वितम् ॥ यच्छ्रेयोजायतेपुंसः पक्षश्राद्धेनपार्थिव ॥ ६ ॥ कृतेनतत्फलं कृत्स्नंतस्मिन्नहनिपार्थिव ॥ पितॄनुद्दिश्यचाज्येन मधुनापायसेनच ॥ ७ ॥ कालशाकेनमधुना खड्गमांसेनवानृप ॥ श्राद्धंविनापिदत्तेयःश्रुतिरेषापुरातनी ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृपक्षउपस्थिते ॥ त्रयोदश्यांनभस्यस्य हस्तगेदिननायके ॥ ९ ॥ दारिद्र्येणापिदातव्यं हिरण्यशकलान्वितम् ॥ तोयंतिलैर्युतञ्चापि पितॄणांतुष्टिमिच्छता ॥ १० ॥ आनर्तउवाच ॥ मांसंविगर्हितंविप्र यतःशास्त्रेनिगद्यते ॥ तस्मात्तत्क्रियतेकेन श्राद्धंकीर्तयमेखिलम् ॥ ११ ॥ स्वमांसंपरमांसेन योवर्द्धयतिनिर्दयः ॥ सनूनंनरकंयाति प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः ॥ १२ ॥ त्वञ्चतस्यप्रभावंमे प्रजल्पसिद्विजोत्तम ॥ विशेषाच्छ्राद्धकृत्येवायमेवममसंशयः ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभाग मांसंसद्भिर्विगर्हितम् ॥ श्रा

स्थित होने पर जब दिननाथ सूर्यजी हस्त नक्षत्र में होवैं तब श्रावण की त्रयोदशी में ॥ ९ ॥ पितरों की तृप्ति चाहनेवाले निर्धनी नर को भी सुवर्णखण्ड से
संयुत व तिलों से मिला हुआ भी जल देना चाहिये ॥ १० ॥ आनर्त बोला कि हे विप्र जी! जिस लिये कि शास्त्र में मांस निन्दित है उसी कारण वह श्राद्ध किस
कारण मास से कीजाती है ॥ ११ ॥ यह सब मुझ से कहो यह महर्षियों ने कहा है कि जो निर्दयी पराये मांस से अपना मांस बढ़ाता है वह निश्चय कर नरक को
जाता है ॥ १२ ॥ व हे द्विजोत्तम! तुम विशेषता से श्राद्धके कार्यमें उस मांसका प्रभाव मुझसे कहते हो यही मुझको सन्देह है ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे महा-

भाग ! यह सत्य है कि मांस सज्जनों से निन्दित है और जिस कारण श्राद्ध में विशेष कर युक्त किया जाताहै मैं उस कारण को तुमसे कहताहूं ॥१४॥ जब लोकोंके करनेवाले ब्रह्माने नान्दीमुख अग्रगामी वाले पितरों व देवताओं को भलीभांति पूजकर सृष्टि रचाहै ॥ १५ ॥ तब पहले गैंड़ा व जो वार्द्धीणस है वह पैदाहुआ तदनन्तर जो दिव्य व जो मनुष्यों से उपजे हुये पितर थे ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन सबोंने अपनी बलिभूत की नाईं उनको ग्रहण किया उस के उपरान्त ब्रह्माने उनसे कहा कि हे पितरो ! मैंने इनको ॥ १७ ॥ तुमलोगों के लिये कल्पना किया भलीभांति बलिभूत इनको ग्रहण कीजिये इन दोनोंसे तुमलोगों के लिये मेरे वचन

द्धेवियुज्यतेतस्मात्तत्तेहंवच्मिकारणम् ॥ १४ ॥ यदाचरचितासृष्टिर्ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ सम्पूज्यचपितॄन्देवान्नान्दीमुखपुरस्सरान् ॥ १५ ॥ तदाखड्गःसमुत्पन्नः पूर्ववार्द्धीणसश्चयः ॥ ततोयेपितरोदिव्यायेचमानुषसम्भवाः ॥ १६ ॥ जगृहुस्तेततस्सर्वेबलिभूतमिवात्मनः ॥ तानुवाचततोब्रह्माएतौतुपितरोमया ॥ १७ ॥ युष्मभ्यंकल्पितौसम्यग्बलिभूतौप्रगृह्यताम् ॥ एताभ्यांपरमाप्रीतिर्युष्मभ्यंसम्भविष्यति ॥ १८ ॥ ममवाक्यादसंदिग्धंपरमेतौनरोभुवि ॥ नैवसंप्राप्स्यतेपापंयुष्मदर्थंहनन्नपि ॥ १९ ॥ कृतकृत्यःपुमान्सोत्र शुभंसर्वंभविष्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्यंभूतिमिच्छता ॥ २० ॥ तौचापिपरमौदिव्यौ स्वर्गलोकंगमिष्यतः ॥ घातकस्यपरंश्रेयो भविष्यतिचदुर्लभम् ॥ २१ ॥ पितॄणांवाञ्छितातृप्तिर्भवेद्द्वादशवार्षिकी ॥ एतस्मात्कारणाच्छस्तं मांसमाभ्यांनराधिप ॥ २२ ॥ तस्मिन्नहनिनान्यत्र नियोगस्तस्यकीर्तितः ॥ रोहिताश्वउवाच ॥ अप्राप्तखड्गमांसस्य तथावार्द्धीणसस्यच ॥ २३ ॥ कथंश्राद्धंभवेद्विप्र पितॄणांतृप्तिकारकम् ॥

से निस्सन्देह बड़ी प्रसन्नता होगी परन्तु भूमि में तुमलोगों के लिये इनको मारता हुआ भी मनुष्य पातक को न पावैगा ॥ १८ । १९ ॥ और वह पुरुष यहां कृतकृत्य होगा व सब शुभ होगा उसी कारण ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुष को समस्त उपाय से देना चाहिये ॥ २० ॥ और वे भी दोनों परम दिव्य होकर स्वर्गलोक को जावैंगे व मारनेवाले का दुर्लभ व उत्तम कल्याण होगा ॥ २१ ॥ और पितरों की बारह वर्षवाली वाञ्छित तृप्ति होवै है इसी कारण हे नरनायक ! इन दोनों का मांस शुभ है ॥ २२ ॥ उस दिनके सिवाय और दिनमे उस मांसका नियोग नहीं कहाहै रोहिताश्व बोले कि हे विप्रजी ! वार्द्धीणस व गैंडेके मांसको न पायेहुये पुरुष की श्राद्ध

किस प्रकार पितरों को तृप्ति कारक होती है मार्कण्डेय जी बोले कि सहत समेत गैंड़ेके मांस व खीरसे श्राद्ध देना चाहिये ॥ २३ । २४ ॥ उस से भी पितरों की तृप्ति वाली तृप्तिहोतीहै हे राजन् ! सूसिसे उपजा हुआ अन्य मांस ॥ २५ ॥ महीना वर्जित बर्षभर याने गेरह महीने तक पितरोंकी तुष्टिके लिये कहागयाहै हे महाराज ! उसके अभावमें बँड़ैलका मांस दश महीने तक पितरोंको प्रसन्नता दायक कहाहै इसमें सन्देह नहींहै और जंगली भैंसेसे उपजे हुये मासके द्वारा नौ महीनेवाली तृप्ति होती है ॥ २६ । २७ ॥ और शम्बर (मृगभेद) के मांससे व चौगड़े के मांस से पांच महीने तक तृप्तिहोती है और साहीके मांससे चार व तित्तिर के मांससे तीन

मार्कण्डेयउवाच ॥ मधुनाखड्गमांसेनदातव्यंपायसेनच ॥ २४ ॥ तेनापिवार्षिकीतृप्तिः पितॄणांचोपजायते ॥ अन्यंच पिशितंराजञ्छिशुमारसमुद्भवम् ॥ २५ ॥ पितृप्रतुष्टयेप्रोक्तंवत्सरंमांसवर्जितम् ॥ तदभावेवराहस्य दशमासप्रतुष्टिदम् ॥ २६ ॥ मांसंप्रोक्तंमहाराज पितॄणांनात्रसंशयः ॥ आरण्यमहिषोत्थेनतृप्तिःस्यान्नवमासिका ॥ २७ ॥ शम्बरोस्यतुमांसेन शशकस्यतुपञ्चच ॥ चत्वारश्शल्लकस्योक्तास्त्रयोवातैत्तिरस्यच ॥ २८ ॥ मासद्वयञ्चमत्स्यस्य मासमेकंकपिञ्जलम् ॥ नान्येषांयोजयेन्मांसं पितृकार्य्येकथञ्चन ॥२९॥ एतेषामेवमांसानि पावनानिनृपोत्तम ॥ आनर्तउवाच ॥ कस्मादेतेपवित्रास्स्युर्येषांमांसंप्रयुज्यते ॥ ३० ॥ श्राद्धेचतन्ममाचक्ष्व यथाचद्विजसत्तम ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सृष्टिंप्रकुर्वताजेन पशूनांलोककारिणा ॥ ३१ ॥ खड्गवार्ध्रीणसादीनां पश्चात्सृष्टास्स्वयम्भुवा॥एकादशप्रमाणेन ततश्चान्येनृपोत्तम ॥ ३२ ॥ अजश्चप्रथमस्सृष्टस्सतथामेध्यताङ्गतः ॥ तथैतेप्रथमाःसृष्टाः पशवोत्रनराधिप ॥ ३३ ॥ स

महीने तृप्ति के कहेगये हैं ॥२८॥ व मछरी का मांस दो महीने तथा कपिंजल का मांस एक महीने तक तृप्ति देताहै अन्यजीवों का मांस किसी प्रकार पितरोंकेकार्य में न युक्त करना चाहिये ॥ २९ ॥ हे नृपोत्तम ! इन्हीं के मास पवित्र कारक हैं आनर्त्त बोला कि किस कारण ये पवित्र हैं कि जिनका मांस श्राद्ध में युक्त किया जाता है हे द्विजोत्तम ! जैसाहो वैसा वह मुझसे कहिये भर्त्तृयज्ञ बोले कि हे नृपोत्तम ! लोकोंके करनेवाले, पशुवों की सृष्टि करतेहुये ब्रह्माने गेरहकी प्रमाणसे गैंड़ा आदि पशुवों को पहले रचा तदनन्तर पीछे अन्य पशुवों को रचाहै ॥३०।३१।३२॥पहले छाग बनाया गया है वह वैसेही पवित्रता को प्राप्त है हे नरनायक ! वैसेही

यहां ये पहले वाले रचेहुये पशुहैं ॥ ३३ ॥ अन्नोंको रचतेहुये उन ब्रह्माने पहले तिल बनाया और श्राद्धके साठीधान रचेगये व अन्नोंमें पहले काकुनि ॥ ३४ ॥ गेहूं, यव, उड़द व मूंग और हे राजन् ! फसही भी व सावां रचागयाहै हे राजन्! इनको मैंने क्रम पूर्वक कहा ॥३५॥ पितर मांससे तृप्तिकी इच्छा करते हैं और अन्न समेत मांस वर्जित नहींहै जब फूलोंकी जातियां रचीगईं तब पहले छतावरि बनाई गई ॥ ३६ ॥ उसी से वह सदैव श्राद्ध कर्म में मुख्य है और धातुवों को सिरजते हुये उन ब्रह्माने पहले चांदी रचाहै ॥ ३७ ॥ उससे दक्षिणा में बड़ी तृप्तिके लिये श्राद्ध में वह चांदी कही है और चांदी के पात्रों में जो उन पितरों के लिये निश्चयकर

स्यांनिसृजतातेन तिलाःपूर्वविनिर्मिताः ॥ श्राद्धार्थंव्रीहयस्सृष्टा अन्नेषुचप्रियङ्गवः ॥ ३४ ॥ गोधूमाश्चयवाश्चैव माषामुद्गा श्चवैनृप ॥ नीवाराश्चापिश्यामाकाः वक्षिताश्चयथाक्रमम् ॥ ३५ ॥ तृप्तिंमांसेनवाञ्छन्ति मांससान्नंनवर्जितम् ॥ पुष्पजा त्योयदासृष्टास्तदाप्राक्शतपत्रिका ॥ ३६ ॥ सृष्टातेनचमुख्यासा श्राद्धकर्म्मणिसर्वदा ॥ धातूनिसृजतातेन रूप्यंसृ ष्टंस्वयम्भुवा ॥ ३७ ॥ तेनतद्धिहितंश्राद्धे दक्षिणायांप्रतृप्तये ॥ राजतेषुचपात्रेषु यद्धितेभ्यःप्रदीयते ॥ ३८ ॥ पितृभ्य स्तस्यनैवान्तो युगान्तेपिप्रजायते ॥ अभावेरूप्यपात्राणांनामापिपरिकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ तृप्यन्तिपितरोराजन्कीर्त नादपिवैयतः ॥ रसांश्चसृजतातेन मधुसृष्टंस्वयम्भुवा ॥ ४० ॥ तेनतच्छस्यतेश्राद्धे पितृणांतुष्टिदायकम् ॥ यच्छ्राद्धं मधुनाहीनं तद्रसैस्सकलैरपि ॥ ४१ ॥ मिष्टान्नैरपिसंयुक्तैस्तत्पितृणांनतृप्तये ॥ असामान्यमपिश्राद्धे यदिनस्याद्धिमा क्षिकम् ॥ ४२ ॥ नामापिकीर्तयेत्तस्य पितृणान्तुष्टयेयतः ॥ शाकानिसृजतातेन ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ ४३ ॥ कालशा

दियाजाता है उसका अन्त युगान्त में भी नहीं होताहै व चांदीके पात्र न होने में नाम भी कहागयाहै ॥३८ । ३९ ॥ क्योंकि हे राजन् ! कीर्तनसे भी पितर तृप्तहोते हैं और रसोंको रचते हुये उन ब्रह्माने सहत बनायाहै ॥ ४० ॥ उससे श्राद्धमें वह सहत पितरोंको तुष्टि दायक कहाहै और मीठे अन्नोंसेभी संयुक्त व सहतसे हीन उस श्राद्धको जो सब भी रसोंसे करता है वह विशेषभी श्राद्ध पितरों की तृप्तिके लिये नहीं होती है यदि श्राद्ध में सहत न होवै ॥ ४१ । ४२ ॥ तो पितरों की प्रसन्नता के

लिये उसका नाम भी कहै व जिस लिये कि शाकोंको रचते हुये उन ब्रह्मा ने ॥ ४३ ॥ पहले काल शाक सिरजाहै उससे वह तृप्ति दायक है और समय को सिरजतेहुये उन ब्रह्माने पहले कुतुप बनाया है ॥ ४४ ॥ इस लिये यदि पितरोंकी निरन्तर वाली तृप्ति व अपना को सुखचाहै तो विशेषकर जानतेहुये पुरुषको कुतुप समय में श्राद्धकरना चाहिये ॥ ४५ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! विस्तार वाली लताओंको बनाते हुये उन ब्रह्माने पहले कुशोंको बनाया है उस कारण वे श्राद्धके योग्य कहेगये हैं ॥४६॥ व श्राद्धके योग्य ब्राह्मणोंको रचतेहुये उन ब्रह्माने पहले नातियोंको बनाया उससे वे श्राद्धके योग्य कहेगये हैं ॥४७॥ पवित्रतासे रहित हीन, अधिक अंगवालेभी

कंपुरासृष्टं तेनतत्तृप्तिदायकम् ॥ कालंहिसृजतातेन कुतुपःप्राग्विनिर्म्मितः ॥ ४४ ॥ तस्मात्कुतुपकालेच श्राद्धंकार्य्यंविजानता ॥ यदीच्छेच्छाश्वतींतृप्तिं पितॄणामात्मनःसुखम् ॥ ४५ ॥ वीरुधःसृजतातेन विधिनान्नृपसत्तम ॥ दर्भास्तुप्रथमंसृष्टाः श्राद्धार्हास्तेनतेस्मृताः ॥ ४६ ॥ श्राद्धार्हान्ब्राह्मणांस्तेनसृजतापद्मयोनिना ॥ दौहित्राःप्रथमंसृष्टाःश्राद्धार्हास्तेनतेस्मृताः ॥ ४७ ॥ अपिशौचपरित्यक्तं हीनाङ्गाधिकमेवच ॥ दौहित्रंयोजयेच्छ्राद्धे पितॄणांपरितुष्टये ॥ ४८ ॥ पशून्विसृजतातेनपूर्वंगावोविनिर्म्मिताः ॥ तेनतासांपयःशस्तं श्राद्धेसर्पिर्विशेषतः ॥ ४९ ॥ तस्माच्छ्राद्धेघृतंशस्तंप्रदत्तंपितृतुष्टये ॥ प्रजाश्चसृजतातेन पूर्वंसृष्टाद्दिजोत्तमाः ॥५०॥ तस्मात्प्रशस्तास्तेश्राद्धे पितृतृप्तिकरास्तदा ॥ देवांश्चसृजतातेन विश्वेदेवाःसुराःकृताः ॥ ५१ ॥ तेनतेप्रथमंपूज्याःप्रवृत्तेश्राद्धकर्म्मणि ॥ तेरक्षन्तिततःश्राद्धंयथावत्परितर्पिताः ॥ ५२ ॥ विघ्नाणिनाशयन्तिस्म श्राद्धेपूर्वंप्रपूजिताः ॥ एतेमुख्यतमास्सृष्टाः पुराश्राद्धंविनिर्म्मितञ्च ॥ ५३ ॥ स्वयं

नातीको पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धमें युक्तकरै ॥४८॥ पशुवोंको बनातेहुये उन ब्रह्माने पहले गाइयोंको रचाहै उसकारण श्राद्धमें उन गाइयोंका दूध व विशेषकर घी शुभ है ॥४९॥ उस कारण श्राद्धमें पितरोंकी प्रसन्नताके लिये दियाहुआ घी शुभहै व प्रजाओं को सिरजते हुये उन ब्रह्माने पहले द्विजोत्तमों को बनाया ॥ ५० ॥ इस लिये वे उत्तम ब्राह्मण श्राद्ध में सदैव पितरों को तृप्ति दायक हैं व देवताओं को रचते हुये उन ब्रह्माने पहले विश्वेदेवों को बनाया है ॥ ५१ ॥ उस से श्राद्धका कर्म वर्तमान होने पर वे पहले पूजने योग्यहैं उसी कारण यथा योग्य तृप्त किये हुये वे श्राद्ध की रक्षा करते हैं ॥ ५२ ॥ व श्राद्धमें पहले पूजेहुये वे विश्वेदेवा दोषोंको नाशकरते

हैं ये पहले अति प्रसिद्ध रचेगये हैं व आपही ब्रह्मसेही श्राद्ध बनाईगई तदनन्तर देवता रचेगये उस से हे राजन्! वे देवता समस्त लोकोंमें उत्तम प्रसिद्धिको प्राप्त हुये ॥ ५३ । ५४ ॥ हे राजन्! जो पुरुष इन सब वस्तुवों से श्राद्धकी विधि करता है तो वह श्राद्ध घरमें गया श्राद्धके बराबर होतीहै ॥ ५५ ॥ हे राजन्! मैने पितरों की समस्त श्राद्धके इसपरम गुप्त चरितको तुमसे कहा व सब अन्न कहा ॥ ५६ ॥ उसी कारण प्रिय अन्नको देकर व पात्रको छूकर जपै व ब्राह्मणों के अंगूठेको भली भाति लेकर व पकायेहुये भोजन के मध्यमें धरकर ॥ ५७ ॥ और पृथिवी ते पात्रं इस वैष्णवी ऋचासे भोजन करावै व हे राजन्! जो अपने हाथ से केवल लोन

पितामहेनैव ततोदेवाविनिर्मिताः ॥ तेनतेसर्वलोकेषुगताःख्यातिंपरांनृप ॥ ५४ ॥ एतैर्यःसकलैःश्राद्धंविधिंप्रकुरुतेनरः ॥ गयाश्राद्धेनतत्तुल्यं गृहेस्यात्तत्समंनृप ॥ ५५ ॥ एतच्छ्राद्धस्यसर्वस्य मयातेपरिकीर्तितम् ॥ पितृणांपरमंगुह्यं प्रोतमन्नमशेषकम् ॥ ५६ ॥ इष्टमन्नंततोदत्त्वापात्रमालभ्यसञ्जपेत् ॥ विप्राङ्गुष्ठंसमादाय पाकमध्येनिधायच ॥ ५७ ॥ पृथिवीतेपात्रमादाय वैष्णव्याऋचयातथा ॥ स्वहस्तेनचयद्दत्तंप्रत्यक्षलवणंनृप ॥५८॥ तच्छ्राद्धंव्यर्थतांयातिघृतेदत्तेर्द्धभुक्तके ॥सकृज्जलंप्रदत्त्वातुगायत्रीत्रितयञ्जपेत्॥५९॥मधुवातेतिसङ्कीर्त्यततःपृच्छेद्द्विजोत्तमान् ॥ तृप्ताःस्थइतिराजेन्द्र अनुज्ञांप्रार्थयेत्ततः ॥ ६० ॥ बन्धूनांभोजनार्थाय शेषस्यान्नस्यभक्तिमान् ॥ उच्छिष्टसन्निधौपश्चात्पितृवेदींसमाचरेत् ॥ ६१ ॥ पितृविप्राशनस्थानात्त्रिभिर्हस्तैर्यदन्तरम् ॥ ततोवेदींसमाधाय पैतृकींदक्षिणांप्लवाम् ॥६२॥ तस्यां दर्भान्समाधाय कुर्य्याच्चैवावनेजनम् ॥ विभक्त्यापूर्वयापश्चात्पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ६३ ॥ भूयोप्यन्नजलंदद्या

दिया जाताहै ॥ ५८ ॥ तो वह श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्त होती है घृत देनेपर व आधे भोजन करने में एक बार जल देकर तीन गायत्री जपै ॥ ५९ ॥ व मधुवाता ऐसी ऋचा भलीभाति कहकर तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! द्विजोत्तमों से पूंछै कि तुमलोग तृप्तहो तदनन्तर बन्धुवोंको जिवाने के लिये भक्तिमान नर शेष अन्नकी आज्ञाको मांगै पश्चात् जूंठे स्थानके समीप पितृ वेदीको बनावै ॥ ६० । ६१ ॥ कि जिसका बीच पितृ ब्राह्मणों के भोजन स्थान से तीन हाथहो तदनन्तर दक्षिण दिशाको झुकी हुई पितरोंवाली वेदीको भलीभांति बनाकर ॥ ६२ ॥ उसमें कुशोंको भलीभांति धर कर पहले के विभाग से अवनेजनकरै पश्चात् क्रम पूर्वक पिण्डदेवै ॥ ६३ ॥ हे

राजन् ! फिरभी पितृ तीर्थ याने अंगूठा व अंगुलीके मूलसे यहीं जलदेवै और अलग२ उनमें प्रत्येक पिण्डपै सूतदेवै ॥ ६४ ॥ जो पहलेवाले पिण्डोंमें विस्तारित सूत्रको युक्त करता है वह परस्परमें तोड़ने से उनका वैरकरताहै ॥६५॥ तदनन्तर जैसे द्विजोत्तम ब्राह्मणों को भलीभांति पूजै वैसेही पिण्डों का पूजनकरै हे राजन् ! आचमन कर हाथों व चरणों को धोकर ॥ ६६ ॥ व पितरों को प्रणाम करके उसके उपरान्त भलीभांति छिड़ककर हे नृपेन्द्र ! सव्यसे उत्तम आशीर्वादों को मांगकर ॥६७॥ व उनसे अस्तु स्वधा ऐसा कहने उसके उपरान्त पश्चात् अक्षय्य (न नाशहोने योग्य) जलदेना चाहिये व पैंतियोंको लेकर ऊर्ध्व स्वधा ऐसा कहै ॥ ६८ ॥

सवितिपितृतीर्थेनपार्थिव ॥ सूत्रञ्चप्रतिपिण्डंवैदद्यात्तेषुपृथक्पृथक् ॥ ६४ ॥ यःसूत्रंपूर्वपिण्डेषु सततंविनियोजयेत् ॥ रोधञ्चरेत्तेषांत्रोटनाच्चपरस्परम् ॥६५॥ ततःसम्पूजयेद्विप्रान्पिण्डान्यद्वद्द्विजोत्तमान् ॥ आचम्यप्रक्षाल्यतथाहस्तौपादौचपार्थिव ॥ ६६ ॥ पश्चात्पितॄन्नमस्कृत्यप्रोक्षितंतदनन्तरम् ॥ कृत्वासव्येनराजेन्द्र याचयित्वापराशिषः ॥ ६७ ॥ अस्तुस्वधेतितैरुक्तेपिण्डोअक्षय्यंसलिलंदेयं पश्चाच्चैवततःपरम् ॥ पवित्राणिसमादाय ऊर्ध्वस्वधेतिकीर्तयेत् ॥ ६८ ॥ परिपरिक्षिपेत् ॥ ततोमधुसमादाय पायसञ्चतिलोदकम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ज्जंस्वेतिचमन्त्रेण पितॄणामुपरिक्षिपेत् ॥ उत्तानमर्घपात्रन्तुकृत्वादद्याच्चदक्षिणाम् ॥ ७० ॥ हिरण्यंदेवतानाञ्च पितॄणांरजतंतथा ॥ ततःस्वस्त्युदकंदद्यात्पितृपूर्वन्तु सव्यतः ॥ ७१ ॥ नस्त्रीभिर्नचबाल्येन नैवान्येनचकेनचित् ॥ श्राद्धीयंपितृपात्रञ्चस्वयमेवप्रचालयेत् ॥ ७२ ॥ ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेत्पार्थिवोत्तमः ॥ अघोराःपितरःसन्तुअस्मद्गोत्रोविवर्द्धताम् ॥७३॥ दातारोनोभिवर्द्धन्तांवेदास्स

पर पिण्डों के ऊपर सब ओर फेंकदेवै तदनन्तर सहत, खीर व तिल मिलाहुआ जल लेकर ॥ ६९ ॥ ऊर्जस्व ऐसे मन्त्रसे पितरोंके ऊपर फेंकदेवै और अर्घ पात्रको उलटकर देवोंको सुवर्ण व पितरोंको चांदी दक्षिणा देवै तदनन्तर पितृ पूर्वोंको सव्यसे स्वस्तिवाला जलदेवै ॥ ७० । ७१ ॥ न स्त्रिया, न बालक व न और कोईसे श्राद्ध वाले पितृ पात्रको आपही चलावै ॥ ७२ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! जुड़ेहुये हाथोंवाला होकर प्रार्थना करै कि पितर अघोर याने नम्रहोवैं व हमारा गोत्र विशेष

कर बढ़ै ॥ ७३ ॥ व हमारे कुलमें दाता पुरुष बढ़ैं व वेद और सन्तान ही बढ़ै और हमारी श्रद्धा मतजावै व हमलोगोंको बहुत देनेयोग्य होवै ॥ ७४ ॥ व हमारे बहुत अन्नहोवै तथा हमलोग अतिथियों को पावैं और हमलोगों से मागने वाले होवैं तथा हमलोग किसी से मतमांगे ॥ ७५ ॥ इतनेही आशीर्वाद होवैं तदनन्तर विश्वेदेवा प्रीयतां इस मन्त्रसे सव्यके द्वारा पितृ पूर्वकों को जलदेकर ॥ ७६ ॥ व वाजे २ मन्त्रसे करके हद पर्यन्त तक जावै व बलिधरै और पश्चात् हे नरनायक ! जब तक सूर्य देख पड़ैं तब तक मौन से भोजनकरै और जो श्राद्ध कर्ता पुरुष सूर्यास्त होने पर भोजन करता है ॥ ७७ । ७८ ॥ उसकी श्राद्ध व्यर्थता को प्राप्तहोतीहै इसलिये

न्ततिरेवच ॥ श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयञ्चनोऽस्त्विति ॥७४॥ अन्नञ्चनोबहुभवेदतिथींश्चलभेमहि ॥ याचितारश्चनःसन्तु मास्मयाचिष्मकञ्चन ॥ ७५ ॥ एताएवाशिषस्सन्तुविश्वेदेवाप्रीयतांततः ॥ स्वस्त्यर्थमुदकंदत्त्वा पितृपूर्वञ्चस व्यतः ॥ ७६ ॥ वाजेवाजेतिचकृत्वा आसीमान्तमनुव्रजेत् ॥ बलिञ्चनिक्षिपेत्पश्चाद्भोजनंचसमाचरेत् ॥ ७७ ॥ मौनेनदृ श्यतेसूर्य्योयावत्तावन्नराधिप ॥ यश्चैवास्तमितेसूर्य्ये भुज्यतेश्राद्धकृन्नरः ॥ ७८ ॥ व्यर्थतांयातितच्छ्राद्धं तस्माद्भुञ्जी तनोनिशि ॥ ७९ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेश्राद्धकल्पेएकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः२११॥

आनर्तउवाच ॥ एकोद्दिष्टविधिंब्रूहिममत्वंवदतांवर ॥ पार्वणन्तुयथाप्रोक्तं विस्तरेणमहामते ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञउवा च ॥ त्रीणिसञ्चयनादर्वाक्तानित्वंशृणुसाम्प्रतम् ॥ यस्मिन्स्थानेभवेन्मृत्युस्तत्रश्राद्धन्तुकारयेत् ॥ २ ॥ एकोद्दिष्टंत तोमार्गे विश्रामोयत्रकारितः ॥ ततस्सञ्चयनस्थाने तृतीयंश्राद्धमिष्यते ॥ ३ ॥ प्रथमेह्नितृतीयेह्नि पञ्चमेसप्तमेतथा ॥

रातमें न भोजनकरै ॥ ७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्राद्धकल्पेएकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

दो० । एकोद्दिष्ट विधान अरु यथा सपिण्डी कर्म । होतसो दोसौ बारहें माहिं कहत सब मर्म ॥ आनर्त्त बोला कि हे कहने वालोंमें उत्तम, महामते एकोद्दिष्ट विधि व जैसे पार्वण कही है उसको मुझसे विस्तार पूर्वक कहो ॥ १ ॥ भर्त्तृयज्ञ बोले कि अस्थि सचयन से पहले तीन श्राद्धैहोती है इस समय तुम उनको सुनो कि जिस स्थानमें मृत्युहोती है वहां श्राद्धकरै तदनन्तर राहमें जहां विश्राम करायागया हो वहां एकोद्दिष्ट करै उसके उपरान्त अस्थि संचय के स्थान मे तीसरी श्राद्ध इच्छा

की जाती है ॥ २ । ३ ॥ व पहले दिन, तीसरे दिन, पांचवें, सातवें तथा नवयें व गैरहवें दिन वे नव श्राद्धैं होती हैं ॥ ४ ॥ और वैतरणी की प्राप्ति में प्रेत तृप्तिको प्राप्तहोताहै हे नृपसत्तम ! विश्वेदवोंसे हीन व बिन अग्नौकरण तथा आवाहनसे रहित एकोदिष्ट करना चाहिये तदनन्तर स्वदितं याने बहुत अच्छी भांति भोजन किया इसप्रकार एकबार तृप्तिकी प्रश्नकरै ॥ ५ । ६ ॥ अभिरम्यता इस मन्त्र से ब्राह्मणको विदाकरै बिन कटे अग्रभागवाले व बिन टूटे अग्रभाग वाले कुश दो तिनुकाकरै ॥ ७ ॥ उसको पवित्र जानै व एकोदिष्ट में विधानकरै व सबकहीं पितः और तर्पण कर्म में पिता कहाहै ॥ ८ ॥ व संकल्प समय में पित्र्ये और अक्षय्य दान

नवमैकादशेचैव नवश्राद्धानितानिच ॥ ४ ॥ वैतरण्याश्चसंप्राप्तौ प्रेतस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥ एकोद्दिष्टंदैवहीनमनग्नौकरणंतथा ॥ ५ ॥ आवाहनेनसंत्यक्तं कार्य्यंपार्थिवसत्तम ॥ तृप्तिप्रश्नस्तथाकार्य्यःस्वदितञ्चसकृत्ततः ॥ ६ ॥ अभिरम्यतेतिमन्त्रेण ब्राह्मणस्यविसर्जनम् ॥ अच्छिन्नाग्रमभिन्नाग्रंकुर्य्याद्दर्भतृणद्वयम् ॥ ७ ॥ पवित्रंतद्विजानीयादेकोद्दिष्टेविधीयते ॥ सर्वत्रचपितःप्रोक्तं पितातर्पणकर्म्मणि ॥ ८ ॥ पित्र्येसङ्कल्पकालेचपितुरक्षय्यदापने ॥ गोत्रस्वरान्तंसर्वत्र गोत्रस्तर्पणकर्म्मणि ॥ ९ ॥ गोत्रायकल्पनविधौगोत्रस्याक्षय्यदापने ॥ शर्म्मन्नेवादिकर्तव्ये शर्म्मातर्पणकर्म्मणि ॥ १० ॥ शर्म्मणेतस्यदानेच शर्म्मणोक्षय्यकेविधौ ॥ मातर्मात्रेतथामातुरासनेकल्पनेऽक्षये ॥ ११ ॥ गोत्रेगोत्रायैगोत्रायाःप्रथमाद्याविभक्तयः ॥ देविदेव्यैतथादेव्या एवंमातुश्चकीर्तयेत् ॥ १२ ॥ प्रथमाचचतुर्थीच षष्ठीस्यात्तद्धिसिद्धये ॥ विभक्तिरहितंश्राद्धं क्रियतेवाविपर्य्ययात् ॥ १३ ॥ तत्क्षतञ्चविजानीयात्पितॄणामुपतिष्ठति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन

में पितुः व सबकहीं स्वरान्त गोत्र और तर्पण कर्ममें गोत्रः ॥ ९ ॥ सङ्कल्प विधिमें गोत्राय, अक्षय्य दानमें गोत्रस्य व आदि कर्तव्यमें शर्मही तथा तर्पण कर्म में शर्मा ॥ १० ॥ व उसके दानमें, शर्मणे, अक्षय्य विधिमें शर्मणः व आसन में मातः, संकल्पमें मात्रे, अक्षय में मातुःकहे ॥ ११ ॥ व गोत्रे, गोत्रायै, गोत्रायाः प्रथमादि विभक्तियोंको कहै व देवि, देव्यै और देव्याः ऐसा माताको कीर्त्तन करै ॥ १२ ॥ और प्रथमा, चतुर्थी व षष्ठी उसकी श्राद्धके लिये होतीहै और विभक्तियों से रहित व विभक्तियों के उलटने से जो श्राद्ध कीजातीहै ॥ १३ ॥ उसको क्षतजानै और पितरों के समीप क्षतही प्राप्त होती है उसी कारण सर्वत्र विशेषकर जानते हुये

पुरुषको सब उपायसे यथोक्त विभक्तियोंके द्वारा श्राद्धमें विधि करना चाहिये तदनन्तर वर्षके ऊपर सपिण्डी करण स्थित होताहै ॥ १४ । १५ ॥ यदि वृद्धि आनेवाली होवै याने मुण्डनादि कार्य करना हो तो पहले भी करै हे राजन्! विन देववाले प्रेतको उद्देश करके पार्वण में कहीहुई विधि से तीन देववाले एकोद्दिष्ट को एकही पिण्ड से करना चाहिये मेरा यह मत स्मरण कियागयाहै ॥ १६ । १७ ॥ जो प्रेतके लिये कल्पना कियागया है उस अर्घ पात्रको लेकर तीनोंही पितृ पात्रोंमें विधि से फेंकै ॥ १८ ॥ उस के उपरान्त पिण्डके तीन खण्डकरके ये समान ऐसे मन्त्रोंसे उनतीनों पितृ पिण्डोंमें मिलाना चाहिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर अवनेजन करके क्रमके

विभक्तिभिर्यथोक्ताभिः श्राद्धेकार्य्योविधिःसदा ॥ ततःसपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतःस्थि
ब्राह्मणेनविजानता ॥ १४ ॥ विभक्तिभिर्यथोक्ताभिः श्राद्धेकार्य्योविधिःसदा ॥ ततःसपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतःस्थि
तम् ॥ १५ ॥ वृद्धिर्वागामिनीचेत्स्यात्तदर्वागपिकारयेत् ॥ पार्वणोक्तविधानेन त्रिदैवत्यमदैवकम् ॥ १६ ॥ प्रेतमुद्दिश्य
कर्तव्यमेकोद्दिष्टञ्चपार्थिव ॥ एकेनैवतुपिण्डेन ममचैतन्मतंस्मृतम् ॥ १७ ॥ अर्घपात्रंसमादाय यत्प्रेतार्थंप्रकल्पित
म् ॥ पितृपात्रेषुत्रिष्वेव विधानेनपरिक्षिपेत् ॥ १८॥ एवंपिण्डंत्रिधाकृत्वा पितृपिण्डेषुचत्रिषु ॥ येसमानेतिमन्त्राभ्यां
तेषुमेल्यस्ततःपरम् ॥ १९ ॥ अवनेजनंततःकृत्वा पितृपूर्वंयथाक्रमम् ॥ गन्धधूपादिकंसर्वं पुनरेवप्रदापयेत् ॥ २० ॥
पितृपूर्वंसमुच्चार्य्यं वर्जयेच्चचतुर्थकम् ॥ केचिच्चतुर्थंकुर्वन्तिपितरंस्वपितुस्ततः ॥ २१ ॥ पितृपूर्वंभवेच्छ्राद्धं परंनैतन्मतं
मम ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टेनकारयेत् ॥ २२ ॥ क्षयाहेचपरित्यज्य शस्त्राहतचतुर्दशीम् ॥ यःसपिण्डीकृतं
प्रेतं पृथक्पिण्डंनियोजयेत् ॥ २३ ॥ अकृतंचोपजानीयात्पितृहाचोपजायते ॥ पितायस्यतुनिर्वृत्तो जीवितेचपिता

अनुकूल पितृपूर्वकों को फिर चन्दन, धूपादिक सब पितृपूर्वक भलीभांति उच्चारण करके देवै और चौथे को वर्जित करै व कोई उस अपने पिता के सकाश से चौथे पितरको करते हैं ॥ २० । २१ ॥ परन्तु पितृपूर्वक यह चौथे पितरवाली श्राद्ध मेरे मतकी नहीं होती है सपिण्डी करण के उपरान्त शस्त्रसे मरेहुये जनोंकी चौदसि को छोड़कर एकोद्दिष्ट व क्षयाह में चौथे पितर को न करना चाहिये जो सपिण्डी कियेहुये प्रेतको अलग पिण्डमें युक्त करताहै ॥ २२ । २३ ॥ उसको बिन

कियाहुआ जानै और वह पिताका नाशक होताहै व बाबाके जीतेहुये जिसका पिता मरगयाहो ॥ २४ ॥ तो पितामह साक्षात् भोजनकर पिण्डको ग्रहणकरै और पितामह के क्षयाह में पार्वणश्राद्ध इच्छा कीजाती है ॥ २५ ॥ अपने पिताको परित्यागकर उसबाबाको किसीप्रकार श्राद्धदीजाती है उस पिताको श्राद्ध न करनेसे पिता से थोड़ा डर नहीं होताहै ॥२६॥ और पिताके मरने पर समस्त अमावसोंमें पार्वण करना चाहिये यह श्रावण के दूसरे पक्षके मध्यमें कहागया है ॥ २७ ॥ जबतक सपिण्डता न होय तबतक श्राद्ध न करै पिताको मृत्युमें प्राप्तहोनेपर जब श्राद्धवाला पक्षआवै तब ॥ २८ ॥ पितामह आदिकों की श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि एक

महे ॥ २४ ॥ पितामहस्तुप्रत्यक्षंभुक्त्वागृह्णातिपिण्डकम् ॥ पितामहक्षयाहेच पार्वणंश्राद्धमिष्यते ॥ २५ ॥ जनकंस्वंपरित्यज्यकथंचित्तस्यदीयते ॥ तस्याकृतेनश्राद्धेन नस्वल्पंपितृतोभयम् ॥ २६ ॥ अमावास्यासुसर्वासु मृतेपितरिपार्वणम् ॥ नभस्यापरपक्षस्यमध्येचैतदुदाहृतम् ॥ २७ ॥ यावत्सपिण्डतानैवनतावच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ जनकेमृत्युमापन्ने श्राद्धेपक्षेसमागते ॥ २८ ॥ पितामहादिकर्तव्यंश्राद्धंयन्नैकपिण्डता ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेसपिण्डीकरणविधिवर्णनंनामद्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥ * ॥ * ॥

भर्तृयज्ञ उवाच ॥ यतःसपिण्डःक्रियते पितृपिण्डैस्समन्ततः ॥ यावत्सपिण्डतानैव तावत्प्रेतत्वनिर्वृतिः ॥ १ ॥ नापिधर्म्मसमोपेतस्तपसापिसमन्वितः ॥ एतस्मात्कारणात्प्रोक्ता मुनिभिस्तुसपिण्डता ॥ २ ॥ यस्ययस्यजनोन्यत्र योनिंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्रस्थस्तृप्तिमाप्नोति यद्दत्तंतस्यवंशजैः ॥३॥ येषांसानतुसञ्जाता प्रेतत्वञ्चव्यवस्थितम् ॥ दर्श

पिण्डता नहीं है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसपिण्डीकरणविधिवर्णनंनामद्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

दो० । अहै जौनसे नर्कमें जौन वस्तु दुखदाइ । दोसौ तेरहमें सोई कह्यो सूत समुझाइ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि जिस कारण पितृ पिण्डोंके साथ सपिण्ड कियाजाता है उसी लिये जबतक सपिण्डता नहीं होती तबतक प्रेतताकी निवृत्ति नहीं होती है चाहै धर्म संयुत भी तपसे युक्तभी होवै इसीकारण मुनियों से सपिण्डता कही गई है ॥ १ । २ ॥ मनुष्य अन्यत्र जिस २ की योनिमें प्राप्तहोता है उस योनि में टिकाहुआ नर उस के वंशमें उपजे हुये मनुज से जो दियागया है उससे तृप्तिको

प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ और जिनकी वह सपिण्डता नहींहुई है वे सब आपही अपने वंशवालों को अपनेही को दिखलातेहैं अन्यत्र नहीं यह मैंने सत्यकहाहै कि जिस प्रकार उनसे कियाहुआ शुभ कार्यलोप होजाता है ॥ ४ । ५ ॥ आनर्त्त बोला कि जिसके पुत्र नहीं विद्यमान है उसका सपिण्डी करण कार्य यहां कैसे होता है तुम मुझसे उसको कहने के योग्यहो ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे भूपते ! जिसके औरस पुत्र नहीं वर्त्तमान है वह चारों पितरों के मध्य में कैसे चौथाहोवै ॥ ७ ॥ जिस लिये कि बडी खींचको प्राप्तहोता है उसीकारण प्रेत कहागया है उसकी सपिण्डता पुत्र, भाई व स्त्रीके साथ करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे नृपेन्द्र ! यदि चौथा किसी

यन्तिचतेसर्वे स्वयमात्मानमेवहि ॥ ४ ॥ स्ववंश्यानांनचान्यत्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ यथालोपश्चसञ्जातं तैश्चकृ त्यंकृतंशुभम् ॥ ५ ॥ आनर्तउवाच ॥ यस्यनोविद्यतेपुत्रःसपिण्डीकरणंकथम् ॥ तस्यकार्य्यंभवेदत्र तन्मेत्वंवक्तुमर्ह सि ॥ ६ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ यस्यनोविद्यतेपुत्र औरसश्चमहीपते ॥ सचतुर्णांपितृणान्तु कथंस्याच्चचतुर्थकः ॥ ७ ॥ प्र कर्षणंव्रजेद्यस्मात्तस्मात्प्रेतःप्रकीर्तितः॥ पुत्रेणभ्रातापत्न्यावा तस्यकार्य्यासपिण्डता ॥ ८ ॥ चतुर्थोयदिराजेन्द्र जाय तेचकथञ्चन ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान् ॥ ९ ॥ पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ कालेय दिनराजेन्द्र जायतेस्योत्तरक्रिया ॥ १० ॥ नारायणबलिःकार्य्या सप्रेतत्वविनाशकः ॥ यथान्येषांमनुष्याणामपमृ त्युमुपेयुषाम् ॥ ११ ॥ कार्य्यश्चैवात्मनोनृणां ब्राह्मणान्मृत्युमीयुषाम् ॥ आनर्तउवाच ॥ कथंमृत्युमवाप्नोति पुरुषोत्रम हामते ॥ १२ ॥ स्वर्गंवानरकंवापि कर्म्मणाकेनगच्छति ॥ मोक्षंवाथमहाभाग सर्वमेविस्तराद्वद ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञउ

प्रकार होवै तो यथोदित इन गेरह क्षेत्रजादिक पुत्रोंको बुद्धिमानोंने क्रियाके लोपसेपुत्रकी प्रतिनिधि (बदले) में कहा है हे राजेन्द्र ! यदि समय में इसका मरणके बाद वाला कार्य न होवै ॥ ९।१० ॥ तो नारायणबलि करना चाहिये वह प्रेतताको विनाश करती है जैसे कि अपमृत्यु में प्राप्त अन्य मनुष्यों की होती है ॥११॥ वैसेही मृत्युको प्राप्त मनुष्यों के मध्यमें अपनी नारायणबलि ब्राह्मण से कराना चाहिये आनर्त्त बोला कि हे महामते ! यहां पुरुष कैसे मृत्युको प्राप्तहोता है ॥१२॥ हे महा-

भाग ! स्वर्ग या नरक व मोक्षको भी किस कर्म से जाता है मुझसे सब विस्तार से कहिये ॥ १३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि धर्मवाली, पापवाली व मोक्षवाली तीन गतियां कहीगई हैं धर्म से स्वर्ग व पापसे नरकही भलीभांति प्राप्तहोता है ॥ १४ ॥ व ज्ञानसे मोक्ष भलीभाति मिलता है यह मैंने सत्य कहाहै हे राजेन्द्र, राजन् ! कृष्ण समेत धर्मराज के पुत्र नृपोत्तम युधिष्ठिर महाराज ने इसी होनेवाले अर्थको शन्तनु के पुत्र भीष्म पितामहजीसे पूंछाहै ॥ १५ । १६ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! यमलोक में कितने नरक प्रसिद्ध हैं व समस्त प्राणी किसकर्मसे उन नरकों में जाते हैं ॥ १७ ॥ भीष्मजी बोले कि यमराज के मन्दिर में इक्कीस प्रमाणवाले

वाच ॥ धर्म्मीपापीतथाज्ञानी तिस्रश्चगतयःस्मृताः ॥धर्म्मात्सम्प्राप्यतेस्वर्गं पापान्नरकएवच ॥ १४ ॥ ज्ञानात्सम्प्राप्यतेमोक्षस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एतदर्थंभविष्यन्तु भीष्मंशान्तनवंनृप ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरोमहाराजा धर्म्मपुत्रोनृपोत्तमः ॥ कृष्णेनसहराजेन्द्र पितामहमपृच्छत ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कियन्तोनरकाःख्याता यमलोकेपितामह ॥ केनपापेनगच्छन्ति तेषुसर्वेचजन्तवः ॥ १७ ॥ भीष्मउवाच ॥ एकविंशत्प्रमाणास्स्युर्नरकायममन्दिरे ॥ चित्रोथलिखतेधर्म्मं सर्वप्राणिसमुद्भवम् ॥ १८ ॥ विचित्रःपातकंसर्वंपरमंयत्नमास्थितः ॥ यमदूतास्सदैवाष्टौधर्म्मराजसमुद्भवाः ॥ १९ ॥ येनयन्तिनरान्मर्त्यलोकाच्चवशगान्सदा ॥ करालोविकरालश्च वक्रनासोमहोदरः ॥ २० ॥ सौम्यश्शान्तिस्तथानन्दस्सुवाक्यश्चाष्टमःस्मृतः ॥ एतेषांयेपुराप्रोक्ताश्चत्वारोरौद्ररूपिणः ॥ २१ ॥ पापंजनंचतेसर्वे नयन्तियमसादनम् ॥ चत्वारोयेपराःप्रोक्तास्सौम्यरूपवपुर्द्धराः ॥ २२ ॥ धर्म्मिणंतेनरंसर्वे नयन्तियमसादनम् ॥ विमानेनशतंतेषां व्याधी

नरकहैं और समस्त प्राणियों से उपजेहुये धर्मको चित्र लिखते हैं ॥ १८॥ व बड़ी यत्नमें टिकेहुये विचित्र समस्त पातकको लिखते हैं व धर्मराज से उपजे हुये आठ यमदूत सदैव हैं ॥ १९ ॥ जोकि सदैव मृत्युलोक से वशमें प्राप्त मनुष्यों को लाते हैं कराल, विकराल, वक्रनास, महोदर ॥२०॥ सौम्य, शान्ति, नन्द व आठवां सुवाक्य कहागया है इनके मध्यमें भयंकर रूपवाले चार जो पहले कहेगये हैं ॥ २१ ॥ वे सब पापी पुरुषको यममन्दिर में लाते हैं और सौम्य रूपवाले शरीरको धारनेहारे जो चार पीछे कहेगये हैं ॥२२॥ वे सब विमानके द्वारा धर्मवान् नरको यममन्दिर में प्राप्त करते हैं यहां यमराज ने ज्वर व यक्ष्माके मध्यमें प्राप्त सौरोगों को उनकी

सहायता के लिये बनाया है वे रोग जाकर पहले मनुष्यों को वशमें प्राप्त करतेहैं ॥ २३ । २४ ॥ तदनन्तर समस्त मनुष्यों से न देखेहुये वे यमदूत जाकर नाभिमूल में टिकेहुये पवनरूप जीवको भलीभांति खींचकर ॥ २५ ॥ व शरीरको भूतलमें थापकर यमराज के मार्ग से लाते हैं छियासीहज़ार यममार्ग कहेगये हैं ॥ २६ ॥ वहां पहले चारोंओर बहती हुई वैतरणी नामक नदीहै वह महाभाग्यवती सदैवही दो सोतों से वहां भलीभांति टिकीहै ॥ २७ ॥ वहां उसके एक सोतमें बहुतही रक्त बहताहै व हे भरतर्षभ ! उसके बीचमें अतिपैने शस्त्रहैं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! मृत्युके समय में जो ब्राह्मण के लिये गऊदेते हैं वे निश्चयकर उसकी पूंछके आश्रित होकर उस

नांपरिकल्पितम् ॥ २३ ॥ सहायार्थंयमेनात्र ज्वरयक्ष्मान्तरस्थितम् ॥ तेगत्वाव्याधयःपूर्वं वशेकुर्वन्तिमानवान् ॥ २४ ॥ यमदूतास्ततोगत्वा नाभिमूलव्यवस्थितम् ॥ वायुरूपंसमाकृष्य जनैस्सर्वैरलक्षिताः ॥ २५ ॥ नयन्तेयममार्गेण देहंसंस्थाप्यभूतले ॥ षडशीतिसहस्राणि यममार्गःप्रकीर्तितः ॥ २६ ॥ तत्रवैतरणीनाम नदीपूर्वंपरिस्रुता ॥ स्रोतोभ्यांसामहाभागा तत्रसंस्थासदैवहि ॥ २७ ॥ तत्रशोणितमेकस्मिंस्तस्यस्रोतेवहत्यलम् ॥ शस्त्राणिचसुतीक्ष्णानि तन्मध्येभरतर्षभ ॥ २८ ॥ मृत्युकालेप्रयच्छन्तियेधेनुंब्राह्मणायवै ॥ तस्याःपुच्छंसमाश्रित्य तेतरन्तिचतांनृप ॥ २९ ॥ स्वबाहुभिस्तथैवान्ये शतयोजनविस्तृताम् ॥ द्वितीयञ्चैवयत्स्रोतो वैतरण्याव्यवस्थितम् ॥ ३० ॥ तस्यतत्सलिलंस्रांनिगम्यंधर्म्मवतांसदा ॥ येनरागोप्रदातारो मृत्युकालेव्यवस्थिते ॥ ३१ ॥ तेगोपुच्छंसमाश्रित्यतांतरन्तिपृथूदकाम् ॥ अन्येस्वबाहुभिस्तीर्त्वा गोप्रदानविवर्जिताः ॥ ३२ ॥ गोदानञ्चप्रकर्तव्यं तस्माच्चैवविशेषतः ॥ मृत्युलोकेत्रसम्प्राप्तेय

को उतरते हैं ॥ २९ ॥ वैसेही सौयोजन चौड़ी वैतरणी को अन्य नर अपनी भुजाओं से उतरते हैं और वैतरणी का जो दूसरा सोत स्थितहै ॥ ३० ॥ उसका वह बहाऊ जल सदैव धर्मवानों के जाने योग्यहै जो मनुष्य मृत्यु समय प्राप्तहोने पर गऊदेते हैं ॥ ३१ ॥ वे गऊकी पूंछका सहारा भरके बहुत जलवाली उस वैतरणीको उतरते हैं व गऊदान से रहित अन्य मनुष्य अपनी भुजाओं से उतरकर जाते हैं ॥ ३२ ॥ उसीकारण इस मृत्युलोक के भलीभांति प्राप्तहोने पर जो अपनी गति

चाहै उसको विशेषकर गोदान करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस के उपरान्त पापी पुरुष पापमार्ग से जाते हैं व धर्मवान् उत्तम विमान पै चढ़कर धर्ममार्गसे जाते हैं ॥३४॥ व वैतरणीके उस पार में बीस कोस का चौड़ा असिपत्र नामक वन पापी पुरुषको दुःखदायक है ॥ ३५ ॥ उस में लोहमय ही सैकड़ों पत्ते हैं जोकि सब ओरसे मनुष्यों के शरीरों को काटते हैं ॥ ३६ ॥ जिन दुष्टात्माओं ने पराई द्रव्य व स्त्री को हरलिया है उनकी नव श्राद्धोंसे उससे मुक्ति होती है ॥ ३७ ॥ उसके उपरान्त कूटशाल्मलि नामक प्रसिद्ध नरक जानने योग्य है कांटों से व्याप्त उस कूटशाल्मलिमें नीचे मुख किये वे पुरुष लटकाये जाते हैं ॥ ३८ ॥ व नीचे दिन रात अग्नि से

इच्छेद्गतिमात्मनः ॥ ३३ ॥ तस्यात्र्यनन्तरंयान्ति पापमार्गेणपापिनः॥ धर्मिष्ठाधर्म्ममार्गेण विमानवरमाश्रिताः॥ ३४॥ वैतरण्याःपरेपारे पञ्चयोजनमायतम् ॥ असिपत्रवनंनामपापलोकस्यदुःखदम् ॥ ३५ ॥ तत्रलोहमयान्येव सुपत्राणांशतानिच ॥ यानिकृन्तन्तिमर्त्यानां शरीराणिसमन्ततः ॥ ३६ ॥ यैर्हृतंपरवित्तञ्च कलत्रञ्चदुरात्मभिः॥ नवश्राद्धेनतेषान्तु तस्मान्मुक्तिः प्रजायते ॥ ३७ ॥ तस्मात्परतरोज्ञेयो विख्यातःकूटशाल्मलिः ॥ अधोमुखाः प्रलम्बन्तेतस्मिन्कण्टकसङ्कुले ॥ ३८ ॥ अधस्ताद्वह्निनाचैव दह्यमानादिवानिशम् ॥ विश्वासघातकायेच सर्वदैवसुनिर्दयाः॥ ३९ ॥ तस्मान्मुक्तिंप्रयान्तिस्मश्राद्धेह्येकादशेकृते ॥ यन्त्रात्मकस्ततःप्रोक्तो नरकोदारुणाकृतिः॥ ४० ॥ ब्राह्मणास्तत्रपीड्यन्ते येचान्येपापकर्म्मिणः ॥ श्राद्धेनद्वादशोत्थेन तेभ्योदत्तेनपार्थिव ॥ ४१ ॥ तस्मान्मुक्तिंप्रयच्छन्ति दीयतेवंशजैःस्फुटम् ॥ ततोलोहमयाःस्तम्भास्तप्यमानाव्यवस्थिताः ॥४२॥ आलिङ्गन्तिचतान्सर्वान्परदार

जलाये जाते हैं जोकि विश्वासघाती व सदैव ही बड़े निर्दयी होते हैं ॥ ३९ ॥ वे एकादश श्राद्ध करनेपर उससे मुक्तिको प्राप्त होते हैं तदनन्तर भयङ्कर आकारवाला यन्त्रात्मक नरक है ॥ ४० ॥ उस में ब्राह्मण व और जो पापकर्मी हैं वे पीड़ित किये जाते हैं हे राजन् ! उनके लिये द्वादशोत्थ श्राद्धके देनेसे ॥ ४१ ॥ उससे मुक्ति देते हैं यदि प्रकटही वंशमें उपजे हुये पुरुषों से श्राद्ध दीजाती है तदनन्तर तचेहुये लोहमय खम्भा व्यवस्थित हैं ॥ ४२ ॥ उनमें उन सबोंको लिपटाते हैं जोकि

पराई स्त्रियोंमें तत्पर होते हैं मासिकोत्थ श्राद्ध करने पर उनसे मुक्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर लोहके समान दाढ़ोंवाले भयङ्कर कुत्ते व्यवस्थितहैं वे पृष्ठ मांस के खानेवाले पापी नरोंको खाते हैं ॥ ४४ ॥ वे त्रिपक्षिक श्राद्ध करने पर उनसे मुक्ति पाते हैं उसके उपरान्त लोहमय चोंचवाले कौवा टिके हैं ॥ ४५ ॥ जिन्हों ने नेह समेत नयनोंसे पराई स्त्रियोंको देखाहै फिर उपजेहुये उनके अंगोंको वे बहुतही नाश करते हैं ॥ ४६ ॥ दो महीने में जो श्राद्ध होतीहै उससे उनकी मुक्ति होती है तदनन्तर शाल्मलिकूट व अन्य लोहकण्टक हैं ॥ ४७ ॥ उनके बीचमें चुगुली में लगेहुये नर लाये जातेहैं जो त्रिमासिक श्राद्ध होती है उससे वे छूटपाते हैं ॥ ४८ ॥

रताश्चये ॥ मासिकोत्थेकृतेश्राद्धे तेभ्योमुक्तिमवाप्नुयुः ॥ ४३ ॥ लोहदंष्ट्रास्ततोरौद्रास्सारमेयाव्यवस्थिताः ॥ भक्षय न्तिचतेपापान् पृष्ठमांसाशिनोनरान् ॥ ४४ ॥ त्रिपक्षिकेकृतेश्राद्धे तेभ्योमुक्तिमवाप्नुयुः ॥ लोहचञ्चुमयाःकाकास्सं स्थितास्तदनन्तरम् ॥ ४५ ॥ सरागैर्लोचनैर्यैश्च वीक्षिताःपरयोषितः ॥ तेषांगात्राणितेघ्नन्ति भूयोजातानिभूरिशः ॥ ४६ ॥ द्विमासिकेचयच्छ्राद्धं तेनमुक्तिःप्रजायते ॥ ततःशाल्मलिकूटस्तु तथान्येलोहकण्टकाः ॥ ४७ ॥ तेषांमध्ये नर्नीयन्ते पैशुन्यनिरतानराः ॥ त्रैमासिकन्तुयच्छ्राद्धं तेनमुक्तिःप्रजायते ॥ ४८ ॥ रौरवोथसुविख्यातो दारुणोनरको महान् ॥ ब्रह्मघ्नानांसमादिष्टःसचैवबहुवेदनः ॥ ४९ ॥ अधोमुखाश्चोर्ध्वपादाधार्य्यन्तेतत्रलम्बिताः ॥ कृतघ्नानांसमादि ष्टः सदैवात्रावलम्बिनाम् ॥ चतुर्मासिकदानेन मुक्तिस्तेभ्यःप्रजायते ॥ ५० ॥ कुम्भीपाकस्ततोज्ञेयो नरकोदारुणाकृ तिः ॥ तैलेतेक्षिप्यमाणास्तु येत्रदम्भाभिसन्धिताः ॥५१॥ दृश्यन्तेजनहन्तार ऊनषाण्मासिकेनच ॥ पतन्तिनरकेरौ

इसके अनन्तर बड़ाभारी दारुण रौरव नामक नरक अतिप्रसिद्ध है वह ब्रह्मघातियों को बहुकष्टदायक कहागयाहै ॥ ४९ ॥ वहां नीचे मुखवाले व ऊंचे चरणवाले लटकाये हुये धारण किये जाते हैं यहां सदैव लटकाये हुये व कृतघ्न पुरुषों को चतुर्मासिक श्राद्धके देनेसे उनसे मुक्ति होती है ॥ ५० ॥ तदनन्तर भयङ्कर आकार वाला कुम्भीपाक नरक जानने योग्यहै जो यहां पाखण्डसे मिलेहुये पुरुषहैं व जो मनुष्योंके नाश करनेवाले देखेजाते हैं वे तैलमें फेंकेजाते हैं और पांचवें महीनेवाली

श्राद्धसे वे मुक्तहोते हैं व विश्वासघाती नर भयानक नरक में गिरते हैं॥ ५१।५२॥ छठे महीने की श्राद्धसे वहां वे संकटसे छूटते हैं वैसेही अन्य नरक सांप व बीछियों से संयुक्त सुनागयाहै ॥ ५३ ॥ वहां वे नीच नर जाते हैं जोकि संसार में पाखण्डी हैं ॥ ५४ ॥ सप्तमासिक श्राद्धके दानसे उनकी मुक्ति होती है वैसेही अन्य संवर्तक नामक नरक कहागया है ॥ ५५ ॥ जो निन्दनीय पुरुष वेदके विनाशक व साधुवों के निन्दक तथा दुष्टात्मा हैं उसी कारण उनकी जीभको अग्निसे उपजी हुई संगसियोंसे उखाड़कर वे दुःखित किये जाते हैं ॥५६॥ व जो अपने कार्यमें झूंठ कहते हैं तथा दूसरे के लिये भी जो कहते उनके अंगोंको सम्पूर्णता से कुत्तेखातेहैं ॥ ५७ ॥

द्रे नराविश्वासघातकाः॥५२॥षण्मासिकप्रदानेन मुच्यन्तेतत्रसङ्कटात् ॥ सर्प्पवृश्चिकसंयुक्तस्तथान्योनरकःश्रुतः ॥ ५३ ॥ तत्रयेदाम्भिकालोके तेगच्छन्तिनराधमाः ॥ ५४ ॥ सप्तमासिकदानेन तेषांमुक्तिःप्रजायते ॥ तथासंवर्तकोनाम नरकोन्यःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ वेदविप्लवकानिन्द्याःसाधूनाञ्चदुरात्मकाः ॥ उत्पाट्यचततोजिह्वां संदंशैर्वह्निसम्भवैः ॥ ५६॥स्वकार्य्येयेनृतंब्रूयुस्तद्गात्रंखाद्यतेश्वभिः॥परार्थमपियेब्रूयुस्तेषां गात्राणिकृत्स्नशः॥५७॥ अष्टमासिकदानेन तेषां मुक्तिःप्रजायते ॥ अग्निकूपोमहातप्तो दारुणोनरकोमहान् ॥५८॥ तत्रतेयान्तियेमूढाःकूटसाक्ष्यप्रदानराः ॥ तत्रस्थायातनांरौद्रां सहन्तेतीव्रदुःखिताः ॥ ५९ ॥ नवमासिकदानञ्चतेषामाह्लादनंपरम् ॥ ततोलोहमयैःकीलैस्सञ्चितोन्यस्समन्ततः ॥ ६० ॥ तत्रचाग्निप्रदातारस्स्त्रीणांहन्तारएवच ॥ तथाधावन्तिदुःखार्तास्ताड्यमानाश्चकिङ्करैः ॥ ६१ ॥ दशमासिकजंदानं तत्रतेषांप्रमुक्तये ॥ ततोङ्गारमयैःपुञ्जैर्व्याप्तभूतस्समन्ततः ॥ ६२ ॥ स्वामिद्रोहरतास्तत्रभ्रमन्तेसर्वतो

अष्टमासिक श्राद्धके देनेसे उनकी मुक्ति होतीहै व अत्यन्त तचा व बड़ाभारी अग्निकूप नामक भयंकर नरकहै ॥ ५८ ॥ वहां वे मूर्ख जाते हैं जोकि झूंठी गवाही देने वाले मनुष्य हैं वहां टिकेहुये व अत्यन्त दुःखित वे विकराल क्लेशको सहते हैं ॥ ५९ ॥ नवयें महीने का श्राद्धदान उनको अतिआनन्ददायक है तदनन्तर लोहमय कीलोंसे सब ओर व्याप्त अन्य नरक है ॥ ६० ॥ वहां अग्निदाता वैसेही स्त्रियों के हन्ता पुरुष यमदूतों से ताडित व दुःखित होतेहुये दौडतेहैं ॥ ६१॥ दश महीने से उपजा हुआ दान वहां उनकी मुक्तिके लिये होताहै तदनन्तर सब ओर अंगारमय पुञ्जोंसे व्याप्तभूतहै ॥ ६२ ॥ वहां स्वामीके द्रोह में परायण पुरुष सब दिशाओं

में घूमते हैं वहां गेरहवें महीनेसे उपजा हुआ दान उनको होताहै ॥६३॥ और तचीहुई बालुओं से पूर्ण व दारुण आकारवाला नरकहै जो स्वामीके कार्यको देखकर भागनेमें तत्पर होतेहैं दुःखित होते हुये वे मनुष्य वहां पचतेहैं व बारह महीनेवाली श्राद्ध उनको प्राप्त होती है ॥ ६४। ६५ ॥ वर्षके बीचमें जो कुछ अन्न वा जल दिया जाता है अपने भाइयोंसे दियेहुये उसको मार्गमें भोजन करतेहैं ॥६६॥ तदनन्तर वर्षके ऊपर धर्मराज के समीप गयेहुये वे अपने कर्मसे उपजेहुये शुभाशुभ कर्म को समझते हैं ॥ ६७ ॥ इस प्रकार इन पन्द्रह नरकोंको भलीभांति सेवन करके तदनन्तर फिर वे मनुष्य मृत्युलोक में जन्मपाते हैं ॥ ६८ ॥ जो हेतुवादी पुरुष होते हैं वे

दिशम् ॥ एकादशोद्भवंदानं तत्रतेषांप्रजायते ॥ ६३ ॥ सन्तप्तसिकतापूर्णो नरकोदारुणाकृतिः ॥ स्वामिनश्चेष्टितंदृष्ट्वा पलायनपरायणाः ॥ ६४ ॥ येभवन्तिनरास्तत्र पच्यन्तेतत्रदुःखिताः ॥ तेषांद्वादशमासीयं श्राद्धंचैवोपतिष्ठति ॥ ६५ ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेतोयमन्नंवावत्सरान्तरे ॥ प्रभुञ्जन्तेचतन्मार्गे प्रदत्तंनिजबान्धवैः ॥ ६६ ॥ ततस्संवत्सरादूर्ध्वं निजकर्म्मसमुद्भवम् ॥ शुभाशुभंप्रबोधयन्ते धर्म्मराजसमीपगाः ॥ ६७ ॥ एवंपञ्चदशैतानि संसेव्यनरकाणिते ॥ प्राप्नुवन्तिततोजन्म मर्त्यलोकेपुनर्नराः ॥ ६८ ॥ प्राप्नुवन्तिविदेशेचजन्मयेहेतुवादकाः ॥ नित्यंतर्प्पणदानेन तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ ६९ ॥ स्वामिद्रोहरतायेच कुराज्येजन्मचाप्नुयुः ॥ एकोद्दिष्टप्रदानेन तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ ७० ॥ अदत्त्वायेनरोश्नन्ति पितृदेवद्विजातिषु ॥ दुर्भिक्षेजन्मतेषान्तु तेनपापेनजायते ॥ ७१ ॥ क्षयाहश्राद्धेसम्प्राप्य ततस्तृप्तिःप्रजायते ॥ येप्रकुर्वन्तिदम्पत्योर्भेदंवैसानुरागयोः ॥ ७२ ॥ परस्परमसत्येन तेषांभार्य्यापराङ्मुखी ॥ एकस्मिन्वचनेप्रोक्तेदश

विदेश में जन्म पाते हैं नित्य तर्पणके दानसे उनकी तृप्ति होती है ॥ ६९ ॥ व जो स्वामीके द्रोहमें तत्पर होतेहैं वे कुराज्य में जन्म पाते हैं व एकोद्दिष्टके देनेसे उनकी तृप्ति होती है ॥ ७० ॥ पितरों, देवों व द्विजातियों के लिये नहीं देकर जो मनुष्य भोजन करते हैं उस पापसे उनका दुर्भिक्षमें जन्म होताहै ॥ ७१ ॥ क्षयाह श्राद्धको भलीभांति पाकर तदनन्तर तृप्ति होती है व जो स्नेहसहित स्त्री पुरुषों में भेद करतेहैं ॥ ७२ ॥ आपस में झूंठसे उनकी स्त्री विमुखी होती है व एक वचन कहने पर

क्रोधसंयुत होतीहुई दश कहती है ॥ ७३ ॥ और समस्त मनुष्यों से निन्दित व कुरूपिणी तथा घूमती हुई देख पड़ती है वहां कन्यादान के फलों से उनको सुख होताहै ॥ ७४ ॥ जो कन्याके दानमें विघ्न व विक्रय (बेंचना) करताहै वह केवल कन्याओंको पैदा करता है कभी केवल पुत्रको नहीं ॥ ७५ ॥ और वे पुंश्चली, विधवा व दुर्भाग्यवती होती हैं कन्यादान के फलसे उनको सुख होताहै ॥७६॥ जिन्होंने रत्नों व अन्य शास्त्रोंको चुराया है वे निर्धनी, गूंगे, लँगड़े व नेत्रहीन होते हैं ॥ ७७॥ शास्त्र देनेसे उनको यहां सुख होताहै मृत्युलोकमें उपजेहुये ये नरक तुमसे कहेगये ॥ ७८ ॥ इनसे कियाहुआ समस्त शुभाशुभ कर्म जाना जाताहै तदनन्तर

ब्रूतेकुधान्विता ॥ ७३ ॥ विरूपाभ्रममाणाच सर्वलोकविगर्हिता ॥ कन्यादानफलैस्तेषां तत्रचैवसुखंभवेत् ॥ ७४ ॥ कन्यकादानविघ्नंहि विक्रयंवाकरोतियः ॥ सकन्याःकेवलंसूते नपुत्रंकेवलंकचित् ॥ ७५ ॥ जायन्तेताश्चबन्धक्यो विधवादुर्भगास्तथा ॥ कन्यादानफलप्राप्त्या तेषांसौख्यंप्रजायते ॥ ७६ ॥ यैर्हृतानिचरत्नानि तथाशास्त्रान्तराणिच ॥ तेदरिद्राः प्रजायन्ते मूकाःखञ्जाविचक्षुषः ॥ ७७ ॥ तेषांशास्त्रप्रदानेनइहसौख्यंप्रजायते ॥ एतेतेनरकाःप्रोक्ता मर्त्यलोकसमुद्भवाः ॥ ७८ ॥ एतैर्विज्ञायतेसर्वं कृतंकर्म्मशुभाशुभम् ॥ तीर्थयात्राफलैस्तस्य ततःशुद्धिःप्रजायते ॥ ७९ ॥ भीष्मउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ एकविंशत्प्रमाणञ्च नरकाणांयथास्थितम् ॥ ८० ॥ भूयश्चपृच्छराजेन्द्र सन्देहोयोहृदिस्थितः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्येभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेत्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तीर्थयात्राके फलोंसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ७९ ॥ भीष्मजी बोले कि हे नरनायक ! मुझसे जो पूंछागया यह समस्त चरित तुमसे कहा कि जिस प्रकार इक्कीस संख्यक नरक स्थितहैं ॥ ८० ॥ हे नृपेन्द्र ! जो हृदयमें सन्देह स्थितहो उसको फिर पूंछिये ॥८१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेत्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जौन कर्म कीन्हे यहां मनुज नरक नहिं जाय ॥ दोसौ चौदह में सोई चरित कह्यो सुखदाय। युधिष्ठिरजी बोले कि हे राजन्! नरकोंका स्वरूप सुनकर मेरे डर आगया उन पापोंकी भी व्रतों, नियमों अथवा होमोंसे भी व तीर्थके आश्रयों से किस प्रकार मुक्ति पावै है ॥१॥ भीष्मजी बोले कि गंगामें हड्डियों के फेंकनेसे उन मनुष्योंका पाप छूटजाताहै और नरकके मध्यमें वर्तमान उन पुरुषोंको अग्नि दुःख देनेके लिये समर्थ नहीं होतीहै॥२॥व अपने पुत्रोंसे गंगाके समीप जिनके नामसे श्राद्ध कीजाती है वे विमानपै भलीभांति चढ़कर नरकके ऊपर जातेहैं॥ ३ ॥ हे राजन्! जो प्रसिद्धमें पाप करतेहैं व यथोदित न प्रायश्चित्त करते व सुवर्ण देतेहैं उनको नरक

युधिष्ठिर उवाच ॥ नरकाणांस्वरूपञ्च श्रुत्वामेभयमागतम् ॥ कथंमुक्तिर्भवेत्तेषां पापानामपिपार्थिव ॥ व्रतैर्वानियमैर्वापि होमैर्वातीर्थसंश्रयैः ॥ १ ॥ भीष्मउवाच ॥ गङ्गायामस्थिपातेनतेषांसञ्जायतेन्नृणाम् ॥ नतेषांनरकेवह्निः प्रभवेन्मध्यवर्तिनाम् ॥ २॥ गङ्गायांक्रियतेश्राद्धं येषांनाम्नास्वकैःसुतैः । तेविमानंसमाश्रित्य प्रयान्तिनरकोपरि ॥ ३ ॥ पापंकिलप्रकुर्वन्ति प्रायश्चित्तंयथोदितम् ॥ हेमयच्छन्तियेभूपनतेषांनरकोभवेत् ॥ ४ ॥ शेषाःस्वकर्म्मणः पाकंसेवन्ते चयथोचितम् ॥ स्वर्गंवानरकंवापि सेवन्तेतेनराधिप ॥ ५ ॥ धारातीर्थेम्रियन्तेये स्वामिनःपुरतःस्थिताः ॥ तेगच्छन्तिपरंस्थानं नरकाणांसुदूरतः ॥ ६ ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रेनैमिषेनगरेपरे ॥ प्रयागेचप्रभासेवा यस्त्यजेत्तनुमात्मनः ॥ ७ ॥ महापातकयुक्तोपि नरकंसनपश्यति ॥ नीलोवावृषभोयस्यमृताहेसंनियुज्यते ॥ ८ ॥ स्वपुत्रेणनसंपश्येन्नरकंब्रह्महापि च ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा हृदयस्थेजनार्दने ॥ ९ ॥ तीर्थयात्रापराणाञ्च योयच्छतिसदाशनम् ॥ कालेवायदिवाकाले

नहीं होताहै ॥ ४ ॥ हे नराधिप! शेष मनुष्य अपने कर्मका फल यथोचित सेवतेहैं और वे स्वर्ग या नरकको भी रोवते हैं ॥ ५ ॥ व स्वामीके आगे खड़ेहुये जो पुरुष धारारूपी तीर्थमें मरतेहैं वे नरकों से अतिदूर उत्तम स्थानको जाते हैं ॥ ६ ॥ जो काशी, कुरुक्षेत्र व उत्तम नैमिषनगरमें या प्रयाग अथवा प्रभास क्षेत्रमें अपना शरीर छोड़ता है ॥ ७ ॥ बड़े पातकों से युक्त भी वह नरकको नहीं देखता है व जिसके मरनेवाले दिनमें अपने पुत्रसे नील बैल भलीभांति नियोग कियाजाता है ब्रह्मघाती भी वह नरकको नहीं देखता है व विष्णुजी के हृदय में टिकने पर जो अन्न जल छोड़ मरने पै उतारू होकर सदैव तीर्थयात्रा मे तत्पर होकर पुरुषोंको समय या

असमय में भोजन देताहै वह नरकको नहीं देखता है ॥ ८॥९॥१०॥ व जब सूर्यनारायण वृषराशि में टिकेहों तब जो जलकी गऊ देताहै व मकर में सूर्यहोने पर जो तिलकी गऊ देताहै वह नरकको नहीं देखता है ॥ ११ ॥ व सोमवार को चन्द्रमा के ग्रहणमें सोमनाथजीके दर्शनसे व समुद्र तथा सरस्वतीमें नहाकर नरकको नहीं जाता है ॥ १२ ॥ व रविवार को जब राहु रविको गासै तब जो कुरुक्षेत्रमें भलीभांति मज्जनकर स्नान करताहै वह नरकको नहीं देखताहै ॥ १३ ॥ व कार्तिकी पौर्णमासीमें कृत्तिका नक्षत्र का योग होनेपर जो मौन से त्रिपुष्कर की प्रदक्षिणा करताहै वह नरकको नहीं देखताहै ॥ १४ ॥ और रविवार को मकरकी संक्रान्ति स्थितहोने

नरकंसनपश्यति ॥ १० ॥ जलधेनुञ्चयोदद्याद्वृषसंस्थेदिवाकरे ॥ तिलधेनुंमृगस्थेच नरकंसनपश्यति ॥ ११ ॥ सोमे सोमग्रहेचैव सोमनाथस्यदर्शनात ॥समुद्रेचसरस्वत्यांस्नात्वाननरकंव्रजेत् ॥ १२ ॥ सन्निमज्ज्यकुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ सूर्य्यवारेणयःस्नाति नरकंसनपश्यति॥ १३ ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यःकरोतिप्रदक्षिणम् ॥ त्रिपुष्करस्य मौनेननरकंसनपश्यति ॥ १४ ॥ मृगसंक्रमणेयेतु सूर्य्यवारेणसंस्थिते ॥ चण्डीशंवीक्षयन्तिस्मनतेनरकगामिनः ॥ १५ ॥ गांपङ्कात्ब्राह्मणंदास्याद्वृत्तिलोपाद्द्विजंवधात् ॥ मोचयन्मुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १६ ॥ गांवधाद्ब्राह्मणंसाधुंस्तेनाद्विप्रंवधात्तथा ॥ मोचयन्मुच्यतेपापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिनराधिप ॥ यथाननरकंयातिपुरुषस्तुस्वकर्मणा ॥१८॥ यथाचनरकंयाति स्वल्पपापोपिमानवः ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेनरकाध्यायोनामचतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ * ॥

पर जिन्होंने चण्डीशको देखाहै वे नरकगामी नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ व कीचड़से गऊको और जीविका लोपके कारण सेवकाई से ब्राह्मण को व मारने से विप्रको छुड़ाता हुआ पुरुष जन्मसे लगाकर मरणके अन्ततक के पातकसे छूटजाताहै ॥ १६ ॥ व वध से गऊको व ब्राह्मण साधुको चोरसे तथा वधसे विप्रको छुड़ाताहुआ नर जन्मसे लगाकर मरणान्त तकके पातकसे छूटजाताहै ॥ १७॥ हे नरनायक ! मुझसे जो पूंछागया इस समस्त चरितको मैंने तुमसे कहा कि जिस प्रकार पुरुष अपने कर्मसे नरकको नहीं जाताहै ॥१८॥ और जिसप्रकार थोड़े पापवाला भी पुरुष नरकको जाताहै वह तुमसे कहागया ॥१९॥ इति चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः२१४ ॥

दो०। जिमि अन्धकपै दूतको पठयो है शिवदेव। दोसौ पन्द्रह में सोई चरित अहै सुखसेव॥ सूतजी बोले कि वैसेही अपने गढ़के द्वारपै सोनेके लिये विशेषकर टिकेहुवे जलशायी विष्णुजी को देखकर नर शीघ्रही पापसे छूटजाता है॥ १॥ व संसार के आश्रय रूप पवित्र उस बिलके द्वारपै नहाकर जो पुरुषशेषशय्यापै शयन करनेवाले उन विष्णुजी को भक्तिसे पूजता है॥ २॥ वह जन्मसे लगाकर मरण तकके पापसे मुक्तिको प्राप्तहोता है व वर्षावाले चार महीने तक भलीभांति सोतेहुये सुरनाथ (विष्णु) जी को॥ ३॥ जो भक्तिसे भलीभांति पूजता है वह फिर यहां नहीं पैदाहोता है वहां उन विष्णुजी के उत्तम स्थान में मिट्टीको लेकर पहलेवाले

सूतउवाच॥ तथाचस्वबिलद्वारि शयनार्थेऽव्यवस्थितम्॥ दृष्ट्वाप्रमुच्यतेपापाद्द्रुतञ्जलशायिनम्॥ १॥ स्नात्वातस्मिन्बिलद्वारिपवित्रेलोकसंश्रये॥ यस्तंपूजयतेभक्त्याशेषपर्य्यङ्कशायिनम्॥ २॥ आजन्ममरणात्पापात्सचमुक्तिमवाप्नुयात्॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्संप्रसुप्तंसुरेश्वरम्॥ ३॥ सम्पूजयतियोभक्त्या नसभूयोत्रजायते॥ तत्रपूर्वेमहाभागाः सेवन्तेमुनयःप्रभुम्॥ ४॥ मृत्तिकाग्रहणंकृत्वा तस्यचायतनेशुभे॥ सम्प्राप्ताःपरमंस्थानं तद्विष्णोःपरमंपदम्॥ ५॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषुयत्फलम्॥ तत्फलंतस्यपूजायां चतुर्मासेप्रजायते॥ ६॥ यत्फलंगोगृहेमृत्युं सम्प्राप्तायान्तिमानवाः॥ तत्फलंचतुरोमासान्पूजयाजलशायिनः॥ ७॥ अपिपापसमाचारः परदाररतोपिच॥ ब्रह्महापिसुरापोवा स्त्रीसन्तानविगर्हितः॥ ८॥ पूजयाचतुरोमासांस्तस्यदेवस्यमुच्यते॥ ऋषयऊचुः॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं तत्रस्थजलशायिनः॥ ९॥ बिलद्वारंकथंसूत तत्रनःसंशयोमहान्॥ सकथंश्रूयतेदेवः क्षीराब्धौमधुसूदनः॥ १०॥ स

महाभाग्यवान् मुनिलोग प्रभु (विष्णु) जी को सेवन करतेथे वे विष्णुजी के उस उत्तमपदवाले स्थानको भलीभांति प्राप्तहुये हैं॥ ४। ५॥ जो फल समस्त तीर्थों में व जो फल सबयज्ञों में है वही फल चौमास में उन विष्णुजी के पूजनमें होता है॥ ६॥ गऊके घरमें मृत्युको प्राप्तहुये पुरुष जिस फलको पातेहैं वही फल चार महीने जलशायी विष्णुके पूजन से मिलता है॥ ७॥ पाप आचरण वाला भी व पराई स्त्रियोंमें परायणभी और ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला और स्त्री व सन्तानसे निन्दित नर॥ ८॥ चार महीने तक उन देवके पूजनसे छूटजाताहै ऋषिलोग बोले कि जो आपने यह कहा कि वहां टिकेहुये जलशायी पुरुषका॥ ९॥ वहां

बिलद्वार है हे सूतजी ! वह कैसे है हमलोगोंको यह बडी सन्देहहै कि वे मधुसूदन विष्णुजी क्षीरसागर में कैसे सुनेजाते हैं ॥ १० ॥ बिलके द्वारपै विशेषकर टिकेहुये भगवान् विष्णुजी योगनिद्राके आश्रित होकर सदैव सोते हैं जो बिलके द्वारपै विशेषकर विष्णुजी टिकेहैं ॥ ११ ॥ यह सम्पूर्णतासे कहिये क्योंकि हमलोगोंको परम आश्चर्य है सूतजी बोले कि हे महाभाग्यवानो ! यह सत्यहै कि क्षीरसागर में मधुसूदन विष्णुजी ॥ १२ ॥ योगनिद्रा में भलीभांति आश्रित होकर शेषशय्या पै सोते हैं वे आपही भगवान् जलशायी स्वरूपसे जिस प्रकार उस क्षेत्रमें भलीभांति टिके हैं उसको सावधान होतेहुये सुनिये व जिसप्रकार चार महीने पूजेहुये विष्णुजी

एतत्कीर्तयकार्त्स्न्येन परं कौतूहलंहिनः ॥ सूतउवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागाः क्षीराब्धौमधुसूदनः ॥ १२ ॥ योगनिद्रांसमाश्रित्य शेषपर्य्यङ्के शायितः ॥ सयथातत्रक्षेत्रेतु संश्रितोभगवान्स्वयम् ॥१३॥जलशायिस्वरूपेण तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ यथाचचतुरो मासान्पूजितस्तत्रसंस्थितः ॥ १४ ॥ मुक्तिंददातिपुंसांस तथासङ्कीर्तयाम्यहम् ॥ चत्वारोपियथामासागर्हणीयाधरातले ॥ १५ ॥ सर्वकर्म्मसुमुख्येषु यज्ञोद्वाहादिषुद्विजाः ॥ तदोहंकीर्तयिष्यामि नमस्कृत्यद्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥ तस्मैदेवाधिदेवाय निर्गुणायगुणात्मने ॥ अव्यक्तायाप्रमेयाय सर्वदेवमयायच ॥ १७ ॥ सर्वेशायैकवासाय सर्वभूतात्मनेनमः॥ पुरासीद्दानवोरौद्रो हिरण्यकशिपुर्महान् ॥ १८॥ नारसिंहंवपुःकृत्वा विष्णुनायोनिपातितः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञे सर्वलक्ष

देवभगवाञ्छेते बिलद्वारेव्यवस्थितः ॥ योगनिद्रांसमाश्रित्य बिलद्वारेव्यवस्थितः ॥ ११ ॥

वहां भलीभांति टिके हैं ॥ १३ । १४ ॥ वे विष्णुजी पुरुषोंको मुक्तिदेते हैं मैं वैसेही कहताहूं हे ब्राह्मणो ! जिसप्रकार वे चारों महीने भी यज्ञ व विवाहादिक मुख्य समस्त कर्मोंमें भूतल के मध्य निन्दित हैं हे द्विजोत्तमो ! विष्णुजी को प्रणामकर मैं उसको तुमलोगों से कहूंगा ॥ १५ । १६ ॥ उन देवताओं के अधिदेव, निर्गुण व गुणात्मक, अप्रकट, अप्रमाण व समस्त सुरमयके लिये ॥ १७ ॥ व समस्तके स्वामी और एक रूपसे बसनेवाले व समस्त प्राणियों के आत्मा (जीव) रूपके लिये नमस्कार है पुरातन समय हिरण्यकशिपु बड़ाभारी भयानक दानव हुआहै ॥ १८ ॥ जिसको विष्णुजी ने नृसिंह शरीर धरकर नाशकिया है उसके समस्त लक्षणों से

लक्षित दो पुत्र पैदाहुये ॥ १९ ॥ प्रह्लाद व अन्धक दोनों युद्धमें पराक्रमसे असमानथे याने उनके बराबर और पराक्रमी न था जब हिरण्यकशिपु महात्मा परलोक को प्राप्तहुआ तब ॥ २० ॥ मन्त्रियों ने अभिषेक केलिये प्रह्लादको भलीभांति नियुक्त किया उन विद्वान् ने जिस कारण भलीभांति आईहुई भी पिता, पितामहों वाली राज्यकी उस समय इच्छा न किया मैं उसको तुमलोगों से कहताहूं कि चक्रधारी देवके साथ दानवों का सदैव वैरथा ॥ २१ । २२ ॥ और सदैव उन विष्णुजी को उद्देश कर फिर वे वैर करतेथे इसी कारण से उन प्रह्लादने समस्त दितिके पुत्रोंको त्यागदिया ॥ २३ ॥ और अपनी राज्यको भी भलीभांति छोड़कर उन प्रह्लाद ने

णलक्षितम् ॥ १९ ॥ प्रह्लादश्चान्धकश्चैव वीर्य्येणाप्रतिमौयुधि ॥ हिरण्यकशिपौप्राप्ते परलोकंमहात्मनि ॥ २० ॥ अमात्यैरभिषेकाय प्रह्लादस्संनियोजितः ॥ सनैच्छत्तदाराज्यंपितृपैतामहंमहत् ॥ २१ ॥ समागतमपिप्राज्ञो यस्मात्तद्वोवदाम्यहम् ॥ दानवानांसदाद्वेषो देवेनसहचक्रिणा ॥ २२ ॥ कुर्वन्तितेपुनर्द्वेषं तंसमुद्दिश्यसर्वदा ॥ एतस्मात्कारणात्स वै तेनत्यक्तादितेस्सुताः ॥ २३ ॥ स्वराज्यमपिसन्त्यज्यविष्णुस्तेनसमाश्रितः ॥ ततस्तैर्दानवैःक्षुद्रैर्विष्णुद्वेषपरायणैः ॥ २४ ॥ अन्धकस्स्थापितोराज्ये पितृपैतामहेसदा ॥ अन्धकोपिसमाराध्य देवदेवंचतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ अमरत्वंततोलेभे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ वरपुष्टस्ततस्सोपि चक्रेशक्रेणविग्रहम् ॥ २६ ॥ जित्वाशक्रंमहासङ्ख्ये यज्ञांशाञ्जगृहेस्वयम् ॥ गत्वामरावतींदैत्यो निस्सार्य्यचशतक्रतुम् ॥ २७ ॥ स्वर्गेणचसमोपेतः स्वर्गंसमहरत्तदा ॥ शक्रोपिचसमाराध्य शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ २८ ॥ सर्वदेवसमोपेतो भृत्यवत्परिवर्तते ॥ ततःकालेनमहतातस्यतुष्टःपिनाकधृक् ॥ २९ ॥ तं

विष्णुका आश्रय किया तदनन्तर विष्णु के वैरमें तत्पर उन नीच दानवोंने ॥२४॥ सदैव पितृ, पितामहवाले राज्यपै अन्धक को स्थापित किया व अन्धकने भी देवोंके देवता चतुरानन जी को भलीभांति आराधनकर ॥ २५ ॥ तदनन्तर चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र जबतक रहैं तबतक अमरता पाया उसके उपरान्त वरदान से पुष्ट उसने भी इन्द्रसे वैरकिया ॥ २६ ॥ और महासमरमें सुरेशको जीतकर आपही यज्ञभागोंको ग्रहण किया व दैत्यने अमरावती पुरीको जाकरके इन्द्रजीको निकालकर ॥२७॥ उस-समय स्वर्ग को हरलिया व स्वर्ग से संयुत हुआ और मनुष्यों के कल्याणकारण सदाशिवजी को भलीभांति आराधन कर इन्द्रभी ॥ २८ ॥ समस्त देवताओं

से संयुत सेवक की नाईं वर्तमान होतेथे तदनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये पिनाकधारी सदाशिवजी ॥ २९ ॥ उस से यहबोले कि मैं वरदायकहूं हे इन्द्रजी ! कहिये मैं क्याकरूं इन्द्रबोले कि हे सुरनायक ! पराक्रम से अन्धकासुर ने मेरी राज्य हरलिया ॥ ३० ॥ यज्ञभागों समेत हरीहुई उस राज्यको तुम मुझे देवो उन दीन इन्द्रजी के उस वचन को सुनकर भगवान् चन्द्रभाल जी ॥ ३१ ॥ बोले कि त्रिलोक से उपजीहुई राज्य मैं तुमको दूंगा तदनन्तर वीरभद्र नामक गण नायक चतुरदूत को उस अन्धक के समीप पठाया कि जाकर उस अन्धक से कहिये कि मेरी आज्ञासे स्वर्ग छोड़कर भूतलको जावो ॥ ३२ । ३३ ॥ व इन्द्रवाले

प्राहवरदोस्मीतिवदशक्करोमिकिम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ अन्धकेनहृतंराज्यं ममवीर्य्यात्सुरेश्वर ॥ ३० ॥ यज्ञभागैस्स मोपेतं हृतंतत्त्वंप्रयच्छमे ॥ तच्छ्रुत्वातस्यदीनस्य भगवाञ्छशिशेखरः ॥ ३१ ॥ प्रोवाचतवदास्यामि राज्यंत्रैलोक्य सम्भवम् ॥ ततस्संप्रेषयामास दूतंतस्यविचक्षणम् ॥ ३२ ॥ गणेशंवीरभद्राख्यं गत्वातंब्रूहिचान्धकम् ॥ ममादेशात्प रित्यज्य स्वर्गंगच्छधरातलम् ॥ ३३ ॥ पितृपैतामहंस्थानंराज्यंतत्रसमाचर ॥ परित्यज्यपदंचैन्द्रं नोचेद्धर्तास्मिसत्व रम् ॥ ३४ ॥ सगत्वाचान्धकंप्राहयथोक्तंशम्भुनास्फुटम् ॥ सविशेषंमहाबुद्धिस्स्वामिकार्य्यप्रसिद्धये ॥ ३५ ॥ अथप्राह सदूतञ्च शङ्करस्यमहाबलः ॥ अवध्योहिसदादूतस्तेनत्वांननिहन्म्यहम् ॥ ३६ ॥ कस्मादेशङ्करोनाम योमामेवंप्रभा षते ॥ नमांवेत्तिसकिंमूढःकिंवामृत्युमभीप्स्यते ॥ ३७ ॥ अथवासत्यमेवैतन्निर्विण्णोजीविताच्चसः ॥ इतिदोषहतोपीत्थं सर्वभोगविवर्जितः ॥३८॥ श्मशानेक्रीडनंयस्य भस्मगात्रविलेपनम् ॥ भूषणंवाहयोवस्त्रं दिशोमुण्डोजटालकः ॥३९॥

स्थानको छोड़कर वहां पितृ पितामहवाले राज्यस्थान को भलीभांति कीजिये नहीं तो शीघ्रही मैं हरलूंगा ॥ ३४ ॥ उन महाबुद्धिमान् ने जाकर व अन्धक को पाकर जैसा शिवजी ने कहाथा विशेषता समेत वैसाही स्वामीके कार्यकी सिद्धिके लिये कहा ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर उस महाबली अन्धक ने शंकरजी के दूतसे कहा कि दूत सदैव अवध्य है उससे मैं तुमको नहीं मारताहूं ॥ ३६ ॥ जो शंकर नामक है वह किसलिये मुझसे ऐसा कहता है वह मूर्ख क्या मुझको नहीं जानता है अथवा मृत्युकी इच्छा करता है ॥ ३७ ॥ अथवा यह सत्यही है कि जीने से वह निर्वेदको प्राप्त है इसी कारण दोषोंसे नष्टभी व ऐसा समस्त सुखों से रहित है ॥ ३८ ॥ कि

जिसका श्मशान में खेल व खाक शरीर में लेपन और सर्प भूषण व दिशा वसन और मुण्ड जटावान् है ॥ ३९ ॥ उसके जीने से क्या है कि जो मुझसे यह ऐसा कहता है इसलिये शीघ्रही जाकर मेरा वचन उससे प्रकटता समेत कहो ॥४०॥ कि इस कैलासको छोड़कर तुम काशीमें मनकरो मैंने ऐश्वर्य समेत यह कैलास स्थान अपने पुत्र वृकको निस्सन्देह दिया है नहीं तो हे शंकर ! मैं इन्द्र समेत तुम्हारे प्राणोंको हरूंगा ॥ ४१ । ४२ ॥ उस वचनको सुनकर बड़े क्रोधसे संयुत वीरभद्र बार२घुड़ककर कैलासको भलीभांति गये ॥ ४३ ॥ व उन वीरभद्रने उस सब अतिक्रूर उसके वचनको विशेषकर पिनाकी शिवजी से कहा तदनन्तर पिनाकधारी

कस्तस्यजीवितेनेदंयोमामेवंब्रवीतिच ॥ तस्माद्गत्वाद्रुतंब्रूहि मद्वाक्यंतस्यसस्फुटम् ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाकैलासमेतत्त्वंवाराणस्यांमनःकुरु ॥ मयास्थानमिदंदत्तंकैलासंस्वसुतस्यच ॥ ४१ ॥ वृकस्यापिनसन्देहोविभवेनसमन्वितम् ॥ नोचेत्प्राणान्हरिष्यामिसेन्द्रस्यतवशङ्कर ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वावीरभद्रस्तुनिर्भर्त्स्यचमुहुर्मुहुः ॥ क्रोधेनमहताविष्टः कैलासंसमुपाद्रवत ॥ ४३ ॥ तत्सर्वंकथयामासतद्वाक्यंचपिनाकिने ॥ अतिक्रूरंविशेषेणततःक्रुद्धःपिनाकधृक् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे जलशायिमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेशम्भुर्गणैस्सर्वैस्समावृतः ॥ इन्द्राद्यैश्चसुरैस्सर्वैःक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १ ॥ जगामवृषमारुह्यपुरींचैवामरावतीम् ॥ अन्धकोपिसमालोक्यसम्प्राप्तांदेववाहिनीम् ॥ २ ॥ सगणंचमहादेवंपरितोषंपरङ्गतः ॥ निश्चक्रामाथयुद्धायबलेनचतुरङ्गिणा ॥३॥ वरंस्यन्दनमारुह्यसुश्वेताश्ववहंशुभम् ॥ ततस्समभवद्युद्धंदेवानांदानवैस्सह ॥४॥

शिवजी क्रोधितहुये॥४४॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजलशायीमाहात्म्येपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१५॥

दो० । अन्धक दानव कर भयो भृङ्गिरीटि असनाम । दोसौ सोलहवें महँ सोइचरित अभिराम ॥ सूतजी बोले कि इसी अवसर में समस्त गणों व इन्द्रादिक सब देवताओं से घिरेहुये शिवजी क्रोध से अति लाल लोचनोंवाले होगये ॥ १ ॥ व बैल पै चढ़कर अमरावती पुरी को गये भलीभांति प्राप्त हुई सुरसेना व गणों समेत महादेवजी को देखकर अन्धक भी परम प्रसन्नता को प्राप्त हुआ इसके बाद सफेद घोड़ों से लेजानेवाले उत्तम व श्रेष्ठ रथपै चढ़कर युद्धके लिये चतुरङ्गिणी सेना से

निकला तदनन्तर देवों का दानवों के साथ भलीभांति युद्ध हुआ ॥ २।३।४ ॥ व मृत्युको लौटाकर भयानक आकारवाले गणों से इस प्रकार हज़ार वर्ष के अन्त तक युद्ध वर्तमान होतारहा ॥ ५ ॥ व प्रतिदिन उस समर में देवता जयको प्राप्त होते थे दानव नहीं तदनन्तर हजार वर्ष के अन्तमे अतिक्रोधित चन्द्रभाल जीने ॥ ६ ॥ अपने हाथसे भलीभांति उठाकर त्रिशूल से विदारण किया उस त्रिशूल से बेधित भी वह आपही महादानव अन्धकासुर ॥ ७ ॥ ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से प्राणों से वियुक्त न हुआ तदनन्तर फिर भी उठकर महात्मा शिवजी से युद्ध किया ॥ ८ ॥ व विशेषकर क्रोधितहो बहुतेरे गणों को मारा व बार २ गदा के पातों से

गणैश्चविकृताकारैर्मृत्युंकृत्वानिवर्तनम् ॥ एवंवर्षसहस्रान्तंयावद्युद्धंप्रवर्तते ॥ ५ ॥ दिनेदिनेजयंयान्तितत्रदेवानदानवाः ॥ ततोवर्षसहस्रान्तेसंक्रुद्धःशशिशेखरः ॥ ६ ॥ त्रिशूलेनस्वहस्तेनसमुद्धृत्यव्यभेदयत् ॥ सविद्धोपिस्वयन्तेनत्रिशूलेनमहासुरः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणोवरमाहात्म्यान्नचप्राणैर्वियुज्यते ॥ ततोभूयोपिचोत्थायचक्रेयुद्धंमहात्मना ॥ ८ ॥ जघानचसमाक्रुद्धोविशेषेणबहून्गणान् ॥ शङ्करंताडयामासगदापातैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ एवंवर्षसहस्रान्तमभूत्सार्द्धंपिनाकिना ॥ रौद्रंयुद्धमभूत्तस्यमहादेवेनशम्भुना ॥ १० ॥ त्रिशूलभिन्नोदैत्यःसयदामृत्युंनगच्छति ॥ उत्थायोत्थायक्रुद्धस्तुप्रहारेणार्द्दयद्बली ॥ ११ ॥ तदातंशङ्करोज्ञात्वामृत्युनापरिवर्जितम् ॥ ब्रह्मणोवरदानेनसर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ १२ ॥ ततोनिर्भिद्यशूलाग्रेप्रोत्क्षिप्यगगनाङ्गणे ॥ छत्रवद्धारयामासलम्बमानमधोमुखम् ॥ १३ ॥ क्षरन्तंरुधिरंभूमौगात्रेभ्योवर्ष्मसम्भवम् ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं चर्मास्थिस्नायुरेवच ॥ १४ ॥ धातुत्रयंस्थितंतस्य नष्टमाशुचतुष्टयम् ॥ सज्ञात्वात्मबलं

शङ्करजी को ताडन किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार हज़ार वर्ष के अन्त तक उस अन्धकासुर का पिनाक नामक धनुषधारी महादेव शिवजी के साथ भयानक समर हुआ ॥ १० ॥ जब त्रिशूल से भेदित वह दैत्य मृत्यु को न प्राप्त होताथा किन्तु उठ २ कर क्रोधित हो बलवान् अन्धक ने प्रहार से विकल किया ॥ ११ ॥ तब शिवजी ने समस्त देवताओं व ब्रह्माके वरदान से उसको मृत्यु से रहित जानकर ॥ १२ ॥ तदनन्तर शूल के आगे भेदन करके आकाशरूपी आंगन में फेंककर नीचे मुखवाले उस लटके हुये दैत्यको छाता के समान हज़ारवर्ष तक धारण किया जो कि शरीर से उपजे हुये रक्तको अङ्गों से भूमि में बहाता था और चमड़ा, हड्डी व नसही ॥ १३।१४ ॥

हीनं मलिनंधातुसंक्षयात् ॥ १५ ॥ सामोपायंततश्चक्रेस्तुत्वासार्द्धंपिनाकिना ॥ अन्धकउवाच ॥ नत्वंदेवोमयाज्ञातो वाग्दुष्टेनदुरात्मना ॥ १६ ॥ ईदृग्वीर्य्यसमोपेतस्तस्माद्युक्तंभवत्कृतम् ॥ अनुरूपंमदान्धस्य विवेकरहितस्यच ॥ १७ ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्राप्य विद्यामैश्वर्य्यमेवच ॥ नतिष्ठतिचिरंकालं यथाहंमदगर्वितः ॥ १८ ॥ पापोहंपापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः ॥ त्राहिमान्देवईशान सर्वपापहरोभव ॥ १९ ॥ दुःखितोहंवराकोहं दीनोहंशक्तिवर्ज्जितः ॥ त्रातुमर्हसिमान्देव प्रपन्नंशरणंप्रभो ॥ २० ॥ दुष्टोहंपापयुक्तोहं साम्प्रतंपरमेश्वर ॥ तेनबुद्धिरियंजाता तवोपरिममानघ ॥ २१ ॥ सर्वपापक्षयेजाते शिवेभवतिभावना ॥ नाममात्रमपिव्यक्तयस्तेकीर्तयतिप्रभो ॥ २२ ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोति किम्पुनः पूजनेरतः ॥ तवपूजाविहीनानां दिनान्यायान्तियान्तिच ॥ २३ ॥ यानिदेवमृतानाञ्च तानियान्तिनजीवताम् ॥ कुष्ठीचरोगयुक्तोवा पङ्गुर्वाबधिरोपिवा ॥ २४ ॥ माभूत्तत्रकुलेजन्म शम्भुर्यत्रनदेवता ॥ तस्मान्मोचयमान्देव स्वगणंकुरु

उसके तीन धातुवें स्थित रहीं और चार शीघ्रही नष्ट होगईं उसने धातुवों के विनाश से अपने बलको हीन व मलिन जानकर तदनन्तर स्तुतिकर पिनाकी शिवजी के साथ साम (प्रियवचनरूप) उपाय किया अन्धक बोला कि दुष्टात्मा व वाणी से दुष्ट मैंने ऐसे पराक्रमसे संयुत तुम देवताको नहीं जाना इसलिये विचाररहित व मद से अन्ध मेरे अनुरूप योग्य आपने किया है ॥ १५ । १६ । १७ ॥ जो नम्र नहीं होताहै वह लक्ष्मी, विद्या व ऐश्वर्यही को पाकर बहुत समय तक नहीं स्थित होताहै जैसे कि मद से गर्वित मैं हुआहूं ॥ १८ ॥ मैं पापीहूं व मैं पापकर्मोंवालाहूं तथा पाप मन या चित्तवाला हूं व मुझ से पातक पैदा होताहै हे ईशान, देव ! मेरी रक्षा करो व समस्त पातकों के हारी होवो ॥ १९ ॥ हे प्रभो, देव ! मैं दुःखितहूं मैं बिचाराहूं मैं दीन व शक्तिरहितहूं तुम शरण में प्राप्तहुये मुझको पालने के योग्य हो ॥ २० ॥ हे परमेश्वर ! इस समय मैं दुष्टहूं व मैं पातकयुक्त हूं उसी से हे बिन पापवाले ! तुम्हारे ऊपर मेरी यह बुद्धि हुई ॥ २१ ॥ हे त्रिलोचन, प्रभो ! समस्त पातकों के क्षय होनेपर शिव में भक्ति होती है जो तुम्हारा नाममात्र भी कीर्तन करता है ॥ २२ ॥ वह भी मोक्ष को प्राप्त होताहै फिर जो पूजन में परायणहै उसको क्या कहनाहै हे देव ! तुम्हारी पूजा से विहीन पुरुषों के जो दिन आते, जाते हैं वे मरेहुये नरों के न कि जीतेहुये पुरुषों के जाते हैं कुष्ठी या रोगयुक्त अथवा पंगुला

या बधिर भी होवै ॥ २३।२४ ॥ परन्तु उस वंशमें मत जन्म होवै कि जिस में शिव देवता नहींहैं इसलिये हे देव ! मुझको छुड़ाइये व इस समय अपना गण कीजिये ॥ २५ ॥ हे विभो ! मेरा दानववाला स्वभाव गया व मैंने राज्य छोड़दिया और पुत्रों व पौत्रों को तथा ऐश्वर्यों समेत सेना को त्याग किया ॥ २६ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तीन शपथों से मैं तुम्हारे चरणों की सौगन्द करताहूं उसके उस वचनको सुनकर व नष्ट पातकोंवाले उस दैत्य को जानकर ॥ २७ ॥ समर्थ शिवजी ने धीरे से त्रिशूल परसे उतारकर तदनन्तर नम्रता से नीचे खड़ेहुये उसका आपही भृंगिरीटि ऐसा नाम किया ॥ २८ ॥ व कहा कि हे पुत्र ! तुम मुझको सदैव प्यारे होगे व नन्दीके

साम्प्रतम् ॥२५॥ गतोमेदानवोभावस्त्यक्तंराज्यंतथाविभो ॥ त्यक्ताःपुत्राश्चपौत्राश्च बलश्चविभवैस्सह ॥ २६॥ त्रिश्शपे नसुरश्रेष्ठतवपादौशपाम्यहम् ॥ तस्यतद्वचनंज्ञात्वातन्दैत्यंगतकल्मषम् ॥ २७॥ उत्तार्य्यशनकैश्शूलाद्विनयावनतंस्थितम् ॥ ततोनामस्वयंचक्रे भृङ्गिरीटिरितिप्रभुः ॥ २८ ॥ अब्रवीच्चसदामेत्वं वल्लभस्सम्भविष्यसि ॥ नन्दिनोपिमतस्तस्य महाकालस्यपुत्रक ॥ २९ ॥ तिष्ठसौम्यतयासौख्यं नस्मरिष्यसिबान्धवान् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय प्रणम्यशशिशेखरम् ॥ ३० ॥ तस्थौसर्वगुणैर्युक्तः प्रभुसंश्रयसंयुतः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेभृङ्गिरीट्युत्पत्तिर्नामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंगणत्वमापन्ने ह्यन्धकेदानवोत्तमे ॥ तस्यपुत्रोवृकोनाम निरुत्साहोद्विषज्जये ॥ १ ॥ भयेनमहता

भी व उन महाकाल जी के सम्मत होगे ॥ २९ ॥ व सौम्यता से सुखपूर्वक टिको और भाइयों को न याद कीजियेगा वह अन्धक वैसाही होगा यह प्रतिज्ञा करके व चन्द्रभाल जी को प्रणामकर ॥ ३० ॥ समस्त गुणोंसे संयुत व स्वामी के आश्रययुक्त होकर टिकता भया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभृङ्गिरीट्युत्पत्तिर्नामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इन्द्र सिंहासन पै यथा बैठ्यो वृक दनुपाल । दोसौ सत्रहवें महँ सोई कथा रसाल ॥ सूतजी बोले कि दानवोत्तम अन्धक जब इस प्रकार गणताको प्राप्त

होगया तब वृक नामक उसका पुत्र शत्रुओंके जीतने में उत्साह (हौसला) हीन होगया ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मारने से बचेहुये दानवों समेत बड़े डरसे संयुत वह अतिकठिन समुद्र के बीचमें पैठगया ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले इन्द्रजी शिवजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञाको पाकर अमरावती पुरीको पैठगये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! त्रिलोकमें भी सुखी इन्द्रने राज्य किया व भूतलमें जो यज्ञ हुये उन में फिर यज्ञभागों को पाया ॥ ४ ॥ इसी समय में अन्धक का पुत्र वृक नामक शीघ्रही समुद्रसे निकलकर जम्बूद्वीप में भलीभांति आश्रित हुआ ॥५॥ व पुण्यदायक तथा भलीभांति सिद्धिदायक हाटकेश्वर जी से उपजे हुये क्षेत्रको जाकर जहां कि

युक्तो हतशेषैश्चदानवैः ॥ प्रविवेशसमुद्रान्तं सुदुर्गंब्राह्मणोत्तमाः ॥ २ ॥ ततःशक्रःप्रहृष्टात्मा प्रणम्यवृषभध्वजम् ॥ तस्यादेशंसमासाद्य प्रविवेशामरावतीम् ॥ ३ ॥ चकारचसुखीराज्यं त्रैलोक्येपिद्विजोत्तमाः ॥ यज्ञभागान्पुनर्लेभे यज्ञायेचधरातले ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु अन्धकस्यसुतोवृकः ॥ निष्क्रम्यसागरात्तूर्णं जम्बूद्वीपंसमाश्रितः ॥ ५ ॥ हाटकेश्वरजंक्षेत्रं गत्वापुण्यंसुसिद्धिदम् ॥ पित्रायत्रतपस्तप्तमन्धकेनदुरात्मना ॥ ६ ॥ सुगुप्तस्तुतपस्तेपे यथावेत्तिन कश्चन ॥ ध्यायमानस्सुरश्रेष्ठं भक्त्याकमलसम्भवम् ॥ ७ ॥ यावद्वर्षसहस्रान्तं जलाहारोद्वितीयकम् ॥ तपस्तेपेसुदैत्येन्द्रो ध्यायमानःपितामहम् ॥ ८ ॥ वायुभक्षस्ततोजातस्तावत्कालंद्विजोत्तमाः ॥ अङ्गुष्ठाग्रेणभूपृष्ठे स्पर्शमानोजितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ एवंचतुर्थेसम्प्राप्ते सहस्रेद्विजसत्तमाः ॥ ब्रह्मातस्यगतस्तुष्टिं दृष्ट्वातस्यतपोमहत् ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीत्समागत्य स्वयम्भूर्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ भोभोवृकनिवर्तस्व तपसोस्मात्सुदारुणात् ॥ ११ ॥ वरंवरयभद्रन्ते यन्नित्यंमन

दुष्टात्मा अन्धक पिताने तपस्या कियाथा ॥ ६ ॥ वहां कमल से उपजेहुये सुरश्रेष्ठ (ब्रह्मा) को हजारवर्ष तक ध्यान करताहुआ व अति छिपाहुआ वह उस भांति तप करताभया कि जिस प्रकार कोई न जानै व दूसरे हज़ारवर्ष तक पितामहको ध्यानकरते व जलाहारी होतेहुये दैत्येन्द्र ने तपस्या किया ॥ ७।८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उतनेही समय याने हज़ारवर्ष तक अंगूठाके अग्रभागसे भूपृष्ठको छूताहुआ वह जितेन्द्रिय वृकासुर पवनभोजी हुआ ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार जब चौथा हजारवर्ष भलीभांति प्राप्तहुआ तब उसकी बड़ीभारी तपस्या देखकर ब्रह्माजी उस के ऊपर प्रसन्न होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माने आकर

उस से कहा कि हे वृकासुर ! इस अतिभयानक तपस्या से निवृत्त होवो ॥ ११ ॥ तुम्हारा कल्याण होवै जो नित्यही मनमें टिकाहो उस वरदान को मांगिये वृक बोला कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देनेयोग्य है ॥ १२ ॥ तो हे पितामहजी ! तुम मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहित कीजिये ब्रह्मा बोले कि हे वत्स ! मेरी प्रसन्नतासे तुम निस्सन्देह जरा मरण से हीन होवोगे यह मैंने सत्य कहा है ऐसा कहकर तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १३ । १४ ॥ व कृतार्थ होताहुआ वृकभी समस्त ऋतुवोंके फूलोंसे उज्ज्वल रैवतक नामक पर्वत पै अपने पिताके घरको गया ॥ १५ ॥ वहां जाकर व शीघ्रही मन्त्रियों से सलाहकर

सिस्थितम् ॥ वृकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ १२ ॥ जरामरणहीनंमां त्वंकुरुष्वपितामह ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममप्रसादतोवत्स जरामरणवर्जितः ॥ १३ ॥ भविष्यसिनसन्देहस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ एवमुक्त्वाततोब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १४ ॥ वृकोपिकृतकृत्यश्च जगामस्वगृहंपितुः ॥ गिरिंरैवतकंनाम सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलम् ॥ १५ ॥ तत्रगत्वानिजामात्यैःसम्मन्त्र्यचससत्वरम् ॥ इन्द्रोपरिततश्चक्रे यानंयुद्धपरीप्सया ॥ १६ ॥ इन्द्रोपिचपरिज्ञाय दानवन्तंमहाबलम् ॥ जरामृत्युपरित्यक्तं प्रभावात्परमेष्ठिनः ॥ १७ ॥ परित्यज्यभयाच्चैव पुरींचैवामरावतीम् ॥ ब्रह्मलोकंगतस्तूर्णं देवैस्सर्वैस्समन्वितः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो वृकश्चत्रिदशालयम् ॥ ससैन्यपरिवारेण शुक्रेणचसमन्वितः ॥ १९ ॥ ततश्चेन्द्रपदेतस्मिन्स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ शुक्रात्प्राप्याभिषेकञ्च पुण्यस्नानसमुद्भवम् ॥ २० ॥ सोभिषिक्तस्तुशुक्रेण देवराज्यपदेवृकः ॥ यज्ञभाग कृतेविप्राःशुक्रशासनमाश्रितः ॥ २१ ॥ इतिसप्तदशाधिकद्विशततमोध्यायः २१७ ॥

तदनन्तर युद्धकी इच्छासे इन्द्रके ऊपर यात्रा किया ॥ १६ ॥ इन्द्रभी उस बड़े बली दानव को ब्रह्माके प्रभाव से वृद्धता व मृत्युसे रहित जानकर ॥ १७ ॥ समस्त देवताओं से संयुक्त होतेहुये डरसे अमरावती पुरीको छोड़कर शीघ्रही ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ १८ ॥ इसी अवसर में शुक्रसे संयुत व सेना, परिवार समेत वृकासुर स्वर्गको प्राप्तहुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर पुण्यस्नानसे उपजेहुये अभिषेक को शुक्रजी से पाकर उस इन्द्रस्थानपै आपही टिका ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! शुक्रजीसे देवताओं के राज्यस्थानपै अभिषेक कियाहुआ वह वृकासुर यज्ञभागों के लिये शुक्रकी आज्ञापै आश्रितहुआ ॥ २१ ॥ इति वृकस्येन्द्रपदप्राप्तिर्नामसप्तदशाधिकद्विशततमोध्यायः २१७ ॥

दो० । इन्द्र फेरि वृकसों यथा पायो है निज थान । दोसौ अट्ठारहेमहँ कह्यो सूत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि त्रिलोकसे उपजीहुई उस राज्यको भलीभांति प्राप्त होकर वृकासुर ने भी स्वच्छन्दता से उस समय समस्त संसार की राज्य किया ॥१॥ वह वृक दानव बल,प्रभाव, धैर्य व क्रोधमें अन्धकासुर के हज़ार गुनाथा व बड़ा विकराल तथा भयंकर था ॥२॥ इसी अवसर में देवताओं के स्थानपै दैत्योंको जानकर भूतलमें कोई मन्त्र न जपताथा व न होम और न यज्ञ करताथा ॥ ३ ॥ इस के अनन्तर जो पुरुष धर्म, होम या जपही करताथा वह छिपे स्थानमें जाकर देवों की प्रसन्नता के लिये करताथा ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर स्वर्गमें टिके व यज्ञभागों से

सूतउवाच ॥ वृकोपितत्समासाद्यराज्यंत्रैलोक्यसम्भवम् ॥ यदृच्छयाजगत्सर्वं ससमाज्ञापयत्तदा ॥ १ ॥ सोन्धकस्यबलेवीर्य्ये धैर्य्येकोपेचदानवः॥ सहस्रगुणितश्चासीद्रौद्रःपरमदारुणः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकश्चिन्नमन्त्रंजपतिक्षितौ ॥ नहोमन्नैवयज्ञञ्च दैत्याञ्ज्ञात्वासुरास्पदे ॥ ३ ॥ अथयःकुरुतेधर्म्मं होमंवाजपमेववा ॥ सगुप्तस्थानमासाद्य करोत्यमरतुष्टये ॥ ४ ॥ अथस्वर्गस्थितादैत्या यज्ञभागविवर्जिताः ॥ तथामर्त्योद्भवैर्भागैस्सन्देहंपरमङ्गताः ॥ ५ ॥ ततः कोपपरीतात्मा प्रेषयामासदानवः ॥ मर्त्यलोकेचरान्गुप्तान्निपुणांश्चाब्रवीत्ततः ॥६॥ यःकश्चिद्देवतानाञ्च प्रगृह्णातिकरोति च ॥ तदर्थंयजनंहोमं दानंवापृथिवीपतिः ॥ सचवध्यश्चयुष्माभिर्ममवाक्यादसंशयम् ॥ ७ ॥ अथतेतद्वचःश्रुत्वा दानवाबलवत्तराः ॥ गत्वाचमेदिनीपृष्ठं गुप्तास्संयान्तिसर्वतः ॥ ८ ॥ यंकञ्चिद्वीक्षयन्तिस्म जपहोमपरायणम् ॥ स्वाध्यायंवाप्रकुर्वाणं तन्निघ्नन्तिशितासिभिः॥९॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सांकृतिर्द्विजसत्तमः ॥ गुप्तश्चक्रेतपस्तस्यां गर्तायांच

रहित तथा मनुष्यसे उपजे हुये भागोंसे हीन होकर देवता बड़ी सन्देहको प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले दानव ने मृत्युलोक में चतुर व गुप्त दूतोंको पठाया तदनन्तर कहा ॥ ६ ॥ कि जो कोई भूप देवताओं को ग्रहण करता है व उनके लिये पूजन, हवन या दान करताहो वह मेरे वचनसे निस्सन्देह तुम लोगों से मारने योग्यहै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उसका वचन सुनकर वे बडे बलिष्ठ दानव भूपृष्ठको जाकर सब ओर छिपेहुये घूमते थे ॥ ८ ॥ व जिस किसीको जप होममें तत्पर व वेदपाठ करतेहुये देखते थे उसको पैनी तलवारों से मारते थे ॥ ९ ॥ इसी अवसर में छिपे शरीरवाले सांकृति द्विजोत्तम ने गुप्त होकर उस गढ़े में

तप किया ॥ १० ॥ जहां कि हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय वृकने प्रथम तपस्या किया था इसके उपरान्त उस गुहामें विशेषकर टिकेहुये उस ब्राह्मणको देखकर उस समय वे दूत ॥ ११ ॥ उस तपको निन्दते हुये कठोर अक्षरों से बोले व हे द्विजोत्तमो ! उसके आश्रममें भलीभांति थापित व चन्दन तथा फूलोंसे पूजित चार हाथवाली विष्णु जी की मूर्तिको देखकर तदनन्तर क्रोधसंयुत होते हुये उन्होंने शस्त्रको उठाकर मारा ॥ १२ । १३ ॥ विष्णुजीके तेजसे घिरेहुये उनको जब मारनेके लिये न समर्थ हुये तब निर्मल भी समस्त शस्त्र गोंठिल होगये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर विलक्षणता में प्राप्त वे सबही वैराग्यको प्राप्तहुये व उस समय उन्होंने उस वार्ताको दान-

न्नवर्ष्मकः ॥१०॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं वृकेणचपुराद्विजाः॥अथतेतंतदादृष्ट्वा तद्गुहायांव्यवस्थितम् ॥११॥ भर्त्सयमानास्त पस्तच्च प्रोचुश्चपरुषाक्षरैः ॥ दृष्ट्वातस्याश्रमेसंस्थां गन्धपुष्पैःप्रपूजिताम् ॥ १२ ॥ वासुदेवात्मिकांमूर्तिं चतुर्हस्तांद्विजो त्तमाः॥ ततस्तुशस्त्रमुद्यम्य निजघ्नुस्तेक्रुधान्विताः ॥ १३ ॥ नशेकुस्तंयदाहन्तुं संवृतंविष्णुतेजसा ॥ कुण्ठतांसर्वश स्त्राणि गतानिविमलान्यपि ॥ १४ ॥ अथवैलक्ष्यमापन्ना निर्विण्णास्सर्वएवते ॥ तांवार्तान्दानवेन्द्राय वृकायोचुश्चतेत दा ॥ १५ ॥ कश्चिद्विप्रस्समाधाय वैष्णवींप्रतिमाम्पुरः ॥ तपस्तेपेमहाभागः क्षेत्रेवैहाटकेश्वरे ॥ १६ ॥ यत्त्वयातप स्तप्तं भीत्यासर्वदिवौकसाम् ॥ अपिचौर्य्येणचास्माकं तपस्तपतितादृशम् ॥ १७ ॥ येनसर्वाणिशस्त्राणि कुण्ठतांप्र गतानिनः ॥ तस्यगात्रप्रहारैश्च ततःकुरुयथोचितम् ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा वृकःकोपसमन्वितः ॥ जगामसत्वरं तत्र यत्रास्तेसांकृतिस्स्थितः ॥ १९ ॥ सगत्वावैष्णवींमूर्तिं तामुत्क्षिप्यसुदूरतः ॥ श्वभ्रादहिःप्रचिक्षेप भर्त्सयमानःपुनः

वेन्द्र वृकासुर से कहा ॥ १५ ॥ कि कोई महाभाग्यवान् ब्राह्मण हाटकेश्वरक्षेत्र में विष्णुजी की मूर्तिको अगाडी धरकर तपस्या करताभया है ॥ १६ ॥ जहां कि समस्त देवताओं के डरसे तुमने तपस्या कियाथा वैसीही तपस्या हमलोगोंकी चोरीसे भी वह करताहै ॥ १७ ॥ कि जिससे हमलोगों के समस्त शस्त्र उसके अंगोंमें प्रहारों से गोंठिलताको प्राप्त होगये इसलिये यथायोग्य कीजिये ॥१८॥ उनके उस वचनको सुनकर क्रोधसंयुत होताहुआ वृक शीघ्रही वहांगया जहां कि सांकृति टिकेथे ॥१९॥

बार २ घुड़कते हुये उसने जाकर उस विष्णुजी की मूर्तिको उखाड़ कर गढ़ेके बाहर बहुत दूर फेंकदिया ॥ २० ॥ व दाहिने तथा बांये चरणकी चोट से उस विप्रको मारा व कहा कि तुम मेरे मारने योग्यहो जिस लिये तुम मेरे शत्रु विष्णुको चोरीसे भलीभांति पूजतेहो उससे मैं प्राणोंको हरूंगा ॥ २१ । २२ ॥ ऐसा कहकर इसके अनन्तर उस दैत्यपति ने उसको तलवारसे मारा तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उसकी पैनी भी वह तलवार ॥ २३ ॥ उसके शरीरमें नष्ट होगई व सौखण्ड प्राप्त हुई तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले उन सांकृतिजीने उस वृकको शाप दिया ॥ २४ ॥ कि हे पापी ! जिस लिये तुमने मुझको चरण की चोटोंसे चोटैल किया

पुनः ॥ २० ॥ जघानपादघातेन दक्षिणेनेतरेणतम् ॥ अब्रवीन्ममवध्यस्त्वं यन्मेशत्रुंजनार्दनम् ॥ २१ ॥ सम्पूजय सिचौर्य्येण तेनप्राणान्हराम्यहम् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वाथखड्गेन तंजघानसदैत्यपः॥ततस्तस्यसखड्गस्तु तीक्ष्णोपिद्विज सत्तमाः ॥ २३ ॥ तस्यकायेप्रणष्टस्तु शतधासमपद्यत ॥ ततःकोपपरीतात्मा तंशशापससांकृतिः ॥ २४ ॥ यस्मात्पा पत्वयाहञ्च पादघातैःप्रताडितः ॥ तस्मात्तेपततांपादौ सद्यएवधरातले ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ गुल्फमात्रंततश्चैव पादौ तस्यद्विजोत्तमाः ॥ पतितौमेदिनीपृष्ठे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु आक्रन्दस्सुमहानभूत् ॥ वृक स्यसैनिकानांच नारीणाञ्चविशेषतः ॥ २७ ॥ अथदेवाःपरिज्ञाय तन्तदापङ्गुताङ्गतम् ॥ आगत्यमेरुपृष्ठञ्च निजघ्नु स्तेपरस्परम् ॥ २८ ॥ हतशेषास्ततोदैत्याः पातालञ्चसमागताः ॥ वृकोपिपङ्गुताम्प्राप्तस्तस्थौतपसिसुस्थिरे ॥ २९ ॥ सर्वैरन्तःपुरैस्सार्द्धं दुःखशोकसमन्वितः ॥ इन्द्रोपिप्राप्तवान्राज्यं तदानिहतकण्टकम् ॥ ३० ॥ धर्म्मक्रियाःप्रवृत्ता

उसी कारण शीघ्रही तुम्हारे पावँ पृथ्वीमें गिरपड़ैं ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर उसके घुटनू मात्र चरण पांच मस्तकवाले सर्पोंके समान पृथ्वी-तलमें गिरपड़े ॥ २६ ॥ इसी अवसरमें वृककी सेनावालों का व विशेषकर स्त्रियोंका बड़ाभारी शब्दहुआ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर पंगुतामें प्राप्त उस वृकको जानकर देवताओं ने मेरुपृष्ठपै आकर परस्पर में सम्मति करके मारा ॥ २८ ॥ तदनन्तर मारने से बचेहुये दैत्य पाताल को भलीभांति आये व पंगुता में प्राप्त वृकभी बड़ी स्थिर तपस्या में टिका ॥ २९ ॥ और समस्त रनिवास समेत दुःख शोचसे संयुत इन्द्र ने भी उस समय नष्टकण्टकोंवाली राज्यको पाया ॥ ३० ॥ तदनन्तर फिर

भूतल में धर्मके कार्य वर्तमान हुये इसके अनन्तर बहुत समय से उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माने ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहीं गढ़ेके मध्यमें आकर वरदान दिया कि हे सुव्रत, वत्स, वृक ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं वरदान मांगो ॥ ३२ ॥ यद्यपि दुर्लभ होगा तथापि मैं तुमको निश्चय कर दूंगा वृक बोला कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३३ ॥ तो हे ब्रह्मन् ! मुझको चरणदान कीजिये कि जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से शीघ्रही मेरी यह पंगुलता जावै ॥ ३४ ॥ उस वचनको सुनकर ब्रह्माजी वहां सांकृति ब्राह्मणको भलीभाति आनकर प्रियवचनपूर्वक बोले हे द्विजोत्तम, साकृते ! इस वृकके तुमसे उपजीहुई पंगुलता मेरे

वृश्च ततोभूयोधरातले ॥ अथदीर्घेणकालेन तस्यतुष्टःपितामहः ॥ ३१ ॥ ददौतत्रैवचागत्य गर्तमध्येद्विजोत्तमाः ॥ तुष्टोऽस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥ ३२ ॥ अहंदास्यामितेनूनं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ वृकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ ३३ ॥ पाददानंतदादेव ममब्रह्मन्समाचर ॥ पङ्गुतायातिशीघ्रम्मे येनेयन्तेप्रसादतः ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वातंसमानीय सांकृतिंतत्रपद्मजः ॥ प्रोवाचसान्त्वपूर्वंच वृकस्यास्यद्विजोत्तम ॥ ३५ ॥ मद्वाक्यात्पङ्गुतायातु सांकृतेतवसम्भवा ॥ सांकृतिरुवाच ॥ असत्यन्नोक्तपूर्वम्मे स्वैरेष्वपिपितामह ॥ ३६ ॥ ज्ञायतेदेवदेवेश तत्कथंप्रकरोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममभक्तिपरोनित्यं वृकोयंदैत्यसत्तमः ॥ ३७ ॥ पौत्रश्चदयितोनित्यं तेनत्वांप्रार्थयाम्यहम् ॥ तववाक्यंचनोमिथ्या कर्तुंशक्नोमिसन्मुने ॥ ३८ ॥ सांकृतिरुवाच ॥ एषदैत्यःसुदुष्टात्मा देवानामहितेस्थितः ॥ विशेषाद्वासुदेवस्य गुरोर्ममहात्मनः ॥ ३९ ॥ हनिष्यतिचतत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ तस्मात्तिष्ठतुतद्रूपोनचैनंदातुमर्हसि ॥ ४० ॥

वचन से जातीरहै सांकृति बोले कि हे पितामह जी ! मैंने स्वच्छन्दता मे भी पहले झूंठ नही कहाहै यह जानाजाता है हे देवदेवेश ! मै उसको कैसे करूं ब्रह्मा बोले कि नित्यही मेरी भक्ति में परायण यह दैत्यों में उत्तम वृक ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ पौत्र नित्यही प्रिय है उससे मैं तुमसे प्रार्थना करताहूं व हे सन्मुने ! तुम्हारा वचन झूंठ करनेके लिये नहीं समर्थ हूं ॥ ३८ ॥ सांकृति बोले कि अतिदुष्टमनवाला यह दैत्य देवताओं तथा विशेष कर मेरे गुरु विष्णु महात्मा के अप्रियमें स्थितहै ॥३९॥

उसी कारण सुरासुर नर समेत सबको नाश करैगा इसलिये तद्रूप याने पंगुला होकर टिकै तुम देने के लिये नहीं योग्यहो ॥ ४० ॥ क्योंकि हे प्रभो ! तुमको भी त्रिलोक की चिन्ता करना चाहिये ब्रह्मा बोले कि वर्षा समय होनेपर यात्रा करने के लिये नहीं योग्यहै ॥ ४१ ॥ व जीतने की इच्छावाले को विशेष कर जाड़ा व गरमी का आगमन छोडकर नहीं योग्यहै उसलिये वर्षावाले चार महीने चरणसंयुत होवै ॥ ४२ ॥ क्योंकि वे चार महीने समस्त मनुष्योंके जो धर्मवाले कर्म हैं उनके अगम्य याने न होने योग्यहैं इस लिये दानवों में उत्तम वह वृक वैसे रूपवाला व पांवसंयुत होवै ॥ ४३ ॥ कि जिससे हे विप्रजी ! देवताओं व द्विजोंका कल्याण होवै

तस्यापिचिन्ताकर्तव्या त्रैलोक्यस्ययतःप्रभो ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रावृट्कालेतुसञ्जाते यानंकर्तुंनयुज्यते ॥ ४१ ॥ विजिगीषोर्विशेषेण मुक्त्वाशीतातपागमम् ॥ तस्माच्चचतुरोमासान्वार्षिकान्पादसंयुतः ॥ ४२ ॥ अगम्यान्सर्वलोकानां यानिकर्म्माणिधर्म्मतः ॥ तद्रूपःपादसंयुक्तः सवृकोदानवोत्तमः ॥ ४३ ॥ येनक्षेमञ्चदेवानां द्विजानांजायतेद्विज ॥ एवंकृतेन मिथ्याते वाक्यंविप्रभविष्यति ॥ ४४ ॥ फलंचतपसस्तस्यनवृथासम्भविष्यति ॥ सूतउवाच ॥ बाढमित्येवतेनोक्ते समन्तेनमहात्मना ॥ ४५ ॥ उत्थितौसहसापादौ तस्यगात्रात्पुनर्नवौ ॥ पुनश्चदानवोरौद्रः पङ्गुत्वंसमपद्यत ॥ ४६ ॥ तस्यामेवतुगर्तायां सन्तिष्ठतिद्विजोत्तमाः ॥ मासानष्टौसदुःखेन सहितःसम्प्रबोधितः ॥ ४७ ॥ स्मरमाणोमहद्वैरं देवैस्सार्द्धंदिवानिशम् ॥ अन्यांश्चचतुरोमासान्निष्क्रम्यसरुषान्वितः ॥ ४८ ॥ सदापीडयतेदेवान्माहेन्द्रान्मानुषानपि ॥ विध्वंसयतिदेवानां स्त्रियोमासचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥ उद्यानानिचसर्वाणि गोपुराणिगृहाणिच ॥ ततोदेवास्समभ्येत्य

और हे द्विज ! ऐसा करने पर तुम्हारा वचन झूंठ न होगा ॥ ४४ ॥ व उसकी तपस्या का फल वृथा न होगा सूतजी बोले कि उन महात्मा समेत उस से हां यही कहने पर ॥४५॥ अचानकही उसके शरीरसे फिर नये चरण उठते भये और फिर विकराल दानव पंगुलताको प्राप्तहुआ ॥४६॥ हे द्विजोत्तमो ! दुःख समेत व समझाया हुआ वह वृक आठ महीने उसी गढ़ेमें भलीभांति टिकता था ॥ ४७ ॥ व अहर्निश देवताओं के साथ बड़े वैरको याद करताथा और अन्य चार महीनो में निकलकर क्रोधसंयुत वह वृकासुर ॥ ४८ ॥ सदैव देवताओं महेन्द्रों व मनुष्यों को भी पीड़ित करताथा तथा चार महीने देवताओं की स्त्रियोंको विध्वंस करता था ॥ ४९ ॥ व

समस्त बगीचों तथा नगरके द्वारों तथा गृहोंको विनाश किया तदनन्तर देवता नित्य ही शेषशय्यापै शयन करनेवाले व क्षीरसागर में भलीभांति टिकेहुये देवदेव विष्णुजी के समीप भलीभांति आकर व वर्षावाले चार महीने तक वहां उनके समीप टिककर ॥ ५० । ५१ ॥ व अतिभयानक उस दैत्यको पंगुतामें प्राप्तहोनेपर आठ महीने फिर निडर होकर स्वर्गको जातेथे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर किसी समय दुःखसे अति तचेहुये इन्द्रजी बृहस्पति से बोले कि जहां सुरश्रेष्ठ जाते हैं ॥ ५३ ॥ वहां चिह्नों का जाननेवाला यह वृकासुर आवैगा उस कारण हमलोगों को क्षीरसागरवाले विष्णुजी के स्थानमें जाना चाहिये ॥ ५४ ॥ वैसेही पराये स्थानमें बसनेवाले

देवदेवंजनार्द्दनम् ॥ ५० ॥ क्षीराब्धौसंस्थितंनित्यं शेषपर्य्यङ्कशायिनम्॥ चतुरोवार्षिकान्मासांस्तत्रस्थित्वातदन्तिके ॥ ५१ ॥ मासानष्टौपुनर्जग्मुस्त्रिदिवंप्रतिनिर्भयाः ॥ तस्मिन्पङ्गुत्वमापन्ने दैत्येपरमदारुणे ॥ ५२ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य देवराजोबृहस्पतिम् ॥ प्रोवाचदुःखसन्तप्तः यत्रयान्तिसुरोत्तमाः ॥ ५३ ॥ आगमिष्यतितत्रासौ लक्षणज्ञो वृकासुरः ॥ गन्तव्यंचततोस्माभिः क्षीरोदेकेशवालये ॥ ५४ ॥ मौनैर्दीनैस्तथाभाव्यं पराश्रयनिवासिभिः ॥ स्वगृहाणिपरित्यज्य शयनान्यासनानिच ॥ ५५ ॥ वाहनानिविचित्राणि यदन्यदपिवैगृहे ॥ तस्मात्कथयचास्माकमुपायंकिञ्चिदेवहि ॥ ५६ ॥ व्रतंवानियमोवाथ होमंवाद्विजसत्तम ॥ अशून्यंशयनंयेन स्वकलत्रेणजायते ॥ ५७ ॥ तथानगृहसंत्यागस्स्वकीयस्यप्रजायते ॥ निर्विण्णोहंनिजस्थानभङ्गाद्विजवरोत्तम ॥ ५८ ॥ वर्षेवर्षेचसम्प्राप्ते स्थानकस्यच्युतिर्भवेत् ॥ पुनर्भूमौशयिष्यामि यावन्मासचतुष्टयम् ॥ ५९ ॥ निष्कलत्रोभयोद्विग्नो ब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ तस्य

हमलोगो को मौन व दीन होना चाहिये अपने घरों व शय्याओं व आसनों तथा विचित्र वाहनों व जो और भी घरमेंहै उसको छोडकर जाना चाहिये इसलिये कुछ ही उपायको हमलोगों से कहिये ॥ ५५।५६॥ हे द्विजोत्तम ! व्रत या नियम अथवा होम होवै जिससे कि शय्या अपनी स्त्री से शून्य न होवै ॥५७॥ वैसेही अपने घरका भलीभांति त्याग न होवै हे द्विजवरोत्तम ! अपने स्थानके भंग होनेसे मैं निर्वेदको प्राप्तहूं ॥ ५८ ॥ क्योंकि प्रतिवर्ष भलीभांति प्राप्त होने पर स्थानकी छूट होती है व स्त्रियों से रहित तथा भयसे ऊबाहुआ व ब्रह्मचर्य में तत्पर मैं फिर चार महीने तक भूमि में सोऊंगा उन सुरपति के उस वचन को सुनकर बृहस्पति जी बहुत देरतक

श्रौर सांकृतिके शाप से वह वृकासुर भी पंगुताको प्राप्त होताहै इस प्रकार चार महीने तक उस दुष्टात्मा दानवेन्द्र दानवकी शय्या को विष्णुजी नहीं छोड़ते हैं और उन चार महीनों में यज्ञ से उपजेहुये समस्त कर्म मृत्युलोकमें नहीं कियेजातेहैं॥ ८० ॥ ८१ ॥ जिस लिये सोतेहुये वे यज्ञपुरुष विष्णुजी भोग को नहीं भोगते हैं उसी कारण अन्नप्राशन व सीमन्तोन्नयन (सतवांसा) को छोड़कर मुण्डनपूर्वक कन्यादानादिक समस्त शुभ कार्योंको वे समस्त मनुष्य नहीं करते हैं॥ ८२ । ८३ ॥ उसी कारण हे ब्राह्मणो ! जब जगदीशजी सोते हैं तब वे समस्त कार्य वृथा होजाते हैं और जो नर उन देवदेवेश (विष्णु) जीके सोनेपर व्रत अथवा नियम को

सोपिसांकृतिशापेन वृकःपङ्गुत्वमाप्नुयात् ॥ एवंचचतुरोमासान्नत्यजेच्छयनंहरिः ॥ ८० ॥ तथातस्यासुरेन्द्रस्य दानवस्यदुरात्मनः ॥ तत्रमर्त्यैक्रियास्सर्वाः क्रियन्तेनमखोद्भवाः ॥ ८१ ॥ यस्मात्सयज्ञपुरुषो नसुप्तोभोगमश्नुते ॥ तस्माद्यज्ञात्मिकाःसर्वाः कन्यादानादिकाःशुभाः ॥ ८२ ॥ तैस्सर्वैर्नक्रियन्तेच चूडाकरणपूर्विकाः ॥ मुक्त्वान्नप्राशनन्नाम सीमन्तोन्नयनंतथा ॥ ८३ ॥ तस्मात्सुप्तेजगन्नाथे तास्सर्वाःस्युर्वृथाद्विजाः ॥ व्रतंवानियमंवाथ तस्मिन्यःकुरुते नरः ॥ ८४ ॥ प्रसुप्तेदेवदेवेशे तत्सर्वंनिष्फलंभवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्प्रसुप्तेजनार्दने ॥ ८५ ॥ तत्रस्थैर्मानुषैःकार्यं तस्यदेवस्यतुष्टये ॥ एकादश्यांदिनेप्राप्ते शयनेबोधनेहरेः ॥ ८६ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म्म श्रेष्ठंचैवाक्षयंभवेत् ॥ किञ्चात्रबहुनोक्तेन क्रियतेयद्व्रतंनरैः ॥ ८७ ॥ तेनतुष्टिंपरांयाति तस्योपरिस्थितोहरिः ॥ तस्मिन्नहनिपापात्मा योन्नमश्नातिमानवः ॥ ८८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ अन्यस्मिन्नपिभोक्तव्यं ननरेणविजानता ॥ ८९ ॥

करताहै वह सब अफल होजाता है इस लिये विष्णु के सोनेपर वहां टिकेहुये मनुष्यों को उन विष्णुदेवकी प्रसन्नता के लिये सब उपाय से यही करना चाहिये और विष्णुजी के सोने व जागने में एकादशी दिनके प्राप्त होनेपर ॥ ८४ । ८५ । ८६ ॥ जो कुछ उत्तम कर्म किया जाता है वह अविनाशी होताहै इस विषय में बहुत कहने से क्याहै मनुष्य जिस व्रतको करते हैं॥ ८७ ॥ उससे उस वृकके ऊपर टिकेहुये विष्णुजी परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं उस दिन जो पुरुष अन्न खाताहै वह पापात्मा है ॥ ८८ ॥ उस कारण अन्य भी विष्णुवासर (एकादशी) भलीभांति प्राप्त होनेपर विज्ञानी पुरुष को समस्त उपाय से भोजन न करना चाहिये ॥ ८९ ॥

फिर उस एकादशी को क्या कहनाहै कि जिसमें शयन तथा जिसमें जागरण करते हैं सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मुझसे जो पूंछागया यह समस्त चरित तुमसे
कहा ॥ ६० ॥ कि जिस प्रकार सदैव क्षीरसागर को छोड़कर चार महीने हाटकेश्वर से उपजेहुये क्षेत्रमें जनार्दनजी सोते हैं ॥६१॥ और उन व्यापक विष्णुजी का आरा-
धन करनेपर फल सुनिये कि वर्षावाले चार महीने जो पुरुष उन व्यापक विष्णु जी को पूजताहै ॥ ६२ ॥ व्रत में टिका हुआ वह मनुष्य वहां जाता है जहां कि वे
विष्णुदेवजी भलीभांति टिके हैं और जो मनुज निश्चयकर सोते हुये कमलदललोचनवाले विष्णुजीको पूजताहै उसके बहुत दानदेने से क्याहै व यज्ञों, नियमों

किम्पुनःशयनंयत्र कुरुतेयत्रबोधनम् ॥ सूतउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तमाः ॥ ९० ॥ हाटकेश्व
रजेक्षेत्रे यस्माच्छेतेजनार्दनः ॥ क्षीराब्धिसम्परित्यज्यसदामासचतुष्टयम् ॥ ९१ ॥ श्रूयतांचफलंतस्य तस्मिन्नाराधि
तेविभौ ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्यस्तंपूजयतेविभुम् ॥ ९२ ॥ व्रतस्थस्सनरोयाति यत्रदेवःससंस्थितः ॥ किन्दानैर्बहु
भिर्दत्तैः किंयज्ञैर्नियमैर्व्रतैः ॥ ९३ ॥ यस्तुवैपुण्डरीकाक्षंसुप्तंपूजयतिध्रुवम् ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदे
नागरखण्डे जलशाय्युत्पत्तिर्नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ * ॥ * ॥
ऋषयऊचुः ॥ प्रसुप्तेदेवदेवेशे शङ्खचक्रगदाधरे ॥ यच्चान्यदपिकर्तव्यं नियमोव्रतमेववा ॥ १ ॥ होमोवाथजपोवा
थ दानंवंतद्वदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ यःकश्चिन्नियमोविप्राःप्रसुप्तेगरुडध्वजे ॥ २ ॥ अनन्तफलदःसस्यादित्युवाचपिता

तथा व्रतों से क्याहै ॥ ९३ । ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदे नागरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां जलशाय्युत्पत्तिर्नामाष्टादशाधिक
द्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥
दो० । चौमासेमें जेहि नियम मिलत अहैं फल जोइ । दोसौ उन्नीसवें महँ कह्यो चरित सब सोइ ॥ ऋषि लोग बोले कि शंख, चक्र, गदा को धारनेवाले देवदेवेश
(विष्णु) के सोनेपर जो और भी नियम या व्रतही करने योग्यहो ॥ १ ॥ व होम अथवा जप या दान होवै तुम उसको हमलोगों से कहो सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो !

गरुड़ध्वज विष्णु के सोनेपर जो कोई नियम होता है ॥ २ ॥ वह अमितफलदायक होवै है यह ब्रह्मा ने कहाहै इस लिये विशेषकर जाननेवाले पुरुषको सब उपाय से कोई नियम ग्रहण करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! चक्र हाथवाले विष्णु जीकी प्रसन्नताके लिये नियम या जप या होम व वेदपाठ अथवा व्रतहीको करना चाहिये ॥ ४ ॥ वर्षावाले चार महीने जो विष्णुजी को भलीभांति उद्देश कर शाक के भोजन से व्यतीत करताहै वह पुरुष धनी होताहै ॥ ५ ॥ और जो विष्णुजी के सोनेपर नक्षत्रों के उदय होने से भोजन करताहै वह धनी व रूप से संयुत व भलीभांति मानाहुआ होताहै ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो पुरुष वर्षावाले चार महीने एक

महः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कश्चिद्ग्राह्योविजानता ॥ ३ ॥ नियमोवाजपोहोमः स्वाध्यायोव्रतमेववा ॥ कर्तव्यंब्राह्मणश्रेष्ठास्तुष्ट्यर्थंचक्रपाणिनः ॥ ४ ॥ चतुरोवार्षिकान्मासाञ्छाकभक्तेनयोनयेत् ॥ वासुदेवंसमुद्दिश्य सधनीजायते नरः ॥ ५ ॥ नक्तैर्भोजनंकुर्य्यात्संप्रसुप्तेजनार्दने ॥ सधनीरूपसम्पन्नः सम्मतश्चप्रजायते ॥ ६ ॥ एकान्तरोपवासैश्चयोनयेद्द्विजसत्तमाः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सवैकुण्ठंसदावसेत ॥ ७ ॥ षष्ठाह्नकालभोजीस्याद्यःप्रसुप्तेजनार्दने ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां सकृत्स्नंलभतेफलम् ॥ ८ ॥ त्रिरात्रोपोषितोयस्तु चातुर्मास्यंसदानयेत् ॥ नसभूयोत्रजायेत संसारेपिकथञ्चन ॥ ९ ॥ स्वापेव्रतपरोभूत्वा चतुर्मासांश्चयोनयेत् ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य सफलंलभतेनरः ॥ १० ॥ अयाचितंचरेद्यस्तु प्रसुप्तेमधुसूदने ॥ नविच्छेदोभवेत्तस्य कदाचित्सहबन्धुभिः ॥ ११ ॥ तैलाभ्यङ्गंचयोजह्याद्घृताभ्यङ्गंविशेषतः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सस्वर्गेभोगभाग्भवेत ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्य्येणयोमासांश्चतुरोहिनयेन्नरः ॥ विमानवरमा

दिन अन्तरके उपासों से व्यतीत करताहै वह सदैव वैकुण्ठमें बसताहै ॥ ७ ॥ जब विष्णुजी सोतेहैं तब जो दिनके छठें भागमें भोजन करताहै वह राजसूय व अश्वमेध के समस्त फलको पाताहै ॥ ८ ॥ व सदैव जो तीन रातों में उपास करताहुआ चौमासा व्यतीत करताहै वह इस संसार में भी फिर कभी नहीं पैदा होता है ॥ ९ ॥ व सोने में नियमतत्पर होकर जो चार महीने व्यतीत करता है वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है ॥ १० ॥ व मधु दैत्य के मारनेवाले विष्णु के सोनेपर जो बिन मांगे भोजन करताहै उसका भाइयोंके साथ कभी वियोग नहीं होता है ॥ ११ ॥ और जो वर्षावाले चार महीने भर तैलाभ्यंग व विशेषकर घृतका लगाना

त्याग करताहै वह स्वर्ग में भोगभागी होता है ॥ १२ ॥ और जो पुरुष ब्रह्मचर्य से चार महीने व्यतीत करताहै वह उत्तम विमान पै चढ़ाहुआ अपनी इच्छा से स्वर्ग को जाताहै ॥ १३ ॥ व चार महीने मदिरा मांस को छोडे हुये जो पुरुष तैल से रहित स्नान करताहै वह सदैव मुक्ति का भागी होताहै ॥ १४ ॥ जो श्रावण में शाक, भादों में दही तथा कुँवार में दूध व कातिक महीने में सदैव मांस वर्जितकरै ॥ १५ ॥ वह वर्षभर में किये हुये पातक से लिप्त नहीं होताहै हे द्विजोत्तमो ! इस विषय में स्वायम्भुवमनुने कहाहै ॥ १६ ॥ कि जब श्रावण महीना भलीभांति स्थित होताहै तब शाक में ब्रह्मा गमन करते हैं व भादों में विष्णु दही में व कुँवार में

रूढः सस्वर्गंस्वेच्छयाव्रजेत् ॥ १३ ॥ यःस्नानंचतुरोमासान्कुरुतेतैलवर्जितम् ॥ मधुमांसपरित्यागी सभवेन्मुक्तिभा क्सदा ॥ १४ ॥ वर्जयेच्छ्रावणेशाकंदधिभाद्रपदेतथा ॥ क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्त्तिकेचसदामिषम् ॥ १५ ॥ नसपापेन लिप्येत संवत्सरकृतेनतु ॥ एतस्मिन्हिद्विजश्रेष्ठाः मनुःस्वायम्भुवोब्रवीत् ॥ १६ ॥ शाकेसंक्रमतेब्रह्मा श्रावणेमासिसं स्थिते ॥ दध्निभाद्रपदेविष्णुः क्षीरेचाश्वयुजेहरः ॥ १७ ॥ प्राप्तेपिकार्त्तिकेमाभि संक्रामतितथामिषम् ॥ तस्मादेता न्सदैतेषु सर्वथापरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥ यःकांस्यंवर्ज्जयेन्मर्त्यः प्रसुप्तेगरुडध्वजे ॥ सफलंप्राप्नुयात्कृत्स्नं वाजपेयत्रि रात्रयोः ॥ १९ ॥ अक्षारलवणाभ्यांच योनयेद्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ तस्यापिसफलाःपूर्ताः प्रभवन्तिसदाततः ॥ २० ॥ योहो मंचतुरोमासान्प्रकरोतितिलाक्षतैः ॥ स्वाहान्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैर्नसरोगेणयुज्यते ॥ २१ ॥ योजपेत्पौरुषंसूक्तं स्नात्वावि ष्णोःस्थितोग्रतः ॥ मतिस्तस्यविवर्द्धेत शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ २२ ॥ शतमष्टोत्तरंयावत्फलहस्तःप्रदक्षिणाम् ॥ करोति

महादेव दूध में ॥ १७ ॥ व कातिक महीने के प्राप्त होनेपर भी तीनों देव मांस में भलीभांति गमन करते हैं इसलिये सदैव इनमें इन वस्तुवोंको सब प्रकारसे वर्जित करै ॥ १८ ॥ व विष्णुजी के सोनेपर जो मनुष्य कांसे के पात्र को वर्जित करताहै वह वाजपेय, त्रिरात्र के समस्त फलको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! खारवस्तु व लोन के विना जो चौमासा व्यतीत करताहै उस कारण उसके भी सदैव पूर्तकर्म सफल होते हैं ॥ २० ॥ व चार महीनों तक जो स्वाहा अन्तवाले वैष्णव मन्त्रों से तिल अक्षतों के द्वारा होम करताहै वह रोग से नहीं युक्त होता है ॥ २१ ॥ और स्नान करके विष्णु के आगे बैठा हुआ जो पुरुष पौरुष सूक्त को जपताहै उसकी

वह पापसे नहीं
बुद्धि वैसीही बढ़ती है जैसे कि शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है ॥ २२ ॥ व फल हाथ में लेकर जो मौंने व्रतसे विष्णुकी एकसौ आठ प्रदक्षिणायें करताहै
युक्त होता है ॥ २३ ॥ व जो पुरुष विशेष कर कातिक महीने में अपनी शक्तिसे द्विजेन्द्रों को मिष्टान्न देताहै वह अग्निष्टोम का फल पाताहै ॥ २४ ॥ जो पुरुष सदैव
वेदके पाठसे वर्षावाले चार महीने विष्णुका आराधन करता है वह सदैव विद्वान् होताहै ॥ २५ ॥ और जो सदैव विष्णुके मन्दिरमें नृत्य, गीतादिक करताहै स्वर्गमें
गयेहुये उस पुरुषके अगाड़ी वेश्यायें नाचती हैं ॥२६॥ हे ब्राह्मणो ! वर्षावाले चार महीने जो रात दिन नृत्यगीतादिक करताहै वह गन्धर्वताको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

विशेषात्कार्त्तिकेमासि सोग्नि
विष्णोर्मौनेन नसपापेनलिप्यते ॥ २३ ॥ मिष्टान्नंब्राह्मणेन्द्राणां योददातिस्वशक्तितः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सविद्वान्सर्वदाभवेत् ॥
ष्टोमफलंलभेत् ॥ २४ ॥ यःस्वाध्यायेनवेदस्य विष्णोराराधनंसदा ॥ अप्सरमस्तस्यनृत्यन्ति पुरतःस्वर्गतस्यच ॥ २६ ॥ यस्तुरात्रि
२५ ॥ नृत्यगीतादिकंयश्चकुर्य्याद्विष्णोस्सदागृहे ॥ एतेषुचनसर्वेषु शक्यन्तेयदि
दिनंविप्रा नृत्यगीतादिकंचरेत् ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्सगन्धर्वत्वमाप्नुयात् ॥ २७ ॥ तथापिचप्रकर्तव्यालोकद्वयमभीप्सता ॥ कार्त्तिक्यांब्राह्म
भोद्विजाः ॥ कर्तुंचचतुरोमासानेकस्मिन्नपिकार्त्तिके ॥ २८ ॥ कार्त्तिकेवर्ज्जयेद्यस्तु सम्पूर्णेब्राह्मणस्स
णश्रेष्ठा वैष्णवैःपुरुषैरिह ॥ २९ ॥ कांस्यंमांसंक्षुरंक्षौद्रंपुनर्भोजनमैथुनम् ॥ पूर्वोक्तनियमानाञ्च सयस्मात्फलभाग्भवेत् ॥ ३१ ॥ यद्यदि
दा ॥ ३० ॥ पूर्वोक्तानाञ्चसर्वेषां नियमानांफलंलभेत् ॥ नियमेचकृतेदद्याद्ब्राह्म
ष्टतमंकिञ्चित्सुप्राप्यंचैवयद्भवेत् ॥ नियमस्तस्यकर्तव्यश्चातुर्मास्यफलार्थिभिः ॥ ३२ ॥

पुरुष करके करना
हे द्विजो ! इन सबों के मध्य में चार महीनेतक यदि नियम करने के लिये न समर्थ होवै तौ भी एक कातिक में भी दोनों लोकों के चाहनेवाले
चाहिये व हे द्विजश्रेष्ठो ! यहां वैष्णव पुरुषों को कार्त्तिकी में करना चाहिये ॥ २८। २९ ॥ और सदैव समस्त कातिक में जो ब्राह्मण कांस, मांस, क्षौर, शहद व फिर
भोजन तथा स्त्रीका संग वर्जित करै॥३०॥ वह पहले कहे हुये समस्त नियमोंका फलपाताहै जिसकारण पहले कहेहुये नियमों का फलभागी होताहै ॥ ३१ ॥ उस लिये
जो जो अत्यन्त प्रिय व जो कुछ भलीभांति मिलने योग्य होवै चौमासेके फलको चाहनेवाले नरोंको उसका नियम करना चाहिये ॥ ३२ ॥ व नियम करने पर

जिसने नियम किया हो उसको अपनी शक्तिसे ब्राह्मण के लिये वही देना चाहिये क्योंकि उसीसे फल होताहै ॥ ३३ ॥ व जो मनुष्य नियम व्रत या जपही के विना चौमासे को व्यतीत करता है जीता हुआ भी वह मूर्ख मराही है ॥ ३४ ॥ जैसे काकयव और जैसे वन में उपजनेवाले तिल नाममात्रही से प्रसिद्ध कहे गये हैं वैसेही भूमि में वे मनुष्य हैं ॥ ३५ ॥ उसी कारण हे द्विजोत्तमो! कातिक में एक भी कोई अति छोटाभी नियम सब उपायसे करना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो! चौमासे में उपजे हुये इस व्रतों व नियमों के समस्त माहात्म्य को मैंने तुम लोगों से विस्तार से कहा ॥ ३७ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य नित्यही इसको

णायतदेवहि ॥ नियमस्तुकृतोयेन स्वशक्त्यायत्फलंततः ॥ ३३ ॥ योविनानियमंमर्त्यो व्रतंवाजाप्यमेववा ॥ चातुर्मास्यंनयेन्मूर्खो जीवन्नपिमृतोहिसः ॥ ३४ ॥ यथाकाकयवाःप्रोक्ता यथारण्योद्भवास्तिलाः ॥ नाममात्रप्रसिद्धाश्च तथातेमानवाभुवि ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्योयत्नेनकार्त्तिके ॥ एकोपिनियमःकश्चित्सुसूक्ष्मोपिद्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातंचातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ व्रतानांनियमानाञ्च माहात्म्यंविस्तराद्द्विजाः ॥ ३७ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापिसमाहितः ॥ चातुर्मास्यकृतात्पापात्सोपिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डे चातुर्मास्यव्रतनियमकीर्त्तनंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१९ ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ प्रभूतानित्वयोक्तानि व्रतानिनियमास्तथा ॥ प्रसुप्तेपुण्डरीकाक्षे येषांसंख्यानविद्यते ॥ १ ॥ अशक्त्याचशरीरस्य नियमानांविशेषतः ॥ ईश्वरैस्सुकुमाराङ्गैर्दानंचापिवदस्वनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ अशक्तोनि

सुनता या पढ़ताभी है वह भी चार महीनेमें कियेहुये पापसे मोक्षको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांचातुर्मास्यव्रतनियमकीर्तनंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । भीष्मपंचकादिकनकर अहै जौन सुविधान । दोसौ अरु बीसवें महँ कह सो सूत सुजान ॥ ऋषि लोग बोले कि कमलदललोचनवाले विष्णुजी के सोनेपर तुमने बहुतसे व्रतों व नियमों को कहा कि जिनकी गिनती नहीं है ॥ १ ॥ सुकुमार अङ्गोंवाले समर्थ जनों को विशेष कर नियमों के करने के लिये शरीर की अशक्ति

के कारण दान को भी हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि जो सुकुमार नर नियम करने के लिये असमर्थ होवै उसको वह प्रसिद्ध भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सावधान होताहुआ पुरुष कातिक के शुक्लपक्ष में एकादशी को प्रातःकाल उठकर दतवन भक्षणकरै ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विष्णुमें परायण होताहुआ पुरुष पहले कहेहुये समस्त नियमों के मध्यमें उत्तम नियम करै ॥ ५ ॥ और उसदिन भक्तिसे उपास करना चाहिये व शरीरकी अशक्तिसे निज शक्तिके अनुकूल सुवर्णदेवै ॥ ६ ॥ और विष्णुके भक्त पुरुषोंको ब्राह्मणके लिये खीर पूरी देनाचाहिये इस प्रकार पांच दिनतक उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ७ ॥

यमंकर्तुं सुकुमारोभवेत्तुयः ॥ तेनतच्चप्रकर्तव्यं विख्यातंभीष्मपञ्चकम् ॥ ३ ॥ कार्त्तिकस्यसितेपक्ष एकादश्यांसमाहितः ॥ प्रातरुत्थायविप्रेन्द्रा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ४ ॥ ततस्तुनियमंकुर्य्याद्वासुदेवपरायणः ॥ पूर्वोक्तानाञ्चसर्वेषान्नियमानांद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ उपवासःप्रकर्तव्यस्तस्मिन्नहनिभक्तितः ॥ अशक्त्याचशरीरस्य हेमदद्यात्स्वशक्तितः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणायहविष्यान्नं दातव्यंवैष्णवैर्नरैः ॥ एवंपञ्चदिनंयावत्कर्तव्यंव्रतमुत्तमम् ॥ ७ ॥ पूजनीयोविशेषेण जलशायिस्वरूपधृक् ॥ गन्धैर्धूपैश्चनैवेद्यैरात्रिजागरणैरपि ॥ ८ ॥ षष्ठेह्निचततोजाते पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ तांश्चवस्त्रैर्हिरण्येन मिष्टान्नेनप्रभक्तितः ॥ ९ ॥ ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ सर्वेमेनियमाःप्राप्तायुष्माकंचप्रसादतः ॥ १० ॥ ततस्तैरपिवक्तव्यं चातुर्मास्यसमुद्भवम् ॥ व्रतानांनियमानाञ्च फलंभूयात्तवाखिलम् ॥ ११ ॥ ततोविसर्ज्यतान्विप्रान्भोजनंस्वयमाचरेत् ॥ सर्वाहारेणराजेन्द्र पञ्चगव्यप्रपूर्वकम् ॥ १२ ॥ यःकरोतिव्र

व विशेषकर जलशायी स्वरूप धारनेवाले विष्णुको चन्दन, धूप, नैवेद्य व रात्रिजागरणों से भी पूजना चाहिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर छठवां दिन प्राप्तहोने पर उन द्विजोत्तमों को वस्त्र सुवर्ण व मिष्टान्नसे बडी भक्तिके द्वारा पूजना चाहिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर जुडेहुये हाथोंवाला होकर द्विजोत्तमों से प्रार्थना करै कि तुमलोगोंकी प्रसन्नतासे मेरे समस्त नियम प्राप्त हैं ॥ १० ॥ तदनन्तर उनकोभी यह कहना चाहिये कि चौमासेसे उपजाहुआ व्रतों व नियमों का सम्पूर्ण फल तुमको होवै ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! उन ब्राह्मणों को बिदाकर पञ्चगव्यपूर्वक समस्त आहार से आप भोजन करै ॥ १२ ॥ जो व्रत करता है उसको बहुपूर्वकफल याने बहुतफल

होताहै व उपासमें तत्पर जो फिर इस भीष्मपञ्चक व्रतको करताहै उसको सौगुनाफल होताहै एकादशी मे चमेली के फूलोंसे विष्णुका पूजन करै ॥ १३ । १४ ॥ व द्वादशी में बिल्वपत्र से तदनन्तर तेरसिमें शतावरि से व चौदसिमें भक्तिपूर्वक तुलसी से पूजनकरै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो! पौर्णमासीमें भंगरा के फूलसे व परेवाके दिन समस्त पुष्पोंसे विष्णुको पूजना चाहिये ॥ १६ ॥ समस्त सिद्धियों के लिये परेवाके दिन गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत व कुशका जल यह सबकरै ॥ १७ ॥ और अगुरु, गुग्गुल, कपूर, तगर व तज एक २ धूप एकादशी आदि तिथियों में छोड़े व परेवाके दिन सबको छोड़ै ॥ १८ ॥ व इस मन्त्रसे अर्घदेवै कि शेषजी की शय्यापै आश्रित व जगत् के उपजानेवाले जलशायी देव भीष्मपंचकव्रत की सिद्धिके लिये मेरा अर्घ ग्रहणकरैं ॥ १९ ॥ फूल, जल, चन्दन समेत शंखका जल लेकर इस मन्त्रसे भक्तिके द्वारा देवको अर्घ देनाचाहिये ॥ २० ॥ व हे ब्राह्मणो ! अपनी शक्तिसे खीर पूरीकी नैवेद्य देवै यही सब भीष्मपंचकव्रत कहागयाहै ॥ २१ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! आपने जो यह अशून्यशयननामक व्रत कहा व फल कहा कि जिसको पुरातन समय सोतेहुये चक्र हाथवाले विष्णुकी प्रसन्नताके

तंतस्य फलंस्याद्बहुपूर्वकम् ॥ यःपुनर्व्रतमेतद्विकुरुतेभीष्मपञ्चकम् ॥ १३ ॥ उपवासपरस्तस्य फलंशतगुणंभवेत् ॥ एकादश्यांहरेःपूजांजातीपुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ १४ ॥ द्वादश्यांबिल्वपत्रेण शतपत्र्याततःपरम् ॥ त्रयोदश्यांचतुर्दश्यां तुलस्याभक्तिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ भृङ्गराजेनपुष्पेण पूर्णमास्यांद्विजोत्तमाः ॥ प्रतिपद्दिवसेसर्वैः पूजनीयोजनार्दनः ॥ १६ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ प्रतिपद्दिवसेसर्वमकरोत्सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥ अगुरुंगुग्गुलुंचैव कर्पूरंतगरंत्वचा ॥ एकैकंनिर्वपेद्धूपं प्रतिपद्दिवसेखिलम् ॥ १८ ॥ जलशायीजगद्योनिः शेषपर्य्यङ्कमाश्रितः ॥ अर्घंगृह्णातुमेदेवो भीष्मपञ्चकसिद्धये ॥ १९ ॥ मन्त्रेणानेनदातव्यो ह्यर्घोदेवस्यभक्तितः ॥ शङ्खतोयंसमादाय सपुष्पजलचन्दनैः ॥ २० ॥ नैवेद्यंपरमान्नञ्च स्वशक्त्यानिवेदद्विजाः ॥ एतद्वैसर्वमाख्यातं व्रतंवैभीष्मपञ्चकम् ॥ २१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तमशून्यशयनव्रतम् ॥ इन्द्रेणयत्कृतंपूर्वं तुष्ट्यर्थंचक्रपाणिनः ॥ २२ ॥ प्रसुप्तस्यमहाभाग फलंचैवप्र

लिये इन्द्रने कियाहै वह किस समय तथा किस विधिसे करना चाहिये ॥ २२।२३॥ इस लिये हे महाभाग ! सूतजी ! विस्तार से विधानको कहिये सूतजी बोले कि सावनमें द्वितीया दिनके स्थितहोने पर दुइजके दिन ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णुदेवतावाले (श्रवण) नक्षत्रमें प्रातःकाल उठकर पापी व धर्म से छूटे हुये व म्लेच्छ से सम्भाषण न करै ॥ २५ ॥ तदनन्तर मध्याह्न समय में नहाकर पवित्रहो धोये वसन पहन जलशायी देवके समीप प्राप्तहोकर इस मन्त्रसे पूजन करै ॥ २६ ॥ कि हे श्रीवत्सके धारनेवाले, लक्ष्मीपते, लक्ष्मीगृह, लक्ष्मीकान्त, अविनाशिन् ! धर्म अर्थ कामनाओं की देनेवाली मेरी गृहस्थी मत नाशको प्राप्तहोवै ॥२७॥ व माता पिता

कीर्तितम् ॥ कस्मिन्कालेप्रकर्तव्यं केनैवविधिनातथा ॥ २३ ॥ तस्मात्सूतमहाभाग विधानंविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच॥ श्रावणेतुद्वितीयायां द्वितीयादिवसेस्थिते ॥ २४ ॥ प्रातरुत्थायविप्रेन्द्रानक्षत्रेविष्णुदैवते ॥ पापिष्ठपतितम्लेच्छैसम्भाषां नैवकारयेत् ॥ २५ ॥ ततोमध्याह्नसमये स्नात्वाधौताम्बरःशुचिः ॥ जलशायिनमासाद्य मन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ २६ ॥ श्रीवत्सधारिन्छ्रीकान्त श्रीधामश्रीपतेऽव्यय ॥ गार्हस्थ्यंमाप्रणाशम्मे यातुधर्मार्थकामदम् ॥ २७ ॥ पितरौमाप्रणश्येतां माप्रणश्यन्तुचाग्नयः ॥ तथाकलत्रसम्बन्धो देवमामेप्रणश्यतु ॥ २८ ॥ लक्ष्म्यात्वशून्यशयनं यथातेदेवसर्वदा ॥ शय्याममाप्यशून्यातु तथाजन्मनिजन्मनि ॥ २९ ॥ एवमर्घंनिवेद्याथ ततोविप्रंप्रपूजयेत् ॥ यथाशक्त्याद्विजश्रेष्ठा वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ३० ॥ एवंभाद्रपदेमासि आश्विनेकार्त्तिकेतथा ॥ पूजयेच्चजगन्नाथं जलशायिनमच्युतम् ॥ ३१ ॥ अक्षारम्भोजनंकार्य्यं विशेषाल्लवणवर्जितम् ॥ समाप्तौचततोदद्याद्ब्राह्मणेन्द्रायभक्तितः ॥ ३२ ॥ य

मतनष्टहोवैं और अग्नियां न नाश होवैं वैसेही हे देव ! मेरा स्त्रियोंका सम्बन्ध मत नाशहोवै ॥ २८ ॥ हे देव ! जैसे सदैव तुम्हारी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं होतीहै वैसेही जन्म २ में मेरी भी शय्या शून्य न होवै ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार अर्घको निवेदन कर तदनन्तर ब्राह्मण को यथाशक्तिसे पूजनकरै व वित्तशाठ्य को वर्जितकरै ॥ ३० ॥ इस प्रकार भादौं, कुँआर तथा कातिक में जलशायी, अच्युत व जगदीश को पूजनकरै ॥ ३१ ॥ व बिन खारी तथा विशेषकर लोनरहित

भोजन करना चाहिये तदनन्तर समाप्तिमें भक्तिसे द्विजेन्द्रके लिये यव व शालीसे संयुत तथा वसन समेत शय्या व दक्षिणामें सोना देना चाहिये और वैसेही फलको प्राप्तहोता है ॥ ३२ । ३३ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष इस प्रकार भलीभांति इस व्रतको करताहै जलमें शयन करनेवाले व जगत्के गुरू विष्णुजी उसके ऊपर परमप्रसन्नता को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तमा ! जैसे इन्द्रके ऊपर प्रसन्न हुये हैं ऐसेही उस के ऊपर प्रसन्न होतेहैं व जन्म २ में उसकी शय्या शून्य नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ अज्ञान या ज्ञानसे भी आठ महीने में कियेहुये समस्त पातक को वह अशून्यशयननामक व्रत क्षणभर में नष्ट करता है ॥ ३६ ॥ पुत्रहीन जो स्त्री

वव्रीहिसमोपेतां शय्यांवस्त्रसमन्विताम् ॥ सुवर्णंदक्षिणायाञ्च तथैवचफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ एवंयःकुरुतेसम्यग्व्रतमेतत्समाहितः ॥ तस्यतुष्टिंपरांयाति जलशायीजगद्गुरुः ॥ ३४ ॥ यथाशक्रस्यसन्तुष्ट एवमेवद्विजोत्तमाः ॥ अशून्यंशयनंतस्य भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ ३५ ॥ अष्टमासकृतंपापमज्ञानाज्ज्ञानतोपिवा ॥ अशून्यशयनंसर्वं व्रतंतन्नाशयेत्क्षणात् ॥ ३६ ॥ पुत्रहीनाचयानारी काकबन्ध्याचयाभवेत् ॥ विधवायाकरोत्येतद्व्रतमेवंसमाहिता ॥ ३७ ॥ तस्यास्तुष्टोजगन्नाथःसदाशुद्धिंप्रयच्छति ॥ नतस्याजायतेबुद्धिःकदाचित्पापसम्भवा ॥ ३८ ॥ कामेनोपहताबुद्धिः कथंचिन्नप्रजायते ॥ कुमारिकापियासम्यग्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सापतिंलभतेविप्राः कुलीनंरूपसंयुतम् ॥ निष्क्रयंकुरुतेयस्तु व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४० ॥ चातुर्मास्योद्भवानाञ्च नियमानांफलंलभेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेऽशून्यशयनव्रतवर्णनन्नामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

व काकबन्ध्या जो स्त्री होवै वह और जो विधवा स्त्री सावधान होती हुई इसभांति इस व्रतको करती है ॥ ३७ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये जगदीश जी सदैव शुद्धि को देते हैं और पापसे उपजीहुई उसकी बुद्धि कभी नहीं होती है ॥ ३८ ॥ और कामसे भी नाशित बुद्धि किसी प्रकार नहीं होतीहै और जो कन्याभी इस व्रतको भली भांति करतीहै ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह रूपसम्पन्न व कुलीन पतिको पाती है व सावधान होताहुआ जो पुरुष इस व्रतको निष्क्रय करताहै याने मोललेताहै ॥ ४० ॥ वह चौमासेसे उपजेहुये नियमों का फलपाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेऽशून्यशयनव्रतवर्णनंनामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

दो० । शिवरात्रि व्रतकी महा महिमा अमित अपार । दोसौ इकइसमें कह्यो सूत सुबुद्धिअगार ॥ ऋषि लोग बोले कि पहले उस क्षेत्र से उपजे हुये तीर्थ सुनेगये कि जिन में नहाया हुआ नर भलीभांति समस्त तीर्थों का फल पाताहै ॥ १ ॥ हे महाभाग ! उस क्षेत्रमें जो पुण्यदायक लिङ्ग हैं जिनके देखने से समस्त लिङ्गों के देखने का फल मिलताहै उनको हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि वहा अति उत्तम मङ्कणकनामक लिङ्ग है और वहां गौतमेश्वरसंयुत शुद्धेश्वर नामक हैं ॥ ३ ॥ व अन्य चौथा कपालेश्वर लिङ्ग कहा गयाहै एक २ लिङ्ग समस्त लिङ्गों का फल निस्सन्देह देता है ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो कि यथोक्त विधिसे यथोक्त

ऋषयऊचुः ॥ श्रुतानिमुख्यतीर्थानि तत्क्षेत्रात्प्रागभवानिच ॥ येषुस्नातोनरःसम्यक् सर्वतीर्थफलंलभेत् ॥ १ ॥ लिङ्गानिचमहाभाग तत्रपुण्यानियानिच ॥ यैर्दृष्टैर्लभ्यतेश्रेयस्सर्वेषांतानिनोवद ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ तत्रमङ्कणकाख्यन्तु लिङ्गमस्तिसुशोभनम् ॥ तत्रशुद्धेश्वरन्नाम गौतमेश्वरसंयुतम् ॥ ३ ॥ कपालेश्वरमन्यच्च चतुर्थंपरिकीर्तितम् ॥ एकैकंसर्वलिङ्गानां फलंयच्छत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ यथोक्तविधिनासम्यग्यथोक्तंद्विजसत्तमाः ॥ तत्रतावत्प्रवक्ष्यामि मङ्कणेश्वरजंफलम् ॥ ५ ॥ मकाराक्षरयुक्तस्य लिङ्गस्यात्रद्विजोत्तमाः ॥ शिवरात्रिंसमासाद्ययस्तस्यपुरतोद्विजाः ॥ ६ ॥ कुर्याज्जागरणंरात्रौ निराहारःस्थितश्शुचिः ॥ सर्वलिङ्गोद्भवंचैव फलंदर्शनसम्भवम् ॥ ७ ॥ जायतेनात्रसन्देहइत्युवाचहरस्स्वयम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ शिवरात्रिर्महाभागकस्मिन्कालेतुसाभवेत् ॥ ८ ॥ विधानंचैवमाहात्म्यं सर्वंनोवदविस्तरात् ॥ सूतउवाच ॥ माघस्यकृष्णपक्षेयातिथिश्चैवचतुर्दशी ॥९॥ तस्यरात्रिस्समाख्याताशिवरात्रिसमुद्भवा ॥

होताहै उन लिङ्गों में तब तक मङ्कणकेश्वर से उपजा हुआ फल कहूंगा ॥ ५ ॥ जो कि हे द्विजोत्तमो ! यहां मकार अक्षर से युक्त लिंग है हे ब्राह्मणो ! शिवरात्रि को भलीभांति प्राप्तहोकर उस लिंग के आगे जो ॥ ६ ॥ पवित्र, निराहारी नर स्थित होकर रात में जागरण करताहै उसको समस्त लिंगों से उपजा हुआ फल होताहै इसमें सन्देह नहीं यह आपही शिवजीने कहा है ऋषि लोग बोले कि हे महाभाग ! वह शिवरात्रि किस समय होती है ॥ ७ । ८ ॥ विधि व समस्त माहात्म्य को हम लोगों से कहिये सूतजी बोले कि माघ के कृष्णपक्ष में जो चौदसि तिथिहै ॥ ९ ॥ उसकी रात्रि शिवरात्रि से उपजी हुई भलीभांति कही गई है उस रात में उससमय

समस्तलिंगोंमें शिवजी भलीभांति गमन करते हैं ॥ १० ॥ व समस्तपुण्यदायक लिंगों में जो मङ्कणेश्वरनामक लिंग है उसमें विशेषकर शिवजी जाते हैं ऋषि लोग बोले कि शिवरात्रि कैसे पैदाहुई व किसने इसको बनाया है ॥ ११ ॥ व किसकारण बहुतफलवाली हुई है यह सब हमलोगों से विस्तारपूर्वक कहिये सूतजी बोले कि इस विषयमें तुमलोगों से पहले वृत्तान्तवाली कथा को कहूंगा ॥ १२ ॥ जो कि अश्वसेन भूपति का भर्तृयज्ञसे संवाद हुआ है पुरातनसमय अश्वसेन ऐसा कहा हुआ आनर्तदेश का स्वामी हुआहै ॥ १३ ॥ जो कि नित्यही धर्म में तत्पर व वेद वेदांगों का पारगामी था पुरातनसमय उसने दिन दिन बढ़तेहुये

तस्यांसर्वेषुलिङ्गेषुतदासंक्रमतेहरः ॥ १० ॥ विशेषात्सर्वपुण्येषुख्यातोयोमङ्कणेश्वरः ॥ ऋषयऊचुः ॥ शिवरात्रिःकथंजाताकेनैषाचविनिर्मिता ॥ ११ ॥ कस्माद्बहुफलाजातासर्वंनोविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामिपूर्ववृत्तंकथानकम् ॥ १२ ॥ भर्तृयज्ञस्यसंवादमश्वसेनस्यभूपतेः ॥ आनर्ताधिपतिःपूर्वमश्वसेनइतिस्मृतः ॥ १३ ॥ आसीद्धर्म्मपरोनित्यंवेदवेदाङ्गपारगः ॥ भर्तृयज्ञःपुरातेनइदंपृष्टःकुतूहलात् ॥ १४ ॥ कलिकालंसमुद्वीक्ष्यवर्द्धमानंदिनेदिने ॥ अश्वसेनउवाच ॥ कलिकालेव्रतंकिञ्चिद्वर्ततेवदसन्मुने ॥ १५ ॥ स्वल्पायासंमहत्पुण्यंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ स्वल्पायुषस्सदामर्त्याब्रह्मन्कृतयुगेपुरा ॥ १६ ॥ त्रेतायांद्वापरेचैवकिमुप्राप्तेकलौयुगे ॥ तस्माद्वर्षव्रतंत्यक्त्वाकिञ्चिदेकाह्निकंवद ॥ १७ ॥ श्वःकार्य्यमद्यकुर्वीतपूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ॥ नहिप्रतीक्ष्यतेमृत्युःकृतंवास्यनवाकृतम् ॥ १८ ॥ तस्य

कलिकाल को देखकर कौतुकके द्वारा भर्तृयज्ञ से पूंछा अश्वसेन बोले कि हे सन्मुने ! कलिकाल में कुछ व्रत वर्तमान हो उसको कहो ॥ १४ । १५ ॥ जो व्रत थोड़े परिश्रमवाला व बड़ीपुण्यवाला व समस्तपातकों का नाशक होवै हे ब्रह्मन् ! पुरातनसमय सतयुग में सदैव थोड़ी आयुर्बलवाले होते हैं ॥ १६ ॥ और त्रेता,द्वापर में भी थोड़ी आयुवाले मनुष्य होते हैं फिर कलियुग प्राप्त होनेपर क्या कहना है उसी कारण वर्षभरका व्रत छोड़कर किसी दिनभरवाले व्रत को कहिये ॥ १७ ॥ आगामी दूसरे दिनवाला कार्य आज करै व उस पहरवाला कार्य पहले पहर करै क्योंकि इसके किये व न कियेहुये कार्य को मृत्यु नहीं देखती है ॥ १८ ॥ उनके

उस वचन को सुनकर उदारबुद्धिवाले भर्तृयज्ञ बड़ी देरतक ध्यानकर व दिव्यदृष्टि से जानकर बोले ॥ १९ ॥ कि हे राजन् ! शिवरात्रि ऐसा कहा हुआ पुण्यदायक व्रतहै उससे पुत्रहीन पुरुष पुत्रको पाताहै निर्धनी धनको पाताहै ॥ २० ॥ व थोड़ीआयुवाला बड़ी आयुर्बल पाताहै व शत्रुवों का संहार होताहै जिस जिस कामनाको ध्यान करता हुआ मनुष्य इस व्रत को करता है ॥ २१ ॥ उस उस मनोरथ को भलीभांति प्राप्त होताहै व बिनकामनावाला पुरुष मोक्ष को पाताहै तथा वर्षभर में कियेहुये पाप से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ यदि कृपणचित्त से भी जागरण करताहै तो पूर्वोक्त सब फल होताहै यहां जो जो चल, अचल लिंग

तद्वचनंश्रुत्वाभर्तृयज्ञउदारधीः ॥ अब्रवीत्सुचिरंध्यात्वाज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ १९ ॥ अस्तिराजन्व्रतंपुण्यंशिवरात्री तिकीर्तितम् ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान्निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ २० ॥ स्वल्पायुःदीर्घमायुष्यंशत्रूणाञ्चैवसंक्षयम् ॥ यंयंकामम भिध्यायन्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ २१ ॥ तंतंसमाप्नुयान्मर्त्योनिष्कामोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ तथावर्षकृतात्पापान्मुच्य तेनात्रसंशयः ॥ २२ ॥ कृपणेनापिचित्तेनयदिकुर्य्यात्प्रजागरम् ॥ यानियान्यत्रलिङ्गानिस्थावराणिचराणिच ॥ २३ ॥ तेषुसंक्रमतेदेवस्तस्यांरात्रौयतोहरः ॥ शिवरात्रिस्ततःप्रोक्तातेनसाहरवल्लभा ॥ २४ ॥ प्रार्थितस्ससुरैस्सर्वैर्लोकानुग्रहका म्यया ॥ भगवन्कलिकालेस्मिन्सर्वपापसमन्विते ॥ २५ ॥ वर्षपापविशुद्ध्यर्थंदिनमेकंक्षितौवद ॥ येनत्वत्पूजयापूज्य मर्त्याःशुद्धिमवाप्नुयुः ॥ २६ ॥ ततोदत्तंहुतन्तेषामस्माकमुपतिष्ठतु ॥ यदुच्छिष्टैर्नरैर्दत्तन्तद्वृथाजायतेखिलम् ॥ २७ ॥ कलिकालेनचास्माकङ्किञ्चिदेवोपतिष्ठति ॥ अशुद्धैर्मानवैर्दत्तम्प्रभूतमपिशङ्कर ॥ २८ ॥ भगवानुवाच ॥ माघमासस्य

हैं ॥ २३ ॥ उन में जिसलिये उस रात्रि को शिवदेव भलीभांति गमन करते हैं उसीकारण शिवरात्रि कहीगई है उससे वह शिवप्रिया है ॥ २४ ॥ मनुष्यों के ऊपर दयाकी कामनासे समस्तदेवताओं ने उन शिवजी से प्रार्थना किया कि हे भगवन् ! समस्तपातकोंसे संयुत इस कलिकाल में ॥ २५ ॥ वर्षभरके पापकी शुद्धि के लिये पृथ्वीमें एक दिनको कहिये कि जिस से हे पूजनीय ! तुम्हारे पूजन से मनुष्य पवित्रताको प्राप्त होवैं ॥ २६ ॥ उसीकारण उनका हवन व दान हमलोगों के समीप प्राप्त होवै क्योंकि उच्छिष्ट नरोंसे जो दियाजाता है वह सम्पूर्ण वृथा होजाताहै ॥ २७ ॥ हे शङ्करजी ! कलिकाल में अपवित्र पुरुषों से बहुत भी दिया हुआ

कुछही नहीं हमलोगों के समीप प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ शिव भगवान् बोले कि हेसुरनायको ! कलियुग में माघमहीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि में मैं दिनमें नहीं किन्तु रात में भूतल को जाऊंगा ॥ २९ ॥ व सालभर की विशेषकर पवित्रताके लिये निरसन्देह समस्त चल, अचल लिंगों में मैं भलीभांति गमन करूंगा ॥ ३० ॥ हे सुरोत्तमो ! उसरात में जो मनुष्य इन मन्त्रों से मेरा पूजन करैगा वह बिनपापवाला भलीभांति होगा ॥ ३१ ॥ ॐ सद्योजाताय नमः; ॐ वामदेवाय नमः ॐ मघोराय नमः, ॐ मीशानाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमःइन मन्त्रोंसे चन्दन, फूल व अनुलेपनों, धूपों, दीपों व नैवेद्यों से मुखों को भली-

कृष्णायांचतुर्दश्यांसुरेश्वराः ॥ अहंयास्यामिभूपृष्ठेरात्रौनैवदिवाकलौ ॥ २९ ॥ लिङ्गेषुचसमस्तेषुचलेषुस्थावरेषुच ॥ संक्रमिष्याम्यसंदिग्धंवर्षपापविशुद्धये ॥ ३० ॥ तस्यांरात्रौहिमेपूजांयःकरिष्यतिमानवः ॥ मन्त्रैरेतैस्सुरश्रेष्ठाविपाप्मा संभविष्यति ॥ ३१ ॥ ॐसद्योजातायनमः ॐवामदेवायनमः ॐमघोरायनमः ॐमीशानायनमः ॐतत्पुरुषायनमः एवंवक्त्राणिसम्पूज्यगन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैस्ततोर्घःसम्प्रदीयते ॥ ३२ ॥ मन्त्रेणानेनसम्पूज्यमान्ध्या त्वामनसिस्थितम् ॥ गौरीवल्लभदेवेशसर्पाढ्यशशिशेखर ॥ ३३ ॥ वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घोमेगृह्यतान्ततः ॥ सम्पूजयेत्त थाविप्रंभोजनाच्छादनादिभिः ॥ ३४ ॥ दद्याच्चदक्षिणान्तस्मैवित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ धर्माख्यानकथाभिश्चशाला स्थैश्शाम्भवैस्तथा ॥ ३५ ॥ एवंकरिष्यतेयोत्रव्रतमेतत्सुरेश्वराः ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थंप्रायश्चित्तम्भविष्यति ॥ ३६ ॥ त च्छ्रुत्वात्रिदशास्सर्वेप्रणम्यशशिशेखरम् ॥ संप्रहृष्टानरश्रेष्ठस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥ ३७ ॥ प्रेषयामासुरुर्व्याञ्चनार

भांति पूजकर तदनन्तर अर्घ दियाजाता है ॥ ३२ ॥ मन में टिकेहुये मुझको ध्यान कर व इस मन्त्रसे भलीभांति पूजकर कि हे पार्वतीप्रिय, सुरेश, सर्पसंयुत, शशिशेखर ! ॥ ३३ ॥ सालभर के पापकी विशुद्धि के लिये मेरा अर्घ ग्रहण कीजिये तदनन्तर भोजन, वसनादिकों से ब्राह्मणका भलीभानि पूजन करै ॥ ३४ ॥ व उस के लिये दक्षिणाको देवै और शठताका धन वर्जितकरै व धर्माख्यान की कथाओं व मन्दिर में थापेहुये शिवजी के दर्शनोंसे रात्रिको जागरणकरै ॥ ३५ ॥ हे सुरेश्वरो ! यहां इसप्रकार जो इस व्रतको करता है उसका सब पापों की विशेषकर पवित्रता के लिये प्रायश्चित्त होगा ॥ ३६ ॥ हे नरोत्तमजी उसवचन को सुनकर

प्रसन्नहोते हुये समस्तदेवता चन्द्रभालजी को प्रणाम कर अपने स्थानों को चलेगये ॥ ३७ ॥ व सदैव शिवरात्रि के लिये मनुष्यों को समझाने के लिये पृथ्वी में मुनिश्रेष्ठ नारदजी को पठाया ॥ ३८ ॥ उनने भी भूतल में जाकर शिवरात्रि के उस माहात्म्य को सब ओरसे सुनाया जोकि त्रिशूलहाथवाले शिवजीने कहाथा ॥ ३९ ॥ तबसे लगाकर भूतल में शिवरात्रि भलीभांति हुई है जोकि सबकुछदेनेवाली व समस्तपुण्यमयी व सबपातकोंकी विनाशनेवाली है ॥ ४० ॥ इसी विषय में पुरातन समय के चरितवाले कथानक को कहूंगा जोकि यहां नैमिषारण्य में किसी बहेलिया का हुआहै ॥ ४१ ॥ वहां अत्यन्त कुकर्म के व्यसन (शौक) से तिरस्कृत

दंमुनिसत्तमम् ॥ प्रबोधनायलोकानांशिवरात्रिकृतेसदा ॥ ३८ ॥ सोपिगत्वाधरापृष्ठंश्रावयामाससर्वतः ॥ शिवरात्रेस्तु माहात्म्यंयदुक्तंशूलपाणिना ॥ ३९ ॥ ततःप्रभृतिसंजाताशिवरात्रिर्धरातले॥सर्वप्रदासर्वपुण्यासर्वपातकनाशिनी॥४०॥ अत्रैवकीर्तयिष्यामिपुरावृत्तंकथानकम्॥ यद्भूतंनैमिषारण्येलुब्धकस्यात्रकस्यचित् ॥ ४१ ॥ तत्रासील्लुब्धकःकश्चिदतिमात्रादकर्म्मतः॥व्यसनेनाभिभूतात्मापरवित्तापहारकः॥ ४२ ॥ नकदाचिद्व्रतन्तेननदत्तंनजपंकृतम् ॥ केवलञ्चहृतंवित्तंलोकानांछलसंश्रयात् ॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यशिवरात्रिस्समागता ॥ माघमास्यसितेपक्षेसर्वपातकनाशिनी ॥ ४४ ॥ तत्रास्त्यायतनंपुण्यंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ तत्रजागरणंरात्रौप्रारब्धंबहुभिर्जनैः ॥ ४५ ॥ नारीभिर्नरशार्दूलभूषिताभिस्सुभूषणैः ॥ अथासौचिन्तयामासचौरोदृष्ट्वाथजागरम् ॥ ४६ ॥ गच्छामियदिकाचित्स्त्रीभूषणैःपरिभूषि

मन या चित्तवाला व परायेधनका हरनेवाला कोईबहेलिया हुआहै ॥ ४२ ॥ कभी उसने न व्रतकिया न दानदिया और न जपकिया केवल कपटके आश्रयसे मनुष्यों की द्रव्यहरा था ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय माघमहीने के कृष्णपक्ष में समस्तपातकों के नाशनेवाली शिवरात्रि भलीभांति आई ॥ ४४ ॥ वहां देवदेव त्रिशूलधारी का पुण्यदायक मन्दिर है वहां रात्रिमें बहुत जनोंने जागरण प्रारम्भ किया ॥ ४५ ॥ व हे नरपुंगव ! उत्तम भूषणोंसे भूषित स्त्रियोंने रात्रिजागरण प्रारम्भ किया इसके अनन्तर इस चोरने जागरण देखकर चिन्तवन किया ॥४६॥ किमैं जाऊं यदि भूषणों से भुषित कोई स्त्री बाहरसे इस मन्दिर को आवै तो मैं पाऊं

गा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर मारकर व भूषणों को भलीभांति लेकर मैं जाऊंगा ऐसा मन से निश्चय कर उनके समीप गया ॥ ४८ ॥ और कर्णिकारके वृक्षपै चढ़कर छिपा व नारियों के निकलने से उत्पन्न हुई समस्तदिशाओंको देखताहुआ वह यहा स्थित हुआ ॥ ४९ ॥ चोरीकर्ममें वर्तमान व जाड़ेसे विकल तथा निद्राकी हानिसे बैठे हुये उस बहेलियाकीरात बीत गई परन्तु कोई स्त्री नहीं निकली ॥ ५० ॥ तदनन्तर उसके नीचे शिवजीसे उपजा हुआ लिंग भया और उसने जाकर पत्तोंको लेकर उससमय उसलिंगके ऊपर फेंकदिया ॥ ५१ ॥ इसी अवसर में स्त्रियों, चोरों व कामियों को दुःखदायक सूर्य्यनारायणजी उदय हुये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर स्तुतियों में

ता ॥ बाह्यतश्चास्यचायातिप्रासादस्याप्नुयाम्यहम् ॥ ४७ ॥ ततोहत्वासमादायभूषणानिव्रजाम्यहम् ॥ एवंनिश्चित्यमनसागतस्तस्यसमीपतः ॥ ४८ ॥ कर्णिकारंसमारुह्यस्थितोगुप्तोहिसोत्रच ॥ वीक्षमाणोदिशस्सर्वानारीनिष्क्रमणोद्भवाः ॥ ४९ ॥ चौरकर्मप्रवृत्तस्यशीतार्तस्यनिवेशतः ॥ रजनीनिद्रयाहान्यानचनारीविनिर्गता ॥ ५० ॥ तस्याधस्तात्ततोलिङ्गमभवत्तुभवोद्भवम् ॥ गत्वाचपत्राण्यादायप्राक्षिपत्तदोपरि ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुप्रोद्गतस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ नितम्बिनीनांचौराणांकामिनामसुखावहः ॥ ५२ ॥ ततोनराश्चनार्य्यश्चजग्मुस्स्वंस्वंनिकेतनम् ॥ उपचारपराभूत्वाप्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ ५३ ॥ सोपिचौरोनिराशश्चक्षुत्क्षामःशीतविह्वलः ॥ अवतीर्य्यद्रुमात्तस्मादपथंकञ्चिदाश्रितः ॥ ५४ ॥ ततःकालेनमहतापञ्चत्वंसमपद्यत ॥ जातोजातिस्मरस्सोथदशार्णाधिपतेर्गृहम् ॥ ५५ ॥ उपवासप्रभावेणजलादपिप्रजागरात् ॥ शिवरात्रौतथातस्यलिङ्गस्यापिप्रपूजया ॥ ५६ ॥ ततोराज्यंसमासाद्यपितृपैतामहंमहत् ॥

परायणहोकर व महादेव को प्रणामकर नर नारियां निजनिवासस्थान को गईं ॥ ५३ ॥ व क्षुधासे दुबला तथा जाड़ेसे विकल वह चोरभी निराशहो उस वृक्षसे उतरकर किसी कुमार्ग को चलागया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बहुतसमय से मृत्युको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जलसे भी उपास के प्रभावसे व शिवरात्रि में जागरणसे तथा उसलिंगके पूजन से जातिका स्मरणकरनेवाला वह दशार्णदेशके स्वामी के घर में पैदाहुआ ॥ ५५ । ५६ ॥ तदनन्तर पिता, पितामहवाली बड़ीभारी राज्यको पाकर

वहां शिवजी के लिंगका उत्तम मन्दिर निर्माणकराया ॥ ५७ ॥ व प्रतिवर्षमें भलीभांति आकर शिवरात्रि में जागरणसे उपास में तत्पर होकर गाने, बजाने की ध्वनियों से ॥ ५८ ॥ व धर्माख्यानकी कथाओं व गानके शब्दों ही से पहलेकहेहुये मन्त्रों के द्वारा भलीभांति पूजनकर व विधिसे अर्घको देकर ॥ ५९ ॥ और कामनाओंसे ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर अपने स्थानको जाताथा इसके अनन्तर किसी समय शिवरात्र में शिवजीके मन्दिर में संकल्पपूर्वक सातमुनि प्राप्तहुये शांकृति, भरद्वाज, यवक्रीत, गालव ॥ ६० । ६१ ॥ पुलस्त्य, पुलह, गार्ग्य तथा और बहुत नृपति आये और दशार्णनामक का पुत्र वह राजा बृहत्सेन भी ॥ ६२ ॥ उस

कारयामासलिङ्गस्यप्रासादंतत्रशोभनम् ॥ ५७ ॥ वर्षेवर्षेसमाश्रित्य शिवरात्रिप्रजागरात् ॥ उपवासपरोभूत्वागीतवादित्रनिस्वनैः ॥५८॥ धर्माख्यानकथाभिश्चगीतध्वनिभिरेवच ॥ पूर्वोक्तमन्त्रैस्सम्पूज्यअर्घंदत्त्वाविधानतः ॥५९ ॥ सन्तर्प्यब्राह्मणान्कामैर्जगामनिलयंनिजम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यशिवरात्रौसमागताः ॥ ६० ॥ प्रासादेसप्तमुनयः प्राप्तास्सङ्कल्पपूर्वकाः ॥ शांकृत्योथभरद्वाजोयवक्रीतोथगालवः ॥ ६१ ॥ पुलस्त्यःपुलहोगार्ग्यस्तथान्येबहवोनृपाः ॥ सोपि राजाबृहत्सेनोदशार्णाधिपतेःसुतः ॥ ६२ ॥ संप्राप्तोजागरंकर्तुंतस्यलिङ्गस्यचाग्रतः ॥ पूजयित्वाततोदेवंप्रणिपत्यमुनीश्वरान् ॥ ६३ ॥ उपविष्टस्तस्यचाग्रेह्यनुज्ञातोद्विजोत्तमैः ॥ ततस्तस्याग्रतश्चक्रुःकथास्तेबहुधानृपाः ॥६४॥ राजर्षीणामतीतानांब्रह्मर्षीणांविशेषतः ॥ अथकस्मिन्कथान्तेसतैःपृष्टोब्रह्मवादिभिः ॥ ६५ ॥ कौतुकाविष्टचित्तैश्चविस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ राजन्पृच्छामहेसर्वेवयंकौतूहलान्विताः ॥ ६६ ॥ यदिब्रवीषिनःसत्यंदेवतायतनेस्थितः ॥ राजोवाच ॥ य

लिंगके आगे जागरण करने के लिये प्राप्त हुआ तदनन्तर शिवदेव को पूजकर मुनिनायकों को प्रणामकर ॥ ६३ ॥ द्विजोत्तमोंसे आज्ञा पायाहुआ वह उस लिंगके आगे समीप बैठगया तदनन्तर उन राजाओं ने बीतेहुये राजर्षियों व विशेषकर ब्रह्मर्षियों की कथाओं को उसके आगे कथनकिया इसके अनन्तर किसी कथाके अन्त में आश्चर्यसंयुतचित्तवाले व विस्मयसे फूलेलोचनोंवाले उन ब्रह्मवादी महर्षियों ने उस राजासे पूछा कि हे राजन्! देवमन्दिर में बैठेहुये तुम यदि हमलोगों

से सत्यकहो तो कौतुक से संयुत हमलोग सब पूछैं राजा बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! यदि मैं जानूंगा तो निस्सन्देह कहूंगा ॥ ६४ । ६५ । ६६ ६७ ॥ देवताके आगे भलीभांति बैठाहुआ मैं सत्यसे अपनी सौगन्द करता हूं ऋषिलोग बोले कि अनेकों बड़े दानोंको छोड़कर किसलिये ॥६८॥ जागरण करनेकी इच्छाकरनेवाले तुम सदैव प्रतिवर्षमें अपने देशसे यहां आतेहो इस लिये हे राजन् ! तुम निश्चयकर कारण को जानते हो ॥६९॥ हे नरनायक ! यदि तुमसे छिपा न हो तो कहिये सूतजी बोले कि उदासीन मनवाले उसने देखकरके मुसकरा कर तदनन्तर कहा ॥ ७० ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! यह परमगुप्त व न कहने योग्य है तिसपर भी कहूंगा क्योंकि देव-

दिज्ञास्यामिविप्रेन्द्राःकथयिष्याम्यसंशयम् ॥ ६७ ॥ देवस्याग्रेचसंविष्टःसत्येनात्मानमालभे ॥ ऋषयऊचुः ॥ पुष्कलानिपरित्यज्यकस्माद्दानान्यनेकशः ॥ ६८ ॥ जागरङ्कर्तुकामोत्रस्वदेशादुपतिष्ठसि ॥ वर्षेवर्षेसदाराजन्नूनंत्वंवेत्सिकारणम् ॥ ६९ ॥ रहस्यंयदितेनस्यात्तद्ब्रवीहिनराधिप ॥ सूतउवाच ॥ सविलक्ष्यस्मितंकृत्वाततःप्राहसुदुर्मनाः॥७०॥रहस्यंपरमंह्येतदवाच्यंहिद्विजोत्तमाः ॥ तथापिचवदिष्यामिपृष्टोदेवाग्रतोयतः ॥ ७१ ॥ ततःसकथयामासपूर्वदेहसमुद्भवम् ॥ वृत्तंमलिम्लुचोनूनंशिवरात्रिसमुद्भवम् ॥ ७२ ॥ चौर्य्यभावेनदेवस्यपूजनंजागरस्तथा ॥ उपवासंविनातेनशिवरात्रौपुराकृतम् ॥ ७३॥ जातिस्मरणसंयुक्तंजन्मजातंयथातथम् ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वेसाधुवादान्पृथग्विधान् ॥ ७४ ॥ नृपोत्तमस्यराजर्षेर्दत्त्वाशीर्भिःसमन्वितान् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वाप्रजग्मुस्तेनिजालयम् ॥ ७५ ॥ ससमभ्यर्च्यतन्देवंतान्प्रणम्यद्विजोत्तमान् ॥ जगामस्वपुरंपश्चात्कृत्वारात्रौप्रजागरम् ॥ ७६ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ शिवरात्रिस्समुत्पन्नाइयंभू

ताके आगे पूंछागया हूं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उस चोरने पहले देह में उत्पन्न व शिवरात्रि से उपजे हुये चरितको निश्चय कर कहा ॥ ७२ ॥ कि पुरातन समय चोरीके स्वभाव से शिवरात में उपास बिना शिवदेवका पूजन व जागरण कियागया उस से ॥ ७३ ॥ यथायोग्य जातिके स्मरण से युक्त जन्म हुआ है तदनन्तर वे सब मुनि लोग उस नृपोत्तम राजर्षि को आशीर्वादों से संयुत अनेक प्रकार के प्रशंसित वादोंको देकर व रात्रिमें जागरण कर अपने स्थानको चलेगये ॥ ७४ । ७५ ॥ व उस नृपति ने उन शिवदेव को भलीभांति पूजकर तथा उन द्विजोत्तमों को प्रणामकर पश्चात् रात्रिमें जागरण कर पश्चात् निज नगरको गमन किया ॥ ७६ ॥ भर्तृयज्ञ

बोले कि हे राजन्! भूतल में यह शिवरात्रि भलीभांति उत्पन्नहुई और इस प्रकार का माहात्म्य तुम्हारे आगे कहागया ॥ ७७ ॥ इस लिये हे नृपश्रेष्ठ ! जो अपना ऐश्वर्य चाहै उसको सब उपायसे कलिकाल में विशेष कर वह शिवरात्रि करना चाहिये ॥ ७८ ॥ क्योंकि शिबि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, युयुत्सु तथा श्रद्धामे संयुत अन्य मनुष्यों ने विशेषकर भलीभांति शिवरात्रि किया है और हृदयमें प्राप्त जो देवताओंवाले व मनुष्योंवाले मनोरथ हैं उनको पाया है ॥ ७९ । ८० ॥ वैसेही सावित्री, लक्ष्मी व सीतादेवी, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती तथा मेनका ने ॥८१॥ व हे नृपोत्तम ! इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य

भितलेनृप ॥ एवंविधञ्चमाहात्म्यंतवाग्रेपरिकीर्तितम् ॥ ७७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्य्यासानृपसत्तम ॥ कलिकालेविशेषेणयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ७८ ॥ एषाकृताचशिबिनानलेननहुषेणच ॥ मान्धात्राधुन्धुमारेणसगरेणयुयुत्सुना॥७९॥ तथान्यैश्चविशेषेणसम्यक्श्रद्धासमन्वितैः॥प्राप्ताश्चहृद्गताःकामायेदिव्यायेचमानवाः॥८०॥ तथाचैवतुसावित्र्याश्रियादेव्यातुसीतया॥अरुन्धत्यासरस्वत्यापार्वत्यामेनयातथा ॥८१॥इन्द्राण्याचदृषद्वत्यास्वधयास्वाहयातथा॥रत्याप्रीत्याचगायत्र्यातथान्याभिर्नृपोत्तम ॥ ८२ ॥ सर्वाःप्राप्ताःप्रियान्कामानतिसौभाग्यसंयुताः ॥ यश्चैतांश्शृणुतेभक्त्या भावेनशिवसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दिनजातपातकात्सोत्रमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ नास्तिगङ्गासमन्तीर्थंनास्तिदेवोहरोपमः॥८४॥ शिवरात्रेःपरंनास्तितपःसत्यंमयोदितम्॥ सर्वरत्नमयोमेरुस्सर्वाश्चर्य्यमयंनभः ॥८५॥ सर्वधर्ममयीराजञ्छिवरात्रिःप्रकीर्तिता॥गरुडःपक्षिणांयद्वन्नदीनांसागरोयथा॥८६॥प्रधानासर्वधर्म्माणांशिवरात्रिस्तथोत्तमा ॥८७॥ इत्यध्यायः२२१

सुरस्त्रियों ने शिवरात्रि का व्रत कियाहै ॥ ८२ ॥ व अतिसौभाग्य से संयुत सबोंने प्यारे मनोरथों को पायाहै जो पुरुष शिवजी के समीप भक्तिभाव से इस शिवरात्रि को सुनता है ॥ ८३ ॥ वह यहां दिनमें उपजेहुये पातक से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै गंगाके समान तीर्थ नहीं है व महादेव के बराबर देवता नहींहै ॥ ८४ ॥ व शिवरात्रिसे श्रेष्ठ तप नहींहै यह मैंने सत्य कहाहै समस्त रत्नमयी सुमेरुगिरिहै व सब आश्चर्यमय आकाशहै॥८५॥हे राजन् ! समस्त धर्ममयी शिवरात्रि कहीगईहै जैसे पक्षियोंमें गरुड़ व जैसे नदियोंमें समुद्रहै॥८६॥वैसेही उत्तम शिवरात्रि समस्त धर्मोंमें मुख्यहै ॥८७॥ इति शिवरात्रिमाहात्म्यंनामैकविंशाधिकद्विशततमोध्यायः॥२२१॥

दो० । जेहि प्रकारसों होतहै तुलापुरुष का दान । दोसौबाइस मे सोई कह्यो सूत मतिमान ॥ सूतजी बोले कि हे महाराज ! इस लिये इस संसार में दोनों लोकों को चाहनेवाले पुरुषको विशेषकर प्राप्तहुई इस शिवरात्रिको करना चाहिये ॥ १ ॥ आनर्त बोला कि तुमने जो कहा मैंने शिवरात्रि संयुत उस मङ्कणकेश्वर का माहात्म्य विस्तार से सुना ॥ २ ॥ हे महाभाग ! इस समय सिद्धेश्वरसे उपजेहुये समस्त माहात्म्यको मुझसे विस्तार से कहिये क्योंकि मुझको बड़ा कौतुकहै ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि-हे भूपते ! सिद्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध महादेवजीहैं तुमने पहले कहतेहुये मुझसे उनकी उत्पत्तिको सुना है ॥ ४ ॥ इस समय उनके देखनेपर चक्रवर्त्तित्व से उपजा

सूतउवाच ॥ तस्मादेषामहाराज शिवरात्रिर्व्यवस्थिता ॥ कर्तव्यापुरुषेणात्रलोकद्वयमभीप्सुना ॥ १ ॥ आनर्त उवाच ॥ मङ्कणेश्वरमाहात्म्यंमयाविस्तरतःश्रुतम् ॥ शिवरात्रिसमोपेतंयत्त्वयापरिकीर्तितम् ॥ २ ॥ साम्प्रतंवदमे कृत्स्नंसिद्धेश्वरसमुद्भवम् ॥ विस्तरेणमहाभागपरंकौतूहलंहिमे ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ सिद्धेश्वरइतिख्यातोमहादेवोमहीपते ॥ तस्योत्पत्तिस्त्वयापूर्वंश्रुतातुवदतोमम ॥ ४ ॥ साम्प्रतंतत्फलंवच्मितस्मिन्दृष्टेतुदानजम् ॥ यत्फलंजायते नृणाञ्चक्रवर्तित्वसम्भवम् ॥ ५ ॥ तुलापुरुषदानञ्चतत्रराजन्प्रशस्यते ॥ यइच्छेच्चक्रवर्तित्वंसमस्तेधरणीतले ॥ ६ ॥ आनर्तउवाच ॥ तुलापुरुषदानस्ययोविधिःपरिकीर्तितः ॥ तच्चसर्वंसमाचक्ष्वविस्तरेणमहामुने ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेचअयनेविषुवेतथा ॥ तीर्थेवापुरुषश्रेष्ठतुलापुरुषसम्भवम् ॥ ८ ॥ प्रशस्तंविविधंसम्यक्प्राप्तेवैसुखसंत्तये ॥ ब्राह्मणानांसुदान्तानामनुष्ठानवतांसताम् ॥ ९ ॥ वेदाध्ययनयुक्तानान्निर्दोषाणाञ्चपार्थिव ॥ विभज्यसमवेद्दे

हुआ जो दानसे उत्पन्न मनुष्यों को फल होताहै उस फलको मैं कहताहूं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जो समस्त भूतल में चक्रवर्तीवाली राज्यश्री इच्छाकरै उसको तुलापुरुषका दान उत्तम है ॥ ६ ॥ आनर्त बोला कि हे महामुने ! तुलापुरुष दानकी जो विधि कहीगई है उस सबको विस्तारसे भलीभांति कहिये ॥ ७ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! चन्द्रमा, सूर्यके ग्रहणमें व विषुव अयन (दिनरात बराबर के समय) में व तीर्थमें तुलापुरुषसे उपजाहुआ विविध दान सुखका नाश प्राप्तहोने पर भलीभांति प्रशंसित है हे राजन् ! इन्द्रियों को दमन किये हुये व अनुष्ठानवान् तथा सज्जन व वेदपाठ से संयुत और दोषरहित ब्राह्मणों को वह तुलापुरुष बांटकर

देनाचाहिये एकको किसी प्रकार न देनाचाहिये ॥ ८ । ९ । १० ॥ पवित्र व समान व पुण्यदायक तथा पूर्व उत्तरको झुँकेहुये उत्तम स्थान में विद्वान् सोलह हाथका मण्डप निर्माण करावै ॥ ११ ॥ उसके बीचमें यजमान के हाथकी प्रमाणसे चारहाथके प्रमाणकी ऊंची वेदी बनवावै ॥ १२ ॥ व चारों दिशाओं में चार हाथके कुण्डोंको कल्पना करावै व एक हाथ की प्रमाणवाली व मनोहर तथा एक हाथ ऊंची वेदी बनवावै उसमें ग्रहोंको बनावै व चारों दिशाओं में क्रमपूर्वक दोदो ऋत्विज् करना चाहिये ॥ १३ । १४ ॥ व बह्वृच्, अध्वर्यु, छन्दोग तथा अथर्वण वेदी भी करना चाहिये व सावधान होतेहुये उनको अग्निमें प्रधानदेवता का होम करना

योनैकस्यचकथञ्चन ॥ १० ॥ शुचौदेशेसमेपुण्येपूर्वोत्तरप्लवेशुभे ॥ मण्डपंकारयेद्विद्वान्दशषोडशहस्तकम् ॥ ११ ॥ तन्मध्येकारयेद्वेदीञ्चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ यजमानस्यहस्तेनप्रमाणेनसमुच्छ्रिताम् ॥ १२ ॥ चतुर्हस्तानिकुण्डानिचतुर्दिक्षुप्रकल्पयेत् ॥ एकहस्तप्रमाणान्तुवेदींरम्याम्प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥ हस्तमात्रोच्छ्रिताञ्चैवग्रहांस्तत्रप्रकल्पयेत् ॥ युग्माश्चऋत्विजःकार्य्याश्चतुर्दिक्षुयथाक्रमम् ॥ १४ ॥ बह्वृचोध्वर्य्यवश्चैवछन्दोगाथर्वणाअपि ॥ अग्नौतुदेवताहोमस्तैस्तुकार्य्यःसमाहितैः ॥ १५ ॥ तल्लिङ्गैर्नृपतेमन्त्रैःस्वशक्त्याजपएवच ॥ एकहस्तमितंपुष्टञ्चतुर्हस्तोत्थितंतथा ॥ १६ ॥ स्तम्भद्वयंतुकर्तव्यंवेद्यां याम्योत्तरस्थितम् ॥ तन्मध्येतुशुभंकाष्ठंस्तम्भोपरिदृढंशुभम् ॥ १७ ॥ चन्दनंखदिरोवाथबिल्वोवाश्वत्थएवच ॥ निम्बकोदेवदारुर्वाश्रीपर्णीवापरोथवा ॥ १८ ॥ अष्टौवृक्षाःशुभाःशस्तास्तम्भार्थंनृपसत्तम ॥ शिक्यद्वयसमोपेतान्तन्मध्येविन्यसेत्तुलाम् ॥ १९ ॥ स्नात्वाशुक्लाम्बरधरःशुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ पूजयित्वासम

चाहिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उन्हीं चिह्नोंवाले मन्त्रोंमे अपनी शक्तिके अनुकूल जपही करना चाहिये व एक हाथकी प्रमाणवाले व पुष्ट तथा चारहाथ ऊंचे ॥ १६ ॥ वेदीके दक्षिण व उत्तर ओर में स्थित दो खम्भा करना चाहिये व उसके बीचमें खम्भाके ऊपर पुष्ट व शुभकाठ उत्तम है ॥ १७ ॥ चन्दन, खैर या बिल्व व पिप्पल, नींब, देवदारु या श्रीपर्णी व अन्य वृक्ष ॥ १८ ॥ हे नृपोत्तम ! ये उत्तम आठ वृक्ष खम्भोंके लिये शुभ हैं उनके मध्यमें दो सिकहरोंमे संयुत तुला (तराजू) धरै ॥ १९ ॥

व स्नानकर श्वेत वसनोंको धारे श्वेत मालाओं व अनुलेपनोंवाला पुरुष सबओर क्रमपूर्वक लोकपालों को पूजकर ॥ २० ॥ पश्चात् चन्दन, माला व अनुलेपनों से खम्भोंको पूजै व हे नृपश्रेष्ठ ! तुलाको पूजनकरै और पुण्याहकीर्त्तन करै ॥ २१ ॥ तथा कार्यमें भलीभांति टिकीहुई अपनी समस्त इन्द्रियों के द्वारा याने इन्द्रियों को रोंककर पश्चिम दिशा में बैठकर श्रद्धासंयुत यजमान पूर्वमुख होताहुआ जुड़ेहुयेहाथोंवाला होकर इस मन्त्रका उच्चारण करै कि उत्तम सत्यपै टिकीहुई तुम ब्रह्मा की कन्याहो ॥ २२ । २३ ॥ व गोत्रसे कश्यपगोत्रवाली और नामसे तुला प्रसिद्ध हो हे तुले ! तुम अपने स्वामी व अपने प्रियको सत्य आभासित होतीहो ॥ २४ ॥

न्ताचलोकपालान्यथाक्रमम् ॥ २० ॥ स्तम्भान्सम्पूजयेत्पश्चाद्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ तुलाञ्चपार्थिवश्रेष्ठपुण्याहञ्च प्रकीर्तयेत् ॥ २१ ॥ यजमानोनिजैःसर्वैरिन्द्रियैःकार्य्यसंस्थितैः ॥ पश्चिमान्दिशमास्थायप्राङ्मुखःश्रद्धयान्वितः ॥ २२ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वाइमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ब्रह्मणोदुहिताहित्वंसत्यंपरममाश्रिता ॥ २३ ॥ काश्यपीगोत्रतश्चैव नामतोविश्रुतातुला ॥ त्वंतुलेसत्यमाभासिस्वामीष्टञ्चात्मनःप्रभुम् ॥ २४ ॥ करिष्यसिप्रसादंमेसान्निध्यंकुरुसाम्प्रतम् ॥ ततस्तस्यांसमारुह्यस्वशक्तयायत्समाहृतम् ॥ २५ ॥ दानार्थंपूर्वमादायधृत्वाशिक्येनरोत्तम॥सुवर्णंरजतंवाथरत्नं वायदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ यावत्साम्यंभवेद्राजन्नात्मनोभ्यधिकञ्चवा ॥ ततोभीष्टंसमासाद्यदैवतंशिक्यमाश्रितम् ॥ २७ ॥ उदकंजलमध्येतुतदर्थंप्रक्षिपेद्द्रुतम् ॥ सतिलंसहिरण्यञ्चसाक्षतंविधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ अवतीर्य्यततःसर्वं ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ यत्फलंप्राप्यतेपश्चात्तदिहैकमनाःशृणु ॥ २९ ॥ अजानताजानतावायत्पापंतुभवेत्कृतम् ॥

मेरेऊपर प्रसन्नता कीजियेगा। इस समय समीपता करिये तदनन्तर उस तराजूपै भलीभांति चढ़कर हे नरोत्तम ! दानके लिये जो अपनी शक्तिसे पहले लाया गयाहो उसको लेकर व तराजूपै धरकर सुवर्ण, चांदी या रत्न व जो प्रियहोवै ॥ २५।२६ ॥ हे राजन् ! उसको तबतक धरै कि जबतक अपने बराबर या अधिक होवै तदनन्तर तराजू पै टिकेहुये प्रिय देवताको भलीभाति प्राप्तहोकर ॥ २७ ॥ उसके लिये शीघ्रही जलके बीच में विधिपूर्वक तिल समेत सोना सहित व अक्षत समेत जल फेंकै ॥ २८ ॥ तदनन्तर उतर कर सबको ब्राह्मणों के लिये निवेदनकरै औरपश्चात् जो फल मिलताहै उसको यहां एक मनवाले होकर सुनिये ॥ २९ ॥ कि जानते व

न जानते हुये पुरुषसे किया हुआ जो पातक होवैहै इस दानके प्रभावसे मनुष्य उस सबको नष्टकरैहै ॥ ३० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जितनी प्रमाणवाला किया पातक व्यतीत हुआहै उतनाभर तुलापुरुष के दानसे नाशको प्राप्तहोता है ॥ ३१ ॥ शरीरके क्लेश से डरभुत मनवाले समर्थ पुरुषोंको तौलने से उपजाहुआ यही दान पुरश्चरण कहागयाहै ॥३२॥ हे भूपते ! दिलीप, कार्तवीर्य,पृथु, पुरु, कुत्स तथा अन्यभी राजाओंने इसको दियाहै ॥३३॥ यह तुलापुरुषका दान पुण्यदायक व शुभ और मनुष्यों को सब कामनाओं का दायक तथा समस्त उपद्रवों का नाशक है ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आधियां व्याधियां नहीं होती हैं व रोगसे उपजीहुई विकलता नहीं होतीहै

तत्सर्वंनाशयेन्मर्त्योदानस्यास्यप्रभावतः ॥ ३० ॥ यावन्मात्रंकृतंपापमतीतंनृपसत्तम ॥ तावन्मात्रंक्षयंयातितुलापुरुषदानतः ॥ ३१ ॥ ईश्वराणांसमादिष्टंकायक्लेशभयात्मनाम् ॥ पुरश्चरणमेतद्धिदानंतौल्यसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥ एतद्दत्तं दिलीपेनकार्त्तवीर्य्येणभूपते ॥ पृथुनापुरुकुत्सेनतथान्यैरपिपार्थिवैः ॥ ३३ ॥ एतत्पुण्यंप्रशस्तञ्चसर्वकामप्रदंनृणाम्॥ तुलापुरुषदानञ्चसर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ३४ ॥ आधयोव्याधयोनस्युर्नवैक्लव्यंगदोद्भवम् ॥ संजायतेनृपश्रेष्ठनवियोगश्चबन्धुभिः ॥ ३५ ॥ तुलापुरुषदानस्यप्रदत्तस्यनृपोत्तम ॥नशक्यतेकथयितुंफलंयत्स्यात्कलौयुगे ॥ ३६ ॥ तुलापुरुषदानस्यफलमेतदुदाहृतम् ॥ दक्षिणांमूर्त्तिमासाद्यसिद्धेश्वरविभोःपुरः ॥ ३७ ॥ योयच्छतिसभूपालसहस्रगुणितंफलम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्राप्यसिद्धेश्वरंविभुम् ॥ ३८ ॥ तुलापुरुषदानञ्चकर्त्तव्यंसुविवेकिना ॥ एकत्रसर्वतीर्थानिसर्वाण्यायतनानिच ॥३९॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेकथितानिस्वयम्भुवा ॥ सिद्धेश्वरःसुरश्रेष्ठएकत्रसमुदाहृतः॥ ४० ॥ तस्मि

न भाइयों से उपजाहुआ वियोग होताहै ॥ ३५॥ हे नृपोत्तम ! कलियुग में दियेहुये तुलापुरुषका जो फल होता है वह नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३६ ॥ तुलापुरुष दान का यह फल कहागयाहै कि दाहिनी मूर्तिको प्राप्तहोकर सिद्धेश्वर स्वामीके अगाड़ी ॥ ३७ ॥ हे भूपाल ! जो पुरुष तुलादानको देता है वह हजारगुने फल को प्राप्त होताहै उस कारण समस्त उपायसे सिद्धेश्वर स्वामीको प्राप्तहोकर ॥ ३८ ॥ उत्तम विवेकवान् पुरुषको तुलापुरुष का दान करना चाहिये ब्रह्माने हाटकेश्वरसे उपजे हुये क्षेत्रमें एकओर समस्त तीर्थों व सब देवमन्दिरों को कहाहै व एक ओर सुरश्रेष्ठ सिद्धेश्वरजीको कहाहै ॥ ३९'४० ॥ हे नृपोत्तम ! उन सिद्धेश्वरजी के छूने देखने

व पूजने पर रामस्तलिंगों का जो फल कहागया है उसको मनुष्य पाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतुलापुरुषदानमाहात्म्यंनामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । स्वर्णमयी रचि भूमिको होत जौन विधि दान । दोसौ तेईसवें महँ कीन कथा सोइ गान ॥ आनर्त बोला कि इस मृत्युलोक में किस कर्म से सब शत्रुओं को नाशनेवाला समस्तचक्रवर्त्तित्व मनुष्यों को होताहै यह कहिये ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञ बोले कि हे नराधिप ! समस्तउपायों से नृपालता दुर्लभ है उसी कारण अतिनियमों,

न्स्पृष्टेतथादृष्टेपूजितेनृपसत्तम ॥ सर्वेषांलभतेमर्त्यःफलंयत्परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेतुलापुरुषदानमाहात्म्यन्नामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ कर्म्मणाकेनमर्त्येत्रनराणांजायतेवद ॥ चक्रवर्तित्वमखिलंसर्वशत्रुविमर्दनम् ॥ १ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ दुर्लभम्भूमिपालत्वंसर्वोपायैर्नराधिप ॥ ततोतिनियमैर्दानैस्तथान्यैश्चव्रतैःकृतैः ॥ २ ॥ यःपुनर्भूपतिर्भूत्वापृथ्वींदद्याद्धिरण्मयीम् ॥ गौतमेश्वरदेवस्यपुरतःश्रद्धयान्वितः ॥ ३ ॥ चक्रवर्तीभवेन्नूनमेवमाहपितामहः ॥ मान्धाताधुन्धुमारश्चहरिश्चन्द्रःपुरूरवाः ॥ ४ ॥ भरतःकार्तवीर्य्यश्चषडेतेचक्रवर्तिनः ॥ पृथ्वीदानंपुराकृत्वागौतमेश्वरसन्निधौ ॥ ५ ॥ दत्त्वाहिरण्मयींपृथ्वींसार्वभौमास्ततःस्थिताः ॥ आनर्तउवाच ॥ भगवन्केनविधिनादातव्यासावसुन्धरा ॥ ६ ॥ अहंदास्यामितांनूनंश्रद्धामेमहतीस्थिता ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ कार्य्यापलशतेनोर्वीतदाकारान्नृपोत्तम ॥ ७ ॥ तदर्द्धेनाथवाश

दानों व कियेहुये अन्य व्रतोंसे ॥ २ ॥ जो भूपति होकर फिर श्रद्धासंयुत हो गौतमेश्वर देवके अगाड़ी सुवर्णमयी पृथ्वीको देता है ॥ ३ ॥ वह निश्चयकर चक्रवर्त्ती होता है ऐसा ब्रह्माने कहाहै मांधाता, धुन्धुमार, हरिश्चन्द्र व पुरूरवा ॥ ४ ॥ और भरत, कार्तवीर्य ये छह पुरातनसमय गौतमेश्वरके समीप पृथ्वीका दानकर चक्रवर्त्ती हुयेहैं ॥ ५ ॥ उसी कारण सुवर्णमयी पृथ्वीको देकर समस्तपृथ्वीके राजा स्थित हुयेहैं आनर्त बोला कि हे भगवन् ! किस विधिसे वह पृथ्वी देनाचाहिये ॥ ६ ॥ मैं निश्चयकर उसको दूंगा मेरे बड़ी श्रद्धा स्थितहै भर्तृयज्ञ बोले कि हे नृपोत्तम ! उसी आकारवाली सौपलकी पृथ्वी करनाचाहिये ॥ ७ ॥ अथवा उसकी आधी याने

पचास पलकी व शक्तिसे पचीस पलकी पृथ्वी निर्माण करावै हे महाराज ! पृथ्वी के दानमें वित्तशाठ्य वर्जितकरै ॥ ८ ॥ और पांच पल के नीचे किसी प्रकार न देनाचाहिये व लोन, ऊंखका रस, मदिरा, घृत, दही, दूध व जलमय ॥ ९ ॥ ये सब समुद्र द्विगुणता से याने सुवर्णमयी पृथ्वीके दूने चारों ओर से बनावै व महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमवान्, गन्धमादन ॥ १० ॥ विन्ध्याचल, शृंगवान् सातही कुलपर्वतों को कल्पित करै और बीचमें सुमेरु व दिशाओं में उसके रोंकनेवाले पर्वतों को बनावै ॥ ११ ॥ और उसमें वैसे ही जामुन, बरगद, कदम्ब, पकरियाके वृक्ष व मुख्यतासे गंगादिक नदियोंको कल्पितकरै ॥१२॥ हे राजन् ! इसप्रकार समस्त स्वर्णमयी

क्त्यापञ्चविंशपलात्मिका ॥ धरादानेमहाराजवित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ८ ॥ नैवपञ्चपलादर्वाक्प्रदातव्याकथञ्चन ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलामयान् ॥ समुद्रान्परितस्सर्वान्द्वैगुण्येनप्रकल्पयेत् ॥९॥ महेन्द्रोमलयःसह्योहिमवान्ग
न्धमादनः ॥ १० ॥ विन्ध्यःशृङ्गीचसप्तैवकल्पयेत्कुलपर्वतान् ॥ मध्येप्रकल्पयेन्मेरुंदिक्षुविष्कम्भपर्वतान् ॥ ११ ॥
जम्बून्यग्रोधनीपाश्चप्लक्षश्चैवतथाद्रुमान् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्रप्राधान्येनप्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ एवंनिर्मायवसुधांसर्वां
हेममयींनृप ॥ मण्डपंकारयेत्पश्चाद्यथापूर्वंप्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥ कुण्डानितोरणान्येवब्राह्मणानांप्रपूजनम् ॥ पूर्ववत्स
कलंकृत्वामध्येवेदींप्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥ तत्रसंस्थापयेत्पृथ्वींपञ्चगव्येनपार्थिव ॥ यथोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैस्ततःशुद्धोदके
नतु ॥ १५ ॥ इमंमेगङ्गेयमुनेतिपञ्चनद्यश्चत्र्यक्षरम् ॥ श्रीसूक्तंपावमानञ्चहैर्मींचतदनन्तरम् ॥ १६ ॥ स्नानकर्मणि
योग्यौचतान्तुस्थाप्ययथाक्रमम् ॥ एवंसंस्थाप्यविधिवद्वासांसिपरिधापयेत् ॥ १७ ॥ युवासुवासेतिमन्त्रेणसूक्ष्माणि

पृथ्वीको बनाकर पश्चात् मण्डप बनवावै व पहलेकी नाई कुण्ड व बन्दनवार बनवावै और ब्राह्मणोंका पूजनकरै और पहलेकी नाई सब बनाकर बीचमें वेदी बनवावै ॥ १३ । १४ ॥ हे राजन् ! उसमें पृथ्वी को भलीभांति थापै व उन्हीं चिह्नोंवाले यथोक्त मन्त्रोंके द्वारा पञ्चगव्यसे स्नानकरावै तदनन्तर (इमं मे गङ्गे यमुने) व (पञ्च-नद्य॰) तथा त्र्यक्षर मन्त्रके द्वारा शुद्ध जलसे स्नान करावै और उसके उपरान्त सुवर्णमयी उस पृथ्वीको क्रमपूर्वक थापकर (श्रीसूक्त)व (पावमान) ये दो मन्त्र स्नान के कर्ममें योग्यहैं इस प्रकार विधिपूर्वक उसको भलीभांति थापकर(युवा सुवास) ऐसे मन्त्रसे विधिपूर्वक विविधप्रकारके महीन वसन पहनावै तदनन्तर (एषां वै भूत-

योमी) इस मन्त्रसे उच्च प्रकार करके पूजनकरै ॥ १५।१६।१७।१८ ॥तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य (धूरसि) इसमन्त्रसे धूपदेवै व (अग्निर्ज्योतिः) ऐसे मन्त्रसे आरती करै ॥ १९ ॥ व (अन्नमस्मि) इस मन्त्रसे सप्तधान्य कल्पितकरै इस प्रकार उसका सब पूजनकर श्वेतवसन पहनेहुये यजमान ॥ २० ॥ अगाड़ी बैठकर हाथ ओड़कर इन मन्त्रोंको कहै कि हे देवि ! यह चराचर संसार तुमसे धारण कियाजाताहै ॥ २१ ॥ हे मेदिनि ! समीपता करिये मैं तुम्हारा दान करूंगा हे देवि ! प्राणियों के शरीरों में भी तुम प्रथम स्थित हो ॥ २२ ॥ उसके बाद हे वसुन्धरे ! अन्यजलादिक महाभूतहैं व जो तुमको चाहतेहैं वे फिर निरसन्देह तुमको

विविधानिच ॥ एषांवैभूतयोमीतिततःप्रोच्चैःप्रपूजयेत ॥१८॥ धूरसीतिचमन्त्रेणधूपंदद्यात्समाहितः ॥ अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेणकुर्य्यादारार्तिकन्ततः॥ १९ ॥ अन्नमस्मीतिमन्त्रेणसप्तधान्यंप्रकल्पयेत्॥एवंकृत्वाखिलन्तस्यायजमानःसिताम्बरः ॥ २० ॥ पुरःस्थितोञ्जलिंबद्ध्वामन्त्रानेतानुदाहरेत् ॥ त्वयासन्धार्य्यतेदेविजगदेतच्चराचरम् ॥ २१ ॥ तवदानंकरिष्यामिसांनिध्यंकुरुमेदिनि ॥ शरीरेष्वपिभूतानांत्वंदेविप्रथमंस्थिता ॥ २२ ॥ ततश्चान्यानिभूतानिजलादीनिवसुन्धरे ॥ येत्वांवाञ्छन्तितेभूयस्त्वांलभन्तेनसंशयः ॥ २३ ॥ इहलोकेपरेचैवपार्थिवंरूपमास्थिता ॥ एवंस्तुत्वासमादाय धरांहेमकृतान्तदा ॥ २४ ॥ वासुदेवंहृदिस्थाप्यमन्त्रेणानेनकल्पयेत् ॥ पातालादुद्धृतायेनपृथ्वीसालोककारिणा ॥ २५ ॥ अस्यादानेनचसदाप्रीयतांमेजनार्दनः ॥ एवमुच्चार्य्यतत्तोयंमेध्यम्परिक्षिपेत्तदा ॥ २६ ॥ भूमौनैवसहस्तेचब्राह्मणस्यनृपोत्तम ॥ ततोविसर्जयेद्देवंमन्त्रेणानेनभागशः ॥ २७ ॥ आगतास्त्रयथान्यायंपूजिताश्चयथाविधि ॥ अस्माकंत्वं

पाते हैं ॥ २३ ॥ और इस लोकमें व परलोक में पृथ्वीवाले रूप पै टिकीहो इस प्रकार स्तुतिकर उस समय सुवर्णकी कीहुई पृथ्वी को लेकर ॥ २४ ॥ व विष्णुको हृदय मे थापकर इस मन्त्रसे कल्पितकरै कि लोकों के करनेवाले जिनसे वह पृथ्वी पातालसे ऊपर लाईगई है ॥ २५ ॥ वे जनार्दन विष्णुजी इसके दानसे सदैव मेरेऊपर प्रसन्न होवैं ऐसा उच्चारणकर उस समय हे नृपोत्तम! उस पवित्र जलको फेंकदेवै भूमिमें न डालै किन्तु ब्राह्मणके हाथमे धरै तदनन्तर विभागसे इस

मन्त्रके द्वारा देवताको बिदाकरै ॥ २६।२७॥ कि यहां यथायोग्य आई व विधिपूर्वक पूजीहुई तुम हमलोगोंके हितके लिये जहां प्रियहो वहां जावो ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! तदनन्तर (उष्णावेद) ऐसे मन्त्रसे उस प्रतिमा को उतारकर भलीभांति विभाग कर ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये ॥ २९ ॥ यह उत्तम समस्तपृथ्वीदान तुम से कहागया जो इसको सुनैगा वह राजा और दाता जन्म २ में होगा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो राजा इस विधिसे पृथ्वीको देताहै उस के वंशमें भी कभी राज्य भ्रष्ट नहीं होती है ॥ ३१ ॥ राज्य छूटनेसे संयुत जो भूपाल देख पड़तेहैं उन्होंने वश कियेहुयेमनवाले ब्राह्मणोंको पृथ्वी नहीं दियाहै ॥ ३२ ॥ उसी कारण सब उपाय से

हितार्थाययत्रेष्टन्तत्रगम्यताम्॥ २८॥ उष्णावेदेतिमन्त्रेणतामुत्तार्य्यततःपरम् ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदातव्यासंविभज्यनराधिप ॥ २९ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंपृथिवीदानमुत्तमम् ॥ शृणुयात्पार्थिवोभावीदाताजन्मनिजन्मनि ॥ ३० ॥ योराजापृथिवींदद्याद्विधिनानेनपार्थिव ॥ राज्यभ्रंशोनवंशेपितस्यसञ्जायतेक्वचित् ॥ ३१ ॥ राज्यभ्रंशसमोपेतायेदृश्यन्तेमहीभुजः ॥ नतैर्वसुन्धरादत्ताब्राह्मणानांधृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपृथ्वीदानंसमाचरेत् ॥ नहरेदन्यदत्ताञ्चकथञ्चिदपिमेदिनीम् ॥ ३३ ॥ एतत्पुण्यंप्रशस्यञ्चपृथिवीदानमुत्तमम् ॥ शृण्वतामपिराजेन्द्रसर्वजाड्यविनाशनम् ॥ ३४ ॥ आस्तान्तावत्प्रदानञ्चपृथिव्याःपृथिवीपते ॥ दातुंसंप्रेरयेद्यस्तुतस्यपातकनाशनम् ॥ ३५ ॥ रूपवान्सुभगश्चैवतथाचप्रियदर्शनः ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तःपुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३६ ॥ मेधावीजायतेमर्त्योदानस्यास्यप्रभावतः॥ इत्थंभूतामहाराजकृत्वाराज्यमकण्टकम् ॥ ३७ ॥ प्रीताविष्णोःपदंयान्तिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥ अन्यत्रापिधरादा

पृथ्वी दानकरै और अन्यरो दीहुई पृथ्वीको किसी प्रकार से भी न हरै ॥ ३३ ॥ हे नृपेन्द्र ! यह उत्तम पृथ्वीदान पुण्यदायक व प्रशंसनीय है व सुननेवालों की भी समस्तजडता का विनाशक है ॥ ३४ ॥ हे पृथ्वीपते ! तवतक पृथ्वीका दान होवै जो देने के लिये भलीभांति प्रेरणा करताहै उसका पाप नष्ट होजाताहै ॥ ३५ ॥ इस दानके प्रभावसे मनुष्य रूपवान्, उत्तम भाग्यवान् व प्यारदर्शनवाला व आधि, व्याधियों से छूटा तथा पुत्रोंसे संयुत व बुद्धिमान् होताहै हे महाराज ! ऐसेही मनुष्य निष्कंटक राज्यकर ॥ ३६ । ३७ ॥ प्रसन्न होकर अविनाशी व सदैववाले विष्णुजी के स्थान को प्राप्तहोते हैं हे नृपोत्तम ! अन्यत्र भी भलीभांति दियाहुआ पृथ्वी

का दान एक जन्मकी अवधितक चक्रवर्त्ती करताहै और जो गौतमेश्वर देवके आगे पहले कियागया है ॥ ३८ । ३९ ॥ वह सप्तजन्मोंकी अवधितक निस्सन्देह चक्रवर्त्ती करताहै इसलिये हे भूपते ! सब उपायसे वहां पृथ्वी देनाचाहिये ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपृथ्वीदानमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । वृत्रासुरको वध्यो जिमि वज्रसुरेश बनाय। दोसौ चौबीसवें महँ सोइ कथा सुखदाय ॥ सूतजी बोले कि हे महाभाग्यवानो ब्राह्मणो ! उस क्षेत्रमें टिकेहुये चौथे

नंप्रकुर्य्याच्चक्रवर्तिनम् ॥ ३८ ॥ एकजन्मान्तरंयावत्सम्यग्दत्तंनृपोत्तम ॥ गौतमेश्वरदेवस्ययत्पुरापुरतःकृतम् ॥ ३९ ॥ सप्तजन्मान्तरंयावत्प्रकरोतिनसंशयः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनतत्रदेयामहीपते ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेपृथ्वीदानमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ कपालेश्वरमाहात्म्यंश्रूयतामधुनाद्विजाः ॥ चतुर्थस्यमहाभागास्तत्रक्षेत्रेस्थितस्यच ॥ १ ॥ श्रुतमात्रेणयेनात्रनरःपापात्प्रमुच्यते ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्रयाणाञ्चैवलिङ्गानांपूर्वोक्तानांमहामते ॥ २ ॥ श्रुतास्माभिस्समुत्पत्तिः कपालेश्वरवर्जिता ॥ केनात्रस्थापितोदेवःकपालेश्वरसंज्ञितः ॥ ३ ॥ तस्मिन्दृष्टेफलंकिंस्यात्पूजितेचवदस्वनः ॥ सूतउवाच ॥ इन्द्रेणस्थापितःपूर्वमेषदेवोद्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥ कपालेश्वरसंज्ञस्तुब्रह्महत्याविमुक्तये ॥ तत्प्रभावात्सुरश्रेष्ठस्तयामुक्तोद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ पापपूरुषदानेनइत्येषावैदिकीश्रुतिः ॥ अन्योपियोनरस्तञ्चपूजयित्वाप्रभक्तितः ॥ ६ ॥

कपालेश्वर का माहात्म्य इस समय सुनिये ॥ १ ॥ जिसके केवल सुनने से यहां मनुष्य पापसे छूटजाता है ऋषिलोग बोले कि हे महामते ! कपालेश्वरसे रहित पहले कहेहुये तीनों लिंगोंकी उत्पत्तिको हमलोगों ने सुनाहै इस क्षेत्रमें कपालेश्वरनामक देव किससे थापित हुये हैं ॥ २ । ३ ॥ और उनके देखने व पूजनेपर क्या फल होताहै उसको हमलोगों से कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय इन्द्रने ब्रह्महत्यासे छूटने के लिये इन कपालेश्वरनामक देवको स्थापन कियाहै हे द्विजोत्तमो ! उसके प्रभावसे सुरोत्तम इन्द्रजी पापपुरुषके दानसे उस ब्रह्महत्यासे छूटेहैं यह वेदकी श्रुतिहै और भी जो मनुष्य बड़ी भक्तिसे उनको पूजकर ॥४।५।६॥

व दाहिनी मूर्ति को प्राप्तहोकर द्विजेन्द्र के लिये पापपुरुषका दानदेता है वह पापसे छूटजाता है यह बृहस्पतिने कहाहै ॥ ७ ॥ हाटकेश्वरजी से उपजेहुये क्षेत्र में जाकर उन शिवजीको देखकर जो सुवर्णमय शरीर बनाकर देताहै तदनन्तर ॥ ८ ॥ पहले इकट्ठा कियेहुये पातकोंसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीहै ऋषिलोग बोले कि हे सूतनन्दन ! किस प्रकार सुरेन्द्रके ब्रह्महत्या हुई है ॥ ९ ॥ यह सब हमलोगों से कहिये हमसबों को बड़ा आश्चर्य है कपालेश्वरनामक देव किसप्रकार यहां भलीभांति टिके हैं ॥ १० ॥ व हे महामते ! उनके प्रभावसे कैसे ब्रह्महत्या नाश हुई है हे सूतनन्दन ! वह पापपुरुष किस विधि से देनेयोग्य है ॥ ११ ॥ और कौन

यच्छतेब्राह्मणेन्द्रायप्रदानंपापपूरुषम् ॥ दक्षिणांमूर्तिमासाद्यप्रोवाचेदंबृहस्पतिः ॥ ७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रेगत्वातंवीक्ष्य शङ्करम् ॥ योददातिशरीरञ्चकृत्वाहेममयंततः ॥ ८ ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहःपातकैःपूर्वसञ्चितैः ॥ ऋषयऊचुः ॥ ब्रह्महत्याकथञ्जातासुरेन्द्रस्यहिसूतज ॥ ९ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ कपालेश्वरसंज्ञस्तुकथन्देवोऽत्रसंस्थितः ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याकथंनष्टातत्प्रभावामहामते ॥ सपापपुरुषोदेयोविधिनाकेनसूतज ॥ ११ ॥ कैर्मन्त्रैःसहिदेयस्स्यात्कैरप्येवमुपस्करैः ॥ दर्शनात्पूजनाच्चापिकिंफलंजायतेनृणाम् ॥ १२ ॥ अदत्त्वास्वशरीरंवापूजयाकेवलंवद ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिकथान्ताञ्चपुरातनीम् ॥ १३ ॥ यांश्रुत्वापिमहाभागनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिविहितैरन्यजन्मजैः ॥ १४ ॥ दृष्टमात्रेणयेनात्रपातकात्तद्दिनोद्भवात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहःसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १५ ॥ पुरात्वष्टुःसुतोजज्ञेदानवोद्विजसत्तमाः ॥ पुलोमदुहितुःपार्श्वाद्विभावर्य्याःसुवीर्य्यवान् ॥ १६ ॥ सजातएवधर्म्मा

मंत्रों के द्वारा व कौन उपस्करों (सामग्रियों) से उसको देना चाहिये और देखने व पूजनेसे भी मनुष्योंको क्या फल होताहै ॥ १२ ॥ और अपने शरीरको न देकर पूजनसे क्या फल होताहै वह कहिये सूतजी बोले कि मैं तुमलोगोंसे उस पुरानी कथाको कहूंगा ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर भी मनुष्य अज्ञान या ज्ञान से भी किये व अन्यजन्मसे उत्पन्नहुये पापोंसे छूटजाता है ॥ १४ ॥ और यहां जिन शिवजीके देखनेहीसे उस दिन उपजेहुये पापसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं यह मैंने सत्य कहाहै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुरातन समय पुलोमा की कन्या विभावरीके सकाशसे त्वष्टाके अतिबलिष्ठ दानव पुत्र पैदा हुआ है ॥ १६ ॥ पैदाहुआ

हीं वह धर्मात्मा व समस्त संसार की प्याराथा व दानववाले स्वभावको छोड़कर ब्राह्मणों की भक्तिमें परायणहुआ ॥ १७ ॥ उसने पुष्करारण्यको जाकर उत्तम समाधिसे अपनी तपस्यामें टिककर कमलसे उपजे हुये ब्रह्माको प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माजी आपही दृष्टिगोचरता में प्राप्तहुये व यह बोले कि मैं वरदायक हूं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ १९ ॥ वृत्रासुर बोला कि देवेश! यदि प्रसन्न हो तो मुझको ब्राह्मणता दीजिये क्योंकि द्विजत्वको प्राप्तहोकर मैं परमपद का साधन करूंगा ॥ २० ॥ उस ब्राह्मणतासे मुझको कुछ असाध्य न होगा और मुझको ब्राह्मणता के बराबर अन्य कुछ नहीं जान पड़ताहै ॥ २१ ॥ व निश्चयकर ब्राह्मण

त्माआसीत्सर्वजगत्प्रियः ॥ दानवंभावमुत्सृज्यद्विजभक्तिपरायणः ॥ १७ ॥ सगत्वापुष्करारण्यंपरमेणसमाधिना ॥ तोषयामासदेवेशंपद्मजंस्वतपस्स्थितः ॥ १८ ॥ तस्यतुष्टस्स्वयंब्रह्मादृष्टिगोचरताङ्गतः ॥ प्रोवाचवरदोस्मीतिकिन्तेकृत्यङ्करोम्यहम् ॥ १९ ॥ वृत्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेशब्राह्मणत्वंप्रयच्छमे ॥ ब्राह्मणत्वंसमासाद्यसाधयामिपरम्पदम् ॥ २० ॥ तेनकिञ्चिदसाध्यंनब्राह्मण्येनभवेन्मम ॥ ब्राह्मण्येनसमञ्चान्यन्नकिञ्चित्प्रतिभातिमे ॥ २१ ॥ परमंदैवतंकिञ्चिन्नविप्राद्विद्यतेध्रुवम् ॥ तस्मान्मेहृत्स्थितंनान्यदपिराज्यंत्रिविष्टपे ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहृष्टस्तस्यपितामहः ॥ ब्राह्मणत्वंस्वयंदत्त्वाततःप्रोवाचसादरम् ॥ २३ ॥ मयात्वंविहितोविप्रःपुत्रप्रकुरुवाञ्छितम् ॥ प्रसादयस्वसततंब्राह्मणान्ब्रह्मवित्तमान् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणैस्सुप्रसन्नैश्चप्रीयन्तेसर्वदेवताः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूजनीयाद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्तस्ततस्तेनवृत्रोभूद्ब्राह्मणस्ततः ॥ ब्राह्मयालक्ष्म्यासमोपेतोब्रह्मचर्य्यपरायणः ॥ २६ ॥ तस्मि

से उत्तम कोई देवता नहीं विद्यमान है उसी कारण स्वर्गमें अन्य राज्य भी मेरे हृदयमें नहीं स्थित है ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचन को सुनकर प्रसन्न हो ब्रह्माने आपही उसको ब्राह्मणता देकर तदनन्तर आदर समेत कहा ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र! मैंने तुमको ब्राह्मण किया अभिलाष कीजिये व निरन्तर ब्रह्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न कराइये ॥ २४ ॥ क्योंकि अतिप्रसन्न ब्राह्मणोंके द्वारा समस्त देवता प्रसन्न होतेहैं इसलिये सब उपायसे द्विजोत्तमोंको पूजना चाहिये ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर उन ब्रह्मासे ऐसा कहाहुआ वृत्रासुर ब्राह्मण हुआ उसके उपरान्त ब्राह्मणवाली शोभा से संयुत व ब्रह्मचर्य में परायण हुआ ॥ २६ ॥

जब वह तपस्या में भलीभांति स्थितहुआ तब इन्द्रने दानवों को मारा व महात्मा दानवोंका वंश विनाशको प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ तदनन्तर देवताओं से हारेहुये वे सब दानव अपने स्थानको छोड़कर दुःख, शोचसे संयुत हुये ॥ २८ ॥ व उस की माताको अगाड़ी कर उसके समीपगये और उन दानवों से सब ओर घिरीहुई उस माताको देखकर उस वृत्रासुरने ॥ २९ ॥ अनादर को प्राप्तहुये दानवों समेत वैसी हुई मातासे कहा कि दुःखित तुमलोगों का मेरे समीप आनेका क्या कार्यहै ॥ ३० ॥ दानव बोले कि देवताओं से अनादर को प्राप्त हमलोग आपकी शरणमें प्राप्त हैं अन्यत्र कहांजावैं तुम्हारे विना हमलोगों का संश्रय (आश्रयभूत) नहीं

स्तपसिसंस्थेतुहताइन्द्रेणदानवाः॥वंशोच्छेदंसमापन्नंदानवानांमहात्मनाम् ॥ २७ ॥ ततस्तेदानवास्सर्वेपराभूतास्सुरै
स्ततः ॥ स्वस्थानंसम्परित्यज्यदुःखशोकसमन्विताः ॥ २८ ॥ तन्मातरंपुरस्कृत्वातत्सकाशमुपागताः ॥ सचतांमा
तरंदृष्ट्वावृतान्तैश्चसमन्ततः॥२९॥दानवैश्चपराभूतैस्तथाभूताञ्चमातरम् ॥ किमागमनकृत्यञ्चदुःखितानांममान्ति
कम् ॥ ३० ॥ दानवाऊचुः ॥ वयंदेवैःपराभूताभवन्तंशरणङ्गताः ॥ क्वयामोन्यत्रचास्माकंत्वांविनानास्तिसंश्रयः ॥
३१ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वावृत्रःप्रोवाचसादरम् ॥ देवानहंहनिष्यामिगम्यतान्तत्रमाचिरम् ॥ ३२ ॥ निजागमनकृत्यञ्च
मातःकथयसाम्प्रतम् ॥ मातोवाच ॥ तथाकुरुमहाभागशीघ्रंदारपरिग्रहः ॥ ३३ ॥ वंशवृद्धौप्रमाणञ्चेद्वाक्यंतवमनूद्भ
वम् ॥ एषएवपरोधर्म्मएतदेवपरंतपः ॥ ३४ ॥ पुत्रस्तुजननीवाक्यंयत्करोतिसमाहितः ॥ यथास्त्रीणांपतिंमुक्त्वानान्या
स्तिभुविदेवता ॥ ३५ ॥ जनन्याञ्जीवमानायान्तथैवचसुतस्यच ॥ अतिक्रम्यचयानारीपतिंधर्म्मपराभवेत् ॥ ३६ ॥

है ॥ ३१ ॥ उनके उस वचनको सुनकर आदर समेत वृत्रासुर बोला कि मैं देवोंको मारूंगा वहां शीघ्रही जाइये ॥ ३२ ॥ व हे मातः ! इस समय अपने आनेका कार्य कहो माता बोली कि-हे महाभाग ! वैसेही शीघ्रही स्त्रीका ग्रहण कीजिये ॥ ३३ ॥ यदि मनुसे उपजाहुआ वचन वंशकी वृद्धिमें तुमको प्रमाण होवै यही परमधर्म है व यही उत्तम तप है ॥ ३४ ॥ जोकि सावधान होताहुआ पुत्र माताका वचनकरै जैसे पतिको छोड़कर स्त्रियोंका भूमिमें और देवता नहीं है ॥ ३५ ॥ वैसेही माताके

जीते हुये पुत्रका देवता नहीं है व पतिको उल्लंघन कर जो स्त्री धर्म में तत्पर होतीहै ॥ ३६ ॥ वह सब निष्फल होजाताहै इसमें सन्देह नहीं है और जो पुत्र माताका वचन उल्लंघनकर रुचिके अनुकूल ॥ ३७॥ धर्मके कार्यको करताहै उसके वे सब निश्चयकर वृथा होजाते हैं जैसे कि भस्ममें हवन व्यर्थ होताहै ॥ ३८ ॥ जैसे वनमें रोना व ऊषर में बरसना और जैसे बधिरके आगे गाना व अन्धके आगे नाचना वृथा होता है ॥ ३९ ॥ वैसेही माताके सम्मत से अन्य कियाहुआ पुत्रका धर्मसे उपजाहुआ समस्त कर्म निष्फल होताहै उसीसे मैं तुम्हारे समीप आईहूं ॥ ४० ॥ हे पुत्र ! विशेषकर दुःखित भाइयों का वचन मानना चाहिये अथवा हे पुत्र ! तुमसे

तत्सर्वंविफलंतस्याजायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रस्तुजननीवाक्यंयोतिक्रम्ययथारुचि ॥ ३७ ॥ करोतिधर्म्मकृत्यानितानिसर्वाणितस्यच ॥ भवन्तिचवृथानूनंयथाभस्महुतन्तथा॥३८ ॥ अरण्यरुदितञ्चैवऊषरेवर्षितंयथा ॥ यथैवबधिरस्याग्रेगीतंनृत्यमचक्षुषः ॥ ३९ ॥ तद्वन्मातृमतादन्यत्कृतंपुत्रस्यधर्मजम् ॥ सर्वंकर्म्मनसन्देहस्तेनाहन्त्वामुपागता ॥ ४० ॥ बन्धूनांवचनंपुत्रदुःखार्तानांविशेषतः ॥ किंवातेबहुनोक्तेनभूयोभूयश्चपुत्रक ॥ ४१ ॥ आनृण्यंजायतेयद्वत्पितॄणांस्यात्तथाशृणु ॥ परमंचेतिसम्यक्त्वंसर्वंज्ञातिसमुद्भवम् ॥ ४२ ॥ यदिवत्सप्रमाणञ्चेत्कुरुष्वचवचोमम ॥ तस्यास्तुवचनंश्रुत्वावृत्रस्संचिन्त्यचेतसि ॥ ४३ ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गेणनमातुर्विद्यतेपरम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायआनिनायपरिग्रहम् ॥ ४४ ॥ त्वष्टातस्मैददौप्रीतस्ततोरत्नान्यनेकशः ॥ संख्याहीनानितस्यैवकुप्यंधनमनन्तकम् ॥ ४५ ॥ हस्त्यश्वयानकोशाढ्यंसोभिषिक्तःपदेनिजे ॥ दानवानांमहावीर्य्योब्राह्मण्येनसमन्वितः ॥ ४६ ॥ अभिषिक्तस्तदावृत्रस्स्वराज्ये

बार २ बहुत कहने से क्याहै ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार पितरों से उऋणता होतीहै उसको तुम वैसेही सुनो हे वत्स ! कुटुम्बियों से उपजाहुआ समस्त उत्तम वचन यदि भलीभांति प्रमाण हो तो मेरा वचन करिये उसके उस वचनको सुनकर वृत्रासुर चित्तमें भलीभांति चिन्तनकर ॥ ४२।४३ ॥ कि श्रुति, स्मृति में कहे हुये मार्गके द्वारा मातासे परे देवता नहींहै वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उसने स्त्रीको आना ॥४४॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये त्वष्टाने उसके लिये असंख्य रत्नोंको दिया व उसीको हाथी, घोड़ा, खज़ाना से संयुत अनन्त ताम्रादि द्रव्यको दिया व ब्राह्मणतासे संयुत तथा दानवोंके मध्यमें महाबली उस वृत्रासुरको अपने स्थानपै अभिषेक किया ॥४५।४६॥

जिस समय अपने राज्यपै वृत्रासुर का अभिषेक हुआ तब अभिषेक सुनकर अतिप्रसन्न होते हुये वृत्रासुर के वे असुरादिक भाई ॥ ४७ ॥ उसके समीप आये जो कि पाताल व पर्वत में क्लेशसे ग्रहण करने योग्य स्थलरूपी क़िलोंसे वहां आये थे॥ ४८ ॥ व देवताओं के साथ वैरकिये तथा बड़े क्रोधसे संयुत थे तदनन्तर सबोंसे उत्साह करायाहुआ वह बड़ाबली दानव ॥ ४९ ॥ इन्द्रके मन्दिरके सामने शत्रुओं के नाश करने के लिये चला इन्द्रने भी युद्ध करनेकी इच्छासे भलीभांति आयेहुये वृत्रासुरको सुनकर ॥ ५० ॥ समस्त देवताओं से संयुत व प्रसन्नहो प्रमाण किया तदनन्तर दानवोंके साथ दैत्योंका युद्धहुआ ॥ ५१ ॥ वहां बृहस्पति जी इन्द्रसे बोले

तेऽसुरादयः ॥ श्रुत्वाभिषेकंसंहृष्टास्तस्यवृत्रस्यबान्धवाः ॥४७॥ दानवास्तंसमाजग्मुर्येतत्रासन्समागताः॥पातालाद्गि रिदुर्ग्राह्यस्थलदुर्गेभ्यएवच ॥ ४८ ॥ कृतवैराश्चसमन्देवैः कोपेनमहतावृताः ॥ ततःप्रोत्साहितःसर्वैर्दानवस्समहाबलः ॥ ४९ ॥ प्रस्थितःशत्रुनाशायमहेन्द्रसदनम्प्रति ॥ शक्रोपिवृत्रमाकर्ण्यसमायातंयुयुत्सया ॥ ५० ॥ सम्मुखःप्रययौहृ ष्टःसर्वदेवसमन्वितः ॥ ततस्समभवद्युद्धन्देवानांदानवैस्सह ॥ ५१ ॥ तत्रोवाचगुरुःशक्रंमायुद्धंकुरुदेवप ॥ वृत्रोयंदारु णोयुद्धेबलद्वयसमन्वितः ॥ ५२ ॥ चत्वारश्चाग्रतोवेदाःपृष्ठतस्सशरन्धनुः ॥ तेनाजेयतमोदैत्यस्तवैवचमहाहवे ॥ ५३ ॥ तस्मात्सन्धानमेतेनत्वंकुरुष्वमहामते ॥ ततोविश्वासमायातंजहिवज्रेणदानवम् ॥ ५४ ॥ बहूपायैरिपुर्वध्यइतिशा स्त्रनिदर्शनम् ॥ भुञ्जानश्चशयानश्चदत्त्वाकन्यामपिस्वकाम् ॥ ५५ ॥ वित्तदानेनसंयोज्यकृत्वापिशपथंगुरु ॥ माया मयन्तमासाद्यतस्मादेवंसमाचर ॥ ५६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ यद्येवंचस्वयङ्गत्वातंविश्वासेनियोजय ॥ तत्वाक्येनविश्वासं

कि हे सुरपालक ! समर मत कीजिये यह भयंकर वृत्रासुर युद्धमें दो बलोंसे संयुतहै ॥ ५२ ॥ क्योंकि आगे चारवेद व पीछे बाण समेत धनुषहै उसी कारण महासं-ग्राम में दैत्य तुम्हारेही अवश्य न जीतने योग्य है ॥ ५३ ॥ इसलिये हे महामते ! तुम इससे मेलकरो तदनन्तर विश्वासमें आयेहुये दानवको वज्रसे मारियेगा॥५४॥ क्योंकि भोजनकरते व सोतेहुये शत्रुको बहुत उपायों से मारना चाहिये यह शास्त्रसे दिखलाया गयाहै अपनी कन्याको भी देकर ॥ ५५ ॥ व द्रव्यके दानसे संयोग कर व गरुई सौगन्दकर उस मायामय शत्रुको प्राप्तहोकर मारना चाहिये उसी कारण ऐसाही कीजिये ॥ ५६ ॥ इन्द्र बोले कि यदि ऐसा है तो आपही जाकर उसको

विश्वास में युक्त करिये क्योंकि तुम्हारे वचन से वह दानव निश्चयकर विश्वास को प्राप्तहोगा ॥५७॥ सूतजी बोले कि इन्द्रका मत जानकर बृहस्पति जी वहां चले कि जहांपर युद्धके लिये निश्चय कियेहुये दैत्य टिकाथा ॥ ५८ ॥ आपही प्राप्तहुये उन बृहस्पति को देखकर प्रसन्नमनवाला वह वृत्रासुर भी भलीभांति प्राप्तहुआ क्योंकि यह सदैव ब्राह्मणका भक्त था ॥ ५९ ॥ व विशेषता से उच्च प्रकारसे प्रणामकर यह वचन बोला वृत्रासुर बोला कि हे द्विजोत्तमजी ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ मैं क्याकरूं मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ६० ॥ जिसलिये मुझको ब्राह्मण प्रियहैं उसी कारण इससमय कहिये बृहस्पतिजी बोले कि हे दानवोत्तम ! जिसलिये समर

नूनंयास्यतिदानवः ॥ ५७ ॥ सूतउवाच ॥ शक्रस्यमतमाज्ञायप्रतस्थेचबृहस्पतिः ॥ यत्रवृत्रःस्थितोदैत्योयुद्धार्थंकृतनिश्चयः ॥ ५८ ॥ वृत्रोपितंसमालोक्यस्वयंप्राप्तंबृहस्पतिम् ॥ सदैषद्विजभक्तस्सहृष्टात्मासमपद्यत ॥५९॥ विशेषात्प्रणिपत्योच्चैर्वाक्यमेतदभाषत ॥ वृत्रउवाच ॥ स्वागतन्तेद्विजश्रेष्ठकिङ्करोमिप्रशाधिमाम् ॥ ६० ॥ प्रियामेब्राह्मणायस्मात्तस्मात्कीर्तयसाम्प्रतम् ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ संदिग्धोविजयोयुद्धेयस्माद्दानवसत्तम ॥ ६१ ॥ तस्मात्कुरुसुरेन्द्रेणऽव्यवस्थांवचनान्मम ॥ त्वंभुङ्क्ष्वभूतलंकृत्स्नंशक्रश्चापित्रिविष्टपम् ॥६२॥ ऽव्यवस्थयाततोनित्यंवर्तितऽव्यंपरस्परम् ॥ वृत्रउवाच ॥ अहंतववचोब्रह्मन्करिष्यामिसदैवहि ॥ ६३ ॥ सङ्गमंकुरुचेन्द्रेणसाम्प्रतंममसद्द्विज ॥ सूतउवाच ॥ अथशक्रंसमानीयबृहस्पतिरुदारधीः ॥ ६४ ॥ वृत्रेणसहसन्धानंचक्रेचैवपरस्परम् ॥ परमांमित्रताम्प्राप्तौताबुभौदैत्यदेवपौ ॥६५॥ प्रहृष्टौगतवन्तौचततश्चैवनिजंगृहम् ॥ अथशक्रश्छलान्वेषीसदावृत्रस्यवर्तते ॥६६॥ नच्छिद्रंलभतेकापिवीक्षमाणोपिय

में जीतकी सन्देह होतीहै ॥ ६१ ॥ उसी लिये मेरे वचन से सुरेन्द्र (इन्द्र) के साथ मेल कीजिये और तुम सब भूमिको भोगो व इन्द्रभी स्वर्गको भोगकरैं ॥६२॥ तदनन्तर नित्यही आपस में मेलसे वर्तमान होना चाहिये वृत्रासुर बोला कि हे ब्रह्मन्! मैं सदैवही तुम्हारा वचन करूंगा ॥६३॥ हे उत्तम द्विज ! इस समय इन्द्रके साथ मेरा संयोग कीजिये सूतजी बोले कि इसके अनन्तर इन्द्रको भलीभांति आनकर उदारबुद्धिवाले बृहस्पति ने ॥ ६४ ॥ वृत्रासुर के साथ आपसमें मेलकिया तदनन्तर दैत्यों व देवताओं के पालक वे दोनों उत्तम मित्रताको प्राप्तभये व प्रसन्न होतेहुये अपने घरको चलेगये इसके अनन्तर इन्द्रजी सदैव वृत्रासुर के छलके ढूंढ़नेवाले

वर्त्तमान रहते थे ॥ ६५ । ६६ ॥ परन्तु यत्नसे देखते हुये भी कहींपर भी छिद्रको न पातेथे और यदि किसी छिद्रको पाकर वे इन्द्रजी किसी प्रकार से उस के समीप आतेथे तो उसके प्रतापसे जलते थे इन्द्रजी बोले कि उसदुष्टात्मा वृत्रासुर का तेज सहनेके लिये मैं नहीं समर्थहूं ॥ ६७ । ६८ ॥ सूतजी बोले कि उनके उस वचन को सुन देरतक ध्यानकर तदनन्तर बृहस्पति जी नम्रतासे नीचेनये खड़ेहुये उन इन्द्रसे बोले ॥ ६९ ॥ बृहस्पति बोले कि हे सुराधिप,इन्द्रजी ! उसके शरीरमें ब्राह्मणवाला तीव्रतेज है उससे तुम देखने के लिये नहीं समर्थ हो ॥ ७० ॥ मैं वैसेही उसके मारनेसे उपजा हुआ उपाय तुमसे कहूंगा कि जिससे यहां तुम उस दानवो-

त्ततः ॥ कथञ्चिद्यदिसोभ्येतितत्सकाशंपुरन्दरः ॥ ६७ ॥ किञ्चिच्छिद्रंसमासाद्यतत्प्रतापेनदह्यते ॥ इन्द्रउवाच ॥ न चशक्नोमितत्सोढुन्तेजस्तस्यदुरात्मनः ॥ ६८ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाचिरन्ध्यात्वाबृहस्पतिः ॥ ततःप्रोवाच तंशक्रंविनयावनतंस्थितम् ॥ ६९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तस्यब्राह्मयंस्थिततेजस्तीव्रञ्चात्रेपुरन्दर ॥ वीक्षितुंनैवशक्नोषितेनत्वंत्रिदशाधिप ॥ ७० ॥ तथातेकीर्तयिष्यामितस्योपायंवधोद्भवम् ॥ वधयिष्यसियेनात्रतन्त्वंदानवसत्तमम् ॥ ७१ ॥ प्राचीसरस्वतीतीरेपुष्करारण्यमाश्रितः ॥ दधीचिर्नामविप्रर्षिःशतयोजनमुच्छ्रितः ॥ ७२ ॥ तत्रनित्यंतपःकुर्वंस्तोषयानःपितामहम् ॥ सनिर्विण्णोमुनिश्रेष्ठःप्राणानांधारणेहरे ॥ ७३ ॥ चिरन्तनोमुनिस्तस्याज्जरयातिसमावृतः ॥ तंप्रार्थयद्रुतङ्गत्वातस्यास्थीनिगुरूणिच ॥ ७४ ॥ सतेदास्यत्यसन्दिग्धन्त्यक्त्वाप्राणानतिप्रियान् ॥ तस्यास्थिभिःप्रहरणंवज्राख्यन्तेभविष्यति ॥ ७५ ॥ अमोघंतत्ततोनूनन्त्वंवृत्रंसूदयिष्यसि ॥ तस्यवज्रस्यतत्तेजोब्रह्मतेजोविबृंहि

त्तम को मारोगे ॥ ७१ ॥ प्राची सरस्वतीके किनारे सौ योजन,ऊंचे दधीचि नामक विप्रर्षि पुष्करारण्य में टिकेहैं ॥ ७२ ॥ हे इन्द्रजी ! वहां नित्यही तप करते व ब्रह्मा को प्रसन्न करतेहुये वे मुनिश्रेष्ठ दधीचिजी प्राणों के धारण करनेमें निर्वेदको प्राप्त हैं ॥ ७३ ॥ वे पुराने मुनि वृद्धतासे अत्यन्तही घिरे हैं शीघ्रही जाकर उनके गरुये अस्थियों को मांगिये ॥ ७४ ॥ वे अति प्यारे प्राणोंको छोड़कर तुमको निस्सन्देह देवैंगे व उनकी हड्डियों से वज्र नामक तुम्हारा अस्त्रहोगा ॥ ७५ ॥ और वह सफल

होगा उससे निश्चयकर तुम वृत्रासुरको मारोगे उस वज्रका वह तेज ब्राह्मणके तेजसे विशेषकर बढ़ाहुआहोगा ॥ ७६ ॥ उससे वृत्रासुरसे उपजाहुआ वह तेज शांति को प्राप्तहोगा सूतजी बोले कि उस वचनको सुनकर शीघ्रही समस्तसुरसमूहोंसमेत इन्द्रजी ॥ ७७ ॥ पुष्करारण्यको गये जहां कि तेंतीसकोटितीर्थोंसे घिरीहुई प्राची सरस्वतीजी हैं ॥ ७८ ॥ वे इन्द्रजी वहां आश्चर्यसंयुत दधीचिजीके आश्रममें बैठगये जहां कि आपसमें प्रसन्नताको प्राप्त सर्प नेउलोंके साथ खेलतेथे ॥ ७९ ॥ और उन उत्तममहात्मा दधीचिकी तपस्याके प्रभावसे सिंहोंके साथ हिरन और कुत्तोंके साथ बिलार तथा आपसमें वैरसे वर्जित होतेहुये कौवा घुघुवोंसमेत खेलते

तम्॥७६॥तेनवृत्रोद्भवन्तेजःप्रशमंसंप्रयास्यति॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरंशक्रःसर्वैर्देवगणैस्सह ॥ ७७ ॥ जगामपु ष्करारण्यंयत्रप्राचीसरस्वती ॥ त्रयस्त्रिंशत्समोपेतातीर्थानांकोटिभिर्वृता ॥ ७८ ॥ दधीचेराश्रमेतत्रसोविशच्चित्रसंयु ते ॥ क्रीडन्तेनकुलैःसर्पायत्रतुष्टिङ्गता।मिथः ॥ ७९ ॥ मृगाःपञ्चाननैःसार्द्धंवृकदंशास्तथाश्वभिः ॥ उलूकसहिताःका काःमिथोद्वेषविवर्जिताः ॥ ८० ॥ प्रभावात्तस्यतपसोदधीचेस्सुमहात्मनः ॥ दधीचिरपिचालोक्यदेवाञ्छक्रपुरोगमा न् ॥ ८१ ॥ समायातान्प्रहृष्टात्मासत्वरंसंमुखोभ्यगात् ॥ ततश्चार्घ्यंसमादायप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ ८२ ॥ शक्रमभ्या गतःकिन्तेवदकृत्यंकरोम्यहम्॥गृहायातस्यदेवेशतच्छीघ्रंसन्निवेदय॥ ८३ ॥ इन्द्रउवाच ॥ आतिथ्यंकुरुविप्रेन्द्रगृहा यातस्यसन्मुने॥तदस्थीनिनिजान्याशुममदेह्यविकल्पितम् ॥ ८४ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्सकाशंमुनीश्वर ॥ अस्थि भिस्तेपरंकार्यन्देवानांसिद्धिमेष्यति ॥ ८५ ॥ सूतउवाच॥इन्द्रस्यतद्वचःश्रुत्वादधीचिस्तोषसंयुतः ॥ ततःप्राहसहस्रा

थे दधीचि भी इन्द्रअग्रगामीवाले देवताओंको भलीभांति आयेहुये देखकर प्रसन्नमनवाले हो शीघ्रही सामनेगये तदनन्तर अर्घ्यको लेकर व बार २ प्रणामकर ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ इन्द्रके सामने आये व बोले कि हे सुरेश ! कहिये मैं घरमें आयेहुये तुम्हारा क्या कार्य करूं उसको शीघ्रही भलीभांति निवेदन करिये ॥ ८३ ॥ इन्द्रबोले कि हे सन्मुने, द्विजेन्द्र ! यदि घरमें आयेहुये मेरी पहुनाई कीजिये तो भेदरहित अपनी हड्डियोंको शीघ्रही दीजिये ॥८४॥ हे मुनिनाथ ! मैं इसीलिये तुम्हारे समीप प्राप्तहुआहूं तुम्हारी हड्डियोंसे देवताओं का उत्तमकार्य सिद्धिको प्राप्तहोगा ॥ ८५ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्रके उस वचनको सुनकर तदनन्तर प्रसन्नतासंयुत

दधीचिजी समस्तदेवताओंसे संयुत हजारलोचनोंवाले इन्द्रसे बोले ॥ ८६ ॥ कि अहो (विस्मय) है कि भूमिमें इससमय मेरे समान कोई पुण्यवान् पुरुष नहीं है और न हुआहै कि जिसके घर आपही सुरेश याचक होगयेहोवें ॥ ८७ ॥ और मेरे अस्थि धन्यहैं जोकि हे सुरेश ! देवताओंकी रक्षाके लिये सदैव तुम्हारा हितकार्यकरेंगे ॥ ८८ ॥ यह मैं प्रियप्राणोंको तुम्हारे लिये दूंगा हे इन्द्रजी ! अपने कार्यके लिये निजइच्छासे हड्डियोंको ग्रहणकीजिये ॥ ८९ ॥ ऐसा कहकर शीघ्रही उन महर्षिने ध्यानमें बैठकर ब्रह्मछिद्रके द्वारा प्राण निकालकर जीवको त्यागदिया ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! जीवात्मासे छूटाहुआ उन महर्षिका बिनजीववाला वह

त्वंसर्वैर्देवैस्समन्वितम् ॥ ८६ ॥ अहोनास्तिमयापुण्यस्साम्प्रतम्भुविकश्चन ॥ नातीतोयस्यदेवेशस्स्वयमर्थीगृहङ्गतः॥ ८७॥ धन्यानिचममास्थीनियानिदेवेशतेहितम् ॥ करिष्यन्तिसदाकार्य्यंरक्षार्थंत्रिदिवौकसाम्॥८८॥एषोहंसम्प्रदास्यामिप्रियान्प्राणान्कृतेतव ॥ गृहाणस्वेच्छयास्थीनिस्वकार्य्यार्थंपुरन्दर ॥ ८९ ॥ एवमुक्त्वामहर्षिःसध्यानमाश्रित्यसत्वरम् ॥ ब्रह्मरन्ध्रेणनिःसार्य्यप्राणमात्मानमत्यजत् ॥ ९० ॥ तदात्मनापरित्यक्तन्तस्यगात्रञ्चतत्क्षणात् ॥ पतितंमेदिनीपृष्ठेऽयसुतद्विजसत्तमाः ॥ ९१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुतस्यास्थीनिशतक्रतुः ॥ प्रगृह्यविश्वकर्माणन्ततःप्रोवाचसादरम् ॥ ९२ ॥ एतैरस्थिभिःशीघ्रंमेकुरुत्वंवज्रमायुधम् ॥ येनव्यापादयाम्याशुवृत्रन्दानवसत्तमम् ॥ ९३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वकर्मात्वरान्वितः ॥ यथायुक्तंतथाचक्रेवज्राख्यंदारुणाकृति ॥९४॥ षट्त्रिंशच्छतपर्वाख्यंमध्यक्षामंविभीषणम् ॥ प्रददौचततस्तस्मैसहस्राक्षायधीमते ॥ ९५ ॥ अथशक्रस्समादायद्वादशार्कसमप्रभम् ॥ समाधिस्थञ्चतं

शरीर उसीक्षण धरातलमें गिरपड़ा ॥ ९१ ॥ इसी समयमें उनकी हड्डियोंको लेकर तदनन्तर इन्द्रने आदरसमेत विश्वकर्मासे कहा ॥ ९२ ॥ कि इन हड्डियोंसे तुम शीघ्रही मेरे लिये वज्रअस्त्रको बनावो कि जिससे मैं दानवोंमें श्रेष्ठ वृत्रासुरको शीघ्रही नाशकरूं ॥ ९३ ॥ उसके उस वचनको सुनकर शीघ्रतासंयुत विश्वकर्माने जैसा योग्य था वैसाही भयंकरआकारवाला वज्रनामक अस्त्र बनाया ॥ ९४ ॥ जोकि छत्तीससौ गांठियोंसे प्रसिद्ध व बीचमें पतला व भयंकर था तदनन्तर उन बुद्धिमान् सहस्रलोचनोंवाले इन्द्रकेलिये दिया ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने बारह सूर्यों के समानप्रकाशवाले वज्रकोलेकर व समाधिमें टिके तथा सन्ध्यापूजनमें परायण

ज्ञात्वावृत्रंसन्ध्यार्चनेरतम्॥९६॥ततश्चपृष्ठभागंससमाश्रित्यत्रिलोकराट्॥ चिक्षेपवज्रमुद्दिश्यतद्वधार्थंसमुत्सुकः॥९७॥ सहतस्तेनवज्रेणदानवोभस्मसात्कृतः॥ शक्रोपिहतमज्ञायभयात्तस्याथदुद्रुवे॥ ९८॥ मनुष्यरहितेदेशेविषमेगुल्मसंवृते॥ लिल्येशक्रस्तदासर्वंमेनेवृत्रमयंजगत्॥ ९९॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवाःपश्यन्तस्सर्वतोदिशम्॥ सिद्धचारणगन्धर्वाश्चाजग्मुश्चशतक्रतुम्॥ १००॥ ततःकृच्छ्रेणसंदृष्टश्शक्रोसौगहनेशुभे॥ विलीनोभयसंत्रस्तोगुल्ममध्येऽव्यवस्थितः॥ १॥ देवाऊचुः॥ किन्तेभीतिस्सहस्राक्षवृत्रोयंघातितस्त्वया॥ परिवारेणसर्वेणवीक्षितोस्माभिरेवच॥ २॥ तस्मादागच्छगच्छामोगृहम्प्रतिपुरन्दर॥ कुरुत्रैलोक्यराज्यन्त्वंसाम्प्रतंहतकण्टकम्॥ ३॥ तच्छ्रुत्वाथविनिष्क्रान्तोगुल्ममध्याच्छतक्रतुः॥ हृष्टरोमाहतंश्रुत्वावृत्रंदानवसत्तमम्॥ ४॥ अथपश्यतियावत्तन्देवास्सर्वेशतक्रतुम्॥ तावत्तेजोविहीनन्तज्ञात्रंदुर्गन्धिसंयुतम्॥५॥दृष्ट्वालोकगुरुर्ब्रह्मादेवान्सर्वानुवाचह॥शक्रोयंसाम्प्रतंव्याप्तःपापयाब्रह्महत्यया॥६॥

उस वृत्रासुर को जानकर ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त पिछलेभाग में भलीभांति खड़े होकर उसके मारने के लिये उत्कण्ठित त्रिलोक के राजा उन इन्द्रजीने उद्देशकर वज्रको फेंका ॥ ९७ ॥ उस वज्रसे माराहुआ वह दानव सब भस्मकर दियागया इन्द्रभी उसको मरा न जानकर उसके डरसे भगे ॥ ९८ ॥ व उससमय इन्द्रजी लताओंसे घिरे व मनुष्योंसे रहित विषमदेशमें छिपरहे और समस्त संसारको वृत्रासुरमय माना ॥ ९९ ॥ इसीअवसरमें सब दिशाओंको देखतेहुये देवता, सिद्ध, चारण व गन्धर्व इन्द्रके समीप आये ॥ १०० ॥ तदनन्तर गुल्मोंके बीचमें बैठे व छिपे तथा भयभीत इन इन्द्रको उत्तम वनमें बड़े क्लेशसे भलीभांति देखा ॥ १ ॥ देवता बोले कि हे सहस्रलोचन ! तुमको क्यों डरहै तुमने इसवृत्रासुरको मारडाला हमसबोंहीने परिवारसमेत देखाहै ॥ २ ॥ इसलिये हे इन्द्रजी ! आइये घरको चलैं इससमय तुम नष्टकण्टकोंवाली त्रिलोककी राज्य कीजिये ॥ ३ ॥ उसवचनको सुनकर इसके अनन्तर गुल्म (लता) के बीचसे इन्द्रजी निकले व दानवोत्तम वृत्रासुरको माराहुआ सुनकर प्रसन्नलोमोंवालेहुये ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर समस्तदेवता जबतक उन इन्द्रको देखैं तबतक दुर्गन्धसे संयुत व तेजहीन उस शरीर

को ॥ ५ ॥ देखकर लोकोंके गुरु ब्रह्मांजी समस्तदेवताओंसे बोले कि इससमय पापिनी ब्रह्महत्यासे ये इन्द्रजी व्याप्तहैं ॥ ६ ॥ जिसलिये कि इन इन्द्रने छलसे उस ब्राह्मण हुये वृत्रासुरको माराहै उसीकारण बहुतदूरसे त्यागनेयोग्यहैं नहीं तो पाप पावोगे ॥ ७ ॥ क्योंकि ब्रह्मघाती के साथ छूना व सम्भाषणकरना विशेषकर निन्दित है सूतजी बोले कि ब्रह्माके उसवचनको सुनकर इन्द्रजीने तेजसे त्यागे व दुर्गन्धमें घिरेहुये अपने शरीरको देखकर तदनन्तर दीन व नयकन्धेवाले होकर ब्रह्मासे कहा ॥ ८ । ९ ॥ कि हे देव ! मैं तुम्हारा सेवकहूं और तुमने इन्द्रतापै नियोग किया है उसीकारण ब्रह्महत्याको विनाशनेवाली प्रसन्नता कीजिये ॥ १० ॥ हे विभो !

यदनेनहतोवृत्रोब्रह्मभूतश्छलेनसः ॥ तस्मात्त्याज्यस्सदूरेणनोचेत्पापमवाप्स्यथ ॥ ७ ॥ ब्रह्मघ्नेनसमंस्पर्शस्संभाषोऽथविनिन्दितः ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यंशक्रोदृष्ट्वात्मनस्तनुम् ॥ ८ ॥ तेजसासंपरित्यक्तंदुर्गन्धेनसमावृतम् ॥ ततःप्रोवाचलोकेशंदीनःप्रणतकन्धरः ॥ ९ ॥ तवाहंकिङ्करोदेवत्वयेन्द्रत्वेनियोजितः ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तंविभोब्रूहियेनशुद्धिःप्रजायते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुत्वंस्नात्वाबलसूदन ॥ ११ ॥ आत्मानंहैमनन्देहिपापपूरुषसंज्ञितम् ॥ मन्त्रवक्त्रैर्यथोक्तञ्चब्राह्मणायमहात्मने ॥ १२ ॥ स्नात्वापुण्यजलेतीर्थेब्रह्मघ्नोहमितिब्रुवन् ॥ स्नातमात्रस्यतेहस्तात्प्रत्यक्षंपततिक्षितौ ॥ १३ ॥ तेजस्संजायतेचैवदुर्गन्धश्चप्रणश्यति ॥ तस्मिंस्तीर्थेत्वयातच्चस्थाप्यंशक्रकपालकम् ॥ १४ ॥ महेश्वरस्यनाम्नाचपूजनीयन्ततःपरम् ॥ अर्चाभिर्वक्त्रमन्त्रैश्चततोदेयात्मनस्तनुः ॥ १५ ॥ हेमोद्भवाद्द्विजेन्द्रायततःशुद्धिमवाप्स्यसि ॥ शक्रस्तुतद्वचःश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्म

प्रायश्चित्त कहिये कि जिससे शुद्धि होवै ब्रह्माबोले कि हे बलसूदन ! तुम अरसठि तीर्थोंमें नहाकर ॥ ११ ॥ पापपुरुषनामक यथोक्तसुवर्णवाले शरीर को मन्त्रमुखों के द्वारा महात्मा ब्राह्मणके लिये दीजिये ॥ १२ ॥ पुण्यदायकजलवाले तीर्थोंमें नहाकर मैं ब्रह्मघाती हूं ऐसा कहतेहुये तुम यह करो केवल नहायेहुये तुम्हारे हाथ से सामने ही भूमिमें कपाल गिर पडैगा ॥ १३ ॥ व तेज होगा और दुर्गन्ध नाश होजायगी और हे इन्द्रजी ! तुमको उस तीर्थमें महादेवके नामसे वह कपाल स्थापन करनाचाहिये तदनन्तर मुखमन्त्रोंके द्वारा अर्चनों से पूजना चाहिये उस के उपरान्त सुवर्ण से उपजा हुआ अपना शरीर द्विजेन्द्रके लिये देनाचाहिये उसी

नः ॥ १६ ॥ कपालंवृत्रजंगृह्यतीर्थयात्रान्ततोगतः ॥ अष्टषष्टिषुतीर्थेषुगच्छमानःसुरेश्वरः ॥ १७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे
समायातःक्रमेणच ॥ विश्वामित्रह्रदेस्नात्वायावत्तस्माद्विनिर्गतः ॥ १८ ॥ कपालंपतितन्तस्यसद्यएवशचीपतेः ॥ तत
स्तम्पूजयामासमन्त्रैर्वक्त्रसमुद्भवैः ॥१९॥ सर्वपापहरैःपुण्यैर्यथोक्तंब्रह्मणापुरा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुदुर्गन्धोनाशमाप्नु
यात् ॥ २० ॥ तच्छरीराद्द्विजश्रेष्ठामहत्तेजोऽभ्यजायत ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मासहदेवैस्समागतः ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्याविमु
क्तन्तंज्ञात्वासर्वसुराधिपम् ॥ब्रह्महत्याकृतोदोषोगतस्तेसुरसत्तम ॥ २२ ॥ शेषपापविशुद्ध्यर्थंस्वर्णदानंप्रयच्छभो ॥ कपा
लमेतद्देशेत्रयत्त्वयापरिपूजितम् ॥ २३ ॥ वृत्रस्यपञ्चभिर्मन्त्रैर्हरवक्त्रसमुद्भवैः ॥ प्रदास्यसिततोभक्त्याहेमजामात्मन
स्तनुम् ॥ २४ ॥ विधिनामन्त्रयुक्तेनतवपापंप्रयास्यति ॥ यद्यत्पूर्वंकृतंकृत्स्नम्प्रदायब्राह्मणायभो ॥ २५ ॥ एवमुक्तस्त
तःशक्रोब्रह्मणासुरसन्निधौ ॥ तथेत्युक्त्वाचतत्कालंपापदेहन्ददौनिजम् ॥ २६ ॥ कृत्वाहेममयंविप्राब्राह्मणाययतात्म

से पवित्रताको पावोगे अप्रकटजन्मवाले ब्रह्माके उस वचनको सुनकर इन्द्रजी ॥ १४ । १५ । १६ ॥ वृत्रासुरसे उपजेहुये कपालको लेकर तदनन्तर तीर्थयात्राको गये अरसठि तीर्थोंमें जातेहुवे सुरनायक इन्द्रजी ॥ १७ ॥ क्रमसे हाटकेश्वरसे उपजेहुये क्षेत्रमें भलीभांति आये व विश्वामित्रके कुण्डमें नहाकर जबतक उससे निकले ॥ १८ ॥ तबतक उसीक्षणही उन इन्द्रके हाथसे कपाल गिरपडा तदनन्तर पहले जैसा ब्रह्माने कहाथा वैसेही समस्तपातकोंके हरनेवाले मुखसे उपजेहुये पवित्र मन्त्रोंसे उसका पूजनकिया इसी समयमें दुर्गन्ध नाशको प्राप्तहुई ॥ १९।२० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उसके शरीरमें बड़ातेज उत्पन्नहुआ इसी अवसरमें देवताओं समेत ब्रह्माजी उन समस्तदेवताओंके स्वामी इन्द्रको ब्रह्महत्यासे छुटे जानकर भलीभांति आये व बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारा ब्रह्महत्यासे कियाहुआ दोष जातारहा ॥ २१ । २२ ॥ हे इन्द्रजी ! शेष पातक की पवित्रता के लिये सुवर्णदान दीजिये यहां इसदेशमें महादेव के मुखसे उपजेहुये पांच मन्त्रोंके द्वारा जो तुमने वृत्रासुर का कपाल पूजाहै तदनन्तर सुवर्णसे उपजेहुये अपने शरीरको भक्तिसे मन्त्रसंयुत विधि के द्वारा देवोगे तो हे इन्द्रजी ! तुम्हारा पाप नाश होजायगा जो पहले कियाहै वह सब ब्राह्मणके लिये देकर नाशहोगा ॥ २३ । २४ । २५ ॥ ब्रह्मासे ऐसा कहेहुये इन्द्रजी ने देवताओंके समीप वैसाही होगा यह कहकर तदन-

न्तर हे ब्राह्मणो ! सुवर्णमयी अपनी पापदेहको बनाकर उसी समय गर्त्ततीर्थमें उपजे व अग्निहोत्री तथा वशकियेहुयेचित्तवाले वातनामक ब्राह्मणके लिये दिया ॥ २६ । २७ ॥ इसी अवसरमें यहां नागर द्विजोंने उस ब्राह्मणकी निन्दाकिया कि हे पापी ! तुमको धिक्कारहै धिक्कारहै पहले तुमने जिन वेदोंको पढ़ा वे वृथाहोगये॥ २८ ॥ व कभी तुम हमलोगोंके साथ मेल न करोगे क्योंकि तुमने पापपिण्डसे उपजेहुये दानको ग्रहण कियाहै ॥ २९ ॥ तदनन्तर रंगहीनमुखवाला होकर उपमन्युकुलमें उपजाहुआ वह ब्राह्मणबोला जोकि नामसे वातक ऐसा प्रसिद्धथा ॥ ३० ॥ जिसलिये कि अपने पापपिण्डको तुमने संकल्प करदिया उसी उदारतासे

ने ॥ गर्त्ततीर्थेसमुत्थायवाताख्यायाहिताग्नये ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रोगर्हितस्सोत्रनागरैः ॥ धिग्धिक्पापवृथावेदायेत्वयापठिताःपुरा ॥ २८ ॥ नास्माभिस्सहसम्पर्कंकदाचित्त्वंकरिष्यसि ॥ गृहीतंयत्त्वयादानंपापपिण्डसमुद्भवम्॥ २९ ॥ ततःप्रोवाचविप्रःसउपमन्युकुलोद्भवः ॥ विवर्णवदनोभूत्वानाम्नाख्यातस्तुवातकः ॥ ३० ॥ त्वयासङ्कल्प्यदत्तोयः पापपिण्डःस्वकोयतः ॥ मयाप्रतिग्रहस्तेनदाक्षिण्येनकृतस्तव ॥ ३१ ॥ नरैरेभिस्सुरश्रेष्ठपश्यतस्तेविगर्हितः ॥ अहञ्चब्राह्मणैस्सर्वैरेतैर्नगरवासिभिः ॥ ३२ ॥ तस्मान्नाहंगृहीष्यामिह्येनन्तवप्रतिग्रहम् ॥ भूयोपितवदास्यामिनत्वंगृह्णासिचेत्पुनः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मशापम्प्रदास्यामिदारुणञ्चक्षयात्मकम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ वेदाङ्गपारगोविप्रोयदिकुर्य्यात्प्रतिग्रहम् ॥ ३४ ॥ नसपापेनलिप्येतपद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ तस्मात्तेपातकंनास्तिश्रृणुपात्रवचोमम ॥ ३५ ॥ एतैस्त्वंगर्हि

मैंने तुम्हारा प्रतिग्रह किया ॥ ३१ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारे देखतेहुये इन मनुष्यों तथा इन समस्तनगरनिवासी द्विजोंने मेरी निन्दा किया ॥ ३२ ॥ उसी कारण मैं तुम्हारे इस दानको न लूंगा किन्तु फिरभी तुमको दूंगा और यदि फिर न लेवोगे ॥ ३३ ॥ तो संहारात्मक विकराल ब्रह्मशापको दूंगा इन्द्रबोले कि वेदाङ्गोंके पारजानेवाला ब्राह्मण यदि प्रतिग्रह करै ॥ ३४ ॥ तो जलसे कमलके पत्तके समान वह पापसे नहीं लिप्तहोताहै इसलिये हे पात्रे ! तुम्हारे पातक नहींहै मेरेवचन सुनिये ॥ ३५॥

१ न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥

जिसलिये नागरों से उपजेहुये ब्राह्मणों से तुम निन्दित हुयेहो उसी कारण इन के मध्यमें तुम समस्तकार्यों में मुख्य होगे ॥ ३६ ॥ व इनके जो पुत्र पौत्र होवैंगे वे सब उनकी आज्ञासे निस्सन्देह तुम्हारे मतमें वर्तमान होवैंगे ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो! तुम्हारे वचनसे विहीन जो थोड़ाभी कियाहुआ होगा उनका वह अफलता को प्राप्तहोगा जैसे कि भस्म में होम विफल होजाता है ॥ ३८ ॥ व कपालमोचननामक यह तीर्थ प्रसिद्ध होगा और हे उत्तम द्विज ! जे मनुष्य मेरेकपाल को भलीभांति स्मरणकर ॥ ३९ ॥ वहां श्राद्धकरैंगे वे मनुष्य मुक्तिसंयुत होवैंगे व श्राद्धपक्षमें विशेषकर उत्तम गतिको प्राप्तहोवैंगे ॥ ४० ॥ और तुम्हारे कुलमें उपजेहुये ब्राह्मण स्थान

तोयस्माद्ब्राह्मणैर्नागरोद्भवैः ॥ एतेषांसर्वकृत्येषुप्रधानस्त्वंभविष्यसि ॥ ३६ ॥ एतेषांपुत्रपौत्रायेभविष्यन्तितथातव ॥ तेसर्वेचाज्ञयातेषांवर्तयिष्यन्त्यसंशयम् ॥ ३७ ॥ युष्मद्वाक्यविहीनंयत्कृतंस्वल्पमपिद्विजाः ॥ तेषांसम्पत्स्यतेवन्ध्यं यथाभस्महुतन्तथा ॥ ३८ ॥ कपालमोचनंनामख्यातमेतद्भविष्यति ॥ येतुसंस्मृत्यमनुजाःकपालंममसद्विज ॥३९॥ तत्रश्राद्धङ्करिष्यन्तितेनरामुक्तिसंयुताः ॥ श्राद्धपक्षेविशेषेणप्रयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ४० ॥ स्थानबाह्येद्विजातीनांकुले दारपरिग्रहम् ॥ कृत्वात्वद्गोत्रसम्भूताब्राह्मणामत्प्रसादतः ॥ ४१ ॥ व्यवहार्याभविष्यन्ति नगरेसर्वकर्मसु ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ ४२ ॥ वातोपितेनवित्तेन प्रतिग्रहकृतेनच ॥ चकारतत्रप्रासादं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ४३ ॥ ततःप्रोवाचशक्रस्तान्ब्राह्मणान्नगरोद्भवान् ॥ कपालमोचनेस्नात्वायोदेवंह्यर्चयिष्यति ॥ ४४ ॥ ब्रह्महत्योद्भवंपापं तस्यनश्यत्यसंशयम् ॥ महापातकयुक्तोवा विपाप्मासभविष्यति ॥ ४५ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ब्राह्मणान्नगरो

से बाहरवाले ब्राह्मणों के वंशमें स्त्रीको ग्रहणकर मेरी प्रसन्नता से ॥ ४१ ॥ नगरमें समस्त कर्मोंमें व्यवहार के योग्य होवैंगे ऐसा कहकर तदनन्तर हजारलोचनोंवाले इन्द्रजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४२ ॥ व वातने भी दान लियेहुये उस धनसे त्रिशूलधारी देवदेवका वहां मन्दिर निर्माण किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर इन्द्रने नगर में उपजेहुये उन ब्राह्मणों से कहा कि कपालमोचनतीर्थ में नहाकर जो शिवदेवको पूजैगा ॥ ४४ ॥ उसका ब्रह्महत्या से उपजाहुआ पाप निस्सन्देह नाशहोगा व महापातकों से

युक्तभी वह बिनपाप होगा ॥ ४५ ॥ उसने नगरमें उपजेहुये ब्राह्मणों से तथा यानें वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकरके वहीं आश्रम बनाकर शिवजीका पूजनकिया ॥४६॥ तबसे लगाकर जो कुछ उनका कार्य होताहै वे उसके वचन से उसको करतेहैं जो कि नागर ब्राह्मण वहां टिके हैं ॥ ४७ ॥ इसी कारणसे यहां दूसरे शिवजी मध्यवर्ती हुये हैं इस कपालेश्वरदेव के समस्तकथानक को मैंने तुमलोगों से कहा जोकि सुननेवाले उत्तमजनों के पापका विनाशक है हे द्विजोत्तमो ! यहां जैसे महात्मा सुरेश की ब्रह्महत्या नष्टहुई है वैसेही उस तीर्थ में पाप नाशहोजाता है ॥४८।४९।५०॥इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभ०षाटीका

द्भवान् ॥ तत्रैवस्वाश्रमंकृत्वापूजयामासशङ्करम् ॥ ४६ ॥ ततःप्रभृतियत्किञ्चित्तेषांकृत्यंप्रजायते ॥ तद्वाक्येनप्रकुर्वन्तितत्रयेनागराःस्थिताः ॥ ४७ ॥ एतस्मात्कारणाज्जातोमध्यगोद्वितयस्त्विह ॥ एतद्वःसर्वमाख्यातमाख्यानंपापनाशनम् ॥ ४८ ॥ कपालेश्वरदेवस्यशृण्वताञ्चनृणांसताम् ॥ तथादेवेश्वरस्यात्रपापंनश्येन्महात्मनः ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यायथानष्टातस्मिंस्तीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेवातकेश्वरकपालमोचनेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

आनर्तउवाच ॥ मूर्खत्वाद्वाप्रमादाद्वाकामाद्वालस्यतोपिवा ॥ योनरःकुरुतेपापंप्रायश्चित्तंकरोतिन ॥ १ ॥ तस्य पापक्षयकरंपुण्यंब्रूहिद्विजोत्तम ॥ येनमुक्तिर्भवेत्सद्योयदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ २ ॥ लोभमोहपरोयोसौपापपिण्डंमहामुने ॥ प्रददातिविधिंब्रूहियेनयच्छाम्यहंद्रुतम् ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ दद्यात्स्वपिण्डंसौवर्णंपञ्चविंशपलंनरः ॥ यथाप्र

यांवातकेश्वरकपालमोचनेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पाप पुरुष निर्माणकरि देय द्विजहिं जिमि दान । दोसौपचीसवें महँ सोई करत बखान ॥ आनर्त बोला कि मूर्खता या असावधानता व कामना या आलस्यसे भी जो मनुष्य पातक करताहै और प्रायश्चित्त नहीं करता है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम, प्रभो ! यदि प्रसन्नहो तो उसके पापका क्षयकारक व पुण्यदायक यत्न कहिये कि जिससे शीघ्रही मोक्षहोवैहै ॥ २ ॥ हे महामुने ! लोभ व मोहमें परायणजो यह पापपिण्डको देताहै उसकी विधि कहिये कि जिससे मैं शीघ्रही देऊं ॥३॥

वेदों व वेदांगों के पारगामी ब्राह्मण को आनकर व उस के चरणों को धोकर वसन पहनावै ॥ ६ ॥ और बहूंटा, कंकण, मुन्दरी इत्यादि भूषणों से उसका शरीर
भूषित कर तदनन्तर मूर्तिको भलीभांति आनै व हे नृपेन्द्र! इस मन्त्रसे ब्राह्मण के लिये निवेदन करै कि हे विप्रजी ! मैंने इस सुवर्णमयी आत्माको तुमको दिया ॥
१० । ११ ॥ व पहले जोकुछ पातक मैंने कियाहो वह सम्पूर्ण तुमको होवै यहदानका मन्त्रहै तदनन्तर हे राजन् ! ब्राह्मण इस मन्त्रको उच्चारणकरै ॥ १२ ॥ कि
पहले जोकुछ तुमने पातक किया है मैंने मूर्तिरूपके द्वारा उसको ग्रहण किया उसीसे तुम पापरहितहो ॥ १३ ॥ यह दानलेने का मन्त्र इस प्रकार विधि से देकर

केयूरैःकङ्कणैश्चैवअंगुलीयकभूषणैः ॥ भूषयित्वातनुन्तस्यततोमूर्त्तिस
मानयेत् ॥ १० ॥ मन्त्रेणानेनराजेन्द्रब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ एषआत्मामयादत्तस्तवहेममयोद्विज ॥ ११ ॥ यत्किञ्चि
द्दिहितंपापंपूर्वंभूयात्तवाखिलम् ॥ इतिदानमन्त्रः ॥ ततस्तुब्राह्मणोराजन्मन्त्रमेनंसमुच्चरेत ॥ १२ ॥ यत्किञ्चिद्दिहितं
पापंत्वयापूर्वंमयाहितत् ॥ गृहीतंमूर्तिरूपेणततस्त्वंपापवर्जितः ॥ १३ ॥ इतिप्रतिग्रहमन्त्रः ॥ एवंदत्त्वाविधानेनततो
विप्रंविसर्जयेत् ॥ एवंकृतेततोराजंस्तस्मैदत्त्वाचदक्षिणाम् ॥ १४ ॥ यथातुष्टिंसमभ्येतिततःपापंप्रणश्यति ॥ श्रवणाद
पिराजेन्द्रयस्यपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ अदत्त्वापिमहादानंपापपिण्डंहरेन्नृप ॥ एतज्जन्मकृतंपापंनिजकायेननिर्मि
तम् ॥ १६ ॥ कपालेश्वरदेवस्यसहस्रगुणितंहरेत् ॥ पूर्ववच्चैवकर्तव्योवेदीमण्डपयोर्विधिः ॥ १७ ॥ परंहोमःप्रकर्तव्योगा
यत्र्याकेवलंन्नृप ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेनागरखण्डेपापपिण्डप्रदानंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २२५ ॥

चालयचरणौतस्यवासांसिपरिधापयेत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणको बिदाकरै हे राजन् ! ऐसा करनेपर और उसके लिये दक्षिणा देकर ॥ १४ ॥ प्रसन्नता के अनुकूल पदार्थको प्राप्तहोता है व उसीसे पातक नष्टहो-
ताहैं हे नृपेन्द्र ! जिसके सुनने से भी पातकों से छूटजाताहै ॥ १५ ॥ हे राजन् ! महादान को न देकर भी अपने शरीर से निर्माण कियेहुये इसजन्ममें किये पातक
को पापपिण्ड हरलेता है ॥ १६ ॥ व कपालेश्वर के आगे दियाहुआ पापपिण्ड हजारगुने पातकको हरताहै और वेदी व मण्डप की विधि पहलेही की नाईं करना
चाहिये ॥ १७ ॥ परन्तु हे राजन् ! होम केवल गायत्री से करना चाहिये ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेपापपिण्डप्रदानंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

मुच्यतेपापात्तथादशपलात्मकम् ॥४॥ मासस्यापरपक्षेतुस्नापयित्वाविधानतः ॥ संरूपाढ्यंप्रगेकृत्वास्नात्वाधौताम्बरः शुचिः ॥ ५ ॥ तदास्वरूपंपृथ्व्याश्चपूजयेत्पापकृन्नरः ॥ यथासमुच्यतेपापात्तत्कृताद्विनसंशयः ॥ ६ ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानिपृथिव्यादीनियानिच॥तैर्नामभिश्चतत्पिण्डम्पूजनीयंनराधिप ॥ ७ ॥ ॐपृथिव्यैनमः ॐअद्भ्योनमः ॐतेजसेनमः ॐवायवेनमः ॐआकाशायनमः ॐचक्षुषेनमः ॐजिह्वायैनमः ॐघ्राणायनमः ॐश्रोत्रेनमः ॐशब्दायनमः ॐस्पर्शायनमः ॐरसायनमः ॐरूपायनमः ॐगन्धायनमः ॐवाचेनमः ॐपाणिभ्यांनमः ॐपादाभ्यांनमः ॐपायवेनमः ॐउपस्थायनमः ॐमनसेनमः ॐबुद्ध्यैनमः ॐअहङ्कारायनमः ॐक्षेत्रात्मनेनमः ॥ धूपंधूर्वसीतिमन्त्रेण अग्निर्ज्योतीतिदीपकम् ॥ युवावासेतिमन्त्रेणवासांसिपरिधापयेत् ॥ ८ ॥ ततोब्राह्मणमानीयवेदवेदाङ्गपारगम् ॥ प्र

भर्तृयज्ञ बोले कि मनुष्य पचीसपलका सुवर्णवाला अपनापिण्ड देवै और दशपलका पिण्ड देवै व जिस प्रकार पातकसे छूटजाताहै वैसाही मैं कहूंगा ॥४॥ कि महीने के दूसरेपक्षमें प्रातःकाल नहाकर व धोयेहुये वसन पहिन पवित्रहो प्रातःकाल भलीभांति रूपसे संयुत सुवर्णपिण्ड को बनाकर व विधि से नहवाकर ॥ ५ ॥ पापकारी पुरुष उस समय पृथ्वी का स्वरूप पूजनकरै कि जिस प्रकार उस कियेहुये पाप से वह निस्सन्देह छूटजाताहै ॥ ६ ॥ और हे मनुजाधिप ! जो पृथ्वी आदिक चौबीस तत्त्व हैं उन नामों से उस पिण्डको पूजना चाहिये ॥ ७ ॥ पृथ्वी के लिये नमस्कार है जलोंके लिये नमस्कार है अग्निके लिये नमस्कार है वायुके लिये नमस्कार है आकाश के लिये नमस्कार है नेत्रके लिये नमस्कार है, जिह्वाके लिये प्रणाम है, नासिका के लिये नमस्कार है, कर्णके लिये प्रणाम है, शब्दके लिये नमस्कार है, स्पर्शके लिये प्रणाम है, रसके लिये नमस्कार है, रूपके लिये प्रणाम है, गन्ध के लिये प्रणामहै, वाणी के लिये प्रणामहै, हाथोंके लिये प्रणाम है, चरणों के लिये प्रणामहै,वायुके लिये प्रणामहै, उपस्थके लिये नमस्कार है, मनके लिये नमस्कार है, बुद्धिके लिये नमस्कार है, अहंकार के लिये नमस्कार है, क्षेत्रात्मा के लिये नमस्कार है, व (धूर्वसि) इस मन्त्र से धूप और (अग्निर्ज्योतिः) इस मन्त्र से दीप देवै व (युवावासा) ऐसे मन्त्रसे वसन पहनावै ॥ ८ ॥ तदनन्तर

दो० यथा कमठ वक आदिकन थाप्यो लिंगन सात । दोसौ छब्बीसवें में सोइ चरित अवदात ॥ सूतजीबोले कि इसके अनन्तर वहां और भी भलीभांति पुण्यदायक सात लिंगहैं कि जिनके अर्चने, देखने व विशेषकर पूजने से ॥ १ ॥ मनुष्य समस्तरोगोंसे रहितहो दीर्घायुष्मान् होताहै वहां मार्कण्डेश्वर ऐसे कहेहुये महेश्वरदेवजी हैं ॥ २ ॥ व समस्तपातकों के हारक अन्य इन्द्रद्युम्नेश्वर हरहैं वैसेही समस्तव्याधियों के विनाशक पालेश्वर देवहैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर घण्टेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो कि घण्टनामक नर से थापेगये हैं व वानरेश्वरसंयुत कलशेश्वरनामक हैं ॥ ४ ॥ और उस क्षेत्रमें ईशानशिव ऐसे कहेहुये महेश्वरजी हैं जोकि मनुष्योंसे भक्तिके

सूतउवाच ॥ अथान्यदपितत्रास्तिसुपुण्यंलिङ्गसप्तकम् ॥ येनार्चितेनदृष्टेनपूजितेनविशेषतः ॥ १ ॥ दीर्घायुर्जायतेमर्त्यःसर्वरोगविवर्जितः ॥ मार्कण्डेश्वरइत्युक्तस्तत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरोन्यस्तुसर्वपापहरोहरः ॥ पालेश्वरस्तथाचैवसर्वव्याधिविनाशनः ॥ ३ ॥ ततोघण्टेश्वरःख्यातोयोघण्टेनप्रतिष्ठितः ॥ कलशेश्वरसंज्ञस्तुवानरेश्वरसंयुतः ॥ ४ ॥ ईशानशिवइत्युक्तस्तत्रक्षेत्रेमहेश्वरः ॥ पूजितोमानवैर्भक्त्याकामान्यच्छत्यमानुषान् ॥ ५ ॥ वाञ्छितान्मनसासर्वान्कलिकालेपिसंस्थिते ॥ ऋषयऊचुः ॥ कोयंमार्कण्डसंज्ञस्तुयेनलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालःकतमोवदसूतज ॥ तथापालकनामाचयेनायंस्थापितोहरः ॥ ७ ॥ तथायोघण्टसंज्ञस्तुकस्मिञ्जातस्सचान्वये ॥ कलशाख्यश्चयस्माच्चवानरेश्वरसंयुतः ॥ ८ ॥ ईशानोप्यखिलंब्रूहिपरंनःकौतुकंस्थितम् ॥ यतोत्रजायतेश्रेयःपुनःपुंसांप्रकीर्तय ॥ ९ ॥ यैरेतेस्थापितादेवाःक्षेत्रेस्मिन्मानवोत्तमैः ॥ तथातेषांसमाचारंप्रभावञ्चैवसूतज ॥ १० ॥ दा

द्वारा पूजेहुये अमानुष याने देवोंवाले मनोरथों को देतेहैं ॥ ५ ॥ और कलिकाल के भी भलीभांति स्थितहोने पर मनसे चाहेहुये समस्तकामनाओंको देते हैं ऋषिलोग बोले कि मार्कण्डनामक कौन हैं कि जिसने लिंग थापन कियाहै ॥ ६ ॥ हे सूतनन्दन ! इन्द्रद्युम्न भूपाल कौन है यह कहिये और पालकनाम कौन है जिसने इन शिवजी को थापाहै ॥ ७ ॥ वैसेही जो घण्टनामक है वह किसवंश में पैदाहुआ था और वानरेश्वरसंयुत कलशनामक जिससे थापेगये हों उसको कहो ॥ ८ ॥ और ईशानभी कौनहै यह सब कहिये क्योंकि हमलोगों के परमआश्चर्य टिका है और फिर जिससे यहां पुरुषों का कल्याण होताहै उसको कहिये ॥ ९ ॥ व हे सूत-

नन्दन ! इस क्षेत्रमें जिन मनुजोत्तमों ने इनदेवोंको थापाहै उन के आचरण व प्रभाव को कहिये ॥ १० ॥ व समय के अनुकूल दानभी व मन्त्रोंको विस्तार से कहिये सूतजी बोले कि मैं इस पुरानी कथाको तुमलोगोंसे कहूंगा ॥ ११ ॥ जो कि आपही भर्तृयज्ञ ने आनर्तदेश के स्वामी से कहा है और जिस कथा को सुनकर भी मृत्युलोक में मनुष्य बड़ी आयुर्बलवाला होता है ॥ १२ ॥ और उसके प्रभाव से किसी प्रकार अपमृत्यु को नहीं प्राप्त होताहै जो मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध पहले कहेगये हैं ॥ १३ ॥ पापों को विनाशनेवाली उनकी उत्पत्ति तुमलोगों से भलीभांति कहीगई है इस समय हे मुनिनायको ! इन्द्रद्युम्न को कहूंगा ॥ १४ ॥

नंवापियथाकालंमन्त्रांश्चविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामिकथामेतांपुरातनीम् ॥ ११ ॥ कथितांभर्तृयज्ञे नआनर्ताधिपतेःस्वयम् ॥श्रुत्वापियांकथांमर्त्येदीर्घायुर्जायतेनरः॥१२॥नापमृत्युमवाप्नोतिकथंचित्तत्प्रभावतः ॥ योमार्कण्डेयइतिख्यातःप्रथमंपरिकीर्तितः ॥ १३ ॥ सम्भूतिस्तस्यसंप्रोक्तायुष्माकंपापनाशिनी ॥ इन्द्रद्युम्नंप्रवक्ष्यामिसाम्प्रतंमुनिसत्तमाः ॥१४॥ यद्दत्तेयत्प्रभावश्चसर्वंभूपालसत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालआसीत्पूर्वंद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्चसाधुलोकप्रपालकः ॥ यज्वादानपतिर्दक्षःसर्वभूतहितेरतः॥१६॥ नदुर्भिक्षंनचव्याधिर्नचचौरकृतम्भयम् ॥ तस्मिञ्छासतिधर्म्मज्ञे ह्यासील्लोकस्यकस्यचित् ॥ १७ ॥ यथैववर्षतोधारा यथावादिवितारकाः ॥ गङ्गायांसिकतायद्वत्संख्ययापरिवर्ज्जिताः ॥ १८ ॥ तद्वत्तेनकृतायज्ञास्सर्वेसम्पूर्णदक्षिणाः ॥ अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च उक्थःषोडशिकस्तथा ॥ १९ ॥ सौत्रामण्योथपशवश्चातुर्मास्यंद्विजोत्तमाः ॥ वाजपेयाश्वमेधाश्च राजसूयाविशेष

वह नृपश्रेष्ठ जो देता था व जिस प्रभाववाला था वह सब कहूंगा हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय इन्द्रद्युम्न भूपाल हुआ है ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मणों को माननेवाला व शरणागत की रक्षाकरनेवाला तथा सज्जनों का पालक व यज्ञकरनेहारा, दानपति प्रवीण व समस्तप्राणियों के हितमें तत्पर था ॥ १६ ॥ जब वह धर्मज्ञ पालन करता था तब न दुर्भिक्ष न रोग ओर न किसी मनुष्यको चोरसे कियाहुआ डरथा ॥ १७ ॥ जैसे बरसते हुये मेघकी धारा व जैसे आकाश में नक्षत्र और जैसे गंगामें बालूके किनका संख्यासे रहित याने असंख्य हैं ॥१८॥ वैसेही उसने सम्पूर्ण दक्षिणाओंवाले समस्तयज्ञोंको किया अग्निष्टोम, अतिरात्र, उक्थ व षोडशिक ॥ १९ ॥

और हे द्विजोत्तमो ! सौत्रामणि व पशुयज्ञों व चातुर्मास्ययज्ञ व विशेषकर वाजपेय, अश्वमेध व राजसूय यज्ञोंको किया ॥ २० ॥ वैसेही श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके पुण्डरीक यज्ञोंको किया उसने तीर्थों व बिलों याने गुहादिक तीर्थस्थानों में दान दिया ॥ २१ ॥ व ब्राह्मणों को दक्षिणासमेत मिष्टान्न दिया भूतल में वह नगर व शहर तीर्थ न था कि जहां उसका देवालय न विद्यमानहो उसने हजार दशहजार व अर्बुद कन्याओं को ब्राह्मणों के लिये दिया और धनके चाहनेवाले ब्राह्मणों को धनदिया और दशमी के दिन उस की राज्यमें हाथीकी पीठपै सवार ॥ २२ । २३ । २४ ॥ व नगारे बजाता व यह कहताहुआ कोई दूत समस्तनगर में घूमता था

तः ॥ २० ॥ पुण्डरीकास्तथैवान्ये श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तेनदानानिदत्तानि तीर्थेषुविवरेषुवा ॥ २१ ॥ मिष्टान्नानिद्विजेन्द्राणां दक्षिणासहितानिच ॥ नतदस्तिधरापृष्ठे नगरंपत्तनंतथा ॥ २२ ॥ तीर्थंवायत्रनोतस्य विद्यतेत्रिदशालयम् ॥ तेनकन्यासहस्राणि अयुतान्यर्बुदानिच ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदत्तानि ब्राह्मणानांधनार्थिनाम् ॥ दशमीदिवसेतस्य राज्येचगजपृष्ठगः ॥ २४ ॥ दुन्दुभिस्ताड्यमानस्तु बभ्रामसकलम्पुरम् ॥ प्रत्यूषेवैष्णवोभावी पापहाहरिवासरः ॥ २५ ॥ तेनैवस्वशरीरेण ब्रह्मलोकंस्वयङ्गतः ॥ ततःकल्पसहस्रान्ते सप्रोक्तोब्रह्मणास्वयम् ॥ २६ ॥ इन्द्रद्युम्नधराङ्गच्छनस्थातव्यंत्वयाधुना ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ कस्माच्च्यावयसेब्रह्मन्निजलोकाद्द्रुतंहिमाम् ॥ २७ ॥ अपापमपिदेवेश तथामेवदकारणम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तवकीर्तिसमुच्छेदः संजातोद्यधरातले ॥ २८ ॥ यावत्कीर्तिर्धरापृष्ठे तावत्स्वर्गेवसेन्नरः ॥ एतस्मात्कारणाल्लोके स्वनामाङ्कानिचक्रिरे ॥ २९ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानिच ॥ तस्माद्गच्छधराष्ट

कि प्रातःकाल पापहारी वैष्णव हरिवासर (एकादशी) होगी ॥ २५ ॥ उसीकारण अपने शरीरसमेत आपही ब्रह्मलोक को चलागया तदनन्तर हजार कल्पके अन्त में ब्रह्माने आपही उससे कहा ॥ २६ ॥ कि हे इन्द्रद्युम्न ! भूतलको जावो तुम को इस समय यहां न टिकनाचाहिये इन्द्रद्युम्न बोले कि हे ब्रह्मन् ! अपने लोकसे मुझ बिनपापीको भी शीघ्रही क्यों गिरातेहो हे देवेश ! मुझसे वैसाही कारण कहिये ब्रह्मा बोले कि भूतल में आज तुम्हारे यशका विनाश होगया ॥ २७ । २८ ॥ जबतक भूतलमें यश रहताहै तबतक मनुष्य स्वर्गमें बसताहै इसी कारण से लोकमें बावली, कूप, तडाग व देवमन्दिर अपने नामोंसे चिह्नित कियेगये हैं उसीलि-

ये तुम भूतलको जावो व अपने यशको नवीनकरो ॥ २९।३० ॥ यदि मेरे इसलोक में बहुत दिनतक निवास चाहतेहो इसके अनन्तर वह नृपेन्द्र जबतक अपना को देखै तबतक उसीक्षण कांपिल्यनगरमें प्राप्तहोगया इसके अनन्तर उसने मनुष्यों से पूंछा कि यह कौन नगर कहलाता है ॥ ३१ । ३२ ॥ व यहां कौन देश और यहां कौन राजा व कौन पुर और कौन नगरहै उन्होंने उससे कहा कि कांपिल्य ऐसा प्रसिद्ध पुरहै ॥ ३३ ॥ और यह आनर्तनामक देशहै व यहा पृथ्वीतप राजा है आप कौनहैं व यहां क्यों आयेहो मुझसे किसी कार्यको कहिये ॥ ३४ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि पुरातनसमय वेजहकदेशमें पहले रोचकपुरमें इन्द्रद्युम्न भूपाल हुआहै वह देश

ष्ठे स्वांकीर्तिन्नूतनीकुरु ॥ ३० ॥ यदिवाञ्छसिलोकेस्मिन्मामकेवसतिञ्चिरम् ॥ अथात्मानंसराजेन्द्रोयावत्पश्यति तत्क्षणात ॥३१॥ तावत्प्राप्तन्धराष्ट्रष्ठे काम्पिल्यनगरम्प्रति ॥ अथपप्रच्छलोकान्सकिमेतन्नगरंस्मृतम् ॥ ३२ ॥ कोत्र देशःकोत्रराजा किम्पुरन्नगरंचकिम् ॥ तेतमूचुःपुरंचैवकाम्पिल्यमितिविश्रुतम् ॥ ३३ ॥ आनर्तनामादेशोयं राजात्रपृ थिवीतपः ॥ कोभवान्किमिहायातः किञ्चित्कार्य्यंवदस्वमे ॥ ३४ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालः पुरासीद्रोच केपुरे ॥ देशेवेजहकेपूर्वं सदेशःक्वचतत्पुरम् ॥ ३५ ॥ जनाऊचुः ॥ नवयंतत्पुरंविद्मोनदेशंनचभूपतिम् ॥ इन्द्रद्युम्ना भिधानञ्च यत्त्वंपृच्छसिभद्रक ॥ ३६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चिरायुरस्तिकोप्यत्र यस्तंवेत्तिमहीपतिम् ॥ देशंवातत्पुरं वापि तन्मेवदथमाचिरम् ॥ ३७ ॥ जनाऊचुः ॥ सप्तकल्पचरोनाम्ना मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ श्रूयतेनैमिषारण्ये त ङ्गत्वापृच्छवेत्स्यति ॥ ३८ ॥ अथासौसत्वरङ्गत्वा व्योममार्गेणतम्मुनिम् ॥ पप्रच्छप्रणिपत्योच्चैर्नैमिषारण्यमाश्रि

और वह पुर कहां है ॥ ३५ ॥ मनुष्य बोले कि हे कल्याणरूप ! जो तुम पूंछते हो हमलोग उसपुर व देश और इन्द्रद्युम्ननामक भूपाल को नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि यहां कोई भी दीर्घआयुवाला है जोकि देश और उस नगरभी या उस भूपति को जानता है मुझसे उसको शीघ्रही कहिये ॥ ३७ ॥ मनुष्य बोले कि सातकल्पवाले मार्कण्डेयनामक महामुनि नैमिषारण्यमें सुन पड़ते हैं वे जानैंगे उन के समीप जाकर पूंछिये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर इसनें आकाशमार्गसे शीघ्रही

जाकर व उक्तप्रकार से प्रणामकर नैमिषारण्य में टिकेहुये उन मुनिसे पूंछा ॥३९॥ कि हे सन्मुने ! तुमने यहां इन्द्रद्युम्न ऐसे भूपको देखा या सुना है हमने तुम को
दीर्घायुष्मान् माना है उसीसे पूंछते हैं ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि यहां मैंने इन्द्रद्युम्ननामक भूपाल को सात कल्पोंके बीचमें न देखा है न सुना है इसलिये
उस विषयमें तुमसे क्या कहूं ॥ ४१ ॥ उसके उस वचनको सुनकर मरणमें निश्चय कियेहुए वह भूपति परम वैराग्यको प्राप्त होकर निराश हुआ ॥ ४२ ॥ उसीकारण
लकड़ियों को लाकर व अग्नि जलाकर पैठनेकी इच्छावाले इन्द्रद्युम्न भूपतिसे मार्कण्डेय ने कहा ॥ ४३ ॥ कि तुमको यहां यह न करनाचाहिये मैं तुम्हारी मित्रता

तम् ॥३९॥ इन्द्रद्युम्नेतिभूपोत्र त्वयादृष्टःश्रुतोथवा ॥ चिरायुस्त्वंमतोस्माभिः पृच्छामस्तेनसन्मुने ॥ ४० ॥ मार्कण्डे
यउवाच ॥ सप्तकल्पान्तरेभूपोनदृष्टोनश्रुतोमया ॥ इन्द्रद्युम्नाभिधानोत्र तत्रकिन्नुवदामिते ॥ ४१ ॥ तस्यतद्वचनं
श्रुत्वा निराशस्समहीपतिः ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा मरणेकृतनिश्चयः ॥ ४२ ॥ तेनचानीयदारूणि प्रज्वाल्यचहुताशन
म् ॥ प्रवेष्टुकामस्संप्रोक्तइन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ ४३ ॥ त्वयाचात्रनकर्तव्यमहन्तेमित्रताङ्गतः ॥ नाशयिष्यामितेमृ
त्युं यद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ॥ ४४ ॥ नीरोगोसिसुभव्योसिकस्मादग्निंप्रवेक्ष्यसि ॥ वदमेकारणंमृत्योः प्रतीकारंकरो
मिते ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ चिरायुर्मेभवान्प्रोक्तः काम्पिल्यपुरवासिभिः ॥ तेनाहंतवपार्श्वेत्र समायातोमहा
मुने ॥ ४६ ॥ इन्द्रद्युम्नोद्भवांवार्तां त्वंवदिष्यसिसन्मुनिः ॥ तत्कीर्तिर्नपरिज्ञाता ततोमृत्युंव्रजाम्यहम् ॥ ४७ ॥
सूतउवाच ॥ तस्यतं निश्चयंज्ञात्वा दयावान्ससमुनीश्वरः ॥ वृथाश्रमंचतंज्ञात्वा दाक्षिण्यादिदमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

को प्राप्तहूं यद्यपि कठिनभी होवै है तथापि तुम्हारी मृत्युको नाश करूंगा ॥ ४४ ॥ तुम नीरोगहो व भलीभांति कल्याणरूपहो किसलिये अग्नि में पैठतेहो मुझसे का-
रण कहो मैं तुम्हारी मृत्युका उपाय करूंगा ॥ ४५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि कांपिल्यनगरके निवासियों ने मुझसे आपको दीर्घायुष्मान् कहा था हे महामुने ! उसीसे मैं
यहां तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं ॥ ४६ ॥ कि उत्तम मुनि तुम इन्द्रद्युम्न से उपजीहुई वार्ताको कहोगे उसका यश न जानागया उसी कारण मैं मृत्युको प्राप्त
होताहूं ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले उसके उस निश्चयको जानकर दयावान् उन मुनिनायकने उसको व्यर्थपरिश्रमवाले जानकर उदारतासे यह कहा ॥ ४८ ॥ कि यदि

ऐसाहै तो तुम अग्निमें मत पैठो मैं उस राजाको जानूंगा इसलिये आइये हिमाचल पर्वतपै उसके समीप चलैं ॥ ४९ ॥ क्योंकि साधुओं का दर्शन कहींपर कभी वृथा नहीं होताहै ऐसा कहकर तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन मुनि व राजाने आकाशमार्ग से हिमालय पर्वत पै वक के निकट प्रयाण किया और वकनेभी भलीभांति आयेहुये उन मार्कण्डेयजीको देखकर ॥ ५० । ५१ ॥ प्रसन्नहो सामने प्रयाणकिया व स्वागत याने भलीभांति आनाहुआ इत्यादि प्रश्नोंसे पूजन किया कि मैं धन्यहूं और मैं कृतकृत्य हूं क्योंकि तुम मेरे यहां भलीभांति आयेहो ॥ ५२ ॥ अहो ब्रह्मजाननेवालों में उत्तम ! मैं तुम्हारी क्या पहुनाई करूं मार्कण्डेयजी बोले कि

यद्येवंमाविशाग्निंत्वं अहंज्ञास्यामितंनृपम् ॥ तस्मादागच्छगच्छावस्तस्यपार्श्वेहिमाचले ॥ ४९ ॥ साधूनांदर्शनं जातु नवृथाजायतेकचित् ॥ एवमुक्त्वाततस्तौतु प्रस्थितौमुनिपार्थिवौ ॥ ५० ॥ व्योममार्गेणसंहृष्टौ वकंप्रतिहिमाचले ॥ वकोपितंसमालोक्य मार्कण्डेयंसमागतम् ॥ ५१ ॥ सम्मुखःप्रययौहृष्टः स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं यतोमेत्वंसमागतः ॥ ५२ ॥ भोभोब्रह्मविदांश्रेष्ठआतिथ्यन्तेकरोमिकिम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ममापिच चिरायुस्त्वं यतोमित्रव्यवस्थितः ॥ ५३ ॥ इन्द्रद्युम्नोमहीपालस्त्वयादृष्टःश्रुतोथवा ॥ एतस्यममामित्रस्य तेनदृष्टेन कारणम् ॥ ५४ ॥ अन्यथाजायतेमृत्युस्तेनाहंत्वांसमागतः ॥ वकउवाच ॥ सप्तद्विगुणितात्कल्पात्स्मराम्यहमसंशयम् ॥ ५५ ॥ नस्मरामिकथामेतामिन्द्रद्युम्नसमुद्भवाम् ॥ आस्तांहिदर्शनंतावत्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तपसःकिम्प्रभावोयं दानस्यनियमस्यच ॥ यदायुरीदृशंजातं वकत्वेपिवदस्वनः ॥ ५७ ॥ वकउवाच ॥

हे मित्र ! जिसलिये कि तुम मुझसेभी दीर्घायुर्बलवाले विशेषकर टिकेहो ॥ ५३ ॥ इससेतुमने इन्द्रद्युम्न भूपालको देखा या सुनाहै क्योंकि देखेहुये उससे इस मेरे मित्रका कारणहै ॥ ५४ ॥ अन्यथा मृत्यु होगी उसीसे मैं तुम्हारे समीप भलीभांति आयाहूं वक बोला कि सातसे दूने याने चौदह कल्पोंसे मैं निरसन्देह यादकरताहूं ॥ ५५ ॥ परन्तु इन्द्रद्युम्नसे उपजीहुई इस कथाको नहीं स्मरण करताहूं तबतक देखना होवै याने यादही नहीं है देखना कैसा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ५६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तपस्या या दान या नियमका क्या यह फलहै कि जिससे बगुलाकी योनिमेंभी ऐसी आयु हुई यह हमसे कहिये ॥ ५७ ॥ वक बोला कि त्रिशूलवाले देवदेव शिवजीके

घृतकम्बलके माहात्म्यसे मेरी ऐसी आयु हुई और मुनिके शापसे बगुला होनाहुआ ॥ ५८ ॥ पुरातनसमय में मनोहर चमत्कारनगरमें बुद्धिमान् पाराशर्य ब्राह्मण के घरमें बालक हुआ और विश्वरूपनामक मैं नामसे बहुश्रुत ऐसा प्रसिद्ध व अत्यन्तही चंचलतासे युक्त व पिताको प्यारा था ॥ ५९ । ६० ॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर किसीसमय मकरकी संक्रान्तिको भलीभांति प्राप्त होनेपर मैंने अत्यन्तही चञ्चलतासे यागेश्वर लिंगको घीके घड़ेमें फेंक दिया कि जिसको पिताने पूजाथा और जब आधीरात बीतगई तब पिताने मुझसे पूंछा ॥ ६१ । ६२ ॥ कि हे पुत्र ! तुमने निश्चयकर कहीं यागेश्वर को फेंक दिया है इसलिये कहिये मैं उसीसे तुमको

घृतकम्बलमाहात्म्याद्देवदेवस्यशूलिनः ॥ ममायुरीदृशंजातं बकत्वंमुनिशापतः ॥ ५८ ॥ अहमासंपुराबालोब्राह्मणस्यनिवेशने ॥ चमत्कारपुरेरम्ये पाराशर्य्यस्यधीमतः ॥ ५९ ॥ नाम्नाचविश्वरूपाख्योनाम्नाबहुरितिश्रुतः ॥ अतीवचपलत्वेन संयुक्तःपितृवत्सलः ॥ ६० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य संक्रान्तौमकरस्यभो ॥ सम्प्राप्तेतीवचापल्याल्लिङ्गंयागेश्वरम्मया ॥६१॥ घृतकुम्भेपरिक्षिप्तं पूजितंजनकेनयत् ॥ अर्द्धरात्र्यांव्यतीतायां पृष्टोहंजनकेनच ॥६२॥ त्वयापुत्रपरिक्षिप्तं नूनंयागेश्वरंक्वचित् ॥ तस्माद्वदप्रयच्छामि तेनतेभक्ष्यमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ ततोमयाज्यकुम्भाच्च तस्मादादायसत्वरम् ॥ भक्ष्यलौल्यात्पितुर्हस्ते विन्यस्तंघृतसम्प्लुतम् ॥ ६४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पञ्चत्वंसमुपागतः ॥ जातिस्मरस्ततोजातस्तत्प्रभावान्नृपालये ॥ ६५ ॥ चमत्कारपुरेदेवोहरःसंस्थापितोमया ॥ तत्प्रभावेणविप्रेन्द्र प्राप्तःपैतामहंपदम् ॥ ६६ ॥ ततोयानिधरापृष्ठे सुलिङ्गानिस्थितानिच ॥ घृतेनच्छादयाम्येवं मकरस्थेदिवाकरे ॥६७॥ मयाच

उत्तम भोजन दूंगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मैंने भोजनके लालचसे शीघ्रही उस घीके घड़ेसे लेकर घृतसे डूबीहुई उस मूर्तिको पिताके हाथमें धरदिया ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय मैं मृत्युको प्राप्तहुआ तदनन्तर उसके प्रभावसे जातिका स्मरणवाला मैं राजाके मन्दिर में पैदा भया ॥ ६५ ॥ और मैंने चमत्कारपुर में शिवदेवजी का थापन किया उसी से हे द्विजेन्द्र ! ब्रह्मावाले स्थानको मैं प्राप्तहुआ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर भूतल में जो लिंग स्थित हैं उनको जब सूर्य मकरराशि

में टिकते थे तब मैं ऐसेही घी से घेरताथा ॥ ६७ ॥ व पुत्र को राज्य पै भलीभांति बैठाकर और अस्त्रशस्त्रों से संयुत सेवकों को सब ओर नियोगकरके मैंने चमत्कारपुर में थापेहुये उत्तम लिंगको दिनरात आराधन किया उस के उपरान्त बहुतसमय से मेरे ऊपर प्रसन्नहोतेहुये भगवान् शिवजी ॥ ६८ । ६९ ॥ मेरे समीप भलीभांति आकर यह वचन बोले कि हे राजेन्द्र, नृपोत्तम ! संख्यासे रहित घृत कम्बल के दानसे मैं तुमसे अतिप्रसन्न हूं इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै जो मनमें चाहाहुआ वर होवै उसको मांगिये ॥ ७० । ७१ ॥ यद्यपि अतिदुर्लभ होगा तथापि न देनेयोग्यको भी दूंगा तदनन्तर मैंने शिवजी से कहा कि हे प्रभो !

स्थापितंलिङ्गं चमत्कारपुरेशुभम् ॥ आराधितंदिवानक्तं राज्येसंस्थाप्यपुत्रकम् ॥ ६८ ॥ नियोज्यसर्वतोभृत्यानस्त्र शस्त्रसमन्वितान् ॥ ततःकालेनमहता तुष्टोमेभगवाञ्छिवः ॥ ६९ ॥ मत्समीपेसमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ परितु ष्टोऽस्मिराजेन्द्र तवपार्थिवसत्तम ॥ ७० ॥ घृतकम्बलदानेनसंख्ययारहितेनच ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयन्मनसीप्सि तम् ॥ ७१ ॥ अदेयमपिदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ततोमयाहरःप्रोक्तोयदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ७२ ॥ कुरुष्वमा ङ्गणंदेवनान्यत्किञ्चिद्वृणोम्यहम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यैवत्वंमहाभाग कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ७३ ॥ मयासार्द्ध मनेनैव शरीरेणगणोभव ॥ अन्योपिमर्त्यलोकेत्र यःकरिष्यतिमानवः ॥ ७४ ॥ मकरस्थेरवौमह्यं संक्रान्तौरजनीमुखे ॥ सनूनंमद्गणोभावी दत्त्वाद्यघृतकम्बलम् ॥ ७५ ॥ त्वंपुनर्म्मामकंलिङ्गंसंस्कुर्वन्नर्चयिष्यसि ॥ धर्म्मंशर्मेतिवि ख्यातोविकृत्यापरिवर्जितः ॥ ७६ ॥ एवमुक्त्वासभगवान्मामादायततःपरम् ॥ कैलासंपर्वतंगत्वागणकोटिशतान्य

यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो ॥ ७२ ॥ तो हे देव ! मुझको अपना गण कीजिये मैं कुछ नहीं मांगता हूं श्री भगवान् शिवजी बोले कि हे महाभाग ! आजही तुम मेरेसाथ पर्वतों में उत्तम कैलासको इसी शरीर से चलो और गण होवो और जब सूर्यनारायणजी मकरराशिमें स्थितहोवैं तब संक्रान्तिमें निशामुख (सन्ध्या) समय जो अन्यभी मनुष्य इस मृत्युलोक में मेरेलिये घृत कम्बल करैगा वह घृत कम्बल देकर आजही निश्चयकर मेरा गण होगा ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ व फिर तुम भलीभांति घृत कम्बल करतेहुये मेरे लिंगको पूजोगे और विकारसे रहित धर्म शर्म ऐसे प्रसिद्धहोगे ॥ ७६ ॥ ऐसा कहकर उन भगवान् शिवजीने मुझको लेकर तदनन्तर कैलास

पर्वततपै जाकर सौ करोड़गणों को दिया ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर किसी समय स्वच्छन्दता से घूमताहुआ मैं हिमवान् ऐसे कहेहुये पर्वतोत्तमपै गया ॥ ७८ ॥
जहांपर कि सदैव तपस्या में टिकेहुये गालवनामक मुनि थे व समस्तलक्षणों से चिह्नित और चौड़ेनयनोंवाली उसकी स्त्री थी ॥ ७९ ॥ जोकि सात ठिकाने अरुण
वर्णवाली व तीन इन्द्रियोंमें गंभीरतासंयुत और छिपेहुये घुटुरुओंवाली व दुबले पेटवाली थी हे मुनिनायक ! उसको देखकर मैं कामदेव से संयुत होगया ॥ ८० ॥
और मैंने चित्तमें चिन्तन किया कि मैं किस प्रकार इसको हरलेऊं या सेवा में तत्पर होकर वर्तमान होऊं कि जिससे स्त्रीको पाऊं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर मैंने द्विजपुत्र

दात् ॥ ७७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यभ्रममाणोयदृच्छया ॥ गतोहंपर्वतश्रेष्ठंहिमवन्तमितिस्मृतम् ॥ ७८ ॥ यत्रास्तेगा
लवोनामसदैवतपसिस्थितः ॥ तस्यभार्य्याविशालाक्षीसर्वलक्षणलक्षिता ॥ ७९ ॥ सप्तरक्तात्रिगम्भीरागूढगुल्फाकृशो
दरी ॥ तांदृष्ट्वामन्मथाविष्टस्संजातोहंमुनीश्वर ॥ ८० ॥ चिन्तितंचमयाचित्तेकथमेनांहराम्यहम् ॥ शुश्रूषानिरतोभू
त्वायेनप्राप्नोमिभामिनीम् ॥ ८१ ॥ ततोवटुकरूपेणसंप्राप्तोगालवोमया ॥ संसारस्यविरक्तोहंकरिष्यामिमहत्तपः ॥
८२ ॥ दीक्षांयच्छविभोमह्यंयेनशिष्योभवामिते ॥ आहरिष्याम्यहंदर्भांस्तवचानुचरस्सदा ॥ ८३ ॥ समिधश्चसदैवाहं
फलानिजलमेवच ॥ समांविनयसम्पन्नंज्ञात्वाब्राह्मणरूपिणम् ॥ ८४ ॥ ददौदीक्षान्ततोमह्यंयथोक्तपरिचर्य्यया ॥ अशु
द्धेनापिचित्तेनच्छिद्रान्वेषणतत्परः ॥ ८५ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राप्तेसाश्रीधर्म्मसमन्विता ॥ उटजंदूरतस्त्यक्त्वारात्रौसु
ष्वापमनस्विनी ॥ ८६ ॥ सोहंरूपंमहत्कृत्वातामादायतपस्विनीम् ॥ शुप्रसुप्तांसुविश्रब्धांप्रस्थितोदक्षिणोन्मुखः ॥ ८७ ॥

के रूपसे भलीभांति गालवजी को पाया व कहा कि संसार से विरागी मैं बड़ीभारी तपस्या करूंगा ॥ ८२ ॥ हे विभो ! मेरेलिये दीक्षा (मन्त्र) को दीजिये जिससे
तुम्हारा शिष्य होऊं व सदैव तुम्हारा अनुचर होकर मै कुशोंको लाऊंगा ॥ ८३ ॥ व सदैव मैं समिधों, फलों व जलही को लाऊंगा उन गालवजी ने नम्रता से सं-
युत व ब्राह्मण रूपवाले मुझको जानकर ॥ ८४ ॥ मेरेलिये दीक्षादिया तदनन्तर जैसी कही है वैसीही सेवासे मैं अशुद्धभी चित्तके द्वारा छिद्र यानेे उस स्त्रीके लेजाने
का समय ढूंढ़ने में परायण हुआ ॥ ८५ ॥ अन्यादिन प्रातहोने पर धर्म से संयुत व उच्चमनवाली वह स्त्री कुटीको दूरसे त्यागकर रातमें सोगई ॥ ८६ ॥ सो मैंने बड़ा

भारी रूपकरके अतिविश्वास में प्राप्त व भलीभांति सोई हुई उस तपस्विनी को लेकर दक्षिणमुखहो प्रयाण किया ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर मेरे छूनेसे यह स्त्री अपनी नींदसे भलीभांति छूटगई और मुझ शिष्यको चोररूपवाला जानकर खेदसे रोतीभई ॥ ८८ ॥ और वह अपने पति मुनिश्रेष्ठ गालवजी से बोली कि हे प्रभो ! यह दुष्ट आचरणवाला शिष्य मुझको यहांसे हरेलिये जाताहै ॥ ८९ ॥ उसीकारण हे महाभाग ! जबतक दूर न जावै तबतक रक्षाकीजिये उस वचनको सुनकर गालवजीने खड़ेहो२ यह बार २ कहा ॥ ९० ॥ हे पाप आचरणवाले, अतिदुष्ट चित्तवाले ! मैंने तुम्हारी चालको रोंकदिया तदनन्तर उन गालवजीके वचन से मेरी

अथासौसम्परित्यक्तामत्स्पर्शाचात्मनिद्रया॥ चौररूपंपरिज्ञायमांशिष्यंप्ररुरोदह॥ ८८ ॥ साब्रवीच्चस्वभर्तारङ्गालवं मुनिसत्तमम् ॥ एषशिष्योदुराचारोहरतेमामितःप्रभो॥ ८९ ॥ तस्माद्रक्षमहाभागयावद्दूरंनगच्छति ॥ तच्छ्रुत्वा गालवःप्राहतिष्ठतिष्ठेतिचासकृत् ॥ ९० ॥ पापाचारसुदुष्टात्मन्गतिस्तेस्तम्भितामया॥ तस्यवाक्यात्ततोमह्यङ्गतिस्त म्भोऽयजायत ॥ ९१ ॥ यद्वल्लिखितएवाहंप्रतिष्ठामिसुनिश्चलः॥ ततस्तेनचशप्तोहंगालवेनमहात्मना ॥ ९२ ॥ वञ्चि तोहन्त्वयायस्माद्बकोभवसुदुर्म्मते॥ ततःपश्यामिचात्मानंसहसाबकरूपिणम् ॥ ९३ ॥ बकत्वेपिनमेनष्टायास्मृतिःपू र्वसम्भवा॥ ततस्सापिचतत्पत्नीसचैलंस्नानमाश्रिता॥९४॥ मत्स्पर्शरुषितामांञ्चशापायसमुपस्थिता॥ यस्मात्पापत्व यास्पृष्टाप्रसुप्ताहंरजस्वला॥ ९५ ॥ बकधर्म्मसमाश्रित्यभर्तामेवञ्चितस्त्वया॥ अन्यद्रूपंसमास्थायतस्माच्छप्तोबको

चालकी रुकावट होगई ॥ ९१ ॥ जैसे लिखाहुआ चित्रहोताहै वैसेही मैं अचल हो खड़ा होगया तदनन्तर उन गालव महात्माने मुझको शापदिया ॥ ९२॥ कि जिस कारण तुमने मुझको छला है उसीलिये हे दुर्बुद्धे ! बगुलाहोवो तदनन्तर अचानकही बगुला रूपवाले अपने शरीरको मैंने देखा ॥ ९३ ॥ व पहले से उपजा हुआ जो मेरा स्मरण था वह बगुलापन में भी न नाश हुआ तदनन्तर उसकी वह स्त्री भी वसन समेत स्नानको प्राप्तहुई ॥ ९४ ॥ व मेरे छूनेसे क्रोधितहोती हुई वह शाप के लिये मेरे समीप भलीभांति प्राप्तहुई कि हे पापिन् ! जिसलिये सोतीहुई मुझ रजस्वला को तुमने स्पर्शकिया ॥ ९५ ॥ और अन्यरूप को भलीभांति प्राप्तहोकर व

बगुला के समान धर्ममें टिककर तुमने मेरे पतिको छलाहै उसी कारण शापदिये हुये तुम बगुलाहोवो ॥ ९६ ॥ तदनन्तर उन दोनों से शाप दिया हुआ मैं दुःखसंयुत होकर महात्मा गालवजी के चरणों में लगगया (गिरपड़ा) ॥ ९७ ॥ कि तीन नयनवाले महात्मा देवदेव शिवजी का पालक ऐसा प्रसिद्धगण मैं कोटिगणों का स्वामी स्थितहूं ॥ ९८ ॥ हे प्रभो ! सो मैं यहां किसी कार्यसे आयाथा और तुम्हारी स्त्रीको भलीभांति देखकर कामदेवके वशमें प्राप्तहुआ ॥ ९९ ॥ हे मुनिनाथ ! ऐसा जानकर तुम मेरा अपराध क्षमाकरो दुःशील मनुज लक्ष्मी, विद्या या ऐश्वर्य ही को पाकर ॥ १०० ॥ स्थानपै बहुत दिनोंतक नहीं टिकता है जैसे कि मदसे गर्वित मैं

एवंशप्तस्ततोद्वाभ्यांताभ्यांवैदुःखसंयुतः ॥ चरणाभ्यांप्रलग्नस्तुगालवस्यमहात्मनः ॥ ९७ ॥ गणोहंदेव
भव ॥ ९६ ॥
देवस्यत्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ पालकेतिचविख्यातोगणकोटिप्रभुःस्थितः ॥ ९८ ॥ सोहमत्रसमायातःप्रभोकार्य्येणके
नचित् ॥ तवभार्य्यांसमालोक्यकामदेववशङ्गतः ॥ ९९ ॥ क्षमापराधंत्वंमह्यमेवंज्ञात्वामुनीश्वर ॥ दुर्विनीतःश्रियंप्रा
प्यविद्यामैश्वर्य्यमेववा ॥ १०० ॥ नतिष्ठतिचिरंस्थानेयथाहंमदगर्वितः ॥ शिष्यरूपंसमास्थायततःप्राप्तस्तवान्तिक
म् ॥ १ ॥ अस्याहरणहेतोश्चमयासत्यंमुनीश्वर ॥ तस्मात्कुरुप्रसादंमेदीनस्यप्रणतस्यच ॥ २ ॥ अनुग्रहप्रदानेनक्षमा
यस्मात्तपस्विनाम् ॥ कोकिलानांस्वरंरूपंनारीरूपंपतिव्रता ॥ ३ ॥ विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनाम् ॥ सूत
उवाच ॥ तस्यतत्कृपणंश्रुत्वासोपिमाहेश्वरोमुनिः ॥ ४ ॥ ज्ञात्वातंबान्धवस्थानेदयांकृत्वाब्रवीद्वचः ॥ यदासंजायतेवि
प्रश्चमत्कारपुरेशुभे ॥ ५ ॥ भर्तृयज्ञइतिख्यातस्तदातस्योपदेशतः ॥ बकत्वंयास्यतेनूनंममवाक्यादसंशयम् ॥ ६ ॥

नहीं टिका उसीकारण शिष्यरूप में भलीभांति टिककर इसके हरने के कारण मैं तुम्हारे समीप प्राप्तहुआ हे मुनिनायक ! यह मैंने सत्यकहाहै इसलिये दयाके दान से दीन व प्रणाम किये हुये मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये जिसलिये कि तपस्वियों को क्षमाकरना चाहिये क्योंकि कोलिया याने कोयल का रूप स्वरहै व पतिव्रताहोना स्त्रियोंका रूपहै ॥ १ । २ । ३ ॥ व विद्या कुरूपवान् नरोंका रूपहै और क्षमा तपस्वियोंका रूपहै सूतजी बोले कि उसके उस दीन वचनको सुनकर उन शैव मुनिने भी ॥ ४ ॥ उसको भाई के स्थान में जानकर कृपा करके वचन कहा कि जब भर्तृयज्ञ ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण उत्तम चमत्कारपुर में भलीभांति पैदा होगा तब उसके

उपदेश के द्वारा निश्चयकर मेरे वचनसे निस्सन्देह बगुलापन जावैगा ॥ ५ । ६ ॥ उसीकारण बगुलापन के भी भलीभांति स्थित होनेपर आत्मा को देखताहूं इस प्रकार शिवजी की भक्तिके द्वारा घृतकम्बल के माहात्म्य से मेरे दीर्घ आयुर्बल हुआ और मुनि के शाप से बकत्व हुआ है इन्द्रद्युम्न बोले कि हे पक्षिन् ! इसी के लिये इन्द्रद्युम्न की वार्ता के निमित्त मरणमें निश्चय किये हुये मैं तुम्हारे समीप लाया गया हे पक्षिन् ! तुमने उस इन्द्रद्युम्न को नहीं जाना है ॥ ७ । ८ । ९ ॥ इस लिये मैं जलती हुई अग्निको साधूंगा याने अग्नि में जल जाऊंगा क्योंकि इसको चित्त में निश्चय कर मैंने पहले प्रतिज्ञा कियाहै ॥ १० ॥ कि इन्द्रद्युम्न के न

ततःपश्यामिचात्मानंबकत्वेचापिसंश्रिते ॥ एवंमेदीर्घमायुष्यंसंजातंशिवभक्तितः ॥ ७ ॥ घृतकम्बलमाहात्म्याद्बकत्वं मुनिशापतः ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ एतदर्थंसमानीतस्त्वत्सकाशंविहङ्गम ॥ ८ ॥ इन्द्रद्युम्नस्यवार्तार्थंमरणेकृतनिश्चयः॥ सत्वयानैवविज्ञातइन्द्रद्युम्नोविहङ्गम ॥ ९ ॥ साधयिष्याम्यहन्तस्मात्सन्दीप्तंहव्यवाहनम् ॥ प्रतिज्ञातंमयापूर्वमेत न्निश्चित्यचेतसि ॥ १० ॥ इन्द्रद्युम्नेह्यविज्ञातेसंसेव्यःपावकोमया ॥ तस्माद्देहिममादेशंमार्कण्डेयसमन्वितः ॥ ११ ॥ प्रविशामियथावह्निंभ्रष्टकीर्तिरहंबक ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वेत्सिचान्यंनरंकञ्चिद्वयसाचात्मनोधिकम् ॥ पृच्छा मियेनतङ्गत्वाकृतेस्वस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तःप्राप्तोयंचमयासह ॥ तत्कथन्त्यजतिप्राणान्सहायेमयि संस्थिते ॥ १४ ॥ अपरञ्चत्तमंवाक्यंयत्त्वांवच्मिविहङ्गम ॥अयंदुःखेनसंयुक्तःसाधयिष्यतिपावकम् ॥ १५ ॥ अहमेन मनुद्धृत्यकस्माद्गच्छामिचाश्रमम् ॥ सूतउवाच ॥ तयोस्तंनिश्चयंज्ञात्वाबकःपरमदुर्मनाः ॥ १६ ॥ सुचिरञ्चिन्तयामा

ज्ञान होनेपर मुझको अग्नि भलीभांति सेवने योग्य है इस लिये मार्कण्डेय संयुत तुम मुझको आज्ञा देवो ॥ ११ ॥ कि जिसप्रकार हे बक ! नष्ट यशवाला मैं अग्नि में पैठूं ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि अवस्था करके अपनासे अधिक किसी अन्य मनुष्य को तुम जानते हो कि जिससे अपने महात्मा के लिये जाकर उससे पूंछूं ॥ १३ ॥ क्योंकि बड़ी श्रद्धा से संयुत यह मेरे साथ प्राप्तहुआहै तो मुझ सहाय के भलीभांति स्थित होनेपर कैसे प्राणोंको त्याग करैगा ॥ १४ ॥ और हे पक्षिन् ! अन्य भी जो वचन तुमसे कहताहूं वह योग्यहै कि दुःख से संयुक्त यह अग्निसाधन करैगा ॥ १५ ॥ और मैं इसको न उद्धार कर कैसे आश्रम को जाऊं सूतजी

बोले कि उन दोनोंके उस निश्चय को जानकर बगुला अति उदासीन मनवाला हुआ ॥ १६ ॥ और उसने बहुत देरतक चिन्तन किया कि किस प्रकार इन दोनों को सुख होगा तदनन्तर उस राजा ने निश्चय करके लकड़ियों को लाकर अग्नि लगाया ॥ १७ ॥ और अग्नि में पैठतेहुये मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी के मित्र से बगुला बोला कि हे प्राज्ञ ! यदि जीने को चाहते हो तो मेरा वचन कीजिये ॥ १८ ॥ हे समस्त शास्त्रों मे चतुर, मुनिश्रेष्ठ ! आज मैंने उसको प्रकटही जाना कि जो इन्द्रद्युम्न राजाको जानैगा ॥ १९ ॥ सो तुम आंसुओं से विकल लोचनोंवाले व सर्प के समान श्वास लेते व मरने में निश्चय कियेहुये इसको भलीभांति लेकर ॥ २० ॥

सकथंस्यादेतयोःसुखम्॥ ततोराजासनिश्चित्यदारूण्याहृत्यपावकम् ॥ १७ ॥ प्रविशन्तंमुनिश्रेष्ठसुहृदमब्रवीद्बकः ॥
ममवाक्यंकुरुप्राज्ञयदिजीवितुमिच्छसि ॥१८॥ ज्ञातःसोद्यमयाव्यक्तमिन्द्रद्युम्नंनराधिपम् ॥ योज्ञास्यतिमुनिश्रेष्ठसर्व
शास्त्रविचक्षण ॥ १९ ॥ सत्वमेनंसमादायमरणेकृतनिश्चयम् ॥ निःश्वसन्तंयथानागंबाष्पव्याकुललोचनम् ॥२०॥
समागच्छमयासार्द्धंकैलासंपर्वतम्प्रति ॥ यत्रास्तिदयितोमह्यमुलूकश्चिरजीवभाक् ॥ २१ ॥ सनूनंज्ञास्यतेतंहिमावृ
थामरणंकृथाः ॥ ततस्तुहृष्टोसौतेनबकेनचमहात्मना ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयेनसंप्राप्तःकैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ सोपिदृ
ष्ट्वाबकंप्राप्तंमित्रंपरमसम्मतम् ॥ २३ ॥ समागच्छदसौहृष्टस्स्वागतेनाभ्यनन्दयत ॥ नवेद्मियच्चतेकार्य्यंवदागमन
कारणम् ॥ २४ ॥ कावेतौपुरुषौप्राप्तौत्वयासार्द्धंममान्तिकम् ॥ दिव्यरूपौमहाभागौतेजसापरिवारितौ ॥ २५ ॥ बक

मेरे साथ कैलास पर्वत पै चलो जहांपर बहुत दिनों से जीवको धारनेवाला घुघुवा मेरा मित्रहै ॥ २१ ॥ वह निश्चय कर उसको जानैगा वृथा मरण मत कीजिये तदनन्तर प्रसन्न होता हुआ यह उस बगुला व महात्मा मार्कण्डेयजी के साथ कैलासपर्वतोत्तम पै भलीभांति प्राप्त हुआ वह घुघुवा भी अत्यन्तही मानेहुये बगुला मित्र को प्राप्त हुये देखकर ॥ २२ । २३ ॥ भलीभांति आया व प्रसन्न होतेहुये इसने भलीभांति आने के पूंछने से आनन्द किया व कहा कि जो तुम्हारा कार्य है मैं उस को नहीं जानता हूं इस से आनेका कारण कहिये ॥ २४ ॥ और तुम्हारे साथ मेरे समीप प्राप्तहुये ये दिव्यरूपवाले व बड़े भाग्यवान् तथा तेज से घिरेहुये दो पुरुष

कौन हैं ॥ २५ ॥ बगुला बोला कि महादेवकी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धि को प्राप्त व तीनों भुवनों में प्रसिद्ध ये मार्कण्डेय नामक मुनि हैं ॥ २६ ॥ और दूसरा यह इनका कोई मित्रहै मैं यथार्थ से नहीं जानताहूं व इन्द्रद्युम्न के पूंछने की कामनावाला यह मार्कण्डेय मित्र के साथ मेरे समीप भलीभांति आया था हे मित्र ! मैंने उसको नहीं जाना तदनन्तर वैराग्य को प्राप्त होकर अग्नि को चाहता हुआ यह मुझ से यहीं तुम्हारे समीप भलीभांति लाया गया हे महामते, पक्षिन् ! यदि उन इन्द्रद्युम्न नृपति को तुम जानते हो ॥ २७ । २८ । २९ ॥ तो तुम कहो कि जिससे यह मृत्यु से निवृत्त होवै मैंने तुमको दीर्घजीवी जाना इसी कारण मैं

उवाच ॥ अयंमार्कण्डसंज्ञश्चप्रसिद्धोभुवनत्रये ॥ महेश्वरप्रसादेनसंसिद्धिंपरमाङ्गतः ॥ २६ ॥ द्वितीयोसौसुहृच्चास्यकश्चिन्नोवेद्मितत्त्वतः ॥ मार्कण्डेनसमायातस्सुहृदेनममान्तिकम् ॥ २७ ॥ इन्द्रद्युम्नंप्रष्टुकामोनविज्ञातोमयासखे ॥ ततोवैराग्यमापन्नोवाञ्छमानोहुताशनम् ॥ २८ ॥ तवान्तिकंसमानीतोमयात्रैवविहङ्गम ॥ यदिजानासितम्भूपमिन्द्रद्युम्नंमहामते ॥ २९ ॥ तत्त्वंकीर्तययेनासौमरणाद्विनिवर्तते ॥ चिरायुस्त्वंमयाज्ञातोह्यतःप्राप्तोस्मितेन्तिकम् ॥ ३० ॥ उलूकउवाच ॥ अष्टाविंशप्रमाणेनकल्पाजातस्यमेस्थिताः ॥ नदृष्टोनश्रुतःकश्चिदिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ ३१ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तवकस्मादुलूकत्वंशीघ्रंतन्मेप्रकीर्तय ॥ एतन्मेकौतुकञ्चापियत्तेह्यायुरनन्तकम् ॥ ३२ ॥ उलूकत्वंच संजातंरौद्रंलोकविगर्हितम् ॥ उलूकउवाच ॥ शृणुतेहंप्रवक्ष्यामिदीर्घायुर्मेयथास्थितम् ॥ ३३ ॥ महेश्वरप्रसादेनबिल्वपत्रार्चनान्मया ॥ उलूकत्वंमयाप्राप्तंभृगोःशापान्महात्मनः ॥ ३४ ॥ अहमासंपुराविप्रःसर्वविद्यासुपारगः ॥ चम

तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ उलूक बोला कि मुझको पैदाहुये अट्ठाईस संख्यक कल्प स्थितहुये हैं परन्तु कोई इन्द्रद्युम्न भूपति न देखागया और न सुनागया ॥ ३१ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तुमको घुघुवापन किस कारण हुआ उसको मुझ से शीघ्रही कहिये यह मुझको आश्चर्य भी है जो कि तुम्हारा आयुर्बल अनन्तहै ॥ ३२ ॥ और लोक में निन्दित व भयङ्कर घुघुवा होना भया उलूक बोला कि सुनिये मैं तुमसे कहताहूं कि जिस प्रकार मेरे दीर्घायु स्थित है ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्रके द्वारा पूजन से मुझको महादेव की प्रसन्नता से बड़ी आयुर्बल मिली और महात्मा भृगुजी के शाप से मैंने उलूकता पायाहै ॥ ३४ ॥ पुरातन समय समस्त विद्याओं के पारजाने

वाला व नाम से घण्टक ऐसा प्रसिद्ध मैं उत्तम चमत्कारपुर में ब्राह्मण हुआहूं ॥ ३५ ॥ जो मैं कि ब्रह्मचारी व इन्द्रियों को दमन करनेवाला और शिवजी के पूजन में तत्पर था मैंने अगाड़ी भागमें तीन पत्तोंकी उत्पत्तिवाले लाख संख्यक बिल्वपत्रोंसे सदैव त्रिकाल में शिवजी का पूजनकिया तदनन्तर हज़ार वर्षके अन्तमें भगवान् शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्नहुये ॥ ३६ । ३७ ॥ और दर्शन में प्राप्तहोकर मेघके समान गम्भीरवाणी से बोले कि हे सुव्रत, वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान को मांगिये ॥ ३८ ॥ तब देवदेवेश शिवजी से मैंने यह प्रार्थना किया कि हे जगदीश ! तुम मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहित करो वे देवोंके स्वामी महेश्वर महादेव जी

त्कारपुरेश्रेष्ठेनाम्नाख्यातस्तुघण्टकः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मचारीदमोपेतोहरपूजार्चनेरतः ॥ अखण्डितैर्बिल्वपत्रैरग्रजातत्रिप
त्रकैः ॥ ३६ ॥ त्रिकालंम्पूजितःशम्भुर्लक्षमात्रैस्सदामया॥ततोवर्षसहस्रान्तेतुष्टोमेभगवान्हरः ॥ ३७॥ प्रोवाचदर्शन
ङ्गत्वामेघगम्भीरयागिरा ॥ अहंतुष्टोस्मितेवत्सवरंवरयसुव्रत ॥ ३८ ॥ तदातुदेवदेवेशमिदंप्रार्थितवानहम् ॥ त्वंमांकुरु
जगन्नाथजरामरणवर्जितम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायमहादेवोमहेश्वरः ॥ ३९ ॥ कैलासंप्रतिदेवेशःक्षणाच्चादर्शनङ्गतः ॥ त
तोहंपरितुष्टोथवरंप्राप्यमहेश्वरात् ॥ ४० ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंचिन्तयामिप्रहर्षितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुभार्गवोमुनि
सत्तमः ॥ ४१ ॥ कुशलःसर्वशास्त्रेषुवेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्यभार्य्याभवत्साध्वीनाम्नाख्यातासुदर्शना ॥ ४२॥ प्राणेभ्यो
पिप्रियातस्यगालवस्यमुनेस्सुता ॥ तस्यकन्यासमभवद्रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ४३ ॥ सामयासहसादृष्टाक्रीडमानायथे

वैसाही होगा यह कहकर और क्षणभर में अन्तर्द्धान होकर कैलासको चलेगये तदनन्तर महादेवजी से वरदान पाकर मैं प्रसन्नहुआ ॥ ३९ । ४० ॥ व प्रसन्नहो मैं अपनाको कृतकृत्य ऐसा चिन्तन करताथा इसी अवसर में जो मुनिश्रेष्ठ भार्गवजी ॥ ४१ ॥ समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण व वेदों तथा वेदांगों के पारगामी थे उनके प्राणोंसे भी अधिक प्यारी नाम से सुदर्शना ऐसी प्रसिद्ध गालव मुनिकी कन्या उनकी नारीथी भूमिमें रूपसे असमान उनके कन्या हुई याने उस कन्याके समान पृथ्वीमें किसी का रूप न था ॥ ४२ । ४३ ॥ मैंने इच्छाके अनुकूल खेलती हुई उसको अचानक देखा जोकि मध्यमें दुबली अर्थात् पतली कटिवाली व सुन्दर बालोंवाली और

बिम्बाफल (कुन्दुरू) के तुल्य ओठोंवाली व चौड़े नेत्रोंवाली थी ॥ ४४ ॥ उसको मैं देखकर कामदेवके वशहोगया तदनन्तर मैंने पूंछा कि मनोहर हास्यवाली यह किसकी कन्या हैं ॥ ४५ ॥ जोकि विभाग कियेहुये समस्त अंगोंवाली देवांगनाके सदृश शोभितहै सखियों ने मुझसे कहा कि भार्गवमुनि की कन्याहै ॥ ४६ ॥ और यह सुन्दर हँसनेवाली आजभी कन्यापन में वर्त्तमान है तदनन्तर नम्रतासे संयुत मैंने भार्गव के समीप जाकर ॥४७॥ हाथोंको जोंड़ खड़ाहो उस कन्याको मांगा व मुझ को श्रेष्ठ जानकर उन भृगुपुत्रने भी ॥ ४८ ॥ हे महाभाग ! मुझ कुरूपके लिये भी उस कन्याको देदिया इसके अनन्तर उस कन्याने यह जानकर कि पिताने धर्म से

च्छया ॥ मध्येत्त्वामासुकेशीचबिम्बोष्ठीदीर्घलोचना ॥ ४४ ॥ तामहंवीक्षयित्वातुकामदेववशंगतः ॥ ततःपृष्टामयाक स्यकन्येयञ्चारुहासिनी ॥ ४५ ॥ विभक्तसर्वावयवादेवकन्येवराजते ॥ सखीभिःकीर्तितामह्यंभार्गवस्यमुनेस्सुता ॥४६॥ एषाचाद्यापिकन्यात्वेवर्ततेचारुहासिनी ॥ ततोहंभार्गवङ्गत्वाविनयेनसमन्वितः ॥ ४७ ॥ ययाचेकन्यकान्ताञ्चकृताञ्ज लिपुटःस्थितः ॥ प्रवर्य्यमांपरिज्ञायसोपिभार्गवनन्दनः ॥ ४८ ॥ दत्तवांस्तांमहाभागविरूपायापिकन्यकाम् ॥ अथसा कन्यकाज्ञात्वापित्रादत्तास्मिधर्म्मतः ॥ ४९ ॥ विरूपायततोगत्वामातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ सलज्जासातिदुःखार्तापश्या म्बजनकेनच ॥ ५० ॥ विरूपायप्रदत्तास्मिनाहंजीवितुमुत्सहे ॥ विषंवाभक्षयिष्यामिप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ ५१ ॥ त स्यास्तद्वचनंश्रुत्वानिषिद्धस्समुनिस्तया ॥ कस्मान्नाथप्रदत्तासौविरूपायत्वयाविभो ॥ ५२ ॥ कन्यकेयंसुरूपाढ्यासर्व लक्षणसंयुता ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंभार्गवोमुनिसत्तमः ॥ ५३ ॥ ततस्ताङ्गर्हयित्वासौधिङ्नारींपुरुषायतीम् ॥ अनेन

मुझको कुरूपके लिये दियाहै तदनन्तर लज्जा समेत व अतिदुःखसे विकल उसने मातासे जाकर वचन कहा कि हे माता ! देखिये पिताने ॥४९।५०॥ मुझको कुरूपके लिये दियाहै इससे मैं जीने के लिये नहीं उत्साह करती हूं किन्तु विष खाऊंगी या अग्निमें पैठूंगी ॥ ५१ ॥ उसके उस वचनको सुनकर उस माताने उन मुनिको मना किया कि हे विभो, स्वामिन् ! तुमने कुरूप के लिये इस कन्याको किसलिये दिया ॥ ५२ ॥ क्योंकि यह कन्या उत्तम रूपसे संयुत व समस्त लक्षणों से युक्तहै इस वचनको सुनकर तदनन्तर इन मुनिश्रेष्ठ भार्गवने उसको निन्दकर कहा कि पुरुषके तुल्य आचरण करनेवाली स्त्री को धिक्कारहै इसने कन्याको मांगाथा इसी कारण मैं

इसके लिये देता हूं ॥ ५३।५४॥ तो इस कन्याको देतेहुये मुझे क्यों रोंकती है ऐसाकहकर वह और उसकी स्त्री तथा वह कन्या ये सब सोगये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर आधी रात में आकर और सोतीहुई उस भृगुसुताको मैंने हरलिया व मनुष्योंके सोतेहुये उस समय रातको अपने घरमें लाया ॥ ५६॥ और मैंने बलसे न इच्छा करतीहुई उसको कामदेव के धर्मसे नियुक्त किया याने उससे रतिकिया तदनन्तर प्रातःकाल उसके पिता भृगु विप्रजी जागतेभये ॥ ५७ ॥ व बोले कि यह कन्या कहांहै और उस को कौन लेगया यहां नहीं देखपड़ती है इसके अनन्तर बहुत मुनियोंसे घिरे व देखतेहुये इन भृगुजीने चरण से चिह्नित मार्गके द्वारा उत्तम वनके समीप भ्रमण किया

प्रार्थिताकन्यामयाचास्मैप्रदीयते ॥ ५४ ॥ तत्किंनिषेधयसिमान्दीयमानांसुतामिमाम् ॥ इत्युक्त्वासप्रसुष्वापतद्भार्य्या साचकन्यका ॥ ५५ ॥ ततोर्द्धरात्रेचागत्यमयासुप्ताचभार्गवी ॥ हृतास्वभवनंनीतानिशिसुप्तेजनेतदा ॥ ५६ ॥ नियुक्ता कामधर्म्मेणअनिच्छन्तीबलान्मया ॥ विप्रःप्रातर्जजागारपितातस्याःततःपरम् ॥ ५७ ॥ कासौसादुहिताकेनहृताना त्रप्रदृश्यते ॥ अथासौवीक्ष्यमाणस्तुबभ्रामसुवनान्तिकम् ॥ ५८ ॥ पदसंहतिमार्गेणमुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ तेनदृष्टाथ साकन्याकृतकौतुकमङ्गला ॥ ५९ ॥ रुदतीसस्वनन्तत्रलज्जमानाह्यधोमुखी ॥ ततःकोपपरीतात्मामांप्रोवाचसभार्ग वः ॥ ६० ॥ निशाचरस्यधर्म्मेणयस्माद्धृतासुताजमम ॥ निशाचरोभवानस्तुऊल्लूकश्चैवसाम्प्रतम् ॥ ६१ ॥ घण्टउवा च ॥ निर्दोषंमान्द्विजश्रेष्ठकस्मात्त्वंशपसिद्रुतम् ॥ त्वयैषामेयतोदत्तातेनरात्रौहृतामया ॥ ६२ ॥ योदत्त्वाकन्यकांपूर्वं पश्चाद्यच्छेन्नदुर्मतिः ॥ सयातिनरकेघोरेयावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६३ ॥ अथासौचिन्तयामाससत्यमेतेनजल्पितम् ॥ प

जोकि नीचे मुख किये व लज्जित होतीहुई वहां बड़े शब्दसे रोतीथी इसके अनन्तर उनने कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलोंवाली उस कन्याको देखा ॥ ५८। ५९ ॥ तदनन्तर क्रोधसे घिरेहुये मनवाले वे भार्गव जी मुझसे बोले ॥ ६० ॥ कि जिसलिये निशाचर के धर्मसे मेरी कन्या हरीगई उसी कारण इस समय आप निशाचर व घुघुवा होवो ॥ ६१ ॥ घण्ट बोला कि हे द्विजोत्तम ! बिन दोषवाले मुझको तुम किसलिये शीघ्रही शाप देते हो जिसलिये कि तुमने इसको मुझे दियाथा उसीसे मैंने रात्रि में उसको हरलिया ॥ ६२॥ जो दुर्बुद्धि पहले कन्याको देकर पीछे नहीं देता है वह कल्पपर्यन्त भयङ्कर नरक में प्राप्तहोता है ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर इसने

चिन्तन किया कि इसने सत्य कहाहै व पश्चात्तापसे संयुतहो यह वचन बोला ॥ ६४ ॥ कि तुमने यह सत्य कहा परन्तु मेरा वचन अन्यथा न होगा तुम निस्सन्देह घुघुवा के रूपसे संयुत होगे ॥ ६५ ॥ और जब यहां भर्तृयज्ञ महामुनि पैदाहोवैंगे तब उनका उपदेश पाकर फिर अपना शरीर पावोगे ॥ ६६ ॥ तदनन्तर मैं घुघुवा रूपवाले अपने शरीरही को देखताहुआ शापितभी था परन्तु पहले पैदाहुआ जो स्मरणथा वह नहीं नष्टहुआ ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर मैंने जो उसकी कन्याको उस पर्वतपै ब्याहाथा वहभी उस रूपवाले मुझको भलीभांति देखकर इसके अनन्तर दुःखसंयुत हुई ॥ ६८ ॥ और विधवापन को न चाहती हुई वह अग्निमें पैठगई इस

आत्तापसमोपेतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ ६४ ॥ सत्यमेतत्त्वयाप्रोक्तंनमेवचनमन्यथा ॥ उलूकरूपसंयुक्तोभविष्यसिनसंशयः ॥ ६५ ॥ उत्पत्स्यतेयदाचात्रभर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ तस्योपदेशमासाद्यभूयःप्राप्स्यसिस्वान्तनुम् ॥ ६६ ॥ ततः कौशिकरूपंतुपश्यन्नात्मानमेवच ॥ शप्तोपिनस्मृतिर्नष्टाममयापूर्वसम्भवा ॥ ६७ ॥ अथयातत्सुतावोढामयातस्मिन्गिरौतदा ॥ सापिमांसंनिरीक्ष्याथतद्रूपंदुःखसंयुता ॥ ६८ ॥ प्रविष्टाहव्यवाहंसाविधवात्वमनिच्छती ॥ एवंमेकौशिकत्वंहिसंजातंहिमहाद्युतेः ॥ ६९ ॥ भार्गवस्यतुशापेनकन्याघेनतवोदितम् ॥ अखण्डबिल्वपत्रेणपूजितोयन्महेश्वरः ॥ ७० ॥ चिरायुस्तेनसंजातंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ सत्यंकथययत्कृत्यंगृहायातस्यतत्तव ॥ ७१ ॥ प्रकरोमिमहाभागयद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नस्यज्ञानायआनीतोहंतवान्तिकम् ॥ ७२ ॥ नाडीजङ्घेनवानीतोमरणेकृतनिश्चयः ॥ यदिनाज्ञास्यतिभवांस्तंकीर्त्यावाकुलेनच ॥ ७३ ॥ प्रविशामिततोनूनंप्रदीप्तंहव्यवाहनम् ॥ नोचे

प्रकार कन्याके अपराधसे महातेजस्वी भार्गवजी के शापसे मेरे घुघुवापन होगया उसको तुमसे कहा और बिनकटेपिटे बिल्वपत्रोंसे जो महादेवजी का पूजन किया ॥ ६९ । ७० ॥ उससे बड़ी आयुर्बल हुई मैंने यह सत्यकहा है व हे महाभाग ! घरमें आयेहुये तुम्हारा जो कार्यहो उसको सत्य कहिये यद्यपि अतिदुर्लभ होगा तथापि मैं करूंगा इन्द्रद्युम्न बोले कि इन्द्रद्युम्न के जानने के लिये मैं तुम्हारे समीप आनागया ॥ ७१ । ७२ ॥ व मरणमें निश्चय कियेहुये मैं नाडीजंघ नामक बगुला से

लायागया हूं यदि आप उस इन्द्रद्युम्न को यश या वंशसे न जानैंगे ॥ ७३ ॥ तो निश्चयकर मैं जलती हुई अग्निमें पैठूंगा नहीं तो तुम किसी अन्य बहुत दिनों से
प्राणधारी को कहो ॥ ७४ ॥ उस मनुष्य से जाकर पूंछूं जो नृपको जानता हो उसको कहिये बगुला बोला कि हे उलूक ! इसने सत्य कहाहै यदि तुम अपनासे दीर्घ-
जीवी किसीको जानते हो तो आजही तुम कहो व करो नहीं तो इस समय तुम्हारे देखते हुये मार्कण्डेय समेत मैं भी शीघ्रही अग्निमें पैठूंगा ऐसा जानकर हे महाभा-
ग ! भूतल में अन्यत्र किसी बहुत दिनोंवाले प्राणीको चिन्तन कीजिये जिसलिये तुम बहुत दिनोंसे प्राणधारी हो उसीसे मैं बड़ी आशा करके तुम्हारे घर प्राप्तहुआ

त्कीर्तयत्वंकञ्चिदन्यन्तुचिरजीविनम् ॥ ७४ ॥ पृच्छामितंजनंगत्वायोनृपंवेत्तितंवद ॥ बकउवाच ॥ युक्तमुक्तमनेनाद्य
त्वंकुरुष्ववदस्वभोः ॥ ७५ ॥ यदिजानासिकञ्चित्त्वमात्मनश्चिरजीविनम् ॥ नोचेदहमपिक्षिप्रंप्रविशामिहुताशनम् ॥
७६ ॥ मार्कण्डेनापिसार्द्धन्तुसाम्प्रतंतवपश्यतः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागचिन्तयस्वचिरन्तनम् ॥ ७७ ॥ कञ्चिद्भूमितले
न्यत्रयतस्त्वंचिरजीवधृक् ॥ आशयापरयाप्राप्तस्तेनाहंतवमन्दिरम् ॥ ७८ ॥ पुमानेषविशेषेणमार्कण्डोपिप्रियोमम ॥
सन्त्यत्रपर्वतश्रेष्ठाःशतशोथसहस्रशः ॥ ७९ ॥ येषुसन्तिमहाभागास्तापसाश्चिरजीविनः ॥ नान्यथाजीवितञ्चास्य
कथञ्चित्संभविष्यति ॥ ८० ॥ इन्द्रद्युम्नस्यराजर्षेर्हितंपरमकंभवेत् ॥ तथावयोर्द्वयोश्चापितस्माच्चिन्तयसत्वरम् ॥ ८१ ॥
तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वामरणार्थंमहीपतेः ॥ पुरुहूतःकृपांकृत्वाततोवचनमब्रवीत् ॥ ८२ ॥ यद्येवन्तुमहाभागमर्तुकामोसि
साम्प्रतम् ॥ तदागच्छमयासार्द्धंगन्धमादनपर्वतम् ॥ ८३ ॥ तत्रसन्तिष्ठतेगृध्रस्सचमेपरमःसुहृत् ॥ चिरन्तनस्तथासो

हूं ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥ व विशेषकर यह पुरुष व मेरे प्यारे मार्कण्ड भी प्राप्त हुये हैं यहां सैकड़ों व हज़ारों उत्तम पर्वतहैं ॥ ७९ ॥ जिनमें बड़े भाग्यवाले
व बहुत दिनों से जीनेवाले तपस्वी हैं अन्यथा इसका किसी प्रकार जीवन न होगा ॥ ८० ॥ जिस कारण राजर्षि इन्द्रद्युम्न व हमदोनों का भी परमहित होवै
उसीलिये शीघ्रही चिन्तन कीजिये ॥ ८१ ॥ मरने के लिये उस भूपके उस निश्चय को जानकर घुघुवा दयाकर तदनन्तर वचन बोला ॥ ८२ ॥ कि हे
महाभाग ! यदि ऐसा है कि इस समय तुम मरने के लिये इच्छा करतेहो तो मेरे साथ गन्धमादन पर्वतपै आइये ॥ ८३ ॥ वहांपर गीध भलीभांति टिकाहै और

वह मेरा परममित्र व पुराना है वह भी यदि उस राजाको जानैगा ॥ ८४ ॥ तो मेरे वचन से निरसन्देह अवश्यकर कहैगा उसके उस वचन को सुनकर मार्कण्डादिक सब तीनों जनोंने उस बड़े भाग्यवान् इन्द्रद्युम्न से कहा कि तुम अग्नि में मत पैठो हम सब तुम्हारे साथ वहीं चलैंगे ॥ ८५ । ८६ ॥ कदाचित् वह भी इन्द्रद्युम्न भूपको जानता होवै उनके उस वचन को सुनकर बड़ी आशा से संयुत ॥ ८७ ॥ सबों समेत वह राजा गन्धमादन पर्वतपै गया उन सबोंको देखकर हाथ जोड़ेहुये गृध्रराज भी ॥ ८८ ॥ आगे घुघुवा को देखकर प्रसन्नहो सामने प्राप्त हुआ तदनन्तर प्रसन्नमनवाला वह बोला कि हे पक्षियों में उत्तम ! तुम्हारा आना

पियदिज्ञास्यतितंनृपम् ॥ ८४ ॥ कथयिष्यत्यसन्दिग्धंममवाक्यादसंशयम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासमार्कण्डादिभिस्त्रिभिः ॥ ८५ ॥ प्रोक्तःसर्वैर्महाभागोमात्वंप्रविशपावकम् ॥ वयंयास्यामहेसर्वेत्वयासार्द्धञ्चतत्रहि ॥ ८६ ॥ कदाचित्सोपिजानातिइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाआशयापरयायुतः ॥ ८७ ॥ सराजासहितस्सर्वैःप्रययौगन्धमादनम् ॥ गृध्रराजोपितान्दृष्ट्वासर्वानेवकृताञ्जलिः ॥ ८८ ॥ उलूकंपुरतोदृष्ट्वाप्रहृष्टस्सम्मुखंययौ ॥ ततोब्रवीत्प्रहृष्टात्मास्वागतन्तेद्विजोत्तम ॥ ८९ ॥ चिरकालात्प्रहृष्टोसिकएतेऽन्येत्रयःस्थिताः ॥ उलूकउवाच ॥ एषमेपरमंमित्रंनाडीजङ्घोबकःस्मृतः ॥ ९० ॥ एतस्यापिचमार्कण्डःसंस्थितःपरमःसुहृत् ॥ असौत्रैलोक्यविख्यातःसप्तकल्पस्मरोभुवि ॥ ९१ ॥ एतस्यसुहृदंकञ्चिदेनंजानामिसत्वरम् ॥ म्रियमाणोमयाह्येषःसमानीतस्तवान्तिकम् ॥९२॥ अयंजीवतिविज्ञातेइन्द्रद्युम्नेनरेश्वरे ॥ नोचेत्प्रविशतिक्षिप्रंप्रदीप्तंहव्यवाहनम् ॥९३॥ सत्वंजानासिचेत्तंहिइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ चिरंतनोमया

अच्छा हुआ ॥ ८९ ॥ तुम बहुत दिनों से देखेगये और प्राप्तहुये ये तीनों कौन हैं उलूक बोला कि नाडीजंघ ऐसा कहा हुआ यह बगुला मेरा परममित्र है ॥ ९० ॥ और इसके भी मार्कण्डजी परममित्र भलीभांति स्थित हैं भूतल में सात कल्पों के स्मरणवाले ये त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ ९१ ॥ व इनके किसी मित्रको इसे जानता हूं मैंने मरतेहुये इसको तुम्हारे समीप शीघ्रही भलीभांति प्राप्त कियाहै ॥ ९२ ॥ इन्द्रद्युम्न राजाके जानने पर यह जियैगा नहीं तो जलती हुई अग्नि में शीघ्रही प्रवेश

करैगा ॥ ९३ ॥ सो तुम यदि उस इन्द्रद्युम्न भूपति को जानते हो तो कहो क्योंकि तुम मुझसे भी पुरानेहो उसी से पूछने के लिये भलीभांति आयाहूं ॥ ९४ ॥ गृध्र बोला कि इन्द्रद्युम्न ऐसे प्रसिद्ध राजाको मैं नहीं स्मरण करताहूं क्योंकि इन्द्रद्युम्न भूपति न देखागया और सुनाभी नहीं गयाहै ॥ ९५ ॥ उसके उस वचनको सुनकर मरण में निश्चय किये व उदासीन मनवाले उस राजाने भी मनसे चिन्तनकिया ॥ ९६ ॥ तदनन्तर आश्चर्यसंयुत होकर पक्षियों में उत्तम उस गीधसे पूंछा कि किस कर्म से ऐसी आयुर्बल भलीभांति प्राप्तहुई है यह कहिये ॥ ९७ ॥ मैं तुमसे उसको सुनकर तदनन्तर अग्निको भलीभांति साधन करूंगा याने अग्निमें पैठूंगा

पित्वंतेनप्रष्टुंसमागतः ॥ ९४ ॥ गृध्रउवाच ॥ इन्द्रद्युम्नेतिविख्यातंराजानंनस्मराम्यहम् ॥ नदृष्टोनश्रुतश्चापिइन्द्रद्यु
म्नोमहीपतिः ॥ ९५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासोपिराजासुदुर्मनाः ॥ मनसाचिन्तयामासमरणेकृतनिश्चयः ॥ ९६ ॥ तत
स्तुकौतुकाविष्टस्तंपप्रच्छद्विजोत्तमम् ॥ कर्मणाकेनसंप्राप्तमायुष्यञ्चेदृशंवद ॥ ९७ ॥ ततस्संसाधयिष्यामिश्रुत्वातेहं
विभावसुम् ॥ गृध्रउवाच ॥ अहमासंचमत्कारपुरेमर्कटकःकिल ॥ ९८ ॥ उपत्यकायान्तत्रैवरक्तश्रृङ्गस्यभूभृतः ॥ त
त्रैवास्तिमहातुङ्गबोधिद्रुर्मन्दिरोपमः ॥ ९९ ॥ चैत्येश्वराभिधानञ्चसर्वपातकनाशनम् ॥ वसन्तेतत्रसंप्राप्तेपौरजानपदै
स्तथा ॥ २०० ॥ आगत्यचैवतुमहातुङ्गेयोविहितोभवत् ॥ लिङ्गस्यतद्विधौरम्येसर्वतःफलितद्रुमे ॥ १ ॥ काननेकामि
नीलोककान्तेजनमनोहरे ॥ लिङ्गमारोपितंशैवंतरोरान्दोलकेमुदा ॥ २ ॥ कृत्वादमनकेनार्चांस्थाप्यदोलांसुयन्त्रि

गीध बोला कि प्रसिद्धि में चमत्कारपुरमें मैं बन्दर हुआहूं ॥ ९८ ॥ और वहीं रक्तश्रृंग पर्वत के समीपवाली भूमिमें था यहींपर मन्दिरके समान व बड़ा ऊंचा पीपरका वृक्षहै ॥ ९९ ॥ और समस्त पातकोंका विनाशक चैत्येश्वर नामक लिंगहै वहां वसन्त ऋतु भलीभांति प्राप्तहोनेपर पुरवासी व देशविशेषों के निवासियों ने ॥ २०० ॥ आकर बड़े ऊंचे वृक्षमें लिंगकी उस सुन्दरी विधिमें जो कियाहै उसको सुनिये कि मनुष्योंको मनोहर व कामिनी जनोंके सुन्दर वनमें सबओर वृक्षोंके फलनेपर वृक्षके नीचे सुन्दर हिंडोरे पै हर्षसे शिवजी का लिंग आरोपण किया ॥ १ । २ ॥ और उसको देउना से पूजकर व उत्तम यन्त्रवाले हिंडोरे पै बिठाकर व तीन नयनोंवाले

शिवजी को पूजकर पश्चात् अपने घरको चलेआये ॥ ३ ॥ तदनन्तर सन्ध्यासमयमें खेलसे संयुत चित्तवाला मैं उस अतिसुन्दर झूलनेको बार २ झुलाताथा ॥ ४ ॥ इस प्रकार झुलाते हुये मेरे समीप मनुष्य प्राप्तहुये उन किसी मनुष्यों ने लुकेठों से सब दिशाओं में मुझको मारा ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसी मन्दिर में मैं शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहुआ उसके उपरान्त जातिका स्मरणवाला होकर मैं राजाके घरमें भलीभांति पैदाहुआ ॥ ६ ॥ व कोटीश्वर का पुत्र कुशध्वज नामक प्रसिद्ध हुआ तदनन्तर जब कोटीश अपने कर्मसे परलोक को भलीभांति प्राप्तहुये तब क्रमसे पिता, पितामहोंवाली राज्यको मैंने पाया व गुरुजीसे भलीभांति दिखलाये व शिवसिद्धा-

याम् ॥ तंचेयुःस्वगृहंपश्चादर्चयित्वात्रिलोचनम् ॥ ३ ॥ ततोहंरजनीवक्त्रेतान्दोलांसुमनोहराम् ॥ कौतुकाविष्टहृदयोदोलयामिमुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥ एवंसन्दोलमानस्यममप्राप्तानरास्तथा ॥ कैश्चित्तैश्चासितोहन्तुउल्मुकैःसर्वतोदिशम् ॥ ५ ॥ ततःपञ्चत्वमापन्नस्तत्रैवायतनेद्रुतम् ॥ ततोजातिस्मरोभूत्वासंजातोनृपमन्दिरे ॥ ६ ॥ कोटीश्वरस्यचाविख्यातोनाम्नाचैवकुशध्वजः ॥ पितृपैतामहंराज्यंमयाप्राप्तंततःक्रमात् ॥ ७ ॥ कोटीशेसमनुप्राप्तेपरलोकंस्वकर्म्मणा ॥ योगेश्वरंमहाभागन्दोलयामियथातथा ॥ ८ ॥ शिवसिद्धान्तजैर्मन्त्रैर्गुरुणासंनिदर्शितैः ॥ ततःकालेनमहतातुष्टोदेवोहरोमम ॥ ९ ॥ भवतेवरदश्चास्मिवाक्यमेतदुवाचह ॥ कुशध्वजप्रतुष्टोस्मिश्रद्धयापरयातव ॥ १० ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्तेयस्तेमनसिसंस्थितम् ॥ ततोमयाप्रणम्योच्चैःसंप्रोक्तोभगवान्हरः ॥ ११ ॥ यदितुष्टोसिमेदेवतन्मांकुरुनिजंगणम् ॥ त्रैलोक्यराज्यमपिवैनान्यच्चप्रतिभातिमे ॥ १२ ॥ एवमुक्तोमयादेवोविमानेमांनिनायसः ॥ शिवलोकंमहापुण्यंसहसास्मां

न्त में उपजेहुये मन्त्रोंके द्वारा मैं महाभाग योगेश्वरजीको यथायोग्य झुलाता था उसके उपरान्त बड़े समय से सदाशिव देवजी मेरे ऊपर प्रसन्नहुये ॥ ७ । ८ । ९ ॥ व यह वचन बोले कि हे कुशध्वज ! तुम्हारी उत्तम श्रद्धासे मैं प्रसन्नहूं और आपके लिये वरदायक हूं ॥ १० ॥ तुम्हारा कल्याणहोवै और तुम्हारे मनमें जो भलीभांति टिकाहोवे उस वरदान को मांगो तदनन्तर मैंने उच्च प्रकार से प्रणाम कर भगवान् शिवजी से कहा ॥ ११ ॥ हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो मुझे अपनागण कीजिये व अन्य त्रिलोककी राज्यभी मुझको नहीं अच्छी लगती है ॥१२॥ मुझसे ऐसा कहेहुये उन शिवदेवजी ने मुझको विमानपै चढाया व अचानक ही

मुझको बड़े पुण्यदायक शिवलोकको भलीभांति प्राप्तकिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर पार्वती व शिवजी की प्रसन्नता से वहां गणोंके बीचमें विशेषकर टिकाहुआ मैं अपनी इच्छारो क्रीडा करताथा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उत्तम विमानपै चढ़ा व अपनी इच्छासे घूमताहुआ मैं महापर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ व वसन्त समय प्राप्तहोने पर जब दक्षिण दिशावाला पवन वर्त्तमान हुआ तव जलके बीचमें प्राप्त व वसनहीन (नंगी) अग्निवेश्य की कन्या देखीगई ॥ १६ ॥ जोकि बहुत सखियों से युक्त व इच्छाके अनुकूल खेलती थी और वह बीचमें मूठीसे ग्रहणकरने योग्य याने पतली कटिवाली व बिम्बाफलके समान ओठोंवाली व कमल सरीखे

समानयत् ॥ १३ ॥ ततःप्रसादतश्चाहंभवान्याश्चहरस्यच ॥ क्रीडामिस्वेच्छयातत्रगणमध्येऽयवस्थितः ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यविमानवरमास्थितः ॥ स्वेच्छयाभ्रममाणस्तुप्राप्तश्चैवमहागिरौ ॥ १५ ॥ वसन्तसमयेप्राप्तेप्रवृत्तेदक्षिणानले ॥ अग्निवेश्यसुतादृष्टाविवस्त्राजलमध्यगा ॥ १६ ॥ अलिभिर्बहुभिर्युक्ताक्रीडमानायथेच्छया ॥ मुष्टिग्राह्यातुमध्येसाबिम्बोष्ठीवारिजेक्षणा ॥ १७ ॥ बिल्वस्तनीशशाङ्कास्यासर्वलक्षणलक्षिता ॥ ततोहंमन्मथाविष्टस्तत्क्षणात्समजायत ॥ १८ ॥ अवतीर्य्यविमानाग्रादगृहीताथकरेमया ॥ प्ररुदन्तीचकुररींपक्षिणीकुररीयथा ॥ १९ ॥ ततः कन्यामुनीन्द्राणांयाःस्थितास्तत्रवारिणि ॥ रुदन्त्यस्संप्रयातास्ताअग्निवेश्यस्यसन्निधौ ॥ २० ॥ नीयतेत्वत्सुता ब्रह्मन्विमानवरमास्थिता ॥ वैमानिकेनकेनापिक्रन्दमानानिरर्गलम् ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वाकुपितस्सोपिव्योममार्गावलोककः ॥ स्वाश्रमात्सम्प्रयातःसन्मामालोक्यमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥ तिष्ठतिष्ठेतितेनोक्तेसंरुद्धस्सलुसर्वतः ॥ तपसोग्रेणावि

नयनोंवाली ॥ १७ ॥ और बिल्वके तुल्य स्तनोंवाली व चन्द्रमाके समान मुखवाली व समस्त लक्षणोंसे चिह्नितथी तदनन्तर उसी क्षण में कामदेवसे व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर विमानके अग्रभागसे उतरकर मैंने कुररी पक्षिणी की नाईं बहुत रोतीहुई उसको हाथमें ग्रहणकिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर मुनीन्द्रोंकी जो कन्यायें उस जलमें स्थितथीं रोतीहुई वे अग्निवेश्य के समीप भलीभांति गईं और बोलीं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन्! अत्यन्तही रोतीभी व उत्तम विमानपै चढ़ीहुई तुम्हारी कन्या को कोई विमानवाला पुरुष लिये जाताहै ॥ २१ ॥ उस वचनको सुनकर क्रोधित व आकाशमार्गको देखनेवाला वह भी अपने आश्रमसे भलीभांति प्रयाण करता

हुआ मुझको देखकर खड़ेहो २ ऐसा उसके बार २ कहनेपर सो मैं सब ओर से रुँकगया व विप्रजी की बड़ी तपस्यासे मेरा विमान भलीभांति खड़ाहोगया॥२२।२३॥ तदनन्तर बड़े क्रोधसे संयुत उसने मुझसे कहा कि हे पापिन् ! जिसलिये इस समय खेलती हुई कन्याको तू ने हरलिया ॥ २४ ॥ हे दुर्बुद्धे ! जैसे कि अचानक गिरताहुआ गाध मांस को हरताहै इसलिये मेरे वचनसे निस्सन्देह शीघ्रही गीधहोवो ॥ २५ ॥ तदनन्तर उससे ऐसा कहाहुआ मैं लज्जासे संयुत हुआ व उनके लिये कन्याको देकर बार २ प्रणामकर ॥ २६ ॥ तदनन्तर मैंने बड़े तपस्वी अग्निवेश्य विप्रसे कहा कि वैसीही तुम्हारी कन्या नहीं सहीगई याने तेजस्विनीहै इसलिये क्रोध

प्रस्यविमानंममसंस्थितम् ॥ २३ ॥ अब्रवीच्चततोमांसकोपेनमहतान्वितः ॥ यस्मात्पापत्वयाकन्याक्रीडतीचहृताऽधुना ॥२४॥ अकस्मात्पततामांसंयथागृध्रेणदुर्मते ॥ तस्माद्गृध्रोभवत्वाशुममवाक्यादसंशयम् ॥२५॥ एवमुक्तस्ततस्तेनलज्जयाहंपरिप्लुतः ॥ निवेद्यकन्यकांतस्मैप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततःप्रोक्तोमयाविप्रस्त्वग्निवेश्योमहातपाः ॥ नतथातेसुताक्षान्तानकोपयितुमर्हसि ॥ २७ ॥ गृध्रत्वंमेयथानस्यात्तथाकुरुमुनीश्वर ॥ ततोहंतेनचप्रोक्तोनमिथ्यावचनंमम ॥ २८ ॥ कथञ्चिज्जायतेतस्माद्गृध्रत्वंसम्भविष्यति ॥ आनर्तस्योपदेशेनयदाप्राप्स्यसिभोऽधम ॥ २९ ॥ भर्तृयज्ञंमहाभागमुपदेशकृतेतदा ॥ तस्माच्चनिष्कृतिंप्राप्यगृध्रत्वंतेप्रयास्यति ॥ ३० ॥ समयंप्रेक्षमाणेननदृष्टोनंचविश्रुतः ॥ निर्विण्णोगृध्रभावेनशापान्तोनचमेऽभवत् ॥ ३१ ॥ गृध्रउवाच ॥ एतद्वैसर्वमाख्यातंगृध्रत्वस्यचकारणम् ॥ आयुष्यञ्चयथाजातंममसंख्याविवर्जितम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अनुज्ञान्देहिमेशीघ्रंप्रविशामिहुताशनम् ॥ येनवै

करने को नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥ हे मुनिनायक ! मुझको जैसे गृध्रता न होवै वैसाही कीजिये तदनन्तर उन मुनिने मुझसे कहा कि मेरा वचन किसी प्रकार झूंठ नहीं होताहै उसी कारण गृध्रता होगी हे नीच ! जब आनर्त के उपदेशसे तुम महाभाग्यवाले भर्तृयज्ञ को उपदेश के लिये पावोगे तब उनसे प्रायश्चित्त को पाकर तुम्हारा गीधपन जावैगा ॥ २८ । २९ । ३० ॥ व समयको देखतेहुये मैंने न देखा है और न सुनाहै व गीधके होनेसे मैं निर्वेदको प्राप्तहूं और मेरे शापका अन्त नहीं हुआहै ॥३१॥ गीधबोला कि जिस प्रकार मेरी संख्यासे रहित आयुर्बलहुई वह और यह सब गृध्रताका कारण कहागया ॥ ३२ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि मुझको शीघ्रही

आज्ञादीजिये कि जिससे मैं अग्निमें प्रवेशकरूं क्योंकि वैराग्यको प्राप्त मैं जीनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उससे ऐसा कहेहुये उस गीध ने चित्तमें चिन्तन किया कि मित्रसे संयुतहो यह इस प्रकार मेरेसमीप भलीभांति आयाहै ॥ ३४ ॥ इसलिये शक्तिके अनुकूल अतिदुर्लभ उत्तम उपकारकरूं तदनन्तर परम उदारतामें प्राप्त उस गीधने स्नेहसे उस इन्द्रद्युम्नसे कहा ॥३५॥ कि तुम अग्निको मत साधनकरो किन्तु तबतक मेरे वचन सुनो मैं तुमसे उसको कहूंगा किं जो मुझसे भी प्राचीनहै ॥ ३६ ॥ वह इन्द्रद्युम्न भूपति को जानैगा इस में सन्देह नहीं है इसलिये मेरे साथ आइये व वैसेही सब सहायों समेत मेरे साथ उस

राग्यमापन्नोनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ३३ ॥ एवमुक्तस्सतेनाथचिन्तयामासचेतसि ॥ ममान्तिकंसमायातएवंमित्रसमन्वितः ॥३४॥ तत्करोमियथाशक्त्यासूपकारंसुदुर्लभम् ॥ ततःप्रोवाचतंप्रीत्यादाक्षिण्यंपरमंगतः ॥ ३५ ॥ मात्वंसाधयवैवह्निंश्रृणुतावद्वचोमम ॥ अहंतेकीर्तयिष्यामिममयोपिचिरन्तनः ॥३६॥सज्ञास्यतिनसन्देहइन्द्रद्युम्नंमहीपतिम् ॥ तदागच्छमयासार्द्धंतत्समीपंमहात्मनः ॥३७॥सहायैस्सहितस्सर्वैर्मयासार्द्धंतथैवच ॥ अस्तिमान्थरकोनामकमठश्चिरजीवनः ॥ ३८ ॥ मानसेसरसिख्यातइन्द्रद्युम्नंसवेत्स्यति ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वामार्कण्डेयादयस्त्रयः ॥ ३९ ॥ तमूचुःपार्थिवश्रेष्ठंमरणेकृतनिश्चयम् ॥ सत्यमुक्तंमहाराजगृध्रराजेनधीमता ॥४०॥ तत्रयास्यामहेसर्वेयत्रासौकमठःस्थितः ॥ अनिर्वेदःश्रियोमूलंयतःशंसन्तिपण्डिताः ॥४१॥ नीतिशास्त्रविदःसर्वेतस्मादागच्छगम्यताम् ॥तेषांतद्वचनंश्रुत्वाकृच्छ्रान्निर्वर्त्यपार्थिवः ॥ ४२ ॥ मरणाद्भ्रमणंश्रेष्ठंवैराग्यंपरमंगतः ॥ अथतेप्रस्थितास्सर्वेगन्धमादनपर्वतात् ॥ ४३ ॥ पश्चापिच

महात्मा के समीप चलिये मानसरोवर में बहुत दिनों से जीनेवाला मान्थरक ' नामक प्रसिद्ध कछुवा है वह इन्द्रद्युम्न को जानैगा उस के उस वचनको सुनकर मार्कण्डेयादिक तीनों जनोंने ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ मरणमें निश्चय कियेहुये उस नृपोत्तमसे कहा कि महाराज ! बुद्धिमान् गृध्रराजने सत्य कहा है ॥ ४० ॥ वहां हम सबलोग जावैंगे जहां कि यह कमठ (कछुवा) टिकाहै जिसलिये नीतिशास्त्र के जाननेवाले समस्त पण्डित अवैराग्यको लक्ष्मीकी जड़ कहते हैं इसलिये आइये चलैं उनके उस वचनको सुनकर राजा क्लेशसे निवृत्त होकर उत्तम वैराग्यको प्राप्तहुआ क्योंकि मरनेसे घूमना श्रेष्ठ है इसके अनन्तर उन सब पांचोंने भी उत्तम

मानसरोवर को भलीभांति उद्देशकर गन्धमादन पर्वत से प्रयाण किया इसके उपरान्त क्रमही से आकाशमार्ग के द्वारा जातेहुये वे सब उस मनोहर मानसरोवरमें प्राप्तहुये और जलसे निकला घामको सेवताहुआ कछुवा स्वतन्त्रतासे भलीभांति बैठाथा ॥ ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ उसने उन चारों को देख व भलीभांति अवलोकनकर तदनन्तर सबोंके न देखपड़ने के लिये जलमें अदृश्य होगया ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जातेहुये उस विमुख कछुवे से घुघुवा ने कहा कि अहोमित्र ! आज मुझको देखकर तुम विमुख हुयेहो ॥ ४७ ॥ घरमें प्राप्तहुआ अतिनीच भी सज्जनोंके अत्यन्त पूजनीय होताहै इसके अनन्तर जलके बीचमें टिके व मस्तकमात्र

समादिश्यमानसंसरउत्तमम् ॥ अथप्राप्ताःक्रमेणैवगच्छमानाविहायसा ॥ ४४ ॥ मानसंतत्सरोरम्यंकूर्म्मस्तोयाद्विनिर्गतः ॥ निदाघंसेवमानस्तुसन्तिष्ठतियदृच्छया ॥ ४५ ॥ सचतांश्चतुरोदृष्ट्वासम्यक्कृत्वानिरीक्षणम् ॥ परोक्षायततस्सर्वान्प्रणष्टःसलिलम्प्रति ॥ ४६ ॥ अथतंकौशिकःप्राहगच्छमानंपराङ्मुखम् ॥ भोभोमित्राद्यमान्दृष्ट्वासंजातोसिपराङ्मुखः ॥४७॥ सुनीचोपिगृहंप्राप्तोभवेत्पूज्यतमस्सताम् ॥अथासौतोयमध्यस्थःशिरोमात्रबहिर्मुखः ॥ ४८ ॥ प्रत्युवाचाथतंगृध्रंविनयाद्विजसत्तमाः ॥ नाहंपराङ्मुखोजातस्त्वांदृष्ट्वानान्तराङ्मुभौ ॥४९॥ पञ्चमोयंसमभ्येतियोयुष्माकंमहापुमान् ॥ भयात्तस्यप्रणष्टोहमिन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः ॥५०॥ अनेनतत्रदग्धामेपुरापृष्ठिर्मखाग्निना ॥ सततंयजमानेनरोचकेसत्पुरोत्तमे ॥ ५१ ॥ एतदीयंपुनस्स्मृत्वाभयंमेसुमहत्स्थितम् ॥ इन्द्रद्युम्नस्यराजर्षेःकीर्तिसंश्रवणंमहत् ॥ ५२ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेकमठेनतदादिवः ॥ देवदूतःसमागच्छच्छासनात्परमेष्ठिनः ॥ ५३ ॥ देवदूत उवाच ॥ आगच्छागच्छ

बाहर मुखवाले इस कछुवे ने ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस गीधको नम्रतासे प्रत्युत्तर दिया कि तुमको व भेदरहित उन दोनोंको देखकर मैं विमुख नहीं हुआहूं ॥४९॥ किन्तु तुमलोगों के बीचमें जो यह पांचवां महापुरुष भलीभांति आताहै उस इन्द्रद्युम्न राजाके डरसे मैं अदृश्य हुआहूं ॥ ५० ॥ क्योंकि पुरातन समय रोचक नामक अच्छे पुरोत्तम में सदैव यज्ञ करते हुये इनने वहां यज्ञकी अग्निसे मेरी पीठको जलाया है ॥ ५१ ॥ यही फिर स्मरणकर मेरे बड़ा भारी डर उपस्थित हुआहै क्योंकि इन्द्रद्युम्न राजर्षि के यशका श्रवण बड़ाभारी है ॥ ५२ ॥ कछुवा के यही कहनेपर उस समय ब्रह्माकी आज्ञासे देवदूत आकाश से भलीभांति आया ॥५३॥ देवदूत

बोला कि हे राजर्षे ! इससमय ब्रह्माके समीप आइये२ हे राजन् ! ब्रह्माने तुझसे कहाहै कि इसका अनेक प्रकारका यश ॥ ५४ ॥ जब थोड़ा भी भूतलमें प्रकाशताको प्राप्तहोवै तो मेरे समीप लाना उसी कारण अप्रकट जन्मवाले उन ब्रह्माजीके समीप लिये चलताहूं ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि जो ये बगुला, घुघुआ व कछुवा मेरे मित्रहैं यदि मार्कण्डेय समेत वे मेरे साथ आतेहैं ॥ ५६ ॥ तो मैं तुम्हारे साथ ब्रह्माके समीप आताहूं अन्यथा न आऊंगा यह मैंने सत्य कहाहै ॥ ५७ ॥ देवदूत बोला कि शापसे भ्रष्टहोकर पृथ्वी में प्राप्त ये सब शिवजीके गणहैं इससे शापकेअन्त में फिर निस्सन्देह सदाशिवजीके समीप जावैंगे ॥ ५८ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! इनको

राजर्षेसाम्प्रतंब्रह्मणोन्तिकम् ॥ उक्तोहंब्रह्मणाराजन्कीर्तिश्चास्यपृथग्विधा ॥ ५४ ॥ यदाप्रकाशतांयातिस्वल्पापिपृ
थिवीतले ॥ नयामितेनतत्पार्श्वंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ५५॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यदेतेसुहृदोमह्यंबककौशिककच्छ
पाः ॥ मार्कण्डेयेनसहिताआगच्छन्तिमयासह ॥ ५६ ॥ आगच्छामित्वयासार्द्धन्तदहंब्रह्मणोन्तिकम् ॥ अन्यथाना
गमिष्यामिसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५७ ॥ देवदूतउवाच ॥ एतेहरगणास्सर्वेशापभ्रष्टाःक्षितिङ्गताः ॥ शापान्तेहरपा
र्श्वेतुभूयोयास्यन्त्यसंशयम् ॥ ५८ ॥ तस्मादागच्छ गच्छामो मुक्त्वाह्येतान्नृपोत्तम ॥ नचैषांरोचतेस्वर्गंमुक्त्वादेवं
महेश्वरम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यद्येवङ्गच्छभोभद्रनाहंगन्तात्रिविष्टपम् ॥ तत्तथाहंयतिष्यामिभविष्यामिय
थागणः ॥ ६० ॥ तत्रस्थस्यकुतोभाविनित्यञ्चपतनाद्भयम् ॥ एवमुक्तस्सतेनाथसमादायविमानकम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्म
लोकंगतोदूतोविलक्ष्यंपरमंगतः ॥ इन्द्रद्युम्नोपिपप्रच्छतंकूर्मंविनयान्वितः ॥ ६२ ॥ आख्याहिकूर्म्मस्वंकर्म्मयदीदृक्

छोड़कर आइये चलैं व महेश्वर देवको छोड़कर इनको स्वर्ग नहीं रुचताहै ॥५९॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि अहो कल्याणमय ! यदि ऐसाहै तो मैं स्वर्गको न जाऊंगा किन्तु वैसीही यत्न करूंगा जिसप्रकार गण होऊंगा ॥ ६०॥ क्योंकि उस स्वर्गमें टिकेहुये पुरुषको किरीकारण नित्यही गिरनेसे डरहोगा इसकेअनन्तर उनइन्द्रद्युम्नसे ऐसा कहाहुआ वह दूत उत्तम विलक्षणताको प्राप्तहो विमानको भलीभांति लेकर ब्रह्मलोकको चलागया व नम्रतासे संयुत इन्द्रद्युम्नने भी उस कछुवेसे पूंछा ॥६१ ।६२॥ हे

कच्छप ! जो तुम ऐसे बहुत दिनवालेहो तो अपना कर्म कहिये कि किसकर्म से कच्छपता प्राप्तहुई है यह मुझसे शीघ्रहीं कहिये ॥ ६३ ॥ कच्छप बोला कि पुरातन समय मनोहर चमत्कारनगर में शिशुतामें विशेषकर प्राप्त मैं शांडिल्य नामसे प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहूं ॥ ६४ ॥ और समस्त बालकोंके खेलोंमें मैं स्वतन्त्रता से खेलता था व खेलते हुये मैंने पांचईटोंवाला शिवजीका मन्दिर बनाया ॥ ६५ ॥ व उसमें यागेश्वर लिंगको धरकर स्थापन कराया तदनन्तर बालकों से घिरा व भक्तिसंयुत खेलताहुआ मैं प्रतिदिन बिनमन्त्रों से पूजताथा इसके अनन्तर किसी समय जब मृत्यु होगई तब ॥ ६६ । ६७ ॥ जातिका स्मरणवाला ब्राह्मण मैं वैदिशपुर मे पैदा

त्वञ्चिरन्तनः ॥ कर्म्मणाकेनतुप्राप्तंकूर्म्मत्वंशंसमेद्रुतम् ॥ ६३ ॥ कूर्म्मउवाच ॥ अहमासम्पुराविप्रोबालभावेऽयवस्थितः ॥ चमत्कारपुरेरम्येशाण्डिल्योनामविश्रुतः ॥ बालक्रीडासुसर्वासुक्रीडमानोयदृच्छया ॥ ६४ ॥ पञ्चेष्टिकमयंशम्भोःक्री डतानिर्म्मितंगृहम् ॥ ६५ ॥ तत्रयागेश्वरंलिङ्गंधृत्वाचविनिवेशितम् ॥ ततोहंभक्तिसंयुक्तःपूजयामिदिनेदिने ॥ ६६ ॥ क्रीडमानोविनामन्त्रैःशिशुभिःपरिवारितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यमरणेसमुपस्थिते ॥ ६७ ॥ जातिस्मरोह्यहंविप्रो जातोवैदिशकेपुरे ॥ ततोमेभ्यधिकाजाताभक्तिर्देवंहरम्प्रति ॥ ६८ ॥ कृत्वाभिक्षाटनंनित्यंयाचयित्वाधनंबहु ॥ कृ त्वाप्रासादमात्रन्तुलिङ्गंसंस्थापितंमया ॥ ६९ ॥ पूजयामिततोभक्त्यादेवंपशुपतिंहरम् ॥ ब्रह्मविद्यासमोपेतोभिक्षान्न कृतभोजनः ॥ ७० ॥ ब्रह्मचर्य्यसमोपेतस्त्रिकालम्पूजयञ्छिवम् ॥ ततस्तेनप्रभावेणसंजातोहंभवान्तरे ॥ ७१ ॥ सार्वभौमो महीपालोजातिस्मरणसंयुतः ॥ ततःसंख्याविहीनाश्चप्रासादाःकारितामया ॥ ७२ ॥ त्रिनेत्रस्यमहाराजकैलासशिख

हुआ तदनन्तर सदाशिव देवमें मेरी अधिक भक्तिहुई ॥ ६८ ॥ और नित्य भिक्षाटन करके बहुत धन मांगकर मैंने मन्दिरमात्रबनाकर लिंगको भलीभांति थापनकिया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर भिक्षान्न से भोजन किये व ब्रह्मविद्या से संयुत मैं भक्तिसे पशुपति सदाशिव देवको पूजता था ॥ ७० ॥ व त्रिकाल में चन्द्रभाल जीको पूजताहुआ मैं ब्रह्मचर्यसे संयुतथा तदनन्तर उसीके प्रभावसे दूसरे जन्ममें मैं जातिके स्मरणसे संयुत चक्रवर्त्ती भूपालहुआ तदनन्तर हे महाराज ! मैंने कैलास शिखरके समान

विलोचनजी के असंख्य मन्दिर निर्माण कराया और वैसेही ब्राह्मणों के द्वारा पुण्यसे उपजाहुआ पूजन निर्माण किया ॥ ७१ ॥ ७२ । ७३ ॥ हे राजन् ! यहां दानादिक अन्य किसी धर्मको मैं नहीं करताथा तदनन्तर बहुत कालसे चन्द्रभाल जी मेरे ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ उसके उपरान्त हे राजर्षे ! हँसतेहुये शिवजी नम्र वाणीसें बोले कि हे नृपोत्तम, जयदत्त ! तुम्हारी उस भक्तिसे मैं प्रसन्नहूं शीघ्रहीकहो मैं तुमको क्या मनोरथ देऊं तदनन्तर आठोंअंगोंसे प्रणामकरके अनेक भांतिसे स्तुतिकर ॥ ७५ । ७६ ॥ हे राजन् ! मैंने शिवजी से कहा कि मुझको अजर अमर कीजिये वे संसार के स्वामी वं अप्रमाण गतिवाले महादेव देवताजी वैसाही होगा

रोपमाः ॥ तथानिरूपितापूजाविप्रैःपुण्यसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ नान्यत्किञ्चित्करोम्यत्रधर्मंदानादिकंनृप ॥ ततःकालेन महतातुष्टोमेशशिशेखरः ॥ ७४ ॥ ततःप्रोवाचराजर्षेप्रहसञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ जयदत्तप्रतुष्टोस्मितवपार्थिवसत्तम ॥ ७५ ॥ भक्त्यातवाद्भुतंब्रूहिकिन्तेयच्छामिवाञ्छितम् ॥ प्रणिपत्यततोष्टाङ्गंस्तुत्वाचैवपृथग्विधम् ॥ ७६ ॥ मयाप्रोक्तोहरो राजन्कुरुमामजरामरम् ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतोन्तर्द्धानमेवहि ॥ ७७ ॥ अप्रमेयगतिर्देवो महादेवोजगत्पतिः ॥ ततोहंतुष्टिसंयुक्तो जरामरणवर्जितः ॥ ७८ ॥ ततःकालेनमहता गतेननृपसत्तम ॥ बहुकामाग्निसंतप्तः शिवभक्तिविवर्जितः ॥ ७९ ॥ यांयांपश्यामिरूपाढ्यां परनारींमनोरमाम् ॥ तांतांनिरीक्ष्यसुचिरं धर्षयामिततःपरम् ॥ ८० ॥ धर्मराजभयंत्यक्त्वा पार्थिवत्वंसमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्ममपापेनकर्मणा ॥ ८१ ॥ हाहाकारस्ततोजातस्स मग्रेधरणीतले ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो धर्मराजःशिवान्तिकम् ॥ ८२ ॥ अब्रवीत्प्रणिपत्योच्चैर्दुःखितस्तदनन्तरम् ॥

यह कहकर अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर वृद्धता व मृत्युसे रहित मैं प्रसन्नतासंयुत हुआ ॥ ७७ । ७८ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! बहुत समय व्यतीत होनेसे शिवजीकी भक्तिसे रहित मैं कामदेव की अग्नि से अत्यन्ततप्त हुआ ॥ ७९ ॥ उसके उपरान्त रूपसे संयुत जिस २ मनोहारिणी पराई स्त्रीको मैं देखताथा उस २ को बहुत देरतक देखकर धर्षण करताथा ॥ ८० ॥ हे राजन् ! धर्मराज का डर छोड़कर नृपताको भलीभांति प्राप्तहुआ तदनन्तर इसी अवसरमें मेरे पापके कर्म से समस्त भूतल में हाहाकारहुआ इसी समय में यमराज शिवजी के समीप प्राप्तहुये ॥ ८१ । ८२ ॥ तदनन्तर उच्चप्रकार से प्रणामकर दुःखितहो बोले कि हे देव ! प्रसन्न होतेहुये तुम

ने भूतल में जिस जयदत्त भूपति को वृद्धता व मरणसे रहित निर्माण कियाहै हे सुरश्रेष्ठ ! स्वभाव से किसी प्रकार नहीं किन्तु उस भूपके भयसे समस्त संसार सब धर्मोंसे बाहर करदियागया व उसके एकभी डर नहीं है जिससे कि मैं तुमसे भलीभांति कहताहूं ॥ ८३ । ८४ । ८५ ॥ इसलिये जबतक पतिव्रताओं की धर्षणा करने से समस्त धर्म मृत्युलोक से न नाशहोजावै तबतक शीघ्रही उसको मना करिये ॥ ८६ ॥ तदनन्तर ऐसा कहेहुये बड़े क्रोधसे संयुत महादेवजी ने हाथजोड़े व कांपते हुये मुझको भलीभांति आनकर शापदिया ॥ ८७ ॥ कि हे दुष्ट आचरणवाले ! जिस कारण तू ने विशेषकर निन्दित कर्म कियाहै उसीलिये अग्निसे पीठमें जलेहुये तुम

त्वयादेवमहीपालो जयदत्तोमहीतले ॥ ८३ ॥ योनिर्मितःप्रतुष्टेन जरामरणवर्जितः ॥ सर्वोभूपभयाल्लोकः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ८४ ॥ संजातोविबुधश्रेष्ठ नस्वभावात्कथंचन ॥ तस्यैकमपियेनास्ति भयंसम्प्रब्रवीमिते ॥ ८५ ॥ तस्माद्वारयतंशीघ्रं यावद्धर्मोननश्यति ॥ मृत्युलोकादशेषेण सतीनांधर्षणेनच ॥ ८६ ॥ एवमुक्तस्ततोदेवः कोपेनमहतान्वितः ॥ शशापमांसमानीय वेपमानंकृताञ्जलिम् ॥ ८७ ॥ यस्माद्दुष्टसमाचारकृतंकर्मविगर्हितम् ॥ तस्मात्पृष्ठेग्नितोदग्धः कमठोवैभविष्यसि ॥ ८८ ॥ ततोमयासुदीनेनप्रार्थितःपरमेश्वरः ॥ शापान्तंमेकुरुष्वाशु कुरुष्वचदयांमम ॥ ८९ ॥ ततस्तेनपुनःप्रोक्तं कल्पान्तेशतसंख्यके ॥ स्वशरीरंपुनःप्राप्य मद्गणस्त्वंभविष्यसि ॥ ९० ॥ एतस्मिन्नन्तरेकूर्म्मस्सञ्जातोहंमहीपते ॥ समुद्रसलिलेप्राप्य संस्थितोदुःखितोनिशम् ॥ ९१ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य राजंस्त्वंभूतलेस्थितः ॥ यजनार्थेसमानीतस्समुद्रसलिलात्त्वया ॥ ९२ ॥ स्थापितोभूमिपृष्ठेतु मन्त्रैस्संस्तम्भितस्त

निश्चयकर कछुवा होवोगे ॥ ८८ ॥ तदनन्तर अतिदीन मैंने परमेश्वर (शिव) जीसे प्रार्थना किया कि मेरे ऊपर दयाकीजिये व शीघ्रही मेरेशापका अन्तकीजिये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर उनने फिर कहा कि सौ संख्यक कल्पों के अन्तमें अपने शरीर को पाकर तुम फिर मेरे गण होगे ॥ ९० ॥ इसी अवसरमें हे भूपते ! मैं कछुवाहोगया व सागरके पानीमें प्राप्तहोकर निरन्तर दुःखित होताहुआ भलीभांति टिकता भया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! किसी समय तुम भूतलमें टिकेथे और

तुमने यज्ञ करनेके लिये मुझको समुद्रके जलसे भलीभांति आना ॥ ९२ ॥ व भूपृष्ठमें थापन किया तथा मन्त्रोंसे भलीभांति स्तम्भन किया तदनन्तर मेरे ऊपर सैकड़ों, हज़ारों यज्ञैं कीगईं ॥ ९३ ॥ और तुमसे कीहुई यज्ञोंसे मेरी पीठ सब ओर जलगई हे महाराज ! जलाती हुईभी उस यज्ञाग्निसे उससमय ॥ ९४ ॥ महेश्वरजी की प्रसन्नतासे मेरे प्राणोंका पयान न हुआ केवल ताप होताथा जिस प्रकार कि पहले पातक कियागयाथा ॥ ९५ ॥ वैसेही महादेव जी के क्रोध से वह सब निस्सन्देह भोग कियागया इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! जब तुम स्वर्गको प्राप्तहुये तब ॥ ९६॥ तदनन्तर जलसे पूरित भूतलमें एकार्णव (एकही समुद्र) होनेपर तैरताहुआ मैं

था ॥ ममोपरिततोयज्ञाः कृताश्शतसहस्रशः ॥ ९३ ॥ क्रियमाणैस्त्वयादग्धा ममपृष्ठिस्समन्ततः ॥ दहतापिमहाराज तेनयज्ञाग्निनातदा ॥ ९४ ॥ प्रसादनान्महेशस्यनमेप्राणात्ययोभवत् ॥ केवलंजायतेदाहो यथापापंपुराकृतम् ॥ ९५ ॥ अनुभूतंचतत्सर्वं हरकोपादसंशयम् ॥ अथप्राप्तेदिवंचैव त्वयिपार्थिवसत्तम ॥ ९६ ॥ एकार्णवेतुसञ्जाते जलपूर्णेधरातले ॥ सम्प्राप्तःप्लवमानस्तु ततोहंमानसंसरः ॥ ९७॥ षण्णवतिप्रमाणेन कल्पाममचसंस्थितिः ॥ चतुर्भिरपरैर्मोक्षः कूर्म्मत्वात्सम्भविष्यति ॥ ९८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं दीर्घायुष्यस्यकारणम् ॥ हरप्रासादकरणाद्बहुकालार्चनाद्विभोः ॥ ९९ ॥ कूर्म्मत्वञ्चयथाजातं वामदेवस्यकोपतः ॥ सत्यंवदमहाभाग गृहायातस्यकिन्तव ॥ ३००॥ करोमिसाम्प्रतंकृत्यं शत्रोरपिहृदिस्थितम्॥त्वयामेसुचिरंकालं दग्धापृष्ठिर्मखाग्निना ॥ १ ॥ अद्यापिचप्रपश्यामि तांज्वलन्तीमिवस्थिताम्॥ एतस्मात्कारणान्नष्टस्त्वांदृष्ट्वाहंमहीपते ॥ २ ॥ कस्मात्त्वंनगतस्स्वर्गंविमानेपिस

मानसरोवर में भलीभांति प्राप्तहुआ ॥ ९७ ॥ और छानबे के प्रमाण से कल्प मेरी स्थिति को हुये हैं व और चार कल्पोंके बाद कच्छपपनसे छूटना होवैगा ॥ ९८ ॥ यह दीर्घ आयुर्बल का समस्त कारण तुमसे कहागया जोकि शिवजी के मन्दिर करने से व व्यापक (सदाशिव) जीको बहुत समय पूजने से हुआहै ॥ ९९ ॥ व सदाशिवजी के क्रोधसे जिस प्रकार कच्छपपन हुआ वह कहागया हे महाभाग ! घरमें आयेहुये तुम्ह शत्रुके भी हृदयमें टिकेहुये किस कार्यको मैं इससमय करूं यह सत्य कहिये तुमने यज्ञोंकी अग्निसे मेरी पीठ बहुत समयतक जलायाहै ॥ ३०० ।३०१ ॥ हे भूपते ! आजभी जलतीहुई सी स्थित उस पीठको देखताहूं इसी कारणसे

तुमको देखकर मैं अदृश्य हुआथा ॥ २ ॥ व विमान के भी भलीभांति प्राप्त होनेपर तुम स्वर्ग को किस लिये नहीं गये क्योंकि इसी कारण राजा लोग धर्म करते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि स्वर्ग में टिकेहुये मनुष्यों को नित्यही गिरने से डर रहता है इस लिये मैं वहां न जाऊंगा किन्तु विशेषकर मोक्षके लिये यत्न करूंगा ॥ ४ ॥ हे मित्र ! सो तुम यदि घर में आयेहुये मेरा कार्य करो व यदि तुम्हारे मित्रताहै तो मुझ से बहुत दिनवाले प्राणीको कहिये ॥ ५ ॥ कच्छप बोला कि लोमशनामक विप्रर्षि मुझ से पुराने हैं मैंने देखा नहीं है किन्तु नदी के किनारे भलीभांति टिकेहुये वे सुनेजाते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि तो आइये यत्न करतेहुये सब मुनि के

मागते ॥ एतस्मात्कारणाद्धर्मं प्रकुर्वन्तिनराधिपाः ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ स्वर्गस्थानाञ्चलोकानां नित्यञ्चपतनाद्भयम् ॥ तन्नयास्याम्यहंतत्र यतिष्यामिविमुक्तये ॥ ४ ॥ सत्वंकरोषिचेत्कृत्यं गृहायातस्यमेसखे ॥ चिरन्तनंकथय मेयद्यस्तितवसौहृदम् ॥ ५ ॥ कूर्मउवाच ॥ लोमशोनामविप्रर्षिः समत्तोस्तिचिरन्तनः ॥ श्रूयतेनमयादृष्टो नदीतीरंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ तदागच्छतगच्छामो यत्तास्सर्वेमुनिंस्वयम् ॥ पृच्छामोबहुकालस्य जीवितस्यचकारणम् ॥ ७ ॥ अथतेसहितास्तत्र व्योममार्गेणप्रस्थिताः ॥ अथतेददृशुस्तत्र लोमशञ्चनिराश्रयम् ॥ ८ ॥ तेतन्दृष्ट्वामहात्मानं कृत्वातस्यप्रदक्षिणाम् ॥ उपविष्टास्ततस्सर्वे स्वागतेनाभिनन्दिताः ॥ ९ ॥ पृष्टास्तेपि पुनश्चैव केयूयंकिमिहागताः ॥ विश्रब्धंकथ्यतांमह्यं येनसर्वंकरोम्यहम् ॥ १० ॥ कूर्मउवाच ॥ मार्कण्डोनामविप्रर्षिस्सप्तकल्पस्मरोह्ययम् ॥ इन्द्रद्युम्नेनचानीतो भूभुजानेनसन्मुने ॥ ११ ॥ बकस्यास्यसमीपेतु नाडीजङ्घस्यधीम

समीप चलें व बहुत समयतक जीनेका कारण आपही पूंछें ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने साथही वहां आकाशमार्गसे प्रयाण किया इसके उपरान्त उन्होंने वहां बिन आश्रयवाले लोमश मुनि को देखा ॥ ८ ॥ तदनन्तर उन महात्माको देखकरके उनकी प्रदक्षिणाकर अच्छी तरह आने के प्रश्नसे प्रसन्न होतेहुये वे सब समीप बैठ गये ॥ ९ ॥ व फिर उनसे भी पूंछा कि तुम लोग कौन हो और यहां किसलिये आये हो विश्वास कियेहुये वचन को मुझसे कहो कि जिस से मैं सब करूं ॥ १० ॥ कच्छप बोला कि हे सन्मुने ! इन इन्द्रद्युम्न भूपतिने सात कल्पों के स्मरणवाले इन मार्कण्डनामक ब्रह्मर्षिको इस बुद्धिमान् नाडीजंघ बगुलाके समीप आनाथा अपनासे पुराने

व आने से दूने आयुर्बलवाले इस बगुला को दीर्घआयुर्बलवाला ऐसा जानकरइन्द्रद्युम्न की वार्चा के लिये मार्कण्डेयजी इसको लाये थे अब उन इन्द्रद्युम्नजी ने इसकी वार्ताको नहीं जाना ॥ ११ । १२ । १३ ॥ तब दोनों भी इस घुघुवाके समीप आये व हे सद्द्विज ! उस बगुला के प्रमाण से दूने कल्प इस महात्मा घुघुवा के वर्त्तमान हैं परन्तु इसने राजाको नहीं जाना तदनन्तर तीनों भी गृध्रराज के समीप लाये गये ॥ १४ । १५ ॥ हे सद्द्विज ! इस महात्मा के छप्पन प्रमाणसे कल्प वर्त्तमान हैं परन्तु इसने इन्द्रद्युम्न नृपति को नहीं जानाहै ॥ १६ ॥ हे द्विज! उन्हींनेमुझको दीर्घआयुर्बलवाला जानकर मित्रभावसे उनचारोंको भी मेरेसमीप भलीभांति

इन्द्रद्युम्नस्यवार्तार्थं द्विगुणायुषमात्मनः ॥ अस्यवार्तामवि
तः ॥ चिरायुरितिविज्ञाय आत्मनश्चचिरन्तनम् ॥ १२ ॥ इन्द्रद्युम्नस्यवार्तार्थं द्विगुणायुषमात्मनः ॥ अस्यवार्तामवि
ज्ञातो यदासपृथिवीपतिः ॥ १३ ॥ तदाद्वावपिचायातावुलूकस्यास्यसन्निधौ ॥ द्विगुणास्तत्प्रमाणेन कल्पाश्चास्य
महात्मनः ॥ १४ ॥ वर्तन्तेनैवविज्ञातो नृपश्चानेनसद्द्विज ॥ ततस्त्रयोपिचानीता गृध्रराजस्यचान्तिकम् ॥ १५ ॥ षट्
पञ्चाशत्प्रमाणेन कल्पाश्चास्यमहात्मनः ॥ वर्तन्तेनैवविज्ञातो नृपोह्येतेनसद्द्विज ॥ १६ ॥ चत्वारोपिसमानीतास्ते
नैवचममान्तिकम् ॥ चिरायुषंचमांज्ञात्वा मित्रभावेनतेद्विज ॥ १७ ॥ मयाप्यसौपरिज्ञातो दूरादेवसमागतः ॥ इन्द्र
द्युम्नोध्रुवंह्येष दग्धापृष्ठिःपुराामम ॥ १८ ॥ येनयज्ञाग्निनामन्त्रैः स्तम्भयित्वाक्षितौपुरा ॥ ततोहंतद्भयान्नष्टो गृध्रा
द्यैश्चनिवारितः ॥ १९ ॥ उपालम्भैस्सुबहुभिस्तद्भयाज्जलमाविशम् ॥ मयाश्रुतश्चभूपेन नहन्तव्यःपराङ्मुखः ॥
२० ॥ इन्द्रद्युम्नेनमेपृष्ठिर्येनदग्धामखाग्निना ॥ एतस्मिन्नन्तरेस्वर्गाद्देवदूतोमहामनाः ॥ २१ ॥ विमानवरमारु

आनाहै ॥ १७ ॥ मैंने भी दूरही से भलीभांति आयेहुये इन को जानलिया कि यह निश्चयकर इन्द्रद्युम्न है जिसने पुरातनसमय मन्त्रों के द्वारा पृथ्वी में रोंककर यज्ञकी अग्नि से पहले मेरी पीठ को जलाया है तदनन्तर उसके डर से मैं अदृश्यहोगया व गृध्रादिकों ने बहुत समझाने के वचनों से मनाकिया परन्तु मैं उसके डरसे जल में पैठगया क्योंकि जिसने यज्ञकी अग्नि से मेरी पीठ जलाई है उसी राजा से मैंने सुनाथा कि विमुख को न मारनाचाहिये इसी अवसर में स्वर्गसे उदार

मनवाला देवदूत ॥ १८ । १६ । २० । २१ ॥ उत्तम विमानपै चढ़ाहुआ उस महात्मा के समीप आया यह भूपति यश लोप होने के कारण स्वर्ग से गिरा था ॥ २२ ॥ तदनन्तर मेरे कहनेमात्रपर याने कहतेही स्वर्ग से विमान आया इसके अनन्तर हे द्विजोत्तम ! हमलोगों के विना यह स्वर्ग को नहीं गया ॥ २३ ॥ तदनन्तर मार्कण्डेयजी को छोड़कर तिर्यग्योनि में प्राप्त त्र पूंछतेहुये तीनों से मैंने अपना आयुर्बल कहा ॥ २४ ॥ कि जीतेहुये मेरे छानवे के प्रमाण से कल्प हुये हैं और जो तुम्हारे समीप भलीभाति बैठाहै इसने पहिलेही मुझ से पूंछा ॥ २५ ॥ कि अत्यन्तही बहुतादिनवाले को कहिये तब मैंने तुमको बतलाया इसी कारण से हम सब

ढःप्रायात्तस्यमहात्मनः ॥ कीर्तिलोपाच्च्युतःस्वर्गादयमासीन्महीपतिः ॥ २२ ॥ ततोविमानमायातद्युक्तमात्रेमया
दिवः ॥ अथासौनगतस्स्वर्गं विनास्माभिर्द्विजोत्तम ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयंपरित्यज्य तिर्यग्योनिगतैस्त्रिभिः ॥ पृच्छ
द्भिस्तुमयाप्रोक्तमायुष्यंचात्मनस्ततः ॥ २४ ॥ षण्णवतिप्रमाणेन कल्पामेजीवतोगताः ॥ पृष्टोहंपूर्वमेतेन संस्थि
तस्तवपार्श्वतः ॥ २५ ॥ चिरन्तनतमंब्रूहि मयात्वंविनिवेदितः ॥ एतस्मात्कारणात्प्राप्ता वयंसर्वेतवान्तिकम् ॥ २६ ॥
तस्माद्यत्पृच्छतेभूयस्तस्मैत्वंतत्प्रकीर्तय ॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ लोमशोप्यथतंप्राह विश्रब्धंपृच्छपार्थिव ॥ २७ ॥ अ
वश्यंकथयिष्यामि यन्मात्वंपरिपृच्छसि ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ कस्मात्त्वंग्रीष्मकालेपि मध्यंप्राप्तेदिवाकरे ॥ २८ ॥
निवासार्थंगृहंरम्यं किमर्थंनकरोषिवै ॥ लोमशउवाच ॥ कस्यार्थंक्रियतेगेहमनित्यंजीवितंयतः ॥ २९ ॥ यदिस्याच्छ्वत
तोगेहं तदर्थंक्रियतेचतत् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ सर्वेषामेवलोकानां चिरायुःश्रूयतेभवान् ॥ ३० ॥तेनाहमपिसम्प्राप्तोभव

तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ २६ ॥ इसलिये जो राजा पूंछे उससे तुम उसको कहो भर्तृयज्ञ बोले कि इसके अनन्तर लोमशने भी उससे कहा कि हे राजन् ! विश्वास-पूर्वक पूंछिये ॥ २७ ॥ तुम मुझ से जो पूंछोगे उसको अवश्य कहूंगा इन्द्रद्युम्न बोले कि ग्रीषमसमय में भी सूर्यनारायण को मध्य में प्राप्त होनेपर तुम किसलिये मनोहर घर निवासके निमित्त नहीं करतेहो लोमश बोले कि जिस कारण जीवन अनित्यहै याने सदैव नहीं रहता इसलिये घर किसके लिये किया जावै ॥२८।२६॥ यदि जीवन नित्य होवै तो उसके लिये वह घर कियाजावै इन्द्रद्युम्न बोले कि सबही मनुष्यों के बीच में आप दीर्घआयुर्बलवाले सुने जातेहो ॥ ३० ॥ उसी

कारण मैं भी आपके दर्शन की कामना से भलीभांति प्राप्त हुआ लोमश बोले कि प्रतिकल्प के भलीभांति प्राप्त होनेपर मेरा एक रोग नाश होताहै ॥ ३१ ॥ जब सब रोमों का अभाव होगा उसके उपरान्त मेरा नाश होगा तुम मेरे इस शरीर में देखो जो कि रोमों से रहित होगया है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उसी कारण से मैं घरको नहीं बनाताहूं इन्द्रद्युम्न बोले कि तुमने कौन कर्म कियाहै कि जिससे ऐसा पुष्ट जीवन पायाहै ॥ ३३ ॥ क्या यह दानका प्रभावहै अथवा तपस्या या नियम का प्रभाव है लोमश बोले कि पुरातनसमय दरिद्रता से संयुत मैं शूद्र हुआहूं ॥ ३४ ॥ तब सदैव सेवकाई के लिये भूतलमें घूमताथा क्षुधा से दुबला व प्याससे दुःखित मैं बडे

दर्शनकाम्यया। लोमशउवाच॥ कल्पेकल्पेचसम्प्राप्ते रोमैकंममनश्यति ॥ ३१ ॥ अभावेसर्वरोम्णांच ततोनाशोभविष्यति ॥ पश्यत्वंमच्छरीरेस्मिन्सञ्जातंरोमवर्जितम् ॥ ३२ ॥ नकरोमिगृहन्तेन कारणेनमहीपते ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ किन्त्वयाविहितंकर्म येनेदृग्जीवितंस्थिरम् ॥ ३३ ॥ किन्दानस्यप्रभावोयं तपसोनियमस्यच ॥ लोमशउवाच ॥ अहमासंपुराशूद्रो दारिद्र्येणपरिप्लुतः ॥ ३४ ॥ भ्रमामिमेदिनीपृष्ठे तदादास्यकृतेसदा ॥ कर्मयोगेनमहता सम्प्राप्तो हाटकेश्वरे ॥ ३५ ॥ क्षुत्क्षामस्सुपिपासार्तो यत्रैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ अवधूतंततोलिङ्गं यावद्दृष्ट्वास्वयम्भुवम् ॥ ३६ ॥ स्नापितंतोयमादाय स्थितमेतत्सुनिर्म्मलम् ॥ ततस्तुकमलैरेतैर्मयापूजाविनिर्मिता ॥ ३७ ॥ अथपूजांविनिर्वर्त्य यावन्मार्गसमाश्रितः ॥ क्षुत्क्षामकण्ठस्यततः प्राणानष्टास्तदामम ॥ ३८ ॥ अथाहंब्राह्मणगृहेजातोजातिस्मरस्तदा ॥ सर्वंस्मरामिभूपालदेवदेवस्यपूजनात् ॥ ३९ ॥ ततोमूकत्वमापन्नोनैवजल्पामिकिञ्चन ॥ ईशानइतिमेनाम पिताचक्रेप्रहर्षितः ॥ ४० ॥

भारी कर्म के योग से हाटकेश्वरक्षेत्र में भलीभांति प्राप्तहुआ जहां यह उत्तम लिङ्गथा तदनन्तर जबतक आपहीमे उपजेहुये मलिन लिङ्ग को देखकर ॥ ३५ । ३६ ॥ जल लेकर नहवाया तबतक यह अतिनिर्मल स्थित होगया तदनन्तर मैंने इन कमलों से पूजन किया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर पूजन समाप्त करके जबतक मार्ग पै भलीभांति आश्रित हुआ तब तक उस समय क्षुधा से दुबले कण्ठवाले मेरे प्राण नाश होगये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर उस समय जाति के स्मरणवाला मैं ब्राह्मण के घरमें पैदाहुआ हे राजन् ! देवदेव शिवजीके पूजनसे मैं सब स्मरण करताहूं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर गूंगेपन को प्राप्त मैं नहीं बोलताथा और जिसलिये पहले

आराधन कियेहुये ईशानदेव से मैं दियागया था इसलिये प्रसन्नहोतेहुये पिताजीने मेरा ईशान ऐसा नाम किया और संसार में भलीभांति टिकेहुये चरितको देखकर मैं उत्तम वैराग्यको प्राप्तहुआ ॥ ४० । ४१ ॥ और मेरे पिताने बहुत प्यारसे औषधों का प्रयोग किया व वैसेही बाधा के लिये मन्त्रवादको सिद्धकिया ॥ ४२ ॥ हे नरनायक ! तदनन्तर संसारमें उपजेहुये पिता व माताके बहुतसे कर्मको देखकर मेरे हास्य पैदाहोताथा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! क्रमसे युवावस्थाको प्राप्तहुआ जब २ उन दोनों मातापिताओं को छोड़कर रातमें मैं यहां भलीभांति आताथा ॥ ४४ ॥ तब २ हे नृपश्रेष्ठ ! सावधान व प्रसन्नमनवाला होकर नित्यही उत्तम भ-

ईशानेनयतोदत्तः पूर्वमाराधितेनच ॥ वैराग्यंपरमंप्राप्तो दृष्ट्वासंसारसंस्थितम् ॥ ४१ ॥ पितामेबहुवात्सल्याद्भेषजा नित्वयोजयत् ॥ बाधार्थमन्त्रवादश्च तथाचैवोपपादितम् ॥ ४२ ॥ ततोमेजायतेहास्यं निजचित्तेनराधिप ॥ दृष्ट्वासं सारजंकर्म पितुर्मातुश्चभूरिशः ॥ ४३ ॥ ततश्चयौवनंप्राप्तःक्रमेणनृपसत्तम ॥ यदायदानिशित्यक्त्वा तावुभौचात्रस ङ्गतः ॥ ४४ ॥ भूत्वाहृष्टमनानित्यं पूजयामिसमाहितः ॥ ईशानंपरयाभक्त्या संस्नाप्यसलिलेनच ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणी तीर्थजातेन त्रिकालंनृपसत्तम ॥ शिलोञ्छवृत्तिमासाद्य प्राणयात्रांसमाचरन् ॥ ४६ ॥ नारङ्गैर्बदरैश्शाकैश्चिर्भटैःफल पत्रकैः ॥ ततोमेभगवान्रुद्रस्सर्वदेवेश्वरोहरः ॥ ४७ ॥ अब्रवीद्दर्शनङ्कत्वा मेघगम्भीरयागिरा ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स वरंवरयसुव्रत ॥ ४८ ॥ अदेयमपिदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ततस्तंप्रणिपत्योच्चैः स्तुत्वाचैवपृथग्विधैः ॥४९॥

क्तिसे ब्राह्मणी तीर्थ में उपजेहुये जलसे तीनों समयों में भलीभांति नहवाकर नित्य शिवजी को पूजताथा व शिलोञ्छ यानेखेत में चिड़ियादिकों के चुनजानेके बाद बचे अन्नके द्वारा व बाजार का अन्न बीनने से जीविका को प्राप्तहोकर नारंगी, बेर, शाक व चिर्भटों तथा फलों व पत्तोंसे प्राणयात्रा को भलीभांति करताहुआ मैं स्थितरहता था तदनन्तर समस्तदेवोंके स्वामी भगवान् शिवदेवजी मेरेदर्शन में प्राप्तहोकर मेघके समान गम्भीरवाणी से बोले कि हे उत्तमनियमोंवाले, वत्स ! मैं तुमसे प्रसन्नहूं वरदानको मांगो ॥ ४५ । ४६ । ४७ । ४८ ॥ यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि न देने के योग्य पदार्थ को भी दूंगा तदनन्तर उनको उच्चप्रकार से प्र-

ध्यानकर व अनेक प्रकारों से स्तुतिकर ॥ ४९ ॥ मैंने कहा-कि हे विभो ! मुझको वृद्धता व मृत्युसे रहित कीजिये श्रीभगवान् शिवजी बोले कि जिसलिये इस मृत्युलोकमें कभी अमरता नहीं है ॥ ५० ॥ इसलिये तुम अपने जीने की मर्यादा करो याने किसी समयतक हद्दबांधलेवो तदनन्तर मैंने शिव भगवान्से कहा कि जब कल्प का अन्त प्राप्तहोवै तब ॥ ५१ ॥ हे सुरेश्वर ! मेरेरोमोंके मध्यमेंसे एक रोमका नाशहोवै और जब सबरोमोंका विनाशहोजावै ॥५२॥ तब हे शिवजी ! सदैव मेरी अमर गणताहोवै ऐसाही होगा यह कहकर शिवजीने कहा कि हे द्विजोत्तम ! सदैव ब्राह्मणीपूर्वक तीर्थमें नहाकर उस ब्राह्मणीतीर्थ में उपजेहुये जलसे तीनों कालमें मेरे

मयाप्रोक्तंकुरुविभो जरामरणवर्जितम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अमरत्वंयतोनास्ति मर्त्यलोकेत्रकर्हिचित् ॥ ५० ॥ मर्यादांकुरुतस्मात्त्वं जीवितस्यस्वकस्यवै ॥ ततोमेभगवानुक्तःकल्पान्तेसमुपस्थिते ॥ ५१ ॥ रोम्णामेकस्यमेनाशो जायतांत्रिदशेश्वर ॥ यदाचसर्वरोम्णाञ्च विनाशस्सम्प्रजायते ॥ ५२ ॥ तदामरगणत्वञ्च जायताम्मेसदाशिव ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा परंलिङ्गंसदामम ॥ ५३ ॥ स्नात्वाजलेनचैतेन ब्राह्मणीसम्भवेनच ॥ ब्राह्मणीपूर्वतीर्थेच त्रिकालंद्विजसत्तम ॥ ५४ ॥ अन्योपियोनरोभक्त्या पूजयिष्यतिमामिह ॥ स्नापयिष्यतिसद्भक्त्या विपाप्मासभविष्यति ॥ ५५ ॥ नापमृत्युर्भवेत्तस्य कदाचिद्द्विजसत्तम ॥ सकृत्सम्पूजयित्वाच ब्रह्माब्जैर्मत्कलेवरम् ॥ ५६ ॥ सकृत्पिबतियस्तोयं ब्राह्मयतीर्थसमुद्भवम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा तत्क्षणाज्जायतेहिसः ॥ ५७ ॥ एवमुक्त्वाथदेवेशस्ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ अहन्तुसंस्थितश्चात्र ततःप्रभृतिपार्थिव ॥ ५८ ॥ पूजयानश्चसद्भक्त्या लिङ्गमेतत्सदैवहि ॥ एतस्मात्कारणा

उत्तम लिंगको पूजो व औरभी जो मनुष्य भक्तिसे पूजैगा व यहां उत्तम भक्तिसे मुझको नहवावैगा वह पापरहित होगा ॥ ५३।५४।५५॥ व हे द्विजोत्तम ! उसकी कभी अपमृत्यु न होगी ब्रह्माके तीर्थ से उपजेहुये कमलोंसे मेरे शरीरको एकबार भलीभांति पूजकर ॥ ५६ ॥ जो पुरुष ब्राह्मयतीर्थमें उपजेहुये जलको एकबार पीताहै वह उसी क्षण समस्तपातकों से विशेषकर शुद्धमनवाला होताहै ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर देवों के स्वामी शिवजी अन्तर्द्धानहोगये हे राजन् ! तबसे लगाकर उत्तम

भक्तिसे सदैवही इसलिंगको पूजताहुआ मैं यहां भलीभांति टिकाहूं इसीकारण शंकरजी की प्रसन्नता से मेरा आयुर्बल ऐसा विस्तारवाला है इसमें और कारण नहीं है
इन्द्रद्युम्न बोले कि तुम्हारे साथ मैं भी इसलिंगको पूजूंगा ॥ ५८ । ५९ । ६० ॥ व अन्य कर्म न करूंगा मेरेहृदयमें यह निश्चय है लोमश बोले कि हे महाभाग ! ऐ-
साहीकरो तुम मनोरथ को पावोगे ॥ ६१ ॥ क्योंकि महादेवजी के भक्त मनुष्य का मनोरथ दुर्लभ नहीं होता है कच्छप से संयुक्त मार्कण्ड, गीध, घुघुवा व नाडी जंघ
घरको जावै और तुम मेरे आश्रममेंटिकोतदनन्तर उन सबोंनेकहा कि हे नरनायक!तुम्हारे विना हमसब फिरभी अपनेघरको न जावैंगे किन्तु आपसे जो यहलिंग पूजागया

ऊजातं ममायुरितिविस्तृतम् ॥ ५९ ॥ शङ्करस्यप्रसादेननान्यदस्तीहकारणम् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ अहमप्यर्चयिष्या
मि लिङ्गमेतत्त्वयासह ॥ ६० ॥ नान्यच्चैवकरिष्यामि ममैषहृदिनिश्चयः ॥ लोमशउवाच ॥ एवंकुरुमहाभाग त्वमवा
प्स्यसिवाञ्छितम् ॥ ६१ ॥ हरभक्तस्यलोकस्य वाञ्छितन्नास्तिदुर्लभम् ॥ नाडीजङ्घोगृहंयातु मार्कण्डगृध्रकौशिकाः ॥
६२ ॥ कच्छपेनसमायुक्तास्त्वंहितिष्ठममाश्रमे ॥ ततःप्रोचुश्चतेसर्वे नवयन्तुनरेश्वर ॥ ६३ ॥ त्वांविनाचैवया
स्यामो भूयएवनिजालयम् ॥ लिङ्गमाराधयिष्यामो यदेतद्भवतार्चितम् ॥ ६४ ॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे लोमशस्यवराश्र
मे ॥ तस्थुस्संपूजयामासुस्त्रिकालंलिङ्गमेवतत् ॥ ६५ ॥ संस्नाप्यब्राह्मणीतोयैर्ब्रह्माब्जैःपूजयन्तिच ॥ कस्यचित्त्वथ
कालस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥ ६६ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सम्प्राप्तस्तत्रसद्द्विजाः ॥ अथतेनारदंदृष्ट्वा कृत्वाचैवार्हणक्रि
याम् ॥ ६७ ॥ विश्रान्तञ्चततोज्ञात्वा पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ शापभ्रष्टावयंसर्वे यतस्संवर्तदर्शनात् ॥ ६८ ॥ वकाद्याश्चैव

है उसीको आराधन करैंगे ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ ऐसा कहकर वे सब लोमशजी के उत्तम आश्रम में टिके व त्रिकाल उसलिंगही को भलीभांति पूजनेलगे ॥ ६५ ॥ वे
सब ब्राह्मणीतीर्थ में उपजेहुये जलसे भलीभांति नहवाकर व ब्रह्मतीर्थ में उपजेहुये कमलों से पूजते थे इसके अनन्तर किसी समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥ ६६ ॥ हे
उत्तम ब्राह्मणो ! वहां तीर्थयात्रा के प्रसंगसे भलीभांति प्राप्तहुये इसके अनन्तर उन्हों ने नारदजी को देखकर व पूजनकर्म करके तदनन्तर विश्राम कियेहुये जानकर
विनयसंयुत होतेहुये पूंछा कि हे महामुने ! जिसलिये हम सब शापसे भ्रष्टहुये है उसीकारण संवर्तमुनिके दर्शनके निमित्त चारों बकुलादि जन्तु व कछुवा घूमताहै

परन्तु वे मुनि कहीं भी नहीं जानेजाते हैं कि किस स्थानमें टिके हैं ॥ ६७ । ६८ । ६९ ॥ वे किस रूपवाले व किस आचरणवाले तथा कहां प्रमाण स्थितहै सो तुम यदि जानतेहो कि जहांपै वे मुनि भलीभांति टिके हैं ॥ ७० ॥ तो हे महाभाग ! कहिये क्योंकि तुमको कुछ अगोचर नहीं है याने तुम सब जानतेहो नारदजी बोले कि गुप्त आकारसे टिकेहुये उन मुनिश्रेष्ठ संवर्त्तको मैं भलीभांति जानताहूं अन्यनर किसीप्रकार नहीं जानताहै वे अवधूत (मैले कुचैले) महामुनि नित्यही काशीजी में टिकेरहते हैं ॥ ७१।७२ ॥ जोकि वसनहीन व मलसे लिपटेहुये अंगवाले तथा सदैव वनमें भलीभांति टिके रहते हैं वे भिक्षा मांगने के लिये कुतुप (आठवें मुहूर्त्त)

चत्वारः कमठश्चमहामुने॥नसविज्ञायतेकापि कस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ६९ ॥ किंरूपःकिंसमाचारः प्रमाणःकुत्र संस्थितः ॥ सत्वंयदिविजानासि यत्रससंस्थितोमुनिः ॥ ७० ॥ तद्वदस्वमहाभाग नकिञ्चित्तेस्त्यगोचरम् ॥ नारद उवाच ॥ अहंजानामितंसम्यक् संवर्तम्मुनिसत्तमम् ॥७१॥ गुप्ताकारेणतिष्ठन्तं नान्योवेत्तिकथञ्चन ॥ वाराणस्यांस्थितोनित्यं सोवधूतोमहामुनिः ॥ ७२ ॥ विवस्त्रोमलदिग्धाङ्गोसदारण्यंसमाश्रितः ॥ भिक्षार्थंकुतुपेकाले समागच्छतितांपुरीम् ॥ ७३ ॥ पाणिपात्रकृताहारो गृहैःकैश्चित्सदैवहि ॥ भूयोपियातिसायाह्ने कञ्चिदेववनान्तरम् ॥ ७४ ॥ तस्यांपुर्यान्तथारूपाः शतशोथसहस्रशः ॥ तिष्ठन्तितापसश्रेष्ठास्तस्यवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ ७५ ॥ भवद्भिस्सहिविज्ञेयो मम वाक्यादसंशयम् ॥ वाराणस्यांप्रतोल्याञ्च स्थापनीयंसुयत्नतः ॥ ७६ ॥ कुणपञ्चसुगुप्तञ्च यथानोवेत्तिकश्चन ॥ यास्यन्तितापसास्सर्वे तमप्याक्रम्यभूरिशः ॥ ७७ ॥ संवर्तोदिव्यदृष्टिस्तु शवंनातिक्रमिष्यति ॥ निवर्तनन्तुयश्चक्रे भू

में उस पुरीको भलीभांति आते हैं ॥ ७३ ॥ व किसी घरोंमें सदैव हाथरूपी पात्र में भोजन कियेहुये फिरभी सन्ध्यासमय में किसी दूसरे वनको जाते हैं ॥ ७४ ॥ और उसपुरी में वैसेही रूपवाले सैकड़ों व हज़ारों उत्तम तपस्वी देखपड़ते हैं मैं उसका लक्षण कहूंगा ॥७५॥ आपलोगों से निस्सन्देह वहमेरे वचन से जानने योग्य होगा जिस प्रकार कोई न जानै उसी प्रकार काशीपुरी में अति छिपाहुआ मुरदा बीचगांवकी गलीमें उत्तम यत्नसे धरना चाहिये उसको भी नांघकर बहुत से सब तपस्वी जावैंगे ॥ ७६ । ७७ ॥ और दिव्यदृष्टिवाला संवर्त्त मुरदाको न नांघैगा इस लिये भूमिमें प्राप्त मुरदाके समीप से जो निवर्त्तन करै याने लौटपड़ै ॥ ७८ ॥ वह

संवर्त्त जानने योग्यहै और तदनन्तर उससे पूंछना चाहिये यदि वह पूंछै कि आपलोगों को किसने मुझे भलीभांति बतलाया है ॥ । ७९ ॥ तो यह कहना चाहिये कि नारदने बतलाया है वे तुमको सदैव जानतेहैं और यदि वह फिर पूंछै कि वे नारद जी कहां टिकेहैं ॥ ८० ॥ तो यह कहना चाहिये कि तुमको बतलाकर वे अग्नि में पैठगये नारदजी के उस वचनको सुनकर उसके दर्शनकी लालसावाले वे समस्त लोमशादिक काशीपुरी को प्राप्तहुये व गांवके भीतरीमार्ग में जानेयोग्य मनुष्यों से अदृश्य मुरदेको थापकर ॥ ८१।८२ ॥ और बड़े उपायसे देखतेहुये वे सबदूर बैठे तदनन्तर कुतुप समय में वह संवर्त्त भलीभांति आया ॥८३॥ पहले नारद महात्मा

गतात्कुणपाश्रयात् ॥ ७८ ॥ ससंवर्तःपरिज्ञेयः प्रष्टव्यश्चततःपरम् ॥ यदिपृच्छतिकेनाहं भवतांसन्निवेदितः ॥ ७९ ॥ नारदेनततोवाच्यं सत्वांजानातिवैसदा ॥ यदिपृच्छतिभूयस्सनारदःक्वसतिष्ठति ॥ ८० ॥ ततोवाच्योनिवेद्यत्वां प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ तच्छ्रुत्वानारदवचस्सर्वेतेलोमशादयः ॥८१ ॥ वाराणसींपुरींप्राप्तास्तस्यदर्शनलालसाः ॥ प्रतोल्यां कुणपंस्थाप्य गम्यलोकैरलक्षितम् ॥ ८२ ॥ सर्वेचैवस्थितादूरं प्रेक्षमाणाःप्रयत्नतः ॥ ततस्सकुतुपेकाले संवर्तस्तुसमागतः ॥ ८३ ॥ यादृग्रूपःपुराप्रोक्तो नारदेनमहात्मना ॥ सदृष्ट्वाकुणपन्तत्र दिव्यदृष्ट्यामहामुनिः ॥ ८४ ॥ निवृत्तःक्षुत्पिपासार्तो नैवशावमलङ्घयत् ॥ अथतेतंसमुद्दिश्य पृष्ठतोनुययुस्तदा ॥ ८५ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पन्तः प्रसादःक्रियतामिति ॥ सोपिनिर्भर्त्स्यमानस्तु निवर्तध्वमितिब्रुवन् ॥८६॥ मागच्छध्वंमत्समीपमितिप्रोच्यापलायत ॥ अथदूरतरङ्गत्वा सप्रोवाचक्षुधान्वितः ॥ ८७ ॥ केनादिष्टोस्मियुष्माकंसशीघ्रम्मेनिवेद्यताम् ॥ शापाग्नौयेनतम्पापं भस्मसात्प्र

ने जैसे रूपवाले संवर्त्त को कहाथा वैसाही वह महामुनि वहां दिव्यदृष्टि से मुरदे को देखकर ॥ ८४ ॥ लौटा व क्षुधा प्याससे विकल मुनिने मुरदाको न नांघा इसके अनन्तर उस समय उसको उद्देशकर खड़ेहो व प्रसन्नता कीजिये यह कहते हुये उन्होंने पीछे पयान किया और घुड़का हुआ वह मुनिभी तुमलोग लौटजावो ऐसा कहताहुआ ॥ ८५।८६ ॥ व मेरे समीप मतआवो यह कहकर भगा इसके अनन्तर बहुत दूरजाकर भूंखसे संयुत उसने कहा ॥ ८७ ॥ कि मुझे किसने तुमलोगों को

बतलाया है उसको शीघ्रही मुझसे बतलावो जिससे मैं शापरूपी अग्निमें उस पापीको सब भस्मकरूं ॥ ८८ ॥ वे बोले कि यहां टिकेहुये आपको हमलोगों से नारद ने भलीभांति कहा तदनन्तर कहकर वे नारदजी उसीक्षण अग्निमें पैठगये ॥ ८९ ॥ संवर्त्त बोले कि मैं सदैव उस दुष्टका शासन करनेवाला (दण्डदायक) हूं कि जिसने छिपेहुये आचरणों में भलीभांति टिकेहुये मुझको तुमलोगों से बतलायाहै ॥ ९० ॥ वे बोले कि हे भगवन्, महामुने! नारदजीने बहुत दिनोंसे ढूंढते हुये हमलोगों से तुमको कहाथा और कोई तुमको नहीं जानताहै ॥ ९१ ॥ हे द्विजेन्द्र! वे नारदजी हमलोगोंसे तुमको बतलाकर उसीक्षणही अग्निमें पैठगये उस विषयमें हमलोग

करोम्यहम् ॥ ८८ ॥ तेऊचुः ॥ नारदेनसमाख्यातो भवानत्रस्थितोहिनः ॥ कथयित्वाततोवह्नौ सम्प्रविष्टस्सतत्क्षणा
त् ॥ ८९ ॥ संवर्तउवाच ॥ अहंसदैवकर्ताच तस्यदुष्टस्यशासनम् ॥ निर्दिष्टोयेनयुष्माकं गुप्ताचारंसमाश्रितः ॥ ९० ॥
तेऊचुः ॥ भगवन्नारदेनोक्तस्त्वमस्माकंमहामुने ॥ चिरादन्वेषमाणानां नत्वांवेत्तिचकश्चन ॥ ९१ ॥ त्वांनिवेद्यसचा
स्माकं प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ तत्क्षणादेवविप्रेन्द्र नविद्मस्तत्रकारणम् ॥ ९२ ॥ संवर्तउवाच ॥ अहमप्यतिसंक्रुद्धः
शापात्कर्तुंसमुद्यतः ॥ एतदेवहियस्माच्च स्वयमेवकृतञ्चतत् ॥ ९३ ॥ तस्माद्वदथमेशीघ्रं कस्माद्यूयंसमागताः ॥ वि
रक्तस्यापितत्राहं भूयोयामिपुरीम्प्रति ॥ ९४ ॥ प्राणयात्राकृतेभिक्षांकरिष्यामिस्वयंयतः ॥ विशल्यःक्रियतांमार्गः
कुणपंभूगतञ्चयत् ॥ ९५ ॥ नोचेच्छापंप्रदास्यामि यद्येवन्नकरिष्यथ ॥ तथाहंनैववक्तव्यः कस्यचिच्चात्रसंस्थितः ॥
९६ ॥ अन्वेषयतिमान्नित्यं मरुत्तःपृथिवीपतिः ॥ यज्ञार्थंनैवतंयज्ञं याजयिष्येकथञ्चन ॥ ९७ ॥ धिषणेनपरित्यक्तो

कारण नहीं जानते हैं ॥ ९२ ॥ संवर्त्तबोले कि अतिक्रोधित होताहुआ मैं भी शापसे यही करनेके लिये भलीभांति तैयारथा जिसलिये आपही वह कियागयाहै ॥ ९३ ॥ इसलिये शीघ्रही मुझसे कहो कि तुमलोग किस कारण मुझ विरागी के भी यहां आयेहो फिर मैं वहां पुरीको जाऊं ॥ ९४ ॥ क्योंकि प्राणयात्राके लिये आपही भिक्षा करूंगा और जो मुरदा भूमिमें प्राप्त है उससे मार्गको विशल्य कीजिये याने गांसीकेसमान मुरदेको मार्गसे उठावो ॥ ९५ ॥ नहीं तो शापदूंगा यदि ऐसा न करोगे और वैसेही यहां भलीभांति टिकाहुआ मैं किसी से कहनेयोग्य नहीं हूं ॥ ९६ ॥ क्योंकि मरुत्तनामक भूपति यज्ञके लिये मुझको नित्यही ढूंढताहै उस यज्ञको मैं किसी प्र-

कार न पूजन कराऊंगा ॥ ९७ ॥ गुरु बृहस्पतिजीसे वह त्यागागया है उसी कारणमुझको गुरुका पुत्र जानकर ढूंढताहै ॥ ९८ ॥ वे बोले कि हे सन्मुने ! हमसब बगुलादिक चारोंभी शापसे भ्रष्टहुये हैं और ब्राह्मणों के शापसे पक्षीपन को भलीभांति प्राप्तहैं ॥ ९९ ॥ त्रिलोकसे प्रणामकियेहुये हमलोग महादेवजी के गणहैं और तिर्य्यग्योनि में भलीभांति प्राप्त बड़े वैराग्यमें स्थितहैं ॥ ४०० ॥ उन ब्राह्मणों ने स्त्रियों से उपजा हुआ शापान्त तुम्हारे उपदेशसे भलीभांति कहाहै उसीसे बगुलादिक हमलोग शरण में प्राप्तहैं ॥ १ ॥ हे विभो, महाभाग ! उसी कारण बहुत दिन पक्षीपन के सेवनसे इस समय हम सब पक्षीकी योनिसे वैराग्यको प्राप्तहैं ॥ २ ॥ तुम्हारे

गुरुणासमहीपतिः ॥ गुरुपुत्रञ्चमांज्ञात्वा ततोन्वेषयतेहिमाम् ॥ ९८ ॥ तेऊचुः ॥ शापभ्रष्टावयंसर्वे चत्वारोपिबकादयः ॥ पक्षित्वञ्चैवसम्प्राप्ता ब्रह्मशापेनसन्मुने ॥ ९९ ॥ महेश्वरगणाश्चैव वयंत्रैलोक्यवन्दिताः ॥ तिर्य्यग्योनिंसमानीता वैराग्यंपरमङ्गताः ॥ ४०० ॥ शापान्तस्तुसमादिष्टस्तैर्विप्रैःस्त्रीसमुद्भवः ॥ तवोपदेशतस्तेन बकाद्याःशरणङ्गताः॥ १ ॥ तस्माद्वयंमहाभाग पक्षित्वात्साम्प्रतंविभो ॥ निर्विण्णाश्चिरकालंच पक्षित्वस्यनिषेवणात् ॥ २ ॥ एतच्चकारणन्नान्यत्तवसङ्गसमुद्भवम् ॥ संवर्तउवाच ॥ सद्यःप्रगम्यतांशीघ्रंचमत्कारपुरम्प्रति ॥ ३ ॥ भर्तृयज्ञःस्थितस्तत्र सर्वसन्देहहारकः ॥ सवैदास्यतिसर्वेषामुपदेशंसुशोभनम् ॥ ४ ॥ तेनप्राप्स्यथस्वन्देहं पूर्वमेवयथास्थितम् ॥ सपूर्वंयाज्ञवल्क्योभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ५ ॥ ततोभवान्तरेन्यस्मिन्वैश्यापुत्रोबभूवह ॥ आराधिताब्रह्मसुता देवीवाग्रूपिणीसदा ॥ ६ ॥ नचतुष्टास्वयन्देवी कारणंवीक्ष्यकञ्चन ॥ ब्राह्मणेनप्रजातस्तु देहान्तंप्राप्यकिञ्चन ॥ ७ ॥ तस्यवक्त्रंसमापन्ना स्वय

संगसे उपजाहुआ यही कारण है और नहीं, संवर्त्तबोले कि इसीक्षण शीघ्रही चमत्कारपुर को जाइये ॥ ३ ॥ वहां समस्त सन्देहों के हरनेवाले भर्तृयज्ञ जी टिकेहैं वे निश्चयकर सबोंको अति उत्तम उपदेश देवैंगे ॥ ४ ॥ उससे अपने शरीरको पावोगे जैसा कि पहले स्थितथा पुरातन समय वे समस्त शास्त्रोंके अर्थोंमें पारगामी याज्ञवल्क्य हुये हैं ॥ ५ ॥ तदनन्तर अन्य जन्मके बीचमें वैश्या (वैश्यवर्णवाली स्त्री) के पुत्रहुये हैं उनने सदैव ब्रह्माकी कन्या वाणीरूपवाली देवी (सरस्वती) का आराधनकियाहै ॥६॥ और देवीजी किसी कारणको देखकर आपही न प्रसन्नहुई और देहान्तको पाकर किसीसमय ब्राह्मणसे पैदाहुये ॥७॥ उसके मुखमें आपही सरस्वती

जी भलीभांति प्राप्तहुई पहले नित्यही आराधन कीगई हैं इससे वे कभी नहीं छोड़ती हैं ॥ ८ ॥ उस वैश्यापुत्रके यज्ञमें और आश्चर्य हुआ है कि यज्ञोपवीत भली भांति प्राप्तहोता था व कन्धासे चला जाताथा ॥ ९ ॥ पहलेवाले मनुष्यों के भी यज्ञकर्मों में भलीभांति प्राप्तहुये सन्देहोंको वह हरताही है कि जैसा यहां अन्यकोई नहींहै ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर बार २ प्रणाम करके संवर्त्तमुनि से प्रेरणा कियेहुये वे सब वहां जो मुरदा वर्त्तमान था उसको खींचकर तदनन्तर चमत्कारनगरको गये वहां वास्तु स्थानपद तीर्थमें उनको भलीभांति टिके हुये देखकर बोले ॥ ११ । १२ ॥ कि हमचारों निश्चयकर ब्राह्मणों के शापसे

मेवसरस्वती ॥ पूर्वमाराधितानित्यं नसात्यजतिकर्हिचित् ॥८॥ तस्याश्चर्यमभूदन्यद्यज्ञेवैश्यासुतस्यहि ॥ ब्रह्मसूत्रंस मभ्येति स्कन्धतश्चातिगच्छति ॥ ९ ॥ पूर्वेषामपिलोकानांयज्ञकर्म्मसुसंस्थितान् ॥ ससन्देहान्हरत्येव यथानान्योत्र कश्चन ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ कुणपंतत्रसंवृत्तं संवर्तेनप्रणोदिताः ॥ ११ ॥ त च्चाकृष्यततस्सर्वे चमत्कारपुरङ्गताः ॥ वास्तुस्थानपदेतीर्थेतंदृष्ट्वातत्रसंस्थितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मशापेननिर्दग्धा वयंचत्वार एवहि ॥ पक्षित्वंसमनुप्राप्तास्त्रयःकूर्म्मस्तथापरः ॥ १३ ॥ यएतेचत्रयोस्माकं स्थिताःपार्श्वेमहत्तराः ॥ मार्कण्डःप्र स्थितोह्येष इन्द्रद्युम्नस्तथापरः ॥ १४ ॥ तृतीयोलोमशोनाम विख्यातस्सुमहातपाः ॥ जीवितस्यचनिर्विण्णास्त्रयए वचसाम्प्रतम् ॥ १५ ॥ उपदेशप्रदानेन प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥सूतउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा भर्तृयज्ञोमहामुनिः ॥ १६ ॥ अत्रैवसुचिरंध्यात्वा ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ यूयमत्रैवलिङ्गानि स्थापयध्वंसमाहिताः ॥ १७ ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे ना

जलेहुये हैं तीन पक्षीकी योनिमें प्राप्तहैं वैसेही अन्य कच्छपहै ॥ १३ ॥ और जो ये तीन बड़ेभारी महात्मा हमारे समीप बैठेहैं उनमें से ये मार्कण्ड जी बैठे हैं वैसेही अन्य इन्द्रद्युम्न जी हैं ॥ १४ ॥ व तीसरे लोमशनामक बड़ेभारी तपस्वी प्रसिद्धहैं और इससमय तीनों भी जीनेसे वैराग्यको प्राप्तहैं ॥ १५ ॥ तुम उपदेश के दानसे प्रसन्नता करने के लिये योग्यहो सूतजी बोले कि उनके उस वचनको सुनकर महामुनि भर्तृयज्ञ जी ॥ १६ ॥ यहींपर बहुत देरतक ध्यानकरके दिव्यदृष्टि से जान

कर बोले कि तुमलोग हाटकेश्वर से उपजेहुये इसीक्षेत्र में नामसे प्रसिद्ध उन लिंगोंको थापन कीजिये तदनन्तर उनके आगे समस्त पातकों के हरनेवाले कुलपर्वत नामक दानोंको बड़े यत्नसे देकर तदनन्तर निश्चयकर मनोहर दिव्यशरीर मनोरथको पावोगे ॥ १७ । १८।१६ ॥ व तीन नयनोंवाले देवदेव महात्मा (शिवजी) की गणता को पावोगे वे बोले कि हे विभो, महामुने ! प्रमाण से उनका दान कहिये व विस्तार से विधिकहो कि जिस प्रकार हमलोग दानदेवें ॥ २० ॥ भर्तृयज्ञबोले कि सुवर्णमय सुमेरु व चांदीसे उपजाहुआ कैलास देनाचाहिये और कपाससे हिमाचल व गुड़से उत्पन्न (बनायाहुआ) गन्धमादन पर्वत देनाचाहिये ॥ २१ ॥ और

म्नाख्यातानितानिच ॥ ततोदानानिदत्त्वैव तेषामग्रेप्रयत्नतः ॥१८॥ कुलपर्वतसंज्ञानि सर्वपापहराणिच ॥ ततःप्राप्स्यथ चाभीष्टं वपुर्दिव्यंमनोरमम् ॥ १९ ॥ गणत्वन्देवदेवस्य त्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ तेऊचुः ॥ प्रकीर्तयविभोदानं तेषांय च्छामहेयथा ॥ प्रमाणेनविधानञ्चविस्तरेणमहामुने ॥२०॥ भर्तृयज्ञउवाच ॥ देयोहेममयोमेरुः कैलासोरजतोद्भवः ॥ कार्प्पासेनहिमाद्रिस्तु गुडजोगन्धमादनः ॥ २१ ॥ सुवेलस्तुतिलैर्देयो विन्ध्यश्शर्करयातथा ॥ लवणेनतथाशृङ्गी य थोक्तविधिनाततः ॥ २२ ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासंस्थाप्यविधिपूर्वकम् ॥ सप्तलिङ्गानितैःपश्चात्प्रदत्ताःकुलप र्वताः ॥ २३ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरस्याग्रइन्द्रद्युम्नःप्रतापवान् ॥ मेरुंहेममयंकृत्वा भर्तृयज्ञमतेस्थितः ॥ २४ ॥ मार्कण्डेश्वर देवस्य कैलासोद्विजसत्तमाः ॥ कच्छपेनतुसन्दत्तः सुवेलःपर्वतोत्तमः ॥२५॥ कच्छपेश्वरदेवस्यं पुरस्तिलमयस्तथा ॥ शार्करस्तुतदाशैलः प्रदत्तोभक्तिपूर्वकम् ॥ २६ ॥ शिवईशानसंज्ञस्तु तस्यदेवस्यचाग्रतः ॥ वानरेश्वरदेवस्य पुरतो

तिलोंसे बनायाहुआ सुवेल वैसेही शक्करसे बनायाहुआ विन्ध्याचल देनाचाहिये तदनन्तर वैसेही यथोक्त विधिके द्वारा लोनसे बनाकर शृंगवान् पर्वत देनाचाहिये ॥ २२ ॥ सूतजीबोले कि उन भर्तृयज्ञ के उस वचनको सुनकर उन्होंने विधिपूर्वक सात लिंगोंको भलीभांति थापकर पश्चात् कुलपर्वतों को दिया ॥ २३ ॥ प्रतापवान् इन्द्रद्युम्न ने भर्तृयज्ञ के मतमें स्थित होकर इन्द्रद्युम्नेश्वर देवके आगे सुवर्णमय सुमेरु को बनाकर दानदिया ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मार्कण्डेश्वर देवके आगे मार्कण्डजी ने कैलास पर्वतको दिया वैसेही कच्छपेश्वर देवके आगे कछुवा ने तिलों से बनाकर सुवेल पर्वतोत्तमको दिया और उस समय ईशान संज्ञक जो शिव हैं

उन देवके आगे भक्तिपूर्वक शर्कराका पर्वत दियागया इसके अनन्तर हे बड़ेभाग्यवानो, द्विजोत्तमो ! वानरेश्वर देवके आगे गृध्रने श्रद्धासे पवित्र चित्त करके लवणाख्य यानें लोन से बनाये हुये शृङ्गवान् पर्वत को दिया ॥ २५ । २६ । २७ । २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पर्वतोत्तमों के देनेही मात्रसे वहां आश्चर्य हुआ कि उन तीनोंका पक्षीपन जातारहा व अन्य कछुवे का कच्छपपना चलागया ॥ २९ ॥ इसी अवसर में हे द्विजोत्तमो ! उसके प्रभावसे वे सब दिव्य मालाओं व वसनों के धारनेहारे व दिव्य गन्धोंसे अनुलेपोंवाले होगये जोकि उन भर्तृयज्ञजी के सामने स्थित थे और उसीक्षण सबोंके लिये विमान भलीभांति आये ॥ ३० । ३१ ॥ भर्तृयज्ञ से आज्ञा

द्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ गृध्रेणाथप्रदत्तस्तु लवणाख्योमहागिरिः ॥ शृङ्गीनाममहाभागाः श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ २८ ॥
तत्राश्चर्य्यमभूद्विप्रा दत्तमात्रैर्नगोत्तमैः ॥ पक्षित्वंनिर्गतन्तेषां कूर्मत्वमितरस्यच ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सर्वेतेत
त्प्रभावतः ॥ दिव्यमालाम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ ३० ॥ सञ्जाताब्राह्मणश्रेष्ठा येचतस्यमुखेस्थिताः ॥ विमा
नानिचसर्वेषां समायातानितत्क्षणात ॥ ३१ ॥ भर्तृयज्ञमनुज्ञाप्य प्रणिपत्यचतान्सुरान् ॥ कैलासंपर्वतंप्राप्ता विमान
वरमास्थिताः ॥ ३२ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यस्मात्तल्लिङ्गसप्तकम् ॥ हाटकेश्वरजेक्षेत्रे सञ्जातंपापनाशनम् ॥ ३३ ॥
अन्योपियःपुरस्तेषां लिङ्गानांभक्तिसंयुतः ॥ कुलपर्वतदानञ्च कुर्य्यात्सोपिशिवंव्रजेत ॥ ३४ ॥ तानिलिङ्गानियो
नित्यं प्रातरुत्थायवीक्ष्यते ॥ अज्ञानविहितात्पापात्सोपिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ यश्चैतान्पर्वतान्सप्त क्रमेणात्रप्र
यच्छति ॥ द्विजातिभ्यस्सलिङ्गानां पुरतस्त्रिदिवंव्रजेत् ॥ ३६ ॥ स्थित्वाकल्पान्तरेतत्र संसेवन्तेवराप्सराः ॥ दिव्या

पाकर व उन देवताओंको प्रणामकर उत्तम विमान पै चढ़ेहुये वे सब कैलासपर्वत पै प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥ यह सब तुमलोगों से कहागया कि जिस कारण हाटकेश्वरज क्षेत्रमें पापों के विनाशनेवाले वे सात लिङ्ग भलीभांति हुयेहैं ॥ ३३ ॥ भक्तिसंयुत अन्य भी जो मनुष्य उन लिंगोंके आगे कुलपर्वतोंका दान करैहै वह भी शिवके समीप प्राप्त होवैहै ॥ ३४ ॥ व नित्य प्रातःकाल उठकर जो उन लिंगोंको देखता है वह भी अनजान में कियेहुये पापसे मुक्ति (छूट) पाताहै ॥ ३५ ॥ और यहां जो पुरुष लिंगोंके आगे क्रमसे इन सात पर्वतोंको ब्राह्मणोंके लिये देताहै वह स्वर्गको जाताहै ॥ ३६ ॥ वहां उत्तम अप्सरायें भलीभांति सेवा करतीहैं और कल्प के अन्ततक टिक

कर देवताओंवाले सुखोंको भलीभांति सेवकर जब भूमिमें पैदा होताहै ॥ ३७ ॥ तब चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होकर सार्वभौम महाराजाधिराज होताहै एक पर्वतके देनेसे पापोंका विनाश होताहै ॥ ३८ ॥ दोसे पुत्र व चाहेहुये फल होतेहैं तीन पर्वतों के देनेसे राजा व चारमे मण्डलका स्वामी (छोटाराजा) होताहै ॥ ३९ ॥ और पांच पर्वतों के देनेसे भरतखण्ड का स्वामी होताहै व छह से जम्बूद्वीप का स्वामी और सात पर्वतों के देनेसे चक्रवर्त्ती होताहै ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक पर्वतोंके देनेसे यह ब्रह्मा ने कहाहै कि सदैव जन्म २ में मनुष्य द्विजोत्तम होताहै ॥ ४१ ॥ और दुःखी या दरिद्री व रोगी नहीं होताहै किन्तु वह सौभाग्य व सुखसे संयुत तथा बड़ीभारी यज्ञ

न्भोगांश्चसंसेव्य यदाभूमौप्रजायते॥३७॥चक्रवर्तित्वमासाद्य सार्वभौमःप्रजायते ॥ एकेनतुप्रदत्तेन जायतेपापसंक्षयः॥ ३८ ॥ द्वाभ्यांपुत्रावाञ्छितानिफलानिहिभवन्तिच ॥ त्रिभिस्सञ्जायतेराजा चतुर्भिर्मण्डलेश्वरः ॥ ३९ ॥ भारतस्यतुखण्डस्य स्वामीभवतिपञ्चभिः ॥ जम्बूद्वीपाधिपःषड्भिश्चक्रवर्तीचसप्तभिः ॥ ४० ॥ विधिवत्पर्वतैर्दत्तैरेतदाह पितामहः ॥ नरस्स्याद्ब्राह्मणश्रेष्ठस्सदाजन्मनिजन्मनि ॥ ४१ ॥ नदुःखितोदरिद्रोवा व्याधितोवाप्रजायते ॥ सौभाग्यसुखसंयुक्तस्समहासत्रभाग्भवेत् ॥ ४२ ॥ सर्वशत्रुविनिर्मुक्तःप्रतापीविजितेन्द्रियः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूमिपालैर्विशेषतः ॥४३॥ एतेचपर्वतादेया उद्दिश्यनिजदेवताः ॥४४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे तृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेसप्तलिङ्गोत्पत्तिकथनंनामषड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तमीशानस्यमहीपतेः ॥ ईश्वरेणपुरादत्तमायुर्यावच्चवासरम् ॥ १ ॥ किंप्रमाणंभवे

का भागी होता है ॥ ४२ ॥ व समस्त शत्रुवों से छूटाहुआ, प्रतापवान् व विशेषकर जितेन्द्रिय होताहै इस लिये विशेषकर राजाओं को अपने देवोंका उद्देशकर सब उपायसे इन पर्वतोंको देना चाहिये ॥ ४४३ । ४४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसप्तलिङ्गोत्पत्तिकथनंनाम षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । सतयुगादि के चरित अरु अहै जौन परमान । दोसौ सत्ताईसमहँ कहत सूत बुधिमान ॥ ऋषि लोग बोले कि आपने जो यह कहा कि पुरातन समय

ईश्वर ने ईशान भूपति को तबतक आयुर्बल दियाहै कि जबतक दिन रहै ॥ १ ॥ उनके दिनका क्या प्रमाणहै यह हम लोगोंसे कहिये सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो! इस विषयमें मैं तुम लोगोंसे महादेवजी के दिनका प्रमाण कहूँगा उसको कहते हुये मुझ से प्रकटही सुनिये निमेष (पलक मारने के समय) का चौथाभाग त्रुटिहै और उन दो त्रुटियों का लव होताहै ॥ २।३ ॥ दो लवोंका यव कहागयाहै और उन पन्द्रह यवोंकी काष्ठा होती है तीस काष्ठाओं की कला कहीगई है व तीसकलाओं का क्षण मानागया है ॥ ४ ॥ व साठि क्षणोंका पल कहागयाहै और उन साठिपलों की नाड़ी होतीहै व दोही नाड़ियों से मुहूर्त कहागया है ॥ ५ ॥ बुद्धिमानोंने तीस

त्तस्य दिवसस्यब्रवीहिनः ॥ सूत उवाच ॥ अत्रवःकीर्तयिष्यामिप्रमाणंदिवसस्यतु ॥ २ ॥ माहेश्वरस्यविप्रेन्द्राः शृणुताङ्गदतःस्फुटम् ॥ निमेषस्यचतुर्भागस्त्रुटिःस्यात्तद्द्वयंलवः ॥ ३ ॥ लवद्वयंयवःप्रोक्तः काष्ठातद्दशपञ्चभिः ॥ त्रिंशत्काष्ठाःकलामाहुः क्षणस्त्रिंशत्कलोमतः ॥ ४ ॥ क्षणैःषष्ट्यापलंप्रोक्तं षष्ट्यातेषाञ्चनाडिका ॥ नाडिकाद्वितयेनैव मुहूर्तं परिकीर्तितम् ॥ ५ ॥ त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रंमनीषिभिः ॥ मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्द्वौमासौतुऋतुंविदुः ॥ ६ ॥ तेतुत्रयंचाप्ययनमयनेद्वेतुवत्सरम् ॥ मानुषाणांहिसर्वेषां सएवपरिकीर्तितः ॥ ७ ॥ तंदेवानामहोरात्रं पुराणज्ञाःप्रचक्षते ॥ अयनंचोत्तरंशुक्लं यद्देवानांदिनंहितत् ॥ ८ ॥ यद्दक्षिणन्तुसारात्रिः शुभकर्मविगर्हितम् ॥ यथासुप्तोनगृह्णाति किञ्चिद्भोगादिकन्नरः ॥ ९ ॥ तथादेवाश्चयज्ञांशान्नगृह्णन्तिकथञ्चन ॥ अनेनैवतुमानेन मानवेनद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ लक्षैस्सप्तदशाख्यैश्चवत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ अष्टाविंशतिसाहस्रैर्वत्सराणांकृतंयुगम् ॥ ११ ॥ तस्मिञ्छ्वेतोभवद्विष्णुर्भगवान्योजगद्-

मुहूर्तोंका दिन-रात कहाहै व तीस दिन रातोंसे महीना और दो महीनों का ऋतु कहाहै ॥ ६ ॥ उन तीन ऋतुवों का अयन व दोअयनोंका वही वर्ष समस्त मनुष्यों का कहागया है ॥ ७ ॥ और पुराण के जाननेवाले उस वर्षको देवताओं का दिन रात कहते हैं और जो श्वेत उत्तरायण है वह देवोंका दिनहै ॥ ८ ॥ व जो उत्तम कर्मोंमें निन्दित दक्षिण अयनहै वह रातहै जैसे सोताहुआ मनुष्य कुछ भोगादिक पदार्थ को नहीं ग्रहण करता है ॥ ९ ॥ वैसेही देवता भी किसी प्रकार दक्षिणायनमें यज्ञभागों को नहीं ग्रहण करतेहैं हे द्विजोत्तमो! इसी मनुष्योंके प्रमाणसे ॥ १० ॥ सत्रहलाख वर्षों व अट्ठाईस हज़ार सालोंका सतयुग कहागयाहै ॥ ११ ॥ उस सत-

युगमें जो जगत्के गुरु भगवान् विष्णुजी हैं वे श्वेतवर्णवाले हुयेहैं और मनुष्य पापोंसे छुटेहुये व क्षमावान् तथा इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व जितेन्द्रिय हुयेहैं॥१२॥ तथा दीर्घ आयुर्बलवाले समस्त मनुष्य सदैव तपस्या में स्थित रहते थे जो जिस प्रकार जन्मको पाताथा वह वैसाही नहीं मरताथा ॥ १३ ॥ और कहीं पुत्रोंसे उपजी हुई मृत्युको पिता नहीं देखते थे व हे द्विजोत्तमो ! उस सतयुगमें काम,क्रोध, लोभ,पाखण्ड तथा मत्सर (ईर्ष्या)ये निश्चयकर मनुष्योंके नहीं होतेहैं तदनन्तर हे मुनि-श्रेष्ठो ! दूसरा त्रेतायुग होनेवाला है ॥ १४ । १५ ॥ उस समय विकराल धर्म पाप के एक चरण से प्रवेश करता है तदनन्तर मधुदैत्य के मारनेवाले भगवान् विष्णु

गुरुः ॥ लोकाःपापविनिर्मुक्ताः क्षान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥ दीर्घायुषस्तथासर्वे सदैवतपसिस्थिताः ॥ योयथाज
न्मप्राप्नोति तथानम्रियतेनरः॥ १३ ॥ नपुत्रसम्भवोमृत्युर्वीक्ष्यतेजनकैःक्वचित ॥ कामःक्रोधस्तथालोभोदम्भो मत्स
रएवच॥ १४ ॥नजायतेनृणांतत्र युगेतुद्विजसत्तमाः ॥ ततस्त्रेतायुगंभावि द्वितीयंमुनिसत्तमाः ॥ १५ ॥ पापेनैकेनपादेन
रौद्रधर्म्मतदाविशत् ॥ ततोरक्तत्वमभ्येति भगवान्मधुसूदनः ॥ १६ ॥ पापांशेपिचसम्प्राप्ते संस्पर्द्धीजायतेजनः ॥
स्वर्गमार्गकृतेसर्वे कुर्वन्त्यज्ञास्ततःपरम् ॥ १७ ॥ अग्निष्टोमादिकांस्तत्र बहुहेमादिकांस्तथा ॥ दैवतोक्तांस्ततोयान्ति
क्रमाद्यावच्चतुर्दश ॥ १८ ॥ ब्रह्मलोकस्यपर्य्यन्तं स्वकीयैर्यज्ञकर्म्मभिः॥ केचित्स्वल्पायुषस्तत्र जायन्तेस्पर्द्धयाहिते॥
१९ ॥ तदातत्रापिनोयान्ति मृत्युंपुत्राःकथञ्चन ॥ जनकेविद्यमानेच स्वच्छन्देनप्रकीर्तिताः ॥ २० ॥ कामक्रोधादयो
येच भवन्तिनभवन्तिच ॥ एकयाहेलयातत्र वापितंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २१ ॥ सप्तवारान्प्रगृह्णन्ति वैश्याःकृषिपरायणाः॥

जी अरुणवर्णको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ व पापके भागके भी भलीभांति प्राप्त होने पर मनुष्य ईर्ष्यावान् होताहै तदनन्तर स्वर्गमार्गके लिये उस त्रेतायुग में सब मूर्ख मनुष्य देवताओंसे कहीहुई व बहुत सुवर्णादिकोंवाली-अग्निष्टोमादिक यज्ञोंको करतेहैं तदनन्तर चौदह भुवनतक अपने यज्ञ कर्मोंसे ब्रह्मलोक पर्यन्त जातेहैं उस त्रेतायुगमें वे कोई मनुष्य ईर्ष्याके कारण थोड़ी आयुवाले होतेहैं ॥१७।१८।१९॥ उससमय उस त्रेतायुग में भी पिताके विद्यमान होनेपर पुत्र किसी प्रकार मृत्युको नहीं प्राप्तहोते हैं व अपने वश कहेगये हैं ॥ २० ॥ और जो काम, क्रोधादिक हैं वे होतेहैं और नहीं होतेहैं उस त्रेतायुगमें उत्तम क्षेत्र एकबार बोयाया जाता है ॥ २१ ॥ और खेती

में लगेहुये वैश्यवर्णवाले पुरुष सातवार ग्रहण करतेहैं व सब गाइयां घड़ाभरदूध देनेवाली और भैंसियां चौगुना याने चार घड़ा दूध देनेवाली होतीहैं ॥ २२ ॥ वैसे ही ऊंटिनियां उनके चौगुना अर्थात् सोलह घड़ा दूध देनेवाली होतीहैं और छगड़ियां व भेंड़ियां और वैसेही समस्त स्त्रियां उसके चौथाई दूधवाली होतीहैं ॥२३॥ और ब्राह्मण लोग वेदपाठसे संयुत व दानलेनेसे रहित तथा शाप व दयाके कार्यों में समर्थ होतेहैं ॥२४॥ और जो क्षत्रियों के धर्ममें तत्पर होतेहैं वे पृथ्वीका पालन करते हैं व उस त्रेतायुगमें चोर व जार (व्यभिचारी) पुरुष किसी प्रकार नहीं देख पड़तेहैं ॥ २५ ॥ और सबही वर्ण अपने धर्ममें विशेषकर स्थित होतेहैं व

सर्वाघटस्रवागावो महिष्यश्चचतुर्गुणाः ॥ २२ ॥ प्रयच्छन्तितथाक्षीरमुष्ट्र्यस्तासाञ्चतुर्गुणम् ॥ अजाविकास्तथापादं
नार्य्यःसर्वास्तथैवच ॥ २३ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नाः प्रतिग्रहविवर्जिताः ॥ शापानुग्रहकृत्येषु समर्थास्सम्भवन्तिच ॥
२४ ॥ क्षात्रधर्म्मपरायेच पालयन्तिवसुन्धराम् ॥ नतत्रदृश्यतेचौरानजाराश्चकथञ्चन ॥ २५ ॥ स्वधर्मनिरतास्सर्वे
वर्णाश्चैवव्यवस्थिताः ॥ तच्चद्वादशभिर्लक्षैर्वत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥ षण्णवत्यासहस्रैस्तु द्वितीयंयुगमुत्तमम् ॥ ततः
श्रद्धापरंभावि तृतीयंद्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ द्वौपादौतत्रपापस्य द्वौचधर्म्मस्यसंस्थितौ ॥ भगवान्वासुदेवश्चकपिलस्तत्र
जायते ॥ २८ ॥ तच्चाष्टलक्षमानेन वत्सराणांप्रकीर्तितम् ॥ चतुःषष्टिभिरन्यैश्च सहस्रैश्चद्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥ कामः
क्रोधोमदोलोभो दम्भोमत्सरएवच ॥ षडेतेतत्रजायन्ते ईर्ष्याचैवतुसप्तमी ॥ ३० ॥ अथसंसेवितास्तैस्तु मानवास्तुप
रस्परम् ॥ विरुद्धांश्चप्रकुर्वन्ति नोत्पतन्तियतोदिवम् ॥ ३१ ॥ केपितत्रापिजायन्ते शान्तादान्ताजितेन्द्रियाः ॥ नसर्वे

उसमें उत्तम वह दूसरा युग बारह लाख छानबे हज़ार वर्षोंका कहागयाहै तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! श्रद्धामें परायण तीसरा द्वापरयुग होनेवाला है ॥ २६ । २७ ॥ उसमें दो चरण पापके और दो धर्मके भलीभांति स्थितहोतेहैं व उस द्वापरयुग में भगवान् वासुदेवजी पीतवर्णके होतेहैं ॥ २८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह द्वापरयुग आठलाख वर्षोंकी प्रमाणसे व अन्य चासाठि हज़ार वर्षोंसे कहागयाहै ॥ २९ ॥ उस द्वापरयुग में काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड, मत्सर (पराये ऐश्वर्यको न सहना) ये छह व सातवीं ईर्ष्या उत्पन्न होतीहै ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उन कामादिकोंसे भलीभांति सेवित मनुष्य आपसमें विरोध करतेहैं कि जिससे स्वर्गको नहीं ऊर्ध्वगमन करते

हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस द्वापर युग में भी कोई भी शान्त व नेत्रादिक बाहरी इन्द्रियोंको रोंकनेवाले और जितेन्द्रिय होते हैं सब भी क्रूर व दुर्द्धर्षता से युक्त नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर चौथा अतिविकराल कलियुग कहागयाहै जिसमें एक चरणवाला धर्म व तीन पांवोंसे पाप स्थित रहता है ॥ ३३ ॥ और उसी कलियुग में चार भुजाओंवाले (विष्णु) देव भी कृष्णताको प्राप्त होते हैं व धर्मका एक चरणभी जहां तहां वर्तमान होता है ॥ ३४ ॥ व पश्चात् जहां तहां धीरे २ नाशको प्राप्तहोताहै उस पिछलेही युगका प्रमाण चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कहा गया है और उसमें कलियुग से भलीभांति छुये हुये समस्त मनुष्य आपस

पिद्विजश्रेष्ठाः क्रूरादुर्द्धर्षतायुताः ॥ ३२ ॥ ततःकलियुगंप्रोक्तंचतुर्थंचसुदारुणम् ॥ एकपादोवृषोयत्र पापंपादैस्त्रिभिःस्थितम् ॥ ३३ ॥ कृष्णत्वंयातिदेवोपि तत्रैवचतुर्भुजः ॥ एकपादोपिधर्मस्य यावत्तावत्प्रवर्तते ॥ ३४ ॥ पश्चान्नाशंसमभ्येति यावत्तावच्छनैःशनैः ॥ प्रमाणंतस्यनिर्दिष्टं लक्षाश्चत्वारएवच ॥ ३५ ॥ द्वात्रिंशच्चसहस्राणियुगस्यैवान्तिमस्यच॥ कलिनातत्रसंस्पृष्टा मर्त्याःसर्वेपरस्परम् ॥ ३६ ॥ विधुरैस्सम्प्रवर्तन्ते रागद्वेषपरायणाः ॥ यस्यचास्तिगृहेवित्तं तथानार्य्योमनोरमाः ॥ ३७ ॥ तैर्नरैस्तुसमम्मैत्रीं कलौकुर्वन्तिमानवाः ॥ विधवानांयतीनाञ्च सर्वेषाञ्चतपस्विनाम् ॥ ३८ ॥ लोकद्वयविनाशस्स्याद्यतश्चैवनशुद्ध्यति ॥ प्रावृट्कालेपिसम्प्राप्ते दुर्भिक्षेणप्रपीडिताः ॥ ३९ ॥ भ्रमन्तिचकलौलोकानधर्म्मासक्तदृष्टयः ॥ जात्यानिचापितनयः पिताचेन्निधनंव्रजेत् ॥ ४० ॥ ततोहंग्रहणेभूषां बान्धवोपिचबान्धवम् ॥

में ॥ ३५ । ३६ ॥ राग द्वेष (प्रीति, वैर) में तत्पर होकर बड़े वियोगों से भलीभांति वर्तमान होते हैं जिसके घरमें धन और सुन्दरी स्त्रियां होती हैं ॥ ३७ ॥ उन मनुष्यों के साथ कलियुग में मनुष्य मित्रता करते हैं और विधवाओं व संन्यासियों तथा समस्त तपस्वियों के दोनों लोकों का विनाश होताहै, और जिससे शुद्ध नहीं होते हैं व वर्षा समय के भी भलीभांति प्राप्तहोनेपर दुर्भिक्ष (अकाल) से अत्यन्त पीड़ित होते हुये मनुष्य कलियुग मे घूमते हैं और धर्म में दृष्टिको नहीं लगाते हैं जातिवाले व पुत्र भी चाहता है कि यदि पिता मृत्यु को प्राप्तहोवै ॥ ३८ । ३९ । ४० ॥ तो मैं भूषणों के ग्रहण में होऊं और भाई लोग भी भाई को

इसीप्रकार चाहते हैं व धनके कारण पतोहू चाहती है कि यदि सासु नाशको प्राप्त होवै ॥ ४१ ॥ तो वह समस्त घर का ऐश्वर्य मेरा होगा अन्यथा न होवैहै काव्यों से वेद नष्ट होगये व दामादों से पुत्र ताड़ित हुये ॥ ४२ ॥ व सारोंसे भाईभी व पुंश्चलियोंसे कुलस्त्रियां नष्टहुईं और शूद्र तपस्वी हुये तथा धर्मके बतलानेवाले शूद्र हुये ॥ ४३ ॥ व वैसेही शूद्र ब्राह्मणोंके लिये उपदेश कहते हैं तथा मेघ थोडेजलवाले व पृथ्वी थोड़े अन्नोंवाली होतीहै ॥ ४४ ॥ वैसेही गाइयां थोड़े दूधवाली होती हैं और दूधमें घी नहीं होताहै तथा ब्राह्मण सर्वभक्षी होतेहैं तदनन्तर राजा दयारहित होते हैं ॥ ४५ ॥ और वैश्य खेतीसे लजाते हैं व शूद्र ब्राह्मणों के पालन करने

स्नुषा वेत्तिचवित्तेन यदिश्वश्रूःक्षयंव्रजेत ॥ ४१ ॥ ममस्याद्गृहऐश्वर्य्यं तत्सर्वंनान्यथाभवेत् ॥ काव्यैरुपहतावेदाःपुत्राजामातृकैस्तथा ॥ ४२ ॥ श्यालकैर्बान्धवाश्चापि असतीभिःकुलस्त्रियः ॥ शूद्रास्तपस्विनश्चैव शूद्राधर्मस्यसूचकाः॥ ४३ ॥ ब्राह्मणानांतथाशूद्रा उपदेशंवदन्तिच ॥ अल्पोदकास्तथा मेघाअल्पसस्याचमेदिनी ॥ ४४ ॥ अल्पक्षीरास्तथा गावःक्षीरेसर्पिर्नविद्यते ॥ सर्वभक्षास्तथाविप्रा नृपानिष्करुणास्ततः ॥ ४५ ॥ कृष्यालज्जन्तिवैश्याश्च शूद्राब्राह्मणपोषकाः ॥ हेतुवादरतायेच भण्डविद्यापराश्रये ॥ ४६ ॥ तेतेस्युर्भूमिपालानां सदाभीष्टाःकलौयुगे ॥ चौर्य्यकार्य्यपराभूपाः पृथिवीगतयौवना ॥ ४७ ॥ अतिक्रान्तशुभाकाला पर्य्युपस्थितदारुणा ॥ यथायथायुगंभावि वृद्धयोनिस्त्रियोनराः॥ ४८ ॥ तथातथाप्रयान्तिस्म संयुताजन्तुभिस्सह ॥ वर्षेद्वादशमेचैव कन्यास्याद्गर्भसंयुता ॥ ४९ ॥ ततःषोडशमेवर्षेनराःपलितयौवनाः ॥ शौचाचारपरित्यक्ता निजकार्य्यपरास्तथा ॥ ५० ॥ भविष्यन्तियुगस्यान्तेनराअङ्गुष्ठमात्रकाः॥

वाले होतेहैं और जो मतलब की बातमें तत्पर व जो भांडोंकी विद्यामें परायण होवैंगे ॥ ४६ ॥ वे सदैव कलियुग में भूपोंको प्रिय होवैहैं राजा चोरीके कार्योंमें तत्पर होतेहैं व पृथ्वी गयेहुये यौवनवाली होतीहै याने कोई युवा नहीं होताहै ॥ ४७ ॥ व व्यतीत हुये उत्तम समयोंवाली व समीप में प्राप्त भयङ्कर कालवाली पृथ्वी होगी व ज्यों ज्यों युग होगा त्यों त्यों मनुष्य प्राणियोंके साथ संयोगको प्राप्तहुई वृद्धयोनिवाली स्त्रियोंके समीप प्रयाण करते हैं व बारहवें वर्षमें कन्या गर्भसे संयुक्त होगी ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सोलहवें वर्षमें मनुष्य युवावस्था में श्वेतबालोंमे उपलक्षित व पवित्रता के आचार से छूटेहुये तथा अपने कार्यमें परायण होवैंगे ॥ ५० ॥ और

युगके अन्त में मनुष्य अंगूठा के प्रमाणभर होवेंगे और इसके अनन्तर मूसोंसे उपजेहुये बिलोंसे घर करते हैं ॥ ५१ ॥ वैसेही कीड़ोंका चर्मरूप वसन उनका ओढ़न होगा तदनन्तर समस्त वर्ण एकही जातिवाले होवेंगे ॥ ५२ ॥ व म्लेच्छभूत तथा दुष्ट आचरणवाले व धर्मकार्यों में दूषण देनेवाले होवेंगे ऐसा होनेपर तदनन्तर संसार में कल्की के शरीर से उत्पन्न हरिपिंगल ब्राह्मण उन समस्त मनुष्योंको नाश करेंगे पश्चात् हे द्विजोत्तमो ! फिर भी सतयुग होगा ॥ ५३।५४॥ तदनन्तर इसी प्रकार हजारयुगों से ब्रह्माका दिन होगा उसके उपरान्त रात होगी ॥ ५५॥ तदनन्तर इसी प्रमाण से साठियुक्त तीनसौ ब्रह्माके दिनोंसे वह विष्णुका दिन होगा ॥ ५६ ॥

गृहंचतेथकुर्वन्ति बिलैराखुसमुद्भवैः ॥५१॥ तथाप्रावरणन्तेषां कृमिवस्त्रम्भविष्यति ॥ एकवर्णाभविष्यन्ति वर्णास्सर्वे ततःपरम् ॥ ५२ ॥ म्लेच्छीभूतादुराचारा धर्म्मकृत्यविदूषकाः ॥ एवंजातेततोलोके ब्राह्मणोहरिपिङ्गलः ॥ ५३ ॥ कल्कीगात्रसमुत्पन्नस्तान्सर्वान्सूदयेज्जनान् ॥ पश्चात्कृतयुगम्भावि भूयोपिद्विजसत्तमाः ॥ ५४ ॥ एवंयुगसहस्रेणसम्प्राप्तेनततःपरम् ॥ ब्रह्मणोदिवसोभावी रात्रिश्चैवततःपरम् ॥ ५५ ॥ ततश्चानेनमानेन षष्ट्यायुक्तैस्त्रिभिश्शतैः ॥ ब्रह्मणोदिवसैर्भावि केशवस्यचतद्दिनम् ॥ ५६ ॥ आत्मीयेनैवसब्रह्मा यावद्वर्षशतंस्थितः ॥ केशवोपिस्वमानेन वर्षाणां जीवितंशतम् ॥५७॥ वर्षेणवासुदेवस्य दिनंमाहेश्वरम्भवेत् ॥ निजमानेनसोप्यत्र यावद्वर्षशतंस्थितः ॥५८॥ ततश्शक्तिस्वरूपःस्यात्सोच्चयःकीर्त्यतेयतः ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं शिवशक्तिसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥ यावदायुःप्रमाणञ्च मानुषाद्यं चयद्भवेत् ॥ भवद्भिश्शाङ्करःपृष्टो द्विजायोवासरःपुरा ॥ मयापुनस्तुसर्वेषां ब्रह्मादीनाम्प्रकीर्तितम् ॥६०॥ इत्यध्यायः२२७॥

अपनेही दिनादिकोंकी प्रमाणसे वे ब्रह्माजी सौवर्षतक स्थित रहते हैं और विष्णुभी अपने प्रमाणसे सौ वर्षतक जीतेहैं ॥ ५७ ॥ विष्णुजी के वर्षभर से महादेवजी का दिन होताहै वे भी यहां अपने प्रमाणसे सौवर्षतक स्थित रहतेहैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शक्तिका स्वरूप रहताहै क्योंकि वह अविनाशी कहाजाताहै शिव व शक्तिसे उपजाहुआ यह समस्त चरित तुम लोगोंसे कहागया ॥ ५९ ॥ जोकि मनुष्यादिकों की आयुका प्रमाण होताहै हे ब्राह्मणो ! पहले आपलोगों ने जो शिवजीका दिन पूँछा था फिर मैंने समस्त ब्रह्मादिकों का दिन कहा ॥६०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेयुगस्वरूपवर्णनंनामसप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

दो० । सौरादिक जिमि होतहैं चारिभांति के साल । दोसै अट्ठाईस महँ सोई सुभग हवाल ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इन युगोंके हजारवार वीतने से ब्रह्मा का दिन होताहै उस दिनमें चौदह इन्द्र होतेहैं ॥ १ ॥ और इससमय यहां जो इन्द्र वर्त्तमान हैं वे सातवें हैं व इकहत्तरि चतुर्युगी का कल्प होता है व वैसेही ब्रह्माके दिनमें अन्य चौदह मनु राज्य करते हैं व जैसे इन्द्र स्थित होते हैं वैसेही स्वायंभुव इत्यादिक मनु टिकतेहैं ॥ २।३ ॥ इस समय जो इन्द्र वर्तमानहैं ये जयन्तनामक हैं व वैवस्वत मनुहैं और अट्ठाईसवें प्रमाणवाला युगहै ॥ ४ ॥ इकहत्तरि चतुर्युगी में से इस बचेहुये चतुर्युगके व्यतीत होजानेपर विष्णुकी प्रसन्नतासे बलि इन्द्रहो-

सूतउवाच ॥ एतेषान्तुसहस्रेण विधेरस्तिदिनंद्विजाः ॥ चतुर्दशसहस्राद्या जायन्तेतत्रवासरे ॥ १ ॥ सप्तमस्तुसह स्राद्यःसाम्प्रतंवर्ततेत्रयः ॥ एकसप्ततिसंवर्तश्चतुर्दशदिनेविधेः ॥२॥ युगानांकुर्वतेराज्यं मनवश्चतथापराः ॥ स्वायम्भुवप्र भृतयो यथाशक्रास्तथास्थिताः ॥ ३ ॥ जयन्तोनामशक्रोयं साम्प्रतंवर्ततेतुयः ॥ वैवस्वतोमनुश्चैव अष्टाविंशप्रमाण कः ॥ ४ ॥ चतुर्युगस्यसञ्जाते गतेस्मिञ्छेषमात्रके ॥ भविष्यतिबलिश्शक्रो वासुदेवप्रसादतः ॥ ५ ॥ तेनतस्यप्रति ज्ञातं राज्यञ्चैवाष्टमेमनौ ॥ एवंसर्वेसुराश्चान्ये त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणतः ॥ ६ ॥ कोटयःप्रभविष्यन्ति यथाचैवतथापुरा ॥ योर्यब्रह्मास्थितोविप्रास्साम्प्रतंसृष्टिकारकः ॥ ७ ॥ तस्यानेनप्रमाणेन जातंसंवत्सराष्टकम् ॥ षण्मासाश्चदिनार्द्धंचप्र थमंशुक्लपूर्वकम् ॥ ८ ॥ सौरसावनचन्द्रर्क्षैमानैरेभिश्चतुर्विधैः ॥ कालोनियातिसर्वेषां भूतानांक्षितिमण्डले ॥ ९ ॥ प ञ्चषष्ट्यधिकैश्चैव दिनानांचशतैस्त्रिभिः ॥ भवेत्संवत्सरस्सौरः पञ्चोनैस्तैश्चसावनः ॥ १० ॥ चान्द्रएकादशोनस्तुत्रिं

वैंगे ॥ ५ ॥ क्योंकि उन विष्णुने आठवें मनुमें उन बलिके राज्यकी प्रतिज्ञा किया है इसीप्रकार जैसे पहले थे वैसेही तेंतीसकोटि प्रमाणवाले अन्य देवता होवेंगे हे ब्राह्मणो ! इससमय सृष्टिके करनेवाले जो ये ब्रह्माजी स्थितहैं ॥ ६ । ७ ॥ उनके इस प्रमाणसे आठवर्ष, छह महीना व शुक्लपक्षपूर्वक पहले दिनका आधाभाग व्य-तीतहुआ है ॥ ८ ॥ पृथ्वीमण्डल में सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र इन चार प्रकारके प्रमाणों से समस्त प्राणियों का समय व्यतीत होताहै ॥ ९ ॥ पैंसठि अधिक तीनसौ दिनोंसे सौर संवत्सर होताहै और उनमें से पांचकम याने तीनसौ साठ दिनोंका सावनवर्ष होताहै ॥ १० ॥ और गेरह दिन कम चान्द्रवर्ष व तीस दिन कम नक्षत्रों

से उपजाहुआ साल होताहै और जाड़ा, घाम व वर्षा सौर वर्षके प्रमाण से होती है ॥ ११ ॥ व पृथ्वीतल में जो अग्निष्टोमादिक यज्ञ वर्तमान होतेहैं वे और उत्साह व विवाह सावनवर्ष के प्रमाण से होतेहैं ॥ १२ ॥ व व्याज आदिक देश में उपजेहुये जो कोई व्यवहार हैं वे मलमाससंयुत चान्द्रवर्ष से निर्माण कियेगये हैं ॥ १३ ॥ और नक्षत्रों के प्रमाण से नक्षत्र भेदको प्राप्त होते हैं इन चार मानों (प्रमाणों) से अन्य कुछ भूतलमें नहींहै ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इसीप्रमाण से देवता, दैत्य, मनुष्य वर्तमान होतेहैं यह पुरानी-ऋचाहै ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भक्तिसे संयुत होताहुआ जो मनुष्य इन्हीं सात लिंगोंके आगे इस युग के प्रमाणको पढ़ैहै॥ १६॥

शब्दीनउद्भवः ॥ शीतातपौतथावृष्टिस्सौरमानेनजायते ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञा वर्तन्तेपृथिवीतले ॥ उत्साहाश्चविवाहाश्च सावनेनभवन्तिच ॥ १२ ॥ कुसीदाद्याश्चयेकेचिद्व्यवहाराश्चदेशजाः ॥ अधिमासप्रयुक्तेन तेस्युश्चान्द्रेणनिर्मिताः ॥१३॥ नक्षत्रेणतुमानेन भिद्यन्तेचाभितारकाः ॥ नान्यत्किञ्चिद्धरापृष्ठे एतन्मानचतुष्टयात ॥१४॥ अनेनतुप्रमाणेन देवदैत्याश्चमानवाः ॥ वर्तन्तेब्राह्मणश्रेष्ठाः श्रुतिरेषापुरातनी ॥ १५ ॥ एतद्युगप्रमाणन्तुयःपठेद्भक्तिसंयुतः ॥ एतेषामेवलिङ्गानां सप्तानांब्राह्मणोत्तमाः ॥ १६ ॥ नापमृत्युभयंतस्य कथंचित्सम्भविष्यति ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेयुगप्रमाणवर्णनंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २२८ ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ तथान्यदपितत्रास्ति दुर्वासःस्थापितम्पुरा ॥ तल्लिङ्गंदेवदेवस्य त्रिनेत्रस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ चैत्रेमासिनरोयस्तुतमाराधयतेद्विजाः ॥ नृत्यगीतप्रवाद्यैश्च त्रिकालंवालवंत्क्षणम् ॥ २ ॥ सनूनंतत्प्रसादेन गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्॥

उसको किसी प्रकार-अपमृत्यु का डर न होवैगा ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेतृतीयपरिच्छेदेनागरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुगप्रमाणवर्णनंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दुःशीलेश्वर शिवहिं जिमि थाप्यो है दुःशील । दोसौ उन्तीसवें महँ सोइ चरित बहुलील ॥ सूतजी बोले कि पुरातनसमय वहां वैसेही दुर्वासाजी से ध्याया हुआ तीन लोचनोंवाले महात्मा देवदेव (शिव) जीका वह लिंगहै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! चैत महीने में जो मनुष्य नाचने, गाने व बजाने से त्रिकालमें या पल तथा

क्षणभर उन शिवजी का आराधन करता है ॥ २ ॥ वह निश्चय कर उन शिवजी की प्रसन्नतासे गन्धर्वों का स्वामी होता है ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! दुर्वासा नामक ये कौनहैं व किस समयमें किसने इन सदाशिवजी को थापाहै हमलोगोंसे सब विस्तारपूर्वक कहिये-सूतजी बोले कि वैदिशनामक उत्तमनगर में पुरातनसमय पवित्र निम्ब तपस्वी हुआहै ॥ ३ । ४ ॥ वह लिंगको पूजताथा और वह द्रव्य इकट्ठा करनेमें तत्पर था और शैवमनुष्य से वह जो कुछवस्त्रादि या अन्य पदार्थको पाता था तदनन्तर वह बेंचडालताथा व उसके उपरान्त वह नित्यही उसके मूल्य से सुवर्ण लेताथा ॥ ५ । ६ ॥ और उसका खर्च नहीं करताथा केवल बटोरनेमें तत्पर

ऋषयऊचुः ॥ दुर्वासानामकश्चायं केनायंस्थापितोहरः ॥ ३ ॥ कस्मिन्कालेमहाभाग सर्वन्नोविस्तराद्वद ॥ सूतउवाच ॥ आसीत्पुराशुचिर्निम्बो वैदिशेचपुरोत्तमे ॥ ४ ॥ सचपूजयतेलिङ्गं किञ्चसंसंचयेरतः ॥ सचकिञ्चिदवाप्नोति वस्त्राद्यंच तथापरम् ॥ ५ ॥ माहेश्वरस्यलोकस्य विक्रीणीतेततस्तुसः ॥ ततोगृह्णातिनित्यंस हेममूल्येनतस्यच ॥ ६ ॥ नकरोति व्ययंतस्य केवलंसञ्चयेरतः ॥ ततःकालेनमहतामात्रातस्यनिरर्गला ॥ ७ ॥ जाताहेममयीविप्राः कार्पण्यनिरतस्यच ॥ अथैकांघटिकांमध्यकक्षात्तान्नैवमुञ्चति ॥ ८ ॥ कदाचिद्देवपूजायां सोपिब्राह्मणसत्तमः ॥ विश्वासन्नैवनिर्याति कस्य चित्सकथञ्चन ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य परवित्तापहारकः ॥ अलक्षद्ब्राह्मणस्तञ्चदुश्शीलाख्यस्सुदुर्मतिः ॥ १० ॥ ततःशिष्योभविष्यामि विश्वासार्थन्दुरात्मनः ॥ सुदीनैःकृपणैर्वाक्यैश्चाटुकारैःपृथग्विधैः ॥ ११ ॥ अस्यदास्यंदिवा नक्तं साधयिष्याम्यसंशयम् ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते दृष्ट्वातंसचमध्यगम् ॥ १२ ॥ ततस्समीपमगमद्दण्डाकारम्प्रण

था तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! बडेसमय से उस कृपणता में तत्पर तपस्वी की सुवर्णमयी मात्रा अधिक होगई इसके अनन्तर वह द्विजोत्तम कभी देवपूजन में भी एक घड़ीभर उस सुवर्ण की पुटिकाको बगलसे नहीं छोड़ताथा और वह किसीप्रकार किसीके विश्वास में न प्राप्तहोताथा ॥ ७ । ८ । ९ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय अति-दुष्टबुद्धिवाले दुःशीलनामक पराये धनके हरनेहारे ने उस ब्राह्मणको देखा ॥ १० ॥ तदनन्तर मन में विचार किया कि दुष्टात्मा के विश्वास के लिये शिष्य हूंगा और अतिदीन व कृपण तथा अनेक प्रकार के मीठे वचनों से दिन रात निरसन्देह इस की सेवकाई का साधन करूंगा अन्य दिन के भलीभांति प्राप्त होनेपर उसको बीच

में प्राप्त देखकर ॥ ११ । १२ ॥ तदनन्तर समीप गया व दण्डा के समान प्रणाम कर नम्रतासे नीचे झुका हुआ खड़ा वह जुड़ेहुये हाथोंवाला होकर बोला ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! तुम्हारी तपस्या के इस प्रभाव को मैंने सुनाहै जिस लिये कि भूतल में तुम्हारे समान ऐसा अन्य नर नहीं है ॥ १४ ॥ उसी से वैराग्यसंयुत मैं जन्म मृत्यु व वृद्धता को नांघनेवाली संसार की असारता को जानकर दूर से प्राप्त हुआ हूं ॥ १५ ॥ और इस संसार में मनुष्यों का यौवन वैसेही बिजुलीकी चमकके समान है जैसे पर्वत से उपजी हुई नदी क्षणभर में भङ्गशीलतावाली होती है ॥ १६ ॥ वैसेही पुत्र व स्त्रियों का समूह और जो अन्य भाई आदिक हैं उन सबों को वैसेही

स्यच ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयावनतःस्थितः ॥ १३ ॥ भगवंस्तेप्रभावोयं तपसश्चमयाश्रुतः ॥ यदन्यस्त्वादृशो नास्ति ईदृशोन्योधरातले ॥ १४ ॥ तेनाहंदूरतःप्राप्तो वैराग्येणसमन्वितः ॥ संसारसारतांज्ञात्वा जन्ममृत्युजरातिगाम् ॥ १५ ॥ मेघार्चिप्रतिकाशश्च यौवनञ्चनृणामिह ॥ यद्वत्पर्वतसञ्जाता नदीचक्षणभङ्गुरा ॥ १६ ॥ पुत्राःकलत्रनिचयो येचान्येबान्धवादयः ॥ तान्सर्वांश्चपरिज्ञाय यथापापसमागमः ॥ १७ ॥ तत्संसारसमुद्रस्य तारणार्थंब्रवीहिमे ॥ उपायंकञ्चिदद्यैव उपदेशंप्लवस्थितम् ॥ १८ ॥ तरामियेनसंसारं प्रसादात्तवसुव्रत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वामाहेश्वरःकोयं विदेशात्समुपस्थितः ॥ अथाब्रवीत्त्वंधन्योसि यस्यतेमतिरीदृशी ॥ २० ॥ तारुण्येवर्तमानस्य सुकुमारस्यचैवहि ॥ तारुण्येवर्तमानोयःशान्तस्सोत्रनिगद्यते ॥ २१ ॥ आद्येवयसियश्शान्तस्सशान्तइतिमेमतिः ॥ धातुषुक्षीयमाणेषु शमःकस्यनजायते ॥ २२ ॥ यद्येवंसुविरक्तिस्ते संसारोपरिसंस्थिता ॥ समाराध

जानकर जैसे कि पापियों का संयोग होताहै ॥ १७ ॥ इस लिये संसाररूपी समुद्र के उतरने के लिये नावकी नाईं स्थित किसी उपदेश को आजही मुझ से कहिये ॥ १८ ॥ कि जिससे हे सुव्रत ! तुम्हारी प्रसन्नता से संसारको उतर जाऊं उसके उस वचनको सुनकर रोमांचित रोमोंवाले निस्वने यह जानकर कि विदेशसे भलीभांति प्राप्त हुआ यह कौन शिवभक्त है इसके अनन्तर कहा कि तुम धन्यहो क्योंकि सुकुमार व पहली अवस्थामें वर्तमान जो तुमहो उनकी ऐसी बुद्धिहै युवा अवस्था में वर्तमान जो शान्त है वह यहां शान्त कहाजाताहै ॥ १९ । २० । २१ ॥ पहली अवस्थामें जो शान्त है वह शान्तहै यह मेरी बुद्धि है क्योंकि धातुवों के क्षीण होनेपर

किसके शान्ति नहीं होती है ॥ २२ ॥ यदि संसार के ऊपर तुम्हारा ऐसा उत्तम विराग भलीभांति स्थितहै तो मस्तक में चन्द्रमावाले शङ्कर सुरेश को भली भांति आराधन करो ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर तुम अघोरमन्त्र के जपसे भवसागर उतरोगे शास्त्र के संयोगसे मैंने इसको भलीभांति जानाहै ॥ २४ ॥ यदि शिवमन्त्र से संयुत अत्यन्तपापकारी जो शूद्र या ब्राह्मण या म्लेच्छ भक्तिसे षडक्षरमन्त्र के द्वारा एक फूल शिवजी के ऊपर धरताहै हे सद्विज ! वह जिस २ गति को चाहता है उसको प्राप्त होती है ॥ २५ । २६ ॥ और दयासंयुत जो पुरुष बड़ीभक्ति से शिवमन्त्र व वसन, जूता तथा पात्रों को देताहै वह यज्ञों से क्या करैगा ॥ २७ ॥ उस

यदेवेशं शङ्करंशशिशेखरम् ॥ २३॥ त्वयाथाघोरजाप्येनतीर्य्यतेभवसागरम् ॥ मयासम्यक्परिज्ञातमेतच्छास्त्रसमागमात् ॥ २४ ॥ शूद्रोवायदिवाविप्रोम्लेच्छोवापापकृत्तरः ॥ शिवदीक्षासमोपेतः पुष्पमेकन्तुयोन्यमेत् ॥ २५ ॥ षडक्षरेणमन्त्रेण शिवस्योपरिभक्तितः ॥ सताङ्गतिमवाप्नोति यांयांवाञ्छतिसद्विज ॥ २६ ॥ योददातिप्रभक्त्याचशिवदीक्षांदयान्वितः ॥ वस्त्रोपानत्पात्राणिसयज्ञैःकिङ्करिष्यति ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वाचरणौतस्यदुःशीलोसौतदादरात् ॥ निःक्षिप्यस्वशिरस्तस्यततोवाक्यमुवाचह ॥ २८॥ शिवदीक्षाप्रदानेनप्रसादंकुरुमेविभो ॥ शुश्रूषांयेनतेनित्यंप्रकरोमिसमाहितः ॥ २९ ॥ ततोसौतापसोविप्रश्चिन्तयामासचेतसि ॥ दक्षोयंदृश्यतेकोपिपुमांश्चैवसमागतः ॥ ३० ॥ आयातिनापरःशिष्यस्तस्मादेनंकरोम्यहम् ॥ ततोऽब्रवीत्करंगृह्ययद्येवंवत्समेसमम् ॥ ३१ ॥ समयंकुरुयेनत्वांदीक्षयाम्यद्यचैव हि ॥ त्वयाकुटीरकङ्कार्य्यंमठस्यास्यविदूरतः ॥ ३२ ॥ प्रवेशोनैवकार्य्यस्तुममात्रास्तगतेरवौ ॥ दुःशीलउवाच ॥ तवा

समय उन मुनि के उस वचन को सुनकर इस दुःशीलने अपने शिर को उनके चरणों पै धरकर तदनन्तर आदरसमेत वचन कहा ॥ २८ ॥ कि हे विभो ! शिव-मन्त्रकेप्रदान से मेरे ऊपर प्रसन्नताकीजियें जिससे सावधान होताहुआ मैं नित्यही तुम्हारी सेवा करूं ॥ २९ ॥ तदनन्तर इस तपस्वी ब्राह्मणने चित्त में चिन्तवन किया कि यह कोई भी भलीभांति आयाहुआ पुरुष चतुर देखपडता है ॥ ३० ॥ और शिष्य नहीं आवैगा इसलिये मैं इसको शिष्य करताहूं तदनन्तर हाथ पकड़ कर कहा कि यदि ऐसाहै तो हे वत्स ! मेरे साथ ॥ ३१ ॥ सौगन्ध करो जिससे आजही तुमको दीक्षा देऊं तुमको इस मठ के दूरमें कुटी करनाचाहिये ॥ ३२ ॥ और सूर्य

नारायण के अस्तहोजाने पर मेरे यहां प्रवेश न करनाचाहिये दुःशील बोला कि हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! मुझको केवल तुम्हारी आज्ञा का प्रमाण है ॥ ३३ ॥ व विशेष कर रात्रि के संयोगमें मैं मठ से क्या करूंगा जो शिष्य गुरु के यथोदित वचनको नहीं करताहै ॥ ३४ ॥ उसका वह व्रत व्यर्थ होगा और तदनन्तर नरक होगा उस वचन को सुनकर तदनन्तर प्रसन्नता में प्राप्त तपस्वीने उस समय नम्रतायुक्त उस दुःशील के लिये पांचअक्षरोंवाले मन्त्र को शिवदीक्षा में दिया तब से लगाकर वह उसकी सेवा में अत्यन्तहीपरायण हुआ ॥ ३५ । ३६ ॥ और दिन २ उस सुवर्णकी मात्राके लिये मन से चिन्तवन करतेहुये व सेवामें तत्पर उस दुःशीलने उस

देशःप्रमाणंमेकेवलंतापसोत्तम ॥ ३३ ॥ किंमठेनकरिष्यामिविशेषाद्रात्रिसङ्गमे ॥ यःशिष्यश्चगुरोर्वाक्यंनकरोतिय थोदितम् ॥ ३४ ॥ तस्यव्रतंचतद्व्यर्थंनरकश्चततःपरम् ॥ तच्छ्रुत्वातुष्टिमापन्नःशिवदीक्षान्ततोददौ ॥ ३५ ॥ तस्मैविन ययुक्तायतदापञ्चाक्षरंमनुम् ॥ ततःप्रभृतिसोतीवतस्यसुश्रूषणेरतः ॥ ३६ ॥ रञ्जयामासतच्चित्तंपरिचर्य्यापरायणः ॥ म नसाचिन्तयानस्तुतन्मात्रार्थंदिनेदिने ॥ ३७ ॥ नच्छिद्रंवीक्ष्यतेकिञ्चिद्वीक्ष्यमाणोपिसुव्रतः ॥ निम्बोनचस्वकक्षान्ता न्ताम्मात्रांहेमसम्भवाम् ॥ ३८ ॥ कथञ्चिन्मोक्षतेभूमौभोज्येदेवार्चनेपिच ॥ ततोसौचिन्तयामासदुःशीलोनिजचेतसि ॥ ३९ ॥ ममतावत्प्रवेशःस्यादुपायैर्विविधैरपि ॥ तत्किंविषंप्रयच्छामिशस्त्रैर्व्यापादयामिकिम् ॥ ४० ॥ दिवापिपशुमारे णपञ्चत्वंवानयामिकिम् ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यप्रावृट्कालउपस्थितः ॥ ४१ ॥ श्रावणस्यासितेपक्षेकर्कटस्थेदिवाकरे ॥

के चित्तको स्नेहवान् किया ॥ ३७ ॥ व देखाजाताहुआ भी कुछ छिद्र (स्वर्ण लेने का समय) न देखपड़ता था और उत्तमनियमोंवाला निम्ब तपस्वी सुवर्ण से उपजीहुई उस मात्राको भोजन व देवपूजन में भी किसीप्रकार कांखके बीचसे भूमि में नहीं छोड़ताथा तदनन्तर इस दुःशीलने अपने चित्तमें चिन्तवन किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कि अनेक प्रकार के भी यत्नोंसे तबतक मेरा प्रवेशहोगा तो क्या विष देऊं या क्या शस्त्रोंसे मारडालूं ॥ ४० ॥ अथवा क्या दिनमें भी पशुमार (गला दबाके मारने) से मृत्युको प्राप्तकरूं इस प्रकार उसको चिन्तवन करतेहुये वर्षासमय समीप प्राप्तहुआ ॥ ४१ ॥ श्रावण के शुक्लपक्ष में कर्कराशि में सूर्यनारायण के टिकनेपर

शीघ्रही वहां आयाहुआ कोई शैव प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥ उसने उच्चप्रकार से प्रणामकर कहा कि हे स्वामिन् ! मैं चौदसि में तुम्हारा पूजन करूंगा इससे तुम्हारी आ-
ज्ञाहोवै ॥ ४३ ॥ कि जिस प्रकार प्रसन्नतासंयुत मेरे ग्रामको आइये सूतजी बोले कि उस वचन को सुनकर निम्ब महामुनि उस समय प्रसन्नता को प्राप्तहुये ॥
४४ ॥ व वैसाही होगा यह कहकर उसीक्षण उसको पठाया व कहा कि अपनेशिष्य समेत मैं समय में आऊंगा ॥ ४५ ॥ हे वत्स ! तुम्हारा निस्सन्देह कल्याण करूंगा
इसके अनन्तर समय के भलीभांति प्राप्तहोनेपर जब प्रातःकाल प्राप्तहुआ तब उससमय अतिप्रसन्नलोमोंवाले व शोभासंयुक्त तथा दुःशील से संयुत उस शैवने

प्राप्तोमाहेश्वरस्तस्यकोपितत्रागतोद्रुतम् ॥ ४२ ॥ तेनोक्तंप्रणिपत्योच्चैःकरिष्यामितवार्चनम् ॥ चतुर्दश्यामहंस्वामिं
स्त्वदादेशोभवेदतः ॥ ४३ ॥ यथागच्छस्वमेग्रामंप्रसादेनसमन्वितः ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वातुष्टिमापन्नस्तदानिम्बो
महामुनिः ॥४४॥ तथेतिचैवमुक्त्वातंप्रेषयामासतत्क्षणात् ॥ आगमिष्याम्यहङ्कालेस्वशिष्येणसमन्वितः ॥ ४५ ॥ करि
ष्यामिपरंश्रेयस्तववत्सनसंशयः ॥ अथकालेतुसंप्राप्तेचिन्तयित्वाप्रभान्वितः ॥ ४६ ॥ प्रभातसमयेप्राप्ते सशैवःप्रस्थि
तस्तदा ॥ दुश्शीलेनसमायुक्तः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ४७ ॥ ततोवैगच्छमानस्य तस्यमार्गेव्यवस्थिता ॥ पुण्यानदीसु
विख्याता सुरम्यासागरङ्गमा ॥ ४८ ॥ सतान्दृष्ट्वाऽब्रवीद्वाक्यं वत्सशिष्यकरोम्यहम् ॥ भवतासहदेवार्चां सुरम्यायां
स्थिरोभव ॥ ४९ ॥ बाढमित्येवसंप्रोक्त्वा संस्थितोस्यास्तटेशुभे ॥ सोपिनिम्बस्तुशिष्यस्य रञ्जितस्सर्वदागुणैः ॥
५० ॥ सुशिष्यन्तंपरिज्ञाय विश्वासंपरमङ्गतः ॥ स्थगितांतांसमादाय हेममात्रासमुद्भवाम् ॥ ५१ ॥ यागेश्वरसमो

प्रयाण किया ॥ ४६।४७ ॥ तदनन्तर जातेहुये उनके मार्गमें अतिप्रसिद्ध व पवित्र तथा अत्यन्तसुन्दरी व समुद्रमें गमनकरनेवाली नदी विशेषतासे स्थितहुई ॥ ४८ ॥ उन
निम्ब महामुनिने उस नदीको देखकर वचन कहा कि हे वत्स, शिष्य ! आपके समेत मैं बहुतही सुन्दरीनदी के समीप देवपूजन करूंगा इससे स्थिर होवो ॥ ४९ ॥
हां यही कहकर वह इसनदीके उत्तम किनारेपै भलीभांति टिका और शिष्यके गुणोंसे सदैव अनुरागवान् वह निम्बभी ॥५०॥ उसको उत्तम शिष्य जानकर बड़े विश्वा-